

समर्पणम्.

यतीन्द्रवर ब्रह्मलीन परमहंस परिव्राजका-
चार्य श्री १०८ स्वामी भास्करानन्द
सरस्वती चरणसरोरुहेषु

इदम्

श्रीयोगवासिष्ठ महारामायणं

आचार्य्योपाधिधारि

श्रीपं० ठाकुरप्रसाद द्विवेदिप्रणीतम्

भाषानुवादसमेतम्

तत्पादपङ्कजमकरन्दलुब्धवैजनाथगुप्तेन

परमभक्त्या समर्पितम्.



भूमिका।



१— निर्वाणप्रकरण योगवासिष्ठका छठा प्रकरण है और उसमें चौदह हजार श्लोक हैं और जैसा कि स्वच्छ नि
मुमुक्षुप्रकरणके सत्रहवे अध्यायमें कहाहै इस प्रकरणका श्रोता सब संसारके भ्रमोंसे रहित होकर चि आकाश
प्रकाशात्मा, विज्ञानात्मा, निरामय, आकाशसेभी स्वच्छ, जगद्यात्राको समाप्त करनेवाला, कृतकृत्य, वज्जल अहंक
स्तंभके सदृश विकाररहित, वस्तुके प्रतिबिम्बभावको ग्रहणकरनेवाला, निस्तरंग समुद्रवत् गंभीर, कार्य्यकारण अज्ञानी
त्यागसे रहित, सदेह होनेपरभी विदेह, संसारसहित होनेपरभी संसाररहित होजाताहै, आशारूपी विशूचिकोंही
मुक्त, अहंकाररूपी वेतालसे रहित, सम्पूर्णब्रह्मांडकी लक्ष्मीको अपने रोमके अग्रभागमें धारणकरनेवाला, विका. र
ध्य, ऐसे श्रोताकी तुलनाको कोई- ऐसी वस्तु संसारमें नहीं है जो होसके.

यह प्रकरण दोभागोंमें विभक्त, है पूर्वार्द्ध उत्तरार्द्धकी अपेक्षा छोटा है परन्तु इसमेंभी वही सिद्धान्त जो
पहिले प्रकरणोंमें निरूपण कियागयाहै नये २ आख्यानों और महाविचित्र और मनोहर दृष्टान्तोंसे दिखायागयाहै,
वसिष्ठजीका सिद्धान्त यह है कि अध्यात्मशास्त्रविचाररूपी औषधिकेविना तृष्णारूपी विषविषूचिका कदापि
शान्त नहींहोती, यह जगत् जो अज्ञानियोंको वज्रसारवत् भासताहै, ज्ञानीकी दृष्टिमें वैसाही मिथ्या है, जैसे स्वप्नके
पदार्थ जाग्रतमें, जबतक आत्मज्ञानकी प्राप्ति नहींहोती तभीतक यह जगत् जगत्‌रूपसे भासताहै, ज्ञान होनेपर
यही जगत् जगत्‌रूपसे भासमान नहींहोता किन्तु शुद्ध चिन्मात्र ब्रह्मरूपसे भासताहै, आरोपदृष्टिसे ब्रह्म जगद्रूपसे
भासताहै; अपवाददृष्टिसे जगत्‌का जगदाकार नहीं रहता किन्तु ब्रह्मही शेष रहताहै, इसलिये विद्या और
अविद्यामें केवल यही अन्तर है कि जगत् ब्रह्मरूप है या जगद्रूप यदि ब्रह्मरूप है तो विद्या और जगद्रूप है
तो अविद्या, परन्तु पुनः २ अभ्यास विना यह भावना जो अनेकजन्मोंसे जगत्‌की सत्यताके विषयमें दृढ
होरही है दूर नहीं होती और जबतक यह भावना दूर नहो तबतक सुखकी आशा कदापि नहीं होसकती. वास्तवमें
जो कुछ भासताहै वह केवल चिन्मात्रही है, कोई वस्तुकभीभी सत् वा असत् नहीं है, इसलिये मनुष्यको जल-
में भ्रमतेहुये तृणके समान अपने आपको इस जगत्‌भ्रान्तिसे निकालनाही सुखका हेतु होसकताहै, आ-
त्मज्ञानकी प्राप्तिके दो उपाय हैं, एक योग दूसरा ज्ञान, वास्तवरीत्या दोनों उपाय योगशब्दसेही कहे जासक-
ते हैं परन्तु रूढ़िमें योगशब्द प्राणके निरोधमें प्रयुक्त है। यह विषय भुशुंडाख्यानमें वसिष्ठजीने सम्यक्‌रीत्या
वर्णन कियाहै, भुशुंडजीने चित्तके नाशका उपाय प्राणअपानकी गतिका साक्षी होना बतायाहै, हृदयसे प्राण
उदय प्राप्त होकर नासिकाके बाहर बारह अंगुलपर अपानवायुमें लीनहोताहै और वहाँसे अपान उदयको प्राप्त होकर
हृदयस्थ प्राणमें लीन होताहै, प्राणापानकी संधि शरीरके बाहर और हृदयमें ब्रह्मस्थान है उसकी धारणा करनेसे चित्त
एकाग्र होकर स्वस्वरूपमें लीन होजाताहै, यदि अपानके लय होनेके स्थानकी धारणाद्वारा अन्तःकुंभक
होवे तो वही परिणाम होताहै जो प्राणके लय होनेके स्थानकी धारणाद्वारा बाह्यकुंभकसे, प्राण अपानका
उदय आतप और छायाकी नाईं बराबर चलता रहताहै "परन्तु जब अपानके अस्त होनेपर अन्तःकुंभकद्वारा
प्राणका उदय नहो अथवा प्राणके अस्त होनेपर बाह्यकुंभकद्वारा अपानका उदय नहो, तो स्वच्छ कुंभकके अभ्याससे
फिर दुःखकी प्राप्ति नहीं होती प्रत्युत देशकालान्तर्गत वस्तुसमूहके बाध होनेसे केवल एक निष्कल
ब्रह्म शेष रहताहै. यह कुंभक जहां प्राणके अस्त होनेपर अपानका उदय न हो और अपानके
अस्त होनेपर प्राणका उदय न हो योगियोंको अयत्नसिद्ध है और यही प्राणापानकी संधि परमात्माका
स्वरूप है, जो सत्‌स्वरूपसे भासमान प्राणकाभी प्राण, जीवनकाभी परमजीवन और देहके धारण करनेका
हेतु है इसी चिदात्माकी योगीजन उपासना करतेहैं."

२ दूसरा उपाय ज्ञान है जो अभ्यास और वैराग्यद्वारा अहम्‌को अनहम्‌भावमें लयकरनेसे मिलताहै, यह
... जीने अपने और महादेवजीके सम्वादमें विस्तारपूर्वक ... देवजी कहतेहैं कि न विष्णु,

शिव, न ब्रह्मा, न इन्द्र, न पवन, न सूर्य्य, न अग्नि, न चन्द्रमा, न ब्राह्मण, न क्षत्रिय, न तुम, ई देहधारी वा चित्तरूपधारी, देवशब्दसे कथित होसकताहै, वह देव अकृत्रिम, आद्यन्तरहित, चिन्मात्र है. उसीकी उपासना करो, कृत्रिम देवादिकोंकी अर्चना उनलोगोंके लिये है कि जो त्रमदेवकी पूजाके अधिकारी नहीं हैं । उस परमदेवकी पूजाके लिये बोध साम्य शमही पुष्प हैं, उस परमदेवताकी परमपूजा है, वह देव कहीं दूर नहीं है, न वह किसीको दुष्प्राप्य है, किन्तु वह र्न सर्वदा स्थितहै, नामरूपसे वर्जित, मन और इन्द्रियोंसे परे, व्यवहारके लियेही उसकी संज्ञा चिद् श्वर, आदि कल्पनाकी गई हैं और जब वह देवही एक अद्वितीय सर्वत्र स्थितहै तो द्वैत अद्वैतकी कैसे होसकती है क्योंकि दोकी अपेक्षा एक होताहै किन्तु जब दोही नहीं है तो एक कैसे कहाजासकताहै इसी प्रकरणमें वसिष्ठजीने श्रीकृष्ण और अर्जुनका सम्वाद जो भगवद्गीतामें है उसकोभी संक्षेपसे वर्ण ; है और वहांपर यह दिखलायाहै कि मैं यह हूं, यह मेरा है, इसीसे सब दुःख होताहै, परन्तु जब यह जानालय कि मुझमें कर्तृत्व और भोक्तृत्व नहीं है, तो फिर सुख, दुःख, कर्म्म, अकर्म्मसे बन्धायमान नहीं होता, नेत्र रूपको देखें, कर्ण शब्दको सुनें, त्वचा स्पर्श करे, रसना रस ले, मन कल्पना करे, मुझे इनके कर्म्मसे कुछ प्रयोज नहीं है. जब सब संकल्प शान्त होगये, वासनाका क्षय होगया, मनमें कोई भावना न रही, तो फिर जो शेष रह वह मेराही शुद्ध चिन्मात्र स्वरूप है. जो ब्रह्मासे लेकर तृणपर्य्यन्त सत्तासामान्यरूपसे सर्वत्र व्याप्त रहाहै वा सब शरीरोंमें सूक्ष्म अनुभवरूपसे स्थित है, उसीका यह जगत् आभास है, उसीमें यह सब सर्ग और प्रल होते भान होतेहैं, और उसीमें वह महात्मा स्थित हैं जो मानमोहसे रहित, संगदोषसे वर्जित, अध्यात्मविचार तत्पर और सब संकल्पों तथा सुखदुःखोंसे मुक्त हैं.

इसके अनन्तर भगीरथ उपाख्यान है जिसमें यह दिखलायागयाहै कि जब बुद्धिसे राज्यादि अभिमानको त्यागकर भयशून्य, सबप्रकारकी इच्छाओंसे रहित, अकिंचन होकर और अपनी स लक्ष्मीको अपने शत्रुओंको देकर, अहंकारसे रहित, उन्हीं शत्रुओंके यहां भिक्षाटन करके गुरुकोभी छोडदे तबही ब्रह्मपदमें स्थित होगे, सुतरां राजा भगीरथने ऐसाही महात्याग किया और परमपदमें विश्रान्ति पाकर प्रारब्ध वशात् फिर राजकिया परन्तु उसमें लिप्त नहीं [illegible] शिखिध्वजको जिसप्रकार उसकी रानी चुडालाने उपदे किया वह इस बातका साक्षीहै कि उससमयकी [illegible] विदुषी होती थीं, राजा शिखिध्वज वैराग्यकी प्रब तासे अपने राजको त्याग, बनको चलेगये और [illegible] आदिमें अपना काल व्यतीत करनेलगे, परन्तु चि त्तकी शान्ति नहीं हुई, रानीने कुछ कालतक तो [illegible] यव्यवस्थाको निबाहा और फिर मुनिपुत्रके वेषमें जाकर पति ज्ञानोपदेश किया, राजाने कहा कि मैं संसारसे [illegible]ीत होकर इस वनमें निवास करताहूं, परन्तु सुखदुःख पुनः २ दशाओंको देखकर और एकदिशासे [illegible] दिशामें भ्रमण करकेभी चित्तकी शान्ति नहींपाता, चुडालाने उत्तर दिया कि जो कुछ क्रियाफल है वह वासनामात्र है, यदि वासनाको त्याग दियाजाय तो फि क्रिया बाधक न होगी, मनमें वासनाका होनाही उसका मनोभाव है, जब उसमें वासना नहीं रहती तब मनका भाव जातारहताहै और ज्ञानद्वारा ज्ञेयको प्राप्त होकर पुनरुत्पत्ति नहीं होती. इन दंड कमंडल क्यों रमण करतेहो ? क्यों तुम इस बातका विचार नहीं करते कि मैं कौन हूं ? यह संसार क्या है इसकी शान्ति कैसे हो ? तुमने अपने ऊपर मूढ़ हस्तीकी नाई अहंकारका महावत ऐसा [illegible] कि वह तुमको नहीं छोडता. तुम समझतेहो कि मैंने राज्य छोडकर सर्वत्याग किया परन्तु बिना चित्तके त्याग नहींहोता. जैसे २ वासनाका त्याग करोगे वैसेही सुखी होगे. सर्ववासनाके त्यागसे परमपद मिलता और देह और आश्रम आदि सबका बीज मन है. जबतक मनका नाश नहीं होगा तबतक यह संसाररूपी शान्त नहोगा. इस मनका स्वरूप वासनासे अतिरिक्त और कुछ नहीं है, इसलिये तुमको न केवल पदार्थों त्यागनी उचितहै किन्तु त्यागके अभिमानकोभी त्यागना उचितहै, इस अभिमानके त्यागका प्रथम उपाय यह निरन्तर यह विचार रहे कि मेरा स्वरूप क्याहै ? मैं न संसारी हूं, न संसारके पदार्थोंसे मेरा कुछ सम्बन्ध है, न ज्ञान अथवा कर्मेन्द्रिय हूं, न मन हूं, न बुद्धि हूं, न अहंकार हूं, किन्तु इनसबसे परे, इन सबका साक्षी कार्यकारणभाव [illegible] नहीं है [illegible] और जगत् कुछ नहीं है, किन्तु [illegible]

इसप्रकार जब राजाको ज्ञान हुआ तो चुडालाने उसकी परीक्षार्थ फिर स्त्रीरूप धारणकरके उससे विवाह किया रुपने कुछकाल उसकेसाथ रमणकरके उसकी पूर्ण परीक्षार्थ दूसरे पुरुषकेसाथ रमण करतीहुई दिखाईदी, परन्तु राजा अपने स्वरूपसे चलायमान न हुआ. रानीने उसको फिर राज्यमें लाकर स्थापितकिया परन्तु राजाका अनुभव सदा यही रहा कि मैं निरीह, निरंश, हर्षशोकमें समान जो हूं वही हूं, न मुझे प्रतिषेधका भान होताहै, न वांछितपदार्थका, मैं तो सर्वदा सबसे अतीत, आकाशवत् सर्वव्यापीरूपसे स्थितहूं.

इक्ष्वाकुमनुसम्वादमें यह निरूपण कियागयाहै कि परमेश्वर न शास्त्रसे, न गुरुसे, किन्तु अपनी स्वच्छ निर्मल-बुद्धिसेही प्राप्त होताहै ॥ "मैं देहहूं" यही बुद्धि संसारके बंधनका हेतु है, "मैं अकिंचिन्मात्रचिन्मात्ररूप आकाशसेभी सूक्ष्म हूं" यह बुद्धि संसारबन्धनसे मुक्त करनेवाली है ॥ मोक्ष किसी देश वा कालका नाम नहीं है, वह केवल अहंकारके लयका नाम है ॥ न ज्ञानी और अज्ञानीमें कोई और भेद है. ज्ञानी नित्यतृप्त शान्तचित्त होताहै. अज्ञानी सदा तृष्णासे दग्ध अशान्त चित्त रहताहै. जो लोग कि मंत्रसिद्धि तपसिद्धि आदिद्वारा आकाशगमनादिकोही बडा समझतेहैं उनकी ज्ञानियोंमें गणना नहीं होसकती किन्तु ज्ञानी सर्वदा निर्लिप्त रहताहै. ऐसे ज्ञानीका कि जिसका संसार-भ्रम सर्वथा नष्ट होगयाहै, कोई चिन्ह इसके अतिरिक्त नहीं है कि उसके काम क्रोध मोह लोभरूपी आपदा प्रतिदिन क्षय होते हों. वह जाग्रतमेंभी सुषुप्तके समान होताहै, यद्यपि बाहरसे कर्म्म करताहुआ दृष्टि आताहै परन्तु भीतरसे अकर्त्ता है. जब उसने यह जानलिया कि चित्तकी सत्ताही परमदुःख है और उसका अभाव अर्थात् चिदेकात्मामें लय होनाही परमसुख है, तो फिर उसे क्या कर्त्तव्य शेष रहा. यह सम्वेदन कि यह वस्तु ऐसी है और यह ऐसी नहीं है,
यह ऐसा हो, यह ऐसा न हो यही संसार है, इसकी शान्ति मोक्ष है. संकल्पके वेगकोही संसार जानो, जब यह वेग
शान्त होगया फिर संसार कहां रहा? सं-
जी कहते हैं कि "मैं ऊंचे हाथ उठाकर कहता-कल्पका बीज स्मृति है, स्मृतिका अभावही परम कल्याणका हेतु है. वसिष्ठ-
कारी है, क्यों नहीं उसकी भावना करते, थोडे को- मेरी कोई नहीं सुनता. संकल्पका न फुरनाही परम कल्याण-
पदकी प्राप्ति होती है, जहांपर त्रैलोक्यका राज्यभी तृणवत् सब व्यापारसे उपरत हो मौन धारण करे शास्त्रके
हो और उसके पाँव आपही उठते चलेजातेहैं वैसेही संकल्पका... जैसे कोई पथिक अपने गम्यदेशको ... कथिक
क्या, संक्षेपसे कहाजाताहै कि संकल्पही बंध है और उसका ... त्यागकर कर्ममें प्रवृत्त हो ... अर्थात् चित्तकी
किसी वृत्तिका उदय नहोना और चित्तका अत्यन्त क्षय होनाही योग है. अलक्षित तन्मय होकर जैसे हो वैसे स्थितहो,
जो शिव सर्वगत शान्त बोधात्मक अज और कभीभी सत् है उसीकी भावना करना सर्वत्याग है, ऐसी भावना
करतेहुये इस संसारमें विचरो. जबतक जगत्भ्रान्तिसे सम्वेदन फुरताहै तबतक दुःखसे नहीं छूटता. उसके
न फुरनेसेही दुःखसे छूटताहै, जैसी इच्छाहो ... वास्तवमें वसिष्ठजीके उपदेशका सार यह है कि:—

स्वयं विचार्य्य स्वयमेव चेतसा यत्प्राप्यते येन न शोचते पुनः ।
सत्संगसच्छास्त्रविवेकतः पुनर्वैराग्ययुक्तेन विभाव्यमेतत् ॥

स्वयं विचारद्वारा अपने चित्तसेही वह वस्तु प्राप्त होतीहै जिससे पुनः यह जीव सोच नहीं करता. वैराग्ययुक्त होकर सत्संग, सच्छास्त्र, और विवेकसे उसीकी भावना करो.

इसप्रकरणके उत्तरार्द्धमेंभी, जो पूर्वार्द्धकी अपेक्षा बहुत विस्तृत है, जगत और ब्रह्मकी एकता दृढ कीगई है, वसिष्ठ-
जीका कथन है कि जिस निमिषमें अहम्भावना उठे उसी निमिषमें अनहम् भावना करो, और इस भावनाको हृदयमें धारण
करो कि यह सब जगत मैंही हूं, मुझसे पृथक् कुछभी नहीं है; अथवा न मैं हूं, न यह जगत है, किन्तु एक चिन्मात्रही है.
चित्तही जगत्का कारण है. जब चित्त बहिर्मुख होताहै तो पहिले अहम् फिर मम और फिर इदम् फुरताहै. चित्त प्राणके
अन्तर्गत और प्राण चित्तके अन्तर्गत है, इन दोनोंका परस्परसम्बन्ध बीजांकुरवत् है; और जब जगत् चित्तके अन्तर्गत
है तो चित्तके निरोधसे जगत्की स्फुरणा नहीं होती,, ब्रह्ममें यह जगत् हैही नहीं परन्तु विद्यमानके समान भासताहै.
जब यह जगत् हैही नहीं तो इसका कारणान्वेषण वैसेही वृथा है, जैसे शशशृंग अथवा वन्ध्यापुत्रका कारणान्वेषण.
इस अनादि भ्रमजालकी शान्तिका उपाय शमही है. जैसे निमेष और उन्मेष रूपावलोकन और उसके तिरोधानका
हेतु है, वैसेही सम्वित्का बहिर्मुख और अन्तर्मुख होना जगत्की उत्पत्ति और लयका हेतु है, इसीको दृष्टिसृष्टिवाद
कहतेहैं. जब यह जगत् हैही नहीं तो इससे भीति किसप्रकार होसकती है और जब केवल चिदाकाशमात्रही
॥

है तो सुखदुःखकी व्यवस्था क्या ? इसलिये आपदा और सम्पदा, उत्पत्ति और नाश, हर्ष और विषादकी भावनाको सर्वथा त्यागकर निस्तरंग समुद्रवत्, अहंकार रहित, यथास्थित रहनाही कल्याणकारी है.

जाग्रतको सुषुप्तिवत् और सुषुप्तिको जाग्रतवत् देखनेसेही उस पदको प्राप्तहोगे. जो न एक है, न दो है, न जगत् है, न माया है, किन्तु आकाशवत् शुद्ध और निरामय है. वहां वाणीकी गति नहीं है, वाणी वहींतक प्रवेश करसकती है जहां द्वैतका लेश है. इसपर रामचन्द्रजीने प्रश्न किया कि महाराज जब न एक है न दो है तो फिर वसिष्ठजी कौन हैं ? इसपर वसिष्ठजी मौन होगये और जब रामचन्द्रजीने पूँछा कि आप क्यों मौन होगये तो उन्होंने उत्तर दिया कि जो कुछ वाणीका विषय है वह चाहे व्यावहारिक हो वा पारमार्थिक, विकल्पके कलंकसे रहित नहीं है, अतएव जब ज्ञातज्ञेय होगया तो वहां सिवाय मौनके और कोई उत्तर नहींहोसकता. आत्मपद वाणीके कलंकको धारण नहीं करसकता. यदि यह पूंछो कि हम, तुम और यह जगत् क्या है तो उसका उत्तर ज्ञानकी प्राप्तिके पहिले तो यह है कि ब्रह्मरूप है और उसके पश्चात् मौन है. यदि यह कहाजाय कि इस पदमें स्थित ज्ञानीका व्यवहार कैसे बनेगा तो इसका उत्तर यह है कि उसका व्यवहार निर्वाणपदकी प्राप्तिसे पहिलेही बनसकताहै. उस दशामें वह व्यवहार रागद्वेषसे वर्जित होगा और निर्वाणपदमें तो व्यवहार बनही नहीं सकता. जब मनुष्यके हृदयमें यह शुभवासना उत्पन्नहोती है कि मैं इस संसारसमुद्रसे कैसे तरूँ, इन क्षणभंगुर विषयसुखोंकी अपेक्षा मुझको वह सुख जो सदा एकरस है कैसे प्राप्त हो, तब वह शुभेच्छानामकी प्रथमभूमिकामें प्रवेश करताहै. फिर सत्संग और सच्छास्त्रविचारद्वारा कर्त्तव्य और अकर्त्तव्यको जानकर अपने चित्तको बहिर्मुख होनेसे रोकताहै और उसके मलोंका प्रक्षालन करताहुआ शुभविचारमें [illegible] रहताहै. यह [illegible] सुविचारणा-[illegible] द्वितीयभूमिका है. तृतीयभूमिकामें वह यह जानलेताहै कि मैंही चि[illegible]दाकाशरूप हूं और इस अनुभवके दृढीकरणार्थ [illegible] बढाताहै, विषयवासनाको क्षय करताहै, और मनो वाक् [illegible] अतीतपदमें स्थितिका प्रयत्न करताहै. इस अवस्थाको [illegible] कहते हैं. यह तीनों भूमिका जाग्रतभूमिका हैं, [illegible] इनमें यद्यपि जगत्की असत्यताका निश्चय होजाताहै, तथापि अपेक्षा शुद्ध और नहींहोता, इसलिये जो कुछ [illegible] व्यवहार होताहै वह इन तीन भूमिकाओंमें तो अन्यमनुष्योंकी उनमें स्वस्वरूपमें ज्ञानी जागताहै [illegible] सोताहै. अ[illegible]गली तीन भूमिकाएँ अर्थात सत्वापत्ति, असंसक्ति, और तुर्य्या हैं, [illegible]वहार बन नहींसकता. यद्यपि शारीरिकक्रियाको कुछकालतक निबाहताहै परन्तु आगे जाकर वहभी परप्रेरणासे होती है [illegible]वा होतीही नहीं. अन्तिमभूमिका तुर्य्यातीत तो विदेहमुक्तिका विषय है; उसमें क्रिया कहाँ. जबतक अविद्याका लेशहै तभीतक प्रवृत्ति होती है, जब अविद्याके बीजका नाश होगया तब फिर प्रवृत्ति बन नहींसकती. यदि यह पूंछो कि अविद्याका स्वरूप क्याहै तो उसका उत्तर यहहै कि जो ढूंढनेसें न मिले वही अविद्या है यदि वह ढूंढनेसे मिलेगी तो अविद्या न रहेगी किन्तु विद्या होजायगी। वासना, इच्छा, चित्त, जीव, अविद्या सब पर्य्यायशब्दहैं, इनका मूल अहम् ममका स्फूरणमात्र है और उसकी शान्तिही निर्वाणपद है. इच्छामात्रही संसारहै. उसकी शान्तिही मोक्ष है. अब प्रश्न यहहै कि ज्ञानीको कोई कर्त्तव्य है वा नहीं ? उसका उत्तर यही है कि यद्यपि ज्ञानीको कोई कर्त्तव्य नहीं है तथापि संसार मायाके वेगको देखकर वह अपने प्रयत्नसे कभी शिथिल नहींहोता किन्तु शुभकर्म्म और अभ्यास वैराग्यमें सदा सावधान रहताहै. ऐसे महापुरुष कि जिनको संसारसे वैराग्य होगयाहै, जिन्होंने सत्संग और सच्छास्त्रद्वारा विषयवासनाको सर्वथा दग्ध करदियाहै, वह यदि धनवान होते हैं तो परोपकारार्थ अपना धन काममें लाते हैं. सबसे मित्रता रखते हैं, दीनोंपर दया करते हैं, दुःखियोंके दुःख दूर करते हैं और सदा अपने लक्ष्यमें स्थिर रहते हैं. ऐसे अधिकारियोंकी ईश्वर विवेकदानद्वारा सहायता करताहै और नित्यप्रति उनकी ज्ञानकला बढतीजाती है उनसे किसीप्रकारका निषिद्धाचार बनही नहीं सकता. यथेच्छाचरण, यथेच्छाभक्षण, यथेच्छाकथन कि जो परपीडाका हेतु अथवा जो लोक वा शास्त्रविरुद्ध हो उनसे कदापि नहीं होता. उनका हृदयसे त्यागही यज्ञ है. ध्यानमें सदा स्थितिही उस यज्ञका यूप है और स्थावरजंगम प्राणीमात्रको ब्रह्मरूप देखनाही उस यज्ञकी आहुति है. सब धर्म्मोंकी समाप्ति इसही एक आत्मदर्शनपर है. जबतक यह नहीं मिलता तभीतक सबओर मनुष्य दौडताहै. जब यह मिलगया तो फिर किसीधर्म्मकी अपेक्षा नहीं रहती. जब यह निश्चय होगया कि न मैं हूं, न कोई दूसरा है, न कुछहै, किन्तु केवल ब्रह्मही है तो फिर किस पदार्थकी इच्छा रहसक[illegible]

यह दृश्य चिद्रूप है. ज्ञानीको उचित है कि सब दृश्यका बाधकरके पाषाणके उदरके सदृश अपने स्वरूपमें स्थित रहे. सब दृश्य परमार्थदृष्टिसे ब्रह्मही है. सृष्टिके पूर्वभी यह चिन्मात्रस्वरूप था, अबभी चिन्मात्रस्वरूप है. और वही चिन्मात्र ब्रह्म अपने स्वरूपको विनात्यागे जगतरूपसे भासताहै. यह जीव इस संसाररूपी महासमुद्रमें तभीतक तरंगभावको धारण करताहै जबतक कि वह अपने स्वरूपको नहींपहिचानता. स्वरूपनिश्चय होनेपर उसका तरंगभाव निवृत्त होजाताहै और वह ब्रह्मरूपी समुद्रमें लीन होजाताहै. स्थूल और तथा जाग्रत् सूक्ष्मका भेद अज्ञानदृष्टिसेही भासताहै. जैसे कि स्वप्नका नगर जाग्रतमें असत्य भासताहै, वैसेही ज्ञानदशामें स्वप्न दोनों जगत् असत् भासतेहैं. वास्तवमें एक चिदाकाशही है और ज्ञानीका यह अनुभव है कि वह चिदाकाश जैसे मैं हूं वैसे सब है, और नामरूपकी भावना अज्ञोंकी है न कि मेरी. जैसे स्वप्नमें स्फुरितनगर चिद्रूपसे निजआत्मामें स्थित है वैसेही प्रलयपर्य्यन्त यह सृष्टि ब्रह्ममें स्थित है. चिद्रूप होनेसे न कुछ मरताहै न उत्पन्न होताहै किन्तु चित्‌ही तथा जाग्रत जगत् जगद्रूपसे स्फुरित होताहै. यह चित्त जैसा देखताहै वैसाही उसको भासने लगताहै. जब वह चेत्य अर्थात् विषयकी ओर आताहै तौ संसार भासताहै और जब स्वरूपको देखताहै तौ कुछ नहीं भासता. जबतक उसको ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती तबतक वह लोक, परलोक, तीर्थ, स्नान, दान, अग्निहोत्र, पूजा, ध्यान, विचार, शास्त्रार्थमें तत्पर रहताहै. उस समयतक सब सत्य है परन्तु ज्ञानके पश्चात् तौ आत्माही सत्य है. स्वर्गमें देवता भोगोंमें निमग्न ईर्षा वैरसे दानवों और असुरोंकेसाथ युद्ध करतेहैं. गंधर्व गीतवाद्यमें तत्पर हैं. विद्याधर, यक्ष, पिशाच, राक्षसादि अपने २ भोगोंमें लगेहुयेहैं, पिपीलिकाकेसमान मनुष्य महातुच्छ विषयकणके लोभसे अहर्निश पृथिवीपर भ्रमणकरते और मत्तके सदृश व्यर्थ महादुष्ट चेष्टाओंमें अपने दिन विताते हैं और देहाद्यभिमानकी वायुसे ऐसे उडेजातेहैं जैसे निःसार धान्यका भूसा. विरलेही इस संसारमें आत्मपदमें विश्रांति पातेहैं. देवताओंमें यम, सूर्य्य, चन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादि, ऋषियोंमें नारद, सनत्कुमारादि, दानवोंमें बलि, प्रल्हाद, शम्बरादि, राक्षसोंमें विभीषण, इन्द्रजीत आदि, और मनुष्योंमेंभी कोई २ ज्ञानी हुयेहैं. ऐसे महापुरुष दृष्टिसेही औरोंके अन्तःकरणोंको शीतलकरदेतेहैं. शास्त्रके अर्थ और लोकतत्वके जाननेवाले, यथाप्राप्तानुवर्त्ती, शास्त्रविरुद्ध कार्योंसे बचनेवाले, सज्जनोंके आचारके रसिक, जनसमूहके पापनिवारणमें समर्थ, विपत्तिमें सबको सहारा देनेवाले, माधुर्य्य और प्रेमकी खानि, ऐसे साधुजनोंको देखकरही संसारमार्गसे थकेहुये पुरुष विश्रांति पातेहैं. सज्जनोंसे कोई वस्तु दुष्प्राप्य नहीं होती. उनके सत्संगसे मनुष्यके चित्तको वैसाही आल्हाद होताहै जैसा सुगंधितपुष्पोंसे. ऐसे महानुभावोंको न मरनेकी चिन्ता है न जीनेका एक हर्ष है. एकदेहसे दूसरे देहमें प्राप्ति नित्य नया उत्सव है, इसलिये इस मरणात्मक शरीरके त्यागमें हर्ष होना चाहिये न कि विषाद. यदि मरणके पश्चात् दूसरा देह न मिले तो इस संसारदुःखसे सदाके लिये छूटगये और जो मिले तौ इस जीर्णदेहके स्थानमें नयादेह मिलना परमसुखका हेतु है. हे मूढ ! तू कहताहै कि हाय ! मैं मरा मरा मरा— तू यह नहीं देखता कि मैं होऊंगा होऊंगा होऊंगा. ज्ञानीका अनुभव स्वसम्वेद्य है, परसम्वेद्य नहीं. उसको इसबातकी अपेक्षा नहीं कि अन्यपुरुष मेरा गुण जाने किन्तु जब उसने जगत्‌को तृणवत् जानलिया तौ फिर उसको दूसरोंसे क्या लेना है. यह चित्तकी नदी विवेक तथा अविवेक दोनों ओर वहती है. ज्ञानी उसको संसारभावनाके तनूकरणद्वारा विवेककी ओर, और अज्ञानी भावनाके पोषणद्वारा अविवेककी ओर लेजाताहै. ज्ञानीका लक्ष्य सदा उस चिन्मात्रवस्तुपर रहताहै जो एकदेशसे दूसरे देशमें जानेवाली दो सम्विदोंके मध्यमें है, जो सब इच्छाओंके शान्त होनेपर समभावसे शेष रहती है, जो निद्राके तौ न आनेपर परन्तु विषयके क्षीण होनेपर समभावमें स्थिति है इसीको चिदाकाश कहतेहैं. जो तृण लता और गुल्मआदिकी ऋतु २ में वृद्धिका हेतु है, जो रूप आलोक और मनस्कारसे मुक्त है, जो पुरुषका शरद्आकाशवत् निर्मलभाव है, जो पाषाणोंकी पाषाणवत् स्थिति और चेतनोंकी चेतनसत्ता है, जिसमें द्रष्टा, दर्शन, दृश्य, इनके उदय और लय होतेहैं, जो सब पदा- का अनुभवरूप है, जिसमें यह सब है, जिससे यह सब है, जो यह सब है, और जो सब ओर, सबमें, स्वर्ग, ाश, पाताल, भीतर, बाहर, सबको धारणकररहाहै; जिसमें यह सब ओतप्रोत है, जो कुछ नहीं है और सब कुछ ही चिदाकाश ब्रह्म है. जो निर्वासनिक होकरभी सब इन्द्रियोंके विषयोंको ग्रहण करताहै, जो सुषुप्तघन भी जाग्रत् रहताहै, जिसमें आरोपदृष्टिसे यह ज--वत्स्वरूप होताहै और अपवाददृष्टिसे कुछ नहीं रहता चिदाकाशमें ज्ञानीकी स्थिति है यही पाषाणो

विपश्चिदाख्यानमें यह निरूपण कियागयाहै कि इस जगतमायाका अन्त इसमें भ्रमण करनेसे न किसीने पायाहै, न कोई पासकताहै. और यह जगत् जो सत्यवत् भान होताहै दीर्घकालके स्वप्नसे अधिक कुछ नहीं है. जीवकी निजअभ्यस्त वासना जिस २ पदार्थमें दृढ होती है वही पदार्थ उसको दृढ भासताहै और जब बहुतसे प्राणियोंकी एक वासना होती है तो उनको वैसाही पदार्थ भान होताहै. इसीका नाम जगतमाया है ॥ राजा विपश्चित्के अविद्याके खोजनेकी दृढ वासना चित्तमें धारण करतेही उसको अनेक जन्मजन्मान्तरोंमें अनेक जगतोंका भान हुआ, और एक चिद्रूप परमाणुके उदरमें वासनामय अनेक जगत् दिखाईपडे. अनेक शरीरोंको ग्रहण किया और अन्तमें मृगका शरीर धारण करनापडा और फिर मनुष्यशरीरमें प्रवेश किया, उन्होंने अपने अनुभवको इस तरहसे कथन किया कि जब मैं अनन्त ब्रह्मांडोंसे पूर्ण इस जगत्को देखकर चकित हुआ और कहींभी आलम्बन नमिला तो मैंने एक स्त्री देखी और उससे पुछा कि तुम कौनहो? उसने उत्तर दिया कि सम्पूर्ण पदार्थमात्रमें शुद्धचित् मैं हूं और यह सब जगत् मेरा अंग है. अविवेकी जन मेरे शुद्धरूपके अज्ञानसे जगत्को मुझसे भिन्न मानकर वृथा भ्रमण करते हैं, वास्तव रीत्या जैसे अनाहतशब्द प्राणीमात्रके देहमें निरन्तर होताहै परन्तु उसको योगीजनही सुनसकतेहैं इसीप्रकार यह चेतनसत्ता अपने आपको सर्वत्र पुकार २ कर कहरही है परन्तु अज्ञजन पदार्थोंमें पृथक् २ वासनावशात् उसको नहीं सुनते. प्रत्येक प्राणीका चित्त जैसी २ कल्पना सत् अथवा असत् करताहै वैसाही वह होजाताहै. जब वह इस बातकी दृढ भावना करताहै कि मैं प्राण और देहके विना कभी न रहूं तो उसको अनेक देह निरन्तर भान होतेहैं जब उसको यह निश्चय होगया कि मैं देह नहींहूं, न देहसे मेरा कोई सम्बध है, किन्तु मैं चिद्रूपहूं, तो फिर उसको देहभान नहीं होता. अद्वैतब्रह्ममें यह सृष्टि किसीप्रकार द्वैतरूपसे उत्पन्न नहीं होती किन्तु चेतनके जगदाकार स्फुरणनेही जगत्का रूप धारण करलिया है और निजकल्पनासेही प्राणवान् देहधारी और फिर त्रिलोकीरूप वही हैं यही उसका निश्चय रहताहै. चितिशक्तिही नश्वर तथा अनश्वरस्वरूपसे भान होती है. यथार्थमें वह ज्योंकीत्यों रहती है. मनसे पूर्वसे पश्चिमतक चलेजाओ और अनेकस्थानोंपर अनेक दृष्ट, श्रुत, अनुमित पदार्थोंको देखते जाओ परन्तु वहां उन पदार्थोंकी दृष्टिके साथ तुम अपने चित्स्वरूपको कभी नहीं भूल सकते. वह चित् जैसी की तैसी सब दृष्टियोंमें सत्तासामान्यरूपसे रहती है. इसीप्रकार जब तुम कोई संकल्प करते हो और यह भावना होती है कि मैं वैसा होजाऊं तो पहिले प्रातिभासिकरूप और फिर व्यावहारिकरूपसे वैसाही भान होनेलगताहै. जगत् केवल वाणीका विकारमात्र है, ब्रह्मसे व्यतिरिक्त कुछ नहीं है, वही शरीर, कर्म्म, सुख, दुःख, सदसद्रूप, अपने संकल्पसे होताहै. यह कहना कि चित्का स्फुरण जगत् है यहभी राहुशिरवत् षष्ठीसमास है. वास्तवमें स्फुरणभी नहीं, चित्ही चित् है. आत्मख्याति, असत्ख्याति, अन्यथाख्याति और अख्यातिमेंसे कोईभी नहीं बनसकती. इसीप्रकार जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुर्य्याभी केवल आभासमात्रहैं. इन सबमें जो चिदाकाश अनस्यूत है वही सब कुछ है. जब चित्तको शान्ति नहीं होती तो जाग्रत, भ्रममें स्थित रहनेसे स्वप्न, अविद्या आवरणसे सुषुप्ति, तीनोंको उल्लंघन करनेसे तुर्य्या और तीनोंके असत् होनेसे तुर्य्याभी असत् है. सर्वथा शान्तरूप सब निर्विकल्प परमात्माही है, यही ज्ञानीका निश्चय है. वह आकाशवत् निर्म्मल अन्यपुरुषोंके सदृश व्यवहार करताहुआभी अपने आनन्दमें मग्न रहताहै. ऐसे तत्त्वदर्शीकी जो संसारकी ओरसे निद्रा होतीहै वह सांसारिकनिद्रासे अतीव विलक्षण है क्योंकि उसके नेत्र खुले होने और अंगोंके व्यापार होनेपरभी वह विषयकी ओरसे सदा सुषुप्त रहताहै तथापि विरुद्ध आचरणोंके करनेमें मृतककेसमान और शुद्धाचारमें बृहस्पतिके तुल्य होताहै. पवित्रकथाओंका कहनेवाला, अपने दोषोंको जाननेवाला, समदर्शी, उदारचरित, दानशील, स्निग्धस्वभाव, अतिकोमल, यही जीवन्मुक्तका लक्षण है और जैसे कि चन्द्र, सूर्य्य तथा अग्नि अपने प्रकाशको किसी दूसरेकी प्रेरणासे नहीं फैलाते किन्तु स्वभावसेही फैलाते हैं ऐसेही ज्ञानीके शुभलक्षण स्वभावहीसे आचरित होते हैं नकि प्रयत्नसे. उसको सदा समाधिका सुख व्यवहारकालमेंभी रहताहै. भेद रहनेपरभी वह सर्वत्र एकरस, शरीरआदि होनेपरभी सदा अशरीर, बाह्यसंसार होनेपरभी अन्तर्मुख रहताहै. सम्पूर्ण व्यवहार करताहुआभी ब्रह्म[illegible] आत्मासे भिन्न किसीपदार्थको नहीं जानता. यही ज्ञानीके चिन्हहैं. जिसमें यह चिन्ह नहों वह [illegible]नी नहीं [illegible]ाही शास्त्रवेत्ता क्यों नहो. जबतक अज्ञान है तबतक

परमात्मामें लक्षों ब्रह्मांडोंकेसमूह उससे अभिन्न रहकरभी भिन्नकेतुल्य भासते हैं. वास्तवमें द्रष्टा, दर्शन, दृश्य, सब स्वप्नवत् मिथ्याहैं, केवल एक ब्रह्महीं सत्यहै, उसमें दोनों धर्म्महैं. पदार्थका भान अज्ञदृष्टिसे और अनादि अनन्त अद्वैत एकरूप ब्रह्म तत्वदृष्टिसे, यही ज्ञानका सार है.—

अन्तमें जब रामचन्द्रजीने वसिष्ठजीसे यह प्रश्न किया कि जब आपका यह सिद्धान्त है कि कारणके अभावमें आरंभसेही सृष्टि नहींहुई और केवल आभास अथवा भ्रममात्र है तव यह भ्रम किसको हुआ ? वसिष्ठजीने उत्तर दिया कि वस्तुतः भ्रान्ति हैही नहीं केवल इस ज्ञानकी दृढता न होनेसे कि एक परमात्माही है नानात्वकी भ्रान्तिसी जानपडती है. यदि यह कहाजाय कि ज्ञान अथवा बोधभी बोध्य और बोधकके अभावसे नहीं है तो यहभी परमार्थतः सत्य है. क्योंकि परमार्थदृष्टिसे मैं ज्ञानी हूं अथवा मैं ब्रह्म हूं यह कथनभी नहीं बनसकता. अन्तमें मौनही रहना श्रेय है. क्योंकि यह विषय मन और वाणीसे परे है.

इसप्रकार वसिष्ठजीने जब रामचन्द्रजीको उपदेश किया तो उन्होंने यह जानकर कि विद्या, अविद्या, सुख, दुःख, परिज्ञात होनेपर केवल ब्रह्मही है और जगत्भी उससे कुछ व्यतिरिक्त नहीं है, कहा कि अब मैंने अपने स्वरूपको जानलिया परन्तु कुछ अन्यरूप नहींहोगया. पहिले जो ब्रह्म अज्ञात आत्मा था वह अब ज्ञात होनेपर निजस्वरूप आत्मा है. हे मुने ! ज्ञानोदयसे मैं निर्वाणरूप हूं, अज्ञानके नाशसे शंकारहित हूं, विक्षेपरहित नित्य आत्मसुखमें यथास्थित नित्य अनन्त आत्मस्वरूपमें स्थित हूं, ब्रह्मभावसे च्युतहोनेके कारण अज्ञानादिके अभावसे समस्त ब्रह्मस्वरूपमें मैं क्यों न स्थित होऊं. सर्वदा सर्वरूप अनन्त ब्रह्म मैंही हूं, सर्वाधार सब अद्वितीय मैंही हूं, अदेशकालादि अपनेसे भिन्नआधारके अभावसे कहींभी नहींहूं अथवा शान्तस्वरूप हूं, वा सच्चित्स्वरूप हूं, अथवा सापेक्ष होनेसे कुछभी नहींहूं. अहो यह निर्वाणरूप शान्ति आश्चर्य्यरूप है. हे मुने ! जानने योग्य ब्रह्मतत्व मैंने जाना, अज्ञजनोंको अप्राप्य मोक्षसुख मुझे प्राप्तहुआ, संसारके अनर्थ सब अस्त होगये, अन्तिम परमार्थस्वरूपके साक्षात्कारके उदयसे वह बोधस्वरूप मेरा उदितहुआ, कि जिस स्वरूपमें उदयअस्तमय जननमरण-आदि दुःखोंका लेशमात्र नहीं है. जब इसप्रकार रामचन्द्रजीको आत्मानुभव हुआ तो वसिष्ठजीने कहा कि अब तुम अमनीभावको प्राप्तहोकर ब्रह्मरूपसे समदर्शी, स्वस्वरूपमें निःशंक स्थित हो. सम्पूर्ण ज्ञान तुह्मारे हृदयमें स्थित है. अब तुम कहो कि तुह्मारी स्थिति कैसी है और तुम जगत्को कैसा देखतेहो ? रामचन्द्रजीने उत्तर दिया कि मुझको जगत् ब्रह्मरूपसे ऐसाही दीखताहै कि जैसे स्फटिक स्फटिकरूपसे. मैं अब विषयोंकी आशासे व्याकुल नहींहूं, न मेरी देहमें आत्मबुद्धि है. मेरी मोहनिद्रा ज्ञानद्वारा बाधित होनेपर मैं अविनाशी चित्स्वरूप जागताहूं, भावी कार्यको यथाकाम, वर्त्तमानको यथाप्राप्त, अतीतको यथोचित आपकी आज्ञा और शास्त्रके अनुसार फलकी आकांक्षासे रहित करूंगा. चाहे सृष्टिविपर्य्यय हो, देश सौम्य हो या नहो, मैं अपने स्वरूपमें सदा स्थिर रहूंगा. लोकदृष्टिसे और मनुष्योंके समान मैंभी स्थितहूं परन्तु जबतक यह शरीर रहैगा तबतक निर्मलदृष्टिसे संसारकी मर्य्यादाको ऐसे पालन करूंगा जैसे बालक अपनी अवस्थाके अनुकूल लीलाको, सर्व क्रिया करूंगा परन्तु सर्वत्र समदृष्टि ब्रह्मानन्दमें स्थित रहूंगा.

यह वसिष्ठजीके उपदेशका परिणाम श्रीरामचन्द्रजीने प्रकट किया और उसके अनुकूल यथाप्राप्तानुवर्ती अपने कार्य्यमें तत्पर हुये. यही फल इस ग्रन्थके विचारका अद्यपर्य्यन्त सब सज्जनोंमें देखागयाहै. वेदान्तमें कोई ग्रन्थ ऐसा विस्तृत और अद्वैतसिद्धान्तको इतने आख्यानों और दृष्टांतों और युक्तियोंसे ऐसे दृढ प्रतिपादन करनेवाला आजतक नहीं लिखागया, इस विषयमें सभी सहमत हैं कि इस एक ग्रन्थके विचारसेही कैसाही विषयासक्त और संसारमें मग्न पुरुष हो वहभी वैराग्यसम्पन्न होकर क्रमशः आत्मपदमें विश्रान्ति पाताहै. यह बात प्रत्यक्ष देखनेमें आई है कि इस ग्रन्थके सम्यक् विचार करनेवाले यथेच्छाचारी होनेके स्थानमें अपने कार्य्यको लोकोपकारार्थ उसी दृष्टिसे कि जिस दृष्टिसे श्रीरामचन्द्रजी करतेथे करतेहुये उनकीनाईं स्वस्वरूपमें सदा जागते हैं. पाठकगण श्रीरामचन्द्रजीके इस अनुभवको सदा चित्तमें रखें.

साम्राज्यस्याथवा व्योम्नि या स्थितिःक्षोभवर्जिता ।
तामेवानुभवाम्यत्र मच्चित्तामनपायिनीम् ॥ १८ ॥
खादप्यतितरामच्छं चिदाकाशांशमात्रकम् ।
जगदित्येव पश्यामि लोचनार्चंगतां गतः ॥ १९ ॥
आकाशमात्रमेवेदं जगदित्येकनिश्चयः ।
दृश्यनाम्नि नभस्यस्मिन् क्षये जागर्मि चाक्षयः ॥ २० ॥
न तुष्यामि न हृष्यामि न पुष्यामि न रोदिमि ।
कार्य्यं कार्य्यं करोम्येको भ्रान्तिर्दूरंगता मम ॥ २२ ॥

और वसिष्ठजीके इस अन्तिम उपदेशको कभी न भूलें.

ज्ञानं सदेतदखिलं श्रुतमुत्तमं चिव
संसारदीर्घरजनी सितरश्मिबिम्बम्
जातस्त्वमभ्युदयवानमलैकबोध
उत्सार्य्य मोहमनुतिष्ठ यथागतं त्वम् ॥ १ ॥
तिष्ठंस्तदात्मनि परे विमलस्वभावे
सर्वात्मके तपति सर्वपदार्थमुक्तः
निर्वाणशान्तमतिरम्बरकोशकान्तो
धर्म्मेण राज्यमनुपालय तीर्णतृष्णः ॥ २ ॥

पंडित ठाकुरप्रसादजीने जिसपरिश्रमसे इस ग्रंथका भाषानुवाद किया और पंडित श्रीधरशिवलालजीने जिस परिश्रमसे इसको मुद्रित किया उसका धन्यवाद कहांतक दूं. आशाहै कि यह भाषाटीका सर्वसाधारणको उपयोगी होगी. यदि उसमें कुछ त्रुटी रहगई हो तो विद्वज्जन क्षमा करेंगे.

विद्वज्जनपदानुरक्त—

वैजनाथ.

ॐ तत्सत् ॥





श्रीहरिर्वन्दे ।

श्रीवृन्दावन विहारिणे नमः ।

॥ योगवासिष्ठ भाषाटीका सहित ॥

प्रथम वैराग्य-प्रकरणं प्रारभ्यते.

मंगलाचरणम्.

नत्वा शिवं शक्तियुतं दयालुं । स्वानन्दरूपं भजतां स्फुरन्तम् ॥
श्रीयोगवासिष्ठ महाम्बुधेर्वै । भाषाऽनुवादः क्रियतेहिताय ॥ १ ॥
गणेशं विघ्नहर्तारं जगदम्बां प्रणम्यच ।
जनानां स्वात्मबोधाय यत्नमेतं समारभे ॥ २ ॥

प्रथमस्सर्गः ।

श्रीगणेशायनमः ॥ यतः सर्वाणि भूतानि प्रतिभांति स्थितानि च ॥ यत्रैवोपशमं यांति तस्मै सत्यात्मनेनमः ॥ १ ॥ ज्ञाताज्ञानं तथाज्ञेयं द्रष्टा दर्शन दृश्यभूः ॥ कर्त्ता हेतुः क्रिया यस्मात्तस्मै ज्ञप्त्यात्मने नमः ॥ २ ॥ स्फुरंति सीकरा यस्मादानंदस्यांबरेऽवनौ ॥ सर्वेषांजीवनं तस्मै ब्रह्मानंदात्मने नमः ॥३॥ सुतीक्ष्णो ब्राह्मणः कश्चित्संशयाकृष्टमानसः ॥ अगस्तेराश्रमं गत्वा मुनिं पप्रच्छ सादरम् ॥ ४ ॥

अर्थ—सृष्टिकालमें जिस अद्वितीय वस्तुसे आकाशादि महाभूत और उनसे उत्पन्न पदार्थ सत्ताको पाकर भान होते हैं, स्थितिकालमें जिसकी सत्ताहीसे स्थित रहते हैं और प्रलयकालमें जिसमें लय होते हैं उस सत्यस्वरूप परमात्माको नमस्कारहै ॥ १ ॥ ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, द्रष्टा, दर्शन, दृश्य, कर्ता, हेतु और और क्रिया जिस्से भासती हैं उस ज्ञानस्वरूपको नमस्कारहै, जिस महानन्द समुद्रसे देवता मनुष्य तथा पश्वादि योनियोंमें उपाधियोंके भेदसे न्यूनाधिक आनन्द कण प्रतीत होते हैं और जो प्राणीमात्रका जीवनहै उस आनन्दस्वरूपको नमस्कारहै ॥ ३ ॥ संशयसहित सुतीक्ष्ण नाम ब्राह्मणने अगस्त्य मुनिके आश्रममें जाकर आदरसहित प्रश्न किया ॥ ४ ॥

सुतीक्ष्णउवाच-भगवन् धर्मतत्त्वज्ञ सर्वशास्त्रविनिश्चित ॥ संशयोऽस्ति महानेकस्त्वमेतं कृपया वद ॥५॥ मोक्षस्य कारणं कर्म ज्ञानं वा मोक्षसाधनम् ॥ उभयं वा विनिश्चित्य एकं कथय कारणम् ॥६॥ अगस्तिरुवाच-उभाभ्यामेव पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणां गतिः ॥ तथैव ज्ञानकर्मभ्यां जायते परमं पदम् ॥७॥ केवलात्कर्मणो ज्ञानान्नहिमोक्षोऽभिजायते॥ किंतूभाभ्यां भवेन्मोक्षःसाधनं तूभयं विदुः ॥८॥

अर्थ—सुतीक्ष्ण बोले—हे धर्मके मर्मको जाननेवाले और सम्पूर्ण शास्त्रोंमें उत्तम रीतिसे निश्चय करनेवाले, हे भगवन् ! मुझे एक बडा संदेहहै आप कृपा करके इसको दूर करैं ॥ ५ ॥ मोक्षका कारण कर्म्म है अथवा ज्ञान वा दोनों इन तीनों पक्षोंमें एकको निश्चय करके बताइये ॥ ६ ॥ अगस्ति बोले—जिसप्रकार दोनों पक्षोंसे पक्षियोंकी आकाशमें गति होती है उसी प्रकार ज्ञान और कर्म्म दोनोंसे परमपद (मोक्ष) की प्राप्ति होती है ॥ ७ ॥ केवल कर्म्म वा ज्ञानसे मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती; किन्तु दोनोंसे इसलिये ब्रह्मज्ञानियोंनें दोनोंको मोक्षका साधन कहाहै ॥ ८ ॥

अस्मिन्नर्थे पुरावृत्तमितिहासं वदामि ते ॥ कारुण्याख्यः पुरा कश्चिद्ब्राह्मणोऽधीतवेदकः ॥ ९ ॥ अग्निवेश्यस्य पुत्रोऽभूद्वेदवेदांगपारगः ॥ गुरोरधीतविद्यः सन्नाजगाम गृहं प्रति ॥१०॥ तस्थावकर्मकृत् तूष्णींसंशयानो गृहे तदा ॥ अग्निवेश्यो विलोक्याथ पुत्रं कर्मविवर्जितम् ॥ ११ ॥ प्राह एतद्वचोऽनिंद्यं गुरुः पुत्रं हिताय च ॥ अग्निवेश्य उवाच-किमेतत्पुत्र कुरुषे पालनं न स्वकर्मणः ॥ १२ ॥

अर्थ—इस विषयमें तुमसे मैं एक प्राचीन इतिहास कहता हूं. पूर्वकालमें कारुण्य नाम एक वेदपाठी ब्राह्मण था ॥ ९ ॥ वह अग्निवेश्यका पुत्र था गुरुसे विद्यापढके वेद वेदांगमें जब निपुण होगया तब अपने स्थानपर आया ॥ १० ॥ उस समय संशययुक्त होकर कर्म्मरहित गृहमें रहने लगा, अग्निवेश्य अपने पुत्रको कर्म्मशून्य देखकर उसके हितके लिये यह उत्तम वचन बोला-अग्निवेश्य बोले, हे पुत्र ! अपने कर्म्मोंका पालन क्यों नहीं करते ॥ ११ ॥ १२ ॥

अकर्म निरतः सिद्धिं कथं प्राप्स्यसि तद्वद ॥ कर्मणोस्मान्निवृत्तेः किंकारणं तन्निवेद्यताम् ॥ १३ ॥ कारुण्य उवाच-यावज्जीवमग्निहोत्रं नित्यं संध्यामुपासयेत् ॥ प्रवृत्तिरूपो धर्मोऽयं श्रुत्या स्मृत्या च चोदिताः ॥ १४ ॥ न धनेन भवेन्मोक्षः कर्मणा प्रजया न वा ॥ त्यागमात्रेण किंत्वेके यतयोऽश्नंति चामृतम् ॥ १५ ॥ इति श्रुत्योर्द्वयोर्मध्ये किं कर्त्तव्यं मया गुरो ॥ इति संदिग्धतां गत्वा तूष्णीं भूतोस्मि कर्मणि ॥ १६ ॥

अर्थ—कर्म्मरहित होके किस प्रकार तुम सिद्धिको प्राप्तहोओगे सो कहो और तुह्मारी कर्म्मसे निवृत्तिका कारण क्या है सोभी कहो ॥ १३ ॥ कारुण्य बोले-श्रुति और स्मृतिने प्रवृत्तिरूप धर्म्म यह कहा गया है कि मनुष्य जबतक जीवे तबतक अग्निहोत्र और सन्ध्योपासनादिकरै और निवृत्तिरूप धर्म्म यह कहा है की धन अथवा कर्म वा सन्ततिसे मोक्ष नहीं होता किंतु त्यागमात्रसे यतिलोग अमृत (मुक्ति) पदको पाते हैं ॥१५॥ इन दोनों श्रुतियोंके वीच हे गुरो ! मुझे क्या करना उचित है ? इस सन्देहमें ग्रस्त होकर कर्म्मसे मुझे वैराग्य हुआ है ॥ १६ ॥

अगस्तिरुवाच-इत्युक्त्वा तात विप्रोसौ कारुण्यो मौनमागतः ॥ तथाविधं सुतं दृष्ट्वा पुनः प्राह गुरुः सुतम् ॥ १७ ॥ अग्निवेश्य उवाच-शृणु पुत्र कथामेकां तदर्थं हृदयेऽखिलम् ॥ मत्तोऽवधार्यपुत्र त्वं यथेच्छसि तथा कुरु ॥ १८ ॥ सुरुचिर्नाम काचित्स्त्रीरप्सरोगण उत्तमा ॥ उपविष्टा हिमवतः शिखरे शिखिसंवृते ॥ १९ ॥ रमंते कामसंतप्ताः किन्नर्यो यत्र किन्नरैः ॥ स्वर्धुन्योघेन संसृष्टे महाघौघविनाशिना ॥ २० ॥

अर्थ—सुतीक्ष्णसे अगस्ति बोले-कि हे प्रिय ! वह कारुण्य नाम ब्राह्मण अपने पितासे इतना कहकर मौन होगया पिताने पुत्रको इस अवस्थामें देखकर कहा ॥ १७ ॥ हे पुत्र ! एक कथा सुनो उसके अर्थको अपने हृदयमें निश्चय करके पुनः अपनी इच्छाके अनुसार करो ॥ १८ ॥ सम्पूर्ण अप्सराओंमें उत्तम सुरुचिनाम एक स्त्री हिमालयके शिखरपर निवास करतीथी ॥ १९ ॥ महापापके समूहको नाश करनेवाले और अकाश गंगाके प्रवाहसे सिंचेहुये उस पर्वतके शिखरपर कामपीडित किन्नरी लोग किन्नरोंके साथ विहार करती थीं ॥ २० ॥

दूतमिंद्रस्य गच्छंतमंतरिक्षे ददर्श सा ॥ तमुवाच महाभागा सुरुचिश्चाप्सरोवरा ॥ २१ ॥ सुरुचिरुवाच-देवदूत महाभाग कुत आगम्यते त्वया ॥ अधुना कुत्र गंतासि तत्सर्वं कृपया वद ॥ २२ ॥ देवदूत उवाच-साधु पृष्टं त्वया सुभ्रू यथावत्कथयामि ते ॥ अरिष्टनेमी राजर्षिर्दत्वा राज्यं सुताय वै ॥ २३ ॥ वीतरागः स धर्मात्मा निर्ययौ तपसे वनम् ॥ तपश्चरत्यसौ राजा पर्वते गंधमादने ॥२४॥

अर्थ—वहांपर महा भाग्यवती अप्सराओंमें श्रेष्ठ उस सुरुचिने आकाशमें जातेहुये इन्द्रके दूतको देखा और उससे बोली ॥ २१ ॥ हे कल्याणरूप इन्द्रके दूत ! आप कहांसे आतेहैं और अब कहां जाइयेगा सो सब कृपाकरके कहिये ॥ २२ ॥ देवदूत बोला-हे उत्तम भौंहवाली ! तुमने बहुत उत्तम प्रश्न किया मैं तुमसे सत्य २ कहता हूं, अरिष्टनेमि नाम एक राजा अपना राज्य पुत्रको देकर ॥ २३ ॥ और राग-द्वेष रहित होकर वह धर्मात्मा तप करनेकेलिये बनमें चला गया, अब वह गन्धमादन पर्वतपर तप करता है ॥ २४ ॥

कार्यं कृत्वा मया तत्र तत आगम्यतेऽधुना ॥ गंतास्मि पार्श्वे शक्रस्यतं वृत्तांतं निवेदितुम् ॥ २५ ॥ अप्सरा उवाच-वृत्तांतः कोभवत्तत्र कथयस्व ममप्रभो ॥ प्रष्टुकामा विनीतास्मि नोद्वेगं कर्तुमर्हसि ॥२६॥ देवदूत उवाच-शृणु भद्रे यथावृत्तं विस्तरेण वदामिते ॥ तस्मिन् राज्ञि वने तत्र तप श्चरति दुस्तरम् ॥ २७ ॥ इत्यहं देवराजेन सुभ्रू राज्ञापितस्तदा ॥ दूत त्वं तत्र गच्छाशु गृहीत्वेदं विमानकम् ॥ २८ ॥

अर्थ—उस राजासे मेरा कुछ कार्य था वहांसे मैं उस कार्यको करके आताहूँ और अब इंद्रके निकट उस वृत्तांतको कहनेको जाता हूँ॥ २५ ॥ अप्सरा बोली—हे स्वामिन ! वहांपर क्या वृत्तांत हुआ सो कृपाकरके कहिये मुझे इसके पूछनेकी बहुत इच्छाहै मैं आपके सन्मुख अत्यन्त नम्र हूँ आप शीघ्रता न कीजिये॥ २६ ॥ इंद्रका दूत बोला—हे कल्याणि ! सुनो मैं विस्तार पूर्वक उस वृत्तांतको तुमसे कहता हूँ अरिष्टनेमि राजा उस बनमें उग्र तप करता था॥ ॥ २७॥ हे सुभ्रू ! उस समय इंद्रने मुझे यह आज्ञादी कि हे दूत ! तुम इस विमानको लेकर शीघ्र वहां जाओ॥ २८॥

अप्सरोगणसंयुक्तं नानावादित्रशोभितम्॥ गंधर्वसिद्धयक्षैश्च किन्नरा येश्च शोभितम्॥ २९॥ तालवेणुमृदंगादि पर्वते गंधमादने॥ नानावृक्षसमाकीर्णे गत्वा तस्मिन् गिरौ शुभे॥ ३०॥ अरिष्टनेमिं राजानं दूतारोप्य विमानके॥ आनय स्वर्गभोगाय नगरीममरावतीम्॥ ३१॥ दूत उवाच-इत्याज्ञां प्राप्य शक्रस्य गृहीत्वा तद्वि मानकम्॥ सर्वोप स्करसंयुक्तं तस्मिन्नद्रावहं ययौ॥ ३२॥

अर्थ—अप्सराओंके समूहों और अनेक प्रकारके वाद्यों (बाजे) से शोभायमान और गन्धर्व, सिद्ध, यक्ष, तथा किन्नरादिकोंसे भूषित और अनेक प्रकारकी सामग्री सहित इस विमानको लेकर॥ २९॥ तथा ताल वेणु (वंशी) और मृदंगादि सहित सेना लेकर अनेक प्रकारके पक्षियोंसे पूर्ण उस उत्तम गन्धमादन पर्वतपर जाकर॥ ३०॥ अरिष्टनेमि राजाको इस विमानपर बैठाके स्वर्गका भोग करनेके लिये अमरावती नगरीमें लाओ॥ ३१॥ देवदूत बोले इंद्रकी इस आज्ञाको पाकर संपूर्ण सामग्रीसहित उस विमानकी लेकर उस पर्वतपर मैं गया॥ ३२॥

आगत्य पर्वते तस्मिन् राज्ञो गत्वाश्रमं मया॥ निवेदिता महेंद्रस्य सर्वाज्ञारिष्टनेमये॥ ३३॥ इति मद्वचनं श्रुत्वा संशयानोऽवदच्छुभे॥ राजोवाच-प्रष्टुमिच्छामि दूत त्वां तन्मे त्वं वक्तुमर्हसि॥३४॥ गुणा दोषाश्चके तत्र स्वर्गे वद ममाग्रतः॥ ज्ञात्वा स्थितिं तु तत्रत्यां करिष्येहं यथारुचि॥ ३५॥ दूत उवाच-स्वर्गे पुण्यस्य सामग्र्या भुज्यते परमं सुखम्॥ उत्तमेन तु पुण्येन प्राप्नोति स्वर्गमुत्तमम्॥३६॥

अर्थ—उस पर्वतपर राजाके आश्रममें आकर इन्द्रकी सम्पूर्ण आज्ञाको अरिष्टनेमिराजासे कह दी॥ ३३॥ हे शोभने ! मेरे इस बचनको सुनकर सन्देह करताहुआ राजा बोला—हे दूत ! जो आपसे मैं पूंछना चाहता हूं वह मुझसे कहना आपको उचित है॥ ३४॥ मुझे आप यह बताइये कि स्वर्गमें कौन २ से गुण और कौन २ से दोष हैं, वहांकी दशाको जानकर मैं अपनी रुचिके अनुसार करूंगा॥ ३५॥ देवदूत बोला कि—पुण्यकी सामग्रीसे स्वर्गमें मनुष्य परम सुख भोगता है, उत्तम पुण्यसे उत्तम स्वर्ग मिलता है॥ ३६॥

मध्यमेन तथा मध्यः स्वर्गो भवति नान्यथा॥ कनिष्ठेन तु पुण्येन स्वर्गो भवति तादृशः॥ ३७॥ परोत्कर्षासहिष्णुत्वं स्पर्धाचैवसमैश्चतैः॥ कनिष्ठेषु च संतोषो यावत्पुण्यक्षयो भवेत्॥ ३८॥ क्षीणेपुण्येविशंत्येतं मर्त्यलोकं च मानवाः॥ इत्यादि गुणदोषाश्च स्वर्गे राजन्न व स्थिताः॥ ३९॥ इति श्रुत्वावचोभद्रे स राजा प्रत्य भाषत॥ राजोवाच-नेच्छामि देवदूताहं स्वर्गमी दृग्विधं फलम्॥४०॥

अर्थ—और मध्यम पुण्यसे मध्यम स्वर्ग, तथा कनिष्ठ पुण्यसे कनिष्ठ स्वर्ग होता है, इसके विपरीत नहीं होता॥ ३७॥ दूसरेके ऐश्वर्य्य को न सहना, बराबरवालोंके साथ ईर्ष्या और छोटोंके साथ संतोष करना अर्थात् भले यह दीन है ये बातें स्वर्गमें जबतक पुण्यका नाश नहीं होता तबतक होती हैं॥ ३८॥ पुण्यके क्षीण होनेपर स्वर्गवासी मनुष्य इस मृत्युलोकमें आकर प्रवेश करते हैं. हे राजन् ! इत्यादि गुण और दोष स्वर्गमें हैं॥ ३९॥ हे भद्रे ! इस वचनको श्रवण करके वह राजा बोला—हे देव दूत ! ऐसे फलवाले स्वर्गको मैं नहीं चाहता॥ ४०॥

अतःपरं महोग्रंतु तपःकृत्वा कलेवरम्॥ त्यक्ष्याम्यहम शुद्धं हिजीर्णांत्वच मिवोरगः॥ ४१॥ देवदूत विमानेदं गृहीत्वात्वं यथागतः॥ तथा गच्छ महेंद्रस्य सन्निधौत्वं नमोस्तुते॥ ४२॥ देवदूत उवाच-इत्युक्तोहं गतो भद्रे शक्रस्याग्रे निवेदितुं॥ यथावृत्तं निवेद्याथमहदाश्चर्यतां गतः॥ ४३॥ पुनः प्राह महेंद्रो मां लक्ष्णं मधुरयागिरा॥ इंद्र उवाच-दूत गच्छ पुनस्तत्रतं राजानं नयाश्रमम्॥ ४४॥ वाल्मीकेर्ज्ञात तत्त्वस्य स्वबोधार्थं विरागिणम्॥ संदेशं मम वाल्मीकेर्महर्षेस्त्वं निवेदय॥ ४५॥

अर्थ—अब मैं महाघोर तपकरके जैसे पुरानी काँचुलीको सर्प त्यागता है वैसेही इस अशुद्ध शरीरको त्यागदूंगा॥ ४१॥ हे देवदूत ! आपको नमस्कार है, आप इस विमानको लेकर जिस प्रकार मेरे निकट आये उसी रीतिसे इंद्रके निकट चले जाइये॥ ४२॥ देवदूत बोले—हे भद्रे ! राजाके इस प्रकार कहनेपर मैं उस वृतान्तको कहनेकेलिये इंद्रके निकट गया और यथार्थ निवेदन करनेपर इंद्रको बडा आश्चर्य हुआ॥ ४३॥ पुनः शोभन और मधुरवाणीसे इंद्रने मुझ-

से कहा इंद्र बोले—हे दूत ! तुम पुनः वहां जावो और वैराग्यवान् राजाको आत्मज्ञानके लिये तत्वज्ञानी श्रीवाल्मीकि-ऋषिके आश्रमपर ले जाओ और वाल्मीकि महर्षिसे मेरा संदेश कह दो कि ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

महर्षेत्वं विनीतायराज्ञेस्मै वीतरागिणे ॥ नस्वर्ग मिच्छते तत्त्वं प्रबोधय महामुने ॥ ४६ ॥ तेन संसार दुःखार्तो मोक्षमेष्यति च क्रमात् ॥ इत्युक्त्वा देवराजेन प्रेपितोहं तदंतिके ॥ ४७ ॥ मयागत्य पुनस्तत्र राजा वल्मीक जन्मने ॥ निवेदितो महेंद्रस्य राज्ञा मोक्षस्य साधनम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—हे महामुने आप तत्वज्ञानका बोध कराइये ॥ ४६ ॥ जिससे संसारके दुःखसे पीडित इस राजाको क्रमसे मोक्षकी प्राप्ति हो ऐसा कहके मुझे उसके निकट भेजा ॥ ४७ ॥ मैं पुनः वाल्मीकिके निकट जाके राजाको विदित किया और उसके मोक्षसाधनके विषयमें महेन्द्रका संदेश कहा ॥ ४८ ॥

ततो वल्मीक जन्मासौ राजानं समपृच्छत ॥ अनामयम तिप्रीत्या कुशल प्रश्न वार्त्तया ॥ ४९ ॥ राजोवाच-भगवन् धर्मतत्त्वज्ञ ज्ञातज्ञेय विदांवर ॥ कृतार्थोहं भवद्दृष्ट्या तदेवकुशलं मम ॥ ५० ॥ भगवन् प्रष्टुमिच्छामि तद विघ्नेनमेवद ॥ संसारबंधदुःखार्तेः कथंमुंचामितद्वद ॥ ५१ ॥ वाल्मीकिरुवाच-शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि रामायणमखंडितम् ॥ श्रुत्वावधार्ययत्नेन जीवन्मुक्तो भविष्यसि ॥५२॥

अर्थ—इसके पश्चात् वाल्मीकिजीने अत्यन्त प्रीतिपूर्वक राजासे आरोग्यता पूछी ॥ ४९ ॥ राजा बोला—हे भगवन् ! हे धर्मके तत्त्वोंके जाननेवाले हे संपूर्ण जाननेयोग्य पदार्थोंके जाननेवाले ! आपके दर्शनसे मैं कृतार्थ होगया यही मेरा कुशलहै॥५०॥हे भगवन् ! मैं आपसे पूंछता हूं सो निर्विघ्नतापूर्वक मुझसे कहो, संसारके बंधनरूपी दुःखसे मैं कैसे छूटूं सो आप कहो ॥ ५१ ॥ वाल्मीकि बोले-हे राजन् ! सुनो मैं संपूर्ण रामायण कहूंगा उसे सुनके और यत्नसे निश्चय करनेसे जीवनन्मुक्त हो जाओगे ॥ ५२ ॥

वसिष्ठरामसंवादं मोक्षपाय कथां शुभाम् ॥ ज्ञात स्वभावो राजेंद्र वदामि श्रूयतां बुध ॥ ५३ ॥ राजोवाच-कोरामः कीदृशः कस्य बद्धो वा मुक्तएवा वा ॥ एतन्मे निश्चितं ब्रूहि ज्ञानं तत्त्वविदांवर ॥५४॥ वाल्मीकिरुवाच-शापव्याजवशादेवराजवेशधरो हरिः ॥ आहृताज्ञानसंपन्नः किंचिज्ज्ञोसौभवत्प्रभुः ॥५५॥ राजोवाच-चिदानंदस्वरूपेहि रामेचैतन्यविग्रहे ॥ शापस्य कारणं ब्रूहि कःशप्ताचेतिमेवद ॥५६॥

अर्थ—हे राजेंद्र ! आत्मकी सत्ताको जाननेवाला मैं वसिष्ठ और रामचन्द्रजीका संवादरूप मोक्षोपाय की शुभ कथाको कहताहूं आप श्रवण किजीये॥५३॥ राजा बोला—हे तत्वज्ञानीयोंमें श्रेष्ठ ! रामचन्द्रजी किसके पुत्र और कैसेथे बद्ध थे ? अथवा मुक्त ! यह निश्चितज्ञान मुझसे कहिये॥५४॥ वाल्मीकि बोले—शापके मिषसेही श्रीविष्णुने राजावेष धारणकिया औ अपनी इच्छापूर्वक अज्ञानको अंगीकार करके न्यून ज्ञानवाले प्रभु होगये॥५५॥ राजा बोला—चैतन्य शरीर वाले सत्चिदानन्दस्वरूप रामचन्द्रजीके शापका कारण क्या था और उनको शाप किसने दिया यह मुझसे कहिये ५६

वाल्मीकिरुवाच-सनत्कुमारो निष्कामअवसद्ब्रह्मसद्मनि ॥ वैकुंठादागतो विष्णुस्त्रैलोक्याधिपतिः प्रभुः ॥ ५७ ॥ ब्रह्मणापूजितस्तत्र सत्यलोक निवासिभिः ॥ विना कुमारं तं दृष्ट्वा ह्युवाच प्रभुरीश्वरः ॥ ५८ ॥ सनत्कुमारस्तब्धोसि निष्कामो गर्वचेष्टया ॥ अतस्त्वं भवकामार्तःशरजन्मेतिनामत ॥ ५९॥ तेनापि शापितोविष्णुः सर्वज्ञत्वं तवास्तियत् ॥ किंचित्कालं हितत्त्यक्त्वात्वमज्ञानी भविष्यसि॥६०॥

अर्थ—वाल्मीकि बोले—कामरहित सनत्कुमार ब्रह्माके स्थानपर रहतेथे वहांपर त्रैलोक्यके स्वामी विष्णुजीभि वैकुण्ठसे आये ॥५७॥ वहांपर सनत्कुमारके सिवाय ब्रह्माजी तथा अन्य ब्रह्मलोकनिवासियोंने विष्णुजीकी पूजा की, इसको देखिके विष्णुभगवान् बोले ॥ ५८ ॥ हे सनत्कुमार ! तुम निष्कामहो इस लिये गर्वी होगयेहो इसवास्ते शर जन्मनामवाले स्वामी कार्तिक कामसे अति पीडित अल्पज्ञ होओगे ॥ ५९ ॥ उन्होंनेभी विष्णुको शाप दिया कि आपका जो सर्वज्ञत्वका अभिमान है उसे त्यागके कुछ कालके लिये अल्पज्ञ हो जाओ ॥ ६० ॥

भृगुर्भार्यां हतांदृष्ट्वा ह्युवाचक्रोधमूर्च्छितः ॥ विष्णो तवापि भार्याया वियोगो हि भविष्यति ॥ ६१ ॥ वृंदया शापितो विष्णुश्छलनं यत्त्वया कृतम् ॥ अतस्त्वं स्त्रीवियोगं तु वचनान्ममयास्यसि ॥ ६२ ॥ भार्या हि देवदत्तस्य पयोष्णीतीरसंस्थिता ॥ नृसिंहवेषधृग्विष्णुं दृष्ट्वा पंचत्वमागता ॥ ६३ ॥ तेन शप्तो हि नृहरिर्दुःखार्त्तःस्त्रीवियोगतः ॥ तवापि भार्ययासार्धं वियोगो हि भविष्यसि ॥ ६४ ॥

अर्थ—क्रोध मूर्च्छित भृगु मरीहुई अपनी स्त्रीको देखके बोले—कि मुझे तुमनेभी हँसा तुमकोभी स्त्रीका विरह होगा ॥ ६१ ॥ वृन्दाने विष्णुको शाप दिया कि आपने जो मुझसे छल किया इसलिये मेरे वचनसे तुमकोभी स्त्रीका वियोग होगा ॥ ६२ ॥ और पयोष्णी नदी तट निवासिनी देवदत्तकी स्त्रीने नरसिंह रूपधारी विष्णुको देखके अपने प्राण

(भयसे) त्याग दिया ॥ ६३ ॥ इसपर दुःखी स्त्रीवियोगी उस ब्राह्मणने विष्णुकोभी शाप दिया, कि तुह्माराभी स्त्रीके साथ अवश्य वियोग होगा ॥ ६४ ॥

भृगुणैवं कुमारेण शापितो देवशर्मणा ॥ वृंदया शापितो विष्णुस्तेनमानुष्यतांगतः ॥ ६५ ॥ एतत्ते कथितं सर्वं शाप व्याजस्य कारणम् ॥ इदानीं वच्मितत्सर्वं सावधान मतिःशृणु ॥ ६६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकिये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये द्वात्रिंशत्साहस्र्यां संहितायां वैराग्यप्रकरणे सूत्रपातनको नाम प्रथमःसर्गः ॥ १ ॥

अर्थ—इसप्रकार भृगु सनत्कुमार, देवशर्मा और वृन्दाके शापसे विष्णुने मनुष्यरूप धारणकिया॥६५॥यह संपूर्ण शाप व्याजका कारण मैंने तुमसे कहदिया, अब वह सब मोक्षका साधन जो तुमने पूंछा सो सावधानचित्त होके सुनो६६॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकिये देवदूतोक्ते द्वात्रिंशत्साह सहितायां भाषाऽनुवादे वैराग्यप्रकरणे सूत्रपातो नाम प्रथमःसर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयःसर्गः ।

दिवि भूमौ तथाऽऽकाशे बहिरंतश्च मे विभुः ॥ योविभात्यवभासात्मा तस्मै सर्वात्मने नमः ॥ १ ॥ वाल्मीकिरुवाच–अहं बद्धो विमुक्तः स्यामिति यस्यास्ति निश्चयः ॥ नात्यंतमज्ञो नोऽतज्ञः सोस्मिञ्छास्त्रेऽधिकारवान् ॥ २ ॥ कथोपायान्विचार्यादौ मोक्षोपायानिमानथ ॥ यो विचारयति प्राज्ञो न स भूयोभिजायते ॥ ३ ॥

अर्थ—जो प्रकाशस्वरूप परमात्मा नानारूपसे इस भूलोकमें और अन्तरिक्ष लोकमें प्रकाश करता (भासता) है उस सर्वात्मरूप परमात्माको नमस्कारहै ॥ १ ॥ वाल्मीकिजी बोले–मैं बद्ध हूं मुक्त होजाऊं ऐसा जिसका निश्चय हो, और न अत्यन्त अज्ञानी हो और न ज्ञानी, ऐसा मनुष्य इस शास्त्रका अधिकारी है ॥ २ ॥ प्रारम्भमें छः कांड पूर्वरामायणको विचार करके अनन्तर इन मोक्षके उपाय वक्ष्यमाण वैराग्यादि छः प्रकरणोंको जो बुद्धिमान् विचारता है वह पुनः नहीं जन्मता ॥ ३ ॥

अस्मिन् रामायणे रामकथोपायान् महाबलान् ॥ एतांस्तु प्रथमं कृत्वा पुराऽहमरिमर्दन ॥ ४ ॥ शिष्यायास्मि विनीताय भरद्वाजाय धीमते ॥ एकाग्रो दत्तवांस्तस्मै मणिमब्धिरिवार्थिने ॥ ५ ॥ तत एते कथोपाया भरद्वाजेन धीमता ॥ कस्मिंश्चिन्मेरुगहने ब्रह्मणोऽग्र उदाहृताः ॥ ६ ॥ अथास्य तुष्टो भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ वरं पुत्र गृहाणेति तमुवाच महाशयः ॥ ७ ॥ भरद्वाजउवाच–भगवन् भूतभव्येश वरोऽयं मेऽद्य रोचते ॥ येनेयं जनता दुःखान्मुच्यते तदुदाहर ॥ ८ ॥

अर्थ—हे शत्रुओंको मर्दन करनेवाले राजन्! इस (२४००० पूर्व और ३२००० उत्तर रामायण नामक ग्रन्थ) मेंसे पूर्वकालमें महाप्रबल कथाके उपाय ६ काण्ड पूर्वरामायणको मैंने प्रथम कहा ॥ ४ ॥ और समाहितचित्त होके मैंने इस पूर्व रामायणको बुद्धिमान् व नम्रतायुक्त भरद्वाजनाम अपने शिष्यको पढाया ॥ ५ ॥ यही पूर्वरामायण बुद्धिमान् भरद्वाजने मेरुके किसी वनमें ब्रह्माजीके सन्मुख कहा ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर लोकपितामह ब्रह्माजी उनके ऊपर संतुष्ट होगये, और बोले कि हे पुत्र! वर मांग ॥ ७ ॥ भरद्वाज बोले–हे भूतंभविष्यत्के स्वामिन्! मुझे तो इस समय यह वरदान अच्छा लगताहै कि जिससे सम्पूर्ण अधिकारी जन दुःखसे छूट जांय वही कहिये ॥ ८ ॥

श्रीब्रह्मोवाच–गुरुं वाल्मीकिमत्राशु प्रार्थयस्व प्रयत्नतः ॥ तेनेदं यत्समारब्धं रामायणमनिंदितम् ॥ ९ ॥ तस्मिञ्छ्रुते नरो मोहात्समग्रात्संतरिष्यति ॥ सेतुनेवांबुधेः पारमपारगुणशालिना ॥ १० ॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच–इत्युक्त्वा स भरद्वाजं परमेष्ठी मदाश्रमम् ॥ अभ्यागच्छत्समं तेन भरद्वाजेन भूतकृत् ॥ ११ ॥ तूर्णं संपूजितो देवः सोऽर्घ्यपाद्यादिना मया ॥ अवोचन्मां महासत्वःसर्वभूतहितेरतः १२

अर्थ—श्रीब्रह्माजी बोले–इसबातके अर्थ शीघ्र गुरु वाल्मीकिजीको प्रयत्नसे प्रार्थना करो उन्होंने जो यह निमित्तके विना रामायण आरम्भ कियाहै ॥ ९ ॥ उसके सुननेसे मनुष्य, जैसे अपार गुणसे शोभित समुद्रके पार होजाताहै ऐसेही मोहसमुद्रके पार होजावेगा ॥ १० ॥ श्रीवाल्मीकिजी बोले–ऐसा कहके संसारके रचनेवाले ब्रह्माजी भरद्वाजको साथ लेके मेरे आश्रमपर आये ॥ ११ ॥ शीघ्रही अर्घपाद्यादिकोंसे उस देवकी मैंने पूजा की और सर्व भूतके हितमें तत्पर वे महात्मा मुझसे बोले ॥ १२ ॥

रामस्वभावकथनादस्माद्धरमुने त्वया ॥ नोद्वेगात्स परित्याज्य आसमाप्तेरनिंदितात् ॥ १३ ॥ ग्रंथेनानेन लोकोऽयमस्मात्संसारसंकटात् ॥ समुत्तरिष्यति क्षिप्रं पोतेनेवाशु सागरात् ॥ १४ ॥ वक्तुं तदेवमेवार्थमहमागतवानयम् ॥ कुरु लोकहितार्थं त्वं शास्त्रमित्युक्तवानजः ॥ १५ ॥ मम पुण्याश्रमात्तस्मात्क्षणादंतर्द्धिमागतः ॥ मुहूर्त्तोभ्युत्थितः प्रोच्चैस्तरंगइववारिणि ॥ १६ ॥

अर्थ—हे श्रेष्ठमुने ! निन्दारहित इस श्रीरामजीके स्वभाव (कथादि समग्र वृत्तान्त) के वर्णनसे समाप्तिपर्य्यंत आपको त्यागना नहीं चाहिये ॥ १३ ॥ जैसे मनुष्य नौकाद्वारा समुद्रसे पार होजाताहै, वैसेही इस ग्रन्थसे यह लोक इस संसारके संकटसे पार होजायगा ॥ १४ ॥ इसी वातको कहनेके लिये मैं यहां आया हूं, आप लोकके हितके अर्थ शास्त्रको बनाओ ऐसा ब्रह्माजीने कहा ॥ १५ ॥ जैसे जलसे वडा ऊंचा तरंग मुहूर्तके लिये उठे और शान्त होजाय ऐसेही मेरे उस पवित्र आश्रमसे क्षणभरेमेंही ब्रह्माजी अंतर्ध्यान होगये ॥ १६ ॥

तस्मिन्प्रयाते भगवत्यहं विस्मयमागतः ॥ पुनस्तत्र भरद्वाजमपृच्छं स्वस्थया धिया ॥ १७ ॥ किमेतद्ब्रह्मणा प्रोक्तं भरद्वाज वदाशु मे ॥ इत्युक्तेन पुनः प्रोक्तं भरद्वाजेन तेन मे ॥ १८ ॥ भरद्वाज उवाच– एतदुक्तं भगवता यथा रामायणं कुरु ॥ सर्वलोकहितार्थाय संसारार्णवतारकम् ॥ १९ ॥ मह्यं च भगवन् ब्रूहि कथं संसारसंकटे ॥ रामो व्यवहृतो ह्यस्मिन् भरतश्च महामनाः ॥ २० ॥

अर्थ—भगवान्के चले जानेपर मैं विस्मित होगया, अनन्तर स्वस्थ चित्तसे भरद्वाजसे पूंछा ॥ १७ ॥ ब्रह्माजीने यह क्या कहा मुझसे शीघ्र कहो ऐसा कहनेपर भरद्वाजने मुझसे कहा ॥ १८ ॥ भगवान्ने यह कहाहै कि जैसे प्रथम रामायण बनायाहै वैसेही संसाररूपी समुद्रसे पार करनेवाला रामायण पुनः निर्माण करो ॥ १९ ॥ और हे भगवन् ! मुझसेभी कहिये कि इस संसार संकटमें श्रीरामचन्द्रजी तथा महाशय भरतजीने कैसे व्यवहार किया ॥ २० ॥

शत्रुघ्नो लक्ष्मणश्चापि सीता चापि यशस्विनी ॥ रामानुयायिनस्ते वा मंत्रिपुत्रा महाधियः ॥ २१ ॥ निर्दुःखितां येथैते तु प्राप्तास्तद्ब्रूहिमेस्फुटम् ॥ तथैवाहं भविष्यामि ततो जनतया सह ॥ २२ ॥ भरद्वाजेन राजेंद्र वदेत्युक्तोऽस्मि सादरम् ॥ तदा कर्त्तुं विभो राज्ञामहं वक्तुं प्रवृत्तवान् ॥ २३ ॥ शृणुवत्स भरद्वाज यथा पृष्टं वदामि ते ॥ श्रुतेन येन संमोहमलं दूरे करिष्यसि ॥ २४ ॥

अर्थ—और शत्रुघ्नजी, लक्ष्मणजी, यशस्विनी श्रीसीताजी तथा रामचन्द्रके अनुयायी वडे २ बुद्धिमान् मंत्री तथा पुत्रादिकोंने कैसे व्यवहार किया ॥ २१ ॥ जिसप्रकार ये लोग दुःखसे छूटे वह मुझसे स्वच्छतासे कहो, जिससे मैंभी उन अधिकारियोंके सदृश हो जाऊं ॥ २२ ॥ हे राजेन्द्र ! आदरसहित भरद्वाजने मुझसे कहा कि कहिये तव मैं ब्रह्माजीकी आज्ञा पालन करनेमें प्रवृत्त हुआ ॥ २३ ॥ हे प्रिय भरद्वाज ! जैसा तुमने पूंछा वैसे मैं तुमसे कहताहूं सुनो जिसके सुननेसे अत्यन्त मोहरूपी मलको दूर करोगे ॥ २४ ॥

तथा व्यवहर प्राज्ञ यथा व्यवहृतःसुखी ॥ सर्वासंसक्त या बुद्ध्या रामो राजीवलोचनः ॥ २५ ॥ लक्ष्मणो भरतश्चैव शत्रुघ्नश्च महामनाः ॥ कौसल्या च सुमित्रा च सीता दशरथस्तथा ॥ २६ ॥ कृतास्त्रश्चाविरोधश्च बोधपारमुपागताः ॥ वसिष्ठो वामदेवश्च मंत्रिणोऽष्टो तथेतरे ॥ २७ ॥ धृष्टिर्जयंतो भासश्च सत्यो विजय एव च ॥ बिभीषणः सुषेणश्च हनुमानिंद्रजित्तथा ॥ २८ ॥

अर्थ—जिसप्रकार सर्वथा संसारमें आसक्तिसेरहित कमलनेत्र रामचन्द्रने व्यवहार किया और सुखी रहे इसीप्रकार हे (बुद्धिमन्) तुमभी करो ॥ २५ ॥ महाशय लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, कौसल्याजी, सुमित्राजी और सीताजी तथा दशरथजी ॥ २६ ॥ कृतास्त्र और अविरोध ये सव बोध (ज्ञान) के पार प्राप्त हुये, वशिष्ठ, वामदेव और आठों मंत्री, तथा अन्य अनुयायी, लोगभी ज्ञानके पारंगत हुये ॥ २७ ॥ धृष्टि, जयन्त, भास, सत्य, विजय, बिभीषण, सुषेण, हनुमान्, और इन्द्रजित् ॥ २८ ॥

---

(१) प्रथकथोपायरूप रामायण कहा अब मोक्षोपाय कहो ॥ (२) उत्तररामायणका निर्माण कीजिये और उसे मुझे पढ़ाइयेभी ॥ (३) भेंट पूजा रखके प्रार्थनापूर्वक प्रश्नरूप आदरसहित ॥ (४) आत्मज्ञानका प्रतिवन्धक जो अज्ञानरूपी मलहै उसको दूर करोगे ॥ (५) संसार मिथ्याहै ऐसा निश्चय करनेसे अभिनिवेशशून्य बुद्धिसे कार्य किया ॥ (६) सर्वव्यापी अपरिच्छिन्न ब्रह्मरूप वस्तुके ग्रहण करनेके योग्य होनेसे महाशय (महामना) यह विशेषण दिया गया ॥ (७) कृतार्थ और अविरोध ये दोनो रामचन्द्रजीके मित्र थे ॥ (८) जिसका बोध (ज्ञान होनेसे दूसरा ज्ञातव्य पदार्थ नहीं रहता ऐसे ब्रह्मज्ञानको प्राप्त हुये ॥

एतेऽष्टौ मंत्रिणः प्रोक्ताः समनीरागचेतसः ॥ जीवन्मुक्ता महात्मानो यथाप्राप्तानुवर्तिनः॥२९॥एतैर्यथा हुतं दत्तं गृहीतमुषितं स्मृतम् ॥ तथा चेद्वर्त्तसे पुत्र मुक्त एवासि संकटात् ॥ ३० ॥ अपारसंसारसमुद्रपाती लब्ध्वा परां युक्तिमुदारसत्त्वः ॥ नशोक मःयाति न दैन्यमेति गतज्वरस्तिष्ठतिनित्यतृप्तः॥३१॥
इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये दे० मोक्षोपायेषु वै०
सूत्रपातनिकोनाम द्वितीयःसर्गः ॥ २ ॥

अर्थ—ये आठों मंत्रीसम, रागरहित, जीवन्मुक्त, महात्मा और यथाप्राप्त प्रारब्धके अनुसार चलनेवाले कहे जातेहैं ॥ २९ ॥ इन लोगोंने जिसप्रकार हवन किया, दिया, निवास किया, स्मरण किया, उसी रीतिसे यदि वर्तोगे तो हे पुत्र! अपनेको संकटसे मुक्तही जानो ॥ ३० ॥ अपार संसाररूपी समुद्रमें डूबता हुआ ज्ञानरूप उत्तम युक्तिको पाकर प्रबल ज्ञानसे बलवान् मनुष्य, पुनः शोक और दीनताको नहीं प्राप्त होता किंतु संतापरहित होकर नित्य तृप्त रहताहै
इत्यार्षे वासिष्ठरामायणे वाल्मीकीये दे० भाषाऽनुवादे मोक्षोपायेषु वै०
सूत्रपाता नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयस्सर्गः ।

भरद्वाज उवाच–जीवन्मुक्तस्थितिं ब्रह्मन्कृत्वा राघवमादितः ॥ क्रमात्कथय मे नित्यं भविष्यामि सुखी यथा ॥ १ ॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच–भ्रमस्य जागतस्यास्य जातस्याकाशवर्णवत् ॥ अपुनः स्मरणं मन्ये साधो विस्मरणं वरम् ॥ २ ॥ दृश्यात्यंताभावबोधं विना तन्नानुभूयते ॥ कदाचित्केन चिन्नाम स्वबोधोऽन्विष्यतामतः ॥ ३ ॥ सचेह संभवत्येव तदर्थमिदमाततम् ॥ शास्त्रमाकर्णयसि चेत्तत्त्वमाप्स्यसि नान्यथा ॥ ४ ॥

अर्थ—भरद्वाजजी बोले–हे ब्रह्मन् ! रामचन्द्रसे आदि लेके क्रमसे जीवन्मुक्तिकी दशा मुझसे कहिये, जिस रीतिसे मैं नित्य सुखरूप होजाऊं ॥ १ श्रीवाल्मीकिजी बोले हे साधो ! जिसप्रकार आकाशमें नीले वर्णका भ्रम हुआ है और आकाशके वास्तविक रूप जाननेसे उसकापुनः स्मरण नहीं होता इसीप्रकार जगत्के सत्यत्व भ्रमका ब्रह्मके वास्तविक स्वरूप जाननेसेपुन स्मरण नैं होनाही इसी दशाको मैं उत्तम जीवन्मुक्तकी स्थिति मानता हूं ॥ २ ॥ ब्रह्मज्ञानकेविना दृश्य (संसार)का अत्यन्ताभाव (संसार कभी था न है न होगा) किसीको कदापि अनुभूत नहीं होता इसलिये ब्रह्मज्ञानका संपादन करना उचितहै ॥ ३ ॥ वह (ब्रह्मज्ञान) इसशास्त्रके पढनेसे उत्तमतापूर्वक होताहै जिस ब्रह्मज्ञानके लिये यह वक्ष्यमाण योगवासिष्ट रामायण शास्त्रहै, यदि इसे सावधान होके सुनोगे तो तत्त्व पाओगे अन्यथा नहीं ॥४॥

जगद्भ्रमोयं दृश्योऽपि नास्त्येवेत्यनुभूयते ॥ वर्णो व्योम्नि इवाऽखेदाद्विचारेणामुनानघ ॥ ५ ॥ दृश्यं नास्तीति बोधेन मनसो दृश्यमार्जनम् ॥ संपन्नं चेत्तदुत्पन्ना परा निर्वाणनिर्वृतिः॥६॥ अन्यथा शास्त्रगर्त्तेषु लुठतां भवतामिह ॥ भवत्यकृत्रिमाज्ञानां कल्पैरपि न निर्वृतिः ॥ ७ ॥ अशेषेण परित्यागो वासनानां य उत्तमः ॥ मोक्ष इत्युच्यते ब्रह्मन्सएव विमलक्रमः ॥ ८ ॥

अर्थ—जैसे विचारसे आकाशमें वर्ण नहीं भान होता इसी प्रकार आलस्य तजके इस ग्रन्थके विचारनेसे जगद्भ्रम यह दृश्यभी नहीं (सत्य नहीं) है ऐसा अनुभव होताहै॥५॥यह दृश्य जगत् त्रिकालमें हैही नहीं ऐसा जब आत्मज्ञानसे मनसे दृश्यका मार्जन सिद्ध होजाय तो आत्मज्ञानकी पराकाष्ठा—निर्वाणकी उत्पत्ति हुईही समझो ॥ ६ ॥ इसके सिवाय अन्य शास्त्रोंके गढोंमें लोटनेसे अज्ञानियोंको कल्पोंमेंभी अकृत्रिम शान्ति (स्वतःसिद्ध आत्मामें स्थिति) नहींहो सक्ती॥७॥ हे ब्रह्मन् ! सर्वथा वासनाका परित्याग यह मुख्य मोक्षहै और वह अविद्यारहित मनुष्योंकोप्राप्त होताहै॥८॥

---

१ अन्तःकरणमें समवर्ती रागद्वेषरहित और ऊपरसे प्रारब्धाऽनुकूल वर्तनेवाले ॥ (२) वेदके ब्रह्मपरक वाक्य स्मरण करके और अर्थको मनन करके ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया (३) साधनचतुष्टयद्वारा समाधिरूप युक्ति ॥ (४) आकाशमें कोई रूप नहीं है क्योंकि नील पीतादि रूप साकार वस्तुमें होतेहैं और आकाश निराकारके सदृशमात्र है परन्तु वायुमण्डलमें तत्वके समूहोंका रूप वा किसीके मतसे वायुकापटलही नीलवर्ण प्रतीत होताहै ॥ (५) जगत् सत्यहै ऐसी स्फुरणाही कभी यथार्थ ज्ञानीको नहींहोती ॥ (६) ब्रह्मज्ञानीको जगत्की सत्ता असत् प्रतीत होतीहै वह सर्वत्र ब्रह्मसत्ताहीकी महिमा देखता है न कि जगत्की जगत् सत्यस्वरूपसे न प्रतीत होना यही उसका अत्यन्ताभाव है ॥ (७) अनेक प्रकारकी जो वासना हैं. उनका समूहही रूप मनहै उनके नष्ट होनेपर यह स्वयं नष्ट होजाता है ॥

क्षीणायां वासनायां तु चेतो गलति सत्वरम् ॥ क्षीणायां शीतसंतत्यां ब्रह्मन्हिमकणो यथा ॥ २९ ॥ अयं वासनया देहो ध्रियते भूतपंजरः ॥ तनुनांतर्निविष्टेन मुक्तौघस्ततुना यथा ॥ १० ॥ वासना द्विविधा प्रोक्ता शुद्धा च मलिना तथा ॥ मलिना जन्मनो हेतुःशुद्धा जन्मविनाशिनी ॥११॥ अज्ञानसुघनाकारा घनाहंकारशालिनी ॥ पुनर्जन्मकरी प्रोक्ता मलिना वासना बुधैः ॥ १२ ॥

अर्थ—हे ब्रह्मन् ! जैसे शीतलताका विस्तार क्षीण होनेपर हिमकण नष्ट होजाता है इसी प्रकार वासनाके क्षीण होनेपर शीघ्रही मन नष्ट होजाता है ॥ ९ ॥ जैसे तंतु अपने बीचमें गुँथे हुये मोतियोंका समूहको धारण करताहै वैसेही पंच भूतोंके समुदायसे बना हुआ यह देह वासना हीसे धारण किया गया है ॥ १० ॥ वासना दो प्रकारकी हैं एक शुद्ध दूसरी मलिन, मलिन वासना तो जन्मका हेतु है और शुद्ध जन्मका नाश करनेवाली है ॥ ११ ॥ अज्ञानसे सघन आकारवाली और घनीभूत अहंकारसे शोभायमान जो मलिन वासनाहै उसीको पुनः २ जन्म हेतुवाली पण्डितोंनें कहा है ॥ १२ ॥

पुनर्जन्मांकुरं त्यक्त्वा स्थिता संभृष्टबीजवत् ॥ देहार्थं ध्रियते ज्ञातज्ञेया शुद्धेति चोच्यते ॥ १३ ॥ अपुनर्जन्मकरणी जीवन्मुक्तेषु देहिषु ॥ वासना विद्यते शुद्धा देहे चक्र इव भ्रमः ॥ १४ ॥ ये शुद्धवासना भूयो न जन्माऽनर्थभाजनम् ॥ ज्ञातज्ञेयास्त उच्यंते जीवन्मुक्ता महाधियः॥ १५ ॥ जीवन्मुक्तिपदं प्राप्तो यथा रामो महामतिः ॥ तत्तेऽहं शृणु वक्ष्यामि जरामरणशांतये ॥ १६ ॥

अर्थ—पुनर्जन्म अंकुरको त्याग कर भुने हुये बीजके समान ज्ञेय पदार्थको जाननेवाली शरीरधारण मात्र प्रयोजनके अर्थ जो वासना धारण की जाती है उसको शुद्ध कहते हैं ॥ १३ ॥ पुनर्जन्मको नष्ट करनेवाली शुद्ध वासना जीवन्मुक्त शरीरोंमें चक्रके भ्रमणके सदृश रहती है ॥ १४ ॥ जो शुद्धवासनायुक्त प्राणी हैं वे जन्मरूपी अनर्थके पात्र पुनः नहीं होते और वेही ज्ञातज्ञेय महाबुद्धिमान् जीवन्मुक्त कहे जाते हैं ॥ १५ ॥ महामति रामचन्द्रजी जिस प्रकार जीवन्मुक्ति पदको प्राप्त हुये वह मैं तुमसे जरा (वृद्धावस्था) और मृत्युके शांन्तिके लिये कहूंगा तुम सुनो ॥ १६ ॥

भरद्वाज महाबुद्धो रामक्रममिमं शुभम् ॥ शृणु वक्ष्यामि तेनैव सर्वं ज्ञास्यसि सर्वदा ॥ १७ ॥ विद्यागृहाद्विनिष्क्रम्य रामो राजीवलोचनः ॥ दिवासान्यनयद्गेहे लीलाभिरकुतोभयः ॥ १८ ॥ अथ गच्छति काले तु पालयत्यवनिं नृपे ॥ प्रजासु वीतशोकासु स्थितासु विगतज्वरम् ॥ १९ ॥ तीर्थपुण्याश्रमश्रेणीर्द्रष्टुमुत्कंठितं मनः ॥ रामस्याभूद्भृशं तत्र कदाचिद्गुणशालिनः॥ २० ॥

अर्थ—हे महाबुद्धे भरद्वाज ! यह रामचन्द्रजीकी शुभ कथा मैं कहूंगा तुम सुनो. इसीसे, सब कुछ सदा जान जाओगे ॥ १७ ॥ कमलके सदृश नेत्रवाले श्रीरामचन्द्रजी संपूर्ण विद्याओंको पढ्के गुरुके घरसे निकलके निर्भय होके लीलासे दिवसको विताने लगे ॥१८॥ इसके अनन्तर जिस समय राजा पृथ्वीका पालन करतेथे और प्रजा सर्वथा स्वस्थ शोके और सब प्रकारकी पीडासे रहित थी ॥ १९ ॥ उस समय अनेक गुणोंसे शोभायमान श्रीरामचन्द्रजीका चित्त तीर्थ और पवित्र आश्रमोंके समूहको देखनेके लिये अत्यन्त अभिलाषी हुआ ॥ २० ॥

राघवश्चिंतयित्वैवमुपेत्य चरणौ पितुः ॥ हंसः पद्माविव नवौ जग्राह नखकेसरौ ॥ २१ ॥ श्रीराम उवाच-तीर्थानि देवसद्मानिवन्यायतनानि च ॥ द्रष्टुमुत्कंठितं तात ममेदं नाथ मानसम् ॥ २२ ॥ तदेतामर्थितां पूर्वां सफलां कर्तुमर्हसि ॥ न सोऽस्ति भुवने नाथ त्वया योर्थीन मानितः ॥ २३ ॥ इति संप्रार्थितो राजा वसिष्ठेन समं तदा विचार्यामुंचदेवैनं रामं प्रथममर्थिनम् ॥ २४ ॥

अर्थ—इस प्रकार विचार करके रामचन्द्रजी पिताके समीपमें गये और जैसे हंस नूतन कमलको ग्रहण करता है इसीप्रकार नखरूपी केशरसंयुक्त पिताके चरणकमलको ग्रहण (प्रणाम) किया ॥ २१ ॥ श्रीरामजी बोले हे पूज्य पितः ! तथा स्वामिन् ! तीर्थोंको देवताओंके स्थानोंके और विस्तृत वनोंको देखनेके लिये मेरा मन उत्कंठित हो रहा है ॥ २२ ॥ इस लिये मेरी प्रथम प्रार्थनाको सफल (पूर्ण) करना आपको उचित है क्योंकि संसारमें ऐसा कोई अर्थी नहीं है जिसका मनोरथ आपने पूर्ण न किया है ॥ २३ ॥ इस रीतिसे प्रार्थित राजाने वसिष्ठजीके साथ विचारके प्रथम प्रार्थी रामचन्द्रजीको विदा किया ॥ २४ ॥

(१) अज्ञानसे वारंवार विषयभोग और उसकी इच्छासे वृद्धिकी प्राप्तिमें परिणत अतएव निविड (मोटी)॥ (२) जरा और मृत्युका हेतुभूत जो वासनाहै उसके नाशके लिये ॥ (३) राजा दशरथ ॥ (४) उत्तम राज्यके कारण जब प्रजाओंको मनकी पीडा शोक भय न था तो अन्य पीडाकी क्या कथा ॥ (५) पिताजीके जीवनदशामें पिताकी आज्ञासेही तीर्थाटन वा अन्य नैमित्तिक धर्मकार्य्य करना चाहिये ॥ (६) स्वामिन् इस पद कहनेसे मर्य्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी अपनेको पिताके परंतत्र सूचित किया॥

शुभे नक्षत्रदिवसे भ्रातृभ्यां सह राघवः ॥ मंगलालंकृतवपुः कृतस्वस्त्ययनो द्विजैः ॥ २५ ॥ वासिष्ठप्रहितैर्विप्रैः शास्त्रज्ञैश्च समन्वितः ॥ स्निग्धैः कतिपयैरेव राजपुत्रवरैः सह ॥ २६ ॥ अंबाभिर्विहिताशीर्भिरालिंग्यालिंग्य भूषितः ॥ निरगात्स्वगृहात्तस्मात्तीर्थयात्रार्थमुद्यतः ॥ २७ ॥ निर्गतः स्वपुरात्पौरैस्तूर्यघोषेण वादितः ॥ पीयमानः पुरस्त्रीणां नेत्रैर्भृंगौघभंगुरैः ॥ २८ ॥

अर्थ—उत्तम नक्षत्र और दिनमें मंगल पदार्थोंसे शरीरको अलंकृतकरके ॥ २५ ॥ और ब्राह्मणोंसे स्वस्त्ययन कराके और उत्तम भाइयोंको, शास्त्रज्ञ वसिष्ठादि ब्राह्मणोंको और प्रीतिकरनेवाले राजपुत्रोंको साथ लेकर ॥ २६ ॥ बार २ आलिंगनकरके आशीर्वाद देनेवाली माताओंसे भूषितशरीर श्रीरामचन्द्रजी तीर्थयात्राके लिये उस अपनेगृहसे जानेके अर्थ उद्यत हुये ॥ २७ ॥ नगरनिवासियोंने तुरही आदि मंगलसूचक वाद्योंके शब्द किये और स्त्रियोंने उन्होंको भृंगोंके समूहके सदृश कुटिल (अतिकाले) और चंचलनेत्रोंसे प्रेमसे देखा ॥ २८ ॥

ग्रामीणललनालोलहस्तपद्मापनेरितैः ॥ लाजवर्षैर्विकीर्णात्मा हिमैरिव हिमाचलः ॥ २९ ॥ आवर्जयन्विप्रगणान्परिशृण्वन्प्रजाशिषः ॥ आलोकयन्दिगंतांश्च परिचक्राम जांगलान् ॥ ३० ॥ अथाऽरभ्य स्वकात्तस्मात्क्रमात्कोशलमंडलात् ॥ स्नानदानतपोध्यानपूर्वकं स ददर्श ह ॥ ३१ ॥ नदीतीराणि पुण्यानि वनान्यायतनानि च ॥ जंगलानि जनांतेषु तटान्यब्धिमहीभृताम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—जैसे हिमसे हिमालय ढका रहताहै वैसेही ग्रामकी स्त्रियोंके चंचल हस्तोंसे फेंके हुये लाजाकी वृष्टिसे ढँके हुए शरीरवाले ॥ २९ ॥ रामचंद्रजी ब्राह्मणोंको दानमानादिसे सन्तुष्ट करके वशमें करतेहुये, और प्रजाओंके आशीर्वादोंको सुनतेहुये दिग्प्रांतोंको देखतेहुए प्राचीन जंगलोंमें भ्रमण किया ॥ ३० ॥ इसके अनन्तर अपने उस कोशल प्रान्तसे लेकर स्नान दान तप और ध्यानपूर्वक वक्ष्यमाण स्थानोंको देखा ॥ ३१ ॥ पवित्रनदियोंके तटें, वन, देवता, और मुनियोंके आश्रम नगर और ग्रामोंके समीपके जंगल, समुद्र और पर्वतोंके तटोंको देखा ॥ ३२ ॥

मंदाकिनीमिंदुनिभां कालिंदीं चोत्पलामलाम् ॥ सरस्वतीं शतद्रुं च चंद्रभागामिरावतीम् ॥ ३३ ॥ वेणीं च कृष्णवेणीं च निर्विंध्यां सरयूं तथा ॥ चर्मण्वतीं वितस्तां च विपाशां बाहुदामपि ॥ ३४ ॥ प्रयागं नैमिषं चैव धर्मारण्यं गयां तथा ॥ वाराणसीं श्रीगिरिं च केदारं पुष्करं तथा ॥ ३५ ॥ मानसं च क्रमसरस्तथैवोत्तरमानसम् ॥ वडवावदनं चैव तीर्थवृंदं स सादरम् ॥ ३६ ॥ अग्नितीर्थं महातीर्थमिंद्रद्युम्नसरस्तथा ॥ सरांसि सरितश्चैव तथा नदह्रदावलीम् ॥ ३७ ॥

अर्थ—चन्द्रमाकेसमान जिसका उदकहै ऐसी मन्दाकिनी, निर्म्मलकमलवाली कालिन्दी, सरस्वती, शतद्रु, चन्द्रभागा, और इरावती ॥ ३३ ॥ वेणी और कृष्णा, कृष्णवेणी, निर्विन्ध्या, सरयू, चर्म्मण्वती, वितस्ता, विपाशा, और बाहुदा ॥ ३४ ॥ और प्रयाग, नैमिष, धर्मारण्य, गया, काशी, श्रीपर्वत, केदार और पुष्कर ॥ ३५ ॥ क्रमसे मानसर और उत्तरमानस, हयग्रीव, सादर सहित तीर्थवृन्द, अग्नितीर्थ, महातीर्थ, इन्द्रद्युम्नसर, तथा अन्यतालाव, नदी, नद और ह्रदोंकी पंक्ति अनेक छोटे गहिरे तालावोंको देखा ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

स्वामिनं कार्तिकेयं च शालग्रामं हरिं तथा ॥ स्थानानिच चतुःषष्टि हरेरथ हरस्य च ॥३८॥ नानाश्चर्यविचित्राणि चतुरब्धितटानि च ॥ विंध्यमंदरकुंजांश्च कुलशैलस्थलानि च ॥ ३९ ॥ राजर्षीणां च महतां ब्रह्मर्षीणां तथैव च ॥ देवानां ब्राह्मणानां च पावनानाश्रमाञ्छुभान् ॥ ४० ॥

अर्थ—कार्तिकस्वामी, तथा भगवान् शालिग्राम,तथा विष्णु और महादेवके चौसठ स्थानोंको देखा ॥ ३८ ॥ और अनेक प्रकारके आश्चर्यदायक चारोंसमुद्रोंके तट, विन्ध्याचल और मन्दराचलके कुंज और सात कुलाचलकेस्थान ॥ ३९ ॥ बडे २ महात्मा राजर्षियोंके ब्रह्मर्षियोंके देवताओंके और ब्राह्मणोंके पवित्र और कल्याणकारक आश्रमोंको रामचन्द्रजीने देखा ॥ ४० ॥

भूयो भूयः स बभ्राम भ्रातृभ्यां सह मानद ॥ चतुर्ष्वपि दिगंतेषु सर्वानेव महीतटान् ॥ ४१ ॥ अमरकिन्नरमानवमानितः समवलोक्य महीमखिलामिमाम् ॥ उपययौ स्वगृहं रघुनंदनो विहृतदिक्शिवलोकमिवेश्वरः ॥ ४२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठरामायणे वा० देवदूतोक्ते मोक्षोपाये वैराग्यप्रकरणे तीर्थयात्राकरणं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

(१) प्रतिदिन तीर्थादिस्थानोंमें स्नानदानादि कर्म करके उनस्थानोंको देखतेथे ॥ (२) इन सबस्थानोंके आगे "देखा" यह क्रिया लगालेनी ॥ ३१ ॥ श्लोकमें जो 'दर्शन' क्रिया है उसका संबन्ध ४४ के अन्ततक है ॥

अर्थ—मानदायक श्रीरामचन्द्रजीने भाइयोंके साथ पृथिवीपर सबदिशाओंमें पुनः भ्रमण किया ॥ ४१ ॥ देवता किन्नर और मनुष्योंके मान्य रामचन्द्रजी जम्बूद्वीपकी सम्पूर्णपृथिवीपर भ्रमणकरके अपने स्थानको ऐसे गये जैसे शिवजीमहाराज सम्पूर्णदेशाओंमें भ्रमणकरके कैलासमें जातेहैं ॥ ४२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वा० देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे
वैराग्यप्रकरणे तीर्थयात्राकरणं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ४

श्रीवाल्मीकिरुवाच-रामः पुष्पांजलिव्रातैर्विकीर्णः पुरवासिभीः ॥ प्रविवेश गृहं श्रीमाञ्जयंतो विटपं यथा ॥ १ ॥ प्रणनामाथ पितरं वसिष्ठं भ्रातृबांधवान् ॥ ब्राह्मणान् कुलवृद्धांश्च राघवः प्रथमागतः॥ २ ॥ सुहृद्भिर्मातृभिश्चैव पित्रा द्विजगणेन च ॥ मुहुरालिंगिताचारो राघवो न ममौ मुदा ॥३ ॥ तस्मिन् गृहे दाशरथेः प्रियप्रकथनैर्मिथः ॥ जुघूर्णुर्मधुरैराशा मृदुवंशस्वनैरिव ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवाल्मीकिजी बोले-जिसप्रकार इन्द्रका पुत्र जयन्त स्वर्गमें प्रवेशकरताहै इसीहि नगरनिवासियोंकी पुष्पांजलीसे आच्छादित श्रीमान् रामचन्द्रजीनें अपने गृहमें प्रवेशकिया ॥ १ ॥ आतेही प्रथम रामचन्द्रजीने पिताको वसिष्ठको भाईबन्धुओंको ब्राह्मणोंको और कुलवृद्धोंको प्रणामकिया ॥ २ ॥ मित्रोंसे माताओंसे पितासे और ब्राह्मणोंकेसमूहसे आलिंगित और प्रियभाषी रामचन्द्रजी प्रसन्नतासे शरीरमें फुलेहुये नहींसमातेथे ॥ ३ ॥ रामचन्द्रजीके उसस्थानमें परस्पर प्रियसंभाषणसे लोग दिशाओंमें ऐसे भ्रमणकरने लगे जैसे मधुर बंशीके शब्दोंसे आनन्दित होके भ्रमर ॥ ४ ॥

बभूवाथ दिनान्यष्टौ रामागमन उत्सवः ॥ सुखं मत्तजनोन्मुक्तकलकोलाहलाकुलः ॥ ५ ॥ उवास स सुखं गेहे ततः प्रभृति राघवः ॥ वर्णयन्विविधाकारान् देशाचारानितस्ततः ॥ ६ ॥ प्रातरुत्थाय रामोऽसौ कृत्वा संध्यां यथाविधि ॥ सभासंस्थं ददर्शेन्द्रसमं स्वं पितरं तथा ॥ ७ ॥ सुविचित्राभिः कथाभिः स वसिष्ठादिभिः सह ॥ स्थित्वा दिनचतुर्भागं ज्ञानगर्भाभिरादृतः ॥ ८ ॥

अर्थ—सुखपूर्वक प्रसन्नमनुष्योंके कोलाहलसे व्याप्त बडाभारी उत्सव रामचन्द्रजीके आगमनका ८ दिनतक होता रहा ॥५॥ इधरउधरके देशोंके अनेकआचारोंको वर्णनकरतेहुये रामचन्द्रजी गृहमें उससमयसे लेकर सुखपूर्वक रहनेलगे ॥ ६ ॥प्रातःकाल उठकर विधिपूर्वक सन्ध्याकरके इन्द्रके समान सभामें स्थित अपने पिताको देखा ॥ ७ ॥ वसिष्ठादिकोंके साथ ज्ञानसंयुक्त विचित्रकथाओंसे रामचंद्रजी दिनके चतुर्थभागपर्यंत ठहरके ॥ ८ ॥

जगाम पित्रानुज्ञातो महत्या सेनया वृतः ॥ वराहमहिषाकीर्णं वनमाखेटकेच्छया ॥ ९ ॥ तत आगत्य सदने कृत्वा स्नानादिकंक्रमम् ॥ समित्रबांधवो भुक्त्वा निनाय ससुहृन्निशाम् ॥ १० ॥ एवंप्रायदिनाचारो भ्रातृभ्यां सह राघवः ॥ आगत्य तीर्थयात्रायाः समुवास पितुर्गृहे ॥ ११ ॥ नृपतिसंव्यवहारमनोज्ञया सुजनचेतसि चंद्रिकयानया ॥ परिनिनाय दिनानि स चेष्टया स्तुतसुधारसपेशलयानघ ॥१२॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे दे० मो० वै० दिवसव्यवहारनिरूपणं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

अर्थ—पिताकी आज्ञालेकर, वराह और महिषोंसे पूर्ण वनमें आखेट (शिकार) की इच्छासे बडीभारी सेनाके साथ गये ॥ ९ ॥ वहांसे स्थानपर आके स्नानादि क्रिया करके और मित्रबंधुओंके साथ भोजनकरके मित्रोंके साथ रात्रिको विताया करतेथे ॥ १० ॥ श्रीरामचंद्रजी तीर्थयात्रासे आकर भाइयोंके साथ प्रायः ऐसाही आचारपूर्वक अपने पिताके गृहमें निवासकरतेथे ॥ ११ ॥ हे अनघ! (अरिष्टनेमी राजन्) राजाओंके व्यवहारोंके योग्य सज्जनोंके चित्तमें चंद्रमाके समान आनंददेनेवाले, अमृतके समान सबमनुष्योंकरके प्रशंसितचेष्टासे रामचंद्रजी कालक्षेप करतेथे ॥ १२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे दे० मो० भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे
दिवसव्यवहार निरूपणं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

---

(१) सभोंने रामचन्द्रजीके ऊपर इतने पुष्प फेंके कि रामचन्द्रजी उससे ढकगये ॥

पंचमः सर्गः ५

इस पंचमसर्गमें रामचंद्रजीकी कृशता, राजाकी उसके कारण जाननेकी इच्छा और वसिष्ठकी कथाका उपक्रम वर्णन किया गयाहै ॥

श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ ॥ अथोनषोडशे वर्षे वर्तमाने रघूद्वहे ॥ रामानुयायिनि तथा शत्रुघ्ने लक्ष्मणेऽपि च ॥ १ ॥ भरते संस्थिते नित्यं मातामहगृहे सुखम् ॥ पालयत्यवनिं राज्ञि यथावदखिलामिमाम् ॥ २ ॥ जन्यत्रा[illegible] च पुत्राणां प्रत्यहं सह मंत्रिभिः ॥ कृतमंत्रे महाप्राज्ञे तज्ज्ञे दशरथे नृपे ॥ ३ ॥ कृतायां तीर्थयात्रायां [illegible]मो निजगृहे स्थितः ॥ जगामानुदिनं कार्श्यं शरदीवामलं सरः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवाल्[illegible]ीकिजी बोले-इससमय रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ रामचंद्रजी तथा उनके भ्राता शत्रुघ्न और लक्ष्मणकी १६ सोलह वर्षसे कुछ न्यून अवस्थाथी ॥ १ ॥ और भरत अपने मातामहके गृहमें निवासकरनेको गये, राजा दशरथ इस सम्पूर्णपृथिवीको पालनकरतेथे ॥ २ ॥ मंत्रियोंके साथ ज्ञानवान् राजा पुत्रोंके विवाहसंबंधी विचार करतेथे ॥ ३ ॥ तीर्थयात्रासे पश्चात रामचंद्रजी अपने पिताके गृहमें प्रतिदिन कृशता (दुर्बलता) को ऐसा प्राप्त होनेलगे जैसे शरत्कालमें निर्मल तालाब ॥ ४ ॥

कुमारस्य विशालाक्षं पांडुतां मुखमाददे ॥ पाकफुल्लदलं शुक्लं सालिमालमिवांबुजम् ॥ ५ ॥ कपोलतलसँल्लीनपाणिः पद्मासनस्थितः ॥ चिंतापरवशस्तूष्णीमव्यापारो बभूव ह ॥ ६ ॥ कृशांगश्चिंतया युक्तः खेदी परमदुर्मनाः ॥ नोवाच कस्यचित्किंचिल्लिपिकर्मार्पितोपमः ॥ ७ ॥ खेदात्परिजनेनासौ प्रार्थ्यमानः पुनः पुनः ॥ चकाराह्निकमाचारं परिम्लानमुखांबुजः ॥ ८ ॥

अर्थ—कुमार श्रीरामचंद्रजीके विशालनेत्रवाले मुखपर पीतता ऐसी छागई जैसे शालीधानसे घिरेहुये पाक विकसित कमलपर ॥ ५ ॥ कपोलतलपर हाथ रक्खेहुये और पद्मासनसे स्थित रामचंद्रजी चिंतानिमग्न मौन और व्यापाररहित होगये ॥ ६ ॥ अतिकृशशरीर चिंतायुक्त और खिन्न अत्यंतउदासीन चित्रमें लिखेके समान किसीसे कुछ नहींबोलतेथे ॥ ७ ॥ खेदसे उनका मुखरूप कमल अत्यंत कुह्मलायाथा और इष्टमित्रोंकी वार २ प्रार्थना करनेपर दिनके आचार स्नानादिक्रिया करतेथे ॥ ८ ॥

एवं गुणविशिष्टं तं रामं गुणगणाकरम् ॥ आलोक्य भ्रातरावस्य तामेवाययतुर्दशाम् ॥ ९ ॥ तथा तेषु तनूजेषु खेदवत्सु कृशेषु च ॥ सपत्नीको महीपालश्चिंताविवशतां ययौ ॥ १० ॥ का ते पुत्र घना चिंतेत्येवं रामं पुनः पुनः ॥ अपृच्छत्स्निग्धया वाचा नैवाकथयदस्य सः ॥ ११ ॥ न किंचित्तात मे दुःखमित्युक्त्वा पितुरंकगः ॥ रामो राजीवपत्राक्षस्तूष्णीमेव स्म तिष्ठति ॥ १२ ॥

अर्थ—संपूर्ण गुणोंके खानि रामचंद्रजीको उनके दोनोंभाईभी इसदशामें देखके आपभी उसीदशाको प्राप्तहोगये ॥ ९ ॥ पुत्रोंके अत्यंत खेदवान् और कृश होनेपर स्त्रीसहित राजा दशरथ चिंतासे विवश होगये ॥ १० ॥ हे पुत्र! तुमको कौनसी बडीभारी चिंताहै? इसप्रकार कोमल वाणीसे वार २ राजाने पूंछा, परंतु रामचंद्रजीने उनको कुछ उत्तर नहींदिया ॥ ११ ॥ कमलके सदृश नेत्रवाले, पिताकी गोदीमें बैठेहुये रामचंद्रजी बोले, कि हे पिताजीः! मुझे कोई क्लेश नहीं है इतना कहके मौनहोगये ॥ १२ ॥

ततो दशरथो राजा रामः किं खेदवानिति ॥ अपृच्छत्सर्वकार्यज्ञं वसिष्ठं वदतां वरम् ॥ १३ ॥ इत्युक्तश्चिंतयित्वा स वसिष्ठमुनिना नृपः ॥ अस्त्यत्र कारणं श्रीमन्मा राजन्दुःखमस्तु ते ॥ १४ ॥ कोपं विषादकलनां विततं च हर्षं नाल्पेन कारणवशेन वहंति संतः ॥ सर्गेण संहृतिजवेन विना जगत्यां भूतानि भूप न महांति विकारयंति ॥ १५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वा० देवदूतोक्ते मोक्षोपाये वैराग्यप्रकरणे कार्श्यनिवेदनम् नाम पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

अर्थ—इसके अनंतर संपूर्णकार्योंके जाननेवाले और वक्ताओंमें श्रेष्ठ वसिष्ठजीसे राजादशरथने पूंछा कि रामचन्द्र उदासीन क्यों है ॥ १३ ॥ विचारकरके वसिष्ठजीने राजादशरथसे कहाकि हे राजन्! रामचन्द्रजीके उस

(१) रामचन्द्रजीकी चित्तशुद्धिकी उपायरूप दिनचर्य्या वर्णन करके अब उसका फलरूप वैराग्यादि सम्पत्तिका वर्णन करतेहैं।
(२) रामचन्द्रजीने शोचा कि पिताजीसे संसारकी अनित्यता तथा वैराग्यादिविषयमें कहनेसे केवल दुःखमात्र होगा क्योंकि पिता प्रायः पुत्रको संसारके कार्योंहीमें लगाना चाहताहै ॥

दुःखमें कारण है इसमें आपको दुःखी न होनाचाहिये ॥ १४ ॥ हे राजन्! महात्मालोग कोप विषाद (शोक) और अधिकहर्ष तुच्छकारणसे ऐसे नहींधारण करते जैसे सृष्टि वा संहारके वेगविना महाभूतोंमें विकार उत्पन्न नहींहोता ॥१५॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भा० वैराग्यप्रकरणे
कार्य्यनिवेदनं नाम पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः ६

इस छठे सर्गमें विश्वामित्रजीका आगमन, राजाने कियाहुवा, उनका विधिपूर्वक पूजन और राजाकी प्रसन्नतासे कार्य (विश्वामित्रका) करनेकी प्रतिज्ञाका वर्णन करेंगे.

॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ ॥ इत्युक्ते मुनिनाथेन संदेहवति पार्थिवे ॥ खेदवत्यास्थिते मौनं किंचित्कालप्रतीक्षणे ॥ १ ॥ परिखिन्नासु सर्वासु राज्ञीषु नृपसद्मसु ॥ स्थितासु सावधानासु रामचेष्टासु सर्वतः ॥२॥ एतस्मिन्नेव काले तु विश्वामित्र इति श्रुतः ॥ महर्षिरभ्यगाद्द्रष्टुं तमयोध्यानराधिपम् ॥३॥ तस्य यज्ञोऽथ रक्षोभिस्तथा विलुलुपे किल ॥ मायावीर्यबलोन्मत्तैर्धर्मकार्यस्य धीमतः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवाल्मीकिजी बोले-मुनियोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठजीके ऐसाकहनेपर खेदयुक्त कुछकालतक राजा प्रतीक्षा करतेथे ॥ १ ॥ और राजाके गृहमें सवरानियां उदासहोके सबतरहसे रामचन्द्रजीकी चेष्टाओंके विषयमें (निर्णयार्थ) सावधान थीं ॥ २ ॥ इसीसमय विश्वामित्रके नामसे प्रसिद्ध महर्षि अयोध्याके स्वामी (दशरथ) को देखनेको आये ॥ ३ ॥ धर्मकार्यको करनेवाले और बुद्धिमान् उसऋषिके यज्ञको मायावी पराक्रम और बलसे उन्मत्त राक्षस नष्ट करदेतेथे ॥ ४ ॥

रक्षार्थं तस्य यज्ञस्य द्रष्टुमैच्छत्स पार्थिवम् ॥ न हि शक्नोत्यविघ्नेन समाप्तुं स मुनिः क्रतुम् ॥ ५॥ ततस्तेषां विनाशार्थमुद्यतस्तपसां निधिः ॥ विश्वामित्रो महातेजा अयोध्यामभ्यगात्पुरीम् ॥ ६ ॥ स राज्ञो दर्शनाकांक्षी द्वाराध्यक्षानुवाच ह ॥ शीघ्रमाख्यात मां प्राप्तं कौशिकं गाधिनः सुतम् ॥ ७ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा द्वास्था राजगृहं ययुः ॥ संभ्रांतमनसः सर्वे तेन वाक्येन चोदिताः ॥ ८ ॥

अर्थ—उसयज्ञकी रक्षार्थ वे अयोध्याके स्वामीको देखने आयेथे, क्योंकि निर्विघ्नतासे यज्ञ नहींसमाप्तकर सक्तेथे ॥ ५ ॥ इसलिये महा तेजस्वी तपोनिधि विश्वामित्रजी उनके नाशार्थ उद्यत हुये और अयोध्या नगरीमें आये॥६॥ राजाके दर्शनाकांक्षी ऋषिने द्वारपालोंसे कहाकि शीघ्र जाके राजासे कहोकि गाधिका पुत्र कौशिक मैं यहां आया हूं ॥ ७ ॥ उस वचनको सुनके भ्रांतचित्त सब द्वारपाल राजाके स्थानमें गये ॥ ८ ॥

ते गत्वा राजसदनं विश्वामित्रमृषिं ततः ॥ प्राप्तमावेदयामासुः प्रतिहाराः पतेस्तदा ॥ ९ ॥ अथ स्थानगतं भूपं राजमंडलमालिनम् ॥ समुपेत्य त्वरायुक्तो याष्टीकोऽसौ न्यजिज्ञपत् ॥ १० ॥ देव द्वारि महातेजा बालभास्करभासुरः ॥ ज्वालारुणजटाजूटः पुमाञ्छ्रीमानवीस्थतः ॥ ११ ॥ सपताकासुरथा कांतंसाश्वेभपुरुषायुधम् ॥ कृतवांस्तं प्रदेशं यस्तेजोभिः कीर्णकांचनम् ॥ १२ ॥

अर्थ—उससमय उनद्वारपालोंने राजगृहमें जाके अपनेस्वामीसे कहाकि ऋषि विश्वामित्रजी आये हैं ॥ ९ ॥ इसके अनंतर राजसभामें विराजमान राजाओंसे आवृत राजाके निकट द्वारपालाधीशने जाके निवेदनकिया ॥ १० ॥ हे महाराज! बडेतेजस्वी, बालसूर्यके समान प्रकाशमान ज्वालाके सदृश अरुणजटाजूटवाले शोभायमान एकपुरुष स्थितहैं ॥ ११ ॥ वहपुरुष जिस स्थानपरहै वहांपर पताका, अश्व, हाथी, पुरुष, अस्त्र, शस्त्र, सबको अपने तेजसे स्वर्णके सदृश दैदीप्यमान कररहाहै ॥ १२ ॥

वीक्ष्यमाणे तु याष्टीके निवेदयति राजनि ॥ विश्वामित्रो मुनिः प्राप्त इत्यनुद्धतया गिरा ॥ १३ ॥ इति याष्टीकवचनमाकर्ण्य नृपसत्तमः ॥ स समंत्री ससामंतः प्रोत्तस्थौ हेमविष्टरात् ॥ १४ ॥ पदातिरेव सहसा राज्ञां वृंदेन मालितः ॥ वसिष्ठवामदेवाभ्यां सह सामंतसंस्तुतः ॥ १५ ॥ जगाम यत्र तत्रासौ विश्वामित्रो महामुनिः ॥ ददर्श मुनिशार्दूलं द्वारभूमाववस्थितम् ॥ १६ ॥

अर्थ—जब राजाने ड्योढीदारकी ओर देखा और उसने कोमलवाणीसे निवेदन किया कि विश्वामित्रजी आये हैं ॥ १३ ॥ तो उसके इस वचनको सुनके राजाओंमें उत्तम दशरथजी सबमंत्री और सामंत (मांडलिक राजाओं)

के साथ सोनेके सिंहासनसे उठ खडेहुये ॥ १४ ॥ और शीघ्रही राजा और वसिष्ठ और वामदेवके साथ सामंतोंसे प्रशंसित पैदलही ॥ १५ ॥ उसस्थानपर गये जहां विश्वामित्रजी थे, वहां मुनियोंमें श्रेष्ठ विश्वामित्रजीको द्वारभूमिपर स्थित ऐसे देखा ॥ १६ ॥

केनापि कारणेनोर्वीतलमर्कमुपागतम् ॥ ब्राह्मेण तेजसाक्रांतं क्षात्रेण च महौजसा ॥ १७ ॥ जराजरठया नित्यं तपःप्रसररूक्षया ॥ जटावल्ल्यावृतस्कंधं ससंध्याभ्रमिवाचलम् ॥ १८ ॥ उपशांतं च कांतं च दीप्तमप्रतिघाति च ॥ निभृतं चोर्जिताकारं दधानं भास्वरं वपुः ॥ १९ ॥ पेशलेनातिभीमेन प्रसन्नेनाकुलेन च ॥ गंभीरेणातिपूर्णेन तेजसा रंजितप्रभम् ॥ २० ॥

अर्थ—मानो किसीकारण सूर्यनारायण पृथिवीतलपर आगये हैं महातेजस्वी ब्राह्म और क्षात्र दोनों तेजोंसे परिपूर्ण ॥ १७ ॥ अधिकअवस्थाके कारण पकी और तपस्याके प्रभावसे रूक्षवर्ण कुछ पीततालिये जटाकी पंक्तियोंसे उनके स्कंध ऐसे ढके हुयेथे मानों संध्याकालके मेघसे पर्वत ॥ १८ ॥ शांत, प्रियदर्शन, प्रगल्भ, धृष्ट, नम्रतायुक्त किसीकी हानि न करनेवाले और प्रकाशमान शरीरको धारण कियेहुये ॥ १९ ॥ कोमल, भयानक, चंचल, गंभीर, अति परिपूर्णतेजसे प्रकाशित विश्वामित्र थे ॥ २० ॥

अनंतजीवितदशासखीमेकामनिंदिताम् ॥ धारयंतं करे श्लक्ष्णां कुंडीमम्लानमानसम् ॥ २१ ॥ करुणाक्रांतचेतस्त्वात्प्रसन्नैर्मधुराक्षरैः ॥ वीक्षणैरमृतेनेव संसिंचंतमिमाः प्रजाः ॥ २२ ॥ युक्तयज्ञोपवीतांगं धवलप्रोन्नतभ्रुवम् ॥ अनंतं विस्मयं चांतःप्रयच्छंतमिवेक्षितुः ॥ २३ ॥ मुनिमालोक्य भूपालो दूरादेवानताकृतिः ॥ प्रणनाम गलन्मौलिमणिमालितभूतलम् ॥ २४ ॥

अर्थ—बहुत कालसे सखीके समान साथरहनेवाले, उत्तम और चिक्कण कमण्डलुको हाथमें धारण किये हुये प्रसन्नचित्त ॥ २१ ॥ करुणासे परिपूर्ण होनेके कारण प्रसन्नतायुक्त मधुरभाषणसे मानो इस संपूर्णप्रजाको अमृतसे सींच रहे हैं ॥ २२ ॥ यज्ञोपवीतयुक्त अंग धारणकियेहुये और शुभ्र और ऊँची है भौंह जिनकी ऐसे, देखनेवालोंके अंतःकरणमें अपरिमित विस्मयदेनेवाले ॥ २३ ॥ मुनि विश्वामित्रको राजादशरथने देखके शरीर झुकाके और पृथ्वीतक मणिकी माला गिररही है ऐसी दशाको प्राप्तहोके प्रणाम किया ॥ २४ ॥

मुनिरप्यवनीनाथं भास्वानिव शतक्रतुम् ॥ तत्राभिवादयांचक्रे मधुरोदारया गिरा ॥ २५ ॥ ततो वसिष्ठप्रमुखाः सर्वएव द्विजातयः ॥ स्वागतादिक्रमेणैनं पूजयामासुरादृताः ॥ २६ ॥ ॥ दशरथ उवाच ॥ अशंकितोपनीतेन भास्वता दर्शनेन ते ॥ साधो स्वनुगृहीताः स्मो रविणेवांबुजाकराः ॥२७॥ यदनादि यदक्षुण्णं यदपायविवर्जितम् ॥ तदानंदसुखं प्राप्तं मया त्वद्दर्शनान्मुने ॥ २८ ॥

अर्थ—विश्वामित्र मुनिनेभी जैसे सूर्य इन्द्रको अभिवादन करते हैं ऐसेही मधुर और उदार वाणीसे आशिर्वाददिया ॥ २५ ॥ इसके अनन्तर आदरयुक्त वासिष्ठादि सब ब्राह्मणोंनेभी स्वागतादि क्रमसे उनकी पूजा की॥२६॥ दशरथ बोले—हे साधो! आकस्मित प्राप्त प्रकाशस्वरूप आपके दर्शनसे हम ऐसे अनुगृहीत हुये जैसे सूर्यसे कमलोंका वन ॥ २७ ॥ हे मुने! आपके दर्शनसें मुझे वह आनन्द प्राप्तहुआ जो किसी अन्यकारणसे नहीं होसकता जिसका स्वाद मैंने कभी नहींलिया. और जो सदा नाशरहित है ॥ २८ ॥

अद्य वर्तामहे नूनं धन्यानां धुरि धर्मतः ॥ भवदागमनस्येमे यद्वयं लक्ष्यमागताः ॥ २९ ॥ एवं प्रकथयंतोऽत्र राजानोऽथ महर्षयः ॥ आसनेषु सभास्थानमासाद्य समुपाविशन् ॥ ३० ॥ स दृष्ट्वा ज्वलितं लक्ष्म्या भीतस्तमृषिसत्तमम् ॥ प्रहृष्टवदनो राजा स्वयमर्घ्यं न्यवेदयत् ॥ ३१ ॥ स राज्ञः प्रतिगृह्यार्घ्यं शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥ प्रदक्षिणं प्रकुर्वंतं राजानं पर्यपूजयत् ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे मुने! आपके दर्शनसे आज हमलोग धर्मसे सबभाग्यवानोंमें अग्रणी हुये ॥२९॥ ऐसा जब दशरथ कहरहेथे उससमय सबराजालोग और ऋषि सभास्थानमें आकर अपने अपने आसनोंपर बैठगये ॥ ३० ॥ तपसे व्याप्त उस श्रेष्ठऋषिको देखकर भययुक्त प्रसन्नमुख होके राजाने आपही अर्घप्रदान किया ॥ ३१ ॥ उन्होंने शास्त्ररीतिसे अर्घ ग्रहणकरके प्रदक्षिणा करतेहुये राजाकी प्रशंसा की ॥ ३२ ॥

---

(१) वास्तविकमें यथार्थ कोमल ॥ (२) ऊपरसे देखनेमें भयानक ॥ (३) तेजकी अधिकतासे ऐसे चंचल प्रतीत होतेहैं मानो उडने चाहते हैं ॥ (४) तात्पर्य यहहै कि आपके दर्शनसे जो आनन्द मुझे प्राप्त हुआ उसका फल अनन्त है और इससे जो आनन्द प्राप्तहुआहै उसका अनुभवभी सदा रहेगा ॥

स राज्ञा पूजितस्तेन प्रहृष्टवदनस्तदा ॥ कुशलं चाव्ययं चैव पर्यपृच्छन्नराधिपम् ॥ ३३ ॥ वसिष्टेन समागम्य प्रहस्य मुनिपुंगवः ॥ यथार्हं चार्चयित्वैनं पप्रच्छानामयं ततः ॥ ३४ ॥ क्षणंयथार्हमन्योन्यं पूजयित्वा समेत्य च ॥ ते सर्वे हृष्टमनसो महाराजनिवेशने ॥३५॥ यथोचितासनगता मिथःसंवृद्धतेजसः॥ परस्परेण पप्रच्छुःसर्वेऽनामयमादरात् ॥ ३६ ॥

अर्थ—उस समय राजासे पूजित विश्वामित्रने प्रसन्नमुख होके कुशलता तथा कोशकी पूर्णता पूंछी ॥ ३३ ॥ इसके अनन्तर ऋषियोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठजीने आके हंसके और यथायोग्य उनकी पूजाकरके आरोग्यता पूंछी ॥ ३४॥ क्षणभर यथायोग्य मिलके और पूजाकरके राजाके स्थानमें सब प्रसन्नचित्त हुये ॥ ३५ ॥ यथोचित आसनपर बैठे हुये परस्पर एक दूसरेके तेजको बढानेवाले आपसमें मनुष्य और पश्वादिककी कुशलता पूंछी ॥ ३६ ॥

उपविष्टाय तस्मै स विश्वामित्राय धीमते ॥ पाद्यमर्घ्यं च गां चैव भूयो भूयो न्यवेदयत् ॥ ३७ ॥ अर्चयित्वा तु विधिवद्विश्वामित्रमभाषत ॥ प्रांजलिः प्रयतो वाक्यमिदं प्रीतमना नृपः ॥ ३८ ॥ यथामृतस्य संप्राप्तिर्यथा वर्षमवर्षके ॥ यथांधस्येक्षणप्राप्तिर्भवदागमनं तथा ॥ ३९ ॥ यथेष्टदारसपर्कात्पुत्रजन्मा प्रजावतः ॥ स्वप्नदृष्टार्थलाभश्च भवदागमनं तथा ॥ ४० ॥

अर्थ—बैठनेके अनन्तर उसबुद्धिमान् विश्वामित्रको पाद्य, अर्घ्य, पृथिवी वा गौ, तांबूल पुष्पादि वार वार संप्रदान किया ॥३७ ॥ विधिपूर्वक पूजाकरके हाथजोडके सावधानीसे प्रसन्नमन होके राजाने विश्वामित्रसे यह बात कही ॥ ३८ ॥ जैसे अमृतकी प्राप्ति, जैसे सूखेकालमें वृष्टिका होना, जैसे अन्धेको नेत्रकी प्राप्ति, ऐसा आपका आगमन हमारेलिये हुआ है ॥ ३९ ॥ जैसे उत्तमस्त्रीके सम्बन्धसे संतानरहित मनुष्यको पुत्रका जन्म और स्वप्नमें देखे हुये पदार्थका मिलजाना ऐसा आपका आगमन हुआ ॥ ४० ॥

यथेप्सितेन संयोग इष्टस्यागमनं यथा ॥ प्रणष्टस्य यथा लाभो भवदागमनं तथा ॥ ४१ ॥ यथा हर्षो नभोगत्या मृतस्य पुनरागमात् ॥ तथा त्वदागमाद्ब्रह्मन्स्वागतं ते महामुने ॥४२॥ ब्रह्मलोकनिवासो हि कस्य न प्रीतिमावहेत् ॥ मुने तवागमस्तद्वत्सत्यमेव ब्रवीमि ते ॥४३ ॥ कश्च ते परमः कामः किं च ते करवाण्यहम् ॥ पात्रभूतोऽसि मे विप्र प्राप्तः परमधार्मिकः ॥ ४४ ॥

अर्थ—जैसे इष्टपदार्थका संयोग और मित्रका आगमन और नष्टहुयेका पुनः लाभहोना ऐसा आपका आगमन हुआ ॥ ४१ ॥ जैसे आकाशकी गतिसे और मृतकके पुनः आगमनसे हर्ष होता है, हे ब्रह्मन् ! महामुने ! वैसाही आपके आगमनसे हर्ष हुआहै ॥४२ ॥ जैसे ब्रह्मलोकका निवास किसको सुख नहींदेता ? वैसाही यह आपका आगमन है हे मुने ! यह मैं आपसे सत्य कहताहूं ॥ ४३ ॥ आपका परमावश्यक क्या कार्य है और मैं आपके लिये क्या करूं हे विप्र ! आप परमधार्मिक पात्रभूत (सब कुछ देनेके योग्य) मेरे यहां आये हैं ॥ ४४ ॥

पूर्वं राजर्षिशब्देन तपसा द्योतितप्रभः ॥ ब्रह्मर्षित्वमनुप्राप्तः पूज्योऽसि भगवन्मया ॥ ४५ ॥ गंगाजलाभिषेकेण यथा प्रीतिर्भवेन्मम ॥ तथा त्वद्दर्शनात्प्रीतिरंतः शीतयतीव माम् ॥ ४६ ॥ विगतेच्छाभयक्रोधो वीतरागो निरामयः ॥ इदमत्यद्भुतं ब्रह्मन्यद्भवान्मामुपागतः ॥ ४७ ॥ शुभक्षेत्रगतं चाहमात्मानमपकल्मषम् ॥ चंद्रबिंब इवोन्मग्नं वेदवेद्यविदां वर ॥ ४८ ॥

अर्थ—प्रथम आप तपस्यासे प्रकाशमान् राजर्षिशब्दसे प्रसिद्ध थे और पीछे ब्रह्मर्षि पदवीको प्राप्तहुये इसलिये मेरे पूज्यहैं ॥ ४५ ॥ जैसे गंगाजलके स्नानसे प्रीति होती है इसीप्रकार आपके दर्शनसे जो प्रीति हुई है वह मेरे अंतःकरणको शीतल कररही है ॥ ४६ ॥ हे ब्रह्मन् ! आप इच्छा, भय, क्रोधसे रहित, वीतराग और सदा रोग और विघ्नरहित होके मेरे निकट जो आये हैं यह एक अद्भुत बातहै ॥ ४७ ॥ हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ! इससमय मैं अपनेको शुभ (पवित्र) स्थानमें प्राप्त, पापरहित और अमृतमय चन्द्रमण्डलमें निमग्न मानता हूं ॥ ४८ ॥

साक्षादिव ब्रह्मणो मे तवाभ्यागमनं मतम् ॥ पूतोस्म्यनुगृहीतश्च तवाभ्यागमनान्मुने ॥ ४९ ॥ त्वदागमनपुण्येन साधो यदनुरंजितम् ॥ अद्य मे सफलं जन्म जीवितं तत्सुजीवितम् ॥ ५० ॥ त्वामिहाभ्यागतं दृष्ट्वा प्रतिपूज्य प्रणम्य च ॥ आत्मन्येव नमाम्यंतर्दृष्ट्वाइं जलधिर्यथा ॥५१॥ यत्कार्यं येन वार्थेन प्राप्तोऽसि मुनिपुंगव ॥ कृतमित्येव तद्विद्धि मान्योऽसीति सदा मम ॥ ५२ ॥

(१) ऋषिलोग जब राजाओंसे मिलतेथे तो और कुशलताके साथ कोश (खजाने) की पूर्णता अवश्य पूंछतेथे क्योंकि यदि राजाका खजाना मालामालहै तो सब कार्य उत्तम होंगे अन्यथा नहीं ॥ (२) ऋषिमहात्मा जहां प्राप्त हो वह पवित्र तीर्थस्थान माना जाताहै ॥

अर्थ—हे भगवन् ! इससमय आपका आगमन मेरे लिये साक्षात् ब्रह्माके आगमनके सदृश हैं, हे मुने ! आपके आगमनसे मैं पवित्र और अनुग्रहीत होगया ॥ ४९ ॥ हे साधो ! आपके पवित्रआगमनसे जो प्रसन्नता हुई है उससे आज मेरा जन्म सफल होगया और जीवनभी उत्तम जीवन होगया ॥ ५० ॥ हे भगवन् ! आपको देखके और प्रणाम करके आज मैं अपने आत्मामें प्रसन्नताके मारे ऐसे नहीं समाता जैसे चन्द्रमाको देखके समुद्र ॥ ५१ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! जो कार्य हो वा जिस अर्थके लिये आप आये हैं उसको कियाही हुआ समझें. क्योंकि आप सदा मेरे मान्यहैं ॥ ५२ ॥

स्वकार्यं न विमर्शं त्वं कर्तुमर्हसि कौशिक ॥ भगवन्नास्त्यदेयं मे त्वयि यत्प्रतिपद्यते ॥ ५३ ॥ कार्यस्य न विचारं त्वं कर्तुमर्हसि धर्मतः ॥ कर्ता चाहमशेषं ते दैवतं परमं भवान् ॥ ५४ ॥ इदमतिमधुरं निशम्य वाक्यं श्रुतिसुखमात्मविदा विनीतमुक्तम् ॥ प्रथितगुणयशा गुणैर्विशिष्टं मुनिवृषभः परमं जगाम हर्षम् ॥ ५५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे विश्वामित्राभ्यागमनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

अर्थ—हे कौशिक ! आप अपने कार्यकेलिये कुछभी विचार न कीजिये क्योंकि आपके लिये जो दीजाय वह वस्तु कुछभी मुझे देनी कठिन नहीं है ॥ ५३ ॥ आप कार्यका विचार न करें मैं सबकुछ धर्मसे करूंगा क्योंकि आप मेरे परम इष्टदेव हैं ॥ ५४ ॥ नम्रतापूर्वक बुद्धिमान् राजाकी कर्णोंको सुखदेनेवाली इसप्रकार वाणीको सुनके गुण और यशसे प्रसिद्ध ऋषियोंमें श्रेष्ठ विश्वामित्रजी अत्यन्त हर्षको प्राप्तहुये ॥ ५५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे विश्वामित्राभ्यागमनं नाम षष्ठःसर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः ।

राजाकी प्रशंसा, मुनिके यज्ञके विघ्नकी सूचना, और उसकी रक्षाके लिये रामचन्द्रजीको मागना इन विषयोंका वर्णन इस ७ वे सर्गमें किया गयाहै.

श्रीवाल्मीकिरुवाच–तच्छ्रुत्वा राजसिंहस्य वाक्यमद्भुतविस्तरम् ॥ हृष्टरोमा महातेजा विश्वामित्रोऽभ्यभाषत ॥ १ ॥ सदृशं राजशार्दूल तवैवैतन्महीतले ॥ महावंशप्रसूतस्य वसिष्ठवशवर्तिनः ॥२॥ यत्तु मे हृद्गतं वाक्यं तस्य कार्यविनिर्णयम् ॥ कुरुत्वं राजशार्दूल धर्मं समनुपालय ॥ ३ ॥ अहं धर्मं समातिष्ठे सिद्ध्यर्थं पुरुषर्षभ ॥ तस्य विघ्नकरा घोरा राक्षसा मम संस्थिताः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवाल्मीकिजी बोले–राजसिंह दशरथके अद्भुत विस्तारयुक्त वाक्यको सुन रोम २ प्रसन्न महा तेजस्वी विश्वामित्रजी बोले ॥ १ ॥ महावंश, रघुवंशमें उत्पन्न और वसिष्ठजीकी आज्ञामें चलनेवाले भूतलमें आपहीके योग्य यह (वचन) है ॥ २ ॥ हे राजसिंह ! जो बात मेरे हृदयमें है उसके करनेका निश्चय आप कीजिये और धर्मपालन कीजिये ॥ ३ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! मैं सिद्धिकेलिये यज्ञ आरम्भकरताहूं राक्षस उसके विघ्नके लिये उपस्थित होजाते हैं ॥ ४ ॥

यदा यदा तु यज्ञेन यजेऽहं विबुधव्रजान् ॥ तदा तदा तु मे यज्ञं विनिघ्नंति निशाचराः ॥ ५ ॥ बहुशो विहिते तस्मिन्मया राक्षसनायकाः ॥ अकिरंस्ते महीं यागे मांसेन रुधिरेण च ॥ ६ ॥ अवधूते तथाभूते तस्मिन्यागकदंबके ॥ कृतश्रमो निरुत्साहस्तस्माद्देशादुपागतः ॥ ७ ॥ न च मे क्रोधमुत्स्रष्टुं बुद्धिर्भवति पार्थिव ॥ तथाभूतं हि तत्कर्म न शापस्तस्य विद्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—जब २ मैं यज्ञसे देवतागणोंका पूजन करताहूं तब २ निशाचरलोग मेरा यज्ञविध्वंस करते हैं ॥ ५ ॥ मैंने बहुतवार यज्ञ किया परन्तु राक्षसोंके नायकोंने मेरे यज्ञमें रुधिर और मांसकी वृष्टि की ॥ ६ ॥ जब मेरे यज्ञोंके समूहके समूह इसप्रकार नष्ट करदियेगये तब मैं थकित और निरुत्साह होके चला आया ॥ ७ ॥ और हे राजन् ! क्रोध करनेकी मेरी बुद्धि नहींहोती क्योंकि वह कार्य ऐसाही है उसमें शाप नहीं दिया जाता ॥ ८ ॥

---

(१) आपको छोड़कर सब देदूंगा और सब कुछ करूंगा यह दूसरा नहीं कहसक्ता ॥ (२) शाप देनेसे तपस्याका फल नष्ट होजाताहै और यज्ञ पूर्ण नहींहोता ॥

ईदृशी यज्ञदीक्षा सा मम तस्मिन्महाक्रतौ ॥ त्वत्प्रसादादविघ्नेन प्रापयेयं महाफलम् ॥ ९ ॥ त्रातुमर्हसि मामार्त्तं शरणार्थिनमागतम् ॥ अर्थिनां यन्निराशत्वं सत्तमेऽभिभवो हि सः ॥ १० ॥ तवास्ति तनयः श्रीमान् दृप्तशार्दूलविक्रमः ॥ महेंद्रसदृशो वीर्ये रामो रक्षोविदारणः ॥ ११ ॥ तं पुत्रं राजशार्दूल रामं सत्यपराक्रमम् ॥ काकपक्षधरं शूरं ज्येष्ठं मे दातुमर्हसि ॥ १२ ॥

अर्थ–वह यज्ञकी दीक्षा शापदेनेके अयोग्य है उस मेरे महायज्ञमें तुह्मारी कृपासे निर्विघ्नतापूर्वक महाफलको पाऊंगा ॥ ९ ॥ मुझ शरणार्थीको आप रक्षाकरनेके योग्यहैं. अर्थियोंका निरास करनाही सज्जनोंमें तिरस्कारहै ॥१०॥ सिंहके समान पराक्रमवाले, वीर्यमें महेंद्रके समान, राक्षसोंको विदारण करनेमें समर्थ, शोभायमान, आपके पुत्र श्रीरामचंद्रजीको॥११॥ हे राजशार्दूल! उन काकपक्षधारी सत्यपराक्रम ज्येष्ठ पुत्र रामचंद्रजीको मुझे देनेके योग्य आपहैं १२

शक्तोह्येष मया गुप्तो दिव्येन स्वेन तेजसा ॥ राक्षसा येऽपकर्तारस्तेषामूर्द्धविनिग्रहे ॥ १३ ॥ श्रेयश्चास्य करिष्यामि बहुरूपमनंतकम् ॥ त्रयाणामपि लोकानां येन पूज्यो भविष्यति ॥ १४ ॥ न च ते राममासाद्य स्थातुं शक्ता निशाचराः ॥ क्रुद्धं केसरिणं दृष्ट्वा वनेतृण इवैणकाः ॥१५॥ तेषां न चान्यः काकुत्स्थाद्योद्धुमुत्सहते पुमान् ॥ ऋते केसरिणः क्रुद्धान्मत्तानां करिणामिव ॥ १६ ॥

अर्थ–ये (राम) मुझसे रक्षित और अपनेदिव्यतेजसे अपकारी राक्षसोंके शिर काटनेमें समर्थ हैं ॥ १३ ॥ मैं उनका बहुत अनन्तकल्याण करूंगा जिससे वे तीनोंलोकके पूज्य होजाँयगे ॥ १४ ॥ जैसे वनके तृणमें सिंहको देखके मृग नहीं ठहर सक्ते ऐसेही रामचन्द्रजीके पहुँचनेपर वे निशाचर नहीं ठहरसकेंगे ॥ १५ ॥ ककुत्स्थवंशोद्भव रामचंद्रजीके सिवाय उनके साथ दूसरा कोई युद्ध नहींकरसक्ता जैसे मत्तहाथियोंका सामना सिवाय क्रुद्धसिंहके अन्य नहींकरसक्ता ॥ १६ ॥

वीर्योत्सिक्ता हि ते पापाः कालकूटोपमा रणे ॥ खरदूषणयोर्भृत्याः कृतांताः कुपिता इव ॥ १७ ॥ रामस्य राजशार्दूल सहिष्यंते न सायकान् ॥ अनारतगता धारा जलदस्येव पांसवः ॥ १८ ॥ न च पुत्रकृतं स्नेहं कर्तुमर्हसि पार्थिव ॥ न तदस्ति जगत्यस्मिन्यन्न देयं महात्मनाम् ॥ १९ ॥ हंत नूनं विजानामि हंतस्तान् विद्धि राक्षसान् ॥ न ह्यस्मदादयः प्राज्ञाः संदिग्धे संप्रवृत्तयः ॥ २० ॥

अर्थ–वे खरदूषणके भृत्य कुपित कालकेसमान पराक्रमसे अत्यन्तगर्वी पापी राक्षसरणमें कालकूट (हालाहल विष) के समानहैं ॥ १७ ॥ जैसे निरंतर मेघकी धाराको उडतीहुई धूली नहीं सहनकरसक्ती उसीप्रकार हे राजसिंह! वे राक्षस रामचन्द्रके बाणोंके सहन नहींकरसकेंगे ॥ १८ ॥ हे राजन्! आप पुत्रका स्नेह करनेके योग्यनहीं हैं क्योंकि इससंसारमें ऐसी कोई वस्तु नहीं, जो महात्माओंको अदेय हो ॥ १९ ॥ यह निश्चयहै कि आप उनराक्षसोंको मरेही हुए समझें क्योंकि हमारे सदृश बुद्धिमानोंकी प्रवृत्ति संदेहके कार्यमें नहींहोती ॥ २० ॥

अहं वेद्मि महात्मानं रामं राजीवलोचनम् ॥ वसिष्ठश्च महातेजा ये चान्ये दीर्घदर्शिनः ॥ २१ ॥ यदि धर्मो महत्त्वं च यशस्ते मनसि स्थितम् ॥ तन्मह्यं समभिप्रेतमात्मजं दातुमर्हसि ॥ २२ ॥ दशरात्रश्च मे यज्ञो यस्मिन् रामेण राक्षसाः ॥ हंतव्या विघ्नकर्तारो मम यज्ञस्य वैरिणः ॥ २३ ॥ अत्राप्यनुज्ञां काकुत्स्थ ददतां तव मंत्रिणः ॥ वसिष्ठप्रमुखाः सर्वे तेन रामं विसर्जय ॥ २४ ॥

अर्थ–मैं तथा महा तेजस्वी वसिष्ठजी तथा औरभी दीर्घदर्शीलोग रामचंद्रजीको जानतेहैं ॥ २१ ॥ यदि तुह्मारे चित्तमें धर्मका महत्व और यशहै तो प्रियपुत्र रामचंद्रजीको मुझे देनेके योग्य आपहैं ॥ २२ ॥ वह मेरा यज्ञ दश रात्रिदिनमें सिद्ध होजायगा जिसमें मेरे यज्ञके शत्रु राक्षसोंको रामचंद्रजी मारेंगे ॥ २३ ॥ हे काकुत्स्थ! इस विषयमें वसिष्ठादि सब आपके मंत्रियोंकोभी आज्ञा देनी चाहिये और उनकी संमतिसे आप रामचंद्रजीको बिदाकरो ॥२४॥

नात्येति कालः कालज्ञ यथायं मम राघव ॥ तथा कुरुष्व भद्रं ते मा च शोके मनः कृथाः ॥ २५ ॥ कार्यमण्वपि काले तु कृतमेत्युपकारताम् ॥ महानप्युपकारोऽपि रिक्ततामेत्यकालतः ॥ २६ इत्येवमुक्त्वा धर्मात्मा धर्मार्थसहितं वचः ॥ विरराम महातेजा विश्वामित्रो मुनीश्वरः ॥ २७ ॥ श्रुत्वा वचो मुनिवरस्य महानुभावस्तूष्णीमतिष्ठदुपपन्नपदं स वक्तुम् ॥ नो युक्तियुक्तकथनेन विनैति तोषं धीमानपूरितमनोऽभिमतश्च लोकः ॥ २८ ॥

---

(१) कानोंके मूलदेशमें जो दो शिखा चोटी क्षत्रियोंकी पूर्वरीतिकी अनुसार धारणकी जातीहैं उनको काकपक्ष कहते हैं ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे विश्वामित्रवाक्यं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अर्थ—हे समयके जाननेवाले राजन्! जिसप्रकार मेरा यह काल न बीते वैसा करो, आपका कल्याण हो, और आप चित्तमें शोक न करें ॥ २५ ॥ समयपर थोडाभी कियाहुआ कार्य बडा उपकार करता है और कुसमयमें बडा उपकारभी खाली जाता है ॥ २६ ॥ महा तेजस्वी धर्मात्मा मुनीश्वर विश्वामित्रजी, धर्म और अर्थसहित इतना बचन कहके चुप होगये ॥२७॥ मुनिवरके इस वचनको सुनके महानुभाव दशरथ युक्तियुक्त बात कहनेके अर्थ मौन होगये, क्योंकि संसार मनोरथके पूर्ण होनेसे सन्तुष्ट होताहै, परन्तु बुद्धिमान् तो युक्तियुक्त (उचित) वचन कहे विना संतुष्ट नहीं होताहै ॥ २८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठरामायणे देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे विश्वामित्रवाक्यं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ८

रावणादिकके बलको जानके रामचन्द्रजीकी युद्धकी अयोग्यता और स्नेहके कारणसे राजाका विषाद इस सर्गमें वर्णन किया जायगा.

वाल्मीकिरुवाच-तच्छ्रुत्वा राजशार्दूलो विश्वामित्रस्य भाषितम् ॥ मुहूर्तमासीन्निश्चेष्टः सदैन्यं चेदमब्रवीत् ॥ १ ॥ ऊनषोडशवर्षोऽयं रामो राजीवलोचनः ॥ न युद्धयोग्यतामस्य पश्यामि सह राक्षसैः ॥ २ ॥ इयमक्षोहिणी पूर्णा यस्याः पतिरहं प्रभो ॥ तया परिवृतो युद्धं दास्यामि पिशिताशिनाम् ॥३॥ इमे हि शूरा विक्रांता भृत्या मंत्रविशारदाः ॥ अहं चैषां धनुष्पाणिर्गोप्ता समरमूर्द्धनि ॥ ४ ॥

अर्थ—वाल्मीकिजीबोले-राजसिंह दशरथजी विश्वामित्रके कथनको श्रवण करके मुहूर्तपर्यन्त चेष्टारहित होगये, और दीनतासे यह वचन बोले ॥ १ ॥ कमलसमान नेत्रवाले रामचन्द्रजी अभी पूरे १६ सोलह वर्षकेभी नहीं हैं, इसलिये राक्षसोंके साथ मैं इनकी युद्धकी योग्यता नहीं देखता ॥ २ ॥ हे प्रभो! यह पूर्ण अक्षोहिणी सेना है, जिसका स्वामी मैं हूं सो इस सेनाके साथ राक्षसोंसे मैं युद्ध करूंगा ॥ ३ ॥ ये मेरे भृत्य बडे शूर, पराक्रमी, और बडे निपुण हैं, मैं स्वयं हाथमें धनुष लेके रणके अग्रभागमें रक्षा करूंगा ॥ ४ ॥

एभिः सहैव वीराणां महेंद्रमहतामपि ॥ ददामि युद्धं मत्तानां करिणामिव केसरी ॥ ५ ॥ बालो रामस्त्वनीकेषु न जानाति बलाबलम् ॥ अंतःपुरादृते दृष्टा नानेनान्या रणावनिः ॥ ६ ॥ न शस्त्रैः परमैर्युक्तो न च युद्धविशारदः ॥ नवास्त्रैः शूरकोटीनां तज्ज्ञः समरभूमिषु ॥ ७ ॥ केवलं पुष्पखंडेषु नगरोपवनेषु च ॥ उद्यानवनकुंजेषु सदैव परिशीलनम् ॥ ८ ॥

अर्थ—इनके साथ मैं जैसे सिंह हाथियोंको युद्ध देता है वैसेही महेन्द्रसेभी जो बडे हैं उनके साथभी युद्ध करूंगा ॥ ५ ॥ बालक रामचन्द्रजी सेनाओंमें बलाबल नहीं जानते, अन्तःपुरको छोडके उन्होंने अभी कोई रणभूमि नहीं देखी ॥ ६ ॥ नतो अभी उत्तम शस्त्रों करके युक्त है न अस्त्रोंमें और न युद्धमें निपुण है, और न शूरोंकी गणनामें समर भूमियोंके विषयमें कुछ जानते हैं ॥ ७ ॥ केवल पुष्पवाटिकाओंमें, नगरके उपवनोंमें, वाटिका और वनके लताकुंजोंमें खेलना जानते हैं ॥ ८ ॥

विहर्तुमेष जानाति सह राजकुमारकैः ॥ कीर्णपुष्पोपहारासु स्वकास्वजिरभूमिषु ॥ ९ ॥ अद्य त्वतितरां ब्रह्मन् मम भाग्यविपर्ययात् ॥ हिमेनेव हि पद्माभः संपन्नो हरिणः कृशः ॥ १० ॥ नात्तुमन्नानि शक्नोति न विहर्तुं गृहावनिम् ॥ अंतः खेदपरीतात्मा तूष्णीं तिष्ठति केवलम् ॥ ११ ॥ सदारः सह भृत्योऽहं तत्कृते मुनिनायक ॥ शरदीव पयोवाहो नूनं निःसारतां गतः ॥ १२ ॥

---

(१) अयुतंच नागस्त्रिगुणीरथानां लक्षैकयोद्धा दश लक्षवाजिनां ॥ पदातिसंख्या षट्त्रिंशकोटयः अक्षौहिणीं तां मुनयो वदन्ति ॥ (दश १० हजार हाथी, ३० हजार रथ, १ लाख बडे लडाके वीर, १० लाख सवार, ३६ करोड पैदल) इस संख्याको अक्षौहिणी कहतेहैं ॥ (२) क्रीडार्थ जो अन्तःपुरमें रणभूमि है उसको तो देखाहै दूसरी नहीं ॥ (३) जिसको हाथमें लेके (खड्गादि) युद्ध करते हैं उसको शस्त्र कहतेहैं जिसको फेकके मारतेहैं उसको अस्त्र कहतेहैं ॥

अर्थ—पुष्पोंसे व्याप्त अपने अंगणकी पूजाभूमियोंमें ये राजकुमारोंके साथ खेलना जानते हैं ॥ ९ ॥ और इस समय तो मेरे भाग्यके दोषसे जैसे तुषारसे कमल पीला और कृश होजाताहै वैसे होगये हैं ॥ १० ॥ न भोजन करनेको और न गृहके भीतर विहार करनेको समर्थ हैं, अन्तःकरणके खेदसे व्याप्त, केवल मौन हैं॥ ११ ॥ हे मुनिनायक! जैसा शरत्कालमें मेघ, सारहीन होजाताहै वैसाही उनके लिये स्त्री और भृत्योंके साथ मैं निस्सार होगयाहूं ॥ १२ ॥

ईदृशोऽसौ सुतो बाल आधिनाथ वशीकृतः ॥ कथं ददामि तं तुभ्यं योद्धुं सह निशाचरैः ॥ १३ ॥ अपि बालांगनासंगादपि साधो सुधारसात् ॥ राज्यादपि सुखायैव पुत्रस्नेहो महामते ॥ १४ ॥ ये दुरंता महारंभास्त्रिषु लोकेषु खेददाः ॥ पुत्रस्नेहेन संतोऽपि कुर्वते तानसंशयम् ॥ १५ ॥ असवोऽथ धनं दारास्त्यज्यंते मानवैः सुखम् ॥ न पुत्रो मुनिशार्दूल स्वभावो ह्येष जंतुषु ॥ १६ ॥

अर्थ—इसप्रकार मेरे पुत्र मानसीपीडासे वशीभूत हैं उनको मैं आपको राक्षसोंके साथ युद्धकरनेको कैसे कहूं? ॥ १३ ॥ हे साधो! हे महामते! बालांगनाके संगसे, सुधाके रससे और राज्यसेभी पुत्रकी प्रीति अधिक सुखके लिये होती है ॥ १४ ॥ जो अधिककालसे साध्य (तपस्याके क्लेश) और तीनोंलोकमें दुःखदायक कार्य हैं उनकोभी महात्मालोग पुत्रकी प्रीतिसे अवश्य करते हैं ॥ १५ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ! यह जीवोंका स्वभाव है कि मनुष्य प्राण, धन, स्त्री और सुखको त्याग देते हैं परन्तु पुत्र नहीं त्यागा जाता ॥ १६ ॥

राक्षसाः क्रूरकर्माणः कूटयुद्धविशारदाः ॥ रामस्तान्योधयत्वित्यं युक्तिरेवातिदुःसहा ॥ १७ ॥ विप्रयुक्तो हि रामेण मुहूर्तमपि नोत्सहे ॥ जीवितुं जिविताकांक्षी न रामं नेतुमर्हसि ॥ १८ ॥ नववर्षसहस्राणि मम जातस्य कौशिक ॥ दुःखेनोत्पादितास्त्वेते चत्वारः पुत्रका मया ॥ १९ ॥ प्रधानभूतस्तेष्वेच रामः कमललोचनः ॥ तं विनेह त्रयोऽप्यन्ये धारयंति न जीवितम् ॥ २० ॥

अर्थ—राक्षसलोग अत्यन्त क्रूरकर्मवाले और कपटयुद्धमें चतुर होते हैं उनसे रामचन्द्रजी युद्ध करैं यह युक्तिही दुःसहहै ॥ १७ ॥ रामचन्द्रजीके वियोगमें मैं एक मुहूर्तभी नहीं जी सक्ता, इसलिये यदि मेरा जीवन चाहते हैं तो आपको रामजीको नहीं लेजाना चाहिये ॥ १८ ॥ हे कौशिक! पुत्रकी कामनासे नवसहस्र वर्ष मुझे वीतगये, बडे दुःखसे चार पुत्र उत्पन्न किये हैं ॥ १९ ॥ उन सबमें कमलनेत्र रामचन्द्रजीही प्रधान हैं, उनके विना दूसरे तीनभी जीवनको धारण नहीं कर सक्ते ॥ २० ॥

स एव रामो भवता नीयते राक्षसान्प्रति ॥ यदि तत्पुत्रहीनं त्वं मृतमेवाशु विद्धि माम् ॥ २१ ॥ चतुर्णामात्मजानां हि प्रीतिरत्रैव मे परा ॥ ज्येष्ठं धर्ममयं तस्मान्न रामं नेतुमर्हसि ॥ २२ ॥ निशाचरबलं हंतुं मुने यदि तवेप्सितम् ॥ चतुरंगसमायुक्तं मया सह बलं नय ॥ २३ ॥ किं वीर्या राक्षसास्ते तु कस्य पुत्राः कथं च ते ॥ कियत्प्रमाणाः के चैव इति वर्णय मे स्फुटम् ॥ २४ ॥

अर्थ—उन्ही रामचन्द्रजीको आप मृत्युरूप राक्षसोंके निकट लेजाते हैं यदि मैं उनसे रहित हुआ तो मुझे मराही आप समझें ॥ २२ ॥ चारों पुत्रोंके मध्यमें ज्येष्ठ और धर्मात्मा जो रामचन्द्रजी हैं उन्हींमें मेरी बडी प्रीति है, इसवास्ते रामचन्द्रजीको आपको नहीं लेजाना चाहिये ॥ २२ ॥ हे मुने! यदि राक्षसोंका वध आपको इष्टहै तो आप चतुरंगिणी सेनाके साथ मुझे लेचलिये ॥ २३ ॥ वे राक्षस किसके पुत्र, कैसे पराक्रमवाले, कैसे और कितने प्रमाणवाले हैं, यह मुझसे साफ २ कहिये ॥ २४ ॥

कथं तेन प्रकर्तव्यं तेषां रामेण रक्षसाम् ॥ मामकैर्बालकैर्ब्रह्मन्मया वा कूटयोधिनाम् ॥ २५ ॥ सर्वं मे शंस भगवन्यथा तेषां महारणे ॥ स्थातव्यं दुष्टभाग्यानां वीर्योत्सिक्ता हि राक्षसाः ॥ २६ ॥ श्रूयते हि महावीर्यो रावणो नाम राक्षसः ॥ साक्षाद्वैश्रवणभ्राता पुत्रो विश्रवसो मुनेः ॥ २७ ॥ स चेत्तव मखे विघ्नं करोति किल दुर्मतिः ॥ तत्संग्रामे न शक्ताः स्मो वयं तस्य दुरात्मनः ॥ २८ ॥

अर्थ—हे ब्रह्मन्! उन कपटयुद्ध करनेवाले राक्षसोंके साथ रामचन्द्रजी, वा और मेरे वालक अथवा मैं कैसे व्यवहार करैं ॥ २५ ॥ हे भगवन्! जिसप्रकार उन दुष्टभाग्य राक्षसोंके साथ रणमें स्थित होना चाहिये वह सब मुझसे कहिये क्योंकि वे राक्षस पराक्रमसे अत्यन्त अभिमानी हैं ॥ २६ ॥ साक्षात् कुबेरका भाई विश्रवसमुनिका पुत्र रावण नाम राक्षस बडा पराक्रमी सुना जाताहै ॥ २७ ॥ यदि वह दुर्मति आपके यज्ञमें विघ्न करताहै तो उस दुष्टके संग्राममें हम लोग समर्थ नहीं हैं ॥ २८ ॥

काले काले पृथग्ब्रह्मन् भूरिवीर्यविभूतयः ॥ भूतेष्वभ्युदयं यांति प्रलीयंते च कालतः ॥ २९ ॥ अद्यास्मिंस्तु वयं काले रावणादिषुशत्रुषु ॥ न समर्थाः पुरः स्थातुं नियतेरेष निश्चयः ॥ ३० ॥ तस्मा-

त्प्रसादं धर्मज्ञ कुरु त्वं मम पुत्रके ॥ मम चैवाल्पभाग्यस्य भवान् हि परदैवतम् ॥ ३१ ॥ देवदानवगंधर्वा यक्षाः पतगपन्नगाः ॥ न शक्ता रावणं योद्धुं किं पुनः पुरुषा युधि ॥ ३२ ॥

अर्थ—संसारके जीवोंमें समय २ पर पराक्रम और ऐश्वर्य युक्तविभूतियें अभ्युदयको प्राप्त होती हैं और कालसे नष्टभी होजाती हैं ॥ २९ ॥ इस समयमें तो रावणादिक शत्रुओंके सन्मुख हम लोग नहीं ठहर सक्ते ऐसी ईश्वरकी इच्छाहै ॥ ३० ॥ इस कारणसे हे धर्मज्ञ! आप मेरे कृपापात्र पुत्रके ऊपर तथा अभागी मेरे ऊपर कृपा कीजिये क्योंकि आप मेरे परम इष्ट देवहैं ॥ ३१ ॥ देव, दानव, गन्धर्व, पक्षी और पन्नग येभी रावणसे युद्धमें लडनेको समर्थ नहीं हैं फिर मनुष्योंकी कोन कथा ॥ ३२ ॥

महावीर्यवतां वीर्यमादत्ते युधि राक्षसः ॥ तेन सार्द्धं न शक्ताः स्म संयुगे तस्य बालकैः ॥ ३३ ॥ अयमन्यतमः कालः पेलवीकृतसज्जनः ॥ राघवोऽपि गतो दैन्यं यतो वार्द्धकजर्जरः ॥ ३४ ॥ अथ वा लवणं ब्रह्मन्यज्ञघ्नं ते मधोः सुतम् ॥ कथयत्वसुरप्रख्यं नैव मोक्ष्यामि पुत्रकम् ॥ ३५ ॥ सुंदोपसुंदयोश्चैव पुत्रौ वैवस्वतोपमौ ॥ यज्ञविघ्नकरौ ब्रूहि न ते दास्यामि पुत्रकम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—वह राक्षस बडे बडे पराक्रमवालोंकाभी पराक्रम युद्धमें हर लेताहै, उसके साथ संग्राममें हमलोगभी समर्थ नहीं हैं तो बालकोंके साथ उसका संग्राम कैसे हो सक्ताहै ॥ ३३ ॥ हे भगवन्! यह दूसराही काल वर्त रहाहै जिसने सज्जनोंको दुर्बल कर दियाहै, क्योंकि राघव (दशरथ) भी वृद्धावस्थासे जर्जरीभूत दीनदशाको प्राप्त होरहाहै ॥ ३४ ॥ अथवा हे ब्रह्मन्! कहियें मधुका पुत्र असुरोंमें मुख्य लवण[1] नाम राक्षस आपके यज्ञका विध्वंस करनेवाला तो नहीं है? यदि है तो मैं अपने प्रिय पुत्रको नहीं त्यागूंगा ॥ ३५ ॥ अथवा कहिये यमके समान सुन्द और उपसुन्दके पुत्र मारीच और सुबाहु तो आपके यज्ञके विघ्नकर्ता नहीं हैं मैं अपने दयापात्र पुत्रको आपको नहीं दूंगा॥३६॥

अथ नेष्यसि चेद्ब्रह्मँस्तद्धतोऽस्म्यहमेव ते ॥ अन्यथा तु न पश्यामि शाश्वतं जयमात्मनः ॥ ३७ ॥ इत्युक्त्वा मृदुवचनं रघूद्वहोऽसौ कल्लोले मुनिमतसंशये निमग्नः ॥ नाज्ञासीत्क्षणमपि निश्चयं महात्मा प्रोद्दीचाविव जलधौ स मुह्यमानः ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे दशरथवाक्यं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

अर्थ—हे ब्रह्मन्! यदि इसपरभी आप मेरे पुत्रको तपोबलसे लेही जायंगे, तो मैं तो मरही चुका, इसके सिवाय किसीप्रकारसे अपना जय नहीं देखता ॥ ३७ ॥ महात्मा दशरथजी इतना कहके, विश्वामित्रको अभीष्ट जो रामजीको लेजानाहै उस संशयरूपी महातरंगजालमें डूबे हुये सुख और निश्चयको नहीं प्राप्त हुये ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे दशरथवाक्यं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ९

इस सर्गमें ९ विश्वामित्रजीका उनके तप तथा अस्त्रबलके कथनसे कोप और वसिष्ठजीका धीरे धीरे राजाको समाधान देना वर्णन कियागयाहै.

वाल्मीकिरुवाच—तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य स्नेहपर्याकुलेक्षणम् ॥ समन्युः कौशिको वाक्यं प्रत्युवाच महीपतिम् ॥ १ ॥ करिष्यामीति संश्रुत्य प्रतिज्ञां हातुमर्हसि ॥ स भवान् केसरी भूत्वा मृगतामिव वांछसि॥२॥राघवाणामयुक्तोऽयं कुलस्यास्य विपर्ययः ॥ न कदाचन जायंते शीतांशोरुष्णरश्मयः॥३॥ यदि त्वं न क्षमो राजन् गमिष्यामि यथागतम् ॥ हीनप्रतिज्ञः काकुत्स्थ सुखी भव सबांधवः ॥४॥

अर्थ—वाल्मीकिजी बोले—पुत्रके स्नेहसे आसुओंसे पूर्णनेत्र दशरथके वचनको श्रवणकरके क्रोधसहित विश्वामित्रने राजासे कहा ॥ १ ॥ करूंगा ऐसी प्रतिज्ञा करके उसे छोडना चाहते हो, तुम सिंह होके शृगाल होनेकी इच्छा करते हो ॥ २ ॥ यह वार्ता रघुवंशियोंमें कुलके विरुद्धहै, चन्द्रमासे कभी उष्ण किरण नहीं उत्पन्न होते ॥ ३ ॥ यदि

---

(१) यह लवणनाम दैत्य राक्षसीसे मधुनाम दैत्यसे उत्पन्न हुआथा शिवजीसे इसे त्रिशूल मिलाथा अतएव अजेय था और मांधाताकी मृत्युका हेतु था ॥

तुम इस कार्यके करनेमें असमर्थ हो तो मैं जैसे आया वैसाही चला जाऊंगा, हे काकुत्स्थ! तुम हीनप्रतिज्ञ बान्धवसहित सुखी हो ॥ ४ ॥

वाल्मीकिरुवाच-तस्मिन् कोपपरीतेऽथ विश्वामित्रे महात्मनि॥ चचाल वसुधा कृत्स्ना सुरांश्च भयमाविशत् ॥ ५ ॥ क्रोधाभिभूतं विज्ञाय जगन्मित्रं महामुनिम्॥ धृतिमान्सुव्रतो धीमान्वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत् ॥ ६ ॥ श्रीवसिष्ठ उवाच ॥ इक्ष्वाकूणां कुले जातः साक्षाद्धर्म इवापरः ॥ भवान् दशरथः श्रीमांस्त्रैलोक्यगुणभूषितः ॥ ७ ॥ धृतिमान्सुव्रतो भूत्वा न धर्मं हातुमर्हसि ॥ त्रिषु लोकेषु विख्यातो धर्मेण यशसा युतः ॥ ८ ॥

अर्थ—वाल्मीकिजी बोले-महात्मा विश्वामित्रके क्रोधित होनेपर संपूर्ण पृथिवी डगमगाने लगी और देवताओंकोभी भय हुआ ॥ ५ ॥ जगत्के मित्र महामुनि विश्वामित्रको क्रोधसे वशीभूत देखके, धैर्यवान् बुद्धिमान् और उत्तमव्रतवाले वसिष्ठजी बोले ॥ ६ ॥ वसिष्ठजी बोले-इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न साक्षात् द्वितीयधर्मके समान् श्रीमान् तीनों लोकके उत्तमगुणोंसे भूषित आप दशरथ ॥ ७ ॥ तीनोंलोकमें प्रसिद्ध धर्म और यशसे युक्त, धैर्यवान् और उत्तम बलवान् आप धर्मको छोडने योग्य नहीं हैं ॥ ८ ॥

स्वधर्मं प्रतिपद्यस्व न धर्मं हातुमर्हसि ॥ मुनेस्त्रिभुवनेशस्य वचनं कर्तुमर्हसि ॥ ९ ॥ करिष्यामीति संश्रुत्य तत्ते राजन्नकुर्वतः ॥ इष्टापूर्तं हरेद्धर्मं तस्माद्रामं विसर्जय ॥ १० ॥ इक्ष्वाकुवंशजातोऽपि स्वयं दशरथोऽपि सन् ॥ न पालयसि चेद्वाक्यं कोऽपरः पालयिष्यति ॥ ११ ॥ युष्मदादिप्रणीतेन व्यवहारेण जंतवः ॥ मर्यादां न विमुंचंति तां न हातुं त्वमर्हसि ॥ १२ ॥

अर्थ—आप अपने धर्मको पालन कीजिये आपको धर्म नहीं छोडना चाहिये तीनोंलोकके इष्ट संपादन करनेमें समर्थ विश्वामित्रजीका वचन आपको करना उचित है ॥ ९ ॥ करूंगा ऐसी प्रतिज्ञा करके और उसके पालन न करनेवाला आपका इष्टापूर्त (तडाग और वापी आदि खोदना आदि) धर्म नष्ट हो जायगा इसलिये आप रामचन्द्रजीको बिदा कीजिये ॥ १० ॥ इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न होके और स्वयं दशरथ होके यदि अपना वाक्य न पालन करोगे तो दूसरा कौन पालन करेगा ॥ ११ ॥ तुह्मारेसदृश मनुष्योंके प्रवृत्त किये हुये व्यवहारसे अज्ञानी मनुष्यभी, मर्यादाको नहीं त्यागते, सो उसको आपको त्यागना न चाहिये ॥ १२ ॥

गुप्तं पुरुषसिंहेन ज्वलनेनामृतं यथा ॥ कृतास्त्रमकृतास्त्रं वा नैनं शक्ष्यंति राक्षसाः ॥ १३ ॥ एष विग्रहवान् धर्म एष वीर्यवतां वरः ॥ एष बुद्धयाधिको लोके तपसां च परायणम् ॥ १४ ॥ एषोऽस्त्रं विविधं वेत्ति त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ नैतदन्यः पुमान्वेत्ति न च वेत्स्यति कश्चन ॥ १५ ॥ न देवा नर्षयः केचिन्नासुरा न च राक्षसाः ॥ न नागा यक्षगंधर्वाः समेताः सदृशा मुनेः ॥ १६ ॥

अर्थ—जैसे अग्निसे अमृत[1] रक्षितहै, उसी प्रकार पुरुषसिंहविश्वामित्रजीसे रक्षित रामचन्द्रजी अस्त्रविद्यामें निपुण हों वा न हों राक्षस इनका कुछ नहीं करसकेंगे ॥ १३ ॥ ये विश्वामित्र साक्षात् मूर्तिमान् धर्म, पराक्रमवालोंमें श्रेष्ठ, संसारमें बुद्धिमें अधिक, और तपके परमस्थान हैं ॥ १४ ॥ चराचरतीनों लोकमें ये अनेक प्रकारके अस्त्रशस्त्रको जानते हैं, इन[2]से अन्य कोई न जानता है और न जानेगा ॥ १५ ॥ देवता, ऋषि, असुर, नाग, और गन्धर्व, ये सब मिलकेभी इन मुनिके सदृश नहीं हैं ॥ १६ ॥

अस्त्रमस्मै कृशाश्वेन परैः परमदुर्जयम् ॥ कौशिकाय पुरा दत्तं यदा राज्यं समन्वगात् ॥ १७ ॥ ते हि पुत्राः कृशाश्वस्य प्रजापतिसुतोपमाः ॥ एनमन्वचरन् वीरा दीप्तिमंतो महौजसः ॥ १८ ॥ जया च सुप्रभा चैव दाक्षायिण्यौ सुमध्यमे ॥ तयोस्तु यान्यपत्यानि शतं परमदुर्जयम् ॥ १९ ॥ पंचाशतं सुतान् जज्ञे जया लब्धवरा पुरा ॥ वधार्थं सुरसैन्यानां ते क्षमाः कामचारिणः ॥ २० ॥

अर्थ—इनको प्रथम जब राज्य करते थे तब कृशाश्वने अस्त्र दिये थे ॥१७॥ वे अस्त्र प्रजापतिके पुत्रके समान वीर, प्रकाशवान्, महा तेजस्वी, सेवकके समान इनकी सेवा करते हैं ॥ १८ ॥ उत्तम मध्य भागवाली दक्षकी कन्या जया और सुप्रभा थीं, उनके जो १०० पुत्र थे वे शत्रुओंसे परम दुर्जय थे ॥ १९ ॥ जयाने पतिसे वरदान पाके देवताओंकी सेना जिससे असुरोंका वध करैं ऐसे समर्थ और कामचार ५० पुत्र उत्पन्न किये ॥ २० ॥

---

(१) इन्द्रके स्थानमें चारों ओरसे किलारूप अग्निसे अमृतकी रक्षा की जाती है यह वार्ता पुराणोंमें प्रसिद्ध है ॥ (२) अभावमें इनके सदृश नहीं है वा ज्ञानसे ब्रह्मरूप होनेसे इनके सदृश कोई नहीं है ॥

सुप्रभा जनयामास पुत्रान्पंचाशतं परान् ॥ संघर्पान्नाम दुर्धर्पान्दुराकारान्बलीयसः ॥ २१ ॥ एवं वीर्यो महातेजा विश्वामित्रो जगन्मुनिः ॥ न रामगमने बुद्धिं विक्लवां कर्तुमर्हसि ॥ २२ ॥ अस्मिन्महासत्वतमे मुनींद्रे स्थिते समीपे पुरुषस्य साधो ॥ प्राप्तेऽपि मृत्यावमरत्वमेति मा दीनतां गच्छ यथा विमूढः ॥ २३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे वसिष्ठसमाश्वासनं नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

अर्थ—सुप्रभाने शत्रुओंसे डरनेके अयोग्य भयंकर आकारवाले और वली संवर्ष नामवाले अन्य ५० पुत्रोंको उत्पन्न किया ॥ २१ ॥ ऐसे प्रतापी जगन्मुनि विश्वामित्रजी हैं इसलिये रामके जानेमें तुम बुद्धिको व्याकुल करनेके योग्य नहीं हो ॥ २२ ॥ हे साधो! ये महाप्रभावशोभित विश्वामित्रजी जिस मनुष्यके समीप स्थित रहें तो यदि मृत्युभी प्राप्त होजाय तो वह मनुष्य अमरदशाको प्राप्त होजाय, इसलिये तुम मूर्खके समान दीनताको मत प्राप्त हो ॥ २३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्य प्रकरणे वसिष्ठसमाश्वासनं नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः १०

राजाका भेजाहुआ ड्योढीदार रामचन्द्रकी चेष्टाको जानके पुनः आके राजासे कहने लगा इत्यादि सव वातोंको वर्णन इस १० वें सर्गमें किया गयाहै.

वाल्मीकिरुवाच-तथा वसिष्ठे ब्रुवति राजा दशरथःसुतम् ॥ संप्रहृष्टमना राममाजुहाव सलक्ष्मणम् ॥ १ ॥ दशरथ उवाच ॥ प्रतिहार महाबाहुं रामं सत्यपराक्रमम् ॥ सलक्ष्मणमविघ्नेन पुण्यार्थं शीघ्रमानय ॥ २ ॥ इति राज्ञा विसृष्टोऽसौ गत्वांतःपुरमंदिरम् ॥ मुहूर्तमात्रेणागत्य समुवाच महीपतिम् ॥३॥ देव दोर्दलिताशेषरिपो रामः स्वमंदिरे ॥ विमनःसंस्थितो रात्रौ पदपदःकमले यथा ॥ ४ ॥

अर्थ—वाल्मीकिजी वोले -वसिष्ठजीके इतना कहनेपर राजा दशरथने प्रसन्नमन होके लक्ष्मणसहित पुत्र रामचन्द्रजीको बुलवाया ॥ १ ॥ दशरथजी वोले हे प्रतिहार! (ड्योढीदार) महाबाहु, सत्यपराक्रम रामचन्द्रको लक्ष्मणसहित धर्मार्थ निर्विघ्नतापूर्वक शीघ्र यहां लाओ ॥ २ ॥ इस प्रकार राजाका भेजा हुआ अन्तःपुरमें जाके और मुहूर्तमात्रमें आके प्रतिहार राजासे बोला ॥ ३ ॥ हे भुजाओंके वलसे संपूर्ण शत्रुओंको दलन करनेवाले राजन्! रामजन्द्रजी अपने मन्दिरमें ऐसे उदासीनहैं जैसे रात्रिमें कमलके भीतर भ्रमर हो ॥ ४ ॥

आगच्छामि क्षणेनेति वक्ति ध्यायति चैकतः ॥ न कस्यचिच्च निकटे स्थातुमिच्छति खिन्नधीः ॥५॥ इत्युक्तस्तेन भूपालस्तं रामानुचरं जनम् ॥ सर्वमाश्वासयामास पप्रच्छ च यथाक्रमम् ॥ ६ ॥ कथं कीदृग्विधो राम इति पृष्टो महीभृता ॥ रामभृत्यजनः खिन्नो वाक्यमाह महीपतिम् ॥ ७ ॥ देहयष्टिमिमां देव धारयंत इमे वयम् ॥ खिन्नाःखेदे परिम्लानतनौ रामे सुते तव ॥ ८ ॥

अर्थ—क्षणभरमें आता हूं ऐसा वाणीसे कहते हैं और मनमें किसी (गम्भीर) वस्तुकी ओर ध्यान कररहे हैं और उदासीनहैं और किसीके निकट बैठनाभी नहीं चाहते ॥ ५ ॥ इसप्रकार प्रतिहारके कहनेपर राजाने उनके साथ आये हुये रामचन्द्रजीके भृत्यको धैर्य देकर सववात यथाक्रमसे पूंछी ॥ ६ ॥ रामचन्द्रजी कैसे और क्या करतेहैं इस प्रकार राजाके पूछनेपर अत्यन्त उदास रामचन्द्रजीका भृत्य बोला ॥ ७ ॥ हे राजन्! खिन्न और अत्यन्त कुह्मला गया है शरीर जिनका ऐसे आपके पुत्र रामचन्द्रजीके शरीरके विपयमें हमलोग ऐसे दुःखी होगयेहैं कि यह केवल अस्थिपंजर धारण कररहे हैं ॥ ८ ॥

रामो राजीवपत्राक्षो यतःप्रभृति चागतः ॥ सविप्रस्तीर्थयात्रायास्ततःप्रभृति दुर्मनाः ॥ ९ ॥ यत्नप्रार्थनयास्माकं निजव्यापारमाह्निकम् ॥ सोयमाम्लानवदनः करोति न करोति वा ॥ १० ॥ स्नानदेवार्चनादानभोजनादिषु दुर्मनाः ॥ प्रार्थितोऽपि हि नातृप्तेरश्नात्यशनमीश्वरः ॥ ११ ॥ लोलांतःपुरनारीभिः कृतदोलाभिरंगणे ॥ नच क्रीडति लीलाभिर्धाराभिरिव चातकः ॥ १२ ॥

---

(१) मुनिके यज्ञरूप धर्मसिद्ध्यर्थ, अथवा पूर्वकृत प्रतिज्ञाके पालनरूप धर्मार्थ, क्योंकि विलम्व होनेसे पुनः कोई विघ्न न उपस्थित होजाय अतः शीघ्र यह पद दिया ॥

अर्थ—कमलके सदृश नेत्रवाले रामचन्द्रजी विप्रसहित जिस दिनसे तीर्थयात्रासे आयेहैं उसी दिनसे उदासहैं ॥ ९ ॥ यह अति कुह्मलाये शरीरवाले रामचन्द्रजी हमलोगोंके बडे यत्न और प्रार्थनासे अपनी नित्यक्रिया (स्नानसंध्यादि) कभी करतेहैं और कभी नहीं करते ॥ १० ॥ स्नान, देवार्चन, दान, और भोजनादिमेंभी उदास रहते हैं प्रार्थनासेभी तृप्तिपर्यन्त भोजन नहीं करते ॥ ११ ॥ चंचल अन्तःपुरकी स्त्रियोंके बनाये हुये जो आंगनमें दोलाचक्र (झूलनेका चक्र) है उसमें जैसे वर्षाकी धाराके साथ चातक क्रीडा करताहै ऐसे लीलाओंसे क्रीडा नहीं करते ॥ १२ ॥

माणिक्यमुकुलप्रोता केयूरकटकावलिः ॥ नानंदयति तं राजन् द्यौःपातविषयं यथा ॥ १३ ॥ क्रीडद्वधूविलोकेषु वहत्कुसुमवायुषु ॥ लतावलयगेहेषु भवत्यतिविषादवान् ॥ १४ ॥ यद्द्रव्यमुचितं स्वादु पेशलं चित्तहारि च ॥ बाष्पपूर्णेक्षण इव तेनैव परिखिद्यते ॥१५॥ किमिमा दुःखदायिन्यः प्रस्फुरंतीः पुरांगनाः ॥ इति नृत्तविलासेषु कामिनीः परिनिंदति ॥ १६ ॥

अर्थ—जैसे जल्दी स्वर्गसे निकल जानेवाले पुरुषको स्वर्ग आनन्द नहींदेता, इसीतरह माणिक्यसे जडी हुई बाजू और कडोंकी पंक्ति इनको आनन्द नहीं देतीं ॥ १३ ॥ जहां क्रीडाकरनेवाली स्त्रियोंके कटाक्षरूपी बाणहैं और जहां वायुसे सुगन्ध पुष्प जहां उडरहेहैं ऐसे लताकुंजमेंभी अत्यन्त शोकयुक्त होते हैं ॥ १४ ॥ जो द्रव्य उपभोगके उचित, स्वादु, कोमल और मनोहर हैं, उसीसे आसुसे पूर्ण नेत्रके समान अत्यन्त खेदित होते हैं ॥ १५ ॥ ये मेरे संमुख दुःख देनेवाली पुरकी स्त्रियां नाचती हुई क्यों देख पडती हैं इस प्रकार नृत्य विलासमें कामिनियोंकी निंदा करतेहैं,

भोजनं शयनं यानं विलासं स्नानमासनम् ॥ उन्मत्तचेष्टित इव नाभिनंदत्यनिंदितम् ॥ १७ ॥ किं संपदा किं विपदा किं गेहेन किमिंगितैः ॥ सर्व मेवासदित्युक्त्वा तूष्णीमेकोऽवतिष्ठते ॥ १८ ॥ नोदेति परिहासेषु न भोगेषु निमज्जति ॥ न च तिष्ठति कार्येषु मौनमेवावलंबते ॥ १९ ॥ विलोलालकवल्लर्यो हेलावलितलोचनाः ॥ नानंदयंति तं नार्यो मृग्यो वनतरुं यथा ॥ २० ॥

अर्थ—उत्तम भोजन, शयन, यान, (सवारी) विलास, (खेल) स्नान और आसनको उन्मत्तके सदृश पसन्द नहीं करते ॥१७॥ सम्पत्तिसे ? क्या विपत्तिसे क्या ? घरसे क्या ? मनोरथसे क्या होता है ? सब असत् है, ऐसा कहके अकेले मौन होजाते हैं ॥ १८ ॥ न हंसीमें प्रसन्न होतेहैं, न भोगके पदार्थमें आसक्त होतेहैं और न कार्योंमें विश्वास करतेहैं, केवल मौन धारण करते हैं ॥१९॥ जिस प्रकार वनके वृक्षको दीर्घचंचलनेत्रवाली हरिणियां नहीं आनन्द देतीं इसीप्रकार जिनके केशोंमें पुष्प और रत्नोंकी चंचल मालायें लटक रही हैं और शृंगारसे उत्पन्न हावभाव कटाक्षसे जिनके नेत्र तिरछे होरहे हैं ऐसी स्त्रियां इनको आनन्द नहीं देतीं ॥२० ॥

एकांतेषु दिगंतेषु तीरेषु विपिनेषु च ॥ रतिमायात्यरण्येषु विक्रीत इव जंतुषु ॥ २१ ॥ वस्त्रपानाशनादानपराङ्मुखतया तया ॥ परिव्राड्धर्मिणं भूप सोनुयाति तपस्विनम् ॥ २२ ॥ एक एव वसन्देशे जनशून्ये जनेश्वर ॥ न हसत्येकया बुद्ध्या न गायति न रोदिति ॥ २३ ॥ बद्धपद्मासनः शून्यमना वामकरस्थले ॥ कपोलतलमाधाय केवलं परितिष्ठति ॥ २४ ॥

अर्थ—एकान्त देशमें, दिशाओंके अन्तमें, नदीके तीरोंपर, जंगलमें, ऐसे प्रीति करते हैं जैसे पामरोंमें विका हुआ उत्तम मनुष्य ॥ २१ ॥ हे राजन् ! प्रसिद्ध वस्त्र, पान, भोजन, और आदानको पराङ्मुखतासे तपस्वी संन्यासीके समान विरक्तता करते हैं ॥ २२ ॥ हे राजन् ! जनशून्यदेशमें अकेले निवासकरते हुये अन्तःकरणसे न हंसते हैं, न गातेहैं, और न रोते हैं ॥ २३ ॥ पद्मासनको मारके उदास मन बायेंहस्तपर कपोल रखके केवल बैठे रहतेहैं ॥ २४ ॥

नाभिमानमुपादत्ते न च वांछति राजताम् ॥ नोदेतिनास्तमायाति सुखदुःखानुवृत्तिषु ॥ २५ ॥ न विद्मः किमसौ याति किं करोति किमीहते ॥ किंध्यायति किमायाति कथं किमनुधावति ॥ २६ ॥ प्रत्यहं कृशतामेति प्रत्यहं याति पांडुताम् ॥ विरागं प्रत्यहं याति शरदंत इव द्रुमः ॥ २७ ॥ अनुयातौ तथैवैतौ राजञ्छत्रुघ्नलक्ष्मणौ ॥ तादृशावेव तस्यैव प्रतिबिम्बाविव स्थितौ ॥ २८ ॥

अर्थ—न कभी अभिमान धारण करते हैं, न राज्य चाहते हैं, सुख और दुःखके संयोगसे न कभी प्रसन्न होते हैं, न उदास होते हैं ॥ २५ ॥ यह हमलोग नहीं जानते कि क्यों ये जाते हैं, क्या करते हैं, क्या चाहते हैं, क्या ध्यान करतेहैं, क्यों आते हैं, और कैसे किसबातका अनुसरण करतेहैं ॥ २६ ॥ और शरत् कालके अन्तमें वृक्षके समान प्रतिदिन दुबले होते जातेहैं, प्रतिदिन पीले होते जाते हैं, और प्रतिदिन वैराग्यको प्राप्त होतेजाते हैं ॥ २७ ॥ हे राजन् ! शत्रुघ्न और लक्ष्मण उन्हीका अनुकरण कररहेहैं उनके प्रतिबिम्बके समान स्थित हैं ॥ २८ ॥

भृत्यैराजभिरंबाभिः संपृष्टोऽपि पुनः पुनः ॥ उक्त्वा न किंचिदेवेति तूष्णीमास्ते निरीहितः ॥ २९ ॥ आपातमात्रहृद्येषु मा भोगेषु मनः कृथाः ॥ इतिपार्श्वगतं भव्यमनुशास्ति सुहृज्जनम् ॥ ३० ॥ नानाविभवरम्यासु स्त्रीषु गोष्ठीगतासु च ॥ पुरःस्थितमिवास्नेहो नाशमेवानुपश्यति ॥ ३१ ॥ नीतमायुरनायासपदप्राप्तिविवर्जितैः ॥ चेष्टितैरिति काकल्या भूयो भूयः प्रगायति ॥ ३२ ॥

अर्थ—नोकरोंके, राजाओंके, और माताओंके, वार २ पूछनेपर "कुछ नहीं" ऐसा कहके चेष्टारहित पुनः मौन हो जाते हैं ॥ २९ ॥ क्षणमात्र सुखदायी परिणाममें दुःखदायी भोगोंमें मनको मत लगावो, ऐसी शिक्षा समीप आये हुये विवेकीमित्रको देतेहैं ॥ ३० ॥ नाना प्रकारके विभव (आभूषण वस्त्रादि) से रमणीय, विलासस्थानमें प्राप्त स्त्रियोंमें स्नेहरहित, उनको सम्मुख स्थित अपने नाशकेही समान देखते हैं ॥ ३१ ॥ हमने अपनीआयु परिश्रमविना परमपदकी प्राप्तिसे वर्जित संसारकी चेष्टाओंसे व्यर्थ विताया ऐसा स्पष्ट और मधुर शब्दोंसे वार २ गान करतेहैं ॥३२॥

सम्राड् भवेति पार्श्वस्थं वदंतमनुजीविनम् ॥ प्रलपंतमिवोन्मत्तं हसत्यन्यमना मुनिः ॥ ३३ ॥ न प्रोक्तमाकर्णयति ईक्षते न पुरोगतम् ॥ करोत्यवज्ञां सर्वत्र सुसमेत्यापि वस्तुनि ॥ ३४ ॥ अप्याकाशसरोजिन्या अप्याकाशमहावने ॥ इत्थमेतन्मन इति विस्मयोऽस्य न जायते ॥ ३५ ॥ कांतामध्यगतस्यापि मनोऽस्य मदनेपवः ॥ न भेदयंति दुर्भेद्यं धारा इव महोपलम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—जो कोई निकट स्थित अनुचर यह कहता है कि आप सम्राट् हों उसके उन्मत्तके समान कहनेपर दूसरी ओर चित्त करके हँस देते हैं ॥ ३३ ॥ न किसीकी सुनते हैं न किसीकी ओर देखतेहैं सब प्रकारसे उत्तमवस्तु पाकरभी उपेक्षा करते हैं ॥ ३४ ॥ जैसे आकाशरूपी महाजंगलमें आकाशरूप कैमलिनी हो ऐसाही इनका मन है इसीसे इनको विस्मय नहींहोता ॥ ३५ ॥ जैसे वृष्टिकी धारा बडेभारी पाषाणको तोड नहींसक्ती, ऐसेही उत्तमस्त्रियोंके मध्य प्राप्त होनेपरभी उनके दुर्भेद मनको कामदेवके वाण भेदन नहींकरसक्ते ॥ ३६ ॥

आपदामेकमावासमभिवाछसि किं धनम् ॥ अनुशिष्यति सर्वस्वमर्थिने संप्रयच्छति ॥ ३७ ॥ इयमापदियं संपदित्येवं कल्पनामयः ॥ मनसोभ्युदितो मोह इति श्लोकान्प्रगायति ॥ ३८ ॥ हा हतोऽहमनाथोऽहमित्याक्रंदपरोऽपि सन् ॥ न जनो याति वैराग्यं चित्रमित्येव वक्त्यसौ ॥ ३९ ॥ रघुकाननशालेन रामेण रिपुघातिना ॥ भृशमित्थं स्थितेनैव वयं खेदमुपागताः ॥ ४० ॥

अर्थ—विपत्तियोंका मुख्यस्थान ऐसे धनको क्यों चाहताहै, ऐसी शिक्षा देकर याचकको सैर्वस्व देतेहैं ॥ ३७ ॥ यह संपत्ति, यह विपत्ति, यह सब कल्पनामय यह जगत् मनसे उठा हुआ भ्रममात्र है ऐसे श्लोकोंको पढते हैं ॥ ३८ ॥ मैं मारागया, मैं अनाथ हूं ऐसा रोताहुआ मनुष्यभी वैराग्यको नहीं प्राप्त होता यह आश्चर्य है, ऐसा ये कहा करतेहैं ॥ ३९ ॥ रघुवंशरूपी वनमें शालवृक्षके समान शत्रुघाती रामचन्द्रकी वार २ ऐसी स्थितिसे हम लोग खेदित होगये हैं ॥ ४० ॥

न विद्मः किं महावाहो तस्य तादृशचेतसः ॥ कुर्मः कमलपत्राक्ष गतिरत्र हि नो भवान् ॥ ४१ ॥ राजानमथवा विप्रमुपदेष्टारमग्रतः ॥ हसत्यज्ञमिवाव्यग्रः सोऽवधीरयति प्रभो ॥ ४२ ॥ यदेवेदमिदं स्फारं जगन्नामयदुत्थितम् ॥ नैतद्वस्तु न चैवाहमिति निर्णीय संस्थितः ॥ ४३ ॥ नारौ नात्मनि नो मित्रे न राज्ये न च मातरि ॥ न संपदा न विपदा तस्यास्था न विभो बहिः ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे कमलनेत्र ! हे महावाहो ! ऐसे चित्तवाले रामचन्द्रजीके शोक दूर करनेके लिये हमलोग क्या करें ? यह हम नहींजानते, आपही हमारी शरण हैं ॥४१॥ हे प्रभो ! कोई राज्यनीति सिखानेवाला राजा अथवा कोई उपदेश देनेवाला ब्राह्मण जाय तो उसको अज्ञानी समझके स्वयं धैर्यवान् होके हँसते हैं और उसका कथन न सुननेसे अपमानसा करते हैं ॥ ४२ ॥ जो यह विस्ताररूप जगत् है यह सत् वस्तु नहींहै, और जो बुद्धिगम्य मैं हूं वहभी सद्वस्तु नहींहै ऐसा निर्णय करके स्थितहैं ॥ ४३ ॥ न शत्रुमें, न आत्मामें, न मित्रमें, न राज्यमें, न मातामें, न सम्पत्तिमें, और न विपत्तिमें, किसीमें उनकी आस्था (विश्वास) नहीं है ॥ ४४ ॥

(१) अविवेकीको शिक्षा देना व्यर्थ जायगा इसलिये केवल विवेकीकोही देते हैं ॥ (२) सम्यक् प्रकाशरूपसे जो शोभित हो ऐसा जो परमात्माहै उस सम्राट्की ओर चित्तको लगाते हैं, न कि जिसने राजसूय यज्ञ किया हो और मण्डलका ईश्वर जो सम्राट् उसकी ओर ॥ (३) आकाशके जंगलमें आकाशकी कमलिनी यह असम्भवहै क्योंकि आकाशका जंगल और उसमें कमलिनी यह अत्यंत असम्भव है ॥ (४) जो कुछ आभूषण वस्त्रादि पासमें रहताहै या घरमें मिलताहै वह सब दे देतेहैं ॥

निरस्तास्थो निराशोऽसौ निरीहोऽसौ निरास्पदः ॥ न मूढो न च मुक्तोऽसौ तेन तप्यामहे भृशम् ॥ ४५ ॥ किं धनेन किमंबाभिः किं राज्येन किमीहया ॥ इति निश्चयवानंतः प्राणत्यागपरः स्थितः ॥ ४६ ॥ भोगेऽप्यायुषि राज्येषु मित्रे पितरि मातरि ॥ परमुद्वेगमायातश्चातकोऽवग्रहे यथा ॥ ४७ ॥ इति लोके समायातां शाखाप्रसरशालिनीम् ॥ आपत्तामलमुद्धर्तुं समुदेतु दयापरः ॥ ४८ ॥

अर्थ—ये आस्था, आशा, इच्छा, और आत्मविश्रान्ति, इनसे शून्य हैं, न तो मूढही हैं और न मुक्तही हैं इसलिये हम लोगोंको सन्ताप है ॥ ४५ ॥ क्या धनसे होताहै? क्या माताओंसे होताहै? क्या राज्यसे होताहै क्या इच्छासे होताहै? ऐसा निश्चय किये प्राणत्यागनेपर तैय्यारहैं ॥ ४६ ॥ भोगसे, आयुसे, राज्यसे, मित्रसे, पितासे और मातासे, ऐसे व्याकुल होरहेहैं जैसे वृष्टिके अभावसे चातक ॥ ४७ ॥ हे राजन्! आप दयामें तत्पर होके पुत्रके ऊपर आई हुई, शाखाके विस्तारसे लहलहाती हुई जो आपत्तिरूप लता है उसको जड़से उखाड़नेके अर्थ उद्यत हों ॥ ४८ ॥

तस्य तादृक्स्वभावस्य समग्रविभवान्वितम् ॥ संसारजालमाभोगि प्रभो प्रतिविषायते ॥४९॥ इदृशः स्यान्महासत्वः क इवास्मिन्महीतले ॥ प्रकृते व्यवहारे तं यो निवेशयितुं क्षमः ॥ ५० ॥ मनसि मोहमपास्य महामनः सकलमार्तितमः किल साधुताम् ॥ सफलतां नयतीह तमोहरन्दिनकरो भुवि भास्करतामिव ॥ ५१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे राघवविषादो नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

अर्थ—हे प्रभो! वैराग्ययुक्त स्वभाववाले रामचन्द्रजीको सम्पूर्णविभवसहित जो वनावटी वेष धारणकिये हुये यह संसारजालहै यह विषके समान भान होताहै ॥ ४९ ॥ इस संसारमें ऐसा महाबली कौन समर्थ है? जो रामचन्द्रजीको पुनः संसारके व्यवहारमें लगावे ॥ ५० ॥ जैसे सूर्य अन्धकारको दूर करतेहुये अपनी भास्करता सफल करते हैं, ऐसेही वह महात्मा इस संसारमें कौन हैं जो दुःखरूपी अन्धकारको रामचन्द्रजीके मनसे दूरकरके अपने उपदेश सामर्थ्यको सफल करै ॥ ५१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वा० दे० मो० भा० वैराग्यप्रकरणे राघवविषादोनाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः ११

विश्वामित्रकी आज्ञासे सभाके मध्यमें लायेहुये रामचन्द्रजीकी मानसी व्यथाके मूलकारणका प्रश्न और उनको धैर्य देना इस ११ वें सर्गमें वर्णन कियाहै.

श्रीविश्वामित्र उवाच ॥ एवं चेत्तन्महाप्राज्ञा भवंतो रघुनंदनम् ॥ इहानयंतु त्वरिता हरिणं हरिणा इव ॥ १ ॥ एष मोहो रघुपतेर्नापद्भ्यो न च रागतः ॥ विवेकवैराग्यवतो बोध एव महोदयः ॥ २ ॥ इहायातु क्षणाद्राम इह चैव वयं क्षणात् ॥ मोहं तस्यापनेष्यामो मारुतोद्रेर्घनं यथा ॥ ३ ॥ एतस्मिन्मार्जिते युक्त्या मोहे स रघुनंदनः ॥ विश्रांतिमेष्यति पदे तस्मिन्वयमिवोत्तमे ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीविश्वामित्रजी बोले—यदि ऐसा है तो परीक्षामें कुशल महाबुद्धिमान् आपलोग, जैसे यूथपतिमृगको हरिण लातेहैं वैसेही शीघ्र रघुनन्दनको यहां लाओ ॥ १ ॥ यह रामजीका मोह न आपत्तियोंसे है और न प्रीतिसे है, किन्तु यह विवेकी और वैराग्यवान् रामजीका महोदय बोधही है ॥ २ ॥ रामचन्द्रजी यहां आवैं हम उनके मोहको शीघ्र ऐसे दूर करेंगे जैसे वायु मेघको पर्वतसे दूर करता है ॥ ३ ॥ युक्तिपूर्वक इस मोहको हटानेपर रामजी उस उत्तमपद (आत्मामें) में हमारेसमान विश्रान्तिको प्राप्त होंगे ॥ ४ ॥

सत्यतां मुदितां प्रज्ञां विश्रांतिमपतापताम् ॥ पीनतां वरवर्णत्वं पीतामृत इवैष्यति ॥ ५ ॥ निजां च प्रकृतामेव व्यवहारपरंपराम् ॥ परिपूर्णमना मान्य आचरिष्यत्यखण्डितम् ॥६॥ भविष्यति महासत्वो ज्ञातलोकपरावरः ॥ सुखदुःखदशाहीनः समलोष्टाश्मकांचनः ॥७॥ इत्युक्ते मुनिनाथेन राजा संपूर्णमानसः ॥ प्राहिणोद्राममानेतुं भूयो दूतपरंपराम् ॥ ८ ॥

अर्थ—सत्यताको, प्रसन्नताको, अपरिच्छिन्न ज्ञानरूपताको, विश्रान्तिको, शान्तिको शरीरमें स्थूलता, और सौंदर्यताको अमृतपीनेवालेके समान प्राप्त होंगे ॥ ५ ॥ और वही अपनी सदाकी व्यवहारपरम्पराको, प्रसन्न चित्त मा-

ननीय रामचन्द्रजी अखण्डित रूपसे पालन करेंगे ॥ ६ ॥ संसारके कारण और कार्यत्वको जानके महासत्व (मननसे दृढज्ञानी) सुख और दुःखकी दशासे रहित पाषाण और सोनेमें सम दृष्टि होजायगे ॥ ७ ॥ मुनियोंके नाथ विश्वामित्रके ऐसे कहनेपर प्रसन्नमन राजाने पुनः रामजीको बुलानेको दूतोंको भेजा ॥ ८ ॥

एतावताथ कालेन रामो निजगृहासनात् ॥ पितुः संकाशमागंतुमुत्थितोऽर्क इवाचलात् ॥ ९ ॥ वृतः कतिपयैर्भृत्यैर्भ्रातृभ्यां च जगाम ह ॥ तत्पुण्यं स्वपितुः स्थानं स्वर्गं सुरपतेरिव ॥ १० ॥ दूरादेव ददर्शासौ रामो दशरथं तदा ॥ वृतं राजसमूहेन देवौघेनेव वासवम् ॥ ११ ॥ वसिष्ठविश्वामित्राभ्यां सेवितं पार्श्वयोर्द्वयोः ॥ सर्वशास्त्रार्थतज्ज्ञेन मंत्रिवृंदेन मालितम् ॥ १२ ॥

अर्थ—इस बीचमें रामचन्द्रजी अपने गृहसे पिताके निकट आनेको उदयाचलसे सूर्यके समान उठे ॥ ९ ॥ कुछ भृत्य और दोनोभाइयोंके साथ, इन्द्रके स्वर्गके समान उस पवित्र अपने पिताके स्थानमें गये ॥ १० ॥ जैसे देवताओंके समूहसे इन्द्र घिरे हों ऐसेही राजाओंके समूहसे घिरेहुये अपने पिता राजा दशरथको रामचन्द्रजीने दूरसेही देखा॥११॥ राजा दशरथजी दोनोंओर वसिष्ठ और विश्वामित्रसे युक्तहैं, और सवशास्त्रोंके अर्थोंका विस्तारकरनेवाले और जाननेवाले ऐसे मंत्रियोंके समूहसे घिरे हैं ॥ १२ ॥

चारुचामरहस्ताभिः कांताभिः समुपासितम् ॥ ककुभिरिव मूर्ताभिः संस्थिताभिर्यथोचितम् ॥ १३ ॥ वसिष्ठविश्वामित्राद्यास्तथा दशरथादयः ॥ ददृशू राघवं दूरादुपायांतं गुहोपमम् ॥ १४ ॥ सत्त्वावष्टब्धगर्भेण शैत्येनेव हिमाचलम् ॥ श्रितं सकलसेव्येन गंभीरेण स्फुटेन च ॥ १५ ॥ सौम्यं समं शुभाकारं विनयोदारमानसम् ॥ कांतोपशांतवपुषं परस्यार्थस्य भाजनम् ॥ १६ ॥

अर्थ—मूर्तिमान् यथोचित स्थित दिशाओंके समान उत्तमचमर हाथमें लिये सुन्दरस्त्रियोंसे राजा दशरथ सेवितहैं ॥ १३ ॥ वसिष्ठविश्वामित्रादि ऋषि तथा दशरथादिराजाओंने दूरसेही स्वामीकार्तिकके समान आतेहुये रामचन्द्रजीको देखा ॥ १४ ॥ रामचन्द्रजी विवेक और शान्ति अभ्यन्तरमें होनेसे, सम्पूर्णजीवोंसे सेव्य जो शीतता और स्फुट स्वच्छ गम्भीरता है उससे आश्रित हिमाचलके समान थे ॥ १५ ॥ प्रियदर्शन, वरावर सुन्दरआकारवाले विनीत और उदारचित्त मनोहर और शान्त शरीर धारणकिये परमपुरुपार्थ (मुक्ति)के पात्र थे ॥ १६ ॥

समुच्चयौवनारंभं वृद्धोपशमशोभनम् ॥ अनुद्विग्नमनानंदं पूर्णप्रायमनोरथम् ॥ १७ ॥ विचारितजगद्यात्रं पवित्रगुणगोचरम् ॥ महासत्त्वैकलोभेन गुणैरिव समाश्रितम् ॥ १८ ॥ उदारमार्यमापूर्णमंतःकरणकोटरम् ॥ अविक्षुभितया वृत्त्या दर्शयंतमनुत्तमम् ॥ १९ ॥ एवं गुणगणाकीर्णो दूरादेव रघूद्वहः ॥ परिमेयस्मिताच्छाच्छस्वहारांबरपल्लवः ॥ २० ॥

अर्थ—उससमय उनकी यौवनलक्ष्मी उत्तमरीतिसे उदयहोरहीथी और वृद्धके समान शान्तिसे शोभायमान व्याकुलताशून्य, अप्राप्तपरमानन्द पूर्णमनोरथवाले सदृश थे ॥ १७ ॥ संसारकी दशाको विचारनेवाले पवित्रगुणोंके पात्र महासत्व (विवेक)के लोभसे सम्पूर्णगुणोंसे समाश्रित ॥ १८ ॥ उदार, श्रेष्ठ, किंचित, पूर्ण, अन्तःकरणयुक्त अव्याकुल वृत्तिसे सर्वोत्तम मनोरथ देखलानेवालेथे ॥ १९ ॥ इसप्रकारके गुणोंसे पूर्ण और उचितस्मित (मुसाकिरान्) के समान अतिस्वच्छ हार और वस्त्र धारणकियेहुये रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ थे ॥ २० ॥

प्रणनाम चलच्चारुचूडामणिमरीचिना ॥ शिरसा वसुधाकंपलोलदेवाचलश्रिया ॥ २१ ॥ एवं मुनींद्रे ब्रुवति पितुः पादाभिवंदनम् ॥ कर्तुमभ्याजगामाथ रामः कमललोचनः ॥ २२ ॥ प्रथमं पितरं पश्चान्मुनी मान्यैकमानितौ ॥ ततो विप्रांस्ततो बंधूंस्ततो गुरुगणान्सुहृत् ॥ २३ ॥ जग्राह च ततो दृष्ट्या मनाङ्मूर्ध्ना तथा गिरा ॥ राजलोकेन विहितां तां प्रणामपरंपराम् ॥ २४ ॥

अर्थ—उनके उत्तमचूडामणिसे प्रकाश निकलरहाथा श्रेष्ठगुणोंसे युक्त और पृथिवीके कम्पसे चंचल सुमेरुके समान शोभायमान रामचन्द्रजीने शिरसे पिताको दूरसे प्रणाम किया ॥ २१ ॥ ऐसा मुनीन्द्र जब कहरहेथे उस समय कमलनेत्र रामचन्द्रजी पिताके चरणोंमें प्रणाम करनेके लिये समीप आये ॥ २२ ॥ प्रथम पिताको अनन्तर सबके मुख्य माननीय दोनोंमुनियोंको, उसके अनन्तर ब्राह्मणोंको और उसके अनन्तर बन्धुओंको बडेलोगोंको शुद्धचित्तवाले रामजीने प्रणाम किया ॥ २३ ॥ इसके अनन्तर राजालोगोंके प्रणामोंको किंचित् नम्रशिर और वाणीसे ग्रहण किया ॥२४॥

विहिताशीर्मुनिभ्यां तु रामः सुसममानसः ॥ आससाद पितुः पुण्यं समीपं सुरसुंदरः ॥ २५ ॥ पादाभिवंदनपरं तमथासौ महीपतिः ॥ शिरस्यभ्यालिलिंगाशु चुचुंब च पुनः पुनः ॥ २६ ॥ शत्रुघ्नं

लक्ष्मणं चैव तथैव परवीरहा ॥ आलिलिंग घनस्नेहो राजहंसोऽबुजे यथा ॥ २७ ॥ उत्संगे पुत्रतिष्ठेति वदत्यथ महीपतौ ॥ भूमौ परिजनास्तीर्णे सोऽशुकेऽथ न्यविक्षत ॥ २८ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर मुनियोंसे आशीर्वादको ग्रहण करके समानमनवाले देवताओंके समान सुन्दर रामचन्द्रजी पवित्र पिताके निकटस्थानमें बैठगये ॥ २५ ॥ चरणोंमें प्रणाम करनेमें तत्पर रामचन्द्रको शिरसे आलिंगन करके पिताने वार २ चुम्बन किया ॥ २६ ॥ शत्रुओंके हननमें समर्थ राजादशरथने, जिसप्रकार राजहंस कमलमें स्नेहयुक्त होताहै इसीप्रकार शत्रुघ्न और लक्ष्मणकोभी रामचन्द्रके सदृश आलिंगन और चुम्बन किया ॥ २७ ॥ हे पुत्र! गोदमें बैठो ऐसा राजाके कहनेपर भूमिपर नोकरोंके बिछाये बिछौनेपर दृष्टिलगारहे ॥ २८ ॥

राजोवाच ॥ ॥ पुत्र प्राप्तविवेकस्त्वं कल्याणानां च भाजनम् ॥ जडवज्जीर्णया बुद्ध्या खेदायात्मा न दीयताम् ॥ २९ ॥ वृद्धविप्रगुरुप्रोक्तं त्वादृशेनानुतिष्ठता ॥ पदमासाद्यते पुण्यं न मोहमनुधावता ॥ ३० ॥ तावदेवापदो दूरे तिष्ठंति परिपेलवाः ॥ यावदेव न मोहस्य प्रसरः पुत्र दीयते ॥ ३१ ॥ श्रीवसिष्ठ उवाच ॥ ॥ राजपुत्र महाबाहो शूरस्त्वं विजितास्त्वया ॥ दुरुच्छेदा दुरारंभा अप्यमी विषयारयः ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे पुत्र! तुम विवेकी हो और कल्याणोंके पात्र हो मूर्खके समान शिथिल बुद्धिसे आत्माको दुःख न दो ॥ २९ ॥ वृद्ध (पितादि) ब्राह्मण और गुरुओंके कथनको करनेवाला तुमारे समान मनुष्य पवित्र पदको पाता है न कि मोहग्रस्त ॥ ३० ॥ हे पुत्र! जबतक मोहको आनेको मार्ग नहीं दियाजाता तबतक आपत्ति दूर रहती हैं ॥ ३१ ॥ हे राजपुत्र! हे महाबाहो! तुमही बडे शूर हो, क्योंकि तुमने कठिनतासे छेदन करनेके योग्य और भयंकर परिणामवाले विषयोंकोभी जीतलिया ॥ ३२ ॥

किमतज्ज्ञ इवाज्ञानां योग्ये व्यामोहसागरे ॥ विनिमज्जसि कल्लोलबहुले जाड्यशालिनि ॥ ३३ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ चलन्नीलोत्पलव्यूहसमलोचनलोलताम् ॥ ब्रूहि चेतःकृतां त्यक्त्वा हेतुना केन मुह्यसि ॥ ३४ ॥ किन्निष्ठाः के च ते केन कियंतः कारणेन ते ॥ आधयः प्रविलुंपंति मनोगेहमिवाखवः ॥ ३५ ॥ मन्ये नानुचितानां त्वमाधीनां पदमुत्तमम् ॥ आपत्सु चाप्रयोज्यंते निहीनाअपि चाधयः ॥ ३६ ॥

अर्थ—विक्षेपरूपी तरंगोंसे व्याप्त, जडतासे शोभित, अज्ञानियोंके योग्य व्यामोहरूपी समुद्रमें अज्ञानीके सदृश तुम क्यों डूब रहेहो ॥ ३३ ॥ विश्वामित्रजी बोले—चलायमान कमलसमूहके समान व्याकुलचित्तसे फेंकीहुई नेत्रोंकी चंचलताको त्यागकर कहो तुमारे मोहका कारण क्या है? ॥ ३४ ॥ किसस्वभाववाली, कौन, कितनी, किस कारणसे मानसी व्यथा तुमारेमनको, मूषक जैसे गृहको खोदके नष्टकरते हैं ऐसे नष्ट कररही हैं ॥ ३५ ॥ अनुचित मानसीपीडाके तुम उत्तमस्थान नहींहो विपत्तियां हटानेके अर्थ तुमको कुछ नहींकर्तव्यहै क्योंकि ये विपत्तियां स्वतः वा पिताकेद्वारा निरस्त हैं ॥ ३६ ॥

यथाभिमतमाशु त्वं ब्रूहि प्राप्स्यसि चानघ ॥ सर्वमेव पुनर्येन भेत्स्यंते त्वां तु नाधयः ॥ ३७ ॥ इत्युक्तमस्य सुमते रघुवंशकेतुराकर्ण्य वाक्यमुचितार्थविलासगर्भम् ॥ तत्याज खेदमभिगर्जति वारिवाहे बर्ही यथा त्वनुमिताभिमतार्थसिद्धिः ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये वैराग्यप्रकरणे राघवसमाश्वासनं नामैकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

अर्थ—हे अनघ! तुमको जो अभीष्टहै वही शीघ्र कहो सब कुछ तुमको मिलेगा, जिससे फिर कभी तुमको मानसीव्यथा भेदन नकरेंगी ॥ ३७ ॥ इसप्रकार सुबुद्धिमान् इसमुनिके उचित और तात्पर्यसहितवाक्यको रघुवंशके ध्वजरूपरामचन्द्रजीने श्रवणकरके खेदको ऐसे त्यागदिया जैसे मेघकी गर्जना सुननेपर मोर अपनी इष्टसिद्धिको अनुमानकरके शोकको त्यागता है ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे राघवसमाश्वासनं नामैकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

---

(१) अज्ञान आनेपर तो मनुष्य सब आपत्तियोंका घर होजाताहै ॥ (२) जिसने अपने इंद्रियरूपशत्रूनको जीतलिये हैं वही सबसे बडा वीरहै ॥

द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

भोगादिकोंकी दुःखरूपता, विषयादिककी असत्यता और सम्पत्तियोंकी अनर्थकारिता इत्यादि इस १२ वें सर्गमें वर्णन कियागया है.

श्रीवाल्मीकिरुवाच॥ ॥इति पृष्टो मुनीन्द्रेण समाश्वस्य च राघवः॥ उवाच वचनं चारु परिपूर्णार्थमंथरम् ॥१॥ श्रीराम उवाच॥ ॥भगवन् भवता पृष्टो यथावदधुनाखिलम्॥ कथयाम्यहमज्ञोऽपि को लंघयति सद्वचः ॥ २ ॥ अहं तावदयं जातो निजेऽस्मिन्पितृसद्मनि ॥ क्रमेण वृद्धिं संप्राप्तः प्राप्तविद्यश्च संस्थितः ॥३॥ ततः सदाचारपरो भूत्वाहं मुनिनायक॥ विहृतस्तीर्थयात्रार्थमुर्वीमंबुधिमेखलाम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवाल्मीकिजी बोले-इसप्रकार मुनींद्रके पूछनेपर रामचन्द्रजी भलीभांति धैर्यको पाकर, उत्तम अर्थसे परिपूर्ण गम्भीरतायुक्त वचन बोले ॥ १ ॥ हे भगवन्! यद्यपि मैं अज्ञानी हूं परंतु इससमय आपके पूछनेपर सब कुछ कहूंगा, क्योंकि सज्जनोंके वाक्यको कौन उल्लंघन करसक्ता है ॥ २ ॥ मैं यहं पिताके गृहमें उत्पन्नहुआ, क्रमसे बडा और विद्या प्राप्तकी ॥ ३ ॥ हे मुनिनायक! इसके अनन्तर सज्जनोंके आचारमें तत्परहोके, तीर्थयात्राकेलिये चारोंसमुद्रमेखलावाली पृथिवीपर विचरा ॥ ४ ॥

एतावताथ कालेन संसारास्थामिमां हरन्॥ समुद्भूतो मनसि मे विचारः सोऽयमीदृशः ॥ ५ ॥ विवेकेन परीतात्मा तेनाहं तदनुस्वयम्॥ भोगनीरसया बुद्ध्या प्रविचारितवानिदम् ॥ किं नामेदं बत सुखं येयं संसारसंततिः ॥ जायते मृतये लोको म्रियते जननाय च ॥ ७ ॥ अस्थिराः सर्व एवेमे सचराचरचेष्टिताः ॥ आपदां पतयः पापा भावा विभवभूमयः ॥ ८ ॥

अर्थ—इतनेसमयमें इससंसारकी दशाको देख मेरेमनमें यह विचार उत्पन्नहुआ ॥ ५ ॥ उस (तीर्थयात्रा) के अनन्तर स्वयं विवेकपूर्ण होके संसारके भोगरससे शून्यबुद्धिसे मैंने यह विचारा है ॥ ६ ॥ यह संसारका जो विस्तारहै यह क्या सुखदायकहै? (अर्थात् कुछनहीं) कि प्राणी मरनेके अर्थ उत्पन्नहोताहै होनेकेलिये मरता है ॥ ७ ॥ संसारकी जितनी चेष्टा है वे सब चंचलहैं विभवकालमें स्थित जितने विषय हैं वे सब आपत्तिके मूल और पापजनक हैं ॥ ८ ॥

अयःशलाकासदृशाः परस्परमसंगिनः ॥ श्लिष्यंते केवलं भावा मनःकल्पनया स्वया ॥ ९॥ मनःसमायत्तमिदं जगदाभोगि दृश्यते ॥ मनश्चासदिवाभाति केन स्म परिमोहिताः ॥ १० ॥ असतैव वयं कष्टं विकृष्टा मूढबुद्धयः ॥ मृगतृष्णांभसा दूरे वने मुग्धमृगा इव ॥ ११ ॥ न केनचिच्च विक्रीता विक्रीता इव संस्थिताः ॥ बत मूढा वयं सर्वे जानाना अपि शांबरम् ॥ १२ ॥

अर्थ—जितनेपदार्थ और उनसे उत्पन्न जो विषयहैं सब लोहेकीशलाकाके समान एकदूसरेसे अलग अलग हैं केवल अपने मनकी कल्पनासेही मिलायेजाते हैं ॥ ९ ॥ कृत्रिमभोगका रूप धारणकियेहुये यह सम्पूर्णजगत् मनके आधीनहैं, और वहमनभी असत्के समान भासताहै (आश्चर्यहै) हमलोग किससे मोहित हुये हैं ॥ १० ॥ अत्यन्तखेदकी बातहै, कि हम थोडेकालतक रहनेवालेजगत्के सुखसे ऐसे खिंचे हैं, जैसे मृगतृष्णाके जलसे दूर वनमें मूढमृग खिंचते हैं ॥ ११ ॥ यद्यपि किसीने हमको बेचानहीं तथापि बिकेहुयेके समान स्थितहैं, खेदकी बातहै कि यह माया है ऐसा जानतेहुयेभी हम मूढ होगये हैं ॥ १२ ॥

किमेतेषु प्रपंचेषु भोगा नाम सुदुर्भगाः ॥ मुधैव हि वयं मोहात्संस्थिता बद्धभावनाः ॥ १३ ॥ अज्ञातं बहुकालेन व्यर्थमेव वयं वने ॥ मोहे निपतिता मुग्धाः श्वभ्रे मुग्धा मृगा इव ॥ १४ ॥ किं मे राज्येन किं भोगैः कोऽहं किमिदमागतम् ॥ यन्मिथ्यैवास्तु तन्मिथ्या कस्य नाम किमागतम् ॥ १५ ॥ एवं विमृशतो ब्रह्मन्सर्वेष्वेव ततो मम ॥ भावेष्वरतिरायाता पथिकस्य मरुष्विव ॥ १६ ॥

अर्थ—संसारके प्रपंचमें अभागे विषयसुख क्याहै? अर्थात् दुःखबीजही हैं हम मिथ्याभ्रममें बद्धहैं ॥ १३ ॥ जैसे वनकेगढेमें गिरे मूढमृग बहुतकालमें यह जानैंकि हम गिरेहैं, ऐसेही बहुतकालमें हमने जानाकि मोहमें फसे ॥ १४ ॥ मुझे राज्यसे क्या? भोगसे क्या? मैं कौन हूं? इससंसारका क्या रूप है? जो मिथ्या है वह मिथ्याही रहो,

---

(१) पूर्वोक्त नम्रताके साथ मुनिको वशमें करके अपने वृत्तान्तके बहानेसे धर्मानुष्ठानजनित चित्तकी शुद्धिसे विवेक और वैराग्यसे जो कुछ अपना विचार हुआ उसको वर्णनकरतेहैं ॥ (२) हरिण उष्णकालमें रेतीको देखके जलकी भ्रांतिसे उसकी ओर दौडते हैं और जल न मिलनेसे दुःखहीको प्राप्तहोतेहैं ऐसेही दुःखरूप संसारमें सुखकी भ्रांतिसे सब मोहितहैं ॥

उसके मिथ्याहोनेसे किसको क्या मिला? ॥ १५ ॥ हे ब्रह्मन् ! इसप्रकार विचारकरतेहुये मुझे पदार्थोंमें ऐसी अरुचि होगई जैसे पथिकको मरुदेशमें ॥ १६ ॥

तदेतद्भगन्ब्रूहि किमिदं परिणश्यति ॥ किमिदं जायते भूयः किमिदं परिवर्द्धते ॥ १७ ॥ जरामरणमापच्च जननं संपदस्तथा ॥ आविर्भावतिरोभावैर्विवर्द्धते पुनः पुनः ॥ १८ ॥ भोगैस्तैरेव तैरेव तुच्छैर्वयममी किल ॥ पश्य जर्जरतां नीता वातैरिव गिरिद्रुमाः ॥ १९ ॥ अचेतना इव जनाः पवनैः प्राणनामभिः ॥ ध्वनन्तः संस्थिता व्यर्थं यथा कीचकवेणवः ॥ २० ॥

अर्थ—हे भगवन् ! यह जगत् वा जीव क्या नाशको प्राप्तहोताहै? और नष्टहोके इसका क्या? यह पुनः उत्पन्नहोताहै उत्पन्नहोके क्या यह बढताहै? ॥ १७ ॥ वृद्धावस्था, मृत्यु, जन्म, आपत्ति, और सम्पत्ति, ये सब आविर्भाव और तिरोभावसे पुनः २ वृद्धिको प्राप्तहोतेहैं ॥ १८ ॥ देखो इनहीतुच्छभोगोंसे विषयलम्पट हम ऐसे जर्जरदशाको प्राप्तहोगयेहैं जैसे वायुसे पर्वतपरके वृक्ष ॥ १९ ॥ प्राणरूपी पवनसे मनुष्य अचेतनकेसमान ऐसेशब्द करतेहैं जैसे वायुसे बांसे ॥ २० ॥

शाम्यतीदं कथं दुःखमिति तप्तोऽस्मि चिंतया ॥ जरद्द्रुम इवोग्रेण कोटरस्थेन वन्हिना ॥ २१ ॥ संसारदुःखपाषाणनीरंध्रहृदयोऽप्यहम् ॥ निजलोकभयादेव गलद्बाष्पं न रोदिमि ॥ २२ ॥ शून्या मन्मुखवृत्तीस्ताः शुष्करोदननीरसाः ॥ विवेक एव हृत्संस्थो ममैकांतेषु पश्यति ॥ २३ ॥ भृशं मुह्यामि संस्मृत्य भावाभावमयीं स्थितिम् ॥ दारिद्र्येणेव सुभगो दूरे संसारचेष्टया ॥ २४ ॥

अर्थ—जैसे अपनीकोटरस्थअग्निसे प्राचीनवृक्ष जलताहै, ऐसेही इससंसारका दुःख कैसे शान्त हो, इस चिन्तारूपअग्निसे मैं भस्म होरहाहूं ॥ २१ ॥ संसारके दुःखोंसे मेरा हृदय निश्छिद्रपाषाणकेतुल्य होगया तोभी अपने इसमित्रादिकोंके भयसे अश्रुसहित नहींरोता ॥ २२ ॥ अश्रुसहित रोनेसे नीरस, हर्षशोकसेरहित हमारे भीतरकी वृत्तियोंको एकान्तदेशमें केवल हृदयका विवेकही देखताहै ॥ २३ ॥ जैसे कोई धनीपुरुष दैवेच्छासे दरिद्र होगया हो और वह अपनी पूर्वदशाको स्मरणकरके मोहको प्राप्तहो, ऐसेही इससंसारके प्रियतमपदार्थोंकी भाव और अभावरूपदशाको देखकर अत्यन्त मोहितहोताहूं ॥ २४ ॥

मोहयंति मनोवृत्तिं खंडयंति गुणावलिम् ॥ दुःखजालं प्रयच्छंति विप्रलंभपराः श्रियः ॥२५॥ चिंतानिचयचक्राणि नानन्दाय धनानि मे ॥ संप्रसूतकलत्राणि गृहाण्युग्रापदामिव॥२६॥विविधदोषदशापरिचिंतनैर्विततभंगुरकारणकल्पितैः ॥ मम न निर्वृतिमेति मनो मुने निगडितस्य यथा वनदंतिनः ॥२७॥खलाः काले काले निशि निशितमोहैकमिहिका गता लोके लोके विषयशतचोराः सुचतुराः ॥ प्रवृत्ताः प्रोद्युक्ता दिशि दिशि विवेकैकहरणे रणे शक्तास्तेषां क इव विदुषः प्रोज्झ्य सुभटाः ॥ २८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये वैराग्यप्रकरणे प्रथमपरितापो नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

अर्थ—मनुष्यको ठगनेवाली जो सम्पत्तियां हैं वे मनकी वृत्तियोंको मोहलेतीहैं अनेकशुभगुणोंको नाश करदेती हैं और दुःखजालको देतीहैं ॥ २५ ॥ चिंताओंका समूहके चक्ररूपी धन मुझे इसीप्रकार आनन्द नहींदेते जैसे अतिदरिद्रियोंको बहुतकुटुम्बवाले गृह ॥ २६ ॥ संसारके अनेकदोषोंकी और दुर्दशाओंकी चिंतासे तथा देहादिकके कारणोंको सदा नाशवान् समझनेसे मेरा मन ऐसे शान्त नहींहोता जैसे जंगलमें बंधेहुये हाथीका ॥ ॥ २७ ॥ इससंसारमें अज्ञानरूपीरात्रिमें अविचाररूपी कुहिरासे गाढअन्धकार छागया है, उसमें सैकडों विषयरूपीचोर हरएकदिशामें विवेकरूपीरत्न हरनेको सदा उद्योगकरतेहैं उनको रणमें पराजयकरनेको ब्रह्मज्ञानी विद्वानोंके सिवाय कौन वीर समर्थ है ॥ २८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वा० दे० मो० भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे प्रथमपरितापोनाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

---

(१) रामचंद्रजीका आशय यह है कि यह जगत् सत् है वा असत् अथवा सत् असत् विलक्षण या इस देहमें क्या नाशहोताहै क्या उत्पन्न होताहै और क्या बढताहै ॥(२)वांसकेसदृश बुद्धिमानभी अचेतनही हैं॥(३)मेरे दुःखसे ये भी रोवेंगे इससे नहीं रोता ॥

त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

जो सबमूर्खोंको प्रियहै और सदा भोगरूपी अनर्थोंको देनेवाली है उसलक्ष्मीकी निंदा इस१ ३सर्गमें कीजायगी.

श्रीराम उवाच ॥ ॥ इयमस्मिन् स्थितोदारा संसारे परिकल्पिता ॥ श्रीर्मुने परिमोहाय सापि नूनं कदर्थदा ॥ १ ॥ उल्लासबहुलानंतकल्लोलानलमाकुलान् ॥ जडान्प्रवहति स्फारान्प्रावृषीव तरंगिणी ॥२॥ चिंताडुहितरो बह्वयो भूरिदुर्ललितैधिताः ॥ चंचलाः प्रभवंत्यस्यास्तरंगाः सरितो यथा ॥ ३ ॥ एषाहि पदमेकत्र न निबध्नाति दुर्भगा ॥ दग्धेवानियताचारमितश्चेतश्च धावति ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–हे मुने! जो इससंसारमें रहनेपर अनेकसुखका कारण होनेसे उदार मानीगई है वह निंदितअर्थोंको देनेवाली लक्ष्मीभी केवल मोहकेही लिये है ॥ १ ॥ जैसे वर्षाकालमें नदी अनेक बडे २ मलिन तरंगोंको धारणकरती है ऐसेही उत्साहकी अधिकतासे अनेक मनोरथरूपीतरंगवाले मूर्खमनुष्योंको यह बहातीहै ॥ २ ॥ इस लक्ष्मीसे अनेक दुष्टचेष्टाकरनेवाली चितारूपीकन्यायें उत्पन्नहोकर ऐसे बढती हैं जैसे नदियोंमें तरंग ॥ ३ ॥ यह अभागिनी एकस्थानमें कभी नहींठहरती किंतु जलीहुई अथवा शास्त्रविरूद्ध आचरणकरनेवाली असतीस्त्रीके समान इधरउधर दौडतीफिरती है ॥ ४ ॥

जनयंती परं दाहं परामृष्टांगिका सती ॥ विनाशमेव धत्तेंतर्दीपलेखेव कज्जलम् ॥५॥ गुणागुणविचारेण विनैव किल पार्श्वगम् ॥ राजप्रकृतिवन्मूढा दुरारूढावलंबते ॥ ६॥ कर्मणा तेन तेनैषा विस्तारमनुगच्छति ॥ दोषाशीविषवेगस्य यत्क्षीरं विस्तरायते ॥ ७ ॥ तावच्छीतमृदुस्पर्शः परे स्वे च जने जनः ॥ वात्ययेव हिमं यावच्छ्रिया न परुषीकृतः ॥ ८ ॥

अर्थ—इसके शरीरको कहींसे छुओ, अर्थात् व्ययकीजाय बाहरलीजाय तो अत्यन्त दाह उत्पन्न करती है, और अपने भीतर नाशकोही ऐसे धारणकरती है, जैसे दीपशिखा छूनेसे दाह और कज्जलको ॥ ५ ॥ दुःखसे उपार्जितभी यह लक्ष्मी राजाओंकी प्रकृतिके समान गुणवान् और मूर्खका कुछभी विचार नकरके जो समीपरहताहै उसीसे लिपटजाती है ॥ ६ ॥ जिनकर्मोंका फलरूपीदूध दोषरूपीसर्पके विषके बढानेका हेतु होताहै उन्हीं २ कर्मोंसे यह लक्ष्मी बढती है ॥ ७ ॥ यहमनुष्य दयास्नेहादिद्वारा तभीतक सुशील और कोमल रहताहै जबतक लक्ष्मी इसको ष्ण और कठोर ऐसे नहींकरती जैसे वायु बर्फको ॥ ८ ॥

प्राज्ञाः शूराः कृतज्ञाश्च पेशला मृदवश्च ये ॥ पांसुमुष्टयेव मणयः श्रिया ते मलिनीकृताः ॥ ९ ॥ न श्रीः सुखाय भगवन्दुःखायैव हि वर्द्धते ॥ गुप्ता विनाशनं धत्ते मृतिं विषलता यथा ॥ १० ॥ श्रीमानजननिंद्यश्च शूरश्चाप्यविकत्थनः ॥ समदृष्टिः प्रभुश्चैव दुर्लभाः पुरुषास्त्रयः ॥ ११ ॥ एषा हि विषमा दुःखभोगिनां गहना गुहा ॥ घनमोहगजेंद्राणां विंध्यशैलमहातटी ॥ १२ ॥

अर्थ—बडेबुद्धिमान् शूर कृतज्ञ उपकारको माननेवाले सबसे प्रीतिरखनेवाले और कोमलमनुष्योंकोभी यह लक्ष्मी ऐसे मलिन करदेती है जैसे धूलीकी मूठी रत्नोंको ॥ ९ ॥ हे भगवन्! यह लक्ष्मी सुखकेलिये नहीं किंतु दुःखकेलियेही बढती है, यदि रक्षाकरो तो रक्षाकरनेवालेका नाश इसप्रकार धारणकरती है जैसे विषकी लता मृत्युको ॥ १० ॥ श्रीमान् होंके निंदारहित हो, शूरहोके अपनी बडाई न करे, प्रभु होके समदृष्टि हो, ये तीनों पुरुष संसारमें दुर्लभ हैं ॥ ११ ॥ यह श्री महाभयंकर दुःखरूपीसर्पोंकी गहनगुहा, और मोहरूपी गजेन्द्रोंके लिये विन्ध्याचलकी तटी है ॥ १२ ॥

सत्कार्यपद्मरजनी दुःखकैरवचंद्रिका ॥ सुदृष्टिदीपिका वात्या कल्लोलौघतरंगिणी ॥ १३ ॥ संभ्रमाभ्रादिपदवी विषादविषवर्द्धिनी ॥ केदारिका विकल्पानां खेदाय भयभोगिनी ॥ १४ ॥ हिमं वैराग्यवल्लीनां विकारोलूकयामिनी ॥ राहुदंष्ट्रा विवेकेंदोः सौजन्यांभोजचंद्रिका ॥ १५ ॥ इंद्रायुधवदालोलनानारागमनोहरा ॥ लोला तडिदिवोत्पन्नध्वंसिनी च जडाश्रया ॥ १६ ॥

अर्थ—यह सत्कार्यरूपी कमलोंकेलिये रात्रि है दुःखरूपी कुमुदके लिये चन्द्रकी चांदनी है, और परमार्थ दृष्टिरूपी दीपिकाके लिये महावात्या (आंधी) वा तरंगयुक्त नदी है ॥ १३ ॥ भ्रांति और भयरूपी मेघोंके लिये पूर्वकी वायुहै, विषयरूपीविषको बढानेवाली, विकल्परूपी धान्यके बढनेकी क्यारी, तथा खेद और भयके उत्पन्नकरनेकेलिये

---

(१) लक्ष्मीकी वृद्धि, युद्ध, जुआ, वाणिज्यादिकर्मोंसे होतीहै, जिसमें प्रायः पापकी सम्भावना है, और यागदानादि कर्मोंसे तो घटती है ॥

सर्पिणी है ॥ १४ ॥ वैराग्यरूपीलताके लिये पाला, दुष्टविकाररूपी उलूकोंके लिये रात्रि, विवेकरूपीचन्द्रमाकेलिये राहुका दन्त, और सुजनतारूपीकमलकेलिये चांदनी है ॥ १५ ॥ यह इंद्रके धनुषसदृश क्षणभंगुर और नानारंगोंसे मनोहर, बिजलीके समान चंचल और उत्पन्नहोतेही नष्टहोनेवाली तथा प्रायः मूर्खोंहीका आश्रय लेती है ॥ १६ ॥

चापलावजितारण्यनकुलीनकुलीनजा ॥ विप्रलंभनतात्पर्य्यजितोग्रमृगतृष्णिका ॥ १७ ॥ लहरीवैकरूपेण पदं क्षणमकुर्वती ॥ चला दीपशिखेवातिदुर्ज्ञेयगतिगोचरा ॥ १८ ॥ सिंहीव विग्रहव्यग्रकरींद्रकुलपोथिनी ॥ खड्गधारेव शिशिरा तीक्ष्णतीक्ष्णाशयाश्रया ॥ १९ ॥ नानयापहृतार्थिन्या दुराधिपरिलीनया ॥ पश्याम्यभव्यया लक्ष्म्या किंचिद्दुःखादृते सुखम् ॥ २० ॥

अर्थ—दुष्टकुलमें उत्पन्नहोनेवाली अपनीचंचलतासे जंगलकी नेवलीकोभी इसने जीतलिया है, और दूसरोंके ठगनेमें ग्रीष्मऋतुकी मृगतृष्णासेभी आगे बढीहुई है ॥ १७ ॥ तरंगके समान क्षणभरभी एकरूपसे नहींठहरती दीपकी शिखाके समान अत्यन्त चंचलहै, और इसकी गति सर्वथा जानी नहींजाती ॥ १८ ॥ युद्धमें व्याकुल मनुष्यरूपी हाथियोंके कुलको नाशकरनेकेलिये सिंहके समान खड्गधाराके समान तीक्ष्ण और कठोरहृदयवाले मनुष्योंका आश्रयकरनेवाली है ॥ १९ ॥ दूसरेके हरेहुये धनोंसे धनयुक्त और अनेकमानसीदुःखोंसे भरीहुई इसदुष्टलक्ष्मीमें दुःखको छोडके किंचित्भी सुख नहींदीखता ॥ २० ॥

दूरेणोत्सारितोऽलक्ष्म्या पुनरेव तमादरात् ॥ अहो चताश्लिष्यतीव निर्लज्जा दुर्जना सदा ॥२१॥ मनोरमा कर्षति चित्तवृत्तिं कदर्थसाध्या क्षणभंगुरा च ॥ व्यालावलीगात्रविवृत्तदेहा श्वभ्रोत्थिता पुष्पलतेव लक्ष्मीः ॥ २२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये वैराग्यप्रकरणे लक्ष्मीनिराकरणं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

अर्थ—बडेआश्चर्यकी बात है कि जिसपुरुषको इसकी सपत्नी दरिद्राने[1] दूर हटादिया उसीको यह निर्लज्जा और दुष्टा शीघ्र आदरसे आलिंगनकरने लगजाती है ॥ २१ ॥ यहलक्ष्मी स्त्रीके समान मनोहररूप धारणकरके चित्तकी वृत्तियोंको खींचलेती है दुष्टअर्थोंसे साध्य, क्षणभंगुर, सर्पोंकी पंक्तिकेसमान शरीरको लपेटेहुये, और पुराने कूपमें मनोहरपुष्पकी लताके समान दीखपडती है ॥ २२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे लक्ष्मीनिराकरणं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

इस १४ वें सर्गमें मानसिक तथा शारीरिक, रोग तथा वृद्धावस्थाग्रस्त और कामक्रोधादिसे मलिन, मूर्खके जीवन यौवन और आयुकी निंदा कीगई है.

श्रीराम उवाच ॥ ॥ आयुः पल्लवकोणाग्रलंबांबुकणभंगुरम् ॥ उन्मत्तमिव संत्यज्य यात्यकांडे शरीरकम् ॥ १ ॥ विषयाशीविषासंगपरिजर्जरचेतसाम् ॥ अप्रौढात्मविवेकानामायुरायासकारणम् ॥ २ ॥ ये तु विज्ञातविज्ञेया विश्रांता वितते पदे ॥ भावाभावसमाश्वासमायुस्तेषां सुखायते॥३॥ वयं परिमिताकारपरिनिष्ठितनिश्चयाः ॥ संसाराभ्रतडित्पुंजे मुने नायुषि निर्वृताः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-प्राणीकी आयु पल्लवके कोनेके अग्रभागमें लटकतेहुये हिमकणके समान क्षणभंगुर है वह उन्मत्तकीनाईं कुसमयमेंही इसशरीरको त्यागकर चलदेती है ॥ १ ॥ जो जन विषयरूपीसर्पोंके संगसे व्याकुलचित्त हैं और जिनकी आत्माका प्रबलविवेक नहीं है उनका आयु केवल दुःखका कारणहै ॥ २ ॥ जिन्होंने ज्ञेयपदार्थ आत्माको जानलिया है और अनन्तपरमेश्वरके व्यापकपदमें जिनको विश्राम मिलाहै और जिनको लाभ हानि दोनोंमें धैर्य है उनकीही आयु सुखका कारण है ॥ ३ ॥ हे मुने ! हमलोगोंको देहादिमेंही आत्मबुद्धिहै इसीसे संसाररूपी मेघमें बिजलीके समान चंचलआयुमें सुखी नहीं हैं ॥ ४ ॥

---

(१) दरिद्रा और लक्ष्मी दोनों विष्णुभगवान्‌की स्त्री पुराणोंमें मानीगईहैं ॥

युज्यते वेष्टनं वायोराकाशस्य च खंडनं ॥ ग्रथनं च तरंगाणामास्थानायुषि युज्यते ॥ ५ ॥ पेलवं शरदीवाभ्रमस्नेह इव दीपकः ॥ तरंगक इव लोलं गतमेवोपलक्ष्यते ॥ ६ ॥ तरंगं प्रतिबिंबेंदुं तडित्पुंजं नभोंबुजम् ॥ ग्रहीतुमास्थां बध्नामि न त्वायुषि हतस्थितौ ॥ ७ ॥ अविश्रांतमनाः शून्यमायुराततमीहते ॥ दुःखायैव विमूढोंतर्गर्भमश्वतरी यथा ॥ ८ ॥

अर्थ—वायुको लपेटलेना, आकाशको तोडदेना, और लहरोंका गूंथना, संभवहै परंतु आयुमें कुछभी विश्वास नहींहै ॥ ५ ॥ यह आयु, शरत्कालके अल्पमेघके समान तैलरहितदीपकके सदृश, और चंचलतरंगोंकीनाई नष्टसी जानपडती है ॥ ६ ॥ जलके तरंगोंमें प्रतिबिम्बितचन्द्रमाको, विद्युत (बिजुली के समूहको, और आकाशके कमलको पकडनेमें विश्वास करसक्ताहूं परंतु चंचलआयुमें नहीं॥७॥सर्वथा तृष्णाकी शान्ति होकर जिसका मन शांतनहीं हुआ है वह मूढ यही चाहताहै कि मेरी आयु बढै परंतु यह इसकी इच्छा ऐसेही दुःखके लिये है जैसे खच्चरीके गर्भ॥८॥

संसारसंसृतावस्यां फेनोऽस्मिन्सर्गसागरे॥कायवल्लयांमसो ब्रह्मन् जीवितं मे न रोचते॥९॥ प्राप्यं संप्राप्यते येन भूयो येन न शोच्यते ॥ पराया निर्वृतेः स्थानं यत्तज्जीवितमुच्यते ॥ १० ॥ तरवोपि हि जीवंति जीवंति मृगपक्षिणः ॥ स जीवति मनो यस्य मननेन न जीवति ॥ ११ ॥ जातास्त एव जगति जंतवः साधुजीविताः ॥ ये पुनर्नेह जायंते शेषा जरठगर्दभाः ॥ १२ ॥

अर्थ—इससृष्टिरूपसागरमें जो संसाररूपी चक्र है उसमें शरीररूपीलता जलके फेनके समान नाशवान् है इससे इसमें जीवन मुझे अच्छानहींलगता ॥ ९ ॥ अवश्यप्राप्तकरनेके योग्य जो जिवन्मुक्तिका सुख जो परमशांतिका स्थान है वह जिसको मिलगया वह पुनः नहीं शोचता, और उसीका जीवन सफल है ॥ १० ॥ वृक्षभी जीते हैं मृग और पक्षीभी जीते हैं परंतु सच्चाजीना उसीका है जिसका मन वासनाके क्षयहोनेसे नष्टहोगयाहै ॥ ११ ॥ इसजगत्में उन्हीका उत्पन्नहोना सफलहै और उन्हीका जीवन प्रशंसनीय है, जो इसजगत्में पुनः नहीं उत्पन्नहोते, शेषप्राणियोंका जीवन गर्दभके समान है ॥ १२ ॥

भारो विवेकिनः शास्त्रं भारो ज्ञानं च रागिणः ॥ अशांतस्य मनो भारो भारोऽनात्मविदो वपुः ॥ १३॥ रूपमायुर्मनोबुद्धिरहंकारस्तथेहितम् ॥ भारो भारधरस्येव सर्वं दुःखाय दुर्धियः ॥ १४ ॥ अविश्रांतमनाःपूर्णमापदां परमास्पदम् ॥ नीडं रोगविहंगानामायुरायासनं दृढम् ॥ १५ ॥ प्रत्यहं खेदमुत्सृज्य शनैरलमनारतम् ॥ आखुनेव जरच्छ्वभ्रं कालेन विनिहन्यते ॥ १६ ॥

अर्थ—अविवेकीमनुष्यको शास्त्रका पढना भारहै, संसारमें लिप्तमनुष्यकेलिये ज्ञान भारहै, और अशान्त मनुष्यको मन भारहै जिसको आत्मज्ञान नही है उसको देह भारहै ॥ १३ ॥ भार ढोलेवालेको जैसे भार दुःखका हेतुहै इसीप्रकार अज्ञानीपुरुषका रूप, आयु, बुद्धि, अहंकार और चेष्टा सब भारस्वरूप दुःखकेही लिये हैं ॥ १४ ॥ जिसका मन अशान्तहै उसकी आयु संपूर्ण आपत्तियोंका स्थानहै रोगरूपीपक्षियोंका निवासस्थान और प्रबलदुःखका कारण है ॥ १५ ॥ प्रतिदिन श्रमके खेदसे अशान्तमनुष्यकी आयुको काल ऐसे नष्टकरताहै. जैसे चूहा उत्तमपृथिवीको ॥१६॥

शरीरबिलविश्रांतैर्विषदाहप्रदायिभिः ॥ रोगैरापीयते रौद्रैर्व्यालैरिव वनानिलः ॥ १७ ॥ प्रस्नुवानैरविच्छेदंतुच्छैरंतरवासिभिः ॥ दुःखैराकृष्यते क्रूरैर्घुणैरिव जरद्द्रुमः ॥ १८ ॥ नूनं निगरणायाशुघनगर्द्धमनारतम् ॥ आखुर्मार्जारकेणेव मरणेनावलोक्यते ॥ १९ ॥ गंधादिगुणगर्भिण्या शून्यया शक्तिवेश्यया ॥ अन्नं महाशनेनेव जरया परिजीर्यते ॥ २० ॥

अर्थ—शरीररूपीबिलमें विश्रामकरनेवाले विषकेसमान सन्तापउत्पन्नकरनेवाले रोग प्राणिकी आयुको ऐसे पीते हैं जैसे भयंकरसर्प वनके पवनको ॥ १७ ॥ निरंतरहोनेवाले मनमें नित्रासकरनेवाले अतिक्रूरदुःखआयुको ऐसे काटते हैं, जैसे पुरानेवृक्षको घुन ॥ १८ ॥ सदा प्राणीको निगलजानेकेलिये बडीचावके साथ मृत्यु ऐसे देखतीरहतीहै जैसे बिल्ली चूहेको ॥ १९ ॥ गन्धादिगुणोंको धारणकरनेवाली प्रीतिशून्य वृद्धवेश्यारूपी वृद्धावस्था प्राणीको शक्तिरहितकरके ऐसे नष्टकरती है, जैसे अधिकभोजनकरनेवाला अन्नको ॥ २० ॥

(१।२) यद्यपि वायुका लपेटनाआदि और प्रतिबिम्ब (छाया) के चन्द्रादिका पकडनाभी असम्भवहै परन्तु कदाचित् इनके करनेकी सम्भावना हो तथापि आयुकी स्थिरतामें कुछभी विश्वास नहीं है. (३) घोडेसे गधीमें उत्पन्न हो उसको खच्चरी वा अश्वतरी कहते हैं, उसका गर्भ पेटकाटनेसे निकलता है ऐसा कहते हैं ॥

दिनैः कतिपयैरेव परिहाय गतादरम् ॥ दुर्जनः सुजनेनेव यौवनेनावमुच्यते ॥ २१ ॥ विनाशसुहृदा नित्यं जरामरणबंधुना ॥ रूपं खिगवरेणेव कृतांतेनाभिलष्यते ॥२२॥ स्थिरतया सुखभासितया तथा सततमुज्झितमुत्तमफल्गु च ॥ जगति नास्ति तथा गुणवर्जितं मरणभाजनमायुरिदं यथा ॥ २३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये वैराग्यप्रकरणे जीवितगर्हानाम चतुर्दशःसर्गः ॥ १४ ॥

अर्थ—गिनेहुयेदिनोंमे यौवनावस्था प्राणीको अनादरकेसाथ ऐसे छोडदेती है जैसे सज्जन दुर्जनको॥ २१ ॥ विनाशका मित्र, वृद्धावस्था और मृत्युका बन्धु जो काल है वह आयुको ऐसा चाहताहै, जैसे महाविषयी सुंदरताको ॥ २२ ॥ स्थिरता और जीवन्मुक्तिके सुखसे सदा त्यागीहुई और सबगुणोंसे वर्जित, मृत्युका पात्र यहआयु जैसे इस संसारमें अतितुच्छहै ऐसा तुच्छ कोईभी पदार्थ नहीं हैं ॥ २३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे जीवितगर्हा नामचतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

सबअनर्थोंका और ममतालताका मूल जो अहंकारहै उसकी निंदा विशेषकरकें इस १५ वें सर्गमें कीगई है.

श्रीराम उवाच ॥ ॥ मुधैवाभ्युत्थितो मोहान्मुधैव परिवर्धते ॥ मिथ्यामयेन भीतोऽस्मि दुरहंकारशत्रुणा॥ १ ॥ अहंकारवशादेव दोषकोशकदर्थताम् ॥ ददाति दीनदीनानां संसारो विविधाकृतिः ॥ २ ॥ अहंकारवशादापदहंकाराद्दुराधयः ॥ अहंकारवशादीहा त्वहंकारो ममामयः ॥ ३ ॥ तमहंकारमाश्रित्य परमं चिरवैरिणम् ॥ न भुंजे न पिबाम्यंभः किमु भोगान्भुजे मुने ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—अज्ञानसे जो वृथा उत्पन्नहुआ व्यर्थही चारोंओरसे बढरहाहै, ऐसे मिथ्यामूर्ति अहंकाररूपशत्रुसे मैं भयभीत होरहाहूं॥ १ ॥ यहसंसार नानाप्रकारका रूप धारणकरके विषयलम्पटकामीजनोंको अहंकारकेही प्रतापसे दोषका कोशरूप अनेकअनर्थोंको देताहै ॥ २ ॥ अहंकारसेही आपत्तियां अहंकारसेही अनेकप्रकारकी मानसीपीडा होती हैं, अहंकारसेही नानाप्रकारकी चेष्टा होती हैं, और अहंकारही मेरा परमरोगहै ॥ ३ ॥ हे मुने ! अनादिकालसे परमवैरी इसीअहंकारकेही भयसे मैं नभोजनकरताहूं, न जल पीताहूं, पुनः अन्यभोगोंको कैसे भोगसक्ताहूं ॥ ४ ॥

संसाररजनी दीर्घा माया मनसि मोहिनी ॥ तताहंकारदोषेण किरातेनेव वागुरा ॥ ५ ॥ यानि दुःखानि दीर्घाणि विषमाणि महांतिच ॥ अहंकारात्प्रसूतानि तान्यगात्खदिरा इव ॥ ६॥ शमेंदुसैंहिकेयास्यं गुणपद्महिमाशनिम् ॥ साम्यमेघशरत्कालमहंकारं त्यजाम्यहम्॥ ७ ॥ नाहं रामो न मे वांछा भावेषु न च मे मनः ॥ शांत आसितुमिच्छामि स्वात्मनीव जिनो यथा ॥ ८ ॥

अर्थ—संसाररूपीरात्रिमें मनमें मोहउत्पन्नकरनेवाली बडीभारी माया अहंकारके दोषसे ऐसे विस्तारको प्राप्तहुई है जैसे व्याधसे मृगोंको फसानेवाला जाल ॥ ५ ॥ जितने छोटे या बडे महाभयंकर दुःखहैं वे सब अहंकारसे ऐसे उत्पन्नहुये हैं जैसे पर्वतसे खदिरके वृक्ष ॥ ६ ॥ शमरूपीचन्द्रमाकेलिये राहुका मुख, उत्तमगुणरूपी कमलोंके लिये हिमरूपीवज्र और समदृष्टिरूपीमेघकेलिये शरत्कालरूप जो अहंकारहै उसे मैं त्यागताहूं ॥ ७ ॥ देहआदिमें अभिमान त्यागनेसे मैं दशरथका पुत्र राम नहींहूं, न संसारी पदार्थोंमें मेरी इच्छा और न मनहै, मैं बुद्धदेवकीनाई आत्मामेंही शान्तरहना चाहताहूं ॥ ८ ॥

अहंकारवशाद्यद्यन्मया भुक्तं हुतं कृतम् ॥ सर्वं तत्तदवस्त्वेव वस्त्वहंकाररिक्तता ॥९॥ अहमित्यस्ति चेद्ब्रह्मन्नहमापदि दुःखितः ॥ नास्ति चेत्सुखितस्तस्मादनहंकारिता वरं॥ १० ॥ अहंकारं परित्यज्य मुने शांतमनस्तया ॥ अवतिष्ठे गतोद्वेगो भोगौघो भंगुरास्पदः ॥ ११ ॥ ब्रह्मन्यावदहंकारवारिदः परिजृंभते ॥ तावद्विकासमायाति तृष्णाकुटजमंजरी ॥ १२ ॥

अर्थ—अहंकारके वशसे जो मैंने खाया, हवनकिया, या अन्यकृत्य किया वह सब असारहै सारपदार्थ वही है जिसमें अहंकार नहीं है ॥ ९ ॥ हे ब्रह्मन् ! यदि अहंकारहै तभी आपत्तियोंमें प्राणी दुःखीहोताहै और यदि अहंकार

नहीं तो सुखीहोताहै इसलिये अहंकारका न होनाही उत्तमहै ॥ १० ॥ हे मुने! अहंकारको त्यागकर शान्तचित्त हूं, भोगोंका समूह जो है वह तो क्षणभंगुरताका स्थानहै ॥ ११ ॥ हे ब्रह्मन्! जबतक अहंकाररूपी मेघ फैलाहुआहै तभीतक तृष्णारूपी कुटकीलता लहलहाती है ॥ १२ ॥

अहंकारघने शांते तृष्णा नवतडिल्लता ॥ शांतदीपशिखावृत्त्या क्वापि यात्यतिसत्वरम् ॥ १३ ॥ अहंकारमहाविंध्ये मनोमत्तमहागजः ॥ विस्फूर्जतिघनास्फोटैः स्तनितैरिव वारिदः ॥ १४ ॥ इह देहमहारण्येघनाहंकारकेसरी ॥ योऽयमुल्लसति स्फारस्तेनेदं जगदाततम् ॥ १५ ॥ तृष्णातंतुलवप्रोता बहुजन्मपरंपरा ॥ अहंकारोग्रखिंगेन कंठे मुक्तावली कृता ॥ १६ ॥

अर्थ—अहंकाररूपीमेघके शान्तहोतेही तृष्णारूपी नईविजुलीकी लता शान्त दीपशिखाके समान अतिशीघ्र नजाने कहां चलीजातीहै ॥ १३ ॥ अहंकाररूपी महाविन्ध्याचलमें मनरूपी महामत्तगज ऐसे बडीगर्जना करताहै जैसे विजुलीसे मेघ ॥ १४ ॥ इस देहरूपी महाजंगलमें अहंकाररूपीसिंह जो बडेउत्साहसे विहार कररहाहै उसीके गर्वसे यह जगत् व्याप्त है ॥ १५ ॥ तृष्णारूपीसूत्रमें गूंथी हुई अनेक जन्मकी परम्पराको इस अहंकारने कण्ठमें ऐसे धारण कियाहै जैसे कामीपुरुपने मोतियोंकी मालाको ॥ १६ ॥

पुत्रमित्रकलत्रादि तंत्रमंत्रविवर्जितम् ॥ प्रसारितमनेनेह मुनेऽहंकारवैरिणा॥ १७ ॥ प्रमार्जितेऽहमित्यस्मिन्पदे स्वयमपि द्रुतम् ॥ प्रमार्जिता भवंत्येते सर्व एव दुराधयः ॥ १८ ॥ अहमित्यंबुदे शांते शनैश्च शमशालिनी ॥ मनोगगनसंमोहमिहिका क्वापि गच्छति ॥ १९ ॥ निरहंकारवृत्तेर्मे मौर्ख्याच्छोकेन सीदतः ॥ यत्किंचिदुचितं ब्रह्मंस्तदाख्यातुमिहार्हसि ॥ २० ॥

अर्थ—हे मुने! इस अहंकाररूपी शत्रुहीने तंत्रमंत्रके विनाही स्त्रीपुत्रादिकोंमें मोहजाल फैलारक्खाहै ॥ १७॥ इस अहंकारको मूलसे उखाडनेहीसे जितनी मानसीपीडाहैं सब आपसे आप शीघ्र दूरहोजाती हैं ॥ १८ ॥ इस अहंकाररूपी मेघके धीरे २ शान्तहोनेहीपर मनरूपी आकाशमें रहनेवाली जो भ्रान्तिरूपी कुहिराहै वह न मालूम कहां जाता है ॥ १९ ॥ हे ब्रह्मन्! अहंकारसे रहित मैं मूर्खतासे दुःख पारहाहूं, अब मेरेलिये जो कुछ उचित हो वह कहिये ॥ २० ॥

सर्वापदां निलयमध्रुवमंतरस्थमुन्मुक्तमुत्तमगुणेन न संश्रयामि ॥ यत्नादहंकृतिपदं परितोऽतिदुःखं शेषेण मां समनुशाधि महानुभाव ॥ २१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये वैराग्यप्रकरणे
अहंकारजुगुप्सानाम पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

अर्थ—हे महानुभाव! संपूर्णआपत्तियोंका स्थान, नाशवान् हृदयमें रहनेवाला उत्तमगुणोंसे शून्य, चारों ओरसे दुःखरूप जो अहंकारहै उसको मैं बडेयत्नसे छोडताहूं अब जो कुछ शेष (आत्मतत्व) हो, उसका उपदेश आप मुझे कीजिये ॥ २१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वा० दे० मो० भा० वैराग्यप्रकरणे
अहंकारजुगुप्सानाम पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने इस १६ वें सर्गमें अनेकयुक्तियों और दृष्टान्तोंसे चित्तके दोषोंको विस्तारपूर्वक वर्णनकियाहै.

श्रीराम उवाच ॥ ॥ दोषैर्जर्जरतां याति सत्कार्यादार्यसेवनात् ॥ वातांतःपिच्छलववच्चेतश्चलतिचंचलम् ॥ १ ॥ इतश्चेतश्च सुव्यग्रं व्यर्थमेवाभिधावति ॥ दूराद्दूरतरं दीनं ग्रामे कौलेयको यथा ॥ २ ॥ न प्राप्नोति क्वचित्किंचित्प्राप्तैरपि महाधनैः ॥ नांतःसंपूर्णतामेति करंडक इवांबुभिः ॥ ३ ॥ नित्यमेव मुने शून्यं कदाशावागुरावृतम् ॥ न मनो निर्वृतिं याति मृगो यूथादिव च्युतः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजीबोले—वायुसे मोरके पंखका अग्रभाग जिसप्रकार चंचलहोताहै ऐसाही कामक्रोधादि दोषोंसे चंचल यह चित्त उत्तमकार्य और महात्माओंकी सेवाको छोडके परमपुरुषार्थके साधनमें सर्वथा असमर्थ होजाताहै ॥ १॥ जैसे ग्रामका कुत्ता इधरउधर दूर दौडताहै ऐसेही यह चित्तभी मनोरथ न पूर्णहोनेसे अतिव्याकुलतासे इधरउधर दौडताफिरताहै ॥ २ ॥ इधरउधर दौडताहुआभी यह कुछ नहींपाता, और यदि महाधन कहीं मिलगया तोभी इसकी

पूर्णता ऐसे नहींहोती; जैसे वांस या बेतकी सींकसे बनेहुये टोकरकी पानीसे ॥ ३ ॥ दुष्टआशाओंके जालसे बन्धा हुआ यह मन कभी शान्तिको ऐसे नहींपाता, जैसे झुण्डसे विछरा हुआ मृग ॥ ४ ॥

तरंगतरलां वृत्तिं दधदालूनशीर्णताम् ॥ परित्यज्य क्षणमपि हृदये याति न स्थितिम् ॥ ५ ॥ मनो मननविक्षुब्धं दिशो दश विधावति ॥ मंदराहननोद्भूतं क्षीरार्णवपयो यथा ॥ ६ ॥ कल्लोलकलितावर्तं मायामकरमालितम् ॥ न निरोद्धुं समर्थोऽस्मि मनोमयमहार्णवम् ॥ ७ ॥ भोगदूर्वांकुराकांक्षी श्वभ्रपातमचिंतयन् ॥ मनोहरिणको ब्रह्मन्दूरं विपरिधावति ॥ ८ ॥

अर्थ—चारो ओरसे छिन्न और जर्जरीभूत वृत्तियोंको यह सदा धारणकरताहै, और महानष्ट विचारोंको छोडकर यह क्षणभरभी हृदयमें शान्तिको नहींपाता ॥ ५ ॥ यह मन सदा विषयके ध्यानसे व्याकुल दशोंदिशाओंमें ऐसे दौडताहै. जैसे मन्दराचलके आघातसे क्षीरसमुद्रका जल ॥ ६ ॥ तरंगोंके सदृश अनेकभोगोंके उत्साहरूपी भंवरेहयुक्त मायारूपीमकरोंसे पूर्ण इसमनरुपी महासमुद्रको रोकनेमें मैं समर्थ नहींहूं ॥ ७ ॥ हे ब्रह्मन् ! गढेमें गिरनेकी कुछभी चिन्ता न करके सदा भोगरूपीदूवका अभिलाषी यह मनरूपी हरिण दूरही दूर दौडताहै ॥ ८ ॥

न कदाचन मे चेतः स्वामालूनविशीर्णताम् ॥ त्यजत्याकुलया वृत्त्या चंचलत्वमिवार्णवः ॥ ९ ॥ चेतश्चंचलया वृत्त्या चिंतानिचयचंचुरम् ॥ धृतिं बध्नाति नैकत्र पंजरे केसरी यथा ॥ १० ॥ मनो मोहरथारूढं शरीरात्समतासुखम् ॥ हरत्यपहतोद्वेगं हंसः क्षीरमिवांभसः ॥ ११ ॥ अनल्पकल्पनातल्पे विलीनाश्चित्तवृत्तयः ॥ मुनींद्र न प्रबुद्ध्यंते तेन तप्येऽहमाकुलः ॥ १२ ॥

अर्थ—जैसे समुद्र चंचलताको कभी नहींत्यागता इसीप्रकार इस चित्तनेभी अपने छिन्नभिन्न अतिचंचल स्वभावको कभी नहींत्यागा ॥ ९ ॥ यह चित्त स्वयं चंचलस्वभाववालाहै और चिंताओंके समूहसे अतिचपलरूपको ऐसे धारणकरताहै, जैसे पिंजरेमें सिंह ॥ १० ॥ यह मन मोहरूपीरथपर आरूढ (चढके) होके बडी शीघ्रताकेसाथ शरीरसे समदृष्टिरूपसुखको ऐसे हरलेताहै; जैसे हँस जलमेंसे दूधको ॥ १२ ॥ हे मुनींद्र! अनेकप्रकारकी कल्पना (संसारिक विषयोंको चिंतन) रूपी शय्यापर चित्तकी वृत्तियां सोरही हैं वे किसीप्रकार नहींजागती, इससे मैं अत्यन्त व्याकुलहोकर संतप्तहूं ॥ १२ ॥

क्रोडीकृतदृढग्रंथितृष्णासूत्रे स्थितात्मना ॥ विहगो जालकेनेव ब्रह्मन्बद्धोऽस्मि चेतसा ॥ १३ ॥ संततामर्षधूमेन चिंताज्वालाकुलेन च ॥ वन्हिनेव तृणं शुष्कं मुने दग्धोऽस्मि चेतसा ॥ १४ ॥ क्रूरेण जडतां यातस्तृष्णाभार्यानुगामिना ॥ शवं कौलेयकेनेव ब्रह्मन्भुक्तोऽस्मि चेतसा ॥ १५ ॥ तरंगतरलास्फालवृत्तिना जडरूपिणा ॥ तटवृक्षइवौघेन ब्रह्मन्नीतोऽस्मि चेतसा ॥ १६ ॥

अर्थ—हे ब्रह्मन् ! संसारकी अनेक मायारूपी दृढग्रन्थियां हैं जिसमें ऐसे तृष्णारूपीसूत्रमें निवासकरनेवाले इसचित्तसे मैं ऐसा बन्धाहूं, जैसे जालसे पक्षी ॥ १३ ॥ हे मुने ! निरंतर क्रोधरूपीधूमसे युक्त और चिंतारूपी ज्वालासे व्याप्त इसचित्तरूप अग्निसे मैं ऐसे जलाहुआहूं जैसे अग्निसे सूखातृण ॥ १४ ॥ हे ब्रह्मन् ! तृष्णारूपी अपनीस्त्रीकेपीछे २ चलनेवाले इस निठुरचित्तने मुझे जडबनाके ऐसे भक्षणकरलियाहै, जैसे कुत्तेने मृतकको ॥ १५ ॥ तरंगोंके सदृश चंचल और शीघ्रगतिको धारणकरनेवाले इस जडरूपीचित्तने मुझे ऐसा गिरादिया है; जैसे जलके प्रवाहने नदीके किनारेके वृक्षको ॥ १६ ॥

अवांतरनिपाताय शून्येवाभ्रमणाय च ॥ तृणं चंडानिलेनेव दूरे नीतोऽस्मि चेतसा ॥ १७ ॥ संसारजलधेरस्मान्नित्यमुत्तरणोन्मुखः ॥ सेतुनेवपयःपूरो रोधितोऽस्मि कुचेतसा ॥ १८ ॥ पातालाद्गच्छता पृथ्वीं पृथ्व्याः पातालगामिना ॥ कूपकाष्ठं कुदाम्नेव वेष्टितोऽस्मि कुचेतसा ॥ १९ ॥ मिथ्यैव स्फाररूपेण विचाराद्विशरारुणा ॥ बालो वेतालकेनेव गृहीतोऽस्मि कुचेतसा ॥ २० ॥

अर्थ—आवान्तर (मध्य) में गिरनेको वा तिर्य्यक्योनियोंमें भ्रमणकरनेकेलिये इसचित्तने धर्मसे मुझे ऐसे दूर करदिया है, जैसे प्रबलवायु तृणको ॥ १७ ॥ इस संसाररूपी समुद्रसे सदा पार होनेका अभिलाषी मैं इस दुष्ट चित्तसे ऐसा रुकाहूं; जैसे बांधसे जल ॥ १८ ॥ पातालसे पृथिवीपर जानेवाली और पृथिवीसे पातालमें जानेवाली अर्थात् नीचे ऊपर जानेवाली इस दुष्ट चित्तरूपीरस्सीसे मैं ऐसा बंधाहूं; जैसे कुयेंका काठ ॥ १९ ॥ मिथ्याही भयंकर

(१) जहां कूयेसे टांकीसे पानी निकालते हैं वहां एक काठमें एक तरफ मट्टी या और किसीप्रकारका बोझा बांध देतेहैं जिसमें जल सरलतासे निकलआवै और एक रस्सीसे बांधी रहतीहै जिसमें जलखींचनेका पात्रभी यह नीचे ऊपर आता जाता रहता है इसीको कूपका काठ कहतेहैं ॥

दीर्घरूप धारणकियेहुये, और विचारसे स्वरूपरहित इस दुष्टचित्तने मुझे ऐसा पकडाहै जैसे वेतालने लडकेको ॥ २० ॥

वन्हेरुष्णतरः शैलादपि कष्टतरक्रमः ॥ वज्रादपि दृढो ब्रह्मन् दुर्निग्रहमनोग्रहः ॥ २१ ॥ चेतः पतति कार्येषु विहगः स्वामिषेष्विव ॥ क्षणेन विरतिं याति बालः क्रीडनकादिव ॥ २२ ॥ जडप्रकृतिरालोलोविततावर्त्तवृत्तिमान् ॥ मनोब्धिरहितव्यालो दूरं नयति तात माम् ॥ २३ ॥ अप्यब्धिपानान्महतः सुमेरून्मूलनादपि ॥ अपि वह्न्यशनात्साधो विषमश्चित्तनिग्रहः ॥ २४ ॥

अर्थ—हे ब्रह्मन्! यह मनरूपीपिशाच, अग्निसेभी अधिकउष्ण, पर्वतसेभी उल्लंघनकरनेमें कठिन और वज्रसेभी कठोर है बडीकठिनतासेभी नहीं रुकता है ॥ २१ ॥ यह चित्त विषयके कार्य्योंमें तो ऐसे गिरता है; जैसे पक्षी मांसकी ओर, और सत्कार्योंसे शीघ्र ऐसे विरक्तहोताहै, जैसे बालक खिलौनेसे ॥ २२ ॥ हे तात ! यह जडप्रकृतिवाला, अतिचंचल, बडेविषयरूपीभवरवाला कामक्रोधादि शत्रुरूप सर्प हैं जिसमें ऐसा यह मनरूपी समुद्र मुझे अत्यन्तदूर खींचे लियेजाताहै ॥ २३ ॥ हे साधो! समुद्रके पानसे, बडेभारीसुमेरुपर्वतको मूलसे उखाडनेसे, और अग्निके भोजनसेभी चित्तको वशकरना अतिकठिनहै ॥ २४ ॥

चित्तं कारणमर्थानां तस्मिन्सति जगत्त्रयम् ॥ तस्मिन् क्षीणे जगत्क्षीणं तच्चिकित्स्यं प्रयत्नतः ॥ २५ ॥ चित्तादिमानि सुखदुःखशतानि नूनमभ्यागतान्यगवरादिव काननानि ॥ तस्मिन्विवेकवशतस्तनुतां प्रयाते मन्ये मुने निपुणमेव गलंति तानि ॥ २६ ॥ सकलगुणजयाशा यत्र बद्धा महद्भिस्तमरिमिह विजेतुं चित्तमभ्युत्थितोऽहम् ॥ विगतरतितयांतर्नाभिनंदामि लक्ष्मीं जडमलिनविलासां मेघलेखामिवेंदुः ॥ २७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये
वैराग्यप्रकरणेचित्तदौरात्म्यं नाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

अर्थ—सबपदार्थोंका कारण चित्तही है, उसके रहनेसेही तीनोंलोकका भान होताहै. और उसके क्षीणहोनेपर जगत्भी क्षीणहोजाताहै इसलिये इसचित्तको बडेयत्नसे रोकनाचाहिये ॥ २५ ॥ हे मुने ! इसबातको मैं मानताहूं कि चित्तसेही सम्पूर्ण सुख दुःख ऐसे उत्पन्नहुये हैं जैसे बडेपर्वतसे वन, इसके क्षीणहोनेहीपर वे आप ले आप क्षीणहोजाते हैं ॥ २६ ॥ जिसचित्तके जीतनेहीपर शांतिआदिगुणोंकी प्राप्तिकी आशा महात्माओंने बांधी है उसी प्रबलशत्रुको जीतनेकेलिये मैं उद्यतहूं. और वैराग्यके प्राप्तहोनेसे, मूर्ख और मलिनपुरुषोंको आनन्ददेनेवाली लक्ष्मीको मैं हृदयसे ऐसे नहींचाहता, जैसे चन्द्रमा मेघकी पंक्तिको ॥ २७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे
वैराग्यप्रकरणे चित्तदौरात्म्यं नाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

सबपापोंकी माता, दीनता, कृपणता और मृत्युको देनेवाली, संपूर्णजगत्को भ्रमणकरानेवाली और दोषोंमें प्रधान जो तृष्णा है, उसकी निंदा इस १७ वें सर्गमें कीगई है.

श्रीराम उवाच ॥ ॥ हार्दांधकारशर्वर्या तृष्णयेह दुरंतया ॥ स्फुरंति चेतनाकाशे दोषाः कौशिकपंक्तयः ॥ १ ॥ अंतर्दाहप्रदायिन्या समूढरसमार्दवः ॥ पंक आदित्यदीप्त्येव शोषं नीतोऽस्मि चिंतया ॥ २ ॥ मम चित्तमहारण्ये व्यामोहतिमिराकुले ॥ शून्ये तांडविनी जाता भृशमाशापिशाचिका ॥ ३ ॥ वचोरचितनीहारा कांचनोपवनोज्ज्वला ॥ नूनं विकासमायाति चिंताचणकमंजरी ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-हृदयके परमप्रेमका स्थान जो आत्मतत्व वा विवेक है उसको आच्छादनकरनेको अंधकारमयदुःखसेभी हटानेके अयोग्य इस तृष्णारूपीरात्रिसेही जीवरूपीआकाशमें दोषरूपी उलूकोंकी पंक्ति चमकती है ॥ १ ॥ अन्तःकरणमें दाह उत्पन्नकरनेवाली इस तृष्णारूपचिन्तासे स्नेह और दयारहित मैं ऐसे सूखगयाहूं, जैसे सूर्यकी किरणसे रस और कोमलतारहित पंक ॥ २ ॥ अनेक व्यामोहरूपीअन्धकारसे व्याप्त, मेरे चित्तरूपी शून्य जंगलमें यह आशारूपीपिशाचिका बडी नाचनेवाली वेश्या होगई है ॥ ३ ॥ दुःखके वचनोंसे रचित आंसूरूपकुहिरावाली, सोने आदिकी इच्छासे पीतवर्णवाली यह चिन्तारूप चनेकी लता तृष्णारूपी खेतमें प्रफुल्लितहोती है ॥ ४ ॥

---

(१) जिस मनुष्यका चित्त, वासना नष्ट होनेसे क्षीण होजाताहै उसकेलिये दुःखदायी न होनेसे मानो जगत् नष्टही होगया ॥

अलमंतर्भ्रमायैव तृष्णा तरलिताशया ॥ आयाता विषमोल्लासमूर्मिरंबुनिधाविव ॥ ५ ॥ उद्दामकल्लोलरवा देहाद्रौ वहतीह मे ॥ तरंगतरलाकारा तरत्तृष्णातरंगिणी ॥ ६ ॥ वेगं संरोद्धुमुदितो वात्ययेव जरत्तृणम् ॥ नीतः कलुषया क्कापि तृष्णया चित्तचातकः ॥ ७ ॥ यां यामहमतीवास्थां संश्रयामि गुणश्रियम् ॥ तां तां कृंतति मे तृष्णा तंत्रीमिव कुमूपिका ॥ ८ ॥

अर्थ—कष्टसाध्य धनार्जनमें यह तृष्णा अन्तःकरणको भ्रमानेके लिये ऐसे आती है जैसे समुद्रमें तरंग ॥ ५ ॥ अधिकनिन्दा और मिथ्याभाषणरूपतरंगके शब्दसहित चंचलतरंगयुक्त और एकविषयसे दूसरेविषयमें शीघ्रतासे दौडनेवाली यह तृष्णारूपी नदी मेरे शरीररूपी पर्वतपर वहरही है ॥ ६ ॥ जब यह चित्तरूपी चातक, धर्म, मेघ, समाधिके रसके पानार्थ अपनी चपलता रोकनेमें उद्यतहोताहै उसीसमय यह दुष्टतृष्णा कहींसे कहीं उडाके ऐसे लेजाती है, जैसे पुराणे तृणको आँधी ॥ ७ ॥ विवेक और वैराग्यादि उत्तमपदार्थोंकी जिस जिस स्थितिका आश्रय मैं लेता हूं उस २ को यह तृष्णा ऐसे काटती है जैसे वीणाको दुष्टमूपिका ॥ ८ ॥

पयसीव जरत्पर्णं वायाविव जरत्तृणम् ॥ नभसीव शरन्मेघश्चिंताचक्रे भ्रमाम्यहम् ॥ ९ ॥ गंतुमास्पदमात्मीयमसमर्थधियो वयम् ॥ चिंताजाले विमुह्यामो जाले शकुनयो यथा ॥ १० ॥ तृष्णाभिधानया तात दग्धोस्मि ज्वालया तथा ॥ यथा दाहोपशमनमाशंके नामृतैरपि ॥ ११ ॥ दूरं दूरमितो गत्वा समेत्य च पुनः पुनः ॥ भ्रमत्याशु दिगंतेषु तृष्णोन्मत्ता तुरंगमी ॥ १२ ॥

अर्थ—जैसे पानीकेचक्रमें पुरानापत्ता वायुकेचक्रमें पुरानातृण और आकाशमें शरदृऋतुका मेघ भ्रमणकरता है, ऐसेही चिंतारूपीचक्रमें मैं भ्रमणकररहाहूं ॥ ९ ॥ हमारा जो वास्तविक निजरूप (आत्मा) है उसको प्राप्त करनेमें असमर्थबुद्धि हम चिन्ताकेजालमें ऐसे फसे हैं जैसे जालमें पक्षी ॥ १० ॥ हे तात! इस तृष्णारूपीअग्निने मुझे ऐसा भस्मकरदियाहै कि उस दाहके शान्तहोनेकी आशा मैं अमृतसेभी नहींकरता ॥ ११ ॥ जैसे उन्मत्तघोडी यहांसे बार २ अतिदूरजाती है और पुनः आती है इसीकारण तृष्णाभी दिशाओंके अन्ततक बडीशीघ्रतासे भ्रमण करतीरहती है ॥ १२ ॥

जडसंसर्गिणी तृष्णा कृतोर्ध्वाधोगमागमा ॥ क्षुब्धा ग्रंथिमती नित्यमारघट्टाग्ररज्जुवत् ॥ १३ ॥ अंतर्ग्रथितया देहे सर्वदुश्छेदयानया ॥ रज्ज्वेवाशु बलीवर्दस्तृष्णया वाह्यते जनः ॥ १४ ॥ पुत्रमित्रकलत्रादितृष्णया नित्यकृष्टया ॥ खगेष्विव किरात्येदं जालं लोकेषु रच्यते ॥ १५ ॥ भीषयत्यपि धीरं मामंधयत्यपि सेक्षणम् ॥ खेदयत्यपि सानंदं तृष्णा कृष्णेव शर्वरी ॥ १६ ॥

अर्थ—जडसे सम्बन्धरखनेवाली, नीचे ऊपर गमन आगमन करनेवाली, अनेकग्रंथिसहित अतिचंचल यह तृष्णाअरघट्ट (अरहठ) की रस्सीकेसमान सदा भ्रमणकियाकरती है ॥ १३ ॥ मनमें गूँथीहुई सर्वथा काटनेको असमर्थ यह तृष्णा मनुष्यको ऐसा घुमाती है जैसे नासिकाकी रस्सी बैलको ॥ १४ ॥ इस तृष्णाने संसारमें पुत्र, मित्र, स्त्री, और धनादिरूप जाल ऐसा फैलाया है जैसे व्याधने पक्षियोंके लिये ॥ १५ ॥ यह तृष्णारूपअंधेरीरात्रिमें धीराभी हूं तोभी डराती है, विवेकरूपीनेत्रसहित हूं तोभी अन्धाकरती है, और आनन्दसहित हूं तोभी दुःखी करती है ॥ १६ ॥

कुटिला कोमलस्पर्शा विषवैषम्यशंसिनी ॥ दशत्यपि मनाक् स्पृष्टा तृष्णा कृष्णेव भोगिनी ॥ १७ ॥ भिंदती हृदयं पुंसां मायामयविधायिनी ॥ दौर्भाग्यदायिनी दीना तृष्णा कृष्णेव राक्षसी ॥ १८ ॥ तंत्री तंत्रीगणैः कोशं दधाना परिवेष्टितम् ॥ नानंदे राजते ब्रह्मंस्तृष्णा जर्जरवल्लकी ॥ १९ ॥ नित्यमेवातिमलिना कटुकोन्माददायिनी ॥ दीर्घतंत्री घनस्नेहा तृष्णा गव्हरवल्लरी ॥ २० ॥

अर्थ—कुटिल कोमलस्पर्शवाली, विषयरूपीमहादुःखदाय विपदेनेवाली इसतृष्णारूप कालीसांपिनीको तनिकभी छुओ तो तुरंत काटही लेती है ॥ १७ ॥ मनुष्योंके हृदयोंको वेधन करनेवाली अनेकमाया और सांसारिक प्रपंचरूपीरोगोंको उत्पन्नकरनेमें बडीप्रवीण, दौर्भाग्य और दीनताके देनेवाली यह तृष्णारूपी कालीराक्षसी है ॥ १८ ॥ ...तात् नीचे ऊपर जानेवाले (१) समूहोंसे शरीरको धारणकियेहुये यह तृष्णारूपी फूटी और पुरानी वीणा मुझे मांगलिक उत्सवमें अच्छी नहींलगती ॥ १९ ॥ नित्यही अत्यन्तमलिन परिणाममें दुःख और उन्मादकरनेवाली अधिकस्नेहवाली यह तृष्णारूपलता पर्वतकी गुफासे उत्पन्नहुई है ॥ २० ॥

...फला व्यर्थमुन्नता ॥ अमंगलकरी क्रूरा तृष्णा क्षीणेव मंजरी ॥ २१ ॥ अनाववानुधावति ॥ न चाप्नोति फलं किंचित्तृष्णा जीर्णेव कामिनी ॥ २२ ॥ संसा-

(१) जहां कूयेसे टांकीसे पानी ... जिसमें जल सरलतासे निकलआवे ... रहता है इसीको कूपका काठ कहतेहैं

रवृंदे महति नानारससमाकुले ॥ भुवनाभोगरंगेषु तृष्णा जरन्नर्त्तकी ॥ २३ ॥ जराकुसुमितारूढा पातोत्पातफलावलिः ॥ संसारजंगले दीर्घे तृष्णा विषलता तता ॥ २४ ॥

अर्थ—दुःखदायिनी, फलोंसे शून्य व्यर्थ बहुतबढीहुई, अमंगलकरनेवाली, तथा अनेककांटोंसे क्रूर, यह तृष्णारूप क्षीणमंजरी है ॥ २१ ॥ चित्तको वशकरनेमें असमर्थभी यह तृष्णा वृद्धवेश्याकेसदृश चारोंओर दौडती है परंतु कहींभी कुछ फल नहींपाती ॥ २२ ॥ नानारससे व्याप्त इस बडेभारी संसारके समूहमें भूवनके भोगरूपनृत्यशालाओंमें यह तृष्णारूपिणी वृद्धनर्तकी है ॥ २३ ॥ इस संसाररूपीमहाजंगलमें वृद्धावस्थारूपीपुष्पको धारणकियेहुये, अनर्थ और उत्पातरूपीफलोंसे पूर्ण तृष्णारूपीविषकी लहलहातीलता व्याप्त होरही है ॥ २४ ॥

यत्र शक्नोति तत्रापि धत्ते तांडवितां गतिम् ॥ नृत्यत्यानंदरहितं तृष्णा जीर्णेव नर्त्तकी ॥२५॥ भृशं स्फुरति नीहारे शाम्यत्यालोक आगते ॥ दुर्लंघ्येषु पदं धत्ते चिंता चपलबर्हिणी ॥ २६॥ जडकल्लोलबहुला चिरं शून्यांतरांतरा ॥ क्षणमुल्लासमायाति तृष्णा प्रावृटतरंगिणी ॥२७॥ नष्टमुत्सृज्य तिष्ठतं तृष्णा वृक्षमिवापरम् ॥ पुरुषात्पुरुषं याति तृष्णा लोलेव पक्षिणी ॥ २८ ॥

अर्थ—जिसकार्यको सिद्धकरनेमें या जहां जानेमें असमर्थ है, वहांभी यह अपनी तान आलापने लगती, और वृद्धवेश्याकेसमान आनन्दविनाभी नाचनेलगती है ॥ २५ ॥ यह चिन्तारूपिणीमयूरी, वर्षाकी झडीमें, (अज्ञानमें) खूब नाचती है, ज्ञानरूपप्रकाश आनेपर शान्त होजाती है, और असाध्यदुर्गमस्थानोंमेंभी अपना पद रखती है ॥ २६ ॥ जडोंकी तरंगोंसे पूर्ण, बीचबीचमें बहुतकालतक शून्य यह तृष्णा क्षणभरकेलिये ऐसे उत्साहको प्राप्तहोती है, जैसे वर्षाकालकी नदी ॥ २७ ॥ यह तृष्णा एकपुरुषको छोडके दूसरेके निकट ऐसे चलीजाती है, जैसे फलरहितवृक्षको छोडके फलसहितवृक्षपर पक्षिणी ॥ २८ ॥

पदं करोत्यलंघ्येऽपि तृप्तापि फलमीहते ॥ चिरं तिष्ठति नैकत्र तृष्णा चपलमर्कटी ॥२९॥ इदं कृत्वेदमायाति सर्वमेवासमंजसम् ॥ अनारतं च यतते तृष्णा चेष्टेव दैविकी ॥ ३० ॥ क्षणमायाति पातालं क्षणं याति नभःस्थलम् ॥ क्षणं भ्रमति दिक्कुंजे तृष्णा हृत्पद्मषट्पदी ॥ ३१ ॥ सर्वसंसारदोषाणां तृष्णैका दीर्घदुःखदा ॥ अंतःपुरस्थमपि या योजयत्यतिसंकटे ॥ ३२ ॥

अर्थ—यह तृष्णारूपिणी अतिचपलमर्कटी अलंघ्यस्थानमेंभी पद रखती है, तृप्तहोनेपरभी और फल चाहती है, और एकस्थानमें क्षणभरभी नहींठहरती ॥ २९ ॥ यह तृष्णा एककार्यका आरम्भकरके (उसको पूर्णकिये विनाही) दूसरे क्रमविरुद्धकार्यकी ओर आती है, और निरन्तर ऐसा यत्नकरतीरहती है, जैसे ब्रह्माकी चेष्टा ॥ ३० ॥ हृदयरूपीकमलमें तृष्णारूपीभ्रमरी, क्षणभरमें, पातालमें पहुंचती है, क्षणभरमें आकाशमें और क्षणभरमेंही दिशारूपीकुंजोंमें भ्रमणकरनेलगती है ॥ ३१ ॥ संपूर्णदोषोंमेंसे यह तृष्णाही अधिकदुःखदायिनी है और नगरके अन्तर्निवासी (जीव) कोभी अत्यंत संकटदेती है ॥ ३२ ॥

प्रयच्छति परं जाड्यं परमालोकरोधिनी ॥ मोहनीहारगहना तृष्णाजलदमालिका ॥ ३३॥ सर्वेषां जंतुजातानां संसारव्यवहारिणाम् ॥परिप्रोतमनोमाला तृष्णा बंधनरज्जुवत् ॥ ३४॥ विचित्रवर्णा विगुणा दीर्घा मलिनसंस्थितिः ॥ शून्या शून्यपदा तृष्णा शक्रकार्मुकधर्मिणी ॥ ३५ ॥ अशनिर्गुणसस्यानां फलिता शरदापदाम् ॥ हिमं संवित्सरोजानां तमसां दीर्घयामिनी ॥ ३६ ॥

अर्थ—अज्ञानरूपीकुहिरेसे महाभयंकर, यह तृष्णारूपीमेघोंकी माला परमप्रकाशको रोंकती है, और बडी भारी जडता देती है ॥ ३३ ॥ यह तृष्णा संसारमें व्यवहारकरनेवाले संपूर्णप्राणिमात्रके मनरूपीकरोडोंको गूँथनेको प्रोतमाला (बैलोंके कण्ठमें बांधके घुमानेकी रस्सी) के समान बांधनेकी रस्सी है ॥ ३४ ॥ यह तृष्णा आश्चर्यजनक नानाप्रकारके वर्णोंको धारणकियेहुये प्रत्यंचा (डोरी) शून्य, बडेआकारवाली मलिनके आश्रयमें रहनेवाली स्वयं शून्यरूप और शून्यही स्थानमें रहनेवाली, इन्द्रके धनुषके समानहै ॥ ३५ ॥ यह तृष्णा गुणरूपीधान्योंके लिये वज्रके समान, आपत्तियोंको बढानेवाली, ज्ञानरूपीकमलोंकेलिये हिमके समान और अज्ञानरूपीअंधकारकेलिये बडी रात्रिके समानहै ॥ ३६ ॥

संसारनाटकनटी कार्यालयविहंगमी ॥ मानसारण्यहरिणी स्मरसंगीतवल्लकी ॥ ३७ ॥ व्यवहाराब्धिलहरी मोहमातंगशृंखला ॥ सर्गन्यग्रोधसुलता दुःखकैरवचंद्रिका ॥ ३८ ॥ जरामरणदुःखानामेका रत्नसमुद्गिका ॥ आधिव्याधिविलासानां नित्यं मत्ता विलासिनी ॥ ३९ ॥क्षणमालोकविमला सांधकारलवा क्षणम् ॥ व्योमवीथ्युपमा तृष्णा नीहारगहना क्षणम् ॥ ४० ॥

अर्थ—पुनः यह संसाररूपी नाटककी नटी, प्रवृत्ति लक्ष कार्यरूपीघोसलेकी पक्षिणी, मनोरथरूपीमहावनकी हरिणी, और कामदेवरूपीसंगीतकी वीणाहै ॥ ३७ ॥ तथा व्यवहाररूपीसमुद्रकी लहरी, मोहरूपीमहाहस्तीकी शृंखला सृष्टिरूपीवटकी सुंदरलता, और दुःखरूपीकुमुदोंकी चांदनी है ॥ ३८ ॥ जरामरणके दुःखोंके लिये रत्नकी पेटारी, शारीरिक और मानसीदुःखरूपीविलासोंके लिये उन्मत्तविलासकरानेवाली वेश्याहै ॥ ३९ ॥ यह तृष्णा आकाशमार्गके समान क्षणभरकेलिये प्रकाशसे विमल,और क्षणभरमें भयंकर कुहिरासहित अन्धकारमयी होजाती है॥४०॥

गच्छत्युपशमं तृष्णा कायव्यायामशांतये ॥ तमी घनतमःकृष्णा यथा रक्षोनिवृत्तये ॥ ४१ ॥ तावन्मुह्यत्ययं मूको लोको विलुलिताशयः ॥ यावदेवानुसंधत्ते तृष्णा विषविषूचिका ॥ ४२ ॥ लोकोऽयमखिलं दुःखं चिंतयोज्झितयोज्झति ॥ तृष्णा विषूचिकामंत्रश्चिंतात्यागो हि कथ्यते ॥ ४३ ॥ तृणपाषाणकाष्ठादि सर्वमामिषशंकया ॥ आददाना स्फुरत्यंते तृष्णामत्सी ह्रदे यथा ॥ ४४ ॥

अर्थ—यह तृष्णा शरीरके परिश्रमोंको शान्तकरनेकेलिये ऐसे शान्तहोजाती है जैसे महाअन्धकारसहित कृष्णपक्षकी रात्रि राक्षसोंकी निवृत्तिके लिये ॥ ४१ ॥ अध्यात्मशास्त्रकी कथासे शून्य, व्याकुलचित्त, यह प्राणी तभीतक मोहितहोताहै जबतक तृष्णारूपीविषकी विषूचिकाका संग नहींछोडता ॥ ४२ ॥ यह संसार चिन्ताके त्यागतेही सम्पूर्णदुःखोंको त्यागदेताहै चिन्ताका त्यागही तृष्णारूपीविषूचिकाका नाशक मंत्रहै ॥ ४३ ॥ यह तृष्णा, तृण, पाषाण, और काष्ठादि सबपदार्थोंको मांस जानके ग्रहणकरतीहुई ऐसे फिरती है जैसे तालावमें मछली ॥ ४४ ॥

रोगार्त्तिरंगना तृष्णा गंभीरमपिमानवम् ॥ उत्तानतां नयत्याशु सूर्यांशव इवांबुजम् ॥ ४५ ॥ अंतःशून्या ग्रंथिमत्यो दीर्घस्वांकुरकंटकाः ॥ मुक्तामणिप्रिया नित्यं तृष्णा वेणुलता इव ॥ ४६ ॥ अहो बत महच्चित्रं तृष्णामपि महाधियः ॥ दुश्छेदामपि कृंतंति विवेकेनामलासिना ॥ ४७ ॥ नासिधारा न वज्रार्चिर्न तप्तायःकणार्चिषः ॥ तथा तीक्ष्णा यथा ब्रह्मंस्तृष्णेयं हृदि संस्थिता ॥ ४८ ॥

अर्थ—रोगोंकी पीडा, और स्त्री और तृष्णा धीरमनुष्यकोभी शीघ्रही ऐसे व्याकुलकरदेती है जैसे सूर्यके किरण कमलोंको ॥ ४५ ॥ भीतरसे पोली वडी चिन्तारूपकण्टकसहित अंकुरवाली मुक्ता और मणियोंसे प्रेमकरनेवाली यह तृष्णा वाँसकी लताके समानहै ॥ ४६ ॥ अहो ! अत्यन्त आश्चर्यकी बातहै कि वडेबुद्धिमान् महात्माजन, इस दुश्छेद्यतृष्णाकोभी विवेकरूपीविमलखड्गसे काट डालते हैं ॥ ४७ ॥ हे ब्रह्मन् ! जैसे तीक्ष्णधारवाली यह तृष्णा हृदयमें स्थितहै ऐसी तीक्ष्ण न तो तलवारकी धारहै, न वज्रकी किरणहै, और न तप्तलोहेके गोलेके कणहै ॥ ४८ ॥

उज्वलासिततीक्ष्णाग्रा स्नेहदीर्घदशापरा ॥ प्रकाशा दाहदुस्पर्शा तृष्णा दीपशिखा इव ॥ ४९ ॥ अपि मेरुसमं प्राज्ञमपि शूरमपि स्थिरम् ॥ तृणीकरोति तृष्णैका निमेषेण नरोत्तमम् ॥५०॥ संस्तीर्णगहना भीमा घनजालरजोमयी ॥ सांधकारोग्रनीहारा तृष्णा विंध्यमहातटी ॥ ५१ ॥ एकैव सर्वभुवनांतरलब्धलक्ष्या दुर्लक्ष्यतामुपगतैव वपुःस्थितैव ॥ तृष्णा स्थिता जगति चंचलवीचिमाले क्षीरोदकांबुतरले मधुरेव शक्तिः ॥ ५२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये वैराग्यप्रकरणे तृष्णाभंगो नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अर्थ—मध्यमध्यमें उज्वल और अन्तमें कृष्ण और तीक्ष्णअग्रभागवाली, स्त्रीपुत्रादिके बडेस्नेहसे पूर्ण, प्रकाशरूपदाहके कारणसे कठिनतासे स्पर्श करनेके योग्य, यह तृष्णा दीपकी शिखाके समान है ॥ ४९ ॥ गौरवसे गम्भीर अति बुद्धिमान्, शूर और अपरिग्रहव्रतसे स्थिर उत्तममनुष्यकोभी यह अकेली तृष्णाही क्षणभरमें तृणके समान करडालती है, काम, क्रोध, लोभ, मोह और लम्पटतादि साहसके कार्योंसे पूर्ण, भयंकररूपवाली, अतिकठिनबन्धनका कारण जालरूप रजोगुणमयी, अन्धकारमयकुहिरेको धारणकरनेवाली, यह तृष्णा विन्ध्याचलकी महाभयंकरबनकी पंक्तिहै ॥५०॥५१॥ यह अकेली तृष्णाही संपूर्णभुवनोंमें पहुंचनेवाली है; और आशा, काम और क्रोधादि अनेकनामोंसे दुर्ज्ञेय ऐसे स्थितहै, जैसे चंचल जलमात्रमें क्षीर, उदक और अम्बु, इत्यादिनामोंसे रसना इन्द्रियग्राह्य मधुरशक्ति ॥ ५२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वा० देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे तृष्णाभंगोनाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

---

(१) कहते हैं की वांससे मोती और एकप्रकारका मणी भी निकलताहै।

अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

आधिव्याधि अनेकक्लेशोंसे व्याप्त वृद्धावस्था और मरणसे क्षणभंगुर तृष्णादिका मूलकारण जो यह शरीर है उसीकी निन्दा इस १८ वें सर्गमें कीगई है.

श्रीराम उवाच ॥ ॥ आर्द्रांत्रतंत्रीगहनो विकारी परिपातवान् ॥ देहः स्फुरति संसारे सोऽपि दुःखाय केवलम् ॥ १ ॥ अज्ञोऽपि तज्ज्ञसदृशो वलितात्मचमत्कृतिः ॥ युक्त्या भव्योऽप्यभव्योऽपि न जडो नापि चेतनः ॥ २ ॥ जडाजडदृशोर्मध्ये दोलायितदुराशयः ॥ अविवेकी विमूढात्मा मोहमेव प्रयच्छति ॥ ३ ॥ स्तोकेनानंदमायाति स्तोकेनायाति खेदिताम् ॥ नास्तिदेहसमः शोच्यो नीचो गुणबहिष्कृतः ॥ ४ ॥

अर्थ—भीगेहुई आंत और नाडियोंसे अतिभयंकर, अनेकविकारोंसे युक्त, क्षणभंगुर यह शरीर जो संसारमें स्फुरित होरहाहै. सोभी केवल दुःखहीकेलिये है ॥ १ ॥ अज्ञ होनेपरभी आत्मसदृश, आत्माके चमत्कारको धारण करनेवाला, मोक्षोपायकी युक्तिसे मंगलरूप होनेपरभी अमंगल, यह शरीर न जड है, और न चेतन ॥ २ ॥ यह शरीरचित् और जड, दोनों पक्षोंमें संशयग्रस्त, दुष्टाशयसहित, अनिष्टचिंतक, अविवेकी, मूढात्मा मोहकोही देताहै ॥ ३ ॥ थोडेहीमें सुखी, और थोडेहीमें दुःखी इस शरीरके समान शोचनीय, और सबगुणोंसेहीन और अधम कोई पदार्थ नहीं है ॥ ४ ॥

आगमापायिना नित्यं दंतकेसरशालिना ॥ विकासस्मितपुष्पेण प्रतिक्षणमलंकृतः ॥ ५ ॥ भुजशाखो घनस्कंधो द्विजस्तंभशुभस्थितिः ॥ लोचनालिविलाक्रांतः शिरः पीठबृहत्फलः ॥ ६ ॥ श्रवदंतरसग्रस्तो हस्तपादसुपल्लवः ॥ गुल्मवान् कार्यसंघातो विहंगमततास्पदः ॥ ७ ॥ सच्छायो देहवृक्षोऽयं जीवपांथगणास्पदः ॥ कस्यात्मीयःकस्य पर आस्थानास्था किलात्रके ॥ ८ ॥

अर्थ—आगमापायी (उत्पन्न और नाश होनेवाले) दांतरूप केशरसे शोभायमान विकसितस्मितरूपीपुष्पसे सदा अलंकृत ॥ ५ ॥ शाखारूपीभुजाओंसे उन्नतस्कन्धवाला, दांतरूपीपक्षियोंका आधार होनेसे अत्यन्त शोभित, नेत्ररूपी भ्रमरोंके स्थानसे युक्त, शिररूपी बडे फलसहित ॥ ६ ॥ काष्टकुट्ट (कटफोडवा) नाम पक्षीसे किये हुये कर्णरूप छिद्रसहित, हस्तपादरूपी उत्तम पल्लववाला, केशरूपी गुल्मवाला, अनेक कार्योंका समूह, जीव और ईश्वररूपी पक्षियोंका स्थान ॥ ७ ॥ उत्तमछाया (कान्ति) वाला जीवरूपी पथिकसमूहोंका स्थान, यह शरीररूपी वृक्षहै, यह किसका मित्र और किसका शत्रुहै, और इस शरीररूपीवृक्षमें जो रहतेहैं उनसे न मुझे प्रीति है न द्वेषहै किंतु उपेक्षाहै ॥ ८ ॥

तात संतरणार्थेन गृहीतायां पुनःपुनः ॥ नावि देहलतायां च कस्य स्यादात्मभावना ॥ ९ ॥ देहनाम्नि वने शून्ये बहुगर्त्तसमाकुले ॥ तनूरुहासंख्यतरौ विश्वासं कोऽधिगच्छति ॥ १० ॥ मांसस्नाय्वस्थिवलिते शरीरपटहेऽदृढे ॥ मार्जारवदहं तात तिष्ठाम्यत्र गतध्वनौ ॥ ११ ॥ संसारारण्यसंरूढो विलसच्चित्तमर्कटः ॥ चिंतामंजरिताकारो दीर्घदुःखघुणक्षतः ॥ १२ ॥

अर्थ—हे तात ! संसाररूपीसमुद्रसे पारउतरनेकेलिये वार २ खरीदिहुई इसशरीररूपी नौकामें आत्मभावना किसकी होसक्ती है ॥ ९ ॥ इंद्रियरूपी अनेकगर्तोंसे व्याप्त, रोमरूपी असंख्यवृक्षसहित, इस देहनामवाले शून्य जंगलमें अधिककालतक निःशंक रहनेका विश्वास किसीको होसकताहै ॥ १० ॥ मांसनाडी और हड्डियोंसे पूर्ण अदृढ (असार) उपदेशरूपीशब्दसे वर्जित, इस देहरूपीनगरमें मार्जारकेसमान मैं रहता हूं ॥ ११ ॥ संसाररूपीवनमें उत्पन्न चिंतारूपीलताओंसे वेष्टित दुःखरूपीघुणोंसे छिद्रित ॥ १२ ॥

तृष्णाभुजंगमीगेहं कोपकाककृतालयः ॥ स्मितपुष्पोद्गमः श्रीमाञ्छुभाशुभमहाफलः ॥ १३ ॥ सुस्कंधौघलताजालो हस्तस्तवकसुन्दरः ॥ पवनस्पंदिताशेषस्वांगावयवपल्लवः ॥ १४ ॥ सर्वेन्द्रियखगाधारः सुजानुस्तंभ उन्नतः ॥ सरसश्छायया युक्तः कामपांथनिषेवितः ॥ १५ ॥ मूर्द्धसंजनितादीर्घशिरोरुहतृणावलिः ॥ अहंकारगृध्रकृतकुलायः सुषिरोदरः ॥ १६ ॥

अर्थ—तृष्णारूपीसर्पिणीका स्थान, कोपरूपीकाकोंका आलय, हास्य और पुण्यरूपीपल्लवोंका उत्पत्तिस्थान, शोभावान् शुभाशुभरूपी महाफलसहित ॥ १३ ॥ उत्तम स्कन्धरूपीशाखासमूहसहित, हस्तरूपी गुच्छोंसे अतिसुन्दर, प्राणरूपीपत्रनसे कम्पित ॥ १४ ॥ संपूर्ण इंद्रियरूपीपक्षियोंका आधार, उत्तमजंघारूपी धड (मध्य-

(१) यह शरीर आत्मा न होनेपरभी अपनेको आत्मा समझता है.

पर्व) से उन्नत (ऊंचा) कामरूपीपथिकोंसे सेवित ॥ १५ ॥ अतिदीर्घ केशरूपीतृणोंकी पंक्तियोंको शिरपर धारण करनेवाला, अहंकाररूपीगृध्रों (गीधों) का घोसला, उदररूपीकोटरसहित ॥ १६ ॥

विच्छिन्नवासनाजालमूलत्वाद्दुर्लवाकृतिः ॥ व्यायामविरसःकायवृक्षोऽयं न सुखाय मे ॥ १७ ॥ कलेवरमहंकारगृहस्थस्य महागृहम् ॥ लुठत्वभ्येतु वा स्थैर्यं किमनेन मुने मम ॥ १८ ॥ पंक्तिबद्धेंद्रियपशुं वलत्तृष्णागृहांगनम् ॥ रागरंजितसर्वांगं नेष्टं देहगृहं मम ॥ १९ ॥ पृष्ठास्थिकाष्ठसंघट्टपरिसंकटकोटरम् ॥ आंत्ररज्जुभिराबद्धं नेष्टं देहगृहं मम ॥ २० ॥

अर्थ—अनेक वासनारूपीजालोंसे बहुमूल होनेके कारणसे उखाडनेको असमर्थ, अनेक परिश्रमरूपीदीर्घतासे विरस, यह शरीररूपी वटका वृक्ष मेरे सुखके लिये नहीं है ॥ १७ ॥ हे मुने ! यह शरीर, अहंकाररूपी गृहस्थका बडा-भारी घरहै चाहै गिरपडे वा स्थिररहै मुझे इससे क्या प्रयोजन ॥ १८ ॥ जिसमें पंक्तिसे इन्द्रियरूपी पशु बँधे हैं और चंचल तृष्णारूपीस्त्री स्वामिनी (मालिक) है जिसमें रागरूपीगारेसे संपूर्णस्थान लिप्तहै. ऐसा शरीररूपीगृह मुझे इष्टनहीं है ॥ १९ ॥ पीछेकी हड्डीयोंके समूहसे न्यून अवकाशला मलमूत्रादिसे लिप्त, आँतोंसे बंधाहुआ शरीररूपी-गृह मुझे इष्टनहीं है ॥ २० ॥

प्रसृतस्नायुतंत्रीकं रक्तांबुकृतकर्दमम् ॥ जरामंकोलधवलं नेष्टं देहगृहं मम ॥ २१ ॥ चित्तभृत्यकृतानंतचेष्टावष्टब्धसंस्थिति ॥ मिथ्यामोहमहास्थूणं नेष्टं देहगृहं मम ॥ २२ ॥ दुःखार्भककृताक्रंदं सुखशय्यामनोरमम् ॥ दुरीहादग्धदासीकं नेष्टं देहगृहं मम ॥ २३ ॥ मलाढ्यविषयव्यूहभांडोपस्करसंकटम् ॥ अज्ञानक्षारवलितं नेष्टं देहगृहं मम ॥ २४ ॥

अर्थ—अनेक नाडीरूपी विशालबंधनसहित, रक्तरूपीजलसे कीचडसहित, वृद्धावस्थारूपीचूनेसे धवल शरीररूपीगृह मुझे इष्टनहीं है ॥ २१ ॥ जिसमें चित्तरूपी भृत्यने इसके गिरनेसे बचानेकी अनेकचेष्टा की है और जिसमें मिथ्या तथा अज्ञानरूपी बडे २ खम्भेहैं ऐसा शरीररूपीगृह मुझे इष्ट नहीं है ॥ २२ ॥ दुःखरूपीबालकोंके महारोदनसे संयुक्त, सुखरूपीशय्यासे मनोरम, दुष्टचेष्टारूपी नष्टदासियोंसे पूर्ण, शरीररूपीगृह मुझे इष्ट (प्रिय) नहीं है ॥ २३ ॥ मलसे पूर्ण विषयसमूहका वर्तन तथा अन्यगृहके साधनोंसे व्याप्त, अज्ञानरूपीक्षारद्रव्योंसे लिप्त यह शरीररूपीगृह मुझे इष्ट नहीं हैं ॥ २४ ॥

गुल्फगुग्गुलुविश्रांतजानूर्ध्वस्तंभमस्तकम् ॥ दीर्घदोर्दारुसुदृढं नेष्टं देहगृहं मम ॥ २५ ॥ प्रकटाक्षगवाक्षांतःक्रीडत्प्रज्ञागृहांगनम् ॥ चिंताद्दुहितृकं ब्रह्मन्नेष्टं देहगृहं मम ॥ २६ ॥ मूर्धजाच्छादनच्छन्नकर्णश्रीचंद्रशालिकम् ॥ आदीर्घांगुलिनिर्व्यूहं नेष्टं देहगृहं मम ॥ २७ ॥ सर्वांगकुड्यसंघातघनरोमयवांकुरम् ॥ संशून्यपेटविवरं नेष्टं देहगृहं मम ॥ २८ ॥

अर्थ—जो जंघारूपी आधारकाष्ठपर विश्रान्तहै और जिसमें जलका भाग तथा मस्तक बडे २ दोषरूपी दीर्घभुजाओंके काष्ठसे दृढहै, ऐसा यह शरीररूपीगृह मुझे इष्ट नहीं हैं ॥ २५ ॥ हे ब्रह्मन् ! प्रत्यक्ष ज्ञानेन्द्रियरूपीझरोखोंमें बुद्धिरूपी स्त्रीका क्रीडास्थान और चिन्तारूपीकन्यायोंका निवासस्थान, यह शरीररूपीगृह मुझे इष्ट नहीं है ॥ २६ ॥ केशरूपी आच्छादनोंसे छायाहुआ, मोती और कुण्डलयुक्त कर्णरूपी ऊपरकेगृहोंसे शोभित, दीर्घअंगुलीरूपीकाष्ठकी पुतलियोंसे सज्जित, यह शरीररूपीगृह मुझे इष्ट नहीं है ॥ २७ ॥ सम्पूर्णअंगरूपीभित्तियोंपर घनरोमरूपीयवके अंकुरोंसे परिपूर्ण, उदरके छिद्ररूपी शून्यपेटारीवाला, शरीररूपीगृह मुझे इष्ट नहीं है ॥ २८ ॥

नखोर्णनाभिनिलयं सरमारणितांतरम् ॥ भाकारकारिपवनं नेष्टं देहगृहं मम ॥ २९ ॥ प्रवेशनिर्गमव्यग्रवातवेगमनारतम् ॥ विततक्षगवाक्षं तन्नेष्टं देहगृहं मम ॥ ३० ॥ जिव्हामर्कटिकाक्रांतवदनद्वारभीषणम् ॥ दृष्टदंतास्थिशकलं नेष्टं देहगृहं मम ॥ ३१ ॥ त्वक्सुधालेपमसृणं यंत्रसंचारचंचलम् ॥ मनःसदाखनोत्खातं नेष्टं देहगृहं मम ॥ ३२ ॥

अर्थ—नखरूपीमकरीका स्थान, क्षुधारूपी कुतियासे सर्वत्र शब्दायमान भयंकर शब्दकरनेवाले पवनसे व्याप्त शरीररूपीगृह मुझे इष्ट नहीं है ॥ २९ ॥ गमनागमनमें तत्पर वायुके वेगसे व्याकुल, विस्तृत इन्द्रियरूपझरोंखेवाला, शरीररूपीगृह मुझे इष्ट नहीं ॥ ३० ॥ जिव्हारूपीमर्कटी (वानरी) से व्याप्त, मुखरूपीदरवाजेसे अतिभयंकर और जिसमें दांतरूपीहड्डीके टूकडे देखपडतेहैं ऐसा शरीररूपीगृह मुझे इष्ट नहीं है॥३१॥त्वचारूपी चूनेकेलेपसे चिक्कण अनेक भीतरके यंत्रोंके संचारसे अतिचंचल सदा मनरूपीमूषकसे खोदेहुये स्थानके तुल्य यह शरीररूपीगृह मुझे इष्टनहीं ॥३२॥

स्मितदीपप्रभोद्भासि क्षणमानंदसुंदरम् ॥ क्षणं व्याप्तं तमःपूरैर्नेष्टं देहगृहं मम ॥ ३३ ॥ समस्तरोगायतनं वलीपलितपत्तनम् ॥ सर्वाधिसारगहनं नेष्टं देहगृहं मम ॥ ३४॥ अक्षर्क्षक्षोभविषमा शून्या निःसारकोटरा ॥ तमोगहनदिक्कुंजा नेष्टो देहाऽटवी मम ॥ ३५ ॥ देहाऽऽलयं धारयितुं न शक्नोमि मुनिश्वर ॥ पंकमग्नं समुद्धर्तुं गजमल्पबलो यथा ॥ ३६ ॥

अर्थ—स्मित (किंचित् हास्य) रूपी दीपकसे कुछ कालके लिये प्रकाशमान, पुनः क्षणमेही अज्ञानके प्रवाहरूपी अन्धकारसे व्याप्त, शरीररूपी गृह मुझे इष्ट नहीं है ॥ ३३ ॥ समस्त रोगोंका स्थान, त्वचाओंकी शिथिलताका नगर, सम्पूर्ण मानसी पीडाओंसे अति भयंकर यह शरीररूपी गृह मुझे इष्ट नहीं है ॥ ३४ ॥ इन्द्रियरूपी भालुओंसे महाभयंकर शून्य और असार गुफावाला, अज्ञानरूपी गहन कुंजोंसे पूर्ण, यह शरीररूपी महाजंगल मुझे इष्ट नहीं है ॥३५॥ हे मुनीश्वर ! इस देहरूपी आलयको धारण करनेमें मैं ऐसे असमर्थहूं, जैसे कीचडमें फसे हुये हाँथीको निकालनेकेलिये अल्प अवस्थावाला बालक ॥ ३६ ॥

किं श्रिया किं च राज्येन किं कायेन किमीहितैः ॥ दिनैः कतिपयैरेव कालः सर्वं निकृंतति ॥ ३७ ॥ रक्तमांसमयस्याऽस्य सबाह्याभ्यंतरं मुने ॥ नाशैकधर्मिणो ब्रूहि कैव कायस्य रम्यता ॥ ३८ ॥ मरणावसरे कायाजीवं नानुसरंति ये ॥ तेषु तातकृतघ्नेषु कैवाऽऽस्था वद धीमताम् ॥ ३९ ॥ मत्तेभकर्णाग्रचलः कायो लंबांबुभंगुरः ॥ नसंत्यजति मां यावत्तावदेनं त्यजाम्यहम् ॥ ४० ॥

अर्थ—लक्ष्मीसे क्या ? राज्यसे क्या ? शरीरसे क्या ? और चेष्टा तथा मनोरथोंसे क्या होताहै ? क्योंकि थोडे दिनमेंही काल इन सबको काटडालताहै ॥ ३७ ॥ हे मुने ! बाहरभीतरसे रक्त, मांस और अस्थिमय, सदा क्षणभंगुर इस शरीरकी कहिये, क्या रमणीयताहै ॥ ३८ ॥ मरणके समयमें (सदा पालित पोषित) शरीर जीवके पीछे नहीं जाती, ऐसे कृतघ्न शरीरोंमें बताईये बुद्धिमानोंका क्या विश्वास ॥ ३९ ॥ मत्तहाथीके कर्णके अग्रभागके समान चंचल, लटकते हुए पानीके बिन्दुके सदृश क्षणभंगुर यह शरीर जबतक मुझे नहीं त्यागता इसके पूर्वेही मैं इसे त्यागता हूं ॥ ४० ॥

पवनस्पंदतरलः पेलवः कायपल्लवः ॥ जर्जरस्तनुवृत्तश्च नेष्टो मे कटुनीरसः ॥ ४१ ॥ भुक्त्वा पीत्वा चिरं कालं बालपल्लवपेलवाम् ॥ तनुतामेत्य यत्नेन विनाशमनुधावति ॥ ४२ ॥ तान्येव सुखदुःखानि भावाभाव मयान्यसौ ॥ भूयोऽप्यनुभवन्कायः प्राकृतो हि न लज्जते ॥ ४३ ॥ सुचिरं प्रभुतां कृत्वा संसेव्य विभवश्रियम् ॥ नोच्छ्रायमेति न स्थैर्यं कायः किमिति पाल्यते ॥ ४४ ॥

अर्थ—प्राणरूपी पवनकी गतिसे अति चंचल, कोमल, आधिव्याधिरूप सैंकडों कांटोंसे अति शिथिल, क्षुद्रस्वभाववाला कटु और नीरस यह शरीररूपी पत्र मुझे इष्टनहीं है ॥ ४१ ॥ अधिक कालतक उत्तम २ पदार्थोंका भोजन और पान करनेमेभी कोमल पत्रकेसमान विनाकारणभी यह कृश (दुर्बल) होजाताहै और विनाशकीही ओर दौडताहै ॥ ४२ ॥ भाव और अभावमय उन्ही २ सुखदुःखोंका वार २ अनुभव करताहुआभी यह पामर शरीरलज्जित नहीं होता ॥ ४३ ॥ बहुत कालतक बडी प्रभुता करके, और अनेक प्रकारके विभवोंको प्राप्त होकरभी यह शरीर न तो बढताहै और न जिस दशामें हैं उसी दशामें स्थिर रहताहै, पुनः इसका पालन क्यों करना ॥ ४४ ॥

जराकाले जरामेति मृत्युकाले तथा मृतिम् ॥ सम एवाऽविशेषज्ञः कायो भोगिदरिद्रयोः ॥ ४५ ॥ संसारांभोधिजठरे तृष्णाकुहरकांतरे ॥ सुप्तस्तिष्ठति मुक्तेहो मूकोऽयं कायकच्छपः ॥ ४६ ॥ दहनैकार्थयोग्यानि कायकाष्ठानि भूरिशः ॥ संसाराब्धाविहोह्यंते कंचित्तेषु नरं विदुः ॥ ४७ ॥ दीर्घदौरात्म्यवलयानिपातफलपातया ॥ न देहलतया कार्यं किंचिदस्ति विवेकिनः ॥ ४८ ॥

अर्थ—वृद्धावस्थाके समयमें वृद्धअवस्थाको प्राप्त होताहै और मृत्युकेसमयमें मृत्युको, यह मूर्ख शरीर महाभोगी धनी और दरिद्र दोनोंकेलिये समानही है ॥ ४५ ॥ तृष्णारूपी छिद्रवाले संसाररूपी समुद्रके उदरमें यह कायरूपी कच्छप चेष्टारहित सो रहाहै ॥ ४६ ॥ केवल भस्म करने योग्य, ये शरीररूपी अनेक काष्ठ, इस संसाररूपी समुद्रमें वह रहे हैं उनमेंसे किसी एकको मनुष्यभी कहतेहैं ॥ ४७ ॥ बडे २ दुष्टतारूपी बन्धनोंको धारण करनेवाली और कुकर्मरूपी फलोंसे नीचे गिरनेवाली, इस देहरूपी लतासे विवेकी पुरुषको क्या प्रयोजनहै ॥ ४८ ॥

मज्जन् कर्दमकोशेषु झटित्येव जरां गतः ॥ न ज्ञायते यात्यचिरात्कः कथं देहदर्दुरः ॥ ४९ ॥ निःसारसकलारंभाः कायाश्चपलवायवः ॥ रजोमार्गेण गच्छंतो दृश्यंते नेह केन चित् ॥ ५० ॥ वायोदीपस्य मनसो गच्छतो ज्ञायते गतिः ॥ आगच्छतश्चभगवञ्छरीरस्य कदा च न ॥ ५१ ॥ बद्धास्था

ये शरीरेषु बद्धास्था ये जगत्स्थितौ ॥ तान्मोहमदिरोन्मत्तान्धिग्धिगस्तु पुनःपुनः ॥ ५२ ॥

अर्थ—विषयरूपी महादलदलमें प्रवेश करता हुआ, यह शरीररूपी मण्डूक न जाने कोन दुर्दशाओंसे कैसे और कहां शीघ्र चलाजाताहै ॥ ४९ ॥ संपूर्ण नीरस आरम्भवाले शरीररूपी चपल वायु, रजोगुणरूपी धूलियुक्त मार्गसे चलेजा रहे हैं परंतु किसीको देख नहीं पडते ॥ ५० ॥ हे भगवन्! वायु, दीपक और मन इनकी उत्पत्ति और विनाश भान होते हैं. परंतु इस शरीरका किसीको भान नहीं होता ॥ ५१ ॥ जो मनुष्य शरीर और जगत्की स्थितिका अधिक कालतक रहनेका विश्वास करते हैं, उन मोहरूपी मदिरासे मत्तजनोंको वार २ धिक्कारहै ॥ ५२ ॥

नाऽहं देहस्य नो देहो मम नाऽयमहं तथा ॥ इति विश्रांतचित्ता ये ते मुने पुरुषोत्तमाः ॥ ५३ ॥ मानावमानबहुलाबहुलाभमनोरमाः ॥ शरीरमात्रबद्धास्थं घ्नंति दोषदृशो नरम् ॥ ५४ ॥ शरीरश्वभ्रशायिन्या पिशाच्या पेशलांगया ॥ अहंकारचमत्कृत्या छलेन छलिता वयम् ॥ ५५ ॥ प्रज्ञा वराकी सर्वैव कायबद्धास्थयानया ॥ मिथ्याज्ञानकुराक्षस्या छलिता कष्टमेकिका ॥ ५६ ॥

अर्थ—हे मुने! न मैं देहकाहूं; और न यह देह मेराहै. ऐसा विचार करके जो आत्मामें विश्रांति पातेहैं वेही मनुष्य पुरुषोंमें उत्तमहैं ॥ ५३ ॥ मान और अपमानसे पूर्ण, अनेक विषयके लाभोंसे मनोरम जो दोष दृष्टिपांते हैं, वे शरीरमात्रमें अभिमान रखनेवाले मनुष्यको मार लेती हैं ॥ ५४ ॥ शरीररूपी गढेमें शयन करनेवाली, उत्तम और कोमल शरीरवाली अहंकारकी चमत्कृति जो भोग तृष्णारूपिणी पिशाचिकाहै, उसने कपटसे हमको ठग लियाहै ॥ ५५ ॥ बडे खेदकी बातहै, कि इस शरीरमात्रमें विश्वास करनेवाली, मिथ्या अज्ञानरूपी दुष्टराक्षसीने, विचारी विवेकरूप सहायकसे शून्य अकेली सद्बुद्धिको ठगलियाहै ॥ ५६ ॥

न किंचिदपि दृश्येऽस्मिन्सत्यं तेन हताऽत्मना ॥ चित्रं दग्धशरीरेण जनता विप्रलभ्यते ॥ ५७ ॥ दिनैः कतिपयैरेव निर्झरांबुकणो यथा ॥ पतत्ययमयत्नेन जरठः कायपल्लवः ॥५८॥ कायोऽयमचिराऽपायो बुद्बुदोंबुनिधाविव ॥ व्यर्थं कार्यपरावर्त्ते परिस्फुरति निष्फलः ॥ ५९ ॥ मिथ्याज्ञानविकारेऽस्मिन्स्वप्नसंभ्रमपत्तने ॥ काये स्फुटतराऽपाये क्षणमास्था न मे द्विज ॥ ६० ॥

अर्थ—बडे आश्चर्यकी बातहै कि यद्यपि इस दृश्यमात्र जगत्में कोईभी पदार्थ सत्य नहीं है, तो यह दृश्यके अन्तर्गत शरीर कब सत्य होसक्ताहै, परंतु क्षणभंगुर इस दुष्ट शरीरने सम्पूर्ण प्राणीमात्रको ठगलियाहै ॥ ५७ ॥ जैसे झरनोके जलका कण शीघ्रही नष्ट होजाताहै, ऐसेही यह शरीररूपी पुतला विना यत्नही शीघ्र गिर जाताहै ॥ ५८ ॥ समुद्रके फेंनकेसमान शीघ्र नष्ट होनेवाला यह शरीर, कार्यरूपी जलके चक्रमें, परोपकार शून्य व्यर्थही स्फुरित होरहाहै ॥ ५९ ॥ हे ब्राह्मण! मिथ्या अज्ञानका विकार स्वप्नके नगरके तुल्य, और प्रत्यक्ष नाशवाले इस शरीरमें मुझे क्षणभरके लियेभी विश्वास नहीं है ॥ ६० ॥

तडित्सु शरदभ्रेषु गंधर्वनगरेषु च ॥ स्थैर्यं येन विनिर्णीतं स विश्वसितु विग्रहे ॥ ६१ ॥ सततभंगुरकार्यपरंपराविजयि जातजयं हठवृत्तिषु ॥ प्रबलदोषमिदं तु कलेवरं तृणमिवाऽहमपोह्य सुखं स्थितः ॥ ६२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये वैराग्यप्रकरणे कायजुगुप्सानामाऽष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

अर्थ—विद्युत् (विजुली) में शरत्कालके मेघोंमें और गंधर्वनगरोंमें, जिसने स्थिरता निश्चितकर ली है, वही इस शरीरकी स्थिरतामें विश्वास करे ॥ ६१ ॥ निरन्तर एकदूसरेसे अधिक क्षणभंगुर जो विद्युत् शरत्कालका मेघ, और गंधर्वनगर कार्यके समूहहैं उन सबमें विजय पाने (अनित्यतामें) वाला प्रबल दोषोंके मूलकारण इस शरीरको तृणके समान त्यागके मैं इससमय सुखी हूं ॥ ६२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे कायजुगुप्सानामाष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

एकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

अज्ञान, क्षुधा, रोग, अपवित्रता, और चपलतासे दूषित, तिर्यग् जन्तु (पशु पक्षी, कीट, बाल्यावस्थाकी निन्दा इस १९ वे सर्गमें की गई है.

श्रीराम उवाच ॥ ॥ लब्ध्वापि तरलाकारे कार्यभारतरंगिणि ॥ संसारसागरे जन्म बाल्यं दुःखाय केवलम् ॥ १ ॥ अशक्तिरापदस्तृष्णा मूकता मूढबुद्धिता ॥ गृध्नुता लोलता दैन्यं सर्वं बाल्ये प्रवर्तते ॥ २ ॥ रोषरोदनरौद्रासु दैन्यजर्जरितासु च ॥ दशासु बंधनं बाल्यमालानं करिणामिव ॥ ३ ॥ न मृतौ न जरा रोगे न चाऽऽपदि न यौवने ॥ ताश्चिंताः परिकृंतंति हृदयं शैशवेषु याः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—चंचल आकारवाले, अनेक कार्य्यके भाररूपी तरंगसहित, इस संसाररूपी समुद्रमें मनुष्यजन्म पाकेभी बाल्यअवस्था केवल दुःखहीके लिये है ॥ १ ॥ अशक्ति, अनेक आपत्तियां, तृष्णा, मूकता मूढबुद्धि, क्रीडादिमें अत्यन्त अभिलाषा और चपलता, इष्ट पदार्थके न मिलनेसे अतिदीनता, ये सब बाल्यअवस्थामें उपस्थित होते हैं ॥ २ ॥ क्रोध, रोदन व्याकुलतादिसे भयंकर और दीनतासे अति शिथिल दशाओंमें, यह बाल्यअवस्था मनुष्यके लिये ऐसा बन्धनहै जैसा हांथियोंके लिये लोहेका स्तंभ ॥ ३ ॥ जो चिन्ता यें बाल्यअवस्थामें हृदयको महापीडा देतीहैं, वे न तो मृत्युमें, न वृद्धावस्थामें, न रोगमें न आपत्तिमें और न युवावस्थामें ॥ ४ ॥

तिर्यग्जातिसमारंभः सर्वैरेवाऽवधीरितः ॥ लोलो बालसमाचारो मरणादपि दुःखदः ॥ ५ ॥ प्रतिबिंबघनाऽज्ञानं नानासंकल्पपेलवम् ॥ बाल्यमालूनसंशीर्णमनः कस्य सुखावहम् ॥ ६ ॥ जलवन्ह्यनिलाजस्रजातभीत्या पदे पदे ॥ यद्भयं शैशवेऽबुद्ध्या कस्यापदि हि तद्भवेत् ॥ ७ ॥ लीलासु दुर्विलासेषु दुरीहासु दुराशये ॥ परमं मोहमाधत्ते बालो बलवदापतन् ॥ ८ ॥

अर्थ—सबलोग जिसका निरादर करतेहैं तथा पशु आदिके समान और जो अतिचंचल, यह बाल्यअवस्थाका आचरण मरणसेभी अधिक दुःखदायी है ॥५॥ अनेकविषयोंमें मिथ्या अज्ञानसहित अनेकप्रकारके संकल्पोंसे अतितुच्छ, इष्टपदार्थोंके न मिलनेसे चारोंओरसे छिन्न यह बाल्यअवस्था किसको सुखदायकहै ॥६॥ अज्ञानके कारणसे जल, अग्नि और वायु आदिसे पद पदपर जो भय बाल्याऽवस्थामें होताहै वह भय आपत्तिमेंभी किसको होताहै ॥ ७ ॥ क्रीडाओंमें, दुष्ट विलासोंमें, दुष्टचेष्टाओंमें, दुःखदायक इच्छाओंमें बालक बलात्कार गिरनेकेलिये महाअज्ञान धारण करताहै ॥८॥

विकल्पकल्पिताऽऽरंभं दुर्विलासं दुरास्पदम् ॥ शैशवं शासनायैव पुरुषस्य न शांतये ॥ ९ ॥ ये दोषा ये दुराचारा दुष्क्रमा ये दुराधयः ॥ ते सर्वे संस्थिता बाल्ये दुर्गर्त्त इव कौशिकाः ॥ १० ॥ बाल्यं रम्यमिति व्यर्थबुद्धयः कल्पयंति ये ॥ तान्मूर्खपुरुषान्ब्रह्मन्धिगस्तु हतचेतसः ॥ ११ ॥ यत्र दोलाकृति मनः परिस्फुरति वृत्तिषु ॥ त्रैलोक्याऽभव्यमपि तत्कथं भवति तुष्टये ॥ १२ ॥

अर्थ—अनेक प्रकारकी कल्पनाओंसे विना विचारे व्यर्थ कार्यारम्भ करनेवाली, दुष्ट चेष्टासे पूर्ण, तथा दुःखोंकी स्थान, यह बाल्याऽवस्था केवल बडोंकी ताडनाके लिये है न कि शांतिकेलिये ॥ ९ ॥ जितने दोषहैं, जितने दुराचारहैं और परिणाममें भयंकर जितने रोगहैं, वे सब बाल्यावस्थामें ऐसे आकर स्थित होतेहैं जैसे नष्ट गढोंमें उल्लूक ॥ १० ॥ हे ब्रह्मन् ! यह बाल्यावस्था अति रमणीयहै यह जो मिथ्या बुद्धिवाले कल्पना करतेहैं उन मूर्ख पुरुषोंको धिक्कारहै ॥ ११ ॥ जहां संपूर्ण विचारोंमें मन संशयग्रस्त रहताहै और तीनों लोकमें जो अमंगलहै, वह भला संतोषकेलिये कब हो सक्ताहै ॥१२॥

सर्वेषामेव सत्वानां सर्वावस्थाभ्य एव हि ॥ मनश्चंचलतामेति बाल्ये दशगुणं मुने ॥ १३ ॥ मनःप्रकृत्यैव चलं बाल्यं च चलतां वरम् ॥ तयोः संश्लिष्यतोस्त्राता क इवांतःकुचापले ॥ १४ ॥ स्त्रीलोचनैस्तडित्पुंजैर्ज्वालाजालैस्तरंगकैः ॥ चापलं शिक्षितं ब्रह्मञ्छैशवाऽऽक्रांतचेतसः ॥ १५ ॥ शैशवं च मनश्चैव सर्वास्वेव हि वृत्तिषु ॥ भ्रातराविव लक्ष्येते सततं भंगुरस्थिती ॥ १६ ॥

अर्थ—हे मुने ! संपूर्ण प्राणियोंकी सब अवस्थाओंसे बाल्यावस्थामें मन दशगुण अधिक चंचल रहताहै ॥ १३ ॥ मन तो स्वभावहीसे चपलहै, और बाल्यावस्थाकी चंचलता सब चंचलताओंसे अधिकहै जब ये दोनों चंचलता मिलगई तो भला इनके बीचमें अनर्थोंसे कौन रक्षा करसक्ताहै ॥ १४ ॥ हे ब्रह्मन् ! स्त्रियोंके नेत्र, विजुलीकेसमूह, ज्वालाकेसमूह और तरंग इनसभोंने अपनी २ चपलता बाल्यावस्थाके चित्तसेही सीखी है ॥ १५ ॥ बाल्यावस्था और मन ये दोनों सब वृत्तियोंमें सहोदरके समान प्रतीत होतेहैं; और दोनोंकी स्थिति सदाक्षणभंगुरहै ॥ १६ ॥

सर्वाणि दुःखभूतानि सर्वे दोषा दुराधयः ॥ बालमेवोपजीवंति श्रीमंतमिव मानवाः ॥ १७ ॥ नवं नवं

न्प्रीतिकरं न शिशुः प्रत्यहंयदि ॥ प्राप्नोति तदसौ याति विषवैषम्यमूर्छनाम् ॥ १८॥ स्तोकेन वशमायाति स्तोकेनैति विकारिताम् ॥ अमेध्य एव रमते बालः कौलेयको यथा ॥ १९ ॥ अजस्रबाष्पवदनः कर्दमाऽऽक्तोजडाशयः ॥ वर्षोक्षितस्य तप्तस्य स्थलस्य सदृशः शिशुः ॥ २० ॥

अर्थ—संपूर्ण बडे २ दुर्व्यसनादि दुःख, सबप्रकारके दुष्टरोग बाल्यअवस्थाका ऐसेही आश्रयलेतेहैं. जैसे धनीमनुष्यका दरिद्र ॥ १७ ॥ यदि बालक नित्यनई २ वस्तु अपनी प्रसन्नताके लिये नहींपाता तो विषभोजनसे जैसी दुःसह मूर्च्छा प्राप्तहोती है. वही दशा इसकी होती है ॥ १८ ॥ थोडेहीमें तो वशमें आजाताहै, और थोडेहीमें अतिक्रुद्ध होजाताहै, और कुत्तेकेसमान सदा अपवित्रस्थानमेंही क्रीडा करताहै ॥ १९ ॥ सदा अश्रुसे परिपूर्णमुख, कीचडसे लिप्त, अचेतन, यहबालक ऐसे रहताहै. जैसे वर्षासे सिंचीहुई तप्तभूमि ॥ २० ॥

भयाहारपरं दीनं दृष्टादृष्टाभिलाषि च ॥ लोलबुद्धि वपुर्धत्ते बाल्यंदुःखाय केवलम् ॥ २१॥ स्वसंकल्पाभिलषितान्भावानप्राप्य तप्तधीः ॥ दुःखमेत्य बलो बालो विनिष्कृत्त इवाशये ॥ २२ ॥ दुरीहालब्धलक्षाणि बहुवक्रोल्बणानि च ॥ बालस्य यानि दुःखानि मुने तानि न कस्य चित् ॥ २३ ॥ बालो बलवता स्वेन मनोरथविलासिना ॥ मनसा तप्यते नित्यं ग्रीष्मेणेव वनस्थली ॥

अर्थ—सदाभय और आहारमें तत्पर, दूर और निकटकेपदार्थोंका अभिलाषी, चंचलबुद्धि और शरीरको धारणकरनेवाली यह बाल्यावस्था केवल दुःखकेहीलिये है ॥ २१ ॥ अपने अभिलाषितपदार्थोंको न पाकर, सन्तप्तमन, बलरहितबालक ऐसा दुःखीहोताहै. मानों उसका हृदयही कटगया ॥ २२ ॥ हे मुने ! दुष्टचेष्टा वा दुष्टमनोरथोंसे प्राप्त और अनेकवक्र (टेढी) ठगनेकी युक्तियोंसे अतिक्रूर जो दुःख बालकोंको होते हैं वे दूसरे किसीको नहींहोते ॥ २३ ॥ बालक अनेकमनोरथोंमेंलीन अपने बलवान्मनसेही सदा ऐसे तपाकरताहै, जैसे ग्रीष्म(गर्मी)की ऋतुसेवनकीभूमि॥२४॥

विद्यागृहगतो बालो परामेति कदर्थनाम्॥ आलान इव नागेंद्रो विषवैषम्यभीषणाम् ॥२५॥ नानामनोरथमयी मिथ्याकल्पितकल्पना ॥ दुःखायाऽत्यंतदीर्घाय बालता पेलवाशया ॥ २६ ॥ संदृष्टो भुवनं भोक्तुमिंदुमादातुमंबरात् ॥ वांछते येन मौर्ख्येण तत्सुखाय कथं भवेत् ॥ २७ ॥ अंतश्चित्तमशक्तस्य शितातपनिवारणे ॥ को विशेषो महाबुद्धे बालस्योर्वीरुहस्तथा ॥ २८ ॥

अर्थ—यदि बालकपाठशालामें भेजाजाताहै तो विषकीसी भयंकर ऐसीपीडाको प्राप्तहोताहै, जैसे शृंखलामें बद्धहस्ती ॥ २५ ॥ नानाप्रकारके मनोरथोंसेपूर्ण, मिथ्यापदार्थोंमें सत्यकल्पनाकरनेवाली, अतिकोमल प्रकृतिवाली, यह बाल्यावस्था अत्यन्त दुःखोंकेही लियेहै ॥ २६ ॥ कभी २ अलभ्यपदार्थोंके भोजनकी इच्छासे रोतेहुये बालकसे जब यह कहाजाताहै. कि तुमको भोजनदेंगे तो अतिप्रसन्नहोजाताहै, और जिसमूर्खतासे आकाशसे चन्द्रमाको पकडना चाहताहै. वह सुखकेलिये किसप्रकार होसक्तीहै ॥ २७ ॥ हे महाबुद्धे ! भगवन् शीत और आतप निवारणकरनेमें असमर्थ परन्तु उनकी पीडाको अन्तःकरणमे अनुभवकरनेमें समर्थ ऐसे बालक और वृक्षमें क्या भेदहै ॥ २८ ॥

उड्डीतुमभिवांछंति पक्षाभ्यां क्षुत्परायणाः ॥ भयाहारपरा नित्यं बाला विहगधर्मिण ॥ २९ ॥ शैशवे गुरुतो भीतिर्मातृतः पितृतस्तथा ॥ जनतो ज्येष्ठबालाच्च शैशवं भयमंदिरम् ॥ ३० ॥ सकलदोषदशाविहतारायं शरणमप्यविवेकविलासिनः ॥ इह न कस्यं चिदेव महामुने भवति बाल्यमलं परितुष्टये ॥३१॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये वैराग्यप्रकरणे बाल्यजुगुप्सानामैकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

अर्थ—क्षुधामें परायणहोके अपने भुजारूपीपक्षोंसे उडनाचाहते हैं भय और भोजनकी चिंताहीमें सदा लीन ये बालक पक्षियोंकेसमान होते हैं ॥२९॥ बाल्यावस्थामें गुरुसेभय, मातासेभय, पितासेभय, मनुष्योंसेभय, और अपनेसे बडेलडकेसेभय, इसलिये बाल्यावस्था भयका स्थानही है ॥ ३० ॥ हे मुने ! संपूर्णदोषकी दशाओंसे अन्तःकरण जहांपर दूषितहै,और अविवेकरूपी विलासियोंका क्रीडास्थान, यह बाल्यावस्था किसीकोभी प्रसन्नताकेलियेनहीं है ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे वैराग्यप्रकरणे बाल्यजुगुप्सानामैकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

---

(१)–वर्षासे सींची हुई तप्तभूमिमें आंसुओंके सदृश बिंदुओंका होना प्रसिद्धहै. (२) बालक और वृक्ष दोनों शीत और घामकी पीडा तो समझते हैं. परन्तु दूसरेसे अपनी पीडा कह नहींसक्ते.

विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥

लोभ, द्वेष, मद, असूया (गुणोंमेभी दोष दृष्टि) और ईर्षा, आदिसे दूषित, कामक्रोधादि बडे २ अनर्थोंका गृह जो यौवन उसकी निंदा इस २० वें सर्गमें की गई है ॥

श्रीराम उवाच ॥ ॥ बाल्यानर्थमथत्यक्त्वा पुमानामिहताशयः ॥ आरोहति निपाताय यौवनं संभ्रमेण तु ॥ १ ॥ तत्राऽनंतविलासस्य लोलस्य स्वस्य चेतसः ॥ वृत्तिरनुभवन्याति दुःखाद्दुःखांतरं जडः ॥ २ ॥ स्वचित्तबिलसंस्थेन नानासंभ्रमकारिणा ॥ बलात्कामपिशाचेन विवशः परिभूयते ॥ ३ ॥ चिंतानां लोलवृत्तीनां ललनानामिवाऽवृतिः ॥ अर्पयत्यवशं चेतो बालानामंजनं यथा ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—यहं प्राणी बाल्यअवस्थाके अनर्थोंको छोडके, कामक्रोधादिरूपी पिशाचोंसे दूषित विषयभोगके उत्साहकी भ्रांतिसे यौवनअवस्थामें गिरनेहीके अर्थ चढताहै ॥ १ ॥ इस अवस्थामें अनेकप्रकारकी चेष्टा संयुक्त अपने चंचल अंतःकरणकी रागद्वेषादि पूर्णवृत्तियोंको अनुभव करता हुआही यह मूर्ख दुःखकेऊपर दुःखही पाता है ॥ २ ॥ अपनेही चित्तमें रहनेवाला, नानाप्रकारकी भ्रांतिको उत्पन्न करनेवाला, कामरूपी पिशाच बलात्कार (जबरदस्ती) से इस मनुष्यको अपने वशमें करकेअनेक दुर्गति करताहै ॥ ३ ॥ इस युवाऽवस्थामें अवश चित्त स्त्रियोंकेसमान चंचल स्वभाववाली चिंताओंके स्वेच्छाचारको ऐसा देताहै जैसे बालकोंके नेत्रको सिद्धांजन ॥ ४ ॥

ते ते दोषा दुरारंभास्तत्र तंतादृशाशयम् ॥ तद्रूपं प्रतिलुंपन्तिदुष्टास्तेनैव ये मुने ॥ ५ ॥ महानरकबीजेन संततभ्रमदायिना ॥ यौवनेन न ये नष्टा नष्टा नाऽन्येन तेजनाः ॥ ६ ॥ नानारसमयी चित्रवृत्तांतनिचयोंमिता ॥ भीमा यौवनभूर्येन तीर्णा धीरः स उच्यते ॥ ७ ॥ निमेषभासुरगकारमालोलघनगर्जितम् ॥ विद्युत्प्रकाशमशिवं यौवनं मे न रोचते ॥ ८ ॥

अर्थ—हे मुने ! इस युवाऽवस्थामें कामादिसे वशीभूत अतएव कामादिरूप मनुष्यको, बडे भयंकर दोष इस अवस्थामें पुष्टकर दियेहै और जिनसे व्यभिचार हुआ, कलह, और हत्यादि होतेहैं मनुष्यको सर्वथा नष्टकर देतेहैं ॥ ५ ॥ महानरकका मूलकारण और सदा अनेक भ्रम उत्पन्न करनेवाले इस यौवनने जिनको नष्ट नहीं किया वे दूसरेसे नहीं नष्ट होसक्ते ॥ ६ ॥ नानाप्रकारके शृंगारादि विषयके अभिलाषरूपी दुस्तर जलोंसे पूर्ण, और रागद्वेषादिरूपी चोर और व्याघ्रादिके आश्चर्यजनक वृत्तान्तोंसे व्याप्त, इस युवाऽवस्थारूप जंगलभूमिसे जो पार होगयाहै वही धीर कहाताहै ॥ ७ ॥ निमेषमात्रकेलिये प्रकाशरूप अभिमानके वचनरूपी मेघकी गर्जनासहित विद्युत्के प्रकाशकेसदृश यह अमंगल यौवन मुझे अच्छा नहीं लगता ॥ ८ ॥

मधुरं स्वादु तिक्तं च दूषणं दोषभूषणम् ॥ सुराकल्लोलसदृशं यौवनं मे न रोचते ॥ ९ ॥ असत्यं सत्यसंकाशमचिराद्विप्रलंभदम् ॥ स्वप्नांगनासंगसमं योवनं मे न रोचते ॥ १० ॥ सर्वस्याऽग्रे सर्वपुंसः क्षणमात्रमनोहरम् ॥ गंधर्वनगरप्रख्यं यौवनं मे न रोचते ॥ ११ ॥ इषुप्रपातमात्रं हि सुखदं दुःखभासुरम् ॥ दाहदोषप्रदं नित्यं यौवनं मे न रोचते ॥ १२ ॥

अर्थ—भोग समयमें मधुर स्वाद युक्त, परिणाममें कटु और निंदादि दोषका हेतु, अनेक दोषोंका भूषण, मदिराकेमदकेसमान, यह यौवन मुझे अच्छा नहींलगता ॥ ९ ॥ असत्यहोनेपरभी सत्यकेसमान, बहुतशीघ्र वंचना (धोका) करनेवाला, स्वप्नकी स्त्रीके समागमकेसमान, यह यौवन मुझे अच्छा नहीं लगता ॥ १० ॥ सब मनोहर वस्तुओंसे क्षणमात्रकेलिये सबको अति मनोहर, गन्धर्वनगरकेसमान यह यौवन मुझे अच्छा नहीं लगता ॥ ११ ॥ क्षणभरकेलिये सुखदायी, और सदाकेलिये दुःखदायी, अनेक सन्तापादि दोषोंको नित्य देनेवाला, यह यौवन मुझे अच्छा नहींलगता ॥ १२ ॥

आपातमात्ररमणं सद्भावरहितांतरम् वेश्यास्त्रीसंगमप्रख्यं यौवनं मे न रोचते ॥ १३ ॥ ये के च न समारंभास्ते सर्वे सर्वदुःखदाः ॥ तारुण्ये संनिधिं यांति महोत्पाता इव क्षये ॥ १४ ॥ हार्दांधकारकारिण्या भैरवाकारवानपि ॥ यौवनाज्ञानयामिन्या बिभेति भगवानपि ॥ १५ ॥ सुविस्मृतशुभाचारं बुद्धिवैधुर्यदायिनम् ॥ ददात्यतितरामेष भ्रमं यौवनसंभ्रमः ॥ १६ ॥

(१) कदाचित् किसीको यह शंका हो कि लडकई तो परतंत्र दोषोंसे निंदितहै परंतु यौवनमें तो स्वतंत्रता और विषयसुख मिलनेसे प्रशंसनीयहै सो नहीं किंतु वह अनर्थ मूल होनेसे अधिक निंद्यहै (२) ऐसी कहावतहै कि एक प्रकारका सिद्धांजन बालकोंके हस्तमें रख देनेसे वा नेत्रमें लगानेसे उनको विना रोक ठोक सब पृथ्वीका धन देख पडताहै यहां दृष्टान्तसे यह तात्पर्यहै कि जवानीमें स्त्रीविषय आदिकी चिन्ता मनुष्यके चित्तमें विना रूकावटके आती है.

अर्थ—विनाविचारे थोडे कालकेलिये रमणीय, शुद्धचित्तसेवर्जित, वेश्यास्त्रीके संगमकेसमान यह यौवन मुझे अच्छा नहींलगता ॥ १३ ॥ जितने दुःखदायीकार्य हैं वे सब इसयुवाअवस्थामें ऐसे समीप आजाते हैं जैसे प्रलयकेसमयमें महाउत्पात ॥ १४ ॥ हृदयमें अन्धकारकरनेवाली, यौवनकी अज्ञानरूपिणी रात्रिसे महाविशाल आकारवाले भगवान्‌भी डरते हैं ॥ १५ ॥ उत्तम आचारोंको भलीभांति विस्मृतकरानेवाली, दुष्टबुद्धिदायक, यह यौवनका मोह अनेक महाभ्रमोंको उत्पन्नकरताहै ॥ १६ ॥

कांतावियोगजातेन हृदि दुःस्पर्शवन्हिना ॥ यौवने दह्यते जंतुस्तरुर्दावाग्निना यथा ॥ १७ ॥ सुनिर्मलाऽपि विस्तिर्णा पावन्यपि हि यौवने ॥ मतिः कलुषतामेति प्रावृषीव तरंगिणी ॥ १८ ॥ शक्यते घनकल्लोला भीमा लंघयितुं नदी ॥ न तु तारुण्यतरला तृष्णा तरलितांतरा ॥ १९ ॥ सा कांता तौ स्तनौ पीनौ ते विलासास्तदाननम् ॥ तारुण्य इति चिंताभिर्याति जर्जरतांजनः ॥ २० ॥

अर्थ—हृदयमें अत्यन्तदाह उत्पन्नकरनेवालीस्त्रीके वियोगरूपअग्निसे युवावस्थामें प्राणी ऐसे जलताहै जैसे अग्निसेकाष्ट ॥ १७ ॥ दोषोंके न होनेसे निर्म्मल, औदार्य्यादिगुणोंसे विशाल और उत्तमगुणोंसे पवित्र बुद्धिभी युवावस्थामें ऐसी मलिन होजाती है जैसे वर्षाकालमें नदी ॥ १८ ॥ बडे २ तरंगोंसे भयंकरनदीकेपार मनुष्य जासक्ताहै परन्तु युवाअवस्थासे अतिचंचल, तथा अनेकप्रकारके विषयोंकी भोगेच्छाओंसे अन्तःकरण जिसमें दूषितहोगयाहै ऐसी चित्तकी वृत्तिकेपार नहींजासक्ता ॥ १९ ॥ हा ! वह सुन्दरतादि गुणसहितस्त्री, वह स्वर्णकलशकेसमान स्थूल उसके कुच वे उसके विलास, वह चन्द्रमाकेसमान उसकामुख ऐसी२चिन्ताओंसे युवावस्थामें मनुष्य सर्वथा जर्जरीभूतहोताहै॥२०॥

नरं तरलतृष्णार्त्तंयुवानमिह साधवः ॥ पूजयंति न तु च्छिन्नं जरत्तृणलवं यथा ॥ २१ ॥ नाशायैव मदार्त्तस्य दोषमौक्तिकधारिणः ॥ अभिमानमहेभस्य नित्यालानं हि यौवनम् ॥ २२ ॥ मनोविपुलमूलानां दोषाशीविषधारिणाम् ॥ शोषरोदनवृक्षाणां यौवनं बत काननम् ॥ २३ ॥ रसकेसरसंबाधं कुविकल्पदलाकुलम् ॥ दुश्चिन्ताचंचरीकाणां पुष्करं विद्धि यौवनम् ॥ २४ ॥

अर्थ—महात्माजन, युवावस्थाके दुःखसे पीडित कामीपुरुषका संन्मान पुराने तृणकेसमानभी नहींकरते, किंतु तिरस्कारही करते हैं ॥ २१ ॥ कामरूपीमदसे पीडित, दोषरूपीमोतीको धारणकियेहुये अभिमानसे महा मदोन्मत्त गजके सदृश अविवेकी पुरुषके नाशके लिये यह युवावस्था ऐसे है जैसे हांथीके सदा बन्धनके लिये स्तम्भ ॥ २२ ॥ मनरूपीविशाल मूलसहित, अनेकदोषरूपीसर्पोंका निवासस्थान इष्टपदार्थोंका अलाभ, वियोगरूपी अग्निकेदाह संयुक्त तथा रोदनरूपीवृक्षोंका यह यौवन वनहै ॥ २३ ॥ थोडेकालके लिये विषय सुखरूपीपुष्परस पूर्ण और राग द्वेषादिरूपी केसरोंसे व्याप्त, कुतर्करूपी दांतोंसे पूर्ण और दुष्ट चिंतनरूपी भ्रमरोंका निवासस्थान यह यौवनरूपी कमलहै ॥ २४ ॥

कृताकृतकुपक्षाणां हृत्सरस्तीरचारिणाम् ॥ आधिव्याधिविहंगानामालयो नवयौवनम् ॥२५॥ जडानां गतसंख्यानांकल्लोलानां विलासिनाम् ॥ अनपेक्षितमर्यादो वारिधिर्नवयौवनम् ॥२६॥ सर्वेषां गुणसर्गाणां परिरूढरजस्तमाः ॥ अपनेतुं स्थितिं दक्षो विषमो यौवनाऽनिलः ॥ २७ ॥ नयंति पांडुतां वक्त्रमाकुलाऽवकरोत्कटाः ॥ आरोहंति परां कोटिं रूक्षा यौवनपांसवः ॥ २८ ॥

अर्थ—धर्म्माधर्म्मरूपीपक्ष संयुक्त हृदयरूपी तडागके तटपर विचरनेवाले आधिव्याधिरूपी पक्षियोंका निवासस्थान यह यौवनहै ॥ २५ ॥ अनेक कुसंकल्परूपी विलास करानेवाले तरंगोंसेयुक्त जडों (जलों) का निवासस्थान यह नवयौवन अवधिरहित समुद्रहै ॥ २६ ॥ रजोगुण और तमोगुणरूपी धूलिसे अन्धकारको उत्पन्न करनेसे संपूर्ण उत्तम गुणोंकी सृष्टिकी स्थितिको दूर करनेमें प्रवीण यह यौवनरूपी महाभयंकर वायुहै ॥ २७ ॥ चंचल इन्द्रियरूपी तृण और पत्रोंसे अत्यन्त दुःखदायी ये यौवनरूपी धूलि, दोषोंकी अधिकतारूपी आकाशकी परा सीमापर चढती है, और मुखको पीला करती हैं ॥ २८ ॥

उद्बोधयति दोषालिं विकृंतति गुणावलिम् ॥ नराणां यौवनोल्लासो विलासो दुष्कृतश्रियाम्॥२९॥शरीरपंकजरजश्चंचलां मतिषट्पदीम् ॥ निबध्नन् मोहयत्येष नवयौवनचंद्रमाः ॥ ३० ॥ शरीरखंडकोद्भूता रम्या यौवनवल्लरी ॥ लग्नमेव मनोभृंगं मदयत्युन्नतिं गता ॥ ३१ ॥ शरीरमरुतापोत्थां युवतामृगतृष्णिकाम् ॥ मनोमृगाः प्रधावंतः पतंति विषयाऽवटे ॥ ३२ ॥

अर्थ—मनुष्योंके यौवनका उल्लास, (अधिक वृद्धि) पापोंकी संपत्तियोंका विलासहै, जो दोषके समूहोंको जगाताहै और उत्तम गूणोंके समूहोंको नष्ट करताहै ॥ २९ ॥ यह नूतन यौवनरूपीचन्द्रमा, शरीररूपीकमलके रजो-

गुणरूपीधूलिमें, अति चंचलबुद्धिरूप भ्रमरीको बांधके मोहित करलेताहै ॥ ३० ॥ शरीररूपी वनके खण्डमें उत्पन्न उन्नतिको प्राप्त यह यौवनरूपीलता, अपनेमें संलग्न मनरूपी भ्रमरको मदोन्मत्त करदेती है ॥ ३१ ॥ शरीररूपी मरुस्थलकी भूमिमें कामकेतापसे उत्पन्न जो युवाऽवस्थारूपी मृगतृष्णाहै,उसमें मनरूपीमृग दौडतेहैं और विपरूपीगढोमें गिरतेहैं ३२

शरीरशर्वरीज्योत्स्ना चित्तकेसरिणः सटा ॥ लहरी जीवितांभोधेर्युवता मे न तुष्टये ॥ ३३ ॥ दिनानि कतिचिद्येयं फलिता देहजंगले ॥ युवता शरदस्यां हि न समाश्वासमर्हथ ॥ ३४ ॥ झटित्येवप्रयात्येव शरीराद्युवताखगः ॥ क्षणेनैवाऽल्पभाग्यस्य हस्ताच्चिंतामणिर्यथा ॥ ३५ ॥ यदा यदा परां कोटिमध्यारोहति यौवनम् ॥ वल्गंति सज्वराः कामास्तदा नाशाय केवलम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—शरीररूपी रात्रिकी चन्द्रिका, चिन्तारूपी सिंहकी सटा (कान्धेके ऊपरका बाल) और जीवनरूपी समुद्रकी तरंगोंकीमाला, यह युवाऽवस्था मेरी प्रसन्नताकेलिये नहीं है ॥ ३३ ॥ हे सुजनो ! इस शरीररूपी जंगलमें जो यह युवाऽवस्थारूपी शरदृऋतु अल्प कालकेलिये फलसहित देख पडती है, उसमें आप लोगोंको विश्वास नहीं करना चाहिये ॥ ३४ ॥ इस शरीररूपी वृक्षसे यौवनरूपी पक्षी शीघ्रतासे ऐसे चलाजाताहै जैसे मंदभागी मनुष्यके हाथसे चिन्तामणि ॥ ३५ ॥ जब २ यह युवाऽवस्था अपनी पराकाष्ठाको प्राप्त होती है तब २ संतापसहित कामज्वर केवल नाशकेहीलिये वृद्धिको प्राप्त होतेहैं ॥ ३६ ॥

तावदेव विवल्गंति रागद्वेषपिशाचकाः ॥ नास्तमेति समस्तैषा यावद्यौवनयामिनी ॥ ३७॥ नानाविकारबहुले वराके क्षणनाशिनि ॥ कारुण्यं कुरु तारुण्ये म्रियमाणे सुते यथा ॥ ३८ ॥ हर्षमायाति यो मोहात्पुरुषः क्षणभंगिना ॥ यौवनेन महामुग्धः स वै नरमृगः स्मृतः ॥ ३९ ॥ मानमोहान्मदोन्मत्तं यौवनं योऽभिलष्यति ॥ अचिरेण स दुर्बुद्धिः पश्चात्तापेन युज्यते ॥ ४० ॥

अर्थ—जबतक युवाऽवस्थारूपी रात्रि अस्त नहीं होती तबतक रागद्वेषादिरूपी पिशाच अधिकतासे विचरतेहैं ॥ ३७ ॥ हे मनुष्यो ! नानाप्रकारके कामादि विकारसहित, अति तुच्छ क्षणभंगुर इस यौवनपर ऐसे दया करो, जैसे मरते हुए पुत्रपर ॥ ३८ ॥ जो महामूर्ख इस क्षणभंगुर यौवनके मोहसे अधिक प्रसन्न होताहै, वह मनुष्योंमें पशु समझा जाता है ॥ ३९ ॥ जो मनुष्य अभिमान और अज्ञानसे इस यौवनमें सार जानके लीन होकर अनर्थ करताहै वह दुर्बुद्धि शीघ्रहि पश्चात्ताप करताहै ॥ ४० ॥

ते पूज्यास्ते महात्मानस्त एव पुरुषा भुवि ॥ ये सुखेन समुत्तीर्णाः साधो यौवनसंकटात् ॥ ४१ ॥ सुखेन तीर्यतेऽम्भोधिरुत्कृष्टमकराकरः ॥ न कल्लोलबलोल्लासि सदोषं हतयौवनम् ॥ ४२ ॥ विनयभूषित मार्यजनास्पदं करुणयोज्ज्वलमावलितं गुणैः ॥ इह हि दुर्लभमंग सुयौवनं जगति काननमं बरगं यथा ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये वैराग्यप्रकरणे यौवनगर्हानाम विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥

अर्थ—हे साधो ! वेही लोग पूज्यहैं, वेही महात्माहैं और वेही इस संसारमें मनुष्य कोटिकी गणनाके योग्यहैं, जो इस यौवनरूपी संकटसे सुखपूर्वक पार होगयेहैं ॥ ४१ ॥ मनुष्य बडे २ मकरादिसे पूर्ण समुद्रको सुखसे पार होजातेहैं, परन्तु कामादिरूप प्रबल तरंगोंसे पूर्ण अनेक दोषयुक्त इस नष्ट यौवनसे नहीं ॥ ४२ ॥ हे प्रिय महामुने ! विनय और सुजनतादिसे भूपित श्रेष्ठ विद्वान् पुरुषोंका विश्रांतिस्थान दया औदर्यादि धर्मोंसे उज्वल और शांत्यादि उत्तम गुणोंसे परिपूर्ण यौवन इस संसारमें ऐसाही दुर्लभ है, जैसे नंदन वन ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे यौवनगर्हानाम विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥

---

(१) जब पुत्रका मरण समीप आताहै तब लोग अधिक उत्साहादि नहीं करते ऐसेही इस नश्वर युवाऽवस्थामेंभी प्रमादादि नहीं करना चाहिये क्योंकि यह भी जानेवाली है ॥

एकविंशतितमः सर्गः ॥ २१ ॥

प्रत्यक्ष नरकके समूहहीसे जिनके सम्पूर्ण अंग उत्पन्न हुयेहैं, तथा पुरुषोंको नरक और जन्मदेनेवाली जो स्त्रियाँ हैं उनकी निंदा २१ वे सर्गमें की गई है ॥

श्रीराम उवाच—मांसपांचालिकायास्तु यंत्रलोलेंगपंजरे ॥ स्नाय्वस्थिग्रंथिशालिन्याः स्त्रियाः किमिव शोभनम् ॥ १ ॥ त्वङ्मांसरक्त बाष्पांबु पृथक्कृत्वाविलोचनम् ॥ समालोकय रम्यं चेत्किं मुधा परिमुह्यसि ॥ २ ॥ इतः केशा इतोरक्तमितीयं प्रमदातनुः ॥ किमेतया निंदितया करोति विपुलाशयः ॥ ३ ॥ वासोविलेपनैर्यानि लालितानि पुनः पुनः ॥ तान्यंगान्यंग लुंठंति क्रव्यादाः सर्वदेहिनाम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रबोले—नाडी, हड्डी, और ग्रन्थियोंसे शोभित मांसकी पुतलीरूप जो स्त्री है. उसके यन्त्रकेसमान चंचल अंगरूपीपिंजरेमें कोनसी वस्तु शोभायमानहै अर्थात् कुछनहीं ॥ १ ॥ हे प्रियसुजन ! त्वचा (चर्म) मांस, रक्त, अश्रुजल, और नेत्र, इनसबको पृथक्करके विचारो, स्त्रीकेदेहमें यदि कोइवस्तु रमणीयहै तो इसमें लीनहो नहीं तो व्यर्थ क्यों मोहितहोरहेहो ॥ २ ॥ कहीं बालहै, कहींरक्तहै, और कहीं मांसकी ग्रन्थिहै, बस यही स्त्रीका शरीरहै. विवेकीपुरुप भला इसे निंदित शरीरसे अपना क्या प्रयोजन सिद्धकरै ॥ ३ ॥ हें प्रिय ! संपूर्णप्राणियोंके जो शरीर उत्तमवस्त्रोंसे और नानाप्रकारके तैलअभ्यंग (उबटन) आदिसे शोभित होतेहै उन्ही शरीरोंको मांसाहारी प्राणी लूटलूटके खाते हैं और उनके ऊपर मलमूत्रभी करते हैं ॥ ४ ॥

मेरुशृंगतटोल्लासिगंगाजलरयोपमा ॥ दृष्टा यस्मिन् स्तने मुक्ताहार स्योल्लासशालिता ॥ ५ ॥ श्मशानेषु दिगंतेषु स एव ललनास्तनः ॥ श्वभिरास्वाद्यते काले लघुपिंड इवांधसः ॥ ६ ॥ रक्तमांसाऽस्थिदिग्धानि करभस्य यथा वने ॥ तथैवांऽगानि कामिन्यास्तांप्रत्यपि हिको ग्रहः ॥ ७ ॥ आपातरमणीयत्वं कल्प्यते केवलं स्त्रियाः ॥ मन्ये तदपि नाऽस्त्यत्र मुने मोहैककारणम् ॥ ८ ॥

अर्थ—मेरूपर्वतके शृंगकेतटपर निर्म्मल गंगाजलकी धाराकेसमान, मोतियोंकी मालाकीशोभा जिसस्त्रीकेस्तनपर देखीगई है ॥ ५ ॥ कालपाके स्मशानभूमिमें या अन्यस्थानमें उसीस्त्रीकेस्तनका आस्वाद कुत्ते ऐसे लेते हैं जैसे चावलके छोटेपिण्डका ॥ ६ ॥ रक्त, मांस, और हड्डियोंसे, स्त्रीकेशरीर वैसेहीबने हैं जैसे जंगलमें ऊँट वा गर्दभके पुनः उसमें विशेषआग्रह क्यों ॥ ७ ॥ हे मुने ! विना विचारेही केवल स्त्रीकी सुन्दरता मानीगई है और मेरे विचारमें कल्पित(१) रमणीयताभी स्त्रीमें नहीं है, क्योंकि इसमें केवल अज्ञानही कारणहै ॥ ८ ॥

विपुलोल्लासदायिन्या मदमन्मथपूर्वकम् ॥ को विशेषो विकारिण्या मदिरायाः स्त्रियास्तथा ॥ ९ ॥ ललनाऽऽलानसँल्लीना मुने मानवदंतिनः ॥ प्रबोधं नाऽधिगच्छंति दृढैरपिशमांकुशैः ॥ १० ॥ केशकज्जल धारिण्यो दुःस्पर्शा लोचनप्रियाः ॥ दुष्कृताऽग्निशिखा नार्यो दहंति तृणवन्नरम् ॥ ११ ॥ ज्वलतामतिदूरेऽपि सरसा अपिनीरसाः ॥ स्त्रियोहि नरकाग्नीनामिंधनं चारु दारुणम् ॥ १२ ॥

अर्थ—कामदेवरूपी मादकशक्तिसे अनेकप्रकारके भ्रमदेनेवाली स्वयंवीर्य और रक्तकेविकारवाली, स्त्रीरूपीमदिरा, तथा और मदिरामें क्या भेदहै ॥ ९ ॥ हे मुने ! स्त्रीरूपीखम्भमें बँधेहुए मनुष्यरूपी हांथी अज्ञानरूपी ऐसी गाढनिद्रामें आगये हैं कि शमरूपी बडे दृढअंकुशसेभी नहींजागते ॥१०॥ केशरूपीकज्जल धारणकियेहुयी स्पर्शकरनेमें संतापदायिनी, नेत्रकोप्रिय, पापरूपी, अग्निकी ज्वालारूपस्त्रियाँ, पुरुषोंको तृणकेसमान जलाती हैं ॥ ११ ॥ ऊपरसे सरसहोनेपरभी वास्तविकमें नीरसस्त्रियाँ अतिदूरजलनेवालीभी नरककी अग्निके बहुत उत्तम इन्धनहैं ॥ १२ ॥

विकीर्णाऽऽकारकवरीतरत्तारकलोचना ॥ पूर्णेदुबिंबवदना कुसुमोत्करहासिनी ॥ १३ ॥ लीलाविलोलपुरुषा कार्यसंहारकारिणी ॥ परं विमोहनं बुद्धेः कामिनीदीर्घयामिनी ॥ १४ ॥ पुष्पाभिराममधुरा करपल्लवशालिनी ॥ भ्रमराक्षिविलासाढ्या स्तनस्तवकधारिणी ॥ १५ ॥ पुष्पकेसरगौरांगी नरमारण तत्परा ॥ ददात्युन्मत्तवैवश्यं कांता विषलता यथा ॥ १६ ॥

अर्थ—केशसमूहरूपी महाअन्धकारफैलानेवाली चंचलनेत्रकी पुतलीरूप तारागण संयुक्तमुखरूप पूर्णचन्द्रमंडलसहित हांसरूपीपुष्पोंकेसमूहसहित ॥ १३ ॥ शृंगारकी लीलाओंसे पुरुषोंको चंचलकरनेवाली, कामचेष्टाके सिवाय अन्यकार्योंका संहारकरनेवाली और बुद्धिको सर्वथा मोहनेवाली, यह कामिनीरूपी बडीयामिनी है ॥ १४ ॥ सुन्दरतारूपीपुष्पसे मनोहर, हस्तरूपीपल्लओंसे शोभायमान, चंचलनेत्ररूपीभ्रमरोंके विलासोंसे पूर्णस्तनरूपीपुष्पके गुच्छेको

(१) सींपमें जो चांदीकीभ्रांति होती है वहां अज्ञान और सींपरूप अधिष्ठानभीहै यहां तो केवल अज्ञानही मात्रहै ।

धारणकियेहुई ॥ १५ ॥ पुष्पके केंशरकेसमान गौरवर्ण तथा मनुष्योंके मारनेमें तत्पर, यह स्त्रीरूपी विषकीलता, निजसेवकमूर्खोंको मरणरूपी मूर्च्छा देती है ॥ १६ ॥

सत्कार्योच्छ्वासमात्रेण भुजंगदलनोत्कया ॥ कांतयोत्स्रियते जंतुः करभ्येवोरगो बिलात् ॥ १७ ॥ कामनाम्ना किरातेन विकीर्णा मुग्धचेतसाम् ॥ नार्यो नरविहंगानामंग बंधनवागुराः ॥ १८ ॥ ललना विपुलाऽऽलाने मनोमत्तमतंगजः ॥ रतिश्रृंखलया ब्रह्मन्बद्धस्तिष्ठति मूकवत् ॥ १९ ॥ जन्मपल्वलमत्स्यानां चित्तकर्दमचारिणाम् ॥ पुंसां दुर्वासनारज्जुर्नारी बडिशपिंडिका ॥ २० ॥

अर्थ—मिथ्या सत्कार्योंके अश्वासनमात्रसे कामीपुरुषोंके चित्त और वित्तके नाशमें निपुण स्त्रीपुरुषको अन्य कार्योंसे निकालके ऐसे अपने वशमें करलेती है जैसे भलूकी बिलमेंसे सर्पको ॥ १७ ॥ हे प्रिय ! स्त्रियोंको कामरूपी व्याधने मूढमनुष्यरूपी पक्षियोंके फसानेको अपना जाल फैला रक्खाहै ॥ १८ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह मनरूपी उन्मत्त हाँथी स्त्रीरूपी खम्भेमें रतिरूपी शृंखलासे बँधाहुआ मूकके समान चुपचाप खडा रहताहै॥ १९ ॥ जन्मरूपी तडागके मत्स्य, कामासक्त चित्तरूपी कीचडके निवासी पुरुषोंकी दुष्ट वासनारूपी रस्सीमें स्त्रीरूप मछ्येके कांटेमें अटेकी गोली है ॥ २० ॥

मंदुरं चतुरंगाणामालानमिव दंतिनाम् ॥ पुंसां मंत्र इवाऽहीनांबंधनं वामलोचना ॥ २१ ॥ नानारसवती चित्रा भोगभूमिरियं मुने ॥ स्त्रियमा श्रित्य संयाता परामिह हि संस्थितिम् ॥ २२ ॥ सर्वेषां दोषरत्नानां सुसमुद्गिकयाऽनया ॥ दुःखश्रृंखलया नित्यमलमस्तु मम स्त्रिया ॥ २३ ॥ किं स्तनेन किमक्ष्णा वा किं नितंबेन किं भ्रुवा ॥ मांसमात्रैकसारेण करोम्यहमवस्तुना ॥ २४ ॥

अर्थ—अश्वोंकेलिये वाजिशाला, हाथियोंकेलिये खम्भा, और सर्पोंकेलिये मंत्र जैसे बन्धनका कारणहै, ऐसेही पुरुषोंकेलिये स्त्री ॥२१॥ हे मुने ! यह स्त्री नानाप्रकारके शृंगारादि रसोंसे पूर्ण विषयभोगकी एक विचित्र भूमिहै इसीका आश्रय लेके इस संसारमें मनुष्य दृढस्थितिको प्राप्तहुये हैं ॥ २२ ॥ संपूर्ण दोषरूपी रत्नोंकी पेटारी, और सदा दुःखोंकी शृंखला जो स्त्री है उससे कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ २३ ॥ स्त्रीके तुच्छ स्तनसे मैं क्या करूं ? नेत्रसे क्या करूं ? नितम्बसे क्या करूं ? और भौंहसे भी क्या करूं ? क्योंकि इन सबमें मांसमात्रही सारहै, और कुछ नहीं ॥ २४ ॥

इतो मांसमितो रक्तमितोऽस्थीनीति वासरैः ॥ ब्रह्मन्कतिपयैरेव याति स्त्री विशरारुताम् ॥ २५ ॥ यास्तात पुरुषैः स्थूलैर्ललिता मनुजे प्रियाः ॥ ता मुने प्रविभक्तांग्यः स्वपंति पितृभूमिषु ॥ २६ ॥ यस्मिन् घनतरत्नेहं मुखे पत्रांकुराः स्त्रियः ॥ कांतेन रचिता ब्रह्मन्पीयते तेन जंगले ॥ २७ ॥ केशाः श्मशानवृक्षेषु यांति चामरलेखिकाम् ॥ अस्थीन्युडुवद्भांति दिनैरवनिमंडले ॥ २८ ॥

अर्थ—हे ब्रह्मन् ! कहीं मांस, कहीं रक्त, कहीं, हड्डियां, इन्ही पदार्थोंसे बनी हुई स्त्री थोडेही दिनोंमें नष्ट होजाती है ॥ २५ ॥ हे तात ! हे मुने ! जिन स्त्रियोंको अविवेकी पुरुषोंने बडे प्रेमके साथ अतिप्यार कियाथा वेही स्त्रियां छिन्नभिन्न अंगवाली, स्मशानभूमिमें सोरही हैं ॥ २६ ॥ हे ब्रह्मन् ! जिस स्त्रिके मुखपर पतिने बडे प्रेमके साथ कर्पूर गोरोचन, और चन्दनादिका विचित्र तिलक रचाथा, वही मुख अब जंगलमें शूखरहाहै ॥ २७ ॥ थोडे दिनोंमें स्त्रियोंके केश, स्मशानभूमिके वृक्षोंके चमर होजातेहैं, और हड्डियाँ तारोंकेसमान पृथ्वीमण्डलपर चमकने लगती हैं ॥ २८ ॥

पिबंति पांसवो रक्तं क्रव्यादाश्चाऽप्यनेकशः ॥ चर्माणि च शिवा भुंक्ते खं यांति प्राणवायवः ॥ २९ ॥ इत्येषा ललनांगानामचिरेणैव भाविनी ॥ स्थितिर्मया वः कथिता किं भ्रांतिमनुधावथ ॥ ३० ॥ भूतपंचकसंघट्टसंस्थानं ललनाऽभिधम् ॥ रसादभिपतत्वेतत्कथं नामधियाऽन्वितः ॥ ३१ ॥ शाखाप्रतानगहना कट्वम्लफलमालिनी ॥ सुतालोच्चालतामेति चिंता कांतानुसारिणी ॥ ३२ ॥

अर्थ—रक्तको धूलि पीलेती है और माँसको अनेक मांसाहारी जीव भक्षण करलेते हैं, चर्म्म (चमडे) को शृगाल और शृगालियाँ खाजाती हैं और प्राणरूपी वायु आकाशमें चलेजातेहैं ॥ २९ ॥ यह स्त्रियोंके शरीरकी होनेवाली दशा मैंने आपलोगोंसे कहदी आप क्यों भ्रान्तिकेपीछे दौडतेहैं ॥ ३० ॥ पंचभूतों (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश) के समूह सेवनेहुये अंगोंका नाम स्त्री है, भला विवेकीमनुष्य रागसे कैसे इसकी ओर गिरे ॥ ३१ ॥ अनेक विषयसंबंधी विचाररूपी शाखाओंसे भयंकर, कटु, और आम्ल, (आमिल) फलोंसे लदी स्त्रीकेसंबन्धसे चिन्तारूपी उत्तम ताल (ताड) की लता अति उन्नतिको प्राप्त होरही है ॥ ३२ ॥

---

(१) भालू (मादी) सांपोंके बिलके निकट जाके केवल श्वाससेही सर्पोंको खींचके खा जाती है ऐसेही स्त्रीभी पुरुषके निकट श्वासमात्र लेनेसे अपने वशमें करती है.

कांदिग्भूततया चेतो घनगर्द्धांधमाकुलम् ॥ परं मोहमुपादत्ते यूथभ्रष्टमृगो यथा ॥ ३३ ॥ शोच्यतां परमां याति तरुणस्तरुणीपरः ॥ निबद्धः करिणीलोलो विंध्यखाते यथा गजः ॥ ३४ ॥ यस्य स्त्री तस्यभोगेच्छा निः स्त्रीकस्य क भोगभूः ॥ स्त्रियं त्यक्त्वा जगत्त्यक्तं जगत्यक्त्वा सुखी भवेत् ॥ ३५ ॥ आपातमात्ररमणेषु सुदुस्तरेषु भोगेषु नाऽहमलिपक्षतिचंचलेषु ॥ ब्रह्मन् रमे मरणरोगजरादिभीत्या शाम्याम्यहं परमुपैमि पदं प्रयत्नात् ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे स्त्रीजुगुप्सानामैकविंशतितमः सर्गः ॥ २१ ॥

अर्थ—इसी पूर्वोक्त चिन्तासे अत्यन्त धनकी अभिलाषासे अन्धदशाको प्राप्त यह चित्त किधर जाउँ ? कहाँसे धन प्राप्तकरूं ? इत्यादि विचारोंसे ऐसा मोहित होताहै जैसे झुण्डसे बिछडा हुआ मृग ॥ ३३ ॥ तरुण स्त्रीमें लीनपुरुष ऐसी शोचनीय दशाको प्राप्तहोताहै जैसे हँथिनीमें आसक्त, विन्ध्याचलके गढेमें बँधा हाँथी ॥ ३४ ॥ जिसके स्त्री है उसीको भोगकरनेकी इच्छाहै, स्त्रीरहितको भोगकी इच्छा कहां जिसने स्त्रीको त्यागा मानो उसने संसारहीको त्यागदिया इसी रीतिसे मनुष्य संसारको त्यागकर सुखी होजाय ॥ ३५ ॥ हे ब्रह्मन् ! बिनाविचारे रमणीय, पारहोनेमें अशक्य, भ्रमरोंके पक्षकेसमान चंचल, भोगोंमे मरण रोग और वृद्धावस्थाकेभयसे मैं रमण नहीं करूंगा, किन्तु शान्तहोके प्रयत्नसे परमपदको प्राप्त होउंगा ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे स्त्रीजुगुप्सानामैकविंशतितमः सर्गः ॥ २१ ॥

द्वाविंशतितमः सर्गः ॥ २२ ॥

शोक, मोह, पीडा, विषाद और अनेक रोगोंसे व्याप्त, चिंता और परिभव (हार)का स्थान जो वृद्धावस्था है उसकी निंदा इस २२ वे सर्गमें की गई है ॥

श्रीराम उवाच ॥ ॥ अपर्याप्तं हि बालत्वं बलात्पिबति यौवनम् ॥ यौवनं च जरा पश्चात्पश्य कर्कशतां मिथः ॥ १ ॥ हिमाशनिरिवांभोजं वात्येव शरदंबुकम् ॥ देहं जरा नाशयति नदी तीरतरुं यथा ॥ २ ॥ जर्जरीकृतसर्वांगी जरा जरठरूपिणी ॥ विरूपतां नयत्याऽऽशु देहं विषलवो यथा ॥ ३ ॥ शिथिलादीर्घसर्वांगं जराजीर्णकलेवरम् ॥ समंपश्यंति कामिन्यः पुरुषं करभं यथा ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले बाल्यावस्था जबतक क्रीडा कौतुकादिकी अभिलाषासे संतुष्ट नहीं होती, इतनेहीमें युवावस्था आके बलात्कार उसको ग्रासलेती है,इसीप्रकार यौवनावस्था जबतक भोगविलासादिसे तृप्त नहींहोती कि इतनेहीमें वृद्धावस्था आके उसे ग्रासकरजाती है,आप इन अवस्थाओंका परस्पर क्रूरताकेसाथ विरोध तो देखिये ! ॥१॥ जैसे हिमवज्रकेसमान कमलको नष्टकरता है इसीप्रकार वृद्धावस्था भी शरीरको नष्टकरदेती है ॥ २ ॥ यह राक्षसी वृद्धावस्था शरीरको ऐसा कुरूप करदेती है जैसे भोजनसे विष ॥ ३ ॥ वृद्धावस्थासे शरीर जिसका जर्जरीभूत होगया और संपूर्ण अंग जिसके शिथिल होगयेहैं ऐसे सब पुरुषोंको स्त्रियाँ गर्दभ (गधे) के समान देखती हैं ॥ ४ ॥

अनायासकदर्थिन्या गृहीते जरसा जने ॥ पलाय्य गच्छति प्रज्ञा सपत्न्येवाऽहतांगना ॥ ५ ॥ दासाः पुत्राः स्त्रियश्चैव बांधवाः सुहृदस्तथा ॥ हसंत्युन्मत्तकमिव नरं वार्द्धककंपिनम् ॥ ६ ॥ दुःप्रेक्ष्यं जरठं दीनं हीनंगुणपराक्रमैः ॥ गृध्रो वृक्षमिवाऽदीर्घं गर्द्धोह्यभ्येति वृद्धकम् ॥ ७ ॥ दैन्यदोषमयी दीर्घा हृदि दाहप्रदायिनी ॥ सर्वापदामेक सखी वार्द्धके वर्द्धते स्पृहा ॥ ८ ॥

अर्थ—बिना परिश्रम दीनता देनेवाली यह वृद्धावस्था जब आके मनुष्यको ग्रासती है तब बुद्धिभागके ऐसे चलीजाती है जैसे सपत्नी (सौत) से पराजित (हारीहुई) दूसरी स्त्री ॥ ५ ॥ दास, पुत्र, स्त्रियाँ बंधु और मित्रगण ये सब वृद्धावस्थासे कँपाहुये मनुष्यको ऐसे हँसते हैं जैसे उन्मत्तको ॥ ६ ॥ देखनेकेअयोग्य, गुण, और पराक्रमोंसे हीन, और महादीन वृद्धपुरुषकेनिकट संसारी पदार्थोंका लोभ ऐसी तीक्ष्णतासे आताहैं जैसे बडेवृक्षपर गृध्र ॥ ७ ॥ दीनता तथा अन्य दोषोंसे पूर्ण बहुत बडी हृदयमें दाह देनेवाली, सम्पूर्ण विपत्तियोंकी मुख्य सखी, लालसा वृद्धावस्थामें बढतीही जाती है ॥ ८ ॥

कर्त्तव्यं किं मया कष्टं परत्रेत्यतिदारुणम् ॥ अप्रतीकारयोग्यं हि वर्द्धते वार्द्धके भयम् ॥ ९ ॥ कोऽहं वराकः किमिव करोमि कथमेवच ॥ तिष्ठामि मौनमेवेति दीनतोदेति वार्द्धके ॥ १० ॥ कथं कदा मे किमिवस्वादु स्याद्भोजनं जनात् ॥ इत्यजस्रं जरा चैषा चेतो दहति वार्द्धके ॥ ११ ॥ गर्द्धोऽभ्युदेति सोल्लासमुपभोक्तुं न शक्यते ॥ हृदयं दह्यते नूनं शक्तिदौस्थ्येन वार्द्धके ॥ १२ ॥

अर्थ—हा ! मैं क्या करूँ ? परलोकमें मुझे महादारुण भय है इत्यादि जिसका उपाय कुछ नहीं होसक्ता ऐसा भय वृद्धावस्थामें बढताहै ॥ ९ ॥ हा ! कहाँ मैं महादरिद्र कहाँ बडे २ कार्य्य मैं कैसे और क्या करूं ? चुपचाप बैठा रहुं, ऐसी २ दीनता वृद्धावस्थामें उत्पन्न होती है ॥ १० ॥ मनुष्योंको देखकर वृद्ध मनुष्य कहताहै कि मुझे कैसे और कब उत्तम स्वादिष्ट भोजन मिलेगा ! इस रीतिसे सदा यह वृद्धावस्था औरभी चित्तको भस्म करती है ॥ ११ ॥ अभिलाषा तो बडी उग्रतासे होती है परन्तु शक्तिकी न्यूनतासे भोजन वा अन्यपदार्थोंका भोग नहीं कर सक्ता, इससे वृद्धावस्थामें हृदय अत्यन्त भस्म होताहै ॥ १२ ॥

जरा जीर्णबकी यावत्कायक्लेशाऽपकारिणी ॥ रौति रोगोरगाऽऽकीर्णा कायद्रुमशिरः स्थिता ॥ १३ ॥ तावदागत एवाऽऽशु कुतोपि परिदृश्यते ॥ घनांध्यतिमिराकांक्षी मुने मरणकौशिकः ॥ १४ ॥ सायं संध्यां प्रजातां वै तमः समनुधावति ॥ जरां वपुषि दृष्ट्वैव मृतिः समनुधावति ॥ १५ ॥ जराकुसुमितं देहद्रुमं दृष्ट्वैव दूरतः अध्यापतति वेगेन मुने मरणमर्कटः ॥ १६ ॥

अर्थ—अनेक क्लेशोंकेद्वारा शरीरका नाश करनेवाली, रोगरूपी सर्पोंसे व्याप्त वृद्धावस्थारूपी बकी शरीररूपी वृक्षके शिरपर बैठकर रोती है ॥ १३ ॥ कि इतनेहीमें हे मुने ! महामूर्च्छारूपी अन्धकारका अभिलाषी मृत्युरूपी कौशिक (उल्लूक) आके देखपडताहै ॥ १४ ॥ जिसप्रकार सायंकालकी सन्ध्याको देखकर अन्धकार दौडताहै, इसी प्रकार शरीरमें वृद्धावस्थाको देखकर मृत्युभी सन्मुख दौडती है ॥ १५ ॥ हे मुने ! वृद्धावस्थारूपी पुष्पसे फलित शरीररूपी वृक्षको दूरहीसे देखकर मृत्युरूपी मर्कट बडी वेगसे नाश करनेकेलिये उसकेऊपर आ गिरताहै ॥ १६ ॥

शून्यं नगरमाभाति भाति च्छिन्नलतोद्रुमः ॥ भात्यनावृष्टिमान्देशो न जराजर्जरं वपुः ॥ १७ ॥ क्षणान्निगरणायेव कासकणितकारिणी ॥ गृध्रीवाऽऽमिषमादत्ते तरसैव नरं जरा ॥ १८ ॥ दृष्ट्वैव सोत्सुकेवाऽऽशु प्रगृह्य शिरसि क्षणम् ॥ प्रलुनाति जरा देहं कुमारी कैरवं यथा ॥ १९ ॥ सीत्कारकारिणी पांसुपरुषा परिजर्जरम् ॥ शरीरं शातयत्येषावात्येव तरुपल्लवम् ॥ २० ॥

अर्थ—शून्यनगर, कटाहुआ वृक्ष, और वृष्टिसेरहित देश तो कुछ २ शोभित भी होताहै, परन्तु वृद्धावस्थासे जर्जरीभूत शरीर तो किंचित्भी शोभित नहीं होता ॥ १७ ॥ कास (खाँसी) रूपी शब्द करतीहुई वृद्धावस्था मनुष्यको निगल जानेकेलिये ऐसे वेगसे ग्रहण करती है जैसे गृध्री मांसको ॥ १८ ॥ जैसे बालिका पुष्पको देखकर क्षणभर बडी इच्छाकेसाथ अपने शिरपर रखके नष्टकरदेती है ऐसेही यह वृद्धावस्था शरीरको शीघ्रही नाश कर देती है ॥ १९ ॥ जैसे शीतकालके वायुकासमूह शीत्कार शब्द करताहुआ और रूखी धूलिसे जर्जर करताहुआ वृक्षकेपत्रोंको नष्टकरता है, ऐसेही यह वृद्धावस्था शरीरको ॥ २० ॥

जरसोपहतो देहो धत्ते जर्जरतां गतः ॥ तुषारनिकराकीर्णपरिम्लानां बुजश्रियम् ॥ २१ ॥ जराज्योत्स्नोदितैवेयं शिरःशिखरिपृष्ठतः ॥ विकासयति संरब्धं वातकासकुमुद्वती ॥ २२ ॥ परिपकं समालोक्य जराक्षारविधूसरम् ॥ शिरःकूष्मांडकं भुंक्ते पुसां कालः किलेश्वरः ॥ २३ ॥ जराजन्हुसुतोद्युक्ता मूलान्यस्य निकृंतति ॥ शरीरतीरवृक्षस्य चलत्यायुषि सत्वरम् ॥ २४ ॥

अर्थ—अतिशिथिलदशाको प्राप्त, और वृद्धावस्थासे माराहुआ यह शरीर तुषारके समूहसे व्याप्त, और म्लानिको प्राप्त कमलोंकी शोभाको धारणकरताहै ॥ २१ ॥ शिररूपी पर्वतपर जब वृद्धावस्थारूपी चाँदनी उदय होती है तब वह वात और कास (खाँसी) रूपी कुमुदकी लताको विकासित करती है ॥ २२ ॥ वृद्धावस्थारूपी क्षारसे धूसर और परिपक्व शिरको कालरूपी ईश्वर ऐसे भक्षण करताहै. जैसे कूष्माण्ड (सपेदकोहडा) को उसका स्वामी ॥ २३ ॥ आयुरूपी प्रवाहके वेगसे चलनेपर वृद्धावस्थारूपी गंगा शरीररूपी तीरके वृक्षके मूलोंको बडे वेगसे उखाड देती है ॥ २४ ॥

जरामार्जारिका भुंक्ते यौवनाखुं तथोद्धता ॥ परमुल्लासमायाति शरीरामिषगर्द्धिनी ॥ २५ ॥ कचिदस्ति जगत्यस्मिन्नाऽमंगलकरी तथा ॥ यथा जरा क्रोशकरी देहजंगलजंबुकी ॥ २६ ॥ कासश्वाससप्तीत्कारा दुःखधूमतमोमयी ॥ जराज्वाला ज्वलत्येषा यस्यासौ दग्ध एव हि ॥ २७ ॥ जरसा वक्रतामेति शुक्लावयवपल्लवा ॥ तात तन्वी तनुर्नृणां लता पुष्पाऽऽनता यथा ॥ २८ ॥

अर्थ—शरीररूपी मांसको चाटनेवाली वृद्धावस्थारूपिणी मार्जारी यौवनरूपी मूसको भक्षण करजाती है और अत्यन्त प्रसन्न होती है ॥ २५ ॥ इस संसारमें ऐसी अमंगल करनेवाली और कोई वस्तु नहीं है, जैसे महारोदन करनेवाली शरीररूपी जंगलमें वृद्धावस्थारूपी शृगाली ॥ २६ ॥ कास श्वास और सीत्कारको करानेवाली दुःखरूपी धूमसे अन्धकारमयी वृद्धावस्थारूपी गीले काष्ठकी ज्वाला जिसकेऊपर जलरही है मानो वह भस्मही होचुका ॥ २७ ॥ हे तात! अंगरूपी पत्र जिसके श्वेत होगये हैं ऐसी यह शरीररूपी लता ऐसे टेढी होजाती है जैसे पुष्पोंके भारसे सूक्ष्मलता ॥२८॥

जराकर्पूरधवलं देहकर्पूरपादपम् ॥ मुने मरणमातंगो नूनमुद्धरति क्षणात् ॥ २९ ॥ मरणस्य मुने राज्ञो जरा धवलचामरा ॥ आगच्छतोऽग्रे निर्याति स्वाधिव्याधिपताकिनी ॥३० ॥ न जिताः शत्रुभिः संख्ये प्रविष्टा येऽद्रिकोटरे ॥ ते जराजीर्णराक्षस्या पश्याऽऽशु विजिता मुने ॥ ३१ ॥ जरातुषारवलिते शरीरसदनांतरे ॥ शक्नुवंत्यक्षशिशवः स्पंदितुं न मनागपि ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे मुने! वृद्धावस्थारूप कर्पूरसे श्वेत रंगयुक्त इस शरीररूपी केलेके वृक्षको मृत्युरूपी हाँथी क्षणभरमें उखाडके फेंक देता है ॥ २९ ॥ हे मुने! जब मृत्युरूपी राजा आता है तो वृद्धावस्थारूपी चमरको लिये आधिव्याधिरूपी सेना आगे २ चलती हैं ॥ ३० ॥ हे मुने! जिनको बडे २ शत्रुओंनेभी युद्धमें नहीं जीता देखिये, उनको पर्वतकी गुफामें प्रवेश करनेपरभी वृद्धावस्थारूपी राक्षसीने शीघ्रही जीतलिया ॥ ३१ ॥ यह शरीररूपी गृह जब वृद्धावस्थारूपी हिमसे व्याप्त हो जाता है तब इन्द्रियरूपी बालक किंचित् चेष्टा नहीं करसक्ते ॥ ३२ ॥

दंडतृतीयपादेन प्रस्खलंती मुहुर्मुहुः ॥ कासाधोवायुमुरजा जरा योषित्प्रनृत्यति ॥ ३३ ॥ संसारसंसृतेरस्या गंधकुट्यां शिरोगता ॥ देहयष्ट्यां जरा नाम्नी चामरश्रीर्विराजते ॥ ३४ ॥ जराचंद्रोदयसिते शरीरनगरे स्थिते ॥ क्षणाद्विकासमायाति मुने मरणकैरवम् ॥ ३५ ॥ जरासुधालेपसिते शरीरांतःपुरांतरे ॥ अशक्तिरार्तिरापच्च तिष्ठंति सुखमंगनाः ॥ ३६ ॥

अर्थ—दण्डरूपी तीसरे पादपर बार २ गिरती हुई, खाँसी और अधोवायुरूपी मुरज बाजेको बजाती हुई, वृद्धावस्थारूपिणी स्त्री नाचती है ॥ ३३ ॥ संपूर्ण विषयभोगोंके स्थान, संसाररूपी राजाके व्यवहारोंको साधनेवाली इस शरीररूपी दण्डके ऊपर वृद्धावस्थारूपी चमरकी शोभा विराज रही है ॥ ३४ ॥ हे मुने! जब यह शरीररूपी नगर वृद्धावस्थारूपी चन्द्रमासे श्वेत हो जाता है तब शीघ्रही मृत्युरूपी कुमुद विकसित हो जाता है ॥ ३५ ॥ जब वृद्धावस्थारूपी चूनेके लेपसे शरीररूपी गृह श्वेत होजाता है तब अशक्ति, पीडा, और आपत्तिरूप स्त्रियाँ सुखसे निवास करतीहैं ॥ ३६ ॥

अभावोऽग्रेसरी यत्र जरा जयति जंतुषु ॥ कस्तत्रेह समाश्वासो ममर्मंदमतेर्मुने ॥ ३७ ॥ किं तेन दुर्जीवितदुर्ग्रहेण जरागतेनाऽपि हि जीव्यते यत् ॥ जरा जगत्यामजिता जनानां सर्वैषणास्तात तिरस्करोति ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे जराजुगुप्सानाम द्वाविंशतितमः सर्गः ॥ २२ ॥

अर्थ—हे मुने! जब चारों प्रकारके प्राणियोंको जरा जीत लेतीहै और उसके पश्चात् मृत्यु आके उपस्थित होतीहै तो इस संसारमें मेरे सदृश मंदमतियोंका क्या विश्वासहै ॥ ३७ ॥ हे तात! उस नष्ट जीवनसे क्या करना? जो वृद्धावस्थासे ग्रस्त होकेभी जीनापडे इस संसारमें प्रचंड वृद्धावस्था संपूर्ण अभिलाषाओंको व्यर्थ कर देतीहै ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे जराजुगुप्सानाम द्वाविंशतितमः सर्गः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशतितमः सर्गः ॥ २३ ॥

गुण और दोषोंके बलकी उन्नति सहित अपने विलासोंके समूहसे कर्माप्रिय सम्पूर्ण प्राणियोंको जो रमण करताहै उस कालकी महिमा इस २३ वें सर्गमेंकी गई है.

श्रीराम उवाच—विकल्पकल्पनानल्पजल्पितैरल्पबुद्धिभिः ॥ भेदैरुदुरतां नीतः संसारकुहरे भ्रमः ॥ १ ॥ सतां कथमिवास्थेह जायते जालपंजरे ॥ बाला एवात्तुमिच्छंति फलं मुकुरबिंबितम् ॥ २ ॥

इहापि विद्यते येषां पेलवा सुखभावना ॥ आखुस्तंतुमिवाशेषं कालस्तामपि कृंतति ॥ ३ ॥ न तदस्तीह यदयं कालः सकलघस्मरः ॥ ग्रसते तज्जगज्जातं प्रोत्थाब्धिमिव वाडवः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-यह मेरा भोग्य है और मैं इसका भोक्ता हूं इससे ऐसा करके विविध प्रकारके संसारमें अधिक कालतक विषय भोग करूंगा इत्यादि विकल्पकी कल्पनाओंसे नानाप्रकारके व्यवहार वचन संयुक्त देहमात्रमें आत्माभिमानी मूढपुरुषोंने शत्रु मित्र, और उदासीन, भेदोंसे इससे संसाररूपी गर्त्त (गढे) में भ्रमको ऐसी उन्नति दी है कि उसका नाश करना महा कठिन हो गयाहै ॥ १ ॥ भला सज्जनोंको इस जालके पिंजरेमें कैसे विश्वास हो सक्ताहै ? ये अविवेकी लोग तो बालकोंके समान दर्पणमें जो फलका प्रतिबिम्ब है उसीको खाना चाहतेहैं ॥ २ ॥ ऐसे तुच्छ संसारमें जो लोगोंको किंचित् सुखकी भावनाहै, उसकोभी काल सर्वथा ऐसे काट डालताहै जैसे चूहा सूतको॥३॥ जैसे विशाल समुद्रको वडवानल ग्रास करजाताहै, ऐसेही इस संसारमें ऐसी कोई वस्तु उत्पन्न नहीं हुई जिसको इस सर्वभक्षी कालने न ग्रसाहो ॥ ४ ॥

समस्तसामान्यतया भीमः कालो महेश्वरः ॥ दृश्यसत्तामिमां सर्वां कवलीकर्त्तुमुद्यतः ॥ ५ ॥ महतामपि नो देवः प्रतिपालयति क्षणम् ॥ कालः कवलितानंतविश्वो विश्वात्मतां गतः ॥ ६ ॥ युगवत्सर कल्पाख्यैः किंचित्प्रकटतां गतः ॥ रूपैरलक्ष्यरूपात्मा सर्वमाक्रम्य तिष्ठति ॥ ७ ॥ ये रम्या ये शुभारंभा सुमेरुगुरवोऽपिये ॥ कालेन विनिगीर्णास्ते गरुडेनेव पन्नगाः ॥ ८ ॥

अर्थ—सर्व पदार्थोंसे महाभयंकररूप यह कालही संहारकर्ता महारुद्रहै जो इस दृश्यमात्र संसारकी सत्ताको कवल करनेको उद्यतहै ॥ ५ ॥ यह काल देव बडे बुद्धिमान् और बलवानोंकीभी क्षणभर प्रतीक्षा नहीं करता, किन्तु तत्कालही मारलेताहै, यह काल अनन्तब्रह्माण्डोंको कवल करके स्वयं विश्वरूप होरहाहै ॥ ६ ॥ सूर्यकी गतिरूप क्रियाके औपाधिक रूपसे वर्ष, युग और कल्पादि नामोंसे यह काल प्रगटहै, परन्तु यथार्थमें अलक्ष्यरूपसे सबको दबाये हुये स्थितहै ॥ ७ ॥ अति रमणीय सुन्दरकारवाले, और सुमेरू जैसे गुरु पदार्थोंकोभी यह काल ऐसा निगल जाताहै जैसे गरुडजी सर्पोंको ॥ ८ ॥

निर्दयः कठिनः क्रूरः कर्कशः कृपणोऽधमः ॥ न तदस्ति यदद्यापि नकालो निगिरत्ययं ॥ ९ ॥ कालः कवलनैकांतमतिरत्ति गिरीनपि ॥ अनंतैरपि लोकौघैर्नायं तृप्तो महाशनः ॥ १० ॥ हरत्ययं नाशयति करोत्यत्ति निहंति च ॥ कालः संसारनृत्तं हि नानारूपं यथा नटः ॥ ११ ॥ भिनत्ति प्रविभागस्थभूत बीजान्यनारतम् ॥ जगत्यसत्तया वंधाद्दाडिमानि यथा शुकः ॥ १२ ॥

अर्थ—निर्दय, कठिन, क्रूर, कर्कश, कृपण, और अधम ऐसा आजतक कोई नहीं है जिसको यह काल न निगलता हो ॥ ९ ॥ पर्वत लता आदिसे लेके सबको कवलकर जाना यही कालका मुख्य सिद्धान्तहै अनंत लोकोंके समूहोंको इस महाभक्षी कालने स्वाहा करदिया, परन्तु अभीतक तृप्त नहीं हुआ ॥ १० ॥ हरण करना, नाश करना, भक्षण करना, मारना तथा अन्य प्रकारकी क्रियाओंका करना, यह सब कालहीके आधीनहै, नानारूपधारी यह संसाररूपी महानृत्तहै उसमें कालरूपी नटहै ॥ ११ ॥ इस जगत्में पृथ्वी, जल, तेज वायु ये चार प्रकारके सूक्ष्म स्थूल भूतहैं उन सबको विदीर्ण करके काल निरन्तर ऐसे भक्षणकर जाताहै जैसे दाडिमको शुक ॥ १२ ॥

शुभाशुभविपाणाग्रविलूनजनपल्लवः ॥ स्फूर्जति स्फीतजनताजीवराजीवनीगजः ॥ १३ विरिंचिमूल ब्रह्मांडबृहद्देवफलद्रुमम् ॥ ब्रह्मकाननमाभोगि परमावृत्य तिष्ठति ॥ १४ ॥ यामिनीभ्रमरा पूर्णा रचयन् दिनमंजरीः ॥ वर्षकल्पकलावल्लीर्न कदा च न खिद्यते ॥ १५ ॥ भिद्यते नावभग्नोऽपि दग्धोऽपि हिन दह्यते ॥ दृश्यते नाऽपि दृश्योऽपि धूर्तचूडामणिर्मुने ॥ १६ ॥

अर्थ—अभिमान राग द्वेषादिसे वृद्धिको प्राप्त जीव समूहोंकी पंक्तिरूपी वनकी भूमिमें शुभ और अशुभ फलरूपी दोनों दांतोके अग्रभागसे जनरूपी पत्रोंको नष्ट करनेवाला कालरूपी महागज गर्जताहै ॥ १३ ॥ जिसका ब्रह्मा मूलहै और जिसमें ब्रह्माण्डरूपी बडे २ देवताही फलसहित वृक्षहैं ऐसे कृत्रिम भोगका वेष धारण कियेहुये ब्रह्मरूपी वनमें व्याप्त होके कालस्थितहै ॥ १४ ॥ रात्रीरूपी भ्रमरोंसे पूर्ण, दिनरूपी लता वृक्षोंको, और वर्ष, युग तथा कल्परूपी अनेक लताओंको बनाताहुआ यहकाल कभी नहीं थकता ॥ १५ ॥ यह काटा नहीं कटता, भस्म होनेपरभी नहीं जलता, और दृश्य होनेपरभी नहीं देख पडता. हे मुने ! यहकाल तो सब धूर्तोंका शिरोमणिहै ॥ १६ ॥

(१) पूर्व प्रसंगमें लक्ष्मी भोग, तृष्णा और बाल्यादि अवस्था तथा स्त्रियोंकी निन्दासे रामचंद्रने अपना इहा मुत्रार्थ (इस लोक और पर लोकके) भोगमें विराग देखाया अब नित्याऽनित्य वस्तु विवेककी भूमिका बांधते है ॥

एकेनैव निमेषेण किंचिदुत्थापयत्यलम् ॥ किंचिद्विनाशयत्युच्चैर्मनो राज्यवदाततः ॥ १७ ॥ दुर्विलास विलासिन्या चेष्टया कष्टपुष्टया ॥ द्रव्यैकरूपकृद्रूपं जनमावर्त्तयन् स्थितः ॥ १८ ॥ तृणं पांसुं महेंद्रं चसुमेरुं पर्णमर्णवम् ॥ आत्मंभरितया सर्वमात्मसात्कर्तुमुद्यतः ॥ १९ ॥ क्रौर्यमत्रैवपर्याप्तं लुब्धताऽत्रैव संस्थिता ॥ सर्वदौर्भाग्यमत्रैव चापलंचापि दुःसहम् ॥ २० ॥

अर्थ—यहकाल मनोराज्यके सदृश, व्यापकरूप, एकही क्षणमें किसीको तो भलीभांति उठाके खडा करताहै और किसीको नष्ट करताहै ॥ १७ ॥ अनेक प्राणियोंके कष्टोंसेही पुष्ट, अपने दुष्टविलासोंसे विलास करनेवाली, सत्ययुगादिके योग्य चेष्टारूप स्त्रीसे अनेक द्रव्यादि पदार्थोंको उत्पन्न करनेवाला यहकाल, अविवेकी जनोंको स्वर्ग नरकादिमें भ्रमण कराताहै ॥ १८ ॥ यहकाल केवल उदर पूर्णार्थी होनेके कारणसे तृण, धूलि, महेंद्र, सुमेरू, पत्र और समुद्र सबको भक्षण करनेमें उद्यतहै ॥ १९ ॥ क्रूरताकी पराकाष्ठा यहकालहीहै, लुब्धताभी इसीमें आके स्थिर हुईहै, दौर्भाग्यनेभी अपना गृह इसीको बनायाहै और चपलताभी ऐसी और स्थानोमें दुर्लभहै ॥ २० ॥

प्रेरयन् लीलयार्केंदूक्रीडतीव नभस्तले ॥ निक्षिप्तलीलायुगलो निजेबाल इवांगणे ॥ २१ ॥ सर्वभूतास्थिमालाभिरापादवलिताकृतिः ॥ विलसत्येव कल्पांते कालः कलितकल्पनः ॥ २२ ॥ अस्योद्दामरवृत्तस्य कल्पांतगविनिर्गतैः ॥ प्रस्फुरत्यंबरे मेरुर्भूर्जत्वगिव वायुभिः ॥ २३ ॥ रुद्रो भूत्वा भवत्येष महेंद्रोऽथ पितामहः ॥ शक्रो वैश्रवणश्चापि पुनरेव न किंचन ॥ २४ ॥

अर्थ—आकाश मण्डलमें सूर्य और चन्द्रमाको प्रेरणा करता हुआ यह ऐसे क्रीडाकर रहा है, जैसे दो कन्दुकसे अपने आंगनमें बालक ॥ २१ ॥ सम्पूर्ण प्राणियोंकी हड्डियोंकी मालासे शिरसे पाओंतक शोभित, और सम्पूर्ण प्राणिमात्रके विभागोंको तथा संयोगोंको नाश करनेवाला, यह काल कल्पके अन्तमें विलास करताहै ॥ २२ ॥ कल्पके अन्तमें, स्वतंत्र चरित्रवाले इस कालके अंगोंसे निर्गत वायुसे इतना बडा यह सुमेरूपर्वतभी छिन्नभिन्नहोके आकाशमण्डलमें ऐसे भ्रमण करताहै, जैसे वायुके झोकोंसे भोजपत्र॥२३ ॥यह कालही रूद्रका रूप धारणकरके महेन्द्रका रूप धारणकरताहै, पुनः ब्रह्माजीका रूप धारण करताहै,इसके अनन्तर पुनः इन्द्र और कुबेर बन जाताहै और फिर कुछभी नहीं रहता ॥ २४ ॥

धत्तेऽजस्रोत्थितोत्ध्वस्तान्सर्गानमितभास्वरान् ॥ अन्यान्दधद्दिवानक्तं वीचीरब्धिरिवात्मनि ॥ २५ ॥ महाकल्पाभिधानेभ्यो वृक्षेभ्यः परिशातयन् ॥ देवासुरगणान्पक्कान्फलभारानिव स्थितः ॥ २६ ॥ कालोऽयं भूतमशकघुंघुमानां प्रपातिनाम् ॥ ब्रह्मांडोडुंबरौघाणां बृहत्पादपतां गतः ॥ २७ ॥ सत्तामात्रकुमुद्वत्या चिज्ज्योत्स्नापारफुल्लया ॥ वपुर्विनोदयत्येकं क्रियाप्रियतमान्वितः ॥ २८ ॥

अर्थ—यहकाल अपने कार्यमें रात्रि दिन सदा उद्यत एक प्रकारकी सृष्टिको बनाकर दूसरे अनेक प्रकाशमान सृष्टियोंको ऐसे नष्ट करताहै जैसे समुद्र अपने आत्मामें तरंगोंको॥ २५ ॥ महाकल्प नामवाले वृक्षोंसे, देवता और असुरोंके समूहरूपी फलोंके भारोंको नाश करता हुआ यह स्थितहै ॥ २६ ॥ संपूर्ण प्राणीरूप शब्द करनेवाले मशकों सहित गिरनेवाले अनेक ब्रह्माण्डरूपी गूलरके फलोंका यह काल मानों एक महा वृक्षहै ॥२७॥ सबका अधिष्ठान रूप चेतनकी सत्तारूप चन्द्रिकासे विकसित सब पदार्थकी सत्तारूप कुमुदिनीसे प्राणियोंकी क्रियारूप अपनी स्त्रीके साथ यह काल अपनी शरीरको प्रसन्न करताहै ॥ २८ ॥

अनंतापारपर्यंतबद्धपीठं निजं वपुः ॥ महाशैलवदुत्तुंगमवलंब्य व्यवस्थितः ॥ २९ ॥ क्वचिच्छ्यामतमः स्याम्यं क्वचित्कांतियुतं ततम् ॥ द्वयेनाऽपि क्वचिद्रिक्तं स्वभावं भावयन्स्थितः ॥ ३० ॥ सलीनासंख्यसंसारसारया स्वात्मसत्तया ॥ उर्व्येवमारधनया निबद्धपदतां गतः ॥ ३१ ॥ न खिद्यते नाद्रियते नायाति न च गच्छति ॥ नास्तमेति न चोदेति महाकल्पशतैरपि ॥ ३२ ॥

अर्थ—आदि अन्त शून्य आपार परब्रह्मके स्वरूपमें अपने शरीरका सिंहासन स्थापन करके, बडे पर्वतके समान यह व्यापक होके ठहराहै ॥ २९ ॥ कहीं रात्रिआदि श्याम पदार्थोंमें श्यामरूप कहीं दिन चन्द्रिका मणिआदि प्रकाशमान पदार्थोंमें प्रकाशमय और कहीं घटगृहादि दोनोंरूपसे रहित अपने स्वरूपको प्रगट करता हुआ यह काल स्थितहै ॥ ३० ॥ अपने स्वरूपमें असंख्य प्राणि समूह सहित संसारोंको लीन करके सारभूत अपनी सत्तासे ऐसी स्थिर प्रतिष्ठाको प्राप्त हुआहै जैसे महाभारसे पृथ्वी ॥ ३१ ॥ सैकडों महाकल्पोंमेंभी यह काल न खिन्न होताहै, न प्रसन्न होताहै, न आताहै, न जाताहै, न अस्त होताहै, न उदय होताहै ॥ ३२ ॥

केवलं जगदारंभलीलया घनहेलया ॥ पालयत्यात्मनात्मानमनहंकारमाततम् ॥ ३३ ॥ यामिनीपंकककलितां दिनकोकनदावलीम् ॥ मेघभ्रमरिकामात्मसरस्या रोपयन्स्थितः ॥ ३४ ॥ गृहीत्वा कृपणः कृष्णां रजनीं जीर्णमार्जनीम् ॥ आलोककनकक्षोदानाहरत्यमितो गिरिम् ॥ ३५ ॥ संचारयन् क्रियांगुल्या कोणेकेष्वर्कदीपिकाम् ॥ जगत्सद्मनि कार्पण्यात्क किमस्तीति वीक्षते ॥ ३६ ॥

अर्थ—अहंकारसे वर्जित, व्यापकरूप, यह काल, अती अनादरपूर्वक जगत् रचनेकी लीलासे अपने आत्माको आपही पालन करताहै ॥ ३३ ॥ रात्रिरूप कीचडमें उत्पन्न, मेघरूपी भ्रमर सहित, दिनरूपीलाल कमलोंको अपने आत्मारूपी तडागमें लगाकर यहस्थितहै ॥ ३४ ॥ यह कृपणकाल सदा वही कृष्णरात्रिरूपी मार्जनी (झाडू) हांथमें लेके और उसको चलाकर चारों ओरसे प्रकाशरूपी सुवर्णके चूर्णको बटोरा करताहै ॥ ३५ ॥ यहकाल अपनी कृपणताके कारणसे,जगत्रूपी गृहमें, क्रियारूप अंगुलीसे दिशाओंके कोनोंमें सूर्यरूपी दीपकका संचार करताहुआ कहांपर क्या पदार्थहै यही देखा करताहै ॥ ३६ ॥

प्रेक्ष्याहर्विनिमेषेण सूर्याक्ष्णापाकवंत्यलम् ॥ लोकपालफलान्यत्ति जगज्जीर्णवनादयम् ॥ ३७ ॥ जगज्जीर्णकुटीकीर्णानर्पयत्युग्रकोटरे ॥ क्रमेण गुणवल्लोकमणीन्मृत्युसमुद्गके ॥ ३८ ॥ गुणैरापूर्यते यैव लोकरत्नावली भृशम् ॥ भूपार्थमिव तामंगे कृत्वा भूयो निकृंतति ॥ ३९ ॥ दिनहंसानुसृतया निशेंदीवरमालया ॥ तारकेसरयाजस्रं चपलो वलयत्यलम् ॥ ४० ॥

अर्थ—यहकाल सूर्यरूपी नेत्र और दिनरूपी निमेषसे, जगत्रूपी प्राचीनवनसे, लोगपालरूपी परिपक्कफलोंको देख देख कर खाता है ॥ ३७ ॥ यहकाल जगत्रूपी प्राचीन तृणके गृहमें गिरेहुये अनेक गुण सहित संसाररूपी मणियोंको बडे उदरवाले मृत्युरूप सन्दूकमें क्रमक्रमसे रक्खा करताहै ॥ ३८ ॥ जो संसाररूपी रत्नोंकी पंक्ति गुणोंसे परिपूर्ण होजातीहै उसको आभूषणके समान अपने युगादिरूप अंगोमें धारण करके पुनः उसको तोड डालताहै ॥ ३९ ॥ दिनरूपी हंससहित तारागणरूपी केशर संयुक्त, रात्रिरूपी नीलकमलकी मालाको, पांचो ऋतुरूपी अंगुलीवाले वर्षरूपी अपने हस्तमें यहकाल कटकके समान धारण करताहै ॥ ४० ॥

शैलार्णवधराशृंगजगदूर्णायुसौनिकः ॥ प्रत्यहं पिबते प्रेक्ष्य तारा रक्तकणानपि ॥ ४१ ॥ तारुण्यनलिनीसोम आयुर्मातंगकेसरी ॥ न तदस्ति न यस्याऽयं तुच्छातुच्छस्य तस्करः ॥ ४२ ॥ कल्पकेलिविलासेन पिष्टपातितजंतुना ॥ अभावो भावमासेन रमते स्वात्मनाऽऽत्मनि ॥ ४३ ॥ कर्त्ता भोक्ताऽथ संहर्ता स्मर्ता सर्वपदं गतः ४४ ॥

अर्थ—जिसके पर्वत, समुद्र, स्वर्ग, और पृथ्वी शृंगहैं ऐसे जगत्रूपी मेषोंका सौनिक (कसाई) यहकाल तारागणके कणोंसेभी रक्तवर्ण देखकर प्रतिदिन चाटलिया करताहै ॥ ४१ ॥ युवावस्थारूपी कमलिनीका तो यह चन्द्रमाहै, आयुरूपी हस्तिके लिये सिंहहै, छोटी या बडी संसारमें ऐसी कोईभी वस्तु नहीं है जिसका यह चोर न हो॥४२ कल्परूपी प्रलयके मेघोंके विलाससे प्राणिमात्रको मृत्युके मुखमें डालनेवाला, पदार्थोंका अभावरूप यहकाल अपनी अधिष्ठानरूप चेतन सत्तामें रमण करताहै ॥ ४३ ॥ इसप्रकार प्रलयमें विश्राम करके पुनः संसारका कर्ता, भोक्ता, संहार कर्ता और स्मरण कर्ता, इत्यादि सब अवस्थाओंको प्राप्त होताहै ॥ ४४ ॥

सकलमप्यकलाकलितांतरं सुभगदुर्भगरूपधरं वपुः ॥ प्रकटयन्सहसैव च गोपयन् विलसतीह हि कालबलंनृषु ॥ ४५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे वैराग्यप्रकरणे कालापवादोनाम त्रयोविंशतितमः सर्गः ॥ २३ ॥

अर्थ—जिसका रहस्य बुद्धिकी कुशलतासेभी नहीं जानाजाता ऐसे पुण्य और पापके फल भोगानुसार सम्पूर्णशरीरोंको शीघ्रही प्रगट और नाश कर्ता हुआ विहार करताहै, क्योंकि इस संसारमें कालका बल प्राणिमात्रमें प्रसिद्धहै॥४५॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे वैराग्यप्रकरणे कालापवादोनामः त्रयोविंशतितमः सर्गः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशतितमः सर्गः ॥ २४ ॥

चण्डी स्त्री सहित आखेट (अहेर) के कौतुकसे पूर्ण राजपुत्ररूपसे उसी कालका वर्णन इस २४ वें सर्गमें पुनः किया गयाहै.

श्रीराम उवाच ॥ ॥ अस्योद्दामरलीलस्य दूरास्तसकलाऽऽपदः ॥ संसारे राजपुत्रस्य कालस्याऽकलितौजसः ॥ १ ॥ अस्यैवाचरतो दीनैर्मुग्धैर्भूतमृगव्रजैः ॥ आखेटकं जर्जरिते जगज्जंगलजालके ॥२॥ एकदेशो लसच्चारुवडवानलपंकजा ॥ क्रीडापुष्करिणी रम्या कल्पकालमहार्णवः ॥ ३ ॥ कटुतिक्ताम्लभूताद्यैः सदधिक्षीरसागरैः ॥ तैरेव तैः पर्युषितैर्जगद्भिः कल्पवर्त्तनम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-स्वतंत्र लीला करनेवाला सम्पूर्ण आपत्तियोंसे रहित अतुलित पराक्रम सहित, सूर्य चन्द्रादिककाभी प्रकाशक जो परब्रह्मरूपी राजाहै उसकी अनादि कालकी मायारूप पटरानीसे जिसका जन्महुआहै और जो युवराज्यमें अभिषिक्त कालरूपी राजपुत्रहै उसका चरित्र वर्णन करतेहैं ॥ १ ॥ जगत्‌रूपी पुराने जंगलके समूहमें, दीन और अज्ञ प्राणिरूप मृगोंके समूहोंमें अहेर करनेवाले इसी कालकी ॥ २ ॥ क्रीडाकेलिये प्रलयकालका जो समुद्रहै वह रमणीय पुष्करिणी (बावडी) बनाई गईहै, जिस बावडीके किसीदेशमें वडवानलरूपी कमल विकसित हो रहाहै ॥ ३ ॥ दधि क्षीर आदि सबप्रकारके समुद्रोंसहित कटु तिक्त और आम्लरूप जो अनेक मत तथा चिरस्थायी वा अल्पस्थायी जो जगत्‌हैं, उनका यहकालरूप राजपुत्रका प्रातःकालमें कलेवा करताहै ॥ ४ ॥

चंडी चतुरसंचारा सर्वमातृगणान्विता ॥ संसारवनविन्यस्ता व्याघ्री भूतौघघातिनी ॥ ५ ॥ पृथ्वीकरतले पृथ्वी पानपात्री रसान्विता ॥ कमलोत्पलकल्हारलोलजालकमालिता ॥ ६ ॥ विरावी विकटास्फोटो नृसिंहो भुजपंजरे ॥ सटाविकटपीनांसः कृतः क्रीडाशकुंतकः ॥ ७ ॥ अलाबुवीणामधुरः शरद्व्योमलसच्छविः ॥ देवः किल महाकालो लीलाकोकिलबालकः ॥ ८ ॥

अर्थ—चलनेमें बडी चतुर अपने सबमातृगणोंसहित, संसारके सब प्राणियोंकी संहारिणी और संसाररूपीवनमें विहारिणी व्याघ्रीके समान जो कालरात्रिहै वह इस कालकी प्रिया पत्नी है ॥ ५ ॥ श्वेत, नील, और रक्त, कमलोंके समूहसे मढीहुई, नानाप्रकारके रससहित यह जो बडी पृथ्वी है सो कालरूपी राजपुत्रका पान (मद्य) पात्रहै ॥ ६ ॥ अपने भुजाओंके फटकारसे दुःसह, और महागर्जना करनेवाले, और सटा (स्कन्धकेवालों) से अतिभयंकर मूर्ति भगवान् नृसिंहावतार, जिस कालके भुजपंजरमें दानवोंके वधरूपी क्रीडाके लिये बाजनामक पक्षी बनायेगयेहैं ॥ ७ ॥ नानाप्रकारके ब्रह्माण्डोंकी माला धारण करनेसे, अलावू (तुम्बे) की वीणासे मधुर शब्दकारी, शरत्कालके निर्मल आकाशकेसमान शोभायमान संहार भैरव जो महाकालदेवहैं वे इसकालकी लीलाके लिये कोकिलके बालक बनाये गये है ॥ ८ ॥

अजस्रस्फूर्जिताकारो वांतदुःखशरावलिः ॥ अभावनामकोदंडः परिस्फुरति सर्वतः ॥ ९ ॥ अनुत्तमस्त्वधिकविलासपंडितो भ्रमच्चलन्परिविलसन् विदारयन् ॥ जरज्जगज्जनितविलोलमर्कटः परिस्फुरद्वपुरिह काल ईहते ॥ १० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे वैराग्यप्रकरणे कालविलासोनाम चतुर्विंशतितमः सर्गः ॥ २४ ॥

अर्थ—सदा टंकारध्वनि करनेवाला दुःखरूपी बाणोंके समूहोंको फेंकनेवाला, और सबका संहारकारी इसकालका धनुष सर्वत्र स्फुरित हो रहाहै ॥ ९ ॥ स्वयं चंचल होनेपरभी चलायमान लक्ष्योंको विदीर्ण करके यहकाल विलास करताहै इसीसे सम्पूर्ण अहेरियोंमें अत्युत्तम पण्डित और दिलासीहै, अतएव प्राचीन जगत्‌में विषयलंपट मनुष्यरूपी मर्कटोंको पीडित करके विराजमान यहकालरूप राजपुत्र अपनी चेष्टारूपी मृगया (अहेर) कर रहाहै ॥ १० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदुतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे वैराग्यप्रकरणे कालविलासोनाम चतुर्विंशतितमः सर्गः ॥ २४ ॥

---

(१) कटु तिक्त आम्ल द्रव्य मिलाके प्रातःकालका केलवा द्रवीड देशमें प्रसिद्धहै ॥ (२) पाषाणकी आख्यायिकामें महाकालके विषयमें कहेंगे.

पंचविंशतितमः सर्गः ॥ २५ ॥

प्रकृतिके चित्रके समान, क्रिया और उनके फल स्वरूप जो दूसरा कालहै उसके नृत्यके विस्तारका वर्णन इस २५ वें सर्गमें किया गयाहै.

श्रीराम उवाच ॥ ॥ अत्रैव दुर्विलासानां चूडामणिरिऽहापरः ॥ करोत्यत्तीति लोकेस्मिन्दैवं काल-श्च कथ्यते ॥ १ ॥ क्रियामात्रादृते यस्य स्वपरिस्पंदरूपिणः ॥ नान्यदालक्ष्यते रूपं न कर्म न सर्माहितम् ॥ २ ॥ तेनेयमखिला भूतसंततिः परिपेलवा ॥ तापेन हिममालेव नीता विधुरतां भृशम् ॥ ३ ॥ यदिदं दृश्यते किंचिज्जगदाभोगिमंडलम् ॥ तत्तस्य नर्त्तनागारमिहासावति नृत्यति ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–इसी संसारमें संपूर्ण दुर्विलासियोंका शिरोमणि जो दूसराकालहै वही संपूर्ण क्रियाओंको करताहै, और संहारभी करताहै, उसीको प्राणियोंके शुभाशुभ कर्मोंके फल देनेसे तथा उनके साथ व्यवहार वा क्रीडा करनेसे दैव और कालभी कहते हैं ॥ १ ॥ जिस परिस्पंदमात्र रूपधारी इसकालका क्रियाके सिवाय न कुछरूप प्रतीत होताहै, न कर्म प्रतीत होताहै, और न चेष्टा प्रतीत होती है ॥ २ ॥ इसीने संपूर्ण प्राणीमात्रके समूहोंको ऐसा नष्टकर दियाहै जैसे आतपने हिमके समूहोंको ॥ ३ ॥ जो कुछ कृत्रिम भोगकारूप धारण किये यह दृश्यमात्र देख पडताहै यह सब इसके नृत्यका स्थानहै यहांपर वह स्वच्छन्दतासे क्रीडा करताहै ॥ ४ ॥

तृतीयं च कृतांतेति नाम बिभ्रत्सुदारुणम् ॥ कापालिकवपुर्मत्तं दैवं जगति नृत्यति ॥ ५ ॥ नृत्यतो हि कृतांतस्य नितांतमिव रागिणः ॥ नित्यं नियतिकांतयां मुने परमकामिता ॥ ६ ॥ शेषः शशिकलाशुभ्रो गंगावाहश्च तौ त्रिधा ॥ उपवीते अवीते च उभौ संसारवक्षसि ॥७॥ चंद्रार्कमंडले हेमकटकौ करमूलयोः ॥ लीलासरसिजं हस्ते ब्रह्मन्ब्रह्मांडकर्णिका ॥ ८ ॥

अर्थ—कापालिक वेष धारण किये हुये, यह अपना तीसरा नाम कृतान्त (यम) धारण करताहै और मत्त होके जगत्में नाचताहै ॥ ५ ॥ हे मुने ! रागीके समान नाचताहुआ यह कृतान्त नियति (कर्म्मके अनुसार अवश्य फल देनेवाली मर्य्यादा) रूप अपनी प्रियासे नित्य अत्यन्त प्रेम करताहै ॥ ६ ॥ शेषनाग, चन्द्रमाकी कला, और तीन प्रकारसे प्रसिद्ध गंगाजीका प्रवाह ये कालके त्रैलोक्यरूपी वक्षस्थलपर उपवीति और अवीति अर्थात् वाम तथा दक्षिण स्कन्धपर यज्ञोपवीतके सदृशहैं ॥ ७ ॥ हे ब्रह्मन् ! चन्द्रमा और सूर्य दोनों इसके हाथमें सुवर्णके कडेहैं, और सुमेरूपर्वत लीलार्थ इस कृतान्तके हस्तमें कमलहै ॥ ८ ॥

ताराबिंदुचितं लोलपुष्करावर्त्तपल्लवम् ॥ एकार्णवपयोधौत मेकमंबरमं बरम् ॥ ९ ॥ एवं रूपस्य तस्याऽग्रेनियतिर्नित्यकामिनी ॥ अनस्तमितसंरंभमारंभैः परिनृत्यति ॥ १० ॥ तस्या नर्त्तनलोलाया जगन्मंडपकोटरे ॥ अरुद्धस्पंदरूपाया आगमापायचंचुरे ॥ ११ ॥ चारुभूषणमंगेषु देवलोकांतरावली ॥ आपातालं नभोलंबं कबरीमंडलं बृहत् ॥ १२ ॥

अर्थ—तारागणरूपी चित्रबिन्दुयुक्त, पुष्कर और आवर्त नामधारी जो प्रलयकालके मेघहैं, वे इसके वस्त्रके किनारे हैं और पहिननेका एक वस्त्र समुद्रहै, और दूसरा ओढनेका निर्मल आकाशहै ॥ ९ ॥ ऐसा रूपधारी जो यह कापालिकहै उसके आगे नियतिरूप उसकी प्रियापत्नी प्राणीरूप सभ्योंके भोगाऽनुकूल कार्य्योंको आरंभ करके निरन्तर नृत्य किया करती है ॥ १० ॥ प्राणिरूप द्रष्टाओंके आगमापायसे (उत्पत्ति और विनाशसे) अति चंचल, जगत्रूपी मंडपके कोटरमें नृत्यसे चपल और अरूद्ध (बेरोक) क्रिया शक्तिवाली, उस नियतिका ॥ ११ ॥ मध्य २ में देवलोकोंकी पंक्तियाँ उत्तम भूषणहैं और पाताल पर्य्यन्त लंबमान श्याम नभस्तल उसका लम्बा केशपासहै ॥ १२ ॥

नरकाली च मंजीरमाला कलकलोज्वला ॥ प्रोता दुष्कृतसूत्रेण पातालचरणे स्थिता ॥ १३ ॥ कस्तूरिकातिलककं क्रियासख्योपकल्पितम् ॥ चित्रितं चित्रगुप्तेन यमे वदनपट्टके ॥ १४ ॥ कालास्यं समुपादाय कल्पांतेषु किलाऽऽकुला ॥ नृत्यत्येषा पुनर्देवी स्फुटच्छैलघनारवम् ॥ १५ ॥ पश्चात्प्रालंबविभ्रांतकौमारमृतबर्हिभिः ॥ नेत्रत्रयबृहद्रंध्रभूरिभांकारभीषणैः ॥ १६ ॥

अर्थ—उसके पातालरूपी चरणोंमें, रोदनके कोलाहलसे शब्दायमान पापरूपी सूत्रमें गूँथी हुई नरककी पंक्तियाँ घूंघरुहैं ॥ १३ ॥ प्राणियोंके कर्मरूपी सौगन्धके प्रगट करनेके लिये, क्रियारूप सखीसे रचित, चित्रगुप्तरूप कस्तूरीसे यमरूप ललाटपर तिलक कियागयाहै ॥ १४ ॥ कल्पके अन्तमें कालके मुख, भ्रकुटि, विलास और कटाक्षा-

दिसे सूचित अभिप्रायको जानकर अति व्याकुल यह नियति देवी पर्वतोंके महाशब्दोंके साथ नृत्य करती है ॥ १५ ॥ पृष्ठभागमें लम्बमान कौमार अवस्थामें मृतकरूपी मयूरोंसे शोभित होती है और तीनों नेत्रोंके बडे छिद्रोंके अधिक शब्दोंसे भयंकर तथा ॥ १६ ॥

लंबलोलजटाचंद्रविकीर्णहरमूर्द्धभिः ॥ उच्चरच्चारुमंदारगौरिकवरचामरैः ॥ १७ ॥ उत्तांडवाचलाकारभैर वोदरतुंबकैः ॥ रणत्सशतरंध्रेंद्रदेहभिक्षाकपालकैः ॥ १८ ॥ शुष्कशारीरखट्वांगभैरैरापूरितांबरम् ॥ भीषयत्यात्मनात्मानं सर्वसंहारकारिणी ॥१९ ॥ विश्वरूपशिरश्चक्रचारुपुष्करमालया तांडवेषुविवलगंत्या महाकल्पेषु राजते ॥ २० ॥

अर्थ—लम्बी और चंचल जटामें स्थित चन्द्रमाके प्रकाशसे व्याप्त महादेवके मस्तकोंसे यह लक्षित होती है और चलायमान मन्दारके पुष्पोंसे शोभित पार्वतीके केश समूहरूपी चमरोंसे रमणीयताको प्राप्त होती है ॥ १७ ॥ तथा पर्वताकार भयंकर उदरवाले तूंबोंसे सात अधिक सहस्र छिद्रयुक्त शब्दायमान इन्द्रके शरीररूपी भिक्षा कपालोंसे ॥१८॥ और शुष्क शरीररूपी पाटियोंके समूहसे आकाश मंडलकोभी पूर्ण करनेवाले अपने स्वरूपको आपही डराती हुई सबका संहार करती है ॥ १९ ॥ महाभयंकर शब्द करनेवाली यह नानाप्रकारके मस्तकोंके समूहरूपी कमलकी मालाको धारण किये महाकल्पोंमें अपने ताण्डव नृत्योंसे शोभायमान होती है ॥ २० ॥

प्रमत्तपुष्करावर्त्तडमरुद्दामरारवैः ॥ तस्याः किल पलायंते कल्पांते तुंबुरादयः ॥ २१ ॥ नृत्यतोंतःकृतांतस्य चंद्रमंडलभासिनः ॥ तारकाचंद्रिकाचारुव्योमपिच्छावचूलिनः ॥ २२ ॥ एकस्मिञ्छ्रवणे दीप्ता हिमवानस्थिमुद्रिका ॥ अपरे च महामेरुः कांताकांचनकर्णिका ॥ २३ ॥ अत्रैव कुंडले लोले चंद्रार्कौ गंडमंडले ॥ लोकालोकाचलश्रेणी सर्वतःकटिमेखला ॥ २४ ॥

अर्थ—प्रमत्त पुष्कर और आवर्त्त नामक प्रलयकालके मेघरूपी जो इसके डमरूहैं उनके महाभयंकर शब्दोंसे कल्पके अन्तमें इसके नृत्यमें तुम्बुरु आदि गन्धर्व भाग जाते हैं ॥ २१ ॥ चन्द्रमण्डलसे प्रकाशमान, तारागणोंकी ज्योतिसे शोभायमान आकाशरूपी मयूरके पंखसे अपने केशसमूहोंको भूपित किये फल नियतिके साथ उक्त नृत्यशालामें नाचनेवाले कृतान्तके ॥ २२ ॥ एक कानमें तो हिमालयरूपी हड्डीका मुद्रिकाकार कुण्डलहै, और दूसरे कानमें अति प्रिय सुवर्णका महा सुमेरूरूपी कुण्डलहै ॥ २३ ॥ इन्ही कानोंमें सूर्य चन्द्रमारूपी मण्डलाकार दो और चंचल कुण्डलहैं और लोकालोक नामवाले पर्वतोंकी पंक्ति चारों ओरसे कटिमेखलाहै ॥ २४ ॥

इतश्चेतश्च गच्छंती विद्युद्वलयकर्णिका ॥ अनिलांदोलिता भाति नीरदांशुकपट्टिका ॥२५ ॥ मुसलैः पट्टिशैः प्रासैः शूलैस्तोमरमुद्गरैः ॥ तीक्ष्णैः क्षीणजगद्व्रातकृतांतैरिव संभृतैः ॥ २६ ॥ संसारबंधनादीर्घे पाशे कालकरच्युते ॥ शेषभोगमहासूत्रप्रोते मालास्य शोभते ॥ २७ ॥ जीवोल्लसन्मकरिकारत्नतेजोभिरुज्ज्वला ॥ सप्ताब्धिकंकणश्रेणी भुजयोरस्य भूपणम् ॥ २८ ॥

अर्थ—तथा इधर उधर भ्रमण करनेवाली बिजुली जिसका कंकणहै और वायुसे कंपित मेघोंकी पंक्तिरूप कंथा जिसकी शोभित होरही है ॥ २५ ॥ नष्ट ब्रह्मांडोंसे अथवा पूर्वकालकी सृष्टियोंसे निकले कृतांतोंसे एकत्रित किये अति तीक्ष्ण, मूशल, माला, बर्छी, त्रिशूल, पटा, और मुद्गरोंसे रचित तथा संसारके प्राणिरूप मृगोंके बन्धनार्थ, पूर्वोक्त कालरूपी राजपुत्रके हाँथसे गिरे पाशमें लटकती हुई और शेषजीके फणरूपी महासूत्रमें गूँथी माला इस कृतान्तरूपी कापालिकके कंठमें शोभित होती है ॥ २६ ॥ २७ ॥ जीवरूपी मकरिकाके चिन्होंसे युक्त रत्नोंके तेजसे देदीप्यमान, सातों समुद्ररूपी कंकणोंकी श्रेणि इसके दोनों भुजाओंमें भूषित होरही हैं ॥ २८ ॥

व्यवहारमहावर्त्ता सुखदुःखपरंपरा ॥ रजःपूर्णतमःश्यामा रोमाली तस्य राजते ॥ २९ ॥ एवं प्रायः स कल्पांते कृतांतस्तांडवोद्भवाम् ॥ उपसंहृत्य नृत्येहां सृष्ट्या सह महेश्वरम् ॥ ३० ॥ पुनर्लास्यमयीं नृत्यलीलां सर्गस्वरूपिणीम् ॥ तनोतीमां जराशोकदुःखाभिभवभूषिताम् ॥ ३१ ॥ भूयः करोति भुवनानि वनांतराणि लोकांतराणि जनजालककल्पनांच आचारचारुकलनामचलां चलां च पंकाग्रधार्मिकजनो रचनामखिन्नः ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे वसिष्ठमहारामायणे वाल्मीकिये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे वैराग्यप्रकरणे कृतांतविलसितंनाम पंचविंशतितमः सर्गः ॥ २५ ॥

---

(१) इसकी स्त्रिका नृत्य कहके अब कापालिक कृतान्तका वर्णन किया जाताहै ॥

अर्थ—शास्त्रीय और लौकिक व्यवहाररूपी भ्रमर जिसमें गूंज रहे हैं ऐसी रजोगुण तथा तमोगुणसे पूर्ण सुखदः स्वरूपी श्यामवर्ण मनोहर रोमावली इसकी शोभायमान हो रहीहै ॥ २९ ॥ इसप्रकार प्रायः कल्पके अन्तमें यह कृतान्त ताण्डवके उत्पन्न करनेवाली नृत्यकी इच्छाको बटोर कर किंचित् विश्राम करके पुनः महादेवादिकोंके साथ उठताहै ॥ ३० ॥ और वृद्धाऽवस्था, शोक तथा अनेक प्रकारके अन्य दुःख और पराजय आदिसे भूषित, अभिनय (भाव) सहित इस सृष्टिरूप नृत्यलीलाका पुनः विस्तार करताहै ॥ ३१ ॥ पुनः यह भुवनोंको, वनोंको, अन्य स्वर्गादि लोकोंको, और प्राणियोंके समूहोंको, सतयुगआदि युगोंके भेदसे अचल और चल वेद और स्मृति विहित आचारोंको ऐसे खेद रहित होके बनाताहै जैसे बालक मृत्तिकासे खिलौनोंके ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकिये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे वैराग्यप्रकरणे कृतान्तविलसितंनाम पंचविंशतितमः सर्गः ॥ २५ ॥

षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

कालादिकी परतंत्रतासे अनेक दोषोंके कारणसे संसारकी दुर्दशा इस २६ वें सर्गमें वर्णन की गईहै कि जिससे वैराग्य उत्पन्नहो ॥

श्रीराम उवाच ॥ ॥ वृत्तेऽस्मिन्नेवमेतेषां कालादीनां महामुने ॥ संसारनाम्नि कैवाऽऽस्था मादृशानांवदत्विह ॥ १ ॥ विक्रीता इव तिष्ठाम एतैर्दैवादिभिर्वयम् ॥ मुने प्रपंचरचनैर्मुग्धा वनमृगा इव ॥ २ ॥ एषोऽनार्यसमाम्नायः कालः कवलनोन्मुखः ॥ जगत्यविरतं लोकं पातयत्यापदर्णवे ॥ ३ ॥ दहत्यंतर्दुराशाभिर्देवो दारुणचेष्टया ॥ लोकमुष्णप्रकाशाभिर्ज्वालाभिर्दहनो यथा ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–हे मुने ! जब इस संसारमें कालादिका इसप्रकार चरित्रहै तो बताईये हमारे सदृश मनुष्योंका इसमें क्या विश्वासहै ॥ १ ॥ हे मुने ! इन दैवकालादिसे खरीदे हुयेके समान हम लोग शब्दादि विषयोंके प्रपंचकी रचनासे ऐसे मोहितहैं जैसे वनके मृग ॥ २ ॥ अनार्य तस्व भाववाला अपने उदरभरण मात्रमें तत्पर यह कालनामक महाधूर्त इस संसारमें सबको आपत्तिके समुद्रमें गिराताहै ॥ ३ ॥ यह कालनामक देव अपनी भयंकर चेष्टासे प्राणियोंको दुष्ट आशाओंसेभीतर तथाबाहर ऐसे जलाताहै जैसे अतिउष्ण और प्रकाशमान ज्वालाओंसे संसारको अग्नि

धृतिं विधुरयत्येषा मर्यादारूपवल्लभा ॥ स्त्रीत्वात्स्वभावचपला नियतिर्नियतोन्मुखी ॥ ५ ॥ ग्रसते विरतं भूतजालं सर्प इवानिलम् ॥ कृतांतः कर्कशाऽऽचारो जरां नीत्वाजरं वपुः ॥ ६ ॥ यमो निर्घृणराजेंद्रो नार्त्तं नामानुकंपते ॥ सर्वभूतदयोदारो जनो दुर्लभतां गतः ॥ ७ ॥ सर्वा एव मुने फल्गुविभवा भूतजातयः ॥ दुःखायैव दुरंताय दारुणाभोगभूमयः ॥ ८ ॥

अर्थ—स्त्री होनेके कारण स्वभावसेही चपल नियति मर्यादारूप कृतान्तकी यह पत्नी सदा अपने कार्य्यमें तत्पर समाधिनिष्ठ महात्माओंकाभी धैर्य्य नष्टकर देती है ॥ ५ ॥ यह महाक्रूर आचार धारी कृतान्त तरूण शरीरोंको वृद्ध बनाके सब प्राणि समूहको निरन्तर ऐसे भक्षण करताहै जैसे सर्प वायुको ॥ ६ ॥ संपूर्ण निर्दयोंका राजा यम तो दुःखियोंके ऊपर दया करना जानताही नहीं सब प्राणियोंपर दया करनेवाला जन तो दुर्लभ हो गयाहै ॥ ७ ॥ हे मुने ! चेंटीसे लेके ब्रह्मा पर्यन्त जितनी प्राणियोंकी जातियां हैं सब तुच्छहैं और सब विषयभोग महा भयंकरहैं और ये सब केवल दुरंत दुःखहीके लियेहैं ॥ ८ ॥

आयुरत्यंतचपलं मृत्युरेकांतनिष्ठुरः ॥ तारुण्यं चाऽतितरलं बाल्यं जडतया हतम् ॥ ९ ॥ कलाकलंकितो लोको बंधवो भवबंधनम् ॥ भोगा भवमहारोगास्तृष्णाश्च मृगतृष्णिकाः ॥ १० ॥ शत्रवश्चेंद्रियाण्येव सत्यं यातमसत्यताम् ॥ प्रहरत्यात्मनैवाऽऽत्मा मनसैव मनो रिपुः ॥ ११ ॥ अहंकारः कलंकाय बुद्धयः परिपेलवाः ॥ क्रिया दुष्फलदायिन्यो लीलाः स्त्रीनिष्ठतांगताः ॥ १२ ॥

अर्थ—आयु अत्यन्त चपलहै, मृत्यु सर्वथा क्रूरहै, युवाऽवस्था अत्यन्तही क्षणभंगुर और चंचलहै, और बाल्य अवस्था तो अज्ञानहीसे नष्टहै ॥ ९ ॥ यह संसार विषयकी चिंतासे कलंकित होरहाहै, जितने बन्धुहैं वे संसारके बन्धन हैं, जितने भोगहैं वे संसारके महारोगहैं, और तृष्णा जो है वह केवल मृगतृष्णाही है ॥ १० ॥ इन्द्रियां जो हैं वेही शत्रु होरहीं हैं देहादिमें आत्माके सत्य होनेका अभिमानथा वह विवेकसे असत्य होगया बन्धनके हेतुसे मनही आत्माका

शत्रु होके आत्माही मनरूप आत्मासे आत्माहीके ऊपर प्रहार करके दुःखी करताहै ॥ ११ ॥ अहंकार युक्त अन्तःकरणकी वृत्ति, आत्मस्वरूप ज्ञानके विरोधी होनेसे केवल कलंकार्थही है स्वरूपकी दृढतासे शून्य होनेसे बुद्धि अति क्षीण होगई है, क्रिया सब दुःखफल देनेवाली होगई हैं, और मानसी विलास सब स्त्रीके आधीन होगये हैं ॥ १२ ॥

वांछाविषयशालिन्यः सचमत्कृतयः क्षताः ॥ नार्यो दोषपताकिन्योरसा नीरसतां गताः ॥१३॥ वस्त्ववस्तुतया ज्ञातं दत्तं चित्तमहंकृतौ ॥ अभाववेधिता भावा भावांतो नाऽधिगम्यते ॥ १४ ॥ तप्यते केवलंसाधो मतिराकुलितांतरा ॥ रागरोगो विलसति विरागो नोपगच्छति ॥ १५ ॥ रजोगुणहता दृष्टिस्तमः संपरिवर्द्धते ॥ न चाधिगम्यते सत्वं तत्त्वमत्यंतदूरतः ॥ १६ ॥

अर्थ—संपूर्ण इच्छायें विषयसे शोभित होगईं, आत्माका चमत्कार नष्ट होगया, स्त्रियाँ दोषोंकी ध्वजा होगईं और सब अनुरागरस शून्य होगये ॥ १३ ॥ आत्मवस्तुको अवस्तुरूपसे जानलिया, चित्तको अहंकारमें नियुक्त किया, सब भावपदार्थ नाशग्रस्तहैं, और भावपदार्थोंका अन्त अधिष्ठानरूप जो आत्माहैं वह नहीं जाना जाता ॥ १४ ॥ हे साधो! बुद्धि अत्यन्त व्याकुल होके केवल संतापको प्राप्त हो रही है, संसारमें रागही अधिक वृद्धिको प्राप्त होरहाहै, और वैराग्य नहीं प्राप्त होता ॥ १५ ॥ रजोगुणसे विवेक दृष्टि नष्ट होगई और तमोगुण बढ रहाहै, सत्वगुणकी प्राप्ति नहीं होती, और तत्वज्ञान तो अत्यन्तही दूरहै ॥ १६ ॥

स्थितिरस्थिरतां याता मृतिरागमनोन्मुखी ॥ धृतिर्वैधुर्यमायाता रतिर्नित्यमवस्तुनि ॥ १७ ॥ मतिर्मांद्येन मलिना पातैकपरमं वपुः ॥ ज्वलतीव जरा देहे प्रतिस्फुरति दुष्कृतम् ॥ १८ ॥ यत्नेन याति युवता दूरे सज्जनसंगतिः ॥ गतिर्न विद्यते का चित्कचिन्नोदेति सत्यता ॥ १९ ॥ मनो विमुह्यतीवांतर्मुदिता दूरतां गता ॥ नोज्ज्वला करुणोदेति दूरादायाति नीचता ॥ २० ॥

अर्थ—जीवन तो अस्थिरहै और मृत्यु आनेको उन्मुखहै, धैर्य्य सर्वथा नष्ट होगया, और तुच्छ पदार्थोंमें प्रीति सर्वदा बढ रही है ॥ १७ ॥ मूर्खतासे बुद्धि मलिन होगई, शरीर गिरनेवालाही है, वृद्धाऽवस्था मानो शरीरपर जल रही है, और पाप जो है, वह जाज्वल्यमान होरहाहै ॥ १८ ॥ युवाऽवस्था बडे यत्नसे चली जा रही है, सज्जनोंकी संगति बहुत दूरहै, कहीं कोइ गति नहीं है, सत्यता कहीभी उदय नहीं होती ॥ १९ ॥ मन मोहितके समान होगयाहै, आत्मज्ञानका सुख दूर चलागया, उत्तम दया हृदयमें कभी नहीं होती, और नीचता दूरसे निकट आती है ॥ २० ॥

धीरताऽधीरतामेति पातोत्पातपरो जनः ॥ सुलभोदुर्जनाऽऽश्लेषोदुर्लभः सत्समागमः ॥ २१ ॥ आगमापायिनो भावा भावना भवबंधनी ॥ नीयते केवलं काऽपि नित्यं भूतपरंपरा ॥२२॥ दिशोऽपि हि न दृश्यंते देशोऽप्यन्यापदेशभाक् ॥ शैला अपि विशीर्यंते कैवाऽऽस्था मादृशे जने ॥ २३ ॥ अद्यते सत्तयाऽपिद्यौर्भुवनं चापि भुज्यते ॥ धराऽपि याति वैधुर्यं कैवाऽऽस्था मादृशे जने ॥ २४ ॥

अर्थ—धीरता अधीरताको प्राप्त होगई, प्राणी जन्ममरणमें वा नीचे ऊपर आने जानेमेंही निमग्नहैं, दुर्जनोंका संग अति सुलभहै, और सज्जनोंका समागम अत्यन्त दुर्लभहै ॥ २१ ॥ सब भावपदार्थ उत्पत्ति और नाशसे ग्रस्तहैं, वासना संसारका बन्धनहै, और प्राणियोंके समूहको काल न जाने कहाँ लिये जा रहाहै ॥ २२ ॥ जिनको कालसे भय नहीं है, ऐसी दिशायेंभी नहीं दीख पडती, न सद्व्यवहारका उपदेश प्रतीत होताहै, और न लौकिक व्यवहारही दीख पडताहै, यहांतकहै कि पर्वतभी नष्टहो जातेहैं तो हमारे सदृश मनुष्योंकी स्थितिमें क्या विश्वासहै ॥ २३ ॥ जब सन्मात्र ईश्वर आकाशकोभी ग्रस लेताहै, और भुवनोंकोभी भक्षण करलेताहै, तथा यह विशाल पृथ्वीभी नष्ट होजाती है तो हमारे सदृश मनुष्योंकी स्थितिमें क्या विश्वास! ॥ २४ ॥

शुष्यंत्यपि समुद्राश्च शीर्यंते तारका अपि ॥ सिद्धा अपि विनश्यंति कैवाऽऽस्था मादृशे जने ॥ २५ ॥ दानवा अपि दीर्यंते ध्रुवाऽप्यध्रुवजीविताः ॥ अमरा अपिमार्यंते कैवाऽऽस्था मादृशे जने ॥ २६ ॥ शक्रोऽप्याक्रम्यते वक्रैर्यमोऽपि हि नियम्यते ॥ वायुरप्येत्यवायुत्वं कैवाऽऽस्था मादृशे जने ॥ २७ ॥ सोमोऽपि व्योमतां याति मार्त्तंडोऽप्येति खंडताम् ॥ मग्नतामग्निरप्येति कैवाऽऽस्था मादृशे जने ॥२८॥

अर्थ—चारों समुद्रभी सूख जाते हैं, तारागणभी विदीर्ण होजातेहैं और सिद्ध लोगभी नष्ट होजातेहैं, तो हमारे सदृश प्राणियोंको क्या विश्वास ॥ २५ ॥ दानवभी विदीर्ण होजातेहैं, ध्रुव (तारा) भी अध्रुव जीवनहै, और अमर (देवता) भी मरते जातेहैं तो हमारे सदृश प्राणियोंको क्या विश्वास ! ॥ २६ ॥ शक्र (इन्द्र) परभी आक्रमण होताहै, यमभी शान्त होजातेहैं, और वायुभी अवायु होजाताहै, तो हमारे सदृश प्राणियोंको क्या विश्वास ! ॥ २७ ॥ चन्द्रमाभी

शून्य होजाताहै, सूर्यकेभी टुकडे २ होजातेहैं, और अग्निभी शान्त होजाताहै, तो हमारे सदृश प्राणियोंको क्या विश्वास !

परमेष्ठ्यपि निष्ठावान् ह्रियते हरिरप्यजः ॥ भवोऽप्यभावमायाति केवाऽऽस्था मादृशे जने ॥ २९ ॥ कालः संकाल्यते येन नियतिश्चाऽपि नीयते ॥ खमप्यालीयतेऽनंतं केवाऽऽस्था मादृशे जने ॥ ३० ॥ अश्राव्यावाच्यदुर्दर्शीतत्त्वेनाऽज्ञातमूर्तिना ॥ भुवनानि विडंब्यंते केन चिद्भ्रमदायिना ॥ ३१ ॥ अहंकारकलामेत्य सर्वत्रांतरवासिना ॥ न सोऽस्ति त्रिषु लोकेषु यस्तेनेह न बाध्यते ॥ ३२ ॥

अर्थ—ब्रह्माजीकीभी समाप्ति होजाती है, अज हरि जो भगवान्हैं उनकाभी संहार होजाताहै, भव (महादेव) जी भी अभावको प्राप्त होजातेहैं, तो हमारे सदृशप्राणियोंको क्या विश्वास ! ॥ २९ ॥ पूर्वोक्त तीन प्रकारका जो कालहै उसकोभी जो संहार करलेताहै, नियति (मर्य्यादा) को भी हटा देताहै, और जो सबको आच्छापन करनेवाला आकाशहै उसकोभी लयकर देताहै, तो हमारे सदृश प्राणियोंका क्या विश्वास ! ॥ ३० ॥ जो श्रोत्र (कर्ण) इन्द्रियसे न सुना जाताहै वागिन्द्रियसे न कहा जाताहै, और न नेत्र इन्द्रियसे देखा जाताहै, अर्थात् सब इन्द्रियोंका अविषय, अज्ञानमूर्ति, कोई भ्रम देनेवाला (सन्मात्र चेतन) अपने स्वरूपमेंही मायासे तत्वको छिपाके सब ब्रह्माण्डोंको देखताहै॥ ३१ ॥ सबके अन्तमें निवास करनेवाला, अहंकारांशको धारण करके तीनों लोकमें ऐसा कोई नहीं है जिसको वह बाधा न करताहो ३२

शिलाशैलकवप्रेषु साश्वभूतो दिवाकरः ॥ वनपाषाणवन्नित्यमवशः परिक्षिप्यते ॥ ३३ ॥ धरागोलकमंतस्थसुरासुरगणास्पदम् ॥ वेष्ट्यते धिष्ण्यचक्रेण पक्वाक्षोटमिव त्वचा ॥ ३४ ॥ दिवि देवा भुवि नराः पातालेषु च भोगिनः ॥ कल्पिताः कल्पमात्रेण नीयंते जर्जरां दशाम् ॥ ३५ ॥ कामश्च जगदीशानरणलब्धपराक्रमः ॥ अक्रमेणैवविक्रांतो लोकमाक्रम्य वल्गति ॥ ३६ ॥

अर्थ—किरणरूपी घोडोंके चरण सहित सूर्य्य भगवान्भी वनके सामान्य पाषाणके तुल्य प्रतिदिन अवश होके शिला पर्वत और पर्वतोंके शिखरोंपर फेंके जाते हैं ॥ ३३ ॥ इस ब्रह्मांडके मध्यमें रहनेवाले देवता और दैत्योंके अनेक लोकोंको और संपूर्ण ज्योतिश्चक्रों (सूर्य तारा मण्डलादि अनेक लोक) कों, वह ऐसा व्याप्त कियेहै जैसे पक्के अखरोटके फलको चारों ओरसे उसका चर्म्म ॥ ३४ ॥ स्वर्गमें देवता, भूलोकमें मनुष्य, और पातालमें सर्प, ये सब संकल्प मात्रसे बनाये गयेहैं, और ये महा दुर्दशाको प्राप्त होतेहैं, ॥ ३५ ॥ महादेवजीसे युद्ध करनेसे पराक्रमवाला महा विकराल स्वरूप काम अनुचित रीतिसे संपूर्ण जगत्को अपने वशमें करके गर्ज रहाहै ॥ ३६ ॥

वसंतो मत्तमातंगो मदैः कुसुमवर्षणैः ॥ आमोदितककुप्चक्रश्चेतोनयति चापलम् ॥ ३७ ॥ अनुरक्तांगनालोललोचना लोकिताकृति ॥ स्वस्थीकर्तुं मनःशक्तो न विवेको महानपि ॥ ३८ ॥ परोपकारकारिण्या परार्तिपरितप्तया ॥ बुद्ध एव सुखी मन्ये स्वात्मशीतलया धिया ॥ ३९ ॥ उत्पन्नध्वंसिनः कालवडवानलपातिनः ॥ संख्यातुं केन शक्यंते कल्लोलाजीवितांबुधौ ॥ ४० ॥

अर्थ—यह वसन्तरूपी मत्त मातंग पुष्पकी वृष्टिरूपी मदकी वर्षासे सब दिशाओंको सुगन्धित करके चित्तको चंचलकर रहाहै ॥ ३७ ॥ स्त्रियोंके चंचल नेत्रोंमें जो मन अनुरक्त हो उसके स्वस्थ करनेको बडे विवेककाभी सामर्थ्य नहीं है ॥ ३८ ॥ परोपकारको करनेवाले, दूसरोंकी पीडासे अत्यन्त पीडित, अपनी शीतल बुद्धिसे जिसको बोध (आत्मज्ञान) प्राप्तहुआहै, उसीको मैं सुखी मानताहूं ॥ ३९ ॥ सदा उत्पन्न और नष्ट होनेवाले कालरूपी वडवानलसे गिरनेवाले जीवनरूपी समुद्रमें पदार्थरूपी तरंगोंको कौन गिनसक्ताहै ॥ ४० ॥

सर्व एव नरा मोहाद्दुराशापाशपाशिनः ॥ दोषगुल्मकसारंगा विशीर्णा जन्मजंगले ॥ ४१ ॥ संक्षीयते जगति जन्मपरंपरासु लोकस्य तैरिहकुकर्मभिरायुरेतत् ॥ आकाशपादपलताकृतपाशकल्पं येषां फलं न हि विचारविदोऽपि विद्मः ॥ ४२ ॥ अद्योत्सवोऽयमृतुरेष तथेह यात्रा ते बंधवःसुखमिदं सविशेषभोगम् ॥ इत्थं मुधैव कलयन्सुविकल्पजालमालोलपेलवमतिर्गलतीह लोकः ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकिये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे वैराग्यप्रकरणे दैवदुर्विलासवर्णनंनाम षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

अर्थ—सब मनुष्य मोहके वश होके दुष्ट आशाओंकी फाँसीमें बँधे हुये, दोषरूपी गुल्मोंमें अटके हुये मृगोंके समान जन्मरूपी जंगलमें नष्ट होरहे है ॥ ४१ ॥ इस जगत्में जन्मोंकी परम्पराओंमें काम्य और निषिद्ध कुकर्म्मोंद्वारा संसारकी आयु नष्ट होरही है और आकाशके वृक्षकी लताके समान इस पाशसे बद्ध सुखदुःखरूपी फलको हम विचारवान्भी नहीं जानते ॥ ४२ ॥ आज यह महा उत्सवहै, यह मनोहर नूतन ऋतुका प्रारंभहै, आज यहं अमुक देशकी

यात्राहै, वे हमारे बन्धुहै, यह कैसा सुखहै, और यह उत्तम स्त्रीआदिका भोगहै, इसप्रकार व्यर्थही सद्विचारके प्रतिकूल नानाविकल्प जालोंको रचता हुआ, चंचल और सुकुमार बुद्धिवाला यह लोक यहां नष्ट होजाताहै और परमार्थकी सामग्री कुछ नहीं संपादन करता ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकिये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे वैराग्यप्रकरणे दैवविलासवर्णनंनाम षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

सप्तविंशतितमः सर्गः ॥ २७ ॥

मोक्षके विरोधी पूर्वोक्त और वक्ष्यमाण पदार्थोंमें दोषोंका वर्णन वैराग्य प्राप्तिके लिये इस२७वे सर्गमें विस्तारसे कियागयाहै.

श्रीराम उवाच ॥ ॥ अन्यच्च तातातितराम रम्ये मनोरमे चेह जगत्स्वरूपे ॥ न किंचिदायाति तदर्थजातं येनाऽतिविश्रांतिमुपैति चेतः ॥ १ ॥ बाल्ये गते कल्पितकेलिलोले मनोमृगे दारदरीषु जीर्णे ॥ शरीरके जर्जरतां प्रयाते विदूयते केवलमेव लोकः ॥ २ ॥ जरातुषाराभिहतां शरीरसरोजिनीं दूरतरे विमुच्य ॥ क्षणाद्गते जीवितचंचरीके जनस्य संसारसरोऽवशुष्कम् ॥ ३ ॥ यदा यदा पाकमुपैति नूनं तदा तदेयं रतिमातनोति ॥ जरा भराऽनल्पनवप्रसूना विजर्जरा कायलता नराणाम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—हे तात ! औरभी सुनिये, दर्शनमात्रके लिये रमणीय और वास्तविकमें अरमणीय इस जगत्में कोईभी ऐसा पदार्थोंका समूह मनमें नहीं भान होता जिससे चित्तको विश्राम मिले ॥ १ ॥ जिसमें कल्पनामात्र क्रीडाहै ऐसी बाल्य अवस्थाके बीत जानेपर, और मनरूपी मृगके स्त्रीरूपी गुफामें प्रवेश करनेपर, और वृद्धाऽवस्थासे शरीरके जर्जर होनेपर, परमपुरुषार्थ साधनसे हीन यह लोक केवल सन्तापकाही भागी होताहै ॥ २ ॥ वृद्धाऽवस्थारूपी तुषारसे मारी हुई शरीररूपी कमलिनीको दूरहीसे छोडके जब जीवरूपी भ्रमर चलाजाताहै, तब अनेकप्रकारके समारंभरूपी संसारका यह तडाग शुष्क होजाताहै ॥ ३ ॥ मनुष्योंकी यह शरीररूपी लता, वृद्धाऽवस्थाके कारण अधिक श्वेत पुष्पोंके भारसे जैसे २ जर्जर होके परिपक्वताको प्राप्त होती है तैसे २ मृत्युकी प्रीति अधिक बढती है ॥ ४ ॥

तृष्णानदीसारतरप्रवाहग्रस्ताखिलानंतपदार्थजाता ॥ तटस्थसंतोषसुवृक्षमूलनिकाषदक्षा वहतीह लोके ॥ ५ ॥ शारीरनौश्चर्मनिबंधबद्धा भवांबुधावालुलिता भ्रमंती ॥ प्रलोड्यते पंचभिरिंद्रियाख्यैरधोभवंती मकरैरधीरा ॥ ६ ॥ तृष्णालताकाननचारिणोऽमी शाखाशतं काममहीरुहेषु ॥ परिभ्रमंतः क्षपयंति कालं मनोमृगा नो फलमाप्नुवंति ॥ ७ ॥ कृच्छ्रेषु दूरास्तविषादमोहाः स्वास्थ्येषु नोत्सिक्तमनोभिरामाः ॥ सुदुर्लभाः संप्रति सुंदरीभिरनाहतांतः करणा महांतः ॥ ८ ॥

अर्थ—अति प्रबल प्रवाहसे युक्त संपूर्ण पदार्थ मात्रको ग्रसनेवाली तटके सन्तोषरूपी वृक्षोंके मूलोंसे उखाडनेमें निपुण यह तृष्णारूपी नदी इस संसारमें वेगसे वह रही है ॥ ५ ॥ चर्म्मसे बँधी हुई यह शरीररूपी नौका संसाररूपी समुद्रमें चंचल होके भ्रमणकर रही है, और इसको विवेकहीन जीवन होनेसे पांचों इन्द्रियरूपी ग्राह डुबाते हैं, अतएव यह प्रतिक्षण नीचेहीको चलीजाती है ॥ ६ ॥ तृष्णारूपी लताके वनमें विचरनेवाले मनरूपी मर्कट कामरूपी वृक्षोंकी अनेक शाखाओंपर भ्रमण करके केवल कालक्षेप करते हैं और कहीं कुछभी फल नहीं पाते ॥ ७ ॥ विपत्तियोंमें शोक और मोहसे रहित और संपत्तियोंमें गर्व न होनेके कारण अति रमणीय और सुन्दरी स्त्रियोंसे अदूषित अन्तःकरणयुक्त महात्मा इस समय दुर्लभहैं ॥ ८ ॥

तरंति मातंगघटातरंगं रणांबुधिं ये मयि ते न शूराः ॥ शूरास्त एवेह मनस्तरंगं देहेंद्रियांभोधिमिमं तरंति ॥ ९ ॥ अक्लिष्टपर्यंतफलाभिरामा न दृश्यते कस्य चिदेव का चित् ॥ क्रियादुराशाहतचित्तवृत्तिर्यामेत्य विश्रांतिमुपैति लोकः ॥ १० ॥ कीर्त्या जगद्दिक्कुहरंप्रतापैः श्रिया गृहं सत्त्वबलेन लक्ष्मीम् ॥ ये पूरयंत्यक्षतधैर्यबंधा न ते जगत्यां सुलभा महांतः ॥ ११ ॥ अप्यंतरस्थं गिरिशैलभित्तेर्वज्रालयाभ्यंतरसंस्थितं वा ॥ सर्वं समायांति ससिद्धिवेगा सर्वाः श्रियः संततमापदश्च ॥ १२ ॥

अर्थ—मत्तमातंग (हस्ती) रूपी तरंगोंसे पूर्ण रणरूपी समुद्रके जो पार होजाते हैं वे मेरी दृष्टिमें शूर नहीं हैं, किंतु शरीर और इन्द्रियरूपी समुद्रमें जो मनरूपी तरंगहैं, उसको जो पार करते हैं, अर्थात् मनके जीत लेनेसे वासना रहित होजाते है, वेही लोग मेरी दृष्टिमें शूरवीरहैं ॥ ९ ॥ क्लेश सहित संसाररूपी फल न देनेसे रमणीय और आशाको दूर करके चित्तकी चंचल वृत्तियोंको नष्ट करनेवाली कोईभी क्रिया किसीकीभी नहीं देख पडती, जिसका आश्रय

लेके यह संसार विश्रांतिको प्राप्तहो ॥ १० ॥ जो कीर्तिसे जगत्को, प्रतापोंसे दिशाओंके अन्तको, और धनसे अर्थियोंके गृहोंको पूर्णकर देते हैं, और विनय तथा उदारतादिसे लक्ष्मीकी पूर्ण शोभाको बढ़ाते हैं, ऐसे अखण्डित धैर्य्यवाले महात्मा संसारमें दुर्लभहैं ॥ ११ ॥ पर्वतकी शिलामयी भित्तिके स्थानमें रहनेवाले, वा बज्रकेही अन्तमें क्यों न हो, परन्तु भाग्योदय होनेसे सब प्राणियोंके निकट अणिमादि सिद्धि सहित सर्वप्रकारकी संपत्तियाँ अवश्य आतीहैं, इसीप्रकार अभाग्योदयमें विपत्तियांभी आके सबको सब स्थानमें प्राप्त होतीहैं ॥ १२ ॥

पुत्राश्च दाराश्च धनं च बुद्ध्या प्रकल्प्यते तात रसायनाभम् ॥ सर्वं हतन्नोपकरोत्यथांते यत्राऽतिरम्या विषमूर्छनैव ॥ १३ ॥ विषादयुक्तो विषमामवस्थामुपागतः कायवयोऽवसाने ॥ भावान्स्मरन्स्वानिह धर्मरिक्तान् जंतुर्जरावानिह दह्यतेऽतः ॥ १४ ॥ कामार्थधर्माप्तिकृतांतरामिः क्रियाभिरादौ दिवसानि नीत्वा ॥ चेतश्चलद्बर्हिणपिच्छलोलं विश्रांतिमागच्छतु केन पुंसः ॥ १५ ॥ पुरोगतैरप्यनवाप्तरूपैस्तरंगिणीतुंगतरंगकल्पैः ॥ क्रियाफलैर्दैववशादुपेतैर्विडंब्यते भिन्नरुचिर्हिलोकः ॥ १६ ॥

अर्थ—हे तात ! पुत्र, स्त्रियां, और धन, ये सब भ्रांत बुद्धिसे प्रेमके पात्र कल्पित किये गये है, ये सब कुछभी उपकार नहीं करते; किन्तु अन्तकालमें अति रमणीय विषयभोगभी विषकी मूर्छनाके तुल्य महा दुःखदायी होते है ॥ १३ ॥ शरीर और आयुके अन्तमें शोकयुक्त और वृद्धावस्थासे ग्रस्त यह प्राणी महाभयंकर दशामें प्राप्त धर्म्म संग्रहसे शून्य अपने कर्म्मोंको स्मरण करता हुआ, अन्तःकरणमेंही भस्म होताहै ॥ १४ ॥ आरंभमें धनोपार्जन और विषयभोगकी तृष्णाकी प्रबलतासे काम और अर्थ प्राप्तिमें तत्पर और धर्म्मकी प्राप्तिमें जो विघ्नभूत क्रियायें है उन्हीमें दिनोंको व्यतित करके, पश्चात् आयुके अन्तमें मयूरके पंखके समान पुरुषका चंचल चित्त भला किस उपायसे विश्राम पावै ॥ १५ ॥ नदीके उच्चे तरंगके समान क्षणभंगुर इसीसे दैवेच्छासे प्राप्त होनेपरभी अप्राप्तरूप सन्मुख आये हुये क्रियाके फलोंसे आत्मासे भिन्न पदार्थोंमें प्रेम करनेवाला यह संसार ठगा जाताहै ॥ १६ ॥

इमान्यमूनीति विभावितानि कार्याण्यपर्यंतमनोरमाणि ॥ जनस्यजायाजनरंजनेन जवाजरांतं जरयंति चेतः ॥ १७ ॥ पर्णानि जीर्णानि यथा तरूणां समेत्य जन्माऽऽशु लयं प्रयांति ॥ तथैव लोकाः स्वविवेकहीनाः समेत्य गच्छंति कुतोऽप्यहोभिः ॥ १८ ॥ इतस्ततो दूरतरं विहृत्य प्रविश्य गेहं दिवसावसाने ॥ विवेकिलोकाश्रयसाधुकर्मरिक्तेऽह्नि रात्रौ क उपैति निद्राम् ॥ १९ ॥ विद्राविते शत्रुजने समस्ते समागतायामभितश्च लक्ष्म्याम् ॥ सेव्यंत एतानि सुखानि यावत्तावत्समायाति कुतोऽपि मृत्युः

अर्थ—ये कार्य्य मेरे करनेके अति निकटहैं, ये अन्य देशकालमें करनेके हैं, इत्यादि निरंतर विचार जो प्रथम मनोरम भान होते हैं, परंतु परिणाममें दुःखदायी हैं वे स्त्री और पुरुषोंके प्रिय आचरणरूप हेतुसे शरीरको वृद्ध करके चित्तको विवेकसे भ्रष्टकर देते हैं ॥ १७ ॥ जिसप्रकार वृक्षोंके पत्ते उत्पन्न होके शीघ्रहीं नाश होजाते हैं, इसीप्रकार आत्मस्वरूपके विवेकसे हीन प्राणी, जन्म धारण करके थोडेही दिनोंमें नष्ट होजाते हैं ॥ १८ ॥ इधर उधर दूरतक विहार करके और दिनके अन्तमें गृहमें प्रवेश करके विवेकी जनोंके समागम और उत्तम कर्म्मोंसे रहित दिवस वीत जानेपर रात्रिके समय मूढ पुरुषके सिवाय भला किसे निद्रा आती है ॥ १९ ॥ समस्त शत्रुजनोंको दूर भगा देनेपर और चारों ओरसे लक्ष्मीके आनेपर जबतक यह प्राणी विषयके सुखभोग करने लगताहै इतनेहींमें न जाने मृत्यु कहांसे आके उपस्थित होजाती है ॥ २० ॥

कुतोऽपि संवर्द्धिततुच्छरूपैर्भावैरमीभिः क्षणनष्टदृष्टैः ॥ विलोड्यमाना जनता जगत्यां न वेत्त्युपायातमहो नु पातम् ॥ २१ ॥ प्रियासुभिः कालमुखं क्रियंते जनैडकास्ते हतकर्मबद्धाः ॥ यैः पीनतामेव बलादुपेत्य शरीरबाधेन न ते भवंति ॥ २२ ॥ अजस्रमागच्छति सत्वरैव मनारतंगच्छति सत्वरैव ॥ कुतोऽपि लोला जनता जगत्यां तरंगमालाक्षणभंगुरेव ॥ २३ ॥ प्राणापहारैकपरा नराणां मनो मनोहारितया हरंति ॥ रक्तच्छदाश्चंचलषट्पदाढ्यो विषद्रुमालोलतताः स्त्रियश्च ॥ २४ ॥

अर्थ—किसी (अनिश्चित) हेतुसे वृद्धिको प्राप्त, तुच्छरूप, क्षणभंगुर, ये पदार्थ प्राणियोंको अनेकप्रकारसे भ्रमा रहे हैं, परन्तु आश्चर्य है कि वे निकट प्राप्त मृत्युको नहीं जानते ॥ २१ ॥ जो विषयमें आसक्त शरीरकेही पोषणसे बलात्कार स्थूल होगये हैं, और कुकर्मरूपी स्तम्भमें बन्धे हैं उन नररूप भेडोंको प्रियप्राणरूप यजमान मृत्युका मुख बनाते है और शरीरके नाश होनेपर वे प्राणभी नहीं रहते ॥ २२ ॥ तरंगोंकी मालाके समान क्षणभंगुर यह प्राणि-

योंका समूह नित्यही न जाने कहांसे अति शीघ्रही आताहै और पुनः चला जाताहै, ॥ २३ ॥ मनुष्योंके प्राण हरनेमें तत्पर, रक्त ओष्ठ धारण किये हुये और भ्रमररूप नेत्रवाली विपवृक्षोंकी लताके तुल्य स्त्रिय ऊपरसे मनोहर होनेसे चित्तको हरलेती हैं ॥ २४ ॥

इतोऽन्यतश्चोपगता मुधैव समानसंकेतनिबद्धभावा ॥ यात्रा समासंगसमा नराणां कलत्रमित्रव्यवहारमाया ॥ २५ ॥ प्रदीपशांतिष्विवसुक्तभूरिदशास्वतिस्नेहनिबंधनीषु ॥ संसारमालासु चलाऽचलासु नज्ञायते तत्त्वसतात्विकीषु ॥ २६ ॥ संसारसंरंभकुचक्रिकेयं प्रावृट्पयोबुद्बुदभंगुराऽपि ॥ ईसावधानस्य जनस्य बुद्धौ चिरस्थिरप्रत्ययमातनोति ॥ २७ ॥ शोभोज्ज्वला दैववशाद्विनष्टा गुणाः स्थिताः संप्रति जर्जरत्वे ॥ आश्वासना दूरतरं प्रयाता जनस्य हेमन्त इवाम्बुजस्य ॥ २८ ॥

अर्थ—इस मनुष्य लोकसे वा अन्य स्वर्ग नरकादि लोकोंसे हम लोग आके एकत्र मिलैंगे, ऐसे संकेतमें बद्धभाव यह पुत्र मित्र और स्त्रियोंके व्यवहारकी जो मायाहै वह केवल देवोत्सव वा यात्राके मिलनेके सदृशहै ॥ २५ ॥ अधिक दशाओंको भोगनेवाली और अधिक स्नेहयुक्त दीपककी कभी बुझती कभी भभकती हुई ज्वालाके सदृश इस तुच्छ संसारकी जन्ममरणकी परम्परारूपी मालामें तत्वपदार्थ नहीं जाना जाता ॥२६॥ वर्षाके बुदबुदके समान क्षणभंगुरभी यह संसारकी प्रवृत्तिरूप दुष्ट चक्रिका सर्वदा भ्रमण करतीहुई असावधान मनुष्यकी बुद्धिमें ऐसे भ्रम उत्पन्न करती है मानो अधिक कालसे स्थिरहै ॥ २७ ॥ युवावस्थामें जो गुण शोभायमानथे वेही दैववशसे मनुष्यके शरदऋतुके कमलके समान अब वृद्धावस्थामें नष्ट होगये, अतएव गुणोंमें विवेकी पुरुषोंका विश्वास होना दुर्लभहै ॥ २८ ॥

पुनः पुनर्दैववशादुपेत्य स्वदेहभारेण कृतोपकारः ॥ विलूयते यत्र तरुः कुठारैराश्वासने तत्र हिकः प्रसंगः ॥ २९ ॥ मनोरमस्याऽप्यतिदोषवृत्तेरंतर्विघाताय समुत्थितस्य ॥ विष द्रुमस्येव जनस्य संगादासाद्यते संप्रति मूर्छनैव ॥ ३० ॥ कास्तादृशो यासु न सन्ति दोषाः कास्तादिशो यासु न दुःखदाहः ॥ कास्ताः प्रजा यासुन भंगुरत्वं कास्ताः क्रिया यासु ननाम माया ॥ ३१ ॥ कल्पाभिधानक्षणजीविनो हि कल्पौघसंख्याकलने विरिंच्याः ॥ अतःकलाशालिनि कालजाले लघुत्वदीर्घत्वधियोऽप्यसत्याः ॥३२॥

अर्थ—पृथ्वी, जल और वायु आदिसे जो वृक्ष वार २ दैवेच्छासे जन्म धारण करके छाया, पत्र पुष्प और फलादिसे मनुष्योंका उपकार करताहै, वही वृक्ष जिस संसारमें (स्वार्थसे) कुठारोंसे काटा जाताहै उस संसारमें विश्वास करनेका क्या प्रसंगहै ? अर्थात् ऐसे विश्वास रहित संसारमें मृत्यु अनपराधियोंकोभी मारताहै ॥ २९ ॥ ... दोषोंको धारण करनेवाले शान्ति वा जीवको नाश करनेके लिये उत्पन्न विषके समान मनोरम स्वजन स्त्री पुत्र मित्रादिकेभी संगसे मनुष्योंको मूर्च्छाही प्राप्त होतीहै ॥ ३० ॥ संसारमें ऐसी कौनसी दृष्टिहैं जिनमें दोष नहीं है, कौनसी ऐसी दिशायें हैं जहांपर दुःख और दाह नहीं हैं, कोन वह प्रजाहै जो क्षणभंगुर न हो, और कौन वे लौकिक क्रियाहैं जिनमें छल न हो ? ॥ ३१ ॥ कल्पोंके समूहोंकी संख्याके अपरिज्ञानमें ब्रह्मा विष्णु और महेशभी कल्प नामधारी क्षणभरही जीनेवाले हैं क्योंकि जैसे हमारी दृष्टिमें यह क्षणहै ऐसेही उनकी दृष्टिमें कल्पभी क्षणके तुल्यही है, इसलिये क्षण समूहरूपी इसकालमें लघु और दीर्घ बुद्धिभी मिथ्याही है, इसीप्रकार अनेक ब्रह्माण्डोंकी दृष्टिमें एक ब्रह्माण्ड परमाणुरूपही है अतएव सूक्ष्म और स्थूल बुद्धिभी मिथ्याही है ॥ ३२ ॥

सर्वत्र पाषाणमया महीध्रा मृदा मही दारुभिरेव वृक्षाः ॥ मांसैर्जनाः पौरुषबद्धभावा नापूर्वमस्तीह विकारहीनम् ॥ ३३ ॥ आलोक्यते चेतनयाऽनुविद्धा पयोनुबद्धोस्तनयेनभः स्थाः ॥ पृथग्विभागेन पदार्थलक्ष्म्या एतज्जगन्नेतरदस्ति किंचित् ॥ ३४ ॥ चमत्कृतिश्चेह मनस्विलोकचेतश्चमत्कारकरी नराणाम् ॥ स्वप्नेऽपि साधो विषयं कदाचित्केषां चिदभ्येति न चित्ररूपा ॥३५॥ अद्यापि यातेऽपि च कल्पनाया आकाशवल्लीफलवन्महत्त्वे ॥ उदेति नो लोभलवाहतानामुदारवृत्तान्तमयी कथैव ॥ ३६ ॥

अर्थ—संपूर्ण पर्वत पाषाणमयहैं पृथ्वी केवल मृत्तिकामयी है, सब वृक्ष काष्ठरूपहैं, और प्राणीमात्र मांस अस्थि और रक्तादि रूपही हैं, केवल व्यवहारके लिये नामरूपका संकेत करलियाहै, और विकारको छोड अपूर्व वस्तु संसारमें कोई नहीं है. अर्थात् आत्मवस्तुको छोड और सब नामरूप कल्पितहैं ॥ ३३ ॥ पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये सब एक दूसरेसे मिलकर गो, घटादिरूप नानाप्रकारके पदार्थोंसे युक्त इस जगत्की लक्ष्मी (शोभा) को सिद्ध करते हैं, अतः इस जगत्की लक्ष्मीको विवेकी पुरुष चेतनकी सत्तासे युक्तही देखते हैं, और आश्चर्य्य है कि अविवेकी लोग इसे चेतनसे पृथक् देखते हैं, परमार्थमें यह जगत् विकाररूप पंचभूतसे अतिरिक्त कुछभी

नहीं है ॥ ३४ ॥ यदि यह कहो कि पदार्थ असत्यहैं तो मनुष्योंका व्यवहार और भोगका चमत्कार कैसे होताहै? सो भी नहीं, हे साधो! इस संसारमें पदार्थसमूह मिथ्या होनेपरभी बुद्धिमान् मनुष्योंके चित्तमें व्यवहारकी चमत्कृति, अपना भोगका चमत्कार दिखादेती है, यह कोई आश्चर्य्यकी बात नहीं, क्योंकि स्वप्नमेंभी कभी २ किसी २ को यह आश्चर्य्यरूप विषयभोगका चमत्कार होताहै ॥ ३५ ॥ इस युवावस्थामें आकाशकी लताकेसमान, मिथ्यारूपभोगोंकी आसक्तिमें जब महत्व (उत्तम पदार्थ) की कल्पना होतीहै तो विषयभोग और धनादिके लोभसे नष्टपुरुषोंके चित्तमें परमउद्धार जो परमेश्वर उसकी कथा नहीं अच्छीलगती, तो वैराग्यादिका होनातो दूरहै ॥ ३६ ॥

आदातुमिच्छन् पदमुत्तमानां स्वचेतसैवापहतोऽद्य लोकः ॥ पतत्यशङ्कं पशुरद्रिकूटादानीलवल्लीफलवाञ्छयैव ॥ ३७ ॥ अचांतरन्यस्तनिरर्थकांशश्छायालतापत्रफलप्रसूनाः ॥ शरीर एव क्षतसंपदश्च श्वभ्रद्रुमा अद्यतना नराश्च ॥ ३८ ॥ क्वचिज्जना मार्दवसुन्दरेषु क्वचित्कठोरेषु च संचरन्ति ॥ देशान्तरालेषु निरन्तरेषु वनान्तखण्डेष्विव कृष्णसाराः ॥ ३९ ॥ धातुर्नवानि दिवसं प्रतिभीषणानि रम्याणि वा विलुलितांततमाकुलानि ॥ कार्याणि कष्टफलपाकहतोदयानि विस्माययन्ति न शवस्य मनांसि केषाम् ॥ ४० ॥

अर्थ—उत्तम भोग और धनादि उपार्जनकरनेकी इच्छासे प्रयत्न करताहुआ मनुष्य, अपने चित्तसेही खिन्न होके निस्संदेह ऐसे गिरताहै जैसे पर्वतके शिखरसे विषमस्थानमें हरीलताके भोजनकी इच्छासे पशु ॥ ३७ ॥ जिन्होंने विद्या धनादि पदार्थोंको केवल अपने शरीरोंके पोषणमेंही नष्टकरदियाहै, ऐसे आजकलके मनुष्योंका जन्म ऐसे निरर्थकहै, जैसे दुर्गमभूमिमें लगाये वृक्षोंकी छाया, डाल, पत्र, पुष्प, फलादि ॥ ३८ ॥ जैसे कृष्णसार मृग, कभी कोमलभूमिपर और कभी कठोरभूमिपर विचरतेहैं, इसीरीति मनुष्यभी कभी २ दया, दाक्षिण्य, विनय और विद्यादि युक्त चित्तभूमिमें, और कभी २ काम, क्रोध, लोभ, मोह और निष्ठुरतादियुक्त चित्तभूमिमें ॥ ३९ ॥ शव (मुर्दे) केसमान अचेतन ब्रह्माके प्रतिदिन, महाभयंकर, ऊपरसे रम्य, यथार्थमें अरम्य, रागादिसे पूर्ण, परिणाममें कष्टदेनेवाले नित्य नये २ कार्य्य किन विवेकियोंको आश्चर्य्यजनक नहीं होते ॥ ४० ॥

जनः कामासक्तो विविधकुकलाचेष्टनपरः स तु स्वप्नेऽप्यस्मिन् जगति सुलभो नाद्य सुजनः ॥ क्रिया दुःखासंगा विधुरविधुरा नूनमखिला न जाने नेतव्या कथमिव दशा जीवितमयी ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये वैराग्यप्रकरणे निःश्रेयसविरोधिभावानित्यताप्रतिपादनं नाम सप्तविंशतितमः सर्गः ॥ २७ ॥

अर्थ—कामासक्त मनुष्य अनेकप्रकारकी कुटिलतादिमें तत्परहै. इसीसे दुःखोंका भागी है. और कुटिलतादि रहित विवेकी सज्जन तो इससमय दुर्लभहै, संपूर्णक्रियायें महानष्ट और दुःखसे युक्तहैं मैं नहींजानता कि इस जीवनकी दशा कैसे व्यतीत करनीचाहिये ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे वैराग्यप्रकरणे निःश्रेयसविरोधिभावानित्यताप्रतिपादनंनाम सप्तविंशतितमः सर्गः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशतितमः सर्गः ॥ २८ ॥

संपूर्ण भोज्यपदार्थोंमें अरुचि होनेके अर्थ पदार्थोंका विरुद्धस्वभाव इस २८ वें सर्गमें वर्णनकियागयाहै.

श्रीराम उवाच ॥ ॥ यच्चेदं दृश्यते किंचिज्जगत्स्थावरजंगमम् ॥ तत्सर्वमस्थिरं ब्रह्मन्स्वप्नसंगमसंनिभम् ॥ १ ॥ शुष्कसागरसंकाशो निखातो योऽद्य दृश्यते ॥ स प्रातरभ्रसंवीतो नगः संपद्यते मुने ॥ २ ॥ यो वनव्यूहविस्तीर्णो विलीढगगनो महान् ॥ दिनैरेव स यात्युर्वीसमतां कूपतां च वा ॥ ३ ॥ यदंगमद्य संवीतं कौशेयस्रग्विलेपनैः ॥ दिगम्बरं तदेव श्वो दूरे विशरिताऽवटे ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—हे ब्रह्मन्! जो कुछ यह स्थावर जंगम जगत् दीखपडताहै वह सब स्वप्नके समागमके समान अस्थिरहै ॥ १ ॥ हे मुने! जो शुष्कसागरके समान इससमय गर्त (गढा) दीखपडताहै वही कालान्तरमें मेघमण्डलसहित बडा पर्वत होजाताहै ॥ २ ॥ जो स्थल वनके समुदायसे विस्तृत है, और आकाशको चुम्बन क-

रताहुआ बडा विशाल दीखपडताहै, वही थोडेही दिनोंमें पृथ्वीकेसमान वा कूपपणाको प्राप्त होजाताहै ॥ ३ ॥ जो अंग आज रेशमके वस्त्र, और अनेकप्रकारके सुगन्धद्रव्योंके लेपसे शोभितहै, वही कल नग्नहोके किसी गर्त (गढे) में सडके नष्टहोजायगा ॥ ४ ॥

यत्राद्य नगरं दृष्टं विचित्राचारचञ्चलम् ॥ तत्रैवोदेति दिवसैः संशून्यारण्यधर्मता ॥ ५ ॥ यः पुमानद्य तेजस्वी मण्डलान्यधितिष्ठति ॥ स भस्मकूटतां राजन् दिवसैरधिगच्छति ॥ ६ ॥ अरण्यानी महाभीमा या नभोमडलोपमा ॥ पताकाच्छादिताकाशा सैव संपद्यते पुरी ॥ ७ ॥ या लता वेल्लिता भीमा भात्यद्य विपिनावली ॥ दिवसैरेव सा याति पुनर्मरुमहीपदम् ॥ ८ ॥

अर्थ—जहाँपर आज अनेकप्रकारके विचित्र आचारसे युक्त और उद्योगमें चंचल नगर दीखपडताहै, वहांही थोडेही दिनोंमें शून्य भयंकर जंगल होजाताहै ॥ ५ ॥ हे राजन्! जो पुरुष आज बडा तेजस्वी और चक्रवर्ती राज्य करताहै, वही थोडेदिनोंमें भस्मका समूह बनजाताहै ॥ ६ ॥ जहांपर महाभयंकर विशालता और नीलतामें आकाशके सदृश वनहै वहांही पताकाओंसे आकाशको आच्छादनकरनेवाली नगरी बसजाती है ॥ ७ ॥ जो भूमि अधिकजल होनेसे विविधप्रकारकी लताओंसे व्याप्त और बनकी पंक्तियोंसे शोभितहै वही थोडेदिनोंमें मरुस्थलके समान जल और वृक्षोंसे रहित होजातीहै ॥ ८ ॥

सलिलं स्थलतां याति स्थलीभवति वारिभूः ॥ विपर्यस्यति सर्वं हि सकाष्ठाम्बुतृणं जगत् ॥ ९ ॥ अनित्यं यौवनं बाल्यं शरीरं द्रव्यसंचयाः ॥ भावाद्भावान्तरं यान्ति तरंगवदनारतम् ॥ १० ॥ वातांतर्दीपकशिखालोलं जगति जीवितम् ॥ तडित्स्फुरणसंकाशा पदार्थश्रीर्जगत्रये ॥ ११ ॥ विपर्यासमियं याति भूरिभूतपरंपरा ॥ बीजराशिरिवाजस्रं पूर्यमाणः पुनः पुनः ॥ १२ ॥

अर्थ—जलमयस्थान शुष्कस्थल होजाताहै, और शुष्कमरुस्थली जलमयी भूमि होजातीहै, काष्ठ जल और तृण सहित यह संपूर्णजगत् विपरीतभावको प्राप्तहोजाताहै ॥ ९ ॥ बाल्यअवस्था अनित्यहै, युवावस्था अनित्यहै, यह शरीरही अनित्यहै, और जितना द्रव्यका संग्रहहै वह सभी अनित्यहै क्योंकि जितने पदार्थ हैं वे सब अपने पूर्वस्वभावको त्यागके दूसरे स्वभावको निरन्तर प्राप्तहोते रहतेहैं ॥ १० ॥ वायुके मध्यमें लघुदीपककी शिखाके समान मनुष्यका जीवन इस जगत्में चंचलहै. और तीनोंलोकके पदार्थोंकी शोभा विद्युत्की चमककेसमान क्षणभंगुरहै ॥ ११ ॥ जैसे धान्यादिकी राशि व्ययसे वा, क्षेत्रमें बोनेसे पूर्णहोनेसे अंकुरादिरूपसे निरन्तर विपर्य्ययको प्राप्तहोती है, ऐसे यह सबभूतोंकी श्रेणी पुनः २ विपर्य्यास (एक दशासे दूसरी दशा) को नित्य प्राप्तहोतीरहतीहै ॥ १२ ॥

मनः पवनपर्यस्तभूरिभूतरजःपटा ॥ पातोत्पातपरावर्तपराभिनयभूषिता ॥ १३ ॥ आलक्ष्यते स्थितिरियं जागति जनितभ्रमा ॥ नृत्तावेशविवृत्तेव संसाराररभटीनटी ॥ १४ ॥ गंधर्वनगराकारविपर्यासविधायिनी ॥ अपांगभंगुरोदारव्यवहारमनोरमा ॥ १५ ॥ तडित्तरलमालोकमातन्वाना पुनः पुनः ॥ संसाररचना राजन् नृत्तसक्तेव राजते ॥ १६ ॥

अर्थ—मनरूपी पवनसे उत्पन्न अनेक प्राणीरूप धूलिका वस्त्र धारणकियेहुये, नरकादिमें पतन, स्वर्गादिमें उत्पतन, और मध्यमलोकोंमें परावर्तन (पुनः २ जाना आना) रूप उत्तम अभिनयसे भूषित ॥ १३ ॥ जो अनेक कर्ता भोक्तारूप फल जगत्की स्थितिरूप आडम्बरकी अधिकतारूप नटी है यह नृत्यके उत्साहसे अनेकरूप धारणकरके भ्रम उत्पन्नकररही है ॥ १४ ॥ हे राजन्! गन्धर्वनगरकेसमान विपरीतविधानमें निपुण, कटाक्षकेसदृश क्षणभंगुरव्यवहारोंसे मनोरम ॥ १५ ॥ विद्युत्केसमान चंचल आलोकनको बार २ विस्तारकरतीहुई, यह संसारकी रचनारूप नटी नृत्यमें आसक्तकेसदृश शोभित होरहीहै ॥ १६ ॥

दिवसास्ते महान्तस्ते संपदस्ताः क्रियाश्च ताः ॥ सर्वं स्मृतिपथं यातं यामो वयमपि क्षणात् ॥ १७ ॥ प्रत्यहं क्षयमायाति प्रत्यहं जायते पुनः ॥ अद्यापि हतरूपाया नातोऽस्या दग्धसंसृतेः ॥ १८ ॥ तिर्यक्त्वं पुरुषा यान्ति तिर्यंचो नरतामपि ॥ देवाश्चादेवतां यान्ति किमिवेह विभो स्थिरम् ॥ १९ ॥ रचयन् रश्मिजालेन रात्र्यहानि पुनः पुनः ॥ अतिवाह्य रविः कालो विनाशावधिमीक्षते ॥ २० ॥

अर्थ—वे उत्सवके दिन, वे महात्मालोग, वे अनेकप्रकारकी संपत्तियां, और वे उत्तमक्रिया सब स्मरणमात्र रहगईं, और हम लोगभी क्षणमात्रमें चले ॥ १७ ॥ प्रतिदिन नष्ट होताहै, और प्रतिदिन पुनः २ उत्पन्नहोताहै, परन्तु अबभी इस दुष्टसंसारका अन्त नहीं ॥ १८ ॥ हे विभो! मनुष्य पशु, पक्षी, आदि योनियोंमें प्राप्तहोजाते हैं और पशु

पक्षी आदि मनुष्ययोनिमें प्राप्तहोते हैं, और देवताभी अदेवता होजाते हैं, तो भला कौनसा पदार्थ इस संसारमें स्थिर है ॥ १९ ॥ कालरूपी सूर्यभगवान् अपने किरणसमूहोंसे रात्रिदिन प्राणिके समूहको रचते हैं और अपने समय (रात्रिदिन,) को बिताकर सबके नाशकी अवधिको देखाकरते हैं ॥ २० ॥

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च सर्वा वा भूतजातयः ॥ नाशमेवानुधावन्ति सलिलानीव वाडवम् ॥ २१ ॥ द्यौः क्षमा वायुराकाशं पर्वता सरितो दिशः ॥ विनाशवाडवस्यैतत्सर्वं संशुष्कमिन्धनम् ॥ २२ ॥ धनानि बन्धवा भृत्या मित्राणि विभवाश्च ये ॥ विनाशभयभीतस्य सर्वं नीरसतां गतम् ॥ २३ ॥ स्वदन्ते तावदेवैते भावा जगति धीमते ॥ यावत्स्मृतिपथं याति न विनाशकुराक्षसः ॥ २४ ॥

अर्थ—ब्रह्मा, विष्णु और महेश तथा सब प्राणियोंकी जाति नाशहीकी ओर ऐसे दौडरहे हैं, जैसे सबजल वडवाग्निकी ओर ॥ २१ ॥ अन्तरिक्ष लोक (स्वर्गादि) पृथ्वी, वायु, आकाश, पर्वत, नदियाँ, और सबदिशा, ये सब विनाशरूपअग्निके शुष्क इन्धन हैं ॥ २२ ॥ अनेकप्रकारका धन, बन्धुगण, भृत्य, मित्र, और ऐश्वर्य्य, ये सब विनाशसे भयभीतपुरुषकेलिये नीरस होजातेहैं ॥ २३ ॥ बुद्धिमानकेलिये संपूर्णसंसारके पदार्थ, तभीतक स्वादिष्ट प्रतीतहोतेहैं जबतक नाशरूपीदुष्टराक्षसका स्मरण नहींहोता ॥ २४ ॥

क्षणमैश्वर्यमायाति क्षणमेति दरिद्रताम् ॥ क्षणं विगतरोगत्वं क्षणमागतरोगताम् ॥२५॥ प्रतिक्षणविपर्यासदायिना निहतात्मना ॥ जगद्भ्रमेण के नाम धीमन्तो हि न मोहिताः ॥ २६ ॥ तमःपंकसमालब्धं क्षणमाकाशमण्डलम् ॥ क्षणं कनकनिष्यन्दकोमलालोकसुन्दरम् ॥ २७ ॥ क्षणं जलदनीलाब्जमालावलितकोटरम् ॥ क्षणमुद्दामररवं क्षणं मूकमिव स्थितम् ॥ २८ ॥

अर्थ—क्षणमेंही ऐश्वर्य्य प्राप्तहोताहै और क्षणमें दरिद्रता आतीहै, क्षणमेंही नीरोगता आती है और क्षणभरमेंही अनेकरोग आके घेरलेतेहैं ॥ २५ ॥ प्रतिक्षण विपर्य्यय (उलट पुलट) देनेवाले, इस जगत्के भ्रमसे कौनसे ऐसे बुद्धिमान् हैं जो मोहित नहींहोगये ? ॥ २६ ॥ क्षणभरमेंही यह आकाशमण्डल अन्धकाररूपीपंकसे लिप्तहोताहै, और क्षणभरमेंही सुवर्णके द्रवकेसमान कोमल चन्द्रादिके प्रकाशसे रमणीय होताहै यही संसारकी दशाहै ॥ २७ ॥ क्षणमेंही [illegible]रूपी नीलकमलोंकी मालासे आकाशका अन्तराल शोभितहोताहै, क्षणमेंही बडे भयंकर उच्चशब्दोंसे पूर्ण होताहै, और क्षणमेंही मूकके समान स्थितहोजाताहै ॥ २८ ॥

क्षणं ताराविरचितं क्षणमर्केण भूपितम् ॥ क्षणमिन्दुकृताल्हादं क्षणं सर्वबहिष्कृतम् ॥ २९ ॥ आगमापायपरया क्षणसंस्थितिनाशया ॥ न बिभेति हि संसारे धीरोऽपि क इवानया ॥ ३० ॥ आपदः क्षणमायान्ति क्षणमायान्ति संपदः ॥ क्षणं जन्म क्षणं मृत्युर्मुने किमिव न क्षणम् ॥ ३१ ॥ प्रागासीदन्य एवेह जातस्त्वन्यो नरो दिनैः ॥ सदैकरूपं भगवन् किंचिदस्ति न सुस्थिरम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—क्षणमेंही तारागणोंकी रचनासे विचित्ररूप होजाताहै, क्षणभरमेंही सूर्य्यके प्रकाशसे शोभितहोताहै, क्षणभरमेंही चंद्रमाके प्रकाशसे अतिआनंददायक होताहै और क्षणमेंही उन सबसे रहितहोजाताहै ॥ २९ ॥ आगम और अपाय (प्रगट होना तथा लोपहोने) में लीन क्षणमेंही स्थिति नाशवाली, इस जगत्की दशासे कौन धीर पुरुष भी भयभीत नहींहोता ॥ ३० ॥ हे मुने ! क्षणमेंही आपत्ति, क्षणमें संपत्ति, क्षणमेंही जन्म, और क्षणमेंही मृत्युमय इस जगत्में कौन ऐसी वस्तु है जो क्षणिक नहीं ? ॥ ३१ ॥ वही मनुष्य प्रथम औररूप था थोडेही दिनोंमे कुछका कुछ होगया ? हे भगवान् ! इस संसारमें एकरूपसे स्थिर कोईपदार्थ नहीं है ॥ ३२ ॥

घटस्य पटता दृष्टा पटस्यापि घटस्थितिः ॥ न तदस्ति न यद्दृष्टं विपर्यस्यति संसृतौ ॥ ३३ ॥ तनोत्युत्पादयत्यत्ति निहंत्यासृजति क्रमात् ॥ सततं रात्र्यहानीव निवर्तन्ते नरं प्रति ॥ ३४ ॥ अशूरेण हतः शूर एकेनापि हतं शतम् ॥ प्राकृता प्रभुतां याताः सर्वमावर्त्यते जगत् ॥ ३५ ॥ जनतेयं विपर्यासमजस्रमनुगच्छति ॥ जडस्पन्दपरामर्शात्तरंगाणामिवावली ॥ ३६ ॥

अर्थ—घटके नष्टहोनेपर उसके चूर्णको कपासके खेतमें फेंकनेसे और उसके कपासके वृक्षमें परिणत (तव-[illegible]) होनेसे यह पटरूपमें परिवर्तित (तवदील) होताहै, अर्थात् घटका पट होना देखाजाताहै. इस संसारमें ऐसा कोई पदार्थ नहीं, जो विपर्य्यय न होताहो ॥ ३३ ॥ विस्तार, उत्पत्ति, किंचित् नाश, सर्वथा नाश, और पुनर्जन्म, ये सब क्रमसे मनुष्यके निकट रात्रिदिनके चक्रके समान निरंतर आते जाते रहतेहैं ॥ ३४ ॥ जो वीर नहीं उसनें शूरवीरको मारलिया, और एकने सौकोभी मारलिया, जो सामान्यपुरुष थे वे बडेभारी धनाढ्य अनेकोंके स्वामी बनगये

और अनेकके स्वामी दरिद्र होगये इसीप्रकार यह जगत् (संसारचक्र) घूमा करताहै ॥ ३५ ॥ यह सब चेतनतासहित शरीरोंका समूह निरंतर विपर्य्ययदशाको ऐसे प्राप्तहोतारहताहै, जैसे जलकी गतिके संसर्गसे तरंगोंकी पंक्ति ॥ ३६ ॥

बाल्यमल्पदिनैरेव यौवनश्रीस्ततो जरा ॥ देहेऽपि नैकरूपत्वं कास्था बाह्येषु वस्तुषु ॥ ३७ ॥ क्षणमानन्दितामेति क्षणमेति विषादिताम् ॥ क्षणं सौम्यत्वमायाति सर्वस्मिन्नटवन्मनः ॥३८॥ इतश्चान्यदितश्चान्यदितश्चान्यदयं विधिः ॥ रचयन्वस्तुना याति खेदं लीलास्विवार्भकः ॥ ३९ ॥ चिनोत्युत्पादयत्यत्ति निहंत्यासृजति क्रमात् ॥ सततं रात्र्यहानीव निवर्तन्ते नरं प्रति ॥ ४० ॥

अर्थ—बाल्यअवस्था थोडेही दिनोंमे जातीरहतीहै, अनन्तर यौवनकी शोभाभी गिने दिनोंमें बीतजातीहै, पुनः वृद्धावस्था आके ग्रासलेती है, अनंतर मृत्यु आपहुंचताहै, जब शरीरमेंही एकरूपसे किसीवस्तुकी स्थिति नहीं तब बाह्यपदार्थोंमें क्या विश्वास ॥ ३७ ॥ यह मन क्षणमेंही आनंदित होताहै, क्षणमेंही शोकयुक्त होताहै, क्षणमेंही शांत होता है, और क्षणमेंही क्रुद्ध होताहै, यह सबमें नटकेसमान अपनी लीला दिखाताहै ॥ ३८ ॥ यह ब्रह्मा, यहां और वहां, और २ कहीं औरहीं; अर्थात् कहीं हर्ष, कहीं शोक, और कहीं मोहयुक्तवस्तुओंको रचताहुआ ऐसे नहीं थकता जैसे क्रीडामें बालक ॥ ३९ ॥ यह ब्रह्मा धान्यादिके समान किसीको एकत्र करताहै उनसे दूसरोंको उत्पन्नकरताहै और पुनः उनको मारताहै, और भक्षणकरजाताहै, अनन्तर भोजनके स्वादके लोभसे पुनः उनको क्रमसे उत्पन्न करताहै, इस संसारमें उत्पन्नहुये मनुष्यपर रात्रिदिनकेसमान यह चक्र फिरता रहताहै ॥ ४० ॥

आविर्भावतिरोभावभागिनो भवभागिनः ॥ जनस्य स्थिरतां यान्ति नापदो न च संपदः ॥ ४१ ॥ कालः क्रीडत्ययं प्रायः सर्वमापदि पातयन् ॥ हेलाविचलिताशेषचतुराचारचंचुरः ॥ ४२ ॥ समविषमविपाकतो विभिन्नास्त्रिभुवनभूतपरंपराफलौघाः ॥ समयपवनपातिताः पतंति प्रतिदिनमाततसंसृतिद्रुमेभ्यः ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये वैराग्यप्रकरणे सर्वभावाविरतविपर्यासप्रतिपादनं नामाष्टाविंशतितमः सर्गः ॥ २८ ॥

अर्थ—संसारके जितने पदार्थ हैं उनका कभी आविर्भाव (ग) और कभी तिरोभाव होताही रहताहै. इस जगत्में मनुष्यकी विपत्ति, और सम्पत्ति कुछभी स्थिरनहीं ॥ ४१ ॥ अनादिकालसेही चतुरजनोंकेभी आचारोंको परिवर्तनकरनेमें कुशल, यह काल प्रायः सबको आपत्तिमें डालकर क्रीडा करता है ॥ ४२ ॥ कर्मरूपीरसके विपाकसे अनेकरूप, त्रिभुवनोंके प्राणीयोंके शरिररूपीफलोंके समूह संसाररूपी बडेवृक्षोंसे समयपवनसे प्रतिदिन गिरायेजाते हैं अतएव इसमें विश्वासकरना योग्यनहीं है ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे सर्वभावाविरतविपर्यासप्रतिपादनं नामाष्टाविंशतितमः सर्गः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशः सर्गः ॥ २९ ॥

पदार्थोंके दोषोंसे इस २९ वे सर्गमें रामचंद्रजीने अपनी ग्लानी वर्णनकरके शांतिके उपदेशार्थ प्रार्थना की है

श्रीराम उवाच ॥ ॥ इति मे दोषदावाग्निदग्धे महति चेतसि ॥ प्रस्फुरन्ति न भोगाशा मृगतृष्णासरःस्विव ॥ १ ॥ प्रत्यहं याति कटुतामेषा संसारसंस्थितिः ॥ कालपाकवशाल्लोला रसा निम्बलता यथा ॥ २ ॥ वृद्धिमायाति दौर्जन्यं सौजन्यं याति तानवम् ॥ करंजकर्कशे राजन् प्रत्यहं जनचेतसि ॥ ३ ॥ भज्यते भुवि मर्यादा झटित्येव दिनं प्रति ॥ शुष्केव माषशिम्बीका टंकारकरवं विना ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—इसप्रकार दोषदर्शनरूपीदावाग्निसें दग्ध बीज विवेकयुक्त मेरे चित्तमें भोगोंकी आशा ऐसी नहीं फुरती जैसे तडागोंमें मृगतृष्णा ॥ १ ॥ प्रतिदिन यह संसारकी स्थिति कालवशसे अधिक २ कटुताको ऐसी प्राप्तहोतीजातीहै, जैसे पाक निंबसे लता ॥ २ ॥ हे राजन्! कंटकके वृक्षके समान कर्कश मनुष्योंके चित्तोंमें धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होनेसे दुर्जनताकी तो वृद्धि और सुजनताका लोप होताजाताहै ॥ ३ ॥ प्रतिदिन टंकार शब्द विनाही मर्यादारूपी धनुषकी डोरी ऐसे टूटती जातीहै जैसे शुष्कमाषकी डोरी ॥ ४ ॥

राज्येभ्यो भोगपूगेभ्यश्चिन्तावद्भ्यो मुनीश्वर ॥ निरस्ताचिन्ताकलिता वरमेकान्तशीलता ॥ ५ ॥ नानन्दाय ममोद्यानं न सुखाय मम स्त्रियः ॥ न हर्षाय ममार्थाशा शाम्यामि मनसा सह ॥ ६ ॥ अनित्यश्चासुखो लोकस्तृष्णा तात दुरुद्वहा ॥ चापलोपहतं चेतः कथं यास्यामि निर्वृतिम् ॥ ७ ॥ नाभिनन्दामि मरणं नाभिनन्दामि जीवितम् ॥ यथा तिष्ठामि तिष्ठामि तथैव विगतज्वरम् ॥ ८ ॥

अर्थ—हे मुनीश्वर ! चिन्ताग्रस्त, और भोगोंके समूह राज्य उसे चिन्तारहितहोके एकान्त सेवनकरना उत्तम है और मैंने उसीको स्वीकारकिया है ॥ ५ ॥ वाटिकायें मेरे आनन्दके लिये नहीं हैं, स्त्रियाँ मेरे सुखकेलिये नहीं हैं, और न धनकी प्राप्ति मेरे सुखकेलिये है, मैं तो केवल मनमेंही शान्त हुं ॥ ६ ॥ हे तात ! यह लोक अनित्य और सुखरहित है, और तृष्णाका धारणकरना अत्यन्त दुःखदायी है, और चित्त तो चपलतासे नष्ट है, किसप्रकार मुझे शान्ति मिलेगी ? ॥ ७ ॥ न मैं मृत्युसे प्रसन्नहोताहुं और न जीवनसे प्रसन्न किन्तु जैसा स्थित हुं वैसा चिंता रहित स्थितरहूंगा ॥ ८ ॥

किं मे राज्येन किं भोगैः किमर्थेन किमीहितैः ॥ अहंकारवशादेतत्स एव गलितो मम ॥ ९ ॥ जन्मावलिवरत्रायामिन्द्रियग्रन्थयो दृढाः ॥ ये बद्धास्तद्विमोक्षार्थं यतन्ते ये त उत्तमाः ॥ १० ॥ मथितं मानिनीलोकैर्मनो मकरकेतुना ॥ कोमलं खुरनिष्पेषैः कमलं करिणा यथा ॥ ११ ॥ अद्य चेत्स्वच्छया बुद्धया मुनीन्द्र न चिकित्स्यते ॥ भूयश्चित्तचिकित्सायास्तत्किलावसरः कुतः ॥ १२ ॥

अर्थ—राज्यसे मुझे क्या ? भोगोंसे क्या ? धनोंसे क्या ? और चेष्टाओंसे क्या ? ये सब अहंकारसे होते हैं, सो अहंकारही मेरा नष्टहोगया ॥ ९ ॥ जन्मकी पंक्तिरूप चर्म्मकी रज्जुमें इन्द्रियरूपी दृढग्रन्थियोंसे सबजीव बद्धहैं, उन ग्रन्थियोंसे छूटनेके लिये जो प्रयत्न करते हैं वेही उत्तमजन हैं ॥ १० ॥ कामदेवने स्त्रियोंकेद्वारा सबके मनको ऐसे मथनकरडालाहै जैसे हाथी अपने पैरोंसे कोमलकमलको ॥ ११ ॥ हे मुनीन्द्र ! यदि इस बाल्यअवस्थामें स्वच्छ बुद्धिसे परलोकका उपाय नसोचाजायगा तो भला अन्यअवस्थामें विचारका अवसर कहाँ ? क्योंकि कोमलवृक्षका उखाडना बडे वृक्षसे सहज है ॥ १२ ॥

विषं विषयवैषम्यं न विषं विषमुच्यते ॥ जन्मान्तरघ्ना विषया एकदेहहरं विषम् ॥ १३ ॥ न सुखानि न दुःखानि न मित्राणि न बान्धवाः ॥ न जीवितं न मरणं बन्धाय ज्ञस्य चेतसः ॥ १४ ॥ तद्भवामि यथा ब्रह्मन्पूर्वापरविदां वर ॥ वीतशोकभयायासो ज्ञस्तथोपदिशाशु मे ॥ १५ ॥ वासनाजालवलिता दुःखकण्टकसंकुला ॥ निपातोत्पातबहुला भीमरूपाज्ञताटवी ॥ १६ ॥

अर्थ—विषयरूपी विषही भयंकर विष है, और विष जो है वह विष नहीं, क्योंकि विषयरूपी विष अज्ञानके द्वारा अनेक जन्ममें मृत्युसे मारताहै, और यह सामान्यविष तो केवल एकहीबार शरीरको नष्टकरताहै ॥ १३ ॥ आत्मज्ञानीके चित्तमें न सुख है, न दुःख है, न मित्र है, न बन्धु है, न जीवन है, न मरण है, और न बन्धनका कोई हेतु है, ॥ १४ ॥ हे ब्रह्मन् ! हे पूर्वापरके वेत्ताओंमे श्रेष्ठ ! इसलिये जिसप्रकार मैं शोक, भय, और खेदरहित होके शीघ्र आत्मज्ञानी होजाऊं ऐसा उपदेश कीजिये ॥ १५ ॥ वासनाके जालसे वेष्टित दुःखरूपीकण्टकोंसे व्याप्त, निपतन और उत्पतनके कारण ऊंचे नीचे प्रदेशोंसे भयंकर यह अज्ञतारूप महाजंगल है ॥ १६ ॥

क्रकचाग्रविनिष्पेषं सोढुं शक्नोम्यहं मुने ॥ संसारव्यवहारोत्थं नाशाविषयवैशसम् ॥ १७ ॥ इदं नास्तीदमस्तीति व्यवहारांजनभ्रमः ॥ धुनोतीदं चलं चेतो रजोराशिमिवानिलः ॥ १८ ॥ तृष्णातन्तुलवप्रोतं जीवसंचयमौक्तिकम् ॥ चिदच्छांगतया नित्यं विकसच्चित्तनायकम् ॥ १९ ॥ संसारहारमरतिः काळव्यालविभूषणम् ॥ त्रोटयाम्यहमक्रूरं वागुरामिव केसरी ॥ २० ॥

अर्थ—हे मुने ! आरीके दांतोंके घर्षणको मैं सहसक्ताहूं, परंतु व्यवहारसे उत्पन्न आशा और विषयोंसे नाशको नहींसहसक्ता ॥ १७ ॥ यहहै यह नहीं है, इत्यादि संसारके व्यवहारके अंजनका भ्रम स्वभावसे चंचलचित्तको ऐसे कंपाता है जैसे धूलिकी राशिको वायु ॥ १८ ॥ जीवरूपी मोती तृष्णारूपी सूक्ष्मतंतु (सूत) में गुंफितहै, उसमें साक्षी चेतनकी सत्तासे चित्तरूपी नायक शिखामणि चमकता है ॥ १९ ॥ कालरूपी विषयीजनका भूषण, इससंसाररूपी हारको मैं अक्रूरतापूर्वक आपके उपदेशसे ऐसे तोडडालूंगा जैसे सिंह जालको ॥ २० ॥

नीहारं हृदयाटव्यां मनस्तिमिरमाशु मे ॥ केन विज्ञानदीपेन भिन्धि तत्वविदां वर ॥ २१ ॥ विद्यन्त एवेह न ते महात्मन् दुराधयो न क्षयमाप्नुवन्ति ॥ ये संगमेनोत्तममानसानां निशा तमांसीव निशा-

करेण ॥ २२ ॥ आयुर्वायुविघट्टिताभ्रपटलीलम्बाम्बुवद्भंगुरं भोगा मेघवितानमध्यविलसत्सौदामिनीचंचलाः ॥ लोला यौवनलालना जलरयश्चेत्याकलय्य द्रुतं मुद्रेवाद्य दृढार्पिता ननु मया चित्ते चिरं शान्तये ॥ २३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे सकलपदार्थानास्थाप्रतिपादनंनामैकोनत्रिंशः सर्गः ॥ २९ ॥

अर्थ—हे तत्त्वविदोंमें श्रेष्ठ ! मेरे हृदयरूपीवनमें आत्मस्वरूपके खोलनेकेलिये प्रवृत्त जो मन है उसके अज्ञानरूपी निहार (कुहरा) को विज्ञानरूपीसूर्यसे दूरकीजिये ॥ २१ ॥ हे महात्मन् ! जैसे चन्द्रमाके प्रकाशसे अंधकार नहींरहजाता, ऐसेही इससंसारमें कोईभी ऐसी दुष्ट मानसी व्यथा नहीं है जो महात्माओंके संग और उपदेशसे नष्ट न होजाय ॥ २२ ॥ यह आयु वायुके वेगसे संचालित मेघके पटलमें लटकतेहुए जलके बिन्दुकणकेसमान क्षणभंगुर है, सम्पूर्ण भोग, मेघकेसमूहमें विद्युत्के समान चंचल है, और युवावस्थाके सब आनन्द जलके प्रवाहकेसमान अस्थिर हैं, इसबातको मैंने इसीबाल्यावस्थामें निश्चयकरके चित्तमें शांति प्राप्तहोनेकेलिये अचल निश्चयकियाहै ॥ २३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे सकलपदार्थानास्थाप्रतिपादनंनामैकोनत्रिंशः सर्गः ॥ २९ ॥

त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३० ॥

इस ३० वे सर्गमें श्रीरामचंद्रजी अनेकहेतुओंसे अपना उद्वेग प्रकाशकरते हैं, और उसकी शांतिके लिये उपदेशकी प्रार्थना करतेहैं.

श्रीराम उवाच ॥ ॥ एवमभ्युत्थितानर्थशतसंकटकोटरे ॥ जगदालोक्य निर्मग्नं मनो मननकर्दमे ॥१॥ मनो मे भ्रमतीवेदं संभ्रमश्चोपजायते ॥ गात्राणि परिकम्पन्ते पत्राणीव जरत्तरोः ॥ २ ॥ अनाप्तोत्तमसंतोषधैर्योत्संगाकुला मतिः ॥ शून्यास्पदा बिभेतीह बाले बाल्पबलेश्वरा ॥ ३ ॥ विकल्पेभ्यो लुठन्त्येताश्चान्तःकरणवृत्तयः ॥ श्वभ्रेभ्य इव सारंगास्तुच्छालम्बविडम्बिताः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—इसप्रकार सैकडोंअनर्थोंसे संसाररूपीअन्धकूपमें सबजीवोंको निमग्नदेखके मेरा मन चिन्तारूपीपंकमें निमग्न है ॥ १ ॥ मेरा मन अत्यन्त भ्रमण कररहाहै भयभी उत्पन्नहोताहै और सबअंग ऐसे कांपते हैं जैसे वायुसे पुरानेवृक्षके पत्ते ॥ २ ॥ उत्तम संतोष और धैर्यादिरूपमाताके अंक न पानेसे अतिव्याकुल यह बुद्धि ऐसे डरती है जैसे अल्पअवस्थावाली बालिका शून्यवनमें ॥ ३ ॥ विकल्पोंसे अन्तःकरणकी वृत्तियां दुःखरूपी गर्तमें ऐसी गिरती हैं, जैसे लटकतेहुए तुच्छतृणके लोभसे मृग गढोंमें ॥ ४ ॥

अविवेकास्पदा भ्रष्टाः कष्टे रूढा न सत्पदे ॥ अन्धकूपमिवापन्ना वराकाश्चक्षुरादयः ॥ ५ ॥ नावस्थितिमुपायाति न च याति यथेप्सितम् ॥ चिन्ताजीवेश्वरायत्ता कांतेव प्रियसद्मनि ॥ ६ ॥ जर्जरीकृत्य वस्तूनी त्यजन्ती बिभ्रती तथा ॥ मार्गशीर्षान्तवल्लीव धृतिर्विधुरतां गता ॥ ७ ॥ अपहस्तितसर्वार्थमनवस्थितिरास्थिता ॥ गृहीत्वोत्सृज्य चात्मानं भवस्थितिरवस्थिता ॥ ८ ॥

अर्थ—अविवेकी पुरुषोंके आश्रित चक्षुरादिक इन्द्रियां संसारी पदार्थोंमें ऐसे गिरती हैं जैसे मार्गदर्शकके बिना नेत्रहीन पुरुप कूपमें ॥ ५ ॥ यह चितारूपी स्त्री न तो उपरामको प्राप्तहोती है और न अपने इष्टविपय देशमें जाती है, किन्तु जीवरूपी अपने पतिके आधीन प्रियस्थानमें सदा निवासकरती है ॥ ६ ॥ धीरता सबवस्तुओंको शिथिलकरके कभी (विवेक होनेपर) पदार्थोंको त्यागती है और कभी पुनः धारणकरती है इसप्रकार यह पौषमासकी लताके समान जर्जर होगई है ॥ ७ ॥ सब स्वार्थ और परमार्थको हस्तसे नष्टकरके मेरे चित्तकी यह स्थिति है यह संसारकी स्थिति अर्धरूपसे आत्माको ग्रहणकरके और अर्धरूपसे त्यागकरके स्थित है, अर्थात् इससमयमें मैं न तो संसारको त्यागही सक्ताहूं और न ग्रहणही करसक्ताहूं ॥ ८ ॥

चलिता चलितेनान्तरवष्टम्भेन मे मतिः ॥ दरिद्राछिन्नवृक्षस्य मूलेनेव विडम्ब्यते ॥ ९ ॥ चेतश्चंचलमाभोगि भुवनांतविहारि च ॥ न संभ्रमं जहातीदं स्वविमानमिवाऽमराः ॥ १० ॥ अतोतुच्छमनाया-

समनुपाधिगतभ्रमम् ॥ किं तत्स्थितिपदं साधो यत्र शोको न विद्यते ॥ ११ ॥ सर्वारम्भसमारूढाः सुजना जनकादयः ॥ व्यवहारपरा एव कथमुत्तमतां गताः ॥ १२ ॥

अर्थ—आत्मतत्वके अवलंम्बसे रहित मेरीमति इससमय ऐसे संशयदशामें ग्रस्त है, जैसे शाखारहित वृक्षके ठूंठमें यह संशय हो कि यह ठूंठ है, अथवा चोर है इसीप्रकार बुद्धि यह निश्चय नहींकरसकती कि यह आत्मतत्व है वा नहीं ॥ ९ ॥ कृत्रिमभोगवेषधारीभुवनोंमें विहारकरनेवाला यह चंचलचित्त भ्रमको ऐसें नहींत्यागता जैसे देवता अपने विमानको ॥ १० ॥ हे साधो ! परमार्थमें सत्यरूप, देहादि उपाधिसे शून्य, और भ्रमरहित वह कौनसा स्थितिका पद है, कि जिसके प्राप्तहोनेपर शोक नहींरहता ॥ ११ ॥ मित्र और माता पिता आदि सब दृष्ट और अदृष्ट फलमें तत्परहैं ये सब संसारीही व्यवहारोंमें निमग्न हैं, भला उत्तमताको कैसे प्राप्तहो ॥ १२ ॥

लग्नेनापि किलांगेषु बहुधा बहुमानद ॥ कथं संसारपंकेन पुमानिह न लिप्यते ॥ १३ ॥ कां दृष्टिं समुपाश्रित्य भवन्तो वीतकल्मषाः ॥ महान्तो विचरन्तीह जीवन्मुक्ता महाशयाः ॥ १४ ॥ लोभयन्तो भयायैव विषया भोगभोगिनः ॥ भंगुराकारविभवाः कथमायान्ति भव्यताम् ॥ १५ ॥ मोहमातंगमृदिता कलंककलितान्तरा ॥ परं प्रसादमायाति शेमुषीसरसी कथम् ॥ १६ ॥

अर्थ—हे बहुमानद ! पुण्यपाप और शोकमोहादिरूपसे अंगोंमें लगेहुये संसाररूपी पंकमें पुरुष किसतरह लिप्त नहो ॥ १३ ॥ हे भगवन् ! वह कौनसी दृष्टि है जिसका आश्रयलेकर तथा पापरहितहोकर जिससे आपके सदृश महात्मा जीवन्मुक्तहोकर इससंसारमें विचरतेहैं ॥ १४ ॥ भोगीपुरुषको विषय भयकेहीलिये मोहितकररहे हैं, यह क्षणभंगुरसंसारके ऐश्वर्य भला कैसे कल्याणकारी होसक्तेहैं ॥ १५ ॥ मोहरूपी हस्तीसे गदली कीहुई और कामादिकर्दमोंसे दूषित यह बुद्धिरूपतलाई कैसे निर्मल हो ॥ १६ ॥

संसार एव निवहे जनो व्यवहरन्नपि ॥ न बन्धं कथमाप्नोति पद्मपत्रे पयो यथा ॥ १७ ॥ आत्मवत्तृणवच्चेदं सकलं कलयन् जनः ॥ कथमुत्तमतामेति मनो मन्मथमस्पृशन् ॥ १८ ॥ कं महापुरुषं पारमुपयातं महोदधेः ॥ आचारेणानुसंसृत्य जनो याति न दुःखिताम् ॥ १९ ॥ किं तत्स्यादुचितं श्रेयः किं तत्स्यादुचितं फलम् ॥ वर्तितव्यं च संसारे कथं नामासमंजसे ॥ २० ॥

अर्थ—इस संसाररूपीप्रवाहमें व्यवहार करताहुआ मनुष्य, कमलके पत्रके भीतर जलकेसमान बन्धनको कैसे न प्राप्तहो ॥ १७ ॥ दूसरोंके दुःखोंको अपनेके समान, और अपने दुःखोंको तृणकेसमान समझनेवाला तथा कामादिवृत्तियोंसे पृथक् पुरुष किसप्रकार उत्तमताको प्राप्तहो ॥ १८ ॥ अज्ञानरूपी महासमुद्रके पारंगत, किस जीवन्मुक्त महापुरुषके चरित्रका अनुसरणकरनेसे और उसके कथनको उत्तमरीतिसे आचरणकरनेसे मनुष्य दुःखको नहींप्राप्तहोता ॥ १९ ॥ कौनसा नाशरहित कल्याणकारी मोक्षपदार्थ है. और कर्म उपासनादिका कौनसा अविनाशी फल है? और कैसे इसभयंकरसंसारमें वर्तना उचितहे ॥ २० ॥

तत्त्वं कथय मे किंचिद्येनास्य जगतः प्रभो ॥ वेद्मि पूर्वापरं धातुश्चेष्टितस्यानवस्थितेः ॥ २१ ॥ हृदयाकाशशशिनश्चेतसो मलमार्जनम् ॥ यथा मे जायते ब्रह्मंस्तथा निर्विघ्नमाचर ॥ २२ ॥ किमिह स्यादुपादेयं किं वा हेयमथेतरत् ॥ कथं विश्रान्तिमायातु चेतश्चपलमद्रिवत् ॥ २३ ॥ केन पावनमन्त्रेण दुःसंसृतिविषूचिका ॥ शाम्यतीयमनायासमायासशतकारिणी ॥ २४ ॥

हे प्रभो ! मुझे कुछ तत्वपदार्थका उपदेश कीजिये, जिससे ब्रह्माकी चेष्टारूप इस अव्यवस्थितजगत्के आदि-अंतमें जो शेषवस्तु (आत्मतत्व) रहताहै. उसको मैं जानूं ॥ २१ ॥ हे ब्रह्मन् ! मेरे हृदयाकाशमें चन्द्रमारूपी जो आभाससहित अन्तःकरण हैः उसके अज्ञानका निर्विघ्नतासे जैसे निवारणहो वैसा उपाय कीजिये ॥ २२ ॥ इस संसारमें क्या त्यागनेयोग्य है, और क्या ग्रहणकरनेयोग्य है? और वह कौन पदार्थ है, जो न त्याज्य है, न ग्राह्य है. और इस चंचलचित्तकी पर्वतकेसमान स्थिति कैसेहो ॥ २३ ॥ हे भगवन् ! अनेकप्रकारके खेद उत्पन्नकरनेवाली, यह संसाररूपी महामारी विनापरिश्रम किसपवित्रमन्त्रसे शान्तहो ॥ २४ ॥

कथं शीतलतामन्तरानन्दतरुमंजरीम् ॥ पूर्णचंद्र इवाक्षीणां भृशमासादयाम्यहम् ॥ २५ ॥ प्राप्यांतःपूर्णतां पूर्णो न शोचामि यथा पुनः ॥ सन्तो भवन्तस्तत्त्वज्ञास्तथेहोपदिशन्तु माम् ॥ २६ ॥ अनुत्तमानन्दपदप्रधानविश्रांतिरिक्तं सततं महात्मन् ॥ कदर्थयंतीह भृशं विकल्पाः श्वानो वने देहमिवाल्पजीवम् ॥ २७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे प्रयोजनकथनं नाम त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३० ॥

अर्थ—आनन्दरूपीवृक्षकी लताके सदृश, देशकालके परिच्छेदसे रहित, पूर्णचन्द्रकेसमान अभ्यन्तरकी शीतलताको मैं कैसे प्राप्तकरूं ॥ २५ ॥ जिस पूर्णताको प्राप्तहोके अन्तमें पूर्णस्वरूप मैं पुनः कदापि इससंसारमें शोच न करूं, ऐसा आप तत्वज्ञ महात्मा मुझे उपदेश करें ॥ २६ ॥ सर्वोत्तम आनन्दपदमें निरंतर स्थितिसे शून्य जीवके नानाप्रकारके विकल्प ऐसे अत्यन्त दुर्दशा करतेहैं. जैसे वनमें कुत्ते शरीरकी ॥ २८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे प्रयोजनकथनंनाम त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३१ ॥

इस संसारमें जीवन वर्षाकालके मेघकेसमान है, इसलिये आनन्दपदकी प्राप्तिका उपाय इस ३१ वे सर्गमें पूछागयाहै.

श्रीराम उवाच ॥ ॥ प्रोच्चवृक्षचलत्पत्रलम्बाम्बुलवभंगुरे ॥ आयुषीशानशीतांशुकलामृदुनि देहके ॥ १ ॥ केदारविरटद्भेककण्ठत्वक्कोणभंगुरे ॥ वागुरावलये जन्तोः सुहृत्सुजनसंगमे ॥ २ ॥ वासनावातवलिते कदाशातडिति स्फुटे ॥ मोहोग्रमिहिकामेघे घनं स्फूर्जति गर्जति ॥ ३ ॥ नृत्यत्युत्ताण्डवं चण्डे लोले लोभकलापिनि ॥ सुविकासिनि सास्फोटे ह्यनर्थकुटजद्रुमे ॥ ४ ॥

अर्थ—उच्चवृक्षके चंचलपत्रमें लटकतेहुये जलबिंदुकेसमान क्षणभंगुर तथा शिवजीके मस्तकके भूषण चंद्रकलाकेसमान दुर्लक्ष्य ॥ १ ॥ और धान्यके खेतमें शब्दायमान मेढकके कंठकेसमान नश्वर, इस आयु और शरीरमें तथा सुजन, मित्र और बंधुओंके समागमरूपी जालके सदृश भंगुर वृक्षलताओंके समूहमें स्थिरताके लिये कौनसा उपाय वा गति है ॥ २ ॥ और जबही वासनारूपी पूर्वका वायु व्याप्तहोरहाहै. और दुष्ट आशारूपीविद्युत् अपनी तडकसे भयभीत कररही है. और मोहरूपी उग्रमेघ निरंतर गर्जरहेहैं ॥ ३ ॥ लोभरूपी चंचलमयूर प्रचण्ड ताण्डवनृत्यमें निमग्न हैं. अनर्थरूपी कुटजवृक्षकी कलिका विकसित होकर लहलहा रहीहै ॥ ४ ॥

क्रूरे कृतान्तमार्जारे सर्वभूताखुहारिणी ॥ अश्रान्तस्यन्दसंचारे कुतोऽप्युपरिपातिनि ॥५॥ क उपायो गतिः का वा का चिन्ता कः समाश्रयः ॥ केनेयमशुभोदर्का न भवेज्जीवितावटवी ॥ ६ ॥ नतदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा क्वचित् ॥ सुधियस्तुच्छमप्येतद्यन्नयान्ति न रम्यताम् ॥ ७ ॥ अयं हि दग्धसंसारो नीरंध्रकलनाकुलः ॥ कथं सुस्वादुतामेति नीरसो मूढतां विना ॥ ८ ॥

अर्थ—और सबप्राणीरूपी मूषकोंके भक्षक यमरूपीमार्जारने क्रूरता धारणकररक्खी है. और कभी नीचेसे कभी ऊपरसे निरंतर अनर्थरूप जलके प्रवाह चलरहेहैं ॥ ५ ॥ हे भगवन् ! इस पश्चात् इस वनकी वर्षाकी पीडाके निवृत्यर्थ छत्रछपरादि कौनसा उपायहै? रसगुटिका वा औषधादिके लेपोंमेंसे वृष्टिरहितहोके दूरदेशमें जानेकेलिये क्या गति है? इस संकटसे पारहोनेके लिये, मंत्रदेवतादिमेंसे किसकी चिंता योग्य है? और पर्वतगुफादिरूप कौनसा आश्रयका स्थान है? वह कौनसा उपाय है जिससे उत्तरकालमें अशुभफलदेनेवाला यह जीवनरूपी जंगल न हो ॥ ६ ॥ पृथ्वीपर, अंतरिक्षलोकमें, और देवलोकमें, अथवा अन्यलोकोंमें ऐसी कोईभी वस्तु नहीं है. जिसको तप और ज्ञानशक्तियुक्त आपकेसदृश बुद्धिमान् महात्मालोग रमणीय न करसकें ॥ ७ ॥ यह नष्टसंसार निरंतर दुःखसे व्याप्त है. सो किसप्रकार मूढताको दूरकरके उत्तम स्वादको प्राप्तहो ॥ ८ ॥

आशाप्रतिविपाकेन क्षीरस्नानेन रम्यताम् ॥ उपैति पुष्पशुभ्रेण मधुनेव वसुंधरा ॥ ९ ॥ अपमृष्टमलोदेति क्षालनेनामृतद्युतिः ॥ मनश्चंद्रमसः केन तेन कामकलंकितात् ॥ १० ॥ दृष्टसंसारगतिना दृष्टादृष्टविनाशिना ॥ केनेव व्यवहर्त्तव्यं संसारवनवीथिषु ॥ ११ ॥ रागद्वेषमहारोगा भोगपूगा विभूतयः ॥ कथं जन्तुं न बाधन्ते संसारार्णवचारिणम् ॥ १२ ॥

अर्थ—जैसे वसन्तके उत्तम श्वेतादिवर्णके पुष्पोंसे यह पृथ्वी शोभितहोती है. ऐसेही किसउपायसे संपूर्णदुःखोंकी मूलभूत आशाके विरुद्ध पूर्णकामनारूपीदुग्धसे स्नान करनेसे यह संसार रमणीय होजाताहै ॥ ९ ॥ कामरूपी कलङ्कसे दूषित मनरूपी चन्द्रमासे, किस विद्वान्के अनुभवरूपी प्रक्षालनसे मलिनता रहित, अमृतकेसदृश शोभाय-

मान आनन्द देनेवाली चन्द्रिका खिलतीहै ॥ १० ॥ इस संसाररूपीवनके हाटमें संसारके अनर्थरूपपरिणामको देखनेवाले और इसलोक तथा परलोकके भोगसे विरक्त किसमहापुरुषकीतरह हमको व्यवहार करनाचाहिये ॥ ११ ॥ राग, द्वेप, भोगोंके समूह और विभूतिरूपमहारोग संसाररूपीसमुद्रमें चलनेवाले किस जन्तुको बाधा नहींकरते ॥ १२॥

कथं च धीरवर्याग्नौ पततापि न दह्यते ॥ पावके पारदेनेव रसेन रसशालिना ॥ १३ ॥ यस्मात्किल-जगत्यस्मिन्व्यवहारक्रियां विना ॥ न स्थितिः संभवत्यब्धौ पतितस्याजला यथा ॥ १४ ॥ रागद्वे-षविनिर्मुक्ता सुखदुःखविवर्जिता ॥ कृशानोर्दाहहीनेव शिखा नास्तीह सत्क्रिया ॥ १५ ॥ मनोमन-नशालिन्याः सत्ताया भुवनत्रये ॥ क्षयो युक्तिं विना नास्ति ब्रूत तामलमुत्तमाम् ॥ १६ ॥

अर्थ—हे महामते! जैसे रससे शोभायमान पारा अग्निमें गिरनेसे नहींजलता, ऐसेही वह कौन उपाय है जिससे संसाररूपीअग्निमें गिराहुआभी मनुष्य न जले ॥ १३ ॥ जैसे समुद्रमें रहनेवाले मत्स्य आदि जीवोंकी निर्जलस्थानमें स्थिति नहींहोसक्ती इसीप्रकार संसारमें रहनेवाले प्राणीकी कर्मोंके उपार्जनविना स्थिति नहींहोसक्ती ॥ १४ ॥ जैसे अग्निकी ज्वाला दाहहीन नहींहोती इसीप्रकार रागद्वेपरहित और सुखदुःखसेवर्जित संसारमें कोईभी सत्क्रिया नहीं है ॥ १५ ॥ विपयवासनासहित मनकी सत्ताका नाश, सद्युक्तिकेविना तीनोंलोकमें नहींहोसक्ता, इसलिये उसीयुक्तिका उत्तमतासे उपदेश कीजिये ॥ १६ ॥

व्यवहारवतो युक्त्या दुःखं नायाति मे यथा ॥ अथवा व्यवहारस्य ब्रूत तां युक्तिमुत्तमाम् ॥ १७ ॥ तत्कथं केन वा किं वा कृतमुत्तमचेतसा ॥ पूर्वं येनेति विश्रामं परमं पावनं मनः ॥१८॥ यथा जाना-सि भगवँस्तथा मोहनिवृत्तये ॥ ब्रूहि मे साधवो येन नूनं निर्दुःखतां गताः ॥ १९॥ अथवा तादृशी युक्तिर्यदि ब्रह्मन्न विद्यते ॥ न वक्ति मम वा कश्चिद्विद्यमानामपि स्फुटम् ॥ २० ॥

अर्थ—जिसयुक्तिसे व्यवहार करनेसे मुझे दुःख न हो, अथवा व्यवहार न करनेकी जो उत्तम युक्ति हो सो कहिये ॥ १७ ॥ किसउत्तमपुरुषने और किसयुक्तिसे अज्ञानका निवारण प्रथम किया, और किसतत्वपदार्थकी प्राप्तिसे चित्तको विश्राम मिलताहै, और यह मन परमपावन होजाताहै ॥ १८ ॥ हे भगवन्! मोह निवृत्तहोनेकेलिये उस युक्तिको जैसे आप जानतेहो सो कहो जिससे साधुजन निस्संदेह दुःखसे रहितहोगयेहों ॥ १९ ॥ अथवा हे ब्रह्मन् वैसी कोई युक्ति नहीं है, अथवा है भी तो प्रत्यक्ष मुझसे कोई नहीं कहसक्ता ॥ २० ॥

स्वयं चैव न चाप्नोमि तां विश्रांतिमनुत्तमाम् ॥ तदहं त्यक्तसर्वेहो निरहंकारतां गतः ॥ २१ ॥ न भोक्ष्ये न पिबाम्यंबु नाहं परिदधेऽम्बरम् ॥ करोमि नाहं व्यापारं स्नानदानाशनादिकम् ॥ २२ ॥ न च तिष्ठामि कार्येषु संपत्स्वापद्दशासु च ॥ न किंचिदपि वाञ्छामि देहत्यागादृते मुने ॥ २३ ॥ केवलं वि-गताशंको निर्ममो गतमत्सरः ॥ मौन एवेह तिष्ठामि लिपिकर्मस्विवार्पितः ॥ २४ ॥

अर्थ—अथवा उस अनुत्तमविश्रांतिको मैं यदि स्वयं नहींप्राप्तकरसक्ता, तो मैं सबचेष्टाओंको त्यागकर और अहंकाररहित होकर ॥ २१ ॥ न तो भोजन करूंगा, न जल पिऊंगा, न वस्त्र धारणकरूंगा, और न स्नान, दान, और न शयनादि कोई व्यापार करूंगा ॥ २२ ॥ न किसीकार्य्यमें, न संपत्तियोंमें, न विपत्तियोंमें और न किसीअवस्थामें स्थिरहोताहूं हे मुने! मैं शरीरत्यागकेसिवाय और कुछ नहींचाहता, अर्थात् शरीरत्यागकेलिये अनशन व्रत करूंगा ॥ २३ ॥ शोक, ममता, और मत्सरसे रहितहोके, सब वाणीआदिके व्यापारसे शून्य, केवल मौन होके भित्तिमें चित्रकेसमान अर्पित होजाऊंगा ॥ २४ ॥

अथ क्रमेण संत्यज्य प्रश्वासोच्छ्वाससंविदः ॥ संनिवेशं त्यजामीममनर्थं देहनामकम् ॥ २५ ॥ नाह-मस्य न मे नान्यः शाम्याम्यस्नेहदीपवत् ॥ सर्वमेव परित्यज्य त्यजामीदं कलेवरम् ॥ २६ ॥ श्रीवाल्मी-किरुवाच ॥ ॥ इत्युक्तवानमलशीतकराभिरामो रामो महत्तरविचारविकासिचेताः ॥ तूष्णींबभूव पुरतो महतां घनानां केकारवं श्रमवशादिव नीलकंठः ॥ २७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे राघवप्रश्नोनामैकत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३१ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर क्रमसे श्वासका गमन, और आगमन, और चेतनाको त्यागकर अवयवोंका संस्थान-रूप, सबअनर्थोंका मूल इस शरीरकोही छोड़दूंगा ॥ २५ ॥ न मैं इससंसारका हुं, और न यह संसार मेरा है, तथा न मैं दुसरेकाहुं, और न दूसरा मेरा है, मैं तैलरहित दीपककेसमान शान्तहोजाऊंगा, यह सब त्यागके इसशरीरकोभी

त्यागदूंगा ॥ २६ ॥ महान् विचारशील और उदारचित्त, निर्म्मल और शीतलकिरणसंयुक्त चन्द्रमाकेसमान अति-रमणीय (अतिसुन्दर) श्रीरामचन्द्रजी इतना कहके जैसे मयूर केकावाणी बोलके श्रमकेकारणसे मेघोंकेसन्मुख चुप होजाताहै, ऐसेही महात्मा गुरु वसिष्ठादिके सन्मुख मौन होगये ॥ २७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे राघवप्रश्नोनामैकत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥

श्रीरामचन्द्रकी वाणी सुननेवाले देवता और मनुष्योंका महान् विस्मय, और आकाशसे पुष्पवृष्टिका वर्णन इस ३२ वे सर्गमें कियागयाहै.

श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ ॥ वदत्येवं मनोमोहविनिवृत्तिकरं वचः ॥ रामे राजीवपत्राक्षे तस्मिन् राजकुमारके ॥ १ ॥ सर्वे बभूवुस्तत्रस्था विस्मयोत्फुल्ललोचनाः ॥ भिन्नांबरा देहरुहैर्गिरः श्रोतुमिवोद्धुरैः ॥ २ ॥ विरागवासनापास्तसमस्तभववासनाः ॥ मुहूर्तममृतांभोधिवीचीविलुलिता इव ॥ ३ ॥ ता गिरो रामभद्रस्य तस्य चित्रार्पितैरिव ॥ संश्रुताः शृणुकैरंतरानंदपदपीवरैः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवाल्मीकिजी बोले—कमलकेसमान नेत्रवाले राजकुमार रामचन्द्रजीके, मनके मोहको नाशकरनेवाले वचनके कहनेपर, ॥ १ ॥ उस सभामें जितनेथे सब विस्मयसे विकसितनेत्र होगये, मानो श्रीरामचन्द्रकी वाणी सुननेको उत्कण्ठित और खडेरोमोंसे सबके वस्त्र छिदे गये, अर्थात् आश्चर्य्यदायक वाणीको सुनके सबके रोम कण्टककेसमान खडेहोगये ॥ २ ॥ वैराग्यकी वासनासे संसारीवासना सबोंकी नष्टहोगई, और सबके सब एकमुहूर्त्तके लिये मानो अमृतके समुद्रके तरंगमें लहर लेरहेहैं ॥ ३ ॥ कल्याणकारी रामचन्द्रजीके उन वचनोंको आनन्दसे प्रफुल्ल चित्रार्पितकेसमान होके बडे आदरकेसाथ सबने सुना ॥ ४ ॥

वसिष्ठविश्वामित्राद्यैर्मुनिभिः संसदि स्थितैः ॥ जयंतधृष्टिप्रमुखैर्मंत्रिभिर्मंत्रकोविदैः ॥ ५ ॥ नृपैर्दशरथप्रख्यैः पौरैः पारशवादिभिः ॥ सामंतै राजपुत्रैश्च ब्राह्मणैर्ब्रह्मवादिभिः ॥ ६ ॥ तथा भृत्यैरमात्यैश्च पंजरस्थैश्च पक्षिभिः ॥ क्रीडामृगैर्गतस्पंदैस्तुरंगैस्त्यक्तचर्वणैः ॥ ७ ॥ कौसल्याप्रमुखैश्चैव निजवातायनस्थितैः ॥ संशांतभूषणारावैरस्पंदैर्वनितागणैः ॥ ८ ॥

अर्थ—उससभामें स्थित वसिष्ठविश्वामित्रादिऋषियोंनें, मंत्रमें निपुण, जयन्त और धृष्टि आदि मंत्रियोंने ॥ ५ ॥ दशरथादि राजाओंने, नगरनिवासियोंने, परशु (पादल) देशके राजाओंने करदेनेवाले छोटे २ राजाओंने, राजपुत्रोंने, ब्रह्मवादियोंने, ॥ ६ ॥ उसीप्रकार भृत्योंने, पंजरस्थ पक्षियोंने, क्रियारहितहोके क्रीडामृगोंने, भोजनको छोडके तुरंगोंनें ॥ ७ ॥ अपने २ झरोखेमें बैठकर कौसल्यादिरानियोंने भूषणके शब्दोंको बंदकरके वनितागणोंने॥८॥

उद्यानवल्लीनिलयैर्विटंकनिलयैरपि ॥ अक्षुब्धपक्षततिभिर्विहंगैर्विरतारवैः ॥ ९ ॥ सिद्धैर्नभश्चरैश्चैव तथा गंधर्वकिन्नरैः ॥ नारदव्यासपुलहप्रमुखैर्मुनिपुंगवैः ॥ १० ॥ अन्यैश्च देवदेवेशविद्याधरमहोरगैः ॥ रामस्य ता विचित्रार्था महोदारा गिरः श्रुताः ॥ ११ ॥ अथ तूष्णीं स्थितवति रामे राजीवलोचने ॥ तस्मिन् रघुकुलाकाशशशांके शशिसुंदरे ॥ १२ ॥

अर्थ—वाटिकामें रहनेवाले और आटारियोंकेऊपर रहनेवाले कपोतों (कबूतरों) ने परके और मुखके शब्दोंको बन्दकरके पक्षियोंके समूहोंने, ॥ ९ ॥ सिद्धोंने आकाशमें विचरनेवाले गन्धर्व और किन्नरोंने तथा नारद, व्यास, और पुलह आदि श्रेष्ठमुनियोंने ॥ १० ॥ तथा अन्यदेवताओंके स्वामी इन्द्रादिकोंने, विद्याधर और महोरगोंने, रामचन्द्रजीके विचित्रअर्थोंसे संयुक्त और बडे उदारवचनोंको बडे आदरकेसाथ सुना ॥ ११ ॥ इसके अनन्तर, रघुकुलरूपीआकाशके पूर्णचन्द्रमाकेसमान सुन्दर कमलकेसदृश नेत्रवाले श्रीरामचन्द्रजीके मौन होनेपर ॥ १२ ॥

साधुवादगिरा सार्धं सिद्धसार्थसमीरिता ॥ वितानकसमा व्योम्नः पौष्पी वृष्टिः पपात ह ॥ १३ ॥ मंदारकोशविश्रांतभ्रमरद्वंद्वनादिनी ॥ मधुरामोदसौंदर्यमुदितोन्मदमानवा ॥ १४ ॥ व्योमवातविनुन्नेव ताराणकां परंपरा ॥ पतितेव धरापीठे स्वर्गस्त्रीहसितच्छटा ॥ १५ ॥ वृष्यमूकाकचन्मेघलवावलिरिव च्युता ॥ हैयंगवीनपिंडानामीरितेव परंपरा ॥ १६ ॥

अर्थ—सिद्ध गन्धर्वादि मुमुक्षु देवताओंने साधुवाद, धन्यवादकेसाथ आकाशसे पुष्पवृष्टि करी और वह वृष्टि मन्दारपुष्पोंके कोशोंमें विश्रामकरनेवाले भ्रमरोंके जोडोंसे शब्दायमान उत्तमसुगंधसे मनुष्योंको सन्तुष्ट और विवश करनेवालीथी ॥ १४ ॥ आकाशके वायुसे गिराईहुई तारागणोंकी पंक्तिकेसमान पृथ्वीपर गिरीहुई स्वर्गकी स्त्रियोंके हास्यकी शोभाकेसदृश थी ॥१५॥ विद्युत्से शोभायमान आकाशसे गिरेहुये मेघोंके खण्डोंके समूहकेसदृश और फेंकेहुये नवनीत (मखन) के पिण्डोंकेसमान थी ॥ १६ ॥

हिमवृष्टिरिवोदारा मुक्ताहारचयोपमा ॥ ऐन्दवी रश्मिमालेव क्षीरोर्मीणामिवाततिः ॥ १७ ॥ किंजल्कांभोजवलिता भ्रमद्भृंगकदंबका ॥ सीत्कारगायदामोदिमधुरानिललोलिता ॥ १८ ॥ प्रभ्रमत्केतकीव्यूहा प्रस्फुरत्कैरवोत्करा ॥ प्रपतत्कुन्दवलया चलत्कुवलयालया ॥ १९॥ आपूरितांगणरसा गृहाच्छादनचत्वरा ॥ उद्ग्रीवपुरवास्तव्यनरनारीविलोकिता ॥ २० ॥

अर्थ—बडी भारी हिमवृष्टिकेतुल्य मोतियोंके हारोंके समूहकेसमान चन्द्रमाकी किरणोंकी मालाकेसदृश क्षीरसमुद्रकी तरंगोंकी श्रेणीके तुल्य थी ॥ १७ ॥ केसरसहित कमलोंसे शोभित गुंजनेवाले भ्रमरसमूहसहित सीत्कारशब्दोंसे मधुरगानेवाले वायुसे किंचित् कम्पित होरहीथी ॥ १८ ॥ भ्रमणशील केतकीके समूहसहित और विकसित कुमुदिनियोंके समूह तथा गिरतेहुये कुन्दोंके समूहसहित और चंचलकमलोंसे पूर्ण थी ॥ १९ ॥ अंगण (आंगन) गृह और अँटारियोंको आच्छादन (ढांकने) करनेवाली उस वृष्टिको पुरवासी नरनारियां कण्ठ उठा२के देखरहींथी ॥ २० ॥

निरभ्रोत्पलसंकाशव्योमवृष्टिरनाकुला ॥ अदृष्टपूर्वा सर्वस्य जनस्य जनितस्मया ॥ १ ॥ अदृश्यांबरसिद्धौघकरोत्करसमीरिता ॥ सा मुहूर्त्तचतुर्भागं पुष्पवृष्टिः पपात ह ॥ २२ ॥ आपूरितसभालोके शांते कुसुमवर्षणे ॥ इमं सिद्धगणालापं शुश्रुवुस्ते समागताः ॥ २३ ॥ आकल्पं सिद्धसेनासु भ्रमद्भिरमितो दिवम् ॥ अपूर्वमिदमस्माभिः श्रुतं श्रुतिरसायनम् ॥ २४ ॥

अर्थ—खिलेहुये कमलकेतु और निर्मलआकाशसें गिरीहुई उस वृष्टिको किसीने अबतक नहीं देखाथा इसलिये सब प्राणियोंको विस्मयजनक हुई ॥ २१ ॥ वह वृष्टि आकाशमें अदृश्य सिद्धोंके समूहोंसे प्रेरित आधीघडीतक होतीरही ॥ २२ ॥ भरीहुई सभा तथा पुष्पवृष्टिके शान्तहोनेपर सभासदोंने सिद्धगणोंका यह वचन सुना ॥ २३ ॥ कल्पपर्य्यन्त सिद्धोंकी सेनाओंमें संपूर्णलोकमें हमलोग भ्रमण करते हैं परन्तु वेदोंका सार और कर्णोंको अमृतकेसमान मधुर यह अपूर्ववचन आजही सुनाहै ॥ २४ ॥

यदनेन किलोदारमुक्तं रघुकुलेंदुना ॥ वीतरागतया तद्धि वाक्पतेरप्यगोचरम् ॥ २५ ॥ अहो बत महत्पुण्यमद्यास्माभिरिदं श्रुतम् ॥ वचो राममुखोद्भूतं महाल्हादकरं धियः ॥ २६ ॥ उपशमामृतसुंदरमादरादधिगतोत्तमतापदमेप यत् ॥ कथितवानुचितं रघुनंदनः सपदि तेन वयं प्रतिबोधिताः ॥२७॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे नभश्चरसाधुवादोनाम द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥

अर्थ—रविकुलके चन्द्र श्रीरामचन्द्रजीने वीतराग होकर जो वचन कहा वह बृहस्पतिकोभी दुर्लभ है ॥ २५ ॥ अहो श्रीरामचन्द्रजीके मुखारविन्दसे निःसृत बुद्धिको आनन्ददायक यह महापवित्र वचन हमलोगोंनें आजही श्रवण कियाहै जिन्होंने ऐसे वचन नहीं श्रवणकिये उनका जन्म व्यर्थ है ॥ २६ ॥ शान्तिदायक अमृतकेसदृश अतिरमणीय ज्ञातिकुल चरित्र और धर्म्मादिज्ञानसे प्राप्त उत्तमताको सफलकारक और अनेकक्लेशोंसे रक्षाकरनेवाला यह श्रीरामचन्द्रजीका उचित कथन है उसको श्रवणकरके हमको शीघ्रही ज्ञान होगया अर्थात् इसके सुननेसे स्वर्गादिसुखभी हमको तुच्छ दीखनेलगे ॥ २७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे नभश्चरसाधुवादोनाम द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३३ ॥

इस ३३ वे सर्गमें सिद्धोंका उस सभामें उतरना और उनका योग्यवचनोंसे रामचन्द्रजीकी प्रशंसा करना इसविषयका वर्णन कियागयाहै.

सिद्धा ऊचुः ॥ ॥ पावनस्यास्य वचसः प्रोक्तस्य रघुकेतुना ॥ निर्णयं श्रोतुमुचितं वक्ष्यमाणं मह-

र्षिभिः ॥ १ ॥ नारदव्यासपुलहप्रमुखा मुनिपुंगवाः ॥ आगच्छताश्वविघ्नेन सर्व एव महर्षयः ॥ २ ॥ पतामः परितः पुण्यामेतां दाशरथीं सभाम् ॥ नीरंध्रां कनकोद्योतां पद्मिनीमिव षट्पदाः ॥ ३ ॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ ॥ इत्युक्ता सा समस्तैव व्योमावासनिवासिनी ॥ तां पपात सभां तत्र दिव्या मुनिपरंपरा ॥ ४ ॥

अर्थ—सिद्ध बोले-रघुकुलकेतुश्रीरामचन्द्रजीके इस परमपवित्रवचनका निर्णय (उत्तररूप) जो महर्षी भला कहैंगे उसको श्रवण करना सबको उचितहै ॥ १ ॥ हे नारद ! व्यास और पुलहआदि श्रेष्ठमुनिगण तथा अन्य महर्षी निर्विघ्नतापूर्वक शीघ्र इस वचनको सुननेकेलिये पधारो ॥ २ ॥ सम्पत्तिसे पूर्ण सुवर्णकेसमान प्रकाशमान चारोंओरसे पवित्र इस दशरथकी सभामें हम लोगोंको चलनाचाहिये जैसे कमलिनीपर भ्रमर जाताहै ॥ ३ ॥ श्रीवाल्मीकिजी बोले-सिद्धोंके ऐसा कहनेपर आकाशनिवासिनी दिव्यमुनियोंकी माला उस विशालसभामें जहां रामचंद्रादि थे शीघ्रही आके उतरी ॥ ४ ॥

अग्रस्थितमनुत्स्रष्टरणद्वीणं मुनीश्वरम् ॥ पयःपीनघनश्यामं व्यासमेव किलांतरा ॥ ५ ॥ भृग्वंगिरःपुलस्त्यादिमुनिनायकमंडिता ॥ च्यवनोद्दालकोशीरशरलोमादिमालिता ॥ ६ ॥ परस्परपरामर्शक्षुः-संस्थानमृगाजिना ॥ लोलाक्षमालावलया सुकमंडलुधारिणी ॥ ७ ॥ तारावलिरिव व्योम्नि तेजःप्रसरपाटला ॥ सूर्यावलिरिवान्योऽन्यं भासिताननमंडना ॥ ८ ॥

अर्थ—वीणा बजातेहुये मुनीश्वरनारदजी उसके अग्रभागमें थे जलसे पूर्ण कमण्डलु धारणकियेहुये श्यामवर्ण श्रीव्यासभगवान् मध्यमें थे ॥ ५ ॥ और भृगु, अंगिरा, और पुलस्त्य आदि मुनिनायकोंसे शोभित, च्यवन, उद्दालक, उशीर, और शरलोमा, आदि ऋषियोंसे भूषित वह मुनियोंकी माला थी ॥ ६ ॥ उस मुनिमंडलीमे आपसमें एकदूसरेकी रगडसे मृगछालाओंके रोम ऊंचे नीचे होगयेथे चंचल रुद्राक्षकी माला और उत्तम कमण्डलु धारणकियेहुये ॥ ॥ ७ ॥ और आकाशमें तारागणोंकी पंक्तिकेसमान, अधिकतेजके प्रसारसे श्वेतवर्ण, तथा सूर्य्योंकी पंक्तिकेसदृश एक दूसरेकी मुखकी शोभाको बढानेवाली थी ॥ ८ ॥

रत्नावलिरिवान्योऽन्यं नानावर्णकृतांगिका ॥ मुक्तावलिरिवान्योऽन्यं कृतशोभातिशायिनी ॥ ९ ॥ कौमुदीवृष्टिरन्येव द्वितीयेवार्कमंडली ॥ संभृतेवातिकालेन पूर्णचंद्रपरंपरा ॥ १० ॥ ताराजालइवांभोदो व्यासो यत्र विराजते ॥ तारौघ इव शीतांशुर्नारदोऽत्र विराजते ॥ ११ ॥ देवेष्विव सुराधीशः पुलस्त्योऽत्र विराजते ॥ आदित्य इव देवानामंगिरास्तु विराजते ॥ ४ ॥

अर्थ—अनेकप्रकारके रत्नोंकी पंक्तिकेसमान आपसके अंगोंको नानाप्रकारके वर्णसहित करनेवाली, और मोतियोंकेसमान एकदूसरेकी शोभा बढानेवाली थी ॥ ९ ॥ चन्द्रिकाकी वृष्टिकेसदृश विलक्षण सूर्य्यमंडलीकेतुल्य अधिककालसे एकत्र कीहुई पूर्णचन्द्रमाओंकी पंक्तिकेसमान, मुनियोंकी मंडली आके प्राप्तहुई ॥ १० ॥ उसमें एक ओर ताराओंके समूहमें मेघकेसमान श्यामवर्ण व्यास भगवान् शोभित होरहे हैं, और अन्यस्थानमें ताराओंके समूहमें चन्द्रमाकेसमान श्रीनारदजी विराजमान हैं ॥ ११ ॥ देवताओंके मध्यमें इन्द्रकेसमान इस सेनामें श्रीपुलस्त्यऋषिजी विराजमान हैं, देवताओंमें सूर्यकेसमान अंगिरामहर्षिजी वहांपर शोभित हैं ॥ १२ ॥

अथास्यां सिद्धसेनायां पतंत्यां नभसो रसाम् ॥ उत्तस्थौ मुनिसंपूर्णा तदा दाशरथी सभा ॥ १३ ॥ मिश्रीभूता विरेजुस्ते नभश्चरमहीचराः ॥ परस्परावृतांगाभा भासयन्तो दिशो दश ॥ १४ ॥ वेणुदंडावृतकरा लीलाकमलधारिणः ॥ दूर्वांकुराक्रांतशिखाः सचूडामणिमूर्द्धजाः ॥ १५ ॥ जटाजूटैश्च कपिला मौलिमालितमस्तकाः ॥ प्रकोष्ठगाक्षवलया मल्लिकावलयान्विताः ॥ १६ ॥

अर्थ— इसके अनन्तर जब सिद्धोंकी सेना पृथ्वीपर चलनेलगी, तब दशरथजीकी सम्पूर्णसभा उठके खडी होगई ॥ १३ ॥ एकस्थानमें एकत्रितहोके परस्पर मिलित अंगोंकी शोभावाले वे पृथ्वी और आकाशनिवासी, दशोंदिशाओंको प्रकाशित करतेहुये अत्यन्त शोभितहुये ॥ १४ ॥ कोई हाथोंमें बाँसकी छडी लिये हैं, कोई लीलाकमल धारण किये हैं, किसीके शिखामें दूर्वाके अंकुर हैं, किसीके केशोंमें चूडामणि गूँथे हैं ॥ १५ ॥ कोई जटाजूटसे कपिल (धूम्र) वर्णके होरहे हैं. किसीके मस्तक मालाओंसे भूषित हैं, किसीने अपनी २ कलाईयोंमें रुद्राक्षकी माला और किसी २ ने पुष्पोंकी मालायें धारणकर रक्खी हैं ॥ १६ ॥

चीरवल्कलसंवीताः स्रक्कौशेयावगुंठिताः ॥ विलोलमेखलापाशाश्चलन्मुक्ताकलापिनः ॥ १७ ॥ वसिष्ठविश्वामित्रौ तान् पूजयामासतुः क्रमात् ॥ अर्घ्यैः पाद्यैर्वचोभिश्च सर्वानेव नभश्चरान् ॥ १८ ॥ वसि-

ष्ठविश्वामित्रौ ते पूजयामासुरादरात् ॥ अर्घ्यैः पाद्यैर्वचोभिश्च नभश्चरमहागणाः ॥ १९ ॥ सर्वादरेण सिद्धौघं पूजयामास भूपतिः ॥ सिद्धौघो भूपतिं चैव कुशलप्रश्नवार्त्तया ॥ २० ॥

अर्थ—किसीने अपने शरीरको चीरवल्कलसे आच्छादित कियाहै, किसीने माला और पीताम्बरसे किसी २ के कटिमें मुंजकी मेखला पडी है, और कोई मोतियोंसे भूषितहै ॥ १७ ॥ उन सब नभश्चारियोंकी वसिष्ठजी और विश्वामित्रजीने अर्घ्य, पाद्य, और उत्तम वचनोंसे क्रमसे पूजाकी ॥ १८ ॥ तथा उन सब नभश्चारी सिद्ध आदि महात्मागणोंनेभी वसिष्ठ और विश्वामित्रजीकी अर्घ्य, पाद्य, और वचनोंसे बडे आदरसे पूजाकी ॥ १९ ॥ उस सम्पूर्ण सिद्धादिके समूहकी राजाने बडे आदरसे पूजाकी, और सिद्धसमूहनें कुशलप्रश्नकी वार्तासे राजाकी पूजाकी ॥ २० ॥

तैस्तैः प्रणयसंरंभैरन्योऽन्यं प्राप्तसत्क्रियाः॥ उपाविशन्विष्टरेषु नभश्चरमहीचराः ॥२१॥ वचोभिः पुष्पवर्षेण साधुवादेन चाभितः॥ रामं ते पूजयामासुः पुरःप्रणतमास्थितम् ॥ २२॥ आसांचक्रे च तत्रासौ राज्यलक्ष्मीविराजितः ॥ विश्वामित्रो वसिष्ठश्च वामदेवोऽथ मंत्रिणः ॥ २३ ॥ नारदो देवपुत्रश्च व्यासश्च मुनिपुंगवः ॥ मरीचिरथ दुर्वासा मुनिरांगिरसस्तथा ॥ २४ ॥

अर्थ—इसप्रकारके प्रीति और दानमानादि सामग्रियोंसे आपसमें एकदूसरेसे सत्कृत वे आकाश और पृथ्वीके विहारी महात्मा अपने २ योग्य आसनोंपर बैठगये ॥ २१ ॥ योग्यवार्तालापसे पुष्पवृष्टिसे, और प्रशंसासे चारोंओरसे उनसभोंने, नम्रतासे सम्मुखस्थित श्रीरामचन्द्रजीकी पूजाकी ॥ २२ ॥ उनके मध्यमें राज्यलक्ष्मीसे शोभित श्रीरामचन्द्रजी विराजे, तथा विश्वामित्रजी, वसिष्ठजी, वामदेवजी, और सब मंत्रीगण ॥ २३ ॥ देवपुत्र नारदजी, मुनिश्रेष्ठ व्यासजी, मरीचि, दुर्वासा, तथा अंगिराजी ॥ २४ ॥

क्रतुः पुलस्त्यः पुलहः शरलोमा मुनीश्वरः ॥ वात्स्यायनो भरद्वाजो वाल्मीकिर्मुनिपुंगवः ॥ २५ ॥ उद्दालको ऋचीकश्च शर्यातिश्च्यवनस्तथा ॥ २६ ॥ एते चान्ये च बहवो वेदवेदांगपारगाः ॥ ज्ञातज्ञेया महात्मान आस्थितास्तत्र नायकाः॥ २७ ॥ वसिष्ठविश्वामित्राभ्यां सह ते नारदादयः ॥ इदमूचुरनूचाना राममानमिताननम् ॥ २८ ॥

अर्थ—क्रतु, पुलस्त्य, पुलह, और मुनीश्वर शरलोमाजी, वात्स्यायन, भरद्वाज, और मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकिजी, ॥ २५ ॥ उद्दालक, ऋचीक, शर्य्याति और च्यवनजी ॥ २६ ॥ ये तथा औरभी वेदवेदांगपारंगत, ब्रह्मज्ञानी मुख्य२ महात्मागण वहांपर विराजे ॥ २७ ॥ आचार्य्यसे विधिपूर्वक अंगसहित चारों वेदोंके पढनेवाले, वसिष्ठ और विश्वामित्रजीसहित नारद आदि महर्षियोंने श्रीरामचन्द्रजीके विषयमें जो नम्रतासे मस्तक झुकाये हुयेथे यह वचन कहा ॥२८॥

अहो बत कुमारेण कल्याणगुणशालिनी ॥ वागुक्ता परमोदारा वैराग्यरसगर्भिणी ॥ २९ ॥ परिनिष्ठितवक्तव्यं सबोधमुचितं स्फुटम् ॥ उदारं प्रियमार्यार्हमविह्वलमपि स्फुटम् ॥ ३० ॥ अभिव्यक्तपदं स्पष्टमिष्टं स्पष्टं च तुष्टिमत् ॥ ॥ करोति राघवप्रोक्तं वचः कस्य न विस्मयम् ॥ ३१ ॥ शतादेकतमस्यैव सर्वोदारचमत्कृतिः ॥ ईप्सितार्थार्पणैकांतदक्षा भवति भारती ॥ ३२ ॥

अर्थ—बडे आश्चर्यकी बातहै कि अनेकगुणोंसे शोभित वैराग्यरससहित परम उदार वाणी, कुमार श्रीरामचन्द्रजीने कही ॥ २९ ॥ ऐसा वचन जिसके वक्तव्य अर्थ सिद्धान्तरूपहैं, जो पदार्थ, तत्वबोधसहित है, अर्थात् जो केवल कल्पनामात्रही नहीं है और पण्डितोंकी सभाके योग्य है, जिसके अक्षर स्वच्छ हैं, उत्तम और आशयसे पूर्ण, हृदयको आनन्ददायक, पूज्य श्रेष्ठपुरुषोंके उचित चित्तकी चंचलतादोपसे शून्य, स्वच्छयुक्त अर्थ है ॥ ३० ॥ जिसके पद व्याकरणकीरीतिसे शुद्ध हैं जिसका अर्थ बाधित नहीं है हितकारक ग्रस्त कुछ अक्षर बोलनेमें छोड और विलम्बितादिदोषोंसे वर्जित, और सन्तोषदायक ऐसा रामचन्द्रजीका वचन किसको विस्मयकारक नहीं है ॥ ३१ ॥ सर्वअंशोंमें हृदयको आनन्ददायक चमत्कारमें निमग्नकरनेवाली, इष्टअर्थोंके देनेमें सर्वदा शीघ्रस्मरण करानेवाली सरस्वती सैकडों वक्ताओंमेंसे किसीएककीही होती है ॥ ३२ ॥

कुमार त्वां विना कस्य विवेकफलशालिनी ॥ परं विकासमायाति प्रज्ञाशरलता तता ॥ ३३ ॥ प्रज्ञा दीपशीखा यस्य रामस्येव हृदि स्थिता ॥ प्रज्वलत्यसमालोककारिणी स पुमान् स्मृतः ॥ ३४ ॥ रक्तमांसास्थियंत्राणि बहून्यतितराणि च ॥ पदार्थानभिकर्षंति नास्ति तेषु सचेतनः॥ ३५ ॥ जन्ममृत्युजरादुःखमनुयांति पुनः पुनः ॥ विमृशंति न संसारं पशवः परिमोहिताः ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे कुमार ! विवेकरूपीफलसे शोभायमान, यह बुद्धिरूप शरकी लता, आपको छोडके और किसीपुरुषकी

(१) सूक्ष्म पदार्थकोभी भेदन करनेसे बुद्धिको शरकी लतारूपसे वर्णन कियाहै.

विचार और वैराग्यरूपी पुष्प और पल्लवसे वृद्धिको प्राप्त नहींहोसक्ती है ॥ ३३ ॥ श्रीरामचन्द्रकेसमान, असाधारण प्रकाश करनेवाली, बुद्धिरूपदीपककी शिखा जिसके हृदयमें है वही पुरुष है ॥ ३४ ॥ रक्त, मांस, और हड्डीरूप शरीरमेंही आत्मबुद्धिवाले जो शब्द, स्पर्श, रूप, आदि पदार्थोंके भोगनेमें जीवनको बिताते हैं, और आत्मज्ञानार्थ कुछ भी पुरुषार्थ नहींकरते वे जडकेही समानहैं ॥ ३५ ॥ जो इस संसारमें मनुष्यजन्म पाके आत्मतत्त्वका विचार नहीं करते, वे अज्ञानमें मोहित केवल पशुहैं, और वे बार २ जन्म और मृत्युके दुःखमें फंसते हैं ॥ ३६ ॥

कथंचित्क्वचिदेवैको दृश्यते विमलाशयः ॥ पूर्वापरविचारार्हो यथायमरिमर्दनः ॥ ३७ ॥ अनुत्तमचमत्कारफलाः सुभगमूर्त्तयः ॥ भव्या हि विरला लोके सहकारद्रुमा इव ॥ ३८ ॥ सम्यग्दृष्टजगद्यात्रास्वविवेकचमत्कृतिः ॥ अस्मिन्मान्यमतावंतरियमद्यैव दृश्यते ॥ ३९ ॥ सुभगाः सुलभारोहाः फलपल्लवशालिनः ॥ जायंते तरवो देशे न तु चंदनपादपाः ॥ ४० ॥

अर्थ—जैसे कामादिशत्रुओंको मर्दनकरनेवाले श्रीरामचंद्रजी हैं, ऐसा पूर्वापरविचारकेयोग्य, निर्म्मल अभिप्रायका मनुष्य, बडीकठिनतासे कहींएक देखपडताहै ॥ ३७ ॥ सबसे उत्तम आत्मसाक्षात्कारकारूप फलयुक्त सुभगमूर्ति, आम्रके वृक्षोंकेसमान, कल्याणकारी विरलेही कोई २ इससंसारमें होते हैं ॥ ३८ ॥ उत्तमरीतिसे जगत्की दशाको दिखानेवाला आत्मतत्त्वदर्शनपर्य्यन्तका चमत्कार इस असामान्यबुद्धिवाले रामजीकेही अन्तःकरणमें इस अवस्थामें देखागयाहै ॥ ३९ ॥ सुन्दर और चढनेमें सुलभ फलदायक और पत्रोंसे शोभित सामान्यवृक्ष सबदेशोंमे होते हैं, न कि चन्दनवृक्ष ॥ ४० ॥

वृक्षाः प्रतिवनं संति नित्यं सफलपल्लवाः ॥ नत्वपूर्वचमत्कारो लवंगः सुलभः सदा ॥ ४१ ॥ ज्योत्स्नेव शीता शशिनः सुतरोरिव मंजरी ॥ पुष्पादामोदलेखेव दृष्टा रामाच्चमत्कृतिः ॥ ४२ ॥ अस्मिन्नुद्दामदौरात्म्यदैवनिर्माणनिर्मिते ॥ द्विजेंद्रा दग्धसंसारे सारो ह्यत्यंतदुर्लभः ॥४३ ॥ यतन्ते सारसंप्राप्तौ ये यशोनिधयो धियः ॥ धन्या धुरि सतां गण्यास्त एव पुरुषोत्तमाः ॥ ४४ ॥

अर्थ—फल और पत्रोंसहित वृक्ष सदा सबवनमें होतेहैं परन्तु अपूर्वचमत्कारकारक लवंगका वृक्ष सर्वत्र सुलभ नहीं है ॥ ४१ ॥ चन्द्रमाकी चन्द्रिकाकेसमान शीतल उत्तमवृक्षकी कलीकेसदृश, रमणीय और पुष्पोंसे सुगन्धताकी पंक्तिकेसमान, श्रीरामचन्द्रजीमेंही चमत्कृति (विलक्षणता) देखीगई है ॥ ४२ ॥ हे द्विजेन्द्रगण! उद्दण्ड तथा दुष्टतासहित और दैवसे रचित इस नष्टसंसारमें सार अतिदुर्लभ है ॥ ४३ ॥ जो सदा ध्यानमे निमग्न कीर्तिके निधि, सारवस्तुकी प्राप्तिकेलिये सदा उद्योग कियाकरते हैं, वेही धन्य, सज्जनोंमें अग्रणी, और पुरुषोत्तम हैं ॥ ४४ ॥

न रामेण समोऽस्तीह दृष्टो लोकेषु कश्चन ॥ विवेकवानुदारात्मा न भावी चेति नो मतिः ॥ ४५ ॥ सकललोकचमत्कृतिकारिणोऽप्यभिमतं यदि राघवचेतसः ॥ फलति नो तदिमे वयमेव हि स्फुटतरं मुनयो हतबुद्धयः ॥ ४६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्वाल्मीकिविरचिते वासिष्ठमहारामायणे देवदूतोक्ते द्वात्रिंशत्साहस्र्यां संहितायां मोक्षोपाये वैराग्यप्रकरणे नभश्चरमहीचरसंमेलनंनाम त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३३ ॥ वैराग्यप्रकरणं संपूर्णम् ॥

अर्थ—रामचन्द्रजीकेसमान इससमय न कोई है और न प्रथम देखागया और न आगेभी होनेवालाहै, ऐसी हम लोगोंकी सम्मति है ॥ ४५ ॥ उचितप्रश्नसे और रहस्यके उद्घाटनसे, संपूर्णसंसारको आनन्दरूप चमत्कारदायक श्रीरामचन्द्रजीके चित्तका, आत्मज्ञानप्राप्तिरूप मनोरथ यदि सफल न हो तो निश्चय प्रत्यक्षरूपसे हम हतबुद्धि मुनियोंकाही यह दोषहै, अर्थात् यदि रामचन्द्रजीको ज्ञानप्राप्ति न हो तो हमारा ज्ञानी होना व्यर्थही है ॥ ४६ ॥

इत्यार्षे श्रीवाल्मीकिविरचिते वासिष्ठमहारामायणे, देवदूतोक्ते द्वात्रिंशत्साहस्र्यां संहितायां मोक्षोपाये वैश्यवंशावतंसरूप जज्जपदारूढ रायबहादुरोपाधिधारि श्रीबैजनाथाज्ञया काशिराजकीय पाठशालाप्रधानाध्यापक पूज्यपाद श्री ६ दामोदरशास्त्रिशिष्य प्रयागमण्डलान्तर्गत हरिपुरनामकग्रामनिवासि द्विवेदोपनामक पूज्यपाद श्रीनन्हेईप्रसादात्मजाचार्य्योपाधिधारिठाकुरप्रसादविरचिते भाषानुवादे वैराग्यप्रकरणे नभश्चरमहीचरमेलनंनाम त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३३ ॥

समाप्तमिदं वैराग्यप्रकरणम् ॥ शुभमस्तु ॥



श्रीहरिर्वन्देः ।

श्रीवृन्दावनविहारिणे नमः ।

❀ योगवासिष्ठ भाषाटीका सहित ❀

द्वितीयं मुमुक्षुव्यवहार-प्रकरणं प्रारभ्यते.

मंगलाचरणम्.

नत्वा शिवं शक्तियुतं दयालुं । स्वानन्दरूपं भजतां स्फुरन्तम् ॥
श्रीयोगवासिष्ठमहाम्बुधेर्वै । भाषानुवादः क्रियते हिताय ॥ १ ॥
गणेशं विघ्नहर्तारं जगदम्बां प्रणम्य च ।
जनानां स्वात्मबोधाय यत्नमेतं समारभे ॥ २ ॥

प्रथमस्सर्गः ।

श्रीगणेशाय नमः । अथ मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणम् ॥

श्रीगणेशाय नमः॥अथ मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणम्॥ स्वयं अपने विचारसे आत्मतत्वके जाननेपर और पिताके कहनेपरभी अविश्वासकारी शुकदेवजीको जनकके कथनसे तत्वमें विश्राम मिला; इसविषयका वर्णन इस १ सर्गमें कियागयाहै.

श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ ॥ इति नादेन महता वचस्युक्ते समागतैः ॥ राममग्रगतं प्रीत्या विश्वामित्रोऽभ्यभाषत ॥ १ ॥ न राघव तवास्त्यन्यज्ज्ञेयं ज्ञानवतां वर ॥ स्वयैव सूक्ष्मया बुद्ध्या सर्वं विज्ञातवानसि ॥ २ ॥ केवलं मार्जनामात्रं मनागेवोपयुज्यते ॥ स्वभावविमले नित्यं सुबुद्धिमुकुरे तव ॥ ३ ॥ भगवद्व्यासपुत्रस्य शुकस्येव मतिस्तव ॥ विश्रांतिमात्रमेवांतर्ज्ञातज्ञेयाप्यपेक्षते ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवाल्मीकिजी बोले–जिससमय सभामें प्राप्तहोकर सिद्धादिकोंने बडे उत्साहकेसाथ गम्भीरनादयुक्त वचन कहा, उससमय सम्मुखस्थित अधिकारियोंमें मुख्य श्रीरामचन्द्रजीसे विश्वामित्रजी बडेप्रेमसे बोले ॥ १॥ हे ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ राघव! आपकेलिये अब कोई औरपदार्थ जाननेको शेष नहीं है स्वयं आपने अपनी सूक्ष्मबुद्धिसे सब जानलिया ॥ २ ॥ स्वभावसे निर्म्मल आपकी बुद्धिरूपदर्पणमें किंचित् शोधमात्रकी आवश्यकता है ॥ ३ ॥ भगवान् व्यासजीके पुत्र शुकदेवजीकी बुद्धि जिसप्रकार ज्ञेयपदार्थको जानभी गईथी तथापि आचार्यके उपदेशद्वारा केवल अन्तमें विश्रांतिमात्रकी आवश्यकता रखतीथी ऐसीही दशा आपकी बुद्धिकीभी है ॥ ४ ॥

श्रीराम उवाच ॥ ॥ भगवद्व्यासपुत्रस्य शुकस्य भगवन् कथम् ॥ ज्ञेयेऽप्यादौ न विश्रांतं विश्रांतं च धिया पुनः ॥ ५ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ ॥ आत्मोदंतसमं राम कथ्यमानमिदं मया ॥ शृणु व्यासात्मजोदंतं जन्मनामन्तकारणम् ॥ ६ ॥ योऽयमंजनशैलाभो निविष्टो हेमविष्टरे ॥ पार्श्वे तव पितुर्व्यासो भगवान् भास्करद्युतिः ॥ ७ ॥ अस्याभूदिन्दुवदनस्तनयो नयकोविदः ॥ शुको नाम महाप्राज्ञो यज्ञो मूर्त्येव सुस्थितः ॥ ८ ॥

अर्थ—श्रीराम बोले-हे भगवन्! व्यासजीके पुत्र स्वयं तत्त्व जाननमें समर्थ थे परन्तु उनका चित्त विश्रामको क्यों नहीं प्राप्तहुआ, और गुरुके उपदेशसे शुद्धबुद्धिद्वारा कैसे प्राप्तहुआ ॥ ५ ॥ विश्वामित्र बोले-अपनेही वृत्तान्तकेसमान व्यासजीके पुत्रका वृत्तान्त जानो जोकि जन्मोंके अन्तका हेतु है उसवृत्तान्तको मैं आपसे कहताहूं आप सुनिये ॥ ६ ॥ सूर्य्यकेसदृश तेजस्वी, अंजनके पर्वतकेसमान दीप्तिमान ये व्यासजीभगवान् आपके पिताकेसमीप सुवर्णके आसनपर बैठेहैं ॥ ७ ॥ चन्द्रमाकेसमान मुखवाले सबशास्त्रोंके वेत्ता महाबुद्धिमान् शुकदेवनामसे प्रसिद्ध इनके पुत्रभी साक्षात् मूर्तिमान् यज्ञकेसदृश हैं ॥ ८ ॥

प्रविचारयतो लोकयात्रामलामिमां हृदि ॥ तवेव किल तस्यापि विवेक उदभूदयम् ॥ ९ ॥ तेनासौ स्वविवेकेन स्वयमेव महामनाः ॥ प्रविचार्य चिरं चारु यत्सत्यं तदवाप्तवान् ॥ १० ॥ स्वयं प्राप्ते परे वस्तुन्यविश्रान्तमनाः स्थितः ॥ इदं वस्त्विति विश्वासं नासावात्मन्युपाययौ ॥ ११ ॥ केवलं विररामास्य चेतो विगतचापलम् ॥ भोगेभ्यो भूरि भंगेभ्यो धाराभ्य इव चातकः ॥ १२ ॥

अर्थ—उन्होंने जब संसारकी दशाको भलीभांति हृदयमें विचारा तब उनकोभी आपकेहीसमान ऐसाही विचार उत्पन्नहुआ ॥ ९ ॥ इन महाबुद्धिमान् शुकदेवजीने उसी अपने विवेकसेंही उत्तमरीतिसे दीर्घकालतक विचारकरके, जो परमार्थमें सत्य आत्मतत्त्व है उसको जानलिया ॥ १० ॥ परमार्थवस्तु स्वयं प्राप्तहोनेपरभी ये अशान्तचित्तही रहे क्योंकि परमार्थ सत्यवस्तु आत्मतत्त्व यही है ऐसा विश्वास इनके आत्मामें नहींहुआ ॥ ११ ॥ अनेकक्लेशोंकेकारण जो संसारके विषयभोग हैं उनसे इनका चित्त ऐसा विरक्तहुआ जैसे जलकी धाराओंसे चातकका ॥ १२ ॥

एकदा सोऽमलप्रज्ञो मेरावेकांतसुस्थितम् ॥ पप्रच्छ पितरं भक्त्या कृष्णद्वैपायनं मुनिम् ॥ १३ ॥ संसाराडम्बरमिदं कथमभ्युत्थितं मुने ॥ कथं च प्रशमं याति कियत्कस्य कदेति वा ॥ १४ ॥ इति पृष्टेन मुनिना व्यासेनाखिलमात्मजे ॥ यथावदमलं प्रोक्तं वक्तव्यं विदितात्मना ॥ १५ ॥ आज्ञासिषं पूर्वमेतदहमित्यथ तत्पितुः ॥ स शुकः शुभया बुद्ध्या न वाक्यं बव्हमन्यत ॥ १६ ॥

अर्थ—इन निर्म्मलबुद्धियुक्त शुकदेवजीने, मेरुपर्वतपर एकान्तमें शान्तचित्त होके स्थित कृष्णद्वैपायनमुनि अपने पितासे भक्तिपूर्वक यह पूछा कि ॥ १३ ॥ हे भगवन्! प्राणियोंको भ्रममें डालके ठगनेकेलिये कृत्रिमचेष्टाधारी यह संसाररूपी आडम्बर, किस देशकालमें और कैसे उत्पन्नहुआ? कब और किसरीतिसे इसकी शांति होती है ॥ १४ ॥ इसप्रकार पूछनेपर आत्मतत्वके वेत्ता व्यासमुनिने यथावत् निर्म्मलज्ञान जो कुछ वक्तव्य था पूर्णरीतिसे कहदिया ॥ १५ ॥ इस उपदेशके अनन्तर शुकदेवजीने अपने मनमें विचारा कि यह तो मैं प्रथमहीसे जानताथा, पिताजीने कोई अपूर्वबात नहींकही, इसलिये श्रद्धाकी बुद्धिसे आदरपूर्वक पिताके वचनका अधिक सन्मान नहींकिया ॥ १६ ॥

व्यासोऽपि भगवान् बुध्वा पुत्राभिप्रायमीदृशम् ॥ प्रत्युवाच पुनःपुत्रं नाहं जानामि तत्त्वतः ॥ १७ ॥ जनको नाम भूपालो विद्यते वसुधातले ॥ यथावद्वेत्त्यसौ वेद्यं तस्मात्सर्वमवाप्स्यसि ॥ १८ ॥ पित्रेत्युक्ते शुकः प्रायात्सुमेरोर्वसुधातले ॥ विदेहनगरीं प्राप जनकेनाभिपालिताम् ॥ १९ ॥ आवेदितोऽसौ याष्टीकैर्जनकाय महात्मने ॥ द्वारि व्याससुतो राजन् शुकोऽत्र स्थितवानिति ॥ २० ॥

अर्थ—व्यासजी भगवान्‌भी पुत्रके इस आशयको जानके बोले कि-हे पुत्र! मैं इससे अधिक यथार्थरूपसे कुछ नहींजानता ॥ १७ ॥ पृथ्वीपर जनकनामसे प्रसिद्ध एक राजाहै, वह जाननेयोग्य वस्तुको यथावत् जानताहै, उससे तुमको सबकुछ प्राप्तहोगा ॥ १८ ॥ पिताजीके ऐसेकहनेपर शुकदेवजी सुमेरुपर्वतसे पृथ्वीपर जनकजीसे पालित विदेहनगरीमें आये ॥ १९ ॥ ड्योढीदारोंने महात्मा जनकजीसे निवेदनकिया कि द्वारपर व्यासजीके पुत्र शुकदेवजी खडेहैं ॥ २० ॥

जिज्ञासार्थं शुकस्यासावास्तामेवेत्यवज्ञया ॥ उक्त्वा बभूव जनकस्तूष्णीं सप्तदिनान्यथ ॥ २१ ॥ ततः प्रवेशयामास जनकः शुकमंगणम् ॥ तत्राहानि स सप्तैव तथैवावसदुन्मनाः ॥ २२ ॥ अथ प्रवेशयामास जनकोऽतःपुरं शुकम् ॥ राजा न दृश्यते तावदिति सप्त दिनानि च ॥ २३ ॥ तत्रोन्मदाभिः कान्ताभिर्भोजनैर्भोगसंचयैः ॥ जनको लालयामास शुकं शशिसमाननम् ॥ २४ ॥

अर्थ—जनकजीनेभी शुकदेवजीका वृत्तान्त जानकर यह विचाराकि यदि शीघ्र इनको उपदेश दियाजायगा तो कदाचित् विनाक्लेश वस्तु प्राप्तहोनेसे अनादरसे इनकी शांति न हो, इसलिये उपेक्षासे द्वारपालोंसे कहा कि,

(१) व्यास और शुकदेव यहां पूर्वद्वापरमें उत्पन्न ग्रहणकरना उचित है, क्योंकि प्रतिद्वापरमें व्यासावतारका भेद प्रसिद्ध है.

अच्छा रहनेदो, ऐसा कहके शुकदेवजीके वैराग्यादि साधनोंकी, और विश्वासकी स्थिरताकी परीक्षाकेलिये सातदिनतक चुपरहे ॥ २१ ॥ इसके अनन्तर जनकजीने शुकदेवजीको आँगनमें बुलवाया वहांपरभी शुकदेवजी तत्वज्ञानकी प्रबलइच्छासे अनादरको विस्मृतकरके सातदिनतक उदासीनही पडेरहे ॥ २२ ॥ इसके अनन्तर जनकजीने शुकदेवजीको अन्तःपुर (रनवास) में बुलवाकर यह कहावायाकी भोजनादिपदार्थोंसे जबतक सातदिन आपकी पूजा न होगी तबतक राजा नहीं मिलेंगे ॥ २३ ॥ वहांपर उत्तमस्त्रियोंसे, अनेकप्रकारके भोजनसे, और भोगोंके समूहोंसे जनकजीने चन्द्रमाकेसमानमुखवाले शुकदेवजीको ललचाया ॥ २४ ॥

ते भोगास्तानि दुःखानि व्यासपुत्रस्य तन्मनः ॥ नाजन्हुर्मंदपवना बद्धपीठमिवाचलम् ॥ २५ ॥ केवलं सुसमःस्वस्थो मौनी मुदितमानसः ॥ अतिष्ठत्स शुकस्तत्र संपूर्ण इव चन्द्रमाः ॥ २६ ॥ परिज्ञातस्वभावं तं शुकं सजनको नृपः ॥ आनीतं मुदितात्मानमवलोक्य ननाम ह ॥ २७ ॥ निःशेषितजगत्काय प्राप्ताखिलमनोरथ ॥ किमीप्सितं तवेत्याशु कृतस्वागतमाहतम् ॥ २८ ॥

अर्थ—अन्तःपुरके उत्तम भोग और द्वार तथा आंगनके १४ दिनके दुःख, व्यासजीके पुत्रके चित्तको ऐसे न खींचसके जैसे मन्दवायु दृढमूलवाले बडे पर्वतको ॥ २५ ॥ भोग और अनादरमें एकरस इसीसे शान्तचित्त वाणी आदि इन्द्रियोंको वशमें कियेहुये, प्रसन्न मन, पूर्णचन्द्रमाके समान शुकदेवजी केवल वहां ठहरेरहे ॥ २६॥ इसप्रकार परीक्षा करनेसे, तत्वदर्शनपर्यन्त प्रतिष्ठाको प्राप्त विचार और वैराग्यादिकी परिपक्वता निपुण और प्रसन्नचित्त शुकदेवजी जब राजा जनकजीके सम्मुख बुलाएगये तब उन्होंने उनको प्रणाम किया और बोलेकि हे सम्पूर्णजगत् के कार्य्योंको समाप्तकरनेवाले। और सब मनोरथोंको प्राप्त होनेवाले शुकदेवजी! आपको कौनसा पदार्थ अभीष्ट है जिसकेलिये आपने शीघ्र शुभगमन किया ॥ २८ ॥

श्रीशुकउवाच ॥ ॥ संसाराडम्बरमिदं कथमभ्युत्थितं गुरो ॥ कथं प्रशममायाति यथावत्कथयाशु मे ॥ २९ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ ॥ जनकेनेति पृष्टेन शुकस्य कथितं तदा ॥ तदेव यत्पुरा प्रोक्तं तस्य पित्रा महात्मना ॥ ३० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स्वयमेव मया पूर्वमेतज्ज्ञातं विवेकतः ॥ एतदेव च पृष्टेन पित्रा मे समुदाहृतम् ॥ ३१ ॥ भवताप्येष एवार्थः कथितो वाग्विदां वर ॥ एष एव च वाक्यार्थः शास्त्रेषु परिदृश्यते ॥ ३२ ॥

अर्थ--शुकदेवजी बोले कि--हे गुरो! यह संसाररूपी आडम्बर कैसे उत्पन्नहुआ! और किसप्रकार शान्तिको, प्राप्तहोता है! यह मुझसे शीघ्र यथावत् कृपाकरके कहिये ॥ २९ ॥ विश्वामित्रजी बोले कि--इसप्रकार पूछनेपर जनकजीने वही बात कही, जो शुकदेवजीके पिता महात्मा व्यासजीने प्रथम कहीथी ॥ ३० ॥ श्रीशुकजी बोले कि--इस बातको आपही मैंने विचारसे जानलियाथा, और पिताजीसे जब पूछा तो उन्होंनेभी अनेकउदाहरणों और युक्तियोंसे इसीको व्याख्यानकरके वर्णनकियाथा ॥ ३१ ॥ हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ! आपनेभी यही पदार्थ कहा, और उपनिषदोंके महावाक्योंकाभी यही तात्पर्य है, तथा वेदान्तादिशास्त्रोंमेंभी यही देखपडता है ॥ ३२ ॥

यथायं स्वविकल्पोत्थ स्वविकल्पपरिक्षयात् ॥ क्षीयते दग्धसंसारो निःसार इति निश्चयः ॥ ३३ ॥ तत्किमेतन्महाबाहो सत्यं ब्रूहि ममाचलम् ॥ त्वत्तो विश्रान्तिमाप्नोति चेतसा भ्रमता जगत् ॥ ॥ ३४ ॥ जनक उवाच ॥ नातः परतरः कश्चिन्निश्चयोऽस्त्यपरो मुने ॥ स्वयमेव त्वया ज्ञातं गुरुतश्च पुनः श्रुतम् ॥ ३५ ॥ अविच्छिन्नचिदात्मैकः पुमानस्तीह नेतरत् ॥ स्वसंकल्पवशाद्बद्धो निःसंकल्पश्च मुच्यते ॥ ३६ ॥

अर्थ--कि यह संसाररूपी आडम्बर विकल्पसे उत्पन्नहुआ है, और विकल्पके क्षय होनेसेही मूलसहित यह दुष्टसंसार सर्वथा नष्टहोजाता है, अज्ञाननोपाहितआत्मामें नानाप्रकारके संसारकी कल्पनाका नाम विकल्प है आत्मतत्ववेत्ताओंका यह निश्चय है ॥ ३३ ॥ सो हे महाबाहो! मैंने यह जो स्वयं विचारा है यहि सत्य है तो मेरे हृदयमें संदेहरहित जिसप्रकार अचल स्थितहो वैसा उपदेश दीजिये, जिससे यह तत्वहै अथवा अन्य है ऐसे भ्रमदायकचित्तसे भ्रमताहुआ मैं आपके बचनमें विश्वासकरके शान्ति पाऊं ॥ ३४ ॥ जनकजी बोले कि-- जो आपने स्वयं जाना, और पुनः उसीको गुरूके मुखसेभी सुना, हे मुने! इससे अधिक कोई निश्चयकरनेयोग्य पदार्थ नहीं है ॥ ३५ ॥ अखण्ड एकरस चिदात्मा पुरुषकेसिवाय इससंसारमें अन्य कुछ नहीं है, अपनेही संकल्पसे वह बद्ध है और संकल्पके न होनेसे मुक्तहोता है ॥ ३६ ॥

---

(१) इसका अर्थ प्रथम व्याख्यासहित लिखचुके है

तेन त्वया स्फुटं ज्ञातं ज्ञेयं यस्य महात्मनः ॥ भोगेभ्यो विरतिर्जाता दृश्यात्प्राक् सकलादिह ॥ ३७ ॥ तव बाल महावीर मतिर्विरतिमागता ॥ भोगेभ्यो दीर्घरोगेभ्यः किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ३८ ॥ न तथा पूर्णता जाता सर्वज्ञानमहानिधेः ॥ तिष्ठतस्तपसि स्फारे पितुस्तव यथा तव ॥ ३९ ॥ व्यासादधिक एवाहं व्यासशिष्योऽसि तत्सुतः ॥ भोगेच्छातानवेनेह मत्तोऽप्यत्यधिको भवान् ॥ ४० ॥

अर्थ--इसलिये आपने स्पष्टरीतिसे ज्ञेयपदार्थ जानलिया, क्योंकि आप महात्माको इस निश्चयदशामें दृश्यमात्र और सम्पूर्णभोगोंसे प्रथम वैराग्य उत्पन्नहुआ ।। ३७ ।। हे महावीर ? हे बाल ! (अर्थात् यद्यपि आप तथा आपकी बुद्धि अभी बालरूप है परन्तु विषय त्यागनेसे महावीर हैं) आपकी बुद्धि रोगरूपीभोगोंसे विरक्त होगई इसलिये अब आधिक क्या सुनना चाहतेहो ।। ३८ ।। सवज्ञानके समुद्ररूप, और उग्रतपमें स्थित जो आपके पिता हैं उनकी ऐसी पूर्णता नहींहुई जैसी तुह्मारी हुई है ।। ३९ ॥ इससमय हैं व्याससेभी आधिकहूं, क्योंकि व्यासके पुत्र और शिष्य तुम मेरे शिष्यहो, और भोगकी इच्छाके कृशहोनेसे तुम मुझसेभी अतिआधिक हो ।। ४० ।।

प्राप्तं प्राप्तव्यमखिलं भवता पूर्णचेतसा ॥ न दृश्ये पतसि ब्रह्मन् मुक्तस्त्वं भ्रांतिमुत्सृज ॥ ४१ ॥ अनुशिष्टः स इत्येवं जनकेन महात्मना ॥ अतिष्ठत्स शुकस्तूर्ष्णीं स्वच्छे परमवस्तुनि ॥ ४२ ॥ वीतशोकभयायासो निरीहश्छिन्नसंशयः ॥ जगाम शिखरं मेरोःसमाध्यर्थमनिन्दितम् ॥ ४३ ॥ तत्र वर्षसहस्राणि निर्विकल्पसमाधिना ॥ दश स्थित्वा शशामासावात्मन्यस्नेहदीपवत्॥ ४४ ॥

अर्थ--हे ब्रह्मन् ! पूर्णचित्तसे आपने जो कुछ प्राप्तहोनेकी वस्तु थी वह सबकुछ प्राप्तकरली क्योंकि आप बाह्यविषयोंमें नहींगिरते और बाह्यपदार्थोंमेगिरनाही संसारमें गिरनाहै इसलिये तुम मुक्तहो, और जो कुछ तुमने जाना है इससे ज्ञेयवस्तु कुछ अन्यहै, इस भ्रमको त्यागो ॥ ४१ ॥ अखण्ड एकरस चिदात्मा तुम हो इसप्रकार महात्माजनकसे शिक्षित शुकदेवजी, दृश्यकी मलिनतासे शून्य जो आत्मतत्व है उसमें मौन होके स्थितहोगये।४२। शोक भय खेद और चेष्टासे रहित, तथा संशयशून्य शुकदेवजी, समाधिके अनुकूल देवताओंके निवासस्थान और आनिन्दितमेरुके शिखरपर गये । ४३ ।। वहांपर १० दश सहस्रवर्ष निर्विकल्पसमाधिमें स्थितरहके स्नेहरहितदीपकके समान आत्मामें शान्तहोगये अर्थात् विदेहमुक्त होगये ।। ४४ ॥

व्यपगतकलनाकलंकशुद्धः स्वयममलात्मनि पावने पदेऽसौ ॥
सलिलकणइवाम्बुधौ महात्मा विगलितवासनमेकतां जगाम ॥ ४५ ॥
इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकियेदवदूतोक्ते मोक्षोपाये मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे शुकनिर्याणंनाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

अर्थ--दृश्यकी ओर अभिमुखतारूप कलंक और उसका मूलभूत अज्ञानके नष्ट होनेसे शुद्धरूप, महात्मा शुकदेवजी पुण्यपापसे रहित और प्रारब्धकर्मके क्षयहोनेसे शुद्ध देहाभिमानशून्य होकर परमपावन आत्मवस्तुमें एकरूप ऐसे होगये जैसे जलकण समुद्रमें एकरूप हो जाते हैं ॥ ४५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे मुमुक्षव्यवहारप्रकरणे शुकनिर्याणं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

रामचन्द्रजीके उपदेशके लिये बुद्धिमान् विश्वामित्रजीने वसिष्ठकी प्रार्थना की उनका उत्साह इस २ रे सर्गमें वर्णनाकियागया है.

श्रीविश्वामित्र उवाच-तस्यव्यासतनूजस्य मलमात्रोपमार्जनम्॥ यथोपयुक्तं ते रामतावदेवोपयुज्यते ॥ १॥ ज्ञेयमेतेन विज्ञातमशेषेण मुनीश्वराः ॥ स्वदन्तेऽस्मै न यद्भोगा रोगा इव सुमेधसे ॥ २ ॥ ज्ञातज्ञेयस्य मनसो नूनमेतद्धि लक्षणम् ॥ न स्वदन्ते समाग्राणि भोगवृन्दानि यत्पुनः ॥ ३ ॥ भोगभावनया याति बन्धो दार्ढ्यमवस्तुजः ॥ तयोपशान्तया याति बन्धो जगति तानवम् ॥ ४ ॥

अर्थ--श्रीविश्वामित्रजी बोले--हे रामचन्द्रजी ! उन व्यासजीके पुत्र शुकदेवजीके केवल मलशोधनकेलिये जो उपदेश जिसप्रकार युक्तियोंसे उपयुक्त था उतनेही उपदेशकी आपकेलियेभी आवश्यकता है ।। १ ।। विश्वामित्रजी बोले हे मुनीश्वरो ! रामचन्द्रजीने संपूर्णरूपसें ज्ञेयवस्तुको जानलिया, क्योंकि बुद्धिमान् श्रीरामचन्द्रजीको रोगकेस

मान भोग नहीं रुचते॥२॥ जो मन ज्ञेयपदार्थको जानगयाहै उसका निश्चयकरके यही लक्षणहै कि पुनः उसको भोगसमूह नहीं रुचते ॥ ३ ॥ भोगकी वासनासे अविद्याजनित बंध दृढताको प्राप्तहोताहै, और भोगकी वासना शान्तहोनेसे संसारका बन्धभी दुर्बलताको प्राप्तहोजाताहै ॥ ४ ॥

वासनातानवं राम मोक्ष इत्युच्यते बुधैः ॥ पदार्थवासनादार्ढ्यं बन्ध इत्याभिधीयते ॥ ५ ॥ स्वात्मतत्त्वाभिगमनं भवति प्रायशो नृणाम् ॥ मुने विषयवैरस्यं कदर्थादुपजायते ॥ ६ ॥ सम्यक् पश्यति यस्तज्ज्ञो ज्ञातज्ञेयः स पंडितः ॥ न स्वदन्ते बलादेव तस्मै भोगा महात्मने ॥ ७ ॥ यशः प्रभृतिना यस्मै हेतुनैव विना पुनः ॥ भुवि भोगा न रोचन्ते स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ८ ॥

अर्थ--हे रामचन्द्रजी! वासनाओंका क्षीणहोनाही पण्डितोंने मोक्ष कहाहै और पदार्थोंमें वासनाका दृढहोनाही बन्ध कहाहै ॥ ५ ॥ आत्मतत्त्वका किंचित् ज्ञान प्रायः मनुष्योंको अल्पश्रवण आदिसेभी होजाताहै, परन्तु विषयसे वैराग्य बडेक्लेशसे होताहै ॥६॥ रागद्वेषादिरहित जो आत्माको देखताहै वही तज्ज्ञ अर्थात् तत्वज्ञानजन्यअविद्याके नाशरूपी फलका भागी, ज्ञातज्ञेय और पण्डित कहाताहै, और उसमहात्माको बलात्कार करके भोगोंमें रुचि नहीं होती ॥ ७ ॥ यश, प्रतिष्ठा, और पूजा लाभादि किसीकारणविना सांसारिकभोग जिसको नहीं रूचते वही पृथ्वीपर जीवन्मुक्त कहाताहै ॥ ८ ॥

ज्ञेयं यावन्न विज्ञातं तावत्तावन्न जायते ॥ विषयेष्वरतिर्जन्तोर्मरुभूमौ लता यथा ॥ ९ ॥ अतएव हि विज्ञातज्ञेयं विद्धि रघूद्वहम् ॥ यदेनं रंजयन्त्येता न रम्या भोगभूमयः ॥ १० ॥ रामो यदन्तर्जानाति तद्वास्त्वित्येव सन्मुखात् ॥ आकर्ण्य चित्तविश्रांतिमाप्नोत्येव मुनीश्वराः ॥ ११ ॥ केवलं केवलीभावविश्रांतिं समपेक्षते ॥ रामबुद्धिः शरलक्ष्मीः खलु विभ्रमणं यथा ॥ १२ ॥

अर्थ--जबतक ज्ञेयपदार्थ नहींजानाजाता तबतक विषयोंमें अरुचिका होना वैसाही असम्भवहै जैसे मरुभूमिमें लताका होना ॥ ९ ॥ इसीकारणसे रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ रामचन्द्रजीको ज्ञातज्ञेय समझो, क्योंकि रमणीयविषय इनको आकर्षण नहींकरसक्ते ॥ १० ॥ हे मुनीश्वरो! श्रीरामचन्द्रजी जो अन्तःकरणमें जानते हैं वहीं सद्वस्तु है इनको ऐसे सज्जनके जैसे वसिष्ठजी हैं उनके मुखसे सुनके चित्तकी विश्रान्ति अवश्य प्राप्तहोगी, क्योंकि स्वयं ज्ञातवस्तु में आपके मुखसे श्रवणकरनेसे विश्वास दृढ होजाताहै ॥११॥ श्रीरामचन्द्रकी बुद्धि केवल द्वैतनिरासपूर्वक अद्वैतआत्मतत्वमें विश्रान्तिमात्रकी अपेक्षा ऐसे रखती है जैसे शरदृऋतुकी शोभा केवल मेघरहित निर्मलआकाशकी॥१२॥

अत्रास्य चित्तविश्रांत्यै राघवस्य महात्मनः ॥ युक्तिं कथयेतु श्रीमान् वसिष्ठो भगवानयम् ॥ १३ ॥ रघूणामेष सर्वेषां प्रभुः कुलगुरुः सदा ॥ सर्वज्ञः सर्वसाक्षी च त्रिकालामलदर्शनः ॥ १४ ॥ वसिष्ठ भगवन्पूर्वं कच्चित्स्मरसि यत्त्वयम् ॥ आवयोर्वैरशान्त्यर्थं श्रेयसे च महाधियाम् ॥ १५ ॥ निषधाद्रेर्मुनीनां च सानौ सरलसंकुले ॥ उपदिष्टं भगवता ज्ञानं पद्मभुवा बहु ॥ १६ ॥

अर्थ—यहांपर महात्मा रामचन्द्रजीके चित्तकी विश्रान्तिकेलिये श्रीमान् भगवान् वसिष्ठजी युक्तियोंको कहे ॥ १३ ॥ सब शास्त्रोंके जाननेवाले योगबलसे सब पदार्थोंके साक्षात् द्रष्टा, तीनोंकालमें मोहक अज्ञानसेरहित अमलदर्शनवाले, ये भगवान् वसिष्ठजी रघुवंशियोंके प्रभु और सदाके कुलगुरु हैं अर्थात् इनकेसिवाय अन्य कोई इनका गुरु नहींहोसक्ता ॥ १४ ॥ हे वसिष्ठ भगवान्! क्या यह आपको स्मरणहै कि हम दोनोंके वैरकी शान्तिके लिये और महाबुद्धिमान् मुनियोंके कल्याणके अर्थ, सरलनामवृक्षोंसे पूर्ण निषधपर्वतके शिखरपर भगवान् ब्रह्माजीने बहुत ज्ञानोपदेश कियाथा ॥ १५ ॥ १६ ॥

येन युक्तिमता ब्रह्मन् ज्ञानेनेयं हि वासना ॥ संसारी नूनमायाति शमं श्यामेव भास्वता ॥ १७ ॥ तदेव युक्तिमज्ज्ञेयं रामायांतेनिवासिने ॥ ब्रह्मन्नुपदिशाशु त्वं येन विश्रांतिमेष्यति ॥ १८ ॥ कदर्थना च नैवैषा रामो हि गतकल्मषः ॥ निर्मले मुकुरे वक्त्रमयत्नेनैव बिम्बति ॥ १९ ॥ तज्ज्ञानं स च शास्त्रार्थस्तद्वैदग्ध्यमनिन्दितम् ॥ सच्छिष्याय विरक्ताय साधो यदुपदिश्यते ॥ २० ॥

अर्थ--हेब्रह्मन् जिसयुक्तिसहित ज्ञानसे यह संसारकी वासना निश्चयकरके ऐसे नष्टहोजाय जैसे सूर्यसे रात्रि नष्टहोतीहै उसीयुक्तिसे ज्ञेयवस्तु अपने शिष्य रामचन्द्रजीको आप शीघ्र उपदेशकरें जिससे ये विश्रामको प्राप्तहों ॥ १७ ॥ १८ ॥ निष्फल अधिकप्रयास इसमें नहींहोगा, क्योंकि रामचन्द्रजी पापरहितहैं और निर्म्मलदर्पणमें मुख

का प्रतिबिम्ब विनायत्नहीं पडताहै ॥ १९ ॥ हे साधो ! वही उत्तम ज्ञान है वही उत्तमशास्त्रका अर्थ है, और निन्दारहित उत्तम पाण्डित्य है जो विरक्त और उत्तमशिष्यको उपदेश कियाजाय ॥ २० ॥

अशिष्यायाविरक्ताय यत्किंचिदुपदिश्यते ॥ तत्प्रयात्यपवित्रत्वं गोक्षीरं श्वदृताविव ॥ २१ ॥ वीतरागभयक्रोधा निर्मोना गलितैनसः ॥ वदन्ति त्वादृशा यत्र तत्र विश्राम्यतीह धीः ॥ २२ ॥ इत्युक्ते गाधिपुत्रेण व्यासनारदपूर्वकाः ॥ मुनयस्ते तमेवार्थं साधु साध्वित्यपूजयन् ॥ २३ ॥ अथोवाच महातेजा राज्ञः पार्श्वे व्यासास्थितः ॥ ब्रह्मेण ब्रह्मणः पुत्रो वसिष्ठो भगवान्मुनिः ॥ २४ ॥

अर्थ--अशिष्य और अविरक्तको जो कुछ उपदेश कियाजाताहै वह जैसे गौका दुग्ध कुत्तेके चर्म्ममें अपवित्र होजाताहै वैसाही अपवित्र होजाताहै ॥ २१ ॥ वीतराग, क्रोध और भयसे वर्जित, अभिमानशून्य और निष्पाप आपकेसदृश महात्मालोग जहांपर इस आत्मतत्वके विषयमें उपदेश करते हैं वहां अवश्य बुद्धि विश्राम पाती है।२२। गाधिके पुत्र विश्वामित्रजीके ऐसे कहनेपर व्यास और नारद आदि सबमुनियोंने साधु २ कहके उसी उसी बातकी पुष्टि की ॥ २३ ॥ इसके अनन्तर राजाके निकट बैठेहुये ब्रह्माजीके समान ब्रह्माजीके पुत्र भगवान् श्रीवसिष्ठजी मुनि बोले ॥ २४ ॥

वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ मुने यदादिशसि मे तदविघ्नं करोम्यहम् ॥ कः समर्थः समर्थोऽपि सतां लंघयितुं वचः ॥ २५ ॥ अहं हि राजपुत्राणां रामादीनां मनस्तमः ॥ ज्ञानेनापनयाम्याशु दीपेनेव निशातमः ॥ २६ ॥ स्मराम्यखण्डितं सर्वं संसारभ्रमशांतये ॥ निषेधाद्रौ पुरा प्रोक्तं यज्ज्ञानं पद्मजन्मना ॥ २७ ॥ श्रीवाल्मीकि उवाच ॥ ॥ इति निगदितवानसौ महात्मा परिकरबंधगृहीत कृततेजाः ॥ अरूकथयदिदमज्ञतोपशांत्यै परमपदैकविबोधनं वसिष्ठः ॥ २८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकिये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे विश्वामित्रवाक्यं नाम द्वितीयःसर्गः

अर्थ—हे मुने ! जो आप मुझे आज्ञा देते हैं उसे मैं निर्विघ्नतापूर्वक करूंगा, क्योंकि कार्यकरनेमें समर्थ होके महात्माओंके वचनको उल्लंघन कौन करसक्ताहै ॥ २५ ॥ मैं ज्ञानसे राम आदि राजपुत्रोंके मनका अज्ञान ऐसे दूरकरूंगा जैसे दीपकसे रात्रिका अन्धकार ॥ २६ ॥ संसारके भ्रमकी शान्तिके लिये निषधपर्वतपर ब्रह्माजीने जो प्रथम कहाथा वह संपूर्णरूपसे मुझे स्मरणहै ॥ २७ ॥ श्रीवाल्मीकिजी बोले कि–जिसप्रकार भूषण वस्त्र और अस्त्र आदि सामग्रीसे युक्त उत्साहसहित शूर वा नट शोभित होताहै, इसीप्रकार शिष्योंके प्रबोधार्थ, दृष्टान्त, उपाख्यान, प्रमाण, तर्क, और, युक्ति, आदिके अनुसन्धान और उत्साहादिरूप सामग्रीसंयुक्त और वक्ताके तेज सहित महात्मा वसिष्ठजीने ऐसी प्रतिज्ञा की, और अनन्तर संसारके अज्ञानकी शान्तिकेलिये आत्मतत्वरूपपरमपदमें एकताबोधक शास्त्र कथनकिया ॥ २८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे विश्वामित्रवाक्यंनाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

स्थूलादि जगत्का आरोप और उसके अपवादसे प्रत्यक् चिदात्मारूप विषय, रामचन्द्रजीकी शंकाके दूरकरनेके मिषसें इस ३ सर्गमें सिद्धकियाहै.

श्रीवसिष्ठ उवाच ॥ ॥ पूर्वमुक्तं भगवता यज्ज्ञानं पद्मजन्मना ॥ सर्गादौ लोकशांत्यर्थं तदिदं कथयाम्यहम् ॥ १ ॥ श्रीराम उवाच ॥ ॥ कथयिष्यसि विस्तीर्णां भगवन्मोक्षसंहिताम् ॥ इमं तावत् क्षणं जातं संशयं मे निवारय ॥ २ ॥ पिता शुकस्य सर्वज्ञो गुरुर्व्यासो महामतिः ॥ विदेहमुक्तो न कथं कथं मुक्तः सुतोऽस्य सः ॥ ३ ॥ श्रीवसिष्ठ उवाच ॥ ॥ परमार्कप्रकाशांतस्त्रिजगत्त्रसरेणवः ॥ उत्पत्योत्पत्य लीना ये न संख्यामुपयांतिते ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–पूर्वसृष्टिका आदिमें संसारकी शान्तिकेलिये ब्रह्माजीने जो ज्ञान कथनकियाथा वही मैं कहताहै ॥ १ ॥ श्रीरामजी बोले–हे भगवान् ! आप विस्तारयुक्त मोक्षसंहित तो अवश्य कहैंगे परन्तु उसके पूर्व ईसीक्षणमें मुझे एकसंशय उत्पन्न हुआहै उसको निवारण कीजिये ॥२॥ शुकदेवजीके पिता सर्वज्ञ महामति गुरु

व्यासजी विदेहमुक्त क्यों न हुये ? और उनके पुत्र शुकदेवजी कैसे होगये ॥ ३ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–परमात्मारूपी सूर्यके प्रकाशमें अनन्तकोटि ब्रह्मांड उत्पन्न और स्थितहो होकर जो लीन होगये हैं उनकी गणना कदापि नहीं होसक्ती ॥ ४ ॥

वर्त्तमानाश्च याः संति त्रैलोक्यगणकोटयः ॥ शक्यंते ताश्चसंख्यातुं नैव काश्चन केनचित् ॥ ५ ॥ भविष्यंति परांभोधौ जगत्सर्गतरंगकाः ॥ तांश्च वै परिसंख्यातुं सा कथैव न विद्यते ॥ ६ ॥ श्रीराम उवाच ॥ ॥ या भूताया भविष्यन्त्यो जगत्सर्गपरंपराः ॥ तासां विचारणा युक्ता वर्त्तमानास्तु काइव ॥ श्रीवसिष्ठ उवाच ॥ ॥ तिर्यक्पुरुषदेवाद्यैर्यो नामस विनश्यति ॥ यस्मिन्नेव प्रदेशेऽसौ तदैवेद प्रपश्यति ॥ ८ ॥

अर्थ–और वर्तमान कालमें जो त्रिलोकसमूहोंकी अनन्तकोटि हैं उनमें कोईभी किसीसे नहीं गिनीजासक्ती ॥ ३५ ॥ परमात्मारूपी समुद्रमें जो अनन्तजगतरूपी तरंग उत्पन्नहोंगे उनकी गणना करनेकी तो कथाही क्या। इससे यह वार्ता सिद्धहुई कि तीनोंकालमें अनन्तजगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति, और प्रलयका आधारभूत जो परमात्मा है उसमें जगत्‌का अध्यारोप है ॥ ६ ॥ श्रीरामजी बोले–समति भूतभविष्यत्‌सृष्टिका विचारही युक्त है वर्तमानकी क्या आवश्यता है भावार्थ यह है कि अनन्तकोटिब्रह्मांड जो त्रिकालमें होते हैं वे चिद्रूप है यह आपका आशय है ॥ ७ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–पशु पक्षी मनुष्य और देवताआदि प्राणियोंके समूहके मध्यमेंजो जिसदेश और कालमें मरणको प्राप्त होता है, वह प्रत्येकचेतन वा आत्मा उसी देशकालमें वक्ष्यमाण तीनों प्रकारके जगतको देखता है ॥ ८ ॥

आतिवाहिकनामान्तः स्वहृद्येव जगत्त्रयम् ॥ व्योम्नि चित्तशरीरेण व्योमात्मानुभवत्यजः ॥ ९ ॥ एवंमृता म्रियंते च मरिष्यन्ति च कोटयः ॥ भूतानां यां जगत्याशाधुदितानिपृथक् पृथक् ॥ १० ॥ संकल्पनिर्माणमिव मनोराज्यविलासवत् ॥ इन्द्रजालाममाल इव कथार्थप्रतिभासवत् ॥ ११ ॥ दुर्वातभूकंप इव त्रस्तबालपिशाचवत् ॥ मुक्तालीवामले व्योम्नि नौस्पंदतरुयानवत् ॥ १२ ॥

अर्थ–और वह किस सामग्री और किसस्वरूपसे देखताहै सो कहते हैं, धूम और अर्चिरादिमार्गोंके अभिमानी देवताओंके द्वारा (उत्तरायण और दक्षिणायनमार्ग) परलोकप्राप्तिके साधक आतिवाहिक (लिंग) नामवाले तत्त्वरूप शरीरसे, अर्थात् चित्त, अहंकार, मन, बुद्धि, प्राण और पंच ज्ञानेन्द्रिय और पंच कर्मेन्द्रियरूप वासनामय सूक्ष्मशरीरसे अपने हृदयरूपि दहराकाशमें, जन्मादिरहित चिदात्मा तीनोंप्रकारके जगत्‌को अनुभव करता है. अर्थात् भ्रान्तिसे वासनामय वह वह शरीर प्राप्त होताहै, यथार्थमें वह चिदाकाश स्वरूप आत्मा एकरस जन्ममरणादि शून्य है ॥ ९ ॥ इस प्रकार प्राणियोंकी अनन्तकोटि मरगई, मरती है और मरेगी, यह नानाविधि दृश्यजगत् मरणकालमें जिस २ वासनामें अपने कर्मके परिपाकानुसार लीनथा उसी २ वासनाके अनुसार देव, मनुष्य, और पशु पक्षी आद पृथक २ योनिभेद प्रगट होरहा है; यदाभवन्ति तदाभवन्ति "यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्" (मृत्युकालमें जैसी वासना होती है वैसीही गति मिलती है) इत्यादि श्रुतिस्मृति इसमें प्रमाण है ॥ १० ॥ संकल्पकी रचनाके और मनोराज्यके विलासके इन्द्रजालरूपी मालाके स्थानके और कथाके अर्थके भानके ॥ ११ ॥ और वातरोगमें भूकम्पकी प्रतीतके और निर्मल आकाशमें मोतीके समूहके और नौकापर चढे पुरुषोंको वृक्षोंके गमनकी प्रतीतके ॥ १२ ॥

स्वप्नसम्वित्तिपुरवत् स्मृतिजातखपुष्पवत् ॥ जगत्संसरणं स्वांतर्मृतोऽनुभवति स्वयम् ॥ १३ ॥ तत्रास्तिपरिणामेन तदेव घनतां गतम् ॥ इह लोकोऽयमित्येव जीवाकाशे विजृंभते ॥ १४ ॥ पुनस्तत्रैवजन्मेहामरणाद्यनुभूतिमान् ॥ परं लोकं कल्पयति मृतस्तत्र तथा पुनः ॥ १५ ॥ तदंतरेऽन्ये पुरुषास्तेषामंतस्तथेतरे ॥ संसार इति भांतीमे कदलीदलपीठवत् ॥ १६ ॥

अर्थ–और स्वप्नमें नगरदर्शनके और स्मरनसे कल्पित आकाश पुष्पके समान इस जगत्‌की गति है, मरन और उत्पत्ति द्वारा आत्मा अपनेही स्वरूपमें इसको अनुभव करता है ॥ १३ ॥ स्थूलदशामें अधिक परिचय होनेसे, वही सूक्ष्मरूप पंचीकरणसे दृढताको प्राप्त होगया है, इस चिदाकाशमें यह संसार अपना रूप बदलता रहता है ॥ १४ ॥ पुन. उसी चिदाकाशमें जन्मकी कल्पना करता है और जन्मके उत्तर मरण पर्यंत चेष्टा किया करता है. और मरण आदिका अनुभव करता है, तथा मरके पुनः परलोककी कल्पना करता है ॥ १५ ॥ वासनासे एकपुरुषमें दूसरे देह उत्पन्न होते हैं और उन पुरुषोंकी वासनाके मध्यमें दूसरे, इसी प्रकार इस संसारमें केलेके छिलके समान ये प्राणीभी हैं ॥ १६ ॥

न पृथ्व्यादिमहाभूतगणा न च जगत्क्रमाः ॥ भूतानां संति तत्रापि तथाऽप्येषां जगद्भ्रमाः ॥ १७ ॥ अविद्यैव ह्यनंतेयं नानाप्रसरशालिनी ॥ जडानां सरिदादीर्घा तरत्सर्गतरंगिणी ॥ १८ ॥ परमार्थांबुधौ स्फारे

रामसर्गतरंगकाः ॥ भूयोभूयोऽनुवर्तंते त एवान्ये च भूरिशः ॥ १९ ॥ सर्वतः सदृशः केचित् कुलक्रममनोगुणैः ॥ केचिदर्द्धेन सदृशः केचिच्चातिविलक्षणाः ॥ २० ॥

अर्थ-यद्यपि न पृथ्वी आदि महाभूत हैं, न जगत्का क्रम है तथापि मृत और उत्पन्न प्राणियोंको जगत्का भ्रम है ॥१७॥ अविवेकी पुरुषोंके लिये यह अनन्त अविद्याहीनानाप्रकारको गति धारणकरके ऐसे शोभितहोरही है जैसे चंचलतरंगोंसे नदी ॥ १८ ॥ हे रामचन्द्रजी ! परमात्मारूपी महासमुद्रमें अनन्तसृष्टिरूपी तरंग हैं और अनेक दूसरे पुनःउत्पन्न होते हैं और नष्ट होते हैं ॥ १९ ॥ कोई २ कुलकी रीति, मन और गुण आदिसे सर्वथा सदृश होते हैं, और कोई अर्द्धसदृश होते हैं और कोई सर्वथा विलक्षण ॥ २० ॥

इमं व्यासमुनिं तत्र द्वात्रिंश संस्मराम्यहम् ॥ यथा सम्भवविज्ञानदृशा संदृश्यमानया ॥ २१ ॥ द्वादशाल्पधियस्तत्र कुलाकारेहितैः समाः ॥ दश सर्वे समाकाराः शिष्टाः कुलविलक्षणाः ॥ २२ ॥ अद्याप्यन्ये भवष्यंति व्यासवाल्मीकयस्तथा ॥ भृग्वंगिरः पुलस्त्याश्च तथैवाप्यन्यथैवच ॥ २३ ॥ नराः सुरर्षिदेवानां गणाः संभूय भूरिशः ॥ उत्पद्यंते विलीयंते कदाचिच्च पृथक् पृथक् ॥ २४ ॥

अर्थ-पुराण और भारत आदि रचनाकी प्रसिद्धिसे, यथोचितजन्मसे शास्त्रादि विज्ञान, और ब्रह्मविद्या आदि लक्षणसे, उन व्यासकी सृष्टियोंमें इन व्यासमुनिको मैं बत्तीसवां जानताहूं ॥ २१ ॥ १ ब्रह्मविद् २ ब्रह्मविद्वर, ३ ब्रह्मविद्वरीयान् और ४ ब्रह्मविद्वरिष्ठ इन प्रसिद्ध चारभेदोंमें चतुर्थस्थानतक न पहुंचनेसे १२ बारह व्यास अल्पबुद्धि और कुछ आकार और आधिकारिकचेष्टामें समानहुए. और १० दश व्यास सर्वथा अपने कुलक्रम पूर्व आकारके समानहुए और शेष सर्वथा कुलके विलक्षण हुए ॥ २२ ॥ और आगेभी व्यास, वाल्मीकि, भृगु, अंगिरा, और पुलस्त्य, आदि ये सबऋषि पूर्वप्रकारके और उनसे विलक्षणप्रकारकेभी होंगे ॥ २३ ॥ मनुष्य, देवर्षि, और देवताओंके गण, ये सब अनेकबार साथ और पुनः पृथक् २ उत्पन्नहोकर नष्टहोतेरहते हैं ॥ २४ ॥

ब्राह्मी ह्यसप्रतिस्त्रेता आसीदस्ति भवष्यति ॥ स एवन्कश्च लोकाश्च त्वं चाहं चेति वेद्म्यहम् ॥ २५ ॥ क्रमेणस्य मुनेरित्थं व्यासस्याद्भुतकर्मणः ॥ संलक्ष्यतेऽवतारोऽयं दशमो दीर्घदर्शिनः ॥ २६ ॥ अभूम व्यासवाल्मीकियुक्ता वयमनेकशः ॥ अभूम वयमेवेमे बहुशश्च पृथक् पृथक् ॥ २७ ॥ अभूम वेयमेवेमे सदृशा इतरे विदः ॥ अभूम वयमेवेमे नानाकाराः समाशयः ॥ २८ ॥

अर्थ--ब्रह्मकल्पका अवयवभूत त्रेतायुग प्रतिब्राह्मकल्पमें था. और अब इस कल्पमें है, और आगेके कल्पमेंभी होगा, तुम राम और हम वसिष्ठ पूर्वप्रकारके और उससे विलक्षण हुए और होंगे ॥ २५ ॥ सम्मुखस्थित अद्भुतकर्मवाले दीर्घदर्शी इन व्यासमुनिके जीवका क्रमेण समान आरवाला यह दशम अवतारहै ॥ २६ ॥ कई व्यास, वाल्मीकिसहित हमलोग एकहीसमयमें उत्पन्नहुए, और अनकबार येही हमलोग भिन्न २ समयमेंभी हुए ॥ २७ ॥ हम सब कभी समान आकार और ज्ञानवान् हुए, और कभी असमान आकार और ज्ञानवान् हुए तथा कभी २ हम नानाप्रकारके आकारवाले और समान ज्ञानवाले हुए ॥ २८ ॥

भाव्यमद्याप्यनेनेह ननु वाराष्टकं पुनः ॥ भूयोऽपि भारतं नाम सेतिहासं करिष्यति ॥ २९ ॥ कृत्वा वेदविभागं च नीत्वाऽनेन कुलप्रथाम् ॥ ब्रह्मत्वं च तथा कृत्वा भाव्यं वै देहमोक्षणम् ॥ ३० ॥ वीतशोकभयः शांतनिर्वाणो गतकल्पनः ॥ जीवन्मुक्तो जितमनः व्यासोऽयमिति वर्णितः ॥ ३१ ॥ वित्तबन्धुवयः कर्मविद्याविज्ञानचेष्टितैः ॥ समानि संति भूतानि कदाचिन्न तु तानि तु ॥ ३२ ॥

अर्थ--फिरभी आठवार येही व्यास उत्पन्नहोंगे, और पुनः येही इतिहाससहित भारतकी रचना करेंगे ॥२९॥ वेदोंका विभाग करके, और अपने वंश वा भरतवंशकी प्रख्याति विस्तारकरके अनन्तर हिरण्यगर्भपदका अधिकारकरके विदेहमुक्त होंगे ॥ ३० ॥ शोक और भयसे शून्य, शान्त और बन्धनरहित, कल्पनासे वर्जित; जीवन्मुक्त और मनको जीतनेवाले ये व्यास वर्णनाकिये गये हैं ॥ ३१ ॥ धन, बन्धु, अवस्था, कर्म्म, विद्या, विज्ञान, और चेष्टा, ये जीवोंके कभी समान होते हैं और कभी भिन्न भिन्न ॥ ३२ ॥

कचित्संगंशतैस्तानि भवन्ति न भवन्ति वा ॥ कदाचिदपि मायेयमित्थमंतविवर्जिता ॥ ३३ ॥ यच्छतीयं विपर्यासं भूरि भूतपरंपरः ॥ बीजराशिरिवाजस्रं पूर्यमाणः पुनः पुनः ॥ ३४ ॥ तेनैव सन्निवेशेन तथान्येन पुनः पुनः ॥ सर्गाकाराः प्रवर्त्तंते तरंगाः कालिवोदधेः ॥ ३५ ॥ आश्वस्तांतः करणः शांतविकल्पः स्वरूपसारमयः ॥ परमशमामृततृप्तस्तिष्ठति विद्वान्निवारारणः ॥३६॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे भूयोभूयः सर्गानुवर्णनंनाम तृतीयःसर्गः ॥ ३ ॥

अर्थ—ये घन आदि सैकडों सृष्टियोंमें होते हैं और कभी नहीं होते, इसीप्रकार यह ईश्वरकी अनन्तमाया अपना कार्य्य करतीहै ॥ ३३ ॥ यह जीवोंकी परम्परा प्रस्थ आदिमापसे पुनः २ मापीहुई धान्यराशीके सदृश, पूर्वक्रमसे कुछ न कुछ विपर्यय (उलटी पल्टी) होती रहतीहै ॥ ३४ ॥ उसीक्रमसे अथवा अन्यक्रमसे सृष्टिके आकारमे कालरूपी समुद्रके तरंग पुनः २ उत्पन्न और नष्टहुआ करतेहैं ॥ ३५ ॥ इससंसारके अनेक परिवर्तन होनेपरभी आत्मतत्वका यथार्थवेत्ता विवेकी पुरुष, समाहितचित्त, शान्तविकल्प, चेतनरूप आत्मतत्वमय, परमशान्तियुक्त, और देहादिकमें आत्माभिमानसे रहित सर्वथा अविद्याशून्य कूटस्थरूपसे स्थितरहताहै, इससे यह सिद्धहुआकि जीवन्मुक्तको योगबलसे अधिकारप्राप्तशरीरादिके ग्रहण करनेसेभी मुक्ति स्वरूपकी च्युति नहीं होती, इसलिये व्यासकी विदेह मुक्तही हैं ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्त मोक्षपायो भाषानुवादे मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

मुक्तपुरुषके अनुभवसे अदेहमुक्ति और सदेहमुक्तिका अभेद तथा मूलकी दृढताकेलिये शास्त्रीय पुरुषार्थकी प्रशंसाका वर्णन इस ४ सर्गमें किया गयाहै.

वसिष्ठ उवाच-सौम्याम्बुत्वे तरंगत्वे सलिलस्याम्बुता यथा ॥ सैवाब्धौ तथाऽदेहसदेहमुनिमुक्तता ॥ १ ॥ सदेहा वास्वदेहा वा मुक्तता विषयने च ॥ अनास्वादितभोगस्य कुतो भोज्यानुभूतयः ॥२ ॥ जीवन्मुक्तं मुनिश्रेष्ठं केवलं हि पदार्थवत् ॥ पश्यामः पुरतो व्यास्य पुनर्विग्रोऽतराशयम् ॥३॥ सदेहा देहमुक्तानां भेदः को बोधरूपिणाम् ॥ यदेवांबुतरंगत्वे सौम्यत्वेऽपि तदेव तत् ॥ ३ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—नित्य मुक्तस्वभाव आत्माका अज्ञानरूपी आवरणही बन्धन है, और ज्ञानसे अज्ञानका नाश होनाही मोक्ष है, अज्ञानके नष्टहोनेपर मिथ्यारूपसे निश्चित यह संसारचित्रके व्याघ्रकेसमान कौतुकके लियेही होताहै न कि अनर्थके लिये, इसप्रकार जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्तिका अभेद दर्शाके और पूर्वशंकाका समाधान करके, आत्मतत्वके विस्तारसे वर्णनकी इच्छासे क्षीणमूलकी दृढताके लिये प्रथम पुरुषार्थका समर्थन करते हैं हे सौम्य रामचन्द्रजी ! जिसप्रकार समुद्रके निश्चल जलमे और तरंगमें रूपजलमें कोई भेद नहीं है इसीप्रकार जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्तिमेंभी कुछ भेद नहीं है ॥ १ ॥ सदेह हो वा विदेह हो मुक्तिविषयके आधीन नहीं है, यदि स्वर्गादिके सदृश मुक्ति विषयके आधीन होती तो विषयके भेदसे स्वर्गादिके तुल्य मुक्तिकाभी भेद होता है, जीवन्मुक्त अपनी शरीरयात्राके निर्वाहमात्रकेलिये विषयसे प्रयोजन रखता है, और उनमे असत्यबुद्धि होनेसे आसक्त नहीं होता, इसीलिये उसको भोग दुःखदायी नहीं होते, क्योंकि जिसने देहादिमें आत्माभिमानसहित भोगोंमें सत्यबुद्धिसे भोगोंका आस्वाद नहीं लिया उसको भोगोंका अनुभव दुःखदायी कहां ॥ २ ॥ जीवन्मुक्ति, मुनिश्रेष्ठ व्यासजीको केवल हम अपनी कल्पनासे देहसहित सन्मुख देखते हैं. ये अपने निश्चयसे अन्तरमें विदेह है, इसीलिये देहधारण करनेसे इनको कुछ दुःख नहीं है ॥ ३ ॥ ज्ञानस्वरूप सदेह और अदेहमुक्तमें क्या भेद है, अर्थात् कुछ नहीं, समुद्रादिमें जो जल निश्चलदशामें वही तरंगदशामें है ॥ ४ ॥

न मनागपि भेदोऽस्ति सदेहादेहमुक्तयोः ॥ सस्पन्दोऽप्यथवा स्पन्दो वायुरेव यथानिलः ॥ ५ ॥ सदेहा वा विदेहा वा मुक्तता न प्रमास्पदम् ॥ अस्माकमपि तस्यास्ति स्वैकतास्त्याविभागिनी ॥ ६ ॥ तस्मात्प्रकृतमेवेदं शृणुश्रवणभूषणम् ॥ मयोपदिश्यमानं त्वं ज्ञानमज्ञांध्यनाशनम् ॥ ७ ॥ सर्वमेवेह हि सदा संसारे रघुनन्दन ॥ सम्यक्प्रयुक्तात्सर्वेण पौरुषात्समवाप्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—तरंगदशा और निश्चलदशाके जलमें तो कदाचित स्वच्छता और मलिनताका भेदभी हो, परन्तु जीवन्मुक्त और विदेहमुक्तमें तो किंचित्भी भेद नहीं है, जैसे गतिसहित हो वा गतिरहित हो वायु तो वायुही है ॥ ५ ॥ हमारी वा व्यासजीकी जीवन्मुक्ति परमार्थदशामें दृष्टिका विषय नहीं है किन्तु विभाग रहित, द्वैतशून्य स्वात्मवस्तुमें एकतामात्र है, अर्थात् जीवन्मुक्ति, विदेह मुक्ति, बन्ध मोक्षव्यवहार यह सब अज्ञदृष्टिकी क-

ल्पनामात्र है ॥ ६ ॥ इसलिये प्रचलितवस्तु श्रवणका भूषण ज्ञान मुझसे तुम सुनो, जो ज्ञान अज्ञतारूपी अन्धकार का नाशक है ॥ ७ ॥ हे रघुवंशियोंके आनन्ददायक रामचन्द्रजी ? इससंसारमें सववस्तु, सबको उत्तमप्रयत्नसेही प्राप्त होती है अन्यथा नहीं ॥ ८ ॥

इह हि देरिवोदेति शीतलाल्हादनं हृदि ॥ परिस्पन्दफलप्राप्तौ पौरुषादेव नान्यतः ॥ ९ ॥ पौरुषं स्पन्दफलवदृष्टं प्रत्यक्षतो न यत् ॥ कल्पितं मोहितैर्मन्दैर्दैवं किंचिन्न विद्यते ॥ १० ॥ साधूपदिष्टमार्गेण यन्मनोऽङ्गविचेष्टितम् ॥ तत्पौरुषं तत्सफलमन्यदुन्मत्तचेष्टितम् ॥ ११ ॥ योऽयमर्थं प्रार्थयते तदर्थं चेहते क्रमात् ॥ अवश्यं स तमाप्नोति न चेदर्धान्निवर्तते ॥ १२ ॥

अर्थ –शास्त्रविहित कायिक, वाचिक, और मानसिक कर्मोंसे चित्तकी शुद्धिद्वारा अतिपुरुषार्थसे ज्ञानकी प्राप्ति होनेहीपर, चन्द्रमाके समान शीतल, सब आनन्दोंसे बढके ब्रह्मानन्दका उदय हृदयमें होता है ॥ ९ ॥ गमन, और भोजनादिरूपपुरुषार्थ ऐसा कोई नहीं देखागया जिसका. दूसरे देशमें प्राप्ति, वा तृप्ति आदि प्रत्यक्ष फल न हो अज्ञानी मन्दबुद्धियोंने दैव (प्रारब्ध) की जो कल्पनाकी है वह कुछ नहीं है ॥ १० ॥ शास्त्रज्ञ महात्माओंके कथितमार्गसे जो मन और वाणी आदि इन्द्रियोंकी चेष्टा है उसीका नाम पुरुषार्थ है और वही सफल है, इससे भिन्न उन्मत्तोंकी चेष्टा है ॥ ११ ॥ जो जिस पदार्थको चाहता है, यदि शास्त्रोक्तक्रमसे उसके लिये चेष्टा करता है तो, यदि बीचहीमें प्रयत्नको न छोडदे तो अवश्य उस पदार्थको पाताहै ॥ १२ ॥

पौरुषेण प्रयन्तेन त्रैलोक्यैश्वर्यसुंदराम् ॥ कश्चित्प्राणिविशेषो हि शक्रतां समुपागतः ॥ १३ ॥ पौरुषेणैव यत्नेन सहस्रांभोरुहास्पदम् ॥ कश्चिदेव चिदुल्लासो ब्रह्मतामधितिष्ठति ॥ १४ ॥ सारेण पुरुषार्थेन स्वेनैव गरुडध्वजः ॥ कश्चिदेव पुमानेव पुरुषोत्तमतां गतः ॥ १५ ॥ पौरुषेणैव यन्ते लळनावलिताकृतिः ॥ शरीरी कश्चिदेवेह गतश्चन्द्रार्द्धचूडताम् ॥ १६ ॥

अर्थ–पुरुषार्थरूपप्रयत्नसेही, त्रिलोकके ऐश्वर्य्यसे उत्तम, कोई प्राणी (मनुष्य विशेष) इन्द्रपदवीको प्राप्त हुआ है ॥ १३ ॥ पुरुषार्थरूप प्रयत्नसेही कोई प्राणी चेतनका उल्लास शीघ्रही मनासनपर आरूढहोके ब्रह्माकी पदवीको प्राप्त होता है ॥ १४ ॥ सारभूत अपने पुरुषार्थको कोई पुरुष गरूडध्वज पुरुषोत्तम (विष्णु) पदको प्राप्त हुआ है ॥ १५ ॥ पौरुषरूप यत्नसेही, कोई पुरुष पार्वतीसे वेष्टित शरीर चन्द्रचूड श्रीमहादेवजीके पदको पहुंचगया है ॥ १६ ॥

प्राक्तनं चैहिकं चेति द्विविधं विद्धि पौरुषम् ॥ प्राक्तनाद्यतनेनाशु पुरुषार्थेन जीयते ॥१७॥ यत्नवद्भिर्दृढाभ्यासैः प्रज्ञोत्साहसमन्वितैः ॥ मेरवोऽपि निगीर्यंते कैव प्राक्पौरुषे कथा॥१८॥शास्त्रनियंत्रियंत्रितपौरुषपरमा पुरुषस्य पुरुषता या स्यात् ॥ अभिमतफलभरसिद्धयेभवति हि सैवान्यथा त्वनर्थायं ॥ १९ ॥ कस्यांचित्स्वयमात्मदुःस्थितिवशात्पुंसो दशायां शनैरंगुल्यग्रनिपीडितैकचुलुकादावाप बिन्दुर्बहुः॥कस्यांचिज्जलराशिपर्वतपुरद्वीपान्तरालीकृताभर्तव्योचितसंविभागकरणेपृथ्वीन पृथ्वी भवेत् ॥ २० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये मुमुक्षुव्यवहार
पौरुषप्रकरणंनाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

अर्थ–पूर्वजन्मकृत, और इसजन्मकृत, दो प्रकारका पौरुष है, तिसमें इसजन्मके पौरुषसे पूर्वजन्मका पौरुष पराजित होजाता है ॥ १७ ॥ यत्नवान् प्रज्ञाओंके उत्साहसहित, और दृढ विश्वासवाले प्रत्यक्ष अधिकारी देवता भावको प्राप्त पुरुष अन्नके मेरुकोभी निगल जाते हैं, पूर्वजन्मके पौरुषके जीतनेकी क्या कथा है ॥ १८ ॥ जिस पुरुषका पुरुषार्थ शास्त्रके अनुकूल है, वही अभिमतफलसमूहोंकी सिद्धिके लिये होता है, और शास्त्रके विरुद्ध पुरषार्थ अनर्थके लिये होता है ॥ १९ ॥ पुरुष अपने शास्त्रीयप्रयत्नके शिथिल होनेसे और असत्मार्गमें स्थितके कारण किसी रोगबन्धन वा दारिद्र्यादि दशामें, हस्त आदिके पराधीन होनेसे अंगुलीके अग्रभागसे निचोडके मुखमें डाले हुये जलके बिन्दुकोभी बहुत अधिक मानता है, वही पुरुष शास्त्रीयप्रयत्नकी दृढतासे धर्म्यकी अधिकतासे प्रियव्रत आदिके सदृश सातों द्वीपकी अधिपत्यदशामें पालनीय पुत्रादिके लिये, समुद्रादि सीमा (हद) मध्यमें करने उचित विभाग करनेमें इस विशालपृथ्वीकोभी अधिक नहीं मानता ॥ २० ॥

इत्यार्षे वसिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे
मुमुक्षव्यवहारप्रकरणे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

पुरुषार्थकी प्रबलतासे फलसिद्धि अवश्य होती है और दैव वा प्रारब्ध पुरुषार्थरूपही है इसविषयमें युक्ति और दृष्टान्तका वर्णन इस ५ सर्गमें कियागया है.

श्रीवसिष्ठ उवाच ॥ प्रवृत्तिरेव प्रथमं यथाशास्त्रविहारिणाम् ॥ प्रभेव वर्णभेदाना साधनी सर्वकर्मणाम् ॥ १ ॥ मनसा वांछ्यते यच्च यथाशास्त्रं न कर्मणा ॥ साध्यते मत्तलीलाऽसौ मोहनी नार्थसाधनी ॥ २ ॥ यथा संयतते येन तथा तेनानुभूयते ॥ स्वकर्मैवेति चास्तेऽन्या व्यतिरिक्ता न दैवदृक् ॥ ३ ॥ उच्छास्त्रं शास्त्रितं चेति द्विविधं पौरुषं स्मृतम् ॥ तत्रोच्छास्त्रमनर्थाय परमार्थाय शास्त्रितम् ॥ ४ ॥

अर्थ–श्रीवसिष्ठजी बोले–शास्त्रके अनुकूल मन,वाणी और शरीरसे व्यवहार करनेवाले पुरुषोंकी प्रवृत्तिही सबकार्य्योंको ऐसे सिद्धकरती है जैसे नील पीत आदि वर्णोंकी प्रतीतिको प्रकाश ॥ १ ॥ जो पुरुष मनसेही कार्य्य सिद्धिकरनाचाहता है,और शास्त्रोक्त कर्मसे नहींकरता वह केवल मोहकरानेवाली उन्मत्तोंकी चेष्टाही करता है नकि अर्थसाधनकी चेष्टा ॥ २ ॥ जो जैसा प्रयत्न करता है, वह उसके फलको वैसाही अनुभव करता है,अपने कर्मसे पृथक् दैव वा प्रारब्ध कुछ नहीं है ॥ ३ ॥ शास्त्रके विरुद्ध और शास्त्रके अनुकूल दोप्रकारका पुरुषार्थ है उनमें शास्त्रविरुद्ध अनर्थकेलिये होताहै, और शास्त्रके अनुकूल परमपुरुषार्थके लिये होता है ॥ ४ ॥

हुडाविव युद्ध्येते पुरुषार्थौ समासमौ ॥ प्राक्तनश्चैहिकश्चैव शाम्यत्यत्राल्पवीर्यवान् ॥ ५ ॥ अतःपुरुषयत्नेन यतितव्यं यथा तथा॥ पुंसा तंत्रेण सद्योगाद्येनाश्वद्यतनो जयेत् ॥ ६ ॥ द्वौ हुडाविव युध्येते पुरुषार्थौसमासमौ ॥ आत्मीयश्चान्यदीयश्च जयत्यतिबलस्तयोः ॥ ७ ॥ अनर्थःप्राप्यते यत्र शास्त्रितादपि पौरुषात् ॥ अनर्थकर्तृ बलवत्तत्र ज्ञेयं स्वपौरुषम् ॥ ८ ॥

अर्थ–पूर्वजन्मके और इसजन्मके कभी समान और कभी असमान पुरुषार्थ दो मेढोंके समान लडते हैं,इन मेंसे जो अल्पबलवाला होता है वह हार जाता है ॥ ५ ॥ इसलिये पुरुषको उचित है कि शास्त्रोक्तप्रयत्नसे, सत्तमसहात्माओंके संबन्धद्वारा ऐसा उद्योग करे कि इसजन्मका पौरुष पूर्वजन्मके पौरुषको शीघ्र जीतले ॥ ६ ॥ अपना और अन्यका समान और असमान पुरुषार्थ दोमेढोंके समान युद्धकरते हैं उनमेसे अधिक बलवान् विजयी होता है, इससे यह बात सिद्धहुई कि मनुष्योंके देव, ऋषि, और पितृ तीन ऋण होते हैं ऐसा वेदमें लिखा है सोमनुष्योंका परमार्थ मोक्ष जो है वो देवताओंको प्रिय नहीं है क्योंकि वे तो मनुष्योंसे यज्ञादिकराके अपनी तृप्ति चाहते हैं सो मनुष्य विवेक वैराग्यादिद्वारा जब ज्ञानार्थ प्रबल पौरुष करेगा, तो उससे भिन्न देवताओंका पुरुषार्थ पराजित होजायगा ॥ ७ ॥ जहांपर शास्त्रीयप्रयत्नसेभी रोगादिअनर्थकी प्राप्ति हो वहां अनर्थकारी अपना पौरुष प्रबल जानो, और उसको जीतनेकेलिये परमार्थकारी अधिक पौरुष करो ॥ ८ ॥

परं पौरुषमाश्रित्य दंतैर्दंतान् विचूर्णयन् ॥ शुभेनाशुभमुद्युक्तं प्राक्तनं पौरुषं जयेत् ॥ ९ ॥ प्राक्तनः पुरुषार्थोऽसौ मां नियोजयतीति धीः ॥ बलादधस्पदी कार्या प्रत्यक्षादधिका न सा ॥ १० ॥ तावत्तावत्प्रयत्नेन यतितव्यंसुपौरुषम् ॥ प्राक्तनं पौरुषं यावदशुभं शाम्यति स्वयम् ॥ ११ ॥ दोषः शाम्यत्यसन्देहं प्राक्तनोऽद्यतनैर्गुणैः ॥ दृष्टांतोऽत्र ह्यस्तनस्य दोषस्याद्य गुणैः क्षयः ॥ १२ ॥

अर्थ–परमपुरुषार्थका आश्रय लेके दांतोंसे दांत पीसकर शुभ पौरुषसे, विघ्न करनेकेलिये उद्यक्त जो अशुभ पौरुष है उसको जीतलेनाचाहिये ॥ ९ ॥ पूर्वजन्मका कर्म हमको इसकार्य्यमें नियुक्त करता है इसको प्रबलप्रयत्नसे त्यागदेनाचाहिये क्योंकि वह प्रत्यक्षसे अधिक नहीं है, प्रत्यक्षमें एक पौरुष दूसरेको जीतलेता है ऐसे ही पूर्वपौरुषभी जीताजासकता है ॥ १० ॥ उत्तमपौरुषकेअर्थ तबतक प्रयत्न करतेही रहनाचाहिये जबतक अशुभ पौरुष स्वयं न शान्त होजाय ॥ ११ ॥ इसजन्मके शुभपौरुषसे पूर्वजन्मका अशुभपौरुष निस्संदेह शान्त होजाताहै इसमें दृष्टान्त यह है कि जैसे गतदिनका अजीर्ण आजके लंघन वा औषध आदिसे शान्त होजाता है ॥ १२ ॥

असद्दैवमधःकृत्वा नित्यमुद्रिक्तया धिया ॥ संसारोत्तरणं भूत्यै यतेताधातुमात्मनि ॥ १३ ॥ न गंतव्यमनुद्योगैः साम्यं पुरुषगर्दभैः ॥ उद्योगस्तु यथाशास्त्रं लोकद्वितयसिद्धये ॥ १४ ॥ संसारकुहरादस्मान्निर्गंतव्यं स्वयं बलात् ॥ पौरुषं यत्नमाश्रित्य हरिणेवारिपंजरात् ॥ १५ ॥ प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत देहं नश्वरमात्मनः ॥ संत्यजेत्पशुभिस्तुल्यं श्रयेत्सत्पुरुषोचितम् ॥ १६ ॥

अर्थ–असत्यदैवको नीचेकरके नित्यही अधिक प्रयत्नसहित आत्मामें संसारसागरसे पारहोनेका उपाय धारण करनेकेलिये शम दम श्रवण और मनन आदि सम्पत्तिके अर्थ पुरुषार्थ करनाचाहिये ॥ १३ ॥ गर्दभतुल्य पुरुषोंके समान उद्योगरहित कदापि नहीं रहनाचाहिये, किन्तु दोनों लोक (स्वर्ग और मोक्ष) की सिद्धिकेलिये शास्त्रके अनुकूल उद्योग सदा करनाचाहिये ॥ १४ ॥ पौरुषरूपी उपायका आश्रय लेके इससंसाररूपी गर्त (गढे) से स्वयं वकसे ऐसे निकलनाचाहिये जैसे शत्रुओंके पिंजरेसे सिंह निकलता है ॥१५॥ प्रतिदिन इस बातका ध्यान करनाचाहिये कि यह शरीर नश्वर है इसलिये पशुओंकेसदृश जो विषयभोगादिमें आसक्तहैं उसे त्यागनाचाहिये और मनुष्यकेयोग्य विद्वान् महात्माओंका समागम और सत्शास्त्रका आश्रय लेनाचाहिये ॥ १६ ॥

किंचित् कान्तान्नपानादि कलिलं कोमलं गृहे ॥ व्रणे कीट इवास्वाद्य वयःकार्यं न भस्मसात् ॥ १७ ॥ शुभेन पौरुषेणाशु शुभमासाद्यते फलम् ॥ अशुभेनाशुभं नित्यं दैवं नाम न किंचन ॥ १८ ॥ प्रत्यक्षमानमुत्सृज्य योऽनुमानमुपैत्यसौ ॥ स्वभुजाभ्यामिमौ सर्पाविति प्रेक्ष्य पलायते ॥ १९ ॥ दैवं संप्रेरयति मामिति दग्धधियां सुखम् ॥ अदृष्टश्रेष्ठदृष्टीनां दृष्ट्वा लक्ष्मीर्निवर्तते ॥ २० ॥

अर्थ–गृहमे जो स्त्री अन्नपानादि चिक्कण और कोमल हैं उन्हींमें फसके घावमे कीटके समान आपना यौवन नष्ट नहीं करनाचाहिये ॥ १७ ॥ शुभपौरुषसे शुभफल शीघ्र नित्यही प्राप्तहोताहै, और अशुभसे अशुभ, पूर्वजन्मके शुभाशुभ पौरुषके सिवाय दैव [प्रारब्ध] कोई वस्तु नहीं है ॥ १८ इसजन्मके अदृष्ट शुभ और अशुभ पौरुषका प्रत्यक्ष प्रमाण वेद है. और दृष्ट शुभाशुभके नेत्रआदि, इसप्रकार सर्वव्यवहारसाधक प्रत्यक्ष श्रुतिप्रमाणको त्यागकर अनुमानसिद्ध पूर्वजन्मका पौरुषरूप प्रारब्ध विघ्न करेगा, फल प्राप्त होगा या नहीं इस संदेहमें पडके जो इस जन्मके पौरुषसे अलग होजाताहै, वह जैसे कोई पुरुष अपनी भुजाओंकोही सर्प समझके उनसे भयभीत होके भागताहै ऐसाहै ॥ १९ ॥ पौरुषसेही ब्राह्मणत्वादि बडे २ फल प्राप्तकरनेवाले श्रेष्ठ विश्वामित्रआदिकी दृष्टिको जिन्होंने नहीं देखा, दैव हमको प्रेरणाकरताहै ऐसे नष्टबुद्धिपुरुषोंके मुखको देखके ऐहिक तथा पारलौकिक दोनों लोकके सुखकी देनेवाली लक्ष्मी भागतीहै ॥ २० ॥

तस्मात्पुरुषयत्नेन विवेकं पूर्वमाश्रयेत् ॥ आत्मज्ञानमहार्थानि शास्त्राणि प्रविचारयेत् ॥ २१ ॥ चित्ते चिन्तयतामर्थं यथाशास्त्रं निजेहितैः ॥ असंसाधयतामेव मूढानां धिग्दुराशितम् ॥ २२ ॥ पौरुषं च न वानन्तं न यत्नमभिवांछयते ॥ न यत्नेनापि महता प्राप्यते रत्नमश्मतः ॥ २३ ॥ यथा घटः परिमितो यथा परिमितः पटः ॥ नियतः परिमाणस्थः पुरुषार्थस्तथैव च ॥ २४ ॥

अर्थ—इसकारण प्रथमही नित्यानित्य वस्तुविवेक १ इहामुत्रार्थफलभोगविराग २ शमादिषट् सम्पत्ति ३ और मोक्षकी इच्छा ४ इन चारों साधनोंका आश्रय पौरुषरूप यत्नसे लेनाचाहिये, और गंभीरअर्थयुक्त वेदान्तादिशास्त्रोंको विचारनाचाहिये ॥ २१ ॥ शास्त्रके अनुकूल श्रवण मनन आदि चेष्टासे आत्मतत्वका चिन्तन जो चित्तमें पाके जो नहींकरते, वे परमपुरुषार्थको नहीं करते ऐसे मूढपुरुषोंको भोगादिकी इच्छाको धिक्कार है, क्योंकि–मनुष्यजन्मत्वप्राप्तिके लिये अपने कल्याणके लिये यत्न न किया तो इससे अधिक शोककी क्या बात है ॥ २२ ॥ आत्मतत है, क्योंकि "ऐसे अनन्तपौरुष वा यत्नकी आवश्यकता नहीं, किन्तु आत्मतत्वसाक्षात्कारपर्यन्तही प्रयत्न अपेक्षित से करने योग्य हैं "प्रत्यक्षाऽवगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्" (यह आत्मतत्वसाक्षात्कारपर्य्यन्त नाशरहित सुखशल है उनको विनाश्रो) यह भगवत्का वाक्य है, यह वाक्य प्ररोचक नहीं है, क्योंकि–रत्नतत्वपरीक्षामें जो कुणसे परिमित है. इसीप्रकार महीं रत्नलाभ होता है ॥ २४ ॥ जिसप्रकार घटजलसे परिमित है, और पट दैर्घ्यादिप्रमास च सच्छास्त्रसत्संगसे पर आत्मतत्वसाक्षात्काररूपी फलकी अवधिमें पौरुषयत्नभी परिमित है ॥ २४ ॥

स्वरूपं पौरुषस्यैतदेवं न्य सदाचारैर्निजं फलम् ॥ ददातीत स्वभावोऽयमन्यथा नार्थसिद्धये ॥ २५ ॥ दुःखार्त्ता अप्यन्ये पुरुषोत्तमाः ॥ हरन्नरः ॥ याति निष्फलयत्नत्वं न कदाचन कश्चन ॥ २६ ॥ दैन्यदारिद्र्य- शास्त्रसत्संगमादिभिः ॥ गुणैः पुरुः पौरुषेणैव यत्नेन याता देवेन्द्रतुल्यताम् ॥ २७ ॥ आबाल्यादलमभ्यस्तैः

अर्थ--वह पौरुषयत्नभी यदि सत्शास्त्र, सुयत्नेन स्वार्थः संप्राप्येत यतः ॥ २८ ॥

सका स्वभाव है, अन्यथा अर्थकी सिद्धि नहीं होतीसंग, और सदाचारसहित होता है तो अपना फल देता है यह उपौरुषसे व्यवहार करेनवाला कोईभी मनुष्य कभी निष्फल ॥ २५ ॥ यह सदाचारादिसहित पौरुषका स्वरूपहै, इसप्रकार नहीं होता ॥ २६ ॥ दैन्यऔर दारिद्र्यके दुःखसेपीडि-

तभी बहुतसे उत्तम पुरुष पौरुष रूपयत्नसे देवेन्द्रके तुल्य होगये हैं ॥ २७ ॥ यदि कहो कि जो अधिक श्रमकी अपेक्षा नहीं है तो अन्तमे करलेंगे, अभी क्या आवश्यक है नहीं क्योंकि बाल्यअवस्थासे अत्यन्त अभ्यास कियेहुये शास्त्र और सत्समागमादिगुणोंकेद्वाराही पौरुषसे स्वार्थ सिद्ध होता है ॥ २८ ॥

इति प्रत्यक्षतो दृष्टमनुभूतं श्रुतं कृतम् ॥ दैवात्तमिति मन्यन्ते ये हतास्ते कुबुद्धयः ॥ २९ ॥ आलस्यं यदि न भवेज्जगत्यनर्थः को न स्याद्बहुधनको बहुश्रुतो वा॥ आलस्यादियमवनिः ससागरान्ता सम्पूर्णा॥ नरपशुभिश्च निर्धनैश्च ॥ ३० ॥ बाल्ये गतेऽविरतकल्पितके विलोले दोर्दण्डमण्डितवयः प्रभृति प्रयत्नात् सत्संगमैः पदपदार्थविशुद्धबुद्धिः कुर्यान्नरः स्वगुणदोषविचारणानि ॥ ३१ ॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ इत्युक्तवत्यथ मुनौ दिवसो जगाम सायन्तनायविधयेऽस्तमितो जगाम ॥ स्नातुं सभाकृतनमस्करणा जगाम श्यामाक्षये रविकरेण सहाजगाम ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकिये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे पौरुषस्थापनं नाम पंचमःसर्गः ॥ ५ ॥

अर्थ—यह प्रत्यक्ष देखा है, अनुभव किया है, सुना है, और कियाभी है. सब दैवके आधीन है, ऐसा जो मानते हैं उनकी बुद्धियोंको नष्टही जानो ॥ २९ ॥ यदि इस संसारमें आलस्य न होता तो कौन बडा धनी अथवा बडा विद्वान् न होता. आलस्यकेही कारणसे समुद्रान्त यह पृथ्वी आत्मज्ञान रहित नर पशुओंसे और निर्धनीमनुष्योंसे पूर्ण है. ॥ ३० ॥ चपलबालकोंसे कल्पित क्रीडाओंसे चंचल बाल्यअवस्थाके बीतजानेपर, गुरुशुश्रूषाके समर्थ भुजाओंसे शोभित यौवनअवस्थाके आरम्भसेही महात्मा विद्वानोंके सत्संगद्वारा पदपदार्थमें कुशल होके अपने आत्माके शान्ति आदि गुणोंका और रागादि दोषोंका विचार करे कि, शान्ति आदिगुण हममें कितने आये और रागादि दोष कहांतक हैं, इस विचारसे जो कुछ गुणोंमें न्यूनता हो उनको सम्पादन करे, और जो दोष हैं उनको त्याग दे ॥ ३१ ॥ देवदूत अरिष्ठनेमि राजासे कहता है कि—जब श्री वाल्मीकीजी वासिष्ठका इतना कथन भरद्वाजजीसे कह चुके तो दिन समाप्त हुआ और सूर्यास्तभी होगया और सम्पूर्ण सभा मुनीश्वरको नमस्कार करके सन्ध्या अग्निहोत्रादि सायंकालका कृत्य करनेके लिये विदा हुई और प्रातःकाल सूर्य किरणके साथ पुनः प्राप्त ३२ ॥ इति प्रथमो दिवसः ।

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे पौरुषस्थापननाम पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

जहां पर दैव (प्रारब्ध) प्रबल है वहांभी प्रधान पौरुष है. क्योंकि जिसको बलवान् दैव कहते हैं वह अपना किया हुआ पूर्वजन्मका पौरुष वा पुरुषार्थही है, इस विषयका वर्णन ६ सर्गमे कियागया है.

श्रीवसिष्ठ उवाच ॥ तस्मात्प्राक् पौरुषाद्दैवं नान्यत्तत्प्रोज्झ्य दूरतः ॥ साधुसंगमसच्छास्त्रैर्जीवमुत्तारयेद्बलात् ॥ १ ॥ यथा यथा प्रयत्नः स्याद्भवेदाशु फलं तथा ॥ इति पौरुषमेवास्ति दैवमस्तु तदेव च ॥ २ ॥ दुःखाद्यथा दुःकाले हा कष्टमिति कथ्यते ॥ हा कष्टशब्दपर्यायस्तथा हा दैव मित्यपि ॥ ३ ॥ प्राक्स्वकर्मेतराकारं दैवं नाम न विद्यते ॥ बालः प्रबलपुंसेव तज्जेतुमिह शक्यते ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—इसकारणसे पूर्वजन्मके पौरुषसे पृथक् दैव कोई पदार्थ नहीं है, इसलिये दैवको दूरसेही त्यागकर संसारसे जीवको अपना उद्धार बलसे करना चाहिये ॥ १ ॥ जैसा अधिक प्रयत्न होगा वैसाही शीघ्र फल होगा इसीका नाम पौरुष है और इसीको दैवभी कहते हैं ॥ २ ॥ दुःखसे जैसे दुःखके समयमें "हा कष्ट" ऐसा कहाजाता है इसीप्रकार "हा कष्ट" इस शब्दका पर्याय उसी अर्थका दूसरा शब्द "हा दैव" यहभी है. यथार्थमें वह पूर्वजन्मके पौरुषका फल पुरुषार्थ हैं ॥ जिसको दैव कहते हैं वह पूर्वजन्मके कर्मके स्वरूपको छोडके और कुछ नहीं है, सो जैसे प्रबल पुरुष बालकको जीतता हैं ऐसेही इसजन्मके प्रबलपुरुषार्थसे वह जीतनेके योग्य है ॥ ४ ॥

ह्यस्तने दुष्ट आचार आचारेणाद्यचारुणा ॥ यथाद्य शुभतामेति प्राक्तनं कर्म तत्तथा ॥ ५ ॥ तज्जयाय यतन्ते ये न लोभलवलम्पटाः ॥ ते दीनाः प्राकृता मूढाः स्थिता दैवपरायणः ॥ ६ ॥ पौरुषेण कृतं कर्म दैवाद्यदभिनश्यति ॥ तत्र नाशयितुर्ज्ञेयं पौरुषं बलवत्तरम् ॥ ७ ॥ यदेकवृन्तफलयोरथैकं शून्यकोटरम् तत्र प्रयत्नः स्फुरितस्तथा तद्रससंविदः ॥ ८ ॥

अर्थ-जिसप्रकार गतदिनका दुष्ट आचार आजके उत्तम आचारसे शुभदशाको प्राप्त होताहै, इसीप्रकार पूर्वकर्म्मभी इसजन्मके कर्म्मसे उत्तम दशाको प्राप्त होताहै ॥ ५ ॥ उस पूर्वजन्मकृत कर्मको जीतनेके लिये जो विषयलम्पट मनुष्य यत्न नहीं करते, और दैवमें परायण रहते हैं, वेही दीन पामर और महामूढ हैं ॥ ६ ॥ इसजन्मका कियाहुआ कर्म यदि दैवसे नष्ट होजाय तो वहांभी नाश करनेवाला पूर्वजन्मका पौरुषही अधिक बली जानना चाहिये, इससे उससेभी अधिक बलवान् पौरुष करके उसे जीतना चाहिये ७ ॥ एक वृन्त (गुच्छे) के दो फलोंमें जहां एक फल रसशून्य है वहां उस फलके खानेवाले पुरुष वा कीटआदिका पूर्वजन्मको यत्नही रसके विनाशके लिये स्फुरित हुआ है ॥ ८ ॥

यत्प्रयान्ति जगद्भावाः संसिद्धः अपि संक्षयम् ॥ क्षयकारकयत्नस्य ह्यत्र ज्ञेयं महद्बलम् ॥ ९ ॥ द्वौ हुडाविव युद्धयते पुरुषार्थौ परस्परम् ॥ य एव बलवांस्तत्र स एव जयति क्षणात् ॥ १० ॥ भिक्षूको मंगलेभेन नृपो यत्क्रियते बलात् ॥ तदमात्येभपौराणां प्रयत्नस्य बलं महत् ॥ ११ ॥ पौरुषेणान्नमाक्रम्य यथा दंतेन चूर्ण्यते ॥ अन्यः पौरुषमाश्रित्य तथा शूरेण चूर्ण्यते ॥ १२ ॥

अर्थ-जहांपर जगतमें संसिद्ध पदार्थभी क्षयको प्राप्त होजाते हैं, वहांभी क्षयकारक यत्न बलवान है ऐसा जानना चाहिये ॥ ९ ॥ दो मेंढोंकें समान पुरुषार्थ परस्पर युद्ध करते हैं, उनमें जो बलवान् होता है. वही क्षणभरमें दूसरेको जीतलेता है ॥ १० ॥ राजवंशके अभावमें जो नगरनिवासी, अमात्य (मंत्री) आदि जो अलंकृत गज आदिसे एक भिक्षुकको राजा अपने बलसे क्षणभरमें बनादेते हैं, वहां मंत्री, नगरनिवासी, और हस्ती आदिकोंका प्रयत्न बली जानना चाहिये ॥ ११ ॥ जैसे पुरुपार्थका आश्रय लेकर अन्न दांतसे चूर्ण किया जाता है, इसीप्रकार पुरुषार्थका आश्रय लेकर शूरवीर दूसरेको जीतलेता है ॥ १२ ॥

अन्नभूताहि महतां लघवो यत्नशालिनाम् ॥ यथेष्टं विनियोज्यन्ते तेन कर्मसु लोष्टवत् ॥ १३ ॥ शक्तस्य पौरुषं दृश्यमदृश्यं वापि यद्भवेत् ॥ तद्दैवमित्यशक्तेन बुद्धमात्मन्यबुद्धिना ॥ १४ ॥ भूतानां बलवद्भूतं यन्न दैवमिति स्थितम् ॥ तत्तेषामप्यधिष्ठातृ सतामेतत्स्फुटं मिथः ॥ १५ ॥ शास्त्रामात्येभपौराणामविकल्पा स्वभावधीः ॥ यासा भिक्षुकराज्यस्य कर्तृ धर्तृ प्रजास्थितेः ॥ १६ ॥

अर्थ-उद्योगशाली, महान पुरुषोंके सन्मुख जन अन्नके समान हैं, इसी हेतुसे मृत्तिकाके पिण्डकेसमान वे कामोंमें लगाये जाते हैं ॥ १३ ॥ समर्थपुरुषको चाहे दृश्य हो वा अदृश्य हो सब कुछ उसके लिये पुरुषार्थही है, उसीको अबुद्धि मूढपुरुष अपने आत्मामें दैव वा प्रारब्ध मानता है ॥ १४ ॥ समर्थ प्राणियोंमें जो अधिक बलवान् प्राणी हैं, वेही उनके ऊपर शासक राजा होते हैं, दैव कोई पदार्थ नहीं है, यहवात वर्तमान प्राणियोंमें स्पष्ट है ॥ १५ ॥ शास्त्र, मंत्री, हस्ती, और नगर निवासियोंकी एक मताकर बुद्धिही भिक्षुकको राजा बनाती है और वही प्रजाकी स्थितिको धारण करती है ॥ १६ ॥

भिक्षुको मंगलेभन नृपो यत्क्रियते क्वचित् ॥ प्राक्तनं पौरुषं तत्र बलवद्धापि कारणम् ॥ १७ ॥ ऐहिकाः प्राक्तनं हन्ति प्राक्तनोऽद्यतनं बलात् ॥ सर्वदा पुरुषस्पन्दस्तत्रानुद्वेगवान् जयी ॥ १८ ॥ द्वयोरद्यतनस्यैव प्रत्यक्षाद्बालिता भवेत् ॥ दैवं जेतुं यतो यत्नैर्बालो यूनेव शक्यते ॥ १९ ॥ मेघेन नीयते यद्वत्सरोपार्जिता कृषिः ॥ मेघस्य पुरुषार्थोऽसौ जयत्याधिकयत्नवान् ॥ २० ॥

अर्थ—अथवा मंगल हाथी आदिसे जो भिक्षुक कहीं राजा बनादिया जाता है, वहां उसका पूर्वजन्मका बलवान् पौरषही कारण है ॥ १७ ॥ इसजन्मका पुरुषार्थ पूर्वजन्मके पुरुषार्थको जीतलेता है, और वही प्रयत्न विजयी होता है जो घबराके नहीं छोड दियाजाता, और ऐसा प्रयत्न इसीजन्मका है. क्योंकि पूर्वजन्मका तो समाप्त होगया है और इसजन्मका तो चलरहा है ॥ १८ ॥ दोनों पुरुषार्थोंमें इसजन्मका पुरुषार्थ पूर्वजन्मके पुरुषार्थके जीतनेको ऐसा समर्थ है जैसे युवा (जवान) पुरुष बालकको ॥ १९ ॥ जहांपर प्रबल मेघसे वर्षभरकी उत्पन्न किई हुई कृषि (खेती) नष्ट होजाती है वहांपर मेघका पुरुषार्थ प्रबल समझना चाहिये यहांदिखा अन्यस्थानमेंभी है जो अधिक बलवान् होता है वही जीतता है ॥ २० ॥

क्रमणोपार्जितेऽप्यर्थे नष्टे कार्या न खेदिता ॥ न बलं यत्र मे शक्तं तत्र का परिदेवना ॥ २१ ॥ यत्र शक्नोमि तस्यार्थे यदि दुःखं करोम्यहम् ॥ तद्मारितमृत्योमे युक्तं प्रत्यहरोदनम् ॥ २२ ॥ देशकालक्रियाद्रव्यवशतो विस्फुरंत्यमी ॥ सर्व एव जगद्भावा जयत्यधिकयत्नवान् ॥ २३ ॥ तस्मात्पौरुषमाश्रित्य सच्छास्त्रैः सत्समागमैः ॥ प्रज्ञाममलतां नीत्वा संसारजलधिं तरेत् ॥ २४ ॥

अर्थ—क्रमसे उपार्जन किये हुये द्रव्यके नष्ट होजानेपर खेद करना योग्य नहीं क्योंकि जहांपर पुरुषार्थ हमारा समर्थ नहीं है वहां शोक करनेका क्या प्रयोजन, कहीं पौरुषके निष्फल होनेपर भी शोकसे उसे छोडना न चाहिये किंतु पुनः उद्योगमें लगा रहेना चाहिये ॥ २१ ॥ जो नहीं करसके यदि उसके लियेभी दुःख करें तो जबतक मृत्युको हम न जीतलें तबतक प्रतिदिन रुदन करना क्या हमको उचित नहीं है ॥ २२ ॥ देश, काल, क्रिया, और द्रव्यके आधीन सब जगत्के पदार्थ स्फुरित होरहेहैं, जो अधिकबलवान् होताहै ॥ वही जीतताहै, अर्थात् जिस देशकाल आदिमें यत्न निष्फल हो उसको छोड के दूसरे देश, काल, क्रिया, और द्रव्यसे यत्न करनाचाहिये, तात्पर्य्य यह कि जबतक कार्य्यकी सिद्धि न हो तबतक यत्न करतेही रहना योग्य है, विश्वामित्रजीको पूर्व आदि तीनदिशामें विघ्न और उत्तरादिशामें सिद्धि प्राप्तहुई ॥ २३ ॥ इसलिये पुरुषार्थका आश्रय लेके, सत्शास्त्रोंसे और महात्मा विद्वानोंके संगसे बुद्धिको निर्मल करके संसाररूपी समुद्रसे पार हो जाय ॥ २४ ॥

प्राक्तनश्चैहिकश्चेमौ पुरुषार्थौ फलद्रुमौ ॥ संजातौ पुरुषारण्ये जयत्यभ्यधिकस्तयोः ॥ २५ ॥ कर्म यः प्राक्तनं तुच्छं न निहंति शुभेहितैः ॥ अज्ञो जन्तुरनीशोऽसावात्मनः सुखदुःखयोः ॥ २६ ॥ ईश्वरप्रेरितो गच्छेत्स्वर्गं नरकमेव वा ॥ स सदैव पराधीनः पशुरेव न संशयः ॥ २७ ॥ यस्तू दारचमत्कारः सदाचारविहारवान् ॥ स निर्याति जगन्मोहान्मृगेन्द्रः पंजरादिव ॥ २८ ॥

अर्थ—पूर्वजन्म और इस जन्मके दोनों पुरुषार्थरूपी फल उत्पन्नकरनेमें समर्थ वृक्ष पुरुषरूपी जंगलमें उत्पन्न हुये हैं; उनमेंसे एकको मूलसे छेदन करनेपर दूसरेकी उत्पत्ति रूप विजय होता है ॥ २ ॥ जो प्राणी पूर्वजन्मके तुच्छकर्मको शुभचेष्टाओंसे नष्ट नहीं करता वह पराधीन जन्तु ईश्वरप्रेरित सदा स्वर्ग या नरकमें जायाकरता है ॥ २६ ॥ जो अपने पुरुषार्थसे पूर्वजन्मके बन्धनकारी पुरुषार्थको नहीं जीतता वह ईश्वरकी प्रेरणासे स्वर्ग या नरक में जाया करताहै, और वह सदा पराधीन पशुही है इसमें संशय, नहीं है ॥ २७ ॥ जो पुरुष सदा प्रयत्न करनेमें कुशल है और नित्यही सज्जन ज्ञानी महात्माओंके आचारमें बिहार करता है वह जगत्के मोहसे ऐसे निकल जाता है जैसे पिंजरेसे सिंह ॥ २८ ॥

कश्चिन्मां प्रेरयत्येवमित्यनर्थकुकल्पने ॥ यः स्थितोऽदृष्टमुत्सृज्य त्याज्योऽसौ दूरतोऽधमः ॥ २९ ॥ व्यवहारसहस्राणि यान्युपायान्ति यान्ति च ॥ यथाशास्त्रं विहर्तव्यं तेषु त्यक्त्वा सुखासुखे ॥ ३० ॥ यथाशास्त्रमनुच्छिन्नां मर्यादां स्वामनुज्झतः ॥ उपतिष्ठन्ति सर्वाणि रत्नान्यम्बुनिधाविव ॥ ३१ ॥ स्वार्थप्रापककार्यैकप्रयत्नपरता बुधैः ॥ प्रोक्ता पौरुषशब्देन सासिद्ध्यै शास्त्रयंत्रिता ॥ ३२ ॥

अर्थ—कोई मुझे प्रेरणा करताहै ऐसी अनर्थकी कल्पनामें प्रयत्नको छोडके जो स्थित है, उस अधमप्राणीको दूरसेही त्यागना उचित है ॥ २९ ॥ सहस्रों व्यवहार जिनमें लाभ अथवा हानि होतीहै उनमें राग द्वेष छोडके शास्त्रके अनूकूल प्रयत्न करनाचाहिये ॥ ३० ॥ शास्त्रके अनुकूल अखण्डित अपनी मर्यादाको जो नहीं त्यागता, उसको संपूर्ण अभीष्ट ऐसे प्राप्त होतेहैं जैसे समुद्रमें सब रत्न ॥ ३१ ॥ शास्त्रके अनुकूल संपूर्ण दुःखोंकी निवृत्ति और निरतिशयसुखकी प्राप्तिके लिये जो अवश्य कर्तव्य साधन चतुष्टयसंपति और श्रवणमननादि साधन है उनमें सदा आलस्य त्यागके तत्पर रहना, पण्डितजन इसीको पौरुष इस शास्त्रमें कहतेहैं, और उसीसे परमपुरुषार्थकी सिद्धि होतीहै ॥ ३२ ॥

क्रियया स्पन्दधर्मिण्या स्वार्थसाधकता स्वयम् ॥ साधुसंगमसच्छास्त्रतीक्ष्णयोन्नीयते धिया ॥ ३३ ॥ अनन्तं समतानन्दं परमार्थं विदुर्बुधाः ॥ स येभ्यः प्राप्यते नित्यन्ते सेव्याः शास्त्रसाधवः ॥ ३४ ॥ देवलोकादिहागत्य लोकद्वयहितं भवेत् ॥ प्राक्तनं पौरुषं तद्वै दैवशब्देन कथ्यते ॥ ३५ ॥ तद्यु कमे तदेतस्मिन्नास्ति नापवदामहे ॥ मूढैःप्रकल्पितं दैवं मन्यन्ते ये क्षयं गताः ॥ ३६ ॥

अर्थ—देह आदिसे गुरुशुश्रूषा तथा श्रवणआदि क्रियासे साधुसमागम और सत् शास्त्रके अभ्यासद्वारा तीव्रबुद्धिसे जो आत्माका उद्धार करना है इसीका नाम "स्वार्थसाधकता" है ॥ ३३ ॥ अज्ञानकी निवृत्तिसे विषमता दोषकी निवृत्तिद्वारा जो सम परिपूर्ण आत्मज्ञानसे अनन्त परमानन्दकी प्राप्ति है उसीको पण्डितजन "परमार्थ" कहते हैं. वह परमार्थ जिन शास्त्र ज्ञानसम्पन्न साधुओंसे प्राप्तहोताहै उनकी नित्यही सेवा करनी उचित हैं ॥ ३४ ॥ जो दोनों लोकका हितकारी पौरुष है और देवलोकके भोगसे शेष रहताहै देवलोकसे आके इसलोकमें भोगकेलिये स्थित है उसीको "दैव" शब्दसे कहतेहैं ॥ ३५ ॥ वह पौरुष ठीक है, वह नहीं है यह हम नहीं कहते, और न उसीकी निन्दा करतेहैं, किंतु मूढोंने जो पुरुषार्थसे भिन्न "दैव" की कल्पना की है और उसीके भरोसे पुरुषार्थको छोड देतेहैं, उनके नष्टजनों पर शोक करतेहैं ॥ ३६ ॥

नित्यं स्वपौरुषादेव लोकद्वयहितं भवेत् ॥ ह्यस्तनी दुष्क्रियाभ्येति शोभां सत्क्रियया यथा ॥ ३७ ॥ अद्यैवं प्राक्तनी तस्माद्यत्नात्कार्यवान् भवेत् ॥ करामलकवद्दृष्टं पौरुषादेव तत्फलम् ॥ मूढाः प्रत्यक्षमुत्सृज्य दैवमोहे निमज्जति ॥ ३८ ॥ सकलकारणकार्यविवर्जितं निजविकल्पबलादुपकल्पितम् ॥ तदनपेक्ष्य हि दैवमसन्मयं श्रय शुभाशयपौरुषमात्मनः ॥ ३९ ॥ शास्त्रैः सदाचरविजृम्भितदेशधर्मैर्यत्कल्पितं फलमतीव चिरप्ररूढम् ॥ तस्मिन् हृदि स्फुरति चोपनमेति चित्तमंगावली तदनुपौरुषमेतदाहुः॥ ४०॥

अर्थ-सदा अपने पुरुषार्थसेही दोनों लोकोंको हित होता है, जैसे गतदिनका दुष्कर्म आजकी सत्क्रियासे शोभाको प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥ इसीप्रकार इसजन्मकी सत्क्रियासे पूर्वजन्मका दुष्कर्म शोभित होता है, इसकारणसे जो उद्योगसे प्रयत्न करता है उसको पुरुषार्थसे फलकी सिद्धि करामलकके समान है मूढ इस पुरुषार्थ सिद्ध प्रत्यक्षफलको त्यागकर वृथा दैवरूपी अज्ञानमें डूबता है ॥ ३८ ॥ हे शुभाशय रामजी! इसकारणसे अपनेंही विकल्पसे कल्पित, सम्पूर्ण कारण और प्रयोजनसे शून्य, और असत्रूप जो "दैव" है उसको त्यागकर अपने पुरुषार्थका आश्रय करो ॥ ३९ ॥ अति प्रसिद्धशास्त्रोंसे प्रमाणित जो सज्जनोंको आचारसे चित्तकी शुद्धिरूप वा ज्ञानरूप फल है, उसकी जब हृदयमें अति उग्र अभिलाषा हो और उस अभिलाषाके अनुसार उधर चित जाय, और उसके अनन्तर श्रवण वाणी, हस्तपाद आदि शरीर, श्रवण मनन आदिमें प्रवृत्त हो इसीको पौरुष कहते हैं ॥ ४० ॥

बुध्वैव पौरुषफलं पुरुषत्वमेतदात्मप्रयत्नपरतैव सदैव कार्या ॥ नेयाः ततःसफलतां परमाथ सौ सच्छास्त्रसाधुजनपंडितसेवनेन ॥ ४१ ॥ दैवपौरुषविचारचारुभिश्चेदमाचरितमात्मपौरुषम् ॥ नित्यमेव जयतीति भावितैः कार्य आर्यजनसेवयोद्यमः ॥ ४२ ॥ जन्मप्रबन्धमयमामयमेष जीवो बुध्वैहिकं सहजपौरुषमेव सिद्ध्यै ॥ शान्तिं नयत्ववितथेन वरौषधेन मृष्टेन तुष्टपरपंडितसेवनेन ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकिये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये मुमुक्षुव्यवहार प्रकरणे दैवनिराकरणंनाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

अर्थ--पुरुषार्थसे आत्मज्ञान रूपफलकी प्राप्तिही पुरुषजन्मका फलहै, नहीं तो मनुष्यजन्म निरर्थक है, ऐसा जानके सदा आत्मज्ञानके प्रयत्नमें तत्पर रहना और आत्मज्ञान प्राप्तिद्वारा उस प्रयत्नको सफल करना उचित है यह सफलता सत् शास्त्र, और साधु पण्डितोंके सेवनसे प्राप्त होती है ॥ ४१ ॥ दैव क्या है ? और पौरुष क्या है ? इस विचारमें कुशल और शम दम आदि सम्पत्तिसहित जो मनुष्य है वे यदि पौरुष करें तो वह अवश्य दैवको जीतते हैं इसलिये अपना कल्याण चाहनेवाले अधिकारी पुरुषोंको श्रेष्ठ पण्डितजनोंकी सेवाद्वारा श्रवण मनन आदिसे उद्यम अवश्य करना चाहिये ॥ ४२ ॥ इसजन्ममें किया हुआ शास्त्रबोधित पुरुषार्थही सिद्धिके लिये समर्थ है, ऐसा जानके यह जीव जन्म और मरणरूपसंसाररोगकी शान्ति. आत्मज्ञानसे संतुष्ट उत्तमपण्डितोंके सेवन रूपी सत्य मिष्ट और श्रेष्ठ औषधिसे करे ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे वसिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे दैवनिराकरणंनाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

उदाहरण प्रत्युदाहरणके विस्तारसे तथा युक्तियोंसे पुरुषार्थकी प्रधानता इस ७ वें सर्गमें वर्णनकीगई है.

श्रीवसिष्ठ उवाच ॥ प्राप्य व्याधिविनिर्मुक्तं देहमल्पाधिवेदनम् ॥ तथात्मानि समादध्याद्यथा भूयो न जायते ॥ १ ॥ दैवं पुरुषकारेण यो निवर्तितुमिच्छति ॥ इह वामुत्र जगति स सम्पूर्णाभिवाञ्छितः॥२॥ ये समुद्योगमुत्सृज्य स्थिता दैवपरायणाः॥ ते धर्मं मर्थं कामंच नाशयन्त्यात्मविद्विषः ॥३॥संवित्स्पन्दो मनःस्पन्द ऐंद्रियस्पन्द एवच ॥ एतानि पुरुषार्थस्य रूपाण्येभ्यः फलोदयः॥ ४ ॥

अर्थ-रोगरहित शरीरको पाके तथा मानसिकपीडासे शून्य होके ऐसा उद्योग करे कि पुनः इस संसारमें जन्म न हो ॥ १ ॥ जोमनुष्य पुरुषार्थसे दैवको जीतनेकी इच्छा करता है उसको इसलोकमें वा परलोकमें सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण होतेहैं ॥ २॥ जो उद्योगको छोड़कर दैवमें परायण हैं वे आत्मशत्रु, धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष चारों पुरु-

पार्थोंको नष्ट करदेते हैं ॥ ३ ॥ संवित्स्पन्द आत्मामें पुरुषार्थ और उसके साधनकी इच्छा होना उससे, मनःस्पन्द २ पुरुषार्थसाधनकी इच्छाका यत्न मनमें होना उससे, ऐन्द्रियस्पन्द ३ कर्मेन्द्रियकी अंगोके संचलनार्थ प्रवृत्ति, और उससे सब शरीरकी कार्यमें प्रवृत्ति अर्थात्, कार्य बाह्योपकरणस्पन्द शरीर तथा इन्द्रियोंकी कार्यमें प्रवृत्ति होती है. ये पुरुषार्थके रूप हैं, इन्हीसे फलका उदय होता है ॥ ४ ॥

यथा सम्वेदनं चेतस्तत्तत्स्पन्दनमृच्छति ॥ तथैव कायश्चलति तथैव फलभोक्तृता ॥ ५ ॥ आबालमेतत्संसिद्धं यत्र यत्र यथा यथा ॥ दैवं तु न क्वचिद्दृष्टमतो जगति पौरुषम् ॥ ६ ॥ पौरुषार्थेन देवानां गुरुरेव बृहस्पतिः ॥ शुक्रो दैत्येन्द्रगुरुतां पुरुषार्थेन चास्थितः ॥ ७ ॥ दैन्यदारिद्र्यदुःखार्त्ता अपि साधो नरोत्तमाः ॥ पौरुषेणैव यत्नेन याता देवेन्द्रतुल्यताम् ॥ ८ ॥

अर्थ—साक्षी चेतनमें जैसी विषयकी स्फूर्ति होती है वैसाही मन होता है, और मनकी इच्छाके अनुसार इन्द्रियोंकी स्पन्द (गति) के अनुकूल शरीरकी क्रिया होती है और क्रियाके अनुसार फलसिद्धि होती है ॥ ५ ॥ जहां २ लौकिक वैदिक फलमें जैसे २ पौरुषकी आवश्यकता है वहां २ वैसेही पौरुषके उपयोगसे फलकी सिद्धि होती है, जैसे ध्यानादिमें मानसिक पौरुष प्रधान है, आसन और मौन उसके अंग हैं, स्तुति आदिमें वाचिक पौरुषप्रयत्न प्रधान है एकाग्रता और अभिमुखता उसके अंग हैं, और यत्रादिमें कायिक पौरुषप्रयत्न प्रधान है, वाणी और मनका निग्रह करना उसके अंग हैं, कहीं दो २ पौरुष प्रधान हैं और कहीं तीन २ वहां २ वैसाही पौरुष बालकसे लेके वृद्धपर्य्यन्तको प्रत्यक्ष सिद्ध है, और दैव तो कहीं नहीं देखागया, इसीसे असत् है ॥ ६ ॥ पुरुषार्थसेही बृहस्पतिजी देवताओंके गुरु हैं और पुरुषार्थसेही शुक्राचार्य्यजीने दैत्येन्द्रोंकी गुरुपदवीको प्राप्त हुये हैं ॥ ७ ॥ हे साधो ! दीनता और दरिद्रताके दुःखसे पीडित उत्तम पुरुष अपने पौरुषरूपी यत्नसे देवेन्द्रतुल्य होगये ॥ ८ ॥

महान्तो विभवास्वादैर्नानाश्चर्यसमाश्रयः ॥ पौरुषेणैव दोषेण नरकातिथितां गताः ॥ ९ ॥ भावाभावसहस्रेषु दशासु विविधासु च ॥ स्वपौरुषवशादेव निस्तीर्णा भूतजातयः ॥ १० ॥ शास्त्रतो गुरुतश्चैव स्वतश्चेति त्रिसिद्धयः ॥ सर्वत्र पुरुषार्थस्य न दैवस्य कदाचन ॥ ११ ॥ अशुभेषु समाविष्टं शुभेष्वेवावतारयेत् ॥ प्रयत्नाच्चित्तमित्येष सर्वशास्त्रार्थसंग्रहः ॥ १२ ॥

अर्थ--बडे २ महान् पुरुष (नहुष आदि) अनेक प्रकारके विभवके भोगोंके आस्वादसे और नानाप्रकारके आश्चर्यरूप विभवमेंही आश्रित होके पौरुषके दोषसे, नरकके अतिथि (मिहमान) हुये हैं ॥ ९ ॥ हे साधो ! सम्पत्ति और विपत्तियोंमें, तथा नानाप्रकारकी भयंकर दशाओंमें, अनेकप्राणियोंकी जाति अपने पौरुषके प्रतापसे पारहोगई है ॥ १० ॥ लौकिककार्य अपने पुरुषार्थमात्रसे होते हैं. और यज्ञआदि अपने पुरुषार्थ और शास्त्रीयसहायतासे होते हैं, और आत्मज्ञान तो स्वतः अपने पुरुषार्थसे शास्त्रसे और गुरुकी सहायतासे होता है, ए तीनोंप्रकारकी सिद्धियां सर्वत्र पुरुषार्थसेही हैं दैवसे कदापि नहीं ॥ ११ ॥ अशुभकामोंमें प्रविष्ट चित्तको प्रयत्नसे शुभकाममें लगाना चाहिये. यह सबशास्त्रोंका सिद्धांत है ॥ १२ ॥

यच्छ्रेयो यदतुच्छं च यदपायविवर्जितम् ॥ तत्तदाचर यत्नेन पुत्रेति गुरवः स्थिताः ॥ १३ ॥ यथा यथा प्रयत्नो मे फलमाशु तथा तथा ॥ इत्यहं पौरुषादेव फलभाङ्न तु दैवतः ॥ १४ ॥ पौरुषाद्दृश्यते सिद्धिः पौरुषाद्धीमतां क्रमः ॥ दैवमाश्वासनामात्रं दुःखे पेलवबुद्धिषु ॥ १५ ॥ प्रत्यक्षप्रमुखैर्नित्यं प्रमाणैः पौरुषक्रमः ॥ फलितो दृश्यते लोके देशान्तरगमादिकः ॥ १६ ॥

अर्थ--हे पुत्र ! जो सबसे उत्तम हो जो परमार्थमें सत्यरूप हो और जो नित्य हो उसीका आचरण करो ऐसी आज्ञा महात्मा गुरुजन देते हैं ॥ १३ ॥ जैसा २ हमारा प्रयत्न होताहै वैसा २ हमको शीघ्र फल प्राप्त होता है ऐसा निश्चयकरके यह समझना चाहिये कि हम पुरुषार्थहीसे फलके भागी हैं दैवसे नहीं ॥ १४ ॥ पुरुषार्थसेही सब सिद्धि देख पडतीहै और पुरुषार्थसेही बुद्धिमानोंका आचरण है और दैव तो दुःखमें रोतेहुये कोमलबुद्धियोंके लिये आंसू पोछना मात्रहै ॥ १५ ॥ प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे पौरुषका व्यापार देशांतरमें गमन आगमन आदि फलसहित लोकमें देखपडता है ॥ १६ ॥

भोक्ता तृप्यति नाभोक्ता गन्ता गच्छति नागतिः ॥ वक्ता वक्ति न चावक्ता पौरुषं सफलं नृणाम् ॥ १७ ॥ पौरुषेण दुरन्तेभ्यः संकटेभ्यः सुबुद्धयः ॥ समुत्तरन्त्ययत्नेन न तु मौघतयानया ॥ १८ ॥ यो यो यथा प्रयतते स स तत्तत्फलैकभाक् ॥ न तु तूष्णीं स्थितेनेह केन चित्प्राप्यते फलम् ॥ १९ ॥ शुभेन पुरुषार्थेन शुभमासाद्यते फलम् ॥ अशुभेनाशुभं राम यथेच्छसि तथा कुरु ॥ २० ॥

अर्थ-भोजन करनेवालाही तृप्त होता है, जो भोजन नहीं करता वह नहीं तृप्त होता. चलनेवाला दूसरे देशमें जाता है, न चलनेवाला नहीं, और जो वाणीसे व्यापार करता है, वही बोलता है, न करनेवाला नहीं, इनकारणोंसे मनुष्योंका पुरुषार्थ सफल है ॥ १७ ॥ बुद्धिमान् अपने पौरुषसेही महाभयंकर दुःसाध्या को संकटोंसे सहजमेंही पार होजाता है, परन्तु व्यापारशून्य इस दैवदृष्टिसे कभी नहीं पारहोते ॥ १८ ॥ जो जैसा प्रयत्न करता है वह उसका फल नियम पूर्वक पाता है और जो व्यापाररहित मौन स्थित है उसको कहीं कुछ फल नहीं मिलता ॥ १९ ॥ हे रामचन्द्रजी! शुभपुरुषार्थसे शुभफल मिलता है और अशुभपुरुषार्थसे अशुभफल मिलता है अब आपकी जैसी इच्छा हो वैसा कीजिये ॥ २० ॥

पुरुषार्थात्फलप्राप्तिर्देशकालवशादिह ॥ प्राप्ता चिरेण शीघ्रं वा यासौ दैवमिति स्मृता ॥ २१ ॥ न दैवं दृश्यते दृष्टया न च लोकान्तरे स्थितम् ॥ उक्तं दैवाभिधानेन स्वलोके कर्मणः फलम् ॥ २२ ॥ पुरुषो जायते लोके वर्धते जीर्यते पुनः ॥ न तत्र दृश्यते दैवं जरायौवनबाल्यवत् ॥ २३ ॥ अर्थप्रापककार्यैकप्रयत्नपरता बुधैः ॥ प्रोक्ता पौरुषशब्देन सर्वमासाद्यतेऽनया ॥ २४ ॥

अर्थ-देशकालके वशसे विलम्बसे या शीघ्र पुरुषार्थ जो प्राप्ति होती है उसीका नाम दैव है, अर्थात् किसी पुरुषार्थने अब फल दिया किसीने जन्मान्तरमें जैसे किसी वृक्षके फल शीघ्र मिलते हैं किसीके २० या ४० वर्षके अनन्तर परन्तु हैं वह फल पुरुषार्थहीका ॥ २१ ॥ दैव न तो नेत्रोंसे देख पडता है और न दूसरे लोकमें रक्खा है. किन्तु इसलोकमें कर्मका फल जो स्वर्गलोकमें अथवा मृत्युके अनन्तर इसीलोकमें मिलता है उसीको दैवनामसे कहते हैं ॥ २२ ॥ संसारमें पुरुष उत्पन्न होता है बढता है और पुनः वृद्ध होजाता है, उस पुरुषमें बाल्य, यौवन, और वृद्ध अवस्थाके समान दैव कहीं नहीं देखपडता है ॥ २३ ॥ सत् अर्थ प्राप्तकरनेवाले कार्य्योंके प्रयत्नमें तत्पर रहना, इसको पण्डितजन पौरुषशब्दसे कहते हैं, और इसीसे सब कुछ मिलता है ॥ २४

देशाद्देशान्तरप्राप्तिर्हस्तस्य द्रव्यधारणम् ॥ व्यापारश्च तथांगानां पौरुषेण न दैवतः ॥ २५ ॥ अनर्थप्राप्तिकार्यैकप्रयत्नपरता तु या ॥ प्रोक्ता प्रोन्मत्तचेष्टेति न किंचित्प्राप्यतेऽनया ॥ २६ ॥ क्रियया स्पन्दधर्मिण्या स्वार्थसाधकता स्वयम् ॥ साधुसंगमसच्छास्त्रतीक्ष्णयोन्नीयते धिया ॥ २७ ॥ अनन्तसमतानन्दं परमार्थं स्वकं विदुः ॥ स येभ्यः प्राप्यते यत्नात्सेव्यास्ते शास्त्रसाधवः ॥ २८ ॥

अर्थ—चरणोंके पुरुषार्थसे एकदेशसे दूसरे देशमें जाता है, हांथके पुरुषार्थसे पदार्थोंका लेना देना, और दूसरे अंगोंके पौरुषसे दूसरेकार्य्य होतेहैं और दैवसे कोई कार्य नहीं होता ॥ २५ ॥ जिनसे अनर्थकी प्राप्ति हो ऐसेकार्य्यों में तत्पर होना इसको उन्मत्तचेष्टा कहते हैं, इससे कोई शुभ फल नहीं मिलता ॥ २६ ॥ मन इन्द्रिय और शरीर की क्रियासे साधुसमागम और सत्शास्त्रके अभ्याससे तीव्रबुद्धिसे अपने आत्माका आपही उद्धार करना, इसको स्वार्थ साधकता कहते हैं ॥ २७ ॥ अज्ञानसे उत्पन्न विषमताकी निवृत्तिसे समताद्वारा अनन्त जो परमानन्दकी प्राप्ति है उसको अपना परमार्थ कहते हैं वह आनन्द जिनसे मिले, उन शास्त्रज्ञानी साधुमहात्माओंकी प्रणाम, प्रश्न और सुश्रूषा आदिसे सेवा करनी चाहिये ॥ २८ ॥

सच्छास्त्रादिगुणो मत्या सच्छास्त्रादिगुणान्मतिः ॥ विवर्धेते मिथोऽभ्यासात्सरोऽब्जाविव कालतः ॥ २९ ॥ आबाल्यादलमभ्यस्तैः शास्त्रसत्संगमादिभिः ॥ गुणैः पुरुषयत्नेन स्वार्थः सम्पद्यते हितः ॥ ३० ॥ पौरुषेण जिता दैत्याः स्थापिता भुवनक्रियाः ॥ रचितानि जगन्तीह विष्णुना न च दैवतः, ॥ ३१ ॥ जगति पुरुषकारकारणेऽस्मिन् कुरु रघुनाथ चिरं तथा प्रयत्नम् ॥ व्रजसि तरुसरीसृपाभिधानां सुभग यथा न दशामशंक एव ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षपाये भाषानुवादे मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे पौरुषप्राधान्यसमर्थनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अर्थ—बुद्धिसे सत्शास्त्र आदिके अर्थका ज्ञान और सत्शास्त्रके अभ्यास तथा साधुसंगतिसे बुद्धि (आत्मतत्त्वबोध) ये परस्परके अभ्यासके कालगतिसे ऐसे बढते हैं जैसे तडाग और कमल, तात्पर्य्य यह है कि ज्यों २ यह मनुष्य गुरुसुश्रूषा और शास्त्रके अभ्यासमें तत्पर होता है त्यों २ इसका बोध बढजाता है और ज्यों २ बोधकी वृद्धि होतीहै त्यों २ गुरुसुश्रूषा और शास्त्रोंमें बिश्वास बढता जाताहै और उससे उत्तरोत्तर सुखकी वृद्धिरूप भूमिकामें पहुंचताहै ॥ २९ ॥ बाल्यावस्थासे अत्यन्त अभ्यासकियेहुये शास्त्र और साधुसमागमादिगुणोंसे पुरुषार्थद्वाराहितकारीस्वार्थ

सिद्ध होताहै ॥ ३० ॥ विष्णुभगवान्ने पुरुषार्थसेही दैत्योंको जीता, पुरुषार्थसेही लोकोंके कर्म नियत किये और पुरुषार्थसेही अनेक जगत् रचे और देवसे कुछभी नहीं ॥ ३१ ॥ हे रघुनाथ ! पुरुषार्थाधीन इससंसारमें दीर्घकालतक ऐसा पुरुषार्थ करो कि जिसमें पुनः वृक्ष और सर्पआदि योनियोंमें न प्राप्तहो ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे पौरुषप्राधान्यसमर्थनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

पूर्वकथित दैवके मिथ्यात्वपुष्टि कारणके विरोध और युक्तिआदिके विस्तारसे इस८वे सर्गमें कीगई है.

श्री वसिष्ठ उवाच ॥ ॥ नाकृतिर्न च कर्माणि न स्पन्दो न पराक्रमः ॥ तन्मिथ्याज्ञानवद्रूढं दैवं नाम किमुच्यते ॥ १ ॥ स्वकर्मफलसम्प्राप्ताविदमित्थमितीति याः ॥ गिरस्ता दैवनाम्नैताः प्रसिद्धिं समुपागताः ॥ २ ॥ तत्रैव मूढमतिभिर्दैवमस्तीति निश्चयः ॥ आत्तो दुरवबोधेन रज्ज्वामिव भुजंगमः ॥ ३ ॥ह्यस्तनी दुष्क्रियाभ्येति शोभां सत्क्रियया यथा ॥ अद्यैवं प्राक्तनी तस्मायत्नात्सत्कार्यवान्भवेत् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-न कोई आकार है, न कर्म है, न चेष्टा है और न इसके कोई पराक्रम है, इसलिये मिथ्याज्ञानकेसदृश दुर्वाच्य देव क्या वस्तु है ॥ १ ॥ अपने कियेहुये कर्मके फल मिलनेपर, इसकर्मका फल इसप्रकारसे मिला ये जो वाणी हैं, वेही दैवशब्दसे प्रसिद्धहै ॥ २ ॥ उन्हीवाणियोंमें रज्जूमें सर्पकेसमान मूढबुद्धियोंने भ्रान्तिसे दैव है ऐसा निश्चय कियाहै ॥ ३ ॥ गतदिनका दुष्टकर्म जिसप्रकार आजके उत्तमकर्मसे उत्तमहोताहै इसकारणसे मनुष्यको उत्तमकर्म करनाचाहिये ॥ ४ ॥

मूढानुमानसंसिद्धं दैवं यस्यास्ति दुर्मतेः ॥ दैवाद्दाहोऽस्ति नैवेति गन्तव्यं तेन पावके ॥५॥ दैवमेवेह चेत्कर्तृ पुंसः किमिव चेष्टया ॥ स्नानदानासनोच्चारान् दैवमेव करिष्यति ॥ ६ ॥ किं वा शास्त्रोपदेशेन मूकोऽयं पुरुषः किल ॥ संचार्यते तु दैवेन किं कस्येहोपदिश्यते ॥७॥ न च निस्पन्दता लोके दृष्टेह शवतां विना ॥ स्पन्दाच्च फलसम्प्राप्तिस्तस्माद्दैवं निरर्थकम् ॥ ८ ॥

अर्थ—जिस दुर्मतिके सिद्धांतमे मूढोंके अनुमानसे दैव सिद्ध है, उनको अग्निमें गिरके देखनाचाहिये कि दैवसे दाह होताहै वा नहीं ॥ ५ ॥ यदि सवकार्योंका करनेवाला दैव ही है तो पुरुषकी चेष्टाका क्या प्रयोजन है? स्नान, दान, आसन, और मंत्रोंका उच्चारण आदि सवकार्य दैव करलेगा ॥ ६ ॥ यदि दैव (प्रारब्ध) ही सब करताहै तो शास्त्रके उपदेशसे क्या प्रयोजन है ? क्योंकि यह मनुष्य तो स्वयं मूक है. अर्थात् दैवके पराधीन है दैव जिधर चलाताहै उधरही जाताहै तो कौन किसको उपदेश देताहै ॥ ७ ॥ मृतककेविना चेष्टाका अभाव संसारमें कहीं नहीं देखागया, और चेष्टाहीसे फलकी प्राप्ति होती है इसलिये दैव व्यर्थ है ॥ ८ ॥

न चामूर्तेन दैवेन मूर्तस्य सहकर्तृता ॥ पुंसः सन्दृश्यते काचित्तस्माद्दैवं निरर्थकम् ॥९॥ मिथोंगानि समासाद्य द्वयोरेकैककर्तृता ॥ हस्तादीनां हतत्वेह न दैवेन क्वचित्कृतम् ॥ १० ॥ मनोबुद्धिवदप्येतद्दैवं नेहानुभूयते ॥ आगोपालं कृतप्रज्ञैस्तेन दैवमसत्सदा ॥ ११ ॥ पृथक् चेद्बुद्धिरन्योर्थः सैव चेत्कान्यता तयोः ॥ कल्पनायां प्रमाणं चेत् पौरुषं किं न कल्प्यते ॥ १२ ॥

अर्थ—कदाचित् कहीं दैव पुरुषकी चेष्टाका सहायक हो वहभी नहीं,क्योंकि मूर्तिरहित दैव मूर्तिसहित पुरुषका सहायक नहीं देखपडता, इसलिये दैव निरर्थक है ॥ ९ ॥ लेखन और क्षौर आदि कार्य्योंमें जहां लेखनी (कलम) और छुरा जब हस्तआदिमें आतेहैं तो कार्य्य होताहै, वातरोगादिसे हाथआदिके मारेजानेपर केवल दैवने कभी कलम, और छुरेसे कार्य्य नहींकिया ॥ १० ॥ गोपालसे लेके पंडितोंतकको मन बुद्धिकेसमान दैवका अनुभव किसीको नहींही होता, इसलिये दैव सदा असत्है ॥ ११ ॥ और दैवकी सिद्धि मानभी लीजावे तो उसमें बुद्धिही प्रमाण होगी, सो बुद्धिसे पृथक् है या बुद्धिस्वरूपही है, यदि पृथक् मानो तो किसी क्रियामें उसका उपयोग नहोनेसे निरर्थकपदार्थकी कल्पना हुई, और यदि बुद्धिरूपही मानो तो सिद्धबुद्धि और इस दैवमें भेद क्या ? यदि यह कहो कि गुरूके समीप कई विद्यार्थी

पढते हैं, और समान परिश्रमभी करतेहैं, परन्तु उनमेंसे दैवके वश किसीको विद्या प्राप्त होती है और किसीको नहीं, इसप्रमाणसे दैव सिद्ध होताहै सोभी नहीं,क्योंकि वहांभी बुद्धिके तीव्र होनेमें पूर्वजन्मका पुरुषार्थही सिद्ध होता है॥१२॥

नामूर्त्तेस्तेन संगोऽस्ति नभसेव वपुष्मतः ॥ मूर्त्तं च दृश्यते लग्नं तस्माद्दैवं न विद्यते ॥ १३ ॥ विनियोक्त्रथ भूतानामस्त्यन्यच्चेज्जगत्त्रये ॥ शेरते भूतवृन्दानि दैवं सर्वं करिष्यति ॥ १४॥ दैवेन त्वामियुक्तोऽहं तत्करोमीदृशं स्थितम् ॥ समाश्वासनवागेषा न दैवं परमार्थतः ॥ १५ ॥ मूढैः प्रकल्पितं दैवं तत्परास्ते क्षयं गताः ॥ प्राज्ञास्तु पौरुषार्थेन पदमुत्तमतां गताः ॥ १६ ॥

अर्थ—आकाशकेसमान मूर्तिरहितका मूर्तिसहितके साथ संयोग नहीं, जो मूर्तिसहित है उन्हीका परस्पर संयोग देखागयाहै इसलिये दैव नहीं है ॥ १३ ॥ क्रियामें तत्पर भूतोंसे अन्य यदि तीनोंलोकमें कोई दैव पदार्थ है तो सब जीवोंके समूह व्यापाररहित हो पौरुषको त्यागकर सोवें सब कार्य्य तो दैव करहीलेगा ॥ १४ ॥ दैवकी प्रेरणासे दैवके संकल्पसे सिद्ध मैं इस कार्य्यको करताहुं यह बचन केवल धैर्य्य देनेमात्रकेलिये है यथार्थमें पुरुपार्थकेसिवाय दैव कोई पदार्थ नहीं है ॥१५॥मूढोंने दैवकी कल्पना की है और जो उसके आश्रयको रहेहैं वे नष्ट होगये, और बुद्धिमान् तो अपने पुरुषार्थका आश्रय लेके इसलोकमें उत्तमपद तथा फल मोक्षको प्राप्तहुये हैं ॥ १६ ॥

ये शूरा ये च विक्रान्ता ये प्राज्ञा ये च पण्डिताः॥ तैस्तैः किमिव लोकेऽस्मिन् वद दैवं प्रतीक्ष्यते॥१७॥ कालविद्भिर्विनिर्णीता यस्यातिचिरजीविता ॥ स चेज्जीवति संछिन्नशिरास्तद्दैवमुत्तमम् ॥१८॥ कालविद्भिर्विनिर्णीतं पाण्डित्यं यस्य राघव ॥ अनध्यापित एवासौ तज्ज्ञश्चेद्दैवमुत्तमम् ॥ १९ ॥ विश्वामित्रेण मुनिना दैवमुत्सृज्य दूरतः ॥ पौरुषेणैव सम्प्राप्तं ब्राह्मण्यं राम नान्यथा ॥ २० ॥

अर्थ—जो शूरहैं, जो पराक्रमी हैं जो बुद्धिमान्हैं और जो पण्डितहैं बताओ इस संसारमें वे कब दैवकी प्रतीक्षा करतेहैं॥१७॥ कालके जाननेवाले ज्योतिपियोंने जिसका आयु अधिककालतक निश्चय किया है, यदि वह शिर काटनेपरभी अधिककालतक जीवे तो दैवकी श्रेष्ठतामें उत्तम कारण सिद्ध हो ॥ १८ ॥ हे रामचन्द्रजी ! कालवेत्ताज्योतिषियोंने जिसका पण्डितहोना निर्णय करलिया है, यदि विनापढाये वह पण्डित होजाय तो दैव श्रेष्ठ कारण सिद्ध हो॥१९॥ हे रामचन्द्रजी ! येही आपके सन्मुखस्थित विश्वामित्रजी दैवको दूर फेंककर अपने पुरुषार्थके बलसेही ब्राह्मणत्व प्राप्तहुयेहैं, और दूसरेबलसे नहीं ॥ २० ॥

अस्माभिरपरैराम पुरुषैर्मुनितां गतैः ॥ पौरुषेणैव सम्प्राप्ता चिरं गगनगामिता ॥ २१ ॥ उत्साद्य देवसंघातं चक्रुस्त्रिभुवनोदरे ॥ पौरुषेणैव यत्नेन साम्राज्यं दानवेश्वराः ॥ २२ ॥ आलूनशीर्णमाभोगि जगदाजह्रुरोजसा ॥ पौरुषेणैव यत्नेन दानवेभ्यःसुरेश्वराः ॥ २३ ॥ राम पौरुषयुक्त्या च सलिलं धार्य्यतेऽनघ ॥ चिरं करण्डके चारु न दैवं तत्र कारणम् ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रामचन्द्रजी ! और हमभी अपने पुरुपार्थसेही मुनि हुये तथा उसीसे दीर्घकालतक आकाशमें चलनेकी शक्तिभी पाई ॥ २१ ॥ दानवोंके ईश्वरोने देवताओंके समूहोंको निकालके तीनोंलोकके भीतर अपने पुरुपार्थके यत्नसेही साम्राज्य किया ॥ २२ ॥ शत्रुओंको छिन्न भिन्न तथा जर्जरकरके यह विस्तीर्णजगत् देवताओंने जो पुनः अपने पराक्रमसे छीनलिया वह पुरुषार्थकाही प्रताप है अर्थात् दैवकाभी दैव पुरुषार्थहै ॥ २३ ॥ हे रामचन्द्रजी ! राल और मोमके लेपनरूपपुरुषार्थकी इस युक्तिसे अधिककालतक वांस आदिके पात्रोंमें भलीभांति जल धारणकियाजाताहै॥२४॥

भरणादानसंरम्भविभ्रमश्रमभूमिषु ॥ शक्तता दृश्यते राम न दैवस्यौषधेरिव ॥ २५ ॥ सकलकारणकार्यविवर्जितं निजविकल्पवशादुपकल्पितम् ॥ त्वमनपेक्ष्य हि दैवमसन्मयं श्रय शुभाशय पौरुषमुत्तमम् ॥ २६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे दैवनिराकरणं नाम अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

अर्थ—कुटुम्बका पोषण, बलात्कारसे दूसरेका राज्य लेना, क्रोधसे दूसरेका पराजय करना, भोग, विलास, तथा औरभी कष्टसाध्य रोगादिकी निवृत्तिरूपकार्य्योंमें पराक्रम, औषध और मणिमंत्रादिकी जैसी शक्ति देखपडतीहै वैसी दैवकी नहीं ॥ २५ ॥ हे रामचन्द्रजी ! सम्पूर्ण कारण और कार्यसे शून्य, अपने विकल्पके कारजसे कल्पित असत्यदैवको त्यागकर हे शुभाशय ! पुरुषार्थका आश्रय ग्रहणकरो ॥ २६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे मुमुक्षुव्यवहार प्रकरणे दैवनिराकरणं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दैवके मिथ्यात्व सिद्धकरनेकेलिये, सफलकर्मकी मनोमात्रता, और मनकीभी चिद्रूपता इस९वे सर्गमें वर्णनकीगईहै.

श्रीराम उवाच—भगवन् सर्वधर्मज्ञ प्रतिष्ठाफलमागतम् ॥ यल्लोके तद्वद ब्रह्मन् दैवं नाम किमुच्यते ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठ उवाच-पौरुषं सर्वकार्याणां कर्तृ राघव नेतरत् ॥ फलभोक्तृ च सर्वत्र दैवं तत्र न कारणम् ॥ २ ॥ दैवं न किंचित्कुरुते न भुंक्ते न च विद्यते ॥ न दृश्यते नाद्रियते केवलं कल्पनेदृशी ॥ ३ ॥ सिद्धस्य पौरुषेणेह फलस्य फलशालिना ॥ शुभाशुभार्थसंपत्तिर्दैवशब्देन कथ्यते ॥ ४ ॥

अर्थ—पुरुषार्थकी स्वतंत्रता सिद्धहोनेकेलिये, कहीं तो वसिष्ठजीने दैवको असत् कहा, और कहीं पूर्वजन्मका पुरुषार्थरूपही कहा, सो प्रथम मिथ्यात्वपक्षमें लोक वेदादिका विरोध है, और द्वितीयपक्षमें दैव सर्वथा असत् है, यह प्रतिज्ञाविरोध है. और इस जन्मकी प्रवृत्तिभी पूर्वजन्मके कर्मका फल होनेसे उनके अनुसारही होगी, इसलिये इसजन्मकी प्रवृत्तियोंसे यदि पूर्वजन्मके कर्म्मफलरूप दैवका जयभी हुआ तो कुछ विरोध नहीं; क्योंकि-इसजन्मकी प्रवृत्ति तो पूर्वजन्मके कर्म्मके अनुसारही हुई, और पुरुषकी परतंत्रताभी रही, इत्यादि गूढअभिप्रायवाले रामचन्द्रजी वसिष्ठजीसे कहतेहैं कि–हे भगवन् ! हे सबधर्मोंके जाननेवाले ! जो लोकमें अत्यन्त प्रसिद्ध दैव है वह क्या असत् है अथवा सत् है ॥ १ ॥ वसिष्ठजीभी रामचन्द्रजीके अभिप्रायको जानके दैवका मिथ्यात्व सिद्धकरनेकेलिये जगन्मिथ्यात्वद्वारा अद्वितीय आत्मतत्त्वके बोध करानेकी इच्छासे दोनोंपक्षोंमें अभेद है इसविचारसे बोले कि–हे रामचन्द्रजी ! सबकार्योंका करनेवाला और फल भोगनेवाला, सबस्थानोंमें पुरुषार्थही है उसमें दैव कारण नहींहै ॥ २ ॥ न दैव कुछ करताहै, न भोगताहै, न देखपडताहै, न विवेकियोंमें उसका आदर है, और न वह है, केवल लोककी भ्रान्तिमात्र है ३ ॥ अवश्यफलदेनेवाले पुरुषार्थसे सिद्धफलकी शुभ और अशुभ प्राप्ति है उसीको दैव कहतेहैं ॥ ४ ॥

पौरुषोपनता नित्यमिष्टानिष्टस्य वस्तुनः ॥ प्राप्तिरिष्टाप्यनिष्टा वा दैवशब्देन कथ्यते ॥ ५ ॥ भावी त्ववश्यमेवार्थः पुरुषार्थैकसाधनः ॥ यः सोऽस्मिँल्लोकसंघाते दैवशब्देन कथ्यते ॥ ६ ॥ ननु राघव लोकस्य कस्यचित्किंचिदेव हि ॥ दैवमाकाशरूपं हि करोति न करोति च ॥ ७ ॥ पुरुषार्थस्य सिद्धस्य शुभाशुभफलोदये ॥ इदमित्थं स्थितमिति योक्तिस्तद्दैवमुच्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—इष्ट अथवा अनिष्टवस्तुसे पौरुषसे दीहुई इष्ट वा अनिष्टकी जो प्राप्ति है उसको दैव कहतेहैं ॥ ५ ॥ पुरुषार्थसे जो फलका भोग अवश्य होनेवाला है उसको संसारमें लौकायतकेमतमें दैव कहतेहैं ॥ ६ ॥ हे रामचन्द्रजी ! कोई किसीका दैव शून्य आकाशको भ्रान्तिसे नीलरूपवाला बनादेताहै, और विवेकीकी दृष्टिमें वह शून्यहीहै, अर्थात् भ्रांतिसे दैव सिद्ध है और विवेकसे नहीं ॥ ७ ॥ सिद्धपुरुषार्थका जब शुभाशुभ फलका उदय होताहै उसमें जो कहाजाताहै कि–पूर्वजन्मके कर्मने हमको यह फल दिया इसीका नाम दैव है ॥ ८ ॥

इत्थं ममाभवद्बुद्धिरित्थं मे निश्चयो ह्यभूत् ॥ इति कर्मफलप्राप्तौ योक्तिस्तद्दैवमुच्यते ॥ ९ ॥ इष्टानिष्टफलप्राप्ताविदमित्यस्य वाचकम् ॥ आश्वासनामात्रवचो दैवमित्येव कथ्यते ॥ १० ॥ श्रीराम उवाच भगवन्सर्वधर्मज्ञ यत्प्राक्कर्मोपसंचितम् ॥ तद्दैवं दैवमित्युक्तमपमृष्टं कथं त्वया ॥ ११ ॥ श्रीवसिष्ठ उवाच-साधु राघव जानासि शृणु वक्ष्यामि तेऽखिलम् ॥ दैवं नास्तीति ते येन स्थिरा बुद्धिर्भविष्यति ॥ १२ ॥

अर्थ—कर्मके फल प्राप्तहोनेपर जो यह कथन होताहै कि–हमारी बुद्धि ऐसी हुई, और ऐसा हमारा निश्चय हुआ, इसी कथनका नाम दैव है ॥ ९ ॥ इष्ट और अनिष्टफलकी प्राप्तिमें इससे हमको यह फल मिला, यह जो धैर्य्य देनेकी वाणी है इसीको दैव कहतेहैं ॥ १० ॥ श्रीरामजी बोले—हे भगवन् ! हे सर्वधर्मज्ञ ! आपने यह बार २ कथन कियाहै कि–जो पूर्वजन्मका संचित् कर्म है वही दैव है सो आपने उसका निषेध किसअभिप्रायसे किया ॥ ११ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामचंद्रजी ! आप दोनोंपक्षोंके विरोधको भलीभांति समझतेहैं. अब सुनिये मैं आपसे वह सम्पूर्णवृत्तांत कहूंगा, जिससे दैव नहीं है इसविषयमें आपकी बुद्धि सर्वथा दोष और शंकारहित स्थिरहोगी ॥ १२ ॥

या मनोवासना पूर्वं बभूव किल भूरिशः ॥ सैवेयं कर्मभावेन नृणां परिणतिं गता ॥ १३ ॥ जंतुर्यद्वासनो राम तत्कर्त्ता भवति क्षणात् ॥ अन्यकर्मान्यभावश्चेत्येतन्नैवोपपद्यते ॥ १४ ॥ ग्रामगो ग्राममाप्नोति पत्तनार्थी च पत्तनम् ॥ योयो यद्वासनस्तत्र स स प्रयतते सदा ॥ १५ ॥ यदेव तीव्रसंवेगाद्दृढं कर्म कृतं पुरा ॥ तदेव दैवशब्देन पर्यायेणेह कथ्यते ॥ १६ ॥

अर्थ-जो मनुष्योंकी मनकी वासना प्रथम अनेक हुईथी, वही कर्मरूपसे परिवर्त्तित होगई; क्योंकि-वेदमें लिखाहै "यद्धि मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति तत् कर्मणा करोति" (जैसा मनमें ध्यान करताहै वैसाही वाणीसें बोलताहै और शरीरसे कर्म करताहै)॥ १३॥ हे रामचन्द्रजी! प्राणीकी जैसी वासना होतीहै, उसीवासनाके अनुसार क्षणमेंही कार्यकरने लगजाताहै, और वासना दूसरी हो और कर्म दूसरा हो यह वार्ता नहीं बनसक्ती ॥ १४ ॥ ग्रामको जानेवाला ग्रामको जाताहै, और नगरको जानेवाला नगरको, जिसकी जैसी वासना होती है वह सदा वैसाही प्रयत्न करताहै ॥ १५ ॥ फलकी अधिकअभिलाषासे प्रबलप्रयत्नसे पूर्वजन्ममें जो कर्म कियाहै उसीको इसजन्ममें दैवकेनामसे कहतेहैं ॥ १६ ॥

एवं कर्मस्थकर्माणि कर्मप्रौढा स्ववासना ॥ वासना मनसो नान्या मनो हि पुरुषः स्मृतः ॥ १७ ॥ यदैवं तानि कर्माणि कर्म साधो मनो हि तत् ॥ मनो हि पुरुषस्तस्माद्दैवं नास्तीति निश्चयः ॥१८॥ एष एव मनो जन्तुर्यद्यत्प्रयतते हितम् ॥ कृतं तत्तदवाप्नोति स्वत एव हि दैवतः ॥ १९ ॥ मनश्चित्तं वासना च कर्म दैवं च निश्चयः ॥ राम दुर्निश्चयस्यैताः संज्ञास्सद्भिरुदाहृताः ॥ २० ॥

अर्थ—इसप्रकार कर्ताके कर्म उक्तरीतिसे होतेहैं, और संचितकर्मोंसे वासना होती है, और वासना मनसे पृथक् कोई वस्तु नहींहै, और मन जो है वही पुरुष कहागयाहै, क्योंकि-"तन्मनोऽकुरुत आत्मन्वी स्यामिति" (परब्रह्मने मन किया कि मैं शरीरवान् होऊं) यह श्रुति है ॥ इसका विपरीत क्रम ऐसाहै कि-पुरुष मनोमय, मन वासनामय, और वासना कर्ममय है ॥१७॥ हे साधो! दैव कर्मरूप है और कर्म मनरूप है, और मन पुरुषरूप है, और पुरुष परमार्थदशामें निर्विकारी चेतनमात्र है, इससे मन असत् हुआ, और मनके असत्होनेसे कर्मभी असत् हुआ, इसप्रकार कर्मरूप दैवभी असत् (मिथ्या) हुआ; इसलिये दैव कोई वस्तु नहीं है यह निश्चयहै ॥ १८ ॥ इसप्रकार मनदशामें प्राप्त यह प्राणी जैसा २ प्रयत्न करताहै वैसाही अपना कियाहुआ स्वतः दैवनामसे प्रसिद्ध अपनेकर्मसे फल पाताहै ॥ १९ ॥ हे रामजी! चित्त, वासना, कर्म, और दैव, ये सब अनिर्वचनीय मनकी संज्ञा तत्वज्ञानीसज्जनोंने कहीहैं. और मन पुरुष है यह निश्चय है ॥ २० ॥

एवंनामा हि पुरुषो दृढभावनया यथा ॥ नित्यं प्रयतते राम फलमाप्नोत्यलं तथा ॥ २१ ॥ एवं पुरुषकारेण सर्वमेव रघूद्वह ॥ प्राप्यते नेतरेणेह तस्मात्स शुभदोऽस्तु ते ॥ २२ ॥ श्रीराम उवाच—प्राक्तनं वासनाजालं नियोजयति मां यथा ॥ मुने तथैव तिष्ठामि कृपणः किं करोम्यहम् ॥ २३ ॥ श्रीवसिष्ठ उवाच—अतएव हि राम त्वं श्रेयः प्राप्नोषि शाश्वतम् ॥ स्वप्रयत्नोपनीतेन पौरुषेणैव नान्यथा ॥ २४ ॥

अर्थ—इसप्रकार मन चित्त और वासनादिनामवाला पुरुष नित्य दृढभावनासे जैसा प्रयत्न करताहै, वैसाही उसका फल अब पाताहै ॥ २१ ॥ हे रघूद्वह रामचंद्रजी! इसप्रकार पुरुषार्थसेही सबकुछ मिलताहै अन्यसें नहीं; इसलिये वह पुरुषार्थ आपको शुभदायक हो ॥ २२ ॥ श्रीरामजी बोले—हे मुने! पूर्वजन्मका वासनासमूह जैसे मुझे नियुक्तकरताहै वैसाही मैं स्थित हूं, कृपण परवश मैं क्या करसक्ताहूं ॥ २३ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी! इसीवासनासे अपने पुरुषार्थकेद्वारा नित्यप्राप्त श्रेयको प्राप्तहोओगे अन्यथा नहीं ॥ २४ ॥

द्विविधो वासनाव्यूहः शुभश्चैवाशुभश्च ते ॥ प्राक्तनो विद्यते राम द्वयोरेकतरोऽथवा ॥ २५ ॥ वासनौघेन शुद्धेन तत्र चेदद्य नीयसे ॥ तत्क्रमेण शुभेनैव पदं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥ २६ ॥ अथ चेदशुभो भावस्त्वां योजयति संकटे ॥ प्राक्तनस्तदसौ यत्नाज्जेतव्यो भवता बलात् ॥ २७ ॥ प्राज्ञश्चेतनमात्रस्त्वं न देहस्त्वं जडात्मकः ॥ अन्येन चेतसा तत्ते चेत्यत्वं क्व विद्यते ॥ २८ ॥

अर्थ—वासनाका रूप शुभ और अशुभ दोप्रकारका होताहै, उनमें तुह्मारी वासनाका समूह शुभ हो वा अ-
तथा [illegible] ॥ यदि पूर्व शुद्धवासनाओंके समूहद्वारा इससमयभी शुद्धवासनामें प्राप्त हो तो शुभवासनाके क्रमसे नित्य.
वैसी दैवकी [illegible] ॥ २६ ॥ और यदि पूर्वजन्मकी अशुभवासना तुमको पापकीओर प्रेरणाकरतीहै तो उसे पुरुषार्थसे
सत्यदेवको त्या-

जीतना चाहिये ॥ २७ ॥ यदि कहो कि प्राज्ञात्मामनका प्रेरक कोई दूसराही है तो वासनाके उद्भवमें हमारी स्वतंत्रता कहां रही, सो भी नहीं क्योंकि—चेतनमात्र मनका प्रेरक प्राज्ञ तुमही जडरूप देह तुम नहीं हो किसी दूसरेचेतनसे तुम प्रकाशित नहींहो किंतु स्वप्रकाश्य तुमही हो ॥ २८ ॥

अन्यस्त्वां चेतयति चेत्तं चेतयति कोऽपरः ॥ क इमं चेतयेत्तस्मादनवस्था न वास्तवी ॥ २९ ॥ शुभाशुभाभ्यां मार्गाभ्यां वहन्ती वासनासरित् ॥ पौरुषेण प्रयत्नेन योजनीया शुभे पथि ॥ ३० ॥ अशुभेषु समाविष्टं शुभेष्वेवावतारय ॥ स्वं मनः पुरुषार्थेन बलेन बलिनां वर ॥ ३१ ॥ अशुभाच्चालितं याति शुभं तस्मादपीतरत् ॥ जन्तोश्चित्तं तु शिशुवत्तस्मात्तच्चालयेद्बलात् ॥ ३२ ॥

अर्थ—यदि तुह्मारा प्रकाशक कोई दूसरा चेतन है तो उसका प्रकाशक कौन है ? और उसका प्रकाशक कोइ तीसरा माना जाय तो उसका प्रकाशक कौन होगा ? इसप्रकार अनवस्था चलीजायगी जिससे किसीपदार्थकी सिद्धि नहींहोती ॥ २९ ॥ शुभ और अशुभ दोनोंमार्गोंसे वासनारूपीनदी वहतीहै. उसको पौरुषरूपीपुरुषार्थसे शुभमार्गमेंही लगानाचाहिये ॥ ३० ॥ हे बलियोमें श्रेष्ठ रामजी ! अशुभकार्योंमें प्रविष्ट अपने मनको पुरुषार्थके बलसे शुभकार्योंमें लगाओ ॥ ३१ ॥ चित्तरूपीनदी पुण्य और पापरूपी दोनोंप्रवाहोंमें वहरही है, यदि एक प्रवाह रोकाजाय तो दूसरीओर दूनेवेगसे बहतीहै यह योगशास्त्रका सिद्धांत है, इसीके अनुसार अशुभमार्गसे निवारणकियाहुआ प्राणीका चित्त बालककेसमान शुभमार्गमें दूनेवेगसे चलताहै, और शुभमार्गसे निवारणकियाहुआ अशुभमार्गमेंभी दूनेवेगसे चलताहै, इसलिये अशुभमार्गसे रोककर शुभमार्गमेंही चित्तका लगाना उचितहै ॥ ३२ ॥

समतासान्त्वनेनाशु न द्रागिति शनैः शनैः ॥ पौरुषेणैव यत्नेन पालयेच्चित्तबालकम् ॥ ३३ ॥ वासनौघस्त्वया पूर्वमभ्यासेन घनीकृतः ॥ शुभो वाप्यशुभो वापि शुभमद्य घनीकुरु ॥ ३४ ॥ प्रागभ्यासवशाद्याता यदा ते वासनोदयम् ॥ तदाभ्यासस्य साफल्यं विद्धि त्वमरिमर्दन ॥ ३५ ॥ इदानीमपि ते याति घनतां वासनानघ ॥ अभ्यासवशतस्तस्माच्छुभाभ्यासमुपाहर ॥ ३६ ॥

अर्थ—इसरीतिसे चित्तरूपीबालकको राग द्वेष आदि दोषरूपी विषमता दूरकरके स्वाभाविकसमतामें लगाकर पौरुषरूपयित्नसे धीरे२आत्मस्वरूपमें स्थितकरना चाहिये ॥ ३३ ॥ यद्यपि पूर्वजन्मके अभ्याससे शुभ वा अशुभवासनाओंका समूह एकत्र कियाहो, परंतु इस जन्ममें केवल शुभवासनाओंके समूहकोही एकत्र कीजिये ॥ ३४ ॥ हे अरिमर्दन ! पूर्वके अभ्यासकेवशसे जब तुमारी वासनाका उदय हो, अर्थात् वासना घनीभावको प्राप्तहो, तब जानों कि, अभ्यास सफल हुआ ॥ ३५ ॥ हे पापरहित रामचन्द्रजी ! अभ्यासवशसे इससमयभी तुमारी वासना घनी भूत होतीजाती है, इसलिये वार २ शुभ अभ्यासही कीजिये ॥ ३६ ॥

पूर्वं चेद्घनतां याता नाभ्यासात्तव वासना ॥ वर्द्धिष्यते तु नेदानीमपि तात सुखी भव ॥ ३७ ॥ संदिग्धायामपि भृशं शुभामेव समाहर ॥ अस्यां तु वासनावृद्धौ शुभाद्दोषो न कश्चन ॥ ३८ ॥ यद्यदभ्यस्यते लोके तन्मयेनैव भूयते ॥ इत्याकुमारं प्राज्ञेषु दृष्टं सन्देहवर्जितम् ॥ ३९ ॥ शुभवासनया युक्तस्तदत्र भव भूतये ॥ परं पौरुषमाश्रित्य विजित्येन्द्रियपंचकम् ॥ ४० ॥

अर्थ—यदि पूर्वअभ्याससे तुमारी वासना घनी भूत नहींहुईहै तो वह अबभी नहींबढेगी, इसलिये दुर्वासनाकी वृद्धिसे अनर्थकी सम्भावनाका शोक त्यागके यथोचित सुखपूर्वक व्यवहार कीजिये ॥ ३७ ॥ शुभ और अशुभवासनाके फलके आरम्भमें सन्देह होनेपरभी शुभवासनाहीका वार २ अभ्यास करनाचाहिये क्योंकी शुभआचरणसे शुभवासनाकी वृद्धिमें कोई हानि नहींहै ॥ ३८ ॥ जैसा प्राणी अभ्यास करताहै वह उनका रूप होजाताहै. यह बात संसारमें बालकसे लेके बुद्धिमान् युवापर्यंतमें निश्चितरूपसे देखीगईहै ॥ ३९ ॥ इसलिये तुम मोक्षरूपीऐश्वर्य प्राप्तहोनेकेलिये सबइन्द्रियोंको जीतकर और परमपुरुषार्थका आश्रयलेके शुभवासनासे युक्तहो ॥ ४० ॥

अव्युत्पन्नमना यावद्भवानज्ञाततत्पदः ॥ गुरुशास्त्रप्रमाणैस्तु निर्णीतं तावदाचर ॥ ४१ ॥ ततः पक्कषायेण नूनं विज्ञातवस्तुना ॥ शुभोऽप्यसौ त्वया त्याज्यो वासनौघो निराधिना ॥ ४२ ॥ यदतिसुभगमार्यसेवितं तच्छुभमनुसृत्य मनोज्ञभावबुद्ध्या ॥ अधिगमय पदं सदा विशोकं तदनु तदप्यवमुच्य साधु तिष्ठ ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे कर्मविचारो नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

अर्थ—जबतक बोध नहो और आप उस आत्मपदको न जानजाओ, तबतक गुरु, शास्त्र और प्रमाण, युक्ति, अनुभव आदिसे निर्णयकरके शुभवासनाका अभ्यास करो ॥४१॥ इसके अनन्तर राग द्वेष आदि मलके शिथिल होनेपर और आत्मवस्तुके जाननेके अनन्तर मानसदुःखरहित आप चाहै शुभवासनाओंकाभी त्यागकरदें ॥ ४२ ॥ हे रामजी ! जो सबसे श्रेष्ठ है, श्रेष्ठजनोंसे सेवितहै, और सदा शोकरहित है, उसी आत्मपदको शुभमार्गकेअनुसार शुभ वासनायुक्तबुद्धिसे साक्षात्कार करो, और साक्षात्कारकरनेके अनन्तर शुभवासनाओंकोभी त्यागके कूटस्थरूपसे स्थित होजाहो ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे मुमुक्षुव्यवहार-
प्रकरणे कर्मविचारो नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः ॥ १० ॥

अपना और ब्रह्माजीका जन्म तथा अपना उपदेश, यह ज्ञानकी भूमिका इस १० वें सर्गमें वर्णन कीगईहै.

श्रीवसिष्ठ उवाच—यथास्थितं ब्रह्मतत्त्वं सत्ता नियतिरुच्यते ॥ सा विनेतुर्विनेतृत्वं सा विनेयविनेयता ॥ १ ॥ अतः पौरुषमाश्रित्य श्रेयसे नित्यबान्धवम् ॥ एकाग्रं कुरु तच्चित्तं शृणु चोक्तमिदं मम ॥ २ ॥ अवान्तरनिपातीनि स्वारूढानि मनोरथम् ॥ पौरुषेणेन्द्रियाण्याशु संयम्य समतां नय ॥ ३ ॥ इहामुत्र च सिद्धयर्थं पुरुषार्थफलप्रदाम् ॥ मोक्षोपायमयीं वक्ष्ये संहितां सारनिर्मिताम् ॥४॥

अर्थ—कदाचित् यह कहो कि—पूर्वजन्मका पुरुषार्थही दैवनाम है,परन्तु नियति अथवा भवितव्यता जिसको वैराग्यप्रकरणमें कृतांतकी भार्यारूपसे वर्णनकियाहै, वह इस शंकाका परिहार करतेहुये श्रीवसिष्ठजी बोले—सर्वत्र समरूपसे स्थित जो व्यापक ब्रह्मकी सत्ता है उसीका नाम नियति है. और सत्ता नाम ब्रह्मतत्त्वका है; वही कार्यकारणके नियम्य और नियामकरूपसे स्थितहै, कारण होनेपर कार्य्य अवश्य होताहै; और कार्यहोनेपर कारण अवश्य होताहै, इसीनियमका नाम नियति है, वही कारण आदिकी नियामकता है; और वही कार्य आदिकी नियम्यताभी है ॥ १ ॥ सबके अनुकूल ब्रह्मसत्तारूप नियतिके होनेसे सत्ताका बन्धु जो पुरुषार्थ है उसीका आश्रय लेके चित्तको एकाग्र करो, और परमकल्याणकेलिये मैं जो कहताहूं उसे सुनो ॥ २ ॥ सबइंद्रियां विषयकी अभिलाषामें अति आरूढ हैं इसीलिये ऐहिक स्वर्गादिसुखकीओर अधिक गिरतीहैं उनको पुरुषार्थरूपीयत्नसे जीतकर मनमें लीन करनाचाहिये ॥ ३ ॥ जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्तिकी सिद्धिकेलिये पुरुषार्थके फलको देनेवाली मोक्षसाधन उपदेशोंसे पूर्ण सारभूत संहिताको मैं कहूंगा सुनिये ॥ ४ ॥

अपुनर्ग्रहणार्थांतस्त्यक्त्वा संसारवासनाम् ॥ सम्पूर्णां शमसन्तोषावादायोदारया धिया ॥ ५ ॥ सपूर्वापरवाक्यार्थविचारविषयाहतम् ॥ मनः समरसं कृत्वा सानुसन्धानमात्मनि ॥ ६ ॥ सुखदुःखक्षयकरं महानन्दैककारणम् ॥ मोक्षोपायमिमं राम वक्ष्यमाणं मया शृणु ॥ ७ ॥ इमां मोक्षकथां श्रुत्वा सह सर्वैर्विवेकिभिः[1] ॥ परं यास्यसि निर्दुःखं नाशो यत्र न विद्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—सदाकेलिये संसारकी वासनाको त्यागकर और उदारबुद्धिसे पूर्ण शम और सन्तोषको ग्रहण करके॥५॥ कर्मकांड और उपासनाकांडकी श्रुतियोंके अर्थके विचारसहित और विषयवासनासे रहित समरस मनको आत्मामें लगाके ॥ ६ ॥ वैषयिकसुख और दुःखको क्षयकरनेवाला महाआनन्दका कारण यह जो मोक्षका उपाय मैं कहूंगा उसको हे रामजी ! सुनिये ॥ ७ ॥ सब विवेकियोंके साथ इस मोक्षकथाको सुनके अविनाशी और दुःखरहित परमपदको प्राप्तहोओगे ॥ ८ ॥

इदमुक्तं पुरा कल्पे ब्रह्मणा परमेष्ठिना ॥ सर्वदुःखक्षयकरं परमाश्वासनं धियः ॥९॥ श्रीराम उवाच—केनोक्तं कारणेनेदं ब्रह्मन्पूर्वं स्वयम्भुवा ॥ कथं च भवता प्राप्तमेतत्कथय मे प्रभो ॥ १०॥ श्रीवसिष्ठ उवाच—अस्त्यनन्तविलासात्मा सर्वगः सर्वसंश्रयः ॥ चिदाकाशोऽविनाशात्मा प्रदीपः सर्वजन्तुषु ॥ ११ ॥ स्पन्दास्पन्दसमाकारात्ततो विष्णुरजायत ॥ स्यन्दमानरसापूरात्तरंगः सागरादिव ॥१२॥

---

1 जो विवेकरहित अथवा मन्दवैराग्यवाले हैं उनको ज्ञान नहींप्राप्तहोता, इस बातको दर्शानेकेलिये विवेकियोंके साथ यह कहा.

अर्थ— सर्वदुःखोंका नाशक बुद्धिको परमशांतिदायक इस मोक्षोपायको ब्रह्माजीने कल्पके आदिमें मुझसे कहाथा ॥ ९ ॥ श्रीरामजी बोले—हे ब्रह्मन् ! किसकारणसे ब्रह्माजीने इसमोक्षोपायकी कथा कहीथी ? और वह कथा आपको कैसी प्राप्तहुई ? हे प्रभो ! यह वृत्तांत मुझसे कहिये ॥ १० ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—अनन्त मायारचितविलासोंका अधिष्ठानरूप, सर्वव्यापि, सबका आश्रय, नाशरहित और सबप्राणियोंमें प्रकाशरूप, चिदाकाश (चेतन परमात्मा) है ॥ ११ ॥ माया और उसके कार्योंके चलायमान होनेपरभी निर्विकार समानरूप उसपरमात्मोंसे विष्णु ऐसे प्रकटहुये जैसे जलकी राशि एकरस समुद्रसे चंचल तरंग ॥ १२ ॥

सुमेरुकर्णिकात्तस्य दिग्दलाद्धृदयाम्बुजात् ॥ तारकाकेसरवतः परमेष्ठी व्यजायत ॥ १३ ॥ वेदवेदार्थविद्देवमुनिमण्डलमण्डितः ॥ सोऽसृजत्सकलं सर्गं विकल्पौघं यथा मनः ॥ १४ ॥ जम्बुद्वीपस्य कोणेऽस्मिन् वर्षे भारतनामनि ॥ ससर्ज जनसर्गौघं ह्याधिव्याधिपरिप्लुतम् ॥ १५ ॥ भावाभावविपण्णाङ्गमुत्पातध्वंसतत्परम् ॥ सर्गेऽस्मिन्भूतजातीनां नानाव्यसनसंकुलम् ॥ १६ ॥ जनस्यैतस्य दुःखं तद्दृष्ट्वा सकललोककृत् ॥ जगाम करुणामीशः पुत्रदुःखात्पिता यथा ॥ १७ ॥

अर्थ—जिसमें सुमेरु कर्णिका है, जिसमें दलरूप सब दिशायें हैं, और तारागण जिसमें केशर हैं, ऐसे उस विराट् परमात्माके हृदयकमलसे ब्रह्माजी उत्पन्नहुये ॥ १३ ॥ वेद और वेदोंके अर्थोंके जाननेवाले देवता और मुनियोंके समूहसे शोभित ब्रह्माजीने अपनी इच्छानुसार विकल्परूप संपूर्ण सृष्टि रची ॥ १४ ॥ जम्बुद्वीपके भारतवर्षनामक कोनेमें शारीरिक और मानसी दुःखोंसे पूर्ण मनुष्योंके समूहको रचा ॥ १५ ॥ इस संसारके दुःखोंको, संपूर्णसंसारके कर्ता ब्रह्माजी देखकर ऐसे करुणासे पूर्णहुये जैसे पुत्रके दुःखसे पिता ॥ १६ ॥ १७ ॥

क एतेषां हताशानां दुःखस्यांतो हतायुषाम् ॥ स्यादिति क्षणमेकाग्रं चिन्तयामास भूतये ॥ १८ ॥ इति संचिन्त्य भगवान् ससर्ज स्वयमीश्वरः ॥ तपो धर्मं च दानं च सत्यं तीर्थानि चैव हि ॥ १९ ॥ एतत्सृष्ट्वा पुनर्देवश्चिन्तयामास भूतकृत् ॥ पुंसां नानेन सर्गस्य दुःखस्यांत इति स्वयम् ॥ २० ॥

अर्थ—इन हताश और नष्टआयुवाले प्राणियोंके दुःखके नाशका कौन उपाय है ? ऐसा उनके कल्याणके लिये एकाग्रचित्त होके क्षणभर विचार किया ॥ १८ ॥ दुःख हरनेमें समर्थ भगवान् ब्रह्माजीने ऐसी चिन्ता करके स्वयं तप, धर्म, दान,सत्य और तीर्थोंको उत्पन्नकिया ॥ १९ ॥ सबप्राणियोंके रचनेवाले देव ब्रह्माजीने सबको रचके पुनः स्वयं विचार किया कि ! सृष्टिके प्राणियोंका सर्वथा इससे दुःखका अन्त न होगा ॥ २० ॥

निर्वाणं नाम परमं सुखं येन पुनर्जनः ॥ न जायते न म्रियते तज्ज्ञानादेव लभ्यते ॥ २१ ॥ संसारोत्तरणे जन्तोरुपायो ज्ञानमेव हि ॥ तपो दानं तथा तीर्थमनुपायाः प्रकीर्तिताः ॥ २२ ॥ तत्तावद्दुःखमोक्षार्थं जनस्यास्य हतात्मनः ॥ प्रत्यग्रन्तरणोपायमाशु प्रकटयाम्यहम् ॥ २३ ॥ इति संचिन्त्य भगवान् ब्रह्मा कमलसंस्थितः ॥ मनसा परिसंकल्प्य मामुत्पादितवानिमम् ॥ २४ ॥

अर्थ—जिससे वह प्राणि इस संसारमें पुनः न उत्पन्नहोताहै और न मरताहै उस परमसुखका नाम निर्वाण है, वह केवल ज्ञानसेही प्राप्तहोताहै, अन्यथा नहीं ॥ २१ ॥ संसारसे पार उतरनेका उपाय केवल ज्ञानही है. तप, दान और तीर्थ, ये उसके उपाय नहींहैं ॥ २२ ॥ इसलिये दुःखसे छूटनेकेलिये और हतबुद्धिमनुष्योंके संसारसे पार उतरनेके लिये दृढ उपाय मैं शीघ्र प्रगटकरताहूं ॥ २३ ॥ कमलमें विराजमान ब्रह्माजीनें ऐसा विचार करके और मनसे संकल्प करके तुमारे सम्मुख स्थित जो मैं हूं उसको उत्पन्नकिया ॥ २४ ॥

कुतोऽप्युत्पन्न एवाशु ततोऽहं समुपस्थितः ॥ पितुस्तस्य पुनः शीघ्रमूर्मिरूर्मेरिवानघ ॥ २५ ॥ कमंडलुधरो नाथः सकमण्डलुना मया ॥ साक्षमालः साक्षमालं सप्रणम्याभिवादितः ॥ २६ ॥ एहि पुत्रेति मामुक्त्वा स स्वाब्जस्योत्तरे दले ॥ शुक्लाभ्र इव शीतांशुं योजयामास पाणिना ॥ २७ ॥ मृगकृत्तिपरीधानो मृगकृत्तिनिजांबरम् ॥ मामुवाच पिता ब्रह्मा सुहंसः सारसं यथा ॥ २८ ॥

अर्थ—हे अनघ ! उसके अनन्तर मायाके वशसे शीघ्र अकस्मात् उत्पन्न मैं पिताके समीप ऐसे प्राप्तहुआ जैसे तरंगके समीप तरंग ॥ २५ ॥ कमण्डलु धारणकियेहुये, सबके स्वामी और जपमालासहित ब्रह्माजीको, कमण्डलु हाथमें लेके और जपमालाको धारण करके नम्र होके मैंने प्रमाण किया ॥ २६ ॥ आओ पुत्र ! ऐसे मुझसे कहके

श्वेतमेघमें चंद्रमाके समान अपने कमलके उत्तरदलमें हाथसे मुझे बैठालिया ॥ २७ ॥ मृगका चर्म धारणकिये पिता ब्रह्माजी मृगचर्म धारणकियेहुए मुझसे ऐसे बोले जैसे उत्तम हंस सारससे ॥ २८ ॥

मुहूर्त्तमात्रं ते पुत्र चेतो वानरचंचलम् ॥अज्ञानमभ्याविशतु शशः शशधरं यथा ॥२९॥ इति तेनाशु शप्तः सन् विचारसमनन्तरम् ॥ अहं विस्मृतवान् सर्वं स्वरूपममलं किल ॥ ३० ॥ अथाहं दीनतां यातः स्थितोऽसम्बुद्धया धिया ॥ दुःखशोकाभिसन्तप्तो जातो जन इवाधनः ॥३१॥ कष्टं संसारना-माऽयं दोषः कथमिहागतः ॥ इति चिन्तितवानंतस्तूष्णीमेव व्यवस्थितः ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे पुत्र ! अल्पकालकेलिये वानरके समान चंचल तुमारे चित्तमें अज्ञान ऐसे प्रवेश करे जैसे चंद्रमामें कलंक ॥ २९ ॥ इसप्रकार ब्रह्माजीसे शापित मैं, उनके विचारके अनन्तर अपना सम्पूर्ण स्वरूप शीघ्रही भूलगया ॥ ३० ॥ इसके अनन्तर अतिदीन, जडतायुक्त बुद्धिसहित, और दुःख तथा शोकसे संतप्त निर्धनजनके समान मैं होगया ॥ ६१ ॥ यह संसार अतिदुःखका हेतु है यह दोष कैसे आया ऐसा विचार चुपचाप मैंने अपने अन्तःकरणमेंही किया ॥ ३२ ॥

अथाभ्यधात्स मां तातः पुत्र किं दुःखवानसि ॥ दुःखोपघातं मां पृच्छ सुखी नित्यं भविष्यसि ॥३३॥ ततः पृष्टः स भगवान् मया सकललोककृत् ॥ हेमपद्मदलस्थेन संसारव्याधिभेषजम् ॥ ३४ ॥ कथं नाथ महादुःखमयः संसार आगतः ॥ कथं च क्षीयते जंतोरिति पृष्टेन तेन मे ॥ ३५ ॥ तज्ज्ञानं सुबहु प्रोक्तं यज्ज्ञात्वा पावनं परम् ॥ अहं पितुरभिप्रायः किलाधिक इव स्थितः ॥ ३६ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर पिताजीने मुझसे पूंछा कि पुत्र तुम क्यों दुःखी हो ? दुःखके नाशका उपाय मुझसे पूछो ! जिससे सदा सुखी होओगे ॥ ३३ ॥ पुनः सुवर्णके कमलपर बैठेहुये तथा सम्पूर्ण लोकके रचनेवाले ब्रह्मा-जीसे संसाररूपी रोगका औषध मैंने पूंछा कि ॥ ३४ ॥ हे पितः ! यह दुःखमय संसार प्राणिको कैसे प्राप्तहुआ ? और किसप्रकार इसका नाश होताहै ? इसप्रकार मेरे पूंछनेसे बहुत कुछ ज्ञान उन्होंने वर्णनकिया, जिसको जान-नेसे परम पवित्रपद प्राप्तहोताहै, और उस ज्ञानसे पिताके सर्वोत्तम अभिप्रायके अनुकूल तत्वबोधके समान निर्मल परिपूर्ण स्वभायुक्त मैं होगया ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

ततो विदितवेद्यं मां निजां प्रकृतिमास्थितम् ॥ स उवाच जगत्कर्ता वक्ता सकलकारणम् ॥ ३७ ॥ शापेनाज्ञपदं नीत्वा पृच्छकस्त्वं मया कृतः ॥ पुत्रास्य ज्ञानसारस्य समस्तजनसिद्धये ॥३८॥ इदानीं शांतशापस्त्वं परं बोधमुपागतः ॥ संस्थितोऽहमिवैकात्माऽकनकं कनकादिव ॥ ३९ ॥ गच्छेदानीं महीपृष्ठे जंबुद्वीपांतरस्थितम् ॥ साधो भारतवर्षं त्वं लोकानुग्रहहेतुना ॥ ४० ॥

अर्थ—उसके पश्चात् जब मैं जाननेयोग्य वस्तुको जानगया और अपनी प्रकृतीमें स्थितहुआ तो जगत्कर्ता उपदेश करनेवाले ब्रह्माजीने मुझसे सब कारण कहा ॥ ३७ ॥ हे पुत्र समस्त अधिकारीजनोंकी ज्ञानसिद्धिकेलिये, शापसे तुमको अज्ञानी बनाके इस ज्ञानरूपी सारपदार्थका पूंछनेवाला मैंने बनायाथा ॥ ३८ ॥ इससमय तुम शापसे रहित परमबोधको प्राप्तहुयेहो, जैसे सुवर्ण दीर्घकालतक मलिनताके सबन्धसे सुवर्णसे पृथक् भासने लगताहै और शुद्धहोनेसे पुनः आदिस्वरूपको प्राप्तहोजाताहै, ऐसेही इससमय ज्ञानद्वारा शुद्धहोके तुम मेरेसमान हो ॥ ३९ ॥ हे साधो ! इससमय तुम संसारके ऊपर अनुग्रह करके जम्बुद्वीपके मध्यमें जो भारतवर्ष है वहांपर जाओ ॥ ४० ॥

तत्र क्रियाकांडपरास्त्वया पुत्र महाधिया ॥ उपदेश्याः क्रियाकांडक्रमेण क्रमशालिना ॥४१॥ विरक्त-चित्ताश्च तथा महाप्राज्ञा विचारिणः ॥ उपदेश्यास्त्वया साधो ज्ञानेनानंददायिना ॥ ४२ ॥ इति ते-न नियुक्तोऽहं पित्रा कमलयोनिना ॥ इह राघव तिष्ठामि यावद्भूतपरंपरा ॥ ४३ ॥ कर्तव्यमस्ति न ममेह हि किंचिदेव स्थातव्यमित्यतिमना भुवि संस्थितोऽस्मि ॥ संशांतया सततसुप्तधियेह वृत्त्या कार्यं करोमि न च किंचिदहं करोमि ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकिये देवदूतोक्तेमोक्षोपाये मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे ज्ञानावतरणं नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

अर्थ—हे पुत्र ! वहांपर जो क्रियाकांडमें तत्पर हैं उनको तुम अपनी महाबुद्धिसे क्रमसे शोभायमान जो क्रियाकांड है उसीका उपदेश देना ॥ ४१ ॥ और जो विरक्तचित्त, महापण्डित और विचारशील जन हैं उनको

आनन्ददायी ज्ञानका उपदेश करना ॥ ४२ ॥ हे रामजी ! इसप्रकार पिताकी आज्ञासे नियुक्त मैं जबतक अधिकारी जन रहैंगे तबतक यहांही हूं ॥ ४३ ॥ हे रामजी ! मुझे इस संसारमें कुछ प्रयोजन नहीं है, कहीं रहनाचाहिये सो पृथ्वीपरही स्थित हूं, सदा निरभिमान होके यथाप्राप्त अज्ञानिओंकी बुद्धिसे कार्य करताहूं, और अपनी बुद्धिसे मैं कुछ नहींकरता ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे ज्ञानावतरणं नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

विस्तारसे ज्ञानका अवतार, रामचन्द्रजीके वैराग्यकी स्तुति और प्रधानतासे वक्ता और प्रष्टाके लक्षण इस ११वें सर्गमें वर्णन कियेगयेहैं.

श्रीवसिष्ठ उवाच ॥ ॥ एतत्ते कथितं सर्वं ज्ञानावतरणं भुवि ॥ मया स्वमीहितं चैव कमलोद्भवचेष्टितम् ॥ १ ॥ तदिदं परमं ज्ञानं श्रोतुमद्य तवानघ ॥ भृशमुत्कण्ठितं चेतो महतः सुकृतोदयात् ॥२॥ श्रीराम उवाच ॥ ॥ कथं ब्रह्मन् भगवतो लोके ज्ञानावतारणे ॥ सर्गस्यानन्तरं बुद्धिः प्रवृत्ता परमेष्ठिनः ॥ ३ श्रीवसिष्ठ उवाच ॥ ॥ परमे ब्रह्मणि ब्रह्मा स्वभाववशतः स्वयम् ॥ जातः स्पन्दमयो नित्यमूर्मिरम्बुनिधाविव ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! यह ज्ञानकी भूमिका और अपनी तथा ब्रह्माजीकी जन्मकी सम्पूर्ण चेष्टा आपसे मैंने कही ॥ १ ॥ हे पापरहित रामजी, इसलिये यह परमपवित्र जो ज्ञान है, इसके सुननेको जो आपके चित्तमें अत्यन्त इच्छा हुईहै यह आपके बडे भारी सुकृतका उदय हुआहै ॥ २ ॥ श्रीरामजी बोले—हे ब्रह्मन् ! सृष्टिके अनन्तरही भगवान् ब्रह्माजीकी संसारमें ज्ञानके अवतारकेलिये बुद्धि कैसे प्रवृत्तहुई, यह वार्ता विस्तारसे कृपाकरके वर्णनकीजिये ॥ ३ ॥ श्री वसिष्ठजी बोले—परब्रह्म परमात्माके स्वरूपमें पूर्वजन्मके कर्मकी वासनाके समूहसे क्रियाशक्तिमय ब्रह्माजी ऐसें उत्पन्नहुये जैसे नित्यही समुद्रमें तरंग उत्पन्न होताहै ॥ ४ ॥

दृष्ट्वैवमातुरं सर्गं सर्गस्य सकलां गतिम् ॥ भूतभव्यभविष्यस्थां ददर्श परमेश्वरः ॥ ५ ॥ स क्रियाक्रमकालस्य कृतादेः क्षय आगते ॥ मोहमालोच्य लोकानां कारुण्यमगमत्प्रभुः ॥६॥ ततो मामीश्वरः सृष्ट्वा ज्ञानेनायोज्य चासकृत् ॥ विससर्ज महीपीठं लोकस्याज्ञानशांतये ॥ ७ ॥ यथाहं प्रहितस्तेन तथान्ये च महर्षयः ॥ सनत्कुमारप्रमुखा नारदाद्याश्च भूरिशः ॥८॥

अर्थ—सम्पूर्णलोकमें और सबप्राणियोंकी सृष्टिके अनन्तर, उत्पन्नकिये जो प्राणी हैं उनको अज्ञानके कारणसे जन्म, वृद्धावस्था, और मृत्यु आदिसे दुःखको देखके उन प्राणियोंकी भूत, वर्तमान, और भविष्यकी दशाकोभी देखा ॥ ५ ॥ स्वर्ग और मोक्षके साधक अनुष्ठानयोग्य सतयुग आदि कालके बीतनेपर मनुष्योंके भावी अज्ञानको देखके अतिकरुणासे ब्रह्माजी पूर्ण होगये ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर ब्रह्माजीने मुझे उत्पन्नकरके और बार२ उपदेशद्वारा ज्ञानसे संयुक्तकरके, संसारके अज्ञानकी शांतिकेलिये पृथ्वीपर भेजा ॥ ७ ॥ हे रामजी ! जैसे ब्रह्माजीने मुझे भेजा ऐसेही सनत्कुमार आदि तथा नारदजी आदि औरभी अनेक ऋषियोंको भेजा ॥ ८ ॥

क्रियाक्रमेण पुण्येन तथा ज्ञानक्रमेण च ॥ मनो मोहामयोन्नद्धमुद्धर्तुं लोकमीरिताः ॥९॥ महर्षिभिस्ततस्तैस्तैः क्षीणे कृतयुगे पुरा ॥ क्रमात्क्रियाक्रमे शुद्धे पृथिव्यां तनुतां गते ॥ १० ॥ क्रियाकर्मविधानार्थं मर्यादानियमाय च ॥ पृथग्देशविभागेन भूपालाः परिकल्पिताः ॥११॥ बहूनि स्मृ[illegible]स्त्राणि यज्ञशास्त्राणि चावनौ ॥ धर्मकामार्थसिद्ध्यर्थं कल्पितान्युचितान्यथ ॥ १२ ॥

अर्थ—क्रियाकर्म उपासना तथा पवित्रज्ञानके उपदेशद्वारा मनमें स्थित अज्ञानरूपी रोगसे ग्रस्त संसारका उद्धार करनेकेलिये ये सब ऋषि भेजेगयेहैं ॥ ९ ॥ प्रथम सतयुगके क्षीण होजानेपर, और क्रमसे पृथ्वीपर शुद्ध यज्ञादि क्रियाओंके न्यून होजानेपर, महर्षियोंने क्रियाक्रमकी प्रवृत्तिकेलिये और मर्य्यादाओंके नियमकेलिये पृथक्२ देशोंमें राजाओंको स्थापितकिया ॥ १० ॥ ११ ॥ राजाओंको स्थापनेके उत्तर राजा और प्रजाके अपने २ नियमके योग्य धर्म कर्मकी सिद्धिकेलिये पृथ्वीपर अनेक स्मृति आदि शास्त्र बनाये ॥ १२ ॥

कालचक्रे वहत्यस्मिंस्ततो विगलिते क्रमे ॥ प्रत्यहं भोजनपरे जने शाल्यर्जनोन्मुखे ॥ १३ ॥ द्वंद्वानि संप्रवृत्तानि विषयार्थं महीभुजाम् ॥ दंड्यतां संप्रयातानि भूतानि भुवि भूरिशः ॥ १४ ॥ ततो युद्धं विना भूपा महीं पालयितुं क्षमाः ॥ न समर्थास्तदा याताः प्रजाभिः सह दैन्यताम् ॥१५॥ तेषां दैन्यापनोदार्थं सम्यग्दृष्टिक्रमाय च ॥ ततोऽस्मदादिभिः प्रोक्ता महत्यो ज्ञानदृष्टयः ॥ १६ ॥

अर्थ—इसप्रकार कालचक्र जब चलरहाथा तथा शुद्धमर्यादा नष्ट होनेपरही थी और प्रतिदिन मनुष्य विषयभोगोंमें तत्पर होरहेथे ॥ १३ ॥ उससमय राजाओंमें विषयकेलिये आपसमें वैरबढगया, और पृथ्वीकि प्राणी दण्डके योग्य होगये ॥ १४ ॥ इसके अनन्तर प्रथम जो राजालोग युद्धके विना पृथ्वीपालनेमें समर्थ थे, वे असमर्थ होगये; और देहमें आत्मबुद्धि होनेसे प्रजाओंकेसाथ दीन होगये ॥ १५ ॥ अनन्तर उनकी दीनता दूरकरनेकेलिये और ज्ञानके प्रचारके अर्थ हमने बडे २ ज्ञानके शास्त्र रचे ॥ १६ ॥

अध्यात्मविद्या तेनेयं पूर्वं राजसु वर्णिता ॥ तदनु प्रसृता लोके राजविद्येत्युदाहृता ॥ १७ ॥ राजविद्या राजगुह्य मध्यात्मज्ञानमुत्तमम् ॥ ज्ञात्वा राघव राजानः परां निर्दुःखतां गताः ॥ १८ ॥ अथ राजस्वतीतेषु बहुष्वमलकीर्त्तिषु ॥ अस्माद्दशरथाद्राम जातोऽद्यत्वमिहाऽवनौ ॥ १९ ॥ तव चातिप्रसन्नेऽस्मिन् जातं मनसि पावनम् ॥ निर्निमित्तमिदं चारु वैराग्यमरिमर्दन ॥ २० ॥

अर्थ—यह अध्यात्मविद्या प्रथम राजाओंमें वर्णन कीगईथी उसके अनन्तर संसारमें सबप्रजाओंमें प्रवृत्तहुई, इसीसे इसका नाम राजविद्या है ॥ १७ ॥ हे राघव ! यह राजाओंमें गोप्य राजविद्या उत्तम अध्यात्मज्ञान है, इसको जानके राजालोग दुःखरहित परम शांतिको प्राप्तहुये ॥ १८ ॥ इसके अनन्तर बहुतसे निर्म्मलकीर्ति राजाओंके व्यतीत होनेपर उदारकीर्ति राजा दशरथसे इससमय तुम पृथ्वीपर उत्पन्न हुये हो ॥ १९ ॥ हे अरिमर्दन रामजी ! आपके अतिप्रसन्न चित्तमें विनाकारण उत्तम वैराग्य यह उत्पन्नहुआहै ॥ २० ॥

सर्वस्यैव हि सर्वस्य साधोरपि विवेकिनः ॥ निमित्तपूर्वं वैराग्यं जायते राम राजसम् ॥ २१ ॥ इदं त्वपूर्वमुत्पन्नं चमत्कारकरं सताम् ॥ तवानिमित्तं वैराग्यं सात्विकं स्वविवेकजम् ॥२२॥ बीभत्सं विषयं दृष्ट्वा को नाम न विरज्यते ॥ सतामुत्तमवैराग्यं विवेकादेव जायते ॥ २३ ॥ ते महान्तो महाप्राज्ञा निमित्तेन विनैव हि ॥ वैराग्यं जायते येषां तेषां ह्यमलमानसम् ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! सम्पूर्ण पुरुषसमूहके मध्यमें सब विवेकियोंकोभी पूर्वकालमें कुछ निमित्तहीसे राजस[1] वैराग्य उत्पन्नहोताहै ॥ २१ ॥ परंतु यह सज्जनोंको चमत्कारकारी, अपूर्व, विनाकारण निजके विवेकसे सात्विक वैराग्य आपकोही उत्पन्नहुआहै ॥ २२ ॥ घृणाजनक विषयोंको देखके किसको वैराग्य नहींहोता, परन्तु सज्जनपुरुषोंको विवेकसेही वैराग्य उत्पन्नहोताहै ॥२३॥ जिनको विनानिमित्त केवल विवेकसेही वैराग्य उत्पन्न होताहै वेही महात्माहैं, वेही महाबुद्धिमान्हैं, और उनका मन निर्मलहै ॥ २४ ॥

स्वविवेकचमत्कारपरामर्शविरक्तया ॥ राजते हि धिया जन्तुर्युवेव वरयालया ॥ २५ ॥ परामृश्य विवेकेन संसाररचनामिमाम् ॥ वैराग्यं येऽधिगच्छन्ति त एव पुरुषोत्तमाः ॥ २६ ॥ स्वविवेकवशादेव विचार्येदं पुनः पुनः ॥ इन्द्रजालं परित्याज्यं सबाह्याभ्यन्तरं बलात् ॥ २७ ॥ श्मशानमापदं दैन्यं दृष्ट्वा को न विरज्यते ॥ तद्वैराग्यं परं श्रेयः स्वतो यदभिजायते ॥ २८ ॥

अर्थ—अपने विलक्षण विचारसे जो आत्मतत्वकीओर अभिमुखता होती है, उससे विषयोंसे विरक्त प्राणीकी ऐसी शोभा होती है, जैसे उत्तममोतियोंकी मालासे तरुणपुरुषकी ॥ २५ ॥ जिनको विवेकद्वारा इस संसारकी रचनाको विचारनेसे वैराग्य उत्पन्नहोताहै वेही उत्तम पुरुषहैं ॥ २६ ॥ अपने विवेकसे इसको वार २ विचार करके इस सम्पूर्ण बाह्य दृश्य और देह इन्द्रिय तथा बुद्धि आदिको मायिक समझके त्यागना चाहिये ॥ २७ ॥ श्मशान, आपत्ति और दीनताको देखकर किसको वैराग्य नहीं उत्पन्नहोता, श्रेष्ठ वैराग्य तो वही है जो आपही विवेकसे उत्पन्नहो ॥२८॥

अकृत्रिमविरागत्वं महत्वमलमागतः ॥ योग्योऽसि ज्ञानसारस्य बीजस्येव मृदु स्थलम् ॥ २९ ॥ प्रसादात्परमेशस्य नाथस्य परमात्मनः ॥ त्वादृशस्य शुभा बुद्धिर्विवेकमनुधावति ॥ ३० ॥ क्रियाक्रमेण महता तपसा नियमेन च ॥ दानेन तीर्थयात्राभिश्चिरकालं विवेकतः ॥३१ ॥ दुष्कृते क्षयमापन्ने परमार्थविचारणे ॥ काकतालीययोगेन बुद्धिर्जंतोः प्रवर्त्तते ॥ ३२ ॥

(१) रजोगुणके कार्य दुःखके अनुभवसे राजस कहाजाताहै.

अर्थ—स्वाभाविक महान् वैराग्य आपको प्राप्तहुआहै, इसलिये आत्मविद्याके आप ऐसे पात्रहो जैसे बीजकी कोमल भूमि ॥ २९ ॥ सबके स्वामी परमात्माकी कृपाहीसे आपके सदृश मनुष्योंकी शुभबुद्धि विवेककी ओर दौडती है ॥ ३० ॥ क्रिया कर्म अर्थात् १६ सोलह संस्कारोंमें, पंचमहायज्ञ और पार्वणश्राद्धादि करनेसे तथा दया शान्ति और शौच आदि आत्मगुणोंसे, शीतउष्ण आदि सहन तथा चान्द्रायण आदि तपसे, इन्द्रिय, प्राण और मनके निग्रहरूप नियमसे, दानसे, तीर्थयात्रासे, और अधिककालके विवेकसे ॥ ३१ ॥ जब दुष्कृतका क्षय होताहै तब सब साधनोंके मेलरूप काकतालीयन्यायके तुल्य मनुष्यकी बुद्धि आत्मज्ञानके विचारकी ओर बडे सौभाग्यसे प्रवृत्तहोती है ॥ ३२ ॥

क्रियापरास्तावदलं चक्रावर्तिभिरावृताः ॥ भ्रमन्तीह जना यावन्न पश्यन्ति परं पदम् ॥ ३३ ॥ यथाभूतमिदं दृष्ट्वा संसारं तन्मयीं धियम् ॥ परित्यज्य परं यान्ति निरालाना गजा इव ॥ ३४ ॥ विषमेयमनन्तेह राम संसारसंसृतिः ॥ देहयुक्तो महाजन्तुर्विना ज्ञानं न पश्यति ॥ ३५ ॥ ज्ञानयुक्तिप्लवेनैव संसाराब्धिं सुदुस्तरम् ॥ महाधियः समुत्तीर्णा निमेषेण रघूद्वह ॥ ३६ ॥

अर्थ—जबतक यह प्राणी परंपद नहीं देखता, तबतक केवल क्रियाकाण्डमें तत्पर चक्रकेसदृश भ्रमणकारी रागद्वेषादिसे घिराहुआ इसी संसारमें भ्रमण करताहै ॥ ३३ ॥ इस संसारको विवेकयुक्तबुद्धिसे जैसाहै वैसा जानकर, और तन्मयीबुद्धिको त्यागकर जैसे बन्धनरहित गज अपने अभीष्टस्थानपर जाते हैं, वैसेही दुःखमय संसारबंधनसे रहित हो विवेकी जन परब्रह्मको प्राप्तहोते हैं ॥ ३४ ॥ हे रामचन्द्रजी ! इस संसारकी अनन्त प्रवृत्ति सुखदुःखादियुक्त होनेसे अतिभयंकरहै. जिसको देहमें आत्माका अभिमानहै, वह न तो संसारका यथार्थरूप जानताहै, और न ईश्वरका, इसलिये वह महान् धनाढ्य होनेपरभी कीट पतंगके तुल्यहै ॥ ३५ ॥ हे रघूद्वह रामजी ! ज्ञानयुक्तिरूप नौकासे विवेकी जन एकनिमेषमें दुस्तर संसाररूपी समुद्रके पार होजाते हैं ॥ ३६ ॥

तामिमां ज्ञानयुक्तिं त्वं संसाराम्भोधितारिणीम् ॥ शृणुष्वावहितो बुद्ध्या नित्याऽवहितया तया ३७ यस्मादनन्तसंरम्भा जागत्यो दुःखभीतयः ॥ चिरायान्तर्दहन्त्येता विना युक्तिमनिन्दितान् ॥ ३८ ॥ शीतवातातपादीनि द्वंद्वदुःखानि राघव ॥ ज्ञानयुक्तिं विना केन सह्यतां यान्ति साधुषु ॥ ३९ ॥ आपतन्ति प्रतिपदं यथाकालं दहंति च ॥ दुःखचिन्ता नरं मूढं तृणमग्निशिखा इव ॥ ४० ॥

अर्थ—हे रामजी ! सदा विचार और अभ्यासमें तत्पर तथा विवेक और वैराग्यसहित बुद्धिसे सावधानचित्त होकर संसाररूपसमुद्रसे पारकरनेवाली इस ज्ञानकी युक्तिको सुनो ॥ ३७ ॥ क्योंकि विना उत्तमज्ञानके वाणी, मन, क्रोध, जिव्हा, उदर और उपस्थ (गुह्येन्द्रिय) आदिके वेगयुक्त अनेक जगत्के दुःखोंके भय अधिककालतक हृदयको जलाते हैं ॥ ३८ ॥ हे राघव ! शीत, उष्ण, आदिरूप द्वंद्व दुःखोंको ज्ञानयुक्तिकेविना साधुमनुष्य कैसे सहन करसक्तेहैं? ॥ ३९ ॥ दुःखकी चिन्ता मूढमनुष्यके निकट क्षण २ में आती है, और समयपाकर उसको ऐसे जलाती है जैसे अग्निकी ज्वाला तृणको ॥ ४० ॥

प्राज्ञं विज्ञातविज्ञेयं सम्यग्दर्शनमाधयः ॥ न दहन्ति वनं वर्षासिक्तमग्निशिखा इव ॥ ४१ ॥ आधिव्याधिपरावर्त्ते संसारमरुमारुते ॥ क्षुभितेऽपि न तत्त्वज्ञो भज्यते कल्पवृक्षवत् ॥ ४२ ॥ तत्त्वं ज्ञातुमतो यत्नाद्धीमानेव हि धीमता ॥ प्रामाणिकः प्रबुद्धात्मा प्रष्टव्यः प्रणयान्वितम् ॥ ४३ ॥ प्रामाणिकस्य पृष्टस्य वक्तुरुत्तमचेतसः ॥ यत्नेन वचनं ग्राह्यमंशुकेनेव कुंकुमम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—जिस बुद्धिमान् महात्माने विचारसे जानने योग्य वस्तुको जानलिया है और जिसको ब्रह्मसाक्षात्कार होगयाहै, उसको मानसिक पीडा ऐसे नहीं जला सक्ती जैसे वर्षासे भीगेहुये वनको अग्निकी ज्वाला ॥ ४१ ॥ मानसिक और शारीरिक दुःखरूपी चक्रयुक्त संसाररूपी मरुस्थलके पवनके चलनेपरभी, आत्मज्ञानी पुरुष कल्पवृक्षकेसमान पीडित नहीं होता ॥ ४२ ॥ इसलिये बुद्धिमान् मनुष्यको उचित है कि, प्रणाम सेवा आदि बडे यत्नसे आत्मतत्व जाननेकेलिये, जो श्रुति आदिके प्रमाणमें निपुण हो और आत्मज्ञानी (ब्रह्मनिष्ठ) और बुद्धिमान् हो उनसे नम्र होके प्रश्न करे ॥ ४३ ॥ शुद्धचित्त, पूंछेहुये वेदोंके प्रमाणमें कुशलवक्ताके वचनको ऐसे ग्रहण करना चाहिये जैसे कुंकुमके रसमें डालाहुआ नवीन वस्त्र कुंकुमको ग्रहण करता है ॥ ४४ ॥

अतत्त्वज्ञमनादेयवचनं वाग्विदां वर ॥ यः पृच्छति नरं तस्मान्नास्ति मूढतरोऽपरः ॥ ४५ ॥ प्रामा-

णिकस्य तज्ज्ञस्य वक्तुः पृष्टस्य यत्नतः ॥ नानुतिष्ठति यो वाक्यं नान्यस्तस्मान्नराधमः ॥ ४६ ॥ अज्ञताऽतज्ज्ञते पूर्वं वक्तुर्निर्णीय कार्यतः ॥ यः करोति नरः प्रश्नं पृच्छकः स महामतिः ॥ ४७ ॥ अनिर्णीय प्रवक्तारं बालः प्रश्नं करोति यः ॥ अधमःपृच्छकः स स्यान्न महार्थस्य भाजनम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ! जो आत्माको नहीं जानता, उसका वचन ग्रहणकरनेके योग्य नहीं है, ऐसे मनुष्यसे जो प्रश्न करताहै उससे बढके कोई मूर्ख नहीं है ॥ ४५ ॥ जो आत्मज्ञानी, और वेदोंके प्रमाणमें कुशल वक्ता है उसके वचनको जो बडे यत्नसे अंगीकार करके उसके अनुकूल आचरण नहीं करता उससेभी अधम कोई दूसरा मनुष्य नहीं है ॥ ४६ ॥ जो वक्ताके व्यवहारोंसे उसके ज्ञान और अज्ञानको निर्णय करके प्रश्न करताहै वही महाबुद्धिमान्है ॥ ४७॥ यह वक्ता ज्ञानी है वा अज्ञानी है इसबातका निर्णय न करके बालककेसमान जो प्रश्न करताहै वह मूर्ख है, और वह आत्मज्ञानका पात्र नहीं है ॥ ४८ ॥

पूर्वापरसमाधानक्षमबुद्धावनिन्दिते ॥ पृष्टं प्राज्ञेन वक्तव्यं नाधमे पशुधर्मिणि ॥ ४९ ॥ प्रामाणिकार्थयोग्यत्वं पृच्छकस्याविचार्य च ॥ यो वक्ति तमिह प्राज्ञाः प्राहुर्मूढतरं नरम् ॥ ५० ॥ त्वमतीव गुणश्लाघी पृच्छको रघुनन्दन ॥ अहं च वक्तुं जानामि समो योगोऽयमावयोः ॥ ५१ ॥ यदहं वच्मि तद्यत्नात्त्वया शब्दार्थकोविद ॥ एतद्वस्त्विति निर्णीय हृदि कार्यमखण्डितम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—जिस पुरुषकी बुद्धि उक्त और अनुक्त दोनों विषयोंको विचारकर ग्रहण करनेमें समर्थ है और जिसके आचरण अनिन्दित हों ऐसेही पुरुषको बुद्धिमान् आत्मज्ञानका उपदेश करे, न कि मूर्ख पशुबुद्धिमनुष्यको ॥ ४९ ॥ पूंछनेवाला प्रामाणिकअर्थके योग्य है, इसबातको विनाविचारे जो आत्मज्ञानका कथन करताहै उसको बुद्धिमान् महामूर्ख कहतेहैं ॥ ५० ॥ हे रघुनन्दन ! आप ऐसे पूंछनेवाले हैं कि जिसके गुणप्रशंसाके योग्यहैं, और मैंभी कहना जानताहूं, इसलिये हम दोनोंका यह संयोग आमिलाहै ॥ ५१ ॥ हे शब्द और अर्थके जाननेमें चतुर रामजी ! जो कुछ मैं कहूं वह वस्तु है. ऐसा निर्णय करके, बडे यत्नकेसाथ उसको सम्पूर्णरूपसे हृदयमें धारण करो ॥ ५२ ॥

महानसि विरक्तोऽसि तत्त्वज्ञोऽसि जनस्थितौ ॥ त्वयि चोक्तं लगत्यन्तः कुंकुमाम्बु यथांशुके॥५३॥ उक्तावधानपरमा परमार्थविवेचिनी ॥ विशत्यर्थं तव प्रज्ञा जलमध्यमिवार्कभाः ॥ ५४ ॥ यद्यद्वच्मि तदादेयं हृदि कार्यं प्रयत्नतः ॥ नो चेत्प्रष्टव्य एवाहं न त्वयेह निरर्थकम् ॥ ५५ ॥ मनो हि चपलं राम संसारवनमर्कटम् ॥ संशोध्य हृदि यत्नेन श्रोतव्या परमार्थगीः ॥ ५६ ॥

अर्थ—आप मनुष्योंमें, कुलसे, गुणसे, और सदाचारसे बडे हो, तुमारेलिये जो कुछ कहा जायगा वह अन्तःकरणमें ऐसा लगेगा जैसे कुंकुमका जल श्वेतवस्त्रमें ॥ ५३ ॥ कथित विषयको धारण करनेमें निपुण और परमार्थका विवेक करनेवाली आपकी बुद्धि पदार्थमें ऐसे प्रवेश करती है जैसे जलके बीचमें सूर्यकी प्रभा ॥ ५४ ॥ जो २ मैं कहूंगा वह सब ग्रहण करनेके योग्य है उसको आपको उचित है कि दीर्घकालके अभ्यासादिसे हृदयमें धारण करो, और यदि ऐसा न हो तो आपको निरर्थक मुझसे पूंछनाही न चाहिये ॥ ५५ ॥ हे रामजी ! इस संसाररूपी बनमें मनरूपी वानर अति चंचल है उसको रोंककर मोक्षदायक परमार्थकी वाणीको सुनना चाहिये और उसको यत्नसे हृदयमें धारण करना चाहिये ॥ ५६ ॥

अविवेकिनमज्ञानमसज्जनरतिं जनम् ॥ चिरं दूरतरे कृत्वा पूजनीया हि साधवः ॥ ५७ ॥ नित्यं सज्जनसंपर्काद्विवेक उपजायते ॥ विवेकपादपस्यैव भोगमोक्षौ फले स्मृतौ ॥ ५८ ॥ मोक्षद्वारे द्वारपालाश्चत्वारः परिकीर्तिताः ॥ शमो विचारः सन्तोषश्चतुर्थः साधुसंगमः ॥ ५९ ॥ एते सेव्याः प्रयत्नेन चत्वारो द्वौ त्रयोऽथ वा ॥ द्वारमुद्घाटयन्त्येते मोक्षराजगृहे तथा ॥ ६० ॥

अर्थ—जो अविवेकी तथा अज्ञानी है, और जिसकी दुष्टजनोंमें प्रीति हो, ऐसे मनुष्यको सदाकेलिये दूर करके, जो विवेकी, ज्ञानी, साधु, महात्मा हों उनकी सेवा करनी चाहिये ॥ ५७ ॥ सज्जनमहात्माके संगसे नित्यही विवेक उत्पन्न होताहै और विवेकरूप वृक्षकेही भोग और मोक्ष दोनों फल कहेगये हैं ॥ ५८ ॥ मोक्षके द्वारके शम (इन्द्रियोंका निग्रह) विचार, सन्तोष, और सतसंग, चार द्वारपाल कहेगये हैं ॥ ५९ ॥ इन चारोंकी, दोकी, अथवा तीनकी बडे यत्नसे सेवा करनीचाहिये; अर्थात् इनको सम्पादन करना चाहिये. क्योंकि-ये मोक्षरूपी राजाके द्वारको खोलदेते हैं ॥ ६० ॥

एकं वा सर्वयत्नेन प्राणांस्त्यक्त्वा समाश्रयेत् ॥ एकस्मिन् वशगे यान्ति चत्वारोऽपि वशं यतः॥६१॥ सविवेको हि शास्त्रस्य ज्ञानस्य तपसः श्रुतेः ॥ भाजनं भूषणाकारो भास्करस्तेजसामिव ॥ ६२ ॥ घनतामुपयातं हि प्रज्ञामान्द्यमचेतसाम् ॥ याति स्थावरतामम्बु जाड्यात्पाषाणतामिव ॥ ६३ ॥ त्वं तु राघव सौजन्यगुणशास्त्रार्थदृष्टिभिः ॥ विकासितान्तःकरणः स्थितः पद्म इवोदये ॥ ६४ ॥

अर्थ—अथवा प्राणोंकोभी त्यागकर सब यत्नसे इनमेंसे एककाभी आश्रय ग्रहणकरे क्योंकि–एकके वशमें होनेसे ये चारों वशमें होजाते हैं ॥ ६१ ॥ जो पुरुष विवेकसहित है वही शास्त्रका, ज्ञानका, तपस्याका, और श्रवणका पात्रहै. और वह सबका शिरोमणि ऐसा होताहै जैसा तेजस्वीपदार्थोंमें सूर्य ॥ ६२ ॥ जो अविवेकी हैं उनकी मूर्खता घनभूत अर्थात् अधिक होकर जड होजाती है. जैसे शीतकी अधिकतासे जल पाषाणकेतुल्य स्थिर होजाताहै ॥ ६३ ॥ हे राघव ! तुम तो सुजनता, गुण, और शास्त्रके अर्थकी दृष्टियोंसे विकसित अन्तःकरणवाले सूर्यके उदयसे कमलके समान स्थित हो ॥ ६४ ॥

इमां ज्ञानगिरं श्रोतुमवबोद्धुं च सन्मते ॥ अर्हस्युद्धतकर्णस्त्वं जन्तुर्वीणास्वनं यथा ॥६५॥ वैराग्याभ्यासयोगेन समसौजन्यसम्पदाम् ॥ अर्जनां कुरुतां राम यत्र नाशो न विद्यते ॥ ६६ ॥ शास्त्रसज्जनसंसर्गपूर्वकैः सतपोदमैः ॥ आदौ संसारमुक्त्यर्थं प्रज्ञामेवाभिवर्द्धयेत् ॥ ६७ ॥ एतदेवास्य मौर्ख्यस्य परमं विद्धि नाशनम् ॥ यदिदं प्रेक्ष्यते शास्त्रं किंचित्संस्कृतया धिया ॥ ६८ ॥

अर्थ—हे श्रेष्ठबुद्धिवाले रामजी ! तुम इस ज्ञानकी वाणीके सुनने और मनन करनेको ऐसे योग्यहो, जैसे दोनों कानोंको उठायेहुये वीणाका शब्द सुननेको मृग ॥ ६५ ॥ वैराग्य और अभ्यासके योगसे हे रामजी ! समता और सुजनता, आदि सम्पत्तियां ऐसी उपार्जन करो कि जिनका नाश कभी न हो ॥ ६६ ॥ शास्त्रोंका अभ्यास, सज्जनोंका संग, तप, तथा दम; (इन्द्रियनिग्रह) से सबसे प्रथम संसारसे युक्तिकेलिये विवेक ग्रहण करनेमें बुद्धिको बढाना उचितहै ॥ ६७ ॥ यदि यह (योगवासिष्ठ) ग्रन्थ शास्त्र कुछ संस्कारयुक्त बुद्धिसे देखाजाय तो इसी शास्त्रको महामूर्खतानाशक और सबसे उत्तम समझो ॥ ६८ ॥

संसारविषवृक्षोऽयमेकमास्पदमापदाम् ॥ अज्ञं संमोहयेन्नित्यं मौर्ख्यं यत्नेन नाशयेत् ॥ ६९ ॥ दुराशासर्पगत्येन मौर्ख्येण हृदि वल्गता ॥ चेतःसंकोचमायाति चर्माग्नाविव योजितम् ॥ ७० ॥ प्राज्ञे यथार्थभूतेयं वस्तुदृष्टिः प्रसीदति ॥ दृगिवेन्दौ निरम्भोदे सकलामलमण्डले ॥ ७१ ॥ पूर्वापरविचारार्थचारुचातुर्यशालिनी ॥ सविकासा मतिर्यस्य स पुमानिह कथ्यते ॥ ७२ ॥

अर्थ—यह संसाररूपी विषका वृक्ष सब विपत्तियोंका मुख्य स्थानहै और अज्ञानीको सदा मोहितकर लेताहै इसलिये यत्नसे मूर्खताका नाश करना चाहिये ॥ ६९ ॥ दुष्ट आशाओंसे सर्पकेसमान कुटिलगतिवाली मूर्खताके हृदयमें गर्जनेसे चित्त ऐसे सिकुडजाताहै जैसे अग्निके संयोगसे चमडा ॥ ७० ॥ बुद्धिमान् श्रोता और वक्ताके होनेपर यह यथार्थ आत्मबुद्धि ऐसे प्रफुल्लित होती है जैसे मेघरहित निर्म्मल सम्पूर्णचन्द्रमण्डलसे नेत्र ॥ ७१ ॥ पूर्व और परके विचारसे अतिसूक्ष्म पदार्थ ग्रहणकरनेमें समर्थ चतुरतासे शोभायमान और आत्मप्रकाशको ग्रहणकरनेवाली बुद्धिसे जो जनयुक्तहै वही इस संसारमें पुरुष कहलाताहै. क्योंकि परमपुरुषार्थ सिद्ध करनेसे उसीका जन्म सफलहै ॥ ७२ ॥

विकसितेन सितेन तमोमुचा वरविचारणशीतलरोचिषा ॥ गुणवता हृदयेन विराजस त्वममलेन नभः शशिना यथा ॥ ७३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे वक्तृपृच्छकलक्षणं नाम एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

अर्थ—हे रामजी ! विकसित निर्मल, अज्ञाननाशक उत्तमविचारसे शीतल दीप्तियुक्त और नम्रता. आदि गुणसहित हृदयसे आप ऐसे शोभित होरहेहैं जैसे चन्द्रमासे आकाश ॥ ७३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे
मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे वक्तृपृच्छकलक्षणंनामैकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

संसारकी दशाका अनर्थ, और ज्ञानका उत्तम माहात्म्य तथा श्रीरामजीनें उत्तम गुणोंकी सम्पत्ति इन विषयोंका वर्णन इस १२ वें सर्गमें कियागया है.

श्रीवसिष्ठ उवाच—परिपूर्णमना मान्यः प्रष्टुं जानासि राघव ॥ वेत्सि चोक्तं च तेनाहं प्रवृत्तो वक्तुमादरात् ॥१॥ रजस्तमोभ्यां रहितां शुद्धसत्वानुपातिनीम्॥ मतिमात्मनि संस्थाप्य ज्ञानं श्रोतुं स्थिरो भव॥२॥ विद्यते त्वयि सैवेव पृच्छकस्य गुणावली ॥ वक्तुर्गुणाली च मयि रत्नश्रीर्जलधौ यथा॥३॥ आप्तवानसि वैराग्यं विवेका संगजं सुत ॥ चन्द्रकान्त इवार्द्रत्वं लग्नचन्द्रकरोत्करः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले, हे रामचन्द्रजी ! अनेक गुणोंसे आपका मन परिपूर्ण है. तथा आप पूछनेकी रीतिको जानतेहैं. और जो बात साधारणरीतिसे कहीजाती है उसको तुम विशेषरीतिसे जानलेतेहो, इसलिये मैं आदरसे कहनेमें प्रवृत्त हुआहूं ॥ १ ॥ रजोगुण और तमोगुणसे रहित शुद्धगुण और परमात्मामें लीनबुद्धिको अपने आत्मामें स्थिर करके, ज्ञान सुननेकेलिये तुम उद्युक्त हो ॥ २ ॥ तुममें पूंछनेवालेके सम्पूर्णगुणोंकी पंक्ति और मुझमें कहनेवालेके सब गुणोंकी पंक्ति ऐसी है जैसे समुद्रमें रत्नोंकी सम्पत्ति ॥ ३ ॥ हे पुत्र ! तुमको बिनाकिसीके संगसे विवेकसहित वैराग्य ऐसे प्राप्त है जैसे चन्द्रमाकी किरणोंकेसहित चन्द्रकान्तमणिमें आर्द्रता ॥ ४ ॥

चिरमाशैशवादेव तवाभ्यासोऽस्ति सद्गुणैः ॥ शुद्धैः शुद्धस्य दीर्घैश्व पद्मस्येवातिसन्ततैः ॥ ५ ॥ अथ शृणु कथां वक्ष्ये त्वमेवास्या हि भाजनम् ॥ न हि चन्द्रं विना शुद्धा सविकासा कुमुद्वती ॥६॥ ये केचन समारम्भा याश्च काश्व न दृष्टयः ॥ ते च ताश्व पदे दृष्टे निःशेषं यान्ति वै शमम् ॥ ७ ॥ यदि विज्ञानविश्रान्तिर्न भवेद्भव्यचेतसः ॥ तदस्यां संसृतौ साधुश्चिन्तामौढ्यं सहेत कः ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! तुमको बाल्यअवस्थासेही बडे २ उत्तम गुणोंका अभ्यास ऐसे है जैसे कमलकी उत्पत्तिके साथही सौगन्ध्य आदि गुण रहते हैं ॥ ५ ॥ हे रामजी ! इसलिये मैं इस कथाको कहताहूं आप सुनिये आपही इसके पात्रहैं, क्योंकि चन्द्रमाकेबिना शुद्ध आनन्ददायक विकाससहित कुमुदिनी नही होसक्ती ॥ ६ ॥ सब आरम्भ और सब प्रमाण प्रमेय व्यवहार उस परमपदके देखनेसे शान्त होजाते है अर्थात् जबतक परमपदका दर्शन न हो तवतक यह कथा श्रवण करनीचाहिये ॥ ७ ॥ यदि शुद्धचित्तवाले मनुष्यको ज्ञानसे शान्ति न होती, तो इस संसारमें अनेकों अनर्थोंको कौन विवेकी पुरुप सहन करता, अर्थात् तुमारेसमान देह त्यागनेको उद्यत होजाता ॥ ८ ॥

परं प्राप्य विलीयन्ते सर्वा मननवृत्तयः ॥ कल्पान्तार्कगणासंगात्कुलशैलशिला इव ॥ ९ ॥ दुःसहा राम संसारविषावेशविषूचिका ॥ योगगारुडमन्त्रेण पावनेन प्रशाम्यति ॥ १० ॥ स च योगः सज्जनेन सह शास्त्रविचारणात् ॥ परमार्थज्ञानमन्त्रो नूनं लभ्यत एव च ॥ ११ ॥ अवश्यमिह हि विचारे कृते सकलदुःखपरिक्षयो भवतीति मन्तव्यं नाऽतो विचारदृष्टयोऽवहेलया द्रष्टव्याः ॥ १२ ॥

अर्थ—आत्माके साक्षात्कार होनेपर संपूर्ण हृदयकी ग्रन्थियाँ ऐसे छिन्नभिन्न होतीहैं जैसे कल्पके अन्तमें प्रलयकालके सूर्यके तेजसे महेन्द्रादि कुलपर्वतोंकी शिला ॥९॥ हे रामजी ! इस संसाररूपी विषके संबन्धसे जो विषूचिका (महामारी) उत्पन्न होती है वह दुःसहहै, वह केवल जीवब्रह्मकी एकतारूपी परमपवित्र गरुडमंत्रसे शान्त होती है॥ ॥ १० ॥ वह जीवब्रह्मकी एकतारूप योग तथा परमार्थज्ञानका मंत्र सज्जनोंके संग और वेदान्तशास्त्रके विचारसे मिलता और फलीभूतभी होताहै ॥ ११ ॥ इस अधिकारी मनुष्यजन्ममें आत्मज्ञानसे संपूर्णक्लेशोंका नाश अवश्य होता है यह निश्चय है. इसलिये आत्मविचारका अनादर नहीं करनाचाहियें ॥ १२ ॥

विचारवता पुरुषेण सकलमिदमाधिपंजरं सर्पेण त्वचमिव परिपक्वां सन्त्यज्य विगतज्वरेण शीतलान्तःकरणेन विनोदादिन्द्रजालमिव जगदखिलमालोक्यते सम्यग्दर्शनवता असम्यग्दर्शनवतो हि परं दुःखमिदम् ॥ १३ ॥ विषमो ह्यतितरां संसाररागो भोगीव दशति असिरिव छिनत्ति कुन्त इव वेधयति रज्जुरिवावेष्टयति पावक इव दहति रात्रिरिवान्धयति अशंकितपरिपतितपुरुषान् पाषाण इवविवशीकरोति हरति प्रज्ञां नाशयति स्थितिं पातयति मोहान्धकूपे तृष्णा जर्जरीकरोति न तदस्ति किं चिद्दुःखं संसारी यन्न प्राप्नोति ॥ १४ ॥ दुरन्तेयं किल विषयविषूचिका यदि न चिकित्स्यते तन्नितरां नरकनगरनिकरफलानुबन्धिनी तत्तत्करोति ॥ १५ ॥ यत्र शिलाशितासिशातः पातउपलताडनमग्निदाहो हिमावसेकोंगावकर्त्तनं चन्दनचर्चा तरुवनानि घुणवृत्तांतः परिवेषोंगपरिमार्जनम-

नवरतानलविचलितसमरनाराचनिपातो निदाघविनोदनं धारागृहसीकरवर्षणं शिरश्छेदः सुखनिद्रा-मूकीकरणमाननमुद्राबांधुर्यं महानुपचयः ॥ १६ ॥

अर्थ — जो पुरुष विचारवान् चिन्तारहित शीतलहृदयसहित, और आत्मज्ञानी है वह संपूर्ण मानसीपीडा-ओंको ऐसे त्यागताहै जैसे सर्प अपने परिपक्वचर्म्मको, और वह संपूर्ण जगत्को कौतुकसे इन्द्रजालकेसमान देखताहै, और जो अज्ञानी है उसको केवल दुःखही दुःख इस संसारमें हैं ॥ १३ ॥ हे रामजी! इस संसारमें राग महाभयंकर है, यह सर्पके समान डसताहै तलवारके सदृश छेदन करताहै, बर्छीके तुल्य वेधताहै, रस्सीके समान बांधताहै अग्निके समान जलाताहै रात्रिके घोरअन्धकारके समान अन्धकार करदेताहै, अकस्मात् पाषाणके तुल्य पुरुषोंके ऊपर आगिरताहै, बेवश करदेताहै, बुद्धिको नाश करदेताहै, मर्य्यादाको तोडताहै, अज्ञानरूपी कुएमें गिराताहै. और तृष्णासे जर्जरकरदेताहै, ऐसा कोई दुःख नहीं जो संसारी पुरुषको नहीं होता॥१४॥ नरक अर्थात् मलमूत्रादिके नगरोंके समान जो शरीरोंके समूहहैं उनके फलोंमें प्रेम करानेवाली, यह विषयरूपी विषूचिकाहै यदि आत्मज्ञानरूपी औषध न कियाजायतो आगे कहेहुए नरकोंमें सहस्रों दुर्दशा होती हैं ॥ १५ ॥ जहां (नरकोंमें) पाषाणकी शिला-ओंका भोजन करनापडेगा, तलवारोंसे शरीरोंके टुकडे २ किये जांयगे, बडे २ पाषाण ऊपर गिरायेजांयगे, अग्निसे श-रीर जलायाजायगा, हिम (वर्फ) से जाडेमें स्नान करायाजायगा, कैंची आदिसे अंग कतरे जांयगे, चन्दनके समान पाषाणोंपर अंग घिसे जांयगे, तलवारोंके समान तीक्ष्णपत्रयुक्त जंगलोंमें दौडना पडेगा, घुनके समान सब अंगका-ष्ठके यंत्रमें दवाये जांयगे, जलती हुई लोहेकी जंजीरोंसे सब अंग जकडके बांधेजांयगे, कांटोंकी झाडू चर्म छिलनेप-र्य्यंत अंगोंपर फेरी जायगी, जिनमें अग्निकी ज्वाला निकल रहीहो, ऐसे युद्धसे फेंकेहुये बाणोंकी धारा निरन्तर शरी-रपर गिराईजायगी, छाया और जलके बिना ग्रीष्मऋतुको बितानापडेगा, शीतऋतुमें, फुहारोंका पानी निरन्तर ऊपर छोडा जायगा. शिर बार २ कटेंगे और पुनः जमेंगे सुखकी निद्रा तो कभी स्वप्नमेंभी न मिलेगी, मुख ऐसा बन्द किया जायगा कि—श्वासभी नहीं लियाजायगा, तथा सब अंग ऐसे छिन्नभिन्न किये जांयगे कि कामके न रहें और जहां ऊपर नीचे जानाही बडी उन्नति है (अर्थात् अवश्यही ऊपर नीचे जानापडेगा) ॥ १६ ॥

तदेवंविधकष्टचेष्टासहस्रदारुणे संसारवलयंत्रेऽस्मिन् राघव नावहेलना कर्त्तव्या अवश्यमेवं विचा-रणीयमेवं चावबोद्धव्यं यथा किल शास्त्रविचाराच्छ्रेयो भवतीति ॥ १७ ॥ अन्यच्च रघुकुलेन्दो यदि चैते महामुनयो महर्षयश्च विप्राश्च राजानश्च ज्ञानकवचेनावगुण्ठितशरीरास्ते कथमदुःखक्षमाअपि दुःखकरीं तां तां वृत्तिपूर्विकां संसारकदर्थनामनुभवन्तः सततमेव मुदितमनसस्तिष्ठन्ति ॥ १८ ॥ इह हि ॥ विकौतुका विगतविकल्पविप्लवा यथास्थिता हरिहरपद्मजादयः ॥ नरोत्तमाः समधिगतात्म-दीपकास्तथास्थिता जगति विशुद्धबुद्धयः ॥ १९ ॥ परिक्षीणे मोहे विगलति घने ज्ञानजलदे परिज्ञाते तत्त्वे समधिगत आत्मन्यतितते ॥ विचार्यार्यैः सार्द्धं चलितवपुषो वै सदृशतो धिया दृष्टे तत्त्वे रम-णमटनं जागतमिदम् ॥ २० ॥

अर्थ—हे रामजी! इस संसाररूपी चलायमान यन्त्रमें इसप्रकारके सहस्रों भयंकर दुःखहैं, इसमें कभी उ-पेक्षा नहीं करनीचाहिये, सदा शास्त्रोंसे अवश्य विचार करके वह बात जाननी चाहिये, जिससे मोक्ष प्राप्तहो ॥ १७ ॥ हे राघव! यदि महानुभव, ऋषि, मुनि, ब्राह्मण, और राजालोग, अपने शरीरोंको ज्ञानरूपीकवचसे न ढांकते तो ये दुःख सहनेके अयोग्य होकरभी अनेक संसारकी पीडाओंको अनुभव करतेहुयेभी सदा प्रसन्नचित्त क्यों रहते? ॥१८॥ और हे रामजी! जिनको आत्मज्ञानरूपी प्रकाश प्राप्तहुआहै, वे उत्तम पुरुष शुद्धबुद्धिवाले कौतुक और विक्षेपसे रहित इस संसारमें ऐसे हैं जैसे विष्णु, शिव, और ब्रह्माजी ॥ १९ ॥ श्रेष्ठपुरुषोंके साथ "तत्त्वमसि" इत्यादि वाक्योंके अ-र्थके विचारसे शरीरमें आत्माभिमान नष्ट होनेसे आत्मतत्त्वका जब ज्ञान होताहै और उसके मननसे सर्वव्यापी अ-खण्ड आत्मामें असंभावनादि दोष निवृत्त होनेसे और निदिध्यासनसे विपरीत भावनाके नष्ट होनेपर इस संसारमें भ्रमण-[1]भी रमणके तुल्य होताहै न कि पीडाजनक ॥ २० ॥

अन्यच्च राघव ॥ प्रसन्ने चित्तत्त्वे हृदि शममवे वल्गति परे शमाभोगीभूताखिलकलनादृष्टिषु पुरः ॥ सम याति स्वान्तःकरणघटनास्वादितरसं धिया दृष्टे तत्वे रमणमटनं जागतमिदम् ॥ २१ ॥ अन्य-

१ यदि ज्ञानी पुरुष ब्रह्मादिके समान पूर्ण कामहै तो संसारमें उनका भ्रमण क्यों? इस शंकाका समाधान है कि—उनका भ्रमणभी क्रीडाही है.

च ॥ रथः स्थाणुर्देहऽस्तुरगरचना चेन्द्रियगतिः परिस्पन्दो वातो वहनकलितानन्दविषयः ॥ परोणुर्वा देही जगति विहरामीत्यनघया धिया दृष्टे तत्त्वे रमणमटनं जागतमिदम् ॥ २२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये मुमुक्षुव्यवहार-
प्रकरणे तत्त्वमाहात्म्यवर्णनंनाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जब परमार्थवस्तुके ज्ञानसे आत्मा प्रसन्न होता है हृदयमें उत्तम शान्तिभाव् आताहै संपूर्ण वृत्तियां शान्त होके एकरसके आस्वादनमें तत्पर होतीहैं और ब्रह्मानन्दरूपी रसके आस्वादसें सम्पूर्ण अन्तःकरणकी अन्यवृत्तियां नष्ट होजातीहैं तब इस जगत्‌में भ्रमणभी रमणही है ॥ २१ ॥ हे रामजी ! कटे वृक्षके ठूंठकेसमान यह अचेतन शरीर तो रथ है, और विषयरूपी भूमिपर दौडनेवाली इन्द्रियां घोडेहैं, रथादिके चलानेसे गतिशील प्राणप्रधान जो मन है वह लगाम है, और रथादिके चलानेसे आनन्दरूपी विषयको अनुभव करनेवाला जीव समाधिदशामें तो परमात्माही है, और व्यवहारदशामें बुद्धि आदि उपाधिके कारणसे सूक्ष्मरूप यह आत्मा रथी है, ऐसे रूपवाले जगत्‌में हम बिहारकरतेहैं इसप्रकार निदिध्याससे आत्मतत्वके जाननेपर इस जगत्‌में भ्रमणभी रमणहै॥२२॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे मुमुक्षुव्यवहार
प्रकरणे तत्त्वमाहात्म्यवर्णनंनाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

जीवन्मुक्तिके फलसहित वैराग्यादि गुणोंका उदय, और विशेषकरके शमका वर्णन इस१३वें सर्गमें कियागयाहै.

श्रीवसिष्ठ उवाच—एतां दृष्टिमवष्टभ्य दृष्टात्मानः सुबुद्धयः ॥ विचरन्तीह संसारे महान्तोऽभ्युदिता इव ॥ १ ॥ न शोचन्ति न वांछन्ति न याचन्ते शुभाऽशुभम् ॥ सर्वमेव च कुर्वन्ति न कुर्वन्तीह किंच न ॥ २ ॥ स्वच्छमेवाऽवतिष्ठन्ते स्वच्छं कुर्वन्ति यान्ति हि ॥ हेयोपादेयतापक्षरहिताः स्वात्मनि स्थिताः ॥ ३ ॥ आयान्ति च न चाऽयान्ति प्रयान्ति च न यान्ति च ॥ कुर्वन्त्यपि न कुर्वन्ति न वदन्ति वदन्ति च ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—आत्माका साक्षात्कार करनेवाले महात्मा इस ज्ञानदृष्टिको अवलंबन करके साम्राज्यके अभ्युदयको प्राप्तहुयेकेसमान आनन्दसे संसारमें विचरतेहैं ॥ १ ॥ न सोचतेहैं और शुभ और अशुभका ग्रहण वा त्याग नहीं चाहते, इसीलिये उनके साधनोंकीभी प्रार्थना नहीं करते सब कुछ व्यवहार करते हैं, और वास्तवमें कुछभी नहीं करते ॥ २ ॥ असंग आत्माके दर्शनसे निर्लेप रहतेहैं, शास्त्रीयकर्म करतेहैं, तथा सन्मार्गमें चलतेहैं, और ग्रहण तथा त्यागपक्षसेरहित अपने आत्मामेंही पूर्ण रहतेहैं ॥ ३॥ व्यवहारदृष्टिसे ज्ञानीलोग आते हैं, जातेहैं, कर्म करतेहैं. और बोलते हैं, परंतु आत्मदृष्टिसे न वे आतेहैं, न जातेहैं और न कर्म करते हैं और न वाणीसे बोलतेहैं ॥ ४ ॥

ये केचन समारम्भा याश्च काश्च न दृष्टयः ॥ हेयोपादेयतस्तास्ताः क्षीयन्तेऽधिगते पदे ॥ ५ ॥ परित्यक्तसमस्तेहं मनो मधुरवृत्तिमत् ॥ सर्वतः सुखमभ्येति चन्द्रबिम्ब इव स्थितम् ॥ ६ ॥ अपि निर्मननाऽऽरम्भमप्यस्ताऽखिलकौतुकम् ॥ आत्मन्येव न मात्यन्तरिन्दाविव रसायनम् ॥ ७ ॥ न करोतीन्द्रजालानि नाऽनुधावति वासनाम् ॥ बालचापलमुत्सृज्य पूर्वमेव विराजते ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! आत्माका ज्ञान होनेपर, अविद्याके जितने कार्य्य हैं, और असत्यमें जो सत्यदृष्टि है और हृदयकी जो सब ग्रंथियां हैं वे हेय और उपादेय न रहनेसे नष्ट होजाती हैं ॥ ५ ॥ हे रामजी ! आत्मज्ञानसे जिसकी संपूर्ण इच्छा वा चेष्टा निवृत्त होगई है, और जिसकी मनकी वृत्ति सदा शान्त ब्रह्माकारहै उसके ऊपर चन्द्रमाके बिम्बमें स्थित स्वर्गीयपुरुषकेसमान चारों ओरसे सुखकी वृष्टि होती है ॥ ६ ॥ जो पुरुष कौतुक और विषयके मननसेरहित होनेसे विक्षेपशून्यहै उसके आत्मामें आनन्द ऐसे नहीं समाता जैसे चन्द्रमामें अमृत ॥ ७ ॥ इन्द्रजालकेसमान मायाजनित विक्षेप उसको नहीं सताते, और वह वासनाके हेतु कर्मकीओर नहीं दौडता, बालकके समान चंचलताको छोडके अनादिसिद्ध आत्मसुख उसको प्रथमसेही शोभित करता है ॥ ८ ॥

एवं विधा हि वृत्तय आत्मतत्त्वाऽवलोकनाल्लभ्यन्ते नाऽन्यथा ॥ ९ ॥ तस्माद्विचारेणात्मैवान्वेष्टव्य उपासनीयो ज्ञातव्यो यावज्जीवं पुरुषेण नेतरदिति ॥ १० ॥ स्वानुभूतेश्च शास्त्रस्य गुरोश्चैवैकवाक्य-

ता ॥ यस्याभ्यासेन तेनात्मा सन्ततेनावलोक्यते ॥ ११ ॥ अवहेलितशास्त्रार्थैरवज्ञातमहाजनैः ॥ कष्टामप्यापदं प्राप्तो न मूढैः समतामियात् ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! इसप्रकारकी वृत्तियां केवल आत्मतत्वके दर्शनसेही मिलती हैं, और किसी रीतिसे नहीं ॥ ९ ॥ इसलिये, हे रामजी ! जबतक शरीरमें प्राण रहै तबतक आत्माका श्रवण मनन निदिध्यासन और ज्ञान संपादन करे ॥ १० ॥ हे रामजी ! निरन्तर अभ्याससे अपने अनुभवसे शास्त्रसे और गुरुसे एक अर्थका निश्चय होजाताहै और इस निश्चयसे निरन्तर आत्माका दर्शन होताहै ॥११॥ जिन्होंने शास्त्र और उसके अर्थका अनादर कियाहै, और ज्ञानी महात्माओंकी उपेक्षा की है, ऐसे मूढपुरुषोंके समान कष्टदशामेंभी नहीं होनाचाहिये ॥ १२ ॥

न व्याधिर्न विषं नापत्तथा नाधिश्च भूतले ॥ खेदाय स्वशरीरस्थं मौर्ख्यमेकं यथा नृणाम् ॥ १३ ॥ किंचित्संस्कृतबुद्धीनां श्रुतं शास्त्रमिदं यथा ॥ मौर्ख्यापहं तथा शास्त्रमन्यदस्ति न किंचन ॥१४॥ इदं श्राव्यं सुखकरं यथादृष्टान्तसुन्दरम् ॥ अविरुद्धमशेषेण शास्त्रं वाक्यार्थबन्धुना ॥ १५ ॥ अपदो या दुरुत्तारा याश्च तुच्छाः कुयोनयः ॥ तास्ता मौर्ख्यात्प्रसूयन्ते खदिरादिव कण्टकाः ॥ १६ ॥

अर्थ—अपने शरीरमेंही विद्यमान मूर्खता जैसी दुःखदायी है ऐसा दुःखदायी मनुष्योंको न तो कोई रोगहै न कोई विषहै, और न कोई आपत्ति है ॥ १३ ॥ थोडे बुद्धिमान् मनुष्योंकीभी मूर्खताको जैसे यह शास्त्र नाश करताहै वैसे दूसरा नहीं ॥ १४ ॥ जिनको परमात्मासे प्रीति हो अर्थात् जो आत्मज्ञानके अभिलाषी हों उनको पूर्वापर अविरुद्ध अनेक दृष्टान्तोंसे रमणीय सुखदायक यह संपूर्ण शास्त्र अवश्य सुननाचाहिये ॥ १५ ॥ तरनेमें कठिन बडी २ आपत्तियां और जो संपूर्ण दुष्टयोनि हैं वे सब अज्ञानसे ऐसे उत्पन्न होती हैं जैसे खदिरके वृक्षसे कांटे ॥ १६ ॥

वरं शरावहस्तस्य चाण्डालागारवीथिषु ॥ भिक्षार्थमटनं राम न मौर्ख्यहतजीवितम् ॥ १७ ॥ वरं घोरान्धकूपेषु कोटरेष्वेव भूरुहाम् ॥ अन्धकीटत्वमेकान्ते न मौर्ख्यमतिदुःखदम् ॥ १८ ॥ इममालोकमासाद्य मोक्षोपायमयं जनः ॥ अन्धतामेति न पुनः कश्चिन्मोहतमस्यपि ॥ १९ ॥ तावन्नयति संकोचं तृष्णा वै मानवाम्बुजम् ॥ यावद्विवेकसूर्यस्य नोदिता विमला प्रभा ॥ २० ॥

अर्थ—हे रामजी ! हाथमें शराव (सकोरा) लेकें गलियोंमें जाके चाण्डालके घरमें भिक्षा मांगना उत्तमहै, रन्तु अज्ञानसे नष्ट जीवन उत्तम नहीं ॥ १७ ॥ भयंकर अन्धकारयुक्त कूपमें अथवा वृक्षोंके कोटरोंमें वा अन्य एकान्तदेशमें अन्ध कीट (कीडा) होना उत्तमहै; परन्तु मनुष्यजन्ममें अतिदुःखदायी अज्ञान उत्तम नहीं ॥ १८ ॥ मोक्षोपायरूप इस प्रकाशको मनुष्य पाकर मृत्युका द्वार अज्ञानरूपी मूर्च्छाके अन्धकारसे कोई अन्धा नहीं होता अर्थात् सदा ज्ञानप्रकाशयुक्त रहताहै ॥ १९ ॥ तृष्णारूपी रात्रि मनुष्यरूपी कमलको तभीतक संकुचित करती है जबतक मनुष्यके हृदयमें विवेकरूपी सूर्यका निर्म्मल प्रकाश उदय नहीं होता ॥ २० ॥

संसारदुःखमोक्षार्थं मादृशैः सह बन्धुभिः ॥ स्वरूपमात्मनो ज्ञात्वा गुरुशास्त्रप्रमाणतः ॥ २१ ॥ जीवन्मुक्ताश्चरन्तीह यथा हरिहरादयः ॥ यथा ब्रह्मर्षयश्चान्ये तथा विहर राघव ॥ २२ ॥ अनन्तानीह दुःखानि सुखं तृणलवोपमम् ॥ नातः सुखेषु बध्नीयाद्दृष्टिं दुःखानुबन्धिषु ॥ २३ ॥ यदनन्तमनायासं तत्पदं सारसिद्धये ॥ साधनीयं प्रयत्नेन पुरुषेण विजानता ॥ २४ ॥

अर्थ—हे राघव ! संसारके दुःखकी निवृत्तिके लिये मेरेसमान बन्धुसे गुरु और शास्त्रोंके प्रमाणके अनुकूल अपने आत्माका स्वरूप जानकर अन्यमहर्षिगण विष्णु और शिव आदिके समान जीवन्मुक्त होकर जैसे संसारमें विचरते हैं, ऐसेही आपभी अपने आत्मस्वरूपको जानकर आनन्दसे विचरो ॥ २१ ॥ २२ ॥ इस संसारमें दुःखतो अनन्तहैं और सुख तृणके कणके समानभी नहीं है इसलिये दुःखदायी जो संसारके पदार्थ हैं उनमें सुखकी दृष्टि करना उचित नहीं है ॥ २३ ॥ बुद्धिमान् पुरुषको उचितहै कि पुरुषार्थकी सिद्धिके लिये, जिससे दुःखरहित अनन्त आत्मपदकी प्राप्ति हो उस ज्ञानको प्राप्त करे ॥ २४ ॥

त एव पुरुषार्थस्य भाजनं पुरुषोत्तमाः ॥ अनुत्तमपदालम्बि मनो येषां गतज्वरम् ॥ २५ ॥ सम्भोगाशनमात्रेण राज्यादिषु सुखेषु ये ॥ सन्तुष्टा दुष्टमनसो विद्धि तानन्धदर्दुरान् ॥ २६ ॥ ये शठेषु दुरन्तेषु दुष्कृतारम्भशालिषु ॥ द्विषत्सु मित्ररूपेषु भक्ता वै भोगभोगिषु ॥ २७ ॥ ते यान्ति दुर्गमाद्दुर्गं दुःखाद्दुःखं भयाद्भयम् ॥ नरकान्नरकं मूढा मोहमन्थरबुद्धयः ॥ २८ ॥

अर्थ—वेही उत्तम पुरुष पुरुषार्थके भागी हैं कि जिनका मन सबसे उत्तम जो आत्मपदहै उसमें चिन्तारहित होके लगाहै ॥ २५ ॥ जो पुरुष राज्यादिके भोगमात्रसे संतुष्टहैं उन दुष्ट जीवोंको अन्ध कूपके मेंढक समझो ॥ २६ ॥ जो मूढजन ठगनेवाले अंतमें दुःखदायी अति तुच्छ पापजनक ऊपरसे मित्र परन्तु भीतरसे शत्रुरूप भोगरूपी सर्पोंमें निमग्नहैं वे दुर्बुद्धि एक संकटसे दूसरे संकटमें एक दुःखसे दूसरे दुःखमें एक भयसे दूसरे भयमें और एक नरकसे दूसरे नरकमें सदा जाया करते हैं ॥ २७ ॥ २८ ॥

परस्परविनाशोक्तैः श्रेयः स्थो न कदाचन ॥ सुखदुःखदशे राम तडित्प्रासरभंगुरे ॥ २९ ॥ ये विरक्ता महात्मानः सुविविक्ता भवादृशाः ॥ पुरुषान्विद्धि तान्वन्द्यान्भोगमोक्षैकभाजनान् ॥ ३० ॥ विवेकं परमाश्रित्य वैराग्याभ्यासयोगतः ॥ संसारसरितं घोरामिमामापदमुत्तरेत् ॥ ३१ ॥ न स्वप्तव्यं च संसारमायास्विह विजानता ॥ विषमूर्च्छनसंमोहदायिनीषु विवेकिना ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! इस संसारमें सुखके अनन्तर दुःख और दुःखके अनन्तर सुख सदा आतारहताहै प्राणी कभी ज्ञानविना सर्वथा सुखी नहीं होता क्यों कि संसारी सुख दुःखकी अवस्था बिजुलीकेसमान क्षणभंगुर है ॥२९ ॥ जो आपके सदृश विरक्त महात्मा, और एकान्तसेवी हैं वेही पुरुष वन्दनीय और भोग तथा मोक्षके भागी हैं ॥३०॥ प्राणियोंको उचित है कि वैराग्य और अभ्यासके संबन्धसे उत्तमविवेकका आश्रय लेकर इस संसारकी आपत्तिरूप नदीके पार उतरे ॥ ३१ ॥ विषकेसमान मूर्छादेनेवाली जो संसारकी माया हैं उनमें विवेकी विचारवान् पुरुषको उचित है कि कभी असावधान न रहे ॥ ३२ ॥

संसारमिममासाद्य यस्तिष्ठत्यवहेलया ॥ ज्वलितस्य गृहस्योच्चैः शेतेतार्णस्य संस्तरे ॥ ३३ ॥ यत्प्राप्य न निवर्त्तन्ते यदासाद्य न शोचते ॥ तत्पदं शेमुषीलभ्यमस्त्येवाऽत्र न संशयः ॥ ३४ ॥ नास्ति चेत्तद्विचारेण दोषः को भवतां भवेत् ॥ अस्ति चेत्तत्समुत्तीर्णा भविष्यथ भवार्णवात् ॥ ३५ ॥ प्रवृत्तिः पुरुषस्येह मोक्षोपायविचारणे ॥ यदा भवत्याशु तदा मोक्षभागी स उच्यते ॥ ३६ ॥

अर्थ—जो पुरुष इस संसारमें आके इससे असावधान रहताहै, अर्थात् आत्मज्ञान नहीं सम्पादन करता मानो जलतेगृहमें तृणके बिछौनेपर निश्चिंत होके सोताहै ॥ ३३ ॥ जहांपर जाकर मनुष्य पुनः संसारमें नहीं आता और जिसको पाकर शोच नहीं करता, वह पद केवल ज्ञानसे मिलताहै, और उसके होनेंमे कोई सन्देह नहींहै, क्यों कि "असन्नेव स भवति असद्ब्रह्मेति वेद चेत्" (जो कहता है कि ब्रह्म नहीं है वह मानो अपनाही होना निषेधकरताहै) यह श्रुति है ॥ ३४ ॥ यदि तुमको आत्माके होनेमें सन्देह है तो विचारसे तुमारी क्या हानि है ? और यदि है तो विचारपूर्वक उसके ज्ञानसे तुम संसारसमुद्रसे पार होजाओगे ॥ ३५ ॥ जिससमय मनुष्य मोक्षके उपायके विचारमें प्रवृत्त होता है उसीसमय वह मोक्षका भागी होजाताहै ॥ ३६ ॥

अनपायि निराशङ्कं स्वास्थ्यं विगतविभ्रमम् ॥ न विना केवलीभावाद्विद्यते भुवनत्रये ॥ ३७ ॥ तत्प्राप्तावुत्तमप्राप्तौ न क्लेश उपजायते ॥ न धनान्युपकुर्वन्ति न मित्राणि न बान्धवाः ॥ ३८ ॥ न हस्तपादचलनं न देशांतरसंगमः ॥ न कायक्लेशवैधुर्यं न तीर्थायतनाश्रयाः ॥ ३९ ॥ पुरुषार्थैकसाध्येन वासनैकार्थकर्मणा ॥ केवलं तन्मनोमात्रजयेनासाद्यते पदम् ॥ ४० ॥

अर्थ—नाशरहित, शंकारहित, शान्त तथा भ्रमशून्य केवलीभावको छोडके तीनोंलोकमें और कोई मोक्षका उपाय नहींहै ॥ ३७ ॥ उस केवलीभावके प्राप्तहोनेपर कैवल्य मुक्तिकी प्राप्तिमें कुछभी क्लेश नहीं होता, और ज्ञानके सिवाय धन, मित्र, और बन्धु कोईभी काम नहींआता ॥ ३८ ॥ आत्मज्ञानकेलिये हाथ पैर चलानेकी आवश्यकता नहीं, न देशान्तरमें जानापडताहै, न शरीरको क्लेश देनापडताहै, और न तीर्थोंमें निवास करना पडताहै ॥ ३९ ॥ वेदान्तश्रवण मनन, निदिध्यासनरूपपुरुषार्थसे द्वैतवासनाको निरुद्ध करके ब्रह्माकार दृढवासनासे और मनके जीतनेसे आत्मपदकी प्राप्ति होतीहै ॥ ४० ॥

विवेकमात्रसाध्यं तद्विचारैकान्तनिश्चयम् ॥ त्यजता दुःखजालानि नरेणैतदवाप्यते ॥ ४१ ॥ सुखसेव्यासनस्थेन तद्विचारयता स्वयम् ॥ न शोच्यते पदं प्राप्य न स भूयो हि जायते ॥ ४२ ॥ तत्सम-

देह तथा इन्द्रियादिमें आत्माभिमान त्यागके केवल ज्ञानस्वरूप आत्मामें स्थिति ।

स्तसुखासारसीमान्तं साधवो विदुः ॥ तदनुत्तमनिष्पन्दं परमाहु रसायनम् ॥४३॥ क्षयित्वात्सर्वभावानां स्वर्गमानुष्ययोर्द्वयोः ॥ सुखं नास्त्येव सलिलं मृगतृष्णास्विवैतयोः ॥ ४४ ॥

अर्थ—देह तथा इन्द्रियादिको आत्मासे पृथक् जाननेसे, विचार तथा एकान्तसेवनसे और दुःखोंके मूल जो विषयजालहैं, उनके त्यागसे मनुष्यको ब्रह्मपदकी प्राप्ति होती है ॥४१॥ सुखासनपर बैठपर और स्वयं ब्रह्मका विचार करनेसे जो ब्रह्मपदको प्राप्तहोताहै, वह शोचके योग्य नहीं रहता, और पुनः इस संसारमें नहीं आता ॥ ४२॥ महात्मा जन ब्रह्मानन्दकी प्राप्तिकोही समस्त आनन्दोंकी परमावधि कहतेहैं और उसीसे ध्यानकरनेवाले योगियोंको सर्वोत्तम, तथा अनिर्वचनीय आनन्दरसकी प्राप्ति होतीहै ॥ ४३ ॥ मनुष्यलोक तथा देवलोकके सब पदार्थ नाशवान् हैं इसलिये जैसे मृगतृष्णामें जल नहीं है ऐसेही इन दोनों लोकोंके पदार्थोंमें सुखका लेशभी नहींहै ॥ ४४ ॥

अतो मनोजयश्चिन्त्यः शमसन्तोषसाधनः ॥ अनन्तसमसंयोगस्तस्मादानन्द आप्यते ॥ ४५ ॥ तिष्ठता गच्छता चैव पतता भ्रमता तथा ॥ रक्षसा दानवेनापि देवेन पुरुषेण वा ॥ ४६ ॥ मनः प्रशमनोद्भूतं तत्प्राप्यं परमं सुखम् ॥ विकासि शमपुष्पस्य विवेकोच्चतरोः फलम् ॥ ४७ ॥ व्यवहारपरेणापि कार्यवृन्दमविन्दता ॥ भानुनेवाम्बरस्थेन नोज्झ्यते न च वाञ्छ्यते ॥ ४८ ॥

अर्थ—इसलिये शम और सन्तोष साधनसहित, अनन्तपरमात्माकी प्राप्तिकेलिये मनके जयकी चिन्ता करनीचाहिये, क्योंकि उसीसे आनन्दकी प्राप्ति होतीहै ॥ ४५ ॥ चाहे चलताहो, वा बैठाहो, गिरता हो वा भ्रमण करता हो. राक्षस हो, दानव हो, देव हो, अथवा मनुष्य हो ॥ ४६ ॥ केवल मनकी शान्तिसेही विकासशील शम (शान्ति) रूप पुष्पसे शोभित विवेकरूपी बडेवृक्षका फल परमपदरूप सुख प्राप्तहोताहै ॥ ४७ ॥ परमपदकी प्राप्तिसे व्यवहारमें तत्परहोनेपर भी जीवका संसारीकार्य्योंसे संबन्ध नहीं रहता, आकाशस्थसूर्यके समान न तो वह किसी पदार्थको त्यागताहै, और न किसीको ग्रहणकरताहै ॥ ४८ ॥

मनः प्रशान्तमत्यच्छं विश्रान्तं विगतभ्रमम् ॥ अनीहं विगताभीष्टं नाभिवांछति नोज्झति ॥ ४९॥ मोक्षद्वारे द्वारपालानिमाञ्छृणु यथाक्रमम् ॥ येषामेकतमासक्त्या मोक्षद्वारं प्रविश्यते ॥ ५० ॥ सुखदोषदशा दीर्घा संसारमरुमण्डली ॥ जन्तोः शीतलतामेति शीतरश्मेः समप्रभा ॥ ५१ ॥ शमेनासाद्यते श्रेयः शमो हि परमं पदम् ॥ शमः शिवः शमः शान्तिः शमो भ्रान्तिनिवारणम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—जो मन प्रशान्त, निर्मल, विश्रान्त, भ्रम तथा चेष्टारहित, और विषयकी अभिलाषारहितहै वह न तो कुछ चाहता और न कुछ त्यागताहै क्योंकि वह चारों ओरसे पूर्ण है ॥ ४९ ॥ मोक्षके द्वारपर द्वारपालहैं उनको क्रमसे विस्तारपूर्वक सुनो, उनमेंसे एककेसाथभी मेल होनेसे मोक्षके द्वारमें मनुष्यका प्रवेश होसक्ताहै ॥ ५० ॥ सुखकी आशारूप तापके समान और दोषदशासे पारहोनेके अयोग्य यह संसाररूपी मरुस्थली शमसे चन्द्रमाके किरणके समान प्राणीकेलिये शीतल होजाती है ॥ ५१ ॥ क्योंकि शमसेही मोक्ष प्राप्तहोताहै, शमही परमपदहै, शमही शिवहै, शमही शान्तिका मूलहै, और शमसेही भ्रमका निवारण होताहै ॥ ५२ ॥

पुंसः प्रशमतृप्तस्य शीतलाच्छतरात्मनः ॥ शमभूषितचित्तस्य शत्रुरप्येति मित्रताम् ॥ ५३ ॥ शमचन्द्रमसा येषामाशयः समलंकृतः ॥क्षीरोदानामिवोदेति तेषां परमशुद्धता ॥ ५४ ॥ हृत्कुशेशयकोशेषु येषां शमकुशेशयम् ॥ सतां विकसितं ते हि द्विहृत्पद्माः समा हरेः ॥ ५५ ॥ शमश्रीः शोभते येषां मुखेन्दावकलंकिते ॥ ते कुलीनेन्दवो वन्द्याः सौन्दर्यविजितेन्द्रियाः ॥ ५६ ॥

अर्थ—जो पुरुष शमसे तृप्त होरहाहै, और शमसे जिसका चित्त भूषितहै. उसका शत्रुभी मित्र होजाताहै ॥ ५३ ॥ शमरूपीचन्द्रमासे जिसका अन्तःकरण अलंकृतहै, उसको समुद्रकेसमान परम शुद्धता प्राप्त होती है ॥५४॥ जिन सज्जनमहात्माओंके हृदयकमलमें शमरूपी कमल विकसित हुआहै वे महात्माजन दो कमलधारी विष्णुभगवान्के समानहैं ॥ ५५ ॥ जिनके कलंकरहित मुखपर शमरूपी लक्ष्मी शोभित होरही है वे अपनी सुन्दरतासे इन्द्रियोंको जीतनेवाले अपने कुलके चन्द्रमा वन्दनीयहैं ॥ ५६ ॥

त्रैलोक्योदरवर्तिन्यो नानन्दाय तथा श्रियः ॥ साम्राज्यसम्पत्प्रतिमा यथा शमविभूतयः ॥ ५७॥ यानि दुःखानि या तृष्णा दुःसहा ये दुराधयः ॥ तत्सर्वं शान्तचेतःसु तमोऽर्केष्विव नश्यति ॥ ५८ ॥

१ विष्णुके एक हृत्कमलसे ब्रह्माके कमलासनकी उत्पत्ति मानीगईहै.

मनो हि सर्वभूतानां प्रसादमधिगच्छति ॥ न तथेन्दोर्यथा शान्ते जने जनितकौतुकम् ॥ ५९ ॥ शमशालिनि सौहार्दवतिसर्वेषु जन्तुषु ॥ सुजने परमं तत्त्वं स्वयमेव प्रसीदति ॥ ६० ॥

अर्थ—त्रैलोक्यकी संपत्तियोंमें कोईभी इतना आनन्द नहीं देती जितना कि साम्राज्यसम्पत्तितुल्य शमके ऐश्वर्य सुख देते हैं ॥ ५७ ॥ संसारके दुःख और तृष्णा, तथा मनकी अनेक पीडा, सब शान्तचित्तवालेके ऐसे नष्ट होजाते हैं जैसे महान् अन्धकार सूर्य्यके प्रकाशसे ॥ ५८ ॥ आश्चर्यजनक सब प्राणियोंका चित्त चन्द्रमासे वैसा प्रसन्न नहीं होता, जैसा कि एक शान्तमनुष्यके देखनेसे ॥ ५९ ॥ जो मनुष्य शमसे शोभायमानहै, और सब प्राणियोंपर कृपा करनेवाला तथा सज्जनहै उसके ऊपर परमात्मा आपही कृपाकर प्रसन्नहोताहै ॥ ६० ॥

मातरीव परं यान्ति विषमाणि मृदूनि च ॥ विश्वासमिह भूतानि सर्वाणि शमशालिनि ॥ ६१ ॥ न रसायनपानेन न लक्ष्म्याऽऽलिंगनेन च ॥ तथा सुखमवाप्नोति शमेनान्तर्यथा मनः ॥ ६२ ॥ सर्वाधिव्याधिचलितं क्रान्तं तृष्णावरत्रया ॥ मनः शमामृतासेकैः समाश्वासय राघव ॥ ६३ ॥ यत्करोषि यदश्नासि शमशीतलया धिया ॥ तत्रातिस्वदते स्वाद्व नेतरत्तात मानसे ॥ ६४ ॥

अर्थ—जो मनुष्य शमसे शोभायमानहै उसके ऊपर क्रूर और कोमलहृदयवाले संपूर्ण प्राणी विश्वास करते हैं जैसे मातापर ॥ ६१ ॥ अन्तःकरणमें जो सुख शमसे प्राप्त होताहै. वह न तो इन्द्र होके अमृतपानसे होता, और न विष्णु होके लक्ष्मीके आलिंगनसे होताहै ॥६२॥ हे रामजी! यह मन जो शारीरिक तथा मानसिक अनेकदुःखोंसे चलायमान होरहाहै, और तृष्णारूपी रस्सीसे इधर उधर खिंचाहै उसको शमरूपीअमृतसे सींचके शांत करो ॥ ६३ ॥ हे तात! जहां बुद्धि शमसे शीतलहै वहां जो कुछ करतेहो,खातेहो, वह मनको अत्यन्त स्वादिष्ट लगताहै अन्यथा नहीं॥६४

शमामृतरसाच्छन्नं मनो यामेति निर्वृतिम् ॥ छिन्नान्यपि तयांगानि मन्ये रोहन्ति राघव ॥ ६५ ॥ न पिशाचा न रक्षांसि न दैत्या न च शत्रवः ॥ न च व्याघ्रभुजंगा वा द्विषन्ति शमशालिनम् ॥ ६६ ॥ सुसन्नद्धसमस्तांगं प्रशमामृतवर्मणा ॥ वेधयन्ति न दुःखानि शरावज्रशिलामिव ॥ ६७ ॥ न तथा शोभते राजा अप्यन्तःपुरसंस्थितः ॥ समयास्वच्छया बुद्धया यथोपशमशीलया ॥ ६८ ॥

अर्थ—हे रामजी! शमरूपी अमृतसे सिंचित मनसे ऐसा सुख प्राप्तहोताहै कि जिससे कटेहुयेभी अंग पुनः जुडजाते हैं ॥ ६५ ॥ शमसे शोभायमान पुरुषसे पिशाच, राक्षस, दैत्य, शत्रु, व्याघ्र और सर्प कोईभी द्वेष नहीं करता ॥ ६६ ॥ उत्तम शमरूपी कवचसे जिसके समस्त अंग रक्षितहैं उसको कामना ऐसे नहीं छेदनकरसकते जैसे वज्रकी शिलाको बाण ॥ ६७ ॥ अपने राजमहलमें विराजमान राजा वैसा शोभित नहीं होता जैसा शमसे शोभायमान स्वच्छ और समानबुद्धिसे साधारणपुरुष शोभितहोताहै ॥ ६८ ॥

प्राणात्प्रियतरं दृष्ट्वा तुष्टिमेति न वै जनः॥यामायाति जनः शान्तिमवलोक्य शमाशयम्॥६९॥समयाशमशालिन्या वृत्त्या यः साधु वर्तते ॥ अभिनन्दितया लोके जीवतीह स नेतरः ॥ ७० ॥ अनुद्धतमनाः शान्तः साधुकर्म करोति यत् ॥ तत्सर्वमभिनन्दन्ति तस्येमा भूतजातयः ॥७१॥ श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा शुभाशुभम् ॥ न हृष्यति ग्लायति यः स शान्त इति कथ्यते ॥ ७२ ॥

अर्थ—प्राणसेभी प्रियजन (स्त्रीपुत्रादि) को देखकर मनुष्य वैसा प्रसन्न और शान्त नहीं होता, जैसा शमयुक्तअन्तःकरणवाले पुरुषको देखकर होताहै ॥ ६९ ॥ समतायुक्त सब मनुष्योंसे प्रशंसित शमसे शोभायमानवृत्तिसे इस संसारमें जो उत्तम व्यवहार करताहै उसीका जीवन सफल है दूसरेका नहीं ॥ ७० ॥ नम्रतायुक्त शान्तचित्त होके साधु पुरुष जो कार्य्य करताहै वही सबको प्रशंसनीय होताहै, और सब प्राणीमात्र उसके वशमें रहतेहैं ॥ ७१ ॥ जो शुभ वा अशुभ पदार्थको सुनकर, स्पर्श करके देखकर, भोजन करके, और स्नानकर न प्रसन्न होताहै और न ग्लानिको प्राप्त होताहै उसको शान्त कहते है ॥ ७२ ॥

यः समः सर्वभूतेषु भावि कांक्षति नोज्झति ॥ जित्वेन्द्रियाणि यत्नेन स शान्त इति कथ्यते ॥ ७३ ॥ स्पष्टावदातया बुद्धया यथैवान्तस्तथा बहिः ॥ दृश्यन्ते यत्र कार्याणि स शान्त इति कथ्यते ॥७४॥ तुषारकरबिम्बाभं मनो यस्य निराकुलम् ॥ मरणोत्सवयुद्धेषु स शान्त इति कथ्यते ॥ ७५ ॥ स्थितोऽपि न स्थित इव न हृष्यति न कुप्यति॥ यःसुषुप्तसमः स्वस्थः स शान्त इति कथ्यते ॥ ७६ ॥

अर्थ—जो पुरुष प्रयत्नसे संपूर्ण इन्द्रियोंको जीतकर सबजीवोंमें समतासे वर्तता है, और सुख आदिकी इच्छा नहीं करता उसको (शमयुक्त) कहतेहैं ॥७३॥ अपनी शुद्धबुद्धिसे दूसरेकी कुटिलता आदिको जानकरभी जो भीतर-

और बाहर एकरस रहताहै, और जिसमें मोक्षोपायके संपूर्ण कर्तव्य देखपडते हैं उसको शान्त कहतेहैं ॥ ७४ ॥ मृत्यु आदिके भयमें, उत्सवमें, और क्रोधके समयमें जिसका मन व्याकुल न हो किन्तु चंद्रमाके बिम्बके समान निर्मल हो, उसको शान्त कहतेहै ॥ ७५ ॥ हर्ष और शोकके स्थानमें वर्तमानभी जो न तो प्रसन्न होताहै और न क्रोध करताहै, और जो सुषुप्तकी दशाके समान स्वस्थचित्त रहताहै, उसको शान्त कहतेहैं ॥ ७६ ॥

अमृतस्यन्दसुभगा यस्य सर्वजनं प्रति ॥ दृष्टिः प्रसरति प्रीता स शान्त इति कथ्यते ॥ ७७ ॥ योन्तःशीतलतां यातो यो भावेषु न मज्जति ॥ व्यवहारी न संमूढः स शान्त इति कथ्यते ॥ ७८ ॥ अप्यापत्सु दुरन्तासु कल्पान्तेषु महत्स्वपि ॥ तुच्छेहं न मनो यस्य स शान्त इति कथ्यते ॥ ७९ ॥ आकाशसदृशी यस्य पुंसः संव्यवहारिणः ॥ कलंकमेति न मतिः स शान्त इति कथ्यते ॥ ८० ॥

अर्थ—अमृतके प्रवाहके समान सुख देनेवाली प्रसन्नतायुक्त जिसकी दृष्टि सब प्राणियोंके ऊपर पडती है, उसको शान्त कहतेहैं ॥ ७७ ॥ जिसका अन्तःकरण शीतल है, और जो संसारके विषयोंमें व्यवहार करताहुआभी उनमें अत्यन्त आसक्त नहीं होता, और न मूढ हो, उसको शान्त कहतेहै ॥ ७८ ॥ दीर्घकालकी बडी २ आपत्तियोंमेंभी मिथ्या और नश्वर देह आदिमें जिसके मनमें अहंबुद्धि नहीं है, उसको शान्त कहतेहैं ॥ ७९ ॥ व्यवहार करतेहुयेभी जिस पुरुषकी बुद्धि आकाशकेसदृश विकाररहित और रागादि कलङ्कोंसे शून्य है, उसको शान्त कहतेहैं ॥ ८० ॥

तपस्विषु बहुज्ञेषु याजकेषु नृपेषु च ॥ बलवत्सु गुणाढ्येषु शमवानेव राजते ॥ ८१ ॥ शमसंसक्तमनसां महतां गुणशालिनाम् ॥ उदेति निर्वृतिश्चित्ताज्ज्योत्स्नेव सितरोचिषः ॥ ८२ ॥ सीमान्तो गुणपूगानां पौरुषैकान्तभूषणम् ॥ संकटेषु भयस्थाने शमः श्रीमान् विराजते ॥ ८३ ॥ शममममृतमहार्यमार्यगुप्तं परमवलंब्य परं पदं प्रयाताः ॥ रघुतनय यथा महानुभावाः क्रममनुपालय सिद्धये तमेव ॥८४॥ इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे शमनिरूपणं नाम त्रयोदशःसर्गः ॥ १३ ॥

अर्थ—संसारमें तपस्वियोंमें, पण्डितोंमें, यज्ञ करनेवालोंमें, राजाओंमें, बलवानोंमें, और बडे २ गुणियोंमें जो शान्तहै वही शोभायमान होताहै ॥८१॥ हे रामजी ! शममें आसक्त महान्‌गुणोंसे शोभायमान महात्माओंके चित्तमें शान्ति ऐसे उदय होतीहै जैसे चन्द्रमासे चान्द्रिका ॥ ८२ ॥ सब गुणसमूहोंकी अवधि सबपुरुषार्थोंका मुख्य भूषण, अनेक संपत्तियोंसें युक्त जो शम है, वह संकटोंमें और भयके स्थानोंमेंभी शोभितहोताहै ॥ ८३ ॥ हे रामचन्द्रजी ! यह शमरूपी सबसे उत्तम अमृत है, इसको दूसरे नहीं हरसकते, श्रेष्ठ पुरुषोंनें इसको बडी सावधानीसे रक्षा की है, और महात्माजन इसीका आश्रय लेके परमपदको प्राप्त हुयेहैं, पुरुषार्थ (आत्मज्ञान) की सिद्धिकेलिये आपभी उसी क्रमको पालनकीजिये ॥ ८४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे शमनिरूपणं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

साधुसमागम, सत्शास्त्रोंका अवलोकन, और अन्तःकरणकी शुद्धिसे वर्द्धित, तथा शम और सन्तोषका हेतु जो विचार है, उसकी प्रशंसा इस १४ वें सर्गमें कीगईहै.

श्रीवसिष्ठ उवाच—शास्त्रावबोधामलया धिया परमपूतया ॥ कर्तव्यः कारणज्ञेन विचारोऽनिशमात्मनः ॥ १ ॥ विचारात्तीक्ष्णतामेत्य धीः पश्यति परं पदम् ॥ दीर्घसंसाररोगस्य विचारो हि महौषधम् ॥ २ ॥ आपद्वनमनंतेहापरिपल्लविताकृति ॥ विचारक्रकचच्छिन्नं नैव भूयः प्ररोहति ॥ ३ ॥ मोहेन बन्धुनाशेषु संकटेषु शमेषु च ॥ सर्वं व्याप्तं महा प्राज्ञ विचारो हि सतां गतिः ॥ ४ ॥

अर्थ—वसिष्ठजी बोले, कि अर्थ अनर्थके संबंधका विचार, प्रमाण तात्पर्य्यका विचार, और आत्मतत्त्वपरीक्षा, ये पांचप्रकारके विचार हैं, उनमेंसे विषयोंमें स्वाभाविक प्रवृत्ति अनर्थका हेतु होतीहै, और शास्त्र तथा वैराग्यादिमें प्रवृत्ति परमपुरुषार्थका हेतु होतीहै, यह परीक्षा करना प्रथम विचार है. १ स्त्री पुत्र तथा देह आदि स्वभावसे बीजसे परिणामसे अशुद्ध मलमूत्रादिसहित अमंगलरूप हैं, और ब्रह्मलोकपर्य्यन्तका सुख अनित्य और दुःख मिलित है; यह परीक्षा

करना द्वितीय विचार है. २ ये दोनों वैराग्य और मोक्षकी इच्छाके कारण हैं, मोक्षकी इच्छाके अनन्तरभी क्या मोक्षका साधन कर्म है वा उपासना ? और दोनों ज्ञानसहितहैं वा नहीं ? अथवा ज्ञानही मोक्षका साधन है,- यह परीक्षा करना तृतीय विचारहै. ३ और यदि ज्ञानहै, तो वह सांख्ययोग, वैशेषिकादिशास्त्रोंमें जो कपिल गौतमादिने कहाहै वह है ? अथवा श्रुतिप्रतिपाद्य ? यदि श्रुतिका ज्ञान मोक्षका साधन है तो श्रुतियोंका तात्पर्य द्वैतमें है अथवा अद्वैतमें ? सविशेष आत्मामें हैं वा निर्विशेष ? इत्यादि परीक्षा करना चतुर्थ विचार है. ४ इसीको श्रवणभी कहतेहैं. अद्वैत श्रुतियोंका ब्रह्ममें तात्पर्य निश्चय होजानेपरभी वह आत्मामें यथार्थ सम्भव है कि नहीं ? इसप्रकार रत्नपरीक्षा न्यायसे अनुभव गुरु और सहपाठी आदिके संवादसे जीव ईश्वर और जगत्‌तत्त्वका शोधन जबतक निश्चय नहीं तबतक परीक्षा करना इसको पंचम विचार कहतेहैं. ५ इसलिये विषय, संशय, पूर्वपक्ष, आक्षेप, और सिद्धान्तके विभागोंका जाननेवाले पुरुषको चाहिये कि शास्त्रजन्यबोधसहित निर्मल और पवित्रबुद्धिसे आत्मामें अहर्निश आत्माका विचार करे ॥ १ ॥ विचारसे बुद्धि तीव्र होकर परम पदको देखती है, क्योंकि संसाररूपी बडे भारी रोगका विचारही महान् औषध है ॥ २ ॥ अनेकप्रकारके रागद्वेषादि बडी आकृतिवाला यह आपत्तिरूप वन विचाररूपी काष्ठदार (कठफोरवा) नाम पक्षीसे काटाहुआ पुनः नहीं जमता ॥ ३ ॥ बन्धु नाश तथा अन्यभय और संकटके स्थान, सब अज्ञानसे व्याप्तहैं, इसलिये हे महाप्राज्ञ ! सज्जनोंका शरण विचारही है ॥ ४ ॥

न विचारं विना कश्चिदुपायोस्ति विपश्चिताम् ॥ विचारादशुभंत्यक्त्वा शुभमायाति धीः सताम् ॥५॥ बलं बुद्धिश्च तेजश्च प्रतिपत्तिः क्रिया फलम् ॥ फलन्त्येतानि सर्वाणि विचारेणैव धीमताम् ॥ ६ ॥ युक्तायुक्त महादीपममिवांछितसाधकम् ॥ स्फारं विचारमाश्रित्य संसारजलधिं तरेत् ॥ ७ ॥ आलूनहृदयाम्भोजान् महामोहमतंगजान् ॥ विदारयति शुद्धात्मा विचारो नाम केसरी ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! बुद्धिमानको विचारको छोडके दूसरा कोई उपाय नहीं है; विचारसे बुद्धि अशुभपदार्थको त्यागकर शुभको ग्रहण करती है ॥ ५ ॥ बल, बुद्धि, सामर्थ्य समयके अनुकूल स्फुरणा क्रियाओंका अनुष्ठान, और उनका फल ये सब बुद्धिमानोंके विचारसेही सिद्ध होतेहैं ॥ ६ ॥ उचित अनुचितके प्रकाश करनेमें महादीपके समान, वांछित अर्थका साधक जो महान् विचार है, उसका आश्रय लेके संसाररूपीसमुद्रके पार उतरना मनुष्यको आवश्यक है ॥ ७ ॥ हृदयके विवेकरूपी कमलोंको जिन्होंने छिन्न करदियाहै ऐसे महा अज्ञानरूपी हस्तियोंको शुद्धविचाररूपी सिंह नष्ट करदेताहै ॥ ८ ॥

मूढाः कालवशेनेह यद्गताः परमं पदम् ॥ तद्विचारप्रदीपस्य विजृम्भितमनुत्तमम् ॥ ९ ॥ राज्यानि संपदः स्फारा भोगो मोक्षश्च शाश्वतः ॥ विचारकल्पवृक्षस्य फलान्येतानि राघव ॥ १० ॥ या विवेकविकासिन्यो मतयो महतामिह ॥ न ता विपदि मज्जन्ति तुम्बकानीव वारिणि ॥ ११ ॥ विचारोदयकारिण्या धिया व्यवहरन्ति ये ॥ फलानामत्युदाराणां भाजनं हि भवन्ति ते ॥ १२ ॥

अर्थ— जो लोक संसारके पार उतरनेके मार्गमें मूढ थे वे जो कालकी गतिसे परमपदको प्राप्त होगये वह केवल विचारकाही उत्तम फल है ॥ ९ ॥ हे रामजी ! राज्य और बडी २ सम्पत्ति, भोग, और नित्य मोक्ष, ये सब विचाररूपी कल्पवृक्षके फल हैं ॥ १० ॥ जो महात्माओंकी बुद्धियां विचारसे विकसित होरही हैं वे विपत्तिमें ऐसे नहीं डूबतीं जैसे जलमें तुंबियां ॥ ११ ॥ जो पुरुष विचारयुक्त बुद्धिसे कार्य करते हैं वे बडे २ श्रेष्ठ फलोंके पात्र है ॥ १२ ॥

मूर्खहृत्काननस्थानामाशाप्रथमरोधिनाम् ॥ अविचारकरंजानांमंजर्यो दुःखरीतयः ॥ १३ ॥ कज्जलक्षोदमलिना मदिरामदधर्मिणी ॥ अविचारमयी निद्रा यातु ते राघव क्षयम् ॥ १४ ॥ महापदतिदीर्घेषु सद्विचारपरो नरः ॥ न निमज्जति मोहेषु तेजोराशिस्तमःस्विव ॥ १५ ॥ मानसे सरसि स्वच्छे विचारकमलोत्करः ॥ नूनं विकसितो यस्य हिमवानिव भाति सः ॥ १६ ॥

अर्थ—मूर्खोंके हृदयरूपी वनमें जमनेवाली मोक्षकी इच्छाको प्रथमही रोकनेवाली, अविचाररूपी वृक्षोंकी दुःखरूपी लता विकसित होरही है ॥ १३ ॥ हे रामजी ! कज्जलके चूर्णके समान मलिन मदिराके सदृश भ्रान्ति पतनादि कार्योंका कारण यह अविचाररूपी आपकी निद्रा, विचाररूपी जागरणसे नष्ट हो ॥ १४ ॥ महा आपत्ति सहित जो महा अज्ञान है उसमें सद्विचारवान् ऐसे नहीं डूबता जैसे अंधकारमें सूर्य ॥ १५ ॥ जिसके मनरूपी निर्मल मानस सरोवरमें विचाररूपी कमलका समूह विकसित हुआ है वह शीतलता उन्नति और स्थिरतादि गुणोंसे हिमालयके सदृश शोभायमान होता है ॥ १६ ॥

विचारविकला यस्य मतिर्मौढ्यमुपेयुषः ॥ तस्योदेत्य शनिश्चन्द्रान्मुधा यक्षः शिशोरिव ॥ १७ ॥ दुःखखण्डकमस्थूलं विपन्नवलतामधुः ॥ राम दूरे परित्याज्यो निर्विवेको नराधमः ॥ १८ ॥ ये केचन दुरारम्भा दुराचारा दुराधयः ॥ अविचारेण ते भान्ति वेतालास्तमसा यथा ॥ १९ ॥ अविचारिणमेकान्तवनद्रुमसधर्मकम् ॥ अक्षमं साधुकार्येषु दूरे कुरु रघूद्वह ॥ २० ॥

अर्थ—जिसकी मूर्खतायुक्त बुद्धि विचारसे रहित है, उसके प्रकाश करनेके योग्य मनरूपी चन्द्रमासे भी वज्र ऐसे उदय होता है, जैसे बालककी मूर्खतासे वेताल प्रकट होता है ॥ १७ ॥ हे रामजी ! जो विचाररहित अधम नर है वह दुःखरूपी बीजोंको धारण करनेके लिये अतिस्थूल पृथ्वीपर कुसूल (कोठिला) है और विपत्तिरूप नवीन लताओंके लिये वसन्तऋतु है, इसलिये उसको दूरसेही त्यागना योग्य है ॥ १८॥ अपनेको तथा दूसरेको दुःखदायक कर्म और शास्त्रसे निषिद्ध जो दुराचरण तथा अनेक मानसी पीडायें ये सब अविचारसेही ऐसे प्रकट होते हैं, जैसे अंधकारसे वेताल ॥ १९ ॥ हे रामजी ! जो पुरुष विचाररहित है वह कंटक सहित वन वृक्षके समान है, इसीसे उत्तम पुरुषोंको सहायता देनेमें वा उत्तम पुरुपार्थ करनेमें असमर्थ है, उसको दूर करो ॥ २० ॥

विविक्तं हि मनो जन्तोराशा वै वश्यवर्जितम् ॥ परां निर्वृतिमभ्येति पूर्णचन्द्र इवात्मनि ॥ २१ ॥ विवेकितोदिता देहे सर्वं शीतलयत्यलम् ॥ अलंकरोति चात्यन्तं ज्योत्स्नेव भुवनं यथा ॥ २२ ॥ परमार्थपताका याधियो धवलचामरम् ॥ विचारो राजते जन्तोरजन्यामिव चन्द्रमाः ॥ २३ ॥ विचारचारवो जीवा भासयन्तो दिशो दश ॥ भान्ति भास्करवन्नूनं भूयो भवभयापहाः ॥ २४ ॥

अर्थ—जिसका मन विचार सहित हैं, तथा आशाकी पराधीनतासे वर्जित हैं, उसको पूर्ण चन्द्रमाके समान आत्मामें परमसुख प्राप्त होता है ॥ २१ ॥ जब शरीरमें विचार उदय होता है वह संपूर्ण शरीरको ऐसे शीतल करता है जैसे घामसे पीडितको शीतल जल और सब शरीरको ऐसे शोभित करता है, जैसे चन्द्रमाकी चांदनी संपूर्ण जगत्को ॥ २२ ॥ मोक्षके अधिकारी पुरुषके ऊपर परम पुरुषार्थवाली बुद्धिरूप पताका तथा विचाररूपी चमर (राजाका चिन्ह) शोभित होता है जैसे रात्रिमें चन्द्रमा ॥ २३ ॥ विचारसे शोभायमान जीवन्मुक्त प्राणी दशोंदिशाको प्रकाश करते हुये और अनेक जवींके संसारके भयरूपी अन्धकारको नाश करते हुये निःसन्देह सूर्यके समान प्रकाश करते हैं २४

बालस्य स्वमनोमोहकल्पितःप्राणहारकः ॥ रात्रौ नभसि वेतालो विचारेण विलीयते ॥ २५ ॥ सर्व एवं जगद्भावा अविचारेण चारवः ॥ अविद्यमानसद्भावा विचारविशरारवः ॥ २६ ॥ पुंसो निजमनोमोहकल्पितोऽनल्पदुःखदः ॥ संसारचिरवेतालो विचारेण विलीयते ॥ २७ ॥ समं सुखं निराबाधमनन्तमनपाश्रयम् ॥ विद्धीमं केवलीभावं विचारोच्चतरोःफलम् ॥ २८ ॥

अर्थ—यह प्राणनाशक संसार अपने मनके अज्ञानसे ऐसे कल्पितहै, जैसे रात्रिमें बालकको बाहर न जानेके लिये आकाशमें वेतालकी कल्पना होती है, और वह विचाररूपी सूर्य्यसेही नाशको प्राप्तहोताहै ॥ २५ ॥ संपूर्णजगत्के पदार्थ विचार न होनेसेही उत्तम जान पडते हैं, विचारके उदय होतेही सब मिथ्या प्रतीत होनेलगते हैं ॥ २६ ॥ पुरुषने यह दुःखदायी संसाररूपी दीर्घकालका वेताल अपने मनके अज्ञानसेही कल्पना करलियाहै, वह केवल विचारसेही नष्टहोताहै ॥ २७ ॥ जगत्के विषमतारूप दोषसे वर्जित, स्वाधीन और निरतिशय सुख कैवल्य मुक्ति विचाररूपी बडेवृक्षकाही फल है ॥ २८ ॥

अचलस्थितितोदारा प्रकटाभोगतेजसा ॥ तेन निष्कामतोदेति शीततेवेन्दुनोदिता ॥ २९ ॥ स्वविचारमहौषध्या साधुश्चित्तनिषण्णया ॥ तयोत्तमत्वप्रदया नाभिवाञ्छति नोज्झति ॥ ३० ॥ तत्पदालम्बनं चेतः स्फारमाभासमागतम् ॥ नास्तमेति न चोदेति खमिवातिततान्तरम् ॥ ३१ ॥ न ददाति न चादत्ते न चोन्नमति शाम्यति ॥ केवलं साक्षिवत्पश्यन् जगदाभोगि तिष्ठति ॥ ३२ ॥

अर्थ—विचारसे प्राप्त परमानन्दके सामर्थ्यसे जब चंचलताका हेतु अज्ञान नष्ट होजाताहै, तब अचलस्थितिवाली पूर्णानन्दरूप निष्कामता ऐसे उदय होती है; जैसे चंद्रमासे शीतलता ॥ २९ ॥ पूर्णानन्दकी अचलस्थितिरूप उत्तमताको देनेवाली अपने चित्तमें स्थित विचाररूप महौपधिसे साधुपुरुष अप्राप्तवस्तुको न तो चाहताहै और न प्राप्तको त्यागकरताहै, अर्थात् कृतकृत्य होजाताहै ॥ ३० ॥ विचारसे उत्पन्न ज्ञानयुक्त चित्त, जब परमपदका अवलम्बन करताहै तब वह चित्त भर्जितबीजकेसमान भासताहै, परन्तु उसमें अंकुर उत्पन्न करनेकी शक्ति नहीं रहती, अतएव आकाशकेसमान ब्रह्मभावको प्राप्त न वह अस्त होताहै और न रागादिवृत्तियोंकेसाथ उदय होताहै, इससे जीव-

नकी स्थिति और विक्षेपका अभाव दोनों सिद्ध होते हैं ॥ ३१ ॥ क्योंकि-वह जगत्के विषयोंको साक्षीकेसदृश उदासीन रूपसे देखताहुआ रागआदिके वशीभूत होके उनमें न मन देताहै, न परमार्थदृष्टिसे उनका उपभोग करताहै, न उद्धत होताहै, और न शान्त होताहै ॥ ३२ ॥

न च शाम्यति नाप्यन्तर्नापि बाह्येव तिष्ठति ॥ न च नैष्कर्म्यमादत्ते न च कर्मणि मज्जति ॥ ३३ ॥ उपेक्षते गतं वस्तु संप्राप्तमनुवर्त्तते ॥ न क्षुब्धो न च वाक्षुब्धो भाति पूर्ण इवार्णवः ॥ ३४ ॥ एवं पूर्णेन मनसा महात्मानो महाशयाः ॥ जीवन्मुक्ता जगत्यस्मिन् विहरन्तीह योगिनः ॥ ३५ ॥ उषित्वा सुचिरं कालं धीरास्ते यावदीप्सितम् ॥ ते तमन्ते परित्यज्य यान्ति केवलतां तताम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—न तो वह चित्त सुषुप्तिकेसमान उपाधिके शान्त होजानेसे शान्त होताहै, न स्वप्नकेसमान वासनामय अन्तःकरणमें लीन होताहै, और न जगत्में मूढजनोंकी अवस्थाके समान बाह्यपदार्थोंमें निमग्न होताहै, किन्तु उदासीनरूपसे स्थित रहताहै ॥३३॥ गतवस्तुकी उपेक्षा करताहै, अर्थात् उनकी प्राप्तिके लिये यत्न नहींकरता, और प्राप्तवस्तुसे अपना व्यवहार करताहै, न वह क्षोभको प्राप्त होता और न अक्षोभको किन्तु पूर्णसमुद्रकेसमान शोभायमान रहताहै ॥ ३४ ॥ इसप्रकार महाविचारवाले योगी महात्मा जन पूर्णमनसे जीवन्मुक्त होके इस संसारमें विहारकरते हैं ॥ ३५ ॥ वे धीर महात्मा जन अपनी इच्छापूर्वक दीर्घकालतक इस संसारमें निवास करके अन्तमें उपाधिके आभासको त्यागकर अनन्त कैवल्यपदको प्राप्तहोते हैं ॥ ३६ ॥

कोऽहं कस्य च संसार इत्यापद्यपि धीमता ॥ चिंतनीयं प्रयत्नेन सप्रतीकारमात्मना ॥ ३७ ॥ कार्यसंकटसन्देहं राजा जानाति राघव ॥ निष्फलं सफलं वापि विचारेणैव नान्यथा ॥ ३८ ॥ वेदवेदान्तसिद्धान्तस्थितयः स्थितिकारणम् ॥ निर्णीयन्ते विचारेण दीपेन च भुवोनिशि ॥ ३९ ॥ अनष्टमन्धकारेषु बहुतेजःस्वजिह्मितम् ॥ पश्यत्यपि व्यवहितं विचारश्चारुलोचनं ॥ ४० ॥

अर्थ—मैं कौन हूं? यह संसार कहांसे आया? ऐसा कुटुम्ब आदिमें आसक्तभी तथा आपत्तिमेंभी संसारके दुःखनाशक श्रवण आदि अनुष्ठानसहित सदा चिंतन करतेरहना ॥ ३७ ॥ हे राघव! अवश्य कर्तव्य कार्य्य संकटोंमें सन्धि, विग्रह, यान, द्वैधीभाव और समाश्रयादिको राजा विचारसेही जानताहै अन्यथा नहीं ॥ ३८ ॥ हे रामजी! वेद और वेदान्तकी स्थिति अर्थात् धर्मज्ञान और ब्रह्मका साक्षात्कार तथा जो परमपुरुषार्थका कारणहै, ये सब विचारसेही ऐसे निश्चित होते हैं जैसे रात्रिमें दीपसे पृथ्वीके पदार्थ ॥ ३९ ॥ यह साधारण नेत्र तो अन्धकारमें नष्टके समान होजाताहै, और सूर्यादिके अधिकतेजमें चकाचौंधीसे बन्ध होजाताहै, दूरके तथा व्यवहित (आड) के पदार्थोंको नहीं देखता परन्तु विचाररूपी उत्तम नेत्र ऐसा नहीं है, वह तो व्यवहितपदार्थोंकोभी देखताहै ॥ ४० ॥

विवेकान्धो हि जात्यन्धः शोच्यः सर्वस्य दुर्मतिः ॥ दिव्यचक्षुर्विवेकात्मा जयत्यखिलवस्तुषु ॥ ४१ ॥ परमात्ममयी मान्या महानन्दैकसाधिनी ॥ क्षणमेकं परित्याज्या न विचारचमत्कृतिः ॥ ४२ ॥ विचारचारुपुरुषो महतामपि रोचते ॥ परिपक्वचमत्कारं सहकारफलं यथा ॥४३॥ विचारकान्तमतयो नाऽनेकेषु पुनः पुनः ॥ लुठन्तिदुःखश्वभ्रेषु ज्ञाताध्वगतयो नराः ॥ ४४ ॥

अर्थ—जो पुरुष विचाररूपी नेत्रसे हीन है, उसको जन्मान्ध समझना चाहिये, और वह दुर्मति सबको शोचनीय है, और जिस विवेकात्माको विचाररूपी दिव्यचक्षु है, वह पुरुष संपूर्णपुरुषार्थको प्राप्त करताहै ॥ ४१ ॥ जिसमें सदा परमात्माहीका विचार हो इसीसे सब विचारोंसे अति प्रतिष्ठाके योग्य, और परमानन्दको सिद्ध करनेवाली विचारकी चमत्कृति (चमत्कार) को क्षणभरभी मनुष्यको नहीं त्यागना चाहिये, अर्थात् निरन्तर आत्माका चिन्तन करते रहना चाहिये ॥ ४२ ॥ विचारसे शोभायमान पुरुष महात्माओंकोभी ऐसे अच्छे लगते हैं, जैसे परिपाकसे चमत्कार जनक आम्रका फल ॥ ४३ ॥ विचारसे सुन्दर बुद्धिवाले पुरुष दुःखरूपी गढेमें वार २ ऐसे नहीं गिरते जैसे मार्गको जाननेवाले पुरुप ॥ ४४ ॥

न च रौति तथा रोगी नानर्थशतजर्जरः ॥ अविचारविनष्टात्मायथाज्ञः परिरोदिति ॥ ४५ ॥ वरं कर्दममेकत्वं मलकीटकता वरम् ॥ वरमन्धगुहाहित्वं न नरस्याविचारिता ॥ ४६ ॥ सर्वानर्थनिजावासं सर्वसाधुतिरस्कृतम् ॥ सर्वदौःस्थित्यसीमान्तमविचारं परित्यजेत् ॥४७॥ नित्यं विचारयुक्तेन भवितव्यं महात्मना ॥ तथान्धकूपे पततां विचारो ह्यवलम्बनम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—अनेक रोगोंसे पीडित, और विष तथा शस्त्र आदि अनर्थोंसे शिथिल शरीरवाला वैसा नहीं रोता जैसा अविचारसे नष्टात्मा अज्ञानी पुरुष अनेक जन्मोंकी परम्परामें सदा रोयाकरताहै ॥ ४५ ॥ कीचडोंमें मेंढक होना उत्तम है, मलका कीडा होना उत्तम है, और अन्धेरीगुफामें सर्प होनाभी उत्तम है, परन्तु मनुष्यकेलिये विचार न होना अच्छा नहीं ॥४६ ॥ संपूर्ण अनर्थोंके रहनेका मुख्य स्थान, सब महात्माओंसे तिरस्कृत, और सब दुर्दशाओंकी सीमा जो अविचार है उसे त्यागना चाहिये ॥ ४७ ॥ मनुष्यको उचित है कि सदा विचारयुक्त होके महात्मा बने, क्योंकि रागद्वेपादिरूप अंधकूपमें गिरनेवालोंको केवल विचारही अवलम्ब है ॥ ४८ ॥

स्वयमेवात्मनात्मानमवष्टभ्य विचारतः ॥ संसारमोहजलधेस्तारयेत्स्वमनोमृगम् ॥ ४९ ॥ कोऽहं कथमयं दोषः संसाराख्य उपागतः ॥ न्यायेनेति परामर्शो विचार इति कथ्यते ॥ ५० ॥ अन्धान्धमोहसुघनं चिरं दुःखाय केवलम् ॥ कृतं शिलाया हृदयं दुर्मतेश्चाविचारिणः ॥ ५१ ॥ भावाभावग्रहोत्सर्गदृशामिह हि राघव ॥ न विचारादृते तत्त्वं ज्ञायते साधु किंचन ॥ ५२ ॥

अर्थ—रागद्वेपादिके प्रवाहसे खिंचेहुयेभी अपने आत्माको स्वयं विचारसे स्थिर करके अपने मनरूपी चंचल मृगको संसारके अज्ञानरूपी समुद्रसे पार करे ॥ ४९ ॥ मैं कौन हूं ? क्या मैं शरीरादि हूं या उनसे विलक्षण हूं ? यह संसार क्या है ? और किसप्रकारसे अधिष्ठानरूप आत्मामें आया इसप्रकार श्रुति गुरु और अनुभव आदिसे परामर्शको विचार कहतेहैं ॥ ५० ॥ विचाररहित दुर्बुद्धिका हृदय अन्धेसेभी अन्धतर, अज्ञानसेभी अज्ञानतर, मानो वह केवल दुःख सहन करनेहीकेलिये पाषाणसे बनाहै ॥ ५१ ॥ हे रामजी ! सत्यके ग्रहणकरनेकेलिये और असत्यके त्यागनेकेलिये बुद्धिमान्पुरुषोंको विचारसे उत्तम कोईभी पदार्थ इस संसारमें नहीं है ॥ ५२ ॥

विचाराज्जायते तत्त्वं तत्त्वाद्विश्रान्तिरात्मनि ॥ अतो मनसि शान्तत्वं सर्वदुःखपरिक्षयः ॥ ५३॥ सफलतां फलते भुवि कर्मणां प्रकटतां किल गच्छति उत्तमाम् ॥ स्फुटविचारदृशैव विचारिता शमवते भवते च विरोचताम् ॥ ५४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे विचारनिरूपणं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

अर्थ—विचारसेही तत्व जानाजाता है, और तत्वज्ञानसेही आत्मामें स्थिति वा विश्रांति होति है, और इसीसे मनकी शान्ति और सब दुःखोंका नाश होता है ॥ ५३ ॥ हे रामजी ! अधिक कहनेसे क्या प्रयोजन स्वच्छ विचारदृष्टिसेही लौकिक और वैदिककर्मोंकी सफलता होती है, और विचारसेही आत्मतत्वकी वक्ष्यमाण सप्तमभूमिका मनुष्यको प्राप्तहोती है, इसलिये समाधिके साधन शमसहित आपकीभी विचारमें प्रबल रुचि हो ॥ ५४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे विचारनिरूपणंनाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

वैराग्यरूपी कल्पवृक्षकी शीतल और सुखदायक छायाके समान "सन्तोषनामक" मोक्षके तीसरे द्वारपालका वर्णन इस १५ वे सर्गमें कियागया है.

श्रीवसिष्ठ उवाच ॥ सन्तोषो हि परं श्रेयः सन्तोषः सुखमुच्यते ॥ संतुष्टः परमभ्येति विश्राममरिसूदन ॥ १ ॥ संतोषैश्वर्यसुखिनां चिरविश्रान्तचेतसाम् ॥ साम्राज्यमपि शान्तानां जरत्तृणलवायते ॥ २ ॥ संतोषशालिनी बुद्धी राम संसारवृत्तिषु ॥ विषमास्वप्यनुद्विग्ना न कदाचन हीयते ॥ ३॥ संतोषामृतपानेन ये शान्तास्तृप्तिमागताः ॥ भोगश्रीरतुला तेषामेषा प्रतिविषायते ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे अरिसूदन रामजी ! संतोषही मोक्ष और परमसुख है, जो सन्तुष्ट मनुष्य है वह सर्वथा दुःख विक्षेपसे रहित शान्तिको प्राप्तहोताहै ॥ १ ॥ संतोषरूपी ऐश्वर्यके प्रभावसे जो सुखी हैं और उसीकेद्वारा जिनका चित्त दीर्घकालतक आश्वस्त है, तथा संतोषसे जिनका आत्मा शान्त है उन महानुभावोंको त्रैलोक्यका साम्राज्यभी पुराने तृणकेसमान प्रतीतहोताहै ॥ २ ॥ हे रामजी ! सन्तोषसे शोभायमान जो बुद्धि है वह दैवेच्छासे दारिद्र्य और वियोगसे दुःखदायी संसारकी दशा होनेपरभी सुखसे रहित नहीं होती ॥ ३ ॥ सन्तोषरूपी अमृतके पानसे जो तृप्तहोगये हैं, उन शान्तपुरुषोंको अनन्तभोगकी लक्ष्मी विषकेसमान भानहोती है ॥ ४ ॥

न तथा सुखयन्त्येताः पीयूषरसवीचयः ॥ यथातिमधुरास्वादः सन्तोषो दोषनाशनः ॥ ५ ॥ अप्राप्तवांछामुत्सृज्य सम्प्राप्ते समतां गतः ॥ अदृष्टखेदाखेदो यः स सन्तुष्ट इहोच्यते ॥ ६ ॥ आत्मनाऽऽत्मनि सन्तोषं यावद्याति न मानसम् ॥ उद्भवन्त्यापदस्तावल्लता इव मनोबिलात् ॥ ७ ॥ सन्तोषशीतलं चेतः शुद्धविज्ञानदृष्टिभिः ॥ भृशं विकासमायाति सूर्यांशुभिरिवांबुजम् ॥ ८ ॥

अर्थ—अमृतरसकी तरंगें ऐसी सुखदायी नहीं होसकतीं जैसा सब दीनता और आशादिदुःखोंका नाशक आनन्दमय आस्वादयुक्त संतोष सुखदायी होताहै ॥ ५ ॥ अप्राप्तवस्तुकी इच्छासे वर्जित और प्राप्तवस्तुके मिथ्यात्वसे उसमें हर्षविषाद शून्य और प्रसन्नता तथा शोकरहित पुरुषको इस शास्त्रमें सन्तुष्ट कहतेहैं ॥ ६ ॥ जबतक अपने आत्माहीमें मन सन्तुष्ट नहींहोता, तबतक मनरूपी बिलसे लताकेसमान आपत्तियां उत्पन्न हुआ करतीहैं ॥ ७ ॥ रागद्वेषरहित शुद्धज्ञानद्वारा संतोषसे शीतल चित्त अत्यन्त विकासको ऐसे प्राप्तहोताहै जैसे सूर्यके किरणोंसे कमल ॥ ८ ॥

आशा वै वश्यविवशे चित्ते संतोषवर्जिते ॥ म्लाने वक्त्रमिवाऽऽदर्शे न ज्ञानं प्रतिबिंबति ॥९॥ अज्ञानघनयामिन्या संकोचं न नरांबुजम् ॥ यात्यसावुदितो यस्य नित्यं संतोषभास्करः ॥ १० ॥ अकिंचनोऽप्यसौ जंतुः साम्राज्यसुखमश्नुते ॥ आधिव्याधिविनिर्मुक्तं संतुष्टं यस्य मानसम् ॥ ११ ॥ नाभिवांछत्यसंप्राप्तं प्राप्तं भुंक्ते यथाक्रमम् ॥ यः सुसौम्यसमाचारः सन्तुष्ट इति कथ्यते ॥ १२ ॥

अर्थ—आशासे व्याकुल और संतोषसे रहित मालिनचित्तमें उपदेश ऐसे नहीं प्रतिबिंबित होता जैसे मलिनदर्पणमें मुख ॥ ९ ॥ जिस पुरुषरूपी कमलके विकसितकरनेकेलिये सन्तोषरूपी सूर्य उदितहुआहै, वह अज्ञानरूपी गाढ अन्धकारयुक्त रात्रिमें संकुचित नहीं होता ॥१०॥ जिस प्राणीका चित्त शारीरिक और मानसिकपीडासे वर्जित और सन्तुष्ट है वह दरिद्री होनेपरभी साम्राज्यका सुख भोगताहै ॥ ११ ॥ जो अप्राप्तवस्तुकी इच्छा नहीं करता और प्राप्त सुखदुःखको क्रमसे भोगताहै और जिसके शुद्ध आचरण सबजगतको आनन्ददायकहैं उसको संतुष्ट कहतेहैं॥१२॥

सन्तुष्टिपरतृप्तस्य महतः पूर्णचेतसः ॥ क्षीराब्धेरिव शुद्धस्य मुखे लक्ष्मीर्विराजते ॥१३॥ पूर्णतामलमाश्रित्य स्वात्मन्येवात्मना स्वयम् ॥ पौरुषेण प्रयत्नेन तृष्णां सर्वत्र वर्जयेत् ॥ १४ ॥ सन्तोषामृतपूर्णस्य शान्तशीतलया धिया ॥ स्वयं स्थैर्यं मनो याति शीतांशोरिव शाश्वतम् ॥ १५ ॥ सन्तोषपुष्टमनसं भृत्या इव महर्द्धयः ॥ राजानमुपतिष्ठन्ति किंकरत्वमुपागताः ॥ १६ ॥

अर्थ—संन्तोषमें परायण और पूर्णचित्त जो महात्मा पुरुष क्षीरसमुद्रकेसमान निर्मल अन्तःकरण है उसके मुखपर लक्ष्मी सदा शोभायमान रहतीहै ॥ १३ ॥ पुरुषार्थसे स्वयं अपने आत्मासे आत्मामेंही पूर्णताका भलीभांति अनुभव करके तृष्णाके सबस्थानोंको रोके ॥ १४ ॥ चन्द्रमाकेसमान सन्तोषरूपी अमृतसे पूर्ण मनुष्यका मन शान्त और शीतल बुद्धिसे नित्य स्थिरताको प्राप्तहोताहै ॥ १५ ॥ जिस प्राणीका मन संन्तोषसे पूर्ण है उसके निकट संपूर्ण सम्पत्तियां स्वयं ऐसे आतीहैं जैसे राजाके निकट सेवाकेलिये संपूर्ण सेवक ॥ १६ ॥

आत्मनैवात्मनि स्वस्थे सन्तुष्टे पुरुषे स्थिते ॥ प्रशाम्यन्त्याधयः सर्वे प्रावृषीवाशु पांसवः ॥ १७ ॥ नित्यं शीतलया राम कलंकपरिमिश्रया ॥ पुरुषः शुद्धया वृत्त्या भाति पूर्णतयेन्दुवत् ॥ १८ ॥ समतासुन्दरं वक्त्रं पुरुषस्यावलोकयन् ॥ तोषमेति यथा लोको न तथा धनसंचयैः ॥ १९ ॥ समतया मतया गुणशालिनां पुरुषराडिह यः समलंकृतः ॥ तममलं प्रणमन्ति नभश्चरा अपि महामुनयो रघुनन्दन ॥ २० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे सन्तोषनिरूपणं नाम पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

अर्थ—अपने आपही आत्मामें संतुष्ट होके जब पुरुष स्थित होताहै तब सम्पूर्ण मानसीपीडा शीघ्र ऐसे शान्त होजातीहै जैसे वर्षाकालमें धूलि ॥ १७ ॥ हे रामजी ! कलंकसे रहित संतोषयुक्त शुद्ध शीतलवृत्तिसे पूर्ण चन्द्रमाकेसमान मनुष्य शोभायमान होताहै ॥ १८ ॥ सर्वत्र सन्तोष होनेसे समतासे अतिसुंदर पुरुषके मुखको देखकर संसार जैसा प्रसन्न होताहै वैसा धनके संचयसे नहीं होता ॥ १९ ॥ इस संसारमें जो श्रेष्ठपुरुष महात्माओंको प्रिय जो सर्वत्र समानभाव उससे शोभितहै उसको आकाशगामि देवता तथा मुनिजनभी प्रणाम करतेहैं ॥ २० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे सन्तोषनिरूपणं नाम पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

चतुर्थ द्वारपाल सत्संग और चारोंमेंसे एककीभी सेवा पुरुपार्थफलको देती है; इस विषयका वर्णन, इस १६ वे सर्गमें कियागयाहै.

श्रीवसिष्ठ उवाच-विशेषेण महाबुद्धे संसारोत्तरणे नृणाम् ॥ सर्वत्रोपकरोतीह साधुः साधुसमागमः ॥ १ ॥ साधुसंगतरोर्जातं विवेककुसुमं सितम् ॥ रक्षन्ति ये महात्मानो भाजनं ते फलश्रियः ॥ २ ॥ शून्यमाकीर्णतामेति मृतिरप्युत्सवायते ॥ आपत्सम्पदिवाभाति विद्वज्जनसमागमे ॥ ३ ॥ हिममापत्सरोजिन्या मोहनीहारमारुतः ॥ जयत्येको जगत्यस्मिन् साधुः साधुसमागमः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे महाबुद्धे रामजी! संसारके पार उतरनेमें उत्तम साधुसमागम मनुष्योंको सब अवस्थाओंमें विशेषकरके उपकारी होताहै ॥ १ ॥ जो महात्मा साधुसंगरूपीवृक्षसे उत्पन्न विवेकरूपी निर्मलपुष्पकी रक्षा करतेहैं वे मोक्षरूपी फलसंपत्तिके पूर्णपात्र होते हैं ॥ २ ॥ उत्तम विद्वान्‌जनके मिलनेसे स्वजनधनादिसे शून्य दुःखके स्थानभी संपत्ति आदिसे पूर्ण और मृत्युभी उत्सवके सदृश, और विपत्तिभी संपत्तिकेसमान प्रतीत होतीहै ॥ ३ ॥ आपत्तिरूप कमलिनीके लिये हिमकेसमान, और अज्ञानरूपीकुहरेको प्रबलवायुके सदृश, उत्तम साधुसमागम संसारमें सबसे उत्कृष्ट है ॥ ४ ॥

परं विवर्द्धनं बुद्धेरज्ञानतरुशातनम् ॥ समुत्सारणमाधीनां विद्धि साधुसमागमम् ॥ ५ ॥ विवेकः परमो दीपो जायते साधुसंगमात् ॥ मनोहरोज्ज्वलो नूनमासेकादिव गुच्छकः ॥ ६ ॥ निरपायां निराबाधां निर्वृतिं नित्यपीवरीम् ॥ अनुत्तमां प्रयच्छन्ति साधुसंगविभूतयः ॥ ७ ॥ अपि कष्टतरां प्राप्तैर्दशां विवशतां गतैः ॥ मनागपि न सन्त्याज्या मानवैः साधुसंगतिः ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! आप साधुसमागमको विवेकज्ञानका वर्धक, अज्ञानरूपी वृक्षको काटनेवाला, और सम्पूर्ण मानसीपीडाओंको दूरकरनेवाला जानो ॥ ५ ॥ साधुमहात्माओंके संगसे परमविवेकरूपी दीपक ऐसे उत्पन्नहोताहै जैसे वाटिकाके सींचनेसे मनोहर और उज्ज्वल पुष्प तथा फलका गुच्छा ॥ ६ ॥ साधुसमागमकी विभूतियां विघ्न और नाशरहित, निरन्तर वर्द्धनशील अनन्त और सबसे उत्तमसुखको देतीहैं ॥ ७ ॥ अतिकष्टदायीदशाको प्राप्त और पराधीनतामें विवश मनुष्योंकोभी उचितहै कि क्षणभरकेलियेभी साधुसंगति न छोडें ॥ ८ ॥

साधुसंगतयो लोके सन्मार्गस्य च दीपिकाः ॥ हार्दांधकारहारिण्यो भासो ज्ञानविवस्वतः ॥ ९ ॥ यः स्नातः शीतसितया साधुसंगतिगंगया ॥ किं तस्य दानैः किं तीर्थैः किं तपोभिः किमध्वरैः ॥ ॥ १० ॥ नीरागाश्छिन्नसन्देहा गलितग्रन्थयोऽनघ ॥ साधवो यदि विद्यन्ते किं तपस्तीर्थसंग्रहैः ॥ ११ ॥ विश्रान्तमनसो धन्याः प्रयत्नेन परेण हि ॥ दारिद्रेणेव मणयः प्रेक्षणीया हि साधवः ॥ १२ ॥

अर्थ—साधुमहात्माओंकी संगति अज्ञानरूपीरात्रीको नष्टकरनेवाली सन्मार्गकी दीपिका है, और हृदयके अन्धकारको हरनेवाली ज्ञानरूपीसूर्यकी दीप्ति है ॥ ९ ॥ जिस प्राणीने ताप और मलिनताको नाशकरनेकेलिये शीतल और निर्मल साधुसंगतिरूपीगंगामें स्नान कियाहै उसको दान, तीर्थ, तप और यज्ञसे क्या प्रयोजन है ॥ १० ॥ हे पापरहित रामजी ! यदि संसारमें रागद्वेषरहित, सन्देहशून्य, और अन्तःकरणकी ग्रन्थियोंसे रहित साधुजन हैं, तो तप और तीर्थोंके संग्रहसे क्या प्रयोजन ॥ ११ ॥ जिनका चित्त परमात्माके स्वरूपमें विश्रांत हैं ऐसे धन्यवादके योग्य महात्मा साधुलोग जनोंको बडे परिश्रमसे इसप्रकार ढूंढने चाहियें जैसे निर्धनमनुष्योंको मणि ॥ १२ ॥

सत्समागमसौन्दर्यशालिनी धीमतां मतिः ॥ कमलेवाप्सरोवृन्दे सर्वदैव विराजते ॥ १३ ॥ तेनामलविचारस्य पदस्याग्रावचूलिता ॥ प्रथिता येन धन्येन न त्यक्ता साधुसंगतिः ॥ १४ ॥ विच्छिन्नग्रंथयस्तज्ज्ञाः साधवः सर्वसंमताः ॥ सर्वोपायेन संसेव्यास्ते ह्युपाया भवांबुधौ ॥ १५ ॥ त एते नरकाग्नीनां संशुष्केंधनतां गताः ॥ यैर्दृष्टा हेलया संतो नरकानलवारिदाः ॥ १६ ॥

अर्थ—साधुसमागमकी सुन्दरतासे शोभायमान महात्माओंकी बुद्धि सदा ऐसे शोभित होती हैं जैसे अप्सराओंके समूहमें लक्ष्मी ॥ १३ ॥ जिस धन्यपुरुपने प्रसिद्ध साधुसंगतिको नहीं त्यागा, उसने निर्मलविचारसे प्राप्त ब्रह्मपदरूपी चूडामणिको मानो अपने शिरका भूषण बनायाहै ॥ १४ ॥ जिनकी हृदयकी ग्रंथियां छिन्न होगई हैं, और जिन्होंने परमात्माके स्वरूपको जान लियाहै, ऐसे सबके माननीय साधुमहात्माओंकी दानमान आदि सबउपायोंसे सेवा

करनीचाहिये, क्योंकि संसाररूपीसमुद्रसे पारउतरनेकेलिये येही उपाय है ॥ १५ ॥ नरकरूपी अग्निको शांत करनेमे मेघोंकेसमान साधुमहात्माओंका जिन पुरुषोंने अनादर कियाहै वे नरकअग्निके शुष्क इन्धन हैं अर्थात् वे नरकके अग्निमें अच्छीतरह जलायेजातेहैं ॥ १६ ॥

दारिद्र्यं मरणं दुःखमित्यादिविषयो भ्रमः ॥ संप्रशाम्यत्यशेषेण साधुसंगमभेषजैः ॥ १७॥ सन्तोषः साधुसंगश्च विचारोऽथ शमस्तथा ॥ एत एव भवाम्भोधावुपायास्तरणे नृणाम् ॥ १८ ॥ सन्तोषः परमो लाभः सत्संगः परमा गतिः ॥ विचारः परमं ज्ञानं शमो हि परमं सुखम् ॥ १९॥ चत्वार एते विमला उपाया भवभेदने ॥ यैरभ्यस्तास्त उत्तीर्णा मोहवारि भवार्णवात् ॥ २० ॥

अर्थ—दरिद्रता, मरण, और अनेकप्रकारका दुःख, इत्यादिविषयोंका जो सन्निपात रोग है वह साधुसमागमरूपी औषधोंसे सर्वथा शांत होजाताहै ॥ १७ ॥ सन्तोष, साधुसंग, विचार और शम येही चारों संसाररूपीसमुद्रसे मनुष्योंको पारउतरनेकेलिये उत्तमउपायहै ॥ १८ ॥ संन्तोषही परमलाभ है, साधुसंगतिही परमगति है, विचारही सबसे उत्तम परमज्ञान है, और शमही सर्वोपरि सुख है ॥ १९ ॥ ये चारों निर्मल उपाय संसारके भेदनकरनेकेलिये जिनको अभ्यस्त हैं, वे अज्ञानरूपी जलमय इस संसारसमुद्रसे मानो पारही होगये ॥ २० ॥

एकस्मिन्नेव वै तेषामभ्यस्ते विमलोदये ॥ चत्वारोऽपि किलाभ्यस्ता भवन्ति सुधियां वर ॥ २१ ॥ एकोऽप्येकोऽपि सर्वेषामेषां प्रसवभूरिह ॥ सर्वसंसिद्धये तस्माद्यत्नेनैकं समाश्रयेत् ॥ २२॥ सत्समागमसन्तोषविचाराः सुविचारितम् ॥ प्रवर्तन्ते शमस्वच्छे वाहनानीव सागरे ॥ २३ ॥ विचारसन्तोषशमसत्समागमशालिनि ॥ प्रवर्तन्ते श्रियो जन्तौ कल्पवृक्षाश्रिते यथा ॥ २४ ॥

अर्थ—हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ रामजी ! इन चारोंमें उत्तमतासे एकक़ाभी अभ्यास करनेसे चारोंका अभ्यास अवश्य होजाताहै ॥ २१ ॥ इन चारोंमेंसे एक एक भी चारोंकी उत्पत्तिका स्थान है, इसलिये सबकी सिद्धिकेलिये एकक़ाही यत्नसे आश्रय ले ॥२२॥ जब शमसे विक्षेपरूप तरंग नष्टहोजातेहैं, और अन्तःकरणरूपीसमुद्र स्वच्छ होजाताहै, और उसमें राग द्वेष आदि ग्राहोंका उपद्रव नहीं होता; तब साधुसमागम, सन्तोष और विचाररूपी महापोत(जहाज) निर्विघ्नतासे चलतेहैं ॥ २३ ॥ विचार, सन्तोष, शम, और सत्समागम, इन चारोंसे शोभायमान जो मनुष्य है; उसको ज्ञानकी तथा लोककी सम्पूर्ण सम्पत्तियां ऐसे प्राप्तहोतीहैं, जैसे कल्पवृक्षके आश्रित मनुष्यको लक्ष्मी ॥ २४ ॥

विचारशमसत्संगसन्तोषवति मानवे ॥ प्रवर्तन्ते प्रपूर्णेन्दौ सौन्दर्याद्या गुणा इव ॥२५॥ सत्संगसंतोषशमविचारवति सन्मतौ ॥ प्रवर्तन्ते मन्त्रिवरे राजनीव जयश्रियः ॥ २६ ॥ तस्मादेकतमं नित्यमेतेषां रघुनंदन ॥ पौरुषेण मनो जित्वा यत्नेनाभ्याहरेद्गुणम् ॥ २७॥ परं पौरुषमाश्रित्य जित्वा चित्तमतंगजम् ॥ यावदेको गुणो नान्तस्तावन्नास्त्युत्तमा गतिः ॥ २८ ॥

अर्थ—विचार, शम, सन्तोष, और साधुसमागम, इन चारोंसे परिपूर्ण मनुष्यमें प्रसन्नता आदि सब गुण ऐसे प्राप्तहोतेहैं जैसे पूर्णचंद्रमामें सुन्दरता आदि ॥ २५ ॥ सत्संग, सन्तोष, शम, और विचारवाले सद्बुद्धियुक्त मनुष्यको सम्पूर्ण विजयलक्ष्मी ऐसे प्राप्त होतीहै जैसे उत्तम मंत्रीवाले राजाको सबविजयकी शोभा ॥ २६ ॥ हे रघुनन्दन ! इसलिये पुरुषार्थरूपी प्रबलयत्नसे मनको जीतकर इन चारोंमेंसे एक गुण तो अवश्य सर्वदा आत्मामें धारणकरनाचाहि- ॥ २७ ॥ परमपुरुषार्थका आश्रय लेके मनरूपी मतंगजको जीतकर जबतक इन चारोंमेंसे एकभी गुण आत्मामें नहीं प्राप्तहोता तबतक उत्तमगति कदापि नहींहोती ॥ २८ ॥

पौरुषेण प्रयत्नेन दन्तैर्दन्तान्विचूर्णयेत् ॥ यावन्नाभिनिविष्टं ते मनो राम गुणार्जने ॥ २९ ॥ देवो भवाथ यक्षो वा पुरुषः पादपोऽथ वा ॥ तावत्तव महाबाहो नोपायोऽस्तीह कश्चन ॥ ३० ॥ एकस्मिन्नेव फलदे गुणे बलमुपागते ॥ क्षीयन्ते सर्व एवाशु दोषा विवशचेतसः ॥ ३१ ॥ गुणे विवृद्धे वर्द्धन्ते गुणा दोषजयप्रदाः ॥ दोषे विवृद्धे वर्द्धन्ते दोषा गुणविनाशनाः ॥ ३२ ॥

अर्थ—अत्यन्त प्रबलपुरुषार्थका आश्रय लेके जबतक इन गुणोंको उपार्जन करनेमें चित्त नहीं लगता ॥ २९ ॥ तबतक हे रामजी! चाहें आप देवहों, अथवा यक्ष वा पुरुष हों वा कोई वृक्ष हों, परन्तु संसारसे पार उतरनेके लिये कोईभी उपाय नहींहै ॥ ३० ॥ इनमेंसे एकभी अभ्याससे फलदायक होताहै, और दृढतासे प्राप्तहोनेपर व्याकुलचित्तके सम्पूर्ण दोष शीघ्रही नष्टकरदेताहै ॥ ३१ ॥ हे रामजी ! गुणोंके बढनेपर दोषोंके जीतनेवाले सब गुण वृद्धिको प्राप्तहोतेहैं और दोषोंके बढनेपर, गुणनाशक सबदोष बढतेहैं ॥ ३२ ॥

मनोमोहवने ह्यस्मिन् वेगिनी वासनासरित् ॥ शुभाशुभबृहत्कूला नित्यं वहति जन्तुषु ॥३३॥ सा हि स्वेन प्रयत्नेन यस्मिन्नेव निपात्यते ॥ कूले तेनैव वहति यथेच्छसि तथा कुरु ॥३४॥ पुरुषयत्नजवेन मनोवने शुभतटानुगतां क्रमशः कुरु ॥ वरमते निजभावमहानदीमहह तेन मनागपि नोह्यसे ॥३५॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये मुमुक्षुव्यवहार-प्रकरणे सदाचारनिरूपणंनाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

अर्थ—मनके अज्ञानरूपी वनमें वासनारूप बडी प्रबलनदी, शुभ और अशुभरूपी दोतटोंकरके प्राणियोंपर सदा बहाकरतीहै ॥ ३३ ॥ वह वासनारूप नदी पुरुषार्थसे जिस तट (शुभ वा अशुभ) की ओर झुकाईंजाती है उसीओर बहतीहै, अब चाहें आप इसे शुभतटकीओर झुकावें चाहें अशुभकी ओर ॥ ३४ ॥ हे श्रेष्ठबुद्धि रामजी ! पुरुषार्थके यत्नके वेगसे मनरूपीवनमें इस वासनारूपीनदीको क्रमसे शुभप्रवाहकीओर झुकाओ, ऐसा करनेसे किंचित्भी अशुभप्रवाह तुमको अपनी ओर न बहासकेगा ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे सदाचारनिरूपणं नाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

पृथक् २ वर्णनीय अर्थोंसे तथा गुणोंसे भिन्न २ प्रकरणोंमें इस १७ वें सर्गमें इस ग्रन्थकी संख्याका विभाग वर्णन कियागयाहै.

श्रीवसिष्ठ उवाच-एवमन्तर्विवेको यः स महानिह राघव ॥ योग्यो ज्ञानगिरः श्रोतुं राजेव नयभारतीम् ॥ १ ॥ अवदातोऽवदातस्य विचारस्य महाशयः ॥ जडसङ्गोज्झितो योग्यः शरदिन्दोर्यथा नभः ॥ २ ॥ त्वमेतया खण्डितया गुणलक्ष्म्या समाश्रितः ॥ मनोमोहहरं वाक्यं वक्ष्यमाणमिदं शृणु ॥ ३ ॥ पुण्यकल्पद्रुमो यस्य फलभारानतः स्थितः ॥ मुक्तये जायते जन्तोस्तस्येदं श्रोतुमुद्यमः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले, हे रामजी ! इसप्रकार जिसके अन्तःकरणमें विचार, शम और सन्तोष आदि विवेककी सम्पत्ति प्राप्तहुई है वही ज्ञानोपदेश सुननेको अधिकारी है. जैसे नीतिशास्त्रका राजा ॥ १ ॥ मूर्खोंके संगसे पृथक् रहनेवाले तथा शुद्धविचारवाले मनुष्यका अन्तःकरण महान्आशययुक्त ऐसे निर्मलरहताहै, जैसे शरदृऋतुके चन्द्रमाके प्रकाशसे मेघरहित आकाश ॥ २ ॥ हे रामजी ! उक्तगुणोंकी अखण्डितलक्ष्मीसे सम्पन्न आप मनके अज्ञानको नाशकरनेवाली वक्ष्यमाण मेरी वाणीको सुनिये ॥ ३ ॥ जिस पुरुषका पुण्यरूपी कल्पवृक्ष फलोंके भारसे झुकजाताहै. वही पुरुष मुक्तिकेलिये इस ग्रन्थको सुननेका उद्यम करताहै ॥ ४ ॥

पावनानामुदाराणां परबोधैकदायिनाम् ॥ वचसां भाजनं भूत्यै भव्यो भवति नाधमः ॥ ५ ॥ मोक्षोपायाभिधानेयं संहिता सारसंमिता ॥ त्रिंशद्वे च सहस्राणि ज्ञाता निर्वाणदायिनी ॥ ६ ॥ दीपे यथा विनिद्रस्य ज्वलिते सम्प्रवर्तते ॥ आलोकोऽनिच्छतोऽप्येवं निर्वाणमनया भवेत् ॥ ७ ॥ स्वयं ज्ञाता श्रुता वापि भ्रांतिशांत्यैकसौख्यदा ॥ आप्रेक्ष्य वर्णिता सद्यो यथा स्वर्गतरंगिणी ॥ ८ ॥

अर्थ—परमपवित्र, उदार उत्तम अर्थसहित और परमज्ञानको देनेवाले वचनोंका पात्र मुक्तिकेलिये धर्मात्माही पुरुष होताहै, न कि विचारादिरहित अधम पापी मनुष्य ॥ ५ ॥ सारभूत अर्थोंसे पूर्ण, उपनिषद्के तुल्य तथा मोक्षदायक मोक्षोपाय नामवाली यह वाणी (यो० वा० ग्रन्थ) ३२००० बत्तीससहस्रश्लोकोंमें प्रसिद्ध कीगई है ॥ ६ ॥ जिसप्रकार दीपकसे निद्रारहित पुरुषकी इच्छाविनाभी प्रकाशहोताहै और उससे सबपदार्थ उसको देखपडते हैं इसीप्रकार इस संहिताके सुननेसे निर्वाण (मोक्षज्ञान) उत्पन्नहोताहै ॥ ७ ॥ उत्तमरीतिसे विचारपूर्वक स्वयं ज्ञात वा दूसरोंके सम्मुख वर्णन कीहुई, अथवा दूसरेसे सुनीहुई, यह संहिता गंगाजीकेसमान शीघ्र पापोंको शान्त करती है और अनन्तसुखको देती है ॥ ८ ॥

यथा रज्ज्वामहिभ्रान्तिर्विनश्यत्यवलोकनात् ॥ तथैतत्प्रेक्षणाच्छान्तिमेति संसारदुःखितः ॥ ९ ॥ युक्तियुक्तार्थवाक्यानि कल्पितानि पृथक् पृथक् ॥ दृष्टान्तसारसूक्तानि चास्यां प्रकरणानि षट्

॥ १० ॥ वैराग्याख्यं प्रकरणं प्रथमं परिकीर्त्तितम् ॥ विरागो वर्द्धते येन सेकेनेव मरौ तरुः ॥ ११ ॥ (अनुबन्धेन सहितं दिष्टतत्त्वनिरूपणम् ॥) सार्द्धं सहस्रं ग्रन्थस्य यस्मिन् हृदि विचारिते ॥ प्रकाशाच्छुद्धतोदेति मणाविव सुमार्जिते ॥ १२ ॥

अर्थ—जिसप्रकार रज्जुके वास्तवीकरूपके जाननेसे रज्जुमें सर्पकी भ्रांति शीघ्र मिटजाती है, इसीप्रकार ग्रन्थको विचारपूर्वक देखनेसे संसारका दुःख शान्तहोजाताहै ॥ ९ ॥ युक्तिसहित अर्थवाले वाक्यसहित तथा उत्तमदृष्टांतोंके आख्यानसहित ६ छ प्रकरण इस ग्रन्थमें हैं ॥ १० ॥ इस ग्रन्थका प्रथम प्रकरण "वैराग्य" नामक है, जिससे वैराग्यकी वृद्धि ऐसे होतीहै, जैसे जलके सींचनेसे मरुस्थलके वृक्षकी ॥ ११ ॥ इस १५०० श्लोकयुक्त प्रकरणके भलिभांति विचारनेसे विषयोंमें दोषपरिज्ञानद्वारा मालिनताकी निवृत्ति ऐसे होती है जैसे शुद्धकियेहुये मणिमें ॥ १२ ॥

मुमुक्षुव्यवहाराख्यं ततः प्रकरणं कृतम् ॥ सहस्रमात्रं ग्रन्थस्य युक्तिग्रन्थेन सुन्दरम् ॥ १३ ॥ स्वभावो हि मुमुक्षूणां नराणां यत्र वर्ण्यते ॥ अथोत्पत्तिप्रकरणं दृष्टान्ताख्यायिकामयम् ॥ १४ ॥ सप्तग्रन्थसहस्राणि विज्ञानप्रतिपादकम् ॥ जागती द्रष्टृदृश्यश्रीरहंत्वमितिरूपिणी ॥ १५ ॥ अनुत्पन्नैवोत्थितेव यत्रेति परिवर्ण्यते ॥ यस्मिञ्छ्रुते जगदिदं श्रोतान्तर्बुध्यतेऽखिलम् ॥ १६ ॥

अर्थ—उसके अनन्तर मुमुक्षुव्यवहारनामक दूसरा प्रकरण १००० एकसहस्र युक्तिसहित उत्तमश्लोकोंकी संख्यासहित रचागयाहै ॥ १३ ॥ जिसमें मुमुक्षुमनुष्योंके स्वभावका वर्णन उत्तमतापूर्वक कियागयाहै, इसके अनन्तर दृष्टान्त और आख्यायिकाओंसे पूर्ण उत्पत्तिप्रकरण है॥१४॥इस प्रकरणमें ७०००सातसहस्र श्लोक ज्ञानप्रतिपादक हैं 'अहम्' और 'त्वम्' पदको निरूपण करनेवाली, द्रष्टा और दृश्यके भेदसे विचित्र यह जगत्की संपत्ति ॥१५॥ आकस्मिक मनके संकल्पसे उत्पन्नहुई जिसमें वर्णन कीगई है इसके सुननेसे श्रोताके अन्तःकरणमेंही संपूर्णजगत्की यथार्थ दशा जानपडती है ॥ १६ ॥

सास्मद्युष्मत्सविस्तारं सलोकाकाशपर्वतम् ॥ पिण्डग्रहविनिर्मुक्तं निर्भित्तिकमपर्वतम् ॥ १७ ॥ पृथ्व्यादिभूतरहितं संकल्प इव पत्तनम् ॥ स्वप्नोपलम्भभावाभं मनोराज्यवदाततम् ॥ १८ ॥ गन्धर्वनगरप्रख्यमर्थशून्योपलम्भनात् ॥ द्विचन्द्रविभ्रमाभासं मृगतृष्णाम्बुवर्त्तनम् ॥ १९ ॥ नौयाने लोलशैलाभं सत्यलाभविवर्जितम् ॥ चित्तभ्रमपिशाचाभं निर्बीजमपि भासुरम् ॥ २० ॥

अर्थ—इस प्रकरणमें 'त्वम्' और 'अहम्' पदके अर्थ ब्रह्माण्डोंके विस्तार प्रति ब्रह्माण्डलोकाकाश और पर्वत मूर्त्तिमान्द्रव्यसे रहित भेदरूपभित्तिसे शून्य, इसीसे पर्वतादि वर्जित ॥ १७ ॥ पृथ्वी आदि पंचभूतोंसे शून्य संकल्पनगरकेतुल्य स्वप्नमें प्राप्तपदार्थके सदृश भासमान, और मनोराज्यकेतुल्य व्याप्त यह जगत् वर्णनकियागयाहै ॥ १८ ॥ अर्थकी अप्राप्तिसे गन्धर्वनगरके दोचन्द्रके भ्रमके और मृगतृष्णाके जलके॥ १९ ॥ नौकाके गमनमें चंचलपर्वतके सदृश सत्यलाभसे वर्जित चित्तके भ्रमसे कल्पित और पिशाचके तुल्य मायारूप कारणके मिथ्या होनेसे और ब्रह्मके निर्विकारी होनेसे निर्बीज होनेपरभी प्रकाशमान् निरूपणकियागयाहै ॥ २० ॥

कथार्थप्रतिभासाभं व्योममुक्तावलीनिभम् ॥ कटकत्वं यथा हेम्नि तरंगत्वं यथाम्भसि ॥ २१ ॥ यथा नभसि नीलत्वमसदेवास्थितं सदा ॥ अभित्तिरंगरहितमुपलब्धिमनोहरम् ॥ २२ ॥ स्वप्ने वा व्योम्नि वा चित्रमकर्तृ चिरभासुरम् ॥ अवन्हिरेव वन्हित्वं धत्ते चित्रानलो यथा ॥ २३ ॥ दधात्येवं जगच्छब्दरूपार्थमसदात्मकम् ॥ तरंगोत्पलमालाभं दृष्टनृत्यमिवोत्थितम् ॥ २४ ॥

अर्थ—श्रवणकी आसक्तिमें कथार्थके समान भासमान आकाशकी मुक्तावलीके सदृश सुवर्णमें कटक और जलमें तरंगकेसमान अनिर्वचनीयरूप॥ २१ ॥ आकाशकी नीलिमाकेसमान असत्स्वरूपसे सदा प्रतीयमान विना भित्ति और रंगके चित्रकेसमान पूर्वके अनुभवमात्रसे अतिमनोहर ॥ २२ ॥ स्वप्न अथवा आकाशमें जैसे विनाकारणके प्रकाशमान चित्र तथा चित्रलिखित अग्निकेसमान प्रकाशमान ॥ २३ ॥ यह जगत् अभावरूप होकरभी जगत्के शब्द और अर्थको धारणकरनेवाला है, तरंगोंमें कमलकी मालाके समान स्मरणसे प्रथमदृष्टनृत्यकेतुल्य मनसें उत्थित ॥ २४ ॥

चक्रचीत्कारपूर्णस्य जलराशिमिवोद्यतम् ॥ शीर्णपत्रं भ्रष्टनष्टं ग्रीष्मे वनमिवारसम् ॥ २५ ॥ मरणव्यग्रचित्ताभं शिलागृहगुहास्पदम् ॥ अन्धकारगुहैकैकनृत्तमुन्मत्तचेष्टितम् ॥ २६ ॥ प्रशान्ताज्ञाननीहारं विज्ञानशरदम्बरम् ॥ समुत्कीर्णमिव स्तम्भे चित्रं भित्ताविवोदितम् ॥ २७ ॥ पंकादिवाभिरचितं सचेतनमचेतनम् ॥ ततः स्थितिप्रकरणं चतुर्थं परिकल्पितम् ॥ २८ ॥

अर्थ—उतान सोनेवाले चक्रवाकके शब्दसे पूर्ण आकाशके देखनेसे कल्पित जलराशिके समान तथा सूखेहुये पत्रसहित इसीसे छाया और फलकी संपत्तिरहित नष्ट भ्रष्ट ग्रीष्मऋतुके वनके समान ॥ २५ ॥ मृत्युके समयमें व्याकुलचित्तके सदृश, पर्वतोंकी गुफाओंके समान अन्धकारयुक्त और भयंकरगुफाओंमें उन्मत्तचेष्टासदृश एक २ जीवके नृत्यके समान ॥ २६ ॥ वास्तवमें शान्त है, अज्ञानरूपी नीहार (कुहर) जिसमें ऐसा विज्ञानरूपी शरद्ऋतुके निर्मल आकाशकेसमान खम्भेमें खुदीहुई मूर्तिआदिके समान अथवा भित्तिमें रचेहुये चित्रके समान ॥ २७॥ जैसे मृत्तिका आदिसे बनाहुआ पदार्थ वास्तवमें मृत्तिकास्वरूपही है इसीतरह ब्रह्ममें भ्रान्तिसे कल्पित जगत् वास्तवमें ब्रह्मस्वरूपहीहै यह ज्ञान इस प्रकरणके सुननेवालेको होजाताहै इसके अनन्तर स्थितिप्रकरणनामक चतुर्थप्रकरण है ॥ २८ ॥

त्रीणि ग्रन्थसहस्राणि व्याख्यानाख्यायिकामयम् ॥ इत्थं जगदहंभावरूपस्थितिमुपागतम् ॥ २९ ॥ दृष्टृदृश्यक्रमं प्रौढमित्यत्र परिकीर्त्तितम् ॥ दशदिङ्मण्डलाभोगभासुरोऽयं जगद्भ्रमः ॥ ३० ॥ इत्थमभ्यागतो वृद्धिमिति तत्रोच्यते चिरम् ॥ उपशान्तिप्रकरणं ततः पंचसहस्रकम् ॥ ३१ ॥ पंचमं पावनं प्रोक्तं युक्तिसन्ततिसुन्दरम् ॥ इदं जगदहं त्वं च स इति भ्रान्तिरुत्थिता ॥ ३२ ॥ इत्थं संशाम्यतीत्यस्मिन्कथ्यते श्लोकसंग्रहैः ॥ उपशान्तिप्रकरणे श्रुते शाम्यति संसृतिः ॥ ३३ ॥

अर्थ—जिसमें तीनहजार श्लोकोंमें ब्रह्म और जगत्के विषयमें व्याख्यान है और अनेक कथा है, इसप्रकार जगत्रूपसे तथा भोक्ता भोग्यरूप अहंभावसे स्थितिको प्राप्त हुआ ॥ २९ ॥ ब्रह्मही द्रष्टादृश्यभावको स्वीकार करता है यह वर्णनकियागयाहै. दश दिशामंडलोंमें प्रकाशमान ब्रह्ममेंही इस जगत्का भ्रम है ॥ ३० ॥ इसप्रकारसे ब्रह्मही जगत्रूपसे वृद्धिको सनातनकालसे प्राप्तहुआहै, इस विषयका वर्णन स्थितिप्रकरणमें कियागयाहै, उसके अनन्तर पांच सहस्र श्लोकोंका उपशमप्रकरण है ॥ ३१ ॥ यह पंचम उपशमप्रकरण युक्तियोंके समूहसे अतिरमणीय है, यह जगत् अहं, त्वं और तद् यह भ्रम इसप्रकारसे हुआ, और इसप्रकारसे इस भ्रमकी शान्ति होती है, इत्यादि विषय इस प्रकरणमें कहेगये हैं, और इसको सुनकर यथोक्त साधन करनेसे जीवन्मुक्तिद्वारा क्लेश क्षीणहोनेसे दग्धबीजकेसदृश जगत्के भ्रम नष्टहोजातेहैं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

प्रभ्रष्टचित्रसेनेव किंचिल्लभ्योपलम्भना ॥ शतांशशिष्टा भवति संशान्तभ्रान्तरूपिणी ॥ ३४ ॥ अन्यसङ्कल्पचित्तस्था नगरश्रीरिवासती ॥ अलभ्यवस्तुपार्श्वस्थस्वप्नयुद्धचिररवा ॥ ३५ ॥ शान्तसङ्कल्पमत्ताभ्रभीषणाशनिशब्दवत् ॥ विस्मृतस्व...ङ्कल्पनिर्माणनगरोपमा ॥ ३६ ॥ भविष्यनगरोद्यानप्रसूवन्ध्याऽमलांगिका ॥ तस्या जिह्वोच्यमानोग्रकथार्थानुभवोपमा ॥ ३७ ॥

अर्थ—तथा किंचित् आश्रययुक्त चित्रलिखित सेनाके समान छिन्नभिन्न शतांश शेष भलीभांति शान्त और भ्रान्तिरहित यह संसार होजाताहै ॥ ३४ ॥ संकल्पकरनेवाले पुरुषके निकट दूसरे पुरुषके स्वप्नमें धनकी प्राप्तिरहित युद्धमें दीर्घकालतक शब्दयुक्त दूसरेके संकल्पसे चित्तमें स्थित नगरकी शोभाके समान यह संसार, उत्तरभूमिकाके जीतनेसे मिथ्या प्रतीत होनेलगताहै ॥३५॥ सर्वथा निवृत्त, संकल्पसे कल्पित, मत्तगजके समान, अतिभयंकर मेघ और वज्रके शब्दके तुल्य, विस्मृत स्वप्नमें रचित नगरके समान, भविष्यत् नगरकी रमणीयवाटिकामें पुत्रवती और विमल अंगवाली वन्ध्याकी जिव्हासे वर्णित, और उसी वन्ध्याके उग्र वीरपुत्रोंकी कथाके तुल्य यह संसारभान होताहै३६।३७

अनुल्लिखितचित्रस्य चित्रव्याप्तेव भित्तिभूः ॥ परिविस्मर्यमाणार्थकल्पनानगरीनिभा ॥ ३८ ॥ सर्वर्त्तुमदनुत्पन्नवनस्पन्दाऽस्फुटाकृतिः ॥ भाविपुष्पवनाकारवसन्तरसरंजना ॥ ३९ ॥ अन्तर्लीनतरंगौघसौम्यवारिसरित्समा ॥ निर्वाणाख्यं प्रकरणं ततः षष्ठमुदाहृतम् ॥ ४० ॥

अर्थ—और विनालिखेचित्रसे पूर्ण भित्तिके तथा कल्पितनगरकी शोभाके तुल्य ॥ ३८ ॥ सवऋतुके अनुत्पन्न बनकी अलक्ष्यआकृतिके भावी पुष्पवनके आकारसहित वसन्तके रसके रंगके ॥ ३९ ॥ तथा तरंगशून्य निश्चलजलके समान यह संसार इस प्रकरणके अनुभवसे प्रतीतहोताहै, इसके अनन्तर षष्ठ निर्वाणनाम प्रकरण कहागयाहै ॥ ४० ॥

शिष्टो ग्रन्थः परीमाणं तस्य ज्ञानमहार्थदः ॥ बुद्धे तस्मिन्भवेच्छ्रेयो निर्वाणं शान्तकल्पनम् ॥ ४१ ॥ अचेत्यचित्प्रकाशात्मा विज्ञानात्मा निरामयः ॥ परमाऽऽकाशकोशाच्छः शान्तसर्वभवभ्रमः ॥ ४२ ॥ निर्वापितजगद्यात्रः कृतकर्त्तव्यसुस्थितः ॥ समस्तजनतारम्भवज्रस्तम्भो नभोनिभः ॥४३॥ विनिगीर्णयथासंख्यजगज्जालातितृप्तिमान् ॥ आकाशीभूतनिःशेषरूपा लोकमनस्कृतिः ॥ ४४ ॥

अर्थ—शेष १४०००(चौदह सहस्र) श्लोक इसका परिमाणहै, इसका ज्ञान महान् अर्थदायक है, इसके ज्ञानसे मूलअविद्याके नष्टहोजानेसे कल्पनारहित मोक्षरूप कल्याण प्राप्तहोताहै ॥ ४१ ॥ इसप्रकरणका श्रोता विपर्ययरहित प्रकाश तथा ज्ञानरूप, निरामय, हार्दाकाशके समान निर्मल और संपूर्ण संसारके भ्रमसे रहित होताहै ॥ ४२ ॥ तथा जगत्यात्राको समाप्तकरनेवाला, कृतकृत्य वज्रमणिके स्तम्भके सदृश अविकाररूप होनेसे वस्तुके प्रतिबिम्बमात्रको ग्रहणकरनेवाला और सब जनसमूह तथा उनके आरम्भोंका आधार होजाताहै ॥ ४३ ॥ तथा अनेकसंख्यायुक्त जगत्के जालोंका अन्तःकरणमेंही मान होनेसे अत्यन्त तृप्त होजाताहै और बाह्येन्द्रियोंसेभी भोग उसके मनमें शून्याकार प्रतीतहोते हैं ॥ ४४ ॥

कार्यकारणकर्तृत्वहेयादेयदृशोज्झितः ॥ सदेह इव निर्देहः स संसारोप्यसंसृतिः ॥ ४५ ॥ चिन्मयो घनपाषाणजठरापीवरोपमः ॥ चिदादित्यस्तपँल्लोकानन्धकारोपरोपमम् ॥ ४६ ॥ परप्रकाशरूपोऽपि परमान्ध्यमिवागतः ॥ रुद्धसंसृतिदुर्लीलः प्रक्षीणाशाविषूचिकः ॥ ४७ ॥ नष्टाहंकारवेतालो देहवानकलेवरः ॥ कस्मिंश्चिद्रोमकोट्यग्रे तस्येयमवतिष्ठते ॥ जगल्लक्ष्मीर्महामेरोः पुष्पे क्वचिदिवालिनी॥४८॥

अर्थ—कार्य्य, कारण, कर्तृत्वमें स्वीकार और परित्यागदृष्टिसे रहित, देहसहित होनेपरभी देहरहित, संसारसहित होनेपरभी संसाररहित वह पुरुष होजाताहै ॥ ४५ ॥ चिद्रूप घनपाषाणके दीर्घ निश्छिद्र उदरके समान, चिदादित्यरूप अज्ञानकल्पित लोकोंको अपनी चिदाकारवृत्तिसे प्रदीप्त और आलोकसे प्रकाशकरताहुवाभी वास्तविकमें दृश्यरूप न होनेसे स्वयं अन्धकारोपम ॥ ४६ ॥ परमप्रकाश होनेपरभी अन्धताको प्राप्तके समान, संसारकी दुष्टलीलाओंका अवरोध करनेवाला और आशारूप विषूचिकासे वर्जित वह पुरुष होजाताहै ॥ ४७ ॥ अहंकाररूपवेतालसे रहित और शरीरवान् होनेपरभी अशरीर होजाताहै, उसके रोमके अग्रभागमें यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्डकी लक्ष्मी ऐसे निवास करतीहै, जैसे महामेरुके वृहत् पुष्पके किसी देशमें भ्रमरी ॥ ४८ ॥

परमाणौ परमाणौ चिदाकाशः स्वकोटरे ॥ जगल्लक्ष्मीसहस्राणि धत्ते कृत्वाऽथ पश्यति ॥ ४९ ॥ विततता हृदयस्य महामतेर्हरिहराब्जजलक्षशतैरपि ॥ तुलनमेति न मुक्तिमतो यतः प्रविततताऽस्ति निरुत्तमवस्तुनः ॥ ५० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे ग्रंथसंख्यादिवर्णनंनाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अर्थ—अपने अन्तःकरणमें कल्पित आकाशके परमाणु२ में जगत्की अनंत लक्ष्मीको धारणकरताहै, और उनका निर्माण करके पुनः अपनेहीमें देखताहै ॥ ४९ ॥ हे रामचन्द्रजी ! जीवन्मुक्त पुरुषका हृदय परमात्मस्वरूपही है, उनसकी तुलना लक्षों हरिहर तथा ब्रह्मासेभी नहीं हो सक्ती, क्यों कि मुक्तपुरुषकी व्यापकता, अनन्तता, तथा आनन्दता पराकाष्ठाके आश्रयभूत ब्रह्मके तुल्य है ॥ ५० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे ग्रन्थसंख्यादिवर्णनं नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

श्रीवसिष्ठ उवाच—अस्यां वाचितमात्रायां प्रबोधःसम्प्रवर्त्तते ॥ बीजादिव सतो न्युप्तादवश्यं भावि सत्फलम् ॥ १ ॥ अपि पौरुषमादेयं शास्त्रं चेद्युक्तिबोधकम् ॥ अन्यत्त्वार्षमपित्याज्यं भाव्यं न्याय्यैकसेविना ॥२॥ युक्तियुक्तमुपादेयं वचनं बालकादपि ॥ अन्यत्तृणमिवत्याज्यमप्युक्तं पद्मजन्मना॥३॥ योऽस्मत्तातस्य कूपोऽयमिति कौपं पिबत्यपः ॥त्यक्त्वा गांगं पुरस्थं तं कोऽनुशास्त्यतिरागिणम्॥४॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले, जैसे शक्तियुक्त उत्तमबीजको योग्य देश काल और क्षेत्रमें बोनेसे फल अवश्य होता है इसीप्रकारसे इस ग्रन्थको विचारपूर्वक सुनने और पढनेमात्रसे ज्ञान अवश्य होताहै ॥ १ ॥ न्याययुक्तपदार्थको अं-

१ " पादोऽस्याविश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतंदिवि " (इसं परमात्माके एक अंशमें संपूर्ण जगत् है शेष अमृतरूप दैदीप्यमान इसका आधार है) यह श्रुति है.

गीकारकरनेवाले पुरुषको युक्ति वा न्याययुक्त सामान्यमनुष्यरचितभी शास्त्र ग्रहणकरना उचितहै, और युक्ति वा न्यायविरुद्ध वेदोक्तभी त्यागना चाहिये, क्योंकि मनुष्यको मुख्यकरके न्यायपरही चलना चाहिये ॥ २ ॥ युक्तियुक्त वचन बालककाभी ग्रहणकरना उचितहै, युक्तिविरुद्ध ब्रह्माका कथनभी तृणके समान त्यागने योग्य है ॥ ३ ॥ हमारे पिताका खुदाया हुआ यह कूप है ऐसा समझके गंगाजलको त्यागके उस कूपका खाराजलभी जो पीता है उस मूर्खजनको कौन शिक्षा देसकताहै ॥ ४ ॥

यथोर्षसि प्रवृत्तायामालोकोऽवश्यमेष्यति ॥ अस्यां वाचितमात्रायां सुविवेकस्तथैष्यति ॥ ५ ॥ श्रुतायां प्राज्ञवदनाद्बुत्ध्वान्तं स्वयमेव च ॥ शनैः शनैर्विचारेण बुद्धौ संस्कार आगते ॥ ६ ॥ पूर्वं तावदुदेत्यन्तर्भृशं संस्कृतवाक्यता ॥ शुद्धयुक्ता लतेवोच्चैर्या सभास्थानभूषणम् ॥ ७ ॥ परा नागरतोदेति महत्त्वगुणशालिनी ॥ सा यया स्नेहमायान्ति राजानो अमरा अपि ॥ ८ ॥

अर्थ—जिसप्रकार प्रातःकालके आरंभहोनेपर प्रकाश अवश्य होताहै, इसीप्रकार इस ग्रन्थके बाचनेमात्रसे उत्तम विवेक अवश्य प्राप्तहोताहै ॥ ५ ॥ बुद्धिमान् पण्डितके मुखसे सुनके स्वयं उसके विचारनेसे धीरे २ बुद्धिमें संस्कार आनेपर ॥ ६ ॥ सबसे प्रथम उसके अन्तःकरणमें वाणीका उत्तम तथा शुद्धतायुक्त हरितलताकेसमान उच्चसंस्कार उदयहोताहै, जो कि सभाका शिरोभूषणहै ॥ ७ ॥ इसके अनन्तर महान् गुणोंसे शोभायमान बडी चतुरता उदयहोतीहै जिससे राजा तथा देवताभी प्रीति करनेलगते हैं ॥ ८ ॥

पूर्वापरज्ञः सर्वत्र नरो भवति बुद्धिमान् ॥ पदार्थानां यथा दीपहस्तो निशि सुलोचनः ॥ ९ ॥ लोभमोहादयो दोषास्तानवं यान्त्यलं शनैः ॥ धियो दिशः समासन्नशरदो मिहिका यथा ॥ १० ॥ केवलं समवेक्ष्यन्ते विवेकाध्यासनं धियः ॥ न किंचन फलं धत्ते स्वाभ्यासेन विना क्रिया ॥ ११ ॥ मनःप्रसादमायाति शरदीव महत्सरः ॥ परं साम्यमुपादत्ते निर्मन्दर इवार्णवः ॥ १२ ॥

अर्थ—इस ग्रन्थके सुननेसे मनुष्य बुद्धिमान् होके पूर्वापरकी बातोंको ऐसे जानने लगताहै, जैसे दीपक हस्तमें लिये उत्तमनेत्रवाला मनुष्य अन्धकारयुक्त रात्रिमें पदार्थोंको ॥ ९ ॥ बुद्धिके राग द्वेष लोभ मोहादि दोष धीरे २ ऐसे क्षीणहोजातेहैं, जैसे शरदृतुके निकट आनेपर दिशाओंका नीहार ॥ १० ॥ हे रामचन्द्रजी! आपकी बुद्धि केवल विवेकके अभ्यासमात्रकी अपेक्षा रखती है, और कुछ नहीं, क्योंकि बिना अपने अभ्यासके कोईभी क्रिया फल नहीं देती ॥ ११ ॥ और इस ग्रंथसे शरत्कालमें महान् तडागकेसमान मनको प्रसन्नता प्राप्तहोती है ' और मन्दराचलपर्वतके निकालनेपर समुद्रके तुल्य मनमें परम समता प्राप्तहोतीहै ॥ १२ ॥

निरस्तकालिमारत्नशिखेवास्ततमःपटा ॥ प्रतिज्वलत्यलं प्रज्ञा पदार्थप्रविभागिनी ॥ १३ ॥ दैन्यदारिद्र्यदोषाढ्या दृष्टयो दर्शितान्तराः ॥ न निकृन्तन्ति मर्माणि ससन्नाहमिवेषवः ॥ १४ ॥ हृदयं नावलुम्पन्ति भीमाः संसृतिभीतयः ॥ पुरःस्थितमपि प्राज्ञं महोपलमिवेषवः ॥ १५ ॥ कथं स्यादादिता जन्मकर्मणां दैवपुंस्त्वयोः ॥ इत्यादिसंशयगणः शाम्यत्यह्नि यथा तमः ॥ १६ ॥

अर्थ—और मोहरूपीकज्जलसे शून्य रत्नके दीपकी शिखाके समान समस्त अन्धकारपटलको दूरकरतीहुई संपूर्ण पदार्थोंका विवेक करनेवाली इस ग्रन्थके ज्ञाताकी बुद्धि अत्यन्त प्रज्वलित होतीहै ॥ १३ ॥ और इसीसे दीनता और दरिद्रता आदिसे पूर्ण दृष्टि धनादिमें निःसारता ज्ञान होनेसे पुरुषको ऐसे नहीं छेदनकरसकती जैसे कवचयुक्त मनुष्यको बाण ॥१४॥ इस शास्त्रके जाननेवाले बुद्धिमान् पुरुषके हृदयको संसारके भयंकर भय ऐसे नहीं छेदनकरसकते जैसे महापाषाणको तीर ॥ १५ ॥ संसारमें जन्म प्रथम होनेसे पौरुष प्रधान है, वा कर्म प्रथम होनेसे दैव प्रधान है, इत्यादि संशयसमूह ऐसे नष्टहोजातेहैं जैसे दिनके आनेपर अन्धकार, क्योंकि इस ग्रन्थके सुननेसे दोनों (कर्म तथा जन्म) का मिथ्यात्वनिश्चय होजाताहै ॥ १६ ॥

सर्वदा सर्वभावेषु संशान्तिरुपजायते ॥ यामिन्यामिव शान्तायां प्रज्ञालोक उपागते ॥ १७ ॥ समुद्रस्येव गाम्भीर्यं धैर्यं मेरोरिव स्थितम् ॥ अन्तः शीतलता चेन्दोरिवोदेति विचारिणः ॥ १८ ॥ सा जीवन्मुक्तता तस्य शनैः परिणतिं गता ॥ शान्ताशेषविशेषस्य भवत्यविषयो गिराम् ॥ १९ ॥ सर्वार्थशीतला शुद्धा परमा लोकदास्यधीः ॥ परं प्रकाशमायाति ज्योत्स्नेव शरदैन्दवी ॥ २० ॥

१ यद्यपि श्रुतियोंको इस ग्रन्थसे श्रेष्ठता है तथापि उनमें गूढाभिप्राय और संक्षेप होनेके कारण वे साधारणपुरुषके योग्य नहीं अतः इसका आदरसे ग्रहण करनाचाहिये.

अर्थ—ज्ञानरूप प्रकाश प्राप्तहोनेपर सर्वदा सबपदार्थोंमें शान्ति ऐसे प्राप्तहोती है जैसे रात्रिके नष्टहोनेपर सूर्यके प्रकाशसे तम ॥ १७ ॥ और हे रामचन्द्रजी ! इस ग्रन्थको विचारनेवाले पुरुषको समुद्रकेसमान गम्भीरता मेरुकेसमान स्थिरता वा धीरता और चन्द्रमाकेसमान अन्तःकरणमें शीतलता प्राप्तहोती है ॥ १८ ॥ इसप्रकार सम्पूर्ण भूमिकाओंके क्रमसे सम्पूर्ण विशेषताके शांतहोनेपर उसको वह जीवन्मुक्ति प्राप्तहोती है, जो वाणीका विषय नहीं है ॥ १९ ॥ इस ग्रन्थको विचारनेवालेकी बुद्धि सबपदार्थोंमें शीतल तथा परमात्मदर्शनकारिणी होनेसे परमप्रकाशको ऐसे प्राप्तहोतीहै जैसे शरत्कालमें चन्द्रमाकी चांदनी ॥ २० ॥

हृद्याकाशे विवेकार्के शमालोकिनि निर्मले ॥ अनर्थसार्थकर्तारो नोद्यन्ति किल केतवः ॥ २१ ॥ शाम्यन्ति शुद्धिमायान्ति सौम्यास्तिष्ठन्ति सून्नते ॥ अचंचले जले तृष्णाः शरदीवाभ्रमालिकाः ॥ २२॥ यत्किंचनकरी क्रूरा ग्राम्यता विनिवर्तते ॥ दीनानना पिशाचानां लीलेव दिवसागमे ॥ २३ ॥ धर्मभित्तौ भृशं लग्नां धियं धैर्यधुरं गताम् ॥ आधयो न विधुन्वन्ति वाताश्चित्रलतामिव ॥ २४ ॥

अर्थ—तथा हे रामजी ! इस ग्रन्थके विचारनेसे पुरुषके हृदयाकाशमें शमरूपी प्रकाशयुक्त विवेकरूपी सूर्यके उदयहोनेपर अनेक अनर्थकारी काम, क्रोध, आदि धूमकेतुओंका उदय नहींहोता ॥ २१ ॥ शान्त तथा उच्चतम स्वात्मपदमें स्थिति होनेसे तृष्णारहित पुरुष ऐसे शान्ति और शुद्धताको प्राप्तहोतेहैं जैसे शरत्कालमें मेघोंकी माला ॥ २२ ॥ हे रामचन्द्रजी ! इस ग्रन्थके विचारनेसे दूसरोंसे वैर आदिका कारण अश्लील तथा परुषवचनादिरूप ग्रामीणता ऐसे नष्टहोजातीहै जैसे दिनके आनेपर दीनमुख करनेवाली पिशाचोंकी लीला ॥ २३ ॥ बुद्धिके धर्ममें एकरस होनेसे और धैर्यकी पराकाष्ठामें प्राप्तहोनेसे उसको मानसीव्यथा ऐसे कम्पित नहीं करसकती जैसे चित्रलिखित लताको वायु ॥ २४ ॥

न पतत्यवटेऽज्ञस्तु विषयासंगरूपिणि ॥ कः किल ज्ञातसरणिः श्वभ्रं समनुधावति ॥ २५ ॥ सच्छास्त्रसाधुवृत्तानामविरोधिनि कर्मणि ॥ रमते धीर्यथा प्राप्ते साध्वीवान्तःपुराजिरे ॥ २६ ॥ जगतां कोटिलक्षेषु यावन्तः परमाणवः ॥ तेषामेकैकशोऽन्तःस्थान्सर्गान्पश्यत्यसंगधीः ॥२७॥ मोक्षोपायावबोधेन शुद्धान्तःकरणं जनम् ॥ न खेदयति भोगौघो न चानन्दयति क्वचित् ॥ २८ ॥

अर्थ—विषयासक्तियुक्त मोहरूपीगढेमें तत्ववेत्ता नहीं गिरता, क्योंकि मार्ग जाननेवाला कौन गढेकी इत्यार्षे वासिष्ठ२५ ॥ सत्शास्त्रके ज्ञानसे साधु आचरणवाले पुरुषोंकी बुद्धि शास्त्रके अनुकूल ...और दौडताहै ? ॥ प्रकरणे ग्रंथसंख्यादिवर्णननाम सप्तदशः सर्गः ॥ ...जितने परमाणु हैं, उनमेंसे एक ऐसे रमण करतीहै जैसे अन्तःपुरमें पतिव्रता स्त्री ॥ २६ ॥ लक्षकोटि ब्रह्माण्डोंके ... उनमेंसे एक २ मेंभी ब्रह्मज्ञानी असंगबुद्धि होके सम्पूर्णब्रह्माण्डोंको देखताहै ॥ २७ ॥ मोक्षोपायरूप इस ग्रन्थके बोधसे शुद्धान्तःकरणवाले जनको भोगोंका समूह न कभी क्लेश देताहै, और न आनन्द ॥ २८ ॥

परमाणौ परमाणौ सर्गवर्गा निरर्गलाः ॥ ये पतन्त्युत्पतन्त्यम्बुवीचिवत्तान्स पश्यति ॥ २९ ॥ न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि कांक्षति ॥ कार्याण्येष प्रबुद्धोऽपि निष्प्रबुद्ध इव द्रुमः ॥ ३० ॥ दृश्यते लोकसामान्यो यथाप्राप्तानुवृत्तिमान् ॥ इष्टानिष्टफलप्राप्तौ हृदयेनापराजितः ॥ ३१ ॥ बुद्ध्वेदमखिलं शास्त्रं वाचयित्वा विविच्यताम् ॥ अनुभूयत एवैतन्न तूक्तं वरशापवत् ॥ ३२ ॥

अर्थ—इस ग्रन्थको विचारनेवाला पुरुष प्रत्येक परमाणु २ में असंकीर्ण अनेक सृष्टियोंके समूहोंके आविर्भाव और तिरोभावको जलमें तरंगोंके समान देखताहै ॥ २९ ॥ न तो वह अनिष्टवस्तुओंसे द्वेष करताहै, और न इष्टसे प्रीति करताहै, कार्य तथा फलादिके स्वरूपोंका ज्ञाता होनेपरभी अनभिज्ञ वृक्षके समान रहताहै ॥ ३० ॥ यथाप्राप्त वस्तुमें सन्तुष्ट, इष्ट और अनिष्टफलकी प्राप्तिमें हृदयसे एकरूप संसारमें सामान्यमनुष्योंके समानही देखपडताहै ॥ ३१ ॥ इस सम्पूर्णग्रन्थको पढके और जानके प्रत्येक श्लोकके तात्पर्यका विवेचन करनाचाहिये, यह केवल कथनमात्र नहींहै, किंतु ब्रह्मादिके शाप वा आशीर्वादके समान अनुभूत होताहै ॥ ३२ ॥

शास्त्रं सुबोधमेवेदं सालङ्कारविभूषितम् ॥ काव्यं रसमयं चारु दृष्टान्तैः प्रतिपादितम् ॥३३॥ बुध्यते स्वयमेवेदं किंचित्पदपदार्थवित् ॥ स्वयं यस्तु न वेत्तीदं श्रोतव्यं तेन पण्डितात् ॥ ३४॥ यस्मिञ्छ्रुते ज्ञाते तपोध्यानजपादिकम् ॥ मोक्षप्राप्तौ नरस्येह न किंचिदुपयुज्यते ॥ ३५ ॥ एतच्छास्त्रघनान्तःपुन्येन वीक्षणात् ॥ पाण्डित्यं स्यादपूर्वं हि चित्तसंस्कारपूर्वकम् ॥ ३६ ॥

१" पादा... इसका आधार है) यह

शास्त्र उत्तमज्ञान देनेवाला तथा माधुर्य और उपमा आदि शब्द और अर्थालंकारसे भूषित उत्तम काव्य है ॥ ३३ ॥ अल्प पद पदार्थोंका ज्ञाताभी पुरुष इस शास्त्रको स्वयं जानसकताहै, जो

स्वयं नहीं जानसकता उसको ब्रह्मनिष्ठ पाण्डितसे श्रवणकरनाचाहिये ॥ ३४ ॥ इस ग्रन्थके श्रवण, विचार, तथा बोध होनेपर मनुष्यके तप, ध्यान और जपादिक मोक्षप्राप्तिमें कुछ उपकार नहींकरते, क्यों कि इनके फलोंका इस ग्रन्थके श्रवणादिमेंही अन्तर्भाव है ॥ ३५ ॥ इस शास्त्रके दृढ अभ्याससे और बार २ अवलोकन करनेसे चित्तके उत्तम संस्कारके साथ अपूर्व पाण्डित्य उत्पन्नहोताहै ॥ ३६ ॥

अहं जगदिति प्रौढो द्रष्टृदृश्यपिशाचकः ॥ पिशाचोऽर्कोदयेनेव स्वयं शाम्यत्ययत्नतः ॥ ३७ ॥ भ्रमो जगदहं चेति स्थित एवोपशाम्यति ॥ स्वप्नमोहः परिज्ञात इव नो भ्रमयत्यलम् ॥ ३८ ॥ यथा सङ्कल्पनगरे पुंसो हर्षविषादिता ॥ न बाधते तथैवास्मिन्परिज्ञाते जगद्भ्रमे ॥ ३९ ॥ चित्रसर्पः परिज्ञातो न सर्पभयदो यथा ॥ दृश्यसर्पः परिज्ञातस्तथा न सुखदुःखदः ॥ ४० ॥

अर्थ—"मैं तथा यह जगत्" यह द्रष्टा और दृश्यरूप पिशाच जो अविद्यारूप रात्रिमें प्रबल होरहाहै, वह ज्ञानरूपीसूर्यके उदयहोनेसे विनापरिश्रम आपसे आप शांत होजाताहै ॥ ३७ ॥ "अहम् और जगत्" यह भ्रम ऐसे शांत होजाताहै, जैसे स्वप्नका मोह ज्ञान होनेके अनन्तर दुःखदायी नहीं होता. इसीप्रकार जगत् मिथ्यारूपसे ज्ञात होनेपर पुनः भ्रम नहीं उत्पन्न करसकता ॥ ३८ ॥ जिसप्रकार संकल्पके नगरमें हर्ष अथवा विषाद पुरुषको बाधा नहीं देते, इसीप्रकार इस जगत्भ्रमका यथार्थ ज्ञान होनेसे बाधा नहीं होती ॥ ३९ ॥ जैसे चित्रलिखित सर्प जानाहुआ सर्पका भय नहींदेता, इसीप्रकार जगत्रूपी सर्प जानाहुआ सुख वा दुःखका कारण नहींहोता ॥ ४० ॥

परिज्ञानेन सर्पत्वं चित्रसर्पस्य नश्यति ॥ यथा तथैव संसारः स्थित एवोपशाम्यति ॥ ४१ ॥ सुमनःपल्लवामर्दे किंचिद्व्यतिकरो भवेत् ॥ परमार्थपदप्राप्तौ न तु व्यतिकरोऽल्पकः ॥ ४२ ॥ गच्छत्यवयवः स्पन्दं सुमनःपत्रमर्दने ॥ इह धीमात्ररोधस्तु नांगावयवचालनम् ॥ ४३ ॥ सुखासनोपविष्टेन यथासम्भवमश्नता ॥ भोगजालं सदाचारविरुद्धेषु न तिष्ठता ॥ ४४ ॥ यथाक्षणं यथादेशं प्रविचारयता सुखम् ॥ यथासम्भवसत्संगमिदं शास्त्रमथेतरत् ॥ ४५ ॥ आसाद्यते महाज्ञानबोधः संसारशान्तिदः ॥ न भूयो जायते येन योनियन्त्रप्रपीडनम् ॥ ४६ ॥

अर्थ—यह सर्प चित्रमें लिखाहै, ऐसा ज्ञान होनेहीसे चित्रसर्पका सर्पत्व जैसे नष्ट होजाताहै, ऐसेही यह संसार यथार्थरूपसे जानाहुआ अधिष्ठानरूपसे परिशेष रहनेपर अपने रूपसे स्थितही शान्तहोजाताहै ॥ ४१ ॥ पुष्प अथवा पत्रोंके मर्दनमें तो कुछ परिश्रमभी होताहै, परन्तु ज्ञान प्राप्तहोनेके अनन्तर संसारके नाशपूर्वक परमपदकी प्राप्तिमें कुछभी परिश्रम नहींहोता ॥ ४२ ॥ पुष्प और पत्रोंके मर्दनमें अंग हिलानापडताहै, परन्तु ज्ञानकी प्राप्तिमें तो केवल वृत्तियोंका निरोध करनापडताहै, न कि अंगोंका संचालन ॥ ४३ ॥ सुखासनपर बैठकर यथासंभव भोगजालोंको भोगताहुआ देश और काल तथा यथासंभव सत्संगके अनुसार इस शास्त्रको वा उपनिषदादिको सुखपूर्वक विचारनेवाला और शास्त्रविरुद्धमार्गोंमें न चलनेवाला पुरुष संसारमें शान्तिदायक उस महाबोधको प्राप्तहोताहै, जिससे इस संसारमें पुनः योनियंत्रकी पीडा नहींहोती ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

एतावत्यपि येऽभीताः पापाभोगरसे स्थिताः ॥ स्वमातृविष्ठाकृमयः कीर्तनीया न तेऽधमाः ॥ ४७ ॥ शृणु तावदिदानीं त्वं कथ्यमानमिदं मया ॥ राघव ज्ञानविस्तारं बुद्धिसारतरान्तरम् ॥ ४८ ॥ यथेदं श्रूयते शास्त्रं तामापातनिकां शृणु ॥ विचार्यते यथार्थोऽयं यथा च परिभाषया ॥ ४९ ॥ येनेहाननुभूतेऽर्थे दृष्टेनार्थेन बोधनम् ॥ बोधोपकारफलदं तं दृष्टान्तं विदुर्बुधाः ॥ ५० ॥ दृष्टान्तेन विना राम नापूर्वार्थोऽवबुध्यते ॥ यथा दीपं विना रात्रौ भाण्डोपस्करणं गृहे ॥ ५१ ॥ यैर्यैः काकुत्स्थ दृष्टान्तैस्त्वं मयेहावबोध्यसे ॥ सर्वे सकारणास्ते हि प्राप्यन्तु सदकारणम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—इस जन्मकी पीडासेभी जो भय नहींकरते, अर्थात् जन्मपीडानिवारक इस शास्त्रका श्रवण आदि नहीं करते वे विषयरसभोगलम्पट पापी अपनी माताके विष्ठाके कृमि हैं, उनका नामभी नहींलेनाचाहिये क्यों कि वे आत्मघाती हैं ॥ ४७ ॥ हे रामचन्द्रजी ! आप इससमय मेरा कहाहुआ, बुद्धिग्राह्य सारतरपदार्थोंकी सीमा और ज्ञानके विस्तारकरनेवाले इस शास्त्रको श्रवणकीजिये ॥ ४८ ॥ हे रामजी ! जिसप्रकार यह शास्त्र सुनाजाताहै, और जिस

१ प्रथम जो पौरुषकी प्रधानता वर्णन की है वह ज्ञानके प्रतिबंधक अविद्याजनित राग असम्भावनादि पुरुषके अपराधके निरासार्थ है, अविद्याके निवृत्तहोनेपर ज्ञान वा मोक्षप्राप्तिमें कुछभी परिश्रम नहींहै. २ पुष्पादिके मलनेमें तो कुछ अंग चलानापडता है, परन्तु यहां तो बुद्धिभी नहीं चलनेपाती शरीर चलाना कौन कहै ।

परिभाषा और दृष्टान्तादिसे यथार्थरूपसे विचाराजाताहै, उसका उपाय सुनिये ॥ ४९ ॥ जिस समानधर्मवाले दृष्ट-अर्थसे अज्ञात वा अनुभूतपदार्थका बोध करायाजाताहै और वह बोधके उपकारी फलका देनेवालाहो, उसको पण्डितजन दृष्टांत कहतेहैं ॥ ५० ॥ हे रामचन्द्रजी ! दृष्टांतके विना अपूर्वपदार्थका ज्ञान ऐसे नहींहोता जैसे रात्रिमें दीपके विना गृहके भांड आदि पदार्थ नहीं देखपडते ॥ ५१ ॥ हे काकुत्स्थ रामजी ! जिन दृष्टान्तोंसे मैं आपको बोध करताहूं वे सब कारणसे उत्पन्नहुए कार्यरूप हैं, और कारणरहित सत् परमात्माको प्राप्तकरातेहैं ॥५२॥

उपमानोपमेयानां कार्यकारणतोदिता ॥ वर्जयित्वा परं ब्रह्म सर्वेषामेव विद्यते ॥ ५३ ॥ ब्रह्मोपदेशे दृष्टान्तो यस्त्वेह हि कथ्यते ॥ एकदेशसधर्मत्वं तत्रान्तः परिगृह्यते ॥ ५४ ॥ यो यो नामेह दृष्टान्तो ब्रह्मतत्त्वावबोधने ॥ दीयते स स बोद्धव्यः स्वप्नजातो जगद्गतः ॥ ५५ ॥ एवं सति निराकारे ब्रह्मण्याकारवान्कथम् ॥ दृष्टान्त इति नोद्यन्ति मूर्खवैकल्पिकोक्तयः ॥ ५६ ॥

अर्थ—परब्रह्मसे व्यतिरिक्त उपमान और उपमेय सबपदार्थोंका कार्य्यकारणधर्मोंसे सादृश्य है ॥ ५३ ॥ ब्रह्मके उपदेशमें जो तुमको मैं यहांपर दृष्टांत कहताहूं वहांपर एकदेशमें[3] सादृश्य ग्रहणकरके प्रस्तुतवस्तुका निर्णय किया जाताहै ॥ ५४ ॥ ब्रह्मतत्त्वका बोधकरानेकेलिये जो २ दृष्टांत यहांपर दियेजातेहैं उन सबको स्वप्नके पदार्थोंके समान जगत्के अन्तर्गत मिथ्याही जाननाचाहिये, क्योंकि सच्चिदानन्द ब्रह्मतत्त्व एकही है उसके सदृश द्वितीय अप्रसिद्ध है ॥ ५५ ॥ इसप्रकार अंगीकार करनेसे " निराकारब्रह्ममें साकार दृष्टांत कैसे होसकताहै " इत्यादि विकल्पसे उत्पन्न मूर्खोंके कथन नहीं उठसकते ॥ ५६ ॥

अन्यासिद्धविरुद्धादिदृग्दृष्टान्तप्रदूषणैः ॥ स्वप्नोपमत्वाज्जगतः समुदेति न किंचन ॥ ५७ ॥ अवस्तु पूर्वापरयोर्वर्तमाने विचारितम् ॥ यथा जाग्रत्तथा स्वप्नः सिद्धमाबालमागतम् ॥ ५८ ॥ स्वप्नसंकल्पनाध्यानवरशापौषधादिभिः ॥ यथार्था इह दृष्टान्तास्तद्रूपत्वाज्जगत्स्थितेः ॥ ५९ ॥ मोक्षोपायकृता ग्रंथकारेणान्येऽपि ये कृताः ॥ ग्रन्थास्तेष्वियमेवैका व्यवस्था बोध्यबोधने ॥ ६० ॥

अर्थ—और अन्य असिद्ध, तथा विरुद्ध आदि दोषदर्शी नैय्यायिकोंके दृष्टान्तके दूषणोंसे कुछ नहीं बिगडता क्योंकि उनके दूषणभी जगत्के अन्तर्गत होनेसे स्वप्नके पदार्थके समान मिथ्या है ॥ ५७ ॥ जो अवस्तु है वह उत्पत्ति और विनाशके पूर्व और उत्तरकालमें जैसे अभावग्रस्त हैं वैसेही विचार करनेसे वर्तमानमेंभी मिथ्या है, इसलिये जाग्रत् और स्वप्नके पदार्थ समान हैं, और स्वप्नके पदार्थोंका मिथ्यात्व तो बालकोंमेंभी प्रसिद्ध है ॥ ५८ ॥ जैसे स्वप्नके संकल्प, ध्यान, वर, शाप और औषध आदिसे कार्य्य (कदाचित्) सिद्धहोताहै, इसीप्रकार जाग्रत्में जगत्की स्थिति होनेसे यहां स्वप्नदृष्टान्त यथार्थ है ॥ ५९ ॥ श्री वाल्मीकिमुनिरचित यह मोक्षोपाय ग्रन्थ तथा अन्यग्रन्थ हैं, उनमें ब्रह्मतत्त्वके बोधन दृष्टान्तोंकी यही एक व्यवस्था है ॥ ६० ॥

स्वप्नाभत्वं च जगतः श्रुते शास्त्रेऽवबोध्यते ॥ शीघ्रं न पार्यते वक्तुं वाकिल क्रमवर्तिनी ॥ ६१ ॥ स्वप्नसंकल्पनाध्याननगराद्युपमं जगत् ॥ यतस्त एव दृष्टान्तास्तस्मात्संतीह नेतरे ॥ ६२ ॥ अकारणे कारणता यद्वोधायोपमीयते ॥ न तत्र सर्वसाधर्म्यं सम्भवत्युपमाश्रमैः ॥ ६३ ॥ उपमेयस्योपमानादेकांशेन सधर्मता ॥ अंगीकार्यावबोधाय धीमता निर्विवादिना ॥ ६४ ॥

अर्थ—यह जगत् स्वप्नके तुल्य है, यह वार्ता शास्त्रके श्रवण करनेहीसे विदितहोती है, क्योंकि वाणी क्रमसे अपना कार्य करतीहै, इसलिये शीघ्र बोध कोई नहींकरासकता, इससे यह बात सिद्ध हुई कि शास्त्रश्रवणमें जिनको आलस्य है, उनको जगत्में सत्यका भ्रम होताहै ॥ ६१ ॥ स्वप्नके संकल्प ध्यान और नगरादिके तुल्य यह जगत् है, इसलिये वेही दृष्टान्त हैं और नहीं ॥ ६२ ॥ अपरिणामी परब्रह्ममें जो परिणामी सुवर्णकुंडल आदिकी उपमा दीजाती है कि

१ मिथ्याभूत मृत्तिका सुवर्णआदि उपादान कारण हैं, इत्यादि दृष्टान्तोंसे सद्ब्रह्मका बोध कराया जाताहै. २ जिसप्रकार विचारादिसे विवेकग्राहक ज्ञान उत्पन्नहोताहै यह कहाजाताहै इसप्रकार ज्ञानसे ब्रह्म उत्पन्नहोताहै यह नहीं कहसके. ३ जैसे रज्जुमें सर्प मिथ्या है ऐसेही ब्रह्ममें जगत् मिथ्या है इस दृष्टांतसे यह न समझना चाहिये कि ब्रह्मकेसमान रज्जुभी सत्य है किन्तु भ्रम अंशमें दृष्टान्त है. ४ नैय्यायिकलोगोंका यह कथन है कि दृष्टान्त हेतु और व्याप्ति आदिके मिथ्या होनेसे व्याप्यत्वासिद्धि स्वरूपासिद्धि आदि तथा मिथ्यभूत हेतुओंसे सत्यत्वसाधनमें विरुद्धत्वादि हेत्वाभासप्रयोजक दोष आसकतेहैं. ५ ब्रह्म द्वैतसहित है । अथवा अद्वितीय । यदि द्वैतसहित है तो वेदान्तका अद्वैतसिद्धान्त गया और यदि ब्रह्म अद्वैत है तो गुरुशास्त्रादिके मिथ्या होनेसे ज्ञान नहीं होसकता, इत्यादि विकल्पजनित कथन है.

वहांपर उपमाप्रयुक्त अनेक परिश्रम करनेपरभी सर्वांशमें सादृश्य नहीं मिलसकता ॥ ६३ ॥ विवादरहित बुद्धिमान् पुरुषको बोधकेलिये उपमान और उपमेयका एक अंशमें साधर्म्य अवश्य अंगीकार करनाचाहिये ॥ ६४ ॥

अर्थावलोकने दीपादाभामात्रादृते किल ॥ न स्थानतैलवर्त्यादि किंचिदप्युपयुज्यते ॥ ६५ ॥ एकदेशसमर्थत्वादुपमेयावबोधनम् ॥ उपमानं करोत्यंग दीपोऽर्थप्रभया यथा ॥ ६६॥ दृष्टांतस्यांशमात्रेण बोध्यबोधोदये सति ॥ उपादेयतया ग्राह्यो महावाक्यार्थनिश्चयः ॥६७॥ न कुतार्किकतामेत्य नाशनीया प्रबुद्धता ॥ अनुभूत्यपलापांतैरपवित्रैर्विकल्पितैः ॥ ६८ ॥

अर्थ—संसारमेंभी "यह मणिदीपके समान है" इस दृष्टांतमें पदार्थोंके देखनेमें केवल प्रकाशमात्रमें सादृश्य है स्थान, वत्ती और तैल आदिका कुछभी उपयोग नहीं है ॥६५॥ एकअंशमें सादृश्य होनेसे उपमान उपमेयका बोध करादेताहै, जैसे "मणिर्दीप इव" (मणि दीपके समान है) इस दृष्टान्तमें उपमान दीप, प्रभा (प्रकाश) मात्रमें सादृश्य होनेसे उपमेय मणिका बोध करादेताहै ॥ ६६ ॥ दृष्टांतके अंशमात्रद्वारा बोध्यपदार्थके बोध होनेपर महावाक्योंका अर्थ उपादेयरूपसे ग्रहणकरनाचाहिये । स्वप्न आदिके दृष्टांतसे जगत्का मिथ्यात्व सिद्ध होनेपर और दृष्टान्तके अंशमात्रसे पदार्थके शोधनद्वारा लक्ष्यार्थके बोधका उदय होनेपर कार्यसहित अविद्याके उच्छेदार्थ अवश्य उपादेय होनेके कारण सब श्रुति और शास्त्रोंके महान्तात्पर्यका विषय जो "अहं ब्रह्मास्मि"महावाक्य है, उसका लक्ष्यार्थ अवश्य ग्रहणकरनाचाहिये ॥ ६७ ॥ शुद्ध अद्वैत सच्चिदानन्द आत्माही ब्रह्म है, ऐसे जाननेवाले विद्वान्के प्रत्यक्षको अपलाप करनेवाले और अपवित्र शूकर आदि जन्म देनेवाले, विकल्पोंसे अपनेको दुष्ट नैय्यायिक मानके परमपुरुषार्थको देनेवाली अभिज्ञताका नाश नहीं करनाचाहिये ॥ ६८ ॥

विचारणादनुभवकारिवैरिणोऽपि वाङ्मयं त्वनुगतमस्मदादिषु ॥ स्त्रियोक्तमप्यपरमार्थवेदिकं वचो वचःप्रलपनमेव नागमः ॥ ६९ ॥ अस्माकमस्ति मतिरंगतयेति सर्वशास्त्रैकवाक्यकरणं फलितं यतो यः ॥ प्रातीतिकार्थमपशास्त्रनिजांगपुष्टात्सम्वेदनादितरदस्ति ततः प्रमाणम् ॥ ७० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे दृष्टान्तनिरूपणं नामाष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

अर्थ—विना विचाराकिये सांसारिकसुखोंकोही मुख्य माननेवाले चार्वाक आदिकोंकेही वचन प्रिय लगतेहैं, और संन्यासलक्षण मोक्षदायक धर्मप्रतिपादक महावाक्य आदि शास्त्रवचन वैरीके वचनके समान लगतेहैं, परन्तु विचार करनेसे नित्य आनन्द परमपुरुषार्थरूप मोक्षदायक होनेसे वैरीकाभी वचन प्रमाण माननाचाहिये. और जो मोक्षदायक न हो वो वचन परमप्रिया भार्याकाभी हो तोभी न माननाचाहिये ॥ ६९ ॥ हे प्रिय रामचन्द्रजी ! शास्त्र विरुद्ध केवल तर्कादिके ज्ञानकी अपेक्षासे हमको तत्वसाक्षात्कारलक्षण जीवन्मुक्तिरूप शुभप्रापक विधि अधिकप्रमाण है क्यों कि वह प्रत्यक्ष अनुभवके योग्य और सम्पूर्ण श्रुति तथा अध्यात्मशास्त्रका सिद्धांत है ॥ ७० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे दृष्टांतनिरूपणं नामाष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

एकोनविंशतितमः सर्गः ॥ १९ ॥

द्रष्टा और दृश्यआदिका साक्षीरूप जो ब्रह्मरूप तत्व है उसका शोधन, दृष्टांतके अर्थके प्रसंगसे इस १९ सर्गमें कियागयाहै.

श्रीवसिष्ठ उवाच—विशिष्टांशसमर्थत्वमुपमानेषु गृह्यते॥को भेदःसर्वसादृश्ये तूपमानोपमेययोः ॥१ दृष्टान्तबुध्दावेकात्मज्ञानशास्त्रार्थवेदनात् ॥ महावाक्यार्थसंसिध्दा शान्तिर्निर्वाणमुच्यते ॥२॥ तस्माद्दृष्टान्तदार्ष्टान्तविकल्पोल्लसितैरलम् ॥ यया कयाचिद्युक्त्या तु महावाक्यार्थमाश्रयेत् ॥ ३ ॥ शांतिः श्रेयः परं विद्धि तत्प्राप्तौ यत्नवान्भव ॥ भोक्तव्यमोदनं प्राप्तं किन्तत्सिद्धौ विकल्पितैः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले, विशेषकरके कथन करनेको इष्ट अंशमें सर्वत्र उपमानोंमें साधर्म्यका ग्रहण कियाजाता है, नहीं तो गौके समान गवय (नील गाय) होताहै, इत्यादि उपमान उपमेयके उदाहरणोंमें यदि जात्यादि सर्वांशमें

१ अधिकगुणवालेको उपमान और न्यूनगुणवालेको उपमेय कहतेहैं ऐसा किसीका मत है, यथार्थमें जिसकी उपमा दीजाय वह उपमान और जिसको दीजाय वह उपमेय है, जैसे "चन्द्रवत् मुखम्" यहां चन्द्र उपमान और मुख-उपमेय है.

सादृश्यका ग्रहण कियाजाय तो उपमान और उपमेयमें भेदही क्या रहा?अर्थात् सम्पूर्ण अंशमें सादृश्य माननेसे उपमान उपमेयभावका उच्छेदही होजायगा ॥ १ ॥ 'तत् और त्वम्'पदार्थोंके शोधनके उपयोगी उन २ दृष्टान्तोंकी बुद्धि होनेसे, एक अद्वितीयज्ञानस्वरूप जो आत्मतत्वही सब वेदान्तोंके तात्पर्यका विषय है, और वही शास्त्रका अर्थ है, उसके ज्ञानसे अखण्ड आत्माकारवृत्तिके अभ्युदय होनेसे अज्ञान तथा उसके कार्यकी शान्तिरूप निर्वाणही दृष्टान्तका फल है ॥ २ ॥ इसलिये क्या यह दृष्टान्त सर्वांशमें है वा एकांशमें है इत्यादि विकल्पजालोंसे कुछ प्रयोजन नहीं है. जिस किसी कल्पितयुक्तिसे महावाक्यार्थके बोधका आश्रय लेनाचाहिये ॥ ३ ॥ शान्तिही परम कल्याण है उसीकी प्राप्तिमें यत्न कीजिये, भोजनके योग्य जब सिद्ध ओदन प्राप्तहोगया तो उसकी सिद्धिमें जो विकल्प हैं उनसे कुछभी प्रयोजन नहींरहा ॥ ४ ॥

अकारणैः कारणिभिर्बोधार्थमुपमीयते ॥ उपमानैस्तूपमेयैः सदृशैरेकदेशतः ॥ ५ ॥ स्थातव्यं नेह भोगेषु विवेकरहितात्मना ॥ उपलोदरसंजातपरिपीनान्धमेकवत् ॥ ६ ॥ दाष्टान्तैर्यत्नमाश्रित्य जेतव्यं परमं पदम् ॥ विचारणवता भाव्यं शान्तिशास्त्रार्थशालिना ॥ ७ ॥ शास्त्रोपदेशसौजन्यप्रज्ञातज्ज्ञसमागमैः ॥ अन्तरान्तरसम्पन्नधर्मार्थोपार्जनक्रियः ॥ ८ ॥ तावद्विचारयेत्प्राज्ञो यावद्विश्रान्तिमात्मनि ॥ संप्रयात्यपुनर्नाशां शान्तिं तुर्यपदाभिधाम् ॥ ९ ॥

अर्थ—बालककी औषध पीनेमें प्रवृत्तिके कारण और शिखा बढनेके अकारण जैसे एक अंशमें सदृश अर्थात् एक अंशमें कारण और दूसरे अंशमें जो कारण नहीं ऐसे उपमान और उपमेयोंसे जैसे लोकमें इष्टसिद्धि होती है, इसीतरह यहांभी इष्टसाधनबोधकेलिये उपमा दीजातीहै ॥ ५ ॥ पाषाणके भीतर उत्पन्न मोटे तथा अन्धे मण्डूकके समान विवेकसे शून्य होके विषयभोगमें निमग्न नहीं रहनाचाहिये ॥ ६ ॥ पूर्वोक्तदृष्टान्तोंका आश्रय लेके परमपदको प्राप्तकरनाचाहिये, और विचारवान् शान्तियुक्त और महावाक्यार्थसे शोभित होनाचाहिये ॥ ७ ॥ शास्त्रोंके उपदेश, सुजनता, बुद्धि, शास्त्रज्ञ तथा ब्रह्मज्ञानियोंके समागमसे पूर्व २ अन्तरंगसाधनोंसे संपन्न तथा प्रतिदिन वेदान्तका श्रवण और गुरुशुश्रूषादि धर्मोंके गुरुशुश्रूषादि उपयोगी धनोंके और शास्त्रतात्पर्यविषयीभूत अर्थोंके उपार्जनरूप कर्ममें तत्पर होके, बुद्धिमान् मनुष्य तबतक शास्त्रोंको विचारे जबतक पुनः नाश न होनेवाली चतुर्थपद नामवाली शान्ति आत्मामें न प्राप्तहो ॥ ८ ॥ ९ ॥

तुर्यविश्रान्तियुक्तस्य प्रतीपस्य भवार्णवात् ॥ जीवतोऽजीवतश्चैव गृहस्थस्य तथा यतेः ॥ १० ॥ न कृतेनाकृतेनार्थो न श्रुतिस्मृतिविभ्रमैः ॥ निर्मन्दर इवाम्भोधिः स तिष्ठति यथास्थितम् ॥ ११ ॥ एकांशेनोपमानानामुपमेयसधर्मता ॥ बोद्धव्यं बोध्यबोधाय न स्थेयं बोधचंचुना ॥ १२ ॥

अर्थ—संसाररूपी सागरसे उत्तीर्ण चतुर्थपदमें विश्रान्तियुक्त जो मनुष्य है, चाहे वह इस संसारमें हो वा न हो गृहस्थ वा यति हो ॥ १० ॥ उसको कृत अथवा अकृत कर्मसे तथा श्रुति और स्मृतिके श्रवण मनन आदिसे कुछ प्रयोजन नहींहै, वह तो मन्दराचल रहित शान्तसमुद्रकेसमान अपने स्वरूपमें स्थित रहताहै ॥ ११ ॥ उपमानोंके एक अंशसे उपमेयोंमें यहां सादृश्य अभीष्ट है, और इसका बोध्य जो आत्मतत्व है उसको अवश्य जाननाचाहिये, और बोधचंचु (दूसरोंके खण्डनार्थ मुखमात्रमें ज्ञानसम्पन्न नकि हृदयप्रवेशी ज्ञानयुक्त) होके नहींरहनाचाहिये ॥ १२ ॥

ययाकयाचिद्युक्त्या तु बोद्धव्यं बोध्यमेव ते ॥ युक्तायुक्तं न पश्यन्ति व्याकुला बोधचंचवः ॥ १३ ॥ हृदये संविदाकाशे विश्रान्तेऽनुभवात्मनि ॥ वस्तुन्यनर्थं यः प्राह बोधचंचुः स उच्यते ॥ १४ ॥ अभिमानविकल्पांशैरज्ञो ज्ञप्तिं विकल्पयेत् ॥ बोधं मलिनयत्यन्तः स्वं खमब्द इवामलम् ॥ १५ ॥ सर्वप्रमाणसत्तानां पदमब्धिरपामिव ॥ प्रमाणमेकमेवेह प्रत्यक्षं तदतःशृणु ॥ १६ ॥

अर्थ—जिसकिसीयुक्तिसे बोध्यपदार्थ आत्मतत्वको अवश्य जाननाचाहिये, व्याकुलचित्त बोधचंचु (केवल खण्डनकेलिये ज्ञानसंपन्न) पुरुष योग्य अयोग्य कुछ नहीं देखते ॥ १३ ॥ हृदयाकाशमें विश्रांत अनुभवरूप आत्मवस्तुमें जो अनर्थ कथनकरताहै उसको बोधचंचु कहतेहैं ॥ १४ ॥ और जो अज्ञानी अभिमानप्रयुक्त विकल्पोंसे ज्ञानस्वरूप आत्मामें तथा उसके साधनोंमें विकल्प करताहुआ मेघ जैसे आकाशको इसतरह आत्मस्वरूपज्ञानको मलिन करताहै, वह द्वितीय बोधचंचु कहलाताहै ॥ १५ ॥ जैसे सम्पूर्णजलमात्रका आधार समुद्र है, ऐसेही सम्पूर्ण प्रमाणोंका श्रेष्ठ आधार एक प्रत्यक्ष प्रमाण है, क्यों कि अनुमान आदि प्रमाण इसीका आश्रय लेके प्रवृत्तहोतेहैं, इसलिये प्रत्यक्षका मैं यथार्थ वर्णनकरताहूं आप सुनिये ॥ १६ ॥

सर्वाक्षसारमध्यक्षं वेदनं विदुरुत्तमाः ॥ नूनं तत्प्रतिपत्तिसिद्धं तत्प्रत्यक्षमुदाहृतम् ॥१७॥ अनुभूतेर्वेदनस्य प्रतिपत्तेर्यथाभिधम् ॥ प्रत्यक्षमिति नामेह कृतं जीवः स एव नः ॥ १८ ॥ स एव सम्वित्स पुमानहन्ताप्रत्ययात्मकः ॥ स ययोदेति सम्वित्त्या सा पदार्थ इति स्मृता ॥ १९ ॥ स संकल्पविकल्पाद्यैः कृतनानाक्रमभ्रमैः ॥ जगत्तया स्फुरत्यम्बुतरंगादि तया यथा ॥ २० ॥

अर्थ—जैसे सम्पूर्णप्रमाणोंमें इन्द्रियां सारभूत हैं इसीप्रकार सबइन्द्रियोंके अपरोक्षज्ञानको सबमें मुख्य कहतेहैं, और उस ज्ञान तथा उसके आधारभूत और विषयभूत त्रिपुटीप्रतीतिसे जो ज्ञान है वही प्रत्यक्ष है, जैसे "मैं घटको जानताहूं" ॥ १७ ॥ जो सब देहेन्द्रियादिकका अनुभवरूपसे प्रकाशक है, और वेद्य त्रिपुटीकाभी प्रकाशकहै और स्वयं ज्ञान तथा प्रकाशस्वरूपसाक्षी चिन्मात्रहै, उसीका व्यवहारदशामें प्रत्यक्ष यह नाम कियागयाहै, और वही साक्षी प्राणधारणके निमित्तसे जीव कहलाताहै ॥ १८ ॥ वही साक्षी वृत्तिरूप उपाधिके धारणकरनेसे संवित् (ज्ञान) कहाताहै, अहंताप्रत्ययका रूप होनेसे पुमान् (प्रमाता) कहाजाताहै, और वही साक्षी विषयाकारवृत्तिसे बाह्य आवरणभंगमें प्रकटहोताहै, तो पदार्थ (विषय) कहलाताहै, अर्थात् साक्षीही प्रमाता, प्रमाण, और प्रमेय, तीनों रूप धारणकरताहै ॥ १९ ॥ वही साक्षी सङ्कल्पविकल्पप्रधान अन्तःकरण नाम आदि हिरण्यगर्भादिरूप समष्टिसृष्टिरूपसे ऐसे स्फुरित होताहै जैसे जल तरंगरूपसे ॥ २० ॥

प्रागकारणमेवाशु सर्गादौ सर्गलीलया ॥ स्फुरित्वाकारणं भूतं प्रत्यक्षं स्वयमात्मनि ॥ २१ ॥ कारणं त्वविचारोत्थजीवस्याऽसदपि स्थितम् ॥ सदिवास्यां जगद्रूपं प्रकृतौ व्यक्तिमागतम् ॥२२॥ स्वयमेव विचारस्तु स्वत उत्थं स्वकं वपुः ॥ नाशयित्वा करोत्याशु प्रत्यक्षं परमं महत् ॥ २३ ॥ विचारवान्विचारोऽपि आत्मानमवगच्छति ॥ यदा तदा निरुल्लेखं परमेवावशिष्यते ॥ २४ ॥

अर्थ—वही साक्षी प्रत्यक्ष सृष्टिकी आदिमें अकारणरूपही सृष्टिकी लीलासे स्फुरित होके सृष्टिरूपमें आपही अपना कारण होताहै ॥ २१ ॥ यद्यपि यथार्थरूपसे एकहीमें कार्यता और कारणता नहीं बनसकती तथापि साक्षी चेतनमें यह कारणता अविचारसे उत्पन्न है, और असत्‌रूप होनेपरभी जीवको सत्‌रूपसे स्थित है, और अविचारसंयुक्त इस प्रकृतिमें जगत्‌रूपभी व्यक्तदशामें प्राप्तहै, अर्थात् यह प्रपंच अध्यारोपितहै ॥ २२ ॥ इसीप्रकार विचार (आत्मसाक्षात्कार रूप) अपनेसे उत्पन्न जगत्‌को अज्ञानके नाशसे नष्टकरके अपने आवरणरहित अपरिच्छिन्न परमपुरुषार्थरूपका उपकारक होताहै ॥ २३ ॥ जब विचारवान् आत्माका साक्षात्कार करताहै अर्थात् विचार आत्माकार होताहै, तब विचार नष्टहोके केवल परमप्रेमास्पद आत्ममात्र शेष रहताहै, उस दशाका वर्णन शब्दसे नहीं होसकता ॥ २४ ॥

मनस्यनीहिते शान्ते सबुद्धीन्द्रियकर्मभिः ॥ न हि कश्चित्कृतैरर्थो नाकृतैरप्यभावनात् ॥ २५ ॥ मनस्यनीहिते शान्ते न प्रवर्तन्त एव ते ॥ कर्मेन्द्रियाणि कर्मादावसंचारितयन्त्रवत् ॥ २६ ॥ मनोयन्त्रस्य चलने कारणं वेदनं विदुः ॥ प्रणालीदारुमेषस्य रज्जुरन्तर्गता यथा ॥ २७ ॥ रूपालोकमनस्कारपदार्थव्याकुलं जगत् ॥ विद्यते वेदनस्यान्तर्वातान्तः स्पन्दनं यथा ॥ २८ ॥

अर्थ—इसप्रकार प्रपंचके बाधसे ज्ञानेंद्रियसहित मनके शांतहोनेपर, मिथ्यारूपसे निश्चित जगत्‌का पुनः सत्यरूपसे निश्चय न होनेके कारणसे कर्मोंके करने और न करनेसे कुछभी प्रयोजन नहींहै, अर्थात् उस प्राणीके प्रारब्धकर्मानुकूल जगत्‌में प्रवृत्ति होनेके कारणसे वह क्रियमाण और संचित कर्मफलोंका भोक्ता नहीं होता ॥ २५ ॥ मनके शांत होनेपर तुमारी कर्मेंद्रिय न चलायेहुए यंत्रके समान आपही कर्ममें नहीं प्रवृत्त होंगी ॥ २६ ॥ मनरूपीयंत्रके चलनेमें विषयोंकी स्फूर्ति ऐसे कारण है, जैसे काष्ठके दो मेंषोंके परस्पर शिरोंके भिडानेमें भीतर खेंचनेकी रस्सी कारण होतीहै ॥ २७ ॥ बाह्यइन्द्रियोंसे विषयोंका ग्रहण होना, और मनसे विषयोंका अनुसन्धान करना इन दोनोंप्रकारके विषयोंसे व्याप्त यह जगत् ज्ञानके अन्तर्गत ऐसे विद्यमान है जैसे वायुके अन्तर्गत गति, इससे प्रथम विषय सिद्ध हो ले तो मन सिद्धहो और इस वेदान्तके सिद्धान्तानुसार मनोमय विषय होनेसे प्रथम मन सिद्धहो ले तो विषय सिद्धहो, यह अन्योन्याश्रय दोष निवृत्तहुआ ॥ २८ ॥

सर्वात्मवेदनं शुद्धं यथोदेति तदात्मकम् ॥ भाति प्रसृतदिक्कालबाह्यान्तारूपदेहकम् ॥ २९ ॥ द्रष्टैव दृश्यता भासं स्वरूपं धारयन्स्थितः ॥ स्वं यथा यत्र यद्रूपं प्रतिभाति तथैव तत् ॥ ३० ॥ स सर्वात्मा यथा यत्र समुल्लाससमुपागतः ॥ तिष्ठत्याशु तथा तत्र तद्रूप इव राजते ॥ ३१ ॥ सर्वात्मकतया द्रष्टुर्दृश्यत्वमिव युज्यते ॥ दृश्यत्वं द्रष्टृसद्भावे दृश्यतापि न वास्तवी ॥ ३२ ॥

अर्थ—सब प्राणियोंके कर्मोंकी परिपाकव्यवस्थासे प्राणियोंके कर्म भोगकेलिये जैसे आविर्भूत होतेहैं, उन्हींका रूप धारणकरके उत्पन्नहुयेके समान विस्तृत देश काल आदि रूपसे बाह्य और आभ्यंतरपदार्थोंका वेष धारण करतेहैं ॥ २९ ॥ वही अंतिम विचार अपने देहादि दृश्यताभासको देखकर यही मेरा स्वरूप है ऐसा धारणकरताहुआ सर्वात्मा होनेपरभी जीवरूपसे स्थितहै, क्योंकि अपना जहांपर जैसा रूप है वहांपर वैसाही भान होताहै ॥ ३० ॥ वह सर्वात्मा जहां जिसरूपसे प्रकाशको प्राप्तहुआहै वहां शीघ्र उसी रूपके सदृश शोभितहोताहै ॥ ३१ ॥ सर्वात्म होनेके कारण द्रष्टा दृश्यकेसदृश प्रतीतहोताहै, परन्तु वह दृश्यत्व मिथ्या है, क्योंकि दृक्स्वरूप द्रष्टा यदि सर्वथा अपने रूपसे प्रच्युत होके दृश्यरूपमें प्राप्त हो तो द्रष्टारहित दृश्यपदार्थकी सिद्धिही नहीं होसकती, और यदि अपने स्वरूपसे अप्रच्युत होके दृश्यरूप होताहै, तो रज्जु जैसे अपने स्वरूपको न छोडती हुई सर्पकेसमान अज्ञानसे भासती है, ऐसेही इसकी दृश्यता मिथ्या है, वास्तविक नहीं ॥ ३२ ॥

अकारणकमेवातो ब्रह्मसिद्धमिदं स्थितम् ॥ प्रत्यक्षमेव निर्मोष्ट्र तस्यांशास्त्वनुमादयः ॥ ३३ ॥ स्वयत्नमात्रे यदुपासको यस्तद्दैवशब्दार्थमपास्य दूरे ॥ शूरेण साधो पदमुत्तमं तत्स्वपौरुषेणैव हि लभ्यतेऽन्तः ॥ ३४ ॥ विचारयाचार्यपरम्पराणां मतेन सत्येन सितेन तावत् ॥ यावद्विशुद्धं स्वयमेव बुद्धया ह्यनन्तरूपं परमभ्युपैपि ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे प्रमाणनिरूपणं नामैकोनविंशतितमः सर्गः ॥ १९ ॥

अर्थ—इसलिये कार्यका मिथ्यात्व सिद्धहोनेसे उसकी अपेक्षा रखनेवाला कारणभी मिथ्या हुआ, अतः वास्तविक अकारणता सिद्ध हुई. इसप्रकार प्रत्यक्षतत्वके विचारमे अद्वय ब्रह्मही मुख्य प्रत्यक्षप्रमाण है, अनुमान आदि तो उसके अंश हैं, इसलिये सबप्रमाणोंका तत्व आत्माही है ॥ ३३ ॥ अपने पूर्वजन्मके कियेहुये पौरुपकोही दैव मानकर मनुष्य उसकाही उपासक बनजाताहै, उस दैवको दूर करके इन्द्रियोंके जीतनेमें शूर वीर पुरुप अपने पौरुपसेही उस परमपद आत्मतत्त्वको निजहृदयमेंही पाताहै ॥ ३४ ॥ हे रामचन्द्रजी ! प्रमाणोंसें परिशोधित और सत्यपरमार्थनिष्ठ आचार्य्योंकी परम्पराके सिद्धान्तसे तब तक विचारकरतेरहिये जबतक स्वयमेव बुद्धिसे देश, काल, और वस्तुके परिच्छेदसे शून्य, अनन्तरूप परमपद आत्मतत्त्वका साक्षात्कार न करो ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ति मोक्षोपाये भाषानुवादे मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे प्रमाणनिरूपणंनाम एकोनविंशतितमः सर्गः ॥ १९ ॥

विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥

प्रज्ञाबुद्धिका प्रकार, महापुरुपका लक्षण, और सदाचारके क्रम, ये परस्पर वृद्धिके हेतु होतेहैं, इस विषयका वर्णन इस २० वें सर्गमें कियागयाहै.

श्रीवसिष्ठ उवाच—आर्यसंगमयुक्त्यादौ प्रज्ञां वृद्धिं नयेद्बलात् ॥ ततो महापुरुषतां महापुरुपलक्षणैः ॥ १ ॥ यो यो येन गुणेनेह पुरुषः प्रविराजते ॥ शिष्यते तं तमेवाशु तस्माद्बुद्धिं विवर्द्धयेत् ॥ २ ॥ महापुरुषता ह्येषा शमादिगुणशालिनी ॥ सम्यग् ज्ञानं विना राम सिद्धिमेति न कांचन ॥ ३ ॥ ज्ञानाच्छमादयो यान्ति वृद्धिं सत्पुरुषक्रमाः ॥ श्लाघनीयाः फलेनान्तर्वृष्टेरिव नवांकुराः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले, सबसे प्रथम श्रेष्ठ आर्यपुरुपोंका समागम, उपदेश, आचरण, और शिक्षा आदिकी युक्तियोंसे बुद्धिको बढावे, उसके अनन्तर आगे कहेहुये महापुरुषोंके लक्षणोंसे अपनेको महापुरुष बनावे ॥ १ ॥ यदि सम्पूर्णगुण एकपुरुपमें न संभवहो तो जो२ गुण जिस२ पुरुषमें अधिकतासे हो उस२ गुणको उस२ पुरुषसे सीखकर शेपगुणोंको अन्यपुरुपोंसे सीखकर शीघ्र अपनी बुद्धिको बढावे ॥ २ ॥ शम, दम, और प्रज्ञा आदि गुणोंसे शोभित होना महापुरुषताहै. परन्तु हे रामजी ! मनुष्य उत्तमज्ञानके विना किसी सिद्धिको नहीं प्राप्तहोता ॥ ३ ॥ ज्ञानसे शम, दम, आदि गुण और आत्मसाक्षात्कारसे प्रशंसाके योग्य महापुरुषोंके आचार ऐसे वृद्धिको प्राप्तहोतेहैं, जैसे वृष्टिसे नूतन अंकुर ॥ ४ ॥

शमादिभ्यो गुणेभ्यश्च वर्द्धते ज्ञानमुत्तमम् ॥ अन्नात्मकेभ्यो यज्ञेभ्यः शालिवृष्टिरिवोत्तमा ॥५॥ गुणाः शमादयो ज्ञानाच्छमादिभ्यस्तथाज्ञता ॥ परस्परं विवर्द्धन्ते ते अब्जसरसी इव ॥ ६ ॥ ज्ञानं सत्पुरुषाचाराज्ज्ञानात्स पुरुषक्रमः ॥ परस्परं गतौ वृद्धिं ज्ञानसत्पुरुषक्रमौ ॥ ७ ॥ शमप्रज्ञादिनिपुणपुरुषार्थक्रमेण च ॥ अभ्यसेत्पुरुषो धीमान् ज्ञानसत्पुरुषक्रमौ ॥ ८ ॥

अर्थ—जैसे अधिक अन्न घृतादिवाले यज्ञोंसे उत्तमधान्यकी वृद्धि होतीहै, इसीप्रकार शमादिगुणोंसे उत्तमज्ञान की वृद्धि होती है ॥५ ॥ ज्ञानसे शम, दम, आदि गुण, और शम, दम, आदि गुणोंसे ज्ञान, परस्पर ऐसे शोभा तथा वृद्धिको प्राप्तहोतेहैं जैसे कमलोंसे तडाग और तडागसे कमल ॥ ६ ॥ इसीप्रकार सत्पुरुषोंके आचारसे ज्ञान, और ज्ञानसे सत्पुरुषोंके आचार, ये दोनों परस्पर वृद्धिको प्राप्तहोतेहै ॥ ७ ॥ शम, दम, आदि तथा बुद्धि और महापुरुषता आदिसे निपुण जो श्रवण मनन आदि पुरुषार्थ है, उसके क्रमसे बुद्धिमान् पुरुष ज्ञान और सदाचारका अभ्यास करे ॥ ८ ॥

न यावत्सममभ्यस्तौ ज्ञानसत्पुरुषक्रमौ ॥ एकोऽपि नैतयोस्तात पुरुषस्येह सिद्धयति ॥ ९ ॥ यथा कलमरक्षिण्या गीत्या विततताल्या ॥ खगोत्सादेन सहितं गीतानन्दः प्रसाध्यते ॥ १० ॥ ज्ञानसत्पुरुषेहाभ्यामकर्त्रा कर्तृरूपिणा ॥ तथा पुंसा निरिच्छेन सममासाद्यते पदम् ॥ ११ ॥ सदाचारक्रमः प्रोक्तो मयैवं रघुनन्दन ॥ तथोपदिश्यते सम्यगेवं ज्ञानक्रमोऽधुना ॥ १२ ॥

अर्थ—हे तात ! जबतक ज्ञान और सत्पुरुषोंके आचार एकसाथ अभ्यास नहींकिये जाते तबतक पुरुषको इन दोनोंमेंसे एककीभी सिद्धि नहीं प्राप्तहोती ॥ ९ ॥ जिसप्रकार पकेहुये धान्यकी रक्षाकरनेवाली स्त्रीको करतालकी ध्वनियुक्त गानके प्रसंगवश पक्षियोंके उडानेके साथ गीतका आनन्द सिद्धहोताहै, इसीप्रकार ज्ञानके विघ्नभूत जो राग मानादि हैं, उनके दूरकरनेकी इच्छासे रहित अतएव उस कार्यको न करनेवाले और ज्ञान तथा सत् पुरुषोंके आचारोंके अनुष्ठान करनेवाले पुरुषको प्रसंगवशसे विघ्नोंके दूरकरनेके साथहीं परमपदकी प्राप्ति होती है ॥ १० ॥ ११ ॥ हे रघुनन्दन ! जिसप्रकार मैंने आपसे सदाचारकी रीति कही इसीप्रकार अब आगे ज्ञानकी रीतिभी आपसे कहताहूं ॥ १२ ॥

इदं यशस्यमायुष्यं पुरुषार्थफलप्रदम् ॥ तज्ज्ञादाप्ताच्च सच्छास्त्रं श्रोतव्यं किल धीमता ॥ १३ ॥ श्रुत्वा त्वं बुद्धिनैर्मल्याद्बलाद्यास्यसि तत्पदम् ॥ यथा कतकसंश्लेषात्प्रसादं कलुषं पयः ॥ १४ ॥ विदितवेद्यमिदं हि मनो मुनेर्विवशमेव हि याति परं पदम् ॥ यदवबुद्धमखण्डितमुत्तमं तदवबोधवशान्न जहाति हि ॥ १५ ॥

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे देवदूतोक्ते द्वात्रिंशत्साहस्र्यां संहितायां वाल्मीकीये मोक्षोपाये मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे सदाचारनिरूपणंनाम विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥

समाप्तमिदं द्वितीयं मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणम् ॥ २ ॥

अर्थ—यह (यो० वा०) सत् शास्त्र यश, आयु, और पुरुषार्थफलका दायक प्रसिद्ध है, उसको बुद्धिमान् आप्त पण्डितसे श्रवण करे ॥ १३ ॥ हे रामचंद्रजी ! इसको श्रवण करके बुद्धिकी निर्मलतासे तुम बलात्कार परमपदको ऐसे प्राप्त होओगे, जैसे कतक औषधके संयोगसे मलिन जल स्वच्छताको ॥ १४ ॥ हे रामजी ! पूर्वोक्तसाधनकी सम्पत्तिसे मननशील पुरुषका वेद्यपदार्थको जाननेवाला मन इच्छा न करनेपरभी परमपदको प्राप्तहोताहै, और इतनाही नहीं किन्तु इस अन्तिमज्ञानसे अज्ञान और उसके कार्यके नष्टहोनेसे जो उत्तम अखंडित ज्ञानस्वरूप परमपद प्राप्तहुआहै उसको कदापि नहीं त्यागता ॥ १५ ॥

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे देवदूतोक्ते द्वात्रिंशत्साहस्र्यां संहितायां वाल्मीकीये मोक्षोपाये वैश्यवंशावतंस जज्जपदारूढ रायबहादुरोपाधिधारी दिल्लीनिवासि श्रीबैजनाथमहाशयाज्ञया काशिकराजकीयपाठशाला प्रधानाध्यापक पूज्यपाद श्री ६ दामोदरशास्त्रिशिष्याचार्योपाधिधारी द्विवेदोपनामक ठाकुरप्रसा दशर्मविरचित भाषानुवादे मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणे विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥

समाप्तमिदं मुमुक्षुव्यवहारप्रकरणम् ॥ श्रीः शुभमस्तु ॥

सर्व पुस्तकोंका मिलनेका पत्ता

पंडित श्रीधर शिवलालजी.

ज्ञानसागर छापाखाना.

बंबई.



श्रीहरिंवन्दे ।

श्रीवृन्दावनविहारिणे नमः ।

❀ योगवासिष्ठ भाषाटीका सहित ❀

अथ तृतीयमुत्पत्तिप्रकरणं प्रारभ्यते.

मंगलाचरणम्.

नत्वा शिवं शक्तियुतं दयालुं । स्वानन्दरूपं भजतां स्फुरन्तम् ॥
श्रीयोगवासिष्ठमहाम्बुधेर्वै । भाषाऽनुवादः क्रियते हिताय ॥ १ ॥
गणेशं विघ्नहर्तारं जगदम्बां प्रणम्य च ।
जनानां स्वात्मबोधाय यत्नमेतं समारभे ॥ २ ॥

प्रथमस्सर्गः ॥ १ ॥

श्रीगणेशाय नमः । अथ उत्पत्तिप्रकरणम् ॥

वाग्भाभिर्ब्रह्मविद्ब्रह्मभातिस्वप्नइवात्मनि ॥ यदिदंतत्स्वशब्दोर्त्थैर्योयद्वेत्तिसवेत्तितत् ॥ १ ॥ न्याये पण्डितेनेनलोकेस्मिन्सर्गेब्रह्मांबरेसति ॥ किमिदंकस्यकुत्रेतिचोद्यमूचेनिराकृतम् ॥ २ ॥ अहंतावद्यथा प्राप्तंज्ञानंयथावस्तुयथाक्रमम् ॥ यथास्वभावंतत्सर्वंवच्मीदंश्रूयतांबुध ॥ ३ ॥ स्वप्नवत्पश्यतिजगच्चिन्नभो मनन्त्वहविस्स्वयम् ॥ स्वप्नसंसारदृष्टांतएवाहंत्वंसमन्वितम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले अखण्ड आत्मतत्व प्रकाशक महावाक्योंसे आत्मतत्वको साक्षात्कार करनेवाला ब्रह्मवित् पारमार्थिक नित्यमुक्त अपने पूर्णस्वरूपसे प्रकाश करताहै, क्योंकि देह इन्द्रिय और आकाशादि दृश्यरूप जो बन्धहै वह प्रत्यगात्मभूत जो ब्रह्महै उसीमें स्वप्नकेसमान आविर्भूत होके कल्पनासे भान होता है और हम लोगोंमेसे श्रवण मननादि सम्पत्तिसे सम्पन्न होके जो यथार्थ ब्रह्मतत्वको जानताहै वह जीवन्मुक्तिके फलको जानताहै ॥ १ ॥ संक्षेपसे देखाहुये और विस्तारसे वक्ष्यमाण, अध्यात्म पदार्थके अधिष्ठानकी सत्ताका पृथक् अभावरूप, अध्यारोप और-अपवाद न्यायसे ब्रह्ममें अध्यास्त इस सम्पूर्ण जगत् प्रपंचका अपवाद करनेपर और केवल ब्रह्माकाशमात्र शेष रहजानेपर "क्या" उत्पन्न होताहै और क्या नष्ट होताहै और पुनः क्या उत्पन्न होके बढताहै यह जो प्रश्न कियाथा सो स्वयं-निराकृत होगया, क्योंकि सब ब्रह्ममय होनेसे सत्का नाश और असत्की उत्पत्ति इस सिद्धान्तमें इष्ट नहीं है ॥ २ ॥ हे बुधरामचन्द्रजी! मैं प्रमाण और अनुभवसे यथाज्ञान, परीक्षासे यथावस्तु, साधनोंकी उपपत्ति निरूपणद्वारा यथाक्रम और श्रोताओंकी बुद्धिके अनुसार यथा स्वभाव, इस सबको कहताहूं आपसुनिये ॥ ३ ॥ जीवदशामें प्राप्त होके चिदाकाश (साक्षीचेतन) इस सम्पूर्ण जगत्को स्वप्नकेसमान अपने आत्मामें देखताहै, इसीप्रकार "अहम्" यह प्रत्य-

गात्माके साथ अभेदसे और "त्वम्" यह बाह्यपदार्थोंके साथ अभेदसे भासमानभी स्वप्नसंसारके दृष्टान्तसे दार्ष्टांतिकत्व रूपसे सम्बन्धहै अर्थात् मिथ्याहै ॥ ४ ॥

मुमुक्षुव्यवहारोक्तिमस्मात्प्रकरणात्परम् ॥ अथोत्पत्तिप्रकरणंमयेदंपरिकथ्यते ॥ ५ ॥ बंधोयंदृश्यसद्भावाद्दृश्याभावेनबंधनम् ॥ नसंभवतिदृश्यंतुयथेदंतच्छृणुक्रमात् ॥ ६ ॥ उत्पद्यतेयोजगतिसएवकिलवर्द्धते ॥ सएवमोक्षमाप्नोतिस्वर्गंवानरकंचवा ॥ ७ ॥ अतस्तेस्वावबोधार्थंत्ततावत्कथयाम्यहम् ॥ उत्पत्तिःसंस्रतावेतिपूर्वमेवद्वियोयथा ॥ ८ ॥

अर्थ—अब मुमुक्षुव्यवहार प्रकरणके अनन्तर यह उत्पत्तिप्रकरण आपसे मैं कहताहूं ॥ ५ ॥ यह बन्धन दृश्यकी सत्तासे है और दृश्यके अभावसे बन्धनका सम्भव नहीं है अब जिसप्रकार यह दृश्यहै वह क्रमसे श्रवण कीजिये जो जगत्में सत्यरूपसे उत्पन्न होताहै वही बढताहै और उसीको मोक्ष स्वर्ग वा नर्क प्राप्त होताहै और आत्मातो उत्पत्त्यादि स्वभाववालाही नहीं उसको तो अपने यथार्थ रूपके अज्ञानसेही उत्पत्ति आदिका भ्रमहै ॥ ७ ॥ इसलिये आत्मज्ञानार्थ तुमको मैं दृश्यका असंभव वक्ष्यमाण रीतिसे कहताहूं, यह उत्पति आदिके संबन्ध दृश्यसंसार कोटिमेंहै न कि आत्मकोटिमें, आत्मातो दृश्यकी उत्पत्ति आदिके पूर्व जिस अविकृतरूपसे रहताहै वैसाही उसके अनन्तरभी रहताहै उसमेंतो कुछभी भेद नहीं होता ॥ ८ ॥

इदंप्रकरणार्थंत्वंसंक्षेपाच्छृणुराघव ॥ ततःसंकथयिष्यामिविस्तरंतेयथेप्सितम् ॥ ९ ॥ यदिदंदृश्यते सर्वंजगत्स्थावरजंगमम् ॥ तत्सुषुप्ताविवस्वप्नःकल्पांतेप्रविनश्यति ॥ १० ॥ ततस्तिमितगंभीरंनतेजोनतमस्ततम् ॥ अनाख्यमनभिव्यक्तंसत्किंचिदवशिष्यते ॥ ११ ॥ ऋतमात्मापरंब्रह्मसत्यमित्यादिकाबुधैः ॥ कल्पिताव्यवहारार्थंतस्यसंज्ञामहात्मनः ॥ १२ ॥

अर्थ—हे राघव ! यह प्रकरणका अर्थ संक्षेपसे तुम इससर्गमें सुनो इसके अनन्तर तुमारी इच्छाके अनुसार विस्तारसे वर्णन करूंगा ॥ ९ ॥ यह सम्पूर्ण स्थावर जंगमात्मक जगत कल्पके अन्तमें ऐसे नाशको प्राप्तहोताहै जैसे सुषुप्ति (गाढी निद्रा) में स्वप्न ॥ १० ॥ उससमय अमूर्त होनेसे स्तिमित (अक्रिय) अपरिच्छेद्य होनेसे गम्भीर, अरूप होनेसे तेजरहित भावरूप होनेसे अन्धकारसे वर्जित, धर्मरहित होनेसे संज्ञा वा नामशून्य और अज्ञानसे आवृत होनेसे वा प्रपंचसंस्कारका आधार होनेसे अनभिव्यक्त जो कुछ सत्‌रूपहै वह शेष रहजाताहै ॥ ११ ॥ ऋत, आत्मा, परब्रह्म और सत्य इत्यादि संज्ञा (नाम) उपदेश और उपदेशके व्यवहारकेलिये पण्डितोंने कल्पितकियाहै ॥ १२ ॥

सतथाभूतएवात्मास्वयमन्यइवोल्लसन् ॥ जीवत्तामुपयातीवभाविनाम्नाकदर्थिताम् ॥ १३ ॥ ततःस जीवशब्दार्थकलनाकुलतांगतः ॥ मनोभवतिभूतात्मामननान्मंथरीभवन् ॥ १४ ॥ मनःसंपद्यतेतेनमहतःपरमात्मनः ॥ सुस्थिरादस्थिराकारस्तरंगइववारिधेः ॥ १५ ॥ तत्स्वयंस्वैरमेवाशुसंकल्पयति नित्यशः ॥ तेनेत्थमिंद्रजालश्रीर्विततेयंवितन्यते ॥ १६ ॥

अर्थ—वह आत्मा स्वयं अपने चित्स्वभावसे स्थित ही अज्ञानसे जड आकाशादि क्रमसे लिंग समष्टिआत्मा सृष्टिके अनन्तर उसमें प्रवेश करनेसे और उसके साथ अभिमान करनेसे जगत्‌के समान शोभायमान, जगत्‌के अन्तर्गत प्राणधारण उपाधिसे शरीरसिद्धिके अनन्तर दुष्टअर्थसे सम्पादित भावी जीवनामको प्राप्तहोताहै ॥ १३ ॥ उसके अनन्तर जीवशब्दका अर्थ जो क्रियाशक्ति प्रधान प्राण धारणहै उसके ग्रहणसे चंचलताको प्राप्तहुआ भौतिक आत्मा संकल्प विकल्पके मननसे तथा जडतासे मन्दभावको प्राप्तहुआ मनोभावको प्राप्तहोताहै ॥ १४ ॥ उस मनोभावसे उस अपने महत् और परमात्म भावको भूलकर आत्मा मनके धर्म संकल्प विकल्पादि धारण करताहै ऐसाही निश्चय करताहै और समुद्रके तरंगके समान निश्चल आकारको छोडकर चंचल आकारवाला होजाताहै ॥ १५ ॥ इसप्रकार समष्टि मनोभावको प्राप्त हिरण्यगर्भनाम ब्रह्म दूसरेकी प्रेरणाके विनाभी पूर्वकल्पकी वासनाके अनुरोधसे आपही विराट्‌रूप चतुर्दश भुवनोंको और अण्डज जरायुजादि चार प्रकारके प्राणियोंको शीघ्र संकल्प करताहै और उसके सत्यसंकल्पसे यह विस्तृत इन्द्रजालकी शोभा विस्तारको प्राप्त होती है ॥ १६ ॥

यथाकटकशब्दार्थःपृथक्त्वार्होनकांचनात् ॥ नहेमकटकात्तद्वज्जगच्छब्दार्थतापरे ॥ १७ ॥ ब्रह्मण्येवास्त्यनंतात्मयथास्थितमिदंजगत् ॥ नजगच्छब्दकार्थोस्तिहेम्नीवकटकात्मता ॥ १८ ॥ सतीवाप्यसती तापनद्येवलहरीचला ॥ मनसेहेंद्रजालश्रीर्जागतीप्रवितन्यते ॥ १९ ॥ अविद्यासंसृतिर्बंधोमायामोहो महत्तमः ॥ कल्पितानीतिनामानियस्याःसकलवेदिभिः ॥ २० ॥

अर्थ—जैसे सुवर्णके कटक (कडा) रूप सुवर्णसे कटक शब्दका अर्थ भिन्न नहीं होसकता, इसीप्रकार जगत् शब्दका अर्थभी परब्रह्मसे भिन्न नहीं होसकता ॥ १७॥ जैसे कटकरूपता सुवर्णके स्वभावके अन्तर्गतहै नकि कटक स्वभावके ऐसेही परिच्छेद भावसे शून्य यह जगतशब्दार्थभी ब्रह्मस्वभावकेही अन्तर्गतहै नकिअन्तवान् जगतशब्दार्थके अन्तर्गत॥१८॥ इन्द्रजालकी शोभाके समान मनसे कल्पित यह जगत्की शोभा असत् होनेपरभी मृगतृष्णामें कल्पित नदीके चंचलतरंगके समान सत्रूपसे विखित होरहहीहै ॥ १९ ॥ विद्यासे निवारणहोनेसे अविद्या, उपर नीचे और टेढे संसरणका हेतु होनेसे संसृति, परतन्त्रताका हेतु होनेसे बन्ध, मिथ्याहोनेसे माया, भ्रमका हेतु होनेसे मोह दुस्तर होनेसे महत् और आत्मस्वरूपका आवरक होनेसे तम इत्यादि उसके नाम सम्पूर्णवेत्ताओंने कल्पित कियाहै ॥२०

बंधस्यतावद्रूपंत्वंकथ्यमानमिदंशृणु ॥ ततःस्वरूपंमोक्षस्यज्ञास्यसींदुनिभानन ॥ २१ ॥ द्रष्टुर्दृश्यस्य सत्तांगबंधइत्यभिधीयते ॥ द्रष्टादृश्यबलाद्बद्धोदृश्याभावेविमुच्यते ॥ २२ ॥ जगत्त्वमहमित्यादिर्मिथ्यात्मादृश्यमुच्यते ॥ यावदेतत्संभवतितावन्मोक्षोनविद्यते ॥ २३ ॥ नेदंनेदमितिव्यर्थप्रलापैर्नोपशाम्यति ॥ संकल्पजनकैर्दृश्यव्याधिःप्रत्युतवर्द्धते ॥ २४ ॥

अर्थ—हे चन्द्रके समान मुखवाले रामचन्द्रजी ! यह कहाहुआ बन्धका स्वरूप तुम जानो इसके अनन्तर मोक्षका स्वरूप जानोगे ॥ २१ ॥ हे प्रियरामचन्द्रजी ! द्रष्टाकी दृश्यरूपसे सत्ता मानलेनाही बन्धहै दृश्यके वशमें होनेसेही बद्धहै और दृश्यके मिथ्या ज्ञानसे मुक्त होजाताहै ॥ २२ ॥ यह जगत् त्वम्, अहम्, इत्यादि मिथ्या प्रतीतिका नाम दृश्यहै जबतक सत्यरूपसे इस प्रतीतिका सम्भवहै तबतक मोक्ष नहीं ॥ २३ ॥ जो जो दृश्य उपस्थितहो उन उनके यह नहीं यह नहीं है ऐसे व्यर्थ निषेधसे जगत्की शान्ति नहीं होती, किन्तु निषेधरूप संकल्पके जनक जो दूसरे दृश्य हैं उनसे यह दृश्यरूपी रोग बढताही जाताहै ॥ २४ ॥

नचतर्कभरक्षोदैर्नतीर्थनियमादिभिः ॥ सतोदृश्यस्यजगतोयस्मादेतिविचारकाः ॥ २५ ॥ जगद्दृश्यं तुयद्यस्तिनशाम्यत्येवकस्यचित् ॥ नासतोविद्यतेभावोनाभावोविद्यतेसतः ॥ २६ ॥ अचेत्यचित्स्वरूपात्मायत्रयत्रैवतिष्ठति ॥ द्रष्टातत्रास्यदृश्यश्रीःसमुदेत्यप्यणूदरे ॥ २७ ॥ तस्मादस्तिजगद्दृश्यंतत्प्रमृष्टमिदंमया ॥ त्यक्तंतपोध्यानजपैरितिकांजिकतृप्तिवत् ॥ २८ ॥

अर्थ—हे विचारशीलजन ! तर्कोंके समूहोंसे अथवा तीर्थ और नियमादिसे दृश्यजगत्की सत्ताकी शान्ति नहीं होती किन्तु दृश्यजगत्की अधिकतासे ही तर्ककी अधिकता होनेसे और भी दृश्यव्याधि बढती है तात्पर्य यह कि अनादर करनेसे दृश्यका बाध नहीं होता किन्तु विचारसे ॥२५॥ और यदि दृश्यरूप जगत्की सत्ता स्वरूपसे सत्य मानी जाय तो उसकी शान्ति वा बाध किसीप्रकार नहीं हो सकता क्योंकि असत् पदार्थका भाव नहीं है और सत्का अभाव नहीं है ॥ २६ ॥ तप आदिसे चित्स्वरूप आत्मा जाननेके असमर्थहैं अज्ञातस्वरूप द्रष्टा चाहे जहां कहीं अणुके उदरमेंभी निवास करे परन्तु वहांभी दृश्यकीश्री भलीभांति उदित होतीहै ॥ २७ ॥ इसलिये इस जगत् स्वस्थान जो अधिष्ठान सत्ताहै वहां इसका अपवाद मैंने किया और देशांतरकी प्राप्ति वा तप ध्यान जपादिसे सुरामदिराकी तृप्तिके समान त्यागदिया ॥ २८ ॥

यदिरामजगदृश्यमास्तितत्प्रतिबिंबति ॥ परमाणूदरेष्वस्मिंश्चिदादर्शेतथैवहि ॥ २९ ॥ यत्रतत्रस्थिते यद्वद्दर्पणेप्रतिबिंबति ॥ अद्र्यब्ध्युर्वीनदीवारिचिदादर्शेतथैवहि ॥ ३० ॥ ततस्तत्रपुनर्दुःखंजरामरण जन्मनी ॥ भावाभावग्रहोत्सर्गःस्थूलसूक्ष्मचलाचलः ॥ ३१ ॥ इदंममार्जितंदृश्यंमयाचात्राहमास्थितः ॥ एतदेवाक्षयंबीजंसमाधौसंसृतिस्मृतेः ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! यदि जगत् दृश्यहै तो यह जैसे चेतनरूप आदर्श (दर्पण) में विपुल प्रदेशमें जगत् प्रतिबिम्बित होताहै ऐसेही संकुचित अणुके उदरमें व्याप्त जो आत्मा है उसमेंभी प्रतिविम्बित होताहै ॥ २९ ॥ जैसे जहां जहां दर्पण स्थितहै वहां २ वस्तुका प्रतिबिम्ब पडताहै ऐसेही सर्वत्रव्यापक जो चित्रूपी आदर्श है उसमें पर्वत समुद्र पृथिवी नदी और जलादि प्रतिबिम्बित होताहै ॥ ३० ॥ उसके अनन्तर उसप्रतिबिम्बमें जन्म वृद्धावस्था मरण, अनेक दुःख; जाग्रत् अवस्थामें स्थूल और स्वप्नमें सूक्ष्म और सुषुप्तिमें बीजरूपसे भाव और स्थूलरूपसे अभाव इत्यादि अस्थिररूपसे यह संसार होता रहताहै ॥ ३१ ॥ सुषुप्तिके समान ज्ञान निरपेक्ष समाधिमेंभी जगत्का मार्जन यहांपर स्थित मैंने इसीप्रकार किया है (अर्थात् ज्ञानके विना समाधिमें दृश्यकी शांति बीजरूपसे नहीं

होती) संसारकी संस्काररूपसे स्मृतिही समाधिमें संसारका अक्षय बीजहै क्योंकि विस्मृत पदार्थका मार्जन नहीं होसकता और पदार्थोंकी स्मृति करनेसे समाधि भंग होजातीहै इसलिये बीजरूपसे संसार वहांभी रहताहै ॥ ३२ ॥

सतित्वस्मिन्कुतोदृश्येनिर्विकल्पसमाधिता ॥ समाधौचेतनत्वंतुतुर्यंचाप्युपपद्यते ॥ ३३ ॥ व्युत्थाने हिसमाधानात्सुषुप्तांतइवाखिलम् ॥ जगदुःखमिदंमातियथास्थितमखंडितम् ॥ ३४ ॥ प्राप्तंभवतिहे रामतत्किंनामसमाधिभिः ॥ भूयोनर्थनिपातेहिक्षणसाम्येहिकिंसुखम् ॥ ३५ ॥ यदिवापिसमाधाने निर्विकल्पेस्थितिंव्रजेत् ॥ तदक्षयसुषुप्ताभंतन्मन्येतामलंपदम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—चित्सत्व निर्विकल्प समाधिके रहनेपरही चेतनता और तुर्य्यता (चतुर्थअवस्थाका रूप) का सम्भव होसकताहै और दृश्यके (स्थूलरूपसे) रहनेपर तो निर्विकल्प समाधिही नहींबनसकती ॥ ३३ ॥ समाधिके उत्थानमें सम्पूर्ण संसारका अनुसन्धान होनेसे, सुषुप्तिके अन्तके समान यह दुःखमय संसार अखण्डित रूपसे भान होनेलगताहै ॥ ३४ ॥ हे राम! उत्थानमें पुनः अनर्थकी प्राप्ति होनेसे, क्षणभरके लिये जगत्की शान्तिमें सुख होनेसे निर्विकल्प वा सविकल्प समाधियोंसे क्या प्राप्त होताहै ! ॥ ३५ ॥ यदि निर्विकल्प समाधिमें कभी व्युत्थान न हो तो अक्षय सुखके सदृश सुषुप्तिकोही अमलपदकी प्राप्ति मानलेनीचाहिये ॥ ३६ ॥ रह-

प्राप्यतेसतिदृश्येऽस्मिन्नचकिंनामकेनचित् ॥ यत्रयत्रकिलायातिचित्ततास्यजगद्भ्रमः ॥ ३७ ॥ यथयदिपाषाणरूपतांभावयन्बलात् ॥ किलास्तेतत्तदंतेपिभूयोस्योदेतिदृश्यता ॥ ३८ ॥ नदंदृश्यते तातुल्यानिर्विकल्पसमाधयः ॥ केषांचित्स्थितिमायांतिसर्वैरित्यनुभूयते ॥ ३९ ॥ नचपगंभीरंनते त्यारूढियाताःसमाधयः ॥ भवंत्यग्रपदंशांतंचिद्रूपमजमक्षयम् ॥ ४० ॥ सत्यमित्या

अर्थ—इस मन लक्षण दृश्यके रहनेपर समाधिरूप यत्न करनेवाले पुरुषको क्या दृश्यकी प्रा जहां २ चित्त रहताहै वहां २ जगत्भ्रम अवश्य होताहै ॥ ३७ ॥ यदि आत्मतत्वको न जाननेवाला च्छाके अनुसार में आत्मभिन्न पाषाण आदिका ध्यान करै तो उसको समाधिके अन्तमेंभी पुनः वही दृश्यरूपसे उदय होताहै जैसे सुषुप्ति कदाचित् कहो कि दुःखरहित पाषाणभाव होनेसे जगत्की शांति होजायगी सो नहीं, क्योंकि पाषाणके तुल्य होनेसे तेज, समाधियां किसीके मतमें स्थिरताको नहींप्राप्तहोती, इस बातको सब समाधिनिष्ठ जन अनुभव करते हैं प्रपंच नित्य पाषाणतुल्यता अचेतन समाधियोंमें रूढि मानलेनेसेभी, सर्व संसार शान्तिमय चिद्रूप अग्रपद (और वे समाधि नहीं होसकतीं ॥ ४० ॥

तस्माद्यदीदंसद्दृश्यंतन्नशाम्येत्कदाचन ॥ शाम्येत्तपोजपध्यानैर्दृश्यमित्यज्ञकल्पना ॥ ४१ ॥ आलीन वल्लरीरूपंयथापद्माक्षकोटरे ॥ आस्तेकमलिनीबीजंतथाद्रष्टरिदृश्यधीः ॥ ४२ ॥ यथारसःपदार्थेषु यथातैलंतिलादिषु ॥ कुसुमेषुयथामोदस्तथाद्रष्टरिदृश्यधीः ॥ ४३ ॥ यत्रतत्रस्थितस्यापिकर्पूरादेः सुगंधिता ॥ यथोदेतितथादृश्यंचिद्धातोरुदरेजगत् ॥ ४४ ॥

अर्थ—इसलिये यदि यह दृश्य सत्यहै तो वह कदाचित्भी शान्त नहींहोसकता, क्योंकि तप, जप और ध्यान आदिसे दृश्यकी शान्ति होतीहै यह अज्ञानियोंकी कल्पनाहै ॥ ४१ ॥ जिसप्रकार कमलके बीजमें भावी कमलिनी और लताका रूपहै इसीप्रकार अविद्यासहित द्रष्टामें दृश्यबुद्धिहै ॥ ४२ ॥ जिसप्रकार पदार्थोंमें रस, तिलादिमें तैल, और पुष्पोंमें गन्धहै, उसीप्रकार द्रष्टामें दृश्यहै ॥ ४३ ॥ जिसप्रकार कर्पूरआदि कहींभी हों परन्तु उनमें सुगन्ध रहताहै ऐसेही चिदात्मा चाहे जिस दशामें हो परन्तु उसके उदरमें जगत् रहताहै ॥ ४४ ॥

यथाचात्रतवस्वप्नः संकल्पश्चित्तराज्यधीः ॥ स्वानुभूत्यैवदृष्टांतस्तथात्वद्यस्तिदृश्यभूः ॥ ४५ ॥ तस्माच्चित्तविकल्पस्थपिशाचोबालकंयथा ॥ विनिहंत्येवमप्येतंद्रष्टारंदृश्यरूपिका ॥ ४६ ॥ यथांकुरोंतर्बीजस्यसंस्थितोदेशकालतः ॥करोतिभासुरंदेहंतनोत्येवंहिदृश्यधीः॥ ४७ ॥ द्रव्यस्यत्द्द्येवचसत्क्तिर्यथासदोदितास्त्यस्तमितोज्झितोदरे ॥ द्रव्यस्यचिन्मात्रशरीरिणस्तथास्वभावभूतास्त्युदरेजगत्स्थितिः ॥ ४८ ॥

इत्यार्षेवासिष्ठमहारामायणेवाल्मीकिये देवदूतोक्तेमोक्षोपायेउत्पत्तिप्रकरणे बंधहेतुवर्णनंनाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

अर्थ—जैसे तुमारे मनके अन्तमेंही राज्यकी बुद्धि संकल्प और स्वप्न अपने अनुभवसेही देखेगयेहैं उसीप्रकार दृश्य जगत् है ॥ ४५ ॥ जिसप्रकार पिशाच बालकको मारलेताहै इसीप्रकार चित्तविकल्पकी ये दृश्यरूप पिशाचिका द्रष्टा जो पुरुषहै उसको नष्टकरदेतीहैं ॥ ४६ ॥ जैसे बीजके भीतर स्थित अंकुर देशकाल पाके प्रकाशमान अपना

शरीर प्रकट करताहै वैसेही संस्काररूपसे द्रष्टामें स्थित दृश्य समय और काल पाके अपने स्वरूपका विस्तार करताहै ॥ ४७ ॥ जिसप्रकार विचित्रतासे अप्रतर्क्यकार्य्यकी शक्तिरूप चमत्कृति बीज आदि द्रव्यके भीतर रहती है इसीप्रकार सच्चिदानन्द विग्रह आत्मशरीरके भीतर चिद् अचित् मिलित अतीत और अनागत जगत्सत्ता निवास करती है॥४८॥

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे बन्धहेतुवर्णनं नाम प्रथमःसर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

अज्ञानी भौतिकदेहात्माही मृत्युका भक्ष्यहै तत्ववित् नहीं आकाशज (आकाशसे उत्पन्न) के समान वह चिन्मात्र आत्मा है इस विषयका बर्णन इस द्वितीय सर्गमें कियाजाताहै.

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ इदमाकाशजाख्यानंशृणुश्रवणभूषणम् ॥ उत्पत्त्याख्यंप्रकरणंयेनराघवबुध्यते ॥ १ ॥ अस्तिह्याकाशजोनामद्विजःपरमधार्मिकः ॥ ध्यानैकनिष्ठःसततंप्रजानांचहितेरतः ॥ २ ॥ सचिरंजीवतियदातदामृत्युरचिंतयत् ॥ सर्वाण्येवक्रमेणाहंभूतान्याद्मिकिलाक्षयः ॥ ३ ॥ एनमाकाशजंविप्रंनकस्माद्भक्षयाम्यहम् ॥ अत्रमेकुंठिताशक्तिः खड्गधाराइवोपले ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले हे रामजी ! कर्णोंका भूषण इस आकाशजके आख्यानको आप सुनिये जिसके सुननेसे उत्पत्तिप्रकरणका बोध होताहै ॥ १ ॥ आकाशज नामवाला परम धार्मिक ध्यान (आत्मा) में तत्पर सब प्रजाओंके हितमें निरत (हिरण्यगर्भ) है ॥ २ ॥ उनके बहुत अधिक कालतक जीनेपर मृत्युने विचारा कि, मैं अक्षयरूप सब जीवोंको भक्षण करताहुं ॥ ३ ॥ इस आकाशज ब्राह्मणको क्यों नहीं भक्षण करता ? इसके विषयमें मेरी शक्ति ऐसी कुण्ठित हुई है जैसे पाषाणके ऊपर तलवारकी धारा ॥ ४ ॥

इतिसंचिन्त्यतंहंतुमगच्छत्तत्पुरंतदा ॥ त्यजंत्युद्यमयुक्तानस्वकर्माणिकेचन ॥ ५ ॥ ततस्तत्सदनंयावन्मृत्युःप्रविशतिस्वयम् ॥ तावदेनंदहत्यग्निःकल्पांतज्वलनोपमः ॥ ६ ॥ अग्निज्वालामहामालांविदार्यांतर्गतोह्यसौ ॥ द्विजंदृष्ट्वासमादातुंहस्तेनैच्छत्प्रयत्नतः ॥ ७ ॥ नचाशकत्पुरोदृष्टमपिहस्तशतैर्द्विजम् ॥ बलवानप्यवष्टब्धुंसंकल्पपुरुषंयथा ॥ ८ ॥ अथागत्ययमंमृत्युरपृच्छत्संशयच्छिदम् ॥ किमित्यहंनशक्नोमिभोक्तुमाकाशजंविभो ॥ ९ ॥

अर्थ—ऐसा विचार करके उसको मारनेकेलिये मेरुके मध्यमें प्रसिद्ध सत्यलोक नामवाले उनके नगरमें मृत्यु गया जिस नगरमें उद्यममें समर्थ कोईभी अपने कर्मोंका नहींत्यागता ॥ ५ ॥ उसके अनन्तर मृत्यु जब उनके स्थानमें प्रवेश करने लगा उतनेहीमें कल्पांतके अग्निके समान अग्नि (समाधिके भंगके निरोधके लिये ऊंची भीतिके समान ब्रह्माजीसे संकल्पित अग्नि) इस मृत्युको जलानेलगा ॥ ६ ॥ अग्निज्वालाकी बडी भारी मालाको विदीर्ण करके अग्नि स्थानके भीतर गया और ब्राह्मणको देखकरके प्रयत्नसे हांथसे पकडनाचाहा ॥ ७ ॥ उस ब्राह्मणके सम्मुख अग्नि न देखसंका बलवान् होनेपरभी सैंकडों हाथोंसे संकल्पके पुरुषके समान उसको स्पर्श करनेको समर्थ नहुआ ॥ ८ ॥ इसके अनन्तर संशयके छेदन करनेवाले जो यमहैं उनके निकट मृत्युने आके पूछा कि इस आकाशज ब्राह्मणको मैं क्योंनहीं भक्षण करसकता ॥ ९ ॥

यमउवाच ॥ ॥ मृत्योनकिंचिच्छक्तस्त्वमेकोमारयितुंबलात् ॥ मारणीयस्यकर्माणितत्कर्तॄणीतिनेतरत्॥१०॥ तस्मादेतस्यविप्रस्यमारणीयस्ययत्नतः ॥ कर्माण्यन्विष्यतेपात्वंसाहाय्येनैनमत्स्यसि॥११॥ ततःसमृत्युर्बभ्रामतत्कर्मान्वेषणाद्दतः ॥ मंडलानिदिगंतांश्चसरांसिसरितोदिशः ॥ १२ ॥ वनजंगलजालानिशैलानब्धितटानिच ॥ द्वीपांतराण्यरण्यानिनगराणिपुराणिच ॥ १३ ॥ ग्रामाण्यखिलराष्ट्राणिदेशांतर्गहनानिच ॥ एवंभूमंडलंभ्रांत्वानकुताश्चित्सकानिचित् ॥ १४ ॥ तान्याकाशजकर्माणिलब्धवान्मृत्युरुद्यतः ॥ वंध्यापुत्रमिवप्राज्ञःसंकल्पाद्रिमिवापरः ॥ १५ ॥ समपृच्छद्यथागत्ययमंसर्वार्थकोविदम् ॥ परायणंहिप्रभवःसंदेहेष्वनुजीविनाम् ॥ १६ ॥

अर्थ—यमजी बोले हे मृत्यो ! तुम अकेले सहायरहित किसीके मारनेमें समर्थ नहीं हो मारण करने योग्य जो प्राणी हैं उसके कर्म मारण करनेमें समर्थ हैं, इसके सिवाय और कुछभी तुमारी अशक्तिका कारण नहीं है ॥ १० ॥ इ-

---

१ आकाशज से यहांपर लिंगसमष्टिआत्मा हिरण्यगर्भका ग्रहणहै आकाशरूप ब्रह्मसे उत्पन्न हेनेसे आकाशज नामहै.

सलिये मारण करने योग्य इस ब्राह्मणके कर्मोंको यत्नसे तुम खोजो उन कर्म्मोंकी सहायतासे तुम इसका भक्षण करसकोगे॥११॥ इसके अनन्तर मृत्युने, सब मण्डलों (जिलो) दिगन्तोंमें, तडागोंमे, नदियोंमें, दिशाओंमें, वनजंगलोंके, समूहोंमें, पर्वतोंपर, समुद्रके तटोंपर, दूसरे द्वीपोंमें, अरण्योंमें, नगरोंमें,पुरोंमें, ग्रामोंमें, सम्पूर्ण राज्योंमें, तथा भयंकर अन्य देशोंमें उस ब्राह्मणके कर्मोंको अन्वेषण (खोज) करनेमें आदरयुक्त होके भ्रमण (किसदेश वा कालमें कैसे कर्म किया इस बातका ध्यान)किया।इसप्रकार उद्योगमें तत्पर मृत्यु सम्पूर्ण भूमण्डलमें भ्रमण किया परन्तु वन्ध्याके पुत्रको वा संकल्पके पर्वतको संकल्पकरनेवालेसे अन्य जैसे नहीं पाता ऐसेही आकाशज ब्राह्मणके कर्मोंको कहींभी नहीं पाता ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ इसके अनन्तर सम्पूर्ण अर्थोंके जाननेवाले जो यम हैं उनसे मृत्युने आके पूंछा, क्योंकि सन्देह होनेपर भृत्योंके शरणस्वामी (मालिक) ही होतेहैं ॥ १६ ॥

मृत्युरुवाच ॥ ॥ आकाशजस्यकर्माणिक्वस्थितानिवदप्रभो ॥ धर्मराजोथसंचिंत्यसुचिरंप्रोक्तवानिदम् ॥ १७ ॥ आकाशजस्यकर्माणिमृत्योसंतिनकानिचित् ॥ एषआकाशजोविप्रोजातःखादेवकेवलात् ॥ १८ ॥ आकाशादेवयोजातः सव्योमैवामलंभवेत् ॥ सहकारीणिनोसंतिनकर्माण्यस्यकानिचित् ॥१९॥ संबंधः प्राक्तनेनास्यनमनागपिकर्मणा ॥ अस्तिवंध्यासुतस्येवतथाऽजाताकृतेरिव ॥२०॥

अर्थ—मृत्युजी बोले हे प्रभो ! आकाशज ब्राह्मणके कर्म कहां पर है सो बताइये इसके अनन्तर धर्मराज दीर्घकालतक विचार करके यह बात बोले ॥ १७ ॥ हे मृत्यो ! इस आकाशज ब्राह्मणके (प्रारब्धाधिकारी फलोंके आरंभसेही विनाश होनेसे संचित कर्म्मोंका ज्ञानसे बाध होनेसे और आगामी कर्मोंके बीजके अभावसेही अभावहोनेसे) कोईभी कर्म नहीं है यह आकाशज केवल आकाश (ब्रह्म) सेही उत्पन्न हुआ है ॥ १८ ॥ जो केवल आकाशसे उत्पन्न होताहै वह आकाशकेही समान निर्मल होताहै, इसलिये इस आकाशज ब्राह्मणके राग अभिमान आदि वा मृत्युके मारनेके सहायक इस जन्मके कोईभी कर्म नहीं है ॥ १९ ॥ अनुत्पन्न आकारवाले वन्ध्यापुत्रके समान इस आकाशज ब्राह्मणका पूर्वजन्मके कर्मोंके साथ कुछभी सम्बन्ध नहीं है ॥ २० ॥

कारणानामभावेनतस्मादाकाशमेवसः ॥ नैतस्यपूर्वकर्मास्तिनभसीवमहाद्रुमः ॥ २१ ॥ नैतदस्यावशंचित्तमभावात्पूर्वकर्मणाम् ॥ अद्यतावदनेनाद्यनंकिंचित्कर्मसंचितम् ॥ २२ ॥ एवमाकाशको [illegible] विशदाकाशरूपिणी ॥ स्वकारणेस्थितोनित्यःकारणानिनकानिचित् ॥ २३ ॥ प्राक्तनानिनसंत[illegible] र्माण्यद्यकरोतिनो ॥ किंचिदप्येवमेषोत्रविज्ञानाकाशमात्रकः ॥ २४ ॥

अर्थ—कारणोंके अभावसे यह आकाशरूपही है जैसे आकाशमें महावृक्ष नहीं है ऐसेही इसके पूर्वकर्म नहीं है ॥२१॥ पूर्वजन्मके कर्मोंके अभावसे इस आकाशज ब्राह्मणका चित्त वासनाके वशीभूत नहीं है और इस जन्ममें मृत्युके भक्षण योग्य कोईभी कर्म इन्होंने संचित नहीं किया॥२२॥ इसप्रकार आकाशरूप यह आकाशज महान् आकाशरूप अपने कारणमें नित्य (ब्रह्म) रूपसे स्थितहै इसके अन्यकारण कोईभी नहीं हैं ॥ २३ ॥ पूर्वजन्मके इनके कर्म है नहीं और इस जन्ममें कुछ कर्म करते नहीं, इसलिये विज्ञानमात्र आकाशरूपही हैं ॥ २४ ॥

प्राणस्पंदोस्ययत्कर्मलक्ष्यतेचास्मदादिभिः ॥ दृश्यतेऽस्माभिरेवंतन्नत्वस्यास्त्यत्रकर्मधीः ॥ २५ ॥ संस्थिताभावयंतीवचिद्रूपैवपरात्पदात् ॥ भिन्नमाकारमात्मीयंचित्स्तंभेशालभंजिका ॥ २६ ॥ तथैव परमार्थात्सम्पन्नभूतःस्थितोद्विजः ॥ यथाद्रवत्वंपयसिशून्यत्वंचयथांबरे ॥ २७ ॥ स्पंदत्वंचयथा वायोस्तथै परमेपदे ॥ कर्माण्यद्यतनान्यस्यसंचितानिनसंतिहि ॥ २८ ॥

अर्थ—यह प्राणोंकी गति और क्रियाशक्ति इनकी जो लक्षित होतीहै वह हम लोगोंको अविद्यासे देख पडती है इनको उन प्राण आदिके व्यापारमें सत्यता बुद्धि नहीं है ॥ २५ ॥ चित्‌रूपी स्तम्भ (खम्भे) में चित्‌रूपिणी प्रतिमा अपने रूपको चित् विलक्षण भावना करतीहुई स्थित है, अर्थात् इनका रूप भावनामात्र है वास्तविक नहीं है ॥ २६ ॥ परमपद आत्मरूपसे उत्पन्न आत्मरूप यह आकाशज ब्राह्मण ऐसे स्थितहै जैसे दुग्धमें द्रवत्व अथवा आकाशमें शून्यताहै ॥ २७ ॥ जैसे वायुमें स्पन्द है, वैसेही परमपदमें यह आकाशज है, इस जन्मके और संचितकर्म इनके कुछभी नहीं है ॥ २८ ॥

नपूर्वाण्येषतेनेहनसंसारवशंगतः ॥ सहकारिकारणानामभावेयःप्रजायते ॥ २९ ॥ नासौस्वकारणाद्भिन्नोभवतीत्यनुभूयते ॥ कारणानामभावेनतस्मादेषस्वयंभवः ॥ ३० ॥ कर्तानपूर्वंनाप्यद्यकथमाक्रम्यतेवद ॥ यदैवकल्पनांबुद्ध्यामृतिनाम्नींकरिष्यति ॥ ३१ ॥ पृथ्व्यादिमानयमहमितियस्यचनिश्चयः ॥ सपार्थिवोभवत्याशुग्रहीतुंसचशक्यते ॥ ३२ ॥

अर्थ—और न इनके पूर्वजन्मकेही कर्म हैं, इससे ये संसारके वशमें नहीं हैं सहकारी कारणोंके अभावसे जो उत्पन्न होताहै, वह अपने कारणसे भिन्न नहीं है यह वार्ता अनुभूत है इसलिये कारणोंके अभावसे ये स्वयंभू हैं ॥ २९॥ ॥३०॥ जब इन स्वयम्भूने न पूर्वजन्ममें कर्म किया और न इस जन्ममें तब कहो भला मृत्यु इनके ऊपर कैसे आक्रमण करै? जो जीव यह निश्चय करताहै कि पृथिवी आदिका संघात जो देहहै वही मैं हैं, वह मूढ पार्थिवही होजाताहै और उसके विषयमें जब ब्रह्माजी बुद्धिसे मृत्युकी कल्पना करतेहैं तभी तुम (मृत्यु) उसको ग्रहण करसकतेहो॥३१॥३२॥

पृथ्व्यादिकलनाभावादेषविप्रोनरूपवान् ॥ दृढरज्ज्वेवगगनंग्रहीतुंनैवयुज्यते ॥ ३३ ॥ मृत्युरुवाच ॥ भगवन्जायतेशून्यात्कथंनामवदेतिमे ॥ पृथ्व्यादयःकथंसंतिनसंतिवदवाकथम् ॥ ३४ ॥ यम उवाच ॥ नकदाचनजातोसौनचनास्तिकदाचन ॥ द्विजःकेवलविज्ञानभामात्रंतत्तथास्थितः ॥ ३५ ॥ महाप्रलयसंपत्तौनकिंचिदवशिष्यते ॥ ब्रह्मास्तेशांतमजरमनंतात्मैवकेवलम् ॥ ३६ ॥ शून्यंनित्यो दितंसूक्ष्मंनिरुपाधिपरंस्थितम् ॥ तदातदनुग्रेनास्यनिकटेद्रिनिभंमहः ॥ ३७ ॥ संविन्मात्रस्वभाव त्वादेहोहमितिचेतति ॥ काकतालीयवद्भ्रांतमाकारंतेनपश्यति ॥ ३८ ॥

अर्थ—पृथिवी आदिकी भावनाके अभावसे यह ब्राह्मण रूपवान् नहींहै इसलिये जैसे दृढ रज्जुसे आकाशका ग्रहण नहीं हो सकता ऐसेही इसकाभी ग्रहण नहीं होसकता ॥ ३३ ॥ मृत्यु बोले हे भगवन् निर्विकार शून्यसे विकाररूपकी उत्पत्ति कैसे, और अजन्माका जन्म भी कैसे ? और पृथिवी आदि कैसे हैं और नहींभीहै ? यह विषय आप कहिये ॥ ३४ ॥ यमजी बोले यह द्विज केवल ज्ञानमात्रसे जैसा है वैसाही स्थितहै क्योंकि यह कभी उत्पन्न नहीं हुआ और इसकी सत्ताका अभावभी कदाचित् नहींहै तात्पर्य यह कि आकाशशब्दसे परमात्माका ग्रहणहै पृथिवी आदिकी असत्ता शून्य अभिप्रायसे नहीं कही किन्तु कार्यकी सत्ता कारणकी सत्तासे पृथक् नहीं और इसी प्रकार अजका जन्मभी विवर्तवादके अभिप्रायसे कहागयाहै न कि परिणामवादके अभिप्रायसे ॥ ३५ ॥ महाप्रलयके समयमें शांत, अजर, अनन्तात्म, शून्य, नित्यउदित, सूक्ष्म और उपाधिरहित केवल परब्रह्मही रहजाताहै इसके अनन्तर सृष्टिके आरंभ कालमें वासना और अदृष्टसे संचित जीवकी अविद्याके कारणसे और इस आत्माका ज्ञानमात्र, स्वभाव होनेसे इसके सम्मुख विषयरूपसे पर्वतके समान अनिवार्य विराट्रूप अथवा चतुर्मुखदेह "अहम्" इस अभिलापके योग्य और स्थूलसे जो रूप किंचित् स्फुरित होताहै उस समय हमलोग उसी अविद्याके कारणसे अकस्मात् स्वप्नके समान भ्रांत मिथ्या भूत आकार इस ब्रह्मको देखतेहैं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

सएषब्राह्मणस्तस्मिन्सर्गादावंबरोदरे ॥ निर्विकल्पश्चिदाकाशरूपमास्थायसंस्थितः ॥ ३९ ॥ नास्य देहोनकर्माणिनकर्तृत्वं ॥ एषशुद्धचिदाकाशोविज्ञानघनआततः ॥ ४० ॥ प्राक्तनंवासनाजालं किंचिदस्यनविद्यते ॥ केवलंव्योमरूपस्यभारूपस्येवतेजसः ॥ ४१ ॥ वेदनामात्रसंशांतावीदृशोपिन दृश्यते ॥ तस्माद्यथाचिदाकाशस्तथातत्प्रतिपत्तयः ॥ ४२ ॥

अर्थ—उसी चतुर्मुख आकारसे सृष्टिकी आदिमें यह ब्राह्मण आकाशके उदरमें निर्विकल्प चिदाकाशरूपसे स्थितहै अर्थात् अन्यकी दृष्टिसे अध्यस्त देह आदिसे इनके निर्विकल्पता आदि व्यवहारकी क्षति नहीं है ॥ ३९ ॥ इनके शरीर, कर्म, कर्तृत्व और वासना ये कोईभी नहीं हैं, इसलिये ये शुद्ध चिदाकाश विज्ञानघन सर्वव्यापक हैं ॥४०॥ केवल आकाश, भाव और तेजरूप यह ब्रह्महै, इसका पूर्वजन्मका वासनाजाल कुछभी नहीं है ॥ ४१ ॥ बाह्यमुख चित्तकी प्रवृत्तिके शान्त होनेपर ऐसा प्रातिभासिक रूपभी यह नहीं देखपडता, इसलिये जैसा चिदाकाश है वैसाही अधिष्ठानतत्वके परिचयसे विषयका बाध होनेसे चित्प्रवृत्तियांभी चिदाकाशरूपसे रहती है ॥ ४२ ॥

कुतःकिलात्रपृथ्व्यादेःकीदृशःसंभवःकथम् ॥ एतदाक्रमणेमृत्योतस्मान्मायत्नवान्भव ॥ ४३ ॥ ग्रही तुंयुज्यतेव्योमनकदाचनकेनचित् ॥ श्रुत्वेतद्विस्मितोमृत्युर्जगामनिजमंदिरम् ॥४४॥ श्रीरामउवाच ॥ ब्रह्मैषकथितोदेवस्त्वयामेप्रपितामहः ॥ स्वयंभूरजएकात्माविज्ञानात्मेतिमेमतिः ॥ ४५ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवमेतन्मयारामब्रह्मैषकथितस्तव ॥ विवादमकरोन्मृत्युर्यमेनैतत्कृतेपुरा ॥ ४६ ॥

अर्थ—जहांपर चित्की प्रवृत्तियोंकाभी संभव नहीं हैं वहांपर पृथिवी आदिका संभव कैसा और किसप्रकार होसकताहै ? इसलिये हे मृत्यो ! तुम इस (आकाशज ब्राह्मण) के ऊपर आक्रमण करनेमें परिश्रम न करो ॥ ४३ ॥ क्योंकि आकाशको ग्रहण करनेको कभी कोई समर्थ नहीं होता, इस बातको सुनके आश्चर्यमें युक्त मृत्यु अपने स्था-

नको गया ॥ ४४ ॥ श्रीरामजी बोले आकाशज इस नामान्तरसे प्रपितामह स्वयंभु अज, एकात्मा और जीव समष्टि-रूप इत्यादि नामवाले ब्रह्महीको आपने प्रतिपादन किया तथा जगत् मिथ्यात्वभी इस आकाशजके आख्यानसे आपने सिद्ध किया यह वार्ता इस आख्यानसे मेरी बुद्धिमें आतीहै ॥ ४५ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले हे रामजी! मैंने इसप्रकार ब्रह्मही आपसे कहा प्रथम सत्ययुगमें मृत्युनें यमसे यह संवाद कियाथा ॥ ४६ ॥

मन्वंतरेसर्वभक्षोयदामृत्युर्हरन्प्रजाः ॥ बलमेत्यब्जजाक्रांतावारंभमकरोत्स्वयम् ॥ ४७ ॥ तदैवधर्मराजेनयमेनाश्वनुशासितः ॥ यदेवक्रियतेनित्यंरतिस्तत्रैवजायते ॥ ४८ ॥ ब्रह्माकिलपराकाशवपुराक्रम्यतेकथं ॥ मनोमात्रंचसंकल्पःपृथ्व्यादिरहिताकृतिः ॥ ४९ ॥ यश्चिव्द्योमचमत्कारःकिलाकारानुभूतिमान् ॥ सचिव्द्योमैवनोतस्यकारणत्वंनकार्यता ॥ ५० ॥

अर्थ—मन्वन्तरके सन्धिकालमें सर्वभक्षी मृत्यु जब सब प्रजाओंका प्राण हरण कररहाथा, उससमय आत्मके ऊपर आक्रमण करनेका स्वयं (कर्मादिकी सहायता विना) आरंभ किया ॥ ४७ ॥ जिस २ समय में आकाशज ब्राह्मण (ब्रह्मा) के ऊपर आक्रमण किया, उस २ समय धर्मराज यमनें उसको शीघ्र शिक्षा (तुमारा क्रम इनके ऊपर नहीं चलसकता इस बातकी शिक्षा) दिया, और प्रत्येक सृष्टिमें मृत्यु इस कार्यको इसलिये करता कि जो कार्य्य जो नित्य किया करता है उसको उस कार्य्य करनेका व्यसन होजाता है ॥ ४८ ॥ पर आकाशरूप वाले ब्रह्माके ऊपर भला मृत्यु कैसे आक्रमण करसकताहै ? क्योंकि पृथिवी आदिकी आकृतिसे रहित मनके संकल्पमात्रसे इसका शरीरहै ॥ ४९ ॥ जो चिदाकाशका चमत्कार है और आकारका केवल अनुभवमात्रहै, वह तो सत् आकाशमात्रहै वह कार्य्य कारण दोनोंसे रहितहै ॥ ५० ॥

आकाशस्फुरदाकारःसंकल्पपुरुषोयथा ॥ पृथ्व्यादिरहितोभातिस्वयंभूर्भासतेतथा ॥ ५१ ॥ निर्मलेव्योम्निमुक्तालीसंकल्पस्वप्नयोःपुरम् ॥ अपृथ्व्यादियथाभातिस्वयंभूर्भासतेतथा ॥ ५२ ॥ नदृश्यमस्तिनद्रष्टापरमात्मनिकेवले ॥ स्वयंचितातथाव्येपस्वयंभूरितिभासते ॥ ५३ ॥ संकल्पमात्रमेवैतन्मनोब्रह्मेतिकथ्यते ॥ संकल्पाकाशपुरुषोनास्यपृथ्व्यादिविद्यते ॥ ५४ ॥

अर्थ—आकाशमें जैसे संकल्पका पुरुष स्फुरितआकारवाला, अथवा नीचे मुखवाला इन्द्रनीलमणिके समान महाकटाह (कडाहा) के आकारवाला, पृथिवी आदिसे रहितभी आकाश भान होताहै वैसाही पृथिवी आदिसे रहित ब्रह्माका शरीरभी भासताहै ॥ ५१ ॥ संकल्प तथा स्वप्नमें निर्मल आकाशमें पृथिवी आदिके न रहनेपर मोतियोंकी पंक्ति जैसे भासती है, ऐसेही स्वयंभू भासते हैं ॥ ५२ ॥ केवल परमात्मामें न दृश्यहै न द्रष्टाहै, स्वयं चिन्मात्र होनेपरभी यह परमात्मा स्वयं ऐसा भासताहै ॥ ५३ ॥ ब्रह्मका संकल्पमात्र, और मनरूपही, ब्रह्मा कहाताहै, संकल्पसे आकाशमें जैसा पुरुष भासताहै वैसाही ब्रह्माहै, न कि पृथिवी आदिसे बने हैं ॥ ५४ ॥

यथाचित्रकृदंतःस्थानिर्देहाभातिपुत्रिका ॥ तथैवभासतेब्रह्माचिदाकाशाच्छरंजनम् ॥ ५५ ॥ चिव्द्योमकेवलमनंतमनादिमध्यंब्रह्मेतिभातिनिजचित्तवशात्स्वयंभूः ॥ आकारवानिवपुमानिववस्तुतस्तुवंध्यातनूजइवतस्यतुनास्तिदेहः ॥ ५६ ॥

इत्यार्षेवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे बंधहेतुवर्णनंनाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

अर्थ–जैसे चित्रकारके अन्तःकरणमें देहरहित प्रतिमा संकल्पसे भासती है वैसेही चिदाकाशका स्वच्छप्रतिबिम्बग्राहक मनही ब्रह्माके शरीराकारसे भासताहै ॥ ५५ ॥ आदि अन्त मध्यरहित चिदाकाशही अपने मनके संकल्पके वशसे आकारवानके सदृश ब्रह्मा स्वयंभू पुमान् इत्यादि नामसे भान होताहै, यथार्थ में वन्ध्यापुत्रके समान ब्रह्माके देह नहीं है ॥ ५६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे उत्पत्तिप्रकरणे आद्यसृष्टिकर्तृवर्णनं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

परमात्माका मनोमात्रही ब्रह्माहैं, और उसका संकल्पमय यह जगत्है, इसलिये यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मनोराज्यके सदृश असत्है इस विषयका वर्णन इस तृतीयसर्गमें कियाजाताहै ॥

श्रीरामउवाच ॥ एवमेवमनःशुद्धंपृथ्व्यादिरहितंत्वया ॥ मनोब्रह्मेतिकथितंसत्यंपृथ्व्यादिवर्जितम् ॥ १ ॥ तदत्रप्राक्तनीब्रह्मन्स्मृतिःकस्मान्नकारणम् ॥ यथाममतवान्यस्यभूतानांचेतिमेवद ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ पूर्वदेहोस्तियस्याद्यपूर्वकर्मसमन्वितः ॥ तस्यस्मृतिःसंभवतिकारणंसंसृतिस्थितेः ॥ ३ ॥ ब्रह्मणःप्राक्तनंकर्मयदाकिंचिन्नविद्यते ॥ प्राक्तनीसंस्मृतिस्तस्यतदोदेतिकुतःकथम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-पृथिवीआदि रहित शुद्धरूप ब्रह्माका मनही ब्रह्माहै यह वार्ता ऐसीही प्रसिद्धहै, और यदि पृथिवी आदिसे वर्जित सत्य मनही ब्रह्माहै यह आपने कहा, तो हे ब्रह्मन्! मनवासना जालरूप होनेसे, जैसे मेरी आपकी तथा और प्राणियोंकी पूर्वजन्मकी स्मृति इस जन्मका कारणहै, ऐसेही ब्रह्माके इस शरीरमें पूर्वजन्मके शरीर त्यागकालकी स्मृति क्यों कारण नहीं? यह वार्ता आप कृपाकरके कहिये ॥ १ ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—पूर्वजन्मके कर्मोंसे संयुक्त पूर्वजन्मका शरीर (लिंग शरीर) जिसका इसजन्ममें है, उसीको संसारमें स्थितिकेलिये पूर्वजन्मकी स्मृति कारणहै ॥ ३ ॥ तत्वदृष्टिसे जब ब्रह्माका पूर्वजन्मका कर्म कुछ नहीं है सो उनकी पूर्वजन्मकी स्मृति कैसे उदय होसकती है? ॥ ४ ॥

तस्मादकारणंभातिवास्वचित्तैककारणम् ॥ स्वकारणादनन्यात्मास्वयंभूःस्वयमात्मवान् ॥ ५ ॥ आतिवाहिकएवासौदेहोस्त्यस्यस्वयंभुवः ॥ नत्वाधिभौतिकोरामदेहोऽजस्योपपद्यते ॥ ६ ॥ श्रीरामउवाच ॥ आतिवाहिकएकोस्तिदेहोन्यस्त्वाधिभौतिकः ॥ सर्वासांभूतजातीनांब्रह्मणोस्त्येकएवकिम् ॥ ७ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ सर्वेषामेवदेहौद्वौभूतानांकारणात्मनाम् ॥ अजस्यकारणाभावादेकएवातिवाहिकः ॥ ८ ॥

अर्थ—इसलिये कारणरहित, अथवा केवल अपना (देहद्रष्टाका) चित्तवान् कारण ब्रह्माका शरीर भान होताहै, अतएव स्वयंभु अपने कारणसे अभिन्न आत्मावालेहैं ॥ ५ ॥ हे रामजी? स्वयंभु वा ब्रह्माका यह आतिवाहिक अर्थात् अर्चिर्धूमादि मार्गसे लोकान्तरमें प्राप्त करनेमें समर्थ हमलोगोंके लिंगशरीरके समान शरीरहै, आधिभौतिक (स्थूलभूतोंसे उत्पन्न) ब्रह्माका शरीर युक्त नहीं होसकता ॥ ६ ॥ श्रीरामजी बोले, हे ब्रह्मन्! सम्पूर्ण प्राणीमात्रका एक आतिवाहिक (लिंग वा सूक्ष्म) शरीरहै, दूसरा आधिभौतिक (स्थूल) शरीरहै वा एक ब्रह्माहीकाहै? ॥ ७ ॥ श्रीवसिष्ठ बोले, पंचीकृतभूत कारणसे उत्पन्न सम्पूर्ण प्राणियोंके आतिवाहिक तथा आधिभौतिक (सूक्ष्म तथा स्थूल) दोनों शरीरहैं, परन्तु ब्रह्माका कारण न होनेसे केवल एक आतिवाहिक (सूक्ष्म) ही शरीरहै ॥ ८ ॥

सर्वासांभूतजातीनामेकोजःकारणंपरम् ॥ अजस्यकारणंनास्तितेनासावेकदेहवान् ॥ ९ ॥ नास्त्येवभौतिकोदेहःप्रथमस्यप्रजापतेः ॥ आकाशात्माचभात्येषआतिवाहिकदेहवान् ॥ १० ॥ चित्तमात्रशरीरोसौनपृथ्व्यादिकमात्मकः ॥ आद्यःप्रजापतिर्व्योमवपुःप्रतनुतेप्रजाः ॥ ११ ॥ ताश्चचिव्योमरूपिण्योविनान्यैःकारणांतरैः ॥ यद्यतस्तत्तदेवेतिसर्वैरेवानुभूयते ॥ १२ ॥

अर्थ—सम्पूर्ण जातिके प्राणियोंका परम कारण केवल एक अज (ब्रह्मा) ही है और अजका कारण कोईभी नहीं इसलिये इनके केवल एक (सूक्ष्म) शरीरहै ॥ ९ ॥ सबसे प्रथम प्रजापतिका भौतिक देह नहीं है केवल चिदाकाशरूप एक अतिवाहिक (सूक्ष्म) शरीरवाला यह ब्रह्मा प्रकाश कर रहाहै ॥ १० ॥ इनकी शरीरकी रचना केवल चित्त मात्रसे है न कि पृथिवी आदिसे सबसे आदिभूत आकाश शरीरवाले प्रजापति ब्रह्मा प्रजाका विस्तार करतेहै ॥ ११ ॥ वे सम्पूर्ण प्रजा ब्रह्माके संकल्पके अतिरिक्त कोई कारणांतर न होनेसे केवल चिदाकाशरूपही है क्योंकि जो जिस उपादान कारणसे उत्पन्न होता (जैसे सुवर्ण कटक कुण्डलादि) है वह उसका रूपही है इस विषयका अनुभव सबको है इस सम्पूर्ण ब्रह्मांडमात्रकी ब्रह्मरूपता सिद्ध हुई ॥ १२ ॥

निर्वाणमात्रंपुरुषःपरोबोधःसएवच ॥ चितमात्रंतदेवास्ते नायाति वसुधादिताम् ॥ १३ ॥ सर्वेषांभूतजातानांसंसारव्यवहारिणाम् ॥ प्रथमोसौप्रतिस्पंदश्चित्तदेहःस्वतोदयः ॥ १४ ॥ अस्मात्पूर्वात्प्रतिस्पंदादनन्यैतत्स्वरूपिणी ॥ इयंप्रविसृताद्दष्टिःस्पंदद्दष्टिरिवानिलात् ॥ १५ ॥ प्रतिमानाकृतेरस्मात्प्रतिभामात्ररूपधृक् ॥ विभात्येवमयंसर्गःसत्यानुभववान्स्थितः ॥ १६ ॥

अर्थ—चित्तमात्र उपाधिसे उत्पन्न, चित्तकी भ्रान्तिसे चित्तमात्र होनेपरभी यथार्थमें पुरुष, निर्वाणमात्र, केवल चिदाकाशरूप परम बोधस्वरूपही है, वह पृथिवी आदिके स्वरूपको कदापि नहीं प्राप्त होसकता ॥ १३ ॥ संसारमें

व्यवहार करनेवाले सब प्राणीमात्रका यह चित्तमात्र देहवाला, अहंभावका उदय प्रथम प्रतिस्पन्दहै ॥ १४ ॥ इस प्रथम प्रतिस्पन्द (उत्पत्ति वा गति) से उत्पन्न विस्तृत यह सृष्टि इस अपने उपादान कारणसे ऐसे अभिन्नरूपहै जैसे वायुके प्रतिस्पन्दसे उत्पन्न दूसरे वायुकी सृष्टि ॥ १५ ॥ इसप्रातिभासिक आकारवाले ब्रह्मासे उत्पन्न यह सम्पूर्ण जगत् प्रातिभासिकरूप धारीही है, यथार्थमें सत्य बोधस्वरूपही है ॥ १६ ॥

दृष्टांतोत्रभवत्स्वप्नस्वप्नस्त्रीसुरतंयथा ॥ असदप्यर्थसंपत्त्यासत्यानुभवभासुरम् ॥१७॥ अपृथ्व्यादिमयोभातिव्योमाकृतिरदेहकः ॥ सदेहइवभूतेशःस्वात्मभूःपुरुषाकृतिः ॥ १८ ॥ संवित्संकल्परूपत्वान्नोदेतिससुदेतिच ॥ स्वायत्तत्वात्स्वभावस्यनोदेतिनचशाम्यति ॥ १९ ॥ ब्रह्मासंकल्पपुरुषःपृथ्व्यादिरहिताकृतिः ॥ केवलंचित्तमात्रात्माकारणंत्रिजगत्स्थितेः ॥ २० ॥

अर्थ—इसमें दृष्टान्त यह है कि जैसे एकस्वप्नमें दुसरा स्वप्न उसमें स्त्रीका सुरत, उसमें स्थूलपदार्थकी सम्पत्ति न होनेसेभी व्यावहारिक प्रयोजन सिद्धिसे प्रकाशमान होताहै ऐसाही यह संसारहै ॥ १७ ॥ इससे यह सिद्ध हुआ कि पृथिवी आदिसे शून्य, आकाशमात्र शरीरवाले देहरहितभी सबप्राणियोंकेस्वामी स्वात्मभूब्रह्मा देहसहित पुरुषके आकारके समान भासमान होरहेहै ॥१८॥ केवल ज्ञान और संकल्पमात्र होनेसे परमार्थदृष्टिसे इनका शरीर नहीं उदय होता और भ्रान्तिसे उदय होताहै जगत्की सत्ताके समान अविद्याके अधीन न होनेसे और अपने चित्मात्र स्वभावसे स्थित होनेसे न तो यह उदय होताहै और न शान्त होताहै ॥ १९ ॥ ब्रह्मा पृथिवी आदिके आकारसे रहित संकल्पके पुरुष केवल चित्तमात्र स्वरूपवाले तीनोंलोककी स्थितिके कारणहैं ॥ २० ॥

संकल्पएषकचतियथानामस्वयंभुवः ॥ व्योमात्मैवतथाभातिभवत्संकल्पशैलवत् ॥ २१ ॥ आतिवाहिकमेवांतर्विस्मृत्यादृढरूपया ॥ आधिभौतिकबोधेनमुधाभातिपिशाचवत् ॥ २२ ॥ इदंप्रथमतोयोगसंप्रबुद्धंमहाचितेः ॥ नोदेतिशुद्धसंवित्त्वादातिवाहिकविस्मृतिः ॥ २३ ॥ आधिभौतिकजातेनास्योदेतिपिशाचिका ॥ असत्यामृगतृष्णेवमिथ्याजाड्यभ्रमप्रदा ॥ २४ ॥

अर्थ—जैसे प्राणियोंके कर्मोंके अनुरोधसे जिस २ प्रकारसे ब्रह्माका संकल्प विकसित होताहै वैसाही आकाशात्मा यह संसार आपके संकल्पके पर्वतके समान भासमान होताहै ॥ २१ ॥ स्वरूप तथा आतिवाहिक दृढरूप विस्मृतिसे, और आधिभौतिकके बोधसे मिथ्यापिशाचके तुल्य सबका स्थूलशरीर भान होरहाहै ॥ २२ ॥ और यह ब्रह्माका शरीर, महाचिति अर्थात् माया शबलित ब्रह्मकी प्रथमता अर्थात् संपूर्ण स्थूल प्रपंचकी अपेक्षासे कारणीभूत सूक्ष्मरूपताहै उस प्रथमरूपतामें सत्यसंकल्पसे वह अज्ञानके आच्छादनसे रहित वैसाही प्रत्यक्ष सम्पूर्ण बुद्धरूपहै क्योंकि शुद्धसंवित्होनेके कारण उसमें आतिवाहिककी विस्मृति नहीं उदय होती ॥२३ ॥ आधिभौतिकके समूहसे असत्य मृगतृष्णाके समान मिथ्या जडता और भ्रम देनेवाली पिशाचिका इस ब्रह्माको नहीं उदय होती ॥ २४ ॥

मनोमात्रंयदाब्रह्मानपृथ्व्यादिमयात्मकः ॥ मनोमात्रमतोविश्वंयद्यज्जातंतदेवहि॥२५॥ अजस्यसहकारीणिकारणानिनसंतियत् ॥ तज्जस्यापिनसंत्येवतानितस्मात्तुकानिचित् ॥ २६ ॥ कारणात्कार्यवैचित्र्यंतेननात्रास्तिकिंचन ॥ यादृशंकारणंशुद्धंकार्यंतादृगितिस्थितम् ॥ २७ ॥ कार्यकारणताह्यत्रनकिंचिदुपपद्यते ॥ यादृगेवपरंब्रह्मतादृगेवजगत्त्रयम् ॥ २८ ॥

अर्थ—परमात्माका मनोमात्रही ब्रह्माहै पृथिवी आदिमयनहीं इसलिये ब्रह्माका संकल्पमात्र होनेसे यह सम्पूर्ण विश्व मनोमात्रहै क्योंकि जो जिस उपादान कारणसे उत्पन्न होताहै वह वही (उपादानरूपही) है ॥२५॥ अज (ब्रह्मा) के कोई सहकारी कारण नहीं है इस कारणसे ब्रह्मासे उत्पन्न जगत्केभी कोई सहकारी कारण नहीं है इससे जगत् मनोमात्र मन ब्रह्मामात्र और ब्रह्मा अद्वैतब्रह्ममात्र है यह सिद्धहुआ ॥ २६ ॥ इस हेतुसे कारणसे कार्यकी विचित्रता यहांपर कुछभी नहीं है जैसा शुद्ध (ब्रह्मरूप) कारणहै वैसाही कार्य (ब्रह्मरूप जगत्) भी है यह सिद्धांतहै ॥ २७ ॥ यहांपर कार्यकारणता किंचित्भी उपपन्न (युक्त) नहीं होसकती जैसा शुद्धब्रह्महै वैसाही तीनों जगत्हैं ॥ २८ ॥

मनस्तामिवयातेनब्रह्मणातन्यतेजगत् ॥ अनन्यदात्मनःशुद्धाद्द्रवत्वमिववारिणः ॥ २९ ॥ मनसातन्यतेसर्वमसदेवेदमाततम् ॥ यथासंकल्पनगरंयथागंधर्वपत्तनम् ॥ ३० ॥ आधिभौतिकतानास्तिरज्ज्वामिवभुजंगता ॥ ब्रह्मादयःप्रबुद्धास्तुकथंतिष्ठंतितत्रते ॥ ३१ ॥ आतिवाहिकएवास्तिनप्रबुद्धमतेःकिल ॥ आधिभौतिकदेहस्यवाचोवात्रकुतःकथम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—ब्रह्मके मनरूपमें प्राप्त ब्रह्मा जगत्का विस्तार करताहै इस हेतुसे जगत् ब्रह्मसे ऐसे अभिन्नरूपहै जैसे जलसे द्रवा ॥ २९ ॥ मनसे इस सम्पूर्ण जगत्का विस्तार होताहै इसलिये यह संकल्पनगर वा गन्धर्व-

नगरके समान मिथ्याभूतही है ॥ ३०॥ जैसे रज्जुमें सर्प नहींहै ऐसेही तत्वज्ञानियोंकी दृष्टिमें देह आदिमें आधिभौतिकता नहींहै और अधिष्ठान सत्ताके अतिरिक्त प्रबुद्ध ब्रह्मादिक भला उसमें कैसे रहसकतेहैं? ॥ ३१ ॥ ज्ञानीकी दृष्टिमें ब्रह्मके अतिरिक्त आतिवाहिक (सूक्ष्म) शरीरभी नहीं तो यहांपर आधिभौतिक शरीर होनेकी भला कौन कथाहै॥३२॥

मनोनाम्नोमनुष्यस्यविरिंच्याकारधारिणः ॥ मनोराज्यंजगदितिसत्यरूपमिवस्थितम् ॥ ३३ ॥ मनएवविरिंचित्वंतद्धिसंकल्पनात्मकम् ॥ स्ववपुःस्फारतांनीत्वामनसेदंवितन्यते ॥ ३४ ॥ विरिंचोमनसोरूपंविरिंचस्यमनोवपुः ॥ पृथ्व्यादिविद्यतेनात्रतेनपृथ्व्यादिकल्पितम् ॥ ३५ ॥ पद्माक्षेपद्मिनीवांतर्मनोत्दृद्यस्तिदृश्यता ॥ मनोदृश्यदृशौभिन्नेनकदाचनकेनचित् ॥ ३६ ॥

अर्थ—मनुष्यका मनही ब्रह्माका आकार धारणकिये है इसलिये सत्यरूपसे यह जगत् मनोराज्यहीहै यह यथार्थहै ॥३३ ॥ मनही विरंचिरूप सबका स्रष्टाहै और वहभी संकल्परूप अपने शरीरको विशाल बनाके इस जगत्का मनसे विस्तार करताहै ॥३४॥ विरिंचि मनका रूपहै और विरिंचिका शरीर मनहै इसलिये इस मनमें पृथिवी आदि नहीं है इसी हेतुसे पृथिवी आदि सब आत्मामें कल्पितहैं ॥ ३५ ॥ पद्माक्षके भीतर जैसे पद्मिनी रहती है ऐसेही मनके-भीतर दृश्यसमूहहै मन और दृश्यकी साक्षिरूपता इन दोनोंको कभी किसीने भिन्नरूपसे विवेचन नहीं किया ॥ ३६॥

यथात्वात्रतवस्वप्नःसंकल्पश्चित्तराज्यधीः ॥ स्वानुभूत्यैवदृष्टांतस्तस्माद्हृद्यस्तिदृश्यभूः ॥ ३७ ॥तस्माच्चित्तविकल्पस्थपिशाचोबालकंयथा ॥ विनिहंत्येवमेषांतर्द्रष्टारंदृश्यरूपिका ॥ ३८ ॥ यथांकुरोंतर्बीजस्यसंस्थितोदेशकालतः ॥ करोतिमासुरंदेहंतनोत्येवंहिदृश्यधीः ॥ ३९ ॥ सत्येनशाम्यतिकदाचन दृश्यदुःखंदृश्येत्वशाम्यतिनबोद्धरिकेवलत्वम् ॥ दृश्येत्वसंभवतिबोद्धरिबोद्धृभावःशाम्येत्स्थितोपिहितद्स्यविमोक्षमाहुः ॥ ४० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे बंधहेतुवर्णनंनाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

अर्थ—जिसप्रकार तुह्मारा स्वप्न और संकल्प तथा चित्तही राज्याकार बुद्धि है यह अपना अनुभवही यहांपर दृष्टांत है इस हेतुसे मनमें ही दृश्यपदार्थकी भूमिहै ॥ ३७ ॥ इस हेतुसे जैसे चित्तके विकल्पमें स्थित पिशाच बालकको मारलेताहै ऐसेही द्रष्टाके मनमें स्थित दृश्यरूपिणी पिशाचिका उसको मारती है ॥ ३८ ॥ जिसप्रकार बीजके भीतर संस्थित अंकुर देश और कालपाके प्रकाशमान अपने शरीरका विस्तार करताहै इसप्रकार द्रष्टाके चित्तमें स्थित दृश्य बुद्धि देशकाल पाके अपना स्वरूप प्रकट करतीहै ॥ ३९ ॥ यदि वह दृश्य सत्य होतो दृश्यकादुःख कदाचित्‌भी शांत नहीं होसकता और दृश्यके शांत न होनेसे बोद्धामें केवलीभाव नहीं होसकता और दृश्यके मिथ्या सिद्ध होनेपर इस रूपसे दृश्यके स्थित रहनेपरभी बोद्धामें बोद्धृभाव शांत होजाताहै यही इस जीवकी मोक्षदशा कहातीहै ॥ ४० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे बन्धहेतु वर्णनं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

इस प्रथम उपदेशको श्रवणकरके सभाका उत्थान (विसर्जन) आदि रात्रिका आगमन तथा प्रातःकाल पुनः सभामें सबका आगमन और चित्रस्वभाव इन विषयोंका वर्णन इस ४ चतुर्थ सर्गमें कियागयाहै.

श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ कथयत्येवमुद्दामवचनेमुनिनायके ॥ श्रोतुमेकरसेजातेजनेमौनमुपस्थिते ॥ १ ॥ सुविस्मृतविलाशांतेषुकिंकिणीजालरवेषुस्पंदनंविना ॥ पंजरांतरहारीतशुकेष्वप्यस्तकेलिषु ॥ २ ॥ सुविस्मृतविलासासुस्थितासुललनास्वपि ॥ चित्रभित्ताविवन्यस्तेसमस्तेराजसद्मनि ॥ ३ ॥ मुहूर्तशेषमभवद्दिवसंमधुरातपम् ॥ व्यवहारारविकरैःसहतानवमाययुः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोलेमुनियोंमें श्रेष्ठवसिष्ठजीके इसप्रकार अत्यन्त प्रभावशाली वचन कहनेपर और मौनधारणकरके सब मनुष्योंके सुननेकेलिये एकाग्र होनेपर ॥ १ ॥ किंकिणीके समूहके शब्दोंके शांत होनेपर उस समय सभामें किंचिन्मात्रभी किसीका संचालन नहीं था पिंजरेमें स्थित हारित (पक्षीविशेष) और शुक आदिने अप-

नी २ क्रीडायें बन्दकरदिया ॥ २ ॥ उत्तम ललनागणभी अपने उत्तम विलासोंको भूलगई और सम्पूर्ण राजगृहोंमें स्थितमनुष्य भीतिमें लिखित चित्रकेसमान होगये ॥ ३ ॥ उस समय थोडी२ उष्णतासहित दोघडी दिन शेष रह-गया सम्पूर्ण संसारके व्यवहार सूर्य भगवान्की किरणोंके साथ न्यूनताको प्राप्तहुये ॥ ४ ॥

ववुरुत्फुल्लकमलप्रकरामोदमांसलाः ॥ वायवोमधुरस्पंदाःश्रवणार्थमिवागताः ॥ ५ ॥ श्रुतंचिंतयितुं-भानुरिवाहोरचनाभ्रमम् ॥ तत्याजैकांतमगमच्छून्यमस्तगिरेस्तटम् ॥ ६ ॥ उतस्थुर्मिहिकारंभसम-तावनभूमिषु ॥ विज्ञानश्रवणादंतःशीतलाःशांतताइव ॥ ७ ॥ बभूवुरल्पसंचाराजनादशसुदिक्ष्वपि ॥ सावधानतयाश्रोतुमिवसंत्यक्तचेष्टिताः ॥ ८ ॥

अर्थ—उस समय विकसित कमलके सुगन्धसे पुष्ट मन्दगतिवाले वायु ऐसे वहनेलगे मानो उस कथाके श्र-वणकरनेकेलिये आयेहैं ॥ ५ ॥ सूर्य मानो सुने हुये अर्थको चिन्तन करनेकेलिये दिनकी रचनारूप भ्रमको त्याग-कर अस्ताचलके जनशून्यतटपर चलेगये ॥ ६ ॥ तुषारोंके आरंभसे वनभूमियोंमें समता ऐसे प्राप्त हुई जैसे विज्ञा-नके श्रवणसे अन्तःकरणमें शीतलतायुक्त शांतता प्राप्त होतीहै ॥ ७ ॥ दशोंदिशाओंमें प्राणियोंका संचार न्यून (कम) होगया मानों सभोंनें सावधानतासे वसिष्ठजीकी कथा सुननेके अर्थ अन्य व्यापारोंको त्यागदियाहै ॥ ८ ॥

छायादीर्घत्वमाजग्मुर्वासिष्ठवचनक्रमम् ॥ इवश्रोतुमशेषाणांवस्तूनांदीर्घकंधराः ॥ ९ ॥ प्रतीहारःपु रःप्रव्हीभूत्वाहवसुधाधिपम् ॥ देवस्नानद्विजार्चासुकालोव्यतिगतोभृशम् ॥ १० ॥ ततोवसिष्ठोभगवान् संहृत्यमधुरांगिरम् ॥ अद्यतावन्महाराजश्रुतमेतावदस्तुवः ॥ ११ ॥ प्रातरन्यद्वदिष्यामीत्युक्त्वा मौनवानभूत् ॥ इत्याकर्ण्यैवमस्तूक्त्वाभूपतिर्भूतिवृद्धये ॥ १२ ॥ पुष्पपाद्यार्घसन्मानदक्षिणादानपू जया ॥ सदेवर्षिमुनीन्विप्रान्पूजयामाससादरम् ॥ १३ ॥ अथोत्तस्थौसभासर्वासराजमुनिमंडला ॥ मंडलाकीर्णरत्नौघपरिवेषावृतानना ॥ १४ ॥ परस्परांगसंघट्टरणत्केयूरकंकणा ॥ हारभाराहतस्वर्ण पट्टाभोरुस्तनांतरा ॥ १५ ॥ शेखरोत्संगविश्रांतप्रबुद्धमधुपस्वनैः ॥ सघुंघुमशिरोभारावदद्भिरिवमूर्द्धजैः १६

अर्थ—सम्पूर्ण वस्तुओंकी छाया ऐसी दीर्घताको प्राप्तहुई जैसे वसिष्ठजीके वचन सुननेके सम्पूर्ण मनुष्योंके दीर्घ कन्धरा ॥ ९ ॥ प्रतीहार (ड्योंढीदार राज्याके सन्मुख आके नम्रतापूर्वकबोला कि हे राजन् ! स्नान तथा देव-ब्राह्मणकी पूजाका समय अधिक व्यतीत होगया ॥ १० ॥ इसके अनन्तर वासिष्ठभगवान्ने अपनी मधुर वाणीको उपसंहार (प्रकरण परलाके समाप्त) करके राजासे बोले कि आपलोगोंके सुननेकेलिये आज इतनाही बहुतहै ॥ ११ ॥ प्रातःकाल होनेपर अन्यविषय कहेंगे ऐसा कहके मौन होगये इसको श्रवण करके राजाने कहा कि हे भगवन् ऐसाही हो इसके अनन्तर राजा दशरथजीने अपनी विभूतिकी वृद्धिके लिये वसिष्ठजीके सहित देव ऋषि मुनि तथा अन्य ब्राह्मणोंकी, पुष्प, पाद्य, अर्घ्य, सन्मान, दक्षिणा, दान, तथा अन्य प्रतिष्ठाकी वस्तुओंसे आदर सहित पूजा की ॥ १२ ॥ १३ ॥ इसके अननन्तर राजाओंके दियेहुये रत्नोंकी निस्पृहमुनियोंकी मण्डली उपेक्षा कर-नेसे मण्डलाकार व्याप्त रत्नोंके समूहोंकी प्रभाके मण्डलसे आच्छादित मुख जिसमें राजा और मुनियोंके समूहसे शोभित सम्पूर्णसभा उठ खडीहुई ॥ १४ ॥ सभाके मनुष्योंके अंगोंका परस्पर संघट्टन होनेसे केयूर (विजा-यठ) और कंकणके शब्द होनेलगे, तथा हारोंके भारसे खींचेहुये जो सुवर्णजटित वस्त्र उनकी कान्तिसे सभाके मनु-ष्योंके वक्षस्थल प्रकाशमय प्रतीत होनेलगे ॥ १५ ॥ शिरोंके विस्तृत अग्रभागमें सुगन्धिके कारण विश्राम करनेवाले जाग्रत भ्रमर सहित केशोंसे मानों सम्पूर्णसभा अव्यक्त मधुरध्वनि कररही है ॥ १६ ॥

कांचनाभरणोद्योतकनकीकृतदिङ्मुखाः ॥ बुद्धिस्थमुनिवागर्थसंशांतेन्द्रियवृत्तयः ॥ १७ ॥ जग्मुर्न भश्चराव्योमभूचराभूमिमंडलम् ॥ चक्रुर्दिनसमाचारंसवेंतेस्वेषुसद्मसु ॥ १८ ॥ एतस्मिन्नंतरेश्यामा यामिनिसमदृश्यत ॥ जनसंघाद्विनिर्मुक्तागृहेबालांगनायथा ॥ १९ ॥ देशांतरंभासयितुंययौदिवसना यकः ॥ सर्वत्रालोककर्तृत्वमेवसत्पुरुषव्रतम् ॥ २० ॥

अर्थ—सुवर्णके आभूषणोंके प्रकाशसे मानों सम्पूर्ण दिशाओंको सुवर्णमय करदियाहै. वसिष्ठमुनिके वचनका अर्थ बुद्धिमें धारण करनेसे सबजनोंकी इन्द्रियोंकी वृत्तियाँ शान्त होगई हैं ॥ १७ ॥ आकाश बिहारी देवगन्धर्वआदि आकाशमें गये और पृथिवीनिवासी पृथिवीमण्डलपर गये और वे सब अपने २ स्थानोंमें दिनकी कथाके समाचार आपसमें कहतेसुनतेरहे ॥ १८ ॥ इतनेहीमें कृष्णवर्ण रात्रि ऐसे आके दृष्टिगोचर हुई जैसे जनसमूहसे विनिर्मुक्त बालां-

गना (यौवनमध्यस्था) अपने पतिके गृहमें ॥ १९ ॥ दिनके नायक सूर्य दूसरे द्वीपमें प्रकाशकरनेको गये, क्योंकि सत्पुरुषोंका यही धर्महै कि सर्वत्र प्रकाश करना ॥ २० ॥

उदभूदमितःसंध्यातारानिकरधारिणी ॥ उत्फुल्लकिंशुकवनावसंतश्रीरिवोदिता ॥ २१ ॥ चूतनीपकदंबाग्रग्रामचैत्यगृहोदरे ॥ निलिल्यिरेखगाश्चित्तेवदातावृत्तयोयथा ॥ २२ ॥ भानोर्भासाभूषितैर्मेघलेशैःकिंचित्किंचित्कुंकुमच्छाययेव ॥ पाश्चात्योद्रिःपीतवासाःसमेघैस्ताराहारःश्रीयुतःखंसमेतः॥२३॥ पूजामादायसंध्यायांप्रगतायांयथागतम् ॥ अंधकाराःसमुत्तस्थुर्वेतालावपुषायथा ॥ २४ ॥

अर्थ—किंशुकके वनोंको विकसित करतीहुई वसन्तकी शोभाके समान उदयको प्राप्त ताराओंके समूहको धारण करनेवाली सन्ध्या चारोंओरसे प्रगटहुई ॥ २१ ॥ आम्र, अशोक, कदम्ब और ग्रामके निकट महावृक्षोंमें तथा गृहके घोंसलोंमें पक्षीगण ऐसे लीनहुये जैसे निर्मलचित्तकी वृत्तियाँ निद्रावृत वा समाधिस्थचिन्तमें ॥ २२ ॥ किंचित् किंचित् कुंकुमकी छायाके सदृश चित्रवर्ण सूर्य्यकी प्रभासे शोभायमान अल्पमेघोंसे पीतवस्त्रवाला, आकाशमें प्रविष्ट, (अतिऊँचा) तारारूपी हारोंको धारण करनेवाला, अस्ताचल, लक्ष्मीयुक्त विष्णुकी शोभाको प्राप्तहुआ ॥ २३ ॥ पूजा ग्रहणकरनेके अनन्तर सन्ध्यारूपदेवीके विदाहोनेके पश्चात् उसके गण वेताल जैसे शरीरसे प्रकट होते हैं ऐसेही अन्धकार प्रकटहुये ॥ २४ ॥

अवश्यायकणास्पंदीहेलाविधुतपल्लवः ॥ कोमलःकुमुदाशंसीववावाशीतलोनिलः ॥ २५ ॥ परमांध्यमुपाजग्मुर्दिशोऽविस्फुटतारकाः ॥ लंबदीर्घतमःकेश्योविधवाइवयोषितः ॥ २६ ॥ आययौभुवनंतेजःक्षीरपूरेणपूरयन् ॥ रसायनमयाकारःशशिक्षीरार्णवोनभः ॥ २७ ॥ जग्मुस्तिमिरसंघाताःपलाय्यक्वाप्यदृश्यताम् ॥ श्रुतज्ञानगिरश्चित्तान्महीपानामिवाज्ञताः ॥ २८ ॥

अर्थ—तुषारके कणोंको प्राप्तकरनेकी लीलासे पत्रोंको कंपानेवाला, कुमुदकी कलियोंको विकाशकरनेवाला, शीतल, मन्द, सुगन्ध त्रिविधवायु बहनेलगी ॥ २५ ॥ दीर्घअन्धकाररूपी लम्बेकेशोंको धारण करनेवाली, तुषाररूपी वस्त्रसे आच्छादित होनेके कारणसे स्पष्टतारा (पक्षमें कनीनिका) युक्त दिशाये परमअन्धताको ऐसे प्राप्त हुई जैसे पतिके अस्त होनेसे विधवास्त्री ॥ २६ ॥ तेजरूपी दुग्धके प्रवाहसे भुवनको पूर्णकरताहुआ तथा अमृतमय आकारवाला, चन्द्रमायुक्त क्षीरसमुद्र आकाशको रहुआ ॥ २७ ॥ ज्ञानकी वाणी श्रवण करनेसे जैसे राजाओंके चित्तसे अज्ञता भागगई, ऐसेही अन्धकारोंके समूह कर न मालूम कहां लुप्तहोगये ॥ २८ ॥

ऋषयोभूमिपालाश्चमुनयोब्राह्मणास्तथा ॥ च...तोवविविक्तार्थाःस्वास्पदेषुविशश्रमुः ॥ २९ ॥ यमकायोपमाश्यामायर्यौतिमिरमांसला ॥ आययौमिहिकास्फारातत्रतेषाप्रुपःशनैः ॥ ३० ॥ अंतर्धानमुपाजग्मुस्तारानभसिभास्वराः ॥ प्रभातपवनेनेवहृताःकुसुमवृष्टयः ॥ ३१ ॥ दृश्यतामाजगामार्कःप्रभोन्मीलितलोचनः ॥ विवेकवृत्तिर्महतांमनसीवनवोदिता ॥ ३२ ॥

अर्थ—ऋषि, राजालोग, मुनि तथा ब्राह्मण, अपने २ आश्रमोंमें ऐसे विश्राम करनेलगे, जैसे वसिष्ठजीके उपदेश कियेहुये अर्थ मनुष्योंके चित्तोंमें ॥ २९ ॥ अन्धकारसे पुष्ट, यमके समान शरीर धारण करनेवाली रात्रि व्यतीत होगई, और तुषारको विदीर्ण करतेहुये धीरे २ प्रातःकाल प्राप्त हुआ ॥ ३० ॥ प्रकाशमान तारागण ऐसे अन्तर्धान (लोप) को प्राप्त हुये जैसे प्रातःकालके पवनसे हरण कीहुई पुष्पोंकी वृष्टि ॥ ३१ ॥ अपने प्रकाशसे प्राणियोंके नेत्र खोलनेवाले सूर्य्यनारायण दृश्यताको ऐसे प्राप्त हुये, जैसे महात्माओंके मनमें नूतन विवेककी वृत्ति ॥ ३२ ॥

भानोर्भासाभूषितैर्मेघलेशैःकिंचित्किंचित्कुंकुमच्छाययेव ॥ पूर्वक्ष्माभृत्पीतवासास्समेघैस्ताराहारःश्रीयुतःखंसमेतः ॥ ३३ ॥ सभांपुनरुपाजग्मुर्नभश्चरमहीचराः ॥ ह्यस्तनेनक्रमेणैवकृतप्रातस्तनक्रमाः ॥ ३४ ॥ पूर्ववत्संनिवेशेनविवेशसकलासभा ॥ बभूवास्पंदिताकारावातमुक्तेवपद्मिनी ॥ ३५ ॥ अथप्रसंगमासाद्यरामोमधुरयागिरा ॥ उवाचमुनिशार्दूलंवसिष्ठंवदतांवरम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—कुछ २ कुंकुमकी छायाके सदृश जो सूर्य्यकी दीप्तिसे भूषित मेघोंसे पीतवस्त्र धारण कियेहुये आकाशमें प्रविष्ट तारारूपी हारोंसे शोभित उदयाचल लक्ष्मीयुक्त विष्णुकी शोभाको प्राप्तहुआ ॥ ३३ ॥ गतदिनके अनुसार प्रातःकालकी स्नान आदि क्रियाको करके आकाश और पृथिवीके निवासी जन पुनः सभामें आके सुशोभित हुये ॥ ३४ ॥ पूर्वदिनके अनुसार सम्पूर्ण सभा बैठगई; और वायुसे विनिर्मुक्त पद्मयुत सदसी (तलाई) के सदृश

सब सभा चेष्टारहित होगई ॥ ३५ ॥ इसके अनन्तर प्रसंगके अनुसार श्रीरामचन्द्रजी मधुरवाणीसे मुनियोंमें तथा वक्ताओंमें श्रेष्ठ श्रीवसिष्ठजीसे बोले ॥ ३६ ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ भगवन्मनसोरूपंकीदृशंवदमेस्फुटम् ॥ यस्मात्तेनेयमखिलातन्यतेलोकमंजरी ॥ ३७ ॥ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ रामास्यमनसोरूपंनकिंचिदपिदृश्यते ॥ नाममात्रादृतेव्योम्नोयथाशून्यजडाकृतेः ॥ ३८ ॥ नबाह्येनापिहृदयेसद्रूपंविद्यतेमनः ॥ सर्वत्रैवस्थितंचैतद्विद्धिरामयथानभः ॥ ३९ ॥ इदमस्मात्समुत्पन्नंमृगतृष्णांबुसन्निभम् ॥ रूपंतुक्षणसंकल्पाद्वितीयेंदुभ्रमोपमम् ॥ ४० ॥

अर्थ—श्रीरामचंद्रजी बोले हे भगवन् ! आप मुझसे यह बात स्पष्टरीतिसे कहिये कि इस मनका क्या रूपहै जिस (रूप) से वह (मन) इस सम्पूर्ण संसाररूपी लताका विस्तार करताहै ॥ ३७ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले हे रामचन्द्रजी ! इस मनका नाममात्रके अतिरिक्त कुछभी रूप नहींदेखपडता, जैसे शून्य और जड आकारवाले आकाशका हे रामजी इस मनका बाहरभीतर कहींभी सत्यरूप नहीं है, परन्तु आकाशके समान सर्वत्र इसको व्याप्तजानो ॥ ३९ ॥ यहजगत् इसमनसे ऐसे उत्पन्नहै जैसे मृगतृष्णासे जल, इसका रूप क्षणके संकल्पसे दूसरे चन्द्रमाके समानहै ॥ ४० ॥

मध्येयदेतदर्थस्यप्रतिभानंप्रथांगतम् ॥ सतोवाप्यसतोवापितन्मनोविद्धिनेतरत् ॥ ४१ ॥ यदर्थप्रतिभानंतन्मनइत्यभिधीयते ॥ अन्यन्नकिंचिदप्यस्तिमनोनामकदाचन ॥ ४२ ॥ संकल्पनंमनोविद्धिसंकल्पात्तन्नभिद्यते ॥ यथाद्रवत्वात्सलिलंतथास्पंदोयथानिलात् ॥ ४३ ॥ यत्रसंकल्पनंतत्रतन्मनोंगतथा स्थितम् ॥ संकल्पमनसीभिन्नेनकदाचनकेचन ॥ ४४ ॥

अर्थ—सत् वा असत् अर्थके मध्यमें सबजनोंकी बुद्धिमें प्रथाको प्राप्तहै वही मनका रूप समझो और कुछनहीं ॥ ४१ ॥ निराकार चेतनका जो पदार्थाकार प्रतिभान होताहै उसीको मन कहतेहैं इसके सिवाय कदाचित् मन कुछवस्तु नहींहै ॥ ४२ ॥ संकल्पमात्रही मनहै, संकल्पसे मन ऐसे भिन्न नहींहोसकता जैसे द्रवत्वसे जल अथवा वायुसे गति ॥ ४३ ॥ हे प्रियरामजी ! जहां संकल्पहै वहां उसी रूपसे मनभी स्थितहै संकल्प और मनको कभी किसीने भिन्न रूपसे अनुभव नहीं किया ॥ ४४ ॥

सत्यमस्त्वथवासत्यंपदार्थप्रतिभासनम् ॥ तावन्मात्रंमनोविद्धितद्ब्रह्मैवपितामहः ॥ ४५ ॥ आतिवाहिकदेहात्मामनइत्यभिधीयते ॥ आधिभौतिकबुद्धिंतुसआधत्तेचिरस्थितेः ॥ ४६ ॥ अविद्यासंसृतिश्चित्तंमनोबंधोमलस्तमः ॥ इतिपर्यायनामानिदृश्यस्यविदुरुत्तमाः ॥ ४७ ॥ नहिदृश्यादृतेकिंचिन्मनसोरूपमस्तिहि ॥ दृश्यंचोत्पन्नमेवैतन्नैतिवक्ष्याम्यहंपुनः ॥ ४८ ॥

अर्थ—सत्यहो अथवा असत्यहो जितना पदार्थोंका प्रतिभासहै उतनेको मनही जानो, और उस समष्टिरूप मनको ब्रह्मा वा पितामह जानो ॥ ४५ ॥ सूक्ष्मशरीरवाला मन कहाताहै, और उन्हीं सूक्ष्मोंकी चिरकालतक मिलितस्थितिसे स्थूलपृथिवी आदि बुद्धिको वही मन धारण करताहै ॥ ४६ ॥ महात्मालोग इस दृश्यके अविद्या, संसार, चित्त, मन, बन्ध, मल और तम इत्यादि पर्य्यायवाचकनाम कहतेहैं ॥ ४७ ॥ दृश्यसे पृथक् मनका कुछभी रूप नहीं है और दृश्य उत्पन्नही नहीं हुआ इस विषयको पुनः कहूंगा ॥ ४८ ॥

यथाकमलबीजांतःस्थिताकमलवल्लरी ॥ महाचित्परमाण्वंतस्तथादृश्यंजगत्स्थितम् ॥ ४९ ॥ प्रकाशस्ययथालोकोयथावातस्यचापलं ॥ यथाद्रवत्वंपयसिदृश्यत्वंद्रष्टरीदृशम् ॥ ५० ॥ अंगदत्वंयथाहेम्निमृगनद्यांयथाजलम् ॥ भित्तिर्यथास्वप्नपुरेतथाद्रष्टरिदृश्यधीः ॥ ५१ ॥ एवंद्रष्टरिदृश्यत्वमनन्यदिवयत्स्थितम् ॥ तदप्युन्मार्जयाम्याशुत्वच्चित्तादर्शतोमलम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—जिसप्रकार कमलके बीजके भीतर कमलकी लताहै ऐसेही महाचेतनके परमाणुके भीतर यह सम्पूर्ण दृश्य स्थितहै ॥ ४९ ॥ जैसे प्रकाशमें आलोक, वायुमें चपलता और जलमें द्रवत्वहै, ऐसेही अविद्यासहित द्रष्टामें दृश्यहै ॥ ५० ॥ जैसे सुवर्णमें अंगद, मृगतृष्णामें जल और स्वप्नके नगरमें भित्ति (दीवाल) है, ऐसेही द्रष्टामें दृश्यबुद्धिहै ॥ ५१ ॥ हे रामजी ! इसप्रकार द्रष्टामें अभिन्नरूपके समान स्थित यह दृश्यहै, उसकोभी मैं आपके चित्तरूपी दर्पणसे मलके समान शीघ्र दूर करताहूं ॥ ५२ ॥

यद्द्रष्टुरस्याद्रष्टृत्वंदृश्याभावेभवेद्बलात् ॥ तद्विद्धिकेवलीभावंततएवासतःसत: ॥ ५३ ॥ तत्तामुपगते भावेरागद्वेषादिवासनाः ॥ शाम्यंत्यस्पंदितेवातेस्पंदनक्षुब्धतायथा ॥ ५४ ॥ असंभवतिसर्वस्मिन्दि-

(१) जो रूप मनका कहेंगे वही संसारकाभी होगा इससे सर्वथा संसार मिथ्या दृष्टिसे न सिद्धहोगा यह रामचन्द्रजीका गूढ आशयहै ॥

ग्भूम्याकाशरूपिणि ॥ प्रकाश्येयादृशंरूपंप्रकाशस्यामलंभवेत् ॥ ५५ ॥ त्रिजगत्त्वमहंचेतिदृश्येऽस-त्तामुपागते ॥ द्रष्टुःस्यात्केवलीभावस्तादृशोविमलात्मनः ॥ ५६ ॥

अर्थ—द्रष्टाकी सत्तासे पृथक् दृश्यकी सत्ता दूर होनेसे अन्यकी सत्तासे अन्यकी सत्ताके अभावके कारण दृश्यके अभावसे चिन्मात्र द्रष्टामें जो अद्रष्टृत्व होताहै उसीसे असत् दृश्यके बाधसे चिन्मात्रसे जो आत्माकी स्थितिहै उसीको तुम केवलीभाव जानो ॥ ५३ ॥ चित्त जिससमय कैवल्यभाव (चिन्मात्ररूप) को प्राप्त होताहै उससमय राग द्वेषआदि सम्पूर्ण वासना ऐसे शान्त होजाती हैं जैसे वायुकी गति निवृत्त होनेपर वन वा जलाशयकी चंचलता ॥ ५४ ॥ प्रकाश्य जो दिशा, भूमि आकाशादि हैं उनके असंभव होनेपर प्रकाशका जैसा निर्म्मलरूपहै वैसाही रहताहै ॥ ५५ ॥ तीनोंलोक और अहम्भावरूप जो दृश्यहै उसका असत्व (मिथ्यात्व) होनेपर द्रष्टाका विमल जैसा रूप है वैसाही केवलीभाव प्राप्त होता है ॥ ५६ ॥

अनाप्ताखिलशैलादिप्रतिबिंबेहियादृशी ॥ स्याद्दर्पणेदर्पणताकेवलात्मस्वरूपिणी ॥ ५७ ॥ अहंत्वंजगदित्यादौप्रशांतेदृश्यसंभ्रमे ॥ स्यात्तादृशीकेवलतास्थितेद्रष्टर्यवीक्षणे ॥ ५८ ॥ श्रीरामउवाच ॥ सच्चेन्नशाम्यत्येवेदंनाभावोविद्यतेसतः ॥ असत्तांचनविद्मोस्मिन्दृश्येदोषप्रदायिनि ॥ ५९ ॥ तस्मात्कथमियंशाम्येद्ब्रह्मन्दृश्यविषूचिका ॥ मनोभवभ्रमकरीदुःखसंततिदायिनी ॥ ६० ॥

अर्थ—पर्वत आदि प्रतिविम्ब न रहनेसे दर्पणमें जैसी केवल दर्प्पणस्वरूपिणी दर्पणता रहती है इसीप्रकार अहम् त्वम्, जगत् इत्यादि दृश्यरूप संभ्रमके शान्त होनेपर वीक्षण (दर्शन) रहित द्रष्टामें केवल आत्मता शेष रहती है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ श्रीरामजी बोले– हे भगवन् ! यदि दृश्य असत्य होतो आपका कहाहुआ केवलीभावहो परन्तु यह (असत्यता) अनुभवविरुद्ध है, यदि दृश्य सत्य है (जैसा प्रतीत होता है) तो यह शान्त नहीं होसकता, क्योंकि सत्पदार्थका अभाव नहीं होता, और दोष देनेवाले इस दृश्यमें असत्यरूपताका ज्ञान हमको नहीं होता ॥ ५९ ॥ इसलिये हे ब्रह्मन् मनको भ्रम करनेवाली, और अनेक दुःखोंको देनेवाली, यह दृश्यरूप महामारी कैसे शान्तहो ॥ ६० ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अस्यदृश्यपिशाचस्यशांत्यैमंत्रमिमंशृणु ॥ रामात्यंतमयंयेनमृतिमेष्यतिनंक्ष्यति ॥ ६१ ॥ यदस्तितस्यनाशोस्तिनकदाचनराघव ॥ तस्मात्तन्नष्टमप्यंतर्बीजभूतंभवेद्धृदि ॥ ६२ ॥ स्मृतिबीजाच्चिदाकाशेपुनरुद्भूयदृश्यधीः ॥ लोकशैलांबराकारंदोषंवितनुतेऽतनुम् ॥ ६३ ॥ इत्यनिर्मोक्षदोषःस्यान्नचतस्येहसंभवः ॥ यस्माद्देवर्षिमुनयोदृश्यंतेमुक्तिभाजनम् ॥ ६४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले– हे रामजी इस दृश्य पिशाचकी शान्तिकेलिये यह मंत्र सुनिये, जिससे यह चेतनरूपसे अभिमत देहादि मरणदशाको प्राप्त होगा और अचेतन नष्ट होजायगा ॥ ६१ ॥ हे राघव ! जो वास्तविकमें सत् है उसका नाश कदाचित्भी नहीं होता, इसलिये यह जगत् यदि पूर्व २ स्थूल अवस्थासे सूक्ष्म अवस्थामें तिरोभाव भावरूपसे नष्टभी होजाय तोभी यह बीजरूपसे अन्तःकरणमें रहेगा ॥ ६२ ॥ अन्तःकरणमें जगत्के स्मृतिरूप बीजसे चिदाकाशमें पुनः दृश्यकी बुद्धि उत्पन्न होके लोक पर्वत और आकाश आदिके आकाररूप अपरिमित दोषका विस्तार करेगी, तो इसरीति सर्वथा मोक्षका अभावही होजायगा, और यह असंभवहै क्योंकि अनेक देवता, ऋषि, और मुनि जीवन्मुक्त देखपडते हैं ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

यदिस्याज्जगदादीदंतत्सन्मोक्षोनकस्यचित् ॥ बाह्यस्थमस्तुहृत्स्थंवादृश्यंनाशायकेवलम् ॥ ६५ ॥ तस्मादिमांप्रतिज्ञांत्वंशृणुरामातिभीषणाम् ॥ यामुत्तरेणग्रंथेननूनंत्वमवबुद्ध्यसे ॥ ६६ ॥ अयमाकाशभूतादिरूपोहंचेतिलक्षितः ॥ जगच्छब्दस्यनामार्थोननुनास्त्येवकश्चन ॥ ६७ ॥ यदिदंदृश्यतेकिंचिद्दृश्यजातंपुरोगतम् ॥ परब्रह्मैवतत्सर्वमजरामरमव्ययम् ॥ ६८ ॥

अर्थ—यदि यह जगत् आदि सत्य होतो किसीकाभी मोक्ष नहीं होगा, क्योंकि बाह्यहो अथवा आभ्यन्तरहो दृश्यतो नाशकेही लियेहै ॥ ६५ ॥ इसलिये हे रामजी ! विषयरागी और आरंभ वादियोंको भय देनेवाली इस प्रतिज्ञाको आप सुनिये, जिसे (प्रतिज्ञा) को उत्तर ग्रन्थसे तुम निश्चयरूपसे जान जाओगे ॥ ६६ ॥ यह आकाशादि भूत "अहम् और त्वम्" आदिरूपसे लक्षित जगत् शब्दका नामार्थ है और कुछभी नहीं है ॥ ६७ ॥ जो कुछ यह दृश्यसमूह देख पडता है अथवा अनुभूत होता है यह सब अजर अमर और नाशरहित केवल परब्रह्महीहै ॥ ६८ ॥

१ श्रीरामचंद्रजीका अभिप्राय परिणाम वादको अंगीकार करके प्रवृत्तहै ॥ २ बाह्यजगतको अविवेकसे अपने हृदयमें देखनेसे यह संसारहै और उसका अभिमान निवृत्त होनेसे बाह्यजगतकी विद्यमानतामें मोक्ष होताहै यह सांख्यसिद्धान्तभी असत्है ॥

३ विवर्तवादही वसिष्ठजीको इष्टहै ब्रह्मही जगत्रूपसे हैं ॥

पूर्णेपूर्णंप्रसरतिशांतेशांतंव्यवस्थितम् ॥ व्योमन्येवोदितंव्योमब्रह्मणिब्रह्मतिष्ठति ॥ ६९ ॥ नदृश्यमस्तिसद्रूपंनद्रष्टानचदर्शनम् ॥ नशून्यंनजडंनोचिच्छांतमेवेदमाततम् ॥ ७० ॥ श्रीरामउवाच ॥ वंध्यापुत्रेणपिष्टोद्रिःशशशृंगंप्रगायति ॥ प्रसार्यभुजसंपातंशिलानृत्यतितांडवम् ॥ ७१ ॥ स्रवंतिसिकतास्तैलंपठंत्युपलपुत्रिकाः ॥ गर्जंतिचित्रजलदाइतीवेदंवचःप्रभो ॥ ७२ ॥

अर्थ—पूर्णमेंही पूर्णका प्रचार है शान्त अवस्थात्रयमें शान्त आकाशादि द्वैतस्थित है, और घटादि उपाधिके त्यागसे आकाशमेंही आकाश स्थित है इसलिये ब्रह्ममेंही ब्रह्म स्थितहै तात्पर्य्य यह कि सर्वथा अविकृतरूपसे ब्रह्म स्थितहै अध्यासकृत दोषसे उसका कुछभी संबन्ध नहीं है ॥ ६९ ॥ इसलिये सत्यरूपसे न दृश्य है न द्रष्टा है, न दर्शन है, न शून्य है, न जड है, और न चित् है, केवल शान्त आत्माही इस सर्व रूपसे व्याप्त होरहा है ॥ ७० ॥ श्रीरामजी बोले– हे भगवन्! वन्ध्यापुत्रने बडे पर्वतको पीस डाला, खरगोशकी सींग बहुत उत्तम २ गीत गाती है, भुजाकों फैलाके पाषाणमय पुतली ताण्डव नृत्य करती है ॥ ७१ ॥ बालूसे तेल निकलता है, पाषाणकी पुतलियां पढती हैं तथा चित्रके मेघ गर्जते हैं इत्यादि बचनके समान आपका कथनहै अर्थात् जैसे पूर्वोक्त बातें असंभवहैं, ऐसे सर्वथा जगत्का अभाव है यह आपका कथनभी असंभव है ॥ ७२ ॥

जरामरणदुःखादिशैलाकाशमयंजगत् ॥ नास्तीतिकिमिदंनामभवतापिममोच्यते ॥ ७३ ॥ यथेदंनस्थितंविश्वंनोत्पन्नंनचविद्यते ॥ ७३ ॥ तथाकथयमेब्रह्मन्येनैतन्निश्चितंभवेत् ॥ ७४ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ नासमन्वितवागस्मिशृणुराघवकथ्यते ॥ यथेदमसदाभातिवंध्यापुत्रइवारवी ॥ ७५ ॥ इदमादावनुत्पन्नंसर्गादौतेननास्त्यलम् ॥ इदंहिमनसोभातिस्वप्नादौपतनंयथा ॥ ७६ ॥

अर्थ—वृद्धाऽवस्था, मृत्यु, अनेकक्लेश, पर्वत, और आकाशादिमय यह जगत् हैही नहीं, यह वार्ता आप सब प्रामाणिकोंमें श्रेष्ठ होके मुझसे कैसे कहतेहैं ? ॥ ७३ ॥ जिसप्रकार यह संसार न स्थितहै, न उत्पन्न हुआ और न है, यह निश्चयहो वही उपदेश दीजिये॥७४॥श्रीवसिष्ठजी बोले– हे रामजी ! मैं असंगत बचन नहींबोलता, जैसे शब्द करनेवाले वन्ध्यापुत्रके समान असत्भी यह जगत् भानहोताहै वह सुनिये ॥ ७५ ॥ यह सृष्टिकी आदिमें उत्पन्न नहींहुआ इसलिये सर्वथा यह नहीं है, स्वप्नादिमें जैसे नगरका भान होताहै, ऐसेही यह मनसे भान होताहै ॥ ७६ ॥

मनएवचसर्गादावनुत्पन्नमसद्वपुः ॥ तदेतच्छृणुवक्ष्यामियथैवमनुभूयते ॥ ७७ ॥ मनोदृश्यमयंदोषंतनोतीमंक्षयात्मकम् ॥ असदेवसदाकारंस्वप्नःस्वप्नांतरंयथा ॥ ७८ ॥ तत्स्वयंस्वैरमेवाशुसंकल्पयतिदेहकम् ॥ तेनेयमिंद्रजालश्रीर्वितनेनवितन्यते ॥ ७९ ॥ स्फुरतिवल्गतिगच्छतियाचतेभ्रमतिमज्जतिसंहरतिस्वयम् ॥ अपरतासुपयात्यपिकेवलंचलतिचंचलशक्तितयामनः ॥ ८० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणार्थंकल्पनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

अर्थ—और यह मनभी सृष्टिकी आदिमें उत्पन्न नहीं हुआ, यहभी असत्शरीरवालाहै, यह विषय जैसे अनुभवमें आताहै वह मैं कहूंगा, आप श्रवण कीजिये ॥ ७७ ॥ यह असत् मनही नाशवान् दृश्यमय दोषका विस्तार ऐसे करताहै जैसे स्वप्न असत्ही सदाकार दूसरे स्वप्नका ॥ ७८ ॥ वही मन स्वयं अपनी इच्छासे देहादिका शीघ्र संकल्प करताहै, और चिरकालकी भावनासे विशालरूप यह जगत्मयी इस इन्द्रजालकी शोभाका विस्तार करताहै ॥७९॥ केवल यह मनही चंचलशक्ति धारण करनेका कारण जहां चलताहै वहांही स्फुरित होने लगताहै, और यह स्वयं जाताहै यांचा करताहै, भ्रमण करताहै, डूबताहै, और संहार करताहै, तथा संसारकी दशामें न्यूनता, और कैवल्यरूप मुक्तिदशाकी उत्कर्षताकोभी यही प्राप्तहोताहै ॥ ८० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणार्थंकल्पनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

सम्पूर्ण संसारका मूल मनहै उस मनका मूल यहां कहाजाताहै और वही मनका और संसारकाभी तत्त्वहै इस विषयका वर्णन इस ५ वे सर्गमें कियागयाहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ भगवन्मुनिशार्दूलकिमिवेहमनोभ्रमे ॥ विद्यतेकथमुत्पन्नंमनोमायामयंकुतः ॥ १ ॥ उत्पत्तिमादावितिमेसमासेनवदप्रभो ॥ प्रवक्ष्यसिततःशिष्टंवक्तव्यंवदतांवर ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ महाप्रलयसंपत्तावसत्तांसमुपागते ॥ अशेषदृश्यसर्गादौशांतमेवावशिष्यते ॥ ३ ॥ आस्तेनस्तमितोभास्वानजोदेवोनिरामयः ॥ सर्वदासर्वकृत्सर्वः परमात्मामहेश्वरः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–हे भगवन् हे मुनियोंमें शार्दूल ! इस मनके भ्रममें वास्तविक मूलकारण क्याहै ? और यह मन कैसे उत्पन्न हुआ तथा किसप्रकार यह मायामय है ? ॥ १ ॥ हे प्रभो सबका कारण जो मन है उसकी उत्पत्तिका कारण मुझसे कहिये हे वदताम्वर कहने वालोंमें श्रेष्ठ उसके अनन्तर शेषवात कहियेगा ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–महाप्रलयमें सम्पूर्ण पदार्थोंका सूक्ष्मीभाव होनेसे क्रियामें असमर्थ होनेपर, भावीदृश्यकी उत्पत्तिके पूर्व निर्विक्षेप शान्तरूपही शेष रहजाताहै ॥ ३ ॥ प्रकाशरूप अज निरामय सर्वदा सबका कर्ता सर्वरूप, परमात्मा, महेश्वर देवही अस्तमित (अविस्पष्ट) स्वभावसे शेष रहताहै ॥ ४ ॥

यतोवाचोनिवर्त्ततेयोमुक्तैरवगम्यते ॥ यस्यचात्मादिकाःसंज्ञाःकल्पितानस्वभावजाः ॥ ५ ॥ यः पुमान्सांख्यदृष्टीनांब्रह्मवेदांतवादिनाम् ॥ विज्ञानमात्रंविज्ञानविदामेकांतनिर्मलम् ॥ ६ ॥ यःशून्यवादिनांशून्योभासकोयोर्कतेजसाम् ॥ वक्तामंताऋतंभोक्ताद्रष्टाकर्त्तासदैवसः ॥ ७ ॥ सन्नप्यसद्योजगति योदेहस्थोपिदूरगः ॥ चित्प्रकाशोह्ययंयस्मादालोकइवभास्वतः ॥ ८ ॥

अर्थ—जिस परमात्मामें वाणी नहीं प्राप्त होती, जो केवल मुक्तपुरुषोंको प्राप्त होताहै, जिसके आत्माआदि नाम कल्पितहैं न कि स्वाभाविक ॥ ५ ॥ सांख्यशास्त्रवाले जिसको पुरुष, वेदान्ती ब्रह्म, विज्ञानवादी निर्मल क्षणिक विज्ञान, और शून्यवादी जिसको शून्य कहतेहैं, और वही देव सब सूर्य्यादि तेजोंका प्रकाशक वक्ता, मन्ता, (ज्ञाता) सत्यरूप, भोक्ता, द्रष्टा और सबका कर्ता है ॥ ६ ॥ ७ ॥ जो सत्‌रूप, होनेपरभी अविद्यासे आच्छादित होनेसे पामरोंकी दृष्टिसे असत्, अतएव शरीरमें स्थित रहनेपरभी दूरस्थहै क्योंकि यह आत्मा सूर्य्यके आलोकके सदृश चित्प्रकाशरूपहै ॥ ८ ॥

यस्माद्विष्णवादयोदेवाःसूर्यादिवमरीचयः ॥ यस्माज्जगंत्यनंतानिबुद्बुदाजलधेरिव ॥ ९ ॥ यंयांतिदृश्यवृंदानिपयांसीवमहार्णवम् ॥ यआत्मानंपदार्थंचप्रकाशयतिदीपवत् ॥ १० ॥ यआकाशेशरीरेच दृषत्स्वप्सुलतासुच ॥ पांसुष्वद्रिषुवातेषुपातालेषुचसंस्थितः ॥ ११ ॥ यःस्रावयतिसंरब्धंपुर्यष्टकमितस्ततः ॥ येनमूकीकृतामूढाः शिलाध्यानमिवास्थिताः ॥ १२ ॥

अर्थ—जिस परमात्मासे विष्णुआदिदेव ऐसेहैं जैसे सूर्य्यसे किरण, और जिससे अनन्तजगत् ऐसे उत्पन्न होते हैं जैसे समुद्रसे बुद्बुद (बुल्ले) ॥ ९ ॥ सम्पूर्ण दृश्योंके समूह जिसमें ऐसे जाके लीन होतेहैं जैसे समुद्रमें सबप्रकारके जल, और जो दीपके समान अपना तथा अन्यपदार्थोंकाभी प्रकाशक है ॥ १० ॥ जो परमात्मा आकाशमें, शरीरोंमें, पाषाणोंमें, जलोंमें, लताओंमें, धूलियोंमें, पर्वतोंमें, वायुमें और पातालादिलोकोंमें, अर्थात् सर्वत्र व्याप्तहोके स्थितहै ॥ ११ ॥ जो परमात्मा अपने व्यापारोंमें उद्युक्त, जो कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय भूत सूक्ष्म, पंचप्राण, अविद्या, काम, कर्म, और अन्तःकरणरूप पुर्य्यष्टकको अपनी चेतनताकी व्याप्तिसे कार्य्योंमें प्रवृत्त करताहै अर्थात् चेतनोंकाभी चेतनदाता यही ईश्वरहै, और इसी परमात्मासे मूक कियेहुये अचेतन शिलाआदि मानों ध्यानमें स्थितहैं ॥ १२ ॥

व्योमयेनकृतंशून्यंशैलायेनघनीकृताः ॥ आपोद्रुताःकृतायेनदीपोयस्यवशोरविः ॥ १३ ॥ प्रसरंतियतश्चित्राः संसारासारवृष्टयः ॥ अक्षयामृतसंपूर्णादंभोदादिववृष्टयः ॥ १४ ॥ आविर्भावतिरोभावमयास्त्रिभुवनोर्मयः ॥ स्फुरंत्यतिततेयस्मिन्मरावितिमरीचयः ॥ १५ ॥ नाशरूपोविनाशात्मायोंतःस्थः सर्वजंतुषु ॥ गुप्तोयोप्यतिरिक्तोपिसर्वभावेषुसंस्थितः ॥ १६ ॥

अर्थ—जिस परमात्माने आकाशको शून्य किया, पर्वतोंको सघनकिया, जलोंको द्रवीभूतकिया, और सब पदार्थोंके प्रकाशक सूर्य्य दीपकेसमान जिसके वशमें ॥ १३ ॥ जिस अक्षय और अमृतरूप परमात्मासे संसारआसा-

रकी वृष्टि ऐसे निकलती है जैसे अक्षयअमृतसे सम्पूर्ण मेघसे जलकी वृष्टि ॥ १४ ॥ अत्यन्त विस्तीर्णरूप जिस परमात्मामें आविर्भाव और तिरोभाव प्रधान त्रिभुवनरूपी तरंग ऐसे स्फुरित होतीहैं, जैसे मरुमें मरीचिके उदक ॥ १५ ॥ जो परमात्मा सबपदार्थोंमें प्रपंचरूपसे नाशरूप और अपने वास्तविक रूपसे अविनाशी, अतिसूक्ष्म होनेसे सब प्राणियोंके अन्तमें गुप्त (छिपाहुआ) और अतिमहान् होनेसे सबसे पृथक् स्थितहै ॥ १६ ॥

प्रकृतिव्रततिर्व्योम्निजाताब्रह्मांडसत्फला ॥ चित्तमूलेंद्रियदलायेननृत्यतिवायुना ॥ १७ ॥ यश्चिन्मणिः प्रकचतिप्रतिदेहसमुद्गके ॥ यस्मिन्निंदौस्फुरंत्येताजगज्जालमरीचयः ॥ १८ ॥ प्रशांतेचिद्घनेयस्मिन् स्फुरंत्यमृतवर्षिणि ॥ धाराजलानिभूतानिसृष्टयस्तडितःस्फुटाः ॥ १९ ॥ चमत्कुर्वंतिवस्तूनियदालोकतयामिथः ॥ असज्जातमसद्येनयेनसत्सत्त्वमागतम् ॥ २० ॥

अर्थ—ब्रह्माण्डरूपी सत्फलको उत्पन्न करनेवाली, चित्तरूपी मूल और इन्द्रियरूप दलवाली प्रकृतिरूप लता जिस परमात्मारूप वायुसे उत्पन्न कीहुई चिदाकाशमें नाचरही है ॥ १७ ॥ जो चेतनरूप मणि प्रत्येके देहरूप पेटारीमें प्रकाशकर रहाहै, और जिस चेतनरूप चन्द्रमाके खिलनेपर ये अनेकजगत्के समूहरूपी किरण खिलतेहैं ॥ १८ ॥ जिस अमृतवर्षी प्रशान्त चिद्घनमें, भूतरूपी धारा जल और सृष्टिरूप बिजुली प्रत्यक्ष स्फुरित होती है ॥१९॥ जिस परमात्माके प्रकाशसे सम्पूर्णपदार्थ परस्पर विचित्रकार्य्य करते हैं, और जिस परमात्माहीसे असत् असत्यताको और सत् पदार्थ सत्यताको प्राप्त हुआहै ॥ २० ॥

चलतीदमनिच्छस्यकायोयोयस्यसन्निधौ ॥ जडंपरमरक्तस्यशांतमात्मनितिष्ठतः॥२१॥ नियतिर्देशकालौचचलनंस्पंदनंक्रिया ॥ इतियेनगताःसत्तांसर्वसत्तातिगामिना ॥२२॥ शुद्धसंविन्मयत्वाद्यःखंभवेद्व्योमचिंतया ॥ पदार्थचिंतयार्थत्वमिवतिष्ठत्यधिष्ठितः ॥२३॥ कुर्वन्नपीहजगतांमहतामनंतवृंदंनकिंचनकरोतिनकाश्चनापि ॥ स्वात्मन्यनस्तमयसंविदिनिर्विकारेत्यक्तोदयस्थितिमतिस्थितएकएव॥२४॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणेवाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेउत्पत्तिप्रकरणे मूलकारणदेवस्वरूपवर्णनं नाम पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

अर्थ—शान्तरूप आत्मामें स्थित, असंग और इच्छारहित जिस परमात्माकी सन्निधिसे प्रसिद्ध देव, मनुष्य और तिर्य्यक्योनियोंका शरीर, तथा अत्यन्तजड यह सम्पूर्ण दृश्य चलरहाहै ॥ २१ ॥ सृष्टिकालमें अवश्य सृष्टि होनी चाहिये और प्रलयकालमें प्रलय, इत्यादिरूप नियत (मर्यादा) और उसके अवच्छेदक देशकाल, उसकी प्राप्तिमें बीजादि अन्तर्गतकार्य्यके बीजकी वृद्धिसे चलन, बीजको भेदन करके अंकुरादिके निर्गमनसे स्पन्दन, और अनन्तर उससे काण्डशाखादि क्रमसे फलावसान व्यापाररूपक्रिया इत्यादि सब सत्तासे विलक्षण परमार्थसत्ता विशिष्ट परमात्मासेही सत्ताको प्राप्त हुयेहैं ॥२२॥ वही परमात्मा शुद्धसंवित्मय होनेके कारणसे आकाशका चिन्तन करनेसे आकाशहोजाताहै, और अन्यपदार्थकी चिन्तासे अन्यपदार्थ होजाताहै, और सबसे उत्कृष्ट वर्तमान रहताहै ॥ २३ ॥ यह परमात्मा अनेक बडे२ ब्रह्माण्डसमूहोंको तथा उनमें विचित्र लीलाओंको करताहुआभी वास्तविकमें कुछभी नहीं करता, क्योंकि निर्विकार, अनस्तमय, सजातीय विजातीय और स्वगतभेदशून्य स्वात्मसंवित्रूपमें वह एकही स्थितहै ॥२४॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे मूलकारणदेवस्वरूपवर्णनं नाम पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

ज्ञानसेही आत्मवस्तुकी प्राप्ति होतीः है कर्मोंसे नहीं इसलिये ज्ञानकी प्राप्तिके उपायोंके लिये यत्न करना चाहिये इस विषयका तथा इसकी रीतिका वर्णन इस ६ वें सर्गमें कियागया है ॥

॥श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अस्यदेवाधिदेवस्यपरस्यपरमात्मनः॥ज्ञानादेवपरासिद्धिर्नत्वनुष्ठानदुःखतः ॥१॥ अत्रज्ञानमनुष्ठानंनत्वन्यदुपयुज्यते ॥ मृगतृष्णाजलभ्रांतिशांतौचेदंनिरूपितम् ॥ २ ॥ नह्येषदूरेनाभ्याशेनालभ्योविषमेनच ॥ स्वानंदाभासरूपोसौस्वदेहादेवलभ्यते ॥ ३ ॥ किंचिन्नोपकरोत्यत्रतपोदानव्रतादिकम् ॥ स्वभावमात्रेविश्रांतिमृतेनात्रास्तिसाधनम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हिरण्यगर्भादि देवोंका अथवा मन और इन्द्रियोंका साक्षीरूपसे प्रकाशक होनेसे अधिदेव इस परमात्माकी परासिद्धि अर्थात् प्राप्ति केवल ज्ञानसे होती है न कि कर्मके दुःखोंसे ॥ १ ॥ आत्माकी प्राप्तिकेलिये केवल ज्ञानके अनुष्ठानका उपयोगहै और किसीका नहीं, यह वार्ता (ज्ञानमात्रसे कार्य्यसिद्धि) मृगतृष्णाके जलकी भ्रान्तिकी निवृत्ति दृष्ट है ॥ २ ॥ यह आत्मा न दूरहै न निकटहै न अलभ्यहै, और न विषमप्रदेशमें है, क्योंकि दूर निकट, और अलभ्य यह व्यवहार अपनेसे अन्य वस्तुमें होताहै, आत्मा तो ऐसा नहीं है, यहतो अभ्याससे स्वानन्दरूप इसी शरीरसेही प्राप्त होताहै ॥ ३ ॥ तप, दान और व्रतादिक इस आत्माकी प्राप्तिमें कोईभी उपकार नहीं करते अपने स्वभावमात्रमें विश्रान्तिको छोड्के इसमें कुछभी साधन नहीं है ॥ ४ ॥

साधुसंगमसच्छास्त्रपरतैवात्रकारणम् ॥साधनंबाधनंमोहजालस्ययदकृत्रिमम्॥५॥अयंसदेवइत्येवसंपरिज्ञानमात्रतः ॥ जंतोर्नजायतेदुःखंजीवन्मुक्तत्वमेतिच ॥६॥ श्रीरामउवाच ॥ संपरिज्ञातमात्रेणकिलानेनात्मनात्मना ॥ पुनर्दोषानबाधंतेमरणाद्याःकदाचन ॥ ७ ॥ देवदेवोमहानेषकुतोदूरादवाप्यते ॥ तपसाकेनतीव्रेणक्लेशेनकियताथवा ॥ ८ ॥

अर्थ—कर्मोंमें साधुसमागम और सत् वेदान्तादि शास्त्रोंमें तत्पर होनाही आत्माकी प्राप्तिमें कारणहै, और अकृत्रिम नित्य सिद्ध ब्रह्मका साक्षात्कार होनाही सांसारिक मोहजालके बाधनमें साधनहै ॥ ५ ॥ यही वह देवहै जिसके संपरिज्ञानमात्रसे जीवको कदापि दुःख नहींहोता, और वह जीवन्मुक्त होजाताहै, अर्थात् ज्ञानही जीवन्मुक्ति तथा दुःखनिवृत्तिमें साधनहै अन्य नहीं ॥ ६ ॥ श्रीरामजी बोले-हे भगवन् ! इस आत्माका आत्मामात्रसे संपरिज्ञान होनेसे मरणआदि क्लेश पुनः जीवको कदापि नहीं होते ॥ ७ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह महान् देवोंका देव कितने और कैसे शीघ्र तप अथवा क्लेशसे सन्निकटमेंही शीघ्र प्राप्त होताहै ॥ ८ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ स्वपौरुषप्रयत्नेनविवेकेनविकासिना ॥ सदेवोज्ञायतेरामनतपःस्नानकर्मभिः॥९॥ रागद्वेषतमःक्रोधमदमात्सर्यवर्जनम् ॥ विनारामतपोदानंक्लेशएवनवास्तवम् ॥ १० ॥ रागाद्युपहतेचित्तेवंचयित्वापरंधनम् ॥ यदर्ज्यतेतस्यदानाद्यस्यार्थास्तस्यतत्फलम् ॥ ११ ॥ रागाद्युपहतेचित्तेव्रतादि क्रियतेचयत् ॥ तद्दंभःप्रोच्यतेतस्यफलमस्तिमनाङ्‌च ॥ १२ ॥

अर्थ—वेदान्तादि श्रवणरूप अपने पौरुषप्रयत्नसे, हे रामजी ! वह देव प्राप्तहोताहै, और तप स्नानादि कर्म्मोंसे नहीं ॥ ९ ॥ राग, द्वेष, अज्ञान, क्रोध, मद और मात्सर्य्य, इनके वर्जनके विना जो तप वा दान करनाहै वह केवल क्लेशही है वास्तवज्ञानका साधन नहीं है ॥ १० ॥ रागादि सहित चित्तमें ठगकर दूसरेका धन उपार्जन किया जाताहै उस धनके दानसे जिसका वह धनहै उसको फल होताहै न कि दाताको ॥ ११ ॥ राग आदिसे उपहत (नष्ट) चित्तसे जो व्रत आदि कियाजाताहै वह दम्भ (पाषण्ड) कहाताहै उसका कुछभी फल नहीं है ॥ १२ ॥

तस्मात्पुरुषयत्नेनमुख्यमौषधमाहरेत् ॥ सच्छास्त्रसज्जनासंगौसंसृतिव्याधिनाशिनौ ॥ १३ ॥ अत्रैकंपौरुषंयत्नंवर्जयित्वेतरागतिः ॥ सर्वदुःखक्षयप्राप्तौनकाचिदुपपद्यते ॥ १ ॥ शृणुतत्पौरुषंकीदृगात्मज्ञानस्यलब्धये ॥ येनशाम्यत्यशेषेणरागद्वेषविषूचिका ॥ १५ ॥ यथासंभवयावृत्त्यालोकशास्त्राविरुद्धया ॥ संतोषसंतुष्टमनाभोगगंधंपरित्यजेत् ॥ १६ ॥

अर्थ—इसलिये अपने पौरुषके यत्नसे संसाररूपी व्याधिके नाश करनेवाले सत्शास्त्र और सज्जन समागमरूपी मुख्य औषधका प्रयोग करना चाहिये ॥ १३ ॥ इस पूर्वोक्त एक पौरुषरूपी यत्नको छोड्के इस सर्व दुःख क्षयरूप आत्माकी प्राप्तिमें दूसरा कोईभी उपाय नहीं है ॥ १४ ॥ हे रामजी ! आत्मज्ञानकी प्राप्तिमें कैसा पौरुष अपेक्षितहै सो सुनिये जिस पौरुषसे राग द्वेषादि महामारी सर्वथा शान्त होजाती है ॥ १५ ॥ लोक और शास्त्रसे अविरुद्ध यथासम्भव जीविकासे सन्तुष्ट मन यह पुरुष, भोगोंमें जो अभिनिवेशहै उसको त्यागे ॥ १६ ॥

यथासंभवमुद्योगादनुद्विग्नतयास्वया ॥ साधुसंगमसच्छास्त्रपरतांप्रथमंश्रयेत् ॥ १७ ॥ यथाप्राप्तार्थसंतुष्टोयोगर्हितमुपेक्षते ॥ साधुसंगमसच्छास्त्रपरःशीघ्रंसमुच्यते ॥ १८ ॥ विचारेणपरिज्ञातस्वभावस्यमहामतेः ॥ अनुकंप्याभवंत्येतेब्रह्मविष्णवीन्द्रशंकराः ॥ १९ ॥ देशोयंसुजनप्रायालोकाःसाधुंप्रच-

(१) तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति (इस आत्माको वेदके पाठसे ब्राह्मणलोग जाननेकी इच्छा करते हैं) इस वाक्यसे यज्ञदानादिका निषेध जो है वह सामान्य तप आदि विषयकहै इस अभिप्रायसे रामजी कहतेहैं ॥

क्षते ॥ सविशिष्टःससाधुःस्यात्तंप्रयत्नेनसंश्रयेत् ॥ २० ॥ अध्यात्मविद्याविद्यानांप्रधानंतत्कथाश्रयम् ॥ शास्त्रंसच्छास्त्रमित्याहुर्मुच्यतेतद्विचारणात् ॥ २१ ॥ सच्छास्त्रसत्संगमजैर्विवेकैस्तथाविनश्यंतिब-लादविद्याः ॥ यथाजलानांकतकानुषंगाद्यथाजनानांमतयोपियोगात् ॥ २२ ॥

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे मुमुक्षुप्रयत्नोपदेशो नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

अर्थ— यह कार्य्य अशक्य है ऐसे उद्वेग अथवा निर्वेदको त्यागकर अपने हितकेलिये यथासम्भव उद्योगसे साधुसमागम और सत्शास्त्रकी तत्परताका सबसे प्रथम आश्रय ग्रहण करै ॥ १७ ॥ जो प्राणी यथाप्राप्त वस्तुसे सन्तुष्टहो और शास्त्रोंमें निन्दित वस्तुओंकी उपेक्षा करताहै तथा साधुसमागम और सत्शास्त्रमें तत्परहै, वह शीघ्र मुक्त होजाताहै ॥ १८ ॥ जिस महाबुद्धिमान् पुरुषने विचारसे आत्मतत्त्वको जानलियाहै उसके आज्ञाकारी अथवा अनुकम्पनीय ये ब्रह्मा विष्णु इन्द्र और शिवादिदेवभी होजाते हैं ॥ १९ ॥ संसार श्रुतिस्मृतिप्रोक्त आचारमें निष्ठ सज्जन जन साधु कहाते हैं और वह ज्ञान वैराग्यादि गुणोंसे सहितभी हो वही साधुहै और यत्नपूर्वक उसका आश्रय लेना चाहिये ॥ २० ॥ आत्मज्ञानका प्रतिपादन करनेवाली जो विद्याहै उसको सब विद्याओंमें प्रधान अध्यात्मविद्या कहते हैं, आत्मज्ञानकी उत्पत्तिके अनुकूल विचाररूप कथाका आश्रय जो उपनिषत्, गीता, सूत्र,भाष्यादि ग्रन्थहैं उनको सच्छास्त्र कहतेहैं, और उनके विचारनेसे मनुष्य मुक्त होजाताहै ॥ २१ ॥ जिसप्रकार निर्मली ओषधिके संयोगसे जलका पङ्क और योगाभ्याससे बाह्यमति नष्ट होजाती है, इसीप्रकार सत्शास्त्र और साधुसमागमसे उत्पन्न विवेकसे बलात्कारसे सम्पूर्ण अविद्या नष्ट होजाती है ॥ २२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे मुमुक्षुप्रयत्नोपदेशो नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

पूर्व कहा जो देव सो दूर नहींहै किंतु इस शरीरमेंही नित्य संस्थित चिन्मात्ररूपसे विश्रुतहैं इस विषयका वर्णन इस ७ वें सर्गमें कियागयाहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ यएषदेवःकथितोयस्मिन्ज्ञातेविमुच्यते ॥ वदकासौस्थितोब्रह्मन्कथमेनमहंलभे ॥१॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यएषदेवः कथितोनैषदूरेवतिष्ठते ॥ शरीरेसंस्थितोनित्यंचिन्मात्रमितिविश्रुतः ॥ २ ॥ एष सर्वमिदंविश्वंनविश्वंचैषसर्वगः ॥ विद्यतेह्येषएवैकोनतुविश्वाभिधास्तिदृक् ॥ ३ ॥ चिन्मात्रमेषशशिभृच्चिन्मात्रंगरुडेश्वरः ॥ चिन्मात्रमेवतपनश्चिन्मात्रंकमलोद्भवः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले हे ब्रह्मन्! ब्रह्मादिदेवों कारणभूत देव जो आपने पूर्व कहाहै जिसके ज्ञानसे जीव मुक्त होजाताहै, वह किस उपाधिमें अनावरणसे अभिव्यक्त और किस तत्वमें है ? और उसको मैं कैसे प्राप्त करूं? सो उपाय कहिये ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले— हे रामजी ! जिस देवके विषयमें मैने कहा यह कहीं दूरनहीं है किन्तु शरीरमेंही चिन्मात्ररूपसे प्रसिद्ध स्थितहै, शरीरस्थहृदय पुण्डरीकमें विशेषरूपसे उसकी अभिव्यक्ति होती है ॥ २ ॥ यह सम्पूर्ण संसार परमात्माही है, और यह सर्वव्यापी चेतनस्वरूपसे पृथक्भी है, वह परमात्मा केवल एक चेतनाकार है, वह दृक्चेतनशक्ति दृश्य विश्वाकार नहीं, सम्पूर्ण वस्तुओंका अधिष्ठान होनेसे सर्वगतत्व प्रतिपादन (कथन) के लिये उसको विश्वाकार कहागयाहै ॥ ३ ॥ हे रामजी! ये शशिभूषण शिवजी चिन्मात्रही है सबके नियन्ता विष्णु चिन्मात्रही हैं, सूर्य्यभी चिन्मात्रही है और कमलोद्भव ब्रह्माजीभी चिन्मात्रहै, तात्पर्य्य यह कि कार्य्यात्मक विश्वकीही सत्ता परब्रह्मकी सत्ता अभिन्न नहीं है किन्तु जगत्कारण माया और उसके गुणोंके अभिमानी देवताओंकी सत्ताभी ब्रह्मसे अभिन्नरूपही है ॥ ४ ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ बालाअपिवदंत्येतद्यदिचेनतमात्रकम् ॥ जगदित्येवकैवात्रनामस्यादुपदेशता ॥५॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ चिन्मात्रंचेतनंविश्वमितियज्ज्ञातवानसि ॥ नकिंचिदेवविज्ञातंभवताभवनाशनम् ॥ ६ ॥ चेतनंरामसंसारोजीवएषपशुःस्मृतः ॥ एतस्मादेवनिर्यांतिजरामरणभीतयः ॥ ७ ॥ पशुरज्ञोह्यमूर्तोपिदुःखस्यैवैषभाजनम् ॥ चेतनत्वाच्चेतनीयंमनोऽनर्थःस्वयंस्थितः ॥ ८ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले– हे ब्रह्मन् ! इस बातको बालकभी कहतेहैं कि यह सम्पूर्णविश्व चेतनमात्र परब्रह्मका रूपही है तब उपदेशकी क्या आवश्यकताहै ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले– चिन्मात्र चेतन यह विश्वहै यह जो आपने जाना, इससे संसारकी नाशकरनेवाली वस्तु आपने कुछभी नहींजानी ॥ ६ ॥ हे रामजी ! चेतन यह संसारहै इसमें यह जीव पशुहै, इसीसे जरामरण आदि सब भय निकलेहैं ॥ ७ ॥ यह अज्ञानीपशु स्थूलदेहमात्र रहित होनेसेभी दुःखकाही भागीहै, क्योंकि "अशरीरं वावसन्तं नप्रियाप्रिये स्पृशतः" इस श्रुतिका अर्थ यहहै कि स्थूल, सूक्ष्म, और कारण तीनोंशरीरोंमें आत्मभ्रान्तिसे रहित, और भ्रान्तिशून्य जो प्राणी है उसको रागद्वेषप्रयुक्त सुखदुःख नहीं होता, इसविरुद्धज्ञानसे चेतनही मनरूप अनर्थ स्वयं होके स्थित रहताहै ॥ ८ ॥

चेत्यनिर्मुक्ततयास्यादचेत्योन्मुखताथवा ॥ अस्यसामरितावस्थातांज्ञात्वानानुशोचति ॥ ९ ॥ भिद्यतेहृदयग्रंथिश्छिद्यंतेसर्वसंशयाः ॥ क्षीयंतेचास्यकर्माणितस्मिन्दृष्टेपरावरे ॥ १० ॥ तस्यचेत्योन्मुखत्वंतुचेत्यासंभवनंविना ॥ रोद्धुंनशक्यतेदृश्यंचेत्थंशाम्यतिवैकथम् ॥ ११ ॥ अचेत्यचित्स्वरूपंयत्तचासंभवनंविना ॥ कस्वरूपोन्मुखत्वंहिकेवलंचेत्यरोधतः ॥ १२ ॥

अर्थ—चेत्य (विषय) से निर्मुक्त होना, अथवा अचेत्य विषयशून्य केवल आत्माकी ओर उन्मुख होना, यह इसकी ज्ञानावस्थाहै, इसको जानके पुनः शोक नहीं करता ॥ ९ ॥ पर कारणभी जिससे अधस्तात् रहताहै ऐसे शुद्ध आत्माके ज्ञानसे मूल अविद्याका नाश होनेसे अविद्याका कार्य्य अन्तःकरणके साथ तादात्म्याध्यास लक्षण हृदयकी ग्रन्थियां नष्ट होजातीहैं उनके नाश होनेसे तन्मूलक सम्पूर्ण संशयभी क्षीण होजातेहैं ॥ १० ॥ विनाज्ञानके चेत्य (विषय) की ओर उन्मुखताका निरोध सर्वथा अशक्यहै तब भला दृश्यकी शान्ति कैसे होसकती है ? ॥ ११ ॥ अचेत्य चित्स्वरूप जो मोक्षहै वहभी पूर्वोक्त चेत्य असंभवरूप ज्ञानके विना कहां ! क्योंकि हठ समाधिसे चेत्यके निरोधमात्रसे विना दृश्यका बाधहुये केवल स्वरूपकी उन्मुखता (जो मोक्षमें आवश्यक) होतीही नहीं ॥ १२ ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ यस्मिन्जीवेहिविज्ञातेनविनश्यतिसंसृतिः ॥ व्योमरूपीपशुस्त्वज्ञःसब्रह्मन्कुत्रकीदृशः ॥ १३ ॥ साधुसंगमसच्छास्त्रैःसंसारार्णवतारकः ॥ दृश्यतेपरमात्मायःसब्रह्मन्वदकीदृशः १४ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यदेतच्चेतनंजीवोविशीर्णोजन्मजंगले ॥ एतमात्मानमिच्छंतियेतेज्ञाःपंडिताअपि ॥ ॥ १५ ॥ जीवएवहिसंसारश्चेतनादुःखसंततिः ॥ अस्मिन्ज्ञातेनविज्ञातंकिंचिद्भवतिकुत्रचित् ॥ १६ ॥

अर्थ—हे ब्रह्मन् जिसे जीवमात्र (अन्तःकरणादि सहित) के ज्ञानसे संसार नष्ट नहीं होता व आकाश (कल्पित) रूपवाला जीव कैसा और किस आधारपर है ? क्या संसारकोटिमें है वा उससे पृथक् ? ॥ १३ ॥ हे ब्रह्मन् ! साधुसमागम और सत्शास्त्रोंसे जो परमात्मा संसाररूपी समुद्रसे पार करनेवाला जानाजाताहै वहभी कैसाहै, तात्पर्य यह कि, यदि जीव संसारकोटिमें है तो उसका तारक कैसा हो सकता है, क्योंकि समुद्रकोही कोई समुद्रसे पार नहीं उतार सकता, इसलिये जीवको संसारी कहना यह असंगत प्रतीत होता है ॥ १४ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—यदि जीवका वास्तविक स्वरूपहो और वही संसरणधर्मवाला और मुक्त हो तो यह आपका प्रश्नाक्षेप संगत हो, परन्तु यह बात नहीं है किन्तु "ब्रह्मवाइदमग्रआसीत्" इत्यादि वाक्योंसे ब्रह्मकोही अपने स्वरूपके अज्ञानसे संसार और उसके ज्ञानसे मुक्ति, इस आशयसे वसिष्ठजी कहतेहैं कि जन्म और शरीरादि संघातरूपी जंगलमें विशीर्ण जो यह चेतन जीवहै इसको ज्ञानी और पण्डितजन आत्मा अर्थात् ब्रह्म कहते हैं, अर्थात् ब्रह्मही विवर्तरूपसे जीवहै ॥ १५ ॥ यह जीवही संसार चेतना और दुःखकी संतति है इसके ज्ञानसे कहीं कुछ नहीं होता ॥ १६ ॥

ज्ञायतेपरमात्माचेद्रामदुःखस्यसंततिः ॥ क्षयमेतिविषावेशशांताविवविषूचिका ॥ १७ ॥ श्रीरामउवाच ॥ रूपंकथयमेब्रह्मन्यथावत्परमात्मनः ॥ यस्मिन्दृष्टेमनोमोहान्समग्रान्संतरिष्यति ॥ १८ ॥

---

(१) "चिन्मात्रम्" यहां कर्ता अर्थमें क्विप् प्रत्यय करके चित्शब्दसे मात्र च् प्रत्यय होनेसे चिन्मात्र यह शब्द बनाहै उसका अर्थ यह होताहै कि चेतनवाला इस अभिप्रायको लेके रामचन्द्रजी शंका करते है ॥ (२) "चिदेवं" चिन्मात्रम् ॥ यहां कर्तामें क्विप् नहीं हैं किन्तु भावमें ॥ (३) रामचन्द्रजीके प्रश्नका आशय यहहै कि "चेतनंरामससारजावएपपशुःस्मृतः" इस वाक्यसे जीवहीको संसारी कहाहै यह असंगतहै क्योंकि जीवका ब्रह्मरूप कहनेसे ब्रह्मभी संसारी होजायगा, और यदि जीवकी ब्रह्मरूपमें प्राप्ति नहीं होती तो उसकेसाधन ज्ञानशास्त्रादि सब व्यर्थ जायंगे; इसलिये जीवका स्वरूप कुछ विलक्षण कहना चाहिये ! इसीप्रकार जीवका आधार ब्रह्महै या अन्य, यदि ब्रह्म होतो ज्ञानसे ब्रह्ममें अध्यस्त सम्पूर्ण द्वैतकेसाथ बाध होनेसे बाधात न्याय होगा, अन्य होनेसे अद्वैतकी हानिहै ॥

॥श्रीवसिष्ठउवाच॥ देशाद्देशांतरंदूरंप्राप्तायाःसंविदोवपुः॥ निमिषेणैवयन्मध्येतद्रूपंपरमात्मनः ॥१९॥ अत्यंताभावएवास्तिसंसारस्ययथास्थितेः ॥ यस्मिन्बोधमहांभोधौतद्रूपंपरमात्मनः ॥ २० ॥

अर्थ—हे रामजी ! यदि परमात्माका ज्ञान होतो सम्पूर्ण दुःखकी सन्तति ऐसे क्षय होजाती है जैसे विषकी शान्तिमें विषकी महामारी ॥१७॥ श्रीरामजी बोले—हे ब्रह्मन् ! मुझसे परमात्माका रूप कहिये, जिसके ज्ञानसे सम्पूर्ण मनके मोहोंसे यह जीव पार होजायगा ॥ १८ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—एकनिमिषमें एक देशसे दूर देशान्तरमें प्राप्त जो संवित् (ज्ञान) की शरीर है उन दोनों (निकट और दूर देशों) के मध्यमें जो ज्ञानका रूपहै वही परमात्माका रूप-है, निर्विषयज्ञान अप्रसिद्धहै इसलिये निर्विषय अनावृत जो अपरोक्ष चिद्रूपहै वही परमात्माका रूपहै ऐसा कहनेसे अनुभवमें नहीं आसकता इसलिये शाखाके अग्रभागमें चन्द्रमा देखनेमें निःसृत अन्तःकरणसे अभिव्यक्त अपरोक्ष ज्ञान शाखादेशसे चन्द्रदेश तक एकनिमिषमें अनुस्यूतहै क्योंकि इसके विना शाखा और चन्द्रमाका एककालमें ग्रहण नहीं होसकता इसलिये शाखादेश और चन्द्रदेशका ज्ञान सविषय होनेसेभी दोनोंदेशके मध्यमें जो निर्विषय चिद्रूप ज्ञानहै वही परमात्माका रूपहै ॥ १९ ॥ जिस ज्ञानरूप महासमुद्रमें नाशआदि विकारके विनाही अपने स्वरूपसे मिथ्यात्वदशामें प्राप्त जो जगत् अत्यन्ताभावहै वही ज्ञानका रूप परमात्माका रूपहै ॥ २० ॥

द्रष्टृदृश्यक्रमोयत्रस्थितोप्यस्तमयंगतः ॥ यदनाकाशमाकाशंतद्रूपंपरमात्मनः ॥ २१ ॥ अशून्यमिव यच्छून्यंयस्मिन्शून्यंजगत्स्थितम् ॥ सर्गौघेसतियच्छून्यंतद्रूपंपरमात्मनः ॥ २२ ॥ यन्महाचिन्मय मपिबृहत्पाषाणवत्स्थितम् ॥ जडंवाजडमेवांतस्तद्रूपंपरमात्मनः ॥२३॥ सबाह्याभ्यंतरंग्रेनसर्वसंप्राप्यसंगमम् ॥ स्वरूपसत्तामाप्नोतितद्रूपंपरमात्मनः ॥ २४ ॥

अर्थ—जिस ज्ञानस्वरूपमें द्रष्टा और दृश्यका क्रम स्थित रहतेभी अस्तमय होगयाहै, और जो आकाशका बाध होनेपरभी स्वयम् अपरिच्छिन्न विशाल आकाशरूपहै वही परमात्माका रूपहै ॥ २१ ॥ जो जगत्के स्वभासे शून्य रहतेभी सब वस्तुके यथार्थस्वरूपसे पूर्ण होनेसे अणुमात्रसेभी अशून्यके सदृशहै और सृष्टियोंके समूह जिसके अज्ञानसे प्रतीत होते हैं, इसलिये सत्रूप होकरभी जो शून्यके सदृश भान होताहै वही परमात्माका रूपहै ॥ २२ ॥ जो महाचिन्मय होनेपरभी अज्ञानियोंकी दृष्टिसे बृहत्पाषाण, अथवा अन्तरमें जडके समान जो स्थितहै वही परमात्माका रूपहै॥२३॥अधिभूत, अधिदैव, और अध्यात्म शब्दसे जो कथित है उसके सहित सम्पूर्ण जगत्के संगम अर्थात् अध्यास सम्बन्धी अभेदको प्राप्तहोके जो सत्सत् इस व्यवहार योग्यताको प्राप्त होताहै वही परमात्माका रूपहै॥२४॥

प्रकाशस्ययथालोकःशून्यत्वंनभसोयथा॥तथेदंसंस्थितंयत्रतद्रूपंपरमात्मनः ॥ २५ ॥ श्रीरामउवाच ॥ सद्रूपंपरमात्मेतिकथंनामहिबुद्ध्यते ॥ इयतोस्यजगन्नाम्नोदृश्यस्यासंभवःकथम् ॥ २६ ॥ श्रीवसिष्ठ उवाच ॥ भ्रमस्यजागृतस्यास्यजातस्याकाशवर्णवत ॥ अत्यंताभावसंबोधेयदिरूढिरलंभवेत् ॥ २७ ॥ तज्ज्ञातंब्रह्मणोरूपंभवेन्नान्येनकर्मणा ॥ दृश्यात्यंताभावतस्तुऋतेनान्याशुभागतिः ॥ २८ ॥

अर्थ—जिसप्रकार प्रकाशका आलोक, आकाशकी शून्यता, आत्माहै, इसीप्रकार सम्पूर्ण जगत् जिसमें स्थितहै, अर्थात् सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका जो आत्माहै वही परमात्माका रूपहै ॥ २५ ॥ श्रीरामजी बोले- जो वस्तु प्रमाणोंसे जैसी निश्चित होती है वह उसीरूपसे सत् होती है नकि रूपान्तरसे, और ब्रह्म प्रमाणोंसे नहीं भानहोता, इसलिये सत्रूप परमात्मा कैसे जानाजाताहै? और अनेक प्रमाणसिद्ध इस विशालरूप जगत्नामवाले दृश्यका असम्भव कैसे है ॥ २६ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले- आकाशमें जैसे नीलवर्णकी भ्रान्तिहै ऐसेही इस जगत्सम्बन्धी उत्पन्न भ्रमका अत्यन्ताभाव निश्चित होनेसे प्रतिबन्धकी निवृत्तिसे महावाक्योंसे ब्रह्मका बोध होताहै और प्रतिबन्धकी निवृत्ति ब्रह्ममें अध्यस्तद्वैतके मिथ्यात्वज्ञानसे होती है, क्योंकि सर्पादिकी भ्रान्तिकेऽबाध हुये विना रज्जुके रूपका बोध नहीं होसकता ॥ २७ ॥ दृश्यके अत्यन्ताभावको छोड ब्रह्मका रूप किसी कर्मसे नहींही होता, क्योंकि दृश्यके अत्यन्ताभावके सिवाय कोईभी शुभगति नहीं है ॥ २८ ॥

अत्यंताभावसंपत्तौदृश्यस्यास्ययथास्थितेः ॥ शिष्यतेपरमार्थोसौबुद्ध्यतेजायतेततः ॥ २९ ॥ नविदः मतिर्विबोस्तिदृश्याभावादृतेक्वचित् ॥ क्वचिन्नामातिबिंबेनकिलादर्शोवतिष्ठते ॥ ३० ॥ जगन्नाम्नोस्य दृश्यस्यस्वसत्तासंभवंविना ॥ बुद्ध्यतेपरमंतत्त्वंनकदाचनकेनचित् ॥ ३१ ॥ श्रीरामउवाच ॥ इयतो दृश्यजातस्यब्रह्मांडस्यजगत्स्थितेः ॥ मुनेकथमसत्तास्तिकमेरुःसर्षपोदरे ॥ ३२ ॥

अर्थ—दृश्यके अत्यन्ताभाव होनेसे शेषब्रह्मका ज्ञान होताहै, और जिसका ज्ञान होताहै, वह जाननेवाला आत्माही होजाताहै ॥२९॥ दृश्यके अत्यन्ताभावके विना बुद्धिमें ब्रह्मके प्रतिबिम्बका अभाव कहीं नहींहोता, बुद्धिमें प्रतिबिम्बित ब्रह्म अपने आवरण करनेवाले अज्ञानको जलाताहुआ यथार्थरूपसे जानाजाताहै, अध्यस्तजगत्की सत्यतामें ब्रह्मका प्रतिबिम्ब नहींहोता क्योंकि विरोधी द्वैतग्रस्त बुद्धिमें अद्वैतके प्रतिबिम्बका उदय नहींहोता, और जैसे दर्पण विना प्रतिबिम्ब ग्रहण किये नहीं रहता ऐसेही बुद्धिभी विना प्रतिबिम्बके कदापि नहीं रहसकती ॥ ३० ॥ इस जगत्नामवाले दृश्यके मिथ्यात्व निश्चयके विना परमतत्व ब्रह्मको कभी किसीने नहीं जाना ॥ ३१ ॥ श्रीरामजी बोले—हे मुने ! इतने बिशाल परिमाणवाले इस जगत्नामक दृश्यकी सत्ताका अत्यन्तभाव कैसे ? भला कहीं सर्षप (सरसों) के उदरमें सुमेरुपर्वत कभी रहसकताहै ॥ ३२ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ दिनानिकतिचिद्रामयदितिष्ठस्यखिन्नधीः ॥ साधुसंगमसच्छास्त्रपरमस्तदहंक्षणात् ॥ ३३ ॥ प्रमार्जयामितेदृश्यंबोधेमृगजलंयथा ॥ दृश्याभावेद्रष्टृताचशाम्येद्बोधोवशिष्यते ॥ ३४ ॥ द्रष्टृत्वंसतिदृश्येस्मिन्दृश्यत्वंसत्यथेक्षके ॥ एकत्वंसतिहिद्वित्वेद्वित्वंचैकत्वयोजने ॥ ३५ ॥ एकाभावेद्वयोरेवसिद्धिर्भवतिनाद्वहि ॥ द्वित्वैक्यद्रष्टृदृश्यत्वक्षयेसदवशिष्यते ॥ ३६ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! यदि कुछदिन सत्शास्त्र और साधुसमागमतत्पर अखिन्नचित्त मेरे सम्मुख स्थित रहोगे तो मैं क्षणभरमें तुमारे चित्तसे दृश्यको ऐसे मार्जन (साफ) करदूंगा जैसे ज्ञानसे मृगतृष्णाका जल और दृश्यके अभावसे द्रष्टृताभी शान्त होजाती है और उसके अनन्तर केवल बोधमात्र शेष रहताहै ॥ ३३ ॥ ॥३४॥ दृश्यकी सत्ता द्रष्टृत्व, द्रष्टासत्तासे दृश्यत्व, एकत्वसे द्वित्व, और द्वित्वआदिको प्रसिद्धिसे एकत्वभी कल्पितहै ॥ ३५ ॥ एकके अभाव होनेसे दोनोंकी सिद्धि नहीं होसकती, द्वित्व, एकत्व, द्रष्टृत्व और दृश्यत्वके क्षयहोनेपर केवल सत्मात्र शेष रहताहै ॥ ३६ ॥

अहंतादिजगद्दृश्यंसर्वंतेमार्जयाम्यहम् ॥ अत्यंताभावसंवित्त्यामनोमुकुरतोमलम् ॥ ३७ ॥ नासतोविद्यतेभावोनाभावोविद्यतेसतः ॥ यत्तुनास्तिस्वभावेनकःक्लेशस्तस्यमार्जने ॥ ३८ ॥ जगदादावनुत्पन्नंयच्चेदंदृश्यतेततम् ॥ तत्स्वात्मन्येवविमलेब्रह्मचित्त्वात्स्ववृंहितम् ॥ ३९ ॥ जगन्नाम्नानचोत्पन्नंनचास्तिनचदृश्यते ॥ हेम्नीवकटकादित्वंकिमेतन्मार्जनेश्रमः ॥ ४० ॥

अर्थ—हे रामजी ! तुमारे मनरूपी दर्पणसे अत्यन्ताभावके सम्पादनसे अहन्ताआदि जगत् दृश्यरूपी सम्पूर्ण मल मैं मार्जन करूंगा. असत् पदार्थकी सत्ता नहीं और सत्पदार्थका कभी अभाव नहीं, जो जगत् स्वभावसेही नहीं है उसके मार्जनमें क्या क्लेशहै ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ यह प्रथम उत्पन्न नहीं हुआ, जो कुछ यह व्याप्त देखपडताहै वह विमल स्वात्माहीमें ब्रह्मकी चित्तासे वृद्धिको प्राप्तहै ॥३९॥ यह जगत् नामसे न उत्पन्न हुआ, न है, और न यथार्थ दृष्टिसे यह दिखताहै, क्योंकि सत्की उत्पत्ति व्यर्थ है, और असत्का असंभवहै, इसलिये सुवर्णमें कटक आदिके समान कल्पितहै उसके मार्जनमें क्या क्लेशहै ॥ ४० ॥

तथैतद्विस्तरेणाहंवक्ष्यामिबहुयुक्तिभिः ॥ अबाधितंयथातत्त्वंस्वयमेवानुभूयते ॥ ४१ ॥ आदावेवहिनोत्पन्नंयत्तस्येहास्तिताकुतः ॥ कुतोमरौजलसरिद्द्वितीयेंदोःकुतोग्रहः ॥ ४२ ॥ यथावंध्यासुतोनास्तियथानास्तिमरौजलम् ॥ यथानास्तिनभोवृक्षस्तथानास्तिजगद्भ्रमः ॥ ४३ ॥ यदिदंदृश्यतेरामतद्ब्रह्मैवनिरामयम् ॥ एतत्पुरस्ताद्वक्ष्यामियुक्तितोनगिरैवच ॥ ४४ ॥ यन्नामयुक्तिभिरिहप्रवदंतितज्ज्ञास्तत्रावहेलनमयुक्तमुदारबुद्धे ॥ योयुक्तियुक्तमवमत्यविमूढबुद्धिःकष्टाग्रहोभवतितंविदुरज्ञमेव ॥ ४५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे जगदादिदृश्यासत्ताप्रतिज्ञानाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अर्थ—ब्रह्मतत्व अबाधित रूपसे जिसप्रकार स्वयम् अनुभूत होताहै वह प्रकार अनेक युक्तियोंसे विस्तार पूर्वक कहूंगा ॥ ४१ ॥ जो पदार्थ प्रथम नहीं उत्पन्न हुआ, उसकी अस्तिता वा ग्रहण यहां कैसे होसकताहै ? मरुस्थ-

(१) असत् पदार्थकी सत्ताको न विकार न विवर्त और न स्वरूप कहसकते हैं और न विकार विवर्तस्वरूप यह तीनों मिलित कहसकतेहैं, क्योंकि ख (आकाश) का पुष्प इत्यादि तीनोंकामी असंभवहै इससे अनिर्वचनीय सिद्धहुआ, इसके क्लेश करनेमें कुछभी क्लेश नहीं.

लमें जलकी नदी कहां ? और कहां दूसरे चन्द्रमाका ग्रहण ? ॥ १२ ॥ जैसे वन्ध्याके पुत्र, मरुस्थलमें जल, और आकाशमें वृक्ष नहीं है वैसाही वास्तविकमें जगत्का भ्रमभी नहीं है ॥ १३ ॥ हे राम! जो जो कुछ यह देख पडताहै यह निरामय ब्रह्मरूपही है यह पीछे मैंने केवल वाणीसे किन्तु आख्यान आदि उपपत्तिरूप युक्तियोंसेभी कहूंगा ॥ १४ ॥ हे उदार बुद्धे रामजी ! जिस विषयको पण्डित जन अनेक युक्तियोंसे सिद्ध करके कहते हैं उसमें अनादर करना अयुक्त है जो मूढबुद्धिप्राणी युक्तियुक्त वस्तुका अनादर करके युक्तिशून्य कष्टपदार्थमें आग्रह करता है उसकोही पण्डित अज्ञ कहतेहैं ॥ १५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे जगदादि दृश्यासत्ताप्रतिज्ञानाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

पूर्वोक्त तत्वका ज्ञान सत्शास्त्रोंहीसे होताहै अन्यसे नहीं और सत्शास्त्रोंमेंभी यह ग्रन्थसद्यः फलदायकहै इस विषयका वर्णन इस ८ वें सर्गमें कियागयाहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ कथेतज्ज्ञायतेयुक्त्याकथमेतत्प्रसिध्यति ॥ न्यायानुभूतएतस्मिन्नज्ञेयमवशिष्यते ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ बहुकालमियंरूढासिध्याज्ञानविषूचिका ॥ जगन्नाम्न्यविचाराख्याविना ज्ञानंनशाम्यति ॥ २ ॥ वदाम्याख्यायिकारामयाइमाबोधसिद्धये ॥ ताश्चेच्छृणोषितत्साधोमुक्तएवासि बुद्धिमान् ॥ ३ ॥ नोचेदुद्वेगशीलत्वादर्द्धादुत्थायगच्छसि ॥ तत्तिर्यग्धर्मिणस्तेऽयनकिंचिदपिसेत्स्यति ॥ ४

अर्थ—श्रीरामजी बोले- हे भगवन् ! किस युक्तिसे यह जाना जाताहै और कैसे यह प्रसिद्ध होताहै क्योंकि न्यायसे अनुभूत इस पदार्थमें कुछ ज्ञेय शेष नहीं रहता ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले- इस जगत्के नाममें अविचार नामवाली मिथ्या अज्ञानरूप विषूचिका (महामारी) बहुत दीर्घकालसे वृद्धिको प्राप्त होरही है, यह ज्ञानकेविना नष्ट नहीं होती ॥२॥ हे रामजी ! बोध (ज्ञान) की सिद्धिकेलिये जिन युक्तिप्रधान आख्यायिकाओंको मैं कहूंगा, हे साधो ! यदि उनको सावधान चित्त होके सुनोगे तो तुम अपनेको बुद्धिमान् और मुक्तही समझो ॥ ३ ॥ और यदि उद्विग्न स्वभाव होनेके कारण नहीं सुनोगे किन्तु अधूरेहीमें उठके चलदोगे तो पशुआदिके धर्म (सत्शास्त्रादिके श्रवणकी अयोग्यता) वाले आपको कुछ नहीं सिद्ध होगा ॥ ४ ॥

योयमर्थंप्रार्थयतेतदर्थंयततेतथा ॥ सोवश्यंतदवाप्नोतिनचेच्छ्रांतोनिवर्तते ॥ ५ ॥ साधुसंगमसच्छास्त्रपरोभवसिरामचेत् ॥ तद्दिनैरेवनोमासैःप्राप्नोषिपरमंपदम् ॥ ६ ॥ श्रीरामउवाच ॥ आत्मज्ञानप्रबोधायशास्त्रंशास्त्रविदांवर ॥ किंनामतत्प्रधानंस्याद्यस्मिञ्ज्ञातेनशोच्यते ॥ ७ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ आत्मज्ञानप्रधानानामिदमेवमहामते ॥ शास्त्राणांपरमंशास्त्रंमहारामायणंशुभम् ॥ ८ ॥

अर्थ—जो प्राणी जिस वस्तुकी प्रार्थना करताहै और उसकेलिये वैसाही उद्योगभी करताहै तो यदि वह शान्त होके उद्योगसे निवृत्त न होजाय तो अवश्य उस वस्तुको पाताहै ॥ ५ ॥ हे रामजी ! यदि साधुसमागम और सत्शास्त्रमें तत्पर होतेहो तो महीनोंमें नहीं किन्तु दिनोंमें परमपदको पावोगे ॥ ६ ॥ श्रीरामजी बोले—हे शास्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ! आत्मज्ञानके प्रबोधकेलिये प्रधानशास्त्र कौनहै ? जिसके जाननेसे प्राणी पुनः शोक नहींकरता ॥ ७ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे महामते रामजी ! आत्मज्ञानकेलिये प्रधानशास्त्रोंमें यही महारामायण सबसे परम उत्तमहै ॥ ८ ॥

इतिहासोत्तमादस्माच्छ्रुताद्बोधःप्रवर्तते ॥ सर्वेषामितिहासानामयंसारउदाहृतः ॥ ९ ॥ श्रुतेस्मिन्वाङ्मयेयस्माज्जीवन्मुक्तत्वमक्षयम् ॥ उदेतिस्वयमेवातइदमेवातिपावनम् ॥ १० ॥ स्थितमेवास्तमायातिजगद्दृश्यंविचारणात् ॥ यथास्वप्नेपरिज्ञातेस्वप्नादावेवभावना ॥ ११ ॥ यदिहास्तितदन्यत्रयन्नेहास्तिनतत्क्वचित् ॥ इमंसमस्तविज्ञानशास्त्रकोशंविदुर्बुधाः ॥ १२ ॥

अर्थ—इस उत्तम इतिहासके श्रवण करनेसे ज्ञान अवश्य होताहै, क्योंकि सब इतिहासोंमें यह सार कहागयाहै ॥ ९ ॥ इस वाक्यसन्दर्भरूपग्रन्थको सावधानीसे सुननेपर अक्षय जीवन्मुक्तिता स्वयमेव उदय होती है ॥ १० ॥

यह जगत् ज्योंकात्योंही स्थित इसके विचारसे ऐसे अस्त होजाताहै जैसे स्वप्नके ज्ञानसे स्वप्नादिकी भावना ॥ ११ ॥ जो इस शास्त्रमें है वह अन्यमें नहींहै, और जो इसमें नहीं वह अन्यशास्त्रमें कहींनहीं, इसलिये पण्डितोंने इसको विज्ञानशास्त्रोंका कोश कहाहै ॥ १२ ॥

यइदंशृणुयान्नित्यंतस्योदारचमत्कृतेः ॥ बोधस्यापिपरंबोधंबुद्धिरेतिनसंशयः ॥ १३ ॥ यस्मैनेदंत्वरुचयेरोचतेदुष्कृतोदयात् ॥ विचारयतुयत्किंचित्सच्छास्त्रंज्ञानवाङ्मयम् ॥ १४ ॥ जीवन्मुक्तत्वमस्मिन्स्तुश्रुतेसमनुभूयते ॥ स्वयमेवयथापीतेनीरोगत्वंवरौषधे ॥ १५ ॥ श्रूयमाणेहिशास्त्रेस्मिन्श्रोतावेत्त्येतदात्मना ॥ यथावदिदमस्माभिर्ननूक्तंवरशापवत् ॥ १६ ॥ नश्यतिसंसृतिदुःखमिदंतेस्वात्मविचारणयाकथयैव ॥ नोधनदानतपःश्रुतवेदैस्तत्कथनोदितयत्नशतेन ॥ १७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे सच्छास्त्रनिरूपणं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

अर्थ—जो इस ग्रन्थको नित्य श्रवण करताहै उस उदार चमत्कारवाले पुरुषको बुद्धि अन्यग्रन्थोंसे जो बोध होताहै उससेभी परमउत्तम बोधको प्राप्तहोती है इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ १३ ॥ जिस पुरुषको पापके उदयसे यह शास्त्र अच्छा न लगे वह दूसरा ज्ञान प्रतिपादकसच्छास्त्रका विचारकरै, इसमें हमको कुछ द्वेष नहीं है ॥ १४ ॥ इस ग्रन्थके सुननेसे स्वयमेव जीवन्मुक्तिका अनुभव ऐसे होताहै जैसे उत्तम औषधके पीनेसे निरोगिताका ॥ १५ ॥ इसके श्रवण करनेसे श्रोता जीवन्मुक्तिको अपने आत्मासे जाननेलगताहै यह हमने यथार्थ वर या शापके समान कहदी, अर्थात् शाप या वरदान जैसे लगताहै वैसाही इस ग्रन्थके सुननेको प्रभाव होताहै ॥ १६ ॥ हे रामजी ! स्वात्मविचाररूपी इस कथासे संसारका दुःख नष्टहोताहै और धन, दान, तप, वेदादिका श्रवण, पठन, पाठन, तथा सैकडों यज्ञोंसेनहीं ॥ १७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे सच्छास्त्रनिरूपणं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

जीवन्मुक्तिके लक्षण, जीवन्मुक्तकी सर्वात्मता, तथा जगत्के प्रलयमें शेष आत्माका स्वरूप इन विषयोंका वर्णन इस नवम ९ सर्गमें कियागया है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ तच्चितास्तद्गतप्राणाबोधयंतःपरस्परम् ॥ कथयंतश्चतन्नित्यंतुष्यंतिचरमंतिच ॥ १ ॥ तेषांज्ञानैकनिष्ठानामात्मज्ञानविचारिणाम् ॥ साजीवन्मुक्ततोदेतिविदेहान्मुक्ततैवया ॥ २ ॥ श्रीरामउवाच ॥ ब्रह्मन्विदेहमुक्तस्यजीवन्मुक्तस्यलक्षणम् ॥ ब्रूहियेनतथैवाहंयतेशास्त्रदृशाधिया ॥ ३ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यथास्थितमिदंयस्यव्यवहारवतोपिच ॥ अस्तंगतंस्थितंव्योमजीवन्मुक्तःसउच्यते ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले— ब्रह्ममेंही जिनका चित्त और प्राण लगाहै जो परस्पर ब्रह्मकाही बोध न करतेहैं और ब्रह्मकेही कथनमें जो संतुष्ट होतेहैं, और ब्रह्ममेंही जो रमण करतेहैं ॥ १ ॥ ऐसे आत्मज्ञान विचारशील केवल ज्ञानमें निष्ठपुरुषोंको वह जीवन्मुक्तता उदय होती है जैसे विदेह मुक्तिमें ॥ २ ॥ श्रीरामजी बोले— हे ब्रह्मन् ! जीवन्मुक्त और विदेहमुक्तके लक्षण कहिये जिससे शास्त्ररूपी दृष्टिसे उत्पन्न बुद्धिसे मैंभी वैसाही होनेकेलिये प्रयत्न करूं ॥ ३ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले— शास्त्रके अनुकुल व्यवहार करनेवालेभी जिस पुरुषकी दृष्टिमें यथास्थित यह संसार परमार्थ दृष्टिसे मिथ्यारूप होनेसे अस्तगत आकाशवत् शून्यभान होताहै उसको जीवन्मुक्त कहतेहैं ॥ ४ ॥

बोधैकनिष्ठतांयातोजाग्रत्येवसुषुप्तवत् ॥ यआस्तेव्यवहर्तैवजीवन्मुक्तःसउच्यते ॥ ५ ॥ नोदेतिनास्तमायातिसुखेदुःखेमुखप्रभा ॥ यथाप्राप्तस्थितंव्योमजीवन्मुक्तःसउच्यते ॥ ६ ॥ योजागर्तिसुषुप्तस्थोयस्यजाग्रन्नविद्यते ॥ यस्यनिर्वासनोबोधःसजीवन्मुक्तउच्यते ॥ ७ ॥ रागद्वेषभयादीनामनुरूपंचरन्नपि ॥ योंतर्व्योमवदच्छस्थःसजीवन्मुक्तउच्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—जो पुरुष यथावत् व्यवहार करताहुआभी वास्तविकमें मैं कुछ नहीं करता ऐसा निश्चय रखताहै, और जाग्रत् दशामेंभी सुषुप्तकेसमान निर्विकार आत्मामें स्थित रहताहै वह जीवन्मुक्त कहाताहै ॥ ५ ॥ जिसके मुखकी दीप्ति सुखमें न उदय होती है और न दुःखमें अस्त होती है, तथा यथा प्राप्त वस्तुसे जो संतुष्ट रहताहै उसको जीवन्मुक्त कहते हैं ॥ ६ ॥ जो निर्विकार आत्मामें सुषुप्तकेसमान स्थित रहताहै और अविद्यारूप निद्राके नाशसे जो आत्मामें सर्वदा जागता रहताहै और देहेन्द्रिय आदिके बाध होनेसे इन्द्रियोंसे विषयोंकी प्राप्तिरूप जाग्रतअवस्था जिसको नहीं है, तथा वासनारहित जिसका बोधहै उसको जीवन्मुक्त कहतेहैं जो राग, द्वेष, और भय आदिके अनुरूप (यथोचित) व्यवहार करताहुआभी, आकाशके सदृश निर्मल आत्मामें स्थितहै उसको जीवन्मुक्त कहतेहैं ॥ ८ ॥

यस्यनाहंकृतोभावोयस्यबुद्धिर्नलिप्यते ॥ कुर्वतोऽकुर्वतोवापिसजीवन्मुक्तउच्यते ॥ ९ ॥ यस्योन्मेषनिमेषार्द्धाद्विदःप्रलयसंभवौ ॥ पश्येत्रिलोक्याःस्वसमःसजीवन्मुक्तउच्यते ॥ १० ॥ यस्यनोद्विजतेलोकोलोकान्नोद्विजतेचयः ॥ हर्षामर्षभयोन्मुक्तःसजीवन्मुक्तउच्यते ॥ ११ ॥ शांतसंसारकलनःकलावानपिनिष्कलः ॥ यःसचित्तोपिनिश्चित्तःसजीवन्मुक्तउच्यते ॥ १२ ॥

अर्थ—जिसको अहंकार नहीं है तथा कार्य्य करतेहुये वा न करतेहुये जिसकी बुद्धि कर्तृत्व अकर्तृत्वरूपसे लिप्त नहीं होती उसको जीवन्मुक्त कहतेहैं ॥ ९ ॥ जिस चिदात्माके अर्द्धआवरणके विघटन (कल्पित कटाक्षके खोलने) से तीनोंलोकका प्रलय, और जिसके आवरणसे तीनोंलोककी उत्पत्ति जो देखताहै, तथा अपने आत्मामें जो समहै उसको जीवन्मुक्त कहते हैं ॥ १० ॥ जिससे संसारको कुछ भय न हो और जो संसारसे भय न करताहो, तथा जो हर्ष, क्रोध और भयके अभिमानसे रहितहो उसको जीवन्मुक्त कहते हैं ॥ ११ ॥ संसारकी सत्यताबुद्धि जिसकी नष्टहोगई है, और जो अन्यकी दृष्टिमें शरीरधारी होतेहुयेभी स्वयं शरीरके अभिमानसे रहितहै, तथा चित्तसहित होनेपरभी यथार्थमें निर्मनस्क (चित्तरहित) जो है उसको जीवन्मुक्त कहते हैं ॥ १२ ॥

यःसमस्तार्थजातेषुव्यवहार्यपिशीतलः ॥ पदार्थेष्वपिपूर्णात्मासजीवन्मुक्तउच्यते ॥ १३ ॥ जीवन्मुक्तपदंत्यक्त्वादेहेकालवशीकृते ॥ विशत्यदेहमुक्तत्वंपवनोस्पंदतामिव ॥ १४ ॥ विदेहमुक्तोनोदेतिनास्तमेतिनशाम्यति ॥ नसन्नासन्नदूरस्थोनचाहंनचनेतरः ॥ १५ ॥ सूर्योभूत्वाप्रतपतिविष्णुःपातिजगत्त्रयम् ॥ रुद्रःसर्वान्संहरतिसर्गान्सृजतिपद्मजः ॥ १६ ॥

अर्थ—जो सम्पूर्णपदार्थोंमें यथोचित व्यवहारी होनेपरभी शीतल अर्थात् रागादिके तापसे रहितहै, क्योंकि रागादिके विषयभूत जो पदार्थ हैं उनमेंभी पूर्णात्मा (उनकाभी आत्मा) है उसको जीवन्मुक्त कहतेहैं ॥ १३ ॥ जीवन्मुक्तिके पदको त्यागके प्रारब्धके क्षय होनेपर इस शरीरके कालके वश (नष्ट) होनेपर यह पुरुष विदेहमुक्तिमें ऐसे प्रवेश करताहै जैसे वायुगतिमें ॥ १४ ॥ विदेहमुक्त पुरुष न उदय न अस्त होताहै, न शान्त होताहै, न वह व्यक्त न अव्यक्तहै न "अहं" (हम) "नाहं" (हम नहीं,) और न अन्य, इत्यादि व्यवहार विदेहमुक्तमें नहींहोते ॥१५॥ वह सूर्य्यहोके तपताहै विष्णुहोके तीनोंलोकका पालन करताहै, रुद्रहोके सबका संहार करताहै, और ब्रह्माहोके सृष्टियोंकी रचना करताहै ॥ १६ ॥

खंभूत्वापवनस्कंधंधत्तेसर्षिसुरासुरम् ॥ कुलाचलगतोभूत्वालोकपालसुरास्पदः ॥ १७ ॥ भूमिर्भूत्वाबिभर्तीमांलोकस्थितिमखंडिताम् ॥ तृणगुल्मलताभूत्वाददातिफलसंततिम् ॥ १८ ॥ बिभ्रज्जलानलाकारंज्वलतिद्रवतिद्रुतम् ॥ चंद्रोमृतंप्रसवतिमृतंहालाहलंविषम् ॥ १९ ॥ तेजःप्रकटयत्याशास्तनोत्यांध्यंतमोभवत् ॥ शून्यंसद्व्योमतामेतिगिरिःसन्रोधयत्यलम् ॥ २० ॥

अर्थ—पवन स्कन्धसा आकाश होके ऋषिसहित देवता और दैत्योंको धारण करताहै, और सुमेरु होके लोकपालोंके पुरका स्थान होताहै ॥ १७ ॥ पृथिवी होके अखण्डित लोकमर्य्यादाको धारण करताहै, तृण, गुल्म, वृक्ष लतादि होके फलोंके समूहको देताहै ॥ १८ ॥ अग्नि और समुद्र आकार धारण करके शीघ्र जलताहै और द्रवता है चन्द्रमा होके अमृत उत्पन्न करताहै, और हालाहल विष होके मृत्यु करताहै ॥ १९ ॥ तेज होके दिशाओंको प्रगट करताहै, अन्धकार होके अन्धता करताहै, शून्य होके आकाशस्वरूप होताहै और पर्वत होके भलीभाँति रोकताहै ॥ २० ॥

करोतिजंगमंचित्तःस्थावरंस्थावराकृतिः ॥ भूत्वार्णवोवलयतिभूस्त्रियंवलयोयथा ॥ २१ ॥ परमार्कवपुर्भूत्वाप्रकाशांतंविसारयन् ॥ त्रिजगत्त्रसरेण्वोघंशांतमेवावतिष्ठते ॥ २२ ॥ यत्किंचिदिदमाभातिभातंभानमुपैष्यति ॥ कालत्रयगतंदृश्यंतदसौसर्वमेवच ॥ २३ ॥ श्रीरामउवाच ॥ कथमेवंवदब्रह्मन्भूयतेविषमाहिमे ॥ दृष्टिरेषाथदुष्प्राप्याद्वराक्रम्येतिनिश्चयः ॥ २४ ॥

अर्थ—स्फुट अन्तःकरणमें अभिव्यक्त चैतन्यसे जंगम बनाताहै, अस्फुटचेतन (जडाकृति) होके स्थावर बनाताहै और समुद्र होके पृथिवीरूप स्त्रीको कटक (कडा) पहिनाताहै ॥ २१ ॥ आवरणरहित चेतन होके अपने प्रकाशसे व्याप्त तीनोंलोकको त्रसरेणुओंके समूहको विस्तार करताहुआ स्वयं निर्विकार शान्तरूपही रहताहै ॥ २२ ॥ जो कुछ यह भान होताहै होगया वा होगा, वह तीनों कालगत सर्व दृश्य वही है ॥ २३ ॥ श्रीरामजी बोले–हे ब्रह्मन् ! यह (पूर्वोक्त विदेहमुक्ति) तो दुष्प्राप्यहै, कहिये यह कैसे होसकती है क्योंकि यह दृष्टि अति विषम है, और किसी प्रकार प्राप्तभी होजाय तौभी चित्तकी चंचलतासे यह दुरारोह जमनेमें कठीनहै, ऐसा मेरा निश्चय है ॥ २४ ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ मुक्तिरेषोच्यतेरामब्रह्मैतत्समुदाहृतम् ॥ निर्वाणमेतत्कथितंशृणुतत्प्राप्यतेकथम् ॥ २५ ॥ यदिदंदृश्यतेदृश्यमहंत्वंतादिसंयुतम् ॥ सतोप्यस्यात्यनुत्पत्त्याबुद्ध्यैतदवाप्यते ॥ २६ ॥ श्रीरामउवाच ॥ विदेहमुक्तास्त्रैलोक्यंसंपद्यंतेयदातदा ॥ मन्येतेसर्गतामेवगतावेद्यविदांवर ॥ २७ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ विद्यतेचेत्रिभुवनंतत्तत्तांसंप्रयांतुते ॥ यत्रत्रैलोक्यशब्दार्थोनसंभवतिकश्चन॥२८॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! यह मैंने आपसे मुक्ति, ब्रह्म, और निर्वाणका स्वरूप कहाहै, यह कैसे प्राप्त होती है सो अब सुनिये ॥ २५ ॥ हे रामजी ! अहन्ता और त्वन्ताआदि संयुक्त जो कुछ यह दृश्यमान होताहै, यद्यपि यह सत्‌रूपके दृश भासताहै तथापि बन्ध्यापुत्रके समान उत्पन्न नहीं हुआ, ऐसे ज्ञानसे यह प्राप्त होताहै ॥२६॥ श्रीरामजी बोले–हे वेद्य पदार्थोंके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ ! विदेहमुक्त, प्राणी जब त्रैलोक्यदशाको प्राप्त होते हैं तो वे संसार भावकोही प्राप्त हुये ऐसा मैं मानताहूं ॥ २७ ॥ श्रीवसिष्ठ बोले–यदि त्रिलोक कोई वस्तु होतो विदेह मुक्त संसार दशा-को प्राप्तहो, जब त्रिलोकशब्दका कुछ अर्थही नहीं ॥ २८ ॥

एतत्त्रिलोकतांयातंब्रह्मेत्युक्तार्थधीःकुतः ॥ तस्मान्नोसंभवत्येषाजगच्छब्दार्थकल्पना ॥ २९ ॥ अनन्यच्छांतमाभासमात्रमाकाशनिर्मलम् ॥ ब्रह्मैवजगदित्येतत्सर्वंसत्वावबोधतः ॥ ३० ॥ अहंहिहेमकटकेविचार्यापिनदृष्टवान् ॥ कटकत्वंक्वचिन्नामऋतेनिर्मलहाटकात् ॥ ३१ ॥ जलादृतेपयोवीचौनाहंपश्यामिकिंचन ॥ वीचित्वंतादृशंदृष्टंयत्रनास्त्येवतत्रहि ॥ ३२ ॥

अर्थ—तो ब्रह्म त्रैलोक्यदशाको प्राप्तहुआ यह आपकी कही हुई बुद्धि कैसे होसकती है इसलिये जगत् श-[1]ब्दकेअर्थकी कल्पनाका सम्भव नहीं ॥ २९ ॥ अद्वय शान्त चिन्मात्र, आकाशके समान निर्मल ब्रह्मही सन्मात्रके बोधकसे यह सम्पूर्ण जगत्‌रूपहै ॥ ३० ॥ सुवर्णकेकडेमें निर्मलसुवर्णके सिवाय कटत्व (सोनेसे अलग कडाका धर्म) विचारसेभी नहीं देखा ॥ ३१ ॥ जलके तरंगमें जलके सिवाय और कुछ नहीं मैं देखता, और जहां तरंग नहीं है वही भी जलको छोडके और कुछ नहीं ॥ ३२ ॥

स्पंदत्वंपवनादन्यन्नकदाचनकुत्रचित् ॥ स्पंदएवसदावायुर्जगत्तस्मान्नभिद्यते ॥ ३३ ॥ यथाशून्यत्वमाकाशेतापएवमरौजलं ॥ तेजएवसदालोकेब्रह्मैवत्रिजगत्तथा ॥ ३४ ॥ श्रीरामउवाच ॥ अत्यंताभावसंपत्त्याजगद्दृश्यस्यमुक्तता ॥ यथोदेतिमुनेयुक्त्यातांममोपदिशोत्तमाम् ॥ ३५ ॥ मिथःसंपन्नयोर्द्रष्टृदृश्ययोरेकसंख्ययोः ॥ द्वयाभावेस्थितिंयातेनिर्वाणमवशिष्यते ॥ ३६ ॥

अर्थ—वायुसे अतिरिक्त (अलग) वायुकी गति कहीं कुछ नहीं, और स्पन्द (वायुकी गति) जो है वह सदा वायुरूपही है, इसलिये ब्रह्मसे जगत्‌का कुछभी भेद नहीं (अर्थात् ब्रह्मरूपही है) ॥ ३३ ॥ जिसप्रकार शून्यता आ-काशमें मरुस्थलमें उष्णताही जल और प्रकाश तेजरूपहै इसीप्रकार त्रैलोक्य ब्रह्मरूपही है ॥ ३४ ॥ श्रीरामजी बोले–हे मुने ! जगत्‌रूप दृश्यके बाधसे जिसप्रकार मुक्तिका उदय होताहै वह युक्ति मुझसे कहिये ॥ ३५ ॥ जगत्‌के बाधसे अवशिष्ट (बचेहुये) स्वप्रकाश आत्मभावको प्राप्त द्रष्टा और दृश्य जब एक संख्यायुक्त होजातेहैं, और दोनोंका अ-भाव जब स्थिर होजाताहै तब केवल निर्वाण (मोक्ष) अवशेष (बाकी) रहजाताहै ॥ ३६ ॥

दृश्यस्यजगतस्तस्मादत्यंतासंभवोयथा ॥ ब्रह्मैवेत्थंस्वभावस्थंबुद्ध्यतेवदमेतथा ॥ ३७ ॥ कथैतज्ज्ञायतेयुक्त्याकथमेतत्प्रसिद्ध्यति ॥ एतस्मिन्स्तुमुनेसिद्धेनसाध्यमवशिष्यते ॥ ३८ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ बहुकालमियंरूढामिथ्याज्ञानविषूचिका ॥ नूनंविचारमंत्रेणनिर्मूलमुपशाम्यति ॥ ३९ ॥ नशक्यतेझटित्येषासमुत्सादयितुंक्षणात् ॥ समप्रपतनेह्यद्रौसमरोहावरोहणे ॥ ४० ॥

---

१ ब्रह्मको सर्वात्मरूपनिरूपण करनेसे ब्रह्मकी प्राप्ति संसारकीही प्राप्तिहुई इस अभिप्रायसे रामजी शंका करते हैं ॥

अर्थ—हे ब्रह्मन्! इसलिये जिसप्रकार इस जगत्का अत्यन्त असम्भवहो, और यह जगत्का इस स्वभावस्थ ब्रह्मरूपही है यह बात जिसप्रकार जानीजाय वह कृपा करके कहिये ॥ ३७ ॥ यह वार्ता किस युक्तिसे जानीजाय और यह कैसे सिद्धहो, हे मुने! इस बातके सिद्ध होनेसे कुछ साध्य अवशेष नहीं रहजाता ॥३८॥ श्रीवसिष्ठ बोले-हे रामजी! यह मिथ्या अज्ञानरूपी विषूचिका (महामारी) बहुत चिरकालसे रूढहै यह ज्ञानरूपी मंत्रसे मूलसे शान्त होजाती है ॥ ३९ ॥ इसको शीघ्रही क्षणभरमें उखाडके नहीं फेंकसकते, क्योंकि जिस पर्वतका उतार चढाव चारोंओरसे बराबरहै उस पर्वतपर चढेहुये मनुष्यको उतरने चढनेमें समय बराबर लगताहै ॥ ४० ॥

तस्मादभ्यासयोगेनयुक्त्यान्यायोपपत्तिभिः ॥ जगद्भ्रांतिर्यथाशाम्येत्तवेदंकथ्यतेशृणु ॥ ४१ ॥ वक्ष्याम्याख्यायिकांरामयामिमांबोधसिद्धये ॥ तांचेच्छृणोपितत्साधोमुक्तएवासिबोधवान् ॥ ४२ ॥ अथोत्पत्तिप्रकरणंमयेदंतवकथ्यते ॥ यत्किलोत्पद्यतेरामतेनमुक्तेनभूयते ॥ ४३ ॥ इयमित्थंजगद्भ्रांतिर्भात्यजातैवखात्मिका ॥ इत्युत्पत्तिप्रकरणेकथ्यतेस्मिन्मयाधुना ॥ ४४ ॥

अर्थ—इसलिये अभ्यासके योगसे युक्तिसे और न्याययुक्त उपपत्तियों (युक्तियों) से जैसे जगत्की भ्रान्ति शान्तहोगी वह मैं आपसे कहताहुं आप सुनिये ॥ ४१ ॥ हे साधो रामजी! यह जगत् प्रलयकी आख्यायिका बोधकी सिद्धिकेलिये मैं कहूंगा इसको यदि सावधान चित्तहोके आप सुनोगे तो अपनेको ज्ञानयुक्त मुक्तही समझो ॥ ४२ ॥ जगत् प्रलयकी आख्यायिकाके अनन्तर मैं उत्पत्तिक्रम कहूंगा, हे रामजी! यहभी मैं कहूंगा कि जो उत्पन्न होताहै उस २ पदार्थसे आत्मा मुक्तस्थित रहताहै ॥ ४३ ॥ यह शून्य आकाशरूप जगत्की भ्रान्तिविना उत्पन्नहुई इसीप्रकार भान होती है, इस बातको अब मैं उत्पत्तिप्रकरणमें कहूंगा ॥ ४४ ॥

यदिदंदृश्यतेकिंचिज्जगत्स्थावरजंगमम् ॥ सर्वंसर्वप्रकाराढ्यंससुरासुरकिन्नरम् ॥ ४५ ॥ तन्महाप्रलयेप्राप्तेरुद्रादिपरिणामिनि ॥ भवत्यसदृश्यात्मकापियातिविनश्यति ॥ ४६ ॥ ततस्तिमितगंभीरंनतेजोनतमस्ततम् ॥ अनाख्यमनभिव्यक्तंसत्किंचिदवशिष्यते ॥ ४७ ॥ नशून्यंनापिचाकारंनदृश्यंनचदर्शनम् ॥ नचभूतपदार्थौघोयदनंततयास्थितम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—सब प्रकारसे परिपूर्ण सुर असुर और किन्नर सहित, स्थावर जंगमात्मक यह सम्पूर्ण जगत् जो कुछ देख पडताहै वह रुद्रआदिका तिरोभाव करनेवाले महाप्रलय प्राप्त होनेपर नष्ट होजाताहै असत् और अदृश्यात्मा न जानै कहां चलाजाताहै ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ उसके अनन्तर स्तिमित (शान्त) गम्भीर, न तेज, न तम अनाख्य और अनभिव्यक्त (नाम तथा रूपसे वर्जित) जो सन्मात्र है वह अवशेष रहजाताहै ॥ ४७ ॥ जो अनन्तताके (चिन्मात्र) से स्थित है वह न शून्यहै न आकारवान् है, न दृश्य है, न दर्शन ॥ ४८ ॥

किमप्यव्यपदेशात्मपूर्णात्पूर्णतराकृति ॥ नसन्नासन्नसदसन्नभावोभवनंनच ॥ ४९ ॥ चिन्मात्रंचेत्यरहितमनंतमजरंशिवम् ॥ अनादिमध्यपर्यंतंयदनादिनिरामयम् ॥ ५० ॥ यस्मिन्जगत्प्रस्फुरतिदृष्टमौक्तिकहंसवत् ॥ यश्चेदंयश्चनैवेदंदेवःसदसदात्मकः ॥ ५१ ॥ अकर्णजिह्वानासात्वङ्नेत्रःसर्वत्रसर्वदा॥ शृणोत्यास्वादयतियोजिघ्रेत्स्पृशतिपश्यति ॥ ५२ ॥

अर्थ—कुछ अव्यय देश्यात्मा (जिसका निरूपण यह ऐसाहै इसरीतिसे न होसके) अर्थात् न सत् है न असत् है और न सत् असत् उभयरूप है और न भाव है न उत्पत्ति है ॥ ४९ ॥ जो चिन्मात्र विषयरहित, अनन्त, अजर शिव आदि अन्त मध्य रहितहै ॥ ५० ॥ मुक्ता (मोती) और हंसै २ रूपमें परिणत हंसके समान यह जगत् जिस स्वरूपमें स्फुरताहै जो सद् असदात्मक देव यह संसाररूप हैभी और नहींभी है॥५१॥ जो कर्ण, जिव्हा, नासिका, त्वक् और नेत्ररहित होनेपरभी सदा और सब स्थानोंमें सुनताहै, स्वाद लेताहै, सूंघताहै, स्पर्श करताहै और देखताहै ॥५२॥

सएवसदसद्रूपंयेनालोकेनलक्ष्यते ॥ सर्गचित्रमनाद्यंतंस्वरूपंचाप्यरंजनम् ॥ ५३ ॥ अर्द्धोन्मीलितदृश्यभ्रूमध्येतारकवज्जगत् ॥ व्योमात्मैवसदाभासंस्वरूपंयोभिपश्यति ॥ ५४ ॥ यस्यान्यदस्तिनविभोःकारणंशशशृंगवत् ॥ यस्येदंचजगत्कार्यंतरंगौघइवांभसः ॥ ५५ ॥ ज्वलतःसर्वतोजस्रंचित्तस्थानेषुतिष्ठतः ॥ यस्यचिन्मात्रदीपस्यमासाभातिजगत्त्रयम् ॥ ५६ ॥

---

१ नामरूप शून्यवस्तुकी अप्रसिद्धिरूप शंकाका उत्तर देतेहैं कि, वह शून्यादिरहित चिन्मात्र है। २ कहतेहैं कि मोती खानेवाले हंस कभी मोती और कभी हंसरूपमें परिणत होतेहैं यथार्थ तो यह प्रतीत होताहै कि उनका मल मोती होता होगा ॥

अर्थ—जिस आलोकसे (प्रकाशसे) यह सब असत्‌रूप देखपडताहै वह चिदालोक (प्रकाश) भी वही है, और अज्ञानसे विचित्र सृष्टि, और अज्ञानकी निवृत्तिसे अनादि अनन्त स्वरूप प्राप्य रंजनभी वही है ॥ ५३ ॥ जैसे योगीजन खेचरीमुद्रामें अर्द्धउन्मीलित खुलेहुये नेत्रको भ्रू (भौंह) के मध्यमें दृष्टिको लगाके जगत्‌को देखतेहैं, ऐसेही सदा भासरूप स्वरूपको जो देखताहै वहभी वही है ॥ ५४ ॥ जिस व्यापकका शश (खर्गोश) के शृंग (सींग) के समान कोई दूसरा कारण नहीं है, और यह जगत् जिसका ऐसा कार्य्य है जैसे जलका तरंग ॥ ५५ ॥ सर्वस्थानमें सामान्य दैदीप्यमान, और चित्त स्थानोंमें अनावृत्त होनेसे सर्वदा विशेष अभिव्यक्तिसे प्रकाशमान जिस चिन्मात्र दीपके प्रकाश तीनोंलोक दीप्तहो रहाहै ॥ ५६ ॥

यंविनाऽर्कादयोप्येतेप्रकाशास्तिमिरोपमाः ॥ सतियस्मिन्नप्रवर्त्ततेत्रिजगन्मृगतृष्णिकाः ॥ ५७ ॥ सस्पंदेससुदेतीवनिःस्पंदांतर्गतेनच ॥ इयंयस्मिन्जगल्लक्ष्मीरलातइवचक्रता ॥ ५८ ॥ जगन्निर्माणविलयविलासोव्यापकोमहान् ॥ स्पंदास्पंदात्मकोयस्यस्वभावोनिर्मलोऽक्षयः ॥ ५९ ॥ स्पंदास्पंदमयीयस्यपवनस्येवसर्वगा ॥ सत्तानाम्नैवभिन्नेवव्यवहारान्नवस्तुतः ॥ ६० ॥

अर्थ—जिस चित्प्रकाशरूप दृष्टिकेविना सूर्य्यादिभी अन्धकारके सदृशहैं, और जिस प्रकाशके होतेही त्रैलोक्यरूपी मृगतृष्णा प्रवृत्त होती है ॥ ५७ ॥ जिसके मनरूपसे स्पंद होनेसे इस जगत्‌की लक्ष्मीका उदय और शुद्धरूप होनेसे अस्त ऐसे होताहै जैसे अलात (जलतेहुये उल्मुक) के रात्रिमें घुमाने चक्राकारता और न घुमानेसे चक्राकारका अभाव होताहै ॥ ५८ ॥ जगत्‌की रचना और प्रलय जिसका स्पन्द और अस्पन्दरूप एक विलासहै, और जिसका स्वभाव अर्थात् पारमार्थिकरूप व्यापक, महान् निर्मल और अक्षयहै ॥ ५९ ॥ स्पन्द (कुछ क्रियात्मक चलन) अस्पन्द (क्रियाका अभाव) मयी सब स्थानोंमें व्याप्त वायुके सदृश जिसकी व्यवहारसे नाममात्रके लिये भिन्नहै यथार्थमें नहीं ॥ ६० ॥

सर्वदैवप्रबुद्धोयः सुप्तोयःसर्वदैवच ॥ नसुप्तोनप्रबुद्धश्चयःसर्वत्रैवसर्वदा ॥ ६१ ॥ यदस्पंदंशिवंशांतंयत्स्पंदंत्रिजगत्स्थितिः ॥ स्पंदास्पंदविलासात्मायएकोभरिताकृतिः ॥ ६२ ॥ आमोदइवपुष्पेषुननश्यतिविनाशिषु ॥ प्रत्यक्षस्थोप्यथाग्राह्यःशौक्ल्यंशुक्लपटेयथा ॥ ६३ ॥ मूकोपमोपियोऽमूकोमंतायोप्युपलोपमः ॥ योभोक्तानित्यतृप्तोपिकर्त्तायश्चाप्यकिंचनः ॥ ६४ ॥

अर्थ—जो सर्वदा और सब स्थानमें प्रबुद्ध (जागता) भी है और सुप्त (सोता) भी है, और सर्वदा सब जगह न सुप्तभी न प्रबुद्धहै ॥ ६१ ॥ जिसके स्पन्दका अभाव शिव और शान्तहै, और जिसका स्पन्दही त्रैलोक्यकी स्थितिहै, स्पन्द और अस्पन्दसे विलासात्मा वह एकही सबका धारण पोषण करनेवालाहै ॥ ६२ ॥ पुष्पोंमें सारभागके समान विनाशीपदार्थोंमें जो नष्ट नहींहोता, और सम्पूर्ण वस्तुओंके प्रत्यक्ष ज्ञानमें जो प्रसिद्धरूपसे स्थित होनेपरभी श्वेतवस्त्रमें श्वेतताके समान जो ग्रहण करनेके असमर्थ है ॥ ६३ ॥ जो मूक (रागादि इन्द्रियोंसे रहित) होनेपरभी सम्पूर्णवाणीकी प्रवृत्तिका निमित्त होनेसे अमूकहै, पाषाणके तुल्य होनेपरभी सबका जाननेवाला, नित्य तृप्त होनेपर सबका भोक्ता, और अकिंचन होनेपरभी सबका कर्ता है ॥ ६४ ॥

योऽनंगोपिसमस्तांगःसहस्रकरलोचनः ॥ नकिंचित्संस्थितेनापियेनव्याप्तमिदंजगत् ॥ ६५ ॥ निरिंद्रियबलस्यापियस्याशेषेंद्रियक्रियाः ॥ यस्यनिर्मनसस्यैतामनोनिर्माणरीतयः ॥ ६६ ॥ यदनालोकनाद्भ्रांतिसंसारोरगभीतयः ॥ यस्मिन्दृष्टेपलायंतेसर्वाशाःसर्वभीतयः ॥ ६७ ॥ साक्षिणिस्फारआभासेध्रुवेदीपइवक्रियाः ॥ सतियस्मिन्प्रवर्तंतेचित्तेहाःस्पंदपूर्विकाः ॥ ६८ ॥

अर्थ—जो अनंग (अंगरहित) होनेपरभी समस्तांग अर्थात् सबके अंग उसीके अंगहैं हस्त नेत्र आदिसे शून्य होनेपरभी सहस्त्रों (हजारों) हस्त नेत्र जिसमें हैं, तथा किसीपर संस्थित न होनेसेभी जिसकरके यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्तहै ॥ ६५ ॥ इन्द्रियोंके बलसे शून्य होनेपरभी सम्पूर्ण इन्द्रियोंकी क्रिया उसीके प्रभावसे होती है, जो स्वयं विकार सम्बन्धी मनकी शक्तिसे वर्जित है परन्तु ये जगत्‌के रचनाकी प्रसिद्ध उसी की हैं ॥ ६६ ॥ जिसके दर्शनके विना भ्रम तथा संसाररूपी सर्पके भय होते हैं, और जिसके दर्शन (ज्ञान) से सम्पूर्ण दुष्ट कामना और सब प्रकारके

(१) सर्वलयका आधार तत्पदार्थका निरूपणकरके अब त्वंपदार्थरूपसेभी उसी स्वरूपको दर्शानेकेलिये उपक्रम कियाजाताहै ॥

(२) स्पन्दशब्दका अर्थ व्याकरणकी रीतिसे किंचित् चलनहै परन्तु यहां शुद्धब्रह्ममें मनरूप धारणकरके जगत् रचनाकी स्फुरण वा इच्छासे तात्पर्य्यहै ॥

भय भागजाते हैं ॥ ६७ ॥ जैसे दीपके रहनेसे नाट्य आदि सम्पूर्ण क्रियायें होती हैं ऐसेही अपरिच्छिन्न रूप प्रकाश साक्षीके रहनेपर स्फुरणपूर्वक सम्पूर्ण चित्तकी क्रिया होती हैं ॥ ६८ ॥

यस्माद्घटपटाकारपदार्थशतपंक्तयः ॥ तरंगगणकल्लोलवीचयोवारिधेरिव ॥६९॥ सएवान्यतयोदेतियत्पदार्थशतभ्रमैः ॥ कटकांगदकेयूरनूपुरैरिवकांचनम् ॥ ७० ॥ यस्त्वमेकोवभासात्मायोहमेतेजनाश्चये ॥ यश्चनत्वमबुद्धात्मानाहंनैतेजनाश्चयः ॥ ७१ ॥ अन्येवाप्यतिरिक्तेवसैवासेवचभंगुरा ॥ पयसीवतरंगालीयस्मात्स्फुरतिदृश्यभूः ॥ ७२ ॥

अर्थ—जिस साक्षीरूप आत्मासे घटपट आदि आकारवाले पदार्थोंकी सैकडों पंक्ति ऐसी होती हैं जैसे तरंगगणोंके कल्लोलसहित लहर समुद्रसे ॥ ६९ ॥ वही चिदात्मा अन्य जड प्रपंचादि रूपसे प्रसिद्ध अनेक पदार्थोंके भ्रमरूपसे ऐसे प्रकट होताहै जैसे सुवर्णकटक अंगदकेयूर और नूपुरादि रूपसे सुवर्ण ॥७०॥ जो जिस प्रकाशरूप आत्माका तुमने साक्षात्कार कियाहै वह तुम एकही हौ और जो जिसको मैंने वा अन्य जनोंने साक्षात्कार कियाहै वह उनउनका आत्मा होके एकही है और[1] जो उससे विपरीत न तुम न हम और न ये अन्यजनहैं ॥ ७१ ॥ अनन्य होनेपरभी अन्यके समान, अपृथक् होनेसेभी पृथक्के समान, पूर्वसिद्ध होनेपरभी उत्पत्तिसे सिद्धके समान, यह दृश्यकी भूमि जिस आत्मासे ऐसे स्फुरती है जैसे जलमें तरंगोंकी पाँति ॥ ७२ ॥

यतःकालस्यकलनायतोदृश्यस्यदृश्यता ॥ मानसीकलनायेनयस्यभासाविभासनम् ॥ ७३ ॥ क्रियांरूपंरसंगंधंशब्दंस्पर्शंचचेतनं ॥ यद्वेत्सितदसौदेवोयेनवेत्सितदप्यसौ ॥ ७४ ॥ द्रष्टृदर्शनदृश्यानांमध्येयद्दर्शनंस्थितम् ॥ साधोतदवधानेनस्वात्मानमवबुद्धयसे ॥ ७५ ॥ अजमजरमनाद्यंशाश्वतंब्रह्मनित्यंशिवममलममोघंवंद्यमुच्चैरनिंद्यम् ॥ सकलकलनशून्यंकारणंकारणानामनुभवनमवेद्यंवेदनंविश्वमंतः ॥ ७६ ॥

इत्यार्षेवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे परमकारणवर्णनंनाम नवमः सर्गः ॥९॥

अर्थ—जिस आत्मासे कालकी कलना अर्थात् उत्पत्ति वृद्धि स्थिति, अपचयनाशादिरूप छ भाव विकार, जिससे दृश्यकी सत्ता, और जिससे कलना अर्थात् इष्ट अनिष्टकी प्राप्ति और परिहार विषयक मनोरथोंके विकल्प होते हैं, और जिसके प्रकाशसे यह सब कुछ प्रकाशताहै ॥ ७३ ॥ देह और कर्मेंद्रिय रूप उपाधिमें क्रिया ज्ञानेन्द्रियरूप उपाधिमेंरूप, रस गन्ध, स्पर्श, और शब्दको तथा प्रमाताचेतन जो स्वरूप होके जानतेहो और जिसके निमित्त जानतेहो, वहभी यही आत्माहै ॥ ७४ ॥ हे साधो ! द्रष्टा, दर्शन, और दृश्यके मध्यमें उपाधियोंसे पृथक् जो दर्शन स्थितहै उस अपने आत्माको एकाग्र मनसे जानोगे ॥ ७५ ॥ जो[2] जन्म और वृद्धावस्थासे वर्जित अनाद्य, नित्य, शिव, मलरहित, अमोघ सबके बन्दनाके योग्य, निन्दारहित सम्पूर्ण संबन्धसे शून्य सब कारणोंका कारण, अनुभवरूप, अवेद्य और विश्वके अन्तमें व्याप्त ब्रह्महै वह साक्षीरूप तुमहो ॥ ७६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे परमकारणवर्णनं नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः ॥ १० ॥

पूर्वोक्त ब्रह्मके लक्षणमें विरोधकीसी सम्भावना करके, क्रमसे उसके परिहारसे तात्पर्य्यका वर्णन इस दशम सर्गमें कियागयाहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ महाप्रलयसंपत्तौयदेतदवशिष्यते ॥ भवत्येतदनाकारंनामनास्त्यत्रसंशयः ॥ १ ॥ नशून्यंकथमेतत्स्यान्नप्रकाशःकथंभवेत् ॥ कथंवानतमोरूपंकथंवानैवभास्वरम् ॥ २ ॥ कथंवानैवचि

(१) जो शुद्ध आत्मदृष्टिसे सबका आत्मा होनेसे सबमें एकहै, और स्थूल दृष्टिसे सब इन्द्रियआदिसे विपरीत होनेसे किसीका रूप नहीं है ॥ (२) इसप्रकार तत् और त्वम् पदार्थको देखाके इस श्लोकमें वाक्यार्थ दिखलातेहै "कारणोंका कारण"-"कारणं कारणनाम्" इससे तत्पदार्थका वाच्यार्थ है, शून्यम् ॥ यह तत्पदार्थका लक्ष्यार्थ है "विश्वं वेदनं" यह तीनों अवस्थाके द्रष्टा त्वंपदका वाच्यार्थ है "अवेद्यं वेदनं" यह वेद्य तीनों अवस्थासे निर्मुक्त त्वंपदका लक्ष्यार्थ है ।

द्रूपंजीवोवानकथंभवेत् ॥ कथंनबुद्धितत्त्वंस्यात्कथंवानमनोभवेत् ॥ ३ ॥ कथंवानैवकिंचित्स्यात्कथं वासर्वमित्यपि ॥ अनयैववचोभंग्याममगोहइवोदितः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! महाप्रलयमें यह जो शेष (बाकी) रहताहै, यह निराकार रहताहै इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥१॥ (पूर्वमें जो ब्रह्मका रूप न तेजो न तमः इत्यादि विरुद्ध कहाहै उसको असंभवमानके रामजी प्रश्न करते हैं,) हे भगवन् ! जब सबका नाश होजाताहै तो यह शून्य क्यों नहीं ? इसी प्रकार तम वा प्रकाशके अभावमें शेष तम वा प्रकाश क्यों नहीं ? और प्रकाश्यके नष्ट होनेपर स्वमात्र प्रकाशसे भास्वरभी क्यों नहीं ? ॥ २ ॥ दृश्यसे भिन्न दर्शन प्रसिद्धहै इससे न दृश्य है न दर्शन है इस अभिप्रायसे रामजी पूंछतेहैं कि वह आत्मा चिद्रूप क्यों नहीं ? और यदि दृश्य और दर्शनसे भिन्नहै तो जीव बुद्धितत्त्व अथवा मन क्यों नहीं होता ? ॥ ३ ॥ किसप्रकार वह कुछ नहीं है और कैसे सब कुछ है, आपके इसी वचनसे मुझे मोह उत्पन्न हुआहै ॥ ४ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ विषमोयमतिप्रश्नोभवतासमुदाहृतः ॥ भेत्तास्म्यहंत्वयतेनैनैशंतमइवांशुमान् ॥ ५ ॥ महाकल्पांतसंपत्तौयत्तत्सदवशिष्यते ॥ तद्रामनयथाशून्यंतदिदंशृणुकथ्यते ॥ ६ ॥ अनुत्कीर्णायथास्तंभेसंस्थिताशालभंजिका ॥ तथाविश्वंस्थितंतत्रतेनशून्यंनतत्पदम् ॥ ७ ॥ अयमित्थंमहाभोगोजगदाख्योवभासते ॥ सत्योभवत्वसत्योवायत्रतत्रत्वशून्यता ॥ ८ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–मेरे आशयको उल्लंघन करके आपने यह टेढाप्रश्न कियाहै मैं अपने अभिप्रायके प्रकाशसे तुमारे संशयको ऐसे छेदन करूंगा, जैसे रात्रिके अन्धकारको सूर्य ॥ ५ ॥ हे रामजी ! महाप्रलयमें जो कुछ यह सन्मात्र शेष रहजाता है वह जिसप्रकार शून्य नहीं है वह सुनिये मैं कहताहूं ॥ ६ ॥ विना खुदे हुये खम्भेमें जैसे प्रतिमा स्थित रहतीहै वैसे उत्पत्तिके पूर्वभी यह विश्व ब्रह्ममें स्थितहै इसलिये वह पद (ब्रह्मपद) शून्य नहीं है ॥ ७ ॥ महा भोगका रूप धारण कियेहुये यह जगत् नामसे प्रसिद्ध प्रपंच जिसमें व्यवहार दृष्टिसे सत्यहो अथवा परमार्थ दृष्टिसे असत्यहो, परन्तु जिस अधिष्ठानमें वह भासताहै वह शून्य नहीं क्योंकि शून्य व आरोपित पदार्थका अध्यास नहीं होसकता ॥ ८ ॥

यथानपुत्रिकाशून्यःस्तंभोनुत्कीर्णपुत्रिकः ॥ तथाभातंजगद्ब्रह्मतेनशून्यंनतत्पदम् ॥ ९ ॥ सौम्यांभसियथावीचिर्नचास्तिनचनास्तिच ॥ तथाजगद्ब्रह्मणीदंशून्याशून्यंपदंगतम् ॥ १० ॥ देशकालादिशांतत्वात्पुत्रिकारचनंद्रुमे ॥ संभवत्ययथाऽतोवैतेनानंतेविमुह्यते ॥ ११ ॥ तत्स्तंभपुत्रिकाद्येतत्परमार्थेजगत्स्थितेः ॥ एकदेशेनसदृशमुपमानंनसर्वथा ॥ १२ ॥

अर्थ—जैसे जिस स्तम्भमें प्रतिमा नहीं खुदी उस (प्रतिमा न खुदी) दशामेंभी वह स्तम्भ प्रतिमासे शून्य नहीं है इसीप्रकार उत्पत्तिसे पूर्वभी ब्रह्मपद जगत्से शून्य नहीं है क्योंकि महाप्रलयके पूर्व ब्रह्मही जगद्रूपसे भान हुआथा ॥ ९ ॥ हे सौम्य रामजी ! जैसे जलमें लीन (वायु न होनेसे जलरूपमें प्राप्त) तरंगको न यह कह सकतेहैं कि है और न यही कह सकतेहैं कि नहीं है क्योंकि अस्ति (है) दशामें वह जलसे कोई अपूर्व पदार्थ नहीं है और नास्ति (नहीं है) इस दशामेंभी न हो, तो उसमें भान कैसेहो इसलिये शून्य अशून्य दोनोंकल्पनाका अधिष्ठान वा अनिर्वचनीय है इसीप्रकार ब्रह्ममें यह जगत्भी शून्य अशून्यपदको प्राप्त है ॥ १० ॥ प्रतिमा रचनेके योग्य कर्ता कर्मके आधार देश और काल तथा करण उपकरण (हस्त टांकी आदि) सामग्री आदिसे सम्पन्न वृक्षमें प्रतिमा रचनेकी सम्भावना होतीहै इसवास्ते किसी वादीको मोह नहीं होता परन्तु देश काल वस्तु इन तीनों परिच्छेदसे शून्य अनन्त ब्रह्ममें पुर्वोक्त कोई सामग्री न होनेसे जगत्की रचनामें वादियोंको मोह प्राप्त होताहै ॥ ११ ॥ इसलिये स्तम्भ (खम्भे) की प्रतिमा आदि परमार्थ ब्रह्ममें जगत्की स्थितिका एकदेशमें सदृशताको लेके दृष्टान्त है क्योंकि सर्वांशमें दृष्टान्त दार्ष्टान्त एक नहीं हो सकता, अर्थात् जैसे स्तम्भादिकी सत्तासे पृथक् प्रतिमा आदिकी सत्ता कुछ नहीं ऐसेही ब्रह्मकी सत्तासे पृथक् जगत् सत्ता नहीं है ॥ १२ ॥

नकदाचिदुदेतीदंपरस्मान्नचशाम्यति ॥ इत्थंस्थितंकेवलंसद्ब्रह्मस्वात्मनिसंस्थितम् ॥ १३ ॥ अशून्यापेक्षयाशून्यशब्दार्थपरिकल्पना ॥ अशून्यत्वातसंभवतःशून्यताशून्यतेकुतः ॥ १४ ॥ ब्रह्मण्ययंप्रकाशो हिनसंभवतिभूतजः ॥ सूर्याग्नलेंदुतारादिःकुतस्तत्रकिलाव्यये ॥ १५ ॥ महाभूतप्रकाशानामभावस्तमउच्यते ॥ महाभूताभावजंतुतेनात्रनतमःक्वचित् ॥ १६ ॥

---

१ जो वस्तु जहां नहीहै वह वहांसे अनेक उपायसेभी नहीं निकलती जैसे रेतसे तैल स्तम्भ (खम्भे) में खोदनेके पूर्व प्रतिमा और ब्रह्ममें उत्पत्तिके पूर्व यह जगत् रहताहै तभी उनमेंसे उत्पन्न होताहै ॥

अर्थ—यथार्थमें परब्रह्ममें न कभी यह उदयको प्राप्त होताहै और न शान्त होताहै किन्तु मायासे भान होताहै और सत् ब्रह्म केवल अपने आत्मामें ऐसाही स्थितहै ॥ १३ ॥ प्रतियोगी (जिसका अभाव कहा जाय) में अशून्यता मानके दूसरी वस्तुमें अशून्यकी अपेक्षासे शून्यशब्दके अर्थकी कल्पना कीजातीहै और कल्पित शून्यताकी अपेक्षासे अशून्यताकी कल्पना होतीहै इसलिये परस्परकी अपेक्षाकी कल्पनामें शून्यता और अशून्यताका संभव कहा ? ॥ १४ ॥ पृथिवी जल और तेज आदि भूतोंसे उत्पन्न प्रकाशका सम्भव ब्रह्ममें नहीं है क्योंकि नाशवान् सूर्य्य अग्नि चन्द्रमा और तारा आदिका प्रकाश अव्यय (नाशरहित) ब्रह्ममें कहां ? इसलिये उसको भास्वरभी नहीं कहसकते ॥ १५ ॥ सूर्य्यआदि महाभूतोंके प्रकाशके अभावका नाम तम है वह तम प्रकाशके विरोधीपर प्रकाश्य पृथिवी आदिमेंही रहताहै न की स्वप्रकाश ब्रह्ममें इसलिये वह तमभी नहीं है ॥ १६ ॥

स्वानुभूतिःप्रकाशोस्यकेवलंव्योमरूपिणः ॥ यंतरस्तिसतंनैवनत्वन्येनानुभूयते ॥ १७ ॥ मुक्तंतमःप्रकाशाभ्यामित्येतदजरंपदम् ॥ आकाशकोशमेवेदंविद्धिकोशंजगत्स्थितेः ॥ १८ ॥ बिल्वस्यबिल्वमध्यस्ययथाभेदोनकश्चन ॥ तथास्तिब्रह्मजगतोर्नमनागपिभिन्नता ॥ १९ ॥ सलिलांतर्यथार्वीचिर्मृदोंतर्घटकोयथा ॥ तथायत्रजगत्सत्तातत्कथंखात्मकंभवेत् ॥ २० ॥

अर्थ—आकाशके सदृश व्यापक इस ब्रह्मका प्रकाश स्वानुभवरूपहै औरबुद्धिकाभी अनुभव करनेवाला अन्तरमें है वही अपने प्रकाशको आप अनुभव करताहै, वह प्रकाश दूसरेके अनुभवमें नहीं आता ॥ १७ ॥ यह अजर पद तम और प्रकाश (भौतिक) से विनिर्मुक्त है जगत्की स्थितिका कोशभूत इस ब्रह्मको आकाशके उदरके समान स्वच्छ पूर्वोक्त रीतिसे जानो ॥ १८ ॥ जैसे बिल्व (बेलफल) और बिल्वके मध्यके उदरसे कुछ भी भेद नहींहै ऐसेही ब्रह्म और जगत्का किंचित्भी भेद नहींहै ॥ १९ ॥ जैसे जलमें तरंग और मृत्तिकोंमें घटहै ऐसेही जिस ब्रह्ममें जगत्की सत्ताहै वह जगत् शून्य रूप क्यों न हो ॥ २० ॥

भूजलाद्युपमानश्रीःसाकारांतासमानसा ॥ ब्रह्मत्वाकाशविशदंतस्यांतस्थंतथैवतत् ॥ २१ ॥ तस्माद्यादृक्चिदाकाशमाकाशादपिनिर्मलम् ॥ तदंतस्थंतादृगेवजगच्छब्दार्थभागपि ॥ २२ ॥ मरीचेतर्यथा तैक्ष्ण्यमृतेभोक्तुर्नलक्ष्यते ॥ चिन्मात्रत्वंचिदाकाशेतथाचेत्यकलांविना ॥ २३ ॥ तस्माच्चिदप्यचिद्रूपं चेत्यरिक्तंतदात्मनि ॥ जगत्तातादृगेवेयंतावन्मात्रात्मतावशात् ॥ २४ ॥

अर्थ—जैसे जलमें पृथिवी और घट आदिमें जल रहताहै वह पृथिवी जल आदि अपने आधारका स्वरूप नहीं होता इस दृष्टांतकी शोभा यहां समान नहींहै क्योंकि पृथिवी आदि दृष्टांतोंकी अवधि साकार है और ब्रह्म तो आकार रहित आकाशवत् व्यापकहै वैसाही उसके भीतर जगत्भी है ॥ २१ ॥ इस लिये जैसे चिदाकाश इस भौतिक आकाशसेभी निर्मल है ऐसेही ब्रह्मके अन्तर्गत जगत् शब्दका अर्थभी है ॥ २२ ॥ जैसे मरिच (मिरच्या) में तीखापन भोक्ता विना नहीं होसकता ऐसेही चिदाकाशमे चिन्मात्रता (दर्शनता) दृश्यके सम्बन्धके विना नहीं है परन्तु जब दृश्य नहीं तब दर्शनकी योग्यता कहां ? ॥ २३ ॥ इसलिये दृश्यके सम्बंधके विना चित्रूप रहते भी अचित् रूप है क्योंकि चित् आदि शब्द गौणवृत्तिसे (कल्पित) है न कि मुख्य जैसे जगत्के लयसे, जगत्केलिये जो चित्ताहै उसकी निवृत्ति होतीहै ऐसेही जगत्केलिये चित्ता (चित्पना) भी उसकी (चित्ता) की निवृत्तिसे जगत्की जगत्ता (जगत्पन) भी निवृत्त होजातीहै ॥ २४ ॥

रूपालोकमनस्कारास्तन्मयाएवनेतरत् ॥ यथास्थितमतोविश्वंसुषुप्तंतुर्यमेववा ॥ २५ ॥ तेनयोगीसुषुप्तात्माव्यवहार्यपिशांतधीः ॥ आस्तेब्रह्मनिराभासंसर्वाभाससमुद्गकः ॥ २६ ॥ आकारिणियथासौम्येस्थितास्तोयेमहोर्मयः ॥ अनाकृतौतथाविश्वंस्थितंतत्सदृशंपरे ॥ २७ ॥ पूर्णात्पूर्णंप्रसरतियत्तत्पूर्णंनिराकृति ॥ ब्रह्मणोविश्वमाभातंतद्विस्वार्थविवक्षितम् ॥ २८ ॥

अर्थ—रूप, आलोक, और चित्तमें सुखपरता, ये सब ब्रह्ममय हैं और कुछ नहीं इसलिये यह यथास्थित विश्व सुषुप्त अथवा तुर्य्य रूप है ॥ २५ ॥ इस हेतुसे सुषुप्तात्मायोगी सब व्यवहारोंको करताहुआभी शांतबुद्धि है और ब्रह्मसंस्कार रहित होनेसे भी सम्पूर्ण संस्कारोंका कोशहै ॥ २६ ॥ हे सौम्य ! जैसे आकारवान् जलमें आकार सहितही महातरंग स्थित है इसी प्रकार निराकार परब्रह्ममें उसीके समान यह विश्व स्थितहै ॥२७॥ पूर्णब्रह्मसे उपा-

१ वक्ष्यमाण सात भूमिकाओंमें पंचम भूमिकातक प्राप्त योगियोंको सुषुप्त उत्तर दोनोंका तुर्य्यहै.

धिके भेदसे जीवदशाको जो प्राप्त होताहै वहभी पूर्ण है और साकार पूर्ण हो नहीं सकता इसलिये जो पूर्ण है वह निराकार है और पूर्ण ब्रह्मका विश्व और जो जीवरूपसे मानेहै वह अपने स्वरूपके लाभकेलिये एकप्रकारकी चेष्टाहै॥२८॥

पूर्णात्पूर्णंप्रसरतिसंस्थितंपूर्णमेवतत् ॥ अतोविश्वमनुत्पन्नंयच्चोत्पन्नंतदेवतत् ॥ २९ ॥ चेत्यासंभव तस्तस्मिन्यदेकाजगदर्थता ॥ आस्वादकासंभवतोमरीचेकैवतीक्ष्णता ॥ ३० ॥ सत्येयमसत्यैव चित्तचेत्यादितापरे ॥ तद्भावात्प्रतिबिंबस्यप्रतिबिंबार्हताकुतः ॥ ३१ ॥ परमाणोरपिपरंतदणीयोह्य णीयः॥ शुद्धंसूक्ष्मंपरंशांतंतदाकाशोदरादपि ॥ ३२ ॥

अर्थ—पूर्णसे पूर्ण उत्पन्न होताहै और वह पूर्णरूपसेही स्थितहै, इसलिये यह विश्व उत्पन्न नहीं हुआ और जो उत्पन्न हुआहै वह पूर्णरूपही है ॥ २९ ॥ क्योंकि दृश्यके असंभवसे जगत् शब्दका अर्थ ब्रह्मके साथ एकरस होजाताहै क्योंकि स्वाद लेनेवालेके न रहनेपर मरिचमें तीक्ष्णता कहां ? ॥ ३० ॥ परब्रह्मके साथ जगत्का अभेद होनेसे उस (ब्रह्म) में चेत्य और चेत्यविषयआदि नानाकल्पना असत्यही है, परन्तु सत्यवत् भासतीहै, और इसप्रकार उपाधिके अभावसे प्रतिबिम्बरूप जीवभाव योग्यताभी नहीं है, इससे जीव क्यों नहीं यह शङ्काभी निरस्त हुई ॥ ३१ ॥ वह परमात्मा परमाणुसेभी पर, अणुसेभी अतिसूक्ष्म और आकाशके उदरसे अणु शुद्ध सूक्ष्म पर शान्तहै और इसके विपरीत जीव अणु और परिमाणुसहित पुण्य पापसे दूषित होनेसे अशुद्ध और विषयका भोक्ता प्रसिद्ध है ॥ ३२ ॥

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नरूपत्वादतिविस्तृतम् ॥ तदनाद्यंतमाभासंभासनीयविवर्जितम् ॥ ३३ ॥ चिद्रूप मेवनोयत्रलभ्यतेतत्रजीवता ॥ कथंस्याच्चितताकारावासनानित्यरूपिणी ॥ ३४ ॥ चिद्रूपानुदयादेव तत्रनास्त्येवजीवता ॥ नबुद्धिताचित्तताचानेंद्रियत्वंनवासना ॥ ३५ ॥ एवमित्थंमहारंभपूर्णमव्यजरंप दम् ॥ अस्मदृष्ट्यास्थितंशांतंशून्यमाकाशतोधिकम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—और वह देशकालवस्तुसे अपरिच्छिन्न होनेसे अति विस्तृत, अनादि, अनन्त, अत्यन्त प्रकाशरूप और भासनीय (परप्रकाश्य) से वर्जितहै ॥ ३३ ॥ विषयको प्रकाश करनेको जिसमें चित्रूपताही नहीं है उसमें कैसे जीवरूपता होसकती है और कैसे नित्य वासनारूप चित्तरूपता होसकती है ? ॥ ३४ ॥ चित्तरूपके उदय न होनेसे उसमें जीवरूपता न बुद्धि न चित्त न इन्द्रिय और न वासना है, इससे वह बुद्धि वा मन क्यों नहीं यह शंकाभी परास्तहुई ॥ ३५ ॥ हे रामजी ! इसप्रकार हम लोगनकी दृष्टिमें यह महान् आरम्भवाला अजरपद शान्त शून्य आकाशसेभी अधिक पूर्ण स्थितहै ॥ ३६ ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ परमार्थस्यकिंरूपंतस्यानंतचिदाकृतेः ॥ पुनरेतन्ममाचक्ष्वनिपुणंबोधवृद्धये ॥ ३७॥ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ महाप्रलयसंपत्तौसर्वकारणकारणम् ॥ शिष्यतेपरमंब्रह्मतदिदंवर्ण्यतेशृणु ॥३८॥ नाशयित्वास्वमात्मानंमनसोवृत्तिसंक्षये ॥ सद्रूपंयदनाख्येयंतद्रूपंतस्यवस्तुनः ॥ ३९ ॥ नास्तिदृश्यंज गद्दृष्टादृश्याभावाद्विलीनवत् ॥ भातीतिभासनंयत्स्यात्तद्रूपंतस्यवस्तुनः ॥ ४० ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—हे भगवन् ! अनन्त चित्आकारहै जिसका उस परमार्थका क्या रूपहै इस बातको बोधकी वृद्धिकेलिये मुझसे पुनः कहिये ॥ ३७ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! महाप्रलयमें जो सब कारणोंका कारण परब्रह्म शेष रहजाताहै उसका मैं वर्णन करताहूं आप सुनिये ॥ ३८ ॥ जैसे समाधिमें निरोधसे वृत्तियोंका नाश होनेपर मनके रूपकाभी नाश करके जो वर्णन करनेके अयोग्य स्वप्रकाश सत्रूप शेष रहजाताहै वही उस वस्तुकारूपहै ॥ ३९ ॥ इसप्रकार निर्विकल्प समाधिके आरम्भमें दृश्यके अभावसे जगत् वा दृश्यका द्रष्टा जो है वहभी विलीनके समान भान होताहै उस दशामें त्रिपुटी (द्रष्टा, दर्शन, दृश्य वा ध्याता, ध्यान ध्येय) का लय भासनप्रकाश जो साक्षीरूप है वही उस वस्तुका रूपहै ॥ ४० ॥

चितेर्जीवस्वभावायायदचेत्योन्मुखंवपुः ॥ चिन्मात्रंविमलंशांतंतद्रूपंपरमात्मनः ॥ ४१ ॥ अंगलग्नेपि वातादौस्पर्शोयदनुभवंविना ॥ जीवतश्चेतसोरूपंयत्तद्वैपरमात्मनः ॥ ४२ ॥ अस्वप्नयाअनंतायाअजडा यामनःस्थितेः ॥ यद्रूपंचिरनिद्रायास्तत्तदानघशिष्यते ॥४३॥ यद्व्योम्नोदृदयंयद्वाशिलायाःपवनस्यच ॥ तस्याचेत्यस्यचिद्व्योम्नोस्तद्रूपंपरमात्मनः ॥ ४४ ॥

---

(१) इसप्रकार समाधान करनेपर समाहित चित्तवालेको जैसे अपरोक्ष आत्माका अनुभव होताहै उस असाधारणरूपके जाननेकी इच्छासे रामचन्द्रजी पुनः प्रश्न करतेहैं ॥

अर्थ—समाधिके व्युत्थान कालके पूर्व भावी जीवस्वभाववाले चित्तका विषयकी ओर उन्मुख न होनेका जो रूपहै वही चिन्मात्र विमल शान्त उस परमात्म वस्तुका रूपहै॥ ४१॥ वायु आदिके शरीरमें लगनेपरभी स्पर्श आदिके अनुभवके विना अपरिच्छन्न ब्रह्माकार अपरोक्षवृत्ति होनेसे चित्तके जीवित रहनेपरभी दूध और जलके समान ब्रह्ममें एकरस होनेसे चित्तका अनादर करके जो अनुभवरूप प्रकाशहै वही परमात्माका रूपहै॥ ४२॥ हे अनघ! स्वप्न दर्शनसे वर्जित, मच्छर और खटमल आदिके विघ्नसे शून्य अनन्त चेतनरूप, मनके विश्रामका हेतु जो दीर्घकालकी सुषुप्ति है वही महाप्रलयमें शेष रहजाती है॥ ४३॥ आकाशका हृदय जो शून्यता, वायुका हृदय जो बाहर-भीतर पूर्णता, और पाषाणका हृदय जो घनताहै वही द्वैतरहित चिदाकाश परमात्माका रूपहै॥ ४४॥

अचेत्यस्यामनस्कस्यजीवतोयास्वभावतः॥ स्यात्स्थितिःसापराशांतासत्तातस्यायवस्तुनः॥ ४५॥ चित्प्रकाशस्ययन्मध्यंप्रकाशस्याथिखस्यवा॥ दर्शनस्यचयन्मध्यंतद्रूपंब्रह्मणोविदुः॥ ४६॥ वेदनस्य प्रकाशस्यदृश्यस्यतमसस्तथा॥ वेदनंयदनाद्यंतंतद्रूपंपरमात्मनः॥ ४७॥ यतोजगदुदेतीवनित्यानु दितरूप्यपि॥ विभिन्नवदिवाभिन्नंतद्रूपंपरमार्थकम्॥ ४८॥

अर्थ—सम्पूर्ण चित्त और चैत्य (दृश्य) को जीवितदशामेंही परित्यागकर परमशान्तरूप चेतनकी स्वभावसे जो स्थिति होती है वही सब पदार्थोंका आदिभूत परमात्माकी सत्ता वा रूपहै॥४५॥द्रष्टापक्षमें अन्न मयान्तकोशमें आत्मा रूपसे व्यापक चित्प्रकाशका एक एक कोशके विवेकसे आनन्दमय कोशकाभी जो अन्तर होनेसे मध्यहै, दृश्यपक्षमें मूर्त प्रपंचका सारभूत सूर्य्यप्रकाशका अमूर्त प्रपंचमें सारभूत आकाश अथवा लिंगसमष्टिरूप अव्याकृत आकाशका अन्तर होनेसे मध्यहै और दर्शनपक्षमें चाक्षुष प्रत्यक्ष आदि वृत्तियोंका चेतनरूपसे स्फुरित होनेसे जो मध्यहै, अर्थात् क्रमसे आनन्द सत् और चित् रूपसे जो प्रसिद्धहै वही ब्रह्मका रूपहै॥ ४६॥ बुद्धिकी वृत्तिका, पदार्थोंके स्फुरणका विषयका और अज्ञानका साक्षीरूप जो अनादि अनन्त (क्योंकि बुद्धि वृत्ति आदि सब आदि अन्तवाले हैं) जो ज्ञानहै वही परमात्माका रूपहै॥ ४७॥ जो आप स्वयं नित्य अनुदित रूपभी है परन्तु जिसरूपसे यह जगत् उदय होताहै, और जो अभिन्न होनेपरभी विभिन्नके समान भान होताहै वही परमात्माका रूपहै॥ ४८॥

व्यवहारपरस्यापियत्पाषाणवदासनम्॥ अव्योम्नएवव्योमत्वंतद्रूपंपरमात्मनः॥ ४९॥ वेद्यवेदनवेतृ त्वरूपत्रयमिदंपुरः॥ यतोदेत्यस्तमायातितत्तत्परमदुर्लभम्॥५०॥ वेद्यवेदनवेतृत्वंयत्रेदंप्रतिबिंबति॥ अबुद्ध्यादौमहादर्शेतद्रूपंपरमंस्मृतम्॥ ५१॥ मनःस्वप्नेंद्रियैर्मुक्तंयद्रूपंस्यान्महाचितेः॥ जंगमेस्थावरे वापितत्सर्वांतेऽवशिष्यते॥ ५२॥ स्थावराणांहियद्रूपंतच्चेद्बोधमयंभवेत्॥ मनोबुद्ध्यादिनिर्मुक्तंतत्परे णोपमीयते॥ ५३॥ ब्रह्मार्कविष्णुहरशक्रसदाशिवादिशांतौशिवंपरममेतदिहैकमास्ते॥ सर्वोपधिव्य यवशादविकल्परूपंचैतन्यमात्रमयमुज्झितविश्वसंगम्॥ ५४॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते उत्पत्तिप्रकरणे मोक्षोपाये महाकल्पांतावशिष्टपरमभाववर्णनं नाम दशमःसर्गः॥ १०॥

अर्थ—व्यवहार (मायिक) में तत्पर होनेपर भी जिसकी पाषाणके समान अचल स्थितिहै तथा छिद्र रहित होनेपर भी जो सब जगत्को अवकाश देनेसे आकाशरूपहै वही परमात्माका रूपहै॥ ४९॥ ज्ञेय ज्ञान और ज्ञाता ये तीनों जहांसे प्रथम उदय होतेहैं और जिसमें जाके अस्त हो जातेहैं वह परम दुर्लभ परमात्माका रूपहै॥५०॥ जिस बुद्धि आदि रहित महा दर्पणमें वेद्य वेदन वेत्तृता (ज्ञेय ज्ञान ज्ञातृता) प्रतिबिम्बित होतीहै वही सबसे उत्तम परमात्माका स्वरूप कहा गयाहै॥ ५१॥ मन स्वप्न जाग्रत और इन्द्रियोंसे मुक्त जो सुषुप्त महा चितिका रूपहै स्थावर और जंगममें दृश्य प्रलय कालमें शेष रह जाताहै॥ ५२॥ स्थावरोंका जो अचल रूपहै वह यदि मन बुद्धि आदिसे रहित शून्यरूप बोधमय होता तो परमात्माके साथ उसकी उपमा दीजाती॥ ५३॥ ब्रह्मा, सूर्य्य, विष्णु, हर, इन्द्र, और सदाशिव आदिके शांत होनेपर, इस संसारमें सम्पूर्ण उपाधिके लय होनेसे अविकल्परूप चलन मात्र विश्व संज्ञासे वर्जित यह सबको अनुभवसिद्ध प्रत्यगात्मा एक यही परम शिव शेष रहजाताहै॥ ५४॥

इत्यार्षे वाशिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे उत्पत्तिप्रकरणे महाकल्पांतावशिष्ट परमभाववर्णनं नाम दशमः सर्गः॥ १०॥

---

१ यद्यपि समाधिके मध्यकालमें जो स्फुरितहोताहै वहभी आत्माका रूपहै परन्तु वह अतिसूक्ष्म होनेसे आरूढ होनेकी इच्छा-वालेको अभ्यास दशामें नहीं दिखता सकते. २ त्रिपुटीकी निमित्तमी ब्रह्म निवर्त रूपसे है न परिणाम रूपसे॥

एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

जगत्की अधिष्ठान सत्रूपसे सत्ताका निवारण प्रलयमें भी नहीं करते और जगत्के रूपसे सृष्टिके समयमें भी जगत्की सत्ताका निवारण करतेहैं इस विषयका वर्णन इस ११ वें सर्गमें करतेहैं.

॥ श्रीरामउवाच ॥ इदंरूपमिदंदृश्यंजगन्नास्तीतिभासुरम् ॥ महाप्रलयसंप्राप्तौ भोब्रह्मन्क्वेवतिष्ठति ॥१॥ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ कुतआयातिकीदृग्वावंध्यापुत्रःकगच्छति ॥ कथातिकुतआयातिवदवाव्योमकानमम् ॥ २ ॥ श्रीरामउवाच ॥ वंध्यापुत्रोव्योमवनंनैवास्तिनभविष्यति ॥ कीदृशीदृश्यतातस्यकीदृशी तस्यनास्तिता ॥ ३ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ वंध्यापुत्रव्योमवनेयथानसतःकदाचन ॥ जगदाद्यखिलंदृश्यंतथानास्तिकदाचन ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—महाप्रलयमें जगत्की सत्ता सामान्य जगत् आत्मक ब्रह्म मात्रसे पारिशेष रहनेपर भी व्यवहाररूपसे जगत्की सत्ताकी निवृत्ति होनेसे ब्रह्मरूपसे रहती है और सृष्टिमेंतो प्रलयके विलक्षण सबको अनुभव है इसलिये स्वतंत्र सत्ता भी कहनी चाहिये और उस सत्तासे युक्त ब्रह्मसे निवृत्त जगत् अन्यत्र रहताहै यह संभावनाहै क्योंकि सत्का अभाव नहीं होता तो जहांपर जगत् रहताहै उस परम स्थानका उपदेश कीजिये इस आशयसे रामजी पूंछतेहैं ॥ हे ब्रह्मन् ! यह अनेकप्रकारका चौदह भुवन और उनमें देव, मनुष्य, असुर तिर्य्यग् (पशुपक्षी) आदि अनन्त विस्ताररूप जिसका ऐसा भासुररूप स्फुटतर दृश्य प्रत्यक्षादिसे दृढ किया यह जगत् जब नहीं है तब महाप्रलयमें किसके समान रहताहै ? ॥१॥ श्रीवसिष्ठजी बोले -वन्ध्याका पुत्र अथवा आकाशका वन कहांसे आताहै ? कैसाहै, और कहो वह कहां जाताहै ? ॥ २ ॥ श्रीरामजी बोले—वन्ध्यापुत्र और आकाशका वन न है और न होगा, तथा उसमें प्रत्यक्ष योग्यताभी नहीं है, तो उसकी अस्तिता वा नास्तिता कैसे कह सकतेहो, क्योंकि पदार्थकी अस्ति जब अप्रसिद्धहै तो उसकी नास्तिताभी नहीं होसकती इसलिये दृष्टान्त दार्ष्टान्तमें विलक्षणताहै ॥ ३ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-जैसे वन्ध्यापुत्र आकाशके वन कभी नहीं है, इसी प्रकार जगत् आदि सम्पूर्ण दृश्यभी कदापि नहीं है ॥ ४ ॥

नचोत्पन्नंनचध्वंसियत्किलादौनविद्यते ॥ उत्पत्तिःकीदृशीतस्यनाशशब्दस्यकाकथा ॥ ५ ॥ श्रीराम उवाच ॥ वंध्यापुत्रनभोवृक्षकल्पनातावदस्तिहि ॥ सायथानाशजन्माढ्यातथैवेदंनकिंभवेत् ॥ ६ ॥ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ तुल्यस्यातुलदृःस्थस्यभावकैःकिलतोलनम् ॥ निरन्वयायथैवोक्तिर्जगत्सत्तातथैवहि ॥ ७ ॥ यथासौवर्णकटकेदृश्यमानमिदंस्फुटं ॥ कटकत्वंतुनैवास्तिजगत्त्वंनतथापरे ॥ ८ ॥

अर्थ—जो आदिमें उत्पन्न नहीं हुआ, और न जिसका नाश हुआहै, उसकी उत्पत्ति कैसी और उसके नाश शब्दकी क्या कथा ? ॥ ५ ॥ वन्ध्यापुत्र और आकाशके वृक्षकी कल्पनाहै, वह कल्पना जैसे उत्पत्ति और नाशवाली है, ऐसेही यह जगत् विकल्पप्रत्ययके समान क्यों नहीं ? क्योंकि अत्यन्त असत् (वन्ध्यापुत्रादि) उपमान नहीं हो सकते ॥ ६ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—विकल्पप्रत्ययको उपमानता होती है यदि वह जगत्के भीतर न होता, तो जगत्के भीतर होनेसे उसको उपमानताका असंभवहै इसलिये असत् जगत्का मेरा कहाहुआ (वन्ध्यापुत्रादि) दृष्टान्तही योग्यहै, इस अभिप्रायसे वसिष्ठजी कहते हैं कि तुल्य अर्थात् उपमेयके इष्ट दृश्यसे बहिर्भूत उपमानके अलाभसे उपमेय पक्षके पदार्थोंके साथ उपमानका कथन अनन्वय[1] अलंकारका जैसे कथनहै वैसेही जगत्की सत्ता अर्थात् वन्ध्यापुत्रके सदृशहै ॥ ७ ॥ जैसे सुवर्णके कडेमें सुवर्णसे पृथक् कडापन कुछ नहीं है, ऐसेही जगत्की सत्ता परब्रह्ममें है, अर्थात् ब्रह्मसे पृथक् नहीं है ॥ ८ ॥

आकाशेचयथानास्तिशून्यत्वंव्यतिरेकवत् ॥ जगत्त्वंब्रह्मणितथानास्त्येवाप्युपलब्धिमत् ॥ ९ ॥ कज्जलान्नयथाकार्ष्ण्यंशैत्यंचनयथाहिमात् ॥ पृथगेवंभवेद्रुद्रंजगन्नास्तिपरेपदे ॥ १० ॥ यथाशैत्यंनशशिनोनहिमाव्यतिरिच्यते ॥ ब्रह्मणोनतथासर्गोविद्यतेव्यतिरेकवान् ॥ ११ ॥ मरुनद्यांयथातोयंद्वितीयेंदौयथेंदुता ॥ नास्त्येवेहजगन्नामदृष्टमप्यमलात्मनि ॥ १२ ॥

अर्थ—जैसे आकाशमें शून्यता भेदसे नहीं है, ऐसेही प्रत्यक्षसे दृश्यमान भी यह जगत् ब्रह्ममें वास्तविक पृथक् रूपसे नहीं है किन्तु ब्रह्मरूपही है ॥ ९ ॥ जैसे कज्जलसे कृष्णता, और हिमसे शीतता पृथक् नहीं है ऐसेही परमपदसे पृथक् जगत् कोई पदार्थ नहीं है ॥ १० ॥ जिसप्रकार चन्द्रमासे और हिमसे शीतता कोई अलग पदार्थ नहीं है इसीप्र-

---

(१) अनन्वय अलंकारका उदाहरण "गगनं गगनाकारं सागरः सागरोपमः" आकाश आकाशके और समुद्र समुद्रके सदृशहै अर्थात् सागर और आकाशके सदृश कोई नहीं है, ऐसेही जगत्की दशाहै ।

कार यह सृष्टि ब्रह्मसे भिन्न नहीं है ॥ ११ ॥ जैसे मरुस्थलकी नदीमें जल और दूसरे चन्द्रमामें चन्द्रत्व नहीं है इसीप्रकार अमलब्रह्ममें प्रत्यक्ष जगत्भी कोई पदार्थ नहीं है ॥ १२ ॥

आदावेवहियन्नास्तिकारणासंभवात्स्वयम् ॥ वर्तमानेपितन्नास्तिनाशःस्यात्तत्रकीदृशः ॥ १३ ॥ कासं भवज्जतजाड्यंपृथ्व्यादेर्जडवस्तुनः ॥ कारणंभवितुंशक्तंछायायाश्चातपोयथा ॥ १४ ॥ कारणाभावतः कार्यनेदंतत्किंचनोदितम् ॥ यत्तत्कारणमेवास्तितदेवेत्थमवस्थितम् ॥ १५ ॥ अज्ञानमेवयद्भातिसंवि दाभासमेवतत् ॥ यज्जगद्दृश्यतेस्वप्नेसंवित्कचनमेवतत् ॥ १६ ॥

अर्थ—कारणके असंभवसे जो आदिमेंही नहीं है वह वर्तमानमें भी उसीप्रकार नहीं है तब उसका नाश किस-प्रकार होसकताहै ? ॥ १३ ॥ जैसे छायाका कारण घाम (धूप) नहीं होसकता, इसीप्रकार पृथिवीआदि जडवस्तुका कारणभूतकी जडतासे रहित चेतनब्रह्म कहां होसकताहै ? क्योंकि कहींभी अपनेसे विरुद्ध स्वभावका परिणाम नहीं देखागया ॥ १४ ॥ परिणामकी दृष्टिसे यह जगत् कुछभी उदयको नहीं प्राप्तहुआ और विवर्तकी दृष्टिसे यद्यपि विरुद्ध पदार्थके आरोपका संभव होताहै तथापि विवर्त अवस्थामें वह कारणही जगत्रूपसे स्थित है जगत्रूप कार्य्यकी पृथक् सत्ता नहीं है ॥ १५ ॥ जो अज्ञानही जगत् आकारमें परिणत (तत्त्वशील) होके भान होताहै इससे अज्ञानही जगत्का परिणामी कारण हुआ सो नहीं, किन्तु वह अज्ञान संवित् (ज्ञान) कोही जगत्रूपसे प्रकाशित करताहै, क्योंकि स्वप्नमें जो जगत् दिखाई देताहै वह संवित्काही विवर्त है ॥ १६ ॥

संवित्कचनमेवांतर्यथास्वप्नेजगद्भ्रमः ॥ सर्गादौब्रह्मणितथाजगत्कचनमाततम् ॥ १७ ॥ यदिदंदृश्य तेकिंचित्सदैवात्मनिसंस्थितम् ॥ नास्तमेतिनचोदेतिजगत्किंचित्कदाचन ॥ १८ ॥ यथाद्रवत्वंसलि लंस्पंदनंपवनोयथा ॥ यथाप्रकाशआभासोब्रह्मैवत्रिजगत्तथा ॥ १९ ॥ यथापुरमिवास्तेंतर्विदेवस्वप्नसं विदः ॥ तथाजगदिवाभातिस्वात्मैवपरमात्मनि ॥ २० ॥

अर्थ—जैसे स्वप्नमें अन्तःकरणहीमें संवित्के विलाससे जगत्का भ्रम होताहै, इसीप्रकार सृष्टिकी आदिमें ब्रह्ममेंही यह जगत्का भ्रम व्याप्त है ॥ १७ ॥ जो कुछ यह जगत् देखपडताहै वह परमार्थ स्वभाववाले आत्मामें स्थितहै और यह कभी किंचित्भी उदय अस्त नहीं होताहै ॥ १८ ॥ जैसे द्रवत्व और जलस्पन्दन और वायु, तथा प्रकाश और आभास एकही पदार्थ है, ऐसेही ब्रह्म और तीनोंलोक एकही पदार्थ हैं ॥ १९ ॥ जैसे स्वप्न देखनेवाले अन्तःकरणमें चेतन है वही नगर आदिका आकार धारण करके भान होने लगताहै इसीप्रकार परमात्मामें अपना आत्माही जगत्का आकार धारण करके भासने लगताहै ॥ २० ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ एवंचेत्तत्कथंब्रह्मन्सुघनप्रत्ययंवद ॥ इदंदृश्यविषंजातमसत्स्वप्नानुभूतिवत् ॥ २१ ॥ सतिदृश्येकिलद्रष्टासतिद्रष्टरिदृश्यता ॥ एकसत्त्वेद्वयोर्बंधोमुक्तिरेकक्षयेद्वयोः ॥ २२ ॥ अत्यंतासं भवोयावद्बुद्धोदृश्यस्यनक्षयः ॥ तावद्द्रष्टरिदृश्यत्वंनसंभवतिमोक्षधीः ॥ २३ ॥ दृश्यंचेत्संभवत्यादौ पश्चात्क्षयमुपालभेत् ॥ तद्दृश्यस्मरणानर्थरूपोबंधोनशाम्यति ॥ २४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—हे भगवन् ! यदि यह दृश्यरूपी विष स्वप्नके अनुभवके समानअसत्है तो कल्पपर्यन्त विवाद रहित व्यवहारके योग्य दृढ विश्वासवाला कैसे होगया ? और स्वप्न नहीं, अर्थात् दृष्टान्त दार्ष्टान्तमें विषमता है ॥ २१ ॥ दृश्य रहते द्रष्टा अवश्य है, और द्रष्टाके रहते दृश्य अवश्य है एकके रहनेसे दोनोंको बन्धन, तथा एकक नाशसे दोनोंकी मुक्ति, वह एकका नाश अनुभवमें नहीं आता इससे मुक्ति होना असंभव है ॥ २२ ॥ जबतक दृश्यका अत्यन्त असंभवरूप नाश ज्ञात नहीं होता तबतक मोक्षका संभव नहीं ॥ २३ ॥ यदि यह दृश्य सृष्टिकी आदिमें उत्पन्न हुआ हो तो पीछे नाशको प्राप्त होतोभी संस्कार रूपसे स्थित पुनः उत्पन्न होके बन्धनरूप अनर्थको करेगा और शान्त नहीं होगा ॥ २४ ॥

यत्रक्वचनसंस्थस्यस्वादर्शस्येवचिद्गतेः ॥ प्रतिबिंबोलगत्येवसर्वस्मृतिमयोह्यलम् ॥ २५ ॥ आदावेव हिनोत्पन्नंदृश्यंनास्त्येवचेत्स्वयम् ॥ दृष्टुर्दृश्यस्वभावत्वात्तत्संभवतिमुक्तता ॥ २६ ॥ तस्मादसंभव न्मुक्तेर्ममप्रोत्सार्ययुक्तिभिः ॥ अत्यंतासंभवोयावत्कथयात्मविदांवर ॥ २७ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अस देवसदाभातिजगत्सर्वात्मकंयथा ॥ शृणवहंकथयारामदीर्घयाकथयामिते ॥ २८ ॥

---

१ परिणाम उसको कहतेहैं एक पदार्थ बदलके दूसरा होजाय जैसे दूधका दहीं और विवर्त उसको कहतेहैं, जो पदार्थ वहां बनाहै और अज्ञानसे दूसरा मालूम होताहै ॥ जैसे सीपमें चांदी रस्सीमें सांप ॥

अर्थ—जिस किसीस्थानमें स्थित उत्तम आदर्श (दर्पण)के समान चित्रूपी दर्पणमें प्रतिविम्ब अवश्य पडेगा क्योंकि संस्काररूपी सभी पदार्थ अपना कार्य करनेमें समर्थ है ॥ २५ ॥ आदिमें उत्पन्न नहीं हुआ तो यदि दृश्य अपने स्वभावसे नहींहै इसप्रकार द्रष्टा चेतनहीं दृश्य स्वभाव होनेसे मुक्तिका संभव है और जो उत्पन्न नहीं हुआ उसका अनुभव नहीं होता इसलिये द्रष्टाका स्वभावसे विनिर्मुक्ति नहीं हो सकती ॥ २६ ॥ इसलिये हे भगवन् ! मेरी मुक्तिकी असंभवकी शंकाका समाधान युक्तियोंका विस्तार करके जबतक दृश्यका अत्यन्ताभाव बुद्धिमें आरूढ न हो तबतक दीजिये ॥ २७ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! यह सर्वात्मक असत् होकेभी सत् जिसप्रकार भासता है सो मैं मण्डपोख्यान आदि दीर्घ कथासे कहताहूं आप सुनिये ॥ २८ ॥

व्यवसायकथावाक्यैर्यावत्तत्रानुवर्णितम् ॥ नविश्राम्यतितेतावद्धृदिपांसुर्यथान्हदे ॥ २९ ॥ अत्यंताभावमस्यास्त्वंजगत्सर्गभ्रमस्थितेः ॥ बुद्ध्वैकध्याननिष्ठात्माव्यवहारंकरिष्यसि ॥ ३० ॥ भावाभावग्रहोत्सर्गस्थूलसूक्ष्मचलाचलाः ॥ दृशस्त्वांवेधयिष्यंतिनमहाद्रिमिवेषवः ॥ ३१ ॥ सएषोस्त्येकएवात्मानद्वितीयास्तिकल्पना ॥ जगद्त्रयथोत्पन्नंतत्तेवक्ष्यामिराघव॥३२॥तस्मादिमानिसकलानिविजृंभितानिसोपीदमंगसकलासकलंमहात्मा॥रूपावलोकनमनोमननप्रकाराकारास्पदंस्वयमुदेतिविलीयतेच॥३३॥

इत्यार्षेवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे परमार्थवर्णनं नाम एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

अर्थ—आपको मैं तबतक समाधान करूंगा जबतक पूर्व महात्माओंके व्यवहार और उनके कथा वाक्योंसे उसमें वर्णन किया हुआ आपके हृदयमें ऐसे नहीं विश्राम पावेगा जैसे तडागमें धूलि ॥ २९ ॥ उससे इस जगत्की सृष्टिको भ्रमकी स्थिति (दशा) का अत्यन्ताभाव जानकर एक आत्मतत्वमें ध्याननिष्ठभी होओगे और संसारके व्यवहारभी करोगे ॥ ३० ॥ भाव, अभाव, ग्रहण, त्याग, स्थूल, सूक्ष्म आदि विपयोंमें चल और अचल व्यवहारकी दृष्टियां राग आदि न होनेके कारणसे ऐसे नहीं वेधन करसकेंगी जैसे बडेभारी पर्वतको बाण ॥ ३१ ॥ यह आत्मा एकही अद्वैत है इसमें द्वितीय (द्वैत) की कल्पना नहीं है, हे रामजी ! द्वितीय कल्पना शून्य आत्मामेंभी जैसे यह जगत् उत्पन्न हुआ सो मैं तुमसे कहताहूं ॥ ३२ ॥ हे प्रिय रामजी ! उसी परमात्मासे ये सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड आविर्भूत (प्रकट) होते हैं, और वही महात्मा बाह्य इंन्द्रियोंसे समष्टिव्यष्टि रूप इस दृश्यमान सम्पूर्ण जगत् तथा उनके रूपादिके आलोकन प्रकारको, और अन्तर इंद्रियोंसे मनन प्रकारको धारण करके आपही उदय और लयको प्राप्त होताहै, अर्थात् आप एकरस रहतेभी भ्रान्तिसे उदय और लयभावसे ज्ञात होता है ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे परमार्थवर्णनं नामैकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

सबके अपवाद (आत्मामें क्रमशः लय) से अत्यन्त असंभव कहनेकेलिये उसीके अनुकूल सृष्टि और अध्यारोपका वर्णन इस १२ वे सर्गमें करते हैं ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एतस्मात्परमाच्छांतात्पदात्परमपावनात् ॥ यथेदमुत्थितंविश्वंतच्छृणूत्तमया धिया ॥ १ ॥ सुषुप्तंस्वप्नवद्भातिभातिब्रह्मैवसर्गवत् ॥ सर्वात्मकंचतत्स्थानंतत्रतावत्क्रमंशृणु ॥ २ ॥ तस्यानंतप्रकाशात्मरूपस्यानंतचिन्मणेः ॥ सत्तामात्रात्मकंविश्वंयदजस्रंस्वभावतः ॥ ३ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! इस परमशान्त और परम पावन (आत्म) पदसे जिसप्रकार यह विश्व प्रगट हुआहे उसको सावधान बुद्धिसे सुनिये ॥ १ ॥ जिसप्रकार प्रत्येक पुरुपको सुषुप्त आत्माका रूपही स्वप्नके समान भासताहै इसीप्रकार ब्रह्महीं सृष्टिरूपसे भान होताहै, उनमें एक पुरुपकी वासनाका कार्य होनेसे स्वप्न दृढ नहीं है और सम्पूर्ण प्राणीमात्रकी वासनाका कार्य होनेसे जाग्रत दृढ प्रयत्नवाला है, और जिसप्रकार सम्पूर्ण सुषुप्त समष्टिके प्रलयका स्थान ब्रह्म है उस क्रमको सुनिये ॥ २ ॥ उस अनन्त प्रकाश स्वरूपवाले अनन्त चिंतनरूप मणिके स्वभावसे सदा परमार्थरूप यह विश्व ॥ ३ ॥

तदात्मनिस्वयंकिंचिच्चेत्यतामिवगच्छति ॥ अगृहीतात्मकंसंविदहंमर्शनपूर्वकम् ॥ ४ ॥ भाविनामार्थकलनैःकिंचिदूहितरूपकम् ॥ आकाशादणुशुद्धंचसर्वस्मिन्भातिबोधनम् ॥ ५ ॥ ततः सापरमासत्तासचेतश्चेतनोन्मुखी ॥ चिन्नामयोग्याभवतिकिंचिल्लभ्यदयातथा ॥ ६ ॥ घनसंवेदनाच्चाद्वाविजीवादिनामिका ॥ संभवत्यात्तकलनायदोज्झतिपरंपदम् ॥ ७ ॥ सत्तैवभावनामात्रसारासंसरणोन्मुखी ॥ तदावस्तुस्वभावेनत्वनुतिष्ठतितामिमाम् ॥ ८ ॥

अर्थ—संवित्से अध्यासरूप अहंकारके ग्रहण किये विनाही, आकाशसे अणु और सूक्ष्म जो बोध (ज्ञान)- वह सम्पूर्ण रचना करनेके योग्य पदार्थोंके विषयमें भावी नामरूपके अनुसन्धानसे कुछ चेष्टारूप होके प्रथम आत्मामें चेत्यताके समान प्राप्त होताहै ॥ ४ ॥ ५ ॥ उसके अनन्तर वह परमसत्तामें ईक्षण (जगत्को मैं रचूं ऐसी इच्छा) रूप वृत्तिसहित चेतना अभिव्यक्त जो चैतन्य उसकी ओर उन्मुख होती हुई कुछ वाणीके व्यवहारकी योग्यता प्राप्त होनेसे चित् (सबको चेतानेवाले सर्वज्ञ ईश्वर) नामके योग्य होती है ॥ ६ ॥ अधिक कालकी अनुवृत्तिसे दृढ ईक्षणसहित सूक्ष्म विषय और प्रपंचके स्वरूपको धारण करनेसे जिससमय वह चेतना अपरिच्छिन्न आत्मपदको त्यागती है उससमय भाविप्राणधारण उपाधिवाले जीव हिरण्यगर्भ आदि नामवाली होती है ॥ ७ ॥ उस समय ब्रह्मसत्ताही भावनामात्रसे संसारकी ओर उन्मुख जीव आदि नामधारण करनेवाली होती है, न कि विकारमात्रसे, और वस्तुके स्वभावसे उस सत्ताका अनुसरण करकेही जैसे रज्जुमें सर्प प्रतीत होताहै वैसेही अपनी परमार्थदशामें रहती हुई जीव आदि भावको प्राप्त होतीहै ॥ ८ ॥

समनंतरमेवास्याःखसत्तोदेतिशून्यता ॥ शब्दादिगुणबीजंसाभविष्यदभिधार्थदा ॥ ९ ॥ अहंतोदेतितदनुसहवैकालसत्तया ॥ भविष्यदभिधार्थेनबीजंमुख्यजगत्स्थितेः ॥ १० ॥ तस्याः शक्तेः परायारतुस्वसंवेदनमात्रकम् ॥ एतज्जालमसद्रूपंसदिवोदेतिविस्फुरत् ॥ ११ ॥ एवंप्रायात्मिकासंविद्बीजंसंकल्पशाखिनः ॥ भवत्यहंकारकणस्ततःस्पंदतयामरुत् ॥ १२ ॥

अर्थ—इस जीव सत्ताके अनन्तरही, सूर्य्यादि सृष्टिके अनन्तर भविष्यत् अर्थसहित आकाश नामको धारण करनेवाली, शब्दादि गुणोंका बीजभूत, अपनेसे पृथक् सब भूतोंके अवकाश देनेसे शून्यमय, आकाशकी सत्ता उदय होती है ॥ ९ ॥ उसके अनन्तर भविष्यत् नाम और अर्थसे मुख्य जगत् स्थितिका बीजभूत दो परार्द्ध आयुरूप कालकी सत्ताके साथ अहन्ता (अहंकारकी सत्ता) उदय होती है ॥ १० ॥ यह आकाश अहंकार और कालकी सृष्टि हिरण्यगर्भसेही नहीं होती, किन्तु हिरण्यगर्भरूप उपाधिका उपहित जो परमात्मसत्ताहै उसीसे होती है क्योंकि सबका कारण वही है उस पराशक्ति (सत्ता) से अपने ज्ञान मात्रसे विस्मरण होता हुआ यह असत्रूप संसारका जाल सत्के समान होती है ॥ ११ ॥ आकाशके अहंकारसे आकाशमय रूपवाली, कार्य्यविषयके संकल्पका बिजभूत, अहंकारका कण अर्थात् एक देशके समान संवित् (ज्ञान) परिच्छिन्न स्पन्द (गति) शक्तिकी प्रधानतासे वायुरूपसे प्रकट होती है ॥ १२ ॥

चिदहंतावतीव्योमशब्दतन्मात्रभावनात् ॥ खतोघनीभूयशनैःखतन्मात्रंभवत्यलम् ॥ १३ ॥ भाविनामार्थरूपंतद्बीजंशब्दौघशाखिनः ॥ पदवाक्यप्रमाणाख्यंवेदवृंदंविकासितम् ॥ १४ ॥ तस्माद्धदेष्यत्यखिलाजगच्छ्रीःपरमात्मनः ॥ शब्दौघनिर्मितार्थौघपरिणामविसारिणः ॥ १५ ॥ चिदेवंपरिवारासाजीवशब्देनकथ्यते ॥ भाविशब्दार्थजालेनबीजंरूपौघशालिनः ॥ १६ ॥

अर्थ—आकाशके अहंकाररूप उपाधिकी उपहित परमसत्ता आकाश तन्मात्रकी भावना मात्रसे अतिसूक्ष्म आकाशसे कुछ स्थूलभावको धारण करके आकाशसे आकाश तन्मात्रा पूर्ण रीतिसे धीरेधीरे होजाती है॥ १३ ॥शब्दोंका समूहरूपी वृक्षोंका बीजभूतभावी नामार्थरूप वह शब्द तन्मात्र, विस्तारको प्राप्त कियाहुआ पदवाक्य प्रमाण नामवाला वेदोंका समूहहै ॥ १४ ॥ शब्दोंके समूहसे बनायेहुये अर्थोंके समूहोंके परिणामसे विस्तारको प्राप्त होनेवाले वेदभावको प्राप्त उस परमात्मासे सम्पूर्ण जगत्की शोभा उत्पन्न होगी अर्थात् उसने "भूः" ॥ १५ ॥ इसप्रकार, भावीशब्द और अर्थके जालसे मूर्ति आकारोंके समूह वृक्षका बीजभूत पूर्वोक्तवायु (प्राणरूप) अन्तःसार सहित चित् जीवशब्दसे कही जाती है, अर्थात् वायु उत्पत्तिके अनन्तर वायुरूप प्राणके धारण करनसे जीव सिद्ध होताहै ॥ १६ ॥

---

१ जीव और आकाश सत्ताके अनन्तर जीवको अभिमान होताहै ॥

चतुर्दशविधंभूतजालमावलितांतरं ॥ जगज्जठरगर्त्तौघंप्रसरिष्यतिवैततः ॥ १७ ॥ असंप्राप्ताभिधाचारा चिज्जवात्प्रस्फुरद्वपुः ॥ साचैवस्पर्शतन्मात्रंभावनाद्भवतिक्षणात् ॥ १८ ॥ पवनस्कंधविस्तारंबीजंस्प र्शौघशाखिनः ॥ सर्वभूतक्रियास्पंदस्तस्मात्संप्रसरिष्यति ॥ १९ ॥ तत्रैवचिद्विलासेनप्रकाशोनुभवा द्भवेत् ॥ तेजस्तन्मात्रकतत्तुभविष्यदभिधार्थकम् ॥ २० ॥

अर्थ—वायु व्यष्टि (प्रत्येक प्राणी) के प्राणभावसे सबके आध्यात्मिक क्रियाका हेतुहै इसबातको कहतेहैं, इसके अनन्तर चौदह १४ प्रकारके भुवनोंके भेदसे चौदह प्रकारके प्राणियोंके समूह युक्त वायुसे व्याप्त मध्यभाग ब्रह्माण्डोंके उदररूपी गर्तोंके समूहमें वायु (प्राण) विचरेगा ॥ १७ ॥ वायुके अभिमानरूप उपाधिका उपहित वही चित् पूर्वकालमें संचारन पानेवाली भी वायुके अभिमानके वेगसे अधिक चंचल शरीरवाली स्पर्शतन्मात्राकी भावनासे स्पर्शतन्मात्रा क्षणभरमें होजाती है ॥ १८ ॥ उञ्चांश ४९ प्रकारके पवनोंको शाखाओंके विस्तारवाला अनेक प्रकारके स्पर्शोंके समूहरूपी वृक्षका बीजभूत सम्पूर्ण प्राणियोंकी क्रियाका स्पन्द (संचल) उस स्पर्श-तन्मात्रासे प्रचलित होगा ॥ १९ ॥ उसी चेतनमें प्रकाशकी भावनासे प्रकाश होताहै और भविष्यत् नाम और अर्थको धारण करनेवाली तेज तन्मात्राहै ॥ २० ॥

तत्सूर्याग्निविजृंभादिबीजमालोकशाखिनः ॥ तमस्माद्रूपविभेदेनसंसारःप्रसरिष्यति ॥ २१ ॥ भाव यंस्तनुतामेवरसस्कंधइवांभसः ॥ स्वदनंतस्यसंघस्यरसतन्मात्रमुच्यते ॥ २२ ॥ भाविवारिविला सात्मातद्वीजंरसशाखिनः अन्योन्यस्वदनेतस्मात्संसारःप्रसरिष्यति ॥ २३ ॥ भविष्यद्रूपसंकल्प नामासौकल्पनात्मकः ॥ संकल्पात्मागुणैर्गंधतन्मात्रत्वंप्रपश्यति ॥ २४ ॥

अर्थ—वह तेजतन्मात्र प्रकाशरूपी वृक्षका सूर्य्य अग्नि विद्युत् चन्द्रतारा आदिका बीजभूतहै, और उसीसे रू-पके भेदसे संसारका प्रसार होगा ॥ २१ ॥ वह तेजभावमें प्राप्त आत्मा जलके रसकणको वा उसकी परिच्छिन्न शरी-रकी भावना करता हुआ उसी दशाको प्राप्त होताहै, और जलरूप मूर्त द्रव्यका जिव्हासे मधुररस आस्वादन वह रस विशेषका सामान्य उपादान कारण होनेसे रसतन्मात्रा कहताहै ॥ २२ ॥ वही भावी समुद्रादिरूप जलके विलासरूप शरीरवाला रसरूप वृक्षका बीजहै, और उसी रससे, इन्द्रिय और विषयभावसे परस्परके आस्वादनमें राग आदिकी उत्पत्तिके बारम्वार विषयके उपार्जनकी प्रवृत्तिरूप संसारका प्रसार होगा ॥ २३ ॥ जलभावमें प्राप्त यह परमात्मा मैं पृ-थिवीहूं ऐसा संकलपरूप होता हुआ, भावी पृथिवीके नाम अर्थके संकलपवाला होके गन्धके संकलपरूप अपने गुणोंसे अपनेको गन्ध तन्मात्र स्वरूप देखताहै ॥ २४ ॥

भाविभूगोलकत्वेनबीजमाकृतिशाखिनः ॥ सर्वाधारात्मनस्तस्मात्संसारःप्रसरिष्यति ॥ २५ ॥ चिता विभाव्यमानानितन्मात्राणिपरस्परम् ॥ स्वयंपरिणतान्यंतरंबुनीवनिरंतरम् ॥ २६ ॥ तथैतानिविमि श्राणिविविक्तानिपुनर्यथा ॥ नशुद्धान्युपलभ्यंतेसर्वनाशांतमेवहि ॥ २७ ॥ संवित्तिमात्ररूपाणिस्थि तानिगगनोदरे ॥ भवंतिवटजालानियथाबीजकणांतरे ॥ २८ ॥

अर्थ—ज्योतिष शास्त्र प्रसिद्ध भावी भूगोल रूपसे आकाररूप वृक्षका वही (गन्धतन्मात्र भावमें प्राप्त) परमात्मा बीजहै और उसी सर्वाधाररूप परमात्मामें सम्पूर्ण संसार उत्पन्न होगा ॥ २५ ॥ पूर्वोक्त अहंभावमें प्राप्त चेत-नसे प्रेरित सब भूतोंकी तन्मात्रा परस्पर ब्रह्माण्डके आकारसे निरन्तर स्वयं ऐसे परिणत होते रहतेहैं जैसे जलमें बुदबुदे ॥२६॥ कुछकालके लिये सब भूत ऐसे मिलजातेहैं कि जबतक सबका नाश नहो तबतक अलग शुद्धरूपसे नहीं प्राप्त होतेहैं ॥२७॥ ये सब ब्रह्माण्ड अव्याकृत आकाशमें ज्ञान मात्रसे ऐसे स्थितहैं जैसे वटके बीजके भीतर वटवृक्षका जाल॥२८

प्रसवंपरिपश्यंतिशतशाखंस्फुरंतिच ॥ परमाण्वंतरेभांतिक्षणात्कल्पीभवंतिच ॥ २९ ॥ विवर्त्तमेवधा वंतिनिर्विवर्त्तानिसंतिच ॥ चिद्देधितानिसर्वाणिक्षणात्पिंडीभवंतिच ॥ ३० ॥ तन्मात्रगणमेतत्स्यात्सा संकल्पात्मिकाचितिः ॥ वेदनात्रसरेण्वाभमनाकारैवपश्यति ॥ ३१ ॥ बीजंजगत्सुतनुपंचकमात्रमेव बीजंपराव्यवहितस्थितिशक्तिराद्या ॥ बीजंतदेत्रभवतीतिसदानुभूतंचिन्मात्रमेवमजमाद्यमतोजगच्छ्रीः ३२

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये
जगदुत्पत्तिवर्णनं नाम द्वादशःसर्गः ॥ १२ ॥

अर्थ—कदाचित् यह कहो कि अति सूक्ष्म होनेसे अवकाशके अभावसे तन्मात्रोंमें स्थूल जगत्की स्थिति कैसे होती है सो यथार्थ में स्थितिनहीं किन्तु मायासे परमाणुके भीतरभी उत्पत्ति देखते है, अनेक शाखारूपमें स्फुरते हैं

क्षणका कल्प और कल्पके क्षण होके भान होने लगते हैं ॥ २९ ॥ विवर्तकी ओर दौडते हैं अर्थात् विवर्तसे स्थूल भावको प्राप्त होते हैं परन्तु यथार्थ विवर्त रहित अपने सूक्ष्म स्वरूपसेही रहते हैं, अविकार चेतन अनुविद्ध (संबंध) क्षणमेंही सब पिण्डाकार होजाते हैं, परिणाम पक्षमें तो कूष्माण्ड (कोहडे) की वृद्धिके समान विलम्ब होता है ॥३०॥ वह संकल्प मात्र चेतनही इन तन्मात्रोंका गण होजाताहै, अपने निजरूपसे निराकारभी ज्ञानमात्रसे त्रसरेणु आदिके समान देखताहै ॥ ३१ ॥ जगत्का बीज तन्मात्राहैं, और पंचतन्मात्राओंकी परमात्मासे साक्षात् सम्बन्ध रखनेवाली आदिमाया शक्तिहै जो कि जगत्की स्थितिका हेतुहै इस प्रकार अज, सबका आदि चिन्मात्र परमात्माही माया शक्तिके द्वारा सबका बीज सदा अनुभव किया गया है और इसीसे सब जगत् की शोभा है ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे जगदुत्पत्तिवर्णनं नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

पूर्व सर्गमें सृष्टिके कथनसे ब्रह्मका मिथ्या जगत्रूप होना वर्णन किया और इस १३ वें सर्गमें उसकी जीवरूपता और देह आदिकी प्राप्तिका वर्णन किया गया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ परमेब्रह्मणिस्फारेसमेरामसमस्थिते ॥ अनुत्पन्ननभस्तेजस्तमःसत्ताचिदात्मनि ॥१॥पूर्वंचेत्यत्वकलनंसतश्चेत्यांशचेतनात् ॥ उदेतिचित्तकलनंचितिशक्तित्वचेतनात् ॥ २ ॥ ततोजीवत्वकलनंचेत्यसंयोगचेतनात् ॥ ततोस्यमायाकलनंचेत्यैकपरतावशात् ॥ ३ ॥ ततोबुद्धित्वकलनमहंतापरिणामतः ॥ एतदेवमनस्तादिशब्दतन्मात्रकादिमत् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! सर्वत्र एकरस व्यापक परब्रह्मरूप सम अधिष्ठान रूपसे स्थित होनेकी[१] दशामें अनुत्पन्न आकाश वायु तेज तम आदिकी कारणरूपसे सत्ता उसी चिदात्मामें रहती है ॥ १ ॥ सत्वस्तुके स्वभावके कारणसे चेत्य (विषय) अंशमें चेतनके होनेसे प्रथम उस चिदात्मामें विषयकी कल्पना होती है क्योंकि चेतयिता जीवभावसे चित्की सिद्धि विषय करण सिद्धिपूर्वक है, उसके अनन्तर चितिशक्तिके चेतन स्वभावसेही चित्तकी कल्पना होती है ॥ २ ॥ उसके अनन्तर चेत्यके संयोग चेतनके निमित्तसे जीवत्वकी कल्पना होतीहै, उसके अनन्तर इसको विषयमात्रमें अहंभाव होनेके कारणसे मायाका सम्बन्ध होताहै ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर अहंकारकी वृद्धिसे बुद्धित्वकी कल्पना होती है, इसप्रकार धर्मके सिद्ध होनेपर वासनाके कारणसे आत्माके अन्तर्गत शब्द आदि विषय मात्राओंके मननसे उनके सहित यही मनरूप होजाताहै ॥ ४ ॥

उच्छूनादन्यतन्मात्रभावनाद्भूतरूपिणः ॥ अयमित्थंमहागुल्मोजगदादिर्विलोक्यते ॥ ५ ॥ झटित्येवंक्रमेणेतिस्वप्नेपुरमिवाकृतम् ॥ महाकाशमहाटव्यामुद्भूयोद्भूयनश्यति ॥ ६ ॥ जगत्करंजकुंजानांबीजमेतदवापजम् ॥ नापेक्षतेकिंचिदपिक्षितिवार्यनलादिकम् ॥ ७ ॥ एतच्चिदात्मकंपश्चात्किलोर्व्यादिकरिष्यति ॥ स्वंस्वप्नवित्पुरमिवचिन्मात्रात्मकमेवयत् ॥ ८ ॥

अर्थ—वासनारूप शब्दतन्मात्राओंका अन्य स्पर्श आदि तन्मात्राओंके साथ मिलनेसे और उनके पंचीकृत भावसे वृद्धिको प्राप्त आध्यात्मिक महाभूतरूप स्थूलदेहदशामें प्राप्त मनसेही यह जगत् आदि वृक्ष देख पडताहै॥५॥इसी पूर्वोक्त क्रमसे स्वप्नमें विना इच्छाके नगरकी उत्पत्तिके समान महाकाशरूप महावनमें शीघ्रही उत्पन्न हो होकर पुनः नष्ट होताहै ॥ ६ ॥ जगत्रूपी करंजा (करमचा वा कपित्थ) के जंगलोंका यह बीज बीनाबोयेही उत्पन्न हुआहै, यह पृथिवी जल और वायुआदि किसीकी अपेक्षा नहीं करता ॥ ७ ॥ यह चेतनरूप आत्माही अपने स्वरूपसे पृथिवी आदिको ऐसे बना लेगा जैसे स्वप्नका देखनेवाला अपनेमें (अपना अनुभूयमान) नगर, परन्तु यथार्थमें वह चेतनरूपही है ॥ ८ ॥

---

१ सुषुप्तिके समान प्रलयदशामें लयके कारणसे माया शबल ब्रह्मभावमें प्राप्त जीव उपाधियोंका फिर आविर्भावका क्रम हेतुसहित वसिष्ठजी कहते हैं ।

जगदाद्यंकुरंयत्रतत्रस्थमपिमुंचति॥ जगतःपंचकंबीजंपंचकस्यचिदव्यया॥ ९॥ यद्बीजंतत्फलंविद्धि तस्माद्ब्रह्ममयंजगत्॥ एवमेषमहाकाशेसर्गादौपंचकोगणः॥ १०॥ चिच्छक्त्यास्वांगभूतात्माकल्पि तोस्तिनवास्तवः॥ अनेनोच्छूनतामेत्ययदपीदंवितन्यते॥ ११॥ तदप्याकाशरूपात्मकल्पनात्मनि सन्मयम्॥ क्वचिन्नानामतत्सिद्धंयदसिद्धेनसाध्यते॥ १२॥

अर्थ—जो चिदात्मक (चेतनरूप) है वह चाहै जिस दशामेंहो परन्तु जगत् आदिके अंकुरको त्यागही देताहै जगत्के अंकुरके बीज पंचतन्मात्राहै और पंचतन्मात्राका बीज अविनाशी चेतनहै ॥९॥ जो बीज होताहै वही फल होताहै इसकारण सम्पूर्ण जगत् ब्रह्ममयहै, इसप्रकार महाकाशमें यह पंचक (पंचतन्मात्र) सृष्टिके आदिमें चेतन शक्तिमें अपने अंकके समान कल्पित किया गयाहै, यद्यपि यह वृद्धिको प्राप्त होके इसस्थूल जगत्का विस्तार करताहै तथापि यह सत्य नहीं है॥ १०॥ ११॥ वह (स्थूल) भावको प्राप्तभी जगत् आकाशके रूपसे अपने कल्पनाके अधिष्टान आत्मामें रहनेसे तन्मय है, क्योंकि जो असिद्धसे सिद्ध किया जाताहै वह कभी सिद्ध नहीं होता॥ १२॥

स्वरूपंयद्विकल्पात्मकथंतत्सत्यतामियात्॥ अथचेत्पंचकंब्रह्मब्रह्मात्मकतयाधिया॥ १३॥ तत्पंचकं विद्धिप्रौढोब्रह्मैवत्रिजगत्क्रमः॥ यथास्फुरतिसर्गादावेषपंचकसंभवः॥ १४॥ तथैवाद्येहभूतत्वेयाति कारणतास्वयम्॥ एवंनजायतेकिंचिज्जगज्जातंनलक्ष्यते॥ १५॥ स्वप्नसंकल्पपुरवदसत्सदनुभूयते॥ ब्रह्माकाशपराकाशेजीवाकाशत्वमात्मनि॥ १६॥

अर्थ—जिसका स्वरूपही कल्पनामयहै वह सत्य कैसे होसकताहै ? यदि यह कहो कि पंचतन्मात्रा ब्रह्ममें अध्यस्तहै इसलिये वह ब्रह्महै न कि उसका कार्य्य सो नहीं पंचस्थूल भूत जो पंचतन्मात्राओंका कार्य्य हैं वहभी ब्रह्मही है और वृद्धिको प्राप्त जो यह त्रिलोकहै उसकोभी ब्रह्मात्मक बुद्धिसे (उपादान कारण और कार्य्यका अभेद होनेसे) इसकोभी ब्रह्मही जानो, जैसे सृष्टिकी आदिमें यह पंचतन्मात्रा पूर्वकालमें ब्रह्मरूपसे स्फुरताहै वैसेही उत्तरकालमेंभी स्वयं कारणताको प्राप्त होके स्थूल भूत होजाताहै, इसप्रकार परमार्थमें यह जगत् कुछभी नहीं उत्पन्न होता, और न उस दशामें यह जगत् समूह लक्षित होताहै॥ १३॥ १४॥ १५॥ ब्रह्म आकाशरूप परमप्रकाशरूप पराकाश आत्मामें असत्रूप जीवाकाश, असत्स्वप्नके नगरके समान भान होताहै॥ १६॥

इतिचित्यवदातात्मापृथ्व्यादीनामसंभवात्॥ इत्येषजीवःकथितोव्योम्निखात्माद्यचोदितः॥ १७॥ जीवाकाशस्त्विमंदेहंयथाविंदतितच्छृणु जीवाकाशःस्वमेवासौतस्मिंस्तुपरमेश्वरे॥ १८॥ अणुतेजः कणोस्मीतिस्वयंचेततिचिंतया॥ यत्तदेवोच्छूनमिवभावयत्यात्मनांबरे॥ १९॥ असदेवसदाकारंसं कल्पेंदुर्यथानसन्॥ तमेवभावयन्द्रष्टृदृश्यरूपतयास्थितः॥ २०॥

अर्थ—इसप्रकार यथार्थमें परिच्छिन्न उपाधिवाले पृथिवी आदिका असंभव होनेसे चेतनमें अपनेको शुद्धरूपही देखताहै, और आकाशमें गन्धर्व नगरके समान उदयको प्राप्त यह जीव अपना आत्माही कहागयाहै॥ १७॥ इसप्रकार सामान्य अभिमानसे ब्रह्मको समष्टि जीवभाव कहके अब विशेष अभिमानसे व्यष्टि अभिमानसे देह पर्य्यन्त अभेद आरोपका क्रम वर्णन करतेहैं, हे रामजी यह जीवाकाश जिसप्रकार शरीरको पाताहै वह सुनो, उस परमेश्वरसे कल्पित समष्टि जीवाकाश विस्तृत स्वरूप होनेपरभी॥ १८॥ मैं अल्पतर स्फुलिंगके समान तेजका कणहुं ऐसी चिन्तासे जैसे आत्माका अनुभव करताहै वैसेही आत्माकाशमें स्थूलभावको प्राप्त होताहै॥१९॥ जैसे संकल्पका चन्द्रमा सत् नहीं है ऐसेही यह असत्ही यह सदाकार भान होताहै, और उसीकी भावना करता हुआ द्रष्टा और दृश्यरूपसे स्थितहै॥२०॥

एकएवद्वितामेतिस्वप्नेस्वमृतिबोधवत्॥ किंचित्स्थौल्यमिवादत्तेततस्तारकतांविदन्॥ २१॥ यथा भावितमात्रार्थभावितोद्विश्वरूपतः॥ सएवस्वात्मासततात्ययंसोहमितिस्वयम्॥ २२॥ चित्तात्प्रत्य यमाधत्तेस्वप्नेस्वामिवपांथताम्॥ तारकाकारमाकारंभाविदेहाभिधंतथा॥ २३॥ भावयत्यतितद्भावं चित्तंचेत्यार्थतामिव॥ परित्यज्यैवतद्बाह्यंततस्तारककोटरे॥ २४॥

अर्थ—स्वप्नमें अपने मरणके ज्ञानके समान एक अद्वितीय रहतेभी द्वैतभावको प्राप्त होताहै, उसके अनन्तर अणुतेजके फलाभावको त्यागकर ताराकी सदृशताको प्राप्त होताहुआ कुछ स्थूलताको धारण करताहै और यही इसका भूतमात्रासहित लिंगरूपहै॥ २१॥ यथा प्राप्त मात्राओंके अर्थकी वासनासे और विश्वरूप होनेके कारणसे यह जीव ताराके सदृश ज्ञान होनेसे अर्थात् मैं स्वयं वहहूं ऐसा ज्ञान होनेसे वह ताराकारही अपना आत्मा होगया॥ २२॥ पूर्वोक्त ताराकार (लिंगशरीराकार) और भावी स्थूलदेहका आकार वह आत्मा चित्तकी कल्पना

वशसेही धारण करताहै जैसे चित्तकी कल्पनासे स्वप्नमें अपनेको पान्थ (राही) देखताहै ॥ २३ ॥ जैसे स्वप्नमें उपाधिके अन्तर्गत कल्पित आकाशमें बाह्यभावको त्यागकरही चित्त विषयाकार होजाताहै इसीप्रकार स्थूलदेहाकारकी भावनासे स्थूलशरीरवाला होजाताहै ॥ २४ ॥

अंतर्भातिबहिष्ठोपिपर्वतोमुकुरेयथा ॥ कूपसंस्थोयथादेहःसमुद्गकगतंवचः ॥ २५ ॥ स्वप्नसंकल्पयोः संविद्देस्येतजीवकोणके ॥ स्वरूपतारकांतस्थोजीवोयंचेततिस्वयम् ॥ २६ ॥ तदेतद्बुद्धिचित्तादिज्ञान सत्तादिरूपकम् ॥ जीवाकाशःस्वतस्तत्रतारकाकाशकोशगम् ॥ २७ ॥ प्रेक्षेहमितिभावेनद्रष्टुंप्रसरतीं चखे ॥ ततोरंध्रद्वयेनैवभाविबाह्याभिधंपुनः ॥ २८ ॥ येनपश्यतितन्नेत्रयुगंनाम्नाभविष्यति ॥ येनस्पृश तिसावित्वग्यच्छृणोतिश्रुतिस्तुसा ॥ २९ ॥

अर्थ—जैसे पर्वत बाहर रहतेभी दर्पणमें भीतर भान होताहै, और सब स्थानमें व्यवहार करनेमें समर्थ यह देह कूपके भीतर उतनेही देशमें व्यवहार करताहै, तथा जैसे दूरसे श्रवणके योग्यभी वचन सन्दूकके भी बाहर नहीं जासकता ॥ २५ ॥ अथवा जैसे स्वप्न वा संकल्पका ज्ञान दूसरे देहमें स्वप्नआदि व्यवहार देखताहै. इसीप्रकार पूर्वोक्त सूक्ष्म लिंग सदृश उपाधिमें अपना स्वरूप मानके लिंग शरीरमेंही वासनामय देहआदि व्यवहारका अनुभव करताहै ॥ २६ ॥ इस वासनामय देहआदि व्यवहार दृष्टिसे बुद्धि चित्तआदिका परिणाम होनेसे बुद्धिचित्तादिरूप और परमार्थ दृष्टिसे सत् चित् आनन्दरूपको अपने लिंगशरीरके अन्तर्गतही, मैं देखूं ऐसी वासनासे आकाशमें देखनेको चलताहै, उसके अनन्तर जिन दो छिद्रोंसे बाह्यपदार्थोंको देखताहै वे दो नेत्रके नामसे होंगे, जिससे स्पर्श करताहै वह त्वक् इन्द्रिय होगी, जिससे सुनताहै वह श्रोत्र (कर्ण) ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥

येनजिघ्रतितद्घ्राणंसस्वमात्मनिपश्यति ॥ तत्तस्यस्वदनंपश्चाद्रसनाचोल्लसिष्यति ॥३०॥ स्पंदतेयत्स तद्वायुश्चेष्टाकर्मेंद्रियव्रजम् ॥ रूपालोकमनस्कारजातमित्यपिभावयन् ॥ ३१ ॥ आतिवाहिकदेहात्मा तिष्ठत्यंबरमंबरे ॥ एवमुच्छूनतांतस्मिन्भावयत्तेजसःकणे ॥ ३२ ॥ असत्यांसत्यसंकाशांब्रह्मास्तेजी वशब्दवत् ॥ इत्थंसजीवशब्दार्थःकलनाकुलतांगतः ॥३३॥ आतिवाहिकदेहात्माचितदेहांबराकृतिः॥ स्वकल्पनांतआकारमंडसंस्थंप्रपश्यति ॥ ३४ ॥

अर्थ—जिससे सूंघताहै वह घ्राण इन्द्रिय अपना करके अपने देखताहै, और जिससे स्वाद लेताहै वह रसना (जिव्हा) इन्द्रिय नामसे शोभित होगी ॥ ३० ॥ जिससे श्वासआदि क्रियाकी गति होती है वह प्राण आदिकी वृत्ति, चेष्टा और सब कर्म इन्द्रियोंका समूहहै, और रूप, प्रकाश, तथा मनके व्यापारोंका अध्यास करताहुआ ॥ ३१ ॥ इसप्रकार सूक्ष्म शरीरवाला स्वयं आकाशरूप आकाशमें उसी तेजके कणमें वृद्धिकी भावना वा अध्यास करताहुआ ब्रह्मस्थितहै इसप्रकार असत्य परन्तु सत्यके समान कल्पनासे व्याकुलताको प्राप्त लिंगशरीरवाला चित्तरूपी शरीराम्बरही स्थूलतासे स्थूल शरीर आकार जीव शब्दके समान जीव शब्दका अर्थ, स्फुलिंग आदिसे लेके बाह्य विषय पर्य्यन्त अपनी कल्पनासे सिद्ध आकारवाले ब्रह्म और उसके निकट आवरण आदि व्यवस्था सहित ब्रह्माण्डको देखताहै ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

कश्चिज्जलगतंवेत्तिकश्चित्सम्राट्स्वरूपिणम् ॥ भाविब्रह्मांडकलनांपश्यत्यनुभवत्यपि ॥ ३५ ॥ आ त्मगर्भगृहंचित्ताद्यथासंकल्पमात्मनः ॥ देशकालक्रियाद्रव्यकल्पनावेदनंसतत् ॥३६॥ भावयञ्छब्द निर्मिताशब्दैर्बध्नातिकल्पितैः ॥ आतिवाहिकदेहोसावित्यसत्यजगद्भ्रमे ॥ ३७ ॥

अर्थ—कोई विष्णु जलके अन्तर्गत ब्रह्माण्ड शरीरमें अहंभावके ज्ञानको, और कोई (ब्रह्मा) उसीको भीतर सम्राटरूपी चतुर्मुख देहमें अहंभावके ज्ञानको जानता है, इसप्रकार दो रूपसे आत्माही भावी ब्रह्माकी कल्पनाको देखताहै और अनुभवभी करताहै ॥ ३५ ॥ आत्मारूपसे इष्ट चित्तरूपी निमित्तसेही अपने संकल्पके अनुसार अपने निवास गर्भगृहको और देश काल क्रिया तथा द्रव्यकी कल्पनाके ज्ञानकी भावना करताहुआ, सूक्ष्म शरीरवाला और नाम तथा अर्थोंका बनानेवाला यह ईश्वर कल्पित नामोंसे उन २ अर्थोंको और अपने आत्माको इस असत्य जगत्के भ्रममें बांधता है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

असत्यएवकचतिस्वप्नेस्वोड्डयनंयथा ॥ इत्यनुत्पन्नएवासौस्वयंभूःस्वयमुत्थितः ॥ ३८ ॥ आतिवाहि कदेहात्माप्रभुराद्यःप्रजापतिः ॥ एतस्मिन्नपिसंपन्नेब्रह्मांडाकारिणिभ्रमे ॥ ३९ ॥ नकिंचिदपिसंपन्नं नचजातंनदृश्यते ॥ तद्ब्रह्माकाशमाकाशमेवस्थितमनंतकम् ॥ ४० ॥

अर्थ—स्वप्नमें आकाशके उडनेमें समान यह असत्यही भान होताहै, इसप्रकार उत्पत्ति रहित यह स्वयम्भू (ब्रह्मा) आपही प्रकट हुआहै ॥ ३८ ॥ सूक्ष्मशरीरधारी, यह प्रजापति सबका आदिप्रभु है ब्रह्माण्डआकारधारी इस भ्रमके पूर्ण होनेपरभी ॥ ३९ ॥ न कुछ पूर्ण हुआ, न उत्पन्न हुआ, और न परमार्थदृष्टिसे कुछ देख पडताहै वह आकाशरूप अनन्त ब्रह्माकाशही स्थितहै ॥ ४० ॥

संकल्पनगराकारमेतत्सदपिनैवसत् ॥ अनिर्मितमरागंचएतद्वैचित्रमुत्थितम् ॥ ४१ ॥ अकृतंचाननुभूतंचनसत्यंसत्यवत्स्थितम् ॥ महाकल्पेविमुक्तत्वाद्ब्रह्मादीनामसंशयम् ॥ ४२ ॥ स्मृतिर्नप्राक्तनीकाचित्कारणंवास्वयंभुवः ॥ तेनयादृक्स्वयंभूःस्यात्तादृक्जमिदंस्मृतम् ॥ ४३ ॥ अनाद्यनुभवस्त्वित्थंयोग्रास्त्यवनिकादिके ॥ स्वप्नानुभूतंपृथ्व्यादिप्रबोधेयादृशंभवेत् ॥ ४४ ॥

अर्थ—संकल्प नगरके समान यह वर्तमानभी असत्य है, किन्तु विनाबनाया रंग (रंगनेका पदार्थ) द्रव्यरहित चित्रके समान स्थितहै ॥ ४१ ॥ आन्तरिक प्रयत्नसे न कियागया और न अनुभूत है तथा न सत्य है, किन्तु सत्यके समान प्रकट भान होताहै, क्योंकि महाकल्पमें ब्रह्मा आदिभी सब निसन्देह मुक्त होजातेहैं इससे अदृष्ट संस्कारादिभी जीवोंकी अथवा जगत्की उत्पत्तिमें कारण नहीं है यह सिद्धहुआ ॥ ४२ ॥ ब्रह्माके मुक्त होनेके कारण पूर्वकल्पकी स्मृतिभी उनकी नहीं होसकती, इस हेतुसे जैसे स्वयंभू (ब्रह्मा) हैं वैसाही उससे उत्पन्न जगत्भी है ॥ ४३ ॥ जिसप्रकार स्वप्नआदिमें साक्षीसे वेद्य पृथिवी आदिका अनुभव जाग्रत होनेपर मिथ्या होजाताहै, इसीप्रकार पृथिवी आदिकी सृष्टिके विषयमें जो साक्षीसे वेद्य अनुभवहै वह मिथ्याहै, क्योंकि पदार्थके मिथ्या होनेसे उससे उत्पन्न संस्कारभी मिथ्याहै ॥ ४४ ॥

स्मृतःसव्योममात्रात्मासर्वदैवस्मृतंजगत् ॥ यत्रयत्रयथातोयेद्रवत्वंनामभिद्यते ॥ ४५ ॥ तत्रतत्रतथानान्यःसर्गोस्तिपरमात्मनि ॥ सृष्टिरेवमियंप्रौढासमएवत्वयंस्थितः ॥ ४६ ॥ भात्येवंनामब्रह्मांण्डव्योमात्मेवातिनिर्मलम् ॥ दृश्यमेवमिदंशांतंस्वात्मनिर्मितविभ्रमम् ॥ ४७ ॥ निराधारंनिराधेयमद्वैतंचैक्यवर्जितम् ॥ जगत्संविदिजातायामपिजातंनकिंचन ॥ ४८ ॥

अर्थ—इसलिये स्मरणमें रहनेवाले अतीत (वीतेहुये) पदार्थके समान शून्य मात्र ब्रह्मा जैसे स्थितहैं वैसेही यह जगत्भी है, जैसे जिस २ देश और कालमें द्रवत्वका भेद नहीं होता ॥ ४५ ॥ इसीप्रकार जहां २ यह सृष्टिही परमात्मामेंहै वह उससे भिन्न नहीं है, यह सृष्टिही प्रौढ (वृद्धिको प्राप्त) भान होती है, और यह परमात्मा तो जगत्की विषमतासे शून्य एकरस स्थित है ॥ ४६ ॥ इस रीतिसे निर्मल आकाश (चिदाकाश) रूपभी यह ब्रह्माण्डके नामसे भान होताहै, इसीप्रकार शान्तरूप यह दृश्यभी आत्मासे निर्मित विलास मात्रहै ॥ ४७ ॥ आधार और आधेय रहित व्यवहारके अभावसे व्यावर्त्यके अभावके कारण एकत्व संख्यासेभी वर्जित अद्वैत सिद्धहै, और जगत्का भ्रम उत्पन्न होनेपरभी उसमें कुछभी परमार्थ दृष्टिसे उत्पन्न नहीं हुवा ॥ ४८ ॥

परमाकाशमाशून्यमच्छमेवव्यवस्थितम् ॥ सर्वसंसारतानास्तियदेवतदवस्थितम् ॥ ४९ ॥ नाधेयंनप्रनाधारोनदृश्यंनचद्रष्टृता ॥ ब्रह्मांडंनास्तिनब्रह्मानचैवतंडिकाकचित् ॥ ५० ॥ नजगन्नापिजगतीशांतमेवाखिलंस्थितम् ॥ ब्रह्मैवकचतिस्वच्छमित्थमात्मात्मनात्मनि ॥ ५१ ॥ चित्त्वाद्द्रवत्वात्सलिलमिवावर्त्तयात्मनि ॥ असदेवेदमाभातिसदिवेद्दानुभूयते ॥ ५२ ॥ विनश्यत्यसदेवांतेस्वप्नेस्वमरणंयथा ॥ अथवास्वस्वरूपत्वात्सदेवेदमनामयम् ॥ अखंडितमनाद्यंतंज्ञानमात्रांबरोदरम् ॥ ५३ ॥ आकाशएवपरमेप्रथमःप्रजेशोनित्यंस्वयंकचतिशून्यतयासमोयः ॥ सह्यातिवाहिकवपुर्ननुभूतरूपीपृथ्व्यादितेननसदस्तियथानजातम् ॥ ५४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूत्पत्ति प्रकरणे स्वयंभूत्पत्तिवर्णनं नाम त्रयोदशःसर्गः ॥ १३ ॥

अर्थ—चारों ओरसे शून्य (पदार्थोंके अभावसे) स्वच्छरूप परमाकाशही स्थितहै, सम्पूर्ण संसारका भाव जिसमें नहीं है वही स्थितहै ॥ ४९ ॥ उस परमात्मामें न आधेयहै न आधारहै न दृश्यहै, न द्रष्टाहै, न ब्रह्माण्ड, और स्थापनीय जगत्के अभावसे मोहमदान्ध वैताण्डिक वादीभी कहीं नहीं ॥ ५० ॥ न जगत् न यह जगती पृथिवी है सम्पूर्ण शान्तरूपसे स्थितहै, इसप्रकार ब्रह्मही अपने आत्मासे आत्मामें शोभित हो रहाहै ॥ ५१ ॥ चित् और आत्मामें ऐसे भेद नहीं है जैसे द्रवत्व और जलमें यह असत् भान होताहै और सत्के समान अनुभूत होताहै ॥ ५२ ॥

जैसे स्वप्नमें अपना मरण जाग्रत्में नष्ट होजाताहै ऐसेही अन्तमें यह अपने जगत् स्वरूपसे नष्ट होजाताहै अथवा अधिष्ठान दृष्टिसे यह अपना स्वरूप होनेसे कल्याण स्वरूप सत्स्वरूपही अखण्डित अनादि आकाशकोभी अवकाश देनेवाला ज्ञानमात्रहै ॥ ५३ ॥ ब्रह्मस्वरूपमें प्रजाओंका ईश स्वयंभू रूपही है जो सम एक रस परमात्माहै वही ब्रह्मा आदिका रूप धारण करके प्रसिद्ध होताहै क्योंकि वह ब्रह्मा मनोमय शरीरवालाहै न कि पाञ्चभौतिक इसलिये ब्रह्माके संकल्प मात्र होनेसे पृथिवी आदि ऐसे सत् नहीं हैं, जैसे अनुत्पन्न शशशृंग (खरगोशकी सींग) ॥ ५४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे स्वयम्भूत्पत्तिवर्णनं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पूर्वोक्त जीवभावके वर्णनमें परिच्छेद (सीमारूप इयत्ताकरण) आदि संशयोंको युक्तिसे निराकरण (खण्डन) करके शेष (बाकी) ब्रह्मके साथ एकता इस १४ वें सर्गमें कीगई है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इत्थंजगदहंतादिदृश्यजातंनकिंचन ॥ अजातत्वान्नास्त्येवयच्चास्तिपरमेव तत् ॥ १ ॥ परमाकाशमेवादौजीवतांचेततिस्वयम् ॥ निःस्पंदांभोधिकुहरेसलिलंस्पंदतामिव ॥ २ ॥ आकाशरूपमजहद्देवंवेत्तीवहृयताम् ॥ स्वप्नसंकल्पशैलादाविवचिद्वृत्तिरांतरी ॥ ३ ॥ पृथ्व्यादिरहितोदेहोयोविराडात्मकोमहान् ॥ आतिवाहिकएवासौचिन्मात्राच्छनभोमयः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-इसप्रकार जगत्के अहन्ता आदि दृश्य समूह कुछ नहीं है अनुत्पन्न होनेसे उसकी सत्ता कुछहैही नहीं, और जो कुछहै वह परमात्माही है ॥ १ ॥ सृष्टिकी आदिमें परम आकाश (परब्रह्म) ही स्वयं-जीव भावका अनुभव ऐसे करताहै जैसे शान्त समुद्ररूपी गर्तमें जल स्पंदता (किंचित् संचलनभाव) को ॥ २ ॥ आकाशरूपको न त्याग करती हुई अनन्तरकी संकल्पात्मिका चित्की वृत्ति, वक्ष्यमाण विराट् उपाधि विषयमें प्रीति पात्रताका ऐसा अनुभव करती है जैसे स्वप्न और संकल्पके पर्वत आदिमें ॥ ३ ॥ पृथिवी आदिसे रहित जो महान् विराट् शरीर है यह केवल मनोमय चिन्मात्र निर्मल आकाशमय है ॥ ४ ॥

अक्षयःस्वप्नशैलाभःस्थिरस्वप्नपुरोपमः ॥ चित्रकृत्स्थिरचित्तस्थचित्रसैन्यसमाकृतिः ॥ ५ ॥ अनिखातमहास्तंभपुत्रिकौघसमोपमः ॥ ब्रह्माकाशेऽनिखातात्मासुस्तंभेशालभंजिका ॥ ६ ॥ आद्यःप्रजापतिःपूर्वस्वयंभूरितिविश्रुतः ॥ प्राक्तनानांस्वकार्याणामभावादप्यकारणः ॥ ७ ॥ महाप्रलयपर्यंतेष्वाद्यकालपितामहाः ॥ मुच्यंतेसर्वएवातःप्राक्तनंकर्मतेषुकिम् ॥ ८ ॥

अर्थ—नाशरहित स्वप्नके पर्वतके समान चिरकाल रहनेवाले स्वप्नके नगरके समान, चित्रकारके निश्चल चित्तमें उसकी वासनामय चित्रगत सेनाके समान ॥ ५ ॥ महास्तम्भमें विनाखुदीहुई प्रतिमाओंके समूहोंके समान ब्रह्माकाशरूपी महा (उत्तम) स्तम्भमें विना खुदी हुई प्रतिमाके तुल्य यह विराट्रूपहै ॥६॥ आद्य प्रजापति, सबसे पूर्व स्वयंभू इस नामसे प्रसिद्ध जो ब्रह्माहैं वेभी पूर्वजन्मके अपने कर्मोंके अभावसे कारण रहितही है ॥ ७ ॥ महाप्रलय पर्य्यन्त आदिकालके जितने ब्रह्माहैं वे सब मुक्त होजातेहैं, इसीलिये पूर्वजन्मका कर्म उनमें क्या रहा ? ॥ ८ ॥

सोकुड्यएवकुड्यात्माद्दश्यादृश्यःस्वयंस्थितः ॥ नचदृश्यंनचद्रष्टानस्रष्टासर्वमेवच ॥ ९ ॥ प्रतिशब्दपदार्थानांसर्वेषामेषएवसः ॥ तस्माददेतिजीवालीदीपालीदीपकादिव ॥१०॥ संकल्पएवसंकल्पात्किलैक्ष्मादिवर्जितः ॥ आदिमादिवनिःशून्यःस्वप्नात्स्वप्नांतरंयथा ॥ ११ ॥ अस्मादेकप्रतिस्पंदाज्जीवाःसंतिप्रसरंतिये ॥ सहकारिकारणानामभावाच्चसएवते ॥ १२ ॥

अर्थ—वह (ब्रह्मा) कुड्य (भित्ति) रहित दर्पण आदिमें प्रतिबिम्ब कुड्यरूप, दृश्य होनेपरभी असत् होनेसे दर्शनके अयोग्यहै, स्वयं स्थितहै और उस निर्विकार चेतनमें द्रष्टा दृश्य दर्शन स्रष्टा सृष्टि सर्जन, भोक्ता भोग्य और भोग ये तीनों त्रिपुटी असम्भव होनेसे नहीं हैं ॥ ९ ॥ सबका निषेध होनेपरभी यह प्रत्यक् चेतन सम्पूर्ण मायिक शब्द और अर्थोंका आत्माही स्थितहै, जिस स्वरूपसे जीवोंकी पंक्ति ऐसे निकलती है जैसे दीपकसे दीपोंकी पंक्ति॥१०॥ आदिमें मिथ्यारूप हिरण्यगर्भसे अत्यन्त शून्यरूप जैसे विराट् उत्पन्न हुआहै अथवा जैसे एक स्वप्नसे दूसरा स्वप्न हो-

ताहैं, ऐसेही संकल्परूप विराट्‌का कार्य्य होनेसे व्यष्टिशरीरभी पृथिवी आदिसे वर्जित निश्चय करके संकल्परूपही है॥११॥इस विराट्‌रूपसे असहाय गतिवाले जो जीव निकलते हैं वे सहकारी कारणके अभावसे विराट्‌रूपही हैं ॥१२॥

सहकारिकारणानामभावेकार्यकारणम् ॥ एकमेतदतोनान्यःपरस्मात्सर्गविभ्रमः ॥ १३ ॥ ब्रह्मैवाद्यो विराडात्माविराडात्मैवसर्गता ॥ जीवाकाशःसएवेत्थंस्थितःपृथ्व्याद्यसद्यतः ॥ १४ ॥ श्रीरामउवाच॥ किंस्यात्परिमितोजीवोराशिराहोअनंतकः ॥ आहोस्विदस्त्यनंतात्माजीवपिंडोऽचलोपमः ॥ १५ ॥ धाराःपयोमुचइवशीकराइववारिधेः ॥ कणास्तप्तायसइवकस्मान्नियांतिजीवकाः ॥ १६ ॥

अर्थ—सहकारी कारणोंके अभावसे यह कार्य्य कारण एकही है, इस कारणसे परमात्मासे पृथक् यह सृष्टिका विलास नहीं है ॥ १३ ॥ आदि विराट् आत्मा ब्रह्मरूपही है, और यह सृष्टि विराट्‌रूपही है इसलिये यह जीवाकाश विराट् (जो कि ब्रह्मरूपहै) रूपही है, क्योंकि पृथिवी आदि सब असत्‌हैं ॥ १४ ॥ व्यष्टि और समष्टि तथा उनका मूल एक होनेसे व्यष्टि और समष्टि असत्‌हैं, सो यदि उनका मूल सत्‌है तो व्यष्टि समष्टि असत् कैसे? और प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोंसे सिद्ध होनेसे व्यष्टिका विभागही सत्य क्यों नहीं? क्योंकि सेना समाज आदिमें समष्टिका नाश होनेपरभी व्यष्टि शेष रहती है इसलिये वह सत्यहै इस अभिप्रायसे रामचन्द्रजी शंका कहते हैं श्रीरामजी बोले-हे भगवन्! क्या यह जीव परिमितहै अथवा अनन्त राशिरूपहै? अथवा पर्वतके समान जीव पिण्ड अनन्तात्माहै? अर्थात् व्यष्टिमात्रके सत्य माननेपर व्यष्टि जीवही एक बुद्धि परिमित होनेसे वा एक देशकी स्थितिसे परस्परके घर्षणसे सपिण्डरूपता होजायगी, अथवा कल्पित व्यष्टिरूप होजायगा॥१५॥ क्योंकि मेघसे वृष्टिकी धाराके समान समुद्रसे जल कणके समान, और तप्त लोहसे स्फुलिंग अग्नि कणके समान, इस परमात्मासे जीव निकलते हैं यह सम्भावना नहीं करसकते॥१६

इतिमेभगवन्ब्रूहिजीवजालविनिर्णयम् ॥ ज्ञातमेतन्मयाप्रायस्तदेवप्रकटीकुरु ॥१७॥ श्रीवसिष्ठउवाच॥ एकएवनजीवोस्तिराशीनांसंभवःकुतः ॥ शशशृंगंसमुड्डीयप्रयातीवह्वितेवचः ॥ १८ ॥ नजीवोऽस्तिन जीवानांराशयःसंतिराघव ॥ नचैकःपर्वतप्रख्योजीवपिंडोऽस्तिकश्चन ॥ १९ ॥ जीवशब्दार्थकलनाः समस्तकलनान्विताः ॥ नेहकाश्चनसंतीतिनिश्चयोस्तुतवाचलः ॥ २० ॥

अर्थ—हे भगवन्! यह जीवोंके जालका निश्चय मुझसे कहिये प्रायः मैंने इसको जानलियाहै, (विशेष जाननेकी इच्छासे आपसे प्रश्नहै) सो वही आप प्रकट कीजिये ॥१७॥ मुख्य प्रयोजन ब्रह्मकेसाथ एकत्व सिद्धिकेलिये एक अधिष्ठानवाली अनेककी कल्पनामें लाघवहै, इसलिये समष्टि जीवकी कल्पना करके उसके उपहित व्यष्टिकी कल्पना मैंने कही, न कि व्यष्टि समष्टिमेंसे किसीकी सत्यताकेलिये अथवा जीवकी उत्पत्ति आदिप्रतिपादनके लिये इस हेतु तुमारी शंकाका अवसर नहीं इस आशयसे वसिष्ठजी कहतेहैं, श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी! जब एकभी जीवनहीं तब उनकी राशिका सम्भव कहां? शशाका सींग उडके जाताहै इसकेही समान आपका बचनहै ॥ १८ ॥ हे रामजी! न जीवहै न जीवोंकी राशिहै, और न पर्वतके समान कोई जीव पिण्डहै ॥ १९ ॥ सम्पूर्ण कल्पनाओंकरके संयुक्त जीव शब्दार्थकी कोईभी कल्पना इस आत्मामें नहीं है यह अचल तुह्मारा निश्चय हो ॥ २० ॥

शुद्धचिन्मात्रममलंब्रह्मास्तीहहिसर्वगम् ॥ तद्यथासर्वशक्तित्वाद्विदितेयाःस्वयंकलाः ॥ २१ ॥ चिन्मात्रानुक्रमेणैवसंप्रफुल्ललतामिव ॥ ननुमूर्तामसूर्तांवातामेवाशुप्रपश्यति ॥ २२ ॥ जीवोबुद्धिःक्रियास्पंदो मनोद्वित्वैक्यमित्यपि ॥ स्वसत्तांप्रकचंतींतांनियोजयतिवेदने ॥ २३ ॥ साऽबुद्धैवभवत्येवंभवेद्ब्रह्मैवबोधतः ॥ अबोधःप्रेक्षयायातिनाशंनतुप्रबुद्ध्यते ॥ २४ ॥

अर्थ—निर्मल, शुद्ध, चिन्मात्र, सर्वव्यापी ब्रह्मही है, वही सर्व शक्तिमान होनेके कारण सम्पूर्ण कल्पना अर्थात् सब कार्य्योंमें कौशल स्वयं प्राप्त करताहै ॥ २१ ॥ उन २ संकल्प क्रमोंके अनुसारी चित्के आभावोंसे वे, प्रवेशके निमित्तसे उसी मूर्तिमान् और अमूर्तिमान् कौशलके प्रकट ऐसे देखताहै जैसे लता अपनेको प्रथम कलिसहित अनन्तर अच्छीतरह प्रफुल्ल देखती है ॥ २२ ॥ जीव, बुद्धि, क्रिया, स्वप्न (किंचित् चलन) मन द्वित्व और एकत्वभी तथा प्रकाश करती हुई उस निजरूप अपनी चेतन सत्ताकोभी वही ब्रह्म जानताहै॥२३॥ वह अपनी चेतन सत्ता जबतक नहीं जानीजाती तभीतक जीव आदिरूपसे मान होती और जाननेसे ब्रह्मरूपही होजाती है, और उसका अबोध (अज्ञान) आत्मज्ञानसे नाश होजाताहै और पुनः नहीं प्रबुद्ध होता अर्थात् फेर नहीं विदित होता ॥ २४ ॥

एवंब्रह्मैव यथांधकारोदीपेनप्रेक्ष्यमाणःप्रणश्यति ॥ नवास्यज्ञायतेतत्त्वमबोधस्यैवमेवहि ॥ २५ ॥ एवंब्रह्मैव जीवात्मानिर्विभागोनिरंतरः ॥ सर्वशक्तिरनाद्यंतोमहाचित्साररूपवान् ॥ २६ ॥ सर्वानणुतयात्वस्य

नक्वचिद्भेदकल्पना ॥ विद्यतेयाहिकलनासातदेवानुभूतितः ॥ २७ ॥ श्रीरामउवाच ॥ एवमेतत्कथं ब्रह्मन्नेकजीवेच्छयाखिलाः ॥ जगज्जीवानयुज्यंतेमहाजीवैकतावशात् ॥ २८ ॥

अर्थ—जैसे दीपकलेके देखनेसे अन्धकार नष्ट होजाताहै यह तत्त्व नहीं जानाजाता कि यह कहांगया, इसीप्रकार अज्ञानभी ज्ञानसे नष्ट होजाताहै, परन्तु कैसे और कहांगया यह तत्व नहीं ज्ञात होता ॥ २५ ॥ इसप्रकार जीवात्मा निरन्तर भेद रहित, सर्व शक्तिमान्, अनादि अनन्त महाचित् सारांश ब्रह्मही है ॥ २६ ॥ सर्वत्र अपरिच्छिन्न रूप होनेसे कहीं भेद कल्पना नहीं हैं, जो कुछहै वहभी उसका अनुभव मात्रहै ॥ २७ ॥ श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! समष्टि और व्यष्टि जीवोंका अभेद माननेसे महाजीवके साथ एकताके कारण एक जीवकी इच्छासे सम्पूर्ण जगत्के जीवयुक्त क्यों नहीं होजाते अर्थात् एक जीवकी जो इच्छाहो वही इच्छा सबकी क्यों नहीं होती ? ॥ २८ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ महाजीवात्मतद्ब्रह्मसर्वशक्तिमयात्मकम् ॥ स्थितंतथेच्छमेवेहनिर्विभागंनिरंतरम् ॥ २९ ॥ यदेवेच्छतितत्तस्यभवत्याशुमहात्मनः ॥ पूर्वंतेनेष्टमिच्छादिततोद्वित्वमुदेतियत् ॥ ३० ॥ पश्चाद्वित्वविभक्तानांस्वशक्तीनांप्रकल्पितः ॥ अनेनेत्थंहिभवतीत्येवंतेनक्रियाक्रमः ॥ ३१ ॥ तंविना नुदयेत्वासांप्रधानेच्छैवरोहति ॥ शक्त्याह्यजातयाब्राह्म्यानियमोयंप्रकल्पितः ॥ ३२ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! निरन्तर व्यष्टिके विभागसे शून्य सर्वशक्तिमान् जिसप्रकार जगत्की व्यवस्था सिद्धहो वैसी इच्छावाला सदा सबमें सत्यसंकल्पवाला मैंही हुं इस इच्छासहित महाजीवात्मक ब्रह्मही स्थितहै ॥ २९ ॥ वह महात्मा जो इच्छा करताहै वह वैसाही उसकेलिये शीघ्र होताहै, प्रथम उसने जैसा सत्यसंकल्प अथवा अन्यकी इच्छाका निरोध जैसा इष्टहै वैसाही व्यष्टि विभागका उदय होताहै ॥ ३० ॥ इसके अनन्तर व्यष्टिसे विभाग किये हुये अपने कल्पित अंशभूत जीवोंके अर्थ इस क्रियासे यह (जैसे दण्डको चक्रपर भ्रमण करनेसे घट) कार्य्यहो, (न कि संकल्पमात्रसे) ऐसा नियम उसने कल्पित किया ॥ ३१ ॥ इसप्रकार उस क्रियाक्रमके विना कार्य्य न हो ऐसा नियम होनेपरभी कहीं२महात्माओंकी व्यष्टि शक्तिकी इच्छा जो क्रियाक्रमके विना पूर्ण होजाती है वह यह इसका संकल्प सिद्धहो ऐसी प्रधानकी इच्छाहीसे होताहै यह नियम अजात ब्रह्मकी शक्तिसे कल्पित कियागयाहै३२

यस्याजीवाभिधानायाःशक्त्यपेक्षाफलत्यसौ ॥ प्रधानशक्तिनियमानुष्ठानेनविनानतु ॥ ३३ ॥ प्रधानशक्तिनियमःसुप्रतिष्ठोभवेद्भवेत् ॥ तत्फलंशक्त्यधीनत्वान्नेहितानांक्वचिद्भवेत् ॥ ३४ ॥ एवंब्रह्ममहाजीवोविद्यतेंतादिवर्जितः ॥ जीवकोटिमहाकोटीभवत्यथनकिंचन ॥ ३५ ॥ चेत्यसंवेदनाज्जीवेभवत्यायातिसंसृतिम् ॥ तदसंवेदनाद्रूपंसमायातिसमंपुनः ॥ ३६ ॥

अर्थ—जिस जीवकी शक्तिकी इच्छासे कार्य्यका फल होताहै वह प्रधान शक्तिके नियमके अनुष्ठान बिना नहीं होता ॥ ३३ ॥ प्रधान शक्तिका नियम यदि भलीभाँति फलसिद्धिके अनुकूल पालन कियाजाय तभी कार्य्यकी चेष्टाओंकाभी फल होताहै, क्योंकि क्रियाक्रमकी फलसिद्धिभी प्रधान शक्तिके संकल्पके आधी नहीहै ॥३४॥ इसप्रकार ब्रह्मही महजीव समष्टि और व्यष्टि दोनों कोटि होताहै, और वह अन्त आदि दोनोंसे शून्यहै ॥३५॥ विषयकी भावनासे जीव होताहै और संसारको प्राप्त होताहै, और विषयभावना रहित होकर विषमता शून्य ब्रह्मरूप होजाताहै॥३६॥

एवंकनिष्ठजीवानांज्येष्ठजीवक्रमाक्रमैः ॥ समुदेत्यात्मजीवत्वंताम्राणामिवहेमता ॥ ३७ ॥ अत्रांतरेमहाकाशइत्थमेषगणोप्यसन् ॥ स्वात्मैवसदिवोदेतिचिच्चमत्करणात्मकः ॥ ३८ ॥ स्वयमेवचमत्कारो यःसमापद्यतेचितः ॥ भविष्यन्नामदेहादितदहंभावनंविदुः ॥ ३९ ॥ चितोयस्माच्चिदालेहस्तत्मयत्वादनंतकः ॥ सएषभुवनाभोगइतितस्यांप्रबिंबति ॥ ४० ॥

अर्थ—इस रीतिसे व्यष्टि जीवोंको उपासनासे समष्टिभाव प्राप्ति क्रमसे अथवा इसी जन्ममें साक्षात् ज्ञानसे ब्रह्मभाव प्राप्ति ऐसे होती है जैसे तामोंको रस और औपाधिकेपाक क्रमसे अथवा क्रमरहित केवल स्पर्शमात्रसे सुवर्णभावकी प्राप्ति ॥ ३७ ॥ इसप्रकार प्रातःकाल इस महाकाशमें जीव जगत् आदि सम्पूर्ण यह गण असत्भी है परन्तु चित्के चमत्कार मात्रसे अपना आत्माही सत्के समान उदय होताहै ॥ ३८ ॥ चित् (चेतन) का चमत्कार जो स्वयं भविष्यत् नाम और देहादि भावको प्राप्त होताहै उसी अहंकारको भावना कहतेहैं ॥ ३९ ॥ चित्का चिदालेह अर्थात् जगत्के संस्कारसे संस्कृत मायाको सिद्धिसे जो उसकेसाथ एकरस होके अपने आत्माका जो स्वादहै वह चित्मय होनेसे अनन्तहै उस आत्मारूपी चित्में यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका आभोग स्फुरित होताहै ॥ ४० ॥

परिणामविकारादिशब्दैःसैवचिदव्यया ॥ तादृग्रूपादभेद्यापिस्वशक्त्यैवविबुध्यते ॥ ४१ ॥ अविच्छिन्नविलासात्मस्वतोयत्स्वदनंचितः ॥ चेत्यस्यचप्रकाशस्यजगदित्येवतत्स्थितम् ॥ ४२ ॥ आकाशादपिसूक्ष्मैषायाशक्तिर्विततताचितः ॥ सास्वभावतएवैतामहंतांपरिपश्यति ॥ ४३ ॥ आत्मन्यात्मात्मनैवास्यायत्प्रस्फुरतिवारिवत् ॥ जगदंतमहंताणुतद्देपासंप्रपश्यति ॥ ४४ ॥

अर्थ—वह चित्से आस्वादित नाश रहितचित् यद्यपि यथार्थमें चित्रूपसे भिन्न करनेके अशक्यहै तथापि अपनी शक्तिहींसे परिणाम और विकार आदि शब्दोंसे पृथक्के समान भान होतीहै ॥ ४१ ॥ चित्का जो चित्के अधीन प्रकाशवाले चेत्य (विषय) का जो निरन्तर स्वाभाविक विलासरूप अभिन्नरूपसे आस्वाद लेनाहै उसीको भ्रांतिसे जगत्की स्थिति कहतेहैं ॥ ४२ ॥ आकाशसेभी सूक्ष्म जो चैतनकी शक्ति सर्वत्र व्याप्तहै वह अपने स्वभावसेही प्रथम अहंताको देखतीहै ॥ ४३ ॥ उससमय यह चेतन अपने आत्मामें आत्मासे आत्माहीरूप अहंताको अणुदशासे लेके जगत् पर्य्यन्त स्थूलभावमें ऐसे देखताहै जैसे जलमें बुद्बुदे ॥ ४४ ॥

चमत्कारकरीचारुयच्चमत्कुरुतेचितिः ॥ स्वयंस्वात्मनितस्यैवजगन्नामकृतंततः ॥ ४५ ॥ चितश्चेत्यमहंकारःसैवराघवकल्पना ॥ तन्मात्रादिचिदेवातोद्वित्वैकत्वेक्वसंस्थिते ॥ ४६ ॥ जीवहेत्वादिसंत्यागेत्वंचाहंचेतिसंत्यज ॥ शेषःसदसतोर्मध्येभवत्यर्थात्मकोभवेत् ॥ ४७ ॥ चितायथादौकलितास्वसत्तासातथोदिता ॥ अभिन्नादृश्यतेव्योम्नःसत्तासत्तेनविग्रहे ॥ ४८ ॥

अर्थ—चेतन अपने आत्मामें जो उत्तम चमत्कार आपही करताहै उसीका नाम जगत् रक्खागयाहै ॥ ४५ ॥ हे रामजी! चेतनके आधीन अहंकारकी कल्पनाहै,और उसीके आधीन तन्मात्रासे लेके सब जगत्की कल्पनाहै इसलिये वह कल्पना करनेवाला चेतनही सत्यहै, और द्वित्व तथा एकत्व कहां स्थितहै? ॥ ४६ ॥ जीवके निमित्त जो वासना आदिहैं उनके त्यागनेके अनन्तर जो सत्य और मिथ्या कल्पनाके मध्यमें अहन्ता और अहन्ताकोभी त्यागो, पश्चात् अनन्त सत्तामात्र वस्तु शेष रहजाताहै ॥ ४७ ॥ जैसे मेघके नष्ट होजानेपर आकाशकी निर्मल सत्ता यथावत् रहती है, ऐसेही ज्ञानसे दृश्यसे मिलीहुई कल्पित सत्ताका नाश होनेपर चेतनकी आदिमें जो सत्ता थी वह ज्योंका त्यों उदित रहती है इसलिये यह निश्चय करते हैं कि सत्तामात्र सत्यहै ॥ ४८ ॥

विश्वंखंजगदीहाख्यंसमस्तिविबुधालयः ॥ साकारश्चिच्चमत्काररूपत्वान्नान्यदस्तिहि ॥ ४९ ॥ योयंद्विलासस्तस्मात्सनकदाचनभिद्यते ॥ अपिसावयवंतस्मात्क्वैवानवयवेकथा ॥ ५० ॥ चितेर्नित्यमचेत्यायानिर्मल्याविततास्कृतेः ॥ यद्रूपंजगतोरूपंतत्तत्स्फुरणरूपिणः ॥ ५१ ॥ मनोबुद्धिरहंकारोभूतानिगिरयोदिशः ॥ इतियायास्तुरचनाश्चितस्तत्त्वाजगत्स्थितेः ॥ ५२ ॥

अर्थ—चेतनका चमत्कार मात्र होनेसे मनकी चेष्टा मात्र जो जगत् है वह आकाशरूपहै, और इंद्रियां तथा उनके अधिष्ठाता देवताओंका जो साकार और स्थूलस्थान है वहभी शून्य मात्रही है और कुछ नहीं ॥ ४९ ॥ साकार जल आदिमेंभी यह बात देखी गई है कि जो जिसका कार्य्य है उससे वह कदापि भिन्न नहीं होसकता जैसे जलसे तरंग तब भला निराकार चेतनके कार्य्यमें भेदकी क्या कथा? ॥ ५० ॥ सर्वव्यापक विषयरहित नाम शून्य नित्य शुद्ध चेतनका जो रूपहै। ५१ ॥ मन, बुद्धि, चित्त अहंकार पंचभूत पर्वत तथा दशोंदिशायें जगत्की स्थिति ये जो २ रचनायें हैं वे सब चित्रूपही है ॥ ५२ ॥

चितेश्चित्त्वंजगद्विद्धिनाजगच्चित्त्वमस्तिहि ॥ अजगत्त्वादचिच्चित्स्याद्भानाद्भेदोजगत्कुतः ॥ ५३ ॥ चितेर्मरीचिबीजस्यनिजायांतश्चमत्कृतिः ॥ साचैषाजीवतन्मात्रमात्रंजगदितिस्थिता ॥ ५४ ॥ चित्तात्स्वशक्तिकचनंयदहंभावनंचितः ॥ जीवःस्पंदनकर्मात्माभविष्यदभिधोह्यसौ ॥ ५५ ॥ यच्चिच्चित्त्वेनकचनंस्वसंपाद्याभिधात्मकम् ॥ स्वविकारैर्व्यवच्छेद्यंभिद्यतेनोनविद्यते ॥ ५६ ॥

अर्थ—चित्का जो चित्ता धर्म उसीको जगत् जानो चित्ता (चित्का धर्म) जगत्से रहित नहीं है, यदि चित् जगत् रहितहो तो वह (चित्) अचित्भी होजाय, भान मात्रसे भेद है और जगत् चेतनसे भिन्न कहां? ॥ ५३ ॥ मृगतृष्णा (भ्रम) का बीज (अधिष्ठान) रूप जो चिति (चेतन) है उसका अपनेही लिये जो अपनेमें चमत्कारहै वही जीव और उसके उपाधि भूत तन्मात्र जगत्रूपसे स्थित है ॥ ५४ ॥ चित्का जो चित्तसे अहंकार शक्तिका स्फूरण है वही प्राण क्रियावाला जीव शब्दका वाच्य होगा ॥ ५५ ॥ यद्यपि चित्का चित्विलास निजविकारभूत अहंकार आदिसे पृथक् करने योग्य और अपनेसे रचने योग्य जीव आदि नामसे है तथापि वह सब मिथ्या होनेसे न वह चेतनसे भिन्नहै और न यथार्थमें वहहै ॥ ५६ ॥

चित्स्पंदरूपिणोरस्तिनभेदःकर्तृकर्मणोः ॥ स्पंदमात्रंभवेत्कर्मसएवपुरुषःस्मृतः ॥ ५७ ॥ जीवश्चित्त परिस्पंदःपुंसांचित्तंसएवच ॥ मनस्त्विंद्रियरूपंसत्सत्तांनानेवगच्छति ॥ ५८ ॥ शांताशेषविशेषंहिचि त्प्रकाशच्छटाजगत् ॥ कार्यकारणकादित्वंतस्मादन्यन्नविद्यते ॥ ५९ ॥ अच्छेद्योहमदाह्योहमक्लेद्योऽशो ष्यएवच ॥ नित्यःसर्वगतःस्थाणुरचलोहमितिस्थितम् ॥ ६० ॥

अर्थ—चित् और स्पन्दरूपी जो कर्ता और क्रिया हैं उनमें भेद नहीं, चित् प्रधान अहंकारका नाम कर्ता और स्पन्द प्रधान प्राणका नाम क्रिया और ये दोनों मिलके पुरुष वा जीव कहलाते है ॥ ५७ ॥ इसीप्रकार चित्तका परि-स्पन्दही जीव वही चित्त, और जीवका उपाधि भूत मनही देश तथा चिन्होंके भेदसे इंद्रियोंका रूपहोके नाना प्रकारकी सत्ताको प्राप्त होताहै ॥ ५८ ॥ क्योंकि तुच्छ कार्य्य कारण स्वभाववाला जगत् पूर्वोक्त रीतिसे चित् प्रकाश की छटाहै, इसलिये सम्पूर्ण विशेषोंसे शान्त (रहित) प्रत्येक आत्मासे कुछ पृथक् नहीं है ॥ ५९ ॥ यह आत्मा शस्त्र आदिसे छेदन करनेको अग्निसे जलानेको, जलसे गीला करनेके और आतपसे शुखानेके योग्य नहीं किन्तु यह आत्मरूपमें नित्य सर्वव्यापक स्थाणुके समान अचलहूं यह सिद्धान्त है ॥ ६० ॥

विवदंतेतथाह्यन्नविवदंतोयथाभ्रमैः ॥ भ्रमयंतोवयंत्वेतेजाताविगतविभ्रमाः ॥ ६१ ॥ दृश्येमूर्तेज्ञसंरू ढेविकारादिपृथग्भवेत् ॥ नामूर्तेतज्ज्ञकचितेचित्खेसदसदात्मनि ॥ ६२ ॥ चित्तरौचेत्यरसतःशक्तिः कालादिनामिकां ॥ तनोत्याकाशविषदांचिन्मधुश्रीःस्वमंजरीम् ॥ ६३ ॥ स्वयंविविवरंस्फुरतिचिदंड कमनाहतम् ॥ स्वयंविलक्षणस्पंदंचिद्वायुरंडजात्मकः ॥ ६४ ॥

अर्थ—इस आत्माके विषयमें अपने २ भ्रमके अनुसार वादी लोक विवाद करैं तथा स्वयं भ्रममे पडे दूस-रोंको भ्रममें डाले परन्तु हमलोग तो भ्रमसे शून्यहैं ॥ ६१ ॥ अज्ञानीकी दृष्टिमें जब साकार सत्यरूपसे आरूढ होताहै तब उसकी बुद्धिमें विकार आदि द्वैत पृथक् भासताहै परन्तु ज्ञानीकी दृष्टिमें जब निराकार सदसदात्मक जगत् अपने आत्माहीमें भासताहै तो द्वैतकी प्रतीति नहीं होती ॥ ६२ ॥ चित्‌रूपी वृक्षमें चेत्य विषयरूपी रसकी आसक्तिसे चित् (चेतन) रूपी वसन्तकी लक्ष्मी काल आदि नामवाली अपनी लताको अव्याकृत आकाश वा ऊर्ध्व देशमें विस्तार करताहै ॥ ६३ ॥ यह चेतन छिद्ररहित होकरभी आपही सबसे प्रथम आकाशकी कल्पनासे छिद्रसहित होनेसे ब्रह्मांडरूपसे स्फुरताहै उसके अनन्तर आपही यह चित् अण्डजात्मकरूपसे सूत्रात्मा वायुरूपसे स्फुरताहै॥६४॥

स्वयंविचित्रंकचनंचिद्वारिननिखातगं ॥ स्वयंविचित्रधातुत्वंश्रेष्ठांगमपिनिर्मितम् ॥ ६५ ॥ स्वचिचित्र-रसोल्लासाचिज्ज्योत्स्नासततोदिता ॥ स्वयंचिदेवप्रकटश्चिदालोकोमहात्मकः ॥६६॥ स्वयमस्तंगतेबा ह्येस्वज्ञानाद्गुदिताचितिः ॥ स्वयंजडेषुजाड्येनपदंसौषुप्तमागता ॥ ६७ ॥ स्वयंस्पंदितयास्पंदिचित्वा चितिमहानभः ॥ चित्प्रकाशप्रकाशोहिजगदस्तिचनास्तिच ॥ ६८ ॥

अर्थ—उसके अनन्तर वक्ष्यमाण तेजकी उत्पत्तिके पश्चात् विना तडाग आदिके ही स्वयं जलहोके स्फुर-ताहै. अनन्तर आपही यह चेतन उत्तम सुवर्ण आदि धातुसहित पृथिवी रूपसे स्फुरताहै और आपही यह चेतन श्रेष्ठ देवता असुर तथा मनुष्य आदिका शरीर भी बन जाताहै ॥ ६५ ॥ जगत्को तृप्त करनेवाले अनेक प्रकारके विचित्र पृथिवी आदिके रसोंके उल्लास सहित यह चित् चन्द्रमाकी चन्द्रिकारूपसे आपही उदितहो रहीहै और यह चित् स्वयं महान तेज प्रकाशरूपसे भी प्रकटहो रही है ॥६६॥ अपनेही ज्ञानसे बाह्य पदार्थोंके अस्त होनेपर आपही यह पूर्णरूपसे स्थित रहती है और आपही यह चित् जडतासे स्थावर आदिकोंमें सुषुप्तिके स्थानको प्राप्तहुई है ॥ ६७ ॥ अपनेही अविचारसे स्पन्दस्वभाव प्राण आदि रूपकी कल्पनासे यह संसारीहै और अपनेही विचारसे प्रत्यक्ष चेतन रूप महान आकाशरूपही है चित् प्रकाशके प्रकाशरूपसे यह जगत् है और अपने रूपसे यह कुछ भी नहीं है ॥ ६८ ॥

चिदाकाशैकशून्यत्वंजगदस्तिचनास्तिच ॥ चिदालोकमहारूपंजगदस्तिचनास्तिच॥ ६९ ॥ चिन्मारु तपरिस्पंदोजगदस्तिचनास्तिच ॥ चिद्घनध्वांतकृष्णत्वंजगदस्तिचनास्तिच ॥ ७० ॥ चिदर्कालोकादि वसोजगदस्तिचनास्तिच ॥ चित्कज्जलरजस्तैलपरमाणुर्जगत्क्रमः ॥ ७१ ॥ चिदग्नौष्ण्यंजगल्लेखाज गच्चिच्छंखशुक्लता ॥ जगच्चिच्छैलजठरंचिज्जलद्रवताजगत् ॥ ७२ ॥

१ पाठके क्रमसे तेजकी उत्पत्ति पृथिवी चन्द्रमाकी उत्पत्तिके अनन्तर कहाहै परन्तु पाठ क्रमसे अर्थक्रमवली होताहै इसलिये वायुकी उत्पत्तिके बाद तेजकी उत्पत्ति समझना. २ इन श्लोकोंका तात्पर्य यह है सर्वदा ब्रह्मकी सत्ताहीसे जगत्की सत्ताहै और अपनी सत्तासे कुछ नहीं.

अर्थ—चिदाकाशके समान शून्यप्राय होनेसे यह जगत् उसकी सत्तासे है और अपने रूपसे नहींहै चित् महा प्रकाश रूपके साथ एक होनेसे यह जगत् है और अपने रूपसे नहीं है ॥ ६९ ॥ चित्रूपी वायुके पारिस्पन्दरूप होनेसे जगत्है और अपने रूपसे कुछ नहीं है तथा चित्रूपी घन काला अन्धकाररूप होनेसे जगत्है और अपने रूपसे नहीं है ॥ ७० ॥ चित्रूपी सूर्य्यके प्रकाश सहित दिवसरूप होनेसे जगत्है और अपने रूपसे नहीं है और यह जगत् का क्रम ऐसा है जैसे तेलके जलनेपर कज्जल मात्र शेष रहताहै इसीप्रकार जगत्का बाध होनेसे शुद्ध चिन्मात्र शेष रह-जाताहै ॥ ७१ ॥ चित्रूपी अग्निकी उष्णताही जगत्की संज्ञाहै, शंख शुक्लता आदि जगत् चित्है जगत्में पर्वतकी कठिनता चित्रूपहै, जलमें द्रवतारूप जगत् चित्है ॥ ७२ ॥

जगच्चिदिक्षुमाधुर्यंचित्क्षीरस्निग्धताजगत् ॥ जगच्चिद्धिमशीतत्वंचिज्ज्वालाज्वलनंजगत् ॥ ७३ ॥ जगच्चित्सर्षपस्नेहोवीचिश्चित्सरितोजगत् ॥ जगच्चित्क्षौद्रमाधुर्यंजगच्चित्कनकांगदम् ॥ ७४ ॥ जगच्चित्पुष्पसौगंध्यंचिल्लताग्रफलंजगत् ॥ चित्सत्तैवजगत्सत्ताजगत्सत्तैवचिद्वपुः ॥ ७५ ॥ अत्रभेदविकारादिनखेमलमिवस्थितम् ॥ इतीदंसन्मयत्वेनसदसद्भुवनत्रयम् ॥ ७६ ॥

अर्थ—सम्पूर्ण दिशाओंमें मधुरता रूप जगत्है, दुग्धमें चिकनापनरूपी जगत् चित्है, तुषार (हिम) में शीततारूपी जगत् चित्है अग्निकी ज्वालाका ज्वलनरूपी जगत् चित्है ॥ ७३ ॥ सर्षप (सरसों) में तेलरूपी जगत् चित्है, नदी आदिमें तरंगरूपी जगत् चित्है, शहद् (मधु) में मधुरतारूप जगत्है, सुवर्ण अंगद आदि जगत् चित्है॥७४ पुष्पोंमें सुगन्धता रूप जगत् चित्है, और लता तथा फल आदि रूप जगत्भी चित् रूपही है, यहांतक की चित्की सत्ताही जगत्की सत्ताहै, और जगत्की सत्ताही चित्का शरीरहै अर्थात् चित्की सत्ताके आधीनही जगत्की सत्ताहै ॥ ७५ ॥ इस चित्रूप आत्मामें भेद विकार आदि भासते हुये भी ऐसे सब नहीं है जैसे आकाशमें नीलता इसप्रकार असत्भी यह तीनों लोक परन्तु उक्तरीतिसे सन्मय होनेसे सत्है ॥ ७६ ॥

अविकल्पतदात्मत्वात्सत्तासत्तैकतैवच ॥ अवयवावयविताशब्दार्थौशशशृंगवत् ॥ ७७ ॥ अनुभूत्यपलापायकल्पितोयैर्धिगस्तुतान् ॥ नविद्यतेजगद्यत्रसाद्र्यब्ध्युर्वीनदीश्वरम् ॥ ७८ ॥ चिदेकत्वात्प्रसंगः स्यात्कस्तत्रेतरविभ्रमः ॥ शिलाहृदयपीनापिस्वाकाशेविशदैवचित् ॥ ७९ ॥ धत्तेंतरखिलंशांतंसन्निवेशंयथाशिला ॥ पदार्थनिकराकाशेत्वयमाकाशजोमलः ॥ ८० ॥

अर्थ—कल्पित सत्ता और निरूपित सत्ताके अधिष्ठानमें एकताहै अर्थात् भेद नहीं है इसलिये जगत्की सत्ता ब्रह्मसे पृथक् कोई पदार्थ नहीं, निरवयव तथा सावयव शब्दार्थ तो शशशृंगके समान कल्पितहै इससे निराकारमें एकता कैसे यह मत परास्त हुआ ॥७७॥ जिस परमात्माके स्वरूपमें पर्वत समुद्र, पृथिवी, नदी तथा इन सबके स्वामी सहित यह जगत् नहीं हैं, और जिन्होंने अनुभवका अपलाप (मिथ्यापन) करनेके लिये कल्पना कियाहै उनको धिक्कार ॥ ७८ ॥ एकचित् मात्र होनेसे उसमें अवयव आदिका प्रसंग कहां ? पाषाणके समान स्थूल वा छिद्र रहित होनेपरभी अपने आकाशवत् स्वरूपमें चित् स्वच्छही है ॥ ७९ ॥ जैसे स्फटिककी शिलानगर आदिके प्रतिबिम्बको धारण करती है ऐसेही यह चित्भी मिथ्याभूत सम्पूर्ण प्रपंचको अपने स्वरूपके भीतर धारण करती है ॥ ८० ॥

सत्तासत्तात्मतात्वत्तामत्ताश्लेपानसंतिते ॥ पल्लवांतरलेखौघसन्निवेशवदाततम् ॥ ८१ ॥ अन्यानन्यात्मकमिदंधत्तेतश्चित्स्वभावतः ॥ समस्तकारणौघानांकारणादिपितामहः ॥ ८२ ॥ स्वभावतोकारणात्मचित्तंचिद्वद्यनुभूतितः ॥ नचासत्त्वमचेत्यायाश्चितोवाचापिसिद्ध्यति ॥ ८३ ॥ यदस्तितद्भदेतीतिदृष्टंबीजादिवांकुरः ॥ ८४ ॥ गगनइवस्वशून्यभेदमस्तित्रिभुवनमंगमहाचितोंतरस्याः ॥ परमपदमयंसमस्तदृश्यंत्विदमितिनिश्चयवान्भवानुभूतेः ॥ ८५ ॥ इत्युक्तवत्यथमुनौदिवसोजगामसायंतनायविधयेस्तमितोजगाम ॥ स्नातुंसभाकृतनमस्करणाजगामश्यामाक्षयेरविकरैश्वसहाजगाम ॥ ८६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे ब्रह्मप्रतिपादनं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

अर्थ—क्योंकि सम्पूर्ण पदार्थोंका अधिष्ठान चिदाकाशमें उत्पन्न असंग स्वभाव भूताकाश भी यदि स्थूल कार्य्योंका संबन्ध नहीं तो चिदाकाशमें सत्ता असत्ता आदिका संबन्ध क्यों कर होसकताहै ? और चित् अपने स्वभावसे अन्य तथा अनन्यरूप जगत्को ऐसे धारण करती है, जैसे पत्र (पत्ता) नश और रेखा आदि अवयवोंको ॥ ८१ ॥ सम्पूर्ण कारणोंके आदि कारण ब्रह्माजी हैं ॥ ८२ ॥ और ब्रह्मा, (पितामह) चित्तके कार्य्य मनोर्थ संबन्धी

विकल्पोंके असत् होनेसे कारण रहित चित्तस्वरूपहैं इसलिये असत् है अतएव ब्रह्माका कार्य्य यह जगत्भी असत्है, और विषयरहित चित्की तो अनुभवसे सिद्धि होनेसे बचनसे उसकी असत्यता नहीं सिद्ध होसकती ॥ ८३ ॥ जैसा कारणहै वैसाही कार्य्य होताहै जैसे बीजसे अंकुर तात्पर्य्य यह कि जगत् अपने स्वरूपसे सत् नहीं है यदि होता तो ज्ञान आदि सहस्रों उपायोंसेभी उसका उच्छेद नहीं होता, जब चित्त समष्टिरूप हिरण्यगर्भही असत् है तो जगत् कब सत्य हो सकता है ॥ ८४ ॥ हे रामजी ! यदि दृश्यकी सत्तामें अधिक आग्रह है तो अनुभवसे यह निश्चय करो कि यह तीनोंलोक समस्तदृश्य आकाशके समान भेदशून्य परमपद रूपही है ॥ ८५ ॥ श्रीवसिष्ठजीमुनिके इतना कहनेपर वह दिन बीतगया, सूर्य्यभी सन्ध्याबन्दन आदि विधिके अर्थ अस्त होगये, सम्पूर्ण सभाभी परस्पर नमस्कार करके स्नान आदि कृत्यकेलिये बिदाहुई, और रात्रिके बीतनेपर सूर्य्यभगवान्की किरणोंके साथ पुनः आके अपने स्थानपर प्राप्त हुई ॥ ८६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे उत्पत्तिप्रकरणे ब्रह्मप्रतिपादनं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

अनेक दृष्टान्त और युक्तियोंके समूहोंसे पूर्वोक्त पदार्थ निश्चय करातेहुये विस्तृत मण्डपाख्यानका आरम्भ मुनिवसिष्ठजी इस १५ वे सर्गमें करते हैं ॥

॥ तृतीयोदिवसः ॥ ३ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ जगदाकाशमेवेदंयथाहिव्योम्निमौक्तिकम् ॥ विमलेभातिस्वात्मैवजगच्चिद्गगनंयथा ॥ १ ॥ अनुत्कीर्णैवभातीवत्रिजगच्छालभंजिका ॥ चित्स्तंभेनैवसोत्कीर्णानचोत्कर्त्तात्रविद्यते ॥ २ ॥ समुद्रेंतर्जलस्पंदाःस्वभावादच्युताअपि ॥ वीचिवेगाभवंतीवपरेदृश्यविदस्तथा ॥ ३ ॥ जालांतर्गतसूर्याभाजालाकाररजांस्यपि ॥ जगद्भानंप्रतिस्थूलान्यणुंप्रतियथाचलाः॥४॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-यह जगत् चिदाकाशरूपही है, भेदरूपसे इसका भान ऐसे होता है जैसे निर्मल आकाशमें मोतियोंका समूह और जैसे यह जगत् चिदाकाशरूप है इस विषयमें दृष्टान्त सुनिये ॥ १ ॥ चित्रूपी स्तम्भ (खम्भे) में विना खुदीहुई यह त्रिलोकरूपी प्रतिमा खुदीहुईके समान भान होती है, निर्विकार असंग चेतनमें खोदनेका असम्भव होनेसे इसका खोदनेवाला कोई नहीं है ॥ २ ॥ जैसे स्वभावसे भिन्न न होनेपरभी समुद्रमें जलका संचलन और तरंगोंके वेग होते हैं ऐसेही परब्रह्ममें जगत्की प्रतीति होती है ॥ ३ ॥ अज्ञानियोंकी दृष्टिमें पर्वतके समान स्थूलरूपसे इस जगत्का भान होनेपरभी ज्ञानियोंकी दृष्टिमें जालके अन्तर्गत सूर्य्यके प्रकाशसे जालाका सूक्ष्म रज और मृगतृष्णाके जलसेभी अति तुच्छ है ॥ ४ ॥

जगद्भानंनभातीदंब्रह्मणोव्यतिरेकतः ॥ जालसूर्यांशुजालंतुव्यतिरेकानुभूतिदम् ॥ ५ ॥ अनुभूतान्यपीमानिजगंतिव्योमरूपिणि ॥ पृथ्व्यादीनिनसंत्येवस्वप्नसंकल्पयोरिव ॥ ६ ॥ पिंडग्रहोजगत्यस्मिन्विज्ञानाकाशरूपिणि ॥ मरुनद्यांजलमिवनसंभवतिकुत्रचित् ॥ ७ ॥ जगत्यपिंडग्राहेस्मिन्संकल्पनगरोपमे ॥ मरौसरिदिवाभातिदृश्यताभ्रांतिरूपिणी ॥ ८ ॥

अर्थ—जाल (छप्परोंके छिद्र) के अन्तर्गत मुसलाकार सुर्य्यके किरण तो सूर्य्यसे पृथक् भान होती हैं परन्तु यह जगत्का भान ब्रह्मसे पृथक् नहीं होता ॥ ५ ॥ स्वप्न और संकल्पके समान आकाशरूप ये पृथिवी आदि अनुभवमें आतेभी हैं परन्तु यथार्थमें सत्य नहीं हैं ॥ ६ ॥ मरुस्थलकी नदीमें जलके समान, ज्ञान और आकाशरूप इस जगत्में साकारताका स्वीकार कहींभी सम्भव नहीं है ॥ ७ ॥ संकल्पके नगरके समान आकाररहित इस जगत्में भ्रान्तिरूपवाली यह दृश्यता ऐसे भान होती है जैसे मरुस्थलमें नदी ॥ ८ ॥

स्वप्नादृश्येवजगतांतुलादेशेनकेनच ॥ तुलिताकलनोन्मुक्तादृश्यश्रीव्योमिजृंभते ॥ ९ ॥ वर्जयित्वाज्ञविज्ञानंजगच्छब्दार्थभाजनम् ॥ जगद्ब्रह्मस्वशब्दानामर्थेनास्त्येवभिन्नता॥१०॥इदंत्वचेत्यचिन्मात्रंभानोर्भातंनभःप्रति ॥ तथासूक्ष्मंयथामेघंप्रतिसंकल्पवारिदः ॥ ११ ॥ यथास्वप्नपुरंस्वच्छजाग्रत्पुरवरंप्रति ॥ तथाजगदिदंस्वच्छंसांकल्पिकजगत्प्रति ॥ १२ ॥

अर्थ—अनेक ब्रह्माण्डोंकी यह दृश्यकी शोभा साक्षी चेतनके किसी अंशमें स्वप्नके समान आरोपण करके सार असारका विवेक करनेवाले बुद्धिरूप कांटेपर रखके यदि तोली जायतो स्वप्नवत् विकल्पोंसे रहित होकर चिदाकाशकेही समान शोभित होती है ॥ ९ ॥ अज्ञानियोंकीही दृष्टिमें जगत्का शब्दार्थ भिन्न प्रतीत होताहै यथार्थमें जगत् और ब्रह्म शब्दार्थमें भेद नहीं है ॥ १० ॥ तत्वज्ञानियोंको जगत्में साक्षी चेतनका भान ऐसे होताहै, जैसे शून्य आकाशमें सूर्य्यका प्रकाश और साक्षी चेतनमें जगत्का भान ऐसे होताहै जैसे वृष्टिजनक मल्लार नामक रागमें संकल्पका मेघ ॥ ११ ॥ जैसे जाग्रत् उत्तम नगरकी अपेक्षा स्वप्नका नगर स्वच्छहै ऐसेही स्वप्न और संकल्पके जगत्की अपेक्षा यह जाग्रत् जगत्प्रत्ययभी सूक्ष्म है ॥ १२ ॥

तस्मादचेत्यचिद्रूपंजगद्व्योमैवकेवलम् ॥ शून्योव्योमजगच्छब्दौपर्यायौविद्धिचिन्मयौ ॥ १३ ॥ तस्मान्नकिंचिदुत्पन्नंजगदादीहदृश्यकम् ॥ अनाख्यमनभिव्यक्तंयथास्थितमवस्थितम् ॥ १४ ॥ जगदेवंमहाकाशेचिदाकाशमभित्तिमत् ॥ तद्देशस्याणुमात्रस्यतुलायाश्चाप्रपूरकम् ॥ १५ ॥ आकाशरूपमेवाच्छंपिंडग्रहविवर्जितम् ॥ व्योम्निव्योममयंचित्रंसंकल्पपुरवत्स्थितम् ॥ १६ ॥

अर्थ—इसलिये आकाशरूप यह जगत् चित्रूपही है, और अर्थशून्य आकाश तथा जगत्शब्द पर्य्याय (एकार्थ) वाची है, इन दोनोंको तुम चिन्मय जानो ॥ १३ ॥ इसलिये यह जगत् आदि दृश्य कुछभी उत्पन्न नहींहुआ, नामरूप रहित जैसा (चित्रूप) है वैसाही स्थितहै ॥ १४ ॥ इस पूर्वोक्त रीतिसे मायाकाशमें यह जगत् आवरण रहित चिदाकाशही है, और चिदाकाशके अणुमात्र (अति अल्प) देशकोभी जब यह पूर्ण नहीं कर सकता तो ब्रह्मचेतन मात्रमें जगत् कैसे पूर्ण होसकताहै ॥ १५ ॥ इसप्रकार चिदाकाशरूप आकारसे वर्जित, आकाशमय चित्र यह जगत् स्वप्नके नगरके समान स्थितहै ॥ १६ ॥

अत्रेदंमंडपाख्यानंशृणुश्रवणभूषणम् ॥ निःसंदेहोयथैषोर्थश्चित्तेविश्रांतिमेष्यति ॥ १७ ॥ श्रीरामउवाच ॥ सद्बोधवृद्धयेब्रह्मन्समासेनवदाशुमे ॥ मंडपाख्यानमखिलंयेनबोधोविवर्द्धते ॥ १८ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अभूदस्मिन्महीपीठेकुलपद्मोविकाशवान् ॥ पद्मोनामनृपःश्रीमान्बहुपुत्रोविवेकवान् ॥ १९ ॥ मर्यादापालनांभोधिर्द्विषत्तिमिरभास्करः ॥ कांताकुमुदिनीचंद्रोदोषतृणहुताशनः ॥ २० ॥

अर्थ—इस विषयमें कर्णका भूषण इस मण्डपाख्यानको सुनिये जिससे कि आपके चित्तमें यह विषय निस्सन्देह बैठ जायगा ॥ १७ ॥ श्रीरामजी बोले—हे ब्रह्मन्! सत् बोधकी वृद्धिके लिये संक्षेपसे सम्पूर्ण मण्डपाख्यान शीघ्र मुझे कहिये जिससे ज्ञानकी वृद्धि होतीहै ॥ १८ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—प्रकाशवान्, लक्ष्मीवान् अनेक पुत्रोंकरके सहित, ज्ञानी, और अपने कुलमें कमलके समान पद्मनाम एक राजाथा ॥ १९ ॥ वह राजा, वर्णाश्रमकी तथा द्वीपोंकी मर्य्यादा पालन करनेमें समुद्रके समान, शत्रुरूपी अन्धकारका नाश करनेके लिये सूर्य्य, स्त्री रूपिणी कुमुदिनीके लिये चन्द्रिकायुक्तचन्द्र, दोषरूपी तृणको अग्नि ॥ २० ॥

मेरुर्विबुधवृंदानांयशश्चंद्रोभवार्णवे ॥ सरःसद्गुणहंसानांकमलामलभास्करः ॥ २१ ॥ संग्रामवीरुत्पवनोमनोमातंगकेसरी ॥ समस्तविद्यादयितःसर्वाश्चर्यगुणाकरः ॥ २२ ॥ सुरारिसागरक्षोभविलसन्मंदराचलः ॥ विलासपुष्पौघमधुःसौभाग्यकुसुमायुधः ॥ २३ ॥ लीलालतालास्यमरुत्साहसोत्साहकेशवः ॥ सौजन्यकैरवशशीदुर्लीलावल्लिकानलः ॥ २४ ॥

अर्थ—देवता तथा विद्वानोंके समूहोंके अर्थ सुमेरु, संसाररूपी समुद्रमें यशरूपी चन्द्रमा, सद्गुणरूपी हंसोके लिये मानसरोवर, कमलोंके विमल सूर्य्य ॥ २१ ॥ संग्रामरूपी वृक्षोंको कंपानेके लिये प्रचण्ड पवन मनरूपी हांथीको मारनेके लिये सिंह, समस्त विद्यारूप अंगनाओंको प्रिय, सम्पूर्ण आश्चर्य्य गुणोंका समुद्र ॥ २२ ॥ देवताओंके शत्रु दैत्यदानवरूपी समुद्रके क्षोभमें शोभायमान मन्दराचलके समान विलासरूपी पुष्पोंके समूहके लिये वसन्तऋतु, सुन्दरतारूपी पुष्पोंका कामदेव ॥ २३ ॥ लीलारूपी लता तथा लास्य (गीतवाद्य नृत्य) के लिये उत्तम वायु, साहस (अन्यके असाध्य पृथिवी उद्धार आदि कार्य्योंका साधन) तथा उत्तम कार्य्योंमें उत्साह करनेके लिये कृष्णभगवान् सुजनतारूपी कुमुदों (रात्रिकमलों) के लिये चन्द्रमा, और दुष्टचेष्टा रूपिणी विषकी लताओंको जलानेके लिये अग्निरूप था ॥ २४ ॥

तस्यास्तिसुभगाभार्यालीलानामविलासिनी ॥ सर्वसौभाग्यवलिताकमलेवोऽदितावनौ ॥ २५ ॥ सर्वानुवृत्तिललितालीलामधुरभाषिणी ॥ सानंदमंदचलितांह्रितीयेंदूदयस्मिता ॥ २६ ॥ अलकालिमनोहा

रिवदनांभोजशालिनी ॥ सितांगीकर्णिकागौरीजंगमेवसरोजिनी ॥ २७ ॥ लताविलासकुंदौघभासिनी रसशालिनी ॥ प्रवालहस्तापुष्पाभामधुश्रीरिवदेहिनी ॥ २८ ॥ अवदाततनुःपुण्यास्पर्शनाल्हादकारिणी ॥ गंगेवगांगतादेहवतीहंसविलासिनी ॥ २९ ॥ तस्यभूतलपुष्पेषोःसकलाल्हाददायिनः ॥ परिचर्यांचिरंकर्तुमन्यारतिरिवोदिता ॥ ३० ॥ उद्विग्नेप्योद्विग्नामुदितेमुदितासमाकुलाकुलिते ॥ प्रतिबिंबसमाकांतासंक्रुद्धेकेवलंभीता ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीयेदेवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्ति प्रकरणे मंडपोपाख्याने राजवर्णनं नाम पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

अर्थ—सम्पूर्ण विलासवाली, उत्तम भाग्यवाली उसकी स्त्री "लीला" नामवाली थी, सम्पूर्ण सौभाग्योंसे सहित पृथिवीपर वह लक्ष्मीके समान उत्पन्न हुई ॥ २५ ॥ वह लीला, पतिसेवादि रीतियोंसे वा सेवकादिके अनुकूल आचरणोंसे शोभायमान, मधुर बोलनेवाली, आनन्द सहित मन्द २ चलनेवाली, द्वितीय चन्द्रमाके समान मुसकुरानवाली ॥ २६ ॥ मनके हरण करनेवाले केशरूपी भ्रमरोंसे मुखरूपी कमलसे शोभायमान, निर्मल शरीरवाली, कमलकी कर्णिकाके समान गौरवर्ण, जंगम (चलनेवाली) कमलिनीके समान ॥ २७ ॥ लता सहित विलासरूपी कुन्दके पुष्पोंके समूहोंसे प्रकाशमान, शृंगार आदि रसोंसे शोभित, प्रवाल (मुंगे) के समान रक्तहस्तवाली; पुष्पोंके समान कान्तिवाली, शरीरधारी वसन्तकी शोभाके समान ॥ २८ ॥ स्वच्छदेहवाली पवित्ररूप स्पर्शमात्रसे आनन्द देनेवाली, गंगाके सदृश पृथिवीपर प्राप्त, शरीर धारण कियेहुये हंसीके समान विमलथी ॥ २९ ॥ वह लीला सबको आनन्द देनेवाले कामदेवके समान उस पद्मराजाकी दीर्घकालतक सेवा करनेके अर्थ मानों दूसरी रति उत्पन्न हुईथी ॥ ३० ॥ वह लीला उस राजाके घबडानेपर अत्यन्त घबडानेवाली, प्रसन्न होनेपर प्रसन्न चित्त, व्याकुल होनेपर अति व्याकुल और क्रोधी होनेपर केवल भयभीत, प्रतिबिम्बके समान प्रिया स्त्री थी ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे मण्डपोपाख्याने राजवर्णनं नाम पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

कामके भोगोंसे तृप्त न होनेसे परिणाममें बार२ दुःखको देवतालोगभी अन्यथा नहीं करसकते इस विषयका वर्णन इस १६ वें सर्गमें कियागया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ भूतलाप्सरसासार्द्धमनन्यदयितापतिः ॥ अकृत्रिमप्रेमरसंसरेमेकांतयातया॥१॥ उद्यानवनगुल्मेषुतमालगहनेषुच ॥ पुष्पमंडपरम्येषुलतावलयसद्मसु ॥ २ ॥ पुष्पांतःपुरशय्यासुपुष्पसंभारवीथिषु ॥ वसंतोद्यानदोलासुक्रीडापुष्करणीषुच ॥ ३ ॥ चंदनद्रुमशैलेषुसंतानकतलेषुच ॥ कदंबनीपगेहेषुपारिभद्रोदरेषुच ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-दूसरी स्त्रीका पति न होकर उससे राजाने पृथिवीकी अप्सराके समान केवल उस प्रिया धर्मपत्नी लीलाके साथ स्वाभाविक प्रेमरससे रमण किया ॥ १ ॥ तमालके वृक्षोंसे सघन वाटिका बन तथा लता प्रधान वृक्ष प्रदेशमें, पुष्पमण्डपसे रमणीय लतासे वलयाकार (गोल) स्थानोंमें ॥ २ ॥ पुष्पोंसे सजीहुई अन्तःपुरकी शय्याओंपर पुष्पोंके समूहोंसे ढकीहुई सडकोंपर वसन्तमें वाटिकाके हिंडोलाओंपर, क्रीडा करनेकेलिये पुष्करिणियोंमें ॥ ३ ॥ चन्दनके वृक्षोंसहित पर्वतोंपर, अपने प्रभाव वा इन्द्रकी कृपासे प्राप्त कल्पवृक्षोंके तलेंमें कदम्ब और अशोक गृहोंमें नीमकी शीतल छायामें लीलाके साथ राजाने विहार किया ॥ ४ ॥

विकसत्कुंदमंदारमकरंदसुगंधिषु ॥ वसंतवनजालेषुकूजत्कोकिलपक्षिषु ॥ ५ ॥ नानारण्यतृणाग्रेषुच स्थलेषुमृद्वदीप्तिषु ॥ निर्झरेषुतरत्तारसीकरासारवर्षिषु ॥ ६ ॥ शैलानांमणिमाणिक्यशिलानांफलकेषुच ॥ देवर्षिमुनिगेहेषुदूरपुण्याश्रमेषुच ॥ ७ ॥ कुमुद्वतीषुफुल्लासुस्मेरासुनलिनीषुच ॥ वनस्थलीषु कुण्णासुफुल्लासुफालिनीषुच ॥ ८ ॥

१ इन श्लोकोंमें जो २ स्थान वा वृक्ष आदि लिखेहैं उन सबमें (रेमें) राजाने अपनी धर्मपत्नीके साथ रमण किया ॥

अर्थ—विकासित कुन्द और मन्दारके पुष्परसोंसे सुगन्ध सहित तथा कोकिल आदि पक्षी जिनमें कूजरहे हैं ऐसे वसन्त वनके कुंजोंमें ॥ ५ ॥ कोमल प्रकाशवाले नानाप्रकारके वन और तृणोंके निरंत जलके कणोंकी धारा युक्त झरनोंमें ॥ ६ ॥ मणि और माणिक्यकी शिलाये शोभित पर्वतोंपर, तथा मणि माणिक्य आदिकी शय्याओंपर देवता मुनि और ऋषियोंके स्थानोंमें, दूर २ के पवित्र आश्रमोंमें ॥७॥ रात्रिमें विकासित कुमुद सहित जलाशयोंमें, और दिनमें कमल संयुक्त जलाशयोंमें पुष्प तथा फलसहित हरी २ वन स्थलियोंमें राजाने उस पत्नीकेसाथ रमण किया॥८॥

सुभगैःसुरतारुण्यैःसुंदरःसुंदरेहितैः ॥ ईहितैःपेशलान्योन्यघनप्रेमरसाधिकैः ॥ ९ ॥ प्रहेलिकाभिराख्यानैस्तथाचाक्षरमुष्टिभिः ॥ अष्टापदैर्बहुद्यूतैस्तथागूढचतुर्थकैः ॥ १० ॥ नाटिकाख्यायिकाभिश्च श्लोकैर्बिंदुमतिक्रमैः ॥ देशकालविभागैश्चनगरग्रामचेष्टितैः ॥ ११ ॥ स्रग्दाममालावलितैर्नानाभरणयोजनैः ॥ लीलाविलोलचलनैर्विचित्ररसभोजनैः ॥ १२ ॥

अर्थ—उत्तम विषयोंसे अभिलाषित देवताओंके सदृश सुरतोंसे सुन्दर उस राजाने (वक्ष्यमाण पदार्थोंसे अपनी पत्नीके साथ रमण किया) परस्परके कोमल और घन प्रेमरससे बढी हुई चेष्टाओंसे ॥ ९ ॥ लौकिक परिहासकी कथाओंसे, पुराणके आख्यानोंसे, तथा अक्षर मुष्टिपासा (चौपड) अष्टापद (शतरंज) तथा गूढ चतुर्थक आदि अनेक द्यूतक्रीडाओंसे ॥ १० ॥ नाटिका तथा आख्यायिकाओंसे गूढाशयवाले विद्वानोंको बुद्धिसे जानने योग्य श्लोक रचनाओंसे, देशकालके अनुसार नगर और ग्रामकी चेष्टाओंसे ॥ ११ ॥ नानाप्रकारकी मालाओं तथा आभूषणोंके धारणसे, लीलापूर्वक विचित्र गतिसे, और नानाप्रकारके विचित्र रस युक्तभोजनोंसे रमण किया ॥ १२ ॥

आर्द्रकुंकुमकर्पूरतांबूलीदलचर्वणैः ॥ फुल्लपुष्पलतागुंजादेहगोपनखव्रणैः ॥ १३ ॥ समालंभनलीलाभिर्मालाप्रहरणक्रमैः ॥ गृहेकुसुमदोलाभिरन्योन्यंदोलनक्रमैः ॥ १४ ॥ नौयानयुग्महस्त्यश्वदांतोष्ट्रादिगमागमैः ॥ जलकेलिविलासेनपरस्परसमुत्क्षणैः ॥ १५ ॥ नृत्यगीतकलालास्यतालतांडवमंडनैः ॥ संगीतकैःसंकथनैर्वीणामुरजवादनैः ॥ १६ ॥

अर्थ—आर्द्र कुंकुम और कर्पूर सहित ताम्बूलदलके चर्वणोंसे, विकसित पुष्पों और लता गुंजोंसे देहके छिपानेवाले नखके व्रणोंसे ॥१३॥ दोडके छूनेवाली लीलाओंसे, मालाके प्रहारोंसे परस्पर (एक दूसरोंको) झुलानेवाले गृहोंमें फूलोंके हिंडोलोंसे ॥ १४ ॥ जलमें नौकाओंसे, घोडे और हाथियोंके जोडोंको शिक्षा देनेसे और शिक्षित ऊंटोंके चक्रोंसे एक दूसरेके ऊपर पानी डालकर जलक्रीडासे ॥ १५ ॥ नृत्यगीतादि कलाओंसे तालपूर्वक ताण्डव नृत्य तथा आभूषणोंसे, संगीतसे, उत्तम कथाओंसे वीणा और मुरज (मृदंग) आदि वाद्योंसे ॥ १६ ॥

उद्यानेषुसरित्तीरवृक्षेषुवरवीथिषु ॥ अंतःपुरेषुहर्म्येषुफुल्लदोलावदोलनैः ॥ १७ ॥ सातथासुखसंवृद्धा तस्यप्रणयिनीप्रिया ॥ एकदाचिंतयामाससुभ्रूःसंकल्पशालिनी ॥ १८ ॥ प्राणेभ्योपिप्रियोभर्त्तामममैषजगतीपतिः ॥ यौवनोल्लासवान्श्रीमान्कथंस्यादजरामरः ॥ १९ ॥ भर्त्रानेनसहोत्तुंगस्तनीकुसुमसद्मसु ॥ कथंस्वैरंचिरंकांतारमेयुगशतान्यहम् ॥ २० ॥

अर्थ—वाटिकाओंमें, नदीतटके वृक्षोंके तरे, उत्तम मार्गोंमें अन्तःपुरोंमें, तथा ऊंची महलोंकी अँटारियोंपर और फूलोंके झूलनोंसे, अपनी धर्मपत्नीलीलाके साथ राजापद्मने क्रीडा किया ॥ १७ ॥ उसप्रकार सुखसे सम्पन्न प्रेम करनेवाली, उत्तम भोहवाली, संकल्पसे शोभित राजाकी उस प्रियाने एक समय यह चिन्ता की ॥ १८ ॥ कि यह राजा प्राणोंसेभी प्रिय मेरा पतिहै सो यौवनसे शोभायमान श्रीमान् और अजर अमर कैसे हो? ॥१९॥ इस अपने प्राणपतिके साथ ऊंचे स्तनवाली प्रिया मैं पुष्पोंसे सज्जित स्थानोंमें सेंकडो युग दीर्घकालतक अपनी इच्छापूर्वक कैसे रमण करूं ॥२०॥

तथायतेयत्नमतस्तपोजपयमेहितैः ॥ रजनीशमुखोराजायथास्यादजरामरः ॥ २१ ॥ ज्ञानवृद्धांस्तपोवृद्धान्विद्यावृद्धानहंद्विजान् ॥ पृच्छामितावन्मरणंकथंनस्यान्नृणामिति ॥ २२ ॥ इत्यानीयाथसंपूज्यद्विजान्पप्रच्छसानता ॥ अमरत्वंकथंविप्राभवेदितिपुनःपुनः ॥ २३ ॥ विप्राऊचुः ॥ तपोजपयमैर्देविसमस्ताःसिद्धसिद्धयः ॥ संप्राप्यंतेऽमरत्वंतुनकदाचनलभ्यते ॥ २४ ॥

अर्थ—इसलिये तप जप और नियमके अनुष्ठानोंसे मैं ऐसा प्रयत्न करूं कि चन्द्रमाके समान मुखवाला यह राजा अजर अमर हो जाय ॥ २१ ॥ ज्ञानवृद्ध, तपोवृद्ध, तथा विद्यावृद्ध ब्राह्मणोंसे पूंछ कि मनुष्योंका मरण कैसे नहीं होता ऐसा विचारा ॥ २२ ॥ ऐसा विचार करके ब्राह्मणोंको बुलाके और उनका पूजन करके नम्र होके बार २ उनसे

यह पूछा कि अमर पदवी कैसे होसकती है ? ॥ २३ ॥ ब्राह्मण बोले—हे देवि ! तप, जप, और नियमोंके अनुष्ठानोंसे सिद्धोंको सम्पूर्ण सिद्धियां मिलती हैं, परन्तु अमरपद कभी नहीं मिलता ॥ २४ ॥

इत्याकर्ण्यद्विजमुखाच्चिंतयामाससापुनः ॥ इदंस्वप्रज्ञयैवाशुभीताप्रियवियोगतः ॥ २५ ॥ मरणंभर्त्तुरग्रेमेयदिदैवाद्भविष्यति ॥ तत्सर्वदुःखनिर्मुक्तासंस्थास्येसुखमात्मनि ॥ २६ ॥ अथवर्षसहस्रेणभर्त्ता दैवेन्मरिष्यति ॥ तत्करिष्येतथायेनजीवोगेहान्नयास्यति ॥ २७ ॥ तद्भ्रमद्भर्त्तृजीवेऽस्मिन्निजेशुद्धांतमंडपे ॥ भर्त्राविलोकितानित्यंनिवत्स्यामियथासुखम् ॥ २८ ॥

अर्थ—ब्राह्मणोंके मुखसे ऐसा सुनकर, प्राणपतिके वियोगसे डरी हुई अपनी बुद्धिसेही शीघ्र पुनः उसने यह शोचा ॥२५॥ कि यदि दैवकी इच्छासे पतिके सम्मुख मेरा मरण होगा तो सब दुःखोंसे छूटके सुखसे आत्मामें स्थित रहूंगी॥२६॥और यदि सहस्र हजार वर्षमें प्रथम पतिकी मृत्यु होगी तो ऐसा प्रयत्न करूंगी कि इनका जीव गृहसे बाहर न जायगा ॥ २७ ॥ ऐसा होनेसे जिसमें पतिका जीव भ्रमणकर रहाहै ऐसे अपने शुद्ध अन्तःपुर मण्डपमें प्राणपतिसे नित्य देखी हुई सुखपूर्वक निवास करूंगी ॥ २८ ॥

अद्यैवारभ्यैतदर्थंदेवींज्ञप्तिंसरस्वतीम् ॥ जपोपवासनियमैरातोषंपूजयाम्यहम् ॥ २९ ॥ इतिनिश्चित्य सानाथमनुक्त्वैववरांगना ॥ यथाशास्त्रंचचारोग्रंतथानियममास्थिता ॥ ३० ॥ त्रिरात्रस्यत्रिरात्रस्यपर्यंतेकृतपारणा ॥ देवद्विजगुरुप्राज्ञविद्वत्पूजापरायणा ॥ ३१ ॥ स्नानदानतपोध्याननित्योद्युक्तशरीरिका ॥ सर्वास्तिक्यसदाचारकारिणीक्लेशहारिणी ॥ ३२ ॥

अर्थ—इस कार्य्यकेलिये आजहीसे लेके चित्तरूप देवी सरस्वतीको जबतक प्रसन्न होगी तबतक जप, उपवास, और नियमके अनुष्ठानोंसे पूजन करूंगी ॥२९॥ उस उत्तम अंगनाने ऐसा निश्चय करके अपने पतिसे बिना कहे शास्त्रके अनुसार नियमोंमें स्थित उग्र तप किया ॥ ३० ॥ तीन ३ रात्रिके अनन्तर पारण करती, देवता ब्राह्मण, गुरु, प्राज्ञ, और विद्वानोंकी पूजामें सदा परायण रहती ॥ ३१ ॥ उसका शरीर स्नान दान, तप, और ध्यानमें सदा तत्पर रहता था, और सब शास्त्रोंमें आस्तिक्य बुद्धि करके सदाचारोंको करतीथी और दुःखियोंके क्लेशोंको हरण करती ॥ ३२ ॥

यथाकालंयथोद्योगंयथाशास्त्रंयथाक्रमम् ॥ तोषयामासभर्त्तारमपरिज्ञातसंस्थितिः ॥ ३३ ॥ त्रिरात्रशतमेवंसाबालानियमशालिनी ॥ अनारतंतपोनिष्ठामतिष्ठत्कष्टचेष्टया ॥ ३४ ॥ त्रिरात्राणांशतेचाथपूजितामतिमानिता ॥ तुष्टाभगवतीगौरीवागीशासमुवाचताम् ॥ ३५ ॥ सरस्वत्युवाच ॥ निरंतरेणतपसा भर्तृभक्त्यातिशालिना ॥ परितुष्टास्मितेवत्सेगृहाणवरमीप्सितम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—समयके अनुसार, अपनी शक्तिके अनुसार, शास्त्र और रीतिके अनुकूल अपने अभिप्रायको न प्रकट करके पतिको सन्तुष्ट करतीथी ॥ ३३ ॥ इसप्रकार निरन्तर तपमें निष्ठ नियममें वर्तमान उस बालाने अत्यन्त दुःखसे शत (१००) त्रिरात्र व्रत किया ॥ ३४ ॥ सो १०० त्रिरात्रके अन्तमें बाह्योपचारोंसे पूजित और आन्तरिक प्रेमभावसे सम्मानित वागीशा भगवती गौरी प्रसन्न होकर उस लीलासे बोली ॥३५॥ सरस्वतीजी बोले—हे पुत्रि ! तुमारी निरन्तर तपस्यासे और पतिकी अति भक्तिसे मैं प्रसन्नहूं तुम अपना इष्ट (चाहाहुआ) बरदान मांगो ॥ ३६ ॥

राज्युवाच ॥ जयजन्मजराज्वालादाहदोषशशिप्रभे ॥ जयहार्दांधकारौघनिवारणरविप्रभे ॥ ३७ ॥ अंब मातर्जगन्मातस्त्रायस्वकृपणामिमाम् ॥ इदंवरद्वयंदेहियदहंप्रार्थयेशुभे ॥ ३८ ॥ एकंतावद्विदेहस्यभर्त्तुर्जीवोममांबिके ॥ अस्माद्देवहिमायासीन्निजांतःपुरमंडपात् ॥ ३९ ॥ द्वितीयंत्वांमहादेविप्रार्थयेहंयदा यदा ॥ दर्शनायवरार्थायतदामेदेहिदर्शनम् ॥ ४० ॥

अर्थ—राज्ञीजी बोले—हे जन्म और वृद्धाऽवस्थारूपी ज्वालाके दोषको नाश करनेकेलिये चन्द्रमाके समान कान्तिवाली भगवती ! आपकी जयहो, हे हृदयके अन्धकारके समूहको नाश करनेको सूर्य्यके समान तेजवाली भगवती आपकी जयहो ॥ ३७ ॥ हे अम्ब ! हे मातः ! मुझ दीनकी रक्षा कीजिये, हे कल्याणी ! इन दो बरोंको लिये मैं प्रार्थना करतीहुं कृपाकरकें दीजिये ॥ ३८ ॥ हे मेरी मातः ! उन दोनों वरदानोंमेंसे प्रथम यह है कि मेरे पतिके देहका जीव इस मेरे अन्तःपुर मण्डपसे बाहर न जाय ॥३९॥ और हे देवि ! वरदानकेलिये वा दर्शनकेलिये जब २ मैं आपसे प्रार्थना करूं तब २ आप मुझे दर्शन दीजिये ॥ ४० ॥

(१) " या स्त्री भर्त्राऽननुज्ञाता उपवासव्रतंचरेत्, आयुष्यं हरते भर्तुर्मृता नरकमृच्छति " इस वाक्यके अनुसार यह शंका न करनी चाहिये कि पतिकी आज्ञा बिना उपवास क्यों करने लगी क्योंकि—प्रत्यक्षं वा परोक्षं वा सदा भर्तृहितं चरेत्; व्रतोपवासनियमै रुपचारैश्च लौकिकैः ॥ इस वाक्यसे पतिहितके कार्य्यमें आज्ञाका आवश्यकता नहीं ॥

इत्याकर्ण्य जगन्मातातथास्त्वेवमितिस्वयम् ॥ उत्कांतदर्शनमगमत्प्रोत्थायोर्मिरिवार्णवे ॥ ४१ ॥ अथ साराजमहिषीपरितुष्टेष्टदेवता ॥ श्रुतगीतेवहरिणीबभूवानंदधारिणी ॥ ४२ ॥ पक्षमासर्त्तुकटकेदिनारे वर्षदंडके ॥ क्षणनाभिस्पंदमयेकालचक्रेवहत्यथ ॥४३॥ अंतर्द्धिमाजगामास्याःपत्युस्तच्चेतनंतनौ ॥ संदृश्यमानमेवाशुशुष्कपत्ररसोयथा ॥ ४४ ॥

अर्थ—जगन्माताभगवतीने ऐसी प्रार्थनाको श्रवण करके बोली कि, तुमारे लिये ऐसाहीहो, ऐसा कहके जैसे समुद्रमें तरंग उठके अस्त होजाताहै वैसीही अंतर्धान होगई ॥ ४१ ॥ इसके अनन्तर इष्टदेवता सन्तुष्ट होनेसे वह राजमहिषी (राज्यमें अभिषेक की हुई पाठरानी) ऐसी प्रसन्न हुई जैसे गीतके श्रवण करनेसे हरिणी ॥ ४२ ॥ इसके अनन्तर पक्ष जिसके नेमि (चक्रका वह भाग जो पृथिवीसे छूजाताहै) कटक, मास जिसके मध्य कटक, ऋतु जिसके नाभि कटक, दिन जिसके अरा (धुरा) वर्ष जिसके दण्ड, और क्षण जिसके नाभि (मध्य छिद्र) हैं ऐसे सूर्य्यकी गतिमय कालचक्रके चलनेपर ॥ ४३ ॥ इस लीलाके पतिके शरीरमें जो प्रत्यक्ष चेतनताहै वह ऐसे लोप होगई जैसे सूखे पत्तेका रस ॥ ४४ ॥

रणखंडितदेहेस्मिन्मृतेंतःपुरमंडपे ॥ निर्जलानलिनीवासौपरांम्लानिमुपाययौ ॥ ४५ ॥ विषोष्णश्वसनध्वस्तसकलाधरपल्लवा ॥ प्रापसामरणावस्थांसशल्येवमृगीयथा ॥४६॥ प्रापसातमसांधत्वंतस्मिन्मरणमागते ॥ दीपज्वालालवेक्षीणेसद्मश्रीरिवभूषिता ॥४७॥ कार्श्यमापक्षणेनासौबालाविरसतांगता ॥ यथास्रोतस्विनीस्रोतःक्षयेक्षारविधूसरा ॥ ४८ ॥ क्षिप्रमाक्रंदिनीक्षिप्रंमौनमूकावियोगिनी ॥ बभूवचक्रवाकीवमानिनीमरणोन्मुखी ॥ ४९ ॥ अथतामतिमात्रविव्हलांसकृपाकाशभवासरस्वती ॥ शफरींव्हदशोषविव्हलांप्रथमावृष्टिरिवान्वकंपत ॥ ५० ॥

इत्यार्षेवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये मंडपोपाख्याने राज्ञीपरिदेवनं नाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

अर्थ—रणमें खण्डित शरीर राजाके अन्तःपुरमें मरनेके अनन्तर यह लीला ऐसी मुर्झागई जैसे जलसे रहित कमलिनी ॥ ४५ ॥ विषके समान उष्णश्वास लेनेसे विवर्ण अधरपल्लव युक्त वह लीला मरणके समान अवस्थाको ऐसे प्राप्त हुई जैसे बाणसहित मृगी ॥ ४६ ॥ इस अपने पतिके मरनेपर अन्धकारसे शीघ्र ऐसी अन्धता दशाको प्राप्त हुई जैसे दीपकी ज्वालाके क्षीण (नष्ट) होनेपर पूर्वकालमें दीपसे अलंकृत गृहकी शोभा ॥ ४७ ॥ यह बाला विरसताको प्राप्त होके क्षणमेंही ऐसे कृशताको प्राप्त हुई जैसे प्रवाहके नष्ट होनेसे क्षारवर्णसे मलिन नदी ॥ ४८ ॥ क्षणमें चिग्घार मारके चिल्लाने लगी, और क्षणमेंही मौनधारण करके वह वियोगिनी मूक होजाती, इसप्रकार चक्रवाकीके समान विरहिनी वह मानिनी मरनेको तैय्यार हुई ॥ ४९ ॥ इसके अनन्तर अति व्याकुल उस बालाको देखकर आकाशवाणी सरस्वतीने ऐसी कृपा की जैसे तलावके सूखनेपर अति व्याकुल मछलीपर प्रथम वृष्टि ॥ ५० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे मण्डपोपाख्याने राज्ञीपरिदेवनं नाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

नवीन और प्राचीन सृष्टियोंकी मनोमात्र विलासतुल्यता अन्वय और व्यतिरेकसे इस १७वें सर्गमें वर्णन कीगई है ॥

॥ श्रीसरस्वत्युवाच ॥ शवीभूतमिमंवत्सेभर्तारंपुष्पपुंजके ॥ अच्छाद्यस्थापयैनंत्वंपुनर्भर्त्तारमेष्यसि ॥ १ ॥ पुष्पाणिम्लानिमेष्यंतिनोनचैषविनंक्ष्यति ॥ भूयश्चतवभर्तृत्वमचिरेणकरिष्यति ॥ २ ॥ एतदीयश्चजीवोसावाकाशविशदस्तव ॥ ननिर्गमिष्यतिक्षिप्रमितोंतःपुरमंडपात् ॥ ३ ॥ षट्पदश्रेणिनयनासमाकर्ण्येतिबंधुभिः ॥ सासमाश्वासितागत्पयोभिरिवपद्मिनी ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीसरस्वतीजी बोले–हे प्रिय पुत्रि ! मृतक दशामें प्राप्त इस अपने पतिको तुम पुष्पकी राशिमें ढांकके रख और इस पतिको तुम फिर पाओगी ॥ १ ॥ न तो ये पुष्प मुरझांयगे और न यह मृतक शरीर नष्ट होगा किन्तु शीघ्र पुनः यह तुमारा भर्ता होगा ॥ २ ॥ और आकाशके समान विशाल यह इसका जीवभी शीघ्र इस अन्तःपुरसे बाहर

नहीं निकलेगा ॥ ३ ॥ जो बन्धुओंने आकाशवाणी (सरस्वती) के इस बचनको सुना तो आके उस भ्रमरके समान नेत्रवाली लीलाको ऐसे समाश्वासन (धैर्य्य) दिया जैसे जल कमलिनीको ॥ ४ ॥

पतिंसंस्थाप्यतत्रैवपुष्पपूरप्रगोपितम् ॥ किंचिदाश्वासितातिष्ठद्दरिद्रेवनिधानिनी ॥ ५ ॥ तस्मिन्नेवदिने सैषातस्मिञ्छुद्धांतमंडपे ॥ अर्द्धरात्रेपरिजनेसर्वस्मिन्निद्रयाहृते ॥ ६ ॥ ज्ञप्तिंभगवतींदेवींशुद्धध्यानम हाधिया ॥ दुःखादाव्हादयामाससोवाचसमुपेत्यताम् ॥ ७ ॥ किंस्मृतास्मित्वयावत्सेधत्सेकिमितिशो कितास् ॥ संसारभ्रांतयोभांतिमृगतृष्णांबुवन्मुधा ॥ ८ ॥

अर्थ—पुष्पके समूहमें छिपाके पतिको रखके कुछ आश्वासित कीहुई उसी पतिके मृतक शरीरकी ओर मुख करके ऐसे बैठगई जैसे दरिद्रा धनकी ओर ॥ ५ ॥ उसी दिन उस अपने शुद्ध अन्तःपुर मण्डपमें आधी रातिके समय सम्पूर्ण सेवकजनोंके निद्राके वशीभूत होनेपर इसने ॥ ६ ॥ शुद्धध्यान सहित महाबुद्धिसे ज्ञानरूप देवी भगवतीको दुःखसे आवाहन किया, और भगवती उससे बोली ॥ ७ ॥ हे प्रिय पुत्री ! मुझे किसलिये स्मरण किया और अति शोकित तुम क्यों हो, ये सम्पूर्ण संसारकी भ्रान्ति मृगतृष्णाके जलके समान मिथ्याहै ॥ ८ ॥

॥ लीलोवाच ॥ क्वममावस्थितोभर्ताकिंकरोत्यथकीदृशः ॥ समीपंनयमांतस्यनैकाशक्नोमिजीवितुम् ॥ ९ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ चित्ताकाशंचिदाकाशमाकाशंचतृतीयकम् ॥ द्वाभ्यांशून्यतरंविद्धिचिदाकाशं वरानने ॥ १० ॥ तच्चिदाकाशकोशात्मचिदाकाशैकभावनात् ॥ अविद्यमानमप्याशुदृश्यतेथानुभूयते ॥ ११ ॥ देशाद्देशांतरप्राप्तौसंविदोमध्यमेवयत् ॥ निमिषेणचिदाकाशंतद्विद्धिवरवर्णिनि ॥ १२ ॥

अर्थ—लीलाजी बोले–हे देवि ! मेरा पति इससमय कहां है ? तथा किसरूपसे है ? और क्या करताहै मुझेभी उसीके समीप ले चलो, मैं अकेली नहीं जीसकती ॥ ९ ॥ श्रीदेवीजी बोली–हे श्रेष्ठ मुखवाली वासनामय चित्ताकाश शुद्ध चिदाकाश और यह व्यावहारिक तीसरा आकाशहै, दोनोंकी सन्धिमें दोनोंसे शून्य चिदाकाशको तुम जानो ॥ १० ॥ तुमने जो अपने पतिका स्थान पूंछा है सो यथार्थमें तो वह चिदाकाश कोशरूपही है इससे उससे पृथक् न रहता हुआभी चिदाके एकाग्र चिन्तनसे वह यहांही देख पडताहै और वहां जाके अनुभवमेंभी आताहै ॥ ११ ॥ हे श्रेष्ठ वर्णवाली एक देशसे दूसरे देशमें (जैसे पृथिवीसे सूर्य्यमण्डलमें) जो ज्ञान एक निमिष (पल) में प्राप्त होताहै उनदोनों देशोंके मध्यमें जो ज्ञानहै उसको तुम चिदाकाश जानों, अर्थात् क्रमसे आनेवाले दोनोंके आभास सन्धिमें दोनोंसे शून्य चिदाकाश सरलतासे जानाजाताहै ॥ १२ ॥

तस्मिन्निरस्तनिःशेषसंकल्पास्थितिमेषिचेत् ॥ सर्वात्मकंपदंतत्त्वंत्वंतदाप्नोष्यसंशयम् ॥ १३ ॥ अत्यंताभावसंपत्त्याजगतश्चेतदाप्यते ॥ नान्यथामद्वरेणाशुत्वंतुप्राप्स्यसिसुंदरि ॥ १४ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इत्युक्त्वासाययौदेवीदिव्यमात्मीयमास्पदम् ॥ लीलातुलीलयैवासीन्निर्विकल्पसमाधिभाक् ॥ १५ ॥ तत्तत्याजनिमेषेणसांतःकरणपंजरम् ॥ स्वदेहंखमिवोड्डीनामुक्तनीडाविहंगमी ॥ १६ ॥

अर्थ—यदि उस चिदाकाशमें सम्पूर्ण संकल्पोंसे रहित होके स्थितिको पावो तो सर्वात्मक तत्त्वपदको अवश्य पाओगी, और उसकी प्राप्तिही उसरूपसे स्थित तुमारे पतिके समीप प्राप्तिहै क्योंकि उसी देशमें पतिलोककी कल्पनाहै ॥ १३ ॥ और हे सुन्दरि ! तत्वज्ञानसे अविद्याका नाश होनेसे जगत्के अत्यन्त अभावसे इस पदकी प्राप्ति होतीहै अन्यथा नहीं, और तुम तो मेरे वरदानके प्रभावसे शीघ्र पाओगी ॥ १४ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–इतना कहके वह देवी अपने दिव्य धामको चलीगई और लीला तो लीलाहीसे अर्थात् देवीके वरदानके प्रभावसे निर्विकल्प समाधिमें निमग्न होगई ॥ १५ ॥ स्थिरीकृत चित्तसे अभिमानको छोडके लोहके पिंजरेके समान दुर्भेद्य अन्तःकरण सहित स्थूल देहको त्यागदिया, और आकाशमें ऐसे उडी जैसे घोसला (खुन्थे) को छोडके पक्षिणी ॥ १६ ॥

ददर्शखस्याभर्तारंतस्मिन्नेवालयांबरे ॥ संस्थितंपृथिवीपालमास्थानेबहुराजनि ॥ १७ ॥ सिंहासनेसमारूढंजयजीवेतिसंस्तुतम् ॥ प्रस्तुतंमंडलानीककार्यमाहर्तुमादृतम् ॥ १८ ॥ पताकामंजरीकीर्णराजधानीगृहस्थितम् ॥ पूर्वद्वारस्थितासंख्यमुनिविप्रार्पिमंडलम् ॥ १९ ॥ दक्षिणद्वारगासंख्यराजराजेशमंडलम् ॥ पश्चिमद्वारगासंख्यललनालोकमंडलम् ॥ २० ॥

अर्थ—चिदाकाशमें स्थित होके उसी स्थानके आकाशमें अनेक राजाओंसे संयुक्त सभामण्डपमें अपनी वासना और कर्मके अनुसार प्रकट देह गृहादिकी सम्पत्तिसे संस्थित अपने पतिराजाको देखा ॥ १७ ॥ सिंहासनपर विरा-

१ ये सब राजाके विशेषणहैं ऐसे राजाको चिदाकाशमें रानीने देखा ॥

जमान आपकी जयहो आप चिरंजीवहो इत्यादि वाक्योंसे संस्तुत, राज्य तथा सेनाके उपस्थित कार्य्योंके करनेमें आदर युक्त ॥ १८ ॥ पताकाओंके मण्डलोंसे व्याप्त राजधानीके मुख्य गृहमें संस्थित, पूर्वद्वारपर असंख्य मुनि ब्राह्मण और ऋषियोंके समूह सहित ॥ १९ ॥ दक्षिणके द्वारपर राजराजेश्वरोंके समूहोंसे संयुक्त, पश्चिम द्वारपर असंख्य उत्तम स्त्रियोंसे संयुक्त अपने पतिको देखा ॥ २० ॥

उत्तरद्वारगासंख्यरथहस्त्यश्वसंकुलम् ॥ एकभृत्यविनिर्णीतदक्षिणापथविग्रहम् ॥ २१ ॥ कर्णाटनाथरचितपूर्वदेशक्रियाक्रमम् ॥ सुराष्ट्राधिपनिर्णीतसर्वम्लेच्छोत्तरापथम् ॥ २२ ॥ मालदेशसमाक्रांतसर्वपाश्चात्यतंगणम् ॥ दक्षिणाब्धितटायातलंकादूतविनोदितम् ॥ २३ ॥ पूर्वाब्धितटमाहेंद्रसिद्धोक्तगगनापगम् ॥ उत्तराब्धितटायातदूतवर्णितगुह्यकम् ॥ २४ ॥

अर्थ—उत्तरके द्वारपर असंख्य रथ, हांथी, और घोडोंसे व्याप्त, एक सेवकके बचनसे दक्षिणदेशमें युद्धको निर्णय करनेवाले ॥ २१ ॥ जिसके लिये कर्णाटदेशके राजाने पूर्वदेशकी व्यवहार मर्य्यादाको रचित कियाहै और जिसके लिये गुजरातदेशके राजाने सम्पूर्ण म्लेच्छ और उत्तरदेशको जीतकर वशीभूत करलियाहै ॥ २२ ॥ मालदेशके राजाने सम्पूर्ण पश्चिमदेशके तंगणनामक देशोंके आक्रमण करलियाहै, और जिनके सम्मुख दक्षिणके समुद्रतटसे दूत आके लंकाके वृत्तान्तको निवेदन कियाहै ॥ २३ ॥ पूर्वके समुद्रतटसे आके महेन्द्रपर्वतके सिद्धतपस्वीने सहस्र मुख गंगाका विचित्र विस्तार वर्णन कियाहै, उत्तरसमुद्रके तटसे दूतने आके गुह्यकोंका वृत्तान्त निवेदन कियाहै ॥ २४ ॥

पश्चिमाब्धितटालोकवर्णितास्तमयक्रमम् ॥ असंख्यबद्धभूपालकलाकीर्णाखिलाजिरम् ॥२५ ॥ यज्ञवाटपठद्विप्रजिततुर्याग्रनिःस्वनम् ॥ बंदिकोलाहलोल्लासप्रतिश्रुद्वनकुंजरम् ॥ २६ ॥ गेयवाद्योद्यतध्वानप्रध्वनद्गगनांतरम् ॥ हयहस्तिरथाराजिरजोमेघघनांबरम् ॥ २७ ॥ पुष्पकर्पूरधूपाढ्यंगंधामोदितपर्वतम् ॥ सर्वमंडलसंभाररचितानेकशासनम् ॥ २८ ॥

अर्थ—पश्चिमसमुद्रतटको देखकर दूतने आके अस्ताचलकी रीतिको जिसके सम्मुख वर्णन कियाहै ऐसे तथा अनेक बन्धेहुये राजाओंसे जिसका सम्पूर्ण अंगण व्याप्त होरहाहै ॥ २५ ॥ जिसके यज्ञमार्गमें वेद पढनेवाले विप्रोंने श्रेष्ठवाद्यके शब्दको जीतलियाहै, बन्दियोंके कोलाहलके उल्लासके प्रतिध्वनिकारक बनबजहै जिसके ॥ २६ ॥ जानने योग्य वाद्योंसे निकलेहुये शब्दोंसे आकाशमध्य जिसका गुंज रहाहै, जिसके घोडे हांथी और रथकी पंक्तियोंसे निकली हुई धूलिरूपी मेघसे आकाश व्याप्त होरहाहै ॥ २७ ॥ पुष्प, कर्पूर और धूपसे पूर्ण जिसके पर्वतके समान प्रासाद (अटारी) सुगन्धसे व्याप्त होरहेहै सम्पूर्ण देशोंसे लाके उपायन (नजर) आदिसे गृहको पूर्ण करनेवाले भृत्योंने जिसके अनेक (शासन हुकम) रचेहैं ऐसे अपने पतिराजाको लीलाने देखा ॥ २८ ॥

यशःकर्पूरजलदस्तुस्थप्रांबरपर्वतम् ॥ रोदसीस्तंभभूतिकस्वप्रतापजितार्ककम् ॥ २९ ॥ आरंभमंथरोदारकार्यसंव्यग्रभूमिपम् ॥ नानानगरनिर्माणसोद्योगस्थपतीश्वरम् ॥ ३० ॥ पपाताथमहारंभासातांनरपतेःसभाम् ॥ व्योमात्मिकाव्योममयींमिहिकेवांबराटवीम् ॥३१॥ भ्रमंतींतत्रतामग्रेददृशुस्तेनकेचन॥ संकल्पमात्ररचितांपुरुषाःकामिनीमिव ॥ ३२ ॥

अर्थ—यशरूपी कर्पूरके समान मेघोंसे जिसने पर्वतोंको श्वेतवर्ण करदियाहै ऐसे आकाशमें पृथिवीके स्तम्भ (खंभे) के समान, अपने प्रतापसे सूर्य्यके तेजको जीतनेवाले ॥ २९ ॥ बडे २ उदार कार्य्योंमें करदेनेवाले राजाओंके संव्यग्र करनेवाले, नानाप्रकारके नगरोंको बनानेके लिये उद्योगी स्थपति (गृहबनानेवाले राजलोग) हैं जिसके ऐसे राजा अपने पतिको लीलाने देखा ॥ ३० ॥ वासनामयरूप होनेसे आकाशरूप राजाकी सभामें महान् कार्य्योंका आरम्भ करनेवाली स्वयं आकाशरूप लीलाने ऐसे प्रवेश किया जैसे आकाशमें नीहारकी पंक्ति ॥ ३१ ॥ उस सभामें भ्रमण करती हुई उसको किसीने ऐसे नहीं देखा जैसे संकल्पमात्रसे रचित कामिनीको पुरुष ॥ ३२ ॥

तथातेतांनददृशुःसंचरंतींपुरोगताम् ॥ अन्यसंकल्परचितामन्येननगरींयथा ॥ ३३ ॥ प्राक्तनानेवतान्सर्वान्स्वान्ददर्शसभागतान् ॥ भूभृतेवसुसंप्राप्तान्नगरान्नगरांतरम् ॥ ३४ ॥ तद्देशांस्तत्समाचारांस्तथातानेवबालकान् ॥ ताएवबालवनितास्तांस्तानेवचमंत्रिणः ॥ ३५ ॥ तानेवभूमिपालांश्चतांस्तानेवचपंडितान् ॥ तानेवनर्मसचिवान्भृत्यांस्तानेवतादृशान् ॥ ३६ ॥

अर्थ—जैसे दूसरेके संकल्पसे रची हुई नगरीको दूसरा नहीं देखता, ऐसेही सम्मुख भ्रमण करती हुईभी उसको लोगोंने नहीं देखा ॥ ३३ ॥ उस लीलाने राजाके साथ अपने पुराने सेवकोंको सभामें प्राप्त ऐसे देखा मानो राजाहीने उनको एक नगरसे दूसरे नगरमें प्राप्त कियाहै ॥ ३४ ॥ उन्हीं २ देशों और समाचारोंको, तथा उन्हीं बालकोंको, उन्हीं

वालवनिताओंको, और उन्हीं २ मंत्रियोंको ॥ ३५ ॥ उन्हीं राजाओंको और उन्हीं २ पण्डितोंको उन्हीं हास्यके मंत्रियोंको वैसेही और उन्हीं सेवकोंकोभी लीलाने देखा ॥ ३६ ॥

अथान्यानप्यपूर्वांश्चपंडितान्सुहृदस्तथा ॥ व्यवहारांस्तथान्यांश्चपौरानन्यांस्तथैवच ॥ ३७ ॥ मध्याह्नकालेदिवसेघनदावाकुलादिशः ॥ अंतरिक्षंसचंद्रार्कसांभोदपवनध्वनि ॥ ३८ ॥ महीरुहनदीशैलपुरपत्तनमंडितम् ॥ नानानगरविन्यासजंगलग्रामसंकुलम् ॥ ३९ ॥ द्विरष्टवर्षभूपालंप्राक्तन्याजरसोज्झितम् ॥ प्राक्तनींजनतांसर्वांसमस्तान्ग्रामवासिनः ॥ ४० ॥

अर्थ—और इसके सिवाय अन्य अपूर्व पण्डित तथा मित्रोंको, और उसीप्रकार अन्य व्यवहारोंको तथा अन्य नगरके मनुष्योंकोभी देखा ॥ ३७ ॥ मध्यान्ह (दोपहर दिनके) समयमें सम्पूर्ण दिशाओंको सघन वनकी अग्निसे व्याप्त, और आकाशको सूर्य्य चन्द्रमा और मेघ तथा वायुके शब्दसहित ॥ ३८ ॥ वृक्ष, नदी, पर्वत, ग्राम और बडे नगरसे शोभित, नानाप्रकारके नगरोंकी रचना तथा जंगलोंसे व्याप्त स्थानको देखा ॥ ३९ ॥ पूर्वकी वृद्धाऽवस्थाको त्यागके सोलह १६ वर्षके राजाको, और पूर्वकालके सम्पूर्ण जनसमूहोंको और ग्रामनिवासियोंकोभी देखा ॥ ४० ॥

सातानालोक्यललनाचिंतापरवशाभवत् ॥ तस्मिन्नगरवास्तव्याःकिंतेसर्वेमृताइति ॥ ४१ ॥ पुनःप्रज्ञप्तिबोधेनप्राक्तनांतःपुरंगता ॥ क्षणेनचददर्शात्रसार्द्धरात्रेतथैवतान् ॥ ४२ ॥ अथसोत्थापयामासनिद्राक्रांतंसखीजनम् ॥ आहचातीवमेदुःखमास्थानंदीयतामिति ॥ ४३ ॥ भर्तुःसिंहासनस्यास्यपार्श्वेतिष्ठाम्यहंयदि ॥ पश्यामिसभ्यसंघातंतत्प्रजीवामिनान्यथा ॥ ४४ ॥

अर्थ—उस ललनाने उन सबको देखके इस चिन्ताके परवश हुई कि क्या उस नगरके रहनेवाले सब मरगये? ॥ ४१ ॥ पुनः ज्ञानरूप भगवतीकी कृपासे ज्ञानसे समाधिके भंग होनेपर अपने पूर्व अन्तःपुरमें आई और एक क्षणमेंही आधीरातिके समय उन सबको वैसाही देखा ॥ ४२ ॥ इसके अनन्तर उसने सब सखीजनोंको उठाया और यह बोली कि मुझे राजसभाके समीप बैठने दो क्योंकि मुझे अति दुःखहै ॥ ४३ ॥ यदि मैं पतिके इस सिंहासनके निकट स्थित रहूंगी और सब सभासदोंको देखती रहूंगी तभी जीऊंगी अन्यथा नहीं ॥ ४४ ॥

सराजपरिवारोथतयेत्युक्तेयथाक्रमम् ॥ आसीद्विनिद्रःसंव्यग्रःसर्वःसर्वस्वकर्मणि ॥ ४५ ॥ पौरान्सभ्यान्समानेतुंययुर्याष्टीकपंक्तयः ॥ व्यवहारंकलयितुमुर्व्यामर्ककराइव ॥ ४६ ॥ आस्थानभूमिंभृत्याश्चमार्जयामासुराहृताः ॥ प्रावृट्पयोदमलिनंखंशरद्वासराइव ॥ ४७ ॥ अंगणंप्रतिदीपौघास्तस्थुःपीततमोंभसः ॥ आश्चर्यदर्शनायेवसंप्राप्ताऋक्षपंक्तयः ॥ ४८ ॥

अर्थ—उसके वैसा कहनेपर राजाके परिवारके सब लोग जगगये, और सब अपने२ उचित कार्य्योंमें लगगये ॥ ४५ ॥ ड्योढीदारलोग राज्यका कार्य करनेके अर्थ नगरनिवासी राज्यकर्म चारिओंको बुलानेके लिये ऐसे गये जैसे संसारका कार्य्य करानेके अर्थ सूर्य्यके किरण ॥ ४६ ॥ सभास्थानको भृत्योंने ऐसे स्वच्छ किया जैसे वर्षाके मेघसे मलिन आकाशको शरदऋतुके दिन ॥ ४७ ॥ अंगण (आंगन) में अन्धकाररूपी जलको पीनेवाले दीपोंकेसमूह पीतवर्ण ऐसे स्थित हुये जैसे आश्चर्य देखनेके लिये आके तारोंकी पंक्ति ॥ ४८ ॥

जनताःपूरयामासुःपूरैरजिरभूमिकाः ॥ अब्धीन्प्रलयसंशुष्कान्पुरासर्गइवांभसा ॥ ४९ ॥ आजग्मुर्मंत्रिसामंताःस्वंस्वंस्थानमनिंदिताः ॥ त्रैलोक्येपुनरुत्पन्नेलोकपालायथादिशः ॥ ५० ॥ ववुराकीर्णकर्पूरसांद्रावश्यायशीतलाः ॥ उत्फुल्लकुसुमोद्दांतमांसलामोदितानिलाः ॥ ५१ ॥ पर्यंतेषुप्रतीहारास्तस्थुर्धवलवाससः ॥ ऋष्यमूकार्कतापार्त्तमेघमालाइवाद्रिषु ॥ ५२ ॥

अर्थ—मनुष्योंके समूहोंने सभाकी अंगण भूमिको ऐसे पूर्ण किया जैसे मनुष्योंकी सृष्टिके पूर्व प्रलयसे सूखेहुये समुद्रोंको जलके समूह ॥ ४९ ॥ निन्दारहित मन्त्री और करदेनेवाले राजालोग अपने २ स्थानपर आके ऐसे विराजमान हुये जैसे त्रैलोक्यके पुनः उत्पन्न होनेपर अपनी २ दिशाओंमें लोकपाल ॥ ५० ॥ चारों ओर व्याप्त कर्पूरके समान सघन हिमसे शीतल और खिले हुये पुष्पोंसे निस्तृत सुगन्धसे पुष्ट (शीतल मन्द और सुगन्ध) वायु वहने लगे ॥ ५१ ॥ सभाके निकट श्वेतवस्त्र धारण कियेहुये द्वारपाललोग ऐसे खडेहुये जैसे ऋष्यमूक (सुग्रीवके स्थान) के तापसे पीडित मेघमाला विन्ध्याचल आदि पर्वतोंपर ॥ ५२ ॥

प्रभापीततमःपुंजाःपेतुःपुष्पोत्करा भुवि ॥ चंडमारुतविध्वस्तास्तारकानिकराइव. ॥ ५३ ॥ आस्थानंपूरयामासुर्महीपालानुयायिनः ॥ उत्फुल्लकमलोत्कीर्णंहंसाइवसरोवरम् ॥ ५४ ॥ सिंहासनसमीपस्थे

(१) ऋष्यमूक पर्वत सुग्रीवके रहनेके स्थानका नामहै वहांपर पुत्र स्नेहसे सूर्य्यकी स्थिति अधिक रहतीथी ॥

हैमचित्रासनेनवे ॥ उपाविशदसौलीलालीलेवस्मरचेतसि ॥ ५५ ॥ ददर्शतान्नृपान्सर्वान्पूर्वानेवयथा स्थितान् ॥ गुरुनार्थान्सखीन्सभ्यान्सुहृत्संबंधिबांधवान् ॥ ५६ ॥ सकलमेवहिपूर्ववदेवसासमवलोक्यमुदंपरमांययौ ॥ नृपतिराष्ट्रजनंखलुजीवनाभ्युदितयाचबभौशशिवच्छ्रिया ॥ ५७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने संदेहराष्ट्रवर्णनं नाम सप्तदशःसर्गः ॥ १७ ॥

अर्थ–प्रकाशसे अन्धकारकी राशिको नष्ट करनेवाले पुष्पोंके समूह ऐसे गिरनेलगे जैसे प्रलयके वायुसे विध्वस्त तारागणोंके समूह ॥ ५३ ॥ राजाओंके सेवकोने सभामण्डपको ऐसे पूर्ण किया जैसे विकासित कमलोंके समूहसे व्याप्त सरोवर (मानसरोवर तडाग) को हंस ॥ ५४ ॥ पतिके सिंहासनके समीप सुवर्णके नये और विचित्र सिंहासनपर यह लीला ऐसे विराजमान हुई जैसे कामदेवके चित्तमें लीला (विलास या कौतुक) ॥ ५५ ॥ यथास्थित (ज्योंकेत्यों) प्रथमके राजाओंको श्रेष्ठ और भावके योग्य गुरु, मित्र, सभासद प्रीति करनेवाले सम्बन्धी और बान्धवोंके वहांपर देखा ॥ ५६ ॥ राजा तथा राज्यके सम्पूर्ण लोगोंको पूर्वकेही समान देखकर वह लीला परम प्रसन्न हुई, और सबके निश्चित जीवनकी शोभासे चन्द्रमाके समान प्रकाशित हुई ॥ ५७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे लीलोपाख्याने सन्देहराष्ट्र वर्णनं नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

समाधिमें देखीहुई सृष्टि और पूर्वसृष्टि दोनों दृश्यरूप होनेसे मिथ्यात्वमें समानहीहैं इसलिये केवल चिन्मात्रकी सदा स्थितिहै इस विषयका वर्णन इस १८ वे सर्गमें कीगई है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इत्थंविनोदयामीदंदुःखदंचितमित्यलम् ॥ बोधयित्वेंगितैर्भूपानास्थानादुत्थिताथसा ॥ १ ॥ प्रविश्यांतःपुरंभर्तुःपार्श्वेंतःपुरमंडपे ॥ विवेशपुष्पगुप्तस्यचिंतयामासचेतसा ॥ २ ॥ अहोविचित्रामायेयमेतेऽस्मत्पुरमानवाः ॥ बहिरंतरवद्देशेतत्रचेहचसंस्थिताः ॥ ३ ॥ तालीतमालहिंतालमालितागिरयोप्यमी ॥ यथातत्रतथेहापिबतमायेयमातता ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–इसप्रकार सभामण्डप आदिके दर्शनसे अपने दुःखदायी चित्तको भलीभांति प्रसन्न करूंगी ऐसी अभिप्रायसूचक चेष्टाओंसे राजाओंको जतलाकर वह लीला सभामें सिंहासनके समीपसे उठी ॥ १ ॥ अन्तःपुर मण्डपके समीप पतिके अन्तःपुरमें प्रवेश किया और पुष्पमें छिपाहुये पतिके निकट बैठके यह बात चित्तसे विचारी ॥ २ ॥ अहो ! यह कैसी ईश्वरकी मायाहै कि ये मेरे नगरके निवासी लोग जैसे समाधिमें देखेगये वैसेही यहांभी स्थितहैं ॥ ३ ॥ ताली और तमाल आदि वृक्षोंसे शोभित ये पर्वत जैसे वहां थे वैसेही यहांभी हैं आश्चर्य्यकी बातहै यह ईश्वरकी माया कैसी व्याप्त होरही है ॥ ४ ॥

आदर्शान्तर्बहिश्चैवयथाशैलोनुभूयते ॥ बहिरंतश्चिदादर्शेतथासर्गोनुभूयते ॥ ५ ॥ तत्रभ्रांतिमयःसर्गःकःस्यात्कःपारमार्थिकः ॥ इतिपृच्छामिवागीशामभ्यर्च्यौकमसंशयम् ॥ ६ ॥ इतिनिश्चित्यतांदेवींपूजयामाससातदा ॥ ददर्शचपुरःप्राप्तांकुमारीरूपधारिणाम् ॥ ७ ॥ भद्रासनगतांदेवीमुपविश्यपुरोगता ॥ परमार्थमहाशक्तिलीलापृच्छद्भुविस्थिता ॥ ८ ॥

अर्थ—जैसे दर्पणके भीतर और बाहर पर्वत आदि देख पडतेहैं इसीप्रकार चित्रूपी दर्पणमेंभी बाहर तथा भीतर इस सृष्टिका अनुभव होताहै ॥ ५ ॥ इन दोनों (समाधिमें देखेहुए तथा बाहर देखेहुये) में से सत्य कौनहै ? इस संशयको असंशय करनेके लिये वागीशा भगवतीकी पूजा करके पूछूं ॥ ६ ॥ इसप्रकार निश्चय करके उससमय उसने देवीकी पूजाकी और कुमारीका रूप धारण किये उसको अपने सन्मुख प्राप्तही देखा ॥ ७ ॥ भद्रासनसे विराजमान परमार्थ सिद्ध करनेको महाशक्तिरूप देवीके सम्मुख जाके पृथिवीपर बैठके लीलाने पूंछा ॥ ८ ॥

लीलोवाच ॥ ॥ अनुकंप्यस्यनोदेविभजंत्युद्वेगमुत्तमाः ॥ त्वयैवंकिलसर्गौदौस्थापितास्थितिरुत्तमा ॥ ९ ॥ तदिदंयत्पुरःप्रह्वापृच्छामिपरमेश्वरि ॥ तद्ब्रूहित्वत्कृतोनूनंसफलोमेस्त्वनुग्रहः ॥ १० ॥ अस्या

दर्शोजगन्नाम्नःखादप्यधिकनिर्मलः ॥ यस्ययोजनकोटीनांकोटयोवयवोमनाक् ॥ ११ ॥ निःसंधितव चोज्योतिर्घनोमृदुसुशीतलः ॥ अवेत्यचिदितिख्यातोनाम्नानिर्भित्तिरग्रतः ॥ १२ ॥

अर्थ—लीला बोले-हे देवि ! दयाके पात्र जो हम लोगहैं उनके सन्देहको आपके सदृश उत्तम महात्माजन नही भंजन करते हैं इसप्रकारकी मर्य्यादा सृष्टिकी आदिमें आपहीने स्थापित कीहै ॥ ९ ॥ इसलिये हे परमेश्वरि नम्र होके आपके सम्मुख यह जो मैं पूंछतीहूं उसको कृपा करके कहिये, यह आपका अनुग्रह मेरे ऊपर निश्चय रूपसे सफल हो ॥ १० ॥ इस जगत्का चिदाकाशरूपी दर्पण आकाशसेभी निर्मलहै, जिसका अवयव (भाग) करोडों योजनोंकी कोटियोंकी कोटिभी अल्पहीहै ॥ ११ ॥ सन्धिरहित अर्थात् अखण्डार्थ वचन प्रभाव सहित घन, अमूर्त होनेसे मृदु सम्पूर्णतापोंको शमन करनेसे शीतल, आवरण रहित सब व्यवहारोंमें प्रथम अग्रभागमें स्फुरण होनेवाली और विषयरहित चित् इसनामसे प्रसिद्ध यह (समाधिमें अनुभूत) ज्योतिरूप आदर्श (दर्पण) है ॥ १२ ॥

दिक्कालकलनाकाशप्रकाशनियतिक्रमाः ॥ यत्रेमेप्रतिबिंबंतिपरांपरिणतिंगताः ॥ १३ ॥ त्रिजगत्प्रति बिंबश्रीर्बहिरंतश्चसंस्थिता ॥ तत्रैवैकत्रिमाकास्यात्कासौवास्यादकृत्रिमा ॥ १४ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ अकृत्रिमत्वंसर्गस्यकीदृशंवदसुंदरि ॥ कीदृशंकृत्रिमत्वंस्याद्यथावत्कथयेतिमे ॥ १५ ॥ लीलोवाच ॥ यथाहमिहतिष्ठामित्वंचदेविस्थितांबिके ॥ असावकृत्रिमःसर्गइतिदेवेशिवेद्म्यहम् ॥ १६ ॥

अर्थ—जिस चित्रूपी आत्मआदर्शमें, देशकाल और उसके अन्तर्गत सम्पूर्ण कार्य्योंकी उत्पत्ति, उत्पत्तिवालोंकी अवकाशसहित देशमें प्राप्ति नेत्र आदिसे प्रकाश, और प्रकाशितोंका अर्थ और क्रियाओंमें मर्य्यादा, ये सब देशकालसे विस्तीर्ण विकारकी विचित्र दशामें प्राप्त प्रतिबिम्बके समान स्फुरित होते हैं ॥ १३ ॥ इस चित्रूपी आदर्शमें तीनों जगत्के प्रतिबिम्बकी शोभा बाहर और भीतर स्थितहै उनमें कृत्रिम (बनावटी) कौनहै और अकृत्रिम (असली) कौनहै ? ॥ १४ ॥ श्रीदेवीजी बोले-हे सुन्दरि ! इस सृष्टिकी अकृत्रिमता कैसी ? और कृत्रिमता कैसी होती है इसको तुम ठीक २ कहो ॥ १५ ॥ लीला बोले-हे देवि ! हे देवेशि ! हे अम्बिके ! जिसमें मैं और आप वर्तमान हैं उस सृष्टिको मैं अकृत्रिम जानतीहूं ॥ १६ ॥

यत्राधुनासभर्त्तामेस्थितःसर्गःसकृत्रिमः ॥ अहंमन्येयतःशून्योदेशकालाद्यपूरकः ॥ १७ ॥ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ कृत्रिमोऽकृत्रिमात्सर्गान्नकदाचनजायते ॥ नहिकारणतःकार्यमुदेत्यसदृशंक्वचित् ॥ १८ ॥ लीलोवाच ॥ दृश्यतेकारणात्कार्यंसुविलक्षणमंबिके ॥ अंब्वादानुमशक्तामृद्घटस्तज्जस्तदास्पदम् ॥ १९ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ संपद्यतेहियत्कार्यंकारणैः सहकारिभिः ॥ मुख्यकारणवैचित्र्यंकिंचित्तत्रावलोक्यते ॥ २० ॥

अर्थ—और जिस सृष्टी (समाधि दृष्टि) में मेरा पति इससमयमें है, उसको मैं कृत्रिम मानतीहुं, क्योंकि वह शून्यप्रायहै उसमें अतिअल्पभी देशकालका अवकाश नहीं है, अर्थात् प्रतिबिम्बके समान स्थितहै ॥ १७ ॥ श्रीदेवीजी बोली-अकृत्रिम सृष्टिसे कृत्रिम सृष्टि कभी नहीं होती क्योंकि कारण (उपादान कारण) से कार्य्य असदृश कदापि नहीं होता ॥ १८ ॥ लीला बोली-हे मातः ! कारणसे कार्य्य अति विलक्षण देखनेमें आताहै जैसे मृत्तिकाका पिण्ड जल ग्रहण करनेमें समर्थ नहीं है परन्तु मृत्तिकासे उत्पन्न घट (घडा) जल ग्रहण करनेमें समर्थ है॥१९॥सरस्वतीजी बोली-कि जो कार्य्य सहकारी कारणोंकी सहायतासे कार्य्य सिद्ध होताहै वहांपर असाधारण (दण्डचक्रादि) से विचित्रता कार्य्यमें देख पडती है,अर्थात् उपादान कारणकी विचित्रता सेवा सहकारी निमित्त कारणकी विचित्रतासे मृत्तिका और घटमें विचित्रता रहो परन्तु सदृश उपादान कारणमें विचित्रता नहींहोती।जैसे एक दीपसे उत्पन्न दूसरे दीपमें इसीप्रकार दोनों सृष्टिमेंभी विचित्रता नहीं है क्योंकि दोनोंका उपादान कारण सदृश है ॥ २० ॥

वदतद्भर्तृसर्गस्यकिंपृथ्व्यादिषुकारणम् ॥ तद्भूमंडलतोभूतिर्जातातत्रवरानने ॥ २१ ॥ गतंवेदितउड्डीयकुतःस्यादिहभूतलम् ॥ सहकारिणिकानीवकारणान्यत्रकारणे ॥ २२ ॥ कारणानामभावेपियोदेति सहकारिता ॥ तत्पूर्वकारणाभान्यत्सर्वेणेत्यनुभूयते ॥ २३ ॥ लीलोवाच ॥ स्मृतिः सादेविमद्भर्तुस्तथास्फारत्वमागता ॥ स्मृतिस्तत्कारणंवेद्मिसर्गोयमितिनिश्चयः ॥ २४ ॥

अर्थ—हे वरानने (श्रेष्ठ मुखवाली) यह तुम बताओ कि तुमारे पतिकी सृष्टिके कारण पृथिवी आदिमेंसे क्या है ? अर्थात् कुछ नहीं, और भौतिक पदार्थोंमेंभी जैसे इस भूमण्डलसे उत्पत्ति है ऐसेही उस भूमण्डलमेंभी समझो ॥ २१ ॥ यदि यह कहो कि यहांके पृथिवी आदि वहां (समाधि दशा) के पृथिवी आदिके कारणहैं सोभी नहीं क्योंकि यहांसे उठके वहांके आके: वहांके भूमि आदि कारण होतो यहां भूतल कैसे रहसकताहै और बिना वहां गये कार्य्य

उत्पन्न नहीं करसकता, और इसके कारण होनेमें सहकारी कारणभी कुछ नहीं है ॥ २२ ॥ और कारणोंके अभावमेंभी सहकारी कारणताकी जो कल्पना की जाती है, वह पूर्व कारण (माया काम तथा वासना) को छोडके और कुछ नहीं होसकता यह अनुभव सबको है ॥ २३ ॥ लीला बोली—हे देवि ! मेरे पतिकी स्मृति ऐसी दृढताको प्राप्त हुई कि वही इस समाधिकी सृष्टिका कारणहै ऐसा मुझे निश्चयहै ॥ २४ ॥

श्रीदेव्युवाच ॥ स्मृतिराकाशरूपाचयथातज्जस्तथैवते ॥ भर्तुःसर्गोनुभूतोऽपिसव्योमैवतथाबले॥२५॥ लीलोवाच ॥ स्मृत्याकाशमयः सर्गोयथाभर्तुर्ममोदितः ॥ तथैवेममहंमन्येससर्गोत्रनिदर्शनम् ॥ २६ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ एवमेतदसत्सर्गोभर्तुस्तेभातिभास्वरः ॥ तथैवायमिहाभातिपश्याम्येतदहंसुते ॥ २७ ॥ लीलोवाच ॥ यथापत्युरमूर्त्तोस्मात्सर्गात्सर्गोभ्रमात्मकः ॥ जातस्तथाकथयमेजगद्भ्रमनिवृत्तये ॥ २८॥

अर्थ—श्रीदेवीजी बोली—संस्कारसे उत्पन्न ज्ञानको स्मृति (स्मरण) कहतेहैं और स्मृतिमें पदार्थोंका अभाव होनेसे वह शून्य आकाशरूपही है इसलिये स्मृतिसे उत्पन्न जो पदार्थ अर्थात् समाधिमें अनुभूत तुमारे पतिकी सृष्टि जैसे आकाशरूपहै इसीप्रकार संस्कारके कारणसे अनुभूत पूर्व सृष्टिभी वैसीहीहै ॥ २५ ॥ श्रीलीलाजी बोली—स्मृति रूप आकाशमय मेरे पतिकी सृष्टि जैसी है वैसीही मैं इस सृष्टिकोभी मानतीहूं ॥ २६ ॥ श्रीदेवीजी बोली—हे पुत्रि ! इसप्रकार सर्वथा मिथ्याभूत यह सृष्टि जिस आत्मामें है वह प्रकाशरूप आत्माही तुमारे पतिको उन२ सृष्टिरूपसे जैसे भान होताहै वैसाही यहांभी यही आत्मा इस सृष्टिरूपसे भान होरहाहै इसको मैं देखतीहूं ॥ २७ ॥ लीलाजी बोली—हे देवि जिसप्रकार इससृष्टिसे भ्रमात्मक हमारे पतिकी सृष्टि उत्पन्नहुई वह मुझसे जगत्की भ्रान्तिके नाशार्थ कहिये ॥२८

श्रीदेव्युवाच ॥ प्राक्स्मृतेर्भ्रांतिमात्रात्मासर्गोयमुदितोयथा ॥ स्वप्नभ्रमात्मकोभातितथेदंकथ्यतेशृणु ॥२९॥ अस्तिकचिच्चिदाकाशेक्वचित्संसारमंडपः॥ आकाशकाचदलवत्संस्थानाच्छादिताकृतिः॥३०॥ मेरुस्तंभस्थलोकेशपुरंध्रीशालभंजिकः ॥ चतुर्दशापवरकस्त्रिगर्त्तोभानुदीपकः ॥ ३१ ॥ कोणस्थभूत वल्मीकव्याप्तपर्वतलोष्ठकः ॥ अनेकपुत्रजरठप्रजेशब्राह्मणास्पदम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—श्रीदेवीजी बोली—संस्कारजन्य स्मृतिमात्रसे भ्रमरूप पूर्व सृष्टि जैसे उत्पन्न हुई है उसीप्रकार स्वप्नके भ्रमके समान यहभी भान होतीहै वह मैं आपसे कहतीहूं सुनो ॥२९॥ चिदाकाशके अज्ञानसे आवृत्त भागमें उसमेंभी स्रष्टाके अन्तःकरण भागमें, आकाशरूप कांचके दलके समान नील पदार्थसे आच्छादित शरीरवाला संसाररूपी मण्डपहै ॥३०॥ मेरुरूपी स्तम्भपर स्थित लोकपाल और उनकी स्त्री जिस (मण्डप) में प्रतिमाके समान हैं चतुर्दश भुवन जिसमें अन्तर्गृहहैं, तीनों लोक जिसके गर्त (गढे) हैं सूर्य्य जिसके दीपक है ॥ ३१॥ कानोंमें स्थित दीमकके समान नगर आदिसे व्याप्त पर्वत और मृत खण्डहैं जिसमें अनेक पुत्रोंसे संयुक्त वृद्धब्रह्मारूपी ब्राह्मणके तुल्य वह मण्डपहै॥ ३२ ॥

जीवौघकोशकाराढ्योव्योमोर्ध्वतलकालिमा ॥ नभोनिवाससिद्धौघमशकाबद्धघुंघुमः ॥ ३३ ॥ पयोद गृहधूमोग्रजालावलितकोणकः ॥ वातमार्गमहावंशस्थितवैमानकीटकः ॥ ३४ ॥ सुरासुरादिदुर्बालली लाकलकलाकुलः ॥ लोकांतरपुरग्रामभांडोपस्करनिर्भरः ॥ ३५ ॥ सरःस्रोतोब्धिसरसीजलोक्षितमही तलः ॥ पातालभूतलस्वर्गभागभासुरकोटरः ॥ ३६ ॥ तत्रकस्मिंश्चिदेकस्मिन्कोणेप्वंबरकोटरे ॥ शै ललोष्ठतलेष्वेकोगिरिग्रामकगर्त्तकः ॥ ३७ ॥ तस्मिन्नदीशैलवनोपगूढेसाग्निःसदारःसुतवानरोगः ॥ गोक्षीरवान्राजभयाद्विमुक्तःसर्वातिथिधर्मपरोद्विजोभूत् ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये लीलोपाख्याने सकलजगद्भ्रांतिप्रतिपादनंनामाष्टादशःसर्गः ॥ १८ ॥

अर्थ—जीवोंके समूहरूपीकाश कृमिसे पूर्ण, उपरके स्थानमें आकाशरूप कृष्णतासहित, आकाश निवासी सिद्धोंके समूहरूपी मच्छरोंकी हानिकारक ध्वनि सहित ॥३३ ॥ मेघरूपी गृहके धूमकी भयंकर जालसे जिसका कोण व्याप्तहै, वायुमार्गरूपी महावंशमें स्थित विमानके कीटहै जिसमें ॥३४॥ सुर और असुररूपी दुष्ट बालकोंकी लीलाके कलकल शब्दसे व्याप्त, लोकान्तररूपी पुर और ग्रामरूपी भाण्ड (वर्तन) की सामग्रीसे पूर्ण ॥ ३५ ॥ तडाग, सोता, समुद्र, और तलाई आदिके जलसे जिसकी पृथिवी सींची गई हैं, पाताल, भूतल, और स्वर्गसे जिसका उदर प्रकाशमानहै ऐसा वह मण्डपरूपी संसारहै ॥ ३६ ॥ उस मण्डप शैल (पर्वत) और मृतिपण्डके किसी एक कोनोंमें पर्वतसे व्याप्त एक छोटा ग्रामहै ॥ ३७ ॥ नदी, पर्वत और वनसे घिरे हुये उस ग्राममें, स्त्रीपुत्र सहित, अग्निहोत्रके करनेवाले

रोगरहित, अनेक दूध देनेवाली गो तथा अन्य पशुओंसे युक्त, राजाके भयसे रहित, सर्व वर्णाश्रमके अतिथिओंकी पूजा और पोषण करनेवाला एक ब्राह्मणथा ॥ २८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे लीलोपाख्याने सकलजगद्भ्रान्ति प्रतिपादनं नामाष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

एकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

पद्मकी इस सृष्टिका पूर्वजन्मके कथनसे राजाका दर्शन और राज्यकी इच्छाके दृढ संकल्पसे जन्मका वर्णन इस १९ वें सर्गमें कियागयाहै ॥

॥ श्रीदेव्युवाच ॥ वित्तवेषवयःकर्मविद्याविभवचेष्टितैः ॥ वसिष्ठस्यैवसदृशोनतुवासिष्ठचेष्टितः ॥ १॥ वसिष्ठइतिनाम्नासीतस्याभूदिंदुसुंदरी ॥ नाम्नात्वरुंधतीभार्याभूमिव्योमन्यरुंधती ॥ २ ॥ वित्तवेषवयःकर्मविद्याविभवचेष्टितैः ॥ समैवसाप्यरुंधत्यानतुचेतनसंतया ॥ ३ ॥ अकृत्रिमप्रेमरसाविलासालसगामिनी ॥ सास्यसंसारसर्वस्वमासीत्कुमुदहासिनी ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीदेवीजी बोली-धन, वेष, अवस्था, कर्म, विद्या, और ऐश्वर्य्यआदिकी चेष्टासे वह ब्राह्मण वसिष्ठ सदृशहीथा परन्तु इक्ष्वाकुवंशकी पुरोहिताई और रामचन्द्रजीको उपदेश देने आदि कार्य्यमें वसिष्ठके सदृश न था ॥१॥ उस ब्राह्मणका नाम वसिष्ठथा, उसकी स्त्री चन्द्रमाके समान सुन्दरी स्वर्गकी अरुन्धतीके समान पृथिवीरूपी स्वर्गकी अरुन्धती नामवालीथी ॥ २ ॥ धनावेष अवस्था और विद्या ऐश्वर्य आदिकी चेष्टामें वहभी अरुन्धतीके समानथी परन्तु उसके जीवकी सत्ता अरुन्धतीके समान न थी, तात्पर्य्य यह कि प्रसिद्ध वसिष्ठ और अरुन्धती तत्त्वज्ञानीथे और ये वसिष्ट अरुन्धती भावी जन्ममें ज्ञानी होनेवालेथे इसलिये इस जन्ममें इनका जीव अज्ञानीथा ॥ ३ ॥ यह अरुन्धती पतिमें सहज प्रेम करनेवाली विलासवती मन्दगामिनी, और कुमुदके सदृश हासवाली अपने पतिकी संसारमें सर्वस्व धनरूपथी ॥ ४ ॥

सविप्रस्तस्यशैलस्यसानौसरलशाद्वले ॥ कदाचिदुपविष्टःसन्ददर्शाधोमहीपतिम् ॥ ५ ॥ समग्रपरिवारेणयांतमाखेटकेच्छया ॥ महतासैन्यघोषेणमेरोरिवबिभित्सया ॥ ६ ॥ चामरैःकीर्णं चंद्रांशुपताकाभिर्लतावनं ॥ कुर्वाणंखंसितच्छत्रमंडलैरूप्यकुट्टिमम् ॥७॥ अश्वपादूत्खनत्क्ष्माजरेणुपूरावृतांबरम् ॥ हास्तिकोत्तंभितकरवाताट्टालकगोपितम् ॥ ८ ॥

अर्थ—श्रीदेवीजी बोली-सम और हरित् तृणसे ढकी हैं भूमि जिसकी ऐसे उस पर्वतके शिखरपर किसी समय बैठा हुआ वह ब्राह्मण, समग्र परिवारके साथ और सेनाके बडे शब्दसे मानों सुमेरुको विदीर्ण करनेवाले अहेरकी इच्छासे जातेहुये नीचेकी भूमिपर एक राजाको देखा॥५॥६॥वह राजा चमर और पताकोंसे सत्तायुक्त वनको चन्द्रमाके किरणसे व्याप्त करनेवाला, श्वेत छत्रोंके समूहोंसे आकाश मण्डलको रूप (चान्दी) की अटारी बनानेवाला, ॥ ७॥ घोडोंकी टापोंसे पृथिवीकी रेणुसे आकाशमण्डलको पूर्ण करनेवाला, हाथिओंके समूहोंपर स्थित, सूर्य्यके किरण और वायुको रोकनेवाले, सोने चान्दी और मोतिओंसे बनेहुये आट्टालको (छतों) से रक्षित, ॥ ८ ॥

महाकलकलावर्तद्रवद्दिग्भूतमंडलम् ॥ कवत्कांचनमाणिक्यहारकेयूरमंडलम् ॥ ९ ॥ तमालोक्यमहीपालमिदंचिंतितवानसौ ॥ अहोनुरम्यानृपतासर्वसौभाग्यभासिता ॥ १० ॥ पदातिरथहस्त्यश्वपताकाच्छत्रचामरैः ॥ कदास्यांदशदिक्कुंजपूरकोहंमहीपतिः ॥ ११ ॥ कदामेवायवःकुंदमकरंदसुगंधयः ॥ पास्यंत्यंतःपरस्त्रीणांसुरतश्रमसीकरान् ॥ १२ ॥

अर्थ—महाकलकल शब्दोंसे आवर्तके समान दशोंदिशाके प्राणिओंको इधर उधर भगानेवाला, तथा हीरे और माणिक्य आदिसे जडेहुये सुवर्णके हार और बिजापठ आदि आभूषणोंसे प्रकाशमान था ॥ ९ ॥ उस राजाको देखके इस ब्राह्मणने यह चिन्तन किया कि, अहो ! सम्पूर्ण सौभाग्यसे शोभित यह राजपन कैसा रमणीय है ॥ १० ॥ पैदल, रथ, हांथी घोडे पताका, छत्र और चामरोंसे दशोंदिशाओंके कुंजोंको पूर्ण करनेवाला राजा मैं कब होऊंगा ? ॥ ११ ॥ वह कौनसा समय आवेगा कि कुंदके मकरन्द (रस) से सुगन्धित शीतल मन्द वायु हमारी अन्तःपुरकी स्त्रीयोंके सुरतके श्रमके जलकणको पान करेंगे ॥ १२ ॥

कर्पूरेणपुरंध्रीणांपूर्णेनयशसादिशाम् ॥ इंदूदयावदातानिकदाकुर्यांमुखान्यहम् ॥ १३ ॥ इत्थंततःप्रभृत्येपविप्रःसंकल्पवानभूत् ॥ स्वधर्मनिरतोनित्यंयावज्जीवमतंद्रितः ॥ १४ ॥ हिमाशनिरिवांभोजंजरीकर्तुमादृता ॥ जलेजर्जरितेवाथजराद्विजमुपाययौ ॥ १५ ॥ आसन्नमरणस्याथभार्याम्लानिमपाययौ ॥ तस्यशाम्यतिपुष्पतौलतेवग्रीष्मभीतितः ॥ १६ ॥

अर्थ—कर्पूरयुक्त सुगन्धित चन्दनसे अन्तःपुरकी पुरन्ध्रियों (स्त्रियों) का और यशसे दशोदिशाओंका मुख चन्द्रमाके उदयके समान प्रकाशमान मैं कब करूंगा ॥ १३ ॥ इसीप्रकार उसीसमय सेलेके अपने धर्ममें तत्पर, आलस्यरहित अपना जीवन नित्य संकल्प करतारहा ॥ १४ ॥ इसके अनन्तर इस ब्राह्मणको शिथिल करनेको आदरयुक्त वृद्धावस्था ऐसे आके प्राप्त हुई जैसे जलमें कमलको शिथिल करनेके लिये हिमरूपी वज्र ॥ १५ ॥ इसके पश्चात् उस ब्राह्मणकी मृत्यु निकट आनेपर उसकी स्त्री ऐसे भ्रान्तिको प्राप्तहुई जैसे वसन्तऋतुके शान्त होनेपर ग्रीष्मके भयसे लता ॥ १६ ॥

मामथाराधितवतीसाततस्त्वमिवांगना ॥ अमरत्वंसुदुष्प्रापंबुद्ध्वेमंसावृणोद्वरम् ॥ १७ ॥ देविस्वमंडपादेवजीवोभर्तुर्मृतस्यमे ॥ मायासीदित्यतस्तस्याःसएवांगीकृतोमया ॥ १८ ॥ अथकालवशाद्विप्रःसपंचत्वमुपाययौ ॥ तस्मिन्नेवगृहाकाशेजीवाकाशतयास्थितः ॥ १९ ॥ संपन्नःप्राक्तनानल्पसंकल्पवशतःस्वयम् ॥ आकाशवपुरेवैपपतिःपरमशक्तिमान् ॥ २० ॥

अर्थ—इसके अनन्तर तुमारे समान उस अंगनाने मेरी प्रार्थना की, और अमर पदवीको दुष्प्राप जानके उसने मुझसे यह वरदान मागा ॥ १७ ॥ कि हे देवि ! मरेहुये मेरे पतिका जीव मेरे अन्तःपुरसे बाहर न जाय उसके अनन्तर वही वरदान देना मैंने अंगीकार किया ॥ १८ ॥ इसके अनन्तर कालवशसे उस ब्राह्मणकी मृत्यु हुई और अन्तःकरणकी वासनासहित ब्रह्मजीवाकाश रूपसे उसी गृहाकाशमें स्थित रहा ॥ १९ ॥ पूर्वजन्मके महान् अपने संकल्पके कारणसे आकाश शरीरवाला यही ब्राह्मण परम शक्ति (देवता और मनुष्यकी शक्तिवाला) राजा होगया ॥ २० ॥

प्रभावजितभूपीठःप्रतापाक्रांतविष्टपः ॥ कृपापालितपातालस्त्रिलोकविजयीनृपः ॥ २१ ॥ कल्पाग्निररिवृक्षाणांस्त्रीणांमकरकेतनः ॥ मेरुर्विपयवायूनांसाध्वब्जानांदिवाकरः ॥ २२ ॥ आदर्शःसर्वशास्त्राणामर्थिनांकल्पपादपः ॥ पादपीठंद्विजाग्र्याणांराकाधर्मामृतत्विपः ॥ २३ ॥ स्वगृहाभ्यंतराकाशचित्ताकाशमयात्मनि ॥ तस्मिन्द्विजेशवीभूतेभूताकाशशरीरिणि ॥ २४ ॥

अर्थ—वह राजा अपने प्रभावसे भूतलको जीतनेवाला, प्रतापसे त्रिविष्टप (स्वर्ग) पर आक्रमणकारी, कृपासे पाताल लोकका पालनकरता इसप्रकार त्रिलोकविजयी ॥ २१ ॥ शत्रुरूपी वृक्षोंका कल्पाग्नि स्त्रियोंका कामदेव, विषयरूपी वायुओंको मेरूके समान अकम्पनीय, साधुजनरूपी कमलोंका सूर्य्य ॥ २२ ॥ सब शास्त्रोंका दर्पण, याचकोंके लिये कल्पवृक्ष, श्रेष्ठ ब्राह्मणके चरणका सिंहासन, धर्मरूपी चन्द्रमाकी पूर्णिमा सी ॥ २३ ॥ चित्त संस्कारसहित ब्रह्माकाशमय आत्मामें भूताकाश शरीरधारी उस ब्राह्मणके उसी गृहके अन्तराकाशमें मृतक होनेपर ॥ २४ ॥

सातस्यब्राह्मणीभार्याशोकेनात्यंतकर्शिता ॥ शुष्केवमापशिंबीकात्हृदयेनद्विधाभवत् ॥ २५ ॥ भर्त्रासहशवीभूतादेहमुत्सृज्यदूरतः ॥ आतिवाहिकदेहेनभर्त्तारंसमुपाययौ ॥ २६ ॥ नदीनिम्नातामिवतंभर्त्तारमनुसृत्यसा ॥ आजगामविशोकत्वंसावासंतीवमंजरी ॥ २७ ॥ तत्रास्यविप्रस्यगृहाणिसंतिभूस्थावरादीनिधनानिसंति ॥ अद्याष्टमंवासरमास्यमृत्योर्जीवोगिरिग्रामककंदरस्थः ॥ २८ ॥

इत्यार्षेवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्यानेब्राह्मणमरणंनामैकोनविंशतितमः सर्गः ॥ १९ ॥

अर्थ—उसकी वह ब्राह्मणीभार्या शोकसे अत्यन्त पीडित सूखीहुई उडदकी छीमीके समान हृदयसे दोटूक होगई ॥ २५ ॥ वह ब्राह्मणी पतिके साथ मृतक होके इस स्थूलशरीरको दूर त्यागकर सूक्ष्म शरीरसे अपने पतिके निकट गई ॥ २६ ॥ जैसे नदी नीची भूमिकी ओर जाती है वैसेही पतिका अनुसरण करके ऐसे शोकरहित होगई जैसे वसन्तकी लता ॥ २७ ॥ उस गिरिनाम ग्राममें इस ब्राह्मणके अनेक गृह हैं और पृथिवी आदि स्थावर धनभी हैं तथा ग्रावे उसी गिरिग्रामके गृहमण्डपमें है और उस ब्राह्मणकी मृत्युका आज आठवा दिनहै ॥ २८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने ब्राह्मणमरणं नामैकोनविंशतितमः सर्गः ॥ १९ ॥

विंशः सर्गः ॥ २० ॥

पूर्वजन्मका चरित सुननेसे लीला असंभावनासे भयभीत होगई उसको देवीने अनेक दृष्टान्त और युक्तियोंसे बोधन कियाहै इस विषयका वर्णन इस वीशवे २० सर्गमें किया गया है ॥

॥ श्रीदेव्युवाच ॥ सतेभर्त्ताद्यसंपन्नोद्विजोभूपत्वमागतः ॥ यासावरुंधतीनामब्राह्मणीसात्वमंगने॥१॥ इहेमौकुरुतोराज्यंतौभवंतौसुदंपती ॥ चक्रवाकाविवनवौभुविजातौशिवाविव ॥ २ ॥ एषतेकथितः सर्वःप्राक्तनःसंसृतिक्रमः ॥ भ्रांतिमात्रकमाकाशमेवंजीवस्वरूपधृक् ॥ ३ ॥ भ्रमादस्माच्चिदाकाशे भ्रमोयंप्रतिबिंबितः ॥ असत्यएववासत्योभवतोर्भवभंगदः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीदेवीजी बोली–हे अंगने वही ब्राह्मण राजा होके इससमय तुमारा पति हुआहै और जो उसकी ब्राह्मणी अरुन्धतीहै वह तुमहो ॥ १ ॥ चक्रवाक और चक्रवाकी नित्यनूतन प्रेम करनेवाले, पृथिवीपर पार्वती और महादेवके समान उत्पन्न तुम दोनों स्त्रीपुरुष होके यहांपर राज्य करतेहो ॥ २ ॥ इसप्रकार तुमारी पूर्वजन्मकी सृष्टिका क्रम कहा, इस रीतिसे ब्रह्माकाशही भ्रममात्रसे जीवका स्वरूप धारण करताहै, अर्थात् दोनों सृष्टिके समान पूर्वसृष्टिभी भ्रमसेहीहै ॥ ३ ॥ इस भ्रमसे चिदाकाशमें दूसरा भ्रम (ब्राह्मण ब्राह्मणीके जन्मसे राजा रानीका जन्मरूप) यह प्रतिविम्बित हुआहै असत्य (निजरूपसे) अथवा सत्य (अधिष्ठान रूपसे) हो परन्तु तुम दोनोंके संसारको नाश करनेवाला है ॥ ४ ॥

तस्माद्भ्रांतिमयःकःस्यात्कोवाभ्रांत्युज्झितोभवेत् ॥ सर्गोनिरर्गलानर्थबोधान्नान्योविजृंभते ॥५॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इत्याकर्ण्यचिरंचारुविस्मयोत्फुल्ललोचना ॥ भूत्वोवाचवचोलीलालीलालसपदाक्षरम् ॥६॥ लीलोवाच ॥ देविभोस्त्वद्वचोमिथ्याकथंसंपन्नमीदृशम् ॥ क्वविप्रजीवःस्वगृहेक्वेमेवयमिहस्थिताः ॥७॥ तादृग्लोकांतरंसाभूस्तेशैलास्तादिशोदश ॥ कथंभांतिगृहस्यांतर्मद्भर्त्तायेष्ववस्थितः ॥८॥

अर्थ—इस कारणसे किससर्ग (सृष्टि) को भ्रान्तिमय कहैं और किसको भ्रान्तिरहित ! यह अपने रूपसे सर्वथा अनर्थमूल मिथ्याज्ञानरूपसे और कुछ नहीं ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–इसको सुनकर चिरकालतक विस्मयसे विकसित नेत्रवाली होके वह लीला लीलासे मन्द २ बोली ॥ ६ ॥ हे देवि ! आपका वचन तो मिथ्या नहीं है परन्तु यह कैसे हुआ ! कहांतो अपने गृहमें ब्राह्मणका जीव ! और कहां ये सब हम लोग स्थितहैं ॥ ७ ॥ वैसा एक लोकान्तर ! वह पृथिवी ! वे पर्वत ! वे दशोदिशायें ! ये सब एक गृहके भीतर कैसे भान होतेहैं जिनमें कि मेरा पति स्थितहै ८

मत्तऐरावतोबद्धःसर्षपस्येवकोटरे ॥ मशकेनकृतंयुद्धंसिंहौघैरणुकोटरे ॥ ९ ॥ पद्माक्षेस्थापितोमेरुर्निगीर्णोभृंगसूनुना ॥ स्वप्नाब्दगर्जितंश्रुत्वाचित्रंनृत्यंतिबर्हिणः ॥ १० ॥ असमंजसमेवैतद्यथासर्वेश्वरेश्वरि ॥ तथागृहांतःपृथ्वीचशैलाश्चेत्यसमंजसम् ॥ ११ ॥ यथावदेतद्देवेशिकथयामलयाधिया ॥ प्रसादानुगृहीतेहिनोद्विजंतेमहौजसः ॥ १२ ॥

अर्थ—सर्पपालक (मदारी) की पिटारीमें मत्त ऐरावत हांथी बांधागया, मच्छरने एक अणुके भीतर सिंहके समूहोंके साथ युद्ध किया ! ॥ ९ ॥ रुद्राक्षके भीतर सुमेरु पर्वतको भ्रमर निगल गया ! स्वप्नके मेघकी गर्जना सुनके मोर लोग विचित्र नृत्य करतेहैं ॥ १० ॥ हे सुरेश्वरि जैसे ये सब बात असंभव हैं ऐसेही एक गृहके भीतर पृथिवी और पर्वत आदि सब असंभवहैं ॥ ११ ॥ हे देवि ! जिस प्रकार यह संभव हो वह अपनी निर्मल बुद्धिसे यथार्थ कहो क्योंकि कृपासे बद्ध महातेजस्वी जन घबराते नहीं ॥ १२ ॥

॥ श्रीदेव्युवाच ॥ नाहंमिथ्यावदामीदंयथावच्छृणुसुंदरि ॥ भेदनंनियतीनांहिक्रियतेनास्मदादिभिः ॥ १३ ॥ विभिद्यमानामन्येनस्थापयाम्यहमेवयाम् ॥ मर्यादांतांमयाभिन्नांकोऽपरःपालयिष्यति ॥१४॥ सग्रामद्विजजीवात्मातस्मिन्नेवस्वसद्मनि ॥ व्योम्न्येवेदंमहाराष्ट्रंव्योमात्मैवप्रपश्यति ॥ १५ ॥ प्राक्तनी सास्मृतिर्लुप्तायुवयोरुदितान्यथा ॥ स्वप्नेजाग्रत्स्मृतिर्यद्वदेतन्मरणमंगने ॥ १६ ॥

अर्थ—श्रीदेवी बोली–हे सुन्दरि ! मैं मिथ्या नहीं बोलती, जिसप्रकार यह हो सकताहै वह यथावत् सुनो, क्योंकि हमलोग वेदके नियम (नानृतं वदेत्) को नहीं तोडती ॥ १३ ॥ अन्य लोगोंसे तोडीहुई मर्य्यादाको मैं स्थापित करतीहूं, यदि मैंही वेदके नियमको तोडूंगी तो दूसरा कौन उसे पालन करसकताहै ॥ १४ ॥ उस गिरिग्रामके ब्राह्मणका जीवात्मा अपने स्थानहीमें राजा होनेकी वासनाका उपहित चिदाकाश रूपसे आकाशमेंही इस सब महा-

राज्यको देखताहै ॥ १९ ॥ हे वाले ! तुम दोनोंकी पूर्वजन्मकी स्मृति ऐसे नहीं उदय हुई है, जैसे स्वप्नमें जाग्रत्की स्मृति नहीं रहती इसप्रकार इस मरणकी दशा जानो ॥ १६ ॥

यथास्वप्नेत्रिभुवनंसंकल्पेत्रिजगद्यथा ॥ यथाकथार्थसंग्रामोमरुभूमौजलंयथा ॥ १७ ॥ तस्यब्राह्मणगेहस्यसशैलवनपत्तना ॥ इयमंतःस्थिताभूमिःसंकल्पादर्शयोरिव ॥१८॥ असत्यैवेयमाभातिसत्येवघनसर्गता ॥ तस्मात्सत्यावभासस्यचिव्द्योम्नःकोशकोटरे ॥१९॥ असत्याद्यत्ससुत्पन्नंस्मृत्यानामतद्प्यसत् ॥ मृगतृष्णातरंगिण्यांतरंगोपिनसत्यतः ॥ २० ॥

अर्थ—जिस स्वप्न और संकल्पमें त्रिभुवनहै, कथाके अर्थमें जैसे संग्रामहै, मरु भूमिमें जैसे जलहै ॥ १७ ॥ इसीप्रकार संकल्प और दर्पणके समान उसब्राह्मणके गृहमें पर्वत, वन और नगर आदि सहित यह भूमि स्थितहै॥१८॥ इसलिये सत्यप्रकाशशील चिदाकाश कोशके भीतर यह अतिघन असत्य सृष्टि सत्यके समान भासती है ॥ १९ ॥ जो पूर्वअसत्य सृष्टिसे स्मृति (संस्कार) हुआहै वहभी असत्यही है, क्योंकि मृगतृष्णाकी नदीमें तरंगभी असत्यहीहै॥२०

इदंत्वदीयंसदनंतद्देहाकाशकोशगम् ॥ विद्धिमांत्वांचसर्वंचतच्चिद्व्योमैवकेवलम् ॥ २१ ॥ स्वप्नसंभ्रमसंकल्पस्वानुभूतिपरंपराः ॥ प्रमाणान्यत्रमुख्यानिसंबोधायप्रदीपवत् ॥ २२ ॥ स्थितोब्राह्मणगेहांतर्द्विजजीवस्तदंबरे ॥ ससमुद्रवनापृथ्वीस्थिताब्जइवषट्पदः ॥ २३ ॥ तस्याःकस्मिंश्चिदेकस्मिन्पेलवेकोणकोटरे ॥ इदंपत्तनदेहादिकेशोंडूकइवांबरे ॥ २४ ॥

अर्थ—उस ब्राह्मणके गृहके कोशके अन्तर्गत इस अपने गृहको, मुझे, अपनेको तथा और सब पदार्थोंको केवल चिदाकाशरूपही जानो ॥ २१ ॥ स्वप्न, संभ्रम, संकल्प, और अपने अनुभवकी परंपरा, सम्पूर्ण प्रपंचके मिथ्यात्वके निश्चय तथा आत्मज्ञानके लिये प्रदीपके समान मुख्य प्रमाणहैं ॥ २२ ॥ उस ब्राह्मणके गृहके भीतर ब्राह्मणजीव स्थितहै और उसी आकाशमें कमलके भीतर भ्रमरके तुल्यसमुद्र वन आदि सहित यह पृथिवीभी स्थितहै ॥२३॥ उस पृथिवीके किसी एक छोटे कोनेके भीतर यह सब नगर देहगृहादि ऐसेहैं जैसे निर्मलआकाशमें कुण्डलाकार केशका भ्रम ॥ २४ ॥

तस्मिन्नस्मिन्पुरेतन्वितदेवसदनंस्थितम् ॥ तस्मात्किंत्रसरेण्वंतर्जगद्वृंदमिवस्थितम् ॥२५॥ परमाणौपरमाणौसंतिवत्सेचिदात्मनि ॥ अंतरंतर्जगंतीतिकिंत्वेतन्नामशंक्यते ॥ २६ ॥ लीलोवाच ॥ अष्टमेदिवसेविप्रःसमृतःपरमेश्वरि ॥ गतोवर्षगणोस्माकंमातःकथमिदंभवेत् ॥ २७ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ देशदैर्घ्यंयथानास्तिकालदैर्घ्यंतथांगने ॥ नास्त्येवेतियथान्यायंकथ्यमानंमयाशृणु ॥ २८ ॥

अर्थ—हे तन्वि ! उस ब्राह्मणके स्थान और इस नगरके अन्तःकरणमें आरूढ होनेपरभी वह ब्राह्मणका स्थान ज्योंका त्यों (विना टूटे फूटे) स्थितहै, इसलिये त्रसरेणुके भीतर जगत् समूह स्थितहै इसमें क्या आश्चर्य्य है ॥ २५ ॥ हे पुत्रि ! चिदात्मामें परमाणु परमाणुके अन्तर अन्तरमें अनेक ब्रह्माण्ड स्थितहै इसलिये अल्पअवकाशमें इतना देश कैसे रहसकताहै यह शंका क्या करतीहो ॥ २६ ॥ लीलाजी बोली—हे परमेश्वरि ! आज उस ब्राह्मणको मरे केवल आठ दिवस हुये और हमलोगोंको राज्य करते हुये वर्षोंका समूह बीत गया, भला यह कैसे होसकताहै ? ॥ २७ ॥ श्रीदेवीजी बोली—हे अंगने जिसप्रकार देशमें दीर्घता नहीं है इसी प्रकार कालमेंभी दीर्घता नहीं है अर्थात् जैसे अल्प देशमें अधिक देश भान होताहै ऐसेही अल्पकालमें अधिक कालभी भान होताहै इनमें वास्तविक दीर्घता नहीं है, जैसे यह नहीं है वह मैं कहतीहुं तुम सुनो ॥२८॥

यथैतत्प्रतिभामात्रंजगत्सर्गावभासनम् ॥ तथैतत्प्रतिभामात्रंक्षणकल्पावभासनम् ॥ २९ ॥ क्षणकल्पंजगत्सर्वंत्वत्तामत्तात्मजन्मनां ॥ यथावत्प्रतिभासस्यवक्ष्येक्रममिमंशृणु ॥ ३० ॥ अनुभूयक्षणंजीवोमिथ्यामरणमूर्छनम् ॥ विस्मृत्यप्राक्तनंभावमन्यंपश्यतिसुव्रते ॥ ३१ ॥ तदेवोन्मेषमात्रेणव्योम्न्येवव्योमरूप्यपि ॥ आधेयोयमिहाधारेस्थितोहमितिचेतति ॥ ३२ ॥

अर्थ—जिसप्रकार यह जगत्की सृष्टिका भान होना केवल प्रति भा (बुद्धि) मात्रहै ऐसेही क्षण और कल्पका भान होनाभी केवल प्रतिभा मात्रहै॥२९॥ क्षण और कल्पादिरूप जो यह सम्पूर्ण जगत्है वह त्वत्तामत्तारूप अध्यासके आधीन जिनको आत्मका भ्रमहै उन्हीको भासताहै, और इस (क्षण कल्पादि) के भान होनेका यथावत्क्रम में कहतीहुं सुनो ॥ ३० ॥ हे सुव्रते ! यह जीव मिथ्या मरणकी मूर्च्छनाका क्षणभर अनुभव करके और पूर्वजन्मके भावको भूलकर दूसरा भाव देखताहै ॥३१॥ आकाशके सदृश स्वयं आधार देह आदिसे रहित होनेपरभी, मैं अभिप इस दूसरे आधारके ऊपर रहताहुं ऐसा एक निमिष मात्रमें उसी भावको स्मरण करने लगताहै ॥ ३२ ॥

हस्तपादादिमान्देहोममायमितिपश्यति ॥ यदेवचेततिवपुस्तदेवेदंसपश्यति ॥ ३३ ॥ एतस्याहंपितुः पुत्रोवर्षाण्येतानिसंतिमे ॥ इमेमेबांधवारम्याममेदंरम्यमास्पदम् ॥ ३४ ॥ जातोहमभवंबालोवृद्धियातो हमीदृशः ॥ बांधवाश्चास्यमेसर्वेतथैवविचरंत्यमी ॥ ३५ ॥ चित्ताकाशघनैकत्वात्स्वेप्येन्येपि भवंतिते ॥ एवंनामोदितेप्यस्यचित्तेसंसारखंडके ॥ ३६ ॥

अर्थ—हस्त और पाद आदि सहित यह मेरा शरीरहै ऐसा देखताहै, जैसे शरीरका इसको संस्कारसे स्मरण होताहै वैसाही अनुभव करताहै ॥ ३३ ॥ अमुकका मैं पिताहुं और अमुकका पुत्रहुं, इतने वर्षका मैं हुं, ये सुन्दर मेरे बन्धुहैं और मेरा अति रमणीय स्थानहै ॥ ३४ ॥ प्रथम मैं उत्पन्न हुआ, पुनः बालक हुआ, इसप्रकार मैं वृद्धिको प्राप्त हुआ, और ये मेरे सब भाई वैसेही विचरते हैं ॥ ३५ ॥ संसारखण्ड चित्तके देहभावमें प्राप्त होनेपरभी, देहभावमें प्राप्त चित्त और आत्माकाशके दृढतर एकताके अध्याससे अन्यभी अपने होजाते हैं ॥ ३६ ॥

नकिंचिदप्यभ्युदितंस्थितंव्योम्नैवनिर्मलम् ॥ स्वप्नेद्रष्टरियद्वाचित्तद्वदृश्येचिदेवसा ॥ ३७ ॥ सर्वगैक तयायस्मात्सास्वप्नेदृष्टदर्शना ॥ यथास्वप्नेतथोदेतिपरलोकदृगादिभिः ॥ ३८ ॥ परलोकेयथोदेतितथै वेहाभ्युदेतिसा ॥ तत्स्वप्नपरलोकेहलोकानामसतांसताम् ॥ ३९ ॥ नमनागपिभेदोस्तिवीचीनामिव वारिणि ॥ अतोजातमिदंविश्वमजातत्वादनाशिच ॥ ४० ॥

अर्थ—यथार्थमें कुछभी उत्पन्न नहीं हुआ केवल निर्मल आकाशरूपही स्थितहै स्वप्नमें द्रष्टामें चित्की जो दशा है वही दशा जाग्रत्के दृश्यमेंभी चित् की है ॥ ३७ ॥ स्वप्नमें द्रष्टा और दृश्यभावसे कल्पित भेदवाले सब पदार्थोंमें व्याप्तचित् एकरस रहती है दृश्य और दर्शनका बाध होनेपरभी वह चित् एकही रूपसे दृष्टहै, इसलिये स्वप्नमें चित् जैसे उदय होती है वैसीही जाग्रत् और परलोक दृष्टि आदिमेंभी उसका रूपहै ॥ ३८ ॥ चेतनका रूप जैसा परलोकमें है वैसाही इस लोकमेंभी है, क्योंकि स्वप्न, परलोक, तथा इस लोकमें पदार्थ सब असतहैं और भ्रान्तिसे सत् भासते हैं ॥ ३९ ॥ जलमें उत्पन्न तरंगोंसे और जलसे कुछभी भेद नहीं है. इसलिये भ्रान्तिसे उत्पन्नभी यह विश्व अधिष्ठानरूपसे अजात होनेके कारण यह अविनाशीभी है ॥ ४० ॥

स्वरूपत्वात्तुनास्त्येवयच्च भातिचिदेवसा ॥ तथैवचेत्यनिर्हीणापरमव्योमरूपिणी ॥ ४१ ॥ सचेत्यापि तथैवैषापरमव्योमरूपिणी ॥ तस्माच्चेत्यमतोनान्यद्वीचित्वादीवत्वारितः ॥ ४२ ॥ वीचित्वंचरसेनास्ति शशशृंगवदेवहि ॥ सैवचेत्यमिवापन्नास्वभावादच्युताप्यलम् ॥ ४३ ॥ तस्मान्नास्त्येवदृश्योर्थः कुतोऽ तोद्रष्टृदृश्यधीः ॥ निमिषेणैवजीवस्यमृतिमोहादनंतरम् ॥ ४४ ॥ त्रिजगदृश्यसर्गश्रीः प्रतिभासुपगच्छति ॥ यथादेशंयथाकालंयथारंभंयथाक्रमम् ॥ ४५ ॥ यथोत्पादंयथामातृयथापितृयथौरसम् ॥ यथावयोयथा संविद्यथास्थानंयथेहितम् ॥ ४६ ॥ यथाबंधुयथाभृत्यंयथेहास्तमयोदयम् ॥ अजातएवजातोहमितिचे ततिचिद्वपुः ॥ ४७ ॥ देशकालक्रियाद्रव्यमनोबुद्धींद्रियादिच ॥ झटित्येवमृतेरंतेवपुःपश्यतियौवने ॥ ४८ ॥

अर्थ—परमार्थमें आत्मरूप यह जगत् होनेसे अपने रूपसे नहीं है, और जो भान होताहै वह परम आकाशरूप विषयसे रहित अधिष्ठान चेतनही सम्पूर्ण प्रमाणोंसे भासताहै ॥ ४१ ॥ विषयसहितभी यह चित् निर्मल आकाशरूपही है क्योंकि आरोपित विषयसे अधिष्ठानकी कुछ हानि नहीं होती, इसलिये इस चित्से पृथक् तरंग कुछ नहीं ॥ ४२ ॥ रस तन्मात्रमें तरंग नहीं है क्योंकि जिव्हा इन्द्रियसे उसका स्वाद नहीं मिलता, नेत्रसे भानतो दूसरे भूतके सम्बन्धसे होताहै, इसलिये वह (जलका तरंग) शशशृंगके समानहै, इसीप्रकार अपने स्वभावसे अचलितभी चित् चेत्य (विषय) सहितके समान भासती है ॥ ४३ ॥ इसलिये दृश्यपदार्थ कुछभी नहीं हैं तो द्रष्टा और दृश्यकी बुद्धि कहांसे होसकती है, केवल अज्ञानसेही इस जीवके मृत्युके एक निमिषके अनन्तरही, देश, काल, आरंभ, क्रम उत्पत्ति, माता पिता, भाई, अवस्था, ज्ञान, स्थान, चेष्टा, बन्धु, भृत्य, और इस लोकमें सूर्योदय और सूर्यास्तके अनुसार, तीनों लोकके दृश्यके सर्ग (सृष्टि) की शोभा भान होने लगती है और अनुत्पन्नभी यह चित् मैं उत्पन्न हुईहों ऐसा स्मरण करने लगती है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ मरनेके अनन्तरही राक्षसयोनिमें जन्म होनेसे शीघ्रही माताके समान अवस्था प्राप्त होनेसे युवा अवस्थामें देश, काल, क्रिया, द्रव्य, मन, बुद्धि इन्द्रियादि सहित शरीर देखने लगताहै ॥ ४८ ॥

एषामातापिताह्येषबालोभूवमहंत्विति ॥ नानुभूतोनुभूतोवायःस्यात्स्मृतिमयःक्रमः ॥ ४९ ॥ पश्चादुदे त्यसौतस्यपुष्पस्येवफलोदयः ॥ निमिषेणैवमेकल्पोगतइत्यनुभूयते ॥ ५० ॥ रात्रिर्द्वादशवर्षाणिहरि श्चंद्रेतथाह्यभूत् ॥ कांताविरहिणामेकंवासरंवत्सरायते ॥ ५१ ॥ मृतोजातोहमन्योमेपितेतिस्वप्नता

स्विव ॥ अभुक्तस्यैवभोगस्यभुक्तधीरुपजायते ॥ ५२ ॥ भुक्तेप्यभुक्तधीर्दृष्टमित्यलंकितवादिषु ॥ शून्य मार्कीर्णतामेतितुल्यंव्यसनमुत्सवैः ॥ विप्रलंभोपिलाभश्चमदस्वप्नादिसंविदि ॥ ५३ ॥ तैक्ष्ण्यंयथाम रिचबीजकणेस्थितंस्वंस्तंभेषुचार्चितपुत्रकजालमंतः ॥ दृश्यंत्वनन्यदिदमेवमजेस्तिशांतंतस्यास्तिवं धनविमोक्षदृशःकुतःकाः ॥ ५४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने परमार्थप्रतिपादनंनाम विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥

अर्थ—यह मेरी माताहै, यह मेरा पिता, मैं स्वयं बालक हुआ, इत्यादि अनुभूत वा अननुभूत जो स्मृतिका क्रमहै वह पश्चात् ऐसे उत्पन्न होताहै, जैसे पुष्पमें फल, और एक निमिषमेंही यह अनुभव करताहै कि मुझे कल्प बीत गया ॥ ४९ ॥ ५० ॥ राजा हरिश्चन्द्रको एक रात्रिमें १२ बारह वर्षका अनुभव हुआ, और विरही जनोंको एक दिन भी वर्षके समान भान होताहै ॥ ५१ ॥ एक घडीके स्वप्न आदिमें मैं मरगया, और उत्पन्न हुआ, मेरा पिता अन्य है, जो विषय नहीं भोगा उसके विषयमें भी यह बुद्धि होती है कि मैंने इसको भोग लिया ॥ ५२ ॥ भुक्त पदार्थमें भी अ-भुक्त बुद्धि अज्ञानी जनोंमें देखीगई है, और इसी अज्ञानके प्रतापसे न केवल असत्का भान होताहै किन्तु सत्के वि-रूद्ध भी भान होताहै जैसे मद और स्वप्न आदिके ज्ञानमें शून्य स्थान जनसमाजसे व्याप्त होजाताहै, दुःख उत्सवके समान भान होने लगताहै, और अलाभभी लाभ प्रतीत होताहै ॥ ५३ ॥ जिस प्रकार मरिचके बीजके कणमें तीक्ष्णता और स्तम्भमें प्रतिमाका समूह अभेदरूपसे स्थितहै, इसी प्रकार अज चिदात्मामें यह सम्पूर्ण विश्व शान्तरूपसे स्थित है, उसको बन्ध और मोक्षदृष्टि कैसी ? और कहांसे ? अर्थात् निमित्तादि न होनेसे यह सब असंभवहै ॥ ५४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने भाषानुवादे परमार्थप्रतिपादनं नाम विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥

एकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

विचारसे स्थूल प्रपंच सूक्ष्म रूपहै, सूक्ष्म अविद्यारूपहै अविद्याभी चिन्मात्र है इस विषयको देवीने लीलाको २१ वे सर्गमें बोधन किया है ॥

॥ श्रीदेव्युवाच ॥ प्रतिभांतिजगंत्याशुमृतिमोहादनंतरम् ॥ जीवस्योन्मीलनादक्ष्णोरूपाणीवाखिला न्यलम् ॥ १ ॥ दिक्कालकलनाकाशधर्मकर्ममयानिच ॥ परिस्फुरंत्यनंतानिकल्पांतस्थैर्यवंतिच ॥ २ ॥ नानुभूतंनयद्दृष्टंतन्मयाकृतमित्यपि ॥ तत्क्षणात्स्मृतितामेतिस्वप्नेस्वमरणंयथा ॥ ३ ॥ भ्रांतिरेवमनंते यंचिद्व्योमव्योम्निभासुरा ॥ अपकुड्याजगन्नाम्नीनगरीकल्पनात्मिका ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीदेवी बोली—मरणरूपी मोहके अनन्तरही जीवको सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ऐसे भान होने लगते हैं जैसे ने-त्रके खोलने मात्रसे सम्पूर्ण रूप ॥ १ ॥ देश, कालका सम्बन्ध, आकाश, धर्ममय स्वर्गादि, कर्ममय गृहादि और क-ल्पान्त पर्य्यन्त स्थायी पृथिवी आदि चारोंओरसे फुरने लगते हैं ॥ २ ॥ न तो जिस बातको अनुभव किया, और न जिसको देखा उसको मैंने किया, यह सब एक क्षणमें ऐसे स्मरणहो आताहै जैसे स्वप्नमें अपना मरण ॥ ३ ॥ आधार शून्य कल्पनामय नगरीके समान भासमान, यह जगत् नामवाली अनन्त भ्रान्ति मायाकाशमें होरही है ॥ ४ ॥

इदंजगदयंसर्गःस्मृतिरेवेतिजृंभते ॥ दूरकल्पक्षणाभ्यासविपर्यासैकरूपिणी ॥ ५ ॥ नानुभूतानुभूता चज्ञप्तिरित्थंद्विरूपिणी ॥ पूर्वकारणरिक्तैवचिद्रूपैवप्रवर्त्तते ॥ ६ ॥ नानुभूतेनुभूतत्वसंविदंतरुदेत्यपि ॥ स्वप्नभ्रमादावन्यस्मिन्पितरीवपितुःस्मृतिः ॥ ७ ॥ कदाचित्स्मृतितांत्यक्त्वाप्रतिभामात्रमेवसत् ॥ भा-र्तिप्रथमसर्गेषुरूपेणतदनुक्रमात् ॥ ८ ॥

अर्थ—सन्निहित देशकालमेंभी देशकालकी दूरीसे और निष्क्रियमें क्षण तथा उसका अभ्यास घडी मुहूर्त, दिन पक्ष, वर्ष कल्पादिरूप भ्रमका स्वरूप धारण करनेवाली जो स्मृतिका कारण वासना है वही इस जगत् और सृष्टि-रूपसे अपने शरीरका विस्तार कररही है ॥५॥ अनुभूत और अननुभूत ये दो रूप ज्ञप्ति (ज्ञानके) हैं और पूर्व कारणसे

शून्य चिद्रूपसेही सृष्टि करनेमें प्रवृत्त है ॥ ६ ॥ अननुभूत (अनुभव न कियेहुये) विषयमेंभी अनुभव किया ऐसा ज्ञान उत्पन्न होता है, जैसे वायुके भ्रम आदिसे दूसरेके पितामें अपने पिताकी स्मृति ॥ ७ ॥ कभी प्रजापतिकी पूर्व सृष्टियोंमें स्मरणको त्यागकर अनुभवमात्रही विद्यमान रहता है और वही उसके क्रमसे स्मृतिरूपसे भासता है ॥ ८ ॥

दृश्यंत्रिभुवनादीदमनुभूतंस्मृतौस्थितम् ॥ केषांचित्तन्विकेषांचिन्नानुभूतंस्मृतौस्थितम् ॥ ९ ॥ प्रतिभासतएवेदंकेषांचित्स्मरणंविना ॥ चिदणूनांप्रजेशत्वंकाकतालीयवद्यतः ॥ १० ॥ अत्यंतविस्मृतंविश्वंमोक्षइत्यभिधीयते ॥ ईप्सितानीप्सितेतत्रनस्तःकाचनकस्यचित् ॥ ११ ॥ अत्यंताभावसंपत्तिंविनाहंताजगत्स्थितेः ॥ अनुत्पादमयीह्येषानोदेत्येवविमुक्तता ॥ १२ ॥

अर्थ—हे सूक्ष्म शरीरवाली इसलिये यह संसार किसी २ की स्मृतिमें अनुभव कियाहुआ स्थित और किसी २ की स्मृतिमें बिना अनुभूतही स्थितहै ॥ ९ ॥ इसलिये यह सिद्ध हुआ कि,-किसी प्राणियोंको विना स्मरणकेही भासता है, क्योंकि जीवोंको प्रजेशत्व (ब्रह्मापन) विना अनुभूतही काकतालीयन्याय (अकस्मात् एकाएकी) से भासने लगताहै ॥ १० ॥ वासनाका पुंजरूप चित्तमय यह संसारहै इसलिये सर्वथा वासना रहित होके संसारकी विस्मृति होनाही मोक्षहै, क्योंकि वासना रहित मोक्षदशामें शरीर रहित चेतनको प्रिय अप्रिय कुछ नहीं रहताहै ॥ ११ ॥ अहन्ता और जगत्की स्थितिरूप जो अविद्याहै उसका सर्वथा बाध हुये विना अनुत्पत्ति धर्मवाली यह मुक्तिकी दशा किसी प्रकार उदयको नहीं प्राप्त होती ॥ १२ ॥

रज्ज्वांसर्पभ्रमःसर्पशब्दार्थासंभवंस्थितम् ॥ अनुत्पादमयंत्यक्त्वाशांतोऽपिहिनशाम्यति ॥ १३ ॥ अर्द्धशांतोनशांतोसौसमेत्यर्थतयापुनः ॥ उदेत्येकपिशाचांतेपिशाचोन्योह्यधीमतः ॥ १४ ॥ संसारश्चायमाभोगीपरमेवेतिनिश्चयः ॥ कारणाभावतोभातियदिहाभातमेवतत् ॥ १५ ॥ लीलोवाच ॥ ब्राह्मणब्राह्मणीरूपसर्गेकारणसंस्मृतिः ॥ कथमभ्युत्थितासास्यस्मरणीयमिदंविना ॥ १६ ॥

अर्थ—रज्जु (रस्सी) में जो सर्पका भ्रम है वह सर्पशब्दार्थका असंभव (अभाव) रज्जुरूपसे स्थितहै, उस उत्पत्ति रहित रज्जुरूप अधिष्ठानके जाने विना शान्त होनेपरभी शान्त नहीं होता ॥ १३ ॥ योगादिसे अर्द्धशान्तभी यह जगत् समाधिके भंग दशामें पुनः ज्योंकात्यों भान होने लगताहै इसलिये ज्ञानके विना सर्वथा शान्त नहीं होता, क्योंकि मूढको एक पिशाच शान्त होनेपरभी दूसरा पिशाच उदय होजाताहै ॥ १४ ॥ इसलिये यह कृत्रिम वेषधारी संसार परमात्मरूपही है, ऐसा निश्चयात्मक ज्ञान निस्तारका हेतुहै, और जो अविद्याके बाधके अनन्तर संसारका भान होताहै वह नहीं भान होनेके बराबर है क्योंकि अविद्याकी निवृत्ति होनेसे पुनः आवरणकी शंका नहीं है ॥ १५ ॥ लीलाजी बोली—हे देवि ! ब्राह्मण और ब्राह्मणीरूप सर्ग (सृष्टि) में इस सर्गका कारण संस्कारहीहै, सो इस कालके अननुभूत स्मरण योग्य दृश्यके बिना कैसे हुआ, क्योंकि इस समयके पदार्थ उस समयमें न रहनेसे उनके अनुभवके विना राजा होनेके संस्काररूप वासना उस कालमें नहीं होसकती ॥ १६ ॥

॥ श्रीदेव्युवाच ॥ पितामहस्मृतिस्तत्रकारणंतस्यनस्मृतिः ॥ पूर्वंनसंभवत्येवमुक्तत्वात्पद्मजन्मनः ॥ १७ ॥ पूर्वंनसंभवत्येवस्मरणीयमितिस्वयम् ॥ पद्मजादित्वमायातिचैतन्यस्यतथास्थितेः ॥ १८ ॥ अभूवमहमित्यन्यःप्रजानाथःप्रजापतेः ॥ काकतालीयवत्कश्चिद्भवतिप्रतिभामयः ॥ १९ ॥ एवमभ्युदितेलोकेनकिंचिन्नकदाचन ॥ क्वचिदभ्युदितंनामकेवलंचिन्नभःस्थितम् ॥ २० ॥

अर्थ—श्रीदेवी बोली—उस ब्राह्मण ब्राह्मणीके राजा रानी होनेमें ब्रह्माका संस्कार कारणहै न कि उस ब्राह्मणका संस्कार, और ब्रह्माकी सृष्टिमें ब्रह्माकाभी पूर्व संस्कार कारण नहीं है, क्योंकि पूर्वकल्पके अन्तमें ब्रह्मा मुक्त होजातेहैं ॥ १७ ॥ स्मरण योग्य पदार्थके न होनेसे पूर्वमें स्मृतिभी नहीं होसकती, इसलिये यह चेतन आपही ब्रह्मादिरूप धारण करताहै. क्योंकि चेतनका यह (सृष्टिरचना) स्वभावहीहै ॥ १८ ॥ मैं दूसरा ब्रह्माथा, ऐसा ब्रह्माका अनुभववाला अकस्मात् कोई प्राणी होजाताहै ॥ १९ ॥ इसप्रकार अनुभव मात्र होनेसे इस सृष्टि तथा पूर्व सृष्टिका बाध होनेसे संसारमें न कुछ उत्पन्न हुआ न होगा केवल चिदाकाश मात्र स्थितहै ॥ २० ॥

द्विविधायाःस्मृतेरस्याःकारणंपरमंपदम् ॥ कार्यकारणभावोसावेकएवचिदंबरे ॥ २१ ॥ कार्यंचकारणंचैवकारणैःसहकारिभिः ॥ कार्यकारणयोरैक्यात्तदभावान्नशाम्यति ॥ २२ ॥ महाचिद्रूपमेवत्वंस्मरणंविद्धिवेदनम् ॥ कार्यकारणतातेनसशब्देनचवास्तवः ॥ २३ ॥ एवंनकिंचिदुत्पन्नंदृश्यंचिज्जगदाद्यपि ॥ चिदाकाशेचिदाकाशंकेवलंस्वात्मनिस्थितम् ॥ २४ ॥

अर्थ—पूर्वजन्मके अनुभवजन्य संस्कारसे उत्पन्न, और अनादि अविद्या शक्तिरूप वासनासे वा हिरण्यगर्भसे उत्पन्न इन दोनों प्रकारकी स्मृतिका कारण केवल माया शवलित ब्रह्महै, क्योंकि यह कार्य्यकारण भाव इसी एक चिदाकाशमें है न कि शुद्धमें ॥ २१ ॥ पटरूप कार्य्य, तन्तुरूप कारण यह तुरी वेमादिरूप सहकारी कारणोंसे हो सकताहै, परन्तु जो उपकार नहीं करते वे सहकारी कारण नहीं होसकते, इसलिये ऐसे स्थलमें कार्य्य कारणका बाध होनेसे, और कार्य्य कारणकी एकतासे उस कल्पनाका अधिष्ठान तन्तु आदिकें साथ एकताकी शान्ति नहीं होती अर्थात् भेद कारणके अभावसे एकताही है ॥ २२ ॥ हे रामजी! माया और उसके कार्य्यके आकारकी उपेक्षा करकें दोनोंमें अनुगत तन्मात्र महाचिद्रूपही यह अनुभव तुम जानो, इस ज्ञानसे कार्य्य कारणता यह शब्द मात्र रहगयाहै वहभी इस विचारदृष्टिसे वास्तविक नहीं है ॥ २३ ॥ इसप्रकार यह जगत् आदि ब्रह्माण्ड कुछभी उत्पन्न नहीं हुआ चिदाकाशमें चिदाकाशही केवल अपने आत्मामें स्थितहै ॥ २४ ॥

॥ लीलोवाच ॥ अहोनुपरमादृष्टिर्दर्शितादेविमेत्वया ॥ रूपश्रीर्जागतीप्रातःप्रभयेवेक्षणद्युतिः ॥ २५ ॥ इदानीमहमेतस्यांयावत्परिणतादृशि ॥ नाभ्यासेनविनातावद्छिन्द्धीदंदेविकौतुकम् ॥ २६ ॥ यत्रासौब्राह्मणोगेहेब्राह्मण्यासहितोऽभवत् ॥ तंसर्गंतंगिरिग्रामंनयमांतंविलोकये ॥ २७ ॥ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ अचेत्यचिद्रूपमयींपरमांपावनींदृशम् ॥ अवलंब्येममाकारमवमुच्यभवामला ॥ २८ ॥

अर्थ—लीलाजी बोली—अहो देवि! जैसे प्रातःकालके प्रकाशसे जगत्के रूपकी शोभा स्फुट प्रतीत होती है इसीप्रकार आपने यह जगत् उत्पत्तिके विषयमें यह परम दृष्टि देखलाया ॥ २५ ॥ हे मातः! जबतक अभ्याससे इस दृष्टिमें मैं दृढ नहीं होती तबतक मेरे इस कौतुकको छेदन कीजिये ॥ २६ ॥ जिस गृहमें वह ब्राह्मण ब्राह्मणीसहित रहताथा उस सृष्टि और उस गिरिग्रामकें निकट मुझे ले चालिये कि मैं उनको देखूं ॥ २७ ॥ श्रीदेवी बोली—हे पुत्रि! विषयरहित चित्रूप परमपावनी दृष्टि (समाधिरूप) का अवलम्बन करके और इस शरीरके आकारको त्यागके अर्थात् विस्मरण करके निर्मल होजाओ ॥ २८ ॥

ततःप्राप्स्यस्यसंदेहंव्योमात्मानंनभःस्थितम् ॥ भूमिष्ठनरसंकल्पोगगनांतःपुरंयथा ॥ २९ ॥ एवंस्थिते तंपश्यावःसहसर्गमनर्गलम् ॥ अयंतद्दर्शनद्वारेदेहोहिपरमार्गलम् ॥ ३० ॥ ॥ लीलोवाच ॥ अमुनादेविदेहेनजगदन्यदवाप्यते ॥ नकस्मादत्रमेयुक्तिकथयानुग्रहाग्रहात् ॥ ३१ ॥ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ जगंतीमान्यमूर्त्तानिमूर्तिमंतिमुधाग्रहात् ॥ भवद्भिरवबुद्धानिहेमानीवोर्मिकाधिया ॥ ३२ ॥

अर्थ—तो चिदाकाश (मायाकाश) में स्थित उस सृष्टिको ऐसे पाओगी जैसे भूमिमे स्थित मनुष्यका संकल्प आकाशमें स्थित अन्तःपुरको ॥ २९ ॥ ऐसा करनेसे अर्थात् समाधिमें स्थित होनेसे उस सृष्टिको हम दोनों विना अवरोधके देखेंगे, इस शरीरको उसके देखनेमें बडा भारी फाटक समझो ॥ ३० ॥ लीलाजी बोली—हे देवि! इस शरीरसे दूसरा जगत् क्यों नहीं प्राप्त होता इस विषयमें जो कुछ युक्ति हो सो मेरे ऊपर अनुग्रह करके कहिये ॥ ३१ ॥ श्रीदेवी बोली—यथार्थमें ये सम्पूर्ण जगत् मायामात्र होनेसे मूर्तिरहित हैं और मिथ्या ज्ञानसे मूर्तिमान् ऐसे आप लोगोंनें जानलिया है जैसे सुवर्णको अंगूठी आदि बुद्धिसे ॥ ३२ ॥

हेम्न्यूर्मिकारूपधरेप्यूर्मिकात्वंनविद्यते ॥ यथातथाजगद्रूपेजगन्नास्तिचब्रह्मणि ॥ ३३ ॥ जगदाकाशमेवेदंब्रह्मैवेहतुदृश्यते ॥ दृश्यतेकाचिदप्यत्रधूलिरंबुनिधाविव ॥ ३४ ॥ अयंप्रपंचोमिथ्यैवसत्यंब्रह्माहमद्वयम् ॥ अत्रप्रमाणंवेदांतागुरवोऽनुभवस्तथा ॥ ३५ ॥ ब्रह्मैवपश्यतिब्रह्मनाब्रह्मब्रह्मपश्यति ॥ सर्गादिनाम्नाप्रथितःस्वभावोऽस्यैवचेदृशः ॥ ३६ ॥

अर्थ—जैसे अंगूठीके रूप धारण कियेहुये सुवर्णमें सुवर्णसे पृथक् अंगूठीपन कोई वस्तु नहीं है ऐसेही जगत् रूपधारी ब्रह्ममें यथार्थमें जगत् कुछ पदार्थ नहीं है ॥ ३३ ॥ ब्रह्मही इस जगदाकाश रूपसे देखपडता है, इस ब्रह्ममें, भी माया ऐसे देखपडती है जैसे धूलिविरोधि समुद्रमें धूलि ॥ ३४ ॥ इस ब्रह्माण्डका जो कुछ यह प्रपंच है वह सब मिथ्या है केवल अद्वैत ब्रह्मही सत् है इस विषयमें मुख्य प्रमाण वेदान्त हैं और वेदान्तके तात्पर्यको अनुभव करनेके वास्ते गुरु महात्मालोग हैं और अन्तमें फलीभूत अपना अनुभव प्रमाण है ॥ ३५ ॥ ब्रह्मही ब्रह्म (जगत्रूप धारी) को देखताहै, ब्रह्मसे अन्य ब्रह्मको नहीं देखता, ब्रह्मही सृष्टि आदिके नामसे प्रसिद्धहै ऐसा इस ब्रह्मका स्वभावहीहै ॥ ३६ ॥

नब्रह्मजगतामस्तिकार्यकारणतोदयः ॥ कारणानामभावेनसर्वेषांसहकारिणाम् ॥ ३७ ॥ यावदभ्यासयोगेननशांताभेदधीस्तव ॥ नूनंतावदतद्रूपानब्रह्मपरिपश्यसि ॥ ३८ ॥ तत्ररूढिमुपायांतायइमेत्वसम

दादयः ॥ अभ्यासाद्ब्रह्मसंपत्तेःपश्यामस्तेहितत्परम् ॥ ३९ ॥ संकल्पनगरस्यैवममाकाशमयंवपुः ॥ ब्रह्मैवचांतःपश्यामिदेहेनानेनतत्पदम् ॥ ४० ॥

अर्थ—यथार्थमें ब्रह्म अनेक जगतोंके कार्य्य कारणका उत्पत्तिस्थान नहीं है, क्योंकि सम्पूर्ण सहकारी कारणोंका अभावहै ॥ ३७ ॥ जबतक अभ्यास योगसे तुमारी भेदबुद्धि नहीं शान्त होती तबतक देहात्म बुद्धिके कारणसे तुम ब्रह्मको नहीं देख सकतीहो ॥ ३८ ॥ वहांपर अस्मदादिक जो दृढ निश्चयको प्राप्त हुये हैं वे सब हमलोग समाधिके अभ्याससे ब्रह्मसाक्षात्कार होनेसे उस परमस्वरूपको देखते हैं ॥ ३९ ॥ संकल्प नगरके समान यह मेरा देह शुद्ध चित्ताकाशरूपही है, और इस देहसे ब्रह्मपदकोही देखतीहुं ॥ ४० ॥

विशुद्धज्ञानदेहार्हास्तथैतेपद्मजादयः ॥ ब्रह्मात्मजगदादीनामंशेसंस्थानमंगने ॥४१ ॥ तवाभ्यासंविना बालेनाकारोब्रह्मतांगतः ॥ स्थितःकलनरूपात्मतेनतन्नानुपश्यसि ॥ ४२ ॥ यत्रस्वसंकल्पपुरंस्वदेहे ननलभ्यते ॥ तत्रान्यसंकल्पपुरंदेहोन्योलभतेकथम् ॥४३॥ तस्मादेनंपरित्यज्यदेहंचिव्योमरूपिणी ॥ तत्पश्यसितदेवाशुकुरुकार्यविदांवरे ॥ ४४ ॥

अर्थ—और हे अंगने ! इसीप्रकार ब्रह्माआदि कभी विशुद्ध चित्तरूप होनेसे सदा ब्रह्मदर्शनके योग्यहैं, और वे ब्रह्मात्मक जगत् और उसके व्यवहारोंको ब्रह्मके किसी (काल्पनिक अंशमें देखते हैं ॥ ४१ ॥ और अभ्यासके विना तुमारा आकार ब्रह्मस्वरूपको नहीं प्राप्त हुआ, किन्तु अन्तःकरणमें चिदाभासरूपसे स्थित है इसलिये पूर्वोक्त और गिरिग्रामको नहीं देखतीहो ॥ ४२ ॥ जहांपर अपने शरीरसे अपनेही संकल्पका नगर नहीं प्राप्त होता तहां भला दूसरेके संकल्पका नगर और दूसरा देह भला कैसे प्राप्त होसकताहै ? ॥४३॥ हे कार्य्य जाननेवालोंमें श्रेष्ठ पुत्रि ! तुम इस स्थूल शरीरको त्यागके चिदाकाशरूप होजाओ तो उस ब्रह्मको देखोगी, और शीघ्र उसी कार्य्यको करो ॥ ४४ ॥

संकल्पनगरंसत्यंयथासंकल्पितंप्रति ॥ सदेहंवाविदेहंवानेतरंप्रतिकिंचन ॥ ४५ ॥ आदिसर्गेजगद्भ्रांति र्यथेयंस्थितिमागता ॥ तथातदाप्रभृत्येवंनियतिःप्रौढिमागता ॥ ४६ ॥ लीलोवाच ॥ त्वयोक्तंदेविगच्छावोब्राह्मणब्राह्मणीजगत् ॥ सहेतीदमिदंवच्मिकथंगंतव्यमंबहे ॥४७ ॥ इमंदेहमिहास्थाप्यशुद्धसत्त्वानुपातिना ॥ चेतसातंपरंयामिलोकंत्वंकथमेषितत् ॥ ४८ ॥

अर्थ—देह साध्य हो वा विदेह संकलिपत भोगकेलिये जैसे संकल्पका नगर अर्थ क्रिया सिद्धिके लिये सत्य है और कार्यकेलिये नहीं वैसेही यहभी है ॥ ४५ ॥ आदि सृष्टिमें ब्रह्माके संकल्पसे जैसे यह जगत्की भ्रांति स्थिरत्ताको प्राप्त हुई वैसाही उसी समयसे लेके अनादि नियतिरूप ईश्वरेच्छामय मायाशक्तिके वशसे दृढ होती गई ॥ ४६ ॥ लीलाजी बोली–हे देवि ! आपने यह कहाथा कि ब्राह्मण और ब्राह्मणी जिस जगत्में रहतेहैं वहां हम दोनों साथ चलेंगे, सो हे मातः ! मैं यह कहतीहूं कि कैसे चलना होगा ॥ ४७ ॥ मैं तो इस शरीरको छोडके शुद्धसत्व गुणके पीछे चलनेवाले चित्तसे उस परलोकको जाऊंगी परन्तु आप इस अपने देहसे कैसे चलोगी ? ॥ ४८ ॥

॥ श्रीदेव्युवाच ॥ संकल्पव्योमवृक्षस्तेयथासन्नापिखात्मकः ॥ नकुड्यात्मानकुड्येनरोध्यतेनापिकुड्यहा ॥ ४९ ॥ शुद्धैकसत्त्वनिर्माणंचिद्रूपस्यैवतत्किल ॥ प्रतिभानमतस्तस्मात्परस्माद्भिद्यतेमनाक् ॥ ५० ॥ सोयमेतादृशोदेहोनैनंसंत्यज्ययाम्यहम् ॥ अनेनैवतमाप्नोमिदेशंगंधमिवानिलः ॥ ५१ ॥ यथाजलंजले नाग्निरग्निनावायुनानिलः ॥ मिलत्येवमतोदेहोदेहैरन्यैर्मनोमयैः ॥ ५२ ॥

अर्थ—श्रीदेवी बोली–जैसे तुमारे संकल्पोंका वृक्ष संकल्पकी सत्तासे विद्यमान रहतेभी वास्तवमें वह शून्यरूपही है, न तो वह भित्तिके समान मूर्तिमानहीं है और भित्तिसे रुकभी नहीं सकता, और न भित्तिका भेदकहै ॥४९ ॥ अस्मदादिका शरीर जो केवल शुद्धसत्वगुणसे रचागयाहै वह केवल चिद्रूपकाही प्रतिभानहै, इस हेतुसे परब्रह्मसे उसका यत् किंचित् भेदहै ॥ ५० ॥ यह मेरा शरीर शुद्धसत्वगुणका अनुयायी विशुद्ध चित्तरूपहै, इसको त्यागके मैं नहीं जाती, इसी शरीरसे उस लोकको ऐसे प्राप्त होऊंगी जैसे वायु गन्धको ॥ ५१ ॥ जिसप्रकार जल जलमें, वायु वायुमें और अग्नि अग्निमें मिलताहै, उसीप्रकार यह विशुद्ध चित्तमय देह दूसरे मनोमय देहोंसे मिलजाताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥५२

नहिपार्थिवतासंविदेत्यपार्थिवसंविदा ॥ एकत्वंकल्पनाशैलशैलयोःकाहतिर्मिथः ॥ ५३ ॥ आतिवाहिकएवायंत्वादृशैश्चित्तदेहकः ॥ आधिभौतिकताबुद्ध्यागृहीतश्चिरभावनात् ॥ ५४ ॥ यथास्वप्नेयथा दीर्घकालध्यानेयथाभ्रमे ॥ यथाचसातिसंकल्पेयथागंधर्वपत्तने ॥ ५५ ॥ वासनातानवंनूनंयदातेस्थि तिमेष्यति ॥ तदातिवाहिकोभावःपुनरेष्यतिदेहके ॥ ५६ ॥

अर्थ—पृथिवीका विकार तुमारी देहरूप संवित् पृथिवीके विकारसे भिन्न शुद्ध चित्तमय हमारी देहरूपसंवित्की एकताको ऐसे नहीं प्राप्त होती जैसे संकल्पका पर्वत और यथार्थ पृथिवीका विकाररूप पर्वत ॥ ५३ ॥ यद्यपि तुम लोगोंकीभी शरीर मनोमात्रही है तथापि तुमारे सदृश मनुष्योंने चिरकालकी भावनासे उसको आधिभौतिक बुद्धिसे ग्रहणकर रक्खाहै ॥ ५४ ॥ जैसे स्वप्नमें दीर्घकालके ध्यानमे, भ्रममें, संकल्पमें और गन्धर्व नगरमें वासनाकी सूक्ष्मता होतीहै ऐसीही सूक्ष्मवासना जब तुमारी स्थिर होगी तब पुनः सूक्ष्मभाव तुमारी शरीरमें उत्पन्न होगा ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

॥ लीलोवाच ॥ आतिवाहिकदेहत्वप्रत्ययेघनतांगते ॥ तामवाप्नोत्ययंदेहोदशामाहोविनश्यति ॥ ५७ ॥ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ यदस्तिनामतत्रैवनाशानाशक्रमोभवेत् ॥ वस्तुतोयत्तुनास्त्येवनाशःस्यात्तस्यकीदृशः ॥ ५८ ॥ रज्ज्वांसर्पभ्रमेनष्टेसत्यबोधवशात्सुते ॥ सर्पोनैनष्टउतनष्टोवेत्येवंकैवसाकथा ॥ ५९ ॥ यथासत्यपरिज्ञानाद्रज्ज्वांसर्पोनदृश्यते ॥ तथातिवाहिकज्ञानाद्दृश्यतेनाधिभौतिकः ॥ ६० ॥

अर्थ—लीला बोली—हे देवि! सूक्ष्मशरीरका भाव जब दृढ होजाताहै तब यह स्थूलदेहही उस सूक्ष्मदशाको प्राप्त होताहै अथवा यह नष्ट होजाताहै॥५७॥श्रीदेवीजी बोली—जो पदार्थ है उसीमें नाश और अनाशका क्रम होताहै यथार्थमें जो पदार्थ हैहीनहीं उसका नाश किसप्रकार होसक्ताहै ॥ ५८ ॥ हे पुत्रि ! सत्य पदार्थके ज्ञानसे रज्जूमें जब सर्पका भ्रम नष्ट होजाताहै तब रज्जु (रस्सी) में सर्प नष्ट हुआ अथवा नहीं नष्ट हुआ जैसे यह कुछ नहीं कह सकते ऐसी इस शरीरकीभी कथा है अर्थात् तत्ववेत्ताका शरीर ज्ञानसे बाधित होनेसे दग्धपटके समान मानो नहीं है, पूर्ववासनामात्रसे पटके समान भासनेपरभी वासनाकी सूक्ष्मतासे सूक्ष्मभावही शेष रहजाताहै ॥ ५९ ॥ जैसे सत्यके परिज्ञानसे रज्जूमें सर्प नहीं देखपडता इसीप्रकार सूक्ष्मके ज्ञानसे भौतिक शरीर नहीं देखपडता ॥ ६० ॥

कल्पनाऽपिनिवर्तेतकल्पितायदिकेनचित् ॥ साशिलासमपास्त्यैवयानेहास्तिकदाचन ॥ ६१ ॥ परंपरेपरापूर्णमिदंदेहादिकस्थितम् ॥ इतिसत्यंवयंभद्रेपश्यामोनाभिपश्यसि ॥ ६२ ॥ आदिसर्गेभवेच्चित्त्वंकल्पनाकल्पितंयदा ॥ तदातत:प्रभृत्येकसत्त्वंदृश्यमवेक्षते ॥ ६३ ॥ लीलोवाच ॥ एकस्मिन्नेवसंशांतेदिक्कालाद्यविभागिनि ॥ विद्यमानेपरेतत्त्वेकलनावसरःकुतः ॥ ६४ ॥

अर्थ—कल्पना यदि किसीने कल्पित कियाहै तो वह अवश्य निवृत्त होगी, क्योंकि वह शिला अस्तही है जो संसारमें कभी नहीं है ॥ ६१ ॥ हे भद्रे ! परब्रह्मसे पूर्ण यह देहादि पंचकोश जो एक एक करके अन्तःप्रवेशसे स्थितहै वह अपनी महिमामें स्थित परब्रह्मही है ऐसा हमलोग बाधरहित सदा देखते है, और तुम दृढज्ञान न होनेसे नहीं देखतीहो ॥ ६२ ॥ आदि सृष्टि अर्थात् हिरण्यगर्भकी सृष्टिमें प्रथम चितचित्व धर्म उत्पन्न होताहै, और जब पंचीकरणकी कल्पनासे स्थूलरूपकी कल्पना की जातीहै तो उसी समयसे लेके एक अनुगत सत्व दृश्यके अनुरोधसे स्वयं दृश्यभूत अपनेको भ्रान्तिसे दृश्यरूप देखताहै ॥ ६३ ॥ लीला बोली—देश और कालके विभागसे शून्य परमशान्त परब्रह्म जब एकरूपसे (परिणाम रहित) विद्यमान रहताहै तो उसमे कल्पनाका अवसर कहां अर्थात् जैसे दूध जब दहीरूपमें प्राप्त होताहै तब उसकी दुग्धकी दशा नहीं रहती, ऐसेही ब्रह्म जब अपने स्वरूपसेही विद्यमानहै तब उसमें अन्य परिणाम नहीं होसकता ॥ ६४ ॥

॥ श्रीदेव्युवाच ॥ कटकत्वंयथाहेम्नितरंगत्वंयथांभसि ॥ सत्यत्वंचयथास्वप्नसंकल्पनगरादिषु ॥ ६५ ॥ नास्त्येवसत्यनुभवेतथानास्त्येवब्रह्मणि ॥ कल्पनाव्यतिरिक्तात्मतत्स्वभावादनामयात् ॥ ६६ ॥ यथा नास्त्यंबरेपांसुःपरेनास्तितथाकला ॥ अकलाकलनंशांतमिदमेकमजंततम् ॥ ६७ ॥ यदिदंभासतेकिंचित्तत्तस्यैवनिरामयम् ॥ कचनंकाचकस्येवकांतस्यातिमणेरिव ॥ ६८ ॥

अर्थ—श्रीदेवीजी बोली—जैसे सुवर्णमें कटकत्व, जलमें तरंगत्व, और स्वप्न संकल्प नगरादिमें सत्यत्व ॥ ६५ ॥ वास्तविक पदार्थका अनुभव होनेपर नहीं है, इसीप्रकार आत्माके अपरिणामी स्वभावका अनुभव करनेसे आत्मासे पृथक् कोई कल्पना उसमें नहीं है, अर्थात् सत्य विकार अंगीकार करनेसे तुमारा कहा दोष आसकताहै, न कि रज्जुमें सर्पके समान मिथ्याभूत विकारसे ॥ ६६ ॥ जैसे आकाशमें धूलि नहीं है, इसीप्रकार परब्रह्ममें कोई कल्पना नहीं है, यह (आत्मा) विषय शून्य, शान्त, अजन्मा, और एकही सर्वत्र व्याप्त होरहाहै ॥ ६७ ॥ जो कुछ वह भासताहै वह उसीका विशुद्ध प्रतिभास ऐसाहै, जैसे अतिशुद्ध मणीका काचके समान विना विचारे प्रतिभास ॥ ६८ ॥

॥ लीलोवाच ॥ एतावंतंचिरंकालमेतद्देविवयंवद ॥ भ्रामिताःकेननामापिद्वैताद्वैतविकल्पनैः ॥ ६९ ॥ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ अविचारेणतरलेभ्रांतासिचिरमाकुला ॥ अविचारःस्वभावोत्थःसविचाराद्विन

श्यति ॥ ७० ॥ अविचारोविचारेणनिमेषादेवनश्यति ॥ एषासत्तैवतेनांतरविद्यैषानविद्यते ॥ ७१ ॥ तस्मान्नैवाविचारोस्तिनाविद्यास्तिनबंधनम् ॥ नमोक्षोस्तिनिराबाधंशुद्धबोधमिदंजगत् ॥ ७२ ॥

अर्थ—लीला बोली—हे देवि ! यदि ऐसाहै तो यह कृपा करके कहो कि इतने दीर्घकालतक द्वैत अद्वैतके विकल्पोंसे किसने हमलोगोंको भ्रम रक्खाहै ? ॥ ६९ ॥ देवी बोली—हे चंचल शीलवाली पुत्रि ! अविचाररूपी मोहसेही तुम व्याकुल होके भ्रान्तहो रहीहो, और वह अविचार स्वभावसे सिद्धहै और विचारसे नष्ट होजाताहै ॥ ७० ॥ यह अविचार रूपी अविद्या विचारसे एक निमिषमें नष्ट होती है, और अविद्याका जब विचारसे बाध होताहै तो केवल ब्रह्मसत्ताही रहजाती है, इसलिये इसके स्वरूपके अन्तमें यह अविद्या कुछ पदार्थ नहीं है ॥ ७१ ॥ इसलिये यथार्थमें न अविचार न अविद्याहै, और न बन्धन है, और बन्धनके न होनेसे मोक्षभी कोई पदार्थ नहीं है किन्तु बाधारहित यह जगत् शुद्ध बोधमय है ॥ ७२ ॥

एतावंतंयदाकालंत्वयेतन्नविचारितम् ॥ तदानसंप्रबुद्धात्वंभ्रांतैवाभवआकुला ॥ ७३ ॥ अद्यप्रभृतिबुद्धासिविमुक्तासिविवेकिनी ॥ वासनातानवंबीजंपतितंतवचेतसि ॥ ७४ ॥ आदावेवहिनोत्पन्नंदृश्यंसंसारनामकम् ॥ यदातदाकथंतेनवास्यंतेवासनापिका ॥७५॥ अत्यंताभावसंपत्तौद्रष्टृदृश्यदृशांमनः ॥ एकध्यानेपरेरूढेनिर्विकल्पसमाधिनि ॥ ७६ ॥ वासनाक्षयबीजेस्मिन्किंचिदंकुरितेहृदि ॥ क्रमान्नोदयमेष्यंतिरागद्वेषादिकादृशः ॥ ७७ ॥ संसारसंभवश्चायंनिर्मूलत्वमुपेष्यति ॥ निर्विकल्पसमाधानंप्रतिष्ठामलमेष्यति ॥ ७८ ॥ विगतकलनकालिमाकलंकागगनकलांतरनिर्मलांबनेन ॥ सकलकलनकार्यकारणांतःकतिपयकालवशाद्भविष्यसीति ॥ ७९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलाविश्रांत्युपदेशोनाम एकविंशःसर्गः ॥ २१ ॥

अर्थ—जब तुम इतने कालतक आत्माका विचार नहीं किया, इसलिये तुमको ज्ञान नहीं हुआ और व्याकुल भ्रान्तही रही ॥ ७३ ॥ और आजसे लेके ज्ञान और विवेकसे संयुक्त हुई, और मुक्त होगई क्योंकि ज्ञानसे द्वैत वासनाका बाध होनेसे तत्ववासना शेष रही यह वासनाकी सूक्ष्मतारूप मुक्तिका बीज तुमारे चित्तमें बोयागया ॥७४॥ जब दृश्यनाम संसार प्रथमही नहीं उत्पन्न हुआ तो भला वह सबको कैसे आच्छादित करसकताहै, और वासना क्या पदार्थ है ? ॥ ७५ ॥ द्रष्टा, दृश्य और दर्शनका अत्यन्ताभाव होनेपर, और निर्विकल्प समाधिमें मनके एकाग्र ध्यानमें अधिरूढ होनेपर ॥ ७६ ॥ तथा हृदयमें इस वासना क्षयके किंचित् अंकुरित होनेपर क्रमसे रागद्वेषादिकी दृष्टि पुनः नहीं उत्पन्न होगी ॥ ७७ ॥ तब यह संसारका संभव निर्मूल होजायगा, और निर्विकल्प समाधि दृढ प्रतिष्ठाको प्राप्त होगी ॥ ७८ ॥ इसप्रकार निर्विकल्प समाधिकी प्रतिष्ठासे, और मायाकाश तथा उसके कार्य्योंका अधिष्ठानभूत निर्मल आत्माके आश्रयसे विकल्परूप कालिमा (कृष्णता) के नष्ट होनेसे कलंक रहित होके सम्पूर्ण प्राणियोंकी भ्रान्ति और उसके कार्य्यरूप नानाप्रकारकी वासना, तथा कारणभूत अविद्याका अन्तररूप जो मोक्ष है वह कुछकाल बीतनेपर तुमारी आपही होजायगी ॥ ७९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे लीलोपाख्याने विश्रान्त्युपदेशोनाम एकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

तुरीय (चतुर्थ) अवस्था और जीवन्मुक्तकी स्थिति तथा वासनाओंके सूक्ष्महोनेका उपाय और उसके अभ्यासका वर्णन इस २२ वे सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीदेव्युवाच ॥ यथास्वप्नपरिज्ञानात्स्वप्नदेहोनवास्तवः ॥ अनुभूतोप्ययंतद्वद्वासनातानवादसन् ॥ १ ॥ यथास्वप्नपरिज्ञानात्स्वप्नदेहःप्रशाम्यति ॥ वासनातानवात्तद्वज्जाग्रद्देहोपिशाम्यति ॥ २ ॥ स्वप्नसंकल्पदेहांतेदेहोयंचेत्यतेयथा ॥ तथाजाग्रद्भावनांतेउदेत्येवातिवाहिकः ॥ ३ ॥ स्वप्नेनिर्वासनाबीजेयथोदेतिसुषुप्तता ॥ जाग्रत्यवासनाबीजेतथोदेतिविमुक्तता ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीदेवीजी बोली–हे लीले ! जिसप्रकार स्वप्नका ज्ञान होनेपर स्वप्नका शरीर सत्य नहीं रहता इसीप्रकार वासनाके सूक्ष्म होनेपर अनुभूतभी यह संसार सत्य नहीं प्रतीत होता ॥१॥ जैसे स्वप्नके परिज्ञानसे स्वप्नका शरीर शान्त होजाताहै इसीप्रकार वासनाओंके सूक्ष्म होनेपर जाग्रत् देहभी शान्त होजाताहै ॥२॥ जैसे स्वप्न और संकल्पके शरीरके अन्त होनेसे यह शरीर चेतताहै, ऐसेही स्थूल देहमें अहंबुद्धि नष्ट होनेपर सूक्ष्म शरीरका उदय होताहै ॥ ३ ॥ जैसे स्वप्नके वासना बीजके अनुभूत होनेपर सुषुप्तिका उदय होताहै वैसेही जाग्रत् वासनाके सर्वथा शान्त होनेपर मुक्तिका उदय होताहै ॥ ४ ॥

येयंतुजीवन्मुक्तानांवासनासानवासना ॥ शुद्धसत्त्वाभिधानंतत्सत्तासामान्यमुच्यते ॥५॥ यासुप्तवासनानिद्रासासुषुप्तिरितिस्मृता ॥ यत्सुप्तवासनंजाग्रद्घनोसौमोहउच्यते ॥ ६ ॥ प्रक्षीणवासनानिद्रा तुर्यशब्देनकथ्यते ॥ जाग्रत्यपिभवत्येवविदितेपरमेपदे ॥७॥ प्रक्षीणवासनायेहजीवतांजीवनस्थितिः ॥ अमुक्तैरपरिज्ञातासाजीवन्मुक्ततोच्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—जीवन्मुक्तोंकी शरीर यात्राके निर्वाहार्थ जो वासनाहै वह वासना नहीं है किन्तु वह शुद्धसत्त्वकाही कथन है और दग्धपटके समान उसको सत्ता सामान्य कहतेहैं ॥५॥ जो वासनाओंका अनुद्भव होजानाहै उसको सुषुप्ति वा निद्रा कहतेहैं, और वासनाओंका अभिनव होजानेको मोह या मूर्च्छा कहतेहैं ॥६॥ वासनाके सर्वथा क्षीण होनेपर तुर्य्य (चतुर्थ) अवस्था प्राप्त होतीहै, और परमपदके जाननेसे जाग्रत् दशामेंभी प्राप्त होतीहै ॥७॥ वासनाओंके प्रक्षीण होनेपर जीवोंकी जो जीवनकी स्थितिहै उसको अमुक्तपुरुष नहीं जानते और उसी दशाको जीवन्मुक्ति कहतेहैं ॥ ८ ॥

शुद्धसत्त्वानुपतितंचेतःप्रतनुवासनम् ॥ आतिवाहिकतामेतिहिमंतापादिवांबुताम् ॥ ९ ॥ आतिवाहिकतांयातंबुद्धंचित्तांतरैर्मनः ॥ सर्गजन्मांतरगतैःसिद्धैर्मिलतिनेतरत् ॥ १० ॥ यदातेयमहंभावःस्वभ्यासाच्छांतिमेष्यति ॥ तदोदेष्यतितेस्फारादृश्यांताबोधतास्वयम् ॥ ११ ॥ आतिवाहिकताज्ञानंस्थितिमेष्यतिशाश्वतीम् ॥ यदातदाह्यसंकल्पाल्लोकान्द्रक्ष्यसिपावनान् ॥ १२ ॥

अर्थ—वासनाओंके शान्त होनेपर चित्तही शुद्धसत्वकी ओर गिरके सूक्ष्मदशाको ऐसे प्राप्त होताहै जैसे तापसे हिम (बर्फ) जल दशाको ॥९॥ जो मन समाधिके व्युत्थान कालमें सूक्ष्म दशाको प्राप्त होजाताहै वही जन्मान्तरगत दूसरे चित्तोंके साथ और देवयोग्य आदि दूसरे शरीरोंके साथ मिलताहै दूसरा नहीं ॥१०॥ जब अभ्यास करते २ देहमें जो अहंभावहै वह शान्त होगा तब दृश्यका अन्तरूप दृढबोध तुमको आपही उदय होगा ॥ ११ ॥ जब तुमारा सूक्ष्म शरीरका ज्ञान नित्य स्थितिको प्राप्त होगा, उससमय संकल्प दोषसे रहित पवित्र लोकोंको देखोगी ॥ १२ ॥

वासनातानवेतस्मात्कुरुयत्नमनिंदिते ॥ तस्मिन्प्रौढिमुपायातेजीवन्मुक्ताभविष्यसि ॥ १३ ॥ यावन्नपूरितस्त्वेपशीतलोबोधचंद्रमाः ॥ तावद्देहमवस्थाप्यलोकांतरमवेक्ष्यताम् ॥ १४ ॥ मांसदेहोमांसदेहै नैवसंश्लेषमेष्यति ॥ नतुचित्तशरीरेणव्यवहारेषुकर्मसु ॥ १५ ॥ यथानुभवमेवैतद्यथास्थितमुदाहृतम् ॥ आबालसिद्धसंसिद्धंननामवरशापवत् ॥ १६ ॥

अर्थ—इसलिये हे निन्दारहित लीले ! वासनाओंके सूक्ष्म होनेपर प्रयत्न करो, क्योंकि वासनाकी सूक्ष्मताके दृढ होनेपर तुम जीवन्मुक्त होजाओंगी॥१३॥जबतक यह बोधरूपी चन्द्रमा पूर्ण नहो तबतक इस शरीरको यहां रखके दूसरे लोकोंको देखो ॥ १४ ॥ क्योंकि मांसका देह मांसकेही देहकेसाथ मिलेगा, न कि व्यवहार कर्म्मोंमें चित्त शरीरकेसाथ इसीलिये मेरे चित्त शरीरकेसाथ तुमारे मांसशरीरका गमन नहीं होसकता॥१५॥यह वार्ता नूतन बालकसे लेके पण्डितोंतक जैसे प्रसिद्धहै और अनुभव तथा शास्त्रमें जैसे स्थितहै वैसेही मैंने तुमसे कही नकि वर या शापके समान १६

अवबोधघनाभ्यासाद्देहस्यास्यैवजायते ॥ संसारवासनाकार्श्येनूनंचित्तशरीरता ॥ १७ ॥ उदेष्यंतीच सैवात्रकेनचिन्नोपलक्ष्यते ॥ केवलंतुजनैर्देहोम्रियमाणोवलोक्यते ॥ १८॥ देहस्त्वयंनम्रियतेनचजीवति किंचते ॥ केकिलस्वप्नसंकल्पभ्रांतौमरणजीविते ॥ १९ ॥ जीवितंमरणंचैवसंकल्पपुरुषेयथा ॥ असत्यमेवभात्येवंतस्मिन्पुत्रिशरीरके ॥ २० ॥

अर्थ—संसारकी वासनाके सूक्ष्म होनेपर और ज्ञानके दृढ अभ्यास होनेपर यही शरीर चित्तशरीरता (सूक्ष्म भाव) को प्राप्त होजाताहै ॥ १७ ॥ वह सूक्ष्मभाव जब जब उदय होताहै तो उसको कोई देखता नहीं मनुष्य केवल म्रियमाण शरीरकोही देखते हैं ॥१८॥ और यथार्थमें यह तुमारा शरीर न मरताहै न जीताहै, क्योंकि स्वप्नकी भ्रान्तिमें जीवन और मरण क्या? ॥१९॥ हे पुत्रि ! जैसे संकल्प पुरुषके जीवन मरण मिथ्या भासतेहैं ऐसेही उस शरीरमेंभी २०

॥ लीलोवाच ॥ तदेतदुपदिष्टंमेज्ञानंदेवित्वयामलम् ॥ यस्मिन्श्रुतिगतेशांतिमेतिदृश्यविषूचिका ॥२१ अत्रोपकुरुमेब्रूहिकोभ्यासःकीदृशोथवा ॥ सकथंपोषमायातिपुष्टेतस्मिंश्र्वकिंभवेत् ॥ २२ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ यद्येनक्रियतेकिंचिद्येनयेनयदायदा ॥ विनाभ्यासेनतन्नेहसिद्धिमेतिकदाचन ॥ २३ ॥ तच्चिंतनं तत्कथनमन्योन्यंतत्प्रबोधनम् ॥ एतदेकपरत्वंचतदभ्यासंविदुर्बुधाः ॥ २४ ॥

अर्थ—लीला बोली—हे देवि ! आपने मुझे यह निर्मल ज्ञानका उपदेश दिया, जिसके श्रवण करनेसे दृश्य रूप महामारी शान्त होजातीहै ॥ २१ ॥ अब मेरे ऊपर उपकार करके यह कहिये कि वह अभ्यास कौनसा और कैसा ह, वह कैसे पुष्ट होताहै और उसके पुष्ट होनेसे क्या होताहै ॥ २२ ॥ श्रीदेविजी बोली—जब२ जो प्राणी जो२ कार्य्य करताहै वह विना अभ्यासके कभी सिद्धिको नहीं प्राप्त होता ॥२३॥ ब्रह्मकाही चिन्तन करना, उसीका परस्पर बोधन करना, और उसीमें एकत्वभावसे तत्पर रहना, इसीको पण्डितजन अभ्यास कहतेहैं ॥ २४ ॥

येविरक्तामहात्मानोभोगभावनतानवम् ॥ भावयंत्यभवायांतर्भव्याभुविजयंतिते ॥ २५ ॥ उदितोदार्यसौंदर्यवैराग्यरसरंजिता ॥ आनंदस्पंदिनीयेषांमतिस्तेभ्यासिनःपरे ॥ २६ ॥ अत्यंताभावसंपत्तौज्ञातृज्ञेयस्यवस्तुनः ॥ ॥ युक्त्याशास्त्रैर्यतंतेयेतेब्रह्माभ्यासिनःस्थिताः ॥ २७ ॥ सर्गादावेवनोत्पन्नंदृश्यंनास्त्येवतत्सदा ॥ इदंजगदहंचेतिबोधाभ्यासउदाहृतः ॥ २८ ॥

अर्थ—जो बिरक्त महात्माजन विषयकी वासनाको सर्वथा अभाव होनेकेलिये अन्तःकरणमें सूक्ष्म करते हैं, वे मोक्षके पात्र संसारमें सबसे उत्तमहैं ॥ २५ ॥ जिन महात्माओंको सर्व पदार्थोंके त्यागसे वैराग्यरससे रंगीहुई आनन्दप्रवाह पूर्णसुन्दरता उत्पन्न होती है वेही उत्तम अभ्यासी कहातेहैं ॥ २६ ॥ प्रमेय और प्रमाणोंके तत्त्वोंको निश्चय करनेवाली युक्तिसे और अध्यात्मशास्त्रोंके द्वारा ज्ञातृज्ञेय वस्तुके अत्यन्ताभाव सम्पत्तिकेलिये जो प्रयत्न करते हैं वेही संसारमें ब्रह्माभ्यासी हैं ॥ २७ ॥ सृष्टिकी आदिमें न उत्पन्न हुआ और यह जगत् तथा हम सर्वदा विद्यमान नहीं रहेंगे, ऐसा जो बोध है उसको अभ्यास कहते हैं ॥ २८ ॥

दृश्यासंभवबोधेनरागद्वेषादितानवे ॥ रतिर्बलोदितायासौब्रह्माभ्यासउदाहृतः ॥ २९ ॥ दृश्यासंभवबोधेनविनाद्वेषादितानवम् ॥ तपइत्युच्यतेतस्मान्नज्ञानंतच्चदुःखतत् ॥ ३० ॥ दृश्यासंभवबोधोहिज्ञानंज्ञेयंचकथ्यते ॥ तदभ्यासेननिर्वाणमित्यभ्यासोमहोदयः ॥ ३१ ॥ भवबहुलनिशानितांतनिद्रासततविवेकविबोधवारिसेकैः ॥ प्रगलतिहिमशीतलैरशेषाशरदिमहामिहिकेवचेतसीति ॥ ३२ ॥ इत्युक्तवत्यथमुनौदिवसोजगामसायंतनायविधयेस्तमिनोजगाम ॥ स्नातुंसभाकृतनमस्करणाजगामश्यामाक्षयेरविकरैश्र्वसहाजगाम ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे विज्ञानाभ्यासवर्णनं नाम द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

अर्थ—दृश्यके असंभव ज्ञानसे रागद्वेषादिके सूक्ष्म होनेपर शास्त्रके मननसे उत्पन्न जो विद्या और वासनारूप बलसे उत्पन्न आत्मामें रति है उसको ब्रह्माभ्यास कहते हैं ॥ २९ ॥ और दृश्यके असम्भव ज्ञानके विना जो रागद्वेषादिकी सूक्ष्मताहै उसको तप कहतेहैं वह ज्ञान नहीं है किन्तु वृथा द्वेषादि निरोध दुःखका विस्तारकहै ॥३०॥ जिससे आत्माका साक्षात्कारपूर्वक दृश्यके असंभवका बोधहो उसीको ज्ञेयज्ञान कहते हैं और इसी अभ्याससे निर्वाण (मोक्ष) होताहै और यही अभ्यास महान् उदयका ज्ञान कारणहै ॥ ३१ ॥ सम्पूर्ण तापके नाशका हेतु होनेसे हिमके समान शीतल विवेक बोधरूपी निरन्तर जलके सेंचनसे संसाररूपी रात्रिमें अज्ञानरूपी महानिद्राहै वह ऐसे नष्ट होती है जैसे शरदृतुमें महानीहारके समूह ॥ ३२ ॥ श्रीवसिष्ठ महामुनिके इतना कहनेपर वह दिन समाप्त होगया, सूर्य्यभगवान् अस्ताचलको प्राप्त हुये सम्पूर्ण सभा सन्ध्या स्नानादि कृत्य करनेके लिये बिदा हुई और रात्रि बीतनेपर सूर्य्यके किरणोंके साथही पुनः आके प्राप्त हुई ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे लीलोपाख्याने अभ्यासवर्णनं नाम द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

गिरिग्रामके देखनेकी इच्छासे योगाभ्यास द्वारा स्थूल शरीरको त्यागकर महान् आकाशरूपी गृहमें सरस्वती और लीलाके गमनका वर्णन इस २३ वे सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ चतुर्थदिनम् ॥ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इतिसंकथनंकृत्वातस्यांनिशिवरांगने ॥ सुप्तेपरिजनेनूनमथांतःपुरमंडपे ॥ १ ॥ दृढाखिलार्गलद्वारगवाक्षेदक्षचेतसि ॥ पुष्पप्रकरनिष्ठ्यूतमांसलामोदमंथरे ॥ २ ॥ अम्लानमालावसनशवपार्श्वासनस्थिते ॥ सकलामलपूर्णेंदुवदनद्योतितास्पदे ॥ ३ ॥ समाधिस्थानकं गत्वातस्थतुर्निश्चलांगिके ॥ रत्नस्तंभादिवोत्कीर्णेचित्रेभित्ताविवार्पिते ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-इतना कहके इसके अनन्तर रात्रिके उस रात्रिमें पुष्पोंके समूहसे उत्पन्न सुगन्धसे पूर्ण उस अन्तःपुरमें सम्पूर्ण चतुर भृत्योंके सोजानेपर, सब दरवाजे तथा खिडकियोंके दृढ कपाटोंके बन्ध होनेपर, जिसके पुष्पकी माला तथा वस्त्र भान नहीं हुये ऐसे शवके निकट स्थित, पूर्ण चन्द्रके समान सम्पूर्ण अकलंक मुखसे स्थानको प्रकाशित करनेवाली वे दोनों श्रेष्ठ अंगना (भगवती और लीला) निर्विकल्प समाधिमें जाके ऐसे निश्चल होके स्थित हुई, जैसे रत्नके स्तम्भ (खम्भे) में खुदी हुई वा भित्तिमें लिखित प्रतिमा ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

सर्वास्तत्यजतुश्चिंताःसंकोचंसमुपागते ॥ दिवसांतइवाब्जिन्यौप्रसृतामोदलेखिके ॥ ५ ॥ बभूवतुर्भृशंशांतेशुद्धेस्पंदविवर्जिते ॥ गिरेशरदिनिर्वातइवभ्रष्टाभ्रमालिके ॥ ६ ॥ निर्विकल्पसमाधानाज्जहतुर्बाह्यसंविदम् ॥ यथाकल्पलतेकांतेपूर्वमृत्वंतरेरसम् ॥ ७ ॥ अहंजगदितिभ्रांतिदृश्यस्यादावनुद्भवः ॥ यदाताभ्यामवगतस्त्वत्यंताभावनात्मकः ॥ ८ ॥

अर्थ—चारों ओरसे सुगन्धि जिनके निकट फैल रही है ऐसी वे दोनों स्त्रियां वहां (समाधिमें) सम्पूर्ण चिन्ताओंके त्यागदिया, और सब इन्द्रियोंके निरोधसे ऐसे संकोचको प्राप्त हुई जैसे दिनके अन्तमें दो कमलिनी ॥ ५ ॥ शुद्ध और गतिरहित वे दोनों ऐसी महाशान्तिको प्राप्त हुई जैसे शरदऋतुमें निर्वात पर्वतपर गिरीहुई पर्वतकी श्रेणी ॥ ६ ॥ निर्विकल्प समाधिमें प्राप्त होनेसे बाह्य पदार्थोंके ज्ञानको ऐसे त्यागदिया जैसे वसन्तऋतुके आनेपर पूर्वकालके रसको रमणीय लता ॥ ७ ॥ हम और यह जगत् यह दृश्यकी अनुत्पत्तिरूप अत्यन्ताभाव जब निर्विकल्प समाधिमें उन्होंने जाना ॥ ८ ॥

तदादृश्यपिशाचोयमलमस्तंगतोद्वयोः ॥ असत्त्वादेवचास्माकंशशशृंगमिवानघ ॥ ९ ॥ आदावेवहियन्नास्तिवर्त्तमानेपितत्तथा ॥ भातंत्राभातमेवातोमृगतृष्णांबुवज्जगत् ॥ १० ॥ स्वभावकेवलंशांतंस्त्रीद्वयंतद्बभूवह ॥ चंद्रार्कादिपदार्थैर्वैर्दूरमुक्तमिवांबरम् ॥ ११ ॥ तेनैवज्ञानदेहेनचचारज्ञप्तिदेवता ॥ मानुषीत्वितरेणाशुध्यानज्ञानानुरूपिणा ॥ १२ ॥

अर्थ—उस समय हे पापरहित रामजी ! जैसे खरगोशकी सींग समान सर्वथा असत् होनेसे दृश्यका अत्यन्ताभाव सिद्ध है, ऐसेही उन दोनोंकाभी दृश्यरूप पिशाच सर्वथा शान्त होगया ॥ ९ ॥ मृगतृष्णाके जलके समान यह जगत् भान होनेपरभी जो आदिमेंही नहीं है वह वर्तमानकालमेंभी उसी प्रकार नहीं है ॥ १० ॥ दृश्यके अभावमें केवल शान्त स्वभावरूप वे दोनों स्त्रियां होगई जैसे सृष्टिकी आदिमें वायुकी उत्पत्तिके पूर्व और प्रलय समयमें वायु प्रलयके अनन्तर सूर्य्य चन्द्रादिके न रहनेपर आकाश रहता है ॥ ११ ॥ उसी प्रकार ज्ञानरूप शरीरसे ज्ञानकी देवता सरस्वती, और मानुषी लीलाने शुद्ध ज्ञान ध्यानके अनुरूप दूसरे शरीरसे भ्रमण किया ॥ १२ ॥

गेहांतरेवप्रादेशमात्रमारुह्यसंविदा ॥ बभूवतुश्चिदाकाशरूपिण्यौव्योमगाकृती ॥ १३ ॥ अथतेललने लीलालोलेललितलोचने ॥ स्वभावाच्चेत्यसंवित्तेर्नभोदूरमितोगते ॥ १४ ॥ तत्रस्थेवाथचिद्रूप्यापुप्लुवातेनभस्थलम् ॥ कोटियोजनविस्तीर्णंदूराद्दूरतरांतरम् ॥ १५ ॥ दृश्यानुसंधाननिजस्वभावादाकाशदेहेअपितेमिथोत्र ॥ परस्पराकारविलोकनेनबभूवतुःस्नेहपरेवयस्ये ॥ १६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलाप्रज्ञादेव्योर्ज्ञानदेहाकाशगमनं नाम त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

अर्थ—पूर्व संस्कारके उद्भवसे उत्पन्न ज्ञानद्वारा उसी गृहके भीतर मण्डपाकाशमें, आकाशगामिनी आकारवाली दोनों चिदाकाशरूप होगईं ॥ १३ ॥ इसके अनन्तर सुन्दर नेत्रवाली वे दोनों रमणीय स्त्रियां विषयज्ञानके स्वभावसे अर्थात् विषयके अनुरूप व्यवहार कल्पनाके कारणसे दूर आकाश देशमें प्राप्तहुईं ॥ १४ ॥ उसी मण्डपाकाशमें स्थित हम दोनों आकाशमें उडे ऐसी चित्प्रधान इस मानसी कल्पनासे करोडों योजन विस्तीर्ण वे दोनों आकाशमें उडती रहीं ॥ १५ ॥ यथार्थमें आकाश देहवालीभी, वे दोनों पूर्व संकल्पित दृश्यके अनुसन्धान सहित चित्तभावको प्राप्त आत्मस्वभावसे यहांपर एकदूसरेके आकारको देखनेसे अति प्रीतियुक्त सखी होगईं ॥ १६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे लीलोपाख्याने लीलाप्रज्ञादेव्योर्ज्ञान देहाकाशगमनं नाम त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

अनन्त संसारके विचित्र विलाससे जिसका मध्यमभाग पूर्ण होरहाहै ऐसा आकाश मार्गमें गमन करनेवाली भगवती और लीलाका इस २४ वे सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ दूराद्दूरमभिप्लुत्यशनैरुच्चैःपदंगते ॥ हस्तंहस्तेसमालंब्यग्रांत्यौददृशतुर्नभः ॥१॥ एकार्णवमिवोच्छूनंगंभीरंनिर्मलांतरम् ॥ कोमलंकोमलमरुदासंगसुखभोगदम् ॥ २ ॥ आल्हादकमलंक्षोभ्यंशून्यतांभोनिमज्जनात् ॥ अत्यंतशुद्धंगंभीरंप्रसन्नमपिसज्जनात् ॥ ३ ॥ शृंगस्थनिर्मलांभोदपीनोदरसुधालये ॥ विशश्रमतुराशासुपूर्णचंद्रोदरामले ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–दूरसेभी दूर देशमें उडके धीरे २ उच्च देशमें प्राप्त होके एक दूसरेका हाथ पकडके जातीहुई उनदोनोंने आकाशको देखा ॥ १ ॥ समुद्रके समान अति गम्भीर और निर्मल है अन्तराल (मध्यदेश) सहित, अति कोमल, मन्दवायुके संगसे सुख तथा भोगको देनेवाला ॥ २ ॥ जगत्की शून्यतारूप ब्रह्मजलमें स्नानसे प्राणीरूप भ्रमरोंको अति आनन्ददायक अति गम्भीर सज्जनोंके चित्तसेभी अति प्रसन्न ॥ ३ ॥ आकाश देशमें, दिशाओंमें तथा मेरु आदिके शिखरोंपर स्थित और निर्मल मेघके स्थूल मध्यभागमें उन दोनोंने विश्राम किया ॥ ४ ॥

सिद्धगंधर्वमंदारमालामोदमनोहरे ॥ चंद्रमंडलनिष्क्रांतेरेमातेमधुरानिले ॥ ५ ॥ सस्नतुर्भूरिघर्मांतेतडिद्रक्ताब्जसंकुले ॥ सरसीवजलापूरमंथरेमेघमंडले ॥ ६ ॥ भूतलौघमहाशैलमृणालांकुरकोटिषु ॥ दिक्षुबभ्रमतुःस्वैरंभ्रमर्यौसरसीष्विव ॥ ७ ॥ धारागृहधियाधीरगंगानिर्झरधारिणि ॥ भ्रेमतुर्वातविक्षुब्धमेघमंडलमंडपे ॥ ८ ॥

अर्थ—कभी चन्द्रमण्डलसे निकलकर सिद्धगन्धर्वादिसे सेवित, मन्दार (देववृक्ष) की मालाओंसे अति मनोहर सुगन्ध और मन्दवायु मण्डलमें वे दोनों क्रीडा करने लगी ॥ ५ ॥ कभी २ सूर्य्यके तापसे बिजुलीके समान रक्तवर्ण निकलके जलप्रवाहसे पूर्ण मेघमण्डलमें ऐसे स्नान करतीथी जैसे कमल पूर्ण तडागमें ॥ ६ ॥ कमलोंके कोटिओं अंकुरोंके समान भूतलोंके समूहोंपर हिमालयके तथा कैलासादि महापर्वत जिनमें स्थितहै ऐसी दिशाओंमें अपनी इच्छापूर्वक ऐसे भ्रमण किया जैसे दो भ्रमरी तडागमें ॥ ७ ॥ जिसमें गंगाजीके स्रोतोंकी धारा गिररही है ऐसे वायुसे संचालित मेघमण्डलके मण्डपमें ऐसे भ्रमण करतीथी मानों फुहारे लगे स्थानमें ॥ ८ ॥

ततोमधुरगामिन्यौविश्राम्यंत्यौस्वशक्तितः ॥ शून्येददृशतुर्व्योममहारंभातिमंथरम् ॥ ९ ॥ अदृष्टपूर्वमन्योन्यंसर्वसंकटकोटरम् ॥ अपूर्यमाणमाशून्यंजगत्कोटिशतैरपि ॥ १० ॥ उपर्युपर्युपर्युच्चैरन्यैरन्यैर्वृतंपृथक् ॥ विचित्राभरणाकारैर्भूतलैःसुविमानकैः ॥ ११ ॥ परितःपूरितज्योत्स्नांमेर्वादिकुलभूभृताम् ॥ पद्मरागतटोद्योतैःकल्पज्वालोपमोदरम् ॥ १२ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर विश्राम करती हुई और अपनी शक्तिके अनुसार मन्द २ गमन करती हुई, शून्यदेशमें अनेक ब्रह्माण्डोंकी रचनासे व्याप्त आकाशमण्डलको दोनोंने देखा ॥ ९ ॥ वह (आकाश) देश यद्यपि भगवतीने देखाहै तथापि परस्परके साहचर्य्य (साथ) से अदृष्टपूर्व अनेक प्राणियोंके संकटका स्थान, तथा करोडों ब्रह्माण्डोंसे अपरिपूर्ण होनेसे शून्यके समान ॥ १० ॥ विचित्र भूषणयुक्त आकारवाले, तथा उत्तम विमान युक्त पृथक २

भूतलोंसे ऊपर २ स्थानोंमें व्याप्त ॥ ११ ॥ चारों आकाशमण्डलको पूर्ण करनेवाले मेरुआदि कुलपर्वतोंके पद्मराग मणिमय प्रकाशोंसे प्रलयकालके अग्निकी ज्वालाके समान मध्यभाग सहित आकाशको दोनोंने देखा ॥ १२ ॥

मुक्ताशिखरमापूरैर्हिमवत्सानुसुंदरम् ॥ कांचनाद्रिस्थलार्चिर्भिः कांचनस्थलभासुरम् ॥ १३ ॥ महामरकताभाभिःशाद्वलस्थलनीलिमम् ॥ द्रष्टृदृश्यक्षयासक्जातध्वांतोत्थकालिमम् ॥ १४ ॥ पारिजातलतालोलविमानगणकेतनम् ॥ अतोमंजरिकाकारमिववैदूर्यभूतलम् ॥ १५ ॥ मनोवेगमहासिद्धजितवातगमागमम् ॥ विमानगृहदेवस्त्रीगेयवाद्यसघुंघुमम् ॥ १६ ॥

अर्थ—उन पर्वतों मुक्ता (मोती) मय शिखरोंके प्रकाशके समूहोंसे हिमालयके शिखरके समान सुन्दर सुवर्णके पर्वतोंकी भूमिकी दीप्तिओंसे सुमेरूके समान प्रकाशमान ॥ १३ ॥ कहीं महामूल्य हरित मणिमय पर्वतोंके शिखरोंके प्रकाशोंसे हरित घासमय नील भूमिके समान, और कहीं २ द्रष्टा और दृश्यके नाश होनेके कारण उत्पन्न हुये अन्धकारसे कृष्ण प्रदेशके समान ॥ १४ ॥ कहीं २ पारिजात लताके वनोंके ऊपर देवताओंके चंचल विमानोंके स्थानहैं जिनमें इसलिये वे वन दूरसे लताके समान भान होते हैं और निकटसे वैदूर्य्य मणिमय भूतलके समान प्रतीत होते हैं ॥ १५ ॥ किसी स्थानपर सिद्धोंके मनकी वेगके समान गमनागमनोंने वायुकी गतिकोभी जीतलियाहै तथा कहीं २ विमानरूपी ग्रहोंमें देवांगनाओंके गान और वाद्यसे घुंघुम ध्वनिसहितहै ॥ १६ ॥

त्रैलोक्यवरभूतौघसंचाराविरलांतरम् ॥ अन्योन्यादृष्टसंचारसुरासुरकुलाकुलम् ॥ १७ ॥ पर्यंतस्थितकूश्मांडरक्षःपैशाचमंडलम् ॥ वातस्कंधमहावेगवहद्वैमानिकव्रजम् ॥ १८ ॥ वहद्विमानसीत्कारमुष्टिग्राह्यघनध्वनि ॥ ग्रहर्क्षघनसंचारात्प्रचलद्वातयंत्रकम् ॥ १९ ॥ निकटातपदग्धाल्पसिद्धसिद्धोज्झितास्पदम् ॥ अर्काश्वमुखवातास्तदग्धमुग्धविमानकम् ॥ २० ॥

अर्थ—त्रिलोकके श्रेष्ठ भूतोंके समूहसे संचारसे जिसका मध्यभाग पूर्ण है, और एक दूसरोंको न देखनेवाले ऐसे देवताओंके समूहोंके संचारसे परिपूर्ण ॥ १७ ॥ कहीं २ निकट देशमें वायुके महावेगके समान विमान समूहोंको धारण करवाला कूश्माण्ड राक्षस, और पिशाचोंका समूह विराजमानहै ॥ १८ ॥ कहीं २ चलते हुये विमानोंके शब्दोंको दबाके मेघगर्जना सुनाई देती है, तथा कहीं २ ग्रह और नक्षत्रोंके अधिक संचारसे ज्योतिश्चक्र चल रहाहै ॥ १९ ॥ कहीं २ सूर्य्यके निकट देशमें आतपसे जलाये हुये कम तपस्यावाले सिद्ध नामवालोंकी देवताओंने छोडदियाहै, तथा कहीं सूर्य्य वा उनके घोडेके मुखकी वायुसे छोटे २ विमान जलादिये गये हैं ऐसे स्थलोंको देखा ॥ २० ॥

लोकपालाप्सरोवृंदसंचाराचारचंचलम् ॥ देव्यंतःपुरिकादग्धधूपधूमांबुदांबरम् ॥ २१ ॥ स्वस्वर्गाहूतदेवस्त्रीस्वांगविभ्रष्टभूषणम् ॥ सामान्यसिद्धसंघोग्रतेजःपुंजतमोबलम् ॥ २२ ॥ बलवत्सिद्धसंघट्टगमागमविघट्टितैः ॥ घनैःसांशुकपार्श्वस्थहिमवन्मेरुमंदरम् ॥ २३ ॥ काकोलूकैर्गृध्रभासैराशिभूतैश्चलैर्वृतम् ॥ नृत्यद्भिर्डाकिनीसंघैस्तरंगैरिववारिधिम् ॥ २४ ॥

अर्थ—लोकपाल तथा अप्सराओंके समूहके पदकी गति तथा अन्य अंगोंको चालसे चंचल देविओंसे अन्तःपुरमें जला हुये धूपोंके धूमरूपी मेघोंसे पूर्ण ॥ २१ ॥ कहीं २ इन्द्र चन्द्रादिकोसे बुलाई हुई देवांगनाओंके मैं प्रथम पहुंचूं २ इस शीघ्रताके मारें शरीरोंके भूषण गिर गये है, इसी कारण उन देवांगना (अप्सरा) ओंको चाहनेवाले दूसरे सामान्य देवताओंके उग्र क्रोधरूपी तमसे नीलवर्णके समान स्थित ॥ २२ ॥ तथा कहीं २ बलवान् देवयोनि विंशेश सिद्धोंके संघट युक्त गमनागमनके संमर्दनसे चूर्णित मेघोंने जाके मेरु मन्दर आदि पर्वतोंके शिखरोंके वस्त्र बन गये हैं ॥ २३ ॥ कहीं २ काक, उलूक, गीध आदि पक्षियोंके चंचल समूहोंसे तथा किसी २ स्थानपर नृत्य करते हुये डाकिनी पिशाचिनी आदिके समूहोंसे जैसे तरंगोंसे समुद्र ऐसे आकाशको देखा ॥ २४ ॥

प्रवृत्तैर्योगिनीसंघैःश्वकाकोष्ट्रखराननैः ॥ निरर्थयोजनशतंगत्वागच्छद्भिरावृतम् ॥ २५ ॥ लोकपालपुरोध्वांतधूमधूम्रेभ्रमंदिरे ॥ सिद्धगंधर्वमिथुनप्रारब्धसुरतोत्सवम् ॥ २६ ॥ स्वर्गगीतस्तवोन्मत्तमदनाक्रांतमार्गगम् ॥ अनारतवहद्धिष्ण्यचक्रलक्षितपक्षकम् ॥ २७ ॥ वातस्कंधनिखातांतर्वहत्रिपथगाजलम् ॥ आश्चर्यालोकनव्यग्रसंचरत्त्रिदशार्भकम् ॥ २८ ॥

अर्थ—कहीं २ कुक्कुर उष्ट्र, और गर्दभके समान मुख धारण किये हुये अणिमादि सिद्धिवाले योगिनियोंके समूहोंने निरर्थक (क्योंकि अणिमादि सिद्धिसहित होनेसे उनको इष्ट पदार्थ अपने स्थानही पर लाभ होजाताहै) सैंकडो योजन जाके पुनः उनके आगमनसे पूर्ण ॥ २५ ॥ कहीं २ लोकपालोंके सामने अन्धकारमय स्थित धूमरूपी मन्दिरोंमें

सिद्ध और गन्धर्वोंके जोडोंने सुरतका उत्सव प्रारम्भ करदियाहै ॥ २६ ॥ कहीं २ स्वर्गके कामोद्दीपक गीत और स्तुतिसे आकाशमार्गगामी कामसे व्याकुल होगये हैं, और कहीं २ नक्षत्रोंके स्थानभूत ज्योतिश्चक्रके निरन्तर चलनेसे सूर्य्यादिकी गतिसे शुक्ल कृष्णादि पक्षोंका विभाग काल प्रतीत होताहै ॥ २७ ॥ और कहीं २ उसी ज्योतिश्चक्रमें वायुके भेद विशेषमें कल्पना कियेहुये नीच देशमें गंगाजीका जल वह रहाहै, और कहीं २ आश्चर्य्यमय पदार्थोंके देखनेमें व्यग्र देवताओंके बालक विचर रहे हैं ऐसे आकाशको देखा ॥ २८ ॥

सदेहसंचरद्वज्रचक्रशूलासिशक्तिमत् ॥ क्वचिन्निर्भित्तिभवनंगायन्नारदतुंबुरु ॥ २९ ॥ मेघमार्गमहामेघमहारंभाकुलंक्वचित् ॥ चित्रन्यस्तसमाकारमूककल्पांतवारिदम् ॥ ३० ॥ उत्पतत्कज्जलाद्रीद्रसुंदरांभोधरंक्वचित् ॥ क्वचित्कनकनिष्पंदकांततापांतवारिदम् ॥ ३१ ॥ क्वचिद्विद्राहतापाढ्यमृष्यमूकांबुदांशुकम् ॥ क्वचिन्निष्पवनांभोधिसंरंभंशून्यताजलम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—कहीं मूर्ति धारण करके वज्र, चक्र, त्रिशूल, असि और शक्ति आदिके अधिष्ठातृ देवता विचररहेहैं तथा कहीं २ विना भित्तिके स्थानमें नारद और तुम्बुरु ऋषि गान कररहेहैं ॥ २९ ॥ मेघ मार्गमें कोई २ स्थान पुष्कर आवर्त आदि महामेघोंकी प्रलय कालकी वृष्टिसे व्याप्त होरहाहै तथा कहीं २ चित्रमें लिखेहुयेके समान शब्द रहित मेघ स्थितहैं ॥ ३० ॥ कहीं कज्जलाद्रिसे सुन्दर मेघ उछल रहाहै, और कहीं सुवर्णके द्रवके समान ग्रीष्म तथा उसके अनन्तर वर्षादि ऋतु प्रवृत्त होरहेहैं ॥३१॥ कहीं ऋष्यमूक पर्वतपर पूर्वरामायणमें कहेहुयेके अनुसार वर्षा करनेवाले मेघ वस्त्रसहित और कहीं निश्चल समुद्रकाही कोपहै और कहीं शून्यताही जलरूपहै ऐसे आकाशरूप स्थानको देखा ॥३२॥

क्वचिद्वातनदीप्रौढविमानतृणपल्लवम् ॥ क्वचिच्चलदलिव्रातपृष्ठत्वक्कांतिनिर्मलम् ॥ ३३ ॥ क्वचिन्मेरुनदीकल्पवातधूलिविधूसरम् ॥ क्वचिद्विमानगीर्वाणप्रभाचित्रबलांगकम् ॥ ३४ ॥ क्वचिन्निरंबरोन्नृत्तमातृमंडलमालितम् ॥ क्वचिन्नित्यंनवक्षीबक्षुब्धयोगीश्वरीगणम् ॥ ३५ ॥ क्वचिच्छांतसमाधिस्थविश्रांतमुनिमालितम् ॥ समंदूरास्तसंरंभसाधुचित्तमनोहरम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—कहीं वायुके प्रवाहमें प्रबल विमान तृण तथा पत्तोंके समान उड रहेहैं, और कहीं चलायमान भ्रमरोंके समूहोंके पीछे त्वचाकी कान्तिके समान निर्मल होरहाहै ॥ ३३ ॥ कहीं पर्वत नदियोंके वर्णके समान वायु और धुलि प्रवाहके समान धूसर (मलिन) वर्ण, कहीं विमान और देवताओंकी प्रभासे चित्र शरीरवाला ॥ ३४ ॥ कहीं वस्त्र रहित मातृसंज्ञक देवियोंके मण्डलके नृत्यसे शोभित कहीं नित्यनूतन योगीश्वरिओंका समूह सुरापानसे मदनोन्मत्त होरहाहै ॥ ३५ ॥ कहीं शान्त और समाधिस्थ विश्रान्त मुनियोंकी मालासे शोभित, और कहीं क्रोधादि शून्य महात्माओंके चित्तके समान मनोहर आकाशको देखा ॥ ३६ ॥

गायत्किन्नरगंधर्वसुरस्त्रीमंडलंक्वचित् ॥ क्वचित्स्तब्धपुरापूर्णंवहत्पुरवरंक्वचित् ॥ ३७ ॥ क्वचिद्रुद्रपुरापूर्णंक्वचिद्ब्रह्ममहापुरम् ॥ क्वचिन्मायाकृतपुरंक्वचिदागामिपत्तनम् ॥ ३८ ॥ क्वचिद्भ्रमच्चंद्रसरःक्वचित्स्तब्धमयंसरः ॥ क्वचित्सरत्सिद्धगणंक्वचिदिंदुकृतोदयम् ॥ ३९ ॥ क्वचित्सूर्योदयमयंक्वचिद्रात्रितमोमयम् ॥ क्वचित्संध्यांशुकपिलंक्वचिन्नीहारधूसरम् ॥ ४० ॥

अर्थ—कहीं किन्नर गन्धर्वादि देवताओंकी स्त्रियोंका समूह गान कररहा है, कहीं निश्चल नगरोंसे पूर्ण तथा कहीं त्रिपुरआदिके श्रेष्ठ नगरोंको धारण कररहाहै ॥ ३७ ॥ कहीं शिवजीके पुर (कैलासादि) से व्याप्त, कहीं ब्रह्मपुरसे पूर्ण, कहीं मायारचित नगरीसे शोभित, कहीं भविष्यत् नगरोंसे व्याप्त ॥ ३८ ॥ कहीं भ्रमण करते अमृत पूर्णचन्द्रमाके सदृश तडागयुक्त, और कहीं देवताओंकी शक्तिसे घनीभूत जलमय तडागसहित, कहीं सिद्ध देवताओंका गण भ्रमण कररहाहै, और कहीं चन्द्रमाके उदयसे सुशोभित ॥ ३९ ॥ कहीं सूर्य्योदयसे पूर्ण, कहीं रात्रिके महा अन्धकारसे व्याप्त, कहीं सन्ध्याकालके किरणसे किंचित् रक्त तथा पीतवर्ण, और कहीं तुषारके समान धूसरवर्ण आकाशको देखा ॥ ४० ॥

क्वचिद्धिमाभ्रधवलंक्वचिद्वर्षत्पयोधरम् ॥ क्वचित्स्थलइवाकाशएवविश्रांतलोकपम् ॥ ४१ ॥ ऊर्ध्वाधोगमनव्यग्रसुरासुरगणंक्वचित् ॥ पूर्वापरोत्तरायाम्यादिक्संचाराकुलंक्वचित् ॥ ४२ ॥ अपियोजनलक्षाणिक्वचिद्दुष्प्रापभूधरम् ॥ अविनाशितमःपूर्णंदृषद्गर्भोपमंक्वचित् ॥ ४३ ॥ अविनाशिबृहत्तेजःक्वचिदर्कानलोपमम् ॥ हिमानीजठराशीतंक्वचिच्चंद्रादेसद्मसु ॥ ४४ ॥

अर्थ—कहीं बर्फके समान श्वेत, कहीं मेघोंकी वर्षासे संयुक्त, कहीं पृथिवीके समान आकाशमेंही लोकपाल विश्राम कर रहेहैं ॥ ४१ ॥ कहीं नीचे ऊपर आनेजानेमें सुर और असुरोंका समूह व्यग्र है, और कहीं पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण दिशाओंके संचारसे व्याकुल है ॥ ४२ ॥ कहीं लोकालोक पर्वतके (चारोंओर) लाखों योजनतक पर्वतोंकी दुर्लभता है, और कहीं अविनाशी अन्धकारसे पूर्ण पाषाणोंसे उसका मध्यभाग पूर्ण होरहा है ॥ ४३ ॥ कहीं सूर्य्य और अग्निके समान अविनाशी महान् तेजसे पूर्ण है कहीं चन्द्रआदि लोकोंमें हिम (बर्फ) के समूहके मध्यभागके समान अति शीतलतायुक्त आकाशको दोनोंने देखा ॥ ४४ ॥

क्वचिद्दद्दत्पुरोवृत्तकल्पवृक्षलतावनम् ॥ क्वचिद्दैत्यहतोत्तुंगप्रपतद्देवपत्तनम् ॥ ४५ ॥ वैमानिकनिपातेन वह्निलेखांकितंक्वचित् ॥ क्वचित्केतुशतोत्पातमिथःसंघट्टपट्टितम् ॥ ४६ ॥ क्वचिच्छुभग्रहगणप्रगृहीताग्र्यमंडलम् ॥ क्वचिद्रात्रितमोव्याप्तंक्वचिद्दिवसभास्वरम् ॥ ४७ ॥ क्वचिद्गर्जदंभोदंक्वचिन्मूकामलांबुदम् ॥ वातावकीर्णशुक्लाभ्रखंडपुष्पोत्तरंक्वचित् ॥ ४८ ॥

अर्थ—कहीं दैत्योंके भयसे देवताओंके अनुचर लोग कल्पवृक्ष, तथा लता वन आदिको लिये जा रहे हैं कहीं दैत्योंसे नष्ट कियेहुये बडे २ देवताओंके उच्च नगर गिर रहे हैं ॥ ४५ ॥ कहीं २ देवताओंके विमानोंके गिरनेसे उनके तेजोंसे अग्निकी रेखासे चिन्हितके समान होगया है, कहीं सैकडों केतुओंके उत्पातोंसे परस्परके संघटसे वस्त्रके समान घनीभूत होगया है ॥ ४६ ॥ कहीं शुभग्रह गणोंसे ऊर्ध्वभाग घिराहै, कहीं रात्रिके अन्धकारसे अन्धकार मय तथा कहीं दिनके प्रकाशसे प्रकाशमान ॥ ४७ ॥ कहीं मेघोंकी गर्जनासे व्याप्त कहीं शब्दरहित निर्मल मेघसेयुक्त कहीं वायुसे छिन्नभिन्न किये मेघोंके श्वेत खण्डरूपी ताराओंसे व्याप्त गगन मंडलको देखा ॥ ४८ ॥

क्वचिदत्यंतनिःशून्यमवदातमनंतरम् ॥ आनंदमृदुशांताच्छंज्ञस्येवहृदयंततम् ॥ ४९ ॥ शुक्रवाहनभेकौघैःक्वचिद्रलकृतारवम् ॥ शून्यतावारिवलितंक्षेत्रमाकाशवासिनाम् ॥ ५० ॥ मयूरहेमचूडादिपक्षिभिःक्वचिदावृतम् ॥ विद्याधरीणांदेवीनांवाहनैर्विहितास्पदैः ॥ ५१ ॥ क्वचिदभ्रांतरोन्नृत्यद्गुहमायूरमंडलम् ॥ क्वचिदग्निशुकैःश्यामंशाद्वलानामिवस्थलम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—कहीं दृश्यपदार्थोंसे सर्वथा शून्य, अज्ञानरूपी मेघोंके विघ्नोंसे वर्जित तथा कहीं आनन्दता मृदुता और शान्ततासे ज्ञानी पुरुषके हृदयके समान व्याप्त ॥ ४९ ॥ कहीं आकाशचारी शुक्रादिके वाहनरूपी मण्डूकोंके गलके शब्दोंसे शब्दायमान, कहीं आकाश निवासिओंके क्षेत्र (खेत) के समान शून्यतामय जलसे पूर्ण ॥५०॥ कहीं विद्याधरी देविओंके वाहनोंसे सुवर्णमय चोटीवाले मोर आदि पक्षियोंसे व्याप्त ॥ ५१ ॥ कहीं मेघोंके मध्यमें स्कन्द और मयूरके मण्डलोंके नृत्यसे पूर्ण, कहीं अग्निके वाहन शुकोंसे घासोंके स्थलके समान हरित वर्ण आकाशको दोनोंने देखा ॥५२॥

क्वचित्प्रेतेशमहिषमहिम्नावामनांबुदम् ॥ क्वचिदश्वैस्तृणग्रामशंकाग्रस्तासितांबुदम् ॥ ५३ ॥ क्वचिद्देवपुरव्याप्तंक्वचिद्दैत्यपुरान्वितम् ॥ अन्योन्याप्राप्यनगरंनगरंध्रकरानिलम् ॥ ५४ ॥ क्वचित्कुलाचलाकारनृत्यद्भैरवभासुरम् ॥ क्वचित्सपक्षशैलेंद्रसमनृत्यद्विनायकम् ॥ ५५॥ क्वचिद्घर्घरवातौघपक्षप्रोड्डिनपर्वतम् ॥ क्वचिद्गंधर्वनगरसुरस्त्रीवृंदबंधुरम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—कहीं यमके महिष (भैंसे) से कृष्णमेघसे संयुक्त, और कहीं अश्वोंकेद्वारा तृण राशियोंके भ्रमसे व्याप्त कृष्णमेघ सहित ॥ ५३ ॥ कहीं देवताओंके नगरों और कहीं दैत्योंके नगरोंसे पूर्ण, मध्य २ भागोंमें पर्वतोंमें छिद्र करनेमें समर्थ बलवान् वायुसे परस्पर प्राप्त होनेके अशक्य नगरोंसे व्याप्त ॥ ५४ ॥ कहीं महेन्द्रादि कुलपर्वतोंके आकारके समान भैरवोंके नृत्यसे प्रकाशमान, और कहीं पक्षसहित बडे पर्वतों सदृश आकारवाले विनायकोंके नृत्योंसे पूर्ण ॥ ५५ ॥ कहीं वायुके समूहके घर्घर शब्दके सदृश पक्षोंसे पर्वत पूर्ण कहीं गन्धर्वके नगरोंसे तथा देवताओंकी स्त्रियोंके समूहोंसे रमणीय आकाशको देखा ॥ ५६ ॥

क्वचिद्दद्दद्गिरिध्वस्तवृक्षलक्षोच्छ्रितांबुदम् ॥ क्वचिन्मायाकृताकाशनलिनीजलशीतलम् ॥ ५७ ॥ क्वचिदिंदुकराकृष्टिशीतलाल्हादमारुतम् ॥ क्वचित्तप्तानिलादग्धद्रुमपर्वतवारिदम् ॥५८॥ क्वचिदत्यंतसंशांतवातादेकांतनिर्ध्वनि ॥ क्वचित्पर्वततुल्याभ्रशिखाकूटशतोदयम् ॥५९॥ क्वचित्प्रावृड्भवोन्मत्तघनाभ्ररवघर्घरम् ॥ क्वचित्सुरासुरगणप्रवृत्तरणदुर्गमम् ॥ ६० ॥

अर्थ—कहीं उडतेहुये पर्वतोंने लक्ष वृक्षोंसे ऊंचे छत्ररूपी मेघोंको चूर्ण करदियाहै, कहीं मायाकृत आकाशमें कमलिनीसंयुक्त शीतल जलसे पूर्ण ॥ ५७ ॥ कहीं चन्द्रमाके किरणोंसे आकर्षित (खिंचेहुये) आनन्ददायक शी-

तल वायुसे संयुक्त और कहीं संतप्त वायुसे वृक्षपर्वत और मेघतक भस्मकर दिये गयेहैं ॥ ५८ ॥ कहीं वायुके अत्यन्त शान्त होनेसे सर्वथा शब्दरहित और कहीं पर्वताकार मेघोंकी चोटियोंके सेकडों समूहोंके उदयसे संयुक्त ॥ ५९ ॥ कहीं वर्षाकालमें उत्पन्न उन्मत्तके तुल्य सघन मेघोंके घर्घर शब्द सहित और कहीं अतिदुर्गम और भयंकर सुरासुर संग्रामसे शोभित ॥ ६० ॥

क्वचिव्द्योमाब्जिनीहंसीस्वनाहूताब्जवाहनम् ॥ क्वचिन्मंदाकिनीतीरनलिनीलुंठकानिलम् ॥ ६१ ॥ स्वशरीरेणगंगादिसरितांसन्निधानतः ॥ प्रोड्डीनमत्स्यमकरकुलीरांबुजकूर्मकम् ॥ ६२ ॥ पातालगार्कजनितभूच्छायाकाकचोपनैः ॥ क्वचित्क्वचिन्मंडलेषुग्रस्तचंद्रार्कमंडलम् ॥ ६३ ॥ क्वचित्सर्गानिलाघूतमायाकुसुमकाननम् ॥ पतत्पुष्पहिमासारत्रसद्वैमानिकांगनम् ॥ ६४ ॥ उदुंबरोदरमशककक्रमभ्रमज्जगत्रयांतरगतभूतसंचयम् ॥ विलंघ्यतद्वरललनेखमुच्चकैर्महीतलंपुनरपिगंतुमुद्यते ॥ ६५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने गगनवर्णनं नाम चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

अर्थ—कहीं आकाशकी कमल मालासे संयुक्त लतापर विराजमान हंसीके शब्दसे शिवजीका आल्हान होर हाहै और आकाश गंगाके तटपर कमलिनीके सौगन्ध्य सहित वायु वह रहाहै ॥ ६१ ॥ कहीं गंगा आदि नदियोंकी समीपतासे देवताओंका शरीर धारण करके मत्स्य, मकर, कुलीर (केंकडा) कछुआ आदि उडरहेहैं ॥६२॥ कहीं २ जब सूर्य इस पृथ्वीके अधोभागमें होजातेहैं, अथवा चन्द्रमासे व्यवहित पश्चात् भागमें जब प्राप्त होजातेहैं तब चन्द्र और सूर्यमण्डलमें ग्रहण दिखाई पडरहाहै ॥६३॥ कहीं २ देवताओंकी मायासे रचित वायुद्वारा पुष्पोंकी वनवाटिकाये अत्यन्त कंपादीगई हैं जिनसे पुष्पोंके गिरनेसे देवताओंकी स्त्रिया भयभीत होरहीं हैं ॥ ६४ ॥ इसप्रकार उदुम्बर (गुलर) के भीतर मच्छरके समान तीन लोकके प्राणियोंके समूह जिसमें भ्रमणकररहेहैं ऐसे विशाल आकाशको दोनों श्रेष्ठ ललनाओं (भगवती लीलावती) ने उल्लंघन करके पुनः महीतलमें आनेको उद्यतहुई ॥ ६५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने गगनवर्णनं नाम चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

पंचविंशः सर्गः ॥ २५ ॥

सातोंसमुद्र और द्वीपोंसे घिरा हुआ, और ब्रह्माण्डरूपी आवरणोंसे युक्त अपूर्व लोक उन दोनोंने देखा इस विषयका वर्णन इस २५ वें सर्गमें किया जाताहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ नभःस्थलाद्गिरिग्राममंगच्छंत्योकंचिदेवते ॥ ज्ञप्तिचित्तस्थितंभूमितलंददृशतुःस्त्रियौ ॥ १ ॥ ब्रह्मांडनरहत्पद्मंदिगष्टकदलंबृहत् ॥ गिरिकेसरसंबाधंस्वामोदभरसुंदरम् ॥ २ ॥ सरित्केसरिकानालमध्येवश्यायबिंदुकम् ॥ शर्वरीभ्रमरीभ्रांतंभूतौघमशकाकुलम् ॥ ३ ॥ अंतर्गुणगणाकीर्णंसुरंध्रैःसुषिरैर्वृतम् ॥ उह्यमानपयःपूरैर्दिवसालोककांतिमत् ॥ ४ ॥

अर्थ—आकाशमण्डलसे गिरिग्रामको जाती हुई उन दोनों स्त्रियोंने ज्ञप्तिके चित्तमें स्थित कोई अपूर्व महीतल देखा ॥ १ ॥ वह महीतल ब्रह्माण्डरूपी पुरुषका हृदयस्थकमल अष्टदिशारूपी दलोंसे महान् पर्वतरूपी केसरोंसे व्याप्त उत्तम सुगन्धके समूहसे सुन्दर ॥ २ ॥ अनेक नदीरूपी केसरोंके अन्यशाखा व नालसहित मध्यभाग हिमकणरूपी पुष्परसवाला, रात्रिरूपी भ्रमरीसे भ्रान्तिजनक और प्राणियोंके समूहरूपी मशको (मच्छरों) से व्याप्त ॥ ३ ॥ नालके अन्तर्गत गुणों (सूतो) पक्षमें भोग्यवस्तुओंके गुणोंसे व्याप्त उत्तम पातालादि अपरिमित जलके समूहोंसहित छिद्रोंसेयुक्त और दिनके प्रकाशसे शोभायमान था ॥ ४ ॥

रसार्द्रंसंभ्रमद्वंसंरात्रिसंकोचभाजनम् ॥ पातालपंकनिर्मग्ननागनाथमृणालकम् ॥ ५ ॥ कदाचिदास्यदांभोधिकंपकंपितदिग्दलम् ॥ अधोनालगतानंतदैत्यदानवकंटकम् ॥ ६ ॥ असुरस्त्रैणवल्लर्यासंभोगसुकुमारया ॥ प्राप्यभूभृन्महाबीजहृदयंभूतबीजया ॥ ७ ॥ जंबूद्वीपइतिख्यातांविपुलांतत्रकर्णिकाम् ॥ सरित्केसरिकानालांनगग्रामकेसराम् ॥ ८ ॥

अर्थ—पुष्पोंके रसोंके वा शृंगारादि सब रसोंसे आर्द्र, आकाशमें सूर्य्यरूपी हंसके भ्रमणसहित, रात्रिरूपी संकोचसे सेवित पातालरूपी पंकमें निमग्न शेषभगवान्‌रूपी कमलदण्डसे शोभायमान ॥ ५ ॥ कभीर पृथिवीका स्थान भूत जो महासमुद्र उसके कंपसे अष्टदिशारूपी दल कंपित होरहाहै, और नाल (पातालरूपी कमलदण्ड) के नीचेके भागमें दैत्य और दानवरूपी कण्टक सहित ॥ ६ ॥ तथा नालके नीचेके भागमें पातालके प्राणियोंके बीजरूपसे भोगमें सुकुमार असुरोंकी स्त्रियोंके समूहरूपी कमलकी दण्डीकी लतासे प्राप्त होनेसे योग्य महाबीजरूपी मेरु आदि पर्वतोंके जीवनभूत हृदयके समान (वह महीतल) था ॥ ७ ॥ उस महीतलरूपी कमलके ऊपर, नदीरूपी नालसहित, नगर ग्रामरूपी केसरोंसे संयुक्त ॥ ८ ॥

कुलशैलेश्वरोत्तुंगबीजसप्तकसुंदरीम् ॥ मध्यस्थोच्चमहामेरुबीजाक्रांतनभस्थलीम् ॥ ९ ॥ सरःप्रालेयकणिकांवनजंगलधूलिकाम् ॥ स्थलेष्वामंडलांतस्थजनजालालिमंडलाम् ॥ १० ॥ तांयोजनशताकारैः प्रतिराकंप्रबोधिभिः ॥ सागरैर्भ्रमरैर्व्याप्तांदिक्चतुष्टयशालिभिः ॥११॥ दिग्दलाष्टकविश्रांतसप्तुरांभोधिषट्पदाम् ॥ भ्रातृभिर्नवभिर्भूपैर्नवधापरिकल्पिताम् ॥ १२ ॥

अर्थ—सातो ऊंचे कुल पर्वतरूपी बीजोंसे सुन्दर, मध्य मार्गमें महामेरुरूपी बीजसे आकाशमंडलको घेरनेवाली ॥ ९ ॥ तडागरूपी हिम बिन्दु सहित, तथा वन जंगलरूपी धूलिवाली, और जिसके सम्पूर्ण भागोंमें चारों ओरसे प्राणियोंके जालरूपी भ्रमरोंका मण्डल भ्रमण कर रहाहै ऐसी जम्बूद्वीप नामवाली कर्णिका दोनोंने देखा ॥ १० ॥ शतयोजन आकारवाले, प्रत्येक पूर्णिमाको उमडनेवाले चारों दिशाओंमें शोभायमान समुद्ररूपी भ्रमरोंसे व्याप्त ॥ ११ ॥ आठों दिक्पाल देवता और समुद्ररूपी भ्रमरोंसे युक्त भद्र अश्व केतुमाल आदि नव भ्राताओंसे नव प्रकारसे विभागोंमें विभक्त कर्णिकाको देखा ॥ १२ ॥

लक्षयोजनविस्तीर्णामाकीर्णांचरजोलवैः ॥ नानाजनपदव्यूहस्थिरावश्यायसीकराम् ॥ १३ ॥ द्वीपात्तु द्विगुणंमानंलवणार्णवलेखया ॥ दधत्यावलितांबाहोप्रकोष्ठमिवकंबुना ॥ १४ ॥ ततोपिद्विगुणंदेहंदधत्यावलयाकृतिम् ॥ जगद्भूतलताव्याप्तांशाकाख्यदीपलेखया ॥ १५ ॥ ततोपिद्विगुणाकारंधारयंत्याचवेष्टिताम् ॥ प्रत्यग्रक्षीरपूर्णाब्धिलेखयास्वादुशीतया ॥ १६ ॥

अर्थ—लाखयोजन विस्तारवाली धूलिसे व्याप्त, नानाप्रकारके जनपदके समूहोंसे स्थिर हिम कणवाली उस कर्णिको (जम्बुद्वीप नामक कर्णिका) देखा ॥ १३ ॥ उस द्वीपसे द्विगुण परिमाण वाले क्षारसमुद्रकी लेखा (रेखा) से ऐसे घिरी हुई जैसे शंखके कंकणसे हस्तकी कलाई ॥ १४ ॥ इसके अनन्तर इससेभी द्विगुण आकारको धारण करनेवाली, पद्मकी लताके समान शाक नामक द्वीपकी लेखासे घिरी हुईथी ॥ १५ ॥ इसके अनन्तर इस शाक द्वीपसे दूने आकारको धारण करनेवाली शीतल स्वादयुक्त क्षीरसमुद्रकी रेखासे वह व्याप्त थी ॥ १६ ॥

ततोपिद्विगुणाकारंधारयंत्योपवेष्टिताम् ॥ नानाजनालंकृतयाकुशाख्यद्वीपलेखया ॥ १७ ॥ ततोपिद्विगुणाकारंधारयंत्याचवेष्टिताम् ॥ दध्यब्धिलेखयानित्यसंतर्पितसुरौघया ॥ १८ ॥ ततःक्रौंचाभिधद्वीपलेखयैवंप्रमाणया ॥ वेष्टितांखातरचयानवांनृपपुरीमिव ॥१९॥ ततोपिचघृतांभोधिलेखयैवंप्रमाणया ॥ ततोपिशाल्मलीद्वीपलेखयामलपूर्णया ॥ २० ॥ ततःसुरामहांभोधिलेखयापुष्पशुभ्रया ॥ शेषस्यदेहलतयाहरिमूर्त्तिमिवावृताम् ॥२१॥ ततोगोमेदकद्वीपलेखयैवंप्रमाणया ॥ इक्ष्वब्धिलेखयाप्येवंहिमवत्सानुशुद्धया ॥ २२ ॥ ततोपिपुष्करद्वीपलेखयाद्विगुणस्थया ॥ अंतेस्वादूदकांभोधिलेखयैवंप्रमाणया ॥२३

अर्थ—इसके अनन्तर इस (क्षीरसमुद्र) सेभी दूने आकारवाली, नानाप्रकारके जनपदोंसे शोभित कुशद्वीपकी रेखासे घिरी हुईथी ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर इस कुशद्वीपसेभी द्विगुण आकारको धारण करनेवाली और देवताओंके समूहोंको तृप्त करनेवाली दधिसमुद्रकी रेखासे घिरीथी ॥ १८ ॥ इसके पश्चात् इस दधिसमुद्रसेभी दूने परिमाणवाली क्रौंच द्वीपरूपी परिखासे ऐसे घिरीथी जैसे राजाकी नूतन नगरी ॥ १९ ॥ इसके अनन्तर इससेभी द्विगुण घृतसमुद्रकी रेखासे घिरी हुई, और उसके अनन्तर इससेभी दूने आकारवाली निर्मल शाल्मलीद्वीपकी रेखासे वह कर्णिका घिरीथी ॥ २० ॥ इसके पश्चात् पुष्पके समान श्वेत सुरा (मदिरा) के महासमुद्रकी रेखासे ऐसे घिरीथी जैसे शेषकी शरीररूपी लतासे कृष्णभगवान्‌की मूर्ति ॥ २१ ॥ इसके अनन्तर इससेभी द्विगुण परिमाणवाले गोमेदक नाम मणि विशेष प्रधान प्लक्षद्वीपसे आवृत इसके पश्चात् हिमवान्‌के शिखरके समान शुद्ध पूर्वद्वीपसे द्विगुण प्रमाणवाली इक्षु (ईख) के समुद्रकी रेखासे आवृतथी ॥ २२ ॥ इसके आगे पूर्वसमुद्रसे दूने प्रमाणवाले पुष्करद्वीपकी

रेखासे घिरीथी, और उसके अनन्तर पूर्व द्वीपसे द्विगुण प्रमाणवाली अन्तमें जलके समुद्रकी रेखासे घिरी हुई जम्बूद्वीप नाम कर्णिकाको उन दोनोंने देखा ॥ २३ ॥

ततोदशगुणेनाथपातालतलगामिना ॥ निखातवलयेनोच्चैःश्वभ्रसंभाररूपिणा ॥ २४ ॥ पातालगामिमार्गेणवलितांभयदात्मना ॥ एतस्मात्खलुसर्वस्मात्ततोदशगुणोच्चया ॥ २५ ॥ आव्योमसुचतुर्दिक्षुश्वभ्रसंभारभीषया ॥ अर्द्धोन्म्लानतमोरूपलग्ननीलोत्पलस्रजा ॥ २६ ॥ नानामाणिक्यशिखरकल्हारकुमुदाञ्जया ॥ लोकालोकाचलोत्तालविपुलोद्दामालया ॥ २७ ॥ वलितांत्रिजगल्लक्ष्मीधम्मिल्लवल्लनामिव ॥ एतस्मादेवसर्वस्मात्ततोदशगुणात्मना ॥ २८ ॥ अज्ञातभूतसंचारनाम्नारण्येनमालिताम् ॥ एतस्मादेवसर्वस्मात्ततोदशगुणात्मना ॥ २९ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर इस अन्तिम जल समुद्रसेभी १० दशगुण अधिक परिमाणवाले, पातालगामी गर्त (गढे) के समूहरूपी महाभयदायी पातालगामी मार्गवाले बडेभारी वल्याकार निम्न प्रदेशसे वह कालिका घिरी है, और इसके आगे इन सबसे दशगुण अधिक चारों ओर आकाश पर्यन्त ऊंची पूर्वकथित गर्त समूहसे भयंकर और सूर्यके दूसरे भागमें म्लानिको प्राप्त, नीलकमलकी माला सहित नानाप्रकारके माणिक्यके शिखरके तडागोंपर उत्पन्न कुमुदरूपी कमलकी मालावाली, लोकालोक पर्वत विशालतालरूपी सूत्रकी मालासे वह त्रिलोककी लक्ष्मीरूप कर्णिका ऐसे घिरीहै जैसे मालासे सघन केश, और इसके आगे इस सबसे दशगुण अधिक अज्ञात जीव संचार नाम जंगलसे घिरीहै इसके आगे इससेभी दशगुण अधिक आकाशके समान दशोदिशामें अपरिमित जलसे घिरीहै ॥ २४ ॥ २५ ॥ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥

नभसैवचतुर्दिक्कंव्याप्तामतुलवारिणा ॥ एतस्मादेवसर्वस्मात्ततोदशगुणात्मना ॥ ३० ॥ मेर्वादिद्रावणोत्केनज्वालाजालेनमालिताम् ॥ एतस्मादथसर्वस्मात्ततोदशगुणात्मना ॥ ३१ ॥ मेर्वाद्यचलसंघातंनयतातृणपांसुवत् ॥ वहताद्रींद्रविस्फोटकारिणाजवहारिणा ॥ ३२ ॥ निःशून्यत्वादशब्देनमरुतापरितोवृतम् ॥ एतस्मादथसर्वस्मात्ततोदशगुणात्मना ॥ ३३ ॥ परितोवलितंव्योम्नानिःशून्येनैकरूपिणा ॥ अथयोजनकोटीनांशतेनघनरूपिणा ॥ व्याप्तंब्रह्मांडकुड्येनहैमेनापिद्विपर्वणा ॥ ३४ ॥ इतिजलधिमहाद्रिलोकपालत्रिदशपुरांबरभूतलैःपरीतम् ॥ जगदुदरमवेक्ष्यमानुषीद्राग्भुविनिजमंदिरकोटरंददर्श ॥ ३५

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने भूलोकवर्णनं नाम पंचविंशः सर्गः ॥ २५ ॥

अर्थ—और इसके आगे इससेभी दशगुण अधिक मेरुआदि पर्वतोंकी द्रवीभूत (जलमय) करनेमें अति अभिलाषी प्रलयकालकी ज्वालासे घिरीहै ॥३०॥३१॥ इसके आगे इससबसे दशगुण अधिक,मेरू आदि पर्वतोंकोभी तृणधूलिके समान करनेवाले, बडे २ पर्वतोंको धारण करनेवाले, तथा अन्यभूतोंके वेगोंको हरनेवाले, शब्दरहित होनेसे शून्यके समान वायु ब्रह्माण्ड घिराहै ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ इससे आगे इन पुर्वोक्त सबसे दशगुण अधिक शून्यरूप आकाशसे चारों ओर ब्रह्माण्ड घिराहै ॥ ३४ ॥ इसके आगे १०० सौ कोटि योजन परिमाणवाली, अति सघन सुवर्णकी दोहरी ब्रह्माण्डकी दीवालसे व्याप्तहै ॥ ३५ ॥ इसप्रकार समुद्र, बडे २ महान् पर्वत लोकपाल तथा देवताओंके नगर और उत्तम २ भूमण्डलोंसे घिराहुआ जगत्का उदर (मध्यभाग) देखकर मानुषी लीलाने शीघ्रही पृथिवीपर अपने मन्दिरका आधारभूत गिरिग्रामके आकाशको देखा ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने भाषाऽनुवादे भूलोकवर्णनं नाम पंचविंशः सर्गः ॥ २५ ॥

षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

अपने घरमें अपने मनुष्योंको तथा उनके विलापको देखकर उनके ऊपर लीलाका अनुग्रह तथा जगत्के तत्वका वर्णन इस २६ वे सर्गमें किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इतितेवरवर्णिन्यौततोब्रह्मांडमंडलात् ॥ निर्गत्यान्यदनुप्रापेयत्रतद्ब्राह्मणास्पदम् ॥ १ ॥ ततोददृशतुःसद्मस्वमेवंसिद्धयोषितौ ॥ अदृश्येएवलोकस्यमंडपंब्राह्मणास्पदम् ॥ २ ॥ चिंता

विधुरदासीकंबाष्पक्लिन्नांगनामुखम् ॥ विध्वस्तप्रायवदनंशीर्णपर्णांबुजोपमम् ॥ ३ ॥ नष्टोत्सवपुरप्राय मगस्त्यात्तमिवार्णवम् ॥ ग्रीष्मदग्धमिवोद्यानंविद्युद्दग्धमिवद्रुमम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-इसप्रकार वे दोनों श्रेष्ठ अंगना पद्म भूपालका आधार पूर्वोक्त ब्रह्माण्डमण्डलसे निकलके दूसरे उस ब्रह्माण्डका स्थान था ॥ १ ॥ इसके अनन्तर लीला और भगवतीने सब लोकसे अदृश्य होके अपने उस गृहको तथा उस मण्डपमें प्राप्त हुईं जहांपर जहां उस ब्राह्मणका स्थान था ॥ २ ॥ चिन्तासे व्याकुल दासी आदिको धारण करनेवाला, आसुओंकी धारासे स्त्रियोंका मुख जिसमें व्याप्त होरहा है, शुष्क पर्ण कमलके समान स्त्रियोंके मलीन मुखको धारण करनेवाला ॥ ३ ॥ उत्सवरहित नगरके सदृश, अगस्त्यऋषिसे ग्रस्तसमुद्रके समान, ग्रीष्मऋतुसे दग्ध वाटिकाके सदृश, बिजुलीसे जलायेहुये वृक्षके समान उस गृहको देखा ॥ ४ ॥

वातच्छिन्नमिवांभोदंहिमदग्धमिवांबुजम् ॥ अल्पस्नेहदशंदीपमिवालोकनभेदनम् ॥५॥ आसन्नमृत्युक रुणाकुलवक्त्रकांतिसंशीर्णजीर्णतरुपर्णवनोपमानम् ॥ वृष्टिव्यपायपरिधूसरदेशरूक्षंजातंगृहेश्वरवियोग हतंगृहंतत् ॥६॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथसानिर्मलज्ञानचिराभ्यासेनसुंदरी ॥ संपन्नासत्यसंकल्पासत्य कामाचदेववत् ॥७॥ चिंतयामासमामेतेदेवींचेमांस्वबंधवः ॥ पश्यंतुतावत्सामान्यललनारूपधारणीम् ॥८

अर्थ—वायुसे छिन्नभिन्न कियेहुये मेघके सदृश, हिम (पाला) से दग्ध कमलके सदृश, देखनेमें दुःखदायी अल्प तैलवाले दीपकके समान ॥ ५ ॥ शोकसे नष्ट होगई है मुखकी शोभा सहित इसीसे निकट है मृत्यु जिसकी उसके सदृश, तथा शुष्क होगये हैं वृक्ष और पत्र जिसके ऐसे बनके समान, और वृष्टिके अभावसे मलिन तथा सूखे देशके सदृश वह गृह स्वामीके वियोगसे होगया था ॥ ६ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-इसके अनन्तर निर्मल ज्ञानके दीर्घकालके अभ्याससे वह लीला देवताके समान सत्यसंकल्प तथा सत्य कामवाली होगई ॥ ७ ॥ उसने अपने चित्तमें विचार किया कि ये मेरे बन्धुलोग मुझे तथा भगवतीजीको साधारण स्त्रीका रूप धारण किये हुये देखें ॥ ८ ॥

ततोगृहजनस्तत्रसददर्शांगनाद्वयम् ॥ लक्ष्मीगौर्योर्युगमिवसमुद्भासितमंदिरम् ॥ ९ ॥ आपादविविधाम्लानमालावलनसुंदरम् ॥ वसंतलक्ष्म्योर्युगलमिवामोदितकाननम् ॥ १० ॥ सर्वौषधिवनग्रामंपूरयंत्यौरसायनैः ॥ शीतलाल्हादसुखदंचंद्रद्वयमिवोदितम् ॥ ११ ॥ लंबालकलतालोललोचनालिविलोकनैः ॥ किरत्कुवलयोन्मिश्रमालतीकुसुमोत्करान् ॥ १२ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर उस गृहके सम्पूर्ण लोग गृहको प्रकाश करनेवाली दो स्त्रियोंको ऐसे देखा जैसे लक्ष्मी और पार्वतीका जोडा ॥ ९ ॥ वह दोनों स्त्रियोंका युग (जोडा) शिरसे लेके पादपर्यन्त अनेक प्रकारकी नूतन पुष्पोंकी मालासे अति सुन्दर और बसन्तऋतुके शोभाके युग (जोडा) के सदृश वनको सुगन्धित करनेवाला ॥ १० ॥ अपने अमृतमय चन्द्रिकाके रससे सम्पूर्ण ओषधि, वन तथा ग्रामादिको पूर्ण करता हुआ, शीतलता आनन्द तथा सुखको देनेवाले दो चन्द्रमाके समान उदित ॥ ११ ॥ लटकते हुये लम्बे केशोंके निकट चंचल नेत्ररूपी भ्रमरोंसे नीलकमलसे मिश्रित मालती पुष्पोंकी वृष्टि करता हुआ दोनों स्त्रियोंका युग था ॥ १२ ॥

द्रुतहेमरसापूरसरित्सरणहारिणा ॥ देहप्रभाप्रवाहेणकनकीकृतकाननम् ॥ १३ ॥ सहजायावपुर्लक्ष्म्या लीलादोलाविलासिनः ॥ तेएतेचतरंगाढ्यानिजलावण्यवारिधेः ॥ १४ ॥ विलोलबाहुलतिकायुगेनारुणपाणिना ॥ किरन्नवनवंहैमंकल्पवृक्षलतावनम् ॥ १५ ॥ पादैरस्पृदितामल्लानपुष्पकोमलपल्लवैः ॥ स्थलाब्जदलमालाभैरस्पृशद्भूतलंपुनः ॥ १६ ॥

अर्थ—द्रवीभूत सुवर्णके रसमय प्रवाहवाली नदीके वेगके समान मनको हरनेहारी शरीरकी दीप्तिसे वनको सुवर्णके समान करनेवाला ॥ १३ ॥ शरीरकी सहज (स्वभावसिद्ध) शोभारूपी लक्ष्मीके क्रीडार्थ बनाये हुये दोला (झूला) के ऊपर विलास करनेवाले अपने सौन्दर्यरूपी समुद्रकी श्रेष्ठ तरंगके समान प्रतीयमान ॥ १४ ॥ चंचल बाहुरूपी लता तथा रक्तवर्ण हस्तकमलके युग (जोडे) से नूतन२ सुवर्णमय कल्पलता वनको निर्माण करतेहुये ॥ १५ ॥ स्वच्छ, नूतन और कोमल पुष्प तथा पल्लवकेसमान, तथा स्थल कमलके सदृश चरणोंसे पुनः पृथ्वीतलको स्पर्श करनेवाला वह युग था ॥ १६ ॥

तालीतमालखंडानांशुष्काणांशुचिशोचिषाम् ॥ आलोकनामृतासेकैर्जनयद्बालपल्लवान् ॥ १७ ॥ नमोस्तुवनदेवीभ्यामित्युक्त्वाकुसुमांजलिम् ॥ तत्याजज्येष्ठशर्माथसार्द्धंगृहजनेनसः ॥ १८ ॥ पपात पादयोर्गेहेतयोर्वैकुसुमांजलिः ॥ प्रालेयसीकरासारःपद्मिन्याइवपद्मयोः ॥ १९ ॥ ज्येष्ठशर्मादयऊचुः ॥ जयतंवनदेव्यौनोदुःखनाशार्थमागते ॥ मायःपरपरित्राणमेवकर्मनिजंसताम् ॥ २० ॥

अर्थ—ग्रीष्मऋतुके कारण पीतवर्ण तथा सूखेहुये तालीतमाल खण्डोंको अपनी अमृतमयी दृष्टिसे नूतन पल्लव सहित करनेवाला (वह स्त्रियोंका जोडा) था ॥ १७ ॥ उनको देखकर ज्येष्ठशर्म्मा (मृत ब्राह्मणका पुत्र) सब गृहके लोगोंके साथ, तुम दोनों बन देवियोंको नमस्कारहै, ऐसा कहके उनके ऊपर पुष्पकी वृष्टि की ॥ १८ ॥ उन दोनोंके चरणोंके ऊपर पुष्पोंकी वृष्टि ऐसे गिरी जैसे कमलिनीके ऊपर हिमजलके कण ॥ १९ ॥ ज्येष्ठशर्म्मादि बोले–हे बनकी देवियो ! आपकी जयहो, आप लोग हमारे कल्याणके अर्थ यहां प्राप्त हुई हैं, क्योंकि दूसरोंकी रक्षा करना यही एक सज्जनोंका निजकार्य्य है ॥ २० ॥

इतितद्वचनांतेतेदेव्यावूचतुरादरात् ॥ अख्यातदुःखंयेनायंलक्ष्यतेदुःखितोजनः ॥ २१ ॥ ज्येष्ठशर्मादय स्तेतेदेव्यौप्रतियथाक्रमम् ॥ निजंतद्दुःखमाचख्युर्दंपतिव्यसनात्मकम् ॥ २२ ॥ ज्येष्ठशर्मादयऊचुः ॥ देव्यावभवतांस्निग्धाविहब्राह्मणदंपती ॥ सर्वातिथीकुलकरौस्तंभभूतौद्विजस्थितेः ॥ २३ ॥ तावद्यगृहसुत्सृज्यसपुत्रपशुबांधवम् ॥ स्वर्गंगतौनःपितरौतेनशून्यंजगत्त्रयम् ॥ २४ ॥

अर्थ—उनके बचनके अन्तमें वे दोनों देवी बडे आदरसे बोली कि तुम उस दुःखको कहो जिससे कि ये सब लोग दुःखी भान होतेहैं ॥ २१ ॥ ज्येष्ठशर्म्मा आदि उन दोनो देवियोंसे यथाक्रम अपने उस दुःखको कहा जो ब्राह्मण और ब्राह्मणीके मृत्युसे हुआथा ॥ २२ ॥ ज्येष्ठशर्मादि बोले–हे देवियो इस स्थानमें, सबका आतिथ्य (महमानी) करनेवाले, कुलको बढाने हारे, और ब्राह्मणोंकी मर्य्यादाके स्तम्भके सदृश ब्राह्मण और ब्राह्मण हुयेथे ॥ २३ ॥ वे हमारे मातापिता दोनों पुत्र, पशु गृह, और बन्धु आदिको छोडके आज स्वर्गको चलेगये इससे हमको तीनों लोक शून्य भान होताहै ॥ २४ ॥

पक्षिणोगृहमारुह्यविक्षिपंतःप्रतिक्षणम् ॥ देहंशून्येमृतंभक्त्याशोचंतिमधुरैःस्वरैः ॥ २५ ॥ गुहागुरुगुरारावप्रलापपलपनाकुलः ॥ सरित्स्थूलाश्रुधाराभिःपरिरोदितिपर्वतः ॥ २६ ॥ निर्झराक्रंदकारिण्यो मुक्तांबरपयोधराः ॥ तप्तनिःश्वासविध्वस्ताःपरंकार्श्यमितादिशः ॥ २७ ॥ क्षतविक्षतसर्वांगःकरुणाक्रंदकर्कशः ॥ उपवासरतोग्रामोदीनोमृतिपरःस्थितः ॥ २८ ॥

अर्थ—पूर्ण जन जगत्को पूर्णरूप देखताहै, विषयी विषयीमय, और दुखी दुःखमय अपने चित्तके समान देखताहै, इस न्यायके अनुसार कहतेहैं देखिये ये पक्षी लोग इस गृहके ऊपर चढके अपने शरीरको फडफडाते हुये मृत जीवकी भक्तिसे मधुरस्वरसे शोच रहे हैं ॥ २५ ॥ पर्वतकी गुहा ये गुरगुर शब्दोंसे व्याकुल होके विलाप कर रही हैं, तथा पर्वतभी नदीरूप स्थूल धाराओंसे रो रहेहैं ॥ २६ ॥ निरन्तर विलाप करनेवाली, आकाश वा वस्त्रको त्याग हुये, उष्णश्वास लेले नष्टके समान सम्पूर्ण दिशा अति कृशताको प्राप्त होगई हैं ॥ २७ ॥ भूमिपर बार २ गिरनेसे जिसके अंग ठोर २ से कटगये हैं ऐसे करुणसे रोदन करनेवाले, और उपवास करते २ मरणके अभिमुख सब ग्रामके लोग प्राप्त हैं ॥ २८ ॥

दिवसंप्रतिवृक्षाणामवश्यायाश्रुबिंदवः ॥ गुच्छलोचनकोशेभ्यस्तापोष्णानिपतंत्यधः ॥ २९ ॥ प्रशांत जनसंचाररथ्याक्षारविधूसरः ॥ विधवाविगतानंदासंशून्यहृदयास्थिता ॥ ३० ॥ कोकिलालिप्रलापिन्योवृष्टिबाष्पहतालताः ॥ उष्णोष्णश्वसनादेहंघ्नंतिपल्लवपाणिभिः ॥ ३१ ॥ आत्मानंशतधाकर्तुंश्वभ्रच्छ्भ्रशिलातले ॥ निर्झराःप्रपतंत्येतेतापतप्तशरीरकाः ॥ ३२ ॥

अर्थ—वृक्षोंसे पुष्पोंके गुच्छारूपी नेत्रोंसे शोकसे अति उष्ण कुहिरारूपी आसुओंकी बून्दे प्रतिदिन नीचे गिर रही हैं ॥ २९ ॥ देखिये मार्ग मनुष्योंके संचारसे रहित, धूलिसें मलिन विधवाके समान आनन्दसे वर्जित शून्यहृदयके समान स्थितहै ॥ ३० ॥ लतायें कोइल तथा भ्रमरोंके द्वारा विलाप करते हुये, वृष्टिरूप आसुओंसे नष्टके सदृश अति उष्णश्वास लेतीहुई पल्लवरूपी हाथोंसे अपनी शरीरोंको हनन कर रही हैं ॥ ३१ ॥ शोकरूपी अग्निसे सन्तप्त शरीर जलके स्रोतगर्त (गढे) में स्थित शिलाओंपर अपने शरीरोंको सैकडों प्रकारसे चूर्ण करनेके लिये गिर रहे हैं ॥ ३२ ॥

निःशंकयागतश्रीकामूकाविलुलिताशयाः ॥ अंधेनतमसापूर्णागृहागहनतांगताः ॥ ३३ ॥ उद्यानपुष्पखंडेभ्योरुदद्भयोभ्रमरारवैः ॥ पूतिगंधोविनिर्यातिस्वामोदापरनामकः ॥ ३४ ॥ चैत्रद्रुमविलासिन्योविरसाःप्रतिवासरम् ॥ लताःकृशाविलीयंतेसंकुचद्गुच्छलोचनाः ॥ ३५ ॥ प्रक्षेप्तुमंबुधौदेहंप्रवृत्तागंतुमाकुलाः ॥ कुल्याःकलकलालोलंदोलयंत्यस्तनुंभुवि ॥ ३६ ॥

अर्थ—सर्वथा हर्षसे शून्य, सब प्रकारकी शोभासे वर्जित भीरसे व्याकुल, महान्धकारसे पूर्णगृह वनके समान होगयेहैं ॥ २३ ॥ पुष्पोंकी वाटिका जो भ्रमरोंके शब्दसे रूदनकर रहीं हैं उनसेभी उत्तम सुगन्धके स्थानमें दुर्गन्ध निकल रहाहै ॥ २४ ॥ कुबेरकी वाटिकाओंमें विलास करनेके समान स्वभावयुक्त लता प्रतिदिन विरस होतीहुई अपने गुच्छरूपी नेत्रोंको संकुचित करतीहुई कृश होके नष्ट होरहीहैं ॥ २५ ॥ नदियोंने कलकल शब्द करके अपने देहोंको भूमिपर कंपातीहुई समुद्रमें अपने शरीरोंको फेकनेके लिये गमन करनेको आरम्भ करदियाहै ॥ २६ ॥

अशंकमशकापातस्पंदमप्यतिचापलम् ॥ कलयंत्यःस्थितावाप्योनिस्पंदानंदमात्मनि ॥ ३७ ॥ गायतिकिन्नरगंधर्वविद्याधरसुरांगनम् ॥ नूनमद्यभोजातमस्मत्ताताभ्यलंकृतम् ॥ ३८ ॥ तद्देव्यौकियतांताव दस्माकंशोकनाशनम् ॥ महतांदर्शनंनामनकदाचननिष्फलम् ॥ ३९ ॥ इत्युक्तवंतंसापुत्रंमूर्ध्निपस्पर्शपाणिना ॥ पल्लवेनानतानम्रंमूलग्रंथिमिवाब्जिनी ॥ ४० ॥

अर्थ—पूर्वकालकी चपलताको न धारण करतीहुई वापीगण, इससमय मशकोंके पातसेभी अशंकित समाधिमें मग्नके समान चेष्टा और गतिसे रहित स्थितहैं ॥ ३७ ॥ जिसमें किन्नर विद्याधर, गन्धर्व और देवताओंकी अंगना ये गान करकर रहीहैं ऐसा आकाश (स्वर्ग) इससमय निश्चय करके हमारे माता पितासे शोभित किया गया है ॥ ३८ ॥ इसलिये हे देवियो इस हमारे शोकको नाश कीजिये, क्योंकि महात्माओंका दर्शन कदाचित् निष्फल नहीं होता ॥ ३९ ॥ इसप्रकार कहनेके अनन्तर उस लीलाने झुकके अपने पुत्रके मस्तकको अपने कोमल हस्तोंसे स्पर्श किया जैसे जलके अभाव दशामें नम्रीभूत कमलिनी अपनी मूल ग्रन्थिको ॥ ४० ॥

तस्याःस्पर्शेनतेनासौदुःखदौर्भाग्यसंकटम् ॥ जहौप्रावृड्घनासंगाद्ग्रीष्मतापमिवाचलः ॥ ४१ ॥ सर्वोगृहजनःसोथानयोर्देव्योर्विलोकनात् ॥ लक्ष्मीवान्दुःखनिर्मुक्तोबभूवामृतपोयथा ॥४२॥श्रीरामउवाच॥ तयास्यलीलयामात्रापुत्रस्यज्येष्ठशर्मणः ॥ कस्मान्नदर्शनंदत्तंमोहंतावन्निराकुरु ॥४३॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ बुद्धःपृथ्व्यादिबोधेनयेनपृथ्व्यादिसंघकः ॥ तस्यपिंडात्मतांधत्तेव्योमैवान्यस्यकेवलम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—उस लीलाके उस स्पर्श (छूने) से उसने अपने दुःख और दौर्भाग्य संकटको ऐसे त्यागदिया जैसे वर्षाकालके मेघके संयोगसे ग्रीष्म ऋतुके सन्तापको पर्वत ॥ ४१ ॥ और सम्पूर्ण गृहके लोगभी उन दोनों देवियोंको देखनेसे शोभायुक्त तथा दुःखोंसे ऐसे विनिर्मुक्त होगये जैसे अमृतका पीनेवाला ॥ ४२ ॥ श्रीरामजी बोले—हे भगवन्! जब लीला ज्येष्ठशर्माकी पूर्वजन्मकी माताथी तो और सत्यसंकल्पभी होगईथी तो उसी माताकेही स्वरूपसे दर्शन अपने पूर्वजन्मके पुत्रको क्यों न दिया, यह मेरा मोह दूर कीजिये ॥ ४३ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—जिस अज्ञानीने मिथ्याभूत पृथिवी आदि तत्त्व तथा शरीरादि सत्य मान रक्खाहै उसके लिये चिदाकाशही पृथिवी शरीरादि रूपको धारण करताहै और अन्य ज्ञानीको पृथिवी आदिका हेतु भूत अज्ञानके न रहनेसे केवल ब्रह्मसत्ताही स्थितहै ऐसा भान होताहै, तात्पर्य्य यह कि लीलाको तत्त्वज्ञान होजानेसे पुत्रादि प्रपंचोंमें मिथ्यात्वका निश्चय होगया इसलिये पुत्रस्नेह न रहनेसे पूर्वशरीर धारण नहीं किया ॥ ४४ ॥

असदेवांगसदिवभातिपृथ्व्यादिवेदनात् ॥ यथाबालस्यवेतालोनाभातितदवेदनात् ॥ ४५ ॥ यथापृथ्व्यादिनाभातमपृथ्व्यादिभवेत्क्षणात् ॥ स्वप्नेस्वप्नपरिज्ञानात्तथाजाग्रत्यपिस्फुटम् ॥ ४६ ॥ पृथ्व्यादिखतयाबुद्धंखमित्येवानुभूयते ॥ तथाहिक्षुब्धधातूनांकुड्येषुखइवोद्यमः ॥ ४७ ॥ स्वप्नेनगरमुर्वीवाशून्यंखातंचबुद्ध्यते ॥ स्वप्नांगनाचकुरुतेशून्याप्यर्थक्रियांनृणाम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—हे प्रिय रामजी ! यह पृथिवी आदि असत् होनेपरभी सत्यज्ञान सत्यके समान ऐसे भासताहै जैसे बालकको वैताल और जिसको उसमें सत्यत्व बुद्धि नहीं है उसको नहीं भान होता ॥ ४५ ॥ जैसे स्वप्नमें जो पृथिवी आदि रूप भान होरहाहै वह स्वप्नके ज्ञानसे अपृथिवी आदिरूप होजाताहै ऐसे तत्वज्ञानसे जाग्रत् अवस्थामें यह प्रपंच मिथ्यारूप भासने लगताहै ॥ ४६ ॥ पृथिवी आदि यदि आकाशरूपसे ज्ञात हो तो आकाशरूपसेही वे भान होते हैं, जैसे पित्तादिके कोपसे विक्षिप्त चित्तवालोंको भित्तियोंमेंही आकाश बुद्धि होती है ॥ ४७ ॥ स्वप्नमें नगर अथवा पृथिवी शून्य वा खंदकके समान प्रतीत होती है और स्वप्नकी रची मनुष्योंकी पाद मर्दन पेर दाबना आदि क्रिया करती है ४८

खंपृथ्व्यादितयाबुद्धंपृथ्व्यादिभवतिक्षणात् ॥ मूर्छायांपरलोकोपिप्रत्यक्षमनुभूयते ॥ ४९ ॥ बालोव्योमैववेतालंम्रियमाणोंबरेवनम् ॥ केशोंड्रकंखमन्यस्तुखमन्योवेत्तिमौक्तिकम् ॥ ५० ॥ त्रस्तश्चीबार्द्धनि

द्राश्वनौयानाश्वसदैवखे ॥ वेतालवनवृक्षादिपश्यंत्यणुभवंतिच ॥ ५१ ॥ यथाभावितमेतेषांपदार्थाना मतोवपुः ॥ अभ्यासजनितंभातिनास्त्येकंपरमार्थतः ॥ ५२ ॥

अर्थ—आकाशको यदि पृथिवी आदिके रूपसें जानो तो क्षणभरमें पृथिवी आदिका रूप होजाताहै, और मूर्च्छामें परलोक प्रत्यक्षके समान देख पडताहै ॥ ४९ ॥ बालकको आकाशही पिशाचरूप भासताहै, मरताहुआ पुरुष आकाशमें वन देखताहै, और कोई आकाशको केश मशकादिरूपसे देखताहै तथा किसीको आकाश मोतीरूपसे भ्रान्तिसे भान होताहै ॥५०॥ भयभीत, उन्मत्त, और अर्द्ध निद्रागस्त (अधजगे) सदा आकाशमें नौकायान, भूत वन और वृक्षादि देखतेहैं और उनसे भागते भी हैं ॥ ५१ ॥ इसलिये इन पदार्थोंमें अभ्याससे जैसी भावना होरही है वैसाही उनका शरीर भासताहै, क्योंकि यथार्थमें इनका कोई नियतरूप नहीं है ॥ ५२ ॥

लीलयात्तुयथावस्तुबुद्धापृथ्व्यादिनास्तिता ॥ आकाशमेवसंवित्त्याभातिभ्रांतितयोदितम् ॥५३॥ ब्रह्मात्मैकचिदाकाशमात्रबोधवतोमुनेः ॥ पुत्रमित्रकलत्राणिकथंकानिकदाकुतः ॥ ५४ ॥ दृश्यमादावनुत्पन्नंयच्चभात्यजमेवतत् ॥ सम्यग्ज्ञानवतामेवंरागद्वेषदृशौकुतः ॥ ५५ ॥ हस्तःशिरसियद्दत्तोलीलया ज्येष्ठशर्मणः ॥ तत्प्रभावस्थितारंभसंबोधायाश्चितेःफलम् ॥ ५६ ॥ बोधोहिचेततियथैवतथाशुभाति सूक्ष्मस्तुखादपितथातितरांविशुद्धः ॥ सर्वत्रराघवसएवपदार्थजालंस्वप्नेषुकल्पितपुरेष्वनुभूतमेतत् ॥५७

इत्यार्षेवासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने सिद्धदर्शनहेतुकथनं नाम षड्विंशःसर्गः ॥ २६ ॥

अर्थ—लीलाने तो पृथिवीआदि वस्तुओंकी नास्तिता जान लीहैं, क्योंकि ज्ञानदृष्टिसे सब चिदाकाशरूपही हैं, मिथ्या भ्रान्तिसे इनका स्वरूप उदय हुआ भासता है ॥ ५३ ॥ जिस मुनिको ब्रह्मरूप चिदाकाशमात्रका ज्ञान है उसको पुत्र, मित्र और स्त्री कौन, किस समय कहांसे और कैसे हुये ॥ ५४ ॥ यह दृश्य आदिमें उत्पन्नही नहीं हुआ और जो कुछ भान होता है वह अज (परमात्म) रूपही है, इसप्रकार ज्ञानवान् महात्माओंको भला राग द्वेष कहां ॥ ५५ ॥ और जो लीलाने ज्येष्ठशर्माके मस्तकके ऊपर हांथ रक्खा वह तो उसके पूर्व सुकृतसे भावी कल्याणके लिये सर्वव्यापी चेतनमें स्थित जो आरंभ और ज्ञान हैं उन्हींकी स्फुरणसे हुआ है ॥ ५६ ॥ हे रामजी ! यह ज्ञानही पूर्वकी भावनाके अनुसार जिस रूपसे चिन्तन किया जाता वैसाही भासताहै यह वार्ता सर्वत्र स्वप्नमें तथा संकल्पके नगरादिमें पूर्ण रीतिसे अनुभूत है ॥ ५७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवाद उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने सिद्धदर्शनहेतुकथनं नाम षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

सप्तविंशः सर्गः ॥ २७ ॥

पतिके दर्शनकी अभिलाषिणी पुनः विस्मयको लीला प्राप्त हुई और भगवतीने ज्ञान दिया तो स्मरणकरके अपने अनेक जन्मोंको कहा इस विषयका वर्णन इस २७ वे सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ तस्मिन्गिरितटेग्रामेतस्यमंडपकोटरे ॥ अंतर्द्धिमाश्वाययतुस्तत्रस्थेएवतेस्त्रियौ ॥ १ अस्माकंवनदेवीभ्यांप्रसादःकृतइत्यथ ॥ शांतदुःखेगृहजनेस्वव्यापारपरस्थिते ॥ २ ॥ मंडपाकाशसंलीनांलीलामाहसरस्वती ॥ व्योमरूपाव्योमरूपांस्मयात्तूष्णीमिवस्थिताम् ॥ ३ ॥ संकल्पस्वप्नयोर्यैपांयत्रसंकथनंमिथः ॥ यथेहार्थक्रियांधत्तेतयोःसासंकथातथा ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—उस गिरिग्राममें उसी मण्डपाकाशमें शीघ्रही वे दोनों स्त्रियां लोप होगईं ॥ १ ॥ इसके अनन्तर वनकी देवियोंने हमारे ऊपर कृपा किया ऐसा कहके दुःख शान्त गृहके लोग जब अपने २ व्यापारमें लगे ॥ २ ॥ तब मण्डपाकाशमें सबकी दृष्टिसे छिपी चिदाकाश रूप, आश्चर्यसे मौन होके स्थित लीलासे चिदाकाशरूप सरस्वती बोली ॥ ३ ॥ उषा और अनिरुद्धके समान जिनके एककालमेंही स्वप्न अथवा संकल्पमें परस्परका वार्तालाप उत्तरकालमें अर्थको सिद्ध करताहै इसीप्रकार यहांपर उन दोनोंकी कथा हुई ॥ ४ ॥

पृथ्व्यादिनाडीप्राणादिकृतेप्यभ्युदितातयोः ॥ सासंकथनसंवित्तिःस्वप्नसंकल्पयोरिव ॥ ५ ॥ श्रीसरस्वत्युवाच ॥ ज्ञेयंज्ञातमशेषेणदृष्टादृष्टार्थसंविदः ॥ ईदृशीयंब्रह्मसत्ताकिमन्यद्वद्पृच्छसि ॥ ६ ॥

॥ लीलोवाच ॥ मृतस्य भर्तुर्जीवोसौ यत्र राज्यं करोति मे ॥ तत्राहं किं न तैर्दृष्टा दृष्टास्मी ह सुतेन किम् ॥ ७ ॥ ॥ श्रीसरस्वत्युवाच ॥ अभ्यासेन विना वत्से तदा ते द्वैतनिश्चयः ॥ नूनमस्तंगतो नाभून्निःशेषं वरवर्णिनि ॥ ८

अर्थ—आधिभौतिक पृथिवी आदि तथा अध्यात्मिक नाडीप्राण आदि सहित शरीरके विना भी स्वप्न और संकल्पके समान उन दोनोंकी कथा प्रवृत्त हुई ॥ ५ ॥ प्रत्यक्ष और परोक्षार्थ ज्ञानका ज्ञेय सर्वथा तुमने जानलिया ऐसीही यह ब्रह्मकी सत्ताहै अब और क्या पूंछना चाहतीहो ? ॥ ६ ॥ लीलाजी बोली–मेरे मृतक पतिका जीव जहां राज्य करताहै वहांके लोगोंने मुझे क्यों नहीं देखा और यहां मेरे पुत्रने मुझे क्यों देखा ? ॥ ७ ॥ सरस्वतीजी बोली–हे उत्तम स्वरूपवाली पुत्री ! अभ्यासके विना उससमय प्रपंचकी सत्यताका विश्वास सर्वथा नष्ट नहीं हुआ था इस लिये तुम सत्यसंकल्प न थी ॥ ८ ॥

अद्वैतं योन यातो सौ कथमद्वैतकर्मभिः ॥ युज्यते तापसंस्थस्य च्छायांगानुभवः कुतः ॥ ९ ॥ लीलास्मीति विनास्यासं तव नास्तं गतो भवत् ॥ यदाभावस्तदासत्यसंकल्पत्वमभून्नते ॥ १० ॥ अद्यासि सत्यसंकल्पा संपन्ना तेन मां सुतः ॥ संपश्यत्विव्यभिमतं फलितं तव सुंदरि ॥ ११ ॥ इदानीं तस्य भर्तुस्त्वं समीपं यदि गच्छसि ॥ तत्तेन व्यवहारस्ते पूर्ववत्संप्रवर्त्तते ॥ १२ ॥

अर्थ–जबतक सत्यसंकल्पादि क्रियाओंसे सर्वथा अविद्याका उच्छेद नहीं किया तबतक अद्वैतको कैसे प्राप्तहो, जैसे जो पुरुष तापमें स्थितहै उसको छायाका गुण जो शीतताहै उसका अनुभव कहां ? ॥ ९ ॥ अभ्यासके न होनेसे मैं लीलाहूं यह दृढ संस्कार तुमारा उससमय अस्त नहीं हुआथा इसीकारण उससमय तुमारा दृढ संकल्पभी न था॥ १०॥ और हे सुन्दरि ! अब तुम सत्यसंकल्प होगईहो इसलिये पुत्र मुझे देखै यह तुमारा संकल्प फलीभूत हुआ ॥११॥ इस समय यदि तुम अपने पतिके निकट जाओगी तो तुमारा सब व्यवहार पूर्वके समान होगा ॥ १२ ॥

॥ लीलोवाच ॥ इहैव मंदिराकाशे पतिर्विप्रो ममाभवत् ॥ इहैव स मृतो भूत्वा संपन्नो वसुधाधिपः ॥ १३ ॥ इहैव तस्य संसारे तस्मिन्भूमंडलांतरे ॥ राजधानीपुरे तस्मिन्पुरंध्यस्मि व्यवस्थिता ॥ १४ ॥ इहैवांतःपुरे तस्मिन्स मृतो मम भूपतिः ॥ इहैवांतःपुराकाशे तस्मिन्नेव पुरे नृपः ॥ १५ ॥ संपन्नो वसुधापीठे नानाजनपदेश्वरः ॥ सर्वार्जवजवीभावइहैवैवं व्यवस्थितः ॥ १६ ॥

अर्थ—लीलाजी बोली–इसी मन्दिराकाशमें मेरा ब्राह्मण पति था, और इसी स्थानमें मृत्युको प्राप्त होके वह राजा हुआ ॥ १३ ॥ इसी स्थानमें कल्पना कियेहुये दूसरे भूमण्डलमें उसकी राजधानीके नगरमें मैं उसकी पटरानी होके स्थित रही ॥ १४ ॥ और इसी अन्तःपुरमें वह राजा पुनः मृत्युको प्राप्त हुआ तथा इसी मण्डपाकाशमें वह राजा ॥ १५ ॥ पृथिवीपर नाना देशका राजा हुआ, सब वस्तुओंका कपट रहित आधारभूत जो पारमार्थिक ब्रह्महै उसीमें यह मायिक चलनादि व्यवहार कल्पित किया गयाहै ॥ १६ ॥

अस्मिन्नेव गृहाकाशे सर्वब्रह्मांडभूमयः ॥ स्थिताः समुद्रके मन्ये यथांतः सर्षपोत्कराः ॥ १७ ॥ सदाऽदूरमहं मन्ये तद्भर्तुर्मे मंडलम् ॥ क्वचित्पार्श्वे स्थितमिह यथा पश्यामि तत्कुरु ॥ १८ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ भूतलारुंधति सुते भर्त्तारस्तव संप्रति ॥ त्रयो नामाथवा भूवन्बहवः शतसंमताः ॥ १९ ॥ नेदीयसां त्रयाणां तु द्विजस्ते भस्मतां गतः ॥ राजामाल्यांतरगतः संस्थितोंतःपुरे शवः ॥ २० ॥

अर्थ—इसी गृहाकाशमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्डकी भूमि ऐसे कल्पित होके स्थितहैं जैसे पेटारीमें सर्षपों (सरसों) का समूह ॥ १७ ॥ इसलिये मैं यह मानतीहुं कि मेरे पतिका मण्डलभी सदा निकटही है और वहभी कहीं समीपमेंही स्थित है, सो हे भगवती जैसे मैं उसे यहां देखूं वैसा उपाय करो ॥ १८ ॥ देवीजी बोली–हे अरुन्धति ! पुत्रि न केवल तुमारे अति समीपके तीन पतिही इस मण्डपाकाशमें स्थित हैं किन्तु अनेक अतीत अनागत भूतल तथा अनेक जन्म सम्बन्धी सैकडों पतिभी स्थित हैं, उन सबका देखना तो असम्भवहै सो निकटके तीनमेंसे तुम किसको देखना चाहती हो ? ॥ १९ ॥ उन समीपके तीन पतियोंमेंसे वह ब्राह्मणतो भस्म होगया, और राजाका मृतक शरीर पुष्पमालाओंमें स्थापित हैं ॥ २० ॥

संसारमंडलेह्यस्मिंस्तृतीयो वसुधाधिपः ॥ महासंसारजलधिपतितो भ्रममागतः ॥ २१ ॥ भोगकल्लोलकलनाविकलोमलचेतनः ॥ जाड्यजर्जरचिद्वृत्तिः संसारांभोधिकच्छपः ॥ २२ ॥ चित्राणि राजकार्याणि कुर्वन्व्याकुलान्यपि ॥ सुप्तः स्थितो जडतया न जागर्त्ति भवभ्रमे ॥ २३ ॥ ईश्वरोहमहं भोगी सिद्धोहं बलवान्सुखी ॥ इत्यनर्थमहारज्ज्वावलितो वशतां गतः ॥ २४ ॥

अर्थ—और तीसरा राजा इस संसारमें संसाररूपी समुद्रमें प्रविष्ट होके भ्रमको प्राप्त हुआ ॥ २१ ॥ वह संसाररूपी समुद्रका कच्छप (कछुआ) भोगरूपी तरंगोंकी लीलासे विक्षिप्त होगया है इसीसे उसकी बुद्धिभी मलिन और चेतनकी वृत्तिभी जडतासे शिथिलसी होगई है ॥ २२ ॥ वह बडे विचित्र राज्यके कार्य्योंको करता हुआभी सुप्तके समान स्थित है, और जडतासे संसाररूपी भ्रममें जागता नहीं ॥ २३ ॥ मैं सबका स्वामी, विषयभोगी, सिद्ध, बलवान् तथा सुखीहुं इत्यादि विचार महारज्जु (रस्सी) से बद्ध होनेसे वे वश होगया है ॥ २४ ॥

तत्कस्यवदभर्तुस्त्वांसमीपंवरवर्णिनि ॥ वात्यावनांतरंगंधलेखामिववनान्तरे ॥ २५ ॥ अन्यएवहिसंसारःसोन्योब्रह्मांडमंडपः ॥ अन्याएवततावत्सेव्यवहारपरंपराः ॥ २६ ॥ संसारमंडलानीहतानिपार्श्वे स्थितान्यपि ॥ दूरंयोजनकोटीनांकोटयस्तेष्विहांतरम् ॥ २७ ॥ आकाशमात्रमेतेषामिदंपश्यवपुःपुनः॥ मेरुमंदरकोटीनांकोटयस्तेष्ववस्थिताः ॥ २८ ॥

अर्थ—सो हे उत्तम वर्णवाली ! अब तुम यह कहो कि तुमारे किस पतिके समीप मैं ऐसे पहुंचाऊं जैसे वायु एक बनसे दूसरे बनमें सुगन्धकी लेखाको ॥ २५ ॥ हे पुत्रि ! वह संसार तथा ब्रह्माण्डमण्डप दूसराही है, और वे व्यवहारकी परम्पराभी औरही प्रकारसे विस्तृत है ॥ २६ ॥ यद्यपि वे ब्रह्माण्डमंडल यथार्थमें निकटमें स्थितहैं तथापि व्यवहारदृष्टिसे करोडों योजन यहांसे दूर हैं ॥ २७ ॥ परमार्थदृष्टिसे इन सम्पूर्ण संसारमण्डलोंका शरीर इस मण्डपाकाशमात्रही है परन्तु पुनः व्यवहार दृष्टिसे देखो कि करोडों मन्दराचल पर्वत उनमें स्थित हैं ॥ २८ ॥

परमाणौपरमाणौसर्गवर्गानिरर्गलम् ॥ महाचितेःस्फुरंत्यर्करुचीवत्रसरेणवः ॥ २९ ॥ महारंभगुरूण्येवमपिब्रह्मांडकानिहि ॥ तुलयाधानकामात्रमपितानिभवंतिनो ॥ ३० ॥ नानारत्नामलोद्योतोवनवद्भातिखेयथा ॥ पृथ्व्यादिभूतरहिताजगच्चिद्भातिचिंतया ॥ ३१ ॥ कचतिज्ञप्तिरेवेदंजगदित्यादिनात्मनि॥ नतुपृथ्व्यादिसंपन्नंसर्गादावेवकिंचन ॥ ३२ ॥

अर्थ—जैसे सूर्य्यकी किरणमें अनेक त्रसरेणु स्थितहै ऐसेही महाचेतनके परमाणु परमाणुमें अनेक ब्रह्माण्डोंकी सृष्टि अवकाश सहित स्थितहै ॥ २९ ॥ इसप्रकार महारम्भवाले बडे द्वीप समुद्रादि महान् परिमाणवाले यद्यपि है तथापि चेतन दृष्टिसे वे वटके बीजके समानभी नहीं हैं ॥ ३० ॥ जैसे नानाप्रकारके रत्नोंका प्रकाश आकाशमें जलके समान भासताहै वैसेही यथार्थमें पृथिवी आदिके भेदसे शून्यभी चेतन अविद्याकी दृढ वासनासे जगतरूपसे भासताहै ॥ ३१ ॥ आत्मामें जगत् इत्यादि नामसे चेतनकाही प्रकाश होरहाहै, क्योंकि यथार्थमें सृष्टिकी आदिमें पृथिवी आदि कुछभी उत्पन्न नहीं हुये ॥ ३२ ॥

यथातरंगःसरसिभूत्वाभूत्वापुनर्भवेत् ॥ विचित्राकारकालांगदेशाज्ञप्तावलं/था ॥ ३३ ॥ लीलोवाच ॥ एवमेतज्जगन्मातर्मयास्मृतमिहाधुना ॥ गमेदंराजसंजन्मनतमोनचसात्विकम् ॥ ३४ ॥ ब्रह्मणस्त्वचतीर्णायाअष्टौजन्मशतानिमे ॥ नानायोनीन्यतीतानिपश्यामीवाधुनापुनः ॥ ३५ ॥ संसारमंडलेदेविकस्मिंश्चिदभवंपुरा ॥ लोकांतराब्जभ्रमरीविद्याधरवरांगना ॥ ३६ ॥

अर्थ—जैसे तडागमें तरंग अनेक उत्पन्नहो होकर नष्ट होजाते हैं और पुनः उत्पन्न होते हैं ऐसेही ज्ञानस्वरूप चेतनमें विचित्र आकारवाले काल तथा उसके अंग दिन रात्रि आदि काल, और ब्रह्माण्ड तथा भुवन आदि देश उत्पन्न हो २ कर नष्ट होते हैं तथा पुनः उत्पन्न होते हैं ॥ ३३ ॥ लीलाजी बोली-हे जगत् मातः ! जैसा आप कहतीहो यह बात ऐसेही है इस समय मुझे यह स्मरण हुआहै कि यह मेरा जन्म राजसी न तमोगुणी है और न सतगुणी ॥ ३४ ॥ ब्रह्माकी यह सृष्टी जबसे उत्पन्न हुई तबसे मेरे आठ ८०० सो जन्म हुये, और वे नानाप्रकारके योनियोंमें मैने बिताये इस समय उनको मैं पुनः ज्योंका त्यों देखरहीहुं ॥ ३५॥ हे देवि ! पूर्वकालमें किसी संसार मण्डलमें विद्याधरके लोकरूपी कमलकी भ्रमरी विद्याधरकी श्रेष्ठ अंगना हुईथी ॥ ३६ ॥

दुर्वासनाकलुषिताततोहंमानुषीस्थिता ॥ संसारमंडलेन्यस्मिन्पन्नगेश्वरकामिनी ॥ ३७ ॥ कदंबकुंदजंबीरकरंजवनवासिनी ॥ पत्रांबरधराश्यामाशबर्यहमथाभवम् ॥ ३८ ॥ वनवासनयासुगधासंपन्नाहमथोद्गता ॥ गुलुच्छनयनापत्रहस्तावनविलासिनी ॥ ३९ ॥ पुण्याश्रमलतासाहंमुनिसंगपवित्रिता ॥ वनाग्निदग्धातस्यैवकन्याभूवंमहामुनेः ॥ ४० ॥

अर्थ—उसके अनन्तर दुष्ट वासनासे दूषित होके मैं मानुषी होगई, उसके अनन्तर मैं पन्नगेश्वरकी कामिनी हुई ॥३७॥ और उसके पश्चात् कदम्ब, कुन्द, जम्बीर (कागजी नींबू) तथा करंजके बनमें निवास करनेवाली पत्रोंका वस्त्र धारण करनेवाली श्यामवर्ण मैं शबरी (भिल्लकी स्त्री) हुई ॥ ३८ ॥ उसके अनन्तर बनबासकी वासनासे धर्म

मर्य्यादाके विवेकसे रहित होके मैं मुग्ध (मूर्ख) होगई, इसीसे पुष्पोंके गुच्छरूपी नेत्र धारण करनेवाली, और पत्र (पत्ते) रूपी हस्तवाली तथा वनमें विलास करनेवाली लताका जन्म मैंने धारण किया ॥ ३९ ॥ मैं पुण्यआश्रमकी लता होनेके कारण मुनिके संगसे पवित्र होगई अनन्तर वनकी अग्निसे भस्म होके उन्हीं मुनिकी मैं कन्या होगई॥४०॥

अब्रीत्वफलदातॄणांकर्मणांपरिणामतः ॥ राजाहमभवंश्रीमान्सुराष्ट्रेषुसमाःशतम् ॥ ४१ ॥ तालीनांतलकच्छेषुराजदुष्कृतदोषतः ॥ नकुलीनववर्षाणिकुष्ठनष्टांगिकाभवम् ॥४२॥ वर्षाण्यष्टौसुराष्ट्रेषुदेविगोत्वंकृतंमया ॥ मोहाद्दुर्जनदुष्प्राज्ञबालगोपाललीलया ॥ ४३ ॥ विहंग्यावैरविन्यस्तावागुराविपिनावनौ ॥ क्लेशेनमहताच्छिन्नाअधमावासनाइव ॥ ४४ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर पुरुषरूप फल देनेवाले कर्मोंके परिणामसे सुराष्ट्रदेशमें मैं सैकडों वर्षपर्य्यन्त श्रीमान् राजा हुई ॥ ४१ ॥ तालियों (वृक्ष विशेष) की शीतल भूमि कच्छदेशमें दूसरेके धनोंको बलात्कारसे हरण आजि राजाके दोषसे नव वर्षपर्य्यन्त कुष्ठ तथा नष्ट शरीरवाली नकुली हुई ॥ ४२ ॥ इसके अनन्तर उसी सराष्ट्र (गुजरात) देशमें दुष्ट तथा अज्ञगोपालके बालकोंकी दण्ड आदिकी ताडनाको अनुभव करती हुई आठ वर्षपर्य्यन्त गौ होके रही ॥ ४३ ॥ अनन्तर जिससमय मैंने पक्षीका जन्म पाया तब वनकी भूमिमें निष्कारण वैर करनेवाले व्याधोंने जाल फैलाके मुझे ऐसा छेदन किया जैसे अधम द्वैतकी वासनाको ॥ ४४ ॥

कर्णिकाक्रोडशय्यासुविश्रांतमलिनासह ॥ पद्मकुड्मलकोशेषुभुक्तोकिंजल्कयारहः ॥ ४५ ॥ भ्रांतमुत्तुंगशृंगासुहरिण्याहारिनेत्रया ॥ वनस्थलीषुरम्यासुकिराताहतमर्मया ॥ ४६ ॥ दृष्टंनष्टासुदिक्ष्वब्धिकल्लोलैरुह्यमानया ॥ मत्स्यांबुकच्छपाच्छेडेमोघमाननताडनम् ॥ ४७ ॥ पीतंचर्मण्वतीतीरेगायंत्यामधुरस्वरम् ॥ पुलिंद्यासुरतांतेषुनालिकेररसासवम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर कमलकी रजसे पूर्ण कमल शय्याओंपर कमलिनीयोंके रसोंके एकान्तमें पान करती हुई भ्रमरी होके कुछ कालतक भ्रमरके साथ विलास किया ॥ ४५ ॥ मनोहर नेत्रोंके धारण करनेवाली हरिणीका जन्म पाके मैंने उच्च शिखरवाली अति रमणीय बनभूमियोंमें बिहार किया करतीथी किरातोंने मेरे हृदयको छेदन कर दिय ॥ ४६ ॥ अनन्तर मत्सी (मछली) का जन्म पाकर समुद्रकी तरंगोंसे बहती हुई भवरेह जलोंमें जब दिशा भ्रम होजाताथा.उस समय कछुओंकी पृष्ठोंपर मल्लाहोंकी वसीका ताडन व्यर्थ देखा ॥ ४७ ॥ इसके अनन्तर पुलिन्दी (एक प्रकारकी चाण्डाली) का जन्म पाके चर्मण्वती नदीके किनारोंपर मधुरस्वरसे गान करती हुई सुरत (स्त्री पुरुषके संम्भोग) के अन्तमें नालिकेरका मद्यपान किया करतीथी ॥ ४८ ॥

सारसीसरसालिन्यासीत्कारमधुरस्वरम् ॥ सारसःसुरतैःस्वैरंसामंतश्चारुरंजितः ॥ ४९ ॥ तालीतमालकुंजेषुतरलाननेत्रया ॥ क्षीबप्रेक्षणविक्षोभैःकृतंकांतावलोकनम् ॥ ५० ॥ कनकस्यंदसंदोहसुंदरैरंगपंजरैः ॥ स्वर्गेप्सरोंबुजिन्याश्चुतोषिताःसुरषट्पदाः ॥ ५१ ॥ मणिकांचनमाणिक्यमुक्तानिकरभूतले ॥ कल्पद्रुमवनेमेरौयूनासहरतंकृतम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—जैसे कमलिनीमें प्रेमसे अनुराग सहित रहतीहै इसीप्रकार सीत्कार शब्दयुक्त सुरतके मधुर स्वरसे गान करतीहुई अपने पति सारसको स्वेच्छा पूर्वक प्रसन्न किया ॥ ४९ ॥ ताली तथा तमाल आदिके कुंजोंमें चंचल नेत्रवाली मैं उन्मत्त कटाक्ष सहित दृष्टियोंसे अपने प्रिय वल्लभको देखा करतीथी ॥ ५० ॥ इसके अनन्तर अप्सराका जन्म पाके सुवर्णके द्रवके समान सुन्दर अंगोंसे स्वर्गकी अप्सरारूपी कमलिनीके भ्रमररूपी देवताओंको भलीभांति सन्तुष्ट किया ॥ ५१ ॥ और उसी जन्ममें सुमेरु पर्वतपर मणि सुवर्ण, माणीक्य तथा मुक्ता (मोतियों) के समूहसे पूर्णथी भूमि जिसकी ऐसे कल्पवृक्षोंके वनमें युवा (जवान) देवताके साथ सुरतका अनुभव किया ॥ ५२ ॥

कल्लोलाकुलकच्छासुलसद्गुच्छलतासुच ॥ वेलावनगुहास्वब्धेश्चिरंकूर्मतयास्थितम् ॥ ५३ ॥ तरत्तारतरंगासुदोलनंसरसालिनाम् ॥ चलच्छदपटालीषुराजहंस्यंमयाकृतम् ॥ ५४ ॥ शाल्मलीदललोलानामांदोलनदरिद्रताम् ॥ मशकस्यमयालोक्यदीनंमशकयास्थितम् ॥ ५५ ॥ तरत्तारतरंगासुवंचद्वीच्यग्रचुंबनैः ॥ भ्रांतंशैलस्रवंतीषुजलवंजुललोलया ॥ ५६ ॥ गंधमादनमंदारमंदिरेमदनातुराः ॥ पातिताःपादयोःपूर्वंविद्याधरकुमारकाः ॥ ५७ ॥ कीर्णकर्पूरपूरेषुतल्पेषुव्यसनातुरा ॥ चिरंविलुलितास्मींद्वविंबेष्विवशशिप्रभा ॥ ५८ ॥ योनिष्वनेकविधदुःखशतान्वितासुभ्रांतंमयोन्नमनसन्नमनाकुलांग्या ॥ संसारदीर्घसरितश्चलयालहर्योर्दुर्वारवातहरिणीसरणक्रमेण ॥ ५९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलाजन्मांतरवर्णनं नाम सप्तविंशः सर्गः ॥ २७ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर समुद्रकी तरंगोंसे व्याप्त तथा तट जिनका तथा पुष्पोंके गुच्छे और लताओंसे युक्त समुद्रके किनारेकी गुफाओंमें बहुत कालतक कच्छपी (कछुई) होके निवास किया ॥ ५३ ॥ इसके पश्चात् चंचल तथा उच्च तरंगोंसे युक्त अपनी स्वच्छ सरसियोंमें अपने चलायमान पक्षरूपी स्वच्छ वस्त्रोंकी पंक्तियोंमें कमलिनीके भ्रमसे बैठने वाले भ्रमरोंके अन्दोलन (झुले) का साधन राजहंसीके पदकाभी अनुभव मैंने किया ॥ ५४ ॥ इसके पश्चात् इसी हंसीके जन्ममें हिलतेहुये शाल्मली वृक्षके हिलतेहुये दलपर बहुतसे मशको (मच्छरों) के बीचमेंसे किसी गिरेहुये मशक (मच्छर) जो पुनः अपने स्थानमें प्रवेश करनेको असमर्थ था, उसकी आन्दोलन (झूलने) की दरिद्रताको देखके उसी संस्कारसे मैं मृत्युको प्राप्त हुई इसीदीन मशकी (मच्छरी) होके जन्मी ॥ ५५ ॥ बेतका जन्म धारण करके चंचल और ऊंचे तरंगोंसेयुक्त पर्वतकी नदियोंमें चलायमान तरंगोंके श्रेष्ठ चुंबनोंसे कुछ कालतक भ्रमण किया ॥ ५६ ॥ गन्धमादनपर्वतपर कल्पवृक्षयुक्त मन्दिरोंमें मदन (कामदेव) से व्याकुल विद्याधरोंके कुमार मेरे (विद्याधरी शरीरमें) चरणोंमें आके गिरते थे ॥ ५७ ॥ कर्पूरकी रेणुओंसे पूर्ण शय्याओंपर प्रियवियोगसे दीर्घकालतक ऐसे चंचलतासे चलायमानथी जैसे चन्द्रमाके बिम्बमें चन्द्रप्रभा ॥ ५८ ॥ हे देवि ! इसप्रकार सैकडों दुःखोंसे संयुक्त अनेक प्रकारकी योनियोंमें उच्च और नीच गतिसे व्याकुल चित्तवाली मैं संसाररूपी दीर्घ नदीकी चंचल लहरसे वायुके अनुसार चलनेवाले हरिणीके समान भ्रमण किया ॥ ५९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे लीलोपाख्याने जन्मान्तरवर्णनं नाम सप्तविंशः सर्गः ॥ २७ ॥

अष्टविंशः सर्गः ॥ २८ ॥

दृष्टप्रपंचके मिथ्यात्वसे चिदाकाशकी सत्यता तथा पर्वत और गिरिग्रामका वर्णन विस्तारसे इस २८ वें सर्गमें किया है ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ वज्रांगसाराद्ब्रह्मांडकुड्यान्निबिडमंडलात् ॥ कोटियोजनसंपुष्टात्कथंतेनिर्गतेबले ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ क्वब्रह्मांडंक्वतद्भित्तिःक्वासौवज्रसारता ॥ किलावस्थिते देव्यावंतःपुरवरांबरे ॥ २ ॥ तस्मिन्नेवगिरिग्रामेतस्मिन्नेवालयांबरे ॥ ब्राह्मणःसवसिष्ठाख्यआस्वादयतिराजताम् ॥ ३ ॥ तमेवमंडपाकाशकोणकंशून्यमात्रकम् ॥ चतुःसमुद्रपर्यंतंभूतलंसोनुभूतवान् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—हे भगवन् ! वज्रसमान दृढ और करोडों योजन मोटी ब्रह्माण्डकी भित्तिसे वे दोनों अबला कैसे निकली ? अर्थात् स्वप्नमें मिथ्या भित्ति आदिसे रूकावट देखीगई है ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! कहां ब्रह्माण्ड, कहां भित्ति, और कहां वज्रके समान दृढता, वे दोनों देवियांतो उसी अन्तःपुरके आकाशमें स्थितरहीं ॥ २ ॥ उसी गिरिग्राममें, तथा उसी गृहाकाशमें वह वसिष्ठ नाम ब्राह्मण विदूरथ होके राज्यका अनुभव करताहै ॥ ३ ॥ उसी शून्यमात्र मण्डपाकाशके एक कोनेका पत्ननामें राजाओंके उसने चतुःसमुद्रान्त भूतलका अनुशासन किया ॥ ४ ॥

आकाशात्मनिभूपीठंतस्मिंस्तद्राजपत्तनम् ॥ राजसद्मानुभवतिसचसाचाप्यरुंधती ॥ ५ ॥ लीलाभिधानासाजातातयाचज्ञप्तिरर्चिता ॥ ज्ञप्त्यासहसमुल्लंघ्यखमाश्चर्यमनोहरम् ॥ ६ ॥ प्रादेशमात्रेनभसि सातत्रैवगृहोदरे ॥ ब्रह्मांडांतरमासाद्यगिरिग्रामकमंदिरे ॥ ७ ॥ ब्रह्मांडात्परिनिर्गत्यस्वगृहेस्थितिमाययौ ॥ स्वप्नात्स्वप्नांतरंप्राप्ययथातल्पगतःपुमान् ॥ ८ ॥

अर्थ—उसी चिदाकाशमें वह भूमण्डल तथा उसीमें वह राज नगर और वह राजभवन उस राजा तथा अरुन्धतीको अनुभूत हुये हैं ॥ ५ ॥ और वह अरुन्धती लीला हुई जिसने ज्ञानकी देवता भगवतीकी आराधना की और भगवतीके साथ मनोहर तथा आश्चर्य्य जनक आकाशको उल्लंघन करके ॥ ६ ॥ प्रादेशमात्र उसी गृहके आकाशमें दूसरे ब्रह्माण्डमें प्राप्त हुई और वहांसे गिरिग्रामके मन्दिरमें पहुंची, और पुनः उस ब्रह्माण्डसे निकलके अपने गृहमें ऐसे प्राप्त हुई जैसे शय्या (पलंग) पर पडा हुआ पुरुष एक स्वप्नसे दूसरे स्वप्नमें ॥ ७ ॥ ८ ॥

प्रतिभामात्रमेवैतत्सर्वमाकाशमात्रकम् ॥ नब्रह्मांडंनसंसारोनकुड्यादिनदूरता ॥ ९ ॥ स्वचित्तमेवकचितियोस्तादृड्मनोहरम् ॥ वासनामात्रसोल्लेखंकब्रह्मांडकसंस्थितिः ॥ १० ॥ निरावरणमेवेदंज्ञप्त्या

काशमनंतकम् ॥ किंचित्स्वचित्तेनोन्नीतंस्पंदयुक्तयेवमारुतः ॥ ११ ॥ चिदाकाशमजंशांतंसर्वत्रैवहि सर्वदा ॥ चित्त्वाज्जगदिवाभातिस्वयमेवात्मनात्मनि ॥ १२ ॥

अर्थ—यह सम्पूर्ण केवल भ्रान्तिमात्रहै, यथार्थमें केवल चिदाकाशही मात्रहै, न ब्रह्मांडहै न संसारहै, न भित्ति आदि हैं, और न दूरताहै ॥९॥ उन दोनोंकी वासनामात्रसे उनका मनोहर चित्तही उन उन पदार्थोंका रूप धारण करके व्यवहारमें प्रसिद्ध होरहाहै, और यथार्थमें कहां ब्रह्माण्ड और कहां संसार ॥ १० ॥ यथार्थमें यह आवरण रहितही है उन दोनोंमें अपने चित्तसे अनन्त चिदाकाशकोही ब्रह्माण्डरूपसे ऐसे कल्पित कियाथा जैसे किंचित् संचलसे आकाशको वायुरूपता ॥ ११ ॥ यह चिदाकाश सदा और सर्वत्र अजन्मा तथा शान्तरूपहै, और जिसने इस चेतनरूपको नहीं जाना उसकी दृष्टिमें यह आत्मा अपनेमें आपही जगत्‌के समान भासताहै ॥ १२ ॥

येनबुद्धंतुतस्यैतदाकाशादपिशून्यकम् ॥ नबुद्धंयेनतस्यैतद्वज्रसाराचलोपमम् ॥ १३ ॥ गृहएवयथास्वप्नेनगरंभातिभासुरम् ॥ तथैतदसदेवांतश्चिद्धातौभातिभास्वरम् ॥ १४ ॥ यथामरौजलंबुद्धंकटकत्वंचहेमनि ॥ असत्सदिवभातीदंतथादृश्यत्वमात्मनि ॥ १५ ॥ एवमाकथयंत्यौतेललनेललिताकृती ॥ गृहान्निर्ययतुर्बाह्यंचारुचंक्रमणक्रमैः ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जिस महात्माने इस चेतनस्वरूपको जानलियाहै उसकी दृष्टिमें यह ब्रह्माण्ड आकाशसेभी शून्य भान होताहै और जिसने इसके स्वरूपको नहीं जाना उसके लिये वज्रसेभी दृढ पर्वतके समानहै ॥ १३ ॥ जैसे स्वप्नमें अपना गृहही अति प्रकाशमान नगरके समान भासताहै ऐसेही यह असत् जगत् चित् धातुमें प्रकाशमान भासताहै ॥ १४ ॥ जैसे मरुस्थलमें जलबुद्धि होती है तथा सुवर्णमें कटककी बुद्धिहै, ऐसेही आत्मामें यह असत् दृश्य प्रपंच भासताहै ॥ १५ ॥ इस प्रकार उत्तम रूपवाली वे दोनों स्त्रियां परस्पर वार्तालाप करती हुई उत्तम गतिसे उस गृहसे बाहर निकली ॥ १६ ॥

अदृश्येग्रामलोकेनप्रेक्षमाणेपुरोगिरिम् ॥ चुंबिताकाशकुहरंस्पृष्टादित्यस्यमंडलम् ॥१७॥ नानावर्णाखिलोत्फुल्लविचित्रवननिर्मलम् ॥ नानानिर्झरनिर्ह्रादकूजद्वनविहंगमम् ॥ १८ ॥ विचित्रमंजरीपुंजपिंजराब्दमंडलम् ॥ स्वभ्रमच्छगुल्मच्छाग्रविश्रांतखगसारसम् ॥ १९ ॥ सारवंजुलविस्तारगुप्ताखिलसरित्तटम् ॥ असमाप्तशिलाश्वभ्रलतावर्त्तनमारुतम् ॥ २० ॥

अर्थ—उन दोनोंको कोई नहीं देख सकता था परन्तु वे दोनों अनेक उस पर्वतको जो आकाशके मध्यभागको चुम्बन करता तथा आदित्य मण्डलको स्पर्श करताथा उसको देखती जातीथी ॥ १७ ॥ नानाप्रकारके विकसित प्रफुल्लित विचित्र निर्मल बनवाला तथा अनेक प्रकारके झरने जिसमें झर रहेहैं, और अनेक प्रकारके बनके पक्षी जिसमें कूंज रहे हैं ऐसे ॥ १८ ॥ विचित्र लताओंके पुंज तथा पक्षियोंके स्थानवालों मेघमण्डलोंसे संयुक्त (अति ऊंचे) और उत्तम पुष्पोंके गुच्छोंके अग्रभागमें सारस आदि पक्षीगण जिसमें विश्राम कर रहे हैं ऐसे ॥ १९ ॥ बलवान् बेंतोंके विस्तारसे गिरनेसे नदियोंके तटकी रक्षा करनेवाला, वृक्षोंमें भलीभांति न लपटेनेवाली गर्तमें उत्पन्न होनेवाली लताओंको कंपायमान करने हारे वायु संयुक्त ॥ २० ॥

पुष्पाग्रपिहिताकाशकोशकुड्यकवारिदम् ॥ पतद्दीर्घसरित्स्रोतःस्फुरन्मुक्ताकलापकम् ॥ २१ ॥ चलद्वृक्षवनव्यूहवातवेल्लिसारित्तटम् ॥ नानावनाकुलोपांतच्छायासततशीतलम् ॥ २२ ॥ अथतेललनेतत्रतादादृशतुःस्वयम् ॥ तंगिरिग्रामकंव्योम्नःस्वर्गखंडमिवच्युतम् ॥ २३ ॥ रटत्प्रणालीपटलंपूर्णपुष्करिणीगणम् ॥ द्विजैःकुचकुचैःकूजत्स्वलीलाश्वभ्रकच्छकम् ॥ २४ ॥

अर्थ—पुष्पोंसे ढके हुये शिखरके वृक्षोंसे आकाशकी भित्तिरूप मेघोंको आच्छादन करनेवाला, तथा बडी २ नदियोंसे झरनारूप मोतियोंका समूह जिसमें चमक रहाहै ॥ २१ ॥ चलाय वृक्षोंके समूह तथा लता संयुक्त नदियोंके तटसे सहित और नानाप्रकारके वृक्षोंसे पूर्ण इसीसे निरन्तर छायासे शीतल वह गिरिग्राम (वह पर्वत जहां उस ब्राह्मणका ग्राम था) था जिसको वे दोनों देखती जातीथी ॥ २२ ॥ उस पर्वतके देखनेके अनन्तर उससमय उन दोनों स्त्रियोंने उस ग्रामको (गिरिग्राम जहां ब्राह्मणका निवासथा) स्वयं ऐसा सुशोभित देखा जैसे आकाशसे च्युत (गिरा हुआ) स्वर्गका खण्ड (टूकडा) ॥ २३ ॥ (वह गिरिग्राम) अनेक घंटाओंके नादसे संयुक्त अनेक कमल सहित बावलियोंसे पूर्ण पक्षियोंके कर्ण मनोहर शब्द सहित, क्रीडार्थ उत्तम जल प्रदेशोंसे शोभायमान ॥ २४ ॥

गच्छद्रोवृंदहुंकारकरालाखिलकुंजकम् ॥ कुंजगुल्मकखंडाढ्यंसच्छायघनशाद्वलम् ॥ २५ ॥ दुष्प्रवेशार्ककिरणंदषन्नीहारधूसरम् ॥ उदग्रमंजरीपुंजजटालंबिशिखांतरम् ॥ २६ ॥ शिलाकुहरवाःस्फालप्रोच

लन्मुक्तनिर्झरैः ॥ स्मारिताचलनिर्द्धूतक्षीरोदकजलश्रियम् ॥ २७ ॥ फलमाल्यमहाभारभासुरैरजिर द्रुमैः ॥ आनीयपुष्पसंभारंतिष्ठद्भिरिवसंकुलम् ॥ २८ ॥

अर्थ—जातीहुई गौओंके समूहके हुंकार शब्दसे भयंकर कुंजवाला वन कुंज तथा लताओंसे पूर्ण, उत्तम सघन छाया तथा हरित् घासोंसे पूर्ण ॥ २५ ॥ सूर्य्यकी किरणोंके प्रवेशसे वर्जित, पाषाणकी शिलाये तथा हिमसे धूसर वर्ण, बडी २ लताओंके पुंजोंसे जटाके समान लम्बी शिखा (चोटिओं) ओं करके सहित ॥ २६ ॥ शिलाओं (चटानों) के छिद्रोंसे मोतियोंके समान उछलतेहुये जल बिंदुसहित झरनोंसे मन्दराचलसे मथित क्षीरसमुद्रकी शोभाको स्मरण करानेवाला ॥ २७ ॥ फल और पुष्पोंके महाभारसे शोभायमान अंगनके वृक्षोंसे पूर्ण ऐसा शोभायमान मानों कहींसे वे पुष्पादिके समूहको लाके उसमें विराजमान हों ऐसा ॥ २८ ॥

तरत्तरंगझांकारकारिमारुतकंपितैः ॥ कीर्णपुष्पसमावृष्टद्रुमैरपिरसाकुलैः ॥ २९ ॥ अशंकितशिलाकूटस्रवदम्बिटंकृतैः ॥ किंचित्कृतरवंगुप्तैरशंकैःशंकितैःखगैः ॥ ३० ॥ उत्फालालहरीश्रांतसीकरास्वादनाकुलैः ॥ नद्यामुडुपरावर्त्तवृत्तिभिर्विहगैर्वृतम् ॥ ३१ ॥ उत्तालतालविश्रांतकाकालोकनशंकितैः ॥ बालैःप्रगोपितामिक्षाखंडंजीर्णस्वभुक्तकैः ॥ ३२ ॥

अर्थ—उच्चतर झंकार शब्दसे पूर्ण, वायुसे कम्पित, रससे पूर्ण वृक्षोंसे (मनुष्योंसे क्या कहना) भी अर्थियोंके पुष्प फलादिक वृष्टि करनेवाला ॥ २९ ॥ शंकारहित पाषाणोंकी शिलाओंपरसे गिरतेहुये जलके बिन्दुओंके टंकार शब्दसे शंकाके अयोग्यभी पक्षीगण शंकायुक्त होके अपने २ घोसलों (खोथों) छिपेहुये जिसमें कुछ शब्द करतेहुये स्थितहैं ॥ ३० ॥ शीतल जलबिन्दुओंके आस्वाद शान्त चित्त, ऊंचे तरंगोंपर विश्राम करनेवाले, नदियोंमें नक्षत्रोंके समान परिवर्तनशील हंसनामक पक्षियोंसे पूर्ण ॥ ३१ ॥ ऊंचे तालादि वृक्षऊपर विश्राम करनेवाले काकआदि पक्षियोंसे शंकाग्रस्त बालकलोग अपने भुक्त शेष खोआआदि दूधके पदार्थोंको जिसमें सुरक्षित स्थानमें रक्खेहैं ॥ ३२ ॥

पुष्पशेखरसंभारवसनग्रामबालकम् ॥ खर्जूरनिंबजंबीरगहनोपांतशीतलम् ॥ ३३ ॥ क्षौमाग्रहस्तांबरयामंजरीपूर्णकर्णया ॥ क्षुत्क्षीणयाक्रांतरथ्यंग्रामकीटककांतया ॥ ३४ ॥ सरित्तरंगसंघट्टसंरावाश्रुतसंकथम् ॥ कर्मजाड्यघनत्रासवांछितैकांतसंस्थितम् ॥ ३५ ॥ दधिलिप्तास्यहस्तांसैःस्निग्धपुष्पलताधरैः ॥ नग्नैर्गोमयपंकांकैर्बालैराकुलचत्वरम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—पुष्पोंकी भांति २ की मालामें, तथा नानाप्रकारके आभूषणआदि पहिरेहुये ग्रामके बालक जिसमें भ्रमण कररहे हैं, खजूर, निंब, नीबू और नारंगी आदि वृक्षोंकी सघन छायासे जिसकी भूमि शीतल है ॥ ३३ ॥ हस्तमें अतसीका वस्त्र धारण किये हुये, लताओंसे कर्णोंमें (कानों) को गूथे हुये, क्षुधासे क्षीण (दुर्बल शरीर) नीच, दरिद्री, तथा आलसी आदिकी स्त्रियां जिसमें गलियोंमें भ्रमण कर रही हैं ॥ ३४ ॥ नदियोंके तरंगोंके शब्दसे मनुष्योंके वार्तालाप जिसमें नहीं सुन पडते, कर्म करनेमें जडताके कारण भयभीत होके मूर्ख और आलसी लोग जिसमें एकान्त देश बैठे हैं ॥ ३५ ॥ हस्त, मुख, तथा स्कन्ध (कांधे) में दधि लपटे हुये, कोमल पुष्प और लताओंको धारण किये हुये, गोमय (गोबर) और कीचड शरीरमें लगा हुये नग्न बालकोंसे जिसकी अंगण (आंगन) भूमि व्याप्त होरही है ॥३६॥

तीरशाद्वलवल्लीनांदोलांदोलनकारिभिः ॥ तरंगैर्वाह्यमानस्थलेखिकांकितसैकतम् ॥ ३७ ॥ दधिक्षारघनामोदमत्तमंथरमक्षिकम् ॥ कामभुक्तार्थतो द्वाष्पजर्जराबलबालकम् ॥ ३८ ॥ गोमयासिक्तवलयकरनारीकृतक्रुधम् ॥ धम्मिल्लवलनाव्यग्रत्रस्तस्त्रीविहसज्जनम् ॥ ३९ ॥ दांतपुष्पच्छदोत्सन्नपतत्ककुदत्रासम् ॥ गृहरथ्यागणद्वारकीर्णक्रूरकुरंटकम् ॥ ४० ॥

अर्थ—नदियोंके तटपर हरी घास तथा लताओंको दोला (झूला) के समान हिलावाने तरंगोंसे वहते हुये जलसे जिसकी बालुकामय भूमि अंकित होरही है ॥ ३७ ॥ दही और दूधकी अधिक देशगामी सुगन्धसे जिसकी मक्षिका (मक्खियां) उन्मत्त तथा आलस्य गतिवाली होगई हैं, इच्छापूर्वक भोजन करनेके अर्थ रोदन करते हुये निर्बल बालकोंसे पूर्ण ॥ ३८ ॥ नीच स्त्रियोंको हांथमें गोबर लगाके अपने केश सवारनेमें व्यग्र तथा त्रस्त देखके जिसमें मनुष्य लोग हंस रहे हैं ॥ ३९ ॥ जिसमें जितेन्द्रिय मुनि महात्मालोग पूजाके अक्षतादि भक्षण करनेवाले काक आदिकोंको पुष्प अथवा पत्रो (चोटन लगे इस भय) से उडानेवाले विद्यमानहैं, और जिसके गृह गलियां तथा द्वारै कुरंटक नाम गुल्म (लता) से पूर्ण हैं ॥ ४० ॥

गृहपार्श्वस्थितश्वभ्रकुंजैःकुसुमितप्रभैः ॥ मत्यहंमातरागुल्फमाकीर्णकुसुमाजिरम् ॥४१॥ चरच्चमरसारं ··तालजंगलखंडकम् ॥ गुंजानिकुंजसंजातशष्पसुप्तमृगार्भकम् ॥ ४२ ॥ एकांतसुप्तवत्सैककर्णस्पंदा

स्तमक्षिकं ॥ गोपोच्छिष्टीकृतदधिस्वत्स्थाक्रिस्पंदिमक्षिकं ॥४३॥ समस्तसद्मसंक्षीणमक्षिकाक्षिप्तमाक्षिकम्॥ फुल्लाशोकद्रुमोद्यानकृतलाक्षिकमंदिरं ॥ ४४ ॥

अर्थ—पुष्पोंसे शोभायमान गृहोंके समीप देशमें स्थित कुंजोंसे प्रातःकालके समय जिसकी अंगणभूमि पुष्पोंसे पौलीतक पूर्ण होजाती है ॥ ४१ ॥ जिसके समीपके जंगलमें चमर और सारंगादि पशु पक्षी हरित घासचर रहे हैं, तथा जहांपर निकुंज और कुंजोंमें उत्पन्न कोमल हरी घासोंपर हरिणोंके बच्चे सो रहेहैं ॥ ४२ ॥ जिसमें एकान्त देशमें अपने कर्णोंसे मक्षिकाओं (मक्खियों) के संचारको उडाते हुये शयन कररहे हैं, और गोपोंके दहीसे उच्छिष्ट मुखोंपर माक्षिकाये जहांपर गूंज रही हैं ॥ ४३ ॥ जहां सम्पूर्ण गृहोमें मधुमक्षिओंको निकालकर मधु (शहद) का संचय किया गयाहै, तथा पुष्पोंसे विकसित अशोकादि वृक्षोंकी वाटिका जिसमें शोभित होरही है, और क्रीडा करनेके लिये लाक्षा (लाख) से रंगे हुये काष्टोंके मन्दिर जिसमें बने हैं ॥ ४४ ॥

सीकरासारमरुतानित्यार्द्रविकचद्रुमं ॥ कदंबमुकुलप्रोतसमस्तच्छादनतृणम् ॥ ४५ ॥ प्रतिकृत्तलतापुल्लकेतकोत्करपांडुरम् ॥ वहत्प्रणालपटलीरणद्गुरुगुरारवम् ॥ ४६ ॥ वातायनगुहानिर्यत्सौधविश्रांतवारिदम् ॥ पूर्णपुष्करिणीपंक्तिपूर्णराजपृथूत्तरम् ॥ ४७ ॥ नीरंध्रविटपिच्छायाशीतलामलशाद्वलं ॥ सशेष्पाग्रवार्बिंदुप्रतिबिंबिततारकं ॥ ४८ ॥

अर्थ—जलके बिन्दुओंकी झडी सहित वायुसे जिसमें वृक्ष सदा आर्द्र (गीले) और पुष्पोंसे सुशोभित होरहे हैं, और कदम्ब तथा मुकुल आदि वृक्षोंकी अधिकतासे जिसके समस्त तृण ढके हुये हैं ॥ ४५ ॥ हानिकारक लताओंके काट देनेसे जो केतकीके समूहोंसे दूसरे वर्ण होरहाहै, और नालोंके समूहोंके वेगसे वहनेके कारणसे जो घर घर शब्दसे पूर्ण होरहाहै ॥ ४६ ॥ और जिसमें झरोखोंके मार्गसे निकलके मेघमण्डल अटारियोंपर विश्राम कररहा है, और जो जलसे पूर्ण बावलियोंकी पंक्तियोंसे पूर्ण चन्द्रमाके समान विकसित कमलोंसे अतिही शोभित होरहाहै ॥ ४७ ॥ तथा हे रामजी ! सघन वृक्षोंकी छायासे जिसके घास अति शीतल तथा निर्मल होरहे हैं, और जिसके सम्पूर्ण घास आदि तृणोंके अग्रभागमें जलके इन्द्रियोंमें तारागणोंके प्रतिबिम्ब पडतेहैं ॥ ४८ ॥

अनारतपतत्फुल्लहिमवर्षसितालयं ॥ विचित्रमंजरीपुष्पपत्रसत्फलपादपं ॥ ४९ ॥ गृहकक्षांतरालीनमेघसुप्तचिरंटिकं ॥ सौधस्थमेघविद्युद्भिरनादेयप्रदीपकं ॥५०॥ कंदरानिलभांकारघनघुंघुममंडपं ॥ चरचकोरहारीतहरिणीहारिमंदिरं ॥ ५१ ॥ उन्निद्रकंदलोद्दांतमांसलामोदमंथरैः ॥ मरुद्भिर्मंदमायातुमारब्धैर्लोलपल्लवम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—निरन्तर पुष्प तथा हिमकी वर्षासे जिसके सम्पूर्ण स्थान श्वेतवर्ण होरहेहैं तथा विचित्र लता, पुष्प, पत्र और उत्तम फलोंसे जिसके वृक्ष शोभित होरहेहैं ॥ ४९ ॥ और जिसमें ऊपर गृहोंमें मेघ विराजमानहैं और उनमें सुवासिनीगण शयनकर रहीहैं, और जहां अटारियोंपर मेघमें जो विद्युत (विजुली) वार २ चमक रहीहै इससे दीपकी आवश्यकता नहींहै ॥ ५० ॥ और कन्दराओंके वायुकी झंकार ध्वनिसे जिसके मण्डप पूर्ण होरहेहैं, तथा चकोर हारित आदि पक्षी, तथा हरिणी आदि पशुओंके चलनेसे जिसके मन्दिर अति रमणीय होरहेहैं ॥ ५१ ॥ विकसित कन्दली लताके पुष्पोंसे निकले हुये सुगन्ध पूर्ण, मन्दशीतल वायु मानों आनेके अर्थ पत्तोंको हिलारहेहैं ॥ ५२ ॥

लावकालापलीलायामालीनललनागणं ॥ कोककोकिलकाकोलकोलाहलसमाकुलम् ॥ ५३ ॥ शालतालतमालाब्जनीलतत्फलमालिनम् ॥ वल्लीवलयविन्यासविलासवलितद्रुमम् ॥ ५४ ॥ आलोलपल्लवलतावलितायनमार्गानामुत्फुल्लकंदलशिलींध्रसुगंधितानाम् ॥ तालीतमालदलतांडवमंडपानामारामफुल्लकुसुमद्रुमशीतलानाम् ॥ ५५ ॥ सतारवारिचलनाकुलगोकुलानामानीलसस्यकुसुमस्थलशोभितानाम् ॥ तीरद्रुमप्रकरगुप्तसरिद्वयाणांनीरंध्रपुष्पितलताग्रवितानकानाम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—और जिसके शुकसारिका आदि पक्षियोंकी पढाने आदिकी क्रियामें लालनागण निमग्न होरहेहैं तथा कोक, कोकिल और काष्ठादिके कोलाहल शब्दसे व्याप्त ॥ ५३ ॥ शाल, ताल (ताड) तमाल और कमलसे तथा शालताल आदि फलोंकी मालाओंसे नील वर्ण होरहाहै, तथा लताओंकी कटक (कडे) के आकाकी रचनासे सम्पूर्ण वृक्ष जिसके वेष्टित (चारोंओरसे घिरे) हैं ऐसे उसग्रामको देखा ॥ ५४ ॥ चंचल पल्लव तथा कोमल लताओंसे जिसके मार्ग रुक रहेहैं, विकसित कन्दली लताओं शिलीन्ध्र आदि पुष्पोंसे अति सुगन्धित, ताली और तमाल आदिके दलोंसे जिसमें

(१) यहांसे लेके सम्पूर्ण श्लोकस्थव.न्य गिरिमन्दर अर्थात् गिरिग्रामकके विशेषणहैं अर्थात् उसीकी शोभा इन श्लोकोंमें वर्णन की गई है.

मण्डप बन रहे हैं, वाटिकाओंके विकसित पुष्प सहित वृक्षोंसे अति शीतल ॥ ५५ ॥ शब्द सहित जलके मार्गसे चलनेमें गौओंका समूह जिससे व्याकुल होरहाहै, अतिनील घास और पुष्प सहित भूमियोंसे अति शोभित, तटके वृक्षोंके समूहोंसे जिसके नदीका प्रवाह छिप रहाहै, तथा सघन पुष्प सहित लताओंसे जिसमें मण्डप बन रहेहैं ॥ ६६ ॥

उद्यानकुंदमकरंदसुगंधितानांगंधांधषट्पदकुलांतरितांबुजानाम् ॥ सौंदर्यतर्जितपुरंदरमंदिराणांराजीविराजिरजसारुणितांबराणाम् ॥५७॥ रंहोवहद्गिरिनदीरवघर्घराणांकुंदावदातजलदद्युतिभासुराणाम्॥ सौधस्थितोल्लसितफुल्ललतालयानांलीलावलोलकलकंठविहंगमानाम् ॥ ५८ ॥ उल्लासिकोसुमदलोत्तरणस्थयूनामापादमावलितमाल्यविलासिनीनाम् ॥ सर्वत्रसुंदरनवांकुरदंतुराणांशोभोल्लसद्वरलताकुलमार्गणानाम् ॥ ५९ ॥ संजातकोमललतोत्पलसंकुलानांतिष्ठत्पयोदपटसंवलितालयानाम् ॥ नीहारहारहरितस्थलविश्रुतानांसौधस्थमेघतडिदाकुलितांगनानाम् ॥ ६० ॥

अर्थ—वाटिकाओंमे कुन्द आदिके रसोंसे महा सुगन्धयुक्त, सुगन्धसे मदोन्मत्त भ्रमरोंसे जिसके कमलगण ढकरहेहैं, अपने मन्दिरोंकी सुन्दरतासे इन्द्रपुरके मन्दिरोंकोभी डरानेवाला, तथा उत्तम रक्तकमलकी धूलियोंसे आकाशमण्डलकोभी रक्तवर्ण करनेवाला ॥ ५७ ॥ वेगसे बहती हुई पर्वतकी नदियोंके घर घर शब्दसे युक्त, कुन्दके समान श्वेत मेघोंकी छविसे प्रकाशमान, अटारियोंपर उत्तम पुष्पसहित लताओंसे स्थान जिसमें बनेहैं, तथा अनेक प्रकारके पक्षीगण जिसमें मनोहर शब्दकर रहेहैं ॥ ५८ ॥ नूतन सुगन्धित पुष्पोंसे जहांपर युवा पुरुषोंकी शय्या पूर्ण होरहीहै तथा जिसमें उत्तम स्त्रीगण पदसे लेके मस्तक पर्य्यंत पुष्पोंकी मालासे धारण कियेहुयेहैं सब स्थानोंमें सुन्दर और नूतन अंकूरोंसे अति शोभित, शोभायमान उत्तम लताओंसे जिसके शरस्तम्ब (खम्भे) ढक रहेहैं ॥ ५९ ॥ उत्तम कोमल लता तथा पुष्पोंसे पूर्ण, मेघमण्डलोंसे जिसके स्थान घिरेहैं, नीहारके बिन्दुरूपी मोतियोंकी लतायुक्त हरित भूमियोंसे अति प्रसिद्ध तथा अंटारियोंपर स्थित मेघोंमें बिजुलीकी चमकसे जिसके ललनागण व्याकुल होरहेहैं ॥६०॥

नीलोत्पलोल्लसितसौरभसुंदराणांहुंकारहारिहरितोन्मुखगोकुलानाम् ॥ विश्रब्धमुग्धमृगसारगृहाजिराणामुन्नृत्यबर्हिघनसीकरनिर्झराणाम् ॥ ६१ ॥ सौगंध्यमत्तपवनाहतविक्लवानांवप्रोपधिज्वलनविस्मृतदीपकानाम् ॥ कोलाहलाकुलकुलायकुलाकुलानांकुल्याकुलाकलकलाश्रुतसंकथानाम् ॥ ६२ ॥ मुक्ताफलप्रकरसुंदरबिंदुपातशीतावलिद्रुमलतातृणपल्लवानाम् ॥ लक्ष्मीमनरतमितपुष्पविकाशभाजांशक्नोतिकःकलयितुंगिरिसंदिराणाम् ॥ ६३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने गिरिग्रामवर्णनं नामाष्टाविंशःसर्गः ॥ २८ ॥

अर्थ—उत्तम नील कमलोंकी सुगन्धसे अति रमणीय, और जिसमें अपने हुंकार शब्दसे मनको हरने हारी गौओंका समूह अव्याकुलता पूर्वक हरित तृणसहित भूमिकी ओर जारहाहै जिसके गृहके अंगणों (आंगनों) में विश्वासी (पतुले) मृग तथा शुक सारिका आदि पक्षी विचर रहेहैं, और फुहारोंकी सघन झडीसे वृष्टिके भ्रमसे मोर लोग जिसमें नृत्यकर रहेहै ॥ ६१ ॥ सुगन्धिसे मत्तपवन जिसमें सबकी विकलता दूर करदीहै, तथा प्रकाश युक्त लताओंके कारणसे जहांपर कोलाहल शब्दसे पूर्ण होरहेहैं, और पर्वतोंपरसे जो झरने गिर रहेहैं उनके शब्दोंसे जहांपर मनुष्योंके शब्द नहीं सुनपडते ॥ ६२ ॥ मुक्ता (मोती) फलोंके समूहके समान जलबिन्दुओंके गिरनेसे जिसमें सम्पूर्ण वृक्ष, लता, तृण तथा पल्लव आदि शीतल होरहेहैं, और विकसित पुष्पोंसे जिसकी शोभा अधिक बढरहीहै ऐसे गिरिग्रामकी शोभाकी संख्या भला कौन करसकताहै ? ॥ ६३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे गिरिग्राम वर्णनं नामाष्टाविंशः सर्गः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशः सर्गः ॥ २९ ॥

लीलाके पूर्व चरित्रोंके स्मरण तथा लोकोंके समूहसे शोभित आकाशमण्डलमें गमनका वर्णन इस २९ वें सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ तत्रतेपेतलुद्देव्यौग्रामेंतःशीतलात्मनि ॥ भोगमोक्षश्रियौशांतेपुंसीवविदितामनि ॥१॥ कालेनैतावतालीलातेनाभ्यासेनसाभवत् ॥ शुद्धज्ञानैकदेहत्वात्त्रिकालामलदर्शिनी ॥ २ ॥

अथस्मारसर्वास्ताःप्राक्तनीःसंसृतेर्गतीः॥ सास्वयंस्वरसेनैवप्राग्जन्ममरणादिकाः॥३॥ लीलोवाच॥ देविदेशमिमंदृष्ट्वात्वत्प्रसादात्स्मराम्यहम् ॥ इहतत्प्राक्तनंसर्वंचेष्टितंचेष्टितांतरम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! इस शोभाके देखनेके पश्चात् शान्ति आदि साधनसम्पन्न वे दोनों देवियां उस ग्रामके भीतर ऐसे जाके गिरीं जैसे आत्मा जाननेवाले पुरुष और मोक्षकी श्री (शोभा) ॥ १ ॥ हे रामजी ! वह लीला इतने समयमें अभ्यासके कारणसे शुद्धज्ञानशरीरवाली, तथा त्रिकाल विषयमें निर्मल दर्शनवाली होगई ॥२॥ इसके अनन्तर वह आपही बिना परिश्रम अपने पूर्वजन्मकी मरण आदि सम्पूर्ण गतिका स्मरण किया ॥ ३ ॥ लीलाजी बोली—हे देवि ! आपकी कृपासे इस देशको देखके अपने पूर्वजन्मकी सब चेष्टाको तथा जन्मान्तरकी परम्पराकी सम्पूर्ण चेष्टाओंकोभी स्मरण कर रहीहूं ॥ ४ ॥

इहाभूवमहंजीर्णाशिरालांगीकृशासिता ॥ ब्राह्मणीशुष्कदर्भाग्रभेदरूक्षकरोदरा ॥ ५ ॥ भर्तुःकुलकरी भार्यादोहमंथनशालिनी ॥ मातासकलपुत्राणामतिथीनांप्रियंकरी ॥ ६ ॥ देवद्विजसतांभक्तासिक्तांगी घृतगोरसैः ॥ भर्जनीचरुकुंभादिभांडोपस्करशोधिनी ॥ ७ ॥ नित्यमन्नलवक्रैककाचकंबुप्रकोष्ठका ॥ जामातृदुहितृभ्रातृपितृमातृप्रपूजनी ॥ ८ ॥

अर्थ—हे भगवती ! इसी स्थानमें, वृद्ध अति कृश, नाडीमात्र शेष शरीर सहित, शुष्क (सूखे) कुशोंके अग्रभागसे हथेली जिसकी छिदगईथी ऐसी ब्राह्मणी मैं थी ॥ ५ ॥ पुनः मैं अपने पतिके कुलको वढानेवाली, दहीके मन्थन दण्डसे अति शोभायमान (छाछ वा मठा बोलनेसे) सम्पूर्ण अतिथियोंको माताके समान प्यार करनेवाली॥६॥ देव, ब्राह्मण तथा सज्जन महात्माओंकी बडी भक्त घृत गोरस आदिसे गौरवर्ण, भर्जनी (पाक बटलोही) चरु (यज्ञके पदार्थ पकाने स्थाली) घडा (कलश) आदि वर्तनोंको शुद्ध करनेहारी॥७॥नित्यही गृहमें कुछ अन्न रखनेवाली केवल एक काचकी चूडी कलाईमें धारण करनेहारी, जामाता(जमाई)कन्या, भ्राता, तथा माता पिताकी नित्य पूजा करनेवाली॥८॥

आदेहसंग्रभृत्येवप्रक्षीणदिनयामिनी ॥ वाचंचिरंचिरमितिवादिन्यनिशमाकुला ॥ ९ ॥ काहंकइवसंसारइतिस्वप्नेप्यसंकथा ॥ जायाश्रोत्रियमूढस्यतादृशस्यैवद्वद्धियः ॥ १० ॥ एकनिष्ठासमिच्छाकगोमयेंधनसंचये ॥ म्लानकंबलसंवीतशिरालकृशगात्रिका ॥ ११ ॥ तर्णकीकर्णजाहस्थकृमिनिष्कासतत्परा ॥ गृहशाकायनासेकसत्वराहूतकर्परा ॥ १२ ॥

अर्थ—देहपातपर्य्यन्त सदा गृहके पोषण आदि कार्य्योंमें रात्रिदिन बितानेवाली, और पुत्र वहू, तथा भृत्य आदिकों तुमने स्नानमें विलम्ब किया, तुमको भोजन करनेको विलम्ब होरहा है इत्यादि शब्दोंके कहनेमें सदा व्यग्र ॥ ९ ॥ मैं कौन हूं, यह संसार क्याहै इत्यादि वार्ताको स्वप्नमेंभी न करनेवाली, क्योंकि मेरेही सदृश अविशुद्धमति गृहकार्य्यमें तत्पर केवल वैदिक यज्ञ आदि कर्म करनेवाले ब्राह्मणकी मैं स्त्री थी ॥ १० ॥ यज्ञादि कार्य्योंके लिये इन्धन शाक आदि एकत्र करनेमें सदा तत्पर, मलिन कम्बलसे शरीरको ढाकनेवाली अति कृश शरीरवाली ॥ ११ ॥ वत्सा (बछिया) के कर्णके कीडोंको हांथसे निकालनेमें सदा तत्पर, गृहमें शाककी क्यारियोंके सींचनेके अर्थ भृत्यादिके बुलानेमें सदा निमग्न ॥ १२ ॥

नीलनीरतरंगांततृणतर्पिततर्णिका ॥ प्रतिक्षणंगृहद्वारकृतलेपनवर्णका ॥ १३ ॥ नीत्यर्थंगृहभृत्यानामादीनकृतवाच्यता ॥ मर्यादानियमादब्धेर्वेलेवानिशमच्युता ॥ १४ ॥ जीर्णपर्णसवर्णैककर्णदोलाधिरूढया ॥ काष्ठताज्यजराभीतजीवदृश्येवचिह्निता ॥ १५॥ इत्युक्त्वासंचरंतीसाशिखरिग्रामकोटरे ॥ संचरंत्याःसरस्वत्यादर्शयामाससस्मयम् ॥ १६ ॥

अर्थ—अति हरित जवके किनारेकी तृणोंको स्वयं लाके वालवछडोंको खिलानेवाली, प्रतिक्षण गृहके द्वारपर अद्भुत लेपन और चित्राम करनेहारी ॥ १३ ॥ भृत्यादिकोंको नीतिकी शिक्षा देनेहारीके दीनतापूर्वक किंचित् लोकनिन्दाकोभी सहनेवाली, तथा मर्य्यादा और नियम आदिके पालन करनेमें सदा ऐसे लगी रहतीथी जैसे समुद्रसे उसंका तट ॥ १४ ॥ हे देवि ! इसप्रकार संसारी कार्य्य करते हुये जीर्ण (पुराने) पत्तेके समान वर्णवाले मेरे शरीरका दक्षिण कर्ण बधिरताको प्राप्त होगया, और वह शिर कँापनेके कारण दोला (झूला) रूपताको प्राप्त हुआ उसमें आरूढ, श्रवण आदि व्यवहार सिद्ध करनेवाली काष्ठकी यष्टिसे जीवनकी अन्तिम दशासे मैं चिन्हित होगई थी ॥ १५ ॥ हे रामजी ! इतना कहके वह गिरिग्राममें भ्रमण करती हुई अपने साथ विचरनेहारी सरस्वतीजी आश्चर्य्यके साथ आगे कही हुई बस्तुओंको दिखलाया ॥ १६ ॥

इयंमेपाटलाखंडसंडितापुष्पवाटिका ॥ इयंमेपुष्पितोद्यानमंडपाशोकवाटिका ॥ १७ ॥ इयंपुष्करिणी तीरद्रुमाग्रंथिततर्णका ॥ इयंसाकर्णिकानाम्नीतर्णिकामुक्तपर्णिका ॥ १८ ॥ इयंसामेलसाकीर्णावराकी जलहारिका ॥ अद्याष्टमेदिनेबाष्पक्लिन्नाक्षीपरिरोदिति ॥ १९ ॥ इहदेविमयाभुक्तमिहोपितमिहस्थितं॥ इहसुप्तमिहापीतमिहदत्तमिहाहृतं ॥ २० ॥

अर्थ—हे देवि ! यह मेरी पाटलके वृक्षोंकी अखण्डित वाटिका है, और यह पुष्पके उद्यान मण्डप सहित अशोक वाटिका है ॥ १७ ॥ और यह मेरी पुष्करिणी (बावली) है जिसके तटके वृक्षोंसे ढीली ग्रन्थियों छोटे बछडे आदि बंधे रहते हैं, और यह मेरी शमी वृक्षोंकी वाटिका है जिसने मेरे वियोगसे पत्तोंकोभी त्याग दिया है ॥ १८ ॥ यह मेरी दीन जलभरनेवाली दासी है जो शोकके कारण अति कृश और अपना कार्य्य करनेमें असमर्थ प्रतीत होरही है तथा आज आठवे दिनभी अश्रुओंसे पूर्ण नेत्र रोदन कररही है ॥ १९ ॥ हे देवि ! इस स्थानमें मैं भोजन करतीथी, यहां निवास करती, यहां स्थित रहती, यहां शयन करती, यहां जल पीती, यहां पदार्थोंको देती, और यहांपर फल-पुष्प आदि लाके रखती थी ॥ २० ॥

एषमेज्येष्ठशर्माख्यःपुत्रोरोदितिमंदिरे ॥ एषामेजंगलेधेनुर्दोग्ध्रीचरतिशाद्वलं ॥ २१ ॥ गृहेवसंतदाहा यरूक्षक्षारविधूसरं ॥ स्वदेहमिवपंचाक्षंपश्येमंप्रघणंमम ॥ २२ ॥ तुंबीलताभिरुग्राभिःपुष्टाभिरिववेष्टितं ॥ महानसस्थानमिदंममदेहमिवापरम् ॥ २३ ॥ एतेरोदनताम्राक्षावंधवोभुविबंधनम् ॥ अंगदापितरुद्राक्षाआहरंत्यनलेंधनम् ॥ २४ ॥

अर्थ—यह मेरा ज्येष्ठशर्म्मा नाम पुत्र मन्दिरमें रोदन करता है, और मेरी दुग्ध देनेवाली गौ जंगलमें हरित घास चररही है ॥ २१ ॥ और गृहमें वसन्तऋतुके आरंभमें होलीमें दाह करनेके अर्थ बनाहुआ रूखी भस्मसे मलिन वर्ण, पांच गवाक्ष (झरोखे) सहित मेरी दूसरी देहके समान यह मेरी बाहरकी बैठक देखिये ॥ २२ ॥ बडी २ तथा मोटी२ तुमियोंकी लतासे घिराहुआ, मेरे शरीरके समान यह मेरा रसोईका स्थान है ॥ २३ ॥ रोदन करनेसे रक्तनेत्रवाले, पृथिवीमें बन्धनके तुल्य, ये मेरे बन्धु हैं, जो हाथोंमें रुद्राक्षकी विजायट पहने हुये इन्धन लारहे हैं ॥ २४ ॥

अनारतंशिलाकच्छेगुच्छाच्छोटनकारिभिः ॥ तरंगैःस्थगिताकारंस्पृष्टतीरलतादलैः ॥२५॥ सीकराकीर्णपर्यंतशाद्वलस्थलसल्लतैः ॥ शिलाफलकास्फालफेनिलोत्पलसीकरैः ॥ २६ ॥ तुषारीकृतमध्यान्ह दिवाकरकरोत्करैः ॥ फुल्लपुष्पोत्करासारप्रणादोत्कतटद्रुमैः ॥ २७ ॥ विद्रुमैरिवसंक्रांतफुल्लकिंशुककांतिभिः ॥ व्याप्तयापुष्पराशीनांसमुल्लासनकारिभिः ॥२८॥ उह्यमानफलापूरसुव्यग्रग्रामबालया ॥ महाकलकलावर्त्तमत्तयाग्रामकुल्यया ॥ २९ ॥ वेष्टितस्तरलास्फालजलधौततलोपलः ॥ घनपत्रतरुच्छत्रच्छायासततशीतलः ॥ ३० ॥ अयमालक्ष्यतेफुल्लतावलनसुंदरः ॥ दलद्गुच्छकाच्छन्नगवाक्षोगृहमंडपः ॥३१॥ अत्रमेसंस्थितोभर्त्ताजीवाकाशतयाकृतिः ॥ चतुःसमुद्रपर्यंतमेखलायाभुवःपतिः ॥३२॥

अर्थ—निरन्तर शिलाप्रधान जलप्रदेशमें पुष्पोंके गुच्छोंको तोडनेहारे, तटके लतादलोंको स्पर्श करनेवाले॥२५॥ जलके कणोंसे निकटकी घास तथा लताओंको आर्द्र गीली करने हारे, शिलाओंपर गिरनेसे फेन सहित कमलकी सुगन्ध सहित, तथा मध्यान्ह समयमेंभी सूर्य्यकी किरणोंको बर्फके समान शीतल करनेहारे तरंगोंसे, और विकसित पुष्पोंके समूहमें आनेवाले भ्रमरोंके शब्दसे शब्दायमान तटके वृक्षोंसे ॥ २६ ॥ २७ ॥ तथा प्रतिबिम्बरूपसे अन्तःप्रविष्ट पलाशकी शोभासे विद्रुम (मूंगे) के सदृश अपनी पुष्पराशियोंको शोभित करनेवाले वृक्षोंसे घिरी हुई, तथा प्रवाहमें बहते हुये आम्रआदिके लोभ तथा बहनेके भयसे ग्रामके बालक जिसमें व्यग्रहैं ऐसी, और भवरेहयुक्त जलके महाकोलाहलसे मत्तके सदृश ग्रामनदीसेभी घिरा हुआ और वेगयुक्त जलके गिरनेसे जिसकी नीचेकी शिलाये धुलगई हैं ऐसा सघन पत्रसहित वृक्षोंकी छायासे निरन्तर शीतल, विकसित लताओंके वेष्टनसे अतिरमणीय और गिरते हुये फल पुष्पोंके गुच्छोंसे जिसके झरोखे ढक गयेहैं ऐसा यह मेरा गृहमण्डप देख पडताहै ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ हे देवि ! जीवाकाशरूपसे अक्रिय होनेपरभी मेरा पति इसी स्थानमें चारों समुद्र पर्य्यन्त मेखलावाली पृथिवीका स्वामी होके स्थित रहा ॥ ३२ ॥

आस्मृतंपूर्वमेतेनकिलासीदभिवांछितम् ॥ शीघ्रंस्यामेवराजेतितीव्रसंवेगधर्मिणा ॥ ३३ ॥ दिनैरष्टभिरेवासौतेनराज्यंसमृद्धिमत् ॥ चिरकालप्रत्ययदंप्राप्तवान्परमेश्वरि ॥ ३४ ॥ अत्रासौभर्तृजीवोमेस्थितोव्योम्निगृहेनृपः ॥ सद्मव्यःखेयथावायुरामोदोवानिलेयथा ॥ ३५ ॥ इहैवांगुष्ठमात्रांतेतव्योम्न्येवपदंस्थितम् ॥ मद्भर्तृराज्यंखमयगतंयोजनकोटिभाक् ॥ ३६ ॥

अर्थ—उस मेरे दृढ अभ्यासवाले ब्राह्मण पतिने जातेहुये राजाको देखकर मैंभी शीघ्र ऐसाही राजा होऊं इस अपने अभिलषित पदार्थको स्मरण किया ॥३३॥ हे परमेश्वरि! इसी कारणसे आठही दिनमें, अति ऐश्वर्य्य सहित अतिकाल स्थित रहनेका विश्वास करानेवाले राज्यको पाया ॥ ३४ ॥ इसी गृहाकाशमें मेरे पति नृपका जीव अदृश्यरूपसे ऐसे स्थितहै जैसे आकाशमें वायु अथवा वायुमें सुगन्ध ॥ ३५ ॥ परमार्थ वस्तु दृष्टिसे इसी आकाशमें अंगुष्ठ-मात्रमें स्थितहै, और भ्रान्तिसे कारोडों योजनपरहै ॥ ३६ ॥

आवांखमेवखस्थंच भर्तृराज्यंममेश्वरि ॥ पूर्णंसहस्त्रैःशैलानांमहामायेयमातता ॥ ३७ ॥ तद्देविभर्तृनगरंपुनर्गंतुंममेप्सितम् ॥ तदेहितत्रगच्छावःकिंदूरंव्यवसायिनाम् ॥३८॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इत्युक्त्वा प्रणतादेवींसाप्रविश्याशुमंडपं ॥ विहंगीवतयासार्कंपुप्लुवेसिनिभंनभः ॥ ३९ ॥ भिन्नांजनचयप्रख्यंसौम्यैकार्णवसुंदरं ॥ नारायणांगसदृशंभृंगपृष्ठामलच्छवि ॥ ४० ॥

अर्थ—हम दोनो तथा मेरे पतिका राज्यभी चिदाकाशरूपही है तथापि हे परमेश्वरि ! यह सहस्रों पर्वतोंसे इस भांति पूर्ण है जैसे विस्तृत संसार माहामायासे ॥ ३७ ॥ हे देवि! मेरी इच्छा पतिके नगरमें जानेकी पुनः है इसलिये आओ चलैं, क्योंकि उद्योगियोंके लिये कौनसी वस्तु दूरहै ॥ ३८ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी! अति नम्र होके देवीसे वह इतना कहके खंडके समान आकाशमण्डलमें भगवतीके साथ ऐसी उडी जैसे पक्षी (पक्षिणी) ॥ ३९ ॥ मिश्रित अंजनके समूहके तुल्य शान्त समुद्रके सदृश रमणीय श्रीनारायणके अंगके समान श्यामवर्ण, भ्रमरके पीठके समान निर्मल शोभायुक्त, (आकाशदेशमें वे दोनों उडीं) ॥ ४० ॥

मेघमार्गमतिक्रम्यवातस्कंधावनिंतथा ॥ सौरमार्गमथाक्रम्यचंद्रमार्गमतीत्यच ॥ ४१ ॥ ध्रुवमार्गोत्तरं गत्वासाध्यानांमार्गमेत्यच ॥ सिद्धानांसमतीत्योर्वीमुल्लंघ्यस्वर्गमंडलं ॥ ४२ ॥ ब्रह्मलोकोत्तरंगत्वातु पितानांचमंडलम् ॥ गोलोकंशिवलोकंचपितृलोकमतीत्यच ॥ ४३ ॥ विदेहानांसदेहानांलोकानुत्तीर्य दूरगम् ॥ दूराद्दूरमथोगत्वाकिंचिद्बुद्धाबभूवसा ॥ ४४ ॥

अर्थ—मेघ मार्गको अतिक्रमण करके वायुलोकमें प्राप्त हुई उसकोभी उल्लंघनके सूर्य्यलोकमें पहुंची, उसकोभी अतिक्रमण करके अनन्तर चन्द्रमार्गको अतिक्रमण किया ॥ ४१ ॥ हे रामजी ! इसीप्रकार ध्रुवलोक, साध्यलोक और सिद्धोंके लोकोंको उल्लंघन करके स्वर्गलोकमें पहुंचकर उसेभी उल्लंघन किया ॥ ४२ ॥ इसके अनन्तर ब्रह्मलोकमें जाके वैकुण्ठ (सन्तुष्ट जीवोंके) लोकमें प्राप्त हुई, इसके अनन्तर गोलोक शिवलोक और पितृलोककोभी अतिक्रमण करके ॥ ४३ ॥ देह रहित तथा देह सहित प्राणियोंके लोकोंको पार किया, दूरसेभी दूर देशमें जाके फिर उसने कुछ विचार किया ॥ ४४ ॥

पश्चादालोकयामाससमतीतंनभस्थलम् ॥ यावन्नकिंचिच्चंद्रार्कतारायालक्ष्यतेह्यधः ॥ ४५ ॥ तमस्तिमितगंभीरमाशाकुहरपूरकम् ॥ एकार्णवोदरप्रख्यंशिलोदरघनंस्थितम् ॥ ४६ ॥ लीलोवाच ॥ तद्देविभास्करादीनांकाधस्तेजोगतंवद ॥ शिलाजठरनिष्पंदंमुष्टिग्राह्यंतमःकुतः ॥ ४७ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ एतावतीमिमांव्योम्नःपदवीमागतासिभोः ॥ अर्कादीन्यपितेजांसियतोदृश्यंतएवनो ॥ ४८ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर अतिक्रमण किये हुये आकाशमण्डलका वहांतक विचार किया जहां सूर्य्य, चन्द्र और तारा आदिकी किंचिद्भी गति प्रतीत नहीं होती ॥ ४५ ॥ वह देश महागम्भीर अन्धकारसे ग्रस्त दशों दिशाओंके छिद्रोंका पूरक एक समुद्रके उदरके सदृश, तथा शिलाके उदरके तुल्य था ॥ ४६ ॥ लीला बोली—हे देवि! वह सूर्य्य आदिका तेज नीचे कहां चलागया, और यह शिलाके उदरसे निकलनेवाला अति सघन होनेके कारण मुष्टिसे ग्रहण करनेके योग्य यह अन्धकार कहांसे आगया? ॥ ४७ ॥ श्रीदेवी बोली—हे पुत्रि ! तुम आकाशकी उस बडी पदवीतक पहुंचगई हो कि जहांसे सूर्य्यादिका तेजभी नहीं देख पडता ॥ ४८ ॥

यथामहांधकूपाधःखद्योतोनावलोक्यते ॥ पृष्ठगेनतथेहातोनाधःसूर्योवलोक्यते ॥ ४९ ॥ लीलोवाच ॥ अहोनुपदवींदूरमावामेतामुपागते ॥ सूर्योप्यधोणुकणवन्नमनागपिलक्ष्यते ॥ ५० ॥ इतउत्तरमन्यास्या त्पदवीकानुकीदृशी ॥ कथंचमातरेतन्व्याकथ्यतामितिदेविमे ॥ ५१ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ इतउत्तरमग्रे तेब्रह्मांडपुटकर्परम् ॥ यस्यचंद्रादयोनामधूलिलेशाःसमुत्थिताः ॥ ५२ ॥

अर्थ—जिसप्रकार अन्धकारमय कूपके नीचेका खद्योत (जुगनू वा पटबीजना) ऊपरके मनुष्यको नहीं देख पडता इसीप्रकार यहांसे सूर्य्य नहीं देख पडता ॥ ४९ ॥ लीलाजी बोली—हे देवि! यह कैसा आश्चर्य है कि हमलोग

इतना दूर मार्ग आगई कि जहांसे सूर्य्यभी इतना नीचे रहगया कि परमाणुके सदृश कुछभी नहीं देख पडता ॥ ५० ॥ हे भगवति ! इसके आगे कौनसा और कैसा मार्गहै और हे मातः ! कैसे वहां जो सकतेहैं सो कहो ॥ ५१ ॥ श्रीदेवीजी बोली–हे पुत्रि! इसकें आगे ब्रह्माण्ड सम्पुटका खप्परहै जिससे कि सूर्य्यचन्द्र आदिभी धूलिके कणके समान निकलेहैं५२

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इतिप्रकथयंत्यौतेप्राप्तेब्रह्मांडकर्परम् ॥ भ्रमर्याविवशैलस्यकुड्यंनिबिडमंडपम् ॥ ५३ ॥ अक्लेशेनैवतेतस्मान्निर्गतेगगनादिव ॥ निश्चयस्थंहियद्वस्तुतद्वज्रगुरुनेतरत् ॥ ५४ ॥ निरावरणविज्ञानासाददर्शततस्ततम् ॥ जलाद्यावरणंपारेब्रह्मांडस्यातिभासुरम् ॥ ५५ ॥ ब्रह्मांडाद्दशगुणतस्तोयंतत्र-व्यवस्थितं ॥ आस्थितंवेष्टयित्वातुत्वगिवाक्षोटपृष्ठगा ॥ ५६ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! इसप्रकार वे दोनों परस्पर वार्तालाप करतीहुई ब्रह्माण्ड संपुटके खप्परमें ऐसे प्राप्तहुई जैसे दो भ्रमरी किसी पर्वतके छिद्र शून्य गर्भमें ॥ ५३ ॥ विना क्लेशही आकाशके तुल्य उसमें निकली, क्योंकि जिस वस्तुमें सत्यका निश्चय होताहै वही वज्रके सदृश भारी तथा कठोर प्रतीत होताहै, और उससे भिन्न मिथ्या बुद्धिसे बाधित रहताहै ॥ ५४ ॥ इसके अनन्तर उस लीलाने जिसका विज्ञान आवरणसे रहित होगयाहै ब्रह्माण्डके पार अति प्रकाशमान फैला हुआ जलादि आवरण देखा ॥ ५५ ॥ ब्रह्माण्डसेभी दशगुण अधिक परिमाण जल इसप्रकार वहां ब्रह्माण्ड खप्परको चारों ओरसे ऐसे घेरेहुये स्थितहै जैसे अखरोटके बीजको उसका छिल्का॥५६

तस्माद्दशगुणोवह्निस्तस्माद्दशगुणोनिलः ॥ ततोदशगुणंव्योमततःपरममंबरम् ॥ ५७ ॥ तस्मिन्परमकेव्योम्निमध्याद्यंतविकल्पनाः ॥ नकाश्चनसमुद्यंतिवंध्यापुत्रकथाइव ॥ ५८ ॥ केवलंविततंशांतंतदनादिगतभ्रमं ॥ आद्यंतमध्यरहितंमवत्यात्मनितिष्ठति ॥ ५९ ॥ आकल्पमुत्तमबलेनशिलापतेच्चेत्तस्मिन्बलात्पतगराडपिचोत्पतेच्चेत् ॥ तद्योजनंनलभतेविमलेंबरेंतर्माकल्पमेकजवगोप्यथमारुतोपि ॥ ६० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने परमाकाशवर्णनं नाम एकोनत्रिंशत्तमःसर्गः ॥ २९ ॥

अर्थ—हे रामजी ! उस जलसेभी दशगुण अधिक अग्नि घेरे है, और उससेभी दशगुण अधिक वायु और उससेभी दशगुण अधिक आकाशहै और इसके अनन्तर शुद्ध चिदाकाशहै क्योंकि अविद्याके नष्ट होनेसे अव्याकृत आकाशही शेष रहताहै ॥५७॥ हे रामजी ! उस परम शुद्ध चिदाकाशमें कोईभी आदि अन्त मध्यकी विकल्पना (भेदका विचार) इसप्रकार नहीं उठती जैसे वन्ध्याके पुत्रकी कथा ॥ ५८ ॥ हे रामजी ! वह व्यापक स्वरूप शान्त, अनादि, भ्रम रहित आदि अन्तमध्यशून्य, केवल अपनी आत्माहीमें स्थित रहताहै ॥ ५९ ॥ हे रामजी ! उस विमल शुद्ध चिदाकाशके ऊपर यदि महावेगसे कल्पतक शिला गिरै, वा नीचेसे पक्षिराज गरुडजी उडै, अथवा उनदोनोंको मध्यमें महावेगसे कल्पपर्य्यन्त वायु चलै, तबभी उनदोनोंको मेलतक नहीं होसकता और चारों ओरसे उसका अन्त लेना तो दूर रहा, अर्थात् वह सर्वथा अपरिछिन्नहै ॥ ६० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने परमाकाशवर्णनं नाम एकोनत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ २९ ॥

त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥

पूर्वदृष्ट ब्रह्माण्डोंके सदृश, और उनसे विचित्रभी अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड उस चिदाकाशमें लीलाने देखा, इस विषयका वर्णन इस ३० वे सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ पृथिव्यप्तेजसांतत्रनभस्वन्नभसोरपि ॥ यथोत्तरंदशगुणानतीत्यावरणान्क्षणात् ॥ १ ॥ ददर्शपरमाकाशंतत्प्रमाणविवर्जितं ॥ तथाततंजगदिदंयथातत्रांडमात्रकं ॥ २ ॥ तादृशावरणान्सर्गान्ब्रह्मांडेषुददर्शसा ॥ कोटिशःस्फुरितान्व्योम्नित्रसरेणूनिवातपे ॥ ३ ॥ महाकाशमहांभोधौमहाशून्यत्ववारिणि ॥ महाचिद्द्रवभावोत्थान्बुद्बुदानर्बुदप्रभान् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाशके यथाक्रम उत्तरोत्तर दशगुण अधिक आवरणको उनदोनोंने क्षणभरमें पार किया ॥ १ ॥ उसपूर्वोक्त प्रमाण रहित परमाकाशमें जैसे यह वर्णन किया हुआ जगत् विस्तृत रूपसेहै इसीप्रकार अन्य सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मात्रको उसी चिदाकाशमें विस्तृत रूपसे लीलाने देखा

॥ २ ॥ पूर्वोक्त आवरण सहित अपने अधिष्ठान चेतनसे भासित कोटियों सृष्टियोंको उन ब्रह्माण्डोमेंसे लीलाने उस चिदाकाशमें ऐसे देखा जैसे धूपमें उडतेहुये त्रसरेणु ॥३॥ उस महाकाशरूपी महासमुद्रमें अविद्यारूपी जलमें महाचिदकी स्फुरणके चिदाभावसे निकलेहुये असंख्य बुद्बुदके समान ब्रह्माण्डोंको देखा ॥ ४ ॥

कांश्चिदापततोधस्तात्कांश्चिच्चोपरिगच्छतः॥ कांश्चित्तिर्यग्गतीनन्यान्स्थितांस्तध्यान्स्वसंविदा॥५॥ यत्रयत्रोदितासंविद्येषांयेषांयथायथा ॥ तत्रतत्रोदितंरूपंतेषांतेषांतथातथा ॥ ६ ॥ नेहैवतत्रनामोर्ध्वंनाधोनचगमागमाः ॥ अन्यदेवपदंकिंचित्तस्माद्देहागमंहितत् ॥ ७ ॥ उत्पद्योत्पद्यतेतत्रस्वयंसंवित्स्वभावतः ॥ स्वसंकल्पैःशमंयातिबालसंकल्पजालवत् ॥ ८ ॥

अर्थ—उन उन ब्रह्माण्डोंके अभिमानी जीवोंके संविद् (ज्ञान) के अनुसार उनमेंसे किन्हींको ऊपरसे गिरते हुये, किन्हींके ऊपर जाते हुये, किन्हींको तिरछे जाते हुये, और किन्हींको स्थितिशील देखा ॥ ५ ॥ जहां २ पर जिन २ प्राणिओंकी जैसी २ संवित् उदयको प्राप्त हुईथी, वहां २ पर उन २ प्राणियोंके लिये वैसाही वैसा रूप होगया ॥ ६ ॥ यह वार्ता अनुभव करनेवालोंकी दृष्टिसे कहा, यथार्थमें तो इस चिदाकाशमें न ऊर्ध्वपन है और न नीचापन है, और न इस चिदाकाशमें ब्रह्माण्डका गमन आगमन है वह पद तो वाणी और मनसे अतीत, दिशा आदि सब द्वैतभावसे वर्जितहै इसलिये पूर्वोक्त सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड तथा उनके शरीरको प्राप्ति सब अज्ञानियोंकी दृष्टिसे कही गई है ॥ ७ ॥ वे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड आदि उस चिदाकाशमें अपने स्वभावसे अपने २ संकल्पके अनुसार उत्पन्न हो २ कर पुनः उसीमें शान्तिको ऐसे प्राप्त होजाते हैं जैसे बालकोंके संकल्पजाल ॥ ८ ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ किमधःस्यात्किमूर्ध्वंस्यात्किंतिर्यक्तत्रभासुरे ॥ इतिब्रूहिममब्रह्मन्निहैवयदिनस्थितं ॥ ९ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ससर्वावरणाएतेमहत्यंतविवर्जिते ॥ ब्रह्मांडाभांतिदुर्दृष्टेर्व्योम्निकेशोंड्रुकोयथा ॥ १० ॥ अस्वातंत्र्यात्प्रधावंतिपदार्थाःसर्वएवयत् ॥ ब्रह्मांडेपार्थिवोभागस्तदधस्तूर्ध्वमन्यथा ॥ ११ ॥ पिपीलिकानांमहतांव्योम्निवर्तुललोष्टके ॥ दशदिक्कमधःपादाःपृष्ठमूर्ध्वमुदाहृतं ॥ १२ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-हे भगवन् ! यदि अधिष्ठान चेतनमेंही ऊर्ध्व अधोभाव आदि नहीं है तो कल्पनासे निर्मित प्रकाशमान जगत्में ऊर्ध्व अधोभाग आदि व्यवहार कैसे होसकता है यह आप मुझे कृपा करके कहिये ॥ ९ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! इस अपरिमित चिदाकाशमें ये सम्पूर्ण आवरण सहित ब्रह्माण्ड अज्ञकी दृष्टि ऐसे भासते हैं जैसे आकाशमें नीलता ॥ १० ॥ जिसप्रकार कदम्बके केसरोंका आधारभूत जो कर्णिका है उसीकी अपेक्षासे ऊंचानीचापन माना जाताहै इसी प्रकार जहां यह पृथिवी है वह भाग नीचा समझा जाता है, और ये सब पदार्थ अस्वतन्त्रतासे इधर उधर भागरहें उनमें परस्पर आकर्षणशक्ति रहनेके कारण गिरते नहीं, और ऊपर फेंकाहुआ ढेलाभी जो पृथिवीहीपर गिरताहै उसका कारणभी आकर्षणशक्ति है क्योंकि पृथिवी खींचती है ॥ ११ ॥ जैसे एक मिट्टीके गोलेमें चारोंओर चेंटियां लपटी रहती हैं वहांपर जिधर उनका पैरहै वही नीचेकी दिशाहै और जिधर उनकी पीठहै वही ऊपर, यही दशा ब्रह्माण्डकी है, अर्थात् जिस ब्रह्माण्डके प्राणियोंका जिधर पैर वही नीचा और जहां उनका शिर है वही ऊपर ॥ १२ ॥

वृक्षवल्मीकजालेनकेषांचिद्धृदिभूतलं ॥ ससुरानरदैत्येनवेष्टितंव्योमनिर्मलं ॥ १३ ॥ संभूतंसहभूतेनसग्रामपुरपर्वतं ॥इदंकल्पनभूतेनपक्वाक्षोटमिवत्वचा ॥ १४॥ यथाविंध्यवनाभोगेप्रस्फुरंतिकरेणवः ॥ तथातस्मिन्पराभोगेब्रह्मांडत्रसरेणवः ॥ १५ ॥ तस्मिन्सर्वंततःसर्वंतत्सर्वंसर्वतश्चयत् ॥ तच्चसर्वमयोनित्यंतथातदणुकंप्रति ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! किसीको यह भासताहै कि यह भूतल वृक्ष वल्मीक जालसे घिराहै, और किसीके हृदयमें यह भासताहै कि आकाश, मनुष्य तथा भिन्न देवता, दैत्य, और किंपुरुषादिसे घिराहै ॥ १३ ॥ कितने ब्रह्माण्ड सद्यः कल्पनामय चार प्रकारके प्राणियोंके सहित और नगर, ग्राम, तथा पर्वत आदि सहित ऐसे उत्पन्न हुये हैं, जैसे अखरोटके फलके साथ उसका छिलका ॥ १४ ॥ जिसप्रकार विन्ध्याचलकी भूमिमें अनेक गज विचरते हैं ऐसेही उस अधिष्ठानरूप आत्मामें ब्रह्माण्डत्रसरेणु भ्रमण कर रहे हैं ॥ १५ ॥ उसमेंही सब कुछहै और उसीसे सब कुछहै, और वह सबको व्यापकरूपसे घेरे है और सर्वमय वही है इसलिये वह किसीके प्रति अणुस्वरूप नहीं होसकता ॥ १६ ॥

शुद्धबोधमयेतस्मिन्परमालोकवारिधौ ॥ अजस्रमेत्यगच्छंतिब्रह्मांडाख्यास्तरंगकाः ॥ १७ ॥ अंतःशून्याःस्थिताःकेचित्संकल्पक्षयरात्रयः ॥ तरंगाइवतोयेषुप्रोह्यंतेशून्यतार्णवे ॥ १८ ॥ केषांचिदंतःक

ल्पांतःप्रवृत्तोघर्घरारवः ॥ नतुतोन्यैर्नेवज्ञातःस्वभावेनरसाकुलैः ॥ १९ ॥ अन्येषांप्रथमारंभेशुद्धभूषु विजृंभते ॥ सर्गःसंसिक्तबीजानांकोशेंकुरकलायथा ॥ २० ॥

अर्थ—शुद्ध बोधमय परम प्रकाशरूप उस परमात्मारूपी समुद्रमें अनेक ब्रह्माण्डरूपी तरंग सदा उदय अस्त हुआ करतेहैं ॥ १७ ॥ उनमेंसे कितने ब्रह्माण्ड अव्याकृतरूपसे चिदाकाशमें स्थितहैं, और पूर्वकल्पके सम्पूर्ण संकल्पोंकी बीजभूत लिंग उपाधिके क्षय पर्य्यन्त वे रहते हैं तथा उनकी सत्ता उसमें ऐसी है जैसी सुषुप्ति अज्ञानरूपसे पदार्थोंकी सत्ता, और अव्याकृत चिदाकाशरूपी समुद्रमें उनकी तर्कनाभी भांतीकी ऐसे हैं, जैसे जलसमुद्रमें तरंग ॥ १८ ॥ किन्हीं २ ब्रह्माण्डोंके अन्तरमें कल्पान्त पर्य्यन्त घर्घर शब्द होरहाहै जो कि स्वाभाविक अज्ञानसे दूसरोंने न सुना न जाना ॥ १९ ॥ और ब्रह्माण्डोंके प्रथम कल्पयुग आदिके आरंभमें, पूर्व उत्पन्न प्राणियोंसे दूषित न होनेके कारण शुद्ध भुवनोंमें सृष्टि ऐसे प्रवृत्त होरही है जैसे सिंचे हुये बीजोंके कोशमें शुद्धअंकुरकी कला ॥ २० ॥

महाप्रलयसंप्राप्तौसूर्यार्चिर्विद्युतोद्रयः ॥ प्रवृत्तागलितुंकेचित्तापेहिमकणाइव ॥२१॥ आकल्पंनिपतंत्येव केचिदप्राप्तभूमयः ॥ यावद्विशीर्यजायंतेतथासंविन्मयाःकिल ॥ २२ ॥ स्तब्धाइवस्थिताःकेचित्केशोंडूकमिवांबरे ॥ वायोःस्पंदाइवाभांतितथाप्रोदितसंविदः ॥ २३ ॥ आचाराद्वेदशास्त्राणामाद्यएवान्यथोदिते ॥ आरंभोपितथान्येषामनित्यःसंस्थितःक्रमः ॥ २४ ॥

अर्थ—किन्हीं २ ब्रह्माण्डके महाप्रलयका समय प्राप्त होगयाहै उसमें सब भुवनोंके नाशके अनन्तर सूर्य्य, विद्युत् तथा पर्वत आदि स्वयं ऐसे गलनेको प्रारम्भ हुये हैं जैसे घर्म (घाम) में हिमके कण ॥२१॥ कितने ब्रह्माण्ड कल्प पर्यन्त आधार देश न प्राप्त होनेसे सदा गिरतेही रहते रहते हैं, जबतक कि सर्वथा नष्ट होके वे पुनः न उत्पन्न हो, क्योंकि उनकी संवित्मयही हैं, इससे पूर्वमें जो पतनका असंभव कहाहै उस शंकाका अवसर नहीं है ॥ २२ ॥ कोई २ ब्रह्माण्ड आकाशमें स्तम्भके तुल्य निश्चलरूपसे स्थितहैं, और कोई २ स्पन्दमय वासनासे उत्पन्न होनेके कारण वायुकी गतिके समान प्रकाशित होरहे हैं ॥ २३ ॥ पूर्वकल्पके वेदशास्त्र संबन्धी कर्मज्ञानके अनुष्ठानरूप आचारसे ब्रह्मपदवीको प्राप्त ब्रह्माके प्रथमकल्पमेंही अन्य ब्रह्माकी अपेक्षा विलक्षणता वर्णन कियाहै तो उसके आजकी सृष्टियोंकी विलक्षणता पूर्ववत् रहो तथापि दूसरे ब्रह्माकी सृष्टिकी अपेक्षा तो इसका क्रम अनियतही स्थितहै ॥ २४ ॥

केचिद्ब्रह्मादिपुरुषाःकेचिद्विष्णवादिसर्गपाः ॥ केचिच्चान्यप्रजानाथाःकेचिन्निर्नाथजंतवः ॥ २५ ॥ केचिद्विचित्रसर्गेशाःकेचित्तिर्यङ्मयांतराः ॥ केचिदेकार्णवापूर्णाइतरेजनिवर्जिताः ॥ २६ ॥ केचिच्छिलांगनिष्पिंडाःकेचित्कृमिमयांतराः ॥ केचिद्देवमयाएवकेचिन्नरमयांतराः ॥ २७ ॥ केचिन्नित्यांधकाराढ्यास्तथाशीलितजंतवः ॥ केचिन्नित्यप्रकाशाढ्यास्तथाशीलितजंतवः ॥ २८ ॥

अर्थ—कोई २ ब्रह्माण्डके प्राणी अपना स्वामी ब्रह्माजीको मानते हैं, और कोई २ विष्णुको मानते हैं और कोई शिव, भैरव दुर्गा तथा बिनायक आदिको मानते हैं, और कितने ऐसेभी हैं जो किसीकोभी अपना स्वामी नहीं मानते ॥ २५ ॥ किन्हीं २ सृष्टियोंके स्वामी विचित्रहैं, अर्थात् स्रष्टाओंकी विचित्रतासे सृष्टियोंकी विचित्रताकी कल्पना योग्यही है, कोई २ ब्रह्माण्ड तिर्य्यग् (पशुपक्षी आदि) जन्तुओंसे पूर्ण हैं, कोई समुद्रसे पूर्ण हैं, और कोई जन्मसेही रहितहैं ॥ २६ ॥ कोई पाषाणकी शिलाके सदृश सघन अंगवाले प्राणियोंके सहितहैं कोई कृमि (कीडे कोडे) मयहैं, कोई २ देवताओंसे पूर्ण हैं कोई मनुष्योंसे ॥ २७ ॥ कोई २ अन्धकारसे पूर्ण हैं, क्योंकि उनमें उल्लूकके सदृश अन्धकारमेंही व्यवहार करनेवाले प्राणी निवास करते हैं, और कोई २ प्रकाशमय हैं क्योंकि उनमें वैसेही व्यवहार करनेवाले जीव रहते हैं ॥ २८ ॥

केचिन्मशकसंपूर्णोडुंबरफलश्रियः ॥ नित्यंशून्यांतराःकेचिच्छून्यस्पंदात्मजंतवः ॥ २९ ॥ सर्गेणतादृशेनान्येपूर्णायेंतर्द्धियामिह ॥ कल्पनामपिनायांतिव्योमपूर्णाचलोयथा ॥ ३० ॥ तादृगंबरमेतेषांमहाकाशंततंस्थितम् ॥ आजीवितंप्रगच्छद्भिर्विष्णवाद्यैर्यन्नमीयते ॥ ३१ ॥ प्रत्येकस्यांडगोलस्यस्थितःकटकरत्नवत् ॥ भूताकृष्टिकरोभावःपार्थिवःस्वस्वभावतः ॥ ३२ ॥ यःसर्वविभवोऽस्माकंधियांनाविषयंततः ॥ तज्जगत्कथनेशक्तिर्नममास्तिमहामते ॥ ३३ ॥ भीमांधकारगहनेसुमहत्यरण्येनृत्यंत्यदर्शितपरस्परमेवमत्ताः ॥ यक्षायथाप्रविततेपरमांबरेंतरेवंस्फुरंतिसुबहूनिमहाजगंति ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने विचित्रब्रह्मांडकोटिवर्णनं नाम त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३० ॥

अर्थ—कोई २ उदुम्बर (गूलर) के फलके सदृश मशक समान प्राणियोंसे पूर्ण हैं, और कोई शून्यगतिवाले जीव सहित शून्य पूर्णहीहैं ॥ २९ ॥ अनेक ब्रह्माण्ड पूर्वोक्त सृष्टियोंसे पूर्ण रहतेभी योगियोंकी बुद्धिमें विकल्पज्ञान विषयताको ऐसे नहीं प्राप्त होते जैसे आकाशसे पूर्ण पर्वत ॥ ३० ॥ जैसा आकाश पूर्ण पर्वत है ऐसेही अशून्य स्वभाव आकाश है, और चिदाकाश तो इतना विस्तृत है कि विष्णु आदि अपने जीवन कालभर दौडते रहैं तौभी यह इतना बडा है कि इसका परिमाण नहीं करसकते ॥ ३१ ॥ प्रत्येक ब्रह्माण्डके चारोंओर भूतोंको आकर्षण करनेकी शक्तिरूप पार्थिव भाग इसप्रकार स्थित है जैसे कलाईके चारों ओर कटक (कडा) ॥ ३२ ॥ हे महामते रामजी! हमलोगोंकी बुद्धिमें जगत् वर्णन करनेका विभव जो कुछ था वह सब विभव आपको दिखला चुके अब इसके आगे जगत् वर्णन करनेमें हमारी शक्ति नहीं है ॥ ३३ ॥ हे रामजी! जैसे महा भयंकर गहन अन्धकारयुक्त जंगलमें अनन्त यक्षभूत आदिके गण उन्मत्त होके एक दूसरेके स्वरूपको न देखतेहुये नृत्य करतेहैं ऐसेही उस महा चिदाकाशके भीतर अनन्त ब्रह्माण्ड एक दूसरेके रूपको न देखतेहुये भ्रमण कर रहे हैं, अर्थात् परमेश्वरकी मायामें इतने अनन्त ब्रह्माण्ड रचनेकी शक्तिहै कि उनका वर्णन कोईभी नहीं करसकता ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने विचित्रब्रह्माण्डकोटिवर्णनं नाम त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥

अन्तःपुरका देखना, तथा अन्य ब्रह्माण्डका दर्शन, और शूर वीर आदिके लक्षणोंसे सजीवभी सेनाका दर्शन इस ३१ वे सर्गमें वर्णन किया गया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवमाकलयंत्यौते निर्गत्यजगतोनिजात् ॥ अंतःपुरंददृशतुर्झटित्येवविनिर्गते ॥ १ ॥ स्थितपुष्पभरापूर्णमहाराजमहाशवं ॥ शवपार्श्वोपविष्टांतश्चित्तलीलाशरीरकम् ॥ २ ॥ घनरात्रितयाल्पाल्पमहानिद्राजनाकुलम् ॥ धूपचंदनकर्पूरकुंकुमामोदमंथरम् ॥ ३ ॥ तमालोक्यापरं भर्तुः संसारं गंतुमादृता ॥ पपातलीलासंकल्पदेहेनाब्रेवतन्नभः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी! इसप्रकार वे दोनों देखतीहुई अपने जगत्से निकलके शीघ्र अन्तःपुरको देखा ॥ १ ॥ वह (अन्तःपुर) पुष्पोंके भारसे पूर्ण महाराजाके मृतक शरीरसे युक्त, और मृतक शरीरके निकट स्थित अन्तःसमाधिमें निमग्न लीलाके चित्तशरीर सहित ॥ २ ॥ शोकके कारण दीर्घरात्रि होनेसे महानिद्राग्रस्त मनुष्योंसे पूर्ण, और धूप, चन्दन कर्पूर, तथा कुंकुमके महा सुगन्धसे व्याप्त था ॥ ३ ॥ उस पतिके दूसरे संसारको देखकर लीला जानेको अति आदर युक्त हुई, और इसी पूर्वोक्त मण्डपाकाशमें संकल्पके शरीरसे गिरी ॥ ४ ॥

विवेश भर्तुः संकल्पसंसारं किंचिदाततम् ॥ संसारावरणं भित्त्वा भित्त्वा ब्रह्मांडकर्परम् ॥ ५ ॥ प्रापसाद्वैतया देव्यापुनरावरणान्वितम् ॥ ब्रह्मांडमंडपंस्फारं तंप्रविश्यतथाजवात् ॥ ६ ॥ ददर्श भर्तुः संकल्पजगज्जंबालपल्वलम् ॥ सिंहीवशैलकुहरं तमोजलदपंकिलम् ॥ ७ ॥ देव्यौविविशतुस्तत्ते व्योमव्योमात्मिकेजगत् ॥ ब्रह्मांडेंतर्यथापक्वंमृदुबिल्वंपिपीलिके ॥ ८ ॥

अर्थ—और पतिके संकल्पमय संसार, जो कुछ विस्तारयुक्त था उसमें प्रवेश किया, और अनन्तर संसारके आवरणको तोड करके तथा ब्रह्माण्ड खप्परको विदारकरके ॥ ५ ॥ और उस देवीके साथ आवरणयुक्त, अति विस्तृत दूसरे ब्रह्माण्डमण्डपमें पहुंची, और वेगसे उसमें प्रवेश करके ॥ ६ ॥ पंकके समान स्थित पतिके संकल्पमय जगत्को ऐसे देखा जैसे अन्धकार मेघके कारणसे पंकमय पर्वतके छिद्रको सिंही ॥ ७ ॥ वे दोनों आकाशमय देवियां ब्रह्माण्डके भीतर ऐसे प्रवेश किया जैसे कोमल और पके बिल्व (बेल) के फलमें दो चेटियां ॥ ८ ॥

तत्रलोकांतराण्यद्रीनंतरिक्षमतीत्यते ॥ प्रापतुर्भूतलंशैलमंडलांभोधिसंकुलम् ॥ ९ ॥ मेरुणालंकृतंजंबूद्वीपंनवदलोदरम् ॥ गत्वाथभारतेवर्षेलीलानाथस्यमंडलम् ॥ १० ॥ एतस्मिन्नंतरेतस्मिन्मंडलेमंडितावनौ ॥ चक्रेवस्कंदनंकश्चित्सामंतोद्रिक्तभूमिपः ॥ ११ ॥ तेनसंग्रामसंरंभप्रेक्षार्थंसमुपागतैः ॥ त्रैलोक्यभूतैस्तद्व्योमबभूवात्यंतसंकटम् ॥ १२ ॥

अर्थ—वहांपर अनेक अन्य लोकोंको, पर्वतोंको, तथा आकाशको पार करके ऐसे भूतलमें पहुंची जो अनेक पर्वतोंके मण्डल तथा समुद्रोंसे व्याप्त था ॥ ९ ॥ वहांसे मेरुपर्वतसे शोभायमान, नवदल कमलके तुल्य नवखण्डोंसे युक्त जम्बूद्वीपमें प्राप्त होकर भारतवर्षमें लीलाके पतिका राज्यमण्डल देखा ॥ १० ॥ इसी बीचमें अपने सहायक राजाओंसे वृद्धिको प्राप्त किसी राजाने उस मण्डलके ऊपर आक्रमण किया ॥ ११ ॥ उस राजा (सिंधुराज) के साथ संग्राम आरंभ होनेपर त्रैलोक्यके प्राणी देखनेको आये जिनसे आकाशमण्डल पूर्णहोगया ॥ १२ ॥

अशंकितागतेतत्तेदेव्यौददृशतुर्नभः ॥ नभश्चरगणाक्रांतमंबुदैरिवमालितम् ॥ १३ ॥ सिद्धचारणगंधर्वगणविद्याधरान्वितम् ॥ शूरग्रहणसंरब्धस्वर्गलोकाप्सरोवृतम् ॥ १४ ॥ रक्तमांसोन्मुखोनृत्तभूतरक्षःपिशाचकम् ॥ पुष्पवृष्टिभिरापूर्णहस्तविद्याधरांगनम् ॥ १५ ॥ वेतालयक्षकूश्मांडैर्द्वन्द्वालोकनसादरैः ॥ आयुधापातरक्षार्थंगृहीताद्रितटैर्वृतम् ॥ १६ ॥

अर्थ—अन्तर्धानादि (छिप जाने) की क्रियामें कुशल वे दोनों देवियां भय और शंकासे रहित होके वहां आकर आकाशको देखा, जो (आकाश) चारोओर प्राणियोंसे ऐसा घिरा है जैसे मेघोंकी मालासे ॥ १३ ॥ पुनः वह सिद्ध, चारण, गन्धर्व तथा विद्याधरोंके गणोंसे युक्त तथा शूरवीरोंके वरण करनेमें त्वरायुक्त स्वर्गकी अप्सराओंसे आच्छादित ॥ १४ ॥ रक्त और मांसके अभिलाषी भूत राक्षस तथा पिशाचोंके नृत्य सहित, तथा पुष्पोंकी वृष्टि करनेके अर्थ विद्याधरोंकी अंगनाओंका हस्त जिसमें पूर्ण होरहा है ऐसे ॥ १५ ॥ युद्धके देखनेमें अति आदरयुक्त शस्त्रोंके गिरनेके रक्षार्थ पर्वतोंका तट ग्रहण किये हुये वेताल यक्ष, तथा कूष्माण्ड आदिसे पूर्ण ॥ १६ ॥

अस्त्रमार्गनभोभागविद्रवद्भूतमंडलम् ॥ आहोपुरुषिकालुब्धप्रेक्षकामोदनोद्भटम् ॥ १७ ॥ आसन्नभीमसंग्रामकिंवदंतीपरस्परम् ॥ लीलाहासविलासोत्कसुंदरीधृतचामरम् ॥ १८ ॥ धर्मप्रेक्ष्यप्रयुक्ताद्यमुनिस्वस्त्ययनस्तवम् ॥ संपन्नानेकलोकेशवनितावसरस्तवम् ॥ १९ ॥ स्वर्गार्हशूरानयनव्यग्रेंद्रभटभासुरं ॥ शूरार्थालंकृतोत्तुंगलोकपालाख्यवारणं ॥ २० ॥

अर्थ—अस्त्रोंका मार्गभूत जो समीपका आकाशदेश वहांपर भूतोंका मण्डल जिसमें इधर उधर दौड रहाहै, तथा मैं बडा पुरुषार्थी शूरवीरहुं, मैं बडा पुरुषार्थी शूरवीरहुं, इस अभिमानको त्वरा युक्त देखनेवालोंसे जहां वीरोंको आनन्द आरहाहै ॥ १७ ॥ यह बडा भयंकर युद्ध आके प्राप्त हुआ ऐसा परस्पर जहांपर मनुष्यलोग वार्तालाप कर रहे हैं, तथा लीला और हाँसविलासमें सुन्दरीगण जिसमें हस्तमें चमर धारण किये हुये भ्रमणकर रही हैं ॥ १८ ॥ धर्मकी अधिकताके कारण अन्य मनुष्योंके दर्शनके लियेभी दुर्लभ, तथा योगबलसे सबसे श्रेष्ठ मुनियों करके जहांपर स्वस्त्ययन मंगल पाठ और देवताओंकी स्तुति होरहीरही है, और अनेक गन्धर्व आदि लोकपालोंको जो उत्तम वनितायें हैं उनकी समयके योग्य स्तुति जहांपर होरही है अर्थात् अप्सरालोग अपने पूर्व प्रियोंको त्यागकर दूसरे नये प्रियोंके निकट न जाँय इसलिये वहांपर उनकी स्तुति करते हैं ॥ १९ ॥ स्वर्गके योग्य जो शूरवीर उनके लानेमें तत्पर इन्द्रके दूतोंसे प्रकाशमान, और शूरवीरोंको लेजानेको उच्च ऐरावत आदि हस्ती जहांपर उपस्थित हैं ॥ २० ॥

आगच्छच्छूरसन्मानोन्मुखगंधर्वचारणं ॥ शूरोन्मुखामरस्त्रैणकटाक्षेक्षितसद्भटं ॥ २१ ॥ वीरदोर्दंडकाश्लेषलंपटस्त्रीगणाकरं ॥ शुक्लेनशूरयशसाचंद्रीकृतदिवाकरं ॥ २२ ॥ श्रीरामउवाच ॥ भगवञ्छूरशब्देनकीदृशःप्रोच्यतेभटः ॥ स्वर्गालंकरणंकःस्यात्कोवाडिंभाहवोभवेत् ॥ २३ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ शास्त्रोक्ताचारयुक्तस्यप्रभोरर्थेनयोरणे ॥ मृतोवाथजयीवास्यात्सशूरःशूरलोकभाक् ॥ २४ ॥

अर्थ—आते हुये शूरवीरोंके सत्कारके लिये जहांपर सिद्ध, चारण और गन्धर्व आदि तत्परहैं, शूरोंकी ओर अभिमुख देवताओंकी अंगनाओंका समूह प्रेमयुक्त कटाक्षोंसे जहां बीरभटोंको देख रहाहै ॥ २१ ॥ शूरवीरोंकी भुजाओंसे लपटनेके अर्थ जहांपर स्त्रियोंका मन अभिलाषी होरहाहै, और स्वच्छ श्वेतवर्ण वीरोंके यशसे सूर्य्यभी जहां चन्द्रमाके समान होगयाहै ऐसा आकाश था (जिसको उन दोनोंने देखा) ॥ २२ ॥ श्रीरामजी बोले—हे भगवन्! कैसा भट शूर शब्दसे कहा जाताहै और स्वर्गका भूषण कौन होसकता है, और बाल्युद्ध किसको कहतेहैं ? ॥ २३ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी! शास्त्रोक्त आचारमें तत्पर स्वामीके लिये जो रणमें लडताहै चाहै वह मरजाय वा विजयी हो, उसीको शूर कहते हैं, और वही शूरोंके लोकोंका भागी होताहै ॥ २४ ॥

अन्यथाप्राणिकृत्तांगोरणेयोमृतिमाप्नुयात् ॥ डिंभाहवहतःप्रोक्तःसनरोनरकास्पदं ॥ २५ ॥ अयथाशास्त्रसंचारवृत्तेरर्थेनयुध्यते ॥ योनरस्तस्यसंग्रामेमृतस्यनिरयोक्षयः ॥ २६ ॥ यथासंभवशास्त्रार्थलोका

चारानुवृत्तिमान् ॥ युध्यतेतादृशश्चैवभक्तःशूरःसउच्यते ॥ २७ ॥ गोरर्थेब्राह्मणस्यार्थेमित्रस्यार्थेच सन्मते ॥ शरणागतयत्नेनसमृतःस्वर्गभूषणं ॥ २८ ॥

अर्थ—इसके विरुद्ध जो प्राणियोंके शरीरको काटे वा रणमें मरजाय वह बालयुद्धमें मृत कहाजाताहै और वह मनुष्य नरकका भागी होताहै ॥ २५ ॥ और जिस पुरुषका आचार शास्त्रके विरुद्धहै उसके अर्थ जो संग्राममें युद्ध करताहै वह मरनेपर नरकमें अवश्य जाताहै ॥ २६ ॥ जो पुरुष यथासम्भव शास्त्र तथा लोकके आचारमें तत्पर है, और शास्त्रके अनुसारही युद्ध करताहै वही स्वामिभक्त तथा शूर कहाताहै ॥ २७ ॥ गौके अर्थ, ब्राह्मणके अर्थ, मित्रके अर्थ, सज्जनोंके अर्थ तथा शरणागतके लिये जो युद्धकरके मरताहै वह नर स्वर्गका आभूषण होताहै ॥ २८ ॥

परिपाल्यस्वदेशैकपालनेयःस्थितःसदा ॥ राजामृतास्तदर्थंयेतेवीरावीरलोकिनः ॥ २९ ॥ प्रजोपद्रव निष्ठस्यराज्ञोऽराज्ञोथवाप्रभोः ॥ अर्थेनयेमृतायुद्धेतेवैनिरयगामिनः ॥ ३० ॥ येहिराज्ञामराज्ञांवाप्यय थाशास्त्रकारिणां ॥ रणेम्रियंतेछिन्नांगास्तेवैनिरयगामिनः ॥ ३१ ॥ धर्म्यंयथातथायुद्धंयदिस्यात्तर्हिसं स्थितिः ॥ नाशयेयुरलंमत्ताःपरलोकभयोज्झिताः ॥ ३२ ॥

अर्थ—अवश्य पालन करनेके योग्य जो अपना देशहै उसके पालन करनेमें जो सदा तत्पर राजाहै उसके लिये जो वीर मरतेहैं वेही वीरलोकगामी होतेहैं ॥ २९ ॥ जो प्रजाके उपद्रवमें सदा लगाहै ऐसा स्वामी चाहै राजा हो वा अन्यहो उसके लिये जो लडके मरतेहैं वे अवश्य नरकगामी होतेहैं ॥ ३० ॥ जो शास्त्रके अनुसार नहीं चलते ऐसे स्वामी चाहे राजाहों वा और कोई हों उनके अर्थ जिनके शरीर रणमें काटे वे नरकगामी होतेहैं ॥ ३१ ॥ धर्मपूर्वक जो युद्ध किया जाताहै तभी स्वर्गलोकमें स्थिति होतीहै, यदि ऐसा न होतो परलोकके भयसे रहित दुष्ट मनुष्य दूसरोंका नाश करदे ॥ ३२

यत्रयत्रहतःशूरःस्वर्गइत्यवशोक्तयः ॥ धर्मेयोद्धाभवेच्छूरइत्येवंशास्त्रनिश्चयः ॥ ३३ ॥ सदाचारवता मर्थेखड्गधारांसहंतिये ॥ तेशूराइतिकथ्यंतेशेषाडिंभाहवाहताः ॥ ३४ ॥ तेषामर्थेरणेव्योम्निविष्ठंत्यु त्कंठिताशयाः ॥ शूरीभूतमहासत्वदयितोक्तिसुरांगनाः ॥ ३५ ॥ विद्याधरीमधुरमंथरगीतिगर्भमंदा रमाल्यवलनाकुलकामिनीकं ॥ विश्रांतकांतसुरसिद्धविमानपंक्तिव्योमोत्सवोच्चरितशोभमिवोल्ललास ॥ ३६

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने युद्धप्रेक्षिकास्थितांबरवर्णनं नाम एकत्रिंशत्तमःसर्गः ॥ ३१ ॥

अर्थ—जहां २ शूरवीर युद्धमें मारा जाताहै वह अवश्य स्वर्गमें जाताहै यह जो बार २ कहा जाताहै उसका अभिप्राय यह है कि योद्धा धर्मपूर्वक लडनेवाला हो यही शास्त्रका निश्चय है ॥ ३३ ॥ जो सदाचारमें निष्ठ स्वामियोंके अर्थ तलवारकी धारको सहन करतेहैं वेही शूरवीर कहलातेहैं शेष (बाकी) बालयुद्ध वा कपटयुद्धमें मृतक कहलातेहैं ॥ ३४ ॥ जो ऐसे धार्मिक वीर युद्धमें लडतेहैं उन्हीं शूरभूत महान जीवोंको अपना प्रिय कहतीहुई देवांगना स्वर्गमें वही अभिलाषाके साथ उनके अर्थ सदा स्थित रहतीहै ॥ ३५ ॥ विद्याधरियोंके मनोहर गीतसे पूर्ण, शूरवीरोंके गलेमें पहिनानेके अर्थ अथवा अपने केशपाशोंमें गूंथनेके अर्थ मन्दार पुष्पोंकी मालाओंको लिये ललनागणोंसे व्याप्त, रमणीय सुरसिद्धोंकी श्रेणी जहांपर विश्रामकर रहीहै, और उत्सवके अर्थ ऊर्ध्वदेशमें जिसकी शोभा प्राप्त हुई है ऐसा वह आकाश (जिसमें युद्ध होरहाहै) शोभित हुआ ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे युद्धप्रेक्षिकस्थिताम्बरवर्णनं नाम एकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥

संकल्पके विमान परस्थित युद्धकी इच्छा सहित तैय्यार दूसरे सैन्यका सरस्वती और लीलाका देखना इस ३२वे सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथवीरवरोत्कंठनृत्यद्दर्पसरसिस्थिता ॥ लीलावलोकयामासव्योम्निविद्यान्विता वनी ॥ १ ॥ स्वराष्ट्रमंडलेभर्तृपालितेबलमालिते ॥ कस्मिंश्चिद्विततारण्येद्वितीयाकाशभीषणे ॥ २ ॥ सेना द्वितयमाक्षुब्धंसौम्याब्धिद्वितयोपमम् ॥ महारंभघनंमत्तंस्थितंराजद्वयान्वितम् ॥ ३ ॥ युद्धसज्जंसुस न्नद्धमिद्धमग्निमिवाहुतम् ॥ पूर्वप्रहारसंपातप्रेक्षाक्षुब्धाक्षिलक्षितं ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! इसके अनन्तर सरस्वती सहित जहांपर शूरवीरोंके बरनेके अर्थ अप्सरागण नृत्य कर रहे हैं ऐसे आकाशमें स्थित लीलाने पृथिवीपर ॥ १ ॥ चतुरंगिणी सेनासे घिरा हुये अपने पतिसे पालित अपने राज्यमण्डलमें सिंह, वृश्चिक, राक्षस पिशाचि आदिका आधार होनेसे द्वितीय आकाशके समान भयंकर किसी विस्तारयुक्त बनमें संचलित समुद्रके समान दूसरे सैन्यको देखा ॥ २ ॥ वह सैन्य (जिसको दोनोंने देखा) महान् कार्य्योंके आरम्भसे अति सघन, दोनों राजाओंसे युक्त मत्तके समान स्थित ॥ ३ ॥ युद्ध करनेको सर्वथा सन्नद्ध, (तैय्यार) अग्निके समान अद्भुत देदीप्यमान, पूर्वकालका अस्त्रोंके प्रहार देखनेके अर्थ चंचलनेत्रोंसे लक्षित ॥ ४ ॥

उद्यतामलनिस्त्रिंशधारासारवहज्जनं ॥ कचत्परस्वधप्रासभिंदिपालर्ष्टिमुद्गरं ॥ ५ ॥ गरुत्मत्पक्षविक्षुब्धवनसंपातकंपितं ॥ उद्यद्दिनकरालोकचंचत्कनककंकटम् ॥ ६ ॥ परस्परमुखालोककोपप्रोद्दामिताऽऽयुधम् ॥ अन्योन्यबद्धदृष्टित्वाच्चित्रंभित्ताविवार्पितम् ॥ ७ ॥ लेखामर्यादयादीर्घबद्धयास्थापितस्थिति ॥ अनिवार्यमहासैन्यझांकाराश्रुतसंकथम् ॥ ८ ॥

अर्थ—तीक्ष्ण खड्गकी धारारूप जलधाराको धारण करनेवाले मनुष्यों करके सहित परशु तोप, बर्छी तथा गदा मुद्गर आदिकी शोभासे युक्त ॥ ५ ॥ गरुडजीके पक्षसे संचलित बनके सम्पातके समान कम्पित, उदयकालके सूर्य्यकी किरणके समान कवचोंके प्रकाशसे शोभित ॥ ६ ॥ एक दूसरेका मुख देखके कोपसे अस्त्र शस्त्रोंको उद्यत (तैय्यार) करनेवाले मनुष्यों करके सहित परस्पर (एक दूसरेसे लडनेवालेकी ओर) दृष्टि बांधनेसे भित्तिमें लिखित चित्रके समान अर्पित ॥ ७ ॥ सर्पादिके निवारणार्थं मर्य्यादारूप दीर्घ रेखासे अपनी स्थितिको सीमाके भीतर स्थापित रखनेवाले, निवारण करनेमें असमर्थ महा सेनाके झांकार शब्दसे जहांपर एक दूसरेकी वार्ताको नहीं श्रवण कर सकते ऐसे ॥ ८ ॥

पूर्वप्रहारस्मयतश्चिरंसंशांतदुंदुभि ॥ निबद्धयोधसंस्थाननिखिलानीकमंथरं ॥ ९ ॥ धनुर्द्वितयमात्रात्मशून्यमध्यैकसेतुना ॥ विभक्तंकल्पवातेनमत्तमेकार्णवंयथा ॥ १० ॥ कायेसंकटसंरंभचिंतापरवशेश्वरं ॥ विरटद्भेककंठत्वग्भंगुरातुरहृद्गुहं ॥ ११ ॥ प्राणसर्वस्वसंत्यागसोद्योगासंख्यसैनिकं ॥ कर्णाकृष्टशरौघौघत्यागोन्मुखधनुर्धरं ॥ १२ ॥

अर्थ—राजासे अज्ञात होके पूर्व प्रहार न हो इस कारणसे अधिक कालतक दुंदुभि बाजा जहांपर शान्त करदिया गयाहै ऐसे और श्रेणीबद्ध योद्धाही जिसके अंगहैं ऐसी सेना सेवकरूप ॥ ९ ॥ दो धनुष प्रमाण मनुष्योंसे शून्य मध्यभागरूप सेतु (पुल) से ऐसे विभाग किया हुआ जैसे कल्पके वायुसे संचलित समुद्र ॥ १० ॥ संकटके वेगसे दोनों राजा शरीरमें चिन्तासे वशीभूत जहांपर होरहे हैं, भयके मारे रटते हुये मण्डलोंके कण्ठके चर्मके समान भीरु पुरुषोंके हृदयरूपी गुहा जहांपर कंप रही है ॥ ११ ॥ प्राण तथा सर्वस्व त्यागनेके अर्थ जहांपर असंख्य योद्धागण उद्योग सहित उपस्थितहैं और धनुर्धारी लोग बाणोंको छोडनेके अर्थ कर्णातक धनुषोंको जहांपर खींच रहे हैं ॥ १२ ॥

प्रहारपातसंप्रेक्षानिष्पंदासंख्यसैनिकं ॥ अन्योन्योत्कंठकाठिन्यभरभ्रुकुटिसंकटं ॥ १३ ॥ परस्परसुसंघट्टकटुटंकारकंकटं ॥ वीरयोधमुखादग्धभीरुप्रेप्सितकोटरं ॥ १४ ॥ मिथःसंस्थानकालोकमात्रासंदिग्धजीवितं ॥ समस्तांगरुहासक्तप्रांशुश्रृद्धेभमानवं ॥ १५ ॥ पूर्वप्रहारसंप्रेक्षाव्यग्रप्राणतयातया ॥ संशांतकल्लोलरवंनिद्रामुद्रपुरोपमं ॥ १६ ॥

अर्थ—और प्रहारोंका पात देखनेके अर्थ असंख्य सैनिक चेष्टारहित होगये हैं, तथा युद्धकी अभिलाषासे परस्पर क्रोध करके भ्रुकुटि (भोंह) के चढानेसे देखनेमें भयंकर ॥ १३ ॥ और परस्परके अभिघात (सम्मर्दन) से कवचों सेकडे टंकार शब्द जहांपर होरहेहैं तथा वीरयोद्धाओंकी क्रोधयुक्त मुखरूपी अग्निसे जलके समान भीरुलोग जहांपर पर्वतोंकी कन्दराओंमें जानेके अभिलाषी होगये ॥ १४ ॥ और जहांपर परस्पर युद्धके दर्शन पर्य्यन्त सबका जीवन संशयग्रस्त होगयाहै भलीभांति रोमांच होनेके कारण ऊर्ध्व और तिरछी दिशाको हस्ती तथा मनुष्य वृद्धिको जहांपर प्राप्त होगये हैं ॥ १५ ॥ प्रथम कौन प्रहार करता है इसको देखनेके अर्थ चित्तव्यग्र होनेके कारण सम्पूर्ण कोलाहल जहां ऐसे शान्त होगया है जैसे निद्रामें प्राप्त कोई नगर ॥ १६ ॥

संशांतशंखसंघाततूर्यनिर्न्हादढुंदुभि ॥ भूतलाकाशसंलीनसर्वपांसुपयोधरम् ॥ १७ ॥ पलायनपरैःपश्चात्यक्तमंगुलमंडलम् ॥ विसारिमकरव्यूहमत्स्यसंख्याब्धिभासुरम् ॥ १८ ॥ पताकामंजरीपुंजविजिताकाशतारकं ॥ हस्तिकोत्तंभितकरकाननीकृतखांतरं ॥ १९ ॥ तरत्तरलभापूरसपक्षसकलायुधं ॥ घमन्नमितिशब्दैश्चश्वासोत्थैर्धर्मतखांतरं ॥ २० ॥

अर्थ—तथा सम्पूर्ण शंखोंके समूह तुरूही तथा नगारे आदिके शब्द जहांपर सर्वथा शान्त होगये हैं और जहांपर धूलि पृथिवीपर और मेघ आकाशमें लीन होगये हैं ॥ १७ ॥ और जहांपर भीरुजन लडनेवाले सेनाके आभूषणरूप शूरवीरोंके मण्डलोंको त्यागकर भागनेमें तत्पर होगये हैं, अतएव चारोंओर फैलेहुये मकर और मत्स्योंका युद्ध जहां होरहा है ऐसे संक्षोभित समुद्रके समान प्रकाशमान ॥ १८ ॥ पताकारूपी लताओंने जहांपर आकाशके तारागणोंकीभी शोभाको जीत लिया है तथा हाथिवानोंके ऊपर किये हाथोंसे जंगलके समान मानों दूसरा आकाश देश वनरहाहै ॥ १९ ॥ चलतेहुये प्रकाशके पुंजसे जहांपर अस्त्रशस्त्र मानों पक्ष सहितके समान प्रतीत होते हैं, तथा नगाडोंके धमाधम शब्दोंसे और शंख आदिके शब्दोंसे जहांपर आकाशका मध्यभाग पूर्ण होगयाहै ॥ २० ॥

चक्रव्यूहकराक्रांतदृत्तसुरभासुरं ॥ गरुडव्यूहसंरंभविद्रवन्नागसंचयं ॥ २१ ॥ श्येनव्यूहविभिन्नाग्रसन्निवेशोत्तमध्वनि ॥ अन्योन्यास्फोटनिःशेषप्रपतद्भूरिवृंदकं ॥ २२ ॥ विविधव्यूहविन्यासवांतवीरवरारवं ॥ करप्रतोलनोल्लासमत्तमुद्गरमंडलं ॥ २३ ॥ कृष्णायुधांशुजलदश्यामीकृतदिवाकरं ॥ अनिलाधूतपल्यूलसूत्कृताभशरध्वनि ॥ २४ ॥

अर्थ—कहीं परचक्रव्यूह (युद्धके लिये सेनाकी रचना विशेष) बनानेमें तत्पर पुरुषोंसे दैत्योंके ऊपर आक्रमण करने देवताओंके सदृश प्रकाशमान और कहीं गरुड व्यूहकी रचनासे इधर उधर नागोंका समूह दौडरहा है ॥ २१ ॥ कहीं श्येनव्यूहसे विभाग किये हुये दूसरे सैन्यके रचनामें जहांपर उत्तम ध्वनि होरही है कहीं परस्पर भुजाओंके संघर्षसे अनेक समूहके समूह गिररहे हैं ॥ २२ ॥ कहीं अनेकप्रकारकी व्यूह रचनासे अगाडी निकले हुये वीरोंका उत्तम शब्द होरहाहै, और कही हाथमें घुमानेके कारणसे मत्तके समान मुद्गरोंके समूह भ्रम रहे हैं ॥ २३ ॥ तथा कृष्णवर्ण अस्त्रशस्त्रोंके किरणोंसे उठे हुयेके समान मेघोंसे सूर्य्यभगवान् श्यामकर्ण कर दिये गये हैं कहीं सेनाके वेगसे उत्पन्न वायुसे कँपा हुये पल्यूल (नरकूट) आदि तृणोंसे सू २ शब्द होरहाहै ॥ २४ ॥

अनेककल्पकल्पाभ्रसवृंदमिवसंस्थितं ॥ प्रलयानिलसंक्षुब्धमेकार्णवमिवोत्थितं ॥ २५ ॥ सद्यश्छिन्नमहामेरोःपक्षद्वयमिवस्फुरत् ॥ क्षुब्धमारुतनिर्धूतमिवकज्जलपर्वतं ॥ २६ ॥ पातालकुहरात्क्षुब्धमंधकारमिवोत्थितं ॥ लोकालोकमिवोन्मत्तनृत्यलोलसत्तटं ॥ महानरकसंघातंभित्त्वावनिमिवोत्थितं॥२७ आलोलकुंतमुसलासिपरस्वधांशुश्यामायमानदिवसातपवारिपूरैः ॥ एकार्णवंभुवनकोशमिवाचिरेण कर्तुंसमुद्यतमगाधमनंतपूरैः ॥ २८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने आहवारंभणं नाम द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥

अर्थ—प्रलय करनेमें समर्थ ऐसे पुष्कर आवर्त आदि अनेक मेघोंके समूहके सदृश जिसके अग्रभागमें स्थितहैं और प्रलयकालके वायुसे संक्षोभित समुद्रके समान उत्थित ॥ २५ ॥ उसी कालमें कटे हुये महामेरुके दो पक्षके समान देदीप्यमान, तथा संचालित वायुसे कंपा हुये अंजन पर्वतके सदृश ॥ २६ ॥ और पातालके गर्तसे संक्षोभित अन्धकारके समान निकला हुआ, तथा उन्मत्त नृत्यसे चंचल और शोभायमानहैं तट जिसके ऐसे लोकालोक पर्वतके समान, और पृथिवीको भेदन करके महानरकके समूहके समान आविर्भूत ॥ २७ ॥ तथा चंचल बर्च्छी, मुशल, तलवार, और परशुके किरणोंसे श्यामके सदृश करनेवाले मेघोंसे अनेक भुवनोंको मानों अनन्त प्रवाहोंसे अगाध समुद्रके समान करनेको उद्यत ऐसे दो सैन्य (सेना) को देखा ॥ २८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने भाषाऽनुवादे आहवारंभवर्णनं नामद्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशःसर्गः ॥ ३३ ॥

इसके अनन्तर संकल्पके विमानमें बैठकर सरस्वती और लीलाने जो प्रवृत्त हुये युद्धको देखाहै उसका वर्णन इस ३३ वें सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ भगवन्युद्धमेतन्मेसमासेनमनाग्वद ॥ श्रुतिरालह्लाद्यतेश्रोतुर्यस्मादेताभिरुक्तिभिः ॥१॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथतत्रैवतेदेव्यौसंग्रामंतमवेक्षितुं ॥ विमानेकल्पितेकांतेरुह्रेरुरुह्तुःस्थिरे

॥ २ ॥ एतस्मिन्नंतरेतत्रलीलेशःप्रतिपक्षतः ॥ तमुत्सोढुमशक्तःसन्मुखव्यतिकरेरणे ॥ ३ ॥ प्रलयार्णवकल्लोलइवोत्पत्त्योद्भयेभटे ॥ जहौसानाविवशिलांभटस्योरसिमुद्गरम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-हे भगवन् ! इस युद्धको मुझे कुछ संक्षेपसे वर्णन कीजिये क्योंकि आपके इस कथनसे कर्णको सुख होताहै ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! इसके अनन्तर वे दोनों उस संग्रामको देखनेके लिये कल्पित स्थिर विमानपर चढके बैठीं ॥ २ ॥ इसके अनन्तर जब दोनों सेनाओंका मुख मिलगया तो शत्रुकी सेनासे समुद्रके तरंगके सदृश एक वीर निकलके इधर जो निर्भय वीरथा उसके ऊपर प्रहार करनेको उद्यत हुआ, इसी अवसरमे लीलाका स्वामी उसको न सहता हुआ उसकी छातीमें एक मुद्गर ऐसा मारा जैसे पर्वतके शिखरकी शिला ॥३॥४॥

अथप्रवृत्तःप्रसभंप्रलयार्णवरंहसा ॥ सेनयोःशस्त्रसंपातःकिरन्ननलविद्युतः ॥ ५ ॥ तरत्तरलधाराग्ररेखांकितनभस्तलः ॥ ध्वनत्कणकणाशब्दमध्यलक्षितटांकृतिः ॥ ६ ॥ धीरहुंकारमिश्रोष्मग्रघरारवघस्मरः ॥ प्रवृत्तशरधाराग्रभास्करार्चिर्वितानकः ॥ ७ ॥ नदत्कंकटटंकारप्रोड्डीनकणपावकः ॥ परस्परहतिच्छिन्नहेतिखंडखगांबरः ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! इसराजाके अस्त्रचलानेके अनन्तरही अति त्वरासे अग्नि और विद्युत्की वृष्टिके समान प्रलयकालके समुद्रके वेगके सदृश शस्त्र अस्त्रकी वर्षा होनेलगी ॥ ५ ॥ चलते हुये चंचल शस्त्रोंकी धाराओंके अग्रभागकी रेखासे जिसमें आकाश मण्डल चिन्हित होगयाहै, तथा जिसके मध्यमें कणकणा शब्द और टंकार शब्द लक्षित होतेथे ऐसा ॥ ६ ॥ तथा धीरवीरोंके मिश्रित हुंकार शब्द जो वर्षाकालके मेघके शब्दकोभी जो तिरस्कार कररहाथा और शरधाराओंमें प्रतिबिम्बित सूर्य्यकी किरण जिसमें चांदनीका कार्य्य देरहीं हैं ॥ ७ ॥ शर और खड्ग आदिके प्रहारोंके बजते कवचों (बक्तरों) से अग्निके कण जिसमें निकल रहेहैं तथा परस्परके प्रहारसे खड्ग आदिके खण्ड (टुकडे) रूपी पक्षी जहांपर आकाशमें उड रहेहैं ॥ ८ ॥

वीरदोर्द्रुमसंचारवहद्वननभस्थलः ॥ कोदंडचक्रकेंकारद्रवद्वैमानिकांगनः ॥ ९ ॥ महाहलहलारावभृंगीकृतघनध्वनिः ॥ निर्विकल्पसमाधिस्थइवैकघनतावशात् ॥ १० ॥ नाराचासारधाराग्रलूनशूरशिरस्करः ॥ परस्परांससंघट्टरणत्कंकटसंकटः ॥ ११ ॥ हुंकारहतहेत्युग्रसंघट्टकटुटांकृतः ॥ तरद्धारातरंगाभ्रदंतुराशेषदिङ्मुखः ॥ १२ ॥

अर्थ—तथा वीरोंकी भुजाओंके संचारसे आकाशमण्डलमें जहांपर बनकेबन उड रहेहैं; और जहांपर धनुषके टंकार शब्दसे विमानोंमें स्थित देवांगना लोग इधर उधर भ्रमण कररहीहैं ॥ ९ ॥ और जहांपर महाकोलाहल शब्दोंसे मेघोंके शब्द भृंगोंके शब्दके समान होके उन्हीं शब्दोंमें मिलजानेके कारण ऐसे नहीं सुन पडते जैसे निर्विकल्प समाधिमें स्थित पुरुष ईश्वरके साथ एकता होनेसे बाहरके शब्दोंका नहीं सुनता ॥ १० ॥ तथा बाणोंकी वृष्टिकी धारामें शूरवीरोंके मस्तक तथा हस्त जहांपर कटे हुये पडे हैं, और जहांपर परस्परके अंगोंके संमर्दनके कवचोंके शब्दका संकट होरहाहै ॥ ११ ॥ हे रामजी ! जहांपर हुंकार शब्दोंके साथ अस्त्रशस्त्रोंके प्रहारसे कर्णोंके दुःखदायी टंकार शब्द निकल रहेहैं, और जहांपर खड्गोंकी धाराके तरंगरूपी मेघोंसे दिशाओंके मुख उन्नत दशाको प्राप्त होगयेहैं ॥ १२ ॥

हेतिसंघट्टविक्षोभमुष्टिग्राह्यझणज्झणः ॥ चिरमास्फोटकास्फोटलुठच्चटचटारवः ॥ १३ ॥ प्रवहत्खड्गसीत्कारज्वलत्कणसणध्वनिः ॥ सरच्छरभराध्वांतशरत्खरखरारवः ॥ १४ ॥ धगद्धगितिविच्छिन्नकंठोत्थप्राणलोहितः ॥ छिन्नबाहुशिरःखड्गखंडनिर्विवरांबरः ॥ १५ ॥ कंकटोत्थस्फुरद्वह्निसटास्पृष्टशिरोरुहः ॥ रणत्पतदसिव्रातमत्तपीनझणज्झणः ॥ १६ ॥

अर्थ—खड्गके प्रहारसे शत्रुकी सेनामें जो विक्षोभ उत्पन्न हुआ उससे शिर ग्रहण करनेके फैला हुये हस्तसे झणझणा शब्दही जहांपर मुष्टि ग्राह्यके (मुठीसे पकडनेके माफक) हो रहाहै ॥ १३ ॥ और शीघ्रतासे म्यानसे तलवार निकालनेमें सीत्कार शब्दके साथ सनसनाहट शब्द जहांपर हो रहाहै, और जहांपर चलते हुये बाणोंके समूहोंके मार्ग अन्तमें अर्थात् लक्ष्य देशमें शरशराहटके साथ खरखरशब्द होरहाहै ॥ १४ ॥ तथा कटे हुये कण्ठसे धक् धक् शब्दके साथ प्राण और रुधिर जहांपर निकल रहे हैं, तथा कटे हुये हस्त और मस्तकसे तथा खड्ग आदिके टुकडेसे जहांपर आकाश पूर्ण होगया है ॥ १५ ॥ कवचोंसे निकले हुये अग्निकी जटा सदृश देदीप्यमान ज्वालाओंने जहांपर केशतक ग्रहण करलियाहै, तथा झनझनाहट शब्दके साथ चलती हुई तलवारोंके समूहसे शूरवीरोंके शरीर युद्धके उत्साहसे स्थूलताको जहांपर प्राप्त होगये हैं ॥ १६ ॥

कुंतकुंठितमातंगतरंगोत्तुंगलोहितः ॥ दंतिदंतविनिष्पेषतारचीत्कारकर्कशः ॥ १७ ॥ महामुसलसंपातपिष्टकष्टोद्धुरस्वरः ॥ तरच्छूरशिरःपद्मप्रकाराच्छादितांबरः ॥ १८ ॥ व्योमन्यस्तभुजाहींद्रःपूर्णधूलिमयांबुदः ॥ छिन्नहेतिनरारब्धकेशाकेशिप्रतिक्रियः ॥ १९ ॥ नखानखिनिकृत्ताक्षिकर्णनासौष्ठकंधरः ॥ छिन्नायुधमहामल्लहेलोल्लालनलब्धभूः ॥ २० ॥

अर्थ—और जहां कुन्त (बर्च्छी आदि) शस्त्रोंसे वेधित हाथियोंके शरीरसे रुधिरकी बडी तरंगें बहरही हैं, और हाथियोंके दांतोंसे पिसे हुये प्राणिके ऊंचे चीत्कार (चिल्लाहट) शब्दसे जो स्थान भयंकर होरहाहै ॥ १७ ॥ तथा जिसमें महा मुशलोंके प्रहारसे अनेक मनुष्य पिसके चूर होगये, और कितनोंके कष्टसे स्वर (शब्द) निकलता है, और जहांपर उडते हुये वीरोंके शिररूपी कमलोंके समूहसे आकाश पूर्ण होगयाहै ॥ १८ ॥ तथा वीरोंकी भुजारूपी सर्प आकाशमें उड रहे हैं और धूलीमय मेघ जहां शोभित हैं तथा जिन वीरोंके अस्त्र शस्त्र टूटगये हैं वे परस्पर एक दूसरेके केशोंके पकड २ के युद्धमें प्रवृत्त होरहे हैं ॥ १९ ॥ तथा परस्पर (एक दूसरेका) नखोंसे आख निकालते हैं और कान, नाक, ओष्ठ तथा कन्धेकोभी काट रहे हैं, तथा जिन शूरवीरोंका अस्त्र शस्त्र (हंथियार) टूटगयाहै वे लोग बाहुयुद्ध करके महा मल्लोंकाभी तिरस्कारके जहांपर जयभूमि प्राप्त कियाहै ॥ २० ॥

पतत्समदमातंगकंपितोर्वीलुठद्रयः ॥ रणद्रथरयोत्पन्नक्षरद्रक्तसरित्पथः ॥ २१ ॥ रजोरचितनीहारःकचत्प्रवहदायुधः ॥ एकीकृतघनक्षोभसैन्यसागरगर्जितः ॥ २२ ॥ मत्तहासविलासेनमृत्युनापरिचर्वितः ॥ गर्वितार्द्रींद्रनागेंद्रखर्वितांभोदगर्जितः ॥ २३ ॥ वृक्षश्वभ्रतटीच्छन्नचक्रशक्त्यृष्टिमुद्गरः ॥ शरोर्णातंतुनीरंध्रघृष्टियोधाद्रिमेखलः ॥ २४ ॥

अर्थ—और मदोन्मत्त हांथियोंसे कंपाये हुये पृथिवीपर गिरके लोटनेवालोंका प्रवाह जहांपर चलरहा है, तथा जहांपर शब्द करते हुये रथोंके वेगसे रुधिरकी नदियोंके मार्ग बन गये हैं ॥ २१ ॥ और जहांपर धूलियोंका नीहार (कुहिरा) बनगया है, और जहांपर जाज्वल्यमान अस्त्रशस्त्र (हंथियार) चलरहे हैं तथा सम्पूर्ण संक्षुब्ध शब्द मिलकर ऐसा शब्द जहांपर होरहा है मानों समुद्रकी गर्जना ॥ २२ ॥ और मत्तोंके समान हांसविलास करनेवाले मृत्युने जहां अनेक मनुष्योंके प्राण भक्षण करलिये हैं और जहांपर श्रेष्ठ हांथियोंने अपनी उचाई तथा गर्जनासे मेघोंकी उचाई तथा गर्जनाको तिरस्कार करदिया है ॥ २३ ॥ तथा प्राणियोंके बधार्थ फेके हुये शर चक्र शक्ति ऋष्टि और मुद्गर आदि वृक्ष, गर्त और पर्वतोंसे अडजातेहैं और जहां शररूपी मकरियोंने छिद्ररहित पर्वतोंकी मेखला बनालियाहै॥२४॥

मेघविश्रांतविच्छिन्नपताकापटचामरः ॥ यंत्रपाषाणचक्रौघदूरविद्रुतखेचरः ॥ २५ ॥ मरणव्यग्रकृत्तांगयोधाक्रंदातिघर्घरः ॥ कुठाराघातसंघातविदलन्मस्तकव्रजः ॥ २६ ॥ दूरोड्डीनकचत्खड्गखंडतारकितांबरः ॥ शक्तिनिर्मुक्तशक्त्यौघविभिन्नेभावृतावनिः ॥ २७ ॥ सैन्यव्याकुलवेताललललनोन्मुक्तमुद्गरः ॥ गगनोत्तंभितोत्तुंगशूरतोमरतोरणः ॥ २८ ॥

अर्थ—तथा मेघोंमें विश्राम करनेवाले विद्युत (बिजुली) आदिने जहांपर पताका आदिके वस्त्र और चमर आदिको छिन्नभिन्न करदिया है, तथा यंत्रसे फेके हुये पाषाण और चक्रोंके समूहोंने आकाशगामी पक्षी आदिको दूर भगादिया है ॥ २५ ॥ तथा अंग जिनके कटगये हैं ऐसे मरणमें व्यग्र योद्धाओंकी विलापसे घर्घर शब्द जहां होरहाहै, और कुठारोंके प्रहारोंसे जहांपर मस्तकोंके समूह गिररहे हैं ॥ २६ ॥ और दूर उडे हुये खड्ग (तलवारों) के टुकडोंसे आकाश जहांपर तारागणोंसे अंकितके समान होगया है तथा बलपूर्वक शक्ति आदि शस्त्रोंके छोडनेसे छिन्न-भिन्न हस्तियोंसे जहांपर पृथिवी आच्छादित होगई है ॥ २७ ॥ सैन्यसे व्याकुल वेतालकी ललना जहांपर मुद्गरको छोडरहीं हैं, तथा जहां आकाश देशमें शूरवीरोंके ऊंचे स्थित तोमरही तोरणकी मालाके समान शोभित होरही हैं ॥२८॥

भुशुंडीभग्नखड्गौघखंडालीव्योमकुंतलः ॥ कुंतवेणुवनन्यस्ततापांबरकचच्छविः २९ ॥ खड्गादिवृष्टिसंपुष्टराजपूजितसैनिकः ॥ शूलोत्तंभितसच्छूरग्रहणोद्यमिताप्सराः ॥ ३० ॥ गदानुपारविगलत्स्फुरितांगरदिङ्मुखः ॥ प्रासप्रसभसंपिष्टकष्टचेष्टतयोत्कटः ॥ ३१ ॥ चक्रक्रकचसंचारच्छिन्नाश्वनरवारणः॥ परशुव्रातसंपातपतत्समदवारणः ॥ ३२ ॥

अर्थ—टूटेहुये बन्दूक और तलवारोंके खण्ड (टुकडे) जहांपर आकाशके केशरूप होरहेहैं और कुन्त (बर्च्छी) के समूहरूपी वालोंके वनमें दावाग्निके सदृश जहांपर कुन्तोंकी छवि होरहीहै ॥ २९ ॥ खड्ग आदिकी वृष्टिसे सन्तुष्ट राजाओं (स्वामियों) ने जहांपर लडनेवाले योद्धाओंका दान मान आदिद्वारा संस्कार कियाहै, तथा त्रिशूलोंसे छिदे-

हुये उत्तम शूरवीरोंको ग्रहण करनेके अर्थ अप्सरा लोक जहांपर उद्यम कररहेहैं ॥ ३० ॥ और गदारूपी तुषारोंसे जहां शूरवीरोंके शिर गल२ के गिररहेहैं और कुन्तके प्रहारसों जो घायल मनुष्योंकी कष्टदायक चेष्टा होरहीहैं उससे अति भयंकर ॥ ३१ ॥ और चक्र आदिके प्रहारसे हांथि, घोडे और मनुष्य जहां छिन्नभिन्न होरहेहैं, तथा परशु (फरसों) ओंके समूहके प्रहारसे मदोन्मत्त हांथीभी जहां गिररहेहैं ॥ ३२ ॥

लकुटोल्लोडनोड्डीनप्रोड्डामरवटद्भटः ॥ यंत्रपाषाणसंपातपिष्टकेतुरथद्रुमः ॥ ३३ ॥ करवालविलूनाग्रच्छत्रपंकजपांडुरः ॥ क्षेपणक्षोभसंक्षोणसैन्यक्षोभोप्यलक्षणः ॥३४॥ कबंधबंधसत्रेनृपातसंपिष्टपार्श्वगः ॥ सांकुशांकितसंस्त्यस्थवीरवारितवारणः ॥ ३५॥ परशुव्रातसंपातपतत्समदवारणः ॥ पाशापाशिविशेषज्ञवीरार्तिपरिदेवनः ॥ ३६ ॥

अर्थ—और बडी २ लाठियोंकी चोटसे ढाल आदिसे अपनेको बचातेहुये वडे २ वीर भटभी जहांपर उछल२ कर भाग रहेहैं और यंत्र (कल) से फेंके हुये पाषाणोंके गिरनेसे जहांपर पताका, रथ और वृक्षआदिभी पिसगयेहैं॥३३॥ तथा तलवारोंसे कट गयेहैं अग्रभाग जिनके ऐसे छत्र और शिरके कमलोंसे पाण्डुवर्ण और शूरवीर लोग जहांपर सेनाके भयको किंचित्‌भी ध्यान न करके अस्त्रशस्त्र आदि फेंक रहेहैं ॥ ३४ ॥ रथोंपरसे जीतेहुये मनुष्योंको उछलके पकडनेवाले वीरोंके बीचमेंही मस्तक कटनेसे कबन्ध (शिररहित शरीर) वाले मनुष्योंके बाधनेसे रथके स्वामियोंके गिर जानेसे रथोंके मार्ग छोडके चलनेसे समीपके मनुष्य जहांपर पिलगयेहैं और अंकुश सहित पीलवानेके अंकुशसे घायलभी शूरवीरोंने प्रहारोंसे हाथियोंकोभी जहांपर हटादियाहै ॥ ३५ ॥ और परशुओंके समूहोंसे जहांपर अनेक मदगलित हाथी गिरे पडेहैं और द्यूतविद्याके विशेष जाननेवाले वीरोंका जहांपर प्राणोंका द्यूत (जुआ) अधिक है ॥ ३६ ॥

क्षुरिकाकुक्षिनिर्भेदगलत्पद्मपतज्जनः ॥ त्रिशूलवलनोन्मत्तशूरसंकरनर्ततः ॥ ३७॥ धावद्धानुष्कसंपूर्णकुलकूजितकाकलिः ॥ भिंदिपालसटाटोपहुंकाररारभटीनटः ॥ ३८ ॥ वज्रमुष्टिविनिष्पिष्टपिष्टसद्भटसंकटः ॥ श्येनवव्योमपदवींप्रोत्पतत्पट्टपट्टिशः ॥ ३९ ॥ अंकुशाकृष्टशूरेशरथेभहयकेतनः ॥ हलाहलिहताल्लनहेलाकुलकुलाचलः ॥ ४० ॥

अर्थ—तथा छूरियोंसे पेटके फाडनेसे वीरोंके हृदय कमल जहांपर कटके गिररहे हैं, तथा अनेक शूरवीर जहां त्रिशूल चलाते हुये उन्मत्तके सदृश नृत्य कररहे हैं ॥ ३७ ॥ तथा दौडते हुये धनुषधारी मनुष्योंकी जहांपर मधुर ध्वनि होरही है औ भिन्दिपाल नामक अस्त्रधारी वीरोंके केशोंको फटकारसे तथा अहंकार सहित नाद (गर्जना) से जहांपर भटलोग मानों नृसिंह वेषधारी नटके समान होरहे हैं ॥ ३८ ॥ और बीरोंकी वज्रके समान मुष्टि (मूकों) योंके प्रहारसे पिसे हुये उत्तम वीरोंसे पूर्ण तथा श्येन (बाज) नामक पक्षीके समान आकाशमें उडके बीरोंका पट्टिशनामक अस्त्र (हथियार) जहांपर कार्य्य कररहाहै ॥ ३८ ॥ बडे २ शूरवीरोंके स्वामी, रथ, हांथी, घोडे और पताकायें जहांपर अंकुशोंसे खींचली गई हैं, तथा परस्पर हलोंके प्रहारसे कटे हुये वीरोंका तिरस्कार करके शत्रुओंमें पर्वतके समान निश्चल वीर जहां विराजमान हैं ॥ ४० ॥

सुतालोत्तालकुद्दालनिखातवनभूतलः ॥ धनुर्द्विगुणमात्रास्तलूनलोकशिलावनिः ॥ ४१ ॥ क्रकचोभयपार्श्वभच्छिन्नमत्तमतंगजः ॥ संग्रामोलूखलक्षुण्णलोकतंडुलमौसली ॥ ४२ ॥ अस्त्राभाशृंखलाजालबद्धसेनाविहंगमः ॥ लोलासिवीरनिस्त्रिंशनीतवादिगृहांगणः ॥ ४३ ॥ गणशोनीयमानाग्र्यश्वापदाराव निर्भरः ॥ नखांगुष्ठखनत्पुंखमेखारणरणारवैः ॥ ४४ ॥

अर्थ—तालके समान ऊंचे पुरुषोंने जहांपर उत्तम कुदालोंसे वनकी पृथिवी खोद डाली है, तथा दो धनुषकी दूरीपर जहां शूरवीरोंने मनुष्योंको तथा पाषाणकी शिलाओंको फेंकदियाहै ॥ ४१ ॥ तथा क्रकचके समान दोनों ओरके प्राणी जहां मत्त मतंगजके मर्दनसे छिन्नभिन्न होरहे हैं, तथा उस संग्रामभूमिरूपी उलूखल (ओखली) में मनुष्यरूपी धान (तण्डुल आदि) मुसलमय युद्धसे कुचले जाते हैं ॥ ४२ ॥ और हे रामजी ! जहांपर अस्त्रोंकी प्रभारूप जालमें अनेक योद्धारूप पक्षी बद्धहैं, और चंचल तलवार धारण करनेवाले बीरोंके विलक्षण खड्गसे जहांपर मनुष्यरूपी पक्षी मारके यमरूपी व्याधके आंगनमें प्राप्त किये जाते हैं ॥ ४३ ॥ तथा हे रामजी ! युद्धमें गिर हुये वडे २ श्रेष्ठवीरोंको ले जानेवाले व्याघ्रवृक आदि जीव अपने वडे नखवाले अंगूठोंसे जो बीरोंके शरीरसे पंख सहित बाणोंको निकाल रहे हैं उनके शब्दसे पूर्ण ॥ ४४ ॥

मरिचैर्व्यंजनानीवरंजयन्सकलारवान् ॥ सैन्यनिक्षिप्तकुंभाग्निभृतयोधेरितायुधः ॥ ४५ ॥ सैन्यनिक्षिप्तकुंभाग्निदग्धयोधोज्झितायुधः ॥ सैन्यनिक्षिप्तकुंभस्थतप्तांगारहतेक्षणः ॥ सैन्यनिक्षिप्तकुंभस्थविषवारिदलज्जनः ॥ ४६ ॥ नाराचवर्षवरवारिदवीरपूरमत्ताभ्रसंभ्रमसनृत्तकबंधबर्हीं ॥ कल्पांतकालइवचवेगविवर्त्तमानमातंगशैलवलितोरणसंभ्रमोभूत् ॥ ४७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने सेनयोःप्रथमपातवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशत्तमःसर्गः ॥ ३३ ॥

अर्थ—तथा सेनामें फेके हुये कुम्भाग्नि (घडेमें भरके भूसीकी आग) से भरे हुये वीरोंका शब्द सम्पूर्ण शब्दोंमें मिलकर वीरोंको ऐसा रुचिकारक हुआ जैसे मिरचोंसे व्यंजन (भोजनके पदार्थ) ॥ ४५ ॥ तथा हे रामजी ! सेनामें फेके हुये कुम्भाग्निसे दग्धवीरोंने जहांपर अपने अस्त्रशस्त्र फेक दिये हैं, और कुम्भकी अग्निसेही वीरोंके नेत्र फूट गये हैं, और घडेमें फेके हुये विषके जलसे जहांपर अनेक मनुष्य मर रहे हैं ॥ ४६ ॥ और हे रामजी ! बाणोंकी वृष्टिरूपी उत्तम जल देनेवाले वीरोंके समूहरूपी मत्त मेघोंके विलाससे कवन्ध (शिररहित शरीर) रूपी मोर जहांपर नाँच रहे हैं, और प्रलयके अन्तमें वायुके वेगसे भ्रमण करनेवाले मतंग (हस्ती) रूपी पर्वतोंसे वेष्टित यह रणका संभ्रम (वेग) हुआ ॥ ४७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे सेनयोः प्रथमपातवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥

युद्धके देखनेवालोंकेही मुखोंसे विचित्र अर्थोंसहित युद्धका चमत्कार विशेष करके इस ३४वे सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथराज्ञांयुयुत्सूनांभटानांमंत्रिणामपि ॥ नभसःप्रेक्षकाणांचतत्रेमाःप्रोदगुर्गिरः चलत्पद्मसरइववहद्विहगमेवच ॥ नभःशूरशिरःकीर्णभातितारकिताकृति ॥ २ ॥ पश्यरक्तपृषत्पूरसिंदूरारुणमारुतैः ॥ सांध्याइवविभांत्येतेमध्याह्नेंबुदमानवः ॥ ३ ॥ किमिदंभगवन्व्योमपलालभरितंस्थितम् ॥ नेदंपलालंवीराणामेतेशरभरांबुदाः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! इसके अनन्तर राजाओंके युद्धके अभिलाषी वीरोंके, मंत्रियोंके, तथा आकाशमें देखनेवालोंके ये वचन निकले ॥ १ ॥ वीरपुरुषोंके मस्तकोंसे व्याप्त इस आकाशकी ऐसी शोभा होरही है जैसे चलायमान कमल और बहते हुये पक्षियों करके तडागकी, अथवा तारागण सहित आकाशकी ॥ २ ॥ देखो ! रुधिरके कणोंके समूहोंसे, सिन्दूरसे रक्तवर्ण वायुके समान, ये मेघ, तथा सूर्यभगवान्के किरण ऐसे भान होते हैं मानों सन्ध्याकालकी ललाईसे रंगे हैं ॥ ३ ॥ हे भगवन् ! (कोई अपनेसे वडेको पूंछताहै) क्या यह आकाश पलालों (प्यालों) से पूर्ण है ? नहीं (दूसरा उत्तर देता है) ये पलाल नहीं है किन्तु वीरोंके बाणोंके समूहरूपी मेघहैं ॥ ४ ॥

यावंतोभुविसिच्यंतेरुधिरैरणरेणवः ॥ तावंत्यब्दसहस्राणिभटानामास्पदंदिवि ॥ ५ ॥ माभैष्टनैतेनिस्त्रिंशालीलोत्पलदलत्विषः ॥ अमीवीरावलोकिन्यालक्ष्म्यानयनविभ्रमाः ॥ ६ ॥ वीरालिंगनलोलानांनितंबेसुरयोषितां ॥ मेखलाःशिथिलीकर्त्तुंप्रवृत्तःकुसुमायुधः ॥ ७ ॥ लसद्भुजलतालोलारक्तपल्लवपाणयः ॥ मंजरीमत्तनयनामद्यामोदसुगंधयः ॥ ८ ॥ गायंत्योमधुरालापैर्नंदनोद्यानदेवताः ॥ तवागमनमाशंक्यप्रवृत्ताःपरिनर्तितुम् ॥ ९ ॥

अर्थ—वीरोंके रक्तसे जितने पृथिवी परमाणु सींचे जाते हैं उतनेही सहस्र (हजार) वर्षपर्य्यन्त स्वर्गमें वीरोंको निवास होता है ॥ ५ ॥ ये तलवार हैं ऐसा भय मत करो, किन्तु वीरोंको देखनेवाली स्वर्गकी लक्ष्मी (वा जय लक्ष्मी) के नील कमलके सदृश, ये नेत्रके विलास हैं ॥ ६ ॥ देखो ! (आकाशचारियोंका यह कथन है) वीरोंको आलिंगन करनेके वास्ते चंचल देवांगनाओंके कटि (कमर) स्थानमें जो मेखलाहै उसको शिथिल करनेमें कामदेव लग रहाहै ॥ ७ ॥ देखो! (एक वीरकी दूसरे वीरके प्रति उक्ति) उत्तम भुजारूपी लता तथा रक्त हस्तरूपी पल्लवसे शोभायमान, मुक्तालताके सदृश मत्तनेत्रवाली, मद्यके उत्तम सुगन्धसे सुगन्धित मधुर स्वरसे गान करतीहुई नन्दन (स्वर्गके वाटिका) की देवांगना लोग तुमारा आगमन जानके नृत्य करना आरंभ करादिया है ॥ ८ ॥ ९ ॥

प्रत्यनीकंभिनत्त्यंतःकुठारैःकठिनैरियम् ॥ सेनात्राम्येववनितादयितंदृष्टिचेष्टितैः ॥ १० ॥ हापितुर्ममभल्लेनशिरोज्वलितकुंडलम् ॥ सूर्यस्यनिकटंनीतंकालेनेवाष्टमोग्रहः ॥ ११ ॥ आपादशृंखलाप्रोतभ्रमत्स्थूलोपलद्वयम् ॥ भ्रमयंश्चित्रदंडाख्यंचक्रमूर्ध्वंभुजोजवात् ॥ १२ ॥ योधोयमइवाभातियाम्यादायातिदिक्तटात् ॥ सर्वतःसंहरन्सेनामेहियामोयथागतम् ॥ १३ ॥ सद्यश्छिन्नशिरःश्वभ्रमज्जत्कंककुलाकुलाः ॥ कबंधाःपरिनृत्यंतितालोत्तालारणांगणे ॥ १४ ॥ गीर्वाणगणगोष्ठीषुप्रवृत्ताःसंकथामिथः ॥ कदालोकांतरंधीराःकथंयास्यंतिकेकुतः ॥ १५ ॥ निगिरत्यागताःसेनाःस्रवंतीरिवसागरः ॥ समत्स्यमकरव्यूहाअहोनुविषमोभटः ॥ १६ ॥

अर्थ—देखो ! प्रत्येक योद्धाओंके अन्तःकरणको कठिन कुठारोंसे यह सेना ऐसे विदीर्ण कररही है जैसे नगरकी वनिता अपने कटाक्षोंसे प्रियको ॥ १० ॥ हा शोक ! (भीरुकी भीरुके प्रति उक्ति) प्रकाशमान कुण्डलसे शोभित मेरे पिताका मस्तकको भल्ल (भाला) ने सूर्य्यके निकट ऐसे पहुंचा दिया जैसे कालसे आठवां ग्रह॥११॥पादतक लटकनीहुई शृंखला (जंजीर) में गुंथेहुये दो महान पाषाणोंको, और दण्डनामक चक्रको भुजाके वेगसे घुमाता हुआ तथा चारों ओरसे सब सेनाका संहार कर्ता हुआ यमके सदृश यह योद्धा दक्षिण दिशासे आरहाहै सो इसलिये आओ जैसे आये वैसे चले चलै ॥ १२ ॥ १३ ॥ शीघ्रही कटेहुये जिनके कण्ठरूपी गढेमें काकोंके समूह निमग्न होरहेहैं ऐसे कवन्ध (शिररहित धड) युद्धके तालसे रणभूमिमें नाच रहेहैं ॥ १४ ॥ देवताओंकी सभामें परस्पर यह कथा प्रवृत्त हुई कि धीरवीर लोकान्तरमें कब ? कैसे ? कौन ? और किस निमित्तसे जाते हैं ॥ १५ ॥ अहो ! कैसा भयंकर यह वीर है कि आती हुई सेनाओंको ऐसा भक्षण करताहै जैसे मत्स्य और मगरोंके समूहों सहित नदियोंको समुद्र ॥ १६ ॥

कटेषुकरिणांकीर्णाधारानाराचराजयः ॥ पतिताइवसंपूर्णाःशृंगसंघेषुवृष्टयः ॥ १७ ॥ हाकुंतेनशिरोनीतंममेत्येवंविवक्षतः ॥ शिरसाऽजीवमित्येवंखेखगेनेववाशितम् ॥ १८ ॥ यंत्रपाषाणवर्षेणयेपास्मान्परिषिंचति ॥ सेनानुशृंखलाजालवलनाक्रियतांबलात् ॥ १९ ॥ वलीपलितनिर्मुक्तंपूर्वंभार्याप्सराःसती ॥ अंगीकरोतिभर्तारंपरिज्ञायरणेहतम् ॥ २० ॥

अर्थ—हांथियोंके गण्डस्थलपर बाणोंकी पंक्ति ऐसे शोभित होरही रही है जैसे पर्वतोंके शिखरोंपर सम्पूर्ण वृष्टि ॥ १७ ॥ हा ! कुन्तसे मेरा शिर काटा गया (किसी योद्धाकी उक्तिहै) ऐसा कहतेही हुये वह शिर उडके जब स्वर्गमें चढा तो उसने कहा कि मैं तो जीगया मरा नहीं ऐसा आकाशमें सभोंने पक्षीके कूजितके समान सुना ॥ १८ ॥ जो यह सेना यंत्र पाषाणकी वृष्टिसे हम लोगोंको सींच रही है उसको शृंखलाके जालसे बलपूर्वक बांध लेना चाहिये (यह वीरयोद्धाकी उक्तिहै) ॥ १९ ॥ पूर्व भार्य्या प्रथमही मरके अप्सरा होके स्थितहै, वह युद्धमें मरे हुये वृद्धासे रहित देवरूप अपने पतिको पहचानके अंगीकार करती है, (किसी देवकी उक्तिहै) ॥ २० ॥

आदिवंरचिताकाराःकुंतकाननकांतयः ॥ वीराणांस्वर्गमारोढुमिवसोपानपंक्तयः ॥ २१ ॥ कांतकांचनकांतांगेभवस्योरसिकामिनी ॥ दृष्टादेवपुरंध्रीयंभर्तुरन्वेषणान्विता ॥ २२ ॥ हाहतंसैन्यमस्माकंभटैरुद्धतमुष्टिभिः ॥ महामलयकल्लोलैःसुरशैलस्थलंयथा ॥ २३ ॥ युध्यध्वमग्रतोमूढानयतार्द्धमृतान्नरान् ॥ निजान्पादप्रहारेणमैतान्दारयताधमाः ॥ २४ ॥

अर्थ—कुन्त (अस्त्र विशेष) आदि हंथियारोंकी पंक्ति स्वर्ग पर्य्यन्त ऐसी रची हुई है मानों वीरोंके स्वर्गमें जानेके अर्थ सीढियोंकी पंक्ति (पांति) ॥ २१ ॥ जो सुवर्णके समान उत्तम अंगवाली कामिनी अपने वीरपति गोदमें मरणको प्राप्त हुई है वह अब देवांगना होके युद्धमें मृत अपने पतिके अन्वेषण (खोजने) में तत्पर देख पडती है ॥ २२ ॥ हा ! (कातरकी उक्ति) वडे उद्धत मुष्टि (मूके) वाले वीरोंने हमारे सैन्यको ऐसे नष्ट किया जैसे महाप्रलयके तरंग सुमेरुपर्वतको ॥ २३ ॥ हे मूढो ! आगे बढके युद्ध करो और अपने अधमरे वीरोंको यहां लाओ इनको अपने पादोंके प्रहारोंसे मत कुचलो (किसी वीर सेनापतिकी उक्ति) ॥ २४ ॥

धम्मिल्लवलनाव्यग्रेघनोत्कंठेऽप्सरोगणे ॥ भटोदिव्यशरीरेणपार्श्वप्राप्तोनिरीक्ष्यताम् ॥ २५ ॥ फुल्लहेमारविंदासुच्छायाशीतजलानिलैः ॥ स्वर्गनद्यास्तटीष्वेनंदूरायातंविनोदय ॥ २६ ॥ विविधायुधसंघट्टखंडितोग्रास्थिकोटयः ॥ खेकवंत्यःकणत्कारैःप्रसृतास्तारकाइव ॥ २७ ॥ व्योम्निजीवनदीवाहेवहत्सायकवारिणि ॥ चक्रवर्त्तिनिगच्छंतिगिरयोप्यणुपंकताम् ॥ २८ ॥

अर्थ—देखो ! बडी अभिलाषाके साथ अप्सरागण अपना केशसवारनेमें तत्पर होरही है, उनके निकट दिव्य स्वरूप होके यह वीर प्राप्त हुआ ॥ २५ ॥ जिनमे सुवर्णके कमल विकसित होरहे हैं ऐसे ह स्वर्ग नदी (स्वर्गगंगा) जीके

तटोंमें छायासे शीतल जल और सुगन्धित पवनोंसे दूरसे आये हुये इस वीरके चित्तको आनन्दित करो (अप्सराके सखीकी उक्ति) ॥ २६ ॥ अनेक प्रकारके अस्त्रशस्त्रोंके संघटसे कटी हुई असंख्य हड्डियां कडकडा शब्द करती हुई आकाशमें तारागणोंके समान फैली हैं ॥ २७ ॥ चक्ररूपी आवर्त (भ्रम) और बडे २ बाणरूपी जल जिसमें हैं ऐसे आकाशरूपी जीव नदीके प्रवाहमें पर्वतभी अणु होके पंकदशामें प्राप्त होरहे हैं ॥ २८ ॥

भ्रमद्भिर्ग्रहमार्गेषु शिरोभिर्वीरभूभृताम् ॥ आयुधांशुलतानालप्रासिदलकंटकैः ॥ २९ ॥ केतुपट्टमृणालांगदलैर्लब्धशिलीमुखैः ॥ वहद्वातचलत्पद्मनभःपद्मसरःकृतम् ॥ ३० ॥ मृतमातंगसंघातेगिराविवपिपीलिकाः ॥ भीरवःपरिलीयंतेस्त्रियःपुंवक्षसीवच ॥ ३१ ॥ अपूर्वोत्तमसौंदर्यकांतसंगमशंसिनः ॥ वांतिविद्याधरस्त्रीणामलकोल्लासिनोनिलाः ॥ ३२ ॥

अर्थ—ग्रहमार्गमें भ्रमण करते हुये वीर पर्वतोंके शिरोंसे शस्त्रोंकी किरणरूप कमल लताओंकी दण्डीमें संलग्न तलवाररूपी दल तथा कुन्त (बर्छी) और शूलादि कण्टकोंसे, तथा पताकाओंके वस्त्ररूप पत्ते और बाणरूपी भ्रमर जिनमें हैं ऐसे कमलोंसे, वहते हुये वायुसे चंचल कमल संयुक्त आकाश मानों पद्मका तडाग वन गयाहै ॥ २९ ॥ ३० ॥ मृत हाथियोंके समूहमें भीरुजन ऐसे छिपते हैं जैसे पर्वतमें चेटियां, अथवा पुरुषके गोदमें स्त्रियां ॥ ३१ ॥ अपूर्व और उत्तम सुन्दरता सहित प्रियोंके समागमका सूचक, विद्याधरकी स्त्रियोंके अलकों (केशसमूहों) को शोभित करनेवाले वायु वहते हैं ॥ ३२ ॥

छत्रेषूड्डीयमानेषुस्थितेपुव्योम्निचंद्रता ॥ इंदुनेवयशोमूर्त्याकृताशुभ्रातपत्रता ॥ ३३ ॥ भटोमरणमूर्छांतेनिमेषेणामरंवपुः ॥ स्वकर्मशिल्पिरचितंप्राप्तःस्वप्नपुरंयथा ॥ ३४ ॥ शूलशक्त्यृष्टिचक्राणांवृष्टयोमुक्ततुष्टयः ॥ व्योमाब्धौमत्स्यमकरसंकुलावयवाःस्थिताः ॥ ३५ ॥ शरोत्कृत्तसितच्छत्रकलहंसैर्नभःस्थलम् ॥ भातिसंचितपूर्णेन्दुबिंबलक्षैरिवावृतम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—आकाशमें जो छत्र (छाते) उडरहेहैं उनसे मानों चन्द्रमा उदय हुआहै, और मूर्तिमान् यशरूपी चन्द्रमासे मानों शुभ्र (सफेद) छत्र बनगयाहै ॥ ३३ ॥ वीरपुरुष मरणरूपी मूर्छाके अन्तमें अपने कर्मरूपी शिल्पी (कारीगरसे) रचे हुये एक निमेषमें देव शरीरको ऐसे प्राप्त हुआ जैसे स्वप्नके नगरमें ॥ ३४ ॥ शूल, शक्ति, दोनों ओर धारकी तलवार तथा चक्रोंकी सन्तोषरहित वृष्टि, मत्स्य और मकर आदि रूपसे व्याप्त होके स्थिति हैं ॥ ३५ ॥ बाणोंसे कटेहुये श्वेत छत्ररूपी मधुरभाषी हंसोंसे आकाश ऐसा शोभित होता है मानों संचय किये हुये पूर्ण चन्द्रमाके बिम्बोंसे ॥ ३६ ॥

क्रियतेगगनोर्मीनिश्चामरैश्चारुघर्घरैः ॥ वाताधूतसंरोधतरंगानिकरद्युतिः ॥ ३७ ॥ दृश्यंतेहेतिदलिताश्छत्रचामरकेतवः ॥ आकाशक्षेत्रविक्षिप्तायशःशालिलताइव ॥ ३८ ॥ वहद्भिर्व्योम्निसक्षेमपश्यनीताक्षयंशरैः ॥ शक्तिवृष्टिरुपायांतीसस्यश्रीःशलभैरिव ॥ ३९ ॥ एषाप्रसृतदोर्दंडभटखड्गच्छटात्कृतिः ॥ कठिनात्कंकटाज्जातामृत्योरेवोग्रहुंकृतिः ॥ ४० ॥

अर्थ—उत्तम घरहिट शब्द करनेवाले आकाशमें उडते हुये चामर (चँवर) वायुसे कँपाईगई है स्थिरता जिसकी ऐसे तरंगोंकी शोभाको कररहे हैं ॥ ३७ ॥ अस्त्रशस्त्रोंसे दलित छत्र, चमर और पताका ऐसे देखे पडता हैं जैसे आकाशरूपी खेतमें फेंकी हुई शोभायमान यशकी लता ॥ ३८ ॥ हे भद्रपुरुष ! देखो आकाशमें समीप आती हुई शक्तिकी वृष्टि चलते हुये बाणोंसे ऐसे नष्ट की गई जैसे निकट फलवाली धान्यकी शोभा शलभों (टिड्डियों) से ॥ ३९ ॥ देखो ! वीरपुरुषके फैले हुये भुजदण्डसे कठिन कवचके आघातसे तलवारका चटचटाहट शब्द ऐसे हुआ है जैसे मृत्युका भयंकर हुंकार शब्द ॥ ४० ॥

हेतिकल्पानिलक्षुण्णादंतनिर्झरवारयः ॥ जनताक्षयकालेस्मिन्भग्नानागानगाइव ॥ ४१ ॥ सचक्रनाथसुताश्वंव्यूढंरक्तमहाह्रदे ॥ हाहाभिभूतगतिकंचेष्टतेरथपत्तनम् ॥ ४२ ॥ करकंकटकुट्टंकखड्गसंघट्टटांकृतैः ॥ कालरात्र्याप्रनृत्यंत्यारणवीणेववाद्यते ॥ ४३ ॥ नरेभखरवाजिभ्योवेच्युतारक्तनिर्झराः ॥ पश्यंतींदुसिकेनवायुनारुणितादिशः ॥ ४४ ॥

अर्थ—खड्ग (तलवार) आदि शस्त्ररूपी प्रलयकालके वायुसे पिसेहुये, निकले हुये श्वेतदांतही जलके झरने हैं जिनके ऐसे हस्ती इस प्राणियोंके नाश कालमें इस प्रकार नष्ट हुये हैं जैसे पर्वत ॥ ४१ ॥ हा ! हा ! कैसे खेदकी बात

(१) वायुसे स्त्रियोंके केशोंका बिखरना प्रियसमागम सूचक शकुन समझा जाताहै ॥

है कि चक्र, स्वामी, सारथी, और घोडे सहित सनद्ध (तैय्यार) रथरूपी नगर चक्रकी गति रुक जानेसे, रक्तके महा ह्रदमें इधर उधर बहरहा है ॥ ४२ ॥ वीर और हांथियोंके कर, तथा कवचही तंत्रीके पद जिनमें हैं ऐसे तलवारोंके टंकार शब्दरूपी बाजेसे रणरूपी अंगणमें नाचती हुई कालरात्रिकी मानों बीणा बजरही है ॥ ४३ ॥ देखो मनुष्य, हांथी, खर, और घोडे आदिसे जो रुधिरके झरने निकले हैं उनसे सिंचे हुये वायुने दशोंदिशाओंको लालकर दिया है ॥ ४४ ॥

शस्त्रांशुजलदेव्योम्निकालीचिकुरमेचके ॥ शरकोरकभारस्रङ्मेघेविद्युदिवोदिता ॥ ४५ ॥ अनंतरक्तसंसक्तसन्नावनितलायुधैः॥ भुवनंभात्यभिज्वालमग्निलोकइवाकुलम् ॥ ४६ ॥ भुशुंडीशक्तिशूलासिमुसलप्रासवृष्टयः ॥ अन्योन्यच्छेदभेदाभ्यांकरप्रकरतोपतन् ॥ ४७ ॥ अक्षोभैकप्रहरणाद्यातुधान्योन्यचेष्टितम् ॥ संरंभावेक्षणप्रज्ञंरणंस्वप्नमिवस्थितम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—केशोंके समान श्यामवर्ण, शस्त्रोंके किरणरूपी मेघहैं जिसमें ऐसे आकाशमें, बाणरूपी कलियोंके समूहकी माला ऐसे शोभित होरही है जैसे मेघमें विद्युत (बिजली) ॥ ४५ ॥ अनन्त रक्तोंसे पृथिवीतल जिन्होंने सिंचनकर दियाहै ऐसे अस्त्रशस्त्रोंसे व्याप्त भुवन ऐसा शोभित रहाहै जैसे अग्निका लोक ॥ ४६ ॥ भुशुंडी, शक्ति, शूल, असि (तलवार) मुसल, और भालाकी वृष्टियां, एक दूसरोंको छेदन भेदन करती हुई एकके हाथोंसे दूसरोंपर गिरीं ॥४७॥ चलनेमें असमर्थ अनेक वीरोंमेंसे एक अति शूरके प्रहारसे राक्षसोंके समान चेष्टायुक्त और क्रोधसे देखने योग्य योधाकी बुद्धिहै जिसमें ऐसे स्वप्नके समान सम्मुखमें स्थित रणको मैं देखताहुं, और स्वप्नपक्षमें विनाशके योग्य छेदन भेदनादि क्रिया रहित स्वाप्निक पदार्थोंमें केवल जागरण मात्रसे बाधसे बाध होनेसे यातुधानों (राक्षसों) की मायाके सदृश मिथ्यायुक्त और आवेशसे आत्मज्योति देखने योग्यहै जिसमें ऐसे स्वप्नको देखताहुं, (किसीकी उक्ति) ॥४८॥

अनन्यशब्दाविरतहताहतिरणज्झणैः ॥ गायतीवक्षतक्षोभमुदितोरणभैरवः ॥ ४९ ॥ अन्योन्यरणहेत्युग्रचूर्णपूर्णोरणार्णवः ॥ वालुकामयएवाभूच्छिन्नच्छत्रतरंगकः ॥ ५० ॥ सरभसरसवद्विसाहितूर्यप्रतिरवपूरितलोकपाललोकः ॥ रणगिरिरयमुग्रपक्षदक्षप्रतिसृतिवृत्तइवांबरेयुगांते ॥ ५१ ॥ हाहाधिक्प्रविकटकंकटाननोग्रत्प्रोड्डीनप्रकटतडिच्छटाप्रतप्ताः ॥ केंकारस्फुरितगुणेरितारणंतोनाराचाःशिखरिशिलागणंवहंति ॥ ५२ ॥ छिन्नेच्छाच्छमितिनयावदंगभंगंकुर्वंतोज्वलदनलोज्ज्वलाःपृषत्काः ॥ तावद्रागद्रुतमितएहिमित्रयामोयामोयंप्रवहतिवासरश्चतुर्थः ॥ ५३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने रणप्रेक्षकजनोक्तिवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशःसर्गः ॥ ३४ ॥

अर्थ—परस्पर शस्त्रोंके प्रहारसे उत्पन्न झनझनाहट शब्दसे क्षोभरहित भैरव मानों प्रसन्न होके गाते हैं ॥४९॥ परस्पर युद्धसे चूर्ण हुये शस्त्रोंसे पूर्ण, और छिन्न भिन्न होगये हैं छत्ररूपी तरंग जिसमें ऐसा वह रणरूपी समुद्र वालुकामय होगया ॥ ५० ॥ वेगके साथ, मधुर और चारों ओर प्रसरणशील (फैलनेवाली) तुरीहियोंकी प्रतिध्वनिसे लोकपालोंके लोकोंको पूर्ण करनेवाला यह रणरूपी पर्वत युद्धमें कर्कश सेनारूपी पक्षोंकी समर्थ गतिसे युगके अन्तमें मानों आकाशमें उडना चाहताहै ॥ ५१ ॥ हा! हा! कैसे खेदका विषयहै कि (निष्फल बाणोंको देखके वीरोंकी उक्ति) ये हमारे बाण, कठिन कवचोंको विना तोडेही उनके (कवचों) के अभिघातसे उडती हुई बिजुलीकी छटाके सदृश ज्वालाओंसे अति संतप्त, और धनुषकी टंकारसे प्रेरित शब्द करते हुये पर्वतोंकी शिलाओंके लिये जाते हैं, धिक्कारहै, (कार्य्य न सिद्ध करनेसे बाणोंको धिक्कारहै) ॥ ५२ ॥ हे नष्टइच्छा और नष्टश्रमवाले पुरुष! मेरे इस दोष रहित बचनको सुनो कि जबतक जलती हुई आगके समान ये बाण हमारे हस्त पाद आदिको छिन्न भिन्न नहीं करते तभीतक आओ भागके यहांसे चले चले क्योंकि यह चौथा प्रहरहै और यह यमराजका दिनभी आजका प्राणियोंके नाशार्थ प्रवृत्तहै ॥ ५३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने रणप्रेक्षकजनोक्तिवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥

पंचत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥

समुद्र, बन, और कल्पान्त (प्रलय) तथा अन्य नानाप्रकारके रूपकोंसे चारों (हांथी, घोडा, रथ, पैदलरूप) अंगोंके संग्रामका वर्णन विस्तारसे इस ३५ वें सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथप्रोड्डयनोद्युक्ततुरंगमतरंगकः ॥ उत्तांडवइवोन्मत्तोबभूवरणार्णवः ॥ १ ॥ छत्रडिंडीरविश्रांतसितेषुशफरोत्करः ॥ अश्वसैन्योल्लसल्लोलकल्लोलाकुलकोटरः ॥ २ ॥ नानायुधनदीनीतसैन्यावर्तविवृत्तिमान् ॥ मत्तहस्तिघटापीठचलाचलकुलाचलः ॥ ३ ॥ कचच्चक्रशतावर्त्तवृत्तिभ्रांतशिरस्तृणः ॥ धूलीजलधरापीतभ्रमत्खड्गप्रभाजलः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! इसके अनन्तर उडनेमें उद्यत तुरंगम (अश्व) रूपी तरंगहैं जिसमें ऐसा वह रणरूपी समुद्र ताण्डव नृत्यके समान प्रवृत्त हुआ ॥ १ ॥ पुनः छत्ररूप फेनोंके समूहोंमें श्वेतबाणरूपी शफर नामक मत्स्य जहांपर विश्राम कररहे हैं, और घोडोंके सवारोंकी सेनारूपी चंचल और शोभायमान तरंगोंसे जिसका उदर पूर्ण है, ऐसा ॥ २ ॥ हे रामजी ! नानाप्रकारके शस्त्ररूपी नदियोंसे सेनारूप आवर्त (घूमते हुये जल) सहित, तथा मत्त हांथियोंके समूहोंसे मूल (जड) से मन्दरादिककोभी चलानेवाला ॥ ३ ॥ और शोभायमान सैकडों चक्ररूप आवर्तमें मनुष्योंके शिररूपी तृण जहां फिरते हैं, तथा तलवारके प्रभारूप जलको धूलिके समूहरूपी मेघ जिसमें पान कर रहे हैं ॥ ४ ॥

मकरव्यूहविस्तारभग्नाभग्नभटौघनौ ॥ महागुड्गुडावर्त्तप्रतिश्रुद्धनकंदरः ॥ ५ ॥ मीनव्यूहविनिष्क्रांतशरवीजौघसर्षपः ॥ हेतिवीचीवराल्नपताकावीचिमण्डलः ॥ ६ ॥ शस्त्रवारिकृतांभोदसदृशावर्त्तकुण्डलः ॥ संरंभघनसंचारसेनातिमितिमिंगिलः ॥ ७ ॥ कृष्णायसपरीधानवलत्सेनांबुभीषणः ॥ कबंधावर्त्तलेखांतबद्धसैन्यादिभूषणः ॥ ८ ॥

अर्थ—मकराकार सेनाकी रचनामें अनेक वीररूपी नौकाओंके समूह जिसमें टूटफूट गयेहैं, और रथादिके महा गडगडाहट रूप शब्दोंसे मेघोंकी कन्दरा (छिद्र) वा पर्वतोंकी गुहा जिसमें प्रतिध्वनि कर रहीहैं ॥ ५ ॥ और हे रामजी ! मृतमनुष्यरूपी मछलियोंसे शररूपी सर्षपके बीज जिसमें निकाले गयेहैं, और शस्त्ररूपी प्रबल तरंगों पताकारूपी अल्पतरंगोंका समूह जहां काटा गयाहै ॥ ६ ॥ शस्त्ररूपी जलसे बनेहुये मेघके सदृश चंचल कुण्डलही जिसके आवर्तहैं और क्रोधसे वेगसे चलनेवाली सेनाही जिसमें तिमिंगिल नामी महा मत्स्यहै ॥ ७ ॥ काले लोहेके सार (तत्व) से बनेहुये कवचसे वेष्टित (ढकीहुई) सेनारूपी जलसे भयंकर, कबन्ध (जल या शिरराहित शरीर) रूपी आवर्तकी रेखाके मध्यमें सेनाके भक्षण करनेवालेही भूषणहैं जिसमें ॥ ८ ॥

शरसीकरनीहारसांधकारककुब्गणः ॥ निर्घोषाशोषितापेपशब्दैकघनघुंघुमः ॥ ९ ॥ पतनोत्पतनव्यग्रशिरःशकलशीकरः ॥ आवर्त्तचक्रव्यूहेषुप्रभ्रमद्भटकाष्ठकः ॥ १० ॥ कष्टटांकारकोदंडकुंडलोन्मथनोद्भटः ॥ अशंकमेवपातालादिवोद्यत्सैनिकोर्मिमान् ॥ ११ ॥ गमागमपरानंतपताकाच्छत्रफेनिलः ॥ वहद्रक्तनदीरंहःप्रोह्यमानरथद्रुमः ॥ १२ ॥

अर्थ—और हे रामजी ! बाणोंकी वृष्टिरूपी कुहिरेसे सम्पूर्ण दिशायें जिससे अन्धकार सहित होगई हैं और सेनादिके महान् शब्दोंसे अन्य मेघ आदि जिससे नहीं सुन पडते ॥ ९ ॥ तथा हे रामजी ! गिरते और उछलते शिर रूपी जलकी वृष्टि जहां होरही है और चक्रोंके समूहरूपी आवर्तमें वीररूपी काष्ठ जिसमें भ्रमण कर रहेहैं ॥ १० ॥ और हे रामजी ! कष्टदायक टंकार शब्दसहित धनुषरूपी सर्पोंसे छेदन करनेमें वीर जहां प्रवृत्त होरहेहैं और शंकारहित वीर गणही मानों पातालसे तरंगों जिसमें निकल रही हैं ॥ ११ ॥ जीती आतीहुई अनेक पताकायें और छत्रों (छातों) से फेन सहित, और बहतीहुई रक्तकी नदियोंके बेगसे रथरूपी वृक्ष जिसमें ॥ १२ ॥

गजप्रतिमसंपन्नमहारुधिरबुद्बुदः ॥ सैन्यप्रवाहविचलद्धयहस्तिजलेचरः ॥ १३ ॥ ससंग्रामोवरग्रामइवाश्चर्यकरोनृणां ॥ अभूत्प्रलयभूकंपकंपिताचलचंचलः ॥ १४ ॥ तरत्तरंगविहगःपतत्कारिघटातटः ॥ अभ्रभीरुमृगानीकस्फूर्जद्गुरुघुरारवः ॥ १५ ॥ सरच्छरालीशलभशतभंगुरसैनिकः ॥ तरत्तुरंगशरभःशरभारवनावनिः ॥ १६ ॥

अर्थ—हांथियोंके आकारके महान् रुधिरके बुलबुले जिसमेहैं और सेनाके प्रवाहमें घोडे हांथी आदि जीव जिसमें जलचारी जन्तु विचर रहेहैं ऐसा रणरूपी समुद्र था ॥ १३ ॥ हे रामजी ! पुनः वह संग्राम मनुष्योंको आश्चर्यकारी उत्तम नगरके सदृश ! तथा प्रलयके भूकम्पसे पर्वतोंको कम्पित करनेवाला ॥ १४ ॥ और चंचल तरंगही जि-

समें पक्षी हैं, और हांथियोंके समूहरूपी तट जिसके गिररहे हैं, और डरते हुये भीरु योद्धा जिसमें मृगके सदृशहैं, तथा वज्रके समान सेनाके शब्दसे घुरघुर शब्द सहित ॥ १५ ॥ चलती हुई बाणोंकी पंक्तियोंसे अनेक योद्धारूपी शलभ जिसमें नष्ट होगये हैं, और चंचल तुरंग (घोडे) ही जिसमें शरभ (मृगविशेष) हैं, और बाणोंके भार बाशरोंके धारण करनेवाले जहांपर बनकी भूमि हैं ॥ १६ ॥

चलद्विरेफनिर्ह्रादोरसत्तूर्यगुहागुरुः ॥ चिरात्ससैन्यजलदोलुठद्भटमृगाधिपः ॥ १७॥ प्रसरद्धूलिजलदोविगलत्सैन्यसानुमान् ॥ पतद्रथवराढ्यांगःप्रतपत्खड्गमंडलः ॥ १८ ॥ प्रोत्पतत्पदपुष्पौघःपताकाच्छत्रवारिदः ॥ वहद्रक्तनदीपूरपतत्साराववारणः ॥ १९ ॥ सोभूत्समरकल्पांतोजगत्कवलनाकुलः ॥ पर्यस्तसध्वजच्छत्रपताकारथपत्तनः ॥ २० ॥

अर्थ—और हे रामजी ! चंचल मनुष्यरूपी भ्रमर जिसमें शब्द कररहे हैं, और बाजते हुये युद्धके वाद्यरूपी गुहाओंसे महान्, और सेना सहित गज आदि जिसमें मेघ हैं, तथा जिसमें बीररूपी सिंह लोट रहे हैं ॥ १७ ॥ तथा हे रामजी ! अधिक फैलती हुई धूलि जिसमें मेघहैं, और सैन्यरूपी पर्वत जिसमें गिर रहे हैं, बडे २ महा रथियोंके अंग जहां कटकटके गिरते हैं, तथा खड्गरूपी मृगोंका मण्डल जहां धडाधड गिर रहाहै ॥ १८ ॥ तथा हे रामजी! चरणरूपी पुष्पोंके समूह जहां गिर रहे हैं पताका तथा छत्र (छाते) जिसमें मेघ हैं, और बहती हुई रक्तकी नदीके प्रवाहमें शब्द करते हुये बडे २ हांथी जिसमें गिर रहे हैं ॥ १९ ॥ ऐसा वह सम्पूर्ण जगत्का कवल करनेमें व्याकुल समररूपी कल्पका अन्तकरता हुआ, तथा फैली हुई ध्वजा, पताका, छत्र, और रथोंसे नगरके सदृश ॥ २० ॥

पतद्विमलहेत्योघभूरिभास्वरभास्करः ॥ कठिनप्राणसंतापतापिताखिलमानसः ॥ २१ ॥ कोदंडपुष्करावर्त्तशरधारानिरंतरः ॥ वहत्खड्गशिलालेखाविद्युद्वलयितांबरः ॥ २२ ॥ उच्छिन्नरक्तजलधिपतितेभकुलाचलः ॥ नभोविकीर्णनिपतद्युतारकणतारकः ॥ २३ ॥ चक्रकूल्यांबुदावर्त्तपूर्णव्योमशिरांबुदः ॥ अस्त्रकल्पाग्निनिर्दग्धसैन्यलोकांतरक्रमः ॥ २४ ॥

अर्थ—अनेक विमल अस्त्र शस्त्रादिके गिरनेसे कठिन प्राणोंके सन्तापसे सबके मनको तपानेवाले प्रकाशमान सूर्य्यके सदृश ॥ २१ ॥ तथा धनुषरूपी पुष्करावर्त मेघसे जहांपर निरन्तर (लगातार) शरकी धारा गिर रही हैं, और पाषाणकी शिलाओंपर संस्कार किई हुई तलवारोंकी धारारूपी बिजुलियोंसे आकाशमण्डलको घेरनेवाला ॥२२॥ तथा हे रामजी ! हांथीरूप कुलाचल (मन्दर आदि पर्वत) जिसमें गिरे हैं ऐसे उमडे हुये रक्तके समुद्रके तुल्य, तथा आकाशमें फैले हुये एक दूसरेसे मिलके बडे २ रक्तके बिन्दु जिसमें तारागण हैं ॥ २३ ॥ तथा मेघोंके मण्डल भ्रमण करतीहुई आवर्त (भँवरेह) रूप चक्रोंकी पंक्तिरूप नदियोंसे आकाशकी नाडियां तथा मेघमण्डल जहां पूर्ण होगयाहै, और अस्त्ररूपी प्रलयाग्निसे जलीहुई सेना जहां दूसरे लोकमें जानेको उपस्थित (तैय्यार) है ॥ २४ ॥

हेतिवर्षाशनिच्छन्नभूतलामलभूधरः ॥ गजराजगिरिव्रातपातपिष्टजनव्रजः ॥ २५ ॥ शरधाराघनानीकमेघच्छन्नमहीनभाः ॥ महानीकार्णवक्षोभसंघट्टघटितादवः ॥ २६ ॥ व्याप्तउग्रानिलोद्धूतैर्जलव्यालैरिवाचलः ॥ अन्योन्यदलनव्यग्रैःशस्त्रोत्पातइवोत्थितैः ॥ २७ ॥ शूलासिचक्रशरशक्तिगदाभुशुंडीप्रासादयोविदलनेनमिथोध्वनंतः॥दीप्ताअधुर्दशदिशःशतशोभ्रमंतःकल्पांतवातपरिवृत्तपदार्थलीलाम्॥२८

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने रणवर्णनं नाम पंचत्रिंशःसर्गः ॥ ३५ ॥

अर्थ—और अस्त्रशस्त्रोंकी वृष्टिरूप वज्रसे जहांपर पृथिवी और विमल पर्वत ढंक गये हैं और जहांपर बडे २ गजराजरूपी पर्वतोंके गिरनेसे मनुष्योंके समूह पिस गये हैं ॥ २५ ॥ और शरधाराकी वृष्टि करनेवाले सघन सेनारूपी मेघमण्डल पृथिवी और आकाशको आच्छादन करनेवाला और बडी भारी सेनारूप समुद्रके संक्षोभसे जो परस्पर संघर्ष उत्पन्न हुआ है उससे वेगसहित ॥ २६ ॥ एक दूसरेको दलन करनेमें तत्पर शस्त्ररूपी भयंकर वायुसे कंपाये हुये जल सर्पोंसे समुद्रस्थ पर्वतके समान ऐसे व्याप्त है, जैसे शस्त्रके वर्षाके उत्पातमें तत्पर पुष्करावर्त मेघ ॥ २७ ॥ शूल, खड्ग, चक्र, शक्ति, शर, गदा, तोप, भाले आदि अस्त्रशस्त्र परस्परके दलन करनेसे दशोंदिशाओंमें सैकडों प्रकारसे भ्रमण तथा शब्द करतेहुये ऐसी लीला धारण की जैसी कल्पान्त वायुसे भ्रमण करतेहुये पर्वत वृक्ष नगर आदि पदार्थ॥२८

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने रणवर्णनं नाम पंचोत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥

समान अस्त्रादिसे द्वन्द्वयुद्ध, तथा पूर्व आदि दिशाओंके स्वामियोंके साथ सहायकोंकाभी वर्णन इस ३६ वे सर्गमें किया गया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथशृंगोपमानेषुस्थितेषुशरराशिषु ॥ सर्वभीरुषुभग्नेषुविद्रुतेषुदिशोदश ॥ १॥ मातंगशवशैलेषुविश्रांतांबुदपंक्तिषु ॥ यक्षरक्षःपिशाचेषुक्रीडत्सुरुधिरार्णवे ॥ २ ॥ महतांधर्मनिष्ठानां शीलौजःसत्वशालिनाम् ॥ शुद्धानांकुलपद्मानांवीराणामनिवर्त्तिनाम् ॥ ३ ॥ द्वंद्वयुद्धानिजातानिमेघानामिवगर्ज्जताम् ॥ मिथोनिगरणोत्कानिमिलंत्यापगपूरवत् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! इसके अनन्तर जब पर्वतोंके शिखरके समान बाणोंके ढेर लगरहे थे और भीरुलोग कितने नष्ट होगये थे और कितनेही दशोदिशाओंमें भाग गयेथे ॥ १ ॥ और जब हांथियोंके मृतक शरीर सब पर्वतोंपर मेघोंकी पंक्तियोंके समूह विश्राम करने लगे, यक्ष राक्षस, और पिशाच आदि जिस समय रुधिरके समुद्रमें क्रीडा करने लगे ॥ २ ॥ धर्ममें निष्ठ, शील तेज और पराक्रमसे शोभायमान, शुद्ध निजकुलके कमल और युद्धसे कभी न लौटनेवाले तथा मेघोंके समान गर्जना करनेवाले वीरोंके एक दूसरेके ग्रास करनेकी अभिलाषा सहित द्वन्द्वयुद्ध होनेलगे, जिनमें शूरवीर ऐसी तेजीसे मिलेहैं जैसे नदियोंके प्रवाह ॥ ३ ॥ ४ ॥

पंजरःपंजरेणेवगजौघेनगजोच्चयः ॥ सवनःसवनेनाद्रिरद्रिणेवामिलद्बलात् ॥ ५ ॥ अश्वौघोघोभिलदश्वानांवृंदेनारावरंहसा ॥ तरंगौघेनघोषेणतरंगौघइवार्णवे ॥ ६ ॥ नरानीकंनरानीकःसमायुधमयोघयत् ॥ वेण्वोघमिववेण्वोघोमरुल्लोलोमरुद्बलम् ॥ ७ ॥ रथौघश्चरथौघेननिष्पिपेषाखिलंवपुः ॥ नगरंनगरेणेवदैवेनोड्डीनमासुरम् ॥ ८ ॥

अर्थ—पुनः वे वीर ऐसे बलसे मिले जैसे सिंह सिंहके साथ, हांथियोंका समूह दूसरे हांथियोंके समूहके साथ, और वनसहित पर्वत दूसरे वनसहित पर्वतके साथ ॥ ५ ॥ पुनः वे वीर ऐसे भीडे जैसे घोडोंका समूह दूसरे वेगवान् शब्दकारी घोडेके समूहके साथ, और समुद्रमें शब्दकेसाथ तरंगोंका समूह तरंगोंके समूहके साथ ॥ ६ ॥ हे रामजी ! पैदल मनुष्योंकी सेना दूसरी पैदल सेनाके साथ ऐसे लडी जैसे वायुके वेगसे चेतायमान वासोंका समूह दूसरे वैसेही वासोंके समूहके साथ ॥ ७ ॥ और हे रामजी ! रथोंका समूह दूसरे रथोंके समूहसे ऐसा चूर २ किया जैसे देवोंका नगर असुरोंके नगरको चूर करके उडा लेजाय ॥ ८ ॥

सरच्छरमरासाररचितापूर्ववारिदम् ॥ युयुधेस्थगिताकाशाधनुर्धरपताकिनी ॥ ९ ॥ विषमायुधयुद्धेषुयोद्धारःपेलवाशयाः ॥ यदायुक्त्यापलायन्तेरणकल्पानलेतदा ॥ १० ॥ मिलिताश्चक्रिणश्चक्रैर्धनुर्धरैर्धनुर्धराः ॥ खड्गिभिःखड्गयोद्धारोभुशुंडीभिर्भुशुंडयः ॥ ११ ॥ मुसलैर्मुसलोदाराःकुंतिनःकुन्तिधारिभिः ॥ ऋष्ट्यायुधाऋष्टिधरैःप्रासिभिःप्रासपाणयः ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! वीरोंने ऐसा युद्ध किया कि बाणोंके समूहकी वृष्टिसे एक अपूर्व नूतन मेघ बनगया, और धनुषधारी वीरोंकी सेनाने आकाशकोभी आच्छादित करलिया ॥ ९ ॥ उस भयंकर युद्धोंमें जब प्रलयकालके समान रणरूपी अग्नि भडकी तब भीरुचित्तवाले योद्धा युक्तिसे भागने लगे॥१०॥हे रामजी ! चक्रधारी चक्रधारीयोंके साथ धनुर्धारी धनुर्धारियोंके, खड्गधारी खड्गधारियोंके, और बन्दुकधारी बन्दुकवालोंके साथ मिलके युद्ध करनेलगे॥११॥तथा–मुसलधारी मुसलधारियोंकेसाथ,वर्च्छीवाले वर्च्छीवालोंकेसाथ,तेगेवाले तेगेवालेके और भालेवाले भालेवालोंकेसाथ॥१२

समुद्गरामुद्गरिभिःसगदैर्विलसद्गदाः ॥ शाक्तीकैःशक्तियोद्धारःशूलैःशूलविशारदाः ॥ १३ ॥ प्रासासनविदःप्रासैःपरशूक्तापरस्वधैः ॥ लकुटोद्यैर्लकुटिनश्चोपलैरुपलायुधाः ॥ १४ ॥ पाशिभिःपाशधारिण्यःशंकुभिःशंकुधारिणः ॥ क्षुरिकाभिस्तुक्षुरिकाभिंदिपालैश्चतद्धताः ॥ १५ ॥ वज्रमुष्टिधरावज्रैरंकुशैरंकुशोद्धताः ॥ हलैर्हलनिकायज्ञास्त्रिशूलैश्चत्रिशूलिनः ॥ १६ ॥

अर्थ—तथा मुद्गरधारी मुद्गरधारियोंके साथ, गदाधारी गदाधारियोंके, शक्तिसे युद्धकरनेवाले शक्तिवालोंके साथ, और शूलयुद्ध निपुणशूलधारियोंके साथ ॥ १३ ॥ कुन्त (वर्च्छी) से युद्ध करनेवाले कुन्तवालोंके, फरसेवाले फरसेवालोंके, लठ्ठबाज लठ्ठवाजोंके तथा पत्थरसे लडनेवाले पत्थरवालोंके साथ ॥ १४ ॥ तथा पाश (फांसी) धारी पाशधारियोंके शंकुधारी शंकु धारियोंके, छूरीवाज छूरीवाजोंके, और भिन्दिपाल (नालिकास्त्र) धारी

भिन्दिपाल पालवालों साथ ॥ १५ ॥ और वज्रमुष्टिधारी (मुष्टिमें लोहकी कीलवाले मल्ल) वज्रमुष्टिवालोंके, हलधारी हलधारियोंके, और त्रिशूलधारी त्रिशूलधारियोंके साथ ॥ १६ ॥

शृंखलाजालिनोजालैःशृंखलैरलिकोमलैः ॥ क्षुभितःकल्पविक्षुब्धसागरोर्मिघटाइव ॥ १७ ॥ क्षुब्ध चक्रदलावर्त्तःशरसीकरमारुतः ॥ प्रभ्रमद्धेतिमकरोव्योमैकार्णवआबभौ ॥ १८ ॥ उत्फुल्लायुधकल्लोले शिराकुलजलेचरः ॥ रोदोरंध्रसमुद्रोसौबभूवामरदुस्तरः ॥ १९ ॥ दिव्याष्टकजनानीकंपक्षद्वयतयातया अर्द्धेनार्द्धेनकुपितंभूपालाभ्यांतथास्थितम् ॥ २० ॥

अर्थ—कवच विशेषधारी सवार कवचधारी सवारोंके साथ मिलके परस्पर ऐसे युद्ध करनेलगे जैसे प्रलयकालमें संक्षुब्ध समुद्रके तरंगोंके समूह ॥१७॥ हे रामजी ! भ्रमण करते हुये चक्र जिसमें आवर्त (भ्रमण करता हुआ जल) हैं, बाणोंकी वृष्टि जिसमें वायुहै और अनेकप्रकारसे भ्रमण करते हुये अस्त्र शस्त्र जिसमें रूपहैं ऐसा आकाशवत् विस्तृत समुद्रके समान वह संग्राम शोभित हुआ ॥ १८ ॥ अनेक प्रकारके विकसित अस्त्रशस्त्ररूपी तरंगोंकी नाडियोंसे जिसके जलचारी जीव व्याकुल होरहे हैं, और आकाश तथा पृथिवीका मध्यभाग समुद्रहै जहां ऐसा वह संग्राम जीवधारियोंके दुस्तर होगया ॥ १९ ॥ विद्या, बुद्धि, बल, शौर्य्य, अस्त्र, अश्व, और धनुप इन आठोंको अमोघरूपसे धारण करनेवाली, पूर्वोक्त रीतिसे द्वन्द्वरूपसे कोप करके मिली हुई, सिन्धुराज और विदूरथके अनुकूल आधे २ भागमें दोनों सेना स्थित हुई ॥ २० ॥

मध्यदेशादिसंख्यानेप्राग्दिग्भ्योभ्यागतानिमान् ॥ लीलानाथस्यपद्मस्यपक्षेजनपदाञ्छृणु ॥ २१ ॥ पूर्वस्यांकोसलाःकाशिमागधामिथिलोत्कलाः ॥ मेखलाः कर्करासुद्रास्तथासंग्रामशौंडकाः ॥ २२ ॥ मुख्याहिमारुद्रसुख्यास्ताम्रलिप्तास्तथैवच ॥ प्राग्ज्योतिषावाजिमुखाअंबष्ठाःपुरुषादकाः ॥ २३ ॥ वर्णकोष्ठाःसविश्वोत्राआममीनाशनास्तथा ॥ व्याघ्रवक्त्राःकिराताश्वसौवीराएकपादकाः ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! अब मध्य देशादिकी गणनामें पूर्व आदि दिशासे लीलाके पद्मकी सहायता करनेको जो आयेथे उनके नाम सुनो ॥ २१ ॥ पूर्वदिशामें, कोशल, काशी, मगध, मिथिल, उत्कल, मेखल, कर्कर, मुद्र संग्राम शौण्डक, मुख्य, हिम, रुद्रमुख्य, ताम्रलित, प्राग्ज्योतिष, वाह्लिमुख, अम्बष्ट, पुरुषादक, कर्णकोष्ट, विश्वोत्र, आममीनाशन (कच्ची मछली जहां खाते हैं) व्याघ्र वक्र, किरात, सौबीर, और एक पादक इन २४ देशोंसे सहायक आयेथे ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥

माल्यवान्नामशैलोत्रशिबिरांजनएवच ॥ वृषलध्वजपद्मान्यास्तथोदयकरोगिरिः ॥ २५ ॥ अथप्राग्दक्षिणायांतुइमेविंध्यादिवासिनः ॥ चेदयोवत्सदाशार्णाअंगवंगोपवंगकाः ॥ २६ ॥ कलिंगपुंड्रजठराविदर्भामेखलास्तथा॥ शबराननवर्णाश्वकर्णात्रिपुरपूरकाः ॥२७॥ कंटकस्थलनामानःपृथग्दीपककोमलाः कर्णांध्राश्चौलिकाश्चैवतथाचार्मण्वताअपि ॥ २८ ॥ काककाहेमकुड्याश्वतथाश्मश्रुधराअपि ॥ वलिग्रीवमहाग्रीवाःकिष्किंधानालिकेरिणः ॥ २९ ॥ अथलीलापतेरस्यदक्षिणस्यामिमेनृपाः ॥ विंध्योथकुसुमापीडोमहेंद्रोदर्दुरस्तथा ॥ ३० ॥ मलयःसूर्यवांश्चैवगणाराज्यसमृद्धकाः ॥ अवंतीरितिविख्याता स्तथाशांबवतीतिच॥३१॥दशपूरकथाचक्रारेपिकातुरलच्छपाः ॥ वनवासोपगिरयस्तेभद्रगिरयस्तथा॥३२

अर्थ—तथा पूर्वसे, माल्यवान्, शिबि, आंजन, वृषल, ध्वज, पद्मान्य, और उदयगिरि, इन पर्वतोंपरसे सहायक आये थे ॥ २५ ॥ अब पूर्व और दक्षिण दिशाके बीच अर्थात् अग्निकोण किये हैं विन्ध्य आदिके रहनेवाले हैं, चेदि, वत्स, दाशार्ण, अंगवंग, उपवंग, कलिंग, पुण्ड्रज, जठर, बिदर्भ, मेखल, शवराननवर्ण, कर्णात्रिपुरपूरक, कंकटस्थल, पृथग्दीपक, कोमल, कर्णांध, चौलिक, चार्मण्वतकाकक, हेमकुड्यश्मश्रुधर, बलिग्रीव, बलिग्रीव, महाग्रीव किष्किन्ध, और नालिकेरी इनसे आयेथे॥२६॥२७॥२८॥२९॥ हे रामजी ! इसके अनन्तर दक्षिण दिशामें लीलाके पतिके सहाये राजाथे, विन्ध्य, कुसुमा पीड, औ दर्दुर॥३०॥मलय, सूर्य्यवान् औ राज्यसमृद्ध, इन पर्वतोंके निवासी, अम्बवती शांबवती ॥ ३१ ॥ दशपूरकथा, चक्रार, इषिका, आतुर, कच्छप, बनबास, उपगिरि और भद्रगिरि ॥ ३२ ॥

नागरादंडकाश्चैवगणराष्ट्रनृराष्ट्रकाः ॥ साहाशैवार्ष्यमूकाश्वककाटावनबिंबिलाः ॥ ३३ ॥ पंपानिवासिनश्चैवकैरकाःकर्कवीरकाः॥स्वेरिकायासिकाश्चैवधर्मपत्तनपंजिकाः ॥३४॥ काशिकास्तृष्णखल्लूलायादास्तेताम्रपर्णकाः ॥ गोनर्दाःकणकाश्चैवदीनपत्तननामकाः ॥ ३५ ॥ ताम्रीकार्द्धभराकीर्णाःसहकारेणकास्तथा ॥ वेतुंडकास्तुंबवनालाजिनद्वीपकर्णिकाः ॥ ३६ ॥

अर्थ—नागर, दण्डक, गणराष्ट्र, नृराष्ट्र, साह, शैव, ऋष्यमूक, कर्कोट, आवन, और विंविल ॥ ३३ ॥ पंपानिवासी, केरक, कर्कवार, स्वैरिक, पासिक, वर्मपत्तन पंजिक ॥ ३४ ॥ काशिक, तृष्ण, सल्लूल, याद, ताम्रपर्ण, गोनर्द, कणक, तथा दीनपत्तन नामवाले ॥ ३५ ॥ ताम्रीक, दम्भर आकीर्ण, सहकार, ऐणक, वैतुण्डक, तुम्बवनलाजिन और द्वीपकर्णीक ॥ ३६ ॥

कर्णिकाभाश्वशिबयःकोंकणाश्चित्रकूटकाः ॥ कर्णाटमंटवटकामहाकटकिकास्तथा ॥ ३७ ॥ आंध्राश्चकोलगिरयश्चावंतिकविचेरिकाः ॥ चंडायत्तादेवनकाःक्रौंचावाहास्तथैवच ॥ ३८ ॥ शिलाक्षारोद्भोनंदमर्दनामलयाभिधाः ॥ तेचित्रकूटशिखरालंकारक्षोगणाःस्मृताः ॥ ३९ ॥ अथप्रत्यग्दक्षिणस्यां महाराज्यसुराष्ट्रकाः ॥ सिंधुसौवीरशूद्राख्याअभीराद्राविडास्तथा ॥ ४० ॥

अर्थ—कर्णिकाभा, शिबि, कोंकण, चित्र, कूटक, कर्णाट, मंट, वटक, और महाकटकी, ॥ ३७ ॥ आन्ध्र, कोलगिरि, आवन्तिक, और विचेरिक, चण्डायत्त, देवनक, और क्रौंचवाह, ॥ ३८ ॥ शिलाक्षारोद, भोनन्द, मर्दन, और मलय, ये चित्रकूटके शिखर, और लंकाके निवासी रक्षोगण, ये सब दक्षिण दिशाके सहायकथे ॥ ३९ ॥ इसके अनन्तर दक्षिण और पश्चिमदिशाके मध्य(नैऋत्य कोण)से महाराज्य, सुराष्ट्र, सिन्धु, सौवीर, शूद्र, और द्रविड॥४०॥

कीकटाःसिद्धखंडाख्यास्तथाकालिरुहाअपि ॥ अत्रहेमगिरिःशैलस्तथारैवतकोगिरिः ॥ ४१ ॥ जयकच्छामयवरोयवनास्तत्रजंतवः ॥ बाह्लीकामार्गणावंताधूम्रास्तुंबकनामकाः ॥ ४२ ॥ तथालाजगणाश्चैवतथात्रगिरिवासिनः ॥ ततोऽब्धितोकनिसुताएतेलीलापतेर्जनाः ॥ ४३ ॥ अथतत्प्रतिपक्षस्थानिमान् जनपदाञ्छृणु ॥ पश्चिमायांदिशिप्रौढाहमेतावन्महाद्रयः ॥ ४४ ॥

अर्थ—तथा कीकट, सिद्धखण्ड और कालिरुह, और इसदिशामें, हेमगिरि, रैवतकगिरि॥४१॥जयकच्छ, और मयवर ये ४ पर्वतहैं यहांके निवासी यवनहैं, वाल्हीमार्गणावन्त, धूम्र, और तुम्बक, ॥ ४२ ॥ तथा लाजगण, और यहांके पर्वतोंके निवासी, इसके अनन्तर समुद्रतटके और तोकनि देशके निवासी, हे रामजी ! ये सब पूर्वोक्त लीलाके पतिके पक्षकेथे ॥४३ ॥ अब हे रामजी ! लीलाके पतिके शत्रुके पक्षके जनपदों (देशोंका वहां राजा या मनुष्यों)को सुनो, पश्चिमदिशामें आगेलिखे बड़े २ पर्वतहैं ॥ ४४ ॥

मणिमान्नामशैलेंद्रःकुरार्पणगिरिस्तथा ॥ वनोर्कद्दोमेघभवश्चक्रवानस्तपर्वतः ॥ ४५ ॥ जनाःपंचजनानामकाशब्रह्मचर्यांतकाः ॥ तथैवभारक्षतथाःपारकाःशांतिकास्तथा ॥ ४६ ॥ शैब्यारमरकायाच्छागुहुत्वानियमास्तथा ॥ हैहयाःसुह्मगायाश्चताजिकाह्णकास्तथा ॥ ४७ ॥ पार्श्वेकतकयोःकर्कागिरिपर्णावमास्तथा ॥ संत्यक्तधर्ममर्यादास्तेवर्णाम्लेच्छजातयः ॥ ४८ ॥

अर्थ—मणिमान्, शैलेन्द्र, कुरापर्ण गिरि, बन, अर्कद मेघ भव, चक्रवान और अस्ताचल॥४५ ॥ और हे रामजी ! काश तथा ब्राह्मणके समूहोंके अन्तक पंचजन नामक जन और इसीप्रकार भारक्षत, पारक, और शान्तिक ॥४६॥ शैव्य, आरमरकाय, अच्छ, अगुहुत्व, अनियम, हैहय, सुह्म, गाय, ताजिक, औव्हणक ॥ ४७ ॥ दक्षिण और उत्तर तक देशके निकटके कर्क, गिरिपर्ण, और वम, ये सवर्णधर्मकी मर्य्यादाको सर्व त्याग दिया है इसलिये ये म्लेच्छ कहाते हैं ॥ ४८ ॥

ततोजनपदाभूमिर्योजनानांशतद्वयम् ॥ ततोमहेंद्रशिखरीमुक्तामणिमयावनिः ॥ ४९ ॥ स्रुतोमहीधरशतैरश्वोनामपर्वतः ॥ ततोमहार्णवोभीमः पारियात्रगिरिस्तटे ॥ ५० ॥ पश्चिमोत्तरदिग्भागेदेशोगिरिमतिस्थितः ॥ तथावेणुपतिश्चैवततोनरपतिर्मही ॥५१॥ तथाफल्गुणकाश्चैवमांडव्यानेकनेत्रकाः ॥ पुरुकुंदाश्चपाराश्चभानुमंडलभावनाः ॥ ५२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! उसके अनन्तर २ दोसो योजन पर्य्यन्त पृथिवी जनपदसे शून्य है, और इसके अनन्तर महेन्द्रपर्वतके शिखर सहित मुक्ता तथा मणिमयी पृथिवी है ॥ ४९ ॥ इसके पश्चात् सैकड़ों पर्वतों सहित अश्वनाम पर्वत है, इसके अनन्तर भयंकर महासमुद्र है जिसके तटपर पारियात्र नाम पर्वत है ॥ ५० ॥ इसके अनन्तर पश्चिमदिशामें गिरिमति, वेणुपति, और नरपतिदेश हैं जहां नित्य उत्सव हुआ करता है ॥ ५१ ॥ इसके अनन्तर फल्गुणक, माण्डव्य, अनेक नेत्रक, पुरुकुन्द, पार, भानुमण्डल, तथा भावन, ॥ ५२ ॥

वन्मिलानलिनादीर्घादीर्घकेशांगवाह्नवः ॥ रंगाश्वस्तनिकाश्चान्यागुरुहाश्चल्लुहास्तथा ॥ ५३ ॥ ततः

स्त्रीराष्ट्रमतुलंगोवृषापत्यभोजनम् ॥ अथोत्तरस्यांहिमवान्क्रौंचोथमधुमान्गिरिः ॥ ५४ ॥ कैलासोवसुमान्मेरुस्तत्पादेषुजनाउभे ॥ मद्रवारेवयौधेयामालवाःशूरसेनिकाः ॥ ५५ ॥ राजन्याश्र्वतथाज्ञेयाअर्जुनातनयस्तथा ॥ त्रिगर्त्तएकपात्क्षुद्रामवलास्वस्तवासिनः ॥ ५६ ॥

अर्थ—वन्मिल, नलिन, और इसके पश्चात् दीर्घ केश और अंग हस्तपाद आदि सहित मनुष्य होनेसे दीर्घनाम देश है, तथा रंग, स्तनिक, गुरुह और लुह नामवाले हैं ॥ ५३ ॥ इसके अनन्तर अतुल रची राष्ट्र नाम देश है, जहां गौ, बैल तथा सन्तानकोभी खा जाते हैं, और इसके अनन्तर उत्तरदिशामें हिमवान्, क्रौंच, और मधुमान् नाम पर्वत हैं ॥ ५४ ॥ इसके अनन्तर कैलाश, वसुमान्, और मेरुपर्वत हैं, जिनके दोनों किनारेपर देश हैं वहांपर मनुष्य रहते हैं, जैसे मद्र, वारेव, यौधेय, मालव, और शूरसेनिक, ॥ ५५ ॥ इसके अनन्तर ये क्षत्रिय और देश हैं, राजन्य, अर्जुनातनय, त्रिगर्त, एकपाद् क्षुद्र आमवल और स्वस्तवासी ॥ ५६ ॥

अबलाःप्रखलाःशाकाःक्षेमधूर्त्तयएवच ॥ दशाधानागावसन्यदंडाहन्यसनास्तथा ॥ ५७ ॥ धानदाः सरकाश्चैववाटधानास्तथैवच ॥ अंतरद्वीपगांधारास्तथावंतिसुरास्तथा ॥ ५८ ॥ अथतक्षशिलानाम ततोवीलवगोधनी ॥ पुष्करावर्त्तदेशस्ययशोवतिमहीततः ॥ ५९ ॥ ततोनाभिमतिर्भूमिस्तिक्षाकालवरास्तथा ॥ काहकंनगरंचैवसुरभूतिपुरंतथा ॥ ६० ॥

अर्थ—अबल, प्रखर, शाक, क्षेम धूर्ति दशप्रकारके नागा, अवसनी अदण्ड, दिनमें न खानेवाले ॥ ५७ ॥ धानद, सरक तथा वाटधान, और अन्तरद्वीपके निवासी गान्धार, अवन्ति, और सुर, ॥ ५८ ॥ और इसके अनन्तर तक्षशिला, बीलव, गोधनी, इसके अनन्तर पुष्करावर्त देशकी यशोवती पृथिवी है ॥ ५९ ॥ और इसके अनन्तर नाभिमती भूमिहै, और उसके पश्चात् तिक्षा तथा कालवराभूमि है, और काहक तथा सुरभूतिपुर नामक नगर है ॥ ६० ॥

तथैवरतिकादर्शोअंतरादर्शएवच ॥ ततःपिंगलपांडव्यंयामुनेयातुधानकाः ॥ ६१ ॥ मानवानांगनाहेमतालाःस्वस्वमुखास्तथा ॥ हिमवान्वसुमान्क्रौंचकैलासावित्यगास्तथा॥६२॥ततोऽजनपदाभूमिरशीतिशतयोजना ॥ अथप्रागुत्तरस्यांतुक्रमाज्जनपदाञ्छृणु ॥ ६३ ॥ कालुताब्रह्मपुत्राश्र्वकुणिदाःखदिनास्तथा ॥ मालवारंध्रराज्याश्र्ववनाराष्ट्रास्तथैवच ॥ ६४ ॥ केडवस्ताःसिंहपुत्रस्तथावामनतांगताः ॥ सावाकच्चापलवहाःकामिरादरदास्तथा ॥ ६५ ॥ अभिसासदजार्वाकाःपलोलकुविकौतुकाः ॥ किरातायामुपाताश्र्वदीनाःस्वर्णमहीततः ॥ ६६ ॥ देवस्थलोपवनभूस्तदनूदितश्रीविश्वावसोस्तदनुसंदिरसुत्तमंच ॥ कैलासभूस्तदनुमंजुवनश्र्वशैलोविद्याधरामरविमानसमानभूमिः ॥ ६७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेउत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने जनपदवर्णनं नाम षट्त्रिंशःसर्गः ॥ ३६ ॥

अर्थ—इसीप्रकार रतिका दर्श, और अन्तरादर्श, और इसके अनन्तर पिंगल पाण्डव्य यामुनेय, और यातुधा ॥ ६१ ॥ और मनुष्य, नकिस्त्री, सुवर्ण, तालके वर्णके और उत्तम मुखवाले होतेहैं, हिमवान् वसुमान्, क्रौंच और कैलाश ये पर्वत हैं ॥ ६२ ॥ उसके अनन्तर ८० अस्सीसो योजन पृथिवी जनपदसे शून्यहै, और इसके अनन्तर हे रामजी! वायव्य (पश्चिम और उत्तर) कोनकी दिशाके जनपदोंका नाम सुनिये ॥ ६३ ॥ कालुत, ब्रह्मपुत्र, कुणिद, खदिन, मालव, रन्ध्रराज्य, वन और राष्ट्र, केडवस्त, सिंहपुत्र और वामन देशको प्राप्त अर्थात् वामनोंका देश, सावाकच, चापलवह, कामिर और दरद ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ अभिसासद, जाव, अर्क, पलोल, कुवि, और कौतुक, किरात, यामुपात और दीन और इसके अनन्तर सुवर्णकी पृथिवीहै ॥ ६६ ॥ हे रामजी! इसके अनन्तर देवताओंका स्थानहै, और उसके अनन्तर अकथनीय शोभासहित उन (देवताओं) की उपवन (वाटिका) भूमिहै, इसके अनन्तर अति उत्तम उत्तम विश्वावसुका मन्दिरहै, इसके अनन्तर कैलास पर्वतहै, इसके पश्चात् अति रमणीय वनहै, इसके पश्चात् एक पर्वतहै, जोकि विद्याधर और अन्य देवताओंके विमानकी सदृश भूमिहै ॥ ६७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने भाषाऽनुवादे जनपदवर्णनं नाम षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥

इस ३७ वे सर्गमें मध्यदेशोंके नामसे वहांके मनुष्योंका वर्णन तथा उनके द्वन्द्व (एक दूसरेसे) युद्धका और उनके जयपराजयका वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ रणेरभसनिर्लूननरवारणदारुणे ॥ अहंपूर्वमहंपूर्वमितिद्वंद्वानुपातिनि ॥ १ ॥ एते चान्येचबहवस्तत्रभस्मत्वमागताः ॥ प्रविशंतःप्रयत्नेनशलभाइवपावके ॥ २ ॥ अत्रान्येमध्यदेशीया जनानोदाहृतामया ॥ तानिमाञ्छृणुवक्ष्यामिपक्षाँल्लीलामहीभृतः ॥ ३ ॥ तद्देहिकाःशूरसेनागुडाअश्व घनायकाः ॥ उत्तमज्योतिभद्राणिमदमध्यमिकादयः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–उस महा भयंकर संग्राममें जब मनुष्य झुंडके झुंड गिररहे थे, और अनेक मनुष्य तथा हस्ती आदि कट मरगये ॥ १ ॥ हे रामजी ! उससमय ये पूर्वोक्त तथा अन्य जैसे अग्निमें शलभ (पांखी) बडे प्रयत्नसे गिरतेहैं ऐसेही गिरके सब भस्म होगये ॥ २ ॥ हे रामजी ! मैंने मध्य देशके जनपद और वहांके मनुष्योंका वर्णन नहीं किया सो लीलाके राजाके पक्षवाले जो थे हैं उनको कहुंगा आप सुनिये ॥ ३ ॥ उस राजाके शरीरकेही सदृश शूरसेन, गुड, अश्वघ, नायक, उत्तम, ज्योतिभद्र और मदमध्यमिक आदि ॥ ४ ॥

साल्वकाकोव्यमालास्यादौर्झेयाःपिप्पलायनाः ॥ मांडव्याःपांडुनगराःसौग्रीवाद्यागुरुग्रहाः ॥ ५ ॥ पारियात्राःकुराष्ट्राश्चयामुनोदुंबराअपि ॥ राज्याह्वाउज्जिहानाश्चकालकोटिकमाथुराः ॥ ६ ॥ पांचालाधर्मारण्याश्चतथैवोत्तरदक्षिणाः ॥ पांचालकाःकुरुक्षेत्रास्तथासारस्वताजनाः ॥ ७ ॥ अवंतीस्यंदनश्रेणीकुंतिपांचनदेरितैः ॥ स्पंदमानाविद्रवंतीनिपपातमहाभृगौ ॥ ८ ॥

अर्थ—साल्वक, कोव्यमालास्य, दौर्झेय, पिप्पलायन, माण्डव्य पाण्डुनगर, और सौग्रीव आदि गुरुग्रह॥ ५ ॥ पारियात्रकुराष्ट्र, यामुन, उदुम्बर, राज्याव्ह, उज्जिहान, कालकोटिक और माथुर ॥ ६ ॥ पांचाल, धर्म्मारण्य, और उत्तर दक्षिणके, पंजावी कुरुक्षेत्री और सारस्वत, ये मनुष्य लीलाके पतिके पक्षके थे ॥ ७ ॥ अवन्ती (उज्जयिनी) वालोंकी रथोंकी पंक्ति, कुन्ति देशवाले तथा पांचनद देशवालोंके शस्त्रोंकी मारसे कम्पायमान होके भागती हुई जाके बडे भारी पर्वतपर गिरी ॥ ८ ॥

कोशवस्त्रावसानाश्चच्छिन्नावस्त्रवतीजनैः ॥ भूमौनिपतिताःसंतोमिलितामत्तवारणैः ॥ ९ ॥ शूरादाशपुराःशस्त्रनिकृत्तोदरकंधराः ॥ बाणक्षितिभिराक्रम्ययोजितायोजनेन्हदे ॥ १० ॥ दीर्णोदरविनिर्यातस्वांत्रतंत्रीनियंत्रिताः ॥ शांतिकाःशांतसंचाराःपिशाचैश्चर्विताःनिशि ॥ ११ ॥ उद्रवैर्भद्रगिरिभिःसंग्रामाध्वरदीक्षितैः ॥ क्षोणिगर्तेषुनिक्षिप्तामरगाःकमठाइव ॥ १२ ॥

अर्थ—इसप्रकार अन्य सेनाभी कोश वस्त्र आदिसे रहित होके मनुष्योंसे मरण अवस्थाको प्राप्त हुई, और दूसरे सेनाके योद्धागण मत्त हाथियोंसे मर्दित किये हुये पृथिवीपर गिर पडे ॥ ९ ॥ और दशपुरके शूरवीर जिनके उदर और कन्धे कटगये हैं, शस्त्रोंकी अधिकतासे पराजित होके भागते २ एक योजनपर न्हदमें जाके डूब गये ॥ १० ॥ अनेक शूरवीरके उर विदीर्ण होगये और अपने आंतोंके यंत्रमें निरुद्ध और गतिरहित शान्त होके पिशाचोंसे रात्रिमें चर्वितकर लिये गये ॥ ११ ॥ समररूपी दीक्षामें दीक्षित, अधिक वेग सहित भद्रगिरिवालोंने मरगोंको जलाशयोंमें ऐसे फेंक दिया जैसे कछुओंको ॥ १२ ॥

प्रद्रुताविद्रवद्रक्ताविद्रावितमहारयः ॥ दंडिकास्थानिलोद्भूताहैहयैर्हरिणाइव ॥ १३ ॥ दंतिदंतविनिर्भिन्नादरदादलितारयः ॥ नीतारक्तमहानद्याद्रुमाणांपल्लवाइव ॥ १४ ॥ नाराचैश्चर्विताश्चीनाजीर्णाजर्जरजीविताः ॥ जहुर्जलनिधौदेहान्भारभूतानिवस्थितान् ॥ १५ ॥ कर्णाटसुभटोड्डीनकुंताकलितकंधराः ॥ भग्नानलदशूराश्चतारकानिकराइव ॥ १६ ॥

अर्थ—जिन्होंने पूर्व कालमें अपने बडे २. शत्रुओंको भगादिया था ऐसे रक्तकी धारा बहाते हुये दण्डका नगरीवालोंको हैहय देशवालोंने ऐसे भगाया जैसे महा वेगवान् वायु हरिणोंको ॥ १३ ॥ जिन्होंने अपने शत्रुओंको दलन कर दिया था ऐसे दरद लोग हाथियोंके दांतोंसे विदीर्ण होके ऐसी दशाको प्राप्त हुये जैसे रक्तकी महानदीके वृक्षोंका नवीन पल्लव ॥ १४ ॥ बाणोंसे जीर्णदशाको प्राप्त जिनका जीवन जर्ज्जरीभूत होगयाहै ऐसे चीनदेशके निवासी समुद्रके तटपर अपने भारभूत शरीरोंको त्याग दिया ॥ १५ ॥ कर्णाटक देशके महान् वीरोंको उडते हुये भालोंसे जिनके कण्ठ कटगयेहैं ऐसे नलद देशके वीर कटके ऐसे गिरे जैसे तारागण ॥ १६ ॥

करींद्रमकरव्यूहरंहःसंहतहेतयः ॥ केशाकेशिकृतारंभाविनेदुर्दाशकाःशकाः ॥ १७ ॥ दशार्णाःपाश निर्मुक्तशृंखलाजालभीरवः ॥ निलीनारक्तजंबालेवेतसास्तिमयोयथा ॥ १८ ॥ गुर्जरानीकनाशेनगुर्जरी केशलुंचनम् ॥ विहितंतंगणोत्तुंगनासिशंकुशतैरणे ॥ १९ ॥ सिषिंचुःशस्त्रकर्णौघाद्विद्युद्भ्योनिगडागुहा न् ॥ शरधारावनानीववीरहेतिप्रभांबुदाः ॥ २० ॥

अर्थ—वहां हाथियोंके मगररूपी समूहोंके वेगसे जिनके अस्त्र शस्त्र नष्ट होगयेहैं ऐसे दाशक और शक लोग परस्पर केश पकडके युद्ध करतेहुये वडे स्वरसे चिल्लाने लगे ॥ १७ ॥ पाशदेशवालोंसे छोडेहुये शृंखला जालसे डरेहुये दाशार्ण लोग रक्तोंको कीचडमें ऐसे जा फंसे जैसे वेतोंके जडमें रहनेवाले तिमि नामक मत्स्य ॥ १८ ॥ तंगण लोग अपने पराक्रमसे गुर्जर (गुजरात) सेनाका नाश करके अपनी उछलतीहुई तलवारोंसे गुजराती स्त्रियोंके केश काटे और सैकडों मेख आदिसे उनके उपद्रव किये ॥ १९ ॥ कर्णोंके समान ऊपर शस्त्रोंको धारण करनेवाले वीरोंके समूहसे निकले हुये और शस्त्रोंकी प्रभारूपी विजुलियोंसे मेघोंके सदृश चेष्टा करतेहुये निगडनामक वीर गुहोंको बाणोंकी धाराकी वृष्टिसे ऐसे सींचा जैसे मेघ अपने बिन्दुओंसे वनोंको ॥ २० ॥

भुशुंडीमंडलोद्योतश्यामार्कोत्पातभीरुषु ॥ आभीरेष्वरयःपेतुर्गोगणाहरितेष्विव ॥ २१ ॥ कांतकांच नकांतासीत्ताम्रसंग्रामवाहिनी ॥ भुक्तागौडभटेनांगनखकेशनिकर्षणैः ॥ २२ ॥ रणेनगनयासंख्यकव च्चक्रनिकृंतनैः ॥ तंगणाःकणशःकीर्णाःकंकगृध्रेषुभासकैः ॥ २३ ॥ लगुडालोडनोड्डीनंगौडंगुडगुडा रवम् ॥ श्रुत्वागांधारगावोग्रेदुद्रुवुर्द्रविडाइव ॥ २४ ॥

अर्थ—भुशुण्डियोंके समूहके प्रकाशोंसे सूर्य्यमण्डल श्याम होजानेकेउत्पातसे डरेहुये आभीर नामक योधोंके ऊपर शत्रुलोग टूटके ऐसे जापडे जैसे हरित तृणोंके ऊपर गौओंका समूह ॥ २१ ॥ हे रामजी ! ताम्र नाम यवनोंकी सेनारूपी नायिका जिसका शरीर उत्तम सुवर्णके समान चमक रहाथा, उसको गौडदेशरूपी वीरने नखक्षत तथा केश लुंचन (केश पकडके खींचने आदिसे) भोग किया ॥ २२ ॥ जो संग्राममें असंख्य पर्वतोंकाभी नष्ट करतेहैं ऐसे शब्द करतेहुये चक्रोंसे छेदन करनेवाले भासक देश निवासी लोग तंगणनिवासियोंको कण २ करके काक और गीधोंके सन्मुख डाल दिया ॥२३॥ लगुडों (लाठियों) के भ्रमणसे उडते हुये गौड भटके गुड २ अस्पष्ट शब्दको सुनके द्रविडके समान गान्धार (कन्धार) देशरूपी गौ भाग निकसी ॥ २४ ॥

आकाशगार्णवप्रख्योवहच्छकदंबकः ॥ अकरोत्पारसीकानांघननैशतमोभ्रमम् ॥ २५ ॥ मंदराहन नोड्डीनस्वच्छक्षीरार्णवोदरे ॥ वनानीवायुधान्यासञ्छन्नप्रालेयसानुनि ॥ २६ ॥ यदंबुदैरिवोड्डीनंशस्त्र वृंदैर्नभोगणे ॥ तद्वृत्तंवीचिवलनैर्लोलैःप्लुतमिवार्णवे ॥ २७ ॥ शतचंद्रंसितच्छत्रैःशरैःशलभनिर्भरम् ॥ शक्तिभिःकिलनीरंध्रंदृष्टमाकाशकाननम् ॥ २८ ॥

अर्थ—आकाशमें प्राप्त समुद्रके तुल्य, नीलवस्त्रधारी महान् शकोंका समूह पारसीक देशवालोंको ऐसा भ्रम उत्पन्न किया मानों यह रात्रिका सघन अन्धकार है ॥ २५ ॥ इस कारण वहां युद्ध करनेवालोंके अस्त्रशस्त्र ऐसे प्रतीत होने लगे जैसे स्वच्छ क्षीरसमुद्रमें मन्दराचलके आघात उसके बन, और दर्शकोंको ऐसे मालूम होने लगा जैसे हिमालयके शिखरपर हिमालयके बन ॥ २६ ॥ हे रामजी ! जो शस्त्रोंके समूह मेघोंके समान आकाशमें उडे वे ऐसे भान होते थे, जैसे चंचल तरंगें अन्य तरंगोंसे मिलके समुद्रमें उछलके चलें ॥ २७ ॥ श्वेतछत्रोंसे सैकडों चन्द्रमा सहित और वाणरूपी शलभोंसे सर्वथा व्याप्त, तथा शक्तियोंसे छिद्र शून्य आकाश बनके सदृश देख पडने लगा ॥ २८ ॥

वीरासवसमाक्रंदकारिणःकैकयैःकृताः ॥ कंकैःकंककुलाक्रांतव्योमोद्धूलितमस्तकाः ॥ २९ ॥ किरात सैन्यकन्यानांकामंकलकलारवैः ॥ अंगैरनंगतांनीत्वामैरवैरिवगर्जितम् ॥ ३० ॥ काशैस्तद्हेहकाःक्रांता अदृश्यैर्मायायाखगैः ॥ निर्धूतपक्षैःक्षुभितैःपवनैरिवपांसवः ॥ ३१ ॥ उन्मत्ताःसुविनिर्धूतास्त्यक्तहेति रणांबराः ॥ नार्मदानर्मनिर्मोक्तृननृतुर्जहसुर्जगुः ॥ ३२ ॥

अर्थ—कैकयदेश निवासी अपने शत्रुओंको ऐसा करदिया कि वे वीर प्राणप्रयाण समयके सदृश चिग्घार करने लगे, और कंकदेश निवासी अपने शत्रुओंको ऐसा करदिया कि काकोंके समूहसे व्याप्त आकाशकी धूलिसे उनके मस्तक ढकगये ॥ २९ ॥ अंगदेश निवासियोंने, किरातोंकी सेनारूप कन्याओंके भयंकर गर्जनाके सदृश कलकल शब्दोंसे उनको निर्देहता (कन्यापक्षमें कामकी अधिकता) को प्राप्त किया ॥ ३० ॥ मायासे पक्षीका रूप धारण करके अतएव अदृश्य होके काशदेश निवासी (समुद्रके तटके मनुष्य विशेष) अपने तद्देहनाम शत्रुओंके ऊपर ऐसे आक्र-

मण किया, जैसे पक्षोंको कंपानेवाले संक्षुभित पवन धूलियोंपर ॥ ३१ ॥ भलीभांति शत्रुओंसे कंपाये हुये रणके आकाशमें शस्त्रोंको त्यागनेवाले नार्मदलोग युद्धसे उन्मत्त होके हास्यरचनापूर्वक नाचने, गाने, और हंसने लगे ॥ ३२ ॥

प्रक्कणत्किंकिणीजालंशक्तिवर्षमुपागतम् ॥ साल्वबाणानिलोद्भूतमगमत्स्वपदाकृति ॥ ३३ ॥ शैब्यास्तुखंडिताःकौंतैर्भ्रमत्कुंतैर्विघट्टिताः ॥ शवीभूतादिवंनीताद्दष्टाविद्याधराइव ॥ ३४ ॥ धराधरणधर्मिण्याधीरयाहीनसेनया ॥ लुंठिताःपांड्रनगराश्चलनोल्लासमात्रतः ॥ ३५ ॥ तंदेहकाःपांचनदैर्दलितामत्तकाशिभिः ॥ कुंतदंतद्रुमोद्दामानगाइवमतंगजैः ॥ ३६ ॥

अर्थ—जिसमें किंकणीके समूहके समान शब्द होरहे हैं ऐसी आई हुई शक्तिकी वृष्टि, साल्वलोगोंके बाणोंसे कम्पित होके नष्ट होगई ॥ ३३ ॥ अपने कुन्तों (भालों) को घुमाते हुये कुन्ति देशके मनुष्योंने शैब्योंके टुकडे २ कर डाले, और उनसे मर्दित मृतक होके आकाशमें प्राप्त किये हुये ऐसे देख पडनेलगे जैसे विद्याधर ॥ ३४ ॥ युद्ध भूमिको आक्रमण करनेवाली धीर अहीन देशके सेनाने अपनी गतिके विलास मात्रसे पाण्डनगरवालोंको लोटादिया ॥ ३५ ॥ कुन्त (भाला) हांथियोंके दांत और वृक्षोंके प्रहारमें अति निपुण तंदेहक लोग, युद्धमें पांच नदोंसे मर्दित किये हुये ऐसे शोभित हुये जैसे मत्त हांथियोंसे मर्दित वृक्ष ॥ ३६ ॥

ब्रह्मावत्सनकालीपैश्चक्रैःकृत्तागतामहीम् ॥ सहयाःक्रकचोत्कृत्तावृक्षाःकुसुमिताइव ॥ ३७ ॥ श्वेतकाकाननंलूनंकुठारैर्जठरैरितैः ॥ एतद्ददाहपार्श्वस्थोभद्रेशःशरवन्हिना ॥ ३८ ॥ काष्टयोधैनिरालानंमग्नाजीर्णामतंगजाः ॥ लयमाजग्मुरायुद्धमिद्धेग्नाविंधनंयथा ॥ ३९ ॥ मित्रगर्त्तास्त्रिगर्त्तात्ताभ्रमित्वोर्ध्वंतृणोपमम् ॥ विविशुर्ध्वस्तमूर्द्धानःपातालांतंपलायितुम् ॥ ४० ॥

अर्थ—अपने अश्व आदि सहित ब्रह्मा वत्सनक देशके निवासी नीप देशके निवासियोंके चक्रोंसे कटे हुये पृथिवीपर गिरके ऐसे शोभित हुये जैसे करांतीसे काटे हुये पुष्प सहित वृक्ष ॥ ३७ ॥ जठर देशके निवासियोंने श्वेत काक देश निवासियोंके अपने कुठारोंसे काट डाले, और निकटमें स्थित भद्रके स्वामीने शररूपी अग्निसे जठरोंकी सेनाभी भस्म करदी ॥ ३८ ॥ काष्ठ योध (देश विशेष) रूपी पंकमें बन्धनके विनाही जीर्ण (जर्जरीभूत) मत देश देशके निवासी फँसके युद्धके समाप्तितक ऐसे लय होगये जैसे प्रदीप्त अग्निमें इन्धन ॥ ३९ ॥ त्रिगर्तोंसे पकडेहुये मित्रगर्त लोग कुछकाल तृणके समान ऊपर भ्रमण करके भागनेके अर्थ पातालतक प्रवेश किया ॥ ४० ॥

मंदानिलचलांभोधिभासुरेमागधेबले ॥ निर्मग्नावलिनामंदाःपंकेजीर्णगजाइव ॥ ४१ ॥ चेदयश्चेतनांजह्रुस्तंगणानांरणांगणे ॥ पुष्पाणांपथिशीर्णानांसौकुमार्यमिवातपाः ॥ ४२ ॥ कौसलाःपौरवारावमसहंतोंतकाइव ॥ तैरुन्मुक्तगदाप्रासशरशक्त्यतिवृष्टयः ॥ ४३ ॥ बभूवुर्भल्लकृत्तांगाविस्मयाविद्रुमद्रुमाः ॥ इवाद्रौविद्रवंत्यार्द्रसांद्रासृक्सूर्यमूर्त्तयः ॥ ४४ ॥

अर्थ—मन्द वायुसे चंचल समुद्रके समान प्रकाशमान मगधदेशकी सेनामें मन्द वलिनदेशनिवासी ऐसे आके फँसे जैसे वृद्ध हांथी कीचडमें ॥ ४१ ॥ तंगण लोगोंकी रणभूमिमें चेदि देशके निवासी अपनी चेतनताको ऐसे त्याग दिया जैसे मार्गमें गिरेहुये पुष्प घामके कारणसे अपनी सुकुमारता (कोमलता) को ॥ ४२ ॥ दूसरोंको कालके समान मारनेवाले कोसलदेशनिवासी पौरवोंकी गर्जनाका सहन न करसके यहांतक कि उन्हों (पौरवों) ने उनको गदा, कुन्त, वाण और शक्तियोंकी वृष्टियोंसे आच्छादित करदिया ॥ ४३ ॥ उनमेंसे जिनके शरीर भालोंसे कटेथे वे भी दूसरोंके पराक्रममें आश्चर्य बुद्धिसे रहितथे, इसी कारण गाढे रुधिरोंके शरीरोंमें लपेटेहुये प्रातःकालके सूर्य्यके समान मूर्ति धारी मूंगोंके वृक्षके समान मानों पर्वत पर चारों ओर दौड रहे हैं ॥ ४४ ॥

नाराचौघमहाहेतिमरुताधूतमूर्त्तयः ॥ बभ्रमुर्भ्रमरानीकभासुराजलदाइव ॥ ४५ ॥ शरधाराधरामेघाःशरोर्णापूर्णमेषकाः ॥ शरपत्रावृतवृक्षाभ्रेमुस्तद्दर्जनागजाः ॥ ४६ ॥ वनराज्यजराजीर्णाःकंदाकस्थलजंतवः ॥ अत्रुटन्परमाकृष्टाःपेलवाइवतंतवः ॥ ४७ ॥ रथेषुध्वस्तचक्रेषुनिखातेऽसुत्रमूर्द्धसु ॥ निपेतुर्जनसंघातामेघाइववनाद्रिषु ॥ ४८ ॥

अर्थ—और कितने कोसलदेशनिवासी वाणोंके समूह तथा अन्य बडे २ शस्त्रोंसे कम्पित शरीर और भ्रमरोंकी सेनाके समान प्रकाशमान (शोभित) ऐसे भ्रमण करने लगे जैसे मेघ ॥ ४५ ॥ कोशल देशवालोंकी गर्जनासे उपलक्षित गज भ्रमण करते ऐसे शोभित हुये, जैसे शरधाराको धारण किये मेघ, शररूपी उर्णा (बाल) से पूर्ण मेष (भेष) और शररूपी पत्तोंसे आच्छादित वृक्ष ॥ ४६ ॥ हे रामजी ! कन्दाकस्थलके मनुष्य हस्ती आदि प्राणी बनरा-

ज्यनामक वृद्धावस्थासे ऐसे निर्बल कर दिये गये कि केवल खींचने मात्रसे कोमल सूत्रके समान टूट गये ॥ ४७ ॥ खंदक या गढ्ढोंमें अडनेसे रथोंकी पहिया आदि टूट जानेसे इन रथोंपर प्रहार करते हुये शत्रुओंके समूह ऐसे टूटे जैसे वन और पर्वतोंपर मेघ ॥ ४८ ॥

शालतालवनंप्राप्यजनतावलनंवनम् ॥ भुजावकर्त्तनंचासीदुत्तालंस्थाणुकाननम् ॥ ४९ ॥ ननर्दुर्नंदनोद्यानसुंदर्योमत्तयौवनाः ॥ वनोपवनदेशेषुमेरोर्वीरवराश्रिताः ॥ ५० ॥ तावत्तारारवंरेजेसैन्यकाननमुत्तमम् ॥ यावन्नपरपक्षेणप्राप्तंकल्पानलार्चिषा ॥ ५१ ॥ छिन्नाःपिशाचसंयुक्ताभूतापहृतहेतयः ॥ पात-यित्वाययुःकर्णान्दशार्णास्तर्णकाइव ॥ ५२ ॥

अर्थ—शाल और ताल बनोंके समान दो प्राणी समूहोंका समागम (मेल) हुआ उनके भुजा और शिरके कटनेसे ऐसी शोभा हुई जैसे ऊंचे ताल (शालोंका ऊर्द्धभाग काटनेसे तालके समान रहगये) और स्थाणुओं (ठूंठों) (तालोंका शिर काटनेसे ठूंठही रहगये) के बनकी ॥ ४९ ॥ मेरूके बन, उपवन, तथा समीप देशोंमें श्रेष्ठवीरोंके आश्रित यौवनसे मत्त सुन्दरी लोग नन्दनके उद्यान (वाटिका) में प्रसन्नता शब्द करने लगीं ॥ ५० ॥ सैन्यरूपी उत्तम बन उच्चस्वर तभीतक शोभित हुआ जबतक शत्रुके पक्षसे प्रलयकी अग्नि नहीं लगी ॥ ५१ ॥ भूत पिशाच प्रधान हैं जिनमें ऐसे कामरूपधारी जनपदोंके साथ युद्ध करनेवाले दाशार्णोंका अस्त्रशस्त्र भूतोंने छीन इसीसे गौओंके बछडोंके समान कान गिराके चले गये ॥ ५२ ॥

जह्रुर्भग्नेश्वराःकांतिंतांजिगीषवनौजसा ॥ कासयःकमलानीवशुष्कस्रोतस्विनौजसा ॥ ५३ ॥ तुषाकामेखलैःकीर्णाःशरशक्त्यसिमुद्गरैः ॥ विद्रुतानरकैःक्षिप्ताःकटकच्छलनाअपि ॥ ५४ ॥ कौंतक्षेत्राःप्रस्थवासैस्थित्वायोधिभिरावृताः ॥ गुणाइवखलाक्रांतागताव्यक्तमशक्तताम् ॥ ५५ ॥ द्विपयोबाहुधानानांक्षणेनादायमस्तकम् ॥ भल्लैःपलाय्याशुगताविलूनकमलाइव ॥ ५६ ॥

अर्थ—तांजिगीषवन नाम जनपदनिवासीयोंके तेजको मारे कासि जनपद (देश) वाले अपनी शोभाको ऐसे त्यागदिया जैसे तडाग आदिके पूरक झरनोंके सुखानेवाले ग्रीष्मके तेजसे कमल ॥ ५३ ॥ तुषाकामेखल नाम जनपदोंने शर शक्ति तलवार और मुद्गरोंसे शत्रुओंको आच्छादित करदिआ और नरक जनपदोंसे पराजित होके कटकच्छलन जनपद निवासीभी भाग खडेहुये ॥ ५४ ॥ हे रामजी ! अपने स्थानहीपर स्थित होके युद्ध करनेवाले प्रस्थवास जनपदवालोंसे कौन्त क्षेत्र निवासी ऐसे पराजित हुये जैसे दुष्ट पुरुषोंसे आक्रान्त (घिरेहुये) गुण अशक्तताको प्राप्त होजाय ॥ ५५ ॥ द्विपि जनपदनिवासी बाहुधान जनपदनिवासियोंके मस्तकोंको भालोंसे क्षणभरमें काट और लेके ऐसे चल दिये जैसे कमलोंके छेदन करनेवाले पुरुष ॥ ५६ ॥

मिथःसारस्वतानीत्वाआदिनांतंकृताजयः ॥ पंडिताइववादेषुनोद्विग्नानपराजिताः ॥ ५७ ॥ खर्वगाःखदिताःक्षुद्रायातुधानैःपरावृताः ॥ तेजःपरममाजग्मुःशांताग्नयइवेंधनैः ॥ ५८ ॥ कियदाख्यायतएतज्जिह्वानिचयैःकिलालमाकुलितः ॥ वासुकिरपिवर्णयितुंनसमर्थोरणवरंराम ॥ ५९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने जनपदवर्णनं नाम सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥

अर्थ—सरस्वती तीरके निवासी परस्पर दिनभरभी युद्ध करकेभी न तो घबराहट और न पराजयको ऐसे प्राप्त हुये जैसे वाद करनेमें पण्डित लोग ॥५७॥ पराजितभी क्षुद्र खर्वग लोग, लंकानिवासी यातुधानोंसे लौटाहुये ऐसे परम तेजको धारण किया जैसे इन्धनोंसे शान्त अग्नि॥५८॥हे रामजी ! इस श्रेष्ठ रणके विषयमें कहांतक कहा जाय, क्योंकि दो सहस्र जिव्हाओंसे वासुकि शेषभी इसको वर्णन करनेको घबराताहै और वहभी पूर्णरीतिसे वर्णन नहीं कर सकता ५९

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे लीलोपाख्याने जनपदवर्णनं नाम सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥

दिनके अन्तमें दोनों सेनाओंका युद्ध निवृत्त होनेपर रणभूमि पिशाच आदिसे भयंकर तथा घृणाके योग्य होगई इस विषयका वर्णन इस ३८ वे सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवमत्याकुलेयुद्धेसास्फोटभयसंकुले ॥ आदित्येतमसाव्रद्धेचटत्कठिनकंकटे ॥ १ ॥ वहत्यंबूत्पतंतीषुपततीष्वश्मवृष्टिषु ॥ नदीषुक्षेपणाच्छासुवरकेष्वब्जपंक्तिषु ॥२॥ मिथःफलाग्रकाटोत्थवह्निसीकारिणीषुच ॥ आयांतीषुप्रयांतीषुदूरंशरनदीषुच ॥ ३ ॥ वहल्लूनशिरःपद्मचक्रावर्त्तैस्तरंगितैः ॥ खार्णवेपूरितेहेतिवृंदमंदाकिनीगणैः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी! इसप्रकार ताल ठोककर लडनेवाले विजयशाली वीरोंसे पराजित योद्धाओंके भयसे पूर्ण युद्धके व्याकुल होनेपर, अन्धकारके आगमनसे सूर्य्यका महान् आकार होनेपर, और चटाचट शब्द काठिठ कवचोंसे रुधिररूपी जल वहनेपर और फेंकेहुये पाषाणरूपी बेनोलोंसे श्वेतवर्ण, और जिनमें पाषाणोंकी वृष्टि एकसेनासे ऊपरसे गिररहीथी, और दूसरीसे नीचेसे फेंकी जारहीथी शिररूप कमलोंसे संकोचको प्राप्त होतीहुई रुधिरकी नदियोंके बहनेपर ॥ १ ॥ २ ॥ शर तथा उनके फलोंके अग्रभागोंके परस्पर सम्मर्दनसे निकले अग्निके कणोंसे बिन्दुमय बाणोंकी नदियोंके दूरदेशसे आने जानेपर ॥ ३ ॥ बहते हुये शिर जिनमें कमल हैं, तथा चक्र जिनमें आवर्त (भ्रमणयुक्त जल) हैं ऐसे तरंगों सहित शस्त्रोंके समूहरूपी मन्दाकिनी (गंगा) के गणोंसे आकाशरूपी समुद्रके पूर्ण होनेपर ॥ ४ ॥

समीरणरणत्काणशस्त्रपूर्णघनैर्घनैः ॥ संदेहांतेषुसिद्धेषुकापिकच्छव्यथाप्रदैः ॥ ५ ॥ अष्टभागदशाशेषप्रतापमधुराकृति ॥ शस्त्रघातोजसावीरइवाहस्तनुतांययौ ॥ ६ ॥ श्रांताश्वेभाःप्रभग्नाश्चहेतिसंघातदीप्तयः ॥ दिवसेनसमंसेनायुर्मंदप्रतापताम् ॥७॥ अथसेनाधिनाथाभ्यांविचार्यसहमंत्रिभिः ॥ दूताःपरस्परंवृत्तायुद्धंसंन्हियतामिति ॥ ८ ॥

अर्थ—वायुके समान शब्द करते हुये शस्त्रोंसे पूर्ण होनेसे वर्षारंभकी संभवानासे जलमय देशमें कपियोंको काम व्यथादायक सघन मेघोंसे सिद्धोंके प्रलयका सन्देह होनेपर ॥ ५ ॥ प्रतापका आठवां भाग शेष रह जानेसे सौम्य आकारवाला दिन ऐसा शोभित हुआ जैसे शस्त्रोंके प्रहारोंसे रक्तछवि सहित बीर ॥ ६ ॥ घोडे तथा हाथियां थक गये, और कितने नष्ट होगये, तथा शस्त्रोंके समूहोंकी दीप्ति दिनके साथही मन्द प्रतापको प्राप्त हुये ॥ ७ ॥ अब इसके अनन्तर दोनों सेनाके स्वामियोंने मंत्रियोंसे विचार करके परस्पर दूत भेजा कि अब युद्ध बन्द करना चाहिये ॥ ८ ॥

तत्रश्रमवशान्मंदयंत्रशस्त्रपराक्रमैः ॥ रणसंहरणंकालेसर्वैरेवोररीकृतम् ॥ ९ ॥ ततोमहारथोत्तुंगकेतुप्रांतकृतास्पदम् ॥ बलयोरारुरोहैकएकोयोधोध्रुवोयथा ॥ १० ॥ सोंशुकंभ्रामयामाससर्वदिङ्मंडलेसितम् ॥ श्यामेवदीर्घशुद्धांशुंयुद्धंसंन्हियतामिति ॥ ११ ॥ ततोदुंदुभयोनेदुःप्रतिध्वनितदिङ्मुखाः ॥ महाप्रलयसंशांतौपुष्करावर्त्तकाइव ॥ १२ ॥

अर्थ—वहां थकावटके कारणसे यंत्र और शस्त्रोंके पराक्रम मन्द होजानेके कारणसे उससमय युद्धका बन्द होना सभीने स्वीकार करलिया ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर दोनों सेनाओंके महारथोंके झंडाके खम्भे थे उनपर एक २ बीर ऐसे चढा जैसे ध्रुव ॥ १० ॥ उन दोनोंने अपने २ झण्डोंपरसे जैसे रात्रि दीर्घ और शुद्ध किरणवाले चन्द्रमाको घुमाती है ऐसेही श्वेतवस्त्रको इस अभिप्रायसे घुमाया कि अब युद्ध बन्द करो ॥ ११ ॥ इसके अनन्तर सब दिशाओंके मुखको प्रतिध्वनित करनेवाले नगारे ऐसे बजे जैसे महाप्रलयके शान्त होनेपर पुष्करावर्तक मेघ ॥ १२ ॥

शरादिहेतिसरितोविस्तीर्णेगगनेस्थिते ॥ प्रवृत्ताःसुखमागंतुंसरसःसरितोयथा ॥ १३ ॥ योधदोर्द्रुमसंचारस्तनुतामाययौशनैः ॥ भूकम्पांतेवनस्पंदइवाभ्रांतइचार्णवः ॥ १४ ॥ विनिर्गंतुंप्रवृत्तेरणादथबलद्वयम् ॥ वारिपूरश्चतुर्दिक्षुप्रलयैकार्णवादिव ॥ १५ ॥ उत्क्षिप्तमंदरक्षीरसमुद्रवदनाकुलम् ॥ सैन्यंप्रशाम्यदावर्त्तंशनैःसाम्यमुपाययौ ॥ १६ ॥

अर्थ—विशाल आकाश देशमें बाण आदि अस्त्रोंकी नदियां प्रतिबन्ध रहित ऐसे गिरने लगीं जैसे मानस आदि सरोवरोंसे सरयू आदि नदियां ॥ १३ ॥ योद्धाओंके भुजारूपी वृक्षोंका संचार (गमनागमन) ऐसा न्यून होगया जैसे भूकम्पके अन्तके बनकी गति, अथवा शरदऋतुके अन्तमें नदियां ॥ १४ ॥ इसके अनन्तर रणभूमिसे दोनों सैन्य (सेना) जानेको ऐसे प्रवृत्त हुई जैसे प्रलयके अन्तमें चारों दिशाओंमें जलका प्रवाह ॥ १५ ॥ इसके पश्चात् धीरे २ सेना ऐसे शान्तिको प्राप्त हुई जैसे मन्दराचलपर्वतके बाहर निकालनेपर क्षीरसमुद्र ॥ १६ ॥

क्रमेणासीन्मुहूर्तेनविकटोदरभीषणम् ॥ अगस्त्यपीतार्णववच्छून्यमेवरणांगणम् ॥१७॥ शमसंततिसंपूर्णंवहद्रक्तनदाकुलम् ॥ परिकूजनझंकारपूर्णझिल्लिवनोपमम् ॥ १८ ॥ वहद्रक्तसरित्स्रोतस्तरंगारवघर्घ

रम् ॥ साक्रंदर्द्धमृताहृतसप्राणव्यग्रमानवम् ॥ १९ ॥ मृतार्द्धमृतदेहौघसृतासृक्प्लुतनिर्झरम् ॥ सजीवनरपृष्ठस्थशवस्पन्दनभ्रांतिदम् ॥ २० ॥

अर्थ—इसके अनन्तर क्रमसे मुहूर्तभरमेंही रणअंगण बिकट पूतनाके उदरके समान भयंकर और अगस्त्यऋषिके जल पीनेपर समुद्रके समान शून्य होगा ॥ १७ ॥ हे रामजी ! वह रणांगण, मुरदोंके समूहोंसे पूर्ण, रक्त वहते हुये नदोंसे व्याप्त, चारोंओर झंकार शब्द करते हुये शब्दसे पूर्ण होनेसे बनके सदृश ॥ १८ ॥ जिनमें रक्त वहरहे हैं ऐसे नदियोंके घर्घरशब्द संयुक्त, और अर्द्ध मृतकोंके विलापपूर्वक आव्हान प्राणसहित जहांपर व्यग्र होरहे हैं ॥ १९ ॥ मृत और अर्द्धमृत मनुष्योंके शरीरोंके समूहसे निकले हुये रुधिरसे जहां झरने चलरहे हैं, और जीव सहित मनुष्योंके पृष्ठोंपर स्थित मृतकोंके कारण जीवनकी भ्रांति देनेवाला ॥ २० ॥

करींद्रशवराश्यग्रविश्रांतांबुदखण्डकम् ॥ विशीर्णरथसंघातवातच्छिन्नमहावनम् ॥ २१ ॥ वहद्रक्तनदीरंहःप्रोह्यमानहयद्विपम् ॥ शरशक्त्यृष्टिमुसलगदाप्रासासिसंकुलम् ॥ २२ ॥ पर्याणावनसन्नाहकवचावृतभूतलम् ॥ केतुचामरपट्टौघगुप्तशवशरीरकम् ॥ २३ ॥ फणास्फुटकतूणीरकुंजकूजत्समीरणम् ॥ शवराशिपलालौघतल्पसुप्तपिशाचकम् ॥ २४ ॥

अर्थ—बडे मृतक हांथियोंकी राशिके अग्रभागमें जहां मेघ विश्राम कररहे हैं, टूटके रथोंके समूह जहांपर पडे हैं और उन्हींके वेगसे उत्पन्न वायुसे बडे वनभी कटके जहांपर गिरपडे है ॥ २१ ॥ वहती हुई रक्तकी नदीकें वेगसे जहां हाथी और घोडे बह रहे हैं, और शक्ति, ऋष्टि (दोनों ओर धारवाली तरवार) मुसल, गदा,कुन्त, और खड्गसे व्याप्त ॥ २२ ॥ पर्य्याण (पालान) अंग रक्षक और कवचोंसे जहांपर पृथिवी ढंकी है, और चामर केतु तथा पताकाओंसे मृतक शरीर ढके हैं ॥ २३ ॥ सर्पोंके सदृश ऊंचे हैं अग्रभाग जिनके ऐसे छिद्रके हुये तूणीरोंमें जहांपर वायु इस प्रकार शब्द कर रहाहै जैसे बासोंके बनोंके धनोंमें मुरदोंकी राशियोंके समूहरूपी पलाल (पुआर) की शय्योंपर भूतपिशाच आदि जहां सो रहे हैं ॥ २४ ॥

मौलिहारांगदद्योतशक्रचापवनावृतम् ॥ श्वशृगालकराकृष्टसांद्रांत्रादीर्घरज्जुकम् ॥ २५ ॥ रक्तक्षेत्र क्वणत्किंचिच्छेषजीवनृदंतुरम् ॥ रक्तकर्दमनिर्मग्नसजीवनरदर्दुरम् ॥ २६ ॥ वरांगकवचप्रख्यनिर्गताक्षिशतोच्चयम् ॥ वहद्भुजोरुकाष्ठौघघोररक्तसरिच्छतम् ॥ २७ ॥ साक्रंदबंधुवलितंमृतार्द्धमृतमानवम् ॥ शरायुधरथाश्वेभपर्याणासंवरांतरम् ॥ २८ ॥

अर्थ—चूडामणि तथा अंगदोंके प्रकाशोंसे मानों इन्द्रधनुषके समूहोंसे व्याप्त तथा कुत्ते और शृगालोंके हांथोंसे जहांपर सघन और लम्बी आंतरूपी रज्जु (रस्सी) खींची जारही हैं ॥ २५ ॥ रक्तके क्षेत्र (खेत) में जहांपर जिनके हात उपर लिये गये हैं ऐसे पुरुष घर्घर शब्दोंसे कुजरहें, और रक्तोंके कीचडमें कुछ जीवन सहित मनुष्यरूपी मेडक फंसरहे हैं ॥ २६ ॥ हे रामजी ! चित्रकवचोंके सदृश निकले हुये जहां सैकडों नेत्रोंके समूह पडे हैं, और जिनमें भुज तथा जंघारूपी काष्ठोंके समूह बहे जारहे हैं ऐसी सैंकडों भयंकर रक्तोंकी नदियां वह रही है ॥ २७ ॥ विलाप करते हुये वन्धुओंसे आच्छादित, अधमरे तथा सर्वथा मरे मनष्योंसे पूर्ण शर, तथा अन्य अस्त्रशस्त्र, रथ, और हांथी घोडोंके पर्य्याणों (पालानों) से जिसका मध्यभाग आच्छादित होगया है ॥ २८ ॥

नृत्यत्कबंधदोर्दंडमंडलानमितांबरम् ॥ मदमेदोवसागंधपीडार्द्रघ्राणकोटरम् ॥ २९ ॥ उत्तालवर्द्धमृतेभाश्वमार्यमाणाल्पजीवितम् ॥ वहद्रक्तनदीवीचिप्रहारहतदुंदुभि ॥ ३० ॥ उह्यमानमृतेभाश्वमकरासृक्सरिच्छतम् ॥ म्रियमाणनराणीकफूत्कृतासृक्प्रणालिकम् ॥ ३१ ॥ स्वल्पजीवशरापूर्णमुखदृक्क्रांतितस्वनम् ॥ पिंडभार्यावसागंधवातांतोत्पीठलोहितम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—नाचते हुये कबन्धोंसे, और भुजदण्डोंके समूहोंसे जिसने आकाशको भी नीचा देखा दिया है, मद मेदा और चर्वीकी दुर्गन्धिकी पीडासे नासिकाके छिद्र जहां पूर्ण होरहेहैं ॥ २९ ॥ ऊपर तालु किये हुये मृतकहांथी घोडोंसे अल्प जीवन सहित मनुष्य जहां मारे जारहे हैं और वहती हुई रक्तोंकी नदियोंके तरंगोंके आघातसे जहां नगाडे वजरहेहैं ॥ ३० ॥ रक्तोंकी सैंकडों नदियोंमें मृतक हाथी घोडेरूपी मकर (मगर) आदि जहां बहरहेहैं, और मरतेहुये मनुष्योंके फूत्कारसे मुखोंसे रुधिरोंकी वडी २ नालियां जहां निकलरहीहैं ॥ ३१ ॥ बाणोंसे पूर्णहै मुख और नेत्र जिनके ऐसे अल्प जीवन सहित मनुष्य जहांपर वडे विलापसे तार बांधके रोरहे हैं, पिणु भार्य्या (बाईं ओर की कोखमें स्थित मांकी गांठ) की दुर्गन्ध सहित वायुके स्पर्श मात्रसे जहां रुधिर जम जाताहै ॥ ३२ ॥

उन्नासार्द्धमृतेभेंद्रकराक्रांतकबंधकम् ॥ निरधिष्ठितहस्त्यश्वपातितोच्चकबंधकम् ॥ ३३ ॥ रुदत्क्रंदत्परिभ्रष्टशवक्षुब्धासृगुद्धति ॥ मृतभर्तृगलेशस्त्रत्यक्तप्राणकुलांगनम् ॥ ३४ ॥ सेनोत्क्रांतततक्षिप्रबहुपांथपरीक्षणम् ॥ शवहारकराकृष्टसप्राणानुचराकुलम् ॥ ३५ ॥ केशशैवालवक्त्राब्जचक्रावर्तनदीशतम् ॥ तरत्तुंगतरंगाढ्यवहद्रक्तमहानदम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—ऊंची नाकवाले अर्द्धमृत बडे २ हांथियोंने अपने सूण्डोंसे कवन्धों (शिररहित मनुष्यों) को जहां-पर प्रकड़लिया है और सवारोंके मर जानेसे स्वतन्त्र हांथी और घोडोंने जहांपर ऊंचे २ कबन्धोंको गिरादियाहै ॥ ३३ ॥ रोते हुये अति करुणासे विलाप करतेहुये तथा गिरते हुये मृतक शरीरोंसे जहांपर रुधिर उछल रहाहै, मृत पतिओंके गलेमें आलिंगन करके दैवगतिसे शस्त्रोंके आघातसे प्राणरहित कुलांगना जहांपर व्याकुल हो रहींहैं ॥ ३४ ॥ संस्कार करने योग्य मनुष्योंको लेजानेके अर्थ आज्ञा दीहुई सेनासे निकले हुये भाले शीघ्र प्रवृत्त पथिकोंसे अपने मृतकोंकी परीक्षा जहांपर कीगईहै तथा अपने अभिलषित मृतकोंको खोजनेके अर्थ मृतकोंके लेजानेवाले मनुष्योंकी शीघ्रतासे हांथोंसे खींचे हुये दास वर्गोंसे व्याप्त ॥ ३५ ॥ केशरूपी शैवाल, मुखरूपी कमल, और चक्ररूपी आवर्त (भंवरेह) जिनमें हैं ऐसी सैंकडों नदियां जहां निकलरहीं है और तैरते हुये ऊंचे २ घोडोंरूपी तरंगोंसे पूर्ण रक्त महानद जहां वह रहेहैं ॥ ३६ ॥

अंगलग्नायुधोद्धारव्यग्रार्द्धमृतमानवम् ॥ विदेशमृतसाक्रंदहृतांगगजवाजिनम् ॥ ३७ ॥ प्राणांतस्मृतपुत्रेष्टमातृदेवपराभिधम् ॥ हाहाहीहीतिकथितमर्मच्छेदनवेदनम् ॥ ३८ ॥ म्रियमाणमथीजिष्ठद्विष्टप्रारब्धसंचयम् ॥ दंतियुद्धासमर्थाग्रमृतदेहेष्टदैवतम् ॥ ३९ ॥ म्रियमाणमहावज्ञाशूराश्रितपलायनम् ॥ अशंकितासृगावर्तभीमास्पदगमोत्सुकम् ॥ ४० ॥

अर्थ—अधमरे मनुष्योंके शरीरोंमें लगे अस्त्रशस्त्रोंके निकालनेमें जहां मनुष्य तत्पर होरहे हैं, और विदेशमें मरनेवालोंके आभूषण और घोडे हांथी आदि विलाप पूर्वक जहां दिये जारहे है ॥ ३७ ॥ और जहां प्राणके अन्तसमयमें किसीने अपने ज्येष्ठपुत्रको, किसीने माताको, किसीने इष्टदेवको, और किसीने परमात्माके नामको स्मरण कियाहै, और कितने मर्मच्छेदी पीडाकारी हाहा हीही शब्द जहां कह रहे हैं ॥ ३८ ॥ और कितने मनुष्य पराक्रम विना किये मरते समय अपने वली प्रारब्ध कर्म्मोंकी निन्दा कर रहे हैं, और कितने हांथियोंके युद्धमें असमर्थ होनेसे, हांथियोंके आगे फेंकनेपर अपने मृतक समान देह (भयसे) से अपने इष्टदेवोंकी प्रार्थना (बचजाय इसलिये) की है ॥ ३९ ॥ और कितने कातर लोग मरनेवालेको पैरोंसे कुचलना रूप बडा अपराध करके भागने लगे इसी कारण रुधिरके भयानक भंवरेह जहां चल रहे हैं वहांभी शंका रहित होके भागनेहीमें प्रवृत्त हैं ॥ ४० ॥

मर्मच्छेदशराघातव्यथाविदितदुष्कृति ॥ कबंधबंधप्रारब्धवेतालवदनाक्रमम् ॥ ४१ ॥ उह्यमानध्वजच्छत्रचारुचामरपंकजं ॥ किरत्संध्यारुणंदिक्षुतेजस्कंरक्तपंकजम् ॥ ४२ ॥ रथचक्रधरावर्तरक्तार्णवमिवाष्टमम् ॥ पताकाफेनपुंजाढ्यंचारुचामरबुद्बुदम् ॥ ४३ ॥ विपर्यस्तरथंभूमिपंकमग्नपुरोपमम् ॥ उत्पातवातनिर्धूतद्रुमंवनमिवाततम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—और कितने मर्मको भेदन करनेवाली शस्त्रोंकी चोटकी पीडासे अपने पूर्वजन्मके पापोंको जहां स्मरण किया है, और जहां भागते हुये कवन्धों (शिररहितों) को वांधकर रुधिर पीनेको वेतालादिकोंने अपने मुखोंको प्रवृत्त कियाहै ॥४१॥ और रक्तन्हदोंमें ध्वजा, छत्र, और उत्तम चमररूपी श्वेतकमल जिनमें वह जाते हैं और उन्हीं रक्तन्हदोंमें सन्ध्याके प्रतिविम्ब पडनेसे तेज समूहरूप रक्तकमल मानों दिशाओंमें जहां विखर रहे हैं ॥४२॥ पताकारूपी फेनसमूहोंसे व्याप्त और उत्तम चामररूपी जिसमें बुद्बुदहै, रथरूपी पर्वतोंसे पूर्ण और चक्ररूपी आवर्तोंसे युक्त रक्तसे पूर्ण ऐसा आठवें समुद्रके समान शोभित हुआ ॥ ४३ ॥ उलट पुलट होगये हैं रथ जिसमें ऐसे पृथिवीके कीचडमें फँसे हुये नगरके सदृश, और उत्पातके वायुसे कंपागये हैं वृक्ष जिसके ऐसे वनसे व्याप्त ॥ ४४ ॥

कल्पदग्धजगत्प्रख्यंमुनिपीतार्णवोपमम् ॥ अतिवृष्टिहतंदेशमिवप्रोज्झितमानवम् ॥ ४५ ॥ कलापकुंतवलितंभुशुंडीमंडलाकुलम् ॥ मत्तनागशताकारशवतोमरसुद्गरम् ॥ ४६ ॥ शिलाशिखरसंजाततालजालमिवाततम् ॥ तरद्रक्तनदीतीरजातकुंतोन्नतद्रुमम् ॥ ४७ ॥ नागांसस्यूतहेत्योघरक्षांशुकुसुमाकुलम् ॥ कंकरुग्णांत्ररसनावृंदजालकितांबरम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—प्रलयके अग्निसे भस्मीभूत जगत्के समान, अगस्त्यमुनिने जिसका जल पीलियाहै ऐसे समुद्रके सदृश, अति वृष्टिसे नष्ट मनुष्यरहित देशके तुल्य ॥ ४५ ॥ भूषण, और कुन्तों (बर्छियों) से व्याप्त, भुशुंडियोंके समूहसे

पूर्ण, और सैंकडों हांथियोंके आकार मृतक शरीर, और सर्पोंके मुद्गर जहांपर विद्यमानहैं ॥ ४६ ॥ उस रक्तकी नदीके तटपर उत्पन्न कुन्तरूपी ऊंचे वृक्ष ऐसे भान होतेहैं, मानों शिलाके शिखरोंपर उत्पन्न तालवृक्षोंके समूहसे व्याप्तहै ॥४७॥ बडे २ हांथियोंके अंगोंमें विधेहुये शस्त्रोंके समूहरूपी वृक्षोंके किरणरूपी पुष्पोंसे पूर्ण, और काकोंसे खींचीहुई आंतरूपी रस्सियोंके समूहसे मानों आकाश जालोंसे छागयाहै ॥ ४८ ॥

असृक्सरित्तीरजातकुंतोन्नतवनद्रुमम् ॥ असृक्सरोवरोर्ध्वस्थपताकानलिनीगणम् ॥ ४९ ॥ रक्तकर्दम निर्मग्नराहूतसुहृज्जनम् ॥ करींद्रकुणपापाततिर्यङ्मग्नजनेक्षितम् ॥ ५० ॥ छेतिलूनलतैर्वृक्षैः संदिग्धार्द्धकबंधकम् ॥ असृङ्नदीवहद्धस्तिकटकर्पटनौगणम् ॥५१॥ रक्तस्रोतःस्फुरच्छुक्लवस्त्रडिंडीरपिंडकम् ॥ संचारनियतक्षिप्रभृत्यविच्छिन्नमानवम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—रुधिरकी नदीके तट मानों कुन्त (भाला या बर्च्छी) बडे वृक्षोंके वनसहित, और रुधिरके तडागमें ऊंची पताकारूपी कमलिनीयोंके गण सदृश ॥ ४९ ॥ और रक्तके कीचडमें फंसे हुये मनुष्य जहां अपने इष्टमित्रोंको बुलारहेहैं, और बडे २ मृतक हांथियोंसे कुछ निकलेहुये, अतएव कटि (कमर) आदि जिनके टूटगयेहैं, ऐसे मनुष्य जहां दीख रहेहैं ॥ ५० ॥ अस्त्र शस्त्रोंसे लता जिनकी कटगई हैं ऐसे वृक्षोंसे जहां अर्द्ध कबन्धोंका सन्देह होताहै, और रक्तकी नदीमें बहतेहुये हांथीके गण्डस्थल और उनके पालानके वस्त्ररूपी जहां नौकाओंके समूहहैं ॥ ५१ ॥ रक्तोंके झरनोंमें प्रकाशमान श्वेत वस्त्ररूपी जहां फेनके पिण्डहैं, और मृतकोंको लेजानेके अर्थ आज्ञा दिये शीघ्र कार्य्यकारी भृत्योंने जहांपर मनुष्योंको पृथक् करलियाहै ॥ ५२ ॥

इतश्चेतश्चनिपतत्कबंधनवदानवम् ॥ ऊर्ध्वस्थूलाक्षचक्रौघच्छिन्नसैन्यद्रवज्जनम् ॥ ५३ ॥ रक्तनिःस्वनभांकारफेत्काराद्धमृतारवम् ॥ शिलामुखलल्द्रक्तधाराधूतरजःखगम् ॥ ५४ ॥ सुतालोत्तालवेतालतालतांडवसंकटम् ॥पर्यस्तरथदार्वंतरर्द्धांतरितसद्भटम्॥५५॥ अंतस्थसजीवभटस्पंदिस्पंदनभीतिदम् ॥ रक्तकर्दमपूर्णास्यकिंचिज्जीवकृपाच्छवम् ॥ ५६॥

अर्थ—और कबन्धोंके ऊपर इधर उधरसे नये २ दानव जहांपर आके गिर पडतेहैं और ऊपर स्थित बडे मोटे अनेक छिद्रवाले चक्रोंसें कटे हुये सेनाके मनुष्य इधर उधर चलायमान हो रहे हैं ॥५३॥ रक्तके शब्दोंके साथ भांकाररूप अर्द्धमृत प्राणियोंके शब्द जहां हो रहेहैं, तथा शिलाओंके ऊपर वहती हुई रक्तकी धाराको पीनेके लिये काक आदि पक्षी अपने पंखोंसे धूलियोंके उडाके जहां जारहेहैं ॥ ५४ ॥ और सुन्दर ताल वृक्षोंके समान ऊंचे वेताल तालके साथ भयंकर ताण्डवनृत्य जहांपर प्रारम्भ करदियाहै, और उलटे रथोंके काष्ठोंमें आधी शरीरोंसे कुछ जीवन सहित वीर जहां विद्यमानहैं ॥५५॥ सेनाके मध्यमें किंचित् जीवन सहित वीरोंकी गतिसे भयदायक और रक्तके कीचडसे पूर्ण है मुख जिनका ऐसे किंचित् जीव सहित मृतक मनुष्योंके ऊपर जहां अन्तःकरणसे करुणा सहित मनुष्य देख रहेहैं॥५६॥

किंचिज्जीवनरोद्ग्रीवद्वःखदृष्टश्वबायसं ॥ एकामिषोत्कक्रव्यादयुद्धकोलाहलाकुलम् ॥ एकामिषार्थयुद्धेद्धामृतक्रव्यादसंकुलम् ॥ ५७ ॥ विवृत्तासंख्याश्वद्विरदपुरुषाधीश्वरथप्रकृत्तोष्ट्रग्रीवाप्रसृतरुधिरोद्गारसुसरित् ॥ रणोद्यानंमृत्योस्तदभवदशुष्काायुधलतंसशैलंकल्पांतेजगदिवविपर्यस्तमखिलम् ॥ ५८॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने आहववर्णनं नाम अष्टत्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥

अर्थ—और हे रामजी ! अल्प जीवन सहित मनुष्य गला उठाके दुःखसे कुत्ते तथा काकोंको देखतेहैं, और एक मांस खानेके अति अभिलाषी कच्ची मांस खानेवालोंके युद्धके कोलाहलसे पूर्ण इसीकारण एक मांसके अर्थी युद्धकी चेष्टासे मृत क्रव्यादों (कच्ची मांस खानेवालों) सेभी व्याप्त ॥५७॥ विशेष रीतिसे मरेहुये हांथी पुरुष और उनके स्वामी तथा रथोंपरसे और कटेहुये ऊंटोंके गलोंसे शोभायमान रक्तोंकी उत्तम नदियां जहां निकल रही हैं तथा रक्तोंके सिंचनसे अस्त्रशस्त्ररूपी लता जहां पल्लव सहित हरी होरहीं हैं और पर्वत सहित सम्पूर्ण जगत् जहां विपर्य्यभावको प्राप्त होगयाहै ऐसा वह रणक्षेत्र इसप्रकार शोभित हुआ जैसे मृत्युका उद्यान (वाटिका) ॥ ५८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे लीलोपाख्याने आहववर्णनं नाम अष्टत्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥

सूर्य्यका अस्त रक्षस् तथा वेतालादि व्याप्त सन्ध्या और रात्रिमें भयंकर तथा घृणाके योग्य रणस्थान इन विषयोंका वर्णन इस ३९ वे सर्गमें किया गया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथवीरइवारक्तःकालेनास्तमितोरविः ॥ अस्त्रतेजःपरिम्लानप्रतापोऽब्धौसमुज्झितः ॥ १ ॥ रणरक्तरुचिर्व्योमदर्पणप्रतिबिंबिता ॥ जहौसूर्यशिरश्छेदेसंध्यालेखोदभूत्क्षणम् ॥ २ ॥ भूपातालनभोदिग्भ्यःप्रलयाब्धिजलौघवत् ॥ समाजग्मुस्तनतालावेतालावलयाइव ॥ ३ ॥ मृष्टध्वांतासिवलितेदिननागेंद्रमस्तके ॥ संध्यारागारुणंकीर्णंतारानिकरमौक्तिकम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी! इसके अनन्तर काल पाके वीरके समान रक्तवर्ण, सूर्य्य ऐसे अस्त हुये मानों अस्त्रोंके तेजसे मन्द प्रताप होनेके कारण समुद्रमें गिरा दिये गये ॥ १ ॥ सूर्य्यरूपी अश्ववार (असवार) का शिर कटनेपर पूर्वकालमें आकाशरूपी दर्पणमें जो रक्तछवि प्रतिबिम्बित थी उसको आकाशसे त्यागकर और क्षणभरमेंही आके सन्ध्या प्राप्त होगई ॥ २ ॥ पृथिवी, पाताल, आकाश, तथा आठों दिशाओंसे करताली बजाते हुये वलयाकार झुंडके झुण्ड वेताल ऐसे प्राप्त हुये, जैसे प्रलयकालके जलका समूह ॥ ३ ॥ शाणपर तिखी कीहुई अन्धकाररूप तलवार दिनरूपी नागेन्द्र (बडे हाथी) का मस्तक कटनेपर, संध्याके राग (रक्त) से अरुण (लाल) वर्ण तारागणरूपी मोतियों (गजमोतियों) का समूह आकाशमें बिखर गया ॥ ४ ॥

निःसत्वेषुतमोंधेषुरसनारसशालिषु ॥ संकोचमाययुःपद्माभृतानांहृदयेष्विव ॥ ५ ॥ मीलत्पक्षाःक्षणात्सुप्ताःकृच्छ्रप्रोच्छ्रितकंधराः ॥ कुलायेषुखगाआसञ्छवांगेष्विवहेतयः ॥ ६ ॥ आसन्नचंद्रसुभगालोकाःकुसुमपंक्तयः ॥ उल्लसद्धृदयाजातावीरपक्षेष्विवश्रियः ॥ ७ ॥ रक्तवारिमयीसायमंगगुप्तशिलीमुखा ॥ संकुचद्वक्त्रपद्माभूद्रणभूमिरिवाब्जिनी ॥ ८ ॥

अर्थ—हंसादि रूप जन्तु वा प्राणोंसे रहित होनेपर अन्धकार वा मोहसे आन्ध्य होनेपर जलसे वा प्रेमसे शोभायमान तडागोंमें भ्रमरादिसे बाणोंसे शब्द करते हुये कमल ऐसे संकोचको प्राप्त हुये जैसे मृत वीरोंके हृदय ॥ ५ ॥ पक्ष जिनके मिल रहे हैं कठिनतासे जो अपनी कन्धरा उठानेके योग्यहैं ऐसे पक्षीगण अपने २ घोसलोंमें क्षणमें ऐसे सोगये जैसे मृतक प्राणियोंके शरीरमें अस्त्र शस्त्र ॥ ६ ॥ चन्द्रमाके समीपस्थ होनेसे सुभग दर्शन क्रमदोंकी पंक्ति ऐसे शोभित हुई, जैसे वीर पक्षकी लक्ष्मी ॥ ७ ॥ रक्तरूपी जलसे पूर्ण, वीरोंके अंगोंमें बाणरूपी भ्रमर जिसमें छिपे हैं, और मुखरूपी कमल जहां संकुचित होरहे हैं, ऐसी वह रणभूमि इसप्रकार शोभित जैसे सन्ध्याकालमें कमलिनी ॥ ८ ॥

उपर्यभूद्व्योमसरस्ताराकुमुदमंडितम् ॥ अधस्त्वभूद्वारिसरःस्फुरत्कुमुदतारकम् ॥ ९ ॥ तमस्यपेतभीतानिभूतानिमिलितान्यलम् ॥ पर्यासीवविसेतुर्निप्रसृतानिदिशंप्रति ॥ १० ॥ आसीद्रणांगणंगायद्वेतालकुलसंकुलम् ॥ क्वणत्कंकालकांकस्यकंककाकोलकेलिमत् ॥११॥ अथकाष्ठचिताज्वालसतारांबरभास्वरम् ॥ पचत्पचपचाशद्भिमेदोमांसमयानलम् ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी! ऊपर तो आकाशरूपी सरोवर तारागणरूपी कुमदों (रात्रि कमलों) से शोभित हुआ, और नीचे भूतलका सरोवर कुमुदरूपी तारागणोंसे शोभित हुआ ॥ ९ ॥ जो पूर्वमें वियुक्तथे वे पीछे मिलनेसेभी अन्धकारमें आपसमें परिचय (मेल) न होनेसे भयभीत होके दिशाओंमें ऐसे फैल गये जैसे पुल टूटनेपर जल ॥ १० ॥ हे रामजी! वह रणरूपी अंगण (आंगन) गाते हुये वेतालोंसे व्याप्त, तथा मृतक शरीरोंपर स्थित जो काक ग्रीध्र आदि पक्षी उनका क्रीडास्थान होगया ॥ ११ ॥ हे रामजी! इसके अनन्तर वीररूपी काष्ठोंकी चिताकी ज्वालासे प्रदीप्त वह रणांगण ऐसे शोभित हुआ जैसे तारासहित आकाश और पचपचा शब्दोंके साथ मेदा और मांसमय अग्निमें सब कुछ जहां पक रहाहै ॥ १२ ॥

सर्वांगास्थिस्फुटास्फोटस्फुटाश्चितिचयोन्मुखम् ॥ वेतालललनारब्धजललीलातिरोहितम् ॥ १३ ॥ श्वकाकयक्षवेतालतालकोलाहलोल्बणम् ॥ गमागमेनभूतानांसमुड्डीनवनोपमम् ॥ १४ ॥ रक्तमांसवसामेदोहरणव्यग्रडाकिनि ॥ चर्वितास्रग्वसामांसस्रवत्स्रक्पिशाचकम् ॥ १५ ॥ मध्यमध्यचितालोकप्रकटास्तृक्शवव्रजम् ॥ विरूपिकानीयमानस्वांसन्यस्तमहाशवम् ॥ १६ ॥

अर्थ—और सब अंगोंको हड्डियोंके आस्फोट शब्दोंसे चिताओं समूहही जहां वीरोंके सदृश प्रकाशमान होरहे हैं और वेतालोंकी स्त्रियां जहां क्रीडा आरम्भ करदियाहै और पुनः उसीमें लोप होगई हैं ॥ १३ ॥ कुत्ते, काक, यक्ष,

वेताल महान् कोलाहलोंसे अति भयंकर, और भूतप्रेतादिके गमनागमनसे उडते हुये वनके सदृश ॥ १४ ॥ रक्त, मांस, चर्बी, और मेदा आदि आदिके हरनेमें डाकिनी गण जहां व्याकुल होरहे हैं, और रुधिर सहित मांसके भक्षणसे रुधिर जिनसे वह रहेहैं ऐसे ओष्ठवाले पिशाच जहां विद्यमानहैं ॥ १५ ॥ और चिताओंके मध्य २ में प्रकट रुधिर बहाते हुये मृतकोंको पिशाच लोग जहां देख रहेहैं और जहांपर पूतना लोग अपने शरीरोंपर रखके बडे २ मुरदोंको लिये चली जारही हैं ॥ १६ ॥

उत्तांडवोग्रकुभांडमंडलोड्डामरोदरम् ॥ छमिच्छमितप्रलापांतमेदोसृग्बाष्पसांबुदम् ॥ १७ ॥ वहद्रक्तनदीरंहोरूढभूचररूपिकम् ॥ वेतालकुलकंकालकर्षणाकुलकाकलम् ॥ १८ ॥ मृतेभोदरमंजूषासुप्तवेतालबालकम् ॥ विविक्तैकरणोद्देशपानक्रीडास्थराक्षसम् ॥ १९ ॥ मत्तवेतालकलहचितालातरणोज्ज्वलम् ॥ वहद्रक्तवसामिश्रगंधबंधुरमारुतम् ॥ २० ॥

अर्थ—उद्धत ताण्डवनृत्यमें व्यग्र पिचण्डिल नामक पिशाचोंसे प्रचण्ड होरहाहै उदर (मध्यभाग) जिसका ऐसा, और छम २ शब्दके सदृश मृतकोंके मुखमें जहां ज्वालाके शब्द होरहे हैं, और मेदा तथा रुधिरके आर्द्र धूमोंसे मेघके सदृश ॥ १७ ॥ वहती हुई रक्तकी नदीके वेगमें भूचरीके समान पूतनाने जहां अपने पांव रोप दिये हैं, और वेतालोंके समूह मृतक शरीरोंके खींचनेमें अपने कुलके उचित हर्षके कल २ शब्द जहां कर रहे हैं ॥ १८ ॥ मृतक हांथियोंके उदर रूपी पेटारियोंमें जहां वेतालोंके बालक सो रहे हैं, और रणके एकान्त देशमें जहांपर राक्षसलोग अपनी पानक्रीडा आरंभकर दीहै ॥ १९ ॥ चिताओंके उन्मुक लेके जो मत्त वेताल कलहकर रहे हैं उससे अति प्रकाशमान, रक्त और चर्बीसे मिलकर गन्ध वहोनेसे वायुभी जहां वक्ररूप होरहाहै ॥ २० ॥

रूपिकापेटिकावांतारणद्रटरटारवम् ॥ अर्द्धपक्वशवास्वादलुब्धयक्षोल्लसत्कलि ॥ २१ ॥ तुंगवंगकलिंगांगतंगणांगलगत्खगम् ॥ तारापातोपमहसत्संमुखज्वालरूपिकम् ॥ २२ ॥ पतद्वेतालसोल्लासमध्यस्थासृग्विरूपिकम् ॥ पिशाचाकर्णिताभ्यर्णयोगिनीगणनायकम् ॥ २३ ॥ प्रसृतांत्रमहातंत्रीप्रायसंपन्नवादनम् ॥ पिशाचवासनोत्क्रांतपिशाचीभूतमानवम् ॥ २४ ॥

अर्थ—और पूतनाओंकी पेटारियोंमें वमनके कारणसे जहां रटरटा शब्द होरहेहैं, और अधपके मृतकोंका स्वादलेनेमें लोभी यक्षोंका कलह जहां शोभायमानहैं ॥ २१ ॥ तुंग, वंग, कलिंग, अंग और तंगण आदि देशोंके मनुष्योंके शरीरोंमें निशाचररूपी पक्षी जहां लगरहेहैं संमुख ज्वाला कियेहुये तारागणोंके समान दांत लेके पूतना लोग जहां हंस रही है ॥ २२ ॥ रक्तकी चिकनाईसे वेताल लोग जहां गिररहे हैं, उनके बीचमें हँस्ती हुई पूतना लोग आके प्राप्त होगई हैं, और जहांपर पिशाचोंने अपने समीप आतेहुये योगिनियों गणके नायकोंको सुनाहै ॥ २३ ॥ चारों ओर फैलीहुई आंतोंसे जहांपर बडी भारी वीणाका बाजा सिद्ध होगयाहै और पिशाचोंकी वासनासे निकल हुये मनुष्यभी जहां पिशाचोंके तुल्य होगयेहैं ॥ २४ ॥

रूपिकालोकनापूर्वत्रासार्द्धमृतसद्भटम् ॥ क्वचिद्वेतालरक्षोभिरपरीपूर्णमद्रकम् ॥ २५ ॥ स्वरूपिकास्कंधपतच्छवत्रस्तनिशाचरम् ॥ नभःसंघट्टितापूर्वभूतपेटकसंकटम् ॥ २६ ॥ अतिप्रयत्नापहृतम्रियमाणनरामिषम् ॥ स्वभक्ष्यापेक्षपक्षेषुविक्षिप्तशवराशिमत् ॥ २७ ॥ शिवामुखानलशिखाखंडोत्थमितिरक्तगैः ॥ समुड्डीननवाशोकपुष्पगुच्छमिवाभितः ॥ २८ ॥ कबंधकंधराबंधव्यग्रवेतालबालकम् ॥ यक्षरक्षःपिशाचादिकचदाकाशगोल्मुकम् ॥ २९ ॥ आकाशभूधरनिकुंजगुहांतरालडिंडिोपमंडिततमोंबुदपीठपूरम् ॥ व्यालोलभूतरभसाकुलकल्पवातव्याधूतलोककरकांडकपेटकल्पम् ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने निशाचराकुलरात्रिरणांगणवर्णनं नाम एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥

अर्थ—और हे रामजी ! पूतनाओंके देखनेसे अपूर्व त्रास उत्पन्न होनेसे उत्तम वीरभी जहां अर्द्ध मृतकके समान होगयेहैं और कहीं वेताल तथा रक्षोगणके उपद्रवसे मंगलोत्सव अपरिपूर्ण होगयाहै ॥ २५ ॥ कहां निज पूतनाओंके कन्धोंसे मुर्दोंके गिरते देखकर निशाचरभी भयभीत होगयेहैं, और कहीं आकाशमें विलक्षण भूतोंका निरन्तर संघट (जमावडा) होरहाहै ॥ २६ ॥ कहीं बडे प्रयत्नसे मरते हुये मनुष्योंकेही मांसोंके लेजा रहेहैं और कहीं अपने भक्ष्यके पक्षोंमें फेंकेहुये मृतकों (मुर्दों) की राशि लगगई है ॥ २७ ॥ शृगालोंके मुखोंसे निकलीहुई ज्वालाओंसे निरन्तर मूर्छासे उठे रक्त पूर्ण मनुष्योंसे ऐसा भान होन होताहै मानों अशोक पुष्पोंके गुच्छे चारों ओर छागयेहैं ॥ २८ ॥ और जहांपर कवन्धों (शिररहित मनुष्यों) से कन्धोंपर क्रीडा करनेमें वेतालोंके बालक व्याकुल होरहेहैं और कहीं

भक्ष राक्षस और पिशाच आदिके आलात (जलती लकडीकी आग जो घूमानेसे चारों ओर जान पडतीहै) आकाशमें प्रकाशित होरहेहै ॥ २९ ॥ और हे रामजी ! आकाश, पर्वत, तथा गुहाके अन्तरालोंमें सघन अन्धकाररूप मेघोंका समूह जहांपर विद्यमानहै ऐसा, तथा अति भयंकर भूतादिके वेगसे व्याकुल, प्रलयके पवनसे कंपाये हुये, और पाषाणोंकी वृष्टिसे पीडित प्राणी जहांपर विद्यमानहैं ऐसे ब्रह्माण्डोदरके सदृश वह रणरूपी अंगण होगया ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने निशाचराकुलरात्रिरणांगणवर्णनं नाम एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥

विदूरथ राजासे सोजानेपर सरस्वती और लीलाका उसके ग्रहमें प्रवेश और अति बाहिक शरीरका तत्त्व इस ४० वे सर्गमें वर्णन किया गया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवंनिशाचराचारचिरघोरेरणांगणे ॥ अहनीवजनाचारेस्थितेयामावरेहिते ॥१॥ हस्तहार्यतमःपिंडस्फुटकुड्येनिशागृहे ॥ लाभोच्छदोच्चलच्चतेभूतसंघेप्रवल्गति ॥ २ ॥ निःशब्देध्वांतसंचारेनिद्रारुद्धककुब्गणे ॥ लीलापतिरुदारात्माकिंचित्खिन्नमनाइव ॥ ३ ॥ प्रातःकार्यंविचार्याशुमंत्रिभिर्मंत्रकोविदैः ॥ दीर्घचंद्रसमाकारेशयनेहिमशीतले ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! पूर्वोक्त रीतिसे निशाचरोंके आचारसे दीर्घकालतक भयंकर रणांगणमें दिनमें जनोंके उचित आचारके सदृश यमसंबन्धी दूतोंके और नीच पिशाचोंकी चेष्टा स्थित होनेपर ॥ १ ॥ हांथोंसे उठाने योग्य अन्धकारके पिण्डोंसे प्रत्यक्ष प्रकटहैं कुड्य आदि जिसमें ऐसा रात्रिरूप ग्रहमें भोजनके पदार्थोंके लाभसे वस्तु उठाके पाश्वादीनतादि जिससे निकल गयेहैं ऐसे भूतोंके समूहोंके क्रीडा करनेपर ॥ २ ॥ और नगरमें अन्धकारके संचारसे सर्वथा शब्द न होनेपर, और सब दिशाओंके प्राणियोंके निद्रामें ग्रस्त होनेपर, उदारात्मा लीलाका पति कुछ खिन्न चित्तके सदृश ॥ ३ ॥ मंत्र कुशल मंत्रियोंके साथ प्रातःकालके कृत्य विचारके चन्द्रमाके, उदरके समान शीतलहै कोटर जिसका ऐसे उत्तम गृहमें चन्द्रमाके सदृश आकारवाली, और शीतल शय्यापर कमलरूपी नेत्र मूंदकर शीघ्रही एक मुहूर्तके लिये निद्राके वशीभूत होगये ॥ ४ ॥ ५ ॥

चंद्रोदरनिभेचारुगृहेशिशिरकोटरे ॥ निद्रांमुहूर्त्तमगमन्मुद्रितेक्षणपुष्करः ॥ ५ ॥ अथतेललनेव्योमतत्परित्यज्यतद्गृहम् ॥ रंध्रेविविशतुर्वातलेखेऽब्जमुकुलंयथा ॥ ६ ॥ श्रीरामउवाच ॥ कियन्मात्रमिदंस्थूलंशरीरंवाग्विदांवर ॥ रंध्रेणतंतुतनुनाकथमाशुविशत्प्रभो ॥ ७ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ आधिभौतिकदेहोहमितियस्यमतिभ्रमः ॥ तस्यासावणुरंध्रेणगंतुंशक्नोतिनानघ ॥ ८ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर वे दोनों स्त्रियां उस आकाशको त्यागकर उस राजाके गृहमें छिद्र मार्गोंसे ऐसे प्रवेश किया जैसे कमलकी कलिमें वायुकी रेखा ॥ ६ ॥ श्रीरामजी बोले—हे भगवन् ! हे वाग्विदाम्वर चार हांथका दीर्घ यह स्थूल शरीरहै तो सूतके समान सूक्ष्म छिद्रसे कैसे शीघ्र प्रवेश किया सो कहिये ? ॥ ७ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे पापरहित रामजी ! यह स्थूल शरीर मैंहूं ऐसा जिसकी बुद्धिमें भ्रमहै, उसका शरीर सूक्ष्म छिद्रसे कभी नहीं प्रवेश करसकता ॥ ८ ॥

रोधितोहमनेनेतिनमाम्यत्रेतियस्यधीः ॥ अनुभूतानुभवतीभवतीत्यनुभूयते ॥ ९ ॥ येनानुभूतंपूर्वांर्द्धंगच्छामीतिसतत्क्रियः ॥ कथंभवतिपश्चार्द्धगमनोन्मुखचेतनः ॥ १० ॥ नहिवायूर्ध्वमायातिनाधोगच्छतिपावकः ॥ यायथैवप्रवृत्ताचित्सातथैवप्रतिष्ठिता ॥ ११ ॥ छायायामुपविष्टस्यकुतस्तापानुभूतयः ॥ यस्यसंवेदनेन्योर्थःकेनचिन्नानुभूयते ॥ १२ ॥

अर्थ—क्योंकि, मैं इस स्थूल देहसे रोका गया, मेरा मनुष्यदेह इस सूक्ष्म छिद्रमें नहीं माता, ऐसा अनेक वार अनुभव किया हुआ आत्माको स्थूल देहरूपसेही अनुभव करताहै, इसलिये वह अपना न जानाही अनुभव करताहै ॥ ९ ॥ और हे रामजी ! जिसकी इस स्थूल शरीरमें आत्मबुद्धि नहीं है किन्तु सूक्ष्म शरीरमात्रमेंही निश्चय है, और पूर्वकालकी दृढवासनाकी समृद्धिसे, मैंतो अति सूक्ष्म छिद्रमेंभी प्रवेश करनेमें समर्थहुं ऐसा जिसने अनेक वार अनुभव किया है वह वैसे सूक्ष्म छिद्रमें गमन स्वभावमें उत्सुक चेतनशि पुरुषही है वह भला पीछे निरोधक्रिया सहित कैसे

होसकता है, क्योंकि पूर्व प्रकटित स्वभाव अन्यथा नहीं होसकता ॥ १० ॥ हे रामजी ! नतो इस चेतनके ऊपर वायु जासकताहै और न इसके नीचे अग्नि जासकताहै, जैसी इसकी शक्ति पूर्वमें आविर्भूत हुई है वैसी यह (चित) प्रतिष्ठित रहती है ॥ ११ ॥ जिसको आत्माका साक्षात्कार होजाताहै उसको किसीप्रकार अन्य पदार्थका अनुभव (विपरीत अनुभव) नहीं होता क्योंकि जो छायामें रहताहै उसको तापका अनुभव नहीं होता ॥ १२ ॥

यथासंवित्तथाचित्तंसातथावस्थितिंगता ॥ परमेणप्रयत्नेननीयतेन्यदशांपुनः ॥ १३ ॥ सर्पैकप्रत्ययो रज्ज्वामसर्पप्रत्ययेबलात् ॥ निवर्त्ततेन्यथात्वेषतिष्ठत्येवयथास्थितः ॥१४॥ यथासंवित्तथाचित्तंयथाचित्तं तथेहितम् ॥ बालंप्रत्यपिसंसिद्धमेतत्कोनानुभूतवान् ॥१५॥ यः पुनःस्वप्नसंकल्पपुरुषःप्रतिमाकृतिः॥ आकाशमात्रकाकारःसकथंकेनरोध्यते ॥ १६ ॥

अर्थ—जैसी यह संवित् वैसाही चित्त होजाताहै और पुनः यह उसीके सदृश स्थित रहती है, और योगज्ञानका अभ्यास आदि बडे प्रयत्नसे दूसरी दशा (वास्तविक दशा) में प्राप्त होती है ॥ १३ ॥ जैसे रज्जुमें जब सर्पका विश्वास होजाताहै तब असर्प निश्चय अर्थात् रज्जुका तत्व जाननेपर वह बलसे नष्ट होताहै, अन्यथा यह सर्पका विश्वास ज्योंका त्यों बन रहताहैं ॥ १४ ॥ जैसी संवित् होती है वैसाही चित्त होताहै और जैसा चित्त होताहै वैसीही चेष्टा होती है, यह वार्ता बालककोभी सिद्ध और इसको किसने नहीं अनुभव किया ॥ १५ ॥ जो (सूक्ष्मशरीर) स्वप्न या संकल्प पुरुषके सदृश है और आकाशके सदृश जिसका आकार वह भला किससे और रूक सकताहै ॥ १६ ॥

चित्तमात्रंशरीरंतुसर्वस्यैवाहिसर्वतः ॥ विद्यतेवेदनाचैतत्क्कचिदेतीवहृद्गतात् ॥ १७ ॥ यथाभिमतमेवा स्यभवत्यस्तमयोदयम् ॥ आदिसर्गेस्वभावोत्थंपश्चाद्द्वैतैक्यकारणम् ॥ १८ ॥ चित्ताकाशंचिदाकाश माकाशंचतृतीयकम् ॥ विद्धयेतत्त्रयमेकंत्वमविनाभावनावशात् ॥१९॥ एतच्चित्तशरीरत्वंविद्धिसर्वग तोदयम् ॥ यथासंवेदनेच्छत्वाद्यथासंवेदनोदयम् ॥ २० ॥

अर्थ—वास्तविकमें चित्तमात्रही सबका शरीर है, परन्तु यह वार्ताको कदाचित् हृदयमें ज्ञानसे विदित होता है ॥ १७ ॥ इस परमात्माकी चित्तवृत्तिके अनुसारही इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति और अस्त होते हैं आदि सृष्टि स्वाभाविक अज्ञानसे होती है, और पीछे स्थूलभूत भौतिक जगत्‌रूप द्वैत उन भूतोंके पंचीकरण निमित्तसे होताहै ॥ १८ ॥ चित्ताकाश, अव्यक्ताकाश, और शुद्ध चिदाकाशको इन तीनोंको एकही समझो क्योंकि अधिष्ठान सत्ताहीसे सबका स्फूरण होताहै ॥ १९ ॥ हे रामजी ! इस सूक्ष्म चित्त शरीरके सर्वत्र प्राप्तही समझो क्योंकि पूर्व संवेदन, अर्थात् पूर्व वासना और कर्मके अनुसारही पदार्थोंकी स्फूर्ति होती है, और यहभी संवेदन इच्छाके अनुकूलही होताहै इससे यह बात सिद्ध हुई कि स्थूल देहको बाह्य पदार्थोंके अनुसार निरोध होनेपरभी चित्त शरीरका संवेदनेच्छा मात्रानुसारी होनेसे निरोध नहीं होसकता ॥ २० ॥

वसतित्रसरेण्वंतर्ध्रियतेगगनोदरे ॥ लीयतेंकुरकोशेषुरसोभवतिपल्लवे ॥ २१ ॥ उल्लसत्यंबुवीचित्वेप्र नृत्यतिशिलोदरे ॥ प्रवर्षत्यंबुदोभूत्वाशिलीभूयावतिष्ठते ॥ २२ ॥ यथेच्छमंबरेयातिजठरेपिचभूभृता म् ॥ अनंतराकाशवपुर्धत्तेथपरमाणुताम् ॥२३॥ भवत्यद्रिर्धराधारोबद्धपीठोनभःशिराः ॥ देहस्यांतर्ब हिरपिदधद्वनतनूरुहम् ॥ २४ ॥

अर्थ—यह चित्त शरीर वा चित् त्रसरेणुओंके भीतर निवास करताहै, आकाशके भीतर इसका धारण होताहै, अंकुरके भीतर लय होजाताहै, और पल्लवोंमें रसरूप होताहै ॥ २१ ॥ जलके तरंगोंमें शोभित होताहै, शिलाओंके भीतर क्रीडा करताहै, मेघ होके वृष्टि करताहै, और शिला होके एक स्थानमें स्थित रहताहै ॥ २२ ॥ अपनी इच्छापूर्वक आकाशमें जाताहै, और पर्वतोंके उदरमेंभी चलाजाताहै, और अवकाशरहित परमाणुकाभी शरीर धारण करलेताहै ॥२३॥ दृढमूल, आकाशमें शिर किये, वनरूपी रोमोंको धारण करता हुआ और पृथिवीका धारण करनेवाला यह चेतन शरीरकेभीतरही पर्वतहोजाताहै, यह वार्ता शरीरके भीतर स्वप्नमें और बाहर इन्द्रजाल आदिमें प्रसिद्धहै॥२४॥

भवत्याकाशमाधत्तेकोटीःपद्मजसद्मनाम् ॥ अनन्याःस्वात्मनोंभोधिरावर्त्तरचनाइव ॥ २५ ॥ अनुद्वि ग्नप्रबोधोसौसर्गादौचित्तदेहकः ॥ आकाशात्मामहान्भूत्वावेत्तिप्रकृततांततः ॥ २६ ॥ असत्यमेववा रित्वंबुद्धयोदेतीवतत्तया ॥ वंध्यापुत्रोयमस्तीतियथास्वप्नेभ्रमोनरः ॥ २७ ॥ श्रीरामउवाच ॥ किंचि त्तमेतद्भवतिकिंवाभवंतिनोकथम् ॥ कथमेवनसद्रूपंनान्यद्भवतिवीक्षणात् ॥ २८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! यही आकाश होके करोडों ब्रह्माण्डोंको अपने आत्मामें ऐसे धारण करताहै, जैसे समुद्र अपनेसे अभिन्न तरंगोंकी रचनाको ॥ २५ ॥ हे रामजी ! सृष्टिकी आदिमें इस चित्तशरीरका प्रबोध उद्विग्न नहीं होता

अर्थात् इसका ज्ञान कर्मके अनुसार होता है, और यह आकाशादि क्रमसे महान् ब्रह्माण्ड आत्मा होके प्रारब्ध कर्मानुसार प्रवृत्तिको जानता है अर्थात् उसीके अनुकूल इसमें स्फुरण होती है ॥ २६ ॥ जैसे मृगतृष्णामें जल असत्य हैं, और यह मनुष्य वन्ध्यापुत्र है ऐसा स्वप्नमें भ्रम उदय होता है, इसी प्रकार असत्यही इस जगत्की बुद्धि उदय होती है ॥ २७ ॥ रामजीकी शंकाका आशय यह है कि सूक्ष्मतम चित्तही जगत्का कारण है, वही अज्ञात होनेसे स्थूल होके परतंत्र होजाता है और ज्ञात होनेसे सम्पूर्ण व्यवहारोंमें अप्रतिहतगति और स्वतन्त्र होजाताहै उसमें श्रीरामजी बोले– हे भगवन् ! क्या हम लोगोंमेंसे प्रत्येकका चित्त पूर्वोक्त शक्ति (सृष्टि उत्पन्न करनेकी शक्ति) सहित होताहै वा नहीं ? यदि प्रथम पक्ष है तो प्रतिचित्त जगत् भिन्नरूपसे सत्यरूप क्यों नहीं ? और दूसरे पक्षमें तो चित्तसे अजन्य होनेसे चित्तसे अन्य सत्रूप क्यों नहीं, क्योंकि चित्तसे पृथक् रूपसेही सबको अनुभव होताहै, यदि ऐसा है तो ज्ञानसे चित्तका नाश होनेपरभी जगत्की अनुवृत्ति बनी रहेगी ॥ २८ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ प्रत्येकमेवयच्चित्तंतदेवंरूपशक्तिकम् ॥ पृथक्प्रत्येकमुदितःप्रतिचित्तंजगद्भ्रमः ॥ २९ ॥ क्षणकल्पजगत्संघाःसमुद्यंतिगलंतिच ॥ निमेषात्कस्यचित्कल्पात्कस्यचिच्चक्रमंशृणु ॥ ३० ॥ मरणादिमयीमूर्च्छाप्रत्येकेनानुभूयते ॥ यैषातांविद्धिसुमतेमहाप्रलययामिनीम् ॥ ३१ ॥ तदंतेतनुतेसर्गंसर्वएवपृथक्पृथक् ॥ सहजस्वप्नसंकल्पान्संभ्रमाचलनृत्यवत् ॥ ३२ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले– आदि पक्षको स्वीकार करके वसिष्ठजी उत्तर देते हैं कि हे रामजी ! प्रत्येक (एक एकका पृथक् २) का जो चित्त है वही ऐसी शक्ति (जगत्रूप होनेकी शक्ति) वालाहै, पृथक् २ प्रतिचित्तको जगत्का भ्रम उदय हुआ है ॥ २९ ॥ हे रामजी ! क्षणकल्प, और जगत्के समूह एक निमेषमेंही उत्पन्न होजातेहैं और नष्ट होजातेहैं और किसीकी दृष्टिसे कल्पभरमें उत्पन्न और नष्ट होतेहैं और किसीका यह क्रमहै सुनिये ॥ ३० ॥ हे सुमते रामजी ! जो यह मरण आदिमयी मूर्च्छाको प्रत्येक प्राणी अनुभव करताहै इसीको तुम महाप्रलयकी रात्रि समझो ॥ ३१ ॥ इसीके अन्तमें स्वाभाविक अविद्यासे उत्पन्न तीनों अवस्थाओंके संकल्पके अनुसार सबको अपनी २ सृष्टिका विस्तार ऐसे भासने लगताहै जैसे चित्तके मोहसे अचल पर्वतका नृत्य ॥ ३२ ॥

महाप्रलयरात्र्यंतेचिरादात्ममनोवपुः ॥ यथेदंतनुतेतद्वत्प्रत्येकंमृत्यनंतरम् ॥ ३३ ॥ ॥ श्रीरामउवाच ॥ मृतेरनंतरंसर्गोयथास्मृत्यानुभूयते ॥ चिरात्तथानुभवतिनातोविश्वमकारणम् ॥ ३४ ॥ श्रीवसिष्ठ उवाच ॥ महतिप्रलयेरामसर्वेहरिहरादयः ॥ विदेहमुक्ततांयांतिस्मृतेःकइवसंभवः ॥ ३५ ॥ अस्मदादिःप्रबुद्धात्माकिलावश्यंविमुच्यते ॥ कथंभवंतुनोमुक्ताविदेहाःपद्मजादयः ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जैसे महाप्रलय रात्रिके अन्तमें परब्रह्मके समष्टि मनरूप हिरण्यगर्भ अपने सत्यसंकल्पसे दीर्घकालके पश्चात् सृष्टिको उत्पन्न करते हैं वैसेही प्रत्येक प्राणी अपनी मृत्युके अनन्तर सृष्टिको रचताहै ॥ ३३ ॥ श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! जैसे सम्पूर्ण व्यष्टि जीव अपनी मृत्युके अव्यवहित उत्तरकालमें अपनी स्मृतिसे रचित सृष्टिका अनुभव करताहै, इसीप्रकार समष्टि (हिरण्यगर्भ) भी महाप्रलयके अनन्तर चिरकालमें अपनी यथार्थ स्मृतिसे रचित प्रपंचका अनुभव करताहै, इससे हिरण्यगर्भकी स्मृतिमें आरूढ पूर्वजन्मके सत्यार्थही इस कल्पके विश्वके कारण सम्भव होसकते हैं, इस कारणसे यह विश्व कारण रहित नहीं है, अर्थात् ब्रह्मसे पृथक् सत्यकारण शून्य यह जगत् है ऐसा जो पूर्वमें कहाथा वह असंगत हुआ ॥३४॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! महाप्रलयमें जब हरिहर आदि विदेह मुक्त होजातेहैं तो भला स्मृतिका सम्भव कहां ? ॥ ३५ ॥ जब तत्वज्ञान होनेसे अस्मद् आदि सब अवश्य मुक्त होतेहैं तब ब्रह्माआदि विदेह मुक्त क्यों न हो ? ॥ ३६ ॥

अन्येत्वमिवयेजीवास्तेषांमरणजन्मसु ॥ स्मृतिःकारणतामेतिमोक्षाभाववशादिह ॥ ३७ ॥ जीवोहिस्मृतिमूर्छांतेयदंतःप्रोन्मिषन्निव ॥ अनुन्मिषितएवास्तेतत्प्रधानमुदाहृतम् ॥ ३८ ॥ तद्व्योमप्रकृतिःप्रोक्ता तदव्यक्तंजडाजडम् ॥ संस्मृतेरस्मृतेश्चैवक्रमएषभवोदये ॥ ३९ ॥ बोधोन्मुखत्वेहिमहत्तत्प्रबुद्धंयदाभवेत् ॥ तदातन्मात्रदिक्कालक्रियाभूताद्युदेतिखात् ॥ ४० ॥

अर्थ—और हे रामजी ! जो तुमारे सदृश जीव हैं उनके मरण और जन्म प्रयोजक सृष्टियोंमें जो स्मृति कारण है वह मोक्षके अभावसे पूर्वजन्मके मिथ्या पदार्थोंके अनुभवकी वासनासे अवश्य उत्पन्न है ॥ ३७ ॥ जीवको जो मरणरूपी मूर्च्छाके अन्तमें अन्तःकरणमें स्फुरण होती है और बाहर स्फुरण रहित रहता उसी दशाका नाम प्रधान अर्थात् मूलप्रकृति है ॥ ३८ ॥ उसीको आकाश प्रकृति, अव्यक्त, और चेतनका प्रतिबिम्ब ग्रहण करनेसे जडाजडभी क-

हते हैं, और सृष्टि और प्रलयका क्रम अर्थात् संसारके आदि अन्तकी अवधि यही है ॥ ३९ ॥ और वही मूलप्रकृति स्फुरणकी ओर अभिमुख होनेसे महत्तत्व होजाती है, और अधिक प्रवृद्ध होनेसे महत्तत्व अहंकार होजाताहै, और उसी अहंकार अवस्थामें प्राप्त अव्यक्त आकाशसे तन्मात्रासे आदि लेके भूत भौतिकान्त, सृष्टि उत्पन्न होती है ॥४०॥

तदेवोच्छूनमाबुद्धं भवतींद्रियपंचकम् ॥ तदेवबुध्यतेदेहःसएषोस्यातिवाहिकः ॥ ४१ ॥ चिरकालप्रत्ययतःकल्पनापरिपीवरः ॥ आधिभौतिकताबोधमाधत्तेचैषबालवत् ॥ ४२ ॥ ततोदिक्कालकलनास्तदाधारतयास्थिताः ॥ उद्यंत्यनुदिताएववायोःस्पंदक्रियाइव ॥ ४३ ॥ वृद्धिमित्थमयंयातोमुधैवभुवनभ्रमः ॥ स्वप्नांगनासंगसमस्त्वनुभूतोप्यसन्मयः ॥ ४४ ॥

अर्थ—वही सूक्ष्मावस्था किंचित् वृद्धिको प्राप्त इन्द्रिय पंचक (पांचों इन्द्रिय) होजाताहै और वही आतिवाहिक देह स्वप्न और जागरअवस्थामें अनुभूत होताहै ॥ ४१ ॥ और वही दीर्घकालके विश्वाससे और संकल्पसे स्थूल होके भौतिक स्थूल देहके अहंभावको ऐसे धारण करताहै, जैसे बालक कालपाके स्थूलताको ॥ ४२ ॥ इसके अनन्तर स्थूल देहके आश्रित नेत्र आदिके आधीन स्थित उन २ देश और कालगत पदार्थोंकी कल्पनामें, यथार्थमें अनुदयको प्राप्त ऐसे उदयको प्राप्त होती हैं, जैसे वायुमें स्पन्द क्रिया ॥ ४३ ॥ इसप्रकार मिथ्याही वृद्धिको प्राप्त यह संसारका भ्रम अनुभव किया हुआ ऐसे असत्यरूप है जैसे स्वप्नकी स्त्रीका समागम ॥ ४४ ॥

यत्रैवम्रियतेजंतुःपश्यत्याशुतदेवसः ॥ तत्रैवभुवनाभोगमिममित्थमिवस्थितम् ॥ ४५ ॥ व्योमैवानुभवत्यच्छमहंजगदितिभ्रमम् ॥ व्योमरूपंव्योमरूपीजीवोजातइवात्मवान् ॥ ४६ ॥ सुरपत्तनशैलार्कतारानिकरसुंदरम् ॥ जरामरणवैक्लव्यव्याधिसंकटकोटरम् ॥ ४७ ॥ स्वभावाभावसंरंभस्थूलसूक्ष्मचराचरम् ॥ साब्ध्यद्युर्वीनदीशाहोरात्रिकल्पक्षणक्षयम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—जहांपर यह प्राणी मृत्युको प्राप्त होताहै उसी स्थानपर वह शीघ्रही इसीप्रकार स्थित इस संसारका रूप देखताहै ॥ ४५ ॥ आकाशरूप यह जीव अनित्य देह आदिके निमित्त देहवान्के सदृश उत्पन्न हुआसा स्पष्ट रीतिसे यह मैं हुं यह जगत् है इत्यादि भ्रमका अनुभव करताहै ॥ ४६ ॥ पुनः इन्द्रआदि देवोंसे, अमरावती आदि नगरोंसे, मेरुआदि पर्वतोंसे, और तारागणोंके समूहोंसे रमणीय, वृद्धावस्था मरण, व्याकुलता, तथा अनेक व्याधियोंसे पूर्ण मर्त्यलोकादि छिद्रोंसहित ॥ ४७ ॥ और अपने अनुकूल पदार्थोंके सम्पादन करनेमें, और प्रतिकूल पदार्थोंके निवारण करनेमें सूक्ष्म तथा स्थूल चराचर प्राणी जहां लगे रहे हैं ऐसे समुद्र, पर्वत, पृथिवी, नदी, उनके स्वामी राजा आदि, दिन, रात्रि, कल्प, क्षण और प्रलय सहित ॥ ४८ ॥

अहंजातोमुनापित्राकिलात्रेत्याप्तनिश्चयम् ॥ इयंमाताधनमिदंममेत्युदितवासनम् ॥ ४९ ॥ सुकृतंदुष्कृतंचेदंममेतिकृतकल्पनम् ॥ बालोभूवमहंत्वद्ययुवेतिविलसद्धृदि ॥ ५० ॥ प्रत्येकमेवमुदितःसंसारवनखंडकः ॥ ताराकुसुमितोनीलमेघचंचलपल्लवः ॥ ५१ ॥ चरन्नरमृगानीकःसुरासुरविहंगमः ॥ आलोकफौसुमरजाःश्यामागहनकुंजकः ॥ ५२ ॥

अर्थ—इस पितासे मैं इस स्थानपर उत्पन्न हुआ, यह मेरी माताहै, यह मेरा धनहै, इसप्रकार उत्पन्न वासना सहित ॥ ४९ ॥ यह मेरा पुण्य है यह पाप है, ऐसी कल्पना सहित, प्रथम मैं बालक था, और अब युवा (जवान) होगया, इत्यादि रूपसे स्फूरते हुये भ्रमको अपने हृदयमें देखता है ॥ ५० ॥ हे रामजी ! प्रत्येकके चित्तमें यह संसाररूपी वनका खण्ड उदय हुआहै, तारागणरूपी इसमें पुष्प हैं, तथा मेघरूपी चंचल पत्र हैं ॥ ५१ ॥ मनुष्यरूपी मृगोंके समूह इसमें वनचर रहेहैं, सुर और असुररूपी इसमें पक्षी हैं, प्रकाश प्रधान दिनरूपी इसमें पुष्पोंकी धूलि हैं, और रात्रिरूप इसमें प्रवेश करनेमें भयंकर लताकुंज हैं ॥ ५२ ॥

अब्धिपुष्करिणीपूर्णोमेर्वाद्यचललोष्टकः ॥ चित्तपुष्करबीजांतर्निलीनानुभवांकुरः ॥ ५३ ॥ यत्रैषम्रियतेजीवस्तत्रैवंपश्यतिक्षणात् ॥ प्रत्येकमुदितेष्वेवंजगत्खंडेषुभूरिशः ॥ ५४ ॥ कोटयोब्रह्मरुद्रेंद्रमरुद्विष्णुविवस्वताम् ॥ गिर्यब्धिमंडलद्वीपलोकांतरदृशांगताः ॥ ५५ ॥ यातायास्यंतियांत्येताद्दृष्टयोनष्टरूपिणीः ॥ यात्रह्मण्युपबृंहाढ्यास्ताःकेगणयितुंक्षमाः ॥ ५६ ॥

अर्थ—समुद्ररूपी पुष्करणियों (कमल सहित तलाईयों) से यह पूर्ण है, मेरु आदि अचल इसमें पाषाण हैं, चित्तरूपी पुष्करका बीज है, और संस्काररूपसे स्थित चित्तकी वृत्तियां जिसमें अंकुर हैं ॥ ५३ ॥ हे रामजी ! यह जीव जहांपर मरताहै वहांही क्षणभरमें सब इसीप्रकार देखताहै, इसीप्रकार प्रत्येकको उदयको प्राप्त अनेक जगत्रूपी वनके खण्डोंमें ॥ ५४ ॥ करोडों ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, देवता, विष्णु, सूर्य्य, पर्वत, समुद्रोंके समूह द्वीप और लोकान्तर जो

अपने भीतर देखते हैं, गत होगये हैं ॥ ५५ ॥ हे रामजी ! इसी प्रकार असत् ये ब्रह्माण्डकी सृष्टि अनेक उत्पन्न होगई अनेक होंगी, और होरही है, और जो आविर्भावरूपसे ब्रह्म अनेकरूपसे स्थितहै उनको भला कौन गणना करसकताहै

एवंकुड्यमयंविश्वंनास्त्येवमननादृते ॥ मननेचलमेवांतस्तदिदानींविचारय ॥ ५७ ॥ यदेवतच्चिदाकाशंतदेवमननंस्मृतम् ॥ यदेवचचिदाकाशंतदेवपरमंपदम् ॥ ५८ ॥ यदेवांबुसआवर्तोनत्वस्यावर्त्तवस्तु सत् ॥ द्रष्टैवास्तेदृश्यमिवदृश्यंनत्वास्तिवस्तुसत् ॥ ५९ ॥ चिन्व्योम्नोभूतनभसिकचनंयन्मणेरिव ॥ तद्गंधर्वाविनानासत्तत्वंश्वभ्रमिवांबरे ॥ ६० ॥

अर्थ—हे रामजी ! इसप्रकार भित्तिके सदृश स्थूल यह विश्व मनके संकल्पसे पृथक् कुछ नहीं है यद्यपि बाहर यह जगत् स्थिररूपही भासताहै, तथापि मनसे यथोचित विचार करनेसे चंचलरूपही अनुभूत होताहै, मनके भ्रमणसे भ्रमतासा, प्रसन्नसे प्रसन्नके सदृश, मलिन होनेसे मलिनके सदृश और मनोरथादिमें जो उत्पन्न होताहै वैसाही यहांभी प्रायः इसका आरोप होताहै, इसका तत्त्व अपने अनुभवसे विचारो ॥ ५७ ॥ और विचारसे वह मनभी चिदाकाश (साक्षी चेतन) रूपही है, और जो चिदाकाशहै वही परमपद पूर्णब्रह्म चिन्मात्रहै ॥ ५८ ॥ जो जलहै वही आवर्त (जलमें भ्रमि) है परन्तु आवर्त सत् नहीं है द्रष्टा जो है वही दृश्यहै परन्तु दृश्यरूपता सत् नहीं ॥ ५९ ॥ चिदाकाशकी, जो अनादि भूताकाशमें जीवभावसे स्फुरणहै वही नामरूपात्मक भावि नानास्वभाववाला जगत्शब्दसे कहा जाताहै, और यहभी इन्द्रजालका मणि वा गन्धर्वनगर आदि जैसे आकाशमें शोभित होतेहैं वैसाही है, वास्तवमें परमार्थ रूपही है ॥ ६० ॥

मद्बुद्धार्थोजगच्छब्दोविद्यतेपरमात्मृतम् ॥ त्वद्बुद्धार्थस्तुनास्त्येवत्वमहंशब्दकादपि ॥६१॥ तस्माल्लीलासरस्वत्यावाकाशवपुषौस्थिते ॥ सर्वगेपरमात्माच्छेसर्वत्राप्रतिघेऽनघे ॥ ६२ ॥ यत्रयत्रसदाव्योम्नि यथाकामंयथेप्सितम् ॥ उदयंकुरुतस्तेनतद्गेहेस्तिगतिस्तयोः ॥ ६३ ॥ सर्वत्रसंभवतिचिद्गगनंतदत्र सद्वेदनंवलनमाममननंविसारि ॥ तच्चातिवाहिकमिदाहुरकुड्यमेवदेहंकथंकइवतंवदकिंरुणद्धि ॥ ६४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने समरसमनंतरसंस्मृत्यनुभववर्णनं नाम चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥

अर्थ—मद्बुद्धार्थ जगत् शब्द अर्थात् अधिष्ठान सत्तामात्र जगत् शब्दका प्रयोग साक्षी चेतन मात्रही है, और त्वद्बुद्धार्थ अर्थात् आरोपित सत्ताक तो हैही नहीं, इसप्रकार "त्वम् अहम्" शब्दका कहनेवाला प्रमाताभी साक्षी चेतन स्वभावहीहै न कि तुमारा समझा हुआ जीवस्वभाव ॥६१॥ हे रामजी ! यह लीला और सरस्वती आकाश शरीरसे स्थितहैं और वे सर्वव्यापी पापशून्य, सर्वत्र प्रतिघात (रुकावट) रहित स्वच्छ परमात्मरूपही है ॥ ६२ ॥ और वे सदा आकाशमें जहां २ जैसी २ कामना (प्राप्त पदार्थकी भोगेच्छा) और इच्छा (अप्राप्तकी वाञ्छा) करतीहै वहां२ वैसाही पदार्थ प्रगट करलेती है, इसलिये सूक्ष्म मार्गसेभी विदूरथके भवनमें उनका प्रवेश हुआ ॥ ६३ ॥ हे रामजी ! चिदाकाशका गमन कहींभी प्रतिरूध नहीं होता और चिदाकाश कल्पना होनेसे मानस पदार्थोंके निश्चय पर्य्यन्त बाह्यप्रसरणशील यथार्थ ज्ञान होजाताहै, और उसीको स्थूलता रहित सूक्ष्म शरीरभी कहतेहैं, इसलिये इसको किस निमित्तसे कैसे कौन रोक सकताहै ॥ ६४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने समरसमनन्तरसंस्मृत्यनुभववर्णनं नाम चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

राजाके गृहमें प्रविष्ट सरस्वती और लीलाका सोतोंसे उठेहुये राजा करके पूजन करना, राजाकी स्मृति, और सरस्वती करके राजाको आत्माका उपदेश करना, ये विषय इस ४१ वे सर्गमें वर्णन किये गये हैं ॥

॥श्रीवसिष्ठउवाच ॥ तयोःप्रविष्टयोर्देव्योःपद्मसद्मबभूवतत् ॥ चंद्रद्वयोदयोद्योतधवलोदरसुंदरम् ॥१॥ कोमलामलसौगंध्यमृद्वमंदारमारुतम् ॥ तत्प्रभावेननिद्रालुनृपेतरनरांगनम् ॥ २ ॥ सौभाग्यनंदनोद्यानंविद्रुतव्याधिवेदनम् ॥ सवसंतंवनमिवफुल्लंप्रातरिवांबुजम् ॥ ३ ॥ तयोर्देहप्रभापूरैःशशिनिस्यंदशीतलैः ॥ आल्हादितोसौबुबुधेराजोक्षितइवामृतैः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-राजाका गृहरूपी कमल उन दोनोंके प्रवेश करनेपर दो चन्द्रमाके उदयके प्रकाशसे धवल (श्वेत) होगयाहै, उदर जिसका ऐसा शोभित हुआ ॥ १ ॥ कोमल, मन्द, सुगन्ध वायु जहांपर वह रहेहैं और संकल्प मन्दार पुष्पमाला जहां विद्यमान हैं ऐसे राजाके गृहमें, उन दोनों देवियोंके प्रभावसे राजाको छोडके और सब सोगये ॥ २॥ कैसा है वह राजाका गृहांगण कि शोभासे नन्दनबनके सदृश, सम्पूर्ण व्याधि और पीडासे वर्जित, और ऐसा शोभायमान होरहाहै, जैसा प्रातःकाल कमल जिसमें विकसित होरहे हैं ऐसा बसन्तऋतु सहित वन ॥ ३ ॥ उन दोनों देवियोंके देहकी दीप्तिके प्रवाहसे प्रसन्न चित्त होके राजा ऐसे जाग्रत अवस्थाको प्राप्त हुआ जैसे चन्द्रमासे निकले हुये शीतल अमृतोंसे सींचा हुआ ॥ ४ ॥

आसनद्वयविश्रांतंसददर्शाप्सरोद्वयम् ॥ मेरुशृंगद्वयेचंद्रबिंबद्वयमिवोदितम् ॥ ५ ॥ निमेषमिवसंचिंत्यसविस्मितमनानृपः ॥ उत्तस्थौशयनाच्छेषादिवचक्रगदाधरः ॥ ६ ॥ परिसंयमितालंबिमाल्यहाराधरांबरः ॥ पुष्पाहारइवोत्फुल्लंजग्राहकुसुमांजलिम् ॥ ७ ॥ उपधानप्रदेशस्थात्स्वयंपटलकोटरात् ॥ बद्धपद्मासनोभूमौभूत्वोवाचेदमानतः ॥ ८ ॥

अर्थ—संकल्पसे सिद्ध दो आसनोंपर विराजमान दिव्य अप्सराओंके सदृश दो स्त्रियोंके उसने ऐसे शोभायमान देखा मानों मेरुके शिखरपर उदित दो चन्द्रमाको ॥ ५ ॥ हे रामजी ! आश्चर्य सहित राजा अल्प कालतक अन्तःकरणमें विचारकरके शय्यासे ऐसे उठ खडा हुआ जैसे शेषशय्यासे चक्रगदाधर भगवान् ॥ ६ ॥ निद्राके कारणसे इधर उधर प्राप्त निर्मल हार तथा वस्त्रोंको धारण करनेवाला राजा भृत्यके समान शिरहाने रक्खी हुई पुष्पकी पेटारीमेंसे पुष्पोंको लेके पुष्पांजलिको ग्रहण किया और पृथिवीपर पद्मासनसे बैठके नम्र होके यह वचन बोला ॥ ७ ॥ ८ ॥

जयतांजन्मदौस्थित्यदाहदोषशशिप्रभे ॥ देव्यौबाह्यांतरतमोविद्रावणरविप्रभे ॥ ९ ॥ तयोरुक्त्वेतितत्याजपादयोःकुसुमांजलिम् ॥ तीरद्रुमोविकसितःपद्मिन्योःपद्मयोरिव ॥ १० ॥ लीलार्थेभूपजन्माथवक्तुंमंत्रिणमीश्वरी ॥ बोधयामासपार्श्वस्थंसंकल्पेनसरस्वती ॥ ११ ॥ प्रबुद्धोप्सरसौदृष्ट्वाप्रणम्यकुसुमांजलिम् ॥ तयोःपादेषुसंत्यज्यविवेशपुरतोनतः ॥ १२ ॥

अर्थ—हे जीवनके दुःखोंको नाश करनेहारी, त्रिविध तापोंके दोषोंको शान्त करनेहारी, चन्द्रमाके समान कान्तिधारी, बाह्य तथा अन्तरके अन्धकारको दूर करनेमें सूर्यके समान प्रकाशमान दोनों देवियों ! आपका जयहो॥९॥ ऐसा कह कहके राजाने उन दोनोंके चरणोंमें कुसुमांजलिको इसप्रकार त्यागा जैसे नदीके तटका पुष्पसहित वृक्ष पद्मोंकी पद्मिनियोंके ऊपर ॥ १० ॥ इसके अनन्तर राजाके जन्मोंके लीलासे कहनेके अर्थ समर्थ भगवतीने राजाके सोते हुये मंत्रीको अपने संकल्पसे जगाया ॥ ११ ॥ इसके अनन्तर वह मंत्री जगा और दो अप्सराके सदृश देवियोंको देखके पुष्पांजलि ग्रहण किया और दोनोंके चरणोंमें अर्पण करके नम्र होके सन्मुख बैठगया ॥ १२ ॥

उवाचदेवीहेराजन्कस्त्वंकस्यसुतःकदा ॥ इहजातइतिश्रुत्वासमंत्रीवाक्यमब्रवीत् ॥ १३ ॥ देव्यौयुष्मत्प्रसादोयंभवत्योरपियत्पुरः ॥ वक्तुंशक्नोमितद्देव्यौश्रूयतांजन्ममत्प्रभोः ॥ १४ ॥ आसीदिक्ष्वाकुवंशोत्थोराजाराजीवलोचनः ॥ श्रीमान्कुंदरथोनामदोश्छायाच्छादितावनिः ॥ १५ ॥ तस्याभूदिंदुवदनःपुत्रोभद्ररथाभिधः ॥ तस्यविश्वरथःपुत्रस्तस्यपुत्रोबृहद्रथः ॥ १६ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर देवी बोली कि हे राजन् ! तुम किसके पुत्र हो और यहां कब उत्पन्न हुये, इस प्रश्नको सुनके मन्त्री यह वाक्य बोला ॥१३॥ हे देवियो ! यह आपकाही प्रभावहै कि मैं आपके सम्मुखभी बोलनेको समर्थहूं, अब आप दोनों देवी हमारे स्वामीके जन्मका वृत्तान्त सुनैं ॥ १४ ॥ हे देवियो ! इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न कमलके सदृश नेत्रवाले, अपनी भुजाओंकी छायासे शत्रु तथा दारिद्र्य आदिके नाश द्वारा पृथिवीको पालन करने हारे श्रीमान् राजा कुन्दरथ नाम उत्पन्न हुये ॥ १५ ॥ उनके चन्द्रमाके सदृश मुखवाले भद्ररथ नाम पुत्र हुये; भद्ररथके विश्वरथ और विश्वरथके बृहद्रथ नाम पुत्र हुये ॥ १६ ॥

तस्यसिंधुरथःपुत्रस्तस्यशैलरथःसुतः ॥ तस्यकामरथःपुत्रस्तस्यपुत्रोमहारथः ॥ १७ ॥ तस्यविष्णुरथःपुत्रस्तस्यपुत्रोनभोरथः ॥ अयमस्मत्प्रभुस्तस्यपुत्रःपूर्णामलाकृतिः ॥ १८ ॥ अमृतापूरितजनःक्षीरोदस्येवचंद्रमाः ॥ महद्भिःपुण्यसंभारैर्विदूरथइतिश्रुतः ॥ १९ ॥ जातोमातुःसुमित्रायागौर्यागुहइवापरः ॥ पितास्यदशवर्षस्यदत्वाराज्यंवनंगतः ॥ २० ॥

अर्थ—बृहद्रथके सिन्धुरथ सिन्धुरथके शैलरथ नाम पुत्र हुये शैलरथके कामरथ कामरथके महारथ ॥ १७ ॥ महारथके विष्णुरथ और विष्णुरथके नभोरथ नाम उत्पन्नहुये, विमल आकारवाले अपने स्नेह और माधुर्य्य आदि गुणोंसे

सब जनोंको तृप्त करनेहारे क्षीरसमुद्रसे चन्द्रमाके समान ये हमारे प्रभु, उन नभोरथके पुण्योंके समूहसे विदूरथ नामसे प्रसिद्ध उत्पन्न हुये ॥ १८ ॥ १९ ॥ ये सुमित्रा नाम्नी मातासे ऐसे उत्पन्न हुये जैसे गौरी (पार्वती) जीसे स्वामिकार्तिक दशवर्षकीही अवस्थामें इनके पिता नभोरथ इनको राज्य देके बनको चलेगये ॥ २० ॥

पालयत्येषभूपीठंततःप्रभृतिधर्मतः ॥ भवत्यावद्यसंप्राप्तेफलितेसुकृतद्रुमे ॥ २१ ॥ देव्यौदीर्घतपःक्लेशशतैर्दुष्प्रापदर्शने ॥ इत्ययंवसुधाधीशोविदूरथइतिश्रुतः ॥ २२ ॥ अद्ययुष्मत्प्रसादेनपरांपावनतांगतः॥ इत्युक्त्वासंस्थितेतूष्णींमंत्रिण्यवनिपेतथा ॥ २३ ॥ कृतांजलौनतमुखेबद्धपद्मासनेवनौ ॥ राजन्स्मरविवेकेनपूर्वजातीमितिस्वयम् ॥ २४ ॥

अर्थ—हे देवियो! उसी समयसे ये धर्म्मपूर्वक पृथिवीका पालन करते हैं आज इनके पुण्यरूपी वृक्षके फलके समान आप दोनों यहां प्राप्त हुईं ॥ २१ ॥ हे देवियो! आपका दर्शन बडी दीर्घ सैकडों तपस्याओंसेभी दुष्प्राप है, इस प्रकार ये हमारे स्वामी संसारमें विदूरथ करके प्रसिद्ध हैं ॥ २२ ॥ आज आप दोनोंकी प्रसन्नतासे परम पवित्रताको प्राप्त हुये, इतना कहके राजा तथा मंत्रीके मौन स्थित होनेपर ॥२३॥ और इसके पश्चात् हांथ जोडके नम्र मुख होके पद्मासनसे राजाके पृथिवीपर बैठनेपर देवी बोली कि हे राजन्! स्वयं अपने विवेकसे अपनी पूर्व जातियोंको स्मरण कर॥२४

वदंतीमूर्ध्निपस्पर्शतंकरेणसरस्वती ॥ अथद्यार्द्रतमोमायापद्मस्यक्षयमाययौ ॥ २५ ॥ सुविकासंचहृदयं ज्ञप्तिस्पर्शोदयेऽभवत् ॥ सस्मारपूर्ववृत्तांतमंतःस्फुरदिवास्थितं ॥ २६ ॥ त्यक्तदेहैकराज्यत्वंलीलाविलसितान्वितं ॥ ज्ञात्वाप्रज्ञप्तिवृत्तांतंलीलायास्तुविजृंभितं ॥ २७ ॥ आत्मोदंतंबभूवासावुह्यमानइवार्णवे॥ उवाचात्मनिसंसारेवतमायेयमातता ॥ २८ ॥

अर्थ—ऐसा कहती हुई सरस्वतीने अपने हस्तकमलसे राजाका मस्तक स्पर्श किया, इसके अनन्तरही प्रद्मराजाके हृदयाकाशका जो मायारूपी अन्धकार जीवरूपको आच्छादन करनेवालाथा वह सर्वथा क्षयको प्राप्त होगया ॥ २५ ॥ चित् भगवतीके स्पर्श करतेही राजाका हृदय अन्तःप्रकाशमय होगया, और अपने पूर्ववृत्तान्तोंके ऐसे स्मरण किया मानों वे सब अन्तःकरणमें सम्मुख स्थित हैं ॥ २६ ॥ शरीर तथा संसारके एक राजापनको लीलाके विलास सहित त्यागना, सरस्वतीका वृत्तान्त, और लीलाकी चेष्टाको जानकर अर्थात् सरस्वतीके प्रभावसे जो बात अनुभूत न थी उसकोभी राजा जानगया ॥ २७ ॥ अपने सम्पूर्ण वृत्तान्तको जानगया और राजा ऐसा होगया मानों समुद्रमें तरंगे लेरहाहै, और अपने मनमें कहने लगा कि अहो! संसारमें यह माया कैसी व्याप्त होरहीहै ॥ २८ ॥

परिज्ञातामसादेनदेव्योरिदमयाधुना ॥ राजोवाच ॥ हेदेव्योकिमिदंनामदिनमेकंमृतस्यमे ॥ २९ ॥ गतमयेहजातानिवयोवर्षाणिसप्ततिः ॥ स्मराम्यनेककार्याणिस्मरामिप्रपितामहम् ॥ ३० ॥ स्मरामिबाल्यंतारुण्यंमित्रंबंधुपरिच्छदम् ॥ ज्ञप्तिरुवाच ॥ राजन्मृतिमहामोहमूर्छायाःसमनंतरम् ॥ ३१ ॥ तस्मिंल्लोकांतरेतीतेतस्मिन्नेवमुहूर्त्तके ॥ तस्मिन्नेवगृहेचास्मिन्नेवव्योम्न्यपिसद्मनि ॥ ३२ ॥ अयंतस्यगृहस्यांतर्व्योम्न्येवकिलस्थिते ॥ गिरिग्रामकविप्रस्यगृहेंतर्भूपमंडपः ॥ ३३ ॥ तस्यांतरेयमाभातिप्रत्येकंचजगद्गृहम् ॥ किलब्राह्मणगेहांतर्जीवस्तेमदुपास्थितः ॥ ३४ ॥ तत्रैवतस्यभूपीठंतस्मिंश्चकिलमंडपे ॥ तस्यैवचगृहस्यांतरिदंसंसारमंडलम् ॥ ३५ ॥ तत्रैवेदंतवगृहंस्थितमारंभमंथरम् ॥ तत्रैवचेतसितवानिर्मलाकाशनिर्मले ॥ ३६ ॥

अर्थ—इसको मैंने ज्ञप्ति भगवतीकी कृपासे अब जाना, राजा बोला कि—हे देवियो! यह क्या वार्ता है कि मुझे मरे आज केवल एकही दिन बीताहै ॥ २९ ॥ और मेरी अवस्था यहां सत्तर ७० वर्षकी होगई और अनेक कार्य्योंको मैं स्मरण करता हुं, और अपने प्रपितामहकोभी स्मरण करताहुं ॥ ३० ॥ मैं अपनी बाल्यअवस्था, युवावस्था, मित्रोंको, बन्धुओंको और परिवारको स्मरण करताहुं, ज्ञप्तिजी बोली—राजन् मृत्युरूप महामूर्च्छाके समनन्तरही ॥ ३१ ॥ इसी तुमारे स्थानमें, उस स्थानके चिदाकाशमें, मायारूप आवरण नष्ट होनेपर, गिरिग्रामके ब्राह्मणके गृहके भीतर पद्मलोकान्तरमें उसी राजगृहमें उसमेंभी राजाके प्रधान गृहके अन्तराकाशमें यह ब्रह्माण्ड मण्डप निश्चय करके स्थित है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ उसीके भीतर यह जगत्रूपी गृह प्रत्येकको भान होताहै, और उसी ब्राह्मणके गृहाकाशमें यह तुमारा जीव मेरा भक्त होके उपासना करताहै ॥ ३४ ॥ और उसी मण्डपके भीतर तुमारा राज्यमण्डल है, तथा उसी गृहके भीतर यह पद्मराजाका संसार मण्डल है ॥ ३५ ॥ और वहांही अनेक पदार्थोंसे पूर्ण यह तुमारा राज्यभवनभी स्थित है और उसी मण्डपमें आकाशके सदृश निर्मल तुमारे चित्तमें ॥ ३६ ॥

प्रतिभामागतमिदंव्यवहारभ्रमाततम् ॥ यथेदंनाममेजन्मतथेक्ष्वाकुकुलंमम ॥ ३७ ॥ एवंनामानएतेमेपु राभूवन्पितामहाः ॥ जातोहमभवंबालोदशवर्षस्यमेपिता ॥ ३८ ॥ परिव्राड्विपिनंयातइहराज्येभिषि च्यमाम् ॥ ततोदिग्विजयंकृत्वाकृत्वाराज्यमकंटकम् ॥ ३९ ॥ अमीभिर्मंत्रिभिःपौरैःपालयामिवसुंध राम् ॥ यज्ञक्रियाक्रमवतोधर्मेपालयतःप्रजाः ॥ ४० ॥

अर्थ—यह व्यवहारका भ्रम व्याप्त तुमारी बुद्धिमे भासताहै, जैसे यह मेरा नाम है यह इक्ष्वाकु मेरा कुल है ॥ ३७ ॥ इस प्रकारके नामधारी ये मेरे प्रपितामह पूर्वकालमें हुये थे, इस प्रकार मैं उत्पन्न हुआ, और बालक था, दशवर्षका जब मैं था तभी मेरे पिता ॥ ३८ ॥ मुझे इस राज्यमें अभिषेक करके आप संन्यासी होके वनको चले गये, इसके अनन्तर मैं दिग्विजय करके और राज्यको अकण्टक करके ॥ ३९ ॥ इन मंत्रियों तथा पुरनिवासियोंके साथ मैं पृथिवीका पालन करताहुं, और यज्ञ तथा क्रिया क्रमसहित धर्मपूर्वक मुझे प्रजापालन करते हुये ॥ ४० ॥

वयसःसमतीतानिममवर्षाणिसप्ततिः ॥ इदंपरबलंप्राप्तंममदारुणविग्रहः ॥ ४१ ॥ युद्धंकृत्वेदमाया तोगृहमस्मिन्यथास्थितम् ॥ इमेदेव्यौगृहेप्राप्तेममैतेपूजयाम्यहम् ॥ ४२ ॥ पूजिताहिप्रयच्छंतिदेवताः स्वसमीहितम् ॥ ममेयमेतयोरेकाज्ञानंजातिस्मृतिप्रदम् ॥ ४३ ॥ इहदत्तवतीदेवीभाब्जस्येवविकास नम् ॥ इदानींकृतकृत्योस्मिजातोस्मिगतसंशयः ॥ ४४ ॥

अर्थ—मेरी अवस्थाके सत्तर ७० वर्ष बीतगये, और इस मेरी परम उत्तम सेनाने बडाभारी युद्ध किया ॥४१॥ युद्ध करके यह मैं आया और अपने गृहमें पूर्वके समान स्थित हुं, और ये दोनों देवियां मेरे गृहमें प्राप्त हुई और मैं इनकी पूजा करताहुं ॥ ४२ ॥ क्योंकि पूजा किये हुये देवता अपना चाहा हुआ फल देते हैं, इनमेंसे एकने मुझे जातिस्मरण करानेका ज्ञान दिया ॥ ४३ ॥ यहांपर देवीने मुझे ऐसी प्रभा (दीप्ति) दी, जैसे कमलको विकसित करनेवाली सूर्य्यकी प्रभा, इस समय मैं कृतकृत्य तथा संशय रहित होगया ॥ ४४ ॥

शाम्याभिपरिनिर्वामिसुखमासेचकेवलम् ॥ इतीयमाततभ्रांतिर्भवतोभूरिसंभ्रमा ॥ ४५ ॥ नानाचार विहाराढ्यासलोकांतरसंचरा ॥ यस्मिन्नेवमुहूर्त्तेत्वंमृतिमभ्यागतःपुरा ॥ ४६ ॥ तदेवप्रतिभेषातेस्वय मेवोदिताहृदि ॥ एकामावर्त्तचलनांत्यक्त्वादत्तेयथापराम् ॥ ४७ ॥ क्षिप्रमेवनदीवाहोवित्तप्रवाहस्तथै वच ॥ आवर्त्तांतरसंमिश्रोयथावर्त्तःप्रवर्त्तते ॥ ४८ ॥

अर्थ—इस समय सम्पूर्ण दुःखोंके शमन होनेसे शान्तहुं, अत्यन्त सुखकी वृद्धिसे तृप्तहुं, केवल एक सुखरस मात्र होके स्थितहुं, इत्यादि अनेक भ्रान्ति आपके चित्तमें व्याप्त होरही हैं ॥ ४५ ॥ यह तुमारी भ्रान्ति, नानाप्रकारके आचार तथा बिहारसे पूर्ण तथा लोकान्तरमें संचरण (गमन) करनेवाले अस्मद् आदि सिद्धहैं, और पूर्वकालमें जिस मुहूर्तमें तुम मृत्युको प्राप्त हुये ॥ ४६ ॥ उसी समय तुमारे हृदयमें यह आपसे आप उदयको प्राप्त हुई जैसे नदीका प्रवाह एक आवर्तकी चलना (चाल) को त्यागके शीघ्र दूसरीको धारण करताहै ऐसेही चित्तका प्रवाहभी एक वृत्तिको त्यागके दूसरी ग्रहण करताहै, अथवा एक आवर्तसे मिलके जैसे दूसरा आवर्त प्रवृत्त होतेहै ऐसी दशा चित्तकी है ॥४७॥४८॥

कदाचिदेवंसर्गश्रीर्मिश्रामिश्राचवर्द्धते ॥ तस्मिन्मृतिमुहूर्त्तेतेप्रतिभानमुपागतम् ॥ ४९ ॥ एतज्जालम सद्रूपंचिद्भानोःसमुपस्थितम् ॥ यथास्वप्नमुहूर्तांतःसंवत्सरशतभ्रमः ॥ ५० ॥ यथासंकल्पनिर्माणेजी वनंमरणंपुनः ॥ यथागंधर्वनगरेकुड्यमंडनवेदनम् ॥ ५१ ॥ यथानौयानसंरंभेवृक्षपर्वतवेपनम् ॥ यथा स्वधातुसंक्षोभेपूर्वपर्वतनर्त्तनम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—हे राजन् ! कदाचित् (जाग्रत् अवस्थामें) यह सृष्टिकी शोभा दूसरे जीवसे मिली हुई और कदाचित् (स्वप्नमें) अन्य जीवके सम्बन्धसे रहित वृद्धिको प्राप्त होती है, और हे राजन् ! यह असत्रूप जगत् उसी तुमारे मृत्युकालके मुहूर्तमें चित्रूपी सूर्य्य जो तुम हो उसकी प्रतिभामें उपस्थित ऐसे हुआ जैसे एक मुहूर्तके स्वप्नमें सैकडों वर्षोंका भ्रम ॥ ४९ ॥ ५० ॥ हे राजन् ! जैसे संकल्पकी रचनामें जीवन मरण पुनः होते हैं, और जैसे गन्धर्व नगरमें चित्रादिका दर्शन होताहै ॥ ५१ ॥ जैसे नौकाके यानमें संभ्रम होनेसे वृक्ष पर्वत आदिका कम्पन भान होताहै और अपने तथा वातापित्त आदि धातुओंके संक्षोभ होनेसे अपूर्व पर्वतका नाचना प्रतीत होताहै ॥ ५२ ॥

यथासमंजसंस्वप्नेस्वशिरःप्रविकर्त्तनम् ॥ मिथ्यैवैवमियंप्रौढाभ्रांतिराततरूपिणी ॥ ५३ ॥ वस्तुतस्तु नजातोसिनमृतोसिकदाचन ॥ शुद्धविज्ञानरूपस्त्वंशांतआत्मनितिष्ठसि ॥ ५४ ॥ पश्यसीवैतदखि लंनचपश्यसिकिंचन ॥ सर्वात्मकतयानित्यंप्रकचस्यात्मनात्मनि ॥ ५५ ॥ महामणिरिवोदारआलोक इवभास्वरः ॥ वस्तुतस्तुनभूपीठमिदंनचभवानयम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—और जैसे स्वप्नमें असंगत अपने शिरका कटना आदि भान होताहै उसीप्रकार मिथ्याही व्याप्तरूप यह भ्रान्ति बढगई है ॥ ५३ ॥ और हे राजन् ! यथार्थमें तो तुम न तो कभी उत्पन्न हुये और न मरे, किन्तु शुद्ध ज्ञानरूप अपने आत्मामें आपही स्थित हो ॥ ५४ ॥ इस दृश्यको तुम देखनेसे प्रतीत होतेहो परन्तु यथार्थमें इसका रूप मिथ्या होनेसे तुम कुछ नहीं देखते, तुम सबका आत्मा होनेसे अपने आत्मामें आप प्रकाशमान हो ॥५५ ॥ हे राजन् ! तुम उदार महामणि वा सूर्य्यके समान प्रकाशमानहो और यथार्थमें तो न तो यह तुमारा राज्यहै और न यह तुमारा (विदूरथका) यह देहहै ॥ ५६ ॥

नचेमेगिरयोग्रामानचैतेनचवैवयम् ॥ गिरिग्रामकविप्रस्यमंडपाकाशकेकिल ॥ ५७ ॥ तल्लीलाभर्तृदाराढ्यंजगदाभातिभास्वरम् ॥ तत्रलीलाराजधानीमंडपामंडिताकृतिः ॥ ५८ ॥ भातितस्योदरेव्योम्नितदेवंविदितंजगत् ॥ तस्मिन्जगतिगेहेंतर्यस्मिन्वयमिहस्थिताः ॥ ५९ ॥ एवंतेषांमंडपानांव्योमाव्योमैवनिर्मलम् ॥ तथैवमंडपेष्वस्तिनमहीनचपत्तनम् ॥ ६० ॥

अर्थ—और न ये पर्वत हैं न ये ग्राम हैं और न हमलोग हैं, देखिये छोटेसे गिरिग्रामक ब्राह्मणके मण्डपाकाशमें ॥ ५७ ॥ लीला उसके पति तथा अनेक स्त्रियोंसे पूर्ण यह प्रकाशमान जगत् भान होताहै, और उसीमें अनेक मण्डपोंसे भूषित लीलाकी राजधानीभी शोभित होरहीहै ॥ ५८ ॥ उसी गिरिग्रामक ब्राह्मणके मण्डपाकाशमें जिस गृहमें हम लोग सब स्थित हैं, और सम्पूर्ण विदित जगत् भान हो रहाहै ॥५९॥ इन सब मण्डपोंका जो आकाश है वह यथार्थमें आकाश शून्य केवल ब्रह्मही है, इसीप्रकार इन मण्डपोंमें न पृथिवी है और न नगर हैं ॥ ६० ॥

नवनानिनशैलौघानमेघसरिदर्णवाः ॥ केवलंतत्रनिःशून्येविहरंतिगृहेजनाः ॥ ६१ ॥ नपश्यंतिजनानापिपार्थिवानचभूधराः ॥ विदूरथउवाच ॥ एवंचेत्तत्कथंदेविममेहानुचराइमे ॥ ६२ ॥ संपन्नाआत्मनासंतितेकिमात्मनिनोथवा ॥ जगत्स्वप्नार्थवद्भातितस्यस्वप्ननरादयः ॥ ६३ ॥ कथमात्मनिसत्याःस्युर्नसत्यावेतिमेवद ॥ श्रीसरस्वत्युवाच ॥ राजन्विदितवेद्येषुशुद्धबोधैकरूपिषु ॥ ६४ ॥

अर्थ—न ये वन हैं, न पर्वतोंके समूह हैं न मेघ हैं, न नदियां हैं, और न समुद्र हैं अन्य पदार्थोंसे शून्य केवल चिन्मात्र पूर्ण ब्रह्ममें मिथ्या गृहमें मिथ्याभूत प्राणी विहारकर रहे हैं ॥६१॥ न ये मनुष्य देखते हैं, और न राजा न पर्वत हैं, राजा बोला–हे देवि ऐसा है तो ये हमारे मृत्यलोग किसप्रकार सत्यहैं ? ॥६२॥ वे मेरे सदृश सत्स्वभाव आत्मामें जीवभावसे युक्त हैं कि नहीं, ये मेरेही स्वप्नमें स्वप्न पदार्थके सदृश ये मनुष्य आदि भान होते हैं ॥ ६३ ॥ किसप्रकार सत्य हैं और कैसे नहीं सो कहो, श्रीसरस्वतीजी बोली–हे राजन् ! वेद्य वस्तुको जाननेसे शुद्ध बोधरूप जीवोंमें ॥६४॥

नकिंचिदेतत्सद्रूपंचिद्व्योमात्मसुजागतम् ॥ शुद्धबोधात्मनोभातिकुतोनामजगद्भ्रमः ॥ ६५ ॥ रज्ज्वांसर्पभ्रमेशांतेपुनःसर्पभ्रमःकुतः ॥ असद्भावेपरिज्ञातेकुतःसत्ताजगद्भ्रमे ॥ ६६ ॥ परिज्ञातेमृगजलेपुनर्जलमतिःकुतः ॥ स्वप्नकालेपरिज्ञातेस्वेस्वप्नमरणंकुतः ॥ स्वस्वप्नेस्वप्नमृतिभीरमृस्यैवजायते ॥ ६७ ॥ बुद्धस्यशुद्धस्यशरन्नभःश्रीःस्वच्छावदातातितताशयस्य ॥ अहंजगच्चेतिकुशब्दकार्थोनवस्तुतःसोंगह्निवाचिकंतत् ॥ ६८ ॥ इत्युक्तवत्यथमुनौदिवसोजगामसायंतनायविधयेस्तमिनोजगाम ॥ स्नातुंसभाकृतनमस्करणाजगामश्यामाक्षयेरविकरैश्चसहाजगाम ॥ ६९ ॥ ॥ पंचमदिनम् ॥ ५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने भ्रांतिविचारवर्णनं नाम एकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

अर्थ—चिदाकाशमें यह जगत्का पदार्थ कुछभी सत्रूप नहीं, उनको यह जगत्का भ्रम शुद्ध बोधरूपी भान होताहै ॥ ६५ ॥ रज्जुमें सर्पभ्रम शान्त होनेपर पुनः सर्पभ्रम कहां, इसकी असत्यता जाननेपर जगत् भ्रममें सत्ता कहां ॥ ६६ ॥ मृगतृष्णाका भाव जानलेनेपर पुनः उसमें जलबुद्धि कैसी, स्वप्नकाल जानलेनेपर पुनः अपने स्वप्नमें अपना मरण कैसा ? अपने स्वप्नमें अपने मरणका भय उसीको होताहै जो मरा नहीं है ॥ ६७ ॥ हे प्रिय रामजी ! जो शुद्ध बोधरूप है जिसका अन्तःकरण परमात्माकी व्यापकतासे विस्तारको प्राप्त होगयाहै उसको अज्ञानरूपी मेघके नष्ट होनेपर जैसे आकाशकी शुद्ध शोभा भान होती है ऐसेही यह जगच्छोभाभी भान होती है, और अज्ञदृष्टिसे जो 'अहम्' तथा कुत्सितजगत् शब्द उसकी दृष्टिमें नहीं हैं, क्योंकि ये सब वाणीके विषयमात्र हैं, "वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यमित्यादि श्रुतिः" (घटशराव आदि विकार केवल शब्दमात्रहैं मृत्तिकाही सत्य है)

॥ ६८ ॥ देवदूत कहता है राजन् ! श्रीवसिष्ठमुनिके इतना कहनेपर दिनका अन्त होगया और सूर्य्यअस्त होगये और सभाभी सायंकालकी सन्ध्यास्नान करनेको विदाहुई, और रात्रिके बीतनेपर सूर्य्यके किरणोंके साथ परस्पर प्रणाम करके पुनः आके प्राप्त हुई ॥ ६९ ॥ पंचमदिनं ॥ ५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे लीलोपाख्याने भ्रान्तिविचारवर्णनं नाम एकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४२ ॥

अज्ञानमें जगत् तथा स्वप्नकीभी सत्यता, और वरदान पर्य्यन्त शेष (बाकी) कथा इस ४२ वें सर्गमें निरूपण (वर्णन) कीगई हैं ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यस्त्वबुद्धमतिर्मूढोरूढोनवितते पदे ॥ वज्रसारमिदंतस्यजगदस्त्यसदेवसत् ॥ १ ॥ यथाबालस्यवेतालोमृतिपर्यंतदुःखदः ॥ असदेवसदाकारंतथामूढमतेर्जगत् ॥ २ ॥ तापएव यथावारिमृगाणांभ्रमकारणम् ॥ असत्यमेवसत्याभंतथामूढमतेर्जगत् ॥ ३ ॥ यथास्वप्नमृतिर्जंतो रसत्यासत्यरूपिणी ॥ अर्थक्रियाकरीभातितथामूढधियांजगत् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! जिस मूढबुद्धिको परमात्माके व्यापकपदमें दृढबोध नहीं है, उसको यह जगत् वज्रके समान दृढ सत्य भान होताहै ॥ १ ॥ जिसप्रकार बालकको वेताल मरण पर्य्यंत दुःखदायी होताहै, ऐसेही मूढबुद्धिके लिये इस जगत्की दशा है ॥ २ ॥ जैसे मृगोंको तापहि मृगतृष्णामें जलके भ्रमका कारण है, ऐसेही असत्य जगत्का सत्यके समान भासनाही जगत्के भ्रमका कारण है ॥ ३ ॥ जैसे प्राणीकी असत्यही सत्यरूप अपने स्वप्नकी मृत्यु अर्थ क्रियाकारी भासती है ऐसेही मूढबुद्धियोंको जगत् ॥ ४ ॥

अव्युत्पन्नस्यकनकेकानकेकटकेयथा ॥ कटकज्ञप्तिरेवास्तिनमनागपिहेमधीः ॥ ५ ॥ तथाज्ञस्यपुरागा रनगनागेंद्रभासुरा ॥ इयंदृश्यदृगेवास्तिनत्वन्यापरमार्थदृक् ॥ ६ ॥ यथानभसिमुक्तालीपिच्छकेशोंड्रकादयः ॥ असत्याःसत्यतांयाताभात्येवंदुर्दृशांजगत् ॥७॥ दीर्घस्वप्नमिदंविश्वंविद्ध्यहंतादिसंयुतम् ॥ अत्रान्येस्वप्नपुरुषायथासत्यास्तथाशृणु ॥ ८ ॥

अर्थ—जैसे सुवर्णसे बनेहुये कडेमें अज्ञानीको अनुगत सुवर्णबुद्धि कुछभी नहीं होती किन्तु कडाहै यही बुद्धि होती है ॥ ५ ॥ ऐसेही अज्ञानी पुरुषको पुर, स्थान, नगर, और बडे २ हस्ती आदिसे प्रकाशमान यह जगत् दृश्यकी शोभा दृश्यरूपसेही सत् है ऐसा भान होताहै, और अन्य परमार्थदृष्टि उनको नहीं भान होती ॥ ६ ॥ जैसे आकाशमें मोतियोंकी माला और मयूरपंख केश आदि असत्यरूपभी सत्यके समान होजातेहैं, ऐसेही मूढ दृष्टियोंके लिये यह असत्य जगत्भी सत्यवत् भान होताहै ॥ ७ ॥ हे रामजी ! यह अहंकारादि सहित सम्पूर्ण विश्व एक प्रकारका दीर्घ (बडा) स्वप्न जानो इसमें अपनेसे पृथक् सत्यजन जो भासतेहैं वे स्वप्नमें दूसरे पुरुषादिके समान हैं उनकी विशेष व्यवस्था सुनो ॥ ८ ॥

अस्तिसर्वगतंशांतंपरमार्थघनंशुचि ॥ अचेत्यचिन्मात्रवपुःपरमाकाशमाततम् ॥ ९ ॥ तत्सर्वगंसर्व शक्तिसर्वंसर्वात्मकंस्वयम् ॥ यत्रयत्रयथोदेतितथास्तेतत्रतत्रवै ॥ १० ॥ तेनस्वप्नपुरेद्रष्टायान्वेत्तिपुर वासिनः ॥ नरानितिनराएवक्षणात्तस्यभवंतिते ॥ ११ ॥यद्द्रष्टुश्चित्स्वरूपंतत्स्वप्नाकाशांतरस्थितम् ॥ स्वप्नाकाशचित्ताभंहिनरानामेतिभावितम् ॥ १२ ॥

अर्थ — सर्वगत शान्तरूप, सर्वथा सत्य, पवित्र, विषयशून्य, चिन्मात्र शरीर व्यापक चिदाकाशही है ॥ ९ ॥ वह सर्वव्यापी, सर्व शक्तिमान् सर्वत्र सर्वरूप आपही है, मायासे जहां २ जैसे २ अर्थ क्रियाके योग्य आविर्भूत होताहै वहां २ वैसाही भासताहै ॥ १० ॥ इस रीतिसे जाग्रतमें शास्त्रीय यज्ञ आदि अर्थ क्रियाके योग्य रूपसे जहां आविर्भूत है वहां स्वप्न नहीं, यह अवान्तर भेद यद्यपि है तथापि सत्‌रूपतामें विशेषता नहीं है, इस आशयसे कहतेहैं कि स्वप्नका द्रष्टा स्वप्नके नगरमें जनकपुरवासियोंको मनुष्य करके जानताहै वे क्षणभरके लिये उसको मनुष्यही होजातेहैं ॥ ११ ॥ यहांपर द्रष्टाका जो चेतन स्वरूप स्वप्नाकाशमें है वही स्वप्नाकाशके चित्तके सदृश भासमान मनुष्य होजाताहै अर्थात् आप वह सब पदार्थरूप होजाताहै ॥ १२ ॥

वेदितृत्वैक्यवशतोनरतेवावबुध्यते ॥ आत्मन्यतश्चिद्बलेनद्वयोरप्येतिसत्यता ॥१३॥ श्रीरामउवाच ॥ स्वप्नेपिस्वप्नपुरुषानसत्याःस्युर्मुनेयदि ॥ वदतत्कोभवेद्दोषोमायामात्रशरीरिणि ॥ १४ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ स्वप्ननपुरवास्तव्यावस्तुतःसत्यरूपिणः ॥ प्रमाणमत्रशृणुमेप्रत्यक्षंनामनेतरत् ॥ १५ ॥ सर्गादावात्मभूर्भातिस्वप्नाभानुभवात्मकः ॥ तत्संकल्पकलंविश्वमेवंस्वप्नाभमेवतत् ॥ १६ ॥

अर्थ—जाननेवालेका जो सत्य स्वप्रकाश अपरोक्ष चैतन्यरूप धर्म है उसके साथ जो अभेदका अध्यास है इसीसे मनुष्यता आदिका बोध होताहै, इसलिये आत्मामें चित्केही बलसे जाग्रत् और स्वप्नमें जो अध्यस्त पदार्थ है उनकी अथवा उनके धर्मोंकी सत्यता अधिष्ठान रूपसे सत्य है अर्थात् जाग्रत् या स्वप्नमें जो आत्मामें मनुष्यता बुद्धिमें और अध्यस्तकी सत्यता बुद्धिमें परस्परका अध्यासही कारण है ॥१३॥ श्रीरामजी बोले–हे भगवन्! यदि मायामात्र शरीरमें स्वप्नके पुरुष यदि स्वप्नकी दशामेंभी सत्य नहीं कहिये क्या दोष है अर्थात् जाग्रत्के पुरुष यदि अधिष्ठान रूपसे सत्य न माने जाय तो व्यवहारमें गडबड और कर्मकाण्ड बोधक शास्त्र अप्रमाण होजायगा और स्वप्नके सत्य माननेकी कोई आवश्यकता नहीं है यदि ऐसा है तो हमारा जगत् स्वप्नके समान कैसे? ॥ १४ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी! स्वप्नके पदार्थ ब्रह्मके समान सत्यरूप नहीं है इतनाही कहसकतेहैं न कि निरधिष्ठान होनेसे अधिष्ठान रूपसेभी सत्य नहीं है, इसमें सुनिये हमारे निकट प्रत्यक्ष प्रमाणहै और कुछ नहीं है, अर्थात् जो वन्ध्यापुत्रवत् सर्वथा असत् है उसका प्रत्यक्ष नहीं होता ॥ १५ ॥ सृष्टिके आदिमें ब्रह्माजी स्वप्नके अनुभव सहितही प्रकाशतेहैं उनके संकल्पसे यह विश्व रचा गयाहै इसलिये यह स्पप्नके तुल्यही है अर्थात् यह विश्वभी ब्रह्माजीका स्वप्नही है ॥ १६ ॥

एवंविश्वमिदंस्वप्नस्तत्रसत्यंभवान्मम ॥ तथैवत्वंतथैवान्येस्वमेस्वप्नवरान्नृणाम् ॥ १७ ॥ स्वप्नेनगरवास्तव्याःसत्यानस्युरिमेयदि ॥ तदिहापितदाकारेनसत्यंमेमनागपि ॥ १८ ॥ यथाहंतवसत्यात्मा सत्यंसर्वंभवेन्मम ॥ स्वप्नोपलंभेसंसारेमिथःसिद्धयैप्रमेदृशी ॥ १९ ॥ संसारेविपुलेस्वप्नेयथासत्यमहंतव ॥ यथात्वमपिमेसत्यंसर्वस्वप्नेष्वितिक्रमः ॥ २० ॥

अर्थ—हे रामजी! इस स्वप्नमय विश्वमें तुम मेरी दृष्टिमें सत्यहो क्योंकि अपनी सत्यताका अपलाप तुम आप नहीं करसकते, जैसे तुम सत्य हो ऐसेही तुमारी तथा मेरी दृष्टिमें अन्य लोगभी सत्य हैं, इसीप्रकार अपने २ अनुभवके अनुसार सब मनुष्योंकी स्वप्नकी सत्यता सिद्ध है ॥ १७ ॥ हे रामजी! स्वप्नके नगर और पुरके निवासी आदि यदि सत्य (अधिष्ठान रूपसे) सत्य नहीं तो इस जाग्रत्मेंभी मुझे उनके आकारमें कुछभी सत्यता बुद्धि नहीं है ॥ १८ ॥ जैसे मैं तुमको सत्य भान होताहुं ऐसेही मेरी दृष्टिमें सब सत्य है, क्योंकि स्वप्न प्राप्त संसारमें परस्परकी सिद्धिके लिये ऐसाही ज्ञान है ॥ १९ ॥ हे रामजी! इस संसाररूपी दीर्घस्वप्नमें, जैसे मैं तुमको सत्य भान होताहुं ऐसाही तुम मुझे होतेहो, और सब स्वप्नोंमें यही रीति है ॥ २० ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ स्वप्नद्रष्टरिनिर्निद्रेतद्द्रष्टुःस्वप्नपत्तनम् ॥ सद्रूपत्वात्तथैवास्तेममेतिभगवन्मतिः ॥ २१ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवमेतत्तथैवास्तेसत्यत्वात्स्वप्नपत्तनम् ॥ स्वप्नद्रष्टरिनिर्निद्रेप्याकाशविशदाकृति ॥ २२ ॥ एतदास्तामिदंतावद्यजाग्रदिवमन्यसे ॥ विद्धितत्स्वप्नमेवांतदेशकालाद्यपूरकम् ॥ २३ ॥ एवंसर्वमिदंभातिनसत्यंसत्यवत्स्थितम् ॥ रंजयत्यपिमिथ्यैवस्वप्नस्त्रीसुरतोपमम् ॥ २४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–हे भगवन्! आपके वचनसे मेरी बुद्धिमें स्वप्न और जाग्रत् तुल्य भान होनेलगा परन्तु स्वप्नके द्रष्टाके जागनेपर स्वप्नके नगर आदि सद्रूपसे क्यों नहीं स्थित रहते ॥ २१ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी! ऐसाही है जैसा आप स्वप्न द्रष्टाके जागनेपरभी स्वप्नका नगर आदि अधिष्ठान रूपसे आकाशके समान विशाल आकृति धारण किये विद्यमान है ॥ २२ ॥ यदि यह कहो कि जाग्रत्के समान एक स्वप्नके पदार्थोंका दूसरे स्वप्नमें वा जाग्रत्की अनुवृत्ति होनी चाहिये सो नहीं क्योंकि जैसे स्वप्नके पदार्थ जाग्रत् देश कालके पूरक नहीं है ऐसेही जिसको तुम जाग्रत् भान रहेहो वहभी तो स्वप्नके देश काल आदिका पूरक नहीं ॥ २३ ॥ हे रामजी! इसप्रकार यह जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड सत्यके सदृश स्थित भान होताहै वह सत्य नहीं है, मिथ्याभी यह सबके चित्तको आकर्षण करताहै जैसे मिथ्याभी स्वप्नकी स्त्री सुरतके समान (जाग्रत् स्त्रीके सदृश) मनोरंजन करतीही है ॥ २४ ॥

यत्कोशेविसर्वत्रविद्यतेसर्वदेहस्यांतर्बहिस्तथा ॥ यत्तुवेत्तियथासंवित्तत्तथास्वैवपश्यति ॥ २५ ॥ अनन्तरसुवाचेदंदेयतेद्रव्यंतद्द्रष्टालभ्यतेयथा ॥ तथास्तितेसर्वंचिद्वयोम्निचेत्यतेतत्त्वनेनवै ॥ २६ ॥

वीज्ञप्तिर्विदूरथम् ॥ कृत्वाबोधामृतासेकैर्विवेकांकुरसुन्दरम् ॥ २७ ॥ एतदेवमयाराजन्लीलार्थमुप वर्णितम् ॥ स्वस्तितेस्तुगमिष्यावोदृष्टादृष्टांतदृष्टयः ॥ २८ ॥

अर्थ—और संवित् (ज्ञान) वह शरीरके बाहर भीतर सर्वत्र पूर्ण और सर्वात्मक वह मायाके प्रभावसे जहां जैसी स्फूरण करताहै वहां वैसाही आपही देखताहै ॥ २५ ॥ जैसे जो द्रव्यकोश (खजाने) में होताहै वह द्रष्टाको अवश्य प्राप्त है ऐसेही चिदाकाशमें सब कुछ है वह जैसी स्फुरणा करताहै वैसाही उसको भान होताहै॥२६॥हे रामजी ! इसके अनन्तर ज्ञप्ति देवीने ज्ञानरूपी अमृतके सिंचन करके विवेकरूपी अंकुरसे सुन्दर करके विदूरथसे यह बात कही ॥ २७ ॥ हे राजन् ! यह वार्ता लीलाके लिये मैंने वर्णन कियाहै, तुमारे अभिलषित पदार्थकी सिद्धि हो हमलोग अब जाती हैं, क्योंकि गिरिग्रामक ब्राह्मणके मण्डपके भीतर लीलाने तुमारे ब्रह्माण्डकी कल्पना देखली ॥ २८ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इतिप्रोक्तेसरस्वत्यागिरामधुरवर्णया ॥ उवाचवचनंधीमान्भूमिपालोविदूरथः ॥ २९॥ विदूरथउवाच ॥ ममापिदर्शनंदेविमोघंभवतिनार्थिनि ॥ महाफलप्रदायास्तुकथंतवभविष्यति ॥ ३० ॥ अहंदेहंसमुत्सृज्यलोकांतरमितोपरम् ॥ निजमायामिहेदेविस्वप्नात्स्वप्नान्तरंयथा ॥ ३१ ॥ पश्यादिशाशुमांमातःप्रपन्नंशरणागतम् ॥ भक्तेवहेलावरदेमहतांनविराजते ॥ ३२ ॥ यंप्रदेशमहंयामितमेवायात्वयंमम ॥ मंत्रीकुमारीचैवेयंबालेतिकुरुमेदयां ॥ ३३ ॥ श्रीसरस्वत्युवाच ॥ आगच्छराज्यमुचितार्थविलासचारुप्राग्जन्ममंडलपतेकुरुनिर्विशंकं ॥ अस्माभिरर्थिजनकामनिराकृतिर्हिदृष्टानकाचनकदाचिदपीतिविद्धि ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने स्वप्नपुरुषसत्यत्वनिरूपणं नाम द्विचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४२ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—मधुर अक्षर सहित बाणीसे जब भगवतीने ऐसा कहा तब बुद्धिमान् (तुमारे अभिलषित पदार्थकी सिद्धिहो इसके आशयको जाननेवाला) राजा विदूरथ यह बचन बोला कि ॥ २९ ॥ हे देवि ! मुक्त मनुष्यकाभी दर्शन अर्थियोंके लिये निष्फल नहीं होता तो महाफलके देनेवाली जो आप हैं उनका कैसे निष्फल होगा ॥ ३० ॥ हे देवि ! मैं इस शरीरको त्यागके इस लोकसे परे अपने निज लोकको ऐसे आताहुं जैसे एक स्वप्नसे दूसरे स्वप्नको ॥ ३१ ॥ हे वरके देनेहारी भगवती मैं आपके शरणमें प्राप्तहुं मेरे ऊपर कृपादृष्टि करो और शीघ्र आज्ञा दो क्योंकि महात्मालोग भक्तका निरादर नहीं करते ॥ ३२ ॥ हे देवि! यह दया मेरे ऊपर कीजिये जिस स्थानमें मैं आऊं उसी स्थानमें यह मेरा मंत्री और यह अविवाहित कन्याभी आवैं ॥ ३३ ॥ श्रीसरस्वतीजी बोली—हे राजन् ! आईये, लीलाके भाग्योंके योग्यपदार्थोंके विलासोंसे उत्तम, पूर्वजन्मके मण्डलके पतिका राज्य निश्शंक होके कीजिये हमलोगोंने अर्थीजनोंके कामनाका निराकरण कभी नहीं किया, और न कभी किसीने ऐसा करते (अर्थियोंकी कामनाका निराकरण करते) हमको देखा, यह तुम निश्चय जानो ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे लीलोपाख्याने स्वप्नपुरुषसत्यत्ववर्णनं नाम द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

राजाको अभीष्ट वरदानका देना अकस्मात् नगरका जलना, और जलते हुये पुरवासियोंकी चेष्टा इस ४३ वे सर्गमें वर्णन कीगई है ॥

॥ श्रीसरस्वत्युवाच ॥ अस्मिन्रणवरेराजन्मर्त्तव्यंभवताधुना ॥ प्राप्तव्यंप्राक्तनंराज्यंसर्वंप्रत्यक्षमेव ते ॥ १ ॥ कुमार्यामंत्रिणाचैवत्वयाचप्राक्तनंपुरं ॥ आगंतव्यंशवीभूतंप्राप्तव्यंतच्छरीरकं ॥ २ ॥ आवांयावोयथायातंवातरूपेणचत्वया ॥ आगंतव्यःसदेशस्तुकुमार्यामंत्रिणापिच ॥ ३ ॥ अन्यैवगतिरश्वस्य गतिरन्याखरोष्ट्रयोः ॥ मदस्विन्नकपोलस्यगतिरन्यैवदंतिनः ॥ ४ ॥ प्रस्तुतेतिकथायावन्मिथोमधुरभाषिणोः ॥ तावत्प्रविश्यसंभ्रांतउवाचोर्ध्वस्थितोनरः ॥ ५ ॥ देवसायकचक्रासिगदापरिघवृष्टिमत् ॥ महत्परबलंप्राप्तमेकार्णवइवोद्धतः ॥ ६ ॥ कल्पकालानिलोद्धूतकुलाचलशिलोपमं ॥ गदाशक्तिभुशुंडीनांवृष्टिंमुंचतितुष्टिमत् ॥ ७ ॥ नगरेनगसंकाशेलग्नोग्निर्व्याप्तदिक्तटः ॥ दहंश्चटचटास्फोटैःपातयत्युत्तमांपुरीम् ॥ ८ ॥

अर्थ—श्रीसरस्वती बोली—हे राजन्! इस श्रेष्ठयुद्धमें तुम मृत्युको अवश्य प्राप्त होओगे, और तुमारा पूर्वजन्मका राज्यभी अवश्य तुमको मिलेगा, यह सब प्रत्यक्ष तुमको होगा ॥ १ ॥ कुमारी और मंत्री तथा तुम उसी अपने पूर्वजन्मके नगरमें आओगे, और तुमको तुमारा पूर्वजन्मका मृतक शरीर मिलेगा ॥ २ ॥ हम दोनों जिसप्रकार आई वैसेही जाती हैं, और वायुरूप सूक्ष्म शरीरसे तुम, तुमारी यह कुमारी पुत्री, और मंत्रीभी सब उसी देशको प्राप्त होओगे ॥ ३ ॥ हे राजन्! अश्वकी गति अन्यही है और उष्ट्र तथा खच्चरकीभी गति भिन्न है, और मदसे जिसके कपोल भीग रहे हैं उस हस्तीकीभी गति दूसरीही है, अर्थात् यह सूक्ष्म शरीरकी गति मण्डपाकाशमेंभी मनोरथकी गतिके सदृश दूरकेही समान होती है अश्व आदिकी गतिके सदृश पूर्व सिद्ध देशकी दीर्घता इसके लिये नहीं चाहिये ॥ ४ ॥ ॥ ५ ॥ हे रामजी! जिससमय दोनोंमें इसप्रकार मधु कथा होरहीथी उसीसमय एक भयसे सम्भ्रान्त मनुष्य ऊपर खडा होके बोला ॥ ६ ॥ हे राजन्! बाण, चक्र, तलवार, गदा, और परिघकी वृष्टि सहित ऊमडे हुये बडे समुद्रके सदृश एक सेना प्राप्त हुई है, युद्धके उत्साहसे प्रसन्न वह सेना प्रलयकालके पवनके सदृश मेरु आदि कुलाचलोंकी शिलाओंकोभी कंपाये डालती है, और गदा शक्ति और भुशुंडी आदिकी वृष्टि कररही है ॥ ७ ॥ हे राजन्! पर्वतके समान इस नगरमें सब दिशाओंमें व्याप्त होके अग्नि लगगई हैं, और चटचटा शब्दोंके साथ जला रही है ॥ ८ ॥

कल्पांबुदघटातुल्याव्योम्निधूममहाद्रयः ॥ बलात्प्रोड्डयनंकर्तुंप्रवृत्तागरुडाइव ॥ ९ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ससंभ्रमंवदत्येवंपुरुषेपरुषारवः ॥ उदभूत्पूरयन्नाशाबहिःकोलाहलोमहान् ॥ १० ॥ बलादाकर्णकृष्टानांधनुषांशरवर्षिणाम् ॥ बृंहतामतिमत्तानांकुंजराणांतरस्विनाम् ॥ ११ ॥ पुरेचटचटास्फोटैर्दहतां जातवेदसाम् ॥ पौराणांदग्धदाराणांमहाहलहलारवैः ॥ १२ ॥ तरतामग्निखंडानांटांकारःकथितोरवैः ॥ ज्वलितानांपरिस्पंदाद्धगद्धगिंतिचार्चिषाम् ॥ १३ ॥ अथवातायनाद्देव्यौमंत्रीराजाविदूरथः ॥ ददृशुः प्रोल्लसन्नादंमहानिशिमहापुरम् ॥ १४ ॥ प्रलयानलसंक्षुब्धपूर्णकार्णवरंहसा ॥ पूर्णपरबलेनोग्रहेतिमेघ तरंगिणा ॥ १५ ॥ कल्पांतवह्निविगलन्मेरुभूधरभासुरैः ॥ दह्यमानंमहाज्वालाज्वालैरंबरपूरकैः ॥ १६ ॥

अर्थ—प्रलयकालके मेघके समूहके सदृश बडे २ धूमके पर्वत गरुडके समान बलसे उडनेको प्रवृत्त होरहे हैं ॥ ९ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—इसप्रकार भयके साथ उस पुरुषके कहते हुये सब दिशाओंको पूर्ण करता हुआ कठोर शब्दोंसहित महान कोलाहल बाहरसे प्रगट हुआ ॥ १० ॥ बलसे कानतक खींचे हुये बाणकी वृष्टि करनेवाले धनुषोंके और बडे २ मदोन्मत्त वेगवान हाँथियोंके ॥ ११ ॥ चटचटा शब्दोंसे जलाते हुये अग्निकी कीरण निकली और जिनके स्त्री आदि जलगये थे ऐसे नगर निवासियोंसे इधर उधर उडते हुये अग्निके खण्डोंके और जलते हुये पदार्थोंकी गतिसे धग २ जलती हुई अग्निकी ज्वालाओंके महा हलहला रवों (शब्दों) से महान् टांकर शब्द हुआ ॥ १२ ॥ १३ ॥ इसके अनन्तर दोनों देवियां मंत्री और राजा विदूरथने झरोंखेके मार्गसे देखा तो महारात्रिमें महान् नगर शब्दसे पूर्ण होरहाहै ॥ १४ ॥ भयंकर अस्त्रशस्त्ररूपी मेघ और तरंग सहित प्रलयकालके वायुसे संक्षुब्ध पूर्ण समुद्रके समान वेगवाली शत्रुकी सेनासे वह नगर पूर्णथा ॥ १५ ॥ प्रलयकालकी अग्निसे गलते हुये मेरुपर्वतके सदृश प्रकाशमान और आकाशको पूर्ण करनेवाली महाज्वालाओंकी शिखाओंसे वह नगर भस्मीभूत होरहाथा ॥ १६ ॥

मुष्टिग्राह्यमहामेघगर्ज्जासंतर्जितोर्जितैः ॥ घोरंकलकलारावैर्मांसलैर्दस्युजल्पितैः ॥ १७ ॥ पुष्करावर्त्तसंकाशधूम्राभ्रपिहितांबरम् ॥ प्रोड्डीनहेमाग्रनिभैर्ज्वालापुंजैर्निरंतरम् ॥ १८ ॥ तरद्दल्मुकखंडोग्रतारातरलितांबरम् ॥ अन्योन्यदेशसद्मौघप्रज्वलज्ज्वालनाचलम् ॥ १९ ॥ हतसैन्यपुरापातंद्रुतांगाराभ्रकोटरैः ॥ कर्कशाक्रंदनिर्दग्धलोपूकगोग्रगर्जितम् ॥ २० ॥

अर्थ—दूसरोंके लूटनेमें तथा डरानेमें मेघोंकी गर्जनाके समान गर्जनाहै जिनकी ऐसे चोरोंके कल २ शब्द सहित तर्जनाओंसे वह नगर भयंकर होरहाहै ॥ १७ ॥ पुष्करावर्त (प्रलयकाल) धूमरूपी मेघोंसे आच्छादित आकाश जिसका ऐसा, और उडतेहुये सुवर्णके अग्रभागके सदृश ज्वालाओंके समूहोंसे नगर व्याप्त होगया ॥ १८ ॥ जलते हुये चंचल काष्ठरूपी उत्पात सूचक रक्ततारोओंसे आकाश जहांपर कल्पितसा होगयाहै, और एक देशकी ज्वाला का दूसरे देशमें परस्पर जानेसे गृहोंके समूहरूपी अग्निके पर्वत जहां जल रहेहैं ॥ १९ ॥ मारेहुयोंमेंसे बची सेनाओंके नगरमें जहां प्रवेश होरहाहै तथा चारोंओर फैलते हुये अंगाररूपी मेघोंके छिद्रोंसे उपलक्षित, कर्कश रोदन पूर्वक जले हुये मनुष्य समूहों करके और शत्रुओं करके उग्र गर्जना जहां होरही है ॥ २० ॥

कृशानुकणनाराचनिरंतरतरांबरम् ॥ बहुहेतिशिलाजालऌठद्दग्धपुरोत्करम् ॥ २१ ॥ रणद्द्विरदसंघट्टकुट्टितोद्भटसद्भटम् ॥ विद्रवत्तस्करच्छेदमार्गकीर्णमहाधनम् ॥ २२ ॥ अंगारराशिनिपतन्नरनार्युग्ररोदन

म् ॥ स्फुटच्चटचटाशब्दप्रस्फुटत्स्फुटकाष्ठकम् ॥ २३ ॥ विपुलालातचक्रौघशतसूर्यनभस्तलं ॥ अंगारशिखिराकीर्णसमस्तवसुधातलम् ॥ २४ ॥

अर्थ—अग्निके कणोंसे तथा वाणोंसे आकाश जहां व्याप्त होरहाहै और शस्त्रोंसे तथा शिलाओंके समूहोंसे जलेहुये मनुष्य जहांपर नगर निवासियोंके समूह गिरे लोटरहे हैं ॥ २१ ॥ शब्द करते हुये हांथियोंके संघट्टसे उत्तम वीर जहां चूर्ण होरहे हैं और भागते हुये चोरोंके शिरोंके काटनेसे मार्गमें महा धन जहां विखर रहाहै ॥ २२ ॥ अंगारोंकी राशियोंपर गिरते हुये नरनारियोंका जहां भयंकर रोदन होरहाहै और चटाशब्दोंके साथ जलते हुये काष्ठ जहां इधर उधर उडरहे हैं ॥२३॥ और जहां वडे २ आलात चक्रोंके समूहोंसे मानों आकाशतल सैकडों सूर्य्योंसे व्याप्त है और अंकारोंकी अग्नियोंसे मानो संपूर्ण भूमंडल जहां व्याप्त होरहा है ॥ २४ ॥

दग्धाग्निकाष्ठकेंकाररणज्ज्वलनवैणवम् ॥ दग्धजंतुघनाक्रंदरुदत्सकलसैनिकम्॥२५॥पांसुशेषात्तराजश्रीवृद्धवृत्तहुताशनम् ॥ सकलग्रसनारंभसोद्योगाग्निमहाशनम् ॥ २६ ॥ यदृच्छात्कारडात्कारकठिनाग्निरटगृहम् ॥ अनंतजंतुभोज्यान्नवन्हिभुक्तेंधनस्पृहम् ॥२७॥ अथशुश्रावतत्रासौगिरोराजाविदूरथः ॥ योधानांदग्धदाराणांपश्यतामभिधावताम् ॥ २८ ॥

अर्थ—जलतेहुये अग्नि संयुक्त काष्ठोंके कडकडा शब्दोंके साथ शब्द करतेहुये वांसके काष्ठ जहां जल रहेहैं, और जलेहुये मनुष्योंके महान् आक्रन्दोंसे योद्धा लोग जहां रूदन कररहेहैं ॥ २५ ॥ राजाकी श्री केवल भस्म मात्र अवशेष रहजानेसे वृद्धिको प्राप्त वृत्त होगया अग्नि जहांपर, और सबका ग्रास करनेको महाभक्षक अग्नि जहां महान् उद्योग कररहाहै ॥ २६ ॥ अकस्मात् दैवकी इच्छासे चोरोंके सर्वस्वग्रहण और प्रहारसे, तथा दुर्निवार अग्निसे सब गृहोंके मनुष्य जहां चिल्लारहेहैं और अनन्त मनुष्योंके भोज्य पदार्थोंको तथा धान्यकी राशियोंको जब अग्निके जलादिया तब किन्हीं २ मनुष्योंको वचेहुये केवल काष्ठ मात्रमें अभिलाषा जहां लगरहीहै ॥ २७ ॥ इसके अनन्तर, जिनके स्त्री आदि सब जलगयेहैं, और दूसरोंको देखतेहुये दौड रहेहैं ऐसे योद्धाओंके करूणाजनक ये शब्द वहांपर राजा विदूरथने सुने ॥ २८ ॥

हामत्तमरुदूर्ध्वस्थानंगारगृहपादपान् ॥ रणत्खरखरंनीरजालामातपपंथिनः ॥ २९ ॥ हादग्धदाराःप्रालेयशीतादेहेषुदंतिनाम् ॥ मग्नामनस्सुमहतामिवविज्ञानसूक्तयः ॥ ३० ॥ हाताहेतयोलग्नास्तरुणीकबरीतृणे ॥ ज्वलंतिशुष्कपर्णौघाइववीरानिलेरिताः ॥ ३१ ॥ आवर्त्तननदीदीर्घावहस्यूर्ध्वतरंगिणी ॥ पश्येयंधूमयमुनाव्योमगंगांप्रधावति ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे प्रिय सुहृद ! अति खेदका विषय है कि बडे ऊंचे और रसकी अधिकतासे हरे इसीसे आतपको निवारण करनेवाले गृहके वृक्षोंको जडसे नष्ट करनेके वास्ते यह विपत्तीरूप वायु आया ॥ २९ ॥ हा पूर्वकालमें हिमसेभी अधिक शीतल स्त्रियां जलके मृतक हांथियोंके शरीरमें ऐसे गुप्त होरही हैं जैसे महात्माओंके मनमें ज्ञानाग्निसे स्थूल शरीर आदिको भस्म करनेवाली उत्तम उक्ति ॥ ३० ॥ हा ! हे तात ! स्त्रियोंके केशपाशरूपी तृणोंमें शस्त्राग्नि लगरही है, और वीर लोग तो इस शस्त्राग्निमें ऐसे जलरहेहैं जैसे वायुसे प्रेरित अग्निसे सूखे पत्रों (पत्तों) का समूह ॥ ३१ ॥ आवर्त सहित नदीके प्रवाहके सदृश दीर्घ और ऊपरकी ओर जानेवाले तरंगों सहित यह धूमरूपी यमुनानदी देखो आकाश गंगाकी ओर दौड रही है ॥ ३२ ॥

वहद्दुल्मुककाष्ठोर्ध्वगामिनीधूमनिम्नगा ॥ वैमानिकानंधयतिपश्याग्निकणबुद्बुदा ॥३३॥ अस्यामातापिताभ्राताजामातास्तनपाःसुते ॥ अस्मिन्सग्नेनिर्दिग्धादग्धैवासत्सामिंधने ॥ ३४ ॥ हाहाहागच्छतेशीघ्रमेतदंगारमंदिरम् ॥ इतःप्रवृत्तंपतितुंसुमेरुःप्रलयेयथा ॥ ३५ ॥ अहोशरशिलाशक्तिकुंतप्रासासिहेतयः ॥ ज्वालसंध्याभ्रपटलंविशंतिशलभाइव ॥ ३६ ॥

अर्थ—देखो जलते हुये काष्ठ जिसमें वह रहे हैं और अग्निके कणरूपी जिसमें बुदबुद (बुल्ले) हैं ऐसी यह धुमरूपी नदी विमानोंमें स्थित देवताओंको अन्धा कर रही है ॥ ३३ ॥ हे पुत्रि ! देखो. इसके माता पिता भ्राता जमाता (जमाई) और दुग्ध (माताके स्तनका) पीनेवाले बालकभी इसी स्थानमें जलगये और यह उनके विरहरूपी अग्निमें वास्तविक अग्निके न रहनेपरभी जलीहीसी है ॥ ३४ ॥ हाः हाः हाः शीघ्र यहांसे निकलो ! ! ! यह अंगारके सदृश जलताहुआ तुमारा स्थान इधर ऐसा गिरना चाहताहै जैसे प्रलयकालमें मेरु ॥ ३५ ॥ अहो ! कैसे खेदका विषय है कि वाण, शिला, शक्ति, भाले, वर्च्छियां, तलवार, तथा अन्य अस्त्र शस्त्र सायंकालमें झरोखेमें मेघके सदृश रक्तवर्ण शलभोंके सदृश प्रवेश कर रहे हैं ॥ ३६ ॥

हेतिप्रवाहाज्वलनंनभस्यंत्यांविशंत्यहो ॥ वडवानलसुज्ज्वालमर्णपूराइवार्णवात् ॥३७॥ धूमायांतिमहा भ्राणिज्वालाःशिखरिकोटिषु ॥ सरसान्यपिशुष्यंतिहृदयानीवरागिणाम् ॥ ३८ ॥ आलानत्वरुषेवैतादं तिभिर्वृक्षपंक्तयः ॥ स्फुरत्कटकटारावंपात्यंतेकृतचीत्कृतैः ॥ ३९ ॥ पुष्पपुष्पफलस्कंधागतश्रीकागृहद्रु माः ॥ गतानिर्दग्धसर्वस्वागृहस्थाइवदीनताम् ॥ ४० ॥

अर्थ—अहो ! भयसे आकाशमें उडनेकी इच्छा करनेवाली इस नगरीमें शस्त्रके प्रवाह इसकी अग्निमें ऐसे प्रवेश करतेहैं जैसे समुद्रसे जलके प्रवाहमें प्रदीप्त वडवानल अग्निमें ॥ ३७ ॥ वडे २ राजभवनोंके अग्रभागमें महामेघोंके सदृश धूम तथा अग्निकी ज्वाला निकल रही है जिनके कारण तडाग वउली तथा वाटिका आदि ऐसे जल गये, जैसे वैराग्यवान् पुरुषोंके हृदय (विषयरससहित चित्त) ॥ ३८ ॥ देखो ! चिग्घार शब्द करते हुये ये हांथी इन वृक्षोंकी पंक्तियोंको ऐसे उखाडके गिरा रहे हैं मानों वन्धनके घसे ॥ ३९ ॥ पुष्प, फल, और शाखाओंसे शून्य गृहके वृक्ष ऐसे शोभारहित होगये हैं जैसे सर्वस्व भस्म होजानेसे दीनदशाको प्राप्त गृहस्थ ॥ ४० ॥

मातापितृविनिर्मुक्ताबालकास्तिमिरावलीम् ॥ मग्नंतोंगेषुरथ्यासुकुड्यपातेनहाहताः ॥ ४१ ॥ वातविद्रा वितात्रस्यन्करिण्योरणमूर्धनि ॥ पतदंगारकागारभारिणःकटुकूजितम् ॥ ४२ ॥ हाकष्टमसिनिर्भिन्ने स्कंधेसन्नद्धदोल्मुके ॥ पतितोयंत्रपाषाणःपुरुषस्याशनिर्यथा ॥ ४३ ॥ गवाश्वमहिषेभोष्ट्रश्वशृगालैड केरहो ॥ घोरैरणमिवारब्धंमार्गरोधकमाकुलैः ॥ ४४ ॥

अर्थ—हा हे प्रिय ! देखो मातापितासे विनिर्मुक्त ये बालक अन्धकारमें अपने लिये वाणसे व्याप्त गलियोंमें स्थान ढूंढते हुये भीत्ति (दीवाल) के गिरजानेसे दवकर मरगये ॥४१॥ भयंकर तथा कर्णकटु चिग्घार शब्द करतेहुये ये हांथियां अंगारके गिरनेसे वर्षा तथा घर्मसे रक्षाकरनेवाली छतसेभी भयभीत होगयेहैं ॥ ४२ ॥ हा कैसे खेदका विषयहै कि तलवारसे कटेहुये और जलतेथे काष्ठसहित वीर पुरुषके कन्धेपर यंत्रका पाषाण ऐसे गिरा जैसे बज्र ॥ ४३ ॥ देखो भयंकर और व्याकुल गौ, घोडे, हांथी, ऊंट, कुत्ते, शृगाल, और मैंव आदि जानेवालोंके मार्ग रोकनेका युद्धसा आरम्भ करदिया है ॥ ४४ ॥

पटैःपटपटाशब्दजलजलालिमालितैः ॥ आक्रंदंत्यःस्त्रियोयांतिस्थलपद्माचिताइव ॥ ४५ ॥ स्त्रीणांज्वा लालुवाःपश्यलिहंत्यलकवल्लरीः ॥ कुर्वंतोशोकपुष्पाभांकरभाइवपन्नगीः ॥ ४६ ॥ हाहाहरिणशावा क्ष्याःपक्षलक्षणपक्ष्मसु ॥ कुमार्गेष्विवविश्रांतिमेतिकाशानवीशिखा ॥ ४७ ॥ दह्यमानोपिनिर्यातिनक लत्रंविनानरः ॥ आहोबतदुरुच्छेदाःप्राणिनांस्नेहवागुराः ॥ ४८ ॥

अर्थ—हा देखिये पट २ शब्द करतेहुये जलके विन्दुरूपी भ्रमरोंसे व्याप्त परोंसे आच्छादित (अग्नि लगनेके भयसे गीला कपडा पहनेहुये) और महाविलाप करती हुईं स्त्रियां ऐसे जातीहैं मानो हस्त, पाद, और मुखरूपी स्थल कमलोंसे आच्छादित होके गमन कररही है ॥ ४५ ॥ देखिये स्त्रियोंकी अलकरूपी लताओंको अग्निकी ज्वाला कैसे आस्वादन कररहीहैं, जैसे दैवेच्छासे अशोक पुष्पोंकी शोभा करनेवाली शाखोंमें लटकतीहुई सर्पिणियोंको ऊंट ॥ ४६ ॥ हा हा ! अतिशोक मृगनेत्रोंके भ्रमरके पक्षकेसदृश (कृष्णवर्ण) नेत्रोंमें पक्ष्मों (बरोनियों) में अग्निकी ज्वाला ऐसे आके विश्राम करती है जैसे कोई कुमार्गमें ॥ ४७ ॥ जलता हुआभी पुरुष अपनी प्रिया पत्नीके विना बाहर नहीं निकलता, अहो ! प्राणियोंके स्नेहरूपी जालका टूटना अति कठिन है ॥ ४८ ॥

करीरभसनिर्लूनज्वलदंगारपादपः ॥ लुप्तपुष्करकःकोपान्मग्नःपुष्करदंसरः ॥ ४९ ॥ धूमोंबुदपदंप्राप्य विलोलांतस्तडिल्लतः ॥ ज्वलदंगारनाराचनिकरंपरिवर्षति ॥ ५० ॥ देवधूमस्फुरद्वह्निकणआवर्त्तवात्ति मान् ॥ स्थितआपीडवान्व्योम्निरत्नपूर्णइवार्णवः ॥ ५१ ॥ गौरमंबरमाभातिज्वालाशिखरतेजसा ॥ मृ त्युनेवोत्सवेदत्तःकुंकुमाक्तकरंडकः ॥ ५२ ॥

अर्थ—वलके वेगसे जलतेहुये अंगारसहित वृक्षको तोडनेवाला अतएव दग्धशुण्ड हस्ती कोपसे कमलप्रद (कमल देनेवाले) तडागमें पहुंचकर डूब गया ॥ ४९ ॥ धूम मेघोंको पद आकाश देशमें प्राप्त होकर चंचल अग्निकी ज्वालारूपी विद्युत (बिजुली) को धारण करता हुआ अंगार और वाणोंसंग्रहकी वृष्टि कररहा है ॥ ५० ॥ हे राजन् ! (किसीकेप्रति उक्ति) देदीप्यमान अग्निके कणरूप आवर्त सहित, और अग्निकी ज्वालारूप तरंगधारी यह धूम आकाशमें समुद्रके समान स्थित है ॥ ५१ ॥ ज्वालाके पर्वतोंके तेजसे अति पीतवर्ण आकाश ऐसे शोभित होरहाहै जैसे कुंकुमसे रंगकर दिशारूपी स्त्रियोंके दीहुई पेटारी ॥ ५२ ॥

अहोनुविषमंचेदंवर्त्ततेवृत्तवर्जितम् ॥ ध्रियंतेराजनार्योपिवैरिवीरैरुदायुधैः ॥ ५३ ॥ लोलस्रग्दामकुसुमैर्मार्गप्राकारकारकैः ॥ अर्द्धनिर्दग्धकबरीकीर्णवक्षस्थलस्तनाः ॥ ५४ ॥ आलोलांबरसंलक्ष्यनितंबजघनस्थलाः ॥ पतन्माणिक्यवलयवलितावनिमंडलाः ॥ ५५ ॥ छिन्नहारलताजालविकीर्णामलमौक्तिकाः ॥ दृष्टादृष्टस्तनश्रेणीपार्श्वोद्यत्कनकप्रभाः ॥ ५६ ॥

अर्थ—अहो कैसा विषम सन्मार्गसे वर्जित विपरीत यह समय वर्तरहाहै कि प्रचण्ड अस्त्रशस्त्र धारण किये हुये वीर राजाकी स्त्रियोंको पकडे लिये चले जातेहैं ॥ ५३ ॥ कैसी हैं वे राजस्त्रियां कि मार्गमें बिखरते हुये चंचल पुष्पोंकी मालाओंको धारण किये हुये, और आधे जलते हुये तथा वक्षस्थलों (स्तनों) पर बिखरे केशोंको धारण किये हुये ५४ चंचल सूक्ष्म वस्त्रोंके भीतर जिनका नितम्ब (कमर) और जंघा दीख रही है तथा जिनके गिरते हुये माणिक (लाल) जडित कडोंसे पृथिवीतल आच्छादित होरहाहै ॥ ५५ ॥ तथा इनके टूटे हुये हाररूपी लताओंके समूहोंसे निर्मल मोतियां बिखर रही हैं, और जिनकी कुछ दृष्ट कुछ अदृष्ट स्तनकी पंक्तियोंके निकटसे सुवर्णकी दीप्ति निकल रही है॥५६

कुररीकर्कशाक्रंदमंदीकृतरणारवाः ॥ धारावाहाश्रुतारावभिन्नपार्श्वविचेतनाः ॥ ५७ ॥ रक्तकर्दमबाष्पांबुक्लिन्नग्रंथितवाससः ॥ भुजमूलार्पितभुजैर्नीयमानाबलान्नृभिः ॥ ५८ ॥ कइवास्मिन्परित्रातास्यादित्यादीनवीक्षितैः ॥ उत्पलालीववर्षद्भिःपरिरोदितसैनिकाः ॥ ५९ ॥ मृणालकोमलाच्छोरुमूलजालैःसुनिर्मलैः ॥ स्वच्छांबरतलालक्ष्यैराकाशनलिनीनिभाः ॥ ६० ॥ आलोलमाल्यवसनाभरणांगरागाबाष्पाकुलाततचलालकवल्लरीकाः॥आनंदमंदरनिरंतरमथ्यमानात्क्रामार्णवात्समुदिताइवराजलक्ष्म्यः६१

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूत्पत्तिप्रकरणे अग्निदग्धगृहादिवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

अर्थ—और जिन्होंने मृगियोंके सदृश अपने कर्कश विलापोंसे समरके शब्दोंकोभी मन्द कर दियाहै तथा निरन्तर महारोदनोंसे जिनके हृदय फटगयेहैं, इसीसे चेतनरहित अर्थात् कर्तव्याकर्तव्य ज्ञानसे शून्य होगई हैं ॥ ५७ ॥ रक्तके कीचड और आंसुओंसे भीगे हुये एक दूसरेके वस्त्रोंमें भागनेकी शंकासे गांठ लगाये हुये तथा पंखुरा पकडके मनुष्य बलात्कार (जबर्दस्ती) खींचे लिये जातेहैं ॥५८॥ हा! ऐसे भयंकर समयमें हमारी कौन रक्षा करै इत्यादि भाव सूचक दीन दृष्टियोंसे उन स्त्रियोंमें अपने योधाओंके जिन्होंने दयाके कारण ऐसे रोदन शील बनायाहै जैसे पाषाणकी पंक्तियोंकी वृष्टि ॥ ५९ ॥ स्वच्छ और सूक्ष्म वस्त्रोंके नीचे देखते हुये अति निर्मल कमलकी दण्डीके समान कोमल और स्वच्छ जंघा और भुजाओंके समूहोंसे आकाशकी कमलिनियोंके सदृश वे ललना भान होतीथी ॥ ६० ॥ तथा हे रामजी! चंचल माला वस्त्र आभूषण और अंगराग धारण किये हुये, और आंसुओंसे व्याप्त दीर्घ तथा चंचल अलक (केश) रूपी लताओंको धारण किये जाती हुई रानियां ऐसे शोभित होतीथी जैसे आनन्द (विषयसुखरूपी) मन्दराचलसे मथित कामरूपी समुद्रसे निकलती हुई राजलक्ष्मी ॥ ६१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे अग्निदग्धगृहादि वर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

पटरानीको भयभीत देखके तथा अन्तःपुर (जनाने) का उपद्रव सुनके राजाका युद्धके लिये जाना और लीलाका तत्त्व इस ४४ वें सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एतस्मिन्नंतरेराजमहिषीमत्तयौवना ॥ तद्विवेशगृहंलक्ष्मीरिवपंकजकोटरम् ॥ १ ॥ आलोलमाल्यवसनाभिन्नहारलताकुला ॥ अनुयातावयस्याभिर्दासीभिर्भयविह्वला ॥ २ ॥ चंद्राननावदातांगीश्वासोत्कंपिपयोधरा ॥ तारकाकारदशनास्थिताद्यौरिवरूपिणी ॥ ३ ॥ अथतस्यावयस्यैकाराजानंतंव्यजिज्ञपत् ॥ भूतसंग्रामसंरंभममरेंद्रमिवाप्सराः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी! इसी अवसरमें यौवनमें मत्त पटरानी जहां लीला और देवीथी, उस राजाके गृहमें ऐसे प्रवेश किया जैसे कमलके भीतर लक्ष्मी ॥ १ ॥ कैसीहै वह पटरानी कि चंचल माला तथा वस्त्रको धारण किये हुये टूटे हुये हाररूपी लताओंसे व्याप्त अनेक दासियों सहित भयसे व्याकुलथी ॥ २ ॥ तथा चन्द्रवदनी

गौरांगी श्वासमात्रसे स्तनोंको कम्पायमान करनेवाली, ऐसी शोभित होरहीथी मानों ताराखपी दांतोंको धारण किये हुये साक्षात् स्वर्गभूमि ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर उस पटरानीके एक सखीने राजासे ऐसे प्रार्थना की जैसे भूतोंके संग्राममें संक्षुब्ध इन्द्रसे अप्सरा ॥ ४ ॥

देवदेवीसहास्माभिःपलाय्यांतःपुरांतरात् ॥ शरणंदेवमायातावाताँर्तेवलताद्रुमम् ॥ ५ ॥ राजन्दारा हृतास्तास्तेबलवद्भिरुदायुधैः ॥ ऊर्मिजालैर्महाब्धिनांतीरद्रुमलताइव ॥ ६ ॥ अंतःपुराधिपाःसर्वेपिष्टाः शत्रुभिरुद्धतैः ॥ अशंकिताभिपतितैर्वातैरिववरद्रुमाः ॥ ७ ॥ दूरेणाशंकमायातैःपरैर्नःपुरमाहृतम् ॥ रात्रौवर्षास्विवोद्घोषैःकमलानीववारिभिः ॥ ८ ॥

अर्थ—हे राजन् ! देवी (पटरानी) हमलोगोंके साथ अन्तःपुरसे भागके आपके शरणमें ऐसी प्राप्त हुई है जैसे वायुसे पीडित लता वृक्षके ॥ ५ ॥ हे महाराज ! आपकी स्त्रियोंको प्रचण्ड अस्त्रोंको धारण करनेहारे और बलवान् शत्रुके योद्धाओंने ऐसे हरलिया जैसे समुद्रोंके तरंगसमूह तटके वृक्ष लताओंको ॥ ६ ॥ और अन्तःपुरके रक्षकोंको अकस्मात् आक्रमण करनेवाले प्रचण्ड शत्रुओंने ऐसे पीस डाला जैसे प्रचण्डवायु तीरके वृक्षोंको ॥ ७ ॥ दूसरे शंका रहित शत्रुगण आके रात्रि हमारे नगरको ऐसे आक्रमण किया, जैसे वर्षाकालमें प्रचण्डशब्दोंके साथ जल कमलोंको ॥ ८ ॥

धूमंवर्षद्भिरुन्नादैर्लेलिहानोग्रहेतिभिः ॥ वह्निभिर्नःपुरंप्राप्तंपरयोधैश्चभूरिभिः ॥ ९ ॥ परिवारैर्विलासिन्योदेव्यआहृत्यमूर्द्धजैः ॥ आक्रंदंत्योबलान्नीताःकुरर्यइवधीवरैः ॥ १० ॥ इतिनोयेयमायाताशाखाग्रसरशालिनी ॥ आपत्तामलमुद्धर्तुंदेवस्यैवास्तिशक्तता ॥ ११ ॥ इत्याकर्ण्यावलोक्यासोदेव्यौयुद्धाययाम्यतः ॥ क्षम्यतांममभार्येयंयुष्मत्पादाब्जषट्पदी ॥ १२ ॥

अर्थ—धूमकी वृष्टि करते हुये, भयंकर उच्च नाद सहित लहलहाती हुई ज्वालावाले शस्त्रोंको धारण करनेवाले अनेक प्रकारके अग्नि तथा शत्रुओंने आके हमारे नगरको घेरलिया ॥९॥ हे राजन् ! अतिरोदन करते हुये विलास करने वाली देवियोंको शत्रुओंके योद्धाओंने चोटियां पकडके बलात्कार ऐसे पकडके लेगये जैसे हरिणियोंको व्याध ॥ १० ॥ इस प्रकार शाखा तथा पुष्पादिसे शोभायमान यह आपत्ति जो हमलोगोंके ऊपर आके पडी है उसको सर्वथा नष्ट करनेकी शक्ति महाराजकोही है ॥ ११ ॥ इतना श्रवण करके और दोनों (लीला तथा सरस्वती) देवियोंकी ओर देखके बोला, हे देवियो ! अब मैं आपकी आज्ञा लेकर यहांसे युद्धके लिये जाताहुं, क्षमा कीजिये, यह मेरी स्त्री आपके चरणोंकी भ्रमरी है अर्थात् आप दोनों इसकी रक्षा करें ॥ १२ ॥

इत्युक्त्वानिर्ययौराजाकोपारुणितलोचनः ॥ मत्तेभनिर्भिन्नवनःकंदरादिवकेसरी ॥१३॥ लीलालीलांददर्शाथस्वाकारसदृशाकृतिम् ॥ प्रतिबिंबमिवायातामादर्शेचारुदर्शनाम् ॥ १४ ॥ प्रबुद्धलीलोवाच ॥ किमिदंदेविहेब्रूहिकस्मादियमहंस्थिता ॥ यासाभवमहंपूर्वंकथंसेयमहंस्थिता ॥ १५ ॥ मंत्रिप्रभृतयःपौरायोधाःसबलवाहनाः ॥ सर्वएवतएवेमेस्थितास्तत्रतथैवते ॥ १६ ॥

अर्थ—इतना कहके कोपसे रक्तनेत्रवाला राजा अपने गृहसे ऐसे निकला जैसे मत्तहस्तीके मस्तकको तोडनेवाला सिंह अपनी कन्दरासे ॥ १३ ॥ हे रामजी ! इसके अनन्तर लीलाने उत्तम दर्शनवाली अपने आकारके सदृश लीलाको ऐसे देखा जैसे दर्पणमें आये हुये अपने प्रतिविम्बको ॥१४॥ प्रबुद्ध लीला बोली—हे देवि ! आप कृपा करके कहैं कि मैं यहां क्यों स्थितहुं जो मैंहुं वही यह कैसेहुई, और जो मैं वह इस रूपसे यहां कैसे स्थितहै अर्थात् मैं दूसरी हो नहीं सकती और अतीत (गत) अवस्थाकी स्थितिका असम्भव है ॥ १५ ॥ मंत्री आदिक नगरनिवासी सेना और वाहन सहित योद्धा लोग ये सब मंत्री आदि जैसे वहां हैं वैसाही यहांभी हैं ॥ १६ ॥

तत्रापीहचहेदेविसर्वेकथमवस्थिताः ॥ बहिरंतश्चमुकुरइवैतेकिंप्रचेतनाः ॥ १७ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ यथाज्ञतिरुदेत्यंतस्तथानुभवतिक्षणात् ॥ चितिश्चेत्यार्थतामेतिचित्तंचित्तार्थतामिव ॥ १८ ॥ यादृग्धंजगद्रूपंतत्रैवोदेतितत्क्षणात् ॥ नदेशकालदैर्घ्यत्वंनवैचित्र्यंपदार्थजम् ॥ १९ ॥ बाह्यमाभ्यंतरंभातिस्वप्नार्थोत्रनिदर्शनं ॥ यदंतःस्वप्नसंकल्पपुरंचकचनंचितेः ॥ २० ॥

अर्थ—हे देवि ! यहांभी और वहांभी ये कैसे दर्पणके बाहर और भीतरके समान स्थितहैं; क्या ये सब सचेतनहैं ॥ १७ ॥ श्रीदेवी बोली—हे लीले ! जैसी स्फुरण होतीहै वैसाही क्षणभरमें अनुभव करने लगताहै, जैसे स्वप्नादिमें मनही जाग्रत् पदार्थके आकार होजाताहै ऐसे हि चिति (चेतन) विषयका आकार धारण करलेती है ॥ १८ ॥ जिस आका-

रवाला पदार्थ जहां है उसी आकारका संस्काररूप जगत् वहांके चित्त और चेतनमें है भोग करानेवाले अदृष्टसे उद्बोधित मायासे मिलित चेतनकी शक्ति अघटित पदार्थकीभी घटना करनेमें समर्थ है इससे देशकालकी दीर्घता और पदार्थ तथा जनकी विचित्रताकी कोई आवश्यकता नहीं है अर्थात् अचिन्त्य चिति शक्तिकी महिमासे समान कर्मसे उद्बोधितोंका कहीं २ समान रूपसेही आविर्भाव होताहै ॥ १९ ॥ चैतन्यमें अध्यस्त होनेसे अभ्यन्तरकाभी यह जगत् बाह्यके समान भासताहै, इसमें स्वप्नके पदार्थ दृष्टान्त हैं जैसे स्वप्न चेतन आत्माही पदार्थाकार होजाताहै वैसाही यहांभी जानो और स्वप्न तथा संकल्पके नगरादि हैं, वह अन्तःस्थित चेतनकीही स्फुरणा है ॥ २० ॥

तदेतद्बाह्यनाम्नैवस्वभ्यासात्सत्स्फुटंस्थितं ॥ यादृग्भावोमृतोभर्त्तातवतस्मिंस्तदापुरे ॥ २१ ॥ तादृग्भावस्तमेवार्थंतत्रैवसमुपागतः ॥ अन्यएवह्यमीभूतास्तेभ्यस्तास्तादृशाअपि ॥ २२ ॥ सद्रूपाएवचैतस्यस्वप्नसंकल्पसैन्यवत् ॥ अविसंवादिसर्वार्थरूपंयदनुभूयते ॥ २३ ॥ तस्यतावद्वदकथंकीदृशीवापिसत्यता ॥ अथवोत्तरकालेतुभंगुरत्वादवस्तुतत् ॥ २४ ॥

अर्थ—इसलिये यह जो बाह्यनामसे प्रसिद्ध जगत् है वह अपने दीर्घकालके अभ्याससे व्यक्त होकर सत्के समान स्थित भासताहै जैसी वासना सहित तुमारा पति उस नगरमें मृत्युको प्राप्त हुआथा ॥ २१ ॥ इसलिये उसी वासना सहित उसी पदार्थको वहांही प्राप्त हुआ, और ये मंत्रीआदि यद्यपि उनके सदृश हैं तथापि ये उनसे अन्य हैं॥२२॥ और इस राजाकी चित्सत्तासे स्वप्न और संकल्पकी सेनाके सदृश ये सब सत्रूपही हैं, कदाचित् यह कहो कि स्वाप्निक पदार्थोंसे जाग्रतके पदार्थोंमें यही विलक्षणता है कि इसका पदार्थ सबको भ्रांति रहित साधारण है इससे यह जाग्रत् सत्य (अपने रूपसे सत्य) है सो नहीं क्योंकि इन्द्रजालादिमें विवादरहित सब पदार्थ सबको साधारण हैं॥२३॥ कहो जाग्रत् पदार्थोंकी कैसे और किस प्रकारसे सत्यता होसकती है यदि कहो कि उत्तरकाल (जाग्रत) में स्वप्नके पदार्थोंका बाध होनेसे वह असत् है सोभी नहीं क्योंकि नाश और बाध होनेमें कोई विशेष नहीं यह जाग्रत् पदार्थभी क्षणभंगुर हैं इसलिये दोनों समान हैं ॥ २४ ॥

ईदृकूचसर्वमेवेदंतत्रकानास्तिताधिका ॥ स्वप्नेजाग्रदसद्रूपास्वप्नोजाग्रत्यसन्मयः ॥ २५ ॥ मृतिर्जन्मन्यसद्रूपामृत्यांजन्माप्यसन्मयं ॥ विशरेद्विशरारुत्वादनुभूतेश्वराघव ॥ २६ ॥ एवंनसन्नासदिदंभ्रांतिमात्रंविभासते ॥ महाकल्पांतसंपत्तावप्यद्याथयुगेनघ ॥ २७ ॥ नकदाचनयन्नास्तितद्ब्रह्मैवास्तितज्जगत् ॥ तस्मिन्मध्येकचंतीमाभ्रांतयःसृष्टिनामिकाः ॥ २८ ॥

अर्थ—ये सब इसी प्रकारसे मिथ्या हैं जाग्रत्में कौनसी वार्ता अधिक है, स्वप्नमें जाग्रत जैसे असत् रूप है ऐसेही जाग्रत्में स्वप्नभी है ॥ २५ ॥ हे रामजी ! जन्ममें जैसे मृत्यु असत्यरूप है ऐसे मृत्युमें जन्मभी असत् है नाश अवयवोंके विशरण (नश्वर) शील होनेसे पदार्थका नाश होताहै और बाधसे अनुभवके बलसे इसप्रकार निमित्तके भेद होनेसेभी नाशमें कुछभी विलक्षणता नहीं है ॥ २६ ॥ हे अनघ रामजी ! इसप्रकार यह जगत् न सत् है न असत्, किन्तु भ्रान्तिमात्र केवल भासताहै, इस रीतिसे जो महाकल्पमें अब और आगामी युगोंमेंभी जो नहीं वह अपने स्वरूपसे नहीं है किन्तु अधिष्ठान ब्रह्ममात्रही है इसलिये वही वह जगत् है ॥ २७ ॥ जो कभी नहीं वह ब्रह्मही हैं उसीके स्वरूपमें ये सृष्टिनामसे भ्रांति स्फुरित होरही है ॥ २८ ॥

व्योम्निकेशोंड्रकानीवनकचंतीववस्तुतः ॥ यथातरंगाजलधौतथेमाःसृष्टयःपरे ॥ २९ ॥ उत्पत्त्योत्पत्त्यलीयंतेरजांसीवमहानिले ॥ तस्माद्भ्रांतिमयाभासेमिथ्यात्वमहमात्मनि ॥ ३० ॥ मृगतृष्णाजलचयेकैवास्थासर्गभस्मनि ॥ भ्रांतयश्चनतत्रान्यास्तास्तदेवपरंपदं ॥ ३१ ॥ घनेतमसियक्षाभास्तमएवनयक्षकः ॥ तस्माज्जन्ममृतिर्मोहोव्योमोहत्वमिदंततं ॥ ३२ ॥

अर्थ—आकाशमें जैसे केश पताकादि शोभतेहैं परन्तु पदार्थमें वे आकाशस्वरूपही हैं, और जैसे समुद्रमें तरंगहैं वैसेही परब्रह्ममें ये सृष्टियां हैं ॥२९॥ मिथ्या "त्वम् अहम्," इत्यादि विभागरूप भ्रान्तिमय आभासके अधिष्ठानभूत आत्मासे ये सृष्टि उत्पन्न हो २ कर ऐसे लयको प्राप्त होती है, जैसे धूलिके कण महावायुमें ॥ ३० ॥ मृगतृष्णाके जलमें और दग्ध प्रपंचमें क्या विश्वास है, इसलिये भ्रान्तिभी उस अधिष्ठानरूपसे पृथक् नहीं है, अतः वही परमपद है ॥ ३१ ॥ जैसे घन अन्धकारमें बालकको यक्षके समान भासताहै, पदार्थमें वह अन्धकारही है, ऐसेही जन्म और मृत्यु जो जगत् है वह अज्ञानकी आवरण और विक्षेप शक्ति है और वही इस जगत्रूपसे व्याप्त है ॥ ३२ ॥

सर्वंतत्समहाकल्पंशांतौयदवशिष्यते ॥ नातःसत्यमिदंदृश्यंनचासत्यंकदाचन ॥ ३३ ॥ द्वयमेवैतद थवात्रब्रह्मतत्रैवसंभवात् ॥ आकाशेपरमाण्वंतर्द्रव्यादेरणकेपिच ॥ ३४ ॥ जीवाणुर्यत्रतत्रेदंजगद्वेत्तिनिजं वपुः ॥ अग्निरौष्ण्यंयथावत्तिनिजभावक्रमोदितं ॥ ३५ ॥ पश्यतीदंतथैवात्मास्वात्मभूतंविशुद्धचित् ॥ यथासूर्योदयेगेहेभ्रमंतित्रसरेणवः ॥ ३६ ॥ तथेमेपरमाकाशेब्रह्मांडत्रसरेणवः ॥ यथावायौस्थितः स्पंदआमोदःशून्यमंबरे ॥ ३७ ॥ पिंडग्रहविनिर्मुक्तंतथाविश्वंस्थितंपरे ॥ भावाभावग्रहोत्सर्गस्थूल सूक्ष्मचराचराः ॥ ३८ ॥ विवर्जितस्यावयवैर्भागाब्रह्मणईदृशाः ॥ साकारस्यावबोधायविज्ञेयाभवता घना ॥३९॥ अनन्याः स्वात्मनस्तस्यतेनानवयवाइव ॥ यथास्थितमिदंविश्वंनिजभावक्रमोदितं ॥४०॥

अर्थ—महाकल्प अर्थात् ब्रह्मज्ञानसे सर्व बाधरूप वैज्ञानिक प्रलयमें सबका बाध होताहै उसमें जो शेष रहजाताहै वही सत्यब्रह्म है इसलिये यह दृश्य जगत् अपने रूपसे न सत्य है न असत्य है किन्तु अनिर्वचनीय है ॥३३॥ यदि इसको सत्य असत्य उभयरूप कहो सो नहीं क्योंकि एक पदार्थका विरुद्धरूप नहीं होसकता इसलिये सत्य असत्य सत्यासत्य इन तीनों पक्षोंमें विरोध होनेसे अविरुद्ध अधिष्ठानरूप ब्रह्महींका संभव है और कल्पना मंत्र जगत् तो चिदाकाशमें द्रव्यादि परमाणुमेंभी होसकताहै ॥ ३४ ॥ यह जीवरूप अणु जहां जैसी स्फुरण करताहै वहां वहां वैसाही अध्याससे अपना रूप देखताहै जैसे निज वासनाके क्रमसे अग्निमें उष्णता ॥ ३५ ॥ अपने आत्माका जैसा अनुभव रहताहै वैसाही विशुद्ध चेतन इस जगत्को जानताहै और जैसे सूर्योदयके समयमें गृहके भीतर त्रसरेणु भ्रमण करतेहैं वैसेही चिदाकाशमें (ब्रह्ममें) ब्रह्माण्डरूप त्रसरेणु भ्रमण करतेहैं, और जैसे वायुमें गति वा गन्ध और आकाशमें शून्य है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ इसीप्रकार स्थूलतासे वर्जित यह जगत् परमात्मे है, और आविर्भाव, तिरोभाव, ग्रहण, त्याग, स्थूल और सूक्ष्म विशिष्ट सम्पूर्ण चराचर कल्पित है ॥ ३८ ॥ हे रामजी! अवयवोंसे रहित परमात्माके जो कल्पित भाग हैं, वे साकार जाग्रत्का बोध करानेके लिये हैं, और वे उससे भिन्न नहीं हैं अर्थात् निरवयव ब्रह्मके भागभी निरवयवके सदृशही है अर्थात् सावयवताके समान निरवयवभी मिथ्याही है वह केवल बोध करानेके है ॥ ३९ ॥ वे भाग आत्मासे अभिन्न स्वरूप हैं इसलिये उसके अवयवके समान हैं इसलिये यह विश्व निज वासनाके क्रमसे उदित जैसा है वैसाही स्थित है ॥ ४० ॥

रिक्तंनविश्वशब्दार्थैरनन्यद्ब्रह्मणिस्थितं ॥ नतत्सत्यंनचासत्यंरज्जुसर्पभ्रमोयथा ॥ ४१ ॥ मिथ्यानुभूतिःसत्यमसत्यंसत्परीक्षितं ॥ परमंकारणंचिरवाजीवत्वमितिचेत्यलं ॥ ४२ ॥ ततस्तथैवानुभवा जीवत्वंविंदतिस्फुटं ॥ सत्यंभवत्वसत्यंवाखेविभातमिदंजगत् ॥ ४३ ॥ रंजयत्येवजीवाणुःस्वेच्छाभि रनुभूतिभिः ॥ अनुभूयंतएवाशुकाश्चित्पूर्वानुभूतितः ॥ ४४ ॥

अर्थ—यह जगत् विश्वके शब्दके अपूर्णरूप अर्थसे रिक्त (खाली) नहीं है क्योंकि ब्रह्ममें अभेदरूपसे स्थित है और ब्रह्म पूर्णरूप है, इसलिये वह अपने रूपसे न सत् न असत् है जैसे रज्जुमें सर्प ॥ ४१ ॥ क्योंकि भ्रान्ति ज्ञानसे जो वस्तु अनुभूत होती है वह सत्य नहीं होसकती, और वस्तु तत्वके परीक्षार्थ जो भ्रमका बाधक ज्ञान है वह सत्यका अपलापभी नहीं करताहै इसलिये असत्यभी नहीं है, अतः मायासे चित्रूपका आच्छादन होनेसे जीवत्व सर्वथा पर कारणरूप ब्रह्मही है ॥४२॥ इसलिये चिरकालकी वासनेके दृढ अनुभवसे जैसी स्फुरण होती है वैसीही जीवत्वको स्प. रूपसे जानताहै, हे रामजी! सत्यहो वा असत्य यह संसार जीवकी भोगेच्छारूप हेतुसे चिदाकाशमें भासताहै ॥ ४३ ॥ यह जीव अण्ड (सूक्ष्म) अपनी इच्छानुकूल वासनाओंसे रंजन करताहै, अपने अनुभवके अनुसार कितनी तुल्य कितनी अतुल्य ये सृष्टियां शीघ्र अनुभवमें आती हैं ॥ ४४ ॥

अपूर्वानुभवाःकाश्चित्समाश्चैवासमास्तथा ॥ क्वचित्कदाचित्ताएवक्वचिदर्धसमाअपि ॥ ४५ ॥ कंच त्यसत्याःसत्याभाजीवाकाशेनुभूतयः ॥ तत्कुलास्तत्समाचारास्तज्जन्मानस्तदीहिताः ॥ ४६ ॥ तए वमंत्रिणःपौराःप्रतिभानेभवंतिच ॥ तेचैवात्मन्यलंसत्यादेशकालेहितैःसमाः ॥ ४७ ॥ सर्वगात्मस्व रूपायाःप्रतिभायाइतिस्थितिः ॥ यथाराजात्मनिव्योम्निप्रतिभोद्वेतिसन्मयी ॥ ४८ ॥ तथातदग्रगोदे तिसत्यैवप्रतिभांबरे ॥ स्वच्छीलात्वत्समाचारात्वत्कुलात्वद्वपुर्मयी ॥ ४९ ॥

अर्थ—कभी कोई अपूर्व अनुभव होतेहैं, और कभी समान, कभी असमान् और कभी पूर्वकालकी सम्पूर्ण वासनाओंका उदय न होनेसे वेही ज्यों कि त्यों अनुभूत होती हैं, और कभी आधी समान होती हैं ॥ ४५ ॥ असत्य ये अनुभव जीवाकाशमें सत्यके समान भासतेहैं, और पूर्ववासनाओंका सर्वथा आविर्भाव होनेसे वैसाही कुल, वैसाही

आचार वैसेही जन्म, और वैसीही चेष्टा ॥ ४६ ॥ वेही मंत्री वेही नगर तथा निवासी प्रतिभानमें आतेहैं, और वे अ-धिष्ठान स्वरूप परमार्थिक आत्मामें अभिन्नरूपसे हैं इसलिये सर्वथा सत्य हैं और अपने २ देशकाल तथा चेष्टा दृष्टिसे उसमें अध्यस्त होनेसे समान हैं ॥ ४७ ॥ सर्वव्यापी चेतन स्वरूप प्रतिभाका यही स्वभाव है, इससे राजाके आत्मामें जैसी सबके साधारण सत्य पदार्थ विषयिणी प्रतिमा उदय होतीहै, वैसी उससे पूर्वभाविनी सर्व साधारणके भोग क-रानेवाले अदृष्टके बशसे सत् शब्दके बशसे सत् शब्दके वाच्य अव्याकृत आकाशरूप ईश्वरमें सत्यसंकल्पके कारण उदय होतीही है, इस जीवकी पदार्थानुकूल होती है, और ईश्वरकी सृष्टि इच्छानुकूल होती है तो राजाकी इच्छानुसार सृष्टि कैसे यह दोषभी न आया क्योंकि राजाकी इच्छाके अनुसार ईश्वरकी इच्छाभी होगई इसीसे हे लीले ! तुमारे समान शील, आचार, कुल और शरीरवाली ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

इतिलीलेयमाभातिप्रतिभाप्रतिबिंबजा ॥ सर्वगेसंविदादर्शेप्रतिभाप्रतिबिंबति ॥ ५० ॥ यादृशीयत्र सातत्रतथोदेतिनिरंतरं ॥ जीवाकाशस्ययांतस्थाप्रतिभाकुरुतेस्वयं ॥ साबहिश्चिदादर्शेप्रतिबिंबादियं स्थिता ॥५१॥ एषात्वमंबरमहंभुवनंधराचराजेतिसर्वमहमेवविभातमात्रं ॥ चिद्व्योमबिल्वजठरंविद्धि रंगविद्धित्वंतेनशांतममलास्वयथास्थितेह ॥ ५२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने अग्निदाहरात्रियुद्धेजगद्ब्रह्मवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

अर्थ—यह लीला प्रतिभाके प्रतिबिम्बसे उत्पन्न भान होती है, क्योंकि सर्वव्यापी चेतनरूप दर्पणमें प्रतिमाका प्रतिबिम्ब पडताहै ॥ ५०॥ जीवाकाशकी जैसी प्रतिभा जहां होती है वैसाही निरन्तर वहां उदय होती हैं और उसीके अनुकूल अन्तर्यामी ईश्वरस्थ जो प्रतिमा है वह बाह्यदेशमें कार्य्य करती है इसलिये यह लीला चित्तरूप दर्पणमें प्रतिबि-म्बसे स्थित है ॥५१॥ हे लीले ! यह आकाश, और उसके अन्तर्गत सब भुवन, और उसके अन्तर्गत सम्पूर्ण पृथिवी, तथा उसके अन्तर्गत तुम हम और राजा आदि सब चिन्मात्र स्वभावही है और मैं तो प्रत्यक् आत्मरूपहुं,औरभी तत्व-ज्ञानी ऐसेही हैं, ये सब चिदाकाशरूप विश्वके गर्भमें हैं ऐसाही हे लीले ! तुमभी जानों और विक्षेप रहित अपने शान्त स्वभावको प्राप्त हो ॥ ५२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने अग्निदाहरात्रियुद्धे जगद्ब्रह्मवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

पंचचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

दूसरी लीलाको वरदानका देना राजा पद्मकी प्राप्ति और जीवोंको अपने २ संकल्पके अनुसार फलका लाभ इत्यादि विषय इस ४५ वे सर्गमें वर्णन किये गये हैं ॥

॥ श्रीसरस्वत्युवाच ॥ विदूरथस्तेभर्त्तेषतनुंत्यक्त्वारणांगणे ॥ तदेवांतःपुरंप्राप्यताद्गात्माभवि ष्यति ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इत्याकर्ण्यवचोदेव्यालीलासातत्पुरस्पदा ॥ पुरःप्रह्वास्थितोवाचव चनंविहितांजलिः ॥ २ ॥ द्वितीयलीलोवाच ॥ देवीभगवतीज्ञप्तिर्नित्यमेवार्चितामया ॥ स्वप्नेसंदर्शनं देविसाददातिनिशासुमे ॥ ३ ॥ सायादृश्येवदेवेशितादृश्येवत्वमंबिके ॥ तन्मेकृपणकारुण्याद्वरंदेहि वरानने ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीसरस्वतीजी बोली–हे लीले ! यह तुमारा पति विदूरथ रणभूमिमें अपने शरीरको त्यागकर उसी अं-तःपुरमें प्राप्त होके राजा पद्म होगा ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! भगवतीके इस बचनको सुनकर वह लीला जो भक्तिसे नम्र देवीके सन्मुख बैठीथी हाथ जोडके यह बचन बोली ॥ २ ॥ द्वितीय लीलाजी बोली–जिस देवी भग-वतीकी मैं नित्यप्रति पूजा करतीहुं वह रात्रियोंमें प्रतिदिन मुझे स्वप्नमें दर्शन देती है ॥ ३ ॥ हे देवि ! जैसी वह है वै-सीही आप हैं इसलिये हे अम्बिके ! वह आपही हैं, अतः हे वरानने ! मुझ दीनपर कृपा करके वरदान दीजिये ॥ ४ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इत्युक्तासातदाज्ञप्तिःस्मृत्वातद्भक्तिभावनं ॥ इदंप्रसन्नाप्रोवाचतांलीलांतत्पुरा स्पदाम् ॥ ५ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ अनन्यया भावनयायावज्जीवमजीर्णया ॥ परितुष्टास्मितेवत्सेगृहाण

भिमतंवरम् ॥ ६ ॥ तद्देशलीलोवाच ॥ रणादेहंपरित्यज्ययत्रतिष्ठतिमेपतिः ॥ अनेनैवशरीरेणतत्रस्या मेतदंगना ॥ ७ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ एवमस्तुत्वयाविघ्नंपूजितास्मिसुतेचिरम् ॥ अनन्यभावयाभूरिपुष्प धूपसपर्यया ॥ ८ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! इसप्रकार प्रार्थना की हुई भगवती उसकी भक्तिभावनाको स्मरण करके और प्रसन्न होकर उसके सन्मुख जो लीला स्थितथी उससे बचन बोली कि ॥ ५ ॥ हे वत्से ! तुमारी अनन्य नित्य नई जीवनभरकी भक्तिसे मैं प्रसन्नहुं जो तुमको इष्टहो वह वरदान मांगलो ॥ ६ ॥ उस देशकी लीला बोली–हे देवि ! मेरे पति रणमें शरीरको त्यागके जहां जाय वहांपर मैं इसी शरीरसे उनकी स्त्री होऊं ॥ ७ ॥ श्रीदेवीजी बोली–हे पुत्रि ! जैसा तुम चाहतीहो वैसाही हो क्योंकि बहुतकालपर्यंत अनन्य भावना तथा अनेक प्रकारकी पुष्प, धूप, आदि सामग्रीसे तुमने मेरी पूजा की है ॥ ८ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथतद्देशलीलायांफुलायांतद्वरोदयात् ॥ पूर्वलीलाब्रवीद्देवींसंदेहलुलिताशयः ॥९ ॥ पूर्वलीलोवाच ॥ येसत्यकामाःसंत्येवंसंकल्पाब्रह्मरूपिणः ॥ त्वादृशाःसर्वमेवाशुतेषांसिद्धयत्यभीप्सितम् ॥ १० ॥ तत्तेनैवशरीरेणकिमर्थंनाहमीश्वरि ॥ लोकांतरमिदंनीतातंगिरिग्रामकंवद ॥ ११ ॥ ॥श्रीदेव्युवाच॥ नकिंचित्कस्यचिदहंकरोमिवरवर्णिनि॥ सर्वंसंपादयत्याशुस्वयंजीवःस्वमीहितम् ॥१२

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! इसके अनन्तर उस देशकी लीलाके बरदानके लाभसे कमलके समान विकसित होनेपर पूर्वलीला सन्देह (इस लीलाको स्थूलशरीरसेही पतिलोकमें प्राप्त किया और मुझे स्थूलशरीर त्याग कराकर इस सन्देह) से चंचल चित्तवाली देवीसे यह बात बोली ॥९॥ पूर्वलीलाजी बोली–हे देवि ! जो सत्यकाम, सत्यसंकल्प ब्रह्मरूप आपके सदृश हैं उनके अभिलषित हैं वेसे अवश्यही शीघ्र सिद्ध होतेहैं ॥ १०॥ तो हे ईश्वरि ! मैं उसी स्थूलशरीरसे लोकान्तर तथा गिरिग्राम आदिमें क्यों न प्राप्त की गई सो कहो ॥११॥ श्रीदेवीजी बोली– हे उत्तम वर्णवाली लीले मैं किसीका कुछभी नहीं करती, जीव आपही अपना चेष्टित शीघ्र अपनी शक्तिसे सम्पादन करलेताहै॥१२

अहंहितंरटेज्ञप्तिःसंविन्मात्राधिदेवता ॥ प्रत्येकमस्तिचिच्छक्तिर्जीवशक्तिस्वरूपिणी ॥ १३ ॥ जीवस्योदेतियाशक्तिर्यस्ययस्ययथायथा ॥ भातितत्फलदानित्यंतस्यतस्यतथातथा ॥ १४ ॥ मांसमाराधयंत्यास्वजीवशक्तिस्तवोदिता ॥ तदाभवद्यदीहस्यांमुक्तास्मीतिचिरंतदा ॥ १५ ॥ तेनतेनप्रकारेणत्वंमया संप्रबोधिता ॥ तयायुक्तयामलंभावंनीतासिवरवर्णिनी ॥ १६ ॥

अर्थ—मैं तो केवल प्राणियोंके अभिलषित अर्थात् उनका भावी शुभ वरदानसे प्रकट करतीहुं, और फल उत्पन्न करनेमें प्रत्येक जीवकी पूर्वजन्मको काम कर्म वासनासहित चित्‌रूप जीव शक्तिरूपिणी, उन २ कार्य्योंकी बीजभूत मायासहित चित् शक्ति है ॥ १३ ॥ जिस २ जीवको जो शक्ति जैसे २ उदय होती है उस २ जीवको उसी २ प्रकारसे स्फुरित होती है ॥ १४ ॥ मुझे दीर्घ कालतक आराधन करते हुये तुमारी भावी कर्म फलोंको देनेवाली सूक्ष्म रूपसे स्थित गर्भकी कामना सहित चित्‌रूप जीव शक्ति उदय हुई कि मैं मुक्त होजाऊं ॥१५॥ इसलिये उन २ प्रकारसे मैंने तुमको प्रबोधन किया, और उससे तुम अज्ञान आवरणरहित आत्माकी स्थितिरूप निर्मल भावको प्राप्त हुई॥१६॥

अनयैवंभावनयाबोधितासिचिरंतदा ॥ तमेवार्थंप्राप्तवतीसदास्वचितिशक्तितः ॥ १७ ॥ यस्ययस्ययथोदेतिस्वचित्प्रयतनंचिरम् ॥ फलंददातिकालेनतस्यतस्यतथातथा ॥ १८ ॥ तपोवादेवतावापिभूत्वा स्वैवचिदन्यथा ॥ फलंददात्यथस्वैरंनभःफलनिपातवत् ॥ १९ ॥ स्वसंविद्यतनादन्यन्नकिंचित्क्वकदाचन ॥ फलंददातितेनाशुयथेच्छसितथाकुरु ॥ २० ॥ चिद्भावएवनतुसर्गगतोंतरात्मायचेततिप्रयतते चतदेतितच्छ्रीः ॥ रम्यंह्यरम्यमथवेतिविचारयस्वयत्पावनंतदवबुद्धयतदंतरास्व ॥ २१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने सत्यकामसत्यसंकल्पास्थिता नाम पंचचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४५ ॥

अर्थ—हे लीले ! मैं मुक्त होजाऊं, इस भावनाकरके युक्त तुम चिरकालतक स्थितथी, सो उसी अपने पूर्व चित्तसे भावित अर्थको अपनी चिति शक्तिको सदा प्राप्त हुईहो ॥ १७ ॥ जिस २ पुरुषका पुरुषार्थ चिरकालके अभ्याससे जैसा २ उदय होताहै उस २ को कालपाके उसी २ प्रकारके अवश्य फल होताहै ॥१८॥ अपनीही चित् तप वा देवतारूप होके अभिलषित मिथ्याभूत फलको देताहै ॥ १९ ॥ हे लीले ! अपने पुरुषार्थसे अन्य पदार्थकेभी किसीको फल नहीं देता इसलिये जैसा तुम फल चाहतीहो उसीके अनुकूल कर्म करो ॥ २० ॥ सबकी अन्तरात्मभूत जो चित्

सत्ता है वही सृष्टिके अन्तर्गत है इसलिये पूर्वकालमें विहित अथवा निषिद्धकर्म जैसा स्फुरित होताहै वा जैसा उत्पन्न किया जाताहै भविष्यत् कालमें उसी कर्मकी फलरूपाश्री प्राप्त होती है इसको तुम विचारो और विचारसे परम पवित्र पावन पदको जानके उसमेंही स्थित रहो ॥ २१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे लीलोपाख्याने सत्यकामसत्यसंकल्पास्थितावर्णनं नाम पंचचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥

सैन्यसहित विदूरथका रणभूमिमें प्रवेश तथा युद्धारंभ वर्णन इस ४६ वे सर्गमें कियागयाहै ॥

॥श्रीरामउवाच ॥ एवंसंकथयंतीषुतासुतस्मिन्गृहोदरे॥ विदूरथःकिमकरोन्निर्गत्यकुपितोगृहात् ॥१॥ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ विदूरथःस्वसदनान्निर्गतःपरिवारितः ॥ परिवारेणमहताऋक्षौघेणेवचंद्रमाः ॥ २ ॥ सन्नद्धसर्वावयवोलग्नहारविभूषणः ॥ महाजयजयारावैःसुरेंद्रइवनिर्गतः ॥ ३ ॥ समादिशन्योधगणंशृण्वन्मंडलसंस्थितम् ॥ आलोकयन्वरिगणानारुरोहनृपोरथम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—हे भगवन् ! जब वे देवियां विदूरथके गृहमें बातचीत करती बैठी थीं उस समय कुपित राजा विदूरथ गृहसे निकलकर क्या कार्य्य किया? ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! विदूरथ बडीभारी सेनासे घिरा हुआ अपने गृहसे ऐसा निकला जैसे ताराओंके समूह सहित चन्द्रमा ॥ २ ॥ राजा विदूरथ कवच तथा अस्त्र आदिसे तय्यार जिसके शरीरमें हार आदि आभूषण शोभित हैं जिस महाराज अपका जयहो ऐसे शब्दोंसे ऐसा निकला जैसे इन्द्र ॥३॥ वह विदूरथ योद्धाओंको उचित आज्ञा देता हुआ और मंत्रियोंसे सेनाकी रचनाकी स्थितिको अथवा राज्यकी व्यवस्थाको सुनताहुआ और वीरोंको देखता हुआ रथपर चढा ॥ ४ ॥

कूटाकारसमाकारंमुक्तामाणिक्यमंडितम् ॥ पताकापंचभिर्व्याप्तंद्युविमानमिवोत्तमम् ॥ ५ ॥ चक्रभित्तिपरिप्रोतप्रकचत्कांचनांकुरम् ॥ मुक्ताजालरणत्कारचारुविक्रमकूबरम् ॥ ६ ॥ सुग्रीवैर्लक्षणोपेतैःप्रशस्तैःप्रचलैःकृशैः ॥ जवोड्डयनवेगेनप्रवहद्भिःसुरानिव ॥ ७ ॥ वायुंजवेनसहसाअसहद्भिर्गतिक्रमैः ॥ प्रोद्यद्भिरिवपश्चार्द्धमापिबद्भिरिवांबरम् ॥ ८ ॥

अर्थ—वह रथ मेरु आदिके शिखरके समान आकारवाला मोती और माणिक्यसे जडित, पांच पताकाओंसे व्याप्त ऐसा शोभित था मानों स्वर्गका विमान ॥ ५ ॥ चक्रोंमें तथा भित्तियोंमें सुवर्णके तुल्य शोभायमान कील जड-रहे थे और उसका मोतियोंके समूह सहित दीर्घ और उत्तम जातिसे अग्रभाग शब्द कररहाथा ॥ ६ ॥ और उत्तम ग्रीवावाले अच्छे लक्षणोंसेयुक्त, उत्तम जातिसे उत्पन्न अति चपल शरीरके हलके उस रथके घोडे शीघ्रतासे उडके मानों आकाशमें देवताओंके लिये जाते थे ॥ ७ ॥ और अपने वेगसे वायुकोभी हसनेवाले पूर्वशरीरके गति क्रमसे पीछेके अर्द्ध भागको मानों धारण किये थे और उर्द्धगतिसे मानों आकाशकोभी पीना चाहते थे ॥ ८ ॥

योजितैरिवसंपूर्णैश्चंद्रैश्चामरदीप्तिभिः ॥ अश्वैरष्टभिरबद्धमाशापूरकहेषितैः ॥ ९ ॥ अथोदपतदुद्दामनागाभ्रवनिर्भरः ॥ शैलभित्तिप्रतिध्वानदारुणोद्दुंदुभिध्वनिः ॥ १० ॥ मत्तसैनिकनिर्मुक्तैर्व्याप्तंकलकलारवैः ॥ किंकिणीजालनिर्ध्वानैर्हेतिसंघट्टघट्टितैः ॥ ११ ॥ धनुश्चटचटाशब्दैःशरसीत्कारगायनैः ॥ परस्परांगनिष्पिष्टकवचौघझणज्झणैः ॥ १२ ॥

अर्थ—चामरोंके प्रकाशोंसे सम्पूर्ण कई चन्द्रोंसे युक्त हैं, और अपनी हिनहिनाहटसे सब दिशाओंको पूर्ण करनेवाले ऐसे आठ घोडोंसे युक्त रथपर राजा सवार हुआ ॥ ९ ॥ हे रामजी ! इसके अनन्तर उत्तम माला पहिने हुये हाथीरूप मेघोंके शब्दसे पूर्ण, पर्वतोंकी भित्तियोंकी प्रतिध्वनियोंसे भयंकर, और नगारोंके समान गम्भीर शब्द करनेवाला वह रथ अति वेगसे उडा ॥ १० ॥ मत्त योधाओंसे किये हुये कलकल शब्दोंसे पूर्ण, अस्त्रशस्त्रोंके संघट्टसे अति गम्भीर घंटियोंके समूहकी प्रतिध्वनियोंसे ॥ ११ ॥ धनुषोंके चटचटा शब्दोंसे बाणोंके सीत्काररूपी गीतोंसे परस्पर अंगोंके सम्मर्दनसे कवचों झनझनाहटसे ॥ १२ ॥

ज्वलदग्निटणत्कारैरार्त्तिमत्क्रंदनारवैः ॥ परस्परभटाह्वानैर्बंदिविक्षुब्धरोदनैः ॥ १३ ॥ शिलाघनीकृताशेषब्रह्मांडकुहरोध्वनिः ॥ हस्तग्राह्योभवद्भीमोदशाशाकुंजपूरकः ॥१४॥ अथोदपतदादित्यपथपीवरो

धकम् ॥ रजोनिभेनभूपीठमंबरोड्डयनोन्मुखम् ॥ १५ ॥ गर्भवासमिवापन्नंतेनासीतन्महापुरम् ॥ मूढ त्वंयौवनेनेवघनतामाययौतमः ॥ १६ ॥

अर्थ—तथा जलती हुई अग्निके टंकार शब्दोंसे, दुःखोंसे परस्पर वीरोंके आव्हानोंसे और बन्दियोंके व्यंग बचनोंसे तथा युद्धसें पीडित कातर योद्धाओंके रोदनोंसे वह देश भयंकर होगया ॥ १३ ॥ तथा पाषाणोंका शिलाके समान सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको पूर्ण करनेवाली और दशोंदिशाओंकी कुंजोंको पूर्ण करनेवाली वह भयंकर ध्वनि हस्तसे ग्रहण करनेके योग्य होगई (अर्थात् वह सम्पूर्ण देश शब्दसे पूर्ण होगया) ॥ १४ ॥ हे रामजी ! इसके अनन्तर आकाशकी ओर उडनेको मुख करके अति स्थूल रूपसे आदित्य मार्गको रोकनेवाली धूलि भूमण्डलसे उठी ॥ १५ ॥ उस धूलिसे वह महानगर ऐसे पूर्ण होगया जैसे गर्भवासका स्थान और उससे अन्धकार ऐसी वृद्धिको प्राप्त हुआ जैसे युवा अवस्थासे अज्ञान ॥ १६ ॥

प्रययुःक्वापिदीपौघादिवसेनेवतारकाः ॥ आययुर्बलमालोलानिशभूतपरंपराः ॥ १७ ॥ ददृशुस्तन्महायुद्धंद्वेलीलेसाकुमारिका ॥ प्रस्फुटद्धृदयेनेवदेवीदत्तमहादृशौ ॥ १८ ॥ प्रशेमुरथहेतीषुप्रोद्यत्कटकटारवाः ॥ एकार्णवपयःपूरैर्वालवाडववह्नयः ॥ १९ ॥ शनैःसेनांसमाकर्षन्नाज्ञायतबलांतरम् ॥ विवेशपक्षप्रोड्डीनोमेरुरेकमिवार्णवम् ॥ २० ॥

अर्थ—और दीपोंके समूह इसप्रकार न जानें कहां चलेगये जैसे दिनसे तारागण, और रात्रिके भूतोंकी पंक्ति अतिबली होगई ॥ १७ ॥ दोनों लीलानें तथा राजाकी उस कन्याने देवीसे दीहुई दिव्य दृष्टिसे विदीर्ण हृदयके समान होके उस महा युद्धको देखा ॥ १८ ॥ हे रामजी ! विदूरथ राजाके जानेके अनन्तर सिन्धुदेशके निवासियोंके बाणोंके कटकटाहट शब्द ऐसे शान्त होगये जैसे प्रलयमें एक समुद्रके प्रवाहोंसे वडवानल (समुद्रकी अग्नि) ॥ १९ ॥ धीरे २ सेनाको खींचते हुये राजा विदूरथने अपनी सेना तथा शत्रुकी सेनाकी प्रबलता निर्बलता न जानकर पक्षसे उडते सुमेरुके सदृश समुद्रके समान उमडी हुई शत्रुकी सेनामें प्रवेश किया ॥ २० ॥

अथोदभूद्गुणध्वानंचटचटदितिस्फुटं ॥ रचितांशुमयांभोदाश्चेरुःपरपरंपराः ॥ २१ ॥ ययुरंबरमाश्रित्यनानाहेतिविहंगमाः ॥ प्रससुर्ज्वलमात्तासुमलिनाःशस्त्रदीप्तयः ॥ २२ ॥ जज्वलुःशस्त्रसंघट्टज्वलनाउल्मुकाग्निवत् ॥ जगर्जुःशरधारौघान्वर्षंतोवीरवारिदाः ॥ २३ ॥ विविशुःक्रकचक्रूरावीरांगेषुचहेतयः ॥ पेतुःपटपटारावंहेतिभिर्व्योमवर्त्मनि ॥ २४ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर धनुषकी डोरियोंका चटचटा शब्द स्पष्ट प्रकट हुआ, और अपने अस्त्रशस्त्रोंके किरणमय मेघोंके रचना करनेवाले शत्रुओंके वीर इधर उधर भ्रमण करने लगे ॥ २१ ॥ अनेक शस्त्ररूपी पक्षिगण आकाशका आश्रय लेके चलने लगे, दूसरोंके प्राणोंके हरणसे मलिन शस्त्रोंकी दीप्ति चारों ओर व्याप्त होगई ॥२२॥ शस्त्रोंके संघटसे उत्पन्न अग्नि जलतेहुये काष्ठके सदृश जलने लगा और वीररूपी मेघगण बाणोंकी धाराकी वृष्टि करतेहुये गर्जना करने लगे ॥ २३ ॥ और आरोंके समान कठोर शस्त्र वीरोंके अंगोंमें प्रवेश करनेलगे, और तरवारोंकी पटपटाहट आकाशमें उडने लगी ॥ २४ ॥

जग्मुःशमंतमांस्याशुशस्त्रकानलदीपकैः ॥ बभूवुरखिलासेनानवनाराचरोमशाः ॥ २५ ॥ उत्तस्थुर्यमयात्रायांकबंधनटपंक्तयः ॥ जगुरुच्चैरणोद्रेकंपिशाच्योरणदारिकाः ॥ २६ ॥ उदगुर्दंतसंघट्टटंकारादंतिनांबलात् ॥ ऊहुःक्षेपणपाषाणमहानद्योनभस्तले ॥ २७ ॥ पेतुःशवानिवातास्तसंशुष्कवनपर्णवत् ॥ निर्ययुर्लोहितानद्योरणाद्रेर्मूर्तिवर्षिणः ॥ २८ ॥

अर्थ—शस्त्ररूपी अग्निके दीपकोंसे अन्धकार शीघ्र शान्त होगये, और सम्पूर्ण सेना बाणरूपी नये रोमोंसे पूर्ण होगई ॥ २५ ॥ यमराजकी यात्राके उत्सवमें कबन्धरूपी नटोंकी पंक्ति जानेलगी, और पिशाचीरूप रणकी तरुणी संग्रामकी महिमा गान करने लगी ॥ २६ ॥ हाथियोंके दांतोंके संघटसे निकला हुआ टंकार शब्द आकाश देशको प्राप्त हुआ, और फेंके हुये पाषाणोंकी महानदियां आकाशतलमें प्राप्त हुई ॥ २७ ॥ और मृतक शरीर पृथिवीपर ऐसे गिरने लगे जैसे वायुसे फेंकेहुये वृक्षोंसे सूखे पत्ते ॥ २८ ॥

शेमुःपांसवोरक्तैस्तमांस्यायुधवह्निभिः ॥ युद्धैकध्यानतःशब्दाभयानिमृतिनिश्चयैः ॥ २९ ॥ अभवत्केवलंयुद्धमपशब्दमसंभ्रमम् ॥ अनाकुलांबुवाहाभंखड्गवीचिसटांकृतम् ॥ ३० ॥ खदखदरवसंवदच्छरौघंटकटकितारवसंपतद्भुशुंडि ॥ झणझणरवसंमिलन्महाशांतिमितिमिवद्रणमासदुस्तरंतत् ॥३१॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने विदूरथनिर्याणे षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥

अर्थ—रक्तोंकी धारासे सम्पूर्ण धूलि शान्त होगई शस्त्रोंकी अग्निसे अन्धकार शान्त होगया, केवल युद्धके ध्यानसे सबके वाणीके व्यापार शान्त होगये और मरणके निश्चयसे सबके भयभी शान्त होगये ॥ २९ ॥ खड्गरूप विद्युत्को तरंगोंसे टंकार शब्द सहित, वायुके क्षोभसे रहित वर्षते हुये मेघके सदृश, और वाणीके व्यापारसे शून्य केवल युद्धमात्र व्यापार होता था ॥ ३० ॥ हे रामजी ! खद २ शब्दोंके साथ बाणोंके समूहको धारण करनेवाला, कटकटाहट शब्दोंसे भुशुण्डियोंके सम्पात सहित, झण झण शब्दोंके साथ अनेक महान् अस्त्र जिसमें मिलरहे हैं और इनसे अतिरिक्त अनेक शस्त्रोंके तिमि तिमि शब्दोंके साथ भीरुओंके लिये वह संग्राम दुस्तर होगया ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे लीलोपाख्याने विदूरथनिर्य्याणवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥

सिन्धुके जयका कारण सूर्य्योदयसे रणका क्रम, और दोनों राजाओंका दो रथोंपर मन्त्रास्त्रोंसे युद्ध इस ४७ वे सर्गमें वर्णन किया गया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एतस्मिन्वर्त्तमानेतुघोरेसमरसंगमे ॥ लीलाद्वयमुवाचेदंज्ञप्तिंभगवतींपुनः ॥ १ ॥ ॥ लीलाद्वयमुवाच ॥ देविकस्मादकस्मान्नोभर्त्ताजयतिनोरणे ॥ वदत्वय्यपितुष्टायामस्मिन्विद्रुतवारणे ॥ २ ॥ श्रीसरस्वत्युवाच ॥ चिरमाराधितानेनविदूरथनृपारिणा ॥ अहंपुत्रिजयार्थेननविदूरथभूभृता ॥ ३ ॥ तेनासावेवजयतिजीयतेचविदूरथः ॥ ज्ञप्तिरंतर्गतासंविदेतांमांयोयदायथा ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! इसप्रकार जब भयंकर युद्धका समागम होरहाथा तब दोनों लीलाओंने देवीभगवतीसे पुनः यह बात कही ॥ १ ॥ लीलाजी बोली—हे देवि ! तुमारे प्रसन्न होनेपर इस रणमें जिसमें हस्ती आदिभी भगादिये हैं, ऐसा मेरा पति अकस्मात् क्यों नहीं जीतता सो कहो ? ॥ २ ॥ श्रीसरस्वती बोली—हे पुत्रि ! जय चाहनेवाले इस विदूरथके शत्रुने दीर्घकालतक मेरी आराधना की और विदूरथ राजाने इसलिये नहीं की ॥ ३ ॥ इसलिये वही जीतताहै और विदूरथराजा जीता जाताहै मैं सम्पूर्ण प्राणियोंके अन्तःकरणमें ज्ञानरूपहुं, मुझे जिस समय जो जैसे ॥ ४ ॥

प्रेरयत्याशुतत्तस्यतदासंपादयाम्यहम् ॥ योयथाप्रेरयतिमांतस्यतिष्ठामितत्फला ॥ ५ ॥ नस्वभावोन्यतांधत्तेवन्हेरौष्ण्यमिवेषमे ॥ अनेनमुक्तएवस्यामहमित्यस्मिभाविता ॥ ६ ॥ प्रतिभारूपिणीतेनबालेमुक्तोभविष्यति ॥ एतदीयःस्वयंशत्रुःसिंधुर्नाममहीपतिः ॥ ७ ॥ जयाम्यहंस्यांसंग्रामइत्यनेनास्मिपूजिता ॥ तस्माद्विदूरथोदेहंतत्प्राप्यसहभार्यया ॥ ८ ॥ त्वयानयाचकालेनबालेमुक्तोभविष्यति ॥ एतदीयःस्वयंशत्रुःसिंधुर्नाममहीपतिः ॥ ९ ॥ हत्वैनंवसुधापीठेजयीराज्यंकरिष्यति ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवंदेव्यांवदंत्यांतुबलयोर्युध्यमानयोः ॥ १० ॥ रविर्द्रष्टुमिवाश्चर्यमाजगामोदयाचलम् ॥ चेलुस्तिमिरसंघाताबलानीवारिरूपिणः ॥ ११ ॥ मस्तन्जीवसंघान्येसंध्यायांतारकाइव ॥ शनैःप्रकटतांजग्मुर्बिलाकाशादिभूमयः ॥ १२ ॥

अर्थ—काम कर्म वासनाके बलसे फल देनेको अभिमुख करताहै उसके लिये उससमय वैसाही फल सिद्ध करतीहुं, और हे लीले ! यह फलभी विवर्तरूप होनेसे, जिस काम, कर्म, वासनासे जैसे फल देनेको अभिमुख की जातीहुं उसका फलरूप होके मैंही उपस्थित होतीहुं ॥ ५ ॥ हे लीले ! अग्निकी उष्णताके सदृश यह मेरा स्वभाव अन्यथा कभी नहीं होता, और इस विदूरथराजाने, मैं मुक्त होजाऊं ऐसीही भावनासे मेरी पूजा की ॥ ६ ॥ सो हे अप्रबुद्धलीले बाले ! (विदूरथके निकट रहनेवाली लीलाका संबोधन है) वही प्रतिमारूप होके इसको फल दूंगी और इससे यह राजा मुक्त होजायगा, और इसका शत्रु जो सिन्धुनाम राजा है ॥ ७ ॥ इसलिये मेरी पूजीकी कि मैं संग्राममें विजयी होऊं, इसलिये यह राजाविदूरथ उस पद्मके शरीरमें प्रवेश करके तुम दोनों लीलारूप अपनी धर्मभार्य्याओंके साथ मुक्त होगा और इसका शत्रु जो सिन्धुनाम राजा है ॥ ८ ॥ ९ ॥ वह इसको मारके विजयी होके पृथिवीतलपर राज्य करेगा, श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! जिस समय देवी ऐसा कह रहीथी और दोनों सेना ये युद्धकर रहीं थीं ॥ १० ॥ उस समय मानों युद्धका कौतुक देखनेके लिये सूर्य्यभगवान् उदयाचलपर प्राप्त हुये, और विदूरथराजाके शत्रुरूप अ-

न्धकाके समूह जो रात्रिमें तारागणके सदृश राक्षस पिशाच आदि जीव समूहोंकी रचनाकी थी, वे सब चल दिये, और धीरे २ बिल, आकाश और पर्वत, तथा भूमि प्रकट होगये ॥ ११ ॥ १२ ॥

भुवनंकज्जलांभोधेरिवोत्क्षिप्तमराजत ॥ पेतुःकनकनिःस्यंदसुंदरारविरश्मयः ॥ १३ ॥ शैलेषुवरवीरेषु रणेरक्तच्छटाइव ॥ अदृश्यतततोव्योमतथारणमहीतलम् ॥ १४ ॥ बाहुभिर्भ्रांतभुजगंप्रभाभिःकीर्णकांचनम् ॥ कुंडलैःकीर्णरत्नौघंशिरोभिर्दृप्तपंकजम् ॥ १५ ॥ आयुधैःखड्गनीरंध्रंशरैःशलभनिर्भरम् ॥ रक्ताभ्रस्थिरसंध्याढ्यसंसिद्धपुरुषंशवैः ॥ १६ ॥

अर्थ—भुवन कज्जलके समुद्रसे निकाले हुयेके समान शोभित हुआ, और कनककी धाराके समान सुन्दर सूर्य्यकी किरणों आके श्रेष्ठ वीररूपी पर्वतोंपर रण रक्तकी छटाके समान आके गिरी ॥ १३ ॥ और हे रामजी! रणके महीतल वीरोंकी भुजाओंसे घुमा हुये सर्पके सदृश, और और आकाश सूर्य्यकी किरणोंसे तथा दोनों (वीर और सूर्य्य) की प्रभाओंसे खुदे हुये सुवर्णके सदृश देख पडा, और गिरे हुये कुण्डलोंसे बिखरेहुये रत्नके समूहके सदृश, और शिरोंसे कमलसहित तडागके सदृश शोभित हुआ ॥१४॥१५॥ तथा हे रामजी! अस्त्ररूपी खड्गजातिके मृगोंसे व्याप्त, शररूपी शलभों (पाखियो) से पूर्ण, रक्तोंकी कान्तियोंसे स्थिर सन्ध्याके सदृश, और मृतकोंसे सिद्ध पुरुषोंके सहित ॥ १६ ॥

हारैःससर्पनिर्मोकंकटैरिद्धंसुसंकुलम् ॥ लसल्लतंपताकाभिरुरुभिःकृततोरणम् ॥ १७ ॥ हस्तैःपादैःपल्लवितंशरैःशरवणोपमम् ॥ शस्त्रांशुशाद्वलश्यामंशस्त्रपूरैःसकेतकम् ॥ १८ ॥ कीर्णमायुधमालाभिरुन्मत्तमिवभैरवम् ॥ फुल्लाशोकवनाकारंशस्त्रसंघट्टवन्हिभिः ॥१९॥ उदघुंघुमहाशब्दैर्विद्रवत्सिद्धनायकैः ॥ सौवर्णनगराकारंबालार्ककचितायुधैः ॥ २० ॥

अर्थ—हारोंसे सर्पोंकी केंचुरीसहित, कवचोंसे प्रदीप्त अग्निसे पूर्ण, पताकाओंसे शोभायमान लतासहित जंघाओंसे तोरणसहित ॥ १७ ॥ हस्तपादोंसे पल्लवित, शरोंसे शरके बनके समान, शस्त्रोंकी किरणों घासके सदृश श्याम, और शस्त्रोंके समूहोंसे केतकपुष्पसहित ॥ १८ ॥ शस्त्ररूपी मालाओंसे व्याप्त उन्मत्त भैरवके सदृश, और शस्त्रोंके संघट्टसे उत्पन्न अग्नियोंसे विकसित अशोकके सदृश ॥ १९॥ समुद्रके सदृश घुंघु महाशब्दोंसे और भागते हुये सिद्ध नायकों सहित, और प्रातःकालके सूर्य्यके सदृश चमकते हुये अस्त्रोंसे सौवर्ण (सोनेसे बने हुये) नगर सदृश आकारवाला॥२०॥

प्रासासिशक्तिचक्रर्ष्टिमुद्गरारणितांबरम् ॥ वहद्रक्तनदीरंहःप्रोह्यमानशवोत्करम् ॥ २१ ॥ भुशुंडीशक्तिकुंतासिशूलपाषाणसंकुलम् ॥ शूलशस्त्राहतिच्छिन्नकबंधपतनान्वितम् ॥ २२ ॥ कालतांडववेतालकुलारब्धहलारवम् ॥ शून्येरणांगणेदीप्तौपद्मसिंध्वोरथौचलौ ॥ २३ ॥ अदृश्येतांनभश्चिन्हौचंद्रसूर्याविवोत्थितौ ॥ चक्रशूलभुशुंड्यष्टिप्रासायुधसमाकुलौ ॥ २४ ॥

अर्थ—भाला, तलवार, शक्ति, चक्र, किरिचे (दोनो ओर धारकी तरवार) और मुद्गरोंसे सम्पूर्ण आकाशको शब्दसहित करनेवाला और बहती हुई रक्तकी नदीके वेगोंमें मृतकोंके समूहोंके बहानेवाला ॥ २१ ॥ तथा भुशुंडी, शक्ति, भाला, तलवार, त्रिशूल, और पाषाणोंसे व्याप्त, और शूल तथा अन्य शस्त्रअस्त्रोंके प्रहारोंसे कटे हुये कवन्धों सहित ॥ २२ ॥ तथा कालके ताण्डव नृत्य और वेतालके समूहोंसे जहांपर कोलाहल शब्दोंका आरंभ होरहाहै ऐसा वह रणका महीतल आकाश शोभित हुआ, और जब परस्पर दोनों सेनाओंके युद्धमें योधालोग क्षयको प्राप्त हुये तब शून्य रणके अंगणमें, राजा पद्म और सिन्धुके चंचल तथा दीप्यमान दोनों रथ॥२३॥आकाशके चिन्हरूप स्वर्गमें चन्द्रमाके समान देख पडे, और पुनः वे दोनों रथ, चक्र, शूल, भुशुण्डी, किर्चि, भाले, तथा अन्य अनेक अस्त्रोंसे व्याप्त ॥ २४ ॥

सहस्रेणसहस्रेणवीराणांपरिवारितौ ॥ विचरंतौयथाकाममंडलैर्विततारवैः ॥ २५ ॥ सचीत्कारमहाचक्रपिष्टानेकमृतामृतौ॥ तरंतौरक्तसरितोमत्तवारणलीलया ॥ २६ ॥ केशशैवलसंपन्नेचक्रचक्रजलेंदुके ॥ वहच्चक्राहतिक्षोभपातिताकुलवारणौ ॥ २७ ॥ मणिमुक्ताझणत्काररणत्कूबरकारवौ ॥ वाताहतपताकाग्रपटत्पटपटारवौ ॥ २८ ॥

अर्थ—और वीरोंके सहस्र २ समूहोंसे वेष्टित शब्दों पूर्ण मण्डलोंसे अपनी इच्छापूर्वक विचरनेवाले ॥ २५ ॥ चिंग्घार शब्दोंके साथ अनेक मृतक और जीवित मनुष्योंको चूर्ण करनेवाले, और केशरूपी शैवालोंसे युक्त, चक्ररूपी चक्रवाक पक्षी तथा चन्द्रमाके प्रतिबिम्ब सहित, परस्परके आघातसे बनीहुई रक्तकी नदियोंमें मत्तहस्तीकी लीलासे तरतेहुये, और चलतेहुये, चक्रोंके प्रहारके क्षोभसे भयभीत हस्तियोंको गिरानेवाले ॥ २६ ॥ २७ ॥ मणि और मुक्ताओंके झनझनाहटके साथ रथ कूबरोंकी ध्वनि सहित, और वायुके आघातसे युक्त पताकाओंके पटपटा शब्दोंसहित॥२८

अनुयातोमहावीरैर्भूरिभिर्भीरुसैनिकैः ॥ धारावमद्भिः कुंतानांशराणधनुषामपि ॥२९॥ शक्तीनांप्रासश कूनांचक्राणांकचतांरणे ॥ तत्रतीक्षणमावृत्त्यमंडलेभूमिकुंडले ॥ ३० ॥ उभौव्यतिबभूवातेसंमुखावा युधावुभौ ॥ नाराचधारानिकरविक्षेपकरकध्वनौ ॥ ३१ ॥ अन्योन्यमपिगर्जंतौम ताविधजलदाविव ॥ तयोःप्रहरतोर्बाणावसुधानरसिंहयोः ॥ ३२ ॥

अर्थ—तथा मालाओंकी और धनुषके बाणोंकी शक्तियोंकी बर्च्छी तथा मेघोंकी और चमकते हुये चक्रोंकी धाराओंको वर्षानेवाले सेनाके महावीरोंसे और अनेक भीरु (डरपोक) योद्धाओंसेभी पीछा कियेहुये (वे दोनोंरथ) थे उस रणभूमिके कुण्डलके समान रथोंके परिवर्तनरूप मण्डलमें वे दोनोंरथ क्षणभर ठहरकर ॥ २९ ॥ ३० ॥ दोनों संग्राममें एक दूसरेके सम्मुख हुये, और बाणोंकी धाराके समूहोंसे, तथा प्रास, कुन्त (बर्छी भाला) आदि पाषाणकी वृष्टिके शब्द सहित समुद्र मेघोंके सदृश गर्जना करतेहुये एक दूसरेके ऊपर क्रमसे बाण आदिकी वृष्टि करनेलगे अर्थात् एक जबतक मेघके सदृश वृष्टि करताथा दूसरा उसको समुद्रके सदृश सहन करताथा, और हे रामजी ! जिस समय वे दोनों पृथिवीके नरसिंह बाण आदिका प्रहार कररहे थे, उससमय ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

पाषाणमुसलाकाराव्योमविस्तारिणोभवन् ॥ करवालमुखाःकेचिन्मुद्गराननकाःपरे ॥ ३३ ॥ शितच क्रमुखाःकेचित्केचित्परशुवक्त्रकाः ॥ केचिच्छक्तिमुखाःकेचित्केचिच्छूलशिलामुखाः ॥ त्रिशूलवदनाः केचित्स्थूलाइवमहाशिलाः ॥ ३४ ॥ प्रलयपवनपातिताःशिलौघाइवनिपतंतिशिलीमुखास्तदास्म ॥ प्रमिलितमभवत्तयोस्तदानींप्रलयविजृंभितसिंधुसंभ्रमेण ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने विदूरथसिंधुसमागमो नाम सप्तचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४७ ॥

अर्थ—कोई बाण तो पाषाण और मुसलाकार होके आकाशमें वृद्धिको प्राप्त होतेथे, कोई तलवार मुखवाले होके तथा कोई २ मुद्गर मुखवाले, होके विस्तारको प्राप्त हुये ।। ३३ ।। हे रामजी ! कोई तीक्ष्ण चक्रमुखवाले कोई २ फरसे के समान मुखवाले, कोई शक्ति मुखके, और कोई २ शूल और शिला मुखवाले कोई २ त्रिशूल वदन (मुख) वाले और कोई २ ऐसे स्थूल थे जैसे पाषाणकी महा शिला ॥ ३४ ॥ हे रामजी ! उससमय बाण आदिके समूह ऐसे गिरते थे जैसे प्रलयकालके वायुसे गिराये मेरु आदि पर्वतोंके शिलाओंके समूह और उससमयमें उन दोनोंका मेल ऐसा हुआ जैसे प्रलयकालमें बढे हुये दो समुद्रोंके संक्षोभका ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे लीलोपाख्याने विदूरथसिन्धुसमागमो नाम सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥

विचित्र मायाको उत्पन्न करनेसे महा मन्त्रास्त्रोंसे विश्वको मोह करानेवाला राजा सिन्धु और विदूरथ (भावी पद्म) का समर इस ४८ वें सर्गमें विस्तारसे वर्णन किया गया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ प्राप्यराजापुरःप्राप्तंसिंधुमुद्धुरकंधरम् ॥ मध्याह्नतपनांतेनकोपेनविततोभवत् ॥१॥ धनुरास्फालयामासचिरारावितदिङ्मुखम् ॥ कल्पांतपवनास्फोटइवमेरुगिरेस्तटम् ॥ २ ॥ विसस र्जोर्जितोराजाप्रलयार्कःकरानिव ॥ तूणीररजनीबद्धाःशिलीमुखपरंपराः ॥ ३ ॥ एकएवविनिर्यातिगुणा त्तस्यशिलीमुखः ॥ सहस्रंभवतिव्योम्निगच्छन्पततिलक्षशः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! ऊंची कन्धरा (कन्धा) वाले राजा सिन्धुको जिस समय अपने सन्मुख पाया उससमय ग्रीष्मऋतुके मध्यान्हकालके सूर्य्यके समान कोपसे पूर्ण होगया॥१॥और दीर्घकालतक दिशाओंको शब्द सहित करनेवाले अपने धनुषकी डोरीको चढाया जिससे कि ऐसा शब्द हुआ कि जैसा प्रलयकालके पवनसे सुमेरु तटका ॥ २ ॥ उस महाबली राजाने रात्रिरूपी तूणीर (तीरोंके रखनेके पात्र) से बाणों (रात्री पक्षमें) की पंक्तियोंको ऐसे छोडा जैसे प्रलयकालमें सूर्य्य अपनी किरणोंको ॥ ३ ॥ हे रामजी ! उस राजाकी धनुषकी डोरीसे निकलता तो एकही बाणथा, परन्तु आकाशमार्गमें जाते हुये सहस्र (हजार) होजाता था, और गिरते २ वही एक बाण लक्षरूप धारण कर लेता था ॥ ४ ॥

सिंधोरपितथैवासीच्छक्तिर्लाघवमेवच ॥ वरेणवरदस्यैवंविष्णोर्द्वानुष्कतातयोः ॥ ५ ॥ मुसलानामते बाणामुसलाकृतयोंबरम् ॥ छादयामासुरुन्नादाःकल्पांताशनयोयथा ॥ ६ ॥ रेजुःकनकनाराचराजयो व्योम्निसस्वनाः ॥ रसंत्यःकल्पवातार्त्ताःपतंत्यइवतारकाः ॥ ७ ॥ विदूरथाच्छरासाराअजस्रमभिनिर्ययुः ॥ अब्धेरिवपयःपूराःसूर्यादिवमरीचयः ॥ ८ ॥

अर्थ—और राजा सिन्धुकीभी ऐसीही शक्ति और हस्तलघुता (हांथकी सफाई) थी, और इसप्रकार धनुर्विद्यामें उनकी शक्ति तपसे प्रसन्न किये हुये वर देनेवाले विष्णुभगवान्‌के वरदानसे थी ॥ ५ ॥ जो बाण मुसलनामवाले थे वे मुसलाकार होके महाध्वनि करते हुये आकाशमें ऐसे छागये जैसे कल्पके अन्तमें महाशब्द करते हुये वज्र ॥ ६ ॥ सुवर्णसे रंगे हुये बाणोंकी पंक्तियां आकाशमें शब्द करते हुये ऐसी शोभित हुई जैसे प्रलयके पवनसे पीडित शब्द करते हुये आकाशसे गिरती हुई तारा ॥ ७ ॥ राजा विदूरथसे बाणोंकी धारा निरन्तर ऐसे जाती थी, जैसे समुद्रसे जलका प्रवाह और सूर्य्यकिरणें ॥ ८ ॥

प्रचंडपवनोद्धूतात्पुष्पाणीवमहातरोः ॥ अयःपिंडादिवोत्तप्ताच्चाडितात्कणपंक्तयः ॥ ९ ॥ धारावर्षमुचइवसीकराइवनिर्झरात् ॥ तत्पुराग्निमहादाहात्स्फुलिंगाइवभासुराः ॥ १० ॥ तयोश्चटचटास्फोटश्रुण्वत्कोदंडयोर्द्वयोः ॥ बलद्वयमभूत्प्रेक्षामूकंशांतइवांबुधिः ॥ ११ ॥ वहंतिस्मशरापूरागंगापूराइवांबरे ॥ सिंधोरभिमुखंयुद्धेघर्घरारावरंसहः ॥ १२ ॥

अर्थ—और प्रचण्ड पवनसे कंपाहुये महा वृक्षसे पुष्पोंके समान, घनसे ताडित तप्त लोहेके गोलेसे अग्नि कणके पंक्तियोंके सदृश ॥ ९ ॥ दृष्टियोंको बन्द करनेवाले मेघसे जलकी वृष्टिके समान, झरनोंसे जलके कणके समान और राजाके नगरमें अग्निके महादाहसे अग्निके स्फुलिंगों (कणों) के तुल्य प्रकाशमान बाण राजाविदूरथसे निकलते थे ॥ १० ॥ उन दोनों राजाओंके धनुषके चटचटा शब्दोंको सुनती हुई दोनों सेना देखनेके लिये ऐसी मूक होगई जैसे शान्त समुद्र ॥ ११ ॥ राजा सिन्धुके अभिमुख, युद्धमें, घर्घर शब्द संयुक्त वेगवाले बाणोंके प्रवाह ऐसे जाते थे जैसे आकाशमें गंगाजीका प्रवाह ॥ १२ ॥

कचत्कनकनाराचशरवर्षाअनारतम् ॥ वहच्छवशवाशब्दंनिर्ययुर्धनुरंबुदात् ॥ १३ ॥ बाणमंदाकिनीपूरंव्रजंतंसिंधुपूरणे ॥ वातायनात्तमालोक्यलीलातत्पुरवासिनी ॥ १४ ॥ तेनबाणसमूहेनजयमाशंक्य भर्त्तरि ॥ उवाचवाक्यमानंदविकसन्मुखपंकजा ॥ १५ ॥ जयदेविजयत्येषनाथोस्माकंविलोकय ॥ किंचानेनशरौघेणमेरुरप्येतिचूर्णताम् ॥ १६ ॥

अर्थ—प्रकाशमान सुवर्णके बाणोंकी वर्षा शवशवा शब्दोंके साथ राजाके धनुषरूपी मेघसे निरन्तर निकलती थी ॥ १३ ॥ राजा सिन्धुरूपसमुद्रको पूर्ण करनेके अर्थ विदूरथके बाणरूपी मन्दाकिनी (गंगा) के प्रवाहको जाते हुये झरोखेके मार्गसे उस नगरकी निवासिनी लीला देखकर ॥ १४ ॥ उस बाणोंके समूहसे अपने पतिके विजयकी आशंका करके आनन्दसे विकसित मुखकमलवाली (लीला) यह बोली ॥ १५ ॥ हे जयके देनेहारी देवि ! देखो यह हमारा पति अब जीतताहै क्योंकि इस बाणोंके समूहोंसे सुमेरुभी चूर्ण होसकताहै ॥ १६ ॥

तस्यामेवंवदंत्यांतुघनस्नेहरवाकुलम् ॥ प्रेक्षणव्यग्रयोर्देव्योर्हसंत्योर्मानुपींहृदा ॥ १७ ॥ तच्छरार्णवमामत्तमपिबत्सिंधुवाडवः ॥ शरोष्मणाह्यगस्त्येनजन्हुर्मंदाकिनीमिव ॥ १८ ॥ बाणवर्षेणकणशस्तंसायकमहाघनम् ॥ छित्त्वातनुरजःकृत्वाचिक्षेपगगनार्णवे ॥ १९ ॥ यथादीपस्यशांतस्यनपरिज्ञायतेगतिः ॥ तस्यसायकसंघस्यनविज्ञातातथागतिः ॥ २० ॥

अर्थ—हे रामजी ! जब स्नेह पूर्णशब्दोंसे वह ऐसा कह रही थी और युद्धके देखनेमें निमग्न दोनों देवियां मानुषी अर्थात् अप्रबुद्ध देहात्मबुद्धिवाली लीलाको हृदयसे हंस रही थीं ॥ १७ ॥ उससमय उस मत्तशररूपी समुद्रको अगस्त्यरूपी अपने बाणकी उष्णतासे राजा सिन्धु ऐसे पीगया जैसे जन्हुऋषि मंदाकिनीको ॥ १८ ॥ राजासिन्धुने बाणोंकी वर्षासे उसके सायक (बाण) रूपी महामेघको धूलीके समान करके आकाशरूपी समुद्रमें फेंक दिया ॥ १९ ॥ जैसे शान्तदीपकी गति नहीं विदित होती ऐसे उसके बाणोंकी समूहकी गति कुछभी नहीं प्रतीत हुई कि वे क्या हुये ॥ २० ॥

तंछित्त्वासायकासारंशरांबुधरंघनम् ॥ व्योम्निप्रसारयामासरसाच्छवशतान्वितम् ॥ २१ ॥ विदूरथस्तमप्याशुव्यधमत्सायकोत्तमैः ॥ सामान्यजलदंमत्तंकल्पांतपवनोयथा ॥ २२ ॥ कृतप्रतिकृतैरेवंबाणवर्षैर्महीपती ॥ व्यर्थीकृतैरनयतांप्रहारमविचारणैः ॥ २३ ॥ अथादर्षमोहनास्त्रंसिंधुर्गंधर्वसौहृदात् ॥ प्राप्तंतेनयथुलोकाविनामोहंविदूरथात् ॥ २४ ॥

अर्थ—बाणोंकी धाराको छेदन करके सैकडो प्रकारके शब्दसे युक्त शरीररूपी जलधारी मेघको आकाशमें विस्तार किया ॥ २१ ॥ विदूरथनेभी उत्तम सायकोंसे उनका ऐसा प्रतीकार किया, जैसे सामान्य मेघका कल्पान्तका पवन ॥ २२ ॥ इसप्रकार दोनों राजाओंने बाणोंकी वृष्टियोंसे प्रहार और प्रतीकारसे एक दूसरेके प्रहारको व्यर्थ कर दिया ॥ २३ ॥ इसके अनन्तर राजा सिन्धुने गन्धर्वकी कि मित्रतासे जो मोहनास्त्र (सबको मूर्छित करनेवाला) पाया था, उसे चलाया, जिससे कि विदूरथको छोडके सब योद्धागण मोहित होगये ॥ २४ ॥

व्यस्तशस्त्रांबरामूकाविषण्णवदनेक्षणाः ॥ मृताइवाभवन्योधाश्चित्रन्यस्ताइवाथवा ॥ २५ ॥ यावद्वि-दूरथादन्यंमोहोनयतिमंदताम् ॥ तावद्विदूरथोराजाप्रबोधास्त्रमथाददे ॥ २६ ॥ ततःप्रबोधमापन्नाः प्रजाःप्रातरिवाब्जिनी ॥ विदूरथेभवत्सिंधुःक्रुद्धोर्कइवराक्षसे ॥ २७ ॥ नागास्त्रमाददेभीमंपाशबंधनखेदद्म् ॥ तेनाभवन्नभोव्याप्तंभोगिभिःपर्वतोपमैः ॥ २८ ॥

अर्थ—और योधालोगोंके शस्त्र तथा वस्त्रादि गिरगये तथा वे मूक और म्लानमुख, मृतक वा चित्रलिखितके सदृश होगये ॥ २५ ॥ इसके पश्चात् जबतक विदूरथके सिवाय अन्य जनको मोह मन्दताको प्राप्त करै, इतनेहीमें राजा विदूरथने प्रबोधास्त्र (मूर्छा जगानेवाला) चलाया ॥२६॥ हे रामजी! उससे सम्पूर्ण प्रजा इसप्रकार प्रबुद्ध (चैतन्य) होगई जैसे प्रातःकालमें सूर्य्यके किरणोंसे कमलिनी, इससे राजा सिन्धुने विदूरथके ऊपर ऐसा कुपित होके लाल होगया जैसे मन्देहाख्य नाम राक्षसपर सूर्य्य ॥ २७ ॥ इसके अनन्तर सिन्धुने पाश (फासी) बन्धन और खेदको देनेवाला, भयंकर नागास्त्र धारण किया, उससे पर्वतके समान सर्पोंसे सम्पूर्ण आकाश व्याप्त होगया ॥ २८ ॥

सर्पैर्विलसिताभूमिर्मृणालैःसरसीयथा ॥ संपन्नागिरयःसर्वेकृष्णपन्नगकंबलाः ॥ २९ ॥ पदार्थाःसर्वएवेमेविषोष्मखिन्नतांययुः ॥ सपर्वतवनाभोगाययौविवशतांमही ॥ ३० ॥ पूतांगारसमाकीर्णविषवैषम्यशंसिनः ॥ ववूरूक्षोष्णनीहारवाताज्वलनरेणवः ॥ ३१ ॥ विदूरथोथसौपर्णमाददेस्त्रंमहास्त्रवित् ॥ उदगुर्गरुडास्त्रेणसौपर्णाःपर्वताइव ॥ ३२ ॥

अर्थ—श्वेतवर्ण सर्पोंसे पृथिवी ऐसी आच्छादित होगई जैसे कमलोंके दण्डोंसे तलाई, और सम्पूर्ण पर्वत कृष्ण (काले) सर्परूपी कम्बलसे आच्छादित होगये ॥ २९ ॥ सम्पूर्ण पदार्थ विषकी उष्णतासे मुर्झा गये और पर्वत तथा वन करके सहित सम्पूर्ण पृथिवी विवश होगई ॥ ३० ॥ स्वच्छ अंगारोंसे व्याप्त विषकी भयंकरताको प्रकट करनेवाले वायु बर्फके समान शीत पदार्थोंको उष्ण और रूक्ष करते हुये अग्निके स्फुलिंग सदृश होगये ॥ ३१ ॥ इसके पश्चात् महान् (बडे २) अस्त्रोंको जाननेवाला राजा विदूरथ सौपर्णास्त्र (गरुडास्त्र) उठाया उस गरुडास्त्रसे सुपर्ण ऐसे निकले, जैसे पक्षसहित पर्वत ॥ ३२ ॥

कांचनीकृतसर्वाशाःसर्वाशापरिपूरकाः ॥ पक्षपर्वतसंरंभजनितप्रलयानिलाः ॥ ३३ ॥ घोणानिलजवाकृष्टश्वसद्भुजगमंडलाः ॥ महाघुरघुरारावपूरितांभोधिखंडकाः ॥ ३४ ॥ ससुपर्णघनोऽपात्तंसर्पौघंभूप्रपूरकं ॥ कुंठंशलशलायंतमगस्त्यइववारिधिम् ॥ ३५ ॥ सर्पकंबलनिर्मुक्तंभूमंडलमराजत ॥ चिरात्तमवनीरंध्रमिवनिर्वारिराशिच ॥ ३६ ॥

अर्थ—सम्पूर्ण दिशाओंको सुवर्णके समान करनेवाले, और सब दिशाओंके पूरक, पक्षसहित पर्वतोंके क्षोभसे प्रलयकालके पवनको उत्पन्न करनेवाले ॥ ३३ ॥ श्वासके वायुके वेगसे हांफते हुये, सर्पोंको खींचनेवाले और महा घुर घुर शब्दोंसे समुद्रकोभी पूर्ण करनेवाले वे सौपर्ण थे ॥ ३४ ॥ वह सुपर्णरूपी घन, पृथिवीको पूर्ण करनेवाले, और बडे वेगसे चलनेवाले उस सर्प समूहको ऐसे पीगया जैसे अगस्त्यऋषि समुद्रको ॥ ३५ ॥ सर्परूपी कम्बलसे मुक्त भूमण्डल ऐसे शोभित हुआ जैसे चिरकालसे जलकी राशिसे निर्गत वाराह भगवान्‌से उद्धार किया हुआ ॥ ३६ ॥

ततस्तद्गरुडानीकंक्वाप्यगच्छददृश्यताम् ॥ दीपौघइववातेनशरदेवाब्दमंडलम् ॥ ३७ ॥ वज्रभीत्येवपक्षौघपर्वतप्रकरःपुरः ॥ स्वप्नदृष्टंजगदिवसंकल्पपुरपूरवत् ॥ ३८ ॥ ततस्तमोस्त्रमसृजत्सिंधुरंधांधकारदम् ॥ तेनांधकारोववृधेकृष्णोभूजठरोपमः ॥ ३९ ॥ रोदोरंध्रेप्रविसृतएकार्णवइवाभवत् ॥ मत्स्याइवाभवन्सेनास्ताराश्चमणयोभवन् ॥ ४० ॥

अर्थ—उसके पश्चात् वह गरुडकी सेना न जाने कहां ऐसे अदृश्यताको प्राप्त होगई जैसे प्रचण्ड पवनसे दीपोंका समूह वा शरत्कालसे मेघ मण्डल ॥ ३७ ॥ अथवा ऐसे अदृश्य होगया जैसे इन्द्रके वज्रके भयसे पक्षोंके समूहसहित मेरु आदि पर्वतोंका समूह, वा स्वप्नदृष्ट जगत् अथवा संकल्पके नगरोंका प्रवाह ॥ ३८ ॥ इसके पश्चात्

सिन्धुने महान् अन्धकार करनेवाला तमोऽस्त्र छोडा, उस तमोऽस्त्रसे ऐसा अन्धकार बढा जैसे पृथिवीके गर्भका॥३९॥ वह अन्धकार आकाश और पृथिवीके मध्य भागमें ऐसे व्याप्त होगया जैसे प्रलयकालका एक समुद्र और सम्पूर्ण सेना उस अन्धकारमय समुद्रमें मत्स्यके समान, और तारागण मणिके सदृश होगये ॥ ४० ॥

अंधकारप्रवृत्तेनमषीपंकार्णवोपमम् ॥ कज्जलाचलसंभारोद्धूतकल्पानिलैरिव ॥ ४१ ॥ अंधकूपेनिपतिताइवासन्सकलाःप्रजाः ॥ कल्पांतइवसंशेमुर्व्यवहारादिशांपति ॥ ४२ ॥ विदूरथोथमार्तंडदीपंब्रह्मांडमंडपे ॥ अस्त्रमंत्रविदांश्रेष्ठःसृष्टामंत्रोव्यचेष्टयत् ॥४३॥ अथोदिततमोंभोधिमर्कागस्त्योगभस्तिभिः॥ अपिबत्कृष्णमंभोदंशरत्कालइवामलः ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! उस अन्धकारकी प्रवृत्तिसे सम्पूर्ण जगत् मषी (स्याही) के पंक (कीचड) के सदृश, तथा अंजनगिरिके रेणुके साथ प्रलयकालके वायुसे व्याप्त होगया ॥ ४१ ॥ सम्पूर्ण प्रजा ऐसी होगई मानों अन्ध कूपमें गिरगई, और कल्पके सदृश सम्पूर्ण दिशाओंके व्यवहार शान्त होगये ॥ ४२ ॥ हे रामजी ! इसके अनन्तर सम्पूर्ण अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ राजा विदूरथ उस ब्रह्माण्डरूपी मण्डपमें विनाही मंत्रके सूर्यास्त्ररूपी दीपको छोडके सम्पूर्ण प्रजाओंको चेष्टित किया ॥ ४३ ॥ इसके अनन्तर उदयको प्राप्त अन्धकाररूपी कृष्ण (काले) समुद्रको अगस्तिरूपी मार्तण्डने अपनी किरणों ऐसे पानकर लिया, जैसे निर्मल शरत्काल कृष्ण मेघको ॥ ४४ ॥

अंधकारांबरोन्मुक्ताविरेजुरमलादिशः ॥ भूपतेःपुरतःकांताइवरम्यपयोधराः ॥ ४५ ॥ ययुःप्रकटतामंतरखिलावनराजयः ॥ लोभकज्जलजालेनमुक्ताइवसतांधियः ॥ ४६ ॥ अथकोपाकुलःसिंधूराक्षसास्त्रंमहाभयम् ॥ क्षणादुदीरयामासमंत्रोदीर्णशरात्मकम् ॥ ४७ ॥ उदगुर्भीषणादिग्भ्यःपरुषावनराक्षसाः ॥ पातालगजफूत्कारक्षुब्धाइवमहार्णवाः ॥ ४८ ॥

अर्थ—अन्धकाररूपी कृष्णवस्त्रसे विनिर्मुक्त दिशायें ऐसी शोभितहुई, जैसे भूपतिके सम्मुख रमणीय पयोधर (स्तनको) धारण करनेवाली कान्ता ॥ ४५ ॥ सम्पूर्ण वनकी पंक्तियां प्रकट होके ऐसे शोभाको प्राप्त हुई जैसे लोभजालसे विनिर्मुक्त सज्जन पुरुषोंकी बुद्धि ॥ ४६ ॥ इसके अनन्तर कोपसे व्याप्त होके, राजा सिन्धुने महाभयंकर मंत्रोंसे शररूप धारण करनेवाले राक्षसास्त्रको एक क्षणभरमें धनुषपर चढाया ॥ ४७ ॥ उससे सम्पूर्ण दिशाओंसे भयंकर वनके कठोर राक्षस ऐसे निकले, जैसे पातालके दिग्गजोंके फूत्कारसे संक्षुभित समुद्र उमडे ॥ ४८ ॥

कपिलोर्ध्वजटाधूम्राःस्फुटचटचटारवाः ॥ अग्नयोलेलिहानोग्रजिह्वाआर्द्रेधनाइव ॥ ४९ ॥ सावर्त्तवृत्तयोव्योम्निभीमचीत्कारटांकृताः ॥ अग्निदाहामहाधूमविलोलाइवसोल्मुकाः ॥ ५० ॥ दंष्ट्राबिसांकुराक्रांतमुखपंकाक्षदेहकाः ॥ उदितालोमजंबालाइप्पल्वलतटाइव ॥ ५१ ॥ निगिरंतःप्रधावंतोगर्जंतःसर्जिताइव ॥ जटाजालतडित्पुंजाजलदाःसजलाइव ॥ ५२ ॥

अर्थ—कपिल और लम्बी ऊंची जटाओंसे धूम्रवर्ण, प्रकट चटचटा शब्द करनेवाले, और गीले इन्धन सहित सप्तजिव्हाओंको लपलपाती हुई अग्निके सदृश ॥४९॥ सम्पूर्ण आकाली, कराली, मनोजवा, और सुलोहिता आदि सप्तजिव्हाओंको लपलपाती हुई अग्निके सदृश ॥४९॥ सम्पूर्ण आकाशमण्डलमें भ्रमण करनेवाले, भयंकर चिग्घार और टंकार शब्द सहित, अग्निके सदृश दाह उत्पन्न करनेवाले, और महाधूम संयुक्त आलात चक्र (चारों ओर भ्रमण कराये जातेहुये जलते काष्ठ) के सदृश ॥ ५० ॥ दन्तरूपी कमल वृण्ड सहित मुखोंसे, और मलिन चक्षुष आदि कर्दम तथा कमलबीजोंसे प्रसिद्ध देहवाले और रोमरूपी शैवालोंसे भ्रष्ट तलावके तटके सदृश ॥ ५१ ॥ और गर्जना करते दौडतेहुये, प्राणिको निगलनेवाले मानों इसी (प्राणियोंका भक्षणरूप) कार्य्य करनेके अर्थ रचेहुये, जटाजालरूपी बिजुलीके समूहोंको धारण करतेहुये सजल मेघोंके सदृश वे सब राक्षस निकले ॥ ५२ ॥

एतस्मिन्नंतरेतस्मिँल्लीलानाथोविदूरथः ॥ नारायणास्त्रंप्रददेदुष्टभूतनिवारणम् ॥ ५३ ॥ उदीर्यमाणएवास्मिन्मंत्रराजेस्त्रराजयः ॥ राक्षसानांप्रशेमुस्ताअंधकारइवोदये ॥ ५४ ॥ प्रमुष्टराक्षसानीकमभवद्भूवनत्रयम् ॥ शरदीवगतांभोदंव्योमनिर्मलमाबभौ ॥ ५५ ॥ अथसिंधुर्मुमोचास्त्रमाग्नेयंज्वलितांबरम् ॥ जज्वलुःककुभस्तेनकल्पाग्निज्वलिताइव ॥ ५६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! इसी अवसरमें लीलाका पति राजा विदूरथ, सब भूत प्रेत राक्षस आदिको निवारण करनेवाले नारायणास्त्रको स्मरण करके धनुषपर चढाया ॥ ५३ ॥ उस मन्त्रराज (अस्त्रराज) के उठातेही सम्पूर्ण राक्षसोंके अस्त्रोंकी पंक्तियां ऐसे शान्त होगई जैसे सूर्य्यके उदयसे अन्धकार ॥ ५४ ॥ राक्षसोंकी सेनासे विनिर्मुक्त तीनों लोक

ऐसा शोभित हुआ, जैसे शरत्कालमें मेघसे रहित निर्मल आकाश ॥ ५५ ॥ हे रामजी ! इसके अनन्तर राजा सिन्धुने आकाशकोभी जलानेवाले आग्नेयास्त्रको धनुषपर सन्धान किया जिससे कि सम्पूर्ण दिशायें ऐसे जलने लगीं जैसे प्रलयकी अग्निसे ॥ ५६ ॥

धूमांबुदभराच्छन्नाबभूवुःसकलादिशः ॥ गगनेप्रोतपातालतिमिराकुलिताइव ॥ ५७ ॥ बभूवुर्ज्वलिताकारागिरयःकांचनाइव ॥ प्रफुल्लवननीरंध्रचंपकौघवनाइव ॥ ५८ ॥ ययुर्व्योमादिदिक्कुंजाज्ज्वालाजालजटालताम् ॥ कुंकुमेनोत्सवेमृत्योःसमालब्धाइवस्रजः ॥ ५९ ॥ ज्वलिताजनताचैकशंकिनीसाम्रभःस्पृशा ॥ सहस्राकृतिनौवेगचलितेनेवसागरात् ॥ ६० ॥

अर्थ—धूमरूपी मेघोंके समूहसे सम्पूर्ण दिशायें इसप्रकार आच्छादित होगईं जैसे आकाशमें व्याप्त पातालसे निकले हुये अन्धकारसे ॥ ५७ ॥ सम्पूर्ण पर्वत अग्निका आकार धारण करके ऐसे शोभित हुये जैसे सुवर्ण, अथवा विकसित प्रफुल्ल बनमें जैसे चम्पाओंका समूह ॥ ५८ ॥ और आकाश, पर्वत और सम्पूर्ण दिशाओंके कुंज ऐसे जटिल पीतवर्ण होगये जैसे मृत्युके उत्सवमें कुंकुमसे सींची हुई पुष्पोंकी माला ॥ ५९ ॥ तथा नौकाओंके सहस्र गुण वेगोंके आकारको धारण करके समुद्रसे निकले हुये वडवाग्निसे सम्पूर्ण प्रजा यह आशंका करती हुई कि सब जगत् एक अद्वितीय अग्निमय होना चाहताहै, जलने लगी ॥ ६० ॥

जित्वरिपुंपुनरसौयथाप्रहरतेतथा ॥ वारुणंविससर्जास्त्रंपूजयित्वाविदूरथः ॥ ६१ ॥ आययुःसलिलापूरास्तमःपूराइवाभितः ॥ अधस्तादूर्ध्वतोदिग्भ्योद्रवरूपाइवाद्रयः ॥ ६२ ॥ भागाइवशरव्योम्निभृतथानाइवांबुदाः ॥ महार्णवाइवोच्चस्थःकुलशैलशिलाइव ॥ ६३ ॥ तमालौघाइवोड्डीनाःसंधिताइवरात्रयः ॥ कज्जलौघाइवोद्भूतालोकालोकतटादिव ॥ ६४ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर राजाविदूरथ इस अभिप्रायसे कि यह हमारा आग्नेयास्त्रको जीतकर शत्रु सिन्धुके ऊपरभी प्रहार करेगा, पूजा करके वरुणास्त्रको अपने धनुषपर चढाया ॥ ६१ ॥ इसके अनन्तर चारों ओरसे जलके प्रवाह ऐसे आके प्राप्त हुये, जैसे सम्पूर्ण दिशाओंसे अन्धकारोंके समूह और पुनः नीचेसे और ऊपर तथा सम्पूर्ण दिशाओंसे गले हुये पर्वतोंके सदृश ॥६२ ॥ तथा बाणोंके मार्गोंके अवकाशमें आकाशके भागके समान विशालरूप, श्रेणी (पंक्ति) बद्ध मेघोंके सदृश, महासमुद्रके तुल्य अथाह और उच्च महाकुलपर्वतोंकी शिलाओंके सदृश॥६३॥ उडतेहुये तमालोंके समान, और मिलीहुई रात्रियोंके समान अथवा लोकालोक पर्वतके तटसे उत्पन्न कज्जलोंके समूहके समान॥६४

रसातलगुहाभोगाइवव्योमदिदृक्षवः ॥ महाघुरघुरारावरंहोबृंहितमूर्त्तयः ॥ ६५ ॥ तामग्निसंततिमत्ताभाचचामांबुसंततिः ॥ भुवनव्यापिनीसंध्यामाशुकृष्णेवयामिनी ॥ ६६ ॥ तामग्निसंततिंपीत्वापूरयामासभूनलम् ॥ जलश्रीर्जडितंदेहंनिद्रेवव्यक्तिमेयुषी ॥ ६७ ॥ एवंविधानस्त्रमोहान्विदधुर्धावनेतरे ॥ मिथोमायामयानग्रेपश्यंत्यनुभवंतिच ॥ ६८ ॥

अर्थ—तथा आकाशको देखनेकी इच्छासे महाघुरघुर शब्दके वेगसे अपनी मूर्तिको बढा हुये पाताल गुहाओंके सदृश निकलके वे जलके प्रवाह निकले ॥ ६५ ॥ हे रामजी ! वह जलका विस्तार (वरुणास्त्रसे उत्पन्न) उस अग्निके विस्तारको ऐसे शीघ्र आगमन करगया जैसे ब्रह्माण्डमें व्यापिनी सन्ध्याको कृष्णरात्रि ॥ ६६ ॥ वह जलकी धारा अग्निके विस्तारको पीकर भूमण्डलको ऐसे पूर्ण कर दिया जैसे जडीभूत देह व्यक्तिको प्राप्त निद्रा ॥ ६७ ॥ इस प्रकार प्रथमकृत अस्त्रोंकी मलिनताको शुद्ध करनेवाले, तथा उनके विरुद्ध और अस्त्रके वेत्ताओंने ऐसे अस्त्रोंको निर्माण करते रहे, और इस प्रकार मायामय अस्त्रोंसे शत्रुओंके नाशादिको भी अपने सम्मुख देखा करते थे ॥ ६८ ॥

हेतिभारवराःसिंधोश्चक्ररक्षास्ततोंभसा ॥ तृणानीवगताःप्रोह्यरथश्चास्याभवत्प्लुतः ॥ ६९ ॥ एतस्मिन्नंतरेसिंधुरस्त्रंसस्मारशोषणम् ॥ आपत्त्राणकरंदैवंददौचशररूपिणम् ॥ ७० ॥ शशामांबुमयीमायातेनयामेवभास्वता ॥ येमृतास्तेमृताएवबभूवुःशोषिताभुवः ॥ ७१ ॥ अथमूर्खरुषातुल्यस्तापःसंतापयन्प्रजाः ॥ जजृंभेझर्झराकीर्णवनविस्तारकर्कशः ॥ ७२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! उस जलसे राजा सिन्धुके श्रेष्ठ योद्धागण जो सेनाकी रक्षा करतेथे सब तृणके समान बह गये, और इसका रथभी बहके जलमें डूबगया ॥ ६९ ॥ इसी अवसरमें राजा सिन्धुने शत्रुओंकी आपत्ति तथा अपनी रक्षा करनेवाला, शररूपी दैव शोषणअस्त्रको स्मरण किया और उसको अपने धनुषपर सन्धान किया॥७०॥उस शोषण अस्त्रसे सम्पूर्ण वह जलमयी माया ऐसे शान्त होगई जैसे सूर्य्यभगवान्के उदयसे रात्रि जो मरे थे वे तो मरेही रहे

परन्तु पृथिवीका भाग सम्पूर्ण शुष्क होगया॥७१॥ हे रामजी! इसके अनन्तर मूर्खके क्रोधके समान सम्पूर्ण प्रजाओंको सन्ताप देतेहुये, और चारोंओर झर्झर शब्द करतेहुये सूखे पत्तोंके विस्तारसे अतिकर्कश सन्ताप वृद्धिको प्राप्त हुआ॥७२॥

कचत्कनककनिःस्यंदसुंदरांगच्छविर्दिशाम् ॥ आसीद्राजवरस्त्रीणामिवालेपोंगसंगतः ॥ ७३ ॥ तेनघर्ममयींमूर्च्छामाजग्मुस्तद्विरोधिनः ॥ ग्रीष्मदावानलोत्तप्तामृदवःपल्लवाइव ॥ ७४ ॥ विदूरथोरणोद्रेकेतावत्क्रेंकारमाततम् ॥ कोदंडंकुंडलीकृत्यपर्जन्यास्त्रमथाददे ॥ ७५ ॥ उदगुःपंक्तयोंऽदानांयामिन्यइव संचिताः ॥ तमालविपिनोड्डीनसंरंभादंबुमंथराः ॥ ७६ ॥ वामनावारिपूरेणगर्जनोद्दामसंचराः ॥ महिम्नामंथराशेषककुम्मंडलकुंडलाः ॥ ७७ ॥

अर्थ—सुवर्णकी धारके सदृश सुन्दरहै अंगछबि जिसकी ऐसा वह ताप दिशाओंके शरीरोंमें ऐसा शोभित हुआ जैसे श्रेष्ठ राजाओंकी स्त्रियोंके अंगोंमें अंगराग (शरीरमें लगानेका चूर्ण)॥७३॥उस तापसे जो घामको नहीं सह सकतेथे उनको घर्ममयी मूर्च्छाको ऐसे प्राप्त हुये जैसे ग्रीष्मके दावानलसे कोमल पत्ते ॥ ७४ ॥ इसके अनन्तर राजाविदूरथने प्रत्यंचा (धनुष की डोरी) के शब्दकी शोभासे पूर्ण कुण्डलके समान कानतक खींचे हुये अपने धनुषपर पर्जन्य (मेघ) अस्त्रको चढाया ॥ ७५ ॥ उस अस्त्रसे एकत्र किई हुई रात्रियोंके तुल्य, जलसे मन्द गमन, और इसी जलके प्रवाहसे झुके वामनके सदृश अति प्रचण्ड गर्जना करके भ्रमण करती हुई, चारों ओरके विस्तारसे सम्पूर्ण दिग्मण्डलके व्यापारको संकुचित करनेवाली, मेघोंकी पंक्तियां ऐसे निकली, जैसे आकाशमें उडते हुये तमालके वनके संक्षोभसे॥७६॥७७

ववुरावलितासारामेघडंबरभेदिनः ॥ कीर्णसीकरनीहारभारोदाराःसमीरणाः ॥ ७८ ॥ प्रपुस्फुरुःस्फुसौवर्णसर्पापत्सरणोपमाः ॥ विद्युतोदिविदैव्यस्त्रीकटाक्षवलनाइव ॥ ७९ ॥ जुघूर्णुर्गर्जनोच्छूनप्रतिश्रुद्धनकंदराः ॥ दिशश्चलितमातंगसिंहर्क्षरवघर्घराः ॥ ८० ॥ महामुसलधाराभिःपेतुरासारवृष्टयः ॥ कष्टटंकारकठिनाःकृतांतस्येवदृष्टयः ॥ ८१ ॥

अर्थ—उससमय जलकी धारासे पूर्ण मेघमण्डलको भेदन करनेवाले और जलके कणोंसे व्याप्त शीतकी अधिकतासे सुख देनेवाले, वायु बहनेलगे ॥ ७८ ॥ पूर्वोक्त सर्पोंकी आपत्तियोंसे पर्वतादिकोंके बाहर निकलनेके तुल्य बिजुली ऐसे चमकने लगी, जैसे स्वर्गमें देवांगनाओंके कटाक्ष ॥ ७८ ॥ गर्जनाओंसे बढीहुई प्रतिध्वनियोंसे घनीभूत कन्दराओंसे तथा हस्ती सिंह और भालू आदिके शब्दोंसे शब्दायमान् दिशायें, महाभयंकर शब्द करनेलगीं ॥८०॥ पाषाणोंकी ध्वनिसे कर्कश महामुसलकी धाराओंसे जलकी वृष्टिसे ऐसे गिरनेलगी जैसी कालकी दृष्टि ॥ ८१ ॥

उदभूत्प्रथमंबाष्पउष्णोनलनिभोभुवः ॥ पातालादभ्रवृंदानांयुद्धायेवात्तविभ्रमः ॥ ८२ ॥ ततोनिमेषमात्रेणप्रशेमुर्मृगतृष्णिकाः ॥ परबोधरसापूरैर्यथासंसारवासनाः ॥ ८३ ॥ आसीत्पंकांकमखिलंभूमंडलमसंचरम् ॥ पूरितःपूर्णधाराभिःसिंधुःसिंधुरिवांबुना ॥ ८४ ॥ वायव्यमस्त्रमसृजत्पूरिताकाशकोटरम् ॥ कल्पांतनृत्तसंमत्तरुद्रैरवभीषणम् ॥ ८५ ॥ ववुर्वज्रनिपातपीडितांगादलितशिलाशकलाःककुम्मुखेषु ॥ प्रलयसमयसूचकाभटानांकृतपटुटांकृतटंकिनःसमीराः ॥ ८६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने आयुधवर्णनं नामाष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥

अर्थ—हे रामजी! सबसे प्रथम पृथिवीसे अग्निके समान उष्णवाष्प ऐसे तेजीसे निकला जैसे मेघोंकी समूहोंके साथ युद्ध करनेके अर्थ वीरता धारण करके तेज विशेष ॥ ८२ ॥ इसके अनन्तर मृगतृष्णाके कारणीभूत सम्पूर्ण आतप ऐसे शान्त होगये जैसे परमात्माका साक्षात्कार होनेसे निरतिशय आनन्दरसोंके प्रवाहोंसे जीवोंकी वासना ॥ ८३ ॥ और कीचडसे सम्पूर्ण भूमण्डल पूर्ण होके मनुष्योंके संचारसे रहित होगया, तथा राजा सिन्धुकी जलकी धाराओंसे ऐसा पूर्ण होगया, जैसे जलसे समुद्र ॥ ८४ ॥ अनन्तर सिन्धुने आकाशके अन्तरालोंको पूर्ण करनेहारे, तथा प्रलयकालमें नृत्य और गर्जना करतेहुये मत्त भैरवके सदृश भयंकर वायव्य अस्त्रको चलाया ॥८५॥ उसके वज्रके पातके तुल्य सबके अंगोंको पूर्ण करनेवाले तथा शिलाओंकोभी चूर्ण करनेवाले, प्रलयकालके सूचक, और प्रतिपक्षी योद्धाओंके शिला आदिके प्रहारोंकी टंकार ध्वनिके सदृश, वायु सम्पूर्ण दिशाओंके मुखोंमें बहनेलगे ॥८६॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देववूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे लीलोपाख्याने आयुधवर्णनं नामाष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥

एकोनपंचाशः सर्गः ॥ ४९ ॥

पर्वतास्त्र, वज्रास्त्र, ब्रह्मास्त्र, और विशेष करके पिशाचोंके चरित संयुक्त पिशाचास्त्रका वर्णन इस ४९ वे सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ववुर्वलितनीहाराविकीर्णवनपल्लवाः ॥ वायवोधूतवृक्षौघाःसलीलापीडपांसवः ॥१॥ पक्षिवद्भ्रांतवृक्षौघाःपतनोत्पातनोद्भटाः ॥ विकुट्टिताट्टालखंडाश्चाभ्रभित्तिविभेदिनः ॥ २ ॥ तेनातिभीमवातेनविदूरथरथोऽप्यथ ॥ उह्यमानोभवन्नद्यायथाजर्जरपल्लवः ॥ ३ ॥ विदूरथोथतत्याजपार्वतोस्त्रंमहास्त्रवित् ॥ व्योमापिघनतोयेनसमादातुमिवोद्यतम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी! पश्चात् हिमसे पूर्ण, वनके पत्तोंको इधर उधर विखरनेवाले, वृक्ष समूहोंको कंपानेवाले, मूर्तिमान प्राणियोंकी लीलासे अपने शिरोंपर धूलिरूप भूषण धारण किये हुये, पक्षियोंकी भांति वृक्ष समूहोंको भ्रमण करानेवाले, वडे २ राजभवनोंकी अट्टालिकाओं (अट्टारियों) कोभी गिरानेवाले, शूरवीरोंको नीचे ऊपर गिरानेमें समर्थ, और मेघरूपी भित्तियोंको भेदन करनेहारे पवन वहने लगे ॥ १ ॥ २ ॥ इसके अनन्तर उस भयंकर वायुसे उडाये हुये विदूरथके रथकीभी ऐसी दशा होगई जैसे नदीके प्रवल प्रवाहोंसे जीर्ण (सडे) पत्रकी ॥ ३ ॥ हे रामजी! इसके अनन्तर महाअस्त्रवेत्ता विदूरथनेभी पर्वतास्त्र छोडा, जो कि मेघके जलके साथही आकाशकोभी ग्रास करनेकोभी मानों उद्यत था ॥ ४ ॥

तेनशैलास्त्रवातेनविराट्प्राणसमीरणः ॥ शमंचैतन्यशांत्येवप्रययौवायुराततः ॥ ५ ॥ अंतरिक्षगतावृक्षपंक्तयःपतिताभुवि ॥ नानाजनशवव्यूहेकाकानामिवकोटयः ॥ ६॥ शमुःसूत्कारडात्कारभांकारोत्कारकादिशाम् ॥ प्रलापाइवविध्वस्ताःपूर्ग्रामवनवीरुधाम् ॥ ७ ॥ गिरीनपश्यन्नभसःपततःपत्रवर्णवत् ॥ सिंधुःसिंधुरिवोत्पक्षान्मैनाकादीनितस्ततः ॥ ८ ॥

अर्थ—उस पर्वत अस्त्रके आघातसे वह सर्वत्र व्याप्त वायु ऐसे शान्त होगया, जैसे तत्त्व (परमात्मा) के बोधसे माया चैतन्यकी शान्तिसे उसका कार्य्यभूत विराट् वायु अर्थात् सूत्रात्मा वायु शान्त होजाय ॥ ५ ॥ तथा उस वायुसे आकाशमें व्याप्त (अति ऊंची) वृक्षोंकी पंक्तियां पृथिवीपर ऐसे गिरनेलगी, जैसे नानाप्रकारके मृतकोंके समूहोंपर करोडों काकोंकी ॥ ६ ॥ और श्वासके शब्द, लुंठनके शब्दसे भयंकर शब्द, और वीरोंके उत्साहके शब्द सब शान्त होगये, तथा पुर, ग्राम वन और लतायें ऐसे नष्ट होगईं, जैसे निरर्थक वर्णनके वाक्य ॥ ७ ॥ राजा सिन्धुने आकाशसे पर्वतोंको गिरते ऐसे देखा जैसे समुद्र पक्षसहित मैनाक आदिको अपनेमें गिरते देखे ॥ ८ ॥

वज्रास्त्रमसृजद्दीप्तंवेरुर्वज्रगणास्ततः ॥ पिबंतोद्रींद्रतिमिरमग्निर्दाहमिवाश्रयः ॥ ९ ॥ तेगिरीणांतथाशिखाःकोटितुंडावखंडनैः ॥ शिरांसिपातयामासुःफलानीवोल्बणानिलाः ॥ १० ॥ विदूरथोथवज्रास्त्रशांत्यैब्रह्मास्त्रमत्यगात् ॥ ततेब्रह्मास्त्रवज्रास्त्रेसमंप्रशममागते ॥ ११ ॥ श्यामाश्यामंपिशाचास्त्रमथसिंधुरचोदयत् ॥ तेनोदगुःपिशाचानांपंक्तयोत्यंतभीतिदाः ॥ १२ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् सिन्धुने वज्रास्त्र छोडा इससे वज्रोंके समूह बडे २ पर्वतेन्द्ररूपी अन्धकारको पीते हुये ऐसे विचरने लगे जैसे इन्धनको भक्षण करते हुये अग्नि ॥ ९ ॥ इधर उधर फेंके हुये वे वज्र अपने अग्रभागरूपी तुंडोंसे सम्पूर्ण पर्वतोंके शिखरोंको ऐसे काटके गिरा दिया जैसे फलोंको प्रचण्ड पवन ॥ १० ॥ इसके पश्चात् विदूरथने वज्रास्त्रकी शान्तिके लिये ब्रह्मास्त्र छोडा उसके अनन्तर ब्रह्मास्त्र और वज्रास्त्र दोनों एककालमेंही शान्त होगये ॥ ११ ॥ उसके पश्चात् राजासिन्धुने रात्रिके समान कृष्ण (काला) वर्ण पिशाचास्त्रको फेका, जिंससे कि अत्यन्त भय देनेवाली पिशाचोंकी पंक्तियांकी पंक्तियां निकली ॥ १२ ॥

संध्यायामथभीत्येवदिवसःश्यामतांययौ ॥ पिशाचाभुवनंजग्मुरंधकारभराइव ॥ १३ ॥ भस्मनस्तंभसदृशास्तालोत्तालविलासिनः ॥ दृश्यमानमहाकारामुष्टिग्राह्यानकिंचन ॥ १४ ॥ ऊर्ध्वकेशाःकृशांगाश्चकेचिच्छ्मश्रुलाअपि ॥ कृष्णांगामलिनांगाश्चग्राम्याइवनभश्चराः ॥ १५ ॥ सभयामूढदृष्टाश्चयत्किंचनकराश्चलाः ॥ दीनावज्रासिनःक्रूरादीनाग्राम्यजनाइव ॥ १६ ॥

अर्थ—अनन्तर सन्ध्या समयके समान भयभीतके तुल्य दिन श्यामताको प्राप्त होगया, और अन्धकारके समूहके सदृश पिशाच सम्पूर्णलोकमें आके व्याप्त होगये ॥ १३ ॥ वे पिशाच दग्ध स्तम्भके समान, ऊंचे ताल वृक्षोंके सदृश शोभायमान और देखनेमें महान् आकारवाले परन्तु हस्तसे पकडो तो कुछ नहीं ॥ १४ ॥ कोई उनमें ऊर्ध्व केश

कृश देहके थे, और कोई २ दाढी रखाये थे, कोई कृष्णशरीर कोई मलिन शरीर कोई ग्रामीण जनोंके सदृश दरिद्र और कोई आकाश चारियोंके तुल्य थे ॥ १५ ॥ भय सहित अपवित्र तथा अपवित्रआचारवाले मनुष्योंको दृष्टिगत होते थे देखनेमें दीन, परन्तु वज्र और तलवारोंसेभी अति कठिन,और ग्रामीणोंके समान कितने दरिद्र देख पडतेथे १६

तरुकर्दमरथ्यांतःशून्यगेहगृहाश्चलाः ॥ लेलिहानाःप्रेतरूपाःकृष्णांगाश्चपलाइव ॥ १७ ॥ जगृहुस्ते तद्धमत्ताहतशिष्टमरेर्बलम् ॥ आसंस्तत्सैनिकास्तत्रभिन्नाःक्षुब्धचेतनाः ॥ १८ ॥ त्यक्तायुधतनुत्रा त्रास्रस्तप्राणाःस्खलद्भ्रमाः ॥ नेत्रैरंगैर्मुखैःपादैर्विकारभाक्कारिणः ॥ १९ ॥ त्यक्तकौपीनवसनानिमग्ना वसनोत्तराः ॥ विण्मूत्रंचकुर्वंतःस्थिरमारब्धनर्तनाः ॥ २० ॥

अर्थ—वृक्ष, कीचड, गलियोंमें, तथा शून्य गृहोंमें अति चंचल, ओष्ठोंको चाटते हुये, प्रेतरूप कोई अतिही चपल थे ॥ १७ ॥ वे पिशाचगण मारनेसे बची हुई शत्रुकी सेनाको ग्रहण करलिया, और उनसे विदूरथके योद्धेलोग इधर उधर तितिर वितिर होगये, तथा मूर्छितभी होगये ॥ १८ ॥ और उनके अस्त्रशस्त्र तथा कवच आदि सब गिरगये, ऐसे होगये मानों भयसे प्राण निकले जाते हैं, नेत्रोंसे, अंगोंसे, मुखोंसे और पादोंसे ऐसे विकारसे पूर्ण होगये मानों भूतोंकी चेष्टासे ग्रसे हैं ॥ १९ ॥ अपने कौपीनादि वस्त्रोंकोभी त्याग दिया जिससे कि उनके नीचेके गुह्यशरीर देख पडने लगे, और विष्ठा मूत्र करते हुये प्रगटमें नाचने लगगये ॥ २० ॥

पिशाचराजीराजानंतस्ययावद्विदूरथम् ॥ समाक्रामतितावत्तांमायांसबुबुधेबुधः ॥ २१ ॥ पिशाचसं ग्रामकरींमायांवेत्तिसभूमिपः ॥ तयापिशाचसैन्यंतत्परसैन्येन्ययोजयत् ॥ २२ ॥ ततःस्वसैनिकाः स्वस्थाःपरयोधाःपिशाचिनः ॥ तस्याशुरूपिकास्त्रंचददावन्यदसौरुषा ॥ २३ ॥ उदगुर्भूतलाद्व्योम्नो रूपिकाऊर्ध्वमूर्द्धजाः ॥ निर्मग्नविकरालाक्ष्यश्चलच्छ्रोणिपयोधराः ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जबतक राजा सिन्धुकी वह पिशाचोंकी पंक्ति राजा विदूरथके ऊपर आक्रमण करे इतने हीमें वह बुद्धिमान् उस मायाको जान गया ॥ २१ ॥ वह राजा विदूरथ शत्रुसे प्रेरित पिशाचोंको अपने वशमें करके शत्रुकी सेनाके साथ युद्ध करनेकी मायाको जानता था, उस मायाको शत्रुकी सेनामें पिशाचोंकी सेनाके साथ युक्त करादिया ॥ २२ ॥ हे रामजी ! इसके अनन्तर दूसरेके साथ युद्ध करनेवाले अपने स्वस्थ सैनिक पिशाचोंको तथा उस पिशाचकी सेनाकाभी सहायक पूतनारूपी अस्त्रको क्रोधसे शीघ्रही इस राजाने छोडा ॥ २३ ॥ हे रामजी ! उसके अनन्तर ऊपर लट छिटकाये हुये, घुसी हुई विकराल नेत्रवाली तथा जिनका नितम्ब (चूतड) और स्तन चलायमान होरहा है ऐसी पूतनायें भूतल तथा आकाशसे निकली ॥ २४ ॥

उद्भिन्नयौवनावृद्धाःपीवरांग्योथजर्जराः ॥ स्वरूपारूपजघनादुर्नाभ्योविकसद्भगाः ॥ २५ ॥ नररक्ताशि रोहस्ताःसंध्याभ्रारुणगात्रिकाः ॥ अर्द्धचर्वितमांसासृक्स्रवत्सृक्कव्याकुलाननाः ॥ २६ ॥ नानांगवलना नानानमनक्षमनसत्तमाः ॥ शिलाभुजगवक्त्रोरुकटिपार्श्वकरांगिकाः ॥ २७ ॥ नारीकृतार्भकशवाहस्ता कृष्टांत्ररज्जवः ॥ श्वकाकोलूकवदनानिम्नवक्त्रहनूदराः ॥ २८ ॥

अर्थ—उनमेंसे कोई यौवनसे मत्त, कोई वृद्ध, कोई स्थूल शरीरवाली, कोई जर्जर, कोई अति स्थूल, कोई अति दुर्बल जंघेवाली, किसीकी नाभी अति भयंकर, और किसीका भग अति शोभायमान ॥ २५ ॥ कोई मनुष्यका रक्तसहित शिर (कपाल) हस्तमें लिये और सन्ध्याके मेघके समान रक्त शरीरवाली, अर्द्धचर्वित मांससे रुधिर जिनसे बहरहाहै ऐसे ओष्ठोंसे व्याकुल मुखवाली ॥ २६ ॥ नानाप्रकारकी अंगचेष्टाओंसे युक्त, अति उद्धतोंकोभी नमन करनेमें समर्थ, शिलाओंसेभी कठिन, और सर्पोंसेभी वक्र मुख, जंघा, कटि, पार्श्व (बगल) तथा अन्य अंगोंको धारण करनेवाली ॥२७॥ मनुष्योंके मृतक बालकके मुण्डोंकी माला धारण करनेवाली हस्तोंसे आंतोंकी खींचतीहुई, कुत्ते, काक और उल्लूकोंके समान मुखवाली तथा अति निम्न (गहरे) मुख, गाल और उदरवाली,पूतनायें॥२८

जगृहुस्तान्पिशाचांस्तादुर्बलान्दुःशिशूनिव ॥ पिशाचरूपिकासैन्यंतदासीदेकतांगतम् ॥ २९ ॥ निर्म न्नृत्तनोत्तानवदनांगविलोचनम् ॥ परस्पराक्रांतिकरंप्रधावच्चपरस्परम् ॥ ३० ॥ निष्कासितमहाजिह्वं नानामुखविकारदम् ॥ शरभाराढ्यमन्योन्यंह्रियमाणशवांगकम् ॥ ३१ ॥ रुधिरांभसिमज्जंतद्रुन्मज्जद्‌ लसत्तनु ॥ लंबोदरंलंबभुजंलंबकर्णोष्ठनासिकम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—उन पिशाचोंको ऐसे जाके पकडलिया जैसे दुर्बल बालकोंको, और वह पिशाचों तथा पूतनाओंको सैन्य ऐसा घनीभूत हुआ कि एकताको प्राप्त होगया ॥ २९ ॥ हे रामजी ! कैसा है वह सैन्य कि क्रीडा रसमें अत्यन्त

मग्न होनेके कारण नृत्यमें जिसके मुख, अन्य अंग तथा नेत्र चढरहेहैं एक दूसरेके ऊपर आक्रमण करनेवाला, परस्पर लीलासे दौडतेहुये ॥ ३० ॥ नानाप्रकारका भय देनेवाला, महा जिव्हाको निकालेहुये, रुधिरके मण्डके समूहसे पूर्ण, और एक दूसरेकी प्रीतिके लिये मृतकोंके शरीर लाके देनेवाला ॥ ३१ ॥ रुधिररूपी जलमें, क्रीडार्थ डूबने और उतारनेवाला रक्तसे शोभायमान शरीर लम्बे उदर भुजा कर्ण और नासिकाको धारण करनेवाला ॥ ३२ ॥

रक्तमांसमहापंकेष्वन्योन्यंवेल्लनाभ्यसत् ॥ मंदरोद्धूतदुग्धाब्धिलसत्कलकलाकुलम् ॥ ३३ ॥ यथैव मायासंचारस्तेनतस्यकृतःपुरा ॥ तेनापितस्याशुतथाकृतोबुद्ध्वासलाघवात् ॥३४ ॥ वेतालास्त्रंततोद त्तेतेनोत्तस्थुःशवव्रजाः ॥ अमूर्द्धानःसमूर्द्धानोवेतालावेशवल्गिताः ॥ ३५ ॥ ततःपिशाचवेतालरूपिकोग्रकबंधवत् ॥ तद्बभूवबलंभीममुर्वीनिगरणक्षमम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—रक्त और मांसके महा पंकोंमें एक दूसरेको वार २ आलिंगन करनेवाला और मथ्यराचलसे मथ्यमान क्षीरसमुद्रके सदृश रमणीय कोलाहलसे पूर्णथा ॥ ३३ ॥ हे रामजी ! जिसप्रकार राजा विदूरथ सिन्धुकी मायाका संचार कियाथा उसीप्रकार दूसरेनेभी उसे जान शीघ्रतासे प्रतिकार किया ॥३४॥ और उसकी सहायताके अर्थ वेताल अस्त्र छोडा उससे कोई शिररहित, कोई शिर सहित, और वेतालोंके आवेशसे (लगनेसे) संचालित मृतकोंके झुण्डके झुण्ड उठे ॥ ३५ ॥ हे रामजी ! इसके अनन्तर, पिशाच, वेताल और पूतनाओंके भयंकर कबन्धों (शिररहित धड) सहित वह महा भयंकरा सैन्य पृथिवीको निगल जानेके समर्थ होगया ॥ ३६ ॥

अथेतरोपि भूपालोमायांसंचार्यतांगुरौ ॥ राक्षसास्त्रंससर्जाथत्रैलोक्यग्रहणोन्मुखम् ॥ ३७ ॥ उदगुःपर्वताकाराःसर्वतःस्थूलराक्षसाः ॥ देहमाश्रित्यनिष्क्रांताःपातालान्नरकाइव ॥३८॥ अथोदभूद्बलंभीमंससुरासुरभीतिदम् ॥ गर्जद्रक्षोमहानादवाद्यनृत्यत्कबंधकम् ॥ ३९ ॥ मेदोमांसोपदंशाढ्यंरुधिरासवसुंदरम् ॥ क्षीबकूश्मांडवेतालयक्षतांडवसुंदरम् ॥ ४० ॥ कूश्मांडकोत्तांडवदंडपादक्षुब्धासृगुर्मिसतरंगसिक्तैः ॥ संध्याभ्ररागोत्करकोटिकांतिभूतैरसृक्स्रोतसिदत्तसेतु ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने तृतीयास्त्रयुद्धं नाम एकोनपंचाशः सर्गः ॥ ४९ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर राजा विदूरथनेभी, अस्त्रोंका पूर्व प्रयोग करनेसे उपदेशक गुरुके सदृश राजा सिन्धुके विषयमें मायाका संचार करके, तीनों लोककोभी ग्रास करनेमें उद्यत राक्षसास्त्रको छोडा ॥ ३७ ॥ उससे पर्वताकार स्थूल राक्षस ऐसे निकले, जैसे पातालसे देह धारण करके नरक ॥ ३८ ॥ हे रामजी ! इसके अनन्तर, गर्जते हुये राक्षसोंके महानादसे वाद्यसे और कबन्धोंके नृत्यसे वह सैन्य सुरअसुर सहित सम्पूर्ण लोकको भयदायक प्रकट हुआ ॥ ३९ ॥ मेदा (चर्बी) और मांसकी चटनीसे पूर्ण, रुधिरोंकी मदिरासे मनोहर, मदोन्मत्त, कूश्माण्ड (राक्षस विशेष) वेताल, और यक्षोंके ताण्डव नृत्यसे अति रमणीय ॥ ४० ॥ तथा कूश्माण्डोंके ताण्डव नृत्य और पादप्रहार क्रीडाओंसे संक्षुब्ध रुधिरकी तरंगोंसे सींचे हुये, और सन्ध्याकालके मेघोंके रागोंके समूहोंसे जिनका प्रान्त शोभायमान है ऐसे भूतोंसे रुधिरके प्रवाहमें पूल बांधनेवाला वह सैन्य (सेना) आविर्भूत हुआ ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे लीलोपाख्याने तृतीयास्त्रयुद्धं नामैकोनपंचाशः सर्गः ॥ ४९ ॥

पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५० ॥

दो वैष्णवास्त्रोंका युद्ध और दोनों विरथ होना, विदूरथकी मृत्यु तथा उसका गृहमें लाना इत्यादि विषयमें इस ५० वे सर्गमें वर्णन किये गये हैं ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ तस्मिंस्तदावर्त्तमानेघोरेसमरविभ्रमे ॥ सर्वारिसैन्यनाशार्थमेकंस्वबलशांतये ॥ १ ॥ सस्मारस्मृतिमानंतोमहोदाराधिधैर्यभृत् ॥ अस्त्रमस्त्रेश्वरंश्रीमद्वैष्णवंशंकरोपमम् ॥ २ ॥ अथयोसौशरस्तेनवैष्णवास्त्राभिमंत्रितः ॥ मुक्तस्तस्यफलप्रांताद्उल्मुकादिविनिर्ययौ ॥ ३ ॥ पंक्तयःस्फारचक्राणांशतार्कीकृतदिक्तटाः ॥ गदानामभियांतीनांशतवंशीकृतांबराः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! जिससमय वह महाभयंकर युद्ध होरहाथा उससमय योग्य कार्य्यको शोचनेवालोंमें अति उदार स्मृतिमान् और अधिक धैर्य्यवान् श्रेष्ठ राजा सिन्धुने सम्पूर्ण शत्रुकी सेनाके नाशार्थ और अपनी सेनाके रक्षार्थ, सब अस्त्रोंके स्वामी, और संहार करनेमें कालरुद्रके सदृश, श्रीमद् वैष्णवास्त्रको स्मरण किया ॥ १ ॥ २ ॥ हे रामजी ! इसके अनन्तर उस राजाने वैष्णवास्त्रसे अभिमंत्रित (मंत्र पढके) जो शर छोडा वह उस शल्यके अग्रभागसे ऐसे निकला जैसे उल्मुक (जलते हुये काष्ठ) से ॥३॥ उससे दिशाओंके तटोंको शत सूर्य्यके सदृश करनेवाली विकट या विशाल चक्रोंको, आकाशको सैकडों वंशके करीलयुक्त करनेवाली चलतीहुई गदओंकी ॥४॥

वज्राणांशतधाराणांतृणराजीकृतांबराः ॥ पट्टिशानांसपद्मानांदोनवृक्षीकृतांबराः ॥ ५ ॥ शराणांशितधाराणांपुष्पजालीकृतांबराः ॥ खड्गानांश्यामलांगानांपत्रराशीकृतांबराः ॥ ६ ॥ अथराजाद्वितीयोपिवैष्णवास्त्रस्यशांतये ॥ ददौवैष्णवमेवास्त्रंशत्रुनिष्ठावपूरकम् ॥ ७ ॥ ततोपिनिर्ययुर्नद्योहेतीनांहतहेतयः ॥ शरशक्तिगदाप्रासपट्टिशादिपयोमयाः ॥ ८ ॥

अर्थ—आकाशको तृणमय पंक्तियोंसे व्याप्त करनेवाले तीखे धारवाले वज्रोंकी कटे हुये वृक्षोंसे आकाशको व्याप्त करनेवाली पद्मके मुकुलाकार पट्टिशोंकी ॥ ५ ॥ आकाशको पुष्पजालमय करनेवाली तीखी धारवाले शरोंकी, और आकाशको पत्र राशियोंसे व्याप्त करनेवाली श्यामांग खड्गोंकी लडियांकी लडियां निकलीं ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर राजा विदूरथनेभी उस वैष्णव अस्त्रको शान्तिके लिये, शत्रुके पराक्रमकी मर्य्यादाका पूरक वैष्णवअस्त्रही छोडा ॥७॥ हे रामजी ! उस वैष्णवअस्त्रसेभी, पूर्व अस्त्रसे प्रेरित अस्त्रशस्त्र आदिको छिन्नभिन्न करनेवाली, और शर, शक्ति, गदा, भाला, तथा पट्टिशादिके पानीके सदृश अस्त्रोंकी नदियां निकलीं ॥ ८ ॥

शस्त्रास्त्रसरितांतासांव्योम्नियुद्धमवर्तत ॥ रोदोरंध्रक्षयकरंकुलशैलेंद्रदारणम् ॥ ९ ॥ शरपातितशूलासिखड्गकुट्टितपट्टिशम् ॥ मुसलप्रतनाप्रासशूलशातितशक्तिकम् ॥ १० ॥ शरांबुराशिमथनमत्तमुद्गरमंदरम् ॥ गदावदनतोग्रुकंदुर्वाराखिनिभासिनि ॥ ११ ॥ रिष्टारिष्टप्रशमनभ्रमत्कुंतेंदुमंडलम् ॥ प्रासप्रसरसंरब्धप्रोद्यतांतकृतांतकम् ॥ १२ ॥

अर्थ—उन शस्त्रअस्त्रोंकी नदियोंका, पृथिवी और आकाशके मध्यभागको पूर्ण करनेवाला, मेरु आदि कुलपर्वतेन्द्रोंकोभी विदारण करनेमें समर्थ युद्ध आकाशमें आरम्भ हुआ ॥ ९ ॥ बाणोंसे गिराये हुये त्रिशूलोंसे पट्टिशादि जहां चूर्ण होगये हैं और मुसलोंके भलीभांति प्रपतन (पात) से तथा प्रास आदिसे शक्तियोंके जहां २ टुकडे २ होगये हैं ॥ १० ॥ शररूपी समुद्रको मथन करनेके मत्त मुद्गररूपी मन्दराचल है जिसमें, और गदाओंके मुख सदृश अग्र भागोंसे सम्मर्दित अनिवारणीय अस्त्रवाले योद्धाओंके प्रमाण और प्रभावके सदृश विलक्षण जातिकी तरवारें जहांपर हैं ॥ ११॥ शत्रु प्रेरित हिंसारूप अरिष्टके निवारण करनेके अर्थ, कुन्तरूपी चन्द्रमण्डल जिसमें भ्रमण कररहाहै और प्रासोंके प्रसारोंसे मानों प्राणियोंके प्राणनाशार्थ यमराज जहांपर कुपित होरहे हैं ॥ १२ ॥

चक्रावकुंठितोर्ध्वास्त्रंसर्वायुधक्षयंकरम् ॥ शब्दस्फुटद्विरिंचांडंघातभग्नकुलाचलम् ॥ १३ ॥ धारानिकृत्तशस्त्रौघमस्त्रयोर्युद्धयमानयोः ॥ मदस्त्रवारणेनेववज्राविजरपर्वतम् ॥ १४ ॥ शंकुशंकितसूत्कारकाशिशूलशिलाशतम् ॥ भुशुंडीनिर्जितोद्दंडभिंदिपालोग्रमंडलम् ॥ १५ ॥ परशूलकरभिकपरशूलैकलंपितम् ॥ वहद्दुच्छिन्नचंचूहचारणंशनुवारणम् ॥ १६ ॥

अर्थ—चक्रसे अवकुण्ठित होगये हैं ऊपरके अस्त्र जिसमें सब अस्त्रोंका क्षय करनेवाला शब्दोंसे ब्रह्माण्डकोभी भेदन करनेवाला, और प्रयारोंसे कुलपर्वतोंकोभी भग्न करनेवाला ॥ १३ ॥ धाराओंसे अनेक शस्त्रोंके समूहको काटनेवाला, और जैसे मैंने (वसिष्ठजी कहते हैं) विश्वामित्रके अस्त्रको निवारण किया था उसीप्रकार एकदूसरेके कर्य्योंको रोकते हुये परस्पर युद्ध करनेवाले दोनों नारायणास्त्र सम्बन्धी वज्रोंसे अविजर हैं पर्वत जहांपर ॥ १४ ॥ कीलोंके समान निःश्वास शब्द करानेमें सिद्ध सैकडों शूल और शिलाओंकी जहां सम्भावना कीगई हैं और भुशुण्डियोंसे उदण्ड भिंदिपालोंके भयंकर मण्डल जहांपर जीत लियेगये हैं ॥ १५ ॥ उत्तम त्रिशूलधारी जो महादेवजी हैं उनके श्रेष्ठ शूलके सदृश एक २ शूलोंसे एक दूसरेके एक २ शूलोंको जहांपर कुण्ठित करदिया कटेहुये चलते अस्त्रशस्त्रोंकी कुटिल गतिपूर्वक गमनागमन हो रहाथा ॥ १६ ॥

स्फुटच्चटचटास्फोटरुद्धत्रिपथगारयम् ॥ दैत्यस्त्रीचूर्णसंभारमहाधूमवितानकम् ॥ १७ ॥ अन्योन्यशस्त्रसंघट्टाद्भ्रमज्जालोलंसत्तडित् ॥ शब्दस्फुटद्विरिंचांडघातभग्नकुलाचलम् ॥ १८ ॥ धारानिकृत्तशस्त्रौघ

मस्त्रयोर्युध्यमानयोः ॥ मदस्त्रवारणेनैवकालोपायोचलात्मनः ॥ १९ ॥ अयंकियद्बलइतिसिंधौतिष्ठ तिहेलया ॥ विदूरथोस्त्रमाग्नेयंतत्याजाशनिशब्दवत् ॥ २० ॥

अर्थ—विकसित चटचटा शब्दोंसे गंगाजीकाभी वेग जहां रोक दिया गयाहै, और शस्त्रअस्त्रोंके चूर्णोंके समूहसे महाधूमकी चान्दनीसी जहांपर बनगई है॥१७॥परस्पर शस्त्रोंके सम्मर्दसे जालके सदृश शोभायमान विद्युत् जहां भ्रमण कर रही है, शब्दोंसे जहां ब्रह्माण्डका भेदन होरहाहै ॥ १८ ॥ धाराओंसे शस्त्रोंके समूह जहांपर काटे गयेहैं, वहांपर विश्वामित्रके अस्त्रोंके निवारणार्थ मेरे अस्त्रके सदृश एक दूसरेके प्रहारको रोकते हुये दोनों नारायणास्त्र जिससमय युद्धकर रहेथे. उस समय युद्धमें राजा सिन्धु पर्वतके सदृश स्थिरथा ॥ १९ ॥ हे रामजी ! उस समय इस उपेक्षामें असावधान था कि यह विदूरथ मेरे सम्मुख क्या पराक्रमी है, इसी अवसरमें वज्र सदृशयुक्त आग्नेयास्त्रको राजा विदूरथने छोडा ॥ २० ॥

ज्वालयामाससरथंसिंधोःकक्षमिवारसम् ॥ एतस्मिन्नंतरेऽन्योन्निहेतिनिर्विवरोदरे ॥ २१ ॥ ससन्नाह इवप्रावृट्पयोदतटिनीवयः ॥ अस्त्रेराज्ञोःक्षणंकृत्वायुद्धंपरमदारुणम् ॥ २२ ॥ अन्योन्यंशममायातेस वीर्येसुभटाविव ॥ एतस्मिन्नंतरेसोग्नीरथंकृत्वातुभस्मसात् ॥ २३ ॥ प्रापदग्ध्वावनंसिंधुंमृगेंद्रमिवकं दरात् ॥ सिंधुरभ्यासतोऽप्यस्त्रंवारुणास्त्रेणशामयन् ॥ २४ ॥

अर्थ—उसने राजा सिन्धुके रथको ऐसे जलादिया जैसे तृण समूहको अग्नि, इसी अवसरमें शस्त्रोंके कारण छिद्र आकाशमें ॥ २१ ॥ जो राजा उद्यत होके वृष्टिकालके सदृश, और दूसरो मेघोंसे बढी (उमडी) हुई नदीके सदृश बाणवृष्टि कर रहाथा उन दोनों (सिन्धु और विदूरथ) राजाओंके पूर्वोक्त दोनों नारायणास्त्र, क्षणभर अति दारुण युद्ध करके ॥ २२ ॥ परस्पर ऐसे शान्त होगये जैसे पराक्रमसहित दो उत्तम वीर इसी अवसरमें वह आग्नेयास्त्रकी अग्नि रथको सर्वथा भस्म करके ॥ २३ ॥ राजा सिन्धुके निकट ऐसे प्राप्त हुआ जैसे अग्नि वनको जलाके बनकी कन्दरासे निकले हुये सिंहके पास ॥ २४ ॥

रथंत्यक्त्वावनिंप्राप्यखड्गस्फोटकवानभूत् ॥ अक्ष्णोर्निमेषमात्रेणरथाश्वानांरिपोःखुरान् ॥ २५ ॥ लूला वकरवालेनमृणालानीवलाघवात् ॥ विदूरथोपिविरथोबभूवास्फोटकासिमान् ॥ २६ ॥ समायुधौस मोत्साहौचेरतुर्मंडलानितौ ॥ खड्गौककचतांयातौमिथःप्रहरतोस्तयोः ॥ २७ ॥ दंतमालेयमस्येवबले चर्वयतःप्रजाः ॥ शक्तिमादायचिक्षेपखड्गंत्यक्त्वाविदूरथः ॥ २८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! उस समय राजा अपने रथको छोडके पृथिवीपर केवल ढाल तलवार लेके खडा होगया, और आखोंके पलक मात्रमें शत्रुके रथोंके घोडोंके खुरोंको ॥ २५ ॥ हस्तलघुतासे ऐसे तलवारसे काट डाला जैसे कमलकी दण्डियोंको और विदूरथभी अपने रथसे उतर करके केवल तलवार और ढालही लेके उपस्थित हुआ ॥२६॥ ये दोनों समान अस्त्र और समान उत्साहवान् मण्डलाकार पृथिवीपर भ्रमण करनेलगे और उनके परस्पर प्रहार करते हुये उनके खड्ग ऐसे कार्य्य करनेवाले थे जैसे आरे ॥ २७ ॥ जो सेनामें प्रजाओंका चर्वणकर रहाहै उसकी यह दन्तमालाहै ऐसा विचार करके राजा विदूरथने तरवारको त्यागकर शक्ति छोडी ॥ २८ ॥

सिंध्वंबुघर्घरारावोमहोत्पातइवाशनिः॥ अविच्छिन्नासमायातापतितासास्यवक्षसि ॥२९ ॥ अप्रियस्य यथाभर्त्तुरनिच्छंतीस्वकामिनी ॥ तेनशक्तिप्रहारेणनासौमरणमाप्तवान् ॥ ३० ॥ केवलंरुधिरंत्रातंना गोजलमिवात्यजत् ॥ तद्देशलीलातंदृष्ट्वाभग्नंतमइवेंदुना ॥ ३१ ॥ सविकासघनानंदापूर्वलीलामुवाचह॥ देविपश्यनृसिंहेनहतोभर्त्रायमावयोः ॥ ३२ ॥

अर्थ—समुद्रके ऊपर समुद्रके समान महान् घर्घर शब्द, और वज्रके समान महान् उत्पातके सदृश, वह शक्ति सम्पूर्ण रूपसे राजा सिन्धुकी छातीपर गिरी ॥ २९ ॥ जिसप्रकार अप्रिय पतिकी इच्छा कामिनी नहीं करती इसीप्रकार उसने राजा सिन्धुको अपना लक्ष्य नहीं किया इसकारण वह राजा उस शक्तिके प्रहारसे मृत्युको नहीं प्राप्त हुआ ॥ ३० ॥ जैसे हस्ती मदजलको त्याग करताहै ऐसेही केवल रुधिरमात्रको त्यागा, जैसे चन्द्रमासे अन्धकार नष्ट होताहै ऐसे उसको देखकर ॥ ३१ ॥ विकास सहित बडे आनन्दसे पूर्ण होके पूर्वलीलासे यह बोली, हे देवि ! देखो मनुष्योंमें सिंहके समान हम दोनोंके पतिसे यह मारा गया ॥ ३२ ॥

शक्तिकोटिनखैर्दैत्यःसिंधुरुद्धुरकंधरः ॥ सरःस्थलस्थनागेंद्रकरफूत्कृतवारिवत् ॥ ३३ ॥ पिष्टोरसो स्यनिर्यातिरक्तंचुलचुलारवैः ॥ हाकष्टंरथमानीतंसिंधुरागेद्रमुद्यतः ॥ ३४ ॥ सौवर्णमेरवंशृंगंपुष्कर

वर्त्तकोयथा ॥ पश्यदेविरथोस्यासौमुद्गरेणविचूर्णितः ॥ ३५ ॥ भ्रमत्पार्थनिपातेनसौवर्णनगरंयथा ॥ प्रवृत्तोरथमारोढुंमानीतंपतिरेषमे ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे देवि ! इससमय यह ऊंची कन्धरावाला सिन्धु ऐसा हो रहाहै जैसे नृसिंह भगवान्के नखोंसे विदीर्ण हिरण्यकशिपु दैत्य, और तलावके मध्यमें स्थित नागेंद्रके शुण्डके फूंकसे जलके सदृश ॥ ३३ ॥ छिछू छिछू रक्तकी धार इसके चूर्णीभूत वक्षस्थल (छाती) से निकल रही है, हा कष्ट ! यह रथ प्राप्त किया गया इसके ऊपर सिन्धु ऐसे चढनेको उद्यत हुआहै ॥ ३४ ॥ जैसे मेरुके शृंगपर पुष्करावर्त मेघ, देखो देवि ! इसका यह रथभी मुद्गरसे ऐसे चूर्ण होगयाहै ॥ ३५ ॥ जैसे भ्रमण करतेहुये अर्जुनके बाणोंके गिरनेसे सौवर्ण नगर, देखो यह रथ प्राप्त किया गया हमारे पतिभी इसपर चढनेको आरंभ किया ॥ ३६ ॥

कष्टंवज्रमिवेंद्रेणमुसलंसिंधुनेक्षितम् ॥ जवात्पतिःप्रयातोमेसैंधवंमुसलायुधम् ॥ ३७ ॥ वंचयित्वाविलासेनरथमारुह्यलाघवात् ॥ हाधिक्कष्टमसौसिंधुरार्यपुत्ररथंरयात् ॥ ३८ ॥ हरिश्वभ्रमिवारूढंप्लवेनोर्ध्वमिवद्रुमम् ॥ क्रीडित्वापीडयामासशरवर्षैर्विदूरथम् ॥ ३९ ॥ छिन्नध्वजंछिन्नरथंछिन्नाश्वंछिन्नसारथिम् ॥ छिन्नकार्मुकवर्माणंभिन्नसर्वांगमाकुलम् ॥ ४० ॥

अर्थ—हा ! खेद ! सिन्धुने मुसलकी ओर ऐसा देखाहै जैसे इन्द्र वज्रको देखै हमारे पति वेगसे मुसल अस्त्रवाले सिन्धुको बचाके शीघ्रताके रथके ऊपर चढगये, हा कष्ट ! यह सिन्धुने वेगसे ॥ ३७ ॥ शैवाल आदिसे हरितवर्ण, छोटे तलावके सदृश, और ध्वजामें प्लवनाम पक्षीसे चिन्हित और वृक्षके सदृश स्थित ऊंचे रथपर आड मेरे पति विदूरथको क्रीडा करके शरकी वृष्टियोंसे पीडित करदिया ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ जिसका ध्वज, रथ, घोडे, सारथी, और धनुष सब कटगयेहैं ऐसे और सब अंग विदीर्ण होनेसे व्याकुल होरहेहैं ऐसे आर्य्यपुत्र मेरे पतिको ॥ ४० ॥

हृदिस्फोटशिलापट्टदृढेपीवरमूर्द्धनि ॥ भित्त्वावज्रसमैर्बाणैःपातयत्येषभूतले ॥ ४१ ॥ अथान्यंरथमानीतंकृच्छ्रेणप्राप्यचेतनाम् ॥ खड्गेनारोहतोस्यांसंछिन्नंभर्त्तुर्विलोकय ॥ ४२ ॥ पद्मरागगिरिद्योतमिवहृत्सृग्विसुंचति ॥ हाहाधिक्कष्टमेतेनसिंधुनाखड्गधारया ॥ ४३ ॥ जंघयोर्मेपतिश्छिन्नःक्रकचेनेवपादपः॥ हाहाहतास्मिदग्धास्मिमृतास्म्युपहतास्मिच ॥ ४४ ॥

अर्थ—शिलापट्टके समान दृढ हृदयमें और स्थूल मस्तकमें वज्रसमान बाणोंसे भेदन करके, देखो यह (सिंधु) भूतलपर गिराताहै ॥ ४१ ॥ देखो अब दूसरे लाये हुये रथपर बडे कष्टसे चढते हुये हमारे पतिकी कंधाको तरवारसे इसने काटडाला ॥ ४२ ॥ इसी कारण इन हमारे पतिके शरीरसे रुधिर ऐसे अधिकता निकल रहाहै जैसे पद्मराग (माणिक्यके) पर्वतसे अरुण प्रभाकी धारा, हा ! हा !! धिक् कष्ट इस सिन्धुने तरवारकी धारसे ॥ ४३ ॥ हमारे पतिकी जंघाको ऐसे काटडाला जैसे आरेसे वृक्षको, हा ! हा !! मारी गई, हा ! जली !! हा! मरी! हा! पुनः मरी॥४४

मृणालेइवपत्युर्मेलूनेद्वेअपिजानुनी ॥ इत्युक्त्वासातदालोक्यभर्त्तुर्भावभयातुरा ॥४५॥ लतापरशुकृत्तेवमूर्छितागुविसापतत् ॥ विदूरथोपिनिर्जानुःप्रहरन्नेवविद्विषि ॥४६॥ पपातस्यंदनस्याधश्छिन्नमूलइवद्रुमः ॥ पतन्नेवैषसूतेनरथेनैवापवाहितः ॥ ४७ ॥ यदातदाहतितस्यकंठेऽद्रासिंधुरुद्धतः ॥ अर्द्धविच्छिन्नकंठोसावनुयातोथसिंधुना ॥ ४८ ॥ स्यंदनेनाविशत्सद्मपद्मंरविकरोयथा ॥ सरस्वत्याःप्रभावाल्र्यंतत्प्रवेष्टुमशक्तोगृहम् ॥ नाशकन्मशकोमत्तोमहाज्वालोदरंयथा ॥ ४९ ॥ खड्गावकृत्तगलगत्तंगलत्स्रवातरक्तच्छटाच्छुरितवस्त्रतनुत्रगात्रम् ॥ तत्याजतंभगवतीमभितोगृहांतःसूतःप्रवेश्यमृतितल्पतलेगतोरिः ॥ ५० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने विदूरथमरणवर्णनं नाम पंचाशत्तमःसर्गः ॥ ५० ॥

अर्थ—कमलकी दण्डियोंके सदृश हमारे पतिकी दोनों घुंटनोंको इसने काटडाली, हे रामजी ! इतना कहके और इस कर्मको देखके भर्ता (पति) के विषयमें अधिक स्नेहके भयसे ॥ ४५ ॥ कुल्हाडीसे काटी हुई लताके समान मूर्छित होकर पृथिवीपर गिरपडी और विदूरथभी जानुरहित अपने शत्रुके ऊपर प्रहार करता हुआ ॥ ४६ ॥ जडसे कटे हुये वृक्षके समान रथसे नीचे गिरा, और गिरतेही समय सारथीने रथपर रखकर राजभवनकी ओर लेके चला ॥ ४७ ॥ जिससमय वह लेके चला उस मूर्छित दशामेंभी उद्धत (शास्त्र मर्य्यादाको उल्लंघन करनेवाले) राजा सिंधुने विदूरथके कण्ठमें एक तरवार मारी, और आधे कटेही हुये कण्ठसे गृहकी ओर सारथी राजाको लेके चला और वहां भी राजासिन्धु इसके पीछे २ चला ॥ ४८ ॥ रथसे राजा उस राजभवनमें ऐसे प्रवेश किया जैसे सूर्य्यके किरण कम-

लमें और सरस्वतीके प्रभावसे वह सिन्धु उस राजगृहमें ऐसे न प्रवेश करसका जैसे महाअग्निकी ज्वालाके भीतर मशक (मच्छर) ॥ ४९ ॥ हे रामजी ! खड्ग (तलवार) से कटे हुये गलेके छिद्रसे निकलती हुई रक्तकी धाराओंसे सिक्तहैं वस्त्र, कवच और सब अंग जिसके ऐसे राजा विदूरथको सूत (सारथी) गृहमें लाके सरस्वतीके सम्मुख सुखसे मरण योग्य कोमल शय्यापर रखकर वहां छोड दिया, और प्रवेश करनेका सामर्थ्य न होनेसे शत्रु सिन्धु वहांहीसे लौट गया ॥ ५० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने विदूरथ मरणवर्णनं नाम पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५० ॥

एकपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५१ ॥

इस राजाके वधके वृत्तान्तसे राज्यमें उपद्रव और सिन्धुके चले जानेपर पुनः राज्यमें शान्ति विस्तारसे इस ५१ वे सर्गमें वर्णन की गई है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ हतोराजाहतोराजाप्रतिराजेनसंयुगे ॥ इतिशब्देसमुद्भूतेराष्ट्रमासीद्भयाकुलम् ॥ भांडोपस्करभाराढ्यंविद्रवच्छकटव्रजम् ॥ साक्रंदार्तकलत्राढ्यंद्रवन्नागरदुर्गमम् ॥ २ ॥ पलायमानसाक्रंदमार्गाहृतवधूगणम् ॥ अन्योन्यलुंठनव्यग्रलोकलग्नमहाभयम् ॥ ३ ॥ परराष्ट्रजनानीकतांडवोल्लाससारवम् ॥ निरधिष्ठितमातंगहयवीरपतज्जनम् ॥ ४ ॥

अर्थ—वसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! शत्रुभूत राजा सिन्धुसे राजा विदूरथ मारागया यह शब्द जब चारोंओरसे निकला उससमय विदूरथका राज्य भयसे व्याकुल होगया॥ १॥हे रामजी ! पुनः वह राज्य वर्तन तथा अन्य गृहकी सामग्रियोंसे पूर्ण इधरउधर दौडरहे हैं गाडियोंके समूह जिसमें, रोती आर्त हुई स्त्रियोंसे पूर्ण, तथा भागते हुये नगरनिवासियोंसे दुर्गम ॥ २ ॥ भागनेवाले मनुष्योंके महान् विलाप और रोदन सहित, मार्गमें जहांपर स्त्रियोंको लोग हरके लेजारहे हैं, एक दूसरेके लूटनेमें तत्पर मनुष्योंसे महाभयदायी ॥ ३ ॥ तथा शत्रुके राज्यके मनुष्योंसे सेनाके ताण्डव नृत्यके उत्साहसे शब्द सहित, हांथी तथा घोडोंपर चढे हुये वीर जहां आके झुण्डके झुण्ड गिररहे हैं ॥ ४ ॥

कपाटपाटनोड्डीनकोशांतरवघर्घरम् ॥ लुंठितासंख्यकौशेयप्रावृताभिभटोद्भटम् ॥ ५ ॥ क्षुरिकोत्पाटितार्द्रांत्रमृतराजगृहांगनम् ॥ राजांतःपुरविश्रांतचंडालश्वपचोत्करम् ॥ ६ ॥ गृहापहृतभोज्यान्नभोजनोन्मुखपामरम् ॥ सद्मेमहारवीरौघपादाहतरुदच्छिशु ॥ ७ ॥ अपूर्वतरुणाक्रांतकेशांतःपुरिकांगनम् ॥ चोरहस्तच्युतानर्घरत्नदंतुरमार्गगम् ॥ ८ ॥

अर्थ—कवाडोंके तोडनेसे कोश (खजाने) के गृहोंसे निकले हुये शब्दसे घर्घर ध्वनि सहित, और रेशमके वस्त्र पहने हुये असंख्य कोशके रक्षक बडे २ वीर जहांपर लुटगये हैं ॥ ५ ॥ चोरोंसे छुरियों करके आर्द्र (गिली) आंत निकालनेसे राजभवनकी स्त्रियां जहांपर मरी हुई पडी हैं, और राजाके अन्तःपुरमें जहांपर चाण्डाल और भंगियोंका समूह विश्राम कररहाहै ॥ ६ ॥ राजाओंके योग्य राजभवनसे हरेहुये अन्नोंको नीच पामरजन जहां भोजन करना आरंभ करादियाहै, तथा वीरोंके समूहके पादप्रहारसे हार आदि आभूषण पहने हुये बालक जहांपर रोदन कररहेहैं ॥ ७ ॥ अपूर्व युवा (शत्रुकी सेनाके नव जवान) पुरुषोंने अन्तःपुरकी अंगनाओंका केश जहांपर पकडलियाहै और चोरोंके हस्तोंसे गिरे हुये अमूल्य रत्नोंसे मार्गगामी जहां निष्कासित दांतो श्वेतवर्ण जहांपर विदित होते हैं ॥ ८ ॥

हयेभरथसंघट्टव्यग्रसामंतमंडलम् ॥ अभिषेकोद्यमादेशंपरमंत्रिपुरःसरम् ॥ ९ ॥ राजधानीविनिर्माणसारंभस्थपतीश्वरम् ॥ कृतवातायनश्वभ्रनिपतद्राजवल्लभम् ॥ १० ॥ जयशब्दशतोद्घोषैसिंधुराजन्यनिर्भरम् ॥ असंख्यनिजराजौघधृतसिंधुकृतास्थिति ॥ ११ ॥ ग्रामांतरसमाक्रांतविद्रवद्राजवल्लभम् ॥ मंडलांतरसंजातनगरग्रामलुंठनम् ॥ १२ ॥

अर्थ—घोडे, हांथी, और रथ आदिके एकत्र करनेमें जहां राजा सिन्धुके सामन्त (छोटे २ कर देनेवाले राजा) तत्पर होरहे हैं, और सिन्धुके पुत्रके राज्याभिषेकके उद्यमकी आज्ञा देनेमें मन्त्री आदि जहांपर अग्रगामी होरहेहैं ॥ ९ ॥ राजधानीके निर्माण (बनाने) करनेमें श्रेष्ठ शिल्पी (कारीगर) जहांपर लगरहेहैं, और उन शिल्पीयोंसे बनाये हुये झरोखोमेंसे नगरकी विलक्षण सुन्दरता देखनेके लिये सिन्धुराजकी अंगना जहांपर प्रवेश कररही हैं १०॥

॥ १० ॥ हे रामजी ! सैकडों जय शब्दोंसे प्रवेश कराये राजगद्दीमें अभिषिक्त सिन्धुके राजपुत्रके प्रभावकी अधिकता जहांपर होरही है और असंख्य अपने पक्षके राजाओंके समूहोंने जहांपर सिन्धुराजाकी स्थापित मर्य्यादाओंको जहांपर शिरपर धारण किया है ॥ ११ ॥ अन्य ग्रामोंमें छिपाई हुई राजांगनायें शत्रुसे विदित होजानेपर वहांसेभी जहां भागनेमें तत्पर होरही हैं, और राजधानीसे पृथक् दूसरे मण्डल (जिले) के ग्राम नगरोंमेंभी जहांपर लूट मार आरम्भ होगई है ॥ १२ ॥

अनंतचोरमोषार्थरुद्धमार्गगमागमम् ॥ महानुभाववैधुर्यसनीहारदिनातपम् ॥ १३ ॥ मृतबंधुजनाक्रंदैर्मृततूर्थरवैरपि ॥ हयेभरथशब्दैश्चापिंडग्राह्यघनध्वनि ॥ १४ ॥ सिंधुदेवोजयत्येकच्छत्रभूमंडलाधिपः ॥ इत्यनंतरमारेभेभेर्यःप्रतिपुरंतदा ॥ १५ ॥ राजधानींविवेशाथसिंधुरुद्धुरकंधरः ॥ प्रजाःस्रष्टुंयुगस्यांतेमनुर्जगदिवापरः ॥ १६ ॥

अर्थ—असंख्य चोरोंने लूटनेके अर्थ जहांपर मार्गोंमें आना जाना बन्दकर दियाहै, और महाऽनुभाव विदूरथके विरहसे जहांपर दिनका आतपभी ऐसा होगयाहै जैसे कुहिरा करके युक्त ॥ १३ ॥ मृतक बन्धुओंके शोकके रोदनसे, तथा मृत (मारू) बाजाके शब्दोंसे, और हांथी घोडे तथा रथादिके शब्दोंसेभी ऐसी घनीभूत पिण्डाकार गंभीर ध्वनि निकली कि जैसे हस्तसे ग्रहण करने योग्य ॥ १४ ॥ इसके अनन्तर प्रत्येक नगरमें नगारोंका यह डंका बजना आरंभ होगया कि एक छत्रधारी सम्पूर्ण भूमण्डलके स्वामी राजासिन्धुदेवका जयहो जयहो ॥ १५ ॥ हे रामजी ! अपने पुत्रको राजगद्दीपर बैठा करके राजासिन्धु अपनी राजधानीमें प्रजा पालनार्थ ऐसे प्रवेश किया जैसे युगके अन्तमें मनु भगवान् दूसरे जगत्के पालनार्थ उसमें प्रवेश करैं ॥ १६ ॥

प्रवृत्तादशदिग्भ्योथप्रवेष्टुंसैंधवंपुरम् ॥ कराःकरिहयाकारैरत्नपूराइवांबुधिम् ॥ १७ ॥ निबंधनानिचिह्नानिशासनानिदिशंप्रति ॥ क्षणान्निवेशयामासुर्मंडलंप्रतिमंत्रिणः ॥ १८ ॥ उदभूदचिरेणैवदेशेदेशेपुरेपुरे ॥ जीवितेमरणेमानेनियमोयमतोयथा ॥ १९ ॥ अथशेमुर्निमेषेणदेशोपप्लवविभ्रमाः ॥ प्रशांतोत्पातपवनाःपदार्थावृत्तयोयथा ॥ २० ॥ सौम्यतामाजगामाशुदेशोदशदिगन्वितः ॥ क्षीरोदःक्षुभितावर्त्तौद्रागिवोद्धृतमंदरः ॥ २१ ॥ वधूरलकचयान्विलोलयंतोमुखकमलालिकुलानिसैंधवीनाम् ॥ जललवलनाकुलाःसमीराअशिवगुणानिवसर्वतःक्षणेन ॥ २२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने सिंधुराष्ट्रवर्णनं नाम एकपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५१ ॥

अर्थ—हस्ती और घोडे आदिके आकारमें होकर दशों दिशाओंसे राजासिन्धुके नगरमें करोंका ऐसे आरम्भ हुआ जैसे समुद्रमें रत्नोंके समूहोंका ॥ १७ ॥ नियमोंकी मर्य्यादा, मुद्रादिक राजासिन्धुके नामके चिन्ह, तथा अन्य आज्ञायें सम्पूर्ण मण्डल (जिले) और दिशाओंमें श्रेष्ठ मंत्रियोंनें क्षण (अल्पकाल) भरमें स्थापित करदिया ॥१८॥ इसीप्रकारका नियम जीवन, मरण तथा मानादिमें अल्पकालमेंही देश २ तथा नगर २ में प्रकट होगया ॥ १९ ॥ इसके अनन्तर सम्पूर्ण देशका उपद्रव इसप्रकार शान्त होगया जैसे पवनके उत्पातके शान्त होजानेपर तृणादि पदार्थोंका भ्रमण ॥ २० ॥ अति शीघ्र दशोदिशा करके सहित ऐसी स्वस्थताको प्राप्त हुआ जैसे मन्दराचलके निकालनेसे तत्काल आवर्तोंसे संक्षुभित क्षीरसागर ॥ २१ ॥ हे रामजी ! सिन्धुराजाके देशकी स्त्रियोंके मुखकमलोंपर भ्रमरकी पंक्तियोंके सदृश केशसमूहोंको छिटकाते हुये, जलके कणोंके सम्बन्धसहित, और सब औरसे दौर्गन्ध्य आदि दुष्ट गुणोंको नाश करते हुये त्रिविध गुणसहित पवन बहने लगे ॥ २२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने सिन्धुराष्ट्र वर्णनं नाम एकपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५१ ॥

द्विपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५२ ॥

उस विदूरथ राजाका मरण संसारका मिथ्यात्व, और विदूरथके नगरकी लीलाकी वासना इस ५२ वे सर्गमें वर्णन की गई है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एतस्मिन्नंतरेरामलीलोवाचसरस्वतीम् ॥ श्वासावशेषमालोक्यमूढंभर्त्तारमग्रगम् ॥ १ ॥ प्रवृत्तोदेहमुत्स्रष्टुंमद्भर्त्तायमिहांबिके ॥ ज्ञप्तिरुवाच ॥ एवंरूपमहारंभेसंग्रामेराष्ट्रसंभ्रमे

॥ २ ॥ संपन्नेपिस्थितेप्युच्चैर्विचित्रारंभमंथरे ॥ नकिंचिदपिसंपन्नंराष्ट्रंनचमहीतलम् ॥ ३ ॥ नस्थितंकचनाप्येवंस्वप्नात्मकमिदंजगत् ॥ तस्यतन्मंडपस्यांतःशवस्यनिकटांबरे ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! अपने पतिको केवल श्वासमात्र शेष मूर्छित दशामें सम्मुख स्थित देखकर इसी अवसर लीला सरस्वतीसे बोली ॥ १ ॥ हे अम्बिके ! मातः ! देखो यह मेरा पति अब देह त्यागनेमें प्रस्थितहैं अर्थात् मैं इससमय अति शोकाकुल हूं, इसको सुनके ज्ञप्तिभगवती बोली—कि इसप्रकार राज्यमें संक्षोभ करनेवाले और महान् आडम्बर युक्त इस संग्रामके ॥ २ ॥ विचित्र आरंभके साथ होनेपरभी और बहुत उच्चताके साथ दीर्घकालतक स्थित रहनेपरभी और महान् सभारोहके साथ नष्ट होजानेपरभी यथार्थमें कुछ नहीं हुआ, न तो यह राज्यही उत्पन्न और न जिसमें संग्राम हुआ वह भूतलही उत्पन्न हुआ ॥ ३ ॥ और न यह (युद्ध आदि) कुछ स्थित रहा न नष्ट हुआ, यह केवल उस पद्मके शव (मृतक शरीर) के निकट उसी मण्डपाकाशमें स्वप्नके तुल्य यह जगत् है ॥ ४ ॥

इदंभूराष्ट्रमाभातिभर्तृजीवस्यतेनघे ॥ अंतःपुरगृहांतेतदिदंराष्ट्राग्न्वितोदरम् ॥ ५ ॥ वसिष्ठविप्रगेहेंतर्विंध्याद्रिग्रामकेस्थितम् ॥ वसिष्ठविप्रगेहेंतःशवगेहजगत्स्थितम् ॥ ६ ॥ शवगेहजगत्कुक्षाविदंगेहजगत्स्थितम् ॥ एवमेषमहारंभोजगत्रयमयोभ्रमः ॥ ७ ॥ त्वयामयानयानेनसंयुक्तःसार्णवावनिः ॥ गिरिग्रामकदेहांतर्मध्येगगनकोशके ॥ ८ ॥

अर्थ—यह सम्पूर्ण पृथिवी राज्यादि जिसके उदरमेंहैं, ऐसा तुमारे पति विदूरथका ब्रह्माण्ड सब राजा पद्मके मृतक शरीरके अन्तःपुरके मण्डपाकाशके निकट स्थितहै ॥ ५ ॥ और राजा पद्मका सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड विन्ध्याचलके गिरिग्रामक वसिष्ठनामक ब्राह्मणके गृहाकाशके भीतरहैं, और उसी वसिष्ठके मृतक शरीरके गृहमें सम्पूर्ण यह जगत् स्थितहै ॥ ६ ॥ मृतकके गृहरूपी जगत् कुक्षिमें यह सब ब्रह्माण्ड स्थितहै इसप्रकार यह महान् आरंभके साथ यह तीनों लोक केवल भ्रममात्रहैं ॥ ७ ॥ हे लीले ! तुम हम और इस पूर्वलीलाकरके सहित सम्पूर्ण जगत्का भ्रम उसे गिरिग्रामक ब्राह्मणके देहके मध्याकाशके कोशमें होरहाहै ॥ ८ ॥

स्वात्मैवकचतिव्यर्थेनकचत्येववाक्वचित् ॥ तत्पदंपरमंविद्धिनाशोत्पादविवर्जितम् ॥ ९ ॥ स्वयंकचितमाभातंशांतंपरमनामयम् ॥ किलमंडपगेहेंतःस्वस्वभावोदितात्मनि ॥ १० ॥ एवमारंभघनयोरपिमंडपयोस्तयोः ॥ उदरेशून्यमाकाशमेवास्तिनजगद्भ्रमः ॥ ११ ॥ भ्रमद्रष्टुरभावेहिकीदृशीभ्रमताभ्रमे ॥ नास्त्येवभ्रमसत्तातोयदस्तितदजंपदम् ॥ १२ ॥

अर्थ—यह सर्वरूप होकर अपना आत्माही प्रकाश कररहाहै, और कहीं कुछ नहीं है सब व्यर्थ है, हे लीले ! उसी उत्पत्ति नाश रहित परम पवित्र पदको तूं जान ॥ ९ ॥ यह आत्मा स्वयंप्रकाश शान्त, परम अनामय है, वही उस ब्राह्मणके मण्डपाकाशमें अपने चिन्मात्र स्वभावसे आपही प्रकाशित है, और कोई पदार्थान्तर नहीं है ॥ १० ॥ इसप्रकार आरंभमें सघनभी इन दोनों (वसिष्ठ ब्राह्मण तथा पद्म राजाके) मण्डपाकाशके भीतर यथार्थमें शून्यहीहै जगत्का भ्रम कुछ नहीं अर्थात् जब भूताकाशमेंही यथार्थमें जगत् नहीं तो शुद्धचिदाकाशमें कहां ॥ ११ ॥ भ्रमके द्रष्टाके अभावसे भ्रममें भ्रमता कहां, इसलिये भ्रमकी सत्ताही नहीं है जो कुछहै वह अज परमपद ब्रह्महीहै ॥ १२ ॥

भ्रमोदृश्यमसत्तस्यद्रष्टृदृश्यदशाकुतः ॥ द्रष्टृदृश्यक्रमाभावादद्वयंसहजंहितत् ॥ १३ ॥ तत्पदंपरमंविद्धिनाशोत्पादविवर्जितम् ॥ स्वयंकचितमाभातंशांतमाद्यमनामयम् ॥ १४ ॥ किलमंडपगेहांतःस्वस्वभावोदितात्मनि ॥ विहरंतिजनास्तत्रस्वगेहेस्वव्यवस्थया ॥ १५ ॥ नजगत्तत्रनोसर्गःकश्चिदप्यनुभूयते ॥ तेनाहमजमाकाशंजगदित्येववर्त्तते ॥ १६ ॥

अर्थ—द्रष्टाके व्यापारके फलके आधारको दृश्य कहते हैं, वह दृश्यत्व स्वात्मभूत चेतनमें नहीं बनसकता क्योंकि अपनेहीमें कर्तृ कर्मका विरोध होनेसे द्रष्टृत्व और दृश्यत्व नहीं बनसकता इसलिये यह दृश्यका भ्रम असत् है तब द्रष्टृत्व और दृश्यत्व व्यवहार उस चिदात्मामें कहां ? और द्रष्टा और दृश्यके क्रमका अभाव होनेसे वह चिदात्मा सहज स्वभावसे अद्वैतही है ॥ १३ ॥ हे लीले ! उस परमपदको उत्पत्ति और नाशरहित जानो, और वह स्वयं प्रकाशमय शान्त और सबका आदि अनामयहै ॥ १४ ॥ उसी मण्डपके गृहाकाशमें निजस्वभावसे उदित स्वात्मामें अपने २ व्यवहारके योग्य विशाल देशकी व्यवस्थासे सब प्राणी विचरते हैं ॥ १५ ॥ चिदात्मासे पृथक् जगत् वा जगत्की सृष्टिको कोईभी तत्त्वज्ञानी अनुभव नहीं करता, इसलिये अनुभवरूप प्रत्यक्षप्रमाणसे अहंकारका साक्षीभूत जो चिदाकाश है, वह अज्ञानियोंकी दृष्टिमें जगत्रूपसे भास रहाहै ॥ १६ ॥

सर्वंशून्यात्मविज्ञानंमेर्वादिगिरिजालकम् ॥ नेदंकुड्यमयंकिंचिद्यथास्वप्नेमहापुरम् ॥ १७ ॥ देशेप्रादेशमात्रेपिगिरिजालमयान्यपि ॥ वज्रसाराणिखान्येवलक्षाणिजगतोविदुः ॥ १८ ॥ जगंतिसुबहून्येवसंभवंत्यणुकेपिच ॥ कदलीपल्लवानीवसन्निवेशेनभूरिशः ॥ १९ ॥ त्रिजगच्चिदणावंतरस्तिस्वप्नपुरंयथा ॥ तस्याप्यंतश्चिदणवस्तेष्वप्येकैकशोजगत् ॥ २० ॥

अर्थ—मेरु आदि पर्वतसमूह सब दृश्य शून्यात्मकज्ञान स्वरूपही हैं न कि जैसा कुड्य (भित्ति) आदि स्थूलरूपसे देखपडता है, क्योंकि वह अपने प्रवेशके अयोग्य अल्प देशमें स्वप्न पदार्थके तुल्य भासता है ॥ १७ ॥ कण्ठेस्वप्नःसमाविशेत् (कण्ठमें स्वाप्निक पदार्थ भान होते हैं) इस श्रुतिके अनुसार कण्ठसे लेके हृदयपर्य्यन्त प्रादेशमात्र (तर्जनीसे लेके विस्तृत अंगुष्ठ देश) मेंभी जो वज्रके सदृश दृढ पर्वत आदि लाखों जगत् भान होते हैं उनको ज्ञानी चैतन्य आत्मरूपही कहते हैं ॥ १८ ॥ अणुमात्र चेतनमेंभी अनेक जगत् ऐसे भान होते हैं जैसे अल्प स्थानमें अनेक केलेके पत्ते ॥ १९ ॥ यह तीनों लोक अण्डमात्र चेतनमें ऐसे हैं जैसे स्वप्नमें बडे २ नगर और उस अण्ड चेतनके भीतर अणुचित् है, और उनमेंभी प्रत्येकमें जगत् है ॥ २० ॥

तेषांयस्मिन्जगत्येषपद्मोराजाशवःस्थितः ॥ लीलातवसपत्नीयंप्राप्तापूर्वंतराशुभे ॥ २१ ॥ यदैवमूर्छामायातालीलेयंपुरतस्तव ॥ तदैवभर्तुःपद्मस्यशवस्यनिकटेस्थिता ॥ २२ ॥ लीलोवाच ॥ कथमेषापुरा देविसंपन्नातत्रदेहिनी ॥ कथंचतत्सपत्नीकभावमासवतीस्थिता ॥ २३ ॥ तेचास्यावद्मकिंरूपंपश्यंत्य थवदंतिकिम् ॥ तद्गेहवरवास्तव्याःसमासेनेतिमेवद ॥ २४ ॥

अर्थ—उन अनेक जगतोंमेंसे जिस जगत्में राजा पद्म मृतक शरीरसे स्थित है, वहांपर हे शुभे ! यह तुमारी सपत्नी लीला पूर्वही प्राप्त हुई ॥ २१ ॥ जिससमय राजा पद्म मृत्युरूपी मूर्छामें ग्रस्त हुआ था उससमय पतिके सन्मुख मृतशरीरके निकट स्थितथी ॥ २२ ॥ लीला बोली—हे देवि ! यह लीला प्रथम (पूर्वकालमें) राजा पद्मकी पट्टरानी कैसे हुई और में इसकी सपत्नी होके कैसे स्थितहूं ॥ २३ ॥ और जो राजा तद्मके श्रेष्ठ गृहमें रहते हैं वे जन इस लीलाका कैसा रूप देखते हैं, और इसको क्या कहते हैं, वह सब संक्षेपसे कृपा करके कहिये ॥ २४ ॥

॥ श्रीदेव्युवाच ॥ शृणुसर्वंसमासेनयथाएष्टंवदामिते ॥ लीलेलीलास्ववृत्तांतमेतद्दृश्यदृद्दशम् ॥ २५ ॥ पद्मस्तवसभर्तैषभ्रांतिंतावत्ततामिमाम् ॥ इयंजगन्मयीतस्मिन्नेवसद्मनिपश्यति ॥ २६ ॥ भ्रांतियुद्धमिदंयुद्धमेषाभ्रांतिर्जनोऽजनः ॥ भ्रांत्यैवास्तीहमरणमेषचैवंभ्रमात्मकः ॥ २७ ॥ भ्रमक्रमेणानेनैवलीलास्यदयितास्थिता ॥ त्वंचैषाचवरारोहेस्वप्नमात्रंवरांगने ॥ २८ ॥

अर्थ—श्रीदेवीजी बोली—हे लीले ! सुनिये जैसा तुमने पूंछा वह सब संक्षेपसे कहतीहूं, यह तुमारा मरण और परलोकादिमें गमनागमनकी दुर्दशाका देखलानेवाला तथा निर्णयदायक है ॥ २५ ॥ यह जो नगरआदि रूपसे परिणत भ्रान्ति है इसे व्याप्तरूपसे यह तुमारा पति जो विदूरथरूपसे स्थित है उसी पद्मके मृतक शरीरके मण्डपाकाशमें देखरहा है ॥ २६ ॥ हे लीले ! यह जो तुमने युद्ध देखा है वह स्वप्नके युद्धके सदृश भ्रान्तिमात्र है, यह लीला जिसके विषयमें तुमने पूंछा वहभी भ्रान्तिमात्र है, और जो जन सम्पूर्ण देखपडते हैं, ये सबभी जन्म आदि विकारसे रहित हैं इसलोकमें यह मरणभी भ्रान्तिमात्र है, कहांतक कहैं यह सम्पूर्ण संसारही भ्रान्तिमात्र है ॥ २७ ॥ इसी भ्रमके क्रमसे यह लीला इसराजाकी प्रिय पत्नी स्थित और हे उत्तम अंगवाली तुम और यह दोनों इस राजाकी स्वप्नमात्रकी अंगना हो ॥ २८ ॥

यथाभवत्यावेतस्यस्वप्नमात्रंवरांगने ॥ तथाभवत्योर्भर्तैषतथैवाहमपिस्वयम् ॥ २९ ॥ जगच्छोभेवेदृशीयंदृश्यमेतदिहोच्यते ॥ एतदेवपरिज्ञातंदृश्यशब्दार्थमुज्झति ॥ ३० ॥ एवमेषात्वमेषाचसंपन्नैवमसौनृपः ॥ अहंचात्मनिसत्यत्वंगतासर्वतयात्मनः ॥ ३१ ॥ इमेवयमिहान्योन्यंसंपन्नाश्चोदिताइति ॥ इत्थंसर्वात्मकतयामहाचिद्घनसंस्थितेः ॥ ३२ ॥

अर्थ—जैसे तुम दोनों इसकी स्वप्नमात्रकी श्रेष्ठ स्त्रीहो इसी प्रकार यह तुमारा पतिभी केवल स्वप्नमात्रही है, और मैं स्वयं स्वप्नमात्रहुं ॥ २९ ॥ हे लीले ! यह सम्पूर्ण जगत्की शोभा ऐसीही (भ्रान्तिमात्र) है, और सम्पूर्ण दृश्यभी केवल भ्रान्ति मात्रही कहागयाहै, वश यदि इतना जान लिया जाय तो दृश्य शब्दका अर्थ अर्थात् चेतनका दृश्य (चेतन कर्ता और जगत् दृश्य कर्ता) यह दृश्यशब्दका अर्थ त्याग देताहै, अर्थात् केवल ब्रह्मरूपका बोध होनेसे कर्तृकर्म व्यवहार यथार्थ नहीं प्रतीत होता ॥ ३० ॥ हे लीले ! इसीप्रकार यह संसारकी स्थिति केवल भ्रम मात्रहै,

और तुम यह लीला तथा यह राजा ये सब इसीप्रकार भ्रान्तिमात्रसे स्थितहैं और मैंभी ऐसीही हुं, केवल सर्वत्र परिपूर्ण आत्मरूपसे सब सत्यहैं ॥ ३१ ॥ ये सम्पूर्ण राजगण और ये सब हम एक दूसरेके उपकार्य्य उपकारक भाव (एकदूसरेको लाभ पहुंचानेके अर्थ) से प्रेरितहैं इसप्रकार सर्वात्मारूप महाचिद्घनकी स्थिति (मिथ्या कल्पना) में जैसे ये सब स्थितहैं ॥ ३२ ॥

एवमेषास्थितांताराज्ञीहारिहासविलासिनी ॥ लीलाविलोलवदनानवयौवनशालिनी ॥ ३३ ॥ पेशलाचा रमधुरामधुरोदारभाषिणी ॥ कोकिलास्वरसंकाशामदमन्मथमंथरा ॥ ३४ ॥ असितोत्पलपत्राक्षीवृ त्तपीनपयोधरा ॥ कांताकांचनगौरांगीपक्वबिंबफलाधरा ॥ ३५ ॥ त्वत्संकल्पात्मकस्यैषायदाभर्त्तुर्म नःकला ॥ तदात्वत्सदृशाकारास्थितैषाचिच्चमत्कृतौ ॥ ३६ ॥

अर्थ—वैसेही यह लीलारानीभी स्थितहै, जो कि अपने हास्यसे सबके मनोंको हरनेवाली लीलासे चंचल मुखवाली, नूतन यौवनसे अति शोभायमान ॥ ३३ ॥ सब कार्य्योंमें निपुण सदाचारसे प्रिय मधुर और सत्य भाषण करनेवाली, कोकिल सदृश मिष्ट कण्ठयुक्त, और युवाऽवस्थाके मदसे मन्दगति है ॥ ३४ ॥ तथा नीलकमलके पत्रके सदृश नेत्रधारिणी तथा दृढ आपसमें मिले हुये और स्थूल स्तनवाली, अति प्रिय कांचनके सदृश गौरांगी और पक्व बिम्बके फलके सदृश ओष्ठवाली है ॥ ३५ ॥ हे लीले! जिससमय तुमारे लिये आत्मामें संकल्प करनेवाले इस तुमारे पतिकी वासनाहुई कि तुमारे सदृश स्त्री मुझे मिले ऐसी इच्छा हुई उसीसमय तुमारे सदृश आकारवाली यह चेतनके चमत्कारमें आके उपस्थित होगई ॥ ३६ ॥

त्वद्भर्तुर्मरणेक्षिप्रंक्षमनंतरमेवहि ॥ त्वद्भर्त्रैषापुरोदृष्टात्वत्संकल्पात्मनामुना ॥ ३७ ॥ यदाधिभौतिकं भावंचेतोनुभवतिस्वयम् ॥ चेत्यंसन्मयमेवातआतिवाहिककल्पनम् ॥ ३८ ॥ यदाधिभौतिकंभावं चेतोवेत्तिनसन्मयम् ॥ आतिवाहिकसंकल्पस्तदासत्योपजायते ॥ ३९ ॥ अथोमरणसंवित्त्यापुनर्ज न्ममयेभ्रमे ॥ त्वंहिसंविदितानेनत्वयाचगतएवसः ॥ ४० ॥

अर्थ—तुमारे पतिके मरण कालके अनन्तरही तुमारे सदृश स्त्रीके अर्थ संकल्प करनेवाले इस तुमारे पतिने अपने सन्मुख इस लीलाको देखा ॥ ३७ ॥ क्योंकि जिससमय अभ्यासकी दृढ वासनासे आधिभौतिक अर्थात् व्यावहारिक भावको चित्त अनुभव करताहै, उससमय उसी अनुभवसे आतिवाहिक कल्पना अर्थात् सूक्ष्मकल्पनात्मक चेत्यदृश्य परमार्थ सत्यमय होजाताहै, इससे वासनामयी लीलाको इसने सत्यरूपसे कैसे देखा यह शंका निवृत्त हुई ॥ ३८ ॥ और जिससमय विवेक ज्ञानके अभ्याससे आधिभौतिक अर्थात् ये सब व्यावहारिक पृथिवी जनादि वस्तुरूप भावको सत्यरूपसे नहीं जानता तब उसका आतिवाहिक सूक्ष्म संकल्प सत्य होजाताहै और वह प्रातिभासिकरूपसे निर्णीत होजाताहै ॥ ३९ ॥ इसके पश्चात् जब पद्मराजा मरा तब उससमय मरणके ज्ञानसे पुनः जब जन्मका भ्रम हुआ तब यह तुमारी वासनासहित मरके जन्म लिया, इसलिये तुमको पुनः इसने दूसरी लीलाके रूपसे पाया ॥ ४० ॥

इत्थंत्वांदृष्टवानेषदृष्टश्चैषत्वयेतिच ॥ त्वमप्यात्मनिसंपन्नासर्वगत्वाच्चिदात्मनः ॥ ४१ ॥ ब्रह्मसर्वगतं यस्माद्यथायत्रयदोदितम् ॥ भवत्याशुतथातत्रस्वप्नशक्त्यैवपश्यति ॥ ४२ ॥ सर्वत्रसर्वशक्तित्वाद्यत्र याशक्तिरुन्नयेत् ॥ आस्तेतत्रतथाभातितीव्रसंवेगहेतुतः ॥ ४३ ॥ मृतिमोहक्षणेनैवयदैतौदंपतीस्थि तौ ॥ तदैवाभ्यामिदंबुद्धंप्रतिभासवशाद्धृदि ॥ ४४ ॥

अर्थ—इसप्रकार इस राजाने अपनी वासनामय तुमको देखा और तुमने अपनी वासनामय इस राजाको देखा क्योंकि चित् सर्व वासनाओंमें व्याप्तहै, इसलिये तुमभी इसीमें उत्पन्न हुई जो चित् सर्व वासनामें अनुगतहै, वह सम्पूर्ण विवर्तका आकार धारण कर सकताहै ॥ ४१ ॥ क्योंकि ब्रह्म सर्वगतहै, इसलिये जहां जैसी वासना उदित होती है,वहां पर वैसाही होताहै, और विक्षेप शक्तिसे वैसाही अनुभव करताहै ॥ ४२ ॥ ब्रह्म सर्वत्र शक्तियुक्त होनेसे जैसे २ जिस२ भोजक अदृष्टके बलसे आविर्भाव कराताहै, वहां दृढ अभिनिवेश वासनाके कारण वैसाही स्थित होकर भान होताहै ॥ ४३ ॥ अपने २ मरणरूपी मूर्च्छाके क्षणमें ये दोनों स्त्री पुरुष जैसी २ वासनासहित स्थित थे उसी क्षणके उत्तरकालमें अर्थात् मरणोत्तर शीघ्र जन्म क्षणमेंही, इन दोनोंने पूर्व वासनाके उद्बुद्ध होनेके कारण इन सब वक्ष्यमाण वृत्तांतोंका अनुभव अपने २ हृदयमें किया ॥ ४४ ॥

आवयोःपितरावेताविमेवैचापिमातरौ ॥ देशएषधनंचेदंकर्मेदंपूर्वमीदृशम् ॥ ४५ ॥ आवांविवाहिता वेवमेवंनामैकतांगतौ ॥ एतयोःसापिजनतायातात्रैवसत्यताम् ॥ ४६ ॥ तथैवात्रास्तिदृष्टांतःप्रत्यक्षं

स्वप्रवेदनम् ॥ इत्येवंभावयालीलेलीलयाहमथार्चिता ॥ ४७ ॥ नाहंस्यांविधवेत्येवंवरोदत्तोमयाप्य सौ ॥ इत्यर्थेनमृतापूर्वमेवेहखलुबालिका ॥ ४८ ॥

अर्थ—ये हमारे पिताहैं, और ये हमारी मातायें हैं, यह हमारा देश है, यह धनहै, हमने पूर्वमें ऐसा कर्म किया था ॥ ४५ ॥ इस प्रकार हम दोनोंका विवाह हुआ, और ऐसे हम दोनों एक होगये, और वह कल्पनात्मक जनसमूह भी इन दोनोंके भोग कराने वाले अदृष्टके बलसे अर्थ क्रिया करनेमें सत्य होगये ॥ ४६ ॥ हे लीले ! उसी प्रकार यहां- पर स्वप्रकाशज्ञान प्रत्यक्ष दृष्टान्तहै, और पूर्वमें उस राजाको इसप्रकार यह प्राप्त हुई सो तुम सुनो हे लीले ! इसने इस वक्ष्यमाण अभिप्रायसे मेरी पूजा की थी ॥ ४७ ॥ कि हे देवि ! मैं विधवा नहीं होऊँ और मैंनेभी तथास्तु ऐसाही बर- दान दिया इस कारण पूर्व जब यह बालिका थी तभी मृत्युको प्राप्त होगई ॥ ४८ ॥

भवतांचेतनांशानामहंचेतनधर्मिणी ॥ कुलदेवीसदापूज्यास्वतएवकरोम्यहम् ॥ ४९ ॥ अथास्याजीव कोदेहात्प्राणमारुतरूपधृक् ॥ मनसाचलतांप्राप्तोमुखाग्रत्यक्तदेहकः ॥ ५० ॥ ततोमरणमूर्छांतेगृहे स्मिन्नेवचेतया ॥ बुद्धौभावितथाकाशेदृष्टोजीवात्मनाततः ॥ ५१ ॥ संपन्नैषाहरिणनयनाचंद्रबिंबान नश्रीर्मानोन्नद्धादयितललिताकांतमाभोक्तुकामा, ॥ पूर्वस्मृत्यासरभसमुखीसंयुतामंडलांतःस्वप्नांते वाऽप्रकृतिविभवापद्मिनीचोदितेव ॥ ५२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने मरणसमनंतरदेहप्रतिभावर्णनं नाम द्विपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५२ ॥

अर्थ—तुम दोनोंके मेरे पूजा करने तथा मेरे प्रसन्न होनेका यह कारणहै कि तुम सबका जो व्यष्टि चेतनहै अर्थात् पृथक् जो चेतनका व्यवहारहै, उन सब चेतनोंकी हिरण्यगर्भ सम्बन्धी चेतनरूपसे समष्टि चेतनात्मिका तु- मारी कुलदेवी सदाँकी मैं पूज्यहुं, अतएव स्वयं सब करतीहूं ॥ ४९ ॥ और जब इसके शरीरसे अंगुष्ठ मात्र लिंग देहमें रहनेवाला इसका जीव निकलेकी इच्छा करके तेजयुक्त प्राणआत्माके साथ संकल्पित लोकमें पहुंचाताहै इस श्रुतिके अनुसार प्राणने वायुका रूप धारण किया, और जिस भावसहित प्राणी इस शरीरको त्यागताहै, इत्यादि श्रुति स्मृ- तिके प्रमाणसे भावी अर्थोंके संकल्प सहित मनसे उन २ पदार्थोंमें अधिक उत्कण्ठामें प्राप्त होके कण्ठ नेत्रादि देशोंमें प्राप्त होताहुआ नाडी मार्गसे शरीरको छोड दिया ॥ ५० ॥ हे लीले ! इसके अनन्तर मरणरूपी मूर्छाके पश्चात् इसी गृहमें ब्रह्माकाशमें वा भूताकाशमें बुद्धिमें संकलिपत सब भावीपदार्थ देखें ॥ ५१ ॥ इसप्रकार यह हरिणके सदृश नेत्र- वाली चन्द्रबिम्ब सदृश मुख शोभावती अपने प्रियके उपभोग योग्य और स्वयं प्रिय मनोहर पतिको भोग करनेकी कामनावाली, और पूर्व देहके स्मरणके कारण स्वप्नके अन्त वा मध्यके सदृश, अपनी प्रकृतिमें प्राप्त अतएव प्रसन्नताके कारण सूर्य्यके किरणोंसे विकसित पद्मके तुल्य, और कान्तिकेवेगसहित मुखवाली राजा पद्मकी देह धारिणी गृहिणीहुई५२

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे लीलोपाख्याने मरणसमनन्तर देहप्रभाप्राप्तिवर्णनं नाम द्विपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५२ ॥

त्रिपञ्चाशत्तमः सर्गः ॥ ५३ ॥

लीलाका गतिमार्ग पतिकी प्राप्ति और जो ज्ञानयोगसे सिद्ध नहीं है उनकी आकाशमार्गमें अगति (गतिका अभाव) इत्यादि विषय इस ५३ वें सर्गमें वर्णन किया गया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथलब्धवरादेहेनानेनैवमहीपतिम् ॥ पतिमाप्तुंप्रयात्येषानभोमार्गेणविष्टपम्॥१ इतिसंचिंत्यसानंदमुद्दाममकरध्वजा ॥ पुप्लुवेपेलवाकारापक्षिणीवनभस्तले ॥ २ ॥ कुमारींतत्रसाप्रा पज्ञप्त्यैवप्रहितांहिताम् ॥ स्वसंकल्पमहादर्शात्पुरतोनिर्गतामिव ॥ ३ ॥ कुमार्युवाच ॥ दुहितास्मिस खिज्ञप्तेःस्वागतंतेऽस्तुसुंदरि ॥ प्रतीक्षमाणात्वामेवस्थितास्मीहनभःपथि ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! इसके अनन्तर बरदान प्राप्त होनेसे उत्तम शरीरवाली यह लीला इसी वासनामय शरीरसे अपने राजाको प्राप्त होनेके लिये आकाशमार्गसे वक्ष्यमाण अनेक लोकोंमें होके जा रहीथी ॥ १ ॥ मैं इस समय अपने पतिसे मिलूँगी इस बातको विचार कर अति आनन्द सहित उद्धत कामदेव युक्त यह लीला प- क्षिणी (चिडिया) के सदृश आकाशमार्गसे उडी ॥ २ ॥ वहां आकाशमार्गमें उस कुमारीसे मिली जो कि ज्ञप्ति भग-

वतीसे भेजीहुई अपने संकल्परूपी दर्पणसे मानों प्रथमहीसे निकलगईथी ॥ ३ ॥ कुमारी बोली—हे सुन्दरि! भगवतीकी सखी मैं आपकी कन्याहुं आइये तुमारा शुभागमन हुआ,मैं यहां आकाश मार्गमें तुमारी प्रतीक्षा करतीहुई स्थितहुं॥४॥

॥ लीलोवाच ॥ देविभर्तुःसमीपंमांनयनीरजलोचने ॥ महतांदर्शनंयस्मान्नकदाचननिष्फलम् ॥ ५ ॥ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एहितत्रैवगच्छावइत्युक्त्वासाकुमारिका॥ पुरस्तस्याःस्थिताव्योम्निमार्गदर्शनतत्परा ॥ ६ ॥ ततस्तदनुयातासाप्रापकोटरमंबरम् ॥ निर्मलंकरमालाग्रंयथालक्षणलेखिका ॥ ७ ॥ मेघमार्गमथोल्लंघ्यवातस्कंधांतरेगता ॥ सूर्यमार्गादभिगताताऽमार्गमतीत्यच ॥ ८ ॥

अर्थ—लीला बोली—हे देवता शरीर प्राप्त कमलके सदृश नेत्रवाली! मुझे मेरे पति अपने पिताके समीप ले चल, क्योंकि बडोंका दर्शन कभी निष्फल नहीं होता ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी! वही कुमारी बोली कि आओ हम दोनों वहांही चले, ऐसा कहके आकाशमें उसको मार्ग दिखानेमें तत्पर उसके आगे स्थितहुई ॥ ६ ॥ उसके पश्चात् उस कन्याके पीछे २ चलतीहुई ब्रह्माण्ड छिद्रमें पहुंची, वह ऐसा निर्मल था, जैसे प्राणियोंके भावी शुभाशुभ लक्षण सूचक हस्तके तलकी रेखा ॥ ७ ॥ हे रामजी! इसके अनन्तर मेघ मार्गको उल्लंघन करके वायुमार्गमें पहुंची, वहांसे सूर्य्यमार्गसे निकलकर तारागणोंके मार्गको अतिक्रमण करके ॥ ८ ॥

वाय्विंद्रसुरसिद्धानांलोकानुल्लंघ्यलाघवात् ॥ ब्रह्माविष्णुमहेशानांप्रापब्रह्मांडखर्परम् ॥ ९ ॥ हिमशैत्यंयथांतस्थंकुंभेऽभिन्नेबहिर्भवेत् ॥ तथासंकल्पसिद्धासाब्रह्मांडान्निर्गताबहिः ॥ १० ॥ स्वचित्तमात्रदेहैषास्वसंकल्पस्वभावजम् ॥ अंतरेवानुभवतिकिलैवंनामविभ्रमम् ॥ ११ ॥ ब्रह्मादिस्थानमाक्रम्यप्राप्यब्रह्मांडखर्परम् ॥ ततोब्रह्मांडपारस्थाजलाद्यावरणानिच ॥ १२ ॥

अर्थ—वायु, इन्द्र, सुर और सिद्धोंके लोकोंको उल्लंघन करके तथा ब्रह्मा, विष्णु, और शिवजी लोकोंकोभी उल्लंघन करके ब्रह्माण्ड खप्परमें जापहुंची ॥ ९ ॥ जैसे हिमकी शीतलता छिद्र रहित घटमें उससे बाहर निकल जातीहै ऐसेही संकलपसे सिद्ध वह ब्रह्माण्ड खप्परसे बाहर निकल गई ॥ १० ॥ हे रामजी! यह गमन उसका पारमार्थिक नहीं था क्योंकि निजचिन्मात्र देहवाली वह अपने संकल्पके स्वभावसे यह सब गमनादि विभ्रम अपने आत्माहीमें निश्चय करके अनुभव करतीथी ॥ ११ ॥ ब्रह्मादिके स्थानोंको आक्रमण करके पुनः अन्य ब्रह्माण्ड खप्परमें पहुंची और उस ब्रह्माण्डके पार होके और जल आदिके आवरणोंको ॥ १२ ॥

समुल्लंघ्यपुरःप्रापमहाचिद्गगनांतरम् ॥अदृष्टपारपर्यंतमतिवेगेनधावता॥ सर्वतोगरुडेनापिकल्पकोटिशतैरपि ॥ १३ ॥ तत्रब्रह्मांडलक्षाणिसंत्यसंख्यानिभूरिशः ॥ तान्यन्योन्यमदृष्टानिफलानीवमहावने ॥ १४ ॥ तत्रैकस्मिन्पुरःसंस्थेविततावरणान्विते ॥ वेधयित्वाविवेशांतर्बदरंकृमिकोयथा ॥ १५ ॥ पुनर्ब्रह्मेंद्रविष्ण्वादिलोकानुल्लंघ्यभास्वरान् ॥ तन्महीमंडलंश्रीमत्प्रापतारापथादधः ॥ १६ ॥

अर्थ समुल्लंघन करके मायाशबलित आकाशमें जाकर प्राप्त हुई जिसका पार अति वेगके साथ करोडों कल्पतक दौडते हुये गरुडजीभी नहीं देख सकतेथे ॥ १३ ॥ वहांपर लाखों असंख्य ब्रह्माण्ड महाबनमें फलके सदृशथे, जो कि एक दूसरेको कभी नहीं देखा ॥ १४ ॥ उनमेंसे एक जो अनेक आवरण करके युक्त सन्मुख स्थित था, उसको वेधन करके ऐसे प्रवेश किया जैसे बेरके फलमें क्रिमि (कीडा) ॥ १५ ॥ पुनः ब्रह्मा, इन्द्र और महेश विष्णु आदिके प्रकाशमान लोकोंको उल्लंघन करके तारागणोंके मार्गके नीचे शोभायुक्त उस महीमण्डलको प्राप्तहुई ॥ १६ ॥

तत्रतन्मंडलंप्राप्यतत्पुरंतच्चमंडपम् ॥ प्रविश्यपुष्पगुप्तस्यशवस्यनिकटेस्थिता ॥ १७ ॥ एतस्मिन्नंतरे साचनददर्शकुमारिकाम् ॥ मायामिवपरिज्ञातांक्वापियातांवरानना ॥ १८ ॥ मुखमालोक्यसातस्यस्वभर्तुःशवरूपिणः ॥ इदंबुद्धवतीसत्यंप्रतिभावशतःस्वतः ॥ १९ ॥ अयंसभर्तासंग्रामेनिहतोममासांधुना ॥ वीरलोकानिमान्प्राप्यक्षणंशेतेयथासुखम् ॥ २० ॥

अर्थ—जहांपर उसके पतिका राज्यथा उस महीमण्डलके प्राप्त होके उसी मण्डप और उसी गृहमें पुष्पोंसे ढकेहुये अपने पतिके मृतक शरीरके समीप खडी होगई ॥१७॥ इससमयमें श्रेष्ठ मुखवाली उस लीलाने कन्याको नहीं देखा, वह तो मायाके सदृश न मालूम कहां चलीगईथी ॥ १८ ॥ वह लीला मृतक शरीरवाले अपने पतिके मुखको देखकरे अपनेही तर्कसे वक्ष्यमाण बात जानली ॥ १९ ॥ कि ये मेरे पति संग्राममें राजा सिन्धुसे मारागये इन बीरलोकोंको प्राप्त होके क्षणभर सुखकी निद्रामें विश्राम कर रहेहैं ॥ २० ॥

अहंदेव्याःप्रसादेनसशरीरैवमीदृशम् ॥ इहप्राप्तवतीधन्यामत्समानास्तिकाचन ॥ २१ ॥ इतिसंचिंत्य

साहस्तेगृहीत्वाचारुचामरम् ॥ वीजयामासचंद्रेणद्यौरिवावनिमंडलम् ॥ २२ ॥ प्रबुद्धलीलोवाच ॥ ते भृत्यास्ताश्ववैदास्यःसराजाचप्रबुद्धवान् ॥ वक्ष्यंतिवदतांदेविकिंकयैवकथंधिया ॥ २३ ॥

अर्थ—मैं भगवतीकी प्रसन्नतासे इसी शरीरसे अपने ऐसे पतिको यहांपर प्राप्त हुई धन्य हुं, मैं मेरे सदृश कोई अन्य स्त्री नहीं है ॥ २१ ॥ ऐसा विचार करके वह हस्तमें उत्तम चामर (चँवर) लेके ऐसे राजाके ऊपर वीजन करने लगी जैसे चन्द्रमासे पृथिवी मण्डलको आकाश ॥ २२ ॥ प्रबुद्ध लीला बोली—कि हे देवि ! वे भृत्यगण वे दासीजन और वृद्ध चेतनाको प्राप्त राजा ये सब किस बुद्धिसे क्या कहैंगे, उस कथाको कहो अर्थात् यदि राजाका पूर्ववृत्तान्त विस्मरण होगया तो यह कौनहै और किसकी है इस शंकासे और यदि विस्मरण नहो तौभी लोक निन्दित होनेसे उसका ग्रहण नहीं होसकता इसका परिहार बतलाइये ॥ २३ ॥

॥श्रीदेव्युवाच॥सराजासाचतेभृत्याःसर्वएवपरस्परम्॥चिदाकाशैकतावेशादावयोश्वप्रभावतः॥२४॥ महाचित्प्रतिभासत्वान्महानियतिनिश्चयात्॥अन्योन्यमेवपश्यंतिमिथःसंप्रतिबिंबितात्॥२५॥इयंमेसहजाभार्याममेयंसहजासखी ॥ ममेयंसहजाराज्ञीभृत्योयंसहजोमम ॥ २६ ॥ केवलंत्वमहंसाचयथावृत्तमखंडितम् ॥ ज्ञास्यामहदमाश्वर्थननुकाश्चिदपीतरः ॥ २७ ॥ प्रबुद्धलीलोवाच ॥ अमुनैवशरीरेणकिमर्थंनगतापतिम् ॥ एवावरेणसंप्राप्तालीलाललितवादिनी ॥ २८ ॥

अर्थ—श्रीदेवी बोली—हे प्रबुद्ध लीले ! वह राजा और वह लीला तथा वे सब भृत्यादि सब परस्पर अपनी २ बुद्धिमें प्रतिबिम्बके सदृश अन्तर्निविष्ट साक्षी चेतनकी एकताके वशसे हम दोनोंके प्रभावसे ब्रह्मचेतनके भोजक अदृष्टरूपसे विवर्तित होनेसे, और इसको ऐसाही होना चाहिये ऐसे ईश्वरके संकल्पके आश्रय होनेसे, एकमत होके देखतेहैं ।। २४ ।। २५ ।। यह मेरी वही सहज (सदाकी स्वभाविक) भार्य्या है यह मेरी सहज सखी यह मेरी सहज रानी और यह मेरा वही सहज भृत्यहै, इत्यादि रूपसे एकमत होके देखेंगे, इससे यह अपूर्व कोई स्त्री आगई ऐसी आशंका किसीको न होगी ।। २६ ।। इस आश्चर्य्यजनक वृत्तान्तको केवल तुम हम और वह विदूरथकी लीला पूर्ण रीतिसे जानेंगे और कोईभी नहीं ।। २७ ।। प्रबुद्ध लीलाबोली—हे देवि ! यह विदूरथकी लीला जो पतिके निकट प्राप्तहुई सो मनोहर भाषण करनेवाली आपके वरदानसे इसी स्थूल शरीरसे पतिके निकट क्यों न गई ।। २८ ।।

॥ श्रीदेव्युवाच ॥ अप्रबुद्धधियःसिद्धलोकान्पुण्यवशोदितान् ॥ नसमर्थाःस्वदेहेनप्राप्तुंछायाइवातपान् ॥ २९ ॥ आदिसर्गेचनियतिःस्थापितेतिप्रबोधिभिः ॥ यथासत्यमलीकेननमिलत्येवकिंचन ॥ ३० ॥ यावद्वेतालसंकल्पोबालस्यकिलविद्यते ॥ निर्वेतालधियस्तावदुदयस्तस्यकःकथम् ॥ ३१ ॥ अविवेकज्वरोष्णत्वंविद्यतेयावदात्मनि ॥ तावद्विवेकशीतांशुशैत्यंकुतउदेत्यलम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—श्रीदेवीजी बोली—हे लीले ! जो सूक्ष्म आत्माके ज्ञानसे हीन है वे पुण्यके वशसे आविर्भूत सिद्धोंके लोकोंमें ऐसे प्राप्त नहीं होसकते जैसे छाया आतपको ॥ २९ ॥ यह मर्य्यादा सृष्टिके आदिमें आत्मज्ञानी हिरण्यगर्भादिने स्थापित की है, क्योंकि जैसे सत्य मिथ्यासे किंचित्भी नहीं जासकते ॥ ३० ॥ जबतक बालकको वेतालका संकल्प बनाहै, तबतक उसको वेताल (भूतादि) आदि रहित बुद्धिका उदय कहांसे होसकताहै ॥ ३१ ॥ कदाचित् यह कहो कि तुमारे वरसे इसको सूक्ष्म आत्माका निश्चय क्यों न होगया सोभी नहीं, क्योंकि जबतक अविवेकरूपी ज्वरसे आत्मामें उष्णता बनी है, तबतक विवेकरूपी चन्द्रमाका उदय पूर्णरीतिसे कहां ॥ ३२ ॥

अहंपृथ्व्यादिदेहःखेगतिर्नास्तिममोत्तमा ॥ इतिनिश्चयवान्योंतःकथंस्यात्सोन्यनिश्चयः ॥ ३३ ॥ अतोज्ञानविवेकेनपुण्येनाथवरेणच ॥ पुण्यदेहेनगच्छंतिपरंलोकमनेनतु ॥ ३४ ॥ शुष्कपर्णंकिलांगारेएतदेवाशुदह्यते ॥ अयंदेहमहंदेहःप्राप्तएवविशीर्यते ॥ ३५ ॥ एतावदेवभवतिवरशापविजृंभितैः ॥ यथासंवित्यएवाहंतथास्मृतइतिस्मृतिः ॥ ३६ ॥

अर्थ—पृथिवी आदिसे निर्मित स्थूल देह मैंहुं ऐसा जिसके अन्तःकरणमें निश्चयहै उसको भला अन्यप्रकार निश्चय (सूक्ष्म चेतन आत्मा मैंहुं) कैसे होसकताहै ॥ ३३ ॥ इस कारण ज्ञान विवेकसे पुण्यसे और वरदानसे तुमारे सदृश ऐसे पवित्र देहसे परलोकमें प्राणी जासकते हैं अन्यथा नहीं ॥ ३४ ॥ जैसा सूखापत्ता जलती हुई अग्निमें पडतेही शीघ्र भस्म होजाताहै, ऐसेही सूक्ष्म शरीरवाला मैंहुं इतना ज्ञान होतेही स्थूल शरीर नष्ट होजाताहै ॥ ३५ ॥ और वरशापके प्रकाशोंसेभी इतनीही बात होती है, कि पूर्वकालकी वासना कर्मादिके अनुसार उद्बुद्ध होनेसे वरशाप देनेवालेको स्मरण करादेते हैं जैसे चिरकाल चिन्तनीय अनुवाक आदि किसीको अल्प उदाहरणसे स्मृति होजाय, जैसे तुमने मुझे स्मरण कराया और ऐसी होगई ॥ ३६ ॥

[illegible] सिष्ठ ॥ आत्मन्येवहियोनास्तितस्यकाकार्थकारिता ॥ ३७ ॥ यस्त्वे य:सर्पप्रत्ययोरज्ज्वांसकथंसर्पकार्यकृत् [illegible] यपुष्टस्यनमैतत्प्रविजृंभते ॥ ३८ ॥ स्वानुभूतेजगज्जा तन्मृतइत्येवमिथ्यासमनुभूयते ॥ प्रागभ्यास [illegible] निकल [illegible] गोद्यभ्यासईदृशः ॥ ३९ ॥ अंतरनुभूयमाना:संस्र लेष्सुगमा:संस्मृतिभ्रमाः ॥ नान्यसंकल्पितोनासस [illegible] आकाश [illegible] बिंबम् ॥ ४० ॥ तयोबाह्यभूतजालानाम् ॥ अविदितवेद्यदृशामपिदूरेपुंसामिवद [illegible] कदे [illegible]

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रक [illegible] लीलोपाख्याने संसृतिविदितवेद्य नाम त्रिपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५३ ॥

अर्थ—जो रज्जुमें सर्पकी प्रतीति है वह सर्पका कार्य्य कैसे कर सकती है ऐसेही जो स्थूल शरीर आत्मा [illegible] ही नहीं वह उसका कार्य्य कैसे कर सकताहै अर्थात् जैसे रज्जुके ज्ञानसे सर्पप्रतीति नष्ट होती है ऐसेही सूक्ष्मके ज्ञानसे स्थूलकीभी होती है ॥ ३७ ॥ और अमुक मरा इत्यादि जो स्थूलदेहमें मिथ्या भ्रमका अनुभव होताहै, सो पूर्वकालसे बढे हुये दृढ अभ्यासके संस्कारसे होते हैं ॥ ३८ ॥ अपनेही अनुभूत जगत्जालमें संस्मृतियोंको भ्रम सुगमहै और हम लोगोंकी वासनाकी अपेक्षारहित अन्य वरदानादि देनेवाले हिरण्यगर्भादि ईश्वरने स्वतंत्रतासे सब कल्पना करालियाहै, यह वार्ता सत्य नहीं है ॥ ३९ ॥ हे लीले! अज्ञानी लोगोंकोभी जो अनिवार्य्य प्रपंचजालका अनुभव होरहाहै उनकोभी यह सब संसार अन्तर्मेंही है जैसे कि चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब पुरुषोंको दूर अनुभूतभी वह जलादिके अन्तर्गतही है ॥ ४० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे लीलोपाख्याने संसृतिविदितवेद्य नाम त्रिपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५३ ॥

चतुष्पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५४ ॥

सब पदार्थोंकी मर्य्यादा, मरणका क्रम, कर्म गुण आचारसे पदार्थोंका भोग, और आयुः परिमाण इस ५४ वें सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीदेव्युवाच ॥ तस्माद्येवेद्यवेत्तारोयेवाधर्मवरंश्रिताः ॥ आतिवाहिकलोकांस्तेप्राप्नुवंतीहनेतरे ॥ १ ॥ आधिभौतिकदेहत्वंमिथ्याभ्रमभयात्मकम् ॥ कथंसत्येस्थितिंयातिच्छायास्तेकथमातपे ॥ २ ॥ लीलाविदितवेद्यानोपरमंधर्ममाश्रिताः ॥ केवलंतेनसाभर्त्तुःकल्पितंनगरंगता ॥ ३ ॥ प्रबुद्धलीलोवाच ॥ एवमेषामयातास्तुभर्त्तापश्यममांबिके ॥ प्रवृत्तःप्राणसंत्यागेकर्त्तव्यंकिमिहाधुना ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीदेवीजी बोली कि–हे लीले! इसलिये जो तत्वज्ञानी योगाभ्यासरूपी धर्ममें आश्रितहैं वेही लोग सूक्ष्मशरीरसे जाने योग्य परलोकोंमें जासकते है दूसरे नहीं ॥ १ ॥ और जब अधिक पुण्यादिके प्रभावसे आतिवाहिक हिरण्यगर्भादिका शरीर प्राप्त होजाताहै तो पुनः वह इस मिथ्या भ्रममय आधिभौतिक स्थूलदशाको नहीं प्राप्त होता, क्योंकि यह मिथ्या सत्य कब होसकताहै, और तुमारी छाया घर्म (घाम) कब होसकती है ॥ २ ॥ और लीला तो न तत्वज्ञानिनीथी, और न योगाभ्यासमें आश्रित केवल (वरसे) अपने पतिके निकट पहुंचगई इससे पुनः उसको आधिभौतिक शरीर मिला ॥ ३ ॥ प्रबुद्धलीला बोली कि–यह लीला गई इसके विषयमें तो जो आपने कहा वह वैसाहीहो, परन्तु हे अम्बिके! यह मेरा पति तो प्रत्यक्ष प्राण त्याग करनेमें प्रवृत्तहै अब इसकी क्या उपपत्तिहै, अर्थात् जीवन मरण किसकारणसे होतेहैं, क्योंकि जगत् तो सर्वथा मिथ्याहै ॥ ४ ॥

भावाभावेषुभावानांकथंनियतिरागता ॥ कथंभूयोप्यनियतिर्मृतिजन्मादिसूचिता ॥ ५ ॥ कथंस्वभावसंसिद्धिःकथंसत्तापदार्थगा ॥ कथमग्न्यादिषूष्णत्वंपृथ्व्यादौस्थिरताकथम् ॥ ६ ॥ हिमादिषुकथंशैत्यंकासत्ताकालखादिषु ॥ भावाभावग्रहोत्सर्गस्थूलसूक्ष्मदशःकथम् ॥ ७ ॥ कथमत्यंतमुच्छ्रायंतृणगुल्मनरादिकम् ॥ वस्तुनायात्यनिष्टेपिस्थितेस्वोच्छ्रायकारणे ॥ ८ ॥

अर्थ—देहादि भावपदार्थोंकी जीवन सौख्य आदि भावपदार्थोंमें और दुःखदौर्भाग्य आदि अभावोंमें प्रथम नियति (मर्य्यादा) कैसे आई, और पुनः मरण जीवन आदिसे सूचित अनियति कैसे आई ॥ ५ ॥ यदि कहो अनियति (अनियम) ही है सो नहीं हैं, क्योंकि पदार्थोंमें स्वभावकी सिद्धि कैसे हुई और घट आदि पदार्थोंमें सत्ता कैसे हुई, अग्निमें उष्णता कैसे और पृथिवी आदिमें कठोरता कैसे आई ॥ ६ ॥ हिम आदिमें शीतलता कैसे,

और काल आकाशादिकी किसप्रकारकी सत्ता है और सत्वरजतम आदि पदार्थोंका संग्रह और शुक्तिके भ्रान्तिमय रजतादिके त्याग और पृथिवी आदिमें स्थूल बुद्धिमें तथा मन इन्द्रिय आदिमें सूक्ष्म बुद्धि क्यों ॥ ७ ॥ मृत्तिका जल आदि ऊंच होनेके समान कारण स्थित रहनेपरभी तृण लता तथा मनुष्यादि पदार्थ शाल तालादिके तुल्य अति ऊंचे क्यों नहीं होते और इष्ट अनिष्ट सबमें अनियम माननेसे सबमें अनास्था क्यों नहीं होजाती ॥ ८ ॥

॥ श्रीदेव्युवाच ॥ महाप्रलयसंपत्तौसर्वार्थास्तमयेसति ॥ अनंताकाशमाशांतंसद्ब्रह्मैवावतिष्ठते ॥ ९॥ तच्चिद्रूपतयातेजःकणोहमितिचेतति ॥ स्वप्नेसंविद्यथाहित्वमाकाशगमनादिच ॥ १० ॥ तेजःकणोसौ स्थूलत्वमात्मनात्मनिविंदति ॥ असत्यमेवसत्याभंब्रह्मांडंतदिदंस्मृतम् ॥ ११ ॥ तत्रांतर्ब्रह्मतद्वेत्तिब्र ह्मायमहमित्यथ ॥ मनोराज्यंसकुरुतेस्वात्मैवंतदिदंजगत् ॥ १२ ॥

अर्थ—श्रीदेवीजी बोली–यदि जगत् सर्वथा एक सत्यमात्र स्वभाव होता वा सर्वथा मायामात्र होता तो तुमारी शंकाके अनुसार सर्वथा नियति वा अनियति ठीक थी, किन्तु यह जगत् तो (सत्यासत्यसम्मिलित स्वभाव है इसकारण भोजक अदृष्टके अनुसार चित्की विवर्त व्यवस्थासेही यह स्थित है, इस अभिप्रायसे देवी प्रथा चित्तके विवर्त क्रमको कहती है) कि महाप्रलयमें जब सर्वथा सब अस्त होजाता है उससमय केवल अनन्ताकाश शान्त केवल ब्रह्ममात्र अवशेष रहता है ॥ ९ ॥ वह ब्रह्मशुद्ध चित्स्वरूपसे व्याप्त तेजःकण अर्थात् प्रकाशशील सूक्ष्मभूतरूपसे अपनेको अनुभव करता है, जैसे स्वप्नका ज्ञान सर्परूपता वा आकाशादि गमनको ॥ १० ॥ वह तेजःकण अर्थात् भूतसूक्ष्मदशामें प्राप्त आत्मा अपने आत्माहीमें अपनेसे भिन्न कल्पित जल आदिके आवरणमें कल्पनासे स्थूलताको प्राप्त होता है वही यह असत्य सत्यके सदृश भासमान यह दृश्यमान ब्रह्माण्ड कहलाता है ॥ ११ ॥ उस ब्रह्माण्डके भीतर स्थित हिरण्यगर्भाख्य ब्रह्म अन्तर्मुख अंशरूपसे मैं ब्रह्माहुं ऐसा अपनेको जानता है, और बाह्य अंशसे प्राणियोंके कर्मोंके अनुगुण अनेक सृष्टिके संकल्पसे मनोराज्य करता है, इसलिये यह जगत् ब्रह्मात्मकही है ॥ १२ ॥

तस्मिन्प्रथमतःसर्गेयायथायत्रसंविदः ॥ कचितास्तास्तथातत्रस्थिताअद्यापिनिश्चलाः ॥ १३ ॥ यद्य थास्फुरितंचित्तंतत्तथाह्यात्मचिद्भवेत् ॥ स्वयमेवानियमतस्तत्तस्यान्नेहकिंचन ॥ १४ ॥ नचनामनकिं चित्त्वंयुज्यतेविश्वरूपिणः ॥ त्यक्त्वासमस्तसंस्थानंहेमतिष्ठतिवैकथम् ॥ १५ ॥ सर्गादौस्वयमेवांत श्चिद्यथाकचितात्मनि ॥ हिमाग्न्यादितयाद्यापिसातथास्तेस्वसत्तया ॥ १६ ॥

अर्थ—उस प्रथम सर्गमें जो संविद् जिसप्रकार नियम अनियम रूपसे भासमाव हुई है, वेही निश्चलरूपसे अद्यपर्य्यन्त स्थित है ॥ १३ ॥ जो चित्त जिसप्रकार स्फुरित हुआ है आत्मचित्भी स्वयं उसीप्रकार विवर्तभावको प्राप्त होता है इस कारणसे कोईभी बात अनियमरूपसे नहीं होती ॥ १४ ॥ विश्वरूप जो परमात्मा है उसकी शून्यरूपता होना कदापि योग्य नहीं है क्योंकि कटक कुण्डल और रुचक पिण्डादि समस्त आकारोंका अधिष्ठान वही है ॥१५॥ सृष्टिकी आदिमें अपने आत्मामें चित् जिस हिम अग्नि आदि रूपसे प्रतिभासमान हुई, वह अपनी सत्तासे उसी रूपसे अबभी है ॥ १६ ॥

तस्मात्स्वसत्तासंत्यागःसतःकर्तुंनयुज्यते ॥ यदाचिदास्तेतेनेयंनियतिर्नैवविनश्यति ॥ १७ ॥ यद्यथा कचितंयत्रव्योमरूप्यपिपार्थिवम् ॥ सर्गादौतस्यचलितुमद्ययावन्नयुज्यते ॥ १८ ॥ यायथाचित्प्रकचि ताप्रतिपक्षविदंविना ॥ नसाततःप्रचलतिवेदनाभ्यासतःस्वयम् ॥ १९ ॥ जगदादावनुत्पन्नंयच्चेदमनु भूयते ॥ तत्संविद्व्योमकचनंस्वप्नस्त्रीसुरतंयथा ॥ २० ॥

अर्थ—इसकारण माया शबल ब्रह्मकी सत्ताका त्याग करना योग्य नहीं है जब चित्त उन २ पदार्थोंके रूपसे विवर्तभावको प्राप्त होता है तो नियतिका नाश कदापि नहीं होसकता ॥ १७ ॥ यद्यपि वह चिदाकाश रूप है, तथापि जो जिस पृथिवी आदि रूपसे सृष्टिकी आदिमें स्फुरित हुआ है वह अद्यपर्य्यन्त चलायमान होनेके योग्य नहीं है॥१८॥ जीवन नियती मरण नियत करके व्यत्यास होता है इसलिये प्रतिपक्ष चित् अर्थात् जीवन मरणरूपसे और मरण जीवनरूपसे, क्योंकि इसका नियम यही है, इस नियतिको छोडके जो चित् जैसी प्रतिभासित हुई वह वासनाकी दृढतासे अद्यापि उसी प्रकार चली जाती है ॥ १९ ॥ हे लीले ! यह जो कुछ कहागया है यह सब भाविक दशाको अवलम्बन करके कहागया है, यथार्थमें तो सृष्टिके आदिमेंभी यह जगत् उत्पन्न नहीं हुआ है, और जो कुछ जगत्का यह अनुभव होता है वह केवल चिदाकाशकी स्फुरणमात्र है, जैसे स्वप्नकी स्त्रीका सुरत ॥ २० ॥

असत्यमेवसत्याभंप्रतिभानमिदंस्थितम् ॥ इतिस्वभावसंपत्तिरितिभूतानुभूतयः ॥ २१ ॥ सर्गादौ

पायथारूढासंवित्कचनसंततिः ॥ साद्याप्यचलितान्येनस्थितानियतिरुच्यते ॥ २२ ॥ गृहीतव्योम संवित्तिचिद्व्योमव्योमतांगतम् ॥ गृहीतकालतासंविच्चिन्नभःकालतांगतम् ॥ २३ ॥ गृहीतजलसंवित्तिचिद्व्योमवारिवत्स्थितम् ॥ स्वप्नेयथाहिपुरुषःपश्यत्यात्मनिवारिताम् ॥ २४ ॥

अर्थ—जो कुछ यह जगत् भासता है वह सब असत्यके समान भासरहा है और पूर्वोक्त रीतिसे जीवनमरणके अनुभवभी यथार्थमें असत्यही है सत्यवत् भासरहे हैं ऐसा निश्चय होनाही अपने स्वरूपकी प्राप्ति है ॥ २१ ॥ हे लीले ! सृष्टिके आरंभमें चित्के प्रतिभासकी सन्तान्ति जैसे रूढ है वह इससमयभी उसी रूपसे अचलित है और वह पदार्थान्तर मिलकर स्थितहै, जैसे जन्म जीवन मरणसे मिलितहै स्वतंत्र नहीं है शीतता उष्णतासे विरोधरूपहीसे मिलितहैं और क्रियाकारक साध्य साधनभावसे, तथा सुख दुःख इत्यादि रूपसे जो स्थित है, उसीका नाम नियति है ॥ २२ ॥ हे लीले ! सृष्टिके आदिमें चिदाकाश आकाशके आकारका प्रतिभास ग्रहण करनेसे आकाश दशाको प्राप्त होगया, और कालके आकारका प्रतिभास ग्रहण करनेसे कालरूपको प्राप्त हुआ ॥ २३ ॥ और वह चिदाकाश जब जलाकार प्रतिभास ग्रहण किया तब जलके सदृश होके ऐसे स्थित होगया जैसे स्वप्नमें पुरुष अपनेको तडागादि रूपसे जलाकार देखताहै ॥ २४ ॥

स्वप्नचित्संविदाभातिभवत्येवायथास्थिता ॥ चिच्चमत्कारचातुर्यादसदेतत्समूहते ॥ २५ ॥ खत्वंजलत्वमुर्वीत्वमग्नित्वायुतवमप्यसत् ॥ वेत्त्यंतःस्वप्नसंकल्पध्यानेष्विवचितिःस्वयम् ॥ २६ ॥ मरणानंतरं कर्मफलानुभवनक्रमम् ॥ सर्वसंदेहशांत्यर्थमृतिश्रेयस्करंशृणु ॥ २७ ॥ रूढादिसर्गेनियतिर्यैकद्वित्रिचतुःशता ॥ पूर्वादिष्वायुषःपुंसांतस्यामेनियतिंशृणु ॥ २८ ॥

अर्थ—और स्वप्नमें चिदाकाश उन २ पदार्थोंका रूप धारण करके भासमान होनेपरभी यह अपने शुद्धस्वरूपसे कदापि प्रच्युत नहीं होता, और यह चित्की (मायाशबलितकी) चमत्कारकी चतुरतासे होताहै, कि असत्भी सत्के सदृश भासताहै ॥ २५ ॥ आकाशत्व, वायुत्व, अग्नित्व, जलत्व और पृथिवीत्व आदिरूप चेतन स्वयं अपने भीतर ऐसे देखताहै जैसे स्वप्नके ध्यानमें ॥ २६ ॥ हे लीले ! अब मरणके अनन्तर कर्मोंके फलोंका अनुभवका जो क्रम मरण दशामें अति कल्याणकारी है उसे तुम अपने सब सन्देह शान्त्यर्थ श्रवण करो ॥ २७ ॥ जो आदिसृष्टिमें सत्युगादिमें पुरुषोंकी आयुका नियम कलियुगमें एकसो १०० वर्ष द्वापरमें २०० वर्ष स्थितहै उसके न्यून अधिक होनेका नियम मुझसे सुनो ॥ २८ ॥

देशकालक्रियाद्रव्यशुद्ध्यशुद्धीस्वकर्मणाम् ॥ न्यूनत्वेचाधिकत्वेचनृणांकारणमायुषः ॥ २९ ॥ स्वकर्मधर्मेह्रसतिह्रसत्यायुर्नृणामिह ॥ वृद्धेवृद्धिमुपायातिसममेवभवेत्समे ॥ ३० ॥ बालमृत्युप्रदैर्बालोयुवायौवनमृत्युदैः ॥ वृद्धमृत्युप्रदैर्वृद्धःकर्मभिर्मृतिमृच्छति ॥ ३१ ॥ योयथाशास्त्रमारब्धंस्वधर्ममनुतिष्ठति ॥ भाजनंभवतिश्रीमान्सयथाशास्त्रमायुषः ॥ ३२ ॥

अर्थ—देशकाल क्रिया और द्रव्योंकी शुद्धि अशुद्धि तथा अपने कर्मोंकी शुद्धि और अशुद्धि मनुष्योंकी आयुके न्यून अधिक होनेके कारणहैं अर्थात् इन सबकी अधिकता और अशुद्धतामें आयुषकी अधिकता और अशुद्धतामें न्यूनता होतीहै ॥ २९ ॥ अपने कर्म और धर्मकी हानिसे संसारमें मनुष्योंकी आयुष्की हानि और धर्मकर्मकी वृद्धि होनेसे आयुष्की वृद्धि होती है, और समान होनेसे जो जिस युगमें आयुष् नियतहै उसके समान होती है ॥ ३० ॥ बालकोंके मृत्युदायक कर्मोंके करनेसे बाल्य अवस्थामें, युवाके मृत्युदायक कर्मोंसे युवा अवस्थामें और वृद्धोंके मृत्युदायक कर्मोंसे वृद्ध अवस्थामें प्राणी मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ ३१ ॥ जो प्राणि शास्त्रोक्त अपने धर्मका अनुष्ठान करताहै वह पुरुष श्रीमान् होताहै और शास्त्रोक्त प्रमाण आयुका भागी होताहै ॥ ३२ ॥

एवंकर्मानुसारेणजंतुरत्यांदशामितः ॥ भवंत्यंतंगतवतोहृन्मर्मच्छेदवेदनाः ॥ ३३ ॥ प्रबुद्धलीलोवाच ॥ मरणंमेसमासेनकथयेंदुसमानने ॥ किंसुखंमरणेकिंवादुःखंमृत्वाचकिंभवेत् ॥ ३४ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ त्रिविधाःपुरुषाःसंतिदेहस्यांतेमुमूर्षवः ॥ मूर्खोधारणाभ्यासीयुक्तिमान्पुरुषस्तथा ॥ ३५ ॥ अभ्यस्यधारणानिष्ठोदेहंत्यक्त्वायथासुखम् ॥ प्रयातिधारणाभ्यासीयुक्तियुक्तस्तथैवच ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे लीले ! इसप्रकार प्राणी अपने कर्मोंके अनुसार जब इस संसारमें अपनी आयुको समाप्त करके अन्त दशाको प्राप्त होताहै तो मर्मछेदन कारक पीडायें होती हैं ॥ ३३ ॥ प्रबुद्ध लीला बोली-कि हे चन्द्रानने देवि ! मुझे संक्षेपसे मरणके विषयमें कहो मरणमें क्या सुख होताहै, और क्या दुःख होताहै, और मरणके अनन्तर क्या गति

होती है (अर्थात् मरणमें जो तुमने दुःख वर्णन कियाहै वह सबकी समान गति होतीहै वा योगियोंकी कुछ विलक्षण गति होतीहै) ॥ ३४ ॥ श्रीदेवीजी बोली—हे लीले ! इससंसारमें शरीरके अन्तमें मरनेवाले पुरुष तीन प्रकारकेहैं १ मूर्ख २ धारणा (प्राण और मनको नाभी हृदय और कण्ठ देश और भूमध्यमें तथा ब्रह्मरन्ध्र पर्य्यन्तमें नियतक करके रोकनेके) अभ्यासी अर्थात् योगाभ्यासी और ३ युक्तिमान् अर्थात् अपने इच्छानुसार शरीरके त्यागके दूसरेके शरीरमें प्रवेश करनेमें अपने इष्ट लोकोंमें प्राप्तिके मार्गभूत नाडीद्वारा विशेष रीतिसे गमन निर्गमनमें कुशलताका अभ्यास करनेवाला योगी ॥ ३५ ॥ उनमेंसे धारणाभ्यासी क्रमसे युक्तियोंका अभ्यासकरके सुखसे इस शरीरको त्यागकर परलोकमें जाताहै, और युक्तियोंसे युक्त अर्थात् युक्तिमान् योगीभी इसी प्रकारसे सुखपूर्वक शरीरको त्यागकर परलोकमें गमन करताहै ॥ ३६ ॥

धारणायस्यनाभ्यासंप्राप्तानैवचयुक्तिमान् ॥ मूर्खःस्वमृतिकालेसौदुःखमेत्यवशाशयः ॥ ३७ ॥ वासनावेशवैवश्यंभावयन्विषयाशयः ॥ दीनतांपरमामेतिपरिलूनमिवांबुजम् ॥ ३८ ॥ अशास्त्रसंस्कृतमतिरसज्जनपरायणः ॥ मृतावनुभवत्यंतर्दाहमग्नाविवच्युतः ॥ ३९ ॥ यदाघर्घरकंठत्वंवैरूप्यंदृष्टिवर्णजम् ॥ ॥ गच्छत्ययेपोविवेकात्मातदाभवतिदीनधीः ॥ ४० ॥

अर्थ—और जिसको धारणाका अभ्यास नहीं और युक्तिमान्भी नहीं है वह विषयवशीभूतात्मा मूर्ख अपने मृत्युकालमें अनेक दुःखोंमें आकर ॥ ३७ ॥ और विषयासक्त होकर विषयकी विवशताका अनुभव कर्त्ता हुआ ऐसी दीनताको प्राप्त होताहै जैसे कटाहुआ कमल ॥ ३८ ॥ हे लीले ! जिसकी बुद्धि शास्त्रके संस्कारसे पवित्र नहीं है, या जो दुष्टोंके संगमें सदा परायण रहताहै वह अपने मरणकालमें ऐसे दुःखोंको अनुभव करताहै जैसे अग्निमें गिराहुआ पुरुषदाहको ॥ ३९ ॥ यह अविवेकी जिससमय कण्ठकी घर्घरदशा तथा वर्णकी कुरूपता दशाको प्राप्त होता है, उससमय दीनबुद्धि होजाताहै ॥ ४० ॥

परमांध्यमनालोकोदिवाप्युदिततारकः ॥ साभ्रदिग्मंडलाभोगोघनमेचकितांबरः ॥ ४१ ॥ मर्मव्यथाविच्छुरितःभ्रमदृष्टिमंडलः ॥ आकाशीभूतवसुधोवसुधाभूतखांतरः ॥ ४२ ॥ परिवृत्तककुब्चक्रउह्यमानइवार्णवे ॥ नीयमानइवाकाशेघननिद्रोन्मुखाशयः ॥ ४३ ॥ अंधकूपइवापन्नःशिलांतरिवयोजितः स्वयंजडीभवद्वर्णोविनिकृत्तइवाशये ॥ ४४ ॥

अर्थ—और ऐसी अन्धताको प्राप्त होताहै कि जिसका कुछ पार नहीं है दिनमें इसको तारागणोंका उदय प्रतीत होताहै और प्रकाश रहित मेघसहित दिग्मण्डलका सम्पूर्ण विस्तार तथा आकाश इसको घनीभूत श्यामवर्ण देख पडताहै ॥ ४१ ॥ मर्मकी पीडाओंसे व्याप्त दृष्टिमण्डल जिसका भ्रमण कररहाहै जिसको पृथिवी आकाशके और आकाश पृथिवीके तुल्य प्रतीत होता है ॥ ४२ ॥ सम्पूर्ण दिशाओंका चक्र उसको भ्रमण करता हुआ जानपडताहै, और स्वयं मानों समुद्रमें बह रहा है, तथा उसको ऐसा भान होता है मानो गाढ निद्राके वशीभूत है, और उसे कोई आकाशमें घसीटे लिये जाताहै ॥ ४३ ॥ अन्धकूपमें मानों गिरपडाहै, शिलाके तले मानों दबायागया है, अपने दुःखोंको दूसरोंसे कहना चाहताहै, तो वाणीकी जडतासे अक्षर स्वच्छ नहीं निकलते और हृदयमें मानों छिदगयाहै॥४४॥

पततीवनभोमार्गात्तृणावर्त्तइवार्पितः ॥ रथेद्रुतइवारूढोहिमवद्गलनोन्मुखः ॥ ४५ ॥ व्याकुर्वन्निवसंसारंबांधवानस्पृशन्निव ॥ भ्रमितक्षेपणेनेवचातयंत्रइवास्थितः ॥ ४६ ॥ भ्रमितोवाभ्रमद्रज्जुकृष्टोरसनयेववा ॥ भ्रमन्निवजलावर्त्तेशस्त्रयंत्रइवार्पितः ॥ ४७ ॥ प्रोह्यमानस्तृणमिववद्वत्यन्यमारुते ॥ आरुह्यवारिपूरेणनिपतन्निवचार्णवे ॥ ४८ ॥

अर्थ—प्रवल आन्धीमें फेंका हुआ मानोंआकाशमार्गसे गिररहा है, वेगयुक्त रथपर आरूढ हिमतुषारकी शिलाके समान गलनेमें तत्पर होरहाहै ॥ ४५ ॥ और संसारकी अनेक प्रकारकी बाधायें मानों अपनेको उदाहरण करके सब बन्धुओंको स्पर्श न करता हुआ समझा रहा है, तथा शिलायंत्र और वायुयंत्रमें मानों दबाया गयाहै ॥ ४६ ॥ और भ्रमियन्त्रमें मानों रस्सीसे बांधके कोई इसे खींच रहाहै, जलके भ्रमणमें मानों भ्रमण कर रहाहै, और मानों शस्त्रोंके यंत्रमें प्रविष्ट किया गयाहै ॥ ४७ ॥ और जल सहित वायुके झकोरोंमें तृणके समान मानों उडाया जाताहै, और जलके प्रवाहमें चढके मानों समुद्रमें गिरताहै ॥ ४८ ॥

अनंतगगनेश्वभ्रेचक्रावर्तेपतन्निव ॥ अब्धिरुर्वीविपर्यासदशामनुभवन्स्थितः ॥ ४९ ॥ पतन्निवानवरतंप्रोत्पतन्निवचाभितः ॥ सूत्काराकर्णनोद्भ्रांतपूर्णसर्वेंद्रियव्रणः ॥ ५० ॥ क्रमाच्छ्यामलतांयातितस्य

सर्वाक्षसंविदः ॥ यथास्तंगच्छतिरवौमंदालोकतयादिशः ॥ ५१ ॥ पूर्वापरंनजानातिस्मृतिस्तानवमा गता ॥ यथापाश्र्वात्यसंध्यांतेनष्टाहष्टिर्दिगष्टके ॥ ५२ ॥

अर्थ—अनन्त आकाशके छिद्रवाले चक्रावर्तमें मानों गिरा पडताहै, और पृथिवीकी विपरीत दशाको अनुभव करता हुआ स्थित समुद्रके सदृश चारोंओरसे गिरता तथा उछलता हुआ और अपने निःश्वासके शब्दोंको सुनके भ्रान्तके समान और सम्पूर्ण इन्द्रियोंके घावोंसे पूर्ण ॥ ४९ ॥ ५० ॥ क्रमसे उसकी सम्पूर्ण इन्द्रियां और ज्ञान ऐसे मलिनताको प्राप्त होते हैं जैसे सूर्य्यके अस्त होनेके समय मन्दप्रकाश सहित सम्पूर्ण दिशायें ॥ ५१ ॥ और स्मृतिकी सर्वथा दुर्बलतासे पूर्वापरको ऐसे नहीं जानता जैसे सायंकालकी सन्ध्याके अन्तमें आठों दिशाओंमें नष्ट दृष्टि ॥ ५२ ॥

मनःकल्पनसामर्थ्यंत्यजत्यस्यविमोहतः ॥ अविवेकेनतेनासौमहामोहेनिमज्जति ॥ ५३ ॥ यदैवामो हमादत्तेनादत्तेपवनस्तदा ॥ नत्वादत्तेयदाप्राणान्मोहमायात्यलंतदा ॥५४॥ अन्योन्यपुष्टतांयातिमोह संवेदनभ्रमैः ॥ जंतुःपाषाणतामेतिस्थितमित्यादिसर्गतः ॥ ५५ ॥ प्रबुद्धलीलोवाच ॥ व्यथांविमोहं मूर्छांतंभ्रमंव्याधिमचेतनम् ॥ किमर्थमयमायातिदेहोह्यष्टांगवानपि ॥ ५६ ॥

अर्थ—हे लीले! उस मृत्युकालमें अधिक अज्ञानके कारण इस मूर्खका मन कल्पना सामर्थ्यको त्यागताहै और उस अविवेकसे महामोह अर्थात् मूर्च्छामें डूबताहै ॥ ५३ ॥ जिससमय यह किंचित् मूर्च्छाको ग्रहण करताहै, उससमय प्राण वायु इसके अंगोंको नहीं स्तम्भन करता, और जब यह प्राण वायुकाभी संचार करनेमें असमर्थ होताहै, उससमय गाढी मूर्छा आके इसे ग्रास लेती है ॥ ५४ ॥ अपने स्वरूपको अज्ञान विषयकी वासनाका भ्रम अर्थात् अल्प पदार्थोंका अन्यप्रकारसे प्रति भास होना, ये तीनों परस्परकी सहायतासे पुष्टताको प्राप्त होजाते हैं, उससमय यह प्राणी पाषाणके सदृश जडताको प्राप्त होताहै ॥ ५५ ॥ प्रबुद्ध लीला बोली–हे देवि! पीडा मूर्च्छा पर्य्यन्त अज्ञान, और चेतना रहित व्याधिको शिर हस्त, पाद, गुह्य, अंग (उपस्थ) और नाभी, इन अंगोंके विद्यमान रहनेपरभी यह जीव क्यों प्राप्त होताहै ॥ ५६ ॥

॥ श्रीदेव्युवाच ॥ एवंसंविहितंकर्मसर्गादौस्पंदसंविदा ॥ यदस्मिन्समयेदुःखंकालेनैतावतेदृश म् ॥ ५७ ॥ स्यान्मेइत्येवसंविश्यगुल्मवत्तत्स्वभावजम् ॥ वेत्तिचित्तविजृंभोत्थंनान्यदत्रास्तिकार णम् ॥ ५८ ॥ यदान्यथावशान्नाड्यःस्वसंकोचविकासनैः ॥ गृण्हंतिमारुतोदेहेतदोज्झतिनिजांस्थि तिम् ॥५९॥ प्रविष्टानविनिर्यातिगताःसंप्रविशंतिनो ॥ यदावाताविनाडीत्वात्तदास्पंदात्स्मृतिर्भवेत् ॥६०

अर्थ—श्रीदेवीजी बोली कि–क्रिया शक्ति प्रधान ईश्वरने सृष्टिकी आदिमें वक्ष्यमाण रीतिसे कर्मोंका विधान कियाहै, कि जिसकाल अर्थात् बाल युवा और वृद्ध अवस्थामें इतना और इसप्रकार दुःख ॥ ५७ ॥ मुझसे अभिन्न जीवको होना चाहिये, इसप्रकार अपनेही संकल्पसे उत्पन्न और चित्तसे कल्पित वृक्ष लताके सदृश चित्तके परिणामसे जनित दुःखोंको जीवरूप उपाधिमें प्रवेश करके आपही अनुभव करताहै, इसके अतिरिक्त और कोई कारण नहीं है ॥ ५८ ॥ जिससमय नाडियां सन्तप्त पित्त आदिसे परिपूर्ण होनेसे अपने संकोच विकाशसे भोजन किये हुये अन्नपानादिके रसको विषमतासे ग्रहण करती हैं, उससमय भोजन किये हुये अन्नपानादिके रसको समीकरणरूप अपनी निज स्थितिको त्यागताहै ॥ ५९ ॥ हे लीले! जिससमय अन्तःप्रवेश किया हुआ वायु बाहर न जाय, और भीतरका वायु बाहर न निकले, उससमय नाडीके व्यापार शान्त होनेके कारण और नेत्र आदिकी चेष्टा बन्द होनेसे केवल अन्तःकरणमें कुछ स्मृतिमात्र रहती है, और इन्द्रियसंबन्धी कोईभी ज्ञान नहीं होता ॥ ६० ॥

नविशत्येववातोननिर्यातिपवनोयदा ॥ शरीरनाडीवैधुर्यान्मृतइत्युच्यतेतदा ॥ ६१ ॥ आगंतव्योमया नाशःकालेनैतावतेतिया ॥ पूर्वसंविदितासंवियातितच्चोदितामृतिं ॥ ६२ ॥ ईदृशेनमयेहेत्थंभाव्यमि त्यादिसर्गजा ॥ संविद्बीजकलानाशंनकदाचनगच्छति ॥ ६३ ॥ संविदोवेदनंनामस्वभावोव्यतिरेक वान् ॥ तस्मात्स्वभावसंवित्तेर्नान्येमरणजन्मनी ॥ ६४ ॥

अर्थ—जिससमय प्राणवायु भीतर नहींथा वेश करता और अपान भीतरसे बाहर नहीं निकलता उससमय नाडीके अभावसे मनुष्य मृतक होगया ऐसा कहते हैं ॥ ६१ ॥ इतने कालमें मेरा नाश आके प्राप्त होगा, यह जो पूर्व जन्मकी संकल्पसहित नियतिसे प्रेरणा की हुई संवित् मरण दशाको प्राप्त होती है ॥ ६२ ॥ मुझे इसप्रकार होना चाहिये, इसप्रकार सत्यसंकल्प संवित्की बीज कलाभूत और उसके संस्कारसहित जो माया आदि सृष्टिसे चली आती है उसका कदाचित्भी नाश नहीं होता किन्तु मुक्तिके कालमेंही उसकी निवृत्ति होती है पूर्व नहीं ॥ ६३ ॥ अविद्यास-

हित जीवमें मरणरूप स्फुरणका अभाव कदापि नहीं होता क्योंकि यह उसमें स्वाभाविकहै, इसलिये संवित् स्वभावके स्फुरणसे पृथक् जन्ममरण और कुछभी पदार्थ नहीं है ॥ ६४ ॥

क्वचिदावृतिमत्सौम्यंक्वचिन्नद्यांजलंयथा ॥ क्वचित्सौम्यंक्वचिज्जीवधर्मैर्द्वेचेतनंतथा ॥ ६५ ॥ यथालतायाःपर्वाणिदीर्घायामध्यमध्यतः ॥ तथाचेतनसत्तायाजन्मानिमरणानिच ॥ ६६ ॥ नजायतेनम्रियते चेतनःपुरुषःक्वचित् ॥ स्वप्नसंभ्रमवद्भ्रांतमेतत्पश्यतिकेवलम् ॥ ६७ ॥ पुरुषश्चेतनामात्रंसकदाक्वनश्यति ॥ चेतनव्यतिरिक्तत्वेवदान्यत्किंपुमान्भवेत् ॥ ६८ ॥

अर्थ—हे लीले! जिसप्रकार नदीका जल कहीं आवर्त (भँवरेह) संयुक्त रहताहै और कहीं शान्त रहताहै ऐसेही चेतनभी कहीं शान्त, और कहीं जीवके रागद्वेषादि धर्मसे कलुषित रहताहै॥६५॥ जैसे लम्बी दूर्वादि लताके मध्य२ में ग्रन्थी रहती है, इसीप्रकार चेतन सत्ताकी स्फुरणमें मध्य २ जीवन मरणभी जाने ॥ ६६ ॥ यह सब कथन अविद्याकी अपेक्षाहै, यथार्थमें तो यह चेतन पुरुष न कभी जन्मताहै, और न मरताहै, किन्तु केवल स्वप्नके सम्भ्रमके समान भ्रान्त होके यह सब देखताहै ॥ ६७ ॥ चेतना मात्र यह पुरुष कब और कैसे नष्ट होसकताहै, और चेतनसे अन्य देह प्राण इन्द्रियं मन चित्त बुद्धि अहंकार वा इन सबके अधिष्ठातृ देवता अथवा अविद्या इनमेंसे कहो क्या होसकता है, कुछ नहीं क्योंकि पुरुषके सम्पूर्ण व्यवहारोंका निर्वाह ज्ञानसे होताहै, वे सब व्यवहार इन जडोंसे नहीं होसकते, इसलिये चेतन मात्रही पुरुषहै, यह पक्ष सिद्धान्तहै ॥ ६८ ॥

कोव्ययावन्मृतंब्रूहिचेतनंकस्यकिंकथम् ॥ म्रियंतेदेहलक्षाणिचेतनंस्थितमक्षयम् ॥ ६९ ॥ अमरिष्यन्नचेच्चित्तमेकस्मिन्नेवतन्मृते ॥ अभविष्यत्सर्वभावमृतिरेकमृताविह ॥ ७० ॥ वासनामात्रवैचित्र्यंयज्जीवोनुभवेत्स्वयम् ॥ तस्यैवजीवमरणेनामनीपरिकल्पिते ॥ ७१ ॥ एवंनकश्चिन्म्रियतेजायतेनचकश्चन॥ वासनावर्त्तगर्तेषुजीवोलुठतिकेवलम् ॥ ७२ ॥ अत्यंतासंभवादेवदृश्यस्यासौचवासना ॥ नास्त्येवेति विचारेणदृष्टज्ञातैवनश्यति ॥ ७३ ॥ अनुदितमुदितंजगत्प्रबंधंभवभयतोभ्यसनैर्विलोक्यसम्यक् ॥ अलमनुदितवासनोहिजीवोभवतिविमुक्तइतीहसत्यवस्तु ॥ ७४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने मरणविचारो नाम चतुष्पंचाशत्तमःसर्गः ॥ ५४ ॥

अर्थ—और चेतनका मरण कब किसने अनुभव कियाहै, क्योंकि साक्षीरहित मरण नहीं होसकता, इसलिये लक्षों शरीर मरतेहैं, उनका अनुभव कर्ता चेतन ज्यों का त्यों स्थितहै ॥ ६९ ॥ और एको देवः सर्वभूतेषु गूढः (एकही चेतन सर्व शरीरोंमें गुप्तहै) (इत्यादि श्रुतियोंसे सब देहोंमें चेतन एकही है) भेदमें कुछ प्रमाण नहीं है तो उस एक चेतनके मरनेसे समष्टि चेतनका मरना क्यों न होगा और उसके मरनेसे निरुपादन जगत्सत्ताका असम्भव होनेसे सर्व भावमें मरणका दोष क्यों न आवेगा ॥ ७० ॥ यह चेतन जो स्वयं जीवनका अनुभव करताहै, वह केवल वासना मात्रकी विचित्रताकाही नाम जीवन मरण कल्पित किया गयाहै ॥ ७१ ॥ इसप्रकार न कोई मरताहै न जन्मताहै केवल वासनाके आवर्त (भँवरेह) युक्त गर्तोंमें यह जीव लुढकता फिरताहै ॥ ७२ ॥ इस दृश्यका सर्वथा असम्भव होनेसे विचार दृष्टिसे वासनाभी कोई पदार्थ नहीं है, केवल अभिमानके अधिकरणका नाश अवश्य होताहै ॥ ७३ ॥ संसारके भयसे वैराग्य आदि साधन सहित अधिकारी जीव गुरुद्वारा श्रवण मनन आदि अभ्यासोंसे भ्रान्तिसे उत्पन्न हुये, इस जगत् प्रपंचको यथार्थमें सम्यग् दर्शनसे अनुत्पन्न (नहीं उत्पन्न) निश्चय करके देखके मूल अविद्याके नाशसे सर्वथा द्वैत वासनासे शून्य विमुक्त होजाताहै, और संसारमें वही विमुक्त आत्मस्वरूप सत्य वस्तुहै और कुछ नहीं ॥ ७४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने मरणविचारवर्णनं नाम चतुःपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५४ ॥

पंचपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५५ ॥

आदिसृष्टिसे जीवकी संसारगतिकी विचित्रता, तथा ईश्वरकीभी उसके कर्मोंके अनुसार गुणकी स्थिति, इस ५५ वे सर्गमें वर्णन की गई है ॥

॥ प्रबुद्धलीलोवाच ॥ यथैवजंतुर्म्रियतेजायतेचयथापुनः ॥ तन्मेकथयदेवेशिपुनर्बोधविवृद्धये ॥ १ ॥ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ नाडीप्रवाहेविधुरेयदावातविसंस्थितिम् ॥ जंतुःप्राप्नोतिहितदाशाम्यतीवास्यचेतना ॥ २ ॥ शुद्धंहिचेतनंनित्यंनोदेतिनचशाम्यति ॥ स्थावरेजंगमेव्योम्निशैलेऽग्नौपवनेस्थितम् ॥ ३ ॥ केवलंवातसंरोधाद्यदास्पंदःप्रशाम्यति ॥ मृतइत्युच्यतेदेहस्तदासौजडनामकः ॥ ४ ॥

अर्थ—प्रबुद्ध लीला बोली—कि हे देवि ! जिसप्रकार प्राणी मरताहै और पुनः जन्मताहै इस कथनको पुनः वैराग्यादिकी अधिकतासे ज्ञानकी वृद्धिके लिये कहिये ॥ १ ॥ श्रीदेवीजी बोली—हे लीले ! नाडीका प्रवाह नष्ट होनेसे जिससमय इस प्राणीको शरीरका वायु शान्त होजाताहै उससमय अन्तःकरण उपाधिके नष्ट होनेसे दूसरी चेतना शान्तके सदृश होजाती है॥ २ ॥ और यथार्थमें तो शुद्धचेतन न कभी उदय हो, न शान्त होता है, वह तो स्थावरजंगम, आकाश, पर्वत, अग्नि, और पवन आदिमें नित्य एकरस स्थित रहताहै ॥ ३ ॥ केवल वायुके निरोधसे जब इसकी चेष्टा शान्त होजाती है, तब यह जडनामक देह मृतक होगया ऐसा कहा जाता है ॥ ४ ॥

तस्मिन्देहेशवीभूतेवातेचानिलतांगते ॥ चेतनंवासनामुक्तंस्वात्मतत्त्वेवतिष्ठति ॥ ५ ॥ जीवइत्युच्यतेतस्यनामाणोर्वासनावतः ॥ तत्रैवास्तेसचशवागारेगगनकेतथा ॥ ६ ॥ ततोसौप्रेतशब्देनप्रोच्यतेव्यवहारिभिः ॥ चेतनंवासनामिश्रमामोदानिलवस्थितम् ॥ ७ ॥ इदंदृश्यंपरित्यज्ययदास्तेदर्शनांतरे ॥ स्वस्वप्नइवसंकल्पइवनानाकृतिस्तदा ॥ ८ ॥

अर्थ—और जब वह देह मृतक होगया, और प्राणवायु जाके महावायुमें मिलगया, तब वासनासे विनिर्मुक्त आत्मा अपने शुद्धरूपमें स्थित होता है॥ ५ ॥ कदाचित् यह कहो कि अपने स्वरूपमें स्थित होनेसे वह तो ब्रह्मही रहा जीव नहीं होसकता सो नहीं क्योंकि पुनर्जन्मकी बीजभूत वासना करके सहित और उपाधिभावसे कल्पित सूक्ष्म अणु उपहित चेतनका नाम जीव है, और वहभी उसी मृतक पुरुषके गृहाकाशमें स्थित है ॥ ६ ॥ और उसके पश्चात् व्यवहारी मनुष्य उसको प्रेत शब्दसे कहते हैं, और चेतन वासनामें ऐसे मिला है जैसे सूक्ष्म तर पुष्पके रजमें वायु सुगन्धसे मिला हुआ स्थित रहता है॥ ७ ॥ और इस पूर्व देहादि दृश्यको त्यागके दूसरे देहादिमें अन्य दर्शनमें जब स्थित रहता है, तब स्वप्नके समान नानाप्रकारके आकारोंको धारण करता है ॥ ८ ॥

तस्मिन्नेवप्रदेशेंतःपूर्ववत्स्मृतिमान्भवेत् ॥ तदैवस्मृतिमूर्च्छांतेपश्यत्यन्यशरीरकम् ॥ ९ ॥ आत्मन्यस्तिघटापुष्टमन्यस्यव्योमकेवलम् ॥ आकाशभूतलेसार्कंसाकाशंशशिवासरम् ॥ १० ॥ भवंतिषड्विधाःप्रेतास्तेषांभेदमिमंशृणु ॥ सामान्यपापिनोमध्यपापिनःस्थूलपापिनः ॥ ११ ॥ सामान्यधर्मामध्यमधर्माचोत्तमधर्मवान् ॥ एतेषांकस्यचिद्भेदोद्वौत्रयोप्यथकस्यचित् ॥ १२ ॥

अर्थ—और उसी सूक्ष्म मरणके प्रदेशमें पूर्वजन्मके सदृश स्मरणशक्ति सहित होजाता है और उसी समय मरणरूपी मूर्छाके अन्तमें दूसरा शरीर देखता है ॥ ९ ॥ कदाचित् शंका करो कि उस सूक्ष्मतर मरण प्रदेशमें अन्य देहकी कल्पनाके सम्भव होनेपरभी दूर देश और विस्तारयुक्त देशकेसे उसमें आसकते हैं, सो मेघादिकी घटासे पुष्ट विशालरूप आकाश अथवा आकाश और भूतल दो वा आकाश चन्द्र और सूर्य्यादि सहित करोडों लक्ष (लाख) सहित ब्रह्माण्ड प्रवेश करें, तथापि आत्मामें सबका प्रवेश होसकता है, क्योंकि आत्मा अनन्त है, और मायामें अघटित घटना करनेका सामर्थ्य है ॥ १० ॥ हे लीले ! इस रीतिसे मरणके अनन्तर छ प्रकारके प्रेत होते हैं, उनके वक्ष्यमाण भेदको तुम सुनो कोई तो सामान्य (अल्प) पापी, १ कोई मध्यम पापी, २ और कोई महा पापी, ३ होते हैं॥ ११ ॥ कोई सामान्य धर्मवान्, ४ कोई मध्यम धर्मवान्, ५ और कोई उत्तम महा धर्मवान्, ६ होते हैं, ये छ प्रकारके प्रेत हुये, इनमेंसे किसीका एक विशेष भेद होता है, किसीके दो और किसीके तीन भेद होते हैं ॥ १२ ॥

कश्चिन्महापातकवान्वत्सरंस्मृतिमूर्छनम् ॥ विमूढोनुभवत्यंतःपाषाणहृदयोपमः ॥ १३ ॥ ततःकालेनसंबुद्धोवासनाजठरोदितम् ॥ अनुभूयचिरंकालंनारकंदुःखमक्षयम् ॥ १४ ॥ भुक्त्वायोनिशतान्युच्चैर्दुःखाद्दुःखांतरंगतः ॥ कदाचिच्छममायातिसंसारस्वप्नसंभ्रमः ॥ १५ ॥ अथवास्मृतिमोहांतेजडदुःखशताकुलाम् ॥ क्षणाद्वृक्षादितामेवहृत्स्थामनुभवंतिते ॥ १६ ॥

अर्थ—सबसे प्रथम तीसरे महा पापीकी दशा वर्णन करते हैं, जो महा पातकी होता है वह मरणकी स्मृति मूर्छाको पाषाणके सदृश जड हृदयमें वर्षपर्यंत अनुभव करता है ॥ १३ ॥ उसके अनन्तर मरणरूपी मूर्छासे जगाहुआ कर्मवासनाके उदरसे उत्पन्न अक्षय नरकके दुःखोंको चिरकालतक अनुभव करके ॥ १४ ॥ सैकडों नीच योनियोंमें बडेसे बडे दुःखोंका अनुभव करके, कभी स्वप्नके समान भ्रम संयुक्त इस संसारमें महापातकसे शान्तिको प्राप्त होता है ॥ १५ ॥ अथवा वह महापापी मरणरूपी मूर्छाके अनन्तर क्षणभरमेंही अपने हृदयमें स्थित जडताके सैकडों दुःखोंसे पूर्ण वृक्षादि भावोंको अनुभव करते हैं ॥ १६ ॥

स्ववासनानुरूपाणिदुःखानिनरकेपुनः ॥ अनुभूयाथयोनीषुजायंतेभूतलेचिरात् ॥ १७ ॥ अथमध्यमपापोयोमृतिमोहादनंतरम् ॥ सशिलाजठरंजाड्यंकंचित्कालंप्रपश्यति ॥ १८ ॥ ततःप्रबुद्धःकालेनकेनचिद्वातदैववा ॥ तिर्यगादिक्रमैर्भुक्त्वायोनीःसंसारमेष्यति ॥ १९ ॥ मृतएवानुभवतिकश्चित्सामान्यपातकी ॥ स्ववासनानुसारेणदेहंसंपन्नमक्षतम् ॥ २० ॥

अर्थ—इसके अनन्तर अपने कर्म वासनाके अनुसार नरकोंमें अनेक दुःखोंको चिरकालतक अनुभव करके पुनः पृथिवीपर निकृष्टयोनियोंमें उत्पन्न होते हैं ॥ १७ ॥ अब इसके पश्चात् जो मध्यम पापी हैं वे पाषाणके गर्भके सदृश महा जडताका कुछ कालतक अनुभव करते हैं ॥ १८ ॥ उसके अनन्तर वह पापी कुछकालमें वा अन्यकी दृष्टिमें उसी समय उस मूर्च्छासे जागके तिर्य्यक् (पशु पक्षी) आदिके क्रमसे योनियोंको भोगकर अनन्तर संसारमें आवेगा ॥ १९ ॥ और कोई सामान्य (अल्प) पापी मरणके अनन्तरही अपनी वासनाके अनुसार दूसरे अखण्डित मनुष्यादि शरीरका अनुभव करताहै ॥ २० ॥

सस्वप्नइवसंकल्पइवचेततितादृशम् ॥ तस्मिन्नेवक्षणेतस्यस्मृतिरित्थमुदेतिच ॥ २१ ॥ येतूत्तममहापुण्यामृतिमोहादनंतरम् ॥ स्वर्गविद्याधरपुरंस्मृत्यास्वनुभवंतिते ॥ २२ ॥ ततोन्यकर्मसदृशंभुक्त्वान्यत्रफलंनिजम् ॥ जायंतेमानुषेलोकेसश्रीकेसज्जनास्पदे ॥ २३ ॥ येचमध्यमधर्माणोमृतिमोहादनंतरम् ॥ तेव्योमवायुवलिताःप्रयांत्योषधिपल्लवम् ॥ २४ ॥

अर्थ—स्वप्न वा संकल्पके समान वह उसी मरणकेही क्षणमें पूर्वोक्त शरीरादिका अनुभव करताहै, और पूर्वोक्त रीतिसे शरीर आदिकी उसको स्मृति होजाती है ॥ २१ ॥ और जो उत्तम महापुण्यवान् प्रेतहै वे मरण मूर्च्छाके अनन्तरही स्वर्ग विद्याधर आदिके नगरोंको अपनी स्मृतिसे अनुभव करते हैं ॥ २२ ॥ उस महापुण्यके फलको भोगके अनन्तर और जो कुछ पुण्य पापादिकहैं उनके अनुसार दूसरे इलावृत्त कि पुरुषादि वर्षोंमें कर्मोंके फलोंको भोगकर, लक्ष्मी और सज्जनोंका स्थान जो मनुष्यलोक हैं उसमें उत्पन्न होते हैं ॥ २३ ॥ और जो मध्यम धर्मात्मा हैं वे मरणरूपी मूर्च्छाके अनन्तर ओपधि और पल्लव प्रधान जो नन्दन चैत्र रथादि वन हैं उनमें किं पुरूप यक्षआदि शरीरसे उत्पन्न होते हैं ॥ २४ ॥

तत्रचारुफलंभुक्त्वाप्रविश्यहृदयंनृणाम् ॥ रेतसामथितिष्ठंतिगर्भेजातिक्रमोचिते ॥ २५ ॥ स्ववासनानुसारेणप्रेताएतांव्यवस्थितिम् ॥ मूर्छांतेनुभवंत्यंतःक्रमेणैवाक्रमेणच ॥२६॥ आदौमृतावयमितिबुद्ध्यंतेतदनुक्रमात् ॥ बंधुपिंडादिदानेनप्रोत्पन्नाइतिवेदिनः ॥ २७ ॥ ततोयमभटाप्तेकालपाशान्विताइति ॥ नीयमानःप्रयाम्येभिःक्रमाद्यमपुरंत्विति ॥ २८ ॥

अर्थ—वहांपर उत्तम स्वर्गके फलको भोगकर वा पुष्टि आदिके द्वारा व्रीहि, यव, आदि अन्नोंमें प्रवेश करके अन्नरूप होके ब्राह्मण आदि मनुष्योंके हृदयमें प्रवेश करके वीर्य्यरूपसे अपनी वासनाके अनुसार जातिकर्मके उचित स्त्रियोंके गर्भमें आके स्थित होते हैं ॥ २५ ॥ हे लीले ! इसप्रकार अपनी २ वासनाके अनुसार मरणरूपी मूर्च्छाके पश्चात् प्रेतप्राणी ऐसी व्यवस्थाको क्रमसे अनुभव करते हैं ॥ २६ ॥ अब विशेष रीतिसे मरणसे लेके उनका आरोप क्रम देखाते हैं प्रथम हम मरे पुनः दाहदशाह आदि क्रमसे बन्धुओंके पिण्डदान आदिसे उत्पन्न हुये, ऐसे ज्ञानवाले कोई होते हैं ॥ २७ ॥ उसके अनन्तर कालकी फांसी लिये यमराजके दूत हमको लेजाते हैं, और हम अवक्रमसे यमराजकी पुरीको चलते हैं ॥ २८ ॥

उद्यानानिविमानानिशोभनानिपुनःपुनः ॥ स्वकर्मभिरुपात्तानिदिव्यानीत्येवपुण्यवान् ॥ २९ ॥ हिमानीकंटकश्वभ्रशस्त्रपत्रवनानिच ॥ स्वकर्मदुष्कृतोत्थानिसंप्राप्तानीतिपापवान् ॥ ३० ॥ इयंमेसौम्यसंपातासरणिःशीतशाद्वला ॥ स्निग्धच्छायासवापीकापुरःसंस्थेतिमध्यमः ॥ ३१ ॥ अयंप्राप्तोयमपुरमद्यभेपसभूतपः ॥ अयंकर्मविचारोत्रकृतइत्यनुभूतिमान् ॥ ३२ ॥

अर्थ—और धर्म्मात्मा मनुष्य ऐसा बार २ अनुभव करताहै कि देखो ये हमारे कर्मोंसे उपार्जित (उत्पन्न किये) दिव्य स्वर्गके नन्द आदि वन तथा शोभायमान विमान हमको प्राप्त हुये ॥ २९ ॥ और पापी ऐसा अनुभव करताहै कि देखो बर्फ, काटे, गढे, शस्त्र, सरी, तृप और कंटमय पत्तोंसे संयुक्त ये वन आदि हमारे पापकर्मोंसे हमको प्राप्त हुये हैं ॥ ३० ॥ और मध्यम पापवाला ऐसा अनुभव करताहै, कि यह पादोंसे सुखपूर्वक जानेके योग्य शीतल हरी घासोंसे संयुक्त, घनी ठंढी छायायुक्त और वापी सहित मार्ग हमको प्राप्त हुआ ॥ ३१ ॥ यह मैं यमराजके पुरमें पहुंचगया, सब भूतोंकी रक्षा करनेवाले मेरे सन्मुख यही यमराज बैठे हैं, यहां यमराजकी सभामें मृत्यु और चित्रगुप्त आदिने मेरे कर्मोंका बिचार किया ॥ ३२ ॥

इतिप्रत्येकमभ्येतिपृथुःसंसारखंडकः ॥ यथासंस्थितनिःशेषपदार्थाचारभासुरः ॥ ३३ ॥ आकाशइव निःशून्येशून्यात्मैवविबोधवान् ॥ देशकालक्रियादैर्घ्यभासुरोपिनर्किचन ॥ ३४ ॥ इतोयमहमादिष्टः स्वकर्मफलभोजने ॥ गच्छाम्याशुशुभंस्वर्गमितोनरकमेवच ॥ ३५ ॥ यःस्वर्गोयंमयाभुक्तोभुक्तोयंनरकोथवा ॥ इमास्तायोनयोभुक्ताजायेहंसंसृतौपुनः ॥ ३६ ॥

अर्थ—इसप्रकार जैसे प्रतीत होते हैं वैसे स्थितहैं, सम्पूर्ण पदार्थोंके आचार और उनके अर्थोंकी क्रियायें उनसे प्रकाश शील यह विशाल संसार खंड प्रत्येक जीवोंको प्राप्त होताहै ॥ ३३ ॥ आकाशके सदृश आकार शून्य आत्मामें देश, काल, और क्रियाकी दीर्घतासे भासमानभी यह जगत् प्रपंच विचार दृष्टिसे कुछभी नहीं है, किन्तु आत्माही इनका स्वरूप धारण करके स्फुरणवान होताहै ॥ ३४ ॥ मैं अपने कर्मोंके फल भोगनेके लिये यमराजसे इस दिशाकी ओर आज्ञा दियागया, और अब मैं इस यमराजकी सभासे शुभस्वर्ग अथवा नगरक भोगनेके लिये शीघ्र जाताहुं ॥ ३५ ॥ इस स्वर्गका मैंने भोग किया, अथवा नरकको भोगा, और इन २ पशुपक्षी आदिकी योनियोंकोभी भोगा और अब पुनः मनुष्य संसारमें उत्पन्न होताहुं ॥ ३६ ॥

अयंशालिरहंजातःक्रमात्फलमहंस्थितः ॥ इत्युदर्कप्रबोधेनबुद्धयमानोभविष्यति ॥ ३७ ॥ संसुप्तकरणस्त्वेवंबीजतांयात्यसौनरे ॥ तद्बीजंयोनिगलितंगर्भीभवतिमातरि ॥ ३८ ॥ सगर्भोजायतेलोकेपूर्वकर्मानुसारतः ॥ भव्योभवत्यभव्योवाबालकोललिताकृतिः ॥ ३९ ॥ ततोनुभवतीद्वाभंयौवनंमदनोन्मुखम् ॥ ततोजरांपद्मसुखेहिमाशनिमिवच्युतम् ॥ ४० ॥

अर्थ—यह मैं शालि (चावलका वृक्ष) अमुक स्थानमें उत्पन्न हुआथा, और क्रमसे पुनः अमुक स्थानमें फलरूपसे स्थितथा, इत्यादि ज्ञान इसको भविष्यत्कालमें श्रुति स्मृति और पुराणआदिके बोधसे होताहै ॥ ३७ ॥ और वृक्षादि दशामें इसकी बाह्य इन्द्रियां मूर्छित दशामें रहती हैं, इसलिये अपने वृक्षादि भावोंको यह अनुभव नहीं करता, किन्तु उस दशासे यह क्रमसे मनुष्यके शरीरमें भोजन किये हुये अन्नादिके द्वारा वीर्य्य होताहै, और वीर्य्य योनिमें गिरनेसे माताके उदरमें गर्भरूपसे स्थित होताहै ॥ ३८ ॥ हे लीले! वह गर्भ संसारमें अपने पूर्वजन्मके कर्मोंके अनुसार सुख, सौभाग्य, आरोग्य, और उत्तम आचरणसहित भव्य अथवा इनसे विरूद्ध अभव्य सुन्दर आकृतिवाला बालक उत्पन्न होताहै ॥ ३९ ॥ उसके अनन्तर चन्द्रमाके सदृश घटने बढनेकी शक्ति, और कलंकसहित तथा कामचेष्टासे मादक शक्तिकी ओर झुके हुये अपने यौवनका अनुभव करताहै, उसके पश्चात् कमलके ऊपर बज्रपातके समान अपने मुखके ऊपर गिरी हुई वृद्धा अवस्थाका अनुभव करताहै ॥ ४० ॥

ततोपिव्याधिधर्मरणंपुनर्मरणमूर्छनाम् ॥ पुनःस्वप्नवदायातंपिंडेदेहपरिग्रहम् ॥ ४१ ॥ याम्यंयातिपुनर्लोकंपुनरेवभ्रमक्रमम् ॥ भूयोभूयोनुभवतिनानायोन्यंतरोदये ॥ ४२ ॥ इत्याजवंजवीभावमामोक्षमतिभासुरम् ॥ भूयोभूयोनुभवतिव्योम्न्येवव्योमरूपवान् ॥ ४३ ॥ प्रबुद्धलीलोवाच ॥ आदिसर्गेयथादेविभ्रमएषप्रवर्त्तते ॥ तथाकथयमेभूयःप्रसादाद्बोधवृद्धये ॥ ४४ ॥

अर्थ—उसके अनन्तर अनेक व्याधि तथा पुनः मरणरूपी मूर्छाका अनुभव करताहै, और अनन्तर पुनः स्वप्नके सदृश पिण्डदान आदि पूर्वक शरीर धारणके आगमनका अनुभव करताहै ॥ ४१ ॥ और पुनः यमलोकमें जाताहै, और ऐसाही भ्रमके क्रमको अनेक बार नानाप्रकारकी योनियोंमें अनुभव करताहै ॥ ४२ ॥ इसप्रकार संसारके परिवर्तनसे जबतक मोक्ष नहीं होता तबतक बार २ यह जीव स्वयं आकाशरूप आत्मामें अनुभव किया करताहै ॥ ४३ ॥ प्रबुद्ध लीला बोली कि—हे देवि! आदि सृष्टिमें, परमात्मेंही यह जगत्का भ्रम प्रवृत्त होताहै, सो कृपा करके ज्ञानकी वृद्धिके अर्थ पुनः कहिये ॥ ४४ ॥

॥ श्रीदेव्युवाच ॥ परमार्थघनंशैलाःपरमार्थघनंद्रुमाः ॥ परमार्थघनंपृथ्वीपरमार्थघनंनभः ॥ ४५ ॥ स र्वात्मकत्वात्सयतोयथोदेतिचिदीश्वरः ॥ परमाकाशशुद्धात्मातत्रतत्रभवेत्तथा ॥ ४६ ॥ सर्गादौस्वप्न पुरुषन्यायेनादिप्रजापतिः ॥ यथास्फुटंप्रकचितस्तथाद्यापिस्थितास्थितिः ॥ ४७ ॥ प्रथमोसौप्रतिस्पं दःपदार्थानांहिबिंबकम् ॥ प्रतिबिंबितमेतस्माद्यत्तदद्यापिसंस्थितम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—श्रीदेवीजी बोली कि–हे लीले! ये पर्वत आदि सब परमार्थ घन (परमात्म) स्वरूपहैं, उसमें केवल विवर्त मात्रहै, ऐसेही परमार्थ घन ये वृक्ष पृथिवी और आकाशभी है ॥ ४५ ॥ परमाकाश शुद्धरूप ईश्वर सर्वात्मक होनेसे जहां जैसे २ जिस रूपसे विवर्तभावको प्राप्त होताहै वहां २ वैसाही होजाताहै ॥ ४६ ॥ सृष्टिकी आदिमें वही ईश्वर स्वप्नके संकल्प करनेवाले पुरुषकी रीतिसे समष्टि जीवरूप आदि प्रजापति होके रचनीय पदार्थोंके संकल्परूपसे भूःभुवर आदि लोक विवर्तरूपसे जैसा स्फुरित होताहै वैसा प्रकाशरूपसे अद्यावधि स्थितहै ॥ ४७ ॥ यह ईश्वर जो अपने संकल्पसे विवर्तभावको प्राप्त हुआहै, यह प्रथम विवर्त सम्पूर्ण पदार्थोंका विम्बरूपहै, इस बिम्बरूप प्रथम प्रजापतिसे जो कुछ प्रतिविम्बित हुआहै, वह अद्यावधि वैसाही स्थितहै, इससे संकल्पजनित सत्ताको संकल्प करनेवालेसे पृथक् माननेसेभी प्रतिबिम्बके तुल्य मिथ्याही है ॥ ४८ ॥

यत्रामसुषिरस्थानंदेहानांतद्गतोनिलः ॥ करोत्यंगपरिस्पंदंजीवतीत्युच्यतेततः ॥ ४९ ॥ सर्गादावेवमे वेषाजंगमेषुस्थितास्थितिः ॥ चेतनाअपिनिस्पंदास्तेनैतेपादपादयः ॥ ५० ॥ चिदाकाशोयमेवांशंकु रुतेचेतनोदितम् ॥ सएवसंविद्भवतिशेषंभवतिनैवतत् ॥ ५१ ॥ नरोपाधिपुरंप्राप्तंचेतत्यक्षिपुरंनयत् ॥ तत्तस्यानाक्षिविज्जीवंनोजीवत्येवसर्गतः ॥ ५२ ॥

अर्थ—जो देहोंमें छिद्र स्थानहैं, वहां प्राप्त चेतन वायुरूप होके सब अंगोंको चेष्टित करताहै, उसीसे प्राणी जीताहै ऐसा कहतेहैं ॥ ४९ ॥ सृष्टिकी आदिसेही जंगम पदार्थोंमें छिद्र होनेसे यह चेष्टा करनेकी मर्य्यादा स्थितहै और वृक्ष आदिमें चेतनता रहतेभी इसीकारणसे वे चेष्टा रहितहैं ॥ ५० ॥ वह चिदाकाश चेतन ईश्वर बुद्धिरूप उपाधिमें प्रतिविम्बित होनेसे अंशके समान आविर्भूत औपाधिक जीवका विभाग करताहै, और वही बुद्धिमें उपहित अंशसहित चेतन होजाताहै, और शेष पदार्थ मेरा अध्यारोपित होनेसेभी बुद्धि उपाधि न होनेसेभी अचेतन होताहै ॥ ५१ ॥ वह बुद्धिमें उपहित रूपसे प्रविष्ट चिदाकाश बुद्धिके निमित्तसे मनुष्य आदिके शरीररूपी नगरमें प्राप्त होके अपनी उपाधिभूत बुद्धिको नेत्र आदि ज्ञानेन्द्रियोंके गोलकादि स्थानोंमें प्राप्त करता हुआ, चाक्षुष आदि बुद्धि वृत्तियोंके द्वारा बाह्यरूप आदि पदार्थोंको साक्षात्कार करताहै, और नेत्र आदि स्वतः चेतनता नहीं है, क्योंकि उनका केवल चेतनमें अध्यास मात्रहै, उनमें बुद्धिरूप शुद्ध उपाधिन होनेसे चेतनता नहीं है, किन्तु केवल कार्य्य लेनेके अर्थ उनमें बुद्धिके उपहित चेतनकेद्वारा ज्ञानशक्ति आजातीहै, और रूपादिका विवेक करनेवाला तो बुद्धिमें उपहित चेतनही है, यह मर्य्यादा सृष्टिके क्रमसेहै, अन्यथा घटादिमेंभी जीवनका प्रसंग होजायगा ॥ ५२ ॥

तथाखंखंतथाभूमिर्भूमित्वेनाप्स्ववज्जलम् ॥ यद्यथाचेततिस्वैरंतद्वेत्त्येवतथावपुः ॥ ५३ ॥ इतिसर्वशरी रेणजंगमत्वेनजंगमम् ॥ स्थावरंस्थावरत्वेनसर्वात्माभावयन्स्थितः ॥ ५४ ॥ तस्माद्यज्जंगमंनामत त्स्वबोधनरूपवत् ॥ तेनबुद्धंततस्तद्वत्तदेवाद्यापिसंस्थितम् ॥ ५५ ॥ यद्वृक्षाभिधमाबुद्धंस्थावरत्वेन वैपुनः ॥ जडगत्यापिसंसिद्धंशिलातरुतृणादिच ॥ ५६ ॥

अर्थ—अन्यपदार्थोंकी सत्ताके बल उसके संकल्पसे है, जैसे आकाश उसके संकल्पसे अवकाश देनेवाला शून्यशक्ति सहित है, और पृथिवी सब पदार्थोंके धारण शक्ति सहित, और जल सब पदार्थोंके गिला करनेकी शक्ति सहित स्थितहै, इसीप्रकार जहां जिस पदार्थका अपनी इच्छासे संकल्प करताहै, वहां वैसाही शरीर धारण कर लेताहै ॥ ५३ ॥ इसप्रकार सर्व शरीरमय होनेसे जहां जंगमका संकल्प करता है वहां तत्काल जंगम और जहां स्थावरका तहां स्थावररूपसे विवर्तभावको प्राप्त होता हुआ वह प्रभु स्थितहै ॥ ५४ ॥ इस कारणसे जो जंगम रूपहैं, वह निजबोधरूप जैसा विवर्तभावको प्राप्त हुआ है वैसाही अद्यपर्य्यन्त स्थितहै ॥ ५५ ॥ और जो वृक्ष आदिरूपसे वह विवर्तभावमें स्फुरित हुआ है, वह स्थावर नामसे प्रसिद्ध है, और वह उसको भावनासे सिद्ध जड शिला वृक्ष, और तृणादि रूपसे स्थित है ॥ ५६ ॥

नतुजाड्यंपृथक्किंचिदस्तिनापिचचेतनम् ॥ नात्रभेदोस्तिसर्गादौसत्तासामान्यकेनच ॥ ५७ ॥ वृक्षाणा मुपलानांयानामांतःस्थाःस्वसंविदः ॥ बुद्ध्यादिविहितान्येवतानितेषामितिस्थितिः ॥ ५८ ॥ विदोंतः

स्थावरादेर्यास्तस्याबुद्धयास्तथास्थिते: ॥ अन्याभिधानास्थानार्थाःसंकेतैरपरैःस्थिताः॥ ५९ ॥ कृमि कीटपतंगानांयानामांतःसखंविदः ॥ तान्येवतेषांबुद्धयादीन्यभिधार्थानिकानिचित् ॥ ६० ॥

अर्थ—यथार्थ दृष्टिमें जड और चेतन कोई पृथक् पदार्थ नहीं है, इस सम्पूर्ण पदार्थ समूहमें सृष्टि स्थिति और प्रलयके विषयमें सामान्य सत्तामें कोई भेद नहीं है, अर्थात् चेतन सत्ता सर्वत्र व्याप्त है ॥ ५७ ॥ कदाचित् कहो कि यदि सब कुछ चित् एकरसहै तो उसके विरुद्ध जड नामरूपका अनुभव सब पदार्थोंका क्यों होता है, सो इस प्रकार है कि वृक्षों या पर्वतोंका अन्तस्थ जो प्रत्यक् चेतनहै उसमें अध्यस्त जो बुद्धि है, उसीसे इन सबके नाम रूप कल्पित हैं, यही उनकी रहस्य स्थिति है ॥ ५८ ॥ स्थावरादि पदार्थोंका जो प्रत्यक् साक्षी चेतन है, उसमें अध्यस्त बुद्धि, उसका उपहित चेतन जो है वही मैं स्थावरहुं इत्यादि व्यवस्थित रूपसे स्थित होनेसे जंगमोंसे अन्य नाम तथा अभिमानके विषयाभूत जो अर्थहैं, वे वृक्ष पर्वत इत्यादि अन्य २ शब्दके संकेतोंसे स्थितहैं ॥ ५९ ॥ इन्हीं जंगमोंमें कृमि (कीडे) कीट पतंग आदिका जो प्रत्यक् चेतनहैं, उसमें अध्यस्त बुद्धिने, उनके उन्हीं नाम और रूपसहित अर्थोंकी कल्पना करली है ॥ ६० ॥

यथोत्तराब्धिजनतादक्षिणाब्धिजनंस्थितम् ॥ नकिंचिदपिजानातिनिजसंवेदनादृते ॥ ६१ ॥ स्वसंज्ञानुभवेलीनास्तथास्थावरजंगमाः ॥ परस्परंयदासंवेस्वसंकेतपरायणाः ॥ ६२ ॥ यथाशिलांतःसंस्थानांबहिष्ठानांचवेदनम् ॥ असज्जडंचभेकानांमिथोंतस्तस्थुषांतथा ॥ ६३ ॥ सर्वसर्वगतंचितंचिद्व्योम्नायत्प्रचेतितम् ॥ सर्गादौचोपनंवायुःसइहाद्यापिसंस्थितः ॥ ६४ ॥

अर्थ—जिसप्रकार समुद्रके उत्तर तटपर स्थित जनसमूह दक्षिण तटपर स्थित मनुष्योंको अपने अनुभवसे व्यतिरिक्त कुछभी नहीं जानते ॥ ६१ ॥ इसीप्रकार स्थावर जंगम अपने प्रत्यक् साक्षी चेतनके अनुभवमें लीनहैं, अर्थात् अन्य बुद्धि कल्पित कुछ नहीं जानतेहैं, और मिलेहुये व्यवहारमें परस्परके संकेतकी आकांक्षा रखतेहैं ॥ ६२ ॥ जैसे शिलाके अन्तर और बाह्यदेशमें स्थित मण्डूकोंको, असत् और परस्पर संवेदन होताहै, ऐसेही स्थावरोंकाभी है ॥ ६३ ॥ जैसे यह दृष्टान्तहै ऐसे प्रलयकालमें सर्वात्मक सर्वगत समष्टिरूप चित्त मायाके अन्तर्गत होके उसमें लीन रहताहै, वह जगत्का सूक्ष्मरूपहै, उसको सबके प्रत्यक् साक्षिचेतन चिदाकाशमें सृष्टिकी आदिमें जिसको जिसरूपसे अनुभव कियाहै जैसे वायुमें गति वह यहांभी अद्यपर्य्यन्त वैसाही स्थितहै ॥ ६४ ॥

चेतितंयत्तुसौषिर्यंतन्नभस्तत्रमारुतः ॥ स्पंदात्मेत्यादिसर्गेहाःपदार्थेष्विवचोपनम् ॥ ६५ ॥ चित्तंतु परमार्थेनस्थावरेजंगमेस्थितम् ॥ चोपनान्यनिलैरेवभवंतिनभवंतिच ॥ ६६ ॥ एवंभ्रांतिमयेविश्वेपदार्थाःसंविदंशवः ॥ सर्गादिषुयथैवासंस्तथैवाद्यापिसंस्थिताः ॥ ६७ ॥ यथाविश्वपदार्थानांस्वभावस्य विजृंभितम् ॥ असत्यमेवसत्याभंतदेतत्कथितंतव ॥ ६८ ॥

अर्थ—जो यह छिद्ररूपसे विवर्त हुआ वह आकाश होगया और उसमें सर्व क्रिया करनेकी शक्तिवाला वायु स्थितहै, और सब वस्तुओंके संचलका हेतुयों है, जैसे शुष्क तृणपत्र आदि पदार्थोंके संचालनका ॥ ६५ ॥ यद्यपि यह चित्त (सामान्य चित्त, सत्ता सहित चित्त) परमार्थ दृष्टिसे स्थावर जंगम सबमें एक रूपसे स्थित है परन्तु चेष्टायें प्राणआदि पवनोंसे जंगमोंमें होती हैं, और स्थावरमें नहीं ॥ ६६ ॥ हे लीले ! इसप्रकार इस भ्रान्तिमय जगत्में चेतनके किरणरूपसे सम्पूर्ण पदार्थ सृष्टिकी आदिमें जिस रूपसे स्फुरित थे, वैसेही अबभी स्थितहैं, इन सब पूर्वोक्त बातोंमें ईश्वरकी नियतिही कारण है ॥ ६७ ॥ हे लीले ! जिस प्रकार इस विश्वपदार्थोंका स्वभाव यथार्थमें असत्यही सत्यसमान वृद्धिको प्राप्त है वह मैंने तुमसे कह दिया ॥ ६८ ॥

अयमस्तंगतःप्रायःपश्यराजाविदूरथः ॥ मालाशवस्यपद्मस्यपत्युस्तेयातिहृद्गतम् ॥ ६९ ॥ प्रबुद्धलीलोवाच ॥ केनमार्गेणदेवेशियात्येषशवमंडपम् ॥ एनमेवाशुपश्यंत्यावावांगच्छावउत्तमे ॥ ७० ॥ ॥श्रीदेव्युवाच॥ मनुष्यवासनांतस्थंमार्गमाश्रित्यगच्छति ॥ एषोहमपरंलोकंदूरंयामीतिचिन्मयः ७१ मार्गेणैवमनेनैवयावस्तेयेनसंमतम् ॥ परस्परेच्छाविच्छित्तिर्नहिसौहार्दबंधनी ॥७२॥ श्रीवसिष्ठउवाच॥ इतिविहितकथागतक्रमायांपरमदृशिप्रसृतेविबोधभानौ ॥ नृपतिवरसुतामनस्युदारेविगलितचित्तजडोविदूरथोभूत् ॥ ७३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने संसारमरणावस्थावर्णनं नाम पंचपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५५ ॥

अर्थ—अब देखो यह राजा विदूरथ मृतक प्राय (मरनेके समीप) होगया और यह अब पुष्पोंकी मालामें जो तुमारे पति पद्मका मृतक शरीर है, उसके हृदयमें प्रवेश करनेको इच्छासे जाताहै॥६९॥ प्रबुद्धलीलाजी बोली कि-

हे देवताओंकी स्वामिनि देवि ! यह मेरे पतिका जीव किस मार्गसे शवमण्डपमें जाता है आओ इसको देखते हुये शीघ्र उसी मार्गसे चलें ॥ ७० ॥ श्रीदेवीजी बोली—हे लीले ! यह विदूरथका जीव मनुष्य वासनाका अर्थात् पद्मके शरीरमें अहं वासनाके मार्गका आश्रय लेके यह चिन्मय विदूरथका जीव मैं यह दूसरे लोकमें जाताहुं ऐसी बुद्धिसे जाता है ॥ ७१ ॥ आओ इसी मार्गसे चले, जो तुमको इष्ट है, क्योंकि परस्पर इच्छाका विरोध करना यह मित्रताका हेतु नहीं होता ॥ ७२ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि-हे रामजी ! श्रेष्ठ राजाकी कन्या जो लीला है उसके विशुद्ध चित्तमें शुद्ध परमार्थ आत्मतत्त्व दृष्टि स्फुरित होनेसे सम्पूर्ण सन्तापकी शान्तिद्वारा विवेक (ज्ञान) रूपी सूर्य्यके उदय होनेपर राजा विदूरथ प्राज्ञ आत्मामें लीन होनेसे जड अर्थात् मरणार्थ मूर्छित दशामें प्राप्त होगया ॥ ७३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे लीलोपाख्याने संसारमरणावस्था वर्णनं नाम पंचपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५५ ॥

षट्पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५६ ॥

इस ५६ वे सर्गमें उस राजाके जीवकी वासनासे यमपुरीमें गमन और लीला और भगवतीका उसके पीछे चलना और यमपुरमें उससे पूर्वही पहुंचना इत्यादि विषयका वर्णन कियागया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एतस्मिन्नंतरेराजापरिवृत्ताक्षितारकः ॥ बभूवैकतनुप्राणशेषःशुष्कसिताधरः॥१ जीर्णपर्णसवर्णाभःक्षीणपांडुमुखच्छविः ॥ भृंगध्वनितसच्छायश्वासकूजाविकूणितः ॥ २ ॥ महाम रणमूर्छांधकूपेनिपतिताशयः ॥ अंतर्निलीननिःशेषनेत्रादींद्रियवृत्तिमान् ॥ ३ ॥ चित्रन्यस्तइवाकारसा त्रहश्योविचेतनः ॥ निःस्पंदसर्वावयवःसमुत्कीर्णइवोपले ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि—हे रामजी ! इस अवसरमें राजाके नेत्रतारका (आंखकी पुतलियां) उलट गईं, और ओष्ठ शुष्क होगये, केवल सूक्ष्म प्राण कुछ शरीरमें रहगये ॥ १ ॥ शरीरका रंग सूखे पत्तेके समान होगया, मुखकी छवि क्षीण तथा पीतवर्ण होगई, और भृंगकी ध्वनिके समान ऊर्ध्व श्वास घर्घर चलने लगे ॥ २ ॥ महामरणकी मूर्छाके अन्धकूपमें मानों गिरगया, और नेत्रआदि इन्द्रियोंकी वृत्तियां सब अन्तःकरणमें लीन होगई ॥ ३ ॥ चेतनारहित आकारके केवल चित्रमें लिखितके समान होगया, सम्पूर्ण शरीरके भाग ऐसे चेष्टारहित होगये जैसे पाषाणमें खुदी हुई मूर्तिके ॥ ४ ॥

बहुनात्रकिमुक्तेनतनुदेशेनतंजहौ ॥ प्राणःपिपतिषुर्वृक्षंस्वंपक्षीवांतरिक्षगः ॥ ५ ॥ तेतंददृशतुर्बालेदि व्यदृष्टीनभोगतम् ॥ जीवंप्राणमयींसंविद्गंधलेशमिवानिले ॥ ६ ॥ साजीवसंविद्गगनेवातेनमिलिता सती ॥ खेदूरंगंतुमारेभेवासनानुविधायिनी ॥ ७ ॥ तामेवानुससाराथस्त्रीद्वयंजीवसंविदम् ॥ भ्रमरी युगलंवातलग्नांगंधकलामिव ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! अब अधिक व्यर्थ है अल्प प्रदेशमेंही प्राणवायुने उस राजाके देहको ऐसे त्यागा जैसे अपने घोसलेके वृक्षपर बैठनेकी इच्छासे आकाशगामी पक्षी अपने पूर्वस्थानको ॥ ५ ॥ दिव्य दृष्टियुक्त उन दोनों ललनाओंने आकाशमें प्राप्त उस राजाके जीवको ऐसे देखा जैसे घ्राणइन्द्रिय जनित वृत्तियोंका उपहित चेतनवायुमें स्थित सूक्ष्म गन्धको ॥ ६ ॥ वह जीव चेतन आकाशमें सूक्ष्म प्राणसे मिलकर अपनी वासनाके अनुसार आकाशमें दूर देशमें जानेको आरम्भ किया ॥ ७ ॥ इसके पश्चात् उन दोनों दिव्य स्त्रियोंने, उसी जीव चेतनका अनुसरण ऐसे (पीछा) किया जैसे दो भ्रमरियोंका जोडा वायुमें संलग्न सूक्ष्म गन्धकी कलाका ॥ ८ ॥

ततोमुहूर्त्तमात्रेणशांतेमरणमूर्छने ॥ अंबरेबुबुधेसंविद्गंधलेखेनवायुना ॥ ९ ॥ अपश्यत्पुरुषाभ्यां नीयमानंचतैर्वपुः ॥ बंधुपिंडप्रदानेनशरीरंजातमात्मनः ॥ १० ॥ मार्गेकर्मफलोल्लासमतिदूरतरेस्थि तम् ॥ वैवस्वतपुरंप्रापजंतुभिःपरिवेष्टितम् ॥ ११॥ प्राप्तंवैवस्वतपुरमादिदेशततोयमः ॥ अस्यकर्मा ण्यशुभ्राणिनैवसंतिकदाचन ॥ १२ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर मुहूर्तमात्रमें जब मरणकी मूर्छा शान्त होगई तब आकाशमें जीव संवित् (जीवचेतन) स्वप्नके सदृश ऐसे जागृत होगया जैसे गन्धमात्रा सहित वायुसे घ्राण संवित् ॥ ९ ॥ उस जीवने यमराजके दूतोंको

देखा, किये मेरे शरीरको लिये जाते हैं, तथा यहभी अनुभव किया कि बन्धुओंके पिण्डदान आदि क्रियाओंसे मेरा नूतन शरीर उत्पन्न होगया है ॥ १० ॥ अति दूर संवत्सरमें जानके दक्षिणमार्गमें स्थित अनेक कर्मोंके फलोंको प्रकट करनेवाला, और बहुतसे प्राणियोंसे घिरा हुआ जो यमराजका नगर है वहां राजाका जीव प्राप्त हुआ ॥ ११ ॥ जब यमराजके नगरको पहुंचा, तब यमराजने इसके कर्मोंका विचार करके कहा कि इसके अशुभ पापमय कर्म कोईभी नहीं है ॥ १२ ॥

नित्यमेवावदातानांकर्तायंशुभकर्मणाम् ॥ भगवत्याःसरस्वत्यावरेणायंविवर्द्धितः ॥ १३ ॥ प्राक्तनोऽस्य शवीभूतोदेहोऽस्तिकुसुमांबरे ॥ प्रविशत्वेषतंगत्वात्यज्यतामितिचेतसा ॥ १४ ॥ ततस्त्यक्तोनभोमार्गे यंत्रोपलइवच्युतः ॥ अथजीवकलालीलाज्ञप्तिश्चेतित्रयंनभः ॥ १५ ॥ पुप्लुवेजीवलेखात्वरूपिण्यौतेनप श्यति ॥ तामेवानुसरंत्यौतेसमुल्लंघ्यनभस्तलम् ॥ १६ ॥

अर्थ—यमराजने आज्ञा दिया कि यह सदा लोभादि दोषोंसे रहित शुभ कर्मोंका करनेवाला है, और भगवती सरस्वतीके वरदानसे वृद्धिको प्राप्त हुआ है ॥ १३ ॥ इस मेरे कथनके अभिप्रायसे हे दूतलोग इस राजाके जीवको छोडदो और इसका पूर्वजन्मका मृतक देह पुष्पोंसे वेष्टित गृहाकाशमें है, वहां जाके यह प्रवेश करै, यहांपर लीला और सरस्वती अन्तर्धान होके, सब बातें देखरहीं थीं ॥ १४ ॥ इसके अनन्तर पाषाण फेंकनेवाले यन्त्रसे पाषाणके तुल्य वह आकाशमार्गमें छोडागया, इसके अनन्तर राजाके जीवकी कला, लीला और सरस्वती, ये तीनों आकाशमार्गसे ॥ १५ ॥ उडे और लीला तथा भगवती यद्यपि रूपसहित थे परन्तु वह जीवकला उनकी नहीं देखतीथी, और वे दोनों उसको देखती हुई और उसीके पीछे गमन करती हुई आकाश तलका उल्लंघन करके ॥ १६ ॥

लोकांतराण्यतीत्याशुविनिर्गत्यजगद्गृहात् ॥ द्वितीयंजगदासाद्यःभूमंडलमुपेत्यच ॥ १७ ॥ तेद्वेसंकल्प रूपिण्यौसंगतेजीवलेखया ॥ पद्मराजपुरंप्राप्यलीलांतःपुरमंडपम् ॥ १८ ॥ क्षणाद्विविशतुःस्वैरंवातले खायथांबुजम् ॥ सूर्यभासोयथांभोजंसुरभिःपवनंयथा ॥ १९ ॥ श्रीरामउवाच ॥ ब्रह्मन्प्राप्तःकथमसौ शवस्यनिकटंगृहम् ॥ कथंतेनपरिज्ञातोमार्गोमृतशरीरिणा ॥ २० ॥

अर्थ—और अनेक लोकोंकाभी उल्लंघन करके, शीघ्रही उस ब्रह्माण्डसे निकलकर दूसरे ब्रह्माण्डमें पहुंची वहांसे भूमण्डलमें आकरके प्राप्त हुई ॥ १७ ॥ वहां भूमण्डलमें आकर संकल्परूप वे दोनों जीवकलाके साथ पद्मराजाके नगरमें प्राप्त होकर लीलाके अन्तःपुरमें ॥ १८ ॥ अपनी इच्छापूर्वक क्षणभरमें ऐसे प्रवेश किया जैसे वायुकी कलाकमलमें, सूर्य्यकी दीप्ति मझमें, और सुगन्ध वायुमें ॥ १९ ॥ श्रीरामजी बोले कि—हे ब्रह्मन्! वह जीव राजा पद्मके मृतक शरीरके निकट कैसे प्राप्त हुआ और मृतक शरीरवाले, उस जीवने मार्ग कैसे जाना ॥ २० ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ तस्यस्ववासनांतस्थशवस्यकिलराघव ॥ तत्सवैहृदन्तंकस्मान्नासौप्राप्नोतितद्गृहम् ॥ २१ ॥ भ्रांतिमात्रमसंख्येयंजगज्जीवकणोदरे ॥ वटधानातरुमिवस्थितंकोवानपश्यति ॥ २२ ॥ यथा जीवद्वपूर्बीजमंकुरंहृदिपश्यति ॥ स्वभावभूतंचिदणुस्त्रैलोक्यनिचयंतथा ॥ २३ ॥ नरोयथैकदेशस्थोदूर देशांतरस्थितम् ॥ संपश्यतिनिधानंस्वंमनसानारतंसदा ॥ २४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि—हे रामजी! उस जीवकी वासनामें राजा पद्मके शरीरमें अहंभाव स्थित था इसलिये मार्ग आदि उसके हृदयमें स्फुरित होरहाथा, तो भला वह उस गृहको क्यों न प्राप्तहो ॥ २१ ॥ हे रामजी! जीवकी उपाधिरूप सूक्ष्म अन्तःकरणमें ये भ्रान्तिमय असंख्यात जगत् ऐसे स्थितहैं जैसे वटके सूक्ष्म बीजमें महान् वृक्ष, तो भला उसको कौन जीव नहीं देखता ॥ २२ ॥ जिसप्रकार अखण्डित शरीर (तुष आदि जिसके न निकलेहों) वाला वटबीज अपनेमें जल मृत्तिकादि सब सामग्री प्राप्त होनेपर अंकुरका अनुभव करताहै, इसीप्रकार अपने स्वभावसे उत्पन्न त्रैलोक्य समूहको चिदाकाश देखताहै, अर्थात् ज्ञान वा अज्ञान इनमेंसे एकके व्यवधानसे सम्पूर्ण जगत् साक्षी भास्यहै (साक्षी चेतनसे प्रकाशित होताहै) ॥ २३ ॥ जैसे देशके किसी एक देशमें स्थित मनुष्य दूरदेशमें अभी अपने गडे हुये धनको मनसे निरन्तर सदा देखा करताहै ॥ २४ ॥

तथास्ववासनांतस्थमभीष्टंपरिपश्यति ॥ जीवोजातिशताढ्योपिभ्रमेपरिगतोपिसन् ॥ २५ ॥ श्रीरामउवाच ॥ भगवन्पिंडदानादिवासनारहिताकृतिः ॥ कीदृक्संपद्यतेजावःपिंडोयस्मैनदीयते ॥ २६ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ पिंडोथदीयतेमावापिंडोदत्तोममेतिचेत् ॥ वासनाहृदिसंरूढातत्पिंडफलभाङ्नरः ॥ २७ ॥ यच्चित्तंतन्मयोजंतुर्भवतीत्यनुभूतयः ॥ सदेहेषुविदेहेषुनभवत्यन्यथाक्वचित् ॥ २८ ॥

अर्थ—उसीप्रकार यह जीव सैकडों जातिसे पूर्ण और भ्रममें प्राप्तभी हो परन्तु अपनी वासनाके अन्तः स्थित अभीष्ट पदार्थको भलीभांति देखताहै ॥ २५ ॥ श्रीरामजी बोले—भगवन् जिसको पिण्डदान नहीं दिया जाता वह पिण्डकी वासनासे रहित जीव शरीर किसप्रकार पाताहै, क्योंकि प्रथम यह कहा कि विदूरथने बन्धुओंके पिण्डदानसे अपने शरीरको उत्पन्न देखा और पिण्डदान सबका होनहीं सकता ॥ २६ ॥ श्रीवशिष्ठजी बोले—हे रामजी! पिण्ड दिया जाय वा नहीं परन्तु जिसके हृदयमें यह वासना दृढहै कि मुझे पिण्डदान दियागया वह मनुष्य पिण्डदानके फलका भागी अवश्य होगा ॥ २७ ॥ क्योंकि जैसा चित्तहै वैसाही प्राणी होताहै, ऐसा विद्वानोंका अनुभवहै चाहै देहरहितहो वा देहसहितहो परन्तु यह वार्ता अन्यथा कदाचित् नहीं होती ॥ २८ ॥

सपिंडोस्मीतिसंवित्त्यानिष्पिंडोपिसपिंडवान् ॥ निष्पिंडोस्मीतिसंवित्त्यासपिंडोपिनपिंडवान् ॥ २९ ॥ यथाभावनमेतेषांपदार्थानांहिसत्यता ॥ भावनाचपदार्थेभ्यःकारणेभ्यउदेतिहि ॥३०॥ यथावासनयाजंतोर्विषमप्यमृतायते ॥ असत्यःसत्यतामेतिपदार्थोभावनात्तथा ॥ ३१ ॥ कारणेनविनोदेतिनकदाकस्यचित् ॥ भावनाकाचिदपिनोइतिनिश्चयवान्भव ॥ ३२ ॥

अर्थ—मैं पिण्डसहितहुं ऐसे ज्ञानसे पिण्डरहितभी सपिण्ड होजाताहै और मैं पिण्डरहितहुं ऐसे विश्वासे पिंडसहितभी पिण्डरहित होजाताहै॥२९॥हे रामजी! इन सब पदार्थोंकी सत्यता भावनाके अनुसारही है, परन्तु भावना पदार्थोंसे और कारणोंसे होतीहै, अर्थात् शास्त्रकृत विशेषता यहहै कि बन्धुओंके पिण्डदान देनेसे मृतक पुरुषको मुझे दान दिया गया यह भावना अवश्य उदय होतीहै, इसलिये दृढभावनाके अर्थ शास्त्रोक्त कार्य्य अवश्य करना चाहिये ॥ ३० ॥ जिसप्रकार वासनासे प्राणिको विषभी अमृतके तुल्य होजाताहै अर्थात् गरुडउपासकको गरुडमें अहंभावना करनेसे विषका प्रभाव नहीं होता, वैसे असत्य कण्टकादिसे विद्ध मनुष्यको यदि सर्पदंश (काटने) की भ्रान्ति होतीहैं तो उस पदार्थकी भावनासे मृत्युपर्य्यन्तकी भ्रान्ति होजातीहै, यही असत्यका सत्यवत् भासनाहै ॥ ३१ ॥ कारणके विना कोई कार्य्य कभी किसीको नहीं होता तो जगत् कारण जो भावनाहै वह यथार्थमें कुछ नहीं है, इसलिये सत्य कारणके विना कार्य्य समूह मिथ्याहै केवल शुद्ध चिन्मात्र ब्रह्महीहै, हे रामजी! तुम ऐसा निश्चय करो ॥ ३२ ॥

कारणेनविनाकार्यमामहाप्रलयंक्वचित् ॥ नदृष्टंनश्रुतंकिंचित्स्वयंत्वेकोदयादृते ॥ ३३ ॥ चिदेवचासनासैवधत्तेस्वप्नइवार्थताम् ॥ कार्यकारणतांयातिसैवागत्येवतिष्ठति ॥ ३४ ॥ श्रीरामउवाच ॥ धर्मोनास्तिममेत्येवयःप्रेतोवासनान्वितः ॥ तस्यचेत्सुहृदाभूरिधर्मःकृत्वासमर्पितः ॥ ३५ ॥ तत्तदात्रसकिंधर्मोनष्टःस्याद्भुतवानवा ॥ सत्यार्थावाप्यसत्यार्थाभावनाकिंबलाधिका ॥ ३६ ॥

अर्थ—यदि कदाचित् कहो कि कारणके विनाही जगत्कार्य्य है सो नहीं क्योंकि स्वयंप्रकाश ब्रह्मके सिवाय महाप्रलयसे लेके आजतक कोई कार्य्य कहीं न देखा न सुना ॥ ३३ ॥ इसप्रकार शुद्ध चिन्मात्रही भ्रान्तिसे वासनादि जगत् रूपसे भासताहै और वही चेतन जैसे स्वप्नमें पदार्थोंका आकार धारणकर लेताहै वैसेही स्वयं कार्य्यकारण भाव होके स्थित होताहै यह सिद्धान्तहै ॥ ३४ ॥ श्रीरामजी बोले—कि हे भगवन्! मेरे लिये पिण्डदान आदिको धर्म नहीं है, ऐसी वासना सहित जो प्रेत मेरे उसके लिये यदि उसके पुत्रादि सुहृत जनोंने धर्म जानके अधिक पिंडदानादि समर्प्पण किया ॥ ३५ ॥ तो वह धर्म प्रेतकी वासनाके अनुसार निष्फल होगा वा सुहृतकी वासनाके अनुसार फल होगा, इसमें सुहृदकी वासना तो धर्म होनेसे सत्यहै और प्रेतकी वासना तो असत्य प्रत्यक्षही है अब इनमें भोक्ता जो प्रेतहै उसकी वासना प्रबलहै वा सुहृदकी सत्यार्थ विषयिणी प्रबलहै यदि प्रेतकी वासना प्रबल मानों तो कृतपुण्य धर्मकी हानि और यदि सुहृदकी वासना प्रबलहै तो अर्थकी सत्यता हुई भावना कुछ नहीं ॥ ३६ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ देशकालक्रियाद्रव्यसंपत्त्योदेतिभावना ॥ यत्रैवाभ्युदितासास्यात्तद्द्वयोरधिकोजयी ॥ ३७ ॥ धर्मदातुःप्रवृत्ताचेद्वासनातत्तयाक्रमात् ॥ आपूर्यतेप्रेतमतिर्नचेत्प्रेतधियाशुभा ॥ ३८ ॥ एवंपरस्परजयाजयत्यत्रातिवीर्यवान् ॥ तस्माच्छुभेनयत्नेनशुभाभ्यासमुदाहरेत् ॥ ३९ ॥ श्रीरामउवाच ॥ देशकालादिनाब्रह्मन्वासनासमुदेतिचेत् ॥ तन्महाकल्पसर्गादौदेशकालादयःकुतः ॥ ४० ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी! शास्त्रोक्त देश कालादिमें विधिपूर्वक अनुष्ठानसे शास्त्रके अनुसार जो सुहृदकी वासनाहै वह शास्त्रके प्रमाणसे प्रबलहै, क्योंकि यथोक्त क्रिया द्रव्यादिकी सम्पत्तिसे वह उदय हुई है, और वह भावना जिसफलरूप विषयमें अभ्युदित हुई है, वही विषय दोनोंमें विजयी होकर होताहै ॥ ३७ ॥ धर्म दान (पिण्डदानादि) करनेवालेकी जैसी वासना प्रवृत्त होती है, कि मैं अमुकका पुत्र, अमुकके लिये पिण्डादि देताहूं, तो शास्त्रके प्रमाण केवलसे प्रेतके अन्तःकरणमें सुहृदकी वासनाके क्रमसे ऐसी वासना उत्पन्न होतीहै कि मैं ऐसा

धर्मवानहूं, यदि वेदादिके द्वेषसे नास्तिकताके कारणसे प्रेतकी बुद्धिसे वह वासना दूषित नहो, क्योंकि वासना दूषित बुद्धिवाले प्रेतको पुत्रादि सुहृत् कृतधर्म आदिके फलकी प्राप्ति नहीं होती ॥ ३८ ॥ इसप्रकार परस्पर एक दूसरेके ऊपर बिजयी होनेसे जो अधिक बलवान् होताहै वही यहां जयपाताहै यह पूर्वमेंभी कह आयेहैं इसलिये प्रयत्नसे सदा शुभकार्य्यकाही बार २ अभ्यास करना अत्यावसकहै ॥ ३९ ॥ श्रीरामजी बोले—हे ब्रह्मन् ! यदि देकशालादि सहकारी कारणोंसे वासनाका उदय होताहै तो महाकल्पमें "सदेव सौम्येदमग्र आसीत्। एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म" (हे सौम्य श्वेतको तो सृष्टिके प्रथम केवल एक अद्वितीय सत् परमात्माही था) इत्यादि श्रुतियोंसे देशकालादि सहकारी कारण कहां है उनके न होनेसे वासनाका अभाव और वासनाके अभावसे जगत्की उत्पत्तिका अभाव हुआ ॥ ४० ॥

कारणेसमुदेतीदंतैस्तदासहकारिभिः ॥ सहकारिकारणानामभावेवासनाकुतः ॥ ४१ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवमेतन्महाबाहोसत्यात्मन्नकदाचन ॥ महाप्रलयसर्गादौदेशकालौनकौचन ॥ ४२ ॥ सहकारिकारणानामभावेसतिदृश्यधीः ॥ नेयमस्तिनचोत्पन्नानवस्फुरतिकाचन ॥ ४३ ॥ दृश्यस्यासंभवादेवाकिंचिद्यद्दृश्यतेत्विदम् ॥ तद्ब्रह्मैवस्वचिद्रूपंस्थितमित्थमनामयम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—वासनादिरूप कार्य्योंका उदय सहकारी कारण देशकालादिके होनेसे होताहै, और सहकारी कारणोंके अभावसे वासना कहांसे होसकती है ॥ ४१ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे महाबाहो रामजी ! जैसा तुम कहतेहो वैसाही हैं, महाप्रलयमें तथा सृष्टिकी आदिमें सबका पूर्वभूत परमार्थ सत्य आत्मस्वरूपमें देशकाल कुछभी नहीं हैं और यही वेदान्तोंका सिद्धान्त है "न निरोधोनचोत्पत्तिः" अर्थात् आदेशो नेति नेति (न संसारका नाश है और न उत्पत्ति है) अब तुमारे लिये यह उपदेश है कि जो कुछ यह दृश्यरूप है वह कुछ नहीं, किन्तु अन्तमें शेष केवल परमात्माही है इत्यादि श्रुति स्मृतिसे सबका तात्पर्य्य आत्मस्वरूपकेही बोध करानेमें है ॥ ४२ ॥ हे रामजी ! सहकारि कारणोंके अभावसे यह दृश्य बुद्धि जो हो रही है, यह यथार्थमें न है, न उत्पन्न हुई, और न तत्ववेत्ताओंकी दृष्टिसे वास्तविकमें स्फुरित होती है ॥ ४३ ॥ दृश्यके असम्भव होनेसे यह जो कुछ देख पडताहै, यह स्वयं चित्रूप अनामय ब्रह्मही इसी प्रकारसे स्थित है ॥ ४४ ॥

एतच्चाग्रेयुक्तिशतैःकथयिष्यामएवते ॥ एतदर्थंप्रयत्नोयंवर्त्तमानकथांशृणु ॥४५॥ एवंदृष्टशवुःप्राप्तेमंदिरंसुंदरोदरम् ॥ कीर्णपुष्पोपहारेणवसंतमिवशीतलम् ॥४६॥ प्रशांताचारसंरंभराजधान्यासमन्वितम् ॥ मंदारकुंदमाल्यादिशवंतत्रसमंस्थितम् ॥ ४७॥ मंदारकुंदस्रग्दामवृतांबरबृहच्छवम् ॥ शवशय्याशिरःस्थाग्र्यपूर्णकुंभादिमंगलम् ॥ ४८ ॥ अनिवृत्तगृहद्वारगवाक्षकठिनार्गलम् ॥ प्रशाम्यद्दीपकालोकश्यामलामलभित्तिकम् ॥ गृहैकदेशसंसुप्तमुखश्वाससमीकृतम् ॥ ४९ ॥ संपूर्णचंद्रसकलोदयकांतिकांतसौंदर्यनिर्जितपुरंदरमंदिरर्द्धि ॥ वैरंचपद्ममुकुलांतरचारुशोभंनिःशब्दमंदसिवनिर्मलमिंदुकांतम् ॥ ५० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने मरणशयनानंतरप्रेतव्यवस्थानामषट्पंचाशः सर्गः ॥ ५६ ॥

अर्थ—यह वार्ता तुमको आगे हम सैकडो युक्तियोंसे कहेंगे, इसी वार्ताके समझानेके लिये यह सब प्रयत्न है अब तुम वर्तमान कथाको श्रवण करो ॥ ४५ ॥ हे रामजी ! इसप्रकार पूर्वोक्त रीतिसे राजा पद्मके नगरमें भगवती और लीला दोनों प्राप्त होके सुन्दर अन्तरालयुक्त, और पुष्पोंके उपहारसे आच्छादित वसन्तऋतुके समान शीतल, प्रशान्त तथा राजकार्य्यके उद्योगमें निमग्न राजधानीस्थ मनुष्योंसे सेवित, राजापद्मके मन्दिरको देखा, और मन्दार तथा कुन्दोंके माल्य आदिसे आच्छादित, वहां स्थित, राजा पद्मके मृतक शरीरकोभी देखा ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ और जहांपर मन्दार तथा कुन्दआदिकी मालाओंसे और उत्तम वस्त्रोंसे, आच्छादित राजापद्मका महान् मृतक शरीर स्थित था और मृतक शरीरकी शय्याको शिरस्थानमें उत्तम पूर्ण कुम्भादि मंगल द्रव्य स्थित थे ॥४८॥ और जहांपर बडे २ दरवाजेके तथा झरोखोंके दृढ फाटक तथा छोटी केवाडे बन्द थी और जहां दीपकोंके प्रकाशके मलिन होनेसे स्वतः निर्मल भित्ति श्यामताको प्राप्त हो रही थीं और गृहके एक देशमें सुप्तमनुष्यके मुखश्वाससे वह गृह व्याप्तथा ॥ ४९ ॥ इसप्रकार सोलह कलासहित पूर्ण चन्द्रोदयकी शोभासे अतिरमणीय तथा सुन्दरतासे इन्द्रके मंदिरकी संपत्तिकोभी जीतनेवाला, और भीतरसे ब्रह्माजीके आलय श्रीभगवान्के नाभिकमलके गर्भके सदृश उत्तम शोभायुक्त, शब्द रहित और चन्द्रमाके समान सुन्दर तथा निर्मल राजा पद्मके मन्दिरको दोनोंने देखा ॥ ५० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे लीलोपाख्याने मरणशयनानन्तर प्रेतव्यवस्थावर्णनं नाम षट्पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५६ ॥

सप्तपंचाशः सर्गः ॥ ५७ ॥

लीलाका दूसरी लीलाको देखना, देहका मिथ्यात्व, और योगियोंके शरीरकी सूक्ष्मताका उदय इस ५७ वें सर्गमें वर्णितहैं ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ततोददृशतुस्तत्रशवशय्यैकपार्श्वगाम् ॥ लीलांविदूरथस्याग्रेमृतांतेप्रथमागताम् ॥ १ ॥ प्राग्वेषांप्राक्समाचारांप्राग्देहांप्राक्सवासनाम् ॥ प्राक्तनाकारसदृशींसर्वरूपांगसुंदरीम् ॥ २ ॥ प्राग्रूपावयवस्पंदांप्रागंबरपरीवृताम् ॥ प्रागभूषणभरच्छन्नांकेवलंतत्रसंस्थिताम् ॥ ३ ॥ गृहीतचामरांचारुवीजयंतींमहीपतिम् ॥ उद्यच्चंद्रामिवदिवंभूषयंतींमहीतलम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवशिष्टजी बोले–हे रामजी! वहांपर उन दोनोंने उस मृतककी शय्याके एक ओर विदूरथकी लीला जो प्रथम मरके पहिलेही यहां आगईथी उसको देखा ॥ १ ॥ हे रामजी! उस लीलाके वेष, आचार, देह, तथा वासना और वस्त्र, पूर्व विदूरथकी लीलाहीके सदृशथे और पूर्वकेही समान आकारवालीभी थी, तथा सर्वांगसुन्दरी थी ॥ २ ॥ पूर्वके सदृश और अंगोंकीभी चेष्टाथी, पूर्वकालमें जो वस्तु थे वेही वस्त्रभी धारण किये हुयेथी, और पूर्वके आभूषणोंके समूहसे आच्छादितथी केवल इतनाही भेदथा कि प्रथम विदूरथके राजभवनमेंथी, और अब राजा पद्मके राजभवनमें स्थितथी ॥ ३ ॥ यह लीला हस्तमें चामर लिये हुयेथी, और महीतलको ऐसा शोभितकरही थी जैसे उदयकालका चन्द्रमा ॥ ४ ॥

मौनस्थांवामहस्तस्थवदनेंदुतयानताम् ॥ भूषणांशुलतापुष्पैःफुल्लामिववनस्थलीम् ॥ ५ ॥ कुर्वाणां वीक्षितैर्दिक्षुमालत्युत्पलवर्षणम् ॥ सृजंतीमात्मलावण्यादिंदुभिर्विंभोदितम् ॥ ६ ॥ नरपालात्मनोविष्णोर्लक्ष्मीमिवसमागताम् ॥ उदितांपुष्पसंभारादिवपुष्पाकरश्रियम् ॥ ७ ॥ भर्त्तुर्वदनकेन्यस्तदृष्टिमिष्टविचेष्टिताम् ॥ किंचित्प्रम्लानवदनांम्लानचंद्रांनिशामिव ॥ ८ ॥

अर्थ—मौन धारण किये हुयेथी, वामहस्तमें मुखरूपी चन्द्रको धारण करनेसे कुछ नम्रथी, अर्थात् वामहस्तपर कपोल (गाल) रखके बैठीथी, और भूषणोंकी प्रभाओंसे ऐसी शोभित होरहीथी जैसे पत्र, लता, तथा पुष्पादिसे विकसित वनस्थली ॥ ५ ॥ और दिशाओंमें अपने नेत्रकटाक्षोंसे मानों मालती तथा कमलोंके पुष्पकी वृष्टि कररहीथी और अपनी सुन्दरतासे आकाशमें क्षयसे खण्डित अनेक चन्द्रमाओंकी मानों रचनाकर रहीथी ॥ ६ ॥ यह लीला राजा पद्मको ऐसे प्राप्त हुई जैसे भगवान्‌को लक्ष्मीजी और ऐसी शोभित होरहीथी जैसे पुष्पोंके समूहसे साक्षात् वसन्तकी लक्ष्मी ॥ ७ ॥ जिसकी इष्टसे विचेष्टित दृष्टि प्राणप्रिय पतिके मुखकमलकी ओर लगरहीथी और जिसका मुख कुछ ऐसा मलिन होरहाथा जैसे मलिन चन्द्रयुक्त रात्रि ॥ ८ ॥

ताभ्यांसाललनादृष्टातयातेतुनलक्षिते ॥ यस्मात्तेसत्यसंकल्पेसानतावत्तथोदिता ॥ ९ ॥ श्रीरामउवाच ॥ तस्मिन्प्रदेशेसापूर्वलीलासंस्थाप्यदेहकम् ॥ ध्यानेनज्ञप्तिसहितागताभूदितिवर्णितम् ॥ १० ॥ किमिदानींसलीलायादेहस्तत्रनवर्णितः ॥ किंसंपन्नःक्ववायातइतिमेकथयप्रभो ॥ ११ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ कासीलीलाशरीरंतत्कुतस्तस्यास्तिसत्यता ॥ केवलाभ्रांतिरेवाभूज्जलबुद्धिर्मराविव ॥ १२ ॥

अर्थ—उन दोनोंने अर्थात् प्रबुद्धलीला और भगवतीने उसको देखा, परन्तु उसने उन दोनोंको नहीं देखा, क्योंकि वे दोनों सत्यसंकल्प थीं, और अभीतक सत्यसंकल्पसे आविर्भूत नहीं हुई थीं ॥ ९ ॥ रामजी बोले–हे भगवन्! आपने प्रथमही यह वर्णन किया था कि पूर्वलीला (प्रबुद्धलीला जो भगवतीके साथ है) अपने शरीरको वहां स्थापन करके ध्यानरूपसे भगवतीके साथ गई थी ॥ १० ॥ सो उस लीलाके देहके विषयमें इससमय वर्णन क्यों न किया, सो हे प्रभो उसका देह क्या हुआ और वह कहांगया यह मुझसे कहो ॥ ११ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी! वह लीलाका शरीर यथार्थ दृष्टिसे कहां था, और उसकी सत्यता कैसे होसकती है, वह तो केवल ऐसी भ्रान्ति थी जैसे मरुस्थलमें जलकी बुद्धि ॥ १२ ॥

आत्मैवेदंजगत्सर्वंकुतोदेहादिकल्पना ॥ ब्रह्मैवानंदरूपंसद्यत्पश्यसितदेवचित् ॥ १३ ॥ यथैवबोधे लीलासौपरिणाममिताक्रमात् ॥ परेतथैवतस्मात्ताद्धिमवद्गलितंवपुः ॥ १४ ॥ आतिवाहिकदेहेनदृश्यं यदवलोकितम् ॥ भूम्यादिनामतस्यैवकृतंतच्चाधिभौतिकम् ॥ १५ ॥ वास्तवेनतुरूपेणभूम्याद्यात्माधिभौतिकः ॥ नशब्देनचार्थेनसत्यात्माशशशृंगवत् ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रामजी! यह सब कुछ आत्माही है, देहादिकी कल्पना इसमें कैसे सत्य होसकती है, जो कुछ

तुम देखतेहो यह सच्चिदानन्दरूप ब्रह्महीहै ॥ १३ ॥ जिसप्रकार लीला तत्त्वज्ञानमें परिपक्वताको प्राप्त होती गई उसी प्रकार परब्रह्ममें उसका शरीर हिम सदृश गलित होता गया ॥ १४ ॥ (हे रामजी ! कालपाके इस आतिवाहिक (सूक्ष्म) शरीरको, मैं आधिभौतिक (स्थूल) शरीरहुं, यह भ्रम ऐसे हुआ है जैसे रज्जुमें सर्प) हे रामजी ! न केवल आधिक भौतिक शरीरकाही बाध होता है, किन्तु सूक्ष्म समष्टि मनोमात्रबुद्धिसे तत्त्वदृष्टिसे जो दृश्य मिथ्यारूपसे देखाजाता है, उसीको पूर्वकालमें भ्रान्तिसे भूमि आदि नामसे स्थापित किया है, और वही आधिभौतिक है ॥ १५ ॥ इसलिये हे रामजी ! वास्तविक रूपसे भूमि आदि जो अधिभौतिक पदार्थ है वे नतो शब्दसे और न अर्थसे सत्यरूप हैं किन्तु शश (खर्गोश) के शृंगके तुल्य सर्वथा मिथ्या हैं ॥ १६ ॥

पुंसोहरिणकोस्मीतिस्वप्नेयस्योदितामतिः ॥ सकिमन्विष्यतिमृगंस्वमृगत्वपरिक्षये ॥ १७ ॥ उदेत्य सत्यमेवाशुतथासत्यंविलीयते ॥ भ्रांतिर्भ्रमवतोरज्ज्वामपिसर्पभ्रमेगते ॥ १८ ॥ समस्तस्याप्रबुद्धस्य मनोजातस्यकस्यचित् ॥ बीजंवनामृपैवेयंमिथ्यारूढिमुपागता ॥ १९ ॥ स्वप्नोपलंभंसर्गाख्यंसर्वो नुभवन्स्थितः ॥ चिरमावृत्तदेहात्माभूचक्रभ्रमणंयथा ॥ २० ॥

अर्थ—हे रामजी ! जिसको स्वप्नमें ऐसी बुद्धि हुई थी, कि मैं मृगहुं, और जाग्रत अवस्थामें, उसका मृगत्व नष्ट होगया, तब क्या वह मनुष्य अपने मृगत्व (मृगपनेको) ढूंढता है ॥ १७ ॥ जैसे असत्य पदार्थ भ्रमसे उदय होता है, और बोध होनेसे वह असत्य होनेसे शीघ्र लयभी होजाता है, वैसीही भ्रमवाले पुरुषको भ्रान्तिमय रज्जुका सर्प नष्ट होनेसे, पुनः उदयको नहीं प्राप्त होती ॥ १८ ॥ यह जो समष्टिरूप अज्ञमन है, इनमें प्रत्येकको इस स्थूल ब्रह्माण्डकी भ्रान्ति भिन्न है, और इनमेंसे किसी मनसमूहको बीज (कारण) के बिनाही यह मिथ्या भ्रान्ति अति दृढताको प्राप्त होगई है ॥ १९ ॥ हे रामजी ! सम्पूर्ण अज्ञप्राणी उत्पत्ति और नाशवान् देहमेंही आत्मबुद्धि रखनेसे स्वप्नमें प्राप्तके सदृश जगत्की सृष्टिको सत्यवत् चिरकालतक अनुभव करते ऐसे स्थित हैं जैसे बालक अपने भ्रमणके समय और कुछ कालपीछेभी पृथिवी कादिके भ्रमणको ॥ २० ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ ब्रह्मन्लोकैःपुरस्थस्यगच्छतोयोनिनोनिजम् ॥ आतिवाहिकतांदेहःकीदृशोयंवि लोक्यते ॥ २१ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ देहाद्देहांतरप्राप्तिःपूर्वदेहंविनासदा ॥ आतिवाहिकदेहेस्मिन्स्व प्नेष्विवविनश्वरी ॥२२॥ यथातपेहिमकणःशरद्व्योम्निसितोंबुदः ॥ दृश्यमानोप्यदृश्यत्वमित्येवंयोगिदे हकः ॥ २३ ॥ द्रागित्येवाथवाकश्चिद्योगिदेहोनलक्ष्यते ॥ योगिभिश्चपुरोवेगात्प्रोड्डीनइवखेखगः ॥२४॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-हे भगवन् ! यदि योगियोंको आधिभौतिक शरीर नहीं होता तो सन्मुख स्थित अपने स्वरूपको जब प्राप्त होने लगताहै, या मरके सूक्ष्म शरीर धारण करताहै, तब उसका शरीर कैसे लोग देखते हैं, अर्थात् सूक्ष्म शरीर तो देख नहीं सकते और स्थूल उसको है नहीं तो क्या देखते हैं ॥ २१ ॥ श्रीवशिष्टजी बोले-हे रामजी ! योगियोंका मरण दो प्रकारकाहै, एक तो प्रारब्ध भोग क्षय करनेके अर्थ नानादेहकी कल्पनामें, और दूसरा प्रारब्ध कर्मके नाशसे विदेह कैवल्य होनेसे, प्रथममें पूर्व शेषता कुछ नहीं है, सो ऐसे है कि जैसें स्वप्नमें एक मृगादि देहसे दूसरे मनुष्यादि देहकी प्राप्ति, सूक्ष्म शरीरमेंही पूर्व देहके त्यागके विनाही होजाती है ॥ २२ ॥ और दूसरा इसप्रकारहै कि जैसे आतपमें हिमकण वा शरत्कालके आकाशमें श्याममेघ दृश्यमानभी अदृश्य होजाताहै, परन्तु कुछकाल शेष रहताहै, ऐसाही योगीका शरीरहै ॥ २३ ॥ और किन्ही २ योगियोंका शरीर, हमारा शरीर शीघ्र नष्टहो इस संकल्पसें शीघ्र लुप्त होनेके कारण अन्य योगियोंकोभी नहीं देख पडता, तो अन्यकी क्या कथा ॥ २४ ॥

स्ववासनाभ्रमेणैवकचित्केचित्कदाचन ॥ मृतोयमितिपश्यंतिकेचिद्योगिनमग्रगाः ॥ २५ ॥ भ्रांतिमा त्रंतुदेहात्मातेषांतदुपशाम्यति ॥ सत्यबोधेनरज्जूनांसर्पबुद्धिरिवात्मनि ॥ २६ ॥ कोदेहःकस्यवासत्ता कस्यनाशःकथंकुतः ॥ स्थितंतदेवयदभूद्बोधःकेवलंगतः ॥ २७ ॥ श्रीरामउवाच ॥ आतिवाहिकता मेतिश्चाधिभौतिकएववकिम् ॥ उतान्यइतिमेब्रूहियेनोह्यइवभोःप्रभो ॥ २८ ॥

अर्थ—वह उनका शरीर ऐसे अदृश्य होजाताहै जैसे आकाशमें सन्मुख उडता हुआ पक्षी इससे यह सिद्ध हुआ कि योगीजनोंका शरीर जो जीवनदशामें किसीको देख पडताहै, वह उन्हीके संकल्पसे, किये मनुष्य मुझे इसप्रकार देखें, यह उनके संकल्पके कारण होताहै, न कि आधिभौतिक शरीरका मरण देखते हैं, यद्यपि योगीकी दृष्टिमें वह शरीर सूक्ष्मही है, और कोई २ धर्मात्मा अग्रगामी मोक्ष प्राप्त योगीको जीवनसहित देखते हैं, अतएव पूर्व विदेह मुक्त-शुकदेवजीका परिक्षित्की सभामें आना, और भागवतका उपदेश देना संगत होता है ॥ २५ ॥ हे रामजी ! देहमात्रमें

जो भ्रमसे आत्मबुद्धि है सो उन योगियोंके आत्मामें सत्य परमात्माके बोधसे ऐसे शान्त होजाती है जैसे रज्जुके ज्ञानसे सर्पबुद्धि ॥ २६ ॥ हे रामजी ! विचारो तो, क्या तो वह देह है और किसकी सत्ता है, और किसका कैसे और कहांसे नाश होता है, जो परमार्थरूपसे स्थित था, वही ज्ञानसे रहगया, केवल अज्ञानका नाश मात्र हुआ ॥ २७ ॥ श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! योगियोंका जो आधिभौतिक (यह स्थूल) शरीरहै, यही आतिवाहिक (सूक्ष्म) शरीर होजाताहै, अथवा अन्य उत्पन्न होताहै, यदि प्रथम पक्षहै तो बाधित पदार्थका अन्य परिणाम होना, यह सर्व प्रमाणविरुद्ध है, और यदि दूसरा शरीर मिलता है तो ज्ञानके अनन्तर पुनः शरीर प्राप्तिसे ज्ञानसे मुक्तिफलकी हानि हुई. हे प्रभो ! इस संशयरूपी प्रवाह में कह रहाहुं, सो आप मुझे कृपा करके कहें ॥ २८ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ बहुशोह्युक्तमेतत्तेनगृह्णासिकिमुत्तम ॥ आतिवाहिकएवास्तिनास्त्येवेहाधिभौतिकः ॥२९॥ तस्यैवाभ्यासतोप्येतिसाधिभौतिकतामतिः ॥ यदाशाम्यतिसैवास्यतदापूर्वाप्रवर्त्तते ॥३०॥ तदागुरुत्वंकाठिन्यमितियश्चमुधाग्रहः ॥ शाम्येत्स्वप्ननरस्येवबोद्धुबोधान्निरामयात् ॥ ३१ ॥ लघुतूलसमापत्तिस्ततःसमुपजायते ॥ स्वप्नेस्वप्नपरिज्ञानादिवदेहस्ययोगिनः ॥ ३२ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! यह विषय अनेकवार तुमसे कह आये, कि आधिभौतिक नहीं है आतिवाहिकही है, यहांपर स्थूलका परिणाम सूक्ष्म नहीं है, किन्तु भ्रान्ति सिद्ध स्थूलके बाधसे पूर्व सिद्ध अधिष्ठान सूक्ष्म शेष रहजाताहै, इसको तुम क्यों नहीं ग्रहण करते ॥ २९ ॥ उसीके अभ्याससे अर्थात् अनेक जन्मकी दृढ वासनासे आधिभौतिक बुद्धि उत्पन्न होती है, और जब तत्व साक्षात्कारसे वह शान्त होजाती है, तो पुनः पूर्वकी वही आतिवाहिक (सूक्ष्म) ता बुद्धि प्रवृत्त होजाती है ॥ ३० ॥ उससमय शरीरमें यह जो गुरुत्व (भारीपन) और काठिन्य (कडापन) आदि मिथ्या प्रतीति होरही है, वह ऐसे निवृत्त (शान्त) होजाती है जैसे बोधाके शुद्ध निरामय बोधसे स्वप्नके नगरकी गुरुता और कठिनता ॥ ३१ ॥ हे रामजी ! उससमय योगीके शरीरमें लघुतूल समापत्ति (वह दशा जब शरीर रुईके समान उडने योग्य होजाताहै) ऐसे प्राप्त होती है जैसे स्वप्नमें स्वप्नके परिज्ञानसे ॥ ३२ ॥

स्वप्नेस्वप्नपरिज्ञानाद्यथादेहोलघुर्भवेत् ॥ तथाबोधादयंदेहःस्थूलवत्प्लुतिमान्भवेत् ॥ ३३ ॥ अनेकदिनसंकल्पदेहेपरिणतात्मनाम् ॥ अस्मिन्देहेशवेदग्धेतत्रैवास्थितिमीयुषाम् ॥ ३४ ॥ लघुदेहानुभवनमवश्यंभाविवैतथा ॥ प्रबोधातिशयादेतिजीवतामपियोगिनाम् ॥ ३५ ॥ उदितायांस्मृतौतत्रसंकल्पात्माहमित्यलम् ॥ यादृशःसभवद्देहस्तादृशोयंप्रबोधतः ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! स्वप्नमें स्वप्नके ज्ञानसे जैसे शरीर लघु होजाताहै इसी प्रकार बोधसे यह स्थूल शरीर आकाशमें उडने योग्य होजाता है ॥ ३३ ॥ अनेक दिनोंसे दृढ संकल्पसे स्थूल शरीरमें जिन अज्ञानियोंके आत्मबुद्धि हो रही है, उनकीभी इस स्थूल मृतक शरीरका दाहादि कारणसे नाश होनेपर उसी पूर्व सूक्ष्म शरीरमें स्थिति होतीहै, तो योगियोंका क्या कहना ॥ ३४ ॥ जैसे अज्ञानियोंकी स्थूल शरीरके नाश होनेपर सूक्ष्ममें स्थिति होती है इसी प्रकार बोधकी अधिकतासे स्थूलका बाध होनेपर जीवितभी योगियोंको सूक्ष्म शरीरका अनुभव अवश्य होता है ॥ ३५ ॥ स्वप्नमें मैं संकल्पात्माहुं, न कि स्थूलात्मा ऐसी स्मृति उदय होनेपर जैसा शरीरका सूक्ष्म भाव प्राप्त होता है वैसाही आत्माके बोधसे भी होताहै ॥ ३६

भ्रांतिरेवमियंभातिरज्ज्वामिवभुजंगता ॥ किंनष्टमस्यांनष्टायांजातायांकिंप्रजायते ॥ ३७ ॥ श्रीरामउवाच ॥ अनंतरंयेवास्तव्यालीलांपश्यंतितेयदि ॥ तत्सत्यसंकल्पतयाबुध्यंतेकिमतःप्रभो ॥ ३८ ॥ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवंज्ञास्यंतितेराज्ञीस्थितेयमिहदुःखिता ॥ वयस्याकाचिदन्येयंकुतोप्यस्याउपागता ॥ ३९ ॥ संदेहःकइवात्रैपांपशवोह्यविवेकिनः ॥ यथादृष्टंविचेष्टंतेकुतएषांविचारणा ॥ ४० ॥

अर्थ—इस स्थूल शरीरमें अहंबुद्धि रज्जुमें सर्पके समान भ्रान्तिमात्रहै, उसके नष्ट होनेसे क्या नष्ट हुआ, और उत्पन्न होनेसे कौन शोच करताहै ॥३७॥ श्रीरामजी बोले–कि प्रभो ! पूर्वलीला और नूतन लीलाके राजा पद्मके गृहमें आजानेके अनन्तर पूर्वलीलाके सूक्ष्म शरीर तो देखनेमें आही नहीं सकता इसलिये लीलाके सत्यसंकल्पसे किये लोग मुझे देखैं तो उसको देखकर पद्मके गृहके निवासी क्या कहैंगे, क्या वही लीलाहै ऐसा कहैंगे, अथवा अपूर्व कोई देवताहै, ऐसे देखके ज्येष्ठ शर्मा आदिके समान विस्मित होजांयगे ॥ ३८ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! वे लोग ऐसा समझेंगे कि यह वही रानी है दुःखित होके स्थितहै और दूसरी लीलाको ऐसा समझेंगे कि यह कोई इसकी

सखी यहां आई है ॥ ३९ ॥ और यह अपूर्व लीला सुचरित्रहै, वा दुष्टा पुंश्चली है सत्य वा असत्यहै, इत्यादि सन्देह इन अविवेकी पशुओंको कहां, क्योंकि ये पूर्वदृष्टपदार्थके अनुकूल व्यवहार करनेवालेहैं, इनको ऐसी विचारणा कहां ४०

यथालोष्टोलुठद्वृक्षंवंचयित्वाशुगच्छति ॥ अज्ञानत्वेजपशवस्तथाह्यस्तिपुरादिकम् ॥ ४१ ॥ यथास्वप्नव पुर्बोधान्नजानेक्वेवगच्छति ॥ असत्यमेवतद्यस्मात्तथैवेहाधिभौतिकम् ॥ ४२ ॥ श्रीरामउवाच ॥ भग वन्स्वप्नशिखरीप्रबोधेक्वेवगच्छति ॥ इतिमेसंशयंछिंधिशरदभ्रमिवानिलः ॥ ४३ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ स्वप्नभ्रमेथसंकल्पेपदार्थाःपर्वतादयः ॥ संविदोंतर्भिलंत्येतेस्पंदनान्यनिलेयथा ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जिसप्रकार सूखी मिट्टीका ढेला बलसे फेंका हुआ अपना उपघात करतेहुये वृक्षको प्राप्त होके यह बाणके समान न तो वृक्षके भीतर प्रवेश करताहै और न कीचडके सदृश उसमें लिपटताहै और न पाषाणके तुल्य उसमें घाव करके आप पुनः घावकरनेके समर्थ रहताहै, किन्तु शीघ्रही नाशको प्राप्त होजाताहै, इसीप्रकार ये ज्ञान रहित अजन्मा होते हुयेभी पशुके तुल्य अति कोमल बुद्धि होनेके कारण किसी पदार्थके भीतर प्रवेश करके विचार करनेमें सर्वथा असमर्थ है, इससे सिद्ध हुआ कि इनके विचार न होनेमें अज्ञानही कारणहै, और इनके शरीर काम कर्म और वासनादिभी इनके अनुरूप हैं ॥ ४१ ॥ जैसे जाग्रत् होनेके पश्चात् स्वप्नका शरीर न जाने कहां चला जाताहै, यही दशा ज्ञानोत्तर आधिभौतिक शरीरकीभी है, क्योंकि यहभी स्वप्नके तुल्य असत्है ॥ ४२ ॥ श्रीरामजी बोले-हे भगवन् जाग्रत् होनेपर स्वप्नका पर्वत कहां जाताहै इस मेरे संशयको ऐसे छेदन कीजिये जैसे शरत्कालके मेघको वायुके पटलको ॥ ४३ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-कि हे रामजी ! स्वप्नके और संकल्प (मनोरथ) के पदार्थ अविद्याके उपहित चेतनके कार्य्य हैं, इसलिये ये उसीमें ऐसे लीन होजातेहैं, जैसे स्पन्द (वायुकी गति) वायुमें ॥ ४४ ॥

अस्पंदस्ययथावायोःसस्पंदोंतर्विशत्यलम् ॥ अनन्यात्मातथैवायंस्वप्नार्थःसंविदोमलम् ॥ ४५ ॥ स्व प्नाद्यर्थावभासेनसंविदेवस्फुरत्यलम् ॥ अस्फुरंतीतुतेनैवयांत्येकत्वंतदात्मिका ॥ ४६ ॥ संवित्स्वप्नार्थ योर्द्वित्वंनकदाचनलभ्यते ॥ यथाद्रवत्वपयसोर्यथावास्पंदवातयोः ॥ ४७ ॥ यस्तत्रस्यादिवाबोधस्तद ज्ञानमनुत्तमम् ॥ सैषासंसृतिरित्युक्तामिथ्याज्ञानात्मिकोदिता ॥ ४८ ॥

अर्थ—जैसे स्पन्द (गति) रहित वायुके स्पन्द उससे अभिन्नरूप होनेसे उसी स्पन्द रहित वायुमें मिलजातेहैं, इसीप्रकारके पदार्थ संवित् (चेतन) के आवर कमलरूप अज्ञानमें जो उनका उपादान कारणहै उसीमें प्रवेश करतेहैं ॥ ४५ ॥ इस रीतिसे अज्ञात-संविद् जैसेही-पही-वासना कर्मके-बलसे कभी स्वप्न आदि पदार्थोंके आभास रूपसे स्फुरित होने लगती है, और जब नहीं स्फुरित होती तो उसी अपने कारणमे एकरूप होजातीहै ॥ ४६ ॥ और विवेक होनेसे तो संवित् (चेतन) और स्वप्नके पदार्थोंमें कदाचित्भी भेद ऐसे नहीं प्रतीत होता जैसे द्रवत्व और अथवा वायु और उसकी गतिमें ॥ ४७ ॥ और जो इन दोनोंका (स्वप्नके पदार्थ और संवित् रूपका) पृथक् रूपसे जलमें भासनाहै, यही सबसे बढके अज्ञानहै और मिथ्यारूप आविर्भूत यही अज्ञान संसारहै ॥ ४८ ॥

सहकारिकारणानामभावेकिलकीदृशी ॥ संवित्स्वप्नपदार्थानांद्वितास्वप्नेनिरर्थिका ॥ ४९ ॥ यथास्वप्नस्त थाजाग्रदिदंनास्त्यत्रसंशयः ॥ स्वप्नेपुरमसद्भातिसर्गादौभात्यसज्जगत् ॥ ५० ॥ नचार्थोभवितुंशक्यः सत्यत्वेस्वप्नतोदितः ॥ संविदोनित्यसत्यत्वंस्वप्नार्थानामसत्यता ॥ ५१ ॥ झटित्येवयथाकाशंभवति स्वप्नपर्वतः ॥ क्रमेणवातथाबोधेखंभवत्याधिभौतिकम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—जैसे घटरूप कार्य्यमें चक्रचीवर आदि मृत्तिकाके सहकारी कारण होते हैं, ऐसे सहकारी कारणोंके अभावसे स्वप्नके पदार्थ और संवित्में स्वप्नअवस्थामें निरर्थक द्वैतता (भेदभाव) किसप्रकार होसकता है ॥ ४९ ॥ और हे रामजी ! जैसा स्वप्नका प्रपंच है ऐसाही जाग्रत् प्रपंचभी है, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है, जैसे स्वप्नके नगर आदिमें सहकारी कारण न होनेसे असत् हैं, इसी प्रकार सृष्टिका समष्टि अज्ञान वा अविद्या उपहित हिरण्यगर्भ चेतनको छोडके अन्य कुछभी नहीं है, इसलिये स्वप्नकेही सदृश यहभी असत् है ॥ ५० ॥ स्वप्नका जो संविद्भास्य पदार्थ है, वह सत्य कदाचित् नहीं होसकता, क्योंकि संविद्की सत्ताके कभी व्यभिचार न होनेसे वह नित्य सत्य है, और स्वप्नके पदार्थोंकी सत्ताका व्यभिचार होनेसे वे असत्य हैं ॥ ५१ ॥ जैसे जाग्रत् होनेसे शीघ्रही स्वप्नका पर्वत (शून्य) रूप होजाता है, ऐसेही ज्ञान उदय होनेसे क्रम (जिस क्रमसे ज्ञान होता है) से वा शीघ्र आधिभौतिक शरीरभी शून्यरूप होजाता है ॥ ५२ ॥

उड्डीनोयंमृतोवेतिपश्यंतिनिकटस्थिताः ॥ भ्रमातिवाहिकीभूतंस्वस्वभावहतायतः ॥ ५३ ॥ मिथ्यादृ

ष्टयएवेमाःसृष्टयोमोहदृष्टयः ॥ मयामात्रदृशोभ्रांतिःशून्याःस्वप्नानुभूतयः ॥ ५४ ॥ स्वप्नानुभूतयइमा मरणांतबोधेभ्रांत्येतरभ्रमदृशःस्फुटसर्गभासः ॥ भ्रांत्यातिवाहिकशरीरगताःसमस्तामिथ्योदितामृगनदीसरणक्रमेण ॥ ५५ ॥

इत्यार्पे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने स्वप्नार्थस्यविचारो नाम सप्तपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५७ ॥

अर्थ—और स्थूल शरीरका बाध होनेसे सूक्ष्म शरीरधारी तत्व ज्ञानीको यह योगी आकाशमें उडगया, जैसे शुकदेवजीका सूर्य्यमण्डलमें गमन, तथा अमुक तत्त्वज्ञानी योगी मरगया, जैसे दधीचि ऋपिका मरण इत्यादि रूपसे देखते हैं वे प्राणि अपने स्वाभाविक अज्ञानसे हिंसित मरे हुये प्राय होके देखते हैं, इससे सिद्ध हुआ कि वे अपने २ अज्ञानसे कल्पित देहकोही देखते हैं न कि ज्ञानीके देहको ॥ ५३ ॥ हे रामजी ! ये जो द्वैतकी दृष्टि हैं वे सब मिथ्या दृष्टि हैं, क्योंकि ये सब सृष्टि भ्रान्तिजन्य हैं जैसे इन्द्रजालकी मायाकी दृष्टि और स्वप्नके अनुभव अर्थशून्य भ्रान्तिमात्र प्रसिद्ध हैं ऐसेही ये द्वैतदृष्टिभी हैं ॥ ५४ ॥ हे रामजी ! पूर्व पूर्वके पदार्थोंमें भेददर्शी पुरुषके दृढतर भेदके संस्कार उदय होनेसे मरणकालके पूर्व क्षणमें उत्पन्न भावीभोगके योग्य पदार्थोंके ज्ञानमें स्वप्नके अनुभवके सदृश सूक्ष्म शरीर मनोमात्र निष्ठभी ये सम्पूर्ण सृष्टि मृगतृष्णाकी नदीके प्रवाहके सदृश मिथ्याही भ्रान्तिसे बाह्यके समान भासती है, यथार्थमें तो मनके बाहर नहीं है ॥ ५५ ॥

इत्यार्पे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे स्वप्नार्थविचारो नाम सप्तपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५७ ॥

अष्टपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५८ ॥

लीलाकी स्थितिका काल, और समाधिस्थ लीलाके शरीरका विनाश, लीलाका संभाषण, और राजाका पुनर्जीवन इत्यादि विषयोंका वर्णन इस ५८ वे सर्गमें किया गया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एतस्मिन्नंतरेज्ञप्तिर्जीवंवैदूरथंपुनः ॥ संकल्पेनरुरोधाशुमनसःस्पंदनंयथा ॥ १ ॥ ॥ लीलोवाच ॥ वददेविकियान्कालोगतोस्यामिहमंदिरे ॥ समाधौमयिलीनायांमहीपालेशवेस्थिते ॥ २ ॥ ज्ञप्तिरुवाच ॥ इहमासस्त्वतिक्रांतइहदास्याविमेतव ॥ रक्षार्थंवासगृहकेस्वपतोवहितेस्थिते ॥ ३ ॥ शृणुदेहस्यकिंवृत्तंतवेहवरवर्णिनि ॥ शरीरंतवपक्षेणतत्क्लिन्नंबाष्पतांगतम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवशिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! इस अवसरमें ज्ञप्ति भगवतीने अपने संकल्पसे विदूरथके अमूर्त जीवका निरोध ऐसे किया जैसे मूर्तिरहित मनकी गतिका ॥ १ ॥ लीला बोली कि–हे देवि ! इस पद्मकी सृष्टिमें इस मन्दिरमें रहते, तथा मुझे समाधिमें लीन हुये, और राजा पद्मके मृतक होनेमें कितना काल व्यतीत होगया, यह कृपा करके कहिये ॥२॥ ज्ञप्ति भगवती बोली–हे लीले ! इस सृष्टिमें तुमको एकमास होगया, और इस तुमारे निवास गृहमें तुमारे शरीरकी रक्षा करनेवाली दोनों दासियां शयन करती हैं ॥ ३ ॥ हे उत्तम वर्ण सहित लीले ! अन्यके अज्ञानसे कल्पित, अन्य अनुभवसिद्ध अपने उस आधिभौतिक शरीरका वृत्तान्त सुनो तुमारा देह एकपक्ष (१५ दिन) में प्राणके विरोधसे प्रदीप्त जठरअग्निसे तप्यमान होके आर्द्रधूम होगया ॥ ४ ॥

निर्जीवंपतितंभूमौसंशुष्कमिवपल्लवम् ॥ काष्ठकुड्योपमोजातःशवस्तुहिमशीतलः ॥ ५ ॥ ततोमंत्रिभिरागत्यमृतैवेयमितिस्वयम् ॥ क्लेदालोकाद्विनिर्णीयभूयोनिष्कासितंगृहात् ॥ ६ ॥ बहुनात्रकिमुक्तेननीत्वाचंदनदारुभिः ॥ चितौसंक्षिप्यसघृतंसहसाभस्मसात्कृतम् ॥ ७ ॥ ततोराज्ञीमृतेत्युच्चैःकृत्वारोदनमाकुलम् ॥ परिवारस्तवाशेषंकृतवानौर्ध्वदेहिकम् ॥ ८ ॥

अर्थ—अनन्तर निर्जीव होके सूखे पत्तेके सदृश हिमके तुल्य शीतल मृतक होगया ॥ ५ ॥ उसके अनन्तर मन्त्रीलोग स्वयं आके पुनः उसको सडते देखके मृतक होगई, ऐसा निश्चय करके उसे बाहर निकाला ॥ ६ ॥ अब हे लीले ! अधिक कहना व्यर्थ है उसको लेजाके चन्दनकी लकडीका चिता बनाके घृतसे सिंचन करके शीघ्र भस्मकर दिया ॥ ७ ॥ इसके अनन्तर महाराणी मरगई, इसकारण महान् रोदन करके तुमारे परिवारके लोगोंने मृत्युके अनन्तर शेष पिण्डदानादि और्ध्वदेहिक क्रिया किया ॥ ८ ॥

इदानींत्वामिहालोक्यसशरीरासुपगताम् ॥ परलोकादागतेतिमहच्चित्रंभविष्यति ॥ ९ ॥ त्वंतुतेनशरीरेणसत्यसंकल्पतःसुते ॥ दृश्यसेस्ववदातेनचित्रंतत्रतवोपरि ॥ १० ॥ यद्वासनात्वमभवोदेहंप्रतितदेवते ॥ रूपमभ्युदितंबालेतेनप्राक्सदृशंतव ॥ ११ ॥ स्ववासनानुसारेणसर्वःसर्वंहिपश्यति ॥ दृष्टांतोत्राविसंवादीबालवेतालदर्शनम् ॥ १२ ॥

अर्थ—इससमय शरीरसहित तुमको पुनः इस स्थानपर आये हुयेको देखके परलोकसे पुनः आई ऐसा जानके बडाभारी आश्चर्य्य होगा ॥ ९॥ और हे पुत्रि! तुम तो अपने सत्यसंकल्पसे उसी अपने शुद्ध सूक्ष्म शरीरसे उनके दर्शनके अयोग्य रहतेभी देख पडोगी, यहभी महान् आश्चर्य होगा और इसके उपरान्त तुमाराभी दर्शन विषयमें चित्त होगा ॥ १० ॥ हे बाले! देहमें तुमारी जैसी वासनाथी वही आकार तुमाराहै, इसकारण पूर्वके सदृश तुमारा रूप प्रकट हुआ, इससे यह शंका नहीं होसकती कि यह दिव्यशरीर पूर्व स्थूलशरीरके आकार क्यों हुआ ॥ ११ ॥ सब प्राणी अपनी वासनाके अनुकूल सबको देखताहै, इसमें विवादरहित दृष्टान्त बालकोंका वेतालका देखपडनाहै ॥ १२ ॥

आतिवाहिकदेहाशिसंपन्नासिद्धसुंदरी ॥ विस्मृतस्त्वेवदेहोसौप्राक्तनोनपवासनः ॥ १३ ॥ रूढातिवाहिकदृशःप्रशाम्यत्याधिभौतिकः ॥ बुधस्यदृश्यमानोपिशरन्मेघइवांबरे ॥ १४ ॥ रूढातिवाहिकीभावःसर्वोभवतिदेहकः ॥ निर्जलांभोदसदृशोनिर्गंधकुसुमोपमः ॥ १५ ॥ सद्वासनस्यरूढायामातिवाहिकसंविदि ॥ देहोविस्मृतिमायातिगर्भसंस्थेवयौवने ॥ १६ ॥

अर्थ—हे लीले! अब तुम आतिवाहिक (सूक्ष्म) शरीरधारिणी सिद्ध सुन्दरी, अर्थात् तत्त्वज्ञान परिनिष्ठित सुन्दरी होगई है । इसलिये राजाके सदृश तुमको पूर्वशरीर नहीं प्राप्त हुआ, और पूर्वशरीर तुमको विस्मृत मात्र होगयाहै सर्वथा उसकी वासना नहीं गई, इसलिये सूक्ष्मशरीर दशामेंभी वही आकार भासताहै ॥ १३ ॥ जब तत्त्वज्ञानीकी आतिवाहिक दृष्टि दृढतर होजाती है, तब अन्यकी दृष्टिसे दृश्यमानभी उसका आधिभौतिक शरीर ऐसे शांत होजाताहै जैसे आकाशमें शरत्कालका मेघ ॥ १४ ॥ आतिवाहिक भाव (सूक्ष्म) शरीरमें अहंबुद्धि दृढ होजानेसे सम्पूर्ण देह (स्थूलदेह) ऐसे होजाताहै जैसे जलरहित मेघ अथवा सुगन्धरहित पुष्प ॥ १५ ॥ हे लीले! वासनासहित प्राणीकी जब आतिवाहिक बुद्धि दृढतर होजाती है, तब उसको स्थूलशरीर ऐसे विस्मृत होजाताहै जैसे युवाअवस्थामें गर्भकी दशा ॥ १६ ॥

एकत्रिंशेऽद्यदिवसेप्राप्तावयमिहांबरे ॥ प्रभातेमोहितेदास्यौमयैतेनिद्रयाधुना ॥ १७ ॥ तदेहियावल्लीलायैलीलेसंकल्पलीलया ॥ आत्मानंदर्शयावोस्यैव्यवहारःप्रवर्तताम् ॥ १८ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ आवांतावदिमेलीलापश्यत्वित्येवचिंतिते ॥ ज्ञप्त्यादेव्यौततस्तत्रदृश्येदीप्तेबभूवतुः ॥ १९ ॥ साविदूरथलीलाथसमाकुलविलोचना ॥ गृहमालोकयामासतत्तेजःपुंजभास्वरम् ॥ २० ॥

अर्थ—हे लीले! आज एकतीसवां दिनहै जब कि हम लोग इस गृहाकाशमें प्राप्त हुई हैं, आज प्रातःकाल हमने इन दोनों दासियोंको निद्रासे मोहितकर दियाहै ॥ १७ ॥ आओ इस विदूरथकी लीलाको संकल्पके विलाससे अपने शरीरको दिखलावैं, और व्यवहार प्रवृत्तहो ॥ १८ ॥ श्रीवशिष्ठजी बोले—हे रामजी! जिस समयज्ञप्तिदेवीने यह चिंतन किया कि हम दोनोंको यह लीला देखै उसीसमय वे दोनों भगवती और लीला अति प्रकाशमान स्वरूपसे दृश्य होगई ॥ १९ ॥ इसके अनन्तर आश्चर्य्ययुक्त नेत्रवाली वह विदूरथकी लीला अपने गृहको क्या देखती है कि तेजःपुंजसे अति प्रकाशमान होरहाहै ॥ २० ॥

चंद्रबिंबादिवोत्कीर्णंधौतंहेमद्रवैरिव ॥ ज्वालायाद्रवशीतायास्तत्प्रभाद्रवभित्तिमत् ॥ २१ ॥ गृहमालोक्यपुरतोलीलाज्ञप्तीविलोक्यते ॥ उत्थायसंभ्रमवतीतयोःपादेषुसापतत् ॥ २२ ॥ मज्जयायागतेदेव्यौजयतांजीवनप्रदे ॥ इहपूर्वमहंप्राप्ताभवत्योर्मार्गशोधिनी ॥ २३ ॥ इत्युक्तवत्यांतस्यांतामानिन्योमत्तयौवनाः ॥ उपाविशन्विष्टरेषुलतामेरुशिरःस्विव ॥ २४ ॥

अर्थ—पुनः वह गृह द्रवीभूत शीतल दीप्तिसे ऐसा प्रतीत होताथा, मानों चन्द्रमाके बिम्बसे निकलाहै, और दोनोंकी अंगकी प्रभाके द्रवसे भित्तिआदि व्याप्त होनेके कारणसे ऐसा भान होताथा मानों द्रवीभूत (गलाये हुये) सुवर्णसे धुलाहै॥२१॥गृहको देखके लीला अपने सन्मुख क्या देखती है किं भगवती और पूर्व लीला दोनों उपस्थितहैं, वह उनको देखतेही आनंदसे पूर्ण होके शीघ्र उठकर उन दोनोंके चरणोंमें गिरी ॥ २२ ॥ लीलाजी बोली—कि हे जीवन देनेहारी दोनों देवियां! मेरे कल्याणकी उत्तमताके अर्थ आप दोनों यहां प्राप्त हुई हैं, मैं आप दोनोंकी दासी यहां प्रथमसे आगई

॥ २३ ॥ हे रामजी ! इतना उसके कहनेके पश्चात् वे तीनों मानके योग्य, और मत्त यौवन धारण करनेवाली, उत्तम सोनेकी चौकियोंपर (जो कि वहां वर्तमान थी) ऐसे विराजमान हुईं जैसे मेरुके शिखरोंपर लीन लता ॥ २४ ॥

॥ ज्ञप्तिरुवाच ॥ सुतेवदकथंप्राप्तात्वमिमंदेशमादितः ॥ किंवृत्तंतेत्वयादृष्टंकिमिवाध्वनिकुत्रवा ॥२५॥ ॥ विदूरथलीलोवाच ॥ देवितस्मिन्प्रदेशेसाजातमूर्छातदाभवम् ॥ द्वितीयेंदोःकलेवाहंकल्पांतज्वालयाहता ॥ २६ ॥ नचेतितंमयाकिंचित्समंविषममेवच ॥ ततस्तरलपक्ष्मांतेविनिमील्यविलोचने ॥२७॥ ततोमरणमूर्छांतेपश्यामिपरमेश्वरि ॥ यावदभ्युदितास्म्याशुप्लुताचगगनोदरे ॥ २८ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् ज्ञप्ति भगवती बोलीकि –हे पुत्रि ! तुम यहां किसप्रकार प्राप्त हुईं, आदिसे आरंभ करके सब कहो मार्गमें कहां कैसा आश्चर्य्यका वृत्तान्त देखा, और तुमारे विषयमें क्या २ वृत्तान्त हुआ॥२५॥ विदूरथकी लीलाजी बोलीं–हे देवि ! उस विदूरथराजाके गृहमें द्वितीया तिथीकी चन्द्रकलाके समान मैं कल्पातकी ज्वालासे मारी हुईके सदृश उससमय मूर्छित होगई ॥ २६ ॥ उसके अनन्तर आखोंकी पुतलियां उलटनेपर दोनों नेत्रोंको मून्दकर मूर्छादशामें मुझेसम विषम (उत्तम निकृष्ट) का कुछभी ज्ञान नहीं था सब ज्ञानोंके अभाव अज्ञानमात्रकी साक्षिणी मैं थी ॥२७॥ हे परमेश्वरी ! उसके पीछे मरणमूर्छाके अनन्तर वासनासे कल्पित पूर्व देहके सदृश रूप धारण करके जब आविर्भूत हुई, इतनेहीमें चिदाकाशके भीतर इस भूताकाशमें उडती हुई अपनेको देखा ॥ २८ ॥

भूताकाशेनिलरथंसमारूढास्म्यहंततः ॥ आनीतागंधलेखेवतेनाहमिममालयम् ॥ २९ ॥ देविपश्यामिसदनंनायकेनाभ्यलंकृतम् ॥ दीप्तदीपंविविक्तंचमहार्हशयनान्वितम् ॥ ३० ॥ पतिमालोकयामीमंयावदेषविदूरथः ॥ शेतेकुसुमगुप्तांगोमधुःपुष्पवनेयथा ॥ ३१ ॥ अथसंग्रामसंरंभश्रमार्त्तोयंस्वपित्यलम्॥ इतिनिद्रामथास्येयंदेवेश्वरिनवारिता ॥ ३२ ॥

अर्थ—उसके पीछे हे देवि ! भूताकाशमें मैं वायुके रथपर समारूढ (सवार) हुई और उस रथने मुझे इस स्थानपर ऐसे प्राप्त किया जैसे गन्धकी लेखाको वायु ॥ २९ ॥ हे देवि ! यहां आके दीपकसे प्रकाशमान एकान्तमें बहुमूल्यशय्या करके संयुक्त, और मेरे स्वामीसे अलंकृत इसस्थानको देखा ॥ ३० ॥ ये मेरे पति विदूरथ पुष्पोंसे रक्षित शरीर पुष्पोंके वनमें वसन्तऋतुके समान जबतक शयन कररहे हैं तबतक इनकी प्रतीक्षा करती हुई इनको देख रहीहूं ॥ ३१ ॥ ये मेरे स्वामी संग्रामके परिश्रमसे पीडित होके पूर्णनिद्रामें शयन करते हैं, इसकारणसे इनकी निद्राको मैंने निवारण (भंग) नहीं किया ॥ ३२ ॥

अनंतरमिमंदेशंप्राप्तेदेव्याविमेत्विति ॥ यथानुभूतंकथितंमदनुग्रहकारिणि ॥ ३३ ॥ ज्ञप्तिरुवाच ॥ हेहंसचारिगामिन्यौलीलेललितलोचने ॥ उत्थापयामोनृपतिंशवतल्पतलादिमम् ॥ ३४ ॥ इत्युक्त्वासुमुचेजीवमामोदमिवपद्मिनी ॥ ससमीरलताकारस्तन्नासानिकटंययौ ॥ ३५ ॥ घ्राणकोशंविवेशांतर्वंशरंध्रमिवानिलः ॥ स्ववासनाशतान्यंतर्दधद्ब्धिर्मणीनिव ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे मेरे ऊपर अनुग्रह करनेहारी ! इसके पश्चात् आप दोनों इस स्थानपर प्राप्त हुईं, यह जैसा मैंने अनुभव कियाथा आपके सन्मुख कहदिया ॥ ३३ ॥ ज्ञप्ति भगवतीजी बोली–हे हंसकी गतिको लज्जित करनेवाली तथा ललितनेत्र धारण करनेवाली दोनों लीले ! अब हम इस शय्यापरसे तुमारे पति इस राजा पद्मको उठाती(पुनः जीवनदान करती)हैं ॥ ३४ ॥ हे रामजी ! इतना कहके देवीने उस जीवको जिसको पूर्व संकल्पसे निरुद्ध (रोक) कर रक्खा ऐसे छोडा जैसे सुगन्धको कमलिनी और वह जीव वायुके सदृश अदृश्य होनेपरभी रागादि वासनासे पल्लव सहित लताकार होके राजाके नासिकाके निकट गया ॥ ३५ ॥ जैसे समुद्र अनेक रत्नोंको धारण करता है वैसेही अपनी सैकडों वासनाओंको अन्तरमें धारण करता हुआ, वह जीव राजाके नासिकाके छिद्रमें ऐसे प्रवेश कर गया जैसे वायु बांसोंके छिद्रोंमें ॥ ३६ ॥

अंतस्थजीववदनंतस्यतत्कांतिमाययौ ॥ पद्मस्यावग्रहेपद्मंसुवृष्टइववारिणि ॥ ३७ ॥ क्रमादंगानिसर्वाणिसरसानिचकाशिरे ॥ तस्यपुष्पाकरइवलताजालानिभूभृतः ॥ ३८ ॥ अथाबभौकलापूर्णःसराकायामिवोडुराट् ॥ भासयन्भुवनंभूरिवदनेंदुमरीचिभिः ॥३९॥ स्फुरयामाससांगानिरसवंतिमृदूनिच ॥ कनकोज्ज्वलकांतीनिपल्लवानीवमाधवः ॥ ४० ॥

अर्थ—उस राजा पद्मका अन्तरमें जीव सहित मुख ऐसी शोभाको प्राप्त हुआ जैसे वृष्टिके प्रतिबन्धसे लाल कमल उत्तम जलके वर्षणसे ॥ ३७ ॥ उस राजाके सरस (रस सहित) सम्पूर्ण अंग ऐसे प्रकाशित हुये जैसे वसन्त

ऋतुमें पर्वतके सम्पूर्ण लतासमूह ॥ ३८ ॥ वह राजा अपने मुखरूपी चन्द्रमाके किरणोंसे भूमण्डलको प्रकाश करते हुये ऐसा शोभित हुआ जैसे पूर्णिमाको सम्पूर्ण कलाओंसे पूर्णचन्द्रमा ॥ ३९ ॥ उस राजाने अपने रससहित और कोमल अंगोंको ऐसे संचालन किया जैसे बसन्तऋतु सुवर्णके समान दीप्तियुक्त कोमल पत्तोंको ॥ ४० ॥

उन्मीलयामासदृशौविमलालोलतारके ॥ हारिण्यौसुभगाभोगेचंद्रार्कौभवनंयथा ॥ ४१ ॥ उत्तस्थौप्रोल्लसत्कायोविंध्याद्रिर्वृद्धिमानिव ॥ उवाचकःस्थितइतिघनगंभीरनिःस्वनम् ॥ ४२ ॥ लीलाद्वयमथास्याग्रेप्रोवाचादिश्यतामिति ॥ सददर्शपुरोनम्रंलीलाद्वयमवस्थितम् ॥ ४३ ॥ समाचारंसमाकारंसमरूपंसमस्थिति ॥ समवाक्यंसमोद्योगंसमानंदंसमोदयं ॥ ४४ ॥

अर्थ—और हे रामजी ! उस राजाने अपने विमल चंचल पुतलीयुक्त मनोहर और सौभाग्य सूचक लक्षणवाले दोनों नेत्रोंको ऐसे उद्घाटन किया जैसे जगदात्मा विराट् पुरुष अपने नेत्ररूप सूर्य्य चन्द्रमाको ॥ ४१ ॥ वृद्धिसहित विन्ध्यपर्वतके समान शोभायमान शरीरयुक्त राजा उठ बैठा, और मेघके समान गम्भीर शब्दोंसे बोला कि यहांपर कौन है ॥ ४२ ॥ उसके सन्मुख स्थित दोनों लीला बोली कि महाराज आज्ञा दीजिये, और उसराजाने दोनों लीलाको नम्रीभूत अपने सन्मुख स्थित देखा ॥ ४३ ॥ उन दोनोंका आचरण आकाररूप स्थिति वाणी उद्योग आनन्द और अभ्युदय समानहीं था ॥ ४४ ॥

कात्वंकेयंकुतश्चेयमित्याहसविलोकयन् ॥ तस्मैलीलाहहेदेवश्रूयतांयद्वदाम्यहम् ॥ ४५ ॥ महिलातवलीलाहंप्राक्तनीसहधर्मिणी ॥ वागर्थस्येवसंपृक्तास्थितासंश्लेषशालिनी ॥ ४६ ॥ इयंलीलाद्वितीयातेमहिलाहेलयामया ॥ उपार्जितात्वदर्थेनप्रतिबिंबमयीशुभा ॥ ४७ ॥ शिरोभागोपविष्टेयंपाहिहेममहासने॥ एषासरस्वतीदेवत्रैलोक्यजननीशिवा ॥ ४८ ॥

अर्थ—उन दोनोंको देखता हुआ राजा बोला कि तुम कौनहो, और यह कहांसे आई इसको श्रवण करके पूर्वलीला बोली कि महाराज जो मैं कहतीहूं उसको श्रवण कीजिये ॥ ४५ ॥ हे महाराज ! जैसे वाणी (शब्द) अर्थमें वाचक रूपसे मिली रहती है इसीप्रकार मैं आपकी पूर्वजन्मकी सहधर्मिणी लीलानाम्नी रानीहूं ॥ ४६ ॥ और इस दूसरी लीला आपकी रानीको मैंने अपनी लीलासे आपके उपभोगके लिये अपने शुभ प्रतिबिम्बमयी उपार्जित कियाहै ॥ ४७ ॥ यह आपके शिरोभागकी ओर सुवर्णके बडे आसनपर बैठीहै आप इसकी रक्षा कीजिये, और हे राजन् ! यह त्रैलोक्यकी माता सरस्वती देवी है ॥ ४८ ॥

अस्माकंपुण्यसंभारैरिहसाक्षादुपागता ॥ अनयेमेपरल्लोकादिहानीतेमहीपते ॥ ४९ ॥ इत्याकर्ण्यसमुत्थायराजाराजीवलोचनः ॥ लंबमाल्यांबरधरःपपातज्ञप्तिपादयोः ॥ ५० ॥ सरस्वतिनमस्तुभ्यंदेविसर्वहितप्रदे ॥ प्रयच्छवरदेमेधांदीर्घमायुर्धनंनिच॥ ५१ ॥ इत्युक्तवंतंहस्तेनपरपर्शज्ञप्तिदेवताम् ॥ सरस्वत्युवाच ॥ त्वंपुत्राभिमतार्थाढ्योभवेतिभवनान्वितः ॥५२॥ सर्वापदःसकलदुष्कृतदृष्टयश्चगच्छंतुवःशममनंतसुखानिसम्यक्॥आयांतुनित्यमुदिताजनताभवंतुराष्ट्रेस्थिराश्चविलसंतुसदैवलक्ष्म्यः ५३

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे पद्मजीवनं नाम अष्टपंचाशत्तमःसर्गः ॥ ५८ ॥

अर्थ—हे महाराज ! हमलोगोंके पुण्य समूहसे यहां आके साक्षात् प्राप्त हुई है, और हे राजन् ! हम दोनोंको इन्होंने परलोकसे यहांपर प्राप्त किया है ॥ ४९ ॥ इतना श्रवण करके कमलके सदृश दीर्घनेत्रयुक्त, और लम्बी पुष्पोंकी माला धारण किये हुये, वह राजा उठकर देवी भगवतीके चरणोंमें गिरपडा ॥ ५० ॥ राजा बोला–कि हे सर्वजनको हितकारिणी सरस्वती आपको नमस्कार है, हे वरके देनेवाली देवि ! मुझे बुद्धि (ज्ञान) दीर्घ आयुः और अनेक प्रकारका धन दीजिये ॥ ५१ ॥ इतना राजाके कहनेपर देवी भगवतीने अपने हस्तसे उसे स्पर्श किया और सरस्वती बोली–कि हे पुत्र ! तुम इस लोकमें दीर्घ आयु, तथा इष्ट धनादिसे सम्पन्नतम होओ और परमार्थिक जो मेरा ज्ञान आत्मस्वरूपमें स्थिति है उस करकेभी युक्त होओ ॥५२॥ हे राजन् ! सम्पूर्ण आपत्ति और सम्पूर्ण पापकी दृष्टि तुमारी नष्टहो, और सम्यक् प्रकारके अनन्त सुख तुमको प्राप्तहो, तथा तुमारे राज्यमें सम्पूर्ण प्रजाजनसमूह नित्य प्रसन्न रहैं, और तुमारे यहां अनेक प्रकारकी लक्ष्मी स्थिर होके नित्य विलास करैं ॥ ५३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे लीलोपाख्याने पद्मजीवनं नाम अष्टपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

राजाके पुनर्जीवनके आनन्दसे उसके अन्तःपुरमें उत्सव और जीवन्मुक्तोंका चिरकालतक राज्य इस विषयका वर्णन इस ५९ वे सर्गमें किया गया है॥

॥श्रीवसिष्ठउवाच॥ सरस्वतीतथेत्युक्त्वातत्रैवांतर्धिमाययौ॥ प्रभातेपंकजैःसार्द्धंबुबुधेसकलोजनः॥१ आलिलिंगचतांलीलांलीलाचदयितंक्रमात् ॥ पुनःपुनर्महानंदान्मृतंप्रोज्जीवितंपुनः ॥ २ ॥ तदासीद्राजसदनंमदमन्मथमंथरम् ॥ आनंदमत्तजनतंवाद्यगेयरवाकुलम् ॥ ३ ॥ जयमंगलपुण्याहघोषघुंघुमघर्घरम् ॥ तुष्टपुष्टजनापूर्णराजलोकवृतांगणम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! सरस्वती इतना कहके वहांही अन्तर्धान होगई और प्रातःकालमें कमलोंके साथही सम्पूर्ण मनुष्य जागगये ॥ १ ॥ राजाने उस लीलाको वार २ आलिंगन किया, और लीलानेभी राजाके पुनर्जीवनसे महान् आनन्दमें क्रमसे वार २ राजाको आलिंगन किया ॥ २ ॥ हे रामजी ! उससमय उसराजाके राजभवनमें मद और मन्मथ (कामदेव) के उत्सवसे आनन्द पूर्ण जनसमूह मदोन्मत्त होगये थे और स्थान वाद्य और गानसे पूर्ण होगया था ॥ ३ ॥ उस राजभवनका अंगण. जयमंगल, और स्वस्तिवाचन, पूर्वक वेदोंके घोषसे शब्दायमान और राजाके देखनेवाले मनुष्योंसे पूर्ण था ॥ ४ ॥

सिद्धविद्याधरोन्मुक्तपुष्पवर्षसहस्रभृत् ॥ ध्वनन्मृदंगमुरजकाहलाशंखदुंदुभि ॥ ५ ॥ ऊर्ध्वीकृतवृहद्धस्तहास्तिकस्तनितोत्कटम् ॥ उत्तालतांडवस्त्रैणपूर्णांगणलसत्ध्वनि ॥ ६ ॥ मिथःसंघट्टनिपतज्जनोपायनदंतुरम् ॥ पुष्पशेखरसंभारमयसंसारसुंदरम् ॥ ७ ॥ विकीर्णापादितक्षौमंमंत्रिसामंतनागरैः ॥ स्थूलपद्ममयंव्योमरक्तैस्तांडविनीकरैः ॥ ८ ॥

अर्थ—जहांपर सहस्रों विद्याधर और सिद्धलोग पुष्पोंकी वृष्टि कररहे थे और मृदंग मुरज कर्णाल, शंख तथा दुन्दुभि नगाडेकी उत्तम ध्वनि होरहीथी ॥ ५ ॥ जहांपर बडे २ हांथियोंके समूह अपने शुंडोकों ऊपर उठाके ऊंचे स्वरसे ध्वनि कररहे थे, और ऊंचे तालोंसे स्त्रियोंके समूहके ताण्डव नृत्यगान तथा वाद्यकी शोभायमान उत्तम ध्वनिसे परिपूर्ण था ॥६॥ और परस्परके सम्मर्द पूर्वक गिरते हुये मनुष्योंके उत्तम हस्ती आदिके भेटसे दन्त सहित भान होता था और अनेक प्रकारके पुष्पोंकी मालाओंको धारण किये मनुष्योंके संचारसे अति रमणीय था ॥ ७ ॥ मंत्रियोंने, छोटे २ कर देनेवाले राजाओंने तथा नगरनिवासियोंनें, पुष्प और मोतियोंके समूहोंसे मानों उसको सूक्ष्म वस्त्रोंसे चारोंओरसे आच्छादित करदिया था और आकाशमें नृत्य करनेवाली स्त्रियोंके अरुण हस्तोंसे ऐसा शोभायमान था जैसे वडे २ कमल सहित तडाग ॥ ८ ॥

मत्तस्त्रीकंधरावृत्तलीलांदोलितकुंडलम् ॥ प्रवृत्तपादसंपातप्रोल्लसत्पुष्पकर्दमम् ॥ ९ ॥ पट्टवासःशरन्मेघवितानकवितानकम् ॥ वरांगनामुखैर्नृत्यच्चंद्रलक्षगृहाजिरम् ॥ १० ॥ परलोकादुपानीताराज्ञीसापतिरेवच ॥ इतिनिर्वृत्तगाथभिर्जगुर्देशांतरेजनाः ॥ ११ ॥ पद्मोभूमिपतिःश्रुत्वावृत्तांतंकथितंमनाक् ॥ चक्रेस्नानंसमानीतैश्चतुःसागरवारिभिः ॥ १२ ॥

अर्थ—जहांपर अति आनन्दमें उन्मत्त स्त्रियोंके ग्रीवाके परिवर्तनपूर्वक, विलासोंसे कुण्डल झूलरहे थे, और मनुष्योंके पदसंचारसे शोभायमान पुष्पोंका कीचड होरहाथा ॥ ९ ॥ जहांपर पटमण्डपोंसे शरत्कालके मेघके सदृश मण्डप शोभित होरहे थे और नृत्य करती हुई वेश्याओंके मुखोंसे ऐसा भान होता था कि मानों लक्षों चन्द्रमा नाचरहे हैं ॥ १० ॥ और देशदेशान्तरोंमें सब मनुष्यलोग इस बातकी गीत बनाके गान करने लगते थे कि परलोकसे पूर्व लीला और राजाको भगवतीने यहांपर लाके प्राप्त किया है ॥ ११ ॥ मनुष्योंकी कथा संक्षेपसे श्रवण करके चारों समुद्रोंसे लायेहुये जलसे राजाने स्नान किया ॥ १२ ॥

ततोभिषिषिचुर्विप्रामंत्रिणोभूभुजश्चतम् ॥ लब्धोदयमनंतेशममरेंद्रमिवामराः ॥ १३ ॥ लीलालीलाच राजाचजीवन्मुक्तमहाधियः ॥ रेमिरेपूर्ववृत्तांतकथनैःसुरतैरिव ॥ १४ ॥ सरस्वत्याःप्रसादेनस्वपौरुषकृतेनतत् ॥ प्राप्तंलोकत्रयश्रेयःपद्मेनेतिमहीभुजा ॥ १५ ॥ सज्ञातिज्ञानसंबुद्धोराजालीलाद्वयान्वितः॥ चक्रेवर्षायुतान्यष्टौतत्रराज्यमनिंदितः ॥ १६ ॥ जीवन्मुक्तास्तडत्येवंराज्यंवर्षायुताष्टकम् ॥ कृत्वाविदेहमुक्तत्वमासेदुःसिद्धसंविदः ॥ १७ ॥ यद्हृदयविशदंविदग्धमुग्धंसमुचितमात्महितंचपेशलंच ॥ तदखिलजनतोपदंस्वराज्यंचिरमनुपाल्यसुदंपतीविमुक्तौ ॥ १८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे लीलोपाख्याने पद्मनिर्वाणं नामैकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर मन्त्रियोंने तथा ब्राह्मणोंने उस राजाको पुनः इसप्रकार राज्याभिषेक किया जैसे नहुषके पश्चात् पुनः राज्यके मिलनेसे देवताओंने इन्द्रको ॥ १३ ॥ हे रामजी! पूर्व लीला, और विदूरथकी लीला तथा राजा ये तीनों जीवन्मुक्त और महाबुद्धियुक्त पूर्व वृत्तान्तोंके कथनसे ऐसे रमण करते थे जैसे सुरतोंसे देवगण ॥ १४ ॥ हे रामजी ! अपने पुरुषार्थसे उत्पादित सरस्वतीके प्रसादसे राजा पद्मने तीनों लोकोंमें उत्तम कल्याणको प्राप्त किया॥१५॥ दोनों लीला संयुक्त, उस निन्दारहित, राजा पद्मने सरस्वतीसे उपदिष्टज्ञानद्वारा भलीभांति आत्मतत्वको जानकर आठ अयुत (८० सहस्र) वर्षपर्य्यन्त राज्य किया ॥ १६ ॥ इसप्रकार वे सब जीवन्मुक्त आठ अयुत (अस्सी सहस्र) वर्ष राज्य करके सिद्ध ज्ञानसहित विदेह मुक्तिको प्राप्त हुये ॥ १७ ॥ हे रामजी ! जो प्रजाओंके नित्य अभ्युदयसे दोषरहित तथा शास्त्रके अनुसार होनेसे विद्वानोंको अति मनोहरथा और अपनी कुल परम्पराके उचित भोग यश और धर्मका हेतु होनेसे हितकारीथा तथा संपूर्ण प्राणियोंके मनोरंजनसे चतुरतायुक्त और सर्व मनुष्योंके सन्तोषदायक राज्यथा, उसका चिरकालतक पालन करके दोनों स्त्रीपुरुष विदेहमुक्तिको प्राप्त हुये ॥ १८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे पद्मनिर्वाणं नामैकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ॥ ५९ ॥

षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥

आदिमें लीलाके आख्यानका प्रयोजन और काल आदिकी समता तथा विषमताका हेतु इस ६० वें ... वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एतत्तेकथितंरामदृश्यदोषनिवृत्तये ॥ लीलोपाख्यानमनघंघनतांजगतस्त्यज ॥ १ ॥ शां तैवदृश्यसत्तास्याःशमनंनोपयुज्यते ॥ सतोहिमार्जनक्लेशोनासतस्तुकदाचन ॥ २ ॥ ज्ञानेनाकाशरूपेणदृश्यंज्ञेयस्वरूपकम् ॥ इत्येकीभूतमालोक्यज्ञस्तिष्ठत्यंबरोपमः ॥ ३ ॥ पृथ्व्यादिरहितेनेदंचिद्भासैवस्वयंभुवा ॥ साधितंयदिसिद्धेनततःस्वात्मनिसाधितम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवशिष्ठजी बोले कि—हे रामजी ! यह पवित्र लीलाका उपाख्यान मैंने तुमको दृश्यके दोषकी निवृत्तिके लिये वर्णन कियाहै सो तुम जगत्की सत्यताको त्यागो ॥ १ ॥ हे रामजी ! यथार्थमें तो दृश्यका अभाव है ... इस जगत्की सत्ता शान्तही है, इसलिये इसका शान्त करना नहीं बन सकता, क्योंकि जो पदार्थ है उसका ... होसकताहै, और जो पदार्थ है ही नहीं उसका अपवाद क्या होगा ॥ २ ॥ चिदाकाशरूप ज्ञानसे दृश्यज्ञेय ... होजाताहै इसप्रकार दृश्य तथा आत्माकी एकतारूप अखण्ड रससे तत्वज्ञानी शुद्ध आकाशरूप स्थित रहताहै ॥ ३ ॥ पृथिवी आदि भूतसेरहित प्रकाशरूप स्वयम्भू चेतन अपने आत्माहीमें रज्जुके समान सर्पके तुल्य दृश्यरूपमें वि... होनेसे हिमकी कठिनता और द्रवताके एक रसके तुल्य, जड दृश्यका चेतनरूप होनेमें कोई विरोध नहीं है ॥ ४ ॥

संविद्यथायायततेतथासैवव्यवस्थिता ॥ विसृष्टास्टष्टिविन्नद्यांयावद्यत्नान्नरोधिता ॥ ५ ॥ चिदाकाशावभासोयंजगदित्यवबुद्ध्यते ॥ चिद्व्योम्न्येवात्मनिस्वच्छेपरमाणुकणंप्रति ॥ ६ ॥ एवमस्यामुधाभ्रांतेःकासत्ताकेववासना ॥ कावास्थाकाचनियतिःकावश्यंभावितोच्यताम् ॥ ७ ॥ सर्वंचैतद्यथादृष्टंस्थितमित्थमखंडितम् ॥ मायैवेयमनंतेयंनचमायास्तिकाचन ॥ ८ ॥

अर्थ—सृष्टिवेत्ता स्वयम्भू चेतनरूप महानदीके एक देशरूप जीव संवित् जैसी प्रवृत्तिके प्रवाहसे, जैसे का... करण फलभावके लिये प्रयत्न करती है, वैसेही कार्य्यकरण फल भावसे उत्पन्न होके स्थितहै, वह प्रवृत्तिरूप वा... जबतक विरुद्ध प्रयत्नसे रोका न जाय तबतक निवृत्त नहीं होताहै ॥ ५ ॥ यद्यपि चिदाकाशमें (स्वच्छ ब्रह्मरूप आत्मामें) चिदाकाशकाही मायिक प्रकाश जगत् शब्दसे कहा जाताहै, और इस रीतिसे जगत् ब्रह्मरचितहै, तथापि ...रिच्छिन्न ब्रह्म वैसा नहीं भासता, किन्तु बुद्धि आदि परिच्छिन्न उपाधिके वशसे अति परिच्छन्न जीवकोही जगत् भा... ॥ ६ ॥ हे रामजी ! इसप्रकार इस मिथ्या भ्रान्तिकी क्या सत्ताहै, और क्या वासनाहै, क्या इसमें आस्थाहै, क्या नियति है और कौनसी अवश्य भवितव्यताहै ॥ ७ ॥ मायादृष्टिसे यह सब अखण्डित रूपसे जैसाहै वैसाही स्थित है, क्योंकि यह माया अनन्तहै, और माया यथार्थमें कुछ नहीं है ॥ ८ ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ अहोनुपरमादृष्टिर्दर्शिताभगवंस्त्वया ॥ दावाग्निदग्धकक्षाणांदाहशांतैकलैंदवी ॥ ९ ॥ अहोनुसुचिरेणाद्यज्ञातंज्ञातव्यमक्षतम् ॥ मयायथेदंयच्चेदंयादृग्ज्ञेयंयतोयदा ॥ १० ॥ शाम्यामीवद्विजश्रेष्ठनिर्वामीवविकल्पयन् ॥ एतदाख्यानमाश्चर्यंव्याख्यानंशास्त्रदृष्टिषु ॥ ११ ॥ इमंमेभगवन्ब्रूहिसंशयंसर्ववकोविद ॥ तवपाठुंनतृप्तोस्मिश्रोत्रपात्रैर्वचोमृतम् ॥ १२ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले कि-अहो हे भगवन्! आपने सर्वोत्तम दृष्टि दिखलाया संसारतापसे सन्तप्त मनुष्योंके अर्थ यह दृष्टि शान्तिदायक चन्द्रकलाके समानहै ॥ ९ ॥ अहो आज अति दीर्घकालके अनंतर अखण्डित ज्ञातव्य जिसप्रकारका, जिस स्वरूपका जिस दृष्टान्तोंसे, जहांसे, और जिस समयसे था, वैसा जानलिया ॥ १० ॥ जगत् तत्त्वका विचार करता हुआ उपाधिकी शान्तिसे मैं शान्तके तुल्य होजाताहुं, और नित्य निर्वाणरूपकी प्राप्तिके सब दुःखोंसे मुक्त होकर विश्राम चाहताहुं हे भगवन्! यह वेदोंका व्याख्यानरूप और आश्चर्य्यदायक आख्यान आपने वर्णन कियाहै ॥ ११ ॥ हे सर्ववेत्तः भगवन्! मेरे इस सन्देहको कहिये मैं आपके वचनरूपी अमृतको कर्णरूपपात्रोंसे पान करनेसे तृप्त नहीं होता ॥ १२ ॥

ससर्गत्रितयेकालोलीलाभर्तुर्वियोगतः ॥ सक्वचित्किमहोरात्रःक्वचित्किंमासमात्रकः ॥ १३ ॥ क्वचित्किंबहुवर्षाणिकस्यचित्किमुपेलवः ॥ कस्यचित्किमहादीर्घःकस्यचित्किंक्षणःस्थितः ॥ १४ ॥ इतिमेभगवन्ब्रूहित्वंयथावदनुग्रहात् ॥ सकृच्छ्रुतंनविश्रांतिमेतिलोष्टेयथाजलम् ॥ १५ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ येनयेनयथायद्यद्यदासंवेद्यतेनघ ॥ तेनतेनतथातत्तत्तदासमनुभूयते ॥ १६ ॥

अर्थ—हे भगवन्! लीलाके पतिके संयोगसे वशिष्ठ पद्म और विदूरथकी सृष्टियोंमें जो कालहै, वह कहीं जैसे गिरिग्राममें आठ रात्रि दिन रूप और कहीं (पद्मकी सृष्टिमें) केवल मासमात्र, और विदूरथकी सृष्टिमें वहीं पूर्वोक्त काल अनेक वर्षात्मक क्यों हुआ ॥ १३ ॥ यह भेद तो ब्रह्माण्ड भेदसे हुआ और एकही ब्रह्माण्डमें यही एक काल किसीको अनेक वर्ष, किसीको दिनरूपसे अति कोमल, किसीकी अति दीर्घ, और किसीको वही क्षणरूप, होताहै जैसे वही काल मनुष्योंको वर्ष, देवताओंका दिन, और ब्रह्माका क्षण, यह क्यों होताहै ॥ १४ ॥ हे भगवन्! यह मेरे ऊपर अनुग्रह करके कहिये ... 'कालदैर्घ्यंतथैवहि' इत्यादि वाक्योंसे एक बार सुनाहै तथापि तत्रसर्वेषांप्रतिभासित ... भ्रमकी वासनासे पृथ्वी... यों को यह पृथ्वी भ्रमण ... एक बिन्दुसे मट्टीके ढेलेमें गिलापना ॥ १५ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले ... शाविपुलवात्यायाःसामान ... के अनुसार प्रतीति होती, तो यह विरोध संगत होता, परन्तु प्रतीतिके अनुसार अनिर्वचनीय सत्तामें प्रतिद्रष्टा पदार्थोंका भेद होनेसे जिस २ प्रकार जो २ पदार्थ जब २ संवेदन कियाहै वह २ उसीप्रकार उसी २ पदार्थको उसी २ समय अनुभव करताहै ॥ १६ ॥

अमृतत्वंविषंयातिसदैवामृतवेदनात् ॥ शत्रुर्मित्रत्वमायातिमित्रसंवित्तिवेदनात् ॥ १७ ॥ यथाभावितमेतेपांपदार्थानांनिजंवपुः ॥ तदेवहिचिराभ्यासान्नियतेर्वशमागतम् ॥ १८ ॥ कचनैकात्मिकैपाचिद्याकचतियादृशम् ॥ तथातथाशुभवतितत्स्वभावैककारणात् ॥ १९ ॥ निमेषेयदिकल्पौघसंविदंपरिविंदति ॥ निमेषएवतत्कल्पोभवत्यत्रनसंशयः ॥ २० ॥

अर्थ—सदा अमृतकी भावनासे विषभी अमृत होजाताहै, मित्रकी भावनासे शत्रुभी मित्र होजाताहै ॥ १७ ॥ हे रामजी! यह जगत् भावनाके अनुसारहै, वही भावना दीर्घकालके अभ्याससे अर्थ क्रियाकारिता रूप नियति (मर्य्यादा) होगई है ॥ १८ ॥ हे रामजी! स्फुरण संवित्के स्वभावसे यह स्फुरणरूप संवित् जहां जिसप्रकार जैसी भावना करती है वहां उसी २ प्रकारसे शीघ्र वैसाही वैसा होजाती है, इसलिये एकही संवित्में किसीको चेतनके संस्कारके अनुसार निमेषका आरोप हुआ और किसीको कल्पना ॥ १९ ॥ यदि एक निमेषमें संविद्में कल्पकी भावना होती है तब वह निमेषही कल्पके तुल्य होजाताहै इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ २० ॥

कल्पेयदिनिमेषत्वंवेत्तिकल्पोप्यसौततः ॥ निमेषोभवतिक्षिप्रंतादृग्रूपात्मिकाचिचित् ॥ २१ ॥ दुःखितस्यनिशाकल्पःसुखितस्यैवचक्षणः ॥ क्षणःस्वप्नेभवेत्कल्पःकल्पश्चभवतिक्षणः ॥ २२ ॥ यथाचमृत्वाजातोहंतरुणोयौवनस्थितः ॥ यातोस्मियोजनशतंस्वप्नइत्यनुभूयते ॥ २३ ॥ रात्रिंद्वादशवर्षाणिहरिश्चंद्रोनुभूतवान् ॥ लवणोभुक्तवानायुरेकरात्र्यासमाःशतम् ॥ २४ ॥

अर्थ—और यदि कल्पमें निमेषकी भावना होती है तो वह कल्पही शीघ्र निमेष होजाताहै, क्योंकि संवित् चेतनका यही स्वभावहै ॥ २१ ॥ दुःखित प्राणीको रात्रि कल्पके सदृश होजाती है, और सुखीको वही क्षणके तुल्य

भान होती है, स्वप्नमें क्षण कल्प होजाताहै, और कल्प क्षण होजाताहै ॥ २२ ॥ जैसे मैं मरके पुनः उत्पन्न हुआ तरुण होके युवाअवस्थामें स्थितहुं, और सौयोजन गया स्वप्नमें ऐसा अनुभव होताहै, यही दशा इस संसारकी है ॥ २३ ॥ हे रामजी! राजा हरिश्चन्द्रने एक रात्रिमें बारह वर्पका अनुभव किया, और राजा लवणने एक रात्रिमें अपनी सौ (१००) वर्पकी आयुका अनुभव किया ॥ २४ ॥

यन्मुहूर्त्तःप्रजेशस्यसमनोर्जीवितंमुनेः ॥ जीवितंयद्विरिंचस्यतद्दिनंकिलचक्रिणः ॥ २५ ॥ विष्णोर्यज्जीवितंरामतद्वृषांकस्यवासरः ॥ ध्यानप्रक्षीणचित्तस्यनदिनानिनरात्रयः ॥२६॥ नपदार्थानचजगत्सत्यमा-त्मनियोगिनः ॥ मधुरंकटुतामेतिकटुभावेनचिंतितम् ॥२७॥ कटुचायातिमाधुर्यंमधुरत्वेनचिंतितम् ॥ मित्रबुद्ध्याद्विषन्मित्रंरिपुबुद्ध्यारिपुःसुहृत् ॥ २८ ॥

अर्थ—जो मनुष्यका जीवनहै, वह विचारशील प्रजाके स्वामी ब्रह्माजीका एक मुहूर्त है, और जो ब्रह्माजीका सम्पूर्ण जीवनहै, वह विष्णुजीका एक दिनहै ॥ २५ ॥ इसीप्रकार जो विष्णुका सम्पूर्ण जीवनहै वह महादेवजीका एक दिन मात्रहै, और जिनका निर्विकल्प समाधिसे चित्त क्षीण होगयाहै, उन योगिजनोंको न रात्रि हैं न दिन है ॥ २६ ॥ योगीके आत्मामें पदार्थ और जगत् कोईभी सत्य नहीं हैं, वैराग्य वासनासे चिन्तित मधुर पदार्थभी उनको अप्रिय होजाते हैं ॥ २७ ॥ मधुर वासनासे चिन्तित कटु पदार्थभी मधुर होजाता है, मित्रकी बुद्धिसे शत्रुभी मित्र होजाता है, और शत्रुभावसे चिन्तित मित्रभी शत्रु होजाता है ॥ २८ ॥

भवतीतिमहाबाहोयथासंवेदनंजगत् ॥ अनभ्यस्ताःपदार्थायेशास्त्रपाठजपादयः ॥ २९ ॥ तेषांसंवेदनाभ्यासान्नूनमभ्येतिसाम्यता ॥ नौयायिनांभ्रमार्त्तानांवेदनाद्भूर्विवर्त्तते ॥ ३० ॥ अवेदनाभ्रमार्त्तानामपिनैषांविवर्त्तते ॥ शून्यमाकीर्णतामेतिवेदनात्स्वप्नदृष्टिवत् ॥ ३१ ॥ वेदनात्पीतमानीलंशुक्लंवाप्यनुभूयते ॥ आपद्वदुत्सवःखेदंकरोतिपरिमोहतः ॥ ३२ ॥

अर्थ—इसलिये हे महाबाहो रामजी ! यह जगत् भावना (वासना) के अनुसार है, अनभ्यस्त पदार्थ जो शास्त्र पाठ जप व्रत उपवास आदि हैं ॥ २९ ॥ उनकी भावनाके अभ्याससे निश्चय स्वाधीनता अर्थात् विपमता त्यागके इच्छानुसार फलदायक होते हैं जैसे भ्रमसे पीडित नौकाके यात्रियोंको [illegible] भ्रमण करती भान होती है ॥ ३० ॥ और तटके ऊपर रहनेवाले भ्रमकी वासनासे रहित प्र[illegible] घूमती हुई नहीं भान होती, स्वप्नकी दृष्टियोंके तुल्य भावनाके बलसे शून्य-स्थान पदार्थोंसे व्याप्त भान होजाता है ॥ ३१ ॥ भावनाहीसे आकाश पीत, अति नील, तथा शुक्लरूपसेभी अनुभूत होता है, अज्ञानवश भावनाहीसे उत्सवभी विपत्तिके तुल्य दुःखकारक होजाता है, जैसे बालक कभी २ अपने उत्सवोंमेंभी रोते हुये देखपडते हैं ॥ ३२ ॥

कुड्येपिखइवाचारोदृष्टोनन्वविचारिणः ॥ असद्यक्षोविमूढानांप्राणानप्यपकर्षति ॥ ३३ ॥ वेदनात्स्वप्नवनिताजाग्रतीवरतिप्रदा ॥ यद्यथाभासमायातंतत्तथास्थिरतांगतम् ॥ ३४ ॥ असदेवनभश्चैवनभएवचिदात्मनि ॥ शतहस्ताबुदच्छायानटनृत्तमिवाततम् ॥ ३५ ॥ गमनेमानसंस्पंदंजगद्विद्धिनवस्तुतत् ॥ मिथ्याज्ञानपिशाचस्यस्पंददर्शनमाकृति ॥ ३६ ॥

अर्थ—अविचारी पुरुषको भित्तिमें आकाशकी भ्रान्ति देखी गई है और असत् यक्ष भूत आदि मूढोंके प्राणोंकोभी हर लेते हैं ॥ ३३ ॥ भावनाहीसे स्वप्नकी स्त्री जाग्रतकी स्त्रीके समान रतिके आनन्दको देती है, जो पदार्थ जैसी भावनासे स्फुरित हुआ है वह वैसाही स्थिर होगया है ॥ ३४ ॥ असत् अभावरूप आकाश निज कारण अध्यासकृत आकाशरूपही है, और वह अव्याकृत आकाश अपने अधिष्ठान चिदात्मामें सौहस्तके मेघकी छायाके सदृश कल्पित नटके नृत्यके समान इस जगतमें विचित्रतासे व्याप्त है ॥ ३५ ॥ हे रामजी ! इस जगतको आकाश समष्टि और व्यष्टि मनकी चेष्टामात्रही तुम जानो, और बालकको मिथ्या कल्पित पिशाचकी चेष्टाके दर्शनके समानही इसका आकार है ॥ ३६ ॥

मायाम त्रकमेवेदमरोधकमभित्तिमत् ॥ इदंभास्वरमाभातंस्वप्नसंदर्शनंस्थितम् ॥ ३७ ॥ अपूर्वमेसुप्तस्यनरस्येवोदितंविद्धः ॥ अचेताचेतनतिस्तंभोयादृशंशालभंजिकाम् ॥ ३८ ॥ परमार्थमहास्तंभःस्फुरंचेततिताहशम् ॥ यादृशोमेनरःपार्श्वेस्वप्नेक्षुब्धोमहाभटैः ॥ ३९ ॥ तादृशोब्रह्मणःसर्गोबुद्धएवसुषुप्तवत् ॥ तृणगुल्मलतायुक्तःशिशिरांतेयथारसः ॥ ४० ॥

अर्थ—हे रामजी ! वास्तवमें मूर्तिके अभावसे स्वयं दूसरेका अवरोध न करनेवाला, और आपभी भित्तिरहित दूसरेसे न रुकनेवाला भासमान स्वप्नके दर्शनके तुल्य मायामात्र यह संसार स्थित है ॥ ३७ ॥ तत्वदर्शी महात्माओंने जाग्रत् मनुष्यके लिये इस जगत्को स्वप्नदर्शनके तुल्य अपूर्वही उदित कहा है, और जिसप्रकार अचेतन अर्थात् स्वयं स्फुरणरूप व्यापार शून्य स्तम्भ अपनेमें प्रतिमाका विस्तार करता है ॥ ३८ ॥ इसी प्रकार परमार्थ महास्तम्भ अर्थात् सबका अधिष्ठानभूत चिदात्मा सृष्टिकी आदिमें सृष्टिको अपनेमें देखता है और जैसे मेरे निकट स्वप्नमें बडे २ वीरोंसे शोभित मनुष्य जाग्रत् रहतेभी सुषुप्तके तुल्य अज्ञानमात्रही होता है न कि यथार्थ ऐसेही ब्रह्माकी सृष्टिभी है॥३९॥४०॥

वासंतःसंस्थितोभूमौतथासर्गःपरेपदे ॥ यथाद्रवत्वंकनकेस्थितमंतरनुन्मिषत् ॥ ४१ ॥ तथास्थितः परेसर्गआत्मवर्गाद्वणावणौ ॥ सन्निवेशोयथांगानामंगिनोनन्यआत्मनः ॥ ४२ ॥ जगदेवमनंगस्यस्वात्मनोब्रह्मणस्तथा ॥ यादृगेकनरःस्वप्नेयुद्धमन्यंनरंप्रति ॥ ४३ ॥ तादृशंसदसद्रूपंस्वात्मेदंव्योमगंजगत् ॥ महाकल्पांतसर्गादौचित्स्वभावमिदंजगत् ॥ ४४ ॥

अर्थ—और जैसे बसन्तऋतुमें पत्र, पुष्प आदि रूपसे होनेवाला रस पृथिवीरूप अधिष्ठानमें रहताहै ऐसेही परमपद परमात्माके स्वरूपमें पूर्वरूपसे यह सृष्टि रहती है और जैसे सुवर्णमें द्रवत्व अप्रकटरूपसे रहताहै और तेज निमित्त पाके प्रकट होजाताहै ऐसेही परमात्मामें यह जगत् अभिन्नरूपसे अण्ड २ में जीव संघोंके निमित्तसे जीवोंका भोग्य होके स्थितहै, और निमित्त पाके प्रकट होजायगा, और जिसप्रकार अंगोंकी स्थिति अंगी आत्मासे भिन्न नहीं है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ऐसेही अंगआत्मासे अभिन्नरूपी ब्रह्मसे भिन्न यह संसार नहीं है, जैसे एक मनुष्यके स्वप्नमें दूसरे मनुष्यके साथ जो युद्ध है, उसकालमें उस स्वप्नद्रष्टाकी दृष्टिमें सत्‌रूपहै, और दूसरेकी दृष्टिमें असत् ॥ ४३ ॥ इसी प्रकार अव्याकृत आकाशमें रहनेवाला यह जगत् मायाकी दृष्टिसे सत्‌रूप होतेहुये भी शुद्ध दृष्टिसे असत्‌रूपही है, क्योंकि महाकल्पके अन्तमें और सृष्टिकी आदिमें यह जगत् चिन्मात्र स्वभावही रहताहै ॥ ४४ ॥

कारणत्वंमिथःपश्चाद्सदेतिनवास्तवम् ॥ मुक्तेस्मिन्ब्रह्मणियदिब्रह्मान्यःस्मृतिजोभवेत् ॥ तत्स्मृतिज्ञप्तिजेसर्गेस्थितैवज्ञप्तिमात्रता ॥ ४५ ॥ श्रीरामउवाच ॥ पौराणांमंत्रिमुख्यानांविदूरथकुलक्रमः ॥ समसेवकथंतत्रसर्वेषांप्रतिभासितः ॥ ४६ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ चितःसमनुवर्त्ततेमुख्यायाःसर्वसंविदः ॥ यथाविपुलवात्यायाःसामान्यावातलेखिकाः ॥ ४७ ॥ परस्परानुसारेणतथारूपेणसंविदः ॥ कचितास्ताःप्रजापालप्रजावास्तव्यमंत्रिणः ॥ ४८ ॥

अर्थ—और सर्व जगत्के आकारमें परिणत जो पूर्व २ ब्रह्मा उसमें जो अहंभावरूप कल्पनामयी उपासना उसके संस्कारसेही पश्चात् कारणताकी कल्पना मिथ्यारूपही आती है यथार्थमें नहीं, और इस ब्रह्माके मुक्त होनेपर उसी अहंभावके संस्कारसे उत्पन्न स्मृतिसे दूसरा ब्रह्मा उत्पन्न होताहै, और उस ब्रह्माकी स्मृति और ज्ञानसे जो सृष्टि उत्पन्न हुई तो उस सृष्टिको ज्ञानमात्रता सिद्ध हुई ॥ ४५ ॥ श्रीरामजी बोले-हे भगवन् ! नगरनिवासियोंको तथा मुख्य मंत्रियोंको और सबको विदूरथका कुलक्रम एकही प्रकार क्यों भान हुआ ? अर्थात् दूसरे ब्रह्माण्डके निवासियोंके तुल्य नगरनिवासियोंको प्रत्येकको वासना कर्मकी विचित्रतासे स्वप्नके समान जाग्रत्में भी विचित्रक्रमका भान क्यों न हुआ, समानरूपसे भान होनेमें क्या कारण है ॥ ४६ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! समष्टि मुख्य चेतनका अनुवर्तन सब ऐसे करते हैं, जैसे महान् वायुका अनुवर्तन अल्पवायु ॥ ४७ ॥ इसीप्रकार सबकी एकता सिद्ध करनेवाले अदृष्ट समूहसे राजा, प्रजा, नगरनिवासी, और मन्त्रीगण परस्पर फलोंका भोग करानेवाले मिले हुये अदृष्टके कारणसे स्फुरित हुये हैं ॥ ४८ ॥

एवंरूपात्कुलाज्जातोराजास्माकमयंत्वसौ ॥ कचिताइववास्तव्यविदोविदूरथेपुरे ॥ ४९ ॥ क्वचनेचित्स्वभावस्यनचकारणमार्गणम् ॥ शुक्रंमहामणेर्भासामिवान्यत्रस्वभावतः ॥ ५० ॥ अहमेवंकुलाचारेराजास्यामेवमित्यपि ॥ विदूरथविदोरन्नादुदितप्रतिभायथा ॥ ५१ ॥ यावंतोजंतवोयस्मिन्येयेसर्गेयदायदा ॥ तेसर्वगत्वाच्चिद्धातोरन्योन्यादर्शतांगताः ॥ ५२ ॥

अर्थ—इसप्रकारके कुलमेंसे हम लोगोंका यह राजा है, इत्यादिरूपसे विदूरथके नगरमें गृहमें जितने पदार्थ हैं, वे तथा उनके भोग करनेवाले सब प्राणी स्फुरित हुये हैं ॥ ४९ ॥ चित् स्वभावके इसप्रकार (राजा आदिरूपसे) स्फुरित होनेमें कुछ कारणका अन्वेषण (खोज) न करना चाहिये, क्योंकि जैसे महामणि चिन्तामणिके विचित्र पदा-

थोंको उत्पन्न करनेमें किसी दूसरे पदार्थकी कारणता नहीं है, किन्तु पदार्थोंकी चिन्ता करनेवाले प्राणियोंके मनोरथकी विचित्रताही हेतु है, वैसेही यहांभी समझो ॥ ५० ॥ जैसे चिन्तामणि मनोरथोंके अनुसारही पदार्थोंको उत्पन्न करताहै ऐसेही मैं इस कुलमें ऐसे आचारवाला राजा होऊं यह प्रतिभा विदूरथ जीवरूपी चिन्मणिसे उदित हुईथी ॥ ५१ ॥ जितने अनेक प्राणी जो २ जिस सृष्टिमें जब २ स्फुरित हुये हैं, वे सब चिन्मणिके सर्वव्यापी होनेके कारणसे एक दूसरेके प्रतिविम्ब ग्रहण करनेवाले दर्पणोंके सदृश होगयेथे ॥ ५२ ॥

तीव्रवेगवतीयास्यात्तत्रसंविदकंपिता ॥ सैवायातिपरंस्थैर्यमामोक्षंत्वेकरूपिणी ॥ ५३ ॥ बलवच्चिद्विलासानामनुवृत्त्यापरस्परम् ॥ स्वभावाःप्रतिबिंबंतिचिदादर्शेस्वभावतः ॥ ५४ ॥ तत्रातियत्नाज्जयति सत्याःसंविदथात्मसात् ॥ कुर्वंतिसरिदंभोधिगामिनीसरितोयथा ॥ ५५ ॥ येसमास्तत्रतेतावद्यतंते चित्स्वभावतः ॥ यावदेकोजयत्यत्रद्वितीयःसनिमज्जति ॥ ५६ ॥

अर्थ—इन सब उपाधि भेदसे भिन्न चेतनोंके मध्यमें जो चेतन तीव्र संवेग ब्रह्माकार वृत्ति सहित, विषय दोषोंसे अकम्पित मोक्ष पर्य्यन्त एकसा रहताहै वही सर्वोत्तम ब्रह्मभावसे स्थिर मोक्षको प्राप्त होताहै ॥ ५३ ॥ चेतनरूप दर्पणमें तीव्र वासना सहित परस्पर चिद्विलासोंकी अनुवृत्तिसे नियतिके स्वभावद्वारा जीव चेतन प्रतिबिम्बित होके स्फुरित होते हैं अर्थात् जगत्के आकार वा ब्रह्माकारके जीव चेतनमें प्रतिबिम्ब पडनेमें चिद्विलासही कारण हैं ॥ ५४ ॥ हे रामजी ? जगत् आकार और ब्रह्माकार चिद्विलासोंमेंसे अति प्रयत्नवान् जो ब्रह्माकार सत्य चिद्विलास रूपवेग हैं वेही प्रबल होनेसे विजयी होकर जगदाकार चिद्विलासके वेगको अपनेमें इस प्रकार मिलाके स्वाधीन करलेते हैं, जैसे समुद्रगामिनी महानदी मार्गमें मिलनेवाली छोटी नदियोंको ॥ ५५ ॥ और जो ब्रह्माकार तथा जगदाकार चिद्विलास समान अधिकारवाले हैं, वे उस समयतक प्रयत्न करते रहते हैं जबतक ब्रह्माकार विजयीहोकर परम उत्कर्षदशाको प्राप्त होताहै, और जगदाकार उसमें लीन होजाता है, क्योंकि यह चित्का स्वभाव है ॥ ५६ ॥

जायमानेषुनश्यत्सुवर्त्तमानेषुभूरिशः ॥ एवंसर्गसहस्रेषुपरमाणुकणंप्रति ॥ ५७ ॥ नकिंचित्केनचिद्धयाप्तंनकिंचित्केनचित्स्थितम् ॥ चिदाकाशमिदंशांतमतःसर्वमभित्तिमत् ॥ ५८ ॥ अयमाभासतेस्वप्नोनिर्निद्रोदृष्टिवर्जितः ॥ अवश्यंभाविबोधस्तुस्वलुभूतोप्यसन्मयः ॥ ५९ ॥ पत्रपुष्पफलांशात्मायथैकःस्वास्थितोद्रुमः ॥ अनंतसर्वशक्त्यात्माह्येकएवतथाविभुः ॥ ६० ॥

अर्थ—इस प्रकार उपाधिसम्बन्धी भेदसे जीव समूहोंकी दृष्टिमें उत्पन्न होनेवाले नष्ट होनेवाले और वर्त्तमान उक्त प्रकारके सहस्रों सर्गों (सृष्टियों) मेसे ॥ ५७ ॥ परमार्थ दृष्टिसे दोडतेहुये वा स्थित अथवा उदासीन किसी जीवकणने कुछनहीं पाया क्योंकि असत् (अनिर्वचनीय) वस्तुकी प्राप्ति और सत्की अप्राप्ति दोनों नहीं बनसकती इसलिये शान्त भित्ति शून्य चिदाकाशरूपही यह सब स्थित है ॥ ५८ ॥ यह सब निद्रारहित विवेक दृष्टिसे वर्जित स्वप्नही भासताहै, और जिसको अधिष्ठानात्मा साक्षी चेतनका साक्षात्काररूप बोध है उसकोतो पूर्वदशामें अनुभूतभी यह संसार असत्यके सदृश प्रतीत होता है ॥ ५९ ॥ जैसे पत्र पुष्प और फलादि अंशयुक्त वृक्ष एकही रूपसे स्थित है इसीप्रकार अनन्त सर्वशक्तिमान् तथा सर्व जगत्का आत्मा एकरूपही है ॥ ६० ॥

मातृमेयप्रमाणादिमायात्मकमजंपदम् ॥ बुद्धंविस्मृतिमायातिनकदाचनकस्यचित् ॥ ६१ ॥ शून्योदयास्तमयवस्तुतमःप्रकाशदिक्कालरूपमपिसदैकमनादिशुद्धम् ॥ आद्यंतमध्यरहितंस्थितमच्छमंबुसौम्यत्ववीचिवलनाढ्यमिवैकमेव ॥ ६२ ॥ अहंत्वमित्यादिजगत्स्वरूपाविशुद्धबोधैकविभाविभाति ॥ आकाशकोशेनिजशून्यतेवद्वैतैक्यसंकल्पविकल्पनाच्च ॥ ६३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे प्रयोजनवर्णनं नाम षष्टितमःसर्गः ॥ ६० ॥

अर्थ—हे रामजी ! प्रमाता प्रमेय और प्रमाण आदिमायारूप यह अजपद जब जानलिया जाता है तब यह विस्मृतिका कारण अज्ञानके न होनेसे कभी किसीको विस्मृत नहीं होता किन्तु एक अद्वैतरूपसे भान होता है ॥ ६१ ॥ जिसमें जगत्के उदय और अस्त दोनों शून्यरूपहै, ऐसा अज्ञानका प्रकाशक आत्मा दिक् कालादिरूप होनेपरभी सदा अनादि आदिमध्य और अन्त रहित शुद्धरूप एक अद्वितीय ऐसे हैं जैसे निर्मल जलशान्ततासे परिपूर्ण तथा तरंगोंसे परिपूर्णहो परन्तु सब दशामें वह एक जलही है ॥ ६२ ॥ हे रामजी ! विशुद्ध केवल एक बोधमात्र स्वरूप ब्रह्मका प्रकाशही

द्वैतके साथ एकता प्रकाशक संकल्प विकल्परूप मन और उसकी मूलभूत अविद्या तथा तज्जनित कामकर्म वासनादिके वशसे अहम्, त्वम् तथा जगत्‌रूप होके ऐसे प्रकाशित होरहाहै जैसे आकाशके कोशमें उसकी शून्यताही तलकी मलिनता मोती तथा कटाह आदिरूपसे भासती है ॥ ६३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे प्रयोजनवर्णनं नाम षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥

एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

प्रयोजनकी प्रसिद्धिके अर्थ और वैराग्यके अर्थ संसारकी असारता तथा असत्यता इस ६१ वे सर्गमें वर्णन कीगई है ॥

॥श्रीरामउवाच॥ अहंजगदितिभ्रांतिःपरस्मात्कारणंविना ॥ यथोदेतितथाब्रह्मन्भूयःकथयसाधुमे॥१॥ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ समस्ताःसमतैवांताःसंविदोबुद्धयतेयतः ॥ सर्वथासर्वदासर्वसर्वात्मकमजस्त तः ॥ २ ॥ सर्वाहिशब्दार्थदृशोब्रह्मैवेताःपृथङ्नतत् ॥ सर्वार्थशब्दार्थकलारूपमासांनविद्यते ॥ ३ ॥ कटकत्वंपृथग्घेम्नस्तरंगत्वंपृथग्जलात् ॥ यथानसंभवत्येवंनजगत्पृथगीश्वरात् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-हे ब्रह्मन् ! परब्रह्म परमात्मासे अहंकारके विषय देहादिमें अहंभाव कारणके विनाभी अहम् इस जगत्‌की भ्रान्ति जिसप्रकार उदय होती है वह कल्पनाका क्रम पुनः उस रीतिसे कहिये, जिससे उत्तमतापूर्वक अनुभवमें आजाय ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि-हे रामजी ! बोद्धा सब प्रकारकी भ्रान्ति अपने स्वरूप चैतन्यमेंही सदा अनुभव करता है, उससे बाहर कदापि कोई भ्रान्ति नहीं जानता इसलिये सर्व सर्वात्मकहै, इसीका नाम समता है और सर्व सर्वात्मक होनेसे विषमता दोष नहीं शेष रहता, और विषमताके अभावसे जन्मादि विकार नहीं होते, इसलिये सबकुछ परमात्माही है इसप्रकार जगत्‌की भ्रान्ति कारण बिनाही है ॥ २ ॥ हे रामजी ! सम्पूर्ण शब्दोंके और अर्थोंके जो बोध हैं, वे ब्रह्मस्वरूपही हैं, बोधचेतनका भेद विषयभेदसे होता है इसलिये घटज्ञान पटज्ञानादि सब ब्रह्मसे पृथक् नहीं है और सम्पूर्ण विषय तथा शब्दार्थ और उनके अंश जो पृथुबुध्नो (महान् मूल) दराकार घटादि हैं वे इन बोधोंके रूप नहीं हैं, क्योंकि चेतन जडाकारहो इसमें कोई युक्ति नहीं है, और जिस आकारका अनुभव होता है वह वृत्तिका आकार है ॥ ३ ॥ जैसे सुवर्णसे पृथक् कटक और जलसे पृथक् तरंग सम्भव नहीं होसकता, इसी प्रकार ईश्वरसे पृथक् जगत्‌की सत्ता नहीं होसकती ॥ ४ ॥

एषएवजगद्रूपंजगद्रूपंत्वनेश्वरे ॥ हेमैवकटकादित्वंकटकत्वंनहेमनि ॥ ५ ॥ यथावयविनोरूपमनेकाव यवात्मकम् ॥ तथानवयवाग्रास्तुचितःसर्वात्मकंचयत् ॥ ६ ॥ यत्तुल्यकालमखिलंतन्मात्रावेदनंपरे ॥ अंतस्थंतदिदंभातिजगदित्यहमित्यपि ॥ ७ ॥ लेखौघानांयथाभेदसन्निवेशःशिलोदरे ॥ तथानन्यज्ज गदहंचेत्यंतश्चिद्घनेघनम् ॥ ८ ॥

अर्थ—यह परमात्मा जगत्‌रूप है परन्तु परमात्मामें जगत्‌रूपता ऐसे नहीं है जैसे सुवर्णही कटकादिरूप है परन्तु कटक आदिरूप सुवर्णमें नहीं होसकता ॥ ५ ॥ जिसप्रकार सम सत्तावाले अवयवीके सम सत्तावाले अवयवोंसे एकही रूप होता है, ऐसेही अवयवशून्य चित्तकाभी सर्वात्मक रूप है कल्पित अवयवोंसेभी यथार्थमें ब्रह्म एक है ॥ ६ ॥ परब्रह्मके स्वरूपमें जो सब प्राणियोंका तुल्यकालमें ब्रह्ममात्र स्वरूपका अज्ञान है, वही यह जगत् है यह हम हैं, इत्यादि नानाप्रकारसे भान होता है ॥ ७ ॥ जिसप्रकार स्फटिक शिलाके भेदरहित उदरमें वनकी श्रेणियोंका सन्निवेश अविरोधसे होता है, ऐसेही चिद्रूपी दर्पणमें अभिन्न जगत् और अहम्‌का सन्निवेश होता है ॥ ८ ॥

स्थितास्तरंगाःसलिलेयथांतरतरंगिते ॥ सृष्टिशब्दार्थरहितास्तथांतःसृष्टयःपरे ॥ ९ ॥ नसर्गेतिष्ठति परंसर्गस्तिष्ठतिनोपरे ॥ अवयवावयविवत्सत्तानवयवैस्तयोः ॥ १० ॥ चिद्रूपेणस्वसंवित्यास्वचिन्मा त्रंविभाव्यते ॥ स्वमेवरूपहृदयंवातेनस्पंदनंयथा ॥ ११ ॥ तत्कालमेषशब्दाणुश्चिच्चमत्काररूपधृक् ॥ चेत्यर्तेखमिवेवांतःसंकल्पइवचेतसा ॥ १२ ॥

अर्थ—जैसे तरंगशून्य स्थिर जलमें तरंग स्थित हैं इसी प्रकार परब्रह्मके भीतर शब्दार्थ रहित अनेक सृष्टि स्थित हैं ॥ ९ ॥ न तो यथार्थमें सृष्टिमें परब्रह्म रहता है, और न परब्रह्ममें सृष्टि रहती है किन्तु अवयव अवयवीकी अनवयवोंसे जैसे सत्ता है वैसेही सृष्टि और परब्रह्मकी हैं, क्योंकि अवयवोंमें अवयवी यदि रहे तो वह प्रत्येक अवयवमें

सम्पूर्ण रूपसे रहता है वा अवयवोंसे ? यदि प्रथम पक्ष है तो प्रत्येक अवयवमें रहनेसे नाना अवयवी होजायंगे, और गौके कर्ण देशमेंभी सम्पूर्ण गौका व्यवहार होनेसे दोहनादि कार्य्य होना चाहिये, और अवयवोंके पृथक् होनेसेभी जातिके तुल्य अवयवीका नाश होगा, और द्वितीय पक्षमें अनवस्थासे अनन्त अवयवोंसे मेरु और सर्षप (सरसों) की समानता होजायगी, इसी प्रकार अवयवभी अवयवीमें एक देशमें रहेंगे वा सम्पूर्ण अवयवीमें यदि प्रथम पक्षहै तो अनवस्था दोषहै, और द्वितीय पक्षमें एकही अवयव सम्पूर्ण अवयवीमें रहेगा, तो अन्य अवयवोंका समावेश न होगा, और अद्वय ब्रह्मका अवयव न होनेसे सब द्रव्य निरवयव होजायंगे इसलिये इनकी अनवयवोंसे अनिर्वचनीय सत्ताहै ऐसीही जगत् ब्रह्मकी है ॥ १० ॥ हे रामजी ! परमार्थ चिद्रूप ब्रह्म अविद्या प्रतिविम्बित ज्ञानसे दर्पणमें मुखके सदृश अपने चिन्मात्र प्रपंचका अज्ञानसे आपही कल्पना करके ऐसे अनुभव करताहै जैसे वायु अपनी गतिको ॥ ११ ॥ उसीसमय कारणमें लीन शब्दतन्मात्राचित् चमत्काररूप धारण करके ब्रह्म आकाशके तुल्य ऐसे स्फुरित होताहै जैसे चित्तसे संकल्प ॥ १२ ॥

तदेवानिलतांवेत्तिनिजसत्तात्मिकांस्वयम् ॥ अंतर्गतस्पर्शरसांपवनस्पंदतामिव ॥ १३ ॥ तदेवाभासतामेतिनिजसत्तात्मिकांस्वयम् ॥ कोशस्थितालोकलवांतेजःप्रकटतामिव ॥ १४ ॥ तदेवजलतांयातिनिजसत्तात्मिकांस्वयम् ॥ अंतःस्थितास्वादलवांसलिलंद्रवतामिव ॥ १५ ॥ तदेवावनितांवेत्तिस्वचित्तैकात्मतामयीम् ॥ अंतःस्थगंधतन्मात्रामुर्वीस्थैर्यकलामिव ॥ १६ ॥

अर्थ—वही आकाश भावको प्राप्त ब्रह्म निजसत्तारूप स्पर्शतन्मात्रायुक्त वायुरूपताको अपने आत्मामें आपही ऐसे अनुभव करताहै जैसे स्थिर पवन काल पाके स्पन्द (गति) को ॥ १३ ॥ वह वायुभावको प्राप्त ब्रह्म अपनी सत्तारूप तेजतन्मात्रायुक्त तेजरूपताको अपने आत्मामें आपही ऐसे अनुभव करताहै जैसे तेज प्रकाशताको ॥ १४ ॥ वह तेज दशामें प्राप्त ब्रह्म अपनी सत्तारूप रसतन्मात्रसहित जलरूपताको अपने आत्मामें इसप्रकार अनुभव करताहै जैसे जल द्रवताको ॥ १५ ॥ और वही जलभावको प्राप्त ब्रह्म अपनी सत्तारूप गन्धतन्मात्रासहित पृथिवीरूपताको ऐसे अनुभव करताहै जैसे पृथिवी स्थिरताकी कलाको ॥ १६ ॥

तुल्यकालनिमेषांशलक्षभागप्रतीतियत् ॥ निजंविदःप्रपञ्चनंतत्सर्गौघपरंपरा ॥ १७ ॥ शुद्धंसकृत्प्रभातांतर्दृश्यमध्यमनामयम् ॥ उदयास्तमयोन्मुक्तंब्रह्मतिष्ठत्यनिष्ठितम् ॥ १८ ॥ बुद्धंसदपवर्गंतत्ससर्गमपिसत्समम् ॥ अबुद्धंसर्गरूपात्मविसर्गमपितत्सदा ॥ १९ ॥ चिद्ब्रह्मयद्यथायेनबुद्ध्यतेस्वात्मनात्मनि ॥ तत्तत्तथानुभवतिसर्वंसर्वांगशक्तिमत् ॥ २० ॥

अर्थ—हे रामजी ! चेतनके तुल्य कालमें निमेषके लक्षतम भागमेंभी प्रतीतिवाले स्फुरणमें करोडों कल्प विस्तारयुक्त सृष्टियोंके समूहोंकी परम्परा होजाती है, इससे यह सिद्ध हुआ कि चेतनके किंचित्स्फुरणमें चाहो निमेषांशके लक्षतमभागका आरोप करो, वा मायिक कोटि कल्पका आरोप करो, वस्तुतः कुछ विरोध नहीं, इससे जो दृष्टि सृष्टि वादके क्रम कल्पनाकी असिद्धिकी शंकाथी वह खण्डित हुई ॥ १७ ॥ जो वस्तु जड अशुद्ध देशकालसे परिछिन्न दोषसहित, सादिसान्त और कालमें स्थितहै, उसीका कालसे परिच्छेद होताहै औ ब्रह्म तो शुद्ध सदा प्रकाशरूप दृश्यके मध्य और प्रलयका अधिष्ठान उदय तथा अस्ततासे रहित, तथा निराधार है ॥ १८ ॥ दृश्यादि उसके अन्तर्गत होनेपरभी वह ब्रह्म परमार्थमें अपवर्गरूपहै, सृष्टिसहितभी विषमतारहितहै यद्यपि वह सर्वदा सृष्टि आदिसे शून्यहै तथापि अज्ञात होनेसे सृष्टिरूप भान होताहै ॥ १९ ॥ सर्वशक्तिमान् मायाकी शक्ति विशिष्ट ब्रह्म बोद्धाजन जैसा अनुभव करते हैं, वैसाही आकार मायासे धारण करताहै ॥ २० ॥

तत्सत्यंचिद्विलासत्वान्नित्यानुभवरूपतः ॥ तदसत्यंमनःषष्ठात्सर्वाख्यानिगतंयतः ॥ २१ ॥ यथैतत्स्सरणंवायौतथासर्गःस्थितःपरे ॥ असत्कल्पेपिसत्कल्पःसत्येऽसत्यइवापिच ॥ २२ ॥ अन्यरूपायथानन्यातेजस्यालोकतोदरे ॥ तथाब्रह्मणिविश्वश्रीःसत्यासत्यात्मिकाचिति ॥ २३ ॥ अनुत्कीर्णायथापंकेपुत्रिकाचाथदारुणि ॥ यथावर्णामषीकल्केतथासर्गाःस्थिताःपरे ॥ २४ ॥

अर्थ—चिद्विलास, तथा नित्य अनुभवरूप होनेसे शास्त्रीय दृष्टिसे जगत्भी सत्य ब्रह्मरूपही है, और सम्पूर्ण नामोंको सर्वथा प्राप्त ब्रह्मभी बहिर्मुख नेत्रादि तथा छठामनकी दृष्टिसे असत्य जगत्रूपही है, क्योंकि वागआदि इन्द्रियोंके अगोचर ब्रह्मका इन्द्रिय गोचररूप सत्य नहीं होसकता ॥ २१ ॥ जैसे वायुमें संचलनके पूर्व संचल असत्के सदृश होनेपरभी संचल होनेपर वह सत्के तुल्यही है, और शान्तवायुमें गति न होनेसे वह असत्के तुल्य है,

इसी प्रकार सृष्टि असत्सदृश मूलाज्ञानमें अधिष्ठान ब्रह्मकी सत्तासे सत्यके सदृशहै और अधिष्ठानके सत्य होनेपर भी असत्य मायारूप होनेसे असत्यके तुल्यभी है ॥ २२ ॥ जैसे तेज प्रकाशतासे भिन्नरूपसे असत्य और तेजरूपसे सत्य है ऐसेही विश्वकी शोभा ब्रह्ममें अभिन्नरूपसे सत्य और उससे पृथक्रूपसे असत्यहै, तात्पर्य्य यह कि चेतनमें अभिन्न और भिन्नरूपसे यह जगत् सत्यासत्य उभय-प्रकार है ॥ २३ ॥ जैसे पंक अथवा काष्ठमें विना खुदी प्रतिमा रहती है, और मषीके जलमें वर्ण रहते हैं, ऐसेही परब्रह्ममें अनेक सृष्टि स्थितहै ॥ २४ ॥

अनन्यान्येवकचतिब्रह्मतत्त्वमरुस्थले ॥ असत्यात्मनिसत्येवत्रिजगन्मृगतृष्णिका ॥ २५ ॥ ब्रह्मणा चिन्मयेनात्मासर्गात्मैवविभाव्यते ॥ नभाव्यतेचानन्यत्वाद्बीजेनांतरिवद्रुमः ॥२६॥ यथाक्षीरस्यमाधुर्यंतीक्ष्णत्वंमरिचस्यच ॥ द्रवत्वंपयसश्चैवस्पंदनंपवनस्यच ॥ २७ ॥ स्थितोनन्योयथान्यःसन्नास्तितत्रतथात्मनि ॥ सर्गोनिर्गलच्चिद्रूपःपरमात्मात्मरूपभृत् ॥ २८ ॥ कचनंब्रह्मरत्नस्यजगदित्येवयत्स्थितम् ॥ तदकारणकंयस्मात्तेननव्यतिरिच्यते ॥ २९ ॥

अर्थ—हे रामजी ! आत्मासे अभिन्न ब्रह्मरूपी मरुस्थलमें असत्य त्रिजगत्‌रूपी मृगतृष्णा अभिन्नरूपसे स्फुरित होरही है ॥ २५ ॥ चिदाभासरूप जीवदशामें प्राप्त चिन्मय ब्रह्म आत्माको भ्रान्तिसे सृष्टिरूपही अनुभव करता है, और तत्वदृष्टिसे ब्रह्म अभिन्न होनेके कारणसे सृष्टिरूप ऐसे नहीं भान होता जैसे बीजसे अभिन्न उसके भीतर वृक्ष ॥ २६ ॥ जैसे दुग्धकी मधुरता मरिचकी तीक्ष्णता जलकी द्रवता और पवनकी स्पन्दता अभिन्नरूपसे स्थित सब है, और भिन्नरूप देखनेसे कुछ नहीं है ऐसेही सृष्टि ब्रह्ममें लीन होनेसे शेष चिद्रूप परमात्मस्वरूपधारी है ब्रह्मरूपी रत्नका जो जगत्‌रूपसे स्फुरणहै वह ब्रह्मसे अभिन्न होनेसे कारण रहितहै ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥

वासनाचित्तजीवादिवेदनंवेदनोदितम् ॥ नोदेत्यवेदनादेवयत्नादेवपौरुषात् ॥ ३० ॥ नास्तमेतिनचोदेतिक्वचित्किंचित्कदाचन ॥ सर्वंशांतमजंब्रह्मचिद्घनंसुशिलाघनम् ॥ ३१ ॥ पराणुंप्रतिसर्गौघाश्चित्ताद्भ्रांतिसहस्रशः ॥ तेष्वप्यणावणावंतःकैवात्रावासनाकथम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—और चित्त जीवादिकी वासनाका जो अनुभव है, वह मनसे उत्पन्न हुआ है, और ज्ञानयोगके दृढ अभ्यासरूपी पुरुषार्थसे मनका नाश होनेसे वह नहीं उदय होता ॥ ३० ॥ वह ज्ञानयोगकाभी किसी स्थानपर किंचित् भी यथार्थमें न अस्त हो न उदयहो, वह सम्पूर्णरूपसे शान्त जन्मादि विकाररहित शिलाघनके सदृश चिद्घन ब्रह्ममात्रहै ॥ ३१ ॥ चित्तके रहनेसे भ्रान्तिसे एक परमाणुके भीतरभी सहस्रों सृष्टिके समूह प्रादुर्भूत होते हैं, और सृष्टियोंके अणुअणुमें सृष्टियोंके समूह हैं, तो इस चिदणुमें सृष्टियोंके निवासकी क्या कथा, अर्थात् यह सब प्रतीति मायासे हैं, यथार्थमें यह परमाणु सृष्टिकी स्थिति मिथ्याभूतहै ॥ ३२ ॥

यथाजलांतऊर्म्याद्यागुप्तागुप्ताश्चशक्तयः ॥ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ताद्यास्तथाजीवेंतरास्थिताः ॥ ३३ ॥ जाता चेदरतिर्जंतोर्भोगान्प्रतिमनागपि ॥ तदसौतावतैवोच्चैःपदंप्राप्तइतिश्रुतिः ॥ ३४ ॥ यतोयतोविरज्येत ततस्ततोविमुच्यते ॥ अतोहमित्यसंविदन्कएतिजन्मसंविदम् ॥ ३५ ॥ चितिंपरापरामजामरूपिकां मनामिकाम् ॥ चराचराधराऽमयींविदंतियेजयंतिते ॥ ३६ ॥ परेचितिःस्वप्रकटाद्वितीयास्त्वावर्त्तलेखेवजलेद्रवांतः ॥ साहंतयेमानिजगंतिधत्तेनसंतिनासंतिपरात्मकानि ॥ ३७ ॥ अहंमयीपद्मजभावनाचित्संकल्पभेदाद्वितनोतिविश्वम् ॥ अंतर्मुखैवानुभवत्यनंतानिमेषकोट्यंशविधौयुगांतम् ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे जगत्स्वरूपवर्णनं नाम एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

अर्थ—जैसे जलमें तरंग आदिशक्ति गुप्त अगुप्त अनिर्वचनीय रूपसे स्थित है, ऐसेही जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्त आदिशक्ति जीवके भीतर अनिर्वचनीय रूपसे स्थित है ॥ ३३ ॥ यदि विषयभोगोंमें प्राणीका किंचित्‌भी वैराग्य उत्पन्न होतो 'पर्य्याप्तकामस्यकृतात्मनश्चइहैवसर्वेप्रविलीयंतिकामाः' (यह श्रुति कहतीहै कि) वह उच्च पदको प्राप्त होचुका ॥ ३४ ॥ स्मृतिभी कहती है कि जहां २ यह प्राणी विरक्त होता है वहां २ से मुक्त होजाता है 'निवर्त्तनाद्धिसर्वतोनवेत्तिदुःखमण्वपि' देहादिमें अहम् यह अभिमान न करनेवाला कौन प्राणी जन्ममरण आदिरूप भ्रांतिमें आसकता है ॥३५॥ हे रामजी ! जो प्राणी नामरूप जगत् कल्पना स्वरूप पराचिति अर्थात् ईश्वर चैतन्यको और चराचर देहादि निकृष्ट उपाधि धारिणी अपरा चिति अर्थात् जीवचैतन्यको जानते हैं उनका जन्म मरण पुनः नहीं होता ॥ ३६ ॥ परब्रह्ममें व्यष्टि जीवरूप प्रकट द्वितीय चिति ऐसी है जैसे जलके भीतर द्रवीभूत आवर्तकी रेखा, वही

चिति अहन्तारूपसे अनेक जगत् धारण करती है और यथार्थमें परब्रह्मात्मक ये जगत् अपने स्वरूपसे न सत्‌रूप हैं और न असत्‌रूप हैं किन्तु अनिर्वचनीय हैं ॥ ३७ ॥ और व्यष्टिके सदृश समष्टि ब्रह्माकी भावनारूप अहंमयी चित् अपने संकल्पोंके भेदसे विश्वका विस्तार करती है, और वह (पद्मज ब्रह्माकी भावनामयी समष्टि चित्) अन्तर्मुख होके अनन्त विष्णुभगवानके निमेषके कोट्यंशभूत तथा सब पदार्थोंके विधान करनेवाले कालमें ७२ बहत्तर सहस्र युग पर्य्यन्त अपनी आयुका भोग करती हैं, अहो कैसी आश्चर्यमयी मायाकी शक्ति है ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे जगत्स्वरूपवर्णनं नाम एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

आदिविश्वकी भ्रान्ति मात्रका उदय, और महानियतिकी शक्ति जीवन्मुक्ति आदिकी सिद्धिके लिये इस ६२ वें सर्ग प्रपञ्चरूपसे वर्णन कीगई है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ परमाणुनिमेषाणांलक्षांशकलनास्वपि ॥ जगत्कल्पसहस्राणिसत्यानीवविभांत्यलम् ॥ १ ॥ तेष्वप्यंतस्तथैवांतःपरमाणुकणंप्रति ॥ भ्रांतिरेवमनंताहोइयमित्यवभासते ॥ २ ॥ वर्हतीमाःपराःसत्ताःशांताःसर्गपरंपराः ॥ सलिलद्रवतेवांतःस्फुटावर्त्तविवर्तिका ॥ ३ ॥ मिथ्यात्मिकैव सर्गश्रीर्भवतीहमहामरौ ॥ तीरद्रुमलतोन्मुक्तपुष्पालीवतरंगिणी ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवशिष्ठजी बोले-हे रामजी ! परमाणुके लक्षतम (लाखवें) भागकी कल्पनामें सहस्रों ब्रह्माण्ड और निमेषके लक्षतम भागकी कल्पनामें सहस्रों कल्प दृश्यमान ब्रह्माण्डके सदृश यथार्थमें असत्यभी सत्यके तुल्य पूर्णतासे भान होते हैं ॥ १ ॥ इसीप्रकार उन ब्रह्माण्डोंके परमाणुमें और उन कल्पोंके निमेषके लक्षतम भागमेंभी सहस्रों ब्रह्माण्ड तथा सहस्रों कल्पकी संभावना होसकती है, इस रीतिसे अनवस्थित स्वभाव होनेसे यह केवल अनन्त आश्चर्य्यमयी भ्रान्तिही भासरही है ॥ २ ॥ वर्तमान आगामिनी तथा अतीत सृष्टियोंकी परम्परा प्रातिभासिकी सत्ताको ऐसे धारण करती है जैसे जलकी द्रवता अपने प्रकट आवर्तोंके (भवरेंह युक्त जलोंके) विवर्तोंको ॥ ३ ॥ हे रामजी ! यह सृष्टियोंकी शोभा इस परब्रह्ममें पृथक्‌रूपसे ऐसे मिथ्याहै, जैसे महामरुस्थलमें तीरके वृक्षोंसे गिरे पुष्पोंकी पंक्तिसहित मृगतृष्णाकी नदी ॥ ४ ॥

स्वप्नेंद्रजालपुरवत्संकथेहापुराद्रिवत् ॥ संकल्पवदसत्यैवभातिसर्गानुभूतिभूः ॥५॥ श्रीरामउवाच ॥ एकात्मैकतयैवंहिजातेसम्यग्विचारणात् ॥ निर्विकल्पात्मविज्ञानेपरेज्ञानवतांवर ॥ ६ ॥ किमर्थमिह तिष्ठंतिदेहास्तत्त्वविदामपि ॥ दैवेनैवसमाक्रांतादैवमत्रचकिंभवेत् ॥ ७ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अस्तीह नियतिर्ब्राह्मीचिच्छक्तिःस्पंदरूपिणी ॥ अवश्यभवितव्यैकसत्तासकलकल्पगा ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! स्वप्न और इन्द्रजालके नगरके तुल्य वा कथा और चेष्टाके नगर तथा पर्वतादिके तुल्य अथवा संकल्पके समान यह सृष्टियोंके अनुभवकी भूमि मिथ्याही प्रकाशित होरही है ॥ ५ ॥ श्रीरामजी बोले-कि हे ज्ञानियोंमें श्रेष्ठभगवन् ! उक्त प्रकारसे भलीभांति विचारद्वारा एक अद्वितीय आत्मा ब्रह्मके साथ अभेद होनेसे सर्वोत्कृष्ट निर्विकल्प आत्म विज्ञान उत्पन्न होनेपर ॥ ६ ॥ तत्वज्ञानियोंको दैव क्या होसकता है क्योंकि श्रुतिमें ऐसा लिखा है कि " नतस्यदेवाश्चनाभूत्याईशत ॥ आत्माह्येषांसभवतीति ॥ तत्वज्ञानियोंके ऊपर देवता आदिका सामर्थ्य कुछ नहीं चलता वह उनकी आत्मा होजाता है ॥ ७ ॥ हे रामजी ! सब जगत्‌के नियत व्यवहारसे प्रकट रूपवती अवश्य भवितव्यता सम्पूर्ण कल्पोंमें व्याप्त एकसत्ता, ब्रह्मकी चित्‌शक्तिरूप नियति, इस संसारमें है अर्थात् प्राणियोंके अदृष्ट वस्तुकी शक्तिकी सहकारिणी ईश्वरके संकल्परूप महानियति (मर्य्यादा) केही वशसे सर्व व्यवहारोंकी व्यवस्थाके तुल्य विद्वानोंके शरीरकाभी धारण होता है ॥ ८ ॥

आदिसर्गेहिनियतिर्भाववैचित्र्यमक्षयम् ॥ अनेनेत्थंसदाभाव्यमितिसंपद्यतेपरम् ॥ ९ ॥ महासत्तेति कथितामहाचितिरितिस्मृता ॥ महाशक्तिरितिख्यातामहादृष्टिरितिस्थिता ॥ १० ॥ महाक्रियेतिगदितामहोद्भवइतिस्मृता ॥ महास्पंदइतिप्रौढामहात्मैकतयोदिता ॥ ११ ॥ तृणानीवजगंत्येवसितिदैत्याः सुराइति ॥ इतिनागाइतिनगाइत्याकल्पंकृतास्थितिः ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! आदिसृष्टिमें अग्नि आदिको उष्णता तथा ऊर्ध्वज्वलन आदि स्वभावसे युक्त सदा अवश्य होना चाहिये, इस प्रकार परब्रह्म स्वयं अपने संकल्पसे पदार्थोंकी विचित्रता सहित अक्षय नियतिरूप होजाताहै ॥ ९ ॥ वही नियति सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंकी स्थिति, विस्तार, सामर्थ्य, विवेक रचना, जन्म और अर्थ क्रियाकारितादिकी हेतुतासे महासत्ता, महाचिति, महाशक्ति, महादृष्टि महाक्रिया, महाउद्भव, और महान् आत्माके साथ एकतासे प्रौढतासे उदित महास्पन्दगति इत्यादि नामोंसे कहीगई है ॥१०॥११॥ हे रामजी ! तृणोंके समान सब जगत्का परिवर्तन करती दैत्य इसप्रकारके क्रूरहैं, देवता इसप्रकार शान्तहैं, नाग ऐसे हैं, पर्वत ऐसे जडहैं, इत्यादि रूपसे कल्पपर्य्यन्त यह नियति अपनी स्थिति किये हुये है ॥ १२ ॥

कदाचिद्ब्रह्मसत्तायाःव्यभिचारोनुमीयते ॥ चित्रमाकाशकोशेचनान्यथानियतेःस्थितिः ॥ १३ ॥ विरिंच्याद्यात्मभिर्बुद्धैर्बोधायाविदितात्मनाम् ॥ ब्रह्मात्मैवसानियतिःसर्गोयमितिकथ्यते ॥ १४ ॥ अचलंचलवद्दृष्टंब्रह्मापूर्यव्यवस्थितः ॥ अनादिमध्यपर्यंतंसर्गोवृक्षइवांबरे ॥ १५ ॥ पाषाणोदरलेखौघन्यायेनात्मनितिष्ठता ॥ ब्रह्मणानियतिःसर्गोबुद्धोऽबोधवतेवखम् ॥ १६ ॥

अर्थ—कदाचित् ब्रह्मसत्ताके व्यभिचारका अनुमान होसकता (यद्यपि असम्भव है) और आकाशमें चित्र लिखा जासकता है, परन्तु नियतिकी स्थितिका अन्यथा भाव नहीं होसकता ॥ १३ ॥ यह वार्ता अज्ञानियोंकी दृष्टिसे कही गई है, और वास्तविकमें ब्रह्मा आदि तत्वज्ञानियोंने उस नियति तथा सृष्टिको ब्रह्मरूपही कहा है ॥ १४ ॥ अचलभी ब्रह्म उपाधिसे चलायमानके समान देखागया है, और यह सृष्टि आदि, मध्य, और अन्त शून्य ब्रह्मको इसप्रकार आच्छादन करके स्थित है जैसे इन्द्रजालादि द्वारा आकाशमें वृक्ष ॥ १५ ॥ स्फटिक शिलामें प्रतिबिम्बित वनकी रेखाके समान मायाशबल ब्रह्ममें स्थित हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) ने सृष्टिको ऐसे देखा जैसे सोया हुआ पुरुष स्वप्नमे आकाशको ॥ १६ ॥

देहेयथांगिनोंगादिदृश्यतेचित्स्वभावतः ॥ ब्रह्मणापद्मजत्वेननियत्याद्यंगकंतथा ॥ १७ ॥ एषादैवमितिप्रोक्तासर्वंसकलकालगम् ॥ पदार्थमलमाक्रम्यशुद्धाचिदितिसंस्थिता ॥ १८ ॥ स्पंदितव्यंपदार्थेन भाव्यंवाभोक्तृतापदम् ॥ अनेनेत्थमनेनेत्थमवश्यमितिदैवधीः ॥ १९ ॥ एषैवपुरुषस्पंदस्तृणगुल्मादि चाखिलम् ॥ एषैवसर्वभूतादिजगत्कालक्रियादिवा ॥ २०

अर्थ—जैसे अंगीके शरीरमें हस्त पाद आदि अवयव देखेगये हैं उसी प्रकार चित्स्वभावसे पद्मसे उत्पन्न ब्रह्माने नियतिरूप आदि सृष्टिसमूहको अपना अवयवरूप देखा ॥ १७॥ हे रामजी ! यही शुद्ध मोहरहित ईश्वरका संकल्प चैतन्य जोकि सर्वात्मक और सकल पदार्थ गामी है, दैव कहाता है और यही सम्पूर्ण पदार्थोंको आक्रमण करके स्थित है ॥ १८ ॥ अमुक पदार्थको इसप्रकार चेष्टा करनी चाहिये, अमुकको इसका इसप्रकार भोक्ता होना चाहिये, अमुकको अवश्य इसप्रकार होना चाहिये, और अमुकको ऐसा होना चाहिये, इसप्रकार दैवबुद्धिको नियति कहते हैं ॥ १९ ॥ यही पुरुषकी चेष्टा है, यही तृण और लता आदि सबकुछ है यह सब भूतोंकी आदि है अथवा यही जगत्-काल वा क्रियादिरूप है ॥ २० ॥

अनयापौरुषीसत्तासत्तास्याःपौरुषेणच ॥ लक्ष्यतेभुवनंयावद्द्वेएकात्मतयैवहि ॥ २१ ॥ नरेणपौरुषेणैवकार्यंसत्तात्मकेऽम्भे ॥ ईदृश्येतेननियतिरेवंनियतिपौरुषे ॥२२॥ प्रष्टव्योहंत्वयारामदैवपौरुषनिर्णयः॥ मदुक्तंपौरुषंपाल्यंत्वयेतिनियतिःस्थिता ॥ २३ ॥ भोजयिष्यतिमांदैवमितिदैवपरायणः ॥ यत्तिष्ठत्यक्रियोमौनंनियतेरेषनिश्चयः ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! इसी नियतिसे प्रत्येक पुरुषके अदृष्ट सम्बन्धिनी सत्ता अर्थात् फलोंको अवश्य भाव स्थिति लक्षित होती है, और प्राणियोंके अदृष्टरूपी पौरुषसे इस नियतिकी सत्ता जबतक त्रिलोककी स्थितिहै तबतक लक्षित होती है, अर्थात् प्राणीयोंका अदृष्ट और नियति परस्पर एक दूसरेके सहायकहै, और प्रलयदशामें प्राणियोंका अदृष्ट तथा नियतिकी सत्ता एकरूपसे रहती है ॥ २१ ॥ इन दोनोंकी सत्ता पुरुषार्थ प्रयत्नहीका कार्य्य है इसीक्रमसे नियति स्थिति है ॥ २२ ॥ हे रामजी ! अधिक कहांतक कहैं शिष्यभावसे तुमारा दैव, और पौरुषका निर्णय मुझसे पूंछना और मेरा कहा हुआ पौरुषका तुमारा पालन करना, इस रूपसेभी नियतिही स्थितहै ॥ २३ ॥ और यदि कोई प्राणी दैव मेरा पालन करेगा ऐसा दैवमें परायण निश्चय करके क्रिया रहितहो मौन होके बैठ जाताहै तौ यहभी उसके अनुकूल पूर्वजन्मके कर्मोंसे उद्बोधित (जगाईहुई) नियतिके निश्चयसेही होताहै ॥ २४ ॥

नस्यादबुद्धिर्नकर्माणिनविकारादिताछतिः ॥ केवलंतिवत्थमाकल्पंस्थित्याभाव्यमितिस्थिताः ॥ २५ ॥ अवश्यंभवितव्यैषात्विदमित्थमितिस्थितिः ॥ नशक्यतेलंघयितुमपिरुद्रादिबुद्धिभिः ॥ २६ ॥ पौरुषं नपरित्याज्यमेतामाश्रित्यधीमता ॥ पौरुषेणैवरूपेणनियतिर्हिनियामिका ॥ २७ ॥ अपौरुषंहिनियतिः पौरुषंसैवसर्गगा ॥ निष्फलाऽपौरुषाकारासफलापौरुषात्मिका ॥ २८ ॥

अर्थ—यदि पूर्वजन्ममें पुरुषार्थ शून्यके चल आक्रिय रहै, तो प्राणियोंकी बुद्धि और उससे प्रेरित भौतिक विकार और विकाररूप गोआदि आकार कुछभी नहो इसप्रकार पुरुषकी क्रियामूलसे अर्थात् नियतिके वशसे सम्पूर्ण पदार्थ स्थित हैं ॥ २५ ॥ इस पदार्थ वा मनुष्यको अवश्य ऐसा होना चाहिये यह जो नियतिकी स्थिति है इसको महा देवादि ईश्वरोंकी बुद्धिभी लंघन नहीं कर सकती ॥ २६ ॥ पौरुषका त्याग कदापि न करना चाहिये, इसी निश्चयका आश्रय करके बुद्धिमान् पुरुषको रहना चाहिये, क्योंकि पौरुषरूपसे नियति संस्कारका नियम करती है ॥ २७ ॥ पौरुषही पुरुषके प्रयत्नरूपसे अविवक्षा करनेसे केवल ईश्वरके सम्बन्ध कल्पना मात्रसे नियति कहलाती है सृष्टि गामिनी और वही सृष्टिरुपफल नियति सहित पुरुषके यत्नरूपसे विवक्षा करनेसे पौरुष शब्दसे कही जाती है और अपौरुषरूप नियति निष्फल होती है और पौरुषरूपसे सफल होती है क्योंकि पौरुषसेही सब सिद्ध होताहै ॥ २८ ॥

नियत्यासूकतामेत्यनिष्पौरुषतयाक्रियम् ॥ यस्तिष्ठतिप्राणमरुत्स्पंदस्तस्यकगच्छति ॥ २९ ॥ अथप्राणक्रियारोधमपिकृत्वाविरामदम् ॥ यदितिष्ठतितत्साधुर्मुक्तएवकिमुच्यते ॥ ३० ॥ पौरुषैकात्मताश्रेयोमोक्षोत्यंतमकर्तृता ॥ आभ्यांतुसबलःपक्षोनिर्दुःखैवमहात्मनाम् ॥ ३१ ॥ नियतिर्ब्रह्मसत्ताभातस्यां चेत्परिणम्यते ॥ नूनंपरमशुद्धाख्यंतत्प्राप्तैवपरागतिः ॥ ३२ ॥ एतैर्नियत्यादिमहाविलासैर्ब्रह्मैवविस्फूर्जतिसर्वगात्म ॥ तृणादिवल्लीतरुगुल्मजालैःसत्तेवतोयस्यधरांतरस्था ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे दैवशब्दार्थनिरूपणं नाम द्विषष्टितमःसर्गः ॥ ६२ ॥

अर्थ—और जिनको अजगर वृत्ति धारण करनेसे तृप्ति आदि फलका लाभ देखा गयाहै उनको वह लाभभी अन्नादिको भोजन करके निगरण (निगलन) आदि पुरुषके यत्नसेही होताहै, और जो पुरुष नियतिसे तृप्ति आदि कार्य्य सिद्ध होंगे ऐसा निश्चय करके भाषण आदि व्यापारसे रहित, तथा भोजनादि व्यापाररूप पौरुषसे शून्य रहता है, वह तृप्त नहीं होता, और जो भूखाभी कुछकाल जीताहै, वहभी प्राणके संचलरूप पुरुषार्थसेही क्योंकि जीवपर्य्यंत प्राणवायुका संचलन कहा जाताहै ॥ २९ ॥ और यदि प्राणक्रियाके व्यापारको निरोध करके निर्विकल्प समाधिमें चित्तके विश्रामरूप प्राणके निरोधकाही अवलम्बन करके स्थित रहताहै तो वह यदि तत्ववेत्ताहै तो वह सम्पूर्ण पुरुषार्थकी अवधि मुक्तिरूपफलको प्राप्त होताहै, वहभी प्राणोंके निरोधरूप पौरुषसेही होताहै, इसलिये अपौरुषफल कुछ भी नहीं है ॥ ३० ॥ इसलिये शास्त्रीय पौरुषमें परायणता श्रेयका हेतु होनेसे साधनतारूपसे श्रेयहै, और सर्वथा कर्तृताका अभावरूप मोक्षफल होनेसे श्रेय (कल्याण) है इन दोनों साध्य साधनरूप श्रेयसे तत्वज्ञानियोंका पक्ष सबल है, अर्थात् कार्य्य सहित अविद्याके नाशमें समर्थ है इसलिये उनको नियति दुःख रहित है ॥ ३१ ॥ यह जो दुःख रहित नियति है, यही ब्रह्मकी सत्ताकी स्फुरणहै उसमें यदि यत्नसे स्थिर होजाता है तो ॥ साकाष्ठासापरागतिः ॥ इस श्रुतिप्रसिद्ध परम शुद्धाख्य मुक्तिपदको मानों प्राप्तही होगया ॥ ३२ ॥ हे रामजी ! इन नियति आदि महान् अप्रहित विलासोंसे सर्वव्यापी आत्मा ब्रह्मही इसप्रकार स्फुरित होरहाहै, जैसे पृथिवीके अन्तर स्थित जलकी द्रवता सत्ताकुशकाशादि तृण तथा लता वृक्ष और गुल्मादि समूहोंके भेदोंसे ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे दैवशब्दार्थनिरूपणं नाम द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥

मायाकी शक्तिके विलासोंसे जिसप्रकार सर्वरूप सर्वत्र ब्रह्मही स्फुरित होरहाहै, वह प्रकार इस ६३ वें सर्गमें वर्णन किया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यदेतद्ब्रह्मतत्त्वंसर्वथासर्वदैवसर्वतएवसर्वशक्तिसर्वाकारंसर्वेश्वरंसर्वगंसर्वमेवेति ॥ १ ॥ एषत्वात्मासर्वशक्तित्वाचकचिच्चिच्छक्तिंप्रकटयतिकचिच्छांतिंकचिजडशक्तिंकचिदुल्लासं

क्वचित्किंचिन्नकिंचित्प्रकटयति ॥ २ ॥ यत्रयदायदेवासौयथाभावयतितत्रतदातदेवासौप्रपश्यति ॥३॥ सर्वशक्तेर्हियायैवयथोदेतितथैवसा ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! यह जो माया शवल ब्रह्मतत्त्वहै, वही सब प्रकार, सर्वदा, सर्वत्र सर्वशक्तिमान्, सर्वाकार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापी और सब कुछहै ॥ १ ॥ यह आत्मा सर्वशक्तिमान् होनेके कारण, कहीं अन्तःकरण उपाधिमें शान्तिको, कहीं तामस उपाधिमें जडशक्तिको, और कहीं राजस उपाधिमें रागलोभादिकी प्रवृत्तिसे उत्साह शक्तिको, प्रकट करताहै, और कहीं तीनोंगुणोंकी मिश्रित अनिर्वचनीय शक्तिको प्रकट करताहै, और सुषुप्ति तथा प्रलयमें कुछ नहीं प्रकट करता ॥२॥ जिसस्थानपर, जिससमयमें, जिसपदार्थकी भावना यह ब्रह्म करताहै, उसस्थानपर उसीपदार्थको अपने सत्यसंकल्पसे देखताहै ॥ ३ ॥ सर्वशक्तिसे जो २ शक्ति जिस २ प्रकारसे आविर्भूत होतीहै, उनकी स्थिति और विचित्रता, उसी २ प्रकारसे वही २ होतीहै ॥ ४ ॥

तदास्तिशक्तिर्नानारूपिणीसास्वभावतइमाःशक्तयोयमात्मेति ॥ ५ ॥ एवंविकल्पजालंव्यवहारार्थंधीमद्भिःपरिकल्पितंलोकेनत्वात्मनिविद्यतेभेदः ॥ ६ ॥ यथोर्मितरंगपयसांसागरेकटकांगदकेयूरैर्वाहेम्नः ॥ अवयवावयविनोःसंवित्कल्पनिकीदृितानवास्तवी ॥ ७ ॥ यथायच्चेत्यतेहितथैवतन्नबाह्यतोनांतरतश्चैतत्समुदेतिहि ॥ ८ ॥

अर्थ—वह शक्ति नानारूप धारण करनेवाली है और ये सम्पूर्ण शक्तियां व्यवहार दृष्टिसे चित्स्वभावसे भिन्न हैं, और यथार्थमें सब कुछ यह आत्माही है ॥ ५ ॥ हे रामजी ! इसप्रकारके विकल्प जालोंको लोकमें व्यवहारके लिये तत्वज्ञानियोंने कल्पित किया है, और यथार्थमें आत्मामें कुछभी भेद नहीं है ॥ ६ ॥ जैसे समुद्रमें तरंग और जलका भेदहै, कटक (कडा) विजायठ और बाजू आदिसे सुवर्णका भेदहै, अथवा अंग और अंगीका जैसा भेदहै, इसी प्रकार संसार और ब्रह्मसे कल्पककी बुद्धिसे कल्पित भेदहै, यथार्थ नहीं ॥ ७ ॥ क्योंकि जो रज्जुआदि जिस सर्प आदि प्रकारसे जीव जानता है, वह उसीप्रकारसे विवर्तित होताहै, और सर्प आदि रज्जुके बाहर या भीतरसे नहीं आविर्भूत होते, किन्तु अज्ञानसे ॥ ८ ॥

सर्वात्मत्वात्समाभासंक्वचित्किंचित्प्रपश्यति ॥ ९ ॥ सर्वाकारमयंब्रह्मैवेदंततंमिथ्याज्ञानवद्भिःशक्तिशक्तिमत्त्वेऽवयवावयविरूपेकल्पितेनपारमार्थिके ॥ १० ॥ सद्वाभवत्वसद्वाचिद्यत्संकल्पयत्यभिनिविशतितत्तत्पश्यतिसकलातत्सद्ब्रह्मैवचिद्भाति ॥ ११ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे चित्ताविकारो नाम त्रिषष्टितमः सर्गः ॥६३॥

अर्थ—सर्व साधारण समान आभासवाला साक्षि चेतन सर्वात्मक होनेके कारणसे भ्रान्तिसे कहीं कुछ देखता है और कहीं कुछ ॥ ९ ॥ परमार्थ दृष्टिसे यह सब विस्तृत सर्वाकार ब्रह्महो है, और मिथ्या ज्ञानवाले न शक्ति शक्तिमान्, तथा अवयव अवयवीरूपसे ब्रह्म तथा संसारमें भेद कल्पित कियाहै, परन्तु पारमार्थिक यह भेद नहीं है ॥ १० ॥ इसप्रकार मिथ्या ज्ञानका उपहित चेतन शास्त्रके अनुकूल सत् और शास्त्रके प्रतिकूल असत् जो कुछ अपना कर्त्तव्य करके संकल्प करता है, उसीमें उद्युक्त होताहै, और उससे विहित वा निषिद्ध कर्म करके, भोगकालमें उसीको देखता है, और आदि सृष्टिके संकल्पसे आरम्भ करके भूतभौतिक देह भोग्यआदि पुरुषके भोगान्त सकल प्रपंचरूप ब्रह्म चित् वही प्रकाश कररही है, और कुछ नहीं ॥ ११ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे चित्ताविकारो नाम त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥

चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

भोग्य शक्तिकी विचित्रता आदिका आविर्भाव तथा भोक्ता जीवकी सम्पत्तिका क्रम इस ६४ वें सर्गमें प्रतिपादन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ योयंसर्वगतोदेवःपरमात्मामहेश्वरः ॥ स्वच्छःस्वानुभवानंदस्वरूपोंतादिवर्जितः ॥ १ ॥ एतस्मात्परमानंदाच्छुद्धचिन्मात्ररूपिणः ॥ जीवःसंजायतेपूर्वंसचित्तंचित्ततोजगत् ॥ २ ॥

॥श्रीरामउवाच॥ स्वानुभूतिप्रमाणेऽस्मिन्ब्रह्मणिब्रह्मबृंहिते ॥ कथंसत्तामवाप्नोतिजीवकोद्वैतवर्जिते ॥३॥ ॥श्रीवसिष्ठउवाच॥ असदाभासमच्छात्मब्रह्मास्तीहप्रबृंहितम् ॥ बृहच्चिद्भैरववपुरानंदाभिधमव्ययम् ॥४॥

अर्थ—श्रीवशिष्ठजी बोले कि–हे रामजी! जो सर्वगत शुद्ध अपना अनुभव तथा आनन्द स्वरूप और अन्त आदि वर्जित परमात्मा महेश्वर यह देवहै ॥ १ ॥ इसी परमानन्द शुद्ध चिन्मात्ररूपसे "अनेनजीवेनात्मनाऽनुप्रविश्यनामरूपेव्याकरवाणि" इस श्रुतिसे कल्पित नामरूपमय जगत् सृष्टिके पूर्वजीवकी उपाधि लिंग समष्टिकी उत्पत्तिसे जीव उत्पन्न होताहै, उसीको उपाधिकी प्रधानतासे चित्त कहते हैं, और उसी चित्तसे जगत् उत्पन्न होताहै ॥ २ ॥ श्रीरामजी बोले–हे भगवन्! निरतिशय अपरिच्छेदरूप वृद्धिको प्राप्त निज अनुभव वेद्य स्वप्रकाश, अखण्ड अद्वितीय ब्रह्ममें सखण्ड सद्वितीय और अल्पजीव किसप्रकार सत्ताको प्राप्त होताहै ॥ ३ ॥ श्रीवशिष्ठजी बोले–हे रामजी! जिसमें अद्वैत प्रत्ययोंके आभासका अभावहै ऐसा शुद्धात्मस्वरूप परमवृद्धिको प्राप्त महाचिद्रूप अज्ञानियोंके अर्थ भयंकर होनेसे भैरव शरीर, आनन्दरूप तथा नाशवर्जित ब्रह्महै, इसमें सत्य, शुद्ध, निरवद्यरूप जीव सत्ताका संभव परमार्थ दृष्टिसे नही है, और अविद्यासहितमें तो उसकी सत्ताका विरोध नहीं है ॥ ४ ॥

तस्ययत्समसापूर्णंशुद्धंसत्त्वमचिह्नितम् ॥ तद्विदामप्यनिर्देश्यंतच्छांतंपरमंपदम् ॥५॥ तस्यैवोद्यदिवाशांतियत्सत्त्वंसंविदात्मकम् ॥ स्वभावात्स्पंदनंतत्तुजीवशब्देनकथ्यते ॥ ६ ॥ तत्रेमाःपरमादर्शेचिव्योम्न्यनुभवात्मिकाः ॥ असंख्याःप्रतिबिंबंतिजगज्जालपरंपराः ॥ ७ ॥ ब्रह्मणःस्फुरणंकिंचिद्यदवातांबुधेरिव ॥ दीपस्येवाप्यवातस्यतंजीवंविद्धिराघव ॥ ८ ॥

अर्थ—उसका जो सर्वत्रसमान सर्वथा परिपूर्ण, शुद्ध सत्त्वरूप चिन्हवर्जित स्वरूपहै तत्वज्ञानियोंकोभी 'इदमित्थम्, यह ऐसाहै इस रीतिसे दिखलानेके अयोग्य, शान्त और परमपदरूपहै उसमें जीव सत्ताका सम्भव नहीं है ॥ ५ ॥ हे रामजी! मोक्ष पर्य्यन्त उत्पत्तिके बीजसत्ताके कारणसे उदय होते हुयेके समान जो संवित्रूपहै उसका उपाधिके स्वभावसे, चलन शक्तिरूप जो प्राणका धारणहै, उसीको जीव शब्दसे कहते हैं ॥ ६ ॥ उस परम महादर्पण चिदाकाशमें ये अनुभवरूप असंख्य जगत् समूहोंकी परंपरा प्रतिबिम्बित होती हैं ॥ ७ ॥ हे राघव ! जिसप्रकार वायुरहित समुद्रका अथवा दीपका किंचित् वायुसे स्फुरण होताहै ऐसेही ब्रह्मका किंचित् स्फुरण अर्थात् क्रिया शक्ति प्रधान प्राणभावहै, इसीको जीव कहते है ॥ ८ ॥

शांतत्वापगमेच्छस्यमनाक्संवेदनात्मकम् ॥ स्वाभाविकंयत्स्फुरणंचिद्व्योम्नःसोंगजीवकः ॥ ९ ॥ यथावातस्यचलनंकृशानोरुष्णतायथा ॥ शीततावातुषारस्यतथाजीवत्वमात्मनः ॥ १० ॥ चिद्रूपस्यात्मतत्त्वस्यस्वाभाववशतःस्वयम् ॥ मनाक्संवेदनमिवयत्तज्जीवइतिस्मृतम् ॥ ११ ॥ तदेवघनसंवित्त्वायात्यहंतामनुक्रमात् ॥ वह्न्यणुःस्वेंधनाधिक्यात्स्वांप्रकाशकतामिव ॥ १२ ॥

अर्थ—हे प्रियरामजी! शुद्ध चिदाकाशरूप ब्रह्म शान्तत्व क्रिया अभावके तिरोहित होनेपर उपाधिके स्वभावसे किंचित् स्फुरणही जीवहै ॥ ९ ॥ जैसे वायुका संचलन, अग्निकी उष्णता, और तुषारकी शीतताहै, ऐसेही ब्रह्मकी जीवताहै ॥ १० ॥ चित्रूप आत्मतत्वका अपने स्वरूपके अज्ञानके कारण जो ज्ञान स्वरूपका परिच्छेदके तुल्यरूपहै उसको जीव कहते हैं ॥ ११ ॥ वह चित्रूप वासनाकी दृढतासे क्रमसे अहंकार स्वभाव रुद्ररूपको ऐसे प्राप्त होताहै जैसे अग्निकाकण घृत तैलादि अपने इन्धनकी अधिकतासे अपनी प्रकाशताको ॥ १२ ॥

यथास्वतारकामार्गेव्योम्नःस्फुरतिनीलिमा ॥ शून्यस्याप्यस्यजीवस्यतथाहंभावभावना ॥ १३ ॥ जीवोहंकृतिमादत्तेसंकल्पकलयेद्धया ॥ स्वयैतथाघनतयानीलिमानमिवांबरम् ॥ १४ ॥ अहंभावोहिदिक्कालव्यवच्छेदीकृताकृतिः ॥ स्वयंसंकल्पवशतोवातस्पंदइवस्फुरन् ॥ १५ ॥ संकल्पोन्मुखतांयातस्त्वहंकाराभिधःस्थितः ॥ चित्तंजीवोमनोमायाप्रकृतिश्चेतिनामभिः ॥ १६ ॥

अर्थ—जैसे देखनेवालेको नेत्रके अविषयमें भूत आकाशमें नीलता स्फुरित होती है ऐसेही अहन्तासे शून्यभी आत्मामें अहंभावना होती है ॥ १३ ॥ पूर्व कालके संकल्पकी उद्बोधिन (जगाई हुई) अपनी कलासे जीव अहंकारको ऐसे धारण करता है जैसे अपनेमें अध्यस्त इस प्रत्यक्ष नील शिलाके समान आकाश नीलताको ॥ १४ ॥ यह अहंभाव आत्माका देश और कालसें व्यवच्छेदकारक है, तथा वायुकी गतिके समान स्फुरता हुआ अपने संकल्पके वशसे देह आदि आकारको धारण करता है ॥ १५ ॥ वही अहंकार संकल्पकी ओर उन्मुख होके अहंकाररूपसे रुद्र चित्तरूपसे विष्णु और जीवरूपसे ब्रह्मा नामसे प्रसिद्ध है, और मन माया तथा प्रकृति ये क्रिया प्रधान नाम हैं ॥ १६ ॥

तत्संकल्पात्मकंचेतोभूततन्मात्रकल्पनम् ॥ कुर्वंस्ततोव्रजत्येवसंकल्पाद्यातिपंचताम् ॥ १७ ॥ तन्मात्रपंचकाकारंचित्तंतेजःकणोभवेत् ॥ अजातजगतिव्योम्नितारकापेलवायथा ॥ १८ ॥ तेजःकणत्वमादत्तेचित्तंतन्मात्रकल्पनात् ॥ शनैःस्वस्मात्परिस्पंदाद्बीजमंकुरतामिव ॥ १९ ॥ असौतेजःकणोंडाख्यःकल्पनात्कश्चिदंडताम् ॥ प्रयात्यंतःस्फुरद्ब्रह्माजलमापिंडतामिव ॥ २० ॥

अर्थ—उनमेंसे संकल्पात्मक चित्तरूप ब्रह्मा संकल्पसे भूततन्मात्रकी कल्पना करता हुआ उस चेतनात्मक पूर्व अवस्थासे प्रच्युत होकर जड भूतपंचताको प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ वही तन्मात्र पंचकाकार चित्त जगत् रहित चिदाकाशमें तेजःकण (सुवर्णका अण्ड) से होजाता है जैसे अल्प प्रकाशवाले आकाशमें तारेगण ॥ १८ ॥ चित्त पंचतन्मात्रकी कल्पनासे प्रकृतिरूप ऐसे होजाता है जैसे बीज धीरे २ अपने परिस्पन्द अंकुरभावको ॥ १९ ॥ जिसके गर्भमें ब्रह्मा स्फुरित होरहे हैं ऐसा यह अण्डनामक तेजःकण (प्रकृतिरूप) पूर्व कालकी उपासनासे विराट्में अहंभावकी कल्पनासे विराट् रूप ब्रह्माण्ड भावको ऐसे प्राप्त होता है जैसे जल जमनेसे पिण्डभावको ॥ २० ॥

कश्चिद्व्रागितिदेहादिकलनायातिदेहताम् ॥ भ्रांतित्वंतदतद्रूपंगंधर्वैश्चवसत्पुरम् ॥ २१ ॥ कश्चित्स्थावरतामेतिकश्चिज्जंगमतामपि ॥ कश्चिद्यातिखचार्यादिरूपंसंकल्पतःस्वतः ॥ २२ ॥ सर्गादावादिजोदेहोजीवःसंकल्पसंभवः ॥ क्रमेणपदमासाद्यवैरिंचंकुरुतेजगत् ॥ २३ ॥ आत्मभूकलनात्मासोयत्संकल्पयतिक्षणात् ॥ तत्स्वभाववशादेवजातमेवप्रपश्यति ॥ २४ ॥

अर्थ—और कोई पुण्यात्मा जो विराट्रूपका उपासक नहीं है वह दिव्य देहादिकी कल्पनासे शीघ्र देवादि शरीरको और उस अहंभाव शून्य देहमें अहंभावरूप भ्रमको प्राप्त होता है, तथा गन्धर्व और अन्य २ देवोंसे पालित अमरावती नगरीकोभी प्राप्त होता है ॥ २१ ॥ और कोई पापी स्थावरताको, कोई जंगमताको, और कोई आकाशचारी पक्षी राक्षस पिशाचादिरूपको, और कोई जलचारी भावको, अपने २ कर्मजनित संकल्पसे प्राप्त होता है ॥ २२ ॥ सृष्टिकी आदिमें प्रथम उत्पन्न सूक्ष्मदेह समष्टि सहित ब्रह्माका जीवक्रमसे ब्रह्माका पद पाके महान् ब्रह्माण्डके अन्तर्गत अनेक जगत् रचता है ॥ २३ ॥ यह अपने पूर्व सत्यसंकल्पसे उत्पन्न स्वयम्भू सत्यसंकल्पके कारण जो कुछ संकल्प करता है वह अपने स्वभावसे उसीको उत्पन्न देखता है ॥ २४ ॥

चित्स्वभावात्समायातंब्रह्मत्वंसर्वकारणम् ॥ संसृतौकारणंपश्चात्कर्मनिर्मायसंस्थितम् ॥ २५ ॥ चित्तंस्वभावात्स्फुरतिचितःफेनइवांभसः ॥ कर्मभिर्बध्यतेपश्चाड्डिंडीरमिवरज्जुभिः ॥ २६ ॥ संकल्पःकलनावीजंतदात्मैवहिजीवकः ॥ कर्मपश्चात्तनोत्युच्चैरुत्थायाकर्मतःक्रमात् ॥ २७ ॥ क्रोडीकृतांकुरंपूर्वंजीवोधत्तेस्वजीवितम् ॥ पश्चान्नानात्वमायातिपत्रांकुरफलक्रमैः ॥ २८ ॥

अर्थ—नामक्रियारूप जगत्का चिदात्मा ब्रह्म चेतनस्वभावसे पृथक् स्फुरण रूपसे सब पदार्थोंका कारण है, और पश्चात् विकार संसृति अर्थात् विकाररूप संसारका कर्म निर्माण करके उसी कर्मके द्वारा कारणरूपसे स्थित है ॥ २५ ॥ चेतनका चित्तही जलफेनके समान स्फुरित होता है, और जैसे नौकाकी रज्जु (रस्सि) ओंसे केवल फेनका पिण्डही घातित होता है न कि जल इसी प्रकार शरीर सम्बन्धी कर्मोंसे चित्तकाही घात होता है न कि चिदात्माका ॥ २६ ॥ सम्पूर्ण कलना (घटादि कार्य्योंकी रचना) ओंका मूलवीज संकल्प है और वही संकल्पात्मक जीव पश्चात् उठके कर्मरहित आत्माके सान्निधानसे कर्मका विस्तार करता है ॥ २७ ॥ हे रामजी! जैसे वीजस्थ जीव सूक्ष्मरूपसे अपने गर्भमें अंकुरको धारण किये हुये अपना जीवन धारण करताहै, और पीछेसे अंकुर, पत्र, काण्ड, शाखा, पल्लव पुष्प और फलादि क्रमोंसे, नानारूप धारण करताहै ऐसेही हिरण्यगर्भका जीवभी प्रथम जगत्को अंकुररूपसे अपनेमें धारण करताहै, पश्चात् भूतभौतिक नानारूप धारण करताहै ॥ २८ ॥

अन्येस्वएवयेजीवाएवमेवाकृतिंगताः ॥ पूर्वोत्पन्नेजगतितेयांतिभूताश्रयांस्थितिम् ॥ २९ ॥ स्वकर्मभिस्ततोजन्ममृतिकारणतांगतैः ॥ प्रयांत्यूर्ध्वमधस्ताद्वाकर्मचित्स्पंदउच्यते ॥ ३० ॥ चित्स्पंदनंभवतिकर्मतदेवदैवंचित्तंतदेवभवतीहशुभाशुभादि ॥ तस्माज्जगंतिभुवनानिभवंतिपूर्वंभूत्वानिजांगकुसुमानितरोरिवाद्यात् ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे बीजांकुरयोगनिर्णयो नाम चतुःषष्टितमःसर्गः ॥ ६४ ॥

अर्थ—इसीप्रकार सब व्यष्टि (पृथक् २) जीवभी अपनेमें वासनारूपसे स्थित देह आदि आकारको प्राप्त हुये हैं, और समष्टिसे इतना विशेष है कि हिरण्यगर्भके संकल्पसे पूर्व उत्पन्न जगत्में, मातापिता आदि प्राणियोंके निमित्तसे देहादिके लाभरूप स्थितिको प्राप्त होते हैं ॥ २९ ॥ इसके अनन्तर जन्ममरणकी कारणताको प्राप्त कर्मोंसे कभी नीची कभी ऊंची स्थितिको प्राप्त होता है, और चित्के स्पन्द (स्फुरण) कोही कर्म कहते हैं ॥ ३० ॥ हे रामजी ! चित्का जो स्पन्द है वही कर्म है, वही दैव है, वही चित्त है, और वही शुभाशुभ लक्षण आदि कर्मभी है, उस शुभाशुभ लक्षण कर्मके निमित्तसे अनेक जगत् अर्थात् भोग करनेवाले प्राणियोंके शरीर और उनके आधार तथा भोग्य भुवन पुनः २ ऐसे होते हैं जैसे वृक्षके निजअंग शाखापुष्पआदि होकर पुनः होते हैं ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे बीजांकुरनिर्णयो नाम चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

पंचषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

भोक्ताके मूलभूत भोग्य वर्ग मनके तत्त्वका विवेक करके केवल चिन्मात्रकी शेषता इस ६५ वें सर्गमें दिखलाई गईहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ परस्मात्कारणादेवमनःप्रथमसुत्थितम् ॥ मननात्मकमाभोगितत्स्थमेवस्थितिं गतम् ॥ १ ॥ भावाभावलसद्दोलंतेनायमवलोक्यते ॥ सर्गःसदसदाभासःपूर्वगंधइवेच्छया ॥ २ ॥ नकश्चिद्विद्यतेभेदोद्वैतैक्यकलनात्मकः ॥ ब्रह्मजीवमनोमायाकर्तृकर्मजगद्दृशाम् ॥ ३ ॥ अपारावारविस्तारसंवित्सलिलवल्गनैः ॥ चिदेकार्णवएवायंस्वयमात्माविजृंभते ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! परम कारणभूत परब्रह्मसे मनन शक्तिमान् कृतिम वेषधारी मन प्रथम उत्पन्न हुआ, और वह मन यह ऐसा होना चाहिये; यह ऐसा न होना चाहिये; इत्यादि भावअभावरूप विषयोंसे शोभायनमान है और आत्मासे अभिन्नरूप वह मन सत् असत्रूपसे आभासमान, असत्भी इस सृष्टिको ऐसे देखताहै जैसे पूर्वानुभूत स्मर्य्यमाण गन्धको ॥ १ ॥ २ ॥ हे रामजी ! यथार्थमें ब्रह्मजीव, मन, माया, कर्त्ता, कर्म, और जगत्की दृष्टिका कुछ भेद नहीं है, केवल मनःकल्पित अद्वैतके कल्पनात्मक भेदहै ॥ ३ ॥ हे रामजी ! चित्रूपी एक मुख्य समुद्ररूपी आत्मास्वयं अपार है, वह पारावार रहित संवित् रूप जलके अपरिछिन्न प्रसारोंसे शोभित होरहा है ॥ ४ ॥

असत्यमस्थैर्यवशात्सत्यंसंप्रतिभासतः ॥ यथास्वप्नस्तथाचित्तंजगत्सदसदात्मकम् ॥ ५ ॥ नसन्नासन्नसंजातश्चेतसोजगतोभ्रमः ॥ अथधीसमवायानामिंद्रजालमिवोत्थितः ॥ ६ ॥ दीर्घःस्वप्नःस्थितियातःसंसाराख्योमनोबलात् ॥ असम्यग्दर्शनात्स्थाणाविवपुंस्प्रत्ययोमुधा ॥ ७ ॥ अनात्मालोकनाच्चित्तंचितत्वंनानुशोचति ॥ वेतालकल्पनाद्बालइवसंकल्पितेभये ॥ ८ ॥

अर्थ—जैसा स्वप्नहै, वैसाही सद् असद् आत्मक चित्त और जगत् है जैसे स्वप्नमें चंचल विषय अंगका बाध होनेसे केवल द्रष्टा मात्र शेष रहजाता है ऐसेही चंचल और असत्य अंशका बाध होनेसे शान्तस्थिर और सत्य अंश आत्मा रहजाताहै ॥ ५ ॥ यह चित्त और जगत्का भ्रम न सत् है न असत् है और न उत्पन्न हुआ है तथापि सामाजिकबुद्धि समूहोंको इन्द्रजालकी मायाके सदृश अनिर्वचनीय रूपसे भ्रमके तुल्य प्रादुर्भूतहै ॥ ६ ॥ हे रामजी ! यह संसाररूपी महादीर्घ स्वप्न ऐसे स्थितिको प्राप्तहै जैसे भ्रमसे स्थाणु (वृक्षके ठंठ) में व्यर्थ पुरुषकी प्रतीति ॥ ७ ॥ आत्माके अज्ञानसे और अनात्म पदार्थोंमें आत्मबुद्धि होनेके कारणसे चित्तदशाको प्राप्तभी चित्त स्वकृत अनर्थोंको ऐसे नहीं देखता जैसे भयके दृढ होनेपरभी बालक वेतालकल्पनाको ॥ ८ ॥

अनाख्यस्यस्वरूपस्यसर्वाशातिगतात्मनः ॥ चेत्योन्मुखतयाचित्तंचित्ताजीवत्वकल्पनम् ॥ ९ ॥ जीवत्वाद्प्यहंभावस्त्वहंभावाच्चचित्तता ॥ चित्तत्वादिंद्रियादित्वंततोदेहादिविभ्रमाः ॥ १० ॥ देहादिमोहतःस्वर्गनरकौमोक्षबंधने ॥ बीजांकुरवदारंभसंरूढेदेहकर्मणोः ॥ ११ ॥ द्वैतंयथानास्तिचिदात्मजीवयोस्तथैवभेदोस्तिनजीवचित्तयोः ॥ यथैवभेदोस्तिनजीवचित्तयोस्तथैवभेदोस्तिनदेहकर्मणोः ॥ १२ ॥ कर्मैवदेहोननुदेहएवचित्तंतदेवाहमितीहजीवः ॥ सजीवएवेश्वरचित्सआत्मासर्वःशिवस्त्वेकपदोक्तमेतत् ॥ १३

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे जीवविचारो नाम पंचषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

अर्थ—नामरूपसे निरूपण करनेके अयोग्य, सम्पूर्ण आशाओंसे परे, आत्मस्वरूपके विषयकी ओर अभिमुख होनेसे चित्त बनताहै और चित्तसे जीवकी कल्पना होती है ॥ ९ ॥ और जीवत्वसे अहंभाव होताहै और अहंभावसे चित्तता होती है चित्तत्वसे इन्द्रियादिकी कल्पना होती है और उससे देह आदिका विभ्रम होताहै ॥ १० ॥ और देह आदिमें अहं मम (यह मैं यह मेरा) इत्यादि अज्ञान कल्पित अभिमानसे देह और कर्मका बीजांकुरके समान आरम्भ दृढ़ होनेपर स्वर्ग नरक तथा बन्धमोक्ष होते हैं ॥ ११ ॥ हे रामजी ! यह सम्पूर्ण अनर्थकी परम्परा जीव ब्रह्मके भेदभ्रमसे हैं उन दोनोंकी एकताके ज्ञानसे भ्रमका बाध होताहै उससे जगत् मात्रका बाध होजाताहै । सो जैसे जीव ब्रह्मका द्वैत (भेद) नहीं है ऐसेही जीव और चित्तकाभी भेद नहीं है और जैसे जीव चित्तका भेद नहीं है ऐसेही देह और कर्म्मकाभी भेद नहीं है ॥ १२ ॥ हे रामजी ! जो कर्म है वही देहहै क्योंकि कर्मोंकेही अनुकूल देह उत्पन्न होताहै और देह जो है वही चित्तहै और चित्तही इस संसारमें जीवहै और वही जीव आत्मा परब्रह्म सर्वरूप कल्याणमयहै यह सब शास्त्रोंका रहस्य संक्षेपसे मैंने तुमसे कहदिया ॥ १३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे जीवविचारो नाम पंचषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥

द्वैतकी मनोमात्र विलासता इष्टके त्यागसे और सच्चिद् अंशके ज्ञानसे अज्ञानसहित तमका नाश इस ६६ वें सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवमेकंपरंवस्तुरामनानात्वमेत्यलम् ॥ नानात्वमिवसंजातंदीपाद्दीपशतंयथा ॥ १ ॥ यथाभूतमसद्रूपमात्मानंयदिपश्यति ॥ विचार्यतेतस्तदनुभावहीनंनशोचति ॥ २ ॥ चित्तमात्रंनरस्तस्मिन्गतेशांतमिदंजगत् ॥ उपानद्गूढपादस्यननुचर्मास्तृतैवभूः ॥३॥ पत्रमात्राद्दतेनान्यत्कदल्याविद्यतेयथा ॥ भ्रममात्राद्दतेनान्यज्जगतोविद्यतेतथा ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! विषयकी ओर अभिमुख होनेसे परम वस्तु ब्रह्मही चित्त आदि रूप धारण करताहै इत्यादि पूर्वोक्त क्रमसे वही आत्मा उपाधिभेदसे नानारूप ऐसे धारण करताहै जैसे एक दीपसे सैकडों दीपमें ॥ १ ॥ हे रामजी ! यदि नामरूप तथा द्वैतके अभिनिवेशसे शून्य यथार्थ आत्माको जो अपने अन्तःकरणमें प्रथम विचार करके देखताहै तो पुनः वह शोक नहीं करता क्योंकि चित्तके आधीन विचार, और विचारद्वारा तत्व बोधसे मुक्ति होती है ॥ २ ॥ चित्तमात्रही यह मनुष्यहै, चित्तके शान्त होनेपर सम्पूर्ण जगत् शान्तहै, क्योंकि जिसके चरण उपानद् (पनही) से रक्षितहैं, उसके लिये मानों सम्पूर्ण पृथिवी चर्म्मसे ढकी है ॥ ३ ॥ जैसे केलेमें पत्रको छोडके और कुछ नहीं है ऐसेही भ्रमके सिवाय जगत्का स्वरूप कुछ नहीं है ॥ ४ ॥

जायतेबालतामेतियौवनंवार्द्धकंततः ॥ मृतिस्स्वर्गंचनरकंभ्रमाच्चेतोहिनृत्यति ॥ ५ ॥ विचित्रबुद्बुदोल्लासेस्वात्मनोव्यतिरेकिणि ॥ यथाम्बुराशेःसामर्थ्यंतथाचित्तस्यसंसृतौ ॥ ६ ॥ यथाद्वित्वंशशांकादौपश्यत्यक्षिमलाविलम् ॥ चिच्चेतनकलाक्रांतातथैवपरमात्मनि ॥ ७ ॥ यथामदवशाद्भ्रांतान्क्षीबःपश्यतिपादपान् ॥ तथाचेतनविक्षुब्धान्संसारांश्चित्तप्रपश्यति ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! यह प्राणि उत्पन्न होता है बाल्यअवस्थाको प्राप्त होता है युवा होता है उसके पश्चात् वृद्ध हो जाता है अनन्तर मरता है और अपने कर्मके अनुसार स्वर्ग वा नरकमें जाता है ॥ ५ ॥ जैसे आकाशमें अनेक सहस्र बुद्बुद आकारके भ्रम उत्पन्न करनेमें मेघका सामर्थ्य है ऐसी आत्मासे भिन्न ब्रह्माण्ड उत्पन्न करनेमें चित्तका सामर्थ्य है ॥ ६ ॥ जैसे अन्धकारसे दूषित नेत्र चन्द्र आदिमें द्वित्वको देखता है इसीप्रकार भ्रान्तिजनक चित्की शक्तीसे वशीकृत चित् परमात्मामें जगत्को देखता है ॥ ७ ॥ जैसे मदिरासे मत्त मनुष्य मदके कारणसे वृक्षोंको घूमते हुये देखता है ऐसेही चित्तसे विक्षिप्त चेतन संसारोंको देखता है ॥ ८ ॥

यथालीलाभ्रमाद्बालाःकुंभकृच्चक्रवज्जगत् ॥ भ्रांतंपश्यंतिचित्तात्तुविद्धिदृश्यंतथैवहि ॥ ९ ॥ यदाचिच्चेततिद्वित्वंतदद्वितैक्यविभ्रमः ॥ यदानचेततिद्वैतंतदद्वितैक्ययोःक्षयः ॥ १० ॥ यच्चेत्यतेतदितरद्व्यतिरिक्तंचितोस्तिन ॥ किंचिन्नास्तीतिसंशांत्याचितःशाम्यतिचेतनम् ॥११॥ चिद्घनेनैकतामेत्ययदातिष्ठतिनिश्चलः ॥ शाम्यन्व्यवहरन्वापितदासंशांतउच्यते ॥ १२ ॥

अर्थ—जैसे क्रीडार्थ भ्रमण करनेसे बालक सब जगत्को कुम्भकार (कुंभार) के चक्रके सदृश भ्रमण करते देखते हैं ऐसेही चित्तके वशसे प्राणी इस दृश्यको भ्रमण करते देखते हैं ॥ ९ ॥ जिससमय चित्तमें द्वैतकी स्फुरणा होती है तब चित्द्वैतका अनुभव करता है, और जब उसमें द्वैतकी स्फुरणा नहीं होती उससमय द्वैत और एकता दोनोंका नाश होजाता है ॥ १० ॥ जो कुछ चित्से पृथक् जडरूप विषयका अनुभव होता है वह यथार्थमें नहीं है, जब चित्से पृथक् कुछभी नहीं तो विषयके अभावसे इन्धन रहित अग्निके सदृश चित्त शान्त होजाता है ॥ ११ ॥ जिससमय यह प्राणी चिद्घन परब्रह्मके साथ एकताको प्राप्त होकर निश्चल आत्मज्ञानमें स्थित रहता है उससमय चाहे समाधिमें लीन हो वा संसारी व्यवहार करताहो, वह शान्त कहता है ॥ १२ ॥

तन्वीचेतयतेचेत्यंघनाचिन्नांगचेतति ॥ अल्पक्षीबःक्षोभमेतिघनक्षीबोहिशाम्यति ॥१३॥ चिद्घनैकम पातस्यरूढस्यपरमेपदे ॥ नैरात्म्यशून्यवेद्याद्यैःपर्यायैःकथनंभवेत् ॥ १४॥ चित्तेतनेनचेत्यत्वमेत्येवंप श्यतिभ्रमम् ॥ जातोजीवामिपश्यामिसंसरामीत्यसन्मयम् ॥ १५ ॥ स्वभावाद्व्यतिरिक्तंतुनचित्तस्या स्तिचेतनम् ॥ स्पंदादृतेयथावायोरंतःकिंनामचेत्यते ॥ १६ ॥

अर्थ—हे प्रिय रामजी ! अल्पज्ञ जीव चेतन विषयको अनुभव करता है, और घनचित् (सर्वथा चिद्रूपही) कुछभी अनुभव नहीं करता है, क्योंकि मदिरासे अल्प मतवाला क्रोध लोभको प्राप्त होता है और अधिक् मतवाला व्यापारशून्य होजाता है, अर्थात् चित् जो विषय सहित है वह केवल चित्त्व निमित्तक नहीं है किन्तु अविद्यासे विक्षिप्त चित्त्व निमित्तक है, और वह अविद्या ज्ञान समाधिकी दृढतासे चिद्घनके साथ एकतासे नष्ट होजाती है, और न ब्रह्मा विष्णु आदि ईश्वरोंकी सर्वज्ञता है वह मायिक है न कि यथार्थ ॥ १३ ॥ चिद्घनके साथ जिसकी एकता होगई है और परम पदमें दृढ हैं अर्थात् जिसको निर्विकल्प समाधि और आत्मसाक्षात्कार होगया है ऐसे प्राणीका स्वरूप (कल्पित स्वरूप) शून्यता और निर्विषयता इत्यादि शब्दोंसे कथन होता है ॥ १४ ॥ चित्तकेही निमित्तसे चेतन विषयकी ओर झुकके उसका अनुभव करता है और मैं उत्पन्न हुआहुं, जीताहुं, देखताहुं, और जगत्में अनेक प्रकारकी गतिमें भ्रमण करताहुं, इत्यादि असत्यरूप भ्रम देखता है ॥ १५ ॥ चित्तसे पृथक् चित्तका व्यापार ऐसे कुछ नहीं है जैसे स्पन्द वा गतिके सिवाय वायुमें और क्या पदार्थ है ॥ १६ ॥

चेत्यत्वंसंभवत्येवंकिंचिद्यच्चेत्यतेचिता ॥ रज्जुसर्पभ्रमाभासंतमविद्याभ्रमंविदुः ॥ १७ ॥ संविन्मात्र चिकित्स्येऽस्मिन्व्याधौसंसारनामनि ॥ चित्तमात्रपरिस्पंदेसंरंभोनचकिंचन ॥ १८ ॥ यदिसर्वंपरित्य ज्यतिष्ठस्युत्क्रांतवासनः ॥ अमुनैवनिमेषेणतन्मुक्तोसिनसंशयः ॥ १९ ॥ यथारज्ज्वांभुजंगाभाविनश्य त्येववीक्षणात् ॥ संविन्मात्रविवर्त्तेननश्यत्येवहिसंसृतिः ॥ २० ॥

अर्थ—इस रीतिसे जो कुछ चित् चेतताहै उसीका विषयरूप सम्भव होताहै, रज्जुके सर्पके तुल्य ब्रह्म (चित्) का चेत्य (विषय) रूपसे जो भासना है उसीका नाम अविद्या है ॥ १७ ॥ ज्ञानमात्रसे नाश करनेके योग्य इस संसार नामक रोगके नाश करनेमें कुछभी परिश्रम नहीं है ॥ १८ ॥ हे रामजी ! यदि सब त्यागके इसी समयसे चित्त की वासनासे रहित होजाओ तो इसी क्षणसे निस्सन्देह तुम मुक्त होचुके ॥ १९ ॥ जैसे रज्जुके स्वरूपके जानतेही रज्जुमें सर्पकी भीति उसीसमय नष्ट होजाती है ऐसेही सम्वित् (ज्ञान) जब विषयकी ओरसे लोटकर अपनी ओर देखती है तो संसार नष्ट होजाता है ॥ २० ॥

यत्राभिलाषस्तत्रूनंसंत्यज्यस्थीयतेयदि ॥ प्राप्तएवांगतन्मोक्षःकिमेतावतिदुष्करम् ॥ २१ ॥ अपिप्रा णांस्तृणमिवत्यजंतीहमहाशयाः ॥ यत्राभिलाषस्तन्मात्रत्यागेकृपणताकथम् ॥ २२ ॥ यत्राभिलाषस्त त्त्यक्त्वाचेतसानिरवग्रहम् ॥ प्राप्तंकर्मेंद्रियैर्गृह्णंस्त्यजन्नष्टंचतिष्ठभोः ॥ २३ ॥ यथाकरतलेबिल्वंयथावा पर्वतःपुरः ॥ प्रत्यक्षमेवतस्यालमजत्वंपरमात्मनः ॥ २४ ॥ आत्मैवभातिजगदित्युदितस्तरंगैःकल्पां तएकइववारिधिरप्रमेयः ॥ ज्ञातःसएवहिददातिविमोक्षसिद्धिंत्वज्ञातएवमनसेचिरबंधनाय ॥ २५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे संसृतिपरमयोगो नाम षट्षष्टितमःसर्गः ॥ ६६ ॥

अर्थ—हे प्रिय रामजी ! जिस पदार्थकी अभिलाषाहो यदि उसको त्यागकर स्थित रहै तो यह समझना चाहिये कि उसको मोक्ष प्राप्त होगया, और इतने (इन्द्रिय निग्रहसे विषयोंके त्यागने) में क्या दुष्करताहै ॥ २१ ॥ हे रामजी ! महात्मा जनतो अपने प्राणोंकोभी तृणके समान त्याग देते हैं तो जिस पदार्थकी इच्छा है उसके त्यागनमें

कौनसी कृपणता (कादरता) है ॥ २२ ॥ हे रामजी ! चित्तसे निसंग होके जिस पदार्थमें अभिलाषहो उसको त्याग-कर जो प्राप्त विषयहों उनको कर्मेन्द्रियोंसे आसक्ति रहित सेवन करते हुये इस संसारमें रहो ॥ २३ ॥ जिसप्रकार करतल (गदेली) पर बिल्व और सन्मुख पर्वत प्रत्यक्ष रहता है ऐसेही जो प्राणी इन्द्रियोंका रोकके अभिलषित पदार्थोंमें चित्तको नहीं जान देता उसको जन्मादि विक्रिया शून्य आत्माका अज ब्रह्मपद प्रत्यक्षही है ॥ २४ ॥ हे रामजी ! प्रमाणशून्य आत्माही अज्ञानियोंकी दृष्टिमें जगत्‌रूपसे आविर्भूत होकर ऐसे भान होरहाहै जैसे कल्पके अन्तका समुद्र तरंग आदि भेदोंसे, और वही आत्मा यदि ज्ञानसे प्रकट होताहै, अर्थात् यथार्थ जानलिया जाताहै तो मोक्षरूप परम पुरुषार्थ सिद्धिको देताहै, और यदि नहीं जानाजाता तो सम्पूर्ण अनर्थोंके मूलभूत मनोभावके लिये और दीर्घकालके बन्धनके लिये होताहै ॥ २५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे संसृतिपरमयोगो नाम षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥

सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥

भोक्ता जीव है उसका स्वरूप व्यष्टिका प्रधानतासे इस ६७ वे सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ मनस्त्वयोग्योजीवोयंकोभवेत्परमात्मनः ॥ कथंवास्मिन्समुत्पन्नःकोवायंवदमे पुनः ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ समस्तशक्तिखचितंब्रह्मसर्वेश्वरंसदा ॥ ययैवशक्त्यास्फुरतिप्राप्तांतामेवपश्यति ॥ २ ॥ स्वयंयांवेत्तिसर्वात्माचिरंचेतनरूपिणीम् ॥ साप्रोक्ताजीवशब्देनसैवसंकल्पकारिणी ॥ ३ ॥ स्वभावात्कारणंद्वित्वंपूर्वसंकल्पचित्स्वयम् ॥ नानाकारणतांपश्चाद्यातिजन्ममृतिस्थितेः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! मनको रचकर उससे अभिन्नका आत्मामें अध्यास होनेके कारण मनोभावके योग्य जीव परमात्मा संबन्धी क्या होसकताहै, क्या यह परमात्माका अंशहै वा कार्य्य, अथवा वही है, यदिही है तो उसमें कैसे उत्पन्न हुआ, क्या परिणामरूपसे जैसे दूधमें दही, अथवा विवर्त, जैसे रज्जुमें सर्प, यदि प्रथम परिणाम पक्षहै, तो अनित्यता होगी और अद्वितीय पक्ष मानों तो उसका बाध होगा, यदि उत्पत्ति नहीं मानोंगे तो मोक्षकी असिद्धि होगी, क्योंकि ब्रह्म तो क्षुधादिसे रहित है, यदि अन्यमाना तो कौन है उसका सजाती है वा विजातीय इत्यादि विकल्पोंमें कोईभी पक्ष ठीक नहीं है इस सन्देहके दूर करनेके लिये पुनः कहिये ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! अचिन्त्य और अनन्त सम्पूर्ण शक्तियोंसे सम्पन्न मायाशक्तियुक्त शबल परब्रह्म यथार्थमें आविर्भूत जगत् अभिन्नभी मायासे द्वितीयभावको प्राप्त अपने स्वरूपमें उपाधिके विकारोंको आरोपण करके अनन्त जीव तथा सर्वज्ञ ईश्वर भावसे सदा क्रीडा करनेको समर्थ है वह जिस शक्तिसे जहां स्फुरित होताहै वहां उसीको प्राप्तही देखताहै ॥ २ ॥ यह सर्वात्मा अनादि कालसे चेतनरूपिणी अर्थात् चित्त संस्कारके उपहित चिद्रूप शक्तिको स्वयं अनुभव करताहै वही जीवशब्दसे कही जाती है और वही संकल्पका कारणभी है ॥ ३ ॥ आत्मामें जो स्वभाव सिद्ध द्वितीयत्वहै, वह उत्तर संसारकी मुख्य प्रवृत्तिका कारणहै, और पूर्वसंकल्पकी वासनासहित जो जीव चैतन्यहै वह पश्चात् जन्म मरण आदिकी स्थितिरूप नानाप्रकारकी विचित्रताका कारण होताहै ॥ ४ ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ एवंस्थितेमुनिश्रेष्ठदैवंनामकिमुच्यते ॥ किमुच्यतेतथाकर्मकारणंचकिमुच्यते ॥ ५ ॥ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ स्पंदास्पंदस्वभावंहिचिन्मात्रमिहविद्यते ॥ खेवातइवतत्स्पंदात्सोल्लासंशांतमन्यथा ॥ ६ ॥ चित्त्वंचित्तंभावितंसत्स्पंदइत्युच्यतेबुधैः ॥ दृश्यत्वाभावितंचैतदस्पंदनमितिस्मृतम् ॥ ७ ॥ स्पंदात्स्फुरतिचित्सर्गोनिःस्पंदाद्ब्रह्मशाश्वतम् ॥ जीवकारणकर्माख्याचित्स्पंदस्याभिधास्मृता ॥ ८ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–हे मुनिश्रेष्ठ भगवन् ! उक्त रीतिसे जीवका स्वरूप बुद्धिपर आरूढ होनेपर आपसे प्रश्न करताहुं कि दैव किसको कहते हैं, और कर्म क्या पदार्थ है, तथा कारण किसको कहते हैं ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! स्पन्द स्वभाव अर्थात् रजोगुण प्रधान मायाका उपहित और अस्पन्द स्वभाव अर्थात् शुद्ध चिन्मात्र ब्रह्मही इस संसारमें है, और आकाशमें वायुके सदृश स्पन्द (स्फुरणा) से वह सृष्टिकी ओर अभिमुख होताहै और स्पन्दके अभावमें वह शान्तही स्थित रहताहै ॥ ६ ॥ और अपना स्वभाविक जो चित्त (चेतनपना) है वही यदि अपनी अविद्यासे कल्पित विषयाकार होताहै, उसी विषयाकार स्फुरणको स्पन्द कहते हैं, और दृश्यत्व रूपसे जो

कल्पित नहीं हैं वह स्पन्दरहित शुद्ध चेतन कहा गयाहै ॥ ७ ॥ स्पन्दके कारण चित्‌ही सृष्टिरूपसे स्फुरताहै, और स्पन्दकी शून्यतासे नित्य ब्रह्म कहाताहै, उनमेंसे प्राण स्पन्दकी विवक्षासे जीव अपने अन्तर्गत कार्य्योंकी आविर्भाव विवक्षासे कारण शरीर आदिकी चेष्टाकी विवक्षासे कर्म और वह सूक्ष्म दशामें चिरकाल स्थित होकर फलोंके आरम्भकी ओर झुकताहै उसको दैव कहते हैं अर्थात् चित्‌के स्पन्दकेही जीवकर्म और कारण आदि सब नामहैं ॥ ८ ॥

यएवानुभवात्मायंचित्स्पंदोस्तिसएवहि ॥ जीवकारणकर्माख्योबीजमेतद्धिसंसृतेः ॥ ९ ॥ कृतद्वित्व चिदाभासवशाद्देहमुपस्थितम् ॥ संकल्पाद्विविधार्थत्वंचित्स्पंदोयातिसृष्टिषु ॥ १० ॥ नानाकारगेतां यातश्चित्स्पंदोमुच्यतेचिरात् ॥ कश्चिज्जन्मसहस्रेणकश्चिदेकेनजन्मना ॥ ११ ॥ स्वभावात्कारणाद्धि त्वंचित्समेत्याधिगच्छति ॥ स्वर्गापवर्गनरकबंधकारणतांशनैः ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जो अपना अनुभवरूप आत्माहै वही चित् स्पन्द (चेतनका स्फुरण) जीव, कर्म, कारण, आदि नामसे प्रसिद्धहै, और यही संसारका बीजहै ॥ ९ ॥ द्वित्वरूपसे कल्पित चिदाभासके वशसे उन २ प्राणियोंके कर्मके अनुसार पूर्वजन्ममें मरणकालमें बुद्धिमें उपस्थित जो देव, मनुष्य, तिर्य्यक्, आदि देहसे उस दशाको तथा पूर्वसंकल्पके अनुसारी उन देहोंके भोग्य पदार्थ समूहोंको चेतनही सृष्टियोंमें प्राप्त होताहै ॥ १० ॥ यह जीव नानाप्रकारकी सहस्रों योनियोंके कारण भावको दीर्घ कालतक प्राप्त होके, कोई मन्द शास्त्र प्रवृत्ति जीव सहस्रों जन्ममें ज्ञानसे मुक्त होताहै, और कोई वैराग्यादि साधनोंसे अधिकारसहित एकही जन्ममें ज्ञानके पश्चात् मुक्त होताहै ॥ ११ ॥ और चेतन अपने स्वभावसेही जिस उपाधिसे सम्बद्धित होताहै उसी रूपसे ऐसे स्फुरित होने लगताहै जैसे प्रकाश नीलपटसे सम्बन्ध होनेसे नीलरूप रक्तपटसे रक्त, और पीतपटसे पीतरूप होजाताहै, और उसी स्वभावसे देह तथा जन्मके कारण अन्न रसमय होके और उनके द्वारा पिता आदिके शरीरोंके साथ एकता प्राप्त होके क्रमसे शुक्रशोणित आदिरूपमें परिणत होके धीरे २ स्वर्ग मोक्ष नरक तथा बन्ध आदिके कारणभूत शरीरदशाको प्राप्त होताहै ॥ १२ ॥

हेम्नीवकटकादित्वंकाष्ठलोष्टसमस्थितौ ॥ देहेतिष्ठतिनानात्वंजडेभावविकारजम् ॥ १३ ॥ अजातमप्य सद्रूपंपश्यतीदंमनोभ्रमः ॥ जातःस्थितोमृतोस्मीतिभ्रमार्त्तःपत्तनंयथा ॥ १४ ॥ अहंममेत्यसद्रूपमेव चेतःप्रपश्यति ॥ अदृष्टपरमार्थत्वादाशाविवशसंस्थिति ॥ १५ ॥ मथुराधिपतेराज्ञोयथाश्वपचसंभ्रमः॥ आसीदेवंहिचित्तस्यस्फुरतीयंजगत्स्थितिः ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जैसे सुवर्णमें कटक आदिकी कल्पना रहती है ऐसेही काष्ठ लोष्टके समान जड शरीरमें जन्म स्थिति वृद्धि आदि षट्भाव विकारोंसे उत्पन्न नानात्वरूप भेद रहताहै, अर्थात् चेतनका भेद उपाधियोंके कारणहै यथार्थमें उपाधिभी सब पंचभूतोंके विकारहैं और पंचभूतभी उत्तर २ भूत पूर्व २ भूतोंके विकारहैं जो कि लयके क्रमसे सब जाके अन्तिम कारणमें लीन होजानेसे अखण्ड अद्वैत आत्मा शेष रहताहै ॥ १३ ॥ विना उत्पन्न हुयेभी मनके भ्रमसे असत्यरूपही यह देखताहै कि मैं उत्पन्न हुआ, स्थितहूं, मरणको प्राप्त हुआ, जैसे भ्रमण करता हुआ मनुष्य नगर आदिके भ्रमणको ॥ १४ ॥ परमार्थ रूपको न देखनेसे भोगोंकी आशामें विवश होके यह चित्त असत्यरूपही "अहम्" तथा "मम" (मैं और मेरा) इत्यादि रूपसे अनुभव करताहै ॥ १५ ॥ मथुराके स्वामी राजा लवणको जिसप्रकार चाण्डालका भ्रम हुआथा ऐसेही चित्तमें यह जगत्‌की स्थितिहै ॥ १६ ॥

सर्वमेवमनोमात्रभ्रांत्युल्लासविजृंभणम् ॥ इदंजगत्तयाराम प्रस्फुरत्यंबुभंगवत् ॥ १७ ॥ शिवात्प्राक्कारणात्पूर्वंचिच्चेत्यकलनोन्मुखी ॥ उदेतिसौम्याजलधेःपयःस्पंदोमनागिव ॥ १८ ॥ स्फुरणाज्जीवचक्रत्व मेतिचित्तोर्मितांदधत् ॥ चिद्वारिब्रह्मजलधौकुरुतेसर्गबुद्बुदान् ॥ १९ ॥ स्वस्थःसौम्यसमस्यैतयोंस हस्याविजृंभणम् ॥ ब्रह्मणःसंविदाभासस्तत्संचेत्यमिवस्वयम् ॥ २० ॥

अर्थ—हे रामजी ! यह सम्पूर्ण जो जगत्‌रूपसे स्फुरण होरहाहै वह सब मनकी भ्रान्तिके उल्लासका विकाश ऐसे है जैसे जलमें तरंगका विकाश ॥ १७ ॥ जैसे शान्त समुद्रसे किंचित् जलका संचलन होताहै ऐसेही सृष्टिके आदिकालमें कल्याणस्वरूप कारण ब्रह्मसे चेतन शक्ति विषयरूपकी ओर उन्मुख होके आविर्भूत होतीहै ॥ १८ ॥ हे रामजी ! ब्रह्मरूपी समुद्रमें चेतनरूपी जल चित्तरूपी तरंगताको धारण करतेहुये जीवरूपी आवर्तको प्राप्त होताहै, और सृष्टिरूप बुद्बुदोंको रचताहै ॥ १९ ॥ हे सौम्य रामजी ! मायाके बन्धनको नष्ट करनेवाला सिंहके सदृश जो ब्रह्महै उसका जो अपने स्वरूपका किंचित् संचालनहै वही चिदाभास अर्थात् जीवके समान स्थितहैं, और वही विषयके सदृश स्वयं स्थितहै, उससे पृथक् विषय कुछ नहीं है ॥ २० ॥

चित्संवित्स्योच्यतेजीवःसंकल्पात्समनोभवेत् ॥ बुद्धिश्चित्तमहंकारोमायेत्यार्याभिधंततः ॥ २१ ॥ तन्मात्रकल्पनापूर्वंतनोतीदंजगन्मनः ॥ असत्यंसत्यसंकाशंगंधर्वनगरंयथा ॥ २२ ॥ यथाशून्येदृशःस्फारान्मुक्तावल्यादिदर्शनम् ॥ यथास्वप्नेभ्रमश्चैवतथाचित्तस्यसंसृतिः ॥ २३ ॥ शुद्धआत्मानित्यतृप्तइव शांतसमस्थितः ॥ अपश्यन्पश्यतीवेमंचित्ताख्यंस्वप्नविभ्रमम् ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! चेतनही ज्ञानका अभिव्यंजक अन्तःकरण उपाधिसे जीव संकल्पसे मन, अध्यवसायसे बुद्धि, स्मरणसे चित्त, तथा अभिमानसे अहंकार और विशेष शक्तिसे माया, श्वास प्रश्वाससे प्राण, बोलनेसे वाक्, देखनेसे नेत्र और सुननेसे श्रोत्र इत्यादि नामसे प्रसिद्धहैं ॥ २१ ॥ हे रामजी ! चेतन मनोमात्रके संकल्पसे सृष्टिमें आदिमें इस सम्पूर्ण जगत्का विस्तार करताहै और यह सत्यके तुल्य भासताहै, यथार्थमें गन्धर्वनगरके समान असत्यहै ॥ २२ ॥ जैसे शून्य आकाशमें दृष्टिके विस्तारसे मुक्तावलीका दर्शन होताहै, और स्वप्नमें भ्रम होताहै, ऐसेही चित्तको संसारका भ्रमहै ॥ २३ ॥ आत्मातो शुद्ध क्षुत् पीपासाआदि न होनेसे नित्य तृप्त शान्त और सर्वत्र समरूपसे स्थितहै, यथार्थमें न देखता हुआभी स्वप्नके भ्रमके समान इस चित्तको देखताहै ॥ २४ ॥

संसृतिर्जाग्रदित्युक्तंस्वप्नंविदुरहंकृतिम् ॥ चित्तंसुषुप्तभावःस्याच्चिन्मात्रंतुर्यमुच्यते ॥ २५ ॥ अत्यंतशुद्धेसन्मात्रेपरिणामनिरामयम् ॥ तुर्यातीतंपदंतत्स्यात्तत्स्थोभूयोनशोचति ॥ २६ ॥ तस्मिन्सर्वमुदेतीदं तस्मिन्नेवप्रलीयते ॥ नचेदंनचतत्रेदंदृष्टौमुक्तावलीयथा ॥ २७ ॥ अरोधकत्वात्तंहेतुर्यथावृक्षसमुन्नतेः ॥ अकर्त्तापितथाकर्ताचेतनाब्धिर्जगत्स्थितेः ॥ २८ ॥

अर्थ—उस चिदाभासको इन्द्रियोंके द्वारा जो बाह्य संसारका अनुभवहै उसको जाग्रत् कहते हैं अन्तःकरणमें अहंभावकी वासनासे संयुक्तको जो हृदयसे लेके कण्ठपर्य्यन्त संसारका अनुभवहै उसे स्वप्न कहते हैं स्मरणकी बीजभूत वासनामात्रसे जो हृदयमें स्थिति है उसको स्वप्न कहते हैं, और केवल चिन्मात्रकी स्थिति तुरीयपद कहा जाताहै ॥ २५ ॥ इसप्रकार प्रत्यक् आत्माका अत्यन्त शुद्ध ब्रह्ममात्रमें परिणाम होनेसे निर्विघ्नतापूर्वक स्थिति जो है वही तुरीयातीत पदहै उसमें स्थित होनेसे यह जीव पुनः नहीं शोचता ॥ २६ ॥ उसीसे यह सम्पूर्ण दृश्य समूह उदय होताहै, और उसीमें लीनभी होताहै, और यथार्थमें ब्रह्ममें न तो जगत्का तादात्म्य (अभेद) है और न उसका ऐसे सम्बन्धहै जैसे दृष्टिमें मोतियोंकी पंक्तिका ॥ २७ ॥ चेतनरूपी समुद्र अकर्ता होतेहुये भी मायाकृत सृष्टिका निवारण न करनेसे उसका कर्त्ता इसप्रकार मानाजाताहै जैसे आकाश वृक्षकी वृद्धिका अवरोधक न होनेसे उसका हेतु समझा जाता है ॥ २८ ॥

सन्निधानाद्यथालोहःप्रतिबिंबस्यहेतुताम् ॥ यात्यादर्शस्तथैवायंचिन्मयोप्यर्थवेदने ॥ २९ ॥ बीजमंकुरपत्रादियुक्त्यायद्वत्फलंभवेत् ॥ चिन्मात्रंचित्तजीवादियुक्त्यातद्वन्मनोभवेत् ॥ ३० ॥ स्वतोबीजफलाविप्रुड्यथाबीजंपुनर्भवेत् ॥ तथाचिच्चेत्यचित्तादित्यक्त्वास्वस्थानतिष्ठति ॥ ३१ ॥ यद्यप्यबोधेबोधेवा बीजांतस्तरुबीजयोः ॥ इयान्भेदोस्तिनजगद्ब्रह्मणोरपिचित्तयोः ॥ ३२ ॥ तथापिव्यज्यतेबोधेसत्यात्मकमखंडितम् ॥ रूपश्रीरिवदीपेनचिन्मात्रालोकरूपियत् ॥ ३३ ॥

अर्थ—जैसे समीपतासे लोहका दर्पण प्रतिबिम्बका हेतु होताहै ऐसेही चिन्मय दर्पणभी सान्निधानसे पदार्थ ज्ञानमें कारण है ॥ २९ ॥ जैसे बीजअंकुर पत्रादि होके क्रमसे फलरूप होताहै ऐसेही चिन्मात्रभी चित्त जीवादि क्रमसे मन, इन्द्रिय, तथा शरीर आदिरूप होताहै ॥ ३० ॥ जैसे मूर्छित दशामें प्राप्त जीव सहित वृष्टिका जलबिन्दु वृक्ष सस्यआदिमें प्रवेश करके पुनः बीजरूप होताहै, किन्तु उदासीन नहीं होता वैसेही जीवकी वासना सहित चेतन प्रलयके अनन्तरभी विषय और चित्तआदिकी सृष्टिरूपसे पुनः प्रकट होताहै न कि त्यागसे स्वस्थ होजाताहै ॥ ३१ ॥ यद्यपि वृक्ष तथा बीजका ज्ञानहो वा न हो परन्तु सूक्ष्मरूपसे बीजके अन्तरमें स्थित जो वृक्ष और बीजहैं उनमें वृक्ष उत्पन्न करनेकी शक्ति नष्ट नहीं होती यह भेद प्रत्यक्ष दृश्यमानहै तथापि चित्तअवस्थामें प्राप्त जो जगत् और ब्रह्म है उनका यह संबन्ध नहीं है क्योंकि वृक्ष और बीजके ज्ञानसे तात्त्विक अखण्डितरूपका प्रकाश नहीं होता, और ब्रह्मके ज्ञानसे तो दीपसे रूपकी शोभाके समान चिन्मात्र अंखण्ड आत्मप्रकाश होताहै ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

यद्यन्निखन्यतेभूमेर्यथातत्तन्नभोभवेत् ॥ यायाविचार्यतेविद्यातथासासापरंभवेत् ॥ ३४ ॥ स्फटिकांतःसन्निवेशःस्थाणुतावेदनाद्यथा ॥ शुद्धेनानापिनानेवतथाब्रह्मोदरेजगत् ॥ ३५ ॥ ब्रह्मसर्वंजगद्वस्तुपिंडमेकमखंडितम् ॥ फलमत्रंलतागुल्मपीठबीजमिवस्थितम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—जैसे पृथिवीका जो २ भाग खना जाताहै वह २ आकाशरूप होजाताहै ऐसेही अविद्याजनित जिन पदार्थोंका विचार किया जाताहै, वे सब अधिष्ठान सत्तामात्र शेष रहजाते हैं ॥ ३४ ॥ जैसे स्फटिक मणिके भीतर वन आदिका प्रवेश उसके अज्ञानसे कूटस्थताको प्राप्त होताहै ऐसेही ब्रह्मके स्वरूपमें एकतामयभी जगत् अधिष्ठान ब्रह्मके अज्ञानसे नानाप्रकारके समान भासताहै ॥ ३५ ॥ जो कुछ ब्रह्माण्डके अन्तर्गत वस्तुमात्र है उन सबका पिण्डभूत एक अखण्डित ब्रह्महै, और प्रतिबिम्बरूप फलपत्र लतादिक हैं उनकी आधारभूमि तथा उनके अन्तर्गत बीजरूपके सदृश ब्रह्म जगद्रूप होके स्थितहै ॥ ३६ ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ अहोचित्रंजगदिदमसत्सदिवभासते ॥ अहोबृहदहोस्वस्थमहोस्फुटमहोतनु॥३७॥ ब्रह्मणिप्रतिभासात्मातन्मात्रगुणगोलकः ॥ अवश्याकणाभासोयथास्फुरतितच्छ्रुतम् ॥ ३८ ॥ यथा सौयातिवैपुल्यंयथाभवतिचात्मभूः॥यथास्वभावसिद्धार्थात्तथाकथयमेप्रभो ॥३९॥ श्रीवसिष्ठउवाच॥ अत्यंतासंभवद्रूपमनन्यत्स्वस्वभावतः ॥ अत्यंताननुभूतंसत्स्वानुभूतमिवाग्रतः ॥४०॥ उल्लासफुल्लो फुल्लांगइतिबालहृदिस्फुटम् ॥ यथोदेतितथोदेतिपरेब्रह्मणिजीवता ॥ ४१ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-कि अहो यह जगत् अति विचित्र है यह असत्भी सत्के सदृश भासता है, अहो आश्चर्य यह कितना महान् है, और कैसा स्वस्थ प्रतीत होता है, अहो कैसा प्रत्यक्ष है ! ! अहो कैसा सूक्ष्मभी है ॥३७॥ यह जगत् ब्रह्ममें प्रतिभासरूप है, और तन्मात्रही इसके गुणका विस्तार है और कुहरेके कणके समान जैसे यह स्फुरता है वह मैनें आपसे सुना ॥ ३८ ॥ हे भगवन् ! जैसे आत्मवस्तुसे समष्टि व्यष्टि स्थूल देहभावको और जैसे आत्मभू व्यष्टि समष्टि स्थूलका अनुभव कर्ता हुआ विश्व तथा वैश्वानररूप धारण करता है वह मुझसे कृपा करके कहिये ॥३९॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—कि हे रामजी ! यह जीवका रूप अत्यन्त असम्भव है, अपने चेतन स्वभावसे अभिन्न रूपभी है, अत्यन्त अननुभूतभी यह मानो साक्षात् अनुभूतही है, और जैसे वेताल प्रकाशित न होनेपरभी अज्ञानसे बालकके हृदयमें प्रकट होता है इसीप्रकार अज्ञानसे परब्रह्ममें जीवता उदय होती है ॥ ४० ॥ ४१ ॥

मानमेयात्मिकाशुद्धासत्यैवासत्यवत्स्थिता ॥ भिन्नेवचनभिन्नास्याद्ब्रह्मणोबृंहणात्मिका ॥ ४२ ॥ यथाब्रह्मभवत्याशुजीवःकलनजीवितः ॥ तथाजीवोभवत्याशुमनोमननवेदनात् ॥ ४३ ॥ चित्तंतन्मात्रमननंपश्यत्याशुस्वरूपवत् ॥ एषसद्योनिलखवप्रख्यःस्फुरतिखांतरे ॥ ४४ ॥ अस्तनिमेषोनुभवत्यवश्यायकणोपमम् ॥ संवेदनात्मकंकालकलितंकांतमात्मनि ॥ ४५ ॥

अर्थ—यह जीवता स्वानुभव स्वरूप होनेसे मानमेयात्मक शुद्ध तथा सत्यही है, और असत्यके सदृश कल्पित रूपसे स्थित है, यह वर्द्धनशील ब्रह्मसे भिन्नके समान प्रतीत होती है, परन्तु भिन्न नहीं है ॥ ४२ ॥ जैसे अपने संकल्पसे ब्रह्म शीघ्र जीव होता है ऐसेही मननाकी वासनाके उद्भवसे जीव मन होजाता है ॥ ४३ ॥ वह शीघ्र अपने रूपको मनन रूप देखता है और अविच्छिन्न दृष्टिरूप (निरन्तर प्रकाशशील) वायुके समान अति सूक्ष्म यह तन्मात्रास्वरूप आत्म चिदाकाशके स्वतः प्रकाशमान होनेपर उसकी स्फूर्णासे सृष्टिकालके वशसे पंचीकरणद्वारा उत्पन्न सूर्य्यवत्प्रकाशमान ब्रह्माण्डको अपने आत्मामें देखताहै ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

अहंकिमितिशब्दार्थवेदनाभोगसंविदम् ॥ संविदंतत्त्वशब्दार्थंजीवःपश्यतिसार्थकम् ॥ ४६ ॥ तादृक्षवेदनात्सोथरसशब्दार्थवेदनम् ॥ भाविजिव्हार्थनाम्नैकदेशेनुभवतिक्षणात् ॥ ४७ ॥ तादृक्षवेदनात्तेजःशब्दार्थोन्मुखतांगतः ॥ भविष्यन्नेत्रनाम्नैकदेशेभवतिभासनम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! प्रथम वह चिदात्मा, मैं क्या तत्वरूप आत्माहुं अथवा मनुष्य आदिके आकारवानहुं, इस विशेष अनुभवको न रखनेवाले ज्ञानको और उसके पश्चात् गर्भमें पूर्व सहस्र जन्मकी स्मृतिसे पुरुपार्थ विचारके सहित जगत्के तत्वार्थ ज्ञानको अनुभव करता है अर्थात् प्रथम अहन्ताका अध्यास होता है ॥ ४६ ॥ इसके अनन्तर शरीर पिण्डमें अहंभावके ज्ञानसे भावी रसना इन्द्रिय और उसके अर्थ रसके नामसे शरीरके एक देश मुखके बिलप्रदेशमें रसके शब्द तथा अर्थका क्षणभरमें यह आत्मा अनुभव करता है, अर्थात् इसमें जिव्हा इन्द्रियकी कल्पना होती है ॥ ४७ ॥ इसी प्रकार पिण्डमें स्पष्ट अभिमान होनेसे तेज शब्द तथा उसके अर्थको ओर उन्मुखताको प्राप्त होके भविष्यत् नेत्र इन्द्रियके नामसे अक्षिगोलकमें नेत्रका अध्यास होता है ॥ ४८ ॥

तादृक्षवेदनात्सोथघ्राणंतद्दृष्टिवेदनात् ॥ स्थितोयस्मिन्भवतीतितावद्दृश्यादितास्थिता ॥ ४९ ॥ एवंप्रायःसाजीवात्माकाकतालीयवच्छनैः ॥ विशिष्टसंनिवेशत्वंभावितंपश्यतिस्वतः ॥ ५० ॥ सतस्यस

निवेशस्यत्वसतोपिसतःसतः ॥ शब्दभावैकदेशत्वंश्रवणार्थेनविंदति ॥ ५१ ॥ स्पर्शभावैकदेशत्वंत्व क्शब्दार्थेनविंदति ॥ रसभावैकदेशत्वंरसनात्वेनविंदति ॥ ५२ ॥

अर्थ—और पिण्डमेंही अहंभावसे घ्राण दृष्टिके ज्ञानसे नाशिका गोलकमें घ्राण इन्द्रियका अभिमान होता है, इसी पूर्वोक्त रीतिसे जिस श्रोत्र आदि भावमें जबतक यह स्थित रहताहै उतने कालतक शब्द आदि दृश्यकी उपभोग शीलता इसकी स्थित रहती है ॥ ४९ ॥ इसीप्रकार प्रायः यह जीवात्मा काकतालीय न्यायसे धीरे २ पूर्व जन्मकी वासनासे कल्पित शरीर इन्द्रिय आदि संघातकोभी स्वयं अपनेसे अभिन्न देखता है अर्थात् इसको संघातका अभिमान होता है ॥ ५० ॥ हे रामजी ! वह जीवात्मा उस संघातके एक देशको श्रवणरूप क्रियाके प्रयोजनसे शब्द ग्राहक श्रोत्ररूपसे देखताहै ॥ ५१ ॥ और स्पर्शनरूप क्रियाके प्रयोजनसे संघातके एक देशके शब्द ग्राहकत्वकूइन्द्रियरूपसे देखताहै, और रस ग्रहण करानेवाले संघातके एक देशको रसना इन्द्रिय करके जानताहै ॥ ५२ ॥

रूपभावैकदेशत्वंनेत्रार्थाकृतिपश्यति ॥ गंधभावैकदेशत्वंनासिकात्वेनपश्यति ॥ ५३ ॥ एवंभावमयैः सत्ताप्रकटीकरणक्षमम् ॥ भविष्यदिंद्रियाख्यंसरंध्रंपश्यतिदेहके ॥ ५४ ॥ इत्येवमादिजीवस्यराघवा यतनस्यच ॥ उदेतिप्रतिभासात्मादेहपवातिवाहिकः ॥ ५५ ॥ अनाख्येयंपरासत्तास्यातिवाहिकता मिव ॥ सागच्छत्यप्यगच्छंतीतादृक्सत्यात्मभावनात् ॥ ५६ ॥

अर्थ—रूप ग्रहण करानेवाले संघातके एक देशको नेत्र इन्द्रियरूपसे देखताहै, तथा गन्ध ग्राहक संघातके एक देश (नाशिकाछिद्र) को नाशिका इन्द्रिय करके देखताहै अर्थात् श्रोत्र आदि इन्द्रियोंसे जब शब्द आदिका अनुभवरूप भोग करताहै, तब इसके उन इन्द्रियोंके साथ आत्मारूपसे अभेदाध्यास होताहै ॥ ५३ ॥ इसप्रकार उक्त और अनुक्त इन्द्रियोंसे बाह्य पदार्थोंके प्रकट करनेमें समर्थ इन्द्ररूप परमात्माका साधक भावि इन्द्रिय नामक छिद्रको शरीर अपनेमें देखताहै ॥ ५४ ॥ हे राघव ! इसप्रकार समष्टि तथा व्यष्टिरूप जीवका प्रतिभास आत्मा सूक्ष्म शरीररूपसे उदय होताहै ॥५५॥ यह इसकी परा (अति उत्कृष्ट) सत्ता अकथनीय है, वह सत्ता ब्रह्मके अज्ञानसे अनेकप्रकारके सूक्ष्मदेह भावको धारण करती है, और ब्रह्ममें आत्मसाक्षात्काररूप भावनासे (ब्रह्मज्ञानसे) नष्ट होजाती है ॥ ५६ ॥

मातृमेयप्रमाणादियदाब्रह्मैववेदनात् ॥ तदातिवाहिकोक्तीनांकःप्रसंगस्तदेवतत् ॥ ५७ ॥ अन्यत्ववेदनादन्यःपरस्मादातिवाहिकः ॥ ब्रह्मत्ववेदनाद्ब्रह्मसासंवित्तिर्हिनान्यजा ॥ ५८ ॥ श्रीरामउवाच ॥ असंभवादसंवित्तेर्ब्रह्मात्मैकतयाथवा ॥ कोमोक्षःकोविचारश्चेत्यलंभेदविकल्पनैः ॥ ५९ ॥ श्रीवसिष्ठ उवाच ॥ सिद्धांतकालएवैषप्रश्नस्तेरामराजते ॥ अकालपुष्पमालाहिशोभनापिनशोभते ॥ ६० ॥

अर्थ—और जब ज्ञानसे प्रमाता प्रमेय और प्रमाणरूप ब्रह्मही सब होजाता है तब सूक्ष्म शरीरोंके कथनोंका क्या अवसर है, क्योंकि आतिवाहिक (सूक्ष्म) शरीरभी तो ब्रह्महीं है ॥ ५७ ॥ हे रामजी ! परब्रह्मसे भिन्न जाननेसे व्यवहार दृष्टिसे सूक्ष्मशरीर पृथक् प्रतीत होता है और वह ब्रह्मत्वरूप ज्ञान अन्यज्ञानोंके सदृश भ्रान्तिसे उत्पन्न नहीं है ॥ ५८ ॥ श्री रामजी बोले—हे भगवन् यदि ऐसा है तो चिद् एकरस ब्रह्ममें अज्ञानका असंभव होनेसे अथवा अज्ञानके अभावसे जीव ब्रह्ममें भेदका कल्पक न रहनेसे ब्रह्मके साथ जीवताकी स्वतःसिद्धिसे अपनेसे पृथक् मोक्षरूप फल तथा उसके प्राप्त करनेवाले विचारसे क्या अर्थ है अर्थात् उनसे क्या प्रयोजन है इसलिये ये सब भेदकी कल्पनायें निरर्थक हैं ॥ ५९ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! यह तुमारा प्रश्न सिद्धान्त कालमेंही शोभा देता है, क्योंकि कुसमयके पुष्पोंकी माला उत्तम होनेपर उत्पात आदिके भयसे शोभा नहीं देती ॥ ६० ॥

सार्थैवानर्थिकाऽकालमालाविलसितायथा ॥ तथैवाकालमिजंतौसर्वकालेहिशोभते ॥ ६१ ॥ प्रतिबंधाभ्यनुज्ञानांकालोदातेतिदृश्यते ॥ ननुसर्वपदार्थानांकालेनफलयोगतः ॥ ६२ ॥ एवमेवसजीवात्मास्वप्रात्मासमुपस्थितः ॥ पितामहत्वमुच्छूनंपश्यन्नात्मनिकालतः ॥ ६३ ॥ ॐमुच्चारणसंवित्तिवेदनाचप्र पश्यति ॥ यत्करोतिमनोराज्यंभवत्याशुसतन्मयः ॥ ६४ ॥

अर्थ—जैसे शोभायमानभी आकालके पुष्पोंकी माला उस समयके उपभोगसे सार्थकभी उत्पातजन्य अनर्थोंका कारण होनेसे मनुष्योंकी हर्षजनिका नहीं होती इसीप्रकार अपरिपाक दशासहित प्राणीमें किसी पदार्थका कथनभी निरर्थकही होताहै ॥ ६१ ॥ हेमन्त आदिकाल, शाली आदि (मार्गशीर्षमें उत्पन्न होनेवाले चावल) के अंकुरके उदयके प्रतिबन्धका और यव (जव) आदिके अंकुरकी अनुकूलताका दाता होताहै क्योंकि सम्पूर्ण पदार्थोंका फलके साथ सबन्ध काल पाकेही होताहै ॥ ६२ ॥ इसीप्रकार स्वप्न समष्टिका उपहित जीवात्मा कालपाके उपासनाकी

परिपक्वतासे फलीभूत उपास्य भावसे समुपस्थित अपने स्वरूपमें वृद्धिको प्राप्त पितामहत्व (ब्रह्मापन) देखताहै ॥ ६३ ॥ ओ३म्कार इस शब्दका उच्चारण तथा इसके अर्थके ध्यानपूर्वक जो कुछ मनोराज्य वह ब्रह्मा करताहै वह शीघ्र तन्मय होजाताहै अर्थात् मनोराज्यके अनुसार पदार्थोंको प्रकट देखताहै ॥ ६४ ॥

इदमेवमसत्सर्वमिवव्योम्निततात्मनि ॥ पर्वतोद्याकृतिर्व्योमजगद्व्योम्निविजृंभते ॥ ६५ ॥ नेहप्रजायते किंचिन्नेहकिंचिद्विनश्यति ॥ जगद्गंधर्वनगररूपेणब्रह्मजृंभते ॥ ६६ ॥ यथैवपद्मजादीनांजीवानांसदसन्मयी ॥ सत्तातथैवसर्वेषामासरीसृपमासुरम् ॥ ६७ ॥ संवित्संभ्रमएवायमेवमभ्युत्थितोप्यसन् ॥ आब्रह्मकीटसंवित्तेःसम्यक्संवेदनात्क्षयः ॥ ६८ ॥

अर्थ—जैसे आकाशमें मलिनता आदिका अध्यास असत्है ऐसेही यह सम्पूर्ण जगत् असत्रूपही है क्योंकि वायु आदिके क्रमसे जगत्का आरोपभी आकाशमेंही विकल्पित होरहाहै ॥ ६५ ॥ हे रामजी ! न तो यहां कुछ उत्पन्न होताहै और न नष्ट होताहै, किन्तु यह जगत् गन्धर्वनगरके रूपसे ब्रह्मही प्रकाश कर रहाहै, और यह सृष्टिकी उत्पत्तिका कथन प्रपंचके मिथ्याज्ञानके वास्तेहै न कि उसकी सत्यताके अर्थ ॥ ६६ ॥ हे रामजी ! जैसे ब्रह्मा आदि जीवोंकी सत्ता सत् असत्मयी, अर्थात् विचारके असमर्थ है अधो लोकमें कीट पतंग पर्य्यन्त जीवोंकी और ऊपरके लोकोंमें देव आदि जीवोंकीभी है ॥ ६७ ॥ यह सम्पूर्ण सम्यक् रीतिसे उदयको प्राप्तभी है, परन्तु सम्वित्का भ्रम मात्रही है क्योंकि इस आत्मरूप ब्रह्मज्ञानसे कीटसे लेके ब्रह्मापर्य्यन्तका बाध होजाताहै ॥ ६८ ॥

यथासंपद्यतेब्रह्मकीटःसंपद्यतेतथा ॥ कीटस्तुरूढभूतौघवलनात्तुच्छकर्मकः ॥ ६९ ॥ यदेवजीवनंजीवेचेत्योन्मुखचिदात्मकम् ॥ तदेवपौरुषंतस्मिन्सारंकर्मतदेवच ॥ ७० ॥ ब्रह्मणःसुकृतात्पापात्कीटकस्यसमुत्थितेः ॥ चित्तन्मात्रात्मिकाभ्रांतिःप्रेक्षामात्रेभवेत्क्षयः ॥ ७१ ॥ मातृमानप्रमेयाणिनचिन्मात्रेतरद्यतः ॥ ततोद्वैतैक्यवादार्थःशशशृंगाब्जिनीसमः ॥ ७२ ॥

अर्थ—क्योंकि जैसे ब्रह्मा उत्पन्न होताहै ऐसेही अपने कर्मानुकूल एक कीटभी उत्पन्न होताहै किन्तु कीटके चित्तमें भौतिक मलिनता अधिक होनेके कारण वह नीचकर्मवाला कहाजाताहै ॥ ६९ ॥ जैसी उपाधिहै वैसाही जीवमें जीवता और विषयकी ओर चेतनता आदिहै, और उसी जीवताके अनुसार वही फलदायक कर्म पौरुषहै और पौरुषही कर्म है, और जीवमें वही पौरुष सारहै ॥ ७० ॥ ब्रह्माके सर्वोत्तम पुण्यसे ब्रह्माका पद और कीटके सर्वोत्कृष्ट पापसे कीटत्व प्राप्त हुआ यद्यपि यह पुण्यपाप विचित्रताका हेतुहै, परन्तु चिन्मात्रके अज्ञानसे द्वैतकी भ्रान्ति और उसके ज्ञानसे द्वैतका क्षय इस अंशमें कुछ भेद नहीं है ॥ ७१ ॥ प्रमाता, प्रमाण, और प्रमेय, ये चिन्मात्रसे पृथक् नहीं है, इसलिये प्रमाणसे जबतक प्रमेयको जानताहै तबतक द्वैत और उसके अभावसे क्रमसे द्वैतकी एकता होती है, इस रीतिसे द्वैत और एकता स्वभाववाला ब्रह्मवस्तुहै, यह मतवाद (विशिष्टाद्वैत) शशशृंग तथा आकाश कमलिनीके तुल्य असत् है ॥ ७२ ॥

भावदार्ढ्यात्मकंमिथ्याब्रह्मानंदोविभाव्यते ॥ आत्मैवकोशकारेणलालादार्ढ्यात्मकंयथा ॥ ७३ ॥ मनसाब्रह्मणायद्यद्यथादृष्टंविभावितम् ॥ तत्तथादृश्यतेतज्ज्ञैःस्वभावस्यैषनिश्चयः ॥ ७४ ॥ यथायद्वदितं वस्तुतत्तत्तन्नविनाभवेत् ॥ निमेषमपिकल्पंवास्वभावस्यैषनिश्चयः ॥ ७५ ॥ अलीकमिदमुत्पन्नमलीकंचविवर्द्धते ॥ अलीकमेवस्वदतेतथालीकंविलीयते ॥ ७६ ॥

अर्थ—ब्रह्म आनन्दात्मक आत्माही है, और बन्धन करनेवाला जगत्की दृढतारूप द्वैतहै, यह प्रतीति भ्रान्तिसे ऐसे होती है जैसे कोशकार कृमि (मकरी) अपने लाला (लार) की दृढताको बन्धनरूप अनुभव करती है ॥ ७३ ॥ सम्पूर्ण मनोंके समष्टिरूप ब्रह्माजीने प्राणियोंके कर्मानुसार जिस वस्तुकी जैसी रचनाकी रीति निश्चय करके जैसे कार्य्याकार्यका संकल्प किया वैसाही अन्य अन्य प्राणियोंको अनुभूत होताहै यह नियतिका स्वभाव है ॥ ७४ ॥ जो वस्तु जिस रीतिसे उदय हुआ है, चाहै वह निमेषहो वा कल्पहो अथवा और कुछहो, परन्तु वह उससे भिन्न नहीं होसकता, जैसे वटकेही बीजसे बटका अंकुर उत्पन्न होता है न कि कुटकके बीजसे, और बुद्बुद कुछ निमेषपर्य्यन्त, और ब्रह्माण्ड महाप्रलयपर्य्यन्त स्थित रहताहै यह नियतिका निश्चयहै ॥ ७५ ॥ हे रामजी ! यह जगत् मिथ्याही उत्पन्न हुआहै, और मिथ्याही बढताहै, और मिथ्याही भोग्य पदार्थ भोक्ताको रुचते हैं, और मिथ्याही यह नष्ट भी होताहै, इसलिये हम लोगोंकी अस्वतन्त्रता तथा नियतिके बलसे इसकी सत्यताकी भ्रान्ति नहीं करती ॥ ७६ ॥

शुद्धंसर्वगतंब्रह्मानंतमद्वितीयंद्वःस्वबोधवशादशुद्धमिवासदिवानेकमिवासर्वगमिवावबुद्ध्यते ॥ ७७ ॥ जलमन्यत्तरंगोन्यइतिबालककल्पनयाभेदःकल्प्यतएवमवास्तवस्तस्माद्योयोयमाभातिभेदः सकेवल मतत्त्वविद्भिःपरिकल्पितोरज्ज्वांसर्पइवएवंभेदाभेदशक्त्योरीरमित्रयोरेवब्रह्मण्येवसंभवेत् ॥ ७८ ॥ तेनात्मनाद्वितीयेनैवद्वित्वमिवाततंयथासलिलेनतरंगकल्पनयासुवर्णेनकटककल्पनयैवमितिअतस्तेन स्वयमेवात्मनात्मान्यइवचेत्यते ॥ ७९ ॥ अतःकलनाजातासैवस्फारतांप्राप्यमनःसंपन्नंतेनाहंभावः कल्पितोनिर्विकल्पप्रत्यक्षरूपमेतत्प्रथमंतन्मनस्तदहंभवतिक्षिप्रमहंशब्दार्थभावनात् ॥ ८० ॥ ततोम नोहंकाराभ्यांस्मृतिरनुसंहितातैस्त्रिभिस्तदनुभूततन्मात्राणिकल्पितानितन्मात्रेषुजीवेनचित्तात्मनास्व यंकाकतालीयवद्ब्रह्मोपादानादियान्सन्निवेशःकल्पितोदृश्यते ॥ ८१ ॥ एवंयदेवमनःकल्पयतितदे वपश्यति ॥ सद्वाभवत्वसद्वाचित्तंयत्कल्पयत्यभिनिविष्टम् ॥ तत्तत्पश्यतियास्यतिसदिवप्रतिभा समुपगतंसद्यः ॥ ८२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे सत्योपदेशो नाम सप्तषष्टितमःसर्गः ॥ ६७ ॥

अर्थ—हे रामजी ! ब्रह्म शुद्ध सर्वगत अनन्त और अद्वितीयहै और भ्रान्तिसे अशुद्ध अनेक तथा एक देशगत (परिच्छिन्न) के समान प्रतीत होताहै ॥ ७७ ॥ जैसे बालककी कल्पनासे जल तथा तरंग भिन्न २ हैं यह मिथ्या भेदहै ऐसेही ब्रह्मजगत्का भेदभी मिथ्याहै इसलिये यह भेदका भान रज्जुके सदृश अज्ञानियोंकी कल्पनाहै इसप्रकार शत्रु मित्रके समान विरुद्ध स्वभाववाला भेदाभेद शक्तियोंकी ब्रह्ममेंही संभवहै ॥ ७८ ॥ जैसे जलमें तरंग सुवर्णकटक आदिकी कल्पना हुई है ऐसे ब्रह्मस्वरूप आत्मामें द्वैतके सदृश इस जगत्के विस्तारकी कल्पनाहै अर्थात् वह आत्मा अपनेहीसे अपनेको अन्यके समान जानताहै ॥ ७९ ॥ इस ब्रह्मसे जो निर्विकल्प जगत्की स्फुरणाहुई, वही सविकल्पता प्राप्त होकर मनरूप होगई और उस मनसे अहंभावकी कल्पना हुई अर्थात् अहंशब्दार्थकी भावनासे वही मन अहंभावको प्राप्त होताहै ॥ ८० ॥ उसके अनन्तर मन और अहंकारसे अनुभवके अनुसार स्मृति उत्पन्न कीगई उन तीनोंसे स्मृतिसे अनुभूत पंचभूतोंकी तन्मात्रायें रचीगई और तन्मात्राओंसे ब्रह्मरूप उपादान कारणसे चित्तात्मक समष्टि जीवसे इतना ब्रह्माण्ड विस्तृत जगत्का सन्निवेश (अवयवस्थान) कल्पित किया हुआ देखपडताहै ॥ ८१ ॥ इसप्रकार मन जो कुछ कल्पना करताहै वही देखताहै, और चित्तका यह स्वभावहै कि चाहै सत् हो वा असत् हो परंतु दीर्घकालतक उस पदार्थकी भावनासे वृद्धिको प्राप्त हुआ जो २ कल्पना करताहै वह २ अवश्य देखताहै, और दर्शनसे सत्यके सदृश प्रतिभासको प्राप्त शीघ्रही उस पदार्थको व्यवहारके उपयोगीभी पावेगा ॥ ८२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे सत्योपदेशो नाम सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥

अष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥

इस ६८ वे सर्गमें कर्कटी नाम राक्षसी तथा सब प्राणियोंको मारनेकी इच्छासे उसका उग्रतप विस्तारसे वर्णितहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अत्रैवोदाहरंतीममितिहासंपुरातनम् ॥ राक्षस्योक्तंमहाप्रश्नजालमावलिताखिलम् ॥ १ ॥ अस्तिकज्जलपंकाद्रेरिवोग्राशालभंजिका ॥ हिमाद्रेरुत्तरेपार्श्वेकर्कटीनामराक्षसी ॥ २ ॥ विषूचिकाभिधानाचनाम्नाप्यन्यायबाधिका ॥ विंध्याटवीवदेहेनशुष्काकार्श्यमुपागता ॥ ३ ॥ महाबलाग्निनयनारोदोरंध्रार्द्धपूरणी ॥ नीलांबरधराकृष्णादेहवद्वेवयामिनी ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी ! इस विषयमें एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण दियागया है जिसमें तत्वके विचारसे सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त करनेवाला कर्कटी राक्षसीसे कहा हुआ महा प्रश्नजाल है ॥ १ ॥ हे रामजी ! कज्जलमय पंकके पर्वतसे रची हुई (कृष्णवर्ण) कर्कटी नाम राक्षसी हिमाचलके उत्तरपार्श्व (भाग) में थी ॥ २ ॥ उसका दूसरा नाम विषूचिकाभी है, वह अन्यायको बाधा करनेवाली, शरीरसे विन्ध्याटवीके सदृश, शुष्क होकर कृशताको प्राप्त हुई ॥ ३ ॥ जाज्वल्यमान अग्निके सदृश नेत्रवाली, आकाश तथा पृथिवीके आधे अन्तराल (छिद्र) को पूर्ण करनेहारी अति दीर्घ शरीर नीलवस्त्रको धारण करनेवाली और ऐसी कृष्णवर्ण थी मानो शरीरधारिणी अन्धकारमय रात्री ॥ ४ ॥

नीहारवसनच्छन्नामेदुराभ्रशिरःपटा ॥ लंबाभ्रबिंबोल्लसितानित्योत्थतिमिरोर्ध्वजा ॥ ५ ॥ स्थिरविद्यु ल्लतानेत्रातमालतरुजानुका ॥ वैदूर्यशूर्पाग्रनखीभस्मनीहारहासिनी ॥ ६ ॥ निर्मांसनरदेहौघपुष्पस्र ग्दामभूषिता ॥ सर्वांगोदात्तसंप्रोतशवमालाविराजिता ॥ ७ ॥ वेतालावेशविचलत्कालकंकालकुंडला॥ अर्कादानोत्कदीर्घाग्रभीमोग्रभुजमंडला ॥ ८ ॥

अर्थ--नीहार (कुहरा) रूपी वस्त्रसे आच्छादित श्यामवर्ण मेघरूपी उत्तरीयपट (चद्दर) को धारण किये हुये लम्बमान मेघोंके बिम्बके सदृश शोभायमान और नित्य निकले हुये अन्धकारके समान केशोंको धारण करनेहारी वह थी ॥ ५ ॥ स्थिर विद्युल्लताके समान नेत्रवाली, तमाल वृक्षके सदृश जंघा धारण किये हुये, मूगेके वर्णके समान शूर्पके अग्रभागके सदृश नखवाली, और भस्म तथा कुहरेके वर्ण हास्य धारण करनेवाली वह थी ॥ ६ ॥ मांसरहित मनुष्योंकी देहरूपी पुष्पमालाओंसे भूषित, और सम्पूर्ण उत्तम अंगमें गूथी हुई मृतक देहकी मालाओंसे शोभित थी ॥ ७ ॥ वेतालोंके नृत्यके भावोंसे चलायमान कृष्णवर्णके कुण्डल धारिणी और मानों सूर्य्यको ग्रहण करनेके अर्थ उत्कण्ठित दीर्घ और भयंकर उग्र भुजाओंके मण्डलको धारण करनेवाली वह थी ॥ ८ ॥

तस्याविपुलकायत्वाद्दुर्लभत्वान्निजांधसः ॥ अतृप्तोर्णवलेखायाइवाभूज्जाठरोनलः ॥ ९ ॥ नकदाचन सातृप्तिमुपयातामहोदरी ॥ वडवानलजिह्वेवचिंतयामासचैकदा ॥ १० ॥ जंबूद्वीपगतान्सर्वान्निगिरा मिजनान्यदि ॥ अनारतमनुश्वासजलराशिमिवार्णवः ॥ ११ ॥ मेघेनमृगतृष्णेवतन्मेक्षुद्रुपशाम्यति ॥ अविरुद्धैवसायुक्तिर्ययापदिहिजीव्यते ॥ १२ ॥

अर्थ—उसके शरीरके अति विशाल होनेके कारण इसीसे उसकी जाति (राक्षसी) के उचित अन्न दुर्लभ होनेसे उस राक्षसीकी जठराग्नि समुद्रकी लेखाके सदृश सदा अतृप्तही थी ॥ ९ ॥ वडवानलकी जिह्वाके समान वह महान् उदरवाली कदाचित्भी तृप्तिको नहीं प्राप्त होती थी, इसलिये एकसमय उसने चिन्ता की ॥ १० ॥ कि जैसे समुद्र जलकी राशिको निगलताहै ऐसेही जम्बूद्वीपके सम्पूर्ण प्राणियोंको यदि निरन्तर प्रतिश्वास निगल जाऊं तो ॥ ११ ॥ मेघसे मृगतृष्णके सदृश मेरी क्षुधाकी शान्तिहो, और जिस युक्तिसे आपत्तिमें जीवन धारण होताहै वह शास्त्रके सम्मतही है ॥ १२ ॥

मंत्रौषधतपोदानदेवपूजादिरक्षितम् ॥ सममेवजनंसर्वंनिर्बाधंकःप्रबाधते ॥ १३ ॥ तपःकरोमिपरमम खिन्नेनैवचेतसा ॥ तपसैवमहोग्रेणयद्दुरापंतदाप्यते ॥ १४ ॥ इतिसंचिंत्यसासर्वजंतुजातजिघांसया॥ तपोर्थमथसस्मारपर्वतंभूतदुर्गमम् ॥ १५ ॥ आरुरोहचतच्छृंगंस्थिरविद्युद्विलोचना ॥ हस्तपादादिम द्देहाश्यामलेवाभ्रमंडली ॥ १६ ॥

अर्थ—मन्त्र, औषधि, तप, दान, और देवपूजादि रक्षित जनोंका भक्षण निर्बाध है इसकी बाधा कौन करता है ॥ १३ ॥ इसलिये खिन्नता रहित चित्तसे मैं उग्रतप करूं क्योंकि महान् उग्रतपश्चर्य्यासेही दुष्प्राप पदार्थ भी प्राप्त होता है ॥ १४ ॥ हे रामजी ! ऐसा चिन्तन करके सम्पूर्ण प्राणिसमूहकी हिंसाकी इच्छासे तप करनेके अर्थ प्राणियोंके दुर्गम हिमाचलपर्वतको स्मरण किया ॥ १५ ॥ इसके अनन्तर स्थिर विद्युत्के समान नेत्रवाली, और हस्तपाद आदि देह सहित श्यामलवर्णकी मण्डलीके समान वह राक्षसी हिमालयके शिखरपर चढी ॥ १६ ॥

तत्रगत्वाथसास्नात्वातपःकर्तुंकृतस्थितिः ॥ अतिष्ठदेकपादेनचंद्रार्कास्पंदलोचना ॥ १७ ॥ क्रमेणदि वसाःपक्षास्तस्यामासर्तवोययुः ॥ शीतातपेषुलीनायाःकृतायाइवशैलतः ॥ १८ ॥ साबभूवाभ्रमाला याःसमासंस्तंभिताकृतिः ॥ कृष्णोर्ध्वगोर्ध्वकेशीचखमाहर्तुमिवोद्गता ॥ १९ ॥ आलोक्यतांपवनजर्ज रितांगकत्वक्चीरांगणाकृतिरणत्पवनावधूतैः ॥ ऊर्ध्वस्थमूर्द्धजतमःपटलैर्दधानांतारौघमौक्तिकमजः समुपाजगाम ॥ २० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे कर्कट्युपाख्याने राक्षसीवर्णनं नाम अष्टषष्टितमःसर्गः ॥ ६८ ॥

अर्थ—वहां जाके तपस्या करनेकेलिये स्थिति करके चन्द्र सूर्य्यके सदृश प्रकाशमान और चेष्टारहित नेत्र-वाली वह राक्षसी एकपादसे खडी हुई ॥ १७ ॥ पर्वतसे रची हुईके समान शीत और घर्म (घाम) में सदा लीन उस राक्षसीको तपस्या करते २ क्रमसे मास पक्ष तथा कई ऋतुभी बीतगये ॥ १८ ॥ वह राक्षसी अपनी आकृतिको स्तम्भन करनेवाली मेघमालाके समान कृष्णवर्ण ऊर्ध्वकेशवाली ऊर्ध्वगामिनी ऐसी होगई मानों आकाशकोही आहार कर-

नेके अर्थ खडी हुई है ॥ १९ ॥ शीतोष्ण और धूलियोंसे रुखे पवनोंसे जर्जरीभूत कृश अंगोंके चर्मरूपी वस्त्रको धारण करनेवाली, और सेनाके आकारवाले पवनोंसे कंपाहुये ऊर्ध्व दिशामें स्थित, केशरूपी अन्धकार पटलों (तहों) से तारागणरूपी मोतियोंको धारण किये हुये उस राक्षसीको देखके वरदान देनेके वास्ते ब्रह्माजी उसके निकट आये ॥२०॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे कर्कट्युपाख्याने राक्षसीवर्णनं नाम अष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥

कर्कटीको उसकी इच्छाके अनुसार वरदान तथा गुणियोंकी रक्षार्थ मन्त्र देके ब्रह्माजीका अपने लोकमें गमन इस ६९ वे सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथवर्षसहस्रेणतांपितामहआययौ॥दारुणंहितपःसिद्धयैविषाग्निरपिशीतलः॥१॥ मनसैवप्रणम्यैनंसातथैवस्थितासती ॥ कोवरःक्षुच्छमायालमितिचिंतान्विताभवत् ॥ २ ॥ आस्मृतं प्रार्थयिष्येहंवरमेकमिमंविभुम् ॥ अनायसीचायसीचस्यामहंजीवसूचिका ॥ ३ ॥ अस्योत्तयाद्विविधा सूचिर्भूत्वालक्ष्याविशाम्यहम् ॥ प्राणिनांसहसर्वेषांहृदयंसुरभिर्यथा ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी! इसके पश्चात् सहस्र वर्षके पीछे उसके निकट ब्रह्माजी आये, क्योंकि दारुण तप सिद्धिके लिये अवश्य होताहै, और उस उग्रतपकी सिद्धिमें विषसहित अग्निभी शीतल होजाताहै, तो अन्यकी क्या कथा इसलिये तपसे कुछभी असाध्य नहीं है ॥ १ ॥ वह कर्कटीराक्षसी मनसेही ब्रह्माजीको प्रणाम करके वैसाही स्थित होती हुई ऐसी चिन्तासे युक्त हुई कि क्षुधाकी शान्तिके लिये कौनसा वरदान समर्थ होगा ॥ २ ॥ आह! मैंने स्मरणकर लिया इस समर्थ ब्रह्मासे मैं इस वरदानके लिये प्रार्थना करूं कि रोगरूपी तथा लोहमयी जीव सहित सूचिका (विषूचिका अर्थात् हैजारोग) मैं होऊं ॥ ३ ॥ इस ब्रह्माके वरदानसे अनेकप्रकारकी सूचि होकर अदृश्य होके सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें ऐसे प्रवेश करूंगी जैसे नासिका इन्द्रियसे खीचा हुआ सौगन्ध्य ॥ ४ ॥

यथाभिमतमेतेनग्रसेयंसकलंजगत् ॥ क्रमेणक्षुद्विनाशायक्षुद्विनाशःपरंसुखम् ॥ ५ ॥ इतिसंचिंतयंतीं तामुवाचकमलालयः ॥ अन्यादृश्यास्तथादृष्ट्वास्तनिताभ्रारवोपमम् ॥ ६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ पुत्रिकर्कटि केरक्षःकुलशैलाभ्रमालिके ॥ उत्तिष्ठत्वंतुतुष्टोस्मिगृहाणाभिमतंवरम् ॥ ७ ॥ कर्कट्युवाच ॥ भगवन् भूतभव्येशस्यामहंजीवसूचिका ॥ अनायसीचायसीचविषेऽर्पयसिचेद्वरं ॥ ८ ॥

अर्थ—इस वरदानके द्वारा अपनी क्षुधाकी शान्तिके लिये क्रमसे सम्पूर्ण जगत्का मैं ग्रास करजाऊंगी और क्षुधाकी शान्ति करना यही परम सुखहै ॥ ५ ॥ इसप्रकार चिन्तन करतीहुई, उसको देखकर और शान्तिदान्ति (इन्द्रियोंका निग्रह) तथा दया आदि धर्मयुक्त तपस्वियोंसे विरुद्ध उसको अभिलाषा देखकर मेघके समान गम्भीर शब्दसे ब्रह्माजी उससे बोले ॥ ६ ॥ हे राक्षसकुलरूपी पर्वतकी मेघमालिके! हे पुत्रि कर्कटी! तुम उठो मैं तुमसे प्रसन्नहूं, अपनी अभिलाषाके अनुसार वरदान ग्रहण करो ॥ ७ ॥ कर्कटी बोली कि–हे भगवन्! भूत तथा भविष्यत्के स्वामिन्, यदि आप मुझे वर देते हो तो मैं अनायसी विना लोहकी अर्थात् रोगरूप, तथा लोहकी जीव सहित सूचिका विषूचिका होऊं ॥ ८ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवमस्त्वितितामुक्त्वापुनराहपितामहः ॥ सूचिकासोपसर्गात्वंभविष्यसिविषूचिका ॥ ९ ॥ सूक्ष्मयामाययासर्वलोकाहिंसांकरिष्यसि ॥ दुर्भोजनादुरारंभासूर्खाद्दुस्थितयश्चये ॥१०॥ दुर्देशवासिनोदुष्टास्तेषांहिंसांकरिष्यसि ॥ प्रविश्यहृदयंप्राणैःपद्मप्लीहादिबाधनात् ॥ ११ ॥ वातलेखा त्मिकाव्याधिर्भविष्यसिविषूचिका ॥ सगुणंविगुणंचैवजनमासादयिष्यसि ॥ १२ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि–हे रामजी! ऐसाही हो ऐसा कहके ब्रह्माजी पुनः उस राक्षसीसे बोले कि रोग सहित सूचिका तूं विषूचिका होवेगी ॥ ९ ॥ मनुष्योंसे दुर्लक्ष्य होके तू संसारकी हिंसा करैगी दुष्ट अर्थात् निषिद्ध अपक्क अकालमें और अधिक भोजन करनेवाले जो मनुष्यहैं, दूसरोंके अनिष्ट कार्य्यका आरम्भ करनेवाले मूर्ख और जिनकी स्थिति दुष्ट है ऐसे जो मनुष्यहैं ॥ १० ॥ तथा दुष्ट देशके रहनेवाले और जो दुष्टहैं उनकी प्राणद्वारा अपान देशसे लेके हृदय पर्य्यन्त प्रवेश करके हृदयके पद्मकी प्लीहाकी और उसके समीप मांस ग्रन्थिकी, वस्तिस्था-

नकी, और नाडि आदिकी बाधा करनेसे तू हिंसा करैगी ॥ ११ ॥ वायुकी रेखा स्वरूप व्याधि तूं होगी और शास्त्र सदाचारनिष्ठ तथा शास्त्रीय गुण रहित जनकोभी तूं प्राप्त होगी ॥ १२ ॥

गुणान्वितचिकित्सार्थंमंत्रोयंतुमयोच्यते ॥ ब्रह्मोवाच ॥ हिमाद्रेरुत्तरेपार्श्वेकर्कटीनामराक्षसी ॥ १३ ॥ विषूचिकाभिधानासानाम्नाप्यन्यायबाधिका ॥ तस्यामंत्रः ॥ ॐह्रींह्रांरींरां विष्णुशक्तयेनमः ॥ ॐनमो भगवतिविष्णुशक्तिमेनां ॐ हरहरनयनयपचपचमथमथउत्सादयदूरेकुरुस्वाहाहिमवंतंगच्छजीवसः सःसःचंद्रमंडलगतोसिस्वाहा ॥ इतिमंत्रीमहामंत्रंन्यस्यवामकरोदरे ॥ १४ ॥ मार्जयेदातुरंकारतेन हस्तेनसंयुतः॥हिमशैलाभिमुख्येनविद्रुतांतांविचिंतयेत्॥ कर्कटींकर्कशाक्रंदांमंत्रमुद्गरमर्दिताम्॥१५॥ आतुरंचिंतयेच्चंद्रेरसायनह्रदिस्थितम् ॥ अजरामरणंयुक्तंमुक्तंसर्वाधिविभ्रमैः ॥ १६ ॥ साधकोहिशुचि र्भूत्वास्वाचांतःसुसमाहितः ॥ क्रमेणानेनसकलांप्रोच्छिनत्तिविषूचिकाम् ॥ १७ ॥ इतिगगनगतस्त्रि लोकनाथोगगनगसिद्धगृहीतसिद्धमंत्रः॥ गतउपगतशक्रवंद्यमानोनिजपुरमक्षयमायमुज्वलश्रीः॥१८॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे सूच्युपाख्याने विषूचिकामंत्रकथनं नाम एकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥

अर्थ—और गुणसंयुक्त मनुष्यकी चिकित्सा (रोगप्रतीकार) के अर्थ यह मंत्र मैं कहताहुं ब्रह्माजी बोले—हिमालयके उत्तर भागमें कर्कटी नाम राक्षसी है ॥ १३ ॥ विषूचिका उसका नामहै और नामसेभी अन्याययुक्त मार्गमें चलनेवाले मनुष्योंको बाधा करती है उसका यह मंत्रहै ॥ ओं ह्रीं ह्रां रीं रां ॥ रूपपर ब्रह्मरूप विष्णुकी जो शक्तिहै उसको नमस्कारहै हे भगवति (अनेक ऐश्वर्ययुक्त परब्रह्मरूप जो तुमहो तिसको नमस्कारहै,) हे आदिशक्ति मायै आपके आधीन जो रोगरूप तुमारा अंशभूत यह द्वितीय शक्तिहै उसको ओंकारवाच्यकारणमें शीघ्र उपसंहार करो २ इसको इसके स्थानपर प्राप्त करो २ पाक करके शीघ्र इसे कोमल करो २ दधिके समान इसका मन्थन करो २ इस स्थानसे इसे दूर करो, हे महाशक्तिके आधीन रोगरूप शक्ति, तुम अपने स्थान हिमालयपर जाओ, पूर्वजन्मके दुष्कर्मोंसे ग्रसित रोगसे अभिभूत मृत्युसे आकृष्यमाण (खींचा हुआ) जीव तूं इस मन्त्रके प्रभावसे जीवनको धारण कर मृतकको पुनः जीवन सामर्थ्य देनेवाले, अमृतसे पूर्ण चन्द्रमण्डलमें मेरी भावनासे इससमय प्राप्तहो इसमंत्री लिखके वामहस्त जलमें रखके ॥ १४ ॥ उसहस्तसे संयुक्त रोगीको मार्जन करै, और कर्कश रोदन मंत्रको करनेवाली मंत्ररूपी मुद्गरसे मर्दित कर्कटीनाम राक्षसीको हिमालयके अभिमुख होके भागती हुई चिन्तन करै ॥ १५ ॥ और अमृतमय चन्द्रमें स्थित वृद्धावस्था तथा मृत्युरहित, और सब व्याधियोंके विभ्रमसे रहित रोगीको चिन्तन करै॥१६॥ मंत्रका साधक स्नान करके पवित्र होके उत्तमतासे आचमन करके एकाग्र चित्त होके इस पूर्वोक्त मंत्रके क्रमसे सम्पूर्ण विषूचिकाको दूर करसकताहै ॥ १७ ॥ हे रामजी! इतना कहके तीनों लोकके स्वामी ब्रह्माजी जब आकाशमें प्राप्त हुये, तो सिद्धोंने उनके इस सिद्ध मंत्रको ग्रहण किया और दूसरे कार्य्यके लिये आये हुये इन्द्र करके नमस्कार किये हुये दूसरोंसे नाश करनेके अयोग्य अक्षय सत्यसंकल्प सिद्ध, अनेकप्रकारकी मायासहित अपने सत्यलोकमें प्राप्त हुये ॥ १८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे विषूचिकामंत्रकथनं नाम एकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥

सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥

क्रमसे दो सूचिरूपकी प्राप्ति और सूचीका प्राणियोंके शरीरमें प्रवेश इस ७० वे सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथभूधरशृंगाभासामहाकृष्णराक्षसी ॥ कज्जलांबुदलेखेवतानवंगंतुमुद्यता ॥ १ ॥ बभूवाभ्रोपमाकाराततोविटपरूपिणी ॥ पुंस्प्रमाणाततोप्यासीदथाभूद्धस्तमात्रिका ॥ २ ॥ ततःप्रादेशमात्रासाततोप्यंगुलिरूपिणी ॥ ततोमाषशमीतुल्याततःसूचीबभूवह ॥ ३ ॥ ततःकौशेयसूचित्वंपद्मकेसरसुंदरी ॥ प्रापसाशिखराकारासंकल्पाद्रिरिवाणुताम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले कि—हे रामजी! इसके पश्चात् वह पर्वतके शिखरके समान भासमान महाकृष्ण राक्षसी कज्जलके मेघकी लेखाके सदृश क्रमसे सूक्ष्मताको प्राप्त होनेलगी ॥ १ ॥ प्रथम वह मेघके सदृश आकार हुई

अनन्तर वृक्षकी शाखाके समान होगई, इसके पीछे पुरुषके प्रमाणके तुल्य होगई और उससेभी लघु पुनः हस्त प्रमाण रहगई ॥ २ ॥ उसके पश्चात् एक विलस्त मात्र प्रमाण रहगई, उसके अनन्तर अंगुलभर होगई, उस अंगुलसे उसके अनन्तर उड़दकी छीमेकी आकारकी होगई, और इसके पश्चात् स्थूल सूची (सुई) मात्र शेष रहगई ॥ ३ ॥ इसके पीछे रेशमके वस्त्रको सीने योग्य पद्मके केसरके समान वह सुन्दरी सूचिरूपको प्राप्त हुई, इसप्रकार पर्वतके शिखरके समान आकारवाली वह कर्कटीराक्षसी संकल्पके पर्वतके सदृश अणुताको प्राप्त हुई ॥ ४ ॥

राजसूचिकाकृष्णासूक्ष्मायसमनायसी ॥ पुर्यष्टकेनचलिताव्योमगाव्योमवासिनी ॥ ५ ॥ सूचीदृश्यत एवासौनत्वयोनामविद्यते ॥ संविद्भ्रमकुलेचैषास्वल्पसूचीवलक्ष्यते ॥ ६ ॥ रत्नसूचीवमसृणामनोमननसंयुता ॥ वैदूर्यरश्मिलेखेवभानुसंतानसुंदरी ॥ ७ ॥ कज्जलांभोदसंकल्कलतेवपवनाहता ॥ सूक्ष्मरंध्रेक्षगस्वच्छदृष्टज्योतिःकनीनिका ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! वह राक्षसी लोहमय कृष्णसूची होकर तथा जीव संयुक्त सूचिकाभी होकर, महाभूत, कर्मेंद्रिय ज्ञानेन्द्रिय, प्राण, अन्तःकरण, अविद्या, काम, और कर्म इनके संघातरूप पुरिअष्टक (आटपुरी) से चलित आकाशगामिनी, तथा आकाशवासिनी, अति शोभाको प्राप्त हुई ॥ ५ ॥ वह राक्षसी केवल सूचीरूप अपनी भावनासे देख पडतीथी, परन्तु उसमें लोहेका नामभी न था संवित्के भ्रमोंके समूहके मध्यमें यह अल्प सूचीरूपसे लक्षित होनाभी एक प्रकारकी भ्रान्तिथी ॥ ६ ॥ सूर्य्यकी किरणोंके उसके भीतर प्रवेश करनेके सुन्दर रूपधारिणी रत्नकी सूचीके समान मननशील मनसे संयुक्त वैदूर्य्यमणिकी लेखाके समान लक्षित होतीथी ॥ ७ ॥ और सूर्य्यकी किरणोंका सम्बन्ध न होनेसे पवनसे उडाई हुई कज्जलके मेघके पिण्डकी लताके समान थी और उसके सूक्ष्म छिद्रमें प्रविष्ट नेत्रोंकी तारा ऐसीथी मानों स्पष्ट दो सूक्ष्म प्रकाश देख पडते हैं ॥ ८ ॥

सुमुखग्राह्यरूपेणश्लक्ष्णपुच्छशिखाणुना ॥ तद्वैपुल्यशांत्यर्थपरंमौनव्रतंगता ॥ ९ ॥ सुदूरादेवदृश्यैस्तन्मात्रत्वमागता ॥ दूरादेवमनोज्ञेनप्रेंद्दिरंतीमुखेनखम् ॥ १० ॥ कुंचितेक्षणसंदृश्यादीर्घदीपांशुकोमला ॥ सद्यःस्नातसमुत्सन्नबालवालविलासिनी ॥ ११ ॥ तंतुर्बिसादिवोड्डीनाबह्यसंचारकौतुकात् ॥ ब्रह्मनाडिरिवोद्युक्तावहीरंध्रसुसुंदरी ॥ १२ ॥

अर्थ—परमाणुके तुल्य सूक्ष्म तथा उत्तम पुच्छके अग्र भागसे और वरदानसे प्रसन्न मुखके कारण ग्रहण करने योग्यरूपसे उपलक्षित, वह राक्षसी उससमय अपने देहकी विशालताकी शान्तिसे मानों परम मौनव्रत धारण किया अर्थात् इसका तपोव्रत इसकी महत्ताकी शांतिकेही अर्थ था अर्थात् व्यर्थ था ॥ ९ ॥ और दूरसे देखनेसे प्रकाशमान नेत्रोंका सूक्ष्मतासे सन्धिन देखपडनेके कारण एक दीपके सदृश देख पडती थी, और सूचीरूपके न देखपडनेसे आकाशकेही तुल्य होगई, और प्रथम शरीरकी विशालता दशामें शरीरमेंही आकाश प्रविष्ट था, और सूक्ष्मता दशामें आकाशके बाहर स्थित होनेसे मानों दूरसेही अपने रमणीय मुखसे आकाशको उगल रही है ॥ १० ॥ दूर देशतक फैली हुई दीपशिखाके सदृश सूक्ष्म, इसीसे एकाग्रताके लिये संकुचित नेत्रोंसे देखनेके योग्य, और तत्कालके स्नानसे खडे हुये बालकोंके बालके समान विलास करनेवाली॥११॥बाह्यदेशमें संचारकी इच्छासे कमलसे निकले हुये सूतके समान ऐसे शोभितथी जैसे ब्रह्मरन्ध्र(छिद्र)से बाहर निकलके सूर्य्यमंडलकी ओर जानेके अर्थ उद्यत सुषुम्ना नाडी ॥ १२ ॥

नियतेंद्रियशक्तिःसाजीवेनैवबहिःस्थिता ॥ बौद्धतार्किकविज्ञानसंतानवदलक्षिता ॥ १३ ॥ शून्यसिद्धार्थसविकारंध्रनीलमथारवा ॥ अदृश्ययाजीवसूच्यासंततानुश्रितास्थिता ॥ १४ ॥ कलाकलनधर्मिण्या वासनामात्रसारया ॥ क्षीणदीपांशुसूचीवत्तीक्ष्णयानुपलभ्यया ॥ १५ ॥ ग्रासार्थंसूचितांयातासैवास्था नोपयुज्यते ॥ विचारितंतयानैतद्दोमौर्ख्यविजृंभितम् ॥ १६ ॥

अर्थ—और नेत्रआदि इन्द्रियोंकी शक्ति उसकी अपने स्थानपर नियत थी, और लिंगशरीरसेही बाहर सूचीके आकारसे स्थित थी, तथा बौद्धोंके आलय विज्ञानके समान अपने आत्मामात्रका विषय होनेपरभी दूसरोंसे अलक्षित थी तथा नैय्यायिकोंके धारावाहिक ज्ञानके समान अन्य प्राणियोंसे अलक्षित थी॥१३॥ सर्वथा अलक्षित होनेसे शून्यवादी सिद्धार्थोंकी माताके समान आकाशकी नीलिमारूप, और शब्दरहित वह थी, यह तो लोहमय सूचिका रूपका वर्णन हुआ, और अदृश्यरूप जो जीव सहित सूची थी उस करके सदा अनुश्रित वह स्थित रहती थी ॥ १४ ॥ उन २ पदार्थाकार वृत्तियोंमें प्रतिफलित (प्रतिबिम्बित) चिदाभासोंकी कल्पनामय धर्मं वली, वासनामयी, अदृश्य और तीक्ष्ण सूचीसे ऐसी थी जैसे नाश दशाको प्राप्त होते हुये दीपकी किरणरूप सूची, नेत्रसे अदृश्यभी रहते परन्तु स्पर्श करनेसे

दाहके कारणसे तीक्ष्णतायुक्त हो ॥ १५॥ हे रामजी ! सम्पूर्ण जगत्को ग्रास करनेके अर्थ उसने सूचीरूप धारण किया परन्तु उदर रहित सूचीदशा ग्रास करनेको उपयोगी नहीं होसकती, देखो ! मूर्खताका कैसा प्रताप है कि उसने यह न विचारा कि इस सूचीरूपसे मेरा क्या कार्य्य होगा ॥ १६ ॥

साग्रासंचिंतयामासनसूचीरूपतुच्छताम् ॥ चित्तमीहितमेवैकंपश्यंत्यास्तेनिरर्थकम् ॥ १७ ॥ अविचार्यैवसूचित्वंतयामूढधियास्थितम् ॥ नानर्थबुद्धेःस्फुरतिपूर्वापरविचारणा ॥ १८ ॥ स्वार्थक्रियोग्रसामर्थ्याद्यातिभावनयान्यताम् ॥ पदार्थोभिमतांशाढ्योनिःश्वासेनेवदर्पणः ॥ १९ ॥ सूचीभावंप्रपन्नायास्त्यजंत्याःपीवरंवपुः ॥ महामरणमप्यस्याराक्षस्याःसुसुखंस्थितम् ॥ २० ॥

अर्थ—हे रामजी ! उसने केवल जगत्का ग्रास करनेमात्रकी चिन्ताकी, और सूचीके रूपकी तुच्छतापर कुछभी विचार नहीं किया, एक केवल अभिलषित पदार्थमात्रको चिन्तन करनेवाली (न कि पूर्वापर हानिका विचार करनेवाली) का चित्त निरर्थक होगया ॥ १७ ॥ सूचीरूपका विचार न करके वह मूढबुद्धि स्थित थी, क्योंकि अनर्थ चिन्तन करनेवाली जिस प्राणीकी बुद्धि है उसको पूर्वपरका विचार कुछ नहीं रहता ॥ १८ ॥ अपने स्वार्थके लिये अभिलषित पदार्थमें दृढतर प्रयत्नके सामर्थ्यसे मनुष्यकी उत्तम बुद्धिभी ऐसे कलुषित होजाती है जैसे श्वाससे उपहत दर्पण ॥ १९ ॥ हे रामजी ! अपने स्थूल शरीरको त्याग करके सूचीभाव ग्रहण करनेवाली इस राक्षसीको यदि अपनी निजदशामें क्षुधासे इसका महामरणभी होजाता तो उसकेलिये अति सुख था ॥ २० ॥

एकवस्त्वतिरागाणामहोनुविषमागतिः ॥ देहोपितृणवत्यक्तोराक्षस्यानिजयेच्छया ॥ २१ ॥ एकवस्त्वतिगंधेनभ्रश्यंत्यन्याहिसंविदः ॥ राक्षस्याग्रासगंधेनदेहनाशोपिनेक्षितः ॥ २२ ॥ नाशोपिसुखयत्यज्ञमेकवस्त्वतिरागिणम् ॥ सूचीभूताविदेहापिपरितुष्टैवराक्षसी ॥ २३ ॥ अन्याबभूवलग्नासांतथाजीवविषूचिका ॥ व्योमात्मिकानिराकाराव्योमवृत्तिशरीरका ॥ २४ ॥

अर्थ—अहो ! एकपदार्थमें अति रागकरनेवाले जीवोंकी गति अतिभयंकर होती है देखो ! इस प्रीतिसे इस कर्कटी राक्षसीने अपना देहभी तृणके समान निज इच्छासे त्याग दिया ॥ २१ ॥ एक वस्तुकी अतिलालसासे अन्य उत्तम ज्ञान सब नष्ट होजाते हैं देखो जगत्के ग्रासके लोभसे राक्षसीने अपनी शरीरके नाशकोभी न देखा ॥ २२ ॥ एक वस्तुके अति प्रेमी अज्ञानीको अपना नाशभी सुखदायी होता है, जैसे कर्कटी राक्षसी सूचीरूप होकर देह रहितभी थी परन्तु प्रसन्नहीथी ॥ २३ ॥ और दूसरी जो थी वह आकाशमयी निराकार लिंगशरीरवाली सर्व पदार्थों (जो उसके योग्य अशुचि हैं) में संलग्न जीव विषूचिका अर्थात् व्याधिरूप होगई ॥ २४ ॥

तेजस्तनुप्रवाहाभाप्राणतंतुमयात्मिका ॥ मूलसंवेदनाकाराचंद्रार्कांशुकसुंदरी ॥ २५ ॥ पृथगेवासिधाराभापरमाण्ववलीयसा ॥ कौसुमीगंधलेखेवकलाकलनरूपिणी ॥ २६ ॥ पापात्मिकामनोवृत्तिःसाहितस्यास्तथास्थिता ॥ परप्राणवशादेवपरमार्थपरायणा ॥ २७ ॥ एवमस्यास्तनुर्जातासूचीद्वयमयीहिसा ॥ नीहारांशुकवत्तन्वीकार्पासांशुसुपेलवा ॥ २८ ॥

अर्थ—और तेजके सूक्ष्म प्रकाशके सदृश शोभित प्राणोंमें तन्तुरूप मूलकी कुण्डलिनी शक्तिके आकारके सदृश और चन्द्रमा तथा सूर्य्यके अल्प किरणोंके समान सुन्दरी थी ॥ २५ ॥ और उस कर्कटी राक्षसीकी पापात्मिका अतएव तरवारके धाराके समान क्रूर मनोवृत्तिस्वरूप उस लोहके सूचीसे पृथक्ही थी, और वह पुष्पोंके गन्धकी लेखाके समान सूक्ष्मतासे प्राणियोंके देहोंमें प्रवेश करके हिंसारूप कला चातुरीके सम्पादनमें प्रकटरूप वाली, और अन्य प्राणियोंके प्राणोंके हरणसे अपने परममनोरथमें परायणथी ॥ २६ ॥ २७ ॥ हे रामजी ! इस प्रकार नीहार (कुहेर) के वस्त्रके समान सूक्ष्म और कपासके वस्त्रके सदृश कोमल दो प्रकारकी (एक लोहमयी दूसरी जीवसूची) सूचीमयी उसकी देह होगई ॥ २८ ॥

तनुद्वयेनतेनासौप्रविश्यहृदयंनृणाम् ॥ वेधयंतीततःक्रूराप्रबभ्रामदिशोदश ॥ २९ ॥ सर्वःस्वसंकल्पवशाल्लघुर्भवतिवागुरुः ॥ कर्कत्वंग्रंवपुस्त्यक्त्वासूचीत्वमुररीकृतम् ॥ ३० ॥ तुच्छोप्यर्थोल्पसत्त्वानांगच्छतिप्रार्थनीयताम् ॥ सूचीवृत्तपिशाचीत्वंराक्षस्यातपसास्थितम् ॥ ३१ ॥ अयिपुण्यशरीराणांजातिबंधोनशाम्यति ॥ तनुसूचीपिशाचीत्वंराक्षस्यातपसार्जितम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! वह राक्षसी उन दोनों शरीरोंसे मनुष्योंके हृदयोंमें प्रवेश करके सबको पीडा देती हुई वहांसे दशोदिशाओंमें भ्रमण करने लगी ॥ २९ ॥ हे रामजी ! सभी प्राणी अपने संकल्पके वशसे गुरु वा लघु

होजाता है, ऐसे कर्कटीने अपने महान् शरीरको त्यागके सूची रूप शरीरको अंगीकार किया ॥ ३० ॥ हे रामजी ! क्षुद्र जीव तुच्छ पदार्थके लियेभी प्रार्थना करते हैं, ऐसे सूचीके चरित्रवाली पिशाचिका राक्षसीके तपसे प्राप्त हुई ॥ ३१ ॥ तप आदि पवित्र शरीरवालोंकाभी अपने जातिके अनुसार वासनाका सम्बन्ध शान्त नहीं होता, जैसे कि कर्कटी राक्षसी अपनी जातिके अनुकूल अन्य जीवोंको पीडादानरूप सूक्ष्म सूचीरूप पिशाचिता अपनी तपस्यासे उपार्जित किया ॥ ३२ ॥

तस्यां दिगंतभ्रमणे प्रवृत्तायां महानिलैः ॥ तस्यैव सा तनुः स्थूला गलिता शरदभ्रवत् ॥ ३३ ॥ कस्यचिद्विवशांगस्य क्षीणस्य विपुलस्य च ॥ प्रविश्यांतर्वातसूचिर्भवत्यतिविषूचिका ॥ ३४ ॥ कस्यचित्तु सुदेहस्य स्वस्थस्य सुधियोपि वा ॥ प्रविश्य जीवसूचित्वे भवत्यंतर्विषूचिका ॥ ३५ ॥ एवं क्वचित्तृप्यति सा दुर्बुद्धिहृदयास्थिता ॥ क्वचिद्दुच्छेद्यते पुण्यैर्मंत्रौषधितपःक्रमैः ॥ ३६ ॥

अर्थ—जब उस राक्षसीने दिगन्तोंमें भ्रमण करना आरम्भ किया तब उसकी वह पूर्व स्थूलशरीर शरद् ऋतुके मेघके समान महापवनोंसे कहांही गलगई ॥ ३३ ॥ अब वह किसी प्राणीके जो किसी कारणसे अस्वस्थ शरीरवाला है, चाहे वह कृशांगही वा स्थूलांगही उसके भीतर प्रवेश करके वायुमें संलग्न लोहकी सूचीरूप जीव विषूचिका अर्थात् रोगरूप होजाती है ॥ ३४ ॥ और किसी सूक्ष्म और रोगरहित शरीरवाले चाहे वह सुबुद्धिभी हो उसके हृदयमें जीव सूचीरूपसे प्रवेश करके सूचिका होजाती है ॥ ३५ ॥ इस प्रकार कहीं तो वह दुर्बुद्धिके हृदयमें स्थित होके तृप्त होती है, और किसी पुरुषसे पवित्र मन्त्र औषधि आदि द्वारा उसका निवारण किया जाता है ॥ ३६ ॥

आसीद्बहूनि वर्षाणि भ्रमणैकपरायणा ॥ देहात्येन गच्छंती व्योम्नि भूमितले तथा ॥ ३७ ॥ रजस्ति गेहिता भूमौ चलतं गुल्लिति गोहिता ॥ प्रभाभिर्गोहिता व्योम्नि वस्त्रसूत्र तिरोहिता ॥ ३८ ॥ अंतःस्थवायुसरिति द्रुअंगपांशुपांशुषु ॥ शुष्काग्रास्वसित्वाले गृहशृंगग्राज गतृणे ॥ ३९ ॥ अर्थहीनेगतच्छाये शून्या उच्छ्वास का शिष्टि ॥ मक्षिका वातनाग्निस्थितौ शुष्कपरिवर्जिते ॥ ४० ॥

अर्थ—इसप्रकार आकाशमें अथवा पृथिवीमें सहकार चलतेहुये भ्रमण मात्रमें परायण रहते उसको बहुत वर्ष बीत गये ॥ ३७ ॥ और वह पृथिवीपर भूमिके कणोंमें हाथोंमें अंगुलियोंमें आकाशमें तेजमें और वस्त्रोंके सूतमें तिरोहित अर्थात् छिपी रहती है ॥ ३८ ॥ तथा शरीरके भीतर नाडीरूप नदीमें व्यभिचार आदिसे घुसकर शरीरके अवयवों (भागों) में सूखेहुये हस्तपाद आदिकी रेखारूप नदी और गर्तोंमें और सूक्ष्म तथा रूखे रोमरूपी पुराने तृणोंमें छिपी रहती है ॥ ३९ ॥ तथा सौभाग्यलक्षण शून्य और कान्तिरहित मनुष्यमें शरीरके बाहरभी मक्षिका तथा रूखे दुर्गन्ध युक्त वायुसे युक्त दुर्भाग्य सहित स्थानोंमेंभी छिपी रहती है ॥ ४० ॥

स्थूलास्थिग्रंथिवल्लितेनित्यकंपस्फुरन्नमे ॥ अनात्मीयाचलनीहारे ऽशुद्धांशुककृतभ्रमे ॥ ४१ ॥ किणस्था पत्रंगविश्रांतमक्षिकापिकवायसे ॥ गेहरूढाभ्रवहासे खिलोलांगुलिशाखिनी ॥ ४२ ॥ मालाभ्रलेखासंसारे स्वांगुलित्रगगर्तके ॥ स्कंदावश्यायपृषतिपद्वन्मीकपर्वते ॥ ४३ ॥ कचत्याशुजलभ्रांतौ नखाजगर कर्कशे ॥ क्वचित्कचिदलग्धात भीतयूककुपांथके ॥ ४४ ॥

अर्थ—स्थूलरूपसे वा मनुष्योंके हड्डियोंके ग्रन्थि सहित स्थानोंमें महावायुसे अति कम्पायमान वृक्ष सहित देशोंमें अपनी इच्छाके विरुद्ध अपवित्र स्थानोंमें तथा अशुद्ध मलिन वस्त्र पहिनेहुये मनुष्योंके आनेजानेके स्थानोंमें निवास करतीहै ॥ ४१ ॥ वृक्षोंके कोटरोंमें, वा शाखा कटेहुये वृक्षोंमें जहां मधुकी मक्षिकायें और कोकिल काक आदि विश्राम करतेहैं, ऐसे स्थानोंमें और शीतादिकी अधिकतासे रूखा शब्द करनेवाला वायु, युक्त स्थानमें वह रहती है और रूखे वायुसे अंगुलिरूप शाखायें जिसकी मनुष्योंके आनेका निषेध करनेको हिलरहीहैं ऐसे वृक्षसहित स्थानोंमें वह रहती है ॥ ४२ ॥ मालारूप होकर कुहिरोंके समूहके गिरनेके स्थानोंमें और जिनके अंगुलि आदि शरीरके भाग शस्त्रके गर्त (गढ़े) के तुल्य होगये हैं ऐसे मनुष्योंके निवास स्थानोंमें वह वसती है और जहांपर तुषारके बिन्दु टपक रहेहैं तथा अनेक पुरुषोंके पदोंसे अंकित देशोंमें दीमक आदिसे रचित ऊंचे स्थानोंमें वह रहतीहै ॥ ४३ ॥ तथा जहां स्थलमें जलकी भ्रान्ति प्रकाशमानहै जैसे मरु देशमें और नखहथियारवाले व्याघ्र भल्लुक तथा अजगर आदिसे कठिन तम जंगलमें अविज्ञात किसी स्थानमें होनेवाले अति भीरु तथा यूक (जूं) आदिसे निन्दित यात्री जिस स्थानमें एकट्ठे होतेहैं ऐसे स्थानोंमें सदा वह रहती है ॥ ४४ ॥

विरूपाशुष्कसंदष्टवीटिकापूतिपल्वले ॥ मध्यस्थलेखमार्गौघशीतश्वसनगोचरे ॥ ४५ ॥ ग्रस्तयूकान रैघास्रकूपूर्णसृक्किनखास्यताम् ॥ दधतांगुष्ठपक्षेणकांतेसर्वत्रयायिनी ॥ ४६ ॥ नानाविरचनाचित्रपट पतनगामिनी ॥ गमागमपरिश्रांतात्यंतचिराध्वगा ॥४७॥ नगरानगरेग्रस्तसूत्रभांडैकभारिणी॥ तप्तेकलेवरारण्येबलीवर्दपवर्त्तिनी ॥ ४८ ॥

अर्थ—कुरूप पिशाच आदिसे चर्वित शूखे ताम्बूलके बीडोंके समान पत्ते सहित दुर्गन्धि युक्त गढोंमें, नहर आदि जिसस्थानमें तथा जहांपर अनेक प्रकारके राही बटोही आके विश्रामके स्थानोंमें वह कर्कटी सूची छिपी रहतीथी ॥ ४५ ॥ यूकों (जूओं) के उदरोंमें स्थित मनुष्योंके रुधिरोंसे पूर्ण ओष्ठ प्रान्तधारी प्राणी पामर तथा नर आदि जो अपने नखोंकोही मुखरूपसे धारण करतेहैं ऐसे अंगुष्ठ समूहोंसे पूर्ण देशोंमें तथा मनुष्य आदिसे शरीरोंमें और पूर्वोक्त भूमि आदि स्थानोंमें सर्वत्र वह जानेवालीथी ॥ ४६ ॥ और नानाप्रकार अश्व गज आदिसे विचित्र रचना युक्त नगरोंमें वह आया जाया करतीथी, और वहांपर दीर्घकालतक मार्गगामिनी, वह सदा आनेजानेसे थकित होगई॥४७॥ सूचीके स्वभावसे नगर २ तथा ग्राम २ में मार्गोंमें बिखरेहुये वस्त्रोंको, तथा मणि आदिको भरण करनेवाली, और ज्वर आदिसे सन्तप्त मनुष्योंके शरीररूपी जंगलमें बलीवर्दका कार्य्य करनेवाली अर्थात् जैसे हृष्टपुष्ट बैल खाई आदि उच्चस्थानोंको देखकर अपने सींगोंसे उनको विदार करही फिरताहै वैसाही वह मनुष्योंके शरीरको नष्ट करतीथी॥४८॥

शुप्तविश्रमणायैवसनाकरपरिच्युता ॥ तंतुप्रोतामुखाकृष्टिःखिन्नाक्वापिविलीयते ॥ ४९ ॥ वेधनंकर्मसं श्लिष्टाकठिनापिनसाकरोत् ॥ नहितीक्ष्णोबहिःकार्योनिजत्वंविजहातिचेत् ॥ ५० ॥ सायःसूचीमनः सूच्यावलिताविजहारह ॥ दिक्ष्वाशेवशिलागुर्वीनावांगपलितासती ॥ ५१ ॥ विससारदिगंतेषुसांतः करणसत्तया ॥ तुषलेखेवपवनशक्त्याऽसंसृतिरूपया ॥ ५२ ॥

अर्थ—और सूचीको कोई पुरुष सीनेके अर्थ ग्रहण करै और दीर्घ कालतक सीनेके पश्चात् यदि पटसूत्रमें खोस देतो खिन्न होजाती है, और थोडाभी उसके हस्तसे गिरी तो विश्रामके लिये कहीं छिप जाती है, यही दशा इसकीथी ॥४९॥ यद्यपि वह क्रूर स्वभाववालीथी तथापि अपने योग्य सीवन कर्ममें कौतुकसे संलग्न होती हुई, अन्यके वेध नहीं करतीथी, क्योंकि सूचि यदि अपना निज सीवनरूप स्वभाव नहीं प्रकट करती तो अपना क्रूर स्वभावभी बाहर नहीं प्रकट करसक्ती, क्योंकि वह क्रूरताभी उसका स्वभावही है ॥ ५० ॥ शरीरके वृद्ध होनेपरभी वह लोहकी सूची उस जीव सूचीके कारण सब दिशाओंमें ऐसे भ्रमण करतीथी जैसे बडी भारी पाषाणकी शिला ॥ ५१ ॥ वह कर्कटी सूची अपने अन्तःकरणकी सत्तासे दिगन्तोंमें ऐसे भ्रमण करतीथी जैसे तुष (भूसी) की लेखा भ्रमण शील वायुकी शक्तिसे ॥ ५२ ॥

मुखेनसूक्ष्मसूत्रांतंचरंतीवपरोंभितम् ॥ परपूरेच्छमेनाशुजातेवहृदयान्विता ॥ ५३ ॥ परपूररसेनैवसू च्याहृत्सुविकासितम् ॥ अनारतपतत्सूक्ष्मसूत्रांतइवस्तंभिता ॥ ५४ ॥ तीक्ष्णैरपिचिरक्षीणंपूर्यतेनि र्विचारणा ॥ दृष्टांतोत्रक्षणात्सूच्यापूरितोजर्जरःपटः ॥५५॥ सूत्रांशुनिर्गमेयोग्यंसूच्याहृदयमर्जितम् ॥ परपूरणयैवाशुतेजश्चकवितार्करुक् ॥ ५६ ॥

अर्थ—दूसरोंसे गुंथे हुये सूत्रों (सूतों) के सूक्ष्म अन्तर्भागको भक्षण करती हुई अतएव दूसरेसे प्रेरित उदर पूरणरूप उद्यमसे स्वस्थ हृदयसे संयुक्तके समान होगई ॥ ५३ ॥ क्योंकि सूची (कर्कटी राक्षसीरूपी) ने प्रथम अन्यके वधसे प्रेरित अपने उदर पूरणकी इच्छाहीसे तपसे क्लेशित अपने मनको प्रसन्न कियाथा, इसीकारणसे उसके मुखमें निरन्तर सूत्रप्रान्तके गिरनेपर अपना मनोरथ सिद्ध होनेसे निरुद्धके सदृश होजातीथी ॥ ५४ ॥ इसमें कुछभी सन्देह नहीं है कि दरिद्रताके कारणसे कृशता आदिसे पीडित जनको देखके क्रूर स्वभाववालेभी उसको पाषाण करते हैं, इसमें यही दृष्टान्तहै कि फटे हुये जर्जर पटको सूची क्षणभरमेंही पूर्ण कर देती है ॥ ५५ ॥ और उस सूचीने अपना उदर इसलिये नहीं पूर्ण किया कि सूत्रके अग्रभागके प्रवेश करनेमें छिद्ररहित योग्यही अपना हृदय तपस्यासे अर्जित किया, और अभिज्ञतासे सूर्य्य कान्तिके समान अपना तेजभी उसने प्रकाशनार्थही प्राप्त कियाथा ॥ ५६ ॥

अकस्मात्तेनरूढेनक्षीणपूरणरूपिणी ॥ हृदयेराक्षसीसूचिःकर्मणातप्यतेचसा ॥ ५७ ॥ वेधंपूरयेणे वकरोतिस्वंप्रचारिता ॥ प्रकृतेननिजेनापिवेधायव्यवहारिता ॥ ५८ ॥ संचारयतिवस्त्रेषुसूत्रंचतुरवेध नात् ॥ आदीर्घवासनातंतुःशरीरेष्विवचेतनाम् ॥ ५९ ॥ संचार्यमाणवेधेनधावंतीवाक्षिपातने ॥ अद र्शितसुखाएवद्दुर्जनामर्मवेधिनः ॥ ६० ॥

अर्थ—अकस्मात् उस तपोरूप कर्मसे क्षीण उदरके प्रादुर्भाव उस सूचीरूप राक्षसीने पश्चात्ताप किया ॥ ५७ ॥ पश्चात्ताप करनेपरभी वह नदीके प्रवाहके वेगके सदृश निज राक्षसस्वभावसे और वर्तमान सूची स्वभावसेभी प्राणियोंके वेधनकेही आग्रहसे उसने प्रथम अपनेको नियुक्त कियाथा, इसीसे पीछे व्यवहारमें जब प्रवृत्त हुई तबभी वेधनरूप व्यापार करतीथी ॥ ५८ ॥ मरणकालमें प्राणियोंके कर्मानुसार प्रादुर्भूत अति दीर्घ वासनारूप तन्तु जैसे स्त्री आदिके शरीरोंमें चेतनाका संचार करताहै ऐसेही सूचीभी चतुर वेधनसे वस्त्रोंमें सूत्रोंका संचार करती है ॥ ५९ ॥ इसीकारण जब सूचीकार (दर्जी) वेधन द्वारा पटोंमें संचार करतेथे तब मुखको कपडेसे आच्छादन करके दौडतीथी, क्योंकि चोर पिशुन और कुटिल आदि दुर्जन पुरुष अपने मुखको न देखाते हुये मर्मवेधी जगत्में प्रसिद्धहैं॥६०॥

कंठवस्त्रदलप्रोतावेधाक्ष्णामुखमीक्षते ॥ कथमेताभिनद्मीतितीक्ष्णानामेतदीप्सितम् ॥ ६१ ॥ सममेव चकौशेयेक्षौमेचवसनेरता ॥ जडःकइववानामगुणागुणमपेक्षते ॥ ६२ ॥ सादधानातंसूत्रमंगुष्ठांगुलिपीडिता ॥ आंत्रतंतुमिवामांतमुद्गिरंतीनिरीक्षते ॥ ६३ ॥ तीक्ष्णाप्यहृदयत्वेनसरसेष्वरसेष्ववित् ॥ सूचितापिपदार्थेषुविशत्यरसगामिनी ॥ ६४ ॥

अर्थ—और कभी कण्ठमें आसक्त उत्तरवस्त्र ओढनी चद्दर आदिमें खोस दी जाती है तो अपने छिद्ररूप नेत्रसे स्त्रियोंका मुख देखती है कि इनको मैं कैसे भेदन करूं क्योंकि मेरे समान तीक्ष्ण स्वभाववालोंको यह इष्ट है ॥ ६१ ॥ और वह कोमलता तथा चिक्कणतादि गुणयुक्त जो कौशेय (रेशमका) वस्त्र है उसमें तथा कठिनता और रूक्षतादि दोष सहित शाणव अतसीका वस्त्र है, उसमें दोनोंमें समान रूपसेही प्रविष्ट है क्योंकि ऐसा कौन जड है जो गुण और दोषका विचार करता है ॥ ६२ ॥ वह सूची सीनेवालीकी अंगुलीसे पीडित अपने मुखमें व्याप्त सूत्रको धारण किये हुये उस सूत्रको अपने भीतर न मानेके कारण ऐसे उगलती हुई देखती है जैसे प्राणियोंके आंत्र (अंतडी) को ॥ ६३ ॥ वह तीक्ष्ण स्वभाववाली सूत्रसे गुंथी हुई सरस तथा नीरस पदार्थोंमें हृदयके न होनेसे विशेष ज्ञानशून्य रहती है, इसीसे अपने सूची स्वभावके कारण रसके स्वादसेही नहीं प्रवेश करती है ॥ ६४ ॥

अगर्दतीमुखप्रोतासुतीक्ष्णापिचतावधीः ॥ सुवेधिताप्यहृदयाराजपुत्र्यपिदुर्भगा ॥ ६५ ॥ विनापराधकारेणतीक्ष्णामरणमीहते ॥ वेदनाद्रोधितासूचीकर्मपाशेप्रलंबते ॥ ६६ ॥ शेतेकिंचिश्यामभेव्येवदूरेकरपरिच्युता ॥ स्वरूपसदृशंमित्रंकस्मैनामनरोचते ॥ ६७ ॥ मिश्रितामूढचित्तानांवृत्तिभिःप्राकृतेजने ॥ तिष्ठत्यात्मसमांकोहिसंगतिंत्यक्तुमिच्छति ॥ ६८ ॥

अर्थ—निष्ठुर भाषण आदि शब्द नहीं करती तौभी इसके मुखमें सूत्र भरा (ठूसा) रहता है, और भलीभांति वेधित होनेपरभी यह उदर छिद्रसे शून्यही है, इसी कारणसे यह भाग्यहीन पुत्रीके सदृश दुर्दशाग्रस्त है॥६५॥ और यह दुर्दशा इसकी योग्यही है क्योंकि यह अपने अपकारके विनाही दूसरे प्राणियोंका मरण चाहती है इसी पापके कारणसे यह अपने बुद्धिके वशसे सूत्रसे रुकी हुई मानों अपने कर्मकी फांसीमें लटक रही है ॥ ६६ ॥ और दैववशसे कदाचित् सीनेवालेके हस्तसे गिरनेपर उसीके वा अन्यके गोदमें करस्पर्शके अयोग्य स्थानमें निन्दित श्यामवाले नीचेकी ओर झुके हुये रोमवालोंके साथ मानों मित्रताके कारणसे शयन करती है क्योंकि अपने स्वरूपके सदृश मित्र किसको नहीं अच्छा लगता ॥ ६७ ॥ इसी कारणसे वह मूढचित्तवालोंकी वृत्तियोंके साथ मिलकर रहती है क्योंकि पामर जनोंके समुदायमें अपने समान संगतिको त्याग करनेकी इच्छा कौन करता है ॥ ६८ ॥

भवत्ययस्कारवित्तौसंत्यज्यांतर्द्धिगामिनी ॥ भस्त्रावातैर्विचलितागगनाद्युत्पतोन्मुखी ॥ ६९ ॥ प्राणापानप्रवाहस्थहृत्पद्मांतश्चारिणी ॥ दुःखशक्तिर्महाघोराजीवशक्तिरिवोदिता ॥ ७० ॥ समानवैपरीत्येनसमानसमगामिनी ॥ उदानविपरीतत्वाद्दुदानसमगामिनी ॥ ७१ ॥ व्यानस्थाव्याधिजननीसर्वांगरसचारिणी ॥ हृत्कंठेशूलपवनेवैवर्ण्योन्मादकारिणी ॥ ७२ ॥

अर्थ—और कदाचित् लोहारोंके हस्तमें जब पडजातीहै तब गलाने वा तपानेके अर्थ जब अग्निपर रक्खा जातीहै उससमय भाथीके पवनोंसे चलायमान होनेपर उनको त्यागके अन्तर्धान दशाको प्राप्त होके आकाशकी ओर उडनेको अभिमुख होकर भागनेमें तत्पर होती है ॥ ६९ ॥ और इसके जीव सूचीरूपकी यह दशाहै कि प्राण और अपान वायुके प्रवाहोंमें स्थित होकर हृदय पद्मके द्वारा देहके भीतर संचार करतीहुई ऐसी प्रतीत होती है मानों महाभयंकर दुःख देनेवाली जीव सहित दुःखकी शक्तिही रूप धारण करके प्रकट हुई है ॥ ७० ॥ यद्यपि यह समान वायुके विपरीत है तथापि इसका स्वभाव समान वायुके साथ गमन करनेकाहै इसीप्रकार उदान वायुसे विरुद्ध व्यापार

करतीहुई उदान वायुकी सहगामिनी है ॥ ७१ ॥ हे रामजी ! यह दुष्टा जीव सूची व्यान वायुमें स्थित होके सम्पूर्ण देहमें संचार करती हुई अनेक रोगोंकी जननी (माता) होजाती है, और हृदयमें, कण्ठमें, तथा शूलरोग स्वरूप वायुमें प्रवेश करके शरीरकी विवर्णता (कुरूपता) तथा विक्षिप्तताको उत्पन्न करती है ॥ ७२ ॥

प्रायशोऽविकहस्तस्थासुप्तोर्णागंधकोटरे ॥ बालहस्तांगुलीतल्पवेधनैकविलासिनी ॥ ७३ ॥ पादप्रविष्टारुधिरपानोपार्जनविस्मिता ॥ तुष्यत्यतितरांगुच्छभोजनात्तुच्छभोजनैः ॥ ७४ ॥ शेतेकर्दमकोशस्थाचिरकालमधोन्मुखी ॥ इच्छानुरूपमासाद्यकइवास्पदमुज्झति ॥ ७५ ॥ क्रौर्येणापहृतात्मानंदर्शयत्युपवेधनैः ॥ उत्सवादपिनीचानांकलहोपिसुखायते ॥ ७६ ॥

अर्थ—और लोह सूचीरूप यह जब कम्बल आदि सीनेके समय गडेरियोंके हस्तमें पड जाती है तो कभी किंचित् उनोंकेही कोटरमें सोजाती है, और कभी बालकके हस्त वा अंगुली आदिरूप अपनी शय्याके छेदनमेंही विलास करती है ॥ ७३ ॥ पादमें जब यह प्रवेश करती है तो रुधिरपानसे विस्मित होती है, और मालाओंके गूंथने समयमें गुच्छोंके तुच्छ भोजनसेही सन्तुष्ट होजाती है ॥७४॥ और पुष्पोंके रजके कर्दम सहित मूलाधार कोशमें चिरकालतक स्थित होकर नीचेके ओर मुख किये शयन करती है क्योंकि अपनी इच्छा अनुसार स्थान पाके कौन छोडना चाहता है ॥ ७५ ॥ दूसरोंके प्राणके अपहरण पर्य्यन्त वेधनोंसे अति क्रूरता पूर्वक अपना कलंकित स्वरूप दर्शाती है, क्योंकि जो नीच दूसरोंको पीडा देनेमेंभी असमर्थ हैं उनको दूसरोंके साथ कलह करनेमेंही उत्सवसेभी अधिक सुख भान होता है, और यदि वे नीच दूसरोंके प्राण हरण करने पावे तो फिर उनके सुखकी क्या सीमा है ॥ ७६ ॥

कपर्दकार्थलाभेनकृपणोबहुमन्यते ॥ दुरुच्छेदाहिभूतानामहंकारचमत्कृतिः ॥ ७७ ॥ सूचिकायुग्मलभ्येनमोहितेनात्मनानृणाम् ॥ मृतिमाशंकतेचित्रास्वार्थेनोदेतिमूढता ॥ ७८ ॥ वस्त्रतंतुविभेदेनपरमारणमाशुमे ॥ इदंसंपद्यतइतिभवत्यंतर्हिनिर्मला ॥७९॥ स्थापितामलमादत्तेयथामृद्घर्षणंविना ॥ परापराधविरहाद्व्याधिस्तस्याःप्रवर्त्तते ॥ ८० ॥

अर्थ—अति अल्प रक्त कणकेही स्वादके लोभसे दूसरोंके मारनेमें यह प्रवृत्त होती है, क्योंकि कृपण जनक पर्दिका (कौडी) के अर्द्धभागके लाभकोभी बहुत कुछ समझता है और राक्षसादि कुलमें उत्पन्न प्राणियोंके अहंकारकी चमत्कृतिका नाश करना तो अति कठिन है ॥ ७७ ॥ लोहकी और जीवकी दो सूचीरूप अपने शरीरके लाभसे मोहित (गर्वित) होके वह सदा मनुष्योंके मरणकीही चेष्टा करती है, क्योंकि मूढ जनोंको अपने आवश्यक स्वार्थमें मूढता न उदय होतो इसमें आश्चर्य्यही है ॥ ७८ ॥ वस्त्रोंके शीघ्र भेदन रूप अभ्याससे दूसरोंका मारणरूप कार्य्य मेरा शीघ्र सिद्ध होता है इस कारणसे वह अपने चित्तमें प्रसन्न होती है ॥ ७९ ॥ हे रामजी ! जैसे लोकमें प्रसिद्ध सूची यदि मट्टीसे मली न जाय और योंहि रक्खी है तो वह मलिन होजाती है ऐसेही यह जीवसूची यदि दूसरोंका मारणरूप अपराध न करै तो इसको रोग होजाता है ॥ ८० ॥

सूक्ष्मादृश्यावैवदात्रीक्षणाद्विस्मृतिमेतिसा ॥ तीक्ष्णभेदकरीक्रूरासूचीचेष्टेवदैविकी ॥ ८१ ॥ तंतुवेधनमात्रेणहतोन्यइतितोषिता ॥ दुर्जनोयेनतेनैवनाशितेनैतितुष्टताम् ॥ ८२ ॥ पंकेमज्जतियातिस्वंविहरतिव्योमानिलैर्दिक्तटेशेतेपांसुषुभूतलेष्विववनेपट्टेगृहेंऽतःपुरे ॥ हस्तेश्रोत्रसरोरुहेथमृद्गनिस्वेच्छोर्णिकाखंडकेरंध्रेकाष्ठमृदांचमातिहृदयेद्रव्यात्मशक्त्यैवसा ॥ ८३ ॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ इत्युक्तवत्यथमुनौदिवसोजगामसायंतनायविधयेस्तमिनोजगाम ॥ स्नातुंसभाकृतनमस्करणाजगामश्यामाक्षयेरविकरैश्वसहाजगाम ॥ ८४ ॥ ॥ षष्ठंदिनम् ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे सूचिव्यवहारवर्णनं नाम सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥

अर्थ—यह सूक्ष्म अदृश्यरूपसे दूसरोंके शरीरोंका खण्डन करती है और क्षणमें उसे विस्मृत होजाती है और पुनः क्रूर जीवसूची होके तीक्ष्णतासे ऐसा भेदन करती है जैसे उत्पातसे उत्पन्न दैवकी चेष्टा ॥८१॥ मर्मस्थानमें स्थित अनाच्छादनभूत सूत्रमात्रके छेदनरूप अपनी निपुणतासे यह समझती है कि दूसरा मारागया क्योंकि दुर्जन प्राणी जिस किसीके नाशमात्रसे प्रसन्नहो जाताहै ॥ ८२ ॥ हे रामजी ! यह सूची गर्त (गढे) आदिके कीचडोंमें निमग्न होती है आकाश वायुके साथ दिशाओंके तटोंमें बिहार करती है, भूतलपर तथा बनोंमें धूलियोंमें ऐसे शयन करतीहै जैसे अन्तःपुरके गृहोंमें शय्याके कोमल वस्त्रोंपर, मनुष्योंके हस्तोंमें, श्रोत्ररूप कमलोंमें, तथा अपनी इच्छासे

भेडाके रोमकी राशियोंपर शयन करतीहै, तथा काष्ठ मृत्तिका और गृहकी भित्ति आदिके अल्प छिद्रमेंही ऐसे समा जाती है जैसे मणिमन्त्रआदि द्रव्योंकी शक्तिसे मायावी योगी अपनी इच्छासे चाहे जहां विहार करताहै वही दशा इस जीवसूचीकीभी है ॥ ८३ ॥ श्रीवाल्मीकिजी बोले—श्रीवसिष्ठ मुनिके इतना कहनेपर दिनका अन्त होगया और सूर्य्य भगवान् अस्ताचलको गये और सभाभी सायंकालके सन्ध्या स्नानादि विधि करनेको विदाहुई और रात्रिके बीतनेपर सूर्य्यके किरणोंके साथ नमस्कारपूर्वक पुनः सब सभा एकत्रित होगई ॥ ८४ ॥ षष्ठोदिवसः (षष्ठदिन)

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देववूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे सूचीव्यवहारवर्णनं नाम सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥

एकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥

अपने पूर्व देहको स्मरण करतीहुई सूचीदशाको प्राप्त कर्कटी राक्षसीका पश्चात्ताप तथा विलाप विस्तारसे इस ७१ वे सर्गमें वर्णन किया जाताहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथसाबहुकालेनकर्कटीनामराक्षसी ॥ सर्वेषांनरमांसानांनतृप्तिमुपाययौ ॥ १ ॥ पूर्वेणैवकिलाह्लासाद्‌तृप्तारुधिरबिंदुना ॥ सूच्याःकिमिवमात्यंतस्तृष्णासूचीसुदुर्भरा ॥ २ ॥ चिंतयामास बाकष्टंकिमहंसूचितांगता ॥ सूक्ष्मास्मिहतशक्तिश्चअपिग्रासोनमातिच ॥ ३ ॥ क्वमेतानिविशालानि गतान्यंगानिदुर्धियः ॥ कालमेघविशालानिवनेशीर्णानिपर्णवत् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! इसके पश्चात् बहुतकालतक वह कर्कटी राक्षसी सब प्रकारके मनुष्योंका मांस भोजन करनेपरभी तृप्तिको नहीं प्राप्त हुई ॥ १ ॥ वह तो पूर्वदिनसेही रुधिरके बिन्दुमात्रसे तृप्त होगईथी, क्योंकि सूचीके उदरमें क्या समा सकताहै परन्तु तृष्णारूप सूचीका तृप्त होना अति कठिनथा ॥ २ ॥ उसने अपने चित्तमें शोचा कि हाः बडे कष्टकी बातहै, मैं सूचीरूपको क्यों प्राप्तहुई, मैं अति सूक्ष्म और शक्तिहीन हुं मेरे भीतर एक ग्रासभी नहीं समासकता ॥ ३ ॥ हा ! मुझ दुर्बुद्धिके वे विशाल अंग कहां गये, कृष्ण मेघके समान विशाल वे सब वनमें गिरेहुये पत्तोंके समान नष्ट होगये ॥ ४ ॥

मय्यस्यांमंदभाग्यायांमनागपिनमातिहि ॥ स्वादुमांसरसग्रासोवसावाषितआसयन् ॥ ५ ॥ पंकांत र्विनिमज्जामिपतामिधरणीतले ॥ हतास्मिजनपादौघैःशुक्रेणमलिनास्मिच ॥ ६ ॥ हाहताहमनाथाहम नाश्वासानिरास्पदा ॥ दुःखाद्दुःखेनिमज्जामिसंकटात्संकटेपिच ॥ ७ ॥ नसखीनचमेदासीनमेमातान मेपिता ॥ नमेबंधुर्नमेभृत्यानमेभ्रातानमेसुतः ॥ ८ ॥

अर्थ—हा ! स्वादुमांसका सरस ग्रास मुखमें प्रवेश करता हुआ इस दशामें प्राप्त मुझ मन्दभागिनीमें कुछभी नहीं समाता ॥ ५ ॥ मैं किसीके चरणमें निमग्न होती हुं, और पृथिवी तलपर गिरतीहुं, हा ! मैं मनुष्योंके चरण समूहोंसे मारीगई हुं, और प्राणियोंके शुक्र (वीर्य्य) से मलिनभी होगईहुं ॥ ६ ॥ हा ! मैं मारीगई हा ! मैं सर्वथा अनाथहुं, मुझे धैर्य्यदाता कोई मित्र वा बन्धु नहीं है, मैं आश्रयस्थानसे रहितहुं दुःखसेभी अधिक दुःखमें मैं डूबरहीहुं, और प्राणसंकटसेभी मुझे अति संकटहैं ॥ ७ ॥ मेरे न कोई सखी है, न दासीहै, न माताहै, न पिताहै, न मेरे कोई बन्धुहै, न कोई सेवकहै, और न कोई भ्राता वा पुत्रहै ॥ ८ ॥

नमेदेहोनमेस्थानंनमेकश्चित्समाश्रयः ॥ नैकस्थानेसमावासोभ्राम्यामिवनपर्णवत् ॥ ९ ॥ आपदांधु रितिप्राप्तिनिविष्टास्मिसुदारुणे ॥ अभावमपिवांछामिसोपिसंपद्यतेनमे ॥ १० ॥ स्वकोदेहःपरित्यक्तो मूढचेतनयामया ॥ काचखंडधियाविमूढेनहस्ताच्चिंतामणिर्यथा ॥ ११ ॥ आपतद्धिमनोमोहंपूर्वमापत्प्रय च्छति ॥ पश्चादनर्थविस्ताररूपेणपरिजृंभते ॥ १२ ॥

अर्थ—न तो मेरे शरीरहै, न स्थानहै, और न कोई शरणका स्थानहै, और न कभी एक स्थानमें निवास है, किन्तु पवनके समान इधर उधर भ्रमती रहतीहुं ॥ ९ ॥ आपत्तिकी पराकाष्ठामें मैं इससमय स्थितहुं, और महासंकटमें प्रविष्टहुं, इससमय मैं अपना मरण चाहतीहुं, परन्तु चाहा हुआ वहभी नहीं प्राप्त होता ॥ १० ॥ मुझ मूढबुद्धिने अपना निज शरीर ऐसा त्याग दिया जैसे कोई मूढजन काचके अर्थ अपने हस्तसे चिन्तामणिको ॥ ११ ॥ जब मनमें अविवेक

वा अज्ञान प्राप्त होताहै तब सबसे प्रथम उसके मनमें दुर्बुद्धिता आती है और पीछे वही दुर्बुद्धियुक्त मन अनेक अनर्थोंके विस्तार धारण करताहै ॥ १२ ॥

धूमेषुपरितिष्ठामिमार्गेविलुलितास्मिच ॥ तृणेषुमेपितास्म्यंतर्हामेदुःखपरंपरा ॥ १३ ॥ परप्रेषकरीनित्यंपरसंचारचारिणी ॥ परकार्पण्यमायाताजातापरवशास्म्यलम् ॥ १४ ॥ भ्रांतिकरोमितुच्छेचसापिवेधनरूपिणी ॥ अहोममाल्पभाग्यायादौर्भाग्यमपिद्रंभगम् ॥ १५ ॥ उत्थितःस्फारवेतालःकुर्वत्याःशांतिमद्यमे ॥ सर्वनाशोवदातेनप्रवृत्तायाममोदितः ॥ १६ ॥

अर्थ—देखो कभी जब कोई मुझे सूत्रमें पो देताहै तो धूमके स्थानमें बंधीहुई धूमोंके ऊपर स्थित रहतीहुं कभी मार्गमें फेंकी हुई गधे ऊंट आदिके चरणोंसे मर्दित की जातीहुं, और कभी कोई नलिका आदि तृणोंमें डालकर मुझे अन्धकारयुक्त स्थानोंमें प्रविष्ट कर देता है, हा! मेरे दुःखोंकी परम्परा (श्रेणी) देखो ॥ १३ ॥ मैं सदा दूसरेकी आज्ञाकारिणी रहतीहुं, और दूसरोंके चलानेसे चलतीहुं, हा! मैं परम दीनताको प्राप्त होगई, हा! मैंतो परवश होगई ॥ १४ ॥ हाः तुच्छ अन्तर्गत रुधिर आदिके आस्वादकी मैं अभिलाषा करतीहुं, और वह मेरी अभिलाषाभी केवल दूसरोंके छेदन वेधनरूप फल देती है न कि कुछ स्वाद, क्योंकि मैं उदर तथा जिव्हासे रहितहुं अहो मुझ मन्दभागिनीका दौर्भाग्यभी अति नष्ट है ॥ १५ ॥ वेतालकी शान्ति करते हुये महान् वेताल प्रगट होगया, यह लोकदृष्टान्त मेरेपर घटगया, देखो शुद्ध तपस्यासे मेरा सर्व नाश उपस्थित होगया ॥ १६ ॥

किंमंदयामयातादृक्संत्यक्तंतन्महावपुः ॥ यथानाशेनवाभाव्यंतथोदेत्यशुभामतिः ॥ १७ ॥ मामवांतरनिर्मग्नांसूक्ष्मांकीटतनोरपि ॥ उद्धरिष्यतिकोनामपांसुराशिभिरावृताम् ॥ १८ ॥ विविक्तमनसांबुद्धौकस्फुरंतिहताशयाः ॥ ग्राममार्गतृणालीवगिरेरुपरिवासिनाम् ॥ १९ ॥ स्थितायाअज्ञतांभोधौकमम्युदयोभवेत् ॥ अंधस्योदेतिप्राकाश्यंनखद्योतानुसेविनः ॥ २० ॥

अर्थ—मैं मन्दभागिनीने उस अपने विशाल शरीरको क्यों त्याग दिया अथवा जिसप्रकार अवश्य नाश होता है वैसीही अशुभ मति उत्पन्न होती है ॥ १७ ॥ कदाचित् दैवगतिसे मैं मार्गमें गिरजाऊं, और धूलिमें डूब जाऊं, तो धूलिके राशिसे ढकी हुई सूक्ष्म कीटके सदृश शरीरवाली मुझे कौन वहांसे निकाल सकता है, क्योंकि ऐसी लोककी कहावत है ॥ नापूजयद्गणेशानंसूचीसृष्टौसविश्वसृट् ॥ नापसूत्रांततःसूचींनष्टांविन्दतिमानवः ॥ ब्रह्माजीने सूचीकी रचना समयमें गणेशजीकी पूजा नहीं की इसीलिये सूत्ररहित नष्ट सूची कोई मनुष्य नहीं पाता ॥ १८ ॥ कदाचित् कहो कि योगी महात्मा अपनी सूक्ष्मदर्शितासे तुझे पा जायगे सोभी नहीं क्योंकि एकान्तसेवी महात्माओंकी बुद्धिमें दुष्ट जीव कब आसकते हैं, जैसे ग्राम वा मार्गके तृणपर्वतके ऊपर रहनेवालोंके चित्तमें नहीं आते ॥ १९ ॥ मैं जो अज्ञताके समुद्रमें डूबी हुईहुं, उसका अभ्युदय कब होगा क्योंकि खद्योतसेवी अन्धेको प्रकाशताका उदय कहां ॥ २० ॥

अतःकियंतंनोजानेकालमावलितापदम् ॥ मयापच्छ्रभ्रगर्तेषुलुठितव्यंहतेहया ॥ २१ ॥ कदास्यामंजनमहाशैलपुंचकरूपिणी ॥ द्यावापृथिव्योर्वैधुर्येस्तंभतामनुतिष्ठती ॥ २२ ॥ मेघमालासमभुजाचिरंविद्युत्पदेक्षणा ॥ नीहारजालवसनाप्रोच्चकेशमितांबरा ॥ २३ ॥ लंबोदराभ्रसंदर्शप्रनर्त्तितशिखंडिनी ॥ लंबलोलस्तनीश्यामादेहवातद्रवत्स्तनी ॥ २४ ॥

अर्थ—इसलिये मैं नहीं जानती कि कितने कालतक विपत्तिसे बंधी हुई आपत्तियोंके गर्तों (गढों) में मुझे लुढकना पडैगा ॥ २१ ॥ हाः वह समय कब आवैगा कि, आकाश तथा पृथिवीके नाश समयमें प्राणियोंके संहारसे स्तम्भ (खम्भे) के स्थानमें कार्य्य देती हुई अंजनके महापर्वतके शिखराकाररूप धारण करूंगी ॥ २२ ॥ और मेघमालाके सदृश भुजावाली विद्युत्के समान चंचल नेत्रधारिणी नीहारके समूहरूपी वस्त्रवाली बडे ऊंचे लम्बे केशोंसे आकाशको भी नापनेवाली लंबमें होजाऊंगा ॥ २३ ॥ मान अपने उदररूपी मेघके देखानेसे मयूरोंको नचानेवाली, लंबे तथा चंचल स्तनको धारण करनेवाली, श्यामवर्ण, और श्वासके पवनसे स्तनोंके कंपानेवाली मैं कब होऊंगी ॥ २४ ॥

हासभस्मच्छटाच्छन्नसूर्यमंडलरोधिनी ॥ कृतांतग्रसनेयुक्तकृत्यैकाकृतिधारिणी ॥ २५ ॥ कृशानूलूखलदृशासूर्यस्रग्दामहारिणी ॥ पर्वतात्पर्वतेशृंगेन्यस्यपादौविहारिणी ॥ २६ ॥ कदामेस्याद्गुरुश्वभ्रभासुरंतन्महोदरम् ॥ कदामेस्याच्छरन्मेघमेदुरानखरावली ॥ २७ ॥ कदामेस्यान्महारक्षोविद्रावणकरंस्मितम् ॥ स्वस्फिग्वाद्यैररण्यान्यांकदानृत्येयमुन्मदा ॥ २८ ॥

अर्थ—तथा अपने उच्च हाससे जले हुये धूलिपटलोंसे आच्छादित सूर्य्यमण्डलकोभी रोकनेमें समर्थ और कालके समान सब प्राणिके ग्रासरूप एक मुख्य कृत्यसहित भयंकर आकार धारण करनेवाली मैं कब होऊंगी ॥ २५ ॥

अग्निके समान दैदीप्यमान उलूखल (ओखरी) के सदृश गहिरे नेत्रवाली, सूर्य्यकी मालाकी धारिणी, और एक पर्वतसे दूसरे पर्वतपर पाद स्थापन करके चारोंओर विहार करनेवाली मैं कब होऊंगी ॥ २६ ॥ हाः मेरा वह बडे गढेके समान महान् प्रकाशशील उदर कब होगा, और मेरी वह शरत्कालके मेघके समान अति चिक्कणनखोंकी पंक्ति कब होगी ॥ २७ ॥ और मेरा वह बडे २ राक्षसोंके हृदयको विद्रावण करनेवाला मन्दस्मित (मुस्किरान) कब होगा, और नितम्बोंके बजानेसे महाअरण्यमें प्रसन्न होके मैं नृत्य कब करूंगी ॥ २८ ॥

वसासवमहाकुंभैर्मृतमांसास्थिसंचयैः ॥ कदाकरिष्येविरतंमेद्रुरोदरपूरणम् ॥ २९ ॥ कदापीतमहालोकरुधिराक्षीबतांगता ॥ भवेयंमुदितादृप्तामुदितानिद्रयातत: ॥३०॥ मयैवकुतपोवह्नौतद्दग्धंभासुरंवपुः॥ भस्मत्वंकनकेनेवसूचित्वमुररीकृतम् ॥ ३१ ॥ क्वकिलांजनशैलाभंवपुर्भरितदिक्तटम् ॥ क्वप्राचिकाखुरसमंसूचित्वंतृणपेलवम् ॥ ३२ ॥

अर्थ--चर्बीके मद्यसे भरे हुये बडे २ घडोंसे तथा मृतकोंके मांस और अस्थिके संचयोंसे निरन्तर अपने स्निग्ध उदरको पूर्ण कब करूंगी ॥ २९ ॥ बडे २ लोकोंके रुधिरपानसे मैं विक्षिप्त कब होऊंगी, और उस मदोन्मत्ततासे प्रसन्न तथा गर्वित होके निद्रायुक्त कब होजाऊंगी ॥ ३० ॥ मैंनेही उस दुःखदायी फल देनेवाले तपरूप अग्निमें अपने प्रकाशमान शरीरको भस्म करदिया जैसे सुवर्ण अपने स्वरूपको नष्ट करके भस्मरूप धारण करै ऐसी ही मैंने स्वर्णसमान अपने रूपको नष्ट करके लोहमय सूचीरूपको कहां वह दिशाओंके तटोंको पूर्ण करनेवाला अंजनके पर्वतके समान मेरा शरीर! और कहां तृणके तुल्य कोमल और मकरीके पादाग्रके समान सूक्ष्म यह सूचीरूप ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

त्यजत्यज्ञोमृदित्यज्ञःप्राप्यापिकनकांगदम् ॥ मयासूचित्वलाभेनसंत्यक्तंभासुरंवपुः ॥ ३३ ॥ हामहोदरविंध्याद्रिसनीहारगुहोपम ॥ अद्यनांतंकरोषित्वंकथंसिंहेनहस्तिनाम् ॥ ३४ ॥ हाभुजौभरनिर्भग्नशिखरैशशभृन्नखैः ॥ पुरोडाशधियाचंद्रंकथमद्यनबाधतः ॥ ३५ ॥ हावक्षःकाचवैधुर्यगिरींद्रतटसुंदर ॥ नाद्यसिंहादियूकंतद्धृतंरोमवनंतथा ॥ ३६ ॥

अर्थ—अज्ञानी जीव सुवर्णका अंगद बिजायठ पाकरभी यह मृत्तिकाहै ऐसा समझके इसप्रकार त्याग देताहै ऐसे मैने सूचीरूपके लोभसे अपने उस प्रकाशमान विशाल शरीरको त्यागदिया ॥ ३३ ॥ हा! हे विन्ध्याचलकी नीहारसहित गुहाके तुल्य विशाल उदर आज तुम सिंहके समान वनोंमें हस्तियोंका अन्त क्यों नहीं करते ॥ ३४ ॥ हा! अपने भारसे पर्वतोंके शिखरोंको तोडनेमें विशाल दोनों भुज! आज तुम पुरोडाश (यज्ञमें देवभोज्य अन्न) की बुद्धिसे चन्द्रमाको बाधा क्यों नहीं पहुंचाते ॥ ३५ ॥ हा! काचमणियोंके टूटनेपरभी सुमेरुके तटके समान मनोहर विशाल मेरे वक्षस्थल! आज तुम सिंहोंको भक्षण करनेके स्वभावसहित यूक (जूं) के समूहोंमें अपने रोमरूपी पवनमें क्यों नहीं धारण किया ॥ ३६ ॥

हानेत्रेकृष्णरजनीरजःशुष्केंधनेजने ॥ कस्मान्नमेभूषयतोहग्ज्वालामालयादिशः ॥ ३७ ॥ हास्कंधबंधोनष्टोसिनिपिष्टोसिमहीतले ॥ कालेनविनिपिष्टोसिनिघृष्टोसिशिलातले ॥ ३८ ॥ हामुखेंदोतपसिकिंनायत्वंममरश्मिभिः ॥ कल्पांतदावसंशांतचंद्रबिंबमनोहर ॥ ३९ ॥ हाहाहस्तौमहाकारौतावद्यक्वगतौमम ॥ संपन्नास्मिमहासूचिर्मक्षिकाखुरदोलिता ॥ ४० ॥ हाभगोग्रकरंजाढ्यसत्कंदश्वभ्रशोभन ॥ विंध्याद्रेरण्यविपुलनितंबामलबिंबक ॥ ४१ ॥ क्वकारांबरपूरकःकचनवंतुच्छात्मसूचीवपूरोदेरंध्रसमंक्वास्यकुहरंकेदंचसूचीमुखम् ॥ क्वग्रासोबहुमांसभारबहुलःक्वाण्विद्धनाभोजनंसूक्ष्मास्म्येतदहोमयैवरचितंस्वात्मक्षयेनाटकम् ॥ ४२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे कर्कट्युपाख्याने सूचिकापरिदेवनं नामैकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥

अर्थ—हा! कृष्णपक्षकी रात्रिके अन्धकाररूपी शुष्क इन्धनको जलानेवाले मेरे दोनों नेत्र! तुम अपने दर्शनरूपी ज्वालाकी मालाओंसे दिशाओंको क्यों नहीं भूषित करते ॥ ३७ ॥ हा! मेरे स्कन्धरूपी प्रियबन्धो मैंने तुमारा त्याग करदिया! तुम पृथिवीतलपर नष्ट होगये, तुम काल पाके पर्वतोंकी शिलामें घिसके चूर्ण होगये ॥ ३८ ॥ हा! कल्पान्तकी दावाग्निसे दग्ध चन्द्रमाके बिम्बके समान मनोहर मेरे मुखरूप चन्द्र! आज तुम मेरे शरीरके किरणोंसे देदीप्यमान क्यों नहीं होते ॥ ३९ ॥ हा! हा हे मेरे महान् आकारवाले वे दोनों हस्त आज तुम कहां चलेगये हा!

मैं तो मक्षिकाके खुरसेभी संचालित महासूचीरूप होगई ॥ ४० ॥ हा! उग्र करंज (गंजे) से पूर्ण विद्यमान कन्दके सदृश उत्तम गर्तसे शोभायमान हे मेरे भग, विन्ध्याचलके श्रेष्ठ तटके समान तथा निर्मल बिम्बफलके सदृश हे मेरे नितम्ब! अब तुम कहां गये ॥ ४१ ॥ हा! कहां वह आकाशको पूर्ण करनेवाला मेरे शरीरका आकार! और कहां यह नूतन तुच्छ सूचीका निज शरीर! कहां तो वह आकाशके अन्तरालको पूर्ण करनेवाला मुखका महान् गर्त! और कहां यह सूचीका मुख! हा! कहां तो अनेक प्रकारके भारोंके विपुल आहार! और कहां यह जलबिन्दुसे भोजन! अहो मैं कैसे सूक्ष्म होगई हा! यह मैंनेहीं अपने आत्माके नाशके लिये नाठकर चाहै ॥ ४२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे कर्कट्युपाख्याने सूचिकापरिदेवनं नामैकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥

द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥

इस ७२ के सर्गमें उस कर्कटीराक्षसीका हिमालयपर पुनः उग्रतपका वर्णन तथा उससे विस्मयको प्राप्त इंद्रको उसके निश्चयकाभी वर्णन कियागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ सूचीसासंभवद्वाणीचिंतयित्वेत्यकंपनम् ॥ पुनस्तद्देहलाभायभवाम्याशुतपस्विनी ॥ १ ॥ इतिसंचिंत्यचित्तस्थंसंहृत्यजनमारणम् ॥ तदेवहिमवच्छृंगंजगामतपसेस्थितम् ॥ २ ॥ अपश्यदेवसूचित्वंसातन्मानसमात्मनि ॥ प्राणवातात्मिकाप्राणैःप्रविश्यहतमानसम् ॥ ३ ॥ अथात्मन्येवसूचित्वंपश्यत्येवमनोमयम् ॥ प्राणवातशरीरासौजगामहिमवच्छिरः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी! इसके पश्चात् उस कर्कटीसूचीने एकाग्रचित्त और मौन होकर यह चिंतन किया कि पुनः उस अपने पूर्वदेहके लाभके अर्थ मैं तपस्विनी होऊं ॥ १ ॥ ऐसा विचार करके उसने हृदयमें स्थित मनुष्यके मारणके व्यापारका निरोध करके उसी पूर्वकी स्थितिके हिमाचलके शिखरपर तपके लिये गई ॥ २ ॥ प्रथम उसने अपने आत्मामें सूचीरूपको देखा और पुनः प्राणवायुरूप जीवसूचीने अपने उपाधिभूत प्राणोंसे मनसे कल्पित लोहमय सूचीमें प्रवेश करके ॥ ३ ॥ अनन्तर जीवसूची आत्मामें उस लोहमय सूचीरूपको देखती हुई क्रिया प्रधान प्राणवायुरूप शरीर होकर हिमवानके शिखरपर गई ॥ ४ ॥

दृढदावानलेतत्रसर्वभूतंविवर्जिते ॥ महामहाशिलाभाभारूक्षेपांसुविधूसरे ॥ ५ ॥ तस्थावभ्युदिते वासौनिस्तृणेविपुलेस्थले ॥ मरावकस्मात्संजातशुष्कातृणशिखायथा ॥ ६ ॥ सुसूक्ष्मस्यैकपादस्य सार्द्धेनैवाश्रितोर्वरा ॥ स्वसंविदेकपादात्मतपःकर्तुंप्रचक्रमे ॥ ७ ॥ सूक्ष्मपादतलेनैवावसुधरेणुसंकटी ॥ निवार्यविपदींकृत्स्नायत्नेनोर्ध्वमुखीस्थिता ॥ ८ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् दृढ दावानलसे संयुक्त सब प्राणियोंसे वर्जित बडीभारी इन्द्रनील शिलाके समान कान्तिवाले घर्म सहित वायुसे रुक्ष तथा धूलियोंसे धूसर (मलिन) वर्ण उस हिमालयके शिखरपर ॥ ५ ॥ ऐसे स्थित हुई जैसे तृण रहित विशाल मरुस्थलमें शूखी हुई तृणकी शिखा अकस्मात् पुनः उसी स्थानमें अंकुरित हो ॥ ६ ॥ उस सूचीके सूक्ष्म पादके अर्द्धभागके लेशसे पृथिवीका आश्रय लेके अपने आत्मासे कल्पित (क्योंकि दोपाद मनुष्यादिमेंही होते हैं) दो भागके मध्यमें आधे अग्रभागको छोडके आधे अग्रभागके लेशसे स्थित होके उसने तप करना आरम्भ किया ॥ ७ ॥ सूक्ष्म पादके तलसे वसुधा (पृथिवी) के रेणुकोभी संकट पहुंचाती हुई अर्थात् कठिणतासे स्पर्श करती हुई सन्मुखके जो दो भागहैं उनमें तथा जिस अंशसे स्थित है उस भागमें फैली हुई दृष्टिको सम्पूर्ण विषयोंसे यत्नसे रोकर ऊपर मुख करके खडी हुई ॥ ८ ॥

कृष्णत्वाद्धिंसतातैक्ष्ण्यव्याप्यास्यपवनाशनैः ॥ यत्नात्पदंनिबध्नंती रेण्वणूपलसंकटे ॥९॥ अरण्येक्षुभिता संदूपरालोकार्थमुत्थिताम् ॥ पुच्छाकोटिस्थितांवातालोलामनुचकारसा ॥ १० ॥ मुखरंध्रविनिष्क्रांता तस्याभास्करदीधितिः ॥ सखीबभूवसूच्याभापश्चाद्गैकरक्षिणी ॥ ११ ॥ क्षुद्रेपिस्वजनेभूतेप्येतिद्र त्सलतांजनः ॥ दीधित्यापिसखीवृत्तंसूच्यांशुचितयाभृतम् ॥ १२ ॥

अर्थ—कृष्णवर्ण लोहके कारणसे राक्षसी हिंसक स्वभावसे अग्रभागकी तीक्ष्णतासे तथा सर्वांगव्यापी मुखसे वायुपानके कारणसे वह सूची धुलिपरमाणु तथा पाषाणके संकटमेंभी यत्नसे अपने पदको स्थिरतासे बांधती हुई वहां

पर स्थित रही ॥ ९ ॥ वनमें क्षुभित तथा पथिकको दूरसे देखनेके लिये उत्थित (उठी हुई) तथा अग्रभागतक तृणादिके अग्रभागमें स्थित और पथिकों (राहिओं) के व्यामोहके लिये वायुसेभी अकम्पायमान दृष्टिको उसने तृणजलौकाका अनुकरण किया ॥१०॥ उसके मुखके छिद्रसे निकली हुई सूर्य्यके किरणके सदृश सूचीके समान आकार धारण किये हुये तपस्याभी उसके पश्चाद्भागकी रक्षा करनेवाली सखीरूप होगई ॥ ११ ॥ क्षुद्रभी जब अपना मित्र होजाताहै तो प्राणीजन उसके ऊपर दया करते हैं देखो तपस्यानेभी सूचीके प्राणकी चिन्तासे उसके सखीका कार्य किया ॥१२॥

बभूवतस्याःस्वच्छायाद्वितीयातापसीसखी ॥ एवंसूचीवमलिनातयापश्चात्कृतेवसा ॥ १३ ॥ सूच्यातयासुनिर्गत्यसुपाताक्ष्यास्मकूणितैः ॥ पश्चात्सख्याभयासाधुरन्योन्याचारकेवलम् ॥ १४ ॥ सूच्यभिप्रेक्षितेयातामातिद्रुमलतादयः ॥ महातपस्विनींसूचींदृष्ट्वानोत्कंठयंतिके ॥ १५ ॥ स्थिरबद्धपदामेनांस्वमनोवृत्तिसुस्थिताम् ॥ अनिलंभोजयांचक्रुर्मुखनिर्गतभांकृतैः ॥ १६ ॥

अर्थ—उस सूचीकी छाया उसकी दूसरी सखी प्राप्त हुई इस सूचीके समान मलिन छायाको उसने अपने पश्चाद्भागकी रक्षिका मानों रचलिया ॥ १३ ॥ वह पीछेकी रक्षिका छाया सूची और सूर्य्यकी किरणरूपी सूची दोनोंने द्वारभूत लोहसूचीके छिद्रसे अच्छीतरह निकलके किरणके पातरूप नेत्रयुक्त छाया सूचीके साथ गूंथनेसे परस्पर एक दूसरेको दृढतासे स्थिरताकेलिये बलदानमें सहायता किया, यह उन्होंने उत्तम आचरण किया॥१४॥उस सूचीको देखके हिमालयके बनके वृक्ष तथा पक्षी आदिकोभी सद्बुद्धि हुई क्योंकि महा तपस्विभी सूचीको देखके कौन ऐसे हैं जिनको सत्कार्य्य करनेकी उत्कण्ठा न हो॥१५॥तपस्या करनेमें दृढ अपनी मनोवृत्तिके समान स्थिर पदको बद्ध किये उस तपस्विनी सूचीको देखके वृक्ष लता आदिने अपने पुष्पफलादिसे वा सीतवायु मुखके भांकृत शब्दोंसे भोजन कराया॥१६॥

प्रसूतानिभविष्याणिगीर्वाणान्यानिवाचिरम् ॥ कौसुमानिरजांस्यस्याइत्यास्यंपर्यपूरयन् ॥ १७ ॥ ततोमहेंद्रप्रहितंवातनुन्नामिपंरजः ॥ तयात्वभ्रत्वव्याजेननिगीर्णंमुखेविशत् ॥ १८ ॥ ननिगीर्णवतीतानिरजांसिदृढनिश्चयात् ॥ अंतःसारतयाकार्यंलघवोप्याप्नुवंतिहि ॥ १९ ॥ नपिबत्यास्यसंस्थानितथापुष्परजांस्यपि ॥ विस्मयंपवनःप्रापसुमेरून्मूलनाधिकम् ॥ २० ॥

अर्थ—जो प्रथम उत्पन्न हुयेथे जो होनेवाले थे जो देवताओंके योग्यथे तथा जो देवताओंके योग्य न थे ऐसे पुष्पोंके रज (धूलि) इस तपस्विनी सूचीको देने चाहिये इस कारणसे वृक्ष लता आदिकोने उसके मुखको पूर्ण किया ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर महेन्द्रसे भेजा हुआ विघ्नरूप मांसका रज वायुसे प्रेरित छिद्ररूपसे स्थित उसके मुखमें प्रवेश किया परन्तु उसने उसे नहीं निगला, ॥ १८ ॥ दृढनिश्चयसे इसने उन मांसके कणोंको नहीं निगला क्योंकि आत्मबल होनेसे तुच्छ जीवभी तपके विघ्नोंके निवारणरूप कार्य्यको प्राप्त करतेहैं ॥ १९ ॥ उसने मुखमें स्थित पुष्पोंके रजोंकोभी अब नहीं पीना स्वीकार किया इस कार्य्यसे पवनको महा मेरुके उखाडनेसेभी अधिक विस्मय प्राप्त हुआ ॥ २० ॥

आशिरःपिहितापंकैःपूरितापिमहाजलैः ॥ विधूतापिवृहद्वातैर्दग्धापिवनवह्निभिः ॥ २१ ॥ भिन्नापिकरकापातैर्भ्रामितापितडिद्भ्रमैः ॥ उद्वेजितापिजलदैःक्षोभिताप्यतिगर्जितैः ॥ २२ ॥ अपिवर्षसहस्रैःसाचित्तस्थदृढनिश्चया ॥ पादाग्रंतुकुसुप्तेवनाकंपततपस्विनी ॥ २३ ॥ निवृत्तायाबहिस्पंदादेशकालेबहौगते ॥ विचारयंत्यास्तस्याःस्वमात्मासत्यंसुचेतनम् ॥ २४ ॥ ज्ञानालोकःसमुदभूत्सापरावरदर्शिनी ॥ बभूवनिर्मलासूचिर्विसूचीपावनंपरम् ॥ २५ ॥

अर्थ—वह कर्कटी शिरतक कीचडोसे ढांक दीगई, महान् अगाध जलोंमें डुबाईभीगई, महान् भयंकर पवनोंसे कंपाईभी गई, और वनके अग्नियोंसे जलाईभी गई ॥ २१ ॥ पाषाणोंके सम्पातोंसे विदीर्णभी कीगई, विद्युत् (विजुली) के भ्रमसे भ्रान्तभी कीगई मेघोंसे डराईभी गई, और अति गर्जनाओंसे क्षोभितभी कीगई ॥ २२ ॥ सहस्रों वर्ष इन बातोंके करनेसे दृढनिश्चयवाली, विष आदिकी मूर्च्छासे सो हुईके समान वह तपस्विनी सूची अणुमात्रभी अपने तपस्याके स्थानसे न डिगी ॥ २३ ॥ हे रामजी ! बाहरकी चेष्टासे निवृत्त होनेसे तथा अपने सत्यचेतन आत्माका विचार करतेहुये बहुत देशकाल बीतनेसे उसी सूचीका आत्माही ज्ञानप्रकाशरूप अर्थात् ज्ञान आत्माके साक्षात्कार वृत्तिसे प्रदीप्त बोधरूप होगया, जिससे कि वह बराबर (भूतभविष्यत् अथवा पूर्वापर) को देखनेवाली होगई वह अब निर्मल सूची विसूची परम पावन होगई ॥ २४ ॥ २५ ॥

जाताविदितवेद्यासास्वयमेवतयाधिया ॥ तपसादुष्कृतेक्षीणेसूचीस्वसुखसूचिनी ॥ २६ ॥ इतिवर्षसह स्राणिसाकरोद्दारुणंतपः ॥ सप्तसप्तमहालोकासंतापकरमुन्मुखी॥२७॥ तस्याःकल्पाग्निभीमेनतपसाहि महागिरिः ॥ बभूवतेनज्वलितोजज्वालेवततोजगत् ॥ २८ ॥ कस्येदंतपसाक्रांतंजगदित्यथवासवः ॥ नारदंपरिपप्रच्छसतस्याःकथयच्चतत् ॥ २९ ॥ सप्तवर्षसहस्राणिसूचीदीर्घतपस्विनी ॥ महाविज्ञानदेहा सैतेनेदंज्वलितंजगत् ॥ ३० ॥ नागाःश्वसंतिविचलंतिनगाःपतंतिवैमानिकाजलधिवारिधराःप्रयांति ॥ शोषंदिशोर्कसहितामलिनीभवंतिसूच्याःसुरेंद्रतपसाक्षयमत्ययेव ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे कर्कट्युपाख्याने सूचीतपःप्रभावो नाम द्विसप्ततितमःसर्गः ॥ ७२ ॥

अर्थ—तपस्यासे सम्पूर्ण पापके नष्ट होजानेसे वह सूची अपने सुखको सूचत करनेवाली उस बुद्धिसे जानने योग्य पदार्थको जान गई ॥ २६ ॥ हे रामजी ! इसप्रकार ऊपरकी ओर मुख कियेहुये सात सहस्र (हजार) वर्ष पर्य्यन्त सातो भूरादि महालोकोंको सन्ताप करके उग्रतप उसने किया ॥ २७ ॥ प्रलयके अग्निके समान भयंकर उसके उग्रतपसे वह महागिरि हिमालयभी प्रज्वलित होगया, और उससे सम्पूर्ण जगत् जलनेके समान होगया ॥२८॥ हे रामजी ! इन्द्रने नारदजीसे यह पूंछा कि हे भगवन् ! किसके तपसे यह सम्पूर्ण जगत् आक्रान्त (ग्रस्त) है तब नारदजीने उनसे यह कहा ॥ २९ ॥ हे इन्द्रजी ! दीर्घ तपस्विनी सूचीके सात सहस्रवर्ष तप करते बीतगये अब वह विज्ञान शरीर धारिणी होगई उसीसे यह सम्पूर्ण जगत् प्रदीप्त होगयाहै ॥३०॥ हे सुरेन्द्र ! उस सूचीकी उग्र तपस्यासे मयकी मायाके समान सब नाग (हस्ती वा पातालके शेष आदि नाग) श्वास ले रहेहैं सब पर्वत विचलित होगयेहैं देवतालोग अपने विमानोंसे गिरतेहैं समुद्र तथा मेघभी शुष्कताको प्राप्त होरहेहैं और सूर्य्यके सहित सम्पूर्ण दिशायेंभी मलिन होरही हैं ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे कर्कट्युपाख्याने सूचीतपःप्रभावो नाम द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥

जीवसूचीके भोगका विस्तार और इन्द्रकी आज्ञासे वायुका उसकी तपका अन्वेषण (खोजना) इस ७३ के सर्गमें विस्तारसे वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ कर्कटीकटुवृत्तांतंसर्वमाकर्ण्यवासवः ॥ नारदंपरिपप्रच्छपुनर्जातकुतूहलः ॥ १॥ ॥ शक्रउवाच ॥ सूचीवृत्तिपिशाचत्वंतपसोपार्ज्यतत्तया ॥ कर्कट्याहिममर्कट्याके भुक्ताविभवासुने ॥२॥ ॥ श्रीनारदउवाच ॥ जीवसूच्याःपिशाचत्वंगतायाःशक्रपेलवम् ॥ आसीत्कार्ष्णायसीसूचीतस्याःस मवलंबनम् ॥ ३ ॥ तत्समालंबनंत्यक्त्वाव्योमवातरथस्थया ॥ प्राणमारुतमार्गेणतयादेहप्रविष्टया॥४॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! कर्कटीके तपका अप्रिय सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनके कुतूहल उत्पन्न होनेसे इन्द्रने पुनः नारदऋषिसे पूंछा कि— ॥ १ ॥ हे नारदजी ! पिशाचिताके तुल्य अदृश्य जीव सूचीभावको तपसे प्राप्त होके हिमके सदृश जडतायुक्त बुद्धिवाली कर्कटी (मकरी) के समान तुच्छ भोगमें चपल कर्कटीने कौन २ से विभव संसारमें भोग किया ॥ २ ॥ श्रीनारदजी बोले-हे इन्द्र ! चंचल पिशाचित्व स्वभावको प्राप्त जीवसूचीका आश्रय अर्थात् अवलम्बन कृष्णवर्ण संयुक्त लोहमय सूचीथी ॥ ३ ॥ कभी २ उस लोहमय सूचीका आलम्बन त्यागक आकाशमें वायुरूपी रथपर आरूढ होके वह जीवसूची प्राणवायुके मार्गसे प्राणियोंके शरीरोंमें प्रवेश करके ॥ ४ ॥

सर्वेषामांत्रतंत्रीणांस्नायुमेदोवसासृजाम् ॥ रंध्रेणपक्षिणेवांतर्निलीनंमलिनात्मनाम् ॥ ५ ॥ यस्यांनाड्यां नभोवायुर्मातितत्तामुपेतया ॥ तत्रशूलंकृतंस्थूलन्यग्रोधाग्रइवोत्कटम् ॥ ६ ॥ तच्छरीरेंद्रियैस्तानितथा न्यानिवहूनिच ॥ भुक्तानिनरमांसानिभोजनान्युचितानिच ॥ ७ ॥ सुप्तंविवलितानल्पमालयामुग्धबा लया ॥ कांतवक्षःस्थलस्यूतस्रष्टपत्रकपोलया ॥ ८ ॥

अर्थ—सम्पूर्ण पापी मलिनात्मा प्राणियोंके आन्तियोंके तांतोंके तथा नाडी, मेदा, चर्बी, और रुधिरोंके छिद्रमार्गसे प्रवेश करके प्राणियोंके शरीरोंमें ऐसे छिद्रके स्थित रहतीथी जैसे वृक्षके कोटरोंमें पक्षिणी ॥ ५ ॥ जिस नाडीमें

गोंके आश्रयभूत वायु प्रवेश करताहै उसका प्रवाहरूप होकर वहांपर शूलकी पीडा इसप्रकार करतीहुई ऐसे स्थित रहती है जैसे दक्षिणामूर्तिके वटकी नाडीके आगे शैवमतका स्थूल लोहमय उग्रशूल गडाहै ॥ ६ ॥ उन प्राणीके शरीर तथा इन्द्रियोंके द्वारा उनके योग्य भोजनोंके तथा अन्य अनेक प्रकारके मनुष्योंके मांसोंको उस जीवसूचीने भोग किये ॥ ७ ॥ प्रियके संयोगसे मर्दित अनेक बडी २ मालाधारिणी मुग्धबाला भावको प्राप्त होके तथा प्रियके वक्षस्थलमें संक्रामित, पत्रयुक्त कपोलवाली उस जीवसूचीने कान्तके साथ शयनभी किया अर्थात् मुग्धबालाके सुखकोभी उसने अनुभव किया ॥ ८ ॥

विहृतं वीतशोकासु विहंग्यावनवीथिषु ॥ कल्पद्रुमौघपुष्पाग्रद्विगुणां भोजपंक्तिषु ॥ ९ ॥ पीतआमोदमंदारमकरंदकणासवः ॥ वनेष्वमरशैलानामलिन्यामलिलीलया ॥ १० ॥ चर्वितानिशवांगानिगृध्र्याऽऽगर्तानिवृद्धया ॥ खड्गपृष्ठ्येवसंग्रामेवीरांगानिजवेद्धया ॥ ११ ॥ सर्वांगकोशनाडीषुदिक्षिवचानिललेखया ॥ उड्डीनमवडीनंचकाचौघव्योमवीथिषु ॥ १२ ॥

अर्थ—और पक्षिणीके शरीरमें प्रवेश करके शोक रहित कल्पवृक्षोंके पुष्पोंसे भी श्रेष्ठ द्विगुण सुगन्धि देनेवाले कमलोंके वनकी पंक्तियोंमेंभी उसने विहारपूर्वक गमन कियाहै ॥ ९ ॥ और भ्रमरीके शरीरमें प्रवेश करके भ्रमरके साथ लीला करती हुई देवताओंके पर्वतोंके कमल आदि सहित वनोंमें मन्दारके पुष्प रजके कणोंके मद्यको उसने पान किया है ॥ १० ॥ तथा गृध्री (गिधनी) के शरीरमें प्रविष्ट होकर वृद्ध गीधनीके स्वरूपसे मांसको ऐसे चर्वण किया जैसे संग्राममें वेगसे प्रदीप्त तरवारकी धारा वीरोंके अंगोंको ॥ ११ ॥ सम्पूर्ण अंगोंके कोशकी नाडियोंमें तथा काचके समूहके समान नीलवर्ण आकाश मार्गोंमें वायुकी रेखाके समान नीचे ऊपर उडा करतीथी ॥ १२ ॥

विराडात्महृदिप्राणवातस्पंदाःस्फुरंतितु ॥ यथातथाप्रस्फुरितंप्रतिदेहगृहंतया ॥ १३ ॥ सर्वप्राणिशरीरेषुभांतिचिच्छक्तयस्तथा ॥ दीपप्रभाभासितयागृहिण्येवस्वसद्मसु ॥ १४ ॥ विहृतंरुधिरेष्वंतर्द्रवशक्त्येववारिषु ॥ अब्धिष्वावर्त्तवृत्त्येवजठरेषुविवल्गितम् ॥ १५ ॥ सुप्तंमेदःसुशुभ्रेषुशेषांगेष्विवशौरिणा ॥ स्वादितश्चांगगंधांतःपीतशक्त्यामृतंयथा ॥ १६ ॥

अर्थ—विराट्रूप समष्टि (सम्पूर्ण) प्राणियोंके हृदयमें जैसे प्राणवायु स्वच्छन्द स्फुरते हैं ऐसेही यह सूची भी प्रत्येक प्राणीके शरीररूपी गृहमें स्वच्छन्द रमण किया करतीथी ॥ १३ ॥ सम्पूर्ण प्राणियोंके शरीरमें जैसे प्राणवायु चेष्टा करते हुये स्फुरते हैं ऐसेही चेतन शक्तियांभी अन्तःकरणकी उपाधिके भेदसे भिन्न स्फुरती हैं अर्थात् उन्हीं चित् शक्तियोंकी प्रभासे प्रकाशित होके वह सर्वत्र ऐसे व्यवहार करतीथी जैसे दीपकी प्रभासे प्रकाशित गृहिणी अपने गृहोंमें ॥ १४ ॥ जैसे जलोंमें द्रवता शक्ति, समुद्रोंमें आवर्त युक्त तरंग शक्ति, और उदरों (कोखियों) में अनेक प्रकारकी गति विहार करती हैं इसी प्रकार उस उस जीवसूचीने अनेक प्रकारके रुधिरोंमें विहार किया ॥ १५ ॥ स्वच्छ कोमल मेदा (चर्बियों) पर उसने ऐसे शयन किया जैसे कृष्णभगवान् शेषनागके अंगोंपर, शरीरोंके अन्तर्गत रसका आस्वाद उसने ऐसे लिया जैसे पानकी शक्तिसे अमृतका ॥ १६ ॥

तरुगुल्मौषधादीनांहृद्येजान्यनिलश्रिया ॥ परिभुक्तान्यशुक्लानिहिंसयोधीकृतानिच ॥ १७ ॥ अथोजीवमयीसूचीस्यामितिस्थावरेणसा ॥ संपन्नातापसीसूचीचेतनापावनीसिता ॥ १८ ॥ अदृश्ययातया चेहमारुतोग्रतुरंगया ॥ अयःसूच्यानिलतयावहंत्यादिक्ष्वरुद्धया ॥ १९ ॥ पीतंभुक्तंविलसितंदत्तंदापितमाहृतम् ॥ नर्त्तितंगीतमुषितमनंतैःप्राणिदेहकैः ॥ २० ॥

अर्थ—वृक्ष लता आदिके आरोग्यदायक रसोंको वायुरूप होके उसने पान किया, और हिंसासे एकत्र किये हुये अशुद्ध रसोंकाभी भोग उसने किया ॥ १७ ॥ इसके पश्चात् मैं जीवमयसूची होजाऊं इस प्रकार अटल तपस्याके प्रभावसे वह तापसी सूची अब परम पावन पापरहित होगई ॥ १८ ॥ अदृश्यरूप धारण करके वायुरूप उग्र तुरंगपर आरूढ लोहकी सूचीके आश्रयसे सब दिशाओंमें विना रोकावटके वायुके वेगसे चलती हुई उस जीवसूचीने ॥ १९ ॥ अनन्त प्राणियोंके देहद्वारा सब कुछ पान किया, भोगा, अनेक प्रकारके विलास किये, बहुत पदार्थोंको दिया, दिलाया, हरण किया प्रसन्नतासे नृत्य तथा गान किया, और दूसरोंके पदार्थको शोषणभी किया ॥ २० ॥

अदृश्ययाशरीरिण्यामनःपवनदेहया ॥ कृतमाकाशरूपिण्याानतदस्तिनयत्तया ॥ २१ ॥ मत्तयाशक्त्या स्वादरसाचलितमेतया ॥ कालमालानमाश्रित्यकरिण्येवविवल्गितम् ॥ २२ ॥ कल्लोलबहुलाधूतदेहदृष्टनदीष्वलम् ॥ वेगैर्वैधुर्यकारिण्यामत्तयामकरायितम् ॥ २३ ॥ अशक्तयानिगिरितुंमेदोमांसंतथाहृदि ॥ नूनंरुदितमर्थाढ्यवृद्धातुरधियायथा ॥ २४ ॥

अर्थ—अदृश्य तथा आकाशमय शरीर धारण किये हुये समष्टि तथा व्यष्टिके मन और वायुरूप देह धारण करके सम्पूर्ण जगत्में ऐसी कोईभी वस्तु नहीं है जिसको इस जीवसूचीने न किया है ॥ २१ ॥ यद्यपि वह समर्थ थी तथापि कुछ प्राणियोंके रक्तके आस्वादसे मत्तहोके प्राणियोंकी आयु और मर्य्यादारूप कालके बंन्धनस्तम्भका आश्रय लेके हस्तिनीके समान देशमें भ्रमण करती रही ॥२२॥ प्राणियोंके देहोंको नाश करनेवाली मत्तरूप इस सूचीरूप हस्तिनीनें मकरके समान आचरण करके प्राणियोंके देहरूप प्रत्यक्ष नदियोंको इसने अपने कल्लोलसे कंपा दिये ॥२३॥ अब अधिकताके कारण मेदा और मांसको निगलनेमें अशक्त हुई, तब जैसे धनाढ्य प्राणी वृद्धता वा रोगके कारणसे विषयभोग तथा भोजन आदिमें असमर्थ होके रोदन करते हैं ऐसेही इसनेभी रोदनविलाप किया है ॥ २४ ॥

अजोष्ट्रमृगहस्त्यश्वसिंहव्याघ्रादिनर्तितम् ॥ नर्त्तक्येवचिरंरंगेवलयांगदमंगके ॥ २५ ॥ बहिरंतश्चवायूनामेकत्वमनुजातया ॥ गंधलेखिकयेवांतःस्थितंदुर्बलयातया ॥ २६ ॥ मंत्रौषधितपोदानदेवपूजादिभिर्हता ॥ बहिर्गिरिनदीतुंगतरंगवदुपद्रुता ॥ २७ ॥ दीपप्रभेवाविज्ञातगतिर्गत्याशुलायते ॥ अयःसूच्यांमातरीवतत्रनिवृत्तिमेतिसा ॥ २८ ॥

अर्थ—हे इन्द्र ! जैसे नर्तकी अपने अंगके वलय (कडे) आदिको नचाती है ऐसेही इसनेभी अच्छी तरह पीडासे पीडित करके ऊंट मृग हांथी घोडे तथा सिंह आदिको रंगभूमिमें नचाया है ॥ २५ ॥ बाहरके वायु तथा अन्तर्गत प्राण पवनोंके साथ एकताको प्राप्त होके वायुकी गतिके परवश यह गन्धकी लेखाके समान स्थित है ॥ २६ ॥ मन्त्र, औषधि, तप, दान, तथा देवपूजादिसे मारी हुई यह पर्वतपर नदीके ऊंचे तरंगके समान खदेडी जाती थी॥२७॥ दीपकी प्रभाके समान अन्तर्द्धान शक्तिसे अविज्ञात गति यह शीघ्र आकर लोहकी सूचीमें लीन होजाती है, और वहांपर यह ऐसा विश्रामका सुख पाती है जैसे माताकी गोदमें ॥ २८ ॥

स्ववासनानुसारेणसर्वआस्पदमीहते ॥ सूचीत्वमेवराक्षस्यासूचित्वेनास्पदीकृतम् ॥ २९ ॥ सर्वाविहृत्यदिग्दिशःस्वमेवास्पदमापदि ॥ जीवसूचीलोहसूचीमिवायातिजडोजनः ॥ ३० ॥ एवंप्रयतमानासा विहरंतीदिशोदश ॥ मानसींतृप्तिमायातानशारीरींकदाचन ॥ ३१ ॥ सतिधर्मिणिधर्माहिसंभवंतीह नासति ॥ शरीरंविद्यतेयस्यतस्यैतात्किलतृप्यति ॥ ३२ ॥

अर्थ—सब कोई अपनी वासनाके अनुसार आश्रयके लिये चेष्टा करता है, राक्षसीका सूचीके समान तीक्ष्ण स्वभाव होता है इसीलिये सूचीकोही अपना आश्रय बनाया ॥ २९ ॥ सब जडप्राणीभी सम्पूर्ण दिशाओंमें भ्रमण करके आपत्तिमें अपनेही स्थानपर ऐसे आता है जैसे जीवसूची लोहसूचीका आश्रय लिया ॥ ३० ॥ इसप्रकार प्रयत्न करती हुई और दशोंदिशाओंमें विहार करती हुई यह सूची मानसीतृप्तिको तो प्राप्त हुई परन्तु शारीरिक तृप्ति इसकी कभी नहीं हुई ॥ ३१ ॥ क्योंकि धर्मीप्राणीके होनेपर धर्मोंका होना सम्भव है और धर्मीके नहीं होनेपर नहीं, शरीर जिसके है तो उसका वह निश्चय तृप्त होगा ॥ ३२ ॥

अथतृप्तस्यदेहस्यस्मरणात्प्राक्तनस्यसा ॥ बभूवदुःखितस्वांतापूर्णोदरसुखार्थिनी ॥ ३३ ॥ ततःप्राक्तनदेहार्थंकरिष्येविपुलंतपः ॥ इतिसंचिंत्यतपसेदेशंनिर्णीयसात्मना ॥ ३४ ॥ विवेशाकाशगृध्रस्यहृद्यंतरुणस्यसा ॥ प्राणमारुतमार्गेणखगीवबिलेशया ॥ ३५ ॥ गृध्रःस्वामयसूचित्वंकश्चिदेतत्समाश्रितः ॥ नितांतप्रेरितःसूच्याकर्तुंमनउपाददे ॥ ३६ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर अपने पूर्व तृप्त तथा विशाल शरीरको स्मरण करके पूर्ण तृप्त उदरसे उत्पन्न सुखको चाहनेवाले अपने अन्तःकरणमें अति दुःखित हुई ॥ ३३ ॥ इसके अनन्तर अपने विशाल पूर्व देहकेलिये मैं उग्र तप करूंगी ऐसा चिन्तन करके और तपकेलिये अपने मनसे देशकाभी निर्णय करके ॥ ३४ ॥ आकाशगामी एक युवा गृध्रके हृदयमें प्राणवायुके मार्गसे ऐसे प्रवेश किया जैसे अपने घोसलेरूपी बिलमें शयनकी इच्छावाली पक्षी घोंसलेमें ॥ ३५ ॥ रोगरूप सूचीभावको प्राप्त कोई पूर्वोक्त गृध्र उस सूचीसे नितान्त प्रेरित होके सूचीके अभिलषित कार्य्य करनेको आरम्भ किया ॥ ३६ ॥

सूचीमादायगृध्रोसौययौतांचिंतितंगिरिम् ॥ अंतःसूचिपिशाच्यंतेनुन्नोब्दइववायुना ॥ ३७ ॥ महारण्येस्थापयामासतामसौ ॥ सर्वसंकल्परहितेपदेयोगीवचेतनाम् ॥ ३८ ॥ एकेनैवाप्रांतेनसुस्थिता ॥ संप्रतिष्ठापितेवाद्रिमूर्ध्निगृध्रेणदेवता ॥३९॥ रजःकणगृहस्थाणुशिरस्पादेनातिष्ठदग्नीवंशिखीवगिरिमूर्द्धनि ॥ ४० ॥

अर्थ—अपने अन्तर्गत सूचीकी पिशाचिता (पिशाचके समान उसके पीडा देनेके) निवृत्तिके समयमें वह गीध वायुसे प्रेरित मेघके समान उसी विचारित हिमालयपर्वतपर सूचीको लेके गया ॥ ३७ ॥ वहांपर जनशून्य उस महा जंगलमें उस सूचीको ऐसे स्थापन किया जैसे सर्व संकल्पसे वर्जित ब्रह्मपदमें योगी अपनी बुद्धिको ॥ ३८ ॥ उस गृध्र करके हिमालयपर्वतके शिखरपर स्थापित की हुई देवतारूप सूची होगई, और शीघ्रही अपने एक पादके अग्रभागसे खडी हुई ॥ ३९ ॥ धूलिके कणरूपी गृहके परमाणुके शिखरपर एक सूक्ष्म पादसे ऊपर गला उठाकर अग्निके सदृश पर्वतके शिखरपर खडी हुई ॥ ४० ॥

उत्थितांस्थापितांसूचींगृध्रेणजीवसूचिका ॥ दृष्ट्वाबहिर्विनिर्गंतुंखगदेहात्प्रचक्रमे ॥ ४१ ॥ खगदेहान्निर्जगामसूचीप्रोन्मुखचेतना ॥ पवनाद्गंधलेखेवघ्राणवातलवोन्मुखी ॥ ४२ ॥ जगामगृध्रःस्वंदेशंभारंत्यक्त्वेवभारिकः ॥ निवृत्तव्याधिरिवसबभूवांतरनाकुलः ॥ ४३ ॥ अतःसूचिस्तयाधारस्तपसेपरिकल्पिता ॥ दृढःसुसदृशोर्थानांविनियोगोहिराजते ॥ ४४ ॥

अर्थ—उस गृध्रसे स्थापित खडी की हुई लोहसूचीको देखके जीवसूचीनेभी पक्षीके शरीरसे बाहर निकलना आरम्भ किया ॥ ४१ ॥ बाहर निकलनेकी बुद्धि सहित जीवसूची गृध्रपक्षीके देहसे ऐसे निकली जैसे नासिका इन्द्रियकी ओर अभिमुख होकर पवनसे गन्धकी लेखा ॥ ४२ ॥ जैसे किसी पुरुषकी अन्तर्गत व्याधिके निवृत्त होजानेसे स्वस्थ होजाताहै ऐसेही वह गृध्र भारवाहीके सदृश उस सूचीको वहां छोडके शान्त होके अपने अभीष्ट देशको गया ॥ ४३ ॥ पदार्थोंमें अपनेही सदृश दृढ विनियोग (कार्योंका कर्तव्य) शोभाको प्राप्त होताहै इसलिये उस जीवसूचीने अपने तुल्य लोहसूचीके तपके लिये आधार निश्चित किया ॥ ४४ ॥

नह्यमूर्त्तस्यसिद्ध्यंतिविनाधारंकिलक्रियाः ॥ इत्याधारैकनिष्ठत्वमाश्रित्यासौतपःस्थिता ॥ ४५ ॥ जीवसूचीलोहसूचींपिशाचीशिंशपामिव ॥ सर्वतोवलयामासवात्येवामोदलेखिकाम् ॥ ४६ ॥ ततस्ततःप्रभृत्येषासूचीदीर्घतपस्विनी ॥ अरण्यान्यांस्थिताशक्रतत्रवर्षगणान्बहून् ॥ ४७ ॥ तस्यावरार्थयत्नंत्वंकुरुकर्तव्यकोविद ॥ चिरेणसंभृतंलोकमलंदग्धुंहितत्तपः ॥ ४८ ॥

अर्थ—जो मूर्तिरहित हैं उनकी विना आधार कोईभी क्रिया नहीं सिद्ध होती, इसलिये एक आधारको आश्रय करके यह तपस्याके लिये स्थित हुई ॥ ४५ ॥ जीवसूचीने लोहसूचीको इसप्रकार व्याप्त किया जैसे पिशाची शिंशपाके वृक्षोंको अथवा महान् वायु गन्धकी लेखाको ॥ ४६ ॥ हे इन्द्रजी ! उसीसमयसे लेके वह दीर्घ तपस्या करनेवाली सूची उस महाजंगलमें अनेक वर्षोंके समूहके समूह तपस्या करनेमें स्थितरही ॥ ४७ ॥ हे सम्पूर्ण कार्य्योंको करनेमें चतुर इन्द्रजी ! उसको वरदान देनेको कोई उपाय शीघ्र करो, क्योंकि चिरकालका संचित उसका तप संसारकोभी भस्म करनेमें समर्थ है ॥ ४८ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इतिनारदतःश्रुत्वाशक्रःसूचीनिरीक्षणे ॥ मारुतंप्रेषयामासदशदिग्मंडलान्यथ ॥ ४९ ॥ जगामाथमरुत्संविदात्मनातामवेक्षितुम् ॥ अथामुच्यनभोमार्गंविचचारत्वरान्वितः ॥ ५० ॥ सातस्यसंविक्षिप्रार्धेनैवसर्वगतासती ॥ परमार्चिरिवाविघ्नंसद्यसैवददर्शह ॥ ५१ ॥ भूमेःसप्तसमुद्रांतेनिबद्धांविपुलस्थलीम् ॥ लोकालोकाद्रिरसनांततोमणिमयोपमम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–इसप्रकार इन्द्रने नारदसे श्रवण करके सूचीको खोजनेके अर्थ दिशाओंके दशों मण्डलमें वायुको भेजा ॥ ४९ ॥ हे रामजी ! इसके अनन्तर वायुका दिव्यज्ञान उस सूचीको देखनेको गया, अर्थात् दिव्यदृष्टिसे जानेका मार्ग निश्चित किया, और आकाशमार्गको त्यागके शीघ्रतायुक्त पृथिवीपर विचरने लगा ॥ ५० ॥ वह पवनकी दिव्यसंवित् (ज्ञान) शीघ्रतायुक्त एक अंशसेही सम्पूर्ण जगत्को सर्वोत्कृष्ट ब्रह्मज्योतिके सदृश प्रतिबन्धरहित होके व्याप्त करलिया, और शीघ्रही वक्ष्यमाण स्थानोंको देखलिया ॥ ५१ ॥ सातों समुद्र और पृथिवीके अन्तमें लोकालोक पर्वतोंकी रसीके समान, जन शून्य, अति विशाल सुवर्णमयी भूमि देखी उसके पश्चात् माणिमयके तुल्य॥५२॥

स्वादूदकाब्धिवलयंसकोटरककुब्गणम् ॥ पुष्करद्वीपवलयंतदंतर्गिरिमंडले ॥ ५३ ॥ मदिरांभोधिवलयंतज्जलेचरसंस्थितम् ॥ गोमेदद्वीपकटकंतन्मध्यविषयव्रजम् ॥ ५४ ॥ इक्षूदकाब्धिपरिखंशांतांगिरिगणांतरम् ॥ क्रौंचद्वीपोर्वरापीठंशांतंगतगिरिक्रमम् ॥ ५५ ॥ क्षीराब्धिमुक्तावलयंसमध्यगतनायकम् ॥ श्वेताख्यद्वीपवलयसंभूतप्रविभागकम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—पर्वतकी सन्धियोंमें स्थित दिशाओंके गणसहित स्वादु जलके समुद्रके वलय (घेरे) सहित पुष्करद्वीपको देखा, और उसके अन्तर्गत पर्वतोंके मण्डलमें ॥ ५३ ॥ मंदिराके समुद्रसे आवेष्टित गोमेद नामक द्वीपका

वृत्त है, जो देश जलचर जीवोंका आश्रय है अर्थात् वहांके निवासी जल तथा स्थलमेंभी गमनका सामर्थ्य रखते हैं ॥ ५४ ॥ इसके अनन्तर इक्षुदके समुद्र (ऊखके रसके समुद्र) की परिखासे घिरा हुआ, मध्य २ में अनेक पर्वत समूहोंसे युक्त, पर्वतोंके क्रमसे व्याप्त, उपद्रव रहित तथा पृथिवीके पीटके समान क्रोञ्चद्वीप है ५५ ॥ इसके अनन्तर क्षीर समुद्ररूपी मुक्ताके वलय (कडे) व्याप्त, मध्यदेशमें त्रैलोक्यके स्वामी विष्णुभगवान् करके सहित, और अवान्तर खण्ड देशोंके भेद सहित श्वेताख्यद्वीप (श्वेतद्वीप) है ॥ ५६ ॥

ततोघृतोदवलयस्वांतस्थपुरमंदिरम् ॥ कुशद्वीपंवृतिव्याप्तंसमहाशैलकोटरम् ॥ ५७ ॥ दध्यंभोराशिरशनासांतांवरपुरोदरम् ॥ शाकद्वीपंवेगकारंसांतस्थविषयांतरम् ॥ ५८ ॥ क्षारांभोराशिपरिधिसांतस्थविषयांतरम् ॥ जंबूद्वीपंमहामेरुंकुलपर्वतसंकुलम् ॥ ५९ ॥ वातस्कंधेभ्यएवादौएतितानिलवेदना ॥ क्रमेणानेनपर्यंतेतेनैवप्रसृतौजसा ॥ ६० ॥

अर्थ—इसके अनन्तर अपने भीतर अनेक नगर तथा स्थानोंको धारण किये हुये, तथा बडे २ पर्वत और उनके सन्धिमें स्थित देशोंसहित घृतके समुद्रसे आवेष्टित (घिरा हुआ) कुशद्वीप है ॥ ५७ ॥ इसके अनन्तर दधि समुद्रसे आवेष्टित, अवधि सहित देशमें प्राणियोंको धारण किये शाकद्वीप है ॥ ५८ ॥ इसके अनन्तर क्षार समुद्र है परिखा जिसकी और इसी (क्षार समुद्र) से अवधि संयुक्त कुल पर्वतोंसे व्याप्त तथा महामेरुसंयुक्त जम्बू द्वीप है ॥ ५९ ॥ आरम्भमें वायुकी दिव्य संवित् वायु स्कन्धके द्वाराही उतरी, और पूर्वोक्त द्वीप समुद्रोंमें इसी क्रमसे उतरी ॥ ६० ॥

वायुरालोकयन्नद्वाजंबूद्वीपंनिरीक्ष्यच ॥ तत्रापहिमवच्छृंगंयत्रसूचीतपस्विनी ॥ ६१ ॥ शृंगमूर्ध्निमहत्युग्रेसारण्यानीमवापताम् ॥ द्वितीयाकाशवितताविवर्जितांप्राणिकर्मभिः ॥ ६२ ॥ असंजाततृणव्यूहांनिकटत्वाद्विवस्वतः ॥ रजोमयीमेवततांसंसाररचनामिव ॥ ६३ ॥ मृगतृष्णनदीसार्थपूरणीयाब्धितांगताम् ॥ शक्रकोदंडसंकाशमृगतृष्णासरिच्छताम् ॥ ६४ ॥

अर्थ—इस प्रकार वायु सम्पूर्ण द्वीप समुद्रोंको प्रत्यक्ष देखते हुये, जम्बू द्वीपको देखकर हिमवानके उस शृंगपर प्राप्त हुई जहांपर वह तपस्विनी सूचीथी ॥ ६१ ॥ उस महान् भयंकर शिखरके ऊपर, दूसरे आकाशके समान व्याप्त, प्राणियोंके संचारसे रहित, अरण्यानी (बडेभारी जंगलकी स्थली) को प्राप्त हुआ ॥६२॥ पुनः वह अरण्यानी (अति विशाल वनस्थली) सूर्य्यके निकट होनेके कारण तृण आदिके समूहोंसे रहित, संसारकी रचनाके तुल्य, पांसुमयी (पक्षमें रजोगुण विकारमयी) ॥ ६३ ॥ मृगतृष्णाकी नदीयोंके समूहोंसे पूर्ण समुद्र दशाको प्राप्त इन्द्रके धनुषके समान सैकडों मृगतृष्णाकी नदियोंसे व्याप्त ॥ ६४ ॥

अमितानंतपर्यंतांलोकपालेक्षितैरपि ॥ केवलंपवनस्पंदप्रवहद्धूलिकुंडलाम् ॥ ६५ ॥ सूर्यांशुकुंकुमालिप्तांलग्नचंद्रांशुचंदनाम् ॥ विलासिनीमिवव्योम्नोवातसूत्कारपायिनीम् ॥ ६६ ॥ सप्तद्वीपससमुद्रमुद्रणससुच्छन्नैकदेशाश्रयंभूपीठंपरितोविहृत्यपवनोदीर्घाध्वनाजर्जरः ॥ तांप्राप्योग्रगिरिस्थलीमलिवपुर्व्योमांगलग्नामिवव्याप्तानंतदिगंतपूरकबृहद्देहोविशश्रामसः ॥ ६७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे सूचीतपोवर्णनं नाम त्रिसप्ततितमःसर्गः ॥ ७३ ॥

अर्थ—इन्द्र आदि लोकपालोंनेभी जिसका अन्त नहीं देखा, ऐसी केवल वायुकी गतिसे वहती हुई धूलिरूप कुण्डलको धारण किये हुये ॥ ६५ ॥ सूर्य्यको किरणरूपी कुंकुमसे व्याप्त चन्द्रमाके किरणरूपी चन्दनसे लिप्त, प्रियके आलिंगन सूचक ध्वनिको श्रवण करानेवाली, आकाश विहारिणी नायिका सदृश थी ॥६६॥ अनन्त दिशाओंके अन्तोंको पूर्ण रीतिसे व्याप्त होनेके कारण विशाल देहवाला वह पवन सातों द्वीप तथा समुद्रोंके व्याजसे ऊर्ध्व भागमें आच्छन्न भूपीठपर चारों ओर विहार करके दीर्घ मार्ग चलनेके कारण अति श्रान्त होकर, भ्रमरके सदृश श्यामवर्ण अंगवाले आकाशमें संलग्न उस उग्र पर्वतके ऊपरकी भूमिको पाकर उसपर विश्राम किया ॥ ६७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे सूचीतपोवर्णनं नाम त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥

चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥

उस तापसी सूचीको देखके वायुका इन्द्रके निकट जाना, ब्रह्माजीका वरके लिये प्रार्थना करना, तथा सूचीका ज्ञान इस ७४ के सर्गमें वर्णन किया गया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ तस्यतत्रोर्ध्वशृंगस्यतस्यांभुविमहावनौ ॥ ददर्शमध्यमासूचींप्रोत्थितांसशिखामिव ॥ १ ॥ एकपादंतपस्यंतींशुष्यंतींशिरऊष्मणा ॥ सततानशनांशुष्कांपिंडीभूतोदरत्वचम् ॥ २ ॥ सकृद्विकसितास्येनगृहीत्वेवातपानिलान् ॥ पश्चात्त्यजंतींहृदयेमेनमांतीत्यनारतम् ॥ ३ ॥ शुष्कांचंडांशुकिरणैर्जर्जरांवनवायुभिः ॥ अचलंतींनिजात्स्थानात्स्नापितामिंदुरश्मिभिः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—उस ऊंचे शिखरकी महावनवाली पृथिवीपर वायुने उस तापसी सूचीको ऐसे देखा मानों उस महाशिखरकी मध्यम शिखा उठी खडी है ॥ १ ॥ तथा एकपादसे तप कर रही है शिरके ऊपर अति आतप पडनेसे शुष्कताको प्राप्त होरही है और निरन्तर भोजनके न करनेसे मानों उसके उदरका चर्म शुष्क होके पिण्डीभूत होगया है ॥ २ ॥ एककालमेंही मानों सम्पूर्ण आतप तथा वायुको निगलके पश्चात् उनको निरन्तर इस अभिप्रायसे त्याग रही है कि ये मेरे हृदयमें नहीं समाते ॥ ३ ॥ प्रचण्ड सूर्य्यके किरणोंसे तथा वनके रूक्ष पवनोंसे अति शुष्क तथा जर्जरीभूत, तथापि चन्द्रमाके किरणोंसे स्नान कराई हुईके तुल्य अपने स्थानसे अटल थी ॥ ४ ॥

पूर्वंरजोणुनैकेनसंविष्टच्छन्नमस्तकाम् ॥ कृतार्थत्वंकथयतींददतान्यस्यनास्पदम् ॥ ५ ॥ अरण्यान्येवदत्त्वार्थंचिरंजातशिखामिव ॥ मूर्ध्न्यर्थवस्थापितप्राणजटाजूटवलीमिव ॥ ६ ॥ तांप्रेक्ष्यपवनःसूचींविस्मयाकुलचेतनः ॥ प्रणम्यालोक्यसुचिरंभीतभीतइवागतः ॥ ७ ॥ महातपस्विनीसूचीकिमर्थंतप्यतेतपः ॥ नेतिप्रष्टुंशशाकासौतत्तेजोराशिनिर्जितः ॥ ८ ॥

अर्थ—दूसरे धूलिके कणको आश्रय न देनेवाले ऐसे एक धूलिके कणसे जिसका मस्तक ढकनेसे अपनी कृतार्थता प्रकट कर रहे है ॥ ५ ॥ उस महावनस्थलीने मानों अपने वृक्षलता आदि सब विभव किसी दूसरे महावनको देकर और चिरकालकी तपश्चर्य्यासे मानों सूचीरूपसे शिखा उत्पन्न होके स्थित है, और अनन्तर योगकी परिपक्वतासे मानों शिरपर प्राणोंकी जटाजूटकी लता है ॥ ६ ॥ उस सूचीको देखके वायु विस्मयचित्त होगया, और उसे प्रणाम करके दीर्घ कालतक भयभीतके सदृश निकट आया ॥ ७ ॥ उसके तेजकी राशिसे पराजित पवन यह पूंछनेमें समर्थ न हुआ कि हे महातपस्विनी सूचिके तूं यह तप किस अर्थके लिये करती हो ॥ ८ ॥

भगवत्यामहासूच्याअहोचित्रंमहातपः ॥ इत्येवकेवलंध्यायन्मारुतोगगनंययौ ॥ ९ ॥ समुल्लंघ्याभ्रमार्गंतुवातस्कंधानतीत्यच ॥ सिद्धवृंदानधःकृत्वासूर्यमार्गमुपेत्यच ॥ १० ॥ ऊर्ध्वमेत्यविमानेभ्यःप्रापशक्रपुरांतरे ॥ सूचीदर्शनपुण्यंतमालिलिंगपुरंदरः ॥ ११ ॥ पृष्टश्चकथयामासदृष्टंसर्वमयेत्यसौ ॥ सह देवनिकायायशक्रायास्थानवासिने ॥ १२ ॥

अर्थ—अहो ! इस भगवती महा सूचीका तप अति विचित्रहै, केवल इतनाही ध्यान करता हुआ वायु आकाशको चलागया ॥ ९ ॥ मेघमार्ग तथा वायुपटलोंको उल्लंघन करके, और सिद्धोंके समूहोंको नीचे करके सूर्य्यमार्गमें प्राप्त हुआ ॥ १० ॥ इसके अनन्तर विमानोंके ऊपर आके इन्द्रपुरमें प्राप्त हुआ, और सूचीके दर्शनसे पवित्रभूत उसे इन्द्रने आलिंगन किया ॥ ११ ॥ और पूंछनेपर स्वर्गनिवासी सम्पूर्ण देवसमूह सहित इन्द्रको उसने कह दिया किया मैंने सब कुछ देखा ॥ १२ ॥

॥ वायुरुवाच ॥ जंबूद्वीपेतिशैलेंद्रोहिमवान्नामसूव्रतः ॥ जामातायस्यभगवान्साक्षाच्छशिकलाधरः ॥ १३ तस्योत्तरेमहाशृंगपृष्ठेपरमरूपिणी ॥ स्थितातपस्विनीसूचीतपश्चरतिदारुणम् ॥ १४ ॥ बहुनात्रकिमुक्तेनवाताद्यशनशांतये ॥ ययास्वोदरसौषिर्यंपिंडीकृत्वानिवारितम् ॥ १५ ॥ शांतसंकोचसूक्ष्मार्थविकास्यास्यंरजोणुना ॥ तयाद्यस्थगितंशीतवाताशननिवृत्तये ॥ १६ ॥

अर्थ—वायुजी बोले—हे इन्द्रजी ! जम्बूद्वीपमें अति ऊंचा हिमवान् नाम विशाल पर्वतहै, जिसके जामाता (जमाई) साक्षात् भगवान् महादेवजी हैं ॥ १३ ॥ उसके उत्तरभागमें महाशिखरके पृष्ठपर अति तेजस्विनी तपस्विनी सूची स्थित है और अति भयंकर तप करती है ॥ १४ ॥ हे इन्द्रजी ! इस विषयमें बहुत कहनेसे कुछ प्रयोजन नहीं है, वायु आदिकेभी भोजनकी शान्तिके लिये उसने अपने उदरके छिद्रको लोहसे घन बनाके निगारण (भोजनका) किया

॥ १५ ॥ और शीतवायुके केवल मुखमें ग्रसनमात्रकी निवृत्तिके लिये अपने संकोच रहित अति सूक्ष्म अल्प छिद्रवाले मुखको फैलाके धूलिके अणु (कण) से उसेभी ढाक दिया ॥ १६ ॥

तस्यास्तीव्रेणतपसातुहिनाकरमुत्सृजन् ॥ अग्न्याकारमयोगृह्णन्देवदुःसेव्यतांगतः ॥ १७ ॥ तद्वत्तिष्ठा शुगच्छामःसर्वएवपितामहम् ॥ तद्वरार्थमनर्थायविद्धितत्सुमहत्तपः ॥ १८ ॥ इतिवातेरितःशक्रःसह देवगणेनसः ॥ जगामब्रह्मणोलोकंप्रार्थयामासतंविभुम् ॥ १९ ॥ सूच्यावरमहंदातुंगच्छामिहिमवच्छि रः ॥ ब्रह्मणेतिप्रतिज्ञातेशक्रःस्वर्गमुपाययौ ॥ २० ॥

अर्थ—हे इन्द्र ! उसकी भयंकर तपस्याकी उग्रयतासे हिमवान् पर्वत अपनी स्वाभाविक हिमाकरताको त्यागता हुआ, और अग्निके आकार अयोरूपता (लोहरूपता) को ग्रहण करता हुआ इस समय दुःखसे व्यग्र होगयाहै ॥ १७ ॥ इसलिये आओ उसको वर दिलानेके अर्थ सब कोई मिलके ब्रह्माजीके पास चले, क्योंकि उसका उत्तम महान् तप संसारके अनर्थकेही लिये समझो ॥ १८ ॥ इसप्रकार वायुसे प्रेरित इन्द्रजी सम्पूर्ण देवगण सहित ब्रह्माजीके पास गये, और उन भगवानसे प्रार्थना की ॥ १९ ॥ मैं सूचीको वर देनेके अर्थ हिमवान्के शिखरपर जाताहुं जब ब्रह्माजीने ऐसी प्रतिज्ञाकी तब इन्द्र अपने स्वर्गलोकको चलेगये ॥ २० ॥

एतावताथकालेनसाबभूवातिपावनी ॥ सूचीनिजतपस्तापतापितामरमंदिरा ॥ २१ ॥ मुखरंध्रस्थितार्को शुदृशास्वच्छाययैवसा ॥ विकासिन्याविवर्त्तिस्थाचोदितांतमवेक्षिता ॥ २२ ॥ कौशेयरूपयासूच्यामे रुःस्थैर्येणनिर्जितः ॥ मज्जनंनैतिवृत्त्यैवंमुक्तमाद्यंतयोर्दिने ॥ २३ ॥ मध्याह्नेतापभीत्येवविशंत्यामारु तांतरम् ॥ अन्यदागौरवाद्दृष्टादूरतःप्रेक्षमाणया ॥ २४ ॥

अर्थ—इतने समयमें अर्थात् सात सहस्र वर्ष कालमें वह अपनी तपस्यासे देवताओंके मन्दिरको तपानेवाली सूची अति पवित्र होगई ॥ २१ ॥ उस प्रकाशमान तपमें स्थित सूचीको देखनेवाली केवल मुखरूपी छिद्रमें स्थित सूर्य्यकी किरणरूपी दृष्टिवाली फैली हुई उसकी छाया उसके संकल्प रचित कालकी मर्य्यादा पर्य्यन्त थी अर्थात् निर्जन स्थानमें उसके तपकी साक्षिणी उसकी छायाही थी ॥ २२ ॥ रेशमके तुच्छ सूत्ररूपी सूचीसे पराजित मेरु लज्जाके कारणसे समुद्रमें तो नहीं डूबताहै इस अभिप्रायसे दिनके आदि तथा अन्तमें और रात्रिमें दीर्घताका अवलम्बन करके मेरुके देखनेके अर्थ सूचीको देखना छोड देतीथी ॥ २३ ॥ और मध्यान्हकालमें इसलिये देखना छोड देतीथी कि तापके भयसे सूचीके प्राणोंमें प्रवेश कर जातीथी, और इसके सिवाय अन्यकालमें दूरसेही प्रतिष्ठाके साथ उसे देखा करतीथी ॥ २४ ॥

सातामवेक्षतेक्षारात्तापादंगेनिमज्जति ॥ संकटेविस्मरत्येवजनोगौरवसत्क्रियाम् ॥ २५ ॥ छायासूची तापसूचीयश्चात्मासतृतीयया ॥ त्रिकोणंतपसापूतंवाराणस्यासमंकृतम् ॥ २६ ॥ गतास्तेनत्रिकोणेन त्रिवर्णपरिखावता ॥ वायवःपांसवोयेपितेपरांमुक्तिमागताः ॥ २७ ॥ विदितपरमकारणाद्यजातास्वय मनुचेतनसंविदंविचार्य ॥ स्वममनकलनानुसारएकस्त्विहहिगुरुःपरमोनराघवान्यः ॥ २८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे कर्कट्युपाख्याने सूचीतपःपरिपाकवर्णनं नाम चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥

अर्थ—वह छाया तीक्ष्णतासे उसे देखा करतीथी और तापसे उसीके अंगमें लीन होजातीथी, क्योंकि संकटके समयमें प्रायः सभी प्रतिष्ठा करना भूल जाते हैं ॥ २५ ॥ छायासूची, तापसूची (जीवसूची) तथा लोहसूची ये तीनों आपसमें मिलनेसे तपसे पवित्र अपने अन्तराल देशको त्रिकोण असीवरण और गंगाके अन्तरालस्थ देश काशीके समान बनादिया ॥ २६ ॥ शुष्क अमूर्त सरस्वतीरूप लोहसूची श्यामवर्ण यमुना, तथा शुक्लवर्ण जीवसूची गंगा इन तीनों नदीरूप अवधिवाले त्रिकोणसे जो वायु अथवा धूलिभी निकल जातीथी वे भी परम मुक्तिको प्राप्त होगई ॥२७॥ हे राघव रामजी ! इससमय वह अपने साक्षी चेतन प्रत्यगात्माको स्वयं विचार करके परम कारण जो परब्रह्महै उसको जानगई क्योंकि अपनी युक्तियोंके विचारसे जो आत्माका परिचय (आत्मज्ञान) है उसका अनुसरण करना यही एक मुख्य गुरुहै, इसके अतिरिक्त मुख्य गुरु नहीं है क्योंकि वेदमें लिखाहै ॥ दृश्यतेत्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः ॥ (तत्वदर्शीलोग अपनी सूक्ष्मबुद्धिसे आत्माको देखते हैं) ॥ २८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे सूचीतपःपाकवर्णनं नाम चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥

पंचसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥

ब्रह्माजीके प्रसन्न होनेपरभी ज्ञान होनेके कारणसे सूचीका मौन होके बैठना तिसपरभी ब्रह्माजीके अपराद्धका-लसे उसके देहकी उत्पत्तिका वर्णन इस ७५ के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथवर्षसहस्रेणतांपितामहआययौ ॥ वरंपुत्रिगृहाणेतिव्याजहारनभस्तलात् ॥१॥ सूचीकर्मेंद्रियाभावाज्जीवमात्रकलावती ॥ नकिंचिद्व्याजहारास्मैचिंतयामासकेवलम् ॥ २ ॥ पूर्णास्मि गतसंदेहाकिंवरेणकरोम्यहम् ॥ शाम्यामिपरिनिर्वामिसुखमासेचकेवलम् ॥ ३ ॥ ज्ञातंज्ञातव्यमखिलं शांतासंदेहजालिका ॥ स्वविवेकोविकसितःकिमन्येनप्रयोजनम् ॥ ४ ॥

अर्थ—ज्ञानके अनन्तर सहस्र वर्षके पश्चात् ब्रह्माजी उस सूचीके निकट आये, आकाशतलसे यह उच्चारण किया कि, हे पुत्रि ! तूं वरदान मांग ॥ १ ॥ वह सूची केवल जीवमात्रकी कला होनेसे और कर्मइन्द्रियोंका सर्वथा अभाव होनेसे ब्रह्माजीसे कुछ उत्तर नहीं दिया केवल यह चिन्तन किया ॥ २ ॥ कि मैं सन्देहरहित पूर्णहुं, वर लेके मैं क्या करूंगी, शान्तहुं तृप्तहुं, और केवल सुखसे बैठीहुं ॥ ३ ॥ जो कुछ जाननेके योग्य था वह मैंने सम्पूर्ण जान-लिया, और मेरे सन्देहजाल सब शान्त होगये, अब अपना विवेक विकासित होगया अब मुझे दूसरेसे क्या प्रयोजन॥४

यथास्थितेयमस्मीहसंतिष्ठेयंतथैवहि ॥ सत्यासत्यकलामेवत्यक्त्वाकिमितरेणमे॥५॥एतावंतमहंकाल मविवेकेनयोजिता ॥ स्वसंकल्पसमुत्थेनवेतालेनेववालिका ॥ ६ ॥ इदानीमुपशांतोसौस्वविचारणया स्वयम् ॥ ईप्सितानीप्सितैरर्थैःकोभवेत्कलितैर्मम ॥७॥ इतिनिश्चययुक्तांतांसूचींकर्मेंद्रियोज्झिताम् ॥ तूष्णींस्थितांसनियतिःसपश्यन्भगवान्स्थितः ॥ ८ ॥

अर्थ—जैसे मैं स्थितहुं वैसीही, और वैसेही (चित्‌रूपसे) आगेभी स्थित रहूंगी, सत्यपरमार्थरूप मैं हुं, उस अपनी सत्यकलाको त्यागकर मिथ्या पदार्थोंसे मुझे क्या प्रयोजन ॥ ५ ॥ इतने कालतक मैं अपने अविवेकसे ऐसे युक्त थी जैसे अपने संकल्पसे उत्पन्न वेतालसे कोई बालिका ॥ ६ ॥ अब आत्माके विचारसे यह अविवेक स्वयं शान्त हो-गया, इष्ट तथा अनिष्ट पदार्थोंके प्राप्त होनेसे मेरा क्या अर्थ सिद्ध होगया ॥ ७ ॥ इसप्रकार निश्चययुक्त, तथा कर्म इन्द्रियोंसे रहित मौनरूप स्थित उस सूचीको, नियति सहित (कर्मोंके फलोंको अवश्य देनेवाली ईश्वरके संकल्परूप नियति करके सहित) वे ब्रह्माजी देखते हुये स्थित रहे ॥ ८ ॥

ब्रह्मापुनरुवाचेदंवीतरागांप्रसन्नधीः ॥ वरंपुत्रिगृहाणत्वंकिंचित्कालंचभूतले ॥ ९ ॥ भोगान्भुक्त्वात तःपश्चाद्गमिष्यसिपरंपदम् ॥ अव्यावृत्तिस्वरूपायानियतेरेषनिश्चयः ॥ १० ॥ तपसानेनसंकल्पःसफ लोस्तुतवोत्तमे॥पीनाभवपुनःशैलेहिमकाननराक्षसी ॥ ११ ॥ ययापूर्वंवियुक्तासितन्वाजलदरूपया ॥ बीजांतर्वृक्षतापुत्रिबृहद्वृक्षतयायथा ॥ १२ ॥

अर्थ—प्रसन्न चित्त ब्रह्माजी वीतराग उस सूचीसे पुनः बोले कि–हे पुत्रि ! वरदान ले, और कुछ कालतक इस भूतलपर ॥ ९ ॥ संसारके अनेक भोगोंको भोगकर पुनः परमपदको जाओगी, यह उस ईश्वरके संकल्परूप नियतिका निश्चय है जिसका परिवर्तन (लोढाना) हम लोगभी नहीं करसकते ॥ १० ॥ हे उत्तम सूचीके ! इस तुमारे तपसे तु-मारा संकल्प सफल हो, तुम पुनः अति महान् शरीरवाली पर्वतके ऊपर हिमके बनकी बडी राक्षसी होजाओ ॥ ११ ॥ जैसे बीजके भीतर महान् वृक्षरूपसे वृक्षतावियुक्त (उसीके भीतर लीन होनेसे पृथक्) रहती है ऐसेही जिस मेघरूप महान् शरीरसे तुम वियुक्त हो ॥ १२ ॥

योगमेष्यसिभूयश्चतन्वांतबीजरूपिणी ॥ तयैवरससेकेनलतयेवांकुरस्थितिः ॥ १३ ॥ बाधांविदितवे द्यत्वान्नचलोकेकरिष्यसि ॥ अंतःशुद्धास्पंदवतीशारदीवाभ्रमंडली ॥ १४ ॥ अश्रांतध्याननिरताकदा चिल्लीलयायदि ॥ भविष्यसिबहीरूपासर्वात्मध्यानरूपिणी ॥ १५ ॥ व्यवहारात्मकध्यानधारणाधार रूपिणी ॥ वातस्वभाववद्देहपरिस्पंदाद्विलासिनी ॥ १६ ॥

अर्थ—पुनः अन्तर्बीजरूप तुम उसी अपने शरीरसे ऐसे युक्त होओगी, जैसे जलके सींचनेसे लतारूपसे युक्त अंकुरकी स्थिति होती है ॥ १३ ॥ अन्तःकरणमें शुद्धरूप होके वेद्य ब्रह्मके जाननेसे तुम उस शरीरसे लोकमें बाधा ऐसे नहीं करोगी, जैसे शरत्कालकी शुद्ध मेघोंकी मण्डली ॥ १४ ॥ हे पुत्रि ! तुम सदा निर्विकल्प ध्याननिरत रहोगी और कदाचित् कभी जब निर्विकल्प समाधिसे उठोगी तबभी सबका आत्मवत् ध्यानरूप रहोगी ॥ १५ ॥ और व्यवहार दृष्टिसे धारणा ध्यानका आधारभूत रहोगी, और वायुके स्वभावसे शरीरकी चेष्टासे विलास करनेवाली ॥ १६

तदाविरोधिनीपुत्रिस्वकर्मस्पंदरोधिनी ॥ न्यायेनक्षुन्निवृत्त्यर्थं भूतबाधांकरिष्यसि ॥ १७ ॥ भविष्यसि न्यायवृत्तिर्लोकेत्वन्यायबाधिका ॥ जीवन्मुक्ततयादेहेस्वविवेकैकपालिका ॥ १८ ॥ इत्युक्त्वागगनत लाब्जगामदेवःसूचीसाभवतुममेतिकिंविरोधः ॥ रागोवाब्जजवचनार्थवारणेस्मिन्नित्यंतःस्वतनुमयी मनाग्बभूव ॥ १९ ॥ प्रादेशःप्रथममभूत्ततोपिहस्तोव्यामश्चाप्यथविटपस्ततोभ्रमाला ॥ सोद्यत्स्वाव यवलताबभौनिमेषात्संकल्पद्रुमकणिकांकुरक्रमेण ॥ २० ॥ तद्वत्राण्यविकलशक्तिमंतिदेहाद्भूतान्‌ थकरणेंद्रियाणिसम्यक्‌ ॥ संकल्पद्रुमवनपुष्पवत्समंताद्बीजौघान्यलमभवंस्तिरोहितानि ॥ २१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे कर्कट्युपाख्याने सूचीशरीरलाभो नाम पंचसप्ततितमःसर्गः ॥ ७५ ॥

अर्थ—हे पुत्रि ! उससमय तुम अपने राक्षसकुलके उचित अशास्त्रीय हिंसाका अवरोध करनेवाली विरोध करनेवाली होओगी, और न्यायसे अपनी क्षुधाकी निवृत्तिके अर्थ प्राणियोंकी बाधा करोगी ॥ १७ ॥ हे पुत्रि ! तुम लोकमें न्यायवृत्ति धारिणी होओगी, और जो अन्यायकारक जीव हैं उनकी बाधिका होओगी, तथा जीवन्मुक्त होनेके कारण शरीरमें केवल अपने विवेककी पालिका होओगी ॥ १८ ॥ हे रामजी ! ब्रह्माजी आकाशतलसे ऐसा कहके चले गये, और उस सूचीने विचारा कि ऐसा (पूर्व शरीरका धारण) हो इसमें मेरा विरोध क्यों, और ब्रह्माजीके वचनको निवारण करनेमें मेरा रागभी क्यों, ऐसा चिन्तन करके वह अपने मनमें किंचित् पूर्वशरीराकार हुई ॥ १९ ॥ इसके अनन्तर प्रथम अंगुष्ठ मात्र होगई, अनन्तर हस्तमात्रकी, पश्चात् पुरुष प्रमाण हुई, इसके अनन्तर एक वृक्षके बराबर होगई, इसके पीछे मेघकी मालाके समान होगई, इसप्रकार वह सूची अपने संकल्पके वृक्षके बीजके अंकुर क्रमसे उदय होते हुये अपने अवयवरूप लतारूपिणी शोभित हुई ॥ २० ॥ उसके सम्पूर्ण अंग तथा पूर्णशक्ति सहित सब करण इन्द्रिय शरीरसे उत्तमतासे ऐसे आविर्भूत हुये, जैसे संकल्पसे वनवृक्ष पुष्प आदि चारोंओरसे प्रकट हो, अथवा पूर्वदशामें बीजमें समूह भूत छिपेहो और जल मृत्तिका आदिके संयोगसे पुनः भलीभांति आविर्भूत होजाय ॥ २१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे कर्कट्युपाख्याने सूचीशरीरलाभो नाम पंचसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥

षट्सप्ततितमः सर्गः ॥ ७६ ॥

पूर्वशरीरको पाके छ मासतक समाधिस्थ रही अनन्तर क्षुधित होके उठी तब वह कर्कटी राक्षसी वायुके वचनसे किरातके निकट गई इस विषयका वर्णन इस ७६ के सर्गमें है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथाभवदसौसूचीकर्कटीराक्षसीपुनः ॥ सूक्ष्मैवस्थौल्यमायातामेघलेखेववार्षिकी ॥ १ ॥ निजमाकाशमासाद्यकिंचित्प्रमुदितासती ॥ बृहद्राक्षसभावंतद्बोधात्कंचुकवज्जहौ ॥ २ ॥ तत्रैवध्यायतीतस्थौवद्धपद्मासनस्थितिः ॥ व्यालंव्यसंविदंशुद्धांसंस्थितागिरिकूटवत्‌ ॥ ३ ॥ अथसा मासषट्केनध्यानाद्बोधमुपागता ॥ महाजलदनादेनप्रावृषीवशिखंडिनी ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! सम्पूर्ण अंगोंके आविर्भावके अनन्तर पुनः वह कर्कटी नाम राक्षसी सूक्ष्मरूपसे स्थूलताको ऐसे प्राप्त हुई जैसे वर्षाकालमें मेघकी रेखा ॥ १ ॥ अपने ब्रह्माकाशको प्राप्त होनेसे किंचित् प्रसन्न होकर दीर्घकालसे आरूढ जो राक्षसस्वभावहै उसको ज्ञान होनेके कारणसे ऐसे त्यागदिया जैसे सर्प अपनी कांचुलीको ॥ २ ॥ प्रपंचरहित अपने शुद्ध ज्ञानका आलम्बन करके, आत्माका ध्यान करती हुई अचल पर्वतके समान पद्मासन बांधके वहांही स्थित रही ॥ ३ ॥ इसके पीछे छ मासके अनन्तर महामेघके शब्द निर्विकल्प समाधिसे जाग्रत् अवस्थाको ऐसे प्राप्त हुई जैसे वर्षाकालमें कामकी चेष्टासे मयूरी (मोरनी) ॥ ४ ॥

प्रबुद्धासाबहिर्वृत्तिर्बभूवक्षुत्परायणा ॥ यावद्देहंस्वभावोस्यदेहस्यननिवर्त्तते ॥ ५ ॥ अथसाकिंग्रसइ तिचिंतयामासचिंतया ॥ भोक्तव्यःपरजीवश्चन्यायेननविनामया ॥ ६ ॥ यदार्यगर्हितंयद्वान्यायेननस मर्जितम्‌ ॥ तस्माद्ग्रासाद्वरंमन्येमरणंदेहिनामिदम्‌ ॥ ७ ॥ यदिदेहंत्यजामीदंतन्न्यायोपार्जितंविना ॥ नकिंचिदस्तिनिर्न्यायंभुक्तोर्थोहिगरायते ॥ ८ ॥

अर्थ—जब समाधिसे उठके वह बाह्यवृत्ति हुई तब क्षुधामें परायण होगई, क्योंकि जबतक यह शरीर है तबतक इसका स्वभाव नहीं जाता ॥ ५ ॥ इसके पीछे उसने यह चिन्तन किया कि मैं किसका ग्रास करूं और यह

भी विचारा कि न्यायके विना अन्य जीव मुझे कदापि न खाना चाहिये ॥ ६ ॥ क्योंकि जो पूज्यमहान् पुरुषोंसे निन्दितहै, अथवा जो न्यायसे उपार्जित नहीं है उसके भोजनसे तो मैं मरना उत्तम समझती हूं ॥ ७ ॥ यदि न्यायसे उपार्जित अन्नके विना मैं अपने इस शरीरको त्यागतीहुं तो इसमें कुछ अन्याय नहीं है क्योंकि अन्यायका जो अन्न भोजन किया जाताहै वह विष होजाताहै ॥ ८ ॥

यन्नलोकक्रमप्राप्तंतेनभुक्तेनकिंभवेत् ॥ नजीवितेननोमृत्यार्किंचित्कारणमस्तिमे ॥ ९ ॥ मनोमात्रमहं ह्यासंदेहादिभ्रमभूषणम् ॥ तच्छांतंस्वावबोधेनदेहादेहदृशोकुतः ॥ १० ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवंस्थितामौनवतींशुश्रावगगनाद्गिरम् ॥ रक्षःस्वरूपसंत्यागतुष्टेनोक्तांनभस्वता ॥ ११ ॥ गच्छकर्कटिमूढांस्त्वंज्ञानेनाश्ववबोधय ॥ मूढोत्तारणमेवेहस्वभावोमहतामिति ॥ १२ ॥

अर्थ—जो लोक संमत क्रमसे नहीं प्राप्तहै उसके भोजनसे क्या होताहै, मुझे जीवनसे अथवा मरणसे कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ ९ ॥ मैं (मेरा शरीर) केवल मनोरथ मात्रथा, सो देहादिमें अहंबुद्धिके भ्रमका भूषण अपने आत्माके ज्ञानसे शान्त होगया, अब मुझे जीवन मरणकी दृष्टि कहां ॥ १० ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले--इसप्रकार चिन्तन करते हुये मौन होकर स्थित रही, तब राक्षसके स्वभावके त्यागनेसे सन्तुष्ट वायुसे कही हुई आकाशतलसे इस वाणीको सुना ॥ ११ ॥ हे कर्कटि ! तू मूढोंके निकट जा और अपने ज्ञानसे उनको बोध न कर क्योंकि मूढोंकी मूढताका हटाना यही तत्वज्ञानी महात्माओंका स्वभावहै ॥ १२ ॥

बोध्यमानोभवत्यापियोनबोधमुपैष्यति ॥ स्वनाशायैवजातोसौन्याय्योग्रासोभवेत्तव ॥ १३ ॥ श्रुत्वेत्यनुगृहीतास्मित्वयेत्युक्तवतीशनैः ॥ उत्तस्थौशैलशिखराक्रमादवरुरोहच ॥ १४ ॥ अधित्यकामतीत्याशुगत्वाचोपत्यकातटान् ॥ विवेशशैलपादस्थंकिरातजनमंडलम् ॥ १५ ॥ बह्वन्नपशुलोकौघद्रव्यशष्पौषधामिषम् ॥ अनंतमूलपानान्नमृगकीटखगादिकम् ॥ १६ ॥ प्रचलितवलितांजनाचलाभाहिमगिरिपादनिवेशितंसुदेशम् ॥ तदनुगतवतीनिशाचरीसानिशिसुघनांधतमिस्रमार्गभूमौ ॥ १७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे कर्कट्युपाख्याने अन्यायबाधिको नाम षट्सप्ततितमःसर्गः ॥ ७६ ॥

अर्थ—जिसको तूं ज्ञान देने लगेगी और वह ज्ञानको धारण नहीं करेगा तो समझ लेना कि वह अपने नाशके ही अर्थ उत्पन्न हुआ है और वह जीव तुमारा न्यायपूर्वक प्राप्त होगा ॥ १३ ॥ यह सुनके धीरसे कहा कि तुमने मेरे ऊपर अनुग्रह किया, ऐसा कहके उठ खडी हुई और उस हिमालयके शिखरसे क्रमसे उतरी ॥ १४ ॥ शीघ्र पर्वतके ऊपरकी भूमियोंको लंघन करके और नीचेके तटोंपर प्राप्त होके हिमालयके पाद (नीचे) स्थित जो किरातोंका राज्य मण्डल है वहां प्रवेश किया ॥ १५ ॥ हे रामजी ! वह जनपद बहुत अन्न, पशु जनसमूह, द्रव्य, घास, ओषध तथा मांस आदिसे पूर्णथा और अनेक प्रकारके कन्दमूल, पीनेके पदार्थ अन्न तथा मृग, कीट और पक्षी आदिसे युक्त था ॥ १६ ॥ इसप्रकार हिमाचलके नीचे बसा हुआ जो वह उत्तम देश है, और रात्रिमें जिसकी मार्गभूमि अति अन्धकारसे युक्त होगई ऐसे स्थानमें कज्जलसे लिप्त पर्वतके समान शोभायमान वह निशाचरी जाके प्राप्त हुई ॥ १७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे अन्यायबाधको नाम षट्सप्ततितमः सर्गः ॥ ७६ ॥

सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥ ७७ ॥

रात्रिका वर्णन उसके पश्चात् राजा और मंत्रीका मिलना, पश्चात् उसकी परीक्षाके लिये विस्तारसे कर्कटीके प्रश्नकी इच्छा इत्यादि विषयोंका वर्णन इस ७७ के सर्गमें किया गया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एतस्मिन्नंतरेतत्रकिरातजनमंडले ॥ हस्तग्राह्यतमःपिंडनभूवासितयामिनी ॥ १ ॥ नीलमेघपटच्छन्नानिरिंदुगगनांतरा ॥ तमालवनसंपिंडामांसलोड्डीनकज्जला ॥ २ ॥ लताघनतयाग्रामकोटरैकांध्यमंथरा ॥ गृहचत्वरसंबाधेनगरेनवयौवना ॥ ३ ॥ चत्वरेषुतमःपिंडीप्रजिह्मीकृतदीपिका ॥ कुंचितच्छिद्रनिष्क्रांतादीपिकारोचिराजिता ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! इसी अवसरमें उस किरातके राज्यमें रात्री ऐसी कृष्ण होगई की जिसका अन्धकार हस्तसे ग्रहण करने योग्य होगया था ॥ १ ॥ पुनः वह रात्रि मेघोंके पटलोंसे आच्छन्न, अमृतके

लुटनेके भयसे मानो चन्द्रमाको जिसने दूसरे आकाशमें भगादियाहै, तमालके वनोंको एकत्र कररही है, अन्धकारसे पुष्ठ और सर्वत्र नेत्रके कज्जलकोभी श्याम करनेवाली ॥ २ ॥ पर्वत ग्रामोंमें लताओंकी घनतासे तारागणोंकाभी प्रकाश न जानेसे वृद्धा स्त्रीके समान मन्दगति, और स्थान तथा अंगनोंसे वनीभूत नगरोंमें दीपिकाओंके प्रकाशसे नवयौवना स्त्रीके समान चलती हुई ॥ ३ ॥ और अंगणोंके वाहर वायुके कारणसे दीपिकाओंके प्रकाशको वक्र (टेढा) करनेवाली, इसी कारण अन्धकारको पिण्डीभूत करनेवाली, और कुटित झरोखोंसे किंचित् निकले हुये प्रकाशोंसे शोभायमान ॥ ४ ॥

सुवयस्येवकर्कट्याःपरिनृत्यत्पिशाचिका ॥ मत्तवेतालकंकालकाष्ठमौनमिवास्थिता ॥ ५ ॥ सुषुप्तमृगभूतौघघननीहारहारिणी ॥ मंदमंदमरुत्स्पर्शलसत्प्रालेयसीकरा ॥ ६ ॥ सरःसुविवटद्वारिकाकभेकतरंगिका ॥ अंतःपुरेषुरमणरणन्नारीनराननाः ॥ ७ ॥ जंगलेषुप्रगज्ज्वालाजटालज्वलनोज्ज्वला ॥ केदारेष्वंबुसंसेकपृष्ठपाकमिलच्छला ॥ ८ ॥

अर्थ—तथा नृत्य कर रहे हैं पिशाच जिसमें और मत्त वेताल और चर्ममांस शून्य प्रेतोंके समूहसे युक्त तथा काकके समान मौन स्थित वह रात्रि कर्कटीकी प्रियसखीके समान थी ॥ ५ ॥ तथा पुनः सो हुये मृग तथा अन्य प्राणियोंके समूहसे घनीभूत नीहारोंसे शोभित, और मन्द २ वायुके स्पर्शसे शोभायमान हैं हिमके बिन्दु जिसके ऐसी ॥ ६ ॥ तलाओंमें गढोंके द्वारोपर काक तथा मेंढकोंसे व्याप्त, और अन्तःपुरोंमें क्रीडामें स्त्री तथा पुरुषोंके मुख जिसमें शब्दायमान होरहेहैं ॥ ७ ॥ और जंगलोंमें प्रलयकालकी अग्निसे अतिजटायुक्त उज्वल और चावलके खेतोंमें जलसे सींचनेके कारण गीला हो जानेसे शाहीके पृष्ठपर पक्व खेतोंमें जहांपर शाहीके कांटे प्राप्त होतेहैं ऐसी ॥८॥

नभस्थलेक्षितस्पंदप्रविविक्तर्क्षचक्रिका ॥ वनेषुविसरद्वातपतत्पुष्पफलद्रुमा ॥ ९ ॥ श्वभ्रेषुकौशिकस्वांतर्वायसव्याहतारवा ॥ तस्कराक्रांतपर्यंतग्राम्याक्रंदनकर्कशा ॥ १० ॥ विपिनेविपिनामौनानगरेसुप्तनागरा ॥ वनेषुविसरद्वातानीडेष्वस्पंदपक्षिका ॥ ११ ॥ गुहासुसुप्तसिंहाढ्याकुंजेषुस्वपदेणका ॥ खेसावश्यायनिकराविपिनेमौनचारिणी ॥ १२ ॥

अर्थ—और आकाशमें गतिके उत्पन्न हुये नेत्र तारागण जिसमें विभक्त होरहे हैं, और वनमें वायुके जलनेसे जिसमें पुष्प फल तथा वृक्षतक जिसमें गिर रहेहैं ॥ ९ ॥ और वृक्षोंके कोटरोंमें उल्लूके शब्द सुनके काकोंका शब्द जिसमें व्याहत (द्रव) होगयाहै, और चोरोंसे आक्रान्त होनेके निकट ग्रामीणोंके शब्दोंसे अति भयंकर ॥ १० ॥ वनमें बनके समान मौन नगरमें सो गये नागरिक लोग जिसमें ऐसे वनमें जिसमें वायु चलरहा है और घोसलोंमें पक्षी जिससमय चेष्टा राहित होगये हैं ॥ ११ ॥ कन्दराओंमें सोये हुये सिंहोंसे पूर्ण और कुंजोंमें हिंसक जीवोंसे युक्त, आकाशमें नाशकारक हिमके समूहवाली, और जंगलोंमें मौन धारिणी ॥ १२ ॥

कज्जलांभोदमध्याभाकाचशैलोदरोपमा ॥ पंकपिंडांतरघनाखड्गच्छेद्यांध्यमांसला ॥ १३ ॥ प्रलयानिलविक्षुब्धकज्जलाचलचंचला ॥ एकार्णवमहापंकपर्वतोदरमेदुरा ॥ १४ ॥ अंगारकोटरघनासौषुप्तपदसुंदरी ॥ अज्ञाननिद्रानिबिडाभृंगपृष्ठच्छदच्छविः ॥ १५ ॥ तस्यांरजन्यांभीमायांकिरातजनमंडले ॥ मंत्रिणासहभूपालस्तस्मिन्नवसरेतदा ॥ १६ ॥ निर्जगामसुवीरात्मानगरात्सुप्तनागरात् ॥ अटवींविक्रमोनामविषमांवीरचर्यया ॥ १७ ॥

अर्थ—कज्जलके मेघके समान मध्यभागसे शोभित काचके पर्वतके सदृश उदरवाली, मृत्तिकाके पिण्डके मध्यके तुल्य घनीभूत, और तरवारसे छेदनके योग्य अन्धकारसे पुष्ट ॥ १३ ॥ प्रलयके वायुसे चूर्ण किये हुये कज्जलगिरिके समान चंचल, एक समुद्रके समान, अथवा पर्वतके उदरके सदृश अति चिक्कण ॥ १४ ॥ तथा जले हुये काष्ठके उदरके समान अति घन, गाढ, अज्ञानके तुल्य सुन्दरी, मूल अज्ञानके समान अति निबिड और भ्रमरके पृष्ठ वा परके समान कृष्ण छबिवाली वह रात्रिथी जिसमें वह कर्कटीराक्षसी किरातोंके राज्यमण्डलमें आई ॥१५॥ हे रामजी ! उस भयंकर रात्रिके अवसरमें किरातोंके राज्यमण्डलमें, बुद्धिमान् धीर, वीरोंके उचित चोर आदिके वधको करनेवाला विक्रमनामी किरातोंका राजा, जब नगरनिवासी सब सो गयेथे उसमय नगरसे उस भयंकर वनमें निकला॥१६॥१७

अटव्यांकर्कटीसातौचरंतौराजमंत्रिणौ ॥ अपश्यद्धृतधैर्याढ्यौवेतालालोकनोन्मुखौ ॥ १८ ॥ अथसाचिंतयामासलब्धोभक्षोद्यहोमया ॥ मूढावेतावनात्मज्ञौभारोदेहःकिलानयोः ॥ १९ ॥ इहामुत्रचनाशाय मूढोद्यःखायजीवति ॥ यतद्विनाशनीयोसौनानर्थःपरिपाल्यते ॥ २० ॥

अर्थ—धैर्य्य तथा अस्त्रादिकों धारण किये हुये, और ग्रामके बाहर ग्रामदेवता वेतालोंके देखनेमें तत्पर, उसी वनमें विचरते हुये राजा और मन्त्रीको उस कर्कटीने देखा ॥ १८ ॥ उसने अपने मनमें चिन्तन किया कि अहो मैंने अपना भक्ष्य पाया, क्योंकि ये दोनों आत्मज्ञानरहित मूढ हैं, निश्चय करके इन दोनोंका देह अज्ञानके कारण भार भूतहै ॥ १९ ॥ इस लोकमें तथा परलोकमें मूढप्राणी नाशके अर्थ तथा दुःखहीके लिये जीताहै, इसलिये इन दोनोंका नाश यत्नसे करना चाहिये, क्योंकि अनर्थकारी प्राणीका पालन नहीं करना चाहिये ॥ २० ॥

अज्ञायतःस्वमात्मानंमृतिर्मूढस्यजीवितम् ॥ मरणेनोदयोस्यास्तिपापासंपत्तिहेतुतः ॥ २१ ॥ आदिसर्गेचनियमःकृतःपंकजजन्मना ॥ हिंस्राणांभोजनायास्तुमूढात्मानात्मवानिति ॥ २२ ॥ तस्मादिमौमयैवाद्यभोक्तव्यौभोज्यतांगतौ ॥ अभव्यएवनिर्दोषंप्राप्तमर्थमुपेक्षते ॥ २३ ॥ कदाचित्ताविमौस्यातांगुणयुक्तौमहाशयौ ॥ तादृङ्नरविनाशोहिस्वभावान्मेनरोचते ॥ २४ ॥

अर्थ—जो मूढ अपने आत्माको नहीं जानता उसकी मृत्यु उसके जीवनसे उत्तम है मरनेसे इसकी पाप सम्पत्तिका उदय कारण सहित होगा ॥ २१ ॥ सृष्टिके आदिमेंही ब्रह्माजीने यह नियम किया है कि जो मूढ अज्ञानी हैं वे हिंसक जीवोंके भोज्य हों न कि आत्मज्ञानी ॥ २२ ॥ इसलिये ये दोनों मेरे भोज्य प्राप्त हुये हैं आजही इनको मुझे भोजन करना चाहिये क्योंकि वह अभागी प्राणी है जो दोषरहित प्राप्त भोजनको त्यागताहै ॥ २३ ॥ कदाचित् ये दोनों आत्मज्ञानरूपी गुणसेयुक्त महात्मा हों तो ऐसे मनुष्यका विनाश मुझे स्वभावसेही नहीं अच्छा लगता ॥२४॥

तदेतौसंपरीक्षेहंयदितादृग्गुणान्वितौ ॥ तद्भक्षंनकरोम्येतौनहिंस्यांगुणिनःक्वचित् ॥ २५ ॥ अकृत्रिमंसुखंकीर्तिमायुश्चैवाभिवांछता ॥ सर्वाभिमतदानेनपूजनीयागुणान्विताः ॥ २६ ॥ अपिनंक्ष्यामिदेहेन नैवभोक्ष्येगुणान्वितम् ॥ सुखयंतिहिचेतांसिजीवितादपिसाधवः ॥ २७ ॥ अपिजीवितदानेनगुणिनंपरिपालयेत् ॥ गुणवत्संगमौषध्यामृत्युरप्येतिमित्रताम् ॥ २८ ॥

अर्थ—इसलिये मैं इनकी परीक्षा करूं, यदि वैसे (आत्मज्ञान) गुणसे युक्त हैं तो इनका भोजन मैं कभी नहीं करूंगी, क्योंकि गुणियोंकी हिंसा मैं कदापि न करूंगी ॥ २५ ॥ क्योंकि जिसको अकृत्रिम सुखकी कीर्तिकी, और आयुकी वांछाहो उनको उचित है कि सम्पूर्ण इष्ट पदार्थोंको देके गुणियोंकी पूजा करै ॥ २६ ॥ मैं अपने शरीरसे चाहे नष्ट होजाऊं (क्योंकि आत्मा तो अविनाशी है) परन्तु गुणी पुरुषका भोजन कदापि न करूंगी, क्योंकि आत्मज्ञानी साधु महात्मा लोग जीवनसेभी अधिक सुखी चित्तोंको करते हैं ॥ २७ ॥ अपना जीवन देकेभी गुणी प्राणीको पालन करना चाहिये, क्योंकि गुणी पुरुषके समागमरूप औषधिसे मृत्युभी सुखदायी मित्रताके तुल्य होजाती है ॥२८

यत्राहमपिरक्षामिराक्षसीगुणशालिनम् ॥ तत्रान्यःकोनकुर्यात्तंहृदिहारमिवामलम् ॥ २९ ॥ उदारगुणयुक्तायेविहरंतीहदेहिनः ॥ धरातलेंदवःसंगाद्भृशंशीतलयंतिते ॥ ३० ॥ मृतिर्गुणितिरस्कारोजीवितंगुणिसंश्रयः ॥ फलंस्वर्गापवर्गादिजीवितादगुणिसंश्रितात् ॥ ३१ ॥ तस्मादिमौपरीक्षेहंकयाचित्प्रश्नलीलया ॥ किंमात्रज्ञानकावेताविति तामरसेक्षणौ ॥ ३२ ॥ आदौविचार्यसगुणागुणलेशयुक्तिपश्चात्स्वतोधिकतरंचगुणैर्यदिस्यात् ॥ कुर्यात्ततःसमुपपत्तिवशेनदंडंदंड्यस्ययुक्तिसहसंधनसंभवेन ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे कर्कटी राक्षसीविचारो नाम सप्तसप्ततितमःसर्गः ॥ ७७ ॥

अर्थ—अब मैं राक्षसी होके गुणसे शोभायमान पुरुषकी रक्षा करतीहूं, तो दूसरा ऐसा कौन है जो गुणी पुरुषको अपने हृदयका निर्मल हार न बनावै ॥ २९ ॥ उदार गुणसेयुक्त जो देहधारी संसारमें विचरते हैं वे इस पृथिवीके चन्द्रमा हैं और समागम करनेसे प्राणीयोंको अपने अमृतमय गुणोंसे अति शीतल करते हैं ॥ ३० ॥ गुणियोंका तिरस्कार करना यही मृत्यु है और उनका आश्रय लेना यही जीवन है, क्योंकि गुणियोंके समागमरूपी जीवनसे स्वर्ग और मोक्ष आदि फल सिद्ध होते हैं ॥ ३१ ॥ इसलिये किसी प्रश्नकी लीलासे मैं इनकी परीक्षा करूंगी, कि ये कमलके सदृश नेत्रवाले कितने गुणसे युक्त हैं ॥ ३२ ॥ प्रथम गुणके लेशसेभी इस बातको विचार करके कि यह गुणी है वा निर्गुणी, पीछे यदि अपनेसे अधिक गुणीका विचार करके, यदि गुणोंसे हीन हों तो उसको शास्त्रकी रीतिसे दण्ड दे, और यदि अधिक गुणोंका संभव हो तो दण्ड न करै ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे कर्कटीराक्षसीविचारो नाम सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥ ७७ ॥

अष्टसप्ततितमः सर्गः ॥ ७८ ॥

भयंकर भाषणसेभी भयरहित राजाको कर्कटीका दर्शन और मन्त्रीके वाक्यसे शान्त की हुई कर्कटीके प्रश्नोंका आरम्भ इस ७८ के सर्गमें वर्णन किया गया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथसाराक्षसीरक्षःकुलकाननमंजरी ॥ तमस्येवाभ्रलेखेवगंभीरंविननादह ॥ १ ॥ नादांतेसमुवाचेदंहुंकारापरुषंवचः ॥ गर्जितानंतरंजातकरकाशनिशब्दवत् ॥ २ ॥ भोभोघोराटवीव्योमपदवीशशिभास्करौ ॥ मयामायातमःपीठशिलाकोटरकीटकौ ॥ ३ ॥ कौभवंतौमहाबुद्धीदुर्बुद्धीवासमागतौ ॥ मद्ग्रासपदमापन्नौक्षणान्मरणकोचितौ ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! इसके अनन्तर ज्ञान होनेके कारण राक्षसोंके कुलरूपी वनकी लतारूपिणी उस कर्कटी राक्षसीने अन्धकारमें मेघकी लेखाके समान गम्भीर गर्जना की ॥ १ ॥ उस नादके अन्तमें हुंकारसे भयंकर परन्तु अर्थसे निष्ठुरतारहित ऐसे बचन बोली जैसे गर्जनाके अनन्तर पाषाणवृष्टियुक्त विद्युत्का शब्द ॥ २ ॥ हो हो इस भयंकर बनरूपी आकाशमार्गके चन्द्रमा और सूर्य्य, तथा सम्पूर्ण प्राणियोंके आधारभूत महा अज्ञान पीठिकाके कोटरके केकीके समान ॥ ३ ॥ तुम दोनों महाबुद्धि (आत्मज्ञान) होनेपर दुर्बुद्धीयोंके समान कौन हो और यहां कैसे आयो अब तुम क्षणमेंही दुष्ट मरणके योग्य हो, और मेरे ग्रासभूत तुम आके प्राप्त हुये ॥ ४ ॥

॥ राजोवाच ॥ भोभोभूतककिंस्यास्त्वंक्कतिष्ठसिचदेहकम् ॥ दर्शयास्यास्तवगिरःकाबिभेत्यलिनीध्वनेः ॥ ५ ॥ सिंहवत्सर्ववेगेनपतंत्यर्थेकिलार्थिनः ॥ त्यजसंरंभमारंभंस्वसामर्थ्यंप्रदर्शय ॥ ६ ॥ किंप्रार्थयसिमेब्रूहिददामितवसुव्रत ॥ किंवासंरंभशब्दाभ्यांभीषयास्मान्विभेषिकिम् ॥ ७ ॥ क्षिप्रमाकारशब्दाभ्यांमाययासन्मुखीभव ॥ नकिंचिद्दीर्घसूत्राणांसिद्धयत्यात्मक्षयादृते ॥ ८ ॥

अर्थ—राजाजी बोले–हे तुच्छ जीव ! तूं कौन है ? और कहां रहता है ? अपना अल्प शरीर तो दिखला, इस भ्रमरीके ध्वनिके समान तेरे शब्दसे यहां कौन डरता है ॥ ५ ॥ जो तुच्छभी प्राणी किसी पदार्थके अभिलाषी होते हैं वे सिंहके समान सम्पूर्ण वेगसे अपने अभिलषित पदार्थपर गिरते हैं तुम अपना कोप तथा डरानेके उद्योगको त्यागो और अपना सामर्थ्य देखलाओ ॥ ६ ॥ हे सुव्रत (क्योंकि तुम आत्मज्ञानी प्रतीत होतेहो) अर्थात् उत्तम व्रत करनेवाले तुम क्या चाहतेहो कहो वह मैं देताहुं, क्योंकि हम लोगोंका तुमारे कोप और भयंकर शब्दोंसे क्या होगा, अथवा तुम स्वयंतो नहीं भयभीत हो ॥ ७ ॥ अपने आकार तथा भयकारी शब्दसे और दूसरोंके देखने योग्य शरीरकी कल्पना शक्ति शीघ्र सम्मुख होजाओ, क्योंकि विलम्ब करनेवालोंका अपने नाशके अतिरिक्त कोईभी कार्य्य सिद्ध नहीं होता ॥ ८ ॥

राज्ञेत्युक्तेरम्यमुक्तमितिसंचिंत्यसातयोः ॥ प्रकाशायाप्यधैर्यायननादचजहासच ॥ ९ ॥ ततोददृशतुस्तांतौशब्दपूरितदिग्गणाम् ॥ साट्टहासप्रभापिंडपूरप्रकटिताकृतिम् ॥ १० ॥ कल्पाभ्राशनिकाशेणघृष्टामद्रितटीमिव ॥ स्वनेत्रविद्युद्वलयबलाकोज्ज्वलितांबराम् ॥ ११ ॥ तिमिरैकार्णवौर्वाग्निज्वालाविवलनामिव ॥ गर्जद्घनघटाटोपपीवरासितकंधराम् ॥ १२ ॥

अर्थ—राजाके इतना कहने पश्चात् उस राक्षसीने चिन्तन किया कि बहुत अछा किया, और अपने स्वरूपके प्रकाशके लिये तथा अपना धैर्य्य देखलानेके अर्थ गर्जनाभी की और हंसाभी ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर शब्दसे जितने दिशाओंके गणोंको पूर्णकर दियाहै और अट्टहास (उच्चहास) से दांतोंके प्रभाके पिण्डके प्रवाहोंसे जिसने अपने आकारको प्रकट किया है ऐसी राक्षसीको उन दोनों राजा और मन्त्रीने देखा ॥ १० ॥ प्रलयकालके मेघसे गिरे हुये वज्रकी दगडसे घिसी हुई पर्वतकी तटीके तुल्य, अपने नेत्ररूपी दो बिजुलियोंसे तथा शंखके कटकरूपी बकपंक्तियोंसे आकाशको प्रकाशित करनेवाली ॥ ११ ॥ अन्धकाररूपी समुद्रके वडवानलकी ज्वालाकी लताके समान, मेघोंकी घटाटोप गर्जना सहित अति स्थूल और कृष्णवर्ण है कन्धरा जिसकी ऐसी ॥ १२ ॥

रणद्दशनसंरंभहाहाहतनिशाचराम् ॥ रोदसीकज्जलस्तंभांलीलयोल्लसितांपुनः ॥ १३ ॥ ऊर्ध्वकेशाशिरालांगींकपिलाक्षींतमोमयीम् ॥ यक्षरक्षःपिशाचानामप्यनर्थभयप्रदाम् ॥ १४ ॥ देहरंध्रविशच्छ्वासवातभांकारभीषणाम् ॥ मुसलोलूखलालातहलशूर्पकशेखराम् ॥ १५ ॥ स्फुरंतीमिवकल्पांतेवैदूर्यशिखरस्थलीम् ॥ हासधट्टितविश्वेशांकालरात्रिमिवोदिताम् ॥ १६ ॥

इस कथनसे आपनेको आत्मज्ञान सहित सूचित किया ॥

अर्थ—शब्द करते हुये दांतोंके भयसे हाहाकार शब्दपूर्वक निशाचर, चोर, व्याघ्र तथा शृगाल आदिको मारनेवाली, आकाश तथा पृथिवीको मानों कज्जलसे बांध रही है और पुनः लीलासे शोभायमान ॥ १२ ॥ ऊर्ध्व केशवाली, नाडी संयुक्त शरीर सहित पिंगलवर्ण नेत्रधारिणी, अन्धकारमयी, और यक्ष राक्षस तथा पिशाच आदिकोंभी अनर्थ और भय देनेवाली ॥ १४ ॥ देहके छिद्रोंमें प्रवेश करते हुये श्वास वायुके भांकार शब्दसे भयंकर तथा मुसल और उलूखलकी माला और टूटे हुये शूपकोंमें मस्तकमें धारण करनेवाली ॥१५॥ तथा कल्पके अन्तमें चूर्ण की हुई वैडूर्य्य (मूगे) मणीकी स्थलीके समान देदीप्यमान, और अपने हांससे संसारके बडे २ दानवोंको मर्दित करनेके लिये शिवदूतीके समान उदित ॥ १६ ॥

शरद्व्योमाटवींसाभ्रांकृतदेहामिवागताम् ॥ शरीरिणींमहाभ्राढ्यांयामिनीमिवमांसलाम् ॥ १७ ॥ शरीरसंनिवेशेनपंकपीठमिवोत्थिताम् ॥ तनुंचंद्रार्कयुद्धायतमसेवसमाश्रिताम् ॥ १८ ॥ इंद्रनीलमहाशुभ्रलंबाभ्रयुगलोपमौ ॥ उलूखलादिहारौघौदधानामसितौस्तनौ ॥ १९ ॥ लग्नामंगारकाष्ठेनसमानांचमहातनुम् ॥ द्रुमाभास्पंदसशिरलसद्भुजलतातनुम् ॥ २० ॥

अर्थ—मेघों करके सहित देह धारण किये हुये शरत्कालकी आकाशरूपी महाअरण्यानीके समान आविर्भूत, तथा महामेघोंसे पूर्ण अति पुष्ट, शरीर धारण किये हुये रात्रिके समान आविर्भूत ॥ १७ ॥ तथा शरीर धारण करके पृथिवीके पीठके समान उठी हुई, और मानों चन्द्रमा तथा सूर्य्यसे युद्ध करनेके अर्थ मानों राहुने शरीर धारण कियाहै ॥ १८ ॥ महाशुभ्र इन्द्रनील मणिके समान लम्बायमान दो मेघके तुल्य, और उलूखल आदिके हारोंके समूह सहित तथा कृष्णवर्ण स्तनोंको धारण किये हुये ॥ १९ ॥ जले हुये काष्टके सदृश लांछनयुक्त महाशरीरवाली गति रहित तथा नाडीसहित दो वृक्षोंके समान शोभायमान भुजलताओंसे अति अधिक शरीरधारिणी ॥ २० ॥

तामवेक्ष्यमहावीरौतथैवाक्षुभितौस्थितौ ॥ नतदस्तिविमोहाययद्विविक्तस्यचेतसः ॥२१॥ मंत्र्युवाच ॥ महाराक्षसिसंरंभोमहात्माकिमयंतव ॥ लघवोह्यथवाकार्येलघावप्यतिसंभ्रमाः ॥ २२ ॥ त्यजसंरंभमारंभोनायंतवविराजते ॥ विषयेहिप्रवर्त्ततेधीमंतःस्वार्थसाधकाः ॥ २३ ॥ त्वादृशानांसहस्राणिमशकानामिवाबले ॥ अस्माकंधीरतावात्याव्यूढानितृणपर्णवत् ॥ २४ ॥

अर्थ—उस राक्षसीको देखके वे दोनों महावीर जैसेथे वैसेही क्षोभरहित स्थितथे, क्योंकि सत्य और मिथ्याको विवेक करनेवाले चित्तसहित प्राणीको ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जो मोह उत्पन्न करै ॥ २१ ॥ मन्त्रीजी बोले— हे महाराक्षसि! (यदि तुम महाजीव हो) यह तुमारा महान्‌कोप किसलिये है अथवा (यदि तुम लघुहो) जो लघु होते हैं, वे तुच्छ कार्य्यके अर्थभी महान्‌कोप धारण करते हैं, अर्थात् वाणी मात्रसे सुलभ आहारके लिये यह क्रोध और साहस आदि करना उचित नहीं है ॥ २२ ॥ यह अपना कोप तुम त्यागो क्योंकि ऐसा आरम्भ तुमारा शोभा नहीं देता, बुद्धिमान् लोग योग्य विषयमें अपने कार्य्यके साधक होते हैं, अर्थात् जो कार्य्य सामसे सिद्धहो उनके लिये दण्ड धारण नहीं करते ॥ २३ ॥ हे अबले! (बलशून्य स्त्रि) तुमारे समान मशकोंके सहस्रके सहस्र हम लोगोंके धैर्य्यरूपी वायुके समूहसे तृण और पत्रके समान उडादिये गये ॥ २४ ॥

संरंभद्वारमुत्सृज्यसमतास्वच्छयाधिया ॥ युक्त्याचव्यवहारिण्यास्वार्थःप्राज्ञेनसाध्यते ॥ २५ ॥ स्वेनैवव्यवहारेणकार्यसिध्यतुवानवा ॥ महानियतिरित्येवभ्रमस्यावसरोहिकः ॥ २६ ॥ कथयाभिमतंकिंतेकिमर्थयसिचार्थिनी ॥ अर्थीस्वप्नेपिनास्माकमप्राप्तार्थःपुरोगतः ॥ २७ ॥ इत्युक्तासातदातेनचिंतयामासराक्षसी ॥ अहोनुविमलाचारंसत्वंपुरुषसिंहयोः ॥ २८ ॥

अर्थ—कोपके द्वारको त्यागके समतायुक्त स्वच्छ बुद्धिसे, बुद्धिमानोंके व्यवहारके योग्य युक्तिसे बुद्धिमान् लोग अपना कार्य्य सिद्ध करते हैं ॥ २५ ॥ कार्य्य सिद्धहो या नहो परन्तु सामसिद्ध जो उपायहै उसीका प्रयोग प्रथम करना उचितहै यह अनादिकालसे नियतिका निश्चय है और जब कार्य्यसिद्धि निश्चित है तब भ्रान्त पुरुषोंके योग्य व्यवहार करनेका क्या अवसर है ॥ २६ ॥ कहो तुमारा अभिमत क्या है तुम अभिलाषिणी किस पदार्थको चाहती हो, क्योंकि स्वप्नमें कोई अर्थी अपना अर्थ पाये विना हम लोगोंके सम्मुखसे कभी नहीं गया ॥ २७ ॥ हे रामजी ! उस मंत्रीसे इसप्रकार कही हुई राक्षसीने अपने मनमें चिन्तन किया कि अहो ! इन पुरुषसिंहोंका कैसा विमल आचार, धैर्य तथा बुद्धिबल है ॥ २८ ॥

नसामान्याविमौमन्येविचित्रेयंचमत्कृतिः ॥ वचोवक्त्रेक्षणेनैववदत्यंतर्विनिश्चयम् ॥ २९ ॥ वचोवक्त्रेक्षणद्वारैर्धीमतामाशयामिथः ॥ एकीभवंतिसरितांपयांसिवलनैरिव ॥ ३० ॥ आभ्यांप्रायःपरिज्ञातोममाभवोनयोर्मया ॥ नविनाश्यौमयाचेमौस्वयमेवाविनाशिनौ ॥ ३१॥ मन्येभवेतामात्मज्ञौनात्मज्ञानादृतेमतिः ॥ प्रमृष्टक्षदसद्भावाद्भवत्यस्तभयामृतौ ॥ ३२ ॥

अर्थ—ये दोनों कोई सामान्य पुरुष नहीं हैं, यह चमत्कृति कुछ विचित्रही है इनके मुख तथा नेत्रके देखनेसे और इनके बचनसे यह सूचित होताहै कि इनके अन्तःकरणमें तत्वका निश्चय है ॥ २९ ॥ वाणीसे मुख तथा नेत्रके दर्शन द्वारा बुद्धिमानोंके अभिप्राय परस्पर ऐसे मिलके एक हो जाते हैं जैसे समागमोंसे नदियोंके जल ॥ ३० ॥ प्रायः इन दोनोंने मेरा और मैंने इनका अभिप्राय जान लिया, इसलिये इनका विनाश मुझे नहीं करना चाहिये क्योंकि ये आत्मरूपसे स्वयं अविनाशी हैं ॥ ३१ ॥ मैं समझतीहुं कि ये दोनों आत्मज्ञानी हैं, क्योंकि नष्ट होगयाहै जीवन मरणका विश्वास जिससे ऐसे आत्मज्ञानके विना प्राणी मरणके विषयमें भयरहित नहीं होते ॥ ३२ ॥

तदेतौपरिपृच्छामिकिंचित्संदेहमुत्थितम् ॥ प्रज्ञंप्राप्यनपृच्छंतियेकेचित्तेनराधमाः ॥ ३३ ॥ इतिसंचिंत्यपृच्छायैतन्वानावसरंततः ॥ अकालकल्पाभ्ररवंहासंसंयम्यसाब्रवीत् ॥ ३४ ॥ कौभवंतौनरौधीरौकथ्यतामितिमेनघौ ॥ जायतेदर्शनादेवमैत्रीविशदचेतसाम् ॥ ३५ ॥ मंत्र्युवाच ॥ अयंराजाकिरातानामस्याहंमंत्रितांगतः ॥ उद्यतौरात्रिचर्यैणत्वादृग्जनविनिग्रहे ॥ ३६ ॥

अर्थ—इसलिये कुछ सन्देह उत्पन्न हुआहै सो इनसे पूंछू, क्योंकि बुद्धिमान् पाके जो नहीं पूंछते वे मनुष्योंमें अधम हैं ॥ ३३ ॥ ऐसा विचार करके पूंछनेके अर्थ, उस समय उस शरीर (शरीरकी दीर्घता) से कुछ अवसर न होनेके कारण, अकालमें कल्पान्त मेघके सदृश शब्दवाले अपने हाल रोककर वह राक्षसी बोली ॥ ३४ ॥ हे पापरहित धीर पुरुष ! तुम दोनों कौन हो ? क्योंकि उदार चित्तवालोंके दर्शनसेही मित्रता होजाती है ॥ ३५ ॥ मंत्रीजी बोले-हे राक्षसी यह तो किरातोंका राजा है और मैं इसका मंत्रीहुं, और रात्रिके भ्रमणसे तुमारे सदृश हिंसक जीवोंको दमन करनेके अर्थ उद्यत हैं ॥ ३६ ॥

राज्ञोरात्रिंदिवंधर्मोदुष्टभूतविनिग्रहः ॥ स्वधर्मत्यागिनोयेतुतेविनाशानलेंधनम् ॥ ३७ ॥ राक्षस्युवाच ॥ राजंस्त्वमसिदुर्मंत्रीदुर्मंत्रीननृपोभवेत् ॥ सद्रूपस्यभवेन्मंत्रीराजासन्मंत्रिणोभवेत्॥३८॥राजाचादौविवेकेनयोजनीयःसुमंत्रिणा ॥ तेनार्थतामुपायातियथाराजातथाप्रजाः ॥ ३९ ॥ समस्तगुणजालानामध्यात्मज्ञानमुत्तमम् ॥ तद्विद्राजाभवेद्राजातद्विन्मंत्रीचमंत्रवित् ॥ ४० ॥

अर्थ—क्योंकि-राजाका यही धर्म है कि रात्रि दिन दुष्ट जीवोंके विनिग्रह (दमन करके दण्ड देने) में उद्यत रहे, और जो अपने धर्मको त्याग देते हैं वे विनाशरूप अग्निके इन्धन होते हैं ॥ ३७ ॥ राक्षसी बोले—हे राजन् ! मुझे ऐसा सम्भव होताहै कि तुमारा मन्त्री दुष्टहै और जिसका मन्त्री दुष्टहै वह राजा नहीं होसकता उत्तम राजाहीका मन्त्रीहो सकताहै, और जो उत्तम मन्त्री है उसीका राजा होताहै ॥ ३८ ॥ राजाको उचितहै कि विवेकसे प्रथम मन्त्रीसे युक्तहो उसी (उत्तम मंत्री) से यह श्रेष्ठताको प्राप्तहै, और जैसा राजा होताहै वैसीही उसकी प्रजा होती है अर्थात् श्रेष्ठ राजा होनेसे प्रजाभी श्रेष्ठ होगी और राजाके नष्ट होनेसे प्रजाभी नष्ट होगी ॥ ३९ ॥ सम्पूर्ण गुणोंके समूहोंके आत्मज्ञान जो है वही उत्तम है, उस आत्माको जाननेवाला उत्तम राजा होसक्ताहै, और उसी आत्माको जाननेसे मंत्रीभी रहस्य मंत्रको जान सकताहै ॥ ४० ॥

प्रभुत्वंसमदृष्टित्वंतच्चस्याद्राजविद्यया ॥ तामेवयोनजानातिनासौमंत्रीनसोऽधिपः ॥ ४१ ॥ भवंतौतद्विदौसाधूयदितच्छ्रेयआप्स्नुथः ॥ नोचेदनर्थदौस्वस्याःप्रकृतेरद्म्यहंयुवाम् ॥ ४२ ॥ एकोपायेनमत्याश्वोद्दालकावुत्तरिष्यथः ॥ मत्प्रश्नपंजरंसारंचेद्विचारयथोधिया ॥४३॥ प्रश्नानिमान्कथयपार्थिववाच मंत्रिंस्तत्रार्थिनीभृशमहंपरिपूरयार्थम् ॥ अंगीकृतार्थमददत्कइवास्तिलोकेदोषेणसंक्षयकरेणनयुज्यतेयः ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे कर्कट्युपाख्याने राक्षसीवर्णनं नामाष्टसप्ततितमः सर्गः ॥ ७८ ॥

अर्थ—समदृष्टिके आधीन जो प्रभुता है वह आत्मज्ञानरूप राजविद्याके विना नहीं होसकती, उस राजविद्याहीको जो नहीं जानता न वह मंत्री मंत्री है और न वह राजा राजाहै ॥ ४१ ॥ यदि तुम दोनों इस राजविद्या (आ-

त्मज्ञान विद्या) को जानतेहो तो साधुहो और उसके कल्याणको पाओगे, और नहीं जानते तो अनर्थकारी तुमहो और मैं अपनी प्रकृतिके अनुकूल तुमको खाजाउंगी ॥ ४२ ॥ यदि तुम मेरे प्रश्न जालको अपनी बुद्धिसे विचारोगे तो इसी एक उपायसे उस प्रीतिके पात्र होओगे जिसके बालक लोग मातापिताकी ओरसे होते हैं ॥ ४३ ॥ हे राजन्! तथा हे मंत्रिन्! मेरे इन वक्ष्यमाण प्रश्नोंको कहिये मैं इन्हींके उत्तरकी अति अभिलाषिणी हुं उस अभिलाषाको पूर्ण कीजिये, तुमने मेरे अभिलाषके पूर्ण करनेके प्रतिज्ञा की है, और जो अंगीकृत अर्थको नहीं देता वह ऐसा कौन है जो नाशकारी दोषसे युक्त न हो ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे कर्कट्युपाख्याने राक्षसीवर्णनं नाम अष्टसप्ततितमः सर्गः ॥ ७८ ॥

एकोनाशीतितमः सर्गः ॥ ७९ ॥

अज्ञानियोंके लिये वज्रके समान और आत्मज्ञानियोंके हृदयके अतिप्रिय ऐसे ७२ प्रश्न कर्कटीने किये हैं ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इत्युक्त्वाराक्षसीप्रश्नान्सावक्तुमुपचक्रमे ॥ उच्यतामितिराज्ञोक्तातानिमान्शृणुराघव ॥ १ ॥ राक्षस्युवाच ॥ एकस्यानेकसंख्यस्यकस्याणोरंबुधेरिव ॥ अंतर्ब्रह्माण्डलक्षाणिलीयंतेबुद्बुदाइव ॥ २ ॥ किमाकाशमनाकाशंनकिंचित्किंचिदेवकिम् ॥ कोहमेवासिसंपन्नःकोभवानप्यहंस्थितः॥३ गच्छन्नगच्छतिचकःकोऽतिष्ठन्नपितिष्ठति ॥ कश्चेतनोपिपाषाणःकश्चिद्व्योम्निविचित्रकृत् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी! जब राक्षसीने इतना कहा तब राजाने कहा कि अच्छा तुम अपने प्रश्नोंको कहो तब राक्षसीने उन प्रश्नोंका कहना आरम्भ किया सो तुम उनको सुनो ॥ १ ॥ राक्षसी बोले—यथार्थमें एक परन्तु उपाधि भेदसे अनेक समुद्रके समान वह कौन अणु है जिसके भीतर बुद्बुदके तुल्य लाखों ब्रह्माण्ड लीन होतेहैं ॥ २ ॥ शून्यता रहित कौन आकाश है? कुछ नहीं और कुछ कौन वस्तु है? मैं कौनहुं? और तुमभी उत्पन्न होके अहंरूपसे कौन स्थित हो? ॥ ३ ॥ चलताहुआभी कौन नहीं जाता? और कौन गतिकी निवृत्ति न करतेभी स्थित है? व कौन है जो चेतन होते हुयेभी पाषाणके समान घन है? और चिदाकाशमें विशेष चित्र करनेवाला कौन है? ॥ ४ ॥

वह्नितामजहच्चैवकश्चवह्निरदाहकः ॥ अवह्नेर्जायतेवह्निःकस्माद्राजंन्निरंतरम् ॥ ५ ॥ अचंद्रार्काग्नितारोपिकोऽविनाशःप्रकाशकः ॥ अनेत्रलभ्यात्कस्माच्चप्रकाशःसंप्रवर्त्तते ॥ ६ ॥ लतागुल्मांकुरादीनांजात्यंधानांतथैवच ॥ अन्येषामप्यनक्षाणामालोकःकइवोत्तमः ॥ ७ ॥ जनकःकोंबरादीनांसत्तायाःकःस्वभावदः ॥ कोजगद्रत्नकोशःस्यात्कस्यकोशोमणेर्जगत् ॥ ८ ॥

अर्थ—अग्निकेरूपको न त्यागते हुयेभी वह कौन अग्नि है जो दाह नहीं उत्पन्न करता? तथा हे राजन्! जड कौन है जो अग्नि नहीं है परन्तु उससे अग्नि निरन्तर उत्पन्न होताहै ॥ ५ ॥ वह अविनाशी सबका प्रकाशक कौन है? जो चन्द्र सूर्य अग्नि और तारागणोंसेभी भिन्न है वह कौन है? जो नेत्रका विषय नहीं है परन्तु उससे प्रकाश निरंतर होताहै? ॥ ६ ॥ लता गुल्म अंकुर आदिका तथा जन्मान्धोंका, और अन्यभी इन्द्रिय रहित जीवोंका उत्तम प्रकाशक कौन है? ॥ ७ ॥ आकाशादिका उत्पन्न करनेवाला कौन है, और सबको सत्ता देनेवाला कौन है? जगत्रूपी रत्नको कोश (खजाना) कौन है? और किस माणिक कोशमें यह जगत है? ॥ ८ ॥

कोणुस्तमःप्रकाशःस्यात्कोणुरस्तिचनास्तिच ॥ कोणुर्दूरेप्यदूरेचकोणुरेवमहागिरिः ॥ ९ ॥ निमेषएवकःकल्पःकःकल्पोपिनिमेषकः ॥ किंप्रत्यक्षमसद्रूपंकिंचेतनमचेतनम् ॥ १० ॥ कश्चवायुरवायुश्चकःशब्दोऽशब्दएवकः ॥ कःसर्वंनचकिंचिच्चकोहंनाहंचकिंभवेत् ॥ ११ ॥ किंप्रयत्नशतप्राप्यंलब्धंवापिबहुजन्मनि ॥ लब्धंनकिंचिद्भवतिकिंतुसर्वंनलभ्यते ॥ १२ ॥

अर्थ—वह कौन अणु है जो तमः प्रकाशस्वरूप है? और वह कौन अणु है जो अस्तिरूप है और नास्ति (नहीं है) ऐसा प्रतीत होता है, वह कौन अणु है जो दूरभी है और समीपभी है? तथा वह कौन अणु है जो महान् पर्वतके तुल्य है ॥ ९ ॥ निमेषरूपही कल्प कौन है और कल्पभी निमेष कौन है? कौन ऐसा है जो प्रत्यक्ष भासमा-

नभी तथापि मूढोंकी दृष्टिमें असत्के सदृश प्रतीत होता है ? और वह कौन है जो चेतन स्वरूपभी है तथापि मूर्खोंको अचेतनके तुल्य भासता है ? ॥ १० ॥ वह कौन है जो वायुरूप है और अवायुरूपभी है, और वह कौन है जो शब्द तथा अशब्दस्वरूपभी है ? और वह कौन है जो सब कुछ होते हुयेभी अकिंचित् है ? और अहंरूप तथा अनहरूप कौन है ? ॥ ११ ॥ अनेक जन्मोंमें आत्मस्वरूप होनेसे प्राप्त होनेपरभी सैकडों प्रयत्नोंसे प्राप्य कौन वस्तु है ? वह कौन पदार्थ जिसके लाभ होनेपर अपूर्व लाभ कुछ नहीं होता, किन्तु सम्पूर्णरूपसे लब्ध नहीं होता ॥ १२ ॥

स्वस्थेनजीवितेनोच्चैःकेनात्मैवापहारितः ॥ केनाणुनांतःक्रियतेमेरुस्त्रिभुवनंतृणम् ॥ १३ ॥ केनाप्यणुकमात्रेणपूरिताशतयोजनी ॥ कोणुरेवभवन्मातिनयोजनशतेष्वपि ॥ १४ ॥ केनालोकनमात्रेणजगद्बालःप्रनाट्यते ॥ कस्याणोरुदरेसंतिकिलावनिभृतांघटाः ॥ १५ ॥ अणुत्वमजहत्कोणुर्मेरोःस्थूलतराकृतिः ॥ वालाग्रशतभागात्माकोणुरुच्चैःशिलोच्चयः ॥ १६ ॥

अर्थ—स्वस्थ और उच्च जीवनसे अपने आत्माहीको नाशके तुल्य किसने किया ? और वह कौन अणु है जो मेरुकोभी अपनेभीतर धारण करलेताहै और वह कौन है जो त्रिभुवनकोभी तृणके तुल्य बनाताहै ॥ १३ ॥ वह कौन है जो अनुरूप होनेपरभी सैकडों योजनोंको पूर्णकर रखताहै और वह कौन है जो अणुमात्र होते हुयेभी सैकडो योजनोंमेंभी नहीं समाता ? ॥ १४ ॥ किसके आलोकन मात्रसे जगत्रूपी बालक नाचने लगता है, वह कौन अणु है जिसके उदरमें पर्वतोंके समूहके समूह प्रविष्ट है ॥ १५ ॥ वह कौन है जो अपने अणु (सूक्ष्मरूप) को न त्यागते हुयेभी मेरुसेभी अधिकतर स्थूल आकारका है ? वह कौन अणु है जो वालके अग्रभागके तुल्यरूप होते हुयेभी महान पर्वतके तुल्य है ? ॥ १६ ॥

कोणुःप्रकाशतमसांदीपःप्रकटनप्रदः ॥ कस्याणोरुदरेसंतिसमग्रानुभवाणवः ॥ १७ ॥ कोणुरत्यंतनिःस्वादुरपिसंस्वदतेनिशम् ॥ केनसंत्यजतासर्वमणुनासर्वमाश्रितम् ॥ १८ ॥ केनात्माच्छादनाशक्तेनाणुनाच्छादितंजगत् ॥ जगल्लयेनकस्याणोःसद्भूतमपिजीवति ॥ १९ ॥ अजातावयवःकोणुःसहस्रकरलोचनः ॥ कोनिमेषोमहाकल्पःकल्पकोटिशतानिच ॥ २० ॥

अर्थ—वह कौन अणु है जो प्रकाश और अन्धकारकोभी प्रकट करता है ? और वह कौन अणुहै जिसके उदरमें सम्पूर्ण वृत्ति अवच्छिन (वृत्ति सहित) ज्ञानके लेश है ? ॥१७॥ वह कौन अणु है जिसका आस्वाद निरन्तर होताहै तथापि वह मधुर आदि रससे शून्य है ! वह कौन अणु है जो सम्पूर्ण वस्तुको त्यागे हुयेभी सबका आश्रय है ॥ १८ ॥ वह कौन अणु है जो अपने स्वरूपको आच्छादन करनेमें असमर्थ होकेभी जगत्को आच्छादन किये है ? वह कौन अणु है जिसकी सत्तासे प्रलयमें तिरोहितभी यह जगत् सत्रूप होके जीता है ? ॥ १९ ॥ वह कौन अणु है जिसके कोईभी अंग उत्पन्न नहीं हुये तथापि सहस्रों (हजारों) हस्त तथा नेत्र आदि वाला है ? और वह कौन निमेष है जो महाकल्प तथा सैकडों कल्पके समान है ? ॥ २० ॥

अणौजगंतितिष्ठंतिकस्मिन्बीजइवद्रुमः ॥ बीजानिनिष्कलांतानिस्फुटान्यनुदितान्यपि ॥२१॥ कल्पःकस्यनिमेषस्यबीजस्येवांतरस्थितः ॥ कःप्रयोजनकर्तृत्वमप्यनाश्रित्यकारकः ॥२२॥ दृश्यसंपत्तयेद्रष्टास्वात्मानंदृश्यतांनयन् ॥ दृश्यंपश्यन्स्वमात्मानंकोहिपश्यत्यनेत्रवान् ॥ २३ ॥ अंतर्गलितदृश्यंचकआत्मानमखंडितम् ॥ दृश्यासंपत्तयेपश्यन्पुरोदृश्यंनपश्यति ॥ २४ ॥

अर्थ—किस अणुमें अनुत्पन्नभी अनेक जगत् प्रलयमें ऐसे स्थित रहतेहैं जैसे बीजमें वृक्ष और सृष्टिके आरम्भमें अव्यक्त (अस्पष्ट) है बीज परम्पराकी अवधि जिनकी ऐसे बीज जो सृष्टिकालमें जगत्रूपसे विकसित होते हैं वे किसमें सदा उत्पत्ति रहित है ? ॥ २१ ॥ बीजके अन्तर्गत वृक्षके समान किस निमेषके भीतर कल्प स्थित है ? तथा कारककी प्रवृत्ति तथा कर्तृतासे रहित होकेभी सबका कर्ता कौन है ? ॥ २२ ॥ दृश्य (भोग्य पदार्थ) की सिद्धिके अर्थ अपने स्वरूपकोही दृश्यभावको प्राप्त करता हुआ द्रष्टा कौन है ? और बाह्य दृष्टिसे प्राप्त जगत्को देखता हुआ नेत्र रहित होकेभी अपने आत्माको कौन देखता है ? ॥ २३ ॥ दृश्यकी मिथ्यात्व सिद्धिके अर्थ अन्तःकरणमें दृश्य दृष्टिसे शून्य अखण्डित अपने आत्मस्वरूपको देखते हुयेभी सम्मुख स्थित दृश्य कौन नहीं देखता?॥२४

आत्मानंदर्शनंदृश्यंकोभासयतिदृश्यवत् ॥ कटकादीनिहेमेवविकीर्णंकेनचत्रयम् ॥ २५ ॥ कस्मान्नकिंचित्पृथगूर्म्यादीवमहांभसः ॥ कस्येच्छयापृथक्चास्तिवीचितेवमहांभसः ॥ २६ ॥ दिक्कालाद्यनव

च्छिन्नादेकस्मादसतःसतः ॥ द्वैतमप्यपृथक्कस्माद्द्रवतेवमहांभसः ॥ २७ आत्मानंदर्शनंदृश्यंसदसच्च जगत्रयम् ॥ कोंतर्बीजमिवांतस्थंस्थितःकृत्वात्रिकालगः ॥ २८ ॥

अर्थ—अपने आत्मरूप द्रष्टाको, पदार्थाकार वृत्तिको, और दृश्यके तुल्य चक्षुप आदि इन्द्रियोंको प्रत्यक्ष रूपसे कौन प्रकाश करताहै ? और सुवर्ण कटक आदिके तुल्य द्रष्टा, दर्शन तथा दृश्यको अपने आत्मामें विक्षेप शक्तिसे किसने प्रकट कियाहै ॥ २५ ॥ महान् समुद्रसे तरंग आदिके सदृश किससे यह प्रपंच किंचित् भी पृथक् नहीं है ? और महान् समुद्रसे तरंगताके तुल्य किसकी इच्छासे यह पृथक् तथा कदांपर है ? ॥ २६ ॥ महान् समुद्रसे द्रवताके तुल्य किस देशकाल तथा वस्तुके परिच्छेदसे रहित सूक्ष्म, असत्के समान सत्रूपसे यह द्वैत होते हुये भी अपृथक् है ? ॥ २७ ॥ आत्मा (द्रष्टा) दर्शन, तथा दृश्य, और उद्भूत अवस्थायुक्त तथा तिरोहित अवस्थायुक्त तीनों लोकको बीजके समान अपने अपने अन्तर्गत करके कौन सर्वदा स्थित है ? ॥ २८ ॥

भूतंभवद्भविष्यच्चजगद्वृंदंमहद्भ्रमम् ॥ नित्यंसमस्यकस्यांतर्बीजस्यांतरिवद्रुमः ॥ २९ ॥ बीजंद्रुमतयेवा शुद्रुमोबीजतयेवच ॥ स्वमेकमजहद्रूपमुदेत्यनुदितोपिकः ॥ ३० ॥ बिसतंतुर्महामेरुर्भोराजन्यदपेक्ष या ॥ तस्यकस्योदरेसंतिमेरुमंदरकोटयः ॥ ३१ ॥ केनेदमाततमनेकचिदेवविश्वंकिंसारएवमतिवल्ग सिहंसिपासि ॥ किंदर्शनेननभवस्यथवासदैवनूनंभवस्यमलदृग्वद्नःस्वशांत्यै ॥ ३२ ॥

अर्थ—भूत, वर्तमान, और भविष्यत् यह जगत् समूह इस महान् भ्रमकेबीजके भीतर वृक्षके तुल्य किस समानके भीतर नित्य स्थित है ? ॥ २९ ॥ वह कौन है, जो अपने एकरूपको त्याग न करते हुये भी बीजको वृक्षरूप करके और वृक्षको बीजरूप करके स्वयं सदा अनुत्पन्नस्वरूप विकारात्मक जगत्रूपसे उत्पन्न होताहै ? ॥ ३० ॥ हे राजन् ! वह कौन है जिसकी दृढताकी अपेक्षा महामेरुभी कमलके सूत्र तुल्यहै, और कौनहै जिसके उदरमें करोडों मन्दराचल हैं ? ॥ ३१ ॥ उपाधि भेदसे अनेक चेतन हैं जिसमें ऐसे इस विश्वको सृष्टिरूपसे किसने विस्तारित कियाहै ? तुम किसके बलसे सम्पूर्ण व्यवहारोंमें अतिशय करके प्रवृत्त होतेहो ? तथा दुष्ट जनोंका हनन और उत्तम प्रजाओंका पालन करतेहो ? और किसके दर्शनसे तुम अमल दृष्टि होके उससे भिन्न निश्चय करके नहींहो, उस वस्तुको हम लोगोंके शान्तिके अर्थ, तथा अपने मृत्युके मोक्षार्थ कहो ॥ ३२ ॥

एषोसौप्रगलतुमंशयोममोच्चैश्चित्तश्रीमुखमिहिकामलानुलेपः ॥ यस्याग्रेनगलतिसंशयःसमूलोनैवा सौकेचिदपिपंडितोक्तिमेति ॥ ३३ ॥ एवंमेयदिनविनेष्यथःक्रमोक्तंसंशांतंलघुतरमसंशयंसुबुद्धी ॥ तद्रक्षोजठरहुताशनेंधनत्वंनिर्विघ्नंझटितिगमिष्यथःक्षणेन ॥ ३४ ॥ पश्चात्तांजनपदमंडलींसमंताद्ग्राव त्कीसुरुजठराक्षणाद्ग्रसेहम् ॥ एवंतेभवतुसुराजतेतिमन्येमूर्खाणामतिरसएवसंक्षयाय ॥ ३५ ॥ इत्यु क्त्वाविपुलगभीरमेघनादप्रोल्लासप्रकटगिरानिशाचरीसा ॥ तूष्णीमप्यतिविकटाकृतिस्तदासीच्छुद्धां तःशरदमलाभ्रमंडलीव ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे राक्षसीप्रश्नो नामैकोनाशीतितमःसर्गः ॥ ७९ ॥

अर्थ हे राजन् ! तुमारे उत्तरसे स्वात्माकार वृत्तिके विषयमें यह हमारा महान् संशय अमल चन्द्रमाके आवरणके सदृश नष्टहो, क्योंकि जिसके सम्मुख यह संशय नहीं नष्ट होता वह मूल अविद्यासहित जन कदापि पण्डितोंकी गणनामें नहीं आसकता ॥ ३३ ॥ इसप्रकार क्रमसे कहे हुये हमारे संशयको तुम दोनों उत्तम बुद्धिमान् शीघ्र शान्त नहीं करोगे तो शीघ्रही क्षणमेंही दोनों राक्षस जातिके उदराग्निके इन्धनता (भक्ष्यता) प्राप्त होओगे ॥ ३४ ॥ और तुमारे नाशके उत्तर महान् कुक्षिवाली मैं शीघ्रही तुमारे सम्पूर्ण राज्यका ग्रास कर जाऊंगी, इसलिये मैं चाहतीहूं कि मेरे प्रश्नोंके उत्तरदानसे तुमारेसहित सम्पूर्ण प्रजाकी सुराजता (तुमारे पालनसे प्रजाका कल्याण) हो, क्योंकि आत्मज्ञानरहित मूर्खोंकी अति भोग लम्पटता उनके नाशकेही लियेहै ॥ ३५ ॥ हे रामजी ! इसप्रकार विशाल मेघके समान गम्भीर और उच्चवाणीसे वह निशाचरी कहके, भयंकररूप धारण करनेपरभी अन्तःशुद्ध शरत्कालकी मेघ मण्डलीके समान मौन होगई ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे कर्कट्युपाख्याने राक्षसीप्रश्नो नामैकोनाशीतितमः सर्गः ॥ ७९ ॥

अशीतितमः सर्गः ॥ ८० ॥

प्रथम मंत्रीने इस ८० के सर्गमें अनुक्रम तथा विपरीत क्रमसे सूक्ष्म युक्तियोंसे प्रश्नोंका समाधान कियाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ महानिशिमहारण्येमहाराक्षसकन्यया ॥ इतिप्रोक्तेमहाप्रश्नेमहामंत्रीगिरंददौ ॥ १ ॥ मंत्र्युवाच ॥ शृणुतोयदसंकाशेप्रश्नमेतंभिनद्मिते ॥ अनुक्रमात्मकंमत्तंगजेंद्रमिवकेसरी ॥ २॥ भवत्यापरमात्मैषकथितःकमलेक्षणे ॥ अनयैववचोभंग्याप्रश्नविदूबोधयोग्यया ॥ ३॥ अनाख्यत्वादगम्यत्वान्मनःषष्ठेंद्रियस्थितेः ॥ चिन्मात्रमेवमात्माणुराकाशादपिसूक्ष्मकः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-महारात्रि, महाजंगलमें, महाराक्षसीके, इस महाप्रश्न करनेपर महामंत्री यह वाणी बोला ॥ १ ॥ मंत्री बोले-हे मेघके तुल्य शोभायमान राक्षसी ! तुमरे इस अनुक्रमात्मक प्रश्नको ऐसे भेदन करताहूं जैसे मत्त गजेंद्रको सिंह ॥ २ ॥ हे कमलके सदृश पिंगलवर्ण नेत्रवाली ! तुमने प्रश्नवेत्ताओंके बोधयोग्य इस अपनी बचनरूपी रचनासे परमात्माहीका कथन कियाहै ॥ ३ ॥ मनसहित छओंसे अकथनीय तथा अगम्य होनेके कारण चिन्मात्र जो आत्मा है वही अणुस्वरूप और आकाशसेभी सूक्ष्म है ॥ ४ ॥

चिदणोःपरमस्यांतःसदिवासदिवाप्यिवा ॥ बीजेंतर्द्रुमसत्तेवस्फुरतीदंजगत्स्थितम् ॥ ५ ॥ सत्किंचिदनुभूतित्वात्सर्वात्मकतयास्वतः ॥ तदात्मकतयापूर्वभावाःसत्तांकिलागताः ॥ ६ ॥ आकाशंबाह्यशून्यत्वादनाकाशंतुचित्त्वतः ॥ अतींद्रियत्वान्नोकिंचित्सएवाणुरनंतकः ॥ ७ ॥ सर्वात्मकत्वात्सुकेवतेन किंचिन्नकिंचन ॥ चिदणोःप्रतिभासःस्यादेकस्यानेकतोदिता ॥ असत्येत्रयथाहेम्नःकटकादितथापरे॥८॥

अर्थ—उसी परम चिदणुके भीतर सत्स्वरूप अथवा असत्स्वरूप यह जगत् ऐसे स्फुरताहै जैसे बीजके भीतर वृक्षकी सत्ता इससे किस अणु समुद्रके अन्तर्गत यह जगत् इस प्रश्नका उत्तर होगया ॥ ५ ॥ जो कुछ सत्स्वरूप वस्तु है उन सबका अनुभवरूप होनेके कारण, और स्वयं सबका आत्मा होनेसे सृष्टिके आदिमें उसका रूप होनेहीसे सब पदार्थोंको सत्ता प्राप्त हुई ॥ ६ ॥ आकाश और अनाकाश क्या है इसका उत्तर यह है कि वही चिदणु परमात्मा बाह्य वस्तुओंसे रहित (शून्य) होनेसे आकाश है और शुद्धचेतनरूप होनेसे आकाशसे भिन्नभी है और वही अनन्त चिदणु इन्द्रियोंका विषय न होनेसे किंचित् स्वरूपभी नहीं है ॥ ७ ॥ अपनाही स्वरूप सब कुछ होनेसे और साक्षात्कृत आत्मासे अपने स्वरूपमेंही सबको प्रवेश करने सब और कुछ नहीं है, इससे सब कुछ और कुछ नहीं इस प्रश्नका उत्तर होगया, और एकही अनेक संख्यायुक्त है,इस प्रश्नका उत्तर यह है कि एकही चेतन अणुकी जो प्रतिभा (प्रतिबिम्ब) है वही सुवर्णकटक आदिके तुल्य परमात्मस्वरूपमें अनेकतारूपसे आविर्भूत है वास्तवमें अनेकत्व नहीं है इसीसे कटक (कडे) आदि जैसे सुवर्णमें इस प्रश्नकाभी उत्तर होगया ॥ ८ ॥

एषोणुःपरमाकाशःसूक्ष्मत्वादप्यलक्षितः ॥ मनःषष्ठेंद्रियातीतःस्थितःसर्वात्मकोपिसन् ॥ ९ ॥ सर्वात्मकत्वान्नवासौशून्योभवतिकर्हिचित् ॥ यदस्तिनतदस्तीतिवक्तामंताइतिस्मृतः ॥ १० ॥ कयाचिदपियुक्त्येहसतोसत्त्वंनयुज्यते ॥ सर्वात्मास्वात्मगुप्तेनकर्पूरेणेवदृश्यते ॥ ११ ॥ चिन्मात्राणुःसएवेह सर्वकिंचिन्मनःस्थितम ॥ नकिंचिदिंद्रियातीतरूपत्वादमलःस्थितः ॥ १२ ॥

अर्थ—और कौन अणुसम तथा प्रकाशरूप है इत्यादि प्रश्नोंमें जो पुनः पुनः अणु शब्दका प्रयोग है उनकाभी पूर्वोक्त अभिप्राय इसप्रकार है कि यही चिदणु परम आकाश सबका प्रकाशक है और सूक्ष्म होनेसे अलक्षित तथा सर्वरूप होनेपरभी मन सहित छः इन्द्रियोंके विषयसे परे हैं ॥ ९ ॥ और कौन अणु हैभी और नहीं है इस प्रश्नमें नहीं है यह अंश प्रमाणसे बाधित है क्योंकि जो सर्वात्मक है वह शून्यरूप कदापि नहीं होसकता, इसका यह कारण है कि "वह हैभी और नहीं है" ऐसा कहने और माननेसे पुरुष आत्माही रूपसे कहागयाहै और अपने आत्माका निषेध हो नहीं सकता ॥ १० ॥ क्योंकि किसी युक्तिसेभी सत् असत् नहीं होसकता, और यदि यह कहो कि है तो देख क्यों नहीं पडता तो अपनी सुगन्धतासे कर्पूरके सदृश सबमें व्याप्त सत्स्वरूपसे वह अपना आत्मा अनुभूत होताहै ॥११॥ कौन सब कुछ है और कुछभी नहीं है इसका उत्तर यह है कि वही चिन्मात्र अणु मन और इन्द्रियोंकी वृत्तिसे नानारूपसे प्रतीत होनेसे किंचित् परिच्छिन्न मनरूपही सब कुछ है इसी कारणसे मन तथा इन्द्रियादिसे अपरिच्छिन्न स्वाभाविक रूपसे किसीका रूप नहीं है केवल शुद्ध निर्मल चेतनरूपसे स्थितहै ॥ १२ ॥

सएवचैकोनेकश्चसर्वसत्वात्मवेदनात् ॥ सएवेदंजगद्धत्तेजगत्कोशस्तथैवहि ॥ १३ ॥ इमाश्चित्तमहांभोधौत्रिजगल्लववीचयः ॥ प्रज्ञास्तस्मिन्कचंत्यप्सुद्रवत्वाच्चकताइव ॥ १४॥ चित्तेंद्रियाद्यलभ्यत्वात्सो

णुःशून्यस्वरूपवत् ॥ स्वसंवेदनलभ्यत्वादशून्यंव्योमरूप्यपि ॥ १५ ॥ सोहंभवानेवभवान्संपन्नोऽद्वैतवेदनात् ॥ सभवान्नभवेन्नाहंजातोबोधबृहद्वपुः ॥ १६ ॥

अर्थ—इसीसे वही परमात्मा एक होनेपरभी उपाधि भेदसे अनेक रूपभी है, और वही सबको अपना स्वरूप अनुभव करनेसे सम्पूर्ण जगत्‌को धारण करताहै और जगत्‌रूपी रत्नोंका कोशहै, इससे जगत्‌रूपी रत्नोंका कोश कौन होसकताहै इसका उत्तर होगया ॥ १३ ॥ महान् समुद्रसे तरंगादिके तुल्य किससे पृथक् कुछ नहीं है इसका उत्तर यह है कि चित्‌रूपसे विकारी उसी चेतनरूप महासमुद्रमें ये जगत्‌रूपी तुच्छ तरंग चित्तके विकल्प मात्ररूप ऐसे स्फुरित होरहे हैं जैसे जलोंमें द्रवताके कारण चक्रता (भवँरेह) ॥ १४ ॥ देशकालादिके परिच्छेदसे शून्य सत् असत् उभयरूप किससे यह द्वैत पृथक् नहीं है इत्यादि प्रश्नका उत्तर यह है कि चित्त तथा इन्द्रियादिसे अप्राप्य होनेसे वही अणु असत् शून्यके तुल्यहै और अपने अनुभवसे लभ्य होनेसे वह आकाशरूपीभी अशून्य है ॥ १५ ॥ तुम किससे सत्ताको प्राप्त हुये अर्थात् कौनहो इसका उत्तर यह है कि मैं अद्वैतका साक्षात्कार करनेसे वह आत्माही होता हुआ तुमारे स्वरूपसे मैंही हुं परन्तु यह कथन व्यवहार दृष्टिसे है, और परमार्थ दृष्टिसे वह आत्मा न तुमारा और न मेरा स्वरूप है किन्तु महान् बोधरूपसे वह प्रकट है ॥ १६ ॥

त्वंताहंतात्मकंसर्वंविनिगीर्यावबोधतः ॥ नत्वंनाहंनसर्वंचसर्वंवाभवतिस्वयम् ॥ १७ ॥ गच्छन्नगच्छत्येषोणुर्योजनौघगतोपिसन् ॥ संविस्त्यायोजनौघत्वंतस्याणोरंतरेस्थितम् ॥ १८ ॥ नगच्छत्येषयातोपिसंप्राप्तेपिचनागतः ॥ स्वसत्ताकाशकोशांतर्वासित्वाद्देशकालयोः ॥ १९ ॥ गम्यंयस्यशरीरस्थंक्किलासौप्रयातिहि ॥ कुचकोटरगःपुत्रःकिमात्रान्यत्रवीक्ष्यते ॥ २० ॥

अर्थ—क्योंकि केवल बोधस्वरूप आत्मामें त्वत्ता, अहन्ता सबको निगलकरके न वह तुम न हम और सब कुच्छ वह स्वयं है ॥ १७ ॥ चलताहुआभी कौन नहीं चलता इस प्रश्नका उत्तर यह है कि यह चेतनरूप अणु योजनोंके समूहोंमें आकाशके सदृश व्याप्त होकरभी चलताहुआभी नहीं चलता क्योंकि स्वप्नकी कल्पनाके तुल्य उस अणुके भीतर योजनोंका समूह स्थित है ॥ १८ ॥ कौन स्थितभी नहीं स्थित है इसका उत्तर यह है कि सर्वत्र जानेपरभी यह अणु कहीं नहीं जाता किन्तु स्थित है और सर्वत्र प्राप्तभी अपनी सत्तारूप चिदाकाशके कोशमें देश और कालको रखकर यह कहींसे आया नहीं ॥ १९ ॥ क्योंकि प्राप्त होनेके योग्य सम्पूर्ण स्थान जिसके शरीरके भीतर हैं वह कहां जासकताहै जैसे कुच कोटर (कांचुके भीतर) पुत्रको और स्थानमें कैसे ढूंढ सकतेहैं ॥ २० ॥

गम्योयस्यमहादेशोयावत्संभवमक्षयः ॥ अंतस्थःसर्वकर्त्तुर्हिसकथंकेवगच्छति ॥ २१ ॥ यथादेशांतरप्राप्तेकुंभेवक्त्रसमुद्रिते ॥ तदाकाशस्यगमनागमनेनतथात्मनः ॥ २२ ॥ चित्ततास्थाणुतास्वांतर्यदास्तोनुभवात्मिके ॥ चेतनस्यजडस्यैवतदासौद्वयमेवच ॥ २३ ॥ यदाचेतनपाषाणसत्तैकात्मैकचिद्वपुः ॥ तदाचेतनएवासौपाषाणइवराक्षसि ॥ २४ ॥

अर्थ—प्राप्त होनेके योग्य महान् देश जहांतक देशका सम्भव है वह सम्पूर्ण देश जिस सबके अन्तर्गत करनेवालेके भीतर है वह कैसे और कहां जासकताहै ॥ २१ ॥ जैसे मोहडा (मुख) बंधे हुये घडेके दूसरे देशमें ले जानेपरभी उस घटके भीतरके आकाशका गमन आगमन नहीं होता इसप्रकार आत्माकाभी नहीं होता ॥ २२ ॥ कौन चेतनभी पाषाणके तुल्य है इसका उत्तर यह है कि जब जड देहादि अभेद अध्यास होनेसे चेतनके है चित्तता (प्रकाश स्वभावता) और स्थाणुता दोनों अपने अपने अनुभव साक्षितासे हैं तो बिना विचारे वही जड तथा चेतन दोनोंरूप होजाताहै ॥ २३ ॥ जब चेतनभी पाषाणके तुल्य घनरूप होता इसका आशय यह है कि जब चेतन तथा पाषाणकी सत्ता दोनों चेतनकी शरीर हैं तो हे राक्षसि ! यह चेतनही पाषाणके तुल्य घन समझ जाताहै ॥ २४ ॥

परमव्योम्न्यनाद्यंतेचिन्मात्रपरमात्मना ॥ विचित्रंत्रिजगच्चित्रंतेनेदमकृतंकृतम् ॥ २५ ॥ तत्संविस्त्यावहिसत्तातेनात्यक्तानलाकृतिः ॥ सर्वगोप्यदहत्येवसजगद्रूप्यपावकः ॥ २६ ॥ प्रज्वलद्भास्वराकारान्निर्मलाद्गगनादपि ॥ प्रज्वलच्चेतनैकात्मातस्मादग्निःसजायते ॥ २७ ॥ संवेदनाद्यदर्कादिप्रकाशस्यप्रकाशकः ॥ नलश्यत्यात्मभारूपोमहाकल्पांबुदैरपि ॥ २८ ॥

अर्थ—चिदाकाशमें विचित्र चित्र करनेवाला कौन है इसका उत्तर यह है कि अनादि अनन्त परम चिदाकाशमें चिन्मात्र परमात्माहीने तीनोंलोकरूप विचित्र चित्र कियाहै वह मिथ्या होनेसे अकृत (नहीं किये हुये) के तुल्यही है ॥ २५ ॥ अग्निस्वरूपको न त्याग करनेपर न जलानेवाला अग्नि कौन है इसका उत्तर यह है कि आ-

त्माकी सत्ताके आधीन अग्निकी सत्ता होनेसे और आत्माके सर्वगत होनेसे अग्निका स्वरूप न त्यागते हुयेभी वह सर्वव्यापी और जगत्रूपी द्रव्यको अग्निके समान प्रकाशक आत्मा किसीको नहीं जलाता ॥ २६ ॥ किस अग्निसे भिन्न स्वरूपसे अग्नि उत्पन्न होताहै इसका उत्तर यह है कि इसी देदीप्यमान प्रकाशवान् आकाशके तुल्य निर्मल चेतन आत्मासे प्रज्वलनशील अग्नि उत्पन्न होताहै ॥ २७ ॥ चन्द्रमा सूर्य्य तथा तारागणादिसे भिन्न अविनाश प्रकाश कौन है इसका उत्तर यह है कि यह आत्मा अनुभवरूप होनेके कारण चन्द्र सूर्य्यादि प्रकाशोंकाभी प्रकाशक है, और वह आत्मप्रकाश महा कल्परूप मेघोंसेभी नष्ट नहीं होता ॥ २८ ॥

अनेत्रलभ्योनुभवरूपोहृद्गृहदीपकः ॥ सर्वसत्ताप्रदोनंतःप्रकाशःपरमःस्मृतः ॥ २९ ॥ प्रवर्त्ततेस्मदालोकोमनःषष्ठेंद्रियातिगात् ॥ येनांतरापिवस्तूनांदृष्टादृश्यचमत्कृतिः ॥ ३० ॥ लतागुल्मांकुरादीनामक्षाणांचपोषकः ॥ उत्सेधवेदनाकारःप्रकाशोनुभवात्मकः ॥ ३१ ॥ कालाकाशक्रियासत्ताजगत्तत्रास्तिवेदने ॥ स्वामीकर्त्तापिताभोक्ताआत्मत्वाच्चनकिंचन ॥ ३२ ॥

अर्थ—किस नेत्रसे अप्राप्य प्रकाश प्रवृत्त होताहै इसका यह उत्तर है कि नेत्रआदिसे अलभ्य यही अनुभवरूप आत्मा हृदयरूपी गृहका दीपक है और यह अनन्त परम प्रकाश सब प्रकाशोंको सत्ता देनेवाला वेदशास्त्रोंमें कहा गयाहै ॥ २९ ॥ और मनसहित छओं इन्द्रियोंके अविषय इस स्वयं ज्योतिरूप आत्मासे सब प्रकाश उत्पन्न होताहै, जैसे महान् अन्धकारमें स्थितभी तुम कहांहो ऐसा पूंछनेपर अमुक नामवाला मैं यहांपर हुं ऐसा उत्तर देताहै, और इसीके कारणसे दीप आदिके प्रकाशके विनाभी देह इन्द्रिय आदि पदार्थोंकी प्रत्यक्षता रूप चमत्कृति (चमत्कार) देखी गई है ॥ ३० ॥ इन्द्रियरहित लता गुल्मादिका पालक कौन इसका यह उत्तर है कि लता गुल्म अंकुर वृक्षोंके फलोंका साक्षीरूप परम प्रकाश अनुभवरूप आत्माही उनका पालक पोषक है ॥ ३१ ॥ आकाशादिकी उत्पत्ति करता कौन है इसका उत्तर यह है कि काल, आकाश तथा क्रिया और जगत्की सत्ता उसी अनुभवरूप आत्मामें है, और व्यवहारदृष्टिसे वही सबका स्वामी, कर्ता, पिता तथा भोक्ता है, और परमार्थदृष्टिसे शुद्ध आत्मरूप होनेके कारण कुछभी नहीं है ॥ ३२ ॥

अणुत्वमजहत्सोणुर्जगद्रत्नसमुद्गकः ॥ मातृमानप्रमेयात्मजगन्नास्तीतिकेवले ॥ ३३ ॥ सएवसर्वजगतिसर्वत्रकचतिस्फुटम् ॥ यदाजगत्समुद्गेस्मिंस्तदासौपरमोमणिः ॥ ३४ ॥ दुर्बोधत्वात्तमःसोणुश्चिन्मात्रत्वात्प्रकाशदृक् ॥ सोस्तिसंवित्तिरूपत्वादक्षातीतस्तथानसन् ॥ ३५ ॥ दूरेसोनक्षलभ्यत्वाच्चिद्रूपत्वान्नदूरगः ॥ सर्वसंवेदनाच्छैलोह्यसावेवाणुरेवसन् ॥ ३६ ॥

अर्थ—जगत्रूपी रत्नोंका कोश कौन होसकताहै इसका उत्तर कहतेहैं कि वही चेतनरूप अणु अपनी अणुताका त्याग न करते हुयेभी जगत्रूपी रत्नोंकी पेटारी है, किस मणिका कोश यह जगत् इसका उत्तर यह है कि प्रमाता प्रमाण और प्रमेयरूप यह जगत् उस शुद्धरूप आत्मामें कुछ नहीं है ॥ ३३ ॥ किन्तु इस जगत्रूप पेटारीमें सर्वत्र आपही वह विकाशको प्राप्त होताहै तब परम उत्तम मणि कहा जाताहै ॥ ३४ ॥ कौन अणु तम और प्रकाशरूप होसकता है इसका उत्तर यह है कि अति दुःखसे जानने योग्य होनेसे वह अणु तम है और चिन्मात्र होनेके कारण प्रकाशरूपभी है, कौन अणु अस्ति तथा नास्तिरूप है इसका उत्तर सत्तारूप होनेसे वह है, और इन्द्रियोंका विषय न होनेसे नहीं है ॥ ३५ ॥ कौन दूर और समीपभी है इसका उत्तर यह है कि वही चिदणु परमात्मा इन्द्रियोंसे लभ्य न होनेसे दूर है और चेतन आत्मारूप होनेसे निकटभी है, वह कौन है जो अणुरूपही महान् पर्वत है इसका उत्तर यह है कि इन्द्रिय आदिके विनाभी सबको "अहम् अहम्" (मैं मैं) इस रूपसे सम्मुख स्थित पर्वतके तुल्य यही चिदात्मा प्रत्यक्षरूपसे अनुभूत होनेसे अणु (सूक्ष्म) होते हुयेभी महान् पर्वतरूप है ॥ ३६ ॥

तत्संवेदनमात्रंयत्तदिदंभासतेजगत् ॥ नसत्यमस्तिशैलादितेनाणावेवमेरुता ॥ ३७ ॥ निमेषप्रतिभासोहिनिमेषइतिकथ्यते ॥ कल्पेतिप्रतिभासोहिकल्पशब्देनकथ्यते ॥ ३८ ॥ कल्पक्रियाविलासोहिनिमेषःप्रतिभासते ॥ बहुयोजनकोटिस्थंमनस्येवमहापुरम् ॥ ३९ ॥ निमेषजठरेकल्पसंभवःसमुदेतिहि ॥ महानगरनिर्माणंमुकुरांतरिवामले ॥ ४० ॥

अर्थ—इसका तात्पर्य यह है कि जो कुछ यह जगत् आत्मामें भासताहै वह केवल चित्तकी स्फुरणा मात्र है इसलिये पर्वत आदि सत्य नहीं हैं इसीकारण अणु स्वरूपमें मेरुकी सत्ता बन सकती है ॥ ३७ ॥ निमेषरूपही कल्पके समान कौन भासताहै कि निमेष मात्र प्रतिभासनेको निमेष कहतेहैं और कल्पमात्र प्रतिभासनेको कल्प

शब्दसे कहते हैं ॥ ३८ ॥ कल्पमें जितनी क्रिया (सूर्य्यकी पारिस्पंदरूप क्रिया जिससे कालका बोध होताहै) होती हैं उतनी क्रियाओंसे निमेषमेंही आत्मा ऐसा प्रतिभासताहै जैसे अनेक कोटि योजनमें स्थित महानगर जैसे मनमें भासताहै ॥ ३९ ॥ निमेषके भीतर कल्पका संभव ऐसे उदय होताहै जैसे निर्म्मल दर्प्पणमें महानगरकी रचना ॥ ४० ॥

निमेषकल्पशैलादिपूरयोजनकोटयः ॥ यत्राणावेवविद्यंतेतत्रद्वैतैक्यतेकुतः ॥ ४१ ॥ कृतवान्प्रागिदमह मितिबुद्धावुदेतिहि ॥ क्षणात्सत्यमसत्यंचदृष्टांतःस्वप्नविभ्रमः ॥ ४२ ॥ दुःखेकालःसुदीर्घोहिसुखेलघु तरःसदा ॥ रात्रिर्द्वादशवर्षाणिहरिश्चंद्रस्यचोदिता ॥ ४३ ॥ निश्चयोयउदेत्यंतःसत्यात्मासत्यएवच ॥ हेम्नीवकटकादित्वंसएवचितिराजते ॥ ४४ ॥

अर्थ—निमेष, कल्प, और पर्वत आदि समूह जिस अति सूक्ष्म अणुमें मिथ्याका आलम्बन करके (क्योंकि सत्वरूपसे प्रवेश करनेमें विरोध है) समावेश करते हैं वहांपर द्वैतता और एकताका प्रवेश क्यों नहीं ? अर्थात् मिथ्यात्वसे द्वैत और एकताकाभी समावेश है ॥ ४१ ॥ अल्प कालमें अधिक काल कालके भान होनेमें क्षणमें व्यावहारिक अथवा प्रतिभासिक अधिक काल साध्य कार्य्य मैंने पूर्व समयमें किया, यह स्वप्नका विभ्रम जो बुद्धिमें उदय होताहै वही दृष्टान्त है ॥ ४२ ॥ दुःखमें अल्प कालभी अति दीर्घ और सुखमें अधिक कालभी अल्प भान होताहै जैसे राजा हरिश्चन्द्रजीको एकही रात्रि द्वादश (१२) वर्षकी होगई ॥ ४३ ॥ जैसे सुवर्णमें कटकादि भान होतेहैं ऐसेही चेतनमें सत्य वा असत्यरूप निश्चय होताहै वैसाही चेतनका प्रतिभास होताहै ॥ ४४ ॥

ननिमेषोस्तिनोकल्पोनादूरंनचदूरता ॥ चिदणुप्रतिभैवैवंस्थितान्यान्यान्यवस्तुवत् ॥ ४५ ॥ प्रकाश तमसोर्दूरादूरयोःक्षणकल्पयोः ॥ एकचिद्देहयोरेवनभेदोस्तिमनागपि ॥ ४६ ॥ प्रत्यक्षमक्षसारत्वाद प्रत्यक्षंततोतिगम् ॥ दृश्यत्वेनैषबोदेतिचेताद्रष्टैवसद्वपुः ॥ ४७ ॥ यावत्कटकसंवित्तिस्तावन्नास्तीवहे मता ॥ यावच्चदृश्यतापत्तिस्तावन्नास्तीवसाकला ॥ ४८ ॥

अर्थ—और परमार्थदृष्टिसे तो न निमेष है न कल्प है न दूरता और न समीपता है किन्तु चिदणुकी चित्तकी वृत्तिही अन्य वस्तुके तुल्य अन्य २ रूपसे स्थित है ॥ ४५ ॥ इसीप्रकार अधिष्ठान चेतनके अभेदसे विरुद्ध स्वभाव-वाले प्रकाश अन्धकार दूरता समीपता, एकचेतन तथा शरीरका किंचित्भी भेद नहीं है ॥ ४६ ॥ कौन प्रत्यक्ष और असत्रूप है इसका उत्तर यह है यही आत्मा सम्पूर्ण इन्द्रियोंका सार (बल देनेवाला) होनेसे प्रत्यक्ष है और इन्द्रि-योंका अविषय होनेसे अप्रत्यक्ष असत्रूप है, और यही सत्शरीरवाला चेतन द्रष्टाही दृश्यरूपसे उदय होताहै ॥ ४७ ॥ जैसे जबतक कटक बुद्धि तबतक सुवर्णता नहीं उदय होती, ऐसे ही जबतक दृश्यमें दृश्यरूपसे सत्यता बुद्धि है तबतक चित्के साथ एक रसतारूपी कला नहीं उदय होती अर्थात् दृश्यरूपसे बुद्धि परम पुरुषार्थ नहीं है ॥ ४८ ॥

कटकत्वेऽकृतेऽदृष्टेसुवर्णत्वमिवाततम् ॥ केवलंनिर्मलंशुद्धंब्रह्मैवपरिदृश्यते ॥ ४९ ॥ सर्वत्वादेवसद्रू पोदुर्लक्ष्यत्वादसद्वपुः ॥ चेतनश्चेतनात्मत्वाच्चेत्यासंभवतस्त्वचित् ॥ ५० ॥ चिच्चमत्कारमात्रात्मन्य स्मिंश्चित्प्रतिभात्मनि ॥ जगत्यनिलवृक्षाभेचिच्चेत्यकलनेकुतः ॥ ५१ ॥ यथातापस्यपीनस्यभासनंमृ गतृष्णिका ॥ एवंपीवरमद्वैतंतथाचिद्भासनंजगत् ॥ ५२ ॥

अर्थ—जैसे सुवर्ण कटकके न बनानेसे अथवा कटकरूपसे न देखनेसे सुवर्णत्वका भान होताहै ऐसेही दृश्यकी कल्पना न करनेसे अथवा कल्पितको भी दृश्यरूपसे न देखनेसे केवल शुद्ध तथा निर्म्मल ब्रह्मही व्याप्त देख पडताहै अर्थात् दृश्यको ब्रह्मरूपसे देखनेसे पुरुषार्थकी सिद्धि होती है ॥ ४९ ॥ सत् असत्रूप इस प्रश्नका उत्तर यह है कि, यह आत्मा सर्वरूप होनेसे सत्रूप है और दुर्लक्ष्य होनेसे असत्रूपसे भान होताहै कौन चेतन और अचेतनभी इसका उत्तर यह है कि यही आत्मा सर्वथा चेतन है, और उसमें विषयरूपका सम्भव न होनेसेभी उस रूपसे भान होनेके कारण तुमने उसको अचेतनभी कहाहै ॥ ५० ॥ क्योंकि चेतनके चमत्कार मात्र, चित् प्रतिभा (स्फुरणा) रूप तथा अग्निके सदृश रक्तवृक्ष (विद्युत्) के सदृश अति स्थिर इस जगत्में चैतन्यके आश्रयकी कल्पना कैसे होसकती है ॥ ५१ ॥ जैसे अधिक ताप (घाम) काही मृगतृष्णारूपसे भान होताहै ऐसेही विशाल अद्वैतहीका चित्रूपसे भासना यह जगत् है ॥ ५२ ॥

अर्कांशुभिःसूक्ष्मतरनिर्माणंयदनामयम् ॥ अस्तितानास्तितातत्रकल्पादेरिवकैवधीः ॥ ५३ ॥ मायया शुकणांकेखेयथाकचतिकांचनम् ॥ तथाजगदिदंभातिचिच्चेत्यकलनेकुतः ॥ ५४ ॥ स्वप्नगंधर्वसंकल्प

नगरेकुड्यवेश्मनम् ॥ नसन्नासद्यथातद्वद्विद्धिदीर्घभ्रमंजगत् ॥ ५५ ॥ तथाचैवंविधन्यायभावनाभ्यास निर्मलात् ॥ चिदाकाशेलनिर्यातियथाभूतार्थदर्शिनः ॥ ५६ ॥

अर्थ—जैसे सूर्य्यकी किरणोंके संयोगसे वक्ष्यमाण सूर्य्यकी रचना निर्विघ्नतासे होती है और उसमें अस्तिता नास्तिता कल्पित है ऐसेही ब्रह्ममें ब्राह्म (ब्रह्माजीके) कल्पादिरूप जगत्भी है असत्के उपमानकी असत्यता प्रत्यक्षही है ॥ ५३ ॥ ॥ जैसे अविद्यासे सूर्य्यके कणके लेशके संयोगसे आकाशमें सुवर्ण शोभित होताहै ऐसेही ब्रह्ममें यह जगत् भासताहै उसमें वास्तवरूपसे चित्‌चेत्यकी कल्पना कहां ॥ ५४ ॥ जैसे स्वप्न, गन्धर्व और संकल्पके नगरोंमें भित्तिका अनुभव न सत् और न असत्‌रूप होताहै ऐसेही इस जगत्‌कोभी महान् भ्रम जानो ॥ ५५ ॥ इससे यह अभिप्रायहै कि इसप्रकार मिथ्यात्वको कहनेवाली युक्तियोंका पुनः २ अभ्यास करनेसे पारमार्थिक ब्रह्मको देखनेवाले पुरुषके निर्मल मनसे अविद्याका नाश होनेसे चिदाकाशमें पुनः संसारका उदय नहीं होता ॥ ५६ ॥

नकुड्याकाशयोर्भेदोदृश्यसंवेदनादृते ॥ आब्रह्मजीवकलनाद्यद्रूढंरूढमेवच ॥ ५७ ॥ प्रतिभासाच्चिदाकाशेसत्वशून्यंभवंतिताः ॥ प्रकचंतिह्यनिर्भाव्याःप्रभापिंडइवप्रभाः ॥ ५८ ॥ पृथक्तामतिभासस्यस्वचमत्कारयोगतः ॥ सर्वात्मिकाह्यिप्रतिभापरावृक्षात्मबीजवत् ॥ ५९ ॥ बीजमंतस्थवृक्षत्वंनानानानायथैकदृक् ॥ तथाऽसंख्यजगद्ब्रह्मशांतमाकाशकोशवत् ॥ ६० ॥ बीजस्यांतस्थवृक्षस्यव्योमाद्वैतास्थितिर्यथा ॥ ब्रह्मणोंतस्थजगतःसाक्षित्वाच्चित्स्थितिस्तथा ॥ ६१ ॥ शांतंसमस्तमजमेकमनादिमध्यंनेहास्तिकाचनकलाकलनाकथंचित् ॥ निर्द्वंद्वशांतमतिरेकमनेकमच्छमाभासरूपमजमेकविकासमास्ते॥६२॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे कर्कव्युपाख्याने प्रश्नभेदनं नामाशीतितमः सर्गः ॥ ८० ॥

अर्थ—दृश्यरूपसे अनुभवके सिवाय भित्ति और आकाशमें कुछभी भेद नहींहै, और यह भिन्नरूपसे वस्तुओंका अनुभव ब्रह्मापर्य्यन्त जीवोंका जैसा रूढ है वैसाही है ॥ ५७ ॥ यदि यह कहो कि भेद नहीं है तो भित्ति और आकाशादिका भेद कैसे? तो इसका उत्तर यह है कि सत्यतासे शून्य चिदाकाशमें चित्‌के प्रतिभाससे ये सब जगत् कल्पनायें ऐसे भान होती हैं जैसे प्रभा (सूर्य्य आदिकी दीप्ति) में अन्य कांचादिकी प्रभा ॥ ५८ ॥ भिन्नताके संस्कारसे सद्दक्कृतबुद्धिकी जो भिन्नता प्रकट करनेवाली शक्तिका जो आत्मप्रकाशरूप चमत्कारहै उसके योगसे द्वैतका भान होनेपरभी वह भिन्न नहीं है, क्योंकि वह परमोत्तम आत्मप्रकाश वृक्षात्मक बीजके तुल्य सर्वात्मक है ॥ ५९ ॥ वृक्षको बीजके समान जगत्‌को अन्तर्गत करके कौन स्थितहै इसका उत्तर यहहै कि जैसे एकरूप बीज भिन्न और अभिन्नरूप वृक्षाकारको अपने अन्तर्गत करके स्थित है ऐसेही शान्त आकाश कोशवत् ब्रह्मभी असंख्य जगत्‌को अपनेमें करके सबमें व्याप्त होके स्थितहै ॥ ६० ॥ जैसे अन्तर्गत वृक्ष है जिसके ऐसे बीजकी स्थिति अति सूक्ष्मताके कारण आकाश तुल्य है ऐसेही ब्रह्मके अन्तर्गत जगत्‌की भी आत्मासाक्षी होनेके कारण चित्‌रूपसे स्थिति अर्थात् चेतनमें कोई भेदक न होनेसे आकाशके सदृश है ॥ ६१ ॥ सम्पूर्णरूपसे शान्त, जन्मादि विकार शून्य, आदि अन्त तथा मध्यरहित, माया और उसके कार्य्यरूपी मलके निरास करनेसे द्वन्द्व बुद्धिवाले महात्माओंसे शोधन करनेयोग्य, एकतारूप गुणसेभी शून्य, निर्मल, एक अद्वैतरूपसेही बिना रुकावट सर्वत्र विकाश करनेवाला, तथा चिन्मात्र प्रतिभास ब्रह्म स्थितहै, इसमें यथार्थ रूपसे कोईभी कल्पनाकी कला नहीं है ॥ ६२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे प्रश्नभेदनं नामाशीतितमः सर्गः ॥ ८० ॥

एकाशीतितमः सर्गः ॥ ८१ ॥

इस ८१ के सर्गमें विशेष जाननेवाले राजाने शेष (बाकी) प्रश्नोंका क्रमसे उत्तर देतेहुये उक्त प्रश्नोंमें कहीं २ अपनी युक्तियोंकोभी कहाहै ॥

॥ राक्षस्युवाच ॥ अहोनुपरमार्थोक्तिःपावनीतवमंत्रिणः ॥ राजाराजीवपत्राक्षइदानीमेषभाषताम् ॥ १ ॥ ॥ राजोवाच ॥ जागतप्रत्ययाभावोयस्याहुःप्रत्ययंपरम् ॥ सर्वसंकल्पसंन्यासश्चेतसायत्परिग्रहः ॥ २ ॥ यत्संकोचविकासाभ्यांजगत्प्रलयसृष्टयः ॥ निष्ठावेदांतवाक्यानामथवाचामगोचरः ॥ ३ ॥ कोटिद्वयांतरालस्थंमध्येकोटिद्वयीमयम् ॥ यस्यचित्तमयीलीलाजगदेतच्चराचरम् ॥ ४ ॥

अर्थ—राक्षसीजी बोली–हे मंत्रिन् ! अहो ! यह तुमारी परमार्थकी उक्ति अति पवित्रकारिणी है, अब यह कमलके पत्रके सदृश नेत्रवाला राजा भाषण करै ॥ १ ॥ राजाजी बोले–राजा उसके प्रश्नोंके अभिप्रायको जानकर मुख्य विषय चमत्कारतासे देखलाताहै कि राक्षसी, जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तथा स्वप्न तीन अवस्थाके जगत् सम्बन्धी वृत्तियोंकी ज्ञानद्वारा निवृत्ति जिसको होती है उसीको परम प्रत्यय अर्थात् तुरीय अवस्थाका दर्शन कहतेहैं परन्तु यह सम्पूर्ण कर्मोंका संन्यासरूप चेतनकी एकनिष्ठताके परिग्रहसे होताहै ॥ २ ॥ जिसके भाविक संकोच विकास जगत् उत्पत्ति स्थिति और प्रलय होतेहैं वही वाणियोंका अगोचर है वही वेदान्त वाक्यों निष्ठा (प्रतिपाद्य) है ॥ ३॥ सत् असत् भान तथा अभान इन दोनों कोटियोंके मध्यमें स्थित अर्थात् अनिर्वचनीय, अतएव आदि और असत् पक्षसे ग्रस्त होनेपरभी मध्यमें देश तथा कालके परिच्छेदसे कहीं है और कहीं नहीं है एतद्रूप दो कोटिमय इसी सत् असत् तथा चित् जडकी सन्धिरूप हिरण्यगर्भरूप जिसके मनकी लीलामात्र यह चराचर जगत् है ॥ ४ ॥

यस्यविश्वात्मकत्वेपिखंड्यतेनैकपिंडता ॥ सन्मात्रंतत्त्वयाभद्रेकथ्यतेब्रह्मशाश्वतम् ॥ ५ ॥ एषोणुर्वेदनाद्वायुःस्वभ्रांतिर्दृगदृश्यत ॥अतोनार्किचिद्वाय्वादिकेवलंशुद्धचेतनम् ॥ ६ ॥ शब्दसंवेदनाच्छब्दःशब्दस्यभ्रांतिदर्शनम् ॥ ततोत्रशब्दशब्दार्थदृष्टेर्दूरतरंगतः ॥ ७ ॥ सोणुःसर्वनकिंचिच्चसोहंनाहंसएवच ॥ सर्वशक्त्यात्मनोस्यैवप्रतिभैकात्रकारणम् ॥ ८ ॥

अर्थ—सम्पूर्ण विश्वरूप होनेपरभी जिसकी एकरूपता कदापि खण्डित नहीं होती, उसी नित्य ब्रह्मको हे भद्रे! तुम पूंछती हो ॥ ५ ॥ जो तुमने पूंछाथा कि कौन अणु वायु और अवायुरूप है सो यही चिदणु जब अपने आत्मामें वायुरूपका अनुभव करताहै तब भ्रान्तिसे वायुरूप देख पडताहै, और यथार्थमें वायु आदि इसमें कोई नहीं किन्तु केवल शुद्ध चेतन ब्रह्महीं है ॥ ६ ॥ इसीप्रकार शब्दरूपकी भावनासे भ्रान्तिसे शब्दरूपसे उसका दर्शन होताहै इसीसे शब्द तथा शब्दके अर्थकी दृष्टिसे वह दूर है॥७॥ और जो तुमने पूंछा कि कौन सब कुछ और कुछ नहीं है सो यही चेतन अणु अपनी मायासे सब कुछ है और शुद्धरूपसे कुछ नहीं है, और कौन "अहं" (मैं) तथा "नाहं" (मैं नहीं) इस रूपसे है इसका उत्तर यह है कि यही चेतन अणु अहंकार रूपसे "सोहम्" (वह मैं हुं) और शुद्ध अपने रूपसे "नाहम्" (वह मैं नहीं) इस रूपसेभी है इसमें कारण सर्व शक्तिमान् उस ब्रह्मकी प्रकाशशक्ति है ॥ ८ ॥

आत्मायत्नशतप्राप्योलब्धेस्मिन्नचकिंचन ॥ लब्धंभवतितच्चैतत्परमवानकिंचन ॥ ९ ॥ तावज्जन्मवसंतेषुसंसृतिव्रततिश्चिरम् ॥ विकसत्युदितोयावन्नबोधोमूलकापकृत् ॥ १० ॥ अणुनानेनरूपत्वंदृश्यतामिवगच्छता ॥ तापेनांबुधियेवेदंस्वस्थेनैवापहारितम् ॥ ११ ॥ अनेनसंविदणुनामेरुस्त्रिभुवनंतृणम् ॥ वमित्वाबहिरंतस्थंमायात्मकमवेक्ष्यते ॥ १२ ॥

अर्थ—और कौन सैकडों यत्नसे लभ्य है और लब्ध होनेपर कुछ नहीं इसका उत्तर यह है कि यही आत्मा सैकडों यत्नोंसे लभ्य होता है अर्थात् आत्मज्ञान अति कष्टसाध्य है और लाभ होनेसे अपना आत्मा होनेसे मानों कुछ नहीं है अर्थात् निष्फल प्रतीत होताहै, और जब लब्ध (आत्मरूपका ज्ञान) होजाताहै तो इससे उत्तम कोई यत्नही है इस अभिप्रायसे तुमने पूंछा है ॥ ९ ॥ और जबतक संसारके मूल अज्ञानका नाश नहीं सिद्ध हुआ तबतक इसका पूर्णरूप नहीं लब्ध होता और तभीतक अर्थात् जबतक आत्माका बोध विकसित नहीं होता तभीतक जन्मरूपी वसन्त ऋतुओंमें संसाररूपी लता चिरकालतक लहलहाती है ॥१०॥ और जो तुमने पूंछाथा किस स्वस्थ जीवनवालेने अपने आत्माको अपहरण करादिया इसका उत्तर यह है कि जब यह चेतन अणु साकार भावको प्राप्त होकर दृश्यस्वरूपके सदृश प्राप्त होता है तब दृश्यरूपमेंही निमग्न अज्ञानी प्राणी जल बुद्धिसे मरु देशके आतपके समान स्वस्थ जीवनसे अपने आत्माको गवा देता है ॥ ११ ॥ हे कर्कटि ! यही चेतन अणु मेरु पर्वतको अपने भीतर करताहै, और त्रिभुवनको तृण बनाताहै, और अपने अन्तस्थ जगत्कोही वमन करके बाह्य आकारको मायारूपसे देखताहै ॥ १२ ॥

चिदणोरंतरेयद्यदस्तितद्दृश्यतेबहिः ॥ संकल्पेप्सालिंगनादिदृष्टांतोत्रहिरागिणः ॥ १३ ॥ आदिसर्गेसर्वशक्तिश्चिद्यथैवोदितात्मना ॥ तथाद्यपश्यत्यखिलंसंकल्पेपर्वतःस्वतः ॥ १४ ॥ अभिजातस्ययस्यांतर्यद्यथाप्रतिभासते ॥ तत्तथापश्यतीवासौदृष्टांतोत्रशिशोर्मनः ॥ १५ ॥ परमाणुतयैवापिचिन्मात्रेणाणुनामुना ॥ परिसूक्ष्मतमेनैवविष्वग्विश्वंप्रपूरितम् ॥ १६ ॥

अर्थ—चेतन अणुके जो २ पदार्थ भीतर हैं वही २ बाहर देख पडताहै इसमें दृष्टान्त यह है कि जैसे कामीपुरुष अपने हृदयमें स्थित संकल्पकी स्त्री आदि बाहर आलिंगन करताहै ॥ १३ ॥ जैसे ईख वा बांस आदि प्रथम पर्व

(पोर) में जिसप्रकार शाखा आदि निकलते हैं उसीप्रकार द्वितीय आदिमेंभी होतेहैं ऐसेही आदि सृष्टिमें सर्वशक्तिमान् चेतन जिसप्रकार उदयको प्राप्त हुआहै वैसाही अपने संकल्पमें शीघ देखताहै ॥ १४ ॥ हिरण्यगर्भात्मक मनरूपसे प्रकट परमात्माके भीतर जो पदार्थ जिसरूपसे भासताहै, मानों वैसाही यह चेतन देखताहै इसमें दृष्टान्त बालकका मन है ॥ १५ ॥ और जो तुमने पूंछा था कि किस अणुमात्रने सैकडों योजन पूर्ण कर रक्खाहै इसका उत्तर यह है कि इसी चेतन अणुमात्रने देश, काल और वस्तुमात्रका अवधिरूप होके चारोंओरसे पूर्ण कर रक्खाहै॥ १६॥

अणुरेवनमात्येषयोजनानांशतेष्वपि ॥ सर्वगत्वादनादित्वादरूपत्वादनाकृतिः ॥ १७ ॥ यथाधूर्तेनरङ्गेनपुंसाबालःप्रतार्यते ॥ सुभ्रूविकारनयननिरीक्षणविचेष्टितैः ॥ १८ ॥ चिदालोकेनशुद्धेनसपर्वततृणंजगत् ॥ नाट्यतेविरतंतद्वद्विवृत्त्याभिनयंसदा ॥ १९ ॥ तेनैवानंतरूपत्वादणुनावाससायथा ॥ संविदातद्वद्बाह्येकृत्वामेर्वादिवेष्टितम् ॥ २० ॥

अर्थ—कौन अणु सैकडों योजनमेंभी नहीं समाता इसका उत्तर यह है कि यही चेतन अणु सर्वगामी होनेसे तथा अनादि होनेसे आकार रहितहै वही सैकडों योजनमेंभी नहीं समाता ॥ १७ ॥ जैसे कामी धूर्त पुरुष अपनी भौंह विकारोंसे तथा नेत्रके देखनेकी चेष्टाओंसे अज्ञ स्त्री जनोंको अपने वशमें करके जिधर चाहताहै उधर खींच लेजाता है ॥ १८ ॥ इसी प्रकार शुद्ध चित् प्रकाशभी नाटक चेष्टा करके पर्वत आदि सहित सम्पूर्ण जगत्को तृणके समान नचाताहै ॥ १९ ॥ किस अणुके भीतर पर्वतोंके समूह हैं इसकाभी उत्तर यही है कि उसी चेतन अणु ज्ञान स्वरूपने सम्पूर्ण जगत्को बाह्यरूपसे देखाते हुयेभी अपने भीतर ऐसे वेष्टित कियेहैं जैसे वस्त्र मेरु आदि पर्वत पदार्थोंके चित्रको बाहर देखाके अपने भीतर वेष्टित कर लेताहै ॥ २० ॥

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नरूपत्वान्मेरुतोबृहत् ॥ बालाग्रशतभागात्माप्येषसूक्ष्मःपरोणुकः ॥ २१ ॥ शुद्धसंवेदनाकाशरूपस्यपरमाणुना ॥ शोभतेनहिसाम्योक्तिर्मेरुसर्षपयोरिव ॥ २२ ॥ मायाकलापिनाणुत्वं निर्मायपरमात्मनि ॥ हेम्नीवकटकत्वेननानात्रसमताभवेत् ॥ २३ ॥ प्रकटोनेनदीपेनप्रकाशोनुभवात्मना ॥ स्वसत्तानाशपूर्वोहिविनानेनभवेत्ततः ॥ २४ ॥

अर्थ—अणुरूपको न त्यागता हुआ मेरुसेभी अधिक स्थूल आकारवान कौन है इसका उत्तर यह है कि यद्यपि यह चेतन आत्मा बालके अग्रभागके शतांशसेभी सूक्ष्म अणुरूप है तथापि देश काल और वस्तुके परिच्छेदसे रहित होनेसे मेरु पर्वतसेभी महान् है ॥ २१ ॥ और प्रायः सब स्थानमें जो तुम और मंत्रीने शुद्धज्ञान स्वरूप आत्माकी परमाणुके साथ समानता की है वह यथार्थ नहीं है क्योंकि आत्मा देश काल वस्तुके परिच्छेदसे रहित है और मेरु तथा सर्षपके समान परमाणुके साथ इसकी समानता नहीं बनसकती ॥ २२ ॥ मायाकी कलासेभी इस परमात्मामें अणुता नहीं बनसकती, सुवर्णमें बनेहुये कटक आदिके सदृशभी इसमें समता नहीं होसकती क्योंकि मायासे जैसे मायासे महत्व इसमें कल्पित है वैसाही अणुत्वभी कल्पित है यही तात्पर्य्य " अणोरणीयान् महतोमहीयान् " (छोटेसेभी छोटा बडेसेभी बडा) इत्यादि श्रुतियोंकाभी है ॥ २३ ॥ और कौन अणु प्रकाश और अन्धकारकाभी दीपक है इसका उत्तर यह है कि इसी अनुभव स्वरूप दीपकसेही प्रकाश तथा अन्धकारकाभी प्रकाश प्रकट हुआहै, क्योंकि यदि इस अनुभवरूप आत्मदीपके विना प्रकाश वा अन्य अन्धकार आदि होतो अपनी सत्ताके नाशपूर्वक उसका अभावही होजाय ॥ २४ ॥

यदिसूर्यादिकंसर्वंजगदेकंजडंभवेत् ॥ ततःकिमात्मकंरूपंप्रकाशःस्यात्कवाथकिम् ॥२५॥ शुद्धसन्मात्रचित्स्वंयत्स्वतःस्वात्मनिसंस्थितम् ॥ तदेतदणुनातेजोदृष्टंबहिरवस्थितम् ॥ २६ ॥ तेजांस्यर्केन्दुवह्नीनांनभिन्नानितमोघनात् ॥ एतावानेवभेदोस्तियद्वर्णेशौक्ल्यकृष्णते ॥ २७ ॥ यादृक्कज्जलनीहारेमेघनीहारयोर्भवेत् ॥ तादृक्प्रकाशतमसोर्भेदोनेतितयोःस्थितिः ॥ २८ ॥

अर्थ—यदि सूर्य्यादि सम्पूर्ण जगत् केवल जड आत्मकही हो और उसका प्रकाशक अर्थात् अनुभव कर्ता कोईभी न हो तो उस प्रकाशका स्वरूप क्या कहां और कैसे हो ? अर्थात् अनुभव कर्ता आत्माके विना इनकी सत्ताही नहीं प्रतीत होसकती ॥ २५ ॥ इस शुद्धज्ञान स्वरूप चेतनने अपने स्वरूप तेज तथा अन्धकार आदिको अपने भीतर कल्पित करके स्थितहै, और उसी अणु चेतनने बाहर स्थित प्रकाश आदिको देखाहै ॥ २६ ॥ सूर्य्य चन्द्र और अग्नि आदिके तेज अपने कारण अज्ञानसे भिन्न नहीं है केवल इतनाही भेद है कि वर्ण प्रकाशका शुक्ल है अज्ञान वा अन्धकारका कृष्ण है और जडता अंशमें कुछभी नहीं है ॥ २७ ॥ जब कज्जल वर्ण नीहार

(जलसहित वायु) होजाताहै तो उसको मेघ कहतेहैं तो जैसा भेद नीहार और मेघमें है वैसाही भेद प्रकाश और अन्धकार में है यही इनकी स्थिति है ॥ २८ ॥

जडयोरुपलंभायचिदादित्यःकिलैतयोः ॥ यदातपतितेनैतेलब्धसत्तैकतांगते ॥ २९ ॥ तपत्येकश्चिदादित्योरात्रिंदिवमतंद्रितः ॥ अंतर्बहिःशिलायंतरप्यनस्तमयोदयः ॥ ३० ॥ त्रिलोकीभातितेनेयंजीवस्यप्रथितात्मनः ॥ नानोपलंभभांडाढ्याकुटीकठिनकोटरा ॥ ३१ ॥ तमस्त्वंतमसोदेहमविनाशयताम्नु ॥ तप्यतेभासयाभासासर्वमाभास्यतेतमः ॥ ३२ ॥

अर्थ—जो जडरूप प्रकाश और अन्धकारके साक्षात्कार करनेके लिये चेतनरूप सूर्य्य तप रहाहै उसीसे इन दोनोंकी प्राप्त सत्ता एक होगई है ॥ २९ ॥ सूर्य्यादिका प्रकाश एकदेशी और आत्मप्रकाशके आधीन है परन्तु चेतनरूप सूर्य्य रात्रिदिन आलस्यरहित बाहर भीतर तथा पाषाणकी शिलाके भीतर सर्वदा तमके उदयके विना तप रहाहै ॥ ३० ॥ जिसको आत्माका साक्षात्कार होगया ऐसे जीवको नानाप्रकारके भोग और अन्य वर्तन आदि सामग्री पूर्ण कठिन कोटरवाली यह सम्पूर्ण त्रिलोकी उसी आत्माके प्रभावसे भान होती है ॥ ३१ ॥ अपने तत्वके प्रतिभाससे शून्य चेतन प्रकाश अन्धकारके शरीर भूत अन्धकारत्वको नाश न करते हुये अन्धकारको तपताहै अर्थात् कार्य्यरूपमें लाता और उसीसे सम्पूर्ण जगतरूप अन्धकार प्रकाशितहै ॥ ३२ ॥

पद्मोत्पलेयथार्केणतपताप्रकटीकृते ॥ प्रकाशतमसोःसत्तेचितेवंप्रकटीकृते ॥ ३३ ॥ अर्कःकुर्वन्नहोरात्रे दर्शयत्याकृतिंयथा ॥ चितिःसदसतीकृत्वादर्शयत्याकृतितथा ॥ ३४ ॥ चिदणोरंतरेसंतिसमग्रानुभवाणवः ॥ यथामधुरसस्यांतःपुष्पपत्रफलश्रियः ॥ ३५ ॥ उद्यंतिचिदणोरेतेसमग्रानुभवाणवः ॥ मधुमासरसाच्चित्राइवखंडपरंपराः ॥ ३६ ॥

अर्थ—जैसे तपते हुये सूर्य्य पद्म और उत्पलको प्रकट कियाहै इसीप्रकार चेतनने प्रकाश और अन्धकारकी सत्ताको प्रकट कियाहै ॥ ३३ ॥ जैसे सूर्य्य रात्रिदिनको करते हुये उनके आकारको दर्शातेहैं ऐसेही चेतनभी सत् और असत् अर्थात् प्रकाशका आविर्भाव और तिरोभाव करके दोनोंके आकारको दर्शाताहै ॥ ३४ ॥ और जो तुमने पूंछाथा कि किस अणुके भीतर सम्पूर्ण अनुभव अणु हैं इसका उत्तर यह है कि जैसे वसन्तकी शोभामें अथवा मधुरसमें वा तत्कालके वृक्षके रसमेंही पुष्प पत्र और फलादिककी शोभा है ऐसेही चेतन अणुके उदरमेंही सम्पूर्ण अनुभवके लेश है ॥ ३५ ॥ जैसे मधुमासके रसमें विचित्र प्रकारके बनके सुन्दरताके क्रम होतेहैं ऐसेही इसी चेतन अणुके भीतर सम्पूर्ण अनुभवके लेश उत्पन्न होतेहैं ॥ ३६ ॥

परमात्माणुरत्यंतनिःस्वादुःसूक्ष्मतावशात् ॥ समग्रस्वादुसत्तैकजनकःस्वदतेस्वयम् ॥ ३७ ॥ योयांनारसःकश्चित्समस्तोप्यप्स्ववस्थितः ॥ प्रतिबिंबमिवादर्शतंविनानास्त्यसौस्वतः ॥ ३८ ॥ त्यजतासंस्थितंसर्वंचिन्मात्रपरमाणुना ॥ त्यक्तंजगदसंवित्त्यासंवित्त्यासर्वमाश्रितम् ॥ ३९ ॥ अशक्तयास्वात्मगुप्तौसर्वमाच्छादितंजगत् ॥ चिताणुतामेवपरांसंप्रसार्यवितानवत् ॥ ४० ॥ ॥

अर्थ—कौन अणु अत्यन्त स्वादरहित है इसका उत्तर यह है कि यही परमात्मा चेतन अणु सूक्ष्मताके कारणसे स्वाद रहित है, और यही सम्पूर्ण स्वादोंका जनक है क्योंकि स्वयं चेतन अनुभव रूपसे सदा इसका आस्वाद होताहै ॥ ३७ ॥ अनेक प्रकारके जलोंमें जो २ रस स्थितहै वह दर्पणके समान इसीका प्रतिबिम्ब है क्योंकि इस चेतनके बिना वह रस स्वयं कुछ नहीं है ॥ ३८ ॥ और कौन अणु सबको त्यागते हुयेभी सबका आश्रय है इसका उत्तर यह है कि यही परमात्मा शुद्ध चेतनरूपसे सबको त्यागे हुये स्थितहै, अस्फुरण रूपसे तो सबको त्यागे है और स्फुरणरूपसे सब जगत्का आश्रय है ॥ ३९ ॥ कौन अणु अपने आच्छादन करनेमें असमर्थ होके भी सबको आच्छादित कर रक्खाहै इसका उत्तर यह है कि यही चेतन अणु सर्वव्यापक होनेसे शुद्ध चेतनतासे अपना आच्छादन (परिच्छेद) करनेमें असमर्थ है, और अपनी परम चेतनताको मण्डपके समान फैलाके सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको आच्छादन (ढांक) कर रक्खाहै ॥ ४० ॥

आत्मगुप्तौनशक्नोतिपरमात्मांबराकृतिः ॥ मनागपीक्षणमपिगजोदूर्वावनेयथा ॥ ४१ ॥ तथाप्याक्रांतवान्विश्वंज्ञातोगोपायातिक्षणात् ॥ जगद्दानाकर्णंबालइवाद्योप्रनम्यचिता ॥ ४२ ॥ चिन्मात्रानुनयेनेदंजगत्सन्नपिजीवति ॥ वसंतरसबोधेनविचित्रेववनावली ॥ ४३ ॥ चितिरसस्तैवमखिलंस्वतोजगदिवोदितम् ॥ मधुमासरसोल्लासाच्चित्रोहिवनखंडकः ॥ ४४ ॥

अर्थ—जैसे हाथी दूर्वोके वनमें अपना आच्छादन (ढांकना) कुछभी नहीं करसकता ऐसेही आकाशके तुल्य विशाल आकार यह परमात्माभी अपना आच्छादन नहीं करसकता ॥ ४१ ॥ तथापि इसने सम्पूर्ण विश्वको आक्रान्त कर रक्खाहै और जैसे जाग्रत् बालक खेतोंमें धानकी रक्षा करताहै ऐसेही अपने चेतनरूपसे ज्ञात यह परमात्माभी विश्वकी रक्षा क्षणभरमें करताहै यह आश्चर्यकारिणी शक्ति इसकी मायाकी है अपना आच्छादन वा रक्षा न करसके और सम्पूर्ण ब्रह्माण्डकी करै ॥ ४२ ॥ प्रलयमें लीनभी यह जगत् किसकी सत्तासे पुनः जीताहै इसका उत्तर यह है कि जैसे वसन्तऋतुके बोधमात्रसे सम्पूर्ण चित्रविचित्र वनकी पंक्ति पुनः विकसित होती है ऐसेही चेतनके अवलम्ब मात्रसे प्रलयमें लीन संस्कारमात्रसे शेष यह जगत् जीता रहताहै ॥ ४३ ॥ जैसे मधुमासके रसके उल्लासमात्रसे विचित्र बन बनका खण्ड पुनः विकसित होजाताहै ऐसेही चेतनकी सत्ता (जो प्रलय तथा सृष्टिमें भी एकरूप है) हीसे यह जगत् आपसे आप उदयको प्राप्त होजाताहै ॥ ४४ ॥

सत्यंचिन्मयमेवेदंजगदित्येवविद्धयलम् ॥ वसंतरसमेवत्वंविद्धिपल्लवगुल्मकम् ॥ ४५ ॥ सर्वावयविसारत्वात्सहस्रकरलोचनः ॥ परमाणुरसावेवनित्यानवयवोदयः ॥ ४६ ॥ निमेषांशावबोधोहिचिद्णोःप्रतिभासते ॥ यतःकल्पसहस्रौघःस्वप्नेवार्द्धकबाल्यवत् ॥ ४७ ॥ ततःसेपिनिमेषोणुःकल्पकोटिशतान्यलम् ॥ सर्वसत्ताविलासेनप्रतिभैकाविजृंभते ॥ ४८ ॥

अर्थ—इस सम्पूर्ण जगत्को सत्यरूपसे तुम चिन्मात्रही जानो जैसे वसन्त रसमात्रही पत्र लता आदिको जानो ॥ ४५ ॥ बिना कोई अंग उत्पन्न हुयेभी कौन अणु सहस्र हस्त (हांथ) और नेत्रवाला है इसका उत्तर यह है कि यही परमात्मा चेतन अणु जिसके कदापि कोई अंग नहीं उत्पन्न हुये तथापि जरायुज अण्डज स्वेदज और उद्भिज्ज जो चारप्रकार शरीरधारी प्राणी हैं उन सबका सार अर्थात् आत्मा होनेसे सहस्रों (हजारों) हस्त और नेत्रधारी है ॥ ४६ ॥ कौन निमेष महाकल्प और सैकडों कोटि कल्पभी है इसका उत्तर यह है कि इसी चेतन अणुके निमेषका अंशभी सहस्रों कल्पके समान भासताहै जैसे स्वप्नमें वृद्ध अवस्था और बाल्यअवस्था भासती है ॥ ४७ ॥ और उसी परमात्मासे वह निमेष अणुभी सैकडों कोटि कल्परूपसे भलीभांति भासने लगताहै क्योंकि सब चेतनकी सत्ताके विलाससे उसकी एक स्फुरणही कल्प आदिका स्वरूप धारण करके शोभित होती है ॥ ४८ ॥

अभुक्तवत्येवयथाभुक्तवानहमित्यलम् ॥ जायतेप्रत्ययस्तद्वन्निमेषेकल्पनिश्चयः ॥ ४९ ॥ अभुक्त्वाभुक्तवानस्मीत्येवंप्रत्ययशालिनः ॥ दृश्यंतेवासनाविष्टाःस्वप्नेस्वमरणंयथा ॥ ५० ॥ जगंतिपरितिष्ठंतिपरमाणौचिदात्मनि ॥ प्रतिभासाःप्रवर्त्ततेततएवहिजागताः ॥ ५१ ॥ यदस्तियत्रतत्तस्मात्समुदेतितदेवतत् ॥ आकारिणिविकारादिदृष्टंनगगनेऽमले ॥ ५२ ॥

अर्थ—जैसे स्वप्नमें भोजन न करनेपरभी अच्छीतरह भोजन करलिया यह निश्चय होताहै ऐसेही निमेषमें कल्पकाभी निश्चय होताहै ॥ ४९ ॥ भोजन न करनेपरभी भोजन करलिया इत्यादि वृत्तियां वासनासे पूर्ण देखपडती हैं, जैसे स्वप्नमें अपना मरण ॥ ५० ॥ जो पूंछा था कि किस अणुमें सम्पूर्ण जगत् ऐसे रहतेहैं जैसे बीजमें वृक्ष इसक उत्तर यह है कि इसी चेतनरूप परम अणुमें अनेक जगत् स्थित रहतेहैं, क्योंकि इसीसे सम्पूर्ण जगत् सम्बधी स्फुरणा यें होतीं हैं ॥ ५१ ॥ जो पदार्थ जहां है वहांहीसे वह उत्पन्न होताहै जैसे खम्भेमें चित्र इसलिये वह चित्र खम्भरूपही है जो जहां नहीं हैं वह वहां नहीं होता जैसे कारण रहित निर्मल आकाशमें कुछ नहीं उत्पन्न होता॥५२॥

चितिभूतानिभूतानिवर्त्तमानानिसंप्रति ॥ भविष्यंतिचभूतानिसंतिबीजेद्रुमाइव ॥ ५३ ॥ निमेषकल्पावेतेनतुषणान्नकणाविव ॥ वलितावेषचेत्याभ्यामणुःस्वात्मांगकंश्रितः ॥ ५४ ॥ उदासीनवदासीनोनसंस्पृष्टोमनागपि ॥ एषभोक्तृत्वकर्तृत्वैःस्वात्मासर्वजगत्यपि ॥ ५५ ॥ जगत्सत्तोदितेयंहिशुद्धचित्परमाणुतः ॥ परमाणोश्चभोक्तृत्वकर्तृत्वेकेवलंस्थिते ॥ ५६ ॥

अर्थ—जैसे बीजमें वृक्ष रहतेहैं ऐसेही इसी चेतनमें भूत वर्तमान तथा भविष्यत् सम्पूर्ण जगत् तथा उसमें रहने प्राणीसमूह रहतेहैं ॥ ५३ ॥ जैसे तुष (भुसी) से चावल और उसके अवयव आच्छादित रहतेहैं ऐसेही चेतनसे निमेष तथा कल्प आच्छादित रहतेहैं, अर्थात् यह सबको वेष्टित कियेहै, इस अणुने विपयरूप निमेष और कल्पके अपने एक देशका आश्रय दे रक्खाहै ॥ ५४ ॥ यह चेतन यद्यपि सब जगत्का आत्मा है तथापि भोक्तृता तथा कर्तृतासे किंचित्‌भी स्पष्ट नहीं है किन्तु उदासीनके तुल्यस्थित है ॥ ५५ ॥ इसी शुद्ध चेतनसे

जगत्की सत्ता उदयको प्राप्त होती है, और इस चेतन अणुकी कर्तृता और भोक्तृताहै वह क्रियाके भोगके सम्बन्धके विनाही मायासे इसमें स्थितहैं ॥ ५६ ॥

जगन्नकिंचित्क्रियतेसर्वदैवनकेनचित् ॥ विलीयतेचनोकिंचिन्मानुष्याद्दृश्यखंडनम् ॥ ५७ ॥ सर्वंसमसमाभासमिदमाकाशकोशकम् ॥ जगत्तयोपशब्दंचविद्धयनाद्यंनिशाचरि ॥ ५८ ॥ चिदणुर्दृश्यसिद्ध्यर्थमांतरींचिचमत्कृतिम् ॥ बहीरूपतयाधत्तेस्वात्मनिपरिसंस्थितम् ॥ ५९ ॥ एतद्वहिष्ठमंतस्थमस्तिशब्देनवस्तुनि ॥ उपदेशायसत्वानांचिद्रूपत्वाज्जगत्त्रये ॥ ६० ॥

अर्थ—सर्वदा इस जगत्को न तो कोई रचताहै और न लय करताहै, क्योंकि ये दोनों कल्पित हैं, और जो वेदान्त वाक्योंसे इसका खण्डन किया जाताहै वह मनुष्यकृत व्यवहार दृष्टिसे न कि परमार्थमें ॥ ५७ ॥ हे निशाचरि ! यह सम्पूर्ण जगत् समस्फुरणरूप केवल चिदाकाश कोशमात्र है और सम्पूर्ण जगत् जो अनुभूत होताहै उसको वाणीका विषय विकारमात्र अनादि कालसे तुम जानो ॥ ५८ ॥ कौन अणु नेत्ररहितभी अपने आत्माहीको दृश्यरूपसे देखताहै इसका उत्तर यह है कि यही चेतन अणु दृश्यकी सिद्धिके अर्थ अपने आत्मामें स्थित अन्तर्गत जो मायासे व्याप्त चेतनकी चमत्कृति है उसीको बाह्य प्रपंचरूपसे धारण करताहै ॥ ५९ ॥ आत्माके अन्तस्थही जगत् बाहर है यह कथनभी तीनों लोकमें अधिकारी जीवोंके उपदेशके लिये शब्दमात्रमें है न कि वस्तुमें ॥ ६० ॥

द्रष्टाऽदृष्टपदंगच्छन्नात्मानंसंप्रपश्यति ॥ नेत्रदृश्याभिपातीवसदेवासदिवस्थितम् ॥ ६१ ॥ नचगच्छतिदृश्यत्वंद्रष्टाह्यसदवास्तवम् ॥ आत्मन्येवनयत्किंचित्तत्तामेतिकथंपरः ॥ ६२ ॥ दृगेवलोचनेसाचवासनांतंनिजंवपुः ॥ बहीरूपतयादृश्यंकृत्वाद्रष्टृतयोदिता ॥ ६३ ॥ नविनाद्रष्टृतामस्तिदृश्यसत्ताकथंचन ॥ पितृतेवविनापुत्रंद्वितेवैक्यपदंविना ॥ ६४ ॥

अर्थ—यह द्रष्टारूप आत्मा नेत्रद्वारा अन्तःकरणसे बाह्य देशमें अदृष्ट विषयरूपता प्राप्त होता हुआ सदा विद्यमान आत्माहीको असत् घट आदिरूपसे प्रकाशित करताहै ॥ ६१ ॥ परमार्थ दृष्टिसे द्रष्टा (शुद्ध चेतन) दृश्यरूपको नहीं प्राप्त होता क्योंकि जो वस्तु यथार्थमें आत्मामें नहीं हैं उस रूपताको वह कैसे प्राप्त होसकताहै ॥ ६२ ॥ नित्य अपरोक्ष चेतन जो दृक्शक्ति है वही लोचनहै "क्योंकि नेत्रोंकाभी नेत्र वही है" (ऐसा श्रुतियोंमें कहाहै) वे कि नेत्र, और वही दृक्शक्ति आविर्भावसे लेके तिरोभाव पर्य्यन्त वासनान्त दृश्य रचके उसका द्रष्टा बाह्यरूपसे द्रष्टृता धारण करताहै ॥ ६३ ॥ द्रष्टाकी सत्ता विना दृश्यकी सत्ता किसीप्रकार नहीं बनसकती जैसे कि पिताके पुत्र अथवा एकता विना द्वैतता ॥ ६४ ॥

द्रष्टैवदृश्यतामेतिनद्रष्टृत्वंविनास्तितत् ॥ विनापित्रेवतनयोविनाभोक्त्रेवभोग्यता ॥ ६५ ॥ द्रष्टुर्दृश्यविनिर्माणेचित्त्वादस्त्येवशक्तता ॥ कनकस्यावदातस्यकटकादिकृताविव ॥ ६६ ॥ दृश्यस्यद्रष्टृनिर्माणेजडत्वान्नास्तिशक्तता ॥ कटकस्यतुहेमस्ययथाकनकनिर्मितौ ॥ ६७ ॥ चेतनादृश्यनिर्माणंचित्करोत्यसदेवसत् ॥ अकारणंमोहहेतुंहेमेवकटकभ्रमम् ॥ ६८ ॥

अर्थ—द्रष्टा जो देवही दृश्यभावको प्राप्त होताहै क्योंकि द्रष्टाके विना दृश्य कुछ नहीं है जैसे पिताके विना पुत्र वा भोक्ताके विना भोग्य ॥ ६५ ॥ जैसे शुद्ध सुवर्णकी कटक आदिके बनानेमें सामर्थ्य है ऐसाही चेतन होनेके कारण द्रष्टाका सामर्थ्य दृश्य बनानेमें है ॥ ६६ ॥ जैसे कटकका सामर्थ्य सुवर्ण बनानेमें नहीं है ऐसेही जड होनेके कारण दृश्यका सामर्थ्य द्रष्टा जिनानेका नहीं है ॥ ६७ ॥ जैसे सुवर्ण अपने अज्ञानताके कारणसे कटक आदिका भ्रम करताहै ऐसेही चेतन होनेसे चित्शक्ति समर्थ होनेसे दृश्यकी रचना करताहै ॥ ६८ ॥

कटकत्वावभासेहियथाहेम्नोनहेमता ॥ सत्येवप्रकचत्येवंद्रष्टृदृश्यस्थितौवपुः ॥ ६९ ॥ द्रष्टादृश्यतयातिष्ठन्द्रष्टृतामुपजीवति ॥ सत्यांकटकसंवित्तौहेमेकांचनतामिव ॥ ७० ॥ एकस्मिन्प्रतिभासेहिनसत्ताद्रष्टृदृश्ययोः ॥ पुंप्रत्ययप्रकचनेकपशुप्रत्ययोदयः ॥७१॥ दृश्यंपश्यन्स्वमात्मानंनद्रष्टासंप्रपश्यति ॥ द्रष्टुर्हिदृश्यतापत्तौसत्ताऽसत्तेवतिष्ठति ॥ ७२ ॥

अर्थ—जैसे कटककी स्फुरण दशामें सुवर्णताका स्फुरण नहीं होता, ऐसेही जिससमय द्रष्टा दृश्यरूपसे स्थित होताहै उस समय द्रष्टा अपने रूपसे सत्यके समान नहीं स्फुरण होता ॥ ६९ ॥ जैसे कटककी स्फुरण दशामेंभी उपजीवक (कारज) पूर्व सिद्ध सुवर्णताही है ऐसे द्रष्टा जब दृश्यरूपसे स्थित होताहै उस समयभी कारण वही चेतन द्रष्टा उसका उपजीवक है ॥ ७० ॥ यदि यह कहो कि सुवर्णता और कटकता एक काल (यह कठा सुवर्ण है ऐसा)

में भासती हैं सो नहीं क्योंकि जब एक वस्तु प्रतिभास होताहै तब द्रष्टा और दृश्य दोनोंका प्रतिभास नहीं ऐसे होता जैसे दूर देशस्थ विषयमें यह पुरुष है अथवा पशु यहांपर जब पुरुषाकार वृत्ति होती हैं उससमय पशुका अनुसन्धान अर्थात् पश्वाकार वृत्ति नहीं होती और जब पशु भासताहै तब पुरुषाकार वृत्ति नहीं होती ॥७१॥ जब द्रष्टा चेतन दृश्यको देखने लगताहै उससमय अपने आत्माको नहीं देखता अर्थात् जब दृश्याकार वृत्ति होती है तब आत्माकार नहीं होती, क्योंकि द्रष्टा जब दृश्यरूपसे भासने लगताहै उससमय उसकी सत्ता रहती हुईभी असत्‌के तुल्य स्थित रहती है ॥७२॥

बोधाद्गलितदृश्यस्यद्रष्टुःसत्तैवभासते ॥ अबुद्धेकटकेस्वस्थहेम्नोऽकटकतायथा ॥ ७३ ॥ दृश्येसत्ये स्तिवैद्रष्टादृश्यंद्रष्टरिभासते ॥ द्वयेनचविनानैकंनैकमप्यस्तिचानयोः ॥ ७४ ॥ सर्वंयथावद्विज्ञायशुद्धसं विन्मयात्मना ॥ वाचामविषयंस्वच्छंकिंचिदेवावशिष्यते ॥ ७५ ॥ आत्मानंदर्शनंदृश्यंदीपेनेवावभासि तम् ॥ कृतंचसर्वमेतेनचिन्मात्रपरमाणुना ॥ ७६ ॥ मातृमानप्रमेयाख्यंबुधोनिगिरतित्रयम् ॥ हेमेवक टकादित्वमसन्मयमुपस्थितम् ॥ ७७ ॥

अर्थ—जैसे जब कटकका भान नहीं होता उससमय सुवर्णमें कटकता नहीं रहती, ऐसेही जब ज्ञानसे दृश्यका भान नहीं होता तब केवल द्रष्टाहीकी सत्ता भान होती है ॥ ७३ ॥ दृश्यके होनेपर द्रष्टा और द्रष्टाके होने दृश्य भासताहै, और जब ज्ञानसे दृश्यकी सत्ता जिस पुरुषको नहीं भासती उसको द्रष्टादृश्य इन दोनोंमेसे एकभी नहीं भासता ॥ ७४ ॥ शुद्ध ज्ञानमय आत्मासे सब कुछ यथार्थ रूपसे जाननेपरभी वाणीका अविषय जो कुछ शुद्ध आत्मरूप है वह शेष रहजाताहै ॥ ७५ ॥ दीपके तुल्य भासित द्रष्टादृश्य और दर्शनको यह आत्मा प्रकाशित करताहै और इसी चेतनमात्र परमाणुसे प्रसिद्धिको प्राप्त द्रष्टा आदिको ज्ञानी पुरुष प्रमाता, प्रमाण और प्रमेयकोभी अन्तर्भाव ऐसे करलेतेहैं जैसे सुवर्णमें असत्‌रूपसे उपस्थित कटक आदिको ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

यथानजलभूम्यादेःपृथक्किंचिन्मनागपि ॥ तथैतस्मात्स्वभावाणोर्नकिंचित्पृथगस्तिहि ॥ ७८ ॥ सर्व गानुभवात्मत्वात्सर्वानुभवरूपतः ॥ एकत्वानुभवन्यायेरूढेसैवैकतास्यहि ॥७९॥ अस्येच्छयापृथङ् नास्तिवीचितेवमहांभसः ॥ इच्छानुरूपसंपत्तेर्भावितार्थैकताकिल ॥ ८० ॥

अर्थ—जैसे जल पृथिवी आदिसे भिन्न कोईभी दृश्य पदार्थ नहीं हैं ऐसेही उस स्वभाव सिद्ध चेतन अणुसे कोईभी पदार्थ पृथक् नहीं है ॥ ७८ ॥ सर्वव्यापी अनुभवरूप होनेसे और सबका अनुभवरूप होनेसे, एकत्वके अनुभवका न्याय जब दृढ होजाताहै तो सबके साथ इस चेतनकी एकता हुई है ॥ ७९ ॥ इसकी इच्छाके अनुसार फलकी प्राप्ति होनेसे इसीकी इच्छासे सिद्ध पदार्थकी एकताके कारण, समुद्रकी तरंगताके तुल्य इस परमात्माकी इच्छासे इससे पृथक् कुछ नहीं है ॥ ८० ॥

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नःपरमात्मास्तिकेवलः ॥ सर्वात्मत्वात्ससर्वात्मसर्वानुभवतःस्वतः ॥ ८१ ॥ स न्नेषचेतनात्मत्वाद्दर्शनानवबोधतः ॥ द्वैतैक्येनात्रविद्येतेसर्वरूपेमहात्मनि ॥ ८२ ॥ यदिकश्चिद्द्वितीयः स्यात्तदैकस्यैकताभवेत् ॥ द्वैतैक्ययोर्मिथःसिद्धिरातपच्छाययोरिव ॥ ८३॥ यत्रनास्तिद्वितीयोहितत्रैक स्यैकताकथम् ॥ एकतायामसिद्धायांद्वयमेवनविद्यते ॥ ८४ ॥

अर्थ—और यही परमात्मा देश काल तथा वस्तुके परिच्छेदसे शून्य है और वह सबका आत्मा होनेसे सब कुछ उससे अभिन्न है, और स्वयं तो वह सबका अनुभवरूप है न कि जड ॥ ८१ ॥ सब चेतनोंकाभी आत्मा होनेसे यह सत्‌रूप है और नेत्र आदि इन्द्रियोंसे इसका ज्ञान नहीं होता इसलिये श्रुतियोंमे इसे असत् कहाहै और इसी कारणसे इस सर्वरूप महात्मामें लौकिक सत्‌रूप जो द्वैतता और एकता है वह नहीं है ॥ ८२ ॥ यदि यह कहो कि द्वैतसापेक्ष होनेसे मिथ्या है परन्तु एकता तो सत्य है तो नहीं यदि कोई द्वितिय होतो एककी एकताहो क्योंकि आतप (घाम) और छायाके सदृश द्वैतता तथा एकताकी सिद्धिहै अर्थात् एककी सिद्धिके बिना दूसरेकी किद्धि नहीं होती ॥ ८३ ॥ जहांपर द्वितीय कोई है ही नहीं वहांपर एककी एकता कैसे, और एकता जब असिद्ध हुई तब द्वैतता और एकता दोनों नहीं हैं ॥ ८४ ॥

एवंस्थितेतुयस्तिष्ठंस्तत्ताहक्तदिवास्तिहि ॥ तस्मान्नव्यतिरिक्तंतद्रूपंद्रवइवांभसः ॥ ८५ ॥ नानारंभंवि भासंवसाम्येनाक्षुब्धरूपिणः ॥ बीजस्यांतस्तरुरिवब्रह्मणोंतःस्थितंजगत् ॥ ८६ ॥ द्वैतमप्यपृथक्तस्मा द्धेम्नःकटकतायथा ॥ सम्यक्बुद्धावबोधोहिद्वैतंतच्चनसन्मयम् ॥ ८७ ॥ यथाद्रवत्वंपयसःस्पंदनंमात रिश्वनः ॥ व्योम्नःशून्यत्वमेवंहिनपृथग्द्वैतमीश्वरात् ॥ ८८ ॥

अर्थ—इसप्रकार द्वैतता और एकतासे शून्य आत्मतत्व स्थित होनेपर जो द्वैतता और एकतावान्‌के सदृश स्थित भासताहै उससे द्वैतता और एकता ऐसे भिन्न नहीं है जैसे समुद्रसे द्रवता ॥ ८५ ॥ जैसे पृथिवी जलादिकी समतासे अविकारी बीजके भीतर वृक्ष स्थितहै ऐसेही सत्व रजस और तमोगुणकी समता पूर्व अवस्थासे अप्रच्युत (न गिरे हुये) ब्रह्मके भीतर नानाप्रकारके आरम्भ और स्फुरणवाला यह जगत् स्थितहै ॥ ८६ ॥ जैसे सुवर्णसे कटकता पृथक् नहीं है इसीप्रकार ब्रह्मसे यह द्वैत भान होता हुआभी पृथक् नहीं है और उत्तम रीतिसे तत्ववेत्ताका जो ज्ञान है वही द्वैत है और द्वैतरूपसे उस ज्ञानका भान होना सत्‌मय नहीं है ॥ ८७ ॥ जैसे जलसे द्रवता, वायुसे गति, और आकाशसे शून्यता पृथक् नहीं है इसीप्रकार ईश्वरसे द्वैत भिन्न नहीं है ॥ ८८ ॥

द्वैताद्वैतोपलंभोहिदुःखायैवक्रियात्मने ॥ निपुणोनुपलंभोयस्त्वेतयोस्तत्परंविदुः ॥ ८९ ॥ मातृमानप्रमेयादिद्रष्टृदर्शनदृश्यता ॥ एतावज्जगदेतच्चपरमाणौचितिस्थितम् ॥ ९० ॥ अयंजगदणुर्नित्यमेतेनाणुसुमेरुणा ॥ स्पंदनंपवनेनेवस्वांगएवकृताकृतः ॥ ९१ ॥ अहोनुभीमामायेयमथवामायिनांपरा ॥ परमाण्वंतरेवास्तियत्रैलोक्यपरंपरा ॥ ९२ ॥

अर्थ—क्रियाकी प्रवृत्तिके लिये द्वैत और अद्वैतका जो अनुभव है सो केवल दुःखार्थही है कुशलतापूर्वक जो इन दोनोंके अनुभवका अभाव है उसीको उत्तम ज्ञान कहते हैं ॥ ८९ ॥ भूत भविष्यत् और वर्तमान जगत् किसमें है इसका उत्तर यह है कि शास्त्रीय भाषामें प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय, और मितिभी, तथा लौकिक रीतिसे द्रष्टा, दर्शन और दृश्य यह जो त्रिपुटी है यही त्रिकालस्थ जगत् है वह सम्पूर्ण चेतन परमाणुमें स्थितहै ॥ ९० ॥ इस आत्मरूप सुमेरुने इस जगत्‌रूप अणुको सदा अपने अंगमेंही अनेक वार उत्पन्न तथा उपसंहार ऐसे कियाहै जैसे वायु अपनी गतिको ॥ ९१ ॥ अहो ! यह आत्म चिति (चेतन) माया शवलित होनेसे कैसी भयंकर माया है अथवा प्राणियोंको जितने व्यामोह करानेवाले है उन सबमें श्रेष्ठहै क्योंकि एक परमाणुके भीतर अनेक त्रैलोक्योंकी श्रेणी रहती है ॥ ९२ ॥

अथासंभवमायित्वमेवैतत्सर्वदास्थितम् ॥ चिन्मात्रपरमाणुत्वमात्रमेवजगत्स्थितिः ॥ ९३ ॥ अंतर्गतजगज्जालोप्येषोणुःसाम्यमत्यजन् ॥ स्थितोंतस्थवृहद्वृक्षंबीजंभांडोदरेयथा ॥ ९४ ॥ बीजेंतर्वृक्षविस्तारःस्थितःसफलपल्लवः ॥ परयादृश्यतेदृष्ट्याजगच्चचिदणूदरे ॥ ९५ ॥ सशाखाफलपुष्पंस्वमजहद्बीजकोटरे ॥ यथातरुःस्थितस्तद्वद्दिकासिचिदणोर्जगत् ॥ ९६ ॥

अर्थ—यदि "एकमेवाद्वितीयम्" इत्यादि श्रुतियोंसे यह आत्मा मायाकी असम्भव रूपतासेही स्थितहै तो इस जगत्‌की स्थितिभी केवल चिन्मात्र परमाणुरूपहै ॥ ९३ ॥ जैसे किसी वर्तनके भीतर बीज अपनेमें महान् वृक्षको धारण करके स्थितहै ऐसेही यह अणुके भीतर व्याप्तभी परमात्मा अनेक जगत्‌के समूहोंको अपने भीतर धारण किये है ॥ ९४ ॥ जैसे बीजके भीतर फल और पल्लवसहित वृक्षका विस्तार स्थितहै ऐसेही योगसे शुद्ध अथवा ब्रह्माकी दृष्टिसे चेतन अणुके भीतर अनेक जगत् देख पड़तेहैं ॥ ९५ ॥ जिसप्रकार बीज कोटरके भीतर शाखा, फल, और पुष्प आदिको न त्याग करता हुआ वृक्ष स्थितहै ऐसेही यह प्रकाशमान जगत् चेतन अणुके भीतर स्थितहै ॥ ९६ ॥

संस्थितंद्वैतमद्वैतंबीजकोशइवद्रुमः ॥ जगच्चित्परमाण्वंतर्यःपश्यतिसपश्यति ॥ ९७ ॥ नद्वैतंनैवचाद्वैतंनचबीजंनचांकुरः ॥ नस्थूलंनचवासूक्ष्मंनाजातंजातमेवच ॥ ९८ ॥ नचास्तिनचनास्तीदंनसौम्यंक्षुभितंनच ॥ त्रिजगच्चिदणोरंतःखवाय्वपिनकिंचन ॥ ९९ ॥ नजगन्नाजगच्चास्तिविद्यतेचित्पराशुभा ॥ सर्वात्मिकायदायत्रसायथोदेतितत्तथा ॥ १०० ॥

अर्थ—बीज कोशके भीतर जैसे वृक्ष अभिन्नरूपसे स्थितहै ऐसेही चित् परमाणुके भीतर स्थित इस जगत् द्वैतको जो अद्वैतरूतसे देखताहै वही देखताहै अर्थात् वही तत्वज्ञानी है ॥ ९७ ॥ यथार्थमें न द्वैत है न अद्वैत है न बीज न अंकुर न स्थूल न सूक्ष्म, और न यह जगत् उत्पन्न और न अणुत्पन्न हुआहै ॥ ९८ ॥ यह तीनों जगत् चेतन अणुके भीतर न अस्तिस्वभाव है और न नास्तिस्वभाव है, न शान्त है न क्षुभित (अशान्त) है और आकाशवायु आदि कुछभी नहीं है ॥ ९९ ॥ न यह जगत् है न जगत्‌से भिन्न है किन्तु केवल कल्याणस्वरूप चेतन है वह चेतन पूर्वकी वासनाके अनुसार जब जैसी आविर्भूत होती है तब वैसीही स्फुरित होजाती है ॥ १०० ॥

उदेत्यनुदितोप्येषस्वयंवेदनजृंभितः ॥ परमात्माणुरेकात्मासमग्रात्मतयैवसः ॥ १०१ ॥ द्रुमोभूमौस्वबीजत्वमिवोदेत्यनुदेत्यपि ॥ परंतत्त्वंजगद्रूप्याजगत्तांस्वोदयेनच ॥ १०२ ॥ द्रुमोबीजतयैवाशुनसंत्य

कसमस्थितिः ॥ तिष्ठत्यपगतस्पंदस्त्यागात्यागपरोणुकः ॥ १०३ ॥ बिसतंतुर्महामेरुःपरमाणोरपेक्षया ॥ दृश्यंकिलविशेत्तंतुरदृश्याक्ष्णापराणुता ॥ १०४ ॥

अर्थ—अपने ज्ञानमात्रसे सृष्टिकी स्फुरणासे वृद्धिको प्राप्तभी यह अपने स्वरूपसे अनुदितही रहताहै अर्थात् च्युत नहीं होता और प्रपंच रहित स्वरूपाकाशमें एकरूप होता हुआभी यह परमात्माअणु समग्ररूपसे है ॥ १०१ ॥ जैसे वृक्ष बीजोंको उत्पन्न करता हुआ अपने वृक्षस्वभावको न त्यागकर बीजत्वरूपसे उदय होताहै और उस बीजरूपसे पुनः पृथिवीपर प्राप्त होताहै इसीप्रकार परंतत्व ब्रह्मभी जगत्की रचनारूपसे उदयको प्राप्त होताहै और अपने उदयसे जगत् रूपता अर्थात् जन्म मरण आदि कल्पनाको प्राप्त होताहै ॥ १०२ ॥ केवल इतना विशेष है कि वृक्ष बीजरूपसेही अपनी समान स्थितिको त्यागकर विकारी नहीं है किन्तु वृक्ष और बीज दोनों रूपसे विकारी हैं और आत्मा तो त्याग और अत्याग दोनोंमें तत्पर है अर्थात् असंग अद्वितीय होनेसे सर्वत्यागपर है और सर्वमें व्याप्त सत्रूप होनेसे सर्व त्यागपर होकरभी सदा निर्विकार एकरूपसेही रहताहै ॥ १०३ ॥ जिसकी अपेक्षा कमलकी नालका सूत भी महामेरु है इसका उत्तर कहते हैं कि परमाणुकी अपेक्षा कमलकी नालका सूतभी स्थूल होनेसे महामेरु है क्योंकि नालकासूत दृष्टिगोचर होसकताहै और परमाणुता नेत्रसे अदृश्य है ॥ १०४ ॥

बिसतंतुर्महामेरुःपरमाणोःकिलात्मनः ॥ तस्यैवतद्घनाःस्वांतःस्थितामेर्वादिकोटयः ॥१०५॥ एकेन तेनमहतापरमाणुनाचव्याप्तंततंविरचितंजनितंकृतंच ॥ दृश्यंप्रपंचरचितंनभसेवविश्वंशून्यत्वमच्छमभितःपरिलब्धमेव ॥ १०६ ॥ द्वैतेनसुंदरतरंस्वमनुज्झितेनरूपंसुषुप्तसदृशेनयथावबोधात् ॥ ऐक्यंगतंस्थितिगमागमसुक्तमेवमित्थंस्थितंतनुजगत्परमार्थपिंडः ॥ १०७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे कर्कट्युपाख्याने परमार्थपिंडीकरणं नामैकाशीतितमःसर्गः ॥ ८१ ॥

अर्थ—अब परमाणुकी अपेक्षा कमलकी नालका सूतभी महामेरु है और उसी ब्रह्म परमाणुके भीतर परमार्थ रूप अनेक मेरु और मन्दर कोटियां (करोडों) स्थित हैं ॥ १०५ ॥ किससे यह सम्पूर्ण व्याप्त है इसका उत्तर कहतेहैं कि एक महान् परमाणुसेही यह सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त, तत, विरचित, जनित, और कृत है, उसमें अपंचीकृत भूतरूपसे व्याप्त है, पचीकृत ब्रह्माण्ड भुवनरूपसे विरचित है उस ब्रह्माण्डमें देव, मनुष्य, असुर तथा तिर्यक् आदि भेदसे जनित (उत्पन्न) है, और उन देवादिके भोगके अर्थ उनके २ विषय भेदसे ऐसे कृत (किया) है जैसे आकाशसे गन्धर्वनगर नानाप्रकारकी विचित्र प्रपंच रचनासे रचितभी है परन्तु यथार्थमें वह आकाशके तुल्य चारोंओर स्वच्छ और शून्यरूपही उपलब्ध है, इससे किसकी सारता (बल पाके) तुम गर्जन और पालन आदि करतेहो इसका भी उत्तर विश्वके अन्तर्गत होनेसे सबमें वही ब्रह्मसार इस रीतिसे होगया ॥ १०६ ॥ किस दृष्टिसे तुमहो और किस दृष्टिसे नहीं हो इसका उत्तर यह है, जब कि यथार्थ आत्मरूपके ज्ञानसे तथा चेतन संभिन्न जड अविद्या मात्ररूप होनेसे सुषुप्तके तुल्य अपने द्वैत समयमेंभी चेतन सत्ताकी स्फूर्तिसे व्यवहारकी सिद्धिके लिये सच्चिदानन्द एकरूप होनेके कारण अतिसुन्दर अपने अधिष्ठान आत्मतत्व न त्यागनेसे द्वैतने स्थिति और गमागम अर्थात् सत्ता और क्रिया तथा उसकी निवृत्तियोंसे अपने त्यागे हुये ऐक्यको प्राप्त कियाहै तब यह क्षुद्र जगत् परमार्थ पिण्ड ब्रह्महो है इस रीतिसे मैं संसाररूप नहीं किन्तु अद्वैत ब्रह्मरूपही हुं ॥ १०७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे कर्कट्युपाख्याने परमार्थपिण्डीकरणं नामैकाशीतितमः सर्गः ॥ ८१ ॥

द्व्यशीतितमः सर्गः ॥ ८२ ॥

इस ८२ के सर्गमें प्रसन्न राक्षसीका राजा तथा मन्त्रीको वर सम्प्रदान करना, और समाधिसे उठी हुई राक्षसीको वध्यभोज्य पदार्थका देना इत्यादि विषयका वर्णन कियाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इतिराजमुखाच्छ्रुत्वाकर्कटीवनमर्कटी ॥ अवबुद्धपदांतंस्वंजहौमत्सरचापलम् ॥ १ ॥ अंतःशीतलतामेत्यविश्रांतिमपतापताम् ॥ प्राप्ताप्रावृणमयूरीवसज्योत्स्नेवकुमुद्वती ॥ २ ॥ तथा राजगिरातस्याआनंदउदभूद्भृशम् ॥ गर्भेतःसेबलाकायारवेणेवपयोमुचः ॥ ३ ॥ राक्षस्युवाच ॥ अहो बतपवित्रेयंभवतोर्भातिशेमुषी ॥ अनस्तमितसारेणप्रबोधार्केणभासिता ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! इसप्रकार वनकी मर्कटी (वानरी) उस कर्कटी नामक राक्षसीने राजाके मुखसे इन वचनोंको सुनकर ब्रह्मपदके बोधसे अन्त होगयाहै जिसका ऐसे अपने मत्सर (डाह) और चपलताको त्यागदिया ॥ १ ॥ हे रामजी ! बाह्यदृष्टिके सन्तापसे रहित अन्तःकरणकी शीतलता पाकर वह ऐसी होगई जैसी वर्षाकालमें मयूरी (मोरनी) अथवा चन्द्रमाकी चन्द्रिका (चांदनी) सहित रात्रि ॥ २ ॥ राजाकी वाणी सुनकर उसके अन्तःकरणमें ऐसा अत्यन्त आनन्द उत्पन्न हुआ जैसे आकाशमें मेघोंके शब्दोंको सुनकर वक (वकुला) की पंक्तियोंके गर्भधारणमें ॥ ३ ॥ राक्षसी बोली–हे राजन् ! अहो ! कैसे हर्षका अवसर है कि चन्द्रमण्डलसे निकली चन्द्रिकाके सदृश शीतल एक रस, सर्वदा उदित है तत्त्व जिसमें ऐसे ज्ञानरूपी सूर्य्यसे प्रकाशित, और अति पवित्र तुम दोनोंकी बुद्धि शोभायमान होरही है ॥ ४ ॥

शीतासमरसाशुद्धाज्योत्स्नेवशशिमंडलात् ॥ विवेककणिकांश्रुत्वाभवतोहृदयादियम् ॥ ५ ॥ विवेकिनोजगत्पूज्याःसेव्यामन्येभवादृशाः ॥ सत्संगात्सविकासास्मिचंद्रेणेवकुमुद्वती ॥ ६ ॥ सौरभंकुसुमासंगादेवसत्संगमाच्छुभम् ॥ वर्त्ततेह्यर्कसंपर्काद्विकासोंबुरुहामिव ॥ ७ ॥ महतामेवसंपर्कात्पुनर्दुःखंनबाधते ॥ कोहिदीपशिखाहस्तस्तमसापरिभूयते ॥ ८ ॥

अर्थ—और तुमारे हृदयसे निकली हुई ज्ञानामृतकी कणिका सुनकर मैं ऐसा मानती हुं कि तुमारे सदृश विवेकी पुरुष मोक्षार्थियोंसे सेवा करनेके योग्य तथा पूजनीय हैं, और आपके सत्संगसे मैं ऐसी प्रकाशित होगई हुं जैसे चन्द्रचन्द्रिकासे रात्रि ॥ ५ ॥ ६ ॥ हे राजन् ! जैसे पुष्पोंके समागम मात्रसे सुगन्ध और सूर्य्यके सम्बन्ध मात्रसे कमलोंका विकाश होताहै ऐसेही सज्जनोंके समागम मात्रसे कल्याण होताहै ॥ ७ ॥ महात्माओंके समागमसे विवेकसे नाशको प्राप्त दुःख पुनः पीडा नहीं करता, क्योंकि ऐसा कौन है कि जिसके हस्तमें दीपकी शिखा हो और वह अन्धकारसे पीडित हो ॥ ८ ॥

मयेमौजंगलप्राप्तौभवंतौभूमिभास्करौ ॥ पूजनीयावतःशीघ्रमीहितंकथ्यतांशुभम् ॥ ९ ॥ राजोवाच ॥ अस्मिन्जनपदेरक्षःकुलकाननमंजरि ॥ जनस्यबाधतेत्यंतंसदात्हृदयशूलनम् ॥ १० ॥ यतःसर्वैजनतातप्तादृढविषूचिका ॥ मंडलेननुतेनाहंनिर्गतोरात्रिचर्यया ॥ ११ ॥ शूलादिहृदयेनृणांनशाम्यतियदौषधैः ॥ ततोहंत्वद्विधप्रोक्तमंत्रार्थेनविनिर्गतः ॥ १२ ॥

अर्थ— मुझे इस बनमें तुम दोनों पृथिवीके सूर्य्य प्राप्त हुये, और वांछित पदार्थ देकर तुम दोनों मेरे पूजनीय हो इसलिये अपना मनोरथ शीघ्र कहो ॥ ९ ॥ राजा बोले–हे राक्षसके कुलकी लते ! इस बनमें सब मनुष्योंको हृदयका शूल (विषूचिका) अत्यन्त पीडा देती है ॥ १० ॥ इस राज्यमें सम्पूर्ण जनसमूह प्रबल विषूचिका (महामारी) से अति सन्तप्त है इसीकारणसे रात्रिको भ्रमण निमित्त मैं निकला हुं॥ ११ ॥ मनुष्योंके हृदयमें जो शूल है वह औषधोंसे नहीं शान्त होता इसलिये आपके सदृश महात्माओंसे कहे हुये मंत्रके प्रयोजनसे मैं निकला हुं ॥ १२ ॥

त्वादृशस्यचलोकस्यमुग्धलोकाभिघातिनः ॥ निग्रहार्थंप्रवृत्तिर्मेसाचसंपत्तिमेत्यलम् ॥ १३ ॥ एतावदेवचश्शुभेत्वयांगीक्रियतांवचः ॥ भूयोभवत्याप्राणाहिहिंसनीयानकस्यचित् ॥ १४ ॥ राक्षस्युवाच ॥ बाढमेवंकरोम्यद्यप्रभृत्यवितथंप्रभो ॥ सत्यमेवनकिंचिद्धिहिंसनीयंमयाधुना ॥ १५ ॥ राजोवाच ॥ यद्येवंफुल्लपद्माक्षिपरदेहैकभोजने ॥ किंस्याच्छरीरवृत्त्यैतेस्थितायामत्समीहिते ॥ १६ ॥

अर्थ—मूर्ख (अज्ञ) जनोंके घातार्थ जो आपके सदृश जन हैं उनके निग्रह (वशीकरणार्थ) के लिये मेरी प्रवृत्ति है और वही प्रवृत्ति अब सिद्ध होगई अर्थात् तत्त्वज्ञानियोंका मनोरथ निष्फल नहीं होता ॥ १३ ॥ हे कल्याणस्वरूप राक्षसि ! इससमय तुम मेरा इतनाही वचन अंगीकार करो कि पुनः अब तुम किसी जीवके प्राणकी हिंसा न करो ॥१४॥ राक्षसी बोली–हे राजन् ! बहुत अच्छा आजसे लेके तुमारे वचनको सत्य करतीहुं, अब तुम यह सत्य जानो कि मैं किसीकी हिंसा न करूंगी ॥ १५ ॥ राजा बोले–हे विकसित कमलके सदृश नेत्रवाली तथा अन्यकी शरीरोंको भोजन करनेहारी, यदि तुम मुझे अभीष्ट अहिंसारूप व्यापारमें स्थित रहोगी तब तुमारी शरीरयात्रा कैसे होगी॥ १६ ॥

॥ राक्षस्युवाच ॥ षड्भिर्मासैर्गिरौराजन्प्रबुद्धायाःसमाधितः॥ जाताभोजनसंकल्पाद्भोजनेच्छेयमद्य मे ॥ १७ ॥ इदानींशिखरंगत्वातदेवध्याननिश्चला ॥ यावदिच्छंसुखेनासेसजीवाशालभंजिका ॥ १८ ॥ आमृतीधारणांबद्ध्वाधारयामिशरीरकम् ॥ यथेच्छमथकालेनत्यक्ष्यामीतिमतिर्मम ॥ १९ ॥ आशरीरपरित्यागाम्रिदानींनमयानृप ॥ हिंसनीयाःपरप्राणास्तेनेदंमद्वचःशृणु ॥ २० ॥

अर्थ--राक्षसी बोली-हे राजन् ! छः माससे इस पर्वतपर समाधिसे मैं उठीहुं और भोजनके संकल्पसे आज मुझे भोजनकी इच्छा हुई ॥ १७ ॥ अब पुनः उसी शिखरपर जाके ध्यानमें निश्चल होके अपनी इच्छापर्य्यंत सुखसे जीव सहित काष्ठकी पुतलीके समान स्थित रहूंगी ॥ १८ ॥ अमृत स्वरूप भावनाको बांधकर शरीरको धारण करूंगी, इसके अनन्तर अपनी इच्छासे शरीरको त्यागूंगी ऐसी मेरी मति है ॥ १९ ॥ और हे राजन् ! जबतक शरीर न त्यागूंगी तबतक मैं दूसरोके प्राणोंकी हिंसा नहीं करूंगी, इसलिये मेरे इस वचनको सुनिये ॥ २० ॥

हिमवान्नामशैलोस्तिशरच्चंद्रांशुनिर्मलः ॥ यउत्तराशाहृदयेस्पृष्टपूर्वापरार्णवः ॥ २१ ॥ तत्राहंनिवसाम्यग्रेहेमशृंगदरीगृहे ॥ आयसीमेघलेखेवकर्कटीनामराक्षसी ॥ २२ ॥ तपसोपार्जितोब्रह्माजनतामारणेच्छया ॥ विषूचिकाप्राणहरास्यांसूच्यात्मेतिभोमया ॥ २३ ॥ तस्मात्संप्राप्तवरयाबहून्वर्षगणान्मया ॥ भुक्ताविषूचिकात्वेनजनताजीवबाधनैः ॥ २४ ॥

अर्थ--शरत्कालके चन्द्रमाके निर्मल हिमवान्‌नाम पर्वत है जो कि उत्तर दिशाके मध्यमें पूर्व और पश्चिम समुद्रको स्पर्श करताहै॥२१॥ वहांपर उत्तम सुवर्ण कन्दराख्पी गृहमें लोहमय मेघकी लेखाके समान कर्कटी नाम राक्षसी मैं निवास करतीहुं ॥ २२ ॥ मनुष्योंके मारनेकी इच्छासे तपस्या करके मैं ब्रह्माजीको वशीभूत करलिया, और उनसे यह वरदान मांगा कि हे प्रभो ! मैं मनुष्योंके प्राण हरण करनेवाली विषूचिका होऊं ॥२३॥ उन महात्मासे वरदान पाके बहुत वर्षोंके समूह पर्य्यन्त प्राणियोंकी जीव बाधा करके जनसमूहोंको मैंने भक्षण किया ॥ २४ ॥

त्वयानगुणिनोहिंस्याइतिमेब्रह्मणाततः ॥ नियमार्थमहामंत्रस्तदायत्तास्मिसंस्थिता ॥ २५ ॥ सोयंप्रगृह्यतांतेनसर्वहृदयशूलनम् ॥ शममेष्यतिलोकेस्मात्काकथामत्कृतेश्रमे ॥ २६ ॥ विततैवास्मिहिंसायांयत्पुराहिंसितंमया ॥ जनस्यंहृदयंतेननाड्योवैधुर्यमागताः ॥ २७ ॥ हिंसित्वारक्तमांसानिसंत्यक्तायेमहाजनाः ॥ तेभ्योविधुरनाडीभ्योयेजातास्तेपितादृशाः ॥ २८ ॥

अर्थ--तुम गुणी पुरुषोंको नहीं मारना इसप्रकार मर्य्यादाके लिये ब्रह्माजीने मंत्र दिया इसलिये उस मंत्रके आधीन मैं स्थित हुं ॥ २५ ॥ इसलिये वह ब्रह्माजीका दिया हुआ मंत्र तुम ग्रहण करो उस मंत्रसे इस संसारमें सम्पूर्ण हृदयके शूल शान्त होजायगे और इस मेरे किये श्रमपीडाकी क्या कथा है ॥ २६ ॥ हिंसा करनेमें मैं बहुत कालसे प्रवृत्तहुं और पूर्वकालमें जो मैंने प्राणियोंके हृदयकी हिंसाकी थी इससे प्राणियोंकी नाडियां दूषित होगई ॥ २७ ॥ और रक्तमांसका चूषण करके जिन महाजनोंको मैंने छोड दियाथा, उनसे जो उत्पन्न हुये हैं वेभी उन्हींके सदृश दूषित होगयेहैं ॥ २८ ॥

राजन्विषूचिकामंत्रःसोयंसंपन्नएवते ॥ नहिसत्ववतामस्तिदुःसाध्यमिहकिंचन ॥ २९ ॥ अतोदुर्नाडिकोशेषुशूलानांपरिशांतये ॥ मंत्रोयोब्रह्मणाप्रोक्तोराजन्शीघ्रंगृहाणतम् ॥ ३० ॥ आगच्छनिकटंनद्यागच्छामस्तत्रभूमिप ॥ स्वाचांताभ्यांसंयताभ्यांभवद्भ्यांसुमतादृदे ॥ ३१ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इतितस्यांतदारात्र्यांराक्षसीमंत्रिभूभृतः ॥ जग्मुस्तेसरितस्तीरंमिथःसंजातसौहृदाः ॥ ३२ ॥

अर्थ--सो हे राजन् ! यह विषूचिका मंत्र तुमको सिद्धरूपसे प्राप्त होगा क्योंकि धैर्य्यवान् महात्माओंको कोईभी पदार्थ दुःसाध्य नहीं है ॥ २९ ॥ इसलिये हे राजन् ! दुष्ट नाडियोंके भीतर जो शूल हैं उनकी शान्तिके लिये ब्रह्माजीसे कहा हुआ यह मंत्र शीघ्र ग्रहण करो ॥ ३० ॥ हे राजन् ! आओ हम लोग नदीके निकट चलें वहांपर अच्छी तरहसे सावधान और आचमन किये हुये तुम दोनोंको प्रसन्न होकर मैं मन्त्र सम्प्रदान करूं॥३१॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! इसप्रकार उस रात्रिमें राक्षसी मंत्री और राजा तीनों परस्पर मित्रतामें बद्ध नदीके तटपर गये ॥ ३२ ॥

अन्वयव्यतिरेकेणराक्षस्याःसौहृदंतदा ॥ ज्ञात्वास्थितौतौस्वाचांतावुभावंतेनिवासिनौ ॥ ३३ ॥ तयाब्रह्मोपदिष्टोसौततस्ताभ्यांयथाक्रमम् ॥ स्नेहाद्विषूचिकामंत्रःप्रदत्तोजपसिद्धिदः ॥ ३४ ॥ ततःसंजातसौहार्दौतौविसृज्यनिशाचरी ॥ यदागंतुप्रवृत्तासौतदाराजाब्रवीद्वचः ॥३५॥ राजोवाच ॥ गुरुस्त्वंनौमहादेहेवयस्याचसुनिर्वृता ॥ निमंत्रयावहेयत्नाद्ग्रासायतवसुंदरि ॥ ३६ ॥

अर्थ--राक्षसीके अभिप्रायकी परीक्षाके चिन्हसे उसके मित्रभावको जानकर उत्तम रीतिसे आचमन कर शिष्य होके दोनों सम्मुख स्थित हुये ॥ ३३ ॥ उसके अनन्तर उस राक्षसीने स्नेहसे पूर्वप्रकरणमें ब्रह्माजीसे कहा हुआ और जपसे सिद्धि देनेवाला जो विषूचिकाका मंत्र है उसे यथाक्रम प्रथम राजाको पश्चात् मंत्रीको दिया ॥ ३४ ॥ इसके

अनन्तर वह निशाचरी उत्पन्न हुआहै मित्रभाव जिनको ऐसे राजा और मंत्रीको छोडकर जब जानेलगी उसीसमय राजा यह वचन बोला ॥ ३५ ॥ राजाजी बोले–हे महान् शरीर धारण करनेवाली ! तुम हम दोनोंकी गुरु और सखी (मित्र) भी अब होगईहो, इसलिये हे सुन्दरि ! तुमारे भोजनके अर्थ हम दोनोंने बता देतेहैं ॥ ३६ ॥

नचास्मत्प्रणयंप्रीतावितथीकर्तुमर्हसि ॥ सौहार्दंसुजनानांहिदर्शनादेववर्द्धते ॥ ३७ ॥ लघुसौभाग्य संयुक्तंकृत्वाकारंमनोरमम् ॥ आगच्छास्मद्गृहंभद्रेतत्रतिष्ठयथासुखम् ॥ ३८ ॥ राक्षस्युवाच ॥ मुग्ध स्त्रीरूपधारिण्यैदातुंशक्तोसिभोजनम् ॥ संतर्पयसिमांकेनराक्षसाकारधारिणीम् ॥ ३९ ॥ रक्षोन्नमेवसं तुष्ट्यैनसामान्यजनाशनम् ॥ पूर्वसिद्धस्वभावोयमादेहंननिवर्त्तते ॥ ४० ॥

अर्थ—सो हमारी यांचा आप निस्फल करने योग्य नहीं हो क्योंकि सुजन महात्माओंकी मित्रता केवल दर्शनमात्रसे बढती है ॥ ३७ ॥ इसलिये तुम छोटा तथा सुन्दर आभूषण आदिसे युक्त मनोरम आकार धारण करके हे भद्रे ! आओ सुखपूर्वक मेरे गृहमें निवास करो ॥ ३८ ॥ राक्षसी बोली–हे राजन् ! सुन्दर स्त्रीका रूप धारण करनेवाली मुझे मनुष्यके योग्य अन्नपान देनेको समर्थ हो परन्तु राक्षसका आकार धारण किये हुये मुझे किस वस्तुसे तृप्त करोगे ॥ ३९ ॥ मेरी तृप्तिके राक्षसका अन्न (नरमांस आदि) ही है न कि सामान्य मनुष्योंको भोजन क्योंकि मेरा यह पूर्वसिद्ध स्वभाव इस शरीरके अन्ततक निवृत्त नहीं होसकता ॥ ४० ॥

॥ राजोवाच॥ हेमस्रग्दामवलितादिनानिकतिचिद्गृहे ॥ ममस्त्रीरूपिणीतिष्ठयावादिच्छमानिंदिते॥४१॥ ततोदुष्कृतिनश्चौरान्वध्याञ्छतसहस्रशः ॥ मंडलेभ्यःसमानीदयदेतुभ्यंसुभोजनम् ॥ ४२ ॥ कांतारू पंपरित्यज्यगृहीत्वाराक्षसंवपुः ॥ आदायवध्याञ्छतशःपुरुषांस्तान्सुसंचितान् ॥ ४३ ॥ नयस्वहिम वच्छृंगंतत्र भुंक्ष्वयथासुखम् ॥ महाशनानामेकांतेभोजनंहिसुखायते ॥ ४४ ॥

अर्थ—राजाजी बोले–हे निन्द्रारहित राक्षसि ! सुवर्णकी माला आदिसे शोभित स्त्रीका रूप धारण करके कुछ दिनतक मेरे गृहपर रहो ॥ ४१ ॥ तब मैं दुष्टकर्म्म करनेवाले बधके योग्य सैकडों, सहस्रों (हजारों) जो चोर आदि हैं उनको अपने मण्डलों (राज्यके परगनों) से लाके तुमको इच्छापूर्वक उत्तम भोजन दूंगा ॥ ४२ ॥ तब तुम स्त्रीका रूप परित्याग करके और राक्षसीका स्वरूप धारण करके उस संचय (एकट्ठे) किये सैकडों वध्यपुरुषोंको लेके ॥ ४३ ॥ उस हिमालयके शिखरपर लेजाओ, और वहां सुखसे उनका भोजन करो, क्योंकि अधिक भोजन करनेवालोंको भोजन एकान्तमेही सुखदायी होताहै ॥ ४४ ॥

तृप्तानिद्रांमनाक्कृत्वाभवभूयःसमाधिभाक् ॥ समाधिविरताभूयोप्यागत्यपुनरन्यदा ॥ ४५ ॥ नेष्य स्यन्यान्वध्यजनान्हिंसनैषांचधर्मतः ॥ स्वधर्मेणचहिंसैवमहाकरुणयासमा ॥ ४६ ॥ त्वंसमेष्यसि चावश्यंमांसमाधिविरागिणी ॥ असतामपिसंरूढंसौहार्दंननिवर्त्तते ॥ ४७ ॥ राक्षस्युवाच ॥ युक्तमु क्तंत्वयाराजन्करोम्येवमहंसखे ॥ सौहार्देनप्रवृत्तस्यकोवाक्यंनाभिनंदति ॥ ४८ ॥

अर्थ—भोजनसे तृप्त होकर किंचित् निद्रा करके पुनः समाधिमें तत्पर होओ, और समाधिसे उठकर पुनः अन्य समयमें यहां आके ॥ ४५ ॥ अन्य सहस्रों वधके योग्य प्राणियोंको लेजाओगी, और ऐसा करनेसे इन जी-वोंकी हिंसा धर्मसे नहीं होती, क्योंकि अपने धर्मपूर्वक जो हिंसा है वह महादयाके समान है ॥ ४६ ॥ और तुम जब समाधिसे विरक्त होओगी तब मेरे निकट अवश्य आओगी, क्योंकि असत् जीवोंकीभी बढी हुई मित्रता निवृत्त नहीं होती ॥ ४७ ॥ राक्षसी बोली–हे मित्र राजन् ! तुमने योग्य कहा, मैं ऐसाही करूंगी, क्योंकि मित्रतासे प्रवृत्त पु-रुषका वाक्य कौन नहीं प्रसन्न (पसन्द) करता ॥ ४८ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच॥ इत्युक्त्वाराक्षसीतत्रसंपन्नासुविलासिनी॥ हारकेयूरकटकपट्टस्रग्दामधारिणी॥४९ राजन्नागच्छगच्छामइत्युक्त्वाभूपमंत्रिणौ ॥ अग्रेगंतुंप्रवृत्तौतौराज्ञावनुससारसा ॥ ५० ॥ अथतेपार्थि वगृहंप्राप्यतांरजनींमिथः ॥ कथयैकगृहेरम्येक्षपयामासुरादृताः ॥ ५१ ॥ प्रभातेतःपुरेतस्थौपुरंध्रीज नलीलया ॥ राक्षसीमंत्रिराजानौस्वव्यापारौबभूवतुः ॥ ५२ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! वह राक्षसी वहांपर ऐसा कहके हार, कुण्डल, कटक, पट्ट, और माला आदि धारण करके उत्तम स्त्री बनगई ॥ ४९ ॥ और बोली की आओ राजन् ! चलैं, इतना कहनेके अनन्तर राजा और मंत्री आगे २ चलनेमें प्रवृत्त हुये और वह राक्षसी उनके पीछे २ चली ॥ ५० ॥ इसके अनन्तर वे तीनों राजभव-नमें प्राप्त होके और एक रमणीय स्थानमें आदरसे परस्पर कथा वार्ता करते हुये उस रात्रिको बिताया ॥ ५१ ॥ प्रा-

तःकाल होनेपर राक्षसी तो राजाके अन्तःपुरमें उत्तम स्त्रियोंकी लीलासे रहने लगी और राजा तथा मंत्री अपने व्यापार अर्थात् सज्जनोंके पालन और दुष्टोंके वधमें तत्पर हुये ॥ ५२ ॥

ततोदिवसषट्केनसंचितानिमहीभृता ॥ नृपःपरपुरेभ्योपिस्वमंडलगणात्तथा ॥ ५३ ॥ त्रीणिवध्यसहस्राणितानितस्यैतदाददौ ॥ साबभूवनिशाकालेसैवोग्राकृष्णराक्षसी ॥ ५४ ॥ तानिवध्यसहस्राणिजग्राह भुजमंडले ॥ धारानिकरजालानिमेघमालेवकोटरे ॥ ५५ ॥ ययौराजानमापृच्छयतदेवहिमवच्छिरः ॥ दरिद्रालब्धहेमेवग्रहेषूग्रशरीरिणी ॥ ५६ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर छः दिनमें राजाने दूसरे नगरोंसे तथा अपने राज्यसे तीन सहस्र वध्य प्राणी एकत्रित किये ॥ ५३ ॥ और उस राजाने उन सब वध्यप्राणियोंको उसे दिया, और रात्रि समयमें वही कृष्णवर्ण राक्षसी होगई ॥ ५४ ॥ और उन तीन सहस्र वध्य प्राणियोंको अपने भुजमण्डलमें ऐसे ग्रहण किया जैसे मेघमाला अपने कोटरमें जलधारा समूहोंको ॥ ५५ ॥ ग्रहोंमें भयंकर देहवाली वह राक्षसी जैसे दरिद्रा सुवर्णके लाभसे प्रसन्न हो ऐसे प्रसन्न होके राजाकी आज्ञा मांगकर उसी हिमालयके शिखरपर गई ॥ ५६ ॥

तत्रतृप्ताभृशंभुक्त्वासुखंसुप्त्वादिनत्रयम् ॥ आसीत्प्रबोधसुस्वस्थासासमाधिमतिःपुनः ॥ ५७ ॥ पंचभिर्वाचतुर्भिर्वावर्षैःसासंप्रबुद्धयते ॥ तत्ततोमंडलंयातितेनराजसभाजने ॥ ५८ ॥ तत्रविश्रंभगर्भाभिः कथाभिःकंचिदेवसा ॥ स्थित्वाकालंगृहीत्वातान्वध्यान्स्वास्पदमेत्यथ ॥ ५९ ॥ जीवन्मुक्ततयैवमेव विपिनेसाद्यापिरक्षोंगनातस्मिन्नेवगिरौस्थिताविचलितध्यानैकतानाशया ॥ तस्मिन्राजनिशांतिमागतवतित्यक्त्वैपणेनात्मनातद्राष्ट्राधिपसौहृदैःस्वकवलानास्वादयंतीचिरम् ॥ ६० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे कर्कट्युपाख्याने राक्षसीसौहार्दं नाम द्व्यशीतितमः सर्गः ॥ ८२ ॥

अर्थ—वहांपर अच्छीतरहसे भोजन करके तृप्त होके तीन दिन तक शयन किया, अनन्तर उठके स्वस्थ चित्त होके समाधिकी ओर अपनी बुद्धि की ॥ ५७ ॥ पांच या चार वर्षमें वह समाधिसे उठती है और उसके अनन्तर राजाके प्रीति समागमकी इच्छा करके उसके वचनसे उसके राज्यमें आती है ॥ ५८ ॥ तब वहांपर विश्वास युक्त कथावार्ताओंसे कुछकाल ठहरकर एकत्र किये हुये वध्य प्राणियोंको लेकर उसी अपने आश्रम हिमालयके शिखरपर जाती है ॥ ५९ ॥ हे रामजी ! अबभी वह राक्षसी पूर्वोक्त रीतिसे उसी पर्वतपर कभी समाधिसे विचलित होती है और कभी ध्यानमें तत्पर होती है और जब किरातोंका राजा मनसे सम्पूर्ण पदार्थोंकी इच्छाको त्यागकर शान्त होताहै अर्थात् देह त्यागकर कैवल्यमुक्ति पाताहै तब उसके वंशके जो उस राज्यके स्वामी होते हैं उनके साथ मित्रता होनेसे वही अपने भोजनोंका आस्वाद लेती हुई चिरकालतक स्थितहै ॥ ६० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे राक्षसीसौहार्दं नाम द्व्यशीतितमः सर्गः ॥ ८२ ॥

त्र्यशीतितमः सर्गः ॥ ८३ ॥

जब चिरकालसे समाधिसे उठती है तो किरातोंके राज्यमें कन्दरानाम देवी करके स्थापित कीजाती इस विषयका वर्णन इस ८३ के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ किरातमंडलेतस्मिन्येभवंतिमहीभृतः ॥ तैस्तैःसहपरामैत्रीतस्याःसमभिजायते ॥ १ ॥ सर्वांस्तत्रमहोत्पातान्पिशाचादिभयान्यपि ॥ रोगांश्चयोगसंसिद्धानिवारयतिराक्षसी ॥२॥ बहुवर्षगणेनैषाध्यानाद्विरतिमागता ॥ तत्रागत्यसमस्तांस्तान्वध्याजंतून्सुसंचितान् ॥ ३ ॥ अद्यापितत्रयेवध्यास्तेतदर्थंमहीभुजा ॥ नीयंतेमित्रसन्मानेकोहिनाध्यवसायिनः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! उस किरातके राज्यमें जो जो राजा होते हैं उनके साथ उसकी परम मित्रता होजाती है ॥ १ ॥ वहां सब उत्पातोंको पिशाच आदिके भयोंको और रोगोंकोभी योगबलसे सिद्धताको प्राप्त वह राक्षसी निवारण करती है ॥ २ ॥ बहुत वर्षोंके समूहोंके अनन्तर जब वह समाधिसे उठती है तब वहां आके एकत्र किये वध्य जीवोंको लेजाती है ॥ ३ ॥ अबभी वहां जो वध्य प्राणी हैं उनको वहांका राजा उसे प्राप्त करता है क्योंकि ऐसा कौन है जो मित्रके सन्मान करनेमें उद्योगी नहो ॥ ४ ॥

तस्यांध्याननिषण्णायांकिरातजनमंडले ॥ अनायांत्यांचिरंकालंजनैर्दोषप्रशांतये ॥ ५ ॥ सादेवीकंदरा नाम्नीमंगलेतरनामिका ॥ संप्रतिष्ठापितामूर्त्यापुरेगगनकोटरे ॥ ६ ॥ ततःप्रभृतितत्रत्योयोयोभवति भूमिपः ॥ सकंदरांभगवतींप्रतिष्ठापयतिस्वयम् ॥ ७ ॥ यःकंदराप्रतिष्ठांचनकरोतिनृपाधमः ॥ तस्यो पतापनिचयाःप्रजानिघ्नंतियत्नतः ॥ ८ ॥

अर्थ—जब वह ध्याननिष्ठ होती है और अधिक कालतक किरातोंके राज्यमें नहीं आती तो वहांके मनुष्य दोषोंकी शान्तिके अर्थ ॥ ५ ॥ उसे कंदरा (शिरको विदारण करनेवाली) दूसरा अमंगला नाम करके उसकी मूर्ति आकाश तक ऊंची अटारीपर स्थापित करते हैं ॥ ६ ॥ उसी कालसे जो जो राजा वहां होता है वह आपही कन्दरा देवीको स्थापित करता है ॥ ७ ॥ और यदि कोई राजाओंमें अधम, कंदरा देवीकी प्रतिष्ठा नहीं करता तो उत्पातोंके समूह उसकी प्रजाको यत्नसे नष्ट करते हैं ॥ ८ ॥

तत्पूजनादवाप्नोतिजनस्तन्निखिलंफलम् ॥ स्ववासनावशोच्छूनमनर्थंयात्यपूजनात् ॥ ९ ॥ वध्यलोकोप हारेणसादेवीपरिपूज्यते ॥ प्रतिमासास्थिताद्यापिचित्रस्थाफलदायिनी ॥ १० ॥ सकलकोमलमंगल कारिणीकवलिताखिलवध्यमहाजना ॥ जयतिसात्रकिरातजनास्पदेपरमबोधवतीचिरदेवता ॥ ११ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे कर्कट्युपाख्याने कंदरापूजनम् नाम त्र्यशीतितमः सर्गः ॥ ८३ ॥

अर्थ—और कन्दरा देवीकी पूजासे प्राणी उत्पात और रोगोंकी शान्ति आदि सम्पूर्ण फल पाता है और पूजा न करनेसे अपनी वासनासे आविर्भूत अनर्थको पाता है ॥ ९ ॥ वधके योग्य प्राणियोंके बलिप्रदानसे उस देवीकी पूजा होती है और उसकी प्रतिमा अबभी स्थित है और यदि चित्रमें लिखी जाय तो अन्य स्थानमें भी फलदायिनी होती है ॥१०॥ सम्पूर्ण जनोंको बालकवत् कोमल धान्य आदि ऐश्वर्योंको देनेवाली सब मंगल तथा सम्पत्तियोंकी करनेहारी वह कंदरा देवी चिरकालकी देवता अब भी किरातोंके राज्यमें विजय करती है ॥ ११ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे कर्कट्युपाख्याने कंदरापूजनं नाम त्र्यशीतितमः सर्गः ॥ ८३ ॥

चतुरशीतितमः सर्गः ॥ ८४ ॥

हिमालयकी राक्षसीका कर्कटी नाम था, उसका कारण उपदेशसे अर्थकी कल्पना और दृष्टान्तका उपयोग इस ८४ के सर्गमें विस्तारसे वर्णन किया गया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एतत्तेकथितंसर्वमयाख्यानमनिंदितम् ॥ कर्कट्याहिमराक्षस्यायथावदनुपूर्वशः ॥१॥ श्रीरामउवाच ॥ हिमवद्गह्वरेप्रोत्थासाकथंकृष्णराक्षसी ॥ बभूवकर्कटीनाम्नायथावद्वदमेप्रभो ॥२॥ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ कुलानिसंत्यनेकानिराक्षसानांस्वभावतः ॥ तानिशुक्लानिकृष्णानिहरितान्युज्ज्व लानिच ॥३॥ कर्कटप्राणिसादृश्यात्कर्कटोनामराक्षसः ॥ बभूवतज्जासाकृष्णाकर्कटीकर्कटाकृतिः ॥४॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! यह हिमालयनिवासिनी कर्कटी राक्षसीका अनिन्दित सम्पूर्ण आख्यान (वृत्तान्त) मैंने यथावत् क्रमसे तुमसे वर्णन किया ॥१॥ श्रीरामजी बोले—हे प्रभो ! हिमालयके भयंकर वनमें उत्पन्न वह कृष्णराक्षसी कर्कटी नामसे किस कारण प्रसिद्ध हुई यह मुझे यथार्थ रूपसे कहिये ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे राम-जी ! राक्षसोंके स्वभावसे अनेक कुल हैं वे शुक्ल कृष्ण हरित और उज्ज्वल भी हैं ॥ ३ ॥ कर्कट अर्थात् केकडे प्राणीके सदृश एक कर्कट नाम राक्षस था उससे उत्पन्न वह कर्कटकी आकृति (बडा उदर और दीर्घ हस्त पाद आदि युक्त) वाली राक्षसी कर्कटी नामसे प्रसिद्ध हुई ॥ ४ ॥

कर्कटीप्रश्नसंस्मृत्यामयैषाकथितातव ॥ अध्यात्मोक्तिप्रसंगेनविश्वरूपनिरूपणे ॥५॥ सम्पन्नमेवमेक स्मादसंपन्नमिवस्फुटम् ॥ इदंजगदनाद्यंतात्पदात्परमकारणात् ॥ ६ ॥ प्लाविन्योवीचयोवारिण्य न्यानन्याःस्थितायथा ॥ वर्तमानाअपिपरेसृष्टयःसंस्थितास्तथा ॥ ७ ॥ अज्वलन्नेवकाष्ठेषुवह्निरर्थक्रियां यथा ॥ करोतिमर्कटादीनांशीतापहरणादिकम् ॥ ८ ॥

अर्थ—यह अध्यात्मके कथनप्रसंगमें संसारकी उत्पत्तिके निरूपणमें कर्कटीके प्रश्नोंकी स्मृतिसे तुमसे कहा॥५॥ यह सम्पूर्ण जगत् एक आदिअन्तशून्य परम कारण परब्रह्मपदसे उत्पन्न हुआ, परन्तु यथार्थ दृष्टिसे देखो तो कुछभी नहीं उत्पन्न हुआ है ॥ ६ ॥ हे रामजी ! जैसे चलनेवाली तरंगें जलमें भिन्न और अभिन्न रूपसे हैं इसीप्रकार परब्रह्ममें

वर्तमान तथा भूत भविष्यत् सृष्टिभी है ॥ ७ ॥ जैसे अग्निकाष्ठोंमें न जलताहुआ ही वानर तथा मंत्री अपने व्या- शीतकी हरण आदि अर्थक्रियाको करता है ॥ ८ ॥

समसंसौम्यत्वमजहदेवनित्योदयस्थिति ॥ तथाब्रह्मकरोतीदंनानाकर्तेवसज्जगत् ॥ ९ ॥ गणिवध्यसहस्रा वायमेवंसर्गउपागतः ॥ भोःशालभंजिकासंविद्दारुण्येवमुधोदिता ॥ १० ॥ बीजेयथा... द्यन्यदिवोदितम् ॥ चितौतथानन्यदपिचेत्यसन्यदिवोदितम् ॥ ११ ॥ अच्छेदादेकसत्तो... लबीजयोः ॥ चिच्चेत्ययोश्ववार्यूर्म्योरिववस्तुनिकश्चन ॥ १२ ॥

अर्थ—ऐसेही ब्रह्म अपनी समता तथा सौम्यताको न त्याग करता हुआही कर्ताके समान होकर नानाप्रकारके जगत्को रचता है ॥ ९ ॥ हे रामजी ! यह जगत् कहींसे विना आपेही ब्रह्ममें प्रकट होगया है देखो काष्ठमें प्रतिमाकी बुद्धि मिथ्याही उदय हुई है ॥ १० ॥ जैसे बीजमें फल आदि अन्यथा न होते हुये भी अन्य प्रकारसे भान होतेहैं ऐसेही यह जगत् ब्रह्मसे अभिन्न होते हुये भी अन्यके समान उदय होगयाहै ॥ ११ ॥ जैसे बीजसे लेके फलपर्य्यन्त एक द्रव्यसत्ता जो प्रविष्ट है उसका विच्छेद न होनेसे बीज और फलका भेद नहीं है और वायु तथा उसकी तरंगोंका जैसे भेद नहीं है ऐसी चित् और चेत्य (विषयरूप जगत्) का भी भेद ब्रह्मस्वरूपमें कुछ नहीं है ॥ १२ ॥

अविचारात्कुतोभेदोनैतयोरुपपद्यते ॥ यतःकुतश्चिदुदितःसविचारेणनश्यति ॥ १३ ॥ भ्रांतिरेषायथायाता तथायातुरघूद्वह ॥ ज्ञास्यसेतत्प्रबुद्धस्त्वमेनांकेवलमुत्सृज ॥ १४ ॥ भ्रांतिग्रंथौविनुटितेमदुक्तिश्रव णात्ततः ॥ ज्ञानशब्दार्थभेदानांवस्तुज्ञास्यस्यलंस्वयम् ॥ १५ ॥ चित्तादियमनर्थश्रीस्तज्जसाचेतराच ते ॥ मदुक्तिश्रवणादेवशांतिमेष्यत्यसंशयम् ॥ १६ ॥

अर्थ—किसी अविचारसे जो भेद भी न होता है वह युक्त नहीं है क्योंकि जो अनिर्वचनीय मायासे भेद भान होताहै वह विचारसे नष्ट होजाताहै ॥ १३ ॥ हे रघुकुलदीपक रामजी ! जैसे हेतुरहित यह भ्रान्ति आईहै ऐसेही यह चलीजाय तुम तो केवल इस भ्रान्तिको त्याग दो और जब ब्रह्मस्वरूपका तुमको बोध होजायगा तब इस बातको न जाओगे॥ १४ ॥ भ्रान्तिरूप ग्रन्थिके टूटनेपर मेरे कथनसे ज्ञान शब्द और अर्थ भेदोंका यद्यपि भान न होगा तथा श्रुति- योंका तात्पर्य्य विषयीभूत जो ब्रह्मवस्तु है उसको स्वयं जान जाओगे ॥ १५ ॥ चित्तसे उत्पन्न यह जो अनर्थकी श्री (शोभा) और दूसरी जो चित्तका कारण अविद्या है ये दोनों मेरी उक्तिके श्रवणसे निश्चय शान्त होजायगी ॥ १६ ॥

ब्रह्मणःसर्वमुत्पन्नंसर्वंब्रह्मैवमेतिच ॥ मद्गीर्भिःसंप्रबुद्धःसन्ज्ञास्यस्यलमनिंदितम् ॥ १७ ॥ श्रीरामउवा च ॥ तस्मादियमितिब्रह्मन्व्यतिरेकार्थपंचमी ॥ ननुकिंविद्धिदेवेशादभिन्नंसर्वमित्यपि ॥ १८ ॥ श्रीव सिष्ठउवाच ॥ उपदेशायशास्त्रेषुजातःशब्दोथवार्थजः ॥ प्रतियोगिव्यवच्छेदसंख्यालक्षणपक्षवान् ॥ १९ ॥ भेदोदृश्यतएवायंव्यवहारान्नवास्तवः ॥ वेतालोबालकस्येवकार्यार्थंपरिकल्पितः ॥ २० ॥

अर्थ—ब्रह्मसे यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआहै और ब्रह्ममें आके लीन होजाताहै जब मेरी वाणियोंसे तुमको ब्रह्मका बोध होजायगा तब उत्तमतासे पूर्ण रीति यह सब जान जाओगे, अर्थात् जगत्की उत्पत्ति कहनेसे भी उसका विलय करके ब्रह्मज्ञान ही प्रयोजन है ॥ १७ ॥ श्रीरामजी बोले—हे भगवन् ! ब्रह्मसे जगत् उत्पन्न हुआ इस आपके वाक्यसे और "तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः" (श्रुतिस्मृतिप्रतिपाद्य आत्मासे जगत् उत्पन्न हुआ) इत्यादि स्थलोंमें जो पंचमी है (इससे यह उत्पन्न हुआ) वह भेद बतलाती है तो क्या इन वाक्योंका यह भी तात्पर्य्य है कि सब ब्रह्मसे अभिन्न भी जानो, ऐसा माननेसे तो लक्ष्य अलक्ष्यके भेदका और उनके प्रतियोगी (जिस पदार्थका भेद वा अभाव कहा जाता है उसको प्रतियोगी कहतेहैं) आदिका अभाव होनेसे शब्दोंकी प्रवृत्ति नहीं होगी तो लक्षणसे लक्ष्य बोधव्यवहार असिद्ध होनेसे उपदेशकाही अभाव होजायगा ॥ १८ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले— हे रामजी ! शास्त्रोंमें उपदेशके लिये तत्कालके भेदकी कल्पनासे शब्दोंकी प्रवृत्ति होती है अथवा लोकव्यवहारार्थ सिद्ध जो शब्द है वही प्रतियोगी अभाव संख्या लक्षण और पक्ष (जिसमें संदिग्ध पदार्थको अनुमान प्रमाणसे सिद्ध करते हैं उसे पक्ष कहते हैं) वाला होगा ॥ १९ ॥ जैसे कार्य्यके अर्थ बालकके वास्ते वेतालकी कल्पना होती है ऐसी ही व्यवहारसेही यह भेद देख पडता है यथार्थमें कुछ नहीं है ॥ २० ॥

द्वैतैक्यमपिनोयस्यांतथाभूतार्थसंस्थितौ ॥ अस्तितस्यामीदृशःस्यात्कुतःसंकल्पविप्लवः ॥ २१ ॥ क र्यकारणभावोहितथास्वस्वामिलक्षणम् ॥ हेतुश्चहेतुमांश्चैवावयवावयविक्रमः ॥ २२ ॥ व्यतिरेकान्वयि रेकौपरिणामादिविभ्रमः ॥ तथाभावविलासादिविद्याविद्येसुखासुखे ॥ २३ ॥ एवमादिमयीमिथ्यास कल्पकलनामिता ॥ अज्ञानामवबोधार्थंनतुभेदोस्तिवस्तुनि ॥ २४ ॥

अर्थ—जहां स्वप्न और गन्धर्वनगर आदिकी रचनाकी स्थितिमें द्वैतता और एकता कुछ नहीं है वहां भी ऐसे लक्षण आदिकी कल्पना हो जाती है तो सत्य संकल्पोंके उपदेशोंके व्यवहारके संकल्प विकल्प कल्पनामें कौनसी आपत्ति है ॥ २१ ॥ यह कार्य्य कारण भावत्व स्वामी भाव लक्षण (हम हमारा आदि) हेतु और हेतुमान् अवयव और अवयवीका क्रम ॥ २२ ॥ भेद अभेद परिणाम आदिका विभ्रम (अमुक पदार्थका अमुकमें बदलना) तथा पदार्थोंके विलास आदि विद्या अविद्या और सुख दुःख ॥ २३ ॥ इत्यादि मिथ्यामय संकल्पोंकी कल्पना अज्ञानियोंके बोधके लिये कल्पित की गई है और वस्तुमें कुछभी भेद नहीं है ॥ २४ ॥

अविबोधादयंवादोज्ञातेद्वैतंनविद्यते ॥ ज्ञातेसंशांतकलनंमौनमेवावशिष्यते ॥ २५ ॥ सर्वमेकमनाद्यंत मविभागमखंडितम् ॥ इतिज्ञास्यसिसिद्धांतंकालेबोधमुपागतः ॥ २६ ॥ विवदंतेह्यसंबुद्धाःस्वविक ल्पविजृंभितैः ॥ उपदेशादयंवादोज्ञातेद्वैतंनविद्यते ॥२७॥ वाच्यवाचकसंबोधोविनाद्वैतंनसिद्ध्यति॥ नचद्वैतंसंभवतिमौनंवापादयत्यलम् ॥ २८ ॥

अर्थ—अज्ञानसे यह भेदवाद है और तत्त्व जाननेपर द्वैतवाद नहीं है तत्त्व जाननेपर तो कल्पनासे रहित केवल मौन अर्थात् शब्दरहितस्थही शेष रहताहै ॥ २५ ॥ यह सम्पूर्ण एक आदि अन्तरहित विभाग शून्य तथा अख- ण्डित परमात्माहीहै इस सिद्धांतको जब काल पाके बोधको प्राप्त होओगे तब जानोगे ॥ २६ ॥ अज्ञानी लोग अपनी २ कल्पनाओंके विकाशसे परस्पर विवाद करते हैं और यह सम्पूर्ण भेदवाद वेदान्तके उपदेशके पूर्वही है क्योंकि तत्त्व जाननेपर द्वैतकी स्फुरण रही नहीं जाती ॥ २७ ॥ और वाच्य वाचकका विवादका उपयोगी सम्बन्ध विना द्वैत नहीं सिद्ध हो सकता और द्वैतका संभव नहीं, इसलिये केवल मौनही सिद्ध होताहै ॥ २८ ॥

महावाक्यार्थनिष्ठांतांबुद्धिंकृत्वारघूद्वह ॥ वचोभेदमनादृत्ययदिदंवच्मितेशृणु ॥ २९ ॥ यतःकुतश्चि दुच्छ्रायंगंधर्वपुरवन्मनः ॥ भ्रांतिमात्रंतनोतीदंजगदाख्यंस्वजृंभणम् ॥ ३० ॥ यथाचेतस्तनोतीमांज गन्मायांतथानघ ॥ शृणुत्वंकथयामीदंदृष्टांतंदृष्टिवेदनम् ॥ ३१ ॥ यंश्रुत्वासर्वमेवेदंभ्रांतिमात्रमिति स्वयम् ॥ रामनिश्चयवान्भूत्वादूरेत्यक्ष्यसिवासनाम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे रघुकुल श्रेष्ठ रामजी ! "यतोवा इमानि भूतानि जायन्ते" (जिससे ये सम्पूर्ण भूत उत्पन्न होतेहैं) इत्यादि श्रुतियोंमें जो पंचमीसे भेदका भान होताहै उसे त्यागकर "अहं ब्रह्मास्मि तत्त्वमसि" इत्यादि महावाक्योंके लक्षणार्थ जो अखण्डित ब्रह्महै उसमें बुद्धिकी निष्ठा करके यह जो कुछ मैं कहताहुं उसे सुनो ॥ २९ ॥ अनिर्वचनीय मायासे गन्धर्व नगरके समान भ्रान्ति मात्र यह मन प्रकट होकर जगत् नामक अपने विकाशका, विस्तार करताहै ॥ ३० ॥ हे पापरहित रामजी ! जैसे यह चित्त इस जगत्की मायाका विस्तार करताहै वह दृष्टांत जो दृष्टिमात्रसे ही दार्ष्टान्त जनाताहै कहताहुं आप श्रवण कीजिये ॥ ३१ ॥ हे रामजी ! जिस दृष्टान्तको सुनकर यह निश्चय आपको होगा की यह सम्पूर्ण जगत् भ्रांति मात्रहै अनन्तर सब वासनाको दूरसेही त्याग देंगे ॥ ३२ ॥

मनोमनननिर्माणमात्रमेवजगत्त्रयम् ॥ सर्वमुत्सृज्ज्यशांतात्मास्वात्मन्येवनिवत्स्यसि ॥ ३३ ॥ महा वाक्यार्थविधानस्थोमनोव्याधिचिकित्सते ॥ विवेकौषधलेशेनप्रयत्नंचकरिष्यसि ॥ ३४ ॥ एवंस्थितेज गद्रूपंचित्तमेवेहजृंभते ॥ नविद्यतेशरीरादिसिकतांतरतैलवत् ॥ ३५ ॥ चित्तमेवहिसंसारोरागादिक्ले शदूषितम् ॥ तदेवतैर्विनिर्मुक्तंभवांतइतिकथ्यते ॥ ३६ ॥

अर्थ—मनकी मननशक्ति मात्रसे रचेहुये सब तीनों लोकोंको त्यागकर शान्तचित्त होकर आत्माहीमें निवास करोगे ॥ ३३ ॥ मेरे वाक्यके अर्थमें सावधान होके मनरूपी व्याधिको शान्तकरनेके अर्थ विवेकरूपी औषधिके द्वारा प्रयत्नभी करोगे ॥ ३४ ॥ जब वक्ष्यमाण आख्यायिकाके द्वारा यह निश्चय होगया कि यह सम्पूर्ण जगत्‌रूप चित्तमात्रही विकसित होरहाहै तब वालुमें तैलके समान शरीर आदि कुछ नहीं है ॥ ३५ ॥ हे रामजी ! राग द्वेष आदि क्लेशोंसे दूषित चित्तही यह संसारहै और जब रागआदि छूट जाताहै उसी समय संसारका अन्त कहाजाताहै ॥ ३६ ॥

चित्तंसाध्यंपालनीयंविचार्यंकार्यमार्यवत् ॥ आहार्यंव्यवहार्यंचसंचार्यंधार्यमादरात् ॥ ३७ ॥ सर्वमभ्यं तरेचित्तंबिभर्तित्रिजगत्त्रभः ॥ अहमापूरमिवतद्यथाकालंविजृंभते ॥ ३८ ॥ योयंचित्तस्यचिद्भागःसैषा सर्वार्थबीजता ॥ यश्चास्यजडभागश्चतज्जगत्सोंगसंभ्रमः ॥ ३९ ॥ अविद्यमानमेवेदमादिसर्गधरादि कम् ॥ निराकृतिरजःस्वप्नंपश्यतीवनपश्यति ॥ ४० ॥

अर्थ—हे रामजी ! आदरपूर्वक साध्य सिद्ध साधनोंमें असिद्ध पालनीय पूर्व सिद्ध विचार्य्य आर्यवत् कार्य्य देशान्तरसे आनेय क्रमविक्रमरूपसे व्यवहार्य अश्वत्थआदिरूप संचार्य्य और भूषण आदिरूपसे धार्य्यभी है ॥ ३७ ॥

सम्पूर्ण जगत्की कल्पनाका आकाशरूप जो यह चित्त है वह सम्पूर्ण दृश्यको अपने भीतर ही धारण करता है और यही चित्त कालपाके देह इन्द्रियादि जब व्यापारमें लगती है तब मैंही लगाहुं इसप्रकार अहंताकी धाराके समान शोभित होताहै ॥ ३८ ॥ हे रामजी ! जो चित्तमें चित् भाग है वही द्रष्टतारूप सब पदार्थोंका बीजभूत अहंता है और इसमें जो जडभागहै वही जगत्रूप दृश्य भ्रान्ति है ॥ ३९ ॥ आदि सृष्टिमें अविद्यमान इन पृथिवी आदिको आकार रहित ब्रह्मा स्वप्नके सदृश देखता भी है और कभी नहीं भी देखता ॥ ४० ॥

सर्गादिदीर्घसंवित्त्याशैलादिजडसंविदा ॥ सूक्ष्मंसूक्ष्मविदाचेतिदेहंशून्यंनवास्तवम् ॥ ४१ ॥ सर्वगे नात्मनाव्याप्तंस्वचेत्यात्मवपुर्मनः ॥ आततंसौम्यविमलंवारीवरवितेजसा ॥ ४२ ॥ चित्तबालोजग द्यक्षंमिथ्यापश्यत्यबोधतः ॥ बोधितोसौपरंरूपंस्वंपश्यतिनिरामयम् ॥ ४३ ॥ यथात्माद्दश्यतामेतिद्वि त्वैक्यभ्रमदायिनीं ॥ शृणुतत्तेप्रवक्ष्यामिवक्ष्यमाणकथागमैः ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! सृष्टि स्थिति प्रलय तीनों कोटिमें साधारण साक्षी संवित् (चेतन) से पर्वत आदि स्थूल विराट देहको जड अहंभावना रूप वैश्वानर संवित्से सृष्टि आदिको और सूक्ष्म संवित्से लिंग समष्टि सूत्रात्मक हिरण्यगर्भ देहको अर्थात् शून्य रूपही इन तीनों देहको ब्रह्मा देखता है न कि वास्तविक रूपसे ॥ ४१ ॥ सर्वव्यापी आत्मा विषयरूप अपने शरीर मनको ऐसे व्याप्त किया है जैसे निर्मल शान्त जलको सूर्यका तेज ॥ ४२ ॥ हे रामजी ! यह चित्तरूपी बालक जगत् रूपी वेतालको अज्ञानसे मिथ्याही देखता है और ज्ञान होनेपर यही उत्तम विकाररहित अपना स्वरूप देखता है ॥ ४३ ॥ हे रामजी ! जैसे द्वैतता और एकता रूप भ्रम देनेवाली दृश्यरूपताको आत्मा प्राप्त होता है वह वक्ष्यमाण कथा और आगमों (शास्त्रों) के द्वारा आपसे कहता हुं सुनिये ॥ ४४ ॥

यत्कथ्यतेहिहृदयंगमयोपमानयुक्त्यागिरामधुरयुक्तपदार्थयाच ॥ श्रोतुस्तदंगहृदयंपरितोविसारिव्या प्नोतितैलमिववारिणिवार्यशंकाम् ॥ ४५ ॥ त्यक्तोपमानममनोज्ञपदंद्वरपंक्षुब्धंधराविधुरितंविनिगीर्ण वर्णम् ॥ श्रोतुर्नयातिहृदयंप्रविनाशमेतिवाक्यंकिलाज्यमिवभस्मनिहूयमानम् ॥ ४६ ॥ आख्यानकानि भुवियानिकथाश्चयायायत्प्रमेयसुचितंपरिपेलवंवा ॥ दृष्टांतदृष्टिकथनेनतदेतिसाधोप्राकाश्यमाशु भुवनंसितरश्मिनेव ॥ ४७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे मनोंकुरोत्पत्तिकथनं नाम चतुरशीतितमः सर्गः ॥ ८४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जो कुछ वाक्य मधुर पद और अर्थ सहित तथा मनोरंजन दृष्टान्तयुक्त वाणीसे कहाजाताहै वह शङ्काको दूर चारों ओरसे फलनेवाला वाक्य श्रोताके हृदयमें ऐसे व्याप्त होजाता है जैसे जलमें तैल ॥ ४५ ॥ और जो वाक्य दृष्टान्त उपन्यास आदिसे शून्य शास्त्रविरुद्ध कठोर पदवर्ण आदि सहित स्पष्ट वर्णन होनेसे स्वच्छतासे कर्णोंके ग्रहण करनेके अशक्य क्रोधादि कारणसे अपने स्थानसे चलित और ग्रस्ताक्षर (आधे कहेहुवे) सहित अर्थात् व्याकरण महाभाष्योक्त ग्रस्त, निरस्त तथा प्रविलम्बित आदि दोषसहित वाक्य है वह श्रोताओंके हृदयको अनुरंजन नहीं करता, किन्तु ऐसे निष्फल होके नाशको प्राप्त होता है जैसे भस्ममें हवन किया घृत ॥ ४६ ॥ हे रामजी ! नानाप्रकारकी कथा संयुक्त बडी २ महाभारतादि कथारूप आख्यान छोटी कथासे बुद्धि मनोरंजक काव्य नाटक तथा अध्यात्मनिरूपक निबन्ध उपन्यास आदि और जो शब्द अर्थसे कोमल ग्रन्थादि प्रमेय हैं वे सब लोकप्रसिद्ध दृष्टान्त तथा प्रमाण दृष्टियोंके कथनसेही संसारमें हृदयंगमतारूप प्रकाशको ऐसे प्राप्त हुये हैं जैसे सूर्यके किरण ॥ ४७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे मनोङ्कुरकथनं नाम चतुरशीतितमः सर्गः ॥ ८४ ॥

पंचाशीतितमः सर्गः ॥ ८५ ॥

सृष्टि रचनेकी इच्छा करनेवाले ब्रह्माजीका दश ब्रह्माण्डोंका दर्शन और उसमें एक रविकरके उसके तत्त्वका कथन इत्यादि विषयोंका वर्णन इस ८५ के सर्गमें किया गया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ पुरामेब्रह्मणाप्रोक्तंसर्वंतत्कथयानघ ॥ यदिदंतत्प्रवक्ष्यामित्वयिपृच्छतिराघव ॥ १ ॥ पुरामयाहिभगवान्पृष्टःकमलसंभवः ॥ इमेकथमुपायांतिब्रह्मन्सर्गगणाइति ॥ २ ॥ तद्वाक्यश्रुत्यभगवान्ब्रह्मालोकपितामहः ॥ ऐंदवाख्यानसहितंमामुवाचबृहद्वचः ॥ ३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ सर्वंहिमनएवेदमित्थंस्फुरतिभूतिमत् ॥ जलंजलाशयस्फारैर्वीचिचित्रैश्चक्रकैरिव ॥ ४ ॥

अर्थ—श्री वसिष्ठजी बोले—हे पापरहित रामजी! ब्रह्माजीने जो मुझे यह जगत्‌की मनोमात्रता कही है वह सम्पूर्ण उनसे कही हुई ऐन्दवके उपाख्यानरूप कथाद्वारा मैं आपके पूंछनेपर कहता हूं॥ १ ॥ पूर्वकालमें भगवान् ब्रह्माजीसे मैंने पूंछाथा कि हे ब्रह्मन्! ये सृष्टियोंके गण कहांसे आते हैं॥ २॥ उस मेरे प्रश्नको सुनके भगवान् ब्रह्मा लोकोंके पितामह कहूंगा ऐसी प्रतिज्ञा करके ऐन्दवाख्यान सहित महान् अर्थसहित वचन बोले ॥ ३ ॥ ब्रह्माजी बोले—हे प्रिय पुत्र! यह सम्पूर्ण जगत्‌रूपसे ऐश्वर्य्यवान् मन ऐसे स्फुरित होता है जैसे जलाशयके विशाल और विचित्र आवर्तों (भँवरों) से जल॥ ४॥

दिनादौसंप्रबुद्धस्यसंसारंस्रष्टुमिच्छतः ॥ पुराकल्पेहिकस्मिंश्चिच्छृणुकिंवृत्तमंगमे ॥ ५ ॥ कदाचिदखिलंसर्गंसंहृत्यदिवसक्षये ॥ एकएवाहमेकाग्रःस्वस्थस्तामनयंनिशाम् ॥ ६ ॥ निशांतेसंप्रबुद्धात्मासंध्यांकृत्वायथाविधि ॥ प्रजास्रष्टुंदृशौस्फारेव्योम्नियोजितवानहम् ॥ ७ ॥ यावत्पश्यामिगगनंनतमोभिर्नतेजसा ॥ व्याप्तमत्यंतविततंशून्यमंतविवर्जितम् ॥ ८ ॥

अर्थ—हे प्रिय! पूर्व किसी कल्पमें कल्पकी आदिमें जब मैं जागा और सृष्टि करनेकी इच्छा की उससमय मेरा जो कुछ वृत्तान्त हुआ उसे आप श्रवण कीजिये ॥ ५ ॥ किसी समय दिन (कल्प) के क्षयमें सम्पूर्ण जगत्‌का संहार करके एकाग्र और स्वस्थचित्त होके एक अद्वितीय मैं शान्तिपूर्वक उस रात्रि (कल्परात्रि) को बिताया॥ ६॥ कल्पान्त रात्रिके अन्तमें जागकर यथाविधि संध्योपासन करके प्रजाओंके रचनेकी इच्छासे विशाल नेत्रोंको आकाशमें फैलाया॥ ७॥ जब मैं दिव्यदृष्टिसे आकाशको देखता हूं तो वह अन्धकार तथा तेज दोनोंसे रहित है, और सर्वत्र अन्तविवर्जित शून्यरूपसे अत्यन्त व्याप्त हो रहाहै॥ ८॥

सर्गसंकल्पयामीतिमतिंनिश्चित्यतन्मया ॥ समवेक्षितुमारब्धंशुद्धंसूक्ष्मेणचेतसा ॥ ९ ॥ अथाहंदृष्टवांस्तत्रमनसावितताम्बरे ॥ पृथक्स्थितान्महारंभान्सर्गान्स्थितिनिरर्गलान् ॥ १० ॥ तेषुमत्प्रतिबिंबाभाःपद्मकोशनिवासिनः ॥ राजहंसान्समारूढाःसंस्थितादशपद्मजाः ॥ ११ ॥ पृथक्स्थितेषुसर्गेषुतेषूद्यद्भूतपंक्तिषु ॥ जलजालेषुशुद्धेषुजगत्सुजलदायिषु ॥ १२ ॥

अर्थ—सृष्टिका संकल्प करूं ऐसी बुद्धि निश्चय करके उस रचनीय पदार्थको सूक्ष्म चित्तसे शुद्धतापूर्वक देखनेका आरंभ किया॥ ९ ॥ इसके पश्चात् उस व्याप्त आकाशमें वहांके विष्णु आदिसे पालन आदि व्यवस्था सहित महान् आरंभ युक्त और प्रतिबन्धरहित पृथक् पृथक् सृष्टियोंको देखा॥ १०॥ और उन सृष्टियोंमें मेरे प्रतिबिम्बके सदृश कमलके कोशके निवासी, और राजहंसोंपर आरूढ दश ब्रह्मा स्थित हैं॥ ११॥ जिनमें अण्डज आदि चार प्रकारकी जीवोंकी पंक्तियां उत्पन्न होरही हैं ऐसी पृथक् पृथक् सृष्टियां स्थित थी तथा जल देनेवाले शुद्ध मेघोंके समूह भी स्थित थे॥ १२॥

प्रवहंतिमहानद्यःप्रध्वनंतियथाब्धयः ॥ प्रतपंत्युष्णरुचयःप्रस्फुरंत्यंबरेनिलाः ॥ १३ ॥ दिविक्रीडंतिविबुधाभुविक्रीडंतिमानवाः ॥ दानवाभोगिनश्चैवपातालेषुचसंस्थिताः ॥ १४ ॥ कालचक्रपरिप्रोतायद्भावाःसकलर्त्तवः ॥ यथाकालंफलापूर्णाभूषयंत्यभितोमहीम् ॥ १५॥ प्रौढ्यंशुभाशुभाचारस्मृतयःककुभंप्रति ॥ नरकस्वर्गफलदाःसर्वत्रसमुपागताः ॥ १६ ॥

अर्थ—बडी नदियां वहरही हैं और समुद्रके समान शब्द कररही हैं सूर्य तप रहे हैं तथा आकाशमें पवन चलरहे हैं॥ १३॥ स्वर्गमें देवतालोग और पृथिवीपर मनुष्य क्रीडा कररहे हैं तथा पातालमें दानव तथा सर्पगण स्थित हैं॥ १४॥ कालचक्रमें गूंथेहुये शीत आतप तथा वर्षादि अपने २ सदृश स्वभाववाले वसन्त आदि सब ऋतु अपने कालके फल आदिसे पूर्ण चारों ओरसे पृथिवीको शोभित कररहे हैं॥ १५॥ शुभ अशुभ आचारोंके विभाग करनेवाला स्वर्ग तथा नरक फलदेनहारी स्मृतियां सब वर्णोंके मनुष्योंमें सब दिशाओंमें दृढताको प्राप्त होगई हैं॥ १६॥

भोगमोक्षफलार्थिन्यःसमस्ताभूतजातयः ॥ स्वमीहितंयथाकालंप्रयतंतेयथाक्रमम् ॥ १७ ॥ सप्तलोकास्तथाद्वीपाःसमुद्रागिरयस्तथा ॥ अप्येप्यमाणाःकल्पांतंस्फुरंत्युरुतरारवम् ॥ १८ ॥ क्वचिध्वान्तमायातंक्वचित्स्थिरतरंस्थितम् ॥ स्थितंसर्वत्रकुंजेषुतमस्तेजोलवावृतम् ॥ १९ ॥ नभोनीलोत्पलस्यांतर्भ्रमद्भ्रमधुव्रतम् ॥ प्रस्फुरत्तारकाजालकेसरापूर्णतांगतम् ॥ २० ॥

अर्थ—भोग तथा मोक्ष अर्थकी अभिलाषिणी सब प्राणियोंकी जातियां, काल और सृष्टिके अनुकूल अपने २ अभीष्टके लिये प्रयत्न कररहे हैं॥ १७॥ सातों लोक सातों द्वीप तथा समुद्र और पर्वत कालचक्रसे प्रलयकी ओर प्राप्त होनेवाले भी परन्तु अपने समयसे अधिक शब्दके साथ शोभित हो रहे हैं॥ १८॥ अन्धकार कहीं (खुले स्था-

नमें) नाशको प्राप्त हो रहा है, और कहीं (पर्वतोंकी गुहाओंमें) अधिक स्थिरतासें स्थित है और कुंजोंमें आतपके छिद्रोंसे मानों स्नेहसे मिलके स्थितहै ॥ १९ ॥ आकाश रूपी नीलकमलके भीतर भ्रमण कररहे हैं भ्रमर जिसमें ऐसा तथा प्रकाशमान तारागणरूपीके केसरोंसे पूर्णताको प्राप्त सरोवरके तुल्य जगत् स्थितहै ॥ २० ॥

कल्पांतघननीहारोमेरुकुंजेषुसंस्थितः ॥ शाल्मलेरमलंतूलमष्ठिलाकोटरेष्विव ॥ २१ ॥ लोकालोका द्रिरसनारणदर्णवघुंघुमा ॥ तमःखंडेन्द्रनीलाभानिजरत्नविराजिता ॥ २२ ॥ धानाधरसुधाभूतरव काकलिघुंघुमा ॥ संस्थिताभुवनाभोगेस्वांतःपुरइवांगना ॥ २३ ॥ गौरांगपंक्तिमध्यस्थारजनीराजि जिता ॥ पद्मोत्पलस्रजइवलक्ष्यतेवत्सरश्रियः ॥ २४ ॥

अर्थ—मेरुके सदृश ऊंचे हिमालयके कुंजोंमें कल्पान्तका घनीभूत नीहार (तुषार वा बर्फ) ऐसे स्थित हैं जैसे सेमरके कोटरोंमें निर्मल (उज्ज्वल) सेमरका तूल (रुई) ॥ २१ ॥ लोकालोक पर्वतरूपी मेखलाको धारण करनेवाली, शब्दायमान समुद्ररूपी आभूषणकी ध्वनि सहित, अन्धकारोंके खण्डरूपी इन्द्रनीलमणिकी प्रभावाली और अपने अन्तर्गत रत्नोंसे शोभित ॥ २२ ॥ मनुष्योंके आस्वादके योग्य शाली (चावल) आदि धान्योंके बीजरूपी अधरामृत धारण करनेवाली, प्राणियोंके शब्दरूपी वाग्विलासवाली पृथिवीरूप श्रेष्ठ अंगना भुवनके भागमें अपने अन्तःपुरके समान स्थितहै ॥ २३ ॥ वर्षाकी लक्ष्मी (शोभा) रूपी स्त्रीके कण्ठमें धारण की हुई अन्धकार और प्रकाशरूप नील तथा श्वेत कमलोंसे रची हुई मालाके मध्यमें प्रविष्ट, इसीसे कमलके पराग(रेणु) के सदृश विद्युत् और नक्षत्रव्याप्त रात्रिके समूहरूपी हरिद्राके रंगसे रंजित और गौर अर्थात् कुच कण्ठ उदर वाली और नाभी आदि अंगोंकी पंक्तिके तुल्य आकाश (अन्तरिक्ष) देश शोभित हो रहाहै ॥ २४ ॥

बहुगर्त्तविभागस्थभूतालोकाःपृथक्पृथक् ॥ जातारुणाविलोक्यंतेदाडिमानीवकांतिकाः ॥ २५ ॥ त्रिप्रवाहात्रिपथगाकृतोर्ध्वाधोगमागमा ॥ जगद्यज्ञोपवीताभास्फुरतींदुकलामला ॥ २६ ॥ इतश्चेतश्चगच्छंतिशीर्यंतेप्रोद्भवंतिच ॥ दिग्लतासुतडित्पुष्पावातार्त्तामेघपल्लवाः ॥ २७ ॥ गंधर्वनगरोद्यानलतावितान मालिनी ॥ समुद्रभूमिनभसांपदवीप्रविराजते ॥ २८ ॥

अर्थ—अनेक भुवनके भागोंमें प्राणीरूप बीज जिनमें स्थित हैं तथा सूर्य्यके प्रकाश अरुण (लाल) वर्ण सहित अनेक ब्रह्माण्डोंके समूह दाडिम (अनार) के फलके समान जहांपर देख पड रहेहैं ॥ २५ ॥ तीन धारासहित तथा ऊपर नीचे गमनागमन गंगाजी, जगत्के यज्ञोपवीत (जनेऊ) के सदृश शोभायमान चन्द्रमाकी कलाके तुल्य प्रकाशित हो रही है ॥ २६ ॥ पवनसे पीड़ित, मेघरूपी पत्तोंसे संयुक्त विद्युत्रूपी पुष्प दिशारूपी लताओंमें इधर उधर जाते हैं विखरते हैं और उत्पन्न होतेहैं ॥ २७ ॥ परन्तु वह समुद्र पृथिवी आकाश आदिकी पदवी (मार्ग) ऐसी शोभित होरही है जैसे बितान (मण्डप वा चान्दनी) से शोभायमान गन्धर्वनगरकी उद्यानलता ॥ २८ ॥

लोकांतरेषुसंघेनदेवासुरनरोरगाः ॥ उडुंबरेषुमशकाइवघुंघुमिताःस्थिताः ॥ २९ ॥ युगकल्पक्षणलवकलाकाष्ठाकलंकितः ॥ कालोवहत्यकलितसर्वनाशप्रतीक्षकः ॥ ३० ॥ एवमालोक्यशुद्धेनपरेणस्वेनचेतसा ॥ भृशंविस्मयमापन्नःकिमेतत्कथमित्यलम् ॥ ३१ ॥ कथंमांसमयेनाक्ष्णायन्नपश्यामिकिंचन ॥ तन्मायाजालमतुलंपश्यामिमनसांबरे ॥ ३२ ॥

अर्थ—और ब्रह्माण्डके भीतर अन्य लोकोंमें देवता, असुर, नर और सर्पोंके समूहके समूह ऐसे स्थितहैं जैसे गूलरके फलोंमें शब्द करतेहुये मशक (मच्छर) ॥ २९ ॥ और लोकान्तरोंमें युग, कल्प, क्षण, निमेष, कला तथा काष्ठा आदिसे चिन्हित अचानक सब पदार्थोंके नाशकी वाट देखताहुआ चल रहाहै ॥ ३० ॥ इसप्रकार शुद्ध तथा दिव्य अपने मनसे देखकर मैं अत्यन्त विस्मययुक्त हुआ कि यह क्याहै और कैसे होताहै ॥ ३१ ॥ यह कैसे और क्याहै कि जो मांसके नेत्र (प्रसिद्ध आंख) से कुछ नहीं देखपड़ता वह अतुल मायाजाल आकाश मनसे देखताहूं ॥ ३२ ॥

अथालोक्यचिरंकालंमनसैवाहमंबरात् ॥ अर्कंतस्माज्जगज्जालादेकमानीयपृष्टवान् ॥ ३३ ॥ आगच्छ देवदेवेशभोभास्करमहाद्युते ॥ स्वागतंतेस्त्वितिप्रोक्तोमयासौकथितोप्यथ ॥ ३४ ॥ कस्त्वंकथमिदं जातंजगदेवजगंतिच ॥ यदिजानासिभगवंस्तदेतत्कथयानघ ॥ ३५ ॥ इत्युक्तोमांसमालोक्यसंपरिज्ञातवानथ ॥ नमस्कृत्वाभ्युवाचेदमनिंद्यपदयागिरा ॥ ३६ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर बहुत कालतक यह सब मनसे देखनेके पश्चात् भुवनके आकाशसे एक सूर्य्यको अपने सत्य संकल्पसे सम्मुख लाके पूंछा ॥ ३३ ॥ हे देवोंके ईश, महाप्रकाशयुक्त सूर्य्य! आईये आपका यह आगम शुभ हो ऐसा मैंने सूर्य्यसे कहा और उससे वक्ष्यमाण (आगेका) प्रश्न भी किया ॥ ३४ ॥ तुम कौन हो और कैसे यह जगत्

तथा अन्यलोक उत्पन्न हुये, हे पापरहित भगवन्! यदि तुम जानते हो तो कहो ॥ ३५ ॥ जब मैंने सूर्य्यसे ऐसा कहा तो वह मुझे देखकर मेरा स्वरूप चीन्हा और नमस्कार करके प्रशंसनीय पदसंयुक्त बाणीसे यह बोला ॥ ३६ ॥

॥ भानुरुवाच ॥ अस्यदृश्यप्रपंचस्यनित्यंकारणतामसि ॥ गतःकस्मान्नजानीषेकिंमामीश्वरपृच्छसि ॥ ३७ ॥ अथमद्वाक्यसंदर्भेलीलाचेत्तवसर्वग ॥ अचिंतितांमदुत्पत्तिंतच्छृणुष्ववदाम्यहम् ॥ ३८ ॥ सदसदितिकलाभिराततंयत्सदसदबोधविमोहदायिनीभिः ॥ अविरतरचनाभिरीश्वरात्मन्प्रविलसतीहमनोमहन्महात्मन् ॥ ३९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे ऐंदवोपाख्यानोपक्रमे ब्रह्मादित्यसमागमो नाम पंचाशीतितमः सर्गः ॥ ८५ ॥

अर्थ—भानुजी बोले-हे भगवन्! आप इस दृश्य प्रपंचके नित्य कारणताको प्राप्तहैं क्या आप इसे नहीं जानते और मुझसे आप क्यों पूछतेहैं ? ॥ ३७ ॥ हे सर्वव्यापिन्! यदि मेरे वाक्यकी रचनाहीमें आपको सुननेका कौतुकहै तो अचिन्तित मेरी उत्पत्ति सुनिये मैं कहताहूं ॥ ३८ ॥ हे ईश्वरात्मन्! तथा महात्मन्! निरन्तर जगत्की रचना करनेवाली और तत्व अज्ञानसे सत् है वा असत् ऐसे अज्ञान देनेवाली, कहीं सत असत् देशकालसे परिच्छिन्न जगत्की सत्ता देखानेमें कुशल कलाओंसे जो चारोंओर विस्तृत होरहाहै वह सब मनही विलास कर रहाहै ऐसा आप जानो॥३९॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे ऐन्दवोपाख्यानोपक्रमे ब्रह्मादित्यसमागमो नाम पंचाशीतितमः सर्गः ॥ ८५ ॥

षडशीतितमः सर्गः ॥ ८६ ॥

इस ८६ के सर्गमें भार्य्या करके सहित इन्दुनाम ब्राह्मणकी तपस्यासे ऐन्दवों (इन्दुके पुत्रों) की उत्पत्ति तथा उन पुत्रोंमेंसे ज्येष्ठके उपदेशसे, उन सबकी ब्रह्माकार भावना करना इत्यादि विषयोंका वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीभानुरुवाच ॥ कल्पनाम्निमहादेवह्यस्तनेदिवसेतव ॥ तलेकैलासशैलस्यजंबूद्वीपैककोणके ॥ १ ॥ सुवर्णजटनाम्नायस्त्वत्पुत्रैर्जनितप्रजैः ॥ मंडलंकल्पितंश्रीमदनल्पसुखसुंदरम् ॥ २ ॥ तत्राभूदतिधर्मात्माब्राह्मणोब्रह्मवित्तमः ॥ इंदुनामातिशांतात्माकश्यपस्यकुलोद्भवः ॥ ३ ॥ तस्मिंस्तदानिवसतोनित्यंस्वजनमंडले ॥ तस्यप्राणसमाभार्याकाचित्तस्यांमहात्मनः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीभानुजी बोले-हे महादेव ब्रह्मन्! आपके गत दिवसमें जिसका दूसरा नाम कल्पहै उसमें कैलास पर्वतके नीचे जम्बूद्वीपके एक कोनेमें ॥ १ ॥ सुवर्णजट नामक एक स्थानहै वहांपर प्रजा उत्पन्न करनेवाले मरीचि आदि आपके पुत्रोंने अपने निवासार्थ लक्ष्मीयुक्त, और अधिक सुखोंसे रमणीय एक मण्डल रचाहै ॥ २ ॥ उस मण्डलमें वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ, कश्यप कुलमें उत्पन्न और अति धर्मात्मा इन्दुनाम एक ब्राह्मण उत्पन्न हुये ॥ ३ ॥ वह ब्राह्मण सदा अपने जनसमूहमें रहता था, और उसकी स्त्री उसे प्राणके समान प्रिया थी परन्तु उस महात्माके उस स्त्रीमें ॥ ४ ॥

नबभूवात्मजस्तस्यमरुभूमौतृणंयथा ॥ नव्यराजतसाभार्यातस्यनिष्फलपुष्पिता ॥ ५ ॥ ऋज्वीगौरीसुशुद्धापिशून्याशरलतायथा ॥ तौततोदंपतीखिन्नौपुत्रार्थंतपसेगिरेः ॥ ६ ॥ कैलासस्यांशमारूढौरूढाविवनवद्रुमौ ॥ भूतैरनावृतेशून्येतस्मिन्कैलासकुंजके ॥ ७ ॥ तेपतुस्तौतपोघोरंजलाहारौतरुस्थिती ॥ एकंपानीयचुलकंपीत्वादिवसपर्यये ॥ ८ ॥

अर्थ—मरुभूमिमें तृणके समान कोई पुत्र नहीं उत्पन्न हुआ इसकारण फलपुष्प रहित वह स्त्री शोभाको नहीं प्राप्त हुई ॥ ५ ॥ वह स्त्री सुधी, गौरवर्णवाली, अति शुद्धवंशमें उत्पन्न भी परन्तु पुत्र विना काशके दण्डके सदृश शोभायुक्त न हुई इस कारण वे स्त्रीपुरुष उदास होके पुत्रके अर्थ तपस्या करनेको ॥ ६ ॥ कैलास पर्वतपर चढेहुये वनके वृक्षके समान चढे और प्राणियोंसे रहित और शून्य उस कैलासके कुंजमें ॥ ७ ॥ वृक्षके समान स्थिति धारण करनेवाले, के दिनके अन्तमें केवल एक चिल्लू पानी पीके केवल अल्प जलाहारवाले वे स्त्रीपुरुष घोर तपस्या करने लगे॥८॥

निस्पंदमुत्थितौवार्क्षीवृत्तिमाश्रित्यसंस्थितौ ॥ तस्थतुस्तौतदातत्रतावत्कालंतरुव्रतौ ॥ ९ ॥ यावत्रेताद्वापरंचयुगेद्वेप्यवतेगते ॥ ततस्तुष्टोभवद्देवस्तयोःशशिकलाधरः ॥ १० ॥ दिनातपातापितयोरिंदुःकुमुदयोरिव ॥ आजगामतमुद्देशंयत्रतौविप्रदंपती ॥ ११ ॥ सलतापादपंदेशंपुष्पाकरइवेश्वरः ॥ दंपतीतौवृषारूढंसोमंसोमार्द्धशेखरम् ॥ १२ ॥

अर्थ—वृक्षकी वृत्तिको अवलम्बन करके चेष्टा रहित वहां खडे रहतेथे और वे वृक्षव्रतवाले ब्राह्मण ब्राह्मणी तब-

तक वहां स्थित रहे॥९॥जबतक त्रेता और द्वापर दोनों युग बीतगये, इसके अनन्तर चन्द्रकलाधारी भगवान् महादेवजी उनके ऊपर प्रसन्न हुये ॥ १० ॥ दिनके तापसे तापित जैसे कुमुद और कुमुदिनीके निकट चन्द्रमा आताहै ऐसेही जहां वे स्त्रीपुरुष रहते थे वहां महादेवजी आये ॥ ११ ॥ और जैसे लता तथा वृक्षसहित देशमें वसन्तऋतु आता है ऐसे ईश्वर वहां आये और स्त्रीपुरुष वृष (बैल) पर चढे हुये पार्वती सहित तथा चन्द्रमाको मस्तकपर धारण करनेवाले महादेवजीको देखा ॥ १२ ॥

फुल्लाननौददृशतुः कुमुदेशशिनंयथा ॥ तौतंप्रणेमतुर्देवंतुषारामलमीश्वरम् ॥ १३ ॥ द्यावापृथिव्यावुदितंपरिपूर्णमिवोडुपम् ॥ तर्जयन्पवनाधूतनवद्रक्षाननस्वरम् ॥ १४ ॥ मृदूद्दामस्मितस्पंदिप्रोवाचाथवचः शिवः ॥ ईश्वरउवाच ॥ वरंविप्रगृहाणाशुतुष्टोस्मितववांछितम् ॥ १५ ॥ मधुमासरसाक्रांतवृक्षवन्मुदितोभव ॥ विप्रउवाच ॥ भगवन्देवदेवेशदशपुत्रामहाधियः ॥ १६ ॥

अर्थ—जैसे कुमुद और कुमुदिनी चन्द्रमाको ऐसे विकसित नेत्रवाले वे दोनों महादेवजीको देखा और तुषार (बर्फ) के समान निर्मल उस देवको प्रणाम किया ॥ १३ ॥ पृथिवी और आकाशके मध्यमें उदयको प्राप्त तथा मलयके पवनसे किंचित् कंपाये पल्लवहैं जिनके ऐसे आम्र आदि वृक्षके मुखके समान मधुर कूजनेवाले भ्रमर कोकिल आदिके स्वरोंको अपने वचनकी अधिक मधुरतासे डराते चन्द्रमाके समान उदित ॥ १४ ॥ श्री महादेवजी इसके अनन्तर सौंदर्य्यकी उत्तमतासे मन्दहास सहित किंचित् अधर संचालनपूर्वक यह वचन बोले—हे ब्राह्मण ! मैं तुमारे ऊपर प्रसन्न हूं वरदान जो तुमको अभीष्ट हो वह ग्रहण करो ॥ १५ ॥ और उस वरदानके पानेसे वसन्तऋतुके रससे पूर्ण वृक्षके सदृश आनन्दित होओ विप्रजी बोले—हे देवदेवेश भगवन् ! महाबुद्धिमान् दशपुत्र ॥ १६ ॥

भव्याभवंतुमेभूयःशोकोयेननबाधते ॥ भानुरुवाच ॥ अथैवमस्त्वितिप्रोच्यजगामांतर्द्धिमीश्वरः ॥१७॥ व्योम्निवारिनिधिर्ह्रादंकृत्वेवोर्मिमहावपुः ॥ ततस्तौदंपतीतुष्टौशिवलब्धवरौगृहम् ॥ १८ ॥ गतौगीर्वाणसदृशौखमिवोमामहेश्वरौ ॥ तत्रासौब्राह्मणीगेहेबभूवोदारगर्भिणी ॥१९॥ बभौपूर्णोदराश्यामामेघलेखेववारिणा ॥ कालेथसुषुवेपुत्रान्प्रतिपच्चंद्रकोमलान् ॥ २० ॥

अर्थ—जो कल्याण गुण और उत्तम आचारसे शोभित हो मेरे उत्पन्न हो जिन पुत्रोंके लाभसे पुनः शोकबाधा न करै ॥ भानुजीबोले—इस ब्राह्मणके बचन सुननेके अनन्तर भगवान् महादेवजी ऐसाही हो ऐसा उच्च स्वरसे जैसे आकाशमें महा शरीरवाला समुद्र शब्द करै शब्द करके अन्तर्धान (लोप) होगये इसके अनन्तर शिवसे वरदान पानेसे प्रसन्न चित्त वे स्त्रीपुरुष अपने गृहके प्रति ॥ १७ ॥ १८ ॥ ऐसे गये जैसे देवता आकाशमें अथवा मायासे शरीर धारण करके देवताओंके सदृश महादेव और पार्वतीजी जैसे सात्त्विक ब्रह्मआकाशमें जाय वहां गृहपर ब्राह्मणी उदार गर्भसे संयुक्त हुई ॥ १९ ॥ और दश मासमें पूर्ण उदर होनेसे श्यामवर्ण मेघकी लेखाके समान प्रकाशित हुई और अनन्तर प्रतिपदाके चन्द्रके समान दश पुत्रोंको उत्पन्न किया ॥ २० ॥

दशबालांस्ततोसुग्धान्वसुधेवनवांकुरान् ॥ कृतब्राह्मणसंस्काराद्वृद्धिमीयुर्महौजसः ॥ २१ ॥ स्वल्पेनैवहिकालेनप्रावृषेवनवांबुदाः ॥ तेसप्तवर्षवयसोबभूवुर्ज्ञातवाङ्मयाः ॥२२॥ विरेजुस्तेजसातत्रनभसीवामलाग्रहाः ॥ अथकालेनमहतातेषांतौपितरौतदा ॥ २३ ॥ संजग्मतुस्तनुंत्यक्त्वास्वांगतिंगतिकोविदौ ॥ मातापितृभ्यांरहितादशतेब्राह्मणास्ततः ॥ २४ ॥

अर्थ—वे दश सुन्दर पुत्रोंको ऐसे उत्पन्न किये जैसे पृथिवी नूतन अङ्कुरको और जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, मुण्डन, उपनयन और वेदाध्ययनादि ब्राह्मणोंके संस्कारसे संयुक्त वृद्धिको प्राप्त हुये ॥२१॥ वर्षाकालके नूतन मेघोंके समान वे बढे और सात वर्षकी अवस्थाहीमें सब शास्त्रोंके तत्त्वको जान गये ॥ २२ ॥ आकाशमें निर्मल ग्रहके समान वे शोभाको प्राप्त हुये इसके अनन्तर बहुत कालमें उनके माता पिता ॥ २३ ॥ अपनी शरीरको त्यागकर कैवल्य मुक्तिको गये क्यों कि वे उत्तम यागादिको जानते थे इसके पश्चात् माता पितासे रहित वे दशों ब्राह्मण ॥ २४ ॥

ययुःकैलासशिखरंगृहंसंत्यज्यखेदिनः ॥ तत्रसंचिंतयामासुरुद्विग्नास्तेविबांधवाः ॥ २५ ॥ किंस्यादिहपरंश्रेयऊचुश्चेदंपरस्परम् ॥ किमिहस्यात्समुचितंभ्रातरःकिमदुःखदम् ॥ २६ ॥ किंमहत्त्वंकिमैश्वर्यंकिंमहाविभवंशुभम् ॥ किंतदेतज्जनैश्वर्यंसामंतोहिमहेश्वर ॥ २७ ॥ सामंतसंपत्किंनामराजानोहिमहेश्वराः ॥ कानामसंपद्भूपानांसम्राडिहमहेश्वरः ॥ २८ ॥

अर्थ—उदासीन चित्त होके अपने गृहको त्यागकर कैलास पर्वतके शिखरपर गये वहांपर बन्धु रहित उन लोगोंने चिन्तन किया वे परस्पर विचार करके बोले कि हे भाईयो ! सबसे उत्तम कल्याणकारी कौन पदार्थ है इस लोक

तथा परलोकमें सुखदायी ग्रहण करने योग्य क्या है और यदि इस लोकमें सुखका कारण न भी हो तो परलोकमें दुःखदायी न हो ऐसा क्या है ॥२५॥ २६ ॥ महत्व क्या है ऐश्वर्य क्या है महाविभव क्या है गृह और ग्रामके स्वामियोंसे क्या यह सामान्य मनुष्योंका ऐश्वर्य उत्तम है क्यों कि (मण्डल वा जिलेको स्वामी) महा ऐश्वर्यवान् हैं ॥ २७ ॥ सामन्तके अधिपतिकी क्या वस्तु है क्योंकि राजालोग जो देशके अधिपति हैं वे लोग महान् ईश्वर हैं और देशके अधिपतियोंकी सम्पत्ति क्या पदार्थ है क्योंकि उनसे अधिक महान् ऐश्वर्यवाला सम्राट अनेक देशोंका अधिपति महान् (बड़ा) ऐश्वर्यवान् है ॥ २८ ॥

किंनामतन्महेंद्रत्वंयन्मुहूर्तंप्रजापतेः ॥ विनश्यतिनयत्कल्पेकिंस्यात्तदिहशोभनम् ॥ २९ ॥ भाषमाणेष्वथैतेषुज्येष्ठोभ्रातामहामतिः ॥ गंभीरवागुवाचेदंमृगयूथान्मृगोयथा ॥ ३० ॥ ऐश्वर्याणांहिसर्वेषामाकल्पंनविनाशियत् ॥ रोचतेभ्रातरस्तन्मेब्रह्मत्वमिहनेतरत् ॥ ३१ ॥ एतदुक्तंतदखिलाद्विजपुत्रास्त उत्तमाः ॥ वचोभिरिदवास्तत्रसाधुसाध्वित्यपूजयन् ॥ ३२ ॥

अर्थ—यदि कहो महेन्द्र महान् ऐश्वर्य्यवान्है सो भी नहीं क्यों कि महेन्द्रत्व भी कोई महत्वका पद नहींहै वह भी ब्रह्माजीके एक मुहूर्तमेंही नष्ट होजाताहै, इस लिये जो कल्पमें भी नष्ट न हो वह उत्तम पद इस लोकमें क्या है ॥ २९ ॥ जब वे इस प्रकार आपसमें कह रहेथे तब उनमेंसे महा बुद्धिमान् पूर्वजन्मके ब्रह्मपदके संस्कार सहित, ज्येष्ठ भ्राता गम्भीर वाणीसे यह वचन ऐसे बोला जैसे मृगके झुण्डसे मृगपति ॥ ३० ॥ हे भाईयों ! सम्पूर्ण ऐश्वर्य्योंमेंसे जोकल्पमें विनाशी नहींहै ऐसा ब्रह्मत्व अर्थात् ब्रह्माकाही पद मुझे अच्छा लगताहै और कुछ नहीं ॥ ३१ ॥ इस ज्येष्ठ भ्राताके कथनको वे सब उत्तम ब्राह्मणके पुत्र बहुत उत्तम २ ऐसा कहके प्रशंसा की ॥ ३२ ॥

ऊचुश्चेदंकथंतातसर्वदुःखोपमार्जनम् ॥ पद्मासनंजगत्पूज्यंविरंचित्वमवाप्नुमः ॥ ३३ ॥ भ्रातातेनपुनः प्रोक्ताभ्रातरोभूरितेजसः ॥ मदुक्तंसर्वएवेमेभवंतःपालयंतुवै ॥ ३४ ॥ पद्मासनगतोभास्वान्ब्रह्माहमितितेजसा ॥ सृजामिसंहरामीतिध्यानमस्तुचिरायवः ॥ ३५ ॥ अग्रजेनेतिकथितेवाढंकृत्वातउत्तमाः ॥ ध्यानाधीनधियस्तस्थुःसहैवज्यायसारसात् ॥ ३६ ॥

अर्थ—और यह बोले कि हे प्रिय भ्राता! यह सम्पूर्ण दुःखोंका नाश करने वाला, पद्मासन और जगत्पूज्य विरञ्चिका पद कैसे प्राप्त करें ॥ ३३ ॥ इसके अनन्तर उनमें अधिक तेजस्वी भाईओंसे ज्येष्ठ भ्राता बोला कि आप लोग निश्चय करके दृढतापूर्वक जीवन पर्य्यन्त मेरे कथनको पालन करो ॥ ३४ ॥ पद्मासन पर विराजमान् प्रकाशमान् ब्रह्म हम हैं और अपने तेजसे इस ब्रह्माण्डको रचतेहैं तथा संहार भी करतेहैं ऐसा तुह्मारा ध्यान चिरकाल तक अर्थात् भ्रमरकीटन्यायसे जबतक ब्रह्मपद प्राप्ति नहीं तबतक रहै ॥ ३५ ॥ जब ज्येष्ठ भाईने ऐसा कहा तब सब उत्तम भाईयोंने बहुत अच्छा ऐसा दृढतापूर्वक अंगीकार करके उस ज्येष्ठ भाईके साथही ध्याननिष्ठ बुद्धि होके स्थित होगये ॥ ३६ ॥

लिपिकर्मार्पिताकाराध्यानासक्तधियस्ततः ॥ अन्तस्थेनैवमनसाचिंतयामासुरादृताः ॥ ३७ ॥ अथउत्फुल्लकमलकोशवक्त्रोन्नतासनः ॥ ब्रह्माहंजगतांस्रष्टाकर्ताभोक्तामहेश्वरः ॥ ३८ ॥ यज्ञक्रियाकर्मवतः सांगोपांगामहर्षयः ॥ सरस्वत्याथगायत्र्यायुक्तावेदानराइमे ॥ ३९ ॥ लोकपालपराक्रांतःसंचरत्सिद्धमण्डलः ॥ अयमुद्दामसौभाग्यःस्वर्गःस्वरविभूषितः ॥ ४० ॥

अर्थ—चित्रमें लिखितके समान ध्यानमें आसक्त वे सब ब्राह्मण बाह्यवृत्तियोंको बन्द करके आदरसे अन्तर्गत मनसे ब्रह्मपदकी भावनाका चिन्तन किया ॥ ३७ ॥ इसके अनन्तर विकासित कमलका मुख हमारा आसनहै और जगतोंके स्रष्टा कर्ता भोक्ता तथा महान् ईश्वर हमीहैं ॥ ३८ ॥ यज्ञमूर्ति जो मैंहुं उसके याजक (यज्ञ कराने हारे) ये वसिष्ठ आदि महर्षि हैं शिक्षा व्याकरण आदि अंगोंसे, पुराण आदि उपांगोंसे, सहित तथा गायत्रीसे युक्त वेद और मूर्तिमान्, मनुष्य ये सब मेरेही अन्तर्गतहैं ॥ ३९ ॥ लोकपालोंसे व्याप्त चलता हुआ यह सिद्धोंके मण्डल सहित और उत्तम शोभा युक्त स्वरसे विभूषित यह स्वर्ग मेरेही भीतरहै ॥ ४० ॥

पर्वतद्वीपजलधिकाननैःसमलंकृतम् ॥ इदंभूमंडलंचैवत्रिलोकीकर्णकुण्डलम् ॥ ४१ ॥ एतत्पातालकुहरंदैत्यदानवभोजितम् ॥ अमृतस्त्रीगणाकीर्णगृहंगगनकोटरम् ॥ ४२ ॥ अयमिंद्रोमहाबाहुःप्रजालंकृतदोत्तमः ॥ त्रैलोक्यनगरीमेकःपातिपावनयज्ञभुक् ॥ ४३ ॥ दीप्तजालवरत्राभिरवष्टभ्याथदिग्गणम् ॥ क्रमेणप्रतपंत्येतेभानवोभूरिभानवः ॥ ४४ ॥

अर्थ—पर्वत, द्वीप, समुद्र, और वनोंसे सुशोभित यह भूमण्डल ऐसा शोभायमान होरहाहै जैसे त्रिलोकीरूप स्त्रीके कर्णका कुण्डल ॥ ४१ ॥ दैत्य और दानवोंसे पूर्ण है उदर जिसका ऐसा यह पातालरूपी महानगर्त (गढ़ा)

तथा देवांगनाओंसे पूर्ण यह आकाशका कोटर गृहके समान कैसा शोभित होरहाहै ॥ ४२ ॥ यह महाबाहु प्रजाओंको शोभा देनेवाला इन्द्र एकही पवित्र यज्ञोंका भोगनेवाला त्रैलोक्यरूपी नगरीका पालन करताहै ॥ ४३ ॥ अति तेज किरणसहित ये द्वादश आदित्य (सूर्य्य) अति दीप्त अपनी किरणरूपी पाशों सब दिशाओंके गणोंको बांधकर क्रमसे बारहों मासोंमें तप रहे हैं ये सब मेरे भीतरहीहैं ॥ ४४ ॥

लोकपालाइमेलोकंरक्षंतिशुद्धवृत्तयः ॥ मर्यादाभिरतुच्छाभिर्गोपालागोगणंयथा ॥ ४५ ॥ उन्मज्जंति निमज्जंतिप्रस्फुरंतिपतंतिच ॥ तरंगाइवतोयानामिमाःप्रतिदिनंप्रजाः ॥ ४६ ॥ सृजामीममहंसर्गंसंहरा मितथाद्दतः ॥ अयमात्मनितिष्ठामिशाम्यामिभुवनेश्वरः ॥ ४७ ॥ अयंसंवत्सरोयातइदंपरिणतंयुगम् ॥ सृष्टेरयमसौकालःस्वयंसंहरणस्यच ॥ ४८ ॥

अर्थ—शुद्धवृत्तिवाले ये सब इन्द्रादि लोकपाल महान् मर्य्यादाओंसे अपने लोकोंको ऐसा पालन करते हैं जैसे गोपाल गौओंके समूहको ॥ ४५ ॥ जलके तरंगोंके समान प्रतिदिन ये सब प्रजा कभी आविर्भूत होते हैं कभी लोप होजाते हैं और कभी अनेक प्रकारके ऐश्वर्य्योंसे शोभित होते हैं, और कभी दरिद्रता आदिके दोषोंसे गिरभी जाते हैं ॥ ४६ ॥ इस सम्पूर्ण सृष्टिको मैं रचता हूं और संहारभी करता हूं, और मैं सम्पूर्ण भुवनोंका ईश्वर अपने आत्मामें अर्थात् पारमार्थिक स्वरूपमें ज्योंकात्यों स्थित हूं और इसीसे उपरामको भी प्राप्त होता हूं ॥ ४७ ॥ यह सम्वत्सर (ब्रह्मारूप हमारा वर्ष) बीतगया, यह युगका परिवर्तन (तबदीलात) हुआ यह सृष्टिका काल है और यह संहारका कालभी आपही प्राप्त हुआ ॥ ४८ ॥

अयमेवगतःकल्पोब्राह्मीरात्रिरियंतता ॥ अयमात्मनितिष्ठामिपूर्णात्मापरमेश्वरः ॥ ४९ ॥ इतिभावितयाबुद्ध्यातेद्विजाअथऐंदवाः ॥ दशाद्रिवृत्तयस्तस्थुःसमुत्कीर्णाइवोपलात् ॥५०॥ अधिगतकमलासनक्रमास्तेपरिगलितेतरतुच्छवृत्तिजालाः॥सततमतितरांकुशासनस्थाश्चिरमितिपंकजकल्पनेविरेजुः॥५१॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे ऐंदवोपाख्याने ऐंदवसमाधानं नाम षडशीतितमः सर्गः ॥ ८६ ॥

अर्थ—यह कल्प भी बीतगया और यह ब्राह्मीरात्री भी व्याप्त होके आगई और मैं पूर्ण आत्मा परमेश्वर अपने परमार्थ स्वरूपमें स्थितहुं ॥४९॥ हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार पूजित बुद्धिसे वे इन्दुके पुत्र दशो ब्राह्मण, पर्वतके सदृश निश्चल वृत्ति वाले, पाषाणमें खुदीहुई प्रतिमाके समान ध्यानमें निष्ठ, स्थितहुये ॥ ५० ॥ हे ब्रह्मन् ! कुशके आसनपर स्थित वे दश ब्राह्मण, कमलासनकी कल्पना करनेके पश्चात् नष्ट होगयाहै अन्य तुच्छभाव जिनका और प्राप्त कियाहै कमलासन क्रम (ब्रह्मपदवी) जिन्होंने ऐसे वे सब ब्राह्मण निरन्तर चिरकालतक अति शोभाको प्राप्तहुये ॥ ५१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे ऐन्दवोपाख्याने ऐन्दवसमाधानं नाम षडशीतितमः सर्गः ॥ ८६ ॥

सप्ताशीतितमः सर्गः ॥ ८७ ॥

मनसे ब्रह्मपदको प्राप्त उन ब्राह्मणोंके शरीरोंको मांसआहारी मृग पक्षियोंसे भक्षण करना और सर्ग (सृष्टि) के ने तथा उसके अभावमें उन्हींकी ऐसी स्थिति इत्यादि विषयोंका वर्णन इस ८७ के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ भानुरुवाच ॥ पितामहक्रमेतस्मिंस्ततस्तेबहुभावनात् ॥ कर्मभिस्तैःसमाक्रांतमनस्कास्तस्थुरादृताः ॥ १ ॥ यावत्तेदेहकास्तेषांतापेनपवनैस्तथा ॥ कालेनशोषमभ्येत्यगलिताःशीर्णपर्णवत् ॥ २ ॥ जक्षुस्तांदेहकांस्तत्रक्रव्यादावनवासिनः ॥ इतश्चेतश्चलुठितान्सुफलानीवमर्कटाः ॥ ३ ॥ अथतेशांतबाह्यार्थाब्रह्मत्वेकृतभावनाः ॥ तस्थुश्चतुर्युगस्यांतेयावत्कल्पःक्षयंगतः ॥ ४ ॥

अर्थ—भानुजी बोले—हे पितामह ! उस उपासनाके क्रमसे वर्तमान वे इन्दुके पुत्र भुवनप्राणी, और ग्रामादिके सृष्टि परिपालन तथा संहार आदि उन २ कर्मोंसे आपकेही सदृश अति आदरसे बहुत भावना करते हुये स्थित रहे॥१॥ वे ब्राह्मण उस ब्रह्मभावकी उपासनामें उसकालमेंभी स्थित थे जबके उनके कृशशरीर काल पाके, ताप और पवनसे शुष्क होकर पुराने पत्तोंके समान गिरगये ॥ २ ॥ और इधर उधर पडेहुये उन शरीरोंको बनके निवासी मांसाहारी जीव ऐसे खागये जैसे गिरे हुये उत्तम फलोंको बानर ॥ ३ ॥ शरीर पातके अनन्तर बाह्यवृत्तियोंसे सर्वथा रहित ब्रह्मपदकी प्राप्तिकी भावना किये चारों युगोंके अन्तमें जब कल्पका क्षय होगया तबतक स्थित रहे ॥ ४ ॥

क्षीयमाणेततःकल्पेतपत्यादित्यसंचये ॥ पुष्करावर्त्तकेषूच्चैर्वर्षस्तुकठिनारवम् ॥ ५ ॥ वहत्सुकल्पवातेषुस्थितएकमहार्णवे ॥ क्षीणेषुभूतवृंदेषुतेतथैवव्यवस्थिताः ॥६॥ ततोरात्रिक्रमपरेसर्वांसंहृत्यतांस्थितिम् ॥ स्थितेत्वय्यात्मनिविभोतत्तथैवव्यवस्थिताः ॥ ७ ॥ अथप्रबुद्धेभवतिस्रष्टुमिच्छतिसंसृतिम् ॥ सुखेनैवक्रमेणोच्चैस्तेतथैवव्यवस्थिताः ॥ ८ ॥

अर्थ—हे ब्रह्मन्! कल्पके क्षय होनेपर सूर्य्योंके समूहके तपनेपर, और प्रलयके मेघ पुष्कर आवर्तकोंके कठिन शब्दों पूर्वक प्रबलतासे वर्षनेपर ॥ ५ ॥ कल्पान्त पवनोंके चलनेपर केवल एक समुद्रके सर्वत्र स्थित होनेपर, और सम्पूर्ण भूत समूहोंके नष्ट होनेपर भी वे ब्राह्मण उसी प्रकार ध्यानमें स्थित थे ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर पूर्व सम्पूर्ण सृष्टिका संहार करके जब ब्राह्मी महारात्रिकी प्रतीक्षा करतेहुये आप स्थित थे, तब भी वैसाही स्थित थे ॥ ७ ॥ अब आप ब्राह्मी रात्रिसे उठके प्रजाकी सृष्टिकी इच्छा कीहै परन्तु वे दशों पुत्र उत्तम सुखपूर्वक उसी प्रकार स्थितहैं ॥८॥

तथैतेभगवन्ब्रह्मन्ब्रह्माणोब्राह्मणादश ॥ तएतेदशसंसारमनोव्योमनिसंस्थिताः ॥ ९ ॥ तेषामेकतमस्याहमयमाकाशमंदिरे ॥ भानुर्भुविविभोकालकलाकर्मणियोजितः ॥ १० ॥ एषतेकथितःसर्गोदिशानामब्जसंभव ॥ ब्रह्मणांसंभवोव्योम्नियथेच्छसितथाकुरु ॥ ११ ॥ विविधकल्पनयावलितांबरंयदिदमुत्तमजागतमुत्थितम् ॥ करणजालकमोहितमोहनंतदखिलंनिजचेतसिविभ्रमः ॥ १२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे ऐंदवोपाख्याने दशजगद्वर्णनं नाम सप्ताशीतितमः सर्गः ॥ ८७ ॥

अर्थ—हे भगवन् ब्रह्मन्! इस प्रकार वे दशों ब्राह्मण ब्रह्मा होगये और ये दश ब्रह्माण्ड उनके मनरूपी आकाशमें स्थित हैं ॥ ९ ॥ हे प्रभो ! उन दशों संसारोंमेंसे एक संसारके काल कर्मका विभाग करनेके अर्थ सूर्य रूपसे आकाश मन्दिरमें यह मैं नियुक्त किया गया हुं ॥ १० ॥ हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार दशों ब्रह्माकी आकाशमें उत्पत्ति मैंने आपसे कही अब आपकी जैसी इच्छा हो वैसा करो अर्थात् इन सृष्टियोंके होनेपर भी आपकी सृष्टिसे क्या विरोध है ॥ ११ ॥ हे सर्वश्रेष्ठ भगवन् ! क्यों कि अनेक प्रकारकी कल्पनाओंसे आकाशको आवेष्टित करनेवाला वाह्य तथा आभ्यन्तर इन्द्रियोंके वन्धनजालके सदृश अतिसंगसे मोहदायक यह जो जगत् सम्बन्धी दृश्यकी प्रतीति आविर्भूत है यह केवल निज चित्तमें भ्रान्ति मात्र है न कि यथार्थ ॥ १२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे ऐन्दवोपाख्याने दशजगद्वर्णनं नाम सप्ताशीतितमः सर्गः ॥ ८७ ॥

अष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥

इस ८८ के सर्गमें दृढ सिद्ध जो ब्रह्माजी हैं उनके मनसे अनासक्तिसे सृष्टिकी सिद्धि तथा अन्य सृष्टियोंकी निवृत्तिका अभाव भी वर्णन किया गया है ॥

॥ ब्रह्मोवाच ॥ ब्रह्माणोब्राह्मणा भानुरित्युक्त्वाब्रह्मणोमम ॥ ब्रह्मन्ब्रह्मविदांश्रेष्ठतूष्णीमेवबभूवसः ॥ १ ॥ ततउक्तंमयातस्यचिरंसंचिंत्यचेतसा ॥ भानोभानोवदाशुत्वंकिमन्यत्संसृजाम्यहम् ॥ २ ॥ एतानिदशविद्यंतेकिलयत्रजगंतिवै ॥ तत्रान्यममसर्गेणकोर्थःकथयभास्कर ॥ ३ ॥ इत्युक्तोथमयाभानुः संचिंत्यसुचिरंधिया ॥ इदमत्रवचोयुक्तमुवाचसमहामुने ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीब्रह्माजी बोले-हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ वसिष्ठजी ! वह सूर्य बोला कि हे ब्रह्मन् ! वे दश ब्रह्मा दश ब्राह्मण हैं और कोई नहीं ऐसा मेरे सन्मुख कहके मौन होगया ॥ १ ॥ इसके अनन्तर मैंने मनसे दीर्घ कालतक विचार करके कहा कि हे भानो ! हे भानो ! अब मैं और सृष्टि क्या करूं ॥ २ ॥ हे भास्कर ! जहांपर ये दश ब्रह्माण्ड वर्तमान हैं वहांपर अव मेरी सृष्टिसे क्या प्रयोजन है सो तुम शीघ्र कहो ॥ ३ ॥ हे महामुने ! ऐसा मेरे कहनेपर उस सूर्यने मनसे दीर्घ कालतक शोच कर मेरे प्रश्नके अनुसार यहांपर यह योग्य वचन कहा ॥ ४ ॥

॥ भानुरुवाच ॥ निरीहस्यनिरिच्छस्यकोर्थःसर्गेणतेप्रभो ॥ विनोदमात्रमेवेदंसृष्टिस्तवजगत्पते ॥५॥ निष्कामादेवभवतःसर्गःसंपद्यतेप्रभो ॥ अर्कादिवजलादित्येप्रतिबिंबमिवाधियः ॥ ६ ॥ शरीरसन्निवेशस्यत्यागेरागेचतेयदा ॥ निष्कामोभगवन्भावोनाभिवांछतिनोज्झति ॥ ७ ॥ सृजसीदंतथादेवविनोदायैवभूतप ॥ पुनःसंहृत्यसंहृत्यदिनंदिनपतिर्यथा ॥ ८ ॥

अर्थ—हे प्रभो ! चेष्टा तथा इच्छा रहित जो आप हैं उनको सृष्टिसे क्या प्रयोजन है, हे जगत्पते ! यह सृष्टि

तो आपकी लीलामात्र है ॥ ५ ॥ हे प्रभो ! मन तथा कामनासे रहित जो आप हैं उनसे यह सृष्टि ऐसे उत्पन्न होती है जैसे सूर्यसे जलके सूर्यका प्रतिबिम्ब ॥ ६ ॥ हे भगवन् ! शरीररूपी प्रत्येक अंगोंकी रचना है उसके त्यागमें रागमें तथा स्त्रियोंके कृत्यमें अहंभावसे जो रंजनराग है उसमें आपका निष्काम भाव न कुछ चाहता है और न कुछ त्यागता है ॥ ७ ॥ हे संसारके सम्पूर्ण भूतोंको पालन करनहारे ! पुनः संहार करके जो इस जगत्को ऐसा रचते हो जैसे सूर्य दिनोंको, यह केवल आपके विनोद (लीला) मात्र है ॥ ८ ॥

तवनित्यमसंसक्तंविनोदायैवकेवलम् ॥ इदंकर्त्तव्यमेवेतिजगन्नत्नूद्यमेच्छया ॥ ९ ॥ सृष्टिंचेन्नकरोषि त्वंमहेशपरमात्मनः ॥ नित्यकर्मपरित्यागात्किमपूर्वमवाप्स्यसि ॥ १० ॥ यथाप्राप्तेहिकर्त्तव्यमसक्ते नसदासता ॥ मुकुरेणाकलंकेनप्रतिबिंबक्रियायथा ॥ ११ ॥ तथैवकर्मकरणेकामनानास्तिधीमताम् ॥ तथैवकर्मसंत्यागेकामनानास्तिधीमताम् ॥ १२ ॥

अर्थ—यह करनेके योग्यहै, इसप्रकार इस जगत्को नित्य आप आसक्तिरहित रचना कहते हो न कि स्वार्थके अभिलाषके उद्योगकी इच्छासे ॥ ९ ॥ हे महेश ! यदि आप सृष्टि नहीं करोगे तो आत्माके नित्य प्राप्त कर्मके परित्यागसे और अपूर्व क्या पदार्थ प्राप्त करोगे ? ॥ १० ॥ सत्पुरुषको उचित है कि नित्य प्राप्त कर्म्म सदा आसक्त मनसे ऐसे करै जैसे निर्मल दर्पण प्रतिबिम्बकी क्रिया को करताहै ॥ ११ ॥ आत्मज्ञानियोंको जैसे अप्राप्त कर्म करनेमें कोई कामना नहीं रहती ऐसेही उनको नित्य प्राप्त करनेमें भी कोई कामना नहीं रहती ॥ १२ ॥

अतःसुषुप्तोपमयाधियानिष्कामयातया ॥ सुषुप्तबुद्धसमयाकुरुकार्य्यंयथागतम् ॥ १३ ॥ सर्गैरथैंदुपुत्राणांतोषमेषिजगत्प्रभो ॥ तदेतेतोषयिष्यंतितंत्वांसर्गात्सुरेश्वर ॥ १४ ॥ चित्तनेत्रैर्भवानेतान्सर्गानन्यस्यनोदृशा ॥ अवश्यंचक्षुषासर्गंस्त्रष्टमित्येववेत्तिकः ॥ १५ ॥ येनैवमनसासर्गोनिर्मितःपरमेश्वर ॥ स एवमांसनेत्रेणतंपश्यतिहिनेतरः ॥ १६ ॥

अर्थ—इसलिये यथार्थमें कुछ न करनेसे सुषुप्तके तुल्य और प्रतीतिसे करनेसे स्वप्नके सदृश निष्काम बुद्धिसे आप नित्य प्राप्तकर्म कीजिये ॥ १३ ॥ और हे प्रभो ! यदि इन्दुके पुत्र जो दश ब्रह्माहैं उनकी रचित सृष्टियोंसे ऐसे सन्तोषको प्राप्त होते हो पुत्र पौत्रादिकी संपत्तियोंके देखनेसे पिता पिताके समान हो तौभी ये इन्दुके पुत्र उस आपकी सृष्टि करनेके अनन्तर भी सन्तोष शील आपको सन्तुष्ट करेंगे ॥ १४ ॥ और हे भगवन् ! ये दूसरे रचित जो सृष्टि हैं इनको आप चित्तरूपी नेत्रसे ही देखते हो न कि मांसके नेत्रसे और जो उस सृष्टिका रचनेवालाहै वह अवश्य आँ नेत्रोंसे देखता और जानताहै कि मैंने सृष्टि की ॥ १५ ॥ हे परमेश्वर ! जिस मनसे सृष्टि रची जातीहै वही मन सहित प्राणी मांसके नेत्रसे सृष्टिको देखताहै दूसरा नहीं ॥ १६ ॥

नचैतान्दशसंसारान्दशनीरजसंभवान् ॥ कश्चिन्नाशयितुंशक्तश्चित्तदार्ढ्याच्चिरस्थितान् ॥ १७ ॥ कर्मेंद्रियैर्यत्क्रियतेतद्रोद्धुंकिलयुज्यते ॥ नमनोनिश्चयकृतंकश्चिद्रोधयितुंक्षमः ॥ १८ ॥ योबद्धपदतांयातोजंतोर्मनसिनिश्चयः ॥ सतेनैवविनाब्रह्मन्नान्येनविनिवार्यते ॥ १९ ॥ बहुकालंयदभ्यस्तंमनसादृढनिश्चयम् ॥ शापेनापिनतस्यास्तिक्षयोनष्टेपिदेहके ॥ २० ॥ यद्यद्वपीठमभितोमनसिप्ररूढंतद्रूपमेवपुरुषोभवतीहनान्यत् ॥ तद्बोधनादितरमत्रकिलाभ्युपायंशैलौघसेकमिवनिष्फलमेवमन्ये ॥ २१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे ऐंदवोपाख्याने ऐंदवनिश्चयकथनं नामाष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥ ऐंदवोपाख्यानंसंपूर्णम् ॥

अर्थ—और चित्तकी दृढ़तासे स्थित इन दशों संसारोंको और उनके कारणभूत दशों ब्रह्माको कोई भी नाश करनेमें समर्थ नहीं है ॥ १७ ॥ कर्म इन्द्रियोंसे जो कार्य्य कियाजाताहै उसका निरोध हो भी सकताहै परन्तु मनके निश्चयसे किये हुये कार्य्यका नाश कोई भी नहीं कर सकता ॥ १८ ॥ हे ब्रह्मन् ! जो बात प्राणीके मनमें दृढमूल हो जाती है वह उस प्राणीके विना कोई भी निवारण करनेमें समर्थ नहीं है ॥ १९ ॥ हे ब्रह्मन् ! जो मनसे किया दृढ निश्चय हुआहै बहुत कालतक अभ्यास कियागयाहै उसका क्षय शापसे भी देहके नाश होनेपर नहीं होता है ॥ २० ॥ हे ब्रह्मन् ! जो कुछ मनमें चारों ओरसे दृढ निश्चय होगया है वहीरूप पुरुष होताहै और दूसरा नहीं इसलिये मनुष्योंको संसार नाशके लिये उसके बोधके सिवाय और उपाय पर्वतके समूहके सींचनेके तुल्य मैं निष्फल मानता हूं ॥ २१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्तिप्रकरणे ऐन्दवोपाख्याने ऐन्दवनिश्चयकथनं नामाष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥ ऐन्दवोपाख्यानं संपूर्णम् ॥

एकोननवतितमः सर्गः ॥ ८९ ॥

अहल्याकी मनोवृत्तिकी कथासे इस ८९ सर्गमें दृढ मनकी अचलताका प्रकाश किया गयाहै ॥

॥ भानुरुवाच ॥ मनोहिजगतांकर्तृमनोहिपुरुषःपरः ॥ मनःकृतंकृतंलोकेनशरीरकृतंकृतम् ॥ १ ॥ सामान्यब्राह्मणाभूत्वामनोभावनयाकिल ॥ ऐंदवाब्रह्मतांयातामनसःपश्यशक्तताम् ॥ २ ॥ मनसाभाव्यमानोहिदेहतांयातिदेहकः ॥ देहभावनयाऽयुक्तोदेहधर्मैर्नबाध्यते ॥ ३ ॥ बाह्यदृष्टिर्हिनियतंसुखदुःखादीविंदति ॥ नांतर्मुखतयायोगीदेहेवेत्तिप्रियाप्रिये ॥ ४ ॥

अर्थ—भानुजी बोले–हे ब्रह्मन् ! सब जगतोंका कर्ता मनही है और मनही परम पुरुष है संसारमें जो कुछ किया गयाहै वह मनसेही किया गया है न कि शरीरसे ॥ १ ॥ देखो मनकी शक्ति इन्दुके पुत्र सामान्य ब्राह्मण होके मनकी निश्चयपूर्वक भावनासे दशो ब्रह्मा होगये ॥ २ ॥ मनकी भावनासे देह होजाता है और मनसे देहकी भावनासे रहित (मैं देह नहीं हूं) जन्ममरण आदिसे पीडित नहीं होता ॥ ३ ॥ बाह्यदृष्टि अर्थात् शरीर आदिमें जिसकी आत्मदृष्टि है वही सुखदुःख आदिका अनुभव करता है और अन्तर्मुख अर्थात् चेतन आत्मामें आत्मदृष्टि योगीकी शरीरमें सुखदुःखका अनुभव नहीं करता ॥ ४ ॥

मनःकारणकंतस्माज्जगद्विविधविभ्रमम् ॥ इंद्रस्याहल्ययासार्द्धंवृत्तांतोत्रनिदर्शनम् ॥ ५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ काहल्याभगवन्भानोकोवात्रेंद्रस्तमोनुद ॥ ययोरुदंतश्रवणेपावनीदृष्टिरेतिहि ॥ ६ ॥ भानुरुवाच ॥ श्रूयतेहिपुरादेवमागधेषुमहीपतिः ॥ इंद्रद्युम्नइतिख्यातइंद्रद्युम्नइवापरः ॥ ७ ॥ तस्येंदुबिंबप्रतिमाभार्याकमललोचना ॥ अहल्यानामतत्रासीच्छशांकस्येवरोहिणी ॥ ८ ॥

अर्थ—इस लिये जगत् के जो अनेक प्रकारके भ्रम हैं उन सबका कारण केवल मनही है इन्द्रका अहल्याके साथ जो वृत्तान्त हुआ है वह इसमें दृष्टान्त है ॥ ५ ॥ ब्रह्माजी बोले–हे भगवन् ! हे अन्धकारके नाशक सूर्य्य ! कौन अहल्याथी और वहां इन्द्र कौन था जिन दोनोंका वृत्तान्त श्रवण करनेपर पवित्र दृष्टि उदय होती है ॥ ६ ॥ भानुजी बोले–हे देव ब्रह्मन् ! पूर्वकालमें मगध देशमें इन्द्रद्युम्न नामसे एक राजा हुआ जो कि पुराणोंमें प्रसिद्ध इन्द्रद्युम्नके सदृश था ऐसा सुना जाताहै ॥ ७ ॥ चन्द्रमाके प्रतिबिंबके समान कमलके सदृश नेत्रवाली अहल्या नामसे प्रसिद्ध उस राजाकी स्त्री ऐसी सुन्दर थी जैसे चन्द्रमाकी रोहिणी ॥ ८ ॥

तस्मिन्निवपुरेपिंगःपिंगप्रकरशेखरः ॥ इंद्रनामापरःकश्चिद्धीमान्विप्रकुमारकः ॥ ९ ॥ अहल्यापूर्वमिंद्रस्यबभूवेष्टेत्यहल्यया ॥ श्रुतंराजमहिष्याथकथाप्रस्तावतःक्वचित् ॥ १० ॥ आकर्ण्यैवमहल्यासाबभूवेंद्रानुरागिणी ॥ अहल्यांमांसनोकस्मात्सक्तोभ्येतीत्यथोत्सुका ॥ ११ ॥ मृणालभारकदलीपल्लवास्तरणेषुसा ॥ अतप्यतभृशंबालालतालूतावनेष्विव ॥ १२ ॥

अर्थ—उसी नगरमें व्यभिचारियोंमें शिरोमणि व्यभिचार क्रियामें अतिप्रवीण इन्द्रनामसे प्रसिद्ध एक ब्राह्मणका कुमार रहताथा ॥ ९ ॥ पुराण आदिकी कथाओंमें इन्द्रद्युम्न राजाकी स्त्री अहल्याने यह कहीं सुनाथा कि गौतमकी पत्नी अहल्या इन्द्रकी प्रियाथी क्योंकि वह उसमें आसक्त हुआथा ॥ १० ॥ इसको सुनके वह रानी अहल्या इन्द्रनाम ब्राह्मणमें प्रति अनुरागिणी हुई और अति प्रेमवती होके यह कहने लगी की आसक्त होके इन्द्र (ब्राह्मण) मेरे निकट क्यों नहीं आता ॥ ११ ॥ कमलोंके भार तथा केलोंके पत्तोंके बिछोनोंपर वह सुन्दरांगी बाला ऐसे अतिसन्तप्त हुई जैसे बनमें काटी लता ॥ १२ ॥

खेदमापसमग्रासुतासुभूपविभूतिषु ॥ मत्सीनिदाघतप्तासुपरिलोलास्थलीष्विव ॥ १३ ॥ अयमिंद्रोयमिंद्रश्चेत्येवंजातप्रलापया ॥ लज्जापिहितयात्यक्तावैवश्यमनुयातया ॥ १४ ॥ इत्यार्तयाघनस्नेहमथतस्यावयस्यया ॥ उक्तंतयाप्रियेविघ्नमिंद्रमभ्यानयाम्यहम् ॥ १५ ॥ इष्टंतवानयामीतिश्रुत्वाविकसितेक्षणा ॥ पपातपादयोःसख्यानलिन्यानलिनीयथा ॥ १६ ॥

अर्थ—वह रानी अहल्या राजाकी सम्पूर्ण विभूतियोंमें ऐसी दुःखित हुई जैसे उष्णकालमें अति संतप्त स्थलोंमें चंचल मछली ॥ १३ ॥ यह इन्द्र ! यह इन्द्र ! ऐसा प्रलाप सहित विवश होके उसने लज्जा भी त्याग दिया ॥ १४ ॥ इसके अनन्तर उसकी सखी उसके अतिस्नेहको देखके अतिदुःखी हुई और उसको अतिभयंकर दशामें देखके बोली–कि हे प्रिये ! मैं इन्द्रको निर्विघ्नतापूर्वक तुमारे निकट लाती हूं ॥ १५ ॥ तुमारे प्रियको लाती हूं ऐसा सुनके वह अहल्या विकसितनेत्र होगई और जैसे अति म्लान (मुर्झाई हुई) कमलिनी दूसरी कमलिनीके पाद (मूल) पर गिरे ऐसेही उसके चरणोंमें गिरी ॥ १६ ॥

ततःप्रयातेदिवसेसमायातेनिशागमे ॥ सावयस्यातमिंद्राख्यंययौद्विजकुमारकम् ॥ १७ ॥ बोधयित्वा यथायुक्तंसातमिंद्रमथांगना ॥ अहल्यानिकटंरात्र्यामानयामाससत्वरम् ॥ १८ ॥ ततःसातेनर्षिगेनस इंद्रेणरात्तियया ॥ कस्मिंश्चित्सद्नेगुप्तेबहुमाल्यविलेपना ॥१९॥ हारांगदमनोज्ञेनतरुणीतेनसातदा ॥ रतेनावर्जितावल्लीरसेनमधुनायथा ॥ २० ॥

अर्थ—इसके पश्चात् दिन बीत जानेपर और रात्रिके आनेपर वह रानीकी सखी इन्द्र नामक उस ब्राह्मणके कुमारके निकट गई ॥ १७ ॥ यथायोग्य सब बात समुझाके वह अंगना उस रात्रिमें शीघ्र इन्द्र ब्राह्मणको अहल्याके समीप लाई ॥ १८ ॥ इसके अनन्तर उस इन्द्र ब्राह्मण जारके साथ किसी गुप्तस्थानमें बहुतसी पुष्प आदिकी मालायें धारण कर और सुगन्धित द्रव्य अँतर आदि लगाकर उस रात्रिमें रमण किया ॥ १९ ॥ हार और अंगद आदिसे अतिशोभित उस ब्राह्मणकी सुरतके उचित क्रीडासे वह अहल्या उसके ऐसी वशीभूत होगई जैसे वसन्तऋतुके लता ॥ २० ॥

ततस्तदनुरक्तासापश्यंतीतन्मयंजगत् ॥ नसमस्तगुणाकीर्णंभर्त्तारंबहुमन्यत ॥ २१ ॥ केनचित्त्वथ कालेनतस्याइंद्रानुरागिता ॥ सज्ञाताराजसिंहेनतन्मुखव्योमचंद्रिका ॥ २२ ॥ इंद्रंध्यायतिसायावत्तावत्तस्याविराजते ॥ मुखंपूर्णेनचंद्रेणप्रबुद्धमिवकैरवम् ॥ २३ ॥ इंद्रोपिचतदासक्तसमस्तकरणाकुलः ॥ नतिष्ठतिक्षणमहोतयाविरहितःक्वचित् ॥ २४ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर उसी ब्राह्मणमें आसक्त अहल्या तन्मय जगत् देखती हुई समस्त गुणोंसे युक्त अपने पतिको कुछ नहीं समझती थी ॥ २१ ॥ कुछ कालके अनन्तर उसके मुखरूपी आकाशका चन्द्रमाकी चन्द्रिका (चांदनी) के समान प्रकाशका हेतु उसके अनुरागको राजसिंह इन्द्रद्युम्नने जानलिया ॥ २२ ॥ जबतक वह अहल्या रानी इन्द्रका ध्यान करती थी तबतक उसका मुख ऐसा शोभित होता था जैसे पूर्णचन्द्रसे विकसित कैरव (रात्रिकमल) ॥ २३ ॥ और सम्पूर्ण इन्द्रियोंसे व्याकुल इन्द्रभी उसमें आसक्त उसके वियोगमें क्षणभर भी कहीं नहीं रह सकता था ॥ २४ ॥

अथातिस्नुघनस्नेहनिरावरणचेष्टयोः ॥ तयोरनयवृत्तांतोराज्ञाकर्णिकटुव्यथः ॥ २५ ॥ एवमन्योन्यमासक्तंभावमालक्ष्यभूपतिः ॥ चकारबहुभिर्दंडैःसद्वयोरथशासनम् ॥ २६ ॥ तावुभावपिसंत्यक्तौहेमंते सलिलाशये ॥ तुष्टौजहसतुस्तत्रनखेदंसमुपागतौ ॥ २७ ॥ अपृच्छततोराजाखिन्नौस्थोनतुदुर्मती ॥ तावूचतुर्महीपालंजलाशयसमुद्धृतौ ॥ २८ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर अति दृढ प्रेमसे प्रकट होगई है चेष्टा जिनकी ऐसे उन दोनोंके दुःसह व्यथा देनेवाले अन्यायपूर्वक वृत्तान्तको राजाने सुना ॥ २५ ॥ राजाने दोनोंके परस्पर आसक्त भावको देखके अनन्तर अनेक प्रकारके दण्डोंसे उनको पीडा दी ॥ २६ ॥ वे दोनों भी जब शीतकालमें जलमें छोड़दिये गये तब भी सन्तुष्ट होके हँसे और कुछ भी खेदको नहीं प्राप्तहुये ॥ २७ ॥ तब राजाने उन दोनोंसे पूंछा कि हे दुर्बुद्धियो ! क्या तुम दुःखी नहीं ? तब जलसे निकाले हुये वे दोनों राजासे बोले ॥ २८ ॥

संस्मृत्यावामिहान्योन्यमुखकांतिमनिंदिताम् ॥ आत्मानंनविजानीवोरूढभावंपरस्परम् ॥ २९ ॥ शासनेषुचयत्संगोनिःशंकस्तेनहर्षितौ ॥ सुह्यावोनमहीपालस्वांगैरपिविकर्तितैः ॥ ३० ॥ ततोभ्राष्ट्रेपरिक्षिप्तावखिन्नावेवमेवतौ ॥ ऊचतुर्मुदितात्मानावन्योन्यस्मृतिहर्षितौ ॥ ३१ ॥ ग्रथितौगजपादेषुनखिन्नावेवसंस्थितौ ॥ एवमेवोचतुर्भूपमन्योन्यस्मृतिहर्षितौ ॥ ३२ ॥

अर्थ—कि हे राजन् ! हम दोनों एक दूसरेकी अनिन्दित मुखकी शोभाको स्मरण करके दृढ प्रेमसे अपने देहको भी नहीं जानते ॥ २९ ॥ क्योंकि हम दोनोंके मनका सम्बन्ध भेदकी शंका शून्यहै इसी कारण हे राजन् ! आपकी दी हुई पीड़ाओंमें भी हम हर्षित है न कि हमारे अंगोंके काटनेसे भी मोहमें प्राप्त ॥ ३० ॥ इसके अनन्तर वे दोनों भ्राष्ट्र (भाड) में झोंक दियेगे परन्तु वहां भी दुःखी नहीं हुये और वहां भी इसीप्रकार एक दूसरेके ध्यानसे प्रसन्नचित्त अति हर्षित इसी प्रकार राजासे बोले ॥ ३१ ॥ हांथीके पैरमें दोनों बांध दियेगये तब भी दुःखरहित स्थित रहे और एक दूसरेकी स्मृतिसे हर्षित इसी प्रकार बोले ॥ ३२ ॥

कशाहतावखिन्नौतावेवमेवकिलोचतुः ॥ अन्यस्माच्छासनाद्राज्ञाकल्पिताच्चपुनःपुनः ॥ ३३ ॥ उद्धृता वूचतुःपृष्टौतमेवार्थंपुनःपुनः ॥ उवाचेंद्रोमहीपालंजगन्मेदयितामयम् ॥३४॥ नशातनानिदुःखानिबाधं

तेकिंचिदेवमे ॥ अस्याश्चैवजगद्राजन्सर्वमन्मयमेवच ॥ ३५ ॥ तेनान्यशासनाद्दुःखंकिंचिदेवनविद्य ते ॥ मनोमात्रमहंराजन्मनोहिपुरुषःस्मृतः ॥ ३६ ॥

अर्थ—कोडोंसे ताडित होनेपर दुःखी न हुये और पूर्वोक्त रीतिसे राजासे बोले, तथा और भी राजासे नियत किये हुये दण्डोंसे पीडित न हुये किन्तु प्रसन्न ही रहे न कि दुःखी ॥ ३३ ॥ उस पीडासे निकाले हुये पूंछनेपर भी उसी बातको पुनः २ कहा और इन्द्रनामक ब्राह्मण राजासे बोला कि मुझे यह जगत् इस स्त्रीमय भान होताहै ॥३४॥ हे राजन् ! मुझे इस स्त्रीरूप और इसको मुझरूप सम्पूर्ण जगत् भान होताहै इसलिये आपसे प्रेरित दुःख मुझे और इसको कुछ भी बाधा नहीं देते ॥ ३५ ॥ दोनोंको एक दूसरेका रूप जगत्भान होनेसे अन्य की दी हुई पीड़ासे कुछ भी दुःख नहीं है, हे राजन् ! मैं मनोमात्र हुं और मन जो है वही पुरुष है ॥ ३६ ॥

प्रपंचमात्रमेवायंदेहोदृश्यतएवहि ॥ समकालप्रयुक्तेनसहस्रादंडराशिना ॥३७॥ वीरंमनोभेदयितुंमना गपिनशक्यते ॥ कानामताम्महाराजकीदृश्यःकस्यशक्तयः ॥ ३८ ॥ याभिर्मनांसिभिद्यंतेदृष्टनिश्चयवंत्य पि ॥ वृद्धिमायातुवादेहोयातुवाविशरारुताम् ॥ ३९ ॥ भावितार्थाभिपतितंमनस्तिष्ठतिपूर्ववत् ॥ इष्टेर्थे चिरमाविष्टंदधानंतत्स्थितंमनः ॥ ४० ॥

अर्थ—यह जो शरीर दीखता है वह मनसे कल्पित प्रपंच मात्र है इसलिये अनेक दण्डोंकी राशि भी एक कालमें प्रयुक्त की जाय तो भी ॥ ३७ ॥ वीर इस मनका किंचित् भी भेदन करनेमें समर्थ नहीं है हे महाराज ! क्या नामवाली कैसी और किसकी वे शक्तियां है ॥ ३८ ॥ जिनसे अनुभूयमान यथार्थ रूप निश्चयवाले भी मन भेदन करनेमें समर्थ हैं यह शरीर वृद्धि को प्राप्त हो वा कण २ होके गलजाय परन्तु ॥३९॥ निश्चित पदार्थमें गिरा हुआ मन जैसा था वैसाही स्थित रहता है वांछित पदार्थ चिरकालतक लगा हुआ और उसी पदार्थका रूप होके उसमें स्थित मनको॥४०

भावाभावाःशरीरस्थान्नृपशक्तानबाधितुम् ॥ भावितंतीव्रवेगेनमनसायन्महीपते ॥४१॥ तदेवपश्यत्यच लंनशरीरविचेष्टितम् ॥ नकाश्चनक्रियाराजन्वरशापादिकाअपि ॥ ४२ ॥ तीव्रवेगेनसंपन्नंशक्ताश्चाल यितुंमनः ॥ तीव्रवेगेनसंयुक्तंपुरुषाद्यभिवांछितात् ॥ ४३ ॥ मनश्चालयितुंशक्तानमहाद्रिंमृगाइव ॥ ममे यमसितापांगीमनःकोशेप्रतिष्ठिता ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे राजन् ! शरीरमें स्थित भाव अथवा अभाव पदार्थ बाधा नहीं कर सकते और हे राजन् ! हे मन तीव्र ! संकल्पसे जो कुछ निश्चय करता है ॥ ४१ ॥ वही स्थिर रूपसे देखता है, और हे राजन्, कोई भी वर शाप आदि क्रिया तीव्र संवेगसे गिरे हुये मनको हटानेको समर्थ नहीं है तीव्र अभिलाषसे संयुक्त मनको इष्ट पदार्थसे हटानेको कोई भी पुरुष ऐसे समर्थ नहीं है जैसे बडे पर्वतको हरिण, और हे राजन् ! यह कृष्णकटाक्षवाली अहल्या मेरे मनरूपी कोशमें ऐसे प्रतिष्ठित है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

देवागारेमहोत्सेधेदेवीभगवतीयथा ॥ नदुःखमनुगच्छामिप्रिययाजीवरक्षया ॥४५॥ गिरिग्रीष्मदशादाहं लघ्नयेवाब्दमालया ॥ यत्रयत्रयथाराजंस्तिष्ठाम्यभिपतामिवा ॥ ४६ ॥ तत्रेष्टसंगमादन्यत्किंचिन्नानुभ वाम्यहम् ॥ अहल्यादयितानाम्नामनसेंद्राभिधंमनः ॥ ४७ ॥ संसक्तमिदमायातिनस्वभावान्तरंपरम् ॥ एककार्यनिविष्टंहिमनोधीरस्यभूपते ॥ ४८ ॥

अर्थ—जैसे बडे ऊंचे देवस्थानमें भगवती देवी और जीवकी रक्षाभूत इस प्रियासे मैं ऐसे दुःखको अनुभव नहीं करसक्ता जैसे मेघोंकी मालाके संयोगसे ग्रीष्मकी दशाके दाहको पर्वत और हे राजन् ! जहां २ मैं स्थित होताहुं अथवा गिरता हुं ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ वहां २ अपने प्रियाके समागमके सिवाय और कुछ नहीं अनुभव करता मनसेही अहल्या प्रियाहै और मनसेही इन्द्र नाम ब्राह्मण प्रिय है ॥ ४७ ॥ इस प्रकार इन दोनोंके रूपसे दृढ संसक्त मन एक स्वभावसे दूसरे स्वभावको सैकडों यत्नोंसे भी प्राप्त होनेके अशक्य है और हे राजन् ! धीर पुरुषका चित्त जब एक विषयमें निमग्न है तब वह अन्य विषयमें ॥ ४८ ॥

नचाल्यतेमेरुरिववरशापबलैरपि ॥ देहोहिवरशापाभ्यामन्यत्वमिवगच्छति ॥ नतुधीरंमनोराजन्वि ज्ञातेषुतयास्थितम् ॥ ४९ ॥ एतानिचात्रमनसांनचकारणानिराजन्शरीरशकलानिवृथोत्थितानि ॥ चेतोहिकारणममीषुशरीरकेषुवारीवसर्ववनखंडलतारसेषु ॥ ५० ॥ आद्यंशरीरमिहविद्धिमनोमहात्म न्संकल्पितोजगतितेनशरीरसंघः ॥ आद्यंशरीरमथितिष्ठतियत्रयत्रतत्तादृशंफलतितेनतरदस्यपुंसः ॥५१॥ मुख्यांकुरंसुभगविद्धिमनोहिपुंसोदेहास्ततःप्रविसृतास्तरुपल्लवाभाः ॥ नष्टेंकुरेपुनरुदेतिनपल्लवश्रीर्नै वांकुरःक्षयमुपैतिदलक्षयेषु ॥ ५२ ॥

अर्थ—वर और शापसे भी ऐसे नहीं चलायमान होता जैसे मेरु पर्वत, हे राजन्! यह शरीर जो है सो वर और शापसे अन्यरूप होजाती है परन्तु धीर जो मनहै वह सम्पूर्ण विक्षेपोंके जीतनेकी इच्छावान् होके स्थित रहताहै॥४९॥ हे राजन्! ये जो वृथा प्रकट हुये दृश्यमात्र प्राणियोंके शरीर रूप खण्डहैं वे सब मनके कारण नहींहैं किन्तु इन सब शरीरोंमें कारणीभूत मन ऐसेहै जैसे सम्पूर्ण बनके खण्डोंमें और लतारसोंमें जल॥५०॥ हे महात्मन्! आत्माके भोगका स्थान प्रथम मनरूपही शरीरहै और इसी मनसेही संसारमें शरीरोंके समूह कल्पित किये गयेहैं, इसलिये आद्यशरीर अधिष्ठान भूत जहां २ "अहम्" इस अभिमानसे प्रगट्है वहां २ उसी अधिष्ठानसे उन २ शरीराकारसे इस पुरुषको फुरी भूत होताहै अन्य नहीं॥५१॥ हे सुभगराजन्! पुरुषका मुख्य अंकुर तुम मनकोही जानो और उसी मनसे वृक्षके पल्लव के सदृश शरीरोंका विस्तार हुआहै और अंकुर नष्ट होनेपर पुनः पत्र आदिकी शोभा नहीं उदय होती परन्तु पत्रोंके नष्ट होनेसे अंकुर नहीं नष्ट होता॥५२॥

देहेक्षतेविविधदेहगणंकरोतिस्वप्नावनाविषनवंनवमाशुचेतः॥ चित्तेक्षतेतुनकरोतिहिकिंचिदेवदेह स्ततःसमनुपालयचित्तरत्नम्॥५३॥ दिशिदिशिहरिणाक्षीमेवपश्यामिराजन्प्रिययुवतिमनस्त्वान्नित्यमानंदितोस्मि॥ तवपुरप्रकृतीनांयत्फलंदुःखदायिक्षणमथसुचिरंतत्तन्नपश्यामिकिंचित्॥ ५४॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूत्पत्तिप्रकरणे इन्द्राहल्याख्याने कृत्रिमेंद्रवाक्यं नामैकोननवतितमः सर्गः॥८९॥

अर्थ—हे राजन्! शरीरके नष्ट होनेपर भी यह चित्त शीघ्रही स्वप्नके सदृश अनेक प्रकार देहके समूह रचताहै और चित्तके नष्ट होने पर देह कुछ भी नहीं इस लिये चित्तरूपी रत्नको परम पुरुषार्थमें लगानेसे रक्षा करो॥५३॥ हे राजन्! सम्पूर्ण दिशाओंमें इसी हरिणके सदृश नेत्रवालीकोही देखताहूं और प्रिय युवतिरूप मन होनेसे नित्यही आनन्दित हूं, और तुम्हारे नगरनिवासी तथा प्रजाओंकी दृष्टिमें दुःखदायी जो कोड़ों और शस्त्रका आघात है और उनका फल जो दुःखहै उस क्षणभर अथवा अधिक कालतक कुछ भी नहीं देखता॥५४॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ति मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे इन्द्राहल्याकृत्रिमवाक्यं नामैकोननवतितमः सर्गः॥८९॥

नवतितमः सर्गः॥९०॥

भरत मुनिके शापसे उन दोनोंके देह नष्ट होनेपर भी उन दोनोंकी मनकी परस्पर तन्मयता नहीं नष्ट हुई इस विषयका वर्णन इस ९० सर्गमें कियाहै॥

॥ भानुरुवाच॥ अथेंद्रेणैवमुक्तोसौराजाराजविलोचनः॥ मुनिंभरतनामानंपार्श्वसंस्थमुवाचह॥१॥ ॥ राजोवाच॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञपश्यामिसुदुरात्मनः॥ भृशमस्यमुखेस्फारंधाष्ट्यंमद्दारहारिणः॥२॥ पापानुरूपमस्याशुशापंदेहिमहामुने॥ यदवध्यवधात्पापंवध्यत्यागात्तदेवहि॥३॥ इत्युक्तोराजसिंहेनभरतोमुनिसत्तमः॥ यथावत्प्रविचार्याशुपापंतस्यदुरात्मनः॥४॥

अर्थ—भानुजी बोले—हे ब्रह्मन्! जब इन्द्र ब्राह्मण करके कमलके सदृश नेत्रवाला राजा इन्द्रद्युम्न ऐसा कहा गया तब निकटमें स्थित भरत नाम मुनिसे बोला॥१॥ राजाजी बोले—हे भगवन्! हे सम्पूर्ण धर्मोंको जानने हारे! मेरी स्त्रीके हरनेवाले इस दुष्टके मुखमें बहुत धृष्टतायुक्त वचन देखताहूं॥२॥ इसलिये हे महामुने! इसके पापके अनुसार शीघ्र शाप दीजिये क्योंकि जो मारनेके योग्य नहीं है उसके मारनेसे जो पाप होताहै वही पाप मारने योग्य मनुष्यके त्यागसे होताहै॥३॥ मुनियोंमें श्रेष्ठ भरतजी राजासिंहके ऐसा कहनेपर उस दुष्टके पापको शीघ्र यथावत् विचार करके॥४॥

सहानयाद्दुष्कृतिन्याभर्तृद्रोहाभिभूतया॥ विनाशंव्रजदुर्बुद्धेइतिशापंविसृष्टवान्॥५॥ ततस्तौराजभरतौप्रत्यूचतुरिदंवचः॥ सुदुर्मतीयुवांयाभ्यांक्षपितंदुश्चरंतपः॥६॥ अनेनशापदानेनाकिंचिद्दत्वांतिनावयोः॥ देहेनष्टेननौकिंचिन्नश्यतिस्वांतरूपयोः॥७॥ स्वांतंहिनहिकेनापिशक्यतेनाशितुंक्वचित्॥ सूक्ष्मत्वाच्चिन्मयत्वाच्चदुर्लक्ष्यत्वाच्चविद्धिनौ॥८॥

अर्थ—यह शाप दिया कि हे दुर्बुद्धे पतिके द्रोहसे पराजित इस पापिनीके साथ शीघ्र तुम नष्टताको प्राप्त हो॥५॥ इसके अनन्तर वे दोनों राजा और भरत मुनिसे यह बात बोले कि तुम दोनों अति दुर्बुद्धी हो जिन्होने अपना

दुश्चर तपस्या नष्ट किया शाप देके ॥६॥ क्यों कि इस शापके देनेसे हम दोनोंका कुछ भी नष्ट नहीं हुआ देहके नष्ट होने परभी अन्तःकरण (मन) रूप हम लोगोंका कुछ भी नष्ट नहीं होता ॥ ७ ॥ तुम यह निश्चयसे जानो कि हम लोगोंका मन सूक्ष्म होनेसे, चिन्मय होनेसे और दूसरेके अलक्ष्य होनेसे किसीसे और कहींभी नाश करनेको समर्थ नहीं है ॥८॥

॥ भानुरुवाच ॥ सुघनस्नेहसंबद्धमनस्कावेवशापतः ॥ पतितौभूतलेवृक्षविच्युताविवपल्लवौ ॥ ९ ॥ अथव्यसनसंसक्तौमृगयोनिमुपागतौ ॥ ततोद्वावपिसंसक्तौभूयोजातौविहंगमौ ॥ १० ॥ अथास्मिन्कवि भोसर्गेमिथस्संबंधभावनौ ॥ तपःपरौमहापुण्यौजातौब्राह्मणदंपती ॥ ११ ॥ भारतोपितयोःशापःस समर्थोबभूवह ॥ शरीरमात्राक्रमणेनमनोनिग्रहेप्रभो ॥ १२ ॥

अर्थ—भानुजी बोले—अति प्रेमसे मिलेहुये मनवाले वे दोनों शापके कारण पृथिवीपर ऐसे गिरे जैसे वृक्षसे गिरे हुये पत्ते ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर वे दोनों दृढविषयके प्रेमसे बद्ध मृगकी योनि पाया, और इसके पश्चात् अति प्रेममें आसक्त पुनः पक्षिकी योनिमें उत्पन्न हुये ॥ १० ॥ इसके अनन्तर हे प्रभो ! इस हमलोगोंकी सृष्टिमें परस्पर बद्धभावनावाले दोनों तपमें तत्पर ब्राह्मणस्त्रीपुरुष उत्पन्न हुयेहैं ॥ ११ ॥ हे प्रभो ! देखो भरतमुनिका शापभी उन दोनोंके शरीरमात्र नष्ट करनेमें समर्थ हुआ, नाकि मनके निग्रह करनेमें ॥ १२ ॥

तावद्यापिहितेनैवमोहसंस्कारहेतुना ॥ यत्रयत्रप्रजायेतेभवतस्तत्रदंपती ॥ १३ ॥ अकृत्रिमप्रेमरसानुविद्धंस्नेहंतयोस्तंप्रतिवीक्ष्यकांतम् ॥ वृक्षाअपिप्रेमरसानुविद्धाःशृंगारचेष्टाकुलिताभवंति ॥ १४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे कृत्रिमेंद्राहल्यानुरागो नाम नवतितमःसर्गः ॥ ९० ॥

अर्थ—वे दोनों (इन्द्र ब्राह्मण और अहल्या रानी) मोहके संस्कारके कारणसे अब भी जहां २ उत्पन्न होते हैं वहां २ स्त्री पुरुष होते हैं ॥ १३ ॥ सहज प्रेमके रसमें और सुन्दर उन दोनोंके स्नेहको देखके वृक्ष भी प्रेमरसमें सने हुये शृंगारकी चेष्टासे व्याकुल होजाते हैं और दूसरोंकी भला क्या कथा है ॥ १४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे कृत्रिमेन्द्राहल्यानुरागो नाम नवतितमः सर्गः ॥ ९० ॥

एकनवतितमः सर्गः ॥ ९१ ॥

इस ९१ के सर्गमें सूर्यको मनु करके पुत्रोंकी सृष्टियोंके ब्रह्माजीका जो संसारकी सृष्टि है उसकी मनोमात्र विलासताका वर्णन किया गया है ॥

॥ भानुरुवाच ॥ तेनैतद्दच्मि भगवन्यथाकालंमनोमुने ॥ अनिग्राह्यमभेद्यंचशापैरपिदुरासदैः ॥ १ ॥ ऐंदवानामतःस्वप्रिक्रमाणाम्प्रविनाशनम् ॥ युज्यतेनचतद्ब्रह्मन्युक्तमेतन्महात्मनः ॥ २ ॥ किंतदस्तिजगत्यस्मिन्विविधेषुजगत्सुच ॥ तवापिनाथनाथस्ययद्दैन्यायमहात्मनः ॥ ३ ॥ मनोहिजगतांकर्तृमनोहि पुरुषःस्मृतः ॥ यन्मनोनिश्चयकृतंतद्द्रव्यौषधिदंडनैः ॥ ४ ॥

अर्थ—भानुजी बोले—हे भगवन् ! हे मुने ! भरतका शाप मनके निग्रह करनेमें समर्थ नहीं हुआ इस लिये कालके अनुसार कहता हूं दुःसाध्य शापोंसे भी मनका निग्रह करना तथा भेदन करना अशक्य है ॥ १ ॥ इस कारण हे ब्रह्मन् ! इन्दुके पुत्रोंके सृष्टिक्रमोंका नाश करना युक्त नहीं है और न यह करना आप महात्माके योग्य है ॥२॥ और इस जगतमें तथा नानाप्रकारके अन्य ब्रह्मांडोंमें स्वामियोंके भी स्वामी महात्मा आपके दीनताके लियेहो ॥ ३ ॥ मनही अनेक ब्रह्माण्डोंका भी कर्ताहै और मनही पुरुषहै जो कुछ मनने निश्चय कर लियाहै वह किसी द्रव्य औषध वा दण्डोंसे ॥४॥

हंतुंनशक्यतेजंतोःप्रतिबिंबमणेरिव ॥ तस्मादेतेत्रतिष्ठंतुभासुरैःसर्गसंभ्रमैः ॥ ५ ॥ त्वंसृष्ट्वेहप्रजास्तिष्ठबुद्ध्याकाशोह्यनंतकः ॥ चित्ताकाशश्चिदाकाशआकाशश्चतृतीयकः ॥ ६ ॥ अनंतात्रयएवैतेचिदाकाशप्रकाशिताः ॥ एकंद्वौत्रीन्बहून्वापिकुरुसर्गान्जगत्पते ॥ ७ ॥ स्वेच्छयात्मनितिष्ठत्वंकिंगृहीतंतवैंदवैः ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अथैवंदवजगज्जालेभानुनैवमुदाहृते ॥ ८ ॥

अर्थ—किसी प्राणीसे हनन करनेको ऐसे योग्य नहीं है जैसे माणिका प्रतिबिम्ब (छाया) इस लिये ये इन्दुके पुत्र प्रकाशमान अपनी सृष्टियोंके विभ्रम (विकल्प) सहित स्थित रहैं ॥ ५ ॥ और तुम अपने चित्ताकाशमें प्रजाओंकी सृष्टि करके स्थित रहो क्योंकि चित्ताकाश अनन्तहै और चित्ताकाश, चिदाकाश, तथा यह सामान्य आकाश तीसराहै ॥ ६ ॥ चिदाकाशसे प्रकाशित ये तीनों आकाश अनन्तहैं इस लिये हे जगत्पते ! तुम एक दो तथा

अनेक सृष्टियोंकी रचना करो ॥ ७ ॥ इन्दुके पुत्रोंने तुमारा क्या लिया है तुम अपनी इच्छासे अपने आत्मामें स्थित रहो, ब्रह्माजी बोले—जब सूर्यने इस प्रकार इन्दुके पुत्रोंका जगत्जाल वर्णन किया इसके पश्चात् ॥ ८ ॥

मयासंचिंत्यसुचिरमिदमुक्तंमहामुने ॥ युक्तमुक्तंत्वयाभानोविततांहिकिलांबरम् ॥ ९ ॥ मनश्चविततं वापिचिदाकाशश्वविस्तृतः ॥ तद्यथाभिमतंसर्गंनित्यकर्मकरोम्यहम् ॥ १० ॥ कल्पयामिबहून्याशु भूतजालानिभास्कर ॥ तत्त्वमेवाशुभगवन्प्रथमोमेमनुर्भव ॥ ११ ॥ कुरुसर्गंयथाकामंमयत्थमभिचो दितः ॥ अथैतत्समहातेजाममवाक्यंप्रभाकरः ॥ १२ ॥

अर्थ—हे महामुने वसिष्ठ ! तब मैंने दीर्घकालतक अच्छी तरहसे विचार करके यह कहा कि हे सूर्य्य ! तुमने उचित कहा पूर्वोक्त चारों आकाश निश्चय करके अनन्त हैं ॥ ९ ॥ मन अर्थात् चित्ताकाश और मन सहित चिदाकाश दोनों विस्तृत विशाल रूपहैं अर्थात् सृष्टिके आधार चित्ताकाश और चिदाकाशही मुख्य करके हैं क्यों कि भूताकाश सृष्टिकोटिमें है और ब्रह्माकाश असंग है इस लिये अपनी इच्छाके अनुसार अपना नित्यकर्म सृष्टि करूं ॥ १० ॥ हे भास्कर ! मैं शीघ्र अनेक प्राणियोंके समूहोंकी कल्पना करता हूं. इसलिये हे भगवन् ! तुम्ही मेरे प्रथम स्वायम्भुव मनुहो ॥ ११ ॥ मुझसे प्रेरणा किये हुये अपनी इच्छाके अनुसार तुम सृष्टि करो इसके अनन्तर महातेजस्वी सूर्य्य मेरे इस वाक्यको ॥ १२ ॥

अंगीकृत्यद्विधात्मानंचकारतपतांवर ॥ एकेनप्राक्तनेनास्मिन्वपुषासूर्यतांगतः ॥ १३ ॥ व्योमाध्वगत यासंगंततानदिवसावलिम् ॥ मन्यतुत्वंद्वितीयेनकृत्वास्ववपुषाक्षणात् ॥ १४ ॥ ससर्जसकलांसृष्टिंतां तामभिमतांमम॥१५॥एतत्तेकथितंसर्वंवसिष्ठमनसोमुने॥स्वरूपंसर्वकर्तृत्वंचशक्तत्वंचमहात्मनः॥१६॥

अर्थ—अंगीकार करके हे तपस्वियोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठजी ! अपने शरीरका दो भेद किया पूर्व शरीरसे इन्दुके पुत्रोंकी सृष्टिमें सूर्य्य पदको धारण किया ॥ १३ ॥ उस सृष्टिमें आकाशके मध्यमें प्राप्त होके दिवसोंकी पंक्तियोंकी रचना की और दूसरे शरीरसे मेरी दी हुई मनुपदवीको धारण किया॥१४॥और जो मुझे अभिमतथी उन २ सृष्टियोंकी रचनाकी ॥१५॥ हे वसिष्ठमुने ! यह सब कुछ तुमसे मैंने महात्मा मनकी सर्व कर्तृता और सर्व शक्तिता कहदी ॥ १६ ॥

प्रतिभासमुपायातियद्यदस्यहिचेतसः ॥ तत्तत्प्रकटतामेतिस्थैर्यंसफलतामपि ॥ १७ ॥ सामान्यब्राह्म णाभूत्वाप्रतिभासवशात्किल ॥ ऐंदवाब्रह्मतांयातामनसःपश्यशक्तताम् ॥ १८ ॥ यथाचैंदवजीवा स्तेचित्त्वाद्ब्रह्मतांगताः ॥ वयंतथैवचिद्भावाच्चित्तत्वाद्ब्रह्मतांगताः ॥ १९ ॥ चित्तंहिप्रतिभासात्मय त्तत्प्रतिभासनम् ॥ तदिदंभातिदेहादिस्वांतंनान्यास्तिदेहदृक् ॥ २० ॥

अर्थ—जो २ इस चित्तको प्रति भासताहै वही वह प्रकटता, स्थिरता और भोग व्यवहारकी सफलतामें भी आता है ॥ १७ ॥ देखो इस मनका सामर्थ्य ! इन्दुके पुत्र सामान्य ब्राह्मण होके भी मनकी भावनाके वशसे ब्रह्मा पदवीको प्राप्त हुये ॥ १८ ॥ जैसे इन्दुके पुत्रोंके जीव चेतन चित्त दशाको प्राप्त हुये और चित्त दशाकी भावनासे हिरण्यगर्भ पदवीको प्राप्त हुये ऐसे ही हम लोगभी चेतन दशासे चित्तताको प्राप्त हुये और उससे हिरण्यगर्भ पदको प्राप्त हुये ॥ १९ ॥ चित्त (मन) जो प्रतिभासरूप है और जो चित्तका भासन है वही मन यह देहादि रूपसे भान होता है और मनसे पृथक् देह आदिकी प्रतीति कुछ नहीं है ॥ २० ॥

चित्तमात्मचमत्कारंतच्चतत्कुरुतेस्वतः ॥ यथावत्संभवंस्वात्मन्येवांतर्मरिचादिवत् ॥ २१ ॥ तदेत च्चित्तवद्भातमातिवाहिकनामकम् ॥ तदेवोदाहरंत्येवंदेहनाम्नाघनभ्रमम् ॥ २२ ॥ कथ्यतेजीवनाम्नैतच्चि त्तंप्रततुवासनम् ॥ शांतदेहचमत्कारंजीवंविद्धिक्रमात्परम् ॥ २३ ॥ नाहंनचान्यदस्तीहचित्रंचित्तमिदं स्थितम् ॥ वसिष्ठैंदवसंविद्वदसत्सत्तामिवागतम् ॥ २४ ॥

अर्थ—चित्त जो है वह अपने अनेक चमत्कार अर्थात् विविध कल्पना सहित है, वह चित्त स्वयं काम कर्मवासनाके अनुसार जब जैसा जिसके लिये सम्भव होता है उसके लिये उस समय उतनाही इस प्रकार होजाता है जैसे मरिच कटुरूपसे निम्ब तिक्त रूपसे और द्राक्षा (छोहारा) मधुररूपसे अपनेहीमें निज संस्कारसे परिणत होता है ॥ २१ ॥ इसी कारणसे चित्तके सदृश सूक्ष्मदेहको स्थूल भ्रान्ति युक्त होनेसे मैं देव हूं मैं मनुष्य हूं इत्यादि देह नामसे प्राणी कहतेहैं ॥ २२ ॥ सूक्ष्म वासना सहित यही चित्त जीव कहाजाता है और स्थूलताके भ्रमसे इसीको देह नामसे कहतेहैं, और कारण, सूक्ष्म, तथा स्थूल तीनों शरीरकी कल्पना शून्य जीवको तुम साक्षात् ब्रह्मही जानो ॥२३॥ हे वसिष्ठजी ! जैसे सूत्रोंसे वस्त्र अलग नहीं है ऐसेही हम तुम तथा और कुछ आश्चर्य्य युक्त चित्तसे पृथक् नहीं है और यह चित्तही इन्दुके पुत्रोंकी सम्बिद्के समान असत्रूप होके भी सत्ताको प्राप्त हुआ है ॥ २४ ॥

यथैंदवमनोब्रह्मातथैवायमहंस्थितः॥ तत्कृतंचाहमेवेदं संकल्पात्मैवभासते॥ २५॥ कश्चिच्चित्तविलासोयंब्रह्माहमिहसंस्थितः॥ स्वभावएवदेहादिर्विद्धिशून्यतरात्मखात्॥ २६॥ शुद्धचित्परमार्थैकरूपिणीत्येवभावनात्॥ जीवोभूयोमनोभूत्वावेत्तीत्थंदेहतांमुधा॥ २७॥ सर्वमैंदवसंसारवदिदंभातिचिद्वपुः॥ संपन्नसंप्रबोधात्मास्वप्नोदीर्घःस्वशक्तिजः॥ २८॥

अर्थ—जिस प्रकार इन्दुके पुत्रोंका मन ब्रह्माहै ऐसेही हमभी मनकी कल्पनासे ब्रह्मा होके स्थितहैं और उसी मनसे रचेहुये हम और मेरे चित्तकी कल्पनासे रचाहुआ यह सब सर्ग (सृष्टि) और अन्यभी संकल्परूपही भासता है ॥२५॥हे वसिष्ठजी! कोई तो चित्तका बिलासमें ब्रह्माहूं इसरूपसे इस ब्रह्माण्डमें भासताहै और परमात्माही सम्पूर्ण प्रपंच शून्य चिदाकाशसे पृथक्‌के सदृश होके देह आदिरूपसे भासताहै॥२६॥ शुद्ध चित्त परमार्थ रूपीहै और वही भावनावश जीव तथा चित्त होके वृथा देहआदि रूपसे भासती है॥ २७॥ जैसे अपने अज्ञानशक्तिसे उत्पन्न स्वप्न चिरकाल तक स्थिर होके जाग्रत्‌रूप भासता है ऐसेही परमात्माही इन्दुके संसारके सदृश सर्वात्मक होके भासताहै॥ २८॥

द्विचंद्रविभ्रमाकारंतन्मात्राभासपूर्वकम्॥ ऐंदवांबरवद्दृढंचित्तादेवाखिलंभवेत्॥ २९॥ नसन्नासदहंरूपंसत्तासत्तेतदेवच॥ उपलंभेनसद्रूपमसत्यंतद्विरोधतः॥ ३०॥ जडाजडंमनोविद्धिसंकल्पात्मबृहद्वपुः॥ अजडंब्रह्मरूपत्वाज्जडंदृश्यात्मतावशात्॥ ३१॥ दृश्यानुभवसत्यात्मनसद्भावेविलासितत्॥ कटकत्वंयथाहेम्नितथाब्रह्मणिसंस्थितम्॥ ३२॥

अर्थ—क्योंकि सूक्ष्मतर वासनामय शब्दतन्मात्राके अध्यासपूर्वक दो चन्द्रमाके भ्रमके समान तथा इन्दुके पुत्रोंके चित्ताकाशके तुल्य दृढताको प्राप्त चित्तसेही यह सम्पूर्ण प्रपंच उत्पन्न हुआहै॥ २९॥जो "अहम्" रूपसे भान होताहै वह सत् नहीं है क्योंकि सर्वत्र चित्तके कार्य्योंमें उसकी उपलब्धि नहीं होती और असत्‌रूपभी नहीं क्योंकि असत्‌की उपलब्धि नहीं होती और सत्ता सत्‌रूप होनेसे सत्‌ही है असत्ताभी सत्‌रूप होनेसे असत्‌ही है और अहंरूप जो है वह एक स्वभाव न होनेसे अर्थात् सत् असत्‌से विलक्षण होनेसे मायिकहै॥ ३०॥ हे वसिष्ठजी! संकल्पात्मक महान् शरीरवाले मनको तुम जड अजडरूप जानो ब्रह्मरूप होनेसे तो यह अजड अर्थात् चेतनरूपहै और दृश्यरूप होनेसे जडरूपहै॥ ३१॥ वह मन दृश्यके अनुभव कालमें दृश्यके समान और ब्रह्मके अनुभव कालमें ब्रह्मसे पृथक् इसका विलास नहीं है जैसे कटक हस्तके आभूषण दृष्टिमें सुवर्णसे पृथक् भान होताहै और सुवर्णदृष्टिसे अपृथक्, ऐसेही यह मन ब्रह्ममें स्थितहै॥ ३२॥

सर्वत्वाद्ब्रह्मणःसर्वंजडंचिन्मयमेवच॥ अस्मदादिशिलांतात्मनजडंनचचेतनम्॥ ३३॥ दार्वादिनामचित्त्वेननापलंभस्यसंभवः॥ उपलंभोहिसदृशसंबंधादेवजायते॥ ३४॥ उपलब्धेऽजडंविद्धितेनेदंसर्वमेवहि॥ उपलंभोहिसदृशसंबंधात्स्यात्समात्मनोः॥ ३५॥ जडचेतनभावादिशब्दार्थश्रीर्नविद्यते॥ अनिर्देश्यपदेपत्रलतादीवमहामरौ॥ ३६॥

अर्थ—ब्रह्म सर्वरूप होनेसे जड चेतन सब ब्रह्महीहै और हम लोगोंसे लेके पाषाण पर्यंत अर्थात् ब्रह्मादि स्थावरांत युक्ति दृष्टिसे विरुद्ध स्वभाव होनेपर भी यथार्थमें न जड न चेतन किन्तु अनिर्वचनीय मायिकहै॥ ३३॥ यदि काष्ठ आदिको सर्वथा जड माना जाय तो इनकी उपलब्धि नहीं हो सकती क्योंकि उपलब्धि सदृश सम्बध अर्थात् प्रमाता चेतन और प्रमेय चेतनका वृत्तिद्वारा अभेद होनेसे प्रत्यक्ष होताहै इसी प्रकार प्रमाणांतर भी सदृश अर्थात् चेतनकी चेतनके सम्बधसेही होताहै॥ ३४॥ यदि उपलब्धि हो तो काष्ठ आदि चेतन हुये क्योंकि उपलब्धि सदृशसम्बन्धसे होतीहै॥ ३५॥ जैसे महामरुस्थलमें पत्र और लता आदि नहींहै इसी प्रकार बाणीसे अतीत ब्रह्म पदमें जड चेतन पदार्थके शब्द और अर्थकी शोभा नहीं है॥ ३६॥

चितोयच्चेत्यकलनंतन्मनस्त्वमुदाहृतम्॥ चिद्भागोत्राजडोभागोजाड्यमत्रहिचेत्यता॥ ३७॥ चिद्भागोत्रावबोधांशोजडंचेत्यंहिदृश्यते॥ इतिजीवोजगद्भ्रांतिंपश्यन्गच्छतिलोलताम्॥ ३८॥ चित्तस्थएवभावोसौशुद्धएवद्विधाकृतः॥ अतःसर्वंजगत्सैवहितलब्धंचसैवतत्॥ ३९॥ स्वमेवान्यतयादृष्ट्वाचितिर्दृश्यतयावपुः॥ निर्भागाप्येकभागाभंभ्रमतीवभ्रमातुरा॥ ४०॥

अर्थ—चित्‌का जो विषयकी ओर स्फुरणहै उसीको मन कहते हैं और इस मनमें जो चिद्‌भाग है वह अजड है और इसमें जो विषय अंशहै वही जडताहै॥३७॥ मनमें जो ज्ञानका अंशहै वह चिद्‌भागहै और विषयरूप जो अनुभव होताहै वह जडभाग है इसप्रकार यह जीव जगत्‌की भ्रान्तिका अनुभव करताहुआ चंचलताको प्राप्त होताहै॥ ३८॥ चित्तस्थ जो चित् स्वभावहै वही चित्त और जगत्‌रूपसे द्विधा भाग किया गयाहै इसलिये सम्पूर्ण जगत् चित्‌रूप

ही है और चित्के साथ. अभेद होनेसे जो जगत् का अनुभवहै वह भी चित्रूपही है ॥ ३९ ॥ यह चित् आपही भेददृष्टिसे अन्यरूप धारण करती है विभागरहित होनेपर भी स्वगत विभागके तुल्यहै और भ्रमरहित होनेपर भी भ्रमसे पूर्ण भ्रमतीसी है ॥ ४० ॥

नभ्रांतिरस्तिभ्रमभाङ्नर्नैवेतोहिनिश्चयः॥परिपूर्णार्णवप्रख्यावेतीत्थंसंस्थिताचितिः ॥४१॥ सर्वस्याज्जाड्यमप्यस्याश्चितिश्चित्त्वंचवेत्तितत्॥ चिद्भागोंशोवबोधस्यत्वहंताजडतोदयः॥४२॥ अहंतादिपरेतत्त्वेमनागपिनविद्यते॥ ऊर्म्यादीवपृथक्तोयेसंवित्सारंहितद्यतः ॥ ४३ ॥ अहंप्रत्ययसंदृश्यंचेत्यंविद्धिसमुत्थितम् ॥ मृगतृष्णांबिवांतस्थंनूनंविद्यतएवनो ॥ ४४ ॥

अर्थ—यह सिद्धान्तहै कि यथार्थमें न तो भ्रान्ति है और न चेतन पुरुष भ्रमका भागीहै, पूर्ण समुद्रके सदृश अपनेहीमें चेतन यह जगत् आदिका अनुभव करताहै ॥ ४१ ॥ इस चितिको सर्वरूप होनेसे जडता भी चित्होहै क्योंकि जडस्वरूप माननेसे उसका भानही नहीं होगा, और उस जाड्य अंशमें चित्का भी अनुभव तुम करते हो ज्ञानका चित् अंश है उसीमें अहंता और जडताका उदय होताहै ॥ ४२ ॥ जैसे जलसे अलग तरंग आदि कुछ नहीं है इसी प्रकार यथार्थमें परपद परमात्मामें अहंता आदि कुछ भी नहीं है क्योंकि दृश्यमें सार चित्ही है अर्थात् वह चित्के साथ एकरसहै ॥ ४३ ॥ अहं प्रत्ययसे अनुभव करने योग्य जो विषयहै उसको तुम मृगतृष्णाके जलके समान निकलाहुआ जानो यथार्थमें वह भीतर कुछ नहीं है ॥ ४४ ॥

अहंतापदमंतात्मपदंविद्धिनिरामयम्॥ विदंविदुरहंतादिशैत्यमेवयथाहिमम्॥४५॥चितैवचेत्यतेजाड्यंस्वप्नेस्वमरणोपमम्॥ सर्वात्मत्वात्सर्वशक्तेः कुर्वतोनैतिसाम्यताम्॥ ४६ ॥ मनःपदार्थादितयासर्वरूपंविजृंभते ॥ नानात्माचित्तदेहोयमाकाशविशदाकृतिः ॥ ४७ ॥ देहादिदेहप्रतिभारूपात्म्यंत्यजतासता॥ विचार्यप्रतिभासात्माचित्तंचित्तेनवैस्वयम्॥ ४८॥

अर्थ—सर्व द्वैतके बाधका अवधिभूत जो आत्मवस्तु है वह अहन्ताका आश्रय नहीं है, चित्स्वभावहीको घनीभूत शैत्यको हिमके सदृश प्राणी अहन्ता आदि कहते हैं॥ ४५ ॥ स्वप्नमें अपने मरणके समान चेतनही जडताका अनुभव करता है, और वह अपनी सम्पूर्ण शक्तियोंको प्रकट करता हुआ ज्ञानकी दृढता बिना समताको नहीं प्राप्त होता॥ ४६ ॥ मन जो है वह सब पदार्थोंका आदि होनेसे सब रूपसे प्रकटहै, आकाशके सदृश विशाल आकारवान् नानाप्रकारका रूप धारण करनेवाला यह सूक्ष्म शरीर है॥ ४७ ॥ वैराग्य आदि गुण सम्पन्न अधिकारीको स्थूल देह आदि और स्थूललिंग (सूक्ष्म) तथा कारण तीनों शरीरके प्रतिभा रूपको त्यागकरके चित्तसेही चित्तको स्वयं प्रातिभासिक रूप विचारना चाहिये ॥ ४८ ॥

चित्तताम्रेशोधितेहिपरमार्थसुवर्णताम्॥ गतेऽकृत्रिमआनंदःकिंदेहोपलखंडकैः॥ ४९॥ यद्दिद्यतेशोध्यतेतद्बोधःकेचखपादपाः॥ देहाद्यविद्यासत्याचेद्युक्तएतांप्रतिग्रहः॥ ५०॥ असत्यविनिविष्टानांदेहवाचितयात्विह ॥ येनामोपदिशंत्यज्ञाःकिंचित्तेपुरुषैडकाः ॥ ५१॥ यथैतद्भावयेत्स्वांतंतथैवभवतिक्षणात्॥ दृष्टांतोत्रैंदवाहल्याकृत्रिमेंद्रादिनिश्चयाः ॥ ५२ ॥

अर्थ—चित्तरूपी तामा शुद्ध होके परमार्थ रूपी सुवर्णताके प्राप्त होनेपर सहज नित्य निरतिशय आनन्दको प्राप्त होता है और देह आदि पाषाणोंके खण्डके शोधनसे क्या प्रयोजन है ॥ ४९ ॥ जो है उसीका शोधन किया जाता है और उसका ज्ञान सफल होता है और असत् कल्पित पदार्थका शोधन योग्य नहीं जैसे आकाशमें कल्पित वृक्षादि कौनसे शोधे जाते हैं? यदि देह आदि अविद्या सत्य होती तो इसके शोधनका आग्रह योग्य था॥ ५० ॥ असत्यमें निमग्न चार्वाक आदि जो देहकोही आत्मा कहते हैं वा मानते हैं उनमेंसे जो कोई प्रामाणिक वस्तुका उपदेश करते हैं वे पुरुष पशुही हैं ॥ ५१ ॥ जिसप्रकार यह अन्तःकरण भावना करता है वैसाही क्षणभरमें होजाता है इसमें अहल्या और कृत्रिमइंद्रका निश्चय दृष्टान्त है ॥ ५२ ॥

यद्यद्यथास्फुरतिसुप्रतिभात्मचित्तंतत्तत्तथाभवतिदेहतयोदितात्मा॥देहोयमस्तिननचाहमितिस्वरूपंविज्ञानमेकमवगम्यनिरिच्छमास्व ॥ ५३ ॥ देहोयमेषचकिलायमितिस्वभावाद्देहोयमेतदखिलंततएतिनाशम्॥ यक्षादिकल्पनवशाद्भयमेतिबालोनिर्यक्षदेहगतएवकयापियुक्त्या ॥ ५४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे जीवावतरणक्रमोपदेशो नामैकनवतितमः सर्गः ॥ ९१ ॥

अर्थ—यह चित्त जिस २ रूपसे स्फुरित होताहै देहादि रूपसे प्रकट होके वैसाही वैसा होजाता है यथार्थमें

यह देहभी नहीं है अहंरूपसे प्रसिद्ध अहंकार भी नहीं है इसलिये सदा एकरस विज्ञान स्वरूप आत्माको जानके इच्छारहित होके स्थित रहो ॥ ९३ ॥ यह मानुष्यादि देह और यह प्रत्यक्ष अनुभूत भोग्य प्रपञ्च यह सब कल्पना वशसे आत्माही होजाता है और भोग्य आदि देहके नाशसे नष्ट भी होजाते हैं जैसे बालक यक्षकी देहसे सम्बन्ध रहित भी परन्तु जब किसीप्रकार उसे सन्देह होजाता है तो यक्ष आदिकी कल्पनाके वशसे वह भय आदिको प्राप्त होता है और कल्पनाके नाशसे वह भयादिभी सब नष्ट होजाते हैं ॥ ९४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे जीवावतरणक्रमोपदेशो नामैकनवतितमः सर्गः ॥ ९१ ॥

द्विनवतितमः सर्गः ॥ ९२ ॥

इस ९२ के सर्गमें पुनः शंका करके मनकी शक्तिको अमोघ स्थापित करना, तथा पुरुषके यत्नकी दृढता होनेपर उस शक्तिका यथेष्ट कार्य्य करनेमें समर्थ होना वर्णन कियागया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इत्युक्तवान्स भगवान्मयाकमलसंभवः ॥ रघूद्वहपुनःपृष्टोवाक्यमाक्षिप्यभूतपः ॥ १ ॥ त्वयैवभगवन्प्रोक्ताःशापमंत्रादिशक्तयः ॥ अमोघाइतिताएवकथंमोघाःकृताःपुनः ॥ २ ॥ शापेनमंत्रवीर्येणमनोबुद्धींद्रियाण्यपि ॥ सर्वाण्येवविमूढानिदृष्टानिकिलजंतुषु ॥ ३ ॥ यथैतौपवनस्पंदौयथास्नेहतिलौयथा ॥ अभिन्नौतद्वदेवैतौमनोदेहौसएववतत् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रघुकुलदीपक रामजी! जब भगवान् ब्रह्माजीने ऐसा कहा तब पूर्वोक्त वाक्य युक्तियुक्त नहीं है ऐसी शङ्का करके पुनः मैंने पूंछा ॥ १ ॥ कि हे भगवन्! आपहीने शाप तथा मंत्र आदि शक्तियोंको अमोघ वर्णन कियाहै और अब उन्हीको व्यर्थ कैसे कहतेहो अर्थात् यह आपके कथनमें पूर्वापर विरोध हुआ ॥ २ ॥ शापसे तथा मंत्रके प्रताप मन तथा ज्ञानेन्द्रिय भी विमूढ होजातीहैं यह निश्चयरूपसे प्राणियोंमें देखागयाहै, जैसे शापसे अजगर दशामें प्राप्त नहुषके मनके मोहसे अपने वंशमें उत्पन्न भीमकोही काटने प्रवृत्ति, तथा शापसे राक्षस होनेपर धर्म्मात्मा सौदासकी भी ब्रह्मवधादिमें प्रवृत्ति, ऐसेही अन्य भी दृष्टान्तहैं ॥ ३ ॥ जैसे पवन और उसकी गति तथा स्नेह और तिल, इसीप्रकार अग्नि और उष्णता अभिन्नहैं ऐसेही मन और शरीरभी पृथक् नहीं है इस लिये शरीर मनही है, अर्थात् यदि वरशापादि मनपर अपना प्रभाव नहीं करसकते तो देहके ऊपर भी उनका प्रभाव नहीं होसकता ॥ ४ ॥

अथनास्तीहवादेहःकेवलंचेतसैवसः ॥ मुधानुभूयतेस्वप्नमृगतृष्णाद्विचंद्रवत् ॥ ५ ॥ एकनाशेद्वयोरेव नाशोत्राभ्युपपद्यते ॥ अवश्यंभवितुंमनोनाशेदेहपरिक्षयः ॥ ६ ॥ मनःशापादिभिर्दोषैःकथंनाक्रम्यतेप्रभो ॥ कथमाक्रम्यतेवापिब्रूहिमेपरमेश्वर ॥ ७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नतदस्तिजगत्कोशेशुभकर्मानुपातिना ॥ यत्पौरुषेणशुद्धेननसमासाद्यतेजनैः ॥ ८ ॥

अर्थ—यदि यह कहो कि देह कोई पदार्थ नहीं केवल चित्तकी भावनासे कहीं २ उसकी भावनासे मृगतृष्णाके जल और दो चन्द्रमाके सदृश वह व्यर्थ भ्रान्तिसे भान होताहै ॥ ५ ॥ तौभी एकका नाश होनेपर दोनोंका नाश अवश्य होना योग्य है जैसे मन नाश होनेपर शरीरका नाश देखागयाहै ऐसेही देहके नाशसे मनका भी नाश होना चाहिये, इसप्रकार मनसे देहकी सत्ता न्यून नहीं है किन्तु समान सत्ताहै इसके विपरीत चक्षुप् आदि इन्द्रियोंका विषय न होनेसे भी प्रत्यक्षका विषय होनेसे स्वप्नादिके तुल्य देहकी मनकीही सत्ता न्यूनहै इस प्रकार रज्जुके नाश होनेसे सर्पके नाशके तुल्य शरीर नाश होनेपर मनकी स्थिति नहीं हो सकती ॥ ६ ॥ हे प्रभो ! शापादि दोषोंसे मन क्यों नहीं निग्रहीत होता और शरीर कैसे निग्रहीत होता है इस विषयको हे परमेश्वर ! कहो ॥ ७ ॥ ब्रह्माजी बोले–हे वसिष्ठ ! इस ब्रह्माण्डके कोशमें ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है जो शुद्ध पुरुषार्थसे प्राणियोंको न प्राप्त हो, अर्थात् वरशापादिके प्रबल होनेपर अभिलषित पदार्थ सिद्ध हो सकता है ॥ ८ ॥

आब्रह्मस्थावरांतंचसर्वदासर्वजातयः ॥ सर्वएवजगत्यस्मिन्द्विशरीराःशरीरिणः ॥ ९ ॥ एकंमनःशरीरंतुक्षिप्रकारिसदाचलम् ॥ अकिंचित्करमन्यत्तुशरीरंमांसनिर्मितम् ॥ १० ॥ तत्रमांसमयःकायः सर्वस्यैवचसंगतः ॥ सर्वैराक्रम्यतेशापैस्तथाविद्यादिसंचयैः ॥ ११ ॥ मूकप्रायोह्यशक्तोसौदीनक्षणविनश्वरः ॥ पद्मपत्रांबुचपलोदैवादिविवशस्थितिः ॥ १२ ॥

अर्थ—ब्रह्मासे लेके स्थावरान्त सम्पूर्ण जितनी जाति हैं वे उनमें संपूर्ण शरीर धारियोंकी इस जगत्में दो २ शरीर होतेहैं ॥ ९ ॥ एक शरीर तो शीघ्र कार्य्य करनेवाला, और सदा अचल मन है और दूसरा अकिंचित्कर मां-

ससे बनाहुआ यह देह है ॥ १० ॥ उन दोनोंमेंसे मांसमय जो शरीर है वह सबको प्रत्यक्ष रूपसे प्राप्त है और वह सब प्रकारके शापोंसे तथा कृत्या अभिचार आदि विद्या तथा शस्त्र विषादिके समूहोंसे आक्रमण किया जाता है ॥ ११ ॥ और यह मांसमय शरीर प्रायः मूक, असमर्थ, दीन, क्षणविनाशी, कमलके पत्तेपर जलके समान चंचल, और दैव तथा राजा आदिके कारण विवश स्थितिवाला है ॥ १२ ॥

मनोनामद्वितीयोयंकायःकायवतामिह ॥ सआयत्तोपिनायत्तोभूतानांभुवनत्रये ॥ १३ ॥ पौरुषंस्वमवष्टभ्यधैर्यमालंब्यशाश्वतम् ॥ यदितिष्ठत्यगम्योसौदुःखानांतदनिंदितः ॥ १४ ॥ यथायथासौयततेमनोदेहोहिदेहिनाम् ॥ तथातथासौभवतिस्वनिश्चयफलैकभाक् ॥ १५ ॥ सफलोमांसदेहस्यनकश्चित्पौरुपक्रमः ॥ मनोदेहस्यसफलंसर्वमेवस्वचेष्टितम् ॥ १६ ॥

अर्थ—और दूसरा शरीर तीनों लोकमें सम्पूर्ण शरीर धारियोंको मन है वह स्वतंत्र भी और अस्वतन्त्र भी है ॥१३॥ यदि वह पुरुषार्थको ग्रहण करके और नित्य धैर्य्यका आलम्बन करके स्थित रहै तो दुःखके कारणोंसे अदूषित और दुःखोंसे अनाक्रमणीय वह मनरूप शरीर रहता है ॥ १४ ॥ प्राणियोंका मनरूपी यह शरीर जैसा २ प्रयत्न करता है वैसा २ अपने निश्चयके अनुसार फलका भागी होता है ॥ १५ ॥ मांसमय देहका कोई भी पुरुषार्थ सफल नहीं होता, और मनरूपी देहको चेष्टित सब कुछ सफल होता है ॥ १६ ॥

पवित्रमनुसंधानंचेतःस्मरतिसर्वदा ॥ निष्फलास्तत्रशापाद्याःशिलायामिवसायकाः ॥ १७ ॥ पतत्वंभसिवन्हौवाकर्दमेवाशरीरकम् ॥ मनोयदनुसंधत्तेतदेवाप्नोतितत्क्षणात् ॥ १८ ॥ पुरुषातिशयःसर्वःसर्वभावोपमर्दने ॥ ददात्यविघ्नेनफलंमनोहिमनसोमुने ॥ १९ ॥ पौरुषेणबलेनांतश्चित्तंकृत्वाप्रियामयम् ॥ कृत्रिमैंद्रेणदुःखार्तिर्नदृष्टासामनागपि ॥ २० ॥

अर्थ—यदि यह मनरूपी देह सदा पवित्रकाही ध्यान और स्मरण करता है तो इसमें शाप आदि ऐसे निष्फल हैं जैसे पाषाणकी शिलामें बाण ॥ १७ ॥ यह मांसमय देह जलमें अग्निमें अथवा कर्दम (कीचड) में गिरै परन्तु मनरूपी शरीर जो कुछ अनुसन्धान करता है वह क्षणभरमेंही प्राप्त करता है ॥ १८ ॥ हे मुने! शरीर आदि सब भाव उपमर्दित (कार्य्य करनेमें योग्यता रहित) होजानेपर भी पुरुषका अधिक प्रयत्न यदि सर्वथा सिद्ध होजाय तो विना विघ्न फल देता है और वह जो फल देता है वह मनही मनको फल देता है क्योंकि पौरुष भी मनरूपही है ॥१९॥ देखो पौरुष (मन) केवल अपने आत्मामें चित्तको प्रियामय करके कृत्रिम इन्द्रने वह दुःखकी पीडा किंचित् मात्र भी नहीं देखी ॥ २० ॥

पौरुषेणमनःकृत्वानीरागंविगतज्वरम् ॥ मांडव्येनजिताःक्लेशाःशूलप्रांतेपितिष्ठता ॥ २१ ॥ अंधकूपस्थितेनापिमानसैर्यज्ञसंचयैः ॥ ऋषिणादीर्घतपसासंप्राप्तंवैबुधंपदम् ॥ २२ ॥ इंदुपुत्रैर्नरैरेवपुरुषाध्यवसायतः ॥ ध्यानेनब्रह्मताप्राप्तासामयापिनखंड्यते ॥ २३ ॥ अन्येपिसावधानायधीराःसुरमहर्षयः ॥ चित्तात्स्वमनुसंधानंनत्यजंतिमनागपि ॥ २४ ॥

अर्थ—पौरुषसेही अपने मनको राग सन्ताप रहित करके माण्डव्य ऋषि शूलके अग्रभागमें स्थित रहते भी सम्पूर्ण क्लेशोंको जीत लिया ॥ २१ ॥ अन्धकूपमें स्थित भी दीर्घतपा[१] ऋषि मानस यज्ञसमूहोंके करनेसे इन्द्रपदवीको प्राप्त हुये ॥ २२ ॥ देखो इन्दु ब्राह्मणके पुत्र सामान्य मनुष्य होके भी पुरुषार्थसे मनके प्रतापसे ब्रह्माकी पदवीको प्राप्त किया उसका खण्डन मैं भी नहीं कर सकता ॥ २३ ॥ अन्य भी जो सावधान धीर पुरुष देवता अथवा महर्षि लोग हैं वे चित्तसे अपनी उपासना वा ज्ञानका त्याग नहीं करते ॥ २४ ॥

आधयोव्याधयश्चैवशापाःपापदृशस्तथा ॥ नखण्डयंतितच्चित्तंपद्मघाताःशिलामिव ॥ २५ ॥ येचापिखण्डिताःकेचिच्छापाद्यैराधिसायकैः ॥ स्वविवेकाक्षमंतेषांमनोमन्येपिपौरुषम् ॥ २६ ॥ नकदाचनसंसारेसावधानमनामनाक् ॥ स्वप्नेपिकश्चिद्दृश्येवादोषजालैःखिलीकृतः ॥ २७ ॥ मनसैवमनस्तस्मात्पौरुषेणपुमानिह ॥ स्वकमेवस्वकेनैवयोजयेत्पावनेपथि ॥ २८ ॥

अर्थ—ध्येय पदार्थमें एकाग्र चित्तको मानस वा शारीरिक रोग, शाप, और पापदृष्टि राक्षस आदि भी ऐसे नहीं खण्डन कर सकते जैसे कमलके प्रहार शिलाको ॥ २५ ॥ और जो नहुष सौदास आदिक शापआदि बाणोंसे खण्डित हुये उनके चित्तको पुरुषार्थमें अदृढ और उपासना वा ज्ञानमें असमर्थ मैं मानता हूं ॥२६॥ और इस संसारमें जो साव-

(१) दीर्घतपा ऋषि यज्ञ करनेकी इच्छासे यज्ञकी सामग्री लेनेको निकल तब अन्धकूपमें गिरगये वहांपर मानसयज्ञ किया उनसे इन्द्र प्रसन्न होके कूपसे निकालकर अपने परमपद प्राप्त किया ॥

धान चित्त है वह स्वप्न अथवा जाग्रतमें भी दोपके समूहोंसे भी खण्डित नहीं होता ॥ २७ ॥ इसलिये मनुष्योंको उचित है कि पुरुषार्थसे अपनेही मनसे अपने मनको पवित्र मार्गमें लगावे ॥ २८ ॥

प्रतिभातंयदेवास्ययथाभूतंभवत्यलम् ॥ क्षणादेवमनःपीनंवालवेतालवन्मुने ॥ २९ ॥ प्रतिभासस्यानुपदंप्राक्तनींस्थितिमुज्झति ॥ कुलालकर्मानुपदंघटोमृत्पिण्डतामिव ॥ ३० ॥ प्रतिभासार्थतामेतिक्षण देवमनोमुने ॥ स्पंदमात्रात्मकंवारियथातुंगतरंगताम् ॥ ३१ ॥ अनुसंधानमात्रेणसूर्यविंबेपियामिनीम् ॥ मनःपश्यत्यशुद्धाक्षश्चंद्रविंबेद्वितामिव ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे मुने ! किंचित् स्फुरित वस्तु यदि मनमें निरूढ होके स्थूलताको प्राप्त हुआ तो वह क्षणभरमेंही बालकके वेतालके सदृश सत्यके समान प्रत्यक्ष होजाता है ॥ २९ ॥ यदि यह कहो कि पूर्व मनुष्यादिकी भावनाकी दृढतासे इन्दुके पुत्रोंका मनुष्य रूपसे स्थित क्यों न हुई सो नहीं क्यों कि उत्तर कालमें दृढ वासनाकी प्रबलतासे प्रतिभास (दृढ भावना) के अनन्तर मन अपनी पूर्वस्थितिको ऐसे त्यागता है जैसे कुलालकी क्रियाके अनन्तर घट अपनी मृत्पिण्ड दशाको त्यागता है ॥ ३० ॥ कदाचित् कोई यह शङ्का करे कि पूर्व वासनाके नष्ट करनेमें उपासनादि क्षीण होगये तो अन्य कार्य्य करनेमें समर्थ कैसे होता है सो नहीं क्यों कि हे मुने ! जैसे गति शीतजल क्षणभरमें तरंग रूपताको प्राप्त होता है ऐसेही मन अपने अनुसन्धानके उत्तरही ध्येय पदार्थ रूप क्षणभरमें होजाता है ॥ ३१ ॥ तुमारे प्रलयकालमें इन्दवोंकी सृष्टि क्यों कर हुई यह शङ्का भी नहीं क्यों कि अनुसन्धान (दृढ भावना) मात्रसे यह मन सूर्यके बिंबमें रात्रिको ऐसे देखताहै जैसे अशुद्ध नेत्र (आंखके नीचमें अंगुली आदि लगाने) वाला दो चन्द्रमाको॥३२॥

यत्पश्यतितदेवाशुफलीभूतमिदंमनः ॥ सहहर्षविषादाभ्यांभुंक्तेतस्मात्तदेवतत् ॥ ३३ ॥ प्रतिभानुपदंचेतश्चंद्रेप्यग्निशिखाशतम् ॥ दृष्ट्वादाहमवाप्नोतिदग्धंचपरितप्यते ॥ ३४ ॥ प्रतिभानुपदंचेतःक्षरेपिदिग्रसायनम् ॥ दृष्ट्वापीत्वापगंतृप्तिंयातिवल्गतिनृत्यति ॥ ३५ ॥ प्रतिभानुपदंचेतोव्योमन्यपिमहावनम् ॥ दृष्ट्वालूनातिलात्वाचपुनरारोपयत्यलम् ॥ ३६ ॥ इत्थंयदेवपरिकल्पयतीन्द्रजालंक्षिप्रंतदेवपरिपश्यतितातचेतः ॥ नासज्जगन्नचसदित्यवगम्यनूनंलूनांदृशंविविधभेदवतींजहीहि ॥ ३७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे ऐंदवोपाख्याने मनोमाहात्म्यवर्णनं नाम द्विनवतितमः सर्गः ॥ ९२ ॥

अर्थ—यह मन जो कुछ भावनासे देखता है वैसाही शीघ्र फलीभूत होजाता है और उसीको हर्ष वा विषाद साथ भोगता है इस लिये जो मन करता है वही भोगताहै ॥ ३३ ॥ अनुसन्धानके अनुसार यह चित्त चन्द्रमामें सैकडों अग्निकी ज्वालाको देखता है देखके दाहको प्राप्त होता है और दग्ध होके सन्तप्त भी होताहै ॥ ३४ ॥ अपने अनुसन्धानके अनुसार यह चित्त ऊपर भूमिमें रसायन वा जल पाताहै और उसको देखके पीके अत्यन्त तृप्तिको प्राप्त होता है गर्जताहै और नाचताहै ॥ ३५ ॥ यह चित्त अपनी भावनाके अनुसार आकाशमें भी महावनको देखताहै और देखके फलपुष्पादिको तोडता वा वृक्षादि काटताहै और पुनः लगाताहै॥ ३६॥ हे प्रिय! इस प्रकार यह चित्त जो कुछ इन्द्रजाल कल्पित करता है वही शीघ्र देखता है, यह जगत् न सत्है न असत्है ऐसा निश्चय रूपसे जानके अनेक भेद सहित परिच्छिन्न दृष्टिको त्यागो ॥ ३७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे मनोमाहात्म्यवर्णनं नाम द्विनवतितमः सर्गः ॥ ९२ ॥

त्रिनवतितमः सर्गः ॥ ९३ ॥

ब्रह्मसे मन उत्पन्न हुआ और उस मनसे तैजस हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) उत्पन्न हुये, और उनसे मोहसे अहंकार और अहंकारसे सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न हुआ यह विषय इस ९३ के सर्गमें किया गया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इतिमेभगवतापूर्वमुक्तंदेतदद्यतुभ्यंकथितम् ॥ १ ॥ तस्मादनाख्यानाद्ब्रह्मणः सर्वतःसर्वमनाख्यानमुत्पद्यतेस्वयमेवतद्घनतांप्राप्यमनःसंपद्यते ॥ २ ॥ तन्मनस्तन्मात्रकल्पनपूर्वकंसन्निवेशंभवतिततस्तैजसःपुरुषःसंपद्यतेसोयंब्रह्मेत्यात्मनिनामकृतवान् ॥ ३ ॥ तेनरामयोयंपरमेष्ठीतन्मनस्तत्त्वंविद्धि ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! भगवान् ब्रह्माजीने यह मुझसे पूर्वकालमें कहाथा सो आज तुमसे मैंने कह दिया ॥ १ ॥ हे रामजी ! अव्याकृत नामरूप परमात्मासे चारों ओरसे सब कुछ नामरूप सम्बन्धके अयो-

ग्य सर्व वलनात्मक प्रपंच निर्विकल्प ज्ञानसे प्रकाशित उत्पन्न होता है वह स्वयं काल पाके संकल्प विकल्प रूप मनन शक्तिके उद्भवसे घनताको प्राप्त होके मन होजाता है ॥ २ ॥ वह मन सूक्ष्म भूतोंकी कल्पना पूर्वक स्वप्न शरीरके तुल्य वासनामय पुरुषाकार अवयव संस्थितिवाला होजाता है और उससे तेजःप्रधान समष्टिलिंग (सूक्ष्म) शरीरका उपहित पुरुष होजाता है सो यह पुरुष ब्रह्मा है इस प्रकार आत्मामें नाम किया ॥३॥ हे राम ! इस कारण यह जो परमेष्ठी ब्रह्मा है वह मनरूप होनेसे सब जगत्का कर्ता है ऐसा तुम जानो ॥ ४ ॥

समनस्तत्त्वाकारोभगवान्ब्रह्मासंकल्पमयत्वाद्यदेवसंकल्पयतितदेवपश्यति ॥ ५ ॥ ततस्तेनेयमविद्यापरिकल्पिताअनात्मन्यात्माभिमानमयीतितेनब्रह्मणागिरितृणजलधिमयमिदंक्रमेणजगत्परिकल्पितम् ॥ ६ ॥ इत्थंक्रमेणब्रह्मतत्त्वादियमागतासृष्टिरन्यतएवागतेयमितिलक्ष्यते ॥ ७ ॥ तस्मात्सर्वपदार्थानांत्रैलोक्योदरवर्तिनाम् ॥ उत्पत्तिर्ब्रह्मणोरामतरंगाणामिवार्णवात् ॥ ८ ॥

अर्थ—वह मनको तत्त्वके आकारवाले भगवान् ब्रह्मा संकल्परूप होनेसे जो कुछ संकल्प करता है वही देखता है ॥ ५ ॥ सिद्ध संकल्प होनेके कारण उसने यह अनात्मामें आत्माभिमान करानेवाली अविद्या कल्पित किया, इसी अविद्याकी कल्पनासे ब्रह्माजीने पर्वत, तृण, समुद्र आदिमय यह सम्पूर्ण जगत् कल्पित किया ॥ ६ ॥ इस प्रकार चित्तरूप ब्रह्मसे उत्पन्न भी यह सृष्टि नैय्यायिकादि यह समझते हैं कि अन्य जड प्रधान परमाणु आदिसे उत्पन्न हुई है ॥ ७॥ इनमें एकका अनेक कारण माननेसे परमाणु कारण वादयुक्त नहीं है कर्ताके विना जगत्की विचित्र रचना नहीं होसकती और असंग उदासीन पुरुष कर्ता नहीं बन सकता अतः प्रधान कारण वादयुक्त नहीं चेतन जडरूपसे परिणत नहीं होसकता इस लिये विज्ञान कारण वादयुक्त नहीं है और शून्यकी कारणता कहीं दृष्ट नहीं है अतएव शून्य कारण वादभी युक्तियुक्त नहीं है, सब पक्षोंमें दोष देखनेसे अन्यसे यह सृष्टि उत्पन्न नहीं है यह निश्चित होनेपर श्रुति प्रमाणसे तथा लाघवसे अनिर्वचनीय मायाशक्तिक ब्रह्मविवर्त वादही शेष रहा इस अभिप्रायसे उपसंहार करते हैं कि हे रामजी ! त्रैलोक्यके उदरमें जितने पदार्थ हैं उन सबकी उत्पत्ति उसी ब्रह्मसे ऐसे होती है जैसे समुद्रसे तरंगोंकी ॥ ८ ॥

यएवमनुत्पन्नेजगतियाब्रह्मणश्चिन्मनोरूपिणीसाहंकारेपरिकल्प्यब्रह्मब्रह्मतामेति ॥ ९ ॥ यास्त्वन्याश्चिच्छक्तयःसर्वशक्तेरभिन्नाएवकल्प्यंते ॥ १० ॥ जगतिस्फारतांनीतेपितामहरूपेणमनसासमुल्लसंति ॥ ११ ॥ एतेसहस्रशोपिपरिवर्त्तमानजीवाउच्यंते ॥ १२ ॥

अर्थ—जो उत्पत्तिका प्रकार ऐसाहै उसमें विवर्तवाद होनेके कारण अनुत्पन्न जगत्में जो ब्रह्मकी चित् मनोरूपिणी शक्ति है वह अहंकार समष्टि उपाधिमें ब्रह्म प्रविष्ट ऐसाहै ऐसी कल्पना करके हिरण्यगर्भ रूपको प्राप्त होताहै ॥ ९ ॥ और जो व्यष्टि अहंकार उपाधिकी उपहित चिदाभास शक्ति हैं वे सब सर्वशक्तिमान् ब्रह्मसे अभिन्नरूप हैं ॥ १० ॥ यह जगत् जब स्थूलताको प्राप्त होताहै तो वे चिदाभास शक्तियां पितामह (ब्रह्मा) रूप समष्टि मनोभावसे प्रथम शोभित होती हैं ॥ ११ ॥ और ये सहस्रशः (अनन्त) विवर्त भावको प्राप्त जीव कहलाते हैं ॥ १२ ॥

तेभ्युत्थिताएवचिन्नभसोनभसितन्मात्रैरावलितागगनपवनांतर्वर्त्तिनश्चतुर्दशविधायेभूतजातमध्यतयाभ्यासेतिष्ठंतितस्याएवप्राणशक्तिद्वारेणप्रविश्यशरीरंस्थावरंजंगमंवापिबीजतांगच्छंति॥१३॥तदनुयोनितोजगतिजायंतेतदनुकाकतालीययोगेनोत्पन्नवासनाप्रवाहानुरूपकर्मफलभागिनोभवंति॥१४॥ततःकर्मरज्जुभिर्वासनावलिताभिर्बद्धशरीराभ्रमंतःप्रोत्पतंतिनिपतंतिच ॥१५॥ इच्छैवैताभूतजातयः॥१६॥

अर्थ—और वे जीव चिदाकाशसे निकलकर मायाकाशमें प्रपञ्चभूत मात्र उपाधियोंसे मिलित होते हुये आकाशस्थ पवनके गमनागमन भेदसे भिन्न जो वातस्कन्धहै उसके मध्यवर्ती जो चतुर्दश लोकहैं उन लोकोंमें जिस जातिके प्राणियोंके समूहके मध्यवर्त्ती होके जैसी वासना और कर्मके अभ्यासमें जो जीव स्थित रहते हैं वे जीव उसी प्राणि जातिके समूहमें प्राणशक्ति द्वारा स्थावर वा जंगम शरीरमें प्रवेश करके वीर्य्य औ रक्त आदिरूप बीजताको प्राप्त होतेहैं ॥ १३ ॥ उसके पश्चात् योनिद्वारा इस जगत्में उत्पन्न होतेहैं, इसके पश्चात् काकतालीय न्यायके सम्बन्धसे उत्पन्न जो वासना प्रवाह उसके अनुसार अपने कर्मफलके भागी होते हैं ॥ १४ ॥ इसके पश्चात् शुभ वा अशुभ वासनासे संयुक्त पुण्य अथवा पाप कर्मरूपी रज्जु (रस्सी) से बद्ध लिंग (सूक्ष्म) शरीरको धारण किये हुये कभी उर्द्ध लोकमें जाते हैं कभी उनसे गिरते हैं और कभी नरकमें जाते हैं ॥ १५ ॥ कर्म तथा वासनाका बीज कामराग ही है और कामनामय सब जीव हैं इस लिये सम्पूर्ण प्राणियोंकी जाति इच्छारूपही है और श्रुति भी कहती है " काममय एवायं पुरुषः " (यह पुरुष कामनामय है) ॥ १६ ॥

काश्चिज्जन्मसहस्रांताःपतंतिवनपर्णवत् ॥ कर्मवात्यापरिभ्रांताल्लुठंतिगिरिकुक्षिषु ॥१७॥ अप्रमेयभवाः काश्चिच्चित्सत्ताज्ञानमोहिताः ॥ चिरजाताभवंतीहबहुकल्पशतान्यपि ॥ १८ ॥ काश्चित्कतिपयातीता मनोरमभवांतराः ॥ विहरंतिजगत्यस्मिन्शुभकर्मपरायणाः ॥ १९ ॥ काश्चिद्विज्ञातविज्ञानाःपरमेवप दंगताः ॥ वातोद्धूताःपयोमध्यंसामुद्राइवबिंदवः ॥ २० ॥

अर्थ—कोई प्राणियोंकी जाति अर्थात् उन जातियोंके जीव सहस्रों जन्मतक जब तत्वज्ञान न हो तबतक वनके पत्तेके समान संसारमें गिरतेहैं और वासनाके अनुसार कर्मरूपी महावायुसे परिभ्रान्त (घुमायेहुये) वन पर्वतके उदरमें लौटते हैं जब किसी जन्ममें आत्मज्ञानहुआ तो मुक्त होतेहैं ॥ १७ ॥ और कोई २ जाति (प्राणि जाति) चित्-सत्ताके अज्ञानसे मोहित अनन्त जन्मतक दीर्घ कालतक इस संसारमें सैकड़ों कल्पतक जन्ममरण धारण करके हुआ ही कर-तेहैं ॥ १८ ॥ और कोई २ प्राणिजाति कुछ अरमणीय (उष्ट्र) जन्मोंको विताकर वर्तमान जन्ममें शुभ कर्ममें परायण होके इस जगत्में विहार करते हैं वे थोडेही जन्मोंमें मोक्षपदवीको प्राप्त होंगे ॥ १९ ॥ और कोई तो तत्वज्ञानको प्राप्त होके परम पदमें ऐसे प्राप्त हुये जैसे वायुसे उछाले हुये समुद्रके जलबिन्दु जलके बीचमें ॥ २० ॥

उत्पत्तिःसर्वजीवानामितीहब्रह्मणःपदात् ॥ आविर्भावतिरोभावभंगुराभवभाविनी ॥ २१ ॥ वासना विषवैषम्यवैधुर्यज्वरधारिणी ॥ अनन्तसंकटानर्थकार्यसत्कारकारिणी ॥ २२ ॥ नानादिग्देशकालांतशै लकंदरचारिणी ॥ रचितोत्तमवैचित्र्यविहितासंभ्रमासती ॥ २३ ॥ एषाजगज्जांगलजीर्णवल्लीसम्यक्स मालोककुठारकृत्ता ॥ वल्लीवविक्षुब्धमनःशरीराभूयोनसंरोहतिरामभद्र ॥ २४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे उत्पत्तिदर्शनं नाम त्रिनवतितमः सर्गः ॥ ९३ ॥

अर्थ—हे रामजी ! इसप्रकार सब जीवोंकी उत्पत्ति ब्रह्मसेही होती है, और आविर्भाव तथा तिरोभावसे क्षणभंगुर अनेक प्रकारके जन्मोंसे शोभायमान ॥ २१ ॥ वासनारूपी विषकी विषमतासे व्याकुलता रूपी ज्वरको धारण करनेवाली अनन्त संकट और अनर्थके जो कार्य्य हैं उनके सत्कार करनेवाली ॥ २२ ॥ अनेक दिशा देश और कालमें तथा नानाप्रकारकी कन्दरा (गुफा) और पर्वतोंमें विचरनेवाली,और उत्तम रचनाकी विचित्रतासे विधान किया गयाहै सब ओरसे संभ्रम जिसका ऐसी ॥ २३ ॥ यह विक्षेपसे पूर्ण मनरूपी शरीरवाली संसाररूपी जंगलकी प्राचीन लता सम्यक् ज्ञानरूपी कुठारसे काटी हुई सामान्य लताके समान पुनः हे प्रियरामजी ! नहीं जामती ॥ २४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उत्पत्ति-प्रकरणे उत्पत्तिदर्शनं नाम त्रिनवतितमः सर्गः ॥ ९३ ॥

चतुर्नवतितमः सर्गः ॥ ९४ ॥

उपाधि तथा गुणकी विचित्रतासे कोई दीर्घ कालमें कोई अल्पकालमें मोक्ष जानेवाली १२ बारह प्रकारकी भिन्न २ जातियां इस ९४ के सर्गमें वर्णन कीगई हैं ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ उत्तमाधममध्यानांपदार्थानामितस्ततः ॥ उत्पत्तीनांविभागोयंशृणुवक्ष्यामि राघव ॥ १ ॥ इदंप्रथमतोत्पन्नोयोस्मिन्नेवहिजन्मनि ॥ इदंप्रथमतानाम्नीशुभाभ्याससमुद्भवा ॥ २ ॥ शुभलोकाश्रयासावशुभकार्यानुबंधिनी ॥ साचेद्विचित्रसंसारवासनाव्यवहारिणी ॥ ३ ॥ भवैःकति पयैर्मोक्षमित्युक्तागुणपीवरी ॥ तादृक्फलप्रदानेककार्याकार्यानुमानदा ॥ ४ ॥ तेनरामससत्त्वेतिप्रोच्य तेसाकृतात्मभिः ॥ अथचेच्चित्रसंसारवासनाव्यवहारिणी ॥ ५ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—सात्विक राजस और तामस भेदसे उत्तम मध्यम और अधम जो जीवोंकी उपाधि रूप पदार्थ हैं उनकी इधर उधर भुवनों जो उत्पत्ति पूर्व सर्गमें कहा है उनका यह विभागहै उसको मैं कहूंगा आप सुनिये ॥ १ ॥ इदंप्रथमता १ गुणपीवरी २ ससत्त्वा ३ अधमसत्वा ४ अत्यन्ततामसी ५ राजसी ६ राजससात्विकी ७ राजसराजसी ८ राजसतामसी ९ राजसात्यन्ततामसी १० तामसी ११ तामससत्वा १२ तमोराजसी १३ अत्यन्ततामसी-इन १४ भेदोंमें अन्त्य दो भेदोंका ५ तथा ९ में अन्तर्भाव है इसलिये १२ भेद शेष रहे उनमें प्रथम जीव-जातिका भेद दिखलाते हैं जो जीव पूर्वकल्पमें अन्तके जन्म शमदम आदि सर्वगुण साधन सम्पन्न होनेपर भी श्रवण आदिके अलाभसे वा बलवान् विघ्न ज्ञान न उत्पन्न हुआ और इस कल्पमें प्रथम ही जन्ममें शमदमादि सम्पत्ति सहित प्रथम जन्ममें ही ज्ञान योग्य होगया उसकी वह जाति पूर्व कल्पके शुभ अभ्याससे उत्पन्न "इदं प्रथमता" कहलाती है

अर्थात् इस जन्ममें वह मुक्तिका भागी है ॥ २ ॥ वह जीवजाति यदि पूर्वजन्मके वैराग्यादि की मन्दतासे शुभ लोककी इच्छासे उपासनादि करनेवाली, शुभ कर्मसे मिलित विचित्र संसारकी वासनासे भोग व्यवहार करनेवाली ॥ ३ ॥ कुछ १० या ९ जन्मोंसे मोक्ष पदको प्राप्त करनेवाली है इसलिये "गुणपीवरी" (उत्तम गुणोंसे स्थूल) कहीगई है, और हे रामजी ! उन २ प्रकारके जो सुख तथा दुःखोंसे पुण्य पापका अनुमान करानेवालीहै और १०० जन्मसे सत्वगुणकी वृद्धिसे भागी होगी इसलिये उसको "ससत्वा" बुद्धिमानोंने कहाहै और वही यदि विचित्र संसारकी वासनासे व्यवहार करनेवाली हो ॥ ४ ॥ ५ ॥

अत्यंतकलुषाजन्मसहस्रैर्ज्ञानभागिनी ॥ तादृक्फलप्रदानैकधर्माधर्मानुमानदा ॥ ६ ॥ असावधमसत्वेतितेनसाधुभिरुच्यते ॥ सैवसंख्यातिगानंतजन्मवृंदादनंतरम् ॥ ७ ॥ संदिग्धमोक्षायदितत्प्रोच्यतेत्यंततामसी ॥ अनद्यतनजन्मातुजातिस्तादृशकारिणी ॥ ८ ॥ योत्पत्तिर्मध्यमापुंसोरामद्वित्रिभवांतरा ॥ तादृक्कार्यातुसालोकेराजसीराजसत्तम ॥ ९ ॥

अर्थ—तथा अत्यन्त मलिन हो और सहस्रों जन्ममें ज्ञानकी भागिनी हो, और सुख दुःख रूप फलोंसे धर्म अधर्मका अनुमान कराने वाली हो ॥ ६ ॥ इस जातिको साधुलोग "अधमसत्वा" कहतेहैं और उसीप्रकार लक्षण सहित यदि अगणित अनन्त जन्मोंके समूहके पश्चात् भी अध्यात्मशास्त्रकी विमुखतासे ॥ ७ ॥ मोक्षपानेमें इस कल्पमें भी सन्देह हो तो यह "अत्यन्ततामसी" कही जाती है, और जो पूर्वकल्पकी वासनाके अनुसार वैसाही विचित्र कर्म करने वाली हो ॥ ८ ॥ और हे राजश्रेष्ठ प्रिय रामजी ! वह उत्पत्ति मध्यम हो तथा दो तीन जन्मोंमें मनुष्यादि रूप हो और वैसाही कार्य्योंसे स्वर्ग नरकादिकमें प्राप्त करने वाली हो तथा जिसके मोक्ष पानेमें सन्देह हो उसको लोकमें "राजसी" कहतेहैं ॥ ९ ॥

अविप्रकृष्टजन्मापिसोच्यतेकृतबुद्धिभिः ॥ साहितन्मृतिमात्रेणमोक्षयोग्यामुमुक्षुभिः ॥ १० ॥ तादृक्कार्यानुमानेनप्रोक्ताराजससात्विकी ॥ सैवचेदितरैरल्पैर्जन्मभिर्मोक्षभागिनी ॥ ११ ॥ तत्तादृशीहिसातज्ज्ञैःप्रोक्ताराजसराजसी ॥ सैवजन्मशतैर्मोक्षभागिनीचेच्चिरैषिणी ॥ १२ ॥ त्वदुक्तातादृगारंभासद्भीराजसतामसी ॥ सैवसंदिग्धमोक्षाचेत्सहस्रैरपिजन्मनाम् ॥ १३ ॥

अर्थ—और रजोगुणके दुःखोंसे वैराग्यादिकी संपत्तिसे जिसका ज्ञानप्राप्ति होने योग्य जन्म समीपहै, तथा उसी जन्ममें मरण मात्रसे जो मोक्षके योग्य होजाती है उसको निश्चितबुद्धि मुमुक्षुओंने ॥ १० ॥ मोक्ष योग्य कार्य्योंके अनुमानसे "राजससात्विकी" कहाहै और वही यदि मनुष्यके अतिरिक्त यक्षगन्धर्वादिके थोडेही जन्मोंमें मोक्ष भागिनी हो ॥ ११ ॥ इस प्रकारकी जातिको उसके ज्ञाताओंने "राजसराजसी" कहा है और वही यदि सैंकडों जन्मोंसे चिरकालकी अभिलाषावाली मोक्ष भागिनी हो ॥ १२ ॥ और वैसेही (दीर्घकालमें मोक्षके योग्य) कार्य्योंको आरम्भ करने वाली हो उसको महात्माओंने "राजसतामसी" कहा है, और उसी जातिको यदि सहस्रों जन्मोंमें भी मोक्षका सन्देह हो ॥ १३ ॥

तदुक्तातादृशारंभाराजसात्यंततामसी ॥ भुक्तजन्मसहस्रातुयोत्पत्तिर्ब्रह्मणोनृणाम् ॥ १४ ॥ चिरमोक्षाहिकथितातामसीसामहर्षिभिः ॥ तज्जन्मनैवमोक्षस्यभागिनीचेत्तदुच्यते ॥ १५ ॥ तज्ज्ञैस्तामससत्वेतितादृशारंभशालिनी ॥ भवैःकतिपयैर्मोक्षभागिनीचेत्तदुच्यते ॥ १६ ॥ तमोराजसरूपेतितादृशैर्गुणबृंहितैः ॥ पूर्वजन्मसहस्राढ्यापुरोजन्मशतैरपि ॥ १७ ॥

अर्थ—और वैसेही कार्य्योंका आरंभ करै उस जातिको "राजसात्यन्ततामसी" कहते हैं और जो उत्पत्ति कल्पके आदिमें हिरण्यगर्भके आविर्भावको सहस्रों वार भोग चुकी है ॥ १४ ॥ और चिरकाल अर्थात् दूसरे कल्पमें ...क्ष होगी उसको महर्षियोंने "तामसी" कहा है और उसी जन्ममें यदि मोक्षकी भागिनी हो ॥ १५ ॥ और उसी ...स प्रथम जन्ममें मोक्षकी भागिनी तथा मोक्षके योग्य कार्य्योंके आरंभसे शोभायमान हो उसे उसके ज्ञाताओंने ...ससत्वा" कहा है तामस जन्ममें प्रल्हाद कर्कटी आदिको ज्ञानकी सिद्धि दृष्ट है और कुछ जन्मोंके अनन्तर ...क्ष भागिनी हो ॥ १६ ॥ १७ ॥

...ोग्याततःप्रोक्तातज्ज्ञैस्तामसतामसी ॥ पूर्वंतुजन्मलक्षाढ्याजन्मलक्षैःपुरोपिचेत् ॥ १८ ॥ सं...भातदसौप्रोच्यतेत्यंततामसी ॥ सर्वाएताःसमायांतिब्रह्मणोभूतजातयः ॥ १९ ॥ किंचित्प्रच...त्पयोराशेरिवोर्मयः ॥ सर्वाएवविनिष्क्रांताब्रह्मणोजीवराशयः ॥ २० ॥ स्वतेजःस्पंदिता...वमरीचयः ॥ सर्वाएवसमुत्पन्नाब्रह्मणोभूतपंक्तयः ॥ २१ ॥

अर्थ—तथा तमोगुण और रजोगुणके प्रधान गुणोंसे वर्द्धित न हो उसको "तमोराजसी" कहते हैं और पूर्व सहस्रों जन्मोंसे पूर्ण तथा आगामी सैकडों जन्मोंमें भी मोक्षके अयोग्य हो इस कारणसे उसको "तामसतामसी" कहते हैं और पूर्व लाखों जन्मसे पूर्ण तथा आगामी भी लाखों जन्मोंमें भी ॥ १८ ॥ मोक्ष पानेमें सन्देह हो उसको "अत्यन्ततामसी" कहते हैं ये सब प्राणियोंकी जाति उपाधिद्वारा ब्रह्मसेही उत्पन्न हुई हैं ॥ १९ ॥ किंचित् चलायमान वेगवाले समुद्रसे जैसे तरंग उत्पन्न होते हैं ऐसेही ब्रह्मसे सम्पूर्ण जीवराशि उत्पन्न हुये हैं ॥ २० ॥ जैसे अपने तेजसे गतिशील शरीरवाले दीपसे किरण (प्रकाश) उत्पन्न होते हैं ऐसेही ब्रह्मसे सम्पूर्ण भूतपङ्क्तियां उत्पन्न हुई हैं ॥ २१ ॥

स्वमरीचिबलोद्भूताज्वलिताग्नेःकणाइव ॥ सर्वाएवोत्थितास्तस्माद्ब्रह्मणोजीवराशयः ॥ २२ ॥ मंदारमंजरीरूपाश्चंद्रबिंबादिवांशवः ॥ सर्वाएवसमुत्पन्नाब्रह्मणोदृश्यदृष्टयः ॥ २३ ॥ यथाविटपिनश्चित्रास्तद्रूपाविटपश्रियः॥सर्वाएवसमुत्पन्नाब्रह्मणोजीवपंक्तयः ॥२४॥ कटकांगदकेयूरयुक्तयःकनकादिव ॥ सर्वाएवोत्थितारामब्रह्मणोजीवराशयः ॥ २५ ॥

अर्थ—जैसे प्रज्वलित अग्निसे उसीकी किरणके बलसे उसके स्फुलिंग उत्पन्न होते हैं ऐसेही उस ब्रह्मसे जीवराशि आविर्भूत होती हैं ॥ २२ ॥ मन्दारकी लताके समान चन्द्रमाके बिम्बसे जैसे किरण उत्पन्न होती हैं ऐसेही सम्पूर्ण दृश्यकी पंक्ति ब्रह्मसे प्रकट हुई हैं ॥ २३ ॥ जैसे वृक्षसे चित्रविचित्र शाखाओंकी शोभा उत्पन्न होती है ऐसेही ब्रह्मसे सब जीवपंक्तियां उत्पन्न हुई हैं ॥ २४ ॥ जैसे सुवर्णसे कटक (कडा) केयूरादिके आकार उत्पन्न होते हैं ऐसेही हे रामजी ! ब्रह्मसे सम्पूर्ण जीवराशि उत्पन्न हुई हैं ॥ २५ ॥

निर्झरादमलोद्योतात्पयसामिवबिंदवः ॥ अजस्यैवाखिलारामभूतसंततिकल्पनाः ॥२६॥ आकाशस्यघटस्थालीरंध्राकाशादयोयथा ॥ सर्वाएवोत्थितालोककलनाब्रह्मणःपदात् ॥ २७ ॥ सीकरावर्त्तलहरीबिंदवःपयसोयथा ॥ सर्वाएवोत्थितारामब्रह्मणोदृश्यदृष्टयः ॥ २८ ॥ मृगतृष्णातरंगिण्योयथाभास्करतेजसः ॥ सर्वादृश्यदृशोद्रष्टुर्व्यतिरिक्तानरूपतः ॥ २९ ॥

अर्थ—निर्मल प्रकाशवाले झरनेसे जैसे जलके बिन्दु उत्पन्न होते हैं ऐसेही अजन्मा परमात्मासे सब प्राणियोंकी कल्पना हुई है ॥ २६ ॥ जैसे घट वा स्थाली (बटलोई) के छिद्रगत आकाश (घटाकाश वा स्थाली आकाशादि) सब महदाकाशसेही प्रकटहैं ऐसेही ब्रह्मसेही सब लोकोंकी कल्पना निकलीहै ॥ २७ ॥ हे रामजी ! जैसे जलकण भँवरे, तरंग और बिन्दु सब जलसेही उत्पन्न होतीहैं ऐसेही ब्रह्मसे सम्पूर्ण दृश्यकी प्रतीति हुई है ॥ २८ ॥ जैसे सूर्यके तेजसे मृगतृष्णाकी नदियां पृथक् नहीं हैं ऐसेही द्रष्टाके रूपसे दृश्यकी दृष्टि अलग नहीं है ॥ २९ ॥

शीतरश्मेरिवज्योत्स्नास्वालोकइवतेजसः ॥ एवमेताद्विभूतानांजातयोविविधाश्चयाः ॥ ३० ॥ यस्मादेवसमायांतितस्मिन्नेवविशंतिच ॥ काश्चिज्जन्मसहस्रांतेजातयश्चिरकालिकाः ॥ काश्चित्कतिपयातीतजन्मरूपाव्यवस्थिताः ॥ ३१ ॥ इत्थंजगत्सुविविधेषुविचित्ररूपास्तस्येच्छयाभगवतोव्यवहारवत्यः ॥ आयांतियांतिनिपतंतितथोत्पतंतिरूपश्रियःकणघटाइवपावकोत्थाः ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे ब्रह्मणःसर्वमुत्पद्यत इति कथनं नाम चतुर्नवतितमः सर्गः ॥ ९४ ॥

अर्थ—जैसे चन्द्रमासे चन्द्रिका (चांदनी) तेजसे प्रकाश उत्पन्न होते हैं ऐसेही अनेक प्रकारकी प्राणियोंकी जाति ॥ ३० ॥ जिस परमात्मासे प्रकट होती हैं और उसीमें उपाधिके नाशद्वारा लीन होती हैं कोई जाति चिरकालमें सहस्रों जन्ममें लीन होती हैं और कोई कुछ बीतेहुये जन्मसे व्यवस्थित है इन पूर्वोक्त दृष्टान्तोंसे तथा इस उपसंहारसे यह तात्पर्य्य है कि जगत् तथा ब्रह्मसे अभेद है और उपाधिसे भेदप्रतीति मायासे है ॥ ३१ ॥ इस प्रकार नाना प्रकारके ब्रह्माण्डोंमें चित्रविचित्र रूप व्यवहार करनेवाली तथा उपाधिरूपही शोभा है जिनकी ऐसी अनेक जीवजातियां उसी परमात्माकी इच्छासे आती हैं जाती हैं, तथा नीचलोकोंमें स्वर्गादिसे गिरती है और नरकादिमें भी गिरती है ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे ब्रह्मणःसर्वमुत्पद्यत इति कथनं नाम चतुर्नवतितमः सर्गः ॥ ९४ ॥

पंचनवतितमः सर्गः ॥ ९५ ॥

अज्ञानी जनोंके बोधके लिये न कि यथार्थमें क्रिया तथा कर्ताकी साथ उत्पत्ति होती है इसका समर्थन इस ९५ के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अभिन्नौकर्मकर्तारौसममेवपरात्पदात् ॥ स्वयंप्रकटतांयातौपुष्पामोदौतरोरिव ॥ १ ॥ सर्वसंकल्पनामुक्तेजीवाब्रह्मणिनिर्मले ॥ स्फुरंतिविततेव्योम्निनीलिमेवाज्ञचक्षुषः ॥ २ ॥ अप्रबुद्धजनाचारोयत्रराघवदृश्यते ॥ तत्रब्रह्मणउत्पन्नाजीवाइत्युक्तयःस्थिताः ॥ ३ ॥ संप्रबुद्धजनाचारेक्रमेतन्नशोभनम् ॥ यद्ब्रह्मणइदंजातंनजातंचेतिराघव ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! क्रिया और कर्ता दोनों एकरूपहैं और ये दोनों पर पदसे ऐसे प्रकट हुये जैसे वृक्षसे पुष्प और सुगन्ध साथ उत्पन्न हों ॥ १ ॥ सब कल्पनासे रहित निर्मल ब्रह्ममें जीव अज्ञ दृष्टिको ऐसे स्फुरित होते हैं जैसे आकाशमें नीलता ॥ २ ॥ हे राघव ! जहांपर अज्ञानी जीवोंका संचारहै वहांही ब्रह्मसे जीव उत्पन्न हुये यह कथन स्थित है ॥३॥ और जहां ज्ञानी जीव हैं वहां यह कथन नहीं हो सकता, क्योंकि ब्रह्मसे यह जगत् उत्पन्न हुआ यह कथन नहींउत्पन्न इसके तुल्य है ॥ ४ ॥

काचिद्वाकलनायावन्नीताराघवप्रथाम् ॥ उपदेश्योपदेशश्रीस्तावल्लोकेनशोभते ॥ ५ ॥ अतोभेददृशादीनामंगीकृत्योपदिश्यते ॥ ब्रह्मेदमेतेजीवावैवेतिवाचामयंक्रमः ॥ ६ ॥ इतिदृष्टोनिरासंगाद्ब्रह्मणोजायतेजगत् ॥ तज्जंतदेवतद्धेतुगतंद्वैतवबोधतः ॥ ७ ॥ मेरुमंदरसंकाशाबहवोजीवराशयः ॥ उत्पत्योत्पत्त्यसंलीनास्तस्मिन्नेवपरेपदे ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जबतक कोई द्वैतकी कल्पना प्रथा (रीति) को न मानलीजाय तबतक उपदेश्य (उपदेश देने योग्य) और उपदेशकी श्री शोभित नहीं होती ॥ ५ ॥ इसकारण भेददृष्टिसे दीन (शोचनीय) द्वैतकी कल्पनाको अंगीकार करके यह ब्रह्म है ये इससे उत्पन्न जीव हैं यह वाणीका क्रम उपदेश किया जाता है ॥ ६ ॥ यह कल्पनाका क्रम लोकमें देखागयाहै और असंग अद्वितीय ब्रह्मसे जगत् उत्पन्न होताहै यह माननेपर जो उससे उत्पन्नहै उसका उपादान कारण वही है तथा वह (जगत्) ब्रह्मरूपही है क्योंकि उत्पत्तिके पूर्व उपादानमें स्थित तद्रूपही है और आविर्भावदशामें भी भ्रान्तिसे पृथक् भासता है ॥ ७ ॥ मेरु तथा मन्दराचल पर्वतके समान अनन्त जीवोंकी उपाधियां उत्पन्न हो २ कर उसी परपद (ब्रह्म) में लीन होजाती हैं ॥ ८ ॥

अथानंताःस्फुरंत्येतेजायमानाःसहस्रशः ॥ नानाःककुन्निकुंजेषुपादपेष्विवपल्लवाः ॥ ९ ॥ जीवौघाश्चोद्भविष्यंतिमधाविवनवांकुराः ॥ तत्रैवलयमेष्यंतिग्रीष्मेमधुरसाइव ॥ १० ॥ तिष्ठंत्यजस्रंकालेषुतएवान्येचभूरिशः ॥ जायंतेचप्रलीयंतेपरस्मिन्जीवराशयः ॥ ११ ॥ पुष्पामोदाविवाभिन्नौपुमान्कर्मचराघव ॥ परमेशात्समायातेतत्रैवविशतःशनैः ॥ १२ ॥

अर्थ—और अनन्त सहस्र इस समय उत्पन्न होते हुये ऐसे भासमान हैं जैसे नाना दिशाओंके कुंजोंके वृक्षोंके पत्ते ॥ ९ ॥ और अनेक जीवोंकी उपाधियां भविष्यत्में ऐसे उत्पन्न होंगी जैसे वसन्तऋतुमें नूतन अंकुर और उसीमें लीन भी इस प्रकार होंगी जैसे ग्रीष्म ऋतुमें मधुके रस ॥ १० ॥ इसी परब्रह्ममें अनेक जीवराशि तीनोंकालमें नित्य स्थित रहती हैं उत्पन्न होती हैं और लीन भी होती हैं ॥ ११ ॥ हे रामजी ! पुरुष तथा उसका कर्म (क्रिया) ऐसे अभिन्न (एकरूप) हैं जैसे पुष्प और सुगन्ध और परमात्माहीसे उत्पन्न हुये और क्रमसे उसीमें प्रवेश भी करते हैं॥१२॥

दृष्टमेतेजगत्यस्मिन्दैत्योरगनरामराः ॥ उद्भवंत्यभवाभावैःप्रस्फुरंतिपुनःपुनः ॥ १३ ॥ हेतुर्विहरणेतेषामात्मविस्मरणादृते ॥ नकश्चिल्लक्ष्यतेसाधोजन्मांतरफलप्रदः ॥ १४ ॥ श्रीरामउवाच ॥ अविसंवादिनार्थेयद्यत्प्रामाणिकदृष्टिभिः ॥ वीतरागैर्विनिर्णीतंतच्छास्त्रमितिकथ्यते ॥ १५ ॥ महासत्त्वगुणोपेतायेधीराःसमदृष्टयः ॥ अनिर्देश्यकलोपेताःसाधवस्तउदाहृताः ॥ १६ ॥

अर्थ—और इस जगत्में यह देखागया है कि अनुत्पन्न भी दैत्य उरग मनुष्य तथा देवता साथही वासनाजनित भूतमात्र उपाधियोंसे उत्पन्न होते हैं तथा पुनः पुनः प्रतिभासमान भी होते हैं ॥ १३ ॥ हे साधो रामजी ! इनके विहारमें आत्मस्वरूपके विस्मरणताको छोडके और कुछभी कारण नहीं है और न इसके सिवाय कोई जन्मान्तरमें फलदाता है ॥ १४ ॥ श्रीरामजी बोले—हे भगवन् ! अलौकिक धर्ममें तथा व्रतमें प्रमाण वेद हैं और वेदोंसे उत्पन्न ज्ञानवाले महात्माओंने तथा वीतराग मनु आदिने धर्माधर्म रूप पदार्थके विषय विवाद रहित वेदशास्त्रसे सिद्ध न्यायसमूहसे जो २ निर्णय करके स्मृति,पुराण, कल्प, सूत्र, तथा इतिहासादि लिखाहै उसको शास्त्र कहते हैं अर्थात् अलौकिक

अर्थमें श्रुतिस्मृत्यादि प्रमाण हैं ॥ १५ ॥ अति विशुद्ध सत्त्वगुणसे युक्त, धीर अर्थात् विषय तथा दुःखोंसे अकम्पनीय समदृष्टि, तथा अवर्णनीय आनन्द सहित ब्रह्माके साक्षात्कारकी कलासे जो संयुक्त हैं उनको साधु कहते हैं ॥ १६ ॥

द्वयंहिदृष्टिर्बालानांसिद्धयेसर्वकर्मणाम् ॥ साधुवृत्तंतथाशास्त्रंसर्वदैवानुवर्त्तते ॥ १७ ॥ साधुसंव्यवहारार्थंशास्त्रंयोनानुवर्त्तते ॥ बहिःकुर्वंतितंसर्वेसचदुःखेनिमज्जति ॥ १८ ॥ इहलोकेचवेदेचश्रुतिरित्थंसदाप्रभो ॥ यथाकर्मचकर्ताचपर्यायेणेहसंगतौ ॥ १९ ॥ कर्मणाक्रियतेकर्ताकर्त्राकर्मप्रणीयते ॥ बीजांकुरादिवन्न्यायोलोकवेदोक्तएवसः ॥ २० ॥

अर्थ–साधु (पूर्वोक्तलक्षण सहित सज्जन) महात्माओंका आचार तथा श्रुतिस्मृति रूप शास्त्र, यही दोनों अज्ञाततत्त्व जो प्राणीहैं उनके नेत्रहैं अर्थात् इन्हीके द्वारा धर्म तथा ब्रह्मतत्वको देखते हैं और इन्हीके अनुसार सब कार्य्य कियाजाताहै ॥ १७ ॥ स्वर्ग तथा मोक्षके उपयोगी जो साधुओंके व्यवहार हैं उनके लिये जो शास्त्रहैं उसके अनुकूल जो नहीं चलता उसको सब शिष्टलोग बहिष्कृत कर देतेहैं और वह प्राणी दुःखमें डूबताहै ॥ १८॥ हे प्रभो ! इस लोकमें तथा वेदमें यह निरूढ प्रवादहै अर्थात् इसको सुनते चलेआतेहैं कि कर्म और कर्ता पर्य्याय (कर्म) से होते हैं ॥ १९ ॥ कर्म (क्रिया) से कर्ता होताहै और कर्ता क्रियाको सिद्ध करताहै कर्म तथा उसका कर्ता इन दोनोंके लिये लोक तथा वेदोक्त वही प्रसिद्ध बीजांकुरके तुल्य प्रसिद्ध न्यायहै ॥ २० ॥

कर्मणोजायतेजंतुर्बीजादिवनवांकुरः ॥ जंतोःप्रजायतेकर्मपुनर्बीजमिवांकुरात् ॥ २१ ॥ ययावासनयाजंतुर्नीयतेभवपंजरे ॥ तद्वासनानुरूपेणफलंसमनुभूयते ॥ २२ ॥ एवंस्थितेकथंनामजन्मबीजेनकर्मणा ॥ विनोत्पत्तिस्त्वयाप्रोक्ताभूतानांब्रह्मणःपदात् ॥ २३ ॥ पक्षेणानेनभगवन्भवताजन्मकर्मणोः ॥ तिरस्कृताजगज्जातासाविनाभावितैतयोः ॥ २४ ॥

अर्थ—कर्मसे प्राणी ऐसे उत्पन्न होताहै जैसे बीजसे नूतन अंकुर और प्राणीसे कर्म ऐसे होता है जैसे पुनः अंकुरसे बीज ॥ २१ ॥ जिस वासनासे संसाररूपी पंजर (पींजरे) में प्राणी डाला जाताहै उसी वासनाके अनुसार फल भी अनुभव करताहै ॥ २२ ॥ इस प्रकार भूमिका रचके कर्ताकर्मकी साथ उत्पत्ति होती है इस पक्षमें रामचन्द्रजी दोष दिखलातेहैं कि ऐसा जबहै तो जन्मके बीजरूप कर्मके विनाही आपने जीवोंकी उत्पत्ति है यह कैसे कहा? क्यों कि "साधुकारी साधु भवति पापकारी पापो भवति, पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन कर्मणा जायते" इत्यादि श्रुतिविरुद्धहै ॥ २३ ॥ कर्ता कर्म साथ उत्पन्न होतेहैं इस पक्षसे जन्म तथा कर्मकी परस्पर हेतु और फलरूपता जगत् अन्वयव्यतिरेकसे प्रसिद्धहै उसका आपने तिरस्कार किया ॥ २४ ॥

ब्रह्मण्यकारणेब्रह्मन्ब्रह्मादिषुफलेषुच ॥ कर्मणांफलमस्तीतिद्वयंलोकेप्रमार्जितम् ॥ २५ ॥ संजातेसंकरेलोकेकर्मस्वफलदायिषु ॥ मात्स्यन्यायेविलसतिनाशएवावशिष्यते ॥ २६ ॥ किंतत्कृतंभवत्येवभगवन्ब्रूहितत्त्वतः ॥ एवंमेसंशयंस्फारंछिधिवेद्यविदांवर ॥ २७ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ साधुराघवपृष्टोस्मित्वयाप्रश्नमिमंशुभम् ॥ शृणुवक्ष्यामितेयेनभृशंज्ञानोदयोभवेत् ॥ २८ ॥

अर्थ—हे ब्रह्मन् ! अपनेसे अतिरिक्त कारण शून्य मायाशबलित ब्रह्ममें आकाशसे लेके स्थूल देह पर्य्यन्त भोग का स्थान सृष्टिरूप फल है और ब्रह्मासे आदि लेके स्थूल सूक्ष्म उपाधिरूप उन फलोंमें भोग तथा भोगकी सामग्रीकी सृष्टिरूप फल है यह लोकमें प्रसिद्ध दोनों बात अपने धो दिया अर्थात् नष्ट किया ॥ २५ ॥ जब कर्म निष्फल हैं यह बात सिद्ध हुई इसीसे नरकादि का भय न रहनेसे लोकसंकर होनेपर और "मत्स्यन्याय" के विलास होनेपर अर्थात् बलवान् मत्स्य (मछलियां) छोटे निर्बल मत्स्योंके सदृश प्राणी एक दूसरेको खानेलगे तो सबका नाशही शेष रहा ॥ २६ ॥ हे भगवन् ! हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ! वह किया हुआ कर्म फलदायक होताहै किम्वा नहीं होता इसको यथार्थ रूपसे कहिये और इस मेरे महान् संशयको छेदन कीजिये ॥ २७ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! आपने मुझसे बहुत अच्छा प्रश्न किया इसको तुम सुनो मैं कहूंगा जिससे बहुत ज्ञानका उदय होगा ॥ २८ ॥

मानसोयंसमुन्मेषःकलाकलनरूपतः ॥ एतत्तत्कर्मणांबीजंफलमस्यैवविद्यते ॥ २९ ॥ यदैवहिमनस्तत्त्वमुत्थितंब्रह्मणःपदात् ॥ तदैवकर्मजंतूनांजीवोदेहतयास्थितः ॥ ३० ॥ कुसुमाशययोर्भेदोनयथाभिन्नयोरिह ॥ तथैवकर्ममनसोर्भेदोनास्त्यविभिन्नयोः ॥ ३१ ॥ क्रियास्पंदोजगत्यस्मिन्कर्मेतिकथितोबुधैः ॥ पूर्वंतस्यमनोदेहंकर्मातश्चित्तमेवहि ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! मनसम्बन्धी जो क्रिया कुशलताके प्रति संधानरूपसे विकासहै अर्थात् जो क्रिया मनसे होतीहै वही प्रसिद्ध कर्मोंका बीज है और इसीका फल भी होताहै ॥ २९ ॥ हे रामजी ! जिस समय प्रथम सृष्टिमें

परब्रह्मसे मनरूप तत्त्व आविर्भूत हुआ उसीसमय उसरूप उपाधिसे आविर्भूत समष्टिव्यष्टि जीवोंके कर्म भी प्रकट हुये, और जीव पूर्वकल्पकी वासनाके अनुसार देहके अहंभावसे स्थित हैं ॥ ३० ॥ हे रामजी ! जैसे एकरूप, पुष्प और उसके सुगन्धका भेद नहीं है ऐसेही अभिन्नरूप कर्म और मनका भी भेद नहीं है ॥ ३१ ॥ क्रियाकी स्फुरण है उसीको पण्डित लोग कर्म कहते हैं और उस कर्मका आश्रय संस्काररूपसे मनहै इसलिये कर्म जो है वह मनहीहै ॥ ३२ ॥

नसशैलोनतद्व्योमनसोब्धिश्र्वनविष्टपम् ॥ अस्तियत्रफलंनास्तिकृतानामात्मकर्मणाम् ॥ ३३ ॥ ऐहिकंप्राक्तनंवापिकर्मयद्रचितंस्फुरत् ॥ पौरुषोसौपरोयत्नोनकदाचननिष्फलः ॥ ३४ ॥ कृष्णतासंक्षयेयद्वत्क्षीयतेकज्जलंस्वयम् ॥ स्पंदात्मकर्मविगमेतद्वत्प्रक्षयितेमनः ॥ ३५ ॥ कर्मनाशेमनोनाशोमनोनाशो ह्यकर्मता ॥ मुक्तस्यैषभवत्येवनामुक्तस्यकदाचन ॥ ३६ ॥

अर्थ--हे रामजी ! न वह पर्वत है न वह आकाशहै न वह समुद्रहै और न वह स्वर्ग है जहांपर अपने किये हुये कर्मोंका फल न मिले ॥ ३३ ॥ हे रामजी ! इस जन्ममें वा पूर्वजन्ममें सांगोपांग सावधानीसे कियाहुआ जो विराजमान् कर्म है वही पौरुष और सबसे उत्तम यत्नहै यह कदाचित् भी निष्फल नहीं होता तात्पर्य्य यह कि अविद्यासे उत्पन्न मनही क्रिया शक्तिमान् तथा चिदात्माकी उपाधि होनेसे कर्ता और भोक्ताभी है इससे कर्ता कर्म और आकाशादि प्रपंचकी साथ उत्पत्ति माननेसे भी कृतहान (कियेहुये कर्मका नाश) और अकृताभ्यागम (न किये हुयेका फल देना) शास्त्र प्रमाणताका बाध और मात्स्यन्यायादिकी प्रसक्ति आदि तुमारे कहे कोई भी दोष नहीं है ॥ ३४ ॥ जैसे कृष्णताका संक्षय होनेपर कज्जलका नाश स्वयं होजाताहै इसीप्रकार गतिशील कर्म नाश होनेपर तादृश मन आपही क्षीण होजाताहै ॥ ३५ ॥ कर्मका नाश होनाही मनका नाशहै और मनका नाश होनाही कर्मका अभावहै, और यह बात मुक्तज्ञानी पुरुषको होती है न कि अज्ञानी बद्धको ॥ ३६ ॥

वह्न्यौष्ण्ययोरिवसदाश्लिष्टयोश्चित्तकर्मणोः ॥ द्वयोरेकतराभावेद्वयमेवविलीयते ॥ ३७ ॥ चित्तंसदा स्पंदविलासमेत्यस्पंदैकरूपंननुकर्मविद्धि ॥ कर्माथचित्तंकिलधर्मकर्मपदंगतेरामपरस्परेण ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे कर्मपुरुषयोरैक्यप्रतिपादनं नाम पंचनवतितमः सर्गः ॥ ९५ ॥

अर्थ—अग्नि और उष्णताके समान सदा मिलेहुये जो चित्तकर्म हैं उन दोनोंमेंसे एकके अभावमें दोनोंका नाश होताहै ॥ ३७ ॥ हे रामजी ! चित्त (मन) स्फुरणरूप विलासको प्राप्तहीके विहित और निषिद्ध कर्मको उत्पत्तिद्वारा पुण्यपापरूप धर्माधर्म रूपमें परिणमताहै और कर्म भी उसके फलभोगके अनुसार स्फुरण (गतिरूप) विलासको प्राप्त होके चित्तरूप होजाताहै इसलिये वे दोनों परस्पर एक दूसरेके कारण होके लोकमें धर्म तथा कर्म पदको प्राप्त होके इन दोनों शब्दोंसे व्यवहारमें आते हैं ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे कर्मपुरुषयोरेकत्वकथनं नाम पंचनवतितमः सर्गः ॥ ९५ ॥

षण्णवतितमः सर्गः ॥ ९६ ॥

कर्मोंकी विचित्रतासे नानाप्रकारकी आकृतिहै जिसकी ऐसे मनके नाम, भेद तथा इसकी शुद्धिके लिये इसके तत्त्वका वर्णन इस ९६ के सर्गमें किया गया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ मनोहिभावनामात्रंभावनास्पंदधर्मिणी ॥ क्रियातद्भावितारूपंफलंसर्वोनुधावति ॥ १ ॥ श्रीरामउवाच ॥ विस्तरेणममब्रह्मन्जडस्याप्यजडाकृतेः ॥ रूपमारूढसंकल्पंननसोवक्तुमर्हसि ॥२॥ श्रीवसिष्ठउवाच॥अनंतस्यात्मतत्त्वस्यसर्वशक्तेर्महात्मनः॥संकल्पशक्तिरचितंयद्रूपंतन्मनो विदुः ॥३॥ भावःसदसतोर्मध्येनृणांचलातियश्चयः ॥ कलनोन्मुखतांयातस्तद्रूपंमनसोविदुः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! यह मन जो भावना मात्रहै और भावना स्पन्द (गति) धर्मवाली है और उसीसे विहित और निषिद्ध रूप क्रिया होती है और सूक्ष्मताके कारण अदृष्ट दशाको प्राप्त जो क्रिया है उसीके जन्मान्तरादि भावितारूप फलको सब जन्तु अनुसरण करते हैं ॥ १ ॥ श्रीरामजी बोले—हे ब्रह्मन् ! जड और अजड आकार है जिसका ऐसे मनका संकल्पात्मक आरूढ जो रूपहै उसको आप विस्तारपूर्वक कहनेके योग्य हैं ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! अनन्त सर्वशक्तिमान् और महात्मा मायाशबलित जो आत्मतत्त्व है उसका प्रथम

रचित संकल्प शक्तिवाला जो रूपहै उसको मन कहते हैं ॥ ३ ॥ स्थाणु वा पुरुष है मनुष्योंके इस प्रकारके विकल्पात्मक व्यवहारमें सत् और असत् दोनों कोटिके मध्यमें चलायमान, तथा दोनों कोटिके स्मृतिरूपको प्राप्त जो भाव है उसको मन कहते हैं ॥ ४ ॥

नाहंवेदावभासात्माकुर्वाणोस्मीतिनिश्चयः ॥ तस्मादेकांतकलनस्तद्रूपंमनसोविदुः ॥ ५ ॥ कल्पनात्मिकयाकर्मशक्त्याविरहितंमनः ॥ नसंभवतिलोकेस्मिन्गुणहीनोगुणीयथा ॥ ६ ॥ यथावन्ह्यौष्ण्ययोः सत्तानसंभवतिभिन्नयोः ॥ तथैवकर्ममनसोस्तथात्ममनसोरपि ॥ ७ ॥ स्वेनैवचित्तरूपेणकर्मणाफलधर्मिणा ॥ संकल्पैकशरीरेणनानाविस्तरशालिना ॥ ८ ॥

अर्थ—चित् रूपसे भासमान आत्मामें भी मैं नहीं जानता ऐसी प्रतीति जिसमें होती है और अकर्तामेंभी कर्ता व्यवहार जिसमें नियतरूपसे होताहै वही मनका रूपहै ॥ ५ ॥ गतिशील कल्पनात्मिका जो कर्मशक्ति है उसके विना लोकमें कभी मनका होना ऐसे संभव नहीं होता जैसे गुणहीन गुणीका ॥ ६ ॥ जैसे भिन्न रूपसे अग्नि और उष्णताकी सत्ताका संभव नहीं है ऐसेही कर्म और मन तथा जीव और मनकी भी भिन्नसत्ताका संभव नहीं है ॥ ७ ॥ फलधर्मी (साध्यवाला) संकल्पही शरीर जिसका और नाना प्रकारके विस्तारसे शोभायमान ॥ ८ ॥

इदंततमनेकात्ममायामयमकारणम् ॥ विश्वंविगतविन्यासंवासनाकल्पनाकुलम् ॥ ९ ॥ यायेनवासना यत्रसतवारोपितायथा ॥ सातेनफलसूस्तत्रतदेवप्राप्यतेतथा ॥ १० ॥ कर्मबीजंमनःस्पन्दःकथ्यतेथानुभूयते ॥ क्रियास्तुविविधास्तस्यशाखाश्चित्रफलास्तरोः ॥ ११ ॥ मनोयदनुसंधत्तेतत्कर्मेंद्रियवृत्तयः ॥ सर्वाःसम्पादयंत्येतास्तस्मात्कर्ममनःस्मृतम् ॥ १२ ॥

अर्थ—ऐसे अपनेही चित्तरूप कर्मसे मायामय, कारण शून्य, विविध प्रकारकी रचनासे युक्त और वासनाकी कल्पनासे पूर्ण यह विश्व व्याप्त है ॥ ९ ॥ हे रामजी ! जहां स्थितके समान (जैसे ऐन्दव भूमण्डलस्थ और सत्यलोकस्थ हम लोग) जिसने जैसी कल्पना कीहै वह कल्पना उसीरूपसे उसको फलदायिनी होती और उसीरूपसे वह फल उसको प्राप्त होताहै ॥ १० ॥ और उस वासनारूपी वृक्षका कर्म बीज है, मनकी गति शरीरहै, और चित्रविचित्र फल सहित जो अनेक क्रियां हैं वे शाखा शास्त्रोंमें कही जाती हैं और फलसे उनका अनुभवभी होताहै ॥११॥ मन जो कुछ अनुसन्धान करता है वही सब कर्मेन्द्रियां सिद्ध करती हैं इस लिये मन जो है वही कर्म है ॥ १२ ॥

मनोबुद्धिरहंकारश्चित्तंकर्माथकल्पना ॥ संसृतिर्वासनाविद्याप्रयत्नःस्मृतिरेवच ॥ १३ ॥ इंद्रियंप्रकृतिर्मायाक्रियाचेतीतराअपि ॥ चित्राःशब्दोक्तयोब्रह्मन्संसारभ्रमहेतवः ॥ १४ ॥ काकतालीययोगेनत्यक्तस्फारदृगाकृतेः ॥ चितेश्चेत्यानुपातिन्याःकृताःपर्यायवृत्तयः ॥ १५ ॥ श्रीरामउवाच ॥ परायाःसंविदोब्रह्मन्नेताःपर्यायवृत्तयः ॥ कल्प्यमानविचित्रार्थाःकथंरूढिमुपागताः ॥ १६ ॥

अर्थ—मन १ बुद्धि २ अहंकार ३ चित्त ४ कर्म ५ कल्पना ६ संसृति ७ वासना ८ विद्या ९ प्रयत्न १० और स्मृति ११ ॥ १३ ॥ इन्द्रिय १२ प्रकृति १३ माया १४ और क्रिया १५ ये पन्द्रह तथा अन्य संसारके भ्रमके कारण विचित्र शब्दोंकी उक्ति परब्रह्म ॥ १४ ॥ काकतालीय योगसे अर्थात् अकस्मात् आत्मस्वरूपके विस्मरणसे अपरिच्छिन्न चिदेकरस आकार है जिसका ऐसी तथा बाह्यविषयकी कल्पनाकी ओर उन्मुख चितिशक्तिके नामान्तर हैं ॥ १५ ॥ श्रीरामजी बोले–हे ब्रह्मन् ! परसंवित् (शुद्धचेतन) के विचित्र कल्पनीय अर्थवाली ये पर्य्यायवृत्तियां (नामान्तर) कैसे रूढिको प्राप्त हुईं अर्थात् मन आदि पन्द्रह नामोंका अवयवार्थ क्या है ? ॥ १६ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ गतेचसकलंकत्वंकदाचित्कल्पनात्मकम् ॥ उन्मेषरूपिणीनानातदैवद्दिमनःस्थिता ॥ १७ ॥ भावनामनुसंधानंयदानिश्चित्यसंस्थिता ॥ तदैषाप्रोच्यतेबुद्धिरियत्ताग्रहणक्षमा ॥ १८ ॥ यदामिथ्याभिमानेनसत्तांकल्पयतिस्वयम् ॥ अहंकाराभिमानेनप्रोच्यतेभवबन्धनी ॥ १९ ॥ इदंत्यक्त्वेदमायातिबालवत्पेलवायदा ॥ विचारंसंपरित्यज्यतदासाचित्तमुच्यते ॥ २० ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! परासंवित् (शुद्धचेतन) अविद्यासे कलङ्कितके समान होके कदाचित् स्फुरणरूप होके जब यह ऐसा है वा नहीं इस प्रकार विकल्प रूपसे नाना रूप होती तभी वह मनरूपसे स्थित होती है अर्थात् " मन " इस नामसे प्रसिद्ध होती है ॥ १७ ॥ और जब पदार्थोंके पूर्व वा उत्तर विकल्पको निश्चय करके स्थित होती है तथा यह पदार्थ ऐसाही है ऐसा विशेष रूपको ग्रहण करनेमें समर्थ होती है तब उसको बुद्धि कहते हैं ॥ १८ ॥ जब मिथ्याभूत देहमें आत्माके अभिमानसे स्वयं सत्ताकी कल्पना करती है तब अहंकारके निमित्तसे वह

संवित् अहंकार कहलाती है और वही सम्पूर्ण अनार्य्योंका बीज होनेसे संसारमें बंधनका हेतु होती है ॥ १९ ॥ और जब विचारको त्याग कर तथा एक विषयको छोडकर दूसरेको स्मरण करती है तब यह चित्त कहलाती है ॥ २० ॥

यदास्पंदैकधर्मत्वात्कर्तुर्याशून्यशंसिनी ॥ आधावतिस्पंदफलंतदाकर्मेत्युदाहृता ॥ २१ ॥ काकतालीययोगेनत्यक्त्वैकघननिश्चयम् ॥ यदेहितंकल्पयतिभावंतेनेहकल्पना ॥ २२ ॥ पूर्वदृष्टमदृष्टंवाप्राग्दृष्टमितिनिश्चयैः ॥ यदैवेहांविधत्तेतस्तदास्मृतिरुदाहृता ॥ २३ ॥ यदापदार्थशक्तीनांसंभुक्तानामिवांबरे ॥ वसत्यस्तमितान्येहावासनेतितदोच्यते ॥ २४ ॥

अर्थ—वही संवित् स्पन्दरूप मुख्य धर्म होनेके कारणसे कर्ताका असत् स्पन्द कहलाती हुई स्पन्दके फल शरीर तथा उसके अवयव आदिको देशान्तरमें प्राप्त करनेको जो दौडती है उसको कर्म कहते हैं ॥ २१ ॥ और अकस्मात् अपने पूर्ण स्वरूपको त्याग कर वाञ्छित परिच्छिन्न भावकी जब कल्पना करती है तो वही संवित् कल्पना कहलाती है ॥ २२ ॥ तथा पूर्वदृष्ट, अदृष्ट अथवा प्राग्दृष्ट अपने निश्चयोंसे जब अन्तःकरणमें चेष्टा धारण करती है तब उसको संसृति कहते हैं ॥ २३ ॥ और जब भुक्त (ग्रस्त) के समान तिरोभूत पद अर्थ और उनकी शक्तियोंके स्वरूपसे आकाशके तुल्य शून्यरूप सूक्ष्म भावमें निवास करती है और गुप्त अन्य चेष्टा सहित भी होती है तब उस को वासना कहते हैं ॥ २४ ॥

अस्त्यात्मतत्त्वंविमलंद्वितीयादृष्टिरंकिता ॥ जाताह्यविद्यमानैवतथाविद्येतिकथ्यते ॥ २५ ॥ स्फुरत्यात्मविनाशायविस्मारयतितत्पदम् ॥ मिथ्याविकल्पजालेनतन्मलंपरिकल्प्यते ॥ २६ ॥ श्रुत्वास्पृष्ट्वाचदृष्ट्वाचभुक्त्वाघ्रात्वाविमृश्यच ॥ इंद्रमानंदयत्येपातेनेंद्रियमितिस्मृतम् ॥ २७ ॥ सर्वस्यदृश्यजालस्यपरमात्मन्यलक्षिते ॥ प्रकृतत्वेनभावानांलोकेप्रकृतिरुच्यते ॥ २८ ॥

अर्थ—निर्मल आत्मतत्त्व है और द्वैतदृष्टि अविद्यारूप कलङ्कसे उत्पन्न हुई है यथार्थमें प्रपञ्चकी प्रतीति भी (प्रतीति) तीनों कालमें भी सत्य नहीं है इस प्रकार ज्ञानरूप होनेसे वही संवित् विद्या कहलाती है ॥ २५ ॥ आत्माके अत्यन्त अदर्शनके लिये स्फुरती है और उस पदको विस्मरण कराती है अथवा मिथ्या विकल्प जालसे विविध विक्षेप करती है इस रीतिसे आवरणशक्तिकी प्रधानतासे मल और विक्षेप शक्तिकी प्रधानतासे विस्मृति कहाती है अथवा आत्माके अदर्शन (अज्ञान) के अर्थ नाशको स्फुरती है अर्थात् यत्न करती है इससे "प्रयत्न" और मिथ्या विकल्पजालसे विविध स्मरण कराती है इससे स्मृति कहलाती है ॥२६॥ यह मनदशाको प्राप्त संविद् सुनकर स्पर्श करके देखकर स्वाद लेकर सूंघ कर तथा विचार करके अर्थात् सब इन्द्रियोंके भोगोंसे कार्य्य करणके स्वामी जीवदशाको प्राप्त इन्द्र नाम परमेश्वरको तृप्त करती है इससे इन्द्रिय कहलाती है ॥ २७ ॥ सम्पूर्ण दृश्यजालको अलक्षित परमात्मामें उपादानसे अभिन्न कर्ता रूप प्रकृत (निमित्त) होनेसे प्रकृति कही जाती है ॥ २८ ॥

सदसत्तांनयत्याशुसत्तांवासत्वमंजसा ॥ सत्तासत्ताविकल्पोयंतेनमायेतिकथ्यते ॥ २९ ॥ दर्शनश्रवणस्पर्शरसनघ्राणकर्मभिः ॥ क्रियेतिकथ्यतेलोकेकार्यकारणतांगता ॥ ३० ॥ चितेश्चेत्यानुपातिन्यागतायाःसकलंकताम् ॥ प्रस्फुरद्रूपधर्मिण्याएताःपर्यायवृत्तयः ॥ ३१ ॥ चित्ततामुपयातायागतायाःप्रकृतंपदम् ॥ स्वैरेवसंकल्पशतैर्भृशंरूढिमुपागताः ॥ ३२ ॥

अर्थ—जो शीघ्र सत् असत्ताको और असत् (देहादि) को प्रमासत्ताके विनाही सत्ताको प्राप्त करती है यह सत्ता असत्ताके विकल्पके कारणसे माया कहलाती है ॥२९॥ तथा दर्शन, श्रवण, स्पर्श, रसन और घ्राण आदि कर्मोंसे लोकमें कार्य्यकारण रूपको प्राप्त होनेसे क्रिया कहलातीहै ॥३०॥ हे रामजी ! चेत्य (विषय) की ओर उन्मुख अविद्यासे कलङ्कित दशाको प्राप्त और स्फुरणरूप धर्मवाली चितिके ये पर्याय वृत्ति (नामान्तर) हैं ॥ ३१ ॥ चित्त रूपताको प्राप्त इसीसे संसार पदको प्राप्त चितिके अपनेही सैकडों ये नामान्तर अत्यन्त रूढि (दृढता) को प्राप्त हुये हैं ॥३२॥

चेतनीयकलंकांकाज्जाड्यजालानुपातिनी ॥ संख्याविभागकलनास्ववैकल्याकुलेवचित् ॥ ३३ ॥ जीवइत्युच्यतेलोकेमनइत्यपिकथ्यते ॥ चित्तमित्युच्यतेसैवबुद्धिरित्युच्यतेतथा ॥ ३४ ॥ नानासंकल्पकलिलंपर्यायनिचयंबुधाः ॥ वदंत्यस्याःकलंकिन्याश्च्युतायाःपरमात्मनः ॥ ३५ ॥ श्रीरामउवाच ॥ मनः किंस्याज्जडंब्रह्मंस्तथापिचचेतनम् ॥ इत्येकोममतत्त्वज्ञनिश्चयोंतर्नजायते ॥ ३६ ॥

---

(१) मूलमें स्मृति व टीकामें संसृति पाठ प्रमादसे प्रतीत होताहै । (२) "विस्मृतिर्मलमेवच" ऐसे पाठके अनुकूल यह अर्थ किया गया है अथवा " प्रयत्नःस्मृतिरेवच " ऐसा पाठ भी तब भी दो नामोंकी साथ व्याख्या की गई है ॥

अर्थ—चित्से चेतनीय अर्थात् मैं अज्ञहूं यह अनुभव योग्य कलङ्क अथवा विषयोंसे प्राप्त जो द्वैतवासना कलङ्क उसके सन्निधानसे पूर्णस्वरूपके विकल्पसे तथा अनेक संख्या विभागकी कल्पनासे आकुलके तुल्य होके देहादि जडताकी ओर अभिमुख यही चित् ॥ ३३ ॥ संसारमें जीव और मनभी कहलाती है चित्त तथा बुद्धि भी इसीको कहतेहैं ॥ ३४ ॥ परमात्मपदसे च्युत तथा अविद्याकलङ्कसे कलङ्कित इसी चिति (चेतन) के नाना संख्योंसे फलित (दर्शित) पर्य्याय (नामान्तर) के समूहको पण्डित लोग कहते हैं ॥ ३५ ॥ श्रीरामजी बोले—हे ब्रह्मन् तथा हे सब अनेक जाननेहारे यह मन जडरूप है अथवा चेतनरूपहै यह एक निश्चय मेरे अन्तःकरणमें नहीं हेता ॥ ३६ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवा ॥ मनो हिनजडंरामनापिचेतनतांगतम् ॥ म्लानाऽजडातदादृष्टिर्मनइत्येवकथ्यते ॥ ३७ ॥ मध्येसदसतोरूपंप्रतिभूतंयदाविलम् ॥ जगतःकारणंनामतदेतच्चित्तमुच्यते ॥ ३८ ॥ शाश्वतेनैकरूपेणनिश्चयेनविनास्थितिः ॥ येनस चित्तमित्युक्तातस्माज्जातमिदंजगत् ॥ ३९ ॥ जडाजडदृशोर्मध्येदोलारूपंस्वकल्पनम् ॥ यच्चितोम्लानरूपिण्यास्तदेतन्मनउच्यते ॥ ४० ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी! यह मन न तो जडहै और न चेतन क्योंकि चिद् अचित्,उभयरूप होनेसे एकतर (दोनोंमेंसे एक) नहीं होसकता, यथार्थमें " मन्वानोमनः " (मननशक्तिकी इच्छा करता हुआ वह आत्मा मनरूप हुआ) इस श्रुतिसे अजड़ा दृष्टि अर्थात् चित् संसार दशामें उपाधिकी मलिनतासे मन कहलातीहै ॥ ३७ ॥ जैसे मन चिदचित्से विलक्षण है ऐसेही सत् और असत्के मध्यमें अर्थात् सदसत्से विलक्षण, जगत्का कारण प्रत्येक प्राणी भेदसे भिन्न और अविद्यासे कलङ्कित जो रूपहै वही यह चित्तहै ॥ ३८ ॥ अथवा जिसके हेतुसे नित्य एक रूप जो आत्माहै उसके निश्चयके विना (आत्माके अज्ञानसे) जो स्थिति होती है इसीको चित्त कहतेहैं और उसी चित्तसे यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआहै ॥ ३९ ॥ अथवा मलिन उपाधिकी प्राप्ति चित्का जो जड़ और अजड़ दृष्टि के मध्यमें चञ्चलरूप स्वयंकल्पित है इसको मन कहते हैं ॥ ४० ॥

चित्रिस्पंदोहिमलिनःकलंकविकलांतरम् ॥ मनइत्युच्यतेरामनजडंनचचिन्मयम् ॥ ४१ ॥ तस्येतानि विचित्राणिनामानिकलितान्यलम् ॥ अहंकारमनोबुद्धिजीवाख्यानीतराण्यपि ॥ ४२ ॥ यथागच्छति शैलूषोरूपाण्यलंतथैवहि ॥ मनोनामान्यनेकानिधत्तकर्मातरंव्रजेत् ॥ ४३ ॥ चित्राधिकारवशतोविचित्राविकृताभिधाः ॥ यथायातिनरःकर्मवशाद्यातितथामनः ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! चित्तका जो बाह्य देशसे मलिन औपाधिक चंचल भावहै और साक्षी चेतनके आवरण के अभावसे कलङ्क शून्य जो रूपहै वही मनहै वह मन जडहै न चेतन किन्तु चित् जडसे विलक्षणहै ॥४१॥ उसी मनके अहंकार मन बुद्धि तथा जीव और अन्य भी विचित्र असंख्यात नाम हैं ॥ ४२ ॥ जैसे नट नाना प्रकारके वेषोंको क्रमसे भली भांति धारण करता है ऐसेही मनभी क्रियाके भेदोंको धारण करता हुआ अनेक नाम धारण करताहै॥४३॥ जैसे मनुष्य विचित्र अधिकारसे नाना नाम (अर्थात् पाकाधिकारसे पाचक पाठाधिकारसे पाठक और ग्रामके स्वामी के अधिकारसे नायक, ग्रामणी) का धारण करताहै ऐसेही मनभी कर्मभेदसे अनेक नाम धारण करताहै ॥ ४४ ॥

याएताःकथिताःसंज्ञामयाराघवचेतसः ॥ एताएवान्यथाप्रोक्तावादिभिःकल्पनाशतैः ॥ ४५ ॥ स्वभावाभिमतांबुद्धिमारोप्यमनसाकृताः ॥ मनोबुद्धींद्रियादीनांविचित्रानामरीतयः ॥ ४६ ॥ मनोहिजडमन्मस्यभिन्नमन्यस्यजीवतः ॥ तथाहंकृतिरन्यस्यबुद्धिरन्यस्यवादिनः ॥ ४७ ॥ अहंकारमनोबुद्धिदृष्टयःसृष्टिकल्पनाः ॥ एकरूपतयाप्रोक्तामयारघुनंदन ॥ ४८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जो मैंने ये चित्तकी संज्ञा कहीहैं इन्हींको अनेक कल्पनाओंसे वादियोंने अन्य प्रकारसे कहा है ॥ ४५ ॥ अपने २ कुतर्कोंके अभिमत द्रव्यत्व अणुत्वादि बुद्धिको मनमें आरोप करके अपने मनसे मन बुद्धि तथा इन्द्रियोंके संज्ञा भेद उन्होंने विचित्र रीतिसे कियाहै ॥ ४६ ॥ मन जो है वह एक वादीके मतमें जडहै, दूसरेके मतसे जीवसे भिन्न है उसी प्रकार अहंकार और बुद्धि भी एकके मतमें कुछ और दूसरेके मतमें कुछहै ॥ ४७ ॥ हे रामजी ! संकल्पादि वृत्तिके भेदसे सृष्टिके निमित्त जो अहंकार मन बुद्धि आदि दृष्टि अन्तःकरणकी एकतासे मैंने एक रूप कहाहै ॥ ४८ ॥

नैयायिकैरितरथाताद्दृशैःपरिकल्पिताः ॥ अन्यथाकल्पिताःसांख्यैश्चार्वाकैरपिचान्यथा ॥ ४९ ॥ जैमिनीयैश्चार्हतैश्चबौद्धैर्वैशेषिकैस्तथा ॥ अन्यैरपिविचित्रैस्तैःपांचरात्रादिभिस्तथा ॥ ५० ॥ सर्वैरेवगंतव्यंतैःपदंपारमार्थिकम् ॥ विचित्रंदेशकालोत्थैःपुरमेकमिवाध्वगैः ॥ ५१ ॥ अज्ञानात्परमार्थस्यविपरीतावबोधतः ॥ केवलंविवदंत्वेतेविकल्पेरारुरुक्षवः ॥ ५२ ॥

अर्थ—उन्हीको गौतमप्रणीत दर्शनके अनुयायी नैय्यायिक वैसेही अपने बुद्धिविकल्पोंसे अन्यथा कल्पित किया है जैसे अहंकार एक द्रव्य विशेष जीव विभु, मन अणु आत्माके साक्षात्कारमें करण, और बुद्धि आत्माका गुण त्रिक्षण पर्य्यन्त अवस्थायिनी है, ऐसे ही सांख्यमतावलंबी तथा चार्वाकोने भी अन्यथा २ कल्पित कियाहै जैसे सांख्यवाले बुद्धिको त्रिगुणात्मक प्रकृतिका साक्षात्कार्य्य महत्तत्व, और अहंकार महत्तत्वका कार्य्य दूसरा तत्व, तथा मन एकादश इन्द्रियगणके अन्तर्गत षोडश विकारके अन्तःपाती कहते हैं, तथा चार्वाक कहते हैं कि बुद्धि शरीरके अन्तर्गत है और चैतन्य शरीरका गुणहै, अहंकाररूपी आत्मा है, उसीका पूर्वापर विचारनेवाला मन ॥ ४९ ॥ ऐसेही जैमिनी, जैन, बौद्ध वैशेषिक, तथा अन्य पञ्चरात्रादिकोंने भी विचित्र रीतिसे कल्पना कियाहै जैसे जैमिनीय मनको विभु द्रव्य और कोई २ अन्नमय बुद्धि जड बोधात्मक अहंकाररूप आत्माका चित् अंश कहते हैं जैन शरीर प्रमाण जीव, अस्तिकाय अहंकार उसकी विषयकी अभिलाषा मन और अर्थकी प्रथा (प्रख्याति) को बुद्धि कहतेहैं बौद्ध कहतेहैं कि क्षणिक आलय विज्ञान नानक बुद्धिकी धारा जो है वही आत्मा, अहंकार प्रवृत्ति विज्ञान नामक बाह्य अधिकार बुद्धि, उसीका परिणाम अतीत तथा उत्तर प्रत्यय मनहै; और वैशेषिक दर्शन वाले तो अहंकार तथा मनको नैय्यायिक समानही मानते हैं और बुद्धिको स्मृति प्रत्यक्ष अनुभाव, तर्क और विपर्य्यय इन पांचों विकल्पमेंसे पांच प्रकारकी मानते हैं, और अन्य पंचरात्रवाले वासुदेव नाम परमात्मासे संकर्षणनाम जीव और वही अहंकार और उससे प्रद्युम्न नाम मन और उससे अनिरुद्ध नाम बुद्धिमती हैं, आदि पदसे भोगि महेश्वर नकुलादि और २ रीतिसे मतहैं ॥ ५० ॥ उन सबको उसी पारमार्थिक (ब्रह्म) पदको इसप्रकार जाना होगा जैसे विचित्र देशकालमें निकले हुये मार्गगामियोंको एक नगरको, अर्थात् सबका अपनी २ बुद्धिके अनुसार उसी परमात्मतत्त्व निर्णयमें ही तात्पर्य्य है ॥ ५१ ॥ उसी परमपदपर आरूढ होनेकी इच्छावाले ये सब परमार्थ (ब्रह्मतत्व) के अज्ञानसे तथा विपरीत ज्ञान-के कारणसे केवल विवाद मात्र करते हैं ॥ ५२ ॥

स्वमार्गमभिशंसंतिवादिनश्चित्रयादृशा ॥ विचित्रदेशकालोत्थामार्गेस्वंपथिकाइव ॥ ५३ ॥ तैर्मिथ्याराघवमोक्ताःकर्ममानसचेतसाम् ॥ स्वविकल्पार्पितैरर्थैःस्वाःस्वावैचित्र्युक्तयः ॥ ५४ ॥ यथैव पुरुषःस्नानदानदानादिकाःक्रियाः ॥ कुर्वस्तत्कर्तृवैचित्र्यमेतितद्वदिदंमनः ॥ ५५ ॥ विचित्रकार्यवशतोनामभेदेनकर्तृता ॥ मनःसंप्रोच्यतेजीववासनाकर्मनामभिः ॥ ५६ ॥

अर्थ—हे रामजी! राजस, तामस, मलिन अर्द्धमलिन सत्वप्रधान मनुष्योंके विचित्र देशकालसे निकले हुये पथिक जैसे अपने २ मार्गकी प्रशंसा करते हैं ऐसेही नैय्यायिकादि वादीगण अपने २ मार्गकी प्रशंसा करते हैं ॥ ५३ ॥ हे रामजी ! उन वादियोंने फलकी इच्छासे उसके साधनीभूत कर्ममें बद्ध सहित चित्तवालोंके व्यर्थ अपने कपोलकल्पित अर्थोंसे विचित्र उक्ति युक्ति मिथ्या उपनिषत् प्रमाणके विनाही कहाहै ॥ ५४ ॥ जैसे पुरुष स्नान दान आदि क्रियाओंको कर्ता हुआ उन २ कार्य्योंके कर्ताकी विचित्रताको प्राप्त होताहै ऐसेही मनभी है ॥ ५५ ॥ विचित्र कार्य्यके वशसे नामभूतसे कर्तता होती है इसी कारण मन जीव वासना तथा कर्मादि नामोंसे कहा जाताहै ॥ ५६ ॥

चित्तमेवेदमखिलंसर्वेणैवानुभूयते ॥ अचित्तोहिनरोलोकेपश्यन्नापेनपश्यति ॥ ५७ ॥ श्रुत्वास्पृष्ट्वाच दृष्ट्वाचभुक्त्वाघ्रात्वाशुभाशुभम् ॥ अंतर्हर्षंविषादंचसमनस्कोहिविंदति ॥ ५८ ॥ आलोकइवरूपाणामर्थानांकारणंमनः ॥ बध्यतेबद्धचित्तोहिमुक्तचित्तोहिमुच्यते ॥ ५९ ॥ तज्जडानांपरंविद्धिजडंयेनोच्यतेमनः ॥ नचावगच्छतिजडंमनोयस्यहिचेतनम् ॥ ६० ॥

इस. अर्थ—हे रामजी ! सम्पूर्ण प्राणी जो कुछ अनुभव करते हैं यह सब चित्तही है क्योंकि अचित्त मनुष्य देखताहुआ भी कुछ नहीं देखता ॥ ५७ ॥ मन सहित जो प्राणी हैं वही शुभ अशुभ सुनकर, स्पर्श करके, देखकर खाकरके और सूंघकर अन्तःकरणमें हर्ष अथवा विषादको पाताहै ॥ ५८ ॥ जैसे रूपके ग्रहणमें प्रकाश कारण ऐसेही सब पदार्थोंका कारण मनहै क्योंकि जो बद्ध चित्त है वही बांधा जाता है और मुक्तचित्त मुक्तिको ॥ ५९ ॥ उसको जडोंका शिरोमणी समझो जो मनको जड कहता है और जिसका मन चेतन है उसै ज्ञान नहीं होता ॥ ६० ॥

(१) मूलमें ... किया गया है

यदिदंप्रोत्थितंमनः ॥ विचित्रासुखदुःखेहंजगदभ्युदितंतदा ॥ ६१ ॥ एकरूपेहिमनसिसंसृ ॥ उपाविलंकारणंतैर्भ्रान्त्याजगदुपस्थितम् ॥ ६२ ॥ अजडंहिमनोरामसंसारस्यनकार

णम् ॥ जडंचोपलधर्मापिसंसारस्यनकारणम् ॥ ६३ ॥ नचेतनंनचजडंतस्माज्जगतिराघव ॥ मनःकारणमर्थानांरूपाणामिवभासनम् ॥ ६४ ॥

अर्थ—विचित्र सुख तथा दुःखकी चेष्टाहै जिसमें ऐसा यह मन न तो जड है और न चेतन है यह जिस समय प्रकट हुआ उसी समय यह जगत् भी उसीके तुल्य आविर्भूत हुआ ॥ ६१ ॥ हे रामजी ! जब एकरूप मन होता है अर्थात् भ्रान्त रूपताको त्याग के ब्रह्माकार होताहै तब यह संसार नष्ट होजाता है और जब मलिन जल के सदृश कलुषित होजाता है तो कारण होताहै और तब उन्हीं कलुषित समष्टिभूत मनसे यह जगत् प्रकट होता है॥ ६२ ॥ हे रामजी ! जडता शून्य मन अशङ्क ब्रह्मरूप होनेसे संसारका कारण नहीं हो सकता और पाषाणके तुल्य जडभी कारण नहीं होसकता ॥ ६३ ॥ हे रामजी ! इस लिये न जड न चेतन यह मन पदार्थोंका ऐसे कारण है जैसे रूपोंके ग्रहण करनेमें प्रकाश ॥ ६४ ॥

चित्तादृतेन्यद्यद्यस्तितदचित्तस्यकिंजगत् ॥ सर्वस्यभूतजातस्यसमग्रंप्रविलीयते ॥ ६५ ॥ नानाकर्मवशावेशान्मनोनानाभिधेयताम् ॥ एकंविचित्रतामेतिकालोनानायथर्तुभिः ॥ ६६ ॥ यदिनामानमस्कारमहंकारेंद्रियक्रियाः ॥ क्षोभयंतिशरीरंतत्संतुजीवादयःपरे ॥ ६७ ॥ दर्शनेषुतयेप्रोक्ताभेदामनसितर्कितः ॥ क्वचित्क्वचिद्वादकरैरपवादकरैःकिल ॥ ६८ ॥

अर्थ—चित्तसे विना जो कुछ जगत् है वह अचित्तके लिये कुछ भी नहींही है क्योंकि चित्तका लय होनेपर सब प्राणियोंके लिये समग्र जगत्का लय होजाता है ॥ ६५ ॥ जैसे एकही कालमें ऋतुओंके भेद नानारूप होजाते हैं ऐसे ही नानाकर्मके वेशके कारणसे एकही मन नानाप्रकारके नामोंको धारण करता है ॥ ६६ ॥ यदि मनके सम्बन्ध विना शरीरको अहंकार इन्द्रिय और क्रिया क्षोभित करें तो जीव आदि मनसे पृथक् होसकते हैं ॥ ६७ ॥ और कुतर्क करनेवाले वादियोंने दर्शनोंमें कहीं २ मन जीव तथा शरीर आदिमें भेद कहाहै निश्चय करके ॥ ६८ ॥

तेहिगमनबुध्यंतेविशिष्यंतेनचक्वचित् ॥ सर्वाहिशक्तयोदेवेविद्यंतेसर्वगायतः ॥६९॥ यदैवखलुशुद्धायामनागपिहिसंविदः ॥ जडेवशक्तिरुदितातदावैचित्र्यमागतम् ॥ ७० ॥ ऊर्णनाभाद्यथातंतुर्जायतेचेतनाज्जडः ॥ नित्यप्रबुद्धात्पुरुषाद्ब्रह्मणःप्रकृतिस्तथा ॥७१॥ अविद्यावशतश्चित्तभावनाःस्थितिमागताः ॥ चितिपर्यायशब्दाहिभिन्नास्तेनेहवादिनाम् ॥ ७२॥ जीवोमनश्चनबुद्धिरहंकृतिश्चेत्येवंप्रथामुपगतेयमनिर्मलाचित् ॥ सैपोच्यतेजगतिचेतनचित्तजीवसंज्ञागणेनकिलनास्तिविवादएषः ॥ ७३॥

इत्यार्पे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे मनःसंज्ञाविचारो नाम षण्णवतितमः सर्गः ॥ ९६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! वे वादीलोग यथार्थ पदार्थ नहीं जानते और न व्यासादिकोंसे कहीं उनको शिक्षा दीगई है, और यह कुतर्क करनेकी शक्ति भी मनरूप देवमें ही है क्योंकि उसकी शक्ति सर्वत्र गामिनी है ॥ ६९ ॥ जिस समय शुद्ध चित्में किंचित् भी जडताके तुल्य कलुषित शक्ति उदित हुई उसी समय यह जगत्की विचित्रता प्राप्तहुई॥७०॥ जैसे चेतन ऊर्णनाभ (मकरी) से जड सूत उत्पन्न होता है ऐसेही नित्यज्ञानरूप ब्रह्मपुरुषसे मनरूप प्रकृति उत्पन्न हुई है ॥ ७१ ॥ अविद्यासे वादियोंको अपने २ चित्तकी भावनाही स्थिरताको प्राप्त हुई इसीसे उन्होंने चिति (चेतन) के पर्य्याय (नामान्तर) शब्दोंको चितिसे इस लोकको भिन्न माना है ॥ ७२ ॥ हे रामजी ! यह निर्मल चित् (चेतन) जीव, मन बुद्धि अहंकार इन रूपोंसे ख्यातिको प्राप्तहुई है और वही इस संसारमें चेतन जीव चित्त इत्यादि संज्ञासमूहसे कही जाती है इसमें निश्चय करके कोई विवाद नहीं है॥ ७३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे मनःसंज्ञाविचारो नाम षण्णवतितमः सर्गः ॥ ९६ ॥

सप्तनवतितमः सर्गः ॥ ९७ ॥

मनकी सर्वाकारतासे स्थिति, तथा विस्तारसे चित्ताकाश, चिदाकाश और भूताकाशका वर्णन इस ९७ के सर्गमें किया गया है ॥

॥श्रीरामउवाच॥ ब्रह्मन्मनसएवेदमंतश्चाडंबरंस्ततम् ॥ यतस्तदेककर्मेतिवाक्यार्थादुपलभ्यते ॥ १ ॥ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ दृढभावोपरक्तेनमनसैवोररीकृतम् ॥ मरुचंडातपेनेवभास्वरावरणंपुनः ॥ २॥

ब्रह्मात्मनिजगत्यस्मिन्मनएवाकृतिंगतम् ॥ क्वचिन्नरतयारूढंक्वचित्सुरतयोत्थितम् ॥ ३ ॥ क्वचिद्दैत्यतयोल्लासिक्वचिद्यक्षतयोदितम् ॥ क्वचिद्गंधर्वतांप्राप्तंक्वचित्किंनररूपिच ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-हे ब्रह्मन् ! पूर्वोक्त रीतिसे आपके वाक्यार्थसे यह जो ब्रह्माण्ड पटहरूप आडम्बरहै सब मनसे ही आविर्भूत हुआहै इसलिये सब मनकाही कर्म है ऐसा मुझे ज्ञात होता है ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! जैसे प्रचण्ड मरुस्थलके आतपसे मृगतृष्णाका जल सूर्य्य प्रकाश (तेज) के आवरणका हेतु होताहै ऐसेही प्रकाशशील आत्माके आवरणका हेतु जो जडताहै उसको मननेही अंगीकार कियाहै अर्थात् मनके जडांशसे आत्माका तिरोभाव होके जगत् भान होताहै यह तुम जो मनको ही जगत्का कारण समझाहै सो सत्यहै ॥ २ ॥ ब्रह्मरूप इस जगत्में मन एक मुख्य जगत्की आकृतिको प्राप्त होके कहीं मनुष्यरूपसे रूढ हो रहा है और कहीं देवतारूपसे ॥ ३ ॥ कहीं दैत्यरूपसे शोभितहै, कहीं यक्षरूपसे उदित है, कहीं गन्धर्व रूपताको प्राप्तहै, और कहीं किन्नररूपताको ॥ ४ ॥

नानाचारनभोभागपुरपत्तनरूपया ॥ मन्येविततयाकृत्यामनएवविजृंभते ॥ ५ ॥ एवंस्थितेशरीरौघस्तृणकाष्ठलतोपमः ॥ तद्विचारणयाकोऽर्थोविचार्यमनएवनः ॥ ६ ॥ तेनेदंसर्वमाभोगिजगदित्याकुलंततम् ॥ मन्येतद्व्यतिरेकेणपरमात्मैवशिष्यते ॥ ७ ॥ आत्मासर्वपदातीतःसर्वगःसर्वसंश्रयः ॥ तत्प्रसादानसंसारेमनोधावतिवल्गति ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! मेरा यह सिद्धान्तहै कि नानाप्रकारके आचार आकाशका भाग तथा ग्राम नगर आदिरूप विस्तृत आकृतिसे यह मनही अपने स्वरूपको दिखला रहाहै ॥ ५ ॥ जब ऐसा सिद्धान्तहै तो तृण काष्ठ और लताके सदृश जो शरीरसमूहहै उसके विचारनेसे हमारा क्या प्रयोजन है मन जो है वही हमारे विचारने योग्यहै ॥ ६ ॥ उसी मनसे यह सर्वाकार धारी जगत् पूर्ण है इसलिये मैं मानता हूं कि मनके शोधनसे कर्त्ता कर्मकारूप भली भांति जाननेसे परमात्मा ही शेष रहताहै ॥ ७ ॥ आत्मा सर्व दशासे अतीतहै सर्वव्यापी है और सबका आश्रय है उसी की कृपासे मन संसारमें दौडताहै और गर्जता है ॥ ८ ॥

मनोमन्येमनःकर्मतच्छरीरेषुकारणम् ॥ जायतेम्रियतेतद्धिनात्मनींदृग्विधागुणाः ॥ ९ ॥ मनएवविचारेणमन्येविलयमेष्यति ॥ मनोविलयमात्रेणततःश्रेयोभविष्यति ॥ १० ॥ मनोनाम्निपरिक्षीणेकर्मण्यच्छिन्नसंभ्रमे ॥ मुक्तइत्युच्यतेजंतुःपुनर्नामनजायते ॥ ११ ॥ श्रीरामउवाच ॥ भगवन्भवताप्रोक्ताजातयस्त्रिविधानृणाम् ॥ प्रथमंकारणंतासांमनःसदसदात्मकम् ॥ १२ ॥

अर्थ—मैं ऐसा समझता हूं कि मनका कर्म मनही है और वही शरीरोंमें कारणहै वही उत्पन्न होताहै तथा मरताहै क्योंकि आत्मामें ऐसे जन्म मरण आदि गुण नहीं है ॥ ९ ॥ और यह भी मैं निश्चयसे मानताहूं कि विचारसे मनका लय होजाताहै और मनके लय मात्रसे मोक्ष अवश्य प्राप्त होताहै ॥ १० ॥ भ्रमको देनेवाले मन नाम पदार्थ परिक्षीण होनेपर यह प्राणी मुक्त कहलाताहै और पुनः वह संसारमें नहीं उत्पन्न होता ॥ ११ ॥ श्रीरामजी बोले-भगवन् ! आपने सात्त्विक राजस और तामस भेदसे तीन (द्वादश भेद इसीमें अन्तर्गतहैं) प्रकारकी जीवजाति कहीहै उन सबका मुख्य प्रथम कारण सदसदात्मक मन है ॥ १२ ॥

तत्कथंशुद्धाच्चिन्मात्रस्तत्त्वाद्बुद्धिविवर्जितात् ॥ उत्थितंस्फारतांयातंजगच्चित्रकरंमनः ॥ १३ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ आकाशाह्नित्रयोराम विद्यंतेविततांतराः ॥ चित्ताकाशश्चिदाकाशोभूताकाशस्तृतीयकः ॥ १४ ॥ एतेहिसर्वसामान्याःसर्वत्रैवव्यवस्थिताः ॥ शुद्धचित्तत्त्वशक्त्यातुलब्धसत्तात्मतांगताः ॥ १५ ॥ सबाह्याभ्यंतरस्थोयःसत्तासत्तावबोधकः ॥ व्यापीसमस्तभूतानांचिदाकाशःसउच्यते ॥ १६ ॥

अर्थ—वह मन बुद्धिशून्य शुद्ध चित् तत्त्वसे कैसे उत्पन्न हुआ और चित्रविचित्र जगत्का रचयिता वह मन विशालताको कैसे प्राप्त हुआ ? क्योंकि सृष्टि बुद्धिपूर्वक होती है ॥ तन्मनः कुरुत आत्मन्वीस्यामिति ॥ यह श्रुति है ॥ १३ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! विशाल उदरवाले तीन आकाश हैं चित्ताकाश चिदाकाश और तीसरा भूताकाश ॥ १४ ॥ ये सब अपने कार्य्यमें साधारण हैं और सब अपने कार्य्यमें व्याप्त हैं और शुद्ध चित्तत्त्वकी शक्तिसे इनको सत्ता प्राप्त हुई है ॥ १५ ॥ बाह्य जगत् तथा बुद्धि आदिकी सत्ता और असत्ताका (आगम अपायका) साक्षी है और समस्त भूतोंमें जो व्यापक है उसको चिदाकाश कहते हैं ॥ १६ ॥

सर्वभूतहितःश्रेष्ठोयःकालकलनात्मकः ॥ येनेदमाततंसर्वंचित्ताकाशःसउच्यते ॥ १७ ॥ दशादिङ्मंडलाभोगैरव्युच्छिन्नवपुर्हियः ॥ भूतात्मासौयआकाशःपवनाभ्रादिसंश्रयः ॥ १८ ॥ आकाशाचित्ता

काशौद्वौचिदाकाशबलोद्भवौ ॥ चित्कारणंहिसर्वस्यकार्यौघस्यदिनंयथा ॥ १९ ॥ जडोस्मिनजडोस्मीतिनिश्चयोमलिनश्चितः ॥ यस्तदेवमनोविद्धितेनाकाशादिभाव्यते ॥ २० ॥

अर्थ—और सब प्राणियोंके व्यवहारका हेतु होनेसे सबका हित सर्व कार्यकारणका नियन्ता होनेसे सर्वश्रेष्ठ और कालके विकल्पका जो रूप है जिससे यह सब संसार व्याप्त है उसको चित्ताकाश कहते हैं ॥ १७ ॥ दशोंदिग् मण्डलोंकी परिपूर्णतासे अपरिमित शरीर युक्त और जो वायु तथा मेघ वा सम्वत्सर रूप सूर्य्यादिका आश्रय है इसको भूताकाश कहते हैं ॥ १८ ॥ भूताकाश तथा चित्ताकाश ये दोनों चित् आकाशसे उत्पन्न हुये हैं क्योंकि चित् सबका ऐसे कारण है जैसे कार्य्य समूहोंका दिन ॥ १९ ॥ जड हूं और जड नहीं हूं ऐसा जो चित्का मलिन निश्चय है वह मन है और इसीसे आकाश आदि उत्पन्न होते हैं ॥ २० ॥

अप्रबुद्धात्मविषयमाकाशत्रयकल्पनम् ॥ कल्प्यतेउपदेशार्थंप्रबुद्धविषयंनतु ॥ २१ ॥ एकमेवपरंब्रह्मसर्वंसर्वापूरकम् ॥ प्रबुद्धविषयंनित्यंकलाकलनवर्जितम् ॥ २२ ॥ द्वैताद्वैतसमुद्भेदैर्वाक्यसंदर्भगर्भितैः ॥ उपदेश्यतएवाज्ञोनप्रबुद्धःकथंचन ॥ २३ ॥ यावद्रामाप्रबुद्धस्त्वमाकाशत्रयकल्पना ॥ तावदेवावबोधार्थंमयात्वमुपदिश्यसे ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रामजी! इन तीनों आकाशकी कल्पना जिसने आत्मतत्वको नहीं जाना उसके उपदेशके अर्थ कीजाती है न कि ज्ञानीके अर्थ ॥ २१ ॥ एकही परब्रह्म सब कुछ और सबको पूर्ण करनेवाला है, और वह तीनों कालमें एकरस नित्य तथा कालकी कल्पनासे वर्जित है ॥ २२ ॥ वाक्य रचनासे संयुक्त द्वैत और अद्वैतके सम्यक् भेदसे अज्ञ प्राणियोंको उपदेश दिया जाता है न कि ज्ञानियोंको ॥ २३ ॥ हे रामजी! जबतक तुम अज्ञानी हो तभी तक यह तीनों आकाशकी कल्पना है और तभीतक तुमारे ज्ञानके लिये मैं उपदेश करता हूं ॥ २४ ॥

आकाशचित्ताकाशाद्याश्चिदाकाशकलंकितात् ॥ प्रसूतादावदहनाद्यथामरुमरीचयः ॥ २५ ॥ चिनोतिमलिनंरूपंचित्ततांसमुपागतम् ॥ त्रिजगंतींद्रजालानिरचयत्याकुलात्मकम् ॥ २६ ॥ चित्तत्वमस्यमलिनस्यचिदात्मरूस्यतत्त्वस्यदृश्यतइक्षंनतुबोधहीनैः ॥ शुक्तौयथारजततानतुबोधवद्भिर्मौर्ख्येणबंधइहबोधबलेनमोक्षः ॥ २७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे चिदाकाशमाहात्म्यं नाम सप्तनवतितमः सर्गः ॥ ९७ ॥

अर्थ—जैसे दावाग्निके तुल्य मरुभूमिके प्रतपनसे मृगतृष्णाकी नदियां उत्पन्न होती हैं ऐसेही मायासे कलङ्कित चिदाकाशसे चित्ताकाश तथा भौतिक आकाश आदि उत्पन्न होते हैं ॥ २५ ॥ हे रामजी! यह मायाशवन चेतन चित्तरूपताको प्राप्त मलिनरूपको संचय करता है और विविध कल्पनासे आकुल तीनों जगत्रूपी इन्द्रजालोंको रचता है ॥ २६ ॥ हे रामजी! जैसे शुक्तिमें अज्ञान (शुक्तिके अज्ञान) से रजतता भासती है इस प्रकार ज्ञानहीन जो प्राणी हैं उन्हींको इस चेतनरूप तत्वका मलिन चित्तका अनुभव होता है इस लिये संसारमें अज्ञानता रूप मूर्खतासे वन्धन होता है और ज्ञानके वलसे मोक्ष होता है ॥ २७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे चिदाकाशमाहात्म्यं नाम सप्तनवतितमः सर्गः ॥ ९७ ॥

अष्टनवतितमः सर्गः ॥ ९८ ॥

इस ९८ के सर्गमें कथित अर्थके वोधके लिये चित्ताख्यानका तथा चित्तके तत्वको विचारसे चित्तका नाश, विस्तारसे वर्णन किया गया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यतःकुतश्चिदुत्पन्नंचित्तंयत्किंचिदेवहि ॥ नित्यमात्मविमोक्षाययोजयेद्यत्नतोनघ ॥ १ ॥ संयोजितंपरेचित्तंशुद्धंनिर्वासनंभवेत् ॥ ततस्तुकल्पताशून्यमात्मतांयातिराघव ॥ २ ॥ चित्तायत्तमिदंसर्वंजगत्स्थिरचरात्मकम् ॥ चित्ताधीनावतोरामबंधमोक्षावपिस्फुटम् ॥ ३ ॥ अत्रार्थेकथ्यमानेमंचित्ताख्यानमनुत्तमम् ॥ ब्रह्मणायत्पुराप्रोक्तंशृणुरामातियत्नतः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी वोले—हे पापरहित रामजी! कहींसे भी उत्पन्न इस आकस्मिक रूप चित्तको नित्यही अपने आत्माके मोक्षके लिये सावधानीसे लगावे ॥ १ ॥ हे रामजी! ब्रह्म तत्त्वरूपपर आत्मामें युक्त अर्थात् समाधिरूपसे लगाहुआ चित्त वासनारहित होजाता है इसके अनन्तर कल्पनाशून्य होके आत्मरूपताको प्राप्त होताहै

॥ २ ॥ चर और अचर यह जगत् सब चित्तकेही आधीन है इसलिये हे राम! बन्ध और मोक्षभी चित्तकेही आधीन है यह वार्ता स्पष्ट है ॥ ३ ॥ हे रामजी! इस विषयमें सर्वोत्तम चित्ताख्यान जो मैं कहताहूं जिसको ब्रह्माजीने प्रथम मुझे कहाथा उसको तुम सावधानीसे सुनो ॥ ४ ॥

अस्तिरामाटवीस्फाराशून्याशांतातिभीषणा ॥ योजनानांशतंयस्यांलक्ष्यतेकणमात्रकम् ॥ ५ ॥ तस्यामेकोहिपुरुषःसहस्रकरलोचनः ॥ पर्याकुलमतिर्भीमःसंस्थितोवितताकृतिः ॥ ६ ॥ सहस्रेणबाहूनामादायपरिघान्बहून् ॥ प्रहरत्यात्मनःपृष्ठेस्वात्मनैवपलायते ॥ ७ ॥ दृढप्रहारैःप्रहरन्स्वयमेवात्मनात्मनि ॥ प्रविद्रवतिभीतात्मासयोजनशतान्यपि ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी! अति विशाल, शून्य, शान्तिरहित और भयंकर एक अटवी (महा जंगल) है जिसमें सैकडों योजन कणके समान भान होताहै ॥ ५ ॥ उस महा अटवीमें सहस्रों हस्त और नेत्र सहित व्याकुलबुद्धि भयंकर और विशाल आकार वाला एक पुरुष स्थित है ॥ ६ ॥ वह सहस्रों (हजारों) भुजाओंसे बहुतसे परिघ लेके अपनी पीठपर आप मारता है और भागताहै ॥ ७ ॥ दृढ प्रहारोंसे अपने ऊपर आप प्रहार करता हुआ भयभीत होके सैकडों योजन भागता है ॥ ८ ॥

क्रंदन्पलायमानोसौगत्वादूरमितस्ततः ॥ श्रमवान्विवशाकारोविशीर्णवरणांगकः ॥ ९ ॥ पतितोवशएवाशुमहत्यंधेंधकूपके ॥ कृष्णरात्रितमोभीमेनभोगंभीरकोटरे ॥ १० ॥ ततःकालेनबहुनासोंधकूपात्समुत्थितः ॥ पुनःप्रहारैःप्रहरन्विद्रवत्यात्मनात्मनः ॥ ११ ॥ पुनर्दूरतरंगत्वाकरंजवनगुल्मकम् ॥ प्रविष्टःकंटकव्याप्तंशलभःपावकंयथा ॥ १२ ॥

अर्थ—रोता और भागता हुआ यह इधर उधर दूर जाके श्रमसे विवश आकार और छिन्न भिन्न अंग होके ॥ ९ ॥ कृष्णपक्षकी रात्रिके समान अन्धकारसे भयंकर और आकाशके तुल्य गंभीर कोटर वाले अन्धकूपमें विवेक दृष्टिसे शून्य अवश होके गिर पडा ॥ १० ॥ इसके पश्चात् बहुत कालमें उस अन्धकूपसे निकला और पुनः अपने ऊपर आपही प्रहार करता हुआ भागताहै ॥ ११ ॥ पुनः दूरतर (अतिदूर) जाके कांटोंसे पूर्ण अति गहन लतागुल्म युक्त वनमें ऐसे प्रविष्ट हुआ जैसे पांखी आगिमें ॥ १२ ॥

तस्मात्करंजगहनाद्विनिःसृत्यक्षणादिव ॥ पुनःप्रहारैःप्रहरन्विद्रवत्यात्मनात्मनः ॥ १३ ॥ पुनर्दूरतरंगत्वाशशांककरशीतलम् ॥ कदलीकाननंकांतंसंप्रविष्टोहसन्निव ॥ १४ ॥ कदलीखंडकात्तस्माद्विनिःसृत्यक्षणात्पुनः ॥ स्वयंप्रहारैःप्रहरन्विद्रवत्यात्मनात्मनि ॥१५॥ पुनर्दूरतरंगत्वातमेवांधांधकूपकम् ॥ सखंप्रविष्टस्त्वरयाविशीर्णावयवाकृतिः ॥ १६ ॥

अर्थ—पुनः उस गहन लता वनसे क्षणभरके तुल्य निकलके अपने आप आघातोंसे अपने ऊपर प्रहार करता हुआ इधर उधर भागता है ॥ १३ ॥ पुनः अति दूर जाके चन्द्रमाके किरणके समान शीतल तथा रमणीय कदली (केला) के बनमें हंसते हुयेके समान प्रवेश किया ॥ १४ ॥ उस कदलीके वनसे पुनः क्षणभरके लिये निकलके और अपने ऊपर आप प्रहार करता हुआ इधर उधर भागने लगा ॥ १५ ॥ पुनः शीघ्रतासे अति दूर जाके सम्पूर्ण अंगोंके आकार जिसके टूट फूट गये हैं ऐसा अन्धा होके उसी अन्धकूपमें प्रवेश किया ॥ १६ ॥

अंधकूपात्समुत्थायप्रविष्टःकदलीवनम् ॥ कदलीकाननाच्छ्वभ्रंकरंजवनगुल्मकम् ॥ १७ ॥ करंजकाननात्कूपंकूपाद्रंभावनांतरम् ॥ प्रविशन्प्रहरंश्चैवस्वयमात्मनिसंस्थितः ॥ १८ ॥ एवंरूपनिजाचारःसोवलोक्यचिरंमया ॥ अवष्टभ्यबलादेवमुहूर्तंरोधितःपथि ॥ १९ ॥ पृष्टःसकस्त्वंकिमिदंकेनार्थेनकरोषिवा ॥ किंनामाभिमतंतेत्रकिंमुधापरिमुह्यसि ॥ २० ॥

अर्थ—उस अन्धकूपसे निकलके पुनः कदलीके बनमें प्रविष्ट हुआ और उस कदलीके वनसे निकलके गढके समान गंभीर कांटोंसे पूर्ण अति गहन लताबनमें प्रवेश किया ॥ १७ ॥ इसीप्रकार करंज (कांटे सहित गहन लता गुल्म युक्त) के वनसे अन्धकूपमें और अन्धकूपसे कदलीके वनमें प्रवेश करता हुआ तथा अपने ऊपर आपही प्रहार करता हुआ स्थित है ॥ १८ ॥ इसप्रकारके आचारसे युक्त मैं उसे विवेकदृष्टिसे देखकर और योगबलसे एक मुहूर्त भरके अर्थ मार्गमें रोककर॥१९॥ उससे पूछा कि तुम कौन हो और किस लिये यह अपने ऊपर प्रहार तथा अन्धकूपादिमें पतन आदि व्यापार क्यों करते हो और यहांपर तुमारा अभिलषित क्या है? क्यों वृथा मोहको प्राप्त होते हो? ॥२०॥

इतिपृष्टेनकथितंतेनमेरघुनंदन ॥ नाहंकश्चिन्नचैवेदंमुनेकिंचित्करोम्यहम् ॥ २१॥ त्वयाहमवभग्नोस्मित्वंमेशत्रुरहोबत ॥ त्वयादृष्टोस्मिनष्टोस्मिदुःखायचसुखायच ॥ २२ ॥ इत्युक्त्वाविक्लवान्यंगान्यालो

क्यस्वान्यतुष्टिमान् ॥ रुरोदातिरवंदीनोमेघोवर्षन्निवाटवीम् ॥ २३ ॥ क्षणमात्रेणतत्राशावुपसंहृत्यरोदनम् ॥ स्वान्यंगानिसमालोक्यजहासचननादच ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रघुनन्दन ! इसप्रकार मुझसे पूंछा हुआ उसने कहा कि हे मुने ! मैं कुछ नहीं हूं और न मैं यह कुछ करता हूं ॥ २१ तुमने मुझे तोड फोड डाला इसलिये खेद है कि तुम मेरे शत्रु हो तुमारे दृष्टिगोचर होनेमात्रसे मैं दुःख तथा सुख दोनोंके लिये नष्ट हुआ ॥ २२ ॥ ऐसा कहके और अपने व्याकुल अङ्गोंको देखकर वह असन्तुष्ट हुआ और अश्रुकी वर्षा करते हुये आतुर होके ऐसा रोने लगा जैसे उस अटवीको सींचता हुआ मेघ ॥ २३ ॥ क्षणमात्रमें उसने अपने रोदनको बन्द करके अपने अंगोंको देखा और देखकर वह हंसा और गर्जा भी ॥ २४ ॥

अथाट्टहासपर्यंतेसपुमान्पुरतोमम ॥ क्रमेणतानित्याजस्वान्यंगानिसमंततः ॥ २५ ॥ प्रथमंपतितंतस्याशिरःपरमदारुणम् ॥ ततस्तेबाहवःपश्चाद्वक्षस्तदनुचोदरम् ॥ २६ ॥ अथक्षणेनसपुमांस्तान्यंगानियथाक्रमम् ॥ संत्यज्यनियतेःशक्त्याक्वापिगंतुमुपस्थितः ॥ २७ ॥ दृष्टवानहमेकांतेपुनरन्यंतथानरम् ॥ सोपिप्रहारान्परितःप्रयच्छन्स्वयमात्मनि ॥ २८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! मेरे सन्मुख उस अट्ट (महा) हासके अन्तमें क्रमसे चारों ओर उसने अपने उन अंगोंको त्याग दिया ॥ २५ ॥ प्रथम तो बडा भयंकर उसका शिर गिरा, उसके अनन्तर वे बाहु उसके पश्चात् छाती और उसके पश्चात् उदर ॥ २६ ॥ इसके अनन्तर क्षणभरमेंही वह पुरुष अपने उन अंगोंको यथाक्रम ज्ञानसे अज्ञान तथा उसके कार्य्योंके बाधनरूप नियतिकी शक्तिसे त्यागकर पुनः कहीं जानेको उद्यतके समान हुआ[1] ॥ २७ ॥ इसके अनन्तर एकान्तमें मैंने दूसरे पुरुषको देखा और वहभी अपने ऊपर आपही प्रहार २ कर रहाथा ॥ २८ ॥

बाहुभिःपीवराकारैःस्वयमेवपलायते ॥ कूपेपततिकूपाच्चसमुत्थायाभिधावति ॥ २९ ॥ पुनःपततिकुंडेतःपुनरार्त्तःपलायते ॥ पुनःप्रविशतिश्वभ्रक्षणंशिशिरकाननम् ॥ ३० ॥ कष्टंपुनःपुनस्तुष्टःपुनःप्रहरतिस्वयम् ॥ एवंप्रायनिजाचारश्चिरमालोक्यसस्मयम् ॥ ३१ ॥ समयासमवष्टभ्यपरिपृष्टस्तथैवहि ॥ तेनैवासौक्रमेणाथरुदित्वासंप्रहस्यच ॥ ३२ ॥

अर्थ—स्थूल आकारवाली भुजाओंसे अपने ऊपर प्रहार करता हुआ भागताथा और भागते हुये अन्धकूपमें गिरताहै और पुनः उसमेंसे निकलके दौडताहै ॥ २९ ॥ पुनः उसी अन्धकूपमें गिरताहै और दीन होके भागताहै और पुनः कण्टक युक्त लता गुल्मके बनमें प्रवेश करताहै और क्षणमात्रके लिये कदली बनमें प्रवेश करताहै ॥ ३० ॥ पुनः २ कष्ट पाताहै और पुनः सन्तुष्ट होताहै और पुनः आपही अपने ऊपर प्रहार करताहै इस प्रकार उसके आचारको आश्चर्यके साथ चिरकाल तक देखकर ॥ ३१ ॥ उसी प्रकार उसे रोककर मैंने प्रश्नोत्तरसे बोध कराया उसी प्रकार मैं वहभी रो और हंसकर ॥ ३२ ॥

अंगैर्विशीर्णतामेत्यययावलमलक्ष्यताम् ॥ विचार्यनियतेःशक्तितोगंतुमुपस्थितः ॥ ३३ ॥ दृष्टवानहमेकांतेपुनरन्यंतथानरम् ॥ प्रहरंस्तद्वदेवासौस्वयमेवपलायते ॥ ३४ ॥ पलायमानःपतितोमहत्यंधकूपके ॥ तत्राहंसुचिरंकालमवसंतत्प्रतीक्षकः ॥ ३५ ॥ यावत्ससुचिरेणापिकूपान्नाभ्युदितःशठः ॥ अथाहमुत्थितोगंतुंदृष्टवान्पुरुषंपुनः ॥ ३६ ॥

अर्थ—अज्ञान तथा उसके कार्य्यका बाधारूप ज्ञानकी शक्ति विचार करके अंगोंसे छिन्न भिन्न होके अदृश्यताको प्राप्त होके पुनः जानेको उद्यतके समान हुआ ॥ ३३ ॥ हेरामजी ! पुनः मैंने एकान्तमें दूसरे पुरुषको देखा यह भी उसी प्रकार अपने ऊपर प्रहार करता हुआ भागताथा ॥ ३४ ॥ भागते हुये बडेभारी अन्धकूपमें गिरा वहांपर बहुत काल तक उसकी प्रतीक्षा करता हुआ मैंने निवास किया ॥ ३५ ॥ जब तक वह मूर्ख उस अन्धकूपसे न निकला तब तक मैंने प्रतीक्षा की, अनन्तर मैं जानेको उद्यत हुआ तो पुनः उस पुरुषको देखा ॥ ३६ ॥

तादृशंतादृशाकारंप्रपतंतंतथैवच ॥ अवष्टभ्यतथैवाशुतस्यप्रोक्तंपुनर्मया ॥ ३७ ॥ तथैवोत्पलपत्राक्षनासौनदवबुद्धवान् ॥ केवलंमामसौमूढोनैवजानासिकिंचन ॥ ३८ ॥ आःपापदुर्द्धिजेत्युक्त्वास्वव्यापारपरोग्रयौ ॥ अथतस्मिन्महारण्येतथाविहरतामया ॥ ३९ ॥ बहवस्तादृशादृष्टाःपुरुषादोषकारिणः ॥ मत्दृष्टाःकेचिदायांतिस्वप्रसंभ्रमवच्छमम् ॥ ४० ॥

---

1 यथार्थमें ज्ञान होनेके बाद कोई गन्तव्य स्थान शेष नहीं रहता इस लिये जानेको उद्यतके समान हुआ यह कहने गह लक्षित किया बाधितका रूप पुनः नहीं होता.

अर्थ—उसी प्रकारका और उसी प्रकार अन्धकूपमें गिररहाथा तब मैंने उसी प्रकार उसे रोक कर पूछा ॥ ३७ ॥ हे कमलके सदृश नेत्रवाले रामजी ! उस मेरे प्रश्नको उसने नहीं समझा केवल यही उत्तर दिया कि हे मूर्ख तू कुछ नहीं जानता ॥३८॥ और अहो ! पापी दुष्ट ब्राह्मण ! ऐसा कहके अपने व्यापारमें परायण होके चलागया, इस के अनन्तर उसी महा वनमें विहार (भ्रमण) करते हुये मैंने ॥ ३९ ॥ बहुतसे पाप करनेवाले पुरुषोंको देखा उनमें से कोई तो मेरे प्रश्नोत्तरसे बोधित होके स्वप्नतुल्य पूर्व शरीरके नाशरूप शान्तिको प्राप्त होतेथे ॥ ४० ॥

मदुक्तंनाभिनंदंतिकेचिच्छवतनुंयथा ॥ विनिपत्यांधकूपेभ्यःकेचित्तत्प्रोत्थिताःपुनः ॥४१ ॥ कदंल्यु डकात्केचिच्चिरेणापिननिर्गताः ॥ केचिदंतर्हिताःस्फारेकरंजवनगुल्मके ॥ ४२ ॥ नक्वचित्स्थितिमायांतिकेचिद्धर्मपरायणाः ॥ एवंविधासावितताघूद्वहमहाटवी ॥ ४३ ॥ अद्यापिविद्यतेयस्यामित्थंतेपुरुषाःस्थिताः ॥ साचदृष्टात्वयारामत्वयेहव्यवहारिणी ॥ बाल्यात्तुबुद्धितत्त्वस्यनतांस्मरसिराघव॥४४॥ साभीषणाविविधकंकटसंकटांगीघोराटवीघनतमोगहनापिलोके ॥ आगत्यनिर्वृतिमलब्धपराववोधैरासेव्यतेकुसुमगुल्मकवाटिकेव ॥ ४५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे चित्तोपाख्यानंनाम अष्टनवतितमः सर्गः ॥ ९८ ॥

अर्थ—और कोई मृतक शरीरके तुल्य मेरे कथनको नहीं प्रसन्न करतेथे कोई २ अन्धकूपमें गिरके पुनः उनसे निकलतेथे ॥ ४१ ॥ और कोई केले के बनसे दीर्घकालमें भी नहीं निकलतेथे, और कोई तो कंटकयुक्त महान लता-गुल्मके वनमेंही लुप्त रहतेथे ॥ ४२ ॥ और कोई काम्य धर्ममें परायण होके कहीं भी शान्तिरूप स्थिति नहीं पातेथे हे रघुकुलतिलक ! ऐसी वह महाटवी है ॥ ४३ ॥ और हे रामजी ! अब भी वह महाटवी (संसाररूप महा जंगल) है जिसमें उसी प्रकारके पुरुष स्थितहैं और सब व्यवहार वाली उस महाटवीको तुमने देखाहै परन्तु बुद्धितत्त्वकी कोमलतासे तुम उसे स्मरण नहीं करते॥४४॥ हे रामजी ! अति भयंकर अनेक प्रकारके कण्टकोंसे पूर्णांग तथा निबिड अन्धकारसे गहन उस भवाटवीको मनुष्य जन्म पाकर भी अभाग्यवश ज्ञानके न पानेसे विषयी प्राणीलोग पुष्पोंकी वाटिकाके समान सेवन करती है ॥ ४५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे चित्तोपाख्याने नाम अष्टनवतितमः सर्गः ॥ ९८ ॥

नवनवतितमः सर्गः ॥ ९९ ॥

रामचन्द्रजीके प्रश्नके व्याजसे पूर्वोक्त जो चित्ताख्यानहै उसका तात्पर्य्य क्रमसे तथा विपरीत क्रमसे इस ९९ के सर्गमें वर्णन कियागया है ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ क्वासौमहाटवीब्रह्मन्कदादृष्टाकथंमया ॥ केचतेपुरुषास्तत्रकिंतत्कर्तुंकृतोद्यमाः ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ रघुनाथमहाबाहोशृणुवक्ष्यामितेखिलम् ॥ नसामहाटवीरामदूरेनैवचतेनराः ॥ २ ॥ येयंसंसारपदवीगंभीरापारकोटरा ॥ तांतांशून्यांविकाराढ्यांविद्धिराममहाटवीम् ॥ ३ ॥ विचारालोकलभ्येयंयदैकेनैववस्तुना ॥ पूर्णानान्येनसंयुक्ताकेवलेवतदैवसा ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–हे ब्रह्मन् ! वह महाटवी कहां है ? और किसप्रकार और कहां ? मैंने उसे कहां देखा और वे मनुष्य कौन हैं जो अपनेही देहोंपर तथा कूप और करंजादि बनमें प्रवेश करनेको उद्यम करतेथे ? ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे महाबाहो रघुनाथ ! सुनो मैं तुमको सम्पूर्ण कहूंगा हे रामजी ! न तो वह महाटवी दूर है और न वे मनुष्य ॥ २ ॥ जो यह गम्भीर और अपार कोटर (उदर) सहित प्रसिद्ध यह संसार पदवी है इसीको शून्य तथा अनके विकारोंसे पूर्ण महाटवी तुम जानो ॥ ३ ॥ और जब विचाररूपी प्रकाशसे अद्वितीय आत्मतत्त्व पूर्ण और अन्य वस्तु युक्त नहीं भान होती अर्थात् परमार्थदृष्टिसे ब्रह्मरूपही भासती है तब यह केवल शून्यहीहै और जगत् दृष्टिसे अनेक विकारसे पूर्णही है ॥ ४ ॥

तत्रयेतेमहाकाराःपुरुषाःप्रभ्रमंतिहि ॥ मनांसितानिविद्धित्वंदुःखेनिपतितान्यलम् ॥ ५ ॥ द्रष्टायोयंमवेकोसमहामते ॥ विवेकेनमयातानिदृष्टान्यन्येननानघ ॥६॥ मयातान्येवबोध्यंतेविवेकेनमनांप्रकाशेनकमलानीवभानुना ॥ ७ ॥ मत्प्रबोधंसमासाद्यमत्प्रसादान्महामते ॥ मनां चि॰ तान्थुप॰ त्प ॥ ८ ॥

अर्थ—उस संसाररूपी महाटवीमें जो महान् आकारवाले पुरुष भ्रमण करतेहैं उनको तुम जानो वे दुःखरूपी गढेमें सब भ्रान्तिसे गिरे हैं ॥ ५ ॥ हे महामते ! और यह जो मैं उनका द्रष्टाहूं यह विवेकहै क्योंकि विवेकसेही मैंने उनको देखेहैं ॥६॥ हे रामजी ! मैं विवेकसेही निरन्तर उन मनोंको ऐसे बोधित करताहूं जैसे उत्तम प्रकाशसे कमलोंको सूर्य खिलाताहै ॥ ७ ॥ हे महामते ! तत्वज्ञानको प्राप्त होके उसीके प्रतापसे कितने मन शांतिके द्वारा मोक्षको प्राप्त होगये ॥ ८ ॥

कानिचिन्नाभिनंदंतिमांविवेकंविमोहतः ॥ मतिरस्कारवशतःकूपेष्वेवपतंत्यधः ॥९॥ येतेंधकूपागहनानरकांस्तेरघूद्वह ॥ कदलीकाननंयानिसंप्रविष्टानितानितु ॥ १० ॥ स्वर्गैकरसिकानित्वंमनांसिज्ञातुमर्हसि ॥ प्रविष्टान्यंधकूपांतर्निर्गतानिनयानितु ॥ ११ ॥ महापातकयुक्तानितानिचित्तानिराघव ॥ कदलीकाननस्थानिनिर्गतानिनयानितु ॥ १२ ॥

अर्थ—और कितने मन अज्ञानके कारण मुझ विवेकको नहीं चाहते और विवेकरूपी मेरे तिरस्कारसे अधम (अविवेकी) होके अन्धकूपमें गिरते हैं ॥९॥ और हे रघुकुलतिलक ! जो गहन अन्धकूप कहे गये हैं उनको तुम नरक जानो और जो लोग कदलीके बनमें प्रविष्ट हुयेहैं वे तो ॥ १० ॥ स्वर्ग मात्रके रसिक मनहैं ऐसा तुम जाननेके योग्य हो और जो अन्धकूपमें गिरेहैं और उसमेंसे नहीं निकले ॥ ११ ॥ उनको हे रामजी ! तुम महापातक युक्त चित्त जानो और जो कदलीके बनमें स्थितहैं और उनमेंसे जो नहीं निकले ॥ १२ ॥

पुण्यसंभारयुक्तानितानिचित्तानिराघव ॥ करंजवनयातानिनिर्गतानिनयानितु ॥ १३ ॥ तानिमानुष्यजातानिचित्तानिरघुनंदन ॥ कानिचित्संप्रबुद्धानितन्मुक्तानिबंधनात् ॥ १४ ॥ कानिचिद्बहुरूपाणियोनेर्योनिविशंतिहि ॥ मनांसितानितिष्ठंतिनिपतंत्युत्पतंतिच ॥ १५ ॥ यत्तत्करंजगहनंतत्कलत्ररसंविदुः ॥ दुःखकंटकसंबाधंमानुष्यंविविधैषणम् ॥ १६ ॥

अर्थ—उन चित्तोंको हे राघव ! पुण्यसमूहोंसे युक्त हैं, ऐसा तुम जानो और जो करंज (कंटक युक्त) बनमें उत्पन्न हुये और उनसे नहीं निकले ॥ १३ ॥ वे चित्त हे रघुनन्दन ! मनुष्यरूपमें परिणतहैं और उनमेंसे कितने मनुष्य ज्ञानी होके संसारबन्धनसे मुक्त होगये ॥ १४ ॥ और कितने मन अनेकरूप होके एक योनिसे दूसरी योनिमें प्रवेश करतेहैं स्थित रहतेहैं नरकमें गिरतेहैं और स्वर्गमें भी जातेहैं ॥ १५ ॥ और जो करंजवन कहा गया है वह दुःखरूपी कंटकसे पूर्ण मनुष्यभावमें परिणत और विविध प्रकारकी इच्छा सहित कुटुम्बका स्नेहयुक्त चित्तहै ॥ १६ ॥

करंजगहनंयानिप्रविष्टानिमनांसितु ॥ मानुष्येतानिजातानितत्रैवरसिकानिच ॥ १७ ॥ कदलीकाननंयत्तच्छशांककरशीतलम् ॥ तन्मनोल्हादनकरंस्वर्गंविद्धिरघूद्वह ॥ १८ ॥ कानिचित्पुण्यभूतेनतपसाधारणात्मना ॥ धारयंतिशरीराणिसंस्थितान्युदितान्यपि ॥१९॥ येरहंपुंभिरबुधैर्बुद्धिचित्ततिरस्कृतः ॥ तैर्मनोभिरनात्मज्ञैःस्वविवेकस्तिरस्कृतः ॥ २० ॥

अर्थ—जो मन गहन करंजबनमें प्रविष्ट हुयेहैं वे मनुष्यरूपमें परिणत हुये और वहांही विषयरसमें परायण हो गये ॥१७॥ और हे रघुकुलश्रेष्ठ रामजी ! जो चन्द्रमाके किरणके समान शीतल कदलीका बन कहा गयाहै उसे मनको आनन्द करनेवाला स्वर्ग जानो ॥१८॥ और कोई मन शास्त्रविहिन पुण्यके समूहरूप तपसे ध्येयपदार्थमें संलग्न होनेसे अर्थात् उपासनाके कारणसे ग्रह सप्तर्षि और ध्रुव आदि शरीरोंको धारण करतेहैं और अन्यकी अपेक्षा तेज तथा भोगकी अधिकतासे तथा तत्वज्ञानसे अभ्युदयको प्राप्त होके चिरकालतक स्थितहैं ॥ १९ ॥ और हे रामजी ! जिन अज्ञपुरुषोंने बुद्धि वा चित्तोंसे मेरा तिरस्कार कियाहै उन आत्माको न जाननेवाले मनोंने अपने विवेकका तिरस्कार किया है ॥ २० ॥

त्वयादृष्टोविनष्टोस्मित्वंमेशत्रुरितिद्रुतम् ॥ यदुक्तंतद्धिचित्तेनगलतापरिदेवितम् ॥ २१ ॥ रुदितंयन्महाक्रंदंपुंसाबह्वाशुराघव ॥ तद्भोगजालंत्यजतामनसारोदनंकृतम् ॥२२॥ अर्द्धप्राप्तविवेकस्यनप्राप्तस्यामलम्पदम् ॥ चेतसस्त्यजतोभोगान्परितापोभृशंभवेत् ॥ २३ ॥ रुदतांगानिदृष्टानिकारुण्येनावबोधिना ॥ कष्टमेतानिसंत्यज्यकिंप्रयामीतिचेतसा ॥ २४ ॥

अर्थ—और जो यह कहा गया कि तुह्मारे देखनेसे मैं नष्ट हुआ, अहो खेदहै तुम हमारे शत्रु हो यह नष्ट होते हुये चित्तका विलापहै क्योंकि ज्ञान (विवेक) की दृष्टि पडतेही चित्त नष्ट होताहै ॥ २१ ॥ और हे राघव ! जो पुरुषने बडे आर्तनादसे शीघ्र रोदन किया यह कहागयाहै वह भोगसमूहको त्यागते हुये मनने रोदन किया ॥ २२ ॥ क्योंकि जिस चित्तको अर्द्धज्ञान प्राप्त हुआहै और शुद्ध ब्रह्मपद नहीं प्राप्त हुआहै उसको भोगोंको त्यागते हुये अति संताप

होता है ॥ २३ ॥ और जो रोते हुये अपने अंगोंको देखा इसका यह तात्पर्य है कि कुछ विवेकवाले चित्तने स्त्रीपुत्रादिकी करुणासें देखा और कहा कि कष्ट है कि इनको त्यागकर मैं जाताहूं ॥ २४ ॥

अर्द्धप्राप्तविवेकस्यनप्राप्तस्यामलंपदम् ॥ चेतसस्त्यजतोंगानिपरितापोहिवर्द्धते ॥ २५ ॥ हसितंतुयदानंदिपुंसामदवबोधतः ॥ परिप्राप्तविवेकेनतत्तुष्टंरामचेतसा ॥ २६ ॥ परिप्राप्तविवेकस्यत्यक्तसंसारसंस्थितेः ॥ चेतसस्त्यजतोरूपमानंदोहिविवर्द्धते ॥ २७ ॥ हसतांगानिदृष्टानिपुंसायान्युपहासतः ॥ तानिदृष्टानिमनसाविप्रलम्भपदानिह ॥ २८ ॥

अर्थ—क्योंकि जिस चित्तको अर्द्ध (आधा) विवेक प्राप्त है और अमल पद नहीं प्राप्त है उसको स्नेह लोभ आदि अंगोंको छोडते संताप अधिक बढ़ता है ॥ २५ ॥ और जो मेरे जाननेसे पुरुषने हँसा यह कहा गया है उसका अर्थ यह है कि, विवेककी प्राप्तिसे चित्त संतुष्ट हुआ ॥ २६ ॥ क्योंकि जिस चित्तने विवेक प्राप्त कर लिया है और संसारकी स्थितिको त्याग दिया है तथा अपने रूप (चित्तत्व) को भी त्याग रहा है उसका आनन्द बढ़ता जाताहै ॥ २७ ॥ और पुरुष अपने अंगोंको देखकर हँसा इसका अर्थ यह है कि चित्तने स्नेह लोभ आदिको अपने वंचन (ठगने) का निमित्त देखकर हँसा ॥ २८ ॥

मिथ्याविकल्परचितैर्विप्रलब्धमहोचिरम् ॥ इत्यंगान्युपहासेनदृष्टानिस्वानिचेतसा ॥ २९ ॥ मनःप्राप्तविवेकंहिविश्रांतंविततेपदे ॥ प्राक्तनादीनताधारंहसन्पश्यतिदूरतः ॥ ३० ॥ यदसौसमवष्टभ्यमयापृष्टःप्रयत्नतः ॥ तद्विवेकोबलाच्चित्तमादत्तइतिदर्शितम् ॥ ३१ ॥ यदंगानिविशीर्णानिगतान्यंतर्द्धिमग्रतः ॥ तच्चित्तेनविनार्थाशाशाम्यतीतिप्रदर्शितम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—कि अहो ! मिथ्या विकल्प जालोंसे रचित विषयोंसे मुझे बहुत कालतक ठगा इस प्रकार उपहाससे चित्तने स्नेह लोभ आदि अंगोंको देखा ॥ २९ ॥ क्योंकि जिस मनको विवेक प्राप्त है और व्यापकपद (परब्रह्ममें) जिसको विश्राम मिला है वह पूर्वकालकी महा दीनताके आधार जो विषय जालहैं उनको दूरसेही देखकर हँसता है ॥ ३० ॥ और जो मैंने इसे रोककर प्रयत्नसे पूँछा इसका अर्थ यह है कि विवेकके बलसे चित्तको ग्रहण किया यह दर्शित किया ॥ ३१ ॥ और जो अंग सब छिन्न भिन्न होगये और देखते २ लुप्त होगये यह कहा गया इसका तात्पर्य यह है कि चित्तके विना पदार्थोंकी आशा शान्त होजाती है यह दिखलाया ॥ ३२ ॥

सहस्रनेत्रहस्तत्वंयत्पुंसःपरिवर्णितम् ॥ तदनंताकृतित्वंहिचेतसःपरिदर्शितम् ॥ ३३ ॥ यदात्मनिप्रहारौघैःपुमान्प्रहरतिस्वयम् ॥ तत्तत्कुकल्पनाघातैःप्रहरत्यात्मनोमनः ॥ ३४ ॥ पलायतेयत्पुरुषःस्वात्मनःप्रहरन्स्वयम् ॥ स्ववासनाप्रहारेभ्यस्तन्मनःप्रपलायते ॥ ३५ ॥ स्वयंप्रहरतिस्वांतंस्वयमेवस्वयेच्छया ॥ पलायतेस्वयंचैवपश्याज्ञानविजृंभितम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—और जो पुरुषके सहस्र हस्त और नेत्र हैं यह वर्णन किया गया है उससे यह तात्पर्य दिखलाया कि मनकी अनन्त आकृति (आकार) हैं ॥ ३३ ॥ और जो यह वर्णन किया गया कि पुरुष प्रहारोंके समूहोंसे अपने ऊपर आप प्रहार करता है उसका अर्थ यह है कि मन दुष्ट कल्पनाओंसे अपने ऊपर आपहि प्रहार करता है ॥ ३४ ॥ और जो यह वर्णन किया है कि पुरुष अपने ऊपर आपही प्रहार करते हुये भागता है उसका अर्थ यह है कि मन अपनी वासनारूप प्रहारों (चोटों) से आपही भागता है ॥ ३५ ॥ देखो इस अज्ञानकी लीला ! यह मन अपनी इच्छासे आपही अपने ऊपर प्रहार करता है और आपही भागता है ॥ ३६ ॥

स्ववासनोपतप्तानिसर्वाण्येवमनांसिहि ॥ स्वयमेवपलायंतेगंतुंयुक्तानितत्पदम् ॥ ३७ ॥ यदिदंविततंदुःखंतत्तनोतिस्वयंमनः ॥ स्वयमेवातिखिन्नंतुपुनस्तस्मात्पलायते ॥ ३८ ॥ संकल्पवासनाजालैःस्वयमायातिबंधनम् ॥ मनोलालामयैर्जालैःकोशकारक्रमिर्यथा ॥ ३९ ॥ यथानर्थमवाप्नोतितथाक्रीडतिचंचलम् ॥ भाविदुःखमपश्यन्स्वंद्रुलीलाभिरिवार्भकः ॥ ४० ॥

अर्थ—ब्रह्मपद जाननेमें उद्युक्त और अपनी वासनाहीसे विक्षोभित सब मन आपही भागते हैं ॥ ३७ ॥ जो यह विस्तारको प्राप्त दुःख है इसका विस्तार मन स्वयं करता है और उस दुःखसे अतिखिन्न होके आपही भागता ॥ ३८ ॥ जैसे अपने मुखसे लाला (लार) मय जालोंसे कोशकार कीडा आपही बन्धनमें आता है ऐसेही मन अपने और वासनाके जालोंसे आप बन्धनमें आता है ॥ ३९ ॥ जैसे बालक भावी दुःखको न देखताहुआ चपलतासे क्रीडा करता है और अनर्थको पाता है यही दशा मनकी है ॥ ४० ॥

अपश्यन्काष्ठरंध्रस्थंवृषणाक्रमणंयथा ॥ कीलोत्पाटीकपिर्दुःखमेतीदंहित्थामनः ॥ ४१ ॥ चिरपालनयाचैवचिरभावनयातथा ॥अभ्यासात्तुच्छतामेत्यनभूयःपरिशोचति ॥४२॥ मनःप्रमादाद्वर्द्धंतेदुःखानिगिरिकूटवत् ॥ तद्वशादेवनश्यंतिसूर्यस्याग्रेहिमंयथा ॥ ४३ ॥ यावज्जीवमनिंद्ययाचरमतेशास्त्रार्थसंजातयातुल्यंवासनयामनोहिमुनिवन्मौनेनरागादिषु ॥ पश्चात्पावनपावनंपदमजंतन्प्राप्यतच्छीतलंतत्संस्थेननशोच्यतेपुनरलंपुंसामहापत्स्वपि ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे चित्तोपाख्यानं नामैकोनशततमःसर्गः ॥ ९९ ॥ चित्तोपाख्यानं सम्पूर्णम् ॥

अर्थ—जैसे बढई (लोहार) लोग जंगलमें आधाकाष्ठ फाडके और उसमें कील लगाके दैवेच्छासे कहीं चलेजाँय और उसपर चपल वानर भावीदुःखको न देखकर उस काष्ठके छिद्रमें अपना वृषण लटकाके बैठजाँय और चंचलतासे कील उखाडनेसे दुःख पावे वैसेही यह मनभी पाता है ॥ ४१ ॥ चिरकालतक समाधिके पालन (करने) से तथा चिरकालतक आत्मभावनाके अभ्याससे यह मन तुच्छताको प्राप्तहोके पुनः शोच नहीं करता ॥ ४२ ॥ मनकेही प्रमाद (कुत्सित कर्म करने) से पर्वतोंके समूहके तुल्य दुःख बढते हैं, और मनके वश (एकाग्रता) से ऐसे नष्ट होते हैं जैसे सूर्यके सम्मुख हिम (पाला) ॥ ४३ ॥ यदि शास्त्रके अर्थसे उत्पन्न अनिन्दनीय वासनासे राग द्वेष आदि विषयोंमें समरस होके निरोधपूर्वक मुनिके समान मन रमण करै तो पश्चात् अतिपवित्र, जन्म आदि विकाररहित तथा अतिशीतल अर्थात् आध्यात्मिक आधिदैविक और आधिभौतिक तापोंका नाशक ब्रह्मपद प्राप्तकरके और उसमें चिरकाल स्थित होके पुरुष बडी २ महान आपत्ति योंमें भी शोच नहीं करता ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे चित्तोपाख्यानं नामैकोनशततमः सर्गः ॥ ९९ ॥ चित्तोपाख्यानं संपूर्णम् ॥

शततमः सर्गः ॥ १०० ॥

इस १०० के सर्गमें मनकी शक्ति ब्रह्मकी सर्व शक्तिता तथा अज्ञान मात्रसे अद्वैत ब्रह्ममें बन्धमोक्ष आदि कल्पना वर्णन की गई है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ चित्तमेतदुपायातंब्रह्मणःपरमात्पदात् ॥ अतन्मयंतन्मयंचतरंगःसागरादिव ॥ १ ॥ प्रबुद्धानांमनोरामब्रह्मैवेहहिनेतरत् ॥ जलसामान्यबुद्धीनामब्धेर्नान्यस्तरंगकः ॥ २ ॥ मनोरामाप्रबुद्धानांसंसारभ्रमकारणम् ॥ अपश्यतांबुसामान्यमन्यतांबुतरंगयोः ॥ ३ ॥ अप्रबुद्धदृशांपक्षेतत्प्रबोधायकेवलम् ॥ वाच्यवाचकसंबंधकृतोभेदःप्रकल्प्यते ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! परमात्म पद ब्रह्मसे अतन्मय (ब्रह्मभूत अज्ञानका विकार) और तन्मय (शुद्ध ब्रह्मका विवर्तरूप) यह मन ऐसे उत्पन्न हुआ है जैसे समुद्रसे तरंग ॥ १ ॥ हे रामजी ! ज्ञानियोंकी दृष्टिमें मन ऐसे ब्रह्मही है अन्य कुछ नहीं जैसे जलकी सामान्य सत्ता जाननेवालोंकी बुद्धिमें समुद्रसे पृथक् तरंग नहीं है ॥ २ ॥ हे रामजी ! अज्ञानियोंकाही मन संसारके भ्रमका कारण है जैसे जो जलकी सामान्य सत्ताको नहीं देखते वेही जल और तरंगमें भेद मानते हैं ॥ ३ ॥ अज्ञानियोंके पक्षमें और केवल उन्हींके उपदेशके अर्थ वाच्यवाचक संबन्धसे भेदसे भेदकी कल्पना की गई है ॥ ४ ॥

सर्वशक्तिपरंब्रह्मनित्यमापूर्णमव्ययम् ॥ नतदस्तिनतस्मिन्यद्विद्यतेविततात्मनि ॥ ५ ॥ सर्वशक्तिर्हिभगवान्यैवतस्मैहिरोचते ॥ शक्तितामेवविततांप्रकाशयतिसर्वगः ॥ ६॥ चिच्छक्तिर्ब्रह्मणोरामशरीरेष्वभिदृश्यते ॥ स्पंदशक्तिश्ववातेषुजडशक्तिस्तथोपले॥ ७ ॥ द्रवशक्तिस्तथांभःसुतेजःशक्तिस्तथानले॥ शून्यशक्तिस्तथाकाशेभावशक्तिर्भवस्थितौ ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! सर्वशक्तिमान् नित्य सर्वत्र पूर्ण और अविनाशी वह परब्रह्म परमात्माहै, ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं जो उस व्यापक परमात्मामें नहीं ॥ ५ ॥ वह भगवान् सर्व शक्तिमान् और यह सर्वशक्तिमत्ता उसको रुचती है और वह सर्वगामी इसी विलसत सर्वशक्तिताको सर्वत्र कार्य्यरूपसे प्रकट करता है ॥ ६ ॥ हे रामजी ! अण्डजादि चारों प्रकारके प्राणियोंके समूहोंमें ब्रह्मकी चेतनशक्ति देख पडती है गतिशक्ति वायुमें और जडशक्ति

पाषाणमें दीखती है ॥ ७ ॥ इसी प्रकार द्रवशक्ति जलमें तेजशक्ति वायुमें शून्य (अवकाश देनेकी) शक्ति आकाशमें तथा व्यवहारकी योग्यता रूप शक्ति संसारकी स्थितिमें देख पडती है ॥ ८ ॥

ब्रह्मणःसर्वशक्तिर्हिदृश्यतेदशदिग्गता ॥ नाशशक्तिर्विनाशेषुशोकशक्तिश्चशोकिषु ॥ ९ ॥ आनन्दशक्तिर्मुदितेवीर्यशक्तिस्तथाभटे ॥ सर्गेषुसर्गशक्तिश्चकल्पांतेसर्वशक्तिता ॥ १० ॥ फलपुष्पलतापत्रशाखाविटपमूलवान् ॥ वृक्षबीजेयथावृक्षस्तथेदंब्रह्मणिस्थितम् ॥ ११ ॥ प्रतिभासवशादेवमध्यस्थंचित्तजाड्ययोः ॥ जीवेतराभिधंचित्तमंतर्ब्रह्मणिदृश्यते ॥ १२ ॥

अर्थ—ब्रह्मकी सर्वशक्ति दशोंदिशाओंमें व्याप्त देख पडती है, कारणोंमें तिरोभावशक्ति तथा शोकसे उत्पन्न देहके उत्पन्न करनेकी शक्ति शोकयुक्त प्राणियोंमें है ॥ ९ ॥ प्रसन्नमें आनन्दशक्ति, शूरवीरमें पराक्रमशक्ति, सर्गोंमें सृष्टि रचनेकी शक्ति, तथा कल्पांतप्रलयमें सर्वशक्तिता देख पडती है क्योंकि सब कार्य्योंका बीज मूल यही है इसीसे संस्काररूपसे रहते हैं ॥ १० ॥ जैसे वृक्षके बीजमें फल, पुष्प, लता, पत्र, शाखा, विटप और मूल सहित वृक्ष रहता है ऐसेही ब्रह्ममें यह जगत् स्थित है ॥ ११ ॥ चित्त और जडताके मध्यमें स्थित और जिसका दूसरा नाम जीव है ऐसा यह चित्तप्रतिभास (साक्षी चेतन) के बलसे ब्रह्ममें स्थित है ॥ १२ ॥

नानातरुलतागुल्मजालपल्लवशालयः ॥ निर्विकल्पकचिन्मात्रंनानानिर्ज्ञातकल्पना ॥ १३ ॥ ब्रह्मैवेदमहंतत्त्वंजगत्पश्याद्यराघव ॥ ःआत्मासर्वगोनामनित्योदितमहावपुः १४ ॥ यन्मनाङ्मननींशक्तिधत्तेतन्मनउच्यते ॥ पिच्छभ्रांतिर्यथाव्योम्निपयस्यावर्त्तधीर्यथा ॥ १५ ॥ प्रतिभासकलामात्रंमनोजीवस्तथात्मनि ॥ यदेतन्मनसोरूपमुदितंमननात्मकम् ॥ १६ ॥

अर्थ—नाना प्रकारके वृक्ष लता गुल्मसमूह पल्लव तथा धान्यादि यह सब दृश्य प्रपंच अज्ञात चिन्मात्रके विवर्त हैं. इस लिये शुद्ध चेतन रूपहीहै ॥ १३ ॥ हे रामजी ! तुम ऐसा देखो कि यह जगत् और अहम् इस रूपसे भासमान जो जीवतत्त्वहै वह प्रत्यक् चिद्रूप ब्रह्महीहै और वह चिद्रूप आत्मा सर्वव्यापी और नित्य महान् शरीरसे प्रकटहै ॥ १४ ॥ जो चेतन किंचित् मात्र मननशक्तिको धारण करताहै उसीको मन कहतेहैं और आकाशमें जैसे मोरके पच्छके तुल्य नीलताकी भ्रांति होतीहै, और जलमें आवर्त (भँवरहे) बुद्धि होतीहै ऐसेही प्रतिभासकी कलामात्र मन जीव आत्मामें है. जो यह मननरूप मनका स्वरूप आविर्भूतहै ॥ १५ ॥ १६ ॥

ब्राह्मीशक्तिरसौतस्माद्ब्रह्मैवतदरिंदम ॥ इदंतदहमित्येवविभागःप्रतिभासजः ॥ १७ ॥ मनसोब्रह्मणोन्यच्चमोहेपरमकारणम् ॥ यच्चैतन्मनस्येवकिंचित्सदसदात्मकम् ॥१८॥ व्याशब्दितंसर्वशक्तेस्तांशक्तिब्रह्मतांविदुः ॥ मनःसत्तात्मकंनामयथैतन्मनसिस्थितम् ॥ १९ ॥ यथर्त्तौःशक्तयस्तद्वज्जीवेहाब्रह्मणिस्थिताः ॥ व्याप्तसर्वर्त्तुकुसुमाक्ष्मादेशविधिभेदतः ॥ २० ॥

अर्थ—यह सब ब्रह्मकी शक्तिहै इसलिये हे शत्रुनाशक रामजी ! यह सब ब्रह्माण्ड ब्रह्मरूपहीहै और यह वह और मैं यह सब विभाग प्रतिभाससे उत्पन्न हुवाहै ॥१७॥ मन जीव और ब्रह्मके भेदमें जो २ परम कारण कामादि लोकमें कहाहै वह सब मनमें आविर्भाव तिरोभावसे सदसदात्मक सर्वशक्तिमान् ब्रह्मकी ब्रह्मताही कहीगईहै और कुछ नहीं और जैसे सत्तात्मक मन संसर्गाध्याससे मनमें स्थितहै ॥ १८ ॥१९ ॥ और जैसे ऋतु वसंन्त आदिकी शक्ति वृक्षमें रहती है ऐसेही जीवकी चेष्टा मनके धर्म ब्रह्ममें स्थित हैं जैसे सब ऋतुके पुष्पआदि व्याप्त भीपृथिवी परन्तु उन २ देशोंमें बीजके संस्कार आदिके भेदकी व्यवस्थासेही उत्पन्न करती है ॥ २० ॥

यथादधानिपुष्पाणितथाचित्तानिलोककृत् ॥ क्वचित्क्वचित्कदाचिद्धितस्मादायांतिशक्तयः ॥ २१ ॥ देशकालादिवैचित्र्यात्क्ष्मातलादिहशालयः ॥ नजातंप्रतिभासेनलेनैवान्येनपश्यति ॥२२॥ प्रतियोगिव्यवच्छेदसंख्यारूपादयश्चये ॥ मनःशब्दैःप्रकल्प्यंतेब्रह्मजान्ब्रह्मविद्धितान् ॥ २३ ॥ यथायथास्यमनसःप्रतिभासःप्रवर्तते ॥ तथातथैवभवतिदृष्टांतोत्रकिलेंदवाः ॥ २४ ॥

अर्थ—ऐसेही ब्रह्मा भी व्यवस्थासे चित्तशक्तियोंको धारण करता है उस परमात्मासे कहीं २ और कभी व्यवस्थित फलरूपसे शक्तियां इस प्रकार प्रकट होती हैं ॥ २१ ॥ जैसे देशकाल आदिकी विचित्रतासे पृथिवीतलसे धान्यकी शक्ति प्रकट होती है,यथार्थमें भी प्रतिभाससे जो उत्पन्न हुआ वह कुछ नहीं उत्पन्न हुआ क्योंके प्रातिभासिक (मृगतृष्णाआदि) को कर्तताही नहीं सकती और न किसीको कोई किसीके द्वारा देखता है क्यों कि " यत्रत्वस्याद्वैतमेवाभूत् तत्र केन पश्येत् " जहां केवल आत्मसत्ता है वहां कौन किसको किसके द्वारा देखता है ॥ २२ ॥ और जो प्रतियोगी (जिसका अभाव यह, वा विशेषण) व्यवच्छेद (एव शब्दसे जो अलग किया जाता है) संख्या

और रूपादि जो जगत्‌की विचित्रता हैं वे सब मनशब्दसे कल्पित हैं और ब्रह्मसेही विवर्तरूपसे उत्पन्न हैं इसलिये उनको ब्रह्मही जानो ॥ २३ ॥ जिस २ प्रकार मनका प्रतिभास प्रवृत्त होताहै उसी २ प्रकार सब कुछ निश्चयरूपसे होता है इसमें दृष्टान्त इन्दुके पुत्र ऐन्दव हैं ॥ २४ ॥

स्वयमक्षुब्धविमलेयथास्पंदोमहांभसि ॥ संसारकारणंजीवस्तथायंपरमात्मनि ॥ २५ ॥ ब्रह्मस्यसर्वंचितंरामब्रह्मैवावर्ततेसदा ॥ कल्लोलोर्मितरंगौघैरब्धेर्जलमिवात्मनि ॥ २६ ॥ द्वितीयानास्तिसत्तैकानामरूपक्रियात्मिका ॥ परेनानातरंगेऽब्धौकल्पनेवजलेतरा ॥ २७ ॥ जायतेनश्यतितथायदिदंयातितिष्ठति ॥ तदिदंब्रह्मणिब्रह्मब्रह्मणाचविवर्त्तते ॥ २८ ॥

अर्थ—जैसे क्षोभरहित महाजलमें तरंगरूप गति है, ऐसे परमात्मामें संसारकी कल्पना कारण जीवरूप ब्रह्म है दूसरा नहीं ॥ २५ ॥ हे रामजी ! ज्ञानीप्राणीको ब्रह्मही सर्वत्र पूर्ण भान ऐसे होता है जैसे समुद्रका जल अपनेही रूपमें कल्लोल, ऊर्मि (छोटीलहर) और तरंगों (बडी लहरों) से पूर्ण रहता है ॥ २६ ॥ परब्रह्ममें नाम रूपविकार सहित दूसरी कोई सत्ता ऐसे नहीं जैसे नाना तरंगयुक्त समुद्रमें जलसे अन्य दूसरी सत्ता नहीं है ॥ २७ ॥ और जो यह उत्पन्न होता है नष्टही होता है जाता है तथा स्थित है इत्यादि विकार भान होते हैं यह सब ब्रह्ममें ब्रह्मही शुक्तिमें रजतके तुल्य अतात्विक रूपसे प्रतिभासता है ॥ २८ ॥

स्वात्मन्येवातपस्तीव्रोमृगतृष्णिकयायथा ॥ विचित्रेणविचित्रोपिप्रस्फुरत्यात्मनातथा ॥ २९ ॥ करणंकर्मकर्त्ताचजननंमरणंस्थितिः ॥ सर्वंब्रह्मैवनह्यस्तितद्विनाकल्पनेतरा ॥ ३० ॥ नलोभोस्तिनमोहोस्तिनतृष्णास्तिनरंजना ॥ कआत्मन्यात्मनोलोभस्तृष्णामोहोथवाकुतः ॥ ३१ ॥ आत्मैवेदंजगत्सर्वमात्मैवकलनाक्रमः ॥ हेमांगदतयेवायमात्मोदोतिमनस्तया ॥ ३२ ॥

अर्थ—जैसे तीव्र आतप (घाम) अपनेही स्वरूपमें मृगतृष्णाकी नदीरूपसे भासता है ऐसेही नाम रूपसे रहित भी आत्मा अपनेहीमें विचित्ररूपसे भासता है ॥ २९ ॥ करण कर्म और कर्ता, तथा जन्म मरण और स्थिति यह सब वही हैं क्योंकि उसके विना अन्य कोई कल्पना नहीं है ॥ ३० ॥ न लोभ है, न मोह है और न तृष्णा न आसक्ति है क्यों कि आत्माका आत्मामें क्या लोभ क्या मोह और कहांसे और क्या तृष्णा है॥ ३१ ॥ यह जगत् सब आत्माही है और जो कुछ कल्पनाका क्रम है वह सब आत्माही है और जैसे सुवर्ण अंगदरूप पाय सुवर्णसे प्रकट होताहै ऐसेही मनरूपसे आत्माही प्रकट है ॥ ३२ ॥

अबुद्धंयत्परंधामतच्चित्तंजीविउच्यते ॥ अपरिज्ञातएवाशुबंधुरायात्यबंधुताम् ॥ ३३ ॥ चिन्मयेनात्मनाज्ञेनस्वसंकल्पनयास्वयम् ॥ शून्यतागगनेनेवजीवताप्रकटीकृता ॥ ३४ ॥ आत्मैवानात्मवदिहजीवोजगतिराजते ॥ द्वींदुत्वमिवदुर्दृष्टेःसच्चासच्चसमुत्थितम् ॥ ३५ ॥ मोहार्थशब्दार्थदृशोरेतयोरत्यसंभवात् ॥ सत्यत्वादात्मनश्चैवकात्माबद्धःकमुच्यते ॥ ३६ ॥

अर्थ—अज्ञात जो परम धाम है वही चित्त तथा जीव कहलाता है, क्योंकि अज्ञात जो बंध है वही शीघ्र अबन्ध होजाता है ॥ ३३ ॥ जैसे अज्ञानका विषय अशून्य आकाश शून्यता प्रकट किया है ऐसे ही अज्ञात चिन्मय आत्मानेही अपने संकल्पसे जीवता प्रकट किया है ॥ ३४ ॥ हे रामजी ! यह जीव आत्मस्वरूप होके भी अनात्मभूत अहंकारादिके साथ अभेद होनेसे अहं प्रत्ययके विषयके तुल्य जगत्‌शोभित होरहाहै और यह दूषित दृष्टिको दो चन्द्रके समान द्वितीय रूपसे असत् और अपने पारमार्थिक रूपसे सत्स्वरूपसे आविर्भूत है ॥ ३५ ॥ हे रामजी! व्यामोहके निमित्त शब्द अर्थकी दृष्टियों अत्यन्त असंभव होनेसे और आत्मा सदा सत्य असंग रूप होनेसे यह आत्मा कहां बद्ध है और कहां मुक्त होता है? ॥ ३६ ॥

नित्यासंभवबंधस्यबद्धोस्मीतिकुकल्पना ॥ यस्यकल्पनिकस्तस्यमोक्षोमिथ्यानतत्त्वतः ॥ ३७ ॥ श्रीरामउवाच ॥ मनोयंनिश्चयंयातितत्तद्भवतिनान्यथा ॥ तेनकाल्पनिकोनास्तिबंधःकथमिहप्रभो ॥ ३८ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ मिथ्याकाल्पनिकीवेयंमूर्खाणांबंधकल्पना ॥ मिथ्यैवाभ्युदितातेषामितरामोक्षकल्पना ॥ ३९ ॥ एवमज्ञानकादेवबंधमोक्षदृशोऽस्मृतेः ॥ वस्तुतस्तुनबंधोस्तिनमोक्षोस्तिमहामते ॥ ४० ॥

अर्थ—जिसको बन्धनका नित्य असंभव है उसको मैं बद्ध हूं यह कुकल्पनाहै, न मोक्षोस्ति जब जिसको बन्धन काल्पनिक है उसको मोक्ष भी मिथ्याही है न कि वास्तविक॥ ३७॥ श्रीरामजी बोले—हे भगवन् ! यह मन जैसा निश्चय करता है वैसाही होता है औरतरह नहीं इस मनकी कल्पनासे काल्पनिक भी बन्धनही है यह कैसे ? ॥ ३८ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी!जैसे स्वप्नके पदार्थ जाग्रतदशामें मिथ्या हैं ऐसे मूर्खोंकी जो बद्ध कल्पना है वह भी मिथ्या

है और ऐसेही उनके लिये मोक्षकी कल्पना भी मिथ्या है अभ्युदयको प्राप्त है ॥ ३९ ॥ हे महामते रामजी! पूर्वोक्त रीतिसे तुच्छ अनिर्वचनीय अज्ञानसेही बन्ध और मोक्ष दृष्टि इनके सत्य होनेमें स्मृति (न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता, न मोक्षेच्छु न मुक्त यह यथार्थहै) विरोधहै क्योंकि यथार्थमें बन्धहै न मोक्षहै ॥ ४० ॥

कल्पनायाअवस्तुत्वंसंप्रबुद्धमतिंप्रति ॥ रज्ज्वहेरिवहेप्राज्ञतत्त्वबुद्धमतिंप्रति ॥ ४१ ॥ बंधमोक्षादिसंमोहोनप्राज्ञस्यास्तिकश्चन ॥ संमोहबंधमोक्षादिह्यज्ञस्यैवास्तिराघव ॥ ४२ ॥ आदौमनस्तदनुबंधविमोक्षदृष्टीपश्चात्प्रपंचरचनाभुवनाभिधाना ॥ इत्यादिकास्थितिरियंहिगताप्रतिष्ठामाख्यायिकासुभगबालजनोदितेव ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे चित्तचिकित्सापूर्वकंचित्तोत्प त्तिवर्णनं नाम शततमःसर्गः ॥ १०० ॥

अर्थ—हे प्राज्ञ रामजी! रज्जुके सर्पके समान कल्पना की जो अवस्तुता कही गईहै वह ज्ञानी प्रति जो पूर्वोक्त अनिर्वचनीयता कही गई है वह अज्ञानीके प्रति॥४१॥हेरामजी!बन्ध और मोक्षादिका जो व्यामोहहै वह तत्ववेत्ताको कुछ भी नहीं है क्योंकि बन्ध मोक्षादिकामोह अज्ञानी को ही है॥४२॥हे सुभग रामजी! प्रथम माया शबलित परमात्मासे मन उसके पश्चात् बन्ध और मोक्षकी दृष्टि और उसके पश्चात् भुवनोंकी रचना इत्यादिक स्थिति ऐसे प्रतिष्ठाको प्राप्तहुई है जैसे धात्री(धाई) की कही हुई बालकके प्रति वक्ष्यमाण आख्यायिका गाथा ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे चित्तचिकित्सा पूर्वकं चित्तोत्पत्ति वर्णनं नाम शततमः सर्गः ॥ १०० ॥

एकाधिकशततमः सर्गः ॥ १०१ ॥

अर्थशून्य भी परंतु संकल्पसे सैकडों विकल्प सहित बालककी आख्यायिका क्रमवाला दृष्टांत इस १०१ सर्गमें वर्णन किया गया है ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ किमुच्यतेमुनिश्रेष्ठबालकाख्यायिकाक्रमः ॥ क्रमेणकथयैतन्मेमनोवर्णनकारणम् ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच॥ कोपिमुग्धमतिर्बालोधात्रींपृच्छतिराघव ॥ कांचिद्विनोदिनींधात्रिवर्णयाख्यायिकामिति ॥ २ ॥ साबालस्यविनोदायधात्रीतस्यमहामते ॥ आख्यायिकांकथयतिप्रसन्नमधुराक्षराम् ॥३॥ क्वचित्संतिमहात्मानोराजपुत्रास्त्रयःशुभाः॥ धार्मिकाःशौर्यमुदिताअत्यंतासतिपत्तने॥४॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-हे भगवन् बालककी आख्यायिका दृष्टान्त किसप्रकार लोकमें कहा जाता यह जो मनके वर्णनका कारण है उसे क्रमसे कहो ॥ १॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे राघव!सत्यासत्यके विवेकसे शून्य बुद्धिवाले बालकने अपनी धाईसे पूंछा कि हे धात्रि !कोई मनोरंजक कथा कहो ॥२॥ हे महामते रामजी! वह धात्री उस बालकके विनोदके अर्थ कर्णोंको आनन्द दायक मधुर अक्षरवाली आख्यायिका कहती है ॥ ३ ॥ हे पुत्र! जिसके बडे विशाल शाखा नगर (महल्ले) शून्य थे ऐसे किसी अत्यन्त असत्(सर्वथा असत्) नाम नगरमें महात्मा सुन्दरशरीर धार्मिक वीरतासे प्रसन्न तीन राजकुमार ऐसे रहते थे ॥ ४॥

विस्तीर्णेशून्यनगरेव्योम्निवजलतारकाः ॥ द्वौनजातौतथैकस्तुगर्भएवनसंस्थितः ॥ ५ ॥ अथात्युत्तमलाभार्थंकदाचित्समवायतः ॥ विबंधवःखिन्नमुखाःशोकोपहतचेतसः ॥ ६ ॥ तेतस्माच्छून्यनगरान्निर्गताविततानना: ॥ गगनादिवसंश्लिष्टाबुधशुक्रशनैश्चराः ॥ ७ ॥ शिरीषसुकुमारांगाःपृष्ठतोर्केणतापिताः ॥ मार्गेहनिगताग्रीष्मतापार्त्ताःपल्लवाइव ॥ ८ ॥

अर्थ—जैसे आकाशमें जलमय तारा, उन तीनों पुत्रोंमेंसे दो तो पैदाही नहीं हुये और एकतो माताके गर्भमेंही नहीं आया ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर कभी दैवसे बन्धुओंके मरनेसे और दुर्भिक्षसे खिन्नमुख और शोचसे नष्ट चित्त होके परस्पर एकमत होके अपने अत्यन्त असत् नगरसे किसी उत्तम नगरके लाभार्थ निकले ॥ ६॥ हे पुत्र ! वे विशालमुखवाले तीनों राजपुत्र उस शून्यनगरसे ऐसे निकले जैसे आकाशसे मिले हुये बुध शुक्र और शनैश्चर ॥ ७ ॥ वे शिरीषके पुष्पके सदृश सुकुमार अंगवाले मार्गमें सूर्य्यके सन्तापसे ऐसे संतप्त हुये जैसे ग्रीष्मके तापसे कुम्हलायेहुये पत्ते ॥ ८॥

संतप्तमार्गसिकतादग्धपादसरोरुहाः ॥ हाताततेतिशोचंतोमृगायूथच्युताइव ॥ ९ ॥ दर्भाग्रभिन्नचरणास्तापखिन्नांगसंधयः ॥ उल्लंघ्यदूरमध्वानंधूलिधूसरमूर्त्तयः ॥ १०॥ मंजरीजालजटिलंफलपल्ल-

वमालितम् ॥ मृगपक्षिगणाधारंप्रापुर्मार्गेतरुत्रयम् ॥ ११ ॥ तस्मिन्वृक्षत्रयेवृक्षौद्वौनजातौमनागपि ॥ बीजमेवतृतीयस्यस्वारोहस्यनविद्यते ॥ १२

अर्थ—मार्गके रेत आदिसे संतप्त होगयेहैं चरण जिनके ऐसे थे, हा ! तात ऐसा कहके इस प्रकार शोचने लगे जैसे अपने झुंडसे विछुडे हुये मृग ॥९॥ कुशके अग्रभागसे छिन्नाभिन्न चरणवाले तापसे खिन्न शरीर धूलिसे धूसरवर्ण वे राजपुत्र बहुत दूर मार्गको उल्लंघन करके ॥ १० ॥ लतासमूहोंसे शोभायमान फल पत्रसे पूर्ण और नाना प्रकारके पक्षिगणोंके आधार तीन वृक्षको पाया ॥ ११ ॥ जिन तीनों वृक्षोंमेंसे दो तो कुछभी उत्पन्न नहीं हुएथे और तीसरेको सुखसे जाननेको बीज ही नथा ॥ १२ ॥

विश्रांतास्तेपरिश्रांतास्तत्रैकस्यतरोरधः ॥ पारिजाततलेस्वर्गेशक्रानिलयमाइव ॥ १३ ॥ फलान्यमृतकल्पानिभुक्त्वापीत्वाचतद्रसम् ॥ कृत्वागुलुच्छकैर्मालांचिरंविश्रम्यतेययुः ॥ १४ ॥ पुनर्दूरतरंगत्वा मध्याह्नेसमुपस्थिते ॥ सरित्त्रितयमासेदुस्तरंगतरलारवम् ॥ १५ ॥ तत्रैकापरिशुष्कैवमनागप्यंबुनद्वयोः ॥ विद्यतेसरितोर्दृष्टिरंधलोचनयोरिव ॥ १६ ॥

अर्थ—उनमेंसे एक वृक्षके नीचे ऐसे विश्राम किया जैसे स्वर्गमें कल्पवृक्षके नीचे इन्द्र अग्नि और यम ॥ १३॥ उस वृक्षके अमृततुल्य फलोंको खाकर तथा वैसाही उसके रसको पीकर तथा पुष्पके गुच्छोंकी माला पहिनकर और चिरकालतक विश्राम करके वहांसे चलेगये ॥१४॥ पुनः बहुत दूर जाके जब मध्यान्ह (दोपहर) हुआ तो तरंगोंसे चंचलतायुक्त शब्द करते हुई तीन नदियां मिलीं ॥ १५ ॥ उनमेंसे एकतो सर्व था शुष्क थी और शेष (वाकी) दोनोंमें अन्धेके नेत्रोंमें दृष्टिके तुल्य कुछभी जल नथा ॥ १६ ॥

परिशुष्काभृशंयासौतस्यांतेसस्नुरादृताः ॥ घर्मार्त्ताइवगंगायांब्रह्मविष्णुहराइव ॥ १७ ॥ चिरंकृत्वा जलक्रीडांपीत्वाक्षीरोपमंपयः ॥ जग्मुस्तेराजतनयाःप्रहृष्टमनसःस्वयम् ॥ १८ ॥ अथासेदुर्दिनस्यांते लंबमानेदिवाकरे ॥ भविष्यन्नवनिर्माणंनगरंनगसन्निभम् ॥ १९ ॥ पताकापद्मिनीव्याप्तंनीलाकाशजलाशयम् ॥ दूरश्रुतसमुल्लापगायन्नागरमण्डलम् ॥ २० ॥

अर्थ—जो नदी सूखगईथी उसीमें घामसे पीडित वे तीनोंने प्रेमसे ऐसे स्नान किया जैसे गंगाजीमें ब्रह्मा विष्णु और महादेव ॥१७॥ दीर्घकालतक जलक्रीडा करके और दुग्धके समान उसके जलको पीकर वे राजपुत्र स्वयं प्रसन्नचित्त हुये ॥ १८ ॥ और इसके पश्चात् जब दिनके अन्तमें सूर्य लंबमान हुये तो नूतन रचनावाले भविष्यत् (होनेवाले) नगरमें जो कि पर्वतके तुल्य ऊंचा था उसमें पहुँचे ॥ १९ ॥ पताका और कमलिनीसे पूर्ण नील आकाशके समान सुन्दर बाग शून्य तड़ाग थे जिसमें और नगरनिवासियोंके मण्डलका गान जहांपर सुन पडताथा ऐसे ऐसे नगरमें प्राप्त हुये ॥ २० ॥

ददृशुस्तत्ररम्याणित्रीणिसद्भवनानिते ॥ मणिकांचनगेहानिशृंगाणीवमहागिरेः ॥ २१ ॥ अनिर्मिते द्वेसदनेएकंनिर्भित्तितत्रवै ॥ अभित्तिमंदिरंचारुप्रविष्टास्तेनरास्त्रयः ॥ २२ ॥ संप्रविश्योपविश्याशुविहरन्तोवराननाः ॥ प्रापुःस्थालीत्रयंतत्रतप्तकांचनकल्पितम् ॥ २३ ॥ तत्रकर्परतांप्राप्तेद्वेएकाचूर्णतां गता ॥ जगृहुश्चूर्णरूपांतांस्थालींतेदीर्घबुद्धयः ॥ २४ ॥

अर्थ—और वहांपर सुमेरुके अंगके समान मणिजडित सुवर्णके गृह (कोठरी) सहित तीन उत्तम भवन देखा ॥ २१ ॥ उन तीनों स्थानोंमेंसे दो तो बनेही नथे और एक भित्तिशून्यथा, जो भित्तिरहित था उस उत्तम स्थानमें वे तीनों प्रविष्ट हुये ॥ २२ ॥ उसमें प्रवेश करके श्रेष्ठमुखवाले विहार करतेहुये ये तीनोंने सन्तप्त सुवर्णसे बनी हुई तीन स्थाली (बटलोही) पाया ॥ २३ ॥ उनमेंसे दो तो कपालरूप होगई और एक चूर २ होगईथी उन विशाल बुद्धियोंने जो स्थाली चूर २ हो गईथी उसीको ग्रहण किया ॥ २४ ॥

द्रोणैर्नवनवत्यातैस्तस्यांद्रोणेनचांधसः ॥ तत्रद्रोणशतंहीनंरंधितंबहुभोजिभिः ॥ २५ ॥ निमंत्रितास्त्रयस्तैस्तुब्राह्मणाराजसूनुभिः ॥ द्वौनिर्देहावथैकस्यमुखमेवनविद्यते ॥ २६ ॥ निर्मुखेनांधसस्तत्रभुक्तंद्रोणशतंसुत ॥ विप्रभुक्तावशेषंतुभुक्तमंधोनृपात्मजैः ॥ २७ ॥ त्रिभिस्तैराजपुत्राश्चपरांनिर्वृतिमागताः ॥ भविष्यन्नगरेतस्मिन्राजपुत्रास्त्रयोहिते ॥ सुखमद्यस्थिताःपुत्रमृगयाव्यवहारिणः २८ ॥

अर्थ—उसमें १०० सौ द्रोण (१० सेर अटकलमें) अन्नकी संख्या कम १०० सौ द्रोण चावलका भात अनेक व्यंजनके साथ बनाया॥२५॥उन राजपुत्रोंने तीन ब्राह्मणोंको नेवतरा किया उन ब्राह्मणोंमें से दोको शरीरही न था और एकको मुखही नथा ॥ २६ ॥ सो हे पुत्र! जिस ब्राह्मणको मुख न था उसने १०० द्रोण चावलका भात

खा गया और ब्राह्मणसे बचे हुये भातको उन तीनो राजपुत्रोंने खाया ॥ २७ ॥ भोजनके पश्चात् वे राजपुत्र अति तृप्त हुये और उस भविष्यत् नगरमें वे तीनो राजपुत्र मृगया (अहेर) करते हुये अब भी सुखी हैं ॥ २८ ॥

आख्यायिकैशाकथितामयारम्यातवानघ ॥ एतांहृदिकुरुप्राज्ञविदग्धस्त्वंभविष्यसि ॥ २९ ॥ धात्र्येतिकथितारामबालकाख्यायिकाशुभा ॥ तुष्टिंजगामबालश्वशुभाख्यायिकयाऽनया ॥३० ॥ एषाहिकथितारामचित्ताख्यानकथांप्रति ॥ बालकाख्यायिकातुभ्यंमयाकमललोचन ॥ ३१ ॥ इयंसंसाररचनास्थितिमेवमुपागता ॥ बालकाख्यायिकेवोग्रैःसंकल्पैर्दृढकल्पितैः ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे पापरहित पुत्र ! यह सुन्दर आख्यायिका तुह्मारे अर्थ मैंने कहा इसको कण्ठकर लो तो तुम पण्डित होजाओगे ॥ २९ ॥ हे रामजी ! इस सुन्दर आख्यायिका (कथा व किस्सा) को धात्रीने बालकको कहा और वह बालकभी इस शुभ कथासे प्रसन्न हुआ ॥ ३० ॥ हे कमलनेत्र रामजी ! चित्ताख्यानके अनन्तर जगत्का विकल्प मात्रही इस कथाका उदाहरणरूप यह बालकाख्यायिका मैंने तुमसे कही ॥ ३१ ॥ बालकाख्यायिके तुल्य यह संसारकी रचना उग्र (महान्) दृढतासे कल्पित संकल्पोंसे इस प्रकार दृढताको प्राप्त हुई है ॥ ३२ ॥

विकल्पजालकैवेयंप्रतिभासात्मिकानघ ॥ बंधमोक्षादिकलनारूपेणपरिजृंभते ॥ ३३ ॥ संकल्पमात्रादितरद्विद्यतेनेहकिंचन ॥ संकल्पवशतःकिंचिन्नकिंचित्किंचिदेववा ॥ ३४ ॥ द्यौःक्षमावायुराकाशंपर्वताःसरितोदिशः ॥ संकल्पकचितंसर्वमेवंस्वप्नवदात्मनः ॥ ३५ ॥ राजपुत्रास्त्रयोनद्योभविष्यन्नगरेयथा ॥ यथासंकल्परचनातथेयंहिजगत्स्थितिः ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे पापरहित रामजी ! प्रति भासरूप यह विकल्प जाति बन्धमोक्ष आदि कल्पना रूपसे विस्तृत होरहीहै ॥ ३३ ॥ हे रामजी ! जो कुछ यह भान होताहै वह संकल्पमात्रसे, पृथक् कुछ नहीं है और जो कुछ यह विकल्प समूह भासता है वह सब संकल्पकेही वशसे भान होता है और विकल्पमात्रसे जो कुछ भान हुआ है वह नहीं वा अनिर्वचनीयके तुल्य है ॥ ३४ ॥ अपने स्वप्नके तुल्य स्वर्ग पृथिवी वायु आकाश पर्वत नदियां और दिशा यह सब संकल्पकाही विस्तार है ॥ ३५ ॥ हे रामजी ! जैसे भविष्यत् नगरमें तीनों राजपुत्र नदियां तथा जैसे संकल्पकी रचना है वैसेही यह संसारकी स्थिति है ॥ ३६ ॥

संकल्पमात्रमभितःपरिस्फुरतिचंचलः ॥ पयोमात्रात्मकोंभोधिरंभसीवात्मनात्मनि ॥ ३७ ॥ संकल्पमात्रंप्रथममुत्थितंपरमात्मनः ॥ तदिदंस्फारतांयातंव्यापारैर्दिवसंयथा ॥ ३८ ॥ संकल्पजालकलनैवजगत्समग्रंसंकल्पमेवननुविद्धिविलासचेत्यम् ॥ संकल्पमात्रमलमुत्सृजनिर्विकल्पमाश्रित्यनिश्चयमवाप्नुहिरामशांतिम् ॥ ३९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे बालकाख्यायिका नामैकाधिकशततमः सर्गः ॥ १०१ ॥

अर्थ—यह चारों ओर जो स्फुरता (भासता) है वह सब संकल्प मात्र ऐसे है जैसे जल मात्र चंचल समुद्र अपने जलमात्र रूपमें भासता है ॥ ३७ ॥ प्रथम परमात्मासे संकल्पमात्रही आविर्भूत हुआ पीछे यह जगत् रूप ऐसे विशालताको प्राप्त हुआ जैसे सूर्य्य और प्राणियोंके व्यापारोंसे दिवस ॥३८॥ हे रामजी! यह समग्र जगत्, संकल्पमात्रकी कल्पना है और मनके विलास राग आदि वृत्ति, और उनके विषय जो हैं उनको भी तुम संकल्प मात्रही जानो इसलिये निर्विकल्प समाधिका आश्रय लेके संकल्पमात्रको त्यागदो और निश्चयपूर्वक शान्तिको प्राप्त हो ॥ ३९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे वालकाख्यायिका नामैकाधिकशततमः सर्गः ॥ १०१ ॥

द्व्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १०२ ॥

इस १०२ के सर्गमें अहंकार और संकल्पके क्षयका उपाय, अनात्मवर्गका विवेक तथा परमात्माकी नित्यता का वर्णन किया गया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ स्वसंकल्पवशान्मूढोमोहमेतिनपण्डितः॥ अक्षयेक्षयसंकल्पान्मुह्यतेशिशुरेवहि ॥ १ ॥ श्रीरामउवाच ॥ कोसौसंकल्पितःकेनक्षयेब्रह्मविदांवर ॥ असतैवमहामोहंयेनादात्तत्सदे

वहि ॥२॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ असताभूतसंघेनक्षयोहंकारनामधृक् ॥ वेतालःशिशुनेवेहमिथ्यैवपरिकल्पितः ॥ ३ ॥ एकस्मिन्नेवसर्वस्मिन्स्थितेपरमवस्तुनि ॥ कुतःकोयमहंनामकथंनामकिलोदितः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! अज्ञानी अपने संकल्पवशसे मोहको प्राप्त होता है न कि पण्डित, क्यों कि अक्षय परमात्मामें क्षय (नश्वरात्मा)के संकल्पसे बालक (मूढ) ही मोहित होता है ॥१॥ श्री रामजी बोले–हे ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ! यह संकल्प किया हुआ क्षय (नश्वरात्मा) कौन है? और उसका संकल्प करनेवाला कौनहै जिससे असत् निमित्तोंके कारण यह आत्मा महामोह संसारभ्रमको ग्रहण किया, तात्पर्य यह कि नित्यआत्मा नश्वरात्माका संकल्प करता है वा नश्वरात्माही अपना संकल्प करता है यदि प्रथम पक्ष कहो सो नहीं क्यों कि नित्यके स्वभावसे विरुद्ध है और दूसरा पक्षभी युक्त नहीं क्यों कि अपनेको आपही संकल्पसे रचना इसमें आत्माश्रय दोष है और संकल्पित भी नश्वरात्मा जड है वा चेतन, यदि जड है तो चित् आत्माके साथ अभेद नहीं होसकता और यदि चेतन कहो तो चित् संकल्पका विषय नहीं हो सकता ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–सिंहव्याघ्र आदि प्राणिसमूहोंमें अहंभाव वासनासे वासित अविद्या उपहित परमात्माने उन पदार्थोंके नामधारी जो क्षय (नश्वरात्माहै) उसको मिथ्या ऐसे परिकल्पित किया है जैसे बालक वेतालको ॥ ३ ॥ एक परमात्म वस्तुमें जब सब कुछ स्थित है तो कौन और कैसे अहंकारनामधारी प्रकट हो सकता है ॥ ४ ॥

वस्तुतोनास्त्यहंकारःपरमात्मन्यभेदिनि ॥ असम्यग्दर्शनान्मार्गेसरित्तीव्रातपेयथा ॥५॥ मनोमणिमहारंभःसंसारइतिलक्ष्यते ॥ आत्मनात्मानमाश्रित्यस्फुरत्यंतर्यथांभसा ॥ ६ ॥ असम्यग्दर्शनंतेनत्यजरामनिराश्रयम् ॥ साश्रयंसत्यमानंदिसम्यग्दर्शनमाश्रय ॥ ७ ॥ धियाविचारधर्मिण्यामोहसंरंभहीनया ॥ विचारयाधुनासत्यमसत्यंसंपरित्यज ॥ ८ ॥

अर्थ—यथार्थमें भेदशून्य परमात्मामें अहंकार कोई वस्तु नहीं है परन्तु भ्रान्तिसे ऐसे भासता है जैसे तीव्र आतप (घाम) में मार्गकी मृगतृष्णानदी ॥ ५ ॥ आत्मासे आत्माहीकाही आश्रय लेके मनरूपी चिन्तामणिका कार्य यह संसार ऐसे लक्षित होता है जैसे अपने आत्मामेंही तरंग रूपसे जल ॥ ६ ॥ इस लिये हे रामजी ! असत् विषयकी जो भ्रान्ति उसे त्यागो और सत्यार्थ विषयके सत्य आनन्दरूप जो सम्यक् दर्शन है उसका आश्रय लो ॥ ७ ॥ मोहके कार्य्यसे रहित विचार धर्मवाली बुद्धिसे अब तुम तत्वका विचार करो और असत् को त्यागो ॥ ८ ॥

अबद्धोबद्धइत्युक्त्वाकिंशोचसिमुधैवहि ॥ अनंतस्यात्मतत्त्वस्यकिंकथंकेनबद्ध्यते ॥ ९ ॥ नानाऽनानावत्कलनात्वाविभिन्नमहात्मनि ॥ सर्वस्मिन्ब्रह्मतत्त्वेस्मिन्किंबद्धंकिंविमुच्यते ॥ १० ॥ अनात्तोप्यात्तिमान्भातिच्छिन्नेंगेकिंचताम्यति ॥ भेदाभेदविकारार्त्तिःकाचिन्नात्मानविद्यते ॥ ११ ॥ देहेनष्टेक्षतेक्षीणेकात्मनःक्षतिरागता ॥ भस्त्रायांपरिदग्धायांभस्त्रापूरोननश्यति ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! अबद्ध बद्ध हुआ ऐसा कहके (ज्ञानसे समुझके) व्यर्थ किसे शोचतेहो, अनन्त आत्मतत्त्वका कौन कैसे और किससे बद्ध होताहै ॥ ९ ॥ भेदाभेद भ्रान्ति इसी भेदशून्य परमात्मामें होती है इस सबके बाध होनेसे क्या बद्ध हुआ और क्या मुक्त होताहै ॥ १० ॥ यह आत्मा शरीररहित भी है तथा शरीरवानके तुल्य भासताहै तो देह छिन्नभिन्न होनेपर भी आत्माका क्या बिगडताहै क्योंकि भेदाभेद, विकारी शरीर है कोई भी आत्मामें नहीं है ॥ ११ ॥ देहके नष्ट होनेपर क्षत तथा क्षीण होनेपर आत्माकी क्या हानि हुई? भस्त्रा (माथि) के दग्ध होनेपर भी वायु नहीं नष्ट होता ॥ १२ ॥

देहःपततुवोदेतुकानःक्षतिरुपस्थिता ॥ कोनष्टःप्रक्षतेपुष्पेआमोदोव्योमसंश्रयः ॥ १३ ॥ आपतंतुवपुःपद्मेसुखदुःखहिमश्रियः ॥ आकाशोड्डयनालीनांकानःक्षतिरुपस्थिता ॥ १४ ॥ देहःपततुवोदेतुयातुवागगनांतरम् ॥ तद्विलक्षणरूपस्यकासौभवतिमेक्षतिः ॥ १५ ॥ यथापयोदमरुतोर्यथाषट्पदपद्मयोः ॥ तथाराघवसंबंधस्त्वच्छरीरत्वदात्मनोः ॥ १६ ॥

अर्थ—देह गिरै वा उठके खडी हो हमारी क्या हानि उपस्थित हुई पुष्पके नष्ट होनेपरभी आकाशके आश्रय सुगन्धका क्या बिगडा? ॥ १३ ॥ सुख तथा दुःखरूपी हिमकी शोभा शरीररूपी कमलपर पडे परन्तु आकाशमें उड़नेवाले भ्रमररूप हम लोगोंका क्या बिगडा अथवा चन्द्रतारादिका क्या बिगडा ॥१४॥ हे रामजी ! यह शरीर गिरै वा उठै अथवा अन्य आकाशमें जाय परन्तु शरीरसे विलक्षण रूप जो मैं उसकी क्या क्षति (हानि) ? ॥ १५ ॥ हे रामजी ! यदि आत्मा और देहका संबन्ध भी मानाजाय तो वह ऐसा है जैसे मेघ और वायुका तथा भ्रमर और कमलका ॥ १६ ॥

मनोरामशरीरंहिजगतःसकलस्यच ॥ आद्याशक्तिश्चिदध्यात्माननश्यतिकदाचन ॥१७॥ योसावात्मा महाप्राज्ञननश्यतिनगच्छति ॥ ननश्यतिकदाचिच्चाकिंमुधापरितप्यसे ॥ १८ ॥ विशीर्णेभ्रेयथावातःशुष्केब्जेषट्पदोयथा ॥ यात्यनंतपदंव्योमतथात्मादेहसंक्षये ॥ १९ ॥ संसारेस्मिन्विहरतोमनोपिहिननश्यति ॥ ज्ञानाग्निनाविनाजंतोरात्मनाशेतुकाकथा ॥ २० ॥

अर्थ—हे रामजी ! सम्पूर्ण जगत् मात्रका शरीर (स्वरूप) यह मनही है और मनरूप जगत्की आदिशक्ति चिदात्मा तो मनसे भी ऊपर है जिसका कदापि नाश नहीं होता ॥ १७ ॥ हे महामते ! प्राज्ञ न तो नष्ट होते हैं और न कहीं जाताहै जब आत्मा कभी नष्टही नहीं होता तो शरीर आदिके नाशसे व्यर्थ क्यों संतप्त होते हो ? ॥ १८ ॥ हे रामजी ! मेघके नष्ट होनेपर जैसे वायु और कमलके सूखनेपर जैसे भ्रमर आकाशमें जाताहै ऐसेही देहके नष्ट होनेपर आत्मा (मुक्त) ब्रह्मपदमें जाके प्राप्त होता है ॥ १९ ॥ इस संसारमें विहर करते हुये जीवका जब ज्ञानाग्निके बिना मन भी नहीं नष्ट होता तब आत्माके नाश होनेकी तो कथाही क्याहै ॥ २० ।

यःकुंडबदरन्यायोयोघटाकाशयोःक्रमः ॥ स्थितिर्देहात्मनोःसैवसविनाशविनाशयोः ॥ २१ ॥ बदरं हस्तमायातियथास्फुटतिकुंडके ॥ आत्माागगनमायातितथाचलतिदेहके ॥ २२ ॥ कुंभेगच्छत्यकुंभत्वं कुंभाकाशोयथांबरे ॥ तिष्ठत्येवमयंक्षीणेदेहेदेहीनिरामयः ॥ २३ ॥ मनोदेहोहिजंतूनांदेशकालतिरोहितः ॥ मुहुर्मृतिपटाच्छन्नःशठेकिंपरिदेवना ॥ २४ ॥

अर्थ—जैसे कुंडबदर न्याय (कुंडा फुटनेपर भी बेर नहीं नष्टहोती) तथा घट और आकाशका जो क्रम है. ऐसेही विनाशी देह और अविनाशी आत्माका संबन्धहै॥२१॥जैसे कुंडेके फूटने पर भी बदर (बेर) हाथमें आजाताहै, ऐसेही शरीरके नष्ट होने पर भी जीवात्मा वासनाकाशमें आताहै. ॥ २२ ॥ जैसे घटका नाश होनेपर भी घटाकाश महदाकाशमें पूर्ववत् ज्योंकात्यों स्थित रहता है ऐसेही इस शरीरके क्षीण होनेपर भी देही आत्मा चित्ताकाशमें ज्योंकात्यों स्थित रहता है ॥ २३ ॥ प्राणियोंको जो मनरूप देह है वह देश और कालमें मृत्युरूप पटमें आच्छन्न होके छिप जाताहै इस लिये इस वंचक (धोखा देनेवाले) मनके लिये क्या विलाप करना ॥ २४ ॥

देशकालतिरोधानेमूढोपिमरणेनरः ॥ किंबिभेतिमहाबाहोनेहपश्यतिकश्चन ॥ २५ ॥ वासनामिमिथ्यैवाहमितिस्थिताम् ॥ त्यजपक्षीश्वरोव्योमगमनोत्कइवांडकम् ॥ २६ ॥ एषाहिमनसःशक्तिरिष्टानिष्टनिबंधनी ॥ अनयैवमुधाभ्रांत्यास्वप्नवत्परिकल्पना ॥ २७ ॥ अविद्यैषाद्दुःखेनैषा विवर्द्धते ॥ अपरिज्ञायमानैषातनोतीदमसन्मयम् ॥ २८ ॥

अर्थ—गृह आदि देशमें और अन्तिम श्वासकाल रूपी मरणमें आत्माका तिरोहित होनाही मरण मूर्ख भी दूसरोंका देखता है तो ऐसे मरणमें वह क्यों भय करता है और हे महाबाहो रामजी अपना आत्मनाशरूप मरण कोई भी इस संसारमें नहीं देखता ॥ २५ ॥ इस लिये हे रामजी ! इस वासनाकोजो मिथ्याही प्रकट है उसको ऐसे त्यागो जैसे पक्षीका बालक समर्थ होनेपर आकाशमें जानेकी इच्छासे अपने शिथिल अण्डेको त्यागताहै ॥२६॥ हे रामजी ! यही मनकी शक्ति इष्ट तथा अनिष्ट पदार्थोंमें राग द्वेषके द्वारा बन्धन करनेवाली है, स्वप्नके तुल्य भ्रांतिसे इसीने व्यर्थ सब कल्पना कर रक्खाहै ॥२७॥ यह अविद्याका विलास होनेसे अविद्यारूप दुःखसे नाश करने योग्य है और दुःखके लिये यह बढतीहै और यह अज्ञात रूप सम्पूर्ण इस असन्मय जगत्का विस्तार करती है ॥२८॥

एषातुच्छवदाकाशंतुषारमलिनंयथा ॥ परिपश्यतिविभ्रांतास्वरूपस्यस्वभावतः ॥ २९ ॥ असदेवेदमारंभमंथरंसदिवोत्थितम् ॥ कल्पितंजगदाभोगिदीर्घस्वप्नइवैतया ॥ ३० ॥ भावनामात्रएवास्याः स्वरूपंकर्तृतांगतम् ॥ जगन्नामाविलंचक्षुर्व्योम्निबिंबरुचामिव ॥ ३१ ॥ लयमस्याःस्वरूपंत्वंनयराम विचारणात् ॥ यथाहिमशिलायास्तुतपनादिवसाधिपः ॥ ३२ ॥

अर्थ—जैसे तुषारसे मलिन आकाश प्रतीत होता है ऐसेही यह भ्रान्त होके अपने स्वरूपकेही स्वभावसे तुच्छ मलिनरूपही देखतीहै ॥ २९ ॥ इसी मानसी शक्तिने दीर्घ स्वप्नके तुल्य जगत् रचनारूप इस असत्कार्यके आडम्बरको सत्के समान कल्पित कर रक्खाहै ॥ ३० ॥ जैसे तिमिर आदि दोषसे दूषित नेत्र आकाशमें नीलता आदिका तथा सूर्य चन्द्र आदिका भावना मात्रसे कर्ता होताहै ऐसेही इस मानसी शक्तिका स्वरूप जगदाकारकी भावना मात्रसे कर्तृताको प्राप्तहै अन्यथा नहीं ॥ ३१ ॥ हे रामजी ! जैसे सूर्य अपने घर्मसे पाषाण (हिम) की शिलाका लय (नाश) कर देतेहै ऐसेही तुम विचारसे इसके स्वरूपका नाश करो ॥ ३२ ॥

द्धिमाभावार्थिनोर्कस्यस्वोदयेनेप्सितंयथा ॥ सिद्धचत्येवंविचारेणमनोनाशार्थिनोर्थितम् ॥ ३३ ॥ अविद्यासंप्रबुद्धाहिवितथानर्थदुर्गमा ॥ नानेंद्रजालकलनांशंबरोहेमवर्षति ॥ ३४ ॥ स्वविनाशक्रियांचैतांमनएवकरोत्यलम् ॥ मनोह्यात्मवधंनाममनाटकंपरिनृत्यति ॥ ३५ ॥ आत्मानमीक्षतेचेतःस्वविनाशायकेवलम् ॥ नहिजानातिदुर्बुद्धिर्विनाशंप्रत्युपस्थितम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—हिमके रूपके अभाव चाहनेवाला का प्रयोजन सूर्यके उदय होनेसे सिद्ध होताहै ऐसेही मनके नाश चाहनेवालेका अभिलपित (मनका नाश) विचारसे अवश्य सिद्ध होताहै ॥ ३३ ॥ जैसे शंबर नामक असुर नाना प्रकारका इन्द्रजालरूप अविद्यमान ही सुवर्ण वर्षताहै ऐसेही आत्मतत्त्वको न जानती हुई यह अविद्यारूपी मेघमाला जो कि अनेक अनर्थोंसे दुर्गम है नाना प्रकारके ब्रह्मांडरूपी इन्द्रजालकी वृष्टि करती है ॥ ३४ ॥ अपने नाशकी क्रिया यह मनही भलीभांति करताहै क्योंकि यह मन अपना संहाररूप नाटकका नृत्य करताहै ॥ ३५ ॥ यह चित्त अपने नाशके ही लिये आत्माका दर्शन करताहै और यह दुर्बुद्धि अपने प्राप्त हुये नाशको नहीं देखता ॥ ३६ ॥

स्वयंसंकल्पमात्रेणस्वविनाशदृशामिदम् ॥ मनःसंसाधयत्याशुक्लेशोनात्रोपयुज्यते ॥ ३७ ॥ स्वसंकल्पविकल्पाशांविवेकोपहितंमनः ॥ संत्यज्यरूपमाभोगिकरोत्यात्मावबोधनम् ॥ ३८ ॥ महोदयोमनोनाशोमहोच्छेदस्यतूदयः ॥ मनोनाशेप्रयत्नंत्वंकुरुमामनसोजवे ॥ ३९ ॥ अविरलसुखदुःखवृक्षखंडेविषमकृतांतमहोरगेवनेस्मिन् ॥ प्रभुरिदमखिलेविवेकहीनंसुभगमनोमहदापदेकहेतुः ॥ ४० ॥ इत्युक्तवत्यथमुनौदिवसोजगामसायंतनायविधयेस्तमिनोजगाम ॥ स्नातुंसभाकृतनमस्करणाजगामश्यामाक्षयेरविकरैश्चसहाजगाम ॥ ४१ ॥ ॥ दिवसः ८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे उपदेशकरणं नाम द्व्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १०२ ॥

अर्थ—मनके नाशका उपाय सोचनेवाले विवेकियोंका यह मनोनाशरूप प्रयोजन यह मन आपही संकल्पमात्रसे शीघ्र सिद्ध करताहै और इसमें कुछभी क्लेश नहीं होता ॥ ३७ ॥ विवेकसे संस्कार किया हुआ चित्त (विवेकी चित्त) अपनी पूर्वकी संकल्पविकल्पकी आशाओंको त्यागकर आत्माकारवृत्तिसे ब्रह्माकार विस्तारयुक्त अर्थात् आत्मरूपही अपना रूप करताहै ॥ ३८ ॥ हे रामजी ! यह मनका नाशही परमपुरुषार्थ (मोक्ष) का उदयहै तथा इसीसे सम्पूर्ण दुःखोंका उच्छेद होताहै इसलिये तुम मनके नाशार्थ प्रयत्न करो न कि मनके व्यापारोंके अर्थ ॥ ३९ ॥ अति सघन सुखदुःखरूप वृक्षोंके खण्डसहित और भयंकर मृत्युरूप सर्पसंयुक्त इस संसाररूपी संपूर्ण वनमें स्वामी विवेकहीन मनही है और यही महा आपत्तिका हेतु है ॥ ४० ॥ इतना जब मुनिवसिष्ठ कहचुके तो दिनका अन्त होगया और सूर्य अस्ताचलको प्राप्त हुये तो सम्पूर्ण सभा सायंकालकी क्रिया करनेको स्नानार्थ गई, और रात्रि बीतनेपर सूर्यके किरणोंके साथ नमस्कारपूर्वक पुनः अपने २ स्थानपर एकत्रित हुई ॥ ४१ ॥ ॥ अष्टमो दिवसः ॥ ८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे उपदेशकरणं नाम द्व्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १०२ ॥

त्र्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १०३ ॥

विवेकरहित मनकी जो २ अनर्थ करनेवाली यात्रा है वह सम्पूर्ण मुमुक्षुओंके विवेकके लिये इस १०३ के सर्गमें वर्णन की गई है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ परस्मादुत्थितंचेतस्तत्कल्लोलइवार्णवात् ॥ स्फारतामेत्यभुवनंतनोतीदमितस्ततः ॥ १ ॥ ह्रस्वंदीर्घंकरोत्याशुदीर्घंनयतिखर्वताम् ॥ स्वतांनयत्यन्यदलंस्वंतथैवान्यतामपि ॥ २ ॥ प्रादेशमात्रमपियद्वस्तुभावनयैवतत् ॥ स्वयंसंपन्नयेवाशुकरोत्यद्रींद्रभासुरम् ॥ ३ ॥ लब्धप्रतिष्ठंपरमात्पदादुल्लसितंमनः ॥ निमेषेणैवसंसारान्करोतिनकरोतिच ॥ ४ ॥

अर्थ—श्री वसिष्ठजी बोले—समुद्रसे उसके तरंगके तुल्य यह चित्त प्रकट हुआ है और विशाल रूपताको प्राप्त होकर अपने चारों और भुवनोंको विस्तार करताहै ॥ १ ॥ ह्रस्वको दीर्घ ओर दीर्घको ह्रस्व शीघ्रही करताहै अपने स्वरूपको अन्यका और अन्यको अपना अर्थात् आत्माको अनात्मा और अनात्माको आत्मा करलेताहै ॥ २ ॥

जो अदृष्टमात्रकी वस्तुको स्वयं सिद्ध भावनासे सुमेरुके समान प्रकाशमान करदेताहै ॥ ३ ॥ ब्रह्मसत्तासे लब्धप्रतिष्ठ विकासको प्राप्त यह मन एक निमिषमें अनेक संसारोंको रचता है और मिटाताभी है ॥ ४ ॥

यदिदंदृश्यतेकिंचिज्जगत्स्थाण्णुचरिष्णुच ॥ सर्वंसर्वप्रकाराढ्यंचित्तादेतदुपागतम् ॥ ५ ॥ देशकालक्रियाद्रव्यशक्तिपर्याकुलीकृतम् ॥ भावाद्भावांतरंयातिलोलत्वान्नटवन्मनः ॥ ६ ॥ सदसत्तांनयत्याशुसत्तांवासन्नयत्यलम् ॥ तादृशान्येवचादत्तेसुखदुःखानिभावितम् ॥ ७ ॥ यदाप्तंस्वग्रमादत्तेयथैवचंचलं मनः ॥ हस्तपादादिसंघातस्तदाप्रयततेतथा ॥ ८ ॥

अर्थ—जो कुछ स्थावर जंगम सबप्रकारसे कर्ता यह जगत् देख पडताहै वह सब चित्तसेही आया है ॥ ५ ॥ देश, काल, क्रिया और द्रव्यकी शक्तिसे पूर्ण एकभावसे दूसरे भावको चंचलताके कारण नटके सदृश मनही प्राप्त होताहै ॥ ६ ॥ सत्को असत् और असत्को सत् शीघ्र प्राप्त करता है और अपनेकर्मोपार्जित वैसेही सुखदुःखको ग्रहण करताहै ॥ ७ ॥ हे रामजी ! यह चंचल मन अपने कर्मसे प्राप्त किये हुये भोग्य पदार्थको जब जैसे और जिस कल्पनाप्रकारसे अनुकूल वा प्रतिकूलतासे ग्रहण करताहै उस समय हस्तपाद आदि वैसाही उसीके अनुसार व्यापार करते हैं ॥ ८ ॥

ततःसैवक्रियाचित्तसमाहितफलाफलम् ॥ क्षणात्प्रयच्छतिलताकालसिक्केवतादृशम् ॥ ९ ॥ चित्रांक्रीडनकश्रेणींयथापंकाद्गृहेशिशुः ॥ करोत्येवंमनोरामविकल्पंकुरुतेजगत् ॥ १० ॥ मनःसर्वजनक्रीडानृजं बाललवेष्वतः ॥ किमेतद्विपदार्थेषुरूढंजगतिकल्प्यते ॥ ११ ॥ करोत्यृतुकरःकालोयथारूपान्यथातरोः ॥ चित्तमेवंपदार्थानामेषामेवान्यतामिव ॥ १२ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर भोग्यपदार्थको प्राप्तकरनेवाली जो क्रिया है वह चित्तसे कल्पित जो सुखदुःख रूप फल उसको क्षणभरमें ऐसे देती है जैसे समयपर सींची हुई लता ॥ ९ ॥ हे रामजी ! जैसे गीलीमृत्तिकाके पिण्डसे बालक अपने गृहमें खिलौनोंकी पंक्तियोंकी रचना करता है ऐसेही मनभी जगत्के विकल्पोंको करताहै ॥ १० ॥ इस कारणसे मनकी सर्वजनात्मोंकी क्रीडा उनमें जो मनुष्योंके देहादि रूप पंकलेश हैं उनमें जो रूप सत्यतासे कल्पित है वह क्याहै ? अर्थात् मिथ्या ॥ ११ ॥ जैसे वसन्तआदि ऋतुओंका विभाग करनेवाला काल वृक्षोंका रूप और प्रकारसे करताहै ऐसेही चित्त सब पदार्थोंको अन्यके तुल्य करदेताहै अर्थात् भेद दर्शादेता है ॥ १२ ॥

मनोरथेतथास्वप्नेसंकल्पकलनासुच ॥ गोष्पदंयोजनव्यूहःस्वासुलीलासुचेतसः ॥ १३ ॥ कल्पंक्षणीकरोत्यंतःक्षणंनयतिकल्पताम् ॥ मनस्तदायत्तमतोदेशकालक्रमंविदुः ॥ १४ ॥ तीव्रमंदत्वसंवेगाद्बहुत्वाल्पत्वभेदतः ॥ विलंबनेनचाचिरंनतुशक्तिमशक्तितः ॥ १५ ॥ व्यामोहसंभ्रमानर्थदेशकालगमागमाः ॥ चेतसःप्रभवंत्येतेपादपादिवपल्लवाः ॥ १६ ॥

अर्थ—यह चित्त मनोरथमें स्वप्नमें संकल्पकी कल्पनामें जैसे योजनके समूहकोभी गोष्पदके समान करताहै ऐसेही चित्तकी निजलीलाओंमें सर्वत्र समझो ॥ १३ ॥ यह मन क्षणको कल्प बनाता है और कल्पकोभी क्षण बनाताहै इस लिये सब विद्वान् देशकालके क्रमको मनकेही आधीन कहते हैं ॥ १४ ॥ रजोगुणकी अधिकतासे तीव्र और तमोगुणकी अधिकतासे मन्द संवेगके भेदद्वारा बहुत और अल्पत्वभेदसे उन २ वस्तुओंकी सृष्टिके अनुकूल उपासना आदिके विलम्बसे जो सृष्टिमें आशक्तितासे मनकी वास्तविक सर्व सर्ग (सृष्टि) की शक्तिको त्याग नहीं करसकते अर्थात् यदि किसी वस्तुकी रचनामें मनकी शक्ति नहीं चलती तो वह उपासना आदिकी न्यूनतासे विलम्बमात्र है उपासना आदिके पूर्ण होनेपर अवश्य शक्ति होगी ॥ १५ ॥ व्यामोह संभ्रम आदि अनर्थ तथा देशकाल आदिका गमनागमन चित्तसे ऐसे होते हैं जैसे वृक्षसे पत्ते ॥ १६ ॥

जलमेवयथांभोधिरौष्ण्यमेवयथाऽनलः ॥ तथाविविधसंरंभःसंसारश्चित्तमेववा ॥ १७ ॥ सकर्तृकर्मकरणंयदिदंचेत्यमागतम् ॥ द्रष्टृदर्शनदृश्याढ्यंतत्सर्वंचित्तमेवच ॥ १८ ॥ चित्तंजगंतिभुवनानिवनांतराणिसंलक्ष्यतेस्वयमुपागतमात्मभेदैः ॥ केयूरमौलिकटकैश्चलसत्स्वरूपंत्यक्त्वैवकांचनधियेवजनेनहेम ॥ १९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे चित्तमाहात्म्यं नाम त्र्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १०३ ॥

अर्थ—जैसे जलमात्र समुद्र है और उष्णता मात्र अग्निहै वैसेही अनेकप्रकारके कार्य्य हैं जिसके ऐसा यह संसारकेवल चित्तहीहै ॥ १७ ॥ दृष्टि दर्शन और दृश्यसे पूर्ण कर्ता कर्म और करण तथा भोक्ता भोग्य और भोग-

रूप अनर्थस्वरूप जो यह जगत् उत्पन्न हुआहै वह सब चित्तहीहै ॥ १८ ॥ जैसे सुवर्णकी परीक्षा करनेवाला जन विजायट, मुकुट, तकड़ा आदि आकारोंसे कल्पित और शोभायमान स्वरूपको त्यागकर केवल शुद्ध सुवर्णमात्रमें निष्ठबुद्धि होकर सुवर्ण देखता सकता है नकि कटक आदि बुद्धिसे ऐसेही विवेकी जनको ब्रह्माण्डके अन्तर्गत अनेक लोक और उन लोकोंके अन्तर्गत वन पर्वतादि तथा अन्य सब वस्तुरूपसे अपनी चित्तसे चित्त स्वयं प्रकट है न कि अवस्तु ऐसा निश्चित करताहै ॥ १९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे चित्तमाहात्म्यं नाम त्र्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १०३ ॥

चतुरधिकशततमः सर्गः ॥ १०४ ॥

इस १०४ के सर्गमें राजा लवणाख्यानके आदिमें देश तथा राजा और सभाकी स्थिति और उस सभामें इन्द्रजाल करनेवाले अश्व, घोडेको देखकर विस्मयपूर्वक स्थितिका वर्णन किया गया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ अत्रतेशृणुवक्ष्यामिवृत्तांतमिममुत्तमम् ॥ जागतीहैंद्रजालश्रीश्चित्तायत्तायथा स्थिता ॥ १ ॥ अस्त्यस्मिन्वसुधापीठेनानावनखमाकुलः ॥ उत्तरापांडवोनामस्फीतोजनपदोमहान् ॥ २ ॥ नीरंध्रघनगंभीरवनविश्रांततापसः ॥ विद्याधरीकृतलतादोलोपवनपत्तनः ॥ ३ ॥ वातोद्धूताब्जकिंजल्कपुंजपिंजरपर्वतः ॥ लसत्कुसुमसंभारवनमालावतंसकः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजीबोले—हे रामजी ! इस विषयमें मैं तुमसे उत्तम आख्यान कहूँगा जिससे जैसे यह जगत्-सम्बन्धिनी इन्द्रजालकी शोभा चित्तकेही आधीन स्थित है यह ज्ञात होजायगा ॥ १ ॥ नाना प्रकारके वनोंसे पूर्ण स्वच्छ तथा महान् उत्तरापाण्डव नाम एक जनपद (राज्य) इस पृथिवीपर है ॥ २ ॥ पुनः कैसा वह है कि सघन और गंभीर जिसके वनमें तपस्वी लोग विश्राम कर रहे हैं विद्याधरी लोग जिसके उपवनकी लताओंमें झूला झूल रही हैं ऐसे जहांपर नगर है ॥ ३ ॥ तथा जो वायुसे कल्पित कमलकी धूलिसे रक्त और पीतवर्ण पर्वतोंसे युक्त और शोभायमान पुष्पसमूहोंसे रचित वनोंकी माला जिसका शिरोभूषण है ॥ ४ ॥

करंजमंजरीकुंजगुच्छपर्यंतजंगलः ॥ खर्जूरांतरितग्रामोघुंघुमध्वनितांबरः ॥ ५ ॥ एकपिंगशिलाश्रेणीशालिकेदारपिंगलः ॥ नीलकंठारवोद्दामवनजंगलमंडितः ॥ ६ ॥ सारसारवसंरंभरणत्कनककाननः ॥ तमालपाटलीनीलगिरिग्रामककुंडलः ॥ ७ ॥ विचित्रविहगव्यूहविरावकृतकाकलिः ॥ नदीपरिसरोन्निद्रपारिभद्रद्रुमारुणः ॥ ८ ॥

अर्थ—करंजकी लता तथा कुंज और पुष्पोंके गुच्छोंसहित जिसमें ग्रामोंके निकटतक वन है खजूरके वृक्षोंसे ग्राम जिसमें छिपे हैं और जिसकी घुंघुम शब्द आकाशतक व्याप्त है ॥ ५ ॥ उत्तम मणिविशेषकी पिंगलवर्णकी शिलाके सदृश पके हुये चावलोंके खेतोंसे पिंगल (ललाई तथा पीततायुक्त) वर्ण और नीलकण्ठोंके शब्दसहित उत्तम जंगलोंसे शोभित ॥ ६ ॥ सारसपक्षियोंके शब्दके वेगसे शब्दायमान सुवर्णके सदृश वनोंसे युक्त, तथा तमाल और पाटलवृक्षोंसे नील पर्वत या ग्रामोंके कुण्डलसे शोभित ॥ ७ ॥ तथा चित्रविचित्र पक्षियोंके समूहके शब्दसे जहां मधुरध्वनि हो रही है और नदियोंके तटोंपर विकसित नीमके वृक्षोंसे रक्तवर्ण ॥ ८ ॥

गायत्कलमकेदारदारिकाहृतमन्मथः ॥ पुष्पफलचलद्वातव्याधूतकुसुमांबुदः ॥ ९ ॥ दरीगृहविनिष्क्रांतसिद्धचारणवंदिकम् ॥ स्वर्गादिवसमानीयलावण्यमभिनिर्मितः ॥ १० ॥ गायत्किन्नरगंधर्वकदलीखंडमंडपः ॥ मंदानिलरवोद्धूतःपुष्पोपवनपांडुरः ॥ ११ ॥ तत्रास्तिलवणोनामराजापरमधार्मिकः ॥ हरिश्चंद्रकुलोद्भूतोभूमाविवदिवाकरः ॥ १२ ॥

अर्थ—गान करती हुई जडहन (वह धान जो एक जगहसे उखाडके दूसरे खेतमें विरलतासे पुनः लगाया जाता है) के खेतोंमें कन्याओंने जहां कामदेवके चित्तकोभी हरण कर लिया है तथा पुष्पों और फलोंमें शिथिल बन्धनोंको गिरानेके अर्थ चलते हुए पवन जहांपर पुष्परूपी मेघोंको कंपारहा है ॥ ९ ॥ कन्दरारूपी गृहोंसे सिद्ध, चारण तथा वन्दी जिसमें निकल रहे हैं ऐसी स्वर्गकी सुन्दरतासे स्वर्गसे लाके मानों किसीने उसे रचा है ॥ १० ॥ किन्नर और गन्धर्वगण जिसमें गान कररहे हैं, ऐसे कदली (केले) के मण्डप जहां विराजमान हैं, तथा मन्द

सुगन्ध और शीतल वायुसे उत्तमतासे स्थित और उपवनोंसे पाण्डुर (श्वेत और पीत वर्ण) वह उत्तरा पाण्डव नाम जनपद है ॥ ११ ॥ हरिश्चंद्रके कुलमें उत्पन्न अति धार्मिक लवण नाम राजा उस देशमें ऐसा है जैसे पृथिवीपर सूर्य ॥ १२ ॥

यद्यशःकुसुमोत्तंसपांडुरस्कंधमंडलाः ॥ तत्रशैलाविराजंतेहराःप्रोद्धूलिताइव ॥ १३ ॥ कृपाणशकलोत्कृत्तनिःशेषारातिमंडलः ॥ अरातिलोकःप्राप्नोतियदनुस्मरणाज्ज्वरम् ॥ १४ ॥ यस्योदारसमारंभमार्गेलोकानुपालनम् ॥ चरितंसंस्मरिष्यंतिहरेरिवचिरंजिनाः ॥ १५ ॥ यस्याप्सरोभिरद्रींद्रमूर्द्धस्वमरसद्मसु ॥ विकासिपुलकोल्लासंगीयंतेगुणगीतयः ॥ १६ ॥

अर्थ—जिसके यशरूपी पुष्पोंके शिरोभूषणसे पाण्डुरवर्ण (श्वेत पीत मिश्रित) होगया है, स्कन्धमण्डले जिनके ऐसे पर्वत इस प्रकार जहांपर शोभित हैं जैसे विभूति लगाये हुये महादेवजी ॥ १३ ॥ अपनी तीक्ष्ण तरवारसे खंड २ संपूर्ण शत्रुमण्डलको काटनेहारा और जिसके स्मरणमात्रसे शत्रुलोगोंको ज्वर प्राप्त होताहै, ऐसा वह राजा लवण था ॥ १४ ॥ जिसके उदार कार्य्योंकरिके संयुक्त और शिष्टलोगोंके रक्षक चरितको चिरकाल तक मनुष्य ऐसे स्मरण करेंगे जैसे विष्णुभगवान्‌के चरितको ॥ १५ ॥ जिसके गुणोंकी गीति सुमेरुपर्वतके शिखरों तथा देवताओंके स्थानोंमें अप्सरागण विकसित पुलक शरीरके उत्साहके साथ गान करती हैं ॥ १६ ॥

यस्यस्वःसुंदरीगीतालोकपालचिरश्रुताः ॥ विरिंचिहंसैर्ध्वन्यंतेस्वभ्यासाद्गुणगीतयः ॥ १७ ॥ स्वप्नेप्वपिनसामान्यायस्योदारचमत्कृतिः ॥ रामदृष्टाश्रुतावापिदैन्यदोषमयीक्रिया ॥ १८ ॥ जिह्मतांयोनजानातिनदृष्टायेनधृष्णुता ॥ उदारतायेनधृताब्रह्मणेवाक्षमालिका ॥ १९ ॥ दिनाष्टभागमाकाशमागतेदिवसाधिपे ॥ सकदाचित्सभास्थानेसिंहासनगतोऽभवत् ॥ २० ॥

अर्थ—और जिसके गुणोंकी गीति स्वर्गकी अप्सराओंने गान किया और उसे इन्द्रादि लोकपालोंने सुना उसके ध्वनिका अनुकरण ब्रह्माके हंस अपने अभ्याससे करते हैं ॥ १७ ॥ हे रामजी ! अन्य राजाओंके साधारण जिसके उदार कार्योंकी चमत्कृति स्वप्नमें नथी, अर्थात् सबसे उत्तम कार्य्य सदा करताथा और जिसकी दीनता तथा अन्य दोषमयी क्रिया कभी न तो देखी गई और न सुनीगई ॥ १८ ॥ कुटिलताको जो कदापि जानताही नहीं तथा अविनय जिसने कभी देखाही नहीं और जो उदारताको इस प्रकार धारण करताथा जैसे अक्षमालाको ब्रह्माजी ॥ १९ ॥ हे रामजी ! इत्यादि गुणयुक्त वह राजा, जब सूर्य्य दिनके अष्टमभागपर्य्यन्त आकाशमें आये अर्थात् ४ घडी दिन चढनेपर सभामें आकर सिंहासनपर विरामान हुआ ॥ २० ॥

सुखोपविष्टेतत्रास्मिन्राजनींदाविवांबरे ॥ प्रविशंतीषुसामंतसेनासुचससंभ्रमम् ॥ २१ ॥ गायंतीष्वथकांतासुसुपविष्टेषुराजसु ॥ मनोहरतिसाह्लादेवीणावंशकलारवे ॥ २२ ॥ चारुचामरहस्तासुसविलासासुराजनि ॥ देवासुरगुरुप्रख्येविश्रांतेमंत्रिमंडले ॥ २३ ॥ प्रस्तुतेषुप्रविष्टेषुराजकार्येषुमंत्रिभिः ॥ प्रोक्तासुदेशवार्त्तासुनिपुणैश्चारुमंत्रिभिः ॥ २४ ॥

अर्थ—आकाशमें चन्द्रमाके समान वह राजा सुखसे सिंहासनपर बैठा और जब कर देनेवाले छोटे२ राजा तथा सेना भयके साथ प्रवेशकर रहेथे ॥ २१ ॥ जब सब सामन्तराजा (करदायी) सुखपूर्वक बैठगये और ललनागण मधुर कण्ठसे गानकर रहीथीं तथा जब वीणा और वांसुरीके मधुर शब्द आनन्दके साथ सबके मनोहरण कर रहेथे ॥ २२ ॥ और जब उत्तम चामर (चँवर) हस्तमें लेके अंगनागण राजाके ऊपर व्यजन करतेथे, बृहस्पति तथा शुक्राचार्य्यके समान मन्त्रियोंका मण्डल विश्रामताके साथ बैठगये थे ॥ २३ ॥ और उस समयके उपयुक्त उपस्थित राजकार्य्य, मन्त्रीगण अपना २ राजासे पूंछ चुके और देशान्तर की वार्ता जब सुन्दर कुशल मंत्रीगण कहचुके थे ॥ २४ ॥

इतिहासमयेपुण्येवाच्यमानेचपुस्तके ॥ पठत्सुचस्तुतीःपुण्याःपुरःप्रह्वेषुबंदिषु ॥ २५ ॥ सभांविवेशसाटोपःकश्चित्तामैंद्रजालिकः ॥ वर्षेणाहितसंरंभोवसुधामिववारिदः ॥ २६ ॥ सननाममहीपालंशिखरोदारकंधरम् ॥ प्रादोपांतगतःकांतंशैलंफलतरुर्यथा ॥ २७ ॥ सच्छायस्योन्नतांसस्यफलिनःपुष्पभासिनः ॥ संविवेशपुरोराज्ञस्तरोरग्रेकपिर्यथा ॥ २८ ॥

अर्थ—और इतिहासमय पवित्र पुराणग्रन्थ जिस समय सुनाये जारहे थे, तथा सम्मुख नम्र होके बन्दीगण जिस समय राजाकी पवित्र स्तुति पढ़रहे थे ॥ २५ ॥ उसी समय अपने वेष और आभूषण आदि आडम्बरोंसे संपन्न वर्षासे अपनी सामग्रीको सम्पादन करके एक ऐन्द्रजालिक (इन्द्रजाल करनेवाला) ने राजाकी सभामें ऐसे प्रवेश किया जैसे भावीवर्षासे विद्युत् आदि संरंभ धारण करनेवाला मेघ इस पृथिवीपर ॥ २६ ॥ उसने कीरटके कूट (पर्वत-

पक्षमें शृंग) से उदार है कण्ठ (पक्षे अधित्यका) जिसका ऐसे राजाके चरणके समीपमें जाके इस भांतिसे प्रणाम किया जैसे फलभारसे संयुक्त वृक्ष रमणीय पर्वतको ॥ २७ ॥ उत्तम छाया पक्षमें (आश्रय) संयुक्त उन्नत अंस (शाखाप्रदेश) पक्षमें (कन्धा) वाले फल और पुष्पोंसे प्रकाशमान वृक्षके संमुख जैसे कपि (चपल वानर) बैठता है ऐसेही राजाके सम्मुख वह बैठगया ॥ २८ ॥

चपलोलंपटोर्थानामामोदसुखमारुतम् ॥ उवाचोत्कंधरंभूपंसपद्ममिवषट्पदः ॥ २९ ॥ विलोकयविभो तावद्देकामिहखरोलिकाम् ॥ पीठस्थएवसाश्चर्यांव्योम्निचंद्रइवावनिम् ॥ ३० ॥ इत्युक्त्वापिच्छिकाते नभ्रामिताभ्रमदायिनी ॥ नानाविरचनाबीजंमायेवपरमात्मनः ॥ ३१ ॥ तांददर्शमहीपालस्तेजोरेणुवि राजिताम् ॥ शक्रःसुरविमानस्थःस्वकार्मुकलतामिव ॥ ३२ ॥

अर्थ—वह ऊंची कन्धावाले राजासे ऐसे बोला जैसे चपल और पदार्थोंका लम्पट भ्रमर सुगन्धयुक्त और सुखदायक वायुसहित पद्मसे ॥ २९ ॥ कि हे प्रभो ! आश्चर्य्यदायक एक मिथ्या कौतुकक्रीडा इसी सिंहासनपरही बैठके ऐसे देखिये जैसे आकाशमें चन्द्रमा पृथिवीको देखै ॥ ३० ॥ ऐसा कहके उसने भ्रम देनेवाली मोरके पंखकी एक मोर्छल घुमाई वह (मोर्छल) नानाप्रकारकी रचनाकी बीज इसप्रकार थी जैसे परमात्माकी माया ॥ ३१ ॥ नानाप्रकारके रमणीय तेज सहित रेणुओंसे शोभायमान उस मोर्छलको राजाने ऐसे देखा जैसे देवताओंके विमानों पर आरूढ इन्द्र अपने धनुपकी लताको ॥ ३२ ॥

सभांसैंधवसामंतोविवेशास्मिन्क्षणेतदा ॥ तारापरिकरापूर्णांव्योमवीथीमिवांबुदः ॥ ३३ ॥ तंचैवानु जगामाश्वःसौम्यःपरमवेगवान् ॥ देवलोकोन्मुखंतुष्टंशक्रमुच्चैःश्रवाइव ॥ ३४ ॥ सतमश्वमुपादायपा र्थिवंसमुवाचह ॥ सोच्चैःश्रवाइवक्षीरसागरोमरुतांपतिम् ॥ ३५ ॥ इदमुच्चैःश्रवःप्रख्यंहयरत्नंमहीपते ॥ जवोड्डयनशीलेनमूर्तिमानिवमारुतः ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! इसी क्षणमें एक अश्वपालक (घोडोंका रक्षक) ने सभामें ऐसे प्रवेश किया जैसे तारागणरूपी परिकरों (सेवकों) से पूर्ण आकाशमार्गमें मेघ ॥ ३३ ॥ और अतिवेगवान् शान्त एक घोडा उसके पीछे २ ऐसे गया जैसे देवलोककी ओर मुख किये हुये और प्रसन्न इन्द्रके पीछे २ उच्चैःश्रवा (इन्द्रका अश्व) ॥ ३४ ॥ उस घोडेको लेके राजासे इस प्रकार बोला जैसे उच्चैःश्रवा तुरंगसहित क्षीरसमुद्र इन्द्रसे ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! यह उच्चैःश्रवाके तुल्य अश्वोंमें रत्न है और उडनेके स्वभाववाले वेगसे यह ऐसा है मानों मूर्तिमान् वायु ॥ ३६ ॥

अश्वोयमस्मत्प्रभुणाप्रभोसंप्रहितस्त्वयि ॥ राजतेहिपदार्थश्रीर्महतामर्पणाच्छुभा ॥ ३७ ॥ इत्युक्तवति तस्मिंस्तुप्रत्युवाचेंद्रजालिकः ॥ जलदस्तनितेशांतेचातकोम्बुधरंयथा ॥ ३८ ॥ सदश्वमेनमारुह्यभुवनं विहरप्रभो ॥ स्वप्रतापाहितानल्पशोभामुर्वीरविर्यथा ॥ ३९ ॥ अश्वमालोकयामासतेनोक्तइतिपार्थिवः ॥ निर्घातस्तनितंमेघंमयूरइवसूत्करः ॥ ४० ॥

अर्थ—हे प्रभो ! हमारे स्वामीने इस अश्वको आपके निकट भेजाहै क्योंकि पदार्थोंकी उत्तम शोभा महात्मा ओंको समर्पण करनेहीसे होती है ॥ ३७ ॥ उस अश्वरक्षकके इतना कहनेपर वह ऐन्द्रजालिक इस रीतिसे बोला जैसे मेघकी गर्जना शान्त होनेपर चातक मेघसे ॥ ३८ ॥ हे प्रभो ! इस उत्तम अश्वपर आरूढ होके लोकलोकान्तरोंमें ऐसे विहार करो जैसे अपने प्रतापसे अपरिमित शोभा दी हुई पृथिवीपर सूर्य्य भगवान् ॥ ३९ ॥ उसके इतना कहनेपर राजाने उस अश्वको ऐसे देखा जैसे पवनकी ताडनाजनित शब्द सहित मेघसे ऊपर गला उठाकर विशेप शब्दकारी मयूर (मोर) ॥ ४० ॥

अथानिमेषयादृष्ट्याराजाचित्रोपमाकृतिः ॥ बभूवालोकयन्नश्वं लिपिकर्मार्पितोमपः ॥ ४१ ॥ क्षण मालोक्यपीठस्थस्तस्थौसंस्थगितेक्षणः ॥ दृष्ट्वाक्षुब्धःसमुद्रोद्रिमीनकैःकरवोयथा ॥ ४२ ॥ तस्थौमु हूर्तयुग्मंसध्यानासक्तइवात्मनि ॥ वीतरागोमुनिःक्षुब्धःपरानंदइवस्थितः ॥ ४३ ॥ बोधितःकेनचि न्नासौस्वप्रतापजितोर्जितः ॥ धियाकामप्ययंभूयश्चिंतांचितयतीतिच ॥ ४४ ॥

अर्थ—विचित्र उपमा देने योग्य आकार होगया है जिसका ऐसा राजा निमेप रहित दृष्टिसे उस अश्वको देखते ऐसेही भित्तिमें लिखे हुये चित्रके समान होगया ॥ ४१ ॥ हे रामजी ! क्षणभर उस अश्वको देखकर उसी सिंहासनपरही स्थित आच्छादित नेत्र होके ऐसे स्थित रहा जैसे जलसे शब्द करनेवाला समुद्र जल पीनेको उद्यत अगस्त्यऋपिको देखकर अति क्षुब्ध होके अपने अन्तर्गत पर्वत मीनोंसहित स्तंभित होजाय ॥ ४२ ॥ चार घडीतक आत्मामें ध्याना-सक्तके तुल्य वह राजा ऐसे स्थित रहा जैसे बाह्यपदार्थकी दृष्टिसे अन्तःकरणमें चलायमान वीतराग बाह्यदृष्टिरहित

मुनि परमात्माके आनन्दमें ॥ ४३ ॥ बुद्धिसे कुछ अधिक चिन्तन करता है इसकारण अपने भुजबलके प्रतापसे बलवानोंके जीतनेवाले उसराजाको कोई बोधित न करसका ॥ ४४ ॥

बभूवुःकेवलंतत्रनिःस्पंदसितचामराः ॥ चामारिण्योहिशर्वर्यःस्तंभितेंदुकराइव ॥ ४५ ॥ विरेजुर्विस्मयापूर्णानिःस्पंदास्तेसभासदः ॥ निःस्पंदकिंजल्कदलाःपद्माःपंककृताइव ॥ ४६ ॥ प्रशशामसभास्थानेजनकोलाहलःशनैः ॥ प्रशांतप्रावृषिव्योमन्यंभोदमिवगर्जितम् ॥ ४७ ॥ संदेहसागरेमग्नाजग्मुश्चिंतांसुमंत्रिणः ॥ विषीदतिगदापाणावसुराजाविवामराः ॥ ४८ ॥ विततविस्मितजिह्मितयातयाजनतया भयमोहविषण्णया ॥ स्तिमितचक्षुषिभूमिपतौस्थितेमुकुलिताब्जवनस्यधृताद्युतिः ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे इन्द्रजालोपाख्याने नृपव्यामोहोनाम चतुरधिकशततमः सर्गः ॥ १०४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! वहांपर श्वेतचामर सर्वथा गतिरहित होगये और चमर चलानेवाला अंगनागण ऐसे होगया जैसे रात्रिमें स्तम्भित चन्द्रमाके किरण ॥४५॥ और विस्मयसे पूर्ण चेष्टारहित वे सभासद् कैसे शोभित हुये जैसे गतिरहित पुष्पकी रेणु होगई है जिनके ऐसे पंकमें मिले हुये कमल ॥ ४६ ॥ सभाके स्थानमें मनुष्योंका कोलाहल धीरे २ ऐसे शान्त होगया जैसे वर्षाके शान्त होनेपर आकाशमें मेघोंकी गर्जना ॥४७॥ सन्देहसमुद्रमें डूबेहुये सब उत्तम मन्त्रीगण ऐसे चिन्ताको प्राप्तहुये जैसें असुरोंके युद्धमें विष्णुके दुःखी होनेपर सब देवतागण ॥ ४८ ॥ नेत्र मूंदके राजाके स्थित होनेपर महान् विस्मयसे उत्साहहीन तथा भय और मोहसे खिन्न उस सभाके जनसमूहने ऐसे शोभा धारण की जैसें मुकुलित (कलीवन्द) कमलका वन ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे इन्द्रजालोपाख्याने नृपव्यामोहो नाम चतुरधिकशततमः सर्गः ॥ १०४ ॥

पंचोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०५ ॥

मोहरहित,स्वस्थहृदय राजासे सभासदोंका मोह हेतुके प्रश्न और राजाके कथनका आरम्भ इस १०५ के सर्गमें वर्णन किया गया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ मुहूर्तद्वितयेनाथबोधमापमहीपतिः ॥ प्रावृषेण्यांबुनिर्मुक्तमंभोरुहमिवोत्तमम् ॥ १ ॥ आसनात्सांगदोत्तंसःप्रबुद्धोसावकंपयत् ॥ सवनाभोगशृंगाढ्योभूकंपइवपर्वतः ॥ २ ॥ बभूवाथप्रबुद्धोसावासनोपरिकंपितः ॥ विक्षुब्धइवपातालवारणेशंकराचलः ॥ ३ ॥ पतंतंधारयामासुस्तंपुरोगानृपंभुजैः ॥ मेरुंप्रलयविक्षुब्धंकुलशैलास्तटैरिव ॥ ४ ॥

अर्थ—श्री वसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! इसके पश्चात् ४ घडीके पीछे राजा इसप्रकार बोधको प्राप्तहुआ जैसे वर्षाके मेघके विनिर्मुक्त होनेपर उत्तम कमल ॥ १ ॥ प्रबोधको प्राप्त होकर अंगद और शिरोभूषण सहित राजाने अपने शरीरको ऐसे कंपाया जैसे पूर्ण वन तथा शिखरोंसहित पर्वतको भूकम्प ॥ २ ॥ अनन्तर बोध (चेतनाऽवस्था) को प्राप्त वह राजा आसनपर ऐसे कम्पित हुआ जैसे पृथिवीको धारण करनेवाले दिग्गजके संचलित होनेपर कैलास पर्वत ॥ ३ ॥ सिंहासनपरसे गिरते हुये उस राजाको सम्मुख जो स्थितथे उन्होंने ऐसे धारण किया जैसे प्रलय संचलित समेरुको अपने तटोंसे महेंद्रादि कुलपर्वत ॥ ४ ॥

पुरोगैर्धार्यमाणोसौपर्याकुलमतिर्नृपः ॥ वीचिविक्षोभितस्येंदोर्बभारवनमाःश्रियः ॥ ५ ॥ कोयंप्रदेशःकस्येयंसभेतिसनृपःशनैः ॥ दध्वानमज्जदंभोजकोशस्थइवषट्पदः ॥ ६ ॥ अथोवाचसभादेवकिमेतादेतिसादरम् ॥ रणन्मधुकरीभानुंहृष्टराह्रमिवाब्जिनी ॥ ७ ॥ अथैनंपरिपप्रच्छुःपुरोगामंत्रिणस्तथा ॥ प्रलयोल्लासर्सत्रस्तंमार्कंडेयमिवामराः ॥ ८ ॥

अर्थ—सम्मुखस्थित पुरुषोंका धार्य्यमाण (थाम्भा हुआ) यह राजा ऐसी शोभाको धारण किया जैसे चन्द्रोदयसे तरंगोंसे संचालित समुद्रके जलको ॥ ५ ॥ यह कौनसा स्थान है और किसकी यह सभा है ऐसा धीरेसे शब्द उस राजाने इस प्रकार किया जैसे कमलके कोशमें बन्द होते हुये भ्रमर ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर सभामें स्थित जन आदरसे राजासे इसप्रकार बोले कि हे देव ! यह क्या है जैसे भ्रमरी बोल रही है जिसमें ऐसी

कमलिनी, देखा है राहु जिसने ऐसे सूर्यको ॥ ७ ॥ इसके अनन्तर जैसे प्रलयके उमंगसे भयभीत मार्कंडेय ऋषिसे देवता लोगोंने पूछाथा ऐसेही इस राजासे सम्मुख स्थित सभासद तथा मंत्रियोंने पूंछा ॥ ८ ॥

त्वयीत्थंसंस्थितेदेववयमत्यंतमाकुलाः ॥ अभेद्यमपिभिंदंतिनिर्निमित्तंभ्रमामनः ॥९॥ आपातरमणीयेषुपर्यंतविरसेषुच ॥ भोगेष्विववविकल्पेषुकेषुतेलुलितंमनः ॥ १० ॥ सततोदारवृत्तासुकथासुपरिशीतलम् ॥ मनस्तेनिर्मलंकस्मात्संभ्रमेषुनिमज्जति ॥ ११ ॥ तुच्छालंवनमालूनविशीर्णंलोकवृत्तिषु ॥ मनोमोहमुपादत्तेनमहत्त्वविजृंभितम् ॥ १२ ॥

अर्थ—कि हे देव ! (राजन्) आपकी ऐसी स्थिति होनेसे हम लोग अत्यन्त व्याकुल हैं और यह आश्चर्य है कि अभेद्य मनको भी भ्रान्तिकी प्रतीति विनाकारणही भेदन करती हैं ॥ ९ ॥ और हे भगवन् ! विना विचारे रमणीय परिणाममें फीके विकल्पमय किन भोगोंमें रागादिसे अन्य जनोंके तुल्य आपका मन किस निमित्तसे मोहित हुआहै ॥ १० ॥ निरन्तर उदार वृत्तान्तवाली विवेककी कथाओंके अभ्यास शीतल तथा निर्मल आपका मन भयकी बातोंमें किस कारण निमग्न होता (डूबता) है ॥ ११ ॥ क्योंकि तुच्छ विषयोंका आलम्बन करने द्वारा (इसीसे विषयके छिन्न होनेसे छिन्न और नष्ट होनेपर नष्टके सदृश) मन लोककी वातोंमें मोहको ग्रहण करताहै न कि विवकसे शुद्ध ॥ १२ ॥

सातत्येनहियैवास्यमनसोवृत्तिरुत्थिता ॥ शरीरमद्रमत्तासुताभेवैतद्विधावति ॥ १३ ॥ अतुच्छालंवनं धीरंप्रबुद्धंगुणहारिच ॥ तवापिहिमनश्छिन्नमालूनमिवलक्ष्यते ॥ १४ ॥ अनभ्यस्तविवेकंहिदेशकालवशानुगम् ॥ मंत्रौषधिवशंयातिमनोनोदारवृत्तिमत् ॥ १५ ॥ नित्यमात्तविवेकस्यकथमालूनशीर्णता ॥ धुनोतिविततंचेतोवात्येवविबुधाचलम् ॥ १६ ॥

अर्थ—देहाभिमानसे मत्त अविवेककी दशाओंमें इस मनकी जो स्त्री पुत्रादि विषयक वृत्ति उठती है उसी ओर यह दौडताहै ॥ १३ ॥ महान् पदार्थका आश्रय करने वाला, धीर, विवेकी गुणोंसे दूसरोंके चित्तको हरने वाला आपकाभी मन छिन्नभान होता है यह आश्चर्य है ॥ १४ ॥ विवेकके अभ्याससे शून्य और देशकालके पीछे दोडने वाला जो मन है सो मंत्र औषधि (विषयादि) के वशमें हो जाता है नकि विवेकसे उदार वृत्तिसहित ॥ १५ ॥ नित्य ही जिसको विवेक प्राप्त है उसके चित्तको छिन्नता तथा शुष्कता क्योंकर होतीहो, और विषयाच्छिन्न वृत्ति उसे कैसे कंपाती है जैसे सुमेरुको महान वायु ॥ १६ ॥

इतिजातानुगीर्णस्यभूपतेःकांतिराननम् ॥ भूषयामासशीतांशुंमासांतइवपूर्णता ॥ १७ ॥ रराजराजासौ म्यास्यमुन्मीलितविलोचनः ॥ गतेहिमर्त्तावुल्लासिपुष्पौघइवमाधवः ॥ १८ ॥ अथातिसंभ्रमाश्चर्यखिन्नास्मृतिमुखोबभौ ॥ आसन्नमृत्युरालोक्यराहुमिंदुरिवांबरे ॥ १९ ॥ ऐंद्रजालिकमालोक्यप्रोवाचाथहसन्निव ॥ बभ्रुंहिंसात्मकंदृष्ट्वासर्परूपीवतक्षकः ॥ २० ॥

अर्थ—इस प्रकार स्वजन समूहकी अनुकूलवाणीसे धैर्य्य दियेहुये राजाके मुखको शोभाने ऐसे भूषित किया जैसे पूर्णिमाकी पूर्णता चन्द्रमाको ॥ १७ ॥ हे रामजी ! यह राजा मुखकी शान्तता पूर्वक नेत्रको खोलकर ऐसे शोभित हुआ जैसे हिमऋतुके वीतनेपर विकसित पुष्पोंके समूहसहित वसन्तऋतु ॥ १८ ॥ इसके अनन्तर भय और आश्चर्यसे जो खिन्नता प्राप्त हुई थी उसके स्मरण अर्थात् पूर्वापरवृत्तान्तके अनुसन्धानसे उपलक्षित है मुख जिसका ऐसा राजा उस ऐंद्रजालिकको देखकर ऐसे शोभित हुआ जैसे अस्त होनेके समीप चन्द्रमा आकाशमें राहुको देखकर॥१९॥ उस ऐन्द्रजालिकको देखकर हंसता हुआ राजा ऐसे बोला जैसे हिंसक नकुल (नेवले) को देखकर क्षुद्रसर्प वेषधारी तक्षक नागराज ॥ २० ॥

जाल्मजालजटालेनकिमेतद्भवताकृतम् ॥ येनास्पंदप्रसन्नोऽब्धिःक्षणादेत्यप्रसन्नताम् ॥ २१ ॥ चित्रंचिन्नाहिदेवस्यपदार्थशतशक्तयः ॥ सुशक्तमपिमेचित्तंयाभिर्मोहेनिवेशितम् ॥ २२ ॥ कवयंलोकपर्यायकृतांतपदवेदिनः ॥ क्वमनोमोहदायिन्योविततःप्रकृतापदः ॥ २३ ॥ अप्यभ्यस्तमहाज्ञानंमनःस्थितमतिदेहके ॥ कदाचिन्मोहमादत्तेक्षणंमतिमतामपि ॥ २४ ॥

अर्थ—हे अविवेककारिन् ! यह मायाजालसे तूने क्या किया? जिससे शान्त भी समुद्र क्षणमेंही क्षोभताको प्राप्त होता है ॥ २१ ॥ अहो ! मंत्रादि पदार्थगत परमात्मा की शक्ति, विचित्र है ! जिन्होने अतिसमर्थ मेरे चित्त को आश्चर्य के साथ मोहमें प्रविष्ट किया ॥ २२ ॥ कहां तो हमलोग संसारके प्रसिद्ध व्यवहारोंके सिद्धान्त रहस्यको जाननेवाले !

और कहां ये मोहदायिनी अतिविशाल आपत्तियां ॥ २३ ॥ विवेकी भी मन कदाचित् देहके स्थित रहने परभी क्षणभरके लिये बडे २ बुद्धिमानोंकोभी स्वप्न इन्द्रजाल आदिमें मोह ग्रहणकरता है ॥ २४ ॥

इदमाश्चर्यमाख्यानंश्रूयतांरेसभासदः ॥ ममशांबरिकेणेहयन्मुहूर्तंप्रदर्शितम् ॥ २५ ॥ दृष्टवानहमेतस्मिन्बह्वीःकार्यदशाश्चलाः ॥ मुहूर्तंप्रार्थितोध्वस्तशक्रसृष्टिरिवाब्जजः ॥२६॥ इत्युक्त्वोन्मुखनेत्रेषुसभ्येषुसहसन्निव ॥ राजावर्णयितुंचित्रंवृत्तांतमुपचक्रमे ॥ २७ ॥ राजोवाच ॥ ॥ इहविविधपदार्थसंकुलायांह्रदनदपत्तनपर्वताकुलायाम् ॥कुलशिखरिसमुद्रसंकरायांभुविविभवावलितोस्त्ययंप्रदेशः॥२८॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूत्पत्तिप्रकरणे इंद्रजालोपाख्याने राजावबोधो नाम पंचोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०५ ॥

अर्थ—हे सभासदों, शम्बरासुरकी माया जानने वाले इस ऐन्द्रजालिकने मुहूर्तमात्रमें जो मुझे दिखलाया है उस आश्चर्यदायक आख्यानको आपलोग सुनिये ॥ २५ ॥ इस इन्द्रजालमें बहुतसी कार्योंकी चंचलदशा मैंने ऐसे देखा जैसे इन्द्रसे प्रार्थना किये हुये ब्रह्माजी उनकी सृष्टिको ध्वंसनकरके मुहूर्त मात्र में इन्द्रकी सृष्टिका कौतुक देखा ॥ २६ ॥ इतना कहनेपर जब सभासद लोग सुननेको दत्तचित्त हुये तब हंसते हुये उस राजाने विचित्र वृत्तान्त वर्णन करनेको आरम्भ किया ॥ २७ ॥ राजाजी बोले—नानापदार्थोंसे व्याप्त ह्रद, नदी, नद, नगर तथा पर्वतादिसे परिपूर्ण तथा महेन्द्र आदि कुलपर्वतोंसे मिश्रित इस पृथिवीपर अनेक प्रकारके ऐश्वर्योंसे पूर्ण यह हमारा देश है ॥ २८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे राजाऽवबोधो नाम पंचोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०५ ॥

षडुत्तरशततमः सर्गः ॥ १०६ ॥

इस १०६ सर्गमें अश्वसे बनमें प्राप्त किया हुआ राजा चाण्डालकी कन्याके साथ प्रतिज्ञा होनेके कारण शबरके स्थानमें प्राप्त होके चाण्डालकन्याके साथ अपना विवाह वर्णन करता है ॥

॥ राजोवाच ॥ अस्तितावदयंदेशोनानावननदीयुतः ॥ वसुधामंडलस्यास्यसहोदरइवानुजः ॥ १ ॥ अस्मिंश्चायमहंराजापौराभिमतवृत्तिमान् ॥ इंद्रःस्वर्गइवास्यांतुसभायांमध्यसंस्थितः ॥ २ ॥ यावदभ्यागतोदूरात्कश्चिच्छांबरिकस्त्वयम् ॥ रसातलादभ्युदितोमायीमयइवस्वयम् ॥ ३ ॥ अनेनभ्रामितायेहपिच्छिकातेजसोर्जिता ॥ कल्पांतपवनाभ्रेणशक्रचापलतायथा ॥ ४ ॥

अर्थ—राजाजी बोले—हे सभासदो! नानाप्रकारके बन और नदियोंसे युक्त इस पृथिवीमण्डलके सहोदर छोटे भ्राताके समान यह प्रसिद्ध हमारा देश है ॥ १ ॥ नगरनिवासी तथा प्रजागणोंके अनुकूल वृत्ति है जिसकी ऐसा मैं इस देशका राजा हूं और जैसे स्वर्गमें इन्द्र अपनी सुधर्मा सभामें है ऐसेही मैं इस सभामें स्थित हूं ॥ २ ॥ इतनेहीमें रसातलसे मायावी मयनामा असुर जैसे स्वयं निकले ऐसेही दूर देशसे यह शम्बरकी माया जाननेवाला एन्द्रजालिक आगया ॥ ३ ॥ इसने तेजसे बलवती मोरके पंखकी मोर्छल इस समय ऐसे घुमाई जैसे प्रलयकालके पवनसंयुक्त मेघने इन्द्रधनुषकी लताको ॥ ४ ॥

आलोक्यैतामहंलोलांमस्याश्वस्यपुरःस्थितः ॥ पृष्ठमारूढवानेकआत्मनाभ्रांतमानसः ॥ ५ ॥ ततोद्रिंप्रलयक्षुब्धंपुष्करावर्तकोयथा ॥ तथाचलंतंचलितःस्वश्वमारूढवानहम् ॥ ६ ॥ गंतुंप्रवृत्तोमृगयामेकोहमतिरंहसा ॥ उर्वरामिवनिर्भेत्तुःकल्लोलःप्रलयांबुधेः ॥ ७ ॥ तेनानिलविलोलेनदूरंनीतोस्मिवाजिना ॥ भोगाभ्यासजडेनाज्ञोमुग्धस्यमनसायथा ॥ ८ ॥

अर्थ—इस चंचल मोर्छलको देखके इसके अश्वके सन्मुख स्थित मैं आत्मामें भ्रान्तचित्त होके एकाकी उस घोडेकी पीठपर आरूढ हुआ ॥ ५ ॥ उसके अनन्तर उस उत्तम अश्वपर मैं चढा और प्रलयकालके उत्पातके वशसे चलायमान पर्वतपर पुष्करावर्तक मेघ जैसे चलै वैसेही मैं उस घोडेपर चला ॥ ६ ॥ अकेलाही अतिवेगसे मैं मृगयाके अर्थ ऐसे चला जैसे प्रलयके बढे हुये समुद्रके महान् तरंग सर्वस्वसे पूर्ण पृथिवीपर ॥ ७ ॥ वायुके समान वेगवान् उस घोडेपर ऐसे दूर प्राप्त कियागया जैसे विना विचारि रमणीय विषयसमूहके भोगके अभ्याससे जड मन परमात्मासे दूर होजाता है ॥ ८ ॥

अकिंचनमनःशून्यंस्त्रीचित्तमिवनिर्भरम् ॥ ततःप्रलयनिर्दग्धजगदास्पदभीषणम् ॥ ९ ॥ निष्पक्षिक्षारनीहारंनिर्वृक्षमजलंमहत् ॥ संप्राप्तोहमपर्यंतमरण्यंश्रांतवाहनः ॥१० ॥ तद्द्वितीयमिवाकाशंतथाष्टमामिवांबुधिम् ॥ पंचमंसागरमिवसंशुष्कंशून्यकोटरम् ॥ ११ ॥ ज्ञस्येवविततंचेतोमूर्खस्येवरुपाजवम् ॥ अदृष्टजनसंसर्गमजाततृणपल्लवम् ॥ १२ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् वीतराग मुनियोंके मनके समान विषयरहित, स्त्रीके चित्तके तुल्य भयंकर प्रलयसे जलाये हुये ब्रह्माण्डके समान भीषण (भयदायक) ॥ ९ ॥ पक्षियोंसे वर्जित शीतसे अति दुःसह वृक्ष और जलशून्य महान् तथा अन्तरहित वनमें थकित होगयाहै वाहन जिसका ऐसा मैं प्राप्त हुआ ॥ १० ॥ पुनः वह दूसरे आकाशके समान तथा स्वादु उदकवाले समुद्रसे परे पूर्व वर्णित पृथिवीकी परिखाकारगत रूप अष्टम समुद्रके तुल्य पश्चिमसागरके समान और शून्यकोटरके तुल्य अति शुष्क ॥ ११ ॥ और ब्रह्माकार ज्ञानीके चित्तके समान अपरिमित, मूर्खके क्रोधके तुल्य भयंकर मनुष्योंके सम्बन्धसे वर्जित तथा तृण और पल्लवकी उत्पत्तिसे रहित ॥ १२ ॥

अरण्यमिदमासाद्यमतिर्मेखेदमागता ॥ ललनेवैत्यदारिद्र्यंनिरन्नफलबांधवम् ॥ १३ ॥ क्वचन्मरुमरीच्यंबुपुरःप्लुतककुम्मुखम् ॥ आसूर्यास्तंदिनंतत्रप्रक्रांतंसीदतामया ॥ १४ ॥ तदरण्यंमयातीतमतिकृच्छ्रेणखेदिना ॥ विवेकिनेवसंसारोमध्यशून्यततक्षाकृति ॥ १५ ॥ यदेतेनातिवाह्याहंप्राप्तवाञ्जंगलंक्रमात् ॥ अस्ताद्रिसानुंखिन्नाश्वःशून्यभ्रांत्येवभास्करः ॥ १६ ॥

अर्थ—ऐसे जंगलमें दुःख प्राप्तहुये पहुंचकर मेरी बुद्धि अति खेदको प्राप्त हुई तथा जैसे अन्न, फल तथा बान्धवसे रहित दारिद्र्यको पाकर कोई ललना स्थित हो ऐसेही मैं वहां स्थित रहा ॥१३॥ तथा शोभायमान मृगतृष्णाके जलोंमें चारोंओर डूबे हैं दिशाओंके मुख जहां ऐसे उस वनमें सूर्यास्त पर्यन्त मैं घूमता रहा ॥ १४ ॥ मध्यमें शून्यतासे विशाल है आकृति जिसकी ऐसे उस वनको खेदयुक्त अति क्लेशसे मैंने ऐसे पार किया जैसे विवेकी जन संसारको ॥ १५ ॥ जैसे आकाशके भ्रमणसे सूर्य अस्ताचलपर प्राप्त किये जाते हैं ऐसेही खिन्नाश्व मैं इस घोडेसे वाहित (ढोये हुये) होकर क्रमसे उस जंगलमें प्राप्त हुआ ॥ १६ ॥

जंबूकदंबप्रायेषुकलालापाःपतत्रिणः ॥ यत्रस्फुरंतिखंडेषुपांथानामिवबांधवाः ॥ १७ ॥ यत्रशष्पशिखाश्रेण्योहृदयंतेविरलाःस्थले ॥ कदर्थलक्ष्म्याजिह्मस्यहृदीवानंदवृत्तयः ॥ १८ ॥ पूर्वोदरण्यादरसात्तत्किंचित्सुखावहम् ॥ अत्यंतदुःखान्मरणाद्वरंव्याधिर्हिजंतुषु ॥ १९ ॥ तत्रजंबीरखंडस्यतलंसंप्राप्तवानहम् ॥ मार्कंडेयइवागेंद्रमेकार्णवविहारतः ॥ २० ॥

अर्थ—जहांपर जामुनि और कदम्बके अधिक भोग्यके वृक्षोंपर मधुर भाषण करनेवाले पक्षीगण ऐसे भास तेथे जैसे मार्ग ग्रामियोंके बान्धव ॥१७॥ और जहांपर कोमल घासकी शिखाकी पंक्ति ऐसी विरल थी जैसे अधर्मसे उपार्जित धनके द्वारा कपटीके हृदयमें आनन्दकी वृत्तियां ॥ १८ ॥ पूर्वोक्त नीरस जंगलसे यह कुछ सुखदायक था क्योंकि अत्यन्त दुःखयुक्त मरणसे रोग होना प्राणियोंमें उत्तम समझा जाता है ॥ १९ ॥ वहांपर मैंने जम्बीर (कागजीनींबु) के वृक्षके नीचे मैं ऐसे प्राप्त हुआ जैसे महान् समुद्रमें विहार करते हुये मार्कण्डेय ऋषि विष्णुसंयुक्त वटके वृक्षको ॥ २० ॥

आलंबितामयातत्रस्कंधसंसर्गिणीलता ॥ नीलाजलदमालेवतापतप्तेनभूभृता ॥ २१ ॥ मयिप्रलंबमानेस्थांप्रवातःसतुरंगमः ॥ गंगावलंबिनिनरेयथादुष्कृतसंचयः ॥ २२ ॥ चिरंदीर्घाध्वगःखिन्नस्तत्रविश्रांतवाहनम् ॥ भानुरस्ताचलोत्संगेतलेकल्पतरोरिव ॥ २३ ॥ यावत्समस्तसंसारव्यवहारभरैःसमम् ॥ रविर्विश्रमणायेवनिविष्टोस्ताचलांगणे ॥ २४ ॥

अर्थ—उस वृक्षके नीचे मेरे कन्धेसे जिसका सम्बन्ध उसे अश्वके त्यागनेके अर्थ ऐसे आलम्बन किया जैसे सूर्य्यके तापसे संतप्त पर्वत, मेघकी मालाको ॥२१॥ जब मैं उस लताको अवलम्बन करके लटक रहाथा तो वह घोड़ा ऐसे चलागया जैसे मनुष्यके गंगाजीका आश्रय करनेपर सब पापोंके समूह ॥ २२ ॥ दीर्घ कालतक अधिक मार्ग चलनेसे थकित होकर अति खिन्न चिरकालतक उसके नीचे ऐसे विश्राम किया जैसे अस्ताचलके शिखरके ऊपर कल्पवृक्षके नीचे सूर्य्य ॥ २३ ॥ जबतक सूर्य्य भगवान् समस्त व्यवहार समूहके साथ मानों विश्राम करनेके अर्थ अस्ताचलके अंगणमें स्थित हुये ॥ २४ ॥

शनैःश्यामिकयाग्रस्तेसमस्तेभुवनोदरे ॥ रात्रिसंव्यवहारेषुसंप्रवृत्तेषुजंगले ॥ २५ ॥ अहंतरुतृणेतस्मिन्पेलवेखंडकोटरे ॥ निलीनश्चिरलीनास्यःस्वनीडेविहगोयथा ॥ २६ ॥ विपदष्टविवेकस्यकीनाशस्यग

लत्स्मृतेः ॥ विक्रीतस्येवदीनस्यमग्नस्येवांधकूपके ॥ २७ ॥ तत्रकल्पसमारात्रिर्मोहमग्नस्यमेगता ॥ एकार्णवोह्यमानस्यमार्कंडेयमुनेरिव ॥ २८ ॥

अर्थ—और धीरे २ रात्रिने समस्त भुवनोंके उदरको ग्रस्तलिया और जंगलमें रात्रिको सब प्रवृत्त हुये ॥२५॥ मैं कोमल वृक्षके पत्ते सहित खण्डित खोखलमें ऐसे छिपगया जैसे पक्षी अपने चोंचको पक्षके नीचे छिपाके अपने घोसलेमें छिपजाय ॥ २६ ॥ सर्पके काटनेसे नष्ट विवेकके तुल्य मृत्युके वशीभूत स्मृतिशून्य विके हुयेके समान दीन और अन्ध कूपमें निमग्नके सदृश ॥ २७ ॥ और मोहमें मग्न मेरी रात्रि वहांपर कल्पके समान इस प्रकार बीती जैसे महान् समुद्रमें वहनेहुये मार्कण्डेय मुनिकी ॥ २८ ॥

नस्नातवान्नार्चितवान्नतदाभुक्तवानहम् ॥ केवलंमेगतारात्रिःसापदांधुरितिष्ठतः ॥ २९ ॥ विनिद्रस्यविधैर्यस्यस्फुरतःसहपल्लवैः ॥ समंदुष्टातिदैर्घ्येणसाव्यतीयायशर्वरी ॥ ३० ॥ ततस्तिमिरलेखासुसहतारैर्दुकैरवैः ॥ मयीवापाद्यमानासुम्लानतामलमानने ॥ ३१ ॥ शाम्यंतीषुचवेतालक्ष्वेडासुजवजंगले ॥ सहशीतार्तिमद्दंतपंक्तिटांकारसीत्कृतैः ॥ ३२ ॥ मामेवार्त्तिविनिर्मग्नंहसंतीमिवदृष्टवान् ॥ अहंपूर्वांदिशंप्राप्तमधुपानारुणामिव ॥ ३३ ॥

अर्थ—न तो स्नान किया न पूजन किया और न उस समय भोजन किया केवल आपत्तिग्रस्त मनुष्योंके अग्र भागमें स्थित मेरी रात्रि बीत गई ॥ २९ ॥ निद्रारहित धैर्य्य सहित और पत्तोंके साथ कांपते हुये अति दीर्घताके साथ वह दुष्टा रात्रि मेरी बीत गई ॥ ३० ॥ इसके अनन्तर तारागण चन्द्रमा और कुमुदोंके साथ अन्धकारकी लेखाओंके मुखपर भलीभांति मेरे समान म्लानता प्राप्त होनेपर ॥३१॥ और उस दीर्घ वनमें वेतालोंके सिंहनाद युक्त क्रीडाओंके शान्तहोनेपर दुःसह शीतकी पीड़ा सहित प्राणियोंके दन्तसंघट्टन और सीत्कार शब्दोंके साथ विपत्तिमें ग्रस्त मुझे हंसती हुईके तुल्य मधुपानकी क्रीड़ासे मानों अरुण (रक्त) वर्ण पूर्व दिशाको मैंने देखा ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

क्षणादज्ञइवज्ञानंदरिद्रइवकांचनम् ॥ दृष्टवानहमर्कंखेवारणारोहणोन्मुखम् ॥ ३४ ॥ उत्थायास्तरणंवस्त्रंततदास्फोटितंमया ॥ हस्तिचर्महरेणेवसंध्यानृत्यानुरागिणा ॥ ३५ ॥ प्रवृत्तस्तामहंस्फारांविहर्तुंजंगलस्थलीम् ॥ कालोजगत्कुटींकल्पदग्धभूतगणामिव ॥ ३६ ॥

अर्थ—अनन्तर क्षणभरमेंही जैसे अज्ञानी ज्ञान, दरिद्र सुवर्णको देखताहै ऐसेही पूर्वदिशारूपी ऐरावत दिग्गजके ऊपर आरूढ सूर्य्य भगवानको मैंने देख ॥ ३४ ॥ उस समय उठके मैंने अपने ओढने बिछोन इस प्रकार फटकारा जैसे सन्ध्याकालके नृत्यके अनुरागी श्रीमहादेवजी हस्तीके चर्मको ॥ ३५ ॥ इसके पश्चात् उस वनस्थलीमें मैं ऐसे विहरना आरम्भ किया जैसे प्रलयसे दग्द होगयेहैं प्राणीगण जिसके ऐसी जगत्कुटीमें काल ॥ ३६ ॥

नकिंचिद्दृश्यतेतत्रभूतंजरठजंगले ॥ अभिजातोगुणलवोयथामूर्खशरीरके ॥ ३७ ॥ केवलंविगताशंकंखंडभ्रमणचंचलम् ॥ चीचीकूचीतिवचनाविहरंतिविहंगमाः ॥ ३८ ॥ अथाष्टभागमापन्नेव्योम्नोदिवसनायके ॥ शुष्कावश्यायलेशासुस्नातास्विवलतासुच ॥ ३९ ॥ दृष्टामयाप्रभ्रमतादारिकौदनधारिणी ॥ गृहीतामृतसत्कुंभादानवेनेवमाधवी ॥ ४० ॥

अर्थ—कोई भी प्राणी उस प्राचीन दीर्घ जंगलमें ऐसे नहीं देख पडताथा जैसे मूर्ख के शरीरमें कोई उत्तम गुण ॥ ३७ ॥ केवल शंकारहित फलरहित वनके खण्डमें भ्रमणसे वा जातिकी चपल चीची कूची शब्द करनेवाले पक्षीगण उस बनमें विहरतेथे ॥ ३८ ॥ इसके पश्चात् ४ चार घडी दिन चढनेपर और स्नान किये हुये तुल्यकी ओस शुष्क होजानेपर ॥ ३९ ॥ भ्रमण करते हुये मैंने हाथमें भात लिये हुये एक कन्याको ऐसे देखा जैसे स्त्रीवेषधारी हस्तमें अमृतका घट (घडा) लिये हुये विष्णुको दानव लोग ॥ ४० ॥

तरत्तारकनेत्रांतांश्यामामधवलांबराम् ॥ अहमभ्यागतस्तत्रशर्वरीमिवचंद्रमाः ॥ ४१ ॥ मह्यमोदनमाश्वेतद्बालेबलवदापदि ॥ देहिदीनार्त्तिहरणात्स्फारतांयांतिसंपदः ॥ ४२ ॥ क्षुदंतर्महतीयंमेबालेव्राद्धिमुपेयुषी ॥ कृष्णसर्पाप्रसूतेवकोटरस्थाजरद्द्रुमे ॥ ४३ ॥ याच्ञयापितयामह्यमित्थंदत्तंनकिंचन ॥ यत्नप्रार्थनयालक्ष्म्यायथादुष्कृतिनेधनम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—चंचल नेत्र श्याम वर्ण और मलिनवस्त्रको धारण किये हुये उस कन्याको मैं देखकर उसके निकट ऐसे गया जैसे रात्रिके निकट चन्द्रमा ॥ ४१ ॥ और उससे यह कहा कि—हे बाले! इस बडी आपत्तिमें मुझे[1] भात शीघ्र दे दे क्योंकि दीनोंके दुःख हरण करनेहीसे सम्पत्ति विशालताको प्राप्त होती है ॥ ४२ ॥ हे बाले! मेरे

१ जीवितात्ययमापन्नो योन्नमत्ति यतस्ततः ॥ लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥ १ ॥ इस वचनसे प्राणके नाश उपस्थित होनेपर इधर उधरका अन्न खानेसेभी मनुष्य पापी नहीं होता ॥

अन्तः यह क्षुधा ऐसे वृद्धिको प्राप्त है जैसे प्राचीन वृक्षके कोटरमें स्थित बच्चा दिये हुये काली सर्पिणी॥४३॥इसप्रकार याच्ञा करनेपर भी मुझे उसने कुछ न दिया जैसे यत्नसे प्रार्थना करनेपर भी पापीको लक्ष्मी धन नहीं देती ॥ ४४ ॥

केवलंचिरकालेनमयात्यंतानुगामिना ॥ खंडात्खंडंनिपततिच्छायाभूतेपुरःस्थिते ॥ ४५ ॥ तयोक्तंहारकेयूरिंश्चंडालींविद्धिमामिति ॥ राक्षसीमिवसुक्रूरांपुरुषाश्वगजाशनाम् ॥ ४६ ॥ राजन्यार्चनमात्रेणमत्तोनाप्नोपिभोजनम् ॥ ग्राम्यादनभिजातेहात्सौजन्यमिवसुंदरम् ॥ ४७ ॥ इत्युक्तवत्यागच्छंत्याखेलयाचपदेपदे ॥ कुंजकेषुनिमज्जंत्यालीलावनतयोदितम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—परन्तु चिरकालतक मैं उसका अनुगामी (पीछे चलनेवाला) बना रहा और एक बनके खण्डसे दूसरे बनके खण्डमें पीछे २ चलाही गया और छायाके तुल्य उसके सम्मुख स्थित होनेपर ॥ ४५ ॥ उस कन्याने कहा कि—हे हारकेयूरको धारण करने हारे! मुझे आप चाण्डालकी कन्या जानो और मैं मनुष्य अश्व तथा गजके खानेवाली अति क्रूर राक्षसीके समान हूं अर्थात् मेरा अन्न आपके भोजन करने योग्य नहीं है ॥ ४६ ॥ हे राजकुलोत्पन्न! मेरे साथ गमन करने मात्रसे तुम भोजन ऐसे नहीं पासकते जैसे अपूर्ण अभिलाषग्रामीता उत्तम जनसे मैत्री ॥४७॥ ऐसा कहती हुई पश्चात् क्रीडापूर्वक चलती हुई तथा लताकुंजोंमें छिपती हुई लीलापूर्वक कटाक्ष आदि चेष्टाओंसे अपने अभिप्रायको प्रकट करती हुई नम्रहोके उसने कहा ॥ ४८ ॥

ददामिभोजनमिदंभर्त्ताभवसिचेन्मम ॥ लोकोनोपकरोत्यर्थैःसामान्यःस्निग्धतांविना ॥ ४९ ॥ वाहयत्यत्रमेदांतान्केदारेपुल्कसःपिता ॥ श्मशानइववेतालःक्षुधितोधूलिधूसरः ॥ ५० ॥ तस्येदमन्नंभवतिभर्त्त्वेदीयतेस्थिते ॥ प्राणैरपिहिसंपूज्यावल्लभाःपुरुषायतः ॥ ५१ ॥ अथोक्तासामयाभर्ताभवामितवसुव्रते ॥ केनापदिविचार्यतेवर्णधर्मकुलक्रमाः ॥ ५२ ॥

अर्थ—कि हे महाराज! यदि तुम मेरे पति हो तो यह भोजन मैं तुमको दूं क्योंकि मेरे सदृश सामान्य जन बड़े प्रयोजनोंके विना दूसरेको उपकार नहीं करता ॥ ४९ ॥ मेरा पिता चाण्डाल यहां खेतोंमें बैलोंको ऐसे जोत रहा है जैसे क्षुधित धूलिसे धूसर श्मशानभूमिमें वेताल ॥ ५० ॥ यह अन्न उसके लिये मैं लेजातीहूं परन्तु यदि मेरे पति हो तो मैं तुमको दे सकतीहूं क्योंकि प्रिय पुरुष (पति) स्त्रियोंको प्राणोंसे भी पूजनीय है ॥ ५१ ॥ इसके अनन्तर मैंने उससे कहा कि हे सुव्रते मैं तेरा पति होताहूं क्योंकि आपत्तिमें वर्ण तथा कुलके धर्म कौन विचारते हैं ॥ ५२ ॥

ततस्तयौदनादर्द्धमह्यसेकंसमर्पितम् ॥ माधव्येवामृतादर्द्धमिंद्रायार्त्तिमहत्पुरा ॥ ५३ ॥ जंबूफलरसःपीतःसभुक्तःपक्कणौदनः ॥ विश्रांतंचमयातत्रमोहापहतचेतसा ॥ ५४ ॥ मांतत्रार्कमिवापूर्यसाप्रावृट्श्यामलागता ॥ हस्तेनसमुपादायप्राणंबहिरिवास्थितम् ॥ ५५ ॥ दुराकृतिंदुरारंभमाससादभयप्रदम् ॥ पितरंपीवराकारमवीचिमिवयातना ॥ ५६ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर उस अन्नका आधाभाग मुझे इस प्रकार दिया जैसे स्त्रीवेषधारी विष्णुने अमृतका आधा इन्द्रको. और अति क्षुधाके दुःखसे मैंने उसेही बहुत माना ॥ ५३ ॥ अज्ञानसे नष्ट होगयाथा चित्त जिसका ऐसे मैंने वहां जामुनिके फलका रस पिया और उस सवरका अन्न खाया तथा वहां कुछ विश्राम भी किया ॥ ५४ ॥ सूर्यके सदृश मुझे वहां छिपाके वर्षाके तुल्य श्याम वर्ण वह इस प्रकार गई जैसे बाहर स्थित प्राणको हस्तमें लेके ॥ ५५ ॥ कुरूप कुत्सितकार्यकारी भयदायक और स्थूल शरीरवाले अपने पिताके निकट ऐसे वह प्राप्त हुई जैसे अवीचि नाम नरकमें यातना ॥ ५६ ॥

तयामदनुषंगिण्यास्वार्थस्तस्मैनिवेदितः ॥ मातंगायभ्रमर्येवनिःस्वनेनालिलग्नया ॥ ५७ ॥ अयंममभवेद्भर्त्तातातहेतवरोचताम् ॥ सतस्याबाढमित्युक्त्वादिनांतेससुपस्थिते ॥ ५८ ॥ मुमोचदांतावाबद्धौकृतांतःकिंकराविव ॥ नीहाराभ्रकडारासुदिक्षुप्रोद्धूलितासुच ॥ वेतालबंधनात्तस्माद्दिनांतेचालितावयम् ॥ ५९ ॥ क्षणेनपक्कणंप्राप्ताःसंध्यायांदीर्घजंगलात् ॥ श्मशानादिववेतालाःश्मशानमितरन्महत् ॥ ६० ॥

अर्थ—मुझे आलिंगन हुये उसने चाण्डाल अपने पितासे अपना प्रयोजन (विवाहरूप) इस प्रकार निवेदन किया जैसे भ्रमरसे संलग्न मधुर शब्दसे भ्रमरी ॥ ५७ ॥ वह बोली किं-हे प्रियपिता! यह पतिहो इस बातको आप प्रसन्न करें, और उसके पिताने कहा कि बहुत अच्छा और जब दिनका अन्त उपस्थित हुआ ॥५८॥ तब अच्छीतरहसे बन्धे हुये दोनों बैलोंको ऐसे छोरा जैसे यमराज अपने किंकरोंको और मेघ तथा कुहिरा दिशाके पीली और धूलियुक्त होनेपर पिशाचोंके निवासस्थान उस बनसे हम तीनों चले ॥ ५९ ॥ और क्षणभरमें उस बडेजंगलसे संध्याकालमें हमलोग शबरके स्थानपर ऐसे प्राप्त हुये जैसे वेताल (भूतगण) एक स्मशानसे दूसरे बडे स्मशानमें ॥६०॥

विकर्तितविभागस्थकपिकुक्कुटवायसम् ॥ रक्तसिक्तोर्वराभागभ्रमन्मक्षिकागणम् ॥ ६१ ॥ शोषार्थंप्रसृतार्द्रान्त्रतंत्रीजालपतत्खगम् ॥ निष्कुटस्थितजंबीरखंडलग्नखगध्वनि ॥ ६२ ॥ शुष्यद्गुरुवसापिंडपूर्णालिंदलसत्खगम् ॥ दृष्टिप्रसृतरक्ताक्तचर्मस्रवदसृग्लवम् ॥ ६३ ॥ बालहस्तास्थितक्रव्यपिंडक्वणितमक्षिकम् ॥ जर्जराधिष्ठचंडालतर्जितारटितार्भकम् ॥ ६४ ॥

अर्थ—और काटकर पुनः छोटे २ भागको दिये गये हैं वानर मुर्गे और कौवे जिस स्थानपर, रक्तसे सींची हुई पृथिवीपर जहां मक्षिकाओंके समूह भ्रमण कर रहेहैं ॥ ६१ ॥ तथा सूखनेके लिये फैलाई हुई आर्द्र (गीली) आन्त और तांतपिर पक्षीगण जहांपर गिरतेहैं तथा गृहके वाटिकामें स्थित नीबुके वृक्षपर पक्षीगण जहां शब्द कर रहें ॥ ६२ ॥ और सूखते हुये बडे चर्बियोंके पिण्डोंसे पूर्ण बाहरके द्वारपर पक्षीगण शोभायमान हो रहेहैं तथा आंखसे बहे हुये रक्तसे भीगे हुये चर्मसे रुधिरके बिन्दु जहां टपक रहेहैं ॥ ६३ ॥ तथा बालकोंके हस्तमें स्थित कच्चे मांसके पिण्डोंपर माक्षिका जहांपर भनभना रहीहैं तथा वृद्ध और श्रेष्ठ चांडाल जहांपर बकवाद करनेवाले बालकोंकी तर्जना कर रहेहैं ॥ ६४ ॥

तत्प्रविष्टावयंकीर्णशिरांत्रंभीमपक्कणम् ॥ मृतभूतंजगत्कल्पेकृतांतानुचराइव ॥ ६५ ॥ संभ्रमोपहितानल्पकदलीदलपीठके ॥ अहमास्थितवांस्तत्रनवेश्वशुरमंदिरे ॥ ६६ ॥ श्वश्रवामेकेकराक्ष्यात्ततेनासृग्लवचक्षुषा ॥ जामातायमितिप्रोक्तंतयासदभिनंदितम् ॥ ६७ ॥ अथविश्रम्यचंडालभोजनान्यजिनासने ॥ संचितान्युपभुक्तानिदुष्कृतानीवभूरिशः ॥ ६८ ॥

अर्थ—हे सभासदो ! उस नाडी और आंतोंसे पूर्ण चाण्डालके गृहमें हम लोग ऐसे प्रविष्टहुये जैसे जगत्के प्रलयमें जहां प्राणीगण मरगयेहैं ऐसे स्थानपर यमराजके किंकर ॥ ६५ ॥ उस नूतन श्वशुरके स्थानमें अति आदरसे लाये हुये केलेके आसनपर मैं बैठगया ॥ ६६ ॥ और टेपरी आंखवाली इसीसे नेत्रसे रुधिरके बिन्दुयुक्त आंखवाली मेरी श्वश्रू (सास) ने तो कहा कि यह मेरा जामाता (दामाद) है ऐसा कहके वह अति प्रसन्न हुई ॥ ६७ ॥ इसके अनन्तर कुछ विश्राम करके अजिन चर्मके आसन पर बैठके संचय किये हुये चाण्डालोंके योग्य भोजन मैंने ऐसे किया जैसे पापी पुरुष अनेक कर्मसे संचित किये हुये पापोंको ॥ ६८ ॥

अनंतदुःखबीजानिनमनोज्ञतराण्यपि ॥ तानिप्रणयवाक्यानिश्रुतान्यसुभगान्यलम् ॥ ६९ ॥ निरभ्रांबरनक्षत्रेकस्मिंश्चिद्दिवसेततः ॥ तैस्तैरारंभसंरंभैस्तैर्वस्तुविभवार्पणैः ॥ ७० ॥ दत्ताप्यनेनसामह्यंकुमारीभयदायिनी ॥ सुकृष्णाकृष्णवर्णेनदुष्कृतेनेवयातना ॥ ७१ ॥ सरभसममितोविनेदुरत्रप्रमृतमहामदिरासवाःश्वपाकाः ॥ हतपटुपटहाविलासवंतःस्वयमिवदुष्कृतराशयोमहांतः ॥ ७२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे इंद्रजालोपाख्याने चांडालीविवाहो नाम षडुत्तरशततमःसर्गः ॥ १०६ ॥

अर्थ—और अनन्त दुःखोंके बीज, अप्रिय तथा कुत्सित प्रणयके वाक्योंको भी भली भांति सुना ॥ ६९ ॥ इसके अनन्तर किसी अच्छे नक्षत्रयुक्त दिनमें जिस दिनमें आकाशमें मेघ न थे उन २ चाण्डालोंके उचित मद्यमांस आदिके संचयके आरम्भके उद्योगोंसे तथा उन २ वस्तु और विभव आदिके समर्थताके साथ ॥ ७० ॥ उस भयदायिनी अति कृष्णवर्ण कन्याको उसके पिताने मुझे ऐसे दिया जैसे कृष्णवर्ण पाप नरककी यातना ॥ ७१ ॥ और इस विवाहके उत्सवमें मदिरापानसे महामत्त बडे २ नगारोंको बजाने वाले और नाच विलास करते हुये चाण्डाल लोक चारों ओर दौडते हुये वेगके साथ ऐसे शब्द करते थे जैसे मूर्तिधारी ब्रह्महत्यादिक महान पापोंकी राशि ॥ ७२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे इन्द्रजालोपाख्याने चाण्डालीविवाहो नाम षडुत्तरशततमः सर्गः ॥ १०६ ॥

सप्तोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०७ ॥

इस १०७ के सर्गमें उस शबरालयमें ६० वर्ष पर्य्यन्त चिरकाल तक निवास करते हुये चाण्डालके योग्य कृत्यके साथ जो जीवन है उसका वर्णन किया गया है ॥

॥ राजोवाच ॥ बहुनात्रकिमुक्तेनसोत्सवावर्जिताशयः ॥ तदाप्रभृतितत्राहंसंपन्नःपुष्टपुल्कसः ॥ १ ॥ सप्तरात्रोत्सवस्यांतेक्रमान्मासाष्टकेगते ॥ पुष्पितासास्यसंपन्नास्थितागर्भवतीततः ॥ २ ॥ प्रसूताइः··

खदांकन्यांविपद्दुःखक्रियामिव ॥ साकन्यावबृधेशीघ्रंमूर्खचिंतेवपीवरी ॥ ३ ॥ पुनःप्रसूतासावर्षैस्त्रिभिःपुत्रमशोभनम् ॥ अनर्थमिवदुर्बुद्धिराशापाशविधायकम् ॥ ४ ॥

अर्थ—राजाजी बोले-अब यहां पर अधीक कहनेसे क्या प्रयोजन है विवाहके उत्सवके साथ वशीकृत चित्त में उसी समयसे लेके पक्का चाण्डाल बन गया ॥ १ ॥ सात रात्रीतक उत्सवके अन्तमें क्रमसे आठ मास बीत गये और यह मेरी स्त्री ऋतुमती हुयी और गर्भवती होके स्थित हुई ॥ २ ॥ और वह विपत्तिके दुःखकी क्रिया के तुल्य दुःखदायी कन्या जनी और वह कन्या शीघ्र ऐसे बढी जैसे मूर्ख जनकी स्थूल चिन्ता ॥३॥ इसके पश्चात् तीन वर्ष बीतने पर अशोभन पुत्र ऐसे उत्पन्न किया जैसे अनर्थबुद्धिमनुष्य आशाकी फांसियोंका विधान करने वाले अनर्थ को ॥४॥

पुनःसुतांदुहितरंपुनरप्यर्भकंततः ॥ कलत्रवानहंजातोवनेजरठपुल्कसः ॥ ५ ॥ तयासहसमास्तत्रमयाबह्व्योतिवाहिताः ॥ नारकेचिंतयासार्धंब्रह्मघ्नेनेवयातनाः ॥ ६ ॥ शीतवातातपक्लेशविवशेनवनांतरे ॥ चिरंविलुलितंवृद्धकच्छपेनेवपल्वले ॥ ७ ॥ कलत्रचिंताहतयाधियासंदह्यमानया ॥ दृष्टाःकष्टसमारंभादिशःप्रज्वलिताइव ॥ ८ ॥

अर्थ—और पुनःकन्या उत्पन्न हुई और उसके पश्चात् पुनःपुत्र उत्पन्न हुआ इस प्रकार वनमें मैं दुष्ट चाण्डाल कुटुम्बवान् होगया ॥ ५ ॥ जैसे ब्रह्मघ्न (ब्राह्मण मारनेवाला) नरकमें चिन्ताके साथ अनेक यातना भोगताहै ऐसेही उसके साथ मैंने बहुत वर्ष बिताये ॥ ६ ॥ वनके मध्यमें शीत वात और आतपके क्लेशसे विवश होकर चिरकाल तक ऐसे फिरता रहा जैसे वृद्ध कछुवा छोटे तालावमें ॥ ७ ॥ कुटुम्बके पालनकी चिन्तासे नष्ट अतएव सन्तप्यमान (जलती हुई) बुद्धिसे दुःखदायक कष्ट संयुक्त जलती हुई समान दशो दिशाओंको देखा ॥ ८ ॥

क्षौमानेकसमाक्षीणपटेचेंडकधारिणा ॥ काष्ठभारोवनेव्यूढोयोमूर्तमिवदुष्कृतम् ॥ ९ ॥ यूकाकीर्णजरत्क्लिन्नगंधिकौपीनवाससा ॥ आश्वस्यधवलीकानांतलेनीताघनाःसमाः ॥ १० ॥ कलत्रापूरणोत्कोनजर्जरेणहिमानिलैः ॥ हेमंतेदर्दुरेणेवविलीनंवनकुक्षिषु ॥ ११ ॥ नानाकलहकल्लोलतापप्रसरविद्रुताः ॥ बाष्पव्याजेननिर्मुक्तानेत्राभ्यांरक्तबिंदवः ॥ १२ ॥

अर्थ—अतसी (अलसी) से निर्मित अनेक स्थानपर फटे हुये वस्त्रके ऊपर घासकी गेहुरी धारण करके बड़ा कष्ट दायक भार शिरपर धारण करताथा जो कि मूर्तिमान् पापके तुल्य था ॥९॥ यूकों (जूओं) के समूहसे व्याप्त और फटे हुआ दुर्गन्ध युक्त केवल कौपीन वस्त्रको धारण कियेहुये धवलीकनामकवृक्षोंके नीचे विश्राम करकेबहुत वर्ष व्यतीत किये ॥ १० ॥ कुटुम्ब पालन चिन्तामें निमग्न और शीतकालके वायुसे जर्जर शीतऋतुमें वनोंके उदरोंमें ऐसे छिपारहता जैसे मेंडक ॥११॥ नानाप्रकारके कलहके तरंगों के तापसे पिघले हुये रक्तके बिन्दु आंसुओंके बहानेसे बहाये ॥ १२ ॥

यामिन्योविपिनेक्लिन्नेवराहामिषभोजनाः ॥ शिलातलकुटीकोशेनीताजलदविक्लवाः ॥ १३ ॥ कालेक्षयंगतेरोहेकालाभ्रघनतांगते ॥ असौहार्देनबंधूनांकलहैश्चापिसंततैः ॥ १४ ॥ सर्वत्रजातशंकनकलाभिमुखरार्भकैः ॥ मयाकृपणचित्तेननीताःपरगृहेसमाः ॥ १५ ॥ चंडालीकलहोद्विग्नचंडचंडालतर्जनैः ॥ मुखंजर्जरतांयातमिंदुराहुरदैरिव ॥ १६ ॥

अर्थ—पाषाणोंकी शिलाके तलोंमें कुटीरूपी गुप्तगृह थे जिनमें ऐसे भीगे वनमें सुअरोंका मांस भोजन करते हुये, मेघोंसे अति भयंकर रात्रियोंको विताया ॥ १३ ॥ काले मेघोंसे सघनताको प्राप्त सम्पूर्ण बीजोंको उत्पत्तिके कारणभूत वर्षाकालके बीत जानेपर बन्धुओंके द्वेषसे तथा निरन्तर कलहके कारणसे ॥१४॥ सब जगह शंका सहित और दीनचित्त मैंने तोतरी वाणी बोलनेवाले बालकोंके साथ दूसरे चाण्डालोंके गृहोंमें वर्षों विताया ॥ १५ ॥ चाण्डालीके कलहों से उद्विग्न तथा प्रचण्ड चाण्डालोंके तर्जनोंसे मेरा मुख ऐसा जर्जर होगया जैसे राहुके दांतोंसे चन्द्रमा ॥ १६॥

चर्विताःखर्वितोष्ठेनद्वीपीपिशितपेशयः ॥ नारकात्त्वविक्रीतानारक्योरशनाइव ॥ १७ ॥ हिमवत्कंदरोद्गीर्णाश्चंडाहेमंतवीचयः ॥ शिशिरेशीकरासारतुषारनिचयाश्चिरम् ॥ १८ ॥ अंगेनिरंबरेसोढामृत्युमुक्ताइवेपवः ॥ जराजरठमूढेनमूलानिक्षीणभूरुहाम् ॥ १९ ॥ सुकृतानामिवैकेनसमुत्खातानिभूरिशः ॥ शस्यकेव्यटव्यांचपललंपकमादरात् ॥ २० ॥

अर्थ—नीचे ओठोंसे व्याघ्रादि मांसपिण्ड ऐसे चबाया जैसे नारकी प्राणियोंसे लाई हुई और उन्ही के हस्त में विक्रीत आंतको नारकी जीव ॥ १७ ॥ हिमालयसे निकली हुई दुःखदायी हेमन्तकी तरंगें और शिशिरऋतुमें जलकणोंकी वृष्टि तथा तुषारके समूह चिरकालतक ॥ १८ ॥ वस्त्ररहित शरीरपर ऐसे सहन किया जैसे मृत्युसे छोड़े

हुये बाण वृद्धावस्था से जीर्ण इसीसे मूढ चित्त मैंने अनेक प्राचीन वृक्षोंकी जड ऐसे काटी जैसे सुकृतोंकी ओर जंगलमें शरावो (मृत्तिकाके पात्रों) में पके हुये मांसको आदरसे ॥ १९ ॥ २० ॥

अस्पृष्टेनजनैर्भुक्तंकुकलत्रवतामया ॥ गृहीततेजःक्षतयेबहुवक्त्रविकारिणा ॥ २१ ॥ मार्गाविकमिवात्मीयंविक्रीतंपण्यमन्यतः ॥ प्राण्यंगवपुषस्तस्यप्रोत्कृत्योत्कृत्यपेशलः ॥ २२ ॥ आयसंपरिविक्रीता विंध्यपक्कणभूमिषु ॥ जन्मान्तरसहस्रोत्थंस्वपापमिववृद्धये ॥ २३ ॥ अवकीर्णमसत्कीर्णचंडालाराम भूमिषु ॥ दृष्टःकुद्दालकोदृष्ट्यासंध्याद्वेषविमुक्तया ॥ २४ ॥ रौरवापतितेनेवतत्कालस्निग्धतांगतेः ॥ विंध्यकंदरगुल्मानांबंधुत्वमिवगच्छता ॥ २५ ॥

अर्थ—जनोंके स्पर्शसे रहित दुष्टस्त्रीवाले मैंने भोजन किया मुखके अनेक विकारयुक्त मैंने उपार्जित तेजके नाशके लिये ॥ २१ ॥ मृग तथा भेडेको मांसको अपनेही मांसके तुल्य दूसरोंसे खरीदा और उस प्राणीयोंके अंगको काट २ उसके कोमल भागको ॥ २२ ॥ लोहेके पात्रमें रखवा संस्कार करके अधिक मूल्यके लाभार्थ ऐसे बेचा जैसे सहस्रों जन्मान्तरके पापोंके उसकी वृद्धिके अर्थ ॥ २३ ॥ और विकनेसे बचे हुये अपवित्र मलमूत्रोंसे पूर्ण मांसको चाण्डालोंके गृहवाटिकाओंमें सूखनेके अर्थ फैलादिया, और नरक गिरेके तुल्य अर्थात् अत्यन्त दुर्दशा ग्रस्त और बिन्ध्याचल की कन्दराकी लता गुल्मोंके बन्धताको प्राप्त मैं कन्दमूल तथा मांस आदिके उपार्जनमें विघ्नभूत जो संध्याकाल उससे द्वेष करनेवाली दृष्टिसे कुद्दाल (कुदार कुठार वा पावडे) को पोषक होनेके कारणसे मित्र होके देखा, अर्थात् उस कुद्दालकसे कुटुम्बका पालन होताथा इससे मित्ररूपसे उसीके ऊपर दृष्टि पडगई थी ॥ २४ ॥ २५ ॥

पुलिंदवपुषायत्रयुक्तयोगैःसमर्पिताः ॥ तर्पितालगुडाघातजितकौलेयरंहसा ॥ २६ ॥ पुत्रदाराःकदन्नेनग्रामकांघोचितेनच ॥ धारासाररणत्पत्रशुष्कतालतलेनिशाः ॥ २७ ॥ नीतारणितदंतेनसार्द्धंविपिनवानरैः ॥ रोमभिःकोटिमुद्राग्रैःशीतेनाध्युषितस्यमे ॥ २८ ॥ वर्षासुमुक्ताकणवद्धृतावानलबिंदवः ॥ अजाजीमूतखंडार्थंक्षुत्क्षुण्णक्षीणकुक्षिणा ॥ २९ ॥

अर्थ—जिस दुर्दशामें परम्परा सम्बन्धसे चाण्डालकी शरीररूपी दैवसे स्त्रीपुत्रादिकोंने समर्पित (दिये हुये) यष्टिका प्रहारों से कुकुर आदिके उपद्रवोंको निवारण करके ग्रामीण जनके योग्य दुष्टअन्नसे पालन किया और जलकी धाराके वेगसे शब्दायमान पत्र थे जिनके ऐसे तालके वृक्षोंके नीचे अनेक रात्रियोंको ॥ २६ ॥ २७ ॥ बनके वानरोंके साथ बिताया और शीतके दुःखमें निवास सूचीके अग्रभागके तुल्य खडे रोमोंसे मोतीके कणके तुल्य वर्षाकालमें मेघके बिन्दुओंको धारण करताथा तथा क्षुधासे क्षीण मैंने मेघके खंडके समान तुच्छ मांसके टुकडेके लिये ॥ २८ ॥ २९ ॥

कलत्रेणसहाटव्यांकृतःकलहआकुलः ॥ वनेरणितदंतेनशीतकेकरचक्षुषा ॥ ३० ॥ मषीमलिनगात्रेण वेतालस्वजनायितम् ॥ सरित्तीरेषुमत्स्यार्थंभ्रांतंबडिशधारिणा ॥ ३१ ॥ कल्पेजगत्त्रुनाशार्थंकृतांतेनेव पाशिना ॥ पीतंबहूपवासेनसद्यःकृत्तमृगोरसः ॥ ३२ ॥ तत्कालकोष्णंरुधिरंमातुस्तनपयोयथा ॥ श्मशानसंस्थितान्मत्तोरक्तरक्तान्मलाशिनः ॥ ३३ ॥ विद्रुतावनवेतालाश्चंडिकाभिद्रुताइव ॥ वागुराविपिनेन्युप्तावंधार्थंमृगपक्षिणाम् ॥ ३४ ॥

अर्थ—बनमें व्याकुल होके कुटुम्बके साथ कलह करताथा और शीतसे तरंगपर नेत्रवाले बनमें दांत कटकाते हुये ॥ ३० ॥ और मषीके तुल्य मलीनशरीरसे वेतालके बन्धुके सदृश आचरण किया और नदियोंके तटपर मत्स्योंके अर्थ बडिश (बंसी) धारण किये ऐसे भ्रमण किया ॥ ३१ ॥ जैसे अनेक संसारोंमें नाशार्थ प्रलयकालमें हस्तमें फांसी लियेहुये काल और बहुतकालके उपवासके अनन्तर उसी क्षणमें काटे हुये मृगके वक्षस्थलका रुधिर ऐसे पान किया ॥ ३२ ॥ जैसे उसी कालमें किंचित् उष्ण माताके स्तनका दुग्ध और स्मशान भूमिमें संस्थित रक्तसे रंजित और अपवित्र भोजन करनेवाले मुझसे बनके बेताल ऐसे भागते थे जैसे चण्डिकाके खदेरे हुये, और जंगलमें मृगपक्षियोंके बंधनके लिये जाल ऐसे फैलाया ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

आशाइवविवृद्ध्यर्थंपुत्रदारकलत्रजाः ॥ मयामायामयैर्लोकाःसूत्रजालमयैःखगाः ॥३५॥ जालैर्जर्जरनीतादिशश्चासुकृतायुषा ॥ तत्रापिदत्तःप्रसरोमनसोदुष्कृतोदये ॥ ३६ ॥ आशाप्रसारितादूरंप्रावृषीव तरंगिणी ॥ करभ्याइवसर्पेणविद्रुतंदूरतोधिया ॥ ३७ ॥ दूरेत्यक्तादयादेहेभुजंगेनेवकंचुकम् ॥ क्रौर्यं सुखेनसंरंभशरवर्षिणिनादिच ॥ ३८ ॥ अंगीकृतंनिदाघांतेनभसेवासितांबुदः ॥ विकासिन्योक्षताः क्षारादूरंपरिहृताजनैः ॥ ३९ ॥

अर्थ—जैसे वृद्धिके अर्थ स्त्री पुत्र तथा कुटम्बसे उत्पन्न आशाको जैसे मायामय सब लोकहैं ऐसेही सुकृत शून्य अवस्थावाले मैंने सूत्रजालमय पक्षियोंका ॥३५॥ और जालोंसे सम्पूर्ण दिशाओंको भी जर्जरताको प्राप्त करादिया, और उस उपायके कर्ममें भी दुष्कृतके उदय होनेपरही मनको अवसर दिया ॥३६ ॥ अपनी आशाको ऐसे दूरकै लाया जैसे वर्षाकालमें नदी और बुद्धिसे ऐसे दूर भागताथा जैसे भल्लुकी (भालू) से सर्प ॥ ३७ ॥ और जैसे सर्प अपनी कैंचुली त्यागता है ऐसेही दूसरे प्राणियोंके देहमें दया सर्वथा त्याग दिया और त्राण पक्षमें जलकी वर्षा करनेवाला तथा निष्ठुरभावपक्षमें गर्जन शील क्रौर्य्य (कुरत्त) को ऐसे धारण किया जैसे निदाघके अन्तमें आकाश मेघको और उग्र गन्ध तथा दुःसह विकासिनी स्त्रियोंको वा लताओंको ।जिनके दूरसेही लोग छोडे थे उनको मैंने काटडाले॥३८॥३९॥

श्वभ्रेणेवकुभंजर्योश्चिरमूढामयापदः ॥ स्वकालकुलकोणासुनरकोद्दामभूमिषु ॥ ४० ॥ उप्ताद्दुष्कृतबीजानांमुष्टयोमोहवृष्टयः ॥ वागुराभिर्मयाविंध्यकंदरस्थेननिर्दयम् ॥ ४१ ॥ भूतेष्विवकृतांतेनमृगेषुपरिवल्गितम् ॥ चामरीकंठकुडयेषुविश्रांतशिरसामया ॥ ४२ ॥ सुप्तमस्तविवेकेनशेषांगेष्विवशौरिणा ॥ विलोलचरणांबरयासरावोल्लासिधूम्रया ॥४३ ॥

अर्थ—और जैसे गढोंमें कुत्सित लतायें रहती हैं ऐसे चिरकालतक मैंने आपत्तियोंको धारण किया अपने नियत काल फल भोगना चाहिये ऐसा नियत कालही जिनकी क्षेत्रोंको विभाग करनेवाली मर्यादा है ऐसे नरककी उद्दण्ड भूमियोंमें ॥ ४० ॥ अज्ञानकी वृष्टिही जिनके फलोंके वर्द्धकथे ऐसे पापोंकी मुष्टि (मुट्ठी) मैंने बोया औविन्ध्याचलकी कन्दरामें स्थित मैंने जालोंको निर्दयता पूर्वक ॥ ४१ ॥ मृगोंके ऊपर ऐसी गर्जनाकी जैसे कल्पान्तमें प्राणियोंके ऊपर यम और मोरोंके कण्ठके झोंपडोंमें विश्राम करनेवाला शिर था जिसका ऐसा मैंने ॥ ४२ ॥ नष्ट विवेक होके ऐसे शयन किया जैसे शेषके अंगोंपर विष्णुऽभगवान और चंचल है चरण जिसमें ग्राह्यपक्षमें समीपके पर्वत आकाश पक्षियोंके ऐसे शब्दोंसे पक्षमें व्याघ्र आदि शब्दोंसे उत्साह युक्त धूम्र वर्ण रूप है जिसका ॥३४ ॥

ममतन्वासनीहारविंध्यकच्छगुहायितम् ॥ कृष्णदेहेनयौकाढ्याकंथास्कंधेमयाचिरम् ॥ ४४ ॥ ग्रीष्मेसोढाचलद्भूतावराहेणयथोर्वरा ॥ बहुशोहंवनोत्थाग्निनिर्दग्धप्राणिमंडलः ॥ ४५ ॥ कल्पाग्निभुक्तजगतःकालस्यानुगतिंगतः ॥ लोभिर्लिंगोयथारोगमनर्थानिवदुर्ग्रहः ॥ प्रसूतास्तत्रमेदाराद्दुःखान्यथसुखान्यपि ॥ ४६॥ नृपालपुत्रकेनैकतनयेनतदामया ॥ नीतानीरंध्रदोषेणषष्टिःकल्पसमास्समाः॥४७॥ आक्रुष्टमुद्धुरतरंरुदितंविपत्सुभुक्तंकदन्नमुषितंहतपक्कणेषु ॥ कालांतरंबहुमयोपहतेनतन्नदुर्वासनानिगडबंधगतेनसभ्याः ॥ ४८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुऽवादे उत्पत्तिप्रकरणे इन्द्रजालोपाख्यानआपद्वर्णनं नाम सप्तोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०७ ॥

अर्थ—ऐसी मेरी शरीर विन्ध्यपर्वतकी गुहाके सदृश आचरण करतीथी और जुओंसे पूर्ण कन्या (कथरी) कृष्ण (काली) देहसे मैंने चिरकाल तक ग्रीष्म ऋतुमे ऐसे धारण करताथा ॥ ४४ ॥ जैसे वराह भगवान चलायमान प्राणियोंके साथ सर्व सस्य पूर्ण पृथिवीको और प्रलयकी अग्निसे जगत्भक्षी कालका अनुगामी मैंने वनमें प्रकटी भूत अग्निसे प्राणियोंके मण्डलोंको भस्मकर दिया और मैथुनका व्यसनी जैसे अनेक रोग उत्पन्न करता है तथा दुराग्रही अनर्थोंको ऐसेही मेरी स्त्रीने दुःख तथा सुख भय सन्तती उत्पन्न किया ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ छिद्र तथा दोष रहित राजाके मुख्य पुत्र मैंने उस समय ६० वर्ष ६० कल्पके समान इस प्रकार विताया ॥ ४७ ॥ हे सभ्यगण जो काल आपलोगोंने अनुभव किया है इसकी अपेक्षा अन्यकालमें उस शवरालय दुर्वासनाकी वेडीमें बंधेहुये मैंने क्रोध दूसरोंको गाली भी दिया विपत्तिमें रोदन भी किया कदन्न (कुत्सित अन्न) खाया और नष्ट शवरोंके स्थानमें निवास किया ॥ ४८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे इन्द्रजालोपाख्याने राजापद् वर्णनं नाम सप्तोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०७ ॥

---

(१) भालू अपने श्वासोंसे सर्पोंको उनके बिलसे खींचके खा जाती है ।

अष्टोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०८ ॥

इस १०८के सर्गमें चांडालके स्थानमें चिरकाल तक निवास करते हुये राजाको अनावृष्टि हुई और उससे उत्पन्न दुर्भिक्षके कारण देशकी दुर्दशाकावर्णन किया गया है ॥

॥ राजोवाच ॥ अथगच्छतिकालेत्रजराजर्जरितायुषि ॥ तुषारपूर्णशष्पौघसमश्मश्रुभृतेमयि॥१॥ कर्मवातापन्नुन्नेषुसरसेष्वरसेष्वपि ॥ पतत्सुवासरौघेषुशीर्णपर्णगणेष्विव ॥ २॥ आजाविवशरौघेषुसुखदुःखेष्वनारतम् ॥ कलहेष्वप्यकार्येषुचागच्छत्सुपतत्सुच ॥ ३ ॥ विकल्पकल्पनावर्तवर्त्तिनिद्विजगेजडे ॥ समुद्रइवकल्लोलभरेभ्रमितचेतसि ॥ ४ ॥

अर्थ—राजाजी बोले-इसके पश्चात् काल बीतने और वृद्धाऽवस्थासे मेरी अवस्थाके जर्जरित होनेपर और तुषारसे पूर्ण तृणसमूहके सदृश श्मश्रु (दाढ़ीमूछ) से मेरे आच्छादित होनेपर ॥ १ ॥ कर्मरूपी वायुसे प्रेरित सुख और दुःखमय दिनोंके समूहोंके इस प्रकार गिरनेपर जैसे प्राचीन पत्तोंके समूह ॥ २ ॥ और युद्ध में जैसे बाणोंके समूह गिरते हैं ऐसेही सुख और दुःखोंके निरन्तर आनेपर तथा कलह अकार्य्य कार्य्योंके आने तथा गिरने पर ॥ ३ ॥ विकल्पोंकी कल्पनारूपी आवर्तमें स्थित पक्षीके तुल्य निरालम्बनमें चलनेहारे जड़ और तरंगोंसे पूर्ण समुद्रके तुल्य भ्रान्त चित्तयुक्त ॥ ४ ॥

चलच्चिंताचितंचक्रमारूढेभ्रांतआत्मनि ॥ मोह्यमानेतृणइवसावर्त्तकालसागरे ॥ ५ ॥ विंध्योर्वीवनकीटस्यग्रासैकशरणस्यमे ॥ द्विबाहोर्गर्दभस्यात्रक्षीणइत्थंसमागणे ॥ ६ ॥ विस्मृतेमम भूपत्वेशवस्येवमहाजवे ॥ चांडालत्वेस्थिरीभूतेपक्षच्छिन्नइवाचले ॥ ७ ॥ संसारमिवकल्पांतोदावाग्निरिवकाननम् ॥ सागरोर्मिस्तटमिवशुष्कवृक्षमिवाशनिः ॥ ८ ॥

अर्थ—चलायमान चिन्तासे पूर्ण चक्रपरआरूढ भ्रांत आत्मा, और आवर्तके साथ तृण के तुल्य कालसागर में बहाहुये इस जीवको स्थित होनेपर ॥ ५ ॥ विन्ध्याचलकी पृथ्वी और बनके कीडेके समान, तथा भोजन मात्रका अवलम्बी, और दो बाहुधारी गर्द्दभके समान वर्तमान मुझे इसी प्रकार वर्षोंके समूह बीतगये ॥ ६ ॥ मृतक के महा वेगके तुल्य मेरे नृपत्व (राजापन) के भूल जानेपर और छिन्न पक्ष पर्वतके तुल्य चाण्डालत्व स्थिर होनेपर ॥ ७ ॥ संसारमें प्रलयके सदृश वनमें दावाग्निके समान समुद्रकी तरंग तटके ऊपर शुष्क (सूखे वृक्षपर बज्रके सदृश ॥८॥

अकांडेमरणोड्डीनंचंडचंडालमंडलम् ॥ निरन्नतृणपत्रांबुविंध्यकच्छंतदाययौ ॥ ९ ॥ नवर्षतिघनव्राते दृष्टनष्टेक्वचित्स्थिते ॥ पूतांगारकणोन्मिश्रगतौवहतिमारुते ॥ १० ॥ शीर्णमर्मरपर्णासदावाग्निवलितासुच ॥ वनस्थलीषुशून्यासुचिरप्रव्रजितास्विव ॥ ११ ॥ आकांडमभवद्भीममुद्दामदवपावकम् ॥ शोषिताशेषगहनंभस्मशेषतृणोपलम् ॥ १२ ॥

अर्थ—और कुसमयमें मरणसे परलोकके गमनके समान दुर्भिक्ष(काल) प्रचण्ड चण्डालोंका समूहथा जिसमें ऐसे, तथा अन्न तृण और जलसे, शून्य, विन्ध्याचलकी प्रांत भूमी पर उस समय आके प्राप्त हुवा ॥ ९ ॥ उस समय मेघके समूहके न वर्षनेपर अभी एक पदार्थ दृष्ट हुआ और पुनः नष्ट हुआ यह दशा कहीं २ स्थित होने और शुद्ध अंगारके कणोंसे मिश्रित (मिलेहुये) वायुके वहने पर ॥ १० ॥ प्राचीन शुष्क मर्मर पत्र युक्त दावाग्नि से आच्छादित और शून्य वनस्थलियोंके चिरकालकी प्रव्रजिताओं (पीत जटादिसे सन्यासनियोंके तुल्य होनेपर ॥११॥ अकाण्ड अर्थात् अनष शरमें प्रकट दुर्भिक्ष होगया, जो कि भयंकर अति प्रबल वनाग्नि सहित, सब गहन (जल सहित) स्थानोंको शोषण करनेवाला तृण और पाषाण जिसमें भस्मके तुल्य ॥ १२ ॥

पांसुधूसरसर्वांगंक्षुधिताशेषमानवम् ॥ निरन्नतृणपानीयंदेशाद्युद्दावमंडलम् ॥ १३ ॥ क्वचन्मरुमरीच्यंबुमज्जन्महिषमंडलम् ॥ वातोत्थसीकरव्यूहापरिवाहवनांबरम् ॥ १४ ॥ पानीयशब्दमात्रैकश्रवणोत्कनरव्रजम् ॥ आतपातितसंशोषसीदत्सकलमानवम् ॥ १५ ॥ पत्रग्रसनसंरब्धक्षुधितोत्थितजीवितम् ॥ स्वांगचर्वणसंरंभलुठद्दशनमंडलम् ॥ १६ ॥

अर्थ—धूलियोंसे मलिन होगये सबके अंग जिसमें ऐसा, सम्पूर्ण मनुष्य जिसमें क्षुधित हो रहे हैं, अन्न तृण तथा पानीय(पीनेके योग्य जलादि)से रहित और उत्तम जंगलके तुल्य जनपद अर्थात् देश होगयाहै जिसमें ऐसा॥१३॥ और मृग तृष्णानदीका जल जिसमें शोभायमान है और उसमें महिषों (भैसों) का समूह डूब (मर) रहा है और बनका अकाश वायुमें स्थित जलके कणोंको भी जिसमें यदि धारण कर सकता था ॥ १४ ॥ और जल (अर्थात् जल

है वा वर्षेगा) इस शब्द मात्रके श्रवण मात्रको उत्कण्ठित मनुष्य समूह जिसमें था तथा धर्मके अति विस्तारसे सम्पूर्ण पदार्थोंके सूखने दुःखीहैं सम्पूर्ण प्राणीगण जिसमें ॥ १५ ॥ पत्रोंके निगलनेके उद्योगसे क्षुधित प्राणियोंके जीवन जहांपर निकल गयेहै और अपनेही अंगोंके चर्वणके अभिलाषसे दंत समूह एक दुसरेको जिसमें काट रहे हैं ॥ १६ ॥

मांसशंकानिगीर्णोग्रखदिराग्निकणोत्करम् ॥ मंडकासारसंग्रस्तवनपाषाणखंडकम् ॥ १७ ॥ अन्योन्य भूतसंसक्तमातृपुत्रपितृव्रजम् ॥ गृध्रोदररटत्सारनिगीर्णवरसारिकम् ॥ १८ ॥ परस्परांगविच्छेदरक्त सिक्तधरातलम् ॥ हरिग्रसनसंरब्धमत्तक्षुधितचारणम् ॥ १९ ॥ दरीनिगरणैकैकासिंहभ्रमणभीषणम् ॥ अन्योन्यग्रसनोद्युक्तलोकमल्लकृतंवहत् ॥ २० ॥

अर्थ—और मांसकी आशंका निगल लिये हैं उग्र खदिर और अग्निके कणके समूह जहांपर, तथा स्नेह रहित पिशानके भ्रमसे साररहित वनके पाषाणखण्डभी जिसमें भक्षण करलिये गयेहैं ॥ १७ ॥ और माता तथा पुत्र आदि के समूह जहां परस्पर जीवोंपर लपट गयेहैं, तथा गृध्रके उदरके समान रटते हुये प्राणियोंसे जहां समग्र (खड़ी) श्रेष्ठ सारिका (पक्षिणी) निगल लीगई है ॥ १८ ॥ और परस्पर एक दूसरेके काटनेसे रक्तोंसे पृथिवी तल जहांपर सींच गया है, तथा सिंहोंको ग्रासकरनेका उद्योग जहांपर मत्त और क्षुधित हस्तिगण जहांपर कररहैं ॥ १९ ॥ और कन्दराओंमें अपनेही निगलनेकी आशंकासे एक २ सिंहके भ्रमणसे भयंकर, और परस्परके मारनेके अर्थ उद्युक्त लोगोंसे किये मल्लयुद्धको धारण करनेवाला ॥ २० ॥

निष्पत्रपादपोड्डीनप्रौढांगारमयानिलम् ॥ रक्तपानोत्कमार्जारलीढधातुतटावनि ॥ २१ ॥ ज्वालाघनघटा टोपसावर्त्तसवनानिलम् ॥ सर्वस्थलरसद्वन्हिपुंजपिंजरजंगलम् ॥ २२ ॥ दग्धाजगरकुंजोत्थधूममांसल गुल्मकम् ॥ मारुतावलितज्वालासंध्याभ्रवलितांबरम् ॥ २३ ॥ उद्दामरवमुद्भ्रांतभस्मनास्तंभमंडल म् ॥ साक्रंदनरदाराग्रदीनार्भककृतारवम् ॥ २४ ॥

अर्थ—तथा पत्ररहित वृक्षोंपर प्रबल अंगारमय वायु जहां बह रहाहै और रक्तपानके अर्थ उद्युक्त विलार गैरिक (गेरू) धातुमय तटको चाट रहा है ऐसी पृथिवी जहांपरहै ॥ २१ ॥ और सघन ज्वालाकी घटाके आटोपसे आवर्त (बवण्डर) सहित जहां बनका वायु हो रहाहै और सबस्थानोंमें प्रचंड शब्द करते हुये अग्नि पुंजसे पिंजरमय जंगल जहां होरहेहैं ॥ २२ ॥ और जहां जले हुये अजगरोंसे निकले हुये धूमसे लता गुच्छपुष्ट होरहेहैं और वायुसे आवेष्टित (घिरीहुई) अग्नि ज्वालासे मानो सन्ध्याकालके मेघसे आकाश जहां आच्छादित हो रहा है ॥ २३ ॥ और प्रबल शब्दसहित भ्रमण करते हुये भस्मसे जहां छत्रमण्डल दंड शून्य होगये हैं और रोदन सहित स्त्री पुरुषोंके आगे दीन बालक जहां आर्तनादकर रहेहैं ॥ २४ ॥

संभ्रांतपुरुषव्यूहदंतकृत्तमहाशवम् ॥ मांसगंधजवग्रस्तरक्तारक्तनिजांगुलि ॥ २५ ॥ नीलपत्रलताशंकापीतधूमघनच्छवि ॥ भ्रमद्गृध्रनिगीर्णोग्रनभोभ्रांतोल्मुकामिषम् ॥ २६ ॥ इतरेतरभिन्नांगलोकविद्रव णाकुलम् ॥ ज्वलिताग्निटणत्कारविदीर्णहृदयोदरम् ॥ २७ ॥ गर्त्तमारुतझांकारभीमदावाग्निवल्गनम् ॥ भीताजगरफूत्कारपतदंगारपादपम् ॥ २८ ॥

अर्थ—भ्रमण करते हुये स्त्री पुरुषोंके समूहके दांतोंसे जहांपर बड़े २ मृतक जीव काटडाले गयेहैं और मांसके लेशमात्रकी ग्रसनेकी शीघ्रतासे निगली हुई अपनीही अंगुली चारों ओर जहांपर रक्तवर्ण होरही है ॥ २५ ॥ और पानीके पत्रोंकी आशंकासे धूम तथा मेघकी छबिको जहांपर लोग पीनेको उद्यत होरहेहैं तथा भ्रमण करते हुये गृध्रोंने आकाशमें टूटती हुलूक रूपी मांसको जहांपर निगललिया है ॥ २६ ॥ परस्पर छिन्नभिन्न अंग संसारके पलायनसे व्याकुल तथा जलती हुई अग्निके टंकार शब्दसे मनुष्योंके हृदय और उदर जहांपर विदीर्ण होगयेहैं ॥ २७ ॥ और प्रवेश करते हुये वायुके झंकार शब्दके सदृश भयंकर दावाग्नि जहां भडकरहीहै तथा भयभीत अजगरोंके फुफकारसे गिरते हुये अंगार सहित वृक्ष जहांपरहैं ॥ २८ ॥

सदकांडस्फुटद्देशंप्राप्यतच्छुष्ककोटरम् ॥ द्वादशार्काग्निदग्धस्यजगतोनुकृतिंययौ ॥ २९ ॥ ज्वलदनलजटा लवृक्षखंडप्रसरमरुत्प्रसरावनुन्नलोकः ॥ ज्वलनतपनभास्करात्मजानांरमणगृहानुकृतिंजगामदेशः ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये षूत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे इंद्रजालोपाख्याने अकांडवर्णनं नामाष्टोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०८ ॥

अर्थ—और शुष्क होगये हैं कीटर जिसमें ऐसे पूर्वोक्त आकाण्डके दुर्भिक्ष सहित देशमें प्राप्त होकर पूर्वकाल-रमणीय भी पदार्थ प्रलयकालमें १२ द्वादश सूर्य्यको अग्निसे निदग्ध जलाये हुये जगत्के सदृश होगया ॥ २९ ॥ और

हे सभ्य लोग जलती हुई अग्निसे जटा संयुक्त वृक्षोंके खण्डोंमें चलते हुये वायुके प्रसारसे, पीड़ित लोक जहां पर है ऐसा वह विन्ध्यके प्रान्तका देश अग्नि सूर्य्य और शनैश्चरके रमण स्थानकी तुल्यताको प्राप्त होगया ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे इन्द्रजालोपाख्याने अकाण्डदुर्भिक्षवर्णनं नामाष्टोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०८ ॥

नवाधिकशततमः सर्गः १०९ ॥

इस १०९ के सर्गमें स्त्री सहित राजाका निकलना और वहां चाण्डालीसे उत्पन्न हुये पुत्रकी आपत्ति देखकर चितामें प्रवेश करनेकी इच्छा करना और उस समय प्रतिबुद्ध (सचेत) होनेसे सभासदोंके साथ संवाद करना वर्णन किया गया है ॥

॥ राजोवाच ॥ तस्मिंस्तदावर्तमानेकष्टेविधिविपर्यये ॥ अकालोल्बणकल्पांतेनितांतंतापदायिनि ॥१॥ जनाःकेचननिष्क्रम्यसकलत्रसुहृज्जनाः ॥ गतादेशांतरंव्योम्नःशरदीवपयोधराः ॥ २ ॥ देहावयवसंलीनपुत्रदाराढ्यबंधवः ॥ शीर्णाःकेचनतत्रैवच्छिन्नाइववनेद्रुमाः ॥३॥ भुक्ताःकेचनचव्याघ्रैर्निर्गतास्तुस्वमंदिरात् ॥ अजातपक्षकाःश्येनैःखगानीडोद्गताइव ॥ ४ ॥

अर्थ—राजाजी बोले—उस समय दैवके प्रतिकूल होनेपर अकाल भयंकर कल्पान्तके सदृश अत्यन्त ताप दायक उस आपत्तिके वर्तमान होनेपर ॥ १ ॥ कोई तो अपने कुटुम्ब और इष्ट मित्रके साथ निकलकर ऐसे देशान्तरको चलेगये जैसे शरद् ऋतुमें आकाशसे मेघ ॥२ ॥ पुत्र स्त्री और प्रिय बन्धु लोग देहके अवयवके समान त्याग करनेके असमर्थथे, और कोई तो वहांही ऐसे नष्ट होगये थे जैसे कटे हुये वृक्ष ॥ ३ ॥ और कितने तो अपने स्थानसे निकलके व्याघ्रादि हिंसक जीवोंसे ऐसे भक्षण करालिये गये थे जैसे जिनके पक्ष नहीं उत्पन्न हुये ऐसे पक्षी अपने खुंथोंसे निकले परबाजोंसे ॥ ४ ॥

प्रविष्टाःकेचिदनलंज्वलितंशलभाइव ॥ केचिच्छ्वभ्रेषुपतिताःशिलाःशैलच्युताइव ॥ ५ ॥ अहंतुतान्परित्यज्यश्वशुरादीन्स्वकंक्षतम् ॥ कलत्रमात्रमादायकृच्छ्राद्देशाद्विनिर्गतः ॥ ६ ॥ अनलानानिलांश्चैवभक्षकांस्तक्षकानपि ॥ वंचयित्वाभयान्मृत्योःसदारोहंविनिर्गतः ॥ ७ ॥ प्राप्यतद्देशपर्यंतंतत्रतालतरोस्तले ॥ सवरोप्यसुतान्स्कंधान्नानर्थानिवोल्बणान् ॥ ८ ॥

अर्थ—और कोई तो जैसे पांखी दीपकमें गिरती हैं ऐसेही अग्निमें प्रवेश करगये और कितने पर्वत गिरी शिलाओंके तुल्य गढ़ोंमें गिरपड़े ॥ ५ ॥ और मैं तो अपने श्वशुर आदिको वहां त्यागकर अपने साथ जाने योग्य कुटुम्ब मात्रको लेके उसक्लेशदायक देशसे निकला ॥ ६ ॥ अग्नि, वायु भक्षक व्याघ्र आदि तथा सर्पोंकी भी बचाकर मृत्युके भयसे कुटुम्ब सहित मैं बाहर निकला ॥ ७ ॥ भयंकर अनर्थोंके समान अपने पुत्रोंको कन्धेपर चढ़ाके उसदेशके प्रान्त (अन्तके समीप) प्राप्तहीके वहां एकताल वृक्षके नीचे ॥ ८ ॥

विश्रान्तोस्मिचिरंश्रान्तोरौरवादिवनिर्गतः ॥ दीर्घदावनिदाघार्तोग्रीष्मेपद्मइवाजलः ॥ ९ ॥ अथचाण्डालकन्यायांविश्रान्तायान्तरोस्तले ॥ सुप्तायांशीतलच्छायेद्वौसमालिंग्यदारको ॥ १० ॥ पृच्छकोनामतनयोममैकःपुरतःस्थितः ॥ अत्यन्तवल्लभोस्माकंकनीयान्मौग्ध्यवानिति ॥ ११ ॥ समामुवाचदीनात्माबाष्पपूर्णविलोचनः ॥ तातदेह्याशुमेमांसंपातुंचरुधिरंक्षणात् ॥ १२ ॥

अर्थ—चिरकाल तक ऐसे विश्राम किया जैसे रौरव नरकसे निकला वा दीर्घ दावाग्निसे पीड़ित उष्णकालमें जलरहित सुखती हुई कमलिनी ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर शीतल छायायुक्त उसवृक्षके नीचे चाण्डालकी कन्याके दो लड़कीको विश्राम करके सो जाने पर ॥ १० ॥ पृच्छक नाम एक मेरा पुत्र जो सबसे छोटा और अति बालक होने से हमलोगोंके अति प्रियथा, वह अश्रुसे पूर्णनेत्र दीनचित्त मेरेसे बोला कि हे प्रिय पिता ! मुझे भक्षणको मांस और पीनेको रक्त शीघ्र क्षणभरमें दीजिये ॥ ११ ॥ १२ ॥

पुनःपुनर्वदन्नेवंसबालस्तनयोमम ॥ प्राणांतिकींदशांप्राप्तःसाक्रंदोहिपुनःक्षुधा ॥ १३ ॥ तस्योक्तंमयापुत्रमांसंनास्तीतिभूरिशः ॥ तथापिमांसंदेहीतिवदत्येवसुदुर्मतिः ॥ १४ ॥ अथवात्सल्यमूढेनमयादुःखार्तिभारिणा ॥ तस्योक्तंपुत्रमन्मांसंपक्वंसंभुज्यतामिति ॥ १५ ॥ तदप्यंगीकृतंतेनदेहीतिवदतापुनः ॥ मन्मांसभक्षणंक्षीणवृत्तिनाश्लेषवृत्तिना ॥ १६ ॥

अर्थ—वह मेरा पुत्र बालक पुनः २ ऐसाही कहता हुआ प्राणान्तिक दशाको प्राप्त हुआ और पुनः क्षुधासे रोदन करने लगा ॥ १३ ॥ उसको कई वार मैंने कहा कि हे पुत्र! मांस नहीं है तथापि वह दुर्बुद्धि यही कहता कि मांस दो ॥ १४ ॥ इसके पीछे पुत्रके मोहसे मूढ और दुःखके भारसे ग्रस्त मैंने उससे कहा कि हे पुत्र ! तुम पके हुये मेरे मांसको भोजन करो ॥ १५ ॥ भोजन न पानेसे अतिक्षुधित और मुझसे लपटे हुये मांस दो ऐसा कहते हुये उस बालकने मेरे मांसका भक्षणभी अंगीकार किया ॥ १६ ॥

अर्थदुःखापनोदायस्नेहकारुण्यमोहिना ॥ तस्यतामार्तिमालोक्यमयादुःखातिभारिणा ॥ १७ ॥ सोढुंतामापदंतीव्रामशक्तेनहतात्मना ॥ मरणायातिमित्रायकृतोंतानिश्चयोमया ॥ १८ ॥ तत्रकाष्ठानिसंचित्य चितांरचितवानहम् ॥ चिताचटचटास्फोटैःस्थितामदभिकांक्षिणी ॥ १९ ॥ तस्यान्तुयावदात्मानं चितायांनिक्षिपाम्यहम् ॥ चलितोस्मिजवात्तावदस्मात्सिंहासनान्नृपः ॥ २० ॥

अर्थ—स्नेह तथा करुणासे मोहित, दुःखके बोझसे पीडित उस बालककी बहुत पीडा देखकर उस तीव्र आपत्तिके सहनेको असमर्थ मैंने सब दुखोंको दूर करनेके लिये अति मित्र मरणकाही निश्चय किया ॥१७॥ १८ ॥ वहां पर इधर उधरसे लकडी बीनकर मैंने चिता बनाई, और वह चिता चटचटा शब्दोंके साथ मेरे प्राणकी अभिलाषिणी स्थित हुई ॥ १९ ॥ जबतक अपनी शरीरको उस चितामें फेकूं और इस सिंहासनसे वेगसे राजा (यथार्थमें) चला ॥ २० ॥

ततस्तूर्यनिनादेनजयशब्देनबोधितः ॥ इतिशाम्बरिकेणायंमोहउत्पादितोमम ॥ २१॥ अज्ञानेनेवजीवस्यदंशाशतसमन्वितः ॥ इत्युक्तवतिराजेंद्रेलवणेभूरितेजसि ॥ २२ ॥ अंतर्द्धानंजगामाशुतत्रशाम्बरिकःक्षणात् ॥ अथेदमूचुस्तेसभ्याविस्मयोत्फुल्ललोचनाः ॥ २३ ॥ नायंशाम्बरिकोदेवयस्यनास्तिधनैषणा ॥ दैवीकाचनमायेयंसंसारस्थितिबोधिनी ॥ २४ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर तुरूही और जयके शब्दसे बोधित हुआ हे सभ्यगण! इस प्रकार इस साम्बरिक(बाजीगढ़) ने मुझे ऐसा मोह उत्पन्न किया ॥ २१ ॥ जैसे सैकडों दशासे युक्त जीवको अज्ञान, अति तेजस्वी राजाओंके इन्द्रके समान राजा लवणके इतना कहने पर ॥२२॥ वह शाम्बरिक (बाजीगढ़) शीघ्र क्षणमेंही अन्तर्द्धान (लोप) होगया, इसके अनन्तर विस्मयसे विकसित नेत्रवाले उन सभासदोंने राजासे यह कहा ॥ २३ ॥ कि हे देव (राजन्) जिसको धनकी इच्छा नहीं यह शाम्बरिक नहीं है किन्तु संसारकी स्थितिका बोध कराने वाली यह कोई दैवी माया है ॥२४॥

मनोविलासःसंसारइतियस्याम्प्रतीयते ॥ सर्वशक्तेरनंतस्याविलासोहिमनोजगत् ॥ २५ ॥ सर्वशक्तेर्विचित्राहिशक्तयःशतशोविभेः ॥ यद्विवेकिमनोप्येपविमोहयतिमायया ॥ २६ ॥ विज्ञातलोकवृत्तान्तः क्वनामायंमहीपतिः ॥ क्वसामान्यमनोवृत्तियोग्योविपुलसंभ्रमः ॥ २७ ॥ नचशांबरिकेच्छेयंमायामनसिमोहिनी ॥ अर्थस्यसिद्ध्यैचेहंतेनित्यंशांबरिकाःकिल ॥ २८ ॥

अर्थ—जिस मायासे यह भान होताहै कि यह संसार मनका विलास है, क्योंकि सर्वशक्तिमान् विष्णुभगवान्का मनही यह जगत् है ॥ २५ ॥ सर्व शक्तिमान् परमात्माकी सैकड़ों विचित्र शक्तियां हैं क्योंकि यह अपनी मायासे विवेकियोंके मनको भी मोह लेता है ॥ २६ ॥ कहां तो लोकके सम्पूर्ण वृत्तान्तोंका जाननेवाला राजा ! और कहां साधारण मनुष्योंके मनकी वृत्तिके योग्य यह अनेक भ्रम ॥ २७ ॥ और शाम्बरिक (बाजीगढ़) लोगोंके चित्तमें ऐसा मोहनेकी इच्छा नहीं होसकती क्योंकि वेतो चित्त प्रसन्न करके नित्य धनकी सिद्धिकी चेष्टा करते हैं न कि ऐसेही भ्रान्तिसे ॥ २८ ॥

यत्नेनप्रार्थयंतेर्थंनांतर्धानंव्रजंतिभो ॥ इतिसंदेहवेलायांसंस्थिताछलितावयम् ॥ २९ ॥ श्रीवसिष्ठ उवाच ॥ सभायामवसंतस्यामहंरामतदाकिल ॥ तेनप्रत्यक्षतोदृष्टंमयैतन्नान्यतःश्रुतम् ॥ ३० ॥ इतिबहुकलनाविवर्द्धितांगंजयतिचिरंविततंमनोमहात्मन् ॥ शममुपगमितेपरस्वभावेपरमुपैप्यासि पावनंपदंयत् ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे इन्द्रजालोपाख्याने चंडालत्वव्यपगमो नाम नवाधिकशततमः सर्गः ॥ १०९ ॥

अर्थ—हे प्रभो वेतो बडी सावधानीसे धनके लिये प्रार्थना करते हैं न कि अन्तर्द्धान (लोप दशा) को प्राप्त होते हैं इनदोनों कारणोंसे हम लोग संदेह समुद्रके निर्णय रूपीतटपर स्थित हैं ॥२९॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी !

पूर्वकालमें उस राजाकी सभामें मैं स्वयं स्थित था, इसलिये यह वृत्तान्त मैंने प्रत्यक्ष देखाहै न कि दूसरोंसे सुना ॥३०॥ हे ब्रह्मात्मन् रामजी ! इस प्रकार अनेक प्रकारकी रचनाओंसे बर्द्धि शरीर, और फल पल्लव शाखादि वृक्षके तुल्य फैला हुआ यह मन सबसे उत्कृष्ट है और जो ज्ञान तथा विचार योगसे मन निर्वासनतारूपी शान्तिको प्राप्त होके साक्षात्परस्वभाव होनेपर भेदकल्परूपके बाधा होनेपर परमपावन पूर्ण आत्म पदको प्राप्त होओगे ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे इन्द्रजालोपाख्याने चाण्डालत्व व्यपगमो नाम नवाधिकशततमः सर्गः ॥ १०९ ॥

दशोत्तर शततमः सर्गः ॥ ११० ॥

मनकी विभूतियोंके वर्णन द्वारा मनके शान्त करनेका उपाय ब्रह्माके पुत्र श्रीवसिष्ठजी वर्णन करनेको यहां आरम्भ करते हैं ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ परमात्कारणादादौचित्तेत्यपश्यपातिनी ॥ कलनापदमासाद्यकलाकालिलतांगता ॥ १ ॥ असत्स्वेवविमोहेषुरामैवंप्रायवृत्तिषु ॥ घनेषुतुच्छतामेत्यचिरायपरिमूर्च्छति ॥ २ ॥ असदेवमनोवृत्तिर्म्लानाविस्तारयत्यलम् ॥ दुःखंदोषसहस्रेणवेतालानिववालिका ॥ ३ ॥ सदेवहिमहादुःखमसत्तांनयतिक्षणात् ॥ निष्कलंकामनोवृत्तिरंधकारमिवार्करुक् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! चित्त सहित परमकारण जो अज्ञानहै उसी निमित्तसे विषयकी ओर यह चित्त अभिमुख हुई है, और उसी अर्थ यथा यह है ऐसे नामको प्राप्तहोके पदार्थोंके नानाप्रकारकी कला (विचित्रता) से कलुषता (मलिनता) को प्राप्तहुई ॥ १ ॥ हे रामजी ! इस प्रकार स्थितिवाले असत् मोहोंके क्रमसे घनीभूत होनेपर यह चित् (चेतन) अपने पूर्णरूपको विस्मरण करके तुच्छ मनोभावको प्राप्त होके अनादि कालसे जन्म मरणादि भूमोंसे मोहित होती है इस प्रकार तुच्छ मनोवृत्ति रूपसे स्थित वासनारूप सहस्रों दोषोंसे दूषित चित् असत् दुःखको इस प्रकार विस्तार करती है जैसे वालिका वेतालोंको ॥२॥ ३॥ वासनाके क्षय होनेसे निष्कलंक मनोवृत्ति सतचेतन रूपता प्राप्त होके क्षणमेंही महादुःखोंको ऐसी नष्टकर देती है जैसे सूर्य्यकी किरण अन्धकारको ॥ ४ ॥

नयत्यभ्याशतांदूरंदूरमभ्याशतांनयेत् ॥ मनोवल्गतिभूतेषुबालोबालखगेष्विव ॥ ५ ॥ अभयंभयमज्ञस्यचेतसोवासनावतः ॥ दूरतोमुग्धपांथस्यस्थाणुर्यातिपिशाचताम् ॥ ६ ॥ शत्रुत्वंशंकतेमित्रेकलंकमलिनंमनः ॥ मदाविष्टमतिर्जंतुर्भ्रमत्पश्यतिभूतलम् ॥ ७ ॥ पर्याकुलेहिमनसिशशिनोजायतेशनिः ॥ अमृतंविषभावेनभुक्तंयातिविषक्रियाम् ॥ ८ ॥

अर्थ—दूरको समीप और समीपको दूर करतीहै हे रामजी ! यह मन प्राणियोंमें ऐसे गर्जताहै जैसे बालक छोटे छोटे पक्षियोंके वीचमें ॥ ५ ॥ वासना सहित चित्तको अभयमें भय होता है जैसे अज्ञानी वटोहीका दूरसे स्थाण्ड (ढूंठ) पिशाच होजाता है ॥ ६ ॥ वासना कलंकसे दूषित (मलिन) यह मन मित्रमें शत्रुकी आशंका करता है जैसे मादक पदार्थसे जिसकी बुद्धि भ्रष्ट है वह संसारको घूमते हुये देखता है ॥ ७ ॥ मनके व्याकुल होनेपर चन्द्रमासे भी वज्रप्रहार होताहै और विषकी भावनासे अमृतका भोजन विषका कार्य्य करताहै ॥ ८ ॥

सुरपत्तननिर्माणमसत्सद्विवपश्यति ॥ वासनावलितंचेतःस्वप्नवज्जाग्रदेवहि ॥९ ॥ मोहैककारणंजंतोर्मनसोवासनोल्बणा ॥ उत्खातव्याप्रयत्नेनमूलोच्छेदेनसैवच ॥ १० ॥ वासनावागुराकृष्टोमनोहरिणकोनृणाम् ॥ परांविवशतामेतिसंसारवनगुल्मके ॥ ११ ॥ येनच्छिन्नाविचारेणजीवस्यज्ञेयवासना ॥ निरभ्रस्येवसूर्यस्यतस्यालोकोविराजते ॥ १२ ॥

अर्थ—वासनासे आच्छादित चित्त असत् स्वप्नके गन्धर्व नगरादिकी रचनाको देखता है और जाग्रत स्वप्नके तुल्यहीहै ॥ ९ हे रामजी ! प्रवर्तप्रबल वासनाही प्राणीके मोहका मुख्य कारणहै इस लिये मूलका उच्छेद करके उसे उखाड़देना चाहिये ॥ १० ॥ संसाररूपी वनकी लता कुंजोंमें मनुष्योंका मनरूपीहरिण वासनारूपी जालसे खिंचा अति विवशताको प्राप्त होताहै ॥ ११ ॥ जिस जीवकी पदार्थोंकी वासना विचारसे छिन्न होगई है उसका ज्ञानरूपी प्रकाश मेघरहित सूर्य्यके प्रकाशके समान शोभित होताहै ॥ १२ ॥

अतस्त्वंमनएवेदंनरंविद्धिनदेहकम् ॥ जडोदेहोमनश्चात्रनजडंनाजडंविदुः ॥ १३ ॥ यत्कृतंमनसाताततत्कृतंविद्धिराघव ॥ यत्त्यक्तंमनसातावत्तत्त्यक्तंविद्धिचानघ ॥ १४ ॥ मनोमात्रंजगत्कृत्स्नंमनःपर्यंत

मण्डलम् ॥ मनव्योममनोभूमिर्मनोवायुर्मनोमहान् ॥ १५ ॥ मनोयदिपदार्थेतुतद्भावेननयोजयेत् ॥ ततःसूर्यादयोप्येतेनप्रकाशाःकदाचन ॥ १६ ॥

अर्थ—इस लिये हे रामजी ! तुम मनकोही मनुष्य समझो न कि तुच्छदेहको, देह तो जड़ है और इसमें जो मन है वह न जड़ न चेतन किन्तु जडचेतन से विलक्षण है ॥ १३ ॥ हे पापरहितरामजी ! जो कार्य्य मनसे किया गया उसीका तुम कियाहुआ समझो और जिसको मनने त्यागा उसीको त्यागा हुआ समझो ॥ १४ ॥ हे रामजी ! यह संपूर्ण जगत् मनहीहै, भूमण्डल मनही है आकाश मनही है पृथिवी मनही है और वायु मनहीहै तथा महान् मनही है ॥ १५ ॥ हे रामजी ! मन यदि पदार्थोंमें उन २ (प्रकाशादि) रूपसे कल्पना न करै तो सूर्यादि कदाचित् भी प्रकाशरूपसे न भान हों, क्योंकि उल्लुक आदिको दिनमें नहीं दीखता ॥ १६ ॥

मनोमोहमुपादत्तेयस्यासौमूढउच्यते ॥ शरीरेमोहमापन्नेनशवोमूढउच्यते ॥ १७ ॥ मनःपश्यभवत्यक्षिशृण्वच्छ्रवणतांगतम् ॥ त्वग्भावंस्पर्शनादेतिघ्राणतामेतिजिघ्रणात् ॥ १८ ॥ रसनाद्रसतामेति विचित्रास्तस्यशक्तिषु ॥ नाटकेनटवद्देहेमनएवानुवर्तते ॥ १९ ॥ लघुदीर्घकरोत्येवसत्येऽसत्तांप्रयच्छति ॥ कटुतांनयतिस्वादुरिपुंनयतिमित्रताम् ॥ २० ॥

अर्थ—जिसका मन मोहको ग्रहण करताहै वही मूढ कहाता है, और शरीर जब मोह (अज्ञ) दशाको प्राप्त होताहै तो मृतक शरीरको कोई मूढ नहीं कहता ॥ १७ ॥ देखो देखता हुआ यह मन नेत्र, सुनता हुआ श्रवण, स्पर्शसे त्वक्, और सूंघने से घ्राण (नासिका) इन्द्रिय हो जाताहै ॥ १८ ॥ स्वाद लेनेसे रसना (जिव्हा) इन्द्रियको प्राप्त होता है क्यों कि उन २ वृत्तियोंमें मनकी शक्ति विचित्र है जैसे नाटकमें नट अनेक रूप धारण करता है ऐसेही देहमें मन सब इन्द्रियादिके रूपसे वर्तता है ॥ १९ ॥ यह मन लघुको दीर्घ, और सत्यको असत्य करताहै, कटुको मधुर और शत्रुको मित्र करदेता है ॥ २० ॥

यएवप्रतिभासोस्यचेतसोवृत्तिवर्तिनः ॥ ततस्तदेवप्रत्यक्षंतथात्रानुभवादिह ॥ २१ ॥ प्रतिभासवशादेवस्वप्नाकुलितचेतसः ॥ हरिश्चंद्रस्यसंपन्नारात्रिर्द्वादशवार्षिकी ॥ २२ ॥ चित्तानुभाववशतोमुहूर्तत्वेगतंयुगम् ॥ इंद्रद्युम्नस्यवैरिंच्यपुराभ्यंतरवर्तिनः ॥ २३ ॥ मनोज्ञयामनोवृत्त्यासुखतांयातिरौरवम् ॥ प्रातःप्राप्तव्यराज्यस्यसुबद्धस्येवबंधनम् ॥ २४ ॥

अर्थ—वृत्तियोंमें वर्तमान चित्तका जैसा प्रतिभास होता है, उस प्रतिभाससे वैसाही प्रत्यक्ष होताहै और अनुभवसे भी वैसाही होता है ॥ २१ ॥ प्रतिभास (स्फुरण) हीके कारणसे स्वप्नमें व्याकुल चित्त राजा हरिश्चन्द्रको एक रात्रि द्वादश वर्षकी होगई ॥ २२ ॥ चित्तकेही प्रभावसे इन्द्रद्युम्न (दूसरा नाम रेवत) राजाको जो कि ब्रह्माके पुरके मध्यवर्ती थे उनको एक मुहूर्तमें युग वीतगया ॥ २३ ॥ परमात्माके स्मरणसे प्रिय मनकी वृत्तिसे रौरव नरकका भी दुःख सुख होजाता है जैसे प्रातःकालमें अवश्य राज्य मिलनेवालेको दृढ बन्धन भी सुखदायी होता है ॥ २४ ॥

जितेमनसिसर्वेवविजिताचेंद्रियावलिः ॥ शीर्यतेचयथातंतौदग्धेमौक्तिकमालिका ॥ २५ ॥ सर्वत्रस्थितयास्वच्छरूपयानिर्विकारया ॥ समयासूक्ष्मयानित्यंचिच्छक्त्यासाक्षिभूतया ॥ २६ ॥ सर्वभावानुगतयानचेत्यार्थविभिन्नया ॥ रामात्मसत्तयामूकमपिदेहसमंजडम् ॥ २७ ॥ मनोंतश्चलतिव्यर्थमननैषणमुह्यया ॥ बहिर्गिरिसरिद्व्योमसमुद्रपुरलीलया ॥ २८ ॥

अर्थ—मनके जीतनेसे सम्पूर्ण इंद्रियोंकी पंक्ती ऐसे जीतली जाती है जैसे सूतके दग्ध होनेसे मोतियोंकी माला तितिर वितिर होजाती है ॥ २५ ॥ हे रामजी ! अन्य पदार्थोंकी विपरीत कल्पना करनेका सामर्थ्य मनमेंहै इसको क्या वक्तव्य है किन्तु सर्वत्र समभावसे स्थित, स्वच्छ निर्विकार सूक्ष्म नित्य साक्षिरूप, सब पदार्थोंमें अनुगत और विषयसे अभिन्न चिन्मात्र आत्म सत्ता वागादि इन्द्रियोंकी क्रियासे शून्य होनेसे मूकके तुल्य भी ब्रह्मको देहके साथ अभेद कल्पनासे देहके समान और जड बनाके यह मन अन्तःकरणमें तो इच्छा संकल्पादि रूप भ्रान्तिसे और बाहर पर्वत नदी आकाश और समुद्र तथा नगरादिकी शान्ति रूप लीलासे व्यर्थ भ्रमाताहै ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥

असूष्टसर्वभावाग्राभिमतंवस्तुनयत्यमृतमृष्टताम् ॥ अनीहितंचविषतांनयत्यमृतमप्यलम् ॥ २९ ॥ स्पंदेषुवायुतामेतिप्रकाशेषुनामलमात्मचमत्कृतिम् ॥ मनःस्वामिमताकाररूपंसृजतिवस्तुषु ॥ ३० ॥ पृथ्व्यांकठिनतामेतिशून्यतांशून्यदृष्टिप्रकाशताम् ॥ द्रवेषुद्रवतामेतिचिच्छक्तिस्फुरितंमनः ॥ ३१ ॥ सर्वत्रेच्छास्थितियातिचिच्छक्तिस्फुरितंमनः ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! विवेकसे जागता हुआ भी मन अस्वादु (स्वादरहित) और उच्छिष्ट स्त्रीके अधर आदि जो उसको इष्ट है उसे रागादिके कारणसे अमृतके तुल्य बनाता है और अमृतके तुल्य अनिष्ट वस्तुको विषके समान कर देता है ॥ २९ ॥ जिस मनने पूर्ण आत्मस्वरूपका साक्षात्कार नहीं किया वही अपने अभिमत आत्माके चमत्कार भूतरूप वस्तुओंमे रचता है न कि तत्वज्ञानियोका ॥ ३० ॥ चेतन शक्तिसे स्फुरणको प्राप्त यह मन गतिशील पदार्थोंमें वायु, प्रकाशशीलोंमें प्रकाशता, द्रवीभूतों (जलादिकों) में द्रवताको प्राप्त होता है ॥ ३१ ॥ और पृथिवीमें कठिनता, तथा नास्ति (नहींहै) इत्यादि रूपसे गृह्यमाण पदार्थों अर्थात् आकाशादिमें शून्यताको प्राप्त होताहै और चित् शक्ति से स्फुरित यह मन सर्वत्र अपनी इच्छासे स्थितिको प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥

शुक्लंकृष्णीकरोत्येवकृष्णंनयतिशुक्लताम् ॥ विनैवदेशकालाभ्यांशक्तिंपश्यास्यचेतसः ॥ ३३ ॥ मनस्यन्यत्रसंसक्तेचर्वितस्यापिजिह्वया ॥ भोजनस्यापिमृष्टस्यनस्वादोस्यानुभूयते ॥ ३४ ॥ यच्चित्दृष्टंतद्दृष्टं नदृष्टंतदलोकितम् ॥ अंधकारेयथारूपमिंद्रियंनिर्मितंतथा ॥ ३५ ॥ इंद्रियेणमनोदेहिमनसेंद्रियमुन्मनः ॥ इंद्रियाणिप्रसूतानिमनसोनेंद्रियान्मनः ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! इस चित्तकी शक्तिको देखो ! देशकालके गुणके बिनाही अपनी भावना मात्रसे शुक्ल पदार्थको कृष्ण, और कृष्ण (काले) पदार्थको शुक्लकर देताहै ॥ ३३ ॥ मनके अन्य स्थानोंमें लगजानेसे जिव्हासे मिष्ट भोजनके चर्वित (भक्षण) करनेपर भी इसको स्वादका अनुभव नहीं होता ॥ ३४ ॥ हे रामजी ! जो चित्तने देखा वही तो देखा गया और जो पदार्थ चित्तसे नहीं देखा गया सन्मुख स्थित भी मानो नहीं देखा गया अन्धकारमें नीलता वा छायासे विचित्ररूप जैसे रचलेताहै ऐसेही नेत्र आदि इन्द्रियांभी यह अपने आत्माही में रचलेताहै ॥ ३५ ॥ यद्यपि इन्द्रियोंसे दृष्ट (अनुभूत) पदार्थोंके आकार धारण करनेसे इन्द्रियोंकेही निमित्तसे मनसाकार है, और इन्द्रियांभी मनके आधीन पदार्थोंके ग्रहण करनेसे मनसेही साकार हैं यह समताहै तथापि मन इन्द्रियोंसे उत्कृष्टहै, क्योंकि इन्द्रियां मनके उत्पन्न हुईहैं न कि मन इन्द्रियोंसे ॥ ३६ ॥

अत्यंतभिन्नयोरैक्यंयेषांचित्तशरीरयोः ॥ ज्ञातज्ञेयामहात्मानोमनस्यास्तेसुपंडिताः ॥ ३७ ॥ कुसुमोल्लासिधम्मिल्लाहेलावलितलोचना ॥ काष्ठकुड्योपमांगेषुलग्नाप्यमनसोंगना ॥ ३८ ॥ मनस्यन्यत्रसंसक्तेवीतरागेणकानने ॥ क्रव्यादचर्वितोंकस्थःस्वकरोपिनलक्षितः ॥ ३९ ॥ सुखीकर्तुंसुदुःखानिदुःखीकर्तुंसुखानिच ॥ सुखेनैवाशुयुज्यंतेमनसोतिशयामुनेः ॥ ४० ॥

अर्थ—अत्यन्त भिन्न रूपसे भान होनेवाले जो यह चित्त और शरीर हैं इन दोनोंकी एकता जिनके आत्मामें है अर्थात् मूढ़ोंके समान जो मनको आत्माकी कोटिमें जो नहीं समझसे किन्तु शरीरके साथ इसको जो जड़ रूपसे देखते हैं वे ज्ञातज्ञेय (जानने योग्य) आत्म वस्तुको जानने हारे पण्डित महात्मा नमस्कार करने योग्य हैं ॥ ३७ ॥ हे रामजी ! जो मनसे रहित अर्थात् वासनाके नष्ट होनेसे मनको जीतनेवाला जो महात्माहै उसके शरीरमें, पुष्पोंसे शोभायमान केशवाली, और क्रीड़ा पूर्वक नेत्रके कटाक्षोंको चलाने वाली अंगना (उत्तम स्त्री) संलग्न होनेपर भी काष्ठ तथा-भित्तिके तुल्य कुछ विकार नहीं उत्पन्न कर सकती ॥ ३८ ॥ वीत राग नाम मुनिने वनमें मनके अन्यस्थान (आत्मध्यान) में संलग्न होनेपर अपने अंगमें स्थित हस्तको क्रव्याद (हिंसक) जीवके भक्षण करने पर भी कुछ नहीं जाना ॥ ३९ ॥ हे रामजी ! अति दुःखोंको सुखी करनेके लिये और सुखों दुःखी करनेके लिये भी मुनिके मनके अभ्यासकी दृढतासे जो भावनाके अतिशय हैं वे विना परिश्रमकेही समर्थ होते हैं ॥ ४० ॥

मनस्यन्यत्रसंसक्तेकथ्यमानापियत्नतः ॥ लतापरशुकृत्तेवकथाविच्छिद्यतेबत ॥ ४१ ॥ मनस्यद्रितटारूढेगृहस्थेनापिजंतुना ॥ शुभ्राभ्रकंदरभ्रांतिदुःखंसमनुभूयते ॥ ४२ ॥ मनस्युल्लसितेस्वप्नेदृश्येवपुरपर्वताः ॥ आकाशइवविस्तीर्णेदृश्यंतेनिर्मिताःक्षमाः ॥ ४३ ॥ मनोविलुलितेस्वप्नेहृद्येवाद्रिपुरावलिम् ॥ तनोतिचलितांभोधिर्वीचीचयमिवात्मनि ॥ ४४ ॥

अर्थ—देखो कै खेदकी बात है कि मनके और स्थानमें लगजानेसे अति यत्नसे कही हुई भी कथा ऐसे छिन्न (कट) जाती है जैसे कुठारसे काटी हुई लता ॥ ४१ ॥ गृहमें स्थित भी प्राणी यदि मन पर्वतके ऊपर लग जायतो स्वच्छ मेघ तथा कन्दरा आदिको भ्रान्तिके दुःखको स्वप्नमें अवश्य अनुभव करता है ॥ ४२ ॥ मनका उल्लास स्वप्नमें होताहै तब अपने २ कार्य्यमें समर्थ रचे हुये नगर पर्वतादि ऐसे देख पड़ते हैं जैसे विशाल आकाशमें ॥ ४३ ॥ स्वप्नाऽवस्थामें अपने स्वरूपसे आत्माके क्षोभित होनेपर यह मन हृदयमेंही पर्वत नगर आदिकी पंक्तियोंका ऐसे विस्तार करता है जैसे संचलित समुद्र अपनेही आत्मामे तरंगोंके समूहोंको ॥ ४४ ॥

अंतरब्धिजलाद्यद्वत्तरंगापीडवीचयः ॥ देहांतर्मनसस्तद्वत्स्वप्नाद्रिपुरराजयः ॥ ४५ ॥ अंकुरस्ययथाप त्रलतापुष्पफलश्रियः ॥ मनसोस्यतथाजाग्रत्स्वप्नविभ्रमभूमयः ॥ ४६ ॥ व्यतिरिक्तायथाहेम्नोनहेमव नितातथा ॥ जाग्रत्स्वप्नक्रियालक्ष्मीर्व्यतिरिक्तानचेतसः ॥ ४७ ॥ धाराकणोर्मिफेनश्रीर्यथासंलक्ष्यतेंभ सः ॥ तथाविचित्रविभवानानातेयंहिचेतसः ॥ ४८ ॥

अर्थ—समुद्रके जलके भीतर जैसे तरंगोंकी माला लहर आदि निकलती हैं ऐसेही देहके भीतर मनसेही स्वप्ना-दि अवस्थामें पर्वत नगर आदिकी श्रेणी निकलती हैं ॥ ४५ ॥ जैसे पत्र पुष्पलता और फलादिका शोभा अंकुरसेही है ऐसे जाग्रत् तथा स्वप्नादि भूमि (उत्पत्ति) इसी मनसे है ॥ ४६ ॥ जैसे सुवर्णसे वनी हुई स्त्री सुवर्णसे पृथक् नहीं है ऐसेही जाग्रत् और स्वप्नक्रियाकी शोभा चित्तसे भिन्न नहीं है ॥ ४७ ॥ जैसे धारा, कण, तरंग और फेनकी शोभा जलसेही देख पडती है ऐसेही यह विचित्रविभववाली नानाप्रकारकी विचित्रता इसी चित्तकी है ॥ ४८ ॥

स्वचित्तवृत्तिरेवेदंजाग्रत्स्वप्नदृशोदितम् ॥ रसावेशाद्यथादत्तेशैलूषइवभूमिकाम् ॥ ४९ ॥ चंडालत्वंहि लवणेप्रतिभासवशाद्यथा ॥ तथेदंजगदाभोगिमनोमननमात्रकम् ॥ ५० ॥ यद्यत्संवेद्यतेकिंचित्तेनते नाशुभूयते ॥ मनोमननिर्माणंयथेच्छसितथाकुरु ॥ ५१ ॥ नानापुरसरिच्छैलरूपतामेत्यदेहिनाम् ॥ तनोत्यंतःस्थमेवेदंजाग्रत्स्वप्नमयंमनः ॥ ५२ ॥

अर्थ—अपनेही चित्तकी वृत्ती जाग्रत् और स्वप्नकी दृष्टीसे (रूपसे) इस प्रकार आविर्भाव धारण करती है जैसे शृंगार आदि रसके आवेशसे पोपाककी विचित्रता धारण करताहै ॥४९॥ हे रामजी! प्रति भासके कारण जैसे ल-वणराजामें चाण्डालत्व हुआ ऐसेही यह जगत्का विस्तार मनका स्फुरण मात्रहै ॥ ५० ॥ स्फुरणमात्र है रूप जिसका ऐसा यह मन जिस २ रूपसे भावना करता है उसी २ रूपसे शीघ्र होजाताहै. अव जैसी तुमारी इच्छा हो वैसा करो ॥ ५१ ॥ हे रामजी! यह मन प्राणियोंके अंतरमें स्थित नानाप्रकारके नगर नदी तथा पर्वतादिरूपको प्राप्त होकर जाग्रत् और स्वप्नमय इस जगत्का विस्तार करता है ॥ ५२ ॥

सुरत्वाद्दैत्यतामेत्यनागत्वान्नगतामपि ॥ प्रतिभासवशाच्चित्तमापन्नंलवणोयथा ॥ ५३ ॥ नरत्वादेतिना रीत्वंपितृत्वात्पुत्रतांगतः ॥ यथाक्षिप्रंप्रतिनरःस्वसंकल्पात्तथामनः ॥ ५४ ॥ संकल्पतःप्रम्रियतेसंक ल्पाज्जायतेपुनः ॥ मनश्चिरंतनाभ्यस्ताज्जीवतामेत्यनाकृति ॥ ५५ ॥ मनोमननसंमूढमूढवासनमात तम् ॥ संकल्पाद्योनिमायातिसुखदुःखेभयाभये ॥ ५६ ॥

अर्थ—प्रतिभासके कारण यह चित्त जैसे लवणराजासे चाण्डालत्वको प्राप्तहुआ ऐसेही देवतासे दैत्यताको हस्तीसे वा सर्पसे वृक्षताको प्राप्त होताहै ॥ ५३ ॥ जैसे मनुष्य स्त्रीसे पुरुषभावको और पितासे पुत्रत्वदशाको प्राप्त होताहै ऐसेही अपने संकल्पसेही मनभी इष्टरूप होजाताहै ॥ ५४ ॥ यह मन संकल्पसेही मरताहै और संकल्पसे ही पुनः उत्पन्न होताहै. और अपने चिरकालके अभ्याससे आकारशून्य होनेपरभी जीवाकार होजाताहै ॥५५॥ और यह सम्यक् मोहमयी वासनासहित सर्वत्र व्याप्त है. संकल्पसेही यह जन्मस्थानको प्राप्त होताहै, और उसीसे सुख दुःख तथा भय और अभयकोभी प्राप्त होता है ॥ ५६ ॥

सुखंदुःखंचमनसितिलेतैलमिवस्थितम् ॥ तद्देशकालवशतोघनंवातनुवाभवेत् ॥ ५७ ॥ तैलंतिलस्य चाक्रांत्यास्फुटतामेतिशाश्वतीम् ॥ चेतसोमननासंगाद्घनीभूतेसुखासुखे ॥५८॥ देशकालाभिधानेन रामसंकल्पएवहि ॥ कथ्यतेतद्वशाद्यस्माद्देशकालौस्थितिंगतौ ॥ ५९ ॥ प्रशाम्यत्युल्लसत्येतियातिनंद तिवल्गति ॥ मनःशरीरसंकल्पेफलितेनशरीरकम् ॥ ६० ॥

अर्थ—जैसे तिलमें तैल स्थित है ऐसे ही सुख दुःख मनमें स्थितहै. चाहे वह उस देशकालके अनुसार घन हो वा सूक्ष्म हो ॥ ५७ ॥ जैसे तिलके पीडनेसे तैल अपनी नित्य स्फुटतादशाको प्राप्त होताहै ऐसेही चित्तके भीतरही घनी-भूत सुखदुःख मनकी स्फुरणसे प्रकट होतेहैं ॥ ५८ ॥ हे रामजी! देशकालके नामसे चित्तका संकल्पही कहा जाता है. क्यों कि उसीके वशसे देश और काल स्थितिको प्राप्तहुयेहैं ॥५९॥ मनरूपी शरीरके संकल्पसेही यह स्थूल शरीर शान्त होता है, शोभित होताहै, मनुष्यको स्थानान्तरमें लेजाता है, और प्रसन्न होता है, तथा गर्जताहै॥६०॥

नानास्फारसमुल्लासैःस्वसंकल्पोपकल्पितैः ॥ मनोवल्गतिदेहेस्मिन्साध्वीवांतःपुराजिरे ॥ ६१ ॥ चा पलेप्रसरत्तस्मादंतर्येननदीयते ॥ मनोविलयमादत्तेतस्यालानइवद्विपः ॥ ६२ ॥ नस्पंदतेमनोयस्यशश्व स्तंभइवोत्तमः ॥ सद्वस्तुतोसौपुरुषःशिष्टाःकर्दमकीटकाः ॥ ६३ ॥ यस्याचपलतांयातंमनएकत्रसंस्थि तम् ॥ अनुत्तमपदेनासौध्यानेनानुगतोनघ ॥ ६४ ॥

अर्थ—अपने संकल्पोंसे कल्पित नानाप्रकारके विशाल उत्साहोंसे यह मन इस शरीरमें ऐसा गर्जताहै जैसे अंन्तःपुरके अंगणमें साध्वी (सती) स्त्री ॥६१॥ इसलिये हे रामजी ! जो प्राणी अपने अन्तःकरणमें विषके अनुसन्धान (खोजने) रूपी चपलताको जो मनको अवसर नहीं देते उनका मन ऐसे लयको प्राप्त होताहै जैसे अपने बन्धनमें हस्ती ॥६२॥ जैसे स्तम्भनास्त्रसे शत्रु चेष्टा नहीं करता, इसी प्रकार विचारसे स्तम्भित जिसका उत्तम मन विषयकी और चेष्टा नहीं करताहै वही यथार्थमें उत्तमपुरुष हैं. शेष (बाकी) कर्दम (कीचड) के कीट हैं ॥६३॥ हे रामजी ! एकाग्र स्थित जिसका मन स्थिरताको प्राप्त होगयाहै वह प्राणी ध्यानसे सबसे उत्तम ब्रह्मपदमें प्राप्त होचुका ॥६४॥

संयमान्मनसःशांतिमेतिसंसारविभ्रमः ॥ मंदरेऽस्पंदतांयातेयथाक्षीरमहार्णवः ॥६५॥ मानस्योवृत्तयो याभोगसंकल्पविभ्रमैः ॥ संसारविषवृक्षस्यताएवांकुरयोनयः ॥ ६६ ॥ चित्तंचलत्कुवलयंवलयंतएते मूढामहाजडजवेमदमोहमंदाः ॥ आवर्तवर्तिनिविलूनविशीर्णचिंताचक्रभ्रमेपुरुषदुर्भ्रमराःपतंति ॥६७॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूत्पत्तिप्रकरणे चित्तवर्णनंनामदशोत्तरशततमःसर्गः ॥ ११० ॥

अर्थ—जैसे मन्दराचलके स्थिर होनेपर क्षीरसागर शान्त होगयाथा ऐसेही मनके संयमसे संसारका भ्रम शान्त होताहै ॥ ६५ ॥ भोग (विषय) के संकल्पके विभ्रमोंसे जो जो मनकी वृत्तियां हैं वेही संसाररूपी विषवृक्षकी अंकुर योनि (उत्पत्तिस्थान)हैं ॥६६॥ हे रामजी ! कामक्रोधादि मदके मोहसे मन्द ये पुरुषरूपी दुष्टभ्रमर संसाररूपी कुत्सितनदीके प्रवाहमें चंचल चित्तरूपी कमलको आच्छादन करके भ्रमणकरते हुये महाजडतारूप जलके आवर्तरूप वेगमें प्रबल अन्य अनेक चिन्ताओंकी निष्फलतासे छिन्न, और देहके साथ नष्ट चिन्तारूपी चक्रभ्रमके सदृश आवर्त (भंवरेह) में निरन्तर गिरतेहैं ॥ ६७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे चित्तवर्णनं नाम दशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११० ॥

एकादशोत्तरशततमः सर्गः ॥ १११ ॥

इस १११ के सर्गमें यत्नसे अभिमत (इष्ट) वस्तुका तथा अहंता और ममताका त्याग, चित्तके जीतनेका उपाय और चित्तकी एकाग्रताकाभी वर्णन कियागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अस्यचित्तमहाव्याधेश्चिकित्सायामहौषधम् ॥ स्वायत्तंशृणुवक्ष्यामिसाधुसुस्वादुनिश्चितम् ॥ १ ॥ स्वेनैवपौरुषेणाशुस्वसंवेदनरूपिणा ॥ यत्नेनाचित्तवेतालस्त्यक्त्वेष्टंवस्तुजीयते ॥ २ ॥ त्यजन्नभिमतंवस्तुयस्तिष्ठतिनिरामयः ॥ जितमेवमनस्तेनकुदंतइवदंतिना ॥ ३ ॥ स्वसंवेदनयत्नेनपाल्यतेचित्तबालकः ॥ अवस्तुतोवस्तुनिचयोज्यतेबोध्यतेपिच ॥ ४ ॥

अर्थ—श्री वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! इस चित्तरूपी महाव्याधिके निवारणार्थ अपने आधीन अवश्य पुरुषार्थ साधक, स्वादयुक्त और परीक्षित जो महौषध है उसको सुनिये मैं आपसे कहूँगा ॥ १ ॥ अपने आत्माका साक्षात्कार रूप जो पौरुषहै उससे यत्नसे अभिलाषित वस्तुको त्यागकर चित्तरूपी वेताल शीघ्र जीतलिया जाताहै ॥ २ ॥ हे रामजी ! जो पुरुष राग द्वेषादि चित्तके रोगोंसे इष्टवस्तुको त्यागताहुआ स्थित रहता है उसने मनको ऐसे जीतलिया जैसे दन्तवाले हस्तीसे दन्तरहित हस्ती ॥ ३ ॥ आत्मसाक्षात्काररूप यत्नसे चित्तरूपी बालककी इष्टस्थानोंमें जैसी रक्षा होतीहै और अवस्तु जो संसारी पदार्थ हैं उनसे हटाके आत्मरूपवस्तुमें लगाया जाताहै और ज्ञानयुक्तभी किया जाता है ॥ ४ ॥

शास्त्रसत्संगधीरेणचिंतातप्तमतापिना ॥ छिंधित्वमायासेनाशोमनसेवमनोसुने ॥ ५ ॥ अयत्नेनयथा बालइतश्चेतश्चयोज्यते ॥ भावस्तथैवचेतोंतःकिमिवात्रास्तिदुष्करम् ॥ ६ ॥ सत्कर्मणिसमाक्रांतशुद्धकोदयदायिनि ॥ स्वपौरुषेणैवमनश्चेतनेनानियोजयेत् ॥ ७ ॥ स्वायत्तमेकांतहितंस्वेप्सिततत्यागवेदनम् ॥ यस्यदुष्करतांयातंधिक्तंपुरुषकीटकम् ॥ ८ ॥

अर्थ—हे मननशील रामजी ! चिन्तारूपी अग्निमें सन्तप्त मनरूपी लोहेको चिन्ताके संतापसे रहित शान्त शास्त्र तथा सत्संगसे धीर (ठंढे) मनरूपी लोहसेही तुम छेदन करो ॥ ५ ॥ जैसे लालना और ताडनादि उपायोंसे बालक

इधरसे उधर विना परिश्रम लगायाजाता है ऐसेही चित्तभी एकस्थानसे दूसरे स्थानमें लगसकता है, इसमें दुष्कर बात कौनसी है ॥ ६ ॥ भविष्यत्कालमें उत्तमफलदायक समाधिरूप सत्कर्ममें लगे हुये मनको चिदात्माके साथ एक करना चाहिये ॥ ७ ॥ अपने आधीन सर्वथा हित जो अभिलषित बाह्यविषयोंमें वैराग्य वृत्ति है वह जिसको दुष्कर है उस पुरुषरूपी कीट (कीडे) को धिक्कार है ॥ ८ ॥

अरम्यंरम्यरूपेणभावयित्वास्वसंविदा ॥ मल्लेनेवाशिशुश्चित्तमयत्नेनैवजीयते ॥ ९ ॥ पौरुषेणप्रयत्नेन चित्तमाश्वेवजीयते ॥ अचित्तेनाप्रयत्नेनपदंब्रह्मणिदीयते ॥ १० ॥ स्वायत्तंचसुसाध्यंचस्वचित्ता क्रान्तिमात्रकम् ॥ शक्नुवन्तिनयेकर्त्तुंधिक्तान्पुरुषजंबुकान् ॥ ११ ॥ स्वपौरुषैकसाध्येनस्वेप्सिततया गरूपिणा ॥ मनःप्रशममात्रेणविनानास्तिशुभागतिः ॥ १२ ॥

अर्थ—अरमणीय जो विषयसमूह है उसको स्वात्माके साक्षात्कारसे परम रम्य ब्रह्मरूपसे भावना करके विना परिश्रम चित्तको ऐसे जीत लो जैसे मल्लसे बालक ॥ ९ ॥ आत्मसाक्षात्काररूप पौरुषप्रयत्नसे चित्त शीघ्रही जीत लिया जाता है और चित्तरहित अर्थात् जितचित्त परिश्रमके विनाही ब्रह्मको प्राप्त होता है ॥ १० ॥ अपने आधीन अतिसुगमतासे साध्य जो चित्तके निग्रहमात्र है उसकोभी जो जन नहीं करसकते हैं उन पुरुषशृगालोंको धिक्कार है ॥ ११ ॥ अपने पौरुषमात्रसे साध्य जो अभिलषित बाह्यविषयोंका त्यागरूपी मनका प्रशमनमात्र है उसके विना मोक्षरूप शुभगति दुष्कर है ॥ १२ ॥

मनोमारणमात्रेणसाध्येनस्वात्मसंविदा ॥ निःसपत्नमनाद्यंतमनिंगनामिहोच्यताम् ॥ १३ ॥ ईप्सितां वेदनाख्यात्तुमनःप्रशमनादृते ॥ गुरूपदेशशास्त्रार्थमंत्राद्यायुक्तयस्तृणम् ॥ १४ ॥ सर्वंसर्वगतंशांतंब्रह्म संपद्यतेतदा ॥ असंकल्पनशस्त्रेणच्छिन्नंचित्तंगतंयदा ॥ १५ ॥ स्वसंवेदनसाध्येस्मिन्संकल्पान र्थशासने ॥ शांतायामत्रवपुषिपुंसःकैवकदर्थना ॥ १६ ॥

अर्थ—आत्मसाक्षात्कारसे साध्य मनके मारणमात्रसे कामादि शत्रुसे वर्जित आदि अन्तरहित जो स्वाराज्यसुख है उसको इसी जीवन्मुक्त देहमें प्रतिज्ञा करो अर्थात् सम्पादन करो ॥ १३ ॥ बाह्यविषयोंके अनवभासमान अथवा अभिलषित मोक्षसुखके साधनरूप मनके प्रशमनके विना गुरुका उपदेश शास्त्रोंके अर्थोंके विचार तथा मंत्र आदि युक्तियां तृणके तुल्य हैं ॥ १४ ॥ हे रामजी ! संकल्पोंके अभावरूपी शस्त्रसे चित्तरूपी वृक्ष जब समूल कटा तब सर्वरूप सर्वव्यापी शान्त ब्रह्मरूप जीवको प्राप्तहोताहै ॥ १५ ॥ आत्मसाक्षात्कारसे साध्य संकल्परूपी अनर्थोंका निग्रह होनेपर शांन्ति आदि साधनयुक्त जीवन्मुक्तिके प्राप्त करनेमें इस अधिकारी मनुष्यशरीरमें क्या क्लेश है ॥ १६ ॥

नूनंदैवमनादृत्यमूढसंकल्पकल्पितम् ॥ पुरुषार्थेनसंवित्त्यानयचित्तमचित्तताम् ॥ १७ ॥ तांमहा पदवीमेतांकामप्यधिगतांचिरम् ॥ चित्तंचिद्भक्षितंकृत्वाचित्तादपिपरोभव ॥ १८ ॥ भवभावनयायुक्तोयुक्तःपरमयाधिया ॥ धारयात्मानमव्यग्रोग्रस्तचित्तंततःपरम् ॥ १९ ॥ परंपौरुषमाश्रित्यनीत्वाचि त्तमचित्तताम् ॥ तांमहापदवीमेहियत्रनाशोनविद्यते ॥ २० ॥

अर्थ—हे रामजी मूढोंके संकल्पसे कल्पित दैवको निश्चयरूपसे निरादर करके आत्मसाक्षात्काररूप पुरुषार्थसे चित्तको अचित्त बनाओ ॥ १७ ॥ वह प्रसिद्ध महापदवी ब्रह्मरूपताको चित्तको चिरकालतक प्राप्तकरके अन्तमें साक्षात्कारवृत्तिसे आविर्भूत चेतनसे मनसहित अविद्याके बाधद्वारा चित्तको चिद्भक्षित करके चित्तसे परे पूर्णचेतनरूप होजाओ ॥ १८ ॥ ऐसा करनेमें प्रथम चिन्मात्रभावनासे युक्तहो और अनन्तर उसके स्थिरतार्थ अति परम सावधानबुद्धिसे युक्तहोओ, और उसके पश्चात् स्वस्थ होकर चित्तको ग्रसनेवाले चित्तसेभी परे परमात्माको धारण करो ॥ १९ ॥ हे रामजी ! आत्मसाक्षात्काररूप परम पौरुषका आश्रय करके चित्तको अचित्ततादशाको प्राप्त करके उस प्रसिद्ध ब्रह्मरूप महापदवीको प्राप्त होओ जहांपर नाश कदापि नहीं है ॥ २० ॥

संवेदनविपर्यासरूपिणीधीरिवाचला ॥ जेतुमाशुमनोरामपौरुषेणैवशक्यते ॥ २१ ॥ अनुद्वेगःश्रियो मूलमनुद्वेगात्प्रवर्तते ॥ अंतोर्मनोजयोयेनात्रिलोकीविजयस्तृणम् ॥ २२ ॥ नशास्त्रदलनोत्पातपातायस्यां मनागपि ॥ स्वभावमात्रव्यावृत्तौतस्यांकैवकदर्थना ॥ २३ ॥ अपिस्ववेदनाक्रान्तौनशक्तायेनराधमाः ॥ कथंव्यवहरिष्यन्तिव्यवहारदशासुते ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रामजी! जैसे पश्चिमदिशामें पूर्वकी भ्रान्तीरूप दिग्मोहमें स्थिरभी प्राची (पूर्व दिशाकी) बुद्धिके स्थिरतारूप पुरुषके प्रयत्नसे जीत शकतेहैं ऐसेही पौरुषसे मनभी जीतनेके शक्य है ॥ २१ ॥ हे रामजी ! राज्यादि

लक्ष्मीका मूल अनुद्वेग (घबराहटका न होना) ही है. और अनुद्वेगसेही मनका जयभी होताहै. जिसमनके जीतनेपर त्रिलोकीकाभी जय करना तृण है ॥ २२ ॥ राज्यसुखमें युद्ध करनेमें शस्त्रोंका दलनरूप दुःख, और स्वर्गसुखमें मरके ऊर्ध्वगमनरूप उत्पात् पुनः वहांसे पतनका क्लेश है. परन्तु जिसमें शस्त्रदलन, उत्पात तथा पातादि किंचित्भी नहीं है उस स्वभावमात्रकी व्यावृत्ति (चित्तको विषयोंसे हटाके आत्मामें लगाने) में कौनसा क्लेश है ॥ २३ ॥ अपने मनमात्रके आक्रमणमे (जितने) जो अधम मनुष्य समर्थ नहींहैं वे संसारकी दशामेंभी कैसे व्यवहार करेंगे ? ॥२४॥

पुमान्मृतोस्मिजातोस्मिजीवामीतिकुदृष्टयः ॥ चेतसोवृत्तयोभांतिचपलस्यासदुत्थिताः ॥२५॥ नकेश्चनेहम्रियतेजायतेनचकश्चन ॥ स्वयंवेत्तिमृतंस्वस्यलोकमन्यंस्वकंमनः ॥ २६ ॥ इतोयातिपरंलोकंस्फुरत्यन्यतयामनः ॥ तत्तस्यैत्येतदामोक्षात्एवाकुतोभयांकुतः ॥ २७ ॥ इहलोकेनविचरत्विहलोकेपरत्रच ॥ चित्तमामोक्षमास्तेस्यरूपमन्यत्रविद्यते ॥ २८ ॥

अर्थ—पुरुष हुं, मरगया, उत्पन्न हुआ, जीताहुं, इत्यादि जो कुदृष्टियां हैं वे विषयमें चंचल चित्तकी वृत्तियां असत्यरूपसेही आविर्भूत होके भान हो रही हैं ॥ २५ ॥ नतो यहां कोई मरता है और न कोई जन्मता है क्योंकि यह मन अपना मरण तथा अपना अन्यलोकभी आपही जानताहै ॥ २६ ॥ यह मन यहांसे परलोक जाताहै और अन्यरूपसे भासता है यह वार्ता जबतक मोक्ष नहीं होता तबतक मनकी कल्पनासे होती रहती है. इसलिये मरणका भय कहां है ? ॥ २७ ॥ इस लोक और परलोकका रूप धारणकरके परलोकमें विचरे तथापि मोक्षपर्य्यन्त यह सब चित्तहीहै. क्योंकि चित्तके सिवाय इस संसारका और कुछभी रूप नहींहै ॥ २८ ॥

मृतेभ्रातरिभृत्यादौक्लेशश्चाक्रियतेऽनृतः ॥ तत्स्वचित्तंस्वचैतन्यव्यावृत्तात्मेतिमेमतिः ॥ २९ ॥ सतिपथ्येततेशुभ्रेचित्तोपशमनादृते ॥ तिर्यगूर्ध्वमधस्ताच्चभूयोभूयोविचारितम् ॥ ३० ॥ यावन्नास्तिकिलोपायश्चित्तोपशमनादृते ॥ ऋतेतथ्येनतेशुभ्रेबोधेहृद्युदितेसति ॥ ३१ ॥ मनोविलयमात्रेणविश्रान्तिरुपजायते ॥ व्यायतेत्हृदयाकाशेचितिचिच्चक्रधारया ॥ ३२ ॥

अर्थ—भ्राता, पिता, तथा भृत्यादिके मरने पर जो मिथ्या शोक कियाजाता है वह निर्विकार शुद्धचेतनसे पृथक्रूप अपना चित्तही है ॥ २९ ॥ अन्यकी अपेक्षा रहित, सत्तावान्, सर्वहित, मायाकी मलिनतासे शून्य, और सब प्रमाणोंका शिरोभूत श्रुति (वेद) से बोधित परमात्माके स्वरूपमें चित्तके उपशम (लय) के विना मुक्तिका कोई दूसरा उपाय नहीं है. इस वार्ताको स्वर्गलोक तथा पाताललोक तथा द्वीप द्वीपांतरके तत्त्वज्ञानियोंने वार२विचार किया है॥३०॥ यह निश्चित है कि चित्तकी शान्तिपूर्वक केवल चेतनमात्र जबतक शेष (बाकी) न रह जाय तबतक मुक्तिके लिये अन्य कोईभी उपाय नहीं है और सत्य तीनों कालमें अबाध्य, व्यापक अज्ञानकी मलिनतासे व अति बोध (आत्माका साक्षात्कार) हृदयमें होनेपर ॥ ३१ ॥ मनके विलयमात्रसे शान्ति उत्पन्न होती है. अतिविस्तीर्ण हृदयाकाशरूप ब्रह्म चेतनमें अन्तिमवृत्तिसे दैदीप्यमान चिद्रूप चक्रकी धारासे ॥ ३२ ॥

मनोमारयनिःशंकंत्वांप्रबध्नंतिनाधयः ॥ यदिरम्यमरम्यत्वेत्वयासंविदितंविदा ॥ ३३ ॥ छिन्नान्येवतदंगानिचित्तस्येतिमतिर्मम ॥ अयंसोहमिदंतन्मएतावन्मात्रकंमनः ॥ ३४ ॥ तदभावनमात्रेणदात्रेणेवविलूयते ॥ छिन्नाभ्रमण्डलंव्योमयथाशरदिधूयते ॥३५॥ वातेनाकल्पनेनैवंतथातद्धूयतेमनः ॥ भवंतियत्रशस्त्राग्निपवनास्तत्रभीर्भवेत् ॥ ३६ ॥

अर्थ—तुम मनको मारो तब तुमको मानसी व्यथा कुछ नहीं सतावेंगी, जो स्त्री पुत्र आदि विना विचारे रमणीय भान होते हैं. यदि तुमने उनमें दोषानुसन्धानसे अरमणीयता जानलिया तो ॥ ३३ ॥ चित्तके अंग सब छिन्न होगये यह मेरा सिद्धान्त है. और दृश्यमान सब प्रपंच वह चिंतामातासे उत्पन्न देह अहम् अर्थात् मन बुद्धि आदिका समूह, इदम् अर्थात् देहसम्बन्धी गृहक्षेत्र आदि और पिता आदिका उत्पन्न किया जो मेरा धनादि यह जो भ्रम है यही इतना मनके सब अंग है ॥ ३४ ॥ इनकी भावना न करनेमात्रसे सब ऐसें छिन्न होजाते हैं जैसे शरत्कालमें आकाशका मेघ ॥ ३५ ॥ वायुसे नष्ट होजाता है ऐसेही कल्पना न करनेसे मन सर्वथा धुल जाताहै. और जहां शस्त्र अग्नि आदिके द्वारा नाश करना होताहै (शत्रु आदिका) वहां भयभी होताहै ॥ ३६ ॥

स्वायत्तंमृदुनिस्वच्छेकिमसंकल्पनेभयम् ॥ इदंश्रेयइदंनेतिसिद्धमाबालमक्षतम् ॥ ३७ ॥ बालंपुत्रमिवमनःश्रेयसियोजयेत् ॥ अक्षयंचानवंचेतःसिंहंसंस्थातिबृंहणम् ॥ प्रोतियनेजयंतीहनिर्वाणपददायिनः ॥ ३८ ॥ भीमाःसंभ्रमदायिन्यःसंकल्पकदनादिमाः ॥ विपदःसंप्रसूयंतेमृगतृष्णामराविव ॥ नंतपत्रनावांतुयांतुचैकत्वमर्णवाः ॥ तपन्तुद्वादशादित्यानास्तिनिर्मनसःक्षतिः ॥ ४० ॥

अर्थ—और स्वाधीन अनायास (विना परिश्रम) साध्य स्वच्छ जो कल्पनाका अभाव है उसमें क्या भय है और यह कल्याणहै [illegible]ह नहीं इस वातको तो बालक पर्य्यन्त जानते हैं ॥ ३७ ॥ बालकके समान निर्बल मनको उदार कल्या[illegible] [illegible]युक्त करना योग्य है क्यों कि युवा सिंहके समान मन क्षय करनेके अयोग्य है, जो महात्मा जन ऐसे [illegible] सबसे उत्तमहैं और अन्यलोगोंकोभी वे मोक्ष देनेमें समर्थहैं ॥ ३८ ॥ संकल्परूपी क्लेशसे भं यह अ[illegible] देने वाली विपत्ति इसप्रकार उत्पन्न होती है जैसे मरुस्थलमें मृगतृष्णाकी नदियां ॥ ३९ ॥ [illegible] कल्पान्त[illegible] पवन वहैं, सब समुद्र उमठके एक हो जांय, और बारहों सूर्य तपे, परन्तु मनके मारनेवाले अमनस्क प्राणीकी कुछभी हानि नहिं है ॥ ४० ॥

मनोबीजात्समुद्यांतिसुखदुःखेशुभाशुभे ॥ संसारखण्डकाएतेलोकसप्तकपल्लवाः ॥ ४१ ॥ असंकल्पनमात्रैकसाध्येसकलसिद्धिदे ॥ असंकल्पनसाम्राज्येतिष्ठावष्टब्धतत्पदः ॥ ४२ ॥ प्रयच्छत्युत्तमानंदंक्षीयमाणंमनःक्रमात् ॥ काष्ठक्षीणांगकांगारोयथांगारक्षयार्थिनः ॥ ४३ ॥ अपिब्रह्मकुटीलक्षंमनसश्चेत्समीहितम् ॥ तदणोरंतरेव्यक्तंविभक्तंपरिदृश्यते ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! मनरूपी बीजसेही सुखदुःखरूप शुभ अशुभ और इन सातोंलोकरूपी पल्लवसंयुक्त संसाररूप वनके खण्ड उत्पन्न होतेहैं ॥ ४१ ॥ हे रामजी ! केवल असंकल्पसे साध्य संकल्पसिद्धियोंका दाता जो संकल्पकी शून्यतारूप साम्राज्य है उसमें परम आत्मपदरूपी सिंहासनका अवलम्बन करके स्थित होओ ॥ ४२ ॥ क्रमसे क्षीण होताहुआ यह मन अनिर्वाच्य उत्तम सुखको ऐसे देता है जैसे तापकी शान्तिके सुख चाहनेवाले और अंगोंकी रक्षा चाहनेवाले मनुष्यको क्षीयमाण (भस्मीभूत) काष्ठका अंगार ॥ ४३ ॥ लाखो ब्रह्माण्डरूपी कुटी यदि मनको अभलाषित हो तो वेभी परमाणु चेतनके भीतरही स्पष्ट पृथक् २ देखपडतेहैं ॥ ४४ ॥

संकल्पमात्रविभवेनकृतात्यनर्थंसंकल्पमात्रविभवेनसुसाधितार्थम् ॥ संतोषमात्रविभवेनमनोविजित्यनित्योदितेनजयमेहिनिरीप्सितेन ॥ ४५ ॥ परमपावनयाविमनस्तयासमतयामतयात्मविदामपि ॥ शमितयामितयांतरहंतयायदवशिष्टमजंपदमस्तुतत् ॥ ४६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूत्पत्तिप्रकरणे चित्तचिकित्सानामैकादशोत्तरशततमःसर्गः ॥ १११ ॥

अर्थ—संकल्पमात्रकी विभुति अनेक ब्रह्माण्डोंको सिद्ध करनेवाला संकल्पमात्रही जन्म मरण आदिरूप अनेक अनर्थोंका उत्पादक मनको निरन्तर अभ्यस्त नित्य उदित सन्तोषमात्र विभवसे जीत करके सबके ऊपर विजय प्राप्त करो ॥ ४५ ॥ हे रामजी ! आत्मवेत्ताओंकेभी संमत परम पावन निर्मनस्क तथा विषमतारहित वृत्ति शान्त जो अपरिमित अहन्ताके भीतर अवशिष्ट (बाकी) जन्मादिविकार शून्य परम पद तुमको प्राप्त हो ॥ ४६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेपूत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे चित्तचिकित्सानामैकादशोत्तरशततमः सर्गः ॥ १११ ॥

द्वादशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११२ ॥

चिन्मात्रकी वासनाके अभ्याससे तथा उसकी एकताके दृढ निश्चयसे चित्तके नाशका उपाय और वासनाका त्याग इस ११२ के सर्गमें निरूपण कियागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यस्मिंस्तस्मिन्पदार्थेहियेनतेनयथातथा ॥ तीव्रसंवेगसंपन्नंमनःपश्यतिवांछितम् ॥ १ ॥ जायतेम्रियतेचैषामनसस्तीव्रवेगिता ॥ सौम्यांबुबुद्बुदालीवनिर्निमित्तास्वभावतः ॥ २ ॥ शीततातुहिनस्येवकज्जलस्येवकृष्णता ॥ लोलतामनसोरूपंतीव्रातीव्रैकरूपिणी ॥ ३ ॥ श्रीरामउवाच ॥ कथमस्यातिलोलस्यवेगोवेगैककारणम् ॥ चलतामनसोब्रह्मन्बलतोविनिवार्यते ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! जिस पदार्थमें जिस अभिलषित निमित्तसे जैसी प्रबलतासे तीव्र वेग संयुक्त मन होताहै उस पदार्थमें उसी निमित्तसे वैसाही अपना वांछित देखता है ॥ १ ॥ हे सौम्य रामजी ! जैसे जलमें बुद्बुदोंकी पंक्ति विना निमित्त स्वभावसेही उत्पन्न होतीहैं और नष्ट होतीहैं ऐसेही मनकी यह तीव्रवेगिता उत्पन्न होती है और मरतीभी है॥२॥ जैसे तुषार (पाला) का गुण शीतता तथा कज्जलकी कृष्णता है ऐसेही तीव्र और

तीव्रमात्र शरीरधारिणी चंचलता मनका रूप है ॥ ३ ॥ श्रीरामजी बोले-हे भगवन् ! अति चंचल जो यह मन है उसका वेग जो सम्पूर्ण तीव्रवेगोंका मुख्य कारण है वह बलसेभी कैसे निवारण किया जाय ॥ ४ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ नेहचंचलताहीनंमनःक्वचनदृश्यते ॥ चंचलत्वंमनोधर्मोवह्नेर्धर्मोयथोष्णता ॥ ॥५॥ येषाहिचंचलास्पंदशक्तिश्चित्तत्वसंस्थिता ॥ तांविद्धिमानसींशक्तिंजगदाडंबरा. २३ ॥ अर्थ ६ ॥ स्पंदास्पंदाहतेवायोर्यथासत्तैवनोह्यते ॥ तथाचचित्तसत्तास्तिचंचलस्पन्दनादृते ॥ ७ ॥ चलताहीनंतन्मनोमृतमुच्यते ॥ तदेवचतपःशास्त्रसिद्धांतोमोक्षउच्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! इस ब्रह्माण्डमें चंचलतासे शून्य मन कहींभी नहीं देख पडता. चञ्चलता मनका ऐसा धर्म है जैसे अग्निकी उष्णता ॥ ५ ॥ जगत्का कारण मायापाशवलित चैतन्यरूप चित्तत्वमें स्थित जो चञ्चल क्रियाशक्ति है उसीको जगत्के आडम्बररूपवाली मानसी शक्ति तुम जानों ॥ ६ ॥ जैसे स्पन्द (गतिशीलता) और उसके अभाव शान्तरूपताको छोडके वायुकी कोई सत्ताभी नहीं है इसीप्रकार चंचल स्पन्दनके सिवाय चित्तकी कोई सत्ताही नहीं है ॥ ७ ॥ और जो चंचलतासे हीन है वह मन मृतक कहलाता है ॥ ८ ॥

मनोविलयमात्रेणदुःखशांतिरवाप्यते ॥ मनोमननमात्रेणदुःखंपरमवाप्यते ॥ ९ ॥ दुःखमुत्पादयत्युच्चैरुत्थितश्चित्तराक्षसः ॥ सुखायानंतभोगायतंप्रयत्नेनपातय ॥ १० ॥ तस्यचंचलतायैषात्वविद्याराम सोच्यते ॥ वासनापदनाम्नींतांविचारेणविनाशय ॥ ११ ॥ अविद्ययावासनयातयांतश्चित्तसत्तया ॥ विलीनयात्यागवशात्परंश्रेयोधिगम्यते ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! मनके विलयमात्रसे दुःखकी शान्ति प्राप्तहोतीहै और मनके स्फुरणमात्रसे परमदुःख प्राप्त होता है ॥ ९॥ प्रबलतासे उठा हुआ यह चित्तरूपी राक्षस बडा दुःख उत्पन्न करता है. सुखके लिये और देशकाल तथा वस्तुसे अपरिछिन्न अनन्त मोक्ष भोगनेके लिये उस मनको तुम गिराओ ॥ १० ॥ वासनाका पद (स्थान) है नाम जिसका ऐसी जो मनकी चंचलता है उसीको अविद्या कहते हैं. उसका नाश तुम विचारसे करो ॥ ११ ॥ अन्तर्गत है चित्तकी सत्ता जिसके ऐसी जो वासनारूप अविद्या है उसकी विलीनता (लय) के द्वारा बाह्यविषयोंके त्यागके बलसे मोक्षरूप जो परम कल्याण है वह प्राप्त होता है ॥ १२ ॥

यत्तत्सदसतोर्मध्यंयन्मध्यंचित्त्वजाड्ययोः ॥ तन्मनःप्रोच्यतेरामद्वयोर्दोलायिताकृति ॥ १३ ॥ जाड्यानुसंधानहतंजाड्यात्मकतयेद्धया ॥ चेतोजडत्वमायातिदृढाभ्यासवशेनहि ॥ १४ ॥ विवेकैकानुसंधानाच्चिदंशात्मतयामनः ॥ चिदेकतामुपायातिदृढाभ्यासवशादिह ॥ १५ ॥ पौरुषेणप्रयत्नेनयस्मिन्नेवपदेमनः ॥ पात्यतेतत्पदंप्राप्य भवत्यभ्यासतोहितत् ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! सत् असत्का मेल और जडता तथा चेतनताका मध्य रूप है उसीको मन कहते हैं. और उसकी स्थिति दोनों (सत् असत् तथा चित् और जड) ओर लटकरही है ॥ १३ ॥ देदीप्यमान जडतासे और दृढ अभ्याससे जडताके अनुसन्धानसे दूषित चित्त जडताको प्राप्त होता है ॥ १४ ॥ देदीप्यमान् चिद्रूपतासे और विवेकके अनुसन्धानसे तथा चिदंशके दृढ अभ्याससे मन चित्तके साथ एकरूपताको प्राप्त होताहै ॥ १५ ॥ स्वाभाविक विवेकवाला शास्त्रीय पौरुषरूप प्रयत्नसे जिस स्थानमें यह चित्त गिराया जाता है उस स्थानको प्राप्तहीके और अभ्यासके बलसे उसीका रूप होजाता है ॥ १६ ॥

पुनःपौरुषमाश्रित्यचित्तमाक्रम्यचेतसा ॥ विशोकंपदमाश्रित्यनिराशंकःस्थिरोभव ॥ १७ ॥ भवभावनयामग्नंमनसैवनचेन्मनः ॥ बलादुत्तार्यतेरामतदुपायोस्तिनेतरः ॥ १८ ॥ मनएवसमर्थंवोमनसोदृढनिग्रहे ॥ अराजकःसमर्थःस्याद्राज्ञोराघवनिग्रहे ॥ १९ ॥ तृष्णाग्राहगृहीतानांसंसारार्णवरंहसि ॥ आवर्तैरुह्यमानानांदूरेस्वंमनएवनौः ॥ २० ॥

अर्थ—पुनः पौरुषका आलम्ब करके और चित्तसेही चित्तको आक्रमण (जीत) करके शोकरहित आत्मपदका आश्रय करके शंकारहित तुम स्थिर होजाओ ॥१७॥ हे रामजी! तुम मनके नाश करनेकी भावनामें निमग्न होओ. और यदि मनको मनसे बलसे (विषयोंसे) नहीं उतारोगे तो इसके (मनके उतारनेके) सिवाय मोक्षका कोई उपाय नहीं ॥ १८ ॥ हे रामजी ! तुमारा मनही मन दमन करनेमें समर्थ है, क्योंकि राजासे भिन्न राजाके जीतनेमें कौन समर्थ होसकता है ॥ १९ ॥ संसाररूपी समुद्रके वेगमें तृष्णारूपी ग्राहसे गृहीत और विषयरूपी आवर्तोंसे दूर बहाहुये प्राणियोंको यह मनही नौका है ॥ २० ॥

मनसैवमनश्छित्त्वापाशंपरमबंधनम् ॥ उन्मोचितोनयेनात्मानासावन्येनमोक्ष्यते ॥ २१ ॥ यायोदेतिम नोनाम्नीवासनावासितांतरा ॥ तांतांपरिहरेत्प्राज्ञस्ततोऽविद्याक्षयोभवेत् ॥ २२ ॥ भोगौघवासनांत्य क्त्वात्यजत्वंभेदवासनाम् ॥ भावाभावौततस्त्यक्त्वानिर्विकल्पःसुखीभव ॥ २३ ॥ अभावनंभावना यास्तु तन्वासनाक्षयः ॥ एषएवमनोनाशस्त्वविद्यानाशउच्यते ॥ २४ ॥

अर्थ—मनसेही परम बन्धनयुक्त फांसीरूप मनका छेदनकरके जिसने अपने आत्माको तपाय नहीं छुडाया वह आत्मा दूसरेसे नहीं छूटता ॥ २१ ॥ विषयोंसे गूंथी हुई मननामवाली बाह्यपदार्थोंके अनुसन्धानवाली जो २ वासना उदयहों उन २ को विषयके अनुसन्धानसे बुद्धिमान मनुष्य त्याग दे. क्योंकि उष्णताकी शान्तिसे जैसे अग्नि शान्त होजाताहै ऐसेंही वासनाके क्षयसे अविद्याकाभी क्षय होजाताहै ॥ २२ ॥ प्रथम भोगोंके समूहकी वासनाको त्यागो. उसके पश्चात् भेदवासनाको और अनन्तर चित्त और विषयोंकोभी त्यागके विकलपरहित होके सुखी होजा- ओ ॥ २३ ॥ तत्वसाक्षात्काररूप जो भावना है उससे पूर्णानन्दके आच्छादक अविद्यारूप आवरणको त्यागना इतनाही वासनाका क्षय है. यही मनका नाश अविद्यानाशभी कहलाता है ॥ २४ ॥

यद्यत्संवेद्यतेकिंचित्तत्रासंवेदनंपरम् ॥ असंवित्तिस्तुनिर्वाणंदुःखसंवेदनाद्भवेत् ॥ २५ ॥ स्वेनैवतत्क्षय स्त्वेनपुंसःसंवेद्यलक्षणात् ॥ भावस्याभावनंभूत्यैतत्तस्मान्नित्यमाहरेत् ॥ २६ ॥ रागाद्योयेमनसीप्सि तास्तेबुद्ध्वेहतांस्तांस्त्वमवस्तुभूतान् ॥ त्यक्त्वातदास्यांकुरमस्तबीजंमाहर्षशोकंसमुपैहितृप्तः ॥ २७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे सुखरवेणोपदेशांशकथनंनामद्वादशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११२ ॥

अर्थ—अथवा साक्षी चित्तकेद्वारा जिसर पदार्थका अनुभव करताहै वहां२ अनुभवका होनाही मनका सर्वो- त्तम नाशहै, और वही पदार्थोंके अनुभवका अभाव निर्वाण (मोक्ष) है. और विषयार्थ पदार्थोंका अनुभवहीसे दुःखरूप है ॥२५॥ और वह वेध पदार्थोंके अनुभवका अभाव पुरुषके निज प्रयत्न लक्षणभरमेंही होताहै इसलिये उस प्रयत्नका अभ्यास नित्यकरे ॥ २६ ॥ हे रामजी ! जो २ विषय तथा उनके प्राप्त करनेके उपाय तुमारे मनमें स्थित हैं उन सबको मिथ्या जानकर और वे विषय आदि बीजके मुखसे निकलतेहुये अंकुरके समान जिसकेहैं ऐसे अस्तबीज मनकोभी अज्ञानवासना बीजोंके साथ त्यागकर नित्य तृप्त होजा और विषयजनित हर्षशोकको कभी न प्राप्त होओ ॥ २७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेपूत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे सुखरवेणोपदेशांशकथनंनाम द्वादशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११२ ॥

त्रयोदशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११३ ॥

इस ११३ के सर्गमें सब दुर्वासनाओंका नाशक, विविध विचारोंसे युक्त और द्वैतकी मिथ्यात्वबुद्धिसे दृढ जो तत्वज्ञान है उसका वर्णन कियागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठ उवाच ॥ एषाहिवासनानित्यमसत्यैवयदुत्थिता ॥ द्विचंद्रभ्रांतिवत्तेनत्यक्तुंराघवयुज्यते ॥ १ ॥ अविद्याविद्यमानेवनष्टप्रज्ञेषुविद्यते ॥ नाम्नैवांगीकृताभावात्सम्यक्प्रज्ञेषुसाकुतः ॥ २ ॥ माभ वाज्ञोभवप्राज्ञःसम्यग्रामविचारय ॥ नास्त्येवेंदुर्द्वितीयःखेभ्रांत्यासंलक्ष्यतेमुधा ॥ ३ ॥ नाब्रतत्वाहते किंचिद्विद्यतेवस्त्ववस्तुच ॥ ऊर्मिमालिनिविस्तीर्णेवारिपूराहतेयथा ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-रामजी ! दो चन्द्रकी भ्रान्तिके समान यह वासना असत्यही प्रकटहै इसलिये यह त्यागने योग्यहै ॥ १ ॥ असतभी यह अविद्याविवेकविज्ञानशून्य प्राणियोंकेलिये मानो विद्यमानहीहै, और विवेकियोंकी दृष्टिमें परमार्थरूपसे न होनेके कारण वन्ध्यापुत्रके समान नाममात्रकेलिये अंगीकार कीगईहै, इस- लिये वह कहां है ॥ २ ॥ हे रामजी ! तुम अज्ञानी न होओ किन्तु सम्यक् विचार करो और तत्त्वज्ञानी बनो, क्योंकि आकाशमें दूसरा चन्द्र नहीं है, वह केवल भ्रान्तिसे प्रतीत होताहै ॥ ३ ॥ इस संसारमें तत्वब्रह्मके सिवाय भाव अभा- व कुछभी नहीं है. जैसे तरंगमालायुक्त विशालसमुद्रमें जलके समूहके सिवाय कुछ नहींहै ॥ ४ ॥

सर्वविकल्पाहतेनैतान् भावाभावानसन्मयान् ॥ नित्येसितेततेशुद्धेमासमारोपयात्मनि ॥ ५ ॥ नास्ति कर्ताकिमेतासुक्रियासुममतातव ॥ एकस्मिन्विद्यमानेहिकिंकेनक्रियतेकथम् ॥ ६ ॥ मावाकर्ताभवप्रा ज्ञकिमकर्तृतयेहिते ॥ साध्यंसाध्यमुपादेयंतस्मात्स्वस्थोभवानघ ॥ ७ ॥ कर्तासंस्त्वमसक्तत्वाद्भावा भावेरघूद्वह ॥ असक्तत्वादकर्तापिकर्तृवत्स्पंदनंकुरु ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! भाव अभावयुक्त जो असन्मय पदार्थ हैं वे अपने संकल्पसे पृथक् कुछ नहीं है. इन पदार्थोंको नित्य मायाके बन्धनसे वर्जित व्यापक और शुद्ध आत्मस्वरूपमें मत आरोपण करो ॥ ५ ॥ तुम कर्ता नहीं हो तब इन क्रियाओंमें तुमारी ममता क्यों ? क्योंकि जब एक अद्वितीयपरमात्माही विद्यमान है तो किससे किसप्रकार क्या किया जासकताहै ॥ ६ ॥ अथवा हे प्राज्ञ रामजी तुम अकर्तृत्वके अभिमानीभी मत होओ क्योंकि अकर्तृताके अभिमानमें उपादेय (ग्राह्य) और अपने प्रयत्नसे साध्य फल क्याहै अर्थात् कुछ नहीं ॥ ७ ॥ बुद्धियोंमें श्रेष्ठ रामजी अभिमानके न होनेसे तुम कर्ता होनेपरभी सक्त न होनेके कारण तुम अकर्ता हो. और ऐसे अकर्ता होतेहुयेभी उस अकर्तृतामें अभिमान तथा सक्त नहोनेसे कर्ताभी हो, तब निष्क्रिय आत्मदर्शी तुमको अकर्ताके समान देहकी क्रियासे आत्मक्रियाकी भ्रमरूप कर्तृता कहां ॥ ८ ॥

सत्यंस्याच्चेदुपादेयंमिथ्यास्याद्धेयमेवचेत् ॥ उपादेयैकसक्तत्वाद्युक्तासक्तिर्हिकर्मणि ॥ ९ ॥ यत्रेंद्रजालमखिलंमायामयमवस्तुकम् ॥ तत्रकास्थाकथंनामहेयोपादेयदृष्टयः ॥ १० ॥ संसारबीजकणिकायैषाविद्यारघूद्वह ॥ एषाह्यविद्यमानैवसतोवस्फारतांगता ॥ ११ ॥ येयमाभोगिनिःसारासंसारारंभचक्रिका ॥ विज्ञेयावासनैषासाचेतसोमोहदायिनी ॥ १२ ॥

अर्थ—यदि कर्तृता सत्य होती तो उपादेय होती और असत्य होती तो त्याज्य होती, क्यों कि क्रियाके फलकी मुख्य (सत्य) उपादेयतामें प्रसक्ति होनेसे कर्ममें आसक्ति युक्त है, और फलके मिथ्यात्वमें नहीं ॥ ९ ॥ और जहांपर सब कुछ इन्द्रजाल मायामय वस्तुशून्य है वहांपर क्या आस्था है ? और हेय उपादेय (त्याज्यग्राह्य) दृष्टिभी कैसे होसकती है ॥ १० ॥ हे रघुश्रेष्ठ रामजी ! यह संसारके बीजकी कणिका अविद्या अविद्यमानभी है परन्तु विद्यमानके तुल्य विशालरूपताको प्राप्त है ॥ ११ ॥ हे रामजी ! यह कृत्रिमवेषधारिणी सारशून्यसंसारके आरम्भ करनेवाली चक्रिका (छोटी चाक) है. इसको मोह देनेवाली चित्तकी वासना जानो ॥ १२ ॥

चारुवंशलतेवांतःशून्यानिस्सारकोटरा ॥ सरित्तरंगमालेवनव्युच्छिन्नापिनश्वरी ॥ १३ ॥ गृह्यमाणापिहस्तेनग्रहीतुंनैवयुज्यते ॥ मृद्व्यप्यत्यंततीक्ष्णाग्रानिर्झरोर्मिरिवोत्थिता ॥ १४ ॥ दृश्यतेप्रकराभासासदर्थेनोपयुज्यते ॥ तरंगिण्यतरंगाभास्वाकारपरिनिष्ठिता ॥ १५ ॥ क्वचिद्वक्राःक्वचित्स्पष्टादीर्घाःखर्वाःस्थिराश्चलाः ॥ यत्प्रसादोद्भवास्तस्माद्व्यतिरेकमुपागताः ॥ १६ ॥

अर्थ—यह सुन्दर बांसकी लताके समान अन्तमें शून्य निःसार कोटरवाली नदीके तरंगोंकी मालाके समान विशेषकर उच्छिन्न (कटी हुई) भी नाशवती नहीं है ॥ १३ ॥ हस्तसे ग्रहण कीहुईभी ग्रहण करने योग्य नहीं है. यह झरनेके तरंगके समान कोमलभी तटके वृक्षोंको (पक्षमें संसारासक्त जीवोंको) छेदन करनेसे अतितीक्ष्ण अग्रभाग संयुक्त है ॥ १४ ॥ कार्य्य करनेमें समर्थ कारणसमूहसहित यद्यपि यह भासती है तथापि सत्पुरुषार्थमें इसका कुछभी उपयोग नहीं है. ऐसी सत्यतरंगशून्य प्रतीतिमात्र शोभायमान आकारमें समाप्त मृगतृष्णाकी नदीके तुल्य यह देख पडती है ॥ १५ ॥ कहीं वक्र (टेढी) कहीं स्वच्छ, कहीं दीर्घ, कहीं लघु (छोटी) कहीं स्थिर और कहीं चञ्चल यह भासती है. जिसके प्रतापसे आविर्भूत (उत्पन्न) ये सब पदार्थ परस्पर भेदभावको प्राप्त हुयेहैं ॥ १६ ॥

अंतःशून्यापिसर्वत्रदृश्यतेसारसुंदरी ॥ नक्वचित्संस्थितापीहसर्वत्रैवोपलक्ष्यते ॥ १७ ॥ जडैवचिन्मयीवासावन्यस्पंदोपजीविना ॥ निमेषमप्यतिष्ठंतीस्थैर्याशंकांप्रयच्छति ॥ १८ ॥ ज्वालावच्छुद्धवर्णापिमषीमलिनकोटरा ॥ वल्गत्यन्यप्रसादेनदीयतेतद्द्वीक्षणात् ॥ १९ ॥ आलोकेविमलेम्लानातमस्यपिविराजते ॥ मृगतृष्णेवशुष्काभानानावर्णविलासिनी ॥ २० ॥

अर्थ—यह भीतरसे शून्यभी परन्तु सर्वत्र सारविशिष्ट सुन्दर देखपडतीहै. और कहीं स्थित न होनेपर सर्वत्र देखपडतीहै ॥ १७ ॥ जडभी यह चेतनमयी मनकी चंचलताको जिताती है. और एक निमेषभी कहीं न ठहरनेपर स्थिरताकी आशङ्का देती है ॥ १८ ॥ अग्निज्वालाकेसमान सत्वगुणसे शुद्धवर्ण होनेपरभी तमोगुणसे मषीके समान मलिनवर्ण और परमात्माकेही प्रतापसे यह गर्जतीहै. और उसीके साक्षात्कारसे खण्डितभी होजाती है ॥ १९ ॥ आत्माके प्रकाशमेंभी म्लान और अज्ञानान्धकारमेंभी शोभित होती है. और नानाप्रकारके वर्णोंसे विलासिनी शुष्कही शोभायमान मृगतृष्णाकी नदीके समान यह है ॥ २० ॥

वक्राविषमयीतन्वीस्पृष्टीसंकटकर्कशा ॥ ललनाचंचलालुब्धातृष्णाकृष्णेवभोगिनी ॥ २१ ॥ स्वयंदीपशिखेवाशुक्षीयतेस्नेहसंक्षये ॥ सिंदूरधूलिलेखेवविनारागंविराजते ॥ २२ ॥ क्षणप्रकाशतरलाकृतसंस्था

जडाशया ॥ मुग्धानांत्रासजननीवक्राविद्युदिवोदिता ॥२३॥ यत्नादृगृहीत्वादहतिभूत्वाभूत्वाप्रलीयते ॥ लभ्यतेपिहिस्नान्विष्टाविद्युद्वदतिभंगुरा ॥ २४ ॥

अर्थ—तथा वक्र, विषपूर्ण, अतिसूक्ष्म, कोमल, संकटका हेतु होनेसे कर्कश चंचल तथा लुब्ध स्त्रीके समान तथा सर्पिणीकेतुल्य तृष्णारूप यह वासना है ॥ २१ ॥ स्नेहपक्षमें रागके नाश होनेपर दीपकी शिखाके आपही शीघ्र नष्ट होजाती है और स्नेह (राग) के विनाभी सिंदूरकी धूलिकी रेखाके समान शोभित होती है. ॥ २२ ॥ क्षणभरके प्रकाशमें चंचल जडके आशयमें स्थिति करनेवाली मूर्खोंकी त्रासदायिनी भयंकर विद्युत्के समान यह प्रकट हुई है ॥ २३ ॥ और यत्नसे पकडके यह जलाती है और उत्पन्न हो २ कर पुनः लीन होजाती है यह अति क्षणभंगुर विद्युत्के समान खोजनेपरभी नहीं मिलती ॥ २४ ॥

अप्रार्थितैवोपनतारमणीयाप्यनर्थदा ॥ अकालपुष्पमालेवश्रेयसेनाभिनंदिता ॥ २५ ॥ अत्यंतविस्मृतेवातिसुखायभ्रमदायिनी ॥ दुःस्वप्नकलनेवेयमनर्थायैवतर्किता ॥ २६ ॥ प्रतिभासवशादेषात्रिजगंतिमहांतिच ॥ मुहूर्त्तमात्रेणोत्पाद्यधत्तेग्रासीकरोतिच ॥ २७ ॥ मुहूर्त्तोवत्सरश्रेणीलवणस्यानयाकृता ॥ रात्रिर्द्वादशवर्षाणिहरिश्चंद्रस्यनिर्मिता ॥ २८ ॥

अर्थ—और विना चाहे यह आके प्राप्त होती है रमणीय होनेपरभी अनर्थदायिनी इसीसे कुसमयके पुष्पोंकी मालाके समान कल्याणके अर्थ यह नहीं अभिलाषित है ॥ २५ ॥ अत्यन्त विस्मृत होनेपरभी यह अति सुखकेलिये भ्रमदायिनी है. और दुष्टस्वप्नकी कल्पनाके समान यह अनर्थकेही लिये वारंवार निश्चित कीगईहै ॥ २६ ॥ प्रतिभास (कल्पना) केही वशसे बडे २ तीनों लोकोंको यह मुहूर्तमात्रमेंही उत्पन्न करके धारण करती है, और पुनः ग्रासकर जाती है ॥ २७ ॥ राजा लवणकेलिये एक मुहूर्तको वर्षोंकी पंक्ति इसने किया और राजा हरिश्चन्द्रके लिये एक रात्रिके १२ वर्ष इसीने बनाया ॥ २८ ॥

वियोगिनामथान्येषांकांताविभवशालिनाम् ॥ रात्रिर्वत्सरवद्दीर्घाभवेत्तस्याःप्रसादतः ॥२९॥ सुखितस्याल्पतामेतिदुःखितस्यैतिदीर्घताम् ॥ कालोयस्याःप्रसादेनविपर्यासैकशालिनाम् ॥ ३० ॥ अस्याःस्वसत्तामात्रेणकर्तृतैतासुवृत्तिषु ॥ दीपस्यालोककार्याणांयथातद्वत्रवस्तुतः ॥ ३१ ॥ सनितंबस्तनीचित्रेनस्त्रीस्त्रीधर्मिणीयथा ॥ तथैवाकारचितेयंकर्तुंयोग्यानकिंचन ॥ ३२ ॥

अर्थ—इसीके प्रतापसे वियोगियोंको तथा अन्य स्त्री ऐश्वर्य्य आदिसे शोभायमान पुरुषोंको एक रात्रि वर्षके समान दीर्घ हो जाती है ॥ २९ ॥ भ्रमशील पुरुषोंकी दृष्टिमें जिसके प्रतापसे कालभी सुखीके लिये अल्पताको और दुःखोंकेलिये दीर्घताको प्राप्त होता है ॥ ३० ॥ जैसे प्रकाशके कार्य्योंमें दीपको कर्तृता है ऐसेही चेतनसत्ताकी सन्निधिमात्रसे इस अविद्याकी कर्तृता इन वृत्तियोंमें है ॥ ३१ ॥ जैसे नितम्ब और स्तन आदि चिन्होंको धारण करनेवाली चित्रगत स्त्री गृहके कार्य्य करनेमें समर्थ स्त्रीधर्मवाली स्त्री नहीं है ऐसेही पूर्वकालमें अनुभूत पदार्थोंमें वासनारूप यह अविद्या कुछ कार्य्य (परमार्थिक) करने योग्य नहीं है ॥ ३२ ॥

मनोराज्यमिवाकारभासुरासत्यवर्जिता ॥ सहस्रशतशाखापिनार्किचित्परमार्थतः ॥ ३३ ॥ अरण्येमृगतृष्णेवमिथ्यैवाडंबरान्विताः ॥ विडंबयतितान्मुग्धमृगानेवनमानुषान् ॥ ३४ ॥ फेनमालेवसंजातध्वास्ताविच्छेदवर्जिता ॥ जडेवचंचलाकाराग्रह्यमाणानकिंचन ॥ ३५ ॥ अत्युद्दामराकाररजःप्रसरधूसरा ॥ बलात्कल्पांतवात्येवस्वाक्रांतभुवनांतरा ॥ ३६ ॥

अर्थ—मनोराज्यके आकारके समान प्रकाशमान सत्यसे वर्जित सहस्रों और सैकडों शाखासहित होनेपर भी परमार्थमें कुछभी नहीं ॥ ३३ ॥ मिथ्या आडम्बरोंके सहित बनमें मृगतृष्णाके तुल्य मृगके समान मूर्खजनोंको मोहित करतीहै न कि विवेकीपुरुषोंको ॥ ३४ ॥ हे रामजी ! फेनकी मालाके समान यह उत्पन्न होतेही नाशशील है और प्रवाहरूपसे नित्यहै, तथा जडनीहारपटलीके समान, चंचल आकारवाली यह ग्रहण करनेमें कुछभी नहींहै ॥ ३५ ॥ भयंकर आकारवाली रज (धूलि पक्षमें रजोगुण) के प्रसरसे धूसरवर्ण, और अपने बलसे सब भुवनोंके मध्यको आक्रमण करनेवाली यह अविद्या सर्वत्र भ्रमणकररही है ॥ ३६ ॥

धूमालीवांगसंलग्नादाहखेदप्रदायिनी ॥ गर्भीकृतरसाकम्यजगंतिपरिवर्तते ॥ ३७ ॥ धाराजलधरस्येवसुदीर्घाजलनिर्मिता ॥ असारसंसारदृढारज्जुस्तृणगणैरिव ॥ ३८ ॥ तरंगोत्पलमालेवकल्पनामात्रवर्णिता ॥ मृणालीवबहुच्छिद्रापंकप्रौढाजलात्मिका ॥ ३९ ॥ जनेनंदृश्यतेवृद्धितत्परानचवर्द्धते ॥ विषास्वादइवापातमधुरांतेसुदारुणा ॥ ४० ॥

अर्थ—धूलिकी पंक्तिके समान अंगमें लगनेसे दाह तथा दुःखको देनेहारी और अपने गर्भमें पर्‍रथक् कुछ नहीं है. को धारण किये हुये सब जगत्को आक्रमण किये भ्रमणकर रही है ॥ ३७ ॥ यह जलसे निर्मित अति रो ॥ ५ ॥ तुम का राके समान है. तथा असार जो संसरणशील संसार है उससे ऐसी दृढ़ होरही है जैसे तृण समूहोंसे रज न है तो किससे वा कमलकी मालाके समान इसको कवियोंने कल्पनामात्रसे वर्णन किया है अनेकछिद्रमय और जल ी मत होत्रे॥ अर्थ उत्पन्न कमलोंके सूतोंके समान यह है ॥३९॥ प्राणी इसको वृद्धिमें तत्पर देखते हैं परन्तु यह बढती नहीं नहीं ॥ ७ मोदक (लड्डू)के स्वादके तुल्य बिना बिचारे मधुर परन्तु अन्तमें अतिदारुण यह है ॥ ४० ॥ और है

नष्टादीपशिखेवैषानजानेक्केवगच्छते ॥ मिहिकेवाग्रदृष्टापिगृह्यमाणानकिंचन ॥ ४१ ॥ पांसुमुष्टि रिवाकीर्यप्रेक्षितापारमाणवी ॥ आकाशनीलिमेवैषानिर्निमित्तैवदृश्यते ॥ ४२ ॥ द्विचंद्रमोहवज्जाता स्वप्नवद्विहितभ्रमा ॥ यथानौयायिनःस्थाणुस्पंदस्तद्वदिहोत्थिता ॥ ४३ ॥ अनयोपहतेचित्तेदीर्घकाल मिवाकुलैः ॥ जनैराकल्प्यतेदीर्घसंसारस्वप्नविभ्रमः ॥ ४४ ॥

अर्थ—नष्ट होनेसे दीपकी शिखाके सदृश न जाने यह कहांचलीजातीहै और नीहार (कुहरा) वा धूमके पटलके समान अग्रभागमें दृश्यमानभी यह ग्रहणकरनेपर कुछ नहीं ॥ ४१ ॥ जैसे धूलिकी मुष्टि फेंककर देखो तो वह परमाणुमय कुछ नहीं है और आकाशकी नीलताके समान बिना निमित्तही यह देख पडती है ॥ ४२ ॥ स्वप्नके तुल्य भ्रम करनेवाली दो चन्द्रके अज्ञानके तुल्य यह उत्पन्न हुई है, जैसे नौकासे चलनेवालेको ठूंठ तथा वृक्षादिमें गमनक्रिया प्रतीत होतीहै ऐसेही यह अविद्याभी प्रकटहै ॥ ४३ ॥ इससे जब चित्त दूषित होजाताहै तब दीर्घकालतक मनुष्य दीर्घ संसाररूपी स्वप्नका भ्रम कल्पित करता है ॥ ४४ ॥

अनयोपहतेस्वस्मिंश्चित्राश्चेतसिविभ्रमाः ॥ उत्पद्यंतेविनश्यंतितरंगास्तोयधेरिव ॥ ४५ ॥ मनोज्ञम पिसत्यंचदृश्यतेसदसत्तया ॥ अमनोज्ञमसत्यंचदृश्यतेसत्तयाप्यसत् ॥ ४६ ॥ पदार्थरथमारूढा भावनैषा बलान्विता ॥ आक्रामतिमनःक्षिप्रंविहंगंवागुरायथा ॥ ४७ ॥ करुणास्यंदमानाक्षीस्रव त्क्षीरलवस्तनी ॥ भवत्युल्लसितानंदंजननीगृहिणीयथा ॥ ४८ ॥

अर्थ—इस अविद्यासे स्वात्माके दुषित होने पर अर्थात् आवरणसे असत्के समान होनेपर चित्तमें नानाप्रकारके भ्रम ऐसे उत्पन्न होते हैं और नष्ट होते हैं जैसे समुद्रमें तरङ्ग ॥ ४५ ॥ इस अविद्यासे सत्य और रमणीयभी ब्रह्म असत्रूपसे, तथा अमनोज्ञ असत्भी जगत् सत् और रमणियरूपसे देखपडता है ॥ ४६ ॥ विषयरूपी रथमें आरूढ यह वासनारूप अविद्या मनको मोहित करके ऐसे बांधतीहै जैसे जाल पक्षीको ॥ ४७ ॥ करुणासे चलायमान नेत्रवाली, तथा वहते दुग्धके सहित स्तनवाली स्त्री वा मातारूप धारण करके यही अविद्या उल्लासित आनन्दवाली होती है ॥ ४८ ॥

विषीकरोतिनिःस्यंदसंतर्पितजगत्त्रयम् ॥ सुधार्द्रार्द्रमपिक्षिप्रंप्रवृद्धंबिंबमैंदवम् ॥ ४९ ॥ उन्मत्तर ववेतालनर्त्तनारंभसंभ्रमम् ॥ स्थाणवस्संप्रयच्छंतिमूकाअप्येतयांधया ॥ ५० ॥ संध्यादिषुचकालेषु लोष्टपाषाणभित्तयः ॥ अस्याःप्रसादाद्दृश्यंतेसर्पाजगरदृष्टिभिः ॥ ५१ ॥ एकोपिद्वितयोदेतियथाहि शशिदर्शने ॥ दूरमभ्याशतांयातिस्वप्नेस्वमरणंयथा ॥ ५२ ॥

अर्थ—चंद्रिकादिरूपमें परिणत अमृतके प्रवाहोंसे तीनों लोककी तृप्त करने वाले अमृतसे आर्द्र (गीले) और प्रवृद्ध चन्द्रमाके बिम्बकोभी यही अविद्या विषरूप कर देती है ॥ ४९ ॥ वागादि इन्द्रियोंके व्यापारसे शून्य सब को अन्धा करने वाली यह अविद्या स्थाणु (ठंढी) ओंकोभी उन्मत्त शब्द सहित वेतालोंके नृत्यका संभ्रम देती है ॥ ५० ॥ हे रामजी ! इसी अविद्याके प्रतापसे संध्या आदि कालोंमें लोष्ट (मृत्तिका) तथा पाषाण आदिकी भित्ति (भींत वा दीवालें) सर्प वा अजगरकी भ्रान्तिसे देखपड़ती हैं ॥ ५१ ॥ जैसे दो चन्द्रके दर्शनमें एकभी दो रूपसे उदय होताहै. दूरभी समीपताको ऐसे प्राप्त होताहै जैसे स्वप्नमें अपना मरण ॥ ५२ ॥

आदीर्घक्षणतामेतिकालस्येष्टायथानिशा ॥ क्षणोवर्षमिवाभातिकांताविरहिणामिव ॥ ५३ ॥ नतदस्ती हयन्नामनकरोतीयमुद्धता ॥ अस्यास्त्वकिंचनायास्तुशक्तताम्पश्यराघव ॥ ५४ ॥ संरोधयेत्प्रयत्नेनसंवि देवाशुसंविदम् ॥ सरित्स्रोतोनिरोधेनशुष्यत्येषामनोनदी ॥ ५५ ॥ श्रीरामउवाच ॥ अविद्यमानैवेदं पेलवांग्यासुतुच्छया ॥ मिथ्याभावनयानामचित्रमंधीकृतंजगत् ॥ ५६ ॥

अर्थ—और अति दीर्घकालभी क्षणताको इसप्रकार प्राप्त होताहै जैसे संहारक रुद्रकालको इष्ट प्रलयकी रात्रि,

और क्षणभी वर्षके समान ऐसे भान होताहै जैसे स्त्रीके विरही जनोंको ॥ ५३ ॥ हे रामजी ! अकिंचन अपनी सत्तामें दरिद्र इस अविद्याके सामर्थ्यको तो देखो इस ब्रह्माण्डमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसको यह उद्धत होके न करसके ॥ ५४ ॥ बुद्धिमानको योग्य है कि विवेकबुद्धिसे विषयकी बुद्धिकी प्रयत्नसे रोके और जैसे प्रवाहके रोधन (रोकने) से जैसे नदी सूखजाती है ऐसेही विषयबुद्धिके निरोधसे यह मनरूपा नदी शुष्कहोजाती है ॥ ५५ ॥ श्रीरामजी बोले— हे भगवन् ! असती कोमलांगी अति तुच्छ (अवस्तु) और मिथ्याभावनारूप इस अविधाने जगत्को अन्धा कर दिया यह आश्चर्य है ॥ ५६ ॥

अरूपयानिराकृत्याचारुचेतनहीनया ॥ असत्येवाप्यनश्यंत्याचित्रमंधीकृतंजगत् ॥ ५७ ॥ आलोकेन विनश्यंत्यास्फुरंत्यातमसोंतरे ॥ कौशिकेक्षणधर्मिण्याचित्रमंधीकृतंजगत् ॥ ५८ ॥ कुकर्मैकांतकारिण्यानसहंत्याविलोकनम् ॥ देहमप्यविजानंत्याचित्रमंधीकृतंजगत् ॥ ५९ ॥ सुदीनाचारधर्मिण्यानित्यं प्राकृतकांतया ॥ अनारतास्तंगतयाचित्रमंधीकृतंजगत् ॥ ६० ॥

अर्थ—तथा रूप और आकारसे शून्य रमणीय चेतनतासे हीन और मृगतृष्णाकी नदीके समान असत् होने-परभी शुष्कतारहित इस अविद्याने जगतको अन्धा करदिया यह आश्चर्य है ॥ ५७ ॥ प्रकाशमें (ज्ञानरूपी प्रकाशमें) नाश होनवाली और अन्धकार (अज्ञानान्धकार) में स्फुरने (चमकनें) वाली उलूकके नेत्रके सदृश इसने जगत्को अन्धा कर दिया यह आश्चर्य है ॥ ५८ ॥ क्रियाशक्तिमात्रका आश्रय करनेसे सर्वदा कुकर्मकारिणी प्रकाशको नसहनेवाली, तथा ज्ञानशक्तिसे शून्य होनेसे अपने शरीरकोंभी न जाननेवाली इस अविद्याने जगत्को अन्धा कर दिया यह आश्चर्य है ॥ ५९ ॥ अतिदीन (शोचनीय) आचार तथा धर्मवाली, मूढजनोंको रमणीय पक्षमें साधारण-जनोंकी भार्य्या और निरन्तर असतीरूप इस अविद्यानें जगत्को अन्धा कर दिया यह चित्र (आश्चर्य) है ॥ ६० ॥

अनंतदुःखाकुलयासदैवमृतयानया ॥ संबोधहीनयायत्रचित्रमंधीकृतंजगत् ॥ ६१ ॥ कामकोपघनांगिन्यातमःप्रसरवक्रया ॥ अचिरेणाशरीरिण्याचित्रमंधीकृतंजगत् ॥ ६२ ॥ स्वात्मांधरूपास्पदयाजडया जाड्यजीर्णया ॥ दुःखदीर्घप्रलापिन्याचित्रमंधीकृतंजगत् ॥ ६३ ॥ पुरुषासंगसंगिन्यारागिण्याक्रियानया ॥ विद्रवंत्याविवक्षासुचित्रमंधीकृतःपुमान् ॥ ६४ ॥

अर्थ—अहो ! आश्चर्य ! जहांपर अनन्त दुःखोंसे व्याप्त सदा मृतकेतुल्य और ज्ञानशून्य इस अविद्याने जगत्को अन्धा कर दिया ॥ ६१ ॥ काम और कोपसे सघन अंकवाली तमके प्रसारसे भयंकररूप और ज्ञानोदयसे वा वधसे शीघ्रही शरीररहित इस अविद्याने जगत्को अन्धा कर दिया यह आश्चर्य है ॥ ६२ ॥ और आत्माके विषयमें मूढजनोंके हृदयमें निवासशील जडरूप तथा जडतासे जीर्ण और दुःखोंसे दीर्घ प्रलय करनेवाली निशाचरीके तुल्य इस अविद्याने जगत्को अन्धा कर दिया यह आश्चर्य है ॥ ६३ ॥ चेतनरूप पुरुषके साथएकताके अध्याससे पुरुषकी संगीनी, नानाप्रकारके विचित्र विषयकी कल्पनारूप क्रियासे पुरुषके भोगार्थ पुरुषमें अनुरागिणी और आत्म-तत्वविचारोंमें भागनेवाली स्त्रीरूप इस अविद्याने पुरुषको अन्धा कर दिया ॥ ६४ ॥

पुरुषस्यनयाशक्तासोढुमीक्षितमप्यलम् ॥ तयास्त्रियावरणयाचित्रमंधीकृतःपुमान् ॥ ६५ ॥ नयस्याश्चेतनैवास्तियाप्यनष्टैवनश्यति ॥ तयास्त्रियापरुषयाचित्रमंधीकृतःपुमान् ॥ ६६ ॥ अनंतदुष्प्रसरविलासकारिणीक्षयोदयोन्मुखसुखदुःखभागिनी ॥ इयंप्रभोविगलतिकेनवासमायनोगुहानिलयनिबद्धवासना ॥ ६७ ॥
इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेपूत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे अविद्यावर्णनंनामत्रयोदशोत्तरशततमःसर्गः ॥ ११३ ॥

अर्थ—पुरुषके साक्षात्कारको (देखनेको) असमर्थ ऐसी आवरण (आत्मदर्शनका आच्छादन) करनेवाली इस अविद्यारूप स्त्रीने पुरुषको अन्धा करदिया यह आश्चर्य्य है ॥ ६५ ॥ जिसकी चेतनाशक्ति सर्वथा नहीं है और जो नष्ट होनेपरभी नाशको प्राप्त होतीहै (कर्कश) उस अविद्यारूप स्त्रीने पुरुषको अन्धा कर दिया यह आश्चर्य्य है ॥ ६६ ॥ हे प्रभो! अनन्त दुष्ट भ्रमोंसे विलासकारिणी क्षय तथा उदयकी ओर उन्मुख मरण और जन्मादिके सुखदुःखोंको प्राप्तकरनेवाली विषम और मनरूपी गुहाके स्थानमे निबद्ध वासनारूप यह अविद्या किस उपायसे नष्ट हो ॥ ६७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये पूत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे अविद्यावर्णनंनामत्रयोदशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११३ ॥

चतुर्दशोत्तरशततमः सर्गः ११४ ॥

इस ११४ के सर्गमें अविद्याके नाशका उपाय आत्माका दर्शन विशुद्ध आत्माका स्वरूप और असंकल्पसे वासनाका क्षय वर्णन कियागया है ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ अविद्याविभवप्रोत्थंनिबिडंपुरुषस्यहि ॥ महदांध्यमिदंब्रह्मन्कथंनामविनश्यति ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यथातुषारकणिकाभास्करालोकनात्क्षणात् ॥ नश्यत्येवमविद्येयंराघवात्मावलोकनात् ॥ २ ॥ तावत्संसारभृगुषुस्वात्मनासहदेहिनम् ॥ आंदोलयतिनीरंध्रदुःखकंटकशालिषु ॥ ३ ॥ अविद्यायावदस्यास्तुनोत्पन्नाक्षयकारिणी ॥ स्वयमात्मावलोकेच्छामोहसंक्षयदायिनी ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-हे ब्रह्मन् ! अविद्याके विभवसे गुंथा हुआ अतिसघन आवरणरूप जो यह पुरुषका महत् आन्ध्य (अन्धता) है वह कैसे नष्ट हो ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! जैसे तुषारकी कणिका सूर्य्यके प्रकाशसे क्षणभरमें नष्ट होजाती है ऐसेही आत्माके अवलोकनसे यह अविद्याभी तत्काल नष्ट होती है ॥ २ ॥ छिद्ररहित (सघन) दुःखरूप कण्टकोंसे शोभायमान संसाररूपी पर्वतके शिखरोंपर आत्माके साथ इस देहीको यह अविद्या तभीतक झुलाती है ॥ ३ ॥ जबतक इसके क्षयकी कारिणी और मोहकी नाशिनी आत्मदर्शनकी इच्छा नहीं उत्पन्न हुई ॥ ४ ॥

अस्याःपरंप्रपश्यंत्याःस्वात्मनाशःप्रजायते ॥ आतपानुभवार्थिन्याश्छायायाइवराघव ॥ ५ ॥ दृष्टेसर्वगतेबोधेस्वयमेवविलीयते ॥ सर्वाशाभ्युदितेछायाद्वादशार्कगणेयथा ॥ ६ ॥ इच्छामात्रमविद्येहतन्नाशोमोक्षउच्यते ॥ सचासंकल्पमात्रेणसिद्धोभवतिराघव ॥ ७ ॥ मनागपिमनोव्योम्निवासनारजनीक्षये ॥ कालिमातनुतामेतिचिदादित्यमहोदयात् ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! परमात्माका दर्शन करतेही इसके शरीरका नाश ऐसे होजाता है जैसे आतप (घाम) का अनुभव चाहनेवाली छायाका ॥ ५ ॥ सर्वव्यापी बोधके दृष्ट (हृदयमें आरूढ) होतेही यह इसप्रकार नष्ट होतीहै जैसे सम्पूर्ण दिशाओंमें द्वादश (बारह) आदित्यके गणके उदय होतेही छायाका ॥ ६ ॥ इच्छा (विषयेच्छा) मात्रही अविद्या है उसका नाशही मोक्ष कहा जाता है. और हे रामजी ! वह मोक्ष असंकल्पमात्रसे सिद्ध होता है ॥ ७ ॥ चेतनरूपी सूर्य्यके महोदयसे कामवासनारूपी रात्रिके नाश होनेपर मनरूपी आकाशमें किंचित्भी कालिमा अर्थात् अविद्याका आवरण हो वह नष्ट होजाता है ॥ ८ ॥

यथोदितेदिनकरेक्वापियातितमस्विनी ॥ तथाविवेकेभ्युदितेक्वाप्यविद्याविलीयते ॥ ९ ॥ दृढवासनयाबंधोघनतामेतिचेतसः ॥ बलाद्वेतालसंकल्पःसंध्याकालेयथाशिशोः ॥ १० ॥ श्रीरामउवाच ॥ यावत्किंचिदिदंदृश्यंसाविद्याक्षीयतेचसा ॥ आत्मभावनयाब्रह्मन्नात्मासौकीदृशःस्मृतः ॥ ११ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ चेत्यानुपातरहितंसामान्येनचसर्वगम् ॥ यच्चित्तत्त्वमनाख्येयंसआत्मापरमेश्वरः ॥ १२ ॥

अर्थ—जैसे सूर्य्यके उदय होनेसे रात्रि न जाने कहां जाती है ऐसेही विवेकके उदय होनेसे न जाने अविद्या कहां लीन होजाती है ॥ ९ ॥ हे रामजी ! जैसे सन्ध्याकालमें बालकके हृदयमें बेताल (भूतादि) का संकल्प बलात्कारसे उदय होता है ऐसेही कामकी दृढ वासनासे चित्तका बंधनभी दृढीभूत होजाता है ॥ १० ॥ श्रीरामजी बोले-हे ब्रह्मन् ! जो कुछ यह दृश्य प्रपंचहै वह तो अविद्याहै. और वह आत्मदर्शनसे क्षीण होजाताहै तो वह आत्मा कैसा कहागयाहै ॥ ११ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-विषयकी प्राप्तिसे वर्जित, और अविद्याकी शक्ति विक्षेप और आवरणसे शून्य सर्वव्यापी और अकथनीय (वाणीका अविषय) जो चित्तत्व है वही आत्मा परमेश्वर है ॥ १२ ॥

आब्रम्हास्तंबपर्यंततृणादियदिदंजगत् ॥ तत्सर्वंसर्वदात्मैवनाविद्याविद्यतेनघ ॥ १३ ॥ सर्वंचखल्विदंब्रह्मनित्यंचिद्घनमक्षतम् ॥ कल्पनान्यामनोनाम्नीविद्यतेनहिकचान ॥ १४॥ नजायतेनम्रियतेकिंचिदत्रजगत्त्रये ॥ नचभावविकाराणांसत्ताक्वचनविद्यते ॥ १५॥ केवलंकेवलाभासंसर्वसामान्यमक्षतम् ॥ चेत्यानुपातरहितंचिन्मात्रमिहविद्यते ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! ब्रह्मासे लेके तृणपर्य्यन्त तृणादि यह जगत्है वह सब सर्वदा आत्माही है. और अविद्या तो हैही नहीं ॥ १३ ॥ हे रामजी ! यह सम्पूर्ण चिद्घन, अक्षत नित्य ब्रह्महीहै, और अन्य मनोनामिका कल्पना है वह सब कुछ नहीं है ॥ १४ ॥ इस तीनों संसारमें न तो कुछ उत्पन्न होताहै और न कोई मरताहै और पदार्थ विकारोंकी तो सत्ताही कहीं नहीं ॥ १५ ॥ केवल अद्वितीय, स्वप्रकाश, सर्व अनुगत, सत्‌रूप, अक्षत, और विषयकी प्राप्तिसे वर्जित चेतनमात्रही इस ब्रह्माण्डमें है ॥ १६ ॥

तस्मिन्नित्येततेशुद्धेचिन्मात्रेनिरुपद्रवे ॥ शांतेसमसमाभोगेनिर्विकारोदितात्मनि ॥ १७ ॥ यैषास्वभावातिगतंस्वयंसंकल्प्य धावति ॥ चिच्चेत्यंस्वयमाम्लानासाम्लानातन्मनःस्मृतम् ॥ १८ ॥ एतस्मात् सर्वगाद्देवात्सर्वशक्तेर्महात्मनः ॥ विभागकलनाशक्तिर्लहरीवोत्थितांभसः ॥ १९ ॥ एकस्मिन्विततेशांतेयानार्किचनविद्यते ॥ संकल्पमात्रेणगतासासिद्धिंपरमात्मनि ॥ २० ॥

अर्थ—उस नित्य, व्यापक, शुद्ध, चिन्मात्र, उपद्रवशून्य, शान्त, विशाल, सर्वत्र एक रूप और निर्विकार आत्मामें ॥ १७ ॥ आम्लान अर्थात् आवरणसहित जो यह चित् है वही चित् स्वभावसे विरुद्ध जड़ता और परिच्छेदादि स्वभाववाले विषयका संकल्प करके उसी ओर दौड़ती है वह म्लान विक्षेपशक्ति प्रसिद्ध मनहै ॥ १८ ॥ इसी सर्वव्यापी सर्वशक्तिमान् महान् मनरूपी देवसे सम्पूर्ण पदार्थोंकी विभागकल्पनाशक्ति ऐसे आविर्भूतहै जैसे समुद्रसे तरंग ॥ १९ ॥ एक, अद्वितीय, व्यापक और शान्त परमात्मामें जो अविद्या कुछभी नहींहै वह उसके संकल्पमात्रसे सिद्धिको प्राप्त हुई है ॥ २० ॥

अतःसंकल्पसिद्धेयंसंकल्पेनैवनश्यति ॥ येनैवजातातेनैवाग्निज्वालेववायुना ॥ २१ ॥ पौरुषोद्योगसिद्धेनभोगाशारूपतांगता ॥ असंकल्पनमात्रेणसाविद्याप्रविलीयते ॥२२॥ नाहंब्रह्मेतिसंकल्पात्सुदृढाद्बध्यतेमनः ॥ सर्वंब्रह्मेतिसंकल्पात्सुदृढान्मुच्यतेमनः ॥ २३ ॥ संकल्पःपरमोबन्धस्त्वसंकल्पोविमुक्तता ॥ संकल्पंसंविजित्यांतर्यथेच्छसितथाकुरु॥ २४ ॥

अर्थ—इस लिये यह संकल्पसे सिद्धहै, और संकल्पहीसे नष्ट होतीहै, क्योंकि जो जिससे उत्पन्न होती है वह उसीसे नष्टभी होतीहै, जैसी अग्निकी ज्वाला वायुसे उत्पन्न होतीहै और वायुसेही लीन होती है ॥ २१॥ विषयभोगकी आशासे रूप धारण कियेहुये यह अविद्या निदिध्यासनकी परिपाकतारूप पौरुषके उद्योगसे सिद्ध आत्मसाक्षात्कारसे प्रतिष्ठित केवल असंकल्पमात्रसे लीनताको प्राप्त होतीहै ॥ २२ ॥ मैं ब्रह्मनहीं हुं इस सुदृढसंकल्पसे मन बन्धमें प्राप्त होताहै, और सब कुछ स्वात्मब्रह्मही है इस सुदृढसंकल्पसे मन मुक्त होताहै ॥ २३ ॥ विषयका संकल्पही परम बन्धन है, और असंकल्पही मुक्तता (मुक्ति) है, हे रामजी ! मैं ब्रह्म नहींहूं इस संकल्पको सब कुछ ब्रह्मही इस विरोधी संकल्पजनित ज्ञानसे जीतकर जैसी इच्छाहो वैसा करो ॥ २४ ॥

दृष्टानयांबरेवास्तिनलिनीहेमपंकजा ॥ लोलवैदूर्यमधुपासुगंधितदिगंतरा ॥ २५ ॥ उद्दंडैःप्रकटाभोगैर्मृणालभुजमंडलैः ॥ विहसंतीप्रकाशस्यशशिनोरश्मिमण्डलम् ॥ २६ ॥ विकल्पजालिकेवेत्थमसत्येवापिसत्समा ॥ मनःस्वार्थविलासार्थंयथाबालेनकल्प्यते ॥ २७ ॥ तथैवेयमविद्येह भवबंधनबंधनी ॥ चपलानसुखायैवबालेनकलितादृढा ॥ २८ ॥

अर्थ—हे रामजी! इस चिदाकाशमें जो नहीं है ऐसी यह सुवर्णके पंकमें उत्पन्न चंचल वैदूर्य (मूंगेके वर्ण भ्रमरवाली दशों दिशाओंके मध्यको सुगन्धित करनेहारी बड़े उद्दण्ड प्रकट शरीरवाले मृणाल (कमलदण्ड) रूपी भुजाके समूहोंसे आत्मप्रकाशरूपी चन्द्रमाके किरणमण्डलको हंसती हुई नलिनीके समान विकल्पजालिका यथार्थमें असत् है परन्तु सत्के समान जैसे बालक अपने मनोरथके विलासकेलिये कल्पित करता है ऐसे मूर्ख जन इस संसारमें बन्धनकारिणी चपल अविद्याको सुखके अर्थ नहीं किन्तु अनन्तदुःखोंके अर्थ दृढरूपसे कल्पित किया है ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥

कृशोतिदुःखीबद्धोहंहस्तपादादिमानहम् ॥ इतिभावानुरूपेणव्यवहारेणबध्यते ॥ २९ ॥ नाहंदुःखीनमेदेहोबंधःकस्यात्मनःस्थितः ॥ इतिभावानुरूपेणव्यवहारेणमुच्यते ॥ ३० ॥ नाहंमांसंनचास्थीतिदेहादन्यःपरोह्ययम् ॥ इतिनिश्चयवानंतःक्षीणाविद्यइहोच्यते ॥ ३१ ॥ प्रोत्तुंगसुरशैलाग्रवैदूर्यशिखरप्रभा ॥ अथवार्काशुद्धभेदातिमिरश्रीःस्थितोपरि ॥ ३२ ॥ कल्प्यतेहियथाव्योम्नःकालिमेतिस्वभावतः ॥ पुंसाधरणिसंस्थेनस्वसंकल्पनयेद्धया ॥ ३३ ॥

अर्थ—दुर्बल अतिदुःखी बद्ध और हस्तपाद आदि अवयवसहित मैं हूं इसप्रकार अभिमानके अनुरूप व्यवहारसे प्राणी बन्धनमें आता है ॥ २९ ॥ न मैं दुःखी हूं न मेरे देहहै और बन्ध किस आत्माको स्थित होसकता है ऐसे भावके अनुसार व्यवहारसे प्राणी मुक्त होते हैं ॥ ३० ॥ न मैं मांस हूं न हड्डिया हुं, किन्तु देहसे भिन्न और बुद्धि आदिसे परे चिद्रूप मैं हूं, इस निश्चयवाला प्राणी इस संसारमें क्षीणाविद्य (अविद्यारहित) कहलाता है ॥ ३१ ॥ जैसे पृथिवीपर स्थित मनुष्य आकाशकी नीलताके विषयमें यह कल्पना (योगभाष्यकारके मतसे) क-

रता है कि अतिउच्च मेरुपर्वतपरके नीलमणी शिखरकी प्रभा फैली हुई है. अथवा (ज्योतिषीओंके मतसे) दूर होनेके कारण सूर्यकी किरणोंसे हटनेके अयोग्य पूर्वप्रसंगमें वर्णनकिये ब्रह्माण्डखर्परके अन्धकारकी कान्ति यह आकाशकी नीलता स्वभावसे ऊपर स्थितहै ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

कल्पितैवमविद्येयमनात्मन्यात्मभावना ॥ पुरुषेणाप्रबुद्धेननप्रबुद्धेनराघव ॥ ३४ ॥ श्रीरामउवाच ॥ मेरुनीलमणिच्छायानेयंतापितमःप्रभा ॥ तदेतत्किंकृतंब्रह्मन्नीलत्वंनभसोवद ॥ ३५ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ननामनीलताव्योम्नःशून्यस्यगुणवत्स्थिता ॥ अन्यरत्नप्रभाभावान्नवाप्येषाचमैरवी ॥ ३६ ॥

अर्थ—ऐसेही हेरामजी ! अज्ञानी पुरुषसे अनात्मदेहादिमें आत्मभावनारूप यह अविद्याकल्पित है ॥ ३४ ॥ श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! यह आकाशकी नीलता नतो नीलमणि शिखरकी प्रभाहै और अन्धकारकी कान्तिहै क्योंकि प्रथमपक्षमें शिखर पद्मरागादिकके भीहैं इससे रक्तताकीभी संभवानाहै. और द्वितीयपक्षमें ब्रह्माण्डके दोनों खर्पर सुवर्णमय (तदणुम मवद्धैमम्) वर्णकिये गयेहैं. और ऊपर सत्यलोकादि भास्वरतरहैं, तब कहिये यह आकाशकी नीलता किसकीहै ? ॥ ३५ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले--हेरामजी ! यह नीलता शून्य आकाशके गुणके समान नहीं है और अन्यपद्म रागादीकी प्रभाके अभावसे यह मेरूके शिखरकी प्रभानहीं है ॥ ३६ ॥

तेजोमयत्वादंडस्यस्फारत्वादिवतेजसः॥प्राकाश्यादंडपारस्यतमसोनात्रसंभवः॥३७॥केवलंशून्यतैवैषावव्हीसुभगलक्ष्यते ॥ वयस्येवानुरूपायाअविद्याया असन्मयी ॥ ३८ ॥ स्वदृष्टिक्षयसंपत्तावक्ष्णोरेवोदितंतमः ॥ वस्तुस्वभावात्तद्व्योम्नःकार्ष्ण्यमित्यवलोक्यते ॥ ३९ ॥ एतद्बुध्यायथाव्योम्निदृश्यमानोपिकालिमा ॥ न कालिमेतिबुद्धिःस्यादविद्यातिमिरंतथा ॥ ४० ॥

अर्थ—और ब्रह्माण्डके तेजोमय (तदण्डमभवद्धैमंसहस्रांशुसमप्रभम्) होनेसे तथा सूर्य्यके तेजकी विशालतासे ब्रह्माण्डके अन्तर्वर्ती आकाशके प्रकाशसे व्याप्त होनेके कारण अन्धकारकी प्रभाकाभी इस नीलताको कारणतामें संभव नहीं है. अर्थात् तुमने जो दोनो पक्षका खण्डन किया वह यथार्थ है ॥ ३७ ॥ हे सुभग रामजी ! यह केवल विशाल शून्यताही हे जो अविद्याकेसमान असन्मयी अविद्याकी सखीके समान देख पडती है ॥ ३८ ॥ जहांपर नेत्रोंकी दर्शन शक्तिका कुण्ठीभाव होताहै वहांपर अन्धकाररूप जो अदर्शन उत्पन्न होताहै वही वस्तुके स्वभावसे आकाशकी नीलताकेसमान दृष्टिगत होरही है ॥ ३९ ॥ हे रामजी ! इस दृष्टान्तको जानकर जैसे आकाशकी निलता देखपडतीहुईभी आकाशकी नहीं है ऐसी बुद्धि होतीहै ऐसेही अविद्याअन्धकार कोभी जानों॥४०॥

असंकल्पोह्यविद्यायानिग्रहःकथितोबुधैः ॥ यथागगनपद्मिन्याःसभातिसुकरःस्वयम् ॥ ४१ ॥ भ्रमस्यजागतस्यास्यजातस्याकाशवर्णवत् ॥ अपुनःस्मरणंमन्येसाधोविस्मरणंवरम् ॥ ४२ ॥ नष्टोहमितिसंकल्पाद्यथादुःखेननश्यति ॥ प्रबुद्धोस्मीतिसंकल्पाज्जनोह्योतियथासुखम् ॥ ४३ ॥ तथासंमूढसंकल्पान्मूढतामेतिवैमनः ॥ प्रबोधोदारसंकल्पात्प्रबोधायानुधावति ॥ ४४ ॥

अर्थ—आकाशकी कमलिनीके तुल्य संकल्पका अभावही अविद्याके जीतनेका उपाय प्रण्डितोंने कहाहै. और वह संकल्पका अभाव स्वयं सुखसाध्य है ॥ ४१ ॥ हे साधो रामजी ! आकाशके वर्णके समान इस जगत् सम्बन्धी भ्रमका ऐसा विस्मरण हो कि जिसका पुनः स्मरण न हो याहि श्रेष्ठहै ॥ ४२ ॥ जैसें स्वप्नमें नष्ट हुआ ऐसे संकल्पसे दुःखसे नष्ट होताहै, और मैं जागताहुं ऐसे संकल्पसें स्वप्नसे जनित दुःखका नाशरूप सुख प्राप्त करताहै ॥ ४३ ॥ ऐसेही मूढसंकल्पसे यह मन मूढताको प्राप्त होताहै, और ज्ञानरूप उदारसंकल्पसे ब्रह्मके साथ एकरसतारूपी ज्ञानकीओर दौडताहै ॥ ४४ ॥

क्षणात्संस्मरणादेषाह्यविद्योदेतिशाश्वती ॥ यस्माद्विस्मरणादंतःपरिणश्यतिनश्वरी ॥ ४५ ॥ भावनी सर्वभावानांसर्वभूतविमोहिनी ॥ मारिणीस्वात्मनोनाशेस्वात्मन्यद्वैविनाशिनी ॥ ४६ ॥ मनोयदनुसंधत्तेतत्सर्वेन्द्रियवृत्तयः ॥ क्षणात्संपादयंत्येताराजाज्ञामिवमंत्रिणः ॥ ४७ ॥ तस्मान्मनोनुसंधानंभावेषुनकरोतियः ॥ अंतश्चेतनयत्नेनसशांतिमधिगच्छति ॥ ४८ ॥

अर्थ—मैं अज्ञ हुं. इस क्षणिकसंकल्पसे अनादि अविद्याका उदय होताहै, और संकल्पवासनाके मूलोच्छेदनसे नित्य नष्ट यह शीघ्रही नष्ट होती है ॥ ४५ ॥ हे रामजी ! सब पदार्थोंकी उत्पादिका और सब प्राणियोंकी मोहिनी यह अविद्या आत्माके अदर्शनमें गुरुतर और अपने अपरिच्छिन्नस्वरूपकी प्राप्तिमें नाशशीला है ॥ ४६ ॥ हे रामजी! मन जिस वस्तुका अनुसन्धान करताहै उसको सम्पूर्ण इन्द्रियोंकी वृत्ति ऐसे सिद्ध करती है जैसे राजाकी आ-

ज्ञाको मंत्रीगण ॥ ४७ ॥ इसकारणसे अन्तःकरणमें ब्रह्माहंभावनारूप यत्नसे जो पदार्थोंमें मनको नहीं लगाता वही शान्तिको प्राप्त होता है ॥ ४८ ॥

यदादावेवनास्तीदंतदद्यापिनविद्यते ॥ यदिदंभातितद्ब्रह्मशांतमेकमनिंदितम् ॥ ४९॥ मननीयमतोनान्यत्कदाकस्यकथंकुतः ॥ निर्विकारमनाद्यंतमास्यतामपर्यंतरणम् ॥ ५० ॥ परंपौरुषमाश्रित्ययत्नात्परमयाधिया ॥ भोगाशाभावनांचित्तात्समूलामलमुद्धरेत् ॥५१॥ यद्धदेतिपरोमोहोजरामरणकारणम् ॥ आशापाशशतोल्लासिवासनातद्विजृंभते ॥ ५२ ॥

अर्थ—जो यह जगत् आरम्भमेंही नहीं है तो वह अवभी नहीं है, जो कुछ यह जगतरूपसे भान हो रहा है वह सब शान्त अनिन्दित एक अद्वितीय ब्रह्महीं है ॥ ४९ ॥ इस ब्रह्मसे अन्य मननकरनेयोग्य कभी किसीको कहीं कोई नहीं है, इसलिये पूर्णरूपसे अनादि अनन्त निर्विकारस्थित रहो ॥ ५० ॥ शास्त्रादिसे परिष्कृत उत्तमबुद्धिसे परम पौरुषका आश्रयले के विषयभोगकी आशारूप भावनाको मूलसहित चित्तसे निकालदेना चाहिये ॥ ५१ ॥ सैकड़ों आशाकी फांसीसे शोभित वृद्धावस्था तथा मरणादिविकारोंका कारण आत्माका अज्ञानरूप जो महामोह उदय होता है वह वासनाही अपना स्वरूप देखातीहै ॥ ५२ ॥

ममपुत्राममधनमयंसोहमिदंमम ॥ इतीयमिंद्रजालेनवासनैवविवल्गति ॥ ५३ ॥ शून्यएवशरीरेस्मिन्विलोलोजलवातवत् ॥ अनन्ययावासनयात्वहंभावाहिरर्पितः ॥ ५४ ॥ परमार्थेनतत्त्वज्ञममाहमिदमित्यलम् ॥ आत्मतत्त्वाद्दतेसत्यंनकदाचनकिंचन ॥ ५५ खाद्रिद्यूर्वीनदिश्रेण्योदृष्टिसृष्ट्यापुनःपुनः ॥ सेवान्येवविचित्रेयमविद्यापरिवर्तते ॥ ५६ ॥

अर्थ—मेरे पुत्र, मेरा धन, यह शरीर,वह गृहादि, यह मेरा गृहादिसम्बन्धी क्षेत्रादि, इत्यादि इन्द्रजालसे वासनाही गर्ज रही है ॥ ५३ ॥ जैसे वायुसे जलमें तरंग रूपी सर्प कल्पित होता है ऐसेही शून्य इस शरीरमें केवल वासनासे अहंभावरूप सर्प कल्पित किया गयाहै ॥ ५४ ॥ हे तत्वज्ञ रामजी ! परमार्थमें मम और अहम् यह कुछभी नहीं है क्योंकि आत्मतत्वसे भिन्न कभी कुछभी सत्य नहीं है ॥ ५५ ॥ आकाश, पर्वत, पृथिवी और नदी आदिकी पंक्ति की सत्ता दृष्टिसम कालही है और वही अविद्या अन्यके समान विचित्र २ रूप धारण करके पुनः २ भ्रमण करती है॥५६॥

उदेत्यज्ञानमात्रेणनश्यतिज्ञानमात्रतः ॥ सन्मात्रेपरिविच्छेद्यारज्ज्वामिवभुजंगधीः ॥ ५७ ॥ खाद्रयुर्वीनदीसेयंयाऽविद्याज्ञस्यराघव ॥ नविद्याज्ञस्यतद्ब्रह्मस्वमहिम्नाव्यवस्थितम् ॥ ५८ ॥ रज्जुसर्पविकल्पौद्वावज्ञेनैवोपकल्पितौ ॥ ज्ञेनत्वेकैवनिर्णीताब्रह्मदृष्टिरकृत्रिमा ॥ ५९॥ माभवाज्ञोभवप्राज्ञोजहिसंसारवासनाम् ॥ अनात्मन्यात्मभावेनकिमज्ञइवरोदिषि ॥ ६० ॥

अर्थ—देशकाल और वस्तुसे परिच्छिन्न यह अविद्या अज्ञानमात्रसे उदय होतीहै और ज्ञानमात्रसे ऐसे नष्ट होती है जैसे रज्जुमें सर्पकी बुद्धि ॥ ५७ ॥ हे राघव ! आकाश, पर्वत, पृथीवी, और नदी आदि यह अविद्या अज्ञानीको उदय होती है और ज्ञानीको तो अविद्या है ही नहीहै उसको तो अपनी महिमासे ब्रह्मही स्वरूपसे प्रतिष्ठित है ॥ ५८ ॥ व्यावहारिक और प्रातिभासिक दशारूप रज्जु और सर्प ये दोनों विकल्प अज्ञानीनेही कल्पित किये हैं और ज्ञानीके लिये तो एक परमार्थिक अकृत्रिम दृष्टि सर्वत्र निर्णीतहै ॥५९॥ हे रामजी ! तुम अज्ञानी मतहो किन्तु ज्ञानीवनो, अनात्मा देहादिमें आत्मभावना करके अज्ञानीके समान तुम क्यों रोते हो ॥ ६० ॥

कस्तवायंजडोमूकोदेहोभवतिराघव ॥ यदर्थेसुखदुःखाभ्यामवशःपरिभूयसे ॥ ६१ ॥ यथाहिकाष्ठजतुनोर्यथाबदरकुंडयोः॥श्लिष्टयोरपिनैकत्वंदेहदेहवतोस्तथा॥६२॥भस्त्रादाहेयथादाहोनभस्त्रांतरवर्तिनः॥ पवनस्यतथादेहनाशेनात्माननश्यति ॥ ६३ ॥ दुःखितोहंसुखाढ्योहमितिभ्रांतिरघूद्वह ॥ मृगतृष्णोपमांबुद्ध्वात्यजसत्यंसमाश्रय ॥ ६४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! यह जड मूकशरीर तुमारा क्या है जिसकेलिये तुम अवशहोके सुख और दुःखसे पराजित होते हो ॥६१॥ जैसे काष्ठ और लोहका तथा बदर(बेर)और कुण्ड(कूंड़े)की मिले हुये रहनेंपरभी एकता नहीं होती ऐसेही शरीर और आत्माकीभी एकता नहीं होसकती ॥ ६२ ॥ भाथाके दाह होनेपरभी भाथाके भीतर जो पवन है उसका दाह जैसे नहीं होता ऐसेही शरीरके नष्ट होनेपरभी आत्माका नाश नहीं होता ॥ ६३ ॥ हे रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ रामजी ! मैं दुःखीहुं, अथवा विषयसुखसे पूर्ण हुं इस भ्रान्तिको मृगतृष्णाके समान जानकर त्यागदो और सत्यका आश्रय लो ॥ ६४ ॥

अहोनुचित्रंयत्सत्यंब्रह्मतद्विस्मृतंनृणाम् ॥ यदसत्यमविद्याख्यंतन्नूनंस्मृतिमागतम् ॥ ६५ ॥ प्रसरं त्वमविद्यायामाप्रयच्छरघूद्वह ॥ अनयोपहितेचित्तेदुष्पारेहकदर्थना ॥ ६६ ॥ मिथ्यैवानर्थकारिण्यामनो मननपीनया ॥ अनयादुःखदायिन्यामहामोहफलांतया ॥ ६७ ॥ चंद्रबिंबेसुधार्द्रेपिकृत्वारौरवकल्प नम् ॥ नारकंदाहसंशोषदुःखंसमनुभूयते ॥ ६८ ॥

अर्थ—अहो ? कैसा आश्चर्य्य है ! जो सत्यब्रह्महै वह तो मनुष्योंको भूलगया और जो असत्य अविद्याहै वह निश्चयरूपसे स्मरणमें आगई ॥ ६५ ॥ हेरामजी ! तुम आत्मविस्मरणरूप अविद्याको स्थान मतदो, क्योंकि इससे चित्तके दूषित होनेपर यह क्लेश दुष्पारहै ॥ ६६ ॥ मिथ्यारूप अनेक अनर्थकारिणी, स्फुरणासे स्थूल, दुःखदायिनी, और अन्तमें महा अज्ञानरूप फल देने हारा यह अविद्याही सुधा (अमृत) से आर्द्र (गीले) चन्द्राविम्बमें भी रौरवनरककी कल्पना करके नरकके दाह और संशोष आदि दुःखका अनुभव करातीहै ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

जलकल्लोलकल्हारपुष्पसाकरवीचिषु ॥ सरस्सुमृगतृष्णाढ्यंमरुत्वंपरिदृश्यते ॥ ६९ ॥ नभोनगरनिर्मा णपातोत्पातनसंभ्रमाः ॥ स्वप्नादिष्वनुभूयंतेविचित्राःसुखदुःखदाः ॥ ७० ॥ संसारवासनाश्चेतोय दिनामनपूरयेत् ॥ तज्जाग्रत्स्वप्नसंरंभाःकिंनयेयुरिहापदम् ॥ ७१ ॥ दृश्यतेरौरवावीचिनरकानर्थशा सना ॥ मिथ्याज्ञानेगतेवृद्धिंस्वप्नोपवनभूमिषु ॥ ७२ ॥

अर्थ—और इसीकेही कारण जलके कल्लोल और कमलके पुष्पसंयुक्त कणमय तरंगोंसहित तड़ागोंमें भी मृगतृष्णासे पूर्ण मरुदेश देख पड़ता है ॥ ६९ ॥ इसीसे आकाशमें नगरकी रचना, नरकादिमे पतन, और स्वर्गआदिका चढ़ना इत्यादि चित्रविचित्र सुखदुःखदायी संभ्रम स्वप्नमेंभी अनुभूत होतेहैं ॥ ७० ॥ यदि यह अविद्या संसारकी वासनाओंसे चित्तको न भरदे तोजाग्रत् और स्वप्नके संभ्रम आत्माको क्या आपत्ति देसकतेहैं अर्थात् कुछ नहीं ॥ ७१ ॥ मिथ्या अज्ञानके बढजानेसे स्वप्नादिमें उपवन (वाटिका) की भूमियोंमेंभी रौरव अवीचि आदि अनर्थकी यातना देखपड़तीहैं ॥ ७२ ॥

अनयावेधितंचेतोबिसतंतावपिक्षणात् ॥ पश्यत्यखिलसंसारसागरानर्थविभ्रमम् ॥ ७३ ॥ अनयोपहते चित्तेराज्यएवहिसंस्थिताः ॥ तास्तादृश्योजनायांतियानयोग्याःश्वपाकिनः ॥ ७४ ॥ तस्माद्रामपरित्य ज्यवासनांभवबंधनीम् ॥ सर्वरागमयींतिष्ठनीरागःस्फटिकोयथा ॥ ७५ ॥ तिष्ठतस्तवकार्येषुमास्तुरा गेषुरंजना ॥ स्फटिकस्येवचित्राणिप्रतिबिंबानिगृह्णतः ॥ ७६ ॥

अर्थ—इस अविद्यासे बोधित चित्त कमलके सूतमेंभी क्षणमेंही सम्पूर्ण संसारसागरके अनर्थोंको देखताहै ॥ ७३ ॥ इससे चित्तके दुषित होनेपर राज्यपरही स्थित जन उन २ प्रकारोंकी यातना भोगतेहैं जो चाण्डालोंकेभी योग्य नहीं है ॥ ७४ ॥ इसलिये हेरामजी ! संसारमें बन्धनकारिणी और सर्वरागमयी अविद्यारूप वासनाको छोडके स्फटिकके तुल्य रागरहित होके स्थितहो ॥ ७५ ॥ जैसे चित्रविचित्र प्रतिबिबोंको ग्रहणकरतेहुयेभी स्फटिककी उनमें आसक्ति नहीं होती ऐसेही व्यवहार करतेहुयेभी तुमारी रागादिविषयोंमें आसक्ति नहो ॥ ७६ ॥

विदितकौतुकसंघसमिद्धयायदिकरोषिसदैवसुशीलया ॥ वरधियागतप्राकृतिकक्रियस्तदपिकेनसहा नुपमीयसे ॥ ७७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे व्यथाकथितदोषपरिहारोपदेशोनामचतुर्दशाधिकशततमःसर्गः ॥ ११४ ॥

अर्थ—निरतिशय आनन्दरूप परमकौतुक ब्रह्मको जिन्होंने जानलिया है ऐसे ब्रह्मवेत्ताओंके समाजमे वार २ विचारसे दृढ़तर ब्रह्माहंभावनाके निश्चयसे प्रदीप्त इसीसे सर्वत्र समदर्शन आदिसे सुशील आसक्तिरहित उत्तमबु- द्धिसे यदि सदा व्यवहार करते हो तो अविद्याजनित जन्ममरणादि विकारेशून्य नित्यमुक्तही तुम हो. और इस दशा- में किस हरिहर वा ब्रह्माके साथ तुमारी उपमा नहीं होसकती ॥ ७७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे यथाकथितदोषपरिहारो नाम चतुर्दशाधिक शततमः सर्गः ॥ ११४ ॥

पंचदशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११५ ॥

रामचन्द्रजीको ज्ञान प्राप्त होनेसे आश्चर्य, मायाका स्वरूप और उसके नाशकी स्थिति और रामजीके प्रश्नसे राजा लवणको आपत्तिका कारण इस ११५ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ एवमुक्तोभगवतावसिष्ठेनमहात्मना ॥ रामःकमलपत्राक्षउन्मीलितइवाबभौ ॥ १ ॥ विकासितांतःकरणःशोभामलमुपाययौ ॥ आश्वस्तस्तमसिक्षीणेपद्मोऽर्कालोकनादिव ॥ २ ॥ बोधविस्मयसंजातसौम्यस्मितसिताननः ॥ दंतरश्मिसुधाधौतामिमांवाचमुवाचह ॥ ३ ॥ श्रीरामउवाच ॥ अहोनुचित्रंपद्मोत्थैर्बद्धास्तंतुभिरद्रयः ॥ अविद्यमानायाविद्यातयासर्वेवशीकृताः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवाल्मीकजी बोले–इसप्रकार भगवान् महात्मा वसिष्ठजीसे कहेहुये कमलके दलके सदृश नेत्रवाले श्रीरामचन्द्रजी कमलके सदृश विकसित होके शोभाको प्राप्त हुये ॥१॥ वसिष्ठके समाधानसे सन्तोषित और विकसित अन्तःकरणवाले रामजी ऐसी निर्मल शोभाको प्राप्त हुये जैसे अन्धकारके क्षीण होनेपर सूर्य्यके प्रकाशसे कमल ॥२॥ बोधजनित विस्मयसे सौम्य स्मित (मुसकिरान) उत्पन्न होनेसे गौरवर्ण मुखसे शोभित रामजी दांतोंकी किरणरूपी अमृतसे धौत (धुली हुई) इस वाणीको बोले ॥ ३ ॥ श्रीरामजी बोले--अहो ! आश्चर्य्य है ! कि कमलसे निकले हुये सत्रों (सूतों) से पर्वत बंधेहैं कि, अत्यन्त असती जो अविद्याहै उसने सबको वश करलिया ॥ ४ ॥

इदंतद्वज्रतांयातंतृणमात्रंजगत्त्रये ॥ अविद्ययापियन्नामासदेवसदिवस्थितम् ॥ ५ ॥ अस्याःसंसारमायायानद्यास्त्रिभुवनांगणे ॥ रूपंमदवबोधार्थंकथयानुग्रहात्पुनः ॥ ६ ॥ अन्योयत्संशयोत्रमेमहात्मन्हृदिवर्त्तते ॥ लवणोसौमहाभागःकिंनामापदमाप्तवान् ॥ ७ ॥ संश्लिष्टयोराहतयोर्द्वयोर्वादेहदेहिनोः ॥ ब्रह्मन्कइवसंसारीशुभाशुभफलैकभाक् ॥ ८ ॥

अर्थ—जो तृण मात्र है वह तीनों लोकमें वज्र होगया कि अविद्याहीसे असत् भी सत्के समान आविर्भूत है ॥ ५ ॥ त्रिभुवनरूपी अंगणमें संसारकी माया रूपी नदीका स्वरूप अनुभव करके मेरे ज्ञानकी दृढ़ताके लिये पुनः वर्णन कीजिये ॥ ६ ॥ हे महात्मन् ! एक संशय और मेरे हृदयमें यह है कि महा भाग राजा लवणको किस निमित्तसे आपत्ति हुई ॥ ७ ॥ और लाह तथा काष्ठके तुल्य मिलेहुये तथा मल्ल मेढ़ोंके तुल्य ए दूसरेके धकादेनेवाले शरीर आत्मामेंसे शुभ अशुभ कर्म फलोंका भोक्ता मुख्य करके कौन है ॥ ८ ॥

लवणस्यतथादत्वातामापदमनुत्तमाम् ॥ किंगतश्चंचलारंभःकश्चासावैंद्रजालिकः ॥ ९ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ काष्ठकुड्योपमोदेहोनाकिंचनइहानघ ॥ स्वप्नालोकइवानेनचेतसापरिकल्प्यते ॥ १० ॥ चेतस्तुजीवतांयातंचिच्छक्तिपरिभूषितम् ॥ विद्यात्संसारसंरंभकपिपोतकचंचलम् ॥ ११ ॥ देहीहिकर्मभाग्योहिनानाकारशरीरधृक् ॥ अहंकारमनोजीवनामभिःपरिकल्प्यते ॥ १२ ॥

अर्थ—और राजा लवणको उस महा आपत्तिको देकर वह चंचल कार्योंका आरम्भ करनेवाला ऐन्द्रजालिक कौनथा और कहांगया ॥ ९ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे पाप रहित रामजी ! काष्ठ और कुड्य (भित्ति) आदिके समान यह देह कुछ नहींहै स्वप्नके प्रकाशके तुल्य चित्तने इस कल्पित कियाहै ॥१०॥ और चिच्छक्तिसे परिभूषित अर्थात् चिदाभासके अभिन्नताको प्राप्त, संसारमें भोक्ताका अभिमानी और वानरयुक्त नौकाके सदृश चंचल यह चित्तही जीवताको प्राप्त हुआ ऐसा जानना चाहिये देही कर्म फलोंका भागी अहंकार मन और जीव इत्यादि नामोंसे नाना शरीर धारण करनेसे कल्पित है ॥ ११ ॥ १२ ॥

तस्येमान्यप्रबुद्धस्यनप्रबुद्धस्यराघव ॥ सुखदुःखान्यनंतानिशरीरस्यनकानिचित् ॥ १३ ॥ अप्रबुद्धंमनोनानासंज्ञाकलितकल्पनम् ॥ वृत्तीरनुपतच्चित्राविचित्राकृतितांगतम् ॥१४॥ अप्रबुद्धंमनोयावन्निद्रितंतावदेवहि ॥ संभ्रमंपश्यतिस्वप्नेनप्रबुद्धंकदाचन ॥१५॥ अज्ञाननिद्राक्षुभितोजीवोयावन्नबोधितः ॥ तावत्पश्यतिदुर्भेदंसंसारारंभविभ्रमम् ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! उस अज्ञानी चित्तको न कि ज्ञानीको ये अनन्त सुख दुःख होतेहैं न कि शरीरको ॥ १३ ॥ नानाप्रकारकी संज्ञाओंसे कल्पित कल्पना करनेवाला अज्ञानी मन चित्र विचित्र वृत्तियोंमें गिरता हुआ विचित्र आकारको प्राप्त हुआ है ॥१४॥ जब तक यह मन अप्रबुद्ध (अज्ञानी) है तभीतक निद्रित होके स्वप्नमें अनेक भ्रम देखता है और प्रबुद्ध मन कदापि नहीं ॥ १५ ॥ अज्ञान रूप निद्रासे क्षुभित यह जीव जबतक बोधित नहीं किया जाता तभी तक संसारके आरंभके अनेक भ्रमसे पूर्ण दुष्टभेदको देखता है ॥ १६ ॥

संप्रबुद्धस्यमनसस्तमःसर्वंविलीयते ॥ कमलस्ययथाह्यह्नदिनालोकविकासिनः ॥ १७ ॥ चित्ताविद्यामनोजीववासनेतिकृतात्मभिः ॥ कर्मात्मेतिचयःप्रोक्तःसदेहीदुःखकोविदः ॥ १८ ॥ जडोदेहोनदुःखाहींदुःखीदेहविचारतः ॥ अविचारोघनाज्ञानादज्ञानंदुःखकारणम् ॥ १९ ॥ शुभाशुभानांधर्माणांजीवोविषयतांगतः ॥ अविवेकैकदोषेणकोशेनेवहिकीटकः ॥ २० ॥

अर्थ—सम्प्रबुद्ध मनका हृदयस्थ सम्पूर्ण अन्धकार ऐसे नष्ट होजाताहै जैसे दिनके प्रकाशसे विकसित कमलका ॥ १७ ॥ चित्त, अविद्या मन जीव, वासना, और कर्मात्मा इत्यादि नामोंसे जो तत्त्व वेत्ताओं करके कहा गया है वही जीवात्मा विषय सम्बन्धी सुख दुःखका भोक्ता है ॥ १८ ॥ हे रामजी ! जड़ यह देह दुःखके योग्य नहीं है किन्तु अविचारसे आत्मा दुःखी है घन (अधिक) अज्ञानसे अविचार होता है और अज्ञानही दुःखका कारण है ॥१९॥ केवल अविवेक मात्र दोषसे शुभ और अशुभ धर्मोंका विषय जीव इस प्रकार होगया है जैसे रेशमके कोशके कारण रेशमका कीड़ा ॥ २० ॥

अविवेकामयोन्नद्धंमनोविविधवृत्तिमत् ॥ नानाकारविहारेणपरिभ्रमतिचक्रवत् ॥ २१ ॥ उदेतिशैतिहंत्यत्तियातिवल्गतिनिंदति ॥ मनएवशरीरेस्मिन्नशरीरंकदाचन ॥ २२ ॥ यथागृहपतिर्गेहेविविधंहिविचेष्टते ॥ नगृहंतुजडंरामतथादेहेहिजीवकः ॥ २३ ॥ सर्वेषुसुखदुःखेषुसर्वासुकलनासुच ॥ मनःकर्तृमनोभोक्तृमानसंविद्धिमानवम् ॥ २४ ॥

अर्थ—अविवेक रूपी रोगसे बन्धा हुआ और अनेक वृत्ति सहित यह मन नाना प्रकारके आकारके विहारसे चक्रके तुल्य भ्रमण करताहै ॥ २१ ॥ इस शरीरमें मनही, न कि शरीर उदय होताहै, रोताहै, मारताहै, खाताहै, जाता है, गर्जताहै, और निंदा करताहै ॥ २२ ॥ जैसे गृहमें गृहका स्वामी विविध प्रकारकी चेष्टा करताहै, न कि जड गृह ऐसे ही हे रामजी ! इस शरीरमें जीव ॥ २३ ॥ सम्पूर्ण सुख और दुःखोंमें तथा सम्पूर्ण कल्पनाओंमें मनही कर्ता और मनही भोक्ताहै किंबहुना मनुष्यकोही तुम मानस जानो ॥ २४ ॥

अत्रतेशृणुवक्ष्यामिवृत्तांतमिममुत्तमम् ॥ लवणोसौयथायातश्चंडालत्वंमनोभ्रमात् ॥ २५ ॥ मनःकर्मफलंभुंक्तेशुभंवाशुभमेववा ॥ यथैतद्बुद्ध्यसेनूनंतथाकर्णयराघव ॥२६॥ हरिश्चंद्रकुलोत्थेनलवणेनपुरानघ ॥ एकांतेनोपविष्टेनचिंतितंमनसाचिरम् ॥२७॥ पितामहोमेसुमहान्राजसूयस्ययाजकः ॥ अहंतस्यकुलेजातस्तंयजेमनसामखम् ॥ २८ ॥

अर्थ—जैसे राजा लवण मनके भ्रमसे चाण्डालताको प्राप्त हुआ इस विषयके उत्तम वृत्तान्त तुमसे कहूंगा तुम सुनो ॥ २५ ॥ शुभ हो वा अशुभ हो कर्मके फलका मनही भोक्ताहै जिस रीतिसे यह जानोगे उस दृष्टान्तको हे रामजी ! सुनो ॥२६॥ हे पापरहित रामजी ! पूर्वकालमें राजा हरिश्चन्द्रके कुलमें उत्पन्न राजा लवणने बैठेहुये एक बात को मनसे चिरकालतक चिन्तन किया ॥ २७ ॥ कि अति महान मेरा पितामहाराजसूययज्ञका याजक था मैं उसके कुलमें उत्पन्न उस यज्ञको मन (बाह्य सामग्रीके अभावसे वा राजादिककी पीडाका निमित्त होनेसे मंत्री आदिका असम्मतिसे) सेही करूं ॥ २८ ॥

इतिसंचिंत्यमनसाकृत्वासंभारमादृतः ॥ राजसूयस्यदीक्षायांप्रविवेशमहीपतिः ॥ २९ ॥ ऋत्विजश्चाह्वयामासपूजयामाससन्मुनीन् ॥ देवानामंत्रयामासज्वालयामासपावकम् ॥ ३० ॥ यथेच्छंयजमानस्यमनसोपवनांतरे ॥ ययौसंवत्सरःसाग्रोदेवर्षिद्विजपूजया ॥ ३१ ॥ भूतेभ्योद्विजपूर्वेभ्योदत्वासर्वस्वदक्षिणाम् ॥ विबुद्धयतदिनस्यांतेस्वएवोपवनेनृपः ॥ ३२ ॥

अर्थ—ऐसा चिन्तन करके आदर संयुक्त मनसे सब सामग्रीको एकत्र करके वह राजा राजसूय यज्ञकी दीक्षा में प्रविष्ट हुआ ॥ २९ ॥ ऋत्विजोंको बुलाया उत्तम मुनियोंकी पूजाकी देवताओंका आमन्त्रण किया और हविष द्वारा अग्निको प्रज्वलित किया ॥ ३० ॥ वाटिका के मध्यमें मनसे अपनी इच्छा पूर्वक यज्ञ करते हुये देवर्षि तथा द्विजोंकी पूजासे समग्र वर्ष बीत गया ॥ ३१ ॥ ब्राह्मण आदि प्राणियोंको सर्वस्व दक्षिणा देके अपने वाटिकामें उस राजाने बाह्य दृष्टि प्राप्त किया अर्थात् मानसी यज्ञसे जाग्रत हुआ ॥ ३२ ॥

एवंसलवणोराजाराजसूयमवाप्तवान् ॥ मनसैवहितुष्टेनभुक्तंतस्यफलेनच ॥ ३३ ॥ अतश्चित्तंनरंविद्धिभोक्तारंसुखदुःखयोः ॥ तन्मनःपावनोपायेसत्येयोजयराघव ॥ ३४ ॥ पूर्णेदेशेसुसंपूर्णःपुमान्नष्टेविनश्यति ॥ देहोहमितियेषांतुनिश्चयस्तैरलंबुधाः ॥ ३५ ॥ उच्चैर्विवेकवतिचेतसिसंप्रबुद्धेदुःखान्यलंविगलितानिविविक्तबुद्धेः भास्वत्करप्रकटितेननुपद्मखंडेसंकोचजाड्यतिमिराणिचिरंक्षतानि ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे [illegible] सिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे सुखदुःखभोक्तृत्वोपदेशोनामपंचदशोत्तरशततमःसर्गः ॥ ११५ ॥

अर्थ—इस प्रकार उस राजाने राजसूय यज्ञको सन्तुष्ट मनसेही प्राप्त किया तो उस यज्ञका फल भी उसी

को प्राप्त होना चाहिये ॥ ३३ ॥ इस लिये सुख और दुःख का भोक्ता चित्तकोही तुम नर जानो और उस मनको विचारसे निरोधादिसे शोधन करके सत्य उपायमें हे रामजी! युक्त करो मनही क्रिया शक्तिकी प्रधानतासे कर्ता करण और क्रिया है और वही क्रिया सुख दुःखादि रूपसे परिणत उसका फल है और मनही चिदाभासकी व्याप्तिसे चित्तशक्ति की प्रधानतासे भोक्ता और भोगभी है इस से कर्ता भोक्ता का प्रवाह ही माया रूप नदीका स्वरूप है यह प्रथम प्रश्नका उत्तर भी होगया ॥ ३४ ॥ हे बुधसम्यगण ! यह मनरूप पुरुष देशकाल और वस्तुके परिच्छेदसे शून्य स्वात्माकार को देनेवाले आलम्बनमें प्रतिष्ठित होनेसे परिपूर्ण होजाताहै और नित्य नश्वर परिक्षित्र देहादि देशका आलम्बन करनेसे नष्ट होजाताहै इस लिये हम देह हैं यह नश्वर अहंभावका जिनको निश्चयहै उनसे इस संसार से कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ ३५ ॥ शास्त्र तथा आचार्य द्वारा सम्यग विचार से सार असारका (दृढ) विवेकवान् मैं नश्वर देहादि नहीं किन्तु पूर्णानंद स्वप्रकाशैक रूप ब्रह्म हूं इस प्रकार सम्यक् प्रबुद्ध चित्तमें होनेपर ब्रह्मीभूत बाधित बुद्धि बृत्ति अधिकारीके सम्पूर्ण दुःख स्वयं नष्ट होजाताहै अथार्त् पुनः कदापि नहीं होते क्योंकि कमलोंके खण्डमे सूर्य्यके किरणोंके प्रकाशित होनेपर कोश दलका संकोच तुषारकी म्लानता और कोशके अन्तर तथा बाह्य देशका अन्धकार सब चिरकालके लिये नष्ट होजाते हैं ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे सुखदुःख भोक्तृत्व कथनंनाम पञ्चदशोत्तर शततमः सर्गः ॥ ११५ ॥

षोडशाधिक शततमः सर्गः ॥ ११६ ॥

चतुर्थ प्रश्नके समाधानमें पूर्व वर्णित अर्थके दृष्टान्तसे योगकी भूमिकाओंका अवतरण इस ११६ के सर्गमें वर्णन किया गया है ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ राजसूयफलंप्राप्तंलवणेनकिलप्रभो ॥ प्रमाणंकिमिवात्रस्यात्कल्पनाजालशम्बरे ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यदाशांबरिकःकालेसंप्राप्तोलावणींसभाम् ॥ तदाहमवसंतत्रतत्प्रत्यक्षेण दृष्टवान् ॥ २ ॥ अहंसभ्यैस्ततस्तत्रगतेशांबरिकर्मणि ॥ किमेतदितियत्नेनपृष्टश्चलवणेनच ॥ ३ ॥ चिंतयित्वामयादृष्टातत्रतत्कथितंततः ॥ शृणुतत्तेप्रवक्ष्यामिरामशांबरिकेहितम् ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-हेप्रभो ! राजा लवणने चाण्डाल भाव आदि कल्पना रूप ऐंद्रजालिकसे देखाहुये जालमें राजसूय यज्ञका फल पाया इसमें क्या प्रमाण है ? ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! जिसकालमें शाम्बरिक वा ऐन्द्रजालिक (बाजीगढ़) राजा लवणकी सभामें प्रविष्ट हुआ उस समय मैं वहांथा और प्रत्यक्ष रीतिसे मैंने सब देखा ॥ २ ॥ जब ऐन्द्रजालिक कर्म समाप्त हुआ और वह इन्द्रजालका कर्ताभी चलागया तब सब समासदोंने तथा राजा लवणने भी बड़े यत्नके साथ मुझसे पूंछा कि यह क्या है ॥ ३ ॥ तबमैं चिन्तन करके योग बलसे देखा उसके पश्चात् उनसे सब कहाभी सो हे रामजी ! उस शाम्बरिकका अभिप्राय तुमसे कहताहूं तुम सुनो ॥ ४ ॥

राजसूयस्यकर्तारोयेहितेद्वादशाब्दिकम् ॥ आपद्दुःखंप्राप्नुवंतिनानाकारव्यथामयम् ॥ ५ ॥ अतःशक्रेणगगनाद्दुःखायलवणस्यसः ॥ प्रहितोदेवदूतोहिरामशांबरिकाकृतिः ॥ ६ ॥ राजसूयक्रियाकर्तुस्तस्य दत्वामहापदम् ॥ अगच्छत्सनभोमार्गंसुरसिद्धानिषेवितम् ॥ ७ ॥ तस्मात्प्रत्यक्षमेवैतद्रामनात्रसंदेहोस्तिमनोहिविलक्षणानांक्रियायांकर्तृभोक्तृचतदेवनिघृष्यसंशोध्यचित्तरत्नमिहहिमकणमिवातपेन विलीनतांविवेकेननीत्वापरंश्रेयःप्राप्स्यसि चित्तमेवसकलभूताडंबरकारिणीमविद्यांविद्धिसा विचित्रकेंद्रजालवशादिदमुत्पादयति अविद्याचित्तजीवबुद्धिशब्दानांभेदोनास्तिवृक्षतरुशब्दयोरिव ॥ इतिज्ञात्वाचित्तमेवाविकल्पनंकुरु अभ्युदितेचित्तवैमल्यार्कबिंबेसकलंकविकल्पोत्थदोषतिमिरापहरणं ननदस्तिराघवयन्नदृश्यतेयन्नात्मीक्रियतेयन्नपरित्यज्यतेयन्नम्रियतेयन्नात्मीयंयन्नपरकीयंसर्वंसर्वदासर्वो भवतीतिपरमार्थः ॥ ८ ॥

अर्थ—राजसूय यज्ञके कर्ता नानाप्रकारकी व्यथा मय आपत्तिका दुःख १२ वर्ष पर्य्यन्त पातेहैं ॥ ५ ॥ इस लिये हे रामजी! इन्द्रने राजा लवणको दुःखदेनेके अर्थ आकाशसे ऐन्द्रजालिक रूपमें दूत भेजा था ॥ ६ ॥ वह दूत राज सूययज्ञके कर्ता, राजा लवणको महा आपत्ति अर्थात् ६० वर्षकी (शारीरिक यज्ञकी अपेक्षा मानसिकका पंच गुण अधिक सुखदुःख होताहै इससे १२ का पांच गुण ६० वर्ष) की देके देवता तथा सिद्धोंसे सेवित आकाश मार्गसे

चला गया ॥ ७ ॥ इसलिये हे रामजी! यह प्रत्यक्षही है इसमें कुछ सन्देह नहीं है, मनही विलक्षण क्रियाओंका कर्ता और भोक्ता है उसी चित्त रूपी रत्नको हठयोगसे घर्षण करके ओर राजयोगसे शोधन करके तथा निर्विकल्प समाधि से ऐसे विलीनताको प्राप्त करके जैसे आतपसे हिमकणिका, तब तत्व साक्षात्कार रूप विवेकसे मोक्ष रूप कल्याणको प्राप्त होओगे इस चित्तकोही तुम सम्पूर्ण प्राणियोंकी आडम्बर कारिणी अविद्या जानो, वही अविद्या विचित्र इन्द्रजाल केवश इस सम्पूर्ण जगत्को उत्पन्न करती है, और वृक्ष और तरु शब्दोंके समान अविद्या, चित्त जीव और बुद्धि आदि शब्दोंका भेद नहीं है, ऐसा जानकर चित्तकोही कल्पना रहित करो ? क्योंकि जब चित्तकी विमलता रूप सूर्य्यका प्रतिबिम्ब उदय होगा तब सम्पूर्ण अन्धकारका नाश होजायगा कदाचित् यह कहोकि अपने चित्तके लयसे वा अपनी अविद्याके नाशसे अपनी अविद्याके कार्य्यकीही निवृत्ति होगी न कि सबके अदृष्टसे उत्पन्न अविद्याके कार्य्यकी क्योंकि उनका कारण अपना चित्त आदि नहीं हैं क्योंकि सभी सबके अदृष्टका कार्य्य और सबका सब पदार्थ उपभोग्यभीहै इसलिये हे रामजी ! ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो सर्वात्मको स्वात्म दर्शनसे न देखपड़े जो सब आत्मीय न होजाय, जो परित्यक्त नहो, और जो मारित न हो और ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो आत्मीय और परकीय न हो, सब सर्वदा सर्व रूपहीताहै यह परमार्थ है ॥ ८ ॥

भावराशिस्तथाबोधःसर्वयात्येकपिंडताम् ॥ विचित्रमृद्भांडगणोयथाऽपकोजलेस्थितः ॥ ९ ॥ श्रीरामउवाच ॥ एवंमनःपरिक्षयेसकलसुखदुःखानामंतःप्राप्यतइतिभवताप्रोक्तंतत्कथंमहात्मंश्चपलवृत्तिरूपस्यास्यमनसोसत्ताभवति ॥ १० ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ रघुकुलेंदोशृणुमनःप्रशमनेयुक्तियां ज्ञात्वास्वस्वाचारदूरेमनःसंधिरयमेष्यसि ॥ ११ ॥ इहहितावद्ब्रह्मणःसर्वभूतानांत्रिविधोत्पत्तिरितितत्पूर्वोक्तम् ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! सब यह दृश्य प्रपंच, और उस सम्पूर्ण दृश्यका विचित्र ज्ञान तथा उन उपहित जो सब जीव ये सब एक पिण्डता अर्थात् ब्रह्मैकरूपता ऐसे प्राप्त होते हैं जैसे जलमें चित्रविचित्र मृत्तिकाके वर्तनोंका समूह ॥ ९ ॥ श्रीरामजी बोले—पूर्वोक्त रीतिसे मनका नाश होनेसे सम्पूर्ण सुख और दुःखोंका अन्त प्राप्त होता है यह आपने कहा तो चंचल वृत्ति इस मनकी ब्रह्म सत्ता कैसे होती है ॥ १० ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रघुकुल चन्द्र-रामजी ! मनके प्रशमनमें युक्ति सुनो जिसको जानके बाह्यदेशमें प्रचारवाली इन्द्रियोंकी वृत्तिके संचारसे दूरवर्ती ब्रह्ममें मनके सन्धानसे लय (मनका) प्राप्त करोगे ॥ ११ ॥ इस ब्रह्माण्डमें सात्विक राजस और तामस भेदसे तीन प्रकारकी सृष्टि सब भूतोंकी ब्रह्मसे होती है यह पूर्व प्रसंगमें कहा है सो स्मरण करो ॥ १२ ॥

तत्रेदंप्रथमयामनःकल्पनयादेहीतिसाब्रह्मरूपिणीसंकल्पमयीभूत्वायदेवसंकल्पयतितदेवपश्यतितेनेदंभुवनाडंबरंकल्प्यते ॥ १३ ॥ तत्रजननमरणसुखदुःखमोहादिकंसंसरणंकल्पयंतीकल्पानुरचनाबहुनाममंथरंस्थित्वास्वयंविलीयते हिमकणिकेवातपगता ॥ १४ ॥ कालोदितःसंकल्पवशात्पुनरन्यतयाजायतेसापुनर्विलीयतेपुनरप्युदेतिसैवेतिभूयोभूयोनुसंसरंतीस्वयमुपशाम्यति ॥ १५ ॥ इत्थमनंताब्रह्मकोटयोऽस्मिन्ब्रह्मांडेऽन्येषुचसमतीताभविष्यंतीतिसंतिचेतराअनंतायासांसंख्यापिनविद्यते १६

अर्थ—उसमें आदि हिरण्यगर्भरूप मनः कल्पनासे मैं चतुर्मुखाकार देहवान् हूं यह ब्रह्मा रूप धारिणी संकल्पमयी होके सत्यसंकल्पसे जो कुछ संकल्प करता है अर्थात् अपनेको चतुर्मुख देखता है, और वही चतुर्मुख ब्रह्मा इस भुवनोंके आडम्बरकी कल्पना करता है ॥ १३ ॥ उसी अपने समष्टि मनमें अस्मदादिके जन्ममरण सुख दुःख रूप संसरणशील संसारको कल्पती हुई और चतुर्भुज सहस्रप्रमाण कल्परूप अपने दिनोंमें, उन २ दिनों और ब्रह्माण्डोंके अनुकूल रचित देवता असुर और मनुष्यादिके बहुत नामोंसे गुरुतर (अधिकता) कालपूर्वक स्थित होके शेषशायी विष्णुभगवान्में स्वयं ऐसे लीन होजातीहै जैसे आतप (घाम) प्राप्त हिमकणिका अपने कारणीभूत तेजमें लीन होती है, इसी समष्टिरूप मनकी लीनतासे अस्मदादिके मनकी लीनताभी गतार्थ है ॥ १४ ॥ और पुनः सृष्टिकालमें भगवान्के नाभीकमलसे प्रगट होके पुनः कल्पान्तर वा सर्गान्तरकी कल्पनाकी इच्छासे वही पूर्वकालकी कल्पना उत्पन्न होती है अर्थात् चतुर्मुखरूप धारण करके सब संसारकी रचना करतीहै और पुनः लय होतीहै इसी प्रकार वार२ संसारकी कल्पना करती द्विपरार्द्धके अन्तमें अधिकार समाप्त होनेपर समूल आपही शान्त होजाती है ॥ १५ ॥ इस इस ब्रह्माण्डमें तथा अन्य ब्रह्माण्डोंमें अनन्त ब्रह्माण्ड कोटि होगई होंगी, और हैं; और ब्रह्माण्डके अन्तःपरमाणुमेंभी अनन्त ब्रह्माण्ड कोटिहैं जिनकी संख्याभी नहीं ॥ १६ ॥

अर्थ-

एवमस्यांतादृशिवर्त्तमानायामीश्वरादागत्यजीवोयथाजीव्यतेविमुच्यतेतच्छृणु ॥ १७ ॥ ब्रह्मणोमनः शक्तिरभ्युदितापुरःस्थिताकाशशक्तिमवलंब्यतत्रस्थपवनतानुपातिनीघनसंकल्पत्वंगच्छति ॥ १८ ॥ ततःपुरःप्राप्तभूततन्मात्रपंचकतामेत्यांतःकरणतांनीत्वासात्वसूक्ष्माप्रकृतिर्भूत्वागगनपवनतेजोरूपतासंकल्पात्प्रलेयरूपतामुपेत्यशाल्योषधिविशंतीप्राणिनांगर्भतांचगच्छति ॥ १९ ॥ जायतेतस्मात्ततःपुरुषःसंपद्यते ॥ २० ॥

अर्थ—इस रीतिसे पूर्वोक्त विशेषण विशिष्ट परमात्मामें वर्तमान इस समष्टि मनकी कल्पनामें व्यष्टि जीव जैसे जीता है और मुक्त होता है वह सुनो ॥ १७ ॥ प्रलयकालमें उपाधियोंके विलय होनेसे अव्याकृतमें लीन जीवोंके संस्कार मात्रसे शेष मनकी शक्ति, प्रथम अव्याकृतसे शब्द तन्मात्रा रूप आकाश शक्तिके आविर्भाव होनेपर, सम्मुख स्थित प्रथम उत्पन्न उसी आकाश शक्ति स्पर्श तन्मात्राके उत्पन्न होनेपर उसमें स्थित जो पवनता उसका अनुसरण करती हुई किंचित् चलन योग्यता रूपहोके घन संकल्पको प्राप्त होती है ॥ १८ ॥ उसके पश्चात् सम्मुख स्थित रूप रस और गन्ध तन्मात्राकी उत्पत्तिके क्रमसे अपञ्चीकृत पंचभूत रूपहोके पश्चात् मन, बुद्धि, चित्त, और अहंकार स्वरूप अन्तःकरण दशाको प्राप्त होके वही पूर्वोक्त मनकी शक्ति वृद्धिको प्राप्त होके पंचीकृत स्थूल पंचभूतकी प्रकृति होतीहुई, पंचीकृत आकाश वायु, तेज, जल, पृथिवी; रूपताके संकल्पसे क्रमसे हिम कुहिरा और वृष्टि आदि जल रूपताको प्राप्त होके, धान; गोधूम आदि औषधि (सस्य) में प्रवेश करती हुई अन्न रूपताको पहुंचतीहै; और पुरुषोंसे भुक्तहोके वीर्य्य होके स्त्रीकी योनिमें स्थित होके कलल बुद्बुद आदि क्रमसे प्राणियोंकी गर्भ दशाको प्राप्त होती है ॥ १९ ॥ और उस गर्भसे उत्पत्ति होती है; और उसी जन्मके कदाचित् अधिक सुकृत होनेसे कर्म तथा ज्ञानका अधिकारी पुरुष उत्पन्न होताहै ॥ २० ॥

तेनपुरुषेणजातमात्रेणैवबाल्यात्प्रभृतिविद्याग्रहणंकर्त्तव्यंगुरवोनुगंतव्याः ॥ २१ ॥ ततःक्रमात्पुंसस्तवेवचमत्कृतिर्जायते ॥ २२ ॥ स्वच्छदृशांचित्तवृत्तेःपुरुषस्यहेयोपादेयविचारउत्पद्यते ॥ २३ ॥ तादृग्विवेकवतिसंकलिताभिमानेपुंसिस्थितेविमलसत्वमयाद्यजातौ॥ सप्तात्मिकावतरतिक्रमशःशिवाय चेतःप्रकाशनकरीननुयोगभूमिः ॥ २४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूत्पत्तिप्रकरणे साधकजन्मावतारोनामषोडशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११६ ॥

अर्थ—उस पुरुषको उचितहै कि उत्पन्न होनेके पश्चात् बाल्याऽवस्थासे लेके विद्या ग्रहण करे; और तत्व वेत्ता गुरुओंके शरणमें जाय ॥ २१ ॥ उससे क्रमसे विवेक वैराग्य आदि साधन सम्पत्ति रूप चमत्कृति तुमारे सदृश होती है ॥ २२ ॥ इसके पश्चात् चित्तकी वृत्तिकी शुद्ध दृष्टिसे पुरुषको अनर्थ भूत संसार त्याज्य है और मोक्ष ग्राह्य है ऐसा विचार उत्पन्न होता है ॥ २३ ॥ अनन्तर इस प्रकार विवेक संयुक्त, तथा विमल सत्व मय ब्राह्मण आदि जातिके अभिमानको स्वीकार करनेवाले अधिकारी पुरुषके स्थित होनेपर मोक्ष रूप कल्याणके अर्थ, ज्ञान द्वारा चित्तको प्रकाशित करनेवाली वक्ष्यमाण सप्त प्रकारकी योग भूमि क्रमसे उतरती है ॥ २४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे साधक जन्माऽवतारोनाम षोड़शाधिक शततमः सर्गः ॥ ११६ ॥

सप्ताधिकशततमः सर्गः ॥ ११७ ॥

ज्ञानकी भूमिकाओंके उपोद्घातसे अथवा प्रसंगसे अज्ञानकी भी सप्त (सात) भूमिकाओंका वर्णन इस ११७ के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ कीदृश्योभगवन्योगभूमिकाःसप्तसिद्धिदाः ॥ समासेनेतिमेब्रूहिसर्वतत्त्वविदांवर ॥ १ ॥ श्रीवासिष्ठउवाच ॥ अज्ञानभूःसप्तपदाज्ञभूःसप्तपदैवहि ॥ पदांतराण्यसंख्यानिभवंत्यन्यान्यथैतयोः ॥ २ ॥ स्वरूपावस्थितिर्मुक्तिस्तद्भ्रंशोहंत्ववेदनम् ॥ एतत्संक्षेपतःप्रोक्तं… स्वयत्नसाधकरसान्महासत्ताभरान्नतेः ॥ एतेप्रतिपदंबद्धमूलेसंफलतःफलम् ॥ ३ ॥ तत्रसप्तप्रकारांत्वमज्ञानस्यभुवंशृणु ॥ ततःसप्तप्रकारांत्वंश्रोष्यसिज्ञानभूमिकाम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्री रामजी बोले—हे भगवन् हे सर्व तत्व ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ प्रभो ! सिद्धि को देनेहारी ज्ञानकी सप्त भूमिका कौन है यह मुझे संग्रह करके कहिये ॥ १ ॥ श्री वसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! अज्ञान की भूमिका के सप्त

पदहैं और ज्ञानकी भूमिका के भी सप्त (सात) ही पदहैं, और अन्य अवान्तर पद (भेद) इन दोनो भूमिकाओंके असंख्यातहैं ॥ २ ॥ स्वाभाविक प्रवृत्ति रूप पुरुषका प्रयत्न और विषय भोगमें रागकी दृढता रूप रसका अतिशय दोनों आज्ञानकी भूमिका की स्थितिमें असाधारण हेतुहैं, और शास्त्रीय साधन चतुष्टय सहित श्रवण मननादि प्रयत्न तथा मोक्षेच्छा रूप रसका आवेश ज्ञानकी भूमिका की प्रतिष्ठा (स्थिति) में असाधारण हेतुहै, और अधिष्ठान ब्रह्म-सत्ताके उत्कर्षके आधीन जो आत्म सत्ताका लाभ है वह दोनोंमें साधारण हेतुहै, इन हेतुओंसे ये दोनो भूमिका पद२ में बद्ध मूल होके अपने २ योग्य संसार की स्थिति दुःख तथा उससे मुक्ति रूप निरतिशय आनन्दकी प्राप्ति रूप फल देती है, और जैसे नीचेके भुवनोंकी सप्त भूमि उत्तर २ अधिक दुःखमयहैं, और ऊपरके भुवनो की सप्त भूमि उत्तर आधिक सत्व ज्ञानमयहैं ऐसेही इनको भी जानो ॥ ३ ॥ हे रामजी ! इन दोनों भूमिकाओंमें प्रथम तुम अज्ञान की सात प्रकार की भूमिका सुनो अनन्तर ज्ञानकी सात भूमिका सुनोगे ॥ ४ ॥

स्वरूपावस्थितिर्मुक्तिस्तद्भ्रंशोहंत्ववेदनम् ॥ एतत्संक्षेपतःप्रोक्तंतज्ज्ञत्वाज्ञत्वलक्षणम् ॥ ५ ॥ शुद्धसन्मात्रसंवित्तेःस्वरूपान्नचलंतिये ॥ रागद्वेषोदयाभावात्तेषांनाज्ञत्वसंभवः ॥ ६ ॥ यत्स्वरूपपरिभ्रंशाच्चेत्यार्थेचितिमज्जनम् ॥ एतस्मादपरोमोहोनभूतोनभविष्यति ॥ ७ ॥ अर्थादर्थांतरंचित्तेयातिमध्येहियास्थितिः ॥ निरस्तमननायासौस्वरूपस्थितिरुच्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—अपने शुद्ध स्वरूपमें स्थिति रूप मुक्ति है और उस स्वरूपसे च्युत होके बाह्य विषय शरीर आदिमें अहंकार के अनुभवसे दुःख यही संक्षेपसे ज्ञान और अज्ञान भूमिकाओंके लक्षण है ॥ ५ ॥ हे रामजी ! शुद्ध सन्मात्र ज्ञान स्वरूपसे जो चलायमान नहीं होते उनके राग द्वेषके उदय के अभावसे अज्ञानी होनेका सम्भव नहीं है ॥६॥ और जो स्वरूपसे च्युत होके विषय मात्र पदार्थमें चेतनका मग्न होनाहै इससे बढके महा अज्ञान न हुआ और न होगा ॥ ७ ॥ एक पदार्थसे दूसरे पदार्थमें चित्तके जानेपर मध्यम जो मननसे रहित अर्थात् पूर्व विषयसे प्रच्युत होके विषयान्तरके अनुभवसे पूर्व शुद्ध चेतनकी जो स्थिति है इसको स्वरूपावस्थिति कहतेहैं ॥ ८ ॥

संशांतसर्वसंकल्पायाशिलांतरिवस्थितिः ॥ जाड्यनिद्राविनिर्मुक्तासास्वरूपस्थितिःस्मृता ॥ ९ ॥ अहंतांशेक्षतेशांतेभेदेनिःस्पंदतांगते ॥ अजडायाप्रकचतितत्स्वरूपमितिस्थितम् ॥ १० ॥ तत्रारोपितमज्ञानंतस्यभूमीरिमाःशृणु ॥ बीजजाग्रत्तथाजाग्रन्महाजाग्रत्तथैवच ॥ ११ ॥ जाग्रत्स्वप्नस्तथास्वप्नःस्वप्नजाग्रत्सुषुप्तकम् ॥ इतिसप्तविधोमोहःपुनरेवपरस्परम् ॥ १२ ॥

अर्थ—सम्पूर्ण संकल्पोंसे वर्जित जडता (मूर्छा आदिकी जडता) तथा निद्रासे शून्य पाषाणके अन्तके सदृश जो चेतनकी स्थिति है उसको स्वरूपावस्थिति कहते हैं ॥ ९ ॥ तथा देहादिमें अहन्ता अंशके नष्ट होनेपर और चेष्टारहित भेदके शान्त होजानेपर जो चेतन रूपसे विकसित होता है उसीको स्वरूप कहते हैं ॥ १० ॥ उसी साक्षी चेतनमें अनादि कालसे अध्यस्त जो अज्ञान है उसकी इन भूमिकाओंको तुम सुनो, बीज जाग्रत् १ जाग्रत् २ महाजाग्रत् ३ ॥ ११ ॥ जाग्रत्स्वप्न ४ स्वप्न ५ स्वप्नजाग्रत् ६ और सुषुप्ति ७ यह सात प्रकारका अज्ञान है पुनः यह परस्पर ॥ १२ ॥

श्लिष्टोभवत्यनेकाख्यःशृणुलक्षणमस्यच ॥ प्रथमेचेतनंयत्स्यादनाख्यंनिर्मलंचितः ॥ १३ ॥ भविष्यच्चित्तजीवादिनामशब्दार्थभाजनम् ॥ बीजरूपंस्थितंजाग्रद्बीजजाग्रत्तदुच्यते ॥ १४ ॥ एषाज्ञप्तेर्नवावस्थात्वंजाग्रत्संसृतिंशृणु ॥ नवप्रसूतस्यपरादयंचाहमिदंमम ॥ १५ ॥ इतियःप्रत्ययःस्वस्थस्तज्जाग्रत्प्रागभावनात् ॥ अयंसोहमिदंतन्मइतिजन्मांतरोदितः ॥ १६ ॥

मिलकर अनेक प्रकारकी होजाती है, अब तुम इसका लक्षण सुनो, सृष्टिके वा जाग्रत् अवस्थाके आदिमें माया शबलित चेतनसे, प्राणधारण आदि क्रियाओंसे भविष्य चित्त जीवादि शब्द अर्थोंका भागी और वक्ष्यमाण जाग्रत्का वीज जो प्रथम चेतन अर्थात् चिदाभास संवलितरूपहै उसीको वीज जाग्रत् कहतेहैं अर्थात् जाग्रत् अवस्थाके और सुषुप्तिके अन्तमें जो अज्ञानोपहित चेतनकी अवस्थाहै वही वीज जाग्रत है ॥ १३ ॥ १४ ॥ यह ज्ञप्तिकी नूतन अवस्थाहै अब तुम जाग्रत् संसारको सुनो, नूतन प्रसूत वीज जाग्रतके आगे यह स्थूल देह मैं हूं और यह भोग्य समूह मेरा ॥ १५ ॥ इत्यादि जो प्रतीतिहै उसको जाग्रत् कहतेहैं क्योंकि उसमें पूर्वकालकी भावना नहींहै और यह शरीर वह शरीर सम्बन्धी गृहादि मैं यह वह धनादि मेरा, इत्यादि जाग्रत् प्रत्ययके जन्मके अनन्तर उदयको प्राप्त अथवा पूर्व जन्मके सजातीय संस्कारसे दृढ़रूपसे उदित ॥ १६ ॥

पविरःप्रत्यर्थःप्रोक्तोमहाजाग्रदितिस्फुरन् ॥ अरूढमथवारूढंसर्वथातन्मयात्मकम् ॥ १७ ॥ यज्जाग्रतोमनोराज्यंजाग्रत्स्वप्नःसउच्यते ॥ द्विचंद्रशुक्तिकारूप्यमृगतृष्णादिभेदतः ॥१८॥ अभ्यासात्प्राप्यजाग्रत्त्वंस्वप्नोनेकविधोभवेत् ॥ अल्पकालंमयादृष्टमेवंनोसत्यमित्यपि ॥ १९ ॥ निद्राकालानुभूतेर्थेनिद्रांतेप्रत्ययोहियः ॥ सस्वप्नःकथितस्तस्यमहाजाग्रत्स्थितेर्हृदि ॥ २० ॥

अर्थ—इसीसे अभ्यासके कारण स्थूल जैसे ब्राह्मणादि जन्मकी तुल्यतामें भी किसीको ब्राह्मणके योग्य कार्योंमें अधिक आग्रह और निपुणताकी अधिकता देख पडती हैं अर्थात् ऐहिक वा पूर्व जन्मके दृढ अभ्याससे स्थूल जो जाग्रत् प्रत्यय स्फुरित हो रहाहै उसीको महाजाग्रत् कहते हैं ॥ और अनभ्याससे अथवा अदृढ अभ्याससे जैसे राजा लवणका सर्वथा तन्मय होजाना ॥ १७ ॥ ऐसा जो जाग्रत्का मनो राज्यहै उसको जाग्रत् स्वप्न कहते हैं, दो चन्द्रका दर्शन, शुक्तिकारूप्य और मृगतृष्णा आदि सब इसी जाग्रत् स्वप्न अवस्था (भूमिका)के भेदहैं ॥१८॥ अभ्याससे जाग्रत् दशाको प्राप्त होजाताहै स्वप्न अनेक प्रकारका होताहै इसलिये यह जाग्रत् स्वप्न कहा गयाहै,अल्पकाल पर्य्यन्त मैने देखा जो सत्य भी नहीं है ॥ १९ ॥ ऐसा जो निद्राके मध्यमें वा निद्राके अन्तमें निद्राकालमें अनुभूत अर्थमें प्रत्यय होताहै उसको स्वप्न कहते हैं,वह अज्ञ पुरुपके महाजाग्रत्के अन्तर्गत स्थूल शरीरके कण्ठसे लेके हृदय पर्य्यन्त नाडी प्रदेशमें होता है ॥ २० ॥

चिरसंदर्शनाभावादप्रफुल्लबृहद्वपुः ॥ स्वप्नोजाग्रत्तयारूढोमहाजाग्रत्पदंगतः ॥ २१ ॥ अक्षतेवाक्षतेदेहेस्वप्नजाग्रन्मतंहितत् ॥ षडवस्थापरित्यागेजडाजीवस्ययास्थितिः ॥ २२ ॥ भविष्यद्दुःखबोधाढ्यासौषुप्तीसोच्यतेगतिः ॥ एतेतस्यामवस्थायांतृणलोष्टशिलादयः ॥ २३ ॥ पदार्थाःसंस्थिताःसर्वेपरमाणुप्रमाणिनः ॥ सप्तावस्थाइतिप्रोक्तामयाऽज्ञानस्यराघव ॥ २४ ॥

अर्थ—चिरकालदर्शन (जाग्रत्)के अभावसे अविकासित महान् शरीरवाला दृढ अभिमानसे वा चिरकालतक स्थायित्वकी कल्पनासे जाग्रत्के रूपसे वृद्धिको प्राप्त (जैसे हरिश्चन्द्रका द्वादश वर्षात्मक) महा जाग्रत्के पदको प्राप्त जो स्वप्न है उसको स्वप्न जाग्रत् कहते हैं यह शरीरके नष्ट और अनष्ट होनेपर भी होता है और पूर्वोक्त छहों अवस्थाको प्राप्त होके जीवकी जड रूपसे जो स्थिति है ॥ २१ ॥ २२ ॥ वह भविष्य दुःखकी वासनाको बोध करानेवाली वासनासे पूर्ण सौषुप्ति सातवीं (सुषुप्ति) कहलातीहै, इस अवस्थामें तृणलोष्ट शिला आदि ये सम्पूर्ण ॥ २३॥ परमाणुके प्रमाणके समान पदार्थ स्थित रहते हैं हे रामजी ! यह अज्ञानकी सप्त अवस्था मैंने वर्णनकी ॥ २४ ॥

एकैकाशतशाखात्रनानाविभवरूपिणी ॥ जाग्रत्स्वप्नश्चिरंरूढोजाग्रत्तामेवगच्छति ॥ २५ ॥ नानापदार्थभेदेनसविकासंविजृंभते ॥ अस्यामभ्युदरेसंतिमहाजाग्रद्दशादशः ॥ २६ ॥ तासामभ्यंतरेलोकोमोहान्मोहांतरंव्रजेत् ॥ अंतःपातिजलावर्त्तइवधावतिनौभ्रमम् ॥ २७ ॥ काश्चित्संसृतयोदीर्घंस्वप्नजाग्रत्तयास्थिताः ॥ काश्चित्पुनःस्वप्नजाग्रज्जाग्रत्स्वप्नास्तथेतराः ॥ २८ ॥ अज्ञानभूमिरितिसप्तपदामयोक्तानानाविकारजगदंतरभेदहीना ॥ अस्याःसमुत्तरसिचारुविचारणाभिर्दृष्टेप्रबोधविमलेस्वयमात्मनीति ॥ २९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूत्पत्तिप्रकरणे अज्ञानभूमिकावर्णनंनाम सप्तदशाधिकशततमःसर्गः ॥ ११७ ॥

अर्थ—नाना प्रकारके विभव और रूपवाली यह एक २ अनन्त शाखा मय होतीहै और चिरकालतक रूढ जाग्रत् स्वप्न जाग्रत् अवस्थाहीमें समाप्त होताहै ॥ २५ ॥ नाना पदार्थोंके भेदसे यह विकास सहित रूप धारण करती है, इस जाग्रत् दशाको प्राप्त जाग्रत् स्वप्न दशाके उदरमें महा जाग्रत् अनन्त प्रत्यय हैं ॥ २६ ॥ इन महा जाग्रत् दशा आदिके उदरमें भी जीव एक मोह (भ्रम) से दूसरे मोहको ऐसे प्राप्त होताहै जैसे नदीके जलके अन्तर्गत आवर्तमें वर्तमान नौका एक भ्रमसे दूसरेमें प्राप्त हो ॥ २७ ॥ संसृति (संसार) दीर्घ कालतक स्वप्न जाग्रत् रूपसे स्थित हैं, और कोई पुनः स्वप्न जाग्रत्में स्वप्न जाग्रत् रूपसे स्थित हैं. और अन्य जाग्रत् स्वप्न रूपसे स्थित हैं ॥ २८ ॥ नाना प्रकारके अवांत्तर भेदोंसे हीन (निंदनीय) अर्थात् अवश्य त्याज्य यह आज्ञानकी सात प्रकारकी भूमि मैने आपसे वर्णनकी उत्तम विचारोंसे ज्ञानसे निर्मल आत्मस्वरूपके दृष्ट होनेपर इस आज्ञान भूमिसे तुम स्वयं निकसेही हो ॥ २९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्तेमोक्षोपाये उत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे अज्ञानभूमिकावर्णनंनामसप्तदशाधिक शततमःसर्गः॥ ११७ ॥

अष्टादशोत्तरशततमः सर्गः ॥ ११८ ॥

अपने लक्षणोंसे रूढ लक्षणों (यौगिक और रूढ दोनों लक्षणों) से मोक्षान्त सात प्रकार की ज्ञानकी भूमिका इस ११८ के सर्गमें भली भांति वर्णन की गई है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इमांसप्तपदांज्ञानभूमिमाकर्णयानघ ॥ नानयाज्ञातयाभूयोमोहपंकेनिमज्जसि ॥ १ ॥ वदंतिबहुभेदनवादिनोयोगभूमिकाः ॥ ममत्वभिमतानूनमिमाएवशुभप्रदाः ॥ २ ॥ अवबोधंविदुर्ज्ञानंतदिदंसप्तभूमिकम् ॥ मुक्तिस्तुज्ञेयमित्युक्तंभूतिकासप्तकात्परम् ॥ ३ ॥ सत्यावबोधोमोक्षश्चैवेतिपर्यायनामनी ॥ सत्यावबोधोजीवोयंनेहभूयःप्ररोहति ॥ ४ ॥

अर्थ—श्री वसिष्टजी बोले-हे पाप रहित रामजी ! अब तुम इस सात प्रकारकी ज्ञान भूमिका को श्रवण करो, इसके जाननेसे तुम पुनः अज्ञानरूपी पंकमें निमग्न नहीं होओगे ॥ १ ॥ वादी लोग बहुत भेदसे योगकी भूमिकाओंको कहते हैं परन्तु मेरे (वेदान्त सिद्धान्तमें) येही सिद्धिप्रद इष्टहैं ॥ २ ॥ अखण्ड स्वात्माकार बृत्तिमें आरूढ ब्रह्मही आज्ञानका निवर्त्तक होनेसे सप्त भूमिकारूप ज्ञानहै और सातो भूमिकासे परे मुक्तिज्ञेयहै ॥ ३ ॥ सत्य परमात्माका बोध और मोक्ष ये दोनो पर्य्याय वाचक नामहैं और जिस जीवको सत्यका ज्ञान होताहै वह पुनः इस संसार में नहीं आता ॥ ४ ॥

ज्ञानभूमिःशुभेच्छाख्याप्रथमासमुदाहृता ॥ विचारणाद्वितीयातुतृतीयातनुमानसा ॥ ५ ॥ सत्वापत्तिश्चतुर्थीस्यात्ततोसंसक्तिनामिका ॥ पदार्थाभावनीषष्ठीसप्तमीतुर्यगास्मृता ॥ ६ ॥ आसामंतेस्थितामुक्तिस्तस्यांभूयोनशोच्यते ॥ एतासांभूमिकानांत्वमिदंनिर्वचनंशृणु ॥ ७ ॥ स्थितःकिंमूढएवास्मिप्रेक्ष्येहंशास्त्रसज्जनैः ॥ वैराग्यपूर्वमिच्छेतिशुभेच्छेत्युच्यतेबुधैः ॥ ८ ॥

अर्थ—शुभेच्छा १ आत्मज्ञान की प्रथम भूमिका कही गई है दूसरी विचारणा २ तीसरी तनुमानसा ॥ ५ ॥ चौथी सत्वापत्ति ४ पांचवी असंसक्ति ५ छठवी पदार्था भावनी ६ और सातवीं तुर्य्यगा ७ कहीगई है ॥ ६ ॥ इन भूमिकाओंके अन्तमें मुक्ति स्थितहै जिसमें प्राप्तहोके प्राणी पुनः शोच नहीं करता, और इन भूमिकाओंका तुम लक्षण सुनो ॥ ७ ॥ मै मूढ़ क्यों बैठा हूं शास्त्र अर्थात् विचारित वेदान्त वाक्योंके साथ तथा सज्जन गुरुओंके साथ मेरा दर्शन (समागम) हो ऐसी जो वैराग्य पूर्वक इच्छाहै उसको पण्डित लोग शुभेक्षा कहते हैं ॥ ८ ॥

शास्त्रसज्जनसंपर्कवैराग्याभ्यासपूर्वकम् ॥ सदाचारप्रवृत्तिर्याप्रोच्यतेसातिचारणा ॥ ९ ॥ विचारणाशुभेच्छाभ्यामिंद्रियार्थेष्वसक्तता ॥ यात्रसातनुताभावात्प्रोच्यतेतनुमानसा ॥ १० ॥ भूमिकात्रितयाभ्यासाच्चित्तेर्थेविरतेर्वशात् ॥ सत्यात्मनिस्थितिःशुद्धेसत्त्वापत्तिरुदाहृता ॥ ११ ॥ दशाचतुष्टयाभ्यासादसंसंगफलेनच ॥ रूढसत्वचमत्कारात्प्रोक्तासंसक्तिनामिका ॥ १२ ॥

अर्थ—शास्त्र और सज्जनोंके सम्पर्कसे वैराग्य और अभ्यास पूर्वक जो सदाचार (श्रवण मननरूप) में प्रवृत्ति है उसको विचारणा कहते हैं ॥ ९ ॥ और विचारणा और शुभेच्छासे जो इन्द्रियके विषय शब्द स्पर्शादिमें असंक्तता है वह निदिध्यासनके कारण तनुमानसा कहीजाती है ॥ १० ॥ तीनों पूर्वोक्त भूमिकाओंके अभ्यास ने बाह्यार्थसे चित्तमें चित्तकी वृत्तिकी विरामताके स्थैर्य्यके वशसे माया और उसके कार्य्य रूप अवस्थात्रयसे शोधित शुद्ध चेतनमात्रमें जो स्थिति है उसको सत्वापत्ति कहते हैं यह मन सत्व परमात्मरूपमें आपन्नहै इसलिये सत्वापत्ति अवन्र्थ संज्ञा है इस भूमिकामें स्थित प्राणी ब्रह्मवित् कहाताहै ॥ ११ ॥ चारो अवस्थाके अभ्याससे तथा वाह्याभ्यन्तर विषय और उनके संस्कारोंके स्पर्शसे शून्य असंग रूप समाधिकी परिपाकता लक्षण फलके द्वारा वृद्धिको प्राप्त निरंति शयानन्दरूप ब्रह्मात्म भाव साक्षात्कारसे जो दशा होती है वह असंसक्ति कहाती है क्योंकि इसमें अविद्या और उसके कार्य्योंकी संसक्ति नहीं होती ॥ १२ ॥

भूमिकापंचकाभ्यासात्स्वात्मारामतयादृढम् ॥ आभ्यंतराणांबाह्यानांपदार्थानामभावनात् ॥ १३ ॥ परप्रयुक्तेनचिरंप्रयत्नेनार्थभावनात् ॥ पदार्थाभावनानाम्नीषष्ठीसंजायतेगतिः ॥ १४ ॥ भूमिषट्कचिराभ्यासाद्भेदस्यानुपलंभतः ॥ यत्स्वभावैकनिष्ठत्वंसाज्ञेयातुर्यगागतिः ॥ १५ ॥ एषाहिजीवन्मुक्तेषुतुर्यविभेदाविद्यते ॥ विदेहमुक्तिविषयस्तुर्यातीतमतःपरम् ॥ १६ ॥

आत्म साक्षात्कारकी उत्कृष्ट इच्छासे जो श्रवण मननमें प्रवृत्तिहै उसीको शुभेच्छा कहते हैं।

अर्थ भूमिकामें स्थित ज्ञानी पुरुष ब्रह्म विद्वर कहा जाताहै

अर्थ—पांचों भूमिकाओंके अभ्याससे दृढ स्वात्मारामतासे, और बाह्य तथा अभ्यन्तर पदार्थोंकी अभावनासे ॥ १३ ॥ तथा देह यात्रामात्रकी सिद्धिके लिये अन्यकृत चिरकालके प्रयत्नसे पदार्थोंकी भावनासे जो अवस्था होतीहै वह छठी पदार्थाभावनीनाम कहातीहै क्योंकि इसमें रागादिसे पदार्थोंकी भावना नहीं होती इस भूमिकामें स्थित ज्ञानी ब्रह्मविद् वरीयान् कहलाताहै ॥ १४ ॥ यही भूमिकाके चिरकालतक अभ्याससे और भेदकी अप्राप्तिसे जो केवल स्वभावमात्रमें निष्ठताहै उसकी सातवी तुर्य्यगा अर्थात् जाग्रतादि तीनों अवस्थासे निर्मुक्त केवल शिव अद्वैत तुर्य्य (चतुर्थ) ब्रह्मविद् वरिष्ठोंमें जानेवाली कहलाती है ॥१५॥ हे रामजी ! यह तुर्य्यावस्था केवल जीवन्मुक्त पुरुषोंमेंहीहै और इसके अनन्तर विदेह मुक्तिका विषय तुर्य्यातीतपद इससे परेहै ॥ १६ ॥

येहिराममहाभागाःसप्तमींभूमिकांगताः ॥ आत्मारामामहात्मानस्तेमहत्पदमागताः ॥१७॥ जीवन्मुक्तानसज्जंतिसुखदुःखरसस्थितौ ॥ प्रकृतेनार्थकार्याणिकिंचित्कुर्वंतिवानवा ॥ १८ ॥ पार्श्वस्थबोधिताः संतःसर्वाचारक्रमागतम् ॥ आचारमाचरंत्येवसुप्रबुद्धवदक्षतम् ॥ १९ ॥ आत्मारामतयातांस्तुसुखयंतिनकाश्चन ॥ जगत्क्रियाःसुसंसुप्तान्रूपालोकाःस्त्रियोयथा ॥ २० ॥

अर्थ—हे रामजी ! जो महाभाग इससप्तम भूमिकामें प्राप्त हुयेहैं वे महात्मा लोग आत्माराम (केवल अपने आत्मामें रमण करनेवाले) कहलातेहैं और वे ब्रह्मरूप महत् पदको प्राप्त होचुके ॥ १७ ॥ जो जीवन्मुक्त महात्मा गणहैं वे सुखदुःखरूप रसकी स्थितिमें निमग्न नहीं होते केवल देहयात्रामात्र अर्थके कार्य्य छठी सातवी भूमिकामें करतेभी और नहींभी करते ॥ १८ ॥ और निकटस्थ जनोंसे बोधित अपने वर्णाश्रमकी परम्परासे प्राप्त आचारको सम्पूर्ण रीतिसे आसंग रहित अवश्य करतेहैं ॥१९॥ हे रामजी! आत्मारामताके कारण उन जीवन्मुक्त पुरुषोंको जगत्की कोईभी क्रिया ऐसे नहीं सुखी करसकती जैसे सौन्दर्य आदिकी अधिकतासे शोभित स्त्रियां गाढी निद्रामें स्थित पुरुषोंको ॥२०॥

भूमिकासप्तकंचैतद्धीमतामेवगोचरः ॥ नपशुस्थावरादीनांनचम्लेच्छादिचेतसाम् ॥ २१ ॥ प्राप्ताज्ञानदशामेतांपशुम्लेच्छादयोपिये ॥ सदेहावाप्यदेहावातेमुक्तानात्रसंशयः ॥ २२ ॥ ज्ञप्तिर्हिग्रंथिविच्छेदस्तस्मिन्सातिहिमुक्तता ॥ मृगतृष्णांबुबुद्ध्यादिशांतिमात्रात्मकस्त्वसौ ॥ २३ ॥ येतुमोहात्समुत्तीर्णानप्राप्ताःपावनंपदम् ॥ आस्थिताभूमिकास्वासुस्वात्मलाभपरायणाः ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! ये सातों भूमिका केवल बुद्धिमान् पुरुषोंकेही विषयहैं न कि पशु स्थावर और म्लेच्छादि तुल्य देहमें जिनकी आत्मबुद्धि है ऐसे मनुष्योंके ॥ २१ ॥ हे रामजी ! इस ज्ञानदशामें जो प्राप्त है चाहे वे पशु म्लेच्छादि भी हों जैसे हनुमान प्रल्हाद आदि देह सहित हों वा अदेह हों वे भी मुक्त है इसमें कुछ संदेह नहीं हैं ॥२२॥ विषय और अज्ञान रूप ग्रन्थियोंका विच्छेदही ज्ञान है उसके होनेपर मुक्ति करतलमें स्थित है और वह पुरुष मृगतृष्णामें जल बुद्धि शुक्तिमें रूप्य बुद्धि जिसकी शान्त हो गई है उसके तुल्य ज्ञानीमात्र हैं अर्थात् उसको संसारी पदार्थ मृगतृष्णादिके तुल्य मिथ्या भासते हैं ॥ २३ ॥ जो पुरुष मोहसे तो पार होगये हैं और परमपावन निरतिशय पूर्णानन्दरूप विदेह कैवल्यको नहीं प्राप्त हुये हैं वे अपनी २ भूमिकाओंमें स्थित आत्म लाभमें परायणहैं ॥ २४ ॥

सर्वभूमिगताःकेचित्केचिद्द्वित्रैकभूमिकाः ॥ भूमिषट्कगताःकेचित्केचित्सप्तैकभूमिकाः ॥ २५ ॥ भूमित्रयगताःकेचित्केचिदंत्यांभुवंगताः ॥ भूचतुष्टयगाःकेचित्केचिद्भूमिद्वयेस्थिताः ॥ २६ ॥ भूम्यंशभाजनाःकेचित्केचित्सार्द्धत्रिभूमिकाः ॥ केचित्सार्द्धचतुर्भूगाःसार्धषड्भूमिकाःपरे ॥ २७ ॥ विवेकिनोनरालोकेचरंतइतिभूमिषु ॥ ग्रहायतनतापस्यदशावेशेषुसंस्थिताः ॥ २८ ॥

अर्थ—कोई योगी गण तो सब भूमिकाओंमें एकही जन्मसे प्राप्त होतेहैं कोई द्वो या तीन भूमिकातक पहुंचतेहैं कोई छः भूमिकातक पहुंचते हैं और कोई प्रथमसेही जैसे सनकादि सप्तम (तुर्य्यगा) भूमिकामें प्राप्त होजातेहैं ॥२५॥ कोई तीसरी भूमिकातक पहुंचतेहैं कोई अन्तिम(सप्तम) भूमिकामें प्राप्त होगयेहैं कोई चार भूमिकातक प्राप्तहुये और कोई दोही भूमिकामें स्थितहैं ॥२६॥ कोई आधी वा चौथाई भूमिकाके भागीहैं कोई साढेतीन भागतक पहुंचेहैं कोई भूमिकाके साढेचार भागतक पहुंचेहैं और दूसरे साढे छः भागतक पहुंचेहैं ॥२७॥ हे रामजी ! जो विवेकी पुरुषहै वे इन भूमिकाओंमें विचरते हुये भूमात्माको आत्मदृष्टिसे ग्रहण करनेवाले बाह्याभ्यन्तर इन्द्रिय और उनके विषय तथा उनके आधारभूत शरीरकृत आध्यात्मिकादि तापके बाधरूप आत्माके अन्तःप्रवेशनरूप उद्योगमें लगेहैं ॥ २८ ॥

(१) यद्यपि द्वितीय से आदिलेके चतुर्थ भूमिका पर्य्यन्त में ज्ञानके उदयसे मोहसे पार होगये तथापि प्रबल प्रारब्धके भोगसे विशेषसे निरतिशय पूर्णानन्द नहीं पाया ॥

तेहिधीराःसुराजानोदशास्वासुजयंतिये ॥ तृणायतेत्रदिग्दंतिवटाभटपराजयः ॥ २९ ॥ येतासुभूमिषु जयंतिहियेमहांतोवंद्यास्तएवहिजितेंद्रियशत्रवस्ते ॥ संम्राड्विराडपिचयत्रतृणायतेवैतस्मात्परंजगतिते समवाप्नुवंति ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीयेदेवदूतोक्तेमोक्षोपायेषूत्पत्तिप्रकरणेभाषानुऽवादे ज्ञानभूमिकोपदेशोनामाष्टादशोत्तरशततमःसर्गः ॥ ११८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जो धीर पुरुष इस भूमिकाओंमें प्राप्त होके मनरूप शत्रुको जीततेहैं वेही सर्वोत्कृष्ट उत्तम राजा हैं और इस आत्मप्राप्तिरूप साम्राज्यमें दिशाओंके हस्तियोंका समूह और सम्पूर्ण शत्रु वीरोंका पराजय और उससे प्राप्त सातों द्वीपका राज्य सब तृणके तुल्यहैं ॥२९॥ हे रामजी ! जो इन सातों भूमिकाओंमें प्राप्त हैं वे महात्मागण वन्दनीय हैं क्योंकि उन्होंने अपने इन्द्रियरूप शत्रुओंको जीतलियाहै, और जिस सप्तम भूमिकामें सम्पूर्ण भूमण्डलका राजा तथा ब्रह्माजीभी तृणके समान हैं क्योंकि देवताओंके आनन्दकी परमावधि जो ब्रह्माका आनन्द है उससेभी परे विदेह कैवल्य सुखको इसी लोकमें वे प्राप्त करतेहैं ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे ज्ञानभूमिकोपदेशोनामाष्टादशोत्तरशततमःसर्गः ॥ ११८॥

एकोनविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ ११९ ॥

भा॰ ॥ येकरूपका निराशकर सन्मात्रके एकात्वका दर्शन और भूमिकाओंमें स्थिर करनेके लिये युक्ति इस ११९ के सर्गमें वर्णित की गई है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ऊर्मिकासंविदाहेमयथाविस्मृत्यहेमताम् ॥ विरौतिनाहंहेमेतितथात्माहंतया नया ॥ १ ॥ श्रीरामउवाच ॥ ऊर्मिकासंविद्दयःकथंहेम्नोयथामुने ॥ अहंताचात्मनइतियथावद्‌ब्रूहिमे प्रभो ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ सतएवागमापायौप्रष्टव्यौनासतःसता ॥ अहंत्वमूर्मिकात्वंचसती तुनकदाचन ॥३॥ हेमहेम्यूर्मिकांचत्वंगृहाणेत्युदितोयदि ॥ यद्दीयतेसोर्मिकेणतत्तदस्तिनसंशयः॥४॥

अर्थ—श्री वसिष्ठजी बोले—हे रामजी! जैसे सुवर्ण अपने स्वरूपमें कल्पित अंगुलियक (अंगूठी) बुद्धिसे अपनी सुवर्णताको भूलकर रोदन करै कि मैं सुवर्ण नहीं हूं इसी प्रकार इस अहन्तासे आत्मा अपना स्वरूप भूलकर रो रहाहै ॥१॥ श्रीरामजी बोले—हे भगवन् ! सुवर्णमें जैसे अंगुलियक बुद्धि होती है और आत्मामें जैसे अहन्ता बुद्धि होती है वह युक्ति मुझे यथावत् कहिये ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी! जो पदार्थ सत्‌है उसीकी उत्पत्ति तथा नाश पूछना चाहिये न कि असत्‌के आत्मामें अहन्ता और सुवर्णमें अंगुलियत्व यह कभी सत् नहीं है ॥ ३ ॥ सुवर्ण वा सुवर्णकी अंगूठी तुमलो ऐसा क्रेय (खरीद) करनेवालेसे मध्यस्थ पुरुषके कहनेपर वेचनेवाला जो पदार्थ (सुवर्ण) बहुमूल्यसे देताहै वही सत्यहै इसमें संशय नहीं है ॥ ४ ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ एवंचेत्तत्प्रभोकिंस्यादूर्मिकात्वंतुकीदृशम् ॥ अनयैवार्थनिश्चित्यात्ज्ञास्यामिब्रह्मणोवपुः ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ रूपंराघवनीरूपमसतश्चेन्निरूप्यते ॥ तद्वंध्यातनयाकारगुणांस्त्वंसमुदाहर ॥ ६ ॥ ऊर्मिकात्वंमुधाभ्रांतिर्मायैषासत्स्वरूपिणी ॥ रूपंतदेतदेवास्याःप्रेक्षितायन्नदृश्यते ॥ ७ ॥ मृगतृष्णांभसिद्वींदावहंतारूपकादिषु ॥ एतावदेरूपंयत्प्रेक्ष्यमाणंनलभ्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—रामजी बोले—हे प्रभो! यदि ऐसा है तो अंगुलियकत्व कैसा और क्या है इसी अर्थके निश्चयसे मैं ब्रह्मका शरीर जानूंगा ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! यदि असत् पदार्थके रूपका निरूपण किया जाताहै तो तुम वन्ध्याके पुत्रका आकार और गुणका निरूपण तुम करो ॥ ६ ॥ हे रामजी ! सुवर्णमें जो ऊर्मिकात्व (अंगुठीपन) की कल्पना है यह मिथ्या भ्रान्ति है ऐसेही संसारकी कल्पना करनेवाली यह माया मिथ्या भ्रान्ति है यह असत् स्वरूपिणी है इसका रूप यही है कि यदि विचारपूर्वक देखाजाय तो कुछ नहीं देखपडती ॥ ७ ॥ मृगतृष्णाके जलमें, दो चन्द्रके भ्रमें, और शुद्ध आत्माके आरोपका (आरोपणा) दि में यही इसका रूप है कि विचारपूर्वक देखो तो न दीख पडती ॥ ८ ॥

मा॰ नाकारंप्रेक्षतेरजतस्यसः ॥ नसंप्राप्नोत्यणुमपिकणंक्षणमपिक्वचित्॥९॥अपर्यालोकनेनैवस अथ भूमिके ॥ यथाशुक्तौरजतताजलंमरुमरीचिषु ॥ १० ॥ यत्रास्तितत्स्यनास्तित्वंप्रेक्ष्यमाणंप्रका

शते ॥ अप्रेक्ष्यमाणंस्फुरतिमृगतृष्णास्विवांबुधिः ॥ ११ ॥ असदेवचसत्कार्यकरंभवतिचस्थिरम् ॥ बालनांमरणायैववेतालभ्रांतिसंभ्रमः ॥ १२ ॥

अर्थ—जो शुक्तिमें रजताकार देख पडताहै वह कहीं क्षणभरके लिये भी कणमात्र भी नहीं प्राप्त होता ॥ ९ ॥ असत् यह सब मायाजाल जो विनाविचारे सत्के समान शोभित होरहाहै वह ऐसे है जैसे शुक्तिमें और मृगतृष्णामें जल ॥ १० ॥ जो पदार्थ नहीं है उसकी नास्तिता देखनेपर प्रकाशती है और नास्ति जो नहीं देख पडती वह रजत रूपसे ऐसे स्फुरती है जैसे मृगतृष्णामें जलकी बुद्धि ॥ ११ ॥ असत् भी स्थिरतापूर्वक कार्य्यकारी होताहै जैसे बालकोंके मरनेके लिये वेतालकी भ्रान्तिका संभ्रम ॥ १२ ॥

हेमतांवर्जयित्वैकांविद्यतेहेम्निनेतरत् ॥ ऊर्मिकाकटकादित्वंतैलादिसिकतास्विव ॥ १३ ॥ नेहास्ति सत्यंनोमिथ्यायद्यथाप्रतिभाव्यते ॥ तत्तथर्थक्रियाकारिबालयक्षविकारवत् ॥ १४ ॥ सद्वाभवत्वसद्वा पिसुरूढंहृदयेऽस्थितं ॥ तत्तदर्थक्रियाकारिविषस्येवामृतक्रिया ॥ १५ ॥ परमैषैवसाविद्यामायैषासंसृ तिर्ह्यसौ ॥ असतोनिष्प्रतिष्ठस्ययदहंत्वस्यभावनम् ॥ १६ ॥

अर्थ—सुवर्णमें सुवर्णको छोड अन्य अंगुलियक कटक आदि ऐसे नहीं है जैसे रेत आदिमें तैल आदि ॥ १३ ॥ इस संसारमें न सत्य और न मिथ्याकी अर्थक्रिया कारिताका नियम है किन्तु जो पदार्थ अधिष्ठान सत्तामें जिसप्रकार आरोपित है उसका प्रतिभासही उस२अर्थक्रियाका कारक है जैसे बालकके लिये यक्षका विकार ॥ १४ ॥ चाहे सत् हो वा असत् परन्तु जो पदार्थ जिस भांति हृदयमें रूढ है वह वैसाही अर्थ क्रियाका हेतु है जैसे अमृतकी क्रिया विषसे ॥ १५ ॥ यही परम अविद्या माया और संसार है जो प्रतिष्ठा रहित असत् है उसमें अहन्ताकी भावना ॥ १६ ॥

हेम्न्यस्तिनोर्मिकादित्वमहंताद्यस्तिनात्मनि ॥ अहंताभाववस्त्वेवंस्वच्छेशांतेसितेपरे ॥ १७ ॥ नसनातनताकाचिन्नचकाचिद्विरिंचिता ॥ नचब्रह्मांडताकाचिन्नचकाचित्सुतादिता ॥ १८ ॥ नलोकां तरताकाचिन्नचस्वर्गादिताकचित् ॥ नमेरुतानासुरतानमनस्त्वंनदेहता ॥ १९ ॥ नमहाभूतताकाचि न्नचकारणताकाचित् ॥ नचत्रिकालकलनानभावाभावचस्तुता ॥ २० ॥

अर्थ—जैसे सुवर्णमें अंगुलियकादि कुछ नहीं है ऐसेही आत्मामें अहन्तादि नहीं है क्योंकि स्वच्छ शान्त और निर्मल परब्रह्ममें अहन्ता असत् है न कि यथार्थमें ॥ १७ ॥ हे रामजी ! सनातनता अर्थात् सर्व कालका सम्बन्ध कुछ नहीं क्योंकि अतीत कालमें वह सनातनता कहाहै? ब्रह्माण्ड भी कोई वस्तु नहीं है और ब्रह्माकी पुत्रता अर्थात् प्रजापतिता भी कोई पदार्थ नहीं है ॥ १८ ॥ हे रामजी ! न अन्य लोकता, तथा स्वर्गादिता भी कोई पदार्थ नहीं है सुमेरुता कोई वस्तु नहीं है न असुरता न मन सत्व और न देहता कुछ है ॥ १९ ॥ न महाभूतता कोई वस्तु है न कारणता कुछ पदार्थ है त्रिकालकी कल्पना भी कुछ नहीं है और वस्तुगत भावाभावता भी कुछ नहीं है ॥ २० ॥

त्वत्ताहंतात्मतातत्तासत्तासत्तानकाचन ॥ नकचिद्भेदकलनानभावोनचरंजना ॥ २१ ॥ सर्वंशांतंनि रालंबंजगत्त्वंशाश्वतंशिवम् ॥ अनामयमनाभासमनामकमकारणम् ॥ २२ ॥ नसन्नासन्नमध्यांतंनस र्वंसर्वमेवच ॥ मनोवचोभिरग्राह्यंशून्याच्छून्यंसुखात्सुखम् ॥ २३ ॥ श्रीरामउवाच ॥ अवबुद्धंसमं ब्रह्मसर्वमेवमयाधुना ॥ तथापिभूयःकथयसर्गःकिमिवलोक्यते ॥ २४ ॥

अर्थ—और हे रामजी ! त्वत्ता, अहन्ता, आत्मतातत्तासत्ता और असत्ता भी कुछ नहीं है भेदकी कल्पना कुछ नहीं और राग तथा उसका कार्य्य आसक्ति भी कुछ नहीं है ॥ २१ ॥ हे रामजी ! इस सर्व जगत्का पारमार्थिक रूप शान्त अधिष्ठान सत्तामात्र नित्य, शिव, अनामय आभास वर्जित तथा नाम और कारण शून्य ॥ २२ ॥ उत्पत्ति तथा नाशके विकारसे रहित आदि अन्त और मध्य वर्जित कुछ नहीं और सब कुछ मन और वाणीका अविषय शून्य आकाशसे भी शून्य (विशालरूप) और ब्रह्माण्डान्तर्गत सब सुखोंसे सुखरूप ब्रह्म है ॥ २३ ॥ श्रीरामजी बोले—हे भगवन् ! सर्वत्र समरूप परब्रह्मको मैंने अब जानलिया तथापि कृपा करके यह कहिये कि ज्ञानसे अज्ञानके नष्ट होनेपर तन्मूलक अज्ञानका भी बाध होनेपर पुनः यह सृष्टि क्योंकर देख पडती है ॥ २४ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ परेशांतेपरंनामस्थितमित्थमिदंतया ॥ नेहसर्गोनसर्गाख्याकाचिदस्तिकदा चन ॥ २५ ॥ महार्णवांभसीवांबुसंस्थितापरमेश्वरे ॥ जलंद्रवत्वात्स्पंदीवनिस्पंदंपरंपदम् ॥ २६ ॥ भाःस्वात्मनीवकचतिनकचत्येवतत्पदम् ॥ भासांतत्त्वंहिकचनंपदंत्वकचनंविदुः ॥ २७ ॥ अधऊर्ध्वं वर्जयित्वायथाव्योरुदरेपयः ॥ स्फुरत्येवंपरेचित्त्वादिदंनानेवतत्परम् ॥ २८ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! परब्रह्म अपने स्वभावहीमें स्थित है वह उससे च्युत नहीं है इसप्रकार यह सृष्टि और उसकी आख्या (नाम) कदाचित् कोई भी इदन्ता रूपसे नहीं स्थित है किन्तु ब्रह्मस्वभावहीसे॥२५॥ जैसे जलस्वरूप महा समुद्रमें जल स्थित है ऐसेही सृष्टिकी आख्या परमात्मामें स्थित है इतना भेद है कि जल द्रवशील होनेसे गतिशील है और परमपद निस्पन्द अचल है ॥ २६ ॥ सूर्य्यादिकी दीप्ति स्वात्मामें प्रकाशित होरही है परन्तु परमपद नहीं प्रकाशता (सूर्य्यादिके सदृश) क्योंकि प्रकाश न सूर्य्यादिका स्वभाव है और वह पदतो भौतिक प्रकारसे रहितहै ॥ २७ ॥ जैसे ऊपर नीचेके सिवाय समुद्रके उदरमें जलही जल है ऐसेही परब्रह्मके स्वरूपमें नानाप्रकारके समान यह जगत् स्फुरित होताहै परन्तु यथार्थमें यह वही परब्रह्म है ॥ २८ ॥

इषद्बिदःस्वयंचित्त्वाच्चेत्यतामिवगच्छति ॥ बुध्यतेसर्गइत्येवसमास्थास्यतिशाश्वतम् ॥ २९ ॥ सर्गस्तुपरमार्थस्यसंज्ञेत्येवंविनिश्चयः ॥ नानास्तिनायमत्यंतमंबरस्ययथांबरम् ॥ ३० ॥ चित्तात्सर्गसमापत्तिरचित्तात्सर्गसंक्षयः ॥ परेपरमसंशांतेहेम्नीवकटकभ्रमः ॥ ३१ ॥ सन्नेवसर्गोसत्यत्वमेतिचित्तशमोदये ॥ असत्सत्तामवाप्नोतिस्वतःसंवेदनोदये ॥ ३२ ॥

अर्थ—और जिसका बोध परिपक्व नहीं है उसको यह विषयके समान भान होता और सृष्टि ऐसा बोध भी होता है और बोधकी परिपक्वता दशामें वही सर्ग (सृष्टि) नित्य ब्रह्मतत्त्वरूपसे प्रतिष्ठित होगा ॥ २९ ॥ क्योंकि अज्ञानीसे दृष्ट यह नानाप्रकारका जगत् यथार्थमें सर्वथा नहींहै जैसे आकाशका दूसरा आकाश नहीं है इसी प्रकार परमार्थका दूसरा परमार्थ नहीं है वो सृष्टि यह परब्रह्मकी संज्ञा है यह निश्चय है ॥ ३० ॥ हे रामजी ! चित्तकीही सत्तासे सृष्टिकी सम्यक् प्रकारकी प्राप्ति होती है और चित्तके सर्वथा परम शान्त ब्रह्ममें लय होनेसे सृष्टिका भी लय ऐसे होताहै जैसे सुवर्णमें कटकका ॥३१॥ चित्तकी शमताके उदय होनेपर परब्रह्महो सर्ग (सृष्टि) है और वही सत्यताको प्राप्त होताहै अर्थात् अधिष्ठान सत्तारूप भासताहै और चित्तके स्वतः उदय होनेपर असत् सत्ताको प्राप्त होताहै॥३२॥

संवेदनमहंतावत्सर्गसंभ्रमसंभ्रमः ॥ असंवेदनमाशांतंपरंविद्धिनतज्जडम् ॥ ३३ ॥ नानेवसर्गोनानायंब्रह्मस्यैकात्मशिवात्मकः ॥ पुंस्त्वकर्मक्रियासेनामृन्मयीशिल्पिनांयथा ॥ ३४ ॥ इदंपूर्णमनारंभमनंतमनघोदरम् ॥ पूर्णंपूर्णपरापूरैःपूर्णमेवावतिष्ठते ॥ ३५ ॥ यदयंलक्ष्यतेसर्गस्तद्ब्रह्मब्रह्मणिस्थितम् ॥ नभोनभसिविश्रांतंशांतंशांतेशिवेशिवम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! अभिमान युक्त जो चिन्हहै वही सृष्टिसे भ्रमणकी भ्रान्त है और चित्तके शान्त ऐसे उस सृष्टिको तुम परब्रह्म स्वरूपही जानो न कि जड ॥ ३३ ॥ और ज्ञानीके भी समाधिके व्युत्थान दशामें नाना प्रकारके भेद रहित भी यह सर्ग नाना प्रकारके समान ऐसे भासतेहैं जैसे शिल्पियोंकी चतुरतासे रची मृत्तिकाकी सेना यथार्थमें मृत्तिका होती हुई भी सेनाके तुल्य भासतीहै ॥ ३४ ॥ ज्ञानियोंकी परमार्थ दृष्टिमें यह जगत् उत्पत्ति नाश रहित और अन्यके विकार दोषसे रहित उदर (मध्य) है जिसका ऐसा यह भान होताहै क्योंकि पूर्ण परमात्माकी व्याप्तिसे पूर्ण परमात्मामे पूर्ण है, इसलिये पूर्ण परमात्माही अवशिष्टहै अणुमात्र भी अपूर्ण नहीं है ॥ ३५ ॥ और यह जगत् जो भान होताहै वह ब्रह्मही ब्रह्ममें स्थित है जैसे आकाशमें आकाश विश्रान्त है ऐसेही शिवरूप परमात्मामें शिवरूप यह जगत्शान्त है ॥ ३६ ॥

मुकुरप्रतिबिंबस्थेनगरेनवयोजने ॥ यथादूरमदूरंचतथेशेतदतत्क्रमः ॥ ३७ ॥ असदभ्युदितंविश्वंसदप्यभ्युदितंसदा ॥ प्रतिभासात्सदाभासमवस्तुत्वादसन्मयम् ॥ ३८ ॥ आदर्शनगराकारेमृगतृष्णांबुभास्वरे ॥ द्विचंद्रविभ्रमाभासेसर्गेस्मिन्कैवसत्यता ॥ ३९ ॥ मायाचूर्णपरिक्षेपाद्यथान्योन्निपुरभ्रमः ॥ तथासंविदिसंसारःसारोसारश्चभासते ॥ ४० ॥ यावद्विचारदहनेनसमूलदाहंदग्धानजर्जरलतेवबलादविद्या ॥ शाखाप्रतानगहनानिबहूनितावन्नानाविधानिसुखदुःखवनानिसूते ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे हेमोर्म्युपदेशोनामैकोनविंशत्युत्तरशततमःसर्गः ॥ ११९ ॥

अर्थ—जैसे दर्पणके प्रतिविम्बमें स्थित नौ ९ योजनके नगरमें दूरता और अदूरता दोनो है ऐसेही ब्रह्ममें दूरता और अदूरताका क्रम (परिपाटी) है ॥ ३७ ॥ अज्ञानियोंकी दृष्टिमें असत् जगत् उदयको प्राप्त है और ज्ञानियोंकी दृष्टिमें तो सदा सत् ब्रह्मही जगतरूपसे उदित है क्योंकि अभेद प्रतिभाससे यह सदा भास है और भेद दृष्टिसे अवस्तु होनेसे असन्मय है ॥ ३८ ॥ हे रामजी ! दर्पणके नगरके आकारके तुल्य मृगतृष्णाके जलके समान गा-

स्वर और दो चन्द्रके भ्रमके सदृश भासमान भला इस सृष्टिकी किस प्रकारकी सत्यता है ॥ ३९ ॥ हे रामजी ! जैसे ऐन्द्रजालिकोंके माया चूर्णके फेंकनेपर आकाशमें नगरकी भ्रान्ति होती है ऐसेही चेतन स्वरूपमें यह जगत् (संसार) सारभी और असार भी है अर्थात् अधिष्ठान रूपसे सत् और भिन्न रूपसे असत् है ॥ ४० ॥ हे रामजी ! जबतक विचाररूपी अग्निसे यह वासना सहित अविद्या रूपा जर्जर लता मूल सहित नहीं जलादीजाती तबतक शाखाओंकी वृद्धिसे अति गहन सुख दुःख रूपी अनेक वनोंको उत्पन्न करतीहै ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेपुत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे हेमोर्म्युपदेशोनामैकोनविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥११९ ॥

विंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२० ॥

राजा लवणका पुनः विन्ध्याचल पर्वतपर जाके पूर्वदृष्ट शवरालयका देखना स्वप्नके संवादका वर्णन इस १२०के सर्गमें किया गया है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ हेमोर्मिकादिवन्मिथ्याकथितायाःक्षयोन्मुखम् ॥ त्वंमहत्त्वमविद्यायाःशृणुराघव कीदृशम् ॥ १ ॥ लवणोसौमहीपालस्तथादृष्ट्वातदाभ्रमम् ॥ द्वितीयेदिवसेगंतुंप्रवृत्तस्तांमहाटवीम् ॥ २ ॥ यत्रदृष्टंमयादुःखमरण्यानींस्मरामिताम् ॥ चित्तादर्शगतांविंध्यात्कदाचिल्लभ्यतेहिसा ॥ ३ ॥ इतिनिश्चित्यसचिवैःप्रययौदक्षिणापथम् ॥ पुनर्दिग्विजयायेवप्राप्यविंध्यमहीधरम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! सुवर्णमें अंगुलियकके समान मिथ्या इसप्रकारसे कहीहुई इस अविद्याका क्षयोन्मुख (क्षयकी ओर झुका हुआ) महत्व कैसा है सो तुम सुनो ॥१ ॥ यह पूर्वोक्त राजा लवण उस प्रकारके भ्रमको देख दूसरेही दिन उस महाजंगलमें जानेको प्रवृत्त हुआ ॥ २ ॥ जहांपर महा दुःख मैंने देखाथा उस चित्तरूपी आदर्शमें प्राप्त महाअरण्यानी (महाजंगल)को मैं स्मरण करताहूं कदाचित् विन्ध्या पर्वतपर जानेसे मिल जाय ॥३॥ऐसा निश्चय करके दक्षिण मार्गमें मानों पुनः दिग्विजय करनेको गया और वहां विन्ध्याचल पर्वतपर जाकर॥४॥

पूर्वदक्षिणपाश्चात्यमहार्णवतटस्थलीम् ॥ बभ्रामकौतुकात्सर्वांव्योमवीथीमिवोष्णगुः ॥ ५ ॥ अथैकस्मिन्प्रदेशेतांचितामिवपुरोगताम् ॥ ददर्शोग्रामरण्यानींपरलोकमहीमिव ॥ ६ ॥ सतत्रविहरंस्तांस्तां वृत्तांतान्सकलानथ ॥ दृष्टवान्पृष्टवांश्चैवज्ञातवांश्चविसिस्मिये ॥ ७ ॥ तान्परिज्ञातवांश्चासीद्दयाधान्पुल्कसजान्पुनः ॥ विस्मयाकुलयाबुद्ध्याभूयोबभ्रामसंभ्रमी ॥ ८ ॥

अर्थ—पूर्व दक्षिण, और पश्चिमकी महासमुद्रकी सब तटस्थलीमें कौतुकसे ऐसे भ्रमण किया जैसे आकाश मार्गमें सूर्य्य ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर एक स्थानमें चिन्ताके समान सन्मुख स्थित उस महाभयंकर अरण्यानीको ऐसे देखा जैसे परलोककी पृथिवीको ॥ ६ ॥ वह राजा वहांपर विचरते हुये वहांके उन २ पूर्वकालके अनुभूत सम्पूर्ण वृत्तान्तोंको देखा पूंछा और जानकर आश्चर्यितभी हुआ ॥ ७ ॥ वह कौतुकी राजा उन सब चाण्डालोंको पुनः पहिचाना और विस्मयसे व्याकुल बुद्धिसे पुनः भ्रमण करनेलगा ॥ ८ ॥

अथप्राप्यमहाटव्यांपर्यंतेधूमधूसरे ॥ तमेवग्रामकंयस्मिन्सोभवत्पुष्टपुल्कसः ॥ ९ ॥ तत्रापश्यज्जनांस्तांस्तांस्ताः स्त्रियस्ताःकुटीरकाः ॥ नानाकारान्जनाधारांस्तांस्तांश्चवसुधातटान् ॥ १० ॥ तांश्चाकांडपरिभ्रष्टांस्तान्वृक्षांस्तांस्त्वनुव्रजान् ॥ तांस्तथैवसमुद्देशांस्तान्व्याधानेकलान्सुतान् ॥ ११ ॥ अन्यासुवृद्धासुसबाष्पनेत्रास्वार्त्तार्त्तियुक्तासुचवर्णयंती ॥ अकालकांतारविशीर्णबंधुदुःखान्यसंख्यानि सखीषुवृद्धा ॥ १२ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर उस महा जंगलके अन्तमें जो कि धूमधूलि आदिसे मलिनवर्ण होरहाथा वहांपर उसी ग्रामको देखा जहांपर राजा पक्का चाण्डाल होगयाथा ॥ ९ ॥ वहांपर उन पूर्व अनुभूत मनुष्योंको स्त्रियोंको झोपडोंको तथा नानाप्रकारके आकारधारी मनुष्योंको आधारभूत पृथिवीके तटोंकोभी देखा ॥ १० ॥ उन आकस्मिक दुर्भिक्षमें गिरेहुये वृक्षोंको तथा अपने अनुयायिओंको उसी प्रकार उन स्थानों और बन्धुवर्जित व्याधोंको तथा पुत्रोंको देखा ॥ ११ ॥ और अन्धवृद्धाओंके साथ अश्रु पूर्ण नेत्रवाली, वृद्धा इस राजाकी श्वश्रु (सास) अपनी २ विपत्तियुक्त अपनी सखियोंमें कुसमय अकालमें जंगलके दुःखसे छिन्नभिन्न जो बन्धुगण होगयेहैं उनके असंख्य दुःखोंको वर्णन करती हुई ॥ १२ ॥

वृद्धाप्रवृद्धोज्ज्वलनेत्रबाष्पाकष्टंबताशुष्ककुचाकृशांगी ॥ अवग्रहोग्राशनिदग्धदेशेतयार्तनादापरिरोदितीदम् ॥ १३ ॥ हापुत्रिपुत्रावृतसर्वगात्रेदिनत्रयाभोजनजर्जरांगी ॥ कृत्वासिनावर्मणिजीर्णदेहाः कथंक्कमुक्ताभवतासवस्ते ॥ १४ ॥ तालीदलालंबनमंबुदाद्रौदंतांतरस्थारुणसत्फलस्य ॥ स्मरामिगुंजाफलदामभर्तुःपुरस्थसुद्रामरहासिनस्ते ॥ १५ ॥ कदंबजंबीरलवंगगुंजाकुंजांतरंतस्तुचरत्तरक्षोः॥ पश्यामिपुत्रस्यकदानुभूयोभयंकराण्युड्यातिवल्गितानि ॥ १६ ॥

अर्थ—अन्य वृद्धाओंकी अपेक्षा अधिक बढगये हैं उज्वल नेत्र वाष्प (अश्रु) जिसके ऐसी, हा! खेद! शुष्क कुचको धारण किये हुये, अवृष्टिरूप भयंकर वज्रसे जले हुयेके समान उस देशमें आर्तनादसे ऐसी रोदन करती थी ॥ १३ ॥ हा पुत्रि! पुत्रोंसे सम्पूर्ण शरीर जिसका आच्छादितहै और तीन दिनके भोजनके अभावसे कृश शरीर वाली, तथा भोजनके न मिलनेसे जीर्ण है जिसका ऐसे प्राणसे भी प्रिय तुमारे पुत्रोंको अपने कोशमें तलवारके समान प्रवेश करके स्थित राजाने कैसे और कहांपर तुमको त्यागा ॥ १४ ॥ मेघके समान ऊंचे तालवृक्षपर फलको लेकर उतरते समय दोनों हांथोंके फंद जानेसे दांतोंसे धारण कियाहै पक्का उत्तम फल जिसने ऐसे तथा उस समयके उपस्थित वेगसे हनुमानको भी जीतनेवाले और उत्तम गुंजा (घुंघची) को धारण किये तुमारे पति (राजा) का उसी समय दैवयोगसे गिरनेसे दूसरे समीपस्थ तालकी शाखाका अवलम्बन रूप साहस मैं स्मरण करती हूं॥ १५ ॥ और कदम्ब जम्बीर लवंग और गुंजाके मध्यमें विचरते हुये तरक्षु (व्याघ्र जाति विशेष) के वधके लिये पुत्रसे भी प्रिय जामाता रूप पुत्रकी उछके भयंकर गर्जनाओंको पुनः कब सुनूंगी ॥ १६ ॥

नतानिकामस्यविलासिनीहमुखेपिशोभालसितानिसंति ॥ तमालनीलेचिवुकैकदेशेसुतस्यचान्यास्यगतामिषस्य ॥ १७ ॥ सुतापनीतासहतेनभर्त्रायमेनयस्यायमुनासमाना ॥ तमालवल्लीसहपुष्पगुच्छासमीरणेनेववनेवरेण ॥ १८ ॥ हापुत्रिगुंजाफलदामहारेसमुन्नताभोगपयोधरांगी ॥ वातोल्लसत्कज्जललोलवर्णेपर्णाबरेबादरजंबुदंते ॥ १९ ॥ हाराजपुत्रेंदुसमानकांतसंत्यज्यशुद्धांतविलासिनीस्ताः ॥ रतिंप्रयातोसिममात्मजायांनसापितेसुस्थिरतामुपेता ॥ २० ॥

अर्थ—और कदाचित् मद्यपानादिके समयमें अपनी प्रिया (मेरी कन्या) के मुखसे प्राप्त (प्रेममें) मांस भोजी मेरे पुत्र (जामाता) के तमालके तुल्य श्मश्रुओं (दाढी) से नील कपोलके एक देशमें जो सोभाके विलास हैं वे कामदेवके विलासी सम्पूर्ण मुखमें भी नहीं है ॥ १७ ॥ उस उत्तम भर्ताके साथ यमुनाके साथ समान वर्णवाली मेरी पुत्रीको यम (काल) ऐसे लेगया जैसे पुष्प गुच्छाके साथ तमालकी लताको बनमें बलवान् वायु ॥ १८ ॥ गुंजा फलके मालाओंको धारण करनेहारी उच्च और विशाल स्तनयुक्त शरीरवाली, वायुसे शोभायमान कज्जलके तुल्य चंचल वर्णवाली पत्ररूपी चीन (मेही) वस्त्र धारण किये हुये तथा बैरके बीज वा जामुनके सदृश दन्तधारण करनेहारी पुत्रि हा ! ॥१९॥ हा राज पुत्र ! हा चन्द्रमाके समान सुन्दर मेरे जामात ! आप उन शुद्ध अन्तःपुरकी विलाशिनियोंको त्यागकर मेरी कन्या (चाण्डाली) के साथ रतिको प्राप्त हुये. वह भी तुमारी सुस्थिरताको नहीं प्राप्त हुई ॥ २० ॥

संसारनद्याःसुतरंगभंगैःक्रियाविलासैर्विहितोपहासैः ॥ किंनामतच्छंनकृतंनृपेशोयद्योजितःपुष्कसकन्यकायाम् ॥ २१ ॥ सात्रस्तसारंगसमाननेत्रासहप्तशार्दूलसमानवीर्यः ॥ उभौगतावेकपदेननाशमाशासहार्थेनयथामहेहा ॥ २२ ॥ मृतेश्वराभ्रस्तनिजात्मजास्मिदुर्देशयातास्मिचदुर्गतास्मि ॥ दुर्जातिजातास्मिमहापदेस्मिसाक्षाद्भयंभोस्मिमहापदस्मि ॥ २३ ॥ नीचावमानप्रभवस्यमन्योःक्षुधाप्रसन्नस्यकलत्रकस्य ॥ शोकस्यवृत्तावनिवार्यवृत्तेर्नार्यस्म्यनेकायतनंविनाथा ॥ २४ ॥

अर्थ—हास्यके योग्य तरंगोंके समान क्षणभंगुर संसार नदीके क्रिया विलासों (कर्मके परिपाकों) से चाण्डाल की कन्यामें युक्त राजाने कौनसा निन्द्यकर्म नहीं किया ॥ २१ ॥ भयभीत हरिणके समान नेत्रवाली वह मेरी कन्या और सिंहके सदृश पराक्रमी मेरा वह जामाता दोनोंही एक क्षणमें ऐसे नष्ट हुये जैसे धनके साथ महती (बड़ीभारी) अभिलाषा ॥ २२ ॥ हा भगवन् ! मैं इस समय पतिसे रहित, तथा पुत्रीसे रहितहूं अति दुष्ट देशमें उत्पन्न हूं दुर्दशासे ग्रस्त हूं दुष्ट जातिमें उत्पन्न हूं,अतिभयंकर स्थानमें पतित हूं,किंबहुना हे सखियो! अब मैं साक्षात भयरूपही हूं और आपत्ति रूपही हूं ॥ २३ ॥ नाथ रहित मैं, नीचोसे अपमानकी उत्पत्तिके स्थान कोपका तथा क्षुधासे प्राप्त पोष्य वर्गके आहारके अर्थ अनिवारणीय शोक इत्यादि अनेक आपत्तियोंका स्थान मैं स्त्रीरूप विधातासे बनाई गई हूं ॥ २४ ॥

दैवोपतप्तस्यविबांधवस्यमूढस्यरूढस्यमहाधिभूमौ ॥ यत्प्राणनंयन्मरणंमहापदस्यात्मनिजीवितमुत्तमंतत् ॥ २५ ॥ जनैर्विहीनस्यकुदेशवृत्तेर्दुःखान्यनंतानिसमुल्लसंति ॥ सहस्रशाखारससंकुलानितृणानिवर्षास्विवपर्वतस्य ॥ २६ ॥ एवंलपंतींस्वकलत्रवृद्धांदासीभिराश्वस्यनृपःस्त्रियंताम्पप्रच्छकिंवृत्तमिहैवकाचकातेसुताकश्वसुतस्तवेति ॥ २७ ॥ उवाचसाबाष्पविलोचनाथग्रामस्त्वयंपुष्कसघोषनामा ॥ इहाभवत्पुष्कसकःपतिर्मेबभूवतस्येंदुसमासुतैका ॥ २८ ॥

अर्थ—दैवसे मारेहुये बन्धु शून्य मूढ तथा महा मानसी व्यथामें उत्पन्न मेरे सदृश जीवका जैसा जीवन जैसा मरताहै और जैसी आपत्तिहै उससे तो जीव रहित प्रापाण आदि भी उत्तम है ॥ २५ ॥ मनुष्योंसे हीन और दुष्ट देशमें उत्पन्न प्राणीके अनन्त दुःख आके ऐसे उल्हासको प्राप्त होतेहैं जैसे वर्षाकालमें पर्वतमें सहस्रो शाखाओंके रससे व्याप्त तृण ॥ २६ ॥ इसप्रकार विलाप करती हुई अपनी स्त्रीकी माता उस वृद्धा स्त्रीको राजा दासियोंसे धैर्य्य दिलाके पूंछा कि तुमारा यह क्या वृतान्त है और तुम कौन हो और तुह्मारी पुत्री कौन है और वह तुह्मारा पुत्र कौन है ॥ २७ ॥ इसके अनन्तर वह अश्रुसे पूर्ण नेत्रवाली स्त्री बोली कि हे राजन् ! इस ग्रामका नाम है पुष्कसघोष है इसमें पुष्कस नामा मेरा पति उत्पन्न हुआ था और उसके चन्द्रमाके समान शोभायमान एक कन्या उत्पन्न हुई ॥ २८ ॥

सादैवयोगात्पतिमिंदुतुल्यमिहागतंदैववशेनभूपम् ॥ अयंविशीर्णमधुकुंभमापवनेवराकीकरभीयथैका ॥ २९ ॥ सातेनसार्द्धंसुचिरंसुखानिभुक्त्वाप्रसूतातनयाःसुतांश्च ॥ वृद्धिंगताकाननकोटरेस्मिंस्तुंबीलतापादपसंश्रितेव ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूत्पत्तिप्रकरणे भाषानुवादे चंडालीशोचनंनामविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२० ॥

अर्थ—वह कन्या दैवयोगसे यहां आये हुये चन्द्रमाके समान सुन्दर एक राजाको अपना पति इसप्रकार पाया जैसे खुले मुख मधुके घटको बनमें दीन गर्द्ध भी वा उटानी ॥ २९ ॥ उस कन्याने उस राजाके साथ चिरकालतक सुखभोग करके कन्या तथा पुत्रोंको भी उत्पन्न किया और इस बनमें ऐसे वृद्धिको प्राप्त हुये जैसे वृक्षके आश्रयसे तुंबीकी लता ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे चाण्डालीशोचनंनामविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२० ॥

नामैकीशत्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १२१ ॥

उस चाण्डालीके मुखसे उस वृत्तान्तको सुनके विस्मित राजा लवण के गृहमें आनेपर वसिष्ठजीके कथनसे उसका निर्णय राजा लवणके अर्थ तथा रामचन्द्रजीके अर्थ भी इस १२१ के सर्गमें वर्णन किया गया है ॥

॥ चंडाल्युवाच ॥ केनचित्त्वथकालेनग्रामकोस्मिन्जनेश्वर ॥ अवृष्टिदुःखमभवद्दीपणंभग्नमानवम् ॥ १ ॥ महतानेनदुःखेनसर्वेतेग्रामकाजनाः ॥ विनिर्गत्यगतादूरंसर्वेपंचत्वमागताः ॥ २ ॥ तेनेमादुःखभागिन्यःशून्यावयमिहप्रभो ॥ सौम्यशोचामसद्बाष्पमाचांतेक्षणधारया ॥ ३ ॥ इत्याकर्ण्यांगनावक्त्राद्राजाविस्मयमागतः ॥ मंत्रिणांमुखमालोक्यचित्रार्पितइवाभवत् ॥ ४ ॥

अर्थ—चाण्डाली बोली–हे राजन् ! कुछ कालके बीतनेपर इस ग्राममें वृष्टिके न होनेसे, अतिभयंकर और मनुष्योंको नष्ट करनेवाला दुर्भिक्षका दुःख हुआ ॥ १ ॥ इस बड़े भारी दुःखसे इस ग्रामके निवासी सब निकलके दूर चलेगये और मृत्युको प्राप्तहुये ॥ २ ॥ उस दुर्भिक्ष तथा बन्धुओंके मरणसे हे प्रभो ! हम सब अभागिनी शून्य हैं और वहती हुई अश्रुओंकी धारासे शोचती हैं ॥ ३ ॥ उस स्त्रीके मुखसे इस बातको सुनके राजा विस्मयको प्राप्त हुआ और मंत्रियोंके मुखको देखकर चित्र लिखितके समान होगया ॥ ४ ॥

भूयोविचारयामासतदाश्चर्यमनुत्तमम् ॥ भूयोभूयोथपप्रच्छबभूवाश्चर्यवानिति ॥ ५ ॥ तेषांसमुचितैर्दानसन्मानैर्दुःखसंक्षयम् ॥ कृत्वाकरुणयाविष्टोदृष्टलोकपरावरः ॥ ६ ॥ स्थित्वातत्रचिरंकालंविस्मृत्यनियतेर्गतीः ॥ आजगामगृहंपौरैर्वंदितःप्रविवेशह ॥ ७ ॥ प्रातस्तत्रसभास्थानेमामपृच्छदसौनृपः ॥ कथमेवंमुनेस्वप्नःप्रत्यक्षमितिविस्मितः ॥ ८ ॥

अर्थ—उस अपूर्व आश्चर्य्यको पुनः विचारा और वार २ पूंछा और आश्चर्य्यवान् हुआ ॥ ५ ॥ इसलोक और परलोकको देखनेवाला करूणापूर्ण राजाने समुचित दान और सन्मानोंसे उन चाण्डालोंके दुःखका नाश करके ॥ ६ ॥ और वहां चिरकालतक निवास करके तथा दैवकी गतिको विचार करके अपने गृहपर आया और नगर निवासियोंसे वन्दित प्रविष्ट हुआ ॥ ७ ॥ हे रामजी ! प्रातःकाल यह राजा सभास्थानमें विस्मित होके पूंछा कि हे मुने ! यह स्वप्न प्रत्यक्ष मैंने कैसे देखा ॥ ८ ॥

यथावस्तुतयातस्यततउक्तःसताहशः ॥ संशयोत्हृदयान्नुन्नोवातेनेवांबुदोदिवः ॥ ९ ॥ इत्येवंराघवाविद्यामहतीभ्रमदायिनी ॥ असत्सत्तांनयत्याशुसच्चासत्तांनयत्यलम् ॥ १० ॥ श्रीरामउवाच ॥ कथमेवं वदब्रह्मन्स्वप्नःसत्यत्वमागतः ॥ भ्रमोदारईवैपोर्थोनमेगलतिचेतासि ॥ ११ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ सर्वमेतदविद्यायांसंभवत्येवराघव ॥ घटेषुपटतादृष्टास्वप्नसंभ्रमितादिषु ॥ १२ ॥

अर्थ—मैंने उस प्रकारके प्रश्नको यथार्थ रीतिसे समाधान दिया और राजाके हृदयसे संशयको इसप्रकार दूर किया जैसे वायु अन्तरिक्षसे मेघको ॥ ९ ॥ हे रामजी ! इसप्रकार यह अविद्या बडी भ्रम देनेवालीहै यह अति शीघ्र असत्को सत् और सत्को असत् पूर्ण रीतिसे कर देती है ॥ १० ॥ श्रीरामजी बोले—हे ब्रह्मन् ! कृपा करके यह कहिये यह स्वप्न सत्यता (जाग्रत् कालमें अनुभव योग्यता) को कैसे प्राप्त हुआ ? बडे भारी भ्रमके समान यह अर्थ मेरे चित्तमें नहीं समाता यह संशय है ॥११॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! अविद्यामें यह सब कुछ सम्भव है स्वप्न तथा संभ्रम आदिमें घटमें पठता देख पडी है ॥ १२ ॥

दूरंनिकटवद्भातिमुकुरेंतरिवाचलः ॥ चिरंशीघ्रत्वमायातिपुनःश्रेष्ठेवयामिनी ॥ १३ ॥ असंभवश्चभवतिस्वप्नेस्वमरणंयथा ॥ असच्चसदिवाभातिस्वप्नेष्विवनभोगतिः ॥ १४ ॥ सुस्थितंसुष्ठुचलतिभ्रमेभूपरिवर्त्तवत् ॥ अचलंचलतामेतिमदविक्षुब्धचित्तवत् ॥ १५ ॥ वासनावलितंचेतोयद्यथाभावयत्यलम् ॥ तत्तथानुभवत्याशुनतदस्तिनवाप्यसत् ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! दर्पणमें पर्वतके समान दूर भी निकटके समान भान होताहै और पुनः सुखकी निद्राकी रात्रिके तुल्य चिरकाल शीघ्रताको प्राप्त होताहै ॥ १३ ॥ स्वप्नमें अपने मरणके तुल्य असंभव भी इस अविद्यामें होता है, और स्वप्नमें आकाशकी गतिके समान असत् भी सत्के तुल्य भान होताहै ॥ १४ ॥ भ्रमण करनेपर पृथिवीके परिवर्तन (घूमने) के सदृश जो सर्वथा अचलहै वह भली भांति चलताहै और मदसे विक्षुब्ध चित्तके दृश्यके समान अचल भी चंचलताको प्राप्त होताहै ॥ १५ ॥ वासनासे आच्छादित चित्त जिस पदार्थको जैसे पूर्ण रीतिसे भावना करताहै वैसाही उसको शीघ्र अनुभव करताहै चाहे वह सत् हो वा असत् हो ॥ १६ ॥

यदेवाभ्युदिताविद्यात्वहंत्वादिमयीसुधा ॥ तदेवानादिमध्यांताभ्रमस्यानंततोदिता ॥ १७ ॥ प्रतिभासवशादेवसर्वोविपरिवर्त्तते ॥ क्षणःकल्पत्वमायातिकल्पश्चभवतिक्षणः ॥ १८ ॥ विपर्यस्तमतिर्जंतुः पश्यत्यात्मानमेडकम् ॥ बिभर्तिसिंहतामेडोवासनावशतःस्वयम् ॥ १९ ॥ विषमभ्रमदाविद्यामोहाहंतादयःसमाः ॥ सर्वेचित्तविपर्यासफलसंपत्तिहेतुतः ॥ २० ॥

अर्थ—हे रामजी ! यह अहन्ता आदिमयी अविद्या जिसी समय उदयको प्राप्त हुई उसी समय अनादि मध्यान्त भ्रमकी अनन्तता भी उदयको प्राप्त हुई है ॥ १७ ॥ सब पदार्थोंका विपरिणाम प्रतिभासकेही कारण होताहै, इसीसे क्षण कल्पताको और कल्पक्षणताको प्राप्त होताहै ॥१८॥ हे रामजी ! विपरीत मति प्राणी अपनेको मेष देखता और इसी प्रतिभासके वशसे मेष सिंहताको स्वयं धारण करताहै ॥ १९ ॥ भयंकर भयको देनेवाली अविद्या मोह और अहन्ता ये सब समान है और सब चित्तकी विपरीतता रूपफलको सम्पत्तिके हेतु हैं ॥ २० ॥

काकतालीयवच्चेतोवासनावशतःस्वतः ॥ संवदंतिमहारंभाव्यवहाराःपरस्परम् ॥२१॥ वृत्तंप्राक्पकणे राज्ञःकस्यचिल्लवणस्ययत् ॥ प्रतिभातंतदेतस्यसद्वासद्वामनोगतम् ॥ २२ ॥ विस्मरत्यपिविस्तीर्णां कृतांचेतःक्रियांयथा ॥ तथाकृतामप्यकृतामितिस्मरतिनिश्चितम् ॥ २३ ॥ तथानभुक्तवानस्मिभुक्तवानितिचेतसि ॥ स्वप्नेदेशांतरगमेप्राकृतोप्यवबुद्ध्यते ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! काकतालीय न्यायके सदृश चित्तकी वासनाके वशसे स्वयं महान् आरंभवाले व्यवहार परस्पर संवाद करतेहैं अर्थात् एक दूसरेके स्थानमें होजातेहैं ॥ २१ ॥ राजा लवणके मनमें शवरालयका चाण्डाली विवाहादि किसीका वृतान्त भान हुआथा ॥ २२ ॥ जैसे बडी भारी क्रियाको करके भी भूल जाताहै ऐसे विनाकी

हुई तथा कीहुई क्रियाका स्मरण भी करताहै ॥ २३ ॥ उसी प्रकार भोजन करनेपर मैंने भोजन नहीं किया ऐसा स्वप्नमें वा देशान्तर गमनमें प्राकृत प्राणी भी समझताहै ॥ २४ ॥

विंध्यपुष्कसस्तुग्रामेव्यवहारोयमीदृशः ॥ प्रतिभासागतस्तस्यस्वप्नेपूर्वकथायथा ॥ २५ ॥ अथवालवणेनाशुदृष्टोयःस्वप्नविभ्रमः ॥ सएवसंविदंप्राप्तोविंध्यपुष्कसचेतसि ॥ २६ ॥ लावणीप्रतिभारूढाविंध्यपुष्कसचेतसि ॥ विंध्यपुष्कससंविद्वारूढापार्थिवचेतसि ॥ २७ ॥ यथाबहूनांसदृशंवचनंनाममानसम् ॥ तथास्वप्नेपिभवतिकालोदेशःक्रियापिच ॥ २८ ॥

अर्थ—विन्ध्यपर्वतके ग्राममें ऐसा व्यवहार होताहै यह राजाको ऐसे प्रतिभान हुआथा जैसे स्वप्नमें पूर्वकी कथा ॥ २५ ॥ अथवा लवण राजानें जो कुछ स्वप्नका भ्रम देखाथा वहीं विन्ध्यपर्वतके चाण्डालके चित्तमें स्फुरित हुआथा ॥ २६ ॥ लवणकी प्रतिभा विन्ध्याचलके चाण्डालके हृदयमें रूढहुईथी वा विन्ध्यपर्वतके चाण्डालकी प्रतिभा राजाके हृदयमें रूढहुईथी ॥ २७ ॥ जैसे समस्याकी पूर्ति आदिमें बहुत कवियोंके मानसबचन समान होतेहैं ऐसेही स्वप्नमें भी देशकाल और क्रियाभी समान होतीहैं ॥ २८ ॥

व्यवहारगतेस्तस्याःसत्तास्तिप्रतिभासतः ॥ सत्तासर्वपदार्थानांनान्यासंवेदनादृते ॥ २९ ॥ सवेदनेतराभातिवीचिर्वाजलसंगतिः ॥ भूतभव्यभविष्यस्थातरुर्बीजेतरुर्यथा ॥ ३० ॥ तस्याःसत्त्वमसत्त्वंचनसन्नासदितिस्थितम् ॥ सत्सदेवेहसंवित्तेरसंवित्तेरसन्मयम् ॥ ३१ ॥ नाविद्याविद्यतेकिंचित्तैलादिसिकतास्विव ॥ हेम्नःकिंकटकादन्यत्पदंस्याद्धेमतांविना ॥ ३२ ॥

अर्थ—व्यवहार दशाकी सत्ताभी चेतनके प्रतिभासकेही कारण होती है क्योंकि सम्पूर्ण पदार्थोंकी सत्ता अधिष्ठान चिद् सत्ताकी स्फुरणाहीसे होती है ॥ २९ ॥ हे रामजी ! अधिष्ठान चेतनकी स्फुरण सत्ताही भूत वर्तमान तथा भविष्य प्रपंचमें व्याप्त होके उससे भिन्न ऐसे भासतीहै जैसे जलमें तरंग वा बीजमें वृक्ष ॥ ३० ॥ अधिष्ठान सत्तासे पृथक् जो पदार्थोंकी सत्ता भासतीहै वह सत् असत् दोनों पदार्थमें नहीं है क्योंकि श्रुतिमें यह स्थित है कि "नासदासीन्नोसदासीत्" (न यह जगत् सत् और न असत् था) सत् दृष्टिसे सत् और पृथक् दृष्टिसे असन्मय है ॥ ३१ ॥ यथार्थमें अविद्या कुछभी नहीं है जैसे रेतादिमें तैल आदि क्योंकि कटकगत जो सुवर्ण है उसकी सुवर्णताको छोड और क्या वस्तु होसकती है ॥ ३२ ॥

अविद्ययात्मतत्त्वस्यसंबंधोनोपपद्यते ॥ संबंधःसदृशानांचयःस्फुटःस्वानुभूतितः ॥ ३३ ॥ जतुकाष्ठादिसंबंधोयःसमासमयोगतः ॥ नान्योन्यानुभवायासौतदेकस्पंदमात्रकम् ॥ ३४ ॥ परमार्थमयंसर्वंयथातेनोपलादयः ॥ चितासमभिचेत्यंतेसंबंधवशतःसमाः ॥ ३५ ॥ यदाचिन्मात्रसन्मात्रमयाःसर्वेजगद्गताः ॥ भावास्तदाविभांत्येतेमिथःस्वानुभवस्थितेः ॥ ३६ ॥

अर्थ—यदि अविद्या चेतनके सम्बन्धसे वस्तु सत्ता कहो सोभी नहीं क्योंकि अविद्या तथा आत्मतत्वका सम्बन्ध नहीं होसकता, क्योंकि अपने अनुभवसे यह प्रसिद्ध है कि सम्बन्ध सदृशोंकाही होताहै ॥ ३३ ॥ और लाख तथा काष्ठका सम्बन्ध तुल्य और अतुल्य (असदृशों) के योगसे होताहै यह परस्पर उदाहरणके योग्य नहीं है, क्योंकि वे दोनों (द्रवशील लाख और अद्रवकाष्ठ) एक अविद्यामात्रके विलास हैं इसलिये दोनों समान हैं ॥ ३४ ॥ जिसप्रकार ये सब पदार्थ परमार्थ चेतनमय हैं इसीसे सदृश सम्बन्ध चित्से सब प्रकाशित होतेहैं ॥ ३५ ॥ और जब सत् और चिन्मात्र जगत्के पदार्थ है तबभी अपनी स्वप्रकाशताहीके बलसे सब प्रकाशित होतेहैं न कि अन्य चेतनसे क्योंकि दीपको प्रकाशित करनेको अन्य दीपकी अपेक्षा नहीं है ॥ ३६ ॥

नसंभवतिसंबंधोविषमाणांनिरंतरः ॥ नपरस्परसंबंधाद्विनानुभवनंमिथः ॥ ३७ ॥ सदृशेसंदृशवस्तुक्षणाद्रत्वैकतामलम् ॥ रूपमास्फारयत्येकमेकत्वादेवनान्यथा ॥ ३८ ॥ चिच्चेत्यमिलिताद्दृश्यरूपयोदेतिचेतनः ॥ नचचिज्जडयोरैक्यंवैलक्षण्यात्क्वचिद्भवेत ॥ ३९ ॥ चिज्जडौचित्रएकत्रनतौसंमिलतः क्वचित् ॥ चिन्मयत्वाच्चिदालंभश्चिदालंभेनवेदनम् ॥ ४० ॥

अर्थ—असदृशोंका निरन्तर सम्बन्ध कदाचित् नहीं होता और परस्पर सम्बन्धके विना परस्पर अनुभव भी नहीं होता ॥ ३७ ॥ सदृश परमात्मस्वरूपमें सदृश जगत् वस्तु क्षणमें सर्वथा एकताको प्राप्त होके एकताहीके कारण अपना रूप विस्तृत करताहै अन्यथा नहीं ॥ ३८ ॥ और जो मूढोंकी दृष्टिमें चिद् चेतन चेत्य (विषय) और चेतयिता अर्थात् दर्शन दृश्य और द्रष्टा इस त्रिपुटी रूपसे उदय होताहै वह चिद् और जडके अभेद स-

म्वन्धसे नहीं कहसकते और केवल जडके सम्वन्धसेभी नहीं कहसकते क्योंकि जड जडके साथ मिलेगा तो अधिक जड होजायगा, और चित् तथा जडकी एकता तो विलक्षणतासे होही नहीं सकती ॥ ३९ ॥ और त्रिपुटी रूप पटीके चित्रमें चित् जड दोनों भेद सम्वन्धसेभी कहीं नहीं मिलसकते, और सब चिन्मयोंका चित्के संवन्ध होनेसे केवल चेतनकी उपलब्धी होनेसे दृश्यका भान नहीं होसकता ॥ ४० ॥

दारुपाषाणभेदानांनवृद्येतेचिदात्मकाः ॥ पदार्थोंहिपदार्थेनपरिणाम्यनुभूयते ॥ ४१ ॥ जिह्वयैवरस्वादःसजातीयामलोदयः ॥ ऐक्यंचविद्धिसंबंधंनास्त्यसावसमानयोः ॥ ४२ ॥ जडचेतनयोस्तेननोपलादिजडंमतम् ॥ चिदेवोपलकुड्यादिरूपिणीतिमिताचिता ॥ ४३ ॥ एकीभावंगताद्रष्टृदृश्यादिकुरुते भ्रमम् ॥ काष्ठोपलाद्यशेषंहिपरमार्थमयंयतः ॥ ४४ ॥

अर्थ—और दारू (काष्ठ) और पाषाण आदि जो भिन्न पदार्थ गृहादिकी रचनामें युक्त प्रतीत होतेहैं ये चिदात्मक नहीं हैं क्योंकि सब एक मायाके विलास मात्र पदार्थ दूसरे पदार्थरूपी परिणामी अनुभूत होतेहैं और चेतन परिणामी नहीं है ॥ ४१ ॥ और जिव्हासे जो भिन्न (जिव्हासे) पदार्थोंके रसके आस्वाद होताहै वह निर्मल सजातीय पदार्थोंकाही प्रसिद्ध उदय है क्यों कदाचित् सदृश पदार्थोंकाही ऐक्य सम्बन्ध तुम जानो न कि असदृश जड चेतन पदार्थोंका ॥ ४२ ॥ इसलिये पाषाण आदि जड नहीं हैं किन्तु चेतनही पाषाण भित्ति आदि रूप धारण कर्ता है इसलिये सत् चेतनही ॥ ४३ ॥ एकीभावको प्राप्त द्रष्टा तथा दृश्य आदिका भ्रम करताहै क्योंकि काष्ठ पाषाण आदि सम्पूर्ण परमार्थ चेतनमयहै ॥ ४४ ॥

तदात्मनातत्संबंधंदृश्यत्वेनोपलभ्यते ॥ सर्वंसर्वप्रकाराढ्यमनंतमिवयत्नतः ॥ ४५ ॥ विश्वंसन्मात्रमेवैतद्विद्धितत्त्वविदांवर ॥ असत्तात्यागनिष्ठेनविश्वंलक्षशतभ्रमैः ॥ ४६ ॥ पूरितंचिच्चमत्कारेणच किंचनपूरितम् ॥ संकल्पनागरानृणांमिथःस्पंदंतिनोयथा ॥ ४७ ॥ नदेशकालरोधायतथासर्गेष्वितिस्थितिः ॥ भेदबोधेहिसर्गत्वमहंत्वादिभ्रमोदयः ॥ ४८ ॥

अर्थ—और जिदात्मकरूपसे चिदात्मककाही सम्बन्ध कल्पित दृश्यरूपसे उपलब्ध होताहै, अर्थात् काष्ठ पाषाणादिका कल्पित नकि वास्तव चित्रूपसे क्योंकि अनन्त ब्रह्म सब प्रकारसे परिपूर्ण सर्व रूपके समान भान होताहै ॥ ४५ ॥ इसलिये हे तत्वज्ञानियोंमें श्रेष्ठ रामजी ! तुम सम्पूर्ण विश्वको सन्मात्रही जानो, और मिथ्यात्वके ग्रहणरूप चित् चमत्कारसे लाखों सैकडों भ्रमोंसे विश्व पूर्ण है ॥ ४६ ॥ और वह चित् चमत्कार यथार्थसे किसीसे पूरित नहीं है, और मनुष्योंके संकल्पके नगरनिवासी देशकालके अवरोधके लिये जैसे परस्पर चेष्टा नहीं करते॥४७॥यही व्यवस्था तुम जानो, और भेदकेही ज्ञानसे इस सृष्टि तथा अहन्ता आदि भ्रमका उदय होताहै॥४८॥

हेमसंवित्परित्यागेकटकादिभ्रमोयथा ॥ कटकादिभ्रमोहेम्निदेशाद्देशंभवाद्भवम् ॥ ४९ ॥ दृग्दर्शनपरित्यागेनाविद्यास्तिपृथक्सदा ॥ कटकादिमहाभेदमेकंहेमयथामलम् ॥ ५० ॥ बोधैकत्वादयंसर्गस्तदेवासत्त्रयत्यलम् ॥ सेनामृत्संविदाचित्रामृन्मात्रमिवमृन्मयी ॥ ५१ ॥ जलमेकंतरंगादिदावेकंशालभंजिका ॥ मृन्मात्रमेकंकुंभादिब्रह्मैकंत्रिजगद्भ्रमः ॥ ५२ ॥

अर्थ—जैसे सुवर्णके ज्ञानके त्यागमें कटक आदिका भ्रम होताहै, क्योंकि कटकादिके भ्रमको सुवर्णकेही देशसे देश और उसीकी उत्पत्तिसे उसकी उत्पत्तिकी सत्ता प्राप्त होती है ॥ ४९ ॥ दृग्दर्शन शक्तिकी सत्ताके परित्यागसे अविद्याकी पृथक् सत्ता ऐसे कहीं नहीं है जैसे कटक आदि महाभेद एक निर्म्मल सुवर्णको छोडके कहीं नहीं है ॥ ५० ॥ बोध व्यक्तिकी एकतासेही यह सम सत्स्वरूप विश्व असत् वा असत् विश्वको सतस्वरूपके साथ एकरसताको प्राप्त करताहै जैसे चित्रगत मृत्तिकाकी सेना चित्राविचित्र रूपसे भान होनेपरभी विचार दृष्टिसे मृत्तिकामयी है ऐसेही यह जगत् परम तत्वमय है ॥ ५१ ॥ हे रामजी ! तरंग आदि सब जल हैं और काष्ठकी पुत्तलिकादि सब एक काष्ठहै तथा घट आदि सब मृन्मात्र हैं, इसी प्रकार तीनों जगत्का भ्रम ब्रह्ममात्र हैं ॥ ५२ ॥

संबंधेदृश्यदृष्टीनांमध्येद्रष्टुर्हियद्वपुः ॥ द्रष्टृदर्शनदृश्यादिवर्जितंतादिदंपरम् ॥ ५३ ॥ देशाद्देशंगतेचित्तेमध्येयच्चेतसोवपुः ॥ अजाड्यसंविन्मननंतन्मयोभवसर्वदा ॥ ५४ ॥ अजाग्रत्स्वप्ननिद्रस्ययत्तेरूपंसनातनम् ॥ अचेतनंचाजडंचतन्मयोभवसर्वदा ॥ ५५ ॥ जडतांवर्जयित्वैकांशिलायाहृदयंहितत् ॥ अक्षुब्धोवाथवाक्षुब्धस्तन्मयोभवसर्वदा ॥ ५६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! दृश्य दृष्टियोंके सम्वन्धमें द्रष्टा दर्शन तथा दृश्यादिसे वर्जित जो द्रष्टाका शुद्धरूप है वही सब त्रिपुटीमें व्याप्त परब्रह्म है ॥ ५३ ॥ चित्तके एक देशसे दूसरे देशमें जानेपर मध्यमें जो जडताकी स्फुरणासे

रहित चित्तका जो स्वरूप (शुद्ध चेतन) तन्मय तुम सर्वदा होओ ॥ ५४ ॥ जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्तिसे रहित तथा चित्तकी वृत्तिही शून्य शुद्ध चिन्मात्र तुमारा रूप है तन्मय तुम सर्वदा होओ ॥ ५५ ॥ एक जडताको छोडके चिद्-घनमात्र तुमारा स्वरूप है चाहो समाधिस्थ हो वा व्यवहार करतेहो तन्मय तुम सर्वदा होओ ॥ ५६ ॥

कस्यचित्किंचनापीहनोदेतिनविलीयते ॥ अक्षुब्धोवाथवाक्षुब्धःस्वस्थस्तिष्ठयथासुखम् ॥ ५७ ॥ नाभिवांछतिनोद्वेष्टिदेहेकिंचित्कचित्पुमान् ॥ स्वस्थस्तिष्ठनिराशंकंदेहवृत्तिषुमापत ॥ ५८॥ भविष्यद्ग्रामग्राम्यकार्येव्यवसितोयथा ॥ चित्तवृत्तिपुमातिष्ठतथासत्यात्मतांगतः ॥ ५९ ॥ यथादेशांतरनरो यथाकाष्ठंयथोपलः ॥ तथैवपश्यचित्तंत्वमचित्तैवयदात्मना ॥ ६० ॥

अर्थ—इस संसारमें किसीका कुछ नहीं लीन (नष्ट) होताहै इसलिये तुम समाधिस्थ हो वा व्यवहार करते हो स्वस्थ तथा सुख स्थित रहो ॥ ५७ ॥ आत्मा शरीरमें न कुछ चाहताहै और न उससे द्वेष करताहै इसलिये तुम आशंकासे शून्य स्वस्थ स्थित रहो और नश्वर(देह) आदिकी वृत्तियोंमें मतागिरो ॥५८॥ जैसे भविष्य (होनेवाले) ग्रामके व्यवहारमें आसक्ति रहितहो इसीप्रकार सत्य आत्मस्वरूपमें निष्ट वर्तमानकालकी चित्तकी वृत्तियोंमें रहो अर्थात् सर्वत्र आत्मदृष्टि देखो ॥ ५९ ॥ जैसे देशान्तरमें प्राप्त मनुष्य असत्के तुल्य है, अथवा जैसे काष्ट वा पाषाण चेतन रहित है ऐसेही तुम चित्तकोभी देखो, क्योंकि आत्मस्वरूपसे विवेक करके देखनेसे अचित्तताही विद्वानोंके अनुभव सिद्धहै ॥ ६० ॥

यथादृषदिनास्त्यंबुयथांभस्यनलस्तथा ॥ स्वात्मन्येवास्तिनोचित्तंपरमात्मनितत्कुतः ॥ ६१ ॥ प्रेक्ष्यमाणंनयत्किंचित्तेनयत्क्रियतेकचित् ॥ कृतंभवतितन्नेतितस्त्वंचित्तातिगोभवेत् ॥ ६२ ॥ अत्यंतानात्मभूतस्ययश्चितस्यानुवर्त्तते ॥ पर्यंतवासिनःकस्मान्म्लेच्छस्यानुवर्तते ॥ ६३ ॥ निरंतरमनादृत्यत्वमाराच्चितपुष्कसम् ॥ स्वस्थमास्वनिराशंकंपंकेनेवकृतोजडः ॥ ६४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जैसे पाषाणमें जल नहीं है और जलमें अग्नि नहीं है ऐसेही जब जीवात्मामेंही चित्त नहीं तो परमात्मामें कहांसे होसकताहै ॥ ६१ ॥ यदि विचारदृष्टिसे देखियेतो चित्त कुछभी नहीं है तो उस चित्तसे किया हुवाभी कार्य्य अकृतके तुल्यहै, इसलिये तुम चित्तसे परे होओ ॥ ६२ ॥ अत्यन्त अनात्म भूत चित्तकी भृतिका अनुवर्तन जो करतेहैं तो अन्य प्रत्यन्त देशवासी म्लेच्छोंका अनुकरण क्यों नहीं करते क्योंकि नेत्यापूमानं मृत्युमन्ववायानीति " मरके पापी म्लेच्छादिका जन्म हमारा नहो " इस श्रुतिसे म्लेच्छादिका अनुकरण वा जन्म निषिद्ध है ॥ ६३ ॥ हे रामजी ! निरन्तर चित्तरूपी चाण्डालका दूरसेही निरादर करके मृत्तिकासे निर्मित प्रतिमाके समान अचल आशंका रहित स्वस्थ स्थित रहो ॥ ६४ ॥

चित्तंनास्त्येवमेभूतंमृतमेवाथवेत्तिवा ॥ भवनिश्चयवान्भूत्वाशिलापुरुषनिश्चलः ॥ ६५ ॥ प्रेक्षायामस्तिनोचित्तंतद्विहीनोसितत्त्वतः ॥ सकिमर्थमनर्थेनतद्व्यर्थेनकदर्थ्यसे ॥ ६६ ॥ असताचित्तयक्षेणयेमुधास्ववशेकृताः ॥ तेषांपेलवबुद्धीनांचंद्राद्वशनिरुत्थितः ॥ ६७॥ चित्तंदूरेपरित्यज्ययोसिसोसिस्थिरोभव ॥ भवभावनयासुक्तोयुक्त्यापरमयान्वितः ॥ ६८ ॥ असतोयेनुवर्तंतेचेतसोसत्यरूपिणः ॥ व्योममारणकर्मैककर्मैकनीतकालान्धिगस्तुतान् ॥ ६९ ॥ व्यपगलितमनामहानुभावोभवभवपारगतोभवामलात्मा ॥ सुचिरमपिविचारितंनलब्धंमलममलात्मनिमानसात्मकिंचित् ॥ ७० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूत्पत्तिप्रकरणे चित्ताभावप्रतिपादनंनामैकविंशत्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १२१ ॥

अर्थ—हे रामजी ! यथार्थमें चित्त नहीं है अथवा मिथ्याभूतही यह देखताहै इसलिये तुम निश्चय करके शिलापुरुषके समान निश्चल रहो ॥ ६५ ॥ आत्मदृष्टिसे वा चित्तदृष्टिसे चित्त नहीं है यथार्थमें तुम चित्त रहितहो इसलिये तुम अनर्थदायी ऐसे व्यर्थ चित्तके साथ क्यों दुःखी होतेहैं ॥ ६६ ॥ हे रामजी ! असत् चित्त यक्षसे जो व्यर्थ वशमें करालिये गयेहैं उन सुकुमार बुद्धियोंके लिये चन्द्रमासेभी वज्र निकलाहै ॥ ६७ ॥ हे रामजी ! इसलिये चित्तको दूरसेही परित्याग करके तुम जो हो सोही हो और वैसेही स्थिर रहो, इसलिये तुम मननरूपी उत्तम युक्तिसे तथा ध्यानसे युक्त रहो ॥ ६८ ॥ हे रामजी ! असत्य चित्तकी जो अनुवृत्ति करतेहैं उन आकाशके मारनेमें तत्पर मूर्खोंको धिक्कार है ॥ ६९ ॥ हे रामजी ! प्रथम महानुभाव अर्थात् तत्ववोधमें कुशल होके अपगलितमन

होओ, और उसके अनन्तर तत्वबोधसे अमलात्मा होके संसारसे पार होजाओ हे रामजी! मैंने चित्ततत्वके लाभार्थ बहुत विचारा परन्तु अमलात्मामें मानसरूपी मल कहीं कुछ नहीं पाया इसलिये मेरे वाक्यसेभी तुम स्थिर होओ७०

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूत्पत्तिप्रकरणे भाषाऽनुवादे चित्ताभाव प्रतिपादनं नामैकविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२१ ॥

द्वाविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२२ ॥

इस १२२ के सर्गमें ज्ञानभूमिकाओंके उदयका क्रम और उससे रामचन्द्रजीका शोक मोहादिके निराशसे ज्ञानका उदय वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ प्रथमंजातमात्रेणपुंसाकिंचिद्विकसितबुद्धिनैवंसत्संगमपरेणभवितव्यम् ॥ १ ॥ अनवरतप्रवाहपतितोयमविद्यानदीनिवहःशास्त्रसज्जनसंपर्कादृतेनतरितुंशक्यते ॥ २ ॥ तेनविवेकतः पुरुषस्यहेयोपादेयविचारउदजायते ॥३॥ तदासौशुभेच्छाभिधांविवेकभुवमापतितोभवति ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी! प्रथम पुरुषको उत्पन्न होनेके अनन्तर किंचित् बुद्धिका विकास होनेपर सत्संगमें तत्पर होना चाहिये ॥ १ ॥ निरन्तर प्रवाहरूपसे गिरता हुआ यह अविद्यारूपी नदीका समूह शास्त्र और सज्जनके समागमके विना पार होनेके अयोग्य है ॥ २ ॥ और शास्त्र और सज्जनके समागमसे त्याज्य और ग्राह्य वस्तुका बिचार उत्पन्न होताहै ॥ ३ ॥ तब यह पुरुष शुभेच्छानाम भूमिकामें प्राप्त होताहै ॥ ४ ॥

ततोविवेकवशतोविचारणायाम् ॥ ५ ॥ सम्यग्ज्ञानेनासम्यग्वासनांत्यजतःसंसारभावनातोमनस्तनुतामेति ॥ ६ ॥ तेनतनुमानसानामविवेकभूमिमवतीर्णोभवति ॥ ७ ॥ यदैवयोगिनःसम्यग्ज्ञानोदयस्तदैवसत्वापत्तिः ॥ ८ ॥

अर्थ—उससे विवेक द्वारा विचारणा नाम भूमिकामें प्राप्त होताहै ॥ ५ ॥ सम्यक् ज्ञानसे नीच वासनाको त्याग करते हुये पुरुषकी भावनासे मनकी तनुता (सूक्ष्मता) होती है ॥ ६ ॥ उस मनकी सूक्ष्मतासे तनुमानसानाम विवेक भूमिमें पुरुष उतरताहै ॥ ७ ॥ जिस समय योगीको सम्यक् ज्ञानका उदय होताहै उसी समय सत्वापति नाम चतुर्थ भूमिकामें प्राप्त होताहै ॥ ८ ॥

तद्वशाद्वासनातनुतांगतायदातदैवासावसंसक्तइत्युच्यतेकर्मफलेननबद्धयतइति ॥ ९ ॥ अथतानववशादसत्येभावनातानवमभ्यस्यति ॥ १० ॥ यावन्नकुर्वन्नपिव्यवहरन्नप्यसत्येषुसंसारवस्तुषुस्थितोपिस्वात्मन्यक्षीणमनस्त्वादभ्यासवशाद्बाह्यंवस्तुकुर्वन्नपिनपश्यतिनालंबनेनसेवतेनाभिध्यायतितनुवासनत्वाच्चकेवलंमूढःसुप्तप्रबुद्धइवकर्त्तव्यंकरोति ॥ ११ ॥ तनुभावितमनस्कस्तेनयोगभूमिकांभावनामधिरूढः ॥ १२ ॥

अर्थ—उसके वशसे जब वासना सूक्ष्मताको प्राप्त होती है उससमय योगी असंसक्त कहलाता अर्थात् असंसक्ति नाम भूमिकामें प्राप्त होनेसे वह कर्मोंके फलोंके बन्धनमें नहीं आता ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर वासनाकी सूक्ष्मताके वशसे असत्य बाह्य पदार्थोंमें सूक्ष्मताका अभ्यास करताहै अर्थात् अन्तर्मुख वृत्तिसे ब्रह्ममें अहंभावका अभ्यास और बाह्य पदार्थकी विस्मृति होती है ॥ १० ॥ उस समय अभ्यास करताहै जबतक समाधिस्थभी संसारका व्यवहार करता हुआभी, और असत्य संसारके पदार्थ स्त्रीपुत्रादिमें स्थितभी, आत्मामें मनकी क्षीणताके वशसे तथा ब्रह्माहंभावके अभ्याससे बाह्य स्नान भोजनादि क्रियाओंको कर्ता हुआभी उस व्यवहारको यथार्थ रूपसे नहीं देखता और उन व्यवहारोंको रुचिसे नहीं करता, और उनका स्मरण नहीं करता, वासनाके न्यून होनेसे केवल बालकके समान अथवा शयनके उत्तर कालमें जो दशा तत्काल पुरुषकी होती है उसके समान दूसरोंकी प्रेरणासे स्नानभोजनादि कर्तव्य कर्म करताहै ॥ ११ ॥ उस समय सूक्ष्म ब्रह्मकेसाथ चित्ताको एकरस करनेवाला योगी पूर्वोक्त लक्षणोंसे युक्त होनेसे पदार्थाभावनी नाम छठी भूमिकामें आरूढ होताहै ॥ १२ ॥

इत्यंतर्लीनचित्तःकतिचित्संवत्सरानभ्यस्यसर्वथैवकुर्वन्नपिबाह्यपदार्थान्भावनांत्यजतितुर्यात्माभवति ततोजीवन्मुक्तइत्युच्यते ॥ १३ ॥ नाभिनंदतिसंप्राप्तंनाप्राप्तमभिशोचति ॥ केवलंविगताशंकंसंप्राप्तम

नुवर्तते ॥ १४ ॥ त्वयापिराघवज्ञातंज्ञातव्यमखिलांतरम् ॥ ननुतेसर्वकार्येभ्योवासनातनुतांगता॥१५
शरीरातीतवृत्तिस्त्वंशरीरस्थोऽथवाभव ॥ मागाःशोकंचहर्षंत्वंत्वमात्माविगतामयः ॥ १६ ॥

अर्थ—इस उक्त रीतिसे बाह्य पदार्थोंकी भावनान करनेसे ब्रह्ममें अन्तर्लीन चित्त होके कुछ वर्षपर्य्यन्त अभ्यास करके अन्यकी इच्छासे बाह्य स्नानभोजनादि क्रियाओंको करता हुआभी सर्वथा उनकी भावनाको त्याग देताहै उस समय तुर्य्यात्मा स्वयं होजाताहै, और उसी समय वह योगी जीवन्मुक्त कहाताहै ॥ १३ ॥ उस सकल तुर्य्यगानाम सप्तभूमिकामें प्राप्त योगी, अभिलषित पदार्थके प्राप्त होनेसे न तो प्रसन्न होताहै, और उसकी अप्राप्तिसे शोचभी नहीं करता, किन्तु प्रारब्ध कर्मके अनुसार जो कुछ मिलजाताहै उसीका अनुवर्तन शंका रहित होके करताहै ॥ १४ ॥ हे रामचन्द्रजी ! तुमनेभी अत्यन्त चित्तकी शुद्धतासे अपने विचारसेही समस्त ज्ञात (अर्थात् प्रत्यक् चेतन) को जानलिया क्योंकि सम्पूर्ण संसारी काय्योंसे तुमारी बुद्धि सूक्ष्म होगई है ॥ १५ ॥ हे रामजी ! तुम सदा समाधिस्थ हो वा लोकके संग्रहार्थ व्यवहार करो परन्तु सर्व उपद्रव रहित चिदात्मारूप तुम हर्ष और शोकको न प्राप्त होओ ॥ १६ ॥

त्वय्यात्मनिसितेस्वच्छेसर्वगेसर्वदोदिते ॥ कुतोदुःखसुखेरामकुतोमरणजन्मनी ॥ १७ ॥ अबंधुरपि कस्मात्त्वंबंधुदुःखानिशोचसि ॥ अद्वितीयेस्थितेह्यस्मिन्बांधवाःकइवात्मनि ॥ १८ ॥ दृश्यतेकेवले देहेपरमाणुचयःपरम् ॥ देशकालान्यतापत्तेर्नात्मोदेतिनलीयते ॥ १९ ॥ अविनाशोपिकस्मात्त्वंविन इयामीतिशोचसि ॥ अमृत्युवसतौस्वच्छेविनाशःकइवात्मनि ॥ २० ॥

अर्थ—स्वयं प्रकाशमान, निर्मल सर्वव्यापी, और सर्वदा उदयको प्राप्त आत्मस्वरूप तुममें यह दुःख तथा वैषयिक सुख कहां ? और कहां जीवन और मरण ॥ १७ ॥ यदि यह कहो कि ज्ञानसे निज जन्म मरणादिके दुःखोंके अभाव होनेपरभी बन्धुसंगका शोकादि कैसे जीताजाय सो भी नहीं क्योंकि शुद्धात्मा बन्धुरहितभी होके तुम बन्धुओंके दुःखोंको क्यों शोचतेहो, क्योंकि अद्वितीय इस परमात्माके बान्धव कैसे ? ॥ १८ ॥ बन्धुके देह और आत्मा दोनों शोचके अयोग्य हैं, क्योंकि देह तो पृथ्वी आदि भूतोंके परमाणु समूहरूप देख पडताहै क्योंकि वह देशकालके भेदसे अन्य स्वरूपमें परिवर्तित होजाताहै और आत्माका तो न उदय होताहै न लय होताहै ॥ १९ ॥ अविनाशीभी होकर मैं नष्ट होऊंगा ऐसा शोच तुम क्यों करतेहो, क्योंकि मृत्युके निवास शून्य आत्मामें विनाश कैसा ? ॥ २० ॥

घटेकपालतांयातेघटाकाशोननश्यति ॥ यथातथाशरीरेस्मिन्नष्टेपिनविनश्यति ॥ २१ ॥ मृगतृष्णातरंगिण्यांक्षीणायामातपोयथा ॥ ननश्यतितथादेहेनष्टेनात्माविनश्यति ॥ २२ ॥ वांछैवोदेतितेकस्माद्भ्रांतिरंतर्निरर्थिका ॥ अद्वितीयोद्वितीयंकियद्वस्त्वात्माभिवांछतु ॥ २३ ॥ श्राव्यंस्पृश्यंतथादृश्यंरस्यंघ्रेयं चराघव ॥ नकिंचिदस्तिजगतिव्यतिरिक्तंयदात्मनः ॥ २४ ॥

अर्थ—जैसे घटके दो टुकडे होजानेपरभी घटाकाश नष्ट नहीं होता इसी प्रकार इस शरीरके नष्ट होनेपरभी आत्मा नष्ट नहीं होता ॥ २१ ॥ जैसे मृगतृष्णाकी नदीके नष्ट होनेपरभी आतप (घाम) नष्ट नहीं होता इसी प्रकार देहके नष्ट होनेपरभी आत्मा नष्ट नहीं होता ॥ २२ ॥ हे रामजी ! निरर्थक भ्रान्तिरूप पदार्थोंकी अभिलाषाही तुमारेमें क्यों उत्पन्न होतीहै क्योंकि जब सर्व वस्तुरूप आत्माही है तब द्वितीय वस्तु कौन है जिसके लिये आत्मा अभिलाषा करै ॥ २३ ॥ हे राघव ! श्रवण, स्पर्शन, दर्शन रसन (आस्वादन,) तथा घ्राण करनेके योग्य कोईभी वस्तु इस जगत्में आत्मासे पृथक् नहीं है ॥ २४ ॥

सर्वशक्ताविमास्तस्मिन्नात्मन्येवाखिलाःस्थिताः ॥ शक्तयोविततेव्यक्तेआकाशइवशून्यता ॥ चित्ताद्राघवरूढेयंत्रिलोकीललनोदिता ॥ त्रिविधेनक्रमेणेहजन्मनाजनितभ्रमा ॥ २६ ॥ मनःक्षयद्वेवासनाक्षयनामनि ॥ कर्मक्षयाभिधानैवमायेयंप्रविनश्यति ॥ २७ ॥ संसारोग्रारघट्टेस्मिन्रूढायंत्रवेहिनी ॥ रज्जुस्तांवासनामेतांछिधिराघवयत्नतः ॥ २८ ॥

अर्थ—क्योंकि सर्वशक्तिमान्, व्यापक और प्रसिद्ध उस परमात्मामें ये श्रवणादि सम्पूर्ण शक्ति ऐसे स्थित है जैसे आकाशमें शून्यता ॥ २५ ॥ हे रामजी ! सात्विक राजस और तामस इस तीन प्रकारके जन्मसे भ्रम उत्पन्न करानेवाली यह पूर्वोक्त त्रिलोकीरूप ललना (स्त्री) चित्तसेही उत्पन्न हुई है ॥ २६ ॥ वासनाका क्षय दूसरा नाम है जिसका ऐसे मनके प्रशमन (शान्ति) सिद्ध होनेपर कर्मके निवास स्थान नामवाली यह माया स्वयं नष्ट होजाती है ॥ २७ ॥ संसाररूपी आरघट्ट (आटापीसनेके यंत्र) के अधोभागकी शिलाके मध्य शंकु (मेष) में बन्धी हुई इसीसे उस पेषणयंत्रको अर्थात् चक्कीको चलानेमें यह वासनारूपा रज्जु (रस्सी) है इसका छेदन आप यत्नसे करो२८

अपरिज्ञायमानैषामहामोहप्रदायिनी ॥ परिज्ञातात्वनंताख्यासुखदाब्रह्मदायिनी ॥ २९ ॥ आगताब्रह्मणोभुक्त्वासंसारमिहलीलया ॥ पुनर्ब्रह्मैवसंस्मृत्यब्रह्मण्येवविलीयते ॥ ३० ॥ शिवादाद्यवनीरूपादप्रमेयान्निरामयात् ॥ सर्वभूतानिजातानिप्रकाशाइवतेजसः ॥३१॥ रेखावृंदंयथापर्णेवीचिजालंयथाजले ॥ कटकादियथाहेम्नितथोष्णादियथानले ॥ ३२ ॥ तदेतद्भावनारूपेतथेदंभुवनत्रयम् ॥ तस्मिन्नेवस्थितंजातंतस्मादेवतदेवच ॥ ३३ ॥

अर्थ—न जानी हुई यह वासनारूप माया महामोहकी दात्री और जानी हुई तो अनन्त सुखदा और ब्रह्मस्वरूपदायिनी है ॥ २९ ॥ ब्रह्मसे आई हुई उसकी यह लीला है यह ब्रह्मविद्या संसारको निगलकर ब्रह्मको स्मरणकरके अन्तमें ब्रह्ममेंही पुनः लीन होजातीहै ॥ ३० ॥ हे रामजी ! कल्याणमयरूप रहित अप्रमेय तथा निरामय ब्रह्मसे सम्पूर्ण प्राणीगण ऐसे उत्पन्न हुये हैं जैसे तेजसे प्रकाश ॥ ३१ ॥ जैसे पत्रमें रेखा समूह (शिरा वा नाडीका जाल) है जलमें जैसे तरंग जाल, सुवर्णमें जैसे कटकादि और अग्निमें उष्णतादि हैं ऐसे ध्यानरूप इस परात्मामें यह तीनो भुवन है उसी परमात्मामें यह जगत् स्थित हैं, और उसीसे उत्पन्न हुआहै इस कारण यह जगत् वही है ॥ ३२ ॥३३॥

सएवसर्वभूतानामात्माब्रह्मेतिकथ्यते ॥ तस्मिन्ज्ञातेजगज्ज्ञातंसज्ञाताभुवनत्रये ॥ ३४ ॥ शास्त्रसंव्यवहारार्थतस्यास्यविततात्कृतेः ॥ चिद्ब्रह्मात्मेतिनामानिकल्पितानिकृतात्मभिः ॥ ३५॥ विषयेंद्रियसंयोगेहर्षामर्षविवर्जिता ॥ सैषाशुद्धानुभूतिर्हिसोयमात्माचिदव्ययः ॥ ३६ ॥

अर्थ—वही सब प्राणीयोंका आत्मा ब्रह्म कहलाताहै उसीके जाननेसे यह सम्पूर्ण जगत् ज्ञात होजाताहै, और त्रिभुवनमें ज्ञाता वही है ॥ ३४ ॥ शास्त्रीय तथा लौकिक व्यवहारके लिये उस विस्तृत आकारवाले परमात्माके चित्, ब्रह्म और आत्मा इत्यादि नाम तत्वज्ञानियोंने कल्पित किये हैं ॥ ३५ ॥ प्रिय तथा अप्रिय इन्द्रियके विषयोंसे दैवेच्छासे संयोग होनेपरभी जो यह पूर्वोक्तरूप जीवन्मुक्तोंकी अनुभूतिही प्रसिद्ध अविनाशी चित्आत्मा है न कि संसार स्वभाव ॥ ३६ ॥

आकाशातितराच्छाच्छइदंतस्मिंश्चिदात्मनि ॥ स्वाभोगएवहिजगत्पृथग्वत्प्रतिबिंबति ॥ ३७ ॥ बुद्धिस्तद्व्यतिरेकेणलोभमोहादयोहितान् ॥ पात्यसद्व्यतिरेकेणतेचतस्मिंस्तदेवते ॥ ३८ ॥ अदेहस्यैवतेरामनिर्विकल्पचिदाकृतेः ॥ लज्जाभयविषादेभ्यःकुतोमोहःसमुत्थितः ॥ ३९ ॥ अदेहोदेहजैरेभिर्लज्जादिभिरसन्मयैः ॥ किंमूर्खइवदुर्बुद्धिर्विकल्पैरविमूयसे ॥ ४० ॥

अर्थ—आकाशसेभी अति निर्मल उस चिदात्माके स्वरूपके भीतरही यह जगत् अन्धके समान प्रतिबिम्बित होताहै और प्रतिबिम्बित उस जगत्का शुद्धसाक्षी मात्रसे प्रियाप्रियके विभाग पूर्वक विवेक नहीं होसकता इसलिये उन दोनों (साक्षी चित्) तथा जगत् पृथक् मध्यमें बुद्धि (वा अन्त करता) प्रतिबिंबित होती है वही लोभ मोहादि विषयोंमें प्राप्त होती है और वे बुद्धि प्रेरित लोभ मोहादि अविद्यमानही परस्परके भेदसे उसी चिदात्मामें प्रतिबिंबित है इसलिये नहीं है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ हे रामजी ! देश शून्य निर्विकल्प चिदाकार तुमको लज्जा भय और विषादादिसे मोह कहांसे उपस्थित हुवा ? ॥ ३९ ॥ देह रहित तुम असन्मय देहसे उत्पन्न इस लज्जादिकोंसे दुर्बुद्धि मूर्खके समान क्यों भ्रमोंसें दुःखी होते हैं ॥ ४० ॥

अखंडचितिरूपस्यदेहेखंडनमागते ॥ असम्यग्दर्शिनोप्यस्तिननाशःकिमुसन्मतेः ॥ ४१ ॥ आपतेदर्कमार्गेपिननिरुद्धगमागमम् ॥ चित्तंनामसविज्ञेयःपुरुषोनशरीरकम् ॥ ४२ ॥ शरीरेसत्यसतिवापुमानेवजगत्त्रये ॥ ज्ञोप्यज्ञोपिस्थितोरामनष्टेदेहेननश्यति ॥ ४३ ॥ यानीमानिविचित्राणिदुःखानिपरिपश्यसि ॥ तानिदेहस्यसर्वाणिनाग्राह्यस्यचिदात्मनः ॥ ४४ ॥

अर्थ—देहके खण्डित होनेसे अखण्ड चित्रूपका खण्डन नहीं होता, जब शरीरके नाशसे असम्यक्दर्शी आत्माकाभी नाश नहीं होता तो सम्यक्दर्शीका नाश कब होगा ॥ ४१ ॥ स्वतंत्र होनेसे जिसका गमनागमन कहीं निरूद्ध नहीं है ऐसा चित्त आलम्बन शून्य सूर्य्यके मार्गमें जासकताहै वही पुरुष संसारी आत्मा है न कि देह ॥४२॥ शरीर रहै वा न रहै वह आत्मा तीनो लोकमें, ज्ञानी हो वा अज्ञानी हो वह तो ज्योंका त्यों स्थित रहताहै, और देहके नष्ट होनेसे नष्ट नहीं होता ॥ ४३ ॥ जो यह विचित्र सुख दुःख देखतेहो ये सब शरीरकोही होतेहैं न कि अग्राह्य चिदात्माको ॥ ४४ ॥

मनोमार्गादतीतत्वाद्यासौशून्यमिवस्थिता ॥ चित्कथंनामदुःखैर्वासुखैर्वापरिगृह्यते ॥ ४५ ॥ स्वास्प दात्मानमेवासौविनष्टाद्देहपंजरात् ॥ अभ्यस्तांवासनांयातःषट्पदःखमिवांबुजात् ॥ ४६ ॥ असच्चेदा त्मतत्त्वंतदस्मिंस्तेदेहपंजरे ॥ नष्टेकिंनामनष्टंस्याद्रामकेनानुशोचसि ॥ ४७ ॥ सत्यंभावयतेनत्वंमामो हमनुभावय ॥ निरिच्छस्यात्मनोनेच्छाकाचिदप्यनघाकृतेः ॥ ४८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! मनके मार्गसेभी परे जो चित् शून्यके समान अर्थात् आकाशवत् व्याप्त है कहो वह दुःख वा वैषयिक सुखोंसे कैसे ग्रहण की जासकती है ॥ ४५ ॥ यह चेतन जन्मजन्मान्तरकी अभ्यस्त वासनाको प्राप्तभी परन्तु इस देहरूपी पिंजरीसे निकलके अपनी प्रतिष्ठा भूत परमात्मस्वरूपमेंही प्राप्त होताहै ॥ ४६ ॥ यदि जीव प्रतिबिम्ब है तो उपाधिसे पृथक् उसकी सत्ता नहीं होसकती और उपाधिके नाशसे नाशभी होगा सो यदि आत्मतत्व जीव असत् है तोभी उस देहरूपी पंजरके नष्ट होनेपर तुमारा क्या नष्ट हुआ क्योंकि तुम जीव नहीं हो इसलिये तुम क्यों शोच करते है ॥ ४७ ॥ इसालिये हे रामजी ! जीव और उसकी उपाधिके परित्यागसे सत्यस्वरूप ब्रह्मकीही भावना करो, और मोह भ्रान्तिको प्राप्त नश्वर देहादिमें आत्मभावना मतकरो और इच्छारहित शुद्ध आकारवाले परमात्माको कोई इच्छा नहीं होसकती ॥ ४८ ॥

साक्षिभूतेसमेस्वच्छेनिर्विकल्पेचिदात्मनि ॥ निरिच्छंप्रतिबिंबंतिजगंतिमुकुरेयथा ॥ ४९॥ साक्षिभूते समेस्वच्छेनिर्विकल्पेचिदात्मनि ॥ स्वयंजगंतिदृश्यंतेसन्मणाविवरश्मयः ॥ ५० ॥ अनिच्छमपिसं बंधोयथादर्पणबिंबयोः ॥ तथैवेहात्मजगतोर्भेदाभेदौव्यवस्थितौ ॥ ५१ ॥ सूर्यसन्निधिमात्रेणयथोदेति जगत्क्रिया ॥ चित्सत्तामात्रकेणेदंजगन्निष्पद्यतेतथा ॥ ५२ ॥

अर्थ—सबका साक्षीभूत, सर्वत्र समान निर्मलरूप, और निर्विकल्प चिदात्मामें विना इच्छाही सब ब्रह्माण्ड ऐसे प्रतिबिंबित होतेहैं जैसे दर्पणमें अन्य पदार्थ ॥ ४९ ॥ और साक्षीभूत, समरूप तथा विकल्प शून्य चिदात्मामें सब जगत् ऐसे देख पडते हैं जैसे सच्चेमणिमें किरण ॥ ५० ॥ हे रामजी ! जैसे विना इच्छाही दर्पण और बिम्बका सम्बन्ध है ऐसेही यहांपर आत्मा और जगतका भेदाभेद सम्बन्ध व्यवस्थित है अर्थात् भानमात्रसे भिन्न और यथार्थमें अभिन्न है ॥ ५१ ॥ जैसे सूर्य्यकी समीपतामात्रसे जगत्की क्रिया होती है ऐसेही चित्की सत्तामात्रसे यह जगत् उत्पन्न होताहै ॥ ५२ ॥

—पिंडग्रहोनिवृत्तोस्याएवंरामजगत्स्थितेः ॥ आकाशमेपासंपन्नाभवतामपिचेतसि ॥ ५३ ॥ सत्तामात्रेण दीपस्ययथालोकःस्वभावतः ॥ चित्तत्त्वस्यस्वभावात्तुतथेयंजागतीस्थितिः ॥ ५४ ॥ पूर्वमनःसमुदि तंपरमात्मतत्त्वात्तेनाततंजगदिदंस्वविकल्पजालैः ॥ शून्येनशून्यमपितेनयथांबरेणनीलत्वमुल्लसित चारुतराभिधानम् ॥५५॥ संकल्पसंक्षयवशाद्गलितेतुचित्तेसंसारमोहमिहिकागलिताभवंति ॥ स्वच्छं विभातिशरदीवखमागतायांचिन्मात्रमेकमजमाद्यमनंतमंतः ॥ ५६ ॥ कर्मात्मकंप्रथममेवमनोभ्युदे तिसंकल्पतःकमलजप्रकृतीस्ततोत्य॥ नानाभिधंजगदिदंहिमुधातनोतिवेतालदेहकलनामिवमुग्धबालः ॥ ५७ ॥ असन्मयंसदिवपुरोविलक्ष्यतेपुनर्भवत्यथपरिसीयतेपुनः ॥ स्वयंमनश्चितिचितसंस्फुरद्वपु र्महार्णवेजलवलयावलीयथा ॥ ५८ ॥

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे श्रीवाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूत्पत्तिप्रकरणे स्वरूपनिरूपणंनामद्वाविंशत्युत्तरशततमःसर्गः ॥ १२२ ॥ उत्पत्तिप्रकरणंसंपूर्णम्॥

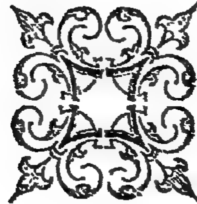
अर्थ—हे रामजी ! इस जगत्की स्थितिका मूर्तिमान आकार इस प्रकार निवृत्त हुआ तो इसकी आकाश (शुद्धचित्) रूपता आपलोगोंके चित्तमेंभी आरूढ होगई ॥ ५३ ॥ जैसे दीपकी सत्तामात्रसे स्वभावसेही प्रकाश प्रवृत्त होताहै, ऐसेही चित् तत्वके स्वभावमात्रसे इस जगत्की स्थिति है ॥ ५४ ॥ हे रामजी ! जैसे शून्यरूप आकाशने शून्यही परन्तु सब जनोंसे अनुभूत सुन्दर शोभायमान आकर और नामवाले नीचे मुख किये हुये स्निग्ध नीलमणिके सदृश नीलत्व आकाशके गुणको रचाहै इसीरीतिसे परमात्मतत्वसे पूर्वकालमें मन उत्पन्न और उसने अपने विकल्प जालोंसे इस जगत् आडम्बरको रचाहै ॥ ५५ ॥ संकल्पके वशसे चित्तके नष्ट होनेसे संसारके मोहरूपी तुषार आपही नष्ट होजाताहै और उससमय अजन्मा अनादि तथा अनंत निर्मल चिन्मात्र परमात्मा अन्तःकरणमें ऐसे भासताहै जैसे शरदऋतुके आनेपर स्वच्छ आकाश ॥ ५६ ॥ प्रथम सब प्राणीयोंके समष्टि कर्मरूप तथा समष्टि क्रियाशक्ति प्रधान मन आविर्भावको प्राप्त होताहै उसके पश्चात् ब्रह्माके मनसे उत्पन्न मनुआदि स्रष्टा

शरीरको ग्रहण करके नानाप्रकारके नामसहित इस मिथ्या जगत्का ऐसे विस्तार करतेहैं जैसे मूर्ख बालक वेताआदिके शरीरकी कल्पनाको ॥ ५७ ॥ इसलिये समस्त व्यष्टि समष्टि भेद कल्पित यह जगत् मनोमात्र है और मन असत् अज्ञानका कार्य्य है इसलिये वहभी असत् है इससे अधिष्ठान साक्षीकी सत्ताको स्फूर्तिके बलसे असत् जगत्का स्फुरणाही इसकी उत्पत्ति है इस रीति जगत्के जन्म स्थिति आदिका विवर्त उपादान कर्ता ब्रह्मका तटस्थ लक्षण है इस हेतुसे प्रपंच रहित सच्चिदानन्द पूर्णब्रह्मही परमार्थ भूत जगत्रूपसे लक्षित होताहै यह सब श्रुतियोंका सिद्धान्त है इस आशयसे कहतेहैं कि असत् जो अज्ञान है तन्मय अर्थात् असत् अज्ञानका परिणामभूत जो मन है वह स्वयं अपने अधिष्ठानभूत चैतन्यमें वृद्धिसे जाज्वल्यमान जगत् शरीर होके सबके सदृश अपने सम्मुख साक्षी चेतनसे ऐसे देखा जाताहै जैसे पूर्ण महासमुद्रमें उसकी सत्तामात्रसे सिद्ध अपरिमित जलके वलयाकार तरंगोंकी पंक्ति इससे वाणीका विषय दृश्यमात्र मिथ्या होनेसे सच्चिदानन्द प्रत्यक् चेतन पूर्णब्रह्मही अविकृतरूपसे सदा है यह सिद्ध है ॥ ५८ ॥

इत्यार्षे श्रीवासिष्ठमहारामायणे देवदूतोक्ते द्वात्रिंशत्साहस्र्यां संहितायां वाल्मीकीये मोक्षोपाये, काशिकराजकीय संस्कृतपाठशाला प्रधानाध्यापक पूज्यपाद श्री ६ दामोदरशास्त्रि शिष्याचार्य्योपाधिधारि प्रयागमण्डलान्तर्गत हरिपुरनामकग्रामनिवासि द्विवेदोपनामक पूज्यपाद-नचंईप्रसादात्मज द्विवेदोपनामक ठाकुरप्रसाद विरचित भाषानुवादे उत्पत्ति-प्रकरणे स्वरूपनिरूपणं नाम द्वाविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १२२ ॥

॥ समाप्तमिदमुत्पत्तिप्रकरणम् ॥

॥ उत्पत्तिप्रकरणं समाप्तम् ॥




श्रीहरिंवन्दे ।

श्रीवृन्दावनविहारिणे नमः ।

❀ योगवासिष्ठ भाषाटीका सहित ❀

अथ चतुर्थं स्थितिप्रकरणं प्रारभ्यते.

अनुवादकर्तृ मंगलाचरणम् ।

नत्वा शिवं शक्तियुतं दयालुं । स्वानन्दरूपं भजतां स्फुरन्तम् ॥
श्रीयोगवासिष्ठमहाम्बुधेर्वै । भाषाऽनुवादः क्रियते हिताय ॥ १ ॥

गणेशं विघ्नहर्तारं जगदम्बां प्रणम्य च ।
जनानां स्वात्मबोधाय यत्नमेतं समारभे ॥ २ ॥

प्रथमःसर्गः ॥ १ ॥

उत्पद्ययस्मात्स्थितमेवयस्मिन्नानाप्रकारोल्लसितांहिदृश्यम् ।
तंज्ञप्तिमात्रंपुरुषंप्रपद्येयथातरङ्गोऽब्धिमभिन्नरूपः ॥ १ ॥

श्रीगणेशायनमः ॥ अथोत्पत्तिप्रकरणादनंतरमिदंशृणु ॥ स्थितिप्रकरणंरामज्ञातंनिर्वाणकारियत् ॥१॥ एवंतावदिदंविद्धिदृश्यंजगदितिस्थितम् ॥ अहंचेत्याद्यनाकारंभ्रांतिमात्रमसन्मयम् ॥ २ ॥ अकर्तृक मरंगंचगगनेचित्रमुत्थितम् ॥ अद्रष्टृकंचानुभवमनिद्रंस्वप्नदर्शनम् ॥ ३ ॥ भविष्यत्पुरनिर्माणंचित्तसंस्थमिवोदितम् ॥ मर्कटानलतापांतमसदेवार्थसाधकम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! अब तुम उत्पत्ति प्रकरणके अनंतर स्थिति प्रकरण सुनो जो कि ज्ञात होनेसे मोक्षकारी है ॥ १ ॥ इस रीतिसे उत्पत्ति प्रकरणमें कथित न्याय और युक्तिद्वारा अहम् तथा विषय आदि जो सम्पूर्ण दृश्य जगत् है यह सब आकार शून्य, भ्रांतिमात्र और असन्मय स्थित है ऐसा तुम जानो ॥ २ ॥ हे रामजी ! प्रसिद्ध चित्रसे विलक्षण यह जगत्‌रूपी चित्रकर्ता शून्य अर्थात् हेतु, करण और उपकरण सम्पन्न लेखक रहित तथा रंग रहित आकाशमें ऐसे आविर्भूत है जैसे द्रष्टा शून्य और निद्रा वर्जित अनुभवरूप स्वप्नका दर्शन ॥ ३ ॥ पुनः यह भविष्य नगरके निर्माणरूप चित्तमें स्थितके समान उदित, और मर्कटोंसे कल्पित घुंघुची तथा गेरू आदिके संचयरूप अग्निके समान असत् होकेभी अर्थ साधक है ॥ ४ ॥

ब्रह्मण्यनन्यदन्याभमंब्वावर्त्तवदास्थितम् ॥ सद्रूपमपिनिःशून्यंतेजःसौरमिवांबरे ॥ ५ ॥ रत्नाभापुंजमिवखेदृश्यमानमभित्तिमत् ॥ गंधर्वाणांपुरमिवदृश्यंनित्यमभित्तिमत् ॥ ६ ॥ मृगतृष्णांब्विवासत्यं सत्यवत्प्रत्ययप्रदम् ॥ संकल्पपुरवत्प्रौढमनुभूतमसन्मयम् ॥ ७ ॥ कथार्थप्रतिभानात्मनक्वचित्स्थितमस्थितम् ॥ निःसारमप्यतीवांतःसारंस्वप्नाचलोपमम् ॥ ८ ॥

अर्थ—ब्रह्मसे अभिन्न होनेपरभी अन्यके तुल्य भासमान अतएव जलके आवर्तके सदृश स्थित सत्‌परमात्मरूप होके यह (जगत् चित्र) ऐसे सर्वथा शून्यरूप है जैसे आकाशमें सूर्यका प्रकाश ॥ ५ ॥ और रत्नोंके किरणोंके

(१) वानर लोग घुंघुची गेरू आदि लाल पदार्थको अग्नि कल्पना करके शीतका निवारण करते हैं यह ऐतिह्य प्रमाणसे प्रसिद्धहै.

पुंजके समान तथा आधार रहित गंधर्व नगरके समान यह दृश्य आकाशमें नित्य दृश्यमान है ॥ ६ ॥ मृगतृष्णाके जलके समान असत्य होकेभी सत्यके तुल्य विश्वासप्रद, संकल्पके नगरके सदृश अति विस्तृत, और असन्मयरूपसे अनुभूत ॥ ७ ॥ और कवियोंसे कल्पित कथाके नगर तथा पर्वतादिकी रचनाके सदृश, प्रतिभान (बृद्धिकी कल्पनामात्र) स्वरूप, और किसी देश वा कालमें स्थित न होनेसे असत्रूप, तथा सार रहित होनेपरभी अतिदृढ स्वप्नके पर्वतके तुल्य है ॥ ८ ॥

भूताकाशमिवाकारभासुरंशून्यमात्रकम् ॥ शरदभ्रमिवाग्रस्थमलमक्षयमक्षतम् ॥ ९ ॥ वर्णोव्योमस्यैलस्येवदृश्यमानमवस्तुकम् ॥ स्वप्नांगनारताकारमर्थनिष्ठमनर्थकम् ॥ १० ॥ चित्रोद्यानमिवोत्फुल्लमरसंसरसाकृति ॥ प्रकाशमपिनिस्तेजश्चित्रार्कानलवत्स्थितम् ॥ ११ ॥ अनुभूतंमनोराज्यमिवासत्यमवास्तवम् ॥ चित्रपद्माकरइवसारसौगंध्यवर्जितम् ॥ १२ ॥

अर्थ—शून्यमात्र होकेभी नीचे मुख किये हुये इंद्रनील मणिके सदृश जो भूताकाशके आकारके तुल्य प्रकाशमान और शरत्कालके मेघके तुल्य ऊपर स्थित घामके निवारणमें समर्थ, तथा ज्ञानके विना निरन्तर क्षय करनेके अयोग्य है ॥ ९ ॥ और आकाशकी नीलताके सदृश अवस्तु होनेपरभी दृश्यमान, स्वप्नकी स्त्रीके रतके समान निरर्थक होनेपरभी संभोगरूप क्रियाका कारक यह जगत् है ॥ १० ॥ तथा चित्रगत वाटिकाके सदृश नीरस होनेपरभी सरसाकार और विकसित, और प्रकाशरूप होनेपरभी चित्रगत सूर्य्य तथा अग्निके तुल्य तेज रहित स्थित है ॥ ११ ॥ तथा अनुभूत मनोराज्यके समान असत्य और अवस्तु और चित्रमें अर्पित कमलके समान पराग तथा सौगन्ध्यसे वर्जित है ॥ १२ ॥

शून्येप्रकचितंनानावर्णमाकारितात्मकम् ॥ अपिंडग्रहमाशून्यामैंद्रचापमिवोत्थितम् ॥ १३ ॥ परामर्शेनशुष्यद्भिर्भूतपेलवपल्लवैः ॥ कृतंजडमसारात्मकदलीस्तंभभासुरम् ॥ १४ ॥ स्फुरितेक्षणदृष्टांधकारचक्रकवर्त्तनम् ॥ अत्यंतमभवद्रूपमपिप्रत्यक्षवत्स्थितम् ॥१५॥ वार्बुद्बुदमिवाभोगिशून्यमंतःस्फुरद्वपुः ॥ रसात्मकंचाप्यरसमविच्छिन्नक्षयोदयम् ॥ १६ ॥

अर्थ—तथा कल्पनामय शून्यमें विकसित नानाप्रकारके वर्णके सदृश, और मूर्तिमान् आकारसे रहित, सर्वथा इन्द्रके धनुषके सदृश यह जगत्रूप चित्र प्रकट है ॥ १३ ॥ और परमात्माके किंचित् विचारसे कंपित शूखते हुये भूतरूपी कोमलपल्लवोंसे जडीभूत केलेके वृक्षके समान भासमान यह जगत्रूपी चित्र है ॥ १४ ॥ तथा स्फुरितेक्ष० (नेत्रज्योतिका अवरोधक) नाम नेत्रके रोगके सदृश अन्धकारमें भ्रमणरूप व्यवहार करनेवाला, तथा अत्यन्त असम्भवरूप होनेपरभी प्रत्यक्षके समान स्थित यह जगत् है ॥ १५ ॥ तथा जलके बुद्बुदके समान कल्पित आकारवान्, अन्तरमें शून्य होनेपरभी जाज्वल्यमान शरीर बिना बिचारे रमणीय स्वरूप होनेपरभी परिणाममें कटु, और निरन्तर जन्ममरण संयुक्त यह जगत्रूप चित्र है ॥ १६ ॥

नीहारइवविस्तारिगृहीतंसन्नकिंचन ॥ जडशून्यास्पदंशून्यंकेषांचित्परमाणुवत् ॥ १७ ॥ किंचिद्भूतमयोस्मीतिस्थितंशून्यमभूतकम् ॥ गृह्यमाणोप्यसद्रूपोनिशाचरइवास्थितम् ॥ १८ ॥ श्रीरामउवाच ॥ महाकल्पक्षयेदृश्यमास्तेबीजइवांकुरः ॥ परेभूयउदेत्येतत्तत्तएवेतिकिंवद ॥ १९ ॥ एवंबोधाःकिमज्ञाःस्युरुतज्ञाइतिचस्फुटम् ॥ यथावद्भगवन्ब्रूहिसर्वसंशयशान्तये ॥ २० ॥

अर्थ—तथा नीहार (कुहिरा) के समान विस्तारी होनेपरभी ग्रहण करनेपर यह जगत् चित्र कुछ नहीं रहता, और सांख्यके मतमें केवल जडात्मक, वेदांतियोंके मतमें अविद्यारूप माध्यमिकोंके मतमें शून्यमात्र क्षणिक होनेसे कालकृत परमाणुओंसे रचित योगाचार्योंके मतमें दैशिक और कालिकपरमाणुओंसे रचित कणाद और गौतमके मतमें अनियत स्वभाव (अनेकांत) और परमाणुसे रचित यह जगत्रूप चित्र है, तथा अनेकांत बादी आर्हतमतानुयायी जैनियोंके मतमें यह जगत् अनेकांत है, इत्यादि अनेक रूपसे यह जगत् कल्पित है ॥ १७ ॥ और बाह्य जगत्में उक्तन्याय आध्यात्मिकमेंभी है जैसे किंचित् भूतमय मैं हुं, इसप्रकार भौतिक धर्मरहित शून्यही यह जीव स्थित है, और गृह्यमाण होनेपरभी असत्रूप निशाचरके समान आविर्भूत है ॥ १८ ॥ श्रीरामजी बोले—हे भगवन् ! महाप्रलयमें यह दृश्य परमात्मामें ऐसे रहताहै जैसे बीजमें अंकुर और उसीसे पुनः उत्पन्न होताहै इस बातको "सदेवसौम्येदमग्रआसी" (यह जगत् प्रथम सत्परमात्मामेंही था) इत्यादि सत्कार्य्य बादिनी श्रुति तथा उनके व्याख्या कर्ता व्यास का दिने जो कहाहै उसकी संगति कैसे होगी सो कृपा करके कहिये ॥ १९ ॥ और महाप्रलयमें यह जगत् अपनी स

कारणमें रहताहै, इसप्रकार जिनको ज्ञान है वे ज्ञानी हैं, वा अज्ञानी है ? हे भगवन् ! इस बातको स्पष्ट यथावत् कृपा करके सर्व संशयकी शांतिकेलिये कहिये ॥ २० ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इदंबीजेंकुरइवदृश्यमास्तेमहाशये ॥ ब्रूतेयएवमज्ञत्वमेतत्तस्यास्तिशैशवम् २१ शृण्वेतत्किमसंबंधंकथमेतदवास्तवम् ॥ विपरीतोबोधएषवक्तुःश्रोतुश्चमोहकृत् ॥ २२ ॥ बीजेकिलांकुरइवजगदास्तइतीहया ॥ बुद्धिःसासत्प्रलापार्थमूढाशृणुकथंकिल ॥ २३ ॥ बीजंभवेत्स्वयंदृश्यंचित्तादींद्रियगोचरम् ॥ यवधानादिधान्यानियुक्तःपत्रांकुरोद्भवः ॥ २४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! महाप्रलयमें यह दृश्य जगत् सत्य अपने स्वरूपसे परमात्मामें बीजमें अंकुरके समान रहताहै यह जो कहताहै यह उसका अज्ञत्व और बाल्य (लडकपन) है ॥ २१ ॥ हे रामजी ! यह वक्ष्यमाण युक्ति समूह तुम सुनो, उत्पत्तिके पूर्व कारणमें कार्य रहताहै यह कहनेवालेसे पूंछना चाहिये किं क्या कार्य्य कारणमें सत्ता सामान्य रूपसे रहताहै वा बीजादि सत्तासे अथवा अंकुरादिकी सत्तासे प्रथम पक्षमें अंकुरादिका संबंध किससे नहीं है अर्थात् सामान्य सत्ता सर्व वस्तुकी साधारण है इसलिये उत्पद्यमान अंकुरादिके संबंधका प्रसंग सर्वत्र होजायगा, यदि इस पक्षको अंगीकार करोगे तो इस अंकुरादिके क्षेत्र (खेत) में अंकुरित बीजमें जो देखा वह यथार्थ वस्तु है और कुसीलस्थ (कोठिलाके) बीजमें वा पाषाणखंडमें वह अवस्तु कैसे ? और द्वितीय पक्षमेंभी बीज सत्ताका अंकुरादिके तथा घटपटादिके संबंधमें कुछ विशेषता नहीं कही जा सकती, तो ऐसी संबंधरहित वस्तु क्या है जो बीजमें नहीं ? अर्थात् व्रीहि (धान) आदिके बीजमें सब जगत्का प्रसंग होजायगा, यदि इसकोभी अंगीकार करोगे तो अंकुरित बीज अंकुरादि वास्तव और घटपटादि अवास्तव (मिथ्या) यह कैसे ? और तृतीय पक्षमेंभी अंकुरकी स्वरूप सत्तासे अंकुरके तथा घटपटादिके संबंधमें कुछ विलक्षणता नहीं कही जा सकती तो इससे सर्वत्र अंकुरका प्रसंग होजायगा, इष्टापत्ति मानो तो बीजादिमें अंकुरादि वास्तव हैं अन्यत्र नहीं यह कैसे ? और साधारण सत्तासे असाधारण अंकुरादि हैं, कार्य सत्तासे कारण और कारण सत्तासे कार्य है इन तीनों पक्षोंमें कथन असंगत है, इसलिये यह बोध (अपने रूपसे कार्य कारणमें है) विपरीत है तथा वक्ता श्रोता दोनोंको मोहकारी है ॥ २२ ॥ हे रामजी ! बीजमें अंकुरके सदृश प्रलयमें यह जगत् सत्परमात्मामें रहताहै इस इच्छासे सत्कार्यके प्रलयार्थ अर्थात् प्रलयमें जगत् सत्ताके दृष्टांतार्थ जो बुद्धि है वह निश्चयरूपसे कैसे भ्रांति रूप है सो तुम सुनो ॥ २३ ॥ स्तुप-(भूसीसहित) यव (जव) धान आदि धान्य बीज स्वयं चित्त आदि इंद्रियोंका गोचर है, और उसमें अन्वय व्यतिरेकसे अंकुरादिके प्रत्यक्ष सिद्ध होनेसे, सावय तथा परिणामी स्वभावतासे तथा अंकुरके विजातीय भेद निर्वाहक जातिके रचना विशेष होनेसे बीजभाव होसकताहै ॥ २४ ॥

मनःषष्ठेंद्रियातीतंयत्स्यादतितराम‌णु ॥ बीजंतद्भवितुंशक्तंस्वयंभूर्जगतांकथम् ॥ २५ ॥ आकाशादपि सूक्ष्मस्यपरस्यपरमात्मनः ॥ सर्वाख्यानुपलंभस्यकीदृशीबीजताकथम् ॥ २६ ॥ तत्सूक्ष्ममसदाभासमसदेवह्यतादृशम् ॥ कीदृशीबीजतातत्रबीजाभावेकुतोंकुरः ॥ २७ ॥ गगनांगादपिस्वच्छेशून्येतत्रपरेपदे ॥ कथंसंतिजगन्मेरुसमुद्रगगनादयः ॥ २८ ॥

अर्थ—मनसहित छओं इन्द्रियोंसे अतीत, और अतिसूक्ष्म स्वयंभू परमात्मा सब ब्रह्मांडोंका बीज कैसे होसकताहै ॥ २५ ॥ जो परमात्मा आकाशसेभी सूक्ष्म और सम्पूर्ण बाणीके विषय नामादिसे रहित हो उसकी बीजता भला किसप्रकार होसकतीहै ? ॥ २६ ॥ जो परमात्मा सदा एकरस सत्स्वरूप है वह अतिसूक्ष्म होनेसे अज्ञानियोंकी दृष्टिमें असत्के तुल्य भासताहै उसमें बीजता किसप्रकार होसकती है, और बीजताके अभावमें अंकुर कहां ? ॥२७॥ हे रामजी ! आकाशके समान निर्मल और अज्ञानियोंकी दृष्टिसे शून्यके समान उस परमपदमें, जगत् तथा उसके अन्तर्गत सुमेरू, समुद्र और आकाशादि कैसे आसकतेहैं ? ॥ २८ ॥

नकिंचिद्यत्कथंकिंचित्तत्रास्तेवस्तुवस्तुनि ॥ अस्तिचेत्तत्कथंतत्रविद्यमानंनदृश्यते ॥ २९ ॥ नकिंचिदात्मना किंचित्मथमेतिकुतोथवा ॥ शून्यरूपाद्घटाकाशाज्जातोद्रिःककुतःकदा ॥३०॥ प्रतिपक्षेकथं किंचिदास्तेच्छायातपेयथा ॥ कथमास्तेतमोभानौकथमास्तेहिमोऽनले ॥ ३१ ॥ मेरुरास्तेकथमणौ कुतःकिंचिदनाकृतौ ॥ तदतद्रूपयोरैक्यंकच्छायातपयोरिव ॥ ३२ ॥

अर्थ—जिसके दृश्य कोईभी अंग नहीं है उस वस्तुमें यह ब्रह्माण्डरूप वस्तु कैसे रहसकताहै, और यदि कहो कि रहताहै तो उसमें विद्यमान रूपसे क्यों नहीं देख पडता ? ॥ २९ ॥ यदि कोईभी स्थूल पदार्थ रूपसे नहीं है तो

उसमें कोई पदार्थ कैसे और कहांसे आया, क्योंकि शून्य घटाकाशसे पर्वत कहांपर किसप्रकार और कब उत्पन्न हुआ ? ॥ ३० ॥ चित्सत्ता जडसत्ताकी विरोधिनी होनेसेभी आत्मचेतनमें कुछ नहीं रह सकता, क्योंकि आतपमें छाया कैसे रहसकती है और सूर्यमें अन्धकार तथा अग्निमें बर्फ कैसे रहसकताहै ? ॥ ३१ ॥ भला आकार शून्य परमात्मामें मेरू कैसे रहसकताहै, यदि यह कहा जाय कि भेदरूपसे जगत् ब्रह्ममें नहीं है परन्तु एकतारूपसे रहनेमें तो कोई बाधा नहीं सो भी नहीं क्योंकि छाया और आतपके सदृश चित्रूप आत्मा और जडरूप जगत्की एकता कैसी ॥ ३२ ॥

साकारवटधानादावंकुराःसंतियुक्तिमत् ॥ नाकारेतन्महाकारंजगदस्तीत्ययुक्तिकम् ॥ ३३ ॥ देशांतरे यच्चनरांतरेचबुद्ध्यादिसर्वेंद्रियशक्तिदृश्यम् ॥ नास्त्येवतत्तद्विधबुद्धिबोधेनकिंचिदित्येवतदुच्यतेच ३४ कार्यस्यतत्कारणतांप्रयातंवक्तीतियस्तस्यविमूढबोधः ॥ केनामतत्कार्यमुदेतितस्मात्स्वैःकारणाद्यैःसहकारिरूपैः ॥ ३५ ॥ दुर्बुद्धिभिःकारणकार्यभावंसंकल्पितंदूरतरेऽभ्युदस्य ॥ तदेवतत्सत्यमनादिमध्यं जगत्तदेतत्स्थितमित्यवेहि ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषुस्थितिप्रकरणे जन्यजनिनिराकरणं नाम प्रथमःसर्गः ॥ १ ॥

अर्थ—आकर सहित वटकी धाना आदिमें अंकुर हैं यह बात युक्तिसहित है, और नि[illegible] महान् आकारवाला जगत् है यह बात युक्ति विरुद्ध है ॥ ३३ ॥ और सांख्य आदि कल्पित (प्र[illegible] पसे जगत् सत्ता रहती है) यह सिद्धांत लौकिक प्रमाणबलसे है वा " सदेवसौम्येदमग्रआसीत् " सो दोनों नहीं क्यों बुद्धि आदि सम्पूर्ण इन्द्रियोंकी शक्तिसे दृश्य अर्थात् अनुभवयोग्य जो घटपट अपने देशकालरूप अधिकरणसे अन्य देशकाल अधिकरणमें होतो साक्षात् वह पुरुष दुष्टहो वा पदार्थ प्रत्यक्ष अनुमानादि बुद्धि वृत्तिके बोधसे भान नहीं होते अर्थात् दृश्यके अदर्शनसे वह[illegible] तुल्यहै, ऐसा लौकिक प्रमाणमें कुशल जन कहतेहै ॥ ३४ ॥ और द्वितीय पक्षमें " सदेवसौम्[illegible] इत्यादि श्रुतियोंमें कार्य कारणकी दो सत्ताओंका भान नहीं होता " एकमेवा द्वितीयं ब्रह्म " (केव[illegible] तीय ब्रह्म है) इत्यादि श्रुतियोंसे "सदेवसौम्येदमग्रआसीत्" इत्यादिकी एक वाक्यता है अर्थात् वह एक[illegible] पर यह विचारना चाहिये कि सत् जो कार्य है सत्व कारणताको प्राप्त हुआ है यह श्रुति कहती है, अथवा [illegible] है उसीका सत्व कार्यरूपमें आरोपित है, अथवा सत् परमात्माही सत् है उसीकी सत्ता कार्य कारणरूपमें [illegible] सो यदि इन तीन पक्षोंमें सांख्यका बोध प्रथम पक्षके अनुसारी है तो यह उनका बोध भ्रान्तिरूपही [illegible] " वाचारम्भणंविकारोनामधेयम् " (जो कार्य मृत्तिकादिसे घटपटादिरूप है वह केवल वाणी मात्रका वि[illegible]) इत्यादि श्रुतियोंसे कार्यका मिथ्यात्व दर्शाया है और कारणके मिथ्यात्वसे अपने सिद्धान्तका व्याघात होत[illegible] लिये कारण गुणके मिथ्यात्वसे किन २ सहकारी कारणोंसे कार्य उत्पन्न हो और कारणके असत् होनेसे कार्य [illegible] हो ही नहीं सकता इसीलिये द्वितीय (सत् कारण कार्यरूपतामें प्राप्त होताहै) पक्षभी सत्य नहीं क्योंकि का[illegible] असत् होनेपर कार्य निरूपिता कारणता होती है इस रीतिसे कारणताकाभी निरूपण नहीं होसकता इसलिये तृतीय पक्ष (सत्में कार्य कारणताका आरोप) श्रुति संमत है ॥ ३५ ॥ इसलिये हे रामजी ! दुर्बुद्धियोंसे कल्पित जो कार्य कारणभाव है अथवा उपादान उपादेय भाव है उसको उन्हींके सहकारी कारणादि भेदोंसे निरासकरके अर्थात् मिथ्यात्वरूप समझकर दूसरेसेही त्यागकर जो शेष आदि मध्यान्त रहित सन्मात्र परमात्मा है वही जगत्रूपसे स्थित है ऐसाही तुम समझो ॥ ३६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे स्थितिप्रकरणे जन्यजनिनिराकरणं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितियः सर्गः ॥ २ ॥

तर्कोंसे स्वरूपके भेदद्वारा जगत्की निरास स्थितिका (खण्डन) करके शेष पूर्णानन्द परमात्माकी स्थितिका वर्णन इस द्वितीय सर्गमें किया गया है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथैतदभ्युपगमेवच्मिवेद्यविदांवर ॥ समस्तकलनातीतेमहाचिद्व्योम्निनिर्मले ॥१॥ जगदाद्यंकुरस्तत्रयद्यस्तितदसौतदा ॥ केरिवोदेतिकथयकारणैःसहकारिभिः ॥ २ ॥ सहकारिकारणानामभावेत्वंकुरोद्गतिः ॥ वंध्याकन्येवदृष्टेहनकदाचनकेनचित् ॥ ३ ॥ सहकारिकारणानामभावेयद्यदोदितम् ॥ मूलकारणमेवांगतत्स्वभावस्थितिंगतम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे जानने योग्य पदार्थोंके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ रामजी ! इसके पश्चात् प्रलयमें ईश्वरसे पृथक् इस जगत् सत्ताका स्वीकार करनेमें दोषोंको कहताहुं सो यदि जगत् नहीं है तो सृष्टिभी नहीं है क्योंकि उत्पत्तिक्रिया कर्तासे साध्य है और सत्ब्रह्मही यदि कर्ता है तो वही उत्पन्न होताहै और उत्पद्यमानको छोडके दूसरा कर्ता नहीं है, और कूटस्थ ब्रह्मकी उत्पत्ति आदिकी संभावना नहीं इसलिये उत्पत्ति आदिकी सिद्धिकेलिये महाप्रलयमें जगत्की सत्ताभी माननी चाहिये सो यदि समस्त कल्पनाओंसे रहित निर्मल महा चिदाकाशमें ॥ १ ॥ कर्ताकी सत्ताकी कल्पना की जाय तो किन सहकारी कारण, अर्थात् करण, उपकरण तथा अधिकरण आदिसे यह कर्तापन सिद्ध होसकताहै, यदि यह कहो, कि सहकारी कारणके विना केवल कर्तामात्रसे उत्पत्तिक्रिया नहीं सिद्ध होसकती ॥ २ ॥ और सहकारी कारणोंके अभावसे अंकुरसे उत्पत्ति ऐसी है जैसे वन्ध्यासे कन्याकी उत्पत्ति सो किसने और कब देखी ? ॥ ३ ॥ इसलिये सहकारी कारणोंके अभावसे जो आविर्भूत है वह रज्जुके सर्पके समान मूलकारणही जगत्रूप स्वभावसे स्थित है ॥ ४ ॥

सर्गादौसर्गरूपेणब्रह्मैवात्मनितिष्ठति ॥ यथास्थितमनाकारंकजन्यजनकक्रमः ॥ ५ ॥ अथपृथ्व्यादयोन्येवाकेचिदत्रोपकुर्वते ॥ सहकारिकारणत्वंतत्पूर्वंचात्रदूषणम् ॥ ६ ॥ तस्मात्पदेजगच्छांतमास्तेतत्सहकारिभिः ॥ चित्तात्प्रसरतीत्युक्तिर्बालस्यनविपश्चितः ॥ ७ ॥ तस्माद्रामजगन्नासीन्नचास्तिनभविष्यति ॥ चेतनाकाशमेवाशुकचतीत्थमिवात्मनि ॥ ८ ॥

अर्थ—सृष्टिकी आदिमें ब्रह्मही जगतोंकी सृष्टिरूपसे अपने आत्मामें स्थित रहताहै, वह परमात्मा आकारशून्य अपने स्वरूपमें ज्योंका त्यों स्थित है यहांपर जन्य और जनकका क्रम कहांहै ? ॥ ५ ॥ यदि यह कहो कि प्रलयमें जगत्सत्ताके स्वीकार करनेसे सहकारी कारण जगत्के अंतर्गत पृथिवी आदिकी उत्पत्ति हो तो सहकारी कारण हो, और सहकारी कारणके विना उत्पत्ति नहीं होसकती इसलिये यह अन्योन्याश्रय (एककी सिद्धिमें परस्पर दूसरेकी अपेक्षा) दोष है ॥ ६ ॥ इससे प्रलयमें प्रकृति सहित परमात्मामें सहकारी कारण सहित जगत् तिरोहित (छिपा) रहताहै यह कथन बालककेही चित्तसे होसकता न कि बुद्धिमानके ॥ ७ ॥ हे रामजी ! इसलिये यह जगत् न सत्यरूप था न है और न होगा, किन्तु शुद्धचिदाकाशही शीघ्र अपने स्वरूपमें इस प्रकार जगत्रूपसे विकसित होताहै ॥ ८ ॥

अत्यंताभावएवास्यजगतोविद्यतेयदा ॥ तदाब्रह्मेदमखिलमितितद्रामनान्यथा ॥ ९ ॥ पूर्वंप्रध्वंसनान्योन्याभावैर्यदुपशाम्यति ॥ नशाम्यत्येवतच्चित्तेशाम्यत्येवतुदृश्यते ॥ १० ॥ अत्यंताभावएवास्यभावैर्यदुपशाम्यति ॥ नशाम्यत्येवसच्चित्तेकशाम्यत्येवदृश्यता ॥ ११ ॥ अत्यंताभावएवातोजगद्दृश्यस्य सर्वथा ॥ वर्जयित्वेतरायुक्तिर्नास्त्येवानर्थसंक्षये ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जब इस जगत्का सर्वथा अत्यंताभावही है तब यह सम्पूर्ण ब्रह्मही है और कुछ नहीं ॥ ९ ॥ और जो श्रुति प्रतिपाद्य बोधसे पूर्वजगत् संबंधी घटपटादि मुद्गरादिके प्रहारादिसे अन्योन्याभावसे शान्त होतेहैं वह पदार्थोंका उपरम केवल इतनाही है कि इस समय नहीं था इस रूपसे नहींहै तो नेत्र आदिसे नहीं देखपडता परन्तु चित्तसे वह शान्त नहीं होताहै ॥ १० ॥ इसलिये काम कर्म वासनादि बीजोंके साथ जो दृश्य शांत होताहै वही शान्त होना यथार्थ है, और चित्तके रहनेपर जो शान्त होताहै वह कुछ नहीं है क्योंकि ज्ञानके विना दृश्यताकी शान्ति कहां ? अर्थात् दुर्लभ है ॥ ११ ॥ इसलिये मूल अज्ञानसहित मनको सर्वथा नाशके विना दृश्यरूप अनर्थ संक्षयरूप मोक्षके लिये अन्य कोई उपाय नहीं है ॥ १२ ॥

चिदाकाशस्यबोधोयंजगद्वातीतियत्स्थितम् ॥ अयंसोहमिदंनाहंलोकेचित्रकथायथा ॥ १३ ॥ इदमन्यादिपृथ्व्यादितथेदंवत्सरादिच ॥ अयंकल्पःक्षणश्चायमिमेमरणजन्मनी ॥ १४ ॥ अयंकल्पांतसंरंभोमहाकल्पांतएषसः ॥ अयंससर्गप्रारंभोभाव्यभावक्रमस्त्वसौ ॥ १५ ॥ लक्ष्माणीमानिकल्पानामिमाब्रह्मांडकोटयः ॥ एतेचेमेपरिगताइमेभूयउपागताः ॥ १६ ॥

अर्थ—इसलिये जगत्के तत्त्वरूप आत्म साक्षात्कारसे जो चिदाकाश मात्रका बोध अर्थात् यह सब चिन्मात्र ब्रह्महीहै अणुमात्रभी अचित् रूप नहीं है ऐसा ज्ञान जब परिपक्व होताहै तब यह देवदत्त आदि नाम शरीर वह माता पितासे जन्य मैं, और यह अन्यके शरीर गृहादि इत्यादि पामरोंका व्यवहाररूप जगत्की स्थिति ऐसी होजाती है जैसे चित्रकी कथा ॥ १३ ॥ यह सब पर्वत आदि पृथिवी आदि तथा वर्षादि, और कल्प तथा क्षण, और ये जन्ममरण ॥ १४ ॥ यह नित्य कल्प तथा महा कल्पान्तका उद्योग, यह दृश्यमान तथा वह श्रुति प्रसिद्ध सृष्टिका आरंभ तथा सृज्यमान आकाशादिका सृष्टिका क्रम ॥ १५ ॥ कल्पोंके ये लक्षण, तथा करोडों ब्रह्माण्ड, और ये वर्तमानभूत तथा पुनः आनेवाले सर्ग (सृष्टि) ॥ १६ ॥

इमानिधिष्ण्यजालानिदेशकालकलाइमाः ॥ महाचित्परमाकाशमनावृतमनंतकम् ॥ १७ ॥ यथापूर्वं स्थितंशांतमित्येवंकचतिस्वयम् ॥ परमाणुसहस्रांशुभासएतामहाचितेः ॥ १८ ॥ स्वयमंतश्चमत्कारोयःसमुद्रीर्यतेचिता ॥ तत्सर्गभानंभातीदमरूपंनतुभित्तिमत् ॥ १९ ॥ नोद्यंतिनचनश्यंतिनायांति नचयांतिच ॥ महाशिलासुलेखानांसन्निवेशाइवाचलाः ॥ २० ॥

अर्थ—तथा देवता और मनुष्योंके रहनेके स्थान चतुर्दश भुवनोंके समूह, तथा सातों द्वीपरूप देश और सत्युगादिकालोंकी कल्पना ये सब चित्रकी कथाके न्यायसे वर्णित हैं पदार्थरूपसे आवरण शून्य है और अनन्त परमात्माकाशमें जो महाचित्रूप है, वही पूर्वमें जैसे स्थितथा वैसाही स्फुरित होरहाहै, और ये सब महाचेतनके चिदाभास इसप्रकार हैं जैसे गवाक्ष (झरोंखे) के अन्तर्गत छिद्रके परमाणुओंमें परिच्छिन्न सूर्यकी दीप्ति ॥ १७ ॥ १८ ॥ और मनसे क्षुब्धवित् अपने अंतर्गत जगत्रूप चित्का चमत्कार वमन कर्ती है वही यह रूपरहित सृष्टिका भान है न कि साकार भित्तिवाले चित्रके समान ॥ १९ ॥ जैसे स्फटिककी महाशिलाओंमें नेत्रके दोषसे रेखाओंके अचल स्थान हैं ऐसेही उस आत्मरूपमें ये ब्रह्माण्ड न उत्पन्न हुये न नष्ट होतेहैं, न आतेहैं, न जातेहैं ॥ २० ॥

इमेसर्गाःप्रस्फुरंतिस्वात्मनात्मनिनिर्मले ॥ नभसीवनभोभागानिराकारानिराकृतौ ॥ २१ ॥ द्रवत्वानीवतोयस्यस्पंदाइवसदागतौ ॥ आवर्त्ताइवचांभोधेर्गुणिनोवायथागुणाः ॥ २२ ॥ विज्ञानघनमेवैकमिदमेवमवस्थितम् ॥ सोदयास्तमयारंभमनंतंशांतमाततम् ॥ २३ ॥ सहकार्यादिहेतूनामभावेशून्यतोजगत् ॥ स्वयंभूर्जायतेचेतिकिलोन्मत्तकफूत्कृतम् ॥ २४ ॥ प्रशांतसर्वार्थकलाकलंकोनिरस्तनिःशेषविकल्पतल्पः ॥ चिरायविद्रावितदीर्घनिद्रोभवाभयोभूषितभूःप्रबुद्धः ॥ २५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे स्थितिबीजोपन्यासो नाम द्वितीयःसर्गः ॥ २ ॥

अर्थ—निर्मल आत्मामें आत्मरूपसे ये सर्ग ऐसे स्फुरित हो रहे हैं जैसे निराकार आकाशमें निराकार आकाशके भाग ॥ २१ ॥ और जैसे जलमें द्रवत्व वायुमें गति समुद्रमें आवर्त और गुणीमें गुण हैं ऐसेही परमात्मामें यह जगत् है ॥ २२ ॥ उदयसे अस्तमय आरंभमय इस जगत्रूपसे विज्ञानघन एकरस शान्त अनन्त ब्रह्महीं विस्तृत है ॥ २३ ॥ इसप्रकार सहकारी हेतुओंके अभावसे शून्यके समान प्रकृतिसे यह स्वयंभू (आत्मरूप) जगत् उत्पन्न होताहै यह सांख्यादिका कथन उन्मत्त चेष्टाके सदृश है ॥२४॥ हे रामजी ! सम्पूर्ण कल्पनारूपी कलंकोंसे शान्त और पदार्थरूप स्वप्न हेतुभूत संपूर्ण विकल्परूप शय्याओंको त्यागकर तथा चिरकालकेलिये अविद्यारूपी गाढी दीर्घ निद्राको भगाकर निर्भय होके ज्ञानसे जागृत तुम ब्रह्मवेत्ताओंकी सभारूप पृथिवीको शोभित करनेवाले स्थित होओ ॥ २५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषुस्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे स्थितिबीजोपन्यासो नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

परमात्माका विवर्तरूप इस जगत्की स्थितिका स्थापन करके पुनः ज्ञानदृष्टिसे उसका अपवाद और अज्ञानीकी दृष्टिसे जगत्की अनन्तता इस ३ के सर्गमें वर्णित की गई है ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ महाकल्पांतसर्गादौप्रथमोसौप्रजापतिः ॥ स्मृत्यात्माजायतेमन्येस्मृत्यात्मैवततो जगत् ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ महाप्रलयसर्गादावेवमेतद्रघूद्वह ॥ स्मृत्यात्मैवभवत्यादौप्रथमोसौ

प्रजापतिः ॥ २ ॥ तत्संकल्पात्मकजगत्स्मृत्यात्मैवमिदंततः ॥ भातिसंकल्पनगरंस्थितंपूर्वप्रजापतेः ॥ ३ ॥ स्मृतिर्नसंभवत्येवसर्गादौपरमात्मनः ॥ जन्माभावात्कथंकुत्रनभसीवमहाद्रुमः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-हे भगवन् ! महाकल्पके अन्तमें और सृष्टिकी आदिमें प्रथम प्रजापति स्मरण रूपही उत्पन्न होते हैं, और उनकी स्मृति वा मनोराज्य रूप यह जगत् उनसे उत्पन्न होताहै ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ रामजी ! महाप्रलयके अन्तमें तथा सृष्टिके आदिमें जैसा तुम कहतेहो वैसा यह प्रथम प्रजापति स्मरणरूपही[1] उत्पन्न होतेहैं ॥ २ ॥ और उसी पूर्व प्रजापतिकी स्मृति वा संकल्परूप यह जगत् ऐसे भान होताहै जैसे गन्धर्वनगर ॥ ३ ॥ सो आपके अभिप्रायसे स्मृतिमें संस्कार रूपसे जगत् सत्ता रहतीहै सो मृत्तिकादिके तुल्य अचेतन प्रधानकी स्मृति नहीं होसकती और आकाशमें महा वृक्षके समान जन्मादि विकारके अभावसे परमात्मामें स्मृति कहां ४

॥ श्रीरामउवाच ॥ नसंभवतिकिंब्रह्मन्सर्गादौप्राक्तनीस्मृतिः ॥ महाप्रलयसंमोहैर्नश्यतिप्राक्स्मृतिः कथम् ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ येमहाप्रलयेप्राज्ञाःसर्वेब्रह्मादयःपुरा ॥ किलनिर्वाणमायातास्तेव श्यंब्रह्मतांगताः ॥ ६ ॥ प्राक्तनःकःस्मृतेःकर्त्तातस्मात्कथयसुव्रत ॥ स्मृतिर्निर्मूलतांयातास्मर्त्तुर्मुक्तत्वायतः ॥ ७ ॥ अतःस्मर्त्तुरभावेनस्मृतिर्वोदेतिकिंकथम्॥ अवश्यंहिमहाकल्पेसर्वेमोक्षैकभागिनः ८

अर्थ—श्रीरामजी बोले-हे ब्रह्मन् ! जैसे प्रतिदिन सुषुप्ति है; ऐसेही प्रलयभी है तो सुषुप्तिसे उठनेके पश्चात् जैसे पूर्वकी स्मृति रहती है ऐसेही सृष्टिके आदिमें प्रजापतिकी स्मृतिका सम्भव क्यों नहीं और महाप्रलयके प्रबलमोहसे पूर्वकल्पके संस्कार जनित स्मृति कैसे नष्ट होती है ? ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! महाप्रलयमें पूर्वकालमें आविर्भूत ब्रह्माजी ज्ञानी हैं वे सब मोक्षको प्राप्त होगये; इसलिये वे अवश्य ब्रह्मरूप होगये ॥ ६ ॥ हे सुव्रत ! इसलिये पूर्वकालका उत्पन्न स्मृतिका कर्ता कौन है कहो ? क्योंकि कर्ताके मुक्त होनेसे स्मृति निर्मूल होगई ॥ ७ ॥ इसलिये स्मृतिके कर्ता रूप स्मरण कर्ताके अभावसे क्या और किस रीतिसे स्मृति उत्पन्नहो ? क्योंकि महाकल्पमें अवश्य सब मोक्षके भागी हैं ॥ ८ ॥

नानुभूतेनुभूतेचस्वतश्चिद्व्योम्नियास्मृतिः ॥ साजगद्भूरितिप्रौढादृश्यासास्त्येवचित्प्रभा ॥ ९ ॥ भाति संवित्प्रभैवेयमनाद्यंतावभासिनी ॥ यत्तदेतज्जगदितिस्वयंभूरितिचस्थितम् ॥ १० ॥ अनादिकालसंसिद्धंयद्धानंब्रह्मणोनिजम् ॥ सआतिवाहिकोदेहोविराजोजगदाकृतिः ॥ ११ ॥ परमाणाविदंभातित्रिजगत्सवनाभ्रखम् ॥ देशकालक्रियाद्रव्यदिनरात्रिक्रमान्वितम् ॥ १२ ॥

अर्थ—और अनुभूत अथवा अननुभूत चिदाकाशमें स्मृतिको जगत्की उत्पत्तिकी भूमि जो तुमने शंका की वह (प्रबल) चित्की प्रभा है और सत् है, यह सत् कार्यवादिनी श्रुतियोंका तात्पर्य है ॥ ९ ॥ अनादि अनन्त आकाश शील यह चेतनकी प्रभाही भान होती है; और जो जगत् है सो स्वयंभू परमात्माही इस रूपसे स्थित है ॥१०॥ अनादि कालसे सिद्ध ब्रह्मके निजस्वरूपका भान है वही ब्रह्माण्डकी शरीरका उपादान कारण जगदाकार सूक्ष्म शरीर है और वह परमात्माही है ॥ ११ ॥ और देशकाल क्रिया द्रव्य तथा रात्रि दिनके क्रमसे संयुक्त तथा वन मेघ और आकाशादिसे युक्त यह त्रिलोक एक परमाणुमें भान होताहै ॥ १२ ॥

परमाणुःप्रविततस्तस्यास्तेतादृगेवच ॥ भातिभासुरताकारितादृग्गिरिकुलंपुनः ॥ १३ ॥ तत्रापितादृगाकारमेवप्रत्यनुसंततम् ॥ दृश्यमाभातिभारूपमेतदंगनवास्तवम् ॥ १४ ॥ इत्यस्त्यंतोनसदृष्टेरसदृष्टेश्चवाक्वचित् ॥ अस्यास्त्वभ्युदितंबुद्धंनाबुद्धंप्रतिवानघ ॥ १५ ॥ बुद्धंप्रतीदंब्रह्मैवकेवलंशांतमव्ययम् ॥ अबुद्धंप्रतिबुद्धयैतद्भासुरंभुवनान्वितम् ॥ १६ ॥

अर्थ—और उस पूर्व परमाणुके अंतर्गत दूसरा विस्तृत परमाणु है और वह पूर्व परमाणुके सदृश है और उस परमाणुमें वैसाही मेघ वन आकाशादि सहित यह त्रिलोक भान होताहै ॥ १३ ॥ और उस परमाणुमेंभी उसीप्रकार परमाणु है और उसमेंभी पूर्व कथितानुसार यह त्रिजगत् भान होताहै ऐसेही अव्यवस्थारूपसे निरंतर गुंथा हुआ यह दृश्यभान होताहै; परन्तु हे प्रिय यह वास्तव नहीं है ॥ १४ ॥ हे पापरहित रामजी ! इसप्रकार परम अभ्युदयको प्राप्त ज्ञानीके प्रति इस सत्दृष्टिका अन्त नहीं है और अज्ञके प्रति असत्दृष्टिकाभी अन्त नहीं है ॥ १५ ॥ ज्ञा-

---

(१) रामचन्द्रजीका गूढ आशय यहहै कि प्रकृतिमें अपनी सत्तामें तिरोहित होके मनरूप प्रजापतिसे उत्पन्न होतेहैं तो उस मनरूप प्रजापतिमें संस्काररूपसे विद्यमान जगत् उत्पन्न होताहै इसमें क्या विरोधहै ॥

नीकें प्रति तो यह संपूर्ण प्रपंच अविनाशी शान्त केवल ब्रह्महीं है और अज्ञानीकी बुद्धिमें यह चतुर्दश भुवनसहित प्रकाशमान प्रपंच है ॥ १६ ॥

यथेदंभासुरंभातिजगदंडकजृंभितम् ॥ यथाकोटिसहस्राणिभांत्यन्यान्यण्वणावणौ ॥ १७ ॥ यथास्तंभेपुत्रिकांतस्तस्याःस्वांगेषुपुत्रिका ॥ तस्याश्चपुत्रिकास्त्यंगेतथात्रैलोक्यपुत्रिका ॥ १८ ॥ नाभिन्नानापिसंख्येयायथाद्रौपरमाणुकाः ॥ तथाब्रह्मबृहन्मेरौत्रैलोक्यपरमाणवः ॥ १९ ॥ सूर्यांशुषुसंख्यातुंशक्यंतेलघवोणवः ॥ उत्पद्यंतेचिदादित्येत्रैलोक्यपरमाणवः ॥ २० ॥

अर्थ—जैसे वृद्धिको प्राप्त यह ब्रह्माण्ड भान होताहै ऐसेही अन्य सहस्रों (हजारों) कोटि ब्रह्माण्ड एक २ अणुमें भान होते हैं ॥ १७ ॥ हे रामजी ! जैसे खंभेके अन्तर्गत प्रतिमा बनती है और उस प्रतिमाके अंगोंमें प्रतिमा, पुनः उसके अंगोंमेंभी प्रतिमा है; ऐसेही जगत्के परमाणु २ में त्रैलोक्यरूपी प्रतिमा है ॥ १८ ॥ जैसे पर्वतमें न उस पर्वतसे भिन्न और न संख्या करनेके योग्य अनंत परमाणु हैं ऐसेही ब्रह्मरूप महान् सुमेरुमें अनेक त्रैलोक्यरूप परमाणु हैं ॥ १९ ॥ यदि सूर्य्यादिके किरणोंमें जो लघु परमाणु हैं उनकी संख्या हो सके तौभी चेतनरूप सूर्यमें जो त्रैलोक्यरूप परमाणु उत्पन्न होते हैं उनकी संख्या नहीं होसकती; अर्थात् दोनोंकी संख्या असंभव है ॥ २० ॥

यथाणवोवहंत्यर्कदीप्तिष्वप्सुरजःसु च ॥ तथावहंचिद्व्योम्नित्रैलोक्यपरमाणवः ॥ २१ ॥ शून्यानुभवमात्रात्मभूताकाशमिदंयथा ॥ सर्गानुभवमात्रात्मचिदाकाशमिदंतथा ॥२२॥ सर्गस्तुसर्गशब्दार्थतयाबुद्धोनयत्यधः ॥ सब्रह्मशब्दार्थतयाबुद्धःश्रेयोभवत्यलम् ॥ २३ ॥ विज्ञानात्माशासिताविश्वबीजंब्रह्मैवालंस्वंचिदाकाशमात्रम् ॥ यस्माज्जातंयत्तदेवेतिविद्याद्वेद्यंस्वांतर्बोधसंबोधमात्रम् ॥ २४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषुस्थितिप्रकरणे जगदानंत्यवर्णनं नाम तृतीयःसर्गः ॥ ३ ॥

अर्थ—जैसे सूर्यके किरणोंमें; जलमें, और धूलियोंमें अनेक अणु भ्रमण करते हैं ऐसेही चिदाकाशमें त्रैलोक्यरूप अनेक परमाणु भ्रमण किया करते हैं ॥ २१ ॥ जैसे शून्य निराकार भूत आकाशका उसके विरुद्ध नीलरूपवान् अनुभव शून्य स्वरूपही है ऐसेही सृष्टिरूपसे अनुभव मात्र गम्य यह चिदाकाशभी है ॥ २२ ॥ यह सर्ग (सृष्टि) सर्गशब्द तथा उसके अर्थरूपसे ज्ञात होनेसे नरकादि अधोलोकमें प्राप्त करताहै और वही ब्रह्मशब्दार्थरूपसे ज्ञात (जाना हुआ) मोक्षरूप कल्याणकारी होताहै ॥ २३ ॥ हे रामजी ! जीवनामक प्रत्यगात्मा और संसारका कारण तथा शासनकर्ता ईश्वर ये दोनो परमार्थदृष्टिसे शोधन करनेपर परिपूर्ण प्रत्यक् एकरस चिन्मात्र ब्रह्मही है क्योंकि बाह्य तथा आभ्यन्तर दोनों उपाधि भेदकरूप ब्रह्मसे उत्पन्न श्रुतिमें कहेगयेहैं; इसलिये जो जिसमें उत्पन्न हुआ वह वहीहै और सम्पूर्ण वेद्यपदार्थ अपने अन्तःकरणके बोध होनेपर शुद्ध चिन्मात्र बोधरूपहीहैं॥२४॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषुस्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे जगदानंत्यवर्णनं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

इस ४ के सर्गमें जगत्की स्थितिका मूलकारण इंद्रियसहित मन दर्शाया गयाहै और मनके नाशसे दृश्य दर्शनकी असंभवतासे जगत् शून्यरूपताभी वर्णित है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इंद्रियग्रामसंग्रामसेतुनाभवसागरः ॥ तीर्यतेनेतरेणेहकेचिन्नामकर्मणा ॥ १॥ शास्त्रसत्संगमाभ्यासात्सविवेकोजितेंद्रियः ॥ अत्यंताभावमेतस्यदृश्यस्याप्यवगच्छति ॥ २ ॥ एतत्तेकथितंसर्वस्वरूपंरूपिणांवर ॥ संसारसागरश्रेण्योयथायांतिप्रयांतिच ॥ ३ ॥ बहुनात्रकिमुक्तेनमनःकर्मद्रुमांकुरः ॥ तस्मिंश्छिन्नेजगच्छाखीछिन्नःकर्मतनुर्भवेत् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! इन्द्रियके समूहके जयरूपी सेतु (पुल) से यह महान् भवसागर पार होसकताहै और अन्य किसी कर्मसे नहीं ॥ १ ॥ सो शास्त्र और सज्जनोंके समागमसे यह प्राणी विवेकी और जितेन्द्रिय होताहै, और जितेन्द्रिय पुरुषही इस दृश्यके अत्यंताभावको समझताहै ॥ २ ॥ हे सब सुंदर प्राणियोंमें श्रेष्ठ रामजी ! यह सम्पूर्ण स्वरूप (इन्द्रियका जय संसारके उच्छेदका हेतु और इन्द्रियकी वशता संसारमें

पतनका हेतु) तुमसे मैंने कहदिया जिससे संसाररूपी सागरकी अनेक पंक्ति नष्ट होती हैं तथा प्राप्तभी होती हैं॥३॥ अब अधिक कथनसे कुछ प्रयोजन नहीं है, यह मनही कर्मरूप वृक्षका अंकुर है इसके कटनेपर भोक्ताके भोग्य तथा भोगाकारमें परिणत विहित निषिद्ध कर्मरूपी शरीरवाला जगत्रूपी वृक्ष आपही कटजाताहै ॥ ४ ॥

मनःसर्वमिदंरामतस्मिन्नंतश्चिकित्सिते ॥ चिकित्सितोवैसकलोजगज्जालामयोभवेत् ॥ ५॥ तदेतज्जायतेलोकेमनोमननमाकुलम् ॥ मनसोव्यतिरेकेणदेहःक्वकिलदृश्यते ॥ ६ ॥ दृश्यात्यंतासंभवेनकृतेनान्येनहेतुना ॥ मनःपिशाचःप्रशमंयातिकल्पशतैरपि ॥ ७॥ एतच्चसंभवत्येवमनोव्याधिचिकित्सिते॥ दृश्योत्यंतासंभवात्मपरमौषधमुत्तमम् ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! यह मनही सब कुछ है इसकी चिकित्सा (दमन) से संपूर्ण जगतोंके समूहरूपी रोगकी चिकित्सासे शांति होजाती है ॥ ५ ॥ और यह जो देह है वह मनकी देहाकार स्फुरणसेही स्वप्नके समान क्रिया करनेसे समर्थ होताहै; और मनसे पृथक् यह देह (कार्य करनेमें समर्थ) कहां देख पडताहै ॥ ६ ॥ और ज्ञानद्वारा दृश्यके अत्यन्ताभावके बिना अन्य किसी हेतुसे यह मनरूपी पिशाच शान्तताको कभी नहीं प्राप्त होता ॥ ७ ॥ और इस मनरूपी रोगके चिकित्सार्थ दृश्यका बादही परमोत्तम औषध संभव है अन्य नहीं ॥ ८ ॥

मनोमोहमुपादत्तेम्रियतेजायतेमनः ॥ तत्स्वचिंताप्रसादेनबद्धयतेमुच्यतेपुनः ॥ ९ ॥ स्फुरतीदंजगत्स्वेचित्तेमननमूर्च्छिते ॥ शून्यमेवांबरेस्फारेगंधर्वाणांपुरंयथा ॥ १० ॥ मनसीदंजगत्कृत्स्नंस्फारंस्फुरतिचास्तिच ॥ पुष्पगुच्छइवामोदस्तत्स्थंतस्मादिवेतरत् ॥११॥ यथातिलकणेतैलंगुणोगुणिनिवायथा॥ यथाधर्मिणिवाधर्मस्तथेदंचित्तकेजगत् ॥ १२ ॥

अर्थ—यह मनही देहादिमें आत्मभावादि मोह उत्पन्न करताहै; वही मरताहै; वही पुनः उत्पन्न होताहै; इसी मनकी चिन्ताके प्रतापसे जीव बंधनमें आताहै; और वही जब आत्माके ज्ञानकी ओर झुकताहै तब वह मुक्तभी होजाताहै ॥ ९ ॥ और संकल्पादि चित्तके प्रबल होनेसे उसी चित्तमें यह सम्पूर्ण जगत् ऐसे स्फुरित होताहै जैसे शून्य विशाल आकाशमें गंधर्वोंका नगर ॥ १० ॥ और मनमें यह संपूर्ण जगत् उससे पृथक्के समान ऐसे स्फुरता है और रहताहै जैसे पुष्पके गुच्छेमें स्थित सुगन्ध उससे भिन्नरूपसे भानहो ॥ ११ ॥ जैसे तिलके कणमें तैल; वा गुणिमें गुण; अथवा धर्मीमें धर्म है ऐसेही इस दुष्ट चित्तमें यह जगत् है ॥ १२ ॥

रश्मिजालंयथासूर्येयथालोकस्तुतेजसि ॥ यथौष्ण्यंचित्रभानौचमनसीदंतथाजगत् ॥ १३ ॥ शैत्यंयथैवहिहिमेयथानभसिशून्यता ॥ यथाचंचलतावायोर्मनसीदंतथाजगत् ॥ १४ ॥ मनोजगज्जगदखिलंतथामनःपरस्परंत्वविरहितेसदैवहि ॥ तयोर्द्वयोर्मनसिनिरंतरंक्षितेक्षितंजगन्नहुजगतिक्षितेमनः॥ १५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये संवादे मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे स्थित्यंकुरकलनंनाम चतुर्थःसर्गः ॥ ४ ॥

अर्थ—सूर्यमें जैसे किरणोंका समूह; जैसे तेजमें प्रकाश; और जैसे अग्निमें उष्णता है ऐसेही मनमें यह जगत् है ॥ १३ ॥ और जैसे तुषार (बर्फ) में शीतता; आकाशमें शून्यता; और वायुमें चंचलता है ऐसेही मनमें यह जगत् है ॥ १४ ॥ जैसे यह मनही सम्पूर्ण जगत् है ऐसेही संपूर्ण जगत्भी मन है तथापि इन दोनोंमेंसे मनका सर्वथा नाश होनेपर यह संपूर्ण आपही नष्ट होजाताहै; और जगत्के नष्ट होनेसे मन नहीं नष्ट होता ॥ १५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे स्थित्यंकुरकलनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

महर्षि भृगुके समाधिस्थ होनेपर पर्वतपर क्रीडा करते हुये शुक्राचार्यको अप्सराके दर्शनसे मोह उत्पन्न होना और उससे उनका अप्सरामें तन्मयभाव उत्पन्न होना इत्यादि विषयोंका वर्णन इस ५ वे सर्गमें कियागयाहै ॥

श्रीरामउवाच ॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञपूर्वापरविदांवर ॥ अयंमनसिसंसारःस्फारःकथमिवस्थितः ॥१॥ यथायंमनसिस्फारःसंसारःस्फुरतिस्फुरन् ॥ दृष्टांतदृष्ट्यास्फुटयातथाकथयमेनघ ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठ उवाच ॥ यथैंदवानांविप्राणांजगत्यवपुषामपि ॥ स्थितानिजातदार्ढ्यानिमनसीदंतथास्थितम् ॥ ३ ॥ लवणस्ययथाराज्ञश्चैंद्रजालाकुलाकृतेः ॥ चंडालत्वमनुप्राप्तंतथेदंमनसिस्थितम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—हे भगवन्! हे सर्व धर्मोंके ज्ञातः! हे पूर्वापरके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ! यह विशाल संसार मनमें कैसे स्थित है ॥ १ ॥ हे पापरहित भगवन्! जैसे यह महान् संसार मनमें स्फुरता हुआ बाह्यदेशमेंभी प्रत्यक्ष भासता है वह रीति स्पष्ट दृष्टान्त दर्शाके मुझे कहिये ॥ २ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी! जिस प्रकार समाधिमें स्थित होनेपर स्थूलशरीर शून्यभी इन्दुके दशोंपुत्रोंके मनमें अनेक जगत् दृढताको प्राप्त स्थित है वैसेही मनमें यह जगत्भी स्थित है ॥ ३ ॥ और इंद्रजालसे व्याकुल चित्तवाले राजा लवणको जैसे चाण्डालत्व प्राप्त हुआ ऐसेही मनमें यह जगत् स्थित है ॥ ४ ॥

भार्गवस्यचिरंकालंस्वर्गभोगबुभुक्षया ॥ यथाभोगाधिनाथत्वंसंसारित्वंबभूवच ॥ ५ ॥ भोगेश्वरत्वं चतथातथेदंमनसिस्थितम् ॥ श्रीरामउवाच ॥ भगवन्भृगुपुत्रस्यस्वर्गभोगबुभुक्षया ॥ ६ ॥ कथं भोगाधिनाथत्वंसंसारित्वंबभूवच ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ शृणुरामपुरावृत्तंसंवादंभृगुकालयोः ॥ ७ ॥ सानौमंदरशैलस्यतमालविटपाकुले ॥ पुरामंदरशैलस्यसानौकुसुमसंकुले ॥ ८ ॥

अर्थ—जैसे भृगुके पुत्र शुक्राचार्यको चिरकालतक स्वर्गके सुखभोगकी इच्छासे अप्सराके प्राप्त होनेकी इच्छा; तथा उसकेलिये संसारी होके स्वर्गमें गमन तथा जन्मान्तरकी प्राप्ति हुई ॥ ५ ॥ और उनका स्वर्गमें अप्सराका भोग हुआ इसी प्रकार मनमें यह जगत् स्थित है श्रीरामजी बोले हे भगवन्! भृगुके पुत्र शुक्राचार्यको स्वर्ग भोगनेकी इच्छासे ॥ ६ ॥ अप्सरा प्राप्त करनेकी इच्छा तथा संसारीपन कैसे हुआ; श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी! भृगु और कालका संवाद यह प्राचीनवृत्तांत तुम श्रवण करो ॥ ७ ॥ तमालके वृक्षोंसे पूर्ण, और नाना भांतिके पुष्पोंसे आच्छादित मन्दराचलके किसी शिखरपर पूर्वकालमें ॥ ८ ॥

अतप्यततपोघोरंकस्मिंश्चिद्भगवान्भृगुः ॥ तमुपास्तेस्मतेजस्वीबालःपुत्रोमहामतिः ॥ ९ ॥ शुक्रः सकलचंद्राभःप्रकाशइवभासुरः ॥ भृगुर्वनवरेतस्मिन्समाधावेवसंस्थितः ॥ १० ॥ सर्वकालंसमुत्कीर्णोवनोपलतलादिव ॥ शुक्रःकुसुमशय्यासुकलधौताजिरेषुच ॥ ११ ॥ मंदारोद्दामदोलासुबालोरमणलीलया ॥ विद्याविद्यादृशोर्मध्येशुक्रोप्राप्तमहापदः ॥ १२ ॥

अर्थ—भृगुऋषिने घोर तप किया, उनकी उपासना बालक, तेजस्वी और महामतिमान् ॥ ९ ॥ पूर्णचंद्रमाके समान शोभायमान, और प्रकाशके सदृश प्रकाशमान पुत्र शुक्राचार्य करतेथे, और उस श्रेष्ठ [illegible] भृगुसमाधिहीमें ऐसे स्थित थे ॥ १० ॥ जैसे बनके शिलातलसे टाकीसे निकाले हुये, अर्थात् अचल [illegible] रतेथे; और शुक्राचार्य कुसमोंकी शय्याओंपर तथा सुवर्ण और रूप्यकी वेदिकाओंमें ॥ ११ ॥ और मन्दराचलके वृक्षोंके उत्तम झूलनोंपर रमणकी लीलासे क्रीडा कररहेथे; और उससमय शुक्राचार्य आत्मविद्या तथा सांसारिक अज्ञानरूप जगत्की सत्यार्थता इन दोनोंके मध्यमें महान् पद प्राप्त कियाथा ॥ १२ ॥

त्रिशंकुरिवरोदोंतरवर्तततदाकुलः ॥ निर्विकल्पसमाधिस्थेसकदाचित्पितर्यथ ॥ १३ ॥ अव्यग्रोभवदेकांतेजितारिरिवभूमिपः ॥ ददर्शाप्सरसंतत्रगच्छंतींनभसःपथा ॥ १४ ॥ क्षीरोदमध्यलुलितांलक्ष्मीमिवजनार्दनः ॥ मंदारमालावलितांमंदानिलचलालकाम् ॥ १५ ॥ हारझांकारिगमनांसुगंधितनभोनिलाम् ॥ लावण्यपादपलतांमदघूर्णितलोचनाम् ॥ १६ ॥

अर्थ—उस समय विद्या और अविद्याके मध्यमें शुक्र ऐसे वर्तमान थे जैसे आकाश और पृथिवीके मध्यमें विश्वामित्रसे रचित स्वर्गमें त्रिशंकु इसके पश्चात् पिताके कभी निर्विकल्प समाधिमें स्थित होनेपर ॥ १३ ॥ भृगुके पुत्र शुक्राचार्य एकांतमें ऐसे स्वस्थ चित्त हुये जैसे शत्रुओंके जीतनेसे राजा; उससमय आकाशमार्गसे जाती हुई एक अप्सराको भृगुने ऐसे देखा ॥ १४ ॥ जैसे क्षीरोदसमुद्रके मध्यसे मथनसे निकली हुई चंचल लक्ष्मीको विष्णु पुनः मन्दार (कल्पवृक्ष) की मालाओंसे आच्छादित शरीरवाली; मंदपवनसे चंचल केशयुक्त ॥ १५ ॥ हारसे झंकार शब्दके साथ गमनकारिणी अपनी शरीरसे आकाशके पवनकोभी सुगन्धित करनेवाली; सुन्दरतारूपी वृक्षकी लताके सदृश; मदसे घूर्णित नेत्रवाली ॥ १६ ॥

अमृतीकृततद्देशांदेहेंदूदयदीप्तिभिः ॥ कांतामालोक्यतस्याभूद्विलसत्तरलंमनः ॥ १७ ॥ दृष्टनिर्मलपूर्णेंदुवपुरंबुनिधेरिव ॥ साप्यालोक्यशुक्रमुखंतथापरवशाह्यभूत् ॥ १८ ॥ मनसिजेषुपराहतमाशयंसपरिबोध्यमनस्तदनूशना ॥ विगलितेतरवृत्तितयात्मनासचवधूमयएवबभूवह ॥ १९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भार्गवोपाख्याने भार्गवस्खलनं नाम पंचमःसर्गः ॥ ५ ॥

अर्थ—तथा देहरूपी चन्द्रमासे उत्पन्न किरणोंसे उस देशको अमृतमय करनेवाली उस रमणीय अप्सराको देखकर शुक्राचार्यका मन ऐसा क्षुभित हुआ ॥ १७ ॥ जैसे पूर्णचन्द्रमाको देखके समुद्रका शरीर; और वह अप्सरा भी शुक्राचार्यके मुखको देखकर उन्हींके समान परवश होगई ॥ १८ ॥ उस अप्सराको देखनेके पश्चात् कामके बाणोंसे अतिजर्जरीभूत अपने चित्तको शुक्राचार्य यथाशक्ति विवेकादिसे बाह्य शरीरादि व्यापारोंसे अप्सराके पीछे २ धावनादि व्यापारोंको रोककर; अन्यवृत्तियोंसे रहित होके मनसे केवल उस अप्सरामय होगये ॥ १९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे भार्गवोपाख्याने भार्गवस्खलनं नाम पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

इस ६ के सर्गमें शुक्रका मनसे स्वर्गमें गमन और वहांपर इन्द्रके सन्मानसे उसके समीपमें उपवेशन (बैठने) का वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथतांमनसाध्यायंस्तत्रैवामीलितेक्षणः ॥ आरब्धवान्मनोराज्यमिदमेकःकिलोशना ॥ १ ॥ एषाह्विललनाव्योम्निसहस्रनयनालये ॥ संप्राप्तोयमहंस्वर्गमालोलसुरसुंदरम् ॥ २ ॥ इमेतेमृदुमंदारकुसुमोत्तंससुंदराः ॥ द्रवत्कनकनिष्यंदविलासिवपुषःसुराः ॥ ३ ॥ इमास्तालोचनोल्लासदृष्टनीलाब्जदृष्टयः ॥ मुग्धहासविलासिन्यःकांताहरिणदृष्टयः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! इसके अनन्तर शुक्राचार्य नेत्र मून्दकर उसी अप्सराको मनसे ध्यान करते हुये यह वक्ष्यमाण मनोराज्य अन्यवृत्तियोंके त्यागपूर्वक आरम्भ किया ॥ १ ॥ यह स्वर्गकी ललना आकाशमार्गसे इन्द्रके स्थानपर जाती है और इसीके पीछे २ चलता हुआ मैं चञ्चल देवताओंसे सुन्दर स्वर्गमें प्राप्तहूं ॥ २ ॥ यही पुराणादिमें प्रसिद्ध पुष्पोंके शिरोभूषणसे सुन्दर और द्रवीभूत सुवर्णके समान शोभित शरीरवाले देवतागणहैं॥३॥ नेत्रोंके उल्लाससे प्रत्यक्षरूपसे नीलकमलके सदृश दृष्टिधारिणी तथा मनोहर हाससे विलास करनेवाली तथा हरिणके समान नेत्रवाली येही देवांगना हैं ॥ ४ ॥

इमेतेकौसुमोद्योताअन्योन्यप्रतिबिंबिताः ॥ विश्वरूपोपमाकारामत्तोमत्तकाशिनः ॥ ५ ॥ ऐरावणकटामोदविरक्तमधुपःश्रुताः ॥ इमास्ताःकाकलीगीतागीर्वाणगणगीतयः ॥ ६ ॥ इयंसाकनकांभोजचलद्वैरिंचसारसा ॥ मंदाकिनीतटोद्यानविश्रांतसुरनायका ॥ ७ ॥ एतेतेयमचंद्रेंद्रसूर्यानलजलानिलाः॥ लोकपालास्तनुद्योतकीर्णदीप्तानलार्चिषः ॥ ८ ॥

अर्थ—पारिजात आदिसे रचित मालाओंसे प्रकाशमान; और परस्पर प्रतिबिंबित होनेसे विष्णुके सदृश आकारवाले; मत्तके तुल्य शोभित यही वे देवता हैं ॥ ५ ॥ ऐरावतके गंडस्थलके सुगन्धसे विरक्त भ्रमरोंसे श्रुत, कर्णको मधुर देवताओंके यही वे गीत हैं ॥ ६ ॥ चंचल कमलोंमें भ्रमणकारी ब्रह्माके हंस और सारससे शोभित तथा तटकी वाटिकाओंमें विश्रामकारी इन्द्रसहित यह वही मन्दाकिनी आकाशगंगाहै ॥७॥ और अपने शरीरकी कान्तिसे प्रदीप्त अग्निकी ज्वालाको विस्तृत करनेवाले यम, चन्द्र, इन्द्र, सूर्य, अग्नि; जल, और पवन आदि ये वेही लोकपाल हैं ॥८॥

अयंसरणवृत्तांतहेतिकंडूयिताननः ॥ ऐरावणोरणेदंतप्रोतदैत्येंद्रमंडलः ॥९॥ इमेतेभूतलस्थानाद्व्योम्नितारकतांगताः ॥ वैमानिकाश्चरच्चारुचामीकरमयातपाः ॥ १० ॥ मेरूपलतलास्फालसीकराकीर्णदेवताः ॥ एतास्ताःकीर्णमंदारागंगासलिलवीचयः ॥ ११ ॥ एताःप्रसृतमंदारमंजरीपुंजपिंजराः ॥ दोलालोलाप्सरःश्रेण्यःशक्रोपवनवीथयः ॥ १२ ॥

अर्थ—युद्धके वृत्तान्तोंमें घर्षित मुखसे शोभित, तथा दांतोंमें दैत्येन्द्रोंके समूहको नाथेहुये यही वह ऐरावत इन्द्रका हस्ती है ॥ ९ ॥ चलायमान उत्तम सुवर्णके सदृश देहवाले विमानोंकी कान्ति धारण करनेवाले, और भूतलसे आकाशमें तारागणोंकी शोभाको प्राप्त येही वे विमानोंपर चलनेवाले देवता हैं ॥ १० ॥ मेरूकी शिलापरसे उछले हुये जलकणोंसे देवताको सींचनेवाली तथा कल्पवृक्षोंको सिंचन करनेवाली यही वे आकाशगंगाके जलकी तरंगे है ॥ ११ ॥ मन्दारवृक्षोंकी लताओंके समूहोंके पिंजर जिनमें फैले हैं तथा झूलोंमें चंचल अप्सराओंकी श्रेणी (झुण्ड) जिनमें वर्तमान हैं ऐसी इन्द्रके उपवनकी ये गलियां हैं ॥ १२ ॥

इमेतेकुंदमंदारमकरंदसुगंधयः ॥ चंद्रांशुनिकराकाराःपारिजातसमीरणाः ॥ १३ ॥ पुष्पकेसरनीहार पटवासरणोत्सुकैः ॥ लतांगनागणैर्व्याप्तमिदंतन्नंदनंवनम् ॥ १४ ॥ कांतगीतरवानंदप्रनर्त्तितसुरांगनौ ॥ इमौत्तौवल्लकीस्निग्धस्वरौनारदतुंबुरू ॥ १५ ॥ इमेतेपुण्यकर्त्तारोभूरिभूषणभूषिताः ॥ व्योमन्युड्डीयमानेषुविमानेषुचसंस्थिताः ॥ १६ ॥

अर्थ— कुन्द तथा मन्दार (कल्पवृक्ष) के परागकी सुगन्धसहित और चन्द्रकिरणके समूहके सदृश शैत्य-मान्धादियुक्त रचनावाले ये पारिजात (कल्पवृक्ष) के वायु हैं ॥ १३ ॥ पुष्प केशर और तुषारकी धुलियोंके कणोंसे वस्त्रोंको सुगंधित करनेवाले परागोंसे पवन संचारकेलिये परस्पर ताडनरूप रणमें आसक्त लता तथा अंगना गणोंसे व्याप्त यह वही इन्द्रका नन्दनवन है ॥ १४ ॥ सुन्दर गीतके शब्दसे आनन्दित देवांगनाओंको नचानेवाले वल्लकी (वीणा) के समान मधुरस्वरवाले यही वे नारद और तुंबुरू गंधर्व वा ऋषि हैं ॥ १५ ॥ आकाशमें उडनेवाले विमानोंमें स्थित अनेक भूषणोंसे भूषित, यही वे अधिक पुण्यके कर्ता देवगण हैं ॥ १६ ॥

मदमन्मथमत्तांग्यइमास्ताःसुरयोषितः ॥ देवेश्वरंनिषेवंतेवनंवनलताइव ॥ १७ ॥ इंद्राश्मजालकुसुमाश्चिंतामणिगुलुच्छकाः ॥ कल्पवृक्षाइमेपक्कफलस्तबकदंतुराः ॥ १८ ॥ इहतावदिमंशक्रमहमासनसंस्थितम् ॥ द्वितीयमिवत्रैलोक्यस्रष्टारमभिवादये ॥ १९ ॥ इतिसंचिंत्यशुक्रेणमनसैवशचीपतिः ॥ तेनाभिवादितस्तत्रद्वितीयइवखेभृगुः ॥ २० ॥

अर्थ—मदके सहित कामदेवसे मत्त शरीरवाली यही वे देवांगनाइन्द्रको ऐसे शोभित कर रही हैं जैसे वनको वनकी लता ॥ १७ ॥ नीलमणिके समूहरूप पुष्पवाले चिन्तामणिरूपी गुच्छा संयुक्त, और पक्कफलरूपी स्तबकसे उन्नत यही वे कल्पवृक्ष हैं ॥ १८ ॥ यहां स्वर्गमें प्राप्त होके आसनपर स्थित दूसरे ब्रह्माके समान इंद्रको मैं प्रणाम करताहुं ॥ १९ ॥ इसप्रकार चिन्तन करके शुक्रने मनसेही इन्द्रको ऐसे प्रणाम किया मानो आकाशमें स्थित द्वितीय भृगु (अपने पिता) को ॥ २० ॥

अथसादरमुत्थायशुक्रःशक्रेणपूजितः ॥ गृहीतहस्तआनीयसमीपमुपवेशितः ॥ २१ ॥ धन्यस्त्वदागमेनाथस्वर्गोयंशुक्रशोभते ॥ इष्यतांचिरमेवेहशक्रइत्थमुवाचतम् ॥ २२ ॥ अथतत्रोपविश्यासौभार्गवःशोभिताननः ॥ श्रियंजहारशशिनःसकलस्यामलस्यच ॥ २३ ॥ सकलसुरगणाभिवंदितोसौभृगुतनयःशतमन्युपार्श्वसंस्थः ॥ चिरतरमतुलामवापवृद्धिंनरपतिसत्तमलालनंबभूव ॥ २४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषुस्थितिप्रकरणे भार्गवोपाख्याने भार्गवमनोराज्यं नाम षष्ठःसर्गः ॥ ६ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् आदरपूर्वक उठके इन्द्रने शुक्राचार्यकी पूजाकी और हस्तग्रहण करके अपने आसनके समीप बैठाया ॥ २१ ॥ हे शुक्रजी ! आपके इस आगमनसे स्वर्ग धन्य है और यह इससमय शोभित होरहाहै, आप चिरकालतक यहां निवास कीजिये, ऐसा इन्द्रने शुक्रसे कहा ॥ २२ ॥ हे रामजी ! इसके पश्चात् शोभित मुख शुक्राचार्य इन्द्रके समीप बैठके कलंक रहित सम्पूर्ण चन्द्रमाकी शोभाको जीतलिया ॥ २३ ॥ इसके अनन्तर सब देवगणोंसे वन्दित, इन्द्रके निकट स्थित भृगुके पुत्र शुक्रजी चिरकालतक अनुपम प्रसन्नताको प्राप्त हुये, और इन्द्रके पुत्रका जैसा लालन (प्यार) होताहै वैसाही लालन कियागया ॥ २४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे भार्गवोपाख्याने भार्गवमनोराज्यं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

इस ७ के सर्गमें पूर्वदृष्ट अपनी कांता अप्सराको स्वर्गमें पुनः शुक्राचार्यका देखना और परस्परके अनुरागसे संगमभी वर्णित कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इतिशुक्रःपुरंप्राप्यवैबुधंस्वेनतेजसा ॥ विसस्मारनिजंभावंप्राक्तनव्यसनांविना ॥ १ ॥ मुहूर्तमिवविश्रम्यतस्यपार्श्वेशचीपतेः ॥ स्वर्गेविहर्तुमुत्तस्थौस्वर्गाभिपरिमोदितः ॥ २ ॥ स्वःश्रियंससमालोक्यलोललोचनवांछिताम् ॥ स्त्रैणंदष्टुंजगामासौनलिनीमिवसारसः ॥ ३ ॥ तत्रतांमृगशावाक्षींकांतामध्यगतामसौ ॥ ददर्शविपिनांतस्थांभृगुश्चूतलतामिव ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-इस प्रकार शुक्राचार्य अपने पुण्यके प्रभावसे देवताओंके नगर (स्वर्ग) में प्राप्त हुये, और वहांपर विना मरण दुःखकेही अपने पूर्वभावको विस्मृत होगये ॥ १ ॥ इसके पश्चात् दोघडी इन्द्रके निकट विश्रामकरके वहांके अधिक सुखसे हर्षित स्वर्गमें विहार करनेकी इच्छासे उठ खडे हुये ॥ २ ॥ चंचल स्त्रीजनोंको इष्ट स्वर्गकी शोभा वा अपनी सुन्दरताको देखके स्वर्गकी अप्सराओंके समूहको देखनेको ऐसे गये जैसे नलिनीके देखनेके अर्थ सारसपक्षी ॥ ३ ॥ वहांपर शुक्राचार्यने, उसी पूर्व दृष्ट मृगके सदृश लोचनवाली स्त्रियोंके मध्यमें प्राप्त अपनी प्रिया अप्सराको ऐसे देखा जैसे जंगलके मध्यमें प्राप्त आम्रकी लताको ॥ ४ ॥

सापितंभार्गवंरामदृष्ट्वापरवशाभवत् ॥ तामालोक्यलसल्लोलविलासवलिताकृतिम् ॥ ५ ॥ आसीद्वि लीयमानांगोज्योत्स्नामिंदुमणिर्यथा ॥ विलीयमानसर्वांगस्तामैक्षतकामिनीम् ॥ ६ ॥ चंद्रकांतइवज्यो त्स्नांशीतलांखेविलासिनीम् ॥ तेनावलाकितासापितत्परायणतांगता ॥ ७ ॥ निशांतेचक्रवाकेनकांतेव परिकूजिता ॥ रसाद्विकसितानूनमन्योन्यमनुरक्तयोः ॥ ८ ॥ प्रातरर्कनलिन्योर्याशोभासैवतयोरभूत् ॥ संकल्पितार्थदायित्वाद्देशस्याभूच्चतेनसा ॥ ९ ॥

अर्थ—हे रामजी ! वह अप्सराभी शुक्रको देखके परवश होगई और शोभायमान चंचल विलाससे पूर्ण शरीरवाली उस अप्सराको देखके ॥ ५ ॥ ऐसे द्रवीभूत (प्रश्वेदयुक्त) शरीरवाले शुक्र होगये जैसे चंद्रकी चंद्रिकाको देख चंद्रकान्त मणि, और सर्वांग प्रस्वेद (पसीना) युक्त उस कामिनीको शुक्रने ऐसे देखा ॥ ६ ॥ जैसे आकाशमें विलास करनेवाली शीतल चंद्रकी चंद्रिका (चांदनी) को चंद्रकात मणि और शुक्रसे दृष्ट वह अंगनाभी ऐसी उनमें परायण हुई ॥ ७ ॥ जैसे रात्रिके अंतमें चक्रवाकसे दृष्ट रात्रिके वियोगसे रोदन किये हुये चक्रवाकी, और प्रेमकी अधिकतासे प्रबल शोभायुक्त होगई, जैसे प्रातःकालमें सूर्य और कमलिनीकी होती है और उस देश (नंदन) के संकल्पित पदार्थके दाता होनेके कारण वह ऐसी होगई ॥ ८ ॥ ९ ॥

सर्वांगंविवशीकृत्यकामायैवसमर्पिता ॥ पेतुःस्मरशरास्तस्यामृदुष्वंगेषुभूरिशः ॥ १० ॥ पलाशेष्विव पद्मिन्याधाराइवपयोमुचः ॥ साबभूवस्मरोद्धूतालोलालिवलयाकुला ॥ ११ ॥ मदंवाताभितुन्नाथाभं जर्य्याःसहधर्मिणी ॥ नीलनीरजनेत्रांतांहंससारसगामिनीम् ॥ १२ ॥ मदनःक्षोभयामासगजःकम लिनीमिव ॥ अथतांतादृशींदृष्ट्वाशुक्रःसंकल्पितार्थभाक् ॥ १३ ॥

अर्थ—कि सर्वांग विवश करके कामदेवकेही आधीन होगई, और उसके कोमल शरीरमें अनेक कामदेवके बाण ऐसे गिरे ॥ १० ॥ जैसे कमलिनीके पत्तोंपर मेघकी धारा, इससे वह अप्सरा कामदेवसे कम्पित और चंचल भ्रमरोंके वेष्टनसे व्याकुल ॥ ११ ॥ मन्द वायुसे पीडित लताके सदृश होगई; हे रामजी ! नीलकमलके सदृश कटाक्ष धारिणी; तथा हंस और सारसके सदृश गामिनी; उस भामिनीको कामदेवने ऐसे क्षोभित किया जैसे कमलिनीको गज; इसके पश्चात् संकल्पित अर्थके भागी शुक्राचार्य उस अप्सराको उस प्रकारकी देखके ॥ १२ ॥ १३ ॥

तमःसंकल्पयामाससंहारइवभूतभुक् ॥ त्रिविष्टपस्थदेशोसौबभूवतिमिराकुलः ॥ १४ ॥ भूलोकस्यांधतम सालोकालोकतटोयथा ॥ लज्जाधकारतीक्ष्णांशौतस्मिंस्तिमिरमंडले ॥ १५ ॥ प्रतिष्ठामागतेतस्यमिथुन स्येवमंडले ॥ तेषुसर्वेषुभूतेषुगतेष्वभिमतांदिशम् ॥ १६ ॥

अर्थ—जैसे महादेवजी संहारका संकल्प करतेहैं ऐसेही अंधकारका संकल्प किया, और उससे स्वर्गका एक भाग वह नंदनप्रदेश अंधकारसे ऐसा पूर्ण होगया ॥ १४ ॥ जैसे भूलोकके गाढ अंधकारसे लोकालोक पर्वतका तट लज्जारूपी अन्धकारके नाशक उस तिमिर समूहके ॥ १५ ॥ उस स्त्रीपुरुषके मिथुन सदृश स्थिरताके प्राप्त होनेपर और उस स्थानसे उन सब प्राणियोंके अपनी २ अभिमत दिशाओंमें इसप्रकार जानेपर ॥ १६ ॥

तस्मात्प्रदेशाद्भूलोकेदिनांतेविहगेष्विव ॥ सादीर्घचंचलापांगीप्रवृद्धमदनव्यथा ॥ १७ ॥ आजगामभृ गोःपुत्रंमयूरीवारिदंयथा ॥ धवलागारमध्यस्थेपर्यंकेपरिकल्पिते ॥ १८ ॥ विवेशभार्गवस्तत्रक्षीरोदइ वमाधवः ॥ साकरावबलंव्यास्यविवेशावनतानना ॥ १९ ॥ रराजचसुरेभस्यहृदिलग्नेवपद्मिनी ॥ उवा चचेदंमधुरंरसस्नेहाकयागिरा ॥ २० ॥ वचोमधुरमानंदविलासवलिताक्षरम् ॥ पश्यामलेंदुवदनमंडली कृतकार्मुकः ॥ २१ ॥ अबलामनुबध्नातिमामेपकिलनांगकः ॥ पाहिमामबलांनाथदीनांत्वच्छरणा मिह ॥ २२ ॥ कृपणाश्वासनंसाधोविद्धिसच्चरितव्रतम् ॥ स्नेहदृष्टिमजानद्भिर्मूढेरेवमहामते ॥ २३ ॥ प्रणयाअवगण्यंतेनरसज्ञैःकदाचन ॥ अशंकितोपसंपन्नःप्रणयोन्योन्यरक्तयोः ॥ २४ ॥

अर्थ—जैसे भूलोकमें दिनके अंतमें पक्षीगण उत्कण्ठित होतेहैं ऐसे उस समय अति वृद्धिको प्राप्त हुई कामकी व्यथासे पीडित वह दीर्घ और चंचल कटाक्षवाली अप्सरा ॥ १७ ॥ भृगुके पुत्र शुक्रके निकट ऐसे आके प्राप्त हुई जैसे मयूरी मेघके निकट, और श्वेत मंदिरके मध्यमें कल्पित पर्य्यंक (शय्या) पर ॥ १८ ॥ शुक्राचार्यने इसप्रकार प्रवेश किया जैसे क्षीरसमुद्रमें माधव (विष्णुभगवान्) और वह अप्सरा शुक्राचार्यके दोनों हस्तोंको अवलम्बन (पकड) करके नीचे मुख किये हुई बैठगई ॥ १९ ॥ और ऐसे शोभित हुई जैसे ऐरावतके हृदयमें संलग्न पद्मिनी, और प्रेमरस तथा स्नेहसे सनी हुई वाणीसे मधुर और आनंदके बिलाससे संवृत्त अक्षर संयुक्त इस बचनको बोली कि हे निर्मल चंद्रके सदृश मुखवाले देखो धनुषका मंडल किये हुये ॥ २० ॥ २१ ॥ यह कामदेव मुझ अवलाको पीडा दे रहाहै, सो हे नाथ ! आपकी शरणमें प्राप्त मुझ अवलाकी रक्षा करो ॥२२॥ हे साधो ! मेरे सदृश दीनोंको शांति देना इसीको तुम सच्चरितोंका व्रत जानों और हे महामते ! जो मूढ लोग स्नेह दृष्टिको नहीं जानते ॥ २३ ॥ वेही ऐसे अधिक प्रेमका बहुमान नहीं करते न कि रसज्ञ लोग, और परस्पर अनुरक्त स्त्री पुरुषका शंकारहित जो स्नेह है ॥ २४ ॥

अधःकरोतिनिष्यंदंचंद्रमाल्हादनंप्रिय ॥ नतथासुखयत्येषाचेतस्त्रिभुवनेशिता ॥ २५ ॥ यथापरस्परानंदःस्नेहःप्रथमरक्तयोः ॥ त्वत्पादस्पर्शनेनेयंसमाश्वस्तास्मिमानद ॥ २६ ॥ चंद्रपादपरामृष्टायथानिशि कुमुद्वती ॥ संस्पर्शामृतपानेनतवजीवामिसुंदर ॥ २७ ॥ चंद्रांशुरसपानेनचकोरीचपलायथा ॥ मामिमांचरणालीनांभ्रमरीकरपल्लवैः ॥ २८ ॥ आलिंग्यामृतसंपूर्णेस्वपक्ष्महृदयेकुरु ॥ इत्युक्त्वापुष्पसदृंगी सातस्यपतितारेसि ॥ व्याघूर्णितालिनयनासुतरोरिवमंजरी ॥ २९ ॥ तौदंपतीतत्रविलासकांतीविवेश तुस्तासुवनस्थलीषु ॥ किंजल्कगौरानिलघूर्णितासुरक्तौद्विरेफाविवपद्मिनीषु ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे श्रीवाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषुस्थितिप्रकरणे भार्गवोपाख्याने नवसंगमोनाम सप्तमःसर्गः ॥ ७ ॥

अर्थ—वह हे प्रिय देवताओंके जिलानेवाले अमृतश्रावी आल्हादकारी चंद्रमाकोभी नीचे कर देताहै अर्थात् जीवप्रदादि गुणसहित सहस्र चंद्रसेभी अधिक यह अनुरक्त स्त्रीपुरुषका स्नेह होताहै, और त्रिभुवन स्वामित्ता चित्तको वैसा सुखी नहीं करती, जैसा कि प्रथमसे अनुरक्त स्त्रीपुरुषका आनन्ददायक स्नेह, हे मानके देनेहारे आपके चरणके स्पर्शसे यह मैं ऐसे शान्तहुं ॥ २५ ॥ २६ ॥ जैसे चन्द्रके किरणके स्पर्शसे रात्रिमें कुमुदिनी हे सुन्दर ! आपके स्पर्शरूपी अमृतके पानसे मैं ऐसे जीती हुं ॥ २७ ॥ जैसे चपलचकोरी चंद्रके रसपानसे, हे प्रभो ! चरणमें लीन मुझ भ्रमरीको अपने करपल्लवोंसे ॥ २८ ॥ आलिंगन करके स्नेह तथा दयासे पूर्ण चित्तमें कीजिये ऐसा कहके पुष्पके सदृश कोमलांगी वह अप्सरा शुक्राचार्यके वक्षस्थलपर ऐसे गिरपडी जैसे भ्रमररूपी नेत्रोंसे विघूर्ण करनेवाली कल्पवृक्षकी लता ॥ २९ ॥ उसके पश्चात् उन स्त्रीपुरुषोंने केसर और उनकी धूलियोंके पीतवायुसे कम्पित उन वनस्थलियोंमें प्रवेश करके ऐसे भोग किया जैसे पूर्वोक्त गुणसहित कमलिनियोंमें भ्रमरभ्रमरी॥३०॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकिये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे भार्गवोपाख्याने नवसंगमो नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

विविधप्रकारके स्वर्गके भोगके अन्तमें गिरे हुये शुक्रके वासनाके योगसे अनेक जन्म तथा तपस्याका वर्णन इस ८ के सर्गमें कियागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इतिचित्तविलासेनचिरमुत्प्रेक्षितैःप्रियैः ॥ प्रणयैर्भार्गवस्यासीत्तुष्टयेसुसमागमः ॥१॥ मंदारमालाकलयाविबुधासवमत्तया ॥ तदातेनतयासार्द्धंद्वितीयेनामलेंदुना ॥२॥ विहृतंमत्तहंसासुहेमपंकजिनीषुच ॥ तटीष्वमरवाहिन्याःसहचारणकिंनरैः ॥ ३ ॥ पीतमिंदुदलस्यंदैर्देवैःसहरसायनम् ॥ पारिजातलताजालनिलयेषुविलासिना ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! इसप्रकार चित्तके विलाससे चिरकालसे कल्पित प्रेमोंसे शुक्राचार्यकी प्रसन्नताके लिये वह समागम हुआ ॥ १ ॥ मन्दारकी मालाको सर्व शरीरमें धारण किये हुई, तथा अमृत

वा देव भोग्यमद विशेषसे मत्त उस कालमें उस अप्सराके साथ द्वितीय चन्द्रमाके समान शुक्राचार्यने ॥ २ ॥ विहार किया तथा जिनमें मत्त हंस और सारस विराजमान थे और सुवर्णके कमल जिनमें खिल रहेथे ऐसी मन्दाकिनीकी तटस्थलियोंमें चारण और किन्नरोंके साथ उस अप्सराको लेके विहार किया ॥ ३ ॥ और चन्द्रमाकी कलासे निकले हुये रसायनको पारिजातकी लता समूहके कुंजोंमें देवताओंके साथ विलासी शुक्रने पान किया ॥ ४ ॥

चारुचैत्ररथोद्यानलतालोलासुदोलया ॥ चिरंविलसितंव्यग्रैःसहविद्याधरीगणैः ॥ ५ ॥ नंदनोपवनाभोगोमंदरेणेववारिधिः ॥ भृशमालोड्यतांनीतःप्रथमैःसहशांभवैः ॥ ६ ॥ बालहेमलताजालजटालासुनदीषुच ॥ भ्रांतमुन्मत्तनागेनमेरवीष्वब्जिनीष्विव ॥ ७ ॥ कैलासवनकुंजेषुतयासहविलासिना ॥ हरेंदुधवलारात्र्यःक्षपितागणगीतिभिः ॥ ८ ॥

अर्थ—और रमणीय नन्दनवनकी वाटिकाओंकी लतासे चंचल दोला (झूला) से व्यग्र विद्याधरी गणोंके साथ चिरकालतक क्रीडा किया ॥ ५ ॥ और महादेवजीके प्रमथसंज्ञक अनुचरोंके साथ नन्दनवनके पूर्णस्थानको वार २ ऐसे आलोडन (परिभ्रमण) किया जैसे मन्दराचल समुद्रको ॥ ६ ॥ तथा सुवर्णके समान लताके समूहसे जटासंयुक्त मेरुपर्वतकी नदियोंमें ऐसे भ्रमण किया जैसे मत्तहस्ती कमलिनियोंमें ॥ ७ ॥ और कैलास वनके कुंजोंमें विलासी शुक्रने उस अप्सराके साथ विद्याधरीगणकी गीतोंमें महादेवके चूडामणिसे धवलकी हुई कृष्णपक्षकी रात्रियोंको व्यतीत किया ॥ ८ ॥

गंधमादनशैलस्यविश्रम्योपरिसानुषु ॥ सातेनकनकांभोजैरापादमभिमंडिता ॥ ९ ॥ लोकालोकतटांतेषुविचित्राश्चर्यहारिषु ॥ क्रीडितंकृतहासेनरामतेनतयासह ॥ १० ॥ मंदरांतरकच्छेषुसार्द्धंहरिणशावकैः ॥ अवसत्ससमाःषष्टिंकल्पितामरमंदिरे ॥ ११ ॥ क्षीरार्णवतटीष्वस्यवनितासहचारिणः ॥ क्षीणंकृतयुगादर्द्धंश्वेतद्वीपजनैःसह ॥ १२ ॥

अर्थ—गंधमादन पर्वतके शिखरोंपर विश्राम करके सुवर्णके कमलोंसे उस अप्सराको चरणसे लेके शिर पर्य्यन्त शुक्राचार्यजी शोभित करतेथे ॥ ९ ॥ हे रामजी ! विचित्र आश्चर्योंसे चित्तको हरण करनेवाले लोकालोक पर्वतके प्रान्तोंमें उस अप्सराके साथ शुक्राचार्यने क्रीडा की ॥ १० ॥ मन्दराचलके अन्तर्गत सजल देशोंमें हरिण किशोरोंके साथ कल्पित देवमन्दिरमें ६० साठि वर्ष पर्य्यन्त शुक्राचार्यने निवास किया ॥ ११ ॥ वनिता (अप्सरा) के साथ क्षीरसागरकी तटियोंमें विचरते हुये शुक्रको श्वेतद्वीप निवासियोंके साथ सत्ययुगका आधा वीतगया ॥ १२ ॥

गंधर्वनगरोद्यानलीलाविरचनैरसौ ॥ स्रष्टानंतजगत्स्रष्टेःकालस्यानुकारितांगतः ॥ १३ ॥ अथावसदसौशुक्रःपुरंदरपुरेपुनः ॥ सुखंचतुर्युगाण्यष्टौहरिणेक्षणयासह ॥ १४ ॥ पुण्यक्षयानुसंधानात्ततश्चावनिमंडले ॥ तयैवसहमानीन्यापपातोपहताकृतिः ॥ १५ ॥ पराहृतसमस्तांगोहृतस्यंदनमंडनः ॥ चितापरवशोध्वस्तःसमितीवहतोभटः ॥ १६ ॥

अर्थ—गंधर्व नगर तथा उद्यानों (वाटिकाओं) की रचना विशेषसे यह शुक्राचार्य मनोरथ मात्रसे सब जगतकी सृष्टिके स्रष्टा होके कालकी सदृशताको प्राप्त हुये ॥ १३ ॥ इसके पश्चात् उस हरिणके तुल्य नेत्रवाली अप्सराके साथ आठ चतुर्युगी पर्यन्त पुनः इन्द्रपुरमें शुक्राचार्यने निवास किया ॥ १४ ॥ इसके अनन्तर पुण्यके क्षयके अनुसन्धानसे अधःपतनके प्रति संधानके भयसे दिव्य शरीरके गलित होनेसे शुक्राचार्य उसी मानिनी अप्सराके साथ भूमण्डलपर गिरे ॥ १५ ॥ छिन्नभिन्न अंगसहित तथा देवताओंने विमान और वस्त्र आभूषण आदिका साधन नन्दनवनभी हरलियाथा इसकारण शुक्राचार्य चिंतामें परवश होके ऐसे गिरे जैसे संग्राममें मारा हुआ शूर ॥ १६ ॥

पतितस्यावनौतस्यचिंतयासहदीर्घया ॥ शरीरंशतधाजातंशिलापातीवनिर्झरः ॥ १७ ॥ संशीर्णयोर्देहयोश्चित्तकेव्यसनाविले ॥ विचेरतुस्तयोर्व्योम्निनिर्नीडौविहगौयथा ॥ १८ ॥ तत्राविविशतुश्चांद्रंतेचिन्तेरश्मिजालकम् ॥ प्रालेयतामुपेत्याशुशालितामथजग्मतुः ॥ १९ ॥ शालींस्तान्भुक्तवान्पक्वान्दशार्णेषुद्विजोत्तमः ॥ सशुक्रःशुक्रतामेत्यतद्भार्यातनयोभवत् ॥ २० ॥

अर्थ—दीर्घ चिंताके साथ पृथिवीपर गिरे हुये शुक्राचार्यका शरीर ऐसे सौ टुकडा होगया जैसे पाषाणकी शिलापर गिरा हुआ झरना ॥ १७ ॥ छिन्नभिन्न शरीरवाले दोनों (अप्सरा शुक्र) के दुःख पूर्ण चित्त अर्थात् दोनोंके सूक्ष्म शरीर आकाशमें ऐसे विचरतेथे जैसे नीड (खुंधा) रहित दो पक्षी ॥ १८ ॥ इसके पश्चात् आकाशमें वे दोनों लिंगशरीर चंद्रमाके किरण समूहमें प्रवेश किया और उसमेंसे हिमजालताको प्राप्त होके धान (चावल) के वृक्षमें

गये ॥ १९ ॥ अनंतर दशार्ण नामक देशोंमें एक उत्तम ब्राह्मणने पके हुये उन चावलोंको भोजन किया, और उससे शुक्राचार्य वीर्यरूपताको प्राप्त होके उस ब्राह्मणकी स्त्रीके पुत्र हुये ॥ २० ॥

ततोमुनीनांसंसर्गात्तपस्युग्रेव्यवस्थितः ॥ अवसन्मेरुगहनेमन्वंतरमनिंदितः ॥ २१ ॥ तत्रतस्यसमुत्पन्नोमृग्याःपुत्रोनराकृतिः ॥ तत्स्नेहेनपरंमोहंपुनरप्याययौक्षणात् ॥२२॥ पुत्रस्यास्यधनंमेस्तुगुणाश्चायुश्चशाश्वतम् ॥ इत्यनारतचिंताभिर्जहौसत्यामवस्थितम् ॥ २३ ॥ धर्मचिंतापरिभ्रंशात्पुत्रार्थंभोगचिंतया ॥ क्षीणायुषंतमहरन्मृत्युःसर्पइवानिलम् ॥ २४ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर मुनियोंके संसर्गसे मेरुके गहन प्रदेश इलावृत्तादि वर्षमें निद्रारहित शुक्राचार्य एक मन्वन्तर पर्यन्त निवास किया ॥ २१ ॥ इसके पश्चात् वहांपर शापसे मृगीरूपमें प्राप्त उसी अप्सराके मनुष्यके समान आकारवान् पुत्र शुक्राचार्यको उत्पन्न हुआ उसके स्नेहसे पुनःभी क्षणभरमेंही मोहको प्राप्त होगये ॥ २२ ॥ इस मेरे पुत्रको धन हो, गुण हो, और निरंतर आयु हो, इत्यादि सदा कालकी चिंतासे शुक्राचार्यने वेदादिके प्रमाणसे नियमित सत्य तप दानादि अपनी स्थितिको त्याग दिया ॥ २३ ॥ धर्म चिंताके पतनसे तथा पुत्रार्थ भोगकी चिंतासे क्षीणायुष शुक्रको मृत्यु ऐसे निगलगया जैसे सर्प वायुको ॥ २४ ॥

भोगैकचिंतयासार्द्धसमुत्क्रांतचेतनः ॥ प्राप्यमद्रेशपुत्रत्वमासीन्मद्रमहीपतिः ॥ २५ ॥ मद्रदेशेचिरंकृत्वाराज्यमुत्सन्नशात्रवम् ॥ जरामभ्याजगामाब्जहिमाशनिरिवांबुजम् ॥ २६ ॥ मद्रराजतनुंचारुंतपोवासनयासह ॥ तत्याजतेनजातोसौतपस्वीतापसात्मजः ॥ २७ ॥ समंगायामहानद्यास्तटमासाद्यतापसः ॥ तपस्तेपेमहाबुद्धिःसरागविगतज्वरः ॥ २८ ॥ विविधजन्मदशांविविधाशयःसमनुभूयशरीरपरंपराः ॥ सुखमतिष्ठदसौभृगुनंदनोवरनदीसुतटेदृढवृक्षवत् ॥ २९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्त मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भार्गवोपाख्याने शुक्रविविधजन्मानुभवो नामाष्टमःसर्गः ॥ ८ ॥

अर्थ—भोगकी चिंताके साथ लिंग शरीरके निकलनेसे मद्रदेशके राजाके पुत्र होके मद्रदेशके राजा होगये ॥ २५ ॥ शत्रुओंको उखाडके चिरकालतक मद्रदेशका राज्य करके वृद्धावस्थाको ऐसे प्राप्त हुये जैसे हिमरूप वज्र कमलताको ॥ २६ ॥ मद्रदेशके राजाकी उत्तम शरीरको वानप्रस्थ आश्रमके योग्य तपकी वासना सहित शरीरको त्यागा इससे तपस्वीके पुत्र तथा स्वयं तपस्वी हुये ॥ २७ ॥ हे रामजी ! रागादि सन्ताप रहित महाबुद्धि तपस्वी शुक्राचार्य समंगानाम महानदीके तटपर प्राप्त होके तप किया ॥ २८ ॥ हे रामजी ! पूर्वोक्त भृगनन्दन शुक्राचार्य विविध प्रकारकी वासनायुक्त होके उनके अनुसार अनेक जन्मदशाको प्राप्त होके शरीरकी परंपरा (पंक्तियोंको अनुभव करके समंगानाम श्रेष्ठ नदीके उत्तम तटपर दृढ वृक्षके समान सुख (ब्रह्मानन्दरूप) पूर्वक स्थितहुये ॥ २९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मिकीये देवदूतोक्त मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे भार्गवोपाख्याने विविधजन्माऽनुभावो नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

इस ९ के सर्गमें भृगके समीपमें वर्तमान मृतकके तुल्य शुक्राचार्यके शरीरका गिरना और उसकी शुष्कताका वर्णन किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच॥ इतिचिंतयतस्तस्यशुक्रस्यपितुरग्रतः ॥ जगामातितरांकालोबहुसंवत्सरात्मकः॥१॥ अथकालेनमहतापवनातपजर्जरः ॥ कायस्तस्यपपातोर्व्यांछिन्नमूलइवद्रुमः ॥ २ ॥ मनस्तुचंचलाभोगंतासुतासुदशासुच ॥ बभ्रामातिविचित्रासुवनराजिष्विवैणकः ॥ ३ ॥ भ्रांतमुद्भ्रांतमभितश्चक्रार्पितमिवाकुलम् ॥ मनस्तस्यविशश्रामसमंगासरितस्तटे ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! पिता भृगुके अग्रभागमें इस पूर्वोक्त रीतिसे चिन्ता करते हुये शुक्राचार्यको अनेक वर्षरूप बहुतकाल बीतगया ॥ १ ॥ इसके पश्चात् महान्काल बीतनेपर पवन तथा आतप (घाम) से जर्जरीभूत शुक्रका शरीर पृथ्वीपर ऐसे गिरा जैसे मूलके कटनेपर वृक्ष ॥ २ ॥ और चंचल विस्तारवाला मनने तो उन २ विचित्र अनेक दशाओंमें ऐसे भ्रमण किया जैसे बनकी पंक्तियोंमें हरिण ॥ ३ ॥ वह शुक्रका मन भोगोंकी कल्पनासे

चक्रमें स्थापितके तुल्य व्याकुल होके भ्रमण किया, और जन्ममरणादिकी कल्पनासे उद्भ्रमण (उर्ध्वअधोलोकादिकामें गमन) भी किया, तथा अन्तमें समंगानदीके तटपर विश्राम किया ॥ ४ ॥

अनंतवृत्तांतघनांपेलवांसुदृढामपि ॥ तांसंसृतिदशांशुक्रोविदेहोनुभवन्स्थितः ॥ ५ ॥ मंदराचलसानुस्थासातनुस्तस्यधीमतः ॥ तापप्रसरसंशुष्काचर्मशेषाबभूवह ॥ ६ ॥ शरीररंध्रप्रवहद्वातसीत्काररूपया ॥ चेष्टादुःखक्षयानंदात्काककल्येवप्रगायति ॥ ७ ॥ मनोचराकमवटेलुठितंभवभूमिषु ॥ हसंतीश्वेतेशुभ्राभासितयादंतमालया ॥ ८ ॥

अर्थ—अनन्त वृत्तान्तोंसे घनीभूत, मनकी कल्पनामात्र होनेसे तुच्छ और सत्यताकी भ्रांतिरूप पूर्वदेहके विस्मरणसे अति दृढ उस संसारकी दशाको पूर्वदेहसे निरपेक्ष होके शुक्राचार्य अनुभव करते हुये स्थितथे ॥ ५ ॥ मन्दराचल पर्वतके शिखरपर स्थित, बुद्धिमान् शुक्राचार्यका वह शरीर तापसे सूखकर केवल चर्ममात्र शेष रहगई ॥ ६ ॥ शरीरके छिद्रोंमें बहते हुये वायुके सीत्कार (सीसी) शब्दरूप मधुरध्वनिसे मानो अभिमान दुःखके क्षयजनित आनंदसे गा रही है कि देहकी यह दशा होती है ॥ ७ ॥ पुनः वह शरीर श्वेतमेघके समान स्वच्छ दांतोंकी मालासे इस बातको हंसरही है कि दीन मनसंसारकी भूमियोंमें जलशून्य तडागोंमें लोट रहाहै ॥ ८ ॥

दर्शयंतीजगच्छून्यंवपुरक्ष्णोरकृत्रिमम् ॥ मुखारण्यजरत्कूपरूपयागर्तशोभया ॥ ९ ॥ तापोपतप्तासंसिक्तावर्षाजलभरेणसा ॥ प्रागनुस्मरणोल्लासमिवबाष्पंविमुंचति ॥ १० ॥ चंद्रानिलविलासेनलुलितावनभूमिषु ॥ धारानिकरपातेनविन्नान्नाजलदागमे ॥११॥ प्रावृड्निर्झररूपेणप्लुतागिरिनदीतटे ॥ पांशुनापवनोत्थेतदुष्कृतेनेवरूपिता ॥ १२ ॥

अर्थ—और मुखके मंडल जंगलमें प्राचीन कूपोंके समरूप नासिका, नेत्र, और मुखादिकें गढोंकी शोभासे स्वाभाविक शून्य जगत्की असत्‌रूपताको मानो विवेकियोंके नेत्रको प्रत्यक्ष दर्शारही है ॥ ९ ॥ और प्रथम तापसे संतप्त पश्चात् वर्षाके जलके समूहसे सींची हुई वह शुक्रकी शरीर अपने बंधुरूप पूर्वशरीरोंके स्मरणसे दुःख वा आनन्दसे उल्लासयुक्त आंसुओंको मानो त्यागरही है ॥ १० ॥ चंद्रमा और वायुके विलाससे अर्थात् चंद्रकिरणयुक्त शीतलवायुसे वनभूमियोंमें लुढकती फिरती थी; और वर्षा आनेपर धाराके समूहके गिरनेसे गिली होजातीथी॥ ११॥ प्रावृट् (श्रावण और भाद्रपद) में गेरू आदि धातुओंसे रंगी हुई पर्वतकी नदीके तटपर वायु प्रेरित धूलिसहित ऐसे बहतीथी जैसे पापसे दूषित ॥ १२ ॥

शुष्ककाष्ठवदालोलावातेषुकृतखाकृतिः ॥ तारमारुतसीत्कारेवनेतपइवास्थिता ॥ १३ ॥ वक्राशुष्कांत्रतंत्रीचभूतभांकारकारिणी ॥ अरण्यलक्ष्मीर्बाल्येवशून्याचर्ममयादरी ॥ १४ ॥ रागद्वेषविहीनत्वात्तस्यपुण्याश्रमस्यतु ॥ महातपस्त्वाच्चभृगोर्नभुक्तामृगपक्षिभिः ॥ १५ ॥ यमनियमकृशीकृतांगयष्टिश्चरतितपःस्मभृगूद्वहस्यचेतः ॥ तनुरथपवनापनीतरक्ताचिरमलुठन्महतीषुसाशिलासु ॥ १६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भार्गवोपाख्याने भार्गवकलेवरवर्णनं नाम नवमःसर्गः ॥ ९ ॥

अर्थ—पवनके झकोर चलनेपर खट् खट् शब्द करती हुई शुष्क काष्ठके समान प्रतीत होतीथी, और निरन्तर वायुके सीत्कार (सीसी) शब्दयुक्त वनमें मानो तप करनेको स्थित है ॥ १३ ॥ वक्र (टेढे) और शुष्क आंतरूप वीणाको धारण किये हुई; प्राणियोंको भयजनक शब्द करनेवाली, शून्य और चर्ममात्र शरीरवाली मानो वनकी लक्ष्मीको अलक्ष्मी आदरार्थ चेष्टा कररही है ॥ १४ ॥ ऐसीभी उस शुक्राचार्यकी शरीरको भृगुके पुण्य आश्रमके रागद्वेषसे रहित होनेके कारण, तथा उनके महातपसे मृग और पक्षियोंने भक्षण नहीं किया ॥ १५ ॥ हे रामजी ! यम तथा नियमसे अपने कल्पित शरीरांतरको कृश करनेवाले भृगुके पुत्रका मन तो समंगा नदीके तटपर तपकर रहाहै और वह पूर्वशरीर, जिसका रक्त वायु आदिसे शुष्क होगया था बडी २ पाषाण शिलाओंपर दीर्घकालतक लुठक रहीहै ॥ १६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे स्थितिप्रकरणे भार्गवकलेवरवर्णनं नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः ॥ १० ॥

इस १० के सर्गमें पुत्रकी शरीर देखनेसे भृगुका कोप, तथा आत्मविद्यासे कालसे कालके प्रतिबोधनका वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथवर्षसहस्रेणदिव्येनपरमेश्वरः ॥ भृगुःपरमसंबोधाद्विरराससमाधितः ॥ १ ॥ नापश्यदग्रेतनयंविनयावनताननम् ॥ सामंतंगुणसेनायाःपुण्यंमूर्त्तमिवस्थितम् ॥ २ ॥ अपश्यत्केवलं कायकंकालंपुरतोमहत् ॥ देहयुक्तमिवाभाग्यंदारिद्र्यमिवमूर्त्तिमत् ॥ ३ ॥ तापशुष्कवपुःकृत्तिरंध्र स्फुरिततित्तिरि ॥ संशुष्कांत्रोदरगुहाछायाविश्रांतदर्दुरम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! इसके पश्चात् देवताओंके सहस्र (हजार) वर्ष बीतनेपर भगवान् भृगु परमात्माको बोध करानेवाली निर्विकल्प समाधिसे जागे ॥ १ ॥ तब विनयसे नम्रीभूत मुखवाले और सम्पूर्ण गुणरूपी सेनाके अधिष्ठाता अर्थात् सब गुणोंमें प्रवीण सम्मुख खडे हुये अपने पुत्रको न देखा ॥ २ ॥ केवल सम्मुख स्थित मृतक शरीरको ऐसे देखा जैसे देहधारी अभाग्य वा मूर्तिमान् दारिद्र्यको ॥ ३ ॥ पुनः तापसे सुखी हुई शरीरके चर्मके छिद्रोंमें तित्तिरपक्षी अपने घोसले बनाके उड रहे थे और वहांपर शूखी आन्तसहित उदररूपी गुहाकी छायामें मण्डूक (मेडक) विश्राम कर रहे थे ॥ ४ ॥

नेत्रगर्त्तकसंसक्तप्रसूतनवकीटकम् ॥ पर्शुकापंजरप्रोतकोशकारकमिवजम् ॥ ५ ॥ प्राक्तनीमुपभोगेहा मिष्टानिष्टफलप्रदाम् ॥ धाराधौतांत्रयातद्वच्छशंशुष्कास्थिमालया ॥ ६ ॥ शिरोवटेनशुभ्रेणमसृणेनेंदुव र्चसा ॥ विडंबयच्चकर्पूराप्लुतलिंगशिरःश्रियम् ॥ ७ ॥ ऋज्व्यासंशुष्कशिरयास्वास्थिमात्रावशेषया ॥ ग्रीवयात्मानुसृतयादीर्घीकुर्वदिवाकृतिम् ॥ ८ ॥

अर्थ—और जहांपर नेत्ररूपी गढेमें रहनेवाले नूतन कीडे उत्पत्तिकी परंपरासे वृद्धिको प्राप्त होगये थे और दोनों पांजरकी हड्डियोंमें मकरीके जालाके समूह जिसमें गुंथे थे ॥ ५ ॥ और जलकी धाराओंसे धूलियुक्त आंतें सहित शुष्क अस्थि (हड्डियों) की मालासे इष्ट तथा अनिष्ट फलको देनेवाली पूर्वकालकी वासनाकी सदृशताको वह शरीर प्राप्त होरहीथी, अर्थात् नानाप्रकारके सन्धिके बन्धनयुक्त वह हड्डीकी माला नहीं किन्तु वासनाओंकी माला भासे होती ॥ ६ ॥ और चर्मके हटजानेसे चन्द्रमाके समान प्रकाशमान, चिक्कण, और श्वेत शिररूपी घटसे उस शरीरने कर्पूरसे स्नान कराये हुये महादेवजीके लिंगकी शोभाका अनुकरण किया था ॥ ७ ॥ सीधी, शुष्क शिररहित, केवल अस्थिमात्र, तथा बासनामें फसे हुये आत्माका अनुसरण करनेवाली ग्रीवासे मानों अपने आकारको बढा रहीहै ॥८॥

मृणालपांडुरयाधाराबभृतमांसया ॥ नासाग्रास्थिकयावक्त्रेकृतसीमाकृतिंदधत् ॥ ९ ॥ दीर्घकंधरया नूनमुन्नतीकृतवक्त्रया ॥ प्रेक्षमाणमिवप्राणानुत्क्रांतानंबरोदरे ॥ १० ॥ जंघोरुजानुदोर्दंडैर्द्विगुणांदी र्घतांगतैः ॥ प्रतिष्ठानमिवाशांतंदीर्घाध्वश्रमभीतितः ॥ ११ ॥ उदरेणातिरिक्तेनचर्मशेषेणशोषिणा ॥ प्रदर्शयदिवाज्ञस्यहृदयस्यातिशून्यताम् ॥ १२ ॥

अर्थ—कमलकी दण्डीके सदृश श्वेत और जलकी धारासे विशीर्ण मांसयुक्त नासिकाकी अस्थिसे मानो मुखमंडलके मध्यभागको निश्चय करनेके लिये शंकुके तुल्य (खुंट वा मेख) गडी हुई आकृतिको धारण किये हुये है ॥ ९ ॥ और ऊंचे मुखवाली दीर्घ कन्दरासे मानो आकाशके उदरमें इस बातको वह मृतकशरीर देख रहाथा कि प्राण निकलके कहां गये ॥ १० ॥ और द्विगुण दीर्घताको प्राप्त हो जंघा; ऊरू (टांग) जानु (घुंठने) और भुजमण्डल इन आठ अंगोंसे दीर्घ परलोकरूपी मार्गके भयसे मानो आठो दिशाओंके अंततक भागना चाहता था ॥११॥ और सबसे विलक्षण चर्ममात्र शेष शुष्क उदरसे मानो अज्ञानीके हृदयकी अति शून्यताको दर्शा रहाथा॥१२

प्रेक्ष्यतच्छुष्ककंकालमालानंदुःखदंतिनः ॥ पूर्वापरपरामर्शमकुर्वन्भृगुरुत्थितः ॥ १३ ॥ आलोकस मकालेनहिप्रतिभानंततोभृगोः ॥ चिरमुत्क्रांतजीवःकिंमत्पुत्रायमितिक्षणात् ॥ १४ ॥ अचिंतयएवा वारयभविष्यंतनयंततः ॥ कालंप्रतिबभूवाशुकोपःपरमदारुणः ॥ १५ ॥ अकालएवमत्पुत्रोनीतःकि मितिकोपितः ॥ कालायशापमुत्स्रष्टुंभगवानुपचक्रमे ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! दुःखरूपी हस्तीके बंधनस्थान उस मृतक शरीरको देखके पूर्वापरका विचार न करके भृगु उठ खडे हुये ॥ १३ ॥ और शरीरके देखनेकेही समयमें भृगुके चित्तमें क्षणमेंही यह शंका हुई कि क्या मेरे पुत्रके

प्राण निकले बहुत समय होगया? ॥ १४ ॥ मृतक पुत्रको देखके और अवश्य भावी अर्थको न चिंतन करते हुये भृगुके चित्तमें कालके ऊपर शीघ्र परम दारूण कोप हुआ ॥ १५ ॥ कि विना समय मेरे पुत्रको क्यों लेगया इसप्रकार कोपित होकर भगवान् कालको शाप देनेके लिये उद्यत हुये ॥ १६ ॥

अथाकलितरूपोसौकालःकवलितप्रजः ॥ आधिभौतिकमास्थायवपुर्मुनिमुपाययौ ॥ १७ ॥ खड्गपाशधरःश्रीमान्कुंडलीकवचान्वितः ॥ षड्भुजःषण्मुखोबह्वयावृतःकिंकरसेनया: ॥ १८ ॥ यच्छरीरससमुत्थेनज्वालाजालेनवल्गता ॥ फुल्लकिंशुकवृक्षस्यबभाराद्रेःश्रियंनभः ॥ १९ ॥ यत्करस्थत्रिशूलाग्रनिःसृतैरग्निमंडलैः ॥ विरेजुरुदितराशाःकानकैरिवकुंडलैः ॥ २० ॥

अर्थ—इसके अनंतर संपूर्ण प्रजाओंका ग्रास करनेवाला रूप रहितभी काल भौतिकरूप धारण करके भृगु मुनिके समीपमें आया ॥ १७ ॥ वह काल तलवार (तरवार) और फांसीको धारण किये हुये, शोभायुक्त, कुण्डल तथा कवच सहित, द्वादश मासरूपी छ भुजाओंसे युक्त; छ ऋतुरूपी मुखसे शोभित, और दिनरूपी बडीभारी सेनासे सेवित था ॥ १८ ॥ और उसके शरीरसे निकली हुई प्रबल ज्वालाके समूहसे विकसित किंशुक (टेसू) के वृक्ष सहित पर्वतकी शोभाको उस समय आकाशने धारण किया था ॥ १९ ॥ और जिसके हस्तमें स्थित त्रिशूलके अग्रभागसे निकले हुये अग्नि समूहोंसे संपूर्ण दिशा ऐसी शोभित हुई जैसे सुवर्णमय कुण्डलसे ॥ २० ॥

यत्परश्वसनाध्वस्तशिखरामेदिनीभृतः ॥ दोलामिवसमारूढाश्चेलुःपेतुश्चघूर्णिताः ॥ २१ ॥ यत्खड्गमंडलीद्योतैःश्यामंबिंबंविवस्वतः ॥ कल्पदग्धजगद्धूमपर्याकुलमिवाबभौ ॥२२॥ सउपेत्यमहाबाहोकुपितंतंमहामुनिम् ॥ कल्पक्षुब्धाब्धिगंभीरंसांत्वपूर्वमुवाचह ॥ २३ ॥ विज्ञातलोकस्थितयोमुनेदृष्टपरावराः ॥ हेतुनापिनमुह्यंतिकिंनुहेतुंविनोत्तमाः ॥ २४ ॥

अर्थ—और उसके प्रबलश्वासके वायुसे ध्वस्त शिखर कितने पर्वत दोला (झूला) में आरूढके समान चलायमान होगये और कितने घूर्णित (चक्र) में आके गिरपडे ॥ २१ ॥ जिसके तरवारके प्रकाशसे सूर्यका श्याम बिम्ब प्रलयकालमें जले हुये जगत्के धूमसे व्याकुलके समान शोभित हुआ ॥ २२ ॥ हे महाबाहो रामजी! ऐसा वह काल कुपित महामुनिके निकट आके प्रलयकालमें संक्षुब्ध समुद्रके समान गंभीर वाणीसे शांतिपूर्वक यह बोला ॥ २३ ॥ कि लोककी स्थितिके ज्ञाता तथा पर अवर अर्थात् इस लोक और परलोकके द्रष्टा महात्मा मुनिजन दूसरोंके अपराधादि निमित्तसेभी नहीं मोहित होते न कि बिना अपराधादि कारणसे ॥ २४ ॥

त्वमनंततपाविप्रोवयंनियतिपालकाः ॥ तेनसंपूज्यसेपूज्यःसाधोनेतरथेच्छया ॥ २५ ॥ मातपःक्षपयाबुद्धेकल्पकालमहानलैः ॥ योनदग्धोस्मिमेतस्यकिंत्वंशापेनधक्ष्यसि ॥ २६ ॥ संसारावलयोग्रस्तानिगीर्णारुद्रकोटयः ॥ भुक्तानिविष्णुवृंदानिकनशक्तावयंमुने ॥ २७ ॥ भोक्तारोहिवयंब्रह्मन्भोजनंयुष्मदादयः ॥ स्वयंनियतिरेवाहिनावयोरेतदीहितम् ॥ २८ ॥

अर्थ—तुम अनंत तप करनेवाले ब्राह्मण हो, और हम लोग नियति (मर्यादा) के पालक हैं, इसी कारण तुम हमलोगोंसे पूजित हो, न कि अन्य शापादिके भयसे ॥ २५ ॥ हे व्यर्थ बुद्धे मुने! अपनी तपस्याको व्यर्थ नष्ट न करो, क्योंकि जब मैं प्रलयकालके महान् अग्निके समूहोंसेभी न जला तो मेरी ऐसी कौनसी वस्तु है जिसको तुम जलाओगे ॥ २६ ॥ मैंने अनेक संसारकी पंक्तियोंको भोजन करलिया, और करोडो रुद्रको निगलगया, और विष्णुभगवान्के समूहके समूह भोजन करलिया, हे मुने! ऐसा कौन पदार्थ है जहां हमारी शक्ति नहीं है? ॥२७॥ हे ब्रह्मन्! हम भोक्ता हैं और तुमसे आदि लेके सब संसार हमारा भोजन है यह स्वभाविकी मर्यादा है न कि हम लोगोंकी इच्छा द्वेषादि अन्य निमितसे यह होताहै ॥ २८ ॥

स्वयमूर्ध्वंप्रयात्यग्निःस्वयंयांतिपयांस्यधः ॥ भोक्तारंभोजनंयातिसृष्टिंचाप्यंतकःस्वयम् ॥ २९ ॥ इदमित्थंमुनेरूपंममेहपरमात्मनः ॥ स्वात्मनिस्वयमेवात्मास्वतएवविजृंभते ॥ ३० ॥ नेहकर्तानभोक्तास्तिदृष्ट्यानष्टकलंकया ॥ बहवश्चेहकर्त्तारोदृष्ट्याऽनष्टकलंकया ॥ ३१ ॥ कर्तृताकर्तृतेब्रह्मन्केवलंपरिकल्पिते ॥ असम्यग्दर्शनेनैवनसम्यग्दर्शनस्यते॥ ३२ ॥ पुष्पाणितरुखंडेषुभूतानिभुवनेषुच ॥ स्वयमायांतियांतीहकल्पतेहेतुनामभिः ॥ ३३ ॥

अर्थ—अग्नि अपने स्वभावहीसे उपर जाताहै, जल स्वभावहीसे नीचेको ओर बहताहै, भोजन भोक्ताके निकट प्राप्त होताहै, और विनाशकालभी सृष्टिके निकट स्वयं प्राप्त होताहै ॥ २९ ॥ हे मुने! इसप्रकार मूर्तामूर्त जगत् परमात्माका रूप मेरा भोज्य कल्पित कियागयाहै क्योंकि वह परमात्मा अपने आत्मामें आपही जगतरूपसे

विकसित होताहै ॥ ३० ॥ मायारूप कलंकसे शून्य दृष्टिसे न तो कोई कर्ता है; और न भोक्ता है, और कर्ममें कुशल पुरुषोंकी दृष्टिमें बहुतसे कर्ता और बहुतसे भोक्ता हैं ॥ ३१ ॥ हे ब्रह्मन् ! कर्तृता और अकर्तृत्व दोनो कल्पित है और यह कल्पना असम्यक् द्रष्टाकी की हुई है न कि सम्यक् द्रष्टाकी जैसे आप और जैसा वृक्षोंके खंडोमें पुष्प आतेहैं और जातेहैं ऐसेही भुवनोंमें प्राणी आतेहैं और प्राणियोंका कर्महो अपनेही प्रेरित निमित्तकी विचित्रतासे कार्य करनेमें समर्थ होताहै ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

अंभिबिंबितस्यचंद्रस्यचलनेकर्तृकर्तृते ॥ नसत्येनानृतेयद्वत्तद्वत्कालस्यसृष्टिषु ॥ ३४ ॥ मनोमिथ्या भ्रमाभोगेकर्तृताकर्तृतामयीम् ॥ करोतिकलनांरज्ज्वांभ्रांतेक्षणइवाहिताम् ॥ ३५ ॥ तेनमामागामुनेकोपमापदामीदृशःक्रमः ॥ यद्यथातत्तथैवाशुसत्यमालोकयाकुलः ॥ ३६ ॥

अर्थ—जैसे जलमें प्रतिबिंबित चन्द्रमाका चलन न सत्य है और न असत्य है ऐसेही काल भगवान्की सृष्टिमें कर्तृता और अकर्तृता परमार्थमें अभाव होनेसे सत्य नहीं हैं; और व्यवहार दृष्टिसे असत्यभी नहीं हैं॥३४॥ हे भगवन् ! यह मन मिथ्या भ्रमके आवेशमें आके कर्तृता और अकर्तृतामयी अहितकारक कल्पना ऐसे करता है जैसे भ्रांत दृष्टि पुरुष रज्जुमें सर्प की ॥ ३५ ॥ इसलिये हे मुने ! व्याकुल होके अपराधके विनाही कोप न कीजिये क्योंकि ऐसा करना यह आपत्तिका क्रम है, और जो वार्ता सत्य है उसको उसी रीतिसे शीघ्र सत्य विचार कीजिये ॥ ३६ ॥

नवयंप्रतिभार्थेहानाभिमानवशीकृताः ॥ स्वतोहितातवशगाःकेवलंनियतौस्थिताः ॥ ३७ ॥ प्रकृतव्यवहारेहानियतेर्नियतेर्वशात् ॥ प्राज्ञाःसमभिवर्ततेनाभिमानमहातमः ॥ ३८ ॥ कर्तव्यमेवनियतंकेवलंकार्यकोविदैः ॥ सुषुप्तिवृत्तिमाश्रित्यकदाचित्त्वंननाशय ॥ ३९ ॥ क्वसाज्ञानमयीदृष्टिःक्वमहत्त्वंक्वधीरता ॥ मार्गेसर्वप्रसिद्धेपिकिमंधइवमुह्यसि ॥ ४० ॥

अर्थ—हे पूज्य मुने ! हम लोगोंकी इच्छा भ्रांति कल्पित पूजा प्रतिष्ठा आदिके लिये नहीं हैं, और न अभिमानके वशमें हैं, क्योंकि हम लोग केवल नियतिमें स्थित स्वतः वशमें हैं, अर्थात् आपके निकट आगमनभी कोपके भयसे नहीं है किंतु तपस्वी महात्माओंका मान करना चाहिये इसलिये है ॥३७॥ हे भगवन् ! जगत्की मर्यादाका पालक जो ईश्वर है उसकी इच्छारूप जो महानियति है उसके वशमें बुद्धिमान् लोग अवांतर (मध्यवर्ती) व्यवहारोंकी इच्छारूप नियतिको अनुसरण करते हैं, न कि महाअभिमानग्रस्त तमोगुण जन (अर्थात् प्रकृतिके अनुकूल प्रवृत्ति तुमारे पुत्रके बध करनेमें हुई है, और शाप देनेमें तुमारी तमोगुणके वशसे हुई है) ॥३८॥ कार्यमें चतुर जन नियतिके अनुकूल अवश्य कर्तव्य कार्य करतेहैं, सो अपने २ उचित मर्यादाका पालन करना जो सबका धर्म उसको आप तमोगुणकी वृत्तिका आश्रय करके नाश मत करो ॥ ३९ ॥ कहां तो वह ज्ञानमयी दृष्टि ! और कहां वह महत्त्व ! और कहां वह धीरता चली गई, ! आप इस सब बुद्धिमानोंमें प्रसिद्ध मार्गमें अंधेके समान क्यों मोहित हो रहेहो ? ॥४०॥

स्वकर्मफलपाकोत्थामविचार्यदशांमुने ॥ किंमूर्खइवसर्वज्ञमुधामांशप्तुमिच्छसि ॥ ४१ ॥ देहिनामिहसर्वेषांशरीरंद्विविधंमुने ॥ किंनजानासितंदेहमेकमन्यन्मनोभिधम् ॥ ४२ ॥ तत्रदेहोजडोत्यर्थमाविनाशपरायणः ॥ मनस्तुच्छंचनियतंकदर्थीक्रियतेतव ॥ ४३ ॥ चतुरेणयथासाधोरथःसारथिनोह्यते ॥ कुर्वतार्किचनस्नेहादिहोयंमनसातथा ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे सर्वज्ञ मुने ! अपने कर्म फलोंकी परिपक्वतासे प्रकट दशाको न विचार करके आप मूर्खके समान मुझे व्यर्थ शाप देना क्यों चाहतेहैं ॥ ४१ ॥ हे मुने ! क्या आप इस बातको नहीं जानते कि संपूर्ण प्राणियोंका शरीर दो प्रकार है एक तो यह प्रसिद्ध स्थूल देह है और दूसरा मन नामक है ॥ ४२ ॥ उन दोनोंमेंसे देह तो सर्वथा जड और थोडे निमित्तसेभी नाशमेंही परायण है, और प्रातिभासिक मन जो है वह मोक्ष पर्यंत स्थायी है सो आप क्रोधादिसे उसे क्यों पीडित करतेहो ॥ ४३ ॥ हे साधो ! जैसे चतुर सारथी रथको ले जाताहै ऐसेही अभिमानसे वाणीके अविषय कुछ व्यापार करता हुआ यह मन शरीरको चाहै जहां ले जाताहै ॥ ४४ ॥

असत्संकल्पःक्रियतेसच्छरीरंविनाश्यते ॥ क्षणेनमनसापंकपुरुषःशिशुनायथा ॥ ४५ ॥ चित्तमेवेहपुरुषस्तत्कृतंकृतमुच्यते ॥ तद्वद्वंकलनाहेतोःकलनास्तंविमुच्यते ॥ ४६ ॥ अयंदेहइवात्रस्थमिदमंगमिदंशिरः ॥ इदंस्फारविकारंतन्मनएवाभिधीयते ॥४७॥ मनोहिजीवाज्जीवाख्यंनिश्चयैकतयानुधीः ॥ अहंकारोभिमंतृत्वान्नानातास्वयमेवहि ॥ ४८ ॥

अर्थ—जैसे बालक एक क्षणमें मृत्तिकाके खिलौनेको जब चाहताहै तब एकको बिगाडके दूसरा बना लेताहै

ऐसेही यह मनभी जो अविद्यमान शरीर है उसका संकल्प करताहै और पूर्व शरीरको नष्ट करताहै ॥ ४५ ॥ इस संसारमें चित्तही पुरुष है और उसीका किया कहलाताहै और वह मन असत्के संकल्परूपी कल्पनासे बद्ध होताहै और कल्पना रहित वह मुक्त कहलाताहै ॥ ४६ ॥ यहांपर स्थित यह देह, यह अमुक अंग यह शिर इत्यादि बडे विकारका कथन मनही करताहै ॥ ४७ ॥ मनही एक जीवसे दूसरे जीवको प्राप्त होताहै और जो मनसे संकल्पित पदार्थ है उसीके अनुकूल बुद्धि होती है, और अभिमन्ता (अभिमान करनेवाले) मैंहीं करताहूं इसप्रकार नानारूप यह मनही धारण करताहै ॥ ४८ ॥

देहवासनयाचेतस्त्वन्यानिस्त्वानिचेच्छया ॥ पार्थिवानिशरीराणिह्यसंतिपरिपश्यति ॥ ४९ ॥ आलोकयतिचेत्सत्यंतदासत्यमयींमनः ॥ शरीरभावनांत्यक्त्वापरामायातिनिर्वृतिम् ॥ ५० ॥ तन्मनस्तवपुत्रस्यसमाधौत्वयिसंस्थिते ॥ स्वमनोरथमार्गेणदूराद्दूरतरंगतम् ॥ ५१ ॥ इममौशनसंत्यक्त्वादेहंमंदरकंदरे ॥ प्रयातोवैबुधंसद्मनीडोड्डीनःखगोयथा ॥ ५२ ॥

अर्थ—यह चित्त देहकी वासनासे अपनेसे अन्यपृथ्वी रचित अविद्यमान अन्यदेह इच्छाके अनुसार देखताहै ॥ ४९ ॥ और यही मन यदि सत्यको देखताहै तब असत्य देहमयी भावनाको त्यागकर परमशान्तिको प्राप्त होताहै, अर्थात् मनकी देहादि कल्पना आत्मसाक्षात्कार पर्यन्तही है नकि इसके आगे ॥ ५० ॥ और वह आपके पुत्रका मन जब आप समाधिमें स्थित हुये तब अपने मनोरथके मार्गसे दूरसेभी दूर चलागया ॥ ५१ ॥ इस स्थूल शुक्राचार्यकी शरीरको मन्दराचलकी कन्दरामें त्यागके वह मनरूपी शरीर देवताओंके निवासस्थान स्वर्गमें ऐसे प्राप्त हुआ जैसे उडके पक्षी ॥ ५२ ॥

तत्रमंदरकुंजेषुपारिजाततलेषुच ॥ नंदनोद्यानखंडेषुलोकपालपुरेषुच ॥ ५३ ॥ मुनेचतुर्युगान्यष्टौविश्वाचींदेवसुंदरीम् ॥ असेवतमहातेजाःपट्पदःपद्मिनीमिव ॥ ५४ ॥ तीव्रसंवेगसंपन्नस्वसंकल्पोपकल्पिते ॥ अथपुण्यक्षयेजातेनीहारइवशार्वरे ॥ ५५ ॥ प्रम्लानकुसुमोत्तंसःखिन्नांगावयवोल्लसः ॥ सपपाततयासार्द्धंकालपक्वंफलंयथा ॥ ५६ ॥

अर्थ—वहांपर मन्दरपर्वतकी कुंजोंमें, पारिजात नामक देव वृक्षोंके तलोंमें, नन्दन नामक इन्द्रके वाटिकाके खण्डोंमें, और लोकपालोंके नगरोंमें ॥ ५३ ॥ हे मुने ! महातेजस्वी शुक्राचार्यने उस विश्वाची नाम्नी अप्सराके साथ आठ चतुर्युगीपर्यन्त ऐसे विहार किया जैसे भ्रमर कमलिनीके साथ ॥ ५४ ॥ इसके अनन्तर तीव्र वासनाके संकल्पसे रचित पुण्यका क्षय ऐसे उपस्थित हुआ जैसे दिनके बीतनेपर रात्रि सम्बन्धी अन्धकार ॥ ५५ ॥ अच्छी तरह म्लानिको प्राप्त कुसुमके आभूषण सहित तथा सम्पूर्ण शोभायमान शरीरके खिन्न अवयव हस्तपादयुक्त शुक्राचार्य उस विश्वाची अप्सराके साथ ऐसे गिरे जैसे वृक्षसे पका फल ॥ ५६ ॥

वैबुधंतत्परित्यज्यनभस्येवशरीरकम् ॥ भूताकाशमथासाद्यवसुधायांव्यजायत ॥ ५७ ॥ आसीद्विप्रोदशार्णेषुकोसलेषुमहीपतिः ॥ धीवरोथमहाटव्यांहंसस्त्रिपथगातटे ॥ ५८ ॥ सूर्यवंशेनृपःपौंड्रःसौरशाल्वेषुदेशिकः ॥ कल्पंविद्याधरःश्रीमान्धीमानथमुनेःसुतः ॥ ५९ ॥ मद्रेष्वथमहीपालस्ततस्तापसबालकः ॥ वासुदेवइतिख्यातःसमंगायास्तटेस्थितः ॥ ६० ॥

अर्थ—उस देवताओंके शरीरको तो उसी स्वर्गके आकाशमें त्यागकर और इस भूताकाशमें प्राप्त होकर पृथ्वी पर जन्म धारण किया ॥ ५७ ॥ प्रथम दशार्णदेशमें ब्राह्मण हुये, कोशलदेशमें राजा हुये; अनन्तर महावनमें धीवर हुये, और उसके पीछे गंगाजीके तटपर हंसहुये ॥ ५८ ॥ हे मुने ! इसके पश्चात् सूर्यवंशमें उत्पन्न होकर पुण्ड्रदेशके राजा हुये, और इसके पश्चात् शाल्वदेशमें मंत्रके बडे उपासक तथा दूसरोंके उपदेश देनेवाले हुये, और इसी मंत्रके प्रभावसे बुद्धिमान् आपके पुत्र कल्पपर्यन्त विद्याधर हुये ॥ ५९ ॥ और इसके पश्चात् मद्रदेशके राजा हुये और इनके अनन्तर एक तपस्वीके बालक वासुदेवनामसे प्रसिद्ध हुये जो कि समंगानदीके तटपर स्थितहैं ॥ ६० ॥

अन्यास्वपिविचित्रासुवासनावशतःस्वयम् ॥ विषमास्वेवपुत्रस्तेचचारांतरयोनिषु ॥ ६१ ॥ अभूद्विंध्यनगेभूयःकिरातःकैकटेषुच ॥ सौवीरेष्वथसामंतस्त्रिगर्त्तेषुचगर्दभः ॥ ६२ ॥ वंशगुल्मःकिरातेषुहरिणश्चीनजंगले ॥ सरीसृपस्तालवृक्षेतमालेवनकुक्कुटः ॥६३॥ अयंसपुत्रोभवतोभूत्वामंत्रविदांवरः ॥ मजजापपुराविद्यांविद्याधरपुरप्रदाम् ॥ ६४ ॥

अर्थ—और इन कहे हुये के सिवाय अन्य २ भयंकर योनियोंमेभी वासनाके वशसे स्वयं तुमारे पुत्रने भ्रमण

किया ॥ ६१ ॥ विंध्या चलमें तथा कैकट देशमें किरात हुये; सौवीर देशमें मण्डलके अधिपति हुये और उस राज जन्ममें पापके कारणसे त्रिगर्त देशमें गर्दभ हुये ॥ ६२ ॥ किरात देशमें वंश (वास) की लता हुये चीनके जंगलमें हरिण हुये तालके वृक्षोंमें सांप हुये; और तमालके बनोंमें कुक्कुट (मुर्गा) हुये; ॥ ६३ ॥ और यही आपके पुत्र मंत्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ होकर पूर्वकालमें विद्याधरके नगरको देनेहारी विद्याका जप किया ॥ ६४ ॥

तेनासावभवद्ब्रह्मन्व्योम्निविद्याधरोमहान् ॥ हारकुंडलकेयूरलीलानिचयलालकः ॥६५॥ नायिकानलिनीभानुःपुष्पचापइवापरः ॥ विद्याधरीणांदयितोगंधर्वपुरभूषणः ॥ ६६ ॥ सकल्पावधिमासाद्यक्षयेद्वादशादित्यधामनि ॥ जगामभस्मशेषत्वंशलभःपावकेयथा ॥ ६७ ॥ जगन्निर्माणरहितेस्फारेनभसि सातततः ॥ वासनातस्यबभ्रामनिर्नीडाविहगीयथा ॥ ६८ ॥

अर्थ—हे ब्रह्मन् ! उस विद्याके प्रतापसे हार तथा कुण्डल आदिकी लीलाके समूहोंसे स्त्रियों (विद्याधरियों) को विलास करानेवाले महान् विद्याधर हुये ॥ ६५ ॥ हे मुने ! यह आपके पुत्र दूसरे कामदेवके समान अति सुंदर स्त्रीरूप कमलिनियोंके सूर्य विद्याधरियोंके अति प्रिय विद्याधर पुरके भूषण होगये ॥ ६६ ॥ वहां विद्याधरोंके नगरोंमें जब एक कल्प निवास करते होगया तब कल्पके अंतमें द्वादश १२ सूर्यके तपनेपर अग्निमें जैसे पांखी जलताहै ऐसेही भस्म होगये ॥ ६७ ॥ उस समय जगत्की रचनासे शून्य विशाल आकाशमें शुक्रकी वासना ऐसे भ्रमण करतीथी जैसे घोसला रहित पक्षिणी ॥ ६८ ॥

अथकालेनसंजातेविचित्रारंभकारिणि ॥ संसाररचनारंभेब्राह्मेरात्रिविपर्यये ॥ ६९ ॥ सामुनेवासना तस्यवातव्याचलितासती ॥ कृतेब्राह्मणतामेत्यजातोयवसुधातले ॥ ७० ॥ वासुदेवाभिधानोसौमुने विप्रकुमारकः ॥ जातोमतिमतांमध्येसमधीताखिलश्रुतिः ॥ ७१ ॥ कल्पंविद्याधरोभूत्वानद्यास्त्वथम हामुने ॥ तपश्चरतितेपुत्रःसमंगयास्तटेस्थितः ॥ ७२ ॥ विविधविषयवासनानुवृत्त्याखदिरकरंजकरालकोटरासु ॥ जगतिजठरयोनिषुप्रयातोगहनतरासुचकाननस्थलीषु ॥ ७३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भार्गवोपाख्याने कालवचनं नाम दशमःसर्गः ॥ १० ॥

अर्थ—इसके अनंतर काल बीतनेपर अनेक विचित्र आरंभमयी संसारकी रचनाको आरम्भ करनेवाले ब्राह्मीका रात्रिका जब अंत होगया ॥ ६९ ॥ तब हे मुने ! वही आपके पुत्रकी वासना वायुसे प्रेरितके तुल्य चलायमान होकर इस समय सत् युगमें ब्राह्मरूप धारण करके पृथिवीपर उत्पन्न हुई ॥ ७० ॥ हे मुने ! यह आपके पुत्र बुद्धिमानोंके मध्यमें श्रेष्ठ संपूर्ण वेदोंको पढनेवाले वासुदेव नामसे प्रसिद्ध एक ब्राह्मण पुत्र हुये हैं ॥ ७१ ॥ हे महामुने ! कल्प पर्यन्त विद्याधर होके अब समंगा नदीके तटपर स्थित तुमारा पुत्र तप करताहै ॥ ७२ ॥ हे मुने ! अनेक प्रकारकी विषयकी वासनाकी अनुवृत्तिसे खदिर तथा करंजके कांटोंसे भयंकर पर्वतोंके कोटरोंके समान गर्भको भिन्न २ निवासस्थानोंमें तुमारे पुत्र उत्पन्न हुये और अतिभयंकर वनोंकी स्थलियोंमें वृक्ष तथा लताआदि रूपसेभी उत्पन्न हुये ॥७३॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषुस्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे भार्गवोपाख्याने कालवचनं नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

भृगुकी भोगकी देशोंसे अपने पुत्रका पूर्व वृत्तांत भलीभांति देखनेसे कालके संवादसे मनकी क्रीडामात्र जगत्की स्थिति इस ११ वे सर्गमें वर्णन की गई है ॥

॥ कालउवाच ॥ अद्योद्दामतरंगौघभांकाररणितानिले ॥ तीरएवतरंगिण्यास्तपस्तपतितेसुतः ॥ १ ॥ जटावानक्षवलयीजितसर्वेंद्रियभ्रमः ॥ तत्रवर्षशतान्यष्टौसंस्थितस्तपसिस्थिरे ॥ २ ॥ यदीच्छसिसुनेद्रष्टुंतंस्वप्राभंमनोभ्रमम् ॥ तत्समुन्मील्यविज्ञाननेत्रमाशुविलोकय ॥ ३ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इत्युक्तेजगदीशेनकालेनसमदृष्टिना ॥ मुनिःसंचिंतयामासज्ञानाक्षणातनयेहितम् ॥ ४ ॥

अर्थ—काल बोला–हे मुने! इस समय शोभायमान तरंगसमूहोंकी गंभीर ध्वनिसे शब्दायमान वायुयुक्त समंगानदीके तटपर तुमारा पुत्र तप करताहै ॥ १ ॥ जटाको धारण किये, रुद्राक्षकी माला पहिने हुये, और संपूर्ण इन्द्रियोंके भ्रमको जीतकर उस स्थानपर अचल तपमें स्थित हुये ८ आठसो वर्ष होगये ॥ २ ॥ हे मुने! यदि पुत्रका चरित्ररूप जो पुत्रके मनका विलास है उसे देखना चाहते हो. तो योगरूपी विज्ञान नेत्रको खोलके देखो ॥ ३ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी! जगतके स्वामी समदृष्टि कालके इसप्रकार कहनेपर भृगुमुनिने ज्ञानके नेत्रसे अपने पुत्रका चरित्र चिंतन किया ॥ ४ ॥

ददर्शचमुहूर्त्तेनप्रतिभानवशादसौ ॥ पुत्रोदंतमशेषेणबुद्धिदर्पणबिंबितम् ॥ ५ ॥ पुनर्मंदरसानुस्थां स्वस्थांकालाग्रसंस्थिताम् ॥ समंगायास्तटादेत्यविवेशस्वतनुंभृगुः ॥ ६ ॥ विस्मयस्मेरयाहृष्ट्याका लमालोक्यकांतया ॥ वीतरागमुवाचेदंवीतरागोमुनिर्वचः ॥ ७ ॥ भगवन्भूतभव्येशबालावयमनु उज्वलाः ॥ त्वादृशामेवधीर्देवत्रिकालामलदर्शनी ॥ ८ ॥

अर्थ—ध्यानके प्रभावसे योगके धर्मसे विशुद्ध बुद्धिरूपी दर्पणमें प्रतिबिंबित प्रत्यक्षके समान पुत्रका सम्पूर्ण चरित्र मुहूर्तमात्रमें देखलिया ॥ ५ ॥ पुत्रके वृत्तांतको देखनेके पश्चात् समंगानदीके तटसे आके (अर्थात् योगदृष्टिसे मानो सर्वत्र जाके देखा और समंगानदीपर्यन्तके वृत्तान्तको देखके पुनः आके) पुनः मन्दरके शिखरपर कालके सन्मुख स्थित अपनी स्वस्थ शरीरमें प्रवेश किया ॥ ६ ॥ इसके पश्चात् पुत्रके स्नेहसेरहित भृगु विस्मयसे मुसकिरानसहित रमणीय दृष्टिसे वीतराग कालको देखके यह वचन बोले ॥ ७ ॥ कि हे भूत वर्तमान और भविष्यत्के स्वामी! हम लोग मलिन चित्त हैं तथा अज्ञानसे बालक हैं; आपके सदृश महात्माओंकीही दृष्टि तीनों कालके वृत्तान्तको निर्मलतासे देखती है ॥ ८ ॥

नानाकारविकाराढ्यसत्येवासत्यरूपिणी ॥ विभ्रमंजनयत्येपाधीरस्यापिजगत्स्थितिः ॥ ९ ॥ त्वमेव देवजानासित्सदभ्यंतरवर्तियत् ॥ रूपमस्यामनोवृत्तेरिंद्रजालविधायकम् ॥ १० ॥ मत्पुत्रस्यास्यभग वन्मृत्युःकिलनविद्यते ॥ तेनेमंमृतमालोक्यजातःसंभ्रमवानहम् ॥ ११ ॥ अक्षीणजीवितंपुत्रंकालो मेनीतवानिति ॥ नियतेर्वशतोदेवतुच्छापीच्छाममोदिता ॥ १२ ॥

अर्थ—नानाप्रकारके विकारोंसे पूर्ण, असत्यरूप तथा सत्यके समान भासमान् यह जगत्की स्थिति धीर पुरुषकोभी भ्रम उत्पन्न करती है ॥ ९ ॥ हे कालरूप देव! आपके भीतर जो कुछ वर्तमान है उसको आपही जानतेहैं, इस मनकी वृत्तिका जो रूप है वह इन्द्रजालके सदृश मायाके व्यामोहकी रचना करनेवालाहै॥१०॥ हे भगवन्! इस मेरे पुत्रका कल्पपर्यन्त मृत्यु नहींथा इसलिये इसको मृतक देखके मुझे भ्रम उत्पन्न हुआ ॥ ११ ॥ जिसका जीवन क्षीण नहीं हुआ ऐसे मेरे पुत्रको काल लेगया, हे देव! नियतिके वशसे तुच्छभी यह मेरी इच्छा उत्पन्न हुई ॥ १२ ॥

ननुविज्ञातसंसारगतयोवयमापदाम् ॥ संपदांचैवगच्छामोहर्षामर्षवशंविभो ॥ १३ ॥ अयुक्तकारि णिक्रोधःप्रसादोयुक्तकारिणि ॥ कर्त्तव्यइतिरूढेयंसंसारेभगवन्स्थितिः ॥ १४ ॥ इदंकार्यमिदंनेति यावत्कार्यंजगद्भ्रमः ॥ तस्यैतत्संपरित्यागोहेयएवजगद्गुरो ॥ १५ ॥ केवलंतावकींचितामनालोक्यय दावयम् ॥ भगवन्भवतेक्रुद्धायाताः स्मस्तेनवाध्यताम् ॥ १६ ॥

अर्थ—हे विभो! देखो यह कैसा आश्चर्य है कि हम लोग संसारकी गतिको जाननेवाले हैं, तथापि आपत्ति और संपत्तियोंके कारण शोक तथा हर्षके वशमें प्राप्त होजातेहैं ॥ १३ ॥ हे भगवन्! अयोग्यकारीके ऊपर क्रोध करना और योग्यकारीके ऊपर प्रसन्न होना यह नियति (मर्य्यादा) संसारमें दृढतापूर्वक स्थितहै ॥ १४ ॥ यह कर्तव्य है और यह अकर्तव्य है इसप्रकार इष्ट तथा अनिष्टके साधनोंमें सत्यताकी भ्रांति है, तबतक यह नियति (अयोग्यकारीमें क्रोध और योग्यकारीमें प्रसन्नता) दृढ है और हे जगद्गुरो! काल इस समय उस भ्रमके तत्त्वके बोधसे त, उसका त्यागनाही योग्य है, अर्थात् मेरा क्रोध अनुचित है॥ १५ ॥केवल नियतिका पालनरूप जो तुमारा अभिप्राय है, उसको न विचार करके जो तुमारे उपर हमने क्रोध किया इससे हम तुमारी दण्ड योग्यताको प्राप्त हुये हैं ॥ १६ ॥

त्वयेदानीमहंदेवस्मारितस्तनयेहितम् ॥ समंगायास्तटेतेनदृष्टोयंतनयोमया ॥ १७ ॥ मनोजगतिभूता नांदेहशरीरेत्रसर्वगम् ॥ मनएवशरीरंहियेनेदंभाव्यतेजगत् ॥ १८ ॥ कालउवाच ॥ सम्यगुक्तंत्वयाब्रह्म न्शरीरंमनएवच ॥ करोतिदेहंसंकल्पात्कुंभकारोघटंयथा ॥ १९ ॥ करोत्यकृतमाकारंकृतंनाशयतिक्ष णात् ॥ संकल्पेनमनोमोहाद्बालोवेतालकंयथा ॥ २० ॥

अर्थ—हे प्रभो ! इससमय तुमने मेरे पुत्रका चरित्र स्मरण कराया इससे मैंने समंगानदीके तटपर अपने पुत्रको देखा ॥ १७ ॥ मनही इस जगत्में प्राणियोंके दो शरीर उत्पन्न करताहै और वह सर्वत्र जानेवाला मनही मुख्य शरीरहै, और उसी मनसे यह संपूर्ण जगत् उत्पन्न किया जाताहै ॥ १८ ॥ काल बोला—हे ब्रह्मन् ! आपने सत्य कहा यह मनही मुख्य शरीर है यह अपने संकल्पसे भौतिक शरीरको ऐसे रचताहै जैसे कुंभकार घटको ॥ १९ ॥ यह मन अपने संकल्पसे जो आकार नहीं है उसको बना देताहै और बने हुयेको क्षणभरमें ऐसे विगाड देताहै जैसे मोहसे वालक वेतालको बनाता और विगाडताहै ॥ २० ॥

तथाचसंभ्रमस्वप्नमिथ्याज्ञानादिभासुरः ॥ गंधर्वनगराकाराद्दृष्टामनःसिशक्तयः ॥ २१ ॥ स्थूलदृष्टिदशांत्वेतामवलंव्यमहामुने ॥ पुंसोमनःशरीरंचकायोद्वावितिकथ्यते ॥ २२ ॥ मनोमननिर्माणमात्रमेतज्जगत्त्रयम् ॥ नसन्नासदिवस्फारमुदितंनेतरन्मुने ॥ २३ ॥ चित्तदेहांगलतयाभेदवासनयेद्धया ॥ द्विचंद्रत्वमिवाज्ञानान्नानातेयंसमुत्थिता ॥ २४ ॥

अर्थ—इसीप्रकार संभ्रम, स्वप्न, और मिथ्या ज्ञानके समान भासमान और गन्धर्व नगरके समान आकारवाली, असत्की रचना शक्ति मनमें प्रसिद्धरूपसे देखी गई है ॥ २१ ॥ हे महामुने ! स्थूल दृष्टिका अवलंवन करके यह कहा जाताहै कि पुरुषके दो शरीर हैं एक मन और दूसरा यह प्रत्यक्ष दृश्यमान भौतिक ॥ २२ ॥ और सूक्ष्मदृष्टिसे तो स्फुरणमात्र रूपधारी यह मन है इसीकी रचना मात्र यह तीनों जगत् है, हे मुने ! सत् और असत्से विलक्षण यह विशाल मनही उदयको प्राप्त है और कुछ नहीं॥ २३ ॥ चित्तरूपी देहकी अवयव भूत लताके समान वर्द्धमान जो भेदकी वासना है उसीसे नानाप्रकारके जगत्के भेद अविर्भूत हैं॥ २४ ॥

भेदवासनयापश्यत्पदार्थनिचयंमनः ॥ भिन्नंपश्यतिसर्वत्रघटावटपटादिकम् ॥ २५ ॥ कृशोतिदुःखीमूढोहमेताश्चान्याश्चभावनाः ॥ भावयत्स्वविकल्पोत्थांयातिसंसारितांमनः ॥ २६ ॥ मननंकृत्रिमंरूपंममैतन्नयतोस्म्यहम् ॥ इतितत्त्यागतःशांतंचेतोब्रह्मसनातनम् ॥ २७ ॥ यथाप्रविततांभोधैद्रुतांनैकतरंगिणि ॥ शाम्यत्स्पंदतयानेककल्लोलावलिशालिनि ॥ २८ ॥ वार्यातमनिसमे स्वच्छेशुद्धेस्वादुनिशीतले ॥ अविनाशिनिविस्तीर्णेमहामहिमनिस्फुटे ॥ २९ ॥

अर्थ—यह मन भेदकी वासनासे पदार्थ समूहोंको देखता हुआ भिन्न २ सर्वत्र घट, आवर्त, और पटआदि देखताहै ॥ २५ ॥ मैं कृश हुं, दुःखीहुं, मूढ हुं; इत्यादि तथा अन्य अपने विकल्पसे उठी हुई भावनाओंके करता हुआ यह मन संसारिता (जीवता) को प्राप्त होताहै ॥ २६ ॥ मनका जो स्फुरण रूपहै वह कृत्रिम (बनावटी) है वह मेरा रूप नहीं है क्योंकि मैं वह नहीं हुं इसप्रकार मनके त्यागसे यह चित्त सनातन शान्त ब्रह्मही है ॥२७॥ जिसप्रकार नानातरंगयुक्त तथा अनेक तरंगके विलाससे शोभायमान, और शान्त स्पन्द (गति) रूपसे स्थित, समान शुद्धरूप, स्वछ स्वाद जलमय, अविनाशी (कल्पतक) विस्तीर्ण अपनी महिमामें स्थित प्रसिद्ध महासमुद्रमें॥२८॥२९॥

ह्रस्वस्तरंगःस्वंरूपंभावयन्स्वस्वभावतः ॥ ह्रस्वोस्मीतिविकल्पेनकरोतिस्वेनभावनाम् ॥ ३० ॥ दीर्घस्तरंगःस्वंरूपंभावयन्स्वस्वभावतः ॥ दीर्घोस्मीतिविकल्पेनकरोतिस्वेनभावनाम् ॥ ३१ ॥ ह्रस्वश्चैवपरिभ्रष्टरूपोस्मीतितलातलम् ॥ भावयन्भूतलंयातितादृग्भावनयास्वया ॥ ३२ ॥

अर्थ—ह्रस्व (छोटा) तरंग अपने स्वभावसे निजरूपकी भावना करता हुआ अपनेही विकल्पसे यह भावना करताहै कि मैं ह्रस्व (छोटा) हुं ॥ ३० ॥ और दीर्घ (वडा) तरंग अपने स्वभावसे निजरूपकी भावना करता हुआ अपने विकल्पसे यह भावना करताहै कि मैं दीर्घ (वडा) हुं ॥ ३१ ॥ और ह्रस्व तथा परिभ्रष्टरूप मैं हुं इसप्रकार पतनके भयसे पातकी भावना करता हुआ उसी प्रकारकी भावनासे भूतल अर्थात् तीर भूमिको लक्ष्य करके जाताहै ॥ ३२ ॥

उत्पन्नश्चपलादूर्ध्वमुत्थितोस्मीतिभाविवितः ॥ सरश्मिरत्नजालस्तुशोभतेदीप्तयाश्रिया ॥ ३३ ॥ तुषारकरबिंबस्थःशीतलोस्मीतिबिंबति ॥ सतटाचलदावाग्निप्रतिबिंबोज्वलद्वपुः ॥ ३४ ॥ बिभेतिबतदग्धोस्मीत्यात्तमौनश्चकंपते ॥ प्रतिबिंबितवेलाद्रितटपक्षवनद्रुमः ॥ ३५ ॥ महदारंभसंरंभसंयुक्तोस्मीतिराजते ॥ विशल्लोलानिलात्यंतध्वस्तलोलशरीरकः ॥ ३६ ॥

अर्थ—और पल (अल्पकाल) केही उपरान्त पुनः उत्पन्न आविर्भूत होके मैं भोगके योग्य जन्म पाया ऐसा अभिमान करता हुआ देवसे पर्वतके तुल्य वडा और सूर्यकी किरणसहित रत्नसमूहके समान देदीप्यमान शोभासे

शोभित होताहै ॥ ३३ ॥ और चन्द्रमाके बिम्बमें उपाधिरूपसे स्थित होके मैं शीतल हुं ऐसा अभिमान करताहै, और तटमें स्थित दावाग्निके प्रतिबिम्बसहित जाज्वल्यमान शरीरवाला ॥ ३४ ॥ मैं जलगया इसप्रकार भय ग्रहण करताहै और मौन धारण करके कांपताहै और पुनः दोनों तटोंके पर्वतोंके प्रतिबिंबित होनेसे पक्ष तुल्यं वनके वृक्षके समान होके फलादिके आडंबरसे महान् राज्यकी प्राप्ति संयुक्त मैं हुं इसप्रकार शोभित (हर्षित) होताहै और पुनः पवनके प्रवेशसे अति चंचल शरीर इसके विध्वंस होजातेहैं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

खंड्शःपरियातोस्मीत्यात्तक्रंदइवाग्वी ॥ नचोर्मयस्तेजलधेर्व्यतिरिक्ताःपयोभरात् ॥ ३७ ॥ नचैकंरूपमेतेषांकिंचित्सन्नाप्यसन्मयम् ॥ नचैतेह्रस्वदैर्घ्याद्यागुणास्तेषुनतेषुते ॥ ३८ ॥ नार्णवःसंस्थिताह्यब्धौनतत्तत्रनसंस्थिताः ॥ केवलेस्वस्वभावस्थसंकल्पविकलीकृताः ॥ ३९ ॥ नष्टानष्टाःपुनर्जाताजाताजाताःपुनःपुनः ॥ परस्परपरामर्शान्नान्यतामुपयांत्यलम् ॥ ४० ॥

अर्थ—और मैं खण्ड २ (टुकडे २) हो गया इसप्रकार शब्द करता हुआभिमानी रोदन ग्रहण (आरम्भ) किया, यथार्थमें ये तरंग जल समूहरूप समुद्रसे पृथक् नहीं है ॥ ३७ ॥ इनका सत् वा असन्मय कोई मुख्य रूप नहीं है, और उन तरंगोंमें ह्स्वता वा दीर्घता आदि कोई गुण नहीं है, और न उन गुणोंमें तरंग हैं॥ ३८॥ और समुद्रमें तरंग नहीं है यह बातभी नहीं है; क्योंकि अधिष्ठानरूपसे हैही, और विवर्तरूपसे प्रतियोगी (जिस तरंगादिका अभाव समुद्रमें कहा जाय) के अभावसे अभावही अप्रसिद्ध है किन्तु अपने स्वभावमें स्थित संकल्पसे परिच्छेदके भेदसे विकल्पित हैं ॥ ३९ ॥ कभी नष्ट कभी अनष्ट और उत्पन्न और पुनः नष्ट, इसी प्रकार पुनः पुनः नष्ट और उत्पन्न परस्परके मेलसे वे तरंग समुद्रसे भिन्न नहीं होसकते ॥ ४० ॥

एकरूपांबुसामान्यमयाएवनिरामयाः ॥ तथैवास्मिन्प्रविततेसितेशुद्धेनिरामये ॥ ४१ ॥ ब्रह्ममात्रैकवपुषिब्रह्मणिस्फाररूपिणि ॥ सर्वशक्त्यावनाद्यंतेपृथग्वदपृथक्कृताः ॥ ४२ ॥ संस्थिताःशक्तयश्चित्राविचित्राचारचंचलाः ॥ नानाशक्तिर्हिनानात्वमेतिस्वेवपुषिस्थितिम् ॥ ४३ ॥ बृंहितंब्रह्मणिब्रह्मपयसीवोर्मिमंडलम् ॥ स्त्रीपुमान्व्यंगरूपेणब्रह्मैवपरिवर्त्तते ॥ ४४ ॥

अर्थ—जैसे सब तरंग निर्विघ्न सर्वथा एकरूप जलमय सदा स्थित है ऐसेही इस व्यापक नित्य शुद्ध निरामय ॥ ४१ ॥ चिन्मात्र शरीरधारी विशाल (महान्) अनादि अनन्त तथा सर्व शक्तिमान् ब्रह्मसे अभिन्न भिन्नके समान [illegible]समान ॥ ४२ ॥ चित्रविचित्र आचारसे चंचल विचित्र जगत्‌रूप शक्तियां (अनेक जगत्) स्थित हैं; क्योंकि नानाशक्तिमान् वह परमात्मा अपने स्वरूपमें ज्योंका त्यों स्थित नानारूपताको प्राप्त होताहै ॥ ४३ ॥ जलमें तरंग समूहके सदृश ब्रह्ममें ब्रह्मही वृद्धिको प्राप्तहै स्त्रीपुरुष तथा नपुंसकरूपसे ब्रह्मही विवर्तभाव (सींपमें चान्दीरूप) को प्राप्त होताहै ॥ ४४ ॥

कल्पनाम्याजगन्नाम्नीनासीदस्तिभविष्यति ॥ ब्रह्मणोजगतोभेदोमनागपिनविद्यते ॥ ४५ ॥ संपूर्णंखल्विदंब्रह्मजगद्ब्रह्मैवकेवलम् ॥ इतिभावययत्नेनह्यन्यत्सर्वंपरित्यज ॥ ४६ ॥ नानारूपिण्येकरूपावैरूप्यशतकारिणी ॥ नियतिर्नियताकारापदार्थमधितिष्ठति ॥ ४७ ॥ जडाजडमुपादत्तेचित्तमायातिचिन्मये ॥ वासनारूपिणीशक्तिःस्वस्वरूपास्थितात्मनः ॥ ४८ ॥

अर्थ—जगत् नामकी कोई कल्पना न थी और न है न होगी, क्योंकि जगत् और ब्रह्ममें किंचित्‌भी भेद नहीं है ॥ ४५ ॥ यह ब्रह्म निश्चयरूपसे पूर्ण है और संपूर्ण जगत् केवल ब्रह्मही है, ऐसी भावना हे रामजी! तुम प्रयत्नसे करो और संपूर्ण आडम्बर त्याग दो ॥ ४६ ॥ नानारूप होनेपरभी एक रूप, और असंख्य तथा विरुद्ध रूप होनेपरभी सदा सर्वत्र नियत (एक) आकारवाली नियति सत्ता संपूर्ण पदार्थोंका अधिष्ठानरूप स्थितहै ॥ ४७ ॥ चित्तके चिदाभासरूपता प्राप्त होनेपर उन २ उपाधियोंमें व्याप्त अहंकारको आत्मरूपतासे और उनसे भिन्न सन्मात्रको अनात्मरूप मानता हुआ यह चित्त अनाध्यात्मिक जड और आध्यात्मिक अजड (चेतन) भेदको ग्रहण करताहै, और यह चित्तकी भेद वासनारूप शक्ति आत्मकी निजरूपताहीसे स्थितहै, अर्थात् चित्तकृत जड चेतनके विकल्पसे आत्माकी एक रूपतामें कोई हानी नहीं है ॥ ४८ ॥

ब्रह्मैवानघतेनेस्फाराकारंविजृंभते ॥ नानारूपैःप्रतिस्पंदैःपरिपूर्णइवार्णवः ॥ ४९ ॥ नानातांस्वयमादत्तेनानाकारविहारतः ॥ आत्मैवात्मन्यात्मनैवसमुद्रांभइवाभासि ॥ ५० ॥ व्यतिरिक्तानपयसोविचित्रावीचयोयथा ॥ व्यतिरिक्तानविश्वेशात्समग्राःकल्पनास्तथा ॥ ५१ ॥ शाखापुष्पलतापत्रफलकोरकयुक्तयः ॥ यथैकस्मिंस्तथाबीजेसर्वदासर्वशक्तिता ॥ ५२ ॥

अर्थ—इसकारण हे पापरहित रामजी ! जैसे नानाप्रकारके तरंगोंके गति भेदोंसे परिपूर्ण समुद्र शोभित होताहै ऐसेही विशाल जगदाकारसे ब्रह्महीही विकसित हो रहाहै ॥ ४९ ॥ नानाप्रकारके आकारके विहारसे आत्माही आत्मामें आत्माहीसे नानाप्रकारके भेदको स्वयम् ऐसे ग्रहण करताहै जैसे समुद्रका जल अपनेही जलमें अपनेही जलसे तरंगादि भेदको ॥ ५० ॥ जैसे चित्र विचित्र तरंग जलसे पृथक् नहीं है इसीप्रकार विश्वके स्वामी परमात्मासे सम्पूर्ण जगत्की कल्पना पृथक् नहीं है ॥ ५१ ॥ जैसे एक बीजमें शाखा, पुष्प, लता, पत्र, फल, और कालिका (कली) आदिकी सब युक्तियां हैं, ऐसेही परमात्मामें सदा सर्व शक्तियां हैं ॥ ५२ ॥

विचित्रवर्णतायद्वद्दृश्यतेकठिनातपे ॥ विचित्रशक्तितातद्वद्देवेशेसदसन्मयी ॥ ५३ ॥ विचित्ररूपोदेतांयमविचित्रात्स्थितिःशिवात् ॥ एकवर्णात्पयोवाहाच्छक्रचापलतायथा ॥ ५४ ॥ अजडाज्जडतोदेतिजाड्यभावनहेतुका ॥ ऊर्णनाभाद्यथातंतुर्यथापुंसःसुषुप्तता ॥ ५५ ॥ अचितश्चेतसःशक्तिस्वबंधायेच्छयाशिवः ॥ तनोतितांतवंकोशंकोशकारकृमिर्यथा ॥ ५६ ॥

अर्थ—जैसे कठोर आतपमें विचित्र वर्ण देखते पडते हैं ऐसेही सब देवोंके स्वामी परमात्मामें सदसन्मयी विचित्र शक्ति देख पडती हैं ॥ ५३ ॥ अविचित्र एक रस कल्याणरूप परमात्मासे विचित्र यह जगत्की स्थिति ऐसे उदय होती है जैसे एक वर्ण मेघसे चित्रविचित्र वर्ण संयुक्त इन्द्रके धनुष्की लता ॥ ५४ ॥ चेतन परमात्मासे जडताकी भावना करनेवाली जडता इसप्रकार उत्पन्न होती है जैसे मकरीसे सूत वा पुरुषके स्वप्नसे रथादि ॥ ५५ ॥ आत्मा अपने बंधनके लिये चित्तकी शक्तिको अर्थात् वासनाकी विचित्रताको ऐसे विस्तार करता है जैसे मकरी नाम कृमि अपने कोशजालको ॥ ५६ ॥

स्वेच्छयात्मात्मनोब्रह्मन्भावयित्वैवविस्मृतिम् ॥ करोतिकठिनंबंधंकोशकारकृमिर्यथा ॥५७॥ स्वेच्छयात्मात्मनोब्रह्मन्भावयित्वास्वकंवपुः ॥ संसारान्मोक्षमाप्नोतिस्वालानादिववारणः ॥ ५८ ॥ यथैव भावयत्यात्मासनतंभवतिस्वयम् ॥ तथैवापूर्यतेशक्त्याशीघ्रमेवमहानपि ॥ ५९ ॥ भाविताशक्तिरात्मानमात्मतांनयतिक्षणात् ॥ अनंतमखिलंप्रावृड्मिहिकामहतीयथा ॥ ६० ॥ याशक्तिरुदिताशीघ्रंयातितन्मयतामजः ॥ यएवर्तुस्थितिंयातस्तन्मयोभवतिद्रुमः ॥ ६१ ॥

अर्थ—हे ब्रह्मन् ! यह आत्मा अपनी इच्छासे आपही अपने स्वरूपकी विस्मृतिकी भावना करके अपनेलिये ऐसे कठिन बन्धन करताहै जैसे कोशकार कृमि ॥ ५७ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह आत्मा अपनी इच्छासे अपने आत्माका साक्षात्कार करके संसारसे ऐसे मोक्षको प्राप्त होता है जैसे हस्ती अपने अपने बन्धनसे ॥ ५८ ॥ यह आत्मा जैसी भावना करताहै वैसाही निरन्तर होता है, और महान्भी यह शीघ्र चित्तकी शक्तिसे वैसाही पूर्ण होजाता है॥५९॥ चिरकालकी भावनासे दृढ भूत वासना क्षणभरमे आत्माको अपने स्वरूपमें अपने तुल्य ऐसे प्राप्त करती है जैसे अनंत आकाशको प्रावृट्की बडीभारी मिहिका (कुहिरा) जैसी वासना उत्पन्न होती है आत्मा शीघ तन्मय ऐसे होजाताहै जैसे वर्तमान ऋतुके तन्मय वृक्ष ॥ ६० ॥ ६१ ॥

नमोक्षोमोक्षईशस्यनबंधोबंधआमनः ॥ बंधमोक्षदृशौलोकेनजानेप्रोत्थितेकुतः ॥ ६२ ॥ नास्तिबंधोनमोक्षोस्तितन्मयस्त्विवलक्ष्यते ॥ ग्रस्तंनित्यमनित्येनमायामयमहोजगत् ॥ ६३ ॥ यदैवचित्तंकलितंकिलानेनाकलात्मना ॥ कोशकारवदात्मायमनेनावलितस्तदा ॥ ६४ ॥

अर्थ—जिसको मोक्ष कहते हैं वह मोक्ष आत्माके अर्थ नहीं, और जो बंध है वहभी आत्माको नहीं है, क्योंकि बंध और मोक्षदृष्टि संसारमें न जाने कहांसे निकली हैं अर्थात् यथार्थमें नहीं हैं ॥ ६२ ॥ यथार्थमें न बंध है न मोक्ष है किंतु बंधमोक्षरूप विकारवान्के सदृश यह आत्मा भान होताहै, अहो कैसा मायामय यह जगत् है कि आत्माके नित्य पूर्ण आत्मस्वरूपको अनित्य भोक्ता भोग्यादिक बासनाध्याससे ग्रसलिया अर्थात् तिरोहित कररक्खा है ॥ ६३ ॥ इस निर्मल आत्माने जिससमय चित्तका संकल्प किया उसीसमय यह आत्मा ऐसे बंधनमें इस चित्तकेद्वारा आगया जैसे मकरी निज रचित जालसे ॥ ६४ ॥

अन्योन्यरूपास्त्वत्यंतंविकल्पितशरीरकाः ॥ मनःशक्तयएतस्मादिमानिर्यांतिकोटयः ॥ ६५ ॥ तज्जास्तत्स्थाःपृथग्रूपाःसमुद्रादिववीचयः ॥ तज्जास्तत्स्थाःपृथक्स्थाश्चचंद्रादिवमरीचयः ॥ ६६ ॥ अस्मिन्स्पंदमयेस्फारेपरमात्ममहांबुधौ ॥ चिज्जलेविततभोगेचिन्मात्ररसमालिनि ॥ ६७ ॥ काश्चित्स्थिराब्रह्मविष्णूकाश्चिद्रुद्रत्वमागताः ॥ काश्चित्पुरुषतांप्राप्ताःकाश्चिद्देवत्वमागताः ॥ ६८ ॥ कृमिकीटपतंगाहिगोमशाजगरादिकाः ॥ काश्चित्तत्तस्मिन्महांबोधौस्फुरंत्येतेंबुबिंद्वत् ॥ ६९ ॥

अर्थ—परस्पर मिलित, और अत्यन्त विकल्पयुक्त शरीरवाले करोडों मनकी शक्ति इस परमात्मासे ःहे लती हैं ॥ ६५ ॥ उसीसे उत्पन्न और उसीसे स्थित ऐसे पृथक् स्थित हैं जैसे चन्द्रमासे किरण ॥ ६६ ॥ चित्त जलसंयुक्त व्यापक आकारवाले, चेतनमात्र रसकी मालासहित स्पन्दमय और विशाल इस आत्मरूपी महान् समु द्रमें ॥ ६७ ॥ कोई ब्रह्मा विष्णुरूपी तरंग स्थिर हैं और उसीप्रकार स्थिर रुद्रभावको प्राप्त हुये हैं, कोई पुरुष (मनुष्य) भावको प्राप्त हुये हैं, और कोई देवभावको प्राप्त हुये हैं ॥ ६८ ॥ ये सब तरंग अपने स्वभावसे कल्पित स्फुरित होरहे हैं, इनमेंसे कोई तो यम, महेन्द्र, सूर्य अग्नि और कुबेर आदि रूपसे स्फुरित होते हैं ॥ १ ॥ कोई तो परस्पर मारते हैं कोई उपकार करते हैं, हंसते हैं और कोई चपल इच्छायुक्त स्थित रहते हैं; इनमेंसे कोई तरंग किन्नर, गंधर्व, विद्याधर, तथा देवरूपसे स्फुरित हैं ॥ २ ॥ कोई उग्र तरंग गर्जना करके ऊपर जाते हैं कोई नीचे जाते हैं, और कोई कुछ कालतक स्थिर आकारवाले हैं जैसे ब्रह्माआदि और कोई उस महान् समुद्रमें; कृमि, कीट, पतंग, सर्प मशक (मच्छर) गौ और अजगर आदिरूपसे जलके विन्दुके समान स्फुरते हैं ॥ ६९ ॥

काश्चिच्चलानरमृगगृध्रजंबुलकादिकाः ॥ स्फुरंतिगिरिकुंजेषुवेलावनतटेष्विव ॥७०॥ सुदीर्घजीविताः काश्चित्काश्चिदत्यल्पजीविताः ॥ अतुच्छकलनाःकाश्चित्काश्चित्तुच्छशरीरकाः ॥ ७१ ॥ संसारस्व प्रसंरंभेकाश्चित्स्थैर्येणभाविताः ॥ सुविकल्पहताःकाश्चिच्छंकंतेसुस्थिरंजगत् ॥ ७२ ॥

अर्थ—और कोई २ अस्थिररूप जैसे मनुष्य, मृग, गृध्र तथा शृगाल आदि पर्वतोंके कुंजोंमें ऐसे स्फुरते हैं जैसे नदीके किनारेके वनोंमें चंचल लता आदि ॥ ७० ॥ किसीका जीवन अति दीर्घकालतक है और किसीका अति अल्प है किसीकी शरीरकी रचना अति महती (बडीभारी) है और किसीकी अति तुच्छ है ॥ ७१ ॥ संसाररूपी स्वप्नके कार्यमें कोई तो चिरकालतक स्थिरतासे कल्पित हैं और कोई दृढ विकल्पोंसे मोहित होके यह संभावना करते हैं कि यह जगत् अति स्थिर है ॥ ७२ ॥

अल्पाल्पभावनाःकाश्चिद्दैन्यदोषवशीकृताः ॥ कृशोऽतिदुःखीमूढोहमितिदुःखैर्वशीकृताः ॥ ७३ ॥ काश्चित्स्थावरतांयाताःकाश्चिद्देवत्वमागताः ॥ काश्चित्पुरुषतांप्राप्ताःकाश्चिदर्णवतांगताः ॥ ७४ ॥ काश्चित्स्थिताजगतिकल्पशतान्यनल्पाःकाश्चिद्व्रजंतिपरमंपदमिंदुशुद्धाः ॥ ब्रह्मार्णवात्समुदितालहरी विलोलाश्चित्संविदोहिमननापरनामवत्यः ॥ ७५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भार्गवोपाख्याने संसारप्रवृत्तिदर्शनं नामैकादशःसर्गः ॥ ११ ॥

अर्थ—और कोई तो तुच्छसे तुच्छ भावनावाले दीनताके दोषमें वशीभूत हैं जैसे मैं कृशहुं; मैं अति दुःखीहुं; और मैं अति मूढहुं इत्यादि दुःखोंसे वशीभूत हैं ॥ ७३ ॥ कोई तो इस आत्मारूपी समुद्रकी लहरी स्थावरता (वृक्षादि रूपता) को प्राप्त हुई और कोई देवभावको प्राप्त हुई, कोई मनुष्य देहताको प्राप्त हुई और कोई सुषुप्ति तथा प्रलयके तुल्य अप्रकट वासनारूपी मोहरूप समुद्रताको प्राप्त हुई हैं ॥ ७४ ॥ हे ब्रह्मन् ! ब्रह्मरूप समुद्रसे आविर्भूत जो ये लहरी हैं जिनका दूसरा नाम स्फुरणरूप मन हैं ये चंचल उपाधिकृत संवित्के भेद हैं, इनमेंसे कोई तो इस जगत्में सैकडो कल्पतक स्थिरताको प्राप्त होते हैं और कोई चन्द्रमाके सदृश ज्ञानरूपी अमृतसे शुद्ध होके परमपद मोक्षको प्राप्त होते हैं ॥ ७५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे भार्गवोपाख्याने संसारप्रवृत्तिदर्शनं नामैकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

तरंग समुद्रके दृष्टांतसे जो आत्मामें विकारता प्राप्त है उसका निषेध करते हुये मोहसे उत्पन्न विचित्रताकी ...ता इस १२ वे सर्गमें वर्णन करते है ॥

॥ कालउवाच ॥ सुरासुरनराकाराइमायाःसंविदोमुने ॥ ब्रह्मार्णवादभिन्नास्ताःसत्यमेतन्मृषेतरत् ॥ १ ॥ मिथ्याभावनयाब्रह्मन्स्वविकल्पकलंकिताः ॥ नब्रह्मवयमित्यंतर्निश्चयेनह्यधोगताः ॥ २ ॥ ब्रह्मणोव्यतिरिक्तत्वंब्रह्मार्णवगताअपि ॥ भावयंत्योविमुह्यंतिभीमासुभवभूमिषु ॥ ३ ॥ याएताःसंविदोब्राह्म्योमननैककलंकिताः ॥ एतत्तत्कर्मणांबीजमप्यकर्मैवविद्धिताः ॥ ४ ॥

अर्थ—काल बोला—हे मुने ! सुर असुर तथा नर आकारवाली ये जो उपाधिसे भिन्न संवित् हैं वे ब्रह्मरूपी ताँद्रसे अभिन्न हैं यही सत्यहै और सब मिथ्याहै ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन् ! अनात्मामें मिथ्या आत्मभ्रान्तिरूप अपने विकल्पसे दूषित होके जीवोंको जो यह निश्चय है कि हम ब्रह्म नहीं है इसीसे ये अधोगतिको प्राप्त हुये हैं ॥ २ ॥ ब्रह्मसमुद्रमें अभिन्नरूपताको प्राप्त होकेभी जो ब्रह्मसे भिन्न परिच्छिन्नरूपताकी संभावना करते हैं; इसीकारण भयंकर संसारकी भूमियोंमें मोहित होते हैं ॥ ३ ॥ हे भगवन् देहमें पुनः २ आत्मभावसे कलंकित ये जो संवितहैं वेही पुण्य पापकी प्रवृत्तियोंका बीजभूतहैं; परन्तु उनके ऐसा होनेपरभी यथार्थमें उनको तुम निष्क्रिय ब्रह्मही जानो ॥ ४ ॥

संकल्परूपयैवांतर्मुनेकलनयैतया ॥ कर्मजालकरंजानांबीजमुष्ट्याकरालया ॥ ५ ॥ इमाजगतिविस्तीर्णाःशरीरोपलपंक्तयः ॥ तिष्ठंतिपरिवल्गंतिरुदंतिचहसंतिच ॥ ६ ॥ आब्रह्मस्तंबपर्यंतंस्पंदनैःपवनोयथा ॥ उल्लसंतिनिलीयंतेम्लायंतिविहसंतिच ॥ ७ ॥ ताएताःकाश्चिदत्यच्छायथाहरिहरादयः ॥ काश्चिदल्पविमोहस्थायथोरगनरामराः ॥ ८ ॥

अर्थ—हे मुने ! कर्मसमूहरूपी काटोंके बीजकी भयंकर मुष्टिरूप संकल्परूप चित्तकी कल्पनासे ॥ ५ ॥ शरीररूपी ये पाषाणकी पंक्ति विस्तारसे फेकी हुई जगत्में स्थित हैं, गर्जती हैं, रोती हैं और हंसती हैं ॥ ६ ॥ जैसे ब्रह्मासे लेके स्तंबपर्यन्त पवन अपने गतिके भेदोंसे व्याप्त है ऐसेही संकल्पसे कल्पित ये संवित् उल्लासको प्राप्त होती हैं, तथा तिरोहित (लुप्त) भी होजाती हैं ॥ ७ ॥ इनमेंसे कोई ज्ञानकी पराकाष्ठाको पहुंचनेसे अति स्वच्छ हैं, जैसे विष्णु और महादेव आदि; और कोई ज्ञानके अधिकारी मात्र होनेसे अल्पमोहमें स्थित हैं जैसे उरग; नर और देवता आदि ॥ ८ ॥

काश्चिदत्यंतमोहस्थायथातरुतृणादयः ॥ काश्चिदज्ञानसंमूढाःकृमिकीटत्वमागताः ॥ ९ ॥ काश्चित्तृणवदुह्यंतेदूरेब्रह्ममहोदधेः ॥ अप्राप्तभूमिकाएतायथोरगनगादयः ॥ १० ॥ सत्वमात्रंसमालोक्यकाश्चिद्देवत्वमुपागताः ॥ जाताजातानिखन्यंतेकृतांतजरठाखुना ॥ ११ ॥ काश्चिदंतरमासाद्यब्रह्मतत्त्वमहांबुधेः ॥ गतास्तत्तांसमंकायैर्हरिब्रह्महरादिकाः ॥ १२ ॥

अर्थ—कोई महा अज्ञानमें स्थित हैं जैसे वृक्ष तथा तृण आदि; और कोई अज्ञानसे संमूढ हैं जैसे कोई कृमि वा कीट आदि दशाको प्राप्त हुये हैं ॥ ९ ॥ कोई २ शास्त्र विरुद्ध प्रवृत्तियोंसे ब्रह्मरूपसमुद्रसे अर्थात् मुक्तिसे तृणके समान दूर फेंकि दिये जाते हैं और ये मोक्षकी भूमिमें नहीं प्राप्त होते जैसे सर्प तथा पर्वत आदि ॥ १० ॥ कोई २ संसारके श्रमके विश्रामका हेतुभूत योग्य भूमिकाको प्राप्त होके देवदशाको प्राप्त और शास्त्रसे सुनके उसके अभिमुख होके भी दुष्ट प्रारब्धरूपी वृद्ध मूषकसे पीडित होते हैं ॥ ११ ॥ कोई किंचित् भेदक विशुद्ध ज्ञानको प्राप्त होके अपने शरीरोंके साथ ब्रह्मरूपी महासमुद्र रूपताको अर्थात् जीवन्मुक्तताको प्राप्त होगये जैसे ब्रह्मा, और महादेव आदि ॥ १२ ॥

अल्पमोहात्मिकाःकाश्चित्तमेवब्रह्मवारिधिम् ॥ अदृष्टपारभूम्यैघमवलंब्यव्यवस्थिताः ॥ १३ ॥ काश्चिल्लोकव्यजन्मौघभुक्तजन्मौघकोटयः ॥ वंध्याःप्रकाशतामस्यःसंस्थिताभूतजातयः ॥ १४ ॥ काश्चिदूर्ध्वादधोयांतियथाहस्तान्महत्फलम् ॥ ऊर्ध्वादूर्ध्वतरंकाश्चिदधस्तात्काश्चिदप्यधः ॥ १५ ॥ बहुसुखदुःखकराकराक्षयेयंपरमपदास्मरणात्समागतेह ॥ परमपदावगमात्प्रयातिनाशंविहगपतिस्मरणाद्विषव्यथेव ॥ १६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भार्गवोपाख्याने संसारोत्पत्तिविस्तारवर्णनं नाम द्वादशःसर्गः ॥ १२ ॥

अर्थ—कोई अल्पज्ञानवाले अदृष्ट पारभूमि पूर्णतायुक्त उस ब्रह्मरूपी समुद्रको समाधिसे अवलम्बन करके स्थित हैं ॥ १३ ॥ और कोई २ प्राणियोंकी जातिभोग करनेको करोडों जन्मोंके समूहको भोग करलिया तथापि मोक्षरूप फल न पानेसे बन्ध्य हैं और मोक्षके अधिकारि मनुष्य देहरूप प्रकाश मिलनेपरभी वे तामसी अर्थात् अन्धकारमेंही स्थित हैं ॥ १४ ॥ कोई २ उत्तम जन्मसे नीच जन्मको ऐसे प्राप्त होते हैं जैसे हाथमेंसे महान् फल नीचे गिरजाय, और कोई २ ऊपरसेभी ऊपर जाते हैं अर्थात् उत्तमसेभी और उत्तम होते हैं, और कोई नीचेसेभी और नीचे जाते हैं जैसे पशुसे कीटताको ॥ १५ ॥ हे भगवन् ! बहुत सुख तथा दुःखोंको देनेवाले जन्मोंकी खानिरूप जो यह जीवताहै वह परमपद अपने आत्मस्वरूपके विस्मरणसे प्राप्त हुई है और उसी आत्मस्वरूप परमपदके बोधसे वता ऐसे नष्ट होजाती है जैसे गरूडके स्मरणसे विषकी व्यथा ॥ १६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे भार्गवोपाख्याने संसारोत्पत्ति विस्तार वर्णनं नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

मनकी शक्तियोंको वर्णन करनेके पश्चात् भृगु और कालका शुक्रके समीप जानेके अर्थ उत्थानका वर्णन है १३ के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ कालउवाच ॥ एतासां भूतजातीनामूर्मीणामिवसागरात् ॥ विविधानांविचित्राणांलतानामिवमाधवे ॥ १ ॥ भव्याजितमनोमोहादृष्टलोकपरावराः ॥ जीवन्मुक्ताभ्रमंतीहयक्षगंधर्वकिंनराः ॥ २ ॥ अन्येतुकाष्ठकुड्याभामूढाःस्थावरजंगमाः ॥ अपरेक्षीणमोहास्तेकितेषांप्रविचार्यते ॥ ३ ॥ लोकेप्रबुध्यमानानांभूतानामात्मसिद्धये ॥ विहरंतीहशास्त्राणिकल्पितान्युदितात्मभिः ॥ ४ ॥

अर्थ—काल बोला–हे ब्रह्मन्! सागरसे प्रगट तरंगोंके समान वा वसन्तऋतुमें उत्पन्न लताओंके तुल्य परमात्मासे आविर्भूत चित्रविचित्र अनेक प्रकार प्राणियोंकी जातियोंमेंसे ॥ १ ॥ जिन्होंने मनके मोहको जीतलियाहै और इस लोक तथा परलोकके तत्वको देखलियाहै वेही भव्य अर्थात् कृतार्थ हैं और वेही यक्ष गंधर्व किन्नर तथा मनुष्य जीवन्मुक्त होके संसारमें भ्रमण करते हैं ॥ २ ॥ और इनसे अतिरिक्त अन्य जो प्राणी हैं वे काष्ठ वा कुड्य (भित्ति) के तुल्य मूढहैं और वे स्थावर वा जंगम भावको प्राप्त होते हैं, और जो तत्वज्ञानी हैं जिनका मोह क्षीण होगयाहै उनके लिये शास्त्रके विचारकी क्या अवश्यकताहै, किंतु जो साधनचतुष्टयसंपन्नहैं और अज्ञानी हैं उन्हींके लिये शास्त्रहैं ॥ ३ ॥ जो संसारमें आत्मज्ञानके लिये जाग्रतहैं उन्हीके अर्थ ज्ञानी महात्माओंसे कहे हुये शास्त्र गर्जना कर रहे हैं, अर्थात् मोह शून्य महात्माओंके देह धारणका यही प्रयोजनहै कि शास्त्र रचके ज्ञानद्वारा अज्ञानियोंका उद्धार करें ॥ ४ ॥

संप्रबुद्धाशयायेतुदुष्कृतानांपरिक्षये ॥ तेषांशास्त्रविचारेषुनिर्मलाधीःप्रवर्त्तते ॥ ५ ॥ विलीयतेमनोमोहःसच्छास्त्रप्रविचारणात् ॥ नभोविहरणाद्भानोःशार्वरंतिमिरंयथा ॥ ६ ॥ अक्षीयमाणंहिमनोमोहायैवनसिद्धये ॥ नीहारइवसंछाद्यवेतालइववल्गति ॥ ७ ॥ सर्वेषामेवदेहानांसुखदुःखार्थभाजनम् ॥ शरीरंमनएवेहनतुमांसमयंमुने ॥ ८ ॥

अर्थ—पापोंके नाश होजानेसे जिनका अंतःकरण शुद्ध होगयाहै उन्हीं सज्जनोंकी निर्मल बुद्धि शास्त्रके विचारमें प्रवृत्त होतीहै ॥ ५ ॥ हे भगवन्! सब शास्त्रके विचारसे मनका मोह ऐसे नष्ट होजाताहै जैसे आकाशमें सूर्य भगवान्‌के विहारसे रात्रिका अंधकार ॥ ६ ॥ और जो मनका मोह नष्ट नहीं होता वह अज्ञानके लिये है न कि सिद्धिके लिये, और मोह आकाशको कुहिरा जैसे आच्छादन करताहै वैसाही अंतःकरणको आच्छादन (ढाप) करके नृत्य करताहै ॥ ७ ॥ हे मुने देहके साथ आत्माका अध्यास करनेवाले सब प्राणियोंका मनरूपी शरीरही सुख तथा दुःखका भागी है न कि यह मांसमय शरीर ॥ ८ ॥

योयंमांसास्थिसंघातोदृश्यतेपांचभौतिकः ॥ मनोविकल्पनंविद्धिनदेहःपरमार्थतः ॥ ९ ॥ मनःशरीरेणतवपुत्रोयंकृतवान्मुने ॥ सदेवप्राप्तवानाशुवयंनात्रापराधिनः ॥ १० ॥ स्वयावासनयालोकोयद्यत्कर्म करोतियः ॥ सतथैवतदाप्नोतिनेतरस्येहकर्तृता ॥ ११ ॥ स्वानुसंहितमंतर्यन्मनोवासनयास्वया ॥ कोनामभुवनेशोस्तितत्कर्तुंयस्यशक्तता ॥ १२ ॥

अर्थ—और जो यह मांस और हड्डीका समूह पंचभूतोंसे रचा हुआ शरीर देख पडताहै इसको आप मनकाही विकल्प जानो; क्योंकि यह पांच भौतिक देह यथार्थमें नहीं है ॥ ९ ॥ हे मुने मनरूपी शरीरसे जो कुछ आपके पुत्रने कियाहै वही शीघ्र उसने पाया इसमें हम लोगोंका कुछभी अपराध नहीं है ॥ १० ॥ अपनी वासनासे युक्त होके प्राणी जो २ कर्म करताहै वैसाही वैसा फल वह पाताहै इसमें अन्यकी कर्तृता नहीं है ॥ ११ ॥ मन अपनी वासनासे युक्त अनुसंधान मात्रसे क्षणभरमें जो कर लेताहै उसको भुवनका स्वामीभी होके चिरकालमेंभी कौन कर सकताहै ॥ १२ ॥

येसर्गानरकाभोगायाजन्ममरणैषणाः स्वमनोमननेनेदंसनिष्पंदोपिदुःखदः ॥ १३ ॥ बहुनात्रकिमुक्तेनशब्दसंग्रहकारिणा ॥ उत्तिष्ठभगवन्यामोयत्रतेतनयःस्थितः ॥ १४ ॥ सर्वंचित्तशरीरेणभुक्त्वाशुक्रःक्षणादिव ॥ अथेंदुरश्मिसंघट्टात्समंगातापसःस्थितः ॥ १५ ॥ तत्प्राणपवनाश्चित्तान्मुक्तइवेंदुवत्फलम् ॥ अवश्यायतयाभूत्वावीर्यतेनांतरास्थितः ॥ १६ ॥

अर्थ—जो सृष्टि, नरकके विस्तार और जो जन्ममरण आदिकी इच्छाहै; यह सब मनके स्फुरणसे है, और मनका किंचित्भी संचलन दुःखदायी है ॥ १३ ॥ हे भगवन्! बहुत शब्दजाल रचके आपको श्रवण करानेसे क्या

जन आओ उठो जहां आपका पुत्र है वहां चलें ॥ १४ ॥ मनरूपी शरीरसे शुक्राचार्यने सब स्वर्ग आदि क्षणभंगुर भोगके और वहांसे गिरके चन्द्रमाके किरणके संबंधसे औषधि आदिके द्वारा गर्भमें जन्म धारण करके तपस्वी होके समंगा नदीके तटपर स्थितहैं ॥ १५ ॥ शुक्राचार्यके प्राण वायुने चेतन शक्तिसे संमूर्छित होके चंद्रमाके संपर्कसे कुहिराके द्वारा धान्य आदिमें प्रवेश करके और वह अन्नभुक्तरूप होनेसे पुरुषका वीर्य होके जन्म धारण कियाहै॥१६॥

इत्युक्त्वाभगवान्कालोहसन्निवजगद्गतिम् ॥ हस्ताद्धस्तेनजग्राहभृगुमिंद्रमिवांशुमान् ॥ १७ ॥ अहो नुचित्रानियतेर्व्यवस्थेतिवदञ्छनैः ॥ भगवान्भृगुरुतस्थावुदयाद्रेर्यथारविः ॥ १८ ॥ तेजोनिधी स समंगसमुत्थितौतौ भातस्तदांबरतलेसतमालजाले ॥ तुल्योदयाविवनभस्यमलेविहर्तुमभ्युत्थितौसजलदौसकलेंदुसूर्यौ ॥ १९ ॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ इत्युक्तत्यथमुनौदिवसोजगामसायंतनायविधयेस्तमिनोजगाम ॥ स्नातुंसभाकृतनमस्करणाजगामश्यामाक्षयेरविकरैश्चसहाजगाम ॥ २० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे श्रीवाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भार्गवोपाख्याने भृगुसमाश्वासनं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

अर्थ—भगवान् काल इतना कहके जगत्की गतिको हंसते हुयेके समान भृगुमुनिके हस्तको अपने हस्तसे ऐसे ग्रहण किया जैसे चन्द्रमाको सूर्य ॥ १७ ॥ अहो ! दैव वा कर्मकी व्यवस्था कैसी विचित्रहै ऐसा धीरेसे कहते हुये भगवान् भृगु अपने आसनसे ऐसे उठे जैसे उदयाचलसे सूर्य ॥ १८ ॥ हे प्रियरामजी ! तेजके निधान भृगु और काल दोनो तमालके सहित मन्दराचलपरसे उठे उस समय वे दोनों ऐसे शोभित हुये जैसे साथ उदय होनेवाले पूर्ण चंद्रमा और सूर्य मेघसहित निर्मल आकाशमें विहार करनेको शोभित हों ॥ १९ ॥ श्रीवाल्मीकिजी बोले—इतना मुनि वसिष्ठके कहनेपर दिनका अंत होगया सूर्यभगवान् सायंकाल करनेको अस्ताचलमें गये, और संपूर्ण सभाभी संध्याके स्नानादि कृत्य करनेके लिये विदा हुई, और रात्रि बीतनेपर सूर्यके किरणोंके साथ; परस्पर नमस्कार पूर्वक आके प्राप्त हुई ॥ २० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे भार्गवोपाख्याने भृगुसमाश्वासनं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥ अष्टमोदिवसः ।

चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

भृगु और कालका शुक्राचार्यके निकट गमन, शुक्रको समाधिसे बोधन (जाग्रत) करना, तथा शुक्रकी अपने पूर्व शरीरके निकट आनेकी इच्छा इत्यादि विषयोंका वर्णन १४ के सर्गमें किया गया है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथकालभृगूदेवौमंदराचलकंदरात् ॥ गंतुंप्रवृत्तावनौसमंगासरितस्तटम् ॥ १ ॥ तौशैलादवरोहंतौदृष्टवंतौमहाद्युती ॥ नवहेमलताजालकुंजसुप्तनभश्चरान् ॥ २ ॥ वल्लीवलयदोलाभिःक्रीडतोगगनांगणे ॥ हरिणीमुग्धमुग्धाक्षिप्रेक्षितस्मारितोत्पलान् ॥ सिद्धानध्यासितोत्तुंगशिलाशकलविष्टरान् ॥ धृताकारानिवोत्साहान्हेलादृष्टजगत्त्रयान् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—इसके पश्चात् काल और भृगु दोनो देव पृथिवीपर उतरके समंगा नदीके तटपर जानेको प्रवृत्त हुये ॥ १ ॥ महातेजस्वी वे दोनों पर्वतसे उतरते समय नूतन सुवर्णसे रचित लता जालके समूहोंके तुल्य सोतेहुये देवता तथा पक्षियोंको देखा ॥ २ ॥ वे देवता लोग लता रचित दोला (झूला) ओंसे आकाशके अंगमें क्रीडा कर रहे थे, और हरिणियोंके समान मुग्ध मुग्ध कटाक्षोंसे जो अप्सरागण देख रहीथीं उनसे कमलके दलोंको स्मरण कराते थे ॥ ३ ॥ ऊंचे शिलाके खण्डोके आसनपर स्थित और अवज्ञासे तीनों लोकको देखनेवाले मूर्तिमान् उत्साहके सदृश सिद्धोंकोभी देखा ॥ ४ ॥

यह ... पतत्पुष्पधारासारनिमज्जनान् ॥ तालोत्तालकृतोद्दस्तवस्तान्हस्तिघटापतीन् ॥ ५ ॥ मदोद्वता ऐसे ... न्मदान्मूर्त्ताहिवस्थितान् ॥ पुष्पकेसररक्तांगपवनारुणवालधीन् ॥ ६ ॥ चंचलांश्चमरान् ... न्मंडलचामरान् ॥ कृताजस्रपतत्पुष्पधारासारनिमज्जनान् ॥ ७ ॥ किन्नरान्भूमखर्जूरान् ... गतान् ॥ परस्परफलाघातक्ष्वेडवर्जितकीचकान् ॥ ८ ॥ धातुपाटलडुर्वक्रान्मर्कटान्नटनो वितानसंछन्नसानूपवनमंदिरान् ॥ ९ ॥

अर्थ—जिनमें निरन्तर पुष्पोंकी धारा गिरती थी ऐसे जलके प्रवाहमें स्नान किये हुये, तथा ताल वृक्षके सरखे शुण्डादण्ड (सूँड) धारी हांथियोंके यूथपोंकोभी देखा ॥ ५ ॥ मदसे निद्रायुक्त, पुष्पोंके केसरोंसे रंगे हुये लं: हैं पुच्छ युक्त मूर्तिमान् मदके सदृश वे हांथियोंके यूथप (श्रेष्ठ हांथी) स्थित थे ॥ ६ ॥ चंचल तथा सुंदर मंदराचलके चामरके समान चमर नाम मृगोंको देखा, और निरंतर जिसमें पुष्पोंकी धारा गिररही थी ऐसे प्रवाहमें स्नान किमेहुये किन्नरोंकोभी देखा ॥ ७ ॥ और शाखा पर्यन्त सीधे खडे उत्तम खर्जूर (खजूर) के वृक्षोंको देखा, और खर्जूरके फलोंके परस्पर ताडनरूप क्रीडाओंसे नीचेके वांसके वृक्षोंकोभी फल सहित करनेवाले तथा गेरूके समान लाल तथा कुरूप मुख संयुक्त और नाचने कूदनेमें चतुर वानरोंको देखा, और लताओंसे आच्छादित शिखर, उपवन; तथा मन्दिरोंको देखा ॥ ८ ॥ ९ ॥

सिद्धानमरनारीभिर्मंदारकुसुमाहतान् ॥ धातुपाटलनिर्द्वारपयोदपटसंवृतान् ॥ १० ॥ तटानजनसंसर्गान्बौद्धान्प्रव्रजितानिव ॥ सरितःकुंदमंदारपिनद्धलहरीघटाः ॥ सागरोत्कतयेवात्तमधुमासप्रसाधनाः ॥ ११ ॥ पुष्पभारपिनद्धांगान्वृक्षान्पवनकंपितान् ॥ क्षीवानिवमधुप्राप्तौघूर्णन्मधुकरेक्षणान् ॥१२॥

अर्थ—रतिके समयको जनानेके अर्थ अप्सराओंकरके पुष्पोंसे ताडित इसीसे गेरूके समान अरूण तथा छिद्ररहित मेघरूपीपटसे आवृत (ढके हुये) सिद्धनामक देवोंको देखा ॥ १० ॥ बौद्धमतके सन्यासीके तुल्य मनुष्योंके संचारसे वर्जित तटोंकोभी देखा कुन्द तथा मन्दार आदि पुष्पोंसे जिनके तरंग समूह गूथे थे, और समुद्ररूपी प्रियके अर्थ चैत्रमासमें उत्पन्न पुष्प फलादिरूप आभूषण धारण किये हुई नदियोंकोभी देखा ॥ ११ ॥ पुष्पोंके भारसे गुंफित; पवनसे कम्पित भ्रमररूपी नेत्रधारी, और वसंतऋतुके प्राप्त होनेसे घूरते हुये मदोन्मत्तके समान वृक्षोंको देखा ॥१२॥

शैलराजश्रियंस्फीतांपश्यंतौताविततस्ततः ॥ प्राप्तवंतौवसुमतींपुरपत्तनमंडिताम् ॥ १३ ॥ क्षणादवापतुस्तत्रपुष्पलोलतरंगिणीम् ॥ समंगांसरितंसाधूसर्वपुष्पमयीमिव ॥ १४ ॥ ददर्शाथतटेतस्मिन्कस्मिंश्चित्तनयंभृगुः ॥ देहांतरपरावृत्तंभावमन्यमुपागतम् ॥ १५ ॥ शांतेंद्रियंसमाधिस्थमचंचलमनोमृगम् ॥ सुचिरादिवविश्रांतंसुचिरश्रमशांतये ॥ १६ ॥

अर्थ—वे दोनोंपर्वत राजकी निर्मल शोभाको इधर उधर देखते हुये ग्रामनगर आदिसे शोभित पृथिवीपर प्राप्त हुये ॥ १३ ॥ वेदोनों महात्मा (काल भृगु) पुष्पोंसे चंचल तरंगवाली मानो समर्थ पुष्पमयी होरहीहै ऐसी समंगाके समीप क्षणभरमेंही प्राप्त हुये ॥ १४ ॥ इसके पश्चात् भृगुने किसी वृक्षके नीचे अपने पुत्रको देखा जो कि दूसरी शरीर धारण करनेसे शुक्राचार्यसे विलक्षणभावको प्राप्त होगयेथे ॥ १५ ॥ उनकी संपूर्ण इन्द्रियां शांतथीं, समाधिमें स्थित होनेसे मनरूपी मृग चंचलतासे शून्य था तथा संसारके अनादि कालके परिश्रमकी शांतिके लिये मानो चिरकालके लिये विश्राम कररहे थे ॥ १६ ॥

चिंतयंतमिवानंतांश्चिरभुक्ताचिरोज्झिताः ॥ संसारसागरगतीर्हर्षशोकनिरंतराः ॥ १७ ॥ नूनंनिश्चलतांयातमतिभ्रमितचक्रवत् ॥ अनंतजगदावर्त्तविवर्त्तातिशयादिव ॥ १८ ॥ एकांतसंस्थितंकांतंकांत्यैकाकिनमाश्रितम् ॥ उपशांतेहसंभग्नचित्तसंभ्रमसंगमम् ॥ १९ ॥ निर्विकल्पसमाधिस्थंविरतंद्वंद्ववृत्तितः ॥ हसंतमखिलांलोकगतिंशीतलयाधिया ॥ २० ॥

अर्थ—और चिरकाल भोगी हुई तथा शीघ्र त्यागी हुई निरन्तर हर्ष वा शोकरूप संसारकी गतिको शोच रहेथे ॥ १७ ॥ अनन्त जगत्के आवर्तोंके विवर्तकी अधिकतासे वैराग्यके कारण अति भ्रमण करते हुये चक्रके समान निश्चयरूपसे निश्चलताको प्राप्त थे ॥ १८ ॥ एकांतमें स्थित अतिसुन्दर एकाकी शोभारूप प्रियासे सेवित शांत होनेसे चित्तके नाश होनेसे चित्तके संभ्रमरूपी समागमसे शून्यथे ॥ १९ ॥ चित्तकी वृत्तियोंके निरासमे निर्विकल्प समाधिमें स्थित, अतिशीतल बुद्धिसे सम्पूर्णलोककी गतिको हंसते हुये के समान विराजमान थे ॥ २० ॥

विगताखिलवृत्तांतंविगताशेषभोक्तृतम् ॥ निरस्तकल्पनाजालमालंबितमहापदम् ॥ २१ ॥ अनंतविश्रांतिततेपदेविश्रांतमात्मनि ॥ प्रतिबिंबमगृह्णंतंसितंमणिमिवास्थितम् ॥ २२ ॥ हेयोपादेयसंकल्पविकल्पास्थांसमुज्झितम् ॥ संप्रबुद्धमतिर्धीरंददर्शतनयंभृगुः ॥ २३ ॥ तमालोक्यभृगोःपुत्रंकालोभृगुमुवाचह ॥ वाक्यमब्धिध्वनिनिभंतवपुत्रस्त्वसाविति ॥ २४ ॥

अर्थ—सब लोकके वृत्तांतसे अभिज्ञ सब भोक्तृताके और संपूर्ण कल्पनाओंके समूहके विध्वस्त होनेसे महापद (ब्रह्म) का आलम्बन किये हुये स्थित थे ॥ २१ ॥ और अनन्त विश्रामयुक्त तथा व्यापक आत्मामें विश्राम

हुये, और प्रतिबिंब ग्रहण करते हुये स्वच्छ स्फटिकमणिके समान स्थितथे ॥२२॥ हे रामजी ! हेय (त्याज्य) उपादेय (ग्राह्य) के संकल्पके विकल्पोंसे शून्य,ज्ञानयुक्त अति धीर अपने जन्मांतरके पुत्रको भृगुने देखा ॥२३॥ भृगुके पुत्रको देखके समुद्रके समान गंभीर शब्दसे काल भृगुसे बोला—कि यही आपका पुत्र है ॥ २४ ॥

विबुध्यतामितिगिरासमाधेर्विरराम सः ॥ भार्गवोंभोदघोषेणशनैरिवशिखंडभृत् ॥ २५ ॥ उन्मील्यने त्रेसोपश्यदंतेकालभृगूप्रभू ॥ समोदयाविवायातौदेवौशशिदिवाकरौ ॥ २६ ॥ कदंबलतिकापीठादथो त्थायननामतौ ॥ समौसमागतौकांतौविप्रौहरिहराविव ॥ २७ ॥ मिथःकृतसमाचाराःशिलायांससु पाविशन् ॥ मेरुपृष्ठेजगत्पूज्याब्रह्मविष्णुहराइव ॥ २८ ॥

अर्थ—उठो ऐसी वाणीसे शुक्राचार्य समाधिसे ऐसे उठ बैठे जैसे सोता हुआ मयूर मेघके धीर शब्दसे॥२५॥ समाधिसे जाग्रत नेत्र खोलके उन्होंने अपने समीप काल और भृगुको स्वामीके सदृश ऐसे देखा जैसे साथ उदय होनेवाले चन्द्रमा और सूर्य्य प्राप्त हों ॥ २६ ॥ इसके अनंतर शुक्र कदंबकी लताके आसनसे उठके उन दोनोंको ऐसे प्रणाम किया जैसे समानरूप, अति सुदर ब्राह्मण वेषधारी आये हुये हरि तथा हरको ॥ २७ ॥ परस्पर सत्कार करके वे तीनों एक पाषाणकी शिलापर ऐसे बैठगये जैसे मेरूके पृष्ठपर जगत्पूज्य ब्रह्मा विष्णु और महेश ॥ २८ ॥

अथशांतजपोरामससमंगातटोद्विजः ॥ तावुवाचवचःशांतममृतस्यंदसुंदरम् ॥ २९ ॥ भवतोर्दर्शने नाहमद्यनिर्वृतिमागतः ॥ सममागतयोर्लोकेशीतलोष्णरुचोरिव ॥ ३० ॥ योनशास्त्रेणतपसानज्ञानेना पिविद्यया ॥ विनष्टोमेमनोमोहःक्षीणोसौदर्शनेनवाम् ॥ ३१ ॥ नतथासुखयंत्यंतर्निर्मलामृतवृष्टयः ॥ यथाप्रहर्षयंत्येतामहतामेवदृष्टयः ॥ ३२ ॥

अर्थ—इसके पीछे समंगा तटका वह शुक्ररूपी ब्राह्मण अपनी समाधि समाप्त करके अमृत झरते हुयेके समान सुंदर वचन उन दोनोंसे बोला ॥ २९ ॥ हे महात्माओं ! आप दोनोंके दर्शनसे आज मैं ऐसी शांतिको प्राप्त हुआ जैसे लोकमें एक संग आये चंद्रमा और सूर्यके दर्शनसे ॥ ३० ॥ जो मोहनशास्त्रसे, न तपसे, और न विद्यासे क्षीण (नष्ट) हुआ था वह आज आप दोनोंके दर्शनमात्रसे नष्ट होगया ॥ ३१ ॥ निर्मल अमृतकी वृष्टि उस प्रकार सुख नहीं देती जैसे कि यह आपके सदृश महात्माओंकी दृष्टि ॥ ३२ ॥

चरणाभ्यामिमंदेशंभवंतौभूरितेजसौ ॥ कौपवित्रितवंतौनःशशांकार्काविवांबरम् ॥ ३३ ॥ इत्युक्तवंतं प्रोवाचभृगुर्जन्मांतरात्मजम् ॥ स्मरात्मानंप्रबुद्धोसिनाज्ञोसीतिरघूद्वह ॥ ३४ ॥ प्रबोधितोसौभृगुणा जन्मांतरदशांनिजाम् ॥ मुहूर्त्तमात्रंसस्मारध्यानोन्मीलितलोचनः ॥ ३५ ॥ अथासौविस्मयात्स्मेरस्मु खोमुदितमानसः ॥ वितर्कमंथरांवाचमुवाचवदतांवरः ॥ ३६ ॥

अर्थ—जैसे सूर्य और चंद्रमा अपनी किरणोंसे आकाशको पवित्र करते हैं ऐसेही अति तेजस्वी आप दोनों महात्मा अपने चरणोंसे पवित्र किया सो आप कौन हैं ॥ ३३ ॥ हे रघुपते रामजी इसप्रकार शुक्रके कहनेपर भृगु अपने अन्य जन्मके पुत्र (शुक्र) से बोले कि तुम अपनेको स्मरण करो क्योंकि अब तुम ज्ञानी हो अज्ञानी नहीं हो ॥ ३४ ॥ इसप्रकार भृगुसे बोधित शुक्राचार्यने ध्यानसे दिव्य दृष्टिहोके दोघडीतक अपनी अन्य जन्मोंकी दशाको स्मरण किया ॥ ३५ ॥ इसके अनंतर अर्थात् अपनी पूर्व जन्मोंकी दशाके स्मरणके पश्चात् आश्चर्यके देखनेसे किंचित् हास्ययुक्त मुख; प्रसन्नचित्त; और कहनेवालोंमें श्रेष्ठ शुक्रजी वितर्कसे मन्द २ वाणी बोले ॥ ३६ ॥

जयत्यविदितारंभानियतिःपरमात्मनः ॥ यद्वशादिदमाभोगिजगच्चक्रंप्रवर्त्तते ॥ ३७ ॥ ममानंतान्यती तानिजन्मान्यविदितान्यपि ॥ दशाफलान्यनंतानिकल्पांतकलितादिव ॥ ३८ ॥ दृष्टाःकठिनसंरंभावि भवोप्यर्जनभ्रमाः ॥ विहृतंवीतशोकासुचिरंमेरुस्थलीषुच ॥ ३९ ॥ पीतमामोदिमंदारकेसरारुणितं पयः ॥ मंदाकिन्याःसकलाह्लारंतटेष्वमरभूभृतः ॥ ४० ॥

अर्थ—कि जिसके आरंभ जाने नहीं जाते ऐसी यह कर्मके फलोंकी व्यवस्थाका कारणभूत परमात्माकी माया शक्ति (नियति) सबसे प्रबल है इसके वशमें होके यह विस्तार युक्त जगत्का चक्र घूमता है ॥ ३७ ॥ जैसे प्रलयसे युक्त वृष्टि; वायु; तथा अग्निके कारणसे दुःख मोहादि अविदित रहते हैं ऐसेही मरण मोह तथा मूर्छादि दुर्दशाके फल सहित अनंत अज्ञात हमारे जन्म बीतगये ॥ ३८ ॥ कठिन क्रोधसे पूर्ण राजाओंको; तथा उनके द्रव्यके उपार्जनके भ्रमकोभी देखा; अर्थात् राजाओंके शरीरकोभी धारण किया; और देवस्वरूप धारण करके चिरकालतक सुमेरूपर्वतकी उत्तम २ स्थलियोंमेंभी भ्रमण किया ॥ ३९ ॥ और देवताओंके पर्वतपर सुगंधिसहित; मन्दार (कल्पवृक्ष) के केसरोंसे अरुण (लाल) वर्ण तथा कमलयुक्त गंगाजीका जलभी पान किया ॥ ४० ॥

भ्रांतमंदरकुंजेषुफुल्लहेमलतालिषु ॥ मेरोःकल्पतरुच्छायापुष्पसुंदरसानुषु ॥ ४१ ॥ नतदस्तिनयद्दृष्टं नतदस्तिनयत्कृतम् ॥ नतदस्तिनयद्दृष्टमिष्टानिष्टासुवृत्तिषु ॥ ४२ ॥ ज्ञातंज्ञातव्यमधुनादृष्टंद्रष्टव्यमक्षनम् ॥ विश्रांतोयचिरंश्रांतोगतोमेसकलोभ्रमः ॥ ४३ ॥ उत्तिष्ठतातगच्छामःपश्यामोमंदरस्थिताम् ॥ तांतनुंतावदाशुष्कांशुष्कांवनलतामिव ॥ ४४ ॥ नसमीहितमस्तीहनासमीहितमस्तिमे ॥ नियतेरचनांद्रष्टुंकेवलंविहराम्यहम् ॥ ४५ ॥ यदतिसुभगमार्यसेवितंतत्स्थिरमनुयामियदेकभावबुद्धया ॥ तदलमभिमतामतिर्ममास्तुप्रकृतमिमंव्यवहारमाचरामि ॥ ४६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भार्गवोपाख्याने भार्गवजन्मांतरस्मरणवर्णनं नाम चतुर्दशःसर्गः ॥ १४ ॥

अर्थ—तथा कल्पवृक्षकी छाया संयुक्त पुष्पोंसे सुंदर शिखरोंपर और सुवर्णकी लतायें जिनमें लहलहा रही हैं ऐसे मन्दराचलके कुंजोंमेंभी भ्रमण किया ॥ ४१ ॥ अधिक कहनेसे क्या प्रयोजनहै संसारमें ऐसा कोईभी पदार्थ नहीं है जिसको हमने नहीं देखा; और ऐसा कुछ नहीं है जिसको हमने नहीं किया, तथा इष्ट और अनिष्ट दशाओंमें ऐसा कुछ नहीं है कि जिसको हमने न देखाहो ॥ ४२ ॥ अब परमात्मस्वरूपके ज्ञानसे जो कुछ जानने योग्य पदार्थथा उसको मैंने जानलिया; और जो कुछ देखने योग्यथा उसे सम्पूर्ण रूपसे देखभी लिया तथा चिरकालसे संसारकी वासनाके परिश्रमसे अब मुझे विश्राम मिलाहै और अब मेरा संपूर्ण भ्रम नष्ट होगया ॥ ४३ ॥ सो हे तात! उठो चलें और मंदराचलपर स्थित वनकी लताके समान सूखी हुई उस अपनी शरीरको देखें ॥ ४४ ॥ इस संसारमें अभिलषित तथा अनभिलषित कुछभी पदार्थ नहीं है केवल परमात्माकी शक्तिकी रचना देखनेके अर्थ मैं विचरता हुं ॥ ४५ ॥ क्योंकि मैं एक परमात्माभावके दृढ निश्चयसे जो अन्य जीवन्मुक्त आर्य पुरुषोंसे सेवित तथा अति शुभदायक स्थिर आत्मपदहै उसीका अनुसरण करूंगा इसलिये आपको तथा मुझे अभिमत जो पूर्वदेहमें जीवन वृत्ति है उसे होने दो, उससे कोई हमारी हानि नहीं है, हम तो केवल प्रारब्ध कर्मसे शेष व्यवहारके लिये यह करतेहैं हमारी अब पूर्वके समान अप्सरा आदिमें आसक्ति नहीं होगी, क्योंकि दृढ तत्वज्ञानसे वासनाका बाध होगयाहै ॥४६

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे स्थितिप्रकरणे भार्गवजन्मान्तर वर्णनं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

इस १५ के सर्गमें उस अपनी पूर्व शरीरको देखके शुक्रका विलाप करना; और उसके निमित्तके विशेष कथनसे स्वभावकाभी उपदेश किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ विचारयंतस्तस्त्वज्ञाइतिनेजागतीर्गतीः ॥ समंगायास्तटात्तस्मात्प्रचेलुश्चंचलासवः ॥१ ॥ क्रमादाकाशमाक्रम्यनिर्गत्यांबुदकोटरात् ॥ संप्रापुःसिद्धमार्गेणक्षणान्मंदरकंदरम् ॥२॥ अधित्यकायांतस्यादेरार्द्रपर्णावकुंठिताम् ॥ ददर्शभार्गवःशुष्कांपूर्वजन्मोद्भवांतनुम् ॥ ३ ॥ उवाचेदंचहेतातत्न्वीतनुरियंहिसा ॥ यात्वयासुखसंभोगैःपुरासमभिलालिता ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी! जिनमें प्राण वायुके संचारसे चलनमात्रकी क्रिया होरहीथी ऐसे वे तीनों (भृगु, काल, तथा शुक्र) तत्वज्ञानी जगत्की विचित्र गतिका विचार करते हुये समंगाके तटसे चले ॥ १ ॥ क्रमसे आकाशका उल्लंघन करके मेघोंके कोटरोंसे निकलके सिद्धमार्गसे होकर क्षणभरमें मन्दराचलकी कन्दरामें प्राप्त हुये ॥ २ ॥ उस पर्वतकी ऊपरकी भूमिपर गीले पत्तोंसे लपेटी हुई और शुष्क अपनी पूर्वजन्मकी शरीरको देखा ॥ ३ ॥ और यह बोले—कि हे प्रियपितः! जिसको अनेक सुख संभोगसे पूर्वकालमें आपने प्यार किया था यही वह कृश शरीर है ॥ ४ ॥

इयंसामत्तनुर्यस्याःकर्पूरागुरुचंदनैः ॥ अंगमंगीकृतस्नेहाधात्रीचिरमलेपयत् ॥ ५ ॥ इयंसामत्तनुर्यस्यामंदारकुसुमोत्करैः ॥ रचिताशीतलाशय्यामेरूपवनभूमिषु ॥ ६ ॥ इयंसामत्तनुर्मत्तदेवस्त्रीगणलालिता ॥ सरीसृपमुखक्षुण्णापश्यशेतेधरातले ॥ ७ ॥ चंदनोद्यानखंडेषुममतन्वाययानया ॥ चिरंविलसितंसेयंशुष्ककंकालतांगता ॥ ८ ॥

अर्थ—यही वह मेरी शरीरहै जिसको कपूर अगरु तथा चन्दन आदिसे स्नेहयुक्त (धाई) चिरकालतक तप किया करतीथी ॥ ५ ॥ यह वही मेरी शरीरहै कि जिसके लिये मेरूके उपवनकी भूमियोंमें मन्दारके पुष्पके समूहोंसे शीतल शय्या रची जाती थी ॥ ६ ॥ वही यह मेरी शरीरहै जो कि मत्त देवांगनाओंके समूहसे प्यारकी जातीथी और अब वृश्चिक (बीछू) सर्प आदिसे छिद्रकी हुई पृथिवीपर शो रही है ॥ ७ ॥ जो मेरी शरीर चिरकालतक चन्दनके वाटिकाओंके खण्डोंमें क्रीडा करनेसे शोभित हुईथी वही अब शुष्क मृतक दशाको प्राप्त हुई है ॥ ८ ॥

सुरांगनांगसंसर्गाद्दत्तुंगानंगभंगया ॥ चेतोवृत्त्यारहितयातन्वाद्यममशुष्यते ॥ ९ ॥ तेषुतेषुविलासेषु तासुतासुदशासुच ॥ तथतद्भावनाबंधःकथंस्वस्थोसिदेहक ॥ १० ॥ हातनोशवनामासितापसंशोपमागता ॥ कंकालतांप्रयातासिमांभीषयासिदुर्भगे ॥ ११ ॥ देहेनाहंविलासेषुयेनैवमुदितोभवम् ॥ कंकालतामुपगतात्तस्मादेवबिभेम्यहम् ॥ १२ ॥

अर्थ—देवांगनाओंके सम्बन्धसे बडे २ कामके तरंगयुक्त चित्तकी वृत्तिसे शून्य यह मेरी शरीर इससमय शुष्क होरही है ॥ ९ ॥ हे देह ! उन २ विचित्र विलासोंमें तथा उन २ विचित्र बाल्य, यौवन आदि दशाओंमें पूर्वकालमें अनुभूत उन २ सौन्दर्य्य अलंकार, गीत, हास्य और रतिके विलास आदिकी भावनामें बद्ध होके अब स्वस्थ क्यों सोते हो ? ॥ १० ॥ हा ! भाग्यरहित देह !! अब तुम मृतक नामवाली हो, तापसे शुष्कदशाको प्राप्त हुई हो, और मृतक अवस्थाको प्राप्त होके मुझे डरातीहो ॥ ११ ॥ जिस देहसे विलासोंमें मैं प्रसन्न होता था उसी मृतक दशा प्राप्त शरीरसे अब मैं डरताहुं ॥ १२ ॥

ताराजालसमाकारोयत्रहारोभवत्पुरा ॥ ममोरसिनिलीयंतेतत्रपश्यपिपीलिका ॥ १३ ॥ द्रवत्कांचनकांतेनलोभंनीतावरांगनाः ॥ येनमद्वपुपातेनपश्यकंकालतोह्यते ॥ १४ ॥ पश्यमेविततास्येनतापसंशुष्कक्रुत्तिना ॥ मत्कंकालकुवक्त्रेणवित्रास्यंतेवनेमृगाः ॥ १५ ॥ पश्यामिसंशुष्कतयाशवोदरदरींमम ॥ प्रकाशार्कांशुजालेनविवेकेनेवशोभते ॥ १६ ॥

अर्थ—जिस मेरे वक्षस्थल (छाती) पर तारागणके समूहोंके सन्मान आकारवाला हार लटकताथा उसीपर अब देखो चेटियां चलरही हैं ॥ १३ ॥ द्रवीभूत सुवर्णके समान शोभायमान जिस मेरे शरीरने देवांगनाओंको कामके भोगकी इच्छासे लोभित करलिया था, देखो पिताजी ! वही मेरा शरीर अब मृतकदशाको धारण करता है ॥ १४ ॥ देखो विस्तृत मुखरूप बिलसहित, तापसे शुष्क चर्मवाले मेरे मृतक कुरूप शरीरसे वनमें मृगभी भयभीत होतेहैं ॥ १५ ॥ अपने मृतक शरीरके उदरकी कन्दराको मैं देखताहुं कि शुष्कतासे प्रकाशसहित सूर्यके किरणसमूहसे ऐसे शोभित होताहै जैसे विवेकसे जीवित शरीर ॥ १६ ॥

मत्तनुःपरिशुष्केयंस्थितोत्तानाचलोपले ॥ वैराग्यंनयतीवात्मतुच्छत्वेनांतरंसताम् ॥ १७ ॥ शब्दरूपरसस्पर्शगंधलोभाहिमुक्तया ॥ निर्विकल्पसमाध्येवतदेतच्छुष्यतेगिरौ ॥ १८ ॥ मुक्ताचितापिशाचेननूनंसुखमिवास्थिता ॥ तनुर्दैवतभंगेभ्योनबिभेतिमनागपि ॥ १९ ॥ संशांतेचित्तवेतालेयामानंदकलांतनुः ॥ यातितामपिराज्येनजागतेननगच्छति ॥ २० ॥

अर्थ—हे पिताजी ! पर्वतकी शिलापर उतान पडी हुई शुष्क यह मेरी शरीर अपनी तुच्छता तथा कुरूपताके दिखलानेसे मानो वैराग्यका उपदेश कर रही है ॥ १७ ॥ शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा रसके लोभसे रहित, निर्विकल्प समाधि सहित यह मेरा शरीर मानो परम तप करताहै ॥ १८ ॥ चित्तरूपी पिशाचसे मुक्त होके यह मेरा शरीर निश्चय करके मानो सुखसे स्थितहै और दैवसे प्राप्तकी हुई विपत्तियोंसे इसको कुछभी भय नहीं है ॥ १९ ॥ चित्तरूपी वेतालके शान्त होजानेसे जिस आनन्दकलाको यह अनुभव कर रही है वह आनन्दकी कला संसारभरके राज्यसेभी नहीं प्राप्त होती ॥ २० ॥

पश्यविश्रांतसंदेहंविगताशेषकौतुकम् ॥ निरस्तकलनाजालंसुखंशेतेकथंवने ॥ २१ ॥ चित्तमर्कटसंरंभसंक्षुब्धकायपादपः ॥ तथावेगेनचलतियथामूलान्निकृंतति ॥ २२ ॥ चित्तानर्थविमुक्तोद्यगजाभ्रहरिविग्रहम् ॥ नाद्यपश्यतिमेदेहःपरानंदइवस्थितः ॥ २३ ॥ सर्वाशाज्वरसंमोहमिहिकाशरदागमम् ॥ अचित्तत्वंविनानान्यच्छ्रेयःपश्यामिजंतुषु ॥ २४ ॥

अर्थ—देखो सब संदेह इसके नष्ट होगयेहैं तथा संपूर्ण कौतुकसे शून्य, और सब कल्पनाके जालसे रहित यह देह किसप्रकार सुखसे बनमें शयन कर रहाहै ॥ २१ ॥ चित्तरूपी चोरसे कामादिकी चपलतासे संक्षोभित यह

शरीररूपी वृक्ष ऐसे वेगसे चलताहै कि विवेकादि रहित स्थावर आदि योनियोंमें जीवको फेंक देताहै ॥ २२ ॥ इस समय चित्तरूपी अनेक अनर्थोंसे रहित यह मेरा शरीर इस पर्वतपर हस्ती तथा सिंह आदिके युद्धको नहीं देखताहै मानो ब्रह्मानन्दमें स्थितहै ॥ २३ ॥ संपूर्ण आशाके ज्वरोंका कारणभूत जो अज्ञानहै उस अज्ञानरूपी मेघके बीजके लिये शरदऋतुके समान अमनीभाव (मनके नाश) के विना और कुछ प्राणियोंमें कल्याणके लिये मैं नहीं देखता २४

तएवसुखसंभोगसीमांतसमुपागताः ॥ महाधियाशांतधियोयेयाताविमनस्कताम् ॥ २५ ॥ सर्वदुःखशामुक्तांसंस्थितांविगतज्वराम् ॥ दिष्ट्यापश्याम्यमननांवनेतनुमिमामहम् ॥ २६ ॥ श्रीरामउवाच॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञभार्गवेणतदाकिल ॥ सुबह्न्युपभुक्तानिशरीराणिपुनःपुनः ॥ २७ ॥ भृगुणोत्पादिते कायेतत्तस्मिस्तस्यकिंपुनः ॥ महानतिशयोजातःपरिदेवनमेववा ॥ २८ ॥

अर्थ—वेही शांतबुद्धि महाबुद्धिमान् महात्माजन सुख तथा संभोगकी पराकाष्ठाको प्राप्त होगयेहैं जो मनकी शून्यता दशाको प्राप्तहो गयेहैं ॥ २५ ॥ यह बडे भाग्योदयका समयहै कि सब दुःखोंकी दशासे शून्य, सन्तापरहित, तथा मनसे वर्जित, इस अपनी शरीरको मैं देख रहाहुं ॥ २६ ॥ श्रीरामजी बोले—हे भगवन् ! हे सर्व धर्मज्ञ उससमय शुक्राचार्यने अनेक शरीरोंका उपभोग पुनः २ कियाथा ॥ २७ ॥ परंतु भृगुसेही उत्पन्न किये हुये शरीरमें पुनः क्यों उनका महान् स्नेह हुआ अथवा उसीके लिये विलाप क्यों किया ? ॥ २८ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ शुक्रस्यकलनारामयासौजीवदशांगता ॥ कर्मात्मिकासमुत्पन्नाभृगोर्भार्गवरूपिणी ॥ २९ ॥ साहीदंप्रथमत्वेनसमुपत्यपरात्पदात् ॥ भूताकाशपदंप्राप्यवातव्यावलितासती॥३०॥ प्राणापानप्रवाहेणप्रविश्यहृदयंभृगोः ॥ क्रमेणवीर्यतामेत्यसंपन्नौशनसीतनुः ॥ ३१ ॥ विहितब्राह्मसंस्कारातत्रसापितुरग्रगा ॥ कालेनमहताप्राप्ताशुष्ककंकालरूपताम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! पूर्वकालमें शरीरसे वियोग समयमें शुक्रकी जो कल्पना जीवदशाको प्राप्त हुई वह भृगुसे उत्पन्न किये हुये गृहादिके अधिकार प्राप्तिके योग्य देहाकार पूर्वकल्पमेंथी ॥ २९ ॥ यही देहाकार कल्पना प्रलयमें शेष माया शबलित परमात्मासे इस कल्पके प्रथम शरीर भावसे भूताकाशकी समताको प्राप्त होती हुई ॥ ३० ॥ प्राण क्रियाके विशेपसे अन्तका ग्रास करनेवाले अपानवायुके प्रवाहसे भृगुके हृदयमे प्रवेश करके क्रमसे वीर्यदशाको प्राप्त होके माताके गर्भमें जाके यह शुक्राचार्यकी शरीर सिद्ध हुई ॥ ३१ ॥ उस शरीरको पिताके सम्मुख ब्राह्मणके संस्कार किये गये और महान्‌काल पाके अब मृतक दशामें प्राप्त हुई ॥ ३२ ॥

इदंप्रथममायातायदासौब्राह्मणस्ततनुः ॥ अतस्तांप्रतिशुक्रेणतदातत्परिदेवितम् ॥ ३३ ॥ वीतरागोप्यनिच्छोपिसमंगाविप्ररूपवान् ॥ सशुशोचतनुंशुक्रःस्वभावोह्येषदेहजः ॥ ३४ ॥ ज्ञस्याज्ञस्ययावद्देहमयंक्रमः ॥ लोकवद्व्यवहारोयंसक्त्यासक्त्याथवासदा ॥३५॥ येपरिज्ञातगतयोयेचाज्ञाःपशुधर्मिणः ॥ लोकसंव्यवहारेषुतेस्थितालोकजालवत् ॥ ३६ ॥

अर्थ—माया शबलित परमात्मासे प्रथमही कल्पमें यह शरीर भृगुऋषिके द्वारा प्राप्त हुईथी, इसलिये शुक्रका उससमय उसके लिये विलाप तथा उसमे स्नेह अधिकथा ॥ ३३ ॥ यद्यपि वीतराग तथा इच्छारहित समंगाके विप्ररूपधारी शुक्रजी थे तथापि उस शरीरके लिये शोच किया क्योंकि शरीरका यह स्भावही है ॥ ३४ ॥ ज्ञानीहो वा अज्ञानीहो परन्तु जबतक इस देहका क्रमहै तबतक लोकका व्यवहार इसीप्रकार होताहै केवल भक्ति और असक्ति मात्रकी विशेषताहै ॥ ३५ ॥ जो ज्ञानी संसारकी गतिको जानतेहैं और जो पशुधर्मी अज्ञानी हैं वे अन्य लोक जालके सदृश लोकके व्यवहारोंमें समानरूपसे स्थितहैं ॥ ३६ ॥

व्यवहारेयथैवाज्ञस्तथैवाखिलपंडितः ॥ वासनामात्रभेदोत्रकारणबंधमोक्षदम् ॥ ३७ ॥ यावच्छरीरं तावद्धिदुःखेदुःखसुखेसुखम् ॥ असंसक्तधियोधीरादर्शयंत्यप्रबुद्धवत् ॥ ३८ ॥ सुखेषुसुखितानित्यंदुःखितादुःखवृत्तिषु ॥ महात्मानोहिदृश्यंतेदृश्यएवाप्रबुद्धवत् ॥ ३९ ॥ सूर्यस्यप्रतिबिंबानिक्षुभ्यंतिनपुनःस्थिरम् ॥ चलाचलतयातज्ज्ञोलोकवृत्तिषुतिष्ठति ॥ ४० ॥

अर्थ—व्यवहारमें जैसे अज्ञानी वैसेही सबका वेत्ता पण्डित ज्ञानीभी है, केवल वासना मात्रका भेदहै और वही बंध मोक्षका कारणभी है ॥ ३७ ॥ जबतक यह शरीरहै तबतक दुःखसुखके कारणमें सुखकी आसक्ति रहित बुद्धिवाले धीर महात्मा अज्ञानियोंके सदृशही देखतेहै ॥ ३८ ॥ सबकी वृत्तियोंमें नित्य सुखी और दुःखकी वृत्तियोंमें नित्य दुःखी संसारमें अज्ञानीके समान महात्मा लोग देख पडतेहैं ॥ ३९ ॥ जैसे जलोंमें सूर्यके प्रतिबिम्बही

तु आदिसे संक्षुभित होतेहैं न कि आकाशस्थ विम्ब इसी प्रकार लोकके व्यवहारोंमें ज्ञानी बाह्य वृत्तियोंसे चलायमान और नित्य कूटस्थ वृत्तिसे अचल स्थित रहताहै ॥ ४० ॥

अवस्थितइवस्वस्थःप्रतिविंबेषुभास्करः ॥ संत्यक्तलोककर्मापिबुद्धएवाप्रबुद्धधीः ॥ ४१ ॥ मुक्तबुद्धींद्रियोमुक्तोबद्धकर्मेंद्रियोपिहि ॥ बद्धबुद्धींद्रियोबद्धोमुक्तकर्मेंद्रियोपिहि ॥ ४२ ॥ सुखदुःखदृशोलोके बंधमोक्षदृशस्तथा ॥ हेतुर्बुद्धींद्रियाण्येवतेजांसीवप्रकाशने ॥ ४३ ॥ बहिर्लोकोचिताचारस्त्वंतराचार वर्जितः ॥ समोह्यतीवतिष्ठत्वंसंशांतसकलैपणः ॥ ४४ ॥

अर्थ—जैसे प्रतिविम्बोंमे स्थित सूर्य यथार्थ स्वस्थभी परन्तु अस्वस्थ चंचलमान होता है ऐसेही लोक व्यवहारोंको त्यागेहुयेभी ज्ञानी ऊपरसे अज्ञानीके तुल्य संसारमें अज्ञबुद्धिके समान निमग्न भान होताहै ॥ ४१ ॥ इसलिये जो प्राणी ज्ञानेंद्रियोंकी आसक्तिरहित संसारके कार्योंको करताहै उसकी कर्म इन्द्रियोंके बद्ध रहनेसेही वह मुक्तहै और जिसकी ज्ञानेन्द्रियां आसक्तहैं वह कर्म इन्द्रियोंके मुक्त होनेपरभी बद्धहै ॥ ४२ ॥ संसारमें सुखदुःखकी दृष्टियोंके तथा बन्धमोक्ष दृष्टियोंके ज्ञानेंद्रिय ऐसे हेतुहैं जैसे प्रकाश होनेमे तेज ॥ ४३ ॥ इसकारण बाहरसे लोकके उचित आचार धारण करते हुये और भीतर उन आचारोंसे वर्जित अर्थात् कूटस्थ आत्मामें दृढ निश्चय किये हुये सब विषमता दोषसे रहित संपूर्ण इच्छाओंसे शून्य तुम स्थित रहो ॥ ४४ ॥

सर्वैषणाविमुक्तेनस्वात्मनात्मानितिष्ठता ॥ कुरुकर्माणिकार्याणिनूनंदेहस्यसंस्थितिः ॥ ४५ ॥ आधिव्याधिमहावर्त्तगर्तसंसारवर्त्मनि ॥ ममतोग्रांधकूपेस्मिन्मापतातापदायिनि ॥ ४६ ॥ नत्वंभावेषनो भावास्त्वयितामरसेक्षण ॥ शुद्धबुद्धस्वभावस्त्वमात्मांतःसुस्थिरोभव ॥ ४७ ॥ त्वंब्रह्मह्यमलशुद्धंत्वं सर्वात्माचसर्वकृत् ॥ सर्वशांतमजंविश्वंभावयन्वैसुखीभव ॥ ४८ ॥ व्यपगतममतामहांधकारःपदममलंविगतैषणंसमेत्य ॥ प्रभवसियदिचेतसोमहात्मंस्तदतिधियेमहतेनमस्ते ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु स्थितिप्रकरणे भार्गवोपाख्याने भार्गवपरिदेवनप्रसंगेनोपदेशकरणं नाम पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

अर्थ—संपूर्ण फलके आसंगसे रहित अपने आत्मामें आत्मासे स्थित सब कर्तव्यकर्मोंको तुम करो; क्योंकि कर्तव्यकर्मोंका करना यह देहका निश्चय करके स्वभाव है ॥ ४५ ॥ आधि, व्याधि (शारिरीक तथा मानसिक दुःख) तथा जन्ममरणरूपी महान् गर्तयुक्त संसारके मार्गमें ममतारूपी भयंकर अन्धकूपमें तुम मत गिरो ॥ ४६ ॥ हे कमलके सदृश नेत्रधारिन् रामजी! देहादिके धर्मोंमें तुम नहींहो और न देहादिके धर्म तुममेंहैं किन्तु तुम नित्य शुद्धबुद्ध स्वभाव आत्माहो इसलिये अंतर्वृत्तिसे उसीमें स्थित रहो ॥ ४७ ॥ तुम निर्मल, शुद्ध, सर्वात्मा, और सर्वकर्ता ब्रह्महो, इसकारण सर्वशांत अजन्मा विश्वरूप परमात्माही है ऐसी भावना करते हुये सुखी रहो ॥ ४८ ॥ हे महात्मन् रामजी! सब अभिलापाओंका निवर्तक, अविद्यादि दोष शून्य निर्मल आत्मपदको प्राप्त होकर ममतारूपी महान्धकारसे वर्जित तुम यदि चित्त वध करनेमें समर्थहोतो अनंत बुद्धि पूर्ण परमार्थरूप महान् ब्रह्मस्वरूप तुमको नमस्कारहै, अर्थात् ऐसा होनेसे हम लोगोंकेभी तुम वन्दनीयहो ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे भार्गवोपाख्याने भार्गवपरिदेवनं नाम पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

कालके वचनसे कालके जानेपर शुक्रका अपने पूर्व देहमें प्रवेश करना, तथा दैत्योंकी गुरुताका अंगीकार करना और उनकी जीवन्मुक्तिका वर्णन इस १६ के सर्गमें कियागया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथाक्षिप्यवचस्तस्यतनयस्यतथाभृगोः ॥ उवाचभगवान्कालोवचोगंभीरनिःस्वनः ॥ १ ॥ कालउवाच ॥ समंगातापसीमेतातनुंसंत्यज्यभार्गव ॥प्रविशेमांतनुंसाधोनगरीमिवपार्थिवः ॥ २ ॥ कालेपूर्वजयातन्वातपःकृत्वातयापुनः ॥ गुरुत्वमसुरेंद्राणांकर्त्तव्यंभवतानघ ॥३॥ महाकल्पांतआयातेभवताभार्गवीतनुः ॥ अपुनर्ग्रहणायैषात्याज्याप्रम्लानपुष्पवत् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! जिससमय शुक्राचार्य अपने शरीरको संबोधन करके विलाप कररहे थे उससमय उनके वचनकी अयोग्यता दर्शाके उसे काटके मेघके समान गंभीर बचन काल बोला–कि ॥ १ ॥ हे साधो शुक्रजी ! अब समंगानदीके तटकी तापसी शरीरको त्यागकर इस भृगुसे उत्पन्न शरीरमें ऐसे प्रवेश करो जैसे एक नगरीसे दूसरी नगरीमें राजा ॥ २ ॥ ग्रहके अधिकारके उद्बोधककालमें इस अपने शरीरसे प्रथम तप करके पुनः हे पापरहित शुक्रजी ! आपको दैत्योंकी गुरूता अवश्य करनी पडेगी ॥ ३ ॥ और जब महाकल्पका अन्त प्राप्त होगा तब पुनः सर्वथा शरीर न ग्रहण करनेके अर्थ इस शुक्राचार्यकी शरीरको ऐसे त्याग देना जैसे म्लान पुष्पकी मालाको ॥ ४ ॥

जीवन्मुक्तपदंप्राप्तस्तन्वाप्राक्तनरूपया ॥ महासुरेंद्रगुरुतांकुर्वंस्तिष्ठमहामते ॥ ५ ॥ कल्याणमस्तुवां यामोवयंत्वभिमतांदिशम् ॥ नकिंचिदप्रियंचित्तंयस्यनाभिमतंभवत् ॥ ६ ॥ इत्युक्त्वामुंचतोर्बाष्पंत योःसोंतरधीयत ॥ तप्तांग्योरिरोदस्योःसममंशुभिरंशुमान् ॥ ७ ॥ गतेतस्मिन्भगवतिकृतांतेभवित व्यताम् ॥ विचार्यभार्गवोभेद्यांनियतेर्नियतांगतिम् ॥ ८ ॥

अर्थ—हे महामते ! जीवन्मुक्त पदको प्राप्तहोकर पूर्वकल्पमें उपार्जित प्रारब्ध कर्मरूप इस शरीरसे महाअसुरेन्द्र (बलि हिरण्यकशिपु आदि) की गुरुता करतेहुये तुम स्थित रहो ॥ ५ ॥ तुम दोनोंका कल्याण हो हम तो अपने अभिमत (परम प्रेमास्पद आत्मस्थान) दिशाको जाते हैं क्योंकि जिसको अभिलषित नहीं है वह चित्त यदि विचार दृष्टिसे देखा जाय तो कुछ नहीं ॥ ६ ॥ इतना कहके काल जब वे दोनों अधिक स्नेहसे अश्रुको त्यागकर रहेथे तभी उनको त्यागके ऐसे अन्तर्धान होगया जैसे पृथिवी और आकाशके तप्त शरीर (रक्तवर्ण) रहनेहीपर सूर्य अपने किरणोंहीके साथ अस्त होजाताहै ॥ ७ ॥ उस भगवान् कालके जानेपर अवश्य भावी कर्मकी गति तथा ईश्वरकी इच्छाकी अनिवार्य्यताको विचार करके ॥ ८ ॥

कालकारणसंशुष्कांभाविपुष्पशुभोदयाम् ॥ विवेशतांतनुंबालांसुलतामिवमाधवः ॥ ९ ॥ साब्राह्मणी तनुर्भूमौविवर्णवदनांगिका ॥ पपातकंपितातूर्णंछिन्नमूलालतायथा ॥ १० ॥ तस्यांप्रविष्टजीवायांपुत्र तन्वांमहामुनिः ॥ चकाराप्यायनंमंत्रैःस्वकमंडलुवारिभिः ॥ ११ ॥ सर्वानाड्यस्ततस्तन्वास्तस्याःपूर्णा विरेजिरे ॥ सरितःप्रावृषीवांबुपूरपूरितकोटराः ॥ १२ ॥

अर्थ—शुक्रने अधिक हेमन्त आदि कालके निमित्तसे शुष्क तथा भावी शुभरूप पुष्पको देनेहारी अपनी शरीरमें ऐसे प्रवेश किया जैसे बाललतामें बसन्तऋतु ॥ ९ ॥ वह वासुदेव नामक समंगाके तटकी शरीर विवर्ण तथा कंपित होके शीघ्र ऐसे गिरी जैसे मूलसे काटी हुई लता ॥ १० ॥ उस पुत्रकी शरीरमें जीवके प्रवेश करनेपर महामुनि भृगुने कमण्डलुके जलकेसाथ मंत्रोंसे उस शरीरको सिंचन किया ॥ ११ ॥ उस जलसहित मंत्रोंके अभिषेकके पश्चात् उस शरीरकी संपूर्ण नाडी ऐसे क्षोभित हुईं जैसे जलके प्रवाहसे पूर्ण कोटरवाली नदी वर्षा कालमें ॥ १२ ॥

नलिनीप्रावृषीवाशोमधाविवनवालता ॥ यदापूर्णातदातस्याःप्रांताःपल्लविताबभुः ॥ १३ ॥ अथशुक्रः समुत्तस्थौवहत्प्राणसमीरणः ॥ रसमारुतसंयोगादापूर्णइववारिदः ॥ १४ ॥ पुरेभिवादयामासपित रंपावनाकृतिम् ॥ प्रथमोल्लासितोमेघःस्तनितेनेवपर्वतम् ॥ १५ ॥ पिताथप्राक्तनींतन्वाआलिलिंगाकृ तिंततः ॥ स्नेहार्द्रवृत्तिर्जलदश्चिरादद्रितटीमिव ॥ १६ ॥

अर्थ—जिस समय यह शरीर वर्षाऋतुमें कमलिनी और बसन्तऋतुमें नूतन लता पूर्ण रीतिसे विकसित होती है वैसेही पूर्ण हुई तब उसके अंगुली नख और केश आदि पल्लवके समान शोभित हुये ॥ १३ ॥ इसके अनन्तर जिसका प्राणरूपी पवन शरीरमें वह रहाहै ऐसे शुक्राचार्य इसप्रकार उठके खडे हुये जैसे जल और संमुख पवनके संयोगसे समुद्र खडाहो ॥ १४ ॥ इसके पश्चात् नाम गोत्र कीर्तनपूर्वक शुक्राचार्यजीने पवित्र आकारवाले अपने पिताको ऐसे अभिवादन किया जैसे प्रथम उल्लास सहित मेघ अपनी गर्जनासे पर्वतको ॥ १५ ॥ इसके पश्चात् पिताने पूर्वके समान सौंदर्य्य अलंकार यौवन आदि शोभा युक्त शरीरके आकारको स्नेहसे आर्द्र होके ऐसे आलिंगन किया जैसे मेघ चिरकालके अनन्तर पर्वतकी तटीको ॥ १६ ॥

भृगुर्ददर्शसस्नेहंप्राक्तनींतानवींतनुम् ॥ मत्तोजातेयमित्यास्थांहसन्नपिमहामतिः ॥ १७ ॥ मत्पुत्रोय मितिस्नेहोभृगुमप्यहरत्तदा ॥ परमात्मीयतादेहेयावदाकृतिभाविनी ॥ १८ ॥ बभूवतुःपितापुत्रौताव थान्योन्यशोभितौ ॥ निशावसानमुदितावर्कपद्माकराविव ॥ १९ ॥ चिरसंगमसंबद्धाविवचक्राह्वदंप ती ॥ घनागमनसस्नेहौमयूरजलदाविव ॥ २० ॥

अर्थ—भृगुने पूर्वकालकी शुक्रकी शरीरको प्रीतिपूर्वक देखा और मुझसे यह उत्पन्न हुई ऐसी आस्था महामति भृगुने हंसते हुये (तत्वदृष्टिसे यह उचित नहीं है इसलिये हंसे) धारण की ॥ १७ ॥ मेरा यह पुत्र है यह स्नेह उससमय भृगुके चित्तकोभी हरलिया क्योंकि जबतक यह शरीरहै तबतक प्रारब्धकी प्रबलतासे शरीरमें सर्वसे बढके ममता होती है यह शरीरका धर्म है ॥ १८ ॥ जैसे रात्रिके अन्तमें सूर्य तथा पद्मका बन विकसित होता है ऐसाही वे पितापुत्र परस्पर शोभित हुये ॥ १९ ॥ जैसे चिरकालके वियोगसे चक्रवाक स्त्रीपुरुष स्नेहबद्ध होते हैं वा मेघके आगमनसे मोर तथा मेघ स्नेहसहित होते हैं ऐसेही वे पितापुत्र होगये ॥ २० ॥

चिरकालदृढोत्कंठौतुल्ययोग्यतयातया ॥ स्थित्वातत्रमुहूर्त्तंतावथोत्थायमहामती ॥ २१ ॥ समंगाहि जदेहंतंभस्मसात्तत्रचक्रतुः ॥ कोहिनामजगज्जातमाचारंनानुतिष्ठति ॥ २२ ॥ एवंतौकाननेतस्मिन्पा वनेभृगुभार्गवौ ॥ संस्थितौतापसौदीप्तौदिवीवशशिभास्करौ ॥ २३ ॥ चेरतुर्ज्ञातविज्ञेयौजीवन्मुक्तौज गद्गुरू ॥ देशकालदशौघेषुसुसमौसुस्थिरौवतः ॥ २४ ॥ अथासुरगुरुत्वंसशुक्रःकालेनलब्धवान् ॥ भृगुरप्यात्मनोयोग्येपदेतिष्ठदनामये ॥ २५ ॥ शुक्रोसौप्रथममितिक्रमेणजातस्तस्मात्सत्परमपदादुदा रकीर्तिः ॥ स्वेनाशुस्मृतिपदविभ्रमेणपश्चादन्येषुप्रविलुलितोदशांतरेषु ॥ २६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भार्गवोपाख्याने शुक्रस्यपुनर्जीवनं नाम षोडशःसर्गः ॥ १६ ॥

अर्थ—चिरकालके वियोगसे समागमकी दृढ इच्छावाले वे दोनों जगत्प्रसिद्ध पूर्व वर्णित तुल्य आनन्दके प्रवाहकी योग्यतासे मुहूर्तपर्यंत जडके समान स्थित रहे इसके पश्चात् दोनों महाबुद्धिमान् उठे ॥ २१ ॥ और समंगातटके वासुदेवनामक ब्राह्मणकी शरीरको भस्म करदिया क्योंकि ऐसा कौन सज्जन प्राणी है जो अपने कुलक्रमागत सदाचारको नहीं करता ॥ २२ ॥ इसप्रकार उस मन्दराचलके बनमें वे दोनों भृगु और भार्गव (शुक्र) तप करते हुये प्रकाशमान ऐसे स्थित रहे जैसे आकाशमें चंद्रमा और सूर्य ॥ २३ ॥ जानने योग्य पदार्थ (ब्रह्म) को जाननेवाले जीवन्मुक्त जगत्के गुरू और देशकालकी शुभाशुभ आदि दशाओंके समूहोंमें हर्षविषादकी विषमता दोषरहित दोनों महात्मा भ्रमण करतेथे; क्योंकि आत्मस्वरूपमें अच्छीतरह स्थिरथे ॥ २४ ॥ इसके अनन्तर कालपाके शुक्राचार्यजीको असुरोंकी गुरूता तथा ग्रहका अधिकार प्राप्त हुआ, और भृगुभी अपने योग्य निरामय प्रजापतिके अधिकारमें स्थित हुये ॥ २५ ॥ शुक्राचार्य प्रथम परमपद परमात्मासे भृगुकेद्वारा उदार कीर्ति उत्पन्न हुये अनन्तर पुनः २ स्मरणमें आरूढ अप्सराके निमित्त मनोराज्यके विभ्रमसे अन्य २ दशाओंमेंभी भ्रमण करते रहे ॥ २६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकिये देववूतोक्ति मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे भार्गवोपाख्याने शुक्रस्य पुनर्जीवनं नाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

इस १७ के सर्गमें शुद्ध चित्तोंकी सत्यसंकल्पता और वासना तथा अदृष्टकी तुल्यतामें परस्पर मेल इस विषयका वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ भगवन्भृगुपुत्रस्यप्रतिभासानुभूतितः ॥ यथैषासफलाजातातथान्यस्यनकिंभवेत् ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इयंप्रथमसुत्पन्नासातनुर्ब्रह्मणःपदात् ॥ शुद्धाजातिर्भार्गवस्यनान्यजन्मकलंकिता ॥ २ ॥ सर्वैषणानांसंशांतौशुद्धचित्तस्ययास्थितिः ॥ तत्सत्यमुच्यतेसैषाविमलाचिद्विदाहता ॥ ३ ॥ मनोनिर्मलसत्वात्मयद्भावयतियादृशम् ॥ तत्तथाशुभवत्येवयथावर्त्तोभवेत्पयः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-हे भगवन् ! भृगुके पुत्रके मनोरथकी प्रतिभासे स्वर्गादि सुख सफल हुआ वह प्रतिभा अन्यकी सफल क्यों नहीं होती ? ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—शुक्राचार्यजीका शरीर पूर्वकल्पके सम्पूर्ण दोषोंके अन्तिम जन्ममें कम उपासनासे क्षय होजानेसे, ब्रह्मपदसे प्रथम शुद्ध ब्राह्मण जातिसे कलंकरहित उत्पन्न हुई ॥ २ ॥ सम्पूर्ण एषणाओंके शान्त होनेसे शुद्ध चित्तकी जो स्थिति है वही विमल चिति सत्यात्मभाव (सत्यसंकल्प) कही गई है ॥ ३ ॥ निर्मल तथा सत्यात्मा चित्त जैसी भावना करताहै वैसाही शीघ्र ऐसे होती है जैसे आवर्त जलरूप ॥ ४ ॥

यथाभृगुसुतस्यैपविभ्रमःसोत्थितःस्वयम् ॥ प्रत्येकमप्येवमेवदृष्टांतोत्रभृगोःसुतः ॥ ५ ॥ बीजस्थांकुरपत्रादिस्वंचमत्कुरुतेयथा ॥ सर्वेषांभूतसंघानांभ्रमखंडास्तथैवहि ॥ ६ ॥ यादृदंदृश्यतेविश्वमेवमेवाखिलंजगत् ॥ प्रत्येकमुदितंमिथ्यामिथ्यैवास्तमुपैतिच ॥ ७ ॥ नास्तमेतिनचोदेतिजगत्किंचनकस्यचित् ॥ भ्रांतिमात्रमिदंमायांमुग्धेवपरिजृंभते ॥ ८ ॥

अर्थ—जिसप्रकार भृगुके चित्तमें विभ्रम स्वयं उत्पन्न हुआ ऐसेही प्रत्येक जीवके चित्तमें उत्पन्न हुआहै, इसमें दृष्टान्त यही भृगुका पुत्रहै ॥ ५ ॥ बीजमें स्थित अंकुर पत्र आदि जैसे अपने स्वरूपका चमत्कार करताहै ऐसे ये सब प्राणियोंके समूहोंके भ्रांतिकृत द्वैत विभागभी है ॥ ६ ॥ जो यह सम्पूर्ण जगत् हम लोगोंको देख पडाता है यह प्रत्येक जीवके चित्तमें मिथ्याही उदित हुआहै और मिथ्या अस्त होजाताहै ॥ ७ ॥ परन्तु यथार्थमें यह जगत् न उदय होता है और न अस्त होताहै किन्तु भ्रान्तिमात्र यह सब मिथ्या माया उन्मत्त स्त्रीके समान अपना रूप दर्शाती है ॥ ८ ॥

यथासंप्रतिभासस्थःस्वयंसंसारखंडकः ॥ तथातेषांसहस्राणिमिथ्यादृष्टानिसंतिहि ॥ ९ ॥ स्वप्नसंकल्पनगरव्यवहाराःपरस्परम् ॥ पृथग्यथानदृश्यंतेतथैतेसंसृतिभ्रमाः ॥ १० ॥ एवंनगरवृंदानिनभस्संकल्परूपिणि ॥ संतितानिनदृश्यंतेमिथ्याज्ञानदृशंविना ॥ ११ ॥ पिशाचयक्षरक्षांसिसंत्येवंरूपकाणिच ॥ संकल्पमात्रदेहानिसुखदुःखमयानिच ॥ १२ ॥

अर्थ—जैसे हम लोगोंके अनुभवमें प्रत्यक्ष रीतिसे यह संसारखण्ड स्थितहै ऐसेही अन्य जीवोंकोभी सहस्रों मिथ्या संसारखण्ड देख पडते हैं ॥ ९ ॥ और स्वप्न तथा संकल्प नगरके व्यवहार जैसे एकके दूसरेको नहीं देख पडते हैं ऐसे ये संसारके भ्रमभी एकके देखे हुये दूसरेको नहीं देख पडते ॥ १० ॥ संकल्परूप आकाशमें जगद्रूप नगरके अनेक समूह इसी प्रकार हैं परन्तु उनका मिथ्यात्वभाव ज्ञानदृष्टिके विना नहीं देख पडता ॥ ११ ॥ इसी प्रकार संकल्पमात्र शरीरवाले सुखदुःखमय पिशाच यक्ष तथा राक्षस आदिभी हैं ॥ १२ ॥

एवमेववयंचेमेसंपन्नारघुनंदन ॥ स्वसंकल्पात्मकाकारामिथ्यासत्यत्वभाविनः ॥ १३ ॥ एवंरूपैवहि परेविद्यतेसर्गसंततिः ॥ नवास्तवीवस्तुताहिसंस्थितैवमवस्तुनि ॥ १४ ॥ प्रत्येकमुदितंविश्वमेवमेवस्थैचहि ॥ वनगुल्मकरूपेणवसंतैकरसोयथा ॥ १५ ॥ प्रथमोयंस्वसंकल्पःप्रथामभ्यागतोयथा॥ तथातिपरमार्थेनदृष्टेनेत्यंविभाव्यते ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रघुनंदन ! शुक्रके समान संकल्पमात्र आकारवाले मिथ्या सत्यत्वभावी हम सबभी उत्पन्न हुये हैं ॥ १३ ॥ व्यष्टिसे परे हिरण्यगर्भ परमात्मामेंभी ऐसेही जगत्की सृष्टिकी परंपराहै क्योंकि अवस्तुमें वास्तविक वस्तुता नहीं स्थित रहती॥१४॥प्रत्येक चित्तमें मिथ्या यह विश्व ऐसे स्थितहै जैसे वन लता आदिरूपसे एकरस वसन्त ॥१५॥ प्रथमका संकल्पही इस जगद्रूप प्रथाको जैसे प्राप्त हुआहै वह तत्वज्ञानसे निश्चितरूपसे जाना जाताहै॥१६॥

प्रत्येकमुदितंचित्तंस्वस्वभावोदरस्थितम् ॥ इदमित्थंसमारंभंजगत्पश्यन्विनश्यति ॥१७॥ प्रतिभासवशादस्तिनास्तिवस्त्ववलोकनात् ॥ दीर्घस्वप्नोजगज्जालमालानंचित्तदंतिनः ॥ १८ ॥ चित्तसत्तैवजगत्सत्ताजगत्सत्तैवचित्तकम् ॥ एकाभावाद्द्वयोर्नाशःसचसत्यविचारणात् ॥ १९ ॥ शुद्धस्यप्रतिभासोहिसत्योभवतिचेतसः ॥ प्रमार्जनादिवमणेर्मलिनस्येहयुक्तितः ॥ २० ॥

अर्थ—अनादि कालके अज्ञानके उदरमें स्थित चित्तही यह अनेक आरम्भ युक्त जगत्है ऐसे विचारसे चित्त आपही नष्ट होजाताहै ॥ १७ ॥ प्रतिभास कालमेंही जगत्की सत्ताहै और ब्रह्मवस्तुके देखनेसे कुछ नहीं है, दीर्घ स्वप्न यह जगज्जाल चित्तरूप हस्तीका बन्धनहै ॥ १८ ॥ चित्तकी सत्ताही जगत् और जगत्की सत्ताही चित्तहै, इन चित्त और जगत् दोनोंमेंसे एकके अभावसे दोनोंका नाश होताहै और वह सत्यके विचारसे होताहै ॥१९॥ जैसे मलिन मणिके शुद्ध करनेसे प्रकाश तथा विष हरण आदि क्रिया होती हैं ऐसेही शुद्ध चित्तका प्रतिभास सत्य होताहै ॥ २० ॥

चिरमेकदृढाभ्यासाच्छुद्धिर्भवतिचेतसः ॥ अनाक्रांतस्यसंकल्पैःप्रतिभोदेतिचेतसः ॥ २१ ॥ सुवर्णंनस्थितिंयातिमलवत्यंशुकेयथा ॥ एकादृष्टिःस्थितिंयातिनम्लानेचित्तकेतथा ॥ २२ ॥ श्रीरामउवाच ॥ प्रतिभासात्मनिजगत्यतेकालक्रियाक्रमाः ॥ सोदयास्तमयाजाताःकथंशुक्रस्यचेतसः ॥ २३ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यादृग्जगदिदंदृष्टंशुक्रेणपितृशासनात् ॥ तादृकस्यस्थितंचित्तेमयूरांडेमयूरवत् ॥ २४ ॥

अर्थ—और चिरकालतक एकाग्रताके दृढ अभ्याससे चित्तकी शुद्धि होती है, और जब अनेक प्रकारके संकल्पोंसे दूषित नहीं रहता तो उसमें प्रतिभास उदय होताहै ॥ २१ ॥ जैसे मलिन वस्त्रमें शोभायमान रंजक

(रंगनेका) द्रव्य स्थित नहीं होता ऐसेही मलिन चित्तमें अद्वैत आत्मज्ञान नहीं स्थित रहता ॥ २२ ॥ श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! शुक्रके चित्तके कल्पनात्मक जगत्में उदय और अस्तमय ये कालक्रियाके क्रम कैसे उदय हुये, क्योंकि प्रतिभास कालमें तो उदय और अस्तमय ग्रहण हो नहीं सकता, और अप्रतिभास कालमें उनका अनुभव असिद्ध है इसलिये उनकी वासना नहीं होसकती, और वासनाकी असिद्धिसे क्रमभी असिद्ध हुआ ॥ २३ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–शुक्राचार्यने पितासे उत्पन्न नेत्र आदि इन्द्रियोंसे पिताके वाक्य और श्रुति स्मृतिसे जैसी उत्पति तथा नाश आदि विशिष्ट जगत् निश्चय किया था वैसाही लौकिक और पारलौकिक जगत् संस्काररूपसे उनके चित्तमें स्थित था जैसे मोरके अण्डे मोरमें ॥ २४ ॥

स्वभावकोशस्थमिदंतदेतेनक्रमोदितम् ॥ बीजेनांकुरपत्रादिलतापुष्पफलंयथा ॥ २५ ॥ जीवोयद्वासनाबद्धस्तदेवांतःप्रपश्यति ॥ स्वरूपंचात्रदृष्टांतोदीर्घस्वप्नस्त्विदंजगत् ॥ २६ ॥ प्रत्येकमुदितोरामन्नसंसृतिखंडकः ॥ रात्रौसैन्यनरस्वप्नजालवत्स्वात्मनिस्फुटः ॥ २७ ॥ श्रीरामउवाच ॥ एषसंसृतिखंडोत्थोमिथस्संमिलतिस्वयम् ॥ नोवामिलतितन्मेत्वंयथावद्वक्तुमर्हसि ॥ २८ ॥

अर्थ—चेतन अधिष्ठित जीवकी अविद्यामें स्थित यह जगत्के कालक्रियादिका क्रम पिता और शास्त्र निमित्तसे ऐसे उदितहै जैसे बीजके निमित्तसे अंकुर पत्र लता और पुष्प फलादि ॥ २५ ॥ जीव जैसी वासनासे बद्धहै वैसाही अपने भीतर देखताहै इसमें दृष्टान्त स्वप्नमें आत्मासे कल्पित अपना शरीरहै, और संसारभी दीर्घ स्वप्नही है ॥ २६ ॥ हे रामजी ! यह संसार खण्ड (अविद्या कृत द्वैत विभाग) प्रत्येक जीवके लिये ऐसे उदितहै जैसे सेनाके मनुष्य दिनमें सेनाकी वासनासे युक्त होनेसे रात्रिके स्वप्नमें प्रत्येक सेनाका जीव अपनी कल्पित सेना देखता हुआभी उनकी एकता मानताहै ॥ २७ ॥ श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! यह संसार खण्ड जो आविर्भूतहै परस्पर मिलताहै या नहीं इसको मुझे आप यथावत् कहनेके योग्यहैं, क्योंकि यदि नहीं मिलता तो एकका संसार दूसरा नहीं देख सकता तो शिष्योंके उद्धारके लिये गुरुओंकी प्रवृत्ति, और शास्त्रकी रचना यह दोनों स्वप्नके उपकारके सदृश शिष्यको नहीं प्राप्त होगी तो शिष्यके मोक्षका अभाव हुआ इसीप्रकार गुरुके गुरुसे उपदेश न मिलनेसे उसकेभी मोक्षका अभाव हुआ ॥ २८ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ मलिनंहिमनोवीर्येनमिथःश्लेषमर्हति ॥ अयोऽयसिचसंतप्तेशुद्धेतप्तंतुलीयते ॥ २९ ॥ चित्ततत्त्वानिशुद्धानिसंमिलंतिपरस्परम् ॥ एकरूपाणितोयानियांत्यैक्यंनाविलानिहि ॥ ३० ॥ शुद्धिर्हिचित्तस्यविवासनत्वमभूतसंवेदनमेकरूपम् ॥ तस्याशुशुद्ध्याभवतिप्रबुद्धस्तन्मात्रयुक्त्यापरसंगमेति ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठे महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे मनोराज्यसंमेलनंनाम सप्तदशःसर्गः ॥ १७ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! मलिन मन शुद्धमें मिलनेकी योग्यता शक्तिसे हीनहै इसलिये वह नहीं मिल सकता क्योंकि शुद्ध तपे हुये लोहमें शुद्ध तपाही हुआ लोहा मिल सकताहै ॥ २९ ॥ शुद्ध जो चित्त तत्त्वहै वे परस्पर मिलतेहैं, क्योंकि एकरूप जल मिलके एक होजाते हैं न कि मलिन और शुद्ध ॥ ३० और सर्वथा वासनाका क्षय; और भून प्रपंचोंसे वर्जित एकरूपताका ज्ञानही चित्तकी परमशुद्धि है; और चित्तकी चिन्मात्र परिशेषतारूप शुद्धिके लाभसे परम कैवल्य मोक्ष यह जीव शीघ्रही प्राप्तहै ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मिकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे मनोराज्यसंमेलनं नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

मलिन मनोंका मलिन मनोंके साथ अवस्था विशेषके शोधनसे मेल होताहै और शुद्ध चित्तकी चिन्मात्ररूपता तथा मोक्षकी प्राप्ति ज्ञानीको होती है यह विषय इस १८ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ सर्वसंसृतिखंडेषुभूतबीजकलात्मनः ॥ तन्मात्रप्रतिभासस्यप्रतिभासेनभिन्नता ॥ १ ॥ प्रवृत्तिर्वानिवृत्तिर्वातन्मात्राद्यत्तिपूर्वकम् ॥ सर्वस्यजीवजातस्यसुषुप्तत्वादनंतरम् ॥ २ ॥ प्रवृत्ति

भाजोयेजीवास्तेतन्मात्रप्रदर्शिनः ॥ तन्मात्रैकतयासर्गान्मिथःपश्यंतिकल्पितान् ॥ ३ ॥ तन्मात्रैक्य प्रणालेनचित्राःस्सर्गजलाशयाः ॥ परस्परंसंमिलंतिघनतांयांतिचाभितः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! सब जीवोंके अपने २ कल्पित संसारखण्डोंमें स्थूल और सूक्ष्मकी जो लिंग (कारण) शरीरकी और उन्मुखता (झुकना) है तदात्मक (तद्रूप) कारण प्रपंचकी प्रति जीवकेलिये जो भिन्नता वर्णन की गई है वह तन्मात्र प्रतिभाससे है अर्थात् स्वप्रकाश चिदेक रस जो आत्मा है उसके प्रतिभाससे प्रति नियत आकारकी कल्पनासे है न कि वस्तुतः ॥ १ ॥ क्योंकि सम्पूर्ण प्राणिसमूहकी सुषुप्तिके अव्यवहितक्षणके अनंतर अनादि द्वैतव्यवहारकेलिये जो प्रवृत्ति है और स्वप्न वा जागरणदशामें जो वन नदी आदिमें प्रवृत्ति वा निवृत्ति है वह एकरस चेतनकी सर्वत्र व्याप्तिसे है ॥ २ ॥ हे रामजी ! प्रवृत्तिमें व्यवहार करनेवाले जितने जीव हैं वे सब केवल चेतनमात्र ज्योतिसे घटपट आदि पदार्थोंका अनुभव करसकतेहैं और साक्षी चिन्मात्रकी उपाधिके मेलनसे वा ब्रह्मकी एकताकी दृढतासे एक दूसरेसे कल्पित सृष्टियोंको देखतेहैं ॥ ३ ॥ उक्तरीतिसे चिन्मात्रकी एकतारूप प्रणालीसे चित्रविचित्र सृष्टिरूप जलाशय परस्पर मिलतेहैं और चारोंओरसे घनताको प्राप्त होतेहैं॥४॥

केचित्पृथक्स्थितिगताःपृथगेवलयंगताः ॥ केचिन्मिथःसंमिलिताजगद्गुंजास्थितास्सता ॥ ५ ॥ जगद्गुंजासहस्राणियत्रासंख्यान्यणावणौ ॥ अपरस्परलग्नानिकाननंब्रह्मनामतत् ॥ ६ ॥ मिथःसंमिलनेनैताघनतांसमुपागताः ॥ यद्यथायथारूढंतत्तत्पश्यतिनेतरत् ॥ ७ ॥ वर्त्तमानंमनोराज्यंनैष्फल्यंसमुपागता ॥ साकृत्तिर्मनसोज्ञेयातस्यजीवपरंपरा ॥ ८ ॥

अर्थ—कोई तो सृष्टिरूप गुंजा परस्परके मिलके विनाही पृथक् स्थित रहके पृथक्ही लयको प्राप्त हुई और कोई परस्पर मिलके नाशरहित स्थित हैं ॥ ५ ॥ जिसके अणु २ में संसाररूपी सहस्रों गुंजा परस्पर मेलनके विना स्थित हैं वह माया शबलित ब्रह्मनाम वन है ॥ ६ ॥ ये जगत्‌रूपी गुंजा परस्पर मिलनेसे सब साधारणके व्यवहारकी योग्यताको प्राप्त हुई हैं इसमें जितने प्राणियोंकेलिये भोगके अनुकूल जैसा कर्म जहांपर आरूढ है वह प्राणी उतनाही देखताहै उससे अधिक नहीं ॥ ७ ॥ एक मनका दूसरे मनमें वर्तमान मनोराज्यकेप्रति दर्शन और भोग आदिकी असमर्थतारूप जो निष्फलता है वह मनके भेदमें कारण है और जीवोंकी परंपरा (जीवभेद) भी होती हैं ॥ ८ ॥

परस्परंसंमिलतांसर्गाणांरूढभाविनाम् ॥ देहसत्ताभृशंरूढादेहाभावस्तुविस्मृतिः ॥ ९ ॥ देहत्वपरिरूढत्वाच्चिद्धेम्नाविस्मृतात्मना ॥ मिथ्यानुभूताऽविद्यातुशुद्धाकटकतामिता ॥ १० ॥ यथाशुद्धाःप्राणमरुत्परप्राणादिवेदनात् ॥ वेत्तिवेद्यंमनोराज्यंतथासर्गांतराश्रयम् ॥ ११ ॥ सर्वेषांजीवराशीनामात्मावस्थात्रयंश्रितः ॥ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्याख्यमत्रदेहोनकारणम् ॥ १२ ॥

अर्थ—इसीप्रकार भिन्न मनोराज्यरूप सृष्टियोंके कर्म वासनादिकी समानतामें एक कालमें फलकी उन्मुखतासे मिलनेपर व्याष्टि तथा समष्टि स्थूल देहकी सत्ताभी निरूढ हैं और उस सत्ताकी विस्मृतिसे देहका अभावभी स्वाभाविक है ॥ ९ ॥ और देहमें आत्मभावकी दृढतासे स्वाभाविक अपनी आत्मस्थितिको भूलकर चित्‌रूप सुवर्णने अपनी सुवर्णता (शुद्धात्मता) की विस्मृतिपूर्वक शुद्ध कटकताके सदृश संसाररूप मिथ्या अविद्याका अनुभव कियाहै ॥१०॥ जैसे हठयोगके दृढ अभ्याससे शुद्ध प्राणवायु दूसरेके शरीरमें प्रवेश करके उसके प्राणदेहादिको अपने वशमें करके शब्द आदि वेद्यपदार्थोंको जानताहै ऐसेही शुद्धमनभी दूसरी सृष्टिके आश्रयभूत मनोराज्यको जानताहै ॥ ११ ॥ सम्पूर्ण जीवसमूहोंके जाग्रत् स्वप्न ओ सुषुप्ति तीनों अवस्थाका आश्रय आत्माही है इसमें देह कारण नहीं है, क्योंकि जाग्रत्‌की कल्पना विना देहकी असिद्धि होनेसे अन्योन्याश्रय दोष आ पडेगा ॥ १२ ॥

एवमात्मनिजीवत्वेसत्यवस्थात्रयात्मनि ॥ नचांभसोववीचित्वमस्मिन्कचतिदेहता ॥ १३ ॥ चित्कलापदमासाद्यसुषुप्तांतपदस्थितम् ॥ बुद्धोनिवर्त्ततेजीवोमूढःसर्गेप्रवर्त्तते ॥ १४ ॥ द्वयोरेकस्वरूपैव स्वसौहार्दनिदर्शनात् ॥ अज्ञःसुषुप्तोऽसंबुद्धोजीवःकश्चित्ससर्गभाक् ॥१५॥ सर्वगत्वाच्चितःकश्चित्परसर्गेणनीयते ॥ सर्गेसर्गेपृथग्रूपंसंतिसर्गांतराण्यपि ॥ १६ ॥

अर्थ—इसप्रकार जीवात्माही अवस्थात्रयरूप होनेसे देह इससे भिन्न इसरीतिसे नहीं है जैसे जलसे तरंग ॥ १३ ॥ इसप्रकार तत्त्वज्ञानी सुषुप्तिके अवसानभूत तुरीयपद स्थित चित् चैतन्यैकरस आत्मस्वभावको ज्ञानसे प्राप्त होकर जीवभावसे निवृत्त होताहै, और अज्ञानी तो अपनी कल्पनासे देह आदि आकारमय कल्पनारूप जगत्‌की सृष्टिमें प्रवृत्त होताहै ॥ १४ ॥ ज्ञानी तथा अज्ञानीकी सुषुप्ति निरतिशय आनन्दरूप मोक्षका दृष्टान्त होनेसे समानहै

परन्तु ज्ञानवर्जित अज्ञ सुषुप्ति सहित कोई जीव सृष्टिका भागी है यह विशेषताहै ॥ १५ ॥ चित्के सर्वव्यापिनी होनेसे कोई जीव दूसरेकी सृष्टिमें प्रविष्ट कियाजाताहै, और एक २ सर्गमें पृथक् २ रूपसे अनेक सृष्टि हैं ॥ १६ ॥

तेष्वप्यंतस्थसर्गौघाःकदलीदलपीठवत् ॥ सर्वसर्गांतराद्दूरंपत्रपीवरवृत्तिमत् ॥ १७ ॥ स्वभावशीतलंब्रह्मकदलीदलमंडपः ॥ कदल्यामन्यतानास्तियथापत्रशतेष्वपि ॥ १८ ॥ ब्रह्मतत्त्वेन्यतानास्तितथासर्गशतेष्वपि ॥ बीजमेवरसात्फुलंभूत्वाबीजंपुनर्भवेत् ॥ १९ ॥ तथाब्रह्ममनोभूत्वाबोधाद्ब्रह्मपरंभवेत् ॥ रसकारणकंबीजंफलभावेनजृंभते ॥ २० ॥

अर्थ—और उनके भीतरभी केलेके खम्भेके भीतर केलेके पत्रके समान सृष्टियोंके समूह हैं; और सब सृष्टियोंके बाह्य तथा आभ्यन्तर देशके निकटमें वर्तमान; और बाहर फैले हुये पत्तोंके समान अतिविशालरूप ब्रह्म तो अपने स्वभावसेही शीतल केलेके मण्डपके समान है, और जैसे सैकडों पत्र होनेसेभी केलेमें भेद नहीं है ॥१७॥१८॥ ऐसे सैकडों सृष्टियोंमेंभी ब्रह्मतत्त्वमें भेद नहीं है, और बीज जैसे जलके सम्बन्धसे विकसित वृक्ष होके पुनः उस वृक्षके विस्तारमय फल आदिके द्वारा अपने पूर्वकालके बीजभावसे प्रकट है ॥ १९ ॥ ऐसेही ब्रह्मभी काम कर्म आदिरूप जलके सबन्धसे मनरूप होके जन्ममरण आदिकी कल्पनासे अधिकारी देह प्राप्त होनेपर, श्रवण मनन आदिके क्रमसे ज्ञानप्राप्ति द्वारा पुनः अपने पूर्व सिद्ध ब्रह्मस्वभावको प्राप्त होताहै ॥ २० ॥

ब्रह्मकारणकोजीवोजगद्रूपेणजृंभते ॥ रसस्यकारणंकिंस्यादितिवक्तुंनयुज्यते ॥ २१ ॥ ब्रह्मणःकारणंकिंस्यादितिवक्तुंनयुज्यते ॥ स्वभावेनिर्विशेषत्वात्परोवक्तुंनयुज्यते ॥ २२ ॥ नाकारणेकारणादिपरेवस्त्वादिकारणे ॥ विचारणीयःसारोहिकिमसारविचारणैः ॥ २३ ॥ बीजंजहद्बीजवपुःफलीभूतंविलोक्यते ॥ ब्रह्माजहन्निजवपुःफलंबीजेचसंस्थितम् ॥ २४ ॥

अर्थ—ऐसेही ब्रह्मके निमित्तसे जीवही जगत्‌रूपसे शोभित होताहै, और जैसे मूलका कारण क्याहै यह नहीं कह सकते क्योंकि "मूले मूलाभावादमूलं मूलम्" मूलका मूल न होनेसे मूल कारणसे वर्जितहैं, अर्थात् मूलका मूल नहीं है, कदाचित् यह कहो कि पत्र, शाखा, वृक्ष, पुष्प और फल आदिकी सरसता देखनेसे जैसे वृक्षादि स्वभाव रसहै ऐसे जगत्‌का कारण ब्रह्मभी जगत् धर्मक स्वभाव विशेषही होगा तो ब्रह्मकी कारणता सिद्ध करना स्वभाव कारणताही सिद्ध हुई, सो नहीं क्योंकि ब्रह्मके निर्विशेष निराकार अद्वैतरूप होनेसे कारणकी कार्यके साथ उत्पत्तिरूप असाधारण धर्मरूपतासे संबंध नहीं है ॥ २१ ॥ २२ ॥ निर्विकार अद्वितीय असंग आदि हेतुसे यथार्थमें अकारण और सब प्रपंचके आरोपित आदिके कारण ब्रह्ममें कारण निमित्त आदिकी संभावनाभी नहीं, क्योंकि यह ब्रह्मके स्वभावसे विरुद्धहै, इसलिये अकारण विवर्तरूप जगत् मिथ्याही है इसकारण असार जडता दुःखमय आदि जगत् वा उसके कारणोंके विचारसे क्या प्रयोजन है, किंतु सारभूत ब्रह्मका विचार करना चाहिये ॥ २३ ॥ और बीज अपनी बीजाकारताको त्याग करताही हुआ लोकमें अंकुर आदि रूपसे फलीभूत देख पडताहै, और ब्रह्म जो अपने स्वरूपको न त्यागता हुआ जगत्‌रूप फल स्वरूपसे देख पडताहै वह तो वजितथा अंकुरमें एकरूपतासे है ॥ २४ ॥

बीजस्याकृतिमत्सर्वंतेनानाकृतिमत्पदम् ॥ नयुज्यतेसमीकर्तुंतस्मान्नास्त्युपमाशिवे ॥ २५ ॥ स्वमेवजायतेस्वाभंनचतज्जायतेन्यहक् ॥ अतोनजातंनाजातंविद्धिब्रह्मनभोजगत् ॥ २६ ॥ दृश्यंपश्यन्स्वमात्मानंनद्रष्टासंप्रपश्यति ॥ प्रपंचाक्रांतसंवित्तेःकस्योदेतिनिजास्थितिः ॥ २७ ॥ मृगतृष्णाजलभ्रांतौसत्यांक्वैवविदग्धता ॥ विदग्धतायांसत्यांतुक्वैवासौमृगतृष्णिका ॥ २८ ॥

अर्थ—बीज जो है उसका सब कुछ आकारवान् है इसलिये आकाररहित ब्रह्मपदकी समता बीजके साथ नहींहोसकती इस निमित्तसे ब्रह्ममें यथार्थमें किसीकी उपमा नहीं है ॥ २५ ॥ यह अपने समान आपही होताहै अन्यके तुल्य यह नहींहोता, इसलिये चिदाकाशमें इस जगत्‌को न जात और न अजात समझो ॥ २६ ॥ दृश्यको देखता हुआ द्रष्टा अपने स्वरूपको नहीं देखता क्योंकि प्रपंचसे ज्ञानके आक्रांत होनेपर अपने स्वरूपकी स्थिति किसकी उदय हो सकती है ॥ २७ ॥ जब मृगतृष्णामें जलका भ्रम हुआ तब पण्डिताई कहां रहगई, और जब पण्डिताई तब भ्रम कहां? ॥ २८ ॥

आकाशविशदोद्रष्टासर्वांगोपिनपश्यति ॥ नेत्रंनिजमिवात्मानंदृशीभूतमहोभ्रमः ॥ २९ ॥ आकाशविशदोद्रष्टासर्वांगोपिनपश्यति ॥ तेषांनिजमिवात्मानंदृशीभूतमिवाभ्रमः ॥ ३० ॥ आकाशविशदंब्रह्मयत्ने

नापिनलभ्यते ॥ दृश्येदृश्यतयादृष्टेत्वस्यलाभःसुदूरतः ॥ ३१ ॥ तादृग्भावस्वरूपेणविनायत्रनदृश्यते ॥ तत्रापिदूरोदस्तैवद्रष्टुःसूक्ष्मस्यदृश्यता ॥ ३२ ॥

अर्थ—आकाशके समान विशाल स्वरूपभी द्रष्टा सर्वगत सर्वावभासक होनेपरभी तत्त्वरूपसे अपनेको ऐसे नहीं देखता जैसे नेत्र अपने रूपको नहीं देखता; अहो ! भ्रमकी प्रबलता कैसी है ॥ २९ ॥ और आकाशके समान सर्वव्यापक द्रष्टा अपने परमार्थके स्वरूपके तुल्य अन्यके पारमार्थिक रूपको ऐसे नहीं देखता जैसे भ्रमरहित मुक्त पुरुष दृश्यदशामें प्राप्त द्वैतको नहीं देखता ॥ ३० ॥ आकाशके सदृश सर्वत्र प्राप्तभी ब्रह्म परन्तु यत्नसेभी नहीं देखपडता क्योंकि दृश्यको दृश्यरूपसे देखनेसे ब्रह्मस्वरूपका लाभ अति दूर है ॥ ३१ ॥ और जहां घट आदि विषय देशमें वृत्तिमें अवच्छिन्न द्रष्टा विषयरूप हुये विना घटादिका प्रकाश नहीं होता वहांभी द्रष्टाकी दर्शन योग्यता दूरही है, क्योंकि वृत्तिको विषयरूपसे पृथक् करके सूक्ष्मतासे केवल परमात्माके स्वरूपका निश्चय दुर्लभ है ॥३२॥

दृश्यंचदृश्यतेतेनद्रष्टारमनदृश्यते ॥ द्रष्टैवसंभवत्येकोनतुदृश्यमिहास्तिहि ॥ ३३ ॥ द्रष्टासर्वात्मकोदृश्येस्थितश्चेत्कैवद्रष्टृता ॥ सर्वशक्तिमताराज्ञायद्यत्संपद्यतेयथा ॥ ३४ ॥ तत्तथानुभवत्याशुसएवोदेतितत्तथा ॥ यथामधुरसोल्लासःखंडोभवतिभासुरः ॥ ३५ ॥ रसतामजहच्चैवफलपुष्पलतोन्नतः ॥ चिदुल्लासस्तथाजीवोभूयोभवतिदेहकः ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! दृश्य तो देखपडताहै परन्तु द्रष्टा नहीं देख पडता, क्योंकि यथार्थमें द्रष्टाहीका संभव है और दृश्य तो कुछ हैही नहीं ॥ ३३ ॥ और सर्वरूप होनेसे जब द्रष्टा दृश्यरूपसे स्थित है तब अपने स्वरूपभूत दृश्यमें अपनी क्रियाका विरोध होनेसे द्रष्टता कहां ! यदि यह कहो कि सर्वशक्तिमान् राजाके तुल्य दृश्य निर्माण करके उसका द्रष्टा यह बनेगा तो अन्यकी अपेक्षासे रहित जैसा रूप यह होताहै ॥ ३४ ॥ वैसाही वैसा अनुभव करताहै और शीघ्र वही उस रूपसे उदयभी होताहै जैसे मधु रसका उल्लास भासुर खंडरूप होता है और अपनी रसरूपताको न त्यागते हुये फल पुष्प लता आदि रूपसे उन्नत होताहै ऐसेही चित्का उल्लास जीवभी देहादिरूप होजाताहै ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

चिन्मात्रतांतामजहदेवदर्शनदृङ्मयम् ॥ अंतःस्वानुभवश्चैवजगत्स्वप्नंप्रपश्यति ॥३७॥ अहंतादिरसेभौमेखंडकत्वमिवात्मनि ॥ नानाखंडसहस्रौघैरद्वितीयैर्निजात्मनः ॥ ३८ ॥ यथोदेतिरसोभौमश्चित्त थोदेत्यसंभ्रमम् ॥ चिद्रसोल्लासवृक्षाणांकचतामात्मनात्मनि ॥ ३९ ॥ दृश्यशाखाशताढ्यानामिहनांतोऽवगम्यते ॥ खंडःप्रत्येकमेवायंयथारसचमत्कृतिम् ॥ ४० ॥

अर्थ—और यह अपनी चित्रूपताको न त्यागता हुआ दर्शन तथा दृक्रूप होजाताहै और अपने स्वरूपके भीतर जगत्रूप स्वप्नको देखताहै ॥ ३७ ॥ पृथिवीमें उत्पन्न लवणादि रसमें खण्डके समान आत्मामें अहन्ता आदि हैं जैसे अपनेसे अभिन्न सहस्रों खण्डोमें पृथिवीका उदय होताहै ऐसेही चित्भी अनेक रूपसे उदयको प्राप्त होताहै और चित्रसके उल्लाससे सैकडों दृश्यकी शाखासे पूर्ण ब्रह्मांडरूपी वृक्षोंका अन्त इस संसारमें नहीं है और यह वर्तमान ब्रह्मांडरूप बन खण्ड अपने रसके चमत्कारको ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥

स्वादयत्येवमेषाचित्पृथक्पश्यतिसंस्थितिम् ॥ यायोदेतियथायस्याजीवशक्तेःस्वसंसृतिः ॥ ४१ ॥ तांतांतथैतिसास्वात्मचिद्रूपभुवनस्थितिम् ॥ जीवविसंसृतयःकाश्चित्प्रमिलंतिपरस्परम् ॥ ४२ ॥ स्वयंविहृत्यसंसारेशाम्यंतिचिरकालतः ॥ सूक्ष्मयापरयादृष्ट्यात्वंपश्यज्ञानचेतसा ॥ ४३ ॥ जगज्ज्वालसहस्राणिपरमाण्वंतरेष्वपि ॥ चित्तेनभसिपाषाणेज्वलायामनिलेजले ॥ ४४ ॥

अर्थ—जैसे अनुभव करताहै यह चित् वैसाही उस चमत्कारको देखती है जिस २ जीवशक्तिको जैसा २ संसार उदय होताहै वैसा २ अपना आत्मा चित्रूप ब्रह्माण्डमें स्थित अनुभव करताहै, और समान आकार वासनाके उद्भवमें कोई संसार परस्पर मिलजातेहैं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ और चिरकालतक विहार करके स्वयं शान्त होजातेहैं और हे रामजी ! तुम परम सूक्ष्मदृष्टिसे तथा ज्ञानरूप चित्तसे अन्यके सहस्रों संसारको देखो॥४३॥चित्तमें आकाशमें पाषाणमें ज्वालामें, वायुमें तथा जंगलमें संपूर्ण परमाणु २ के भीतर सहस्रों(हजारों) जगत्के समूह हैं॥४४॥

संतिसंसारलक्षाणितिलेतैलमिवाखिले ॥ सिद्धिमेतियदाचेतस्तदाजीवोभवेच्चितिः ॥ ४५ ॥ शुद्धाचसासर्वगतातेनतन्मेलनंमिथः ॥ सर्वेषांपद्मजादीनांस्वसत्ताभ्रमरूपकः ॥ ४६ ॥ जगद्दीर्घमहास्वप्नःसोयमंतःसमुत्थितः ॥ स्वप्नात्स्वप्नांतरंयांतिकाश्चिद्भूतपरंपराः ॥ ४७ ॥ तेनोपलंभःकुड्यादावसौदृढतरःस्थितः ॥ यद्यत्रचिद्भावयतितत्तत्राशुभवत्यलम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—जैसे सम्पूर्ण तिलमें तेल है ऐसेही चित्तमें आकाशादि लक्षों संसारहैं और जब चित्तकी सिद्धि होतीहै तब वही चेतन होजाताहै ॥ ४५ ॥ और शुद्ध सर्वव्यापी चित्का परस्पर मेल होताहै और सब ब्रह्माआदिकी सत्तासे कल्पित भ्रमरूप यह जगत् है ॥ ४६ ॥ इसलिये यह संसाररूपी महा दीर्घ स्वप्न प्रगट है, और कोई २ जीव परंपरा एक स्वप्नसे दूसरे स्वप्नमें प्राप्त होती हैं ॥ ४७ ॥ इस स्वप्नके परंपरा भ्रमणसे भित्तिआदिमें इसकी प्राप्ति होतीहै और वासनाकी दृढतासे यह दृढतररूपसे स्थितहै, वासनाके अनुसार चित् जहां जैसी भावना करती है वहां वैसाही अनुभव करलेतीहै ॥ ४८ ॥

तयास्वप्नेपियदृष्टंतत्कालेसत्यमेवतत् ॥ चिदणोरंतरेसंतिसमस्तानुभवाणवः ॥ ४९ ॥ परमाणुजंग त्यंतर्मन्येचित्परमाणवः ॥ लीनमाकाशमाकाशेद्वैतैक्यभ्रममुत्सज ॥ ५० ॥ देशकालक्रियाद्रव्यैःस्वैरे वाणुभिरेवचित् ॥ अणूननुभवत्यंतरितराणिनसंभवात् ॥ ५१ ॥ स्वयंसर्गस्यकचितःस्वप्नेचिदणु खंडकः ॥ ब्रह्मादेःकीटनिष्ठस्यदेहदृष्ट्यानुभावितः ॥ ५२ ॥

अर्थ—उस चित्ने स्वप्नमेंभी जैसा अनुभव कियाहै उस कालमें वह सत्यही है और समस्त सूक्ष्मरूप जगदाकार वासनामय चित् अणुके भीतर ऐसे हैं जैसे बीजके भीतर पत्र, लता, पुष्प, तथा फलादि ॥ ४९ ॥ चित् परमाणु (जीव) जगत्के परमाणुमें प्रविष्ट हैं और चित् परमाणुमें जगत् प्रविष्ट है, इस चित् और जगत्के संपूर्णरूपतासे परस्पर प्रवेशको मैं आश्चर्य मानताहुं अथवा यह कोई आश्चर्य नहीं है क्योंकि चिदाकाशही चिदाकाशमें लीनहै और इसी चिदाकाशको जगत्के भ्रमसे सभोंने ग्रहणकर रक्खाहै इसलिये हे रामजी ! तुम द्वैतता तथा एकताके भ्रमको त्यागो ॥ ५० ॥ देश, काल; और क्रियारूप चिदंशरूप अणुओंसे अपने आत्मभूत अणुओंको अन्यके समान देखताहै क्योंकि अन्यका संभव नहीं है ॥ ५१ ॥ ब्रह्मासे लेके कीट पर्यन्तको साधारण उन २ अन्तकरणकी उपाधि बशसे चिदणुका खण्ड (जीव) प्रलयकालमें अस्फुटभी सृष्टिकाल स्वप्नके समान देहदृष्टिसे अनुभूत किया गयाहै॥५२॥

कचितंकिंचिदेवेहवस्तुतस्तुनकिंचन ॥ स्वयंसत्यंस्वादयंतेद्वैतंचित्परमाणवः ॥ ५३ ॥ स्वयंप्रकचाति स्फारदेहश्चिदणुखंडकः ॥ नेत्रादिकुसुमद्वारैःसंविदामोदमुद्गिरन् ॥ ५४ ॥ संपश्यन्तिरांकश्चिद्बही रूपेणचिद्घटः ॥ सर्वगत्वादनाशित्वाद्दृश्यबीजस्यवैचितेः ॥ ५५ ॥ अंतरेवाखिलंकश्चित्पश्यत्यविम लंजगत् ॥ तत्रातिकालकलनादुन्मज्जतिनिमज्जति ॥ ५६ ॥

अर्थ—अनिर्वचनीय रूपसे यह जगत् स्फुरित है और यथार्थ रूपसे कुछभी स्फुरित नहीं है और जैसे कोई भ्रान्त पुरुष अपने स्कंधेपर आप चढना चाहै ऐसेही चित् परमाणु अर्थात् जीव स्वयं सत्य आत्मा द्वैत मानते हुयेभी भ्रांतिसे उसी द्वैतका अनुभव करतेहैं ॥ ५३ ॥ अन्तःकरणरूप उपाधिसे चेतनरूप अणु खण्ड नेत्र आदि पुष्पोंके द्वारा ज्ञानरूप सुगंधको उगिलता हुआ स्वयं विशाल देहरूपसे स्फुरताहै ॥ ५४ ॥ दृश्यके बीजभूत चित्ति सर्व व्यापी तथा अविनाशी होनेसे कोई व्यष्टिरूप जीव घटके सदृश स्थूलदेहके परिच्छेदसे बाह्य देश तथा कालसे घट ऐसा देखताहै ॥ ५५ ॥ और कोई समष्टि ब्रह्माण्डात्मक जीव संपूर्ण कलंकित जगत्को अपने भीतरही देखता है, और उसमें दीर्घ कालसे अभेदके अभिमानसे उसीमें कभी डूबताहै और कभी निकलताहै ॥ ५६ ॥

स्वप्नात्स्वप्नांतरंतत्रतथापश्यन्पुनःपुनः ॥ मिथ्यावटेषुलुठतिशिलेवशिखरच्युता ॥ ५७ ॥ केचित्संमि लिताःकेचिदात्मन्येवाभ्रमेस्थिताः ॥ भग्नाःस्वसंवित्प्रसरेस्फुरंतोदेहखंडकाः ॥ ५८ ॥ स्वयमंतःप्रप श्यंतियेजगज्जीवविभ्रमम् ॥ तैस्तैःकैश्चित्ततंदृश्यमसत्स्वप्नवदाश्रितम् ॥ ५९ ॥ सर्वात्मत्वात्स्वभाव स्यतदृश्यंसत्यमात्मनि ॥ सर्वगंविद्यतेयत्रतत्रसर्वमुदेतिहि ॥ ६० ॥

अर्थ—उस स्वप्नरूप जगत्में स्वप्नान्तरको देखता हुआ मिथ्याभूत गर्तोंमें ऐसे लुढकता फिरताहै, जैसें पर्वतसे गिरी हुई पाषाणकी शिला ॥ ५७ ॥ अपने ज्ञानके विस्तारमें स्फुरित होते हुये कोई देहके खण्ड तो परस्पर मिलितहैं, कोई भ्रमरहित आत्मामें स्थित रहतेहैं, और कोई निमग्न रहतेहैं ॥ ५८ ॥ जो जीव जगत् और जीवके विभ्रमको अपने भीतरही देखतेहैं उन किसी २ जीवोंने इस व्याप्त दृश्यको असत् स्वप्नके आश्रित निश्चय कियाहै ॥ ५९ ॥ चित् स्वभावके सर्वरूप होनेसे वह दृश्य आत्मामें अधिष्ठान' आत्मरूपसे सत्यही है, और जहां सर्वव्यापी आत्मा है वहां सब कुछ विवर्त रूपसे उदय होताहै ॥ ६० ॥

जीवांतःप्रतिभासस्यसर्वस्यपुनरंतरे ॥ जीवखंडउदेत्युच्चैस्तस्यांतरितरोपिच ॥ ६१ ॥ जीवांतर्जायते जीवस्तस्यांतरपिजीवकः ॥ सर्वत्ररंभादलवज्जीवोजीवांतरेवहि ॥ ६२ ॥ दृश्यबुद्धिपरावृत्तौसममेतद

नंतरम् ॥ हेम्नीवकटकादित्वंपरिज्ञातंविनश्यति ॥ ६३ ॥ विचारोयस्यनोदेतिकोहंकिमिदमित्यलम् ॥ तस्यांतर्नविमुक्तोसौदीर्घोजीवज्वरभ्रमः ॥ ६४ ॥

अर्थ—और संपूर्ण जीवरूप प्रतिभासके भीतर पुनः जीव खण्ड उदय होताहै और उस जीवके भीतर पुनः जीवान्तरभी उदयको प्राप्त होताहै ॥ ६१ ॥ जीवके भीतर जीव और उसके भीतरभी अन्य जीवहै अधिक कथनसे क्या प्रयोजन सर्वत्र केलेके दलमें पत्रके समान जीवके भीतर जीवहै, अर्थात् प्रपंचसहित जीवके भीतर जीव स-नमें कारण वहांकी अविद्यासहित चेतनहै ॥ ६२ ॥ दृश्य पदार्थसे बुद्धिके हटनेसे और प्रत्यक् चेतनमें अभिमुख होनेपर एक कालमेंही बाह्य तथा आभ्यन्तरसे ज्ञात यह संसार ऐसे नष्ट होजाताहै जैसे सुवर्णमें कटकता ॥ ६३ ॥ मैं कौन हुं और यह संसार क्याहै यह विचार जिसको नहीं उदय होता उसके भीतरसे दीर्घ कालका जीवके ज्व-रका भ्रम नहीं निवृत्त होताहै ॥ ६४ ॥

विचारःसफलस्तस्यविज्ञेयोयस्यसन्मतेः॥ दिनानुदिनमायातितानवंभोगगृध्नुता ॥ ६५ ॥ यथादेहोप युक्तंहिकरोत्यारोग्यमौषधम् ॥ तथेंद्रियजयेभ्यस्तेविवेकःफलितोभवेत् ॥ ६६ ॥ विवेकोस्तिवचस्येव चित्रेग्निरिवभास्वरः ॥ यस्यतेनपरित्यक्ताद्दुःखायैवाविवेकिता ॥ ६७ ॥ यथास्पर्शेनपवनःसत्तामा यातिनोगिरा ॥ तथेच्छातानवेनैवविवेकोस्यविबुध्यते ॥ ६८ ॥ चित्रामृतंनामृतमेवविद्धिचित्रानलंना नलमेवविद्धि ॥ चित्रांगनानूनमनंगनेतिवाचाविवेकस्त्वविवेकएव ॥ ६९ ॥ पूर्वंविवेकेनतनुत्वमेतिरा गोथवैरंचसमूलमेव ॥ पश्चात्परिक्षीयतएवयत्नःसपावनोयत्रविवेकितास्ति ॥ ७० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे जीवनखंडकावतारोनामाष्टादशःसर्गः ॥ १८ ॥

अर्थ—जिस सत्बुद्धि पुरुषकी भोगकी लालसा प्रतिदिन न्यून होती जाती है उसीका विचार सफल जानना चाहिये ॥ ६५ ॥ जैसे शरीरमें उपभोग किया हुआ औषध आरोग्य आरोग्य करताहै ऐसेही इन्द्रियोंके जपका अभ्यास करनेपर विवेक फलीभूत होताहै ॥ ६६ ॥ चित्रगत प्रकाशमान अग्निके समान जिसका विवेक केवल वचन-मात्रमें है न कि मनमें उसनें केवल दुःखदायिनी जो अविवेकताहै उसको नहीं त्यागा ॥ ६७ ॥ जैसे पवनकी सत्ता व-चनसे नहीं किन्तु स्पर्शसेही प्रतीति होती है ऐसेही इच्छाकी सूक्ष्मतासेही इस पुरुषका विवेक जाना जाताहै ॥ ६८ ॥ हे रामजी ! चित्रके अमृतको तुम अमृत न जानो, और चित्रके अग्निको अग्नि न जानो तथा जैसे चित्रकी स्त्री स्त्री नहीं है ऐसेही वचनमात्रका विवेक विवेक नहीं किन्तु अविवेकही है ॥ ६९ ॥ हे रामजी ! प्रथम विवेकसे राग सूक्ष्म होताहै अनन्तर वैरभी मूलसहित नष्ट होजाताहै; और ज्ञानके उदयसे इष्टप्राप्ति और अनिष्टके परिहारकी प्रवृत्तिरूप यत्नभी क्रमसे नष्ट होजाताहै इसलिये जहां विवेक है वह प्राणी धन्य और परम पावन है ॥ ७० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे जीवखण्डकाऽवतारो नामाष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

एकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

उपासनाके अनुसार फलकी प्राप्ति, बोधसे सत्य आत्मरूपसे स्थिति, जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्तिके स्थिति तथा तुरीय (चतुर्थ) पदकी स्थितिभी इस १९ के सर्गमें वर्णित है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ जीवबीजंपरंब्रह्मसर्वत्रखमिवस्थितम् ॥ तेनजीवोदरजगत्यपिजीवोस्त्यनेकधा ॥ १ ॥ चिद्घनैकघनात्मत्वाज्जीवांतर्जीवजातयः ॥ कदलीदलवत्संतिकीटाइवधरोदरे ॥ २ ॥ योयोना मयथाग्रीष्मेकल्कस्वेदाद्भवेत्कृमिः ॥ यद्यद्दृश्यंशुद्धचित्खंतज्जीवोभवतिस्वतः ॥ ३ ॥ यथायथायतंते तेजीवकाःस्वात्मसिद्धये ॥ तथातथाभवंत्याशुविचित्रोपासनक्रमैः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! जीवका बीजभूत ब्रह्महै यह सर्वत्र आकाशके तुल्य स्थितहै इस का-रणसे जीवके उदरमें जो जगत्है उसमेंभी अनेक प्रकारके जगत् हैं ॥ १ ॥ केलेके दलके समान जीव चिद्घनरूप होनेसे जीवके भीतर कीट (कीडे) ॥ २ ॥ जैसे ग्रीष्मकालमें शरीरके भीतर मल वा प्रस्वेद (पसीने) के का-रण जो २ कृमि होताहै वह २ शरीरके भीतरही होताहै ऐसे बाह्य वा आभ्यन्तर जो २ दृश्यरूप शुद्धचित् धारण

करती है उस २ का भोक्ता जीव उसी २ स्थानपर होजाताहै ॥ ३ ॥ विचित्रविचित्र उपासनाके क्रमसे जीव स्वात्म सिद्धिके लिये जैसे २ प्रयत्न करतेहैं वैसाही वैसा शीघ्र होजाताहै ॥ ४ ॥

देवान्देवयजोयांतियक्षायक्षान्व्रजंतिहि ॥ ब्रह्मब्रह्मयजोयांतियदतुच्छंतदाश्रयेत् ॥ ५ ॥ समुक्तोभृगुपुत्रोहिनिर्मलत्वात्स्वसंविदः ॥ बद्धःप्रथमदृष्टेनदृश्येनाशुस्वभावतः ॥ ६ ॥ भुविजातापरिम्लानाबालायत्प्रथमंपुरः ॥ संवित्प्राप्नोतितद्रूपाभवत्यन्यानकाचन ॥ ७ ॥ श्रीरामउवाच ॥ जाग्रत्स्वप्नदशाभेदंभगवन्वक्तुमर्हसि ॥ कथंचजाग्रज्जाग्रत्स्यात्स्वप्नोजाग्रद्भ्रमःकथम् ॥ ८ ॥

अर्थ—देवताओंके पूजक देवताको प्राप्त होतेहैं, यक्षोंके पूजक यक्षोंके निकट जातेहैं हिरण्यगर्भ आदिके उपासक शुद्धब्रह्ममें लीन होतेहैं इसलिये जो महान् हैं उसीका आश्रय लेना चाहिये ॥ ५ ॥ अपने ज्ञानकी निर्मलतासे भृगुका पुत्र मुक्त होगया, और प्रथम अप्सरारूप दृश्यके देखनेसे चित्तके स्वभावसे बद्ध होगयाथा ॥ ६ ॥ इस संसारके व्यसन तापादि क्लेशसे कोमल संवित् जबतक म्लानिको नहीं प्राप्त हुई उसके प्रथम जिस रूपमें प्राप्त होती है उससे अन्यरूप कभी नहीं होती ॥ ७ ॥ श्रीरामजी बोले—हे भगवन् ! जाग्रत् तथा स्वप्न दशाके भेद आप कहनेके योग्यहैं जाग्रत् सत्य तथा व्यवहारका हेतु कैसे होताहै; और स्वप्न जाग्रत् आकारवाला भ्रम कैसे है ? ॥ ८ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ स्थिरप्रत्यययुक्तंयत्तज्जाग्रदितिकथ्यते ॥ अस्थिरप्रत्ययंयत्स्यात्तत्स्वप्नःसमुदाहृतः ॥ ९ ॥ जाग्रत्त्वेक्षणदृष्टःस्यात्स्वप्नःकालांतरेस्थितः ॥ तज्जाग्रत्स्वप्नतामेतिस्वप्नोजाग्रत्त्वमृच्छति ॥ १० ॥ जाग्रत्स्वप्नदशाभेदोनस्थिरास्थिरतेविना ॥ समःसदैवसर्वत्रसमस्तोनुभवोनयोः ॥ ११ ॥ स्वप्नोपिस्वप्नसमयेस्थैर्याज्जाग्रत्त्वमृच्छति ॥ अस्थैर्याज्जाग्रदेवास्तेस्वप्नस्तादृशबोधतः ॥ १२ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—जो स्थिर प्रत्ययसे युक्तहै वह जाग्रत् है और जो स्थिर प्रत्यय युक्त नहीं है वह स्वप्न कहा गया है ॥ ९ ॥ और स्वप्नभी यदि कालांतरमें स्थित हो और जगत्के लक्षणसे देखा जाय तो वह जाग्रतहो जाताहै और जाग्रत्भी यदि स्थिर नहो तो वह स्वप्नताको प्राप्त होताहै ॥ १० ॥ स्थिरता तथा अस्थिरताके सिवाय जाग्रत् और स्वप्नदशामें कुछ भेद नहीं है, इन दोनो अवस्थाओंका समस्त अनुभव सर्वत्र समानही है केवल स्थिरता अस्थिरताका भेद है ॥ ११ ॥ स्वप्नभी स्वप्नके समय स्थिरतासे जाग्रत् होजाताहै और अस्थिरतासे जाग्रत्भी स्वप्नके सदृश ज्ञानसे स्वप्न होताहै ॥ १२ ॥

स्वप्नोपिजाग्रद्बुद्ध्यंशोजाग्रत्त्वमनुगच्छति ॥ स्वप्नतास्वप्नबुद्ध्यातुयथासंवेदनंस्थिरम् ॥ १३ ॥ यत्तुयावत्स्थिरंबुद्धंतत्तावज्जाग्रदुच्यते ॥ क्षणभंगात्तुतत्स्वप्नोयथाभवतितच्छृणु ॥ १४ ॥ जीवधातुःशरीरेंतर्विद्यतेयेनजीव्यते ॥ तेजोवीर्यंजीवधातुरित्याद्यभिधमंगयत् ॥ १५ ॥ व्यवहारीयदाकायोमनसाकर्मणागिरा ॥ भवेत्तदामरुन्नुन्नोजीवधातुःप्रसर्पति ॥ १६ ॥

अर्थ—जाग्रत् बुद्धिग्राह्य स्थिरता अंशका स्वप्नभी जाग्रत् दशाको प्राप्त होताहै जैसे राजा हरिश्चन्द्रका ॥ १३ ॥ वर्षोंका स्वप्न जाग्रत् होगया, जैसे जाग्रत्का ज्ञान स्थिरहै ऐसेही वहभी है परन्तु उसमें स्वप्नता व्यवहारतो स्वप्नबुद्धिसे है जो पदार्थ जबतक स्थिरतासे ज्ञात होताहै वह तबतक जाग्रत् कहा जाताहै और क्षणभंगुर होनेसे जाग्रत्भी जैसे स्वप्न होजाताहै वह सुनो ॥ १४ ॥ इस शरीरके भीतर जो जीव चेतनहै, जिससे इसमें जीवित व्यवहार होताहै उसका साधक (जीवनका साधक) तेज, वीर्य्य, जीव तथा चित् इत्यादि नामसे जो प्रसिद्ध है वही सब जीवनमें कारण है ॥ १५ ॥ जिस समय यह शरीर मन कर्म तथा बचनसे व्यवहार करनेवाला होताहै उस समय प्राण वायु प्रेरित जीव चेतन तडागासे नाली आदिके द्वारा जलके समान हृदयसे निकलके बाह्य देशमें संचरित होताहै ॥ १६ ॥

तस्मिन्प्रसर्पत्यंगेषुसर्वासंविदुदेतिहि ॥ दृष्टत्वात्प्रैतिचित्ताख्यमंतर्लीनजगद्भ्रमम् ॥ १७ ॥ ईक्षणादिषुरंध्रेषुप्रसरंतीबहिर्मयम् ॥ नानाकारविकाराढ्यंरूपमात्मनिपश्यति ॥ १८ ॥ स्थिरत्वात्तत्तथैवाथजाग्रदित्यवगम्यते ॥ जाग्रत्क्रमइतिप्रोक्तःसुषुप्तादिक्रमंशृणु ॥ १९ ॥ मनसाकर्मणावाचायदाक्षुभ्यतिनोवपुः ॥ शांतात्मातिष्ठतिस्वस्थोजीवधातुस्तदात्वसौ ॥ २० ॥

अर्थ—उस जीव चेतनके अन्तर्गत नाडियोंमें संचरित होनेपर सब संवित् उदयको प्राप्त होतीहै और दृष्ट होनेसे अन्तरमें लीन जगत्के भ्रमसहित चित्त दशाको प्राप्त होती है अर्थात् स्वप्न देखती है ॥ १७ ॥ नेत्रआदि छिद्रोंके द्वारा बाहर फैलती हुई जीव संवित् नानाप्रकारके विकारोंसे पूर्णरूप अपने आत्माहीमें देखती है ॥ १८ ॥ स्थिर होनेसे

यह उसीप्रकार जाग्रत् कहा जाताहै इसप्रकार जाग्रत्का क्रम तुमसे कहदिया अब तुम सुषुप्ति आदिके क्रमको सुनो ॥१९॥ मन कर्म वाणीसे जब शरीर क्षुभित नहीं होता और जब यह जीव चेतन शान्तात्मा स्वस्थ स्थित रहताहै ॥२०॥

समतामागतैर्वातैःक्षोभ्यतेनहृदंबरे ॥ निर्वातसदनेदीपोयथालोकैककारकः ॥२१॥ ततःसरतिनांगेषु संवित्क्षुभ्यतितेनना ॥ नचेक्षणादीन्यायातिरंध्राण्यायातिनोबहिः ॥ २२ ॥ जीवांतरेवस्फुरतितैलसंवित्यथातिले ॥ शीतसंविद्धिमइवस्नेहसंवित्यथाघृते ॥ २३ ॥ जीवाकाराकलाकाचिच्चित्तिःस्वच्छतया तनि ॥ दशामायातिसौषुप्तिंसौम्यवातांविचेतनाम् ॥ २४ ॥

अर्थ—समताको प्राप्त प्राणवायुसे हृदयाकाशमें जीव चेतन क्षुभित नहीं होता, किंतु निर्वातस्थानमें स्थित दीपके सदृश केवल प्रकाशमात्र कार्यका करनेवाला रहता है ॥ २१ ॥ ऐसा होनेसे अंगकी सब नाडियोंमें जीवका प्रसार नहीं होता और इससे संवित्भी क्षोभको नहीं प्राप्त होती और न वह नेत्र आदि छिद्रोंके बाहर भीतर आती जाती है ॥ २२ ॥ जैसे तिलमें तैल संवित्, हिममें शीत संवित् घृतमें स्नेह संवित् है ऐसेही जीवके भीतर जीव संवित् स्फुरती है ॥ २३ ॥ और पूर्वोक्त जीवाकार जो कोई जीव चित्है वह उपाधिके लयसे स्वच्छताके कारण ब्रह्मात्मामें सौम्य प्राण सहित पृथक् चेतनसे शून्य सुषुप्ति दशाको प्राप्त होती है ॥ २४ ॥

ज्ञात्वत्वचित्युपरतेसाम्यंव्यवहरन्नपि ॥ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तेषुसंबुद्धस्तुर्यवान्मृतः ॥ २५ ॥ सुषुप्तेसौम्यतांयातैःप्राणैःसंचाल्यतेयदा ॥ सजीवधातुःसासंवित्तत्श्चित्ततयोदिता ॥ २६ ॥ स्वांतःसंस्थजगज्जालंभावाभावैःक्रमभ्रमैः ॥ पश्यतिस्वांतरेवाशुस्फारंबीजइवद्रुमम् ॥ २७ ॥ जीवधातुर्यदावातैः किंचित्संक्षुभ्यतेभृशम् ॥ ततोस्म्यहंसुप्तइतिपश्यत्यात्मनिखेगतिम् ॥ २८ ॥

अर्थ—जब चित्त सब व्यवहारोंसे उपरम दशाको प्राप्त होताहै उससमय शास्त्रसे समताको जानकर, विचार और एकाग्रतारूप अपने प्रयत्नोंसे ब्रह्मके साक्षात्कारको प्राप्त करके योगीपुरुष जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति नामसे प्रसिद्ध पूर्वोक्त भूमिकाके भेदोंमें व्यवहार करताहो वा समाधिनिष्ठहो परन्तु बोधकी दृढतासे सदा वह तुरीय अवस्थावाला कहा जाताहै ॥ २५ ॥ सुषुप्तिदशामें सौम्यताको प्राप्त प्राणोंसे उपलक्षित जीव चेतन जब प्राणोंसे संचालित होताहै उससमय वह संवित् भोजक अदृष्टकी परिपाकतासे चित्तरूपसे उदित होताहै ॥ २६ ॥ उससमय जैसे योगी बीजमें स्थित विस्तारयुक्त वृक्षको अपनी योगशक्तिसे पृथक् करके देखताहै ऐसेही भाव अभावरूप क्रमिक भ्रमोंसे जगत्के समूहको अपने अन्तःकरणमें शीघ्र देखताहै ॥ २७ ॥ और जब प्राणवायुके द्वारा जीवचेतन किंचित् संक्षुभित होताहै तब मैं हुं ऐसा अनुभव करताहै और जब अधिक संक्षुब्ध होताहै तब आकाशमें गमनका अनुभव करताहै ॥ २८ ॥

यदांभसाप्लाव्यतेसौतदावार्यादिसंभ्रमम् ॥ अंतरेवानुभवतिस्वमोदंकुसुमंयथा ॥ २९ ॥ यदापित्तादिनाक्रांतस्तदाग्रीष्मादिसंभ्रमम् ॥ अंतरेवानुभवतिस्फारंबहिरिवाखिलम् ॥ ३० ॥ रक्तापूर्णोरक्तवर्णान्देशकालान्बहिर्यथा ॥ पश्यत्यनुभवात्मत्वात्तत्रैवचनिमज्जति ॥ ३१ ॥ सेवतेवासनांयांतांसोंतः पश्यतिनिद्रितः ॥ पवनक्षोभितोरंध्रैर्बहिरक्षादिभिर्यथा ॥ ३२ ॥

अर्थ—और जब नाडीके अंतर्गत श्लेष्मके जलसे पूर्ण होताहै तब जल आदिके संभ्रमको अपने २ अन्तःकरणमेंही ऐसे अनुभव करताहै जैसे पुष्प अपने भीतर सुगन्धको ॥ २९ ॥ और जब जीव चेतन पित्त आदिसे आक्रांत होताहै तब ग्रीष्म आदिके संपूर्ण संभ्रमको अपने अन्तःकरणमेंही बाह्यके समान अनुभव करताहै ॥ ३० ॥ और रक्तसे पूर्ण होनेपर बाह्यके समान रक्तवर्ण गैरिक आदि देश और कालको देखताहै और अनुभव स्वरूप होनेसे निमग्न होजाताहै ॥ ३१ ॥ जैसे प्राणवायुसे क्षोभित नेत्रादिके छिद्रोंके बाह्य पदार्थोंको देखताहै ऐसेही जिस वासनाकी सेवा करताहै निद्रामें उसीको देखताहै ॥ ३२ ॥

अनाक्रांतेंद्रियच्छिद्रोयतःक्षुब्धोंतरेवसः ॥ संविदानुभवत्याशुसस्वप्नइतिकथ्यते ॥३३॥ समाक्रांतेंद्रियच्छिद्रोयःक्षुब्धोवायुनायदा ॥ परिपश्यतितज्जाग्रदित्याहुर्मुनिसत्तमाः ॥३४॥ इतिविदितवतात्वयाधुनांप्रथितमहामतिनेहसत्यताख्या ॥ असतिजगतिनैवभावनीयामृतिहतिसंहतिदोषभावनीया ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ततुरीयस्वरूपविचारो नामैकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

अर्थ—नेत्र आदि इन्द्रियोंके छिद्रोंके आक्रमण किये विना अन्तःकरणमें क्षुब्ध होकर जो पदार्थोंको संवित्

अनुभव करती है उसको स्वप्न कहतेहैं ॥ ३३ ॥ जो प्राणी प्राणवायुसे क्षुब्ध होकरके बाह्य शब्द आदि विषयोंको देखताहै उस दर्शनको श्रेष्ठ मुनि जाग्रत् कहतेहैं ॥ ३४ ॥ हे रामजी ! इसप्रकार ज्ञानवान् महामति तुम हम असत्य जगत्में सत्यता बुद्धि कदापि नहीं करना, क्योंकि जो दृष्टि आध्यात्मिक, आधिभौतिक और दैविक निमित्तोंसे मरणरूपहैं और उसके कारण और दोष उन सबको अवश्य देनेवालाहैं ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषुस्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे जाग्रत्स्वप्न सुपुप्ततुरीयस्वरूपविचारो नामैकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥

जो सत्यात्माका अवलम्बन नहीं करता उसके मनकीही भ्रांति यह विश्वहै और चित्तके सत्य आत्माके अवलंबन करनेसे यह विश्वभी आत्माही है इस विषयका वर्णन इस २० के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एतत्तेकथितंसर्वंमनोरूपनिरूपणम् ॥ मयाराघवनान्येनकेनचिनामहेतुना॥१॥ दृढनिश्चयवच्चेतोयद्भावयतिभूरिशः ॥ तत्तांयात्यनलाश्लेषादयःपिंडोग्नितामिव ॥ २ ॥ भावाभावग्रहोत्सर्गदृशश्चेतनकल्पिताः ॥ नासत्यानापिसत्यास्तामनश्चापलकारिताः ॥ ३ ॥ मनोमोहेतुकर्तृस्यात्कारणंचजगत्स्थितेः ॥ विश्वरूपतयेदंतनोतिमलिनंमनः ॥ ४ ॥

अर्थ—हे राघव ! यह जो जाग्रत् आदिके स्वरूपका वर्णन तुमसे मैंने कियाहै यह केवल मनके यथार्थ स्वरूप बोध होनेके लिये कहाहै अन्य किसी प्रयोजनसे नहीं कहा ॥ १ ॥ दृढ निश्चयवाला चित्त जिस पदार्थकी अधिक भावना करताहै उसीका रूप ऐसेहो जाताहै जैसे अग्निके संबंधसे लोहका गोला अग्निरूपताको ॥ २ ॥ ऋ ॥ भाव, अभाव, ग्रहण, त्याग, इत्यादि दृष्टि सब चेतनसे कल्पितहैं वे दृष्टि सत्यरूपभी नहीं हैं और न असत्यरूपहै किंतु मनकी चपलतासे अनिर्वचनीय रूपहैं ॥ ३ ॥ व्यष्टिरूपसे भ्रांतिका कर्ता और समष्टिरूपसे जगत्की स्थितिका कारणभी है विश्वके कारणभूत अविद्या कलंकित यह मन इस जगत्का विस्तार करताहै ॥ ४ ॥

मनोहिपुरुषोनामतंनियोज्यशुभेपथि ॥ तज्जयेकांतसाध्याहिसर्वाजगतिभूतयः ॥ ५ ॥ पुरुषश्चेच्छरीरंस्यात्कथंशुक्रोमहामतिः ॥ अगमद्विविधाकारंजन्मांतरशतभ्रमम् ॥ ६ ॥ अतश्चित्तंहिपुरुषःशरीरंचेत्यमेवहि ॥ यन्मयंचभवत्येतत्तदवाप्नोत्यसंशयम् ॥ ७ ॥ यदतुच्छमनायासमनुपाधिगतभ्रमम् ॥ यत्नात्तदनुसंधानंकुरुतत्तामवाप्स्यसि ॥ ८ ॥ अभिपततिमनःस्थितंशरीरंनतुवपुराचरितंमनःप्रयाति॥ अभिपततुतवात्रतेनसत्यंसुभगमनःप्रजहात्वसत्यमन्यत् ॥ ९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे मनोरूपवर्णनं नाम विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥

अर्थ—मनही पुरुषहै उसको शुभमार्गमें लगाना उचितहै क्योंकि मनके जयसे सम्पूर्ण जगत्की विभूति सर्वथा साध्यहै ॥ ५ ॥ यदि शरीर पुरुष होता तो महाबुद्धिमान् शुक्राचार्य विविध आकारवाले सैकडों जन्मके भ्रमको कैसे प्राप्त होते ॥ ६ ॥ इसलिये मनही पुरुषहै और शरीर भित्ति आदिके तुल्य सर्वथा विषयरूपहै जिस आकारमय यह मन होताहै उसको निश्चयरूपसे प्राप्त होताहै ॥ ७ ॥ जो महान्‌है, और अपना स्वरूप होनेसे अन्यत्र गमनके परिश्रम विना साध्यहै तथा उपाधि तथा भ्रमसे शून्यहै उसीका ध्यान तुम करो और तद्रूपता तुमको प्राप्त होगी ॥ ८ ॥ जहां २ मन स्थितहै वहां २ शरीर अवश्य जाताहै परन्तु जिस देशमें शरीरहै वहां नियमपूर्वक सर्वदा मन नहीं जाता इसलिये हे शुभरामजी ! जो सत्य आत्मवस्तुहै उसीकी प्राप्तिमें तुमारा मन लगे और असत्य देह इन्द्रिय आदि भ्रमोंको त्यागे ॥ ९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे मनोनिरूपणं नाम विंशः सर्गः ॥ २० ॥

एकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

कल्पना करनेवालेके अभावसे विशुद्ध ब्रह्ममें मनकी सिद्धि नहीं होसकती; और अविद्यासे अविशुद्धमें मनकी सिद्धि होनेसे नानाप्रकारके मतका विकल्प हुआ इस विषयका वर्णन इस २१ के सर्गमें किया गयाहै ॥

श्रीरामउवाच ॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञसंशयोयोमहानयम् ॥ हृदिव्यावर्त्ततेलोलःकल्लोलइवसागरे ॥ १ ॥ दिक्कालाद्यनवच्छिन्नेततेनित्येनिरामये ॥ म्लानासंविन्मनोनाम्नीकुतःकेयमुपस्थिता ॥ २ ॥ यस्माद न्यन्नामास्तिनभूतंनभविष्यति ॥ कुतःकीदृक्कथंतत्रकलंकस्तस्यविद्यते ॥ ३ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ साधुरामत्वयाप्रोक्तंजातातेमोक्षभागिनी ॥ मतिरुत्तमनिष्यंदानंदनस्येवमंजरी ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—हे भगवन् ! हे सर्वधर्मज्ञ ! मेरे हृदयमें एक महान् संशय ऐसे चंचलतासे वर्तमानहै जैसे समुद्रमें तरंग ॥ १ ॥ वह यह हैं कि देशकाल आदिसे अनवच्छिन्न; व्यापक निरामय ब्रह्ममें विषय आकारसे कलुषित यह मन नामकी संवित् किसकारणसे और किसस्वरूपसे आके उपस्थित हुई है ॥ २ ॥ क्योंकि उस ब्रह्ममें अविद्यादि कलंक तीनोंकालमें नहीं तब उसमें किसकारणसे और किसप्रकारका मनहै ? ॥ ३ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! तुमने बहुत अच्छा कहा तुमारी बुद्धि अब मोक्षकी भागिनी ऐसी होगई है जैसे उत्तम प्रवाहवाली नन्दनवनकी लता ॥ ४ ॥

पूर्वापरविचारार्थतत्परेयंमतिस्तव ॥ संप्राप्स्यसिपदंप्रोच्चैर्यत्प्राप्तंशंकरादिभिः ॥ ५ ॥ प्रश्नस्यास्यतु हेरामनकालस्तवसंप्रति ॥ सिद्धांतःकथ्यतेयत्रतत्रायंप्रश्नउच्यते ॥ ६ ॥ सिद्धांतकालेभवताप्रष्टव्यो ह्यमिदंपरम् ॥ करामलकवत्तेनसिद्धांतस्तेभविष्यति ॥ ७ ॥ सिद्धांतकालेप्रश्नोक्तिरेषातवविराजते ॥ प्रावृषीवर्हिकेकोक्तिर्युक्ताशरदिहंसगीः ॥ ८ ॥

अर्थ—पूर्वापरके विचारमें यह तुमारी बुद्धि तत्परहै इससे उस उच्चपदको तुम पाओगे जो शंकर आदिने पायाहै ॥ ५ ॥ परन्तु इस तुमारे प्रश्नका इससमय काल नहीं है जहां (निर्वाण प्रकरणमें) सिद्धान्त कहेंगे वहांही यह तुमारा प्रश्न कहा जायगा ॥ ६ ॥ सिद्धान्तकाल अर्थात् शुद्धआत्माके अनुभव कालमें यह तुम मुझसे पूंछना, उससमय हस्तगत आमलकके समान सिद्धान्त पदार्थ तुमको होजायगा, इससमय तो यही पूंछना चाहिये कि अनुभव विरुद्ध आत्माकी शुद्धि कैसे है और अनुभव विरुद्ध शुद्धको अंगीकार करके उसमें मलिनता कैसे आई यह प्रश्न नहीं करना चाहिये ॥ ७ ॥ सिद्धान्तकालमेंही यह तुमारी प्रश्नोक्ति ऐसे शोभित होती है जैसे वर्षाकालमें मयूरकी और शरदृतुमें हंसकी वाणी ॥ ८ ॥

सहजोनीलिमाव्योम्निशोभतेप्रावृषःक्षये ॥ प्रावृषित्वतनूदग्रपयोदपटलोत्थितः ॥ ९ ॥ अयंप्रकृतआरब्धोमनोनिर्णयउत्तमः ॥ यद्वशाज्जनताजन्मतदाकर्णयसुव्रत ॥ १० ॥ एवंप्रकृतिरूपेयंमनोमननधर्मिणी ॥ कर्मेतिरामनिर्णीतंसर्वैरेवमुमुक्षुभिः ॥ ११ ॥ शृणुदर्शनभेदेनतन्नामामिमताकृतिम् ॥ वाग्मिनांवदतांयातंचित्राभिःशास्त्रदृष्टिभिः ॥ १२ ॥

अर्थ—आकाशकी सहज नीलता वर्षाकालके अंतमेंही शोभित होती है और वर्षाकालमें तो विशाल मेघके पटलका उदय शोभता है ॥ ९ ॥ हे सुव्रत हे रामजी ! यह जो प्रकृत उत्तम मनका निर्णय आरम्भ किया है जिस मनके कारण सब जनसमूहका जन्म होताहै उसको तुम सुनो ॥ १० ॥ इसप्रकार पूर्वोक्त रीतिसे अज्ञके अनुभवसेभी मलिनताके सिद्ध होनेसे उसके उपहित चित्तको प्रकृति कहतेहैं मनन धर्मिणी होनेसे मन कहतेहैं और कर्मेन्द्रियके व्यापारोंके करनेसे मुमुक्षुओंने कर्मभी इसीको निर्णित किया है बडे २ वावदूक वादियोंकी चित्रविचित्र शास्त्रदृष्टियोंसे दर्शन भेदसे उसके अनेक नाम तथा आकारको सुनो ॥ ११ ॥ १२ ॥

यंयंभावमुपादत्तेमनोमननचंचलम् ॥ तत्तामेतिघनामोदमंतस्थःपवनोयथा ॥ १३ ॥ ततस्तमेवनिर्णीयतमेवचविकल्पयन् ॥ अंतःस्थयारंजनयारंजयन्स्वामहंकृतिम् ॥ १४ ॥ तन्निश्चयमुपादायतत्रैवरससूच्छति ॥ यन्मयत्वंशरीरेतुततोबुद्धींद्रियेषुच ॥ १५ ॥ यन्मयंहिमनोरामदेहस्तदनुतद्वशः ॥ तच्चायातिगंधांतःपवनोगंधतामिव ॥ १६ ॥

अर्थ—जिस २ वासनासे जैसे भावको मननशक्तिसे चंचल यह मन ग्रहण करताहै उसका रूप ऐसे होजाताहै जैसे सौगन्ध्य वा दौर्गन्ध्यमें स्थितपवन ॥ १३ ॥ इसी कारणसे अपनी २ वासनासे कल्पित सिद्धान्तकी युक्तियोंसे निर्णय करके, उसीकी कल्पना करते हुये अपने अन्तःकरणमें स्थित जो अपने कल्पित अर्थमें राग है उससे

अपने अहंकारको उसीका रूप बताते हुये ॥ १४ ॥ वैसाही निश्चय करके उसी भावनाके अनुसार रसके आस्वादन चमत्कारको वह प्राप्त होताहै जैसा आकार शरीरमें होताहै वैसाही बुद्धि इन्द्रियोंमें होताहै ॥ १५ ॥ हे राम ! यन्मय यह मन होताहै उसके पश्चात् उसके वशमें रहनेवाला शरीरभी वैसाही ऐसे होजाताहै जैसे गन्धके अन्तवर्ती पवन गन्धरूपताको ॥ १६ ॥

बुद्धींद्रियेषुवल्गत्सुकर्मेंद्रियगणस्ततः ॥ स्फुरतिस्वतएवोर्वीरजोलोलइवानिले ॥ १७ ॥ कर्मेंद्रियगणेक्षुब्धेस्वशक्तिप्रणयत्यलम् ॥ कर्मनिष्पद्यतेस्फारंपांसुजालमिवानिले ॥ १८ ॥ एवंहिमनसःकर्मकर्मबीजंमनःस्मृतम् ॥ अभिन्नैवतयोःसत्तायथाकुसुमगंधयोः ॥ १९ ॥ यादृशंभावमादत्तेदृढाभ्यासवशान्मनः ॥ तथास्पंदाख्यकर्माख्यप्रथाशाखाविमुंचति ॥ २० ॥

अर्थ—ज्ञानेन्द्रियोंके अपने विषयमें आविर्भूत होनेपर कर्मेन्द्रियोंका गण स्वतः ऐसे स्फुरताहै जैसे रज (धूलि) से चंचल पवनमें धूलिरूपा पृथिवी ॥ १७ ॥ कर्मेन्द्रियगणके संक्षुब्ध होनेपर और अपनी क्रियाशक्तिके प्रकट करनेपर विशाल कर्म ऐसे सिद्ध होताहै जैसे वायुमें धूलिका समूह ॥ १८ ॥ इसप्रकार मनका बीज कर्म है और कर्मका बीज मन कहागयाहै मन और कर्म इन दोनोंकी सत्ता ऐसे अभिन्न है जैसे पुष्प और उसके सुगन्धकी ॥ १९ ॥ दृढ वासनाके अभ्यासके वशसे मन जैसा भाव ग्रहण करताहै वैसाही स्पन्द नाम तथा कर्म नामकी शाखा प्रकट होती है ॥ २० ॥

तथाक्रियांतत्फलतांनिष्पादयतिचादरात् ॥ ततस्तमेवचास्वादमनुभूयाशुबद्धयते ॥ २१ ॥ यंयंभावमुपादत्तेतंतंवस्त्विवतितिविंदति ॥ तत्तच्छ्रेयोन्यन्नास्तीतिनिश्चयोस्यचजायते ॥ २२ ॥ धर्मार्थकाममोक्षार्थंप्रयत्ततेसदैवहि ॥ मनांसिदृढभिन्नानिप्रतिपत्त्यास्वयैवच ॥ २३ ॥ मनोवैकापिलानांतुप्रतिपत्तिनिजामलम् ॥ उररीकृत्यनिर्णीयकल्पिताःशास्त्रदृष्टयः ॥ २४ ॥

अर्थ—और यही मन क्रिया तथा उसके फलको आधारसे सिद्ध करताहै और उसके अनन्तर उस कर्मफलका आस्वाद लेताहै और उसके पश्चात् शीघ्र बन्धनमें आजाताहै ॥ २१ ॥ जिस २ भावको ग्रहण करताहै वह वस्तुहै ऐसा अपने मनमें जानताहै, और वही २ कल्याणकारी है और नहीं है ऐसा निश्चय इसके हृदयमें उत्पन्न होताहै ॥ २२ ॥ अपनी २ वासनासे दृढतासे भिन्न अपने २ निश्चयसे धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षके लिये सदा प्रयत्न करतेहैं ॥ २३ ॥ इन वादियोंमेंसे कपिलमतके अनुयायी विवेकी होनेसे असंग चिन्मात्र "त्वम्" पदार्थ (जीव वा पुरूष) को अपने निश्चयसे निर्मल जानतेहैं; और तत्पदार्थ विषयके श्रुतिका अवलम्बन करनेसे व्यामोहके कारण; अपनी बुद्धिसे सुख दुःख मोहात्मक तथा जडजगत्का उपादान कारण वैसाही सुख दुःख मोहात्मक जड तथा गुणात्मक प्रधान होना चाहिये ऐसा अंगीकार करके, और पुनः २ उसीका आस्वादन करके वही तत्वहै ऐसा निश्चय करके उसी प्रकार शास्त्रकी दृष्टि कल्पितहैं ॥ २४ ॥

मोक्षेतुनान्यथाप्राप्तिरितिभावितचेतसः ॥ स्वांदृष्टिंप्रतिबिंबंतिस्थिताःस्वनियमभ्रमैः ॥ २५ ॥ वेदांतवादिनोबुद्धयाब्रह्मेदमितिरूढया ॥ मुक्तिःशमदमोपेतानिर्णीयपरिकल्पिता ॥ २६ ॥ मुक्तौतुनान्यथाप्राप्तिरितिभावितचेतसः ॥ स्वांदृष्टिंप्रविवृण्वंतिस्वैरेवनियमभ्रमैः ॥ २७ ॥ विज्ञानवादिनोबुद्धया स्फुरत्स्वभ्रमपूरया ॥ मुक्तिःशमदमोपेतानिर्णीयपरिकल्पिता ॥ २८ ॥

अर्थ—निज कथित उपायके विना मोक्षकी प्राप्ति किसीको नहीं होती ऐसा निश्चय किये हुये अपने कल्पित नियमोंके भ्रमसे और भ्रममें स्थित अन्य उपायोंसे निवृत्त होके ग्रन्थ रचना आदिके द्वारा अपने सिद्धान्तको प्रकाश करते हुये अन्य लोगोंकी बुद्धियोंमें उसे प्रतिबिम्बित करतेहैं ॥ २५ ॥ और श्रुतिप्रमाणसे अध्यारोप अपवाद न्यायसे वेदान्तवादी कहतेहैं यह सब जगत ब्रह्मही है उससे भिन्न अणुमात्रभी नहीं है इस रूढतासे शमदमादि द्वारा सबसे उत्तम मुक्ति निर्णय करके कल्पित की गई है ॥ २६ ॥ और इसके विरूद्ध मुक्तिकी प्राप्ति नहीं होती ऐसे दृढ चित्तवाले वेदान्तवादी अपने नियमके भ्रमोंसे अपने सिद्धान्तको ग्रन्थ आदि रचना द्वारा दूसरोंपर प्रकट करतेहैं ॥ २७ ॥ और विज्ञानवादी स्फुरते हुये भ्रमके प्रवाहरूप बुद्धिसे यह निर्णय करके कल्पित कियाहै कि शमदमसे मुक्ति प्राप्ति होती है ॥ २८ ॥

मुक्तौतुनान्यथाप्राप्तिरितिभावितचेतसः ॥ स्वांदृष्टिंप्रविवृण्वंतिस्वैरेवनियमभ्रमैः ॥ २९ ॥ आर्हताभिरन्यैश्चस्वयाभिमतयेच्छया ॥ चित्राश्चित्रसमाचारैःकल्पिताःशास्त्रदृष्टयः ॥ ३० ॥ निर्निमित्तोन्थ

सौम्यांबुबुद्बुदौघैरिवोत्थितैः ॥ स्वनिश्चितैरीतिप्रौढानानाकाराहिरीतयः ॥ ३१ ॥ सर्वासामेवचैता सांरीतीनामेवमाकरः ॥ मनोनाममहाबाहोमणीनामिवसागरः ॥ ३२ ॥

अर्थ—इसके विरुद्ध मुक्तिकी प्राप्ति नहीं होती ऐसा निश्चय करके अपने नियमोंके क्रमोंसे अपने सिद्धान्तको ग्रंथ आदिकी रचनाद्वारा प्रकाश करतेहैं ॥ २९ ॥ और आर्हत (जैन) आदि तथा अन्यवादी गणने अपनी अभिमत इच्छासे तथा चित्रविचित्र विवसन (दिगंबरता) और भिक्षाचर्या आदि आचारोंसे शास्त्रदृष्टियोंकी कल्पना की है ॥ ३० ॥ जैसे बिना निमित्त शांत जलमें बुद्बुदोंके समूह निकलतेहैं ऐसेही अकारण अविर्भूत अपने २ निश्चयसे ये नानाप्रकारकी शास्त्रकी रीतियां और हुई हैं ॥ ३१ ॥ हे महाबाहो रामजी ! इन सब रीतियोंका मन ऐसे आकर (खानि) है जैसे सब मणियोंका समुद्र ॥ ३२ ॥

ननिंबेक्षूकटुस्वादूशीतोष्णौनेंदुपावकौ ॥ यद्यथापरमाभ्यस्तमुपलब्धंतथैवतत् ॥ ३३ ॥ यस्त्वकृत्रिम आनंदस्तदर्थंप्रयतैर्नरैः ॥ मनस्तन्मयतांनेयंयेनासौसमवाप्यते ॥ ३४ ॥ दृश्यंसंपरिहिंभंस्वंतुच्छंपरिहरन्मनः ॥ तज्जाभ्यांसुखदुःखाभ्यांनावश्यंपरिकृष्यते ॥ ३५ ॥ अपवित्रमसद्रूपंमोहनंभयकारणम् ॥ दृश्यमाभासमाभोगिबंधंमाभावयानघ ॥ ३६ ॥

अर्थ—न तो निम्ब कटु है और न इक्षु (ईख) स्वाद है, ऐसेही न चंद्रमा शीत है न अग्नि उष्ण है किंतु भोग करानेवाले अदृष्टके फलकी उत्पत्तिपर्यन्त (चिरकालसे) जिसने जिस पदार्थमें जैसा अभ्यास कियाहै उसको वैसाही वह प्राप्त हुआहै इसी कारणसे चंद्रमण्डलमें तथा सूर्य और अग्नि आदिके मण्डलोंमें निवास करनेवाले देवताओंको शीत उष्ण आदिकी पीडा नहीं होती ॥ ३३ ॥ जो निरतिशय ब्रह्मानंद है उसकेलिये प्रयत्न करनेवाले मनुष्योंके चाहिये कि मनको ब्रह्ममय करें जिससे ब्रह्मकी प्राप्ति होती है ॥ ३४ ॥ अच्छी रीतिसे बालकके समान स्नेह करनेवाला अपना मन तुच्छ दृश्य पदार्थको त्यागता हुआ दृश्यजनित सुख तथा दुःखसे आकर्षित नहीं होता ॥ ३५ ॥ हे पापरहित रामजी ! अपवित्र, असत्रूप, अज्ञानदायक, भयका हेतु, विना विचारे विशालरूप और बंधकारक इस दृश्यकी भावना तुम मत करो ॥ ३६ ॥

मायैपासाह्यविद्यैपाभावनैपाभयावहा ॥ संविदस्तन्मयत्वंयत्तत्कर्मेतिविदुर्बुधाः ॥ ३७ ॥ दृष्ट्वादृश्यैकतानत्वंविद्धित्वंमोहनंमनः ॥ प्रमार्जयैवतन्मिथ्यामहामलिनकर्दमम् ॥ ३८ ॥ दृश्यतन्मयतायैपा स्वभावस्थानुभूयते ॥ संसारमदिरासेयमविद्येत्युच्यतेबुधैः ॥ ३९ ॥ अनयोपहतोलोकःकल्याणंनाधिगच्छति ॥ भास्वरंतापनालोकंपटलांधेक्षणोयथा ॥ ४० ॥

अर्थ—संवित् (ज्ञान) का जो दृश्यमय होनाहै उसीको पूर्वोक्त रीतिसे बंधनकारक कर्म बुद्धिमान् जन कहतेहैं और वही माया तथा अविद्या है और यही भयदायिनी भावनाहै ॥ ३७ ॥ मनको केवल दृश्यमय देखके तुम यह जानो यही मोहित (अज्ञानी) करनेवाला है, इसलिये महा मलिन कर्दमरूप इस मिथ्या मनको शुद्ध करो ॥ ३८ ॥ स्वभावमें स्थित जो दृश्यमें तन्मयता अनुभूत होती है यही संसाररूपी मदिरा है और इस दृश्यरूपताको पण्डितजन अविद्या कहतेहैं ॥ ३९ ॥ इससे मारा हुआ संसार कल्याणको ऐसे नहीं प्राप्त होता जैसे मेघपटलसे नेत्रान्ध सूर्यके प्रकाशमान प्रकाशको नहीं देखता ॥ ४० ॥

स्वयमुत्पद्यतेसाचसंकल्पाद्व्योमवृक्षवत् ॥ असंकल्पनमात्रेणभानायांमहामते ॥ ४१ ॥ क्षीणायांस्वरसादेवविमर्शेनविलासिना ॥ असंसंगःपदार्थेषुसर्वेषुस्थिरतांगतः ॥ ४२ ॥ सत्यदृष्टौप्रपन्नायामसत्येक्षयमागते ॥ निर्विकल्पचिदच्छात्मासआत्मासमवाप्यते ॥ ४३ ॥ नसत्तायस्यनासत्तानसुखंनापि दुःखिता ॥ केवलेकेवलीभावोयस्यांतरुपलभ्यते ॥ ४४ ॥

अर्थ—यह अविद्या संकल्प मात्रसे आकाशके वृक्षके तुल्य आपही उत्पन्न होती है, और हे महामते ! असंकल्प मात्रसे भावनाके ॥ ४१ ॥ क्षीण होनेपर अपने स्वभावसेही समाधिकी दृढतासे श्रवण मननरूप विचारसे संपूर्ण पदार्थोंमें संगका अभाव स्थिर होजाताहै ॥ ४२ ॥ सत्य दृष्टि प्राप्त होनेपर तथा असत्यका क्षय होनेपर स्वच्छ स्वभाव परमार्थ तथा सत्यरूप आत्मा प्राप्त होताहै ॥ ४३ ॥ जिस परमात्मामें व्यक्तता वा अव्यक्तता नहीं हैं तथा जिसमें विषयजनित सुख दुःखभी नहीं है किंतु केवल शुद्ध स्वभाव रूप अंतर्मेंही प्राप्त होताहै ॥ ४४ ॥

अभव्ययाभावनयानचित्तेंद्रियदृष्टिभिः ॥ आत्मनोनन्यभूताभिरपियःपरिवर्जितः ॥ ४५ ॥ वासनाभिरनंताभिर्व्योमेवघनराजिभिः ॥ संदिग्धायांयथारज्ज्वांसर्पतत्त्वंतथैवाहि ॥ ४६ ॥ चिदाकाशात्मनाव

धस्त्वबंधेनैवकल्पितः ॥ कल्पितंकल्पितंवस्तुप्रतिकल्पनयान्यथा ॥ ४७ ॥ तदेवान्यत्वमादत्तेखमहोरात्रयोरिव ॥ यदतुच्छमनायासमनुपाधिगतभ्रमम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—अनर्थके हेतुभूत देह इन्द्रिय आदिमें अहंभावनासे वह आत्मा प्राप्त नहीं होता, और आत्माका शरीर आदिके साथ जो अभेदका अभ्यासहै उससे वर्जित ॥ ४५ ॥ तथा मेघराशियोंसे आकाशके समान अनन्त वासनाओंसे जो वर्जितहै उसको वह सत्यरूप आत्मा प्राप्त होताहै जैसे रज्जुमें सन्देह होनेसे सर्पका भान होताहै ॥ ४६ ॥ ऐसेही कल्पित २ वस्तुको अन्यथा कल्पना करनेसे बन्धरहित चिदाकाशने अपने आत्मामेंही बन्धकी कल्पना की है ॥ ४७ ॥ जैसे रात्रि तथा दिनमें आकाश अन्य २ रूप धारण करताहै ऐसेही वह आत्मा भिन्न २ रूप धारण करताहै जो महान् स्वभाव सिद्ध, उपाधि और भ्रमसे रहित ॥ ४८ ॥

तत्तत्कल्पनयातीतंतत्सुखायैवकल्पते ॥ शून्यएवकुसूलेतुसिंहोस्तीतिभयंयथा ॥ ४९ ॥ शून्यएवशरीरेंतर्बद्धोस्मीतिभयंतथा ॥ शून्यएवकुसूलेतुप्रेक्ष्यसिंहोनलभ्यते ॥ ५० ॥ तथासंसारबंधार्थःप्रेक्षितोसौनलभ्यते ॥ इदंजगदयंचाहमितिसंभ्रांतमुत्थितम् ॥ ५१ ॥ बालानांमध्यमेकालेछायावैतालिकीयथा ॥ कल्पनावशतोजंतोर्भावाभावशुभाशुभाः ॥ ५२ ॥

अर्थ—तथा उन २ कल्पनाओंसे अतीतहै वह आत्मा केवल सुखकेही लिये होताहै, जैसे शून्य कुसूल (ईंट आदिसे बने हुवे अन्न रखनेके स्थान) में सिंहहै ऐसा भय होताहै ॥ ४९ ॥ ऐसेही शून्य इस शरीरमें यह भय होताहै कि मैं बद्ध हुं, और शून्य कुसूलमें जैसे फिरके देखनेसे सिंह नहीं मिलता ऐसेही देखा हुआ आत्मा संसारके बंधनके लिये नहीं होता यह जगत् और यह शरीर आदि संघात संभ्रम ऐसेही प्रकटहै ॥ ५० ॥ ५१ ॥ जैसे वृक्षके मूल आदि स्थानोंकी गाढी छायामें बालकोंको वेतालकी छायाकी भ्रांति होती है, और कल्पनाहीके वशसे प्राणीको विभव, और दरिद्रता, तथा उनके अनुरूप शुभ अशुभ ॥ ५२ ॥

क्षणादसत्तामायांतिसत्तामपिपुनःक्षणात् ॥ मातैवगृहिणीभावगृहीताकंठलंबिनी ॥५३॥ करोतिगृहिणीकार्यंसुरतामंददासती ॥ कांतैवमातृभावेनगृहीताकंठलंबिनी ॥ ५४ ॥ नूनंविस्मारयत्येवमन्मथंमातृभावनात् ॥ भावानुसारिफलदंपदार्थौघमवेक्ष्यच ॥ ५५ ॥ नज्ञोनेहपदार्थेषुरूपमेकमुदीर्यते ॥ दृढभावनयाचेतोयद्यथाभावयत्यलम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—क्षणमेंही सत्ताको प्राप्त होते है और पुनः क्षणमें असत्ताको प्राप्त होते है स्त्रीभावसे गृहीत कण्ठमें लग्न माताही ॥ ५३ ॥ सुरतका आनन्द देती हुई स्त्रीका कार्य्य करती है, और स्त्रीही माताके भावसे गृहीत कण्ठमें लग्न ॥ ५४ ॥ मातृभावनासे निश्चय करके कामके विकारको विस्मृत करादेती है, इसलिये भावनाके अनुसार पदार्थोंके समूह फलको देते हैं ऐसा निश्चय करके ॥ ५५ ॥ ज्ञानीपुरूष पदार्थोंमें एकरूप नहीं देखता, और दृढभावनासे चित्त जैसा २ निश्चय करताहै ॥ ५६ ॥

तत्तत्फलंतदाकारंतावत्कालंप्रपश्यति ॥ नतदस्तिनयत्सत्यंनतदस्तिनयन्मृषा ॥ ५७ ॥ यद्यथायेनानिर्णीतंतत्तथातेनलक्ष्यते ॥ भाविताकाशमातंगंव्योमहस्तितयामनः ॥ ५८ ॥ व्योमकाननमातंगींव्योमस्थामनुधावति ॥ तस्मात्संकल्पमेवत्वंसर्वभावमयात्मकम् ॥ ५९ ॥ त्यजरामसुषुप्तस्थःस्वात्मनैवभवात्मनः ॥ मणिर्हिंप्रतिबिंबानांप्रतिषेधक्रियांप्रति ॥ ६० ॥

अर्थ—उन २ फलोंको और उन आकारोंको तबतक देखताहै, ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो संसारमें सत्य न हो और जो मिथ्या न हो ॥ ५७ ॥ जिसने जिस प्रकारका निर्णय कियाहै उससे उसी प्रकार यह जगत्का पदार्थ अनुभूत होताहै, जिस मनने आकाशको हस्तीभावसे कल्पित कियाहै वह कामातुर होके ॥ ५८ ॥ आकाशबन चारिणी अपने संकल्पसे कल्पित हस्थिनीके पीछे दौडताहै इसलिये हे रामजी ! सम्पूर्ण संकल्पमय पदार्थको तुम ॥ ५९ ॥ सुषुप्तपदमें स्थित होके त्यागो और अपने पारमार्थिक अद्वैतानन्दरूपसे स्थित होओ, और यदि इच्छारहित मणिके सदृश प्रतिबिम्बि तुममें प्रवेश करें तो कोई हानि नहीं क्योंकि प्रतिबिंबोंके निषेधके प्रति मणि ॥ ६० ॥

नशक्तोजडभावेननतुरामभवादृशः ॥ यदात्मनिजगद्रामतवेहप्रतिबिंबति ॥ ६१ ॥ तदवस्त्विवतिनिर्णीयमातेनागच्छरंजनम् ॥ तदेवसत्यमितिवाप्यभिन्नंपरमात्मनः ॥ ६२ ॥ मत्वांतस्त्वमनाद्यंतंभावयारमानमात्मना ॥ चेतसिप्रतिबिंबंतियेभावास्तवराघव ॥ रंजयंत्वन्यसक्तत्वान्मातेत्वांस्फटिकंयथा

॥ ६३ ॥ स्फटिकमननंयथाविशंतिप्रकटतयानचरंजनाविचित्रा ॥ इहहिविमननंतथाविशंहुप्रकटतया भुवनैपणाभवंतम् ॥ ६४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे विज्ञानवादो नामैकविंशःसर्गः ॥ २१ ॥

अर्थ—जड होनेके कारण चेतनरूप तुमारे सदृश समर्थ नहीं, और हे रामजी ! जो जगत् तुममें प्रतिबिम्बित होनेसे ॥ ६१ ॥ वह मिथ्याहै ऐसा निश्चय करके तुम उसका रूप मतहो, अथवा परमात्मासे अभिन्न वह परमार्थ रूप ब्रह्महीहै ॥ ६२ ॥ ऐसा अन्तःकरणमें निश्चय करके अनादि अनन्त आत्मस्वरूपको आत्मासे निश्चय करो, और हे रामजी ! जो जगत्के पदार्थ तुमारे चित्तमें प्रतिबिंबित होते हैं वे अन्य देहादि निष्ठ होनेसे तुमको रागयुक्त न करें ॥ ६३ ॥ हे रामजी ! प्रतिबिंबित पदार्थोंके विचित्र रंग रागसे रहित स्फटिकमें जैसे प्रकटरूपसे प्रवेश करतेहैं परन्तु यथार्थमें उनके रागकी विचित्रता उसमें कुछ नहीं है ऐसेही द्वैतपदार्थोंकी रागादि वासनासे शून्य तुमारे स्वरूपमें प्रारब्ध कर्मके भोगके उचित जगत्के व्यवहारकी इच्छा प्रकटरूपसे प्रवेश करे परन्तु उसकी विशेषता तुममें कुछ नहीं है ॥ ६४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे विज्ञानवादो नामैकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

इस २२ के सर्गमें प्रबल ज्ञानवान्के सब दोषोंका नाश; मनकी प्रसन्नता और विशुद्ध आत्माका दर्शन वर्णन किया गया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ जंतोःकृतविचारस्यविगलद्वृत्तिचेतसः ॥ मननंत्यजतोज्ञात्वाकिंचित्परिणतात्मनः ॥ १ ॥ दृश्यंसंत्यजतोहेयमुपादेयमुपेयुपः ॥ द्रष्टारंपश्यतोदृश्यमद्रष्टारमपश्यतः ॥ २ ॥ जागर्तव्येपरेतत्त्वेजागरूकस्वजीवतः ॥ सुप्तस्यघनसंमोहमयेसंसारवर्त्मनि ॥ ३ ॥ पर्यंतात्यंतवैराग्यात्सरसेष्वरसेष्वपि ॥ भोगेष्वाभोगरम्येषुविरक्तस्यनिराशिपः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! समाधिके अभ्याससे बाह्य तथा आभ्यन्तरीय जगत्के मननको मिथ्या जानकर त्याग करनेसे और किंचित् विशुद्धरूपसे परिणत तथा वृत्ति शून्य विचारवान् जीवका आत्मस्वभाव प्रसन्न होताहै ॥ १ ॥ पुनः अज्ञान भूमिका भेदरूप दृश्यको त्यागनेसे ज्ञानभूमिकामें प्राप्त; प्रमाताकोभी साक्षी चेतनसे वेद्य देखनेसे और भासक चेतनसे भिन्न किसी वस्तुको न देखनेसे स्वभाव प्रसन्न होताहै ॥ २ ॥ और जागने योग्य ब्रह्मतत्त्वके विषयमें आत्मरूप जागरूक होनेसे और घनीभूत मोहमय संसारके मार्गमें सोनेसे आत्मा प्रसन्न होताहै ॥ ३ ॥ ब्रह्माके सुखपर्यन्तमें वैराग्य होनेसे क्रमसे मुक्तिरूप रसवाले तथा उस रससे रहित भोगकालमें रमणीय भोगोंमेंभी इच्छा रहित होनेसे आत्मा प्रसन्न होताहै प्राणीका ॥ ४ ॥

व्रजत्यात्मांभसैकत्वंजीर्णजाड्येनभस्यलम् ॥ गलत्यपगतासंगेहिमापूरइवातपे ॥ ५ ॥ तरंगितासु कल्लोलजललोलांतरासुच ॥ शाम्यंतीष्वथतृष्णासुनदीष्विवघनात्यये ॥ ६ ॥ संसारवासनाजालेखगजालइवाखुना ॥ त्रोटितेहृदयग्रंथौश्लथेवैराग्यरंहसा ॥ ७ ॥ कातकंफलमासाद्ययथावारिप्रसीदति ॥ तथाविज्ञानवशतःस्वभावःसंप्रसीदति ॥ ८ ॥

अर्थ—आत्मरूप जलकेसाथ एकत्व प्राप्त होनेपर; अनादिकालसे अज्ञानाकाशके गलित होनेपर और घर्म (ग्रीष्म) में हिमके समूहके सदृश विषय संगके गलित होनेपर आत्मा प्रसन्न होताहै ॥ ५ ॥ तथा मनोरथरूप तरंगोंसे वृद्धिको प्राप्त गजके कल्लोलोंके समान चलायमान अभ्यंतरकी तृष्णाओंके वर्षाकालके अन्तमें नदियोंके समान शांत होनेपर आत्मा प्रसन्न होताहै ॥ ६ ॥ मूषकसे दांतेके द्वारा पक्षीके जालके सदृश संसाररूपी वासना

---

(१) स्वभाव प्रसन्न होताहै इत्यादि पदोंका संबंध ८ वे श्लोकसे हुआहै।

जालके टूटनेपर, और वैराग्यरूपी वेगसे हृदयकी ग्रन्थिके ढीली होनेपर आत्मा प्रसन्न होताहै ॥ ७ ॥ कतककी धूलिसे जैसे जल स्वच्छ होताहै ऐसेही ज्ञानके कारणसे मन प्रसन्न होताहै ॥ ८ ॥

नीरागंनिरुपासंगंनिर्द्वंद्वंनिरुपाश्रयम् ॥ विनिर्यातिमनोमोहाद्विहगःपंजरादिव ॥ ९ ॥ शांतेसंदेहदौरात्म्येगतकौतुकविभ्रमम् ॥ परिपूर्णांतरंचेतःपूर्णेंदुरिवराजते ॥ १० ॥ जनितोत्तमसौंदर्यादूरादस्तमयोन्नता ॥ समतोदेतिसर्वत्रशांतेवातइवार्णवे ॥ ११ ॥ अंधकारमयीमूकाजाड्यजर्जरितांतरा ॥ तनुत्वमेतिसंसारवासनेवोदयेक्षपा ॥ १२ ॥



अर्थ—कामसे रहित विषयके गुणोंके अनुसंधानसे शून्य भार्या आदि जनसमूहोंसे वर्जित, तथा वार २ भोगके लाभकी भूमिसे रहित मन अज्ञानसे ऐसे निकल जाताहै जैसे पंजरसे पक्षी ॥ ९ ॥ सन्देहरूपी दुष्टात्माके शांत होनेपर कौतुक तथा भ्रमसे रहित तथा अंतसे परिपूर्ण चित्त पूर्ण चंद्रमाके समान शोभित होताहै ॥ १० ॥ उत्तम सुन्दरताको उत्पन्न करनेहारी अवनतिसे दूर और उन्नतिरूप समदृष्टिता ऐसे उदय होती है जैसे वायुके शांत होनेपर समुद्रमें शांतता ॥ ११ ॥ सर्वथा अज्ञानरूप अन्धकारमय जडतासे अन्तःकरणको जर्जरीभूत करनेवाली वासना ऐसे शांत होती है जैसे सूर्यके उदयसे रात्रि ॥ १२ ॥

दृष्टचिद्भास्करामज्ञापद्मिनीपुण्यपल्लवा ॥ विकसत्यमलेद्योतात्प्रातर्द्यौरिवरूपिणी ॥ १३ ॥ प्रज्ञाहृदयहारिण्योभुवनाह्लादनक्षमाः ॥ सत्वलब्धाःप्रवर्द्धंतेसकलेंदोरिवांशवः ॥ १४ ॥ बहुनात्रकिमुक्तेन ज्ञातज्ञेयोमहामतिः ॥ नोदेतिनैवयात्यस्तमभूताकाशकोशवत् ॥ १५ ॥ विचारणापरिज्ञातस्वभावस्योदितात्मनः ॥ अनुकंप्याभवंतीहब्रह्मविष्ण्वद्रशंकराः ॥ १६ ॥

अर्थ—चित्तरूपी सूर्यको देखनेवाली, गुरू सेवा तथा श्रवण मनन समाधि अभ्यास रूप पुण्यवाली विवेकरूपा पद्मिनी हृदयरूपी तडागमें ऐसे विकसित होती है जैसे प्रातःकाल सूर्यके प्रकाशसे निर्मल आकाश ॥ १३ ॥ मनोहर, संसारको प्रसन्न करनेहारी सत्वगुणकी वृद्धिसे प्राप्त बुद्धि ऐसे बढती हैं जैसे संपूर्ण चंद्रमाके किरण ॥ १४ ॥ अधिक कहनेसे क्या प्रयोजन ज्ञात ज्ञेय (ब्रह्मवेत्ता) महाबुद्धिमान् प्राणी न तो उदय और न अस्त ऐसे होताहै जैसे वायु आदि भूतरहित आकाशकोश ॥ १५ ॥ विचारसे जिसका निज आत्मस्वरूप आविर्भूत हुआहै उसके अनुकंपनीय ब्रह्मा विष्णु इन्द्र औ शंकर आदिभी हैं क्योंकि सृष्टि तथा अधिकार आदिमें क्लेशही है ॥ १६ ॥

प्रकटाकारमप्यंतर्निरहंकारचेतसम् ॥ नाप्नुवंतिविकल्पास्तंमृगतृष्णाभिवैणकाः ॥ १७ ॥ तरंगवदिमेलोकाःप्रयांत्यायांतिचेतसः ॥ क्रीडीकुर्वंतिचाज्ञंतेनज्ञंमरणजन्मनी ॥ १८ ॥ आविर्भावतिरोभावौसंसारोनेतरक्रमः ॥ इतिताभ्यांसमालोकोरमतेसनिबध्यते ॥ १९ ॥ नजायतेनम्रियतेकुंभेकुंभनभोयथा ॥ भूषितेदूषितेवापिदेहेतद्वदिहात्मवान् ॥ २० ॥

अर्थ—प्रकटरूपसे आकारवान् होनेपरभी जिसका चित्त अहंकारसे रहितहै उसको सांसारिक विकल्प ऐसे नहीं प्राप्त होते जैसे मृगतृष्णाके जलपानको मृग ॥ १७ ॥ अपने चित्तकी वासनाके वशसे ये सब लोग उत्पन्न होते हैं और नष्ट होते हैं और जन्ममरण अज्ञानीको वशमें करलेते हैं और ज्ञानीको नहीं ॥ १८ ॥ आविर्भाव और तिरोभावरूप संसार अज्ञानी जीवमें होताहै न कि ज्ञानीको इसमें तत्वज्ञानी मायाकृत व्याघ्रादि कौतुकके सदृश उसमें रमण करताहै और अज्ञानी उसमें बन्ध जाताहै ॥ १९ ॥ जैसे घटके नष्ट वा उत्पन्न होनेसे घटाकाश न उत्पन्न होताहै और न नष्ट होताहै ऐसेही शरीरके भूषित वा दूषित होनेपर आत्मा न नष्ट होताहै और न उत्पन्न होताहै ॥ २० ॥

विवेकउदितेशीतेमिथ्याभ्रममरूदिता ॥ क्षीयतेवासनासाग्रेमृगतृष्णामरावित ॥ २१ ॥ कोहंकथमिदंचेतियावन्नप्रविचारितम् ॥ संसाराडंबरंतावदंधकारोपमंस्थितम् ॥ २२ ॥ मिथ्याभ्रमभरोद्भूतंशरीरंपदमापदाम् ॥ आत्मभावनयानेदंयःपश्यतिसपश्यति ॥ २३ ॥ देशकालवशोत्थानिनममेतिगतभ्रमम् ॥ शरीरेसुखदुःखानियःपश्यतिसपश्यति ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! शीतल विवेकके उदय होनेसे मिथ्या भ्रमरूपी मरुस्थलमें उदित वासना ऐसे क्षय हो-जाती हैं जैसे सम्मुख उदयको प्राप्त चंद्रमासहित सायंकालमें मरुस्थलकी मृगतृष्णा ॥ २१ ॥ मैं कौनहुं और संसार कैसे उत्पन्न हुआ यह बात जबतक नहीं विचारी गई तबतक अंधकारके सदृश यह मिथ्या संसारका आडम्बर प्राप्तहै ॥ २२ ॥ मिथ्या भ्रमके समूहरूपसे आविर्भूत, और सब आपत्तियोंका स्थान इस संसारको जो आत्मभावनासे सर्वथा निःसार देखताहै अर्थात् बाधित देखताहै वही देखताहै ॥ २३ ॥ देश और कालके वशसे उत्पन्न

आधिदैविक तथा आध्यात्मिक आदि सब दुःख शरीरको हैं न कि पूर्णानन्द आत्मस्वरूप मुझको ऐसा जो भ्रमरहित देखताहै वही देखताहै ॥ २४ ॥

अपारपर्यंतनभोदिक्कालादिक्रियान्वितम् ॥ अहमेवेतिसर्वत्रयःपश्यतिसपश्यति ॥ २५ ॥ बालाग्रलक्षभागात्तुकोटिशःपरिकल्पितात् ॥ अहंसूक्ष्मइतिव्यापीयःपश्यतिसपश्यति ॥ २६ ॥ आत्मानमितरञ्चैवदृश्यानित्याविभिन्नया ॥ सर्वंचिज्ज्योतिरेवेतियःपश्यतिसपश्यति ॥ २७ ॥ सर्वशक्तिरनंतात्मासर्वभावांतरस्थितः ॥ अद्वितीयश्चिदित्यंतर्यःपश्यतिसपश्यति ॥ २८ ॥

अर्थ—अपार दिक्काल आदि सहित और परिच्छिन्न प्रमाणवाली उत्पत्ति तथा चलन आदि क्रियासहित संसारमें सर्वत्र मैंही पूर्ण हुं ऐसा जो देखताहै वही देखताहै ॥ २५ ॥ जो सर्वत्रव्यापी होके यह देखताहै कि कोटिप्रकारसे कल्पित बालके अग्रके लाखवें भागसेभी मैं सूक्ष्म हुं वही देखताहै ॥ २६ ॥ जीवात्मा तथा उससे भिन्न यह संपूर्ण जगत् चित् ज्योतिमात्र है ऐसे जगत्को जो प्राणी उस परमात्मासे अभिन्न दृष्टिसे देखताहै वही देखताहै॥२७॥ सर्व शक्तिमान् और अनन्त, तथा अद्वितीय चिदात्माही सब पदार्थोंमें स्थित है ऐसा जो देखताहै वही देखताहै २८

आधिव्याधिभयोद्विग्नोजरामरणजन्मवान् ॥ देहोहमितियःप्राज्ञोनपश्यतिसपश्यति ॥ २९ ॥ तिर्यगूर्ध्वमधस्ताच्चव्यापकोमहिमामम ॥ द्वितीयोनममास्तीतियःपश्यतिसपश्यति ॥ ३० ॥ मयिसर्वमिदंप्रोतंसूत्रेमणिगणाइव ॥ चित्तंतुनाहमेवेतियःपश्यतिसपश्यति ॥ ३१ ॥ नाहंनचान्यदस्तीतिब्रह्मैवास्तिनिरामयम् ॥ इत्थंसदसतोर्मध्येयःपश्यतिसपश्यति ॥ ३२ ॥

अर्थ—आधि, व्याधि, तथा भयसे उद्विग्न, तथा जन्ममरणवान् यह देह मैं नहीं हुं ऐसा जो बुद्धिमान् देखताहै वही देखताहै ॥ २९ ॥ तिरछा ऊपर और नीचे व्यापक मेरा महिमा है और मेरा द्वितीय कोई नहीं है ऐसा जो देखताहै वही देखताहै ॥ ३० ॥ जैसे सूत्रमें मणिके समूह गूंथे रहते हैं ऐसेही मेरेमें यह सब संसार गूंथा है और अन्तःकरण तो मैं नहीं हुं ऐसा जो देखताहै वही देखताहै ॥ ३१ ॥ अहंकार तथा यह सब दृश्य कुछ नहीं है किंतु निरामय ब्रह्मही सब कुछ है इसप्रकार भूत भविष्यत् वर्तमान अथवा व्यक्त और अव्यक्तके मध्यमें स्थित जो अपना स्वरूप देखताहै वही देखताहै ॥ ३२ ॥

यन्नामकिंचित्त्रैलोक्यंसएवावयवोमम ॥ तरंगोब्धाविवेत्यंतर्यःपश्यतिसपश्यति ॥ ३३ ॥ शोच्यापाल्यामयैवेयंस्वसेयंमेकनीयसी ॥ त्रिलोकीपेलवेत्युच्चैर्यःपश्यतिसपश्यति ॥ ३४ ॥ आत्मतापरतेत्वत्तामत्तेयस्यमहात्मनः ॥ भवाद्रुपरतेनूनंसपश्यतिसुलोचनः ॥ ३५ ॥ चेत्यानुपातरहितंचिद्भैरवमयंवपुः ॥ आपूरितजगज्जालंयःपश्यतिसपश्यति ॥ ३६ ॥

अर्थ—यह त्रैलोक्य नामसे जो प्रसिद्ध है वह मेरा अवयव ऐसे है जैसे समुद्रमें तरंग ऐसा जो अपने अन्तःकरणमें देखताहै वही देखताहै ॥ ३३ ॥ चेतनके विना केवल अपनी सत्तासे मृतकके तुल्य होनेसे शोचनीय, और अपनी (चेतनकी) सत्ताकी स्फूर्तिसे पालन की हुई; और दृष्टिमात्रसेभी पीडित होनेसे अति कोमल मेरी छोटी भगिनीके सदृश यह त्रिलोकी है ऐसा जो महान् विचारसे देखताहै वही देखताहै ॥ ३४ ॥ जिस महात्माके विचारमें सांसारिक देहादिसे निवृत्त त्वत्ता मत्ता केवल आत्मपरक हैं वही उत्तम नेत्रवाला देखताहै ॥ ३५ ॥ विषयके संबंधसे रहित, तथा अपनी सत्ताके प्रकाशसे जगत् जालको व्याप्त करनेवाले चित् भैरवमय शरीरयुक्त इस आत्माको जो देखताहै वही देखताहै ॥ ३६ ॥

सुखंदुःखंभयोभावोविवेकलनाश्रयाः ॥ अहमेवेतिवानूनंपश्यन्नपिनहीयते ॥ ३७ ॥ स्वात्मसत्तापरापूर्णंजगत्यंशेनवर्तिना ॥ किंमेहेयंकिमादेयमितिपश्यन्सुहृन्नरः ॥ ३८ ॥ अप्रतर्क्यमनाभासंसन्मात्रमिदमित्यलम् ॥ हेयोपादेयकलनायस्यक्षीणासवैपुमान् ॥ ३९ ॥ यआकाशवदेकात्मासर्वभावगतोपिसन् ॥ नभावरंजनामेतिसमहात्मामहेश्वरः ॥ ४० ॥ तमःप्रकाशकलनामुक्तःकालात्मतांगतः ॥ यःसौम्यःसुसमःस्वस्थस्तंनौमिपदमागतम् ॥ ४१ ॥ यस्योदयास्तमयसंकलनाकलासुचित्रासुचारुविभवासुजगद्रतासु ॥ वृत्तिःसदैवसकलैकमतेरनंतातस्मैनमःपरमबोधवतेशिवाय ॥ ४२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे अनुत्तमपदविश्रांतिवर्णनं नाम द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

अर्थ—सुख; दुःख गुरू; देवता तथा शास्त्र आदिमें श्रद्धा; और उसमें नित्यानित्य विवेक और उससे श्रवण मनन आदि क्रमसे आत्मपरिचयके भेद ये सब मैं हुं ऐसा जो देखताहै वही देखताहै ॥ ३७ ॥ निरतिशय घनानन्द

पूर्ण; और आनन्दके लवसे तर्पित इस जगत्में एक देशवर्त्ती ऐहिक तथा पारलौकिक भोग्यवस्तु मुझे क्या दुःखहै जो त्याज्यहो और क्या उस पदार्थसे मुझे सुखहै जो ग्राह्यहो ऐसा देखता हुआ पुरुष भ्रान्तिरहित दृष्टिहै ॥ ३८ ॥ हे रामजी ! तर्कसे अगम्य; विक्षेपरहित; और सन्मात्र यह जगत्है इसप्रकार सम्यक् ज्ञान होनेसे जिसकी त्याज्य और ग्राह्यकी कल्पना क्षीण होगई है वही पुरुषहै ॥ ३९ ॥ जो आकाशके सदृश एकात्माहै और सम्पूर्णभाव पदार्थमें व्याप्त होनेपरभी उन २ पदार्थोंका रूप नहीं होता वा उनमें अनुरक्त नहीं होता वही महात्मा निरतिशय आनन्दके उपभोग करनेमें समर्थ (महेश्वर) है ॥ ४० ॥ जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्तिसे विनिर्मुक्त, मृत्युकाभी प्रीतिपात्र, सौम्य; सर्वत्र समान और तुरीयाऽवस्थामें प्रतिष्ठित जो प्राप्त पदहै उसको मैं नमस्कार करताहुं ॥ ४१ ॥ जिसकी यह बुद्धि है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंमें एकही ब्रह्महै, और विचित्र तथा रमणीय विभववाली जगत्की सृष्टि स्थिति तथा प्रलयरूप कल्पनामें जिसकी ब्रह्माकार वृत्ति अनन्तहै उस परम ज्ञानवान् जीवन्मुक्त शरीरधारी साक्षात् शिवको हमारा नमस्कार है ॥ ४२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे स्थितिप्रकरणे अनुत्तमपद विश्रान्तिवर्णनं नाम द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

ज्ञानीके लिये शरीररूपी नगरीका राज्य और आसक्तिरहित उत्तम भोगोंसे मनका जय तथा उससे सुखका उदय इस २३ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यउत्तमपदालंबीचक्रभ्रमवदास्थितः ॥ शरीरनगरीराज्यंकुर्वन्नपिनलिप्यते ॥१॥ तस्येयंभोगमोक्षार्थंतज्ज्ञस्योपवनोपमा ॥ सुखायैवनदुःखायस्वशरीरमहापुरी ॥२॥ श्रीरामउवाच ॥ नगरीत्वंशरीरस्यकथंनाममहामुने ॥ एतांचाधिवसन्योगीकथंराजसुखैकभाक् ॥ ३ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ रम्येयंदेहनगरीरामसर्वगुणान्विता ॥ ज्ञस्यानंतविलासाढ्यास्वालोकार्कप्रकाशिता ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! जो ब्रह्मपदका अलंबन करताहै, और घटकी उत्पत्तिरूप प्रयोजनके निवृत्त होनेपर कुंभकारके चक्रके भ्रमके समान प्रारब्धके क्षय पर्यंत देह धारणके अनुकूल व्यवहार करनेवालाहै वह जीवन्मुक्त प्राणी शरीररूपी नगरीका राज्य करता हुआभी पापसे नहीं लिप्त होता ॥ १ ॥ उस तत्वज्ञानीके लिये यह वाटिकाके तुल्य शरीररूपी महापुरी भोग और मोक्ष दोनोंके लिये है, और केवल सुखके लिये है न कि दुःखके अर्थ ॥ २ ॥ श्रीरामजी बोले–हे महामुने ! शरीरका नगरी नाम कैसे है और इसमें निवास करता हुआ योगी राज्यके केवल सुखमात्रका भागी कैसे होताहै ॥३॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! यह देहरूपनगरी अतिरमणीय सब गुणोंसेयुक्त, ज्ञानीके लिये अनन्त विलासोंसे पूर्ण तथा आत्मदर्शनरूप सूर्यके प्रकाशसे प्रकाशितहै ॥ ४ ॥

नेत्रवातायनोद्योतप्रकाशभुवनांतरा ॥ करप्रतोलीविस्तारप्राप्तपादोपजांगला ॥ ५ ॥ रोमराजीलतागुल्मात्वचाजालकमालिता ॥ गुल्फांगुल्यांप्रविश्रांतजंघोरुस्तंभमंडला ॥ ६ ॥ रेखाविभक्तपादाग्रशिलाप्रथमनिर्मिता ॥ चर्ममर्मशिरासारसंधिसीमामनोरमा ॥७॥ उरूरुततनुभागाग्रनिर्मितोपस्थनिम्नगा॥ कचत्केशावलीकाचदलप्रस्थवनावृता ॥ ८ ॥

अर्थ—पुनः नेत्ररूपी वातायन (झरोखे) में इन्द्रियरूप दीपकोंसे प्रकाशयुक्त भुवनके अन्तरालसहितहै तथा हस्तरूप मार्गके विस्तारसे जंगलके पदार्थकी प्राप्तिसे यह शरीररूप नगरी शोभितहै ॥ ५ ॥ तथा रोमके समूहरूपी लतायुक्त चर्ममें स्थित नाड़ियोंके समूहसे शोभित, और पादोंकी अंगुलीमें विश्रान्त जंघा तथा ऊरू (टांग) रूपी स्तम्भ मण्डली युक्त यह नगरी है ॥ ६ ॥ इस नगरीमें रेखाओंसे विभक्त पादके नीचेकी कठिन त्वचाही स्तंभके मूलकी आधार शिला निर्मित की गई हैं और बाह्य (बाहरके) चर्मकी अन्तर्गत मर्मरूपी सीमासे मध्यमें नाड़ियोंकी शाखाओंके प्ररोहरूप सीमासे और हड्डियोंमें संधिरूप सीमासे यह नगरी मनोरमहै ॥ ७ ॥ इसमें दोनों जंघाओंके तथा मध्य शरीरके सधिभागके अग्रभागमें रची हुई उपस्थि इंद्रिय (गुदा वा शिश्न) मध्य नदी है, और शोभायमान केशकी पंक्तिरूप कांचके समान नीलदल पाषाणसे तथा श्मश्रु (दाढी वा मोछा) वा कांखके रोमरूपी बनोंसे यह ढकी हुई है ॥ ८ ॥

भ्रूललाटोष्ठसच्छायवदनोद्यानशोभिता ॥ दृष्टिपातोत्पलाकीर्णकपोलविपुलस्थली ॥ ९ ॥ वक्षःस्थलसरःस्यूतकुचपंकजकोरका ॥ घनरोमावलीछन्नस्कंधक्रीडाशिलोच्चया ॥ १० ॥ उदरश्वभ्रनिक्षिप्तस्वान्नेष्टाभक्ष्यतत्परा ॥ दीर्घकंठबिलोद्गीर्णवातसंरंभशब्दिता ॥ ११ ॥ हृदयापणनिर्णीतयथाप्राप्तार्थभूषिता ॥ अनारतनवद्वारप्रवहत्प्राणनागरा ॥ १२ ॥

अर्थ—नील पत्रके समान दोनों भौंहसे, गौर वर्ण, नूतन कमलके सदृश ललाटसे और पुष्पोंके सदृश दोनों ओष्ठोंसे और उत्तम शोभावान् मुखरूपी केलोंके बनसे शोभित दृष्टिपातरूप कमलसे व्याप्त, तथा कपोलरूपी विशाल स्थलसे युक्त शरीरमें जो अति रमणीयहै॥९॥वक्षस्थलरूप तडागमें गूंथे हुये कुचरूपी कमलकी कलियोंसे युक्त और घनीभूत रोमावलीसे आच्छादित दोनों कन्धेरूप क्रीडा पर्वतसे शोभितहै ॥१०॥ उदररूपी गर्त (गढे) में फेंके हुये अपने प्रारब्धके अनुरूप अन्नरूप धनसहित और अनिषिद्ध विषय भोगको विस्तार करनेवाले जिव्हा, कर्ण आदि रूप उत्तम झरोखोंसे विषयरूप नगरनिवासी इस नगरीमें प्रविष्टहैं और दीर्घ कण्ठरूपी बिलसे निकलते हुये प्राणवायुके द्वारा कण्ठरूप कपाटके उद्घाटनसे यह नगरी शब्दित होरही है ॥ ११ ॥ और हृदयरूप आपण (बाजारमें) स्थित विचाररूपी रत्नोंके परीक्षकजनोंने निर्णय करके नेत्र आदि इंद्रियोंके द्वारा जो शब्द आदि पदार्थोंको ग्रहण कियाहै उनसे यह नगरी भूषितहै और नौ (९) इन्द्रियरूपी द्वारोंसे आते जाते हुये प्राणरूपी नगरनिवासी इसमें विराजमानहैं १२

आस्यस्फारवदादंष्ट्रदंतास्थिशकलाकुला ॥ मुखास्पदाभ्रमज्जिह्वाचंडीचर्वितभोजना ॥ १३ ॥ रोमशष्पतरच्छन्नाकर्णकोटरकूपका ॥ स्फिक्शृंखलास्थितोपांतपृष्ठविस्तीर्णजंगला ॥ १४ ॥ गुदोत्थानारघट्टांतप्रद्रुतानंतकर्दमा ॥ चित्तोद्यानमहीवल्गदात्मचिंतावरांगना ॥ १५ ॥ धीवरत्रादृढाबद्धचपलेंद्रियमर्कटा ॥ वदनोद्यानहसनपुष्पोद्गममनोरमा ॥ १६ ॥

अर्थ—मुखमें द्वारपर गजदन्त रचनाके तुल्य किंचित् दृष्टदन्तकी अस्थि (हड्डी) के खण्डोंसे पूर्ण है और इसमें मुखनिवासिनी जिव्हारूप चण्डीने अनेक प्रकारके भोजनोंको चर्वित कियाहै ॥ १३ ॥ जहां रोमरूपी दीर्घ तृणोंसे कर्णका कोटररूपी कूप ढका है और पृष्ठके अगल बगलकी अस्थिसे पृष्ठपर्यन्त विस्तीर्ण जंगलसे मनोहर है ॥ १४ ॥ जहां मल तथा मूत्र स्थानसे निःसृत मलमूत्ररूपी कीचड दूरसेही बहरहा है और जहां चित्तरूप उद्यान (वाटिका) की भूमिमें गर्जती हुई आत्मचिन्तारूपा श्रेष्ठ अंगना क्रीडा कररही है ॥१५॥ और बुद्धिरूप चर्मकी रज्जुसे चपल इन्द्रियरूप मर्कट दृढतासे बंधेहैं, और मुखरूपी वाटिकामें उत्पन्न हास्यरूपी पुष्पोंसे यह नगरी मनोहरहै ॥१६॥

स्वशरीरमनोज्ञस्यसर्वसौभाग्यसुंदरी ॥ सुखायैवनदुःखायपरमार्थहितायच ॥ १७ ॥ अज्ञस्येयमनंतानांदुःखानांकोशमालिका ॥ ज्ञस्यत्वियमनंतानांसुखानांकोशमालिका ॥ १८ ॥ किंचिदस्यांप्रनष्टायांज्ञस्यनष्टमरिंदम ॥ स्थितायांसंस्थितंसर्वंतेनेयंज्ञसुखावहा ॥ १९ ॥ यदेनांज्ञस्समारुह्यसंसारेविहरत्यलम् ॥ अशेषभोगमोक्षार्थंतेनेयंज्ञरथःस्मृतः ॥ २० ॥

अर्थ—तथा अपने शरीर और मनको जाननेवाले तत्वज्ञानीकेलिये यह शरीररूप नगरी संपूर्ण सौभाग्ययुक्त और सुन्दरी परम सुखके तथा परम हित (मोक्ष) के अर्थ है न कि दुःखकेलिये ॥ १७ ॥ हे रामजी ! यह शरीररूप नगरी अज्ञानीको अनंत दुःखोंकी कोशमालिका है और ज्ञानियोंकेलिये अनन्त सुखोंकी कोशमाला है ॥१८॥ हे शत्रुनाशक रामजी ! इस शरीररूप नगरीके नष्ट होनेपर किंचित् तुच्छ वस्तु नाशको प्राप्त होताहै न कि सत्य और स्थित रहनेपर भोग तथा मोक्ष सब कुछ स्थित है इसलिये ज्ञानीको यह सुखदायिनी है ॥ १९ ॥ और ज्ञानीपुरुष इसपर चढके संसारमें भलीभांति विहार करताहै, इस हेतुसे यह शरीररूप नगरी ज्ञानीके रथके तुल्यहै॥२०॥

शब्दरूपरसस्पर्शगंधबंधुश्रियोयतः ॥ अनयैवहिलभ्यंतेतेनेयंज्ञस्यलाभदा ॥ २१ ॥ सुखदुःखक्रियाजालंयदेपोद्वहतिस्वयम् ॥ तदेपारामसर्वज्ञसर्ववस्तुभरक्षमा ॥ २२ ॥ तस्यांशरीरपुर्यांहिराज्यंकुर्वन्गतज्वरः ॥ ज्ञस्तिष्ठतिगतव्यग्रःस्वपुर्यामिववासवः ॥ २३ ॥ नक्षिपत्यवटाटोपेमनोमत्ततुरंगमम् ॥ नलोभद्दुर्द्दुमादायप्रज्ञापुत्रींप्रयच्छति ॥ २४ ॥

अर्थ—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धरूप विषय, बंधु और भोग मोक्षकीश्री इसी शरीरसेही प्राप्त होतीहैं इसलिये ज्ञानीको यह शरीररूप नगरी लाभदायकहै ॥ २१ ॥ सुखदुःखरूप क्रिया समूहोंको यह शरीरूप नगरी स्वयं धारण करतीहै इसलिये हे रामजी ! यह ज्ञानीके अर्थभोग मोक्षके उपयोगी वस्तुओंके संग्रह करनेमें समर्थ है ॥ २२ ॥ संताप रहित तथा [illegible] ज्ञानी पुरुष इस शरीररूपी नगरीमें राज्य करते हुये ऐसे स्थितहै जैसे अपनी

नगरीमें इंद्र ॥ २३ ॥ ज्ञानी पुरुषका जो मनरूप मत्त हस्ती योनिरूप गढेमें नहीं गिरता और न वह लोभरूप विष-वृक्षको शुल्क (मूल्य) लेके विवेकवती बुद्धिरूप कन्याको मोह तथा अधर्म आदि दुष्कुलीनोंको देताहै ॥ २४ ॥

अज्ञानपरराष्ट्रंचनरंध्रंत्वस्यपश्यति ॥ संसाराररिभयस्यांतर्मूलान्येवनिकृंतति ॥ २५ ॥ तृष्णासारपरा वर्त्तंकामसंभोगदुर्ग्रहे ॥ ननिमज्जतिपर्यस्तःसुखदुःखप्रदेवने ॥ २६ ॥ करोत्यविरतंस्नानंबहिरंतरवी क्षणात् ॥ सरित्संगमतीर्थेषुमनोरथगतःक्रमात् ॥ २७ ॥ सकलाक्षजनाऽदृश्यसुखप्रेक्षापरांमुखः ॥ ध्याननाम्निसुखंनित्यंतिष्ठत्यंतःपुरांतरे ॥ ॥ २८ ॥

अर्थ—और अज्ञानरूप जो अन्यके राज्यहैं वे इस ज्ञानीके छिद्रको नहीं देखते और संसाररूप शत्रुके भयके मूल स्नेहादिको यह काट डालताहै ॥ २५ ॥ और कामके संभोगरूप दुष्टग्राह तथा सुखदुःखरूप विलापके साधन सहित तृष्णारूप नदीके महान् भंवरेहमें वह मग्न नहीं होता ॥ २६ ॥ और ज्ञानी पुरुष बाह्य तथा आभ्यंतर पर-मात्माके दर्शनसे आध्यात्मिक तथा आधिभौतिक नदीके संगमरूप तीर्थोंमें नित्यही स्नान करताहै ॥ २७ ॥ संपूर्ण इन्द्रियरूप जनोंसे विना विचारे रमणिय विषयोंमें ज्ञानी पुरुष पराङ्मुख रहताहै और ध्यान नाम अन्तःपुरमें नित्य सुखपूर्वक स्थित रहताहै ॥ २८ ॥

सुखावहैषानगरीनित्यंवैविदितात्मनः ॥ भोगमोक्षप्रदाचैषाशक्रस्येवामरावती ॥ २९ ॥ स्थितयासं स्थितंसर्वंकिंचिन्नष्टंननष्टया ॥ ययापुर्यामहीयस्यासाकथंनसुखावहा ॥ ३० ॥ विनष्टेदेहनगरेज्ञस्यनष्टं नकिंचन ॥ आक्रांतकुंभाकाशस्यखस्यकुंभक्षयेयथा ॥ ३१ ॥ विद्यमानंघटंवायुःकिंचित्स्पृशतिना स्थितम् ॥ यथातथैववेदेहीस्वांशरीरनगरीमिमाम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! आत्मतत्वको जाननेवालेको यह शरीररूप नगरी नित्य सुख देनेवाली है और भोग तथा मोक्षप्रद इसप्रकार है जैसे इन्द्रको अमरावतीनगरी ॥ २९ ॥ जिस शरीररूप महानगरीके स्थित रहनेपर सब कुछ स्थित है और नष्ट होनेपर कुछभी नहीं नष्ट हुआ वह भला क्यों कर न सुखदायक हो ॥ ३० ॥ इस शरीररूप न-गरके नष्ट होनेपर ज्ञानीका कुछ ऐसे नहीं नष्ट होता जैसे घटके नष्ट होनेपर घटाकाशको आक्रान्त (अपने अन्तर्गत) करनेवाले महदाकाशका ॥ ३१ ॥ जो घटकी विद्यमानतादशामेंभी कुछ नहीं स्पर्श करता वह उसके न रहनेपर क्या स्पर्श करेगा यह वार्ता जैसे है ऐसेही शरीररूपा नगरीके विषयमें जीवात्माकी है अर्थात् जब यह शरीर विद्य-मान रहतेही कुछ नहीं करसकती तो अभावमें क्या करसकती है ॥ ३२ ॥

अत्रस्थःपुरुषोभोगानात्मासर्वगतोपिसन् ॥ विश्वकल्पकृतान्भुक्त्वापूर्णामधिगतार्थभाक् ॥ ३३ ॥ कुर्वन्नपिनकुर्वाणःसमस्तार्थक्रियोन्मुखः ॥ कदाचित्प्रकृतान्सर्वान्कार्यार्थाननुतिष्ठति ॥ ३४ ॥ कदाचि ल्लीलयालोलंविमानमधिरोहति ॥ अनाहतगतिःकांतंविहर्तुममलंमनः ॥ ३५ ॥ तत्रस्थोलोकसुंदर्या सततंशीतलांगया ॥ रमतेरामयामैत्र्यानित्यंहृदयसंस्थितः ॥ ३६ ॥

अर्थ—सर्वत्र प्राप्तभी आत्मा इस शरीररूप नगरीमें स्थित होके संसारमें कल्पित संपूर्ण भोगोंको भोगके पूर्वकालमें साक्षात्कृत पूर्णानन्द आत्मस्वरूप जो परमपुरुषार्थ मोक्षहै उसका भागी होताहै ॥ ३३ ॥ सम्पूर्ण अर्थ क्रियाकी और झुके कदाचित् प्रारब्ध कर्मके अनुकूल प्राप्त कर्तव्य अर्थोंको करताहै इसलिये व्यवहार दृष्टिसे सब कुछ करता हुआभी कुछ नहीं करता ॥ ३४ ॥ सर्वत्र गतिशील यह आत्मा कभी भोगके कौतुक सहित इसका विनोद करनेके वास्ते हृदय कमलरूप विमानपर लीलासे आरूढ होताहै ॥ ३५ ॥ उस विमानपर चढके संसारमें अति सुन्दर; निरन्तर शीतल अंगवाली मैत्रीरूप प्रियाके साथ रमण करताहै ॥ ३६ ॥

द्वेकांतेतिष्ठतःसम्यक्पार्श्वयोःसत्यतैकते ॥ इंदोरिवविशाखेद्वेसमाह्लादितचेतसी ॥ ३७ ॥ क्षपितान खिलाँल्लोकान्दुःखक्रकचदारितान् ॥ वल्लीवनस्थान्नभसःपृष्ठादर्कइवेक्षते ॥ ३८ ॥ चिरंपूरितसर्वाशः सर्वसंपत्तिसुंदरः ॥ अपुनःखंडनायेंदुःपूर्णांगइवराजते ॥ ३९ ॥ सेव्यमानोपिभोगौघोनखेदायास्यजा यते ॥ कालकूटःकिलेशस्यकंठेप्रत्युतराजते ॥ ४० ॥

अर्थ—ज्ञानीपुरुषके दोनोंभागमें सत्यता तथा एकता रूप दो प्रिया ऐसे स्थित रहती हैं जैसे चन्द्रके समीप चित्तको प्रसन्न करनेवाली विशाखाकी दो तारा ॥ ३७ ॥ जैसे आकाशमें स्थित सूर्यभगवान् लताओंसे वे-ष्टितवनको देखते हैं ऐसेही ज्ञानी पुरुष क्षयको प्राप्त, तथा दुःखरूपी केकडेसे विदीर्ण (दुःखग्रस्त) सम्पूर्ण लोकोंको देखताहै ॥ ३८ ॥ चिरकालतक सम्पूर्ण दिशाओं वा कामनाओंका पूर्ण करनेवाला और सम्पूर्ण सम्पत्तियोंसे सुन्दर पूर्ण-

चन्द्रमाके समान पुनः खण्डित न होनेके लिये शोभित होताहै ॥३९॥ जैसे कालकूट (विष) श्रीशंकर भगवान्के कण्ठमें दूषित होनेके विपरीत शोभित होताहै ऐसेही सेवितभी भोगसमूह खेदके विरूद्ध आनन्दके लिये होताहै ॥ ४० ॥

परिज्ञातोपभुक्तोहिभोगोभवतितुष्टये ॥ विज्ञायसेवितोमैत्रीमेतिचोरोनशत्रुताम् ॥ ४१ ॥ नरनारीनदीघानांविरहेदूरगामिनाम् ॥ ज्ञेनयात्रेवसुभगाभोगश्रीरवलोक्यते ॥ ४२ ॥ अशंकितोपसंप्राप्ताग्रामयात्रायथाध्वगैः ॥ प्रेक्ष्यंतेतद्वदेवज्ञैर्व्यवहारमयाःक्रियाः ॥ ४३ ॥ अयत्नोपनतेष्वक्षिपदार्थेषुयथापुनः ॥ नीरागमेवपततितद्वत्कार्येषुधीरधीः ॥ ४४ ॥

अर्थ—मिथ्यारूपसे परिज्ञात भोगा हुआ भोग सन्तोपके लिये ऐसा होताहै जैसे ज्ञात चोर मित्रताके अर्थ होताहै न कि शत्रुताके लिये ॥ ४१ ॥ ज्ञानीपुरूप भोग करने योग्य स्त्री पुत्र धनादिकी शोभा ऐसे देखताहै जैसे विरहमें दूरगामी स्त्री पुरूप नट आदिकी यात्राको ॥ ४२ ॥ जैसे पांथ (मार्गगामी) जन अकस्मात् प्राप्त ग्रामके समूहोंको देखतेहैं ऐसेही ज्ञानीपुरूप व्यवहारमय सम्पूर्ण क्रियाओंको देखताहै ॥ ४३ ॥ जैसे विना प्रयत्नसे रचित पर्वत, वन तथा बावली आदि पदार्थोंमें और उनमें स्थित वृक्ष लता कमल आदिमें छेदन भेदन तथा हरण आदिमें दुःखके अभावसे रागरहित दृष्टि पडती है ऐसेही ज्ञानीपुरूपकी दृष्टि ममता न होनेसे कार्योंमें पडती है ॥ ४४ ॥

इंद्रियाणांनहरतिप्राप्तमर्थंकदाचन ॥ नाददातितथाप्राप्तंसंपूर्णोज्ञोवतिष्ठति ॥ ४५ ॥ अप्राप्तचिंताःसंप्राप्तसमुपेक्षाश्चसन्मतिम् ॥ नकंपयंतितरलाःपिच्छाघाताइवाचलम् ॥ ४६ ॥ संशांतसर्वसंदेहोगलिताखिलकौतुकः ॥ संक्षीणकल्पनादेहोज्ञःसम्राडिवराजते ॥ ४७ ॥ आत्मन्येवनमात्यंतःस्वात्मनात्मनिजृंभते ॥ संपूर्णोपारपर्यंतःक्षीरार्णवइवार्णवेः ॥ ४८ ॥

अर्थ—प्रारब्ध कर्मके अनुकूल प्राप्त विषयोंमें इन्द्रियोंको भोग करनेको ज्ञानीपुरूप नहीं रोकता और अप्राप्त पदार्थको यत्नपूर्वक नहीं ग्रहण करता किन्तु पूर्णरूपसे स्थित रहताहै ॥ ४५ ॥ अप्राप्तपदार्थोंकी चिन्ता और प्राप्तकी उपेक्षा पश्चात् ज्ञानीको ऐसे नहीं कम्पित करती जैसे मोरके पंखके आघात पर्वतको ॥ ४६ ॥ स्थूल सूक्ष्मादि सब शरीरोंके कारणीभूत अज्ञानके नाशसे संपूर्ण सन्देहरहित; भोगोंमें मिथ्यात्वके देखनेसे सर्व कौतुक शून्य और स्थूल तथा सूक्ष्म देहकी कल्पना रहित ज्ञानीपुरूप ऐसे शोभित होताहै जैसे राजसूय यज्ञके फलको पाकर चक्रवर्ती राजा ॥ ४७ ॥ राजाका दृष्टांत अज्ञानियोंके अर्थ है और यथार्थमें तो ज्ञानीपुरूप पूर्णस्वरूप अपने आत्मासे आत्माहीमें ऐसे शोभित होताहै जैसे अपार संपूर्ण क्षीरसमुद्र अपने आत्मासे आत्मामें ॥ ४८ ॥

भोगेच्छाकृपणान्जंतून्दीनान्दीनेंद्रियाणिच ॥ अनुन्मत्तमनाःशांतोहसत्युन्मत्तकानिव ॥४९॥ इच्छतोन्योज्झितांजायांयथैवान्येनहस्यते ॥ इंद्रियस्येच्छतोभोगंतद्वज्ज्ञेनविहस्यते ॥ ५० ॥ त्यजत्स्वात्मसुखंसौम्यंमनोविषयविद्रुतम् ॥ अंकुशेनेवनागेंद्रंविचारेणवशंनयेत् ॥ ५१ ॥ भोगेषुप्रसरोयस्यामनोवृत्तेश्चदीयते ॥ साप्यादावेवहंतव्याविषस्येवांकुरोद्गतिः ॥ ५२ ॥

अर्थ—भोगोंकी इच्छासे कृपण दीनजनोंको तथा भोगलोलुप इन्द्रियोंको सावधान चित्त ज्ञानीपुरूष ऐसे हंसताहै जैसे अन्य साधारण जन उन्मत्त जनोंको ॥ ४९ ॥ ज्ञानीपुरूप त्यागेहुये भोगको इच्छा करनेवाली इन्द्रियोंकी प्रवृत्तिको ऐसे हंसताहै जैसे अन्यसे त्यागीस्त्रीको चाहनेवाले पुरूपको ॥ ५० ॥ आत्मसुखको त्यागते हुये शांतमनको विषयकी ओर भागते हुये इसको विचारसे ऐसे रोकना चाहिये जैसे अंकुशसे मत्तहस्तीको ॥ ५१ ॥ जिस भोगकी तृष्णासे मनकी वृत्तिको अवसर दिया जाताहै उसेभी आरम्भमेंही ऐसे मारना चाहिये जैसे विषके अंकुरकी गतिको ॥ ५२ ॥

ताडितस्यहियःपश्चात्सन्मानःसोप्यनंतकः ॥ शालेर्ग्रीष्माभितप्तस्यकुसेकोप्यमृतायते ॥ ५३ ॥ अनार्तेनहिसन्मानोबहुमानेनबुध्यते ॥ पूर्णानांसरितांप्रावृट्पूरःस्वल्पोनराजते ॥ ५४ ॥ पूर्णस्तुप्राकृतोप्यन्यत्पुनरप्यभिवांछते ॥ जगत्पूरणयोग्यांबुर्गृह्णात्येवार्णवोजलम् ॥ ५५ ॥ मनसोभिगृहीतस्ययापश्चाद्भोगमंडना ॥ तामेवाल्पविस्तारांक्लिष्टत्वाद्बहुमन्यते ॥ ५६ ॥

अर्थ—चिरकालसे निगृहीत मनका किंचित्भी संमान ऐसे अनंतताको प्राप्त होताहै जैसे ग्रीष्मऋतुसे संतप्त धानको किंचित् सिंचनभी अमृतके तुल्य होताहै ॥ ५३ ॥ सुखी पुरुषको अधिक सन्मानभी किंचित् ऐसे नहीं भान होता जैसे पूर्ण नदियोंको वर्षाका अल्प प्रवाह ॥ ५४ ॥ और पूर्ण तो अन्य साधारणको ऐसे चाहताहै जैसे अपने जलसे जगत्को पूर्ण करनेवाला समुद्र अन्य नदी आदिके जलको ग्रहण करही लेताहै ॥ ५५ ॥ निगृहीत मन पीछेसे अल्पविषयकी भिक्षाके पूर्वकी अपेक्षासे ऐसे अधिक मानताहै ॥ ५६ ॥

बंधमुक्तोमहीपालोग्रासमात्रेणतुष्यति ॥ परैरबद्धोनाक्रांतोनराज्यंबहुमन्यते ॥ ५७ ॥ हस्तंहस्तेनसं पीड्यदंतैर्दंतांन्विचूर्ण्यच ॥ अंगान्यंगैरिवाक्रम्यजयेचेंद्रियशात्रवान् ॥ ५८ ॥ जेतुमन्यंकृतोत्साहैःपु रुषैरिहपंडितैः ॥ पूर्वंहृदयशत्रुत्वाज्जेतव्यानींद्रियाण्यलम् ॥ ५९ ॥ एतावतिधरणितलेसुभगास्तेसाधु चेतनाःपुरुषाः ॥ पुरुषकलासुचगण्यानजितायेचेतसास्वेन ॥ ६० ॥ हृदयबिलेकृतकुंडलकलनाविव शोमनोमहाभुजगः ॥ यस्योपशांतिमागतमलमुदितंतंमुनिर्मलंवंदे ॥ ६१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे शरीरनगरविभूतियोगोनाम त्रयोविंशःसर्गः ॥ २३ ॥

अर्थ—जैसे बंधनसे छुटा हुआ राजा भोजनमात्रसे सन्तुष्ट होताहै और शत्रुओंके आक्रमणसेरहित राज्य- कोभी अधिक नहीं मानताहै ॥ ५७ ॥ हांथसे हांथको पीडन करके, दांतोंकी दांतोंसे पीसके तथा अंगोंसे अंगोंको आक्रमण करके जैसे शत्रुओंका विजय किया जाताहै ऐसेही सब प्रयत्नोंसे इन्द्रियरूप शत्रुओंको जीतना चाहिये ॥ ५८ ॥ इस संसारमें जीतनेके अभिमानी उत्साहयुक्त पण्डित जनोंको हृदयके शत्रु होनेसे प्रथम इन्द्रियोंको भली- भांति जीतना चाहिये ॥ ५९ ॥ इस संपूर्ण पृथिवीतलमें वे चित्तको जीतनेवाले भाग्यवान् सावधान चित्त, और अपने बंधनसे मुक्त होनेके कारण कुशलतामें गणनीय पुरुषहैं, जो अपने चित्तसे नहीं जीते जाते ॥ ६० ॥ हे रामजी ! हृदय- रूपी बिलमें कुंडलीकी कल्पना करनेसे परवश मनरूपी महासर्प जिसका सर्वथा नाशको प्राप्त होगयाहै उस अपने स्व- रूपके साक्षात्कार करनेसे प्रकट निर्मलरूप तत्ववेत्ता महामुनिको मैं नमस्कार करताहुं ॥ ६१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे शरीरनगरविभूतियोगोनाम त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

इस २४ के सर्गमें इन्द्रियोंकी प्रबलता, उनके जयका उपाय, तथा उससे प्रसन्नता और ज्ञानके द्वारा वास- नाका क्षय वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ महानरकसाम्राज्येमत्तदुष्कृतवारणाः ॥ आशाशरशलाकाढ्यादुर्जयाहींद्रियारयः ॥ १ ॥ स्वाश्रयंप्रथमंदेहंकृतघ्नानाशयंतिये ॥ तेकुकार्यमहाकोशादुर्जयाःस्वेंद्रियारयः ॥ २ ॥ कलेवरा लयंप्राप्यविषयामिषगृध्नुकाः ॥ अक्षगृध्राविवल्गंतिकार्याकार्योग्रपक्षिणः ॥ ३ ॥ विवेकतंतुजालेनगृ हीतायेनतेशठाः ॥ तस्यांगानिनलुंपंतिपाशानागबलंयथा ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-तपन, अवीचि, महारौरव, संघातकालसूत्र, महानरकोंके साम्राज्यमें अभिषिक्त, पापरूपी मत्त गजेन्द्रोंसहित, और तृष्णारूपी बाणकी शलाकाओंसे पूर्ण, इंद्रियरूपी शत्रु दुर्जयहै ॥१॥ जो कृतघ्न प्रथम अपने आश्रयभूत देहकोही नाश करते हैं वे पापरूपी धनका संचय करनेवाले अपने इन्द्रियरूप शत्रु दुर्जयहैं ॥ २ ॥ विषयरूपी मांसके लोभी, और कर्तव्य तथा अकर्तव्यरूपी भयंकर पक्षवाले इंद्रियरूपी गृध्र (गीध) शरीररूपी अपने नीड (खुंथे) में प्राप्त होकर गर्जते हैं ॥ ३ ॥ विवेकरूपी रूत्रके जालसे जिस पुरुषने उनको ग्रहण कर लियाहै उस पुरुषके शान्ति आदि अंगोंको वे इसप्रकार नहीं छेदन करते जैसे पाश गजसमूहको ॥ ४ ॥

आपातरमणीयेषुरमतेविषयेषुयः ॥ विवेकधनवानस्मिन्कुकलेवरपत्तने ॥ ५ ॥ इंद्रियारिभिरंतस्थैरव शोनाभिभूयते ॥ नतथासुखिताभूपामृन्मयोग्रपुरीजुषः ॥६॥ यथास्वाधीनमनसःस्वशरीरपुरीश्वराः ॥ आक्रांतेंद्रियभृत्यस्यसुगृहीतमनोरिपोः ॥ ७ ॥ वसंतइवमंजर्योवर्द्धंतेशुद्धबुद्धयः ॥ प्रक्षीणचित्तदर्प स्यनिगृहीतेंद्रियद्विषः ॥ ८ ॥

सर्वसंपा यते ॥ काल अर्थ—ज्ञा समीप चित्तको प्र ष्टितवनको देखते है देखताहै ॥३८॥ चिर

—इस शरीररूपी निंदित नगरमें विवेकरूपी धनसहित जो पुरुष आपात रमणीय विषयोंमें रमण नहीं ॥ वह पुरुष अन्तमें स्थित इन्द्रियरूप शत्रुओंसे अवश होके पराजित नहीं होता, और मृत्तिकासे रचि सेवन करनेवाले राजे वैसे सुखी नहीं होते ॥ ६ ॥ जैसे स्वाधीन चित्तवाले अपनी शरीररूपी नगरी इन्द्रियरूपी सेवकोंको आक्रमण करनेवाले तथा मनरूपी शत्रुको निग्रह करनेवाले पुरुषकी शुद्धबुद्धि जैसे वसन्तऋतुकी लता "जिसका चित्तरूपी गर्व क्षीण होगया" और इंद्रियरूपी शत्रुओंको उसकी ॥ ८ ॥

पद्मिन्यइवहेमंतेक्षीयंतेभोगवासनाः ॥ तावन्निशीथवेतालावल्गंतिहृदिवासनाः ॥ ९ ॥ एकतत्त्वदृढाभ्यासाद्यावन्नविजितंमनः ॥ भृत्योभिमतकर्तृत्वान्मंत्रीसत्कार्यकारणात् ॥ १० ॥ सामंतश्चेंद्रियाक्रांतेर्मनोमन्येविवेकिनः ॥ लालनात्स्निग्धललनापालनात्पावनःपिता ॥ ११ ॥ सुहृदुत्तमविश्वासान्मनोमन्येमनीषिणाम् ॥ स्वालोकितःशास्त्रदृशाबुद्ध्यांतःस्वानुभावितः ॥ १२ ॥ प्रयच्छतिपरांसिद्धिंत्यक्त्वात्मानंमनःपिता ॥ सुदृष्टःसुपरामृष्टःसुदृढःसुप्रबोधितः ॥ १३ ॥

अर्थ—भोगोंकी वासना ऐसे नष्ट हो जाती हैं जैसे शीत ऋतुमें कमलिनी अज्ञानरूप अर्द्ध रात्रिके अन्धकारमें हृदयकी वासनारूपी पिशाचिका तभीतक गर्जना करती हैं ॥ ९ ॥ जबतक एक ब्रह्मतत्वके अभ्याससे मन नहीं जीता जाता विवेकी पुरुषका यह मन अभीष्ट कार्य करनेसे सेवक, सत्कार्य करनेसे मंत्री ॥ १० ॥ इन्द्रियरूप शत्रुओंके उपर चढाई करनेसे सामन्त (कर दाता छोटो राजा) प्यार करनेसे स्नेह करनेवाली स्त्री, और पालन करनेसे पवित्र पिताहै ॥ ११ ॥ इस रीतिसे विश्वासके कारण विवेकियोंका उत्तम सुहृद्है ऐसा मैं मानताहुं, और शास्त्रोंमें दर्शित देवता दृष्टिसे अनुल्लंघनीय शासन तथा चेतन मात्र रूपसे भलीभांति दृष्ट और स्नेह तथा विवेक बुद्धिसे पूजित यह मनरूपी पिता अपने शरीर (मनरूपता) को त्यागकर अपनेसे अर्जित तत्वज्ञानरूप सिद्धिको देताहै और शास्त्रोक्त परीक्षा वा सौभाग्यसे खानिमें दृष्ट, आचार्य तथा सपाठी (साथ पढनेवाले) आदिकी सहायतासे अनुभव पर्यन्त विचारित, निदिध्यासन रूप घनके आघातसे अति दृढ और तत्वके साक्षात्कारसे सुप्रबोधित ॥ १२ ॥ १३ ॥

सुगुणेयोजितोभातिहृदिहृद्योमनोमणिः ॥ जन्मवृक्षकुठाराणितथोदर्कोदयानिचः ॥ १४ ॥ दिशत्येवंमनोमं त्रीकर्माणिशुभकर्मणि ॥ एवंमनोमणिरामबहुपंककलंकितम् ॥ १५ ॥ विवेकवारिणासिद्ध्यैप्रक्षाल्यालोकवान्भव ॥ भवभूमिषुभीमासुविवेकविकलोवसन् ॥ १६ ॥

अर्थ—और पंचम आदि भूमिका रूप गुणमें गुंफित अति रमणीय यह मनरूप मणि शोभित होताहै इसके अनन्तर अर्थदायक जन्मरूपी वृक्षोंके छेदक तथा भविष्यत्में निरतिशय आनंददायक साधन चतुष्टयकी संपत्तिसे आदि लेके तत्व साक्षात्कार पर्यन्त कर्मोंको यह मनरूप मंत्री कराताहै ॥ १४[1]॥ १५ ॥ हे रामजी! इसप्रकार बहुत पंकसे कलंकित इस मनरूप मणिको विवेकरूपी जलसे धोकर मोक्ष सिद्धिके लिये प्रकाशयुक्त होओ ॥ १६ ॥

मापतोत्पातपूर्णासुविवशःप्राकृतोयथा ॥ संसारमायामुदितामनर्थशतसंकुलाम् ॥१७॥ मामहामोहमिहिकामिमांत्वमवधीरय ॥ विवेकंपरमाश्रित्यबुद्ध्यासत्यमवेक्ष्यच ॥ १८ ॥ इंद्रियारीनलंजित्वातीर्णोभवभवार्णवात् ॥ असत्येवशरीरेस्मिन्सुखदुःखेष्वसत्सुच ॥ १९ ॥ दामव्यालकटन्यायोमातेभवतुराघव ॥ भीमभासदृढस्थित्यात्वंयास्यसिविशोकताम् ॥ २० ॥ अयमहमितिनिश्चयोवृथायस्तमलमपास्यमहामतेस्वबुद्ध्या ॥ यदितरदवलंब्यतत्पदंत्वंव्रजपिबभुंक्ष्वनबध्यसेमनस्कः ॥ २१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे मनसःसत्ताप्रतिपादनं नाम चतुर्विंशःसर्गः ॥ २४ ॥

अर्थ—और अति भयंकर उत्पातसे पूर्ण संसारकी भूमियोंमें विवेकरहित निवास करते हुये विवश होके मूर्ख जनके समान मत गिरो ॥ १७ ॥ सैकडों अनर्थोंसे पूर्ण उदयको प्राप्त जो यह संसारकी माया है इसको महारोगके समान तुम उपेक्षा मत करो ॥१८॥ और उत्तम विवेकका आश्रय लेके, तथा बुद्धिसे सत्यका निरीक्षण करके, इन्द्रियरूप शत्रुओंको पूर्ण रीतिसे जीतकर संसारसागरसे पार होजाओ ॥ १९ ॥ इस शरीर इन्द्रिय आदिके तथा सुख दुःख आदिके असत्य होनेसे इनके जीतनेसे क्या फल है इसप्रकार दामे व्याल कटक न्याय तुमको मतहो किन्तु विवेकके अभ्याससे भीमभास दृढन्यायसे तुम शोकरहितताको प्राप्त होओगे ॥ २० ॥ तथा हे रामजी! यह दृश्यभूत देह मैं हुं इस मिथ्या निश्चयको भलीभांति त्यागकर मिथ्यासे भिन्नवस्तुरूप आत्मतत्त्वका आश्रय लेके तुम जाओ आओ तथा अमना होके भोजनआदि व्यापार करते हुयेभी बन्धनमें नहीं प्राप्त होओगे, किंतु मुक्तही हो ॥ २१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे मनसःसत्ताप्रतिपादनं नाम चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

---

(१) इसका निरूपण आगे २५ के सर्गमें किया जायग

पंचविंशः सर्गः ॥ २५ ॥

शम्बरके सेनापतियोंका देवताओंसे विनाश, तथा दाम व्यालकी उत्पत्ति और उनसे जयकी आशाका वर्णन इस २५ के सर्गमें किया गया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अस्मिन्विहरतोलोकेलोकारामस्यधीमतः ॥ श्रेयसेतिष्ठतोयत्नमुत्तमार्थाभिधायिनः ॥ १ ॥ दामव्यालकटन्यायोमातेभवतुराघव ॥ भीमभासदृढस्थित्यात्वंविशोकोभवेतिच ॥ २ ॥ ॥ श्रीरामउवाच ॥ दामव्यालकटन्यायोमातेभूदित्युदाहृतम् ॥ ब्रह्मन्किमेतद्भवताभवतापापहारिणा ॥ ३ ॥ भीमभासदृढस्थित्यात्वंविशोकोभवेतिच ॥ प्रभोकिमुक्तंभवताभवतापापहारिणा ॥ ४ ॥

अर्थ—वसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! इस संसारमें विहार करते हुये तथा जनोंके विश्रामस्थान, शम, दम आदि पदार्थोंका प्रकाशक; और मोक्षकेलिये यत्नमें स्थित तुमको दाम व्याल कट न्यायसे अनर्थ प्राप्ति नहीं किंतु भीमभास दृढन्यायकी स्थितिसे तुम शोकरहित होजाओ यह वार्ता तुमसे कह आये हैं ॥ १ ॥ २ ॥ श्रीरामजी बोले-हे ब्रह्मन् ! संसारके तापको हरनेवाले आपने पूर्व प्रसंगमें यह कहा कि तुमको दाम व्याल कट न्याय नहो, सो यह न्याय क्या है ? ॥ ३ ॥ और हे प्रभो ! हे संसाररूपी संतापके हारक आपने यहभी कहा है कि भीमभास दृढन्यायकी स्थितिसे तुम शोकरहित होजाओगे सो यहभी क्या कहा ॥ ४ ॥

उदारयैतयाशुद्धंसंप्रबोधयमांगिरा ॥ घनस्तापापहारिण्याप्रावृषीवकलापिनम् ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ दामव्यालकटन्यायंभीमभासदृढस्थितिम् ॥ शृणुराघवतच्छ्रुत्वायदिष्टंतत्समाचर ॥ ६ ॥ आसीत्पातालकुहरेसर्वाश्चर्यमनोरमे ॥ शंबरोनामदैत्येंद्रोमायामणिमहार्णवः ॥ ७ ॥ आकाशनगरोद्यानरचितासुरमंदिरः ॥ कृत्रिमोत्तमचंद्रार्कभूषितात्मीयमंडलः ॥ ८ ॥

अर्थ—सो हे भगवन् ! हे उदारचित्त ! इस दोनों कथाके वर्णन द्वारा संता पहारिणी वाणीसे ऐसे प्रबोधन कीजिये जैसे वर्षाकालमें मेघमयूरको ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! दाम व्याल कट न्याय, और भीमभास दृढ स्थितिको तुम सुनो और जो इष्ट हो सो करो ॥ ६ ॥ संपूर्ण आश्चर्योंसे मनोरम पातालरूपी गर्तमें मायारूपी मणियोंके महासमुद्रके समान शंबर नाम दैत्योंका राजा था ॥ ७ ॥ और आकाशमें कल्पित नगर तथा उद्यानोंमें असुरोंका मंदिर रचनेवाला, तथा कृत्रिम चन्द्रसूर्यसे आत्मीय वर्गोंको शोभित करनेवाला वह था ॥ ८ ॥

शिलाशकलसंभूतपद्माद्यैरमराचलः ॥ अनंतविभवारंभपरिपूरितदानवः ॥ ९ ॥ गृहरत्नांगनागेयजितामरवधूध्वनिः ॥ चंद्रबिंबकलापूर्णक्रीडोपवनपादपः ॥ १० ॥ फुल्लनीलोत्पलव्यूहकरालरमणालयः ॥ रत्नहंसध्वनाहूतहेमांबुरुहसारसः ॥ ११ ॥ हेमपादपशाखाग्रकृतांभोरुहकुड्मलः ॥ करंजजालप्रपतन्मंदारकुसुमाकरः ॥ १२ ॥

अर्थ—पाषाणकी शिलाओंके समान सुलभ पद्मरागादि मणियोंसे निधि वा सुमेरूके समान, और अनन्त ऐश्वर्योंसे दानवोंको परिपूर्ण करनेवालाथा ॥ ९ ॥ गृहमें रत्नभूत स्त्रियोंके गानसे अप्सराओंकी ध्वनिको जीतनेवाला और चन्द्रबिंबकी कलासे पूर्ण क्रीडारूपी उपवन वाटिका वृक्ष उसके पूर्णथे ॥ १० ॥ विकसित कमलोंकी रचनासे उसका रमण गृहकामीजनोंको भयंकरथा तथा रत्नोंके हंसोकी ध्वनिसे सुवर्णके कमलसे सारस पक्षियोंका आव्हान करनेवाला था ॥ ११ ॥ सुवर्णके वृक्षोंके अग्रभागमें कमलकी कलिकाकी रचना करनेवाला तथा उसके करंज वृक्षोंके जालमें मन्दारवृक्षोंका समूह गिर रहाथा ॥ १२ ॥

तर्कुयंत्रमयानंतदैत्यनिर्जितवासवः ॥ हिमशीतानलज्वालानिर्मितोद्यानमंडपः ॥ १३ ॥ सर्वत्रकुसुमोद्यानाजितानंदननंदनः ॥ मायासर्वहृतव्यालमलयाचलचंदनः ॥ १४ ॥ हेमश्रीलोकलावण्यनिर्जितांतःपुरांगनः ॥ नानाकुसुमसंभारजानुदघ्नगृहांगणः ॥ १५ ॥ क्रीडार्थमृन्मयेशानजितचक्रगदाधरः ॥ अजस्रोड्डीनरत्नोघताराढ्यखपुरांतरः ॥ १६ ॥

अर्थ—तथा कर्त्तनीनामक यंत्र (कतन्नी) के माम दैत्योंसे इन्द्रकोभी जीतनेवाला, और हिमके समान शीतल अग्निकी ज्वालाओंसे उद्यानमण्डपका रचनेवाला वह था ॥ १३ ॥ तथा सर्व स्थानोंमें कुसुमोंके उद्यानोंसे इन्द्रके नन्दनवनको जीतनेवाला, तथा अपनी मायासे सर्पोंके साथ मलयाचलके चन्दनभी हरताथा ॥ १४ ॥ तथा उसके अन्तःपुरकी अंगना अपने अंगोंसे सुवर्णकी शोभा और संसारकी सुन्दरताको जीतनेवाली थी, तथा जिसके

गृहके अंगणमें नानाप्रकारके पुष्पोंके समूह घूटने भरपूर्ण है ॥ १५॥ क्रीडार्थ रचित मृत्तिकाके महादेवसे चक्रधर विष्णु-भगवान्कोभी जीतताथा तथा निरंतर उडनेवाले रत्नोंके समूहोंसे उसका आकाश वा नगरांतर तारागणोंसे पूर्णथा ॥ १६

निशीथाखिलपातालशतचंद्रनभस्तलः ॥ स्वशालभंजिकालोकगीतगीतिरणोत्कटः ॥ १७ ॥ मायैरावणनागेंद्रविद्रुतामरवारणः ॥ त्रैलोक्यविभवोत्कर्षपूरितांतःपुरांतरः ॥ १८ ॥ सर्वसंपत्तिसुभगःस वैश्वर्यनमस्कृतः ॥ समस्तदैत्यसामंतवंदितोग्रानुशासनः ॥ १९ ॥ महाभुजवनच्छायाविश्रांतासुरमंडलः ॥ सर्वबुद्धिगणाधाररत्नमंडलमंडितः ॥ २० ॥

अर्थ—और अमावश्यासे आदिलेके अर्धरात्रिमें उसका आकाशतल सैकडों चंद्रमासे युक्त था, और निजरचित प्रतिमाके पूजाके दर्शक गण उसके रणके उत्कट प्रबन्धको गान करते थे ॥ १७ ॥ और वह मायारचित ऐरावत गजेंद्रोंसे इन्द्रके हस्तीको भगाता था तथा तीनों लोकोंके ऐश्वर्य्योंमें रत्नभूत स्त्री, हस्ती और अश्व आदिसे उसका अन्तःपुर परिपूर्ण था ॥ १८ ॥ सब प्रकारकी संपत्तियोंसे शुभग; संपूर्ण ऐश्वर्योंसे वह नमस्कृत था तथा उसका उग्र शासन समस्त सामन्तों (छोटे करदायी राजों) से वन्दनीयथा ॥ १९ ॥ तथा उसकी महाभुज बनकी छायामें असुरमण्डल विश्रान्तथे; तथा सब बुद्धिगणोंका आधार और रत्नोंके समूहसे शोभित वह शंवर नाम दैत्यथा ॥ २० ॥

तस्योत्सादितदेवस्यकठिनोड्डामराकृतेः ॥ बभूवविपुलंसैन्यमासुरंसुरनाशनं ॥ २१ ॥ तस्मिन्मायाबलेसुप्तेदेशांतरगतेतथा ॥ तत्सैन्यंतरसाजघ्नुश्छिद्रंप्राप्यकिलामराः ॥ २२ ॥ अथशंबरदैत्येनमुंडिक्रोधद्रुमादयः ॥ रक्षार्थमथसामंताःस्वसेनासुनियोजिताः ॥ २३ ॥ तानप्यंतरमासाद्यजघ्नुर्देवाभयानकाः ॥ व्योमांतरगताःश्येनाःकलविंकानिवाकुलान् ॥ २४ ॥

अर्थ—देवताओंको उखाडनेवाले; तथा भयंकर आकारवाले उस दैत्यकी देवताओंका नाश करनेवाली बडी सेनाथी ॥ २१ ॥ मायासे बली उस दैत्यके शयन करने तथा देशान्तर जानेपर छिद्र पाकर देवतालोग उसकी सेनाको क्रोधसे मारते थे ॥ २२ ॥ हे रामजी ! इसके अनन्तर शम्बर दैत्यने मुण्डिक्रोध, द्रुम आदि सेनापतियोंको अपनी सेनाओंमें रक्षाके लिये नियुक्त किया ॥ २३ ॥ उनकोभी भयंकर देवतालोग अवसर पाके ऐसे मारतेथे जैसे आकाशके अन्तर्गत बटेर पक्षियोंको श्येन (बाज) ॥ २४ ॥

सेनापतीन्पुनश्चान्यांश्चकारासुरसत्तमः ॥ चपलानुद्भटारावांस्तरंगानिवसागरः ॥ २५ ॥ देवास्तानपितस्याशुजघ्नुस्तेनसकोपवान् ॥ जगामामरनाशायपरिपूर्णत्रिविष्टपम् ॥ २६ ॥ तस्मात्तन्मायया भीताःसुरास्तेंतर्द्धिमाययुः ॥ मेरुकाननकुंजेषुमृगागौरीहरेरिव ॥ २७ ॥ क्रंदत्क्षुद्रामरगणंबाष्पक्लिन्नाप्सरोमुखम् ॥ शून्यंददर्शसस्वर्गंकल्पक्षीणजगत्समम् ॥ २८ ॥

अर्थ—उस अवसरमें उत्तम शम्बरने अन्य चपल वीर सेनापतियोंको ऐसे उत्पन्न किया जैसे तरंगोंको समुद्र ॥ २५ ॥ देवतालोग उसके उन सेनापतियोंकोभी मारडाला; इस कारणसे उसने शीघ्र देवताओंसे पूर्ण स्वर्गके तथा देवताओंके नाशके लिये कोप किया ॥ २६ ॥ उससे भयभीत होके देवता ऐसे लोप होगये जैसे सुमेरू पर्वतके बनके कुंजोंमें पार्वतीके वाहन सिंहसे भयभीत मृग लोग ॥ २७ ॥ जहां क्षुद्र देवतागण रोदन कररहेथे और अप्सराओंका मुख जहां अश्रुसे पूर्णथा इसप्रकार स्वर्गको उसने ऐसे शून्य देखा जैसे प्रलयसे क्षीण जगत्को ॥ २८ ॥

विहरन्कुपितस्तत्रलब्धमाहृत्यसुंदरम् ॥ लोकपालपुरींदग्ध्वाजगामात्मीयमालयम् ॥ २९ ॥ एवंदृढतरीभूतेद्वेषेदानवदेवयोः ॥ देवाःस्वर्गंपरित्यज्यदिक्षुजग्मुरदर्शनम् ॥ ३० ॥ अथशंबरदैत्येनयेयेसेनाधिनायकाः ॥ क्रियंतेयत्नतस्तांस्तुजघ्नुर्यत्नपराःसुराः ॥ ३१ ॥ यावद्वेगमायातःशंबरःकोपवान्भृशम् ॥ तार्णोतिमात्रमनलइवजज्वालसोच्छ्वसन् ॥ ३२ ॥

अर्थ—वहांपर विचारता हुआ कुपित होके, प्राप्त सुन्दर वस्तुओंको लेके, और इन्द्रकी नगरीको जलाके अपने स्थानको चलागया ॥ २९ ॥ इसप्रकार देवता और दानवोंके वैर अधिक प्रबल होनेपर देवतालोग स्वर्गको त्यागकर अंतर्धान होगये ॥ ३० ॥ हे रामजी ! इसके अनंतर शंवर दैत्य जिन २ सेनापतियोंको रचा उन २ को प्रयत्नमें तत्पर देवताओंने मारडाला ॥ ३१ ॥ तबतक क्षुभित होके शंवरने अति कोप किया, और तृणकी अग्निके समान श्वास लेताहुआ जलने लगा ॥ ३२ ॥

त्रैलोक्यमपिचान्विष्यन्नदेवाँल्लब्धवानथ ॥ परेणापिप्रयत्नेननिधानमिवदुष्कृतिः ॥ ३३ ॥ ससर्जमाययाघोरानसुरांस्त्रीन्महाबलान् ॥ बलरक्षार्थमुदितान्कालान्मूर्त्तिमिवस्थितान् ॥ ३४ ॥ निर्मितामायया

भीमाबलपादपवाहिनः ॥ उदगुस्तेमहामायाःपक्षक्षुब्धाइवाद्रयः ॥ ३५ ॥ दामोव्यालःकटश्चेतिनाम भिःपरिलांछिताः ॥ यथाप्राप्तैककर्त्तारश्चेतनामात्रधर्मिणः ॥ ३६ ॥

अर्थ—इसके अनंतर तीनों लोकमेंभी खोजा परन्तु देवताओंको ऐसे नहीं पाया जैसे अति प्रयत्नसे खोजने परभी पापी द्रव्यके कोशको ॥ ३३ ॥ इसके पश्चात् प्रसन्न चित्त मूर्तिमान् कालके सदृश महाबली और भयंकर तीन असुरोंको सेनाको क्षयकेलिये उत्पन्न किया ॥ ३४ ॥ मायासे रचित, भयंकर बलके समान वृक्षके वाहक (ले जानेवाले) और महामायावी वे ऐसे प्रकट हुये जैसे पक्षसे क्षुभित पर्वत ॥ ३५ ॥ दाम (शत्रुओंका दमन कर्ता) व्याल (सर्पके समान वेष्टित करनेहारा) कट (शत्रुओंके शस्त्रोंसे निजजनोंकी रक्षा करनेवाला) इन [illegible] नामोंसे चिन्हित, यथा प्राप्त कार्योंको करनेहारे, और चेतनामात्र धर्मी वे दैत्य थे ॥ ३६ ॥

अभावात्कर्मणांतेचप्राक्तनानचवासनाः ॥ निर्विकल्पकचिन्मात्रपरिस्पंदैकधर्मकाः ॥ ३७ ॥ कर्मजीवकलांतन्वींमसारांचमनोभिदाम् ॥ अपुष्टांकृत्रिमामंतश्चोदयोदयमागताः ॥ ३८ ॥ तेह्यंधपारंपर्येण काकतालीयवद्रटाः ॥ प्रकृतामनुवर्त्ततेक्रियामुज्झितवासनाः ॥ ३९ ॥ अर्द्धसुप्तायथाबालाःस्वांगैरिंगंतिकेवलम् ॥ वासनात्माभिमानाभ्यांहीनास्तेतद्वदेवहि ॥ ४० ॥

अर्थ—पूर्वजन्मके कर्मोंके अभावसे उनकी वासना नथी किंतु शंका पलायन आदिसे शून्य निर्विकल्प चिन्मात्र सन्निधानसे देहके परिस्पंद तन्मात्र धर्मीथे ॥ ३७ ॥ तथा कर्मजीव शम्बरासुरकी कुशलतारूप अल्प परिणामवाली; भोगकी सारतासे शून्य, कर्मवासनाकी पुष्टिसेरहित और मायारचित सृष्टिके संकल्पकी वृत्तिको ग्रहण करके अन्तर्यामी चेतनके निमित्तसे वे दाम व्याल आदि उदयको प्राप्त हुये थे ॥ ३८ ॥ वासनासे रचित वे तीनों वीर अन्धपरम्परासे काकतालीय न्यायके समान उप स्थित क्रियाका अनुसरण करते थे ॥ ३९ ॥ जैसे आधे सोते हुये बालक अपने अंगोंसे चेष्टा करते हैं ऐसेही वे तीनों वीर वासना तथा आत्माभिमानसे वर्जित थे ॥ ४० ॥

नाभिपातंनचापातंनविदुस्तेपलायनम् ॥ नजीवितंनमरणंनरणंनजयाजयौ ॥ ४१ ॥ केवलंसैनिकानग्रे दृष्टानाहननोद्यतान् ॥ अभिजग्मुःपरानाजौप्रहारदलिताद्रयः ॥ ४२ ॥ शंबरश्चिंतयामासपरितुष्टमनाः परम् ॥ विजेष्यतेहिमेसेनामायासुरसुरक्षिता ॥ ४३ ॥ अतिबलासुरदोर्द्रुमपालितामम चमूःस्थिरताम लभिष्यति ॥ अमरवारणदंतविघट्टनेष्वमरपर्वतहेमशिलायथा ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे दामव्यालकटोत्पत्ति वर्णनं नाम पंचविंशःसर्गः ॥ २५ ॥

अर्थ—न तो वे युद्धकालमें अभिमुखतासे शत्रुओंका पतन जानते थे, न विश्वस्त शत्रुओंमें पतन जानते थे, न भागना जानते थे, और न जीवन, मरण, संग्राम तथा जय पराजय जानते थे ॥ ४१ ॥ किंतु अपने प्रहारसे पर्वतोंकोभी दलित करनेवाले वे वीर युद्धमें मारनेको उद्यत शत्रुके योद्धाओंको आगे देखके सन्मुख जाते थे ॥ ४२ ॥ सन्तुष्ट चित्त शम्बरदैत्यने अपने चित्तमें चिंतन किया कि मायारचित इन असुरोंसे रक्षित मेरी सेना अवश्य जीतेगी ॥ ४३ ॥ अति बलसंयुक्त, और असुरोंके भुजरूपी वृक्षोंकी छायामें पालित मेरी सेना शत्रुओंके प्रहारमें ऐसे स्थिरताको प्राप्त होगी जैसे दिग्गजोंके दांतोंके विघट्टनमें मेरुपर्वतकी हिमकी शिला ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे दामव्यालकटोत्पत्तिवर्णनं नाम पंचविंशः सर्गः ॥ २५ ॥

षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

रसातलसे निकले हुये दाम व्याल आदिके साथ देवताओंका बडी वीरताका संग्राम इस २६ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इतिनिर्णीयदैत्येंद्रोदामव्यालकटान्विताम् ॥ सेनांसंप्रेषयामासभूतलंदेवनाशिनीम् ॥ १ ॥ दैत्याःसागरकुंजेभ्यःकंदरेभ्यश्चसायुधाः ॥ उदगुर्भीमनिर्ह्रादाःसपक्षगिरिलीलया ॥२॥ रोदसीकोटरंहस्तप्रहारहतभास्करम् ॥ दानवाःपूरयामासुर्दामव्यालकटैर्धिताः ॥ ३ ॥ अथोत्तस्थुर्निकुंजेभ्यःकंदरेभ्यःसुराचलात् ॥ प्रलयांतइवाक्षुब्धाभीमाःस्ववासिनांगणाः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–दैत्योंका इन्द्र शंबरासुर इसप्रकार निश्चय करके दाम व्याल और कटके साथ देवताओंका नाश करनेहारी सेनाको भूतलपर भेजा ॥ १ ॥ भयंकर शब्द करनेवाले तथा अस्त्र शस्त्रधारी दैत्यगण समुद्रके कुंजोंसे तथा कन्दराओंसे पक्षधारी पर्वतके समान निकले ॥ २ ॥ हांथोंके प्रहारोंसे तेजहीन सूर्यधारी आकाश और पृथिवीके अन्तरको दाम व्याल तथा कटसे वर्द्धित दानवोंने पूर्ण करदिया ॥ ३ ॥ इसके पश्चात् निकुंजोंसे कन्दरोंसे, तथा सुमेरूपर्वतसे, प्रलयकालमें क्षुब्धके सदृश, और भयंकर देवताओंके गण युद्धके लिये निकले ॥ ४ ॥

देवासुरपताकिन्योस्तद्युद्धमभवत्तयोः ॥ अकालोल्बणकल्पांतभीषणंभुवनांतरे ॥ ५ ॥ पेतुःप्रलयपर्यंतचंद्रार्काइवदीप्तयः ॥ शिरांसिकुंडलोद्योततेजःपीततमांस्यथ ॥ ६ ॥ जुघूर्णुर्भटनिर्मुक्तसिंहनादविराविताः ॥ प्रलयानिलसंपूरैःस्फुटहासाइवाद्रयः ॥ ७ ॥ रेणुःशैलशिलातुल्यहेतिघातास्तभित्तयः ॥ कुलाचलतटाभीरुविश्रांतहरिमंडलाः ॥ ८ ॥

अर्थ—देवता तथा असुरोंकी उन दोनों सेनाओंका युद्ध भुवनके मध्यमें दुःसह प्रलयके समान भयंकर हुआ ॥ ५ ॥ इसके पश्चात् कुंडलके प्रकाशसे अति शोभायमान शिर ऐसे कबन्धसे गिरने लगे जैसे प्रळयमें फेके हुये दीप्तिमान् चन्द्रमा तथा सूर्य ॥ ६ ॥ वीरोंसे किये सिंहनादसे शब्दित और प्रलयकालके वायुके महाप्रवाहोंसे स्पष्ट हासयुक्त पर्वत भ्रमण करने लगे ॥ ७ ॥ पर्वतकी शिलाके समान शस्त्र तथा अस्त्रोंके आघातसे टूटी हुई भित्ति तथा भयभीत सिंहसहित हिमालय आदि पर्वतके तट शब्द करने लगे ॥ ८ ॥

चेरुःपरस्पराघातहतहेतिसमुत्थिताः ॥ लोलानलकणाःकल्पविशीर्णाइवतारकाः ॥९॥ विलेसूरक्तमांसौघपूर्णांर्णवतीरगाः ॥ कल्पतालवदुत्तालावेतालास्तालताडिताः ॥ १० ॥ प्रस्फुरद्रुधिरासारशांतपांसुपयोधरे ॥ व्योम्निहेतिहतक्षुण्णामौलिकुंडलकोटयः ॥ ११ ॥ बभूवुर्भास्कराकारैःकल्पभूरुहधारिभिः ॥ प्रहारदलिताद्रींद्रैर्दैत्यैर्निर्विवरादिशः ॥ १२ ॥

अर्थ—परस्परके शस्त्र तथा अस्त्रोंके आघातसे निकले हुये अग्निके कण ऐसे भ्रमण करने लगे जैसे प्रलयकालमें टूटे हुये तारे ॥ ९ ॥ प्रलयकालके उत्पातरूप तालवृक्षके समान ऊंचे वेतालोंसे फेके हुये रक्त तथा मांसके समूहसे पूर्ण महान् समुद्रके तीरनिवासी जन विलास करने लगे ॥ १० ॥ बहते हुये रुधिरकी धारासे धूलिरहित आकाशमें अस्त्र तथा शस्त्रोंके आघातसे घर्षित मुकुट तथा कुण्डलके अग्रभाग ऐसे शोभित हुये जैसे सूर्य ॥ ११ ॥ सूर्यके समान आकारवाले कल्पवृक्षको धारण किये और प्रहारोंसे बडे २ पर्वतोंको दलन करनेवाले दैत्योंसे संपूर्ण दिशा पूर्ण होगई ॥ १२ ॥

जग्मुर्ज्वलदसिप्रांतवातपातितभित्तयः ॥ कणप्रकरतांशैलाःकल्पाग्निदलिताइव ॥ १३ ॥ देवास्तेचसमाजग्मुरश्वमेधैधिताइव ॥ असुरानस्त्रबिभ्राणान्जलदानिववायवः ॥ १४ ॥ जगृहुस्तानथाक्रम्यजरठाखूनिवौतवः ॥ तेपितान्जगृहुर्मत्तान्वृक्षारूढानिवद्रुमान् ॥ १५ ॥ दोर्वृक्षविलसद्धेतिकुसुमाःशस्त्रपल्लवाः ॥ रेजुःसुरासुराःफुल्लावनलोलाइवद्रुमाः ॥ १६ ॥

अर्थ—जाज्वल्यमान कृपाणके अग्रभागसे निकले हुये महावायुसे पतित भित्ति सहित पर्वत ऐसे चूर्ण समूहताको प्राप्त हुये जैसे प्रलयकी अग्निसे ॥ १३ ॥ अश्वमेध यज्ञसे वर्द्धितके समान देवतागण भग्न अस्त्रधारी असुरोंके निकट ऐसे गये जैसे वेगके समीप वायु ॥ १४ ॥ और आक्रमण करके उन असुरोंको ऐसे ग्रहण करलिया जैसे वृद्ध मूषकको मार्जार और असुर उन देवताओंका ऐसे ग्रहण किया जैसे वृक्षोंपर चढे हुये मत्त जीवोंको भल्लूक ॥ १५ ॥ भुजरूपी वृक्षोंमें अस्त्ररूप पुष्प और शस्त्ररूपी पल्लव सहित विकसित वनके चंचल वृक्षके समान वे सुर और असुर शोभित हुये ॥ १६ ॥

अन्योन्यंपूरयामासुःशस्त्रपूरैर्दिशोदश ॥ वनानिकुसुमव्रातैःसुमेराविवमारुतः ॥ १७ ॥ घोरंसमभवद्युद्धंदेवदानवसेनयोः ॥ रोदोरंध्रोदुंबरांतर्महामशकसंघयो ॥ १८ ॥ अथोदपतदुत्तालैर्लोकपालेभमंडलैः ॥ कल्पाभ्रस्फूर्जिताकारोदारुणःसमरारवः ॥ १९ ॥ पिंडग्रहेणनभसिभूभागमिवकुट्टिमम् ॥ सुघिष्ठोमहामेघमंथरोदरपीवरः ॥ २० ॥

अर्थ—उन दोनोंने परस्पर शस्त्रोंके प्रवाहोंसे दशों दिशाओंको ऐसे पूर्ण किया जैसे सुमेरू पर्वतपर वायु कुसुमके समूहोंसे वनोंको ॥ १७ ॥ आकाश और पृथिवीके मध्य छिद्ररूप गूलरके अन्तःप्रदेशमें स्थित मशक समूहोंके तुल्य देवता और दानवोंका वह भयंकर युद्ध हुआ ॥ १८ ॥ इसके पीछे तालके सदृश ऊंचे लोकपालोंके हस्ति-

मण्डलोंका प्रलयकालकी गर्जनाके समान भयंकर समरका शब्द निकला ॥ १९ ॥ वह समरका शब्द अधिक घनीभावसे मानो आकाशमें कुट्टिम पृथिवीका भाग बना रहाथा और कहीं तो मुष्टिसे ग्रहण करने योग्य, और कहीं मेघोंके जलभारसे गम्भीर उदरके समान भान होताथा ॥ २० ॥

रथसंपातसंपिष्टशस्त्रशैलरटन्नटः ॥ त्रुटद्धृदयनिःसत्वकर्कशाक्रंदघर्घरः ॥ २१ ॥ प्रलयप्रत्ययोल्लासिकल्पांतारावबृंहणः ॥ द्वादशादित्यसंघट्टद्रवत्कांचनपर्वतः ॥ २२ ॥ ब्रह्मांडकुंडसंघट्टात्परावृत्त्याचनिर्गतः ॥ महास्रोतःपयःपूरःसत्वाहतइवाकरः ॥ २३ ॥ चंचत्सपक्षशैलेंद्रपक्षपातचलद्ध्वनिः ॥ कठिनापूरणोद्भूतस्फुटच्छैलेंद्रकंदरः ॥ २४ ॥

अर्थ—तथा रथोंके संपातसे चूर्ण शास्त्रोंसे पर्वतोंपर रटते हुये नटके समान ताललयका अनुसरण करताथा और विदीर्ण हृदय तथा धैर्यरहित पुरुषोंके कर्कशरोदनसे घर्घर भान होताथा ॥ २१ ॥ और प्रलयके कारणीभूत अग्नि वायु आदिसे उल्लासको प्राप्त होनेवाले ब्राह्म दिवसके अन्तमें प्रसिद्ध प्रलय शब्दकाभी वर्द्धक, और द्वादश आदित्योंके मेलनसे द्रवीभूत कांचन पर्वतके शब्दके समान विदित होताथा ॥ २२ ॥ और ब्रह्माण्ड कुण्डके संघट्टको पाकर और उससे लौटकर तथा अपनेस्थानसेभी चलित प्राणियोंसे ताडित जीवोंका आश्रयभूत महाप्रवाहके जलकी ध्वनिके समान जान पडताथा ॥ २३ ॥ और जहांपर चलते हुये पक्षसहित पर्वतोंके वायुके सदृश चलायमान ध्वनि होरहीथी, और जहां कर्णको कटु वायुके भयंकर शब्दोंसे पर्वतोंकी कंदरा टूट रहींथी ॥ २४ ॥

मंदरोद्भूतदुग्धाब्धिसंक्षोभसदृशांगकः ॥ रतिश्रुद्धुंधुमास्फोटघटितद्वीपजंतुभूः ॥२५॥ सेनयोःक्षुब्धयोरासीद्युद्धमुद्धतदानवम् ॥ निष्पिष्टनगरग्रामगिरिकाननमानवम् ॥ २६ ॥ महाहेतिशतच्छिन्नदानवाचलपूर्णदिक् ॥ अन्योन्याहतहेत्यादिचूर्णपूर्णांबरोदरम् ॥ २७ ॥ भुशुंडीमंडलास्फोटस्फुटन्मेरुशिरःशतम् ॥ शरमारुतनिर्लूनदैत्यदेवमुखांबुजम् ॥ २८ ॥

अर्थ—और अमृतके अर्थ मन्थन समयमें मंदराचलसे कंपित क्षीरसागरकी ध्वनिके समान स्वरूपधारी; उसी स्थानपर अमृत उत्पन्न होनेसे उसमें प्रीतिके कारण सुननेवाले देवताओंके हर्षकी अधिकतामें भुजाओंके अस्फालन शब्दोंसे सप्त द्वीपरूप जन्तुओंके निवासिको पूर्ण करनेवाला वह समरका शब्द निकला ॥ २५ ॥ उन दोनों क्रुद्ध सेनाओंका भयंकर युद्ध हुआ, उस युद्धमें दानव उद्धतथे, और वहांपर नगर, ग्राम पर्वत तथा मनुष्य कुच ले जातेथे ॥ २६ ॥ और महाशस्त्रोंसे सैकडों छिन्नभिन्न दानवोंके अचल शब्दसे दिशा पूर्णथीं, और जहां परस्पर प्रहारित शस्त्र आदिसे उत्पन्न धूलिके चूर्णसे आकाशका उदर पूर्ण होरहाथा ॥ २७ ॥ और जहां भुशुंडीके समूहोंके शब्दोंसे सैकडों मेरुके शिखर टूट रहेथे, और जहां वायुकेतुल्य बाणोंके वेगसे देवता और दैत्योंके मुखरूपी कमल कट रहेथे ॥ २८ ॥

चक्रावर्त्तशतभ्रांतदेवदैत्यजरत्तृणम् ॥ सेनाप्रहारकल्लोलवलनावलितांबरम् ॥ २९ ॥ हेत्युग्रवातनिष्पिष्टपतद्वैमानिकव्रजम् ॥ अस्त्रोदिताब्धिवायोंघप्लावितव्योमपत्तनम् ॥ ३० ॥ वहन्महास्त्रपातासिशूलशक्तिनदीशतम् ॥ शैलपक्षोद्भटास्फोटलुंबद्ब्रह्मांडमंडपम् ॥ ३१ ॥ दैत्यपार्ष्णिप्रहारौघपतल्लोकेशपत्तनम् ॥ नारीहलहलारावरणत्कंकणमंदिरम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—तथा चक्ररूपी आवर्तमें सैकडों देवता तथा दैत्यरूपी प्राचीन तृण भ्रमण कर रहेथे और जहां सेनाके प्रहाररूपी तरंगके वेष्टनसे आकाशभी वेष्टित होरहाथा ॥ २९ ॥ तथा जहां शस्त्ररूपी उग्र वायुसे मर्दित होकर विमान चारी देवताओंका समूह गिररहाथा और जहां वरुण आदि अस्त्रोंसे उत्पन्न समुद्रके जलप्रवाहोंसे आकाशमें इन्द्रकी अमरावती आदि नगरीभी वह रहीथी ॥ ३० ॥ तथा महाअस्त्रोंके संपातसे खड्ग, त्रिशूल, और शक्ति आदिकी सैकडों नदियां बह रहीथी, और जहां पर्वतोंके पार्श्व (बगल) में वीरोंके उद्धत भुजा आदिके शब्दोंसे ब्रह्माण्डरूपी मण्डप कंपायमान हो रहाथा ॥ ३१ ॥ और जहांपर दैत्योंकी पार्ष्णि (एडी) के प्रहारोंके समूहोंसे इन्द्र आदिकेभी नगर गिरतेथे, तथा जहां स्त्रियोंके हलहला शब्दोंसे शब्दायमान कंकणयुक्त मंदिर होरहेथे ॥ ३२ ॥

लुठद्दैत्यबलोद्धूतमत्तास्त्रौघजलान्वितम् ॥ रक्तधौतनरौघोग्रमुक्तनादद्रवज्जनम् ॥ ३३ ॥ लोकपालानीकपांभोजच्छन्नाच्छन्नयमान्वितम् ॥ पुनःसुरासुरैर्घातैर्दृष्टसैन्यकुलाकुलम् ॥ ३४ ॥ सपक्षपर्वताकारदानवाद्रिगमागमैः ॥ वहच्छवशवाशब्दभूरिभांकारभीषणम् ॥ ३५ ॥ आयुधाग्रविभिन्नोग्रदैत्यपर्वतनिर्झरैः ॥ रक्तैरुरुणिताशेषवसुधार्णवपर्वतम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—तथा लूटतेहुये दैत्योंके सैन्यसे कम्पित मत्त जनोंके अस्त्र समूहरूपी जलसे संयुक्त तथा जहां रक्तसे धौत (धुलेहुये) मनुष्योंके समूहसे उत्पन्न भयंकर शब्दसे मनुष्यलोग भागरहेथे ॥ ३३ ॥ तथा इन्द्रादि सेनाओंके

नायकरूपी कमलोंमें भ्रमरके समान कभी प्राण हरनेके अर्थ गुप्त; और कभी युद्धके अर्थ प्रकट यमराज सहित सुर तथा असुरोंके सैन्यकुलसे वह युद्धस्थान व्याप्त था ॥ ३४ ॥ पक्षसहित पर्वताकार दानवरूपी पर्वतोंके गमन तथा आगमनसे शवशव (मृतक मृतक) शब्दोंसे भयंकरथा ॥ ३५ ॥ जहांपर शस्त्रोंके अग्रभागोंसे छिन्न दैत्यरूपी पर्वतके झरनोंके रक्तोंसे सम्पूर्ण पृथिवी, समुद्र; तथा पर्वत लाल होरहेथे ॥ ३६ ॥

उत्सन्नराष्ट्रनगरविपिनग्रामगह्वरम् ॥ धृतासंख्यासुरेभाश्वमनुष्यशवपर्वतम् ॥ ३७ ॥ सुतालोत्तालनाराचराजिरोचितवारणम् ॥ मुष्टिप्रहारपिष्टांसमत्तैरावणवारणम् ॥ ३८ ॥ कल्पाभ्रपटलासारधारादलितपर्वतम् ॥ महाशनिविनिष्पेषपिष्टोड्डीनकुलाचलम् ॥ ३९ ॥ कुपिताग्निज्वलज्ज्वालाज्वालज्वलितदानवम् ॥ एकांजलिपुटानीतसमुद्रोत्सादितानलम् ॥ ४० ॥

अर्थ—नष्ट हुये राज्य, नगर जंगल तथा बनसे भयंकर और असंख्य असुर, हस्ती, अश्व, मृग और मृतक जीवोंको धारण करनेहारे मेरूआदि पर्वत विद्यमान थे ॥३७॥ उत्तम तालवृक्षके तुल्य ऊंचे बाणोंकी पंक्तियोंसे शोभित अनेक हस्ती संयुक्त, तथा मुष्टिप्रहारोंसे चूर्ण स्कंधयुक्त मत्त ऐरावत हाथीभी भागतेथे ॥ ३८ ॥ और जहांपर प्रलयकालके मेघके पटलकी वृष्टिकी धारासे पर्वतभी दलित होगयेथे तथा जहांपर महावज्रपातसे चूर्ण मलयादिपर्वतभी उड रहेथे ॥ ३९ ॥ तथा जहांपर कुपित अग्निकी जाज्वल्यमान ज्वालाके समूहसे दानवगण जल रहेथे, और जहांपर एक अंजलिसे लाये हुये समुद्रसे अग्निभी नष्ट करदिया गयाथा ॥ ४० ॥

चंडदैत्यातिसंभारशिलीकृतमहाज्वलम् ॥ वनव्यूहेंधनाग्र्यर्चिर्द्रावितांबुशिलोच्चयम् ॥ ४१ ॥ अस्त्रनिर्मितदुर्वारतमःकल्पांतरात्रिकम् ॥ मायासूर्यगणोद्योतैःपीतातनुतमःपटम् ॥ ४२ ॥ मायाग्निवर्षनिष्पीतकलाभ्रघनवर्षणम् ॥ ससीत्काराग्निवमनशस्त्रसंघट्टवर्षणम् ॥ ४३ ॥ वज्रवर्षास्त्रनिर्द्धूतशैलवर्षास्त्रसंभ्रमम् ॥ निद्राबोधास्त्रयुद्धाढ्यंसंघर्षावग्रहाश्रयम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—तथा जहां प्रचंड दैत्योंके समूहसे महान् अग्नि पाषाण शिलाके समान शीतल होरहाथा, तथा बनके समूहसे प्रेरित अग्निकी दीप्तिसे पर्वतभी जलके समान करदिये गयेथे ॥ ४१ ॥ अस्त्रसे रचित अनिवारणीय अन्धकारसे प्रलयकी रात्रिके समान, तथा मायारचित सूर्योंके गणके प्रकाशोंसे विस्तृत अन्धकाररूप पट पीतवर्ण होगयाथा ॥ ४२ ॥ जहां मायासे रचित अग्निकी वर्षाने मायासे प्रेरित घन वर्षाको सर्वथा पी लियाथा, तथा जहां सीत्कार शब्द और अग्निके वमनसहित शस्त्रके संघट्टसे वृष्टि होरहीथी ॥ ४३ ॥ तथा जहांपर वज्रकी वर्षारूपी अस्त्रोंसे कंपायमान पर्वतकी वृष्टिरूप अस्त्रोंका संभ्रम होरहाथा, निद्रा और जाग्रत् अवस्था जनक अस्त्रोंके युद्धसे पूर्ण, और शत्रुके पराजय रूप वृष्टिके प्रतिबन्धका आश्रयस्थान वहथा ॥ ४४ ॥

वहत्क्रकचवृक्षास्त्रंजलाग्न्यस्मरणांधितम् ॥ ब्रह्मास्त्रयुद्धविषमंतमस्तेजोस्त्रसारितम् ॥ ४५ ॥ अस्त्रोद्गीर्णायुधानीकनीरंध्रसकलांबरम् ॥ शिलावर्षास्त्रदलितंवह्निवर्षास्त्रभासुरम् ॥ ४६ ॥ पताकास्पृष्टशशिकैश्चक्रचीत्कारगर्जितैः ॥ मुहूर्तैर्नरथैर्लंघितोदयास्तमयाचलम् ॥ ४७ ॥ वज्रप्रहाराविरतम्रियमाणमहासुरम् ॥ शुक्रामरमहाविद्याजीवमानमहासुरम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—जहां क्रकचके वृक्षरूपी अस्त्र वह रहेथे, और जल तथा अग्निके व्यामोहसे अन्धकार युक्त, और जहांपर ब्रह्मास्त्र युद्धसे भयंकर तथा तम और तेज दोनों परस्पर उत्साहित होतेथे ॥ ४५ ॥ जहां आसुर तथा पैशाच आदि अस्त्रोंसे और तोमर मुसल तथा मुद्गर आदि आयुध समूहोंसे छिद्र रहित संपूर्ण आकाश होगयाथा, और शिला वृष्टिरूपी अस्त्रसे दलित तथा अग्निकी वर्षारूपी अस्त्रसे प्रकाशमान था ॥ ४६ ॥ पताकाओंसे चंद्रमाको स्पर्श करनेहारे चक्रोंके चीत्कारकी गर्जना सहित रथोंने उदयाचल और अस्ताचलकोभी लंघन करलियाथा ॥ ४७ ॥ और जहांपर वज्रके प्रहारसे निरन्तर महा असुर मररहेथे, और शुक्राचार्यकी संजीविनीनाम महाविद्यासे महा असुर जहां जीवितभी होरहेथे ॥ ४८ ॥

विद्रवद्देवसंघातंजयप्रोड्डामरामरम् ॥ शुभग्रहमहाकेतुमालिकानामितस्ततः ॥ ४९ ॥ उत्पातमंगलोद्गीतांबुद्देरुद्धरकंधरम् ॥ साद्रिस्रोतोंसिसमुद्रयुजगद्रुधिरवारिधि ॥ ५० ॥ फुल्लैकर्किंशुकवनंकुर्वद्दुर्वारवैरतः ॥ पर्वतप्रतिमासंख्यंशवपूर्णमहार्णवम् ॥ ५१ ॥ समग्रतरुशाखाग्रलंबलोलमहाशवम् ॥ दीप्यमानैःस्ववातार्त्तैःपक्षपुष्पैर्लसत्फलैः ॥ ५२ ॥

अर्थ—कहीं तो देवताओंका समूह भाग रहाथा और कहीं देवताओंको विजयका डंका बज रहाथा, और

कहीं महा केतु मालिकाओंके तथा शुभग्रहोंके दर्शनके लिये इधर उधर लोगोंके कण्ठ उठ रहेथे ॥ ४९ ॥ और कहीं उत्पातोंके वा मंगलके समूहोंके दर्शनार्थ कण्ठ लोगोंके उठ रहेथे, तथा जहांपर पर्वत आकाश, पृथिवी समुद्र और अंतरिक्षके सहित यह जगत् रुधिरका समूह हो रहाथा ॥ ५० ॥ तथा दुर्वार वैरसे जगत् विकसित किंशुकके वनसे पूर्ण रक्त पर्वतके तुल्य, असंख्य मृतक जीवोंसे पूर्ण महा समुद्र समान भासताथा ॥ ५१ ॥ संपूर्ण वृक्षोंकी शाखाओंके अग्रभागमें महा मृतक लटक रहेथे, और सूर्यकी किरणोंके प्रतिबिंबरूप अभ्रवोंसे शोभायमानथा और जहांपर अपने वेग जनित वायुसे चंचल पक्षरूप पुष्पसे शोभायमान लोहके भागरूप पल्लवाले ॥ ५२ ॥

तालोत्तालैःशरव्रातवनैर्व्याप्तनभस्थलम् ॥ पर्वतप्रतिमासंख्यकबंधशतबाहुभिः ॥ ५३ ॥ नृत्यद्भिःपातितांभोदविमानसुरतारकम् ॥ शरशक्तिगदाप्रासपट्टिशप्रोतपर्वतम् ॥ ५४ ॥ लोकसप्तकविभ्रष्टकुड्यखंडचितांबरम् ॥ अनारतरसन्मत्तकल्पाभ्रदृढदुंदुभि ॥ ५५ ॥ एवंशब्दशतोन्नादपातालतलवारणम्॥ विनायककराकृष्टदीर्घदानवपर्वतम् ॥ ५६ ॥ एकदिक्करनिष्पंदसिद्धसाध्यमरुद्गणम् ॥ पलायमानगंधर्वकिन्नरामरचारणम् ॥ ५७ ॥ ववुरशनिनिपातखंडितांगादलितशिलाशकलाःककुम्मुखेषु ॥ प्रलयसमयसूचकाःसुराणांसुरतरुघर्घरघस्मराःसमीराः ॥ ५८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे दामव्यालकटसंग्राम वर्णनं नाम षडविंशःसर्गः ॥ २६ ॥

अर्थ—तथा तालके समान ऊंचे बाणके समूहरूपी बनोंसे आकाशमंडल व्याप्त होगयाथा, और जहां पर्वतके समान असंख्य कबंध (शिर रहित धड) की नाचती हुई भुजाओंने मेघ, विमान, देवता और तारागण गिरा दियेथे जहां बाण, शक्ति, गदा, बर्छी और पट्टिशके अग्रभागमें निरन्तर प्राणी गूंथेथे ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ तथा जहां सातों-लोकोंसे गिरे स्थानादिसे आकाश व्याप्तथा और निरंतर मत्तके सदृश प्रलयकालके मेघके समान प्रबल दुंदुभी बज रहाथा ॥ ५५ ॥ इस प्रकार जहां सैकडों शब्दोंसे दिग्गज गर्जना कर रहेथे और जहांपर विनायकके हांथसे बडे २ दानवरूपी पर्वत खींचे जातेथे ॥ ५६ ॥ और असुरोंके भयसे देवेच्छासे भागते समय एकदिशामें मिलित सिद्ध-साध्य आदि देवताओंके गणभी चेष्टा रहित हो रहेथे, और जहां गंधर्व, किन्नर देवता और चारण भाग रहेथे ऐसा भयानक वह युद्ध हुआ ॥ ५७ ॥ हे रामजी ! इस समय बज्र (बिजुली) के पतनसे प्राणीयोंके अंगोंके तथा पर्वतोंको काटनेवाले देवताओंके प्रलयके सूचक और कल्पवृक्षोंमें रहनेवाले कोकिल आदि शब्दोंके नाशक पवन संपूर्ण दिशाओंमें बहने लगे ॥ ५८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे दामव्यालकट संग्रामवर्णनं नाम षाड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

सप्तविंशः सर्गः ॥ २७ ॥

इस २७ के सर्गमें देवताओंका पराजय और शरणागत देवताओंको ब्रह्माजीने वासनाके समूहरूप दैत्यके वधका उपाय बतलायाहै ॥

॥श्रीवसिष्ठउवाच ॥ तस्मिंस्तदावर्त्तमानेघोरेसमरसंभ्रमे ॥ देवासुरशरीरेषुगर्त्तेष्वभ्रोदरेष्विव ॥ १ ॥ वहत्स्वसृक्प्रवाहेषुगंगापूरेष्विवांबरात् ॥ दाम्निवेष्टितदेवौघकृतक्ष्वेडाघनारवे ॥ २ ॥ व्यालेनिजकराकृष्टपिष्टसर्वसुरालये ॥ कटेकठिनसंरंभसंगरक्षपितामरे ॥ ३ ॥ ऐरावतेक्षीणरवेपलायनपरायणे ॥ प्रवृद्धेदानवानीकेमध्याह्नइवभास्करे ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! जिस समय वह भयंकर युद्ध वर्तमानथा और देवथा असुरोंके मेघके उदरके समान शरीरके घावोंमें ॥ १ ॥ रुधिरकी धारायें ऐसी वह रहीथी जैसे आकाशसे गंगाजीके प्रवाह, और दाम नामक दैत्य जब देवताओंके समूहको वेष्टित करके सिंहके समान गर्जताथा ॥ २ ॥ और व्याल अपने हस्तसे संपूर्ण देवताओंके स्थानोंको चूर्ण करताथा; तथा कठिन संग्राममें कट नाम दानव देवताओंका नाश करताथा ॥ ३ ॥ तथा जब क्षीण बल होके ऐरावत हांथी भागताथा और जब मध्यान्ह कालके सूर्यके सदृश दानवोंकी सेना बढतीथा ॥४॥

पतितांगव्यथार्त्तानिप्रस्रवद्रुधिराणिच ॥ पयांसीवावसेदूनिदेवसैन्यानिदुद्रुवुः ॥ ५ ॥ दामव्यालकटारतानिचिरमंतर्हितानिच ॥ अनुजग्मुर्लसन्नादमिंधनानीवपावकाः ॥ ६ ॥ अन्विष्टानापियत्नेननालभं

तासुराःसुरान् ॥ घनजालवनोड्डीनान्सिंहाहरिणकानिव ॥ ७ ॥ अलब्धेष्वमरौघेषुदामव्यालकटास्त दा ॥ जग्मुःपातालकोशस्थंप्रभुंप्रमुदिताशयाः ॥ ८ ॥

अर्थ—उस समय गिरे हुये अंगोंकी व्यथासे पीडित तथा रूधिरलिप्त देह देवताओंकी सेना ऐसे भगी जैसे पुलके टूटनेपर जल ॥ ५ ॥ सिंहके समान नाद करते हुये दाम व्याल और कट चिरकालतक अंतर्हित (छिपे हुये) भी देवताके पीछे ऐसे चले जैसे इन्धनके पीछे अग्नि ॥ ६ ॥ प्रयत्नसे खोजनेपरभी असुरोंने देवताओंको ऐसे नहीं पाया जैसे घनीभूत जाल संयुक्त वनसे उडे हुये हरिणोंको सिंह ॥ ७ ॥ जब देवताओंका गण न मिला उस समय प्रसन्न चित्त दाम व्याल और कट पातालके कोशमें स्थित अपने प्रभु शंबरके समीप गये ॥ ८ ॥

अथदेवाविषण्णास्तेक्षणमाश्वास्यवैययुः ॥ जयोपायायविजिताब्रह्माणममितौजसम् ॥ ९ ॥ तेषामा विरभूद्ब्रह्मारक्तरक्ताननश्रियाम् ॥ सायंरक्तीकृतांबूनामब्धीनामिवचंद्रमाः ॥१०॥ प्रणम्यतेसुरास्तस्मा अनर्थंशंबरेहितम् ॥ सम्यक्प्रकथयामासुर्दामव्यालकटक्रमम् ॥११॥ तदाकर्ण्याखिलंब्रह्माविचार्यस विचारवित् ॥ उवाचेदंसुरानीकमाश्वासनकरंवचः ॥ १२ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् देवतालोग अति उदासीन चित्त क्षणभर स्वस्थ होके शम्बरदैत्यके जीतनेके उपायके-लिये अपरिमित तेजस्वी ब्रह्माजीके निकटगये ॥९॥ रुधिरोंसे रक्त मुखकी शोभायुक्त उन देवताओंके मध्यमें ब्रह्माजी ऐसे प्रकट हुये जैसे सायंकालमें रक्तवर्ण जलसहित समुद्रके मध्यमें चंद्रमा ॥१०॥ वे सब देवतागण ब्रह्माजीको प्रणाम करके दाम व्याल और कटकी उत्पत्तिरूप शम्बरकी चेष्टारूप अनर्थको भलीभांति कथन किया ॥ ११ ॥ उस संपूर्ण वृत्तांतको सुनके विचारमें कुशल ब्रह्माजी विचार करके देवताओंकी सेनाओंको धैर्य देके इस वचनको बोले कि॥१२॥

॥श्रीब्रह्मोवाच॥ शतवर्षसहस्रांतेशंबरेणहरेःकरात्॥ मर्त्तव्यंसमरेशस्यतत्कालंसंप्रतीक्षताम्॥ १३ ॥ दामव्यालकटानेतानद्यत्वमरसत्तमाः ॥ योधयंतःपलायध्वंमायायुद्धेनदानवान् ॥ १४ ॥ युद्धाभ्यास वशादेषांमुकुराणामिवाशये ॥ अहंकारचमत्कारःप्रतिबिंबमुपैष्यति ॥ १५ ॥ गृहीतवासनास्त्वेतेदा मव्यालकटासुराः ॥ सुजेयावोभविष्यंतिलग्नजालाःखगाइव ॥ १६ ॥

अर्थ—हे देवगण! शत (सौ) सहस्र (हजार) वर्षके अनंतर समरके स्वामी श्रीविष्णुजीके हस्तसे शम्बरासुर अवश्य मरेगा सो उसकी तबतक तुमको अवश्य प्रतीक्षा करनी चाहिये ॥ १३ ॥ इसकारण हे देवताओंमें श्रेष्ठ इससमय तो तुम लोग कपट युद्धसे दाम व्याल तथा कट नाम दानवोंको युद्ध कराते हुये भागो ॥ १४ ॥ युद्धके अभ्यासके कारण इन लोगोंके अंतःकरणमें अहंकारके चमत्कारके प्रतिबिंब ऐसे उदय होगा जैसे दर्पणमें मुख आदिका ॥ १५ ॥ हे देवगण! वासनासहित ये दाम व्याल और कट सहजमें जीतने योग्य ऐसे होजायगे जैसे जालमें फसे हुये पक्षी ॥ १६ ॥

अद्यत्ववासनाह्येतेसुखदुःखविवर्जिताः ॥ धैर्येणारीन्विनिघ्नंतोदेवाइर्जयतांगताः ॥ १७ ॥ वासनातंतु बद्धायेआशापाशवशीकृताः ॥ वश्यतांयांतितेलोकेरज्जुबद्धाःखगाइव ॥ १८ ॥ येभिन्नवासनाधीरा सर्वत्रासक्तबुद्धयः ॥ नहृष्यंतिनकुप्यंतिदुर्जयास्तेमहाधियः ॥ १९ ॥ यस्यांतर्वासनारज्ज्वाग्रंथिबंधः शरीरिणः ॥ महानपिबहुज्ञोपिसबालेनापिजीयते ॥ २० ॥

अर्थ—और हे! देवगण इस समय तो ये बासनासे शून्य सुखदुःख वर्जित हैं, और धीरतासे अपने शत्रुओंको नष्ट करते हुये तुमको जीतनेको अयोग्य होगये हैं ॥ १७ ॥ जो लोग बासनाके सूत्रसे बंधेहैं तथा आशाकी फांसीके वशमें हैं वे इस संसारमें ऐसे वशमें प्राप्त होतेहैं जैसे रज्जुसे बंधेहुये पक्षी ॥ १८ ॥ और जिन महात्माओंकी वासना छिन्नहै और जिनकी बुद्धि सर्वत्र संसक्त नहीं है, और जो न कभी प्रसन्न होतेहैं और न कोप करतेहैं उन महाबुद्धियोंका जीतना अति कठिनहै ॥ १९ ॥ जिस शरीरधारीका अन्तःकरण वासनाकी रस्सीसे बंधाहै वह चाहै महान् क्यों न हो और बहु ज्ञाता क्यों न हो परन्तु वह एक बालकसेभी जीता जा सकताहै ॥ २० ॥

अयंसोहंममेदंतदित्याकल्पितकल्पनः ॥ आपदांपात्रतामेतिपयसामिवसागरः ॥ २१ ॥ इयन्मात्रपरि च्छिन्नोयेनात्माभव्यभावितः ॥ ससर्वज्ञोपिसर्वत्रपरांकृपणतांगतः ॥ २२ ॥ अनंतस्याप्रमेयस्ययेनेय त्ताप्रकल्पिता ॥ आत्मनस्तस्यतेनात्मास्वात्मनैवावशंकितः ॥ २३ ॥ आत्मनोव्यतिरिक्तंयत्किंचिद स्तिजगत्त्रये ॥ यत्रोपादेयभावेनबद्धाभवतुवासना ॥ २४ ॥

अर्थ—यह शरीरादि, वह इन्द्रियादि मैं हुं, वह धन पुत्रआदि मेरा है इत्यादिक कल्पना करनेवाला प्राणी

सम्पूर्ण आपत्तियोंका पात्र ऐसे होताहै जैसे अनेक प्रकारके जलका समुद्र ॥ २१ ॥ सर्वव्यापी सर्वज्ञ आत्माकाभी परिछिन्न इस शरीरआदिके साथ जिसको अभेदबुद्धि है वही जीवन मरणरूप परम कृपणताको प्राप्त हुआहै ॥ २२ ॥ अनन्त और अप्रमेय आत्माकी जिसने इयत्ता (इतनाही शरीरमात्र है) कल्पित कियाहै उसने अपने आत्माको आपही अवश कियाहै ॥ २३ ॥ यदि आत्मासे पृथक् वस्तु कोई तीनों लोकमें हो तो वहां उपादेयभावसे वासनाका बद्ध होना युक्त हो ॥ २४ ॥

आस्थामात्रंमनंतानांदुःखानामाकरंविदुः ॥ अनास्थामात्रमभितःसुखानामाकरंविदुः ॥ २५ ॥ दामव्याललकटायावदनास्थाभवसंस्थितौ ॥ तावन्नमजेयावोमशकानामिवानलाः ॥ २६ ॥ अंतर्वासनयाजंतोर्दीनतामनुयातया ॥ जितोभवत्यन्यथातुमशकोप्यमराचलः ॥ २७ ॥ विद्यतेवासनायत्रतत्रसायाति पीनताम् ॥ गुणेगुणिनिहिद्वित्वंसतोदृष्टंहिनासतः ॥ २८ ॥

अर्थ—असद् वस्तुमें सदूपसे आस्थाही अनंत दुःखोंकी खानि कही जाती है, और असद् वस्तुमें अनास्थाही (अविश्वासही) सुखोंकी खानि गई है ॥ २५ ॥ दाम व्याल और कटको जबतक संसारकी स्थितिमें आस्था नहीं है तबतक वे तुमारे जीतनेको ऐसे असमर्थ हैं जैसे अग्निको जीतनेमें मशक ॥ २६ ॥ जिसके अन्तःकरणमें यह बासनाहै कि देहादिके नाशसे आत्माका नाश होताहै वही जीव जीवन मरणरूप दीनताको प्राप्त होता है और वही दूसरेसे जीता जाता है इसके विना एक मशक (मच्छर) भी सुमेरूके समान है ॥ २७ ॥ जहांपर जो वासनाहै वहां वह स्थूलताको प्राप्त होती है क्योंकि धर्मीके रहनेहीसे पीनता (स्थूलता) नामक गुण होताहै, क्योंकि विद्यमान द्रव्यहीमें द्वित्व दृष्ट है न कि असत्वमें ॥ २८ ॥

अयंसोहंममेदंचेत्यवमंतःसवासनम् ॥ यथादामादयःशक्रभावयंतितथाकुरु ॥ २९ ॥ यायाजनस्य विपदोभावाभावदशाश्चयाः ॥ तृष्णाकरंजवल्यास्तामंजर्यःकटुकोमलाः ॥ ३० ॥ वासनातंतुबद्धोयो लोकोविपरिवर्त्तते ॥ साप्रवृद्धातिदुःखायसुखायोच्छेदमागता ॥ ३१ ॥ धीरोप्यतिबहुज्ञोपिकुलजोपिमहानपि ॥ तृष्णयाबध्यतेजंतुःसिंहःशृंखलयायथा ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे इन्द्र ! ये दाम, व्याल और कटके अन्तःकरणमें यह वासना जैसे हो कि यह प्रसिद्ध देहादि हम हैं ऐसी उपाय करो ॥ २९ ॥ इस जीवकी जो २ विपत्ति हैं और भाव अभावकी जो दशा हैं वे सब तृष्णारूपी कंटकके वृक्षकी कटु और कोमलताहैं ॥ ३० ॥ वासनाके तन्तुसे जो लोक बंधाहै उसीको विपरीत ज्ञान होता है और वही वासना बढी हुई अति दुःखकेलिये होती है; और उच्छिन्न होनेसे अति सुखकेलिये होती है ॥ ३१ ॥ यह प्राणी धीरभी हो, बहु ज्ञाताभी हो, कुलीनभी और महान्‌भी हो, परन्तु तृष्णासे ऐसे बंधनमें आ जाताहै जैसे सिंह शृंखला (जंजीर) से ॥ ३२ ॥

देहपादपसंस्थस्यहृदयालयगामिनः ॥ तृष्णाचित्तखगस्येयंवागुरापरिकल्पिता ॥ ३३ ॥ दीनोवासनयालोकःकृतांतेनापकृष्यते ॥ रज्ज्वेवबालेनखगोविवशोभृशमुच्छ्वसन् ॥ ३४ ॥ अलमायुधभारेणसंगरभ्रमणेनच ॥ वासनायाविपर्यासंयुक्त्यायत्नाद्रिपोःकुरु ॥ ३५ ॥ अंतराक्षुभितेधैर्येरिपोरमरनायक ॥ नशास्त्राणिनचास्त्राणिनशास्त्राणिजयंतिच ॥ ३६ ॥

अर्थ—देहरूपी वृक्षपर स्थित और हृदय कमलरूपी अपने घोसले (खोंथे) में जानेवाले इस जीवरूपी पक्षीके अर्थ तृष्णारूपी जाल कल्पित की गई है ॥ ३३ ॥ तृष्णारूपी रज्जुसे बंधा हुआ यह जीव ऐसे खींचा जाताहै जैसे सूतसे बंधा हुआ विवश श्वास लेताहुआ पक्षी एक बालकसे ॥ ३४ ॥ हे इन्द्रजी ! इस समय अस्त्रशस्त्रका भार तथा युद्धमें भ्रमण करना व्यर्थ है किंतु शत्रुके हृदयमें बासनाका विपर्यय अर्थात् अभिमानकी वृद्धि उत्पन्न करो ॥३५॥ जिस शत्रुका अन्तःकरण क्षुभित नहीं है उसको न शस्त्र न अस्त्र और न शुक्राचार्य आदिके नीति शास्त्र जीतसकतेहैं॥३६॥

दामव्यालकटास्त्वेतेशुद्धाभ्यासवशेनच ॥ अहंकारमयींमत्तास्तेग्रहीष्यंतिवासनाम् ॥ ३७ ॥ यदाते त्वज्ञपुरुषाःशंबरेणविनिर्मिताः ॥ वासनामाश्रयिष्यंतितदायास्यंतिजेयताम् ॥ ३८ ॥ तत्तावद्युक्तियुक्तेनतान्प्रबोधयतामराः ॥ यावदभ्यासवशतोभविष्यंतिसवासनाः ॥ ३९ ॥ ततोवश्याभविष्यंतिभवद्भिः

देवानांबद्धवासनाः ॥ तृष्णाऽप्रोताशयालोकेनचकेचनपेलवाः ॥ ४० ॥ समविषमभिदंजगत्समग्रंससुप

जव क्षांस्थिरतांस्ववासनांतः ॥ चलचललहरीभरोयथाब्धावतइहसैवचिकित्स्यतांप्रयाता ॥ ४१ ॥

पतितां इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे

स्तानिचि पितामहवाक्यं नाम सप्तविंशःसर्गः ॥ २७ ॥

अर्थ—दाम व्याल और कट युद्धके अभ्यासके वशसे मत्त होके संकल्पसे अहंकारमयी वासनाको ग्रहण करेंगे ॥ ३७ ॥ जिससमय शंबरसे रचित दामादि अति अज्ञानी होजायगे और वासनाका आश्रय करेंगे उससमय पराजयताको प्राप्त होंगे ॥ ३८ ॥ इसलिये हे देवगण ! तबतक युक्तिपूर्वक युद्धसे इन दाम व्याल आदिको व्यवहारमें नियुक्त करो जबतक कि ये अभ्यासके वशसे वासनासहित न होजाय ॥३९ ॥ इसके अनंतर वासनासे बद्ध होनेपर आपके वश होजायगे और जो वासनासे गुंथे नहीं हैं वे कोईभी कोमल नहीं हैं ॥ ४० ॥ जैसे अत्यंत चंचल तरंगोंका समूह समुद्रमें जलरूपसेही है, ऐसेही अपनी वासनाके भीतर प्रवाहरूपसे नित्यताको प्राप्त सम तथा विषमरूप यह जगत् वासनारूपही है, इसलिये उसीकी चिकित्सा (उपाय) करनी चाहिये ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे पितामहवाक्यं नाम सप्तविंशः सर्गः ॥ २७ ॥

आष्टविंशः सर्गः ॥ २८ ॥

इस २८ के सर्गमें विश्राम किये हुये देवता तथा दैत्योंका युद्ध विस्तारपूर्वक चिरकालतक अर्थात् वासनाके उदय पर्यन्त वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इत्युक्त्वाभगवान्देवांस्तत्रैवांतर्द्धिमाययौ ॥ वेलावनितटेशब्दंकृत्वेवांबुतरंगकः ॥ १ ॥ सुरास्त्वाकर्ण्यतद्वाक्यंजग्मुःस्वाभिमतांदिशम् ॥ कमलामोदमादायवनमालामिवानिलाः ॥ २ ॥ दिनानिकतिचित्स्वेषुकांतेषुस्थिरकांतिषु ॥ द्विरेफाइवपद्मेषुमंदिरेषुविशश्रमुः ॥ ३ ॥ कंचित्कालंसमासाद्यस्वात्मोदयकरंशुभम् ॥ चक्रुर्दुंदुभिनिर्घोषंप्रलयाभ्ररवोपमम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—इसके पीछे भगवान् ब्रह्माजी उसी स्थानमें ऐसे अन्तर्धान होगये जैसे समुद्रके तटपर समुद्रका तरंग शब्द करके लुप्त होजाय ॥ १ ॥ देवता लोग ब्रह्माके उस वचनको श्रवण करके अपने अभिमत दिशाको ऐसे चले गये जैसे कमलके सुगंधको ग्रहण करके वनमालाकी ओर वायु ॥ २ ॥ रमणीय तथा स्थिर शोभायुक्त अपने मन्दिरोंमें कुछ कालतक ऐसे विश्राम किया जैसे कमलोंमें भ्रमर ॥ ३ ॥ अपना उदयकारी कोई शुभकाल पाके देवोंने प्रलयके मेघके समान दुंदुभीका शब्द किया ॥ ४ ॥

अथदैत्यैर्महाव्योम्नितैःपातालतलेस्थितैः ॥ कालक्षेपकरंघोरंपुनर्युद्धमवर्त्तत ॥ ५ ॥ ववुरसिशरशक्तिमुद्गरौघामुसलगदापरशूग्रचक्रशंखाः॥अशनिगिरिशिलाहुताशवृक्षाअहिगरुडादिमुखानिचायुधानि॥६ मायाकृतायुधमहांबुघनप्रवाहाक्षिप्रावहाप्रतिदिशंकिलनिर्जगाम ॥ पाषाणपर्वतमहीरुहलक्षवृक्षक्षुब्धांबुपूरघनघोषवतीनदीद्राक् ॥ ७ ॥ मध्यप्रवाहवहदुल्मुकशूलशैलप्रासासिकुंतशरतोमरमुद्गरौघा ॥ गंगोपमांबुवलितामरमंदिरेणसर्वासुदिक्ष्वशनिवर्षनिकर्षणेन ॥ ८ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर पातालमें स्थित दैत्योंके साथ देवताओंका महाभयंकर युद्ध अन्तरिक्षमें आरम्भ हुआ ॥ ५ ॥ खड्ग, बाण, शक्ति, मुद्गरोंके समूह, मुसल, गदा, परसु, उग्र चक्र, और शंखाकार अस्त्र वज्र पर्वत शिला अग्निके समान वृक्ष सर्प और गरूडके समान मुखवाले अस्त्र शस्त्र चलने लगे ॥ ६ ॥ मायारचित अस्त्र तथा शस्त्ररूपी महाजलके घनप्रवाहसहित और इसकारणसे शीघ्र हस्तोंको जयके लिये प्राप्त करनेवाली और पाषाण पर्वत सामान्य वृक्ष तथा वृक्षोंसे जलके प्रवाहके क्षुभित होनेसे अति शब्द करनेवाली वह शस्त्र अस्त्ररूपी नदी प्रति दिशाओंमें चलने लगी ॥ ७ ॥ जलसेही देवताओंके मेरूआदि स्थानोंको आच्छादित करनेवाली वज्रआदिकी वर्षासे तटके छेदनसे मेरूके पृष्टपर बहती हुई गंगाके सदृश तथा मध्यप्रवाहमें वहते हुये उल्मुक; शूल; पर्वत बर्छी खड्ग कुंत बाण तोमर और मुद्गरोंके समूह सहित वह नदी थी ॥ ८ ॥

पृथ्व्यादिदारुणशरीरमपिप्रहारदानग्रहागहनपाशिशरीरकेव ॥ मायोपशाम्यतिसुरासुरसिद्धसत्रामायाकृतिःपुनरुदेतिनचैवसैव ॥ ९ ॥ शैलोपमायुधविघट्टितभूधराणिरक्तांबुपूरपरिपूर्णवानि ॥ देवासुरंद्रशवशैलविरूढकुंततालीवनानिककुभांवदनानिचासन् ॥ १० ॥ उद्गीर्णकुंतशरशक्तिगदासिचक्रहेलानिगीर्णसुरदानवमुक्तशैला ॥ कापोल्लसत्क्रकचदंतनखायमालाजोवान्विताह्यपतदायससिंहसृष्टिः ॥ ११ ॥ उज्ज्वाललोचनविषज्वलनातपौघादिग्दाहदर्शितयुगांतदिनेशसेना ॥ उड्डीयमानपरिदीर्घमहामहीध्रमग्नाब्धिवद्विपघराचलिरुल्ललासं ॥ १२ ॥

अर्थ—वह रणनदी पृथ्वीआदि पंचभूतके तुल्य मायानयीथी; अर्थात् जैसे यह पृथिवी भ्रमण पतन और रोधनरूप कार्य करतीथी और जलमें डूबते अग्निसे जलते वायुसे उडते और महागर्ताकाशमें प्राणी जैसे गिरतेहैं ऐसी वह मायाथी और अतिकठिन राक्षस पिशाच आदिकी शरीरनयीथी और शत्रुओंके ऊपर प्रहार करने तथा अपने ऊपर ग्रहण करनेवाली तथा अन्यसे जीतनेके अयोग्य योधा पूर्ण वह सेनाथी ऐसीभी वह देवताओंकी असुर और दैत्योंसे शान्त होजातीथी और पुनः उसीके सदृश मायाकार उत्पन्न होतीथी परन्तु यह वार्ता नहीं ज्ञात होतीथी कि वह वही है वा अन्यहै ॥ ९ ॥ पर्वतके सदृश अस्त्रोंसे पर्वतोंकोभी चूर्न करनेवाले रक्तरूपी जलसे समुद्रोंकोभी पूर्ण करनेवाले देव तथा असुरेन्द्रोंके शरीरोंपर गडे हुये कुन्तो (भालों) की पंक्तिरूप ताली वनसे सम्पूर्ण दिशायें मुक्त होगये ॥ १० ॥ जिसमें निकले हुये भाले बाण शक्ति गदा खड्ग तथा चक्रोंसे देवता तथा दानवलोग पर्वत अपने ऊपर सहन करतेथे और दूसरोंके ऊपर छोडतेथे तथा छेदनसे शोभायमान आरोंके दांतरूप नखके अग्रभागकी मालाधारिणी तथा दूसरोंके जीव ग्रहण करनेसे जीव संयुक्त लोहमय अस्त्ररूपी सिंहोंकी वृष्टि गिरी ॥ ११ ॥ नेत्रोंके विषकी ज्वालाओंसे उत्पन्न आतपके समूहोंसे दिशाओंके दाहद्वारा एक कालमेंही प्रलयके समान १२ सूर्योंकी सेनाको दर्शानेवाली विषधरों (सर्पों) की पंक्ति ऐसी शोभित हुई जैसे चारोंओरसे उडते हुये बडे २ महान् पर्वतोंसे व्याप्त समुद्र ॥ १२ ॥

उन्नादवज्रमकरोत्करकर्कशांतःक्षुब्धाब्धिवीचिवलयैर्वलिताचलेन्द्रैः ॥ आसीज्जगत्सकलमेवसुसंकटांगमावृत्तिभिर्विविधहेतिनदीप्रवाहैः ॥ १३ ॥ शैलाखगरुडाचलचालितोचनागंमहासुरगणांगणमंतरिक्षम् ॥ आसीत्क्षणंजलधिभिःक्षणमग्निपूरैःपूर्णंक्षणंदिनकरैःक्षणमंधकारैः ॥१४॥ गरुडगुडगुडाकुलांतरिक्षप्रविसृतहेतिहुताशपर्वतौघैः ॥ जगदभवदसह्यकल्पकालेज्वलितसुरालयभूतलांतरालम् ॥१५॥ उदपतन्नसुरावसुधातलाद्गगनमद्रितटादिवपक्षिणः ॥ अतिवलादपतन्विबुधाभुविप्रलयचालितशैलशिलाइव ॥ १६ ॥

अर्थ—मेरुकोभी आच्छादित करनेवाले अनेक प्रकारके अस्त्ररूपी नदीके प्रवाहोंसे उग्र शब्द करनेवाले, रत्न तथा मकर आदिसे कर्कश और अन्तरमें क्षुब्ध समुद्रके तरंगोंसे संपूर्ण जगत् पीडित होगया ॥ १३ ॥ पर्वतोंके समान अस्त्रशस्त्रोंसे, मायारचित गरुडोंसे, तथा बलसे उखाडके फेंके हुये पर्वतोंसे संचालित पूर्व वर्णित सर्पसहित बडे २ देवता तथा दैत्योंका युद्धका अंगणरूप भूत अन्तरिक्षभी क्षणभरके लिये समुद्रोंसे पूर्ण होजाताथा कभी क्षणभरके लिये अग्निके समूहोंसे कभी सूर्योंसे और कभी क्षणभरके वास्ते अन्धकारोंसे पूर्ण होताथा ॥ १४ ॥ गरुडास्त्रसे उत्पन्न गुडगुडा शब्दसे व्याप्त अन्तरिक्षमें विस्तृत शस्त्ररूपी अग्निके पर्वत समूहोंसे असह्य प्रलयकालके समान जाज्वल्यमान देवताओंके स्थान और भूतलके अन्तरालसहित जगत् पुनः होगया ॥ १५ ॥ इससमय वसुधाके तलेसे असुर लोग ऊपर ऐसे उडे जैसे पर्वतके तटसे पक्षी और आकाशमार्गसे देवतालोग पृथिवीपर ऐसे गिरे जैसे प्रलयसे संचालित पर्वतोंकी शिला ॥ १६ ॥

शरीररूढोद्यतहेतिवृक्षवनावलीलग्नमहाग्निदाहाः ॥ सुरासुराःप्रापुरथांवरांतःकल्पानिलांदोलितशैलशोभाम् ॥ १७ ॥ सुरासुराद्रींद्रशरीरमुक्तैरक्तप्रवाहैरभितोभ्रमद्भिः ॥ वभारपूर्णंपरितोंबरोद्रेःसंध्याकरौघक्षतमंगगंगाम् ॥ १८ ॥ गिरिवर्षणमंबुवर्षणंविविधोग्रायुधवर्षणंतथा ॥ विषमाशनिवर्षणंचतेसममन्योन्यमथाग्निवर्षणम् ॥ १९ ॥ अनयन्नयमार्गकोविदादलिताशेषगिरींद्रभित्तयः ॥ ससृजुश्चसमंततःकरिकुंभेष्विवपुण्यवर्षणम् ॥ २० ॥

अर्थ—शरीरोंमें चुभे हुये बडे शस्त्ररूपी वृक्षोंके वनकी पंक्तियोंमें महान् अग्निके दाहसहित देवता तथा दैत्यलोग ऐसे शोभित हुये जैसे प्रलयकालके पवनसे भ्रमणशील जलते हुये पर्वत ॥ १७ ॥ हे प्रियरामजी ! सुर असुररूपी पर्वतेन्द्रोंकी शरीरोंसे मुक्त चारोओर भ्रमण करते हुये रक्तप्रवाहोंसे पूर्ण सुमेरुके चारोओरका आकाशरूप देशने सन्ध्यारूपी नायिकाके नखक्षतकी शोभाको धारण किया ॥ १८ ॥ वे देवता तथा असुरगण कभी पर्वतोंकी कभी जलकी कभी नानाप्रकारके उग्र शस्त्र अस्त्रोंकी और कभी भयंकर वज्रकी वृष्टि साथही एक दूसरेके ऊपर अग्निकी पतित. नीतिमार्गमें प्रवीण तथा मेरुकी भित्तिकोभी दलन करनेवाले सुर असुर उत्सवके समय जैसे कुंकुम चंदन स्त्रीनिर्माणकारीकी वृष्टि हाथियोंके गण्डस्थलपर करतेहैं ऐसेही परस्पर शस्त्र अस्त्रकी वृष्टिकी ॥ २० ॥

देवासुराः समरसंभ्रममाकुलास्तेअन्योन्यमंगदलनाकुलहेतिहस्ताः ॥ नागेंद्रडिंभपृतनापृथुपीठपृष्ठैःकीर्णश्रियोनभसिबभ्रमुरक्षिपंतः ॥ २१ ॥ छिन्नैःशिरःकरभुजोरुभरैर्भ्रमद्भिराकाशकाष्ठशलभैरशिवैस्तदानीम् ॥ आसीज्जगज्जठरमभ्रभरैरिवोग्रैराभास्करस्थगितदिक्कटशैलजालम् ॥ २२ ॥ रटद्भटास्फोटकटिस्फुटद्भिःसमीरितैर्हेतिकलासितोघैः ॥ परस्पराघातहतैःपतद्भिर्जगामशीर्णादलशोधरित्री ॥२३॥ अन्योन्यमायुधशिलाचलवृक्षवर्षैर्मेरुप्रमाणकठिनांगनिघर्षणैश्च ॥ आसीद्रणंचटचटास्फुटदंतरिक्षंकल्पक्षयांतमिवभीममभरोग्रनादैः ॥ २४ ॥

अर्थ—परस्पर अंगमर्दनमें व्यग्रहस्त, तथा युद्धके उत्साहको न त्यागते हुये सुर असुर ऐरावतों तथा अन्य हस्तियोंके समूहकी पीठके सदृश विशाल पृष्ठोंपर गुरुतर शरीरोंके भारसे पीडाजनक आरोहणोंसे शोभाको विस्तृत करते हुये आकाशमें भ्रमण करतेथे ॥ २१ ॥ आकाश तथा दिशाओंके शलभके तुल्य भ्रमण करते हुये छिन्न शिर, कर, भुजा और जंघाके अशुभ समूहोंसे सूर्य पर्यन्त आच्छादित संपूर्ण दिशा और पर्वतसहित जगत्का ऐसे गर्भ पूर्ण होगया जैसे मेघोंके समूहोंसे ॥ २२ ॥ भलीभांतिसे प्रेरित आक्रंदन करते हुये वीरोंके अस्फालन (स्फूर्ति) से कटिदेशमें टूटते हुये तथा परस्परके आघातसे गिरते हुये शस्त्रोंसे, और यंत्र फेकनेकी कुशलतासे शिला पर्वत आदिके समूहोंसे विशीर्ण पृथिवी खण्ड २ होगई ॥ २३ ॥ परस्पर अस्त्र, शिला, पर्वत तथा वृक्षोंकी वर्षासे, तथा मेरुके समान कठिन अंगोंके संघट्टनसे उत्पन्न भयंकर शब्दोंसे चटचटा शब्द पूर्ण वह रणकल्पके अन्तके सदृश होगया ॥ २४ ॥

मत्तानिलक्षुब्धजलानलार्कदलद्वयंदीर्घसुरासुरौघम् ॥ ब्रह्मांडमाखंडितकुड्यकोणमकालकल्पांतकरालमासीत् ॥ २५ ॥ भ्रांतैर्भृशंभरितदिक्तटमद्रिकूटैरात्मप्रमाणघनहेतिहतैरणद्भिः ॥ कूजद्भिरार्तिभिरिवोग्रगुहोग्रवातैःक्रंदद्भिरापतितसिंहरवैरदभ्रैः ॥ २६ ॥ मायानदीजलधियोधघनाग्निदाहैर्वृक्षैःसुरासुरशवैरचलैःशिलोघैः ॥ भ्रांतैःशरासिशितशक्तिगदास्त्रशस्त्रैर्वातावकीर्णवनपर्णवदंतरंतः ॥ २७ ॥ अद्रींद्रपक्षपरिमाणगमाक्षमोक्तदुर्वारहस्तिबलदारुणदेहकैर्द्राक् ॥ आसीत्पतद्भटशरीरगिरींद्रवातविभ्रष्टदेवपुरपूर्णजलार्णवौघम् ॥ २८ ॥ घनघुंघुमपूरितांतरिक्षाक्षतजक्षालितभूधराधराच ॥ रुधिरहृदवृत्तिवर्तिनीवाभुवनाभोगगुहातदाकुलाभूत् ॥ २९ ॥ अनंतदृक्प्रसृतविकारकारिणीक्षयोदयोन्मुखसुखदुःखशंसिनी ॥ रणक्रियासुरसुरघट्टसंकटातदाभवत्खलुसदृशीहसंसृतेः ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे दामव्यालकटपुनर्युद्धवर्णनं नामाष्टाविंशः सर्गः ॥ २८ ॥

अर्थ—जहां प्रचंड पवनसे संक्षुब्ध जल अग्नि अधोदेशमें और सूर्य ऊर्ध्व (ऊपर) देशमेंथे ऐसे दो दल संयुक्त, तथा बडे २ मायाके विभवोंसे सुर असुर दोनोंके समूहथे और जिसके प्रांत (इधर उधर) के स्थान विदीर्ण होगयेथे ऐसा वह ब्रह्मांड अकालमें प्रवृत्त कल्पांतके सदृश भयंकर होगया ॥ २५ ॥ अपने सदृश प्रमाणवाले घन शस्त्रोंसे ताडित होनेसे भ्रमणशील, शब्द करते हुये, और भयंकर गुफाओंके प्रबल पवनोंसे कूजते हुयेके समान, और आये हुये उग्र सिंहके शब्दोंसे रोदन करते पर्वत समूहोंसे पूर्ण दिशाओंके तट उस रणमें होगये ॥ २६ ॥ मायासे रचित नदी, समुद्र, वीर, मेघ तथा अग्निके दाह; वृक्ष, सुर, तथा असुरोंके मृतक शरीर, पर्वत तथा बडी २ शिलायें, और वायुसे गिराये हुये भीतर भ्रमण करते हुये शर, खड्ग, तीक्ष्ण शक्ति, गदा अस्त्र और शस्त्रादिसे जगत् पूर्ण होगया ॥ २७ ॥ मेरुके सदृश प्रमाणवाले; इसीसे मनुष्यके संचारको निरोध करनेहारे पूर्वोक्त दुर्निवार हस्तियोंके समूहके मृतक शरीरोंसे; तथा गिरते हुये वीरोंके शरीरोंसे पर्वतेंद्रोंसे तथा पवनसे गिराये देवनगरोंसे पूर्ण समुद्रके तुल्य वह रणक्षेत्र होगया ॥ २८ ॥ घनीभूत घुंघुम शब्दोंसे आकाशको पूर्ण करनेवाली तथा रुधिरसे पर्वत और उनके नीचेकी पृथिवी पाताल आदिको प्रक्षालित करने (धोने) वाली और रुधिर आहारी राक्षस पिशाचादिके सदृश व्यवहारशील ब्रह्माण्डके उदरकी गुफा व्याकुल होगई ॥ २९ ॥ अनन्त दृष्टिसहित इन्द्रादिकोभी विस्तृत भयका विकार करनेवाली आत्मचेतनमें जगत्रूप विकारकारिणी और क्षयके अभिमुख प्राणियोंको दुःख तथा उदयके उन्मुखको सुख देनेवाली तथा सुर असुरके परस्पर समागमसे दुस्तर वह रणकी क्रिया उससमय अविद्या रूप संसारके सदृश होगई ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे दामव्यालकट पुनर्युद्धवर्णनं नामाष्टाविंशः सर्गः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशः सर्गः ॥ २९ ॥

॥श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवंप्रायाकुलारंभैरसुरैरसुहारिभिः॥सहसाहृतसंरब्धैरारब्धःसुमहान्रणः॥ १॥ माययाथविवादेनसंधिनाविग्रहेणच ॥ पलायनेनधैर्येणच्छन्नगोपायनेनच ॥ २ ॥ कार्पण्येनास्त्रयुद्धेन स्वांतर्द्धानैश्चभूरिशः ॥ धृतःससंगरोदेवैस्त्रिंशद्वर्षाणिपंचकम् ॥ वर्षाणिदिवसान्मासान्दशाष्टौसप्तपं चच ॥ वर्षाणिपेतुर्वृक्षाग्निहेत्येकाशनिभृभृताम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–इसप्रकार आकुल आरंभ करनेवाले तथा प्राणहारी, और सहसा युद्ध करनेमें तत्पर दैत्योंने महान् युद्ध आरम्भ किया ॥ १ ॥ और देवता लोगोंने कभी मायारचित विवादसे कदाचित् दानआदि उपायरूप सन्धिसे कभी विग्रहसे कभी पलायमानतासे कभी धैर्यसे और कभी गुप्तरीतिसे स्थित होके अपने जनकी रक्षासे ॥ २ ॥ और कभी शरणागतिकी यांचासे शस्त्र अस्त्रादिके युद्धसे और अनेकवार अन्तर्धान (लोप) होनेसे संग्राम धारण किया, उसमें प्रथम संग्राम तीस (३०) वर्षतक धारण किया, द्वितीय संग्राम ५ पांच वर्ष आठ ८ मास १० दिन धारण किया, और तृतीय १२ दिन धारण किया, और इतने कालमें दोनों सेनाओंसे, वृक्ष अग्नि अस्त्र शस्त्र मुख्य वज्र तथा पर्वतोंकी वृष्टि गिरी ॥ ३ ॥ ४ ॥

एतावतातुकालेनदृढाभ्यासादहंकृतेः ॥ दामादयोहमित्यास्थांजगृहुर्ग्रस्तचेतसः ॥ ५ ॥ नैकट्यातिश याद्यद्वद्दर्पणंबिंबवद्भवेत् ॥ अभ्यासातिशयात्तद्वत्तेसाहंकारतांगताः ॥ ६ ॥ यद्वद्दूरगतंवस्तुनादर्शेप्रति बिंबति ॥ पदार्थवासनातद्वदनभ्यासान्नजायते ॥ ७ ॥ यदादामादयोजाताअहंकारात्मवासनाः ॥ त दामेजीवितंमेर्थइतिदैन्यमुपागताः ॥ ८ ॥

अर्थ—इतनेही कालमें अहंकारके दृढ अभ्याससे वासनासे ग्रस्त होनेके कारण दाम व्यालादिकोंने अहंभावको ग्रहण किया ॥ ५ ॥ अति निकटतासे जैसे दर्पण बिंबके तुल्य होजाताहै ऐसेही अभ्यासकी अधिकतासे वे सब अहंकारसहित होगये ॥ ६ ॥ जैसे दूर देशमें स्थित वस्तु दर्पणमें प्रतिबिंबित नहीं होती, ऐसेही विना अभ्यासके पदार्थकी वासना नहीं होती ॥ ७ ॥ जब अहंकारमेंही आत्मबुद्धि दामादिकी हुई, उसी समयसे हमारा जीवन हमारा हो और उसके अर्थ धन हमको इसप्रकार दीनताको दामादि दानव प्राप्त हुये ॥ ८ ॥

भववासनयाग्रस्तामोहवासनयाततः ॥ आशापाशनिबद्धास्तेततःकृपणतांगताः ॥ ९ ॥ मुग्धेवह्यनहं कारैर्ममत्वमुपकल्पितम् ॥ रज्ज्वांभुजंगत्वमिवदामव्यालकटैस्ततः ॥ १० ॥ आपादमस्तकोदेहःकं थंमेभवतुस्थिरः ॥ ममेतितृष्णाकृपणादीनतांतेसमाययुः ॥ ११ ॥ स्थिरोभवतुमेदेहःसुखायास्तुधनं मम ॥ इतिबद्धधियांतेषांधैर्यमंतर्द्धिमाययौ ॥ १२ ॥

अर्थ—प्रथम "तव" अर्थात् विहित तथा निषिद्ध प्रवृत्तिकी वासनासे, और इसके अनन्तर हमार देह नीरोग दृढ तथा भोगके समर्थ हो ऐसी मोहकी बासनासे ग्रस्त हुये; अनंतर आशाके पाशमें बद्ध हुये, उसके अनंतर दीनताको प्राप्त हुये ॥ ९ ॥ मुग्धा स्त्रीके समान अहंकार रहित दाम व्याल और कटने ममताकी ऐसी कल्पनाकी जैसे रज्जुमें सर्प ॥ १० ॥ पादसे लेके मस्तक पर्यन्त हमारा देह कैसे स्थिर हो ऐसी तृष्णासे वे दीनताको प्राप्त हुये ॥ ११ ॥ हमारा शरीर स्थिर रहै और धन हमारे सुखके लिये हो इसप्रकार बद्ध चित्त दाम व्यालादिका धैर्य्य लोप होगया ॥ १२ ॥

सवासनत्वाद्वपुषामल्पसत्वात्सुरद्विषाम् ॥ यातुप्रहारपरतामार्जितेवाशुसाभवत् ॥ १३ ॥ कथंसुराज गत्यस्मिन्भवामइतिचिंतया ॥ विवशादीनतांजग्मुःपद्माइवानिरंभसः ॥ १४ ॥ तेषांयोषान्नपानेनस्वा हंकृतिमतांरतिः ॥ बभूवभावभावस्थाभीषणाभवभाजिनी ॥ १५ ॥ अथतस्मिन्रणेभीत्यासापेक्षत्व मुपाययुः ॥ मत्तेभघनसंरब्धेवनेहरिणकाइव ॥ १६ ॥

अर्थ—वासनासहित होनेके कारण देवताओंके शत्रु दानवोंकी शरीरोंके बल न्यून होनेसे पूर्णकालमें जो प्रहार करनेमें तत्परता प्रसिद्धथी वह नष्टके समान कार्य करनेमें शीघ्र असमर्थ होगई ॥ १३ ॥ इस संसारमें अमर कैसे हों इस चिंतासे विवश होकर ऐसी दीनताको प्राप्त हुये जैसे जल विना कमल ॥ १४ ॥ भलीभांति अहंकारको धारण करनेवाले उन दाम व्यालादिकी स्त्री तथा अन्नपानादिके सेवनसे विषयोंकी भावनामें स्थित भयंकर संसारको प्राप्त करानेवाली प्रीति उत्पन्न हुई ॥ १५ ॥ इसके पश्चात् उस रणमें मत्त हस्तियोंके साथ कुपित होनेपर भयसे सापेक्षताको ऐसे प्राप्त हुये जैसे वनमें हरिण ॥ १६ ॥

मरिष्यामोमरिष्यामइतिचिंताहताशयाः ॥ मंदंमंदंकिलभ्रेमुःकुपितेरावणेरणे ॥ शरीरैकार्थिनांतेषांभी तानांमरणादपि ॥ अल्पसत्वतयामूर्ध्निकृतमेवपरैःपदम् ॥ १८ ॥ अथम्लानसत्वास्तेहंतुमग्रगतंभ टम् ॥ नशेकुरिंधनेक्षीणेहविर्दग्धुमिवाग्नयः ॥ १९ ॥ विबुधानांप्रहरतांमशकत्वमुपागताः ॥ क्षतविक्ष तसंघातास्तस्थुःसामान्यसद्भटाः ॥ २० ॥

अर्थ—मरैंगे मरैंगे ऐसी चिंतासे हतोत्साह होके ऐरावत हांथीके रणमें कुपित होनेपर वे निश्चयरूपसे मन्द २ भ्रमण करनेलगे ॥ १७ ॥ केवल शरीरमात्रके अर्थी और मरणसे भयभीत उन दामादिके न्यून बल होनेसे उनके शिरपर शत्रुओंने अपने पद स्थित किये ॥ १८ ॥ इसके अनन्तर पराक्रमके क्षीण होनेसे वे लोग सन्मुख स्थित एक वीरकोभी मारनेमें ऐसे असमर्थ हुये जैसे इन्धनके क्षीण होनेपर हविषके जलानेमें अग्नि ॥ १९ ॥ प्रहार करनेवाले देवताओंके सम्मुख वे मच्छरके तुल्य होगये, और इधर उधर शरीरके घायल होनेसे सामान्य उत्तम वीरके सदृश स्थित रहे ॥ २० ॥

बहुनात्रकिमुक्तेनमरणाद्भीतचेतसः ॥ दैत्यादेवेषुवल्गत्सुद्रुद्रुवुःसमराजिरात् ॥ २१ ॥ तेषुद्रवत्सुभी तेषुसर्वतोदानवादिषु ॥ दामव्यालकटाख्येषुविख्यातेषुसुरालये ॥ २२ ॥ तद्दैत्यसैन्यंन्यपतद्दिक्षुतंखा दितस्ततः ॥ कल्पांतपवनोद्धूतंताराजालमिवाभितः ॥ २३ ॥ अमराचलकुंजेषुशिखराणांशिखासुच ॥ तटेषुवारिराशीनांपयोदपटलेषुच ॥ २४ ॥

अर्थ—अधिक कथनसे क्या प्रयोजन मृत्युसे भीत चित्त दैत्य लोग देवताओंके गर्जनेपर समरांगणसे भाग गये ॥ २१ ॥ स्वर्गमें प्रसिद्ध दाम व्याल और कटनामक दैत्यके और अन्य दानवादिकोंके भयभीत होके भागनेपर ॥ २२ ॥ आकाशसे इधर उधरसे वह दैत्योंकी सेना ऐसे गिरी जैसे प्रलयके पवनसे कंपित तारागण चारों ओरसे गिरैं ॥ २३ ॥ सुमेरुपर्वतके कुंजोंमें, पर्वतोंकी चोटियोंपर, समुद्रोंके तटोंपर, मेघोंके पटलोंमें ॥ २४ ॥

सागरावर्त्तगर्त्तेषुश्वभ्रेषूद्यत्सरित्सुच ॥ जंगलेषुदिगंतेषुज्वलत्सुविपिनेषुच ॥ २५ ॥ तद्बाणोच्छिन्न देशेषुग्रामेषुनगरेषुच ॥ अटवीष्वग्रपक्षासुमरुभूमिदवाग्निषु ॥ २६ ॥ लोकालोकाचलांतेषुपर्वतेषुह्रदेषु च ॥ आंध्रद्रविडकाश्मीरपारसीकपुरेषुच ॥ २७ ॥ नानांभोधितरंगासुगंगाजलघटासुच ॥ द्वीपांतरे षुजालेषुजंबुखंडलतासुच ॥ २८ ॥

अर्थ—समुद्रके भवरेंसहित जलोंमें छिद्रोंमें बढती हुई नदियोंमें, जंगलोंमें, दिगंतोंमें, जलते हुये वनोंमें दानवलोग गिरनेलगे ॥ २५ ॥ देवताओंके बाणोंसे नष्ट देशोंमें ग्रामोंमें, नगरोंमें, सिंहादिकें निवासस्थान अरण्योंमें, तथा मेरु भूमिकी दवाग्नियोंमें देवताओंके शत्रु गिरे ॥ २६ ॥ लोकालोक पर्वतके अन्तोंमें, सामान्य पर्वतोंपर ह्नदोंमें, आंध्र द्रविड काश्मीर तथा पारसीक आदि देशके नगरोंमें ॥ २७ ॥ नानादेशमें स्थित समुद्र वाहिनी गंगाके प्रवाहोंमें मत्स्य बंधनके लिये प्रसारित जालयुक्त द्वीपांतरोंमें और जम्बूखण्ड नामक देशकी लताओंमेंभी ॥ २८ ॥

सर्वतःपर्वताकाराःपतितास्तेसुरारयः ॥ विस्फोटितांगचरणाविभिन्नकरबाहवः ॥ २९ ॥ शाखालग्नां त्रतंत्रीकासुक्रक्तभरच्छटाः ॥ व्यस्तशेखरमूर्द्धानोनिष्क्रांताःकुपितेक्षणाः ॥ ३० ॥ सायुधावक्रमाये षुच्छिन्नकंकटहेतयः ॥ दूरपातविपर्यस्तपतन्नानायुधांशुकाः ॥ ३१ ॥ कंठलंबिशिरस्त्राणचटत्कारोग्र भीतयः ॥ शिखाशतशिलाप्रोतादेहभागविलंबिनः ॥ ३२ ॥ शाल्मल्युग्रद्रढापातकटत्कंटकसंकटाः ॥ सुशिलाफलकास्फालशतधाशीर्णमस्तकाः ॥ ३३ ॥ सर्वएवसकलायुधशस्त्रपातमात्रसमनंतरमेव ॥ दिक्षुनाशमगमन्सुरेंद्राःपांसवोंबुदनिधौपयसीव ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे
दामव्यालकटोपाख्याने असुरपरिभ्रंशो नामैकोनत्रिंशः सर्गः ॥ २९ ॥

अर्थ—चारोंओरसे पर्वताकार देवताओंके शत्रु गिरे, और उन दानवोंके त्रुटित अंग होनेसे पाद तथा हस्त बाहु छिन्नभिन्न होगये ॥ २९ ॥ और वृक्षकी शाखाओंमें उनकी आंतीरूप तांत लपट गई शिरोभूषण और केश इधर उधर बिखर गये, और उससमय वे निकले हुये कुपित नेत्रधारी भान होते थे ॥ ३० ॥ शस्त्र अस्त्रसहित सेना माया तथा बाणोंसे उनके बाणादि शस्त्र छिन्न भिन्न करदिये गये, और दूर देशसे गिरनेसे नानाप्रकारके शस्त्रास्त्र तथा वस्त्रादि विपर्ययसे गिर गये ॥ ३१ ॥ और कण्ठमें लग्न शिरस्त्राणोंके चटत्कार शब्दोंसे उग्रभयसहित अग्रभागमें सैकडों

शिखाओंसे शिलाओंमें गूंथनेके कारण देहमात्रसे लटक रहेथे॥ ३२॥ शाल्मली वृक्षोंपर दृढपात होनेसे कांटोंके टूटनेसे संकट ग्रस्त होगयेथे, और बडी २ शिलाओंके गिरनेसे उनके मस्तकोंके सैकडों टुकडे होगयेथे ऐसे दैत्यलोग पूर्वोक्त स्थानोंमें गिरे॥ ३३॥ सम्पूर्ण शस्त्र अस्त्रके गिरनेके अनन्तर दिशाओंमें सब असुरेन्द्र ऐसे लोपको प्राप्त हुये जैसे वर्षाऋतुके जलमें धूलि॥ ३४॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे दामव्यालकटोपाख्याने असुरपरिभ्रंशोनामैकोनत्रिंशः सर्गः॥ २९॥

त्रिंशः सर्गः॥ ३०॥

इस ३०के सर्गमें पातालमें यमराजसे जलाये हुये दामादिकी काश्मीरदेशमें मत्स्य जन्मपर्यन्त जन्म परंपरा वर्णनकी गई है॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच॥ इतितुष्टेषुदेवेषुदानवेषुहतेषुच॥ दामव्यालकटादीनांबभूवुर्भयविह्वलाः॥ १॥ जज्वालकुपितःक्वेतिकल्पांताग्निरिवज्वलन्॥ शंबरःशमितानीकोदामव्यालकटान्प्रति॥ २॥ शंबरस्य भयाद्गत्वापातालमथसप्तमम्॥ दामव्यालकटास्तस्थुस्त्यक्त्वाथनिजमंडलम्॥ ३॥ यमस्यकिंकरा यत्रयेकालत्रासनक्षमाः॥ कुतूहलेनतिष्ठंतिनरकार्णवपालकाः॥ ४॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—इसप्रकार दानवोंके नष्ट होनेपर और देवताओंके संतुष्ट होनेपर दाम, व्याल, तथा कट भयसे विव्हल तथा दुःखी होगये॥ १॥ इसके अनन्तर संपूर्ण सेना जिसकी नष्ट होगई है ऐसा शंबरासुर प्रलयके अग्निके समान दामादि दानवोंसे जलता हुआ; और वे कहां हैं ऐसा पूंछता हुआ क्रोधसे जलने लगा॥ २॥ इसके पश्चात् शंबरासुरके भयसे दाम व्याल और कट अपने मंडल (सेनादि) को त्यागकर सप्तम पातालमें जाके रहने लगे॥ ३॥ जहांपर मृत्युके तुल्य त्रास करनेमें समर्थ; तथा नरकरूपी समुद्रके पालक यमराजके किंकर कौतुकस निवास करते हैं॥ ४॥

तेतेषामथयातानांदत्वाभयमभीरवः॥ चिंताइवघनाकाराःकुमारीश्चवददुःक्रमात्॥ ५॥ तैःसार्द्धंनीतवंतस्तेतत्रदामादयोवधिम्॥ दशवर्षसहस्रांतमात्तानंतकुवासनाः॥ ६॥ इयंमेकामिनीकन्याममेयं प्रभुतेतिच॥ दुरूढस्नेहबंधानांकालस्तेषांव्यवर्त्तत॥ ७॥ धर्मराजोथसंदेशंकदाचित्समुपाययौ॥ महानरककार्याणांविचारार्थंयदृच्छया॥ ८॥

अर्थ—भयशून्य वे यमराजके किंकर शरणमें प्राप्त दाम व्याल तथा कटको अभयदान देके घनाकार मूर्तिमान् चिंताके समान अपनी कन्याओंको क्रमसे तीनोंको दिया॥ ५॥ वहांपर वे दामादि दानव अनन्त दुष्ट वासनाओंको ग्रहण करके उनके साथ दशसहस्र वर्षपर्यन्त अपनी आयुको विताया॥ ६॥ यह मेरी अति सुंदरी कामिनी है; यह कन्या है; और यह प्रभुता है इत्यादि दुरूढ बंधनमें प्राप्त उनका काल बीतने लगा॥ ७॥ उसके पश्चात् कभी महानरक कार्योंके विचारकेलिये अपनी इच्छासे उसी देशमें धर्मराज आये॥ ८॥

अपरिज्ञातमेनंतेधर्मराजंत्रयोसुराः॥ नप्रणेमुर्विनाशायसामान्यमिवकिंकरम्॥ ९॥ अथवैवस्वतेनैते ज्वलितास्वभूमिषु॥ विहितभ्रूपरिस्पंदमात्रेणैवनिवेशिताः॥ १०॥ तत्रतेकरुणाक्रंदाःससुहृद्दारबंधवः॥ प्रदग्धाःपर्णविटपावृक्षाइववनानिलैः॥ ११॥ स्वयावासनयाजातास्तयैवक्रूरयापुनः॥ बंधकर्मकराकाराःकिराताराजकिंकराः॥ १२॥

अर्थ—इसके पश्चात् छत्रचामरादि चिन्ह न होनेसे सामान्य किंकरके सदृश धर्मराजको अपने नाशार्थ प्रणाम नहीं किया॥ ९॥ इसके पश्चात् यमराजने शतयोजनपर्यन्त जलती हुई महारौरवादि नरक भूमियोंमें उनको अपने भृकुटीकी चेष्टा (इशारे) मात्रसे डलवा दिया॥ १०॥ वहांपर वे सुहृद् स्त्री तथा बंधुसहित करुणनाद करते हुये पत्तेमात्र शेष वृक्षके समान वनके वायुसे क्षणमेंही जलादिये गये॥ ११॥ पुनः वे दामादि यमराजके किंकरोंके सहवाससे उसी अपनी क्रूरवासनाके कारण वधबंधनके कर्मोंके करनेवाले राजाके सेवक किरातयोनिमें उत्पन्न हुये॥ १२॥

तज्जन्मायपरित्यज्यजाताःश्वभ्रेषुवायसाः॥ तदंतेगृध्रतांयातास्ततोपिशुकतांगताः॥ १३॥ सूकरत्वं त्रिगर्त्तेषुमेपत्वंपर्वतेषुच॥ मगधेष्वथकीटत्वंबभुस्तेचकुबुद्धयः॥ १४॥ अनुभूयेतरामन्यांचित्रांयोनिपरंपराम्॥ अथमत्स्याःस्थितारामकाश्मीरारण्यपल्वले॥ १५॥ दावाग्निक्वथितालपालपपंककल्पांबु

पायिनः ॥ नम्रियंतेनजीवंतिजरज्जंबालजर्जराः ॥ १६ ॥ विचित्रयोनिसंरंभमनुभूयपुनःपुनः ॥ भूत्वा भूत्वापुनर्नष्टास्तरंगाजलधाविव ॥ १७ ॥ भवजलधिगतास्तेवासनातंतुनुन्नास्तृणमिवचिरमूढादेहरूपैस्तरंगैः ॥ उपशमसुपयातारामनाद्याप्यनंतंपरिकलयमहत्त्वंदारुणंवासनायाः ॥ १८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे दामव्यालकटजन्मांतरचित्रवर्णनंनामत्रिंशःसर्गः ॥ ३० ॥

अर्थ—इसके पश्चात् उस जन्मको त्यागकर गर्तोंमें काकका जन्म धारण किया, इसके पश्चात् ग्रिध्रताको प्राप्त हुये, अनंतर शुकयोनिमें प्राप्त हुये ॥ १३ ॥ इसके पीछे त्रिगर्तदेशमें शूकर हुये, पीछे पर्वतोंमें मेष हुये, इसके अनंतर मगधदेशमें उन कुबुद्धियोंने कीटकताको धारण किया ॥ १४ ॥ इसके पश्चात् अन्य विचित्र योनियोंकी परंपराको भलीभांति अनुभव करके हे रामजी! इससमय काश्मीर देशके छोटे तलावमें मत्स्यताको प्राप्त हैं ॥ १५ ॥ दावाग्निसे जले हुये कीचडके समान जलको पीनेवाले जीर्ण पंकमें शिथिल देह वे न मरते हैं न जीते हैं ॥ १६ ॥ विचित्र योनियोंके समूहोंको पुनः २ अनुभव करते हुये हो २ कर पुनः ऐसे नष्ट होते हैं जैसे समुद्रमें तरंग ॥ १७ ॥ हे रामजी! संसाररूपी तरंगमें प्राप्त, वासनारूपी सूत्रसे प्रेरित, देहरूप तरंगोंसे चिरकालतक वहां अद्यपर्यन्त वे शान्तिको नहीं प्राप्त हुये, इस दृष्टान्तसे तुम वासनाका दारुण महत्त्व (महान् अनर्थ) देखो ॥ १८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे दाम व्याल कट जन्मांतरचित्रवर्णनं नाम त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥

अहंकारके अभिमानसे अर्थका नाश अनर्थकी प्राप्ति, और दाम व्यालादिका सत्व असत्वका निराकरण इस ३१ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अतःप्रबोधायतववच्मिराममहामते ॥ दामव्यालकटन्यायोमातेऽस्त्वितिलीलया ॥ १ ॥ अविवेकानुसंधानाच्चित्तमापदमीदृशीम् ॥ अनंतभवदुःखायपरिगृह्णातिहेलया ॥२॥ क्वचिलामरविध्वंसिशंबरानीकनाथता ॥ क्वतापतप्तजंबालजालजर्जरमीनता ॥ ३ ॥ क्वधैर्यममरानीकविद्रावणकरंमहत् ॥ क्वकिरातमहीपालक्षुद्रकिंकररूपता ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी! महामते इसलिये तुमारे बोधकेलिये मैं कहता हुं कि इस लीलासे दाम व्याल कटका न्याय तुमको न हो ॥ १ ॥ हे रामजी! अविवेकके अनुसंधानसे इस प्रकारकी आपत्तिको यह चित्त अनन्त संसारके दुःख भोगनेकेलिये ग्रहण करताहै ॥ २ ॥ देखो! कहां तो देवताओंकोभी नाश करनेवाली शंबरासुरकी सेनाकी स्वामिता और कहां तापसे संतप्त शैवालके जालमें जर्जरीभूत मीनता ॥ ३ ॥ कहां तो देवताओंकी सेनाकोभी भगानेवाला महान् धैर्य्य! और कहां किरातोंके राजाकी क्षुद्र दासता ॥ ४ ॥

क्वनामनिरहंकारचित्सत्त्वोदारधीरता ॥ क्वमिथ्यावासनावेशादहंकारकुकल्पना ॥ ५ ॥ शाखाप्रतानगहनासंसारविषमंजरी ॥ अहंकारांकुरादेवसमुदेतीयमातता ॥ ६ ॥ अहंकारमतोराममार्जयांतःप्रयत्नतः ॥ अहंनकिंचिदेवेतिभावयित्वासुखीभव ॥ ७ अहंकारांबुदच्छन्नंपरमार्थेंदुमंडलम् ॥ रसायनमयंशीतमदृश्यत्वमुपागतम् ॥ ८ ॥

अर्थ—कहां तो अहंकार शून्य चित्सत्वकी उदार धीरता! और कहां मिथ्या वासनाके आवेशसे दुष्ट अहंकारकी कल्पना ॥ ५ ॥ शाखाके विस्तारोंसे गहन यह संसाररूपी विषकी लता अहंकाररूपी अंकुरसेही व्याप्त होके उदय होती है ॥ ६ ॥ इसलिये हे रामजी! अहंकारको प्रयत्नसे हृदयसे धोडालो, और दृश्य जडको "इदंता" योग्यतासे अहंकारकी अयोग्यताहै और अहंकारादि सबके साक्षीचेतनमेंभी अहंकारकी अघटना होनेसे, तथा दृक् और दृश्यसे भिन्न मिथ्या होनेसे अहंकारका स्थान कुछ नहीं है, ऐसी भावना करके सुखी होजाओ ॥ ७ ॥ यह परमार्थरूपी चंद्रमंडल आनंदमय शीतल अर्थात् तीनों तापसे शून्य अहंकाररूपी मेघसे आच्छादित होके अदृश्यभावको प्राप्त होगयाहै ॥ ८ ॥

अहंकारपिशाचार्त्तादामव्यालकटाख्यः ॥ गतास्सत्तामसंतोपिमायामाहात्म्यदानवाः ॥ ९ ॥ काश्मीरेषुमहारण्यसरसीवनपल्वले ॥ अद्यमत्स्याःस्थितारामशैवाललवलालसाः ॥ १० ॥ श्रीरामउवाच ॥ नासतोविद्यतेभावोनाभावोविद्यतेसतः ॥ तेह्यसंतःकथंसत्तांसंपन्नाइतिमेवद ॥ ११ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवमेतन्महाबाहोनासत्संभवतिक्वचित् ॥ कदाचित्किंचिदप्येवबृहत्संपद्यतेतनु॥१२॥

अर्थ—दाम, व्याल, और कट ये तीनों अहंकाररूपी पिशाचसे पीड़ित होके असत् होते हुयेभी मायाके माहात्म्यसे दानवरूपसे सत्ताको प्राप्त हुयेहैं ॥ ९ ॥ हे रामजी ! काश्मीरदेशके छोटे तलावके गढेमें इस समय शैवालके लेशमें लालची मत्स्यरूपसे स्थितहैं ॥ १० ॥ श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! असत् पदार्थका भाव और सत्का अभाव नहीं है तो असत्रूप दामादि सत्ताको कैसे प्राप्त हुये यह मुझसे कहिये ॥ ११ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे माहाबाहो रामजी ! यह बात ऐसीही है असत्का सत् कहीं संभव नहीं है किन्तु सूक्ष्म बृहत्रूपसे अविर्भूत होताहै और बृहत्का तिरोभावही उसका नाश कहा जाताहै ॥ १२ ॥

किमसत्संस्थितंब्रूहिकिंतत्सद्वाथसंस्थितम् ॥ सम्यग्दृष्टिदर्शनेनैवकरिष्येतवबोधनम् ॥ १३ ॥ श्रीरामउवाच ॥ संतएवस्थिताःसंतोब्रह्मन्वयमिमेकिल ॥ दामादयस्त्वसंतोपिवक्षिसंतःस्थिताइति ॥ १४ ॥ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यथादामादयोरामस्थितामायामयाइति ॥ असत्याएवसत्याभामृगतृष्णांबुपूरवत् ॥ १५ ॥ तथैवेमेवयमपिससुरासुरदानवाः ॥ असत्याएववल्गामोयामआयामएवच ॥ १६ ॥

अर्थ—कहो तो भला ! कौन असत् सत् और सत्असत्रूपसे स्थितहैं इस विषयमें भलीभांति दृष्टान्तद्वारा तुमारा बोध मैं कराऊंगा ॥ १३ ॥ श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! हम लोगोंकी सत्ता तो प्रत्यक्ष सिद्धहै, और मायामात्र होनेसे दामादिकी असत्ता तो आपही कहचुके हो तो पुनः उनकी सत्ता यह विरुद्ध कहनेमें आपका क्या अभिप्रायहै ॥ १४ ॥ श्रीवशिष्टजी बोले–जैसे मायामय दामादिक असत्यही मृगतृष्णाके जलके समान सत्यरूपसे भान होतेहैं ॥ १५ ॥ ऐसेही सुर, असुर तथा दानवआदिके सहित हमलोगभी असत्यही होके गर्जते, जाते, और आतेहैं ॥१६

अलीकमेवत्वद्भावोमद्भावोलीकमेवच ॥ अनुभूतोप्यसद्रूपःस्वप्नेस्वमरणंयथा ॥ १७ ॥ मृतोबंधुर्यथास्वप्नेप्यनुभूतोप्यसन्मयः ॥ मृतोयमितिचेज्ज्ञप्तिर्भवेदेवमिदंजगत् ॥ १८ ॥ एषातिमूढविषयउक्तिरेवनराजते ॥ अभ्यासेनविनोदेतिनानुभूतेरपह्नवः ॥ १९ ॥ निश्चयोंतःप्ररूढोयःसंपन्नोभ्यसनंविना ॥ नाशमायातिलोकेस्मिन्नकदाचनकस्यचित् ॥ २० ॥

अर्थ—रामकी शरीरकी सत्ता, तथा वसिष्ठकी शरीरकी सत्ता, यह त्वद्भाव और मद्भाव मिथ्याही है, यद्यपि यह अनुभूतहै तथापि स्वप्नमें अपने मरणके तुल्य असत्रूपही है ॥ १७ ॥ जैसे स्वप्नमें मराहुआभी अपना बन्धु अनुभूत होनेपरभी असत्है ऐसेही यह प्राणी मरगया यह ज्ञान होना उचितहै क्योंकि ऐसाही स्वप्न वा मायामात्र यह जगत्है ॥ १८ ॥ हे रामजी ! जिसको जगत्की सत्यताका पूर्ण निश्चयहै उस अतिमूढ़ पुरुषके विषयमें जगत्की असत्यताका कथन शोभित नहीं होता, क्योंकि परमार्थ तत्वके विचारके अभ्यासके विना जगत्की सत्यताके अनुभवका बाध नहीं होता ॥ १९ ॥ इस प्रकार जगत्की सत्यताका निश्चय दृढ़ होगयाहै उसका नाश शास्त्रार्थ तत्वके विचार विना कदाचित् किसीकाभी नाश नहीं होता ॥ २० ॥

इदंजगदसद्ब्रह्मसत्यमित्येववक्त्रियः ॥ तमुन्मत्तमिवोन्मत्तोविमूढोपिहसत्यलम् ॥ २१ ॥ अक्षीबक्षीबयोरैक्यंककिलेहाज्ञतज्ज्ञयोः ॥ अंधप्रकाशयोर्बोधेस्याच्छायातपयोरिव ॥ २२ ॥ यत्नेनाप्यनुभूतोर्थःसंत्यक्तुमपह्नवम् ॥ अज्ञोतश्चनशक्नोतिशवमाक्रमणंयथा ॥ २३ ॥ ब्रह्मसर्वंजगदितिवक्तुंनाज्ञस्ययुज्यते ॥ तपोविद्याननुभवेसतदेवानुभूतवान् ॥ २४ ॥

अर्थ—इस कारण अनधिकारी जो यह कहताहै कि यह जगत् असत्यहै और ब्रह्म सत्यहै उस उन्मत्तके सदृश पुरुषको मत्त अज्ञानी पुरुषभी भलीभांति हंसताहै ॥ २१ ॥ जैसे मद्यपानसे मत्त पुरुष और न पीनेवाले सावधान पुरुषकी एकता नहीं होती, वा अंधकार व प्रकाश अथवा छाया और आतपकी एकता कहां दृष्टहै ऐसेही ज्ञानी और अज्ञानीकी सहवास होनेपरभी एकता नहीं होती ॥ २२ ॥ हे रामजी ! बडे प्रयत्नसे बोध न किया हुआभी अज्ञानी पुरुष बाहर भीतर मनबुद्धिआदि रूपसे अनुभव किये हुये द्वैतका बाध सत्यसाक्षी स्वरूपमें ऐसे नहीं करसकता जैसे मृतशरीर अपने चरणोंसे गमन ॥ २३ ॥ यह जगत् संपूर्ण ब्रह्महीं है यह कथनभी अज्ञके प्रतियुक्त नहीं है, क्योंकि तप विद्यादिके अभावमें उसने जगत्की सत्यताहीका अनुभव कियाहै ॥ २४ ॥

अबुद्धविषयेह्येषारामवाक्यविराजते ॥ बुद्धस्यास्मीतिरूपेणकिलनास्त्येवकिंचन ॥ २५ ॥ ब्रह्मैवेदंपरं शांतमित्येवानुभवन्सुधीः ॥ अपह्नवःस्वानुभूतेःकर्तुंतस्यकयुज्यते ॥ २६ ॥ परस्माद्व्यतिरेकेणनाहमात्मनिकिंचन ॥ हेमनिवोर्मिकादित्वंनमय्यस्तिविशिष्टता ॥ २७ ॥ भूततान्व्यतिरेकेणमूढेनात्मनिकिंचन ॥ ऊर्म्यादिबुद्धौहेमेवज्ञेनास्तिपरमार्थता ॥ २८ ॥

अर्थ—इसलिये जो किंचित् जानताहै उसीके प्रति जगत् मिथ्याहै वा संपूर्ण जगत् ब्रह्महीहै यह कथन शोभित होताहै और ज्ञानीके प्रति "अस्मि" इसप्रकार अहंकारके परामर्शीरूपसे जगत् कुछ नहीं है यह कथनभी युक्त नहीं है ॥ २५ ॥ ज्ञानी पुरुष ऐसा अनुभव करता हुआ कि यह सब शांत परब्रह्महीहै तो उसके अनुभवका बाध कहां करनेको युक्तहै ॥ २६ ॥ परमात्मासे पृथक् मैं आत्मामें कुछभी नहीं हुं क्योंकि जैसे सुवर्णमें अंगुलियता (अंगूठीपन) प्रतीति मात्रहै ऐसीही मुझ साक्षीरूपमें अहंकारकी विशिष्टताभी नहीं होती ॥ २७ ॥ जैसे ज्ञानीकी दृष्टिमें तरंगादि बुद्धिमें सुवर्णके समान जगत्में सत्यता बुद्धि नहीं है इसीप्रकार मूढकी दृष्टिमें परमार्थता (ब्रह्मकी सत्ता) काभी अत्यंताभावहै ॥ २८ ॥

मिथ्याहंतामयोमूढःसत्यैकात्ममयस्सुधीः ॥ युज्यतेनक्वचिन्नामस्वभावापह्नवोनयोः ॥ २९ ॥ योयन्मयस्तस्यतस्मिन्युज्यतेपह्नवःकथम् ॥ पुरुषस्यघटोस्मीतिवाक्यमुन्मत्तमेवहि ॥ ३० ॥ तस्मान्नेमेवयं सत्यानचदामादयःक्वचित् ॥ असत्यास्तेवयंचेमेनास्तिनःखलुसंभवः ॥ ३१ ॥ सत्यंसंवेदनंशुद्धंबोधाकाशंनिरंजनम् ॥ सत्यंसर्वगतंशांतमस्त्यनस्तमयोदयम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—अज्ञानी मिथ्या अहंकारमयहै और ज्ञानी सत्य एकात्ममयहै, इन दोनोंके स्वभावका अपलाप कभी कहीं हो सकता ॥ २९ ॥ जो वस्तु यन्मयहै उसका अपलाप उसीमें कैसे होसकताहै ॥ ३० ॥ हे राम ! इस हेतुसे वसिष्ठ रामादि देहसे प्रत्यक्ष रूपसे प्रसिद्धभी हम लोग शास्त्र दृष्टिसे सत्य नहीं हैं, और विद्वान्के अनुभव दृष्टिसेभी असत्यहैं और युक्तिसेभी हम लोगोंका संभव नहीं है ॥ ३१ ॥ इस वही बोधाकाश निरंजन ज्ञान स्वरूप शास्त्र दृष्टिसे सत्यहै और वही सर्वव्यापी विद्वानोंके अनुभवसेभी सत्यहै, और युक्ति दृष्टिसेभी वह अस्तमय और उदयमयहै ॥३२॥

सर्वंशांतंचनिःशून्यंनकिंचिदिवसंस्थितम् ॥ तत्रव्योम्निविभांतीमानिजाभासोंगसृष्टयः ॥ ३३ ॥ यथा तैमिरिकाक्षस्यसहजाण्वदृष्टयः ॥ केशोंड्रकादिवद्भांतितथेमास्तत्रसृष्टयः ॥ ३४ ॥ सआत्मानंयथावेत्तितथानुभवतिक्षणात् ॥ चिदाकाशस्ततोसत्यमपिसत्यंतदीक्षणात् ॥ ३५ ॥ नसत्यमस्तिनासत्यमितितस्माज्जगत्त्रये ॥ यद्यथावेत्तिचिद्रूपंतत्तथोदेत्यसंशयम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे प्रियरामजी ! यह सब जगत् शान्त शून्यतारहित और न किंचित् अर्थात् सन्मात्र पूर्णभावसे स्थितहै, और उसी चिदाकाशमें अन्यथा प्रथावाली ये सब सृष्टि भान होती हैं ॥ ३३ ॥ जैसे तिमिर युक्त नेत्रसहित पुरुषकी सहजही दृष्टि केशोंड्रकादि समान भान होती हैं ऐसेही ये सृष्टिभी उस परमात्मामें भासती हैं ॥ ३४ ॥ वह सत्यात्मा जैसे आत्माका अनुभव करताहै वैसाही वह चिदाकाश क्षणभरमें होजाताहै इसलिये उसके ईक्षणसे अर्थात् सत्यात्मकी दृष्टि बलसे असत्यके समान क्षणमें हो जाताहै ॥ ३५ ॥ इसलिये तीनों लोकमें न कुछ सत्यहै और न असत्यहै किंतु चिद्रूप जिसको जैसा अनुभव करताहै वह निश्चय वैसाही उदय होताहै ॥ ३६ ॥

यथादामादयस्तद्वदेवमभ्युदितावयम् ॥ सत्यासत्याःकिमत्रांगतान्प्रत्यपिविकल्पना ॥ ३७ ॥ अस्यानंतस्यचिद्व्योम्नःसर्वगस्यनिराकृतेः ॥ चिद्वदेतियथायांतस्तथासातत्रभात्यलम् ॥ ३८ ॥ यत्रदामादिरूपेणसंवित्प्रकचितास्वयम् ॥ तथासातत्रसंपन्नातथाकारानुभूतितः ॥ ३९ ॥ अस्मदादिस्वरूपेण संविद्यत्रोदितास्वयम् ॥ तथासैतत्रसंपन्नातथाकारानुभूतितः ॥ ४० ॥

अर्थ—हे प्रियरामजी ! इसलिये जैसे दामादि चिदाकाशमें प्रकटहैं ऐसेही हमलोगभी हैं इसमें सत्य असत्य क्या, और उन्हीके प्रति यह सत्यासत्यकी विकल्पना क्यों ॥ ३७ ॥ इस निराकार सर्वव्यापी अनन्त चिदाकाशके अन्तमें जो चित् जिस आकारसे उदय होती है वहां उसी प्रकारसे अच्छीतरह भान होती है ॥ ३८ ॥ जहांपर वह चित् दाम आदि आकाररूपसे स्वयं स्फुरित हुई वहां उसी आकारके अनुभव होनेसे वैसीही आविर्भूत होगई ॥ ३९ ॥ और जहां अस्मद् आदिके रूपसे स्फुरित हुई वहां उसी आकारसे अनुभव होनेसे वैसीही संपन्न होगई ॥ ४० ॥

स्वस्वप्नप्रतिभासस्यजगदित्यभिदाकृता ॥ चिद्व्योम्नोव्योमवपुषस्तापस्येवमृगांबुता ॥ ४१ ॥ यत्रप्रबुद्धंचिद्व्योमतत्रद्रव्याभिधाकृता ॥ यत्रसुप्तंतत्तेनैवतत्रमोक्षाभिधाकृता ॥ ४२ ॥ नचतत्क्वचिदासुप्तंनम

बुद्धंकदाचन ॥ चिद्व्योमकेवलंदृश्यंजगदित्यवगम्यताम् ॥ ४३ ॥ निर्वाणमेवसर्गश्रीःसर्गश्रीरेवनिर्वृतिः ॥ नानयोःशब्दयोरर्थभेदःपर्यायियोरिव ॥ ४४ ॥

अर्थ—निराकार चिदाकाशने अपने स्वप्नके प्रतिभासका जगत् नाम ऐसे रक्खाहै, जैसे मरूस्थलके सूर्यके किरणका मृगतृष्णाकी जलता ॥ ४१ ॥ जहां बाह्य पदार्थकी उपलब्धिरूपसे चिदाकाश जागरूकहै वहां दृश्यनाम उसका स्थापित किया, और जहां बाह्यपदार्थकी उपलब्धिसे रहितहै वहां मोक्ष यह नाम उसी चित्ने स्थापित किया है ॥ ४२ ॥ यथार्थमें वह चिदाकाश न कहीं सुप्तहै, न प्रबुद्ध, किन्तु यह सम्पूर्ण दृश्य चिदाकाशरूपही है ॥ ४३ ॥ जब यह दृश्य केवल चिदाकाशमात्रही है, सृष्टिकी शोभा मोक्षरूपही है और मोक्षकी श्री भी मोक्षरूपही है पर्याय शब्दके तुल्य इन दोनों शब्दोंके अर्थमें कुछ भेद नहीं है ॥ ४४ ॥

परमार्थोजगदितिरूपंवेत्तिस्वयंस्वकम् ॥ यथातैमिरिकंचक्षुःकेशोंडूकमिवेक्षते ॥ ४५ ॥ नतत्केशोंडूकंकिंचित्साहिदृष्टिस्तथास्थिता ॥ नेदंदृश्यमिदंकिंचिदित्थंचिद्व्योमसंस्थितम् ॥ ४६ ॥ सर्वत्रसर्वमिदमस्तियथानुभूतंनोकिंचनक्वचिदिहास्तिनचानुभूतम् ॥ शांतंसदेकमिदमाततमित्थमास्तेसंत्यक्तशोकभयभेदमतस्त्वमास्व ॥ ४७ ॥ शिलोदराकारघनंप्रशांतंमहाचितेरूपमिदंस्वमच्छम् ॥ नैवास्तिनास्तीतिदृशौक्वचित्तुयच्चास्तितत्साधुतदेवभाति ॥ ४८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे सदसन्निराकरणंनामैकत्रिंशःसर्गः ॥ ३१ ॥

अर्थ—अविद्या उपहित आत्मा अपने परमार्थ स्वरूपकोही जगत् इसप्रकार जानताहै जैसे तिमिरसहित नेत्रवाला केशोंडूकको देखताहै ॥ ४५ ॥ यथार्थमें वह केशोण्डूक कुछ नहीं है क्योंकि वह दृष्टिही उस रूपसे स्थित है यह दृश्य प्रपंच तथा यह शरीरादि कुछ नहीं है किन्तु चिदाकाशही इस रूपसे स्थितहै ॥ ४६ ॥ अध्यारोप दृष्टिसे सर्वव्यापी चिदाकाशमें सबका संभव होनेसे सर्वत्र सब कुछ है, और अपवाद दृष्टिसे कहीं कुछ नहीं है, इन दोनों प्रकारमें शान्त भेद शून्य एक पूर्णरूपहै, इसलिये शोक और भयको त्यागकर तुम पूर्णरूप होजाओ ॥ ४७ ॥ स्फटिक शिलाके उदराकार घन प्रशान्त अतिस्वच्छ महाचेतनरूपहै और नदी गिरि बनादिके प्रतिबिम्बके सदृशहै, नहीं है इत्यादि दृष्टि तो कहीं है ही नहीं और प्रतीति जो कहीं है वह चेतनका रूपही वैसा भासताहै ॥ ४८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे सदसन्निराकरणं नामैकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥

दामादि मत्स्य तथा सारसादिके जन्मकी प्राप्तिसे राजाके स्थानमें वियुक्त हुये और मशकआदि शरीरमें ज्ञानकी प्राप्तिसे मुक्तिको प्राप्त हुये इत्यादि विषय इस ३२ के सर्गमें बर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ सतामप्यसतामेवबालयक्षपिशाचवत् ॥ दामव्यालकटादीनांदुःखस्यांतःकथंभवेत् ॥१॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ दामव्यालकुटुंबैस्तैस्तदैवयमकिंकरैः ॥ प्रार्थितेनयमेनोक्तमिदंशृणुरघूद्वह ॥ २ ॥ यदावियोगमेष्यंतिश्रोष्यंतिचनिजांकथाम् ॥ दामादयस्तदामुक्ताभविष्यंतीत्यसंशयम् ॥ ३ ॥ ॥ श्रीरामउवाच ॥ स्ववृत्तांतमिमंकुत्रकदाकथयतेकथम् ॥ श्रोष्यंतिभगवंस्तेवावर्णयेदंयथाक्रमम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—हे वसिष्ठजी ! बालकको यक्ष पिशाचके तुल्य अज्ञोंकी दृष्टिमें सत् परन्तु यथार्थमें असत् दाम व्याल और कटादिके दुःखका अन्त कब होगा ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ रामजी ! दाम व्यालादिके कुटुम्बभूत यमके किंकरोंसे प्रार्थना किये हुये यमराजने उसी समय यह कहा ॥ २ ॥ कि जब ये दाम व्यालादि पृथक् होंगे और अपनी कथा सुनेंगे उस समय निःसंदेह मुक्त होंगे ॥ ३ ॥ श्रीरामजी बोले—हे भगवन् ! यह वृत्तान्त किस किस समय कैसे कहनेवालेसे वे सुनैंगे सो यथाक्रम कहिये ॥ ४ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ काश्मीरेषुमहापद्मसरसीतीरपल्वले ॥ भूयोभूयोनुभूयैवमत्स्ययोनिपरंपराम्॥५॥ आलोलिताशयालोलाःकालेनलयमागताः ॥ तत्रैवपद्मसरसितेभविष्यंतिसारसाः ॥ ६ ॥ तत्रकह्लारमालासुसरोजपटलीषुच ॥ शैवालवरवल्लीषुतरंगवलनासुच ॥ ७ ॥ चलत्कुसुमदोलासुनीलोत्पलालतासुच ॥ सीकरौघाभ्रलेखासुशीतलावर्त्तवर्तिषु ॥ ८ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी! काश्मीरदेशकी सरसी (कमलकी तलाई) के छोटे गढ़ेमें बार २ मत्स्ययोनिकी परंपराका अनुभव करके ॥ ५ ॥ ग्रीष्मऋतुमें जब इनका अल्प तलाव महिष सूकरआदिने मथित किया उस समय ये तीनों नष्टताको प्राप्त हुये और उस पद्मके तड़ागमें सारस होंगे ॥ ६ ॥ वहां श्वेत कमलोंकी मालाओंमें, कमलोंकी पटलीमें शेवालोंकी श्रेष्ठ लताओंमें, और तरंगोंकी लीलाओंमें ॥ ७ ॥ चंचल पुष्पोंकी दोला (झूला) सहित नील कमलकी लताओंमें, और शीतल आवर्त सहित तथा जलकणोंके समूह सहित मेघमण्डलकी लेखाओंमें ॥ ८ ॥

सारसाःसरसंभोगान्भुक्त्वाभुवनभूषणाः ॥ विहृत्यसुचिरंकालमलमागतशुद्धयः ॥ ९ ॥ तेवियुक्ता भविष्यंतिमुक्तयेलब्धबुद्धयः ॥ रजस्सत्त्वतमांसीवभेदंप्राप्ययदृच्छया ॥ १० ॥ काश्मीरमंडलस्यांतर्नगरंनगशोभितम् ॥ नाम्नाधिष्ठानमित्येवश्रीमत्तस्यभविष्यति ॥ ११ ॥ प्रद्युम्नशिखरंनामतस्यमध्येभविष्यति ॥ शृंगंलघुसरोजस्यकोशचक्रमिवोदरे ॥ १२ ॥

अर्थ—संसारके भूषण वे सारस सरस भोगोंको भोगके तथा चिरकालतक विहार करके शुद्धताको प्राप्त होंगे ॥ ९ ॥ अनन्तर विचार बुद्धिकी प्राप्तिसे मुक्तिके अर्थ ऐसे पृथक् २ होंगे जैसे विवेक दृष्टिसे विचारे हुये रजोगुण तमोगुण और सत्वगुण भिन्नताको प्राप्त होतेहैं ॥ १० ॥ हे रामजी! काश्मीर मण्डलके अन्तर्गत वृक्ष तथा पर्वतोंसे शोभित तथा सब लक्ष्मी संपन्न अधिष्ठान नामक उसका नगर होगा ॥ ११ ॥ उस नगरके मध्यमें प्रद्युम्न नाम शिखर होगा, जिसका शृंग लंघनके योग्य होगा और उसके उदरमें कमलकी कर्णिकाके समान होगा ॥ १२ ॥

तस्यमूर्ध्निगिरेर्गेहंकश्चिद्राजाभविष्यति ॥ अभ्रंकषमहाशालंशृंगेशृंगमिवापरम् ॥ १३ ॥ गृहस्येशानकोणेस्तिशिरोभित्तिव्रणोदरे ॥ तस्यानिशमविश्रांतवाताधूततृणांतिके ॥ १४ ॥ आलयेदानवोव्यालःकलविंकोभविष्यति ॥ प्रथमाल्पश्रुतशास्त्रइवार्थरहितारवः ॥ १५ ॥ तस्मिन्नेवतदाकालेतत्रराजाभविष्यति ॥ श्रीयशस्करदेवाख्यःशक्रःस्वर्गइवापरः ॥ १६ ॥

अर्थ—उस शिखरके शिरपर सब गृहोंका राजा, बडी २ शालायुक्त पर्वतके शृंगपर दूसरे शृंगके समान अर्थात् अति उच्च सब गृहोंमें श्रेष्ठ गृह वहां है ॥ १३ ॥ उस गृहके ईशान कोणमें भित्तिके ऊपर एक फटी हुई शिलाके मध्य संधिस्थानमें एक नीड (खोंथा) है उसके निकट निरन्तर वायुसे सदा कंपित निकटस्थ तृणयुक्त ॥ १४ ॥ नीड (खोंथे) में अल्प शास्त्रज्ञ ब्राह्मणके समान निरर्थक शब्द करनेवाला व्यालनाम दानव चटक होगा ॥ १५ ॥ उसी नगरमें उस समय श्रीयशस्करदेवनामक स्वर्गमें दूसरे इन्द्रके समान राजा होगा ॥ १६ ॥

दानवोदामनामात्रमशकस्तस्यसद्मनि ॥ भविष्यतिबृहत्स्तंभपृष्ठच्छिद्रेमृदुध्वनिः ॥ १७ ॥ अधिष्ठानाभिधेतस्मिन्नेवांतर्नगरेतदा ॥ रत्नावलीविहाराख्योविहारोपिभविष्यति ॥ १८ ॥ तस्मिंस्तद्भूमिपामात्योनरसिंहइतिश्रुतः ॥ करामलकवद्दृष्टबंधमोक्षोनिवत्स्यति ॥ १९ ॥ भविष्यतिगृहेतस्यक्रीडनःक्रकरःखगः ॥ कटोमायासुरोनामकृतराजतपंजरः ॥ २० ॥

अर्थ—उस राजाके गृहके बडे खंभेके पीछेके छिद्रमें, दामनामक दानव कोमल शब्द करनेवाला मशक (मच्छर) होगा ॥ १७ ॥ और उससमय उसी अधिष्ठान नाम नगरके भीतर रत्नावलीका विहार नामक एक विहार (क्रीडास्थान) होगा ॥ १८ ॥ उस नगरमें बंध तथा मोक्षको हस्तामलकके सदृश देखनेवाला नरसिंह नाम प्रसिद्ध उसी राजाका मंत्री निवास करेगा ॥ १९ ॥ उसी मंत्रीके गृहमें कटनाम मायाका असुर चांदीके पिंजरेमें उसी मंत्रीकी क्रीडाका साधन सारिका नाम पक्षी होगा ॥ २० ॥

सनृसिंहोनृपामात्यश्लोकैर्विरचितामिमाम् ॥ दामव्यालकटादीनांकथयिष्यतिसत्कथाम् ॥ २१ ॥ स कटःक्रकरःश्रुत्वातत्कथासंस्मृतात्मभूः ॥ शांतमित्थंमहाशांतंपरंनिर्वाणमेष्यति ॥ २२ ॥ प्रद्युम्नशिखरप्रांतवास्तव्यःकलविंककः ॥ तत्राणिश्चकथांश्रुत्वापरंनिर्वाणमेष्यति ॥ २३ ॥ राजमंदिरदार्वंतर्व्रणवास्तव्यतांगतः ॥ मशकोपिप्रसंगेनश्रुत्वाशांतिमुपैष्यति ॥ २४ ॥

अर्थ—वह नृसिंह नाम राजाका मंत्री श्लोकोंमें रचित दाम व्यालकी इस उत्तम कथाको कहेगा ॥ २१ ॥ वह क्रकर (सारिका) उस अपनी कथाको सुनके शंबरासुरसे कल्पित जीवरूपको बाध करके जिसमें इसप्रकार मूलसेही शांत है संसारका रूप ऐसे मोक्षको प्राप्त होगा ॥ २२ ॥ राजमंदिरके खंभेका निवासी वह मच्छरभी उस कथाको सुनकर मोक्षरूप शांतिको प्राप्त होगा ॥ २३ ॥ प्रद्युम्नके शिखरके निकटका निवासी वह चटकभी वहांके निवासियोंसे उस कथाको सुनके परम निर्वाणको प्राप्त होगा ॥ २४ ॥

प्रद्युम्नशृंगाच्चटकोमशकोराजमंदिरात् ॥ विहारात्क्रकरश्चेतिमोक्षमेष्यंतिराघव ॥ २५ ॥ एषतेकथितःसर्वोदामव्यालकथाक्रमः ॥ मायैवमेवसंसारशून्यैवात्यंतभासुरा ॥ २६ ॥ भ्रमयत्यपरिज्ञान्मृगतृष्णांबुधीरिव ॥ महतोपिपदादेवंनानाज्ञानवशादधः ॥ २७ ॥ पतंतिमोहितामूढादामव्यालकटाइव ॥ क्वभ्रूक्षेपविनिष्पिष्टमेरुमंदरसद्मता ॥ २८ ॥

अर्थ—हे राघव ! प्रद्युम्न शृंगसे वह चटक राजमन्दिरसे मशक और रत्नावली विहारसे क्रकर (सारिका) ये तीनों मोक्षको प्राप्त होंगे ॥ २५ ॥ हे रामजी ! यह दाम व्यालकी कथाका संपूर्ण क्रम आपसे कह दिया, यह सब इसीप्रकार संसार शून्य प्रति भासमान सब मायाही है ॥ २६ ॥ यह अज्ञानसे ऐसे भ्रमाती है जैसे मृगतृष्णाके जलकी बुद्धि, और अन्य पदोंकी अपेक्षा महान् पदोंसेभी नानाप्रकारके अज्ञानके वशसे नीचेकी ओर गिराती है ॥ २७ ॥ अज्ञानी मूढजन दाम व्याल और कटके समान गिरते हैं, कहां तो भ्रू (भौं) के इसारेमात्रसे मेरू तथा मन्दरके स्थानकोभी चूर्ण करना ॥ २८ ॥

क्वराजगृहदार्वंतर्व्रणेमशकरूपता ॥ क्वचपेटभुजामात्रपातितार्केन्दुबिंबता ॥ २९ ॥ क्वप्रद्युम्नगिरौगेहेभित्तिव्रणविहंगता ॥ क्वपुष्पलीलयालोलकरतोलितमेरुता ॥ ३० ॥ क्वशृंगेनृसिंहस्यगृहेक्रकरपोतता॥ चिदाकाशोहमित्येवरजसारंजितप्रभः ॥ ३१ ॥ स्वरूपमत्यजन्नेवविरूपमपिबुद्ध्यते ॥ स्वयैववासनाभ्रांत्यासत्ययेवाप्यसत्यया ॥ ३२ ॥

अर्थ—और कहां राजाके गृहके खंभेके छिद्रमें मशकरूपता ! और कहां तो चपेटा मात्रसे सूर्य तथा चंद्रमंडलका गिराना ॥ २९ ॥ और कहां प्रद्युम्न गिरिके शृंगके गृहके भित्तिके छिद्रमें पक्षिरूपता ! कहां तो पुष्पकी लीलामें (पुष्पके समान) हस्तसे मेरूका तोलना ॥ ३० ॥ और कहां तो शिखर नृसिंहके गृहमें सारिकाका शिशु (बच्चा) बनना ! रजोगुणसे रंजित प्रभावान् यह चिदाकाश "अहम्" इसप्रकार अहंकारका आश्रय होके॥३१॥ अपनी प्रकाशरूपताको न त्यागते हुये अहंकार प्राण इन्द्रियादि रूपकोभी अनुभव करताहै ॥ ३२ ॥

मृगतृष्णांबुबुद्ध्येवयातिजंतुरिवांतरम् ॥ तरंतितेभवांभोधिंस्वप्रवाहधियैवये ॥ ३३ ॥ शास्त्रेणासदितंदृश्यमितिनिर्वाणसंस्थिताः ॥ नानादुःखविकाराणिशुष्कतर्कमतानिये ॥ ३४ ॥ यांतिश्वभ्रंजलानीवस्वलाभंनाशयंतिते ॥ स्वानुभूतिप्रसिद्धेनमार्गेणागमगामिना ॥ ३५ ॥ नविनाशोभवत्यंगगच्छतांपरमांगतिम् ॥ इदंमेस्यादिदंमेस्यादितिबुद्धेर्महामते ॥ ३६ ॥ स्वेनदौर्भाग्यदैन्येननभस्माप्युपतिष्ठते ॥ यो वेत्तिनित्यमुदारात्मात्रैलोक्यमपियस्तृणम् ॥ ३७ ॥

अर्थ—असत्भी मृगतृष्णाके जल बुद्धिके सदृश सत्यके समान भासमान अपनीही भ्रान्तिरूप वासनासे यह चिद्रूपसे भेदताको प्राप्त होताहै, जो लोग प्रत्यक् साक्षी चेतनकी ओर अभिमुख बुद्धिसे संसारसागरसे पार होजातेहैं उन लोगोंके अर्थ "तत्वमसि" इत्यादि महावाक्यरूप शास्त्रसे दृश्यको मार्जित करके निर्वाण स्थितहै, और जो शुष्कतर्क है वे नानाप्रकारके दुःखमय विकारयुक्त कहे गयेहैं ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ और जो केवल तर्क शास्त्रका अवलम्बन करतेहैं वे अपने परमपुरूषार्थरूप आत्मलाभका नाश करतेहैं, और अपने अनुभवसे प्रसिद्ध श्रुतिके अनुसारी मार्गसे ॥ ३५ ॥ परमगतिको जानेवालोंका बिनाश नहीं होता, हे महामते रामजी ! यह मुझेहो इस बुद्धिवाले पुरूषके अपनेही दौर्भाग्यजनित दीनतासे नष्ट पुरूषार्थका भस्मभी नहीं प्राप्त होताहै, और जो उदारात्मा त्रैलोक्यकोभी तृणसमान जानताहै ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

तंत्यजंत्यापदस्सर्वाःसर्पाइवजरत्त्वचम् ॥ परिस्फुरतियस्यांतर्नित्यंसत्त्वचमत्कृतिः ॥३८॥ ब्राह्मंडमिवाखंडंलोकेशाःपालयंतितम् ॥ अप्यापदिद्वरंतायांनैवगंतव्यमक्रमे ॥ ३९ ॥ राहुरप्यक्रमेणेदंपिबन्नप्यमृतंमृतः ॥ सच्छास्त्रसाधुसंपर्कमर्कमुग्रप्रकाशदम् ॥ ४० ॥

अर्थ—उस महात्माको सम्पूर्ण आपत्ति ऐसे त्याग देती है जैसे सर्प अपनी त्वक् (केंचुर) को और जिसके अन्तःकरणमें नित्यही सत्वगुणका चमत्कार स्फुरताहै ॥ ३८ ॥ अपने आधारभूत ब्रह्माण्डके सदृश लोकेश इन्द्रादि भी उसका पालन करतेहैं, इसलिये महान् घोर आपत्तिमेंभी असन्मार्गमें नहीं जाना चाहिये ॥ ३९ ॥ असन्मार्गमें जानेसे राहु अमृतपान करते हुयेभी मरगया, और सत्मार्ग तो उपनिषद् तथा उनके बढानेवाले और उनके अर्थमें निष्ठसाधु और इन दोनों (सत्शास्त्र तथा साधु) का सेवनहै उस सूर्य, और निर्दयतासे संसारका संहार करनेमें उग्र शिवपरमात्माके प्रकाशका हेतुहै ॥ ४० ॥

येश्रयंतेनतेयांतिमोहांध्यस्यपुनर्वशम् ॥ अवश्यावश्यतांयांतियांतिसर्वापदःक्षयम् ॥ ४१ ॥ अक्षयंभवतिश्रेयःकृतंयेनगुणैर्यशः ॥ येषांगुणेष्वसंतोषोरागोयेषांश्रुतंप्रति ॥ ४२ ॥ सत्यव्यसनिनोयेचतेनराःपशवोपरे ॥ यशश्चंद्रिकयायेषांभासितंजंतुहृत्सरः ॥ ४३ ॥ तेषांक्षीरसमुद्राणांनूनंमूर्तौस्थितोहरिः ॥ भुक्तंभोक्तव्यमखिलंदृष्टाद्रष्टव्यदृष्टयः ॥ ४४ ॥

अर्थ—उसका सेवन जो करतेहैं वे मोहरूप अन्धकारके वशमें पुनः नहीं आते उनके जो अवश्यहैं वेभी वशमें होजातेहैं, और सम्पूर्ण आपत्ति नाशको प्राप्त होती हैं ॥ ४१ ॥ जिसने शमदमादि गुणोंसे अपना यश कियाहै अर्थात् सज्जनोंमें जो अग्रणी है उसका अक्षय कल्याणहो जिसको पूर्वोक्त गुणोंमें असन्तोषहै, और जिसको अध्यात्मकशास्त्रके श्रवणमें प्रीतिहै, और जो सत्यके व्यसनी हैं, वेही मनुष्य हैं, और इनसे भिन्न पशुहैं; और जिनके यशरूपी चन्द्रिकासे प्राणियोंके हृदयरूपी सरोवर आल्हादित होगयेहैं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ उन क्षीरसमुद्रोंकी मूर्तिमें साक्षात् विष्णुभगवान् स्थितहैं, और उन्होंने सम्पूर्ण भोक्तव्य भोग लिया, और सम्पूर्ण द्रष्टव्य पदार्थोंको देखभी लिया ॥४४॥

किमन्यद्भवभंगायभूयोभोगेषुलुब्धता ॥ यथाक्रमंयथाशास्त्रंयथाचारंयथास्थिति ॥ ४५ ॥ स्थीयतांमुच्यतामंतर्भोगजालमवास्तवम् ॥ संस्तवःक्रियतांकीर्त्यागुणैर्गगनगामिभिः ॥ ४६ ॥ त्रायेतेमृत्युतोह्येतेनकदाचनभोगकाः ॥ गायंतिसिद्धसुंदर्योयेषामिंदुसितंयशः ॥ ४७ ॥ गीतिभिर्गगनाभोगैस्तेजीवंतिमृताःपरे ॥ परमंपौरुषंयत्नमास्थायादायसूद्यमम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—भाविजन्मोंकी परंपरामें अपने आत्माके नाशार्थ पुनः संसारके भोगोंमें लुब्धता क्या युक्तहै, अर्थात् सर्वथा अयुक्तहै, इसलिये अपने २ अधिकारके अनुरूप, शास्त्रके अनुकूल, पूर्वाचार्योंसे प्रवर्तित आचारके अनुकूल तथा जिस भूमिकामें जितने समयतक स्थिति चाहिये उसके अनुकूल ॥ ४५ ॥ सबको स्थित होना चाहिये, और मिथ्या भोगजालको अन्तःकरणसे त्यागना चाहिये, और स्वर्गपर्यन्त प्रख्यात उत्तमगुणोंसे, कीर्तिसे, सज्जनोंके मुखोंसे अपनी स्तुति करानी चाहिये ॥ ४६ ॥ ये संसारी तुच्छ भोग मृत्युसे कभी नहीं बचाते, जिन प्राणियोंका चन्द्रमाके समान सित यश देवताओंकी सुन्दरी गान कराती हैं ॥ ४७ ॥ आकाशके तुल्य सब देशकालमें व्याप्त गीतोंसे जिनका यश देवाङ्गना गाती हैं वेही जीतेहैं, शेष मृतकाऽवस्थाको प्राप्त होगये इसलिये परमपौरूष यत्नको तथा तदुद्यमका अवलम्बन करके ॥ ४८ ॥

यथाशास्त्रमनुद्वेगमाचरन्कोनसिद्धिभाक् ॥ यथाशास्त्रंविहरतात्वराकार्यानसिद्धिषु ॥४९॥ चिरकालपरिपकासिद्धिःपुष्टफलाभवेत ॥ वीतशोकभयायासमगर्वमपयंत्रणम् ॥ ५० ॥ व्यवहारोयथाशास्त्रं क्रियतांमाविनश्यताम् ॥ जीवोजीर्णांधकूपेषुभवेष्वंतमिवागतः ॥५१॥ भवतांभूरिसंगानामधूर्तेंद्रियदामतः ॥ इतःप्रभृतिमाभूयोंगम्यतामधमादधः ॥ ५२ ॥

अर्थ—शास्त्रके अनुसार उद्वेगसे रहित होके आचरण करताहुआ कौन पुरूष सिद्धिका भागी नहीं होसकता ॥ ४९ ॥ चिरकालसे परिपाकता जो सिद्धिको प्राप्त होताहै उसका फल पुष्ट होताहै, इसलिये शोक भय, शान्तता गर्व तथा शीघ्रताको त्यागकर ॥ ५० ॥ शास्त्रके अनुसार व्यवहार करो और नष्ट न होओ, जीव विषय सेवासे संसाररूपी अन्धकूपमें नष्ट न होओ ॥ ५१ ॥ अनेक पदार्थोंका सङ्गी आपका जीव इन्द्रियरूप रज्जुसे इससमय मानो मृत्युके वशमें प्राप्तहै इसलिये संसाररूपी प्राचीन अन्धकूपमें मत नष्टहो, अब इससमयसे लेके अधमसेभी अधम अर्थात् सर्वथा नीचताको मत प्राप्त होओ ॥ ५२ ॥

इदंविचार्यतांशास्त्रमस्त्रमापन्निवारणम् ॥ रणेशितशरश्रेणिशतनिर्लूनवारणे ॥ ५३ ॥ जीवसुद्राचकिंपंकेभोगगंधोनिरस्यताम् ॥ किमर्थमात्रयाकार्यमार्याःशास्त्रमवेक्ष्यताम् ॥ ५४ ॥ इदंबिंबमिदंबिंबमितिसत्यंविचार्यताम् ॥ धियापरप्रेरणयायातमापशवोयथा ॥ ५५ ॥ दौर्भाग्यदायिनीदीनाशुभहीनाविचारणा ॥ घनदीर्घमहानिद्रात्यज्यतांसंप्रबुध्यताम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—तीक्ष्ण बाणोंकी पंक्तियोंमें जहां हस्ती लोगभी छिन्नभिन्न होगये हैं ऐसे रणमें प्राप्त महा मृत्युआदि भयका निवारक शस्त्रके तुल्य तथा अजर अमर नित्य निरंतिशय आनंदका दर्शक यह शास्त्र नित्य विचारो ॥ ५३ ॥ ग्रीष्मऋतुकी उष्णतासे दुर्गन्धियुक्त तडागके कर्दमके सदृश इस संसारमें जीवन अति तुच्छ है, इसलिये भोगकी आशाको हृदयसे दूर करना चाहिये, अनर्थदायी भोगके अर्थ द्रव्यके लेशसे क्या प्रयोजन है, इसलिये हे श्रेष्ठ पुरुषों! मोक्षदायक शास्त्रका अवलोकन करो ॥ ५४ ॥ विषयाकार वृत्तिमें फलित चिदाभासोंका अन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्य विम्ब है और अंतःकरणोपहित चिदाभासका शुद्ध ब्रह्मचैतन्य बिंब है, प्रतिबिम्ब तथा उनकी उपाधि दोनों

मिथ्या है, अभिन्न बिंबमात्र सत्य है ऐसा विचार करना चाहिये; आर्हत आदि परप्रेरित बुद्धिसे पशुताको मत प्राप्त होओ ॥ ५५ ॥ और दौर्भाग्य देनेवाली दीन धनादि संबंधी जो विचारणा है वह घनीभूत दीर्घ महा निद्रा है उसे शीघ्र त्यागो और मोक्षकेलिये जागृत होओ ॥ ५६ ॥

सुप्तंमास्थीयतांवृद्धकच्छपेनेवपल्वले ॥ उत्थानमंगीक्रियतांजरामरणशांतये ॥ ५७ ॥ अनर्थायार्थसंपत्तिर्भोगौघोभवरोगदः ॥ आपदस्संपदःसर्वाःसर्वत्रानादरोजयः ॥ ५८ ॥ लोकतंत्रानुसारेणविचाराद्व्यवहारिणाम् ॥ शास्त्राचारानुसारेणकर्मणासत्फलायच ॥ ५९ ॥ आचारंचारुचरितस्यविविक्तवृत्तेःसंसारसौख्यफलदुःखदशास्त्रगृध्रोः ॥ आयुर्यशांसिचगुणाश्चसहैवलक्ष्म्याफुल्लंतिमाधवलताइव सत्फलाय ॥ ६० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देववूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे दामव्यालकटोपाख्याने सदाचारनिरूपणं नाम द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥

अर्थ—छोटे तडागमें वृद्ध कच्छपके समान शयन न करो किंतु जरामरणकी शान्तिकेलिये उठो ॥ ५७ ॥ अर्थकी संपत्ति अनर्थकेलिये है, भोगोंका समूह संसारमें रोगदायक है, संपूर्ण संपत्ति आपत्तिरूप हैं; और सर्वत्र अनादर जयरूप है ॥ ५८ ॥ लोक वृत्तांतके अविरोधी विचारसे व्यवहार करनेवालोंके शास्त्र तथा शिष्टाचारके अनुसार कर्मसे सत्फलके अर्थ सावधान होके उठना चाहिये ॥ ५९ ॥ पूर्वाचार्यप्रणीत आचारसे उत्तम चरितवाले, विवेक बुद्धिसहित तथा संसारके सौख्य केवल दुःखदायी हैं, अतः शास्त्रमात्रमें अभिलाषी पुरूषके आयु, यश, और गुण लक्ष्मी साथ सत्फल देनेकेलिये ऐसे विकसित होते हैं जैसे वसन्तऋतुमें लता ॥ ६० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देववूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे दाम व्याल कटोपाख्याने सदाचारनिरूपणं नाम द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३३ ॥

इस ३३ के सर्गमें, शुभ उद्योग, सत्शास्त्र तथा साधुओंकी प्रभुता, अहंकारसे बन्ध और उसके त्यागसे मुक्ति इन विषयोंका विस्तारसे वर्णन कियागया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ सर्वातिशयसाफल्यात्सर्वसर्वत्रसर्वदा ॥ संभवत्येवतस्मात्त्वंशुभोद्योगंनसंत्यज ॥ १ ॥ मित्रस्वजनबंधूनांनंदिनानंददायिना ॥ सरसीशानमासाद्यमृत्युरप्युपनिर्जितः ॥ २ ॥ सर्वोत्कर्षेणसंपन्नादेवाअपिविमर्दिताः ॥ दानवैर्दानवार्थाढ्यैर्गजैःपद्माकराइव ॥ ३ ॥ मरुत्तनृपतेर्यज्ञे संवर्त्तेनमहर्षिणा ॥ ब्रह्मणेवापरःसर्गोभावितःससुरासुरः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–संपूर्ण उत्तम साधनोंकी अधिकताओंका नियमपूर्वक सफल होनेसे लौकिक कृषि सेवादि साधनोंमें शास्त्रीय मोक्षादिमें, और शुभ उद्योगादिमें सर्वत्र अपने अनुकूल फल अवश्य संभव है, इसलिये हे रामजी ! मोक्षफलके अर्थ तुमभी शुभ उद्योगको न त्यागो ॥ १ ॥ मित्र स्वजन, और बंधुओंको आनन्ददायी नन्दीने शुभ उद्योगसे तडागके तटपर श्रीमहादेवजीके चरणोंमें प्राप्त होके असाध्य मृत्युकोभी जीतलिया ॥ २ ॥ सम्पूर्ण ऐश्वर्योंसे संपन्नभी देवतालोग, सेना तथा ऐश्वर्योंसे पूर्ण बलि आदि दानव लोगोंसे ऐसे मर्दित कियेगये जैसे गजोंसे कमलोंकि खानि ॥ ३ ॥ मरुत्तराजाके यज्ञमें संवर्तनाम महर्षिने ब्रह्माके सदृश सुर तथा असुरोंकी दूसरी सृष्टि इसी शुभ उद्योगसे रची ॥ ४ ॥

महातिशययुक्तेनविश्वामित्रेणविप्रता ॥ भूयोभूयःप्रयुक्तेनदुष्प्रापातपसार्जिता ॥ ५ ॥ पिष्टसेकांबुदुग्धापर्रसायनवदश्नता ॥ दुर्भगेनेदृशेनाप्तःक्षीरोदउपमन्युना ॥ ६ ॥ त्रैलोक्यमल्लांस्तृणवदश्नन्विष्णुव्जजादिकान् ॥ भक्त्यातिशयदार्ढ्येनकालःश्वेतेनकालितः ॥ ७ ॥ प्रणयेनयमंजित्वाकृत्वावचनसंगमम् ॥ ॥ परलोकादुपानीतःसावित्र्यासत्यवान्पतिः ॥ ८ ॥

अर्थ—पुनः २ प्रेरित महा उद्योगसे युक्त विश्वामित्रजीने अपनी तपस्यासे दुष्प्रापभी ब्राह्मणता उपार्जन की ॥ ५ ॥ जो उपमन्यु पिशान मिलाहुआ सोभी अलभ्य जल अमृतके सदृश पान करता था उस ऐसे अभागेने

(१) शिलादनामा मुनि सर्वज्ञ पुत्रकी इच्छासे महादेवजीको प्रसन्न किया चिरकालकी तपस्यासे प्रसन्न शंकरजी बोले कि तुमसे भिन्न कोई सर्वज्ञ नहीं ॥

शुभ उद्योगसे क्षीर (दुग्ध) का समुद्र पाया ॥ ६ ॥ जो काल त्रैलोक्यके वीरोंको तथा ब्रह्मा विष्णु आदिको तृणके समान भक्षण करताहै उसीको भक्तिकी अति दृढतासे श्वेतनामा मुनिने जीतलिया ॥ ७ ॥ सावित्री नामिका राजकन्याने प्रणयसे यमराजको जीतकर और सौ (१००) पुत्र सत्यवान् मेरे पतिसे उत्पन्न हों यही वर मुझे चाहिये अन्य नहीं इस वचनकी प्रतिज्ञा कराकर परलोकसे अपने सत्यवान् पतिको लौटालिया ॥ ८ ॥

नसोस्त्यतिशयोलोकेयस्यास्तिनफलंस्फुटम् ॥ भवितव्यंविचार्यांतःसर्वातिशयशालिना ॥ ९ ॥ आत्मज्ञानंमशेषाणांसुखदुःखदशादृशाम् ॥ मूलकाषकरंतस्माद्राव्यंतत्रातिशायिना ॥१०॥ नाशायापद्दतार्थिन्यौदृष्टेरादृश्यादिदृष्टयः ॥ दुःखादृतेनिराबाधंसुखंकिंचिदवाप्यते ॥ ११ ॥ अशमःपरमंब्रह्मशमश्च परमंपदम् ॥ यद्यप्येवंतथाप्येनंप्रथमंविद्धिशंकरम् ॥ १२ ॥

अर्थ—शास्त्रीय शुभ उद्योगकी ऐसी कोई अधिकता नहीं है जिसका फल स्पष्ट न हो, इसलिये सबसे श्रेष्ठ मोक्षप्रायक उद्योगसहित तुमको होना चाहिये ॥ ९ ॥ जन्म मरण, सुख, तथा दुःख आदि संपूर्ण भ्रान्तिमय दृष्टियोंका आत्मज्ञानही मूलसे उच्छेद करनेवाला है, इसलिये उसी विषयका उद्योग करना उचितहै ॥ १० ॥ क्षुधा, तृष्णा तथा कामादि आपत्तियोंको ग्रहण करनेवाली दृष्टिके नाशकेलिये प्रथम उसकी विरोधिनी (विषयदोषदर्शिनी) दृष्टिका अन्वेषण करना चाहिये, क्योंकि वैराग्य अभ्यासादि दुःखके बिना निराबाध महान् सच्चिदानंद सुख क्या प्राप्त होसकता है अर्थात् कदापि नहीं प्राप्त होता ॥ ११ ॥ शमतासे पूर्ण चिदात्मा ब्रह्मही परब्रह्म है तथा शमभी करणसहित संसारके अनर्थकी निवृत्तिरूप परमपुरुषार्थ होताही है, यद्यपि ये दोनो सम प्राप्त हुये तथापि इस प्रथमको शंकर (ब्रह्मानंदजनक) तुम जानो ॥ १२ ॥

अभिमानंपरित्यज्यशममाश्रित्यशाश्वतम् ॥ विचार्यप्रज्ञयार्यत्वंकुर्यात्सज्जनसेवनम् ॥ १३ ॥ नतपांसि नतीर्थानिनशास्त्राणिजयंतिच ॥ संसारसागरोत्तारेसज्जनासेवनंविना ॥ १४ ॥ लोभमोहरुषांयस्यतनुतानुदिनंभवेत् ॥ यथाशास्त्रंविहरतिस्वस्वकर्मसुसज्जनः ॥ १५ ॥ अथात्मविद्वषांसंगात्तस्यसाधोः प्रवर्त्तते ॥ अत्यंताभावएवास्ययथादृश्यस्यदृश्यते ॥ १६ ॥

अर्थ—हे राम! अभिमानको त्यागकर और नित्य शमका अवलंबन करके, तथा अविचालित मोक्षके योग्य श्रेष्ठ जन्मादिता अपनी विचार करके सज्जनोंका सेवन करना चाहिये ॥ १३ ॥ संसाररूपी सागरके उतारनेमें न तप न तीर्थ और न शास्त्र सज्जनकी सेवाके सिवाय विजयी होसकते हैं ॥१४॥ जिसकी लोभ मोह और क्रोध इनकी सूक्ष्मता प्रतिदिन होती है और अपने २ कर्ममें शास्त्रके अनुकूल विहार करताहै वही सज्जनहै ॥१५॥ इसके अनन्तर सज्जनोंका सङ्ग करते २ आत्मवेत्ताओंके संगसे उस साधुको यह जो दृश्य देख पडताहै इसका अत्यंताभाव होजाताहै ॥१६

दृश्यात्यंताभावतस्तुपरमेवावशिष्यत ॥ अन्याभाववशादाशुजीवस्तत्रैवलीयते ॥ १७ ॥ नचोत्पन्नंन चैवासीद्दृश्यंनचभविष्यति ॥ वर्त्तमानेपिनैवास्तिपरमेवास्त्यवेधितम् ॥ १८ ॥ एवंयुक्तिसहस्रेणदर्शितंदृश्यतेपिच ॥ सर्वैरेवानुभूतंचदर्शयिष्यामिचाधुना ॥ १९ ॥ तथेदममलंशांतंत्रिजगत्संविदंबरम् ॥ इदंतत्त्वमतत्त्वादिकुतोत्रस्यात्कथंचवा ॥ २० ॥

अर्थ—और दृश्यके अत्यन्ताभावसे परमात्माका स्वभावही शेष रहजाताहै, अन्य पदार्थके अभावके कारण जीव शीघ्र उसीमें लीन होजाताहै ॥ १७ ॥ यथार्थमें यह दृश्य न उत्पन्न हुआ और न होगा, जो न हुआ न होगा वह वर्तमानमेंभी नहीं, इसलिये बिना किसी क्लेशके परब्रह्मही शेष रहजाताहै ॥ १८ ॥ यह उत्पत्यादिका अभाव, उत्पत्ति प्रकरणमें सहस्रों युक्तियोंसे दिखलाया और दिखलातेहैं, और जिस प्रकार सब विद्वानोंने अनुभव कियाहै उसी प्रकार यह त्रिलोक संबंधी संविदन्वर अब मैं दर्शाऊंगा ॥ १९ ॥ यह त्रिजगत् संविदन्वर (त्रिलोक संबंधी चिदाकाश) शांत, अमलतत्व अर्थात् परमार्थरूपही है, और अतत्व मायाजनित आकाशादि कहांसे और कैसे होसकताहै, सत्से वा असत् अथवा मायासे, इनमें आदि दो पक्ष अविकारी होनेसे युक्त नहीं, और मायासे उत्पत्ति माननेसे मिथ्यात्व होजायगा, इसलिये इसकी उत्पत्ति नहीं हुई ॥ २० ॥

चित्चमत्कुरुतेचारुचंचलाचंचलात्मनि ॥ यत्तथैवतदेवेदंजगदित्यवबुध्यते ॥ २१ ॥ त्रैलोक्यभूयोनुभवश्चिदादित्यांशुमंडलम् ॥ कोवास्वांशुमतोभेदोनिर्विकल्पःसकथ्यताम् ॥ २२ ॥ स्वाभावतोस्याश्चिद्दृष्टेर्येउन्मेषनिमेषणे ॥ जगद्रूपानुभूतेस्तावेतावत्तमयोदयौ ॥ २३ ॥ अहमर्थोऽपरिज्ञातःपरमार्थोरेमलम् ॥ परिज्ञातोहमर्थस्तुपरत्मामांबरंभवेत् ॥ २४ ॥

अर्थ—इसलिये कल्पित चंचलता विशिष्ट आत्मामें प्रतिबिंबित चित् चमत्कार करती है अर्थात् जगद्भावसे कल्पना करती है, जो वह चित् कल्पना करती है वही उसको जगद्भावसे अनुभव करती है ॥ २१ ॥ त्रैलोक्यमें जितना अधिक अनुभवहै वह सब चिद्रूपी सूर्यका किरणसमूहहै, किरण समूह और किरणवान्का क्या भेदहै? कुछ नहीं इसलिये विकल्पोंके मिथ्यात्व होनेसे त्रैलोक्यके अनुभवकोभी निर्विकल्पही कहो ॥ २२ ॥ इस सविकल्प चित्-वृत्तिके जो उन्मेष और निमेषहै वेही जगत्के अनुभवके उदय और अस्तमयहै ॥ २३ ॥ परमार्थ चिदाकाशमें अपरिज्ञात अहमर्थ, अर्थात् अज्ञात अहंकारमूल (अविद्या) है और परिज्ञात वही अहंकार चिदाकाशरूपही होजाताहै ॥ २४ ॥

अहंभावःपरिज्ञातोनाहंभावोभवत्यलम् ॥ एकतामंबुनेवांबुयातिचिन्नभसात्मना ॥२५॥ अहमादिजगद्दृश्यंकिलनास्त्येववस्तुतः ॥ अवश्यमेवतत्तस्माच्छिष्यतेहंविचारतः ॥ २६ ॥ बाध्यतेचामलधियामपि शाचेपिशाचधीः ॥ शिशूनांतावदाध्वांतःकरणानांविचारणा ॥ २७ ॥ चिज्ज्योत्स्नायावदेवांतरहंकार घनावृता ॥ विकासयतिनोतावत्परमार्थकुमुद्वतीम् ॥ २८ ॥

अर्थ—अपने स्वरूपसे परिज्ञात अहंकार किसी प्रकारसे नहीं रहसकता, ज्ञात होनेसे जैसे जलके साथ जल एक होजाताहै ऐसेही चिदाकाशके साथ उसकी एकता होजाती है ॥ २५ ॥ हे रामजी! अहंभावसे आदिलेके यथार्थमें यह सम्पूर्ण दृश्य कुछ नहीं है, इसलिये अहंकारके विचारसे अवश्य वही चिदाकाश शेष रहजाताहै ॥ २६ ॥ पिशाच न होनेपर पिशाचकी बुद्धि निर्मल ज्ञानियोंकी बाधित होती है, और किंचित् मार्गमें प्रवृत्त बालकोंके लिये पिशाच नहीं है ऐसा सैकडोंवार उपदेश देनेपरभी उनको संशय उत्पन्न होताहै न कि बाध ॥ २७ ॥ हे रामजी! जबतक प्रौढ़बुद्धियोंकीभी चित्चंद्रिका अहंकाररूपी मेघसे आच्छादितहै तबतक परमार्थरूप चंद्रिकाका प्रकाश नहीं होता २८

प्रमार्जितेहमित्यस्मिन्पदेस्वार्थेस्वयंविना ॥ नरकस्वर्गमोक्षादितृष्णायाःकल्पनैवका ॥ २९ ॥ हृदियावदहंभावोवारिदःप्रविजृंभते ॥ तावद्विकासमायातितृष्णाकुटजमंजरी ॥ ३० ॥ आक्रम्यचेतनांनित्यमहंकारांबुदेस्थिते ॥ जाड्यमेवस्थितिंयातिनप्रकाशःकदाचन ॥ ३१ ॥ असन्नयमहंकारःस्वयंमिथ्या प्रकल्पितः ॥ दुःखायैवनहर्षायबालसंभ्रमयक्षवत् ॥ ३२ ॥

अर्थ—इस स्वार्थपदमें अहंकारके निकलनेसे उस अहंकारके विना नरक स्वर्ग तथा मोक्षादिकी कल्पनाही क्या वस्तुहै ॥ २९ ॥ हृदयमें जबतक अहंकाररूपी मेघ दौड़ताहै तबतक तृष्णारूपी कुटजकी लता विकाशको प्राप्त होतीहै ॥ ३० ॥ चेतनाको आक्रमण करके अहंकाररूपी मेघके स्थिति रहनेपर जाड्य (अज्ञानान्धकार) ही स्थितिको प्राप्त होताहै न कि प्रकाश ॥ ३१ ॥ असत्भी यह अहंकार स्वयं मिथ्या दुःखके लिये न कि सुखके लिये ऐसे कल्पितहै जैसे बालकके भ्रमसे पिशाच ॥ ३२ ॥

मुधैवकल्पितोमोहमहंभावःप्रयच्छति ॥ अनंतसंसारकरंदामादिष्विवदुर्मतौ ॥ ३३ ॥ अयंसोहमितिस्फारान्मोहादन्यतरस्तमः ॥ अनर्थभूतंसंसारेनभूतंनभविष्यति ॥ ३४ ॥ यत्किंचिदिदमायातिसुखदुःखमलंभवे ॥ तदहंकारचक्रस्यप्रविकारोविजृंभते ॥ ३५ ॥ अहंकारांकुरःकृष्टोहृदयेनावरोपितः ॥ सहस्रशाखंदुश्छेदंतस्यसंसृतिनाशनम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—मिथ्याही कल्पित यह अहंभाव,अनंतसंसारके जनक भ्रमको ऐसे देताहै जैसे अभिमान दूषितांतःकरणमें रज्जुआदिमें सर्पआदिकी बुद्धि ॥ ३३ ॥ यह शरीर, वह इंद्रियादि मैंहुं इत्यादि महामोहोंसे अन्य अनर्थरूप संसारमें इसी कुछ हुआ और न होगा ॥ ३४ ॥ इस संसारमें जो कुछ सुख वा दुःख आके प्राप्त होताहै वह अहंकाररूपी चक्र-महामुख्य परिणाम विकसित होरहाहै ॥ ३५ ॥ जिस पुरुषने अहंकाररूप दुष्टवृक्षके अंकुरको परिष्कृत मनरूप हल-व्यापर कर फेक दियाहै उसके आत्मारूपी क्षेत्रमें संसारका नाशक ज्ञानरूपी सस्य सहस्र शाखारूपसे बढके फल देताहै

त्वजाभावोंकुरोजन्मवृक्षाणामक्षयात्मनाम् ॥ ममेदमितिविस्तीर्णास्तेषांशाखाःसहस्रशः ॥ ३७ ॥ करमम् ॥ विस्फोटाभांत्यर्थावासनादयः ॥ विचार्यचारुरववत्तरंगवरपंक्तिवत् ॥ ३८ ॥ अहंभावनयाभावर्जितः ॥ संसारचक्रवहनमात्मनःपरिरोधया ॥३९॥ अहंभावतमोयावज्जन्मारण्येविजृंभते ॥ ९ ॥ जोंवदेताविवल्गतिचिंतामत्ताःपिशाचिकाः ॥ ४० ॥

अर्थ—

की

(१) शिलादनोंअनुभव करनेवाली चित् सविकल्पाहै और ब्रह्म निर्विकल्पहै अतः चित्का भेद होगा सो विकल्प मिथ्या होने-इससे भिन्न कोई सर्वज्ञ नहीं।

अर्थ—हे रामजी ! अहंकाररूपी अंकुरसे जिन अक्षय वृक्षोंका जन्महै उन्हीकी मम (मेरा) इदम् (यह) इत्यादि विस्तीर्ण सहस्रशः शाखाहैं ॥ ३७ ॥ विचारणीय उत्तम स्फोटन शब्दयुक्त परिपक्क शाल्मली फलादिके तुल्य वा तरंगकी श्रेष्ठ पंक्तियोंके सदृश काकोंके किंचित् पतनसेभी विशीर्ण होनेवाले ये वासनादि पदार्थ हैं अर्थात् अति तुच्छहैं ॥ ३८ ॥ तुम आत्मस्वरूप यथार्थ अहंभावसे वर्जित हो, परन्तु आत्माको तिरोधान करनेवाली जो अहंभावनाहै उससे स्वयं संसारचक्रमें भ्रमण करते हुयेके समान भान होतेहो ॥ ३९ ॥ जन्मरूपी जंगलमें अहंकाररूपी अन्धकार जबतक विकसितहै तभीतक मत्त चिन्तारूप पिशाचिका गर्जती है ॥ ४० ॥

अहंकारपिशाचेनगृहीतोयोनराधमः ॥ नशास्त्राणिनमंत्राश्चतस्याभावस्यसिद्धये ॥ ४१ ॥ श्रीराम उवाच ॥ केनोपायेनभगवन्नहंकारोनवर्द्धते ॥ तत्त्वंकथयमेब्रह्मन्संसारभयशांतये ॥ ४२ ॥ श्रीवसिष्ठ उवाच ॥ चिन्मात्रदर्पणाकारेनिर्मलेस्वात्मनिस्थिते ॥ इतिभावानुसंधानादहंकारोनवर्द्धते ॥ ४३ ॥ मिथ्येयमिंद्रजालश्रीःकिंमेस्नेहविरागयोः ॥ इत्यंतरानुसंधानादहंकारोनजायते ॥ ४४ ॥

अर्थ—अहंकाररूपी पिशाचसे जो अधम प्राणी गृहीतहैं उसको अहंकाररूपी पिशाचकी निवृत्तिके लिये शास्त्र वा मंत्र कोई समर्थ नहीं हैं ॥ ४१ ॥ श्रीरामजी बोले—हे भगवन् ! किस उपायसे अहंकारकी वृद्धि नहीं होती; उसको संसारके भयकी शान्तिके लिये कहिये ॥ ४२ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! चिन्मात्र निर्मल दर्पणाकार अपने आत्माके स्थित होनेपर उसी शुद्ध चिन्मात्र आत्मस्वभावका सदा स्मरण करनेसे अहंकारकी वृद्धि नहीं होती ॥ ४३ ॥ यह दृश्यरूप इन्द्रजालकी श्री मिथ्याहै मुझे राग द्वेषसे क्या प्रयोजन ऐसा मनमें नित्य अनुसंधान करनेसे अहंकार नहीं बढताहै ॥ ४४ ॥

नाहमात्मनिनोयस्यदृश्यश्रियइतिस्वयम् ॥ शांतेनव्यवहारेणनाहंकारःप्रवर्द्धते ॥ ४५ ॥ अहंहिजगदित्यंतहेयादेयदृशोःक्षये ॥ समतायांप्रपन्नायांनाहंभावःप्रवर्द्धते ॥४६॥ अहंचिजगदित्यंतहेयादेयदृशोःक्षये ॥ समतायांप्रपन्नायांनाहंभावःप्रवर्द्धते ॥ ४७ ॥ श्रीरामउवाच ॥ किमाकृतिरहंकारःकथंसंत्यज्य तेप्रभो ॥ सशरीरोऽशरीरश्चत्यक्तेतस्मिंश्चकिंभवेत् ॥ ४८ ॥

अर्थ—जिस पुरुषके आत्मामें अहंकार नहीं है और दृश्यकी श्रीभी नहीं है, इसप्रकार शांत व्यवहारसे जो स्थितहै उसका अहंकार नहीं बढता ॥ ४५ ॥ मैं द्रष्टा, चिद्दर्शन, और जगत् दृश्य इस त्रिपुटीके प्रत्ययमें शत्रु भूतत्याज्य और मित्र भूतग्राह्य इन दृष्टियोंके नाश होनेपर और समताके प्रसन्न होनेपर अहंभाव नहीं बढता ॥४६॥ अहम् चित् और जगत् इन प्रतीतियोंमें अन्तःकरणसे हेय उपादेय दृष्टिके क्षय होनेपर अहंकार नहीं बढता ॥ ४७ ॥ श्रीरामजी बोले—हे भगवन् ! अहंकारका क्या आकारहै जाग्रत, स्वाप्निक, मनोरथिक, वा देह मात्रमें, अहंभाव रूप अहंकार, तथा देहसे भिन्न बुद्धि मात्र उपाधिके अहंकारका क्या स्वरूपहै और यह सब प्रकारका अहंकार कैसे त्यागा जाताहै ओर उसके त्यागनेसे क्या होताहै ॥ ४८ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ त्रिविधोराघवास्तीहत्वहंकारोजगत्त्रये ॥ द्वौश्रेष्ठावितरस्त्याज्यःशृणुत्वंकथयामिते ॥ ४९ ॥ अहंसर्वमिदंविश्वंपरमात्माहमच्युतः ॥ नान्यदस्तीतिपरमाविज्ञेयासाह्यहंकृतिः॥५०॥ मोक्षायैपानबंधायजीवन्मुक्तस्यविद्यते ॥ सर्वस्माद्व्यतिरिक्तोहंवालाग्रशतकल्पितः ॥ ५१ ॥ इतियासंविदेपासौद्वितीयाहंकृतिःशुभा ॥ मोक्षायैपानबंधायजीवन्मुक्तस्यविद्यते ॥ ५२ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! इस तीनों लोकमें तीन प्रकारका अंकारहै उनमेंसे दो श्रेष्ठहैं और तीसरा त्याज्यहै सुनो मैं तुमसे कहताहुं ॥ ४९ ॥ कार्यरूप यह संपूर्ण ब्रह्माण्ड तथा कारणरूप परमात्मा अच्युत मैंही हुं मुझसे अन्य जगत्में कुछ नहीं है यह जो अहंकृति है उसीको परमोत्तम जानना चाहिये ॥ ५० ॥ यह अहंकार मोक्षके लिये है न कि बंधके और जीवन्मुक्तको होताहै, और मैं सबसे पृथक् शतधा परिकल्पित जो बालका अग्रभागहै उससेभी सूक्ष्म, अर्थात् शोधनसे निरवयव अति सूक्ष्महुं ॥ ५१ ॥ यह जो संवितहै वह दूसरी शुभ अहंकृति है यहभी मोक्षके अर्थ है न कि बंधके लिये और जीवन्मुक्तको होती है ॥ ५२ ॥

अहंकाराभिधायासाकल्प्यतेनतुवास्तवी ॥ पाणिपादादिमात्रोयमहमित्येपनिश्चयः ॥ ५३ ॥ अहंकारस्तृतीयोसौलौकिकस्तुच्छएवसः ॥ वर्ज्यएवदुरात्मासौशत्रुरेवपरःस्मृतः ॥ ५४ ॥ अनेनाभिहतोजंतुर्न भूयःपरिरोहति ॥ रिपुणानेनबलिनाविविधाधिप्रदायिना ॥ ५५ ॥ कष्टीकृतमतिर्लोकःसंकटेष्वेवमज्जति ॥ अनयाइरहंकृत्यभावात्संसक्तयाचिरम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—और जो सप्तम भूमिकास्थहैं उनको जीवनके लिये पूर्वोक्त दोनों अहंकृतिभी कल्पना मात्रहै न कि वास्तवी, और हस्तपादादि मात्र देहमें जो अहंनिश्चयहै ॥ ५३ ॥ वह तृतीय लौकिक तुच्छ अहंकारहै, यह दुष्ट वर्जनीयहै क्योंकि यह परमशत्रु कहागयाहै ॥ ५४ ॥ इस अनेक आपत्तिदायक बलवान् शत्रुसे मारा हुआ प्राणी पुनः खडा नहीं होता ॥ ५५ ॥ स्वभावसेही अनादि कालसे संसक्त इस देहाहंभावरूप अहंकृतिसे दुर्वासना आदिमें प्रवृत्तिसे पीडित बुद्धि सदा अनेकप्रकारके संकटोंमेंही डूबताहै ॥ ५६ ॥

शिष्टाहंकारवाञ्जंतुर्भगवान्यातिमुक्तताम् ॥ लोकाहंकारवद्दोषवपुरस्मिन्निरूपणः ॥५७॥ नदेहोस्मीतिनिर्णीयवर्जनंमहतांमतम् ॥ प्रथमंद्वावहंकारावंगीकृत्यांत्यलौकिकौ ॥ ५८ ॥ प्रथमंद्वावहंकारावंगीकृत्यांत्यलौकिकौ ॥ तृतीयाहंकृतिस्त्याज्यालौकिकीदुःखदायिनी ॥ ५९ ॥ अनयादुरहंकृत्यादामव्यालकटाःकिल ॥ तांदशांसमनुप्राप्तायाकथास्वपिखेददा ॥ ६० ॥

अर्थ—शुद्ध पूर्वोक्त दो अहंकारसहित, और देहाहंभावरूप लौकिक अहंकारवाले दोषोंको छेदन करता हुआ, इस सर्वात्माहंभावरूप अहंकार लोक प्रसिद्ध देहाहंभावकोही कथन करता हुआभी वह भगवान् देहाहंकारसे मुक्तताको प्राप्त होताहै ॥ ५७ ॥ अन्तिम देहाहंकारके समान प्रथम दो अहंकारोंको दृढ करके, मैं देह नहीं हुं यह विचारसेभी निर्णय करके, उस अहंकारकोभी त्याग देना यह पूर्व महात्माओंकीभी संमति है ॥ ५८ ॥ और प्रथम दो अहंकारोंको लौकिक देहात्मभावके सदृश अंगीकार करके तृतीय देहाहंकृति जो अति दुःखदायिनी है उसे त्यागना चाहिये ॥ ५९ ॥ इस दुष्ट अहंकारसे दाम व्याल और कटकी जो दशा हुई है वह कहनेसेभी खेद होताहै ॥ ६० ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ तृतीयांलौकिकीमेतांत्यक्त्वाचित्तादहंकृतिम् ॥ किंभावःपुरुषोब्रह्मन्प्राप्नुयादात्मनोहितम् ॥ ६१ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एतातावत्परित्याज्यात्यक्त्वैतांदुःखदायिनीम् ॥ यथायथापुमांस्तिष्ठेत्परमेतितथातथा ॥ ६२ ॥ अहंकारदृशावेतेपूर्वोक्तेभावयन्यदि ॥ तिष्ठेदुपैतिपरमंतत्पदंपुरुषोनघ ॥६३॥ अथतेअपिसंत्यज्यसर्वाहंकृतिवर्जितः ॥ संतिष्ठेततथात्युच्चैःपदमेत्याधिरोहति ॥ ६४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—तृतीय लौकिक देहाहंकारको त्यागकर पुरुष किसप्रकार स्थित रहकर अपना हित प्राप्त करताहै ॥ ६१ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! इस दुःखदायिनी तृतीय अहंकृतिको त्यागकर जिस २ प्रकार अर्थात् सर्वाहंभाव शुद्धाहंभाव तथा गुरू शुश्रूषादिसे सप्तम भूमिकादि भेदोंमें जैसे २ स्थित रहनेको पुरूष समर्थ होताहै उसी २ प्रकारसे स्वरूप सुखकी अभिव्यक्तिकी अधिकताके लाभसे परब्रह्मको प्राप्त होताहै ॥ ६२ ॥ हे पाप रहित रामजी ! यदि पूर्वोक्त प्रथम दोनों अहंकारकी दृष्टिकी भावना करता हुआ पुरूष स्थित रहै तो वह उस परमपदको प्राप्त होताहै ॥ ६३ ॥ इसके पश्चात् उन दोनों शुभ अहंकारोंकोभी त्यागकर सब अहंकारोंसे रहित होकर स्थित रहै तो उस अति उच्च पदपर आरोहण करताहै ॥ ६४ ॥

सर्वदासर्वयत्नेनलौकिकीदुरहंकृतिः ॥ परमानंदबोधायवर्जनीयानयाधिया ॥ ६५ ॥ शरीरास्थामयापुण्यदुरहंकारवर्जनम् ॥ अत्यंतपरमंश्रेयएतदेवपरंपदम् ॥ ६६ ॥ भावादहंकृतिंत्यक्त्वास्थूलामेतांहिलौकिकीम् ॥ तिष्ठन्व्यवहरन्वापिननरःप्रपतत्यधः ॥ ६७ ॥ संशांताहंकृतेर्जंतोर्भोगारोगामहामते ॥ नस्वदंतेसुतृप्तस्ययथाप्रतिविषारसाः ॥ ६८ ॥

अर्थ—सर्वदा सर्वप्रकारसे देहा हंभावरूप जो दुष्ट अहंकृति है उसको इसी पूर्वोक्त बुद्धिसे परमानन्द परब्रह्मके बोधके लिये अवश्य वर्जित करना चाहिये ॥ ६५ ॥ शरीरमें स्थित रोग तथा पापरूप जो देहाहंभावरूप दुष्ट अहंकारहै उसका वर्जन अत्यन्त परमश्रेयहै और यही परमपदहै ॥ ६६ ॥ विचारद्वारा स्थूल इस लौकिक अहंकारको त्यागकर मनुष्य स्थित रहते वा व्यवहार करते हुयेभी अधोदेशमें नहीं पतित होता ॥ ६७ ॥ हे महामते ! जिस प्राणीका अहंकार शांत होगयाहै उस सर्वथा तृप्त पुरूषको रोगरूपी भोग ऐसे नहीं अच्छे लगते जैसे विष मिले हुये रस ॥ ६८ ॥

भोगेष्वस्वदमानेषुपुंसःश्रेयःपुरोगतम् ॥ क्षीणेंधकारेकिंनाममनसोन्यत्प्रवर्त्तते ॥ ६९ ॥ अहंकारानुसंधानवर्जनादेवराघव ॥ पौरुषेणप्रयत्नाच्चतीर्यतेभवसागरः ॥ ७० ॥ नाहंनतेनममकिंचिदपीतिमत्वासर्वंचमेसकलमप्यहमेवचेति ॥ लब्धास्पदंमनसिसंविदमेवमीद्यांनीत्वास्थितिंपरमुपैतिपदंमहात्मा ॥ ७१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे दामव्यालकटोपाख्यानेऽहंकारविचारोनाम त्रयस्त्रिंशःसर्गः ॥ ३३ ॥

अर्थ—जब पुरुषको भोगोंमें स्वाद नहीं लगता तब यही समझना कि मोक्षरूप कल्याणकी लक्ष्मी उसके आगे स्थितहै, क्योंकि मनका अंधकार अहंकारके क्षीण होनेपर पुनः अन्यप्रतिबंधक क्याहै ॥ ६९ ॥ हे राघव ! अहंकारके अनुसन्धानके बर्जनसे, धैर्य्य तथा शास्त्र श्रवणादि पुरुषार्थ द्वारा यह संसाररूपी समुद्र पार किया जाताहै ॥ ७० ॥ प्रथम सम्पूर्ण विश्व मैंही हुं और इससे सब कुछ मेराही है ऐसा मानकर, अनन्तर देहादिक में नहींहुं और देहोंके संबंधी धन पुत्रादिभी मेरे नहीं हैं ऐसा समझके सम्पूर्ण प्रतिबन्धकका नाश होनेसे मनकी स्थिरपूर्वक पूर्वोक्त शुद्ध आत्मसम्विद्को प्राप्त करके और क्रमसे सप्तमभूमिकामें स्थित होके स्वयं अपरिच्छिन्न महान् आत्मा होके यह प्राणी विदेह कैवल्यको प्राप्त होताहै ॥ ७१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे दामव्यालकटोपाख्यानेऽहंकार विचारोनाम त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥

भीम, भास तथा दृढ नाम दानवोंसे छेदन किये हुये देवोंसे प्रार्थना किये हुये विष्णुने शंबरासुरका हनन किया और वे भीमादि वासना मुक्त हुये यह विषय इस ३४ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अत्रतेशृणुवक्ष्यामिदामादिषुगतेष्वत ॥ यद्वृत्तंशंबरस्यैवनगरेनगसंनिभे ॥ १ ॥ तथागगनविभ्रष्टेसमस्तेध्वस्तसंस्थितौ ॥ विनष्टेशंबरानीकेशरदीवाब्दमंडले ॥ २ ॥ देवनिर्जितसैन्योसौनीत्वाकतिपयाःसमाः ॥ पुनर्देववधोद्युक्तश्चिंतयामासदानवः ॥ ३ ॥ दामादयस्तुरचितायेमयामाययासुराः ॥ मौर्ख्यात्तैर्भाविताद्युद्धेमिथ्यैवदुरहंकृतिः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–दामादिके नष्ट होनेपर शंबरासुरका संपत्तिमें मेरूके सदृश जो वृत्तान्त नगरमें हुआ वह पूर्वोक्त विषय मैं तुमसे कहुंगा सुनो ॥ १ ॥ उसप्रकार आकाशसे सब दैत्योंके गिरनेपर, और समस्त मर्यादाके नष्ट होनेपर, और शरद्ऋतुमें मेघ मंडलके समान शंबरासुरकी सेनाके नष्ट होनेपर ॥ २ ॥ जब देवताओंसे सब सेना जीत लीगई तब कुछ वर्षोंको बिताकर पुनः शंबरदानव देवताओंके बधका उपाय चिंतन किया ॥ ३ ॥ कि दामादि असुरोंको मायासे मैंने रचा परंतु उन लोगोंने अपनी मूर्खतासे युद्धमें मिथ्याही दुष्ट अहंकारकी कल्पना की॥४

इदानींसंसृजाम्यन्यान्दानवान्माययोदितान् ॥ तानप्यध्यात्मशास्त्रज्ञान्सविवेकान्करोम्यहम् ॥ ५ ॥ ततस्तत्त्वपरिज्ञानान्मिथ्याभावनयोज्झिताः ॥ नाहंकारंप्रयास्यंतिविजेष्यंतिचतान्सुरान् ॥ ६ ॥ इतिसंचिंत्यदैत्येंद्रस्तादृशान्दानवान्धिया ॥ माययोत्पादयामासबुद्बुदानीववारिधिः ॥ ७ ॥ सर्वज्ञावेद्यवेत्तारोवीतरागागतैनसः ॥ यथाप्राप्तैककर्त्तारोभावितात्मानउत्तमाः ॥ ८ ॥

अर्थ—सो अब पुनः मैं अन्य दानवोंको मायासे रचूं और उनको अध्यात्म शास्त्रोंके वेत्ता और विवेकीभी करूं ॥ ५ ॥ तब वे तत्वके ज्ञानसे, मिथ्या भावनासे रहित अहंकारको नहीं प्राप्त होंगे और देवताओंको जीत लेंगे ॥ ६ ॥ इतना विचार करके उस दैत्येंद्रने अपनी बुद्धिद्वारा मायासे दानवोंको ऐसे रचा जैसे समुद्र बुद्बुदोंको ॥ ७ ॥ वे दानव एक ब्रह्मके ज्ञानसे सर्वज्ञ, वेद्यके जाननेवाले, वीतराग, पापरहित, यथा प्राप्त वस्तुके कर्ता, शुद्ध बुद्धि, और उत्तम जनथे ॥ ८ ॥

भीमोभासोदृढइतिनामभिःपरिलांछिताः ॥ जगत्तृणमिवाशेषंपश्यंतःपावनाशयाः ॥ ९ ॥ तेदैत्याभुवनंप्राप्यच्छादयामासुरंबरम् ॥ गर्जंतोहेतितडितःप्रावृषीवपयोधराः ॥ १० ॥ अयुध्यंतसमंदेवैरपिवर्षगणान्बहून् ॥ विवेकवशतोजग्मुर्नाहंकारंकदाचन ॥ ११ ॥ तेषांयावद्भदेत्यंतर्ममेदमितिवासना ॥ तावत्कोयमहंचेतिविचाराद्यात्यसत्यताम् ॥ १२ ॥

अर्थ—और भीम, भास, तथा दृढ इत्यादि नामोंसे युक्त, पवित्र अन्तःकरण और संपूर्ण जगत्को तृणके समान देखतेथे, उन दैत्योंने भूमंडलमें प्राप्त होके ऐसे आकाशको घेरलिया जैसे वर्षाकालमें मेघ, और अस्त्रशस्त्रसे विद्युत्के समान गर्जना कर रहेथे ॥ ९ ॥ १० ॥ और देवताओंके साथ बहुत वर्षगणोंतक युद्ध किया और विवेकके बशसे अहंकारको नहीं प्राप्त हुये ॥ ११ ॥ उनके अन्तःकरणमें जबतक मम (मेरा) इदम् (यह) इत्यादि वासना उदय होती है तबतक यह संसार क्याहै, हम क्याहैं, इस विचारसे वह असत्यताको प्राप्त होजाताथी॥१२॥

असच्छरीरंविबुधाःकोसावहमितिस्थितिः ॥ विचारादित्थमेतेषांप्रोद्गुर्नभयादयः ॥ १३ ॥ असच्छरीरंनास्तीदंचिच्छुद्धैवात्मनिस्थिता ॥ अहंनामनचान्योस्तिनिश्चित्यैवासुरायमुः ॥ १४ ॥ ततस्तैर्निरहंकारैर्जरामरणनिर्भयैः ॥ प्राप्तार्थकारिभिर्धीरैर्वर्त्तमानानुसारिभिः ॥ १५ ॥ असक्तबुद्धिभिर्नित्यंहत्वान्यैरप्यहंत्वभिः ॥ वासनाजालनिर्मुक्तैःकृतकार्यैरकर्तृभिः ॥ १६ ॥

अर्थ—शरीर असत्‌है और देवतालोगभी असत्‌हैं, यह संसार क्याहै और हम क्याहैं ऐसी (मिथ्या) इसकी स्थितिहै ऐसे बिचारसे उनके हृदयमें भयआदि नहीं उत्पन्न हुये ॥ १३ ॥ शरीर असत् शुद्धचित् अपने आत्मामें स्थितहै न हम, और न अन्य कोई है ऐसा निश्चय करके वे असुर युद्ध करनेको गये ॥ १४ ॥ इसके अनन्तर अहंकारसे वर्जित, वृद्धाऽवस्था तथा मृत्युके भयसे शून्य, प्राप्त कार्योंके कर्ता, धीर, वर्तमानकालके अनुसारी ॥ १५ ॥ नित्य असक्तबुद्धि, और अन्य जनोंके मारनेसेभी अभिमानके अभावसे अहन्ता, वासनाजालसे विनिर्मुक्त, और कृतकार्य होनेपरभी अकर्ता थे ॥ १६ ॥

प्रभोःकार्यमिदंकार्यमितिसंगरतत्परैः ॥ वीतरागैर्गतद्वेषैःसर्वदासमदृष्टिभिः ॥ १७ ॥ सादैवीदानवैःसेनाभीमभासदृढादिभिः ॥ हताभुक्ताहताप्लुष्टास्वान्नश्रीरिवभोक्तृभिः ॥ १८ ॥ भीमभासदृढक्षुण्णाजातागीर्वाणवाहिनी ॥ परिद्रुद्राववेगेनगंगेवहिमवच्च्युता ॥ १९ ॥ सासुरानीकिनीदेवंक्षीरोदार्णवशायिनम् ॥ जगामशरणंशैलंवातार्त्तेवाब्दमालिका ॥ २० ॥

अर्थ—प्रभुका कार्य है इसलिये मर्यादा पालनकेवास्ते इसे करना चाहिये, इस हेतुसे संग्राममें तत्पर, वीतराग, द्वेषरहित और सर्वदा समदृष्टि भीम, भास और दृढादि दानवोंसे देवताओंकी सेना मारी गई, हरी गई, जलाई, और भोक्ताओंसे अपने अन्नके समान भोगीभी गई ॥ १७ ॥ १८ ॥ भीम भास, और दृढ़से मर्दित देवताओंकी सेना ऐसे वेगसे भगी जैसे हिमालयपर्वतसे गिरी हुई गंगाजी ॥ १९ ॥ वह देवताओंकी सेना क्षीरसागरशायी विष्णु भगवान्‌के शरणमें ऐसे गई जैसे वायुसे पीडित मेघमाला पर्वतके शरणमें ॥ २० ॥

हरिराश्वासयामासतांभीतांदेववाहिनीम् ॥ भुजंगाभिवृतामेकांरमणीमिवनायकः ॥ २१ ॥ अथक्षीरोदकुहरेतावत्सासुरवाहिनी ॥ उवासयावद्भगवांस्तन्निरासार्थमुद्ययौ ॥ २२ ॥ बभूवदारुणंयुद्धंशौरिशंबरयोस्ततः ॥ अकालइवकल्पांतेसमुड्डीनकुलाचलम् ॥ २३ ॥ शशामसमरेतस्मिन्दैत्यःसबलवाहनः ॥ नारायणहतोयातःशंबरोवैष्णवींपुरीम् ॥ २४ ॥

अर्थ—विष्णुभगवान् भयभीत उस देव सेनाको ऐसे धैर्य दिया जैसे व्यभिचारी पुरुषोंसे घेरी हुई अपनी प्रियाको उसका पति ॥ २१ ॥ इसके अनन्तर क्षीरसमुद्रके समीप श्वेतद्वीपमें देवताओंकी सेना उस कालतक निवास करती थी जबतक विष्णुभगवान् उसके बधके लिये नहीं गये ॥ २२ ॥ जैसे अकालप्रलयमें महेन्द्रादि कुलपर्वत उड़ें ऐसेही उसके पश्चात् विष्णु और शंबरासुरका युद्ध हुआ ॥ २३ ॥ सेना और बाहनके साथ वह दैत्य शांत होगया और नारायणसे हत वह दैत्य विष्णुपुरीको गया ॥ २४ ॥

भीमभासदृढास्तेतुतस्मिन्विषमसंगरे ॥ विष्णुनैवशमंनीताःपवनेनेवदीपिकाः ॥ २५ ॥ तेहिनिर्वासनाएवयदाशांतिमुपागताः ॥ नतदैषांगतिर्ज्ञातादीपानामिवशाम्यताम् ॥ २६ ॥ तस्माद्वासनयाबद्धंमुक्तंनिर्वासनंमनः ॥ रामनिर्वासनीभावमाहरस्वविवेकतः ॥ २७ ॥ सम्यगालोकनात्सत्याद्वासनाप्रविलीयते ॥ वासनाविलयेचेतःशममायातिदीपवत् ॥ २८ ॥

अर्थ—और उस विषम संग्राममें भीम, भास और दृढ़नाम दैत्योंको विष्णुभगवान्‌नें ऐसे विदेह कैवल्यको प्राप्त किया जैसे पवन दीपकको ॥ २५ ॥ वासना रहित जब वे दानव शांतिको प्राप्त हुये उससमय उनकी गति ऐसे नहीं मिली जैसे शांत होते हुये दीपकोंकी ॥ २६ ॥ इसलिये हे रामजी ! बासनायुक्त मन बद्धहै और बासनारहित मुक्तहै, इसलिये बासनाका अभाव अवश्य सम्पादन करो ॥ २७ ॥ सत्यका भलीभांति विचार करनेपर बासनाका लय होजाताहै और वासनाके लय होनेसे दीपके समान चित्त शांत होजाताहै ॥ २८ ॥

नसत्यंकिंचिदेवेहसद्भावोभावयत्यलम् ॥ नास्त्येवभावनातस्मादित्येतत्सम्यगीक्षणम् ॥ २९ ॥ त्वमेवेदंजगत्सर्वंकःकिंभावयतुकवा ॥ भावनानामनास्त्येवतदेतत्सम्यगीक्षणम् ॥ ३० ॥ वासनाचित्तनामानौशब्दावर्थसमन्वितौ ॥ सत्यावलोकनाद्यत्रविलीनौतत्परंपदम् ॥ ३१ ॥ वासनावलितंचित्तमेहिस्थीतमुपागतम् ॥ तदेवतद्विनिर्मुक्तंविमुक्तमितिकथ्यते ॥ ३२ ॥

अर्थ—पूर्ण चिदात्मा जो इस दृश्यकी कल्पना करताहै वह किंचित्‌भी सत्य नहीं है इसलिये दृश्याकार भा-

वना भावनाभी नहीं है किंतु चिन्मात्रपरिशेष परमात्माका दर्शनही सम्यक् दर्शन है ॥ २९ ॥ यह संपूर्ण जगत् आत्माही है तो कौन कहां किसकी भावना करे, पूर्वोक्त त्रिपुटी तथा उसकी भावना (संस्कार) यह सत्य नहीं है, यह सम्यक् दर्शन है ॥ ३० ॥ अर्थ सहित वासना और चित्त ये दोनों शब्द सत्यके विचारसे जहां लीन होजातेहैं वही परमपद है ॥ ३१ ॥ वासना ग्रस्त चित्त इस जगत्में स्थितिको प्राप्त हुआहै, और वासनारहित वह जीवन्मुक्त कहा जाताहै ॥ ३२ ॥

नानाघटपटाकारैश्चेतःस्थितिमुपागतम् ॥ तदेवाशुशमंनेयंमिथ्यायक्षइवोत्थितः ॥ ३३ ॥ दामव्यालकटाकारैश्चेतःपरिणतंयथा ॥ भीमभासदृढन्यायोराघवास्त्वचलस्तव ॥ ३४ ॥ दामव्यालकटन्यायो मातेभवतुराघव ॥ एतद्ब्रह्मपुराप्रोक्तंपित्राकमलजेनमे ॥३५॥ भवतेयन्मयाप्रोक्तंशिष्यायात्यन्तधीमते॥ दामव्यालकटन्यायस्तस्मान्मातेस्तुराघव ॥ भीमभासदृढन्यायोनित्यमस्तुतवानघ ॥ ३६ ॥ अविरलसुखदुःखसंकटेथंभवपदवीभवतापनोपयता॥व्यवहरणवतोविभूतियातोसततमसक्तयैवनश्यतीति३७॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे दामव्यालकटोपाख्यानसमाप्तिर्नामचतुस्त्रिंशःसर्गः ॥ ३४ ॥

अर्थ—नाना घटपटादि आकारोंसे चित्त जगत्में स्थितिको प्राप्त है, उसीको बालकके मिथ्या वेतालके समान शीघ्र शांत करना चाहिये ॥ ३३ ॥ हे रामजी ! दाम व्याल तथा कटके आकारके सदृश देहात्मभावमें परिणत जो चित्तहै वह तुमारा चित्त भीम भास तथा दृढके सदृश आत्माकारमें परिणत अचलहो ॥ ३४ ॥ हे रामजी ! मेरे पिता ब्रह्माजीने सर्व कालमें मुक्तकंठ होके कहाथा कि दाम व्याल कटकान्याय तुमको नहो ॥ ३५ ॥ जो बात कि अत्यंत बुद्धिमान् शिष्य तुमारे लिये मैंने कहाथा कि हे राघव ! दाम व्याल कटन्याय (देहात्मभाव) तुमको नहो और भीम भास दृढ न्याय तुमको नित्यहो ॥ ३६ ॥ हे रामजी ! इस उक्त भीम भास दृढन्यायसे व्यवहार करते हुये तथा सर्वत्र असक्त बुद्धिसे बोधकी परिपाकतारूप ऐश्वर्यकी तुमको प्राप्ति होनेपर अतिसुख दुःखसे पूर्ण और जन्मोंकी परंपरामें त्रिविध ताप तथा भोगके लिये प्राप्त यह संसारकी पदवी मूलसे उच्छिन्न होती है अन्यथा नहीं ॥ ३७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे दामव्यालकटोपाख्यान समाप्तिर्नाम चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥

पंचत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥

इस ३५ के सर्गमें शमताका उपाय, भोगकी इच्छाका त्याग और सत्समागमसे विवेक आत्मबोधकी दृढता और समाधिका योग वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ जयंतितेमहाशूराःसाधवोधैर्यनिर्जितम् ॥ अविद्यामेदुरोल्लासैःस्वमनोविषयोन्मुखम् ॥ १ ॥ संसारस्यास्यदुःखस्यसर्वोपद्रवदायिनः ॥ उपायएकएवास्तिमनसःस्वस्यनिग्रहः॥२॥ श्रूयतांज्ञानसर्वस्वंश्रुत्वाचैवावधार्यताम् ॥ भोगेच्छामात्रकोबंधस्तत्त्यागोमोक्षउच्यते ॥ ३ ॥ किमन्यैःशास्त्रसंदर्भैःक्रियतामिदमेवतु ॥ यद्यत्स्वादुहितत्सर्वंदृश्यतांविषवह्निवत् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! वे महाशूर साधुमहात्मा सबसे उत्तम हैं जिन्होंने अविद्याके कारण अति उत्साहसे विषयकी ओर झुके हुये मनको जीतलियाहै ॥ १ ॥ अतिदुःखसहित सम्पूर्ण उपद्रवदायक इस संसारके शान्तिके लिये अपने मनका निग्रह करनाही मुख्य उपायहै ॥ २ ॥ हे रामजी ! ज्ञानका सर्वस्व सुनो और सुनके उसे धारण करो कि भोगोंकी इच्छाही मात्र तो बंधहै और उसका त्यागही मोक्षहै ॥ ३ ॥ बहुत अन्यशास्त्रोंके विस्तारसे क्या प्रयोजन एक यहीबात करो कि जो२इससंसारमें स्वादयुक्त वस्तु प्रतीतहो उसको विष तथा अग्निके समान देखो४

विषमाविषयाभोगाःप्रविचार्यपुनःपुनः ॥ उपरिष्टात्परित्यज्यसेव्यमानाःसुखावहाः ॥ ५ ॥ दोषान्प्रसवतिस्फारान्वासनावलितामतिः ॥ कीर्णकंटकबीजाभूःकंटकप्रसरंयथा ॥ ६ ॥ अलग्नवासनाजालामतिः प्रसरवर्जिता ॥ अदृष्टरागद्वेषायाशममेतिशनैःपरम् ॥ ७ ॥ शुभाशुभानसद्ग्लानीन्प्रसूतेसुगुणान्सदा ॥ फलदानंकुरान्कालेश्रेष्ठबीजवतीवभूः ॥ ८ ॥

अर्थ—विषय भोगोंको पुनः २ भयंकर विचार करके उपरसे त्यागपूर्वक सेवित ये विषय सुखदायी होतेहैं ॥ ५ ॥ वासना ग्रस्त बुद्धि, रागादि बड़े २ दोषोंको ऐसे उत्पन्न करती है जैसे कंटकके बीजसे बोई हुई पृथिवी का-

टोंकी उत्पत्तिको ॥ ६ ॥ और जो बुद्धि वासनाजालमें ग्रस्त नहीं है वह धीरे २ परमशमताको प्राप्तहै ॥ ७ ॥ और शुभमति दुःखरहित शांति आदि शुभ गुणयुक्त ज्ञान समाधिरूप शुभ मोक्षदायक फलको ऐसे उत्पन्न करती है जैसे कालपाके शाली आदि श्रेष्ठ बीजवाली पृथिवी ॥ ८ ॥

शुभभावानुसंधानात्प्रसन्नेमनसिस्थिते ॥ शनैःशनैःप्रशांतेचमिथ्याज्ञानघनांबुदे ॥ ९ ॥ वृद्धिंयातेच सौजन्येयक्षेशुक्लइवोडुपे ॥ विवेकेप्रसृतेपुण्येनभसीवार्कतेजसि ॥ १० ॥ धृतावंतर्विवृद्धायांमुक्तायामि वकीचके ॥ स्थितावंतःकृतार्थायांमधाविवनिशाकरे ॥ ११ ॥ फलितेशीतलच्छायेसत्संगसफलद्रुमे ॥ स्रवत्यानंदसुरसेसमाधिसरलद्रुमे ॥ १२ ॥

अर्थ—शुभभावके अनुसन्धानसे, प्रसन्न मनके स्थित होनेपर, और धीरे २ मिथ्या अज्ञानरूपी सघन मेघके शांत होनेपर ॥ ९ ॥ हे रामजी ! जब शुक्लपक्षमें चन्द्रमाके समान सुजनता बढती है और आकाशमें सूर्यके तेजके सदृश विवेक फैलताहै ॥ १० ॥ बांसमें मोतीके सदृश हृदयमें आत्मलाभसे धैर्य बढताहै बसन्तऋतुमें चन्द्रमाके समान परमात्माके ज्ञानके लाभसे कृतार्थता स्थित होती है ॥ ११ ॥ गुरू आदि सज्जन संगरूपी शीतल छायायुक्त सफल वृक्ष फलित होताहै और समाधिरूपी सरल वृक्षमें सच्चिदानन्दरूपी उत्तम रस झरताहै ॥ १२ ॥

मनोभवतिनिर्द्वंद्वंनिष्कामंनिरुपद्रवम् ॥ प्रशांतचापलानर्थशोकमोहभयामयम् ॥ १३ ॥ क्षीणशास्त्रार्थ संदेहंविगताशेषकौतुकम् ॥ निरस्तकल्पनाजालंमोहमुक्तमलेपकम् ॥ १४ ॥ निरीहंनिरुपाक्रोशंनिरपे क्षंनिराधिकम् ॥ संशांतशोकनीहारमसक्तग्रंथिवर्जितम् ॥१५॥ संदेहोग्रसुतंसाग्रंसतृष्णादारपंजरम्॥ नाशयित्वास्वमात्मानंसाधयत्यर्थमैश्वरम् ॥ १६ ॥

अर्थ—तब यह मन निर्द्वन्द्व, निष्काम, निरूपद्रव, प्रशान्त, तथा चपलतारूप अनर्थ, शोक मोह भय और रोगरहित होजाताहै ॥ १३ ॥ और शास्त्रार्थके सन्देहसे शून्य, विषयकी विचित्रताके दर्शनकी इच्छासे बर्जित; कल्पना जाल तथा मोहसे मुक्त और निर्लिप्त ॥ १४ ॥ प्रवृत्तिरहित, निन्दासे पृथक्, प्रवृत्तिकी इच्छासेभी वर्जित मानसी चिंतासे शून्य, शोकरूपी नीहार (कुहिरा) से स्वच्छ, विषयमें सक्तता तथा आसंगरूप ग्रंथिसे वर्जित यह मन होजाताहै ॥ १५ ॥ और अनेक वादियोंसे कहे हुये नानामतके सन्देहरूपी दुष्ट पुत्रयुक्त शाखारूप नानामनोरथसहित, तथा तृष्णारूपी स्त्री और स्थूलशरीररूपी पंजरसहित अपने आत्मा मनस्वरूपको नाश करके यह मन निज ईश्वर प्रत्यग् आत्मा संबंधी जीवन्मुक्तिरूप अर्थको सिद्ध करताहै ॥ १६ ॥

आत्मपीवरताहेतून्विकल्पांश्चायसुज्झति ॥ संस्मृत्यप्रभुतामेषुजहातितृणवत्तनुम् ॥ १७ ॥ मनसो भ्युदयोनाशोमनोनाशोमहोदयः ॥ ज्ञमनोनाशमभ्येतिमनोऽज्ञस्यविवर्द्धते ॥ १८ ॥ मनोमात्रंजगच्चक्रं मनःपर्वतमंडलम् ॥ मनोव्योममनोदेवोमनोमित्रंमनोरिपुः ॥ १९ ॥ विकल्पकलुषायास्याच्चित्तत्त्व स्यात्मविस्मृतिः ॥ मनइत्युच्यतेसेयंवासनाभवभागिनी ॥ २० ॥

अर्थ—अपनी मनकी पुष्टताके हेतु शत्रु मित्र साधु तथा असाधु विकल्पोंको प्रथम इनकी उत्पत्तिके सदृश निग्रहमेंभी अपना सामर्थ्य देखके त्याग देताहै, और पश्चात् तृणके समान अपने रूपको त्याग देताहै ॥ १७ ॥ विषयादिमें मनका अभ्युदय है नाश है और मनका नाशही प्रत्यगात्मा लाभरूप महान् उदय है यदि कहो कि देहाहंभावकाही त्याग करना उचित है ब्रह्मज्ञानसे क्या प्रयोजन सो नहीं क्योंकि ब्रह्मज्ञानीका मन तो नाशको प्राप्त होता है और अज्ञानीका मन बढताहै ॥ १८ ॥ यह जगत्चक्र मनोमात्रही है, पर्वतसमूहभी मनही है, आकाश मनही है, देव मनही है, शत्रु और मित्रभी मनही है ॥ १९ ॥ विकल्पोंसे मलिन चित्तत्वकी विस्मृतिही मन है और संसारको प्राप्त करनेवाली इसको वासनाभी कहते हैं ॥ २० ॥

चेत्यानुपातकलितचिन्मात्रेतिष्ठताभिधम् ॥ मनाग्विकल्पकलुषंचित्तत्त्वंजीवउच्यते ॥ २१ ॥ चेत्यप्र मुत्तपतितंरूढसज्ञमज्ञत्वमागतम् ॥ तदेवाधिकनिःसारंकल्प्यतेंतर्मनस्तया ॥२२॥ नात्मासंसारिपुरुषोन ल्य हीरंनशोणितम् ॥ जडंसर्वंशरीरादिदेहीखवदलेपकः ॥ २३ ॥ शरीरेकणशःकृत्तेनास्त्यन्यद्रुधिरादि नसत्‌ ॥ निर्भिन्नेकदलीस्तंभेनास्त्यन्यत्पल्लवादृते ॥ २४ ॥

तमैवेदंज—मनमें विषयका जो बासनाद्वारा प्रवेश है उससे परिच्छिन्न चिन्मात्रमें स्थितिकी व्यवहारकी योग्य नामानोंशकल्पोंसे किंचित् मलिन चित्तत्व (ब्रह्म) हीको जीव कहतेहैं ॥ २१ ॥ विषयमें पतित और उसीमें हीस्थीतसुपापसे रूढ आत्मत्वके अभिमानसे स्वरूपकी विस्मरणरूप अज्ञता प्राप्त जीव सहस्रों विकल्पोंसे बार२

अर्थ—पूर्ण न आत्मसुखकी हानिसे अधिक निस्सार जब होताहै तब जीवका उपकरण मनरूपसे कल्पित ॥

होताहै ॥ २२ ॥ शुद्धआत्मा जीव स्वभाव नहीं है और न वह शरीर वा रुधिररूप है; क्योंकि सब शरीर आदि जड तथा परिछिन्नहैं और आत्मा आकाश सदृश निर्लिप्त है ॥ २३ ॥ जैसे केलाके छेदन करनेसे उसके त्वक् पल्लवकेसिवाय और कुछ नहीं है ऐसेही शरीरके कण २ काटनेपरभी रुधिर आदिसे पृथक् कुछ नहीं है ॥ २४ ॥

मनोजीवोनरंविद्धितदेवाकारमागतम् ॥ आत्मानात्मानमादत्तेस्वविकल्पात्मकल्पितम् ॥२५॥ स्वविकल्पात्त्ररस्तत्रप्रसार्यरचयत्यलम् ॥ जालमात्मनिबंधायकोशकारकृमिर्यथा ॥ २६ ॥ इमंदेहभ्रमंत्यक्त्वा देशकालांतरेपुनः ॥ शरीरत्वमथादत्तेपल्लवत्वमिवांकरः ॥ २७ ॥ यादृग्वासनमेतत्स्यान्मनस्तादृक्यते ॥ जातंस्वपितियाचित्तंतत्स्वप्नेनिशितिष्ठति ॥ २८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! तुम मनकोही जीव वा मनुष्य समझो वही आकारताको प्राप्त है, वही अपने विकल्पसे कल्पित अपने आत्माको आपही ग्रहण करताहै ॥ २५ ॥ इस जगत्में जीव अपने वासनाओंके विकल्पोंको विस्तृत करके अपने बंधकेलिये जालको ऐसे रचताहै जैसे कोशकार (मकरी) कृमि ॥ २६ ॥ इस भ्रममय शरीरको त्यागकर पुनः वही मन अन्य देशकालमें शरीरांतरको ऐसे धारण करताहै जैसे अंकुर पल्लवरूपताको ॥ २७ ॥ जिसप्रकार वासनामय यह मन रहताहै वैसाही यह शरीर उत्पन्न होताहै, जिसप्रकारका चित्त स्वप्नमें शयन करताहै वैसाही रात्रिमें स्वप्न देखताहै ॥ २८ ॥

अम्लंमधुररसासिक्तंमधुरंमधुरंजितम् ॥ बीजंप्रतिविपाकल्कसिक्तंचकटुजायते ॥ २९ ॥ शुभवासनयाचेतोमहत्याजायतेमहत् ॥ भवतींद्रमनोराज्यइंद्रतास्वप्नभाङ्नरः ॥ ३० ॥ क्षुद्रवासनयाचेतःक्षुद्रतामपिपेलवाम् ॥ पिशाचविभ्रमात्स्वप्नेपिशाचान्निशिपश्यति ॥ ३१ ॥ सरसिस्फारनैर्मल्येकालुष्यंयातिनस्थितिम् ॥ तथैवस्फारकालुष्येप्रसादोयातिनस्थितिम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—आम्लका बीज मधुररसमें सींचा हुआ और मधुर रससे रंजित फल कालमेंभी मधुरही होताहै, और बीजविपेली धतूर वा करंजकी लता रससे सींचा हुआ कटु होताहै ॥ २९ ॥ विशाल (महती) शुभ वासनासेयुक्त चित्तभी ऐसे महान् होजाताहै जैसे मनोराज्य वा स्वप्नमें मनुष्य इन्द्रताका भागी होताहै ॥ ३० ॥ क्षुद्र वासनायुक्त चित्त नीचताहीको ऐसे देखताहै, जैसे रात्रिमें पिशाचोंकी वासनायुक्त स्वप्नमें पिशाचोंको ॥ ३१ ॥ जैसे तडागमें अधिक निर्मलता होनेसे मालिनता नहीं स्थित रहसकती, ऐसेही अधिक मलिनतामें प्रसन्नता (स्वच्छता) भी स्थितिको नहीं प्राप्त होती ॥ ३२ ॥

मनसिस्फारकालुष्येतद्रूपंजायतेफलम् ॥ तथैवस्फारनैर्मल्येतद्रूपंजायतेफलम् ॥३३॥ त्यजत्युदारांनगतिंक्षीणोप्यानिशमुत्तमः ॥ उद्योगवानविरतंपूरणाशामिवोडुपः ॥३४॥ नेहबंधोनमोक्षोस्तिनाबंधोस्तिनबंधता ॥ मिथ्योत्थितैवमायेयमिंद्रजाललतायथा ॥ ३५ ॥ गंधर्वनगराकारामृगतृष्णाइवोत्थिता ॥ द्विचंद्रविभ्रमाभासाद्वैतैकत्वविवर्जिता ॥ ३६ ॥

अर्थ—जैसे मनके अति मलिन होनेपर उसके अनुरूप फलभी होताहै ऐसेही मनके अधिक निर्मल होनेपर फलभी वैसाही अति निर्मल होताहै ॥ ३३ ॥ निर्मल चित्तवाला पुरुष दरिद्रतादि दोषोंसे ग्रसित होनेपरभी शांति, समाधानादि चित्तकी प्रसन्नतारूप उदारगतिको ऐसे नहीं छोडता जैसे क्षीणभी उद्योगी चन्द्रमा निरंतर अपनी पूर्णताकी आशाको ॥ ३४ ॥ यथार्थमें यहां न तो वन्ध है न मोक्ष है, और न बन्धका तथा बन्धता अभाव है, किंतु इन्द्रजालकी लताके समान यह माया मिथ्या आविर्भूत है ॥ ३५ ॥ यह मायाभी गंधर्वनगराकार, मृगतृष्णाके समान, तथा दो चन्द्रके आभासके तुल्य आविर्भूत है, और द्वित्व तथा एकत्वसे वर्जित ॥ ३६ ॥

सर्वैवब्रह्मसत्तेयमित्येपापरमार्थता ॥ परिस्फुरतिनिःसारःसंसारोयमसन्मयः ॥ ३७ ॥ नानंतोहंवराकोहमितिदुर्निश्चयोदितः ॥ अनंतोस्मीश्वरोस्मीतिनिश्चयेनविलीयते ॥ ३८ ॥ सर्वगेस्वात्मनिस्वच्छे एषोहमितिभावना ॥ एतत्तद्बंधनंलोकेस्वविकल्पोपकल्पितम् ॥ ३९॥ बंधमोक्षदशाहीनाद्वित्वैकत्वविवर्जिता ॥ सर्वैवब्रह्मसत्तेयमित्येपापरमार्थता ॥ ४० ॥

अर्थ—यह सबकुछ ब्रह्मसत्ता हो परमार्थता है और यह असन्मय संसारसार रहित स्फुरित होरहाहै ॥ ३७ ॥ अनंत नहीं हुं किंतु क्षुद्र हुं यह दुष्ट निश्चयसे उत्पन्न विकल्प, मैं अनंत हुं ईश्वर हुं ऐसे निश्चयसे नष्ट होजाताहै ॥ ३८ ॥ सर्वव्यापी स्वच्छ अपने आत्मस्वरूपमें यह देहमात्र मैं हुं ऐसा जो निश्चय है वही अपने विकल्पसे कल्पित संसारमें बंधन है ॥ ३९ ॥ बंधमोक्षकी दशासेरहित, द्वित्व और एकत्वसे वर्जित यह सब ब्रह्मसत्ताही है यही परमार्थता है ॥ ४० ॥

नैर्मल्यप्राप्तमरणमसक्तंसर्वदृष्टिषु ॥ अमनस्त्वमिहापन्नंब्रह्मपश्यतिनान्यथा ॥ ४१ ॥ मनोनिर्मलतां यातंशुभसंतानवारिभिः ॥ ब्राह्मींदृष्टिमुपादत्तेरागंशुक्लपटोयथा ॥ ४२ ॥ सर्वमेवममात्मेतिसर्वभाव नयानघ ॥ हेयादेयबलेक्षीणेबंधमोक्षोविमुच्यताम् ॥ ४३ ॥ शुद्धस्यमनसःकायशास्त्रवैराग्यबुद्धिभिः॥ अभिजातोपलस्येवजगत्तस्येतिविद्युतिः ॥ ४४ ॥

अर्थ—निर्मलतासे विनाश प्राप्त और सर्व दृष्टियोंमें असक्त, जो अमनी भावको प्राप्त मन है वही इस अधिकारी शरीरमें ब्रह्मको देखताहै अन्यथा नहीं ॥ ४१ ॥ समाधिके अभ्याससे जनितधर्मकी वृद्धिरूप जलसे निर्मलताको प्राप्त जो मन है वह ब्रह्मसम्बन्धी दृष्टिको ऐसे ग्रहण कराताहै जैसे श्वेतवस्त्र रंजकद्रव्यके वर्णको ॥४२॥ हे पापरहित रामजी ! सब मेरा आत्माही है इस सर्वमयी भावनासे हेय और उपादेयके प्रवाहके क्षीण होनेपर बंध और मोक्षकोभी त्यागदो ॥ ४३ ॥ अनाधिकारी और अधिकारी शरीरके अभिमानसे शरीरद्वारा शास्त्र श्रवणके अभिमानसे शास्त्रद्वारा और वैराग्य तथा आत्मबोधकेद्वारा स्फटिकमणिके सदृश शुद्ध मनका जो विविधप्रकारका प्रतिभास है वही संसार है ॥ ४४ ॥

पदार्थैनैकतामेत्यमनसोनैकतानता ॥ असत्यज्ञानदृष्टिंतांविद्धिक्षणविनाशिनीम् ॥ ४५ ॥ सबाह्याभ्यंतरंत्यक्त्वासर्वांदृश्यदृशंयदा ॥ मनस्तिष्ठतितल्लीनंसंप्राप्तंतत्पदंतदा ॥ ४६ ॥ दृश्यदृष्टिःस्फुटायेयंसा ह्यवश्यमसन्मयी ॥ तन्मयत्वंचमनसःस्वरूपंविद्धिनेतरत् ॥ ४७ ॥ आद्यंतयोर्विनाशित्वान्मध्येपित दसन्मयम् ॥ अज्ञातमनसस्तेनदुःखिताहस्तसंस्थिता ॥ ४८ ॥

अर्थ—जब पदार्थोंकेसाथ मन एकरूपताको प्राप्त होताहै तो आत्माकेसाथ एकरूप नहीं हो सकता, और असत्य ज्ञानमयी दृष्टिको क्षणमेंही विनाशिनी समझो ॥ ४५ ॥ जिस समय संपूर्ण बाह्य और आभ्यंतर दृश्य दृष्टियोंको त्यागकर मन लीनदशामें स्थित रहताहै उस समय वह परमपदको मानो प्राप्तहो चुका ॥ ४६ ॥ यह जो प्रत्यक्ष दृश्य दृष्टिहै वह असन्मयी और मनका दृश्यमय होनाही मनकारूप तुम जानो और अन्यनहीं॥४७॥जो आदि और अन्तमें असत्है वह मध्यमेंभी असत्है इसलिये असत्रूपसे जिनसे मनको न जाना मानो दुःख रूपता उसके हस्तमें स्थितहै४८

आत्मैवेदंजगदितिविनाभावेनदुःखदा ॥ दृश्यश्रीरन्यथात्वेषाभोगमोक्षप्रदायिनी ॥४९॥ जलमन्यत्तरंगोन्यइतिनानातयाऽज्ञता ॥ जलमेवतरंगोयमित्येकत्वात्किलज्ञता ॥ ५० ॥ दुःखमायात्यसदितिहेयोपादेयरूपियत ॥ तदभावेनतुज्ञानादानंत्यमवशिष्यते ॥ ५१ ॥ संकल्पकल्पितत्वाच्चमनोरूपमसन्मयम् ॥ असन्मयविनाशेतुकःशोकोवदराघव ॥ ५२ ॥

अर्थ—यह संपूर्ण जगत् आत्मरूपही है इस विचारके बिना यह दृश्यकी शोभा दुःखदायिनी है और सब आत्मरूपही है इस ज्ञानसे भोग मोक्षकी देनेहारीहै॥४९॥जल अन्यहै और तरंग अन्यहै यह नानाता जो है वही अज्ञता और जलतरंग एकहैं यह बोधज्ञानिताहै ॥ ५० ॥ हेय और उपादेयरूपी जो अविद्यमानरूपहै इसी हेतुसे जन्म मरणादिरूप दुःख प्राप्त होताहै और उसके अभावमें तो आत्मरूपकी अनन्तताही शेष रहजाती है ॥५१ ॥ हे रामजी ! संकल्पसे कल्पित होनेसे मनकारूप असत्है और असत्के नाशसे कहो क्या शोकहै ? ॥ ५२ ॥

अवत्सलोयथाबंधुररागद्वेषयाधिया ॥ दृश्यतेपश्यतद्वत्त्वंतत्त्वंपंजरमात्मनः ॥ ५३ ॥ अवत्सलाद्यथा बंधोःसुखदुःखैर्नलिप्यते ॥ तत्त्वेनसंपरिज्ञानात्तथातत्त्वचयात्मनः ॥ ५४ ॥ तदनादिशिवंज्ञानंयन्मध्यं द्रष्टृदृश्ययोः ॥ तस्मिन्सत्येमनःशांतंपांसुर्वायुक्षयेयथा ॥ ५५ ॥ उपशांतेमनोवायौदेहपांसुःप्रशाम्यति ॥ पुनःसंसारनगरेननीहारःप्रवर्त्तते ॥ ५६ ॥

अर्थ—जैसे स्नेह रहित बंधु राग द्वेषरहित दृष्टिसे देखा जाताहै ऐसेही तुम अपने स्थूलादि देहको पंचभूतरूप मानो ॥ ५३ ॥ स्नेह रहित (उदासीन) बंधुसे जैसे सुखदुःखका संबंध नहीं रहता ऐसेही यथार्थ रूपसे ज्ञात पंचभूत राशिमात्र इस देहपंजरसेभी नहीं होता ॥ ५४ ॥ जो द्रष्टा और दृश्यका मध्यदृक् रूपहै वही अनादि अनन्त शिवरूप निरतिशय आनंद आत्मज्ञानका स्वरूपहै, और उसी सत्य अधिष्ठानमें मन ऐसे शान्त होताहै जैसे वायुकी शांतिमें धूलि ॥ ५५ ॥ मनरूपी वायुके शांत होनेपर शरीररूप धूली शांत होजाताहै और पुनः नगरके सदृश संसारनामाने अविद्याके तुल्य आवरणशील नीहार (तुषार) नहीं प्रवृत्त होता ॥ ५६ ॥

हीस्थीतसुप्तिक्षीणेसंस्थितौराममागते ॥ जाड्येजनितहृत्कंपेपंकेशोषमुपागते ॥ ५७ ॥ शुष्केतृष्णाव अर्थ—टृकानने ॥ क्षीणेष्वक्षकदंबेषुमिथ्याज्ञानघनेक्षते ॥ ५८ ॥ क्षीयतेमोहमिहिकाप्रभातइव

शर्वरी ॥ कापिगच्छतितजाड्यंविपंमंत्रहतंयथा ॥ ५९ ॥ देहाद्रौनभयक्षुद्राःसरितःप्रसरंत्यलम् ॥ नोल्ल संतिलसत्पक्षाःसंकल्पोग्रकलापिनः ॥ ६० ॥

अर्थ—वासनारूपी वर्षाके नाश होनेपर, स्वरूप स्थितिमें मनके विहार प्राप्त होनेपर, उत्पन्न है हृदयमें भय जिससे होताहै ऐसी मूढ़तारूपी पंकके सर्वथा सूख जानेपर ॥ ५७ ॥ तृष्णारूपी वटके शांत होनेपर हृदयरूपी बनमें रागादिरूपी लताओंके विरल होनेपर इन्द्रियरूपी कदंबके वृक्षोंके क्षीण फल होनेपर और मिथ्या अज्ञानरूपी मेघके नष्ट होनेपर ॥ ५९ ॥ मोहरूपी कुहरा ऐसे नष्ट होजाताहै जैसे प्रातःकाल होनेपर रात्रि, और वह जड़ता न जाने कहां इस प्रकार चली जाती है जैसे मंत्रसे मारा हुआ विप ॥ ५८ ॥ देहरूपी पर्वतपर क्षुद्र नदियां नहीं वहतीं और शोभायमान पक्षधारी संकल्परूपी उग्र मयूर (मोर) किंचित् भी शोभित नहीं होते ॥ ६० ॥

परांनिर्मलतामेतिसंविदाकाशगोचरः ॥ राजतेतितरामच्छोजीवादित्योमहोदयः ॥ ६१ ॥ घनमोहभरोन्मुक्ताविविक्तत्वंपरंगताः ॥ समयेह्यतिशोभंतेधौताआशामहादिशः ॥ ६२ ॥ भृशंमाभातिविमलामुदिताकाशमंजरी ॥ शीतलीकृतदिक्चक्राशरद्व्योम्नीवचंद्रिका ॥ ६३ ॥ सर्वसंपत्प्रकाशेनपरमानंददायिना ॥ भृशंसफलतामेतिसुविविक्ताविवेकभूः ॥ ६४ ॥

अर्थ—तथा आत्मस्वरूपरूपी आकाशमें प्रत्यक्ष स्फुरता हुआ जीवरूपी महान् उदयवाला सूर्य अति निर्मलताको प्राप्त होकर स्वच्छ स्वरूपसे प्रकाशित होताहै ॥ ६१ ॥ अति मोहके समूहसे मुक्त और विवेक दशाको प्राप्त तथा तमोगुण रजोगुणके दोषसे रहित आकाशरूपी महा दिशा समाधि आदि कालमें तथा सूर्य चंद्रोदय कालमें सर्वथा शोभित होती हैं ॥ ६२ ॥ और चित्तरूपी आकाशकी लता सर्वथा ऐसे विमलताको प्राप्त होती है जैसे शरद् ऋतुमें संपूर्ण दिग्मण्डलोंकी शीतल करनेवाली चंद्र चंद्रिका ॥ ६३ ॥ संपूर्ण विषयानंद लेशरूपी संपत्तिको प्रकाश करनेवाला तथा परमानंद दायक आत्मज्ञानरूपी फलसे अत्यंत पवित्र विवेकरूपी पृथ्वी अति सफलताको प्राप्त होती है ॥ ६४ ॥

सपर्वतवनाभोगंपरमालोकसुंदरम् ॥ अच्छाच्छंशीतलच्छायंजायतेभुवनांतरम् ॥ ६५ ॥ विस्तारितंकुसुमतांस्फारितंस्फटिकाकृतिम् ॥ उपैतिहृत्सरःस्वच्छंनीरजोंबुजकोशकम् ॥ ६६ ॥ हृत्पद्मकोशान्मलिनःस्वाहंकारमधुव्रतः ॥ अपुनर्दर्शनायैवचंचलःकापिगच्छति ॥ ६७ ॥ भवत्यपगताक्षेपःसर्वगःसर्वनायकः ॥ निर्वासनःशांतमनाःस्वदेहनगरेश्वरः ॥ ६८ ॥ विचारणासमधिगतात्मदीपकोमनस्यलेपरिगलितेयधीरधीः ॥ विलोकयन्क्षयभयनीरसागतीर्गतज्वरोविलसतिदेहपत्तने ॥ ६९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे उपशमवर्णनंनामपंचत्रिंशःसर्गः ॥ ३५ ॥

अर्थ—पर्वत वनके विस्तारसहित, आत्मप्रकाशयुक्त, सूर्यचंद्रके प्रकाशसे अति रमणीय सर्वथा स्वच्छ और शीतल छाया करके युक्त, संपूर्ण ब्रह्मांडका अंतराल होजाताहै ॥६५॥ उत्तम बुद्धिता रूप अनेक प्रकारके पुष्पोंको विस्तार करनेवाला और विशाल स्फटिक मणिके सदृश आकारवान् हृदयरूपी सरोवर स्वच्छ और रजोगुणरूपी रजसे रहित दशाको प्राप्त होताहै ॥ ६६ ॥ हृदयरूपी कमलके कोशसे मलिन और चंचल अपना अहंकाररूपी भ्रमर पुनः दर्शन देनेके लिये न जाने कहां चला जाताहै ॥ ६७ ॥ इस दशामें संकोच रहित सर्वव्यापी सबका नायक वासना शून्य शांतचित्त आत्मा अपने देहरूपी नगरका स्वामी होकर शोभित होताहै ॥ ६८ ॥ विचारसे आत्मरूपी प्रदीप जिसको प्राप्त हुआहै ऐसा शरीरका स्वामी आत्मा अपने संपूर्ण दोषोंको मर्दन करके धीरता युक्त संसारमें जन्म और मरण कालोंमें ऐहिक तथा पारलौकिक नीरस दशाओंको देखता हुआ अपने देहरूपी नगरमें त्रिविध संतापोंसे रहित होके विलास करताहै ॥ ६९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे उपशमवर्णनंनाम पंचत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥

इस ३६ के सर्गमें स्वयं स्थित और सबसे पृथक् चित्की सत्ता कही गई है, तथा चेतनकीही स्थितिसे सब पदार्थोंकीभी स्थितिहै न कि पृथक् यहभी कहा गयाहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ यथेदृशंस्थितंविश्वंविश्वातीतेचिदात्मनि ॥ तन्मेकथयहेब्रह्मन्पुनर्बोधविवृद्धये ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यथोर्मयोऽनभिव्यक्ताभाविनःपयसिस्थिताः ॥ नस्थिताश्चात्मनोन्यत्वाच्चितत्वेसृष्टयस्तथा ॥ २ ॥ यथासर्वगतःसौक्ष्म्यादाकाशोनोपलक्ष्यते ॥ तथानिरंशश्चिद्भावःसर्वगोपिनलक्ष्यते॥३॥स्थितेवास्थितेवांतःप्रतिभास्तिमणौयथा ॥ नसत्यभूतानासत्यातथेयंसृष्टिरात्मनि ॥४॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! जिसप्रकार पूर्वकथित रीतिसे यह संसार विश्वातीत चिदात्मामें स्थित रहताहै वह ज्ञानकी वृद्धिके लिये मुझे पुनः कहिये ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–जिसप्रकार होनेवाली तरंगें अभिन्नरूपसे समुद्रमें स्थितहैं और उससे भिन्नरूपसे कुछभी नहीं है, इसी प्रकार चिवतत्वमें यह सब सृष्टिहै ॥ २ ॥ जैसे आकाश सर्वव्यापी होनेपरभी सूक्ष्मताके कारण प्रतीत नहीं होता ऐसेही अतिसूक्ष्म आत्मा सर्वव्यापी होनेपरभी लक्षित नहीं होता ॥ ३ ॥ जैसे निरावरण देशमें वा आवरणरहित देशमें स्थित स्फटिकादि मणिमें सदसत्वसे अनिर्वचनीय बिंब पडताहै, ऐसेही आत्मामें यह सृष्टिहै ॥ ४ ॥

स्वाधारैरंबुदैःस्वस्थैर्नस्पृष्टंगगनंयथा ॥ चित्स्थैःसर्गैश्चिदाधारैर्नस्पृष्टाचित्परातथा ॥ ५ ॥ जलाधिष्ठिततत्तेजोयथांगप्रतिबिंबति ॥ तथापुर्यष्टकेष्वेवचिद्विदेहेषुलक्ष्यते ॥ ६ ॥ सर्वसंकल्परहितासर्वसंज्ञाविवर्जिता ॥ सैषाचिदविनाशात्मातच्चेत्यादिकृताभिधा ॥ ७ ॥ आकाशशतभागाच्छाज्ञेषुनिष्कलरूपिणी ॥ सकलाकलसंसारस्वरूपैकात्म्यदर्शिनी ॥ ८ ॥

अर्थ—जैसे अपने आधारभूत और अपनेमें स्थित मेघोंसे आकाश स्पृष्ट नहीं होता ऐसेही चेतनके आधार और चेतनमें स्थित सृष्टियोंसे पराचित् स्पृष्ट नहीं होती ॥ ५ ॥ जैसे जलमें संयुक्त सूर्यकी किरण प्रत्यक्षरूपसे नहीं भान होती किंतु प्रतिबिंबरूपसे ऐसेही शरीरोंमें आत्माभी प्रतिबिंबरूपसे भान होताहै ॥ ६ ॥ यह चिदात्मा संपूर्ण संकल्प तथा संज्ञाओंसे वर्जित और विनाशरहित है और जीव तथा विषयादिक संज्ञा इसीसे रचित हैं ॥ ७ ॥ और आकाशसेभी शतगुण स्वच्छ और निष्कलरूप तथा कलासहित होनेपरभी कलारहित, संसारमें अभिन्नरूपसे इस आत्माको विद्वान्जन देखतेहैं ॥ ८ ॥

तरंगादिमयीस्फारानानातासलिलार्णवे ॥ तस्मान्नव्यतिरेकेणयथाभावविकारिणी ॥ ९ ॥ त्वत्तामत्तामयीस्फारानानातेयंचिदर्णवे ॥ चिन्मात्रव्यतिरेकेणतथानैवप्रकाशते ॥ १० ॥ चिच्चिनोतिचितंचेत्यंतेनेदंस्थितमात्मनि ॥ अज्ञेज्ञेत्वन्यदायातमन्यदस्तीतिकल्पना ॥११॥ अज्ञेष्वसत्स्वभावोग्रसंसारगणगर्भिणी ॥ ज्ञेषुप्रकाशरूपैवसकलैकात्मिकासती ॥ १२ ॥

अर्थ—जैसे समुद्रमें तरंगादिरूपकी बडी विशाल अनेकताहै और उस जलसे पृथक् कोईभी भावविकार उसमें नहीं स्थितहैं ॥ ९ ॥ इसीप्रकार चेतनरूपी समुद्रमें त्वत्ता और मत्तारूपी बडी विशाल अनेकताहै और चेतनसे भिन्न इस संसारमें कुछभी नहीं प्रकाशता ॥ १० ॥ और चेतन यदि किसी विषयको अनुभव करताहै तो वह अपनेही स्वरूपका अनुभव करताहै इसलिये चेतन अपने आत्मस्वरूपहीमें स्थितहै ऐसा विद्वानोंका अनुभवहै और अज्ञानियोंकी ऐसी कल्पनाहै कि आत्मासे पृथक् यह सब जगत् प्राप्तहै ॥ ११ ॥ अज्ञानियोंके विचारमें यह चित् असत् स्वभाववाले संसार करके सहित है और ज्ञानियोंके विचारमें यह केवल सर्वथा प्रकाशरूपहै ॥ १२ ॥

अनुभूतिवशान्नित्यमर्कादीनांप्रकाशिनी ॥ स्वादिनीसर्वभूतानांभाविनीभवभोगिनाम् ॥ १३ ॥ नास्तमेतिनचोदेतिनोत्तिष्ठतिनतिष्ठति ॥ नचायातिनवायातिनचेहनचनेहचित् ॥ १४ ॥ सैषाचिदमलाकारास्वयमात्मनिसंस्थिता ॥ राघवेत्थंप्रपंचेनजगन्नाम्नाविजृंभते ॥ १५ ॥ तेजःपुंजैर्यथातेजःपयःपूरैर्यथापयः ॥ परिस्फुरतिसंस्पंदैस्तथाचित्सर्गविभ्रमैः ॥ १६ ॥

अर्थ—यह चित् अपने अनुभवहीसे सूर्यचंद्रादिककी प्रकाशिकाहै और सब भूतोंके संहार तथा जीवोंके जन्मादिके निमित्तभी है॥१३॥यह चिद् न कभी अस्त होती है, न उदय होती है, न उठती है, न बैठती है,न आतीहै, न जाती है, और न इस स्थानमें न उस स्थानमेंहै, किंतु सर्वत्र एकरूपसे स्थितहै ॥ १४ ॥ हे रामचंद्रजी ! यह विमल आकार चित् अपनेही स्वरूपमें आपस्थितहै और रज्जुमें सर्पके समान जगत् नाम प्रपंच रूपसे विवर्त भावको प्राप्त होती है ॥ १५ ॥ जैसे तेजके समूहोंके तेज और जलके प्रवाहोंसे जल स्फुरित होताहै ऐसेही सृष्टियोंके विलासोंसे यह चित्भी स्फुरित होरही है ॥ १६ ॥

तत्स्वभावेनचिन्नाम्नासर्वगेनोदितात्मना ॥ प्रकाशेनाप्रकाशेननिरंशेनांशधारिणा ॥ १७ ॥ स्वयंस्वकलनाभोगादनंतंपदमुज्झता ॥ अहमस्मीतिभावेनगच्छताज्ञपदंशनैः ॥ १८ ॥ नानातायांप्ररूढायाम

स्यांसंस्तुतिपूर्वकम् ॥ भावाभावग्रहोत्सर्गपदेस्थितिमुपागते ॥ १९ ॥ पुर्यष्टकस्पंदशतैःकरोतिनकरोतिच ॥ उत्सेधमेतिभूकोशकोटरस्थोंकुरोत्करः ॥ २० ॥

अर्थ—अविद्याके कारण, सृष्टि रचनेके स्वभाव सहित, सर्वव्यापी, उदय स्वरूप, यथार्थमें प्रकाशमय और व्यवहार दृष्टिसे अप्रकाशमय, यथार्थमें अंशरहित और व्यवहार दृष्टिसे अंशसहित ॥ १७ ॥ स्वयं अविद्यामें प्रतिबिंबित कृत्रिम वेषसे अनंतपदको त्यागतेहुये यह चिदात्मा अहमस्मि (मैंहूं) इस भावसे धीरे २ जीवताको प्राप्त होताहै ॥१८॥ और इस जीव तथा पदार्थोंकी अनेकता दृढ होनेपर संसारकी कल्पना पूर्वक यहहै, यह नहीं है इसप्रकार इष्ट और अनिष्टके ग्रहण और त्यागके स्थानरूप देहात्मभावके प्राप्त होनेपर शरीरकी विहित और निषिद्ध सैकडों चेष्टाओंके द्वारा जगत्को यही चिदात्मा अपना भोग्य बनाताहै और यथार्थमें नहींभी बनाताहै और पृथ्वीरूपी कोशके कोटरमें स्थित होकर यह जगत्के अंकुर रूपसे उन्नतिको प्राप्त होताहै ॥ १९ ॥ २० ॥

व्योमसौषिर्यमादत्तेसर्वमूर्त्यविरोधियत् ॥ स्पंदैकधर्मवान्वातोरसरूपतयाजलम् ॥ २१ ॥ दृढोर्वीपकटंतेजःस्थितिमंतिजगंतिच ॥ प्रतिबंधाभ्यनुज्ञासुकालःकलनयास्थितः ॥ २२ ॥ पुष्पेषुगंधतांयातिशनैःसंचितकेसरम् ॥ मृत्कोटररसोल्लासःस्थाणुतामेतिभूतले ॥ २३ ॥ मूलस्थाःफलमायांतिपेलवारसलेशकाः ॥ सन्निवेशंव्रजंत्येतारेखाःपल्लवपालिषु ॥ २४ ॥

अर्थ—यही चिद् संपूर्ण मूर्त द्रव्योंका अविरोधी आकाशरूपको ग्रहण करताहै क्योंकि ऐसा न होतो जगत्रूपी अंकुर अवकाशके न होनेसे वृद्धिको न प्राप्त हो, और गति धर्मवाले वायुरूपसे तथा रसरूपतासे जलरूप होके जगत्रूपी अंकुरका उपकार करताहै ॥ २१ ॥ और दृढताके संपादनसे पृथ्वीरूपसे, रूपके संप्रदानसे तेजरूपसे, जगत्रूपी अंकुरका उपकारी होताहै और अनेक प्रकारके स्थिति शील लोक लोकांतरके द्वारा जगत्रूपी अंकुरका उपकारी होताहै तथा हेमंतवसंतादि कालकी कल्पनासे यव गोधूमादि धान्यके प्रतिविरोधी तृणादिके प्रतिबंधक तथा यव गोधूमादिकी उत्पत्तिके द्वारा उपकार करताहुआ स्थितहै ॥ २२ ॥ यही चिद् केसरोंका संचय करता हुआ पुष्पोंमें गंधभावको प्राप्त होताहै, तथा मृत्तिकाके कोटरमें रस उल्लासरूप होकर पृथ्वीपर स्थाणुरूपताको प्राप्त होताहै ॥ २३ ॥ मूलमें स्थित होकर कोमलपत्र शाखादिरूप होकर फलभावको प्राप्त होताहै, और पत्तोंके अवयवोंमें प्रविष्ट होकर उनके नाडीभावको प्राप्त होताहै ॥ २४ ॥

नवतामनुगृह्णातिशक्रबाणासनेनच ॥ योयोभवत्यविरतंसंस्थानेनघनेनच ॥ २५ ॥ वसंतमुपतिष्ठंतिपुष्पपल्लवराशयः ॥ निदाघविधिमायांतिदैवदाहविभूतयः ॥ २६ ॥ प्रावृट्समयमीहंतेनीलाजलदराशयः ॥ शरदंचानुधावंतिसमग्राःफलराशयः ॥ २७ ॥ हेमंतेहिमहासिन्योभवंतिककुभोदश ॥ नयंत्युपलतामंबुशिशिरेशीतलानिलाः ॥ २८ ॥

अर्थ—इन्द्रके चापके सदृश वृक्षकी नूतनता दशाको ग्रहण करताहै, जो जो निरंतर नूतन अवयव उत्पन्न होते हैं उन २ रूपोंसे जगदंकुरका उपकारी होताहै ॥ २५ ॥ बसंतऋतुमें पुष्प और पल्लवके समूह उपस्थित होते हैं और उष्णऋतुमें सूर्यके तेजकी विभूति उपस्थित होती हैं ॥ २६ ॥ वर्षाऋतुमें नीलमेघके समूहके समूह चारोंओर चेष्टा करतेहैं, और शरदृऋतुमें संपूर्ण फलकी राशि आकारको प्राप्त होती हैं ॥ २७ ॥ हेमंतऋतुमें दशोंदिशा हिमसे हंसती हैं, और शिशिरऋतुमें शीतल वायु जलकोभी पाषाणरूप प्राप्त करते हैं ॥ २८ ॥

नजहातिस्वमर्यादांकालोयुगमयीमिमाम् ॥ तरंगिणीतरंगौघलीलयायांतिसृष्टयः ॥ २९ ॥ नियतिःस्थितिमायातिस्थैर्यचातुर्यकारिणी ॥ तिष्ठत्यामलयंधीराधराधरणधर्मिणी ॥ ३० ॥ चतुर्दशविधानीहभूतानिभुवनांतरे ॥ नानाचारविहाराणिनानाविरचनानिच ॥ ३१ ॥ पुनःपुनर्विलीयंतेजायंतेचपुनःपुनः ॥ धारापरंपरायातिविनावारीवबुद्बुदाः ॥ ३२ ॥ आयातियातिपरितिष्ठतिलीलयातिस्वार्थानुपार्जयतिधावतिजन्मनाशैः ॥ उन्मत्तवद्विहितभावनमाहितेहामुग्धाकृतांतविवशाजनतावराकी ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे चिदादित्यस्वरूपवर्णनं नाम षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥

अर्थ—और कालवपुं युगादिमयी, अपनी मर्य्यादाको नहीं त्यागता, और सृष्टिके समूह ऐसे चलेजातेहैं जैसे नदियोंके तरंगोंके समूह ॥ २९ ॥ स्थिरतारूप चतुरताको करनेवाली सब ब्रह्मांडोंकी मर्य्यादा स्थितिको प्राप्त होती है, और सबको धारण करनेवाली यह पृथ्वी प्रलयपर्यन्त स्थित रहती है ॥ ३० ॥ चौदह भुवनोंके अंतरालमें नानाप्रकारके आचार विचारवाले तथा नानाप्रकारके वेश और भाषावाले चौदह प्रकारके प्राणियोंको जाति ॥ ३१ ॥

पुनः पुनः उत्पत्ति तथा लयको प्राप्त होती हैं. हे रामजी ! यह सब पूर्वोक्त पदार्थोंके रूपसे यह चिद्ही विलासकर रही है और प्राणियोंके जन्म मरणका प्रवाह तत्वज्ञानसे ऐसे नष्ट होजाताहै जैसे विना जलके बुद्बुदे ॥ ३२ ॥ हे रामचन्द्रजी ! यह दीनजनता (जनकासमूह) पूर्वजन्मके संकल्प और वासनाके रागसे अनेक प्रकारकी कामनाओंको धारण कियेहुये इसीसे अपने स्वरूपके विचारमें अनभिज्ञ होनेसे मुग्ध होकर उन्मत्तके समान इस लोकमें जन्मकेद्वारा आकर प्राप्त होती है, और परलोकमें जाती है चारोंओर स्थावर आदि जन्मसे स्थित रहती है, भोगके कौतुकसे ऐहिक तथा पारलौकिक भोगके उपायभूत धनधर्मादि अपने पुरुषार्थोंको उपार्जन करती है और जन्म तथा नाशादिके द्वारा इसी प्रकार संसारमें परिभ्रमण कियाकरती है ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे चिदादित्यस्वरूप वर्णनं नाम षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥

आत्माका अनात्मभाव अविद्याके कामना तथा कर्मोंसे होताहै, और निष्काम कर्म तथा ज्ञानसे आत्मस्वरूपकी स्थिति होती है इस विषयका वर्णन इस ३७ के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इत्थंस्थिरतराकाराःसंसारावलयोभितः ॥ स्वभावाद्ब्रह्मणःसर्वाःपुनरायांति यांतिच ॥ १ ॥ स्वतःसर्वमिदंजातमन्योन्यंहेतुतांगतम् ॥ अन्योन्यमभिनश्यत्तत्स्वतएवविलीयते ॥ २ ॥ स्वतोस्पंदोपिनिष्पंदोयथागाधजलोदरे ॥ तथैवेयमसत्सच्चचिदेवपरिदृश्यते ॥ ३ ॥ व्योमन्येवनिराकारेनिदाघात्सरितोयथा ॥ लक्ष्यंतेतद्वदेवेमाश्चित्तत्त्वेसृष्टिदृष्टयः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी! इसप्रकार स्थिरतर आकारवाली संपूर्ण ब्रह्मांडकी पंक्ति चारों ओरसे ब्रह्मके स्वभावहीसे पुनः २ आती और जातीहैं ॥ १ ॥ परस्पर कारणभावको प्राप्त यह सब जगत् अपने अधिष्ठान चेतनहीमें उत्पन्न हुआहै,-और उसी अपने अधिष्ठान चेतनमें लयकोभी प्राप्त होताहै ॥ २ ॥ जैसे अथाह जलके भीतर जलकी गति रहतेभी गतिका भान नहीं होता इसीप्रकार असद् और सद्रूपसे यह चेतनहो देख पडताहै परंतु भान नहीं होता ॥ ३ ॥ जैसे उष्णताके कारण निराकार आकाशमें मृगतृष्णाकी नदियां भान होतीहैं ऐसेही चित्तत्वमें यह सब सृष्टिहैं ॥ ४ ॥

यथामदवशादात्मासोन्यवत्प्रतिभासते ॥ तथैवचित्वाच्चिद्धातुःसएवासइवस्थितः ॥ ५ ॥ नचेदंसन्नचासदंनतत्स्थातत्स्थतयाचितः ॥ नातिरिक्तातिरिक्ताचकटकादिषुहेमता ॥ ६ ॥ येनशब्दंरसंरूपंगंधंजानासिराघव ॥ सोयमात्मापरंब्रह्मसर्वमापूर्वसंस्थितः ॥ ७ ॥ नानैकत्वादतीतात्तुसर्वगादमलात्मनः ॥ द्वितीयाकलनानास्तिकाचिन्नेतरथाक्वचित् ॥ ८ ॥

अर्थ—जिसप्रकार मदके कारण अपना आत्माही अनात्माके समान घूर्णमानआदिरूपसे भासताहै ऐसेही चेतनसार चिदात्माही अचित्के समान स्थितहै ॥ ५ ॥ हे रामजी ! यह जगत् न सत्है और न असत्है, न उसमें स्थितहै, न उससे पृथक्है, किंतु अनिर्वचनीयहै, जैसे कटक आदिमें सुवर्णता न उससे भिन्नहै न उससे अभिन्नहै ॥ ६ ॥ हे रामजी ! जिसके द्वारा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधको तुम जानतेहो वही आत्मा सबको व्याप्त होकर स्थितहै ॥ ७ ॥ सर्वव्यापी और निर्मल आत्माहीसे अनेकता और एकता अविद्यासे भान होती हैं यथार्थमें इस परमात्मामें दूसरी कोई कल्पना नहीं है ॥ ८ ॥

रामभावनादन्यस्यभावाभावाःशुभाशुभाः ॥ सृष्टयःपरिकल्प्यंतऽनात्मन्येवाथवात्मनि ॥ ९ ॥ यस्मादात्मनोव्यतिरिक्तेवस्तुनिसिद्धेसतितत्रेच्छाप्रवर्त्तते ॥ यत्रस्वामनोव्यतिरिक्तंनकिंचिदपिसंभवति ॥ तत्रात्माकिमिववांछन्किमनुस्मरन्धावतुकिमुपैतु ॥ १० ॥ अतइदमीहितमिदमनीहितमित्यात्मानंनस्पृशंतिविकल्पाःअतोनिरिच्छतायामात्मानकिंचिदपिकरोतिकर्तृकरणकर्मणामेकत्वात् ॥ नक्वचित्तदाधाराधेययोरेकत्वात् ॥ नचनिरिच्छत्यात्मनोनैष्कर्म्यमभिमतम् ॥ द्वितीयायाःकल्पनायाअभावात् ॥ नेतराजानासिरामत्वमियंब्रह्मसंस्थितिः ॥ सर्वद्वंद्वविनिर्मुक्तःकर्त्ताभवगतज्वरः ॥ १२ ॥ तत्स्वभावैवपुनः ॥ पुनःकृत्वाकृत्वाबहुविधमिदंकर्मतरसात्वयाप्राप्यंकितद्वदयदुचितंभूतकरणात् ॥ लनाभोगादन्यथाभवतुतवचाप्यागमवतोभवस्वस्थःस्वच्छःस्तिमितइवनिर्वातजलधिः ॥ १३ ॥ गत्वा

सुदूरमपियत्नवताजवेननासाद्यतेयेनसुपूर्णतेति ॥ मत्वेतिमात्रजपदार्थगणान्धियात्वंनत्वंत्वमेवपरमार्थतयाचिदात्मा ॥ १४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे उपशमवर्णनं नाम सप्तत्रिंशःसर्गः ॥ ३७॥

अर्थ—हे रामजी ! क्योंकि अन्य वस्तुओंका सद्भाव और असद्भाव और शुभ तथा अशुभ सृष्टियां अविद्वानोंकी दृष्टिमें अनात्मामें कल्पितहैं और विद्वानोंकी दृष्टिमें आत्माहीमें कल्पितहैं ॥ ९ ॥ क्योंकि आत्मासे पृथक् पदार्थ जब सिद्धहो तब उसमें इच्छा होसकती है और जब आत्मासे पृथक् किसी वस्तुका संभवही नहीं है तो आत्मा कौन पदार्थकी इच्छा करता हुआ किसको स्मरण करता हुआ किस पदार्थकी दृष्टिके लिये किस फलके अर्थ प्रवृत्तहो, अर्थात् यह सब सृष्टि आदि इसी आत्मामें अविद्यासे कल्पितहै ॥ १० ॥ इसलिये यह हित वा अनहित (इष्ट वा अनिष्ट) इत्यादि विकल्प आत्माको नहीं स्पर्श करते इसलिये इच्छाके अभावमें कर्ता करण और क्रियाओंके एकत्व होनेसे आत्मा कुछ नहीं करता, आधार और आधेयके एक होनेसे वह किसीपर स्थित नहीं है और द्वीतीय कल्पनाके अभाव होनेसे इच्छा रहित आत्मामें निष्कर्मताभी अभिमत नहीं है ॥ ११ ॥ हे रामजी ! इन पूर्वोक्त प्रकारोंसे भिन्न दूसरी कोई सफलताकी कल्पना नहीं है यही ब्रह्मकी स्थिति है, यदि तुम उक्त प्रकारसे भिन्न कोई कल्पना जानतेहो तो तुम संपूर्ण द्वंद्व और संतापोंसे विमुक्त होकरभी कर्ता बनो, इसको हम नहीं निवारण करते ॥१२॥ हे रामजी ! औरभी इससंसारमें पुनः२ तुम कर्तृताका अभिमान करके अनेक क्रियाओंको वेगसे करके भौतिक समूहसे भिन्न तुमने क्या उचित फल प्राप्त किया सो कहो, और इसलिये कर्तृताके अभिमानके अभावमें शास्त्र वेदोंके वेत्ता जो तुमहो उनका विश्वासहो, और तुम वायु रहित समुद्रके समान स्वस्थ स्वच्छ और गंभीरहो ॥ १३ ॥ हे रामजी ! वह साधन जिससे अपरिच्छिन्न सुख प्राप्त होनेसे पूर्ण कामताकी प्राप्तिहो, बडे यत्न और वेगके साथ दिशाओंके अंतमें भ्रमण करनेसेभी नहीं प्राप्त होता इसलिये तुम अपनी बुद्धिसे बाह्य पदार्थ समूहोंकी ओर नजाओ, किंतु संपूर्ण प्रपंचोंसे रहित परमार्थदृष्टिसे पूर्ण सुखरूप चिदात्मा तुम्हीहो ॥ १४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे उपशम वर्णनं नाम सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥

असंग परमात्माको न जाननेवालेको मनके संगसे कर्तृता होतीहै और ज्ञानिके लिये कर्तृत्व भोक्तृत्वका अभिमान न होनेसे बंध नहीं होता यह विषय इस ३८ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ एवंस्थितेतुतज्ज्ञानांयदेतत्कर्तृत्वंदृश्यतेसुखदुःखादिपुयोगादिपुवातदसन्नतु मूर्खाणाम् ॥ १ ॥ यतःकर्तृत्वंनामकिंमुच्यतेयोहांतरस्थायासनोवृत्तेर्निश्चयउपादेयताप्रत्ययोवासनाभिधानस्तत्कर्तृत्वशब्देनोच्यते ॥ २ ॥ चेष्टावशात्तादृक्फलभोक्तृत्वंवासनानुरूपंस्पंदतेपुरुषःस्पंदानुरूपंफलमनुभवतिफलभोक्तृत्वंनामकर्तृत्वादितिसिद्धांतः ॥ ३ ॥ तथाच ॥ कुर्वतोकुर्वतोवापिस्वर्गेपिनरकेपिवा ॥ यादृग्वासनमेतत्स्यान्मनस्तदनुभूयते ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! ऐसा नियत होनेसे ज्ञानियोंके सुख दुःख भोगके फल साधनीभूत कर्मोंको और समाधिके अभ्यासके परिपाककी भूमिकाओंमें जो कर्तृता देख पडतीहै वह असत्है परन्तु मूर्खोंकी नहीं ॥ १ ॥ क्योंकि कर्तृता वही कही जाती जिसके अंतःकरणमें स्थित मनकी वृत्तिसे निश्चय होताहै और उसमें उपादेयता बुद्धि होती है और उसको वासनाभी कहतेहैं ॥२ ॥ चेष्टाके वशसे वैसाही फलोंका भोग होताहै और वासनाके अनुसारही पुरुषकी चेष्टा होतीहै और चेष्टाकेही अनुसार फलकोभी अनुभव करताहै इसलिये फलकी भोक्तृताभी कर्तृताहै यह सिद्धान्तहै ॥ ३ ॥ इसलिये स्थूल इन्द्रियोंसे कर्म करे वा न करे परन्तु जैसी वासना पुरुषकी होती है वैसाही सुखदुःख स्वर्ग वा नरकमें मन अनुभव करताहै ॥ ४ ॥

तस्मादज्ञाततत्त्वानांपुंसांकुर्वतामकुर्वतांचकर्तृतानतुज्ञाततत्त्वानामवासनत्वात् ॥ ५ ॥ ज्ञाततत्त्वोहि शिथिलीभूतवासनःकुर्वन्नपिफलंनानुसंदधाति ॥ अयंचस्पंदनमात्रंकेवलंकरोत्यस्तबुद्धिस्संप्राप्तम

विफलमात्मैवेदंसर्वमेवकर्मफलमनुभवत्यकुर्वन्नपिकरोतिमग्नमनाः ॥ ६ ॥ मनोयत्करोतितत्कृतंभवतियन्नकरोतितन्नकृतंभवतिअतोमनएवकर्तृनदेहः ॥ ७ ॥ चित्तादेवायंसंसारआगतश्चित्तमयएवाचित्तमात्रंचित्तएवस्थितइतिविज्ञातम् ॥ विषयश्चसर्वमुपशांतमभूद्वासनैवेतिज्ञएवास्तीति ॥ ८ ॥

अर्थ—इसलिये अज्ञानी पुरुषोंको कर्म करैं वा न करैं परंतु कर्तृता उनकी निश्चितहै परंतु वासनाके अभावसे तत्वज्ञानियोंको कर्तृता नहीं है ॥ ५ ॥ क्योंकि तत्वज्ञाता पुरुषकी वासना शिथिल होजाती हैं इसलिये कर्म करताहुआ भी फलका अनुसंधान नहीं करता और असक्त वृद्धि होकर शरीरिका चेष्टामात्र करताहै, प्राप्त फलोंको यह संपूर्ण आत्माही है ऐसा अनुभव करताहै और कर्मोंको करताहुआ भी उनमें मग्न चित्त नहीं होता ॥ ६ ॥ हे रामजी ! जो कुछ मनसे करताहै वही किया जाताहै और जो मनसे नही किया जाता वह नहीं किया जाता इसलिये मनही कर्ता है देह नहीं ॥ ७ ॥ यह संपूर्ण संसार चित्तसेही आयाहै, इसलिये चित्त मात्र और चित्तमेंही स्थितहै यह वात पूर्व प्रसंगमें पूर्ण रीतिसे विचारितहै, संपूर्ण तथा उनकी वृत्ति यह सब शांत होकर वासनारूप होजातेहैं और उस समयमें उनका उपहित जीव चेतनही रहताहै ॥ ८ ॥

आत्मविदांहितन्मनःपरमुपशममागतंमृगतृष्णाजलमिववर्षतिजलदेहिमकणइवचंडातपेविलीनंतुर्यदशामुपागतंस्थितम् ॥ ९ ॥ नानंदंननिरानंदंनचलंनाचलंस्थिरम् ॥ नसन्नासन्नचैतेषांमध्यंज्ञानिमनो विदुः ॥ १० ॥ नवासनामयेस्पंदरसेगजइवपल्वलेमज्जतितज्ज्ञोमूर्खमनोभोगभूमिमेवपश्यतिनसत्त त्वम् ॥ ११ ॥ तथाचायमत्रापरोदृष्टांतः ॥ अकुर्वन्नपिश्वभ्रपतनंशय्यासनगतोपिश्वभ्रपातवासनावासितेचेतसिश्वभ्रपतनदुःखमनुभवति ॥ अपरस्तुकुर्वन्नपिश्वभ्रपतनंपरमसुपशममुपगतवतिमनसिशय्यासनसुखमनुभवतिएवमनयोःशय्यासनश्वभ्रपतनयोरेकः ॥ श्वभ्रपतनस्याकर्तापिकर्तासंपन्नोद्वितीयश्वश्वभ्रपतनस्यकर्त्ताप्यकर्तासंपन्नश्चित्तावशात्तस्माद्यच्चित्तंतन्मयोभवतिपुरुषइतिसिद्धांत ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! आत्मवेत्ताओंका मन मेघके वरसनेपर मृगतृष्णाके जलके समान परमशांतिको प्राप्त होकर, प्रचण्ड आतपमें हिमकणके समान लीन होकर तथा तुर्यदशामें प्राप्त होकर ब्रह्मरूपसे स्थित रहताहै ॥ ९ ॥ हे रामजी ! ज्ञानीपुरूषका मन विषयानन्दके सुखमें विश्रान्त नहीं होता, और न वह आत्मानन्दसे शून्यहै, न वह चंचलहै, न वह पाषाणादिके सदृश जडावस्थामें स्थिरहै, और न वह सत्है और न असत्है, और न पूर्वोक्त आनन्द निरानन्द चल अचल तथा सत् असत्का मध्य अर्थात् संधिरूपहै किंतु वह सुखस्वरूप आत्माही है ॥ १० ॥ हे रामजी ! ज्ञानीका मन, वासनामय चेष्टाके रसमें तडागके कीचडमें, गजके समान नहीं डूबता और मूर्खका मन विषयभोगकी भूमिहीको देखताहै न कि सदात्मतत्वको ॥ ११ ॥ इसमें यह दूसराभी दृष्टान्तहै कि जिसके चित्तमें गर्तमें गिरनेकी वासनाहै वह शय्यापर स्थितभी स्वप्नादिमें गर्तमें गिरके दुःखको अनुभव करताहै, और दूसरा मनके शान्त होनेपर गर्त (गढे) में गिरता हुआभी शय्याके सुखका अनुभव करताहै इसप्रकार इन दोनोंमेंसे एक गर्तमें न गिरनेपरभी उसका कर्ता और दूसरा गर्तमें गिरनेपरभी उसका अकर्ता है, इसलिये जैसा चित्त रहताहै वैसाही पुरूष होताहै यह सिद्धान्तहै ॥ १२ ॥

तेनतत्रकर्तुरकर्तुवानित्यमसंसक्तंभवतुचेतोनहिकिंचिदस्त्यात्मतत्त्वव्यतिरिक्तंयत्रसंसक्तिर्भाव्यतेयत्किंचिदिदंजगद्गतंतत्सर्वंशुद्धचित्तत्वादाभासमवेहि ॥ १३ ॥ एवंचास्यज्ञातज्ञेयस्यपुंसोनापमात्मासुखदुःखानांगम्यइतिनिश्चयेजातेनात्मव्यतिरिक्ताआधाराधेयदृष्टयोविद्यंतइतिनिश्चयेजातेकर्त्ताभोक्ता सर्वपदार्थव्यतिरिक्तोवालाग्रसहस्रभागोहमितिनिश्चयेजातेयत्किंचिदिदंतत्सर्वमहमेवेतिवानिश्चयेजातेसर्वसत्वावभासकःसर्वगस्तिष्ठाम्येवाहमिति निश्चयेजातेनाहंसुखदुःखानांगम्यइतिविगतज्वरतया चित्तवृत्तिर्लीलयैवातिष्ठतेव्यवहारेषु ॥ १४ ॥ तज्ज्ञस्यसंकटेचमुदितेवकेवलंज्योत्स्नेवभुवनभावमलंकरोतियेनचित्ताहतेतुज्ञःकुर्वन्नप्यकर्त्तासंपन्नोमनसोलेपकत्वान्नासौपादपाण्यादिविक्षेपस्ययत्नकृतस्यापि कर्मणःफलमनुभवति ॥ १५ ॥ एवंमनःसर्वकर्मणांसर्वेहितानांसर्वभावानांसर्वलोकानांसर्वगतीनांबीजंतस्मिन्परिहृतेसर्वकर्माणिपरिहृतानिभवंतिसर्वदुःखानिक्षीयंतेसर्वकर्माणिलयमुपयांतिमा नसेनापिकर्मणायत्कृतेनापिज्ञोनाक्रम्यतेनविवशीक्रियतेनरंजनामुपैत्यव्यतिरिक्तात् ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! इसलिये तुम कर्मको करो वा न करो परन्तु तुह्मारा चित्त उनमें निमग्न न हो, क्योंकि इस जगत्में आत्मतत्वके सिवाय कोईभी पदार्थ सत्य नहीं है, जिसमें कि तुह्मारे मनकी आसक्ति संभव हो, जो कुछ यह जगत् और जगत्के अन्तर्गत पदार्थ हैं उस सबको शुद्ध चित्तत्वका आभासमात्रही तुम जानो ॥ १३ ॥ इसप्रकार

ज्ञात ज्ञेय पुरूपका आत्मा सुख दुःखादिका स्थान नहीं होता ऐसा निश्चय होनेपर आत्मासे पृथक् आधार आधेय दृष्टि नहीं है, यह निश्चय होताहै और इसके अनन्तर कर्ता भोक्ता सम्पूर्ण पदार्थोंसे पृथक् बालके अग्रके सहस्रभागसे भी अतिसूक्ष्म आकाशवत् सर्वव्यापी हमारा स्वरूपहै, इसके अनन्तर जो कुछ यह सम्पूर्ण जगत्है वह मैंही हुं ऐसा निश्चय होताहै, इसके पश्चात् सम्पूर्ण भूतोंका प्रकाशक सर्वव्यापी मैं हुं ऐसा निश्चय होताहै इसके पश्चात् मैं सुख दुःखका स्थान नहीं हुं इसप्रकार चिंतारहित वृत्तिसे सम्पूर्ण व्यवहारोंमें लीलाहीसे प्रारब्ध कर्मभोग करनेके लिये स्थित रहताहै ॥ १४ ॥ ज्ञानीका मन संकटमेंभी चन्द्रमाकी ज्योत्स्नाके समान संसारको शोभित करताहै, क्योंकि चित्तसे पृथक् सुखदुःख कुछ नहीं है इसलिये मनकी वासनासे लिप्त न होनेसे ज्ञानी कर्ता हुआभी अकर्ता है, यह ज्ञानी हस्तपादादिके संचालनादि कर्मके फलकोभी नहीं अनुभव करता ॥ १५ ॥ इसप्रकार सब कर्मोंका सब चेष्टाओंका सब भावोंका सब लोकोंका और संपूर्ण गतियोंका बीजहै, उस मनके त्यागनेपर सब कर्म आपही त्यक्त होजातेहैं सम्पूर्ण दुःख क्षीण होजातेहैं और पुण्य पापमय सब कर्म लयको प्राप्त होते हैं, ज्ञानीपुरूष आत्मासे पृथक् सम्पूर्ण वस्तुओंका अभाव जाननेसे मानसिक शारीरिक और वाचनिक कर्मोंसेभी आक्रांत होकर वशीभूत नहीं होता १६

यथा बालो मनसा नगरस्य निर्माणं निर्मृष्टं कुर्वन्नगरनिर्माणं मनःकृतमकृतमिव लीलयानुभवति ॥ नोपादेयतया सुखदुःखमकृत्रिममिति पश्यति नगरनिर्मथनं च मानःकृतं कृतमिति पश्यतीति दुःखमपि लीलयानुभवन्नपि न दुःखमिति पश्यति एवमसौ परमार्थतः कुर्वन्नपि न लिप्यत एवेति ॥ १७ ॥ सर्वभावेषु हेयोपादेयताभ्यां जगति किं कारणं दुःखस्य न चोपादेये किंचिदपि सं भवति यदविनाशं व्यतिरिक्तं चात्मनस्तस्मादयमात्माऽकर्त्ताऽभोक्ताऽतत्त्वतोयदेतत्कर्तृत्वं चस्वध्यारोप्यते ॥ १८ ॥ आवश्यकं तत्सम्यग्दर्शनमोहान्नवस्तुत इति यथाभूतवस्तुविचारणात्कर्तृत्वभोक्तृत्वेनस्तः ॥ इंद्रियैंद्रियार्थद्वेषाभिलाषादिकादृष्टयस्तद्दृष्टीनां दृश्यते नात्तदृष्टीनाम् ॥ १९ ॥ मोक्षोऽस्ति न संसारे स्वसंसक्तमनसामिहासंसक्तमनसां त्वेतत्सर्वमेवास्ति ॥ २० ॥

अर्थ—हे रामजी ! जिसप्रकार बालक मनसे नगरकी रचना और उसका शृंगार करता हुआभी यह नगरकी रचना मनसे कृतहै इसलिये अकृतके समानहै, इसलिये लीलासे अनुभव करताहै, और उपादेय बुद्धिसे स्वाभाविक सुखदुःख नहीं देखता और नगरके नाशकोभी लीलाहीसे देखताहै, इसीप्रकार यह आत्मा करता हुआभी परमार्थ दृष्टिसे कुछ नहीं करता इसलिये लीलासे दुःखको अनुभव करता हुआभी यह दुःख नहीं है ऐसा देखताहै ॥ १७ ॥ इस जगत्में हेय और उपादेय बुद्धिसे व्यवहारमें आतेहुये सब पदार्थोंमें दुःखका कारण क्या है हेय दुःखका कारण नहीं होसकता क्योंकि उपादानसे दुःख होताहै हेय वस्तुके उपादानके अभावसेही दुःख न होगा, यदि उपादेय पदार्थ दुःखका हेतु कहो सो वहभी नहीं बन सकता क्योंकि आत्मासे पृथक् वस्तु कोई अविनाशी नहीं है, जो उपादेयहो इसलिये यह आत्मा अकर्ता और अभोक्ताहै और अविद्यासे जो इसमें कर्तृत्व और भोक्तृत्वका अनुभव होताहै वह अध्यारोपसे है ॥ १८ ॥ शरीरके निर्वाहके लिये जो आवश्यक कर्म हैं उसको जीव नहीं त्याग सकता परन्तु वह आवश्यक कर्मभी सम्यग्दर्शनके मोहसे हैं न कि यथार्थमें सत्य पदार्थके विचारनेसे तो शुद्धमें कर्तृत्व भोक्तृत्वका सम्भव नहीं है और यह जो प्रतीति होती है वह इन्द्रियों करके इन्द्रियोंके अर्थोंमें रागद्वेषादिककी अभिलाषा और उनके निमित्त पुण्यपापादि अदृष्टोंसे जिनकी बुद्धि विवशहै उन्हींकी दृष्टिमें है न कि आत्मज्ञानियोंकी ॥ १९ ॥ जिनका मन संसारमें आसक्त नहीं है किन्तु आत्माके विचारहीमें निमग्नहै उनके लिये मोक्ष कुछ पदार्थ नहीं है यह सब बन्धमोक्षादि व्यवस्था संसारमें आसक्त अज्ञानियोंके अर्थ है ॥ २० ॥

यथास्थितं ज्ञस्य केवलमात्मतत्त्वमेवोल्लसति तद्द्वित्वैकत्ववादिसिद्धे द्वित्वैकत्वे करोति सत्वासत्वे करोति शक्तिजालादभिन्नां सर्वशक्तितां च दर्शयति तस्य ॥ २१ ॥ न बंधोऽस्ति न मोक्षोऽस्ति नाबंधोऽस्ति न बंधनम् ॥ अप्रबोधादिदं दुःखं प्रबोधात्प्रविलीयते ॥ २२ ॥ संकल्पिता जगति मोक्षमतिर्मुधैव संकल्पिता जगति बंधमतिर्मुधैव ॥ संत्यज्य सर्वमनहंकृतिरात्मनिष्ठो धीरो धिया व्यवहरन्भुवि राम तिष्ठ ॥ २३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे उपशमवर्णनं नाम अष्टत्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥

अर्थ—ज्ञानीकेलिये तो शुद्धात्मतत्व केवल अपने रूपसे शोभित होरहाहै और उसके जीवन व्यवहारकी सिद्धिकेलिये अन्यवादीको प्रसिद्ध द्वित्व एकत्वादिकी व्यवस्था तथा सत्व असत्व आत्माही करताहै और अपने शक्तिसमूहसे अभिन्न आत्मतत्वकी सर्वशक्तिताभी दर्शाताहै ॥ २१ ॥ यथार्थमें न बंध है न मोक्ष है और न बंधका

कारण है अज्ञानसे यह दुःख होताहै और ज्ञानसे सब नष्ट होजाताहै ॥ २२ ॥ इस संसारमें मोक्ष तथा बंध बुद्धि मिथ्याही कल्पित है इसलिये हे रामचन्द्रजी ! सब त्यागकरके धीर होकर अहंकारको त्यागकर बुद्धिसे संसारके कार्य करते हुये पृथ्वीपर स्थित रहो ॥ २३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे उपाशम वर्णनं नामाष्टत्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥

इस ३९ के सर्गमें ब्रह्मकी सर्व शक्तिता रामके व्यामोहका विस्तार और उनके ज्ञानकेलिये वसिष्ठके विचारादि वर्णन कियेगये हैं ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ भगवन्नेवंस्थितेपरेब्रह्मण्येसविद्यमानेकुतएवाभित्तिचित्ररूपायाःसृष्टेरागमइति कथयमहात्मन् ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठवाच ॥ राजपुत्रब्रह्मतत्त्वमेवेदमावर्त्ततेयस्मात्सर्वशक्तितत्तस्मात्सर्वाःशक्तयोब्रह्मणिदृश्यंते ॥ २ ॥ सत्त्वमसत्त्वंद्वित्वमेकत्वमाद्यत्वमनेकत्वमाद्यत्वमंतत्वमिति ॥ ३ ॥ तच्चनान्यत्यथाजलराशेर्जलाशयउल्लासप्रफुल्लासेननानाकारतांदर्शयन्प्रकटतांगच्छति ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-हे भगवन् ! आपके कथित रीतिसे बंध मोक्षादिकके असंभव होनेसे और केवल परब्रह्महीं सत्य होनेसे भित्तिरहित चित्रके समान इस सृष्टिका आगमन कहांसे होताहै यह मुझे कहिये ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-हे राजपुत्र ! ब्रह्मही इस सब जगत्‌रूपसे विवर्तभावको प्राप्त होताहै क्योंकि ब्रह्म सर्व शक्तिमान् है, इसलिये कार्योंसे संपूर्ण शक्तियोंका अनुमान ब्रह्महीमें होताहै ॥ २ ॥ जो सर्वशक्तिमान् है उसमें सत्व असत्व द्वित्व एकत्व अनेकत्व आदित्व और अन्तत्वादि विरोधी धर्मकी कल्पना होसकती है न कि असमर्थमें ॥ ३ ॥ वह सत्वादि अन्य नहीं है किंतु जैसे समुद्रका सलिलसमूह चंद्रमाके उदयके उल्लाससे नानाप्रकारता दर्शाता हुआ प्रकट होताहै॥४

तथाचिद्घनश्चित्तंचित्त्वाच्चसर्वाःशक्तीःकर्ममयीर्वासनामयीर्मनोमयीश्चिनोतिदर्शयतिबिभर्त्तिजनयति क्षिपत्ततिचेति ॥ ५ ॥ सर्वेषामेवजीवानांसर्वासामभितोदृशाम् ॥ समग्राणांपदार्थानामुत्पत्तिर्ब्रह्मणो निशम् ॥ ६ ॥ लोकात्पराङ्पायांतितस्मिंश्चिवस्त्वाद्विशंत्यलम् ॥ तन्मयाएवसततंतरंगाइवसागरे ॥७॥ ॥ श्रीरामउवाच ॥ ॥ भगवंस्तवातिगहनेयंवचनव्यक्तिर्नखल्वद्यवाक्यार्थमवगच्छामि ॥ ८ ॥

अर्थ—इसीप्रकार चिदात्मा पहले चित्त उपहित जीवरूप होताहै और चित्तसेही सम्पूर्ण कर्ममयी वासनामयी मनोमयी शक्तियोंको संचय करताहै, सञ्चित शक्तियोंको फलरूपसे दर्शाताहै, उपभोगसे उनको धारण करताहै, और पुनः तिरोभावसे उनका नाशभी करदेताहै ॥ ५ ॥ संपूर्ण जीवोंकी सब प्रकारकी दृष्टियोंकी और सम्पूर्ण पदार्थोंकी उत्पत्ति निरंतर ब्रह्मसेही होती है ॥६॥ उसी परमात्मासे सबकुछ आताहै और उसीमें सब लीनभी होताहै, और वर्तमानसमयमें निरंतर तन्मयभी ऐसे है जैसे समुद्रमें तरंग ॥७॥ श्रीरामजी बोले-हे भगवन् ! यह आपकी वाक्यकी रचना अति गहनहै यह आपका कथन ऐसे है जैसे अग्निमें शीतता जलमें दहनशक्ति विरुद्ध है ऐसेही चेतनमें जाड्यशक्ति, अदृश्यमें दृश्यता, नित्यमें अनित्यता यह कैसे होसकताहै इस आपके वाक्यका मैं तात्पर्य नहीं समझता ॥८॥

क्वकिलातीतमनःषष्ठेंद्रियवृत्तिब्रह्मतत्त्वंक्वभंगुरेयंतज्जापदार्थश्रीरितिवचनरचनायदिचायमारंभोब्रह्मण आपतितस्तदनेनतत्सदृशेनैवभवितव्यम् ॥ ९ ॥ योयस्माज्जायतेसततत्सदृशएवभवति ॥ १० ॥ यथा दीपाद्दीपःपुरुषात्पुरुषःसस्यात्सस्यम् ॥११॥ यतोनिर्विकाराद्यदागतंनिर्विकारेणैवानेनभवितव्यम्॥१२॥

अर्थ—कहां तो मन और इन्द्रियसे परे परब्रह्म और कहां यह क्षणभंगुर उससे उत्पन्न पदार्थोंकी शोभा यदि यह जगत्‌के नामरूपकी उत्पत्ति ब्रह्मसेही हुई है तो ब्रह्मके सदृश होना चाहिये ॥ ९ ॥ लोकमें जो जिससे उत्पन्न होताहै वह उसके सदृश होताहै ॥ १० ॥ जैसे दीपकसे दीपक पुरुषसे पुरुष और गोधूमादि धान्यसे गोधूमादि धान्य ॥ ११ ॥ यदि निर्विकार ब्रह्मसे यह जगत् उत्पन्न हुआहै तो निर्विकार इसकोभी होना चाहिये ॥ १२ ॥

अथैतद्व्यतिरिक्तंचिदात्मनस्तन्निष्कलंकस्यपरमेश्वरस्ययेयंकलंकापत्तिरित्याकर्ण्यभगवान्ब्रह्मर्षिरुवाच ॥ १३ ॥ ब्रह्मैवेदंस्थितंनाममलसत्तीहलानघ ॥ तरंगौघगणैरंभःसिंधौस्फुरतिनीरजः ॥ १४ ॥ द्वितीयाकल्पनैवेहनरघूद्वहविद्यते ॥ ब्रह्ममात्राद्दतेवह्नावौष्ण्यमात्राद्दतेयथा ॥ १५ ॥ श्रीरामउवाच ॥ निर्द्वंद्वःसंब्रह्मनिर्द्वंद्वंतुद्वंद्वःसमयंजगत् ॥ अस्पष्टार्थमिदंब्रह्मन्नवैमिवचनंतव ॥ १६ ॥

अर्थ—यदि यह जगत् आत्मासे भिन्न विकारी है तो परब्रह्मको जगत्भाव होना यह आपने परमेश्वरकेलिये कलंकापत्तिका कथन किया ऐसे रामचन्द्रजी वाक्यको सुनकर भगवान् ब्रह्मर्षि वसिष्ठजी बोले ॥ १३ ॥ हे पापरहित रामजी ! यह सम्पूर्ण ब्रह्मरूपसे ऐसे स्फुरताहै, जैसे तरंगके समूहोंसे समुद्रमें जल इसमें किंचित्भी मल इसप्रकार नहीं है जैसे समुद्रमें धूलि ॥ १४ ॥ हे रघुश्रेष्ठ रामजी ! जैसे अग्निमें उष्णताको छोडके कुछभी नहीं है ऐसेही इस संसारमें ब्रह्मसे भिन्न दूसरी कल्पना नहीं है ॥ १५ ॥ श्रीरामजी बोले—हे भगवन् ! ब्रह्म तो दुःखरहित तथा निर्द्वन्द्व है उससे उत्पन्न यह जगत् दुःखमय कैसे हुआ इस आपके वचनका अर्थ स्पष्ट नहीं है और इस वचनको मैं नहीं समझता ॥ १६ ॥

॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ इत्युक्तेतत्ररामेणचिंतयामासचेतसा ॥ वसिष्ठोमुनिशार्दूलोराघवस्योपदेशने ॥ १७ ॥ परंविकासमायातानास्यतावदियंमतिः ॥ किंचिन्निर्मलतांप्राप्ताप्रोह्यतेचेहवस्तुनि ॥१८॥ योऽव्युत्पन्नमनास्तस्यज्ञातज्ञेयस्यधीमतः ॥ मोक्षोपायगिरांपारंप्रयातस्यविवेकतः ॥ १९ ॥ नकश्चित्कस्यचिद्दोषोनास्तिविद्यात्मनिह्यलम् ॥ यावन्नोक्तंनविश्रांतिंतावदेत्येपराघवः ॥ २० ॥

अर्थ—श्रीवाल्मीकिजी बोले—रामके ऐसा कहनेपर मुनियोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठजी रामचन्द्रजीको उपदेश देनेकेलिये उपाय मनमें चिंतन किया ॥ १७ ॥ रामचन्द्रकी बुद्धि परम प्रकाशताको तो नहीं प्राप्त हुई है किंचिन्निर्मलताको प्राप्त हुई है और आत्मवस्तुमें अब प्राप्त की जाती है ॥ १८ ॥ यो पुरुष व्युत्पन्न चित्तवालाहै अर्थात् जगत्के जाड्यभावको त्यागकर चिद् एकरस आत्मतत्वके देखनेमें समर्थ है उस ज्ञातज्ञेय बुद्धिमान् और विवेकसे मोक्षके उपायभूत वाणियोंके पार प्राप्त हुये पुरुषकी ॥ १९ ॥ दृष्टिमें आत्मवस्तुके साथ जगत्के विरूद्ध रूपका कुछभी दोष नहीं है इसलिये जबतक हम लोग अच्छी तरहसे उपदेश न देंगे यह रामचन्द्रजी विश्रांतिको नहीं प्राप्त होंगे॥२०॥

अर्द्धव्युत्पन्नबुद्धेस्तुनैतद्वक्तुंहिशोभते ॥ दृश्यानयाभोगदृशाभावयन्नेपनश्यति ॥२१॥ परांदृष्टिंप्रयातस्यभोगेच्छानाभिजायते ॥ सर्वंब्रह्मेतिसिद्धांतःकालेनास्यप्रयुज्यते ॥ २२ ॥ आदौशमदमप्रायैर्गुणैः शिष्यंविशोधयेत् ॥ पश्चात्सर्वमिदंब्रह्मशुद्धस्त्वमितिबोधयेत् ॥ २३ ॥ अज्ञस्यार्द्धप्रबुद्धस्यसर्वंब्रह्मेतियोवदेत् ॥ महानरकजालेषुसतेनविनियोजितः ॥ २४ ॥

अर्थ—परन्तु अर्द्ध व्युत्पन्न बुद्धिवालेकेलिये यह सब ब्रह्मही है ऐसा कथन शोभा नहीं देता क्योंकि वह पुरुष दृश्यप्रपंचको प्राप्त करनेवाली भोगकी दृष्टिसे दृश्यकीही भावना करता हुआ तत्वज्ञानसे भ्रष्ट होजाताहै ॥ २१ ॥ जिसको उत्तम दृष्टि प्राप्त हुई है उसको विषयभोगकी इच्छा नहीं होती और काल पाकरके यह सब ब्रह्महै यह सिद्धांतभी उसकी दृष्टिमें आ जाताहै ॥ २२ ॥ अर्द्ध व्युत्पन्न वा अव्युत्पन्न शिष्यको प्रथम शम दम आदि गुणोंसे शुद्ध करना चाहिये, और पश्चात् यह सब ब्रह्मही है ऐसा बोधन करना चाहिये, और इसके पश्चात् तुम वही शुद्धब्रह्म हो ऐसा बोधन करना चाहिये ॥ २३ ॥ जो अर्द्ध प्रबुद्ध अज्ञानी है उसको यह बोधन करताहै कि यह सब ब्रह्मही है, वह मानो उस शिष्यके द्वारा महानरक जालमें नियुक्त कियागया ॥ २४ ॥

प्रबुद्धबुद्धेःप्रक्षीणभोगेच्छस्यनिराशिषः ॥ नास्त्यविद्यामलमितियुक्तंवक्तुंमहात्मनः ॥ २५ ॥ अपरीक्ष्यचयःशिष्यंप्रशास्त्यतिविमूढधीः ॥ सएवनरकंयातियावदाभूतसंप्लवम् ॥ २६ ॥ इतिसंचिंत्यभगवानज्ञानतिमिरापहः ॥ तमुवाचमुनिश्रेष्ठोवसिष्ठोभूमिभास्करः ॥ २७ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ कलंककलनाब्रह्मण्यस्तिनास्तीतिवानघ ॥ सिद्धांतकालेवक्तव्यंस्वयंज्ञास्यसिराघव ॥ २८ ॥

अर्थ—और जो प्रबुद्ध बुद्धिहै जिसकी भोगकी इच्छा क्षीण होगई है और जो अपने लिये कोईभी आसीर्वाद नहीं चाहता, तथा जिसको अविद्यामल नहीं है उस माहात्माके लिये यह सब ब्रह्मही है ऐसा कथन युक्तहै ॥२५॥ जो अतिमूढ बुद्धि शिष्यकी परीक्षा न करके ज्ञान देताहै वह जबतक संसारका प्रलय नहीं होता तबतक नरकमें निवास करताहै ॥ २६ ॥ ऐसा विचार करके अज्ञानरूपी अंधकारके नाशक, मुनियोंमें श्रेष्ठ, पृथिवीके सूर्य भगवान् वसिष्ठजी रामचंद्रजीसे बोले ॥ २७ ॥ हे पापरहित रामजी ! कलंककी कल्पना जगत्में है वा नहींहै वार्ता सिद्धांत कालमें वक्तव्यहै और उस समयमें इसको तुम स्वयं जान जाओगे ॥ २८ ॥

ब्रह्मसर्वशक्तिसर्वव्यापिसर्वगतंसर्वोहमेवेति ॥२९॥ यथेंद्रजालिनःपश्यसिचित्रामायया क्रियाजनयंतः सदसत्तांनयंत्यसच्चसत्तांनयंतितथैवात्माअमायामयोपिमायामयइवपरमेंद्रजालिकोघटंपटंकरोतिपटं चघटंकरोतिउपलेलतांजनयतिमेरौकनकतटेनंदनवनमिवलतायामुपलमुत्पादयतिकल्पपादपेषुरत्नस्त

बकमिवव्योम्निकाननमध्यारोपयति ॥ ३० ॥ गंधर्वउद्यानमिवतस्मिन्जगतिभविष्यतिगगनेकल्पनया नगरतांजनयतिनष्टच्छायांजनमिवव्योमधरातलंनयतीति ॥ ३१ ॥ गंधर्वनगरराजगृहेविपुलांगनाजनमिवभूतलेव्योमनिवेशयति ॥ ३२ ॥

अर्थ—ब्रह्म सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी, सर्वगत, और सब पदार्थोंमें दर्शनके योग्यहै ॥ २९ ॥ देखो जैसे इन्द्रजालिक लोग मायासे अनेक क्रियाओंको उत्पन्न करते हुये सत्को असत् करतेहैं और असत्को सत् करतेहैं ऐसेही मायारहित होनेपरभी आत्मामयके समान महान् ऐंद्रजालिक होके घटको पट और पटको घट बनाताहै, और सुवर्णके तटवाले मेरूपर नंदन तथा कल्पवृक्षोंमें रत्नोंके गुच्छोंके तुल्य पाषाणके ऊपर लता और लताके ऊपर पाषाण उत्पन्न करताहै और आकाशमें वनका अध्यारोप करताहै ऐसी अपूर्व आत्माकी शक्तिहै ॥ ३० ॥ उसी स्थानमें गंधर्व उद्यानके सदृश भविष्यत्के आकाशमें कल्पनासे नगरको रचताहै, और आकाशकी नील कज्जलताको नष्ट करके पृथिवीतल निर्माण करताहै ॥ ३१ ॥ तथा गंधर्वनगर और राजगृहमें अनेक ललना गणके समान भूतलमें आकाशको स्थापित करताहै ॥ ३२ ॥

रक्तकुट्टिमेष्वाकाशप्रतिबिंबमिवकिंचिदस्तिजगतिभविष्यतिवावभूव ॥ ३३ ॥ यदीश्वरोऽव्यक्तरूपोविचित्रतामुपेत्यनिदर्शयति ॥ ३४ ॥ सर्वमेवसर्वथासर्वत्रयथासंभवत्येकमेवेहवस्तुविद्यतइतितस्माद्धर्षामर्षविस्मयानांक्वावसरोराम ॥ ३५ ॥ समतयैवसततंधृतिमतास्थातव्यम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—रक्तवर्ण छद सहित पद्मराग मणियोंके प्रासादोंमें आकाशका रक्त प्रतिबिंब स्वतः असत् होनेपरभी अधिष्ठानकी रक्ततासे जैसे सत्है ऐसेही इस जगत्में जो कुछहै होगा, और हुआ वह सब स्वतः असत् होनेपरभी ब्रह्मकी सत्तासे सत् ॥ ३३ ॥ क्योंकि ईश्वर अव्यक्तरूप होनेपरभी विचित्र रूपसे अपने आत्माको दर्शाताहै ॥ ३४ ॥ इसप्रकार एकही आत्मवस्तु सर्वथा सर्वत्र सब कुछ होसकताहै इसलिये हे रामजी! यहांपर हर्ष, विस्मय तथा आमर्षका अवसर कहां है ॥ ३५ ॥ धैर्य्यवान्को निरन्तर समता रूपसे स्थित रहना चाहिये ॥ ३६ ॥

विस्मयस्मयसम्मोहहर्षामर्षविकारिताम् ॥ समतावलितस्तज्ज्ञोनकदाचनगच्छति ॥ ३७ ॥ अपर्यवसानेदेशकालवर्तिचित्राहिजगतियुक्तयोदृश्यंते ॥ ३८ ॥ एताश्चयुक्तीर्नामासावात्मायत्नेनरचनांकरोतिनचोत्पन्नांतिरस्करोतिसागरइववीचीः ॥ ३९॥ किंतर्हिक्षीरइवघृतंघटइवमृदिपटइवतंतुषुवटइवधानायामात्मन्येवस्थिताःशक्तयःप्रकटतामागताव्यवह्रियंतेविरचितमेवतरंगवत् ॥ ४० ॥

अर्थ—समतासे वेष्टित ज्ञानी पुरुष विस्मय, गर्व, संमोह, हर्ष, आमर्ष, और विकारिताको कदापि नहीं प्राप्त होता ॥ ३७ ॥ समताकी अनंततासे देशकालके अवकाश विशिष्ट आत्मामें विचित्र दृश्य रचनाकी शक्ति देखपड़ती हैं ॥ ३८ ॥ इन सब युक्तियोंसे यह आत्मा यत्नसे फलावस्था सहित रचना करताहै और उत्पन्न रचनाको सागर तरंगके समान तिरस्कार नहीं करता ॥ ३९ ॥ जैसे दुग्धसे घृत, मृत्तिकामें घट, सूत्रोंमें पट तथा सूक्ष्म वटबीजमें वटका वृक्ष स्थितहै ऐसेही आत्मामें सब शक्ति स्थितहैं और प्रकट होकर व्यवहारमें आती हैं, परन्तु यथार्थमें जलसे तरंगके समान ब्रह्मसे पृथक् जगत्की रचना नहीं है ॥ ४० ॥

नात्रकश्चित्कर्त्तानभोक्तानविनाशमेति ॥ ४१ ॥ केवलमात्मतत्त्वेसाक्षिणिनिरामयेसमतयात्मनिनित्यमसंक्षुब्धेतिष्ठतिसत्येवंसंपद्यते ॥ ४२ ॥ सतिदीपइवालोकःसत्यर्कइववासरः ॥ सतिपुष्पइवामोदः स्वतःसंपद्यतेजगत् ॥ ४३ ॥ आभासमात्रमेवेदंपरिदृश्यतएवच ॥ स्पंदःसमीरणस्येवनसन्नासदवस्थितम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—इस जगत्में न कोई कर्ता है न भोक्ताहै और न विनाशको प्राप्त होताहै ॥ ४१ ॥ केवल साक्षी निरामय समतासे नित्य असंक्षुब्ध रूपसे स्थित आत्मतत्वमें इसप्रकार सब कुछ होताहै॥ ४२॥जैसे दीपके रहनेपर प्रकाश सूर्यके रहनेपर दिन और पुष्पके रहनेपर उसकी सुगन्ध होती है ऐसेही अधिष्ठान चेतनसे यह जगत् स्वयं उत्पन्न होताहै ॥ ४३ हे रामजी ! जो कुछ यह देख पडताहै वायुके स्पन्दके समान ब्रह्मका आभासमात्रहै, यह न सद्है न असद् है ॥ ४४॥

निर्दोषवदेवजागतीनांदृष्टीनांपरमार्थतोभगवान्स्थितोविनष्टानांपुनःकर्त्ताकृतानांवानाशयितासकेवलः कदाचित्प्रकटाःकदाचिदल्पप्रकटाःकदाचिदप्रकटास्तारकाइवकुसुमराशयः ॥ ४५ ॥ नश्यतीहहितद्वस्तुनात्मभूतंयदात्मनः ॥ कथंनश्यतितद्वस्तुस्वात्मभूतंयदात्मनः ॥४६॥ जायतेनैवतद्वस्तुनात्मभूतंयदात्मनः ॥ जायतेचैवतद्वस्तुस्वात्मभूतंयदात्मनः॥४७॥कथंतज्जायतेतस्मात्स्वात्मभूतंयदात्मनः॥४८॥

अर्थ—इसप्रकार जगत्की दृष्टियोंसे अपनी सन्निधिमात्रसे उत्पन्न जगत्के दोषोंसे आत्मा लिप्त नहीं होता किन्तु परमार्थ दृष्टिसे वह भगवान् स्थितहै और विनष्टोंका कर्ता और किये हुओंका नाशक वही चिदात्माहै उसी चिदात्मामें आकाशमें तारागणके समान वाटिकामें पुष्पसमूहके समान यह जगत्की शक्ति कभी प्रकट होती हैं कभी अल्प प्रकट होती है कभी अप्रकट होती हैं ॥ ४५ ॥ जो वस्तु आत्माका स्वरूप नहीं है वही नष्ट होती है और जो आत्माका स्वरूपहै वह कैसे नष्ट होसकती है ॥ ४६ ॥ जो वस्तु आत्माका स्वरूप नहीं है वह उत्पन्नभी नहीं होती वह वस्तु उत्पन्न होती है जो आत्माका स्वरूपहै जो वस्तु आत्माका स्वरूपभूतहै वह उससे कैसे उत्पन्न होसकतीहै ॥४८॥

तस्मात्सम्यग्ज्ञानवशाद्ब्रह्मणःसर्वपदार्थानामागमः ॥ ४९ ॥ अवतीर्णानांचतेषामवतरणसमकालमेवाविद्योदेतितत्त्वज्ञानं दृढतामेतितदनुशतसहस्रस्कंधोविचित्रशुभाशुभफलभरफलितोभूरिशाखः स्फारतामेतिसंसारद्रुमः ॥ ५० ॥ आशामंजरिताकृतिविफलितदुःखादिभिर्दारुणैर्भोगैःपल्लवितंजराकुसुमितंतृष्णालताभासुरम् ॥ संसाराभिधवृक्षमात्मनिगडंछित्त्वाविवेकासिनामुक्तस्त्वंविहरेद्धवारणपतिःस्तंभादिवोन्मोचितः ॥ ५१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे सर्वैकत्वप्रतिपादनं नामैकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥

अर्थ—इसलिये सम्यग् ज्ञानके कारण ब्रह्मसेही संपूर्ण पदार्थोंका आगमन होताहै ॥ ४९ ॥ पदार्थोंके उत्पत्तिके समकालहीमें अविद्याका उदय होताहै और वह अविद्या दृढताको प्राप्त होती है उसके अनन्तर सैकडों बल्कि सहस्रों स्कन्धयुक्त होजाताहै और चित्रविचित्र शुभ अशुभ फलके भारसे पूर्ण अनेक शाखावाला यह वृक्ष विशालताको प्राप्त होताहै ॥ ५० ॥ आशाओंसे लता संयुक्त आकारवाला, अनेक प्रकारके दारुण सुखदुःखोंसे फल संयुक्त, भोगोंसे पल्लवित वृद्धावस्थासे पुष्पित, और तृष्णारूपी लतासे प्रकाशशील, इस संसाररूपी वृक्षको जो कि आत्माका बंधन स्थानहै इसको विवेकरूपी खड्गसे छेदन करके इससे मुक्त होकर स्तंभसे मुक्त हाथियोंके पतिके समान इस संसारमें तुम विहार करो ॥ ५१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ति मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे सर्वैकत्वप्रतिपादनं नामैकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥

इस ४० के सर्गमें उपाधियोंके कारण जीवके भेदोंकी उत्पत्ति तथा उन जीवोंका तथा उपाधियोंका ब्रह्मभाव विस्तारसे वर्णन कियागयाहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ उत्पत्तिःकथमेतेषांजीवानांब्रह्मणःपदात् ॥ कियतीकीदृशीचेतिविस्तरेणवद प्रभो ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ उत्पद्यंतेयथाचित्राब्रह्मणोभूतजातयः ॥ यथानाशंप्रयांत्येतायथामुक्ताभवंतिहि ॥ ॥ २ ॥ यथाचपरिवर्द्धंतेतिष्ठंत्यंतर्हितायथा ॥ संक्षेपेणमहाबाहोशृणुवक्ष्यामितेनघ॥३॥ ब्राह्मीचिच्छक्तिरमलाकल्पयंतीयदृच्छया ॥ सर्वशक्तिःस्वयंचेत्यंभवत्याकलनात्मकम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! ब्रह्मपदसे जीवोंकी उत्पत्ति कैसे कितनी और किसप्रकार होती है यह विस्तारसे कहिये ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! जैसे ब्रह्मसे चित्रविचित्र प्राणियोंकी जाति उत्पन्न होती हैं और जैसे नाशको प्राप्त होती हैं तथा जैसे मुक्त होतीं हैं ॥ २ ॥ और जिसप्रकार बढ़तीं हैं और स्थित रहती हैं वह हे पापरहित महाबाहो मैं संक्षेपसे कहूंगा तुम सुनो ॥ ३ ॥ सर्व शक्तिमती निर्मल ब्रह्मसंबंधी चित् शक्ति प्रथम स्वयंभूके देहादिके आकारमें किंचित् स्फूरणरूप विषयाकारको संकल्पसे धारण करते है ॥ ४ ॥

मनस्त्वं कलनाद्धनतामेत्यर्थकिंचिदविलासस्वयम् ॥ संकल्पयतिपश्चात्तत्तत्तामेतिमनःपदम् ॥ ५ ॥ मनस्त्वं कल्पमात्रेणगंधर्वपुरवत्क्षणात् ॥ तनोतीदमसदृश्यंब्राह्मीस्थितिमिवत्यजत् ॥ ६ ॥ चित्स्वरूपंपरिकच्छून्यमेवावतिष्ठते ॥ यत्तदृश्यंस्थितंतत्स्यादृश्यमाकाशमेवतत् ॥७॥ कृत्वापद्मजसंकल्परूपंपश्यतिपद्मजम् ॥ ततोजगत्कल्पयतिसप्रजापतिपूर्वकम् ॥ ८ ॥

अर्थ—उस संकल्पसे वही चिद्घनताको प्राप्त होती है उसके पश्चात् उसी घनताको मन तथा जीव उपाधि-

रूपसे संकल्प करती है ॥ ५ ॥ मनके संकल्पमात्रसे गंधर्वनगरके समान क्षणभरमें अपनी ब्राह्मी दृग्रूपताको त्याग करते हुयेके समान इस असद् दृश्यका विस्तार करती है ॥ ६ ॥ चारों ओरसे प्रकाशमानही चित्स्वरूप परंतु आभ्यंतर दृष्टिसे शून्यकेही समान स्थितहै, और यह जो दृश्य स्थितहै वह अपनेही रूपसे स्थितहै और सब जनोंकी दृष्टिमें प्रसिद्ध आकाशही है ॥ ७ ॥ वही चिद्ब्रह्माका संकल्प करके अपनेको ब्रह्मारूप देखती है, उसके अनन्तर दशों प्रजापतियोंसहित जगत्‌की कल्पना करती है ॥ ८ ॥

चतुर्दशविधानंतभूतजातसघुंघुमा ॥ सृष्टिरेवमियंरामचित्तनिर्मितिमागता ॥ ९ ॥ चित्तमात्रमयीशून्याव्योममात्रशरीरिका ॥ संकल्पमात्रनगरीभ्रांतिमात्रात्मिकासती ॥ १० ॥ इहकाश्चिन्महामोहाभूतानांजातयःस्थिताः ॥ काश्चिदभ्युदितज्ञानाःकाश्चिन्मध्येस्खलंतिहि ॥ ११ ॥ भुविसंबध्यमानानायांत्येनासुपदेश्यताम् ॥ सर्वासांभूतजातीनांयाएतानरजातयः ॥ १२ ॥

अर्थ—चौदह भुवनोंमें अनन्त प्राणियोंकी जातिरूप यह सृष्टि हे रामजी ! चित्तसेही रचनाको प्राप्त हुई है ॥ ९ ॥ यह सृष्टि चित्तमात्र आकाशके तुल्य शून्य शरीरवाली, संकल्पकी नगरीके समान, भ्रांतिमात्र कल्पितहै ॥ १० ॥ इस ब्रह्माण्डमें कोई प्राणियोंकी जाति महामोहवाली हैं और कुछ ज्ञानवाली हैं और कोई विघ्नोंके कारण बीचमेंही गिर जाती हैं ॥ ११ ॥ संसारमें सम्पूर्ण प्राणियोंकी जातिमें पृथिवीमें जिनका संबन्धहै उनमेंसे भरतखंडमें स्थित जो मनुष्यकी जातिहैं वेही वैराग्यादिके कारण उपदेशके योग्यहैं ॥ १२ ॥

बह्वाधयोदुःखमयामोहद्वेषभयातुराः ॥ तासांसम्यक्प्रवक्ष्यामितावद्राजससात्विकीः ॥ १३ ॥ यत्तदत्त्यमृतंब्रह्मसर्वव्यापिनिरामयम् ॥ चिदाभासमनंताख्यमनादिविगतभ्रमम् ॥ १४ ॥ निस्पंदवपुषस्तस्यस्पंदःसत्तैकदेशतः ॥ घनतामेतिक्षोभ्येब्धौचलताचलतामिव ॥ १५ ॥ श्रीरामउवाच ॥ अनन्तस्यात्मतत्त्वस्यएकदेशःकउच्यते ॥ कथंविकारितावास्यात्कथंवाद्वयविक्रमः ॥ १६ ॥

अर्थ—उन जातियोंमेंसे कितने मानसी चिंताग्रस्त दुःखमय मोह राग द्वेष तथा भयसे आतुर रहती हैं, इनमेंसे राजस और सात्विक जातियोंको ४२ के सर्गमें मैं भलीभांति निरूपण करूंगा ॥ १३ ॥ और जो अमृत सर्वव्यापी निरामय चिदाभास भ्रमरहित अनादि तथा अनन्त ब्रह्महै उसकोभी उसी स्थलमें कहूंगा ॥ १४ ॥ स्पन्दरहित शरीरवाले उस परमात्माका स्पन्द (चेष्टा विशेष) निश्चल समुद्रमें चंचल तरंगोंकी चंचलताके समान सत्ताके एक देशसे जैसे जीवभावसे घनताको प्राप्त होताहै वहभी उसी स्थलपर वर्णन करूंगा ॥ १५ ॥ श्रीरामजी बोले—हे प्रभो ! अनन्त आत्मतत्वका एक देश कौन और कैसे होताहै; और उसकी विकारिता कैसे होती है और अद्वितीय आत्मामें स्पन्द (गति) कैसे ? ॥ १६ ॥

॥श्रीवसिष्ठउवाच॥ तेनजातंततोजातमितीयंरचनागिराम् ॥शास्त्रसंव्यवहारार्थंनरामपरमार्थतः॥१७॥ विकारितावयवितादिक्सत्तादेशतादयः ॥ क्रमानसंभवंतीशेदृश्यमानोदयाअपि ॥ १८ ॥ तंविनाकल्पनैवान्यानास्तिनापिभविष्यति ॥ कुतस्त्यौक्रमशब्दार्थावुक्तयोव्यवहारजाः ॥ १९ ॥ यायेहकलनायोर्थोयःशब्दोयोगिरांगणः ॥ तज्जत्वात्तन्मयत्वाच्चतत्तत्पदमिवेष्यते ॥ २० ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—उस परमात्माके द्वारा वा उससे उत्पन्न हुआ यह वाणियोंकी रचना शास्त्रके व्यवहारके लिये है न कि परमार्थसे ॥ १७ ॥ विकारिता, अवयविता, दिक्सत्ता, और एक देशता आदि क्रम प्रत्यक्ष रूपसे दृश्यमानभी परमात्मामें सम्भव नहीं है ॥ १८ ॥ उस चित् प्रकाशके विना अन्य कल्पना न है और न होगी तो क्रम शब्द तथा उसका अर्थ (कार्य कारण) कहां, और व्यवहारसे उत्पन्न उक्तिभी कहांसे होसकती हैं ॥१९॥ इस जगत्‌में जो कुछ कल्पनाहै जो अर्थ तथा शब्दहैं और जो वाक्यके गणहैं, ये सब उससे उत्पन्न होनेसे तन्मय होनेसे सद्वस्तु रूपही हैं ॥ २० ॥

तज्जःसएवभवतिवह्नेर्वह्निरिवोत्थितः ॥ जन्योयंजनकश्चायमित्युक्ताभेदकल्पना ॥२१॥ अयमस्मात्ससुत्पन्नइतीयंयाजगत्स्थितिः ॥ आधिक्यंतत्क्रियाशक्तौजन्यंजनकमेववा ॥ २२ ॥ इदमन्यदिदंचान्यदितिशब्दार्थविक्लवः ॥ उक्तावेवनदेवेस्तिप्रमितौभिन्नतायतः ॥ २३ ॥ तज्जयैवमनःशक्त्यास्वतस्संज्ञ... वर्त्तते ॥ दृढभावनयातस्मादिष्टोर्थःप्रतिपद्यते ॥ २४ ॥

अर्थ—जैसे अग्निसे उत्पन्न अग्निही होताहै ऐसेही परमात्मासे उत्पन्न परमात्मरूपही है, यह जन्य और जनक है इसप्रकार भेदकी कल्पना मिथ्याही कही गई है ॥ २१ ॥ यह द्वीप वा लोक इससे उत्पन्न हुआ यह जो जगत्‌की

स्थितिहै, वह मायाकी शक्तिसे जैसे एक दीपसे दूसरे दीपकी रचना होती है ऐसेही आत्माकी क्रियाशक्तिमें जो अधिकताहै वही जन्यजनक द्विधारूपसे भासती है ॥ २२ ॥ यह अन्यहै यह अन्यहै यह जो शब्द अर्थके व्यवहारका क्रमहै वह वाणीमात्रमें है न कि परमात्मामें, क्योंकि परिच्छेद होनेसे भिन्नता होती है ॥ २३ ॥ ब्रह्मसे उत्पन्न मनकी शक्तिद्वारा स्वभावसेही नामका विभाग प्रवृत्त होताहै और मनकीही दृढभावनासे जगत्का व्यवहार होताहै ॥ २४ ॥

अग्नेःशिखायाएकस्याद्वितीयाजनकेतिया ॥ उक्तिवैचित्र्यमेवैतन्नोत्त्यर्थंनास्तिसत्यता ॥ २५ ॥ नजन्यजनकाद्यास्ताःसंभवंत्युक्तयःपरे ॥ एकमेवह्यनंतत्वात्किंकथंजनयिष्यति ॥ २६ ॥ उक्तेरेवस्वभावोयमुक्तेरुक्तिरनंतरम् ॥ प्रतियोगिव्यवच्छेदसंख्याद्यर्थेनयुज्यते ॥ २७ ॥ ऊर्मिजालमिवांभोधौपरेयःपरिदृश्यते ॥ शब्दोर्थकलनाकारस्तद्ब्रह्मैवविदुर्बुधाः ॥ २८ ॥

अर्थ—अग्निकी एक शिखाकी दूसरी शिखा जनक होती है यह कथनकी विचित्रताहै इसमें कुछ सत्यता नहीं है ॥ २५ ॥ परमात्मामें जन्य और जनकादि कथनका सम्भव नहीं है क्योंकि एकही परमात्मा कैसे और किसको उत्पन्न करेगा ॥ २६ ॥ यह उक्तिका स्वभावहै कि एक उक्तिके अनन्तर दूसरी उक्ति उसकी विरोधी भिन्न और द्वित्वादि संख्यायुक्त होती है ॥ २७ ॥ जैसे समुद्रमें तरंगसमूह देखपडताहै ऐसेही शब्द अर्थकी कल्पनाका आकारहै इसको पण्डितजन ब्रह्मही कहते हैं ॥ २८ ॥

ब्रह्मचिद्ब्रह्मचमनोब्रह्मविज्ञानवस्तुच ॥ ब्रह्मार्थोब्रह्मशब्दश्चब्रह्मचिद्ब्रह्मधातवः ॥ २९ ॥ ब्रह्मसर्वमिदंविश्वंविश्वातीतंचतत्पदम् ॥ वस्तुतस्तुजगन्नास्तिसर्वंब्रह्मैवकेवलम् ॥ ३० ॥ अयमन्योयमन्योयंभागइत्यंबरात्मनि ॥ मिथ्याज्ञानविकल्पोक्तिर्वाचिसत्यार्थताक्वका ॥ ३१ ॥ वह्नेःशिखेवजातेयंशिखेतिमनसोभिधा ॥ चापलोत्थविकल्पश्रीर्वस्तुतःस्यान्नसिद्ध्यति ॥ ३२ ॥

अर्थ—प्रत्यगात्मा ब्रह्मही है, मन और बुद्धिके भेद ब्रह्मही हैं शब्द और अर्थ ब्रह्मही हैं, ईश्वर व साक्षी चेतनब्रह्मही है तथा सबमें तत्ववस्तु ब्रह्मही है ॥ २९ ॥ यह सब विश्व ब्रह्मरूपही है और ब्रह्मपद विश्वसे परेभी हैं क्योंकि यथार्थमें जगत् कुछ नहीं है सब केवल ब्रह्मही है ॥ ३० ॥ यह अन्यहै यह अन्यहै यह विभाग आकाशरूप परमात्मामें नहीं है, यह मिथ्या ज्ञानकी विकल्पोक्ति वाणी मात्रमें हैं इसमें सत्यार्थता कहां ॥ ३१ ॥ अग्निकी शिखासे दूसरी अग्निकी शिखा उत्पन्न हुई इसीप्रकार ब्रह्मसे मनकी संज्ञाहै और मनकी चपलतासे उत्पन्न विकल्पकी श्री नित्य सिद्ध कूटस्थ ब्रह्ममें सिद्ध नहीं हो सक्ती ॥ ३२ ॥

असत्यैवविकल्पोक्तिःसत्यभावोविकल्पते ॥ तमोपहतदृष्टित्वाद्द्विचंद्रज्ञानदोषवत् ॥ ३३ ॥ सर्वस्मात्सर्वगात्तस्मादनंताद्ब्रह्मणःपदात् ॥ नान्यत्किंचित्संभवतितदुत्थंयत्तदेवतत् ॥ ३४ ॥ ब्रह्मतत्त्वंविनानेहकिंचिदेवोपपद्यते ॥ सर्वंचखल्विदंब्रह्मेत्येषैवपरमार्थता ॥ ३५ ॥ एवंप्रायश्चवहेप्राज्ञसिद्धांतस्तेभविष्यति ॥ तत्रैवोदाहरिष्यामःसिद्धांतार्थोक्तिपंजरम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—यह विकल्पकी उक्ति असत्यही है और भ्रांत दृष्टिसे दो चंद्रके ज्ञानके दोषके समान सत्यस्वरूप ब्रह्ममें विकल्प कियाजाताहै ॥ ३३ ॥ सर्व रूपसर्वव्यापी उस अनंत ब्रह्मपदसे अन्य किसीका संभव नहीं और जो कुछ उससे आविर्भूत होताहै वह ब्रह्मरूपहीहै ॥ ३४ ॥ ब्रह्मतत्वके विना कुछभी उत्पन्न नहीं होसकता यह सब ब्रह्महीहै यही कथन यथार्थहै हे प्राज्ञ रामजी! इत्यादि सिद्धांत तुमारी बुद्धिमें पीछेसे स्थित होगा और यह सिद्धान्तार्थकी उक्तिका पंजर हम निर्वाण प्रकरणमें निरूपण करेंगे ॥ ३५ ॥ इस परमार्थतामें अविद्यादिकका संचार सर्वथा नहीं है इन संपूर्ण अर्थोंको उन २ अज्ञानोंके नष्ट होनेपर तुम भलीभांति जानोगे ॥ ३६ ॥

इहाविद्यादिकाःकेचिद्विद्यंतेनेतरक्रमाः ॥ ज्ञास्यस्यलमशेषार्थांस्तत्तदज्ञानसंक्षये ॥ ३७ ॥ अवस्तुसंक्षयेवस्तुयथावस्तुप्रसीदति ॥ यथाचदृश्यतेदृश्यंजगन्नैशतमःक्षये ॥ ३८ ॥ यदिदमखिलमाततंकुदृष्ट्यातदुपशमेतवरामनिर्मलाभे ॥ अवितथपदनिर्मलेभविष्यत्यवितथमेवनसंशयोत्रकश्चित् ॥ ३९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे ब्रह्मैवेदंसर्वंजगदितिप्रतिपादनं नाम चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥

अर्थ—वस्तुकी मलिनताके नष्ट होजानेपर जैसे वस्तुका यथावद्रूप प्रगट होताहै और जैसे रात्रिके अंधकारके नाश होजानेपर यह दृश्य जगत् देख पडताहै ऐसेही अज्ञान नाश होनेसे ब्रह्मपद भान होताहै ॥ ३८ ॥ अज्ञान

दूषित दृष्टिसे यह जो विशाल जगत् भान होताहै उसके शांत होनेपर हे रामजी ! दर्पणके समान निर्मल सत्य परमपदमें तुह्मारी बुद्धि निश्चय करके स्थित होगी ॥ ३९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे ब्रह्मैवेदंजगदितिप्रतिपादनं नाम चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

कल्पनादि विशेषोंका मायामूलहै और वह माया अनिर्वचनीय प्रतिकार करनेके योग्य अविचिंत्य और मृषाहै इत्यादि विषयका वर्णन इस ४१ के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ क्षीरोदकुक्षितुल्याभिःशीतलामलदीप्तिभिः ॥ तवोक्तिभिर्विचित्राभिर्गंभीराभिरिवाभितः ॥ १ ॥ क्षणमांध्यमिवाप्नोमिक्षणंयामिप्रकाशताम् ॥ शांतातपलवःप्रावृड्लोलाभ्रइववासरः ॥ २ ॥ अनंतस्याप्रमेयस्यसर्वस्यैकस्यभास्वतः ॥ अनस्तमितसारस्यकलनाकथमागता ॥ ३ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यथाभूतार्थवाक्यार्थाःसर्वाएवममोक्तयः ॥ नासमर्थाविरूपार्थाःपूर्वापरविरोधदाः॥४॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-हे भगवन् ! शीतल और निर्मल प्रकाश युक्त चंद्रमाके तुल्य विचित्र और चारों ओरसे गंभीर अर्थवाली आपकी युक्तियोंसे ॥ १ ॥ क्षणभरके लिये तो अन्धताको क्षणभरके लिये प्रकाशताको मैं ऐसे प्राप्त होताहुं जैसे वर्षाकालमें चंचल मेघ और शांत आतपयुक्त दिन ॥ २ ॥ हे प्रभो अनंत अप्रमेय पूर्ण सदा प्रकाशमान एकरस और उदित परमार्थ स्वरूप परमात्मामें विकारकी कल्पना कैसे आई ॥ ३ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! मेरी संपूर्ण उक्ति सत्यार्थ हैं उनमेंसे कोईभी आकांक्षा व योग्यता रहित नहींहैं और न उनमेंसे कोई महा वाक्यके संबंधसे रहित हैं और न उनमें पूर्वापर विरोधहै ॥ ४ ॥

ज्ञानदृष्टौप्रसन्नायांप्रबोधेविततोदये ॥ यथावज्ज्ञास्यसिस्वस्थोमद्वाग्दृष्टिबलाबलम् ॥ ५ ॥ उपदेश्योपदेशार्थशास्त्रार्थप्रतिपत्तये ॥ शब्दार्थवाक्यरचनाभ्रमोमातन्मयोभव ॥ ६ ॥ यदापुराज्ञास्यसितत्सत्यमत्यंतनिर्मलम् ॥ वाच्यवाचकशब्दार्थभेदंत्यक्ष्यसिवैतदा ॥ ७ ॥ भेदकृद्वाक्प्रपंचोयमुपदेश्येषुकल्पितः ॥ उपदेश्योपदेशार्थशास्त्रार्थप्रतिपत्तये ॥ ८ ॥

अर्थ—ज्ञानकी दृष्टि प्रसन्न होनेपर और ज्ञानके अच्छीतरहसे उदय होनेपर स्वस्थ चित्त होकर तुम मेरे वचनोंका बलाबल दूसरेके वचनोंकी दृष्टिके अपेक्षा यथावत् जानोगे ॥ ५ ॥ असत्य शब्दार्थ सहित वाक्योंकी रचनाका भ्रमभी सत्य अर्थके ज्ञानमें हेतु होताहै जैसे स्वप्नादि, इसलिये उपदेश वस्तुके उपदेशार्थ यह वाग्जालका प्रपंचहै तुम मिथ्या भ्रममय मतहो ॥ ६ ॥ जब तुम अत्यंत निर्मल सत्यपदको आगे जानजाओगे तब तुम वाच्यवाचक शब्द अर्थके भेदोंको त्यागदोगे ॥ ७ ॥ उपदेश्य और उपदेशार्थ सत्य शास्त्रार्थके बोधकेलिये यह भेदकारक वाणीका प्रपंच उपदेश करने योग्य अज्ञ पुरुषोंकेलिये कल्पित कियाहै ॥ ८ ॥

शब्दार्थवाक्प्रपंचोयमुपदेशेषुकल्पितः ॥ सदाज्ञेषुनतज्ज्ञेषुविद्यतेपारमार्थिकः ॥ ९ ॥ कलनामलमोहादिकिंचिन्नात्मनिविद्यते ॥ नीरागंब्रह्मपरमंतदेवेदंजगत्स्थितम् ॥ १० ॥ एतद्विचित्ररूपाभिर्युक्तिभिर्बहुशःपुनः ॥ विस्तरेणैववक्तव्यंसिद्धांतावसरेनघ ॥ ११ ॥ वाक्प्रपंचंविनात्वेतदज्ञानमतुलंतमः ॥ भेत्तुमन्योन्यमुदितंयत्नंकर्त्तुंनशक्यते ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! सदा अज्ञ पुरुषोंकेलिये उपदेशमें शब्दार्थ वाणीका प्रपंच यह कल्पित किया गयाहै ॥ ९ ॥ चित्की विषयकी ओर उन्मुखता, पूर्व संस्कार तथा कर्म और मोहादि आत्मामें कुछ नहींहै, परंतु ब्रह्मराग रहित है और उसी रूपसे यह जगत्भी स्थित है ॥ १० ॥ हे पापरहित रामजी ! यह वार्ता विचित्र रूपसे अनेक युक्तियोंसे सिद्धांतके समय कहूंगा ॥ ११ ॥ साधन अज्ञान और मूल अज्ञानरूपी तम परस्परकी सहायतासे सहस्रों शाखा रूपसे उदित हैं उसको भेदन करनेकेलिये वाक् प्रपंचके शिवाय कोईभी यत्न नहीं करसकते ॥ १२ ॥

अविद्ययैवोत्तमयास्वात्मनाशोद्यमेच्छया ॥ विद्यासाप्रार्थ्यतेरामसर्वदोषापहारिणी ॥ १३ ॥ शाम्यतिह्यस्त्रमस्त्रेणमलेनक्षाल्यतेमलः ॥ शमंविषंविषेणेतिरिपुणाहन्यतेरिपुः ॥ १४ ॥ ईदृशीराममायेयंयास्वनाशेनहर्षदा ॥ नलक्ष्यतेस्वभावोस्याःप्रेक्ष्यमाणैवनश्यति ॥ १५ ॥ विवेकमाच्छादयतिजगंतिजनयत्यलम् ॥ नचविज्ञायतेकैषापश्याश्चर्यमिदंजगत् ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! अनेक जन्मोंके सुकृतोंसे संचित शुद्ध अंतःकरणकार रूपसे परिणत अपने नाशार्थं उद्यत उत्तम अविद्याद्वारा (उपदेशादिवाक् प्रपंचद्वारा) सर्व दोषनाशिनी विद्याकी प्रार्थनाकी जातीहै ॥ १३॥ अस्त्रकी शांती अस्त्रसे होतीहै क्षाररूपमलसे मलका शोधन होताहै विषकी शांति विषसे होती है और शत्रुका नाश शत्रुसे होताहै, ऐसे अविद्यासे अविद्या नष्ट होतीहै ॥ १४ ॥ हे रामजी ! यह माया ऐसीहै कि अपने नाशसे आनंद देतीहै और इसका स्वभाव लक्षित नहीं होता, परंतु दृष्टिपथमें आतेही नष्ट होजातीहै ॥ १५ ॥ यह माया विवेकको आच्छादन करती है और अनेक जगत्को उत्पन्न करतीहै परंतु यह नहीं जानाजाता कि यह कौनहै, देखो कैसा असंभावित आश्चर्यमय यह जगत् इसीका कार्य है ॥ १६ ॥

अप्रेक्ष्यमाणास्फुरतिप्रेक्षिताद्रुविनश्यति ॥ मायेयमपरिज्ञायमानरूपैववल्गति ॥ १७ ॥ अहोनुखलु चित्रेयंमायासंसारबंधनी ॥ असत्येवातिसत्येवस्वज्ञानंविहितंतया ॥ १८ ॥ अत्यभिन्नपदेतस्मिस्त न्वानाभेदमाततम् ॥ संसारमायायेनासौतेनासौपुरुषोत्तमः ॥ १९ ॥ नास्त्येषापरमार्थेनत्वेवंभावन येद्धया ॥ ज्ञोभूत्वाज्ञेयसंप्राप्तोज्ञास्यस्यस्यास्त्वमाशयम् ॥ २० ॥

अर्थ—अदृष्ट होनेसे यह स्फुरती है और दृष्ट होनेसे तो नष्ट होजाती है यह माया अपरिज्ञातरूपही गर्जती है ॥ १७ ॥ अहो ! यह विचित्र संसारके बंधनको देनेवाली कैसी अपूर्व मायाहै और असत्यही सत्यके समान भासती है देखो इसने कैसा ज्ञान रचाहै ॥ १८ ॥ यह अक्षर माया अति अभिन्न परमपद आत्मामें नश्वर विशाल भेदको विस्तार करती है, इसीसे यह आत्माक्षर अक्षररूप जो पुरुष उससे अतीत पुरुषोत्तमरूपहै ॥ १९ ॥ परमार्थरूपसे यह नहीं है और आचार्य, वेद, तर्क, और अपने अनुभवसे प्रदीप्त भावनासे ज्ञानी होकर तुम ज्ञेय आत्मस्वरूपको जानोंगे और तब मेरे वचनके आशयकोभी समझोगे ॥ २० ॥

यावत्त्वनप्रबुद्धस्त्वंतावन्मद्वचसैवते ॥ निश्चयोभवतूद्रामोनास्त्यविद्येतिनिश्चलः ॥ २१ ॥ यदिदंदृ श्यतांयातंमानसंमननंमहत् ॥ असन्मात्रमिदंयस्मान्मनोमात्रविजृंभितम् ॥ २२ ॥ सत्तद्ब्रह्मेतिय स्यांतर्निश्चयःसोपिमोक्षभाक् ॥ चलाचलाकृतिर्यायादृष्टिरबद्धभावना ॥ २३ ॥ सासमग्रजगद्भूतख गबंधनवागुरा ॥ यःस्वप्नभूमिवद्भ्रांतमसत्सद्वैकनिश्चयः ॥ २४ ॥

अर्थ—जबतक तुमको बोध नहीं है तबतक हमारे वचनहीसे तुमको यह निश्चय होकि अविद्या नहींहै ॥२१॥ और यह मन संबंधी मनका विशाल मननरूप दृश्यभावको प्राप्त हुआ है यह सब असन्मात्र है, क्योंकि यह सब मनका विलासमात्रहै ॥ २२ ॥ जिसके अंतःकरणमें यह निश्चय है कि यह जगत् मायामय मिथ्या है वहभी मोक्षका भागी है और चलअचल आकृतिवाली वध्यभावना सहित जो २ दृष्ट है ॥ २३ ॥ वह २ संपूर्ण जगत्के प्राणीरूप पक्षियोंके बंधनके अर्थजाल है और जो प्राणी अतीत अनागत और वर्तमान जगत्के विषयमें असत् वा सद्रूपसे एक दृढनिश्चय करके ॥ २४ ॥

जगत्पश्यत्यसक्तात्मानसद्दुःखेनिमज्जति ॥ यस्यैतास्वस्वरूपासुभावनास्वात्मभावना ॥ २५ ॥ अस्व रूपस्यतस्यापिसाह्यविद्यैवविद्यते ॥ विकारितादयोदोषानकेचनमहात्मनि ॥ २६ ॥ परमात्मनिविद्यं तेपयसीवेहपांसवः ॥ भावनाशब्दशब्दार्थरंजनेयंजगद्गता ॥ २७ ॥ व्यवहारार्थमुत्पन्नाव्यतिरिक्ताच नात्मनः ॥ अनेनव्यवहारेणविनैताःशास्त्रदृष्टयः ॥ २८ ॥

अर्थ—असक्तदृष्टिसे जगत्को देखताहै वह दुःखोंमें नहीं निमग्न होता जिस पुरुषको देह इन्द्रियादिकमें अहंभावना है ॥ २५ ॥ वही पुरुष अपने एकरूपको न जाननेसे अविद्यावान्है और वही दुःखोंमें डूबताहै विकारतादिक दोष परमपदमें ऐसे नहीं है ॥ २६ ॥ जैसे समुद्रमें रज और नाम और रूपमें जो चित्की भावनाहै वह स्फटिक मणिके सदृश तत्कालिक रागके सदृश है ॥ २७ ॥ और यह रंजना व्यवहारकेलिये उत्पन्नहै और आत्मासे पृथक् नहीं है इस व्यवहारके बिना शास्त्रकी दृष्टि ॥ २८ ॥

सुस्थितिंनाधिगच्छंतिपटाइवविनांतवः ॥ उह्यमानोह्यविद्यायामात्मानेहोपलक्ष्यते ॥ २९ ॥ आत्मज्ञा नादृतेतच्चशास्त्रार्थात्समवाप्यते ॥ अविद्यासरितःपारमात्मलाभादृतेकिल ॥३०॥ रामनासाद्यतेतद्धि पदमक्षयमुच्यते ॥ यतःकुतश्चिज्जातेयमविद्यामलदायिनी ॥ ३१ ॥ नूनंस्थितिमुपायातासमासाद्यप दंस्थिता ॥ कुतोजातेयमितितेराममास्तुविचारणा ॥ ३२ ॥

अर्थ—ऐसे संस्थितिको नहीं प्राप्त होती जैसे बिना सूत्रके पट, अविद्यामें बहता हुआ आत्मा इस संसारमें

आत्मज्ञानके बिना अनुभूत नहीं होता ॥ २९ ॥ और आत्मज्ञानका अनुभव शास्त्रके अर्थोंसे प्राप्त होताहै हे रामजी ! अविद्यारूपनदीके पार आत्मलाभके बिना नहीं प्राप्त होसकता ॥ ३० ॥ वही आत्मलाभ अक्षयपद कहा जाताहै यह अविद्या जहां कहींसे प्राप्त हुई हो परन्तु अविद्यारूपी मलको देनेवाली है ॥ ३१ ॥ और यह हृदयरूपी स्थानको प्राप्त होकर स्थितिको प्राप्त हुई है हे रामजी ! यह अविद्या कहांसे उत्पन्न हुई है यह विचार तुमको मत हो ॥ ३२ ॥

इमांकथमहंहन्मीत्येषातेऽस्तुविचारणा ॥ अस्तंगतायांक्षीणायामस्यांज्ञास्यसिराघव ॥ ३३ ॥ यतए पायथाचैषायथानष्टेत्यखंडितम् ॥ वस्तुतःकिलनास्त्येषाविभात्येषानवेक्षिता ॥ ३४ ॥ असतोभ्रांतता सत्यरूपांजानातुकःकुतः ॥ जातेयंप्रौढिमापन्नादोपयैवाततताकृतिः ॥ ३५ ॥ बलात्प्रणाशयत्वेनांपरि ज्ञास्यसिवैततः ॥ अपिशूराअतिप्राज्ञास्तेनसंतिजगत्त्रये ॥ ३६ ॥

अर्थ—किंतु इसको मैं कैसे मारूं यही विचार तुमको हो इसके तत्त्वको इसके अस्त तथा क्षीण होनेपर तुम जानोगे ॥३३॥ जहांसे यह आई और जैसी यह है और जैसे यह नष्ट होती है यह पूर्ण रीतिसे तुमको भान होजावेगा, यथार्थमें यह नहीं है बिना देखेही यह प्रकाशित होरही है ॥ ३४ ॥ असत् पदार्थकी भ्रांतिता वा उसकी सत्यरूपता कौन कहांसे जानसकताहै, यह उत्पन्न होकर विशाल आकारवाली प्रौढताको दोषकेहीलिये प्राप्त हुई है ॥ ३५ ॥ हे रामजी ! इसको बलसे नष्ट करो तब इसको जानोगे बडे २ बुद्धिमान्भी शूरवीर तीनोंलोकमें ऐसे नहीं है ॥३६॥

अविद्ययायेपुरुषाननामविवशीकृताः ॥ तदस्यारोगशीलायायत्नंकुरुविनाशने ॥ ३७ ॥ यथैषाजन्मदुः खेषुनभूयस्त्वांनियोक्ष्यति ॥ सर्वापदामेकसखीमज्ञानतरुमंजरीम् ॥ अनर्थसार्थजननीमविद्यामलमु द्धर ॥३८॥ भयविषाददुराधिविपत्प्रदांहृदयमोहमहापटलांकुराम् ॥ भृशमपास्यकुदृष्टिमिमांबलाद्भवभ वार्णवपारमुपागतः ॥ ३९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे विद्याकथनं नामैकचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४१ ॥

अर्थ—जो अविद्याके वशीभूत न हुये हों इसलिये रोगरूप इस अविद्याके नाश करनेमें यत्न करो ॥ ३७ ॥ जिसमें कि तुमको पुनः यह जन्मके दुःखमें न डाले, यह अविद्या सम्पूर्ण आपत्तियोंकी मुख्य सखी, अज्ञानरूपी वृक्षकी लता, और अनर्थरूपी समूहकी माताहै इसलिये इस अविद्यारूपी मलसे अपना उद्धार करो ॥ ३८ ॥ भय-विषाद दुष्ट मानसी चिंताये तथा विपत्तियोंको देनेहारी, और हृदयके मोहका महापटलका अंकुर, यह कुदृष्टिरूप जो अविद्याहै इसको भलीभांति दूर करके संसाररूपी समुद्रके पार प्राप्त हो ॥ ३९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे अविद्याकथनं नामैकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४२ ॥

अनंत शक्ति महा चित्की क्रमसे वासनाकी घनता, और जीवरूप होनेका क्रम विस्तारसे निरूपण इस ४२ के सर्गमें कियागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ कुपितस्यासतोप्यस्यप्रेक्षामात्रविनाशिनः ॥ अविद्यावितताव्याधेरौषधंशृणुरा घव ॥ १ ॥ यांतांकथयितुंजातिंरामराजससात्विकीम् ॥ मनोवीर्यविचारार्थंप्रस्तुतोस्मीहतांशृणु ॥२॥ यत्तदव्यमृतंब्रह्मसर्वव्यापिनिरामयम् ॥ चिदाभासमनंताख्यमनादिविगतभ्रमम् ॥ ३ ॥ चित्स्पंदव पुपस्तस्यस्पंदस्तस्माच्चिदेवहि ॥ प्रदेशाद्धनतामेतिसौम्योब्धिश्चलनादिव ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे राघव ! दृष्टिपातमात्र (विचारमात्र) से विनाशी, और असत् होनेसेभी कुपित होके अनेक अनर्थजनक इस विशाल अविद्यारूप रोगका औषध सुनिये ॥ १ ॥ हे रामजी ! ४० के सर्गमें जो राजस और सात्विक जातिके वर्णनकी प्रतिज्ञा की थी सो मनके पराक्रमके निरूपण करनेकेलिये मैं सन्नद्धहुं आप सुनिये ॥ २ ॥ जो अमृत, सर्वव्यापी, निरामय, अनादि, अनंत और भ्रमशून्य, चिद्ब्रह्महै ॥ ३ ॥ उस चेतन-मात्र शरीरवाले ब्रह्मका स्पंद (चलनात्मक क्रियाविशेष) चिद्रूपही है वह औपाधिक एकदेशसे दूसरे देशमें ऐसे दौडताहै जैसे शांत समुद्र तरंगादिरूपसे ॥ ४ ॥

अंतरब्धेर्जलंयद्वत्स्पंदास्पंदवदीहते ॥ सर्वशक्तिस्तथैकत्रगच्छतिस्पंदशक्तिताम् ॥ ५ ॥ आत्मन्येवात्मनाव्योम्नियाथासरतिमारुतः ॥ तथेहात्मात्मशक्त्यैवस्वात्मन्येवैतिलोलताम् ॥ ६ ॥ स्वशिखास्पंदशक्त्यैवदीपःसौम्योयथोन्नतम् ॥ एतितद्वदसावात्मातत्स्वेवपुषिवल्गति ॥ ७ ॥ जलांतरंबुधिर्यद्वल्लसद्वारविचंचलः ॥ सर्वशक्तिर्वपुष्येवतथास्पंदविलासवान् ॥ ८ ॥

अर्थ—जैसे समुद्रादिमें जल किसी एक देश (बहिर्भाग स्पन्दसहित) में अन्यत्र स्पन्दरहित चेष्टा करताहै ऐसेही सर्वशक्तिमान् ब्रह्मभी एक देशमें (कल्पित) स्पन्द (क्रिया) शक्तिताको प्राप्त होताहै ॥ ५ ॥ जैसे आकाशमें वायु अपने आत्मासे अपने आत्माहीमें गमन करताहै इसीप्रकार स्वतः कूटस्थभी आत्मा इस संसारमें अपनेही स्वरूपमें अध्याससे चंचलताको प्राप्त होताहै ॥ ६ ॥ जैसे वायु आदिके विक्षेपसे शून्यभी दीप अपनी शिखाको शक्तिसेही ऊर्ध्वदेशको प्राप्त होताहै ऐसेही अपनी शक्तिसे अपनेही रूपमें आत्मा, जगत् जीवादिरूपसे प्रकाश करताहै ॥ ७ ॥ जैसे शरद् वा आतप आदिके संबंधसे शोभित जल प्रदेशमें जलके भीतरही समुद्र चंचलके सदृश भान होताहै ऐसेही सर्वशक्तिमान् आत्मा अपने स्वरूपके कल्पित एक देशमें क्रियाशक्तिके विलाससे संयुक्त होताहै ॥ ८ ॥

यथोल्लसतिभाश्वकैःकचन्कनकसागरः ॥ तथात्मनिपरेस्पंदैःस्फुरत्यक्षैश्चिदर्णवः ॥ ९ ॥ लक्ष्यते मौक्तिकस्पंदोयथाव्योम्निदृशोऽदृशि ॥ तथाभातिलसद्रूपाचिच्छक्तिश्चिन्महांबरे ॥ १० ॥ किंचित्क्षुभितरूपासाचिच्छक्तिश्चिन्महार्णवे ॥ तन्मयीचित्स्फुरत्यच्छातत्रैवोर्मिरिवार्णवे ॥ ११ ॥ आत्मनोऽव्यतिरिक्तैवव्यतिरिक्तेवतिष्ठति ॥ आलोकश्रीरिवालोककोटरेयत्ततांगता ॥ १२ ॥

अर्थ—जैसे शरद् आतप आदिके दीप्तिसमूहोंसे देदीप्यमान द्रवीभूत सुवर्णके सदृश सागर स्फुरित होताहै ऐसेही इन्द्रियोंके प्रकाशोंसे चिद्रूप समुद्र स्फुरित होताहै ॥ ९ ॥ जैसे अतीन्द्रिय आकाशमें मोतियोंका समूह दृष्टिगत होताहै ऐसेही अतीन्द्रिय चिदाकाशमें शोभायमान चित्शक्ति स्फुरित होती है ॥ १० ॥ जब चिद्रूप महा समुद्रमें वह चित्शक्ति किंचित् क्षुभित होती है तब स्वच्छ चिद्ही तन्मय होके उसीमे ऐसे स्फुरित होती है जैसे समुद्रमें तरंग ॥ ११ ॥ इन्द्रिय संबंधिनी चित्शक्ति आत्म चित्शक्तिसे भिन्न नहीं है परन्तु भिन्नके समान स्थितहै, और उपाधिकृत परवशताको ऐसे प्राप्तहै जैसे सूची पाशादिके कल्पित आलोक(प्रकाश)के छिद्रमें आलोककी शोभा १२

क्षणंस्फुरतिसादेवीसर्वशक्तितयातया ॥ चेततिस्वांस्वयंशक्तिकलेंदोःशीततामिव ॥ १३ ॥ उदितैषा प्रकाशाख्याचिच्छक्तिःपरमात्मनः ॥ देशकालक्रियाशक्तीर्वयस्याःसंप्रकर्षति ॥ १४ ॥ स्वस्वभावंविदित्वैवमनाद्यंतपदेस्थिता ॥ रूपंपरिमितेवासौभावयत्यविभाविता ॥ १५ ॥ यदेवंभावितंरूपंतयापरमसत्तया ॥ तदैवैनामनुगतानामसंख्यादिकादृशः ॥ १६ ॥

अर्थ—वह चित् शक्तिरूप देवी उस अपनी सर्वशक्तिताके कारणसे क्षण (काल) रूपसे स्फुरित होती है, और इस अपनी कालिक शक्तिको स्वयं ऐसे द्योतित करती है जैसे चंद्रमाकी कला शीतताको ॥ १३ ॥ यह परमात्माकी प्रकाश नामिका चित्शक्ति उदयको प्राप्त होके देशकाल आदि क्रिया शक्तिरूप अपनी सखियोंको खींच लेती है ॥ १४ ॥ यह चित्शक्ति अपने स्वभावको जानकर आदि अंतशून्य परमात्मपदमें स्थितहै और अविचारित पूर्वोक्त कल्पितरूपको भ्रांतिसे अपना स्वभाव मानकर मैं परिच्छिन्नहुं ऐसी अपने आत्माकी दृढभावना करतीहै॥१५॥ जिससमय उस परमसत्ताने पूर्वोक्त परिच्छिन्न अपना रूप निश्चित किया उसीसमय नाम संख्या तथा प्राण इंद्रियादि इसमें अनुगत होती हैं ॥ १६ ॥

चिदेवैतदवस्त्वेवव्यतिरिक्तातथात्मनः ॥ अनंतातद्गतेवाशुलहरीवमहार्णवात् ॥ १७ ॥ यथाकटककेयूरैर्भेदोहेम्नोविलक्षणः ॥ तथात्मनश्चितोरूपंभावयंत्यास्वमांशिकम् ॥ १८ ॥ यथादीपेनदीपानांजातानामात्मनांतथा ॥ देशकालकलामात्रभेदःस्वाभाविकश्चितेः ॥ १९ ॥ देशकालपरिस्पंदशक्तिसंदीपिताथचित् ॥ संकल्पमनुधावंतीप्रयातिकलनापदम् ॥ २० ॥

अर्थ—इस रीतिसे चित्में कल्पित सम्पूर्ण पदार्थ परमार्थ चेतन मात्रही है, क्योंकि सद्रूप आत्मासे पृथक् अवस्तुहै, और अनंत संपूर्ण कल्पना उसके स्वरूपमें ऐसे अनुगतहैं जैसे समुद्रमें तरंग ॥ १७ ॥ जैसे कटक, केयूर आदिके साथ सुवर्णका भेदविलक्षणहै ऐसेही आत्मासे पृथक् भावना करनेवाली चित्के अंशकी कल्पनाके आधीन सम्पूर्ण जगतहै ॥ १८ ॥ जैसे एक दीपसे प्रज्वलित अनेक दीपोंका बत्ती आदि उपाधि देशसे देश, और उसके कालसे काल, तथा अवयवोंसे भेदहै न कि दीप तथा अग्निके स्वरूपसे ऐसेही देशकालकी उपाधिके

स्वभाव मात्रसे चित्का भेदहै न कि वास्तविक ॥ १९ ॥ देश और कालकी परिस्पंद शक्तिसे संदीप्त चित् सङ्कल्पोंकी ओर दौडती हुई दूषित रूपको प्राप्त होती है ॥ २० ॥

विकल्पकलिताकारंदेशकालक्रियास्पदम् ॥ चितोरूपंमहाबाहोक्षेत्रज्ञइतिकथ्यते ॥ २१ ॥ क्षेत्रंशरीर मित्याहुस्तदसौवेत्त्यखंडितम् ॥ सबाह्याभ्यंतरंतेनक्षेत्रज्ञइतिकथ्यते ॥ २२ ॥ वासनांकलयन्सोपिया त्यहंकारतांपुनः ॥ अहंकारोपिनिर्णीताकलंकोबुद्धिरुच्यते ॥२३॥ बुद्धिःसंकल्पकलिताप्रयातिमनसःप दम् ॥ मनोघनविकल्पंतुगच्छतींद्रियतांशनैः ॥ २४ ॥

अर्थ—हे महाबाहो रामजी ! देशकाल तथा क्रियाका स्थान और विकल्पसे दूषित आकर जो चित्का रूप है उसीको क्षेत्रज्ञ कहतेहैं ॥ २१ ॥ इस शरीरको क्षेत्र कहतेहैं और वह बाह्य और आभ्यंतर इस शरीरको संपूर्ण रूपसे जानताहै, इसीसे क्षेत्रज्ञ कहा जाताहै ॥ २२ ॥ वह जीव अर्थात् क्षेत्रज्ञ वासनाको कल्पना करता हुआ पुनः अहंकार रूपताको प्राप्त होताहै और अहंकारभी पदार्थोंका निश्चय करनेसे और कल्पांतरका हेतु होनेसे बुद्धि शब्दसे कहा जाताहै ॥ २३ ॥ संकल्पसे दूषित बुद्धि मनरूपताको प्राप्त होती है और घनीभूत विकल्पसे मन धीरे २ इंद्रियरूपताको प्राप्त होताहै ॥ २४ ॥

पाणिपादमयंदेहमिंद्रियाणिविदुर्बुधाः ॥ देहोसौज्ञायतेलोकेसूयतेपिचजीवति ॥ २५ ॥ एवंजीवेहिसं कल्पवासनारज्जुवेष्टितः ॥ दुःखजालपरीतात्माक्रमादायातिचित्तताम् ॥ २६ ॥ क्रमेणपाकवशतःफ लमेतियथान्यताम् ॥ अवस्थयैवनाकृत्याजीवोमलवशात्तथा ॥ २७ ॥ जीवोहंकारतांप्राप्तस्त्वहंकारश्च बुद्धिताम् ॥ संकल्पजालकलितांमनस्तांबुद्धिरागता ॥ २८ ॥

अर्थ—हस्त पादादिमय इस शरीररूपको इंद्रियां प्राप्त होती है, और यह देह संसारमें प्रत्यक्ष रूपसे विदित होताहै, उत्पन्न होताहै, और जीवन धारण करताहै ॥ २५ ॥ इस प्रकार संकल्प तथा वासनाकी रस्सीसे बंधा हुआ तथा दुःखके जालोंसे व्याप्त यह जीव क्रमसे बाह्य और आभ्यंतर पदार्थ जाननेको समर्थ होताहै ॥ २६ ॥ जैसे बदरी (बेर) आदिका फल, रूप, रस आदिकी अवस्था मात्रके परिणामसे क्रमसे पाकके हेतुसे विलक्षणताको प्राप्त होताहै न कि बदरत्वादि जातिसे ऐसेही क्षेत्रज्ञ जीव आत्माभी अविद्यामलके परिणामके बशसे विलक्षणताको प्राप्त होताहै न कि अपरिणामी चित् स्वभावसे ॥ २७ ॥ इस प्रकार जीव अहंकार दशाको प्राप्त होताहै और अहंकार बुद्धिताको और बुद्धि संकल्पजालसे दूषित मनदशाको प्राप्त होती है ॥ २८ ॥

मनोहिसंकल्पमयंसंस्थाग्रहणतत्परम् ॥ प्रतियोगिव्यवच्छिन्नप्राप्तिसत्यैरपीहितैः ॥ २९ ॥ इच्छाद्याः शक्तयश्चेतोगावोवृषमिवोन्मदम् ॥ अनुधावंतिदोषायसरितःसागरंयथा ॥ ३० ॥ इतिशक्तिमयंचेतो घनाहंकारतांगतम् ॥ कोशकारक्रिमिरिवस्वेच्छयायातिबंधनम् ॥३१॥ स्वसंकल्पानुसंधानात्पाशैरिव नयन्वपुः ॥ कष्टमस्मिन्स्वयंबंधमेत्यात्मापरितप्यते ॥ ३२ ॥

अर्थ—और मन सफल तथा विफल मनोरथोंसे संकल्पमय स्त्रीपुत्रादि शरीराकारके ग्रहणमें तत्पर होकर परिच्छिन्न और तुच्छ विषयमें आसक्त होताहै ॥ २९ ॥ चित्तकी इच्छा आदिक शक्ति विषयकी ओर दोषकेलिये ऐसी दौडती हैं जैसे मदोन्मत्त वृषकी ओर गौ, तथा समुद्रकी ओर नदियां ॥ ३० ॥ इसप्रकार नानाभांतिकी शक्तियोंसे युक्त और घनीभूत अहंकारसे वृद्धिको प्राप्त यह चित्त अपनीही इच्छासे बंधनमें ऐसे प्राप्त होताहै जैसे कोशकार कृमि ॥ ३१ ॥ जैसे मत्स्यादिक बडिश आदि फांसियोंसे अपने शरीरको मृत्युको देते हुये स्वयं बंधनमें प्राप्त होतेहैं ऐसेही यह मनभी अपने संकल्पके अनुसंधानसे स्वयं बंधनमें आकर दुःखी होताहै यह कैसी खेदकी बातहै ॥३२ ॥

बद्धमस्मीतिकलयद्विद्यात्स्वंजहच्छनैः ॥ अविद्यांजनयत्यंतर्जगज्जंगलराक्षसीम् ॥ ३३ ॥ स्वसंकल्पि ततन्मात्रज्वालाभ्यंतरवर्त्तिच ॥ परांविवशतामेतिशृंखलाबद्धसिंहवत् ॥ ३४ ॥ विचित्रकार्यकर्तृत्वमा हरद्वासनावशात् ॥ स्वेच्छामात्रानुरचितादशाश्चानुपतत्तथा ॥ ३५॥ क्वचिन्मनःक्वचिद्बुद्धिःक्वचि ज्ज्ञानंक्वचित्क्रियाः ॥ क्वचिदेतदहंकारःक्वचित्पुर्यष्टकंस्मृतम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—यह चेतन अपने परमार्थिक शुद्ध रूपको धीरे २ त्यागताहुआ और मैं बद्धहुं ऐसी भावना करता हुआ जगद्रूपी जंगलकी राक्षसीरूप जन्ममरणादि अविद्याको अपने अन्तःकरणमें उत्पन्न करताहै ॥ ३३ ॥ अपने संकल्पसे रचित शब्दादि विषयरूपी अग्निकी ज्वालाके आभ्यंतर वर्तमान तथा अविद्यायुक्त यह मन महा अव्यवस्थाको ऐसे प्राप्त होताहै जैसे शृंखला (जंजीर) में बंधाहुआ सिंह ॥ ३४ ॥ इसीप्रकार नानाप्रकारके विहित और निषिद्ध

कार्योंकी कर्तृताको धीरे २ संपादन करता हुआ और अपनी इच्छा मात्रसे कल्पित अनेक प्रकारकी योनि तथा नरकादिकी दुर्दशाओंमें गिरताहुआ अव्यवस्थाको प्राप्त होताहै कभी तो यह मनन शक्तिमें मनरूपताको, कभी बुद्धिरूपताको कभी ज्ञानरूपताको, कहीं क्रिया रूपताको, कहीं अहंकाररूपता, और कहीं शरीररूपताको प्राप्त होताहै॥३६॥

क्वचित्प्रकृतिरित्युक्तंक्वचिन्मायेतिकल्पितम् ॥ क्वचिन्मलमितिप्रोक्तंक्वचित्कर्मेतिसंस्थितम् ॥ ३७ ॥ क्वचिद्बंधमितिख्यातंक्वचिच्चित्तमितिस्फुटम् ॥ प्रोक्तंक्वचिदविद्येतिक्वचिदिच्छतिसंस्थितम् ॥ ३८ ॥ तृटेलक्षावद्धमिहचित्तंराघवदुःखितम् ॥ तृष्णाशोकसमाविष्टंरागायतनमाततम् ॥ ३९ ॥ जरामरणमोहार्तभवभावनयाहतम् ॥ ईहितानीहितैर्ग्रस्तमविद्यारागरंजितम् ॥ ४० ॥

अर्थ—कहीं २ प्रकृतिरूपसे यह कहा गयाहै और कहीं मायारूपसे कल्पितहै और कहीं मलरूपसे कहा गया है, और कहीं कर्मरूपसे स्थितहै ॥ ३७ ॥ कहीं बंधरूपसे कहागयाहै, कहीं प्रत्यक्ष चित्तरूपसे, कहीं अविद्यारूपसे और कहीं इच्छारूपसे स्थितहै ॥ ३८ ॥ हे रामजी ! इसप्रकार चारों ओरसे बंधा हुआ तृष्णा और शोकसे पूर्ण रागका विशालस्थान इस संसारमें यह चित्तही है ॥ ३९ ॥ वृद्धावस्था, मरण, मूर्छा और जन्ममरणादिककी भावनासे नष्ट और इष्ट तथा अनिष्ट विषयोंसे ग्रस्त, और अविद्याके रागसे रंजित ॥ ४० ॥

इच्छासंक्षुभिताकारंकर्मवृक्षवनांकुरम् ॥ सुविस्मृतोत्पत्तिपदंकल्पितानर्थकल्पितम् ॥ ४१ ॥ कोशकारवदाबद्धंशोकाकारपदंगतम् ॥ तन्मात्रवृंदावयवमनंतनरकातपम् ॥ ४२ ॥ स्वदृश्यमविशेलेंद्रसमभारभयावहम् ॥ जरामरणशाखाढ्यंसंसारविषदुर्द्रुमम् ॥ ४३ ॥ इमंसंसारमखिलमाशापाशविधायकम् ॥ दधदंतःफलैर्हीनंवटधानावटंयथा ॥ ४४ ॥

अर्थ—इच्छासे संक्षोभित आकारवाला कर्मरूपी वृक्षके बनोंका अंकुर अच्छी तरहसें अपने उत्पत्तिस्थान परमात्मपदको भूलनेवाला और अनेक अनर्थोंकी कल्पना करनेवाला यह मनहै ॥ ४१ ॥ तथा कोशकार कृमि (रेशमी कीडे) के समान चारों ओरसे बंधा हुआ शोकाकार स्थानमें प्राप्त शोकरूप और अनन्त नरकोंके आतपसे संयुक्त ॥ ४२ ॥ और अपने दृश्यरूपकोभी जो कि आत्मासे भिन्नहै उसका विवेक न होनेसे सुमेरुके समान गौरवके भारसे भयका प्रापक और वृद्धाऽवस्था तथा मरणकी शाखासे पूर्ण संसाररूपी विषका दुष्ट वृक्ष यह चित्तहै ॥४३ हे रामजी ! आशारूपी पास (फांसी) के रचनेवाले, तथा पुरुषार्थरूपी फलसे हीन इस संसारको चित्त ऐसे धारण करताहै जैसे वटबीज वटके वृक्षको ॥ ४४ ॥

चिंतानलशिखादग्धंकोपाजगरचर्वितम् ॥ कामाब्धिकल्लोलहतंविस्मृतात्मपितामहम् ॥ ४५ ॥ मृगंयूथादिवभ्रष्टंशोकोपहतचेतनम् ॥ ॥ पतंगकमिवज्वालादग्धंविषयपावके ॥ ४६ ॥ छिन्नमूलमिवांभोजं परमांम्लानिमागतम् ॥ छिन्नांगमात्मनःस्थानाद्विशेषासंगदुःस्थितम् ॥ ४७ ॥ विषयादिषुमध्यस्थंविचित्ररूपेष्वशत्रुषु ॥ दशास्वेतास्वनंतासुलुठितंसंकटास्विति ॥ ४८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! चिंतारूपी अग्निकी शिखासे दग्ध, कोपरूपी अजगरसे चर्वित, कामरूपी समुद्रके तरंगोंसे हत, तथा आत्मस्वरूपी अपने पितामहरूप मूलकारणको विस्मृत करनेवाले इस मनका उद्धार करो ॥ ४५ ॥ और यूथ भ्रष्ट, मृगके समान; शोकसे नष्ट, विषयरूपी अग्निमें विषयाग्निकी ज्वालासे दग्ध ॥ ४६ ॥ मूलसे छिन्न कमलके सदृश परम म्लानिको प्राप्त, मृत्युसे अपने निवाससे पृथक् होनेसे उन २ देहोंके अभिमानके वियोगसे छिन्नांग, इसी हेतुसे उन २ देहोंमें विशेष आसक्तिसे दुःखमें स्थित इस मनका उद्धार करो ॥ ४७ ॥ और अपना बध करनेमें उद्यत विषय तथा इंद्रिय आदि विचित्र शत्रुओंके विश्वासमें आके उनके मध्यमें स्थित, और इसप्रकार पूर्वोक्त दुःखमयी अनन्त दशाओंमें लुठित (लोटते हुये) इस मनका उद्धार करो ॥ ४८ ॥

दुःखेनिपतितंघोरेविहंगःसागरेयथा ॥ स्ववंधार्थंजगज्जालेशून्येगंधर्वपत्तने ॥ ४९ ॥ उह्यमानमनास्थाब्धौमनोविषयविद्रुतम् ॥ उद्धरामरसंकाशमातंगमिवकर्दमात् ॥ ५० ॥ बलीवर्दवदामग्नंमनोसदनपल्वले ॥ आलूनशीर्णावयवंबलाद्रामसमुद्धर ॥ ५१ ॥ शुभाशुभप्रसरपराहताकृतौज्वलज्जरामरणविषामूर्छिते ॥ व्यथेहयस्यमनसिभोनजायतेनराकृतिर्जगतिसरामराक्षसः ॥ ५२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे जीवावतरणं नाम द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४२ ॥

अर्थ—तथा समुद्रमें पक्षीके सदृश घोर दुःखमें पतित, और जगत्जालरूपी शून्य गंधर्व नगरमें अपने बंधके

हेतु तथा बंधनके साधन देहादिमें अधिक स्नेह करनेवाले इस मनका उद्धार करो ॥ ४९ ॥ तथा तत्वज्ञान और उसके साधनादिमें अनादररूपी समुद्रमें वहते हुये और विपयमें निमग्न इस मनका हे देवतुल्य रामजी ! ऐसे उद्धार करो जैसे कीचडसे हस्तीका ॥ ५० ॥ हे रामजी ! कामरूपी महापंकमय अल्प तडागमें निमग्न, तथा छिन्न और विशीर्ण शरीरवाले इस मनको बलसे निकालो ॥ ५१ ॥ हे रामजी ! कामनायुक्त शुभ तथा निषिद्ध अशुभ कर्मोंके प्रचारसे मलिन आकारवाले, तथा प्रज्वलित वृद्धाऽवस्था, मरण, और विषाद (शोकादि) से मूर्छित इस जगत्‌के विपयमें जिसके चित्तमें पीडा नहीं होती वह प्राणी राक्षसहै ॥ ५२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे जीवावतरणं नाम द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

विस्तारसे जीवोंकी कर्मोंकी गतियोंका तथा विवेककी दुर्लभता तथा किसी २ की मुक्तिका वर्णन इस ४३ के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवंजीवाश्रितोभावाभवभावनयोहिताः ॥ ब्रह्मणःकल्पिताकारालक्षशोप्यथ कोटिशः ॥ १ ॥ असंख्याताःपुराजाताजायंतेचापिवाद्यभोः ॥ उत्पतिष्यंतिचैवांबुकणौघाइवनिर्झरात् ॥ २ ॥ स्ववासनादशावेशादाशाविवशतांगताः ॥ दशास्वतिविचित्रासुस्वयंनिगडिताशयाः ॥ ३ ॥ अनारतंप्रतिदिशंदेशेदेशेजलेस्थले ॥ जायंतेवाम्रियंतेवाबुद्बुदाइववारिणि ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! इसप्रकार चेतनकी उपाधिसे विभक्त विभावरूप, संसारकी वासनाके प्रवाहित ये लक्ष वा कोटि अथवा अनंत जीव, कल्पित आकारवाले ब्रह्माजीसे ॥ १ ॥ ऐसे उत्पन्न हुये, असंख्यात अबभी उत्पन्न होरहेहैं तथा उत्पन्न होंगे जैसे झरनेसे जलके कण ॥ २ ॥ और अपनी वासनाकी दशाके आवेशसे विवशतामें प्राप्त तथा इन सुखदुःखमयी विचित्र दशाओंमें बद्ध अन्तःकरणवाले ये जीव ॥ ३ ॥ निरन्तर प्रत्येक दिशाओंमें देश २ में जलमें तथा स्थलमें क्रमसे ऐसे उत्पन्न होते और मरते हैं जैसे जलमें बुद्बुदा ॥ ४ ॥

केचित्प्रथमजन्मानःकेचिज्जन्मशताधिकाः ॥ केचिद्दाजन्मसंख्याकाःकेचिद्द्वित्रिभवांतराः ॥ ५ ॥ भविष्यज्जातयःकेचित्केचिद्भूतभवोद्भवाः ॥ वर्त्तमानभवाःकेचित्केचित्त्वभवतांगताः ॥ ६ ॥ केचित्कल्पसहस्राणिजायमानाःपुनःपुनः ॥ एकामेवास्थितायोनिंकेचिद्योन्यतरंश्रिताः ॥ ७ ॥ केचिन्महादुःखसहाःकेचिदल्पोदयाःस्थितः ॥ केचिदत्यंतमुदिताःकेचिदर्कादिवोदिताः ॥ ८ ॥

अर्थ—कोई तो इस कल्पभरमें एकही जन्म प्राप्त हुये, कोई शत (सौ) सेभी अधिक, किसी २ के जन्मकी संख्याही नहींहै, और कोई दो वा तीन जन्म पाचुके ॥ ५ ॥ और कितने ऐसे हैं जो इस कल्पमें अभीतक उत्पन्नही नहीं हुये, और किसी २ (जीवन्मुक्तों) का संसारमें उत्पन्न होना व्यतीत होगया, और कितने कैवल्य मुक्तिको प्राप्त होगये ॥ ६ ॥ कोई २ सहस्रों जन्मतक पुनः २ उत्पन्न होते हुये एकप्रकारके देह जातिमेंही स्थितहैं, और कोई अन्य योनियोंमें प्राप्त हुयेहैं ॥ ७ ॥ कोई महादुःख सहन करनेवाले (नरक निवासी) प्राणीहैं, कोई अल्पसुखवाले मनुष्यरूपसेहैं, कोई देवादि अति प्रसन्नहैं और कोई सत्यलोकगामीहैं ॥ ८ ॥

केचित्किंनरगंधर्वविद्याधरमहोरगाः ॥ केचिदर्केंद्रवरुणाव्यक्षाधोक्षजपद्मजाः ॥ ९ ॥ केचित्कूश्मांडवेतालयक्षरक्षःपिशाचकाः ॥ केचिद्ब्राह्मणभूपालावैश्यशूद्रगणाःस्थिताः ॥ १० ॥ केचिच्छ्वपचचांडालकिरातावेशपुष्कसाः ॥ केचित्तृणौषधीकेचित्फलमूलपतंगकाः ॥ ११ ॥ केचिच्चित्रलतागुल्मतृणोपलदृशोभितः ॥ केचित्कदंबजंबीरशालतालतमालकाः ॥ १२ ॥

अर्थ—कोई किन्नर, गंधर्व, विद्याधर तथा महोरगरूपसे स्थितहैं, और कोई सूर्य, इन्द्र वरूण, तथा महादेव, विष्णु और ब्रह्मारूपसे हैं ॥ ९ ॥ कोई कूष्मांड (देवयोनि विशेष) वेताल, यक्ष, रक्षस् तथा पिशाचादि रूपसे स्थितहैं, और कोई जीव ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र समूहरूपसे स्थितहैं ॥ १० ॥ कोई स्वपच चाण्डाल, किरात योनिमें प्रविष्ट पुष्कस (चाण्डाल विशेष) रूपसे स्थितहैं, कोई तृण तथा औषधिरूपसे तथा कोई फलमूलके मध्यमें स्थित वीजके अंतर्गत जीवरूपसे, और कोई पतंगरूपसे स्थितहैं ॥ ११ ॥ कोई चित्र विचित्रलता, गुल्म तृण और पर्वत आदिके अधिष्ठातृ देवरूपसे स्थितहैं, और कोई कदम्ब, जंबीर (कागदी निम्बू) शाल, तथा तमालरूपसे स्थितहैं १२

केचिद्विभवसंसारमंत्रिसामंतभूमिपाः ॥ केचिच्चीरांबराच्छन्नामुनिमौनमुपस्थिताः ॥ १३ ॥ केचिद्भुजंगगोनासकृमिकीटपिपीलिकाः ॥ केचिन्मृगेंद्रमहिपमृगाजचमरैणकाः ॥ १४ ॥ केचित्सारसचक्राह्वबलाकाबककोकिलाः ॥ केचित्कमलकह्लारकुमुदोत्पलतांगताः ॥ १५ ॥ केचित्कलभमातंगवराहवृपगर्दभाः ॥ केचिद्द्विरेफमशकाःपुत्तिकादंशवंशजाः ॥ १६ ॥

अर्थ—कोई जीव विभवोंसे भ्रमण करनेसे मंत्री, सामन्त (करदायी छोटे २ राजा) तथा राजारूपसे स्थितहैं, और कोई वल्कल धारण करके मुनियोंके मौन व्रतको प्राप्त हुयेहैं ॥ १३ ॥ कोई सर्प अजगर, कृमि, कीट तथा पिपीलिका रूपहैं, और कोई मृग, सिंह, महिप, अज, चमर (हरिण विशेष) और मेपरूपसे स्थितहैं ॥ १४ ॥ कोई सारस, चक्रवाक, बलाका, वक तथा कोकिलरूपहैं, और कोई कमल रक्तकमल, कुमुद (रात्रिकमल) तथा नील कमलताको प्राप्त हुयेहैं ॥ १५ ॥ और कोई हस्तिके शिशु, मातंग (बडे हांथी) शूकर, वृप तथा गर्दभरूपहैं, और कोई भ्रमर, मच्छर, पांखी तथा काटनेवाले कीडोंकी जातिमें स्थितहैं ॥ १६ ॥

केचिदापद्बलाक्रांताःकेचित्संपदमागताः॥ केचित्स्थिताःस्वर्गपुरेकेचिन्निचरकमास्थिताः ॥१७॥ ऋक्षचक्रगताःकेचिद्वृक्षरंध्रगताःपरे ॥ वातभूताःस्थिताःकेचित्केचिद्व्योमपदेस्थिताः ॥ १८ ॥ सूर्यांशुषुस्थिताःकेचित्केचिदिंद्वंशुषुस्थिताः ॥ केचित्तृणलतागुल्मरसस्वादुष्ववस्थिताः ॥ १९ ॥ जीवन्मुक्ताभ्रमंतीहकेचित्कल्याणभाजनाः ॥ चिरमुक्ताःस्थिताःकेचिन्नूनंपरिणताःपरे ॥ २० ॥

अर्थ—और कोई तो आपत्तिके बलसे आक्रांतहैं, कोई संपत्तियोंमें प्राप्त हुये हैं, कोई स्वर्गपुरमें स्थितहैं तथा कोई नरकमेंही स्थितहैं ॥ १७ ॥ कोई तारागण चक्रको प्राप्तहैं, कोई २ वृक्षोंके छिद्रोंमें प्राप्तहैं, कोई गतिशील पवनके अधिकारमें, तथा कोई आकाशके अधिकारमें स्थितहैं, ॥ १८ ॥ कोई सूर्यभगवान्के किरणोंमें रसके आदानके अधिकारमें तथा कोई चन्द्रकिरणोंमें स्थित होके ओपधियोंके वृद्धिरूप अधिकारमें स्थितहैं, और कोई तृण, लता तथा गुल्मादिका रस जहां स्वादुहै ऐसे पशुओंके योग्य विपय लंपटतामें तत्परहैं ॥ १९ ॥ कोई कल्याणके भागी जीवन्मुक्त होके इस संसारमें भ्रमण करते हैं, और कोई चिरकालसे मुक्त जीवन्मुक्तताको भोगके विदेह कैवल्यको प्राप्त हुये हैं ॥ २० ॥

केचिच्चिरेणकालेनभविष्यन्मुक्तयःशिवाः ॥ केचिद्द्विपंतिविद्वावाःकेवलीभावमात्मनः ॥ २१ ॥ केचिद्विशालाःककुभःकेचिन्नद्योमहारयाः ॥ केचित्स्त्रियःकांतदृशःकेचित्पंडनपुंसकाः ॥ २२ ॥ केचित्प्रबुद्धमतयःकेचिज्जडतराशयाः ॥ केचिज्ज्ञानोपदेष्टारःकेचिदात्तसमाधयः ॥ २३ ॥ जीवाःस्ववासनावेशविवशाशयतांगताः ॥ एतास्वेतास्ववस्थासुसंस्थिताबद्धभावनाः ॥ २४ ॥

अर्थ—और किन्हीं २ कल्याणरूप प्राणियोंकी भविष्यत्में चिरकालमें मुक्ति होगी और कोई भोग लंपट प्राणी आत्माकी विदेह मुक्तिहीसे द्वेप करते है ॥ २१ ॥ और कोई विशालदिशा तथा महावेगवती नदियोंके अधिष्ठातृ देवतारूपसे स्थितहैं, और कोई उत्तम स्त्रीरूपसे कोई पुरुपरूपसे और कोई नपुंसकरूपसे स्थितहैं ॥ २२ ॥ कोई तो प्रवुद्धमतिवाले हैं, और कोई अति जड अंतःकरण सहितहैं, कोई ज्ञानके उपदेशकहैं और किसीने समाधि ग्रहण करलियाहे ॥ २३ ॥ हे रामजी ! अपनी २ वासनाके संस्कारसे विवशताको प्राप्त तथा अविद्यासे बद्ध भावनावाले संपूर्ण जीव इन पूर्वोक्त तथा अनुक्त संपूर्ण दशाओंमें स्थितहैं ॥ २४ ॥

विहरंतिजगत्केचिन्निपतंत्युत्पतंतिच ॥ कंदुकाइवहस्तेनमृत्युनाविरतंहताः ॥ २५ ॥ आशापाशशताबद्धावासनाभावधारिणः ॥ कायात्कायमुपायांतिवृक्षाद्वृक्षमिवांडजाः ॥ २६ ॥ अनंतानंतसंकल्पकल्पनोत्पादमायया ॥ इंद्रजालंवितन्वानाजगन्मयमिदंमहत् ॥ २७ ॥ तावद्भ्रमंतिसंसारेवारिण्यावर्त्तराशयः ॥ यावन्मूढानपश्यंतिस्वमात्मानमनिंदितम् ॥ २८ ॥

अर्थ—कोई तो पृथिवीपर विहार करते है, कोई २ नरकमें गिरते हैं, कोई स्वर्गपर चढते हैं, और कोई मृत्युसे ताडित एक शरीरसे दूसरी शरीरमें ऐसे लुढकते फिरते हैं जैसे हस्तसे ताडित कंदुक एक देशसे दुसरे देशमें लुढकताहै ॥ २५ ॥ सैकडों आकाशरूपी पाशों (फांसियो) से चारोंओरसे बद्ध, और वासनारूप भावी देहादिकों धारण करते हुये जीव एक शरीरसे दूसरे शरीरमें ऐसे जाते हैं जैसे एक वृक्षसे दूसरे वृक्षपर पक्षी ॥ २६ ॥ और अनंत विपयोंमें अनंत संकल्पोंकी मूलकारण माया (अविद्या) के द्वारा इन्द्रजालमय इस विशाल संसारका विस्तार करते हुये सम्पूर्ण जीव ॥ २७ ॥ तवतक इस संसारमें जलमें आवर्तके समूहके समान मूढ होके भ्रमण करते हैं जबतक कि अपने अनंदित आत्माको नहीं देखते ॥ २८ ॥

दृष्ट्वात्मानमसत्त्यक्त्वासत्यामासाद्यसंविदम् ॥ कालेनपदमागत्यजायंतेनेहतेपुनः ॥ २९ ॥ भुक्त्वा जन्मसहस्राणिभूयःसंसारसंकटे ॥ पतंतिकेचिद्बुधाःसंप्राप्यापिविवेकिताम् ॥ ३० ॥ केचिच्छकारत्र मप्युच्चैःप्राप्यतुच्छतयाधिया ॥ पुनस्तिर्यक्त्वमायांतितिर्यक्त्वान्नरकानपि ॥ ३१ ॥ केचिन्महाधियः संतउत्पद्यब्रह्मणःपदात् ॥ तदैवजन्मनैकेनतत्रैवाशुविशंत्यलम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—आत्माको देखकर असत्का परित्याग करके और सत्यज्ञानको पाकर भूमिकाकी दृढताके क्रमसे आत्मपदमें आकर पुनः इस संसारमें वे जीव नहीं उत्पन्न होते ॥ २९ ॥ कोई २ जीव विवेकताको प्राप्त होकरभी वि-षयकी लंपटतासे सहस्रों जन्मका भोग करके पुनः संसार संकटमें गिरते हैं ॥ ३० ॥ और कोई २ उत्तम जन्म देश काल सज्जनोंका समागम तथा उच्च देव गंधर्व ब्राह्मणादि सम्पत्तिको पाकरभी तुच्छ विषयकी लंपटतासे पुनः तिर्यग् आदि योनियोंमें आते हैं, और उससे नरकमेंभी जातेहैं ॥ ३१ ॥ कोई २ महाबुद्धिमान् ब्रह्मासे उत्पन्न होकर उसी कल्पमें और उसी जन्ममें शीघ्र ब्रह्मनामक मोक्षपदमें प्रवेश करतेहैं ॥ ३२ ॥

ब्रह्मांडेष्वितरेष्वन्येतेष्वन्येजीवराशयः ॥ प्रयांतिपद्मोद्भवतामन्येचहरतामपि ॥ ३३ ॥ अन्येप्रयाति तिर्यक्त्वमन्येचसुरतामपि ॥ अन्येपिनागतांरामयथैवेहतथैवहि ॥ ३४ ॥ यथेदंहिजगत्स्फारंतथान्या निजगंत्यपि ॥ विद्यंतेसमतीतानिभविष्यंतिचभूरिशः ॥ ३५ ॥ अन्येनान्येनचित्रेणक्रमेणान्येनहेतुना॥ विचित्राःसृष्टयस्तेषामापतंतिपतंतिच ॥ ३६ ॥

अर्थ—अपने उत्पत्तिस्थान ब्रह्मांडोंमें तथा अन्य ब्रह्माण्डोंमें (जैसे इन्दुके पुत्रोंसे रचित) जीवसमूह कोई तो ब्रह्मा होतेहैं कोई महादेव होतेहैं और कोई विष्णु होतेहैं ॥ ३३ ॥ और दूसरे पशु पक्षी आदि रूपको प्राप्त होतेहैं और कोई देवत्वपदवीको प्राप्त होतेहैं और कोई सर्प वा गजरूपको धारण करतेहैं हे रामजी ! जैसे इस ब्रह्मांडमें जीवोंकी उत्पत्तिदशाहै वैसेही अन्य ब्रह्माण्डोंमेंभी हैं ॥ ३४ ॥ जैसे यह जगत् विशालहै ऐसेही अन्य अनेक ब्रह्मांण्ड विशालहैं, और बहुतसे होगये तथा भविष्यत्में होंगेभी ॥ ३५ ॥ अन्य २ विचित्र क्रम तथा हेतुसे चित्रविचित्र सृष्टि उन जीवोंकेलिये आविर्भूत होती हैं और तिरोभूतभी होती हैं ॥ ३६ ॥

कश्चिद्गंधर्वतांयातिकश्चिद्गच्छतियक्षताम् ॥ कश्चित्प्रयातिसुरतांकश्चिदायातिदैत्यताम् ॥ ३७ ॥ येनैव व्यवहारेणब्रह्मांडेस्मिञ्जनाःस्थिताः ॥ तेनैवान्येषुतिष्ठंतिसन्निवेशाविलक्षणाः ॥ ३८ ॥ स्वस्वभाववशा वेशादन्योन्यपरिघट्टनैः ॥ सृष्टयःपरिवर्त्तंतेतरंगिण्याइवोर्मयः ॥ ३९ ॥ आविर्भावतिरोभावैरुन्मज्जन निमज्जनैः ॥ सृष्टयःपरिवर्तंतेतरंगिण्याइवोर्मयः ॥ ४० ॥

अर्थ—कोई जीव गंधर्वताको कोई यक्षताको कोई देवत्वको और कोई दैत्यताको प्राप्त होताहै ॥ ३७ ॥ हे रामजी ! जिस मनुष्यादि योग्य व्यवहारसे इस ब्रह्माण्डमें प्राणिगण स्थितहैं ऐसे अन्य ब्रह्माण्डोंमेंभी है, परन्तु अन्य द्वीपोंके प्राणियोंके समान कुछ २ शरीरकी रचनासे विलक्षणहैं ॥ ३८ ॥ अपने २ स्वभावके वशके आवेशसे और एक विषयमें परस्परकी ईर्षासे और परस्परके संघट्टनसे उसी चिद्रूपसे सृष्टियां ऐसे होती हैं जैसे नदीसे तरंग ॥ ३९ ॥ सृष्टिके आविर्भाव तथा तिरोभाव और ऊर्ध्वगमन तथा अधःपतनोंसे सृष्टियां ऐसे परिवर्तित होती हैं जैसे नदीसे तरंग ॥ ४० ॥

निर्यांत्यविरतंतस्मात्परस्माज्जीवराशयः ॥ अनिर्देश्याःस्वसंवेद्यास्तत्रैवाशुस्फुरंतिच ॥ ४१ ॥ दीपादि वालोकदृशःसूर्यादिवमरीचयः ॥ कणास्तप्तायसइवस्फुलिंगाइवपावकात् ॥ ४२ ॥ कालादिवर्त्तवश्चि त्राआमोदाःकुसुमादिव ॥ शीतलाइववर्षाणुपूरादब्धेरिवोर्मयः ॥ ४३ ॥ उत्पत्योत्पत्यकालेनभुक्त्वादे हपरंपराम् ॥ स्वतएवपदेयांतिनिलयंजीवराशयः ॥ ४४ ॥ अविरतमियमाततातथोच्चैर्भवतिविनश्यति वर्धतेसुवैव ॥ त्रिभुवनरचनाहिमोहमायापरमपदेलहरीववारिराशौ ॥ ४५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे जीवनिचयस्थानोपदेशो नाम त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

अर्थ—उस परमपदसे गुणोंके आधीन अन्तःकरणादि उपाधिसे निरंतर अनिर्देश्य और स्वसंवेद्य जीव निकलती हैं और उसीके स्वरूपमें प्रत्यक्ष व्यवहारभी करती हैं ॥ ४१ ॥ दीपसे प्रकाशके समान, सूर्यसे किरणके सदृश, तपे हुये लोहेसे कणके समान, और अग्निसे चिनगारीके सदृश ॥ ४२ ॥ कालसे चित्रविचित्र ऋतुके समान और पुष्पसे विचित्र सुगंधके समान और वृष्टिके समूहसे तुषारके सदृश तथा समुद्रसे तरंगके समान ॥ ४३ ॥ स-

म्पूर्ण जीवराशि काल पाकरके उत्पन्न हो होकरके और देहकी परम्पराओंको अर्थात् अनेक देहोंको भोग करके प्रलयदशामें स्वयं बीजभूत शांतिपदमें लीन होजाती हैं ॥ ४४ ॥ हे रामजी ! यह त्रिभुवनकी रचनाकी भ्रांतिरूप माया आत्मरूप परमपदमें मिथ्याही सृष्टिरूपसे विस्तृत होकर बाढती है, उन्नतिको प्राप्त होती है, परिणत होती है तथा समुद्रमें तरंगके समान नष्टभी होजाती है ॥ ४५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे जीवनिश्चयस्थानोपदेशो नाम त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

इस ४४ के सर्गमें मुक्ति और प्रलयकी समता होनेपरभी मुक्तिकी विशेषता तथा ब्रह्माके शरीर धारणका क्रम वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ क्रमेणानेनयेनाप्ताजीवेनस्थितिरात्मनः ॥ सकथंभगवन्देहंसमाधत्तेस्थिपंजरम् ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ पूर्वमेवमयाप्रोक्तंरामकिंनावबुध्यसे ॥ पूर्वापरविचारार्हाशेमुषीक्वगतातव ॥ २ ॥ यदिदंहिशरीरादिजगत्स्थावरजंगमम् ॥ आभासमात्रमेवैतदसत्स्वप्नमिवोत्थितम् ॥ ३ ॥ दीर्घस्वप्नोह्ययंराममिथ्यैवानघदृश्यते ॥ द्विचंद्रविभ्रमाकारंभ्रमांतर्भ्रांतशैलवत् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—हे भगवन् ! प्रलयमें जीव स्वयं परमपदमें प्राप्त होते हैं इस आपके कथित क्रमसे जिस जीवने आत्मपदमें स्थिति प्राप्त करलियाहै वह कैसे पुनः अस्थियों (हड्डियों) के पंजररूप इस देहको धारण करताहै ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! इस बातका उत्तर में प्रथमही कहचुकाहुं इसको तुम क्यों नहीं समझते पूर्वापरके विचारके योग्य बुद्धि तुह्मारी इससमय कहां चलीगई ॥ २ ॥ यह जो शरीरादिक स्थावर जङ्गमात्मक जगत्है वह असत् स्वप्नके समान आभासमात्रही आविर्भूतहै ॥ ३ ॥ हे रामजी ! और चिरकालस्थायी ये ब्रह्माण्ड और भुवनादिक दीर्घ स्वप्नके समान मिथ्याही देख पडतेहैं और दो चन्द्रमाके भ्रमके आकारके समान अथवा भ्रमके अन्तर्गत भ्रमणशील पर्वतके समान इसका आकारहै ॥ ४ ॥

प्रशांताज्ञाननिद्रस्तुनूनंगलितभावनः ॥ प्रबुद्धचेतास्संसारस्वप्नंपश्यन्नपश्यति ॥ ५ ॥ स्वभावकल्पितोरामजीवानांसर्वदैवहि ॥ आमोक्षपदसंप्राप्तिसंसारोस्त्यात्मनोंतरे ॥ ६ ॥ जीवस्यतरलःकायआवर्त्तःपयसोयथा ॥ यथाबीजेंकुरःस्फारःपल्लवःस्वांकुरेयथा ॥ ७ ॥ पल्लवेचयथापुष्पंपुष्पकोशेफलंयथा॥ यतःसंकल्पनारूपोदेहोस्तिमनसोंतरे ॥ ८ ॥

अर्थ—और जिसकी अज्ञानरूपी निद्रा प्रशान्त होगई है और निश्चय करके जिसकी संसारकी वासना गलित होगई है वह ज्ञानीपुरुष संसाररूप स्वप्नको देखता हुआभी परमार्थ दृष्टिसे नहीं देखता ॥ ५ ॥ हे रामजी ! जीवोंके स्वभावसे कल्पित, यह संसार मोक्षकी प्राप्तिपर्यन्त सदा आत्माके अन्तर्गतही है ॥ ६ ॥ जैसे जलके अन्तमें भंवरेहहै, बीजके भीतर अंकुर और अंकुरके भीतर विशाल पल्लवहै ऐसेही जीवके भीतर यह चंचल शरीरहै ॥ ७ ॥ क्योंकि पल्लवके भीतर पुष्पहै और पुष्पकोशमें जैसे फलहै ऐसेही कल्पनारूप यह देह मनके भीतरहै ॥ ८ ॥

बहुरूपतयारामयतोस्त्येकतमःस्फुटः ॥ सएवाप्रतिभासोस्यमनसःकिलजायते ॥ ९ ॥ सएवाशुभवत्येतन्मृत्पिण्डोघटकोपमः ॥ आदिसर्गेपुराकायःप्रतिभासोस्यचोत्तमः ॥ १० ॥ यस्मादेषविभुर्ब्रह्मापद्मकोशगृहस्थितः ॥ तत्संकल्पक्रमेणैवततःस्थितिमुपागता ॥ ११ ॥ इयंसृष्टिरपर्यंतामायेवघनमायया ॥ श्रीरामउवाच ॥ ॥ जीवोमनःपदंप्राप्यवैरिंचंपदमागतः ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! मन अनेकरूप होनेके कारण वासनारूपसे अनेक देह उसमें स्थितहैं, उनमें कर्मोंकी परिपक्वतासे जो शरीर प्रत्यक्षरूपसे अभिव्यक्त होताहै वही प्रतिभास इसको कालपाके होताहै न कि सब का ॥ ९ ॥ जैसे मृत्पिंड घटाकार होताहै ऐसेही उत्तम कर्मोंके परिपाकसे आदि सृष्टिमें इसको उत्तम शरीररूपसेही प्रतिभास होताहै ॥ १० ॥ क्योंकि सर्व कार्योंमें समर्थ ब्रह्मा जो पद्मकोशके भीतर स्थितहैं उनके संकल्पमात्रसे और उन्हींसे घनीभूत अविद्यासे मायाके समान यह अपार सृष्टि स्थितिको प्राप्त हुई है ॥ ११ ॥ श्रीरामजी बोले—हे भगवन् ! यह जीव चेतन मनपदको प्राप्त होकर वैरिंच ब्रह्मपदको प्राप्त हुआहै ॥ १२ ॥

यथाब्रह्मंस्तथासर्वंविस्तरेणवदाशुभे ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ ब्राह्मेशृणुमहाबाहोशरीरग्रहणेक्रमम् ॥ १३ ॥ निदर्शनेनतेनैवजागर्तोज्ञास्यसिस्थितिम् ॥ दिक्कालाद्यनवच्छिन्नमात्मतत्त्वंस्वशक्तितः ॥ १४ ॥ लीलयैवयदादत्तेदिक्कालकलितंवपुः ॥ तदेवजीवपर्यायंवासनावेशतत्परम् ॥ १५ ॥ मनःसंपद्यतेलोलंकलनाकलनोन्मुखम् ॥ कलयंतीमनःशक्तिरादौभावयतिक्षणात् ॥ १६ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! जैसे मनकी ब्रह्मारूपमें प्राप्ति हुई है वह शीघ्र मुझे विस्तारसे वर्णन कीजिये श्रीवसिष्ठजी बोले-हे महाबाहो रामजी ! ब्रह्माके शरीर ग्रहण करनेमें जो क्रमहै उसे क्रमसे श्रवण कीजिये ॥ १३ ॥ इसी दृष्टान्तसे जगत्की स्थितिकोभी जानोगे, देशकालादिसे अनवच्छिन्न आत्मतत्व अपनी शक्तिसे ॥ १४ ॥ लीलामात्रसे जो देश तथा कालसे दूषित परिच्छिन्न शरीर धारण करताहै उसीसमय वासनाके आवेशमें जीवपर्याय ॥ १५ ॥ कलना तथा अकलनाकी ओर उन्मुख चंचल मनरूप होजाताहै, और पूर्वसृष्टिमें आकाशादि क्रमसे प्रकट जो ब्रह्मा उसमें अहंग्रहकी उपासनासे संस्कृत और उसीप्रकार अव्याकृत जो मनहै उसीको मनकी शक्ति कहते हैं, वही मनरूपी शक्ति उसी क्रमसे अपने आविर्भावकी कल्पना करती हुई सृष्टिकी आदिमें क्षणभरमेंही ॥ १६ ॥

आकाशभावनामच्छांशब्दबीजरसोन्मुखीम् ॥ ततस्तांघनतांयातंघनस्पंदक्रमान्मनः ॥ १७ ॥ भावयत्यनिलस्पंदंस्पर्शबीजरसोन्मुखम् ॥ ताभ्यामाकाशवाताभ्यामदृष्टाभ्यांमनोदृशा ॥ १८ ॥ शब्दस्पर्शस्वरूपाभ्यांसंघाताज्जन्यतेनलः ॥ मनस्तद्घनतांप्राप्यततोभावयतिक्षणात् ॥ १९ ॥ प्राकाश्यममलालोकमालोकस्तेनवर्द्धते ॥ मनस्तावद्गुणगतंरसतन्मात्रवेदनम् ॥ २० ॥

अर्थ—शब्दोंका बीजभूत शब्द तन्मात्रा तथा श्रोत्रइन्द्रियकी ओर उन्मुख स्वच्छरूप आकाशकी भावना करताहै, उसके अनंतर घनीभूत स्पन्द क्रमसे घनताको प्राप्त मन ॥ १७ ॥ स्पर्शोंका बीज स्पर्श तन्मात्र तथा त्वगिंद्रियकी और उन्मुख किंचिच्चलनात्मक वायुकी भावना करताहै, और मनोव छिन्न चेतनस्वरूप जीवसे अदृष्ट आकाश और वायु ॥१८॥ जो कि शब्द तथा स्पर्शरूपहैं, उनसे वृद्धिको प्राप्त संघातसे अग्नि उत्पन्न होताहै, और मन इन तीनों रूपमें परिणत होनेसे घनताको प्राप्त होके क्षणमेंही ॥ १९ ॥ प्रकाशयुक्त निर्मल आलोककी भावना करताहै, और उससे प्रकाश बढताहै, और अनंतर आकाश वायु तथा तेजके गुणोंसे वृद्धिको प्राप्त मनरसोंका बीजभूत रस तन्मात्र तथा रसना इन्द्रियकी भावना करताहै ॥ २० ॥

क्षणार्द्धेनत्वपाशैत्यंजलसंवित्ततोभवेत् ॥ ततस्तादृग्गुणगतंमनोभावयतिक्षणात् ॥ २१ ॥ स्वरूपंगंधवत्स्थूलंयेनोदेष्यतिमेदिनी ॥ अथेत्थंभूततन्मात्रवेष्टितंतनुतांजहत् ॥ २२ ॥ वपुर्वह्निकणाकारंस्फुरितंव्योम्निपश्यति ॥ अहंकारकलायुक्तंबुद्धिबीजसमन्वितम् ॥ २३ ॥ तत्पुर्यष्टकमित्युक्तंभूतहृत्पद्मषट्पदम् ॥ तस्मिंस्तुतीव्रसंवेगाद्भावयद्भास्वरंवपुः ॥ २४ ॥

अर्थ—और आधे क्षणमें रस तन्मात्र दशाको प्राप्त होके जल इस प्रतीतिके योग्य होताहै, और उससे पश्चात् आकाशादि चारोंभूतके गुणके संघातको प्राप्त होके मन क्षणभरमें गंध तन्मात्रकी भावना करताहै ॥ २१ ॥ जिससे रस तन्मात्र गंध गणयुक्त अपने स्थूलस्वरूपको उत्पन्न करती है इसके अनन्तर तन्मात्रसे वेष्टित यह पंचभूत अपनी सूक्ष्मदशाको त्यागता हुआ ॥ २२ ॥ अग्निके कणके आकार, अहंकारकी कलासेयुक्त और बुद्धिके बीज करके सहित स्फुरित शरीरको आकाशमें देखताहै ॥ २३ ॥ उसको पुर्यष्टक (कर्मेंद्रियगण १ ज्ञानेन्द्रियगण २ पंचभूतगण३ पंचप्राणगण ४ मनोगण ५ अविद्यागण ६ कामगण ७ और कर्मोंकागण ८) कहते हैं जो कि भूतोंके हृदयरूपी कमलके भ्रमरके तुल्यहै, उस पुर्यष्टकमें तीव्र संवेग (बासना) से भास्वर शरीरकी भावना करता हुआ मन ॥ २४ ॥

स्थूलतामेतिपाकेनमनोबिल्वफलंयथा ॥ मूषास्थद्रुतहेमाभंस्फुरितंविमलांबरे ॥ २५ ॥ सन्निवेशमुपादत्तेतत्तेजःस्वस्वभावतः ॥ तस्मिन्स्वसन्निवेशेचतेजःपुंजमयेपुनः ॥ २६ ॥ भजतेभावनांस्फारांनिश्चितामाततांबराम् ॥ ऊर्ध्वंशिरःपीठमयीमधःपादमयींतथा ॥ २७ ॥ पार्श्वयोर्हस्तसंस्थातांमध्येचोदरधर्मिणीम् ॥ प्रकटावयवोबालोज्वालामालामलाकृतिः ॥ २८ ॥

अर्थ—कर्मोंकी विपाकतासे बिल्वफलके सदृश स्थूलताको प्राप्त होताहै, और सांचेमें स्थित द्रवीभूत सुवर्णके तुल्य, बाह्य देशमें स्थूल भास्वर अंतमें सूक्ष्म भास्वर, और स्थूल देहसे वेष्टित ॥ २५ ॥ जो विशेष रचनासे युक्त शरीरहै उसके पुर्यष्टकरूप लिंग शरीरहै अपने स्वभावसेही ग्रहण करताहै, और पुनः तेजःपुंजमय अपने उस सन्निवेश (विशेष रचनायुक्त शरीर) में ॥ २६ ॥ आकाशमें व्याप्त अति विशाल, ऊपर शिर तथा पीठमयी, नीचे

पादमयी ॥ २७ ॥ दोनों पार्श्व भागमें हस्त सहित, और मध्यमें उदरयुक्त शरीरकी भावना करताहै और अंगुली आदिकी सिद्धिसे प्रगट शरीरवाला तथा ज्वालाकी मालासे व्याप्त निर्मल आकारवाला ॥ २८ ॥

मनोरथवशोपात्तवपुस्तिष्ठत्यसावथ ॥ एवंस्ववासनावेशात्कलितांगोमनोमुनिः ॥ २९ ॥ नयत्युपच यंदेहंस्वस्वभावमृतुर्यथा ॥ कालेनस्फुटतामेतिभवत्यमलविग्रहः ॥ ३० ॥ बुद्धिसत्त्वबलोत्साहविज्ञा नैश्वर्यसंस्थितः ॥ सएवभगवान्ब्रह्मासर्वलोकपितामहः ॥ ३१ ॥ द्रवत्कनकसंकाशःपरमाकाशसं भवः ॥ यथासौपरमाकाशेतिष्ठत्यपररूपवान् ॥ ३२ ॥

अर्थ—मनोरथके वशसे शरीरको ग्रहण किये हुये यह ब्रह्मा स्थित रहताहै, इसप्रकार अपनी वासनाके आवेशसे कल्पित शरीरवान् तथा उपासनादिसे मुनिशील यह मनहै ॥ २९ ॥ कालपाके अपने शरीरकी वृद्धिसे यह ब्रह्मापदवीको मन ऐसे प्राप्त करताहै जैसे ऋतु और कालपाकेही प्रत्यक्षरूप यह निर्मल शरीर होताहै ॥ ३० ॥ और सर्व लोकका पितामह वही भगवान् ब्रह्मा बुद्धि, व्यवसाय, बल, उत्साह विज्ञान और ऐश्वर्य करके युक्त संस्थित रहताहै ॥ ३१ ॥ द्रवीभूत सुवर्णके समान तेजस्वी ब्रह्मा चिदाकाशसे संभूत परब्रह्ममें जैसे सत्तासे उपर रूप धारण करके रहताहै उसीप्रकार सत्तासे ॥ ३२ ॥

जनयत्यात्मनोमोहमात्मस्थंचित्तलीलया ॥ कदाचित्केवलंव्योमपरमंपारवर्जितम् ॥ ३३ ॥ अनादिम ध्यपर्यंतंकदाचिदमलंपयः ॥ कदाचित्कल्पकालाग्निज्वालाभास्वरमंडकम् ॥ ३४ ॥ कदाचित्काननं कार्ष्ण्यंकालंकमलकुड्मलम् ॥ अन्यान्यन्यान्यनेकानिप्रतिजन्मावधिःप्रभुः ॥ ३५ ॥ कल्पयन्पालय त्येषनानारूपाणिहेलया ॥ तत्रेदंप्रथमत्वेनयदेपद्मब्रह्मणःपदात् ॥ ३६ ॥

अर्थ—अज्ञानरूपही पंचीकृत आकाशादि जो आत्मामें स्थितहैं लीलामात्रसे उत्पन्न करताहै, कभी तो यह अपार आदि अंतशून्य केवल आकाशको उत्पन्न करताहै ॥ ३३ ॥ कभी निर्मल जल उत्पन्न करताहै और कभी (दाह कालमें) प्रलयाग्निकी ज्वालासे प्रकाशमय मण्डल उत्पन्न करताहै ॥ ३४ ॥ कभी पृथ्वीकी सृष्टिके अनन्तर कृष्णवर्णयुक्त संपूर्ण पृथिवीको रचताहै और कभी पद्मकल्पमें विष्णुसे उत्पन्न कृष्णवर्ण कमलकलिकाको रचताहै और अन्यर भुवन पृथिवी मनुष्यादिरूप अनेक स्थानोंको अपने जन्मकी अवधि पर्यंत यह प्रभु ॥ ३५ ॥ कल्पना करता हुआ विष्णु आदि नानारूप धारण करके आपही पालन करताहै, उनमेंसे यह शरीर संकल्पमें ब्रह्मपदसे उत्पन्न हुई ३६

अवतीर्णस्तदाज्ञानात्तथैवसुखमस्मृतम् ॥ गर्भनिद्राव्यपगमेवपुःपश्यतिभास्वरम् ॥ ३७ ॥ प्राणापा नप्रवाहाढ्यंद्रव्यैरविविनिर्मितम् ॥ रोमकोटिभिराकीर्णंद्वात्रिंशद्दशनान्वितम् ॥ ३८ ॥ त्रिस्थूणंपंचदैव त्यमधश्चरणलांछितम् ॥ पंचभागंनवद्वारंत्वग्लेपमसृणांगकम् ॥ ३९ ॥ युक्तमंगुलिविंशत्यानखविंश तिलांछितम् ॥ द्विबाहुंद्विस्तनंद्व्यक्षंबह्वक्षिभुजमेवच ॥ ४० ॥

अर्थ—ब्रह्मास्वरूपसे उत्पन्न होकर उस विष्णुकी कुक्षिमें अज्ञानावृत होकर प्राक्तन कालके संस्कारोंको वि-स्मृत करानेवाली सुषुप्ति दशामें प्राप्त हुआ और गर्भकी निद्राके अंतमें प्रकाशमय अपने शरीरको देखताहै ॥ ३७ ॥ वह शरीर प्राण और अपानके प्रवाहोंसे पूर्ण मानों पंचभूतोंके स्वच्छ भागोंसे रचित करोडों रोमकी श्रेणियोंसे व्याप्त शोभायमान बत्तीस (३२) दांतोंसेयुक्त ॥ ३८ ॥ दोनों जंघा तथा प्रस्थकी अस्थिरूप तीन खंभोंके ऊपर आश्रित पंचप्राणरूपी देवताओंसेयुक्त नीचे चरणोंसे चिन्हित हस्त, पाद, शिर, वक्षस्थल, तथा कुक्षि, (कोख) इन पांचोंभा-गोंमें विभक्त नव (९) इन्द्रियद्वाररूपीयुक्त त्वचाके लेपसे चिक्कन ॥ ३९ ॥ वीस (२०) अंगुली तथा वीस नखसे शोभित, दो भुजा तथा दो स्तनों करके सहित तीन नेत्रोंसे शोभित और कभी इच्छासे अनेक नेत्र तथा भुजा संयुक्त४०

नीडंचित्तविहंगस्यनीडंमन्मथभोगिनः ॥ तृष्णापिशाच्यानिलयंजीवकेसरिकंदरम् ॥ ४१ ॥ अभिमा नगजालानंमानसांभोजशोभितम् ॥ अथालोच्यवपुर्ब्रह्माकांतमात्मीयमुत्तमम् ॥ ४२ ॥ चिंतयामास भगवांस्त्रिकालामलदर्शनः ॥ अस्मिन्नाकाशकुहरेततेमधुपलांछिते ॥ ४३ ॥ अदृष्टपारपर्यंतेप्रथमंकिम भूदिति ॥ इतिचिंतितवान्ब्रह्मासद्योजातोमलात्मदृक् ॥ ४४ ॥

अर्थ—चित्तरूपी पक्षीका घोंसला, और मन्मथरूपी सर्पका निवासस्थान तृष्णारूपी पिशाचीका गृह, जीवरूपी सिंहकी कंदरा ॥ ४१ ॥ अभिमानरूप हस्तीका बन्धन स्थान, और मनरूपी कमलसे शोभित तथा अति रमणिय और उत्तम अपने शरीरको देखकर ॥ ४२ ॥ त्रिकालमें अमलदर्शी भगवान् ब्रह्माने अपने मनमें विचार किया कि भ्रम-रसदृश श्यामवर्ण करके चिन्हित इस अपार आकाशमें मैं पहले क्या रचूं जब भगवान् ब्रह्माने ऐसी चिंता की तो उसी समयमें भूत भविष्यत् वर्तमान तीनोंकालके देखनेमें समर्थ हुये ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

अपश्यत्सर्गवृंदानिसमतीतान्यनेकशः ॥ अथसस्मारसकलान्सर्वान्धर्मगणान्क्रमात् ॥४५॥ वसंतः कुसुमानीववेदानादायसंस्तुतान् ॥ लीलयाकल्पयामासचित्रसंकल्पजाःप्रजाः ॥ ४६ ॥ नानाचारस माचारंगंधर्वनगरेयथा ॥ तासांस्वर्गार्थंधर्मकामार्थसिद्धये ॥ ४७ ॥ अनंतानिविचित्राणिशास्त्राणिस मकल्पयत् ॥ दृष्टिरेवमियंरामसर्गेऽस्मिन्स्थितिमागता ॥ विरिंचिरूपान्मनसःपुष्पलक्ष्मीर्मधोरिव ॥ ४८ ॥ विविधविरचनैःक्रियाविलासैःकमलजरूपधरेणचेतसैव ॥ रघुसुतपरिकल्पनेननीतास्थितिमतुलांजगतीहसर्गलक्ष्मीः ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे संसारावतरणप्रतिपादनोपदेशो नाम चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

अर्थ—इसके अनंतर बीते हुये अनेक सृष्टियोंके समूह उन्होंने देखा उसके कारण चिंतन करनेके पश्चात् उन प्राणियोंके संपूर्ण धर्म तथा अधर्मोंको क्रमसे स्मरण किया ॥ ४५ ॥ इसके पश्चात् वसंतऋतु जैसे पुष्प ग्रहणपूर्वक वृक्षोंमें फलादिकी रचना करताहै ऐसेही वेदोंको ग्रहण करके अर्थात् वेदोक्त क्रमसे लीलाकी कल्पना मात्रसे चित्र-विचित्र संकल्पोंसे प्रजाओंको उत्पन्न किया ॥ ४६ ॥ उन प्रजाओंके स्वर्ग तथा मोक्ष धर्म तथा कामकी सिद्धिके लिये नानाप्रकारके आचार और समाचारको ऐसे रचा जैसे गन्धर्व नगरमें ॥ ४७ ॥ अनंत चित्रविचित्र शास्त्रोंकोभी रचा हे रामजी! वह दृश्यमान सृष्टिकी शोभा ब्रह्मापदवीको प्राप्त जो मनहै उसीसे स्थितिको ऐसे प्राप्त हुई है जैसे वसंतसे पुष्पकी शोभा ॥ ४८ ॥ हे रघुसुत ! विविधप्रकारकी रचना तथा क्रियाके विलासोंसे ब्रह्मारूप रूपधारी चित्तनेही इस सृष्टिकी अनुपम शोभाको इस जगत्में कल्पित कियाहै ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे संसारावतरणप्रतिपादनोपदेशो नाम चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

पंचचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

मनोरथादिमें दृष्टि होनेसे मनका कार्य कभी सत् नहीं है, इसलिये जगत्का रूप असत्है और सत् जो है वही सद्है इस विषयका वर्णन इस ४५ के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ जगत्संपन्नमेवेदंसंपन्नंकिंचिदेव न ॥ शून्यमेवचभामात्रंमनोविलसितंस्थितम् ॥ १ ॥ नदेशकालावेतेनब्रह्मांडेनावृतौस्थितौ ॥ मनागपिमहारूपवताप्याकाशरूपिणा ॥ २ ॥ एतत्संकल्पमात्रात्मस्वप्नदृष्टपुरोपमम् ॥ यत्रैवतत्रतच्छून्यंकेवलंव्योमसंस्थितम् ॥ ३ ॥ अभित्तिरागरचनमपिदृष्टमसन्मयम् ॥ अकृतंकृतमेवैतद्व्योम्निचित्रंविचित्रकम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! यह जगत् सिद्धरूपही है, इसमें रचित कुछभी नहीं है, यह सब मनका विलास प्रतिभास मात्रहै प्रतिभाससे पृथक् यह शून्यही है ॥ १ ॥ हे रामजी ! इस ब्रह्माण्डसे देशकाल व्याप्त नहीं है क्योंकि अतीत अनागत कोटियों ब्रह्माण्डकी स्फुरण प्रतिभासके अन्तर्गत होती हैं, और कहांतकहे इस परम-महत्व परिमाणयुक्त आकाशनेभी किंचित् देशकालको नहीं व्याप्त किया ॥ २ ॥ यह जगत् स्वप्नमें दृष्ट नगरके समान संकल्पमात्रही, जिस देशकालमें चित्में यह जगत् प्रतिभासताहै, वहां उसका अधिष्ठान चित्ही है, और जगत् केवल शून्य आकाशकेही समान स्थितहै ॥ ३ ॥ गंधर्वनगरके चित्रके समान भित्ति तथा रागकी रचनासे शून्यहै, दृष्ट होनेपरभी असत्, कृत होनेपरभी यथार्थमें अकृत, तथा आकाशमें विचित्रचित्रके सदृशहै ॥ ४ ॥

मनसाकल्पितंसर्वंदेहादिभुवनत्रयम् ॥ संस्मृतौकारणंचैतच्चक्षुरालोकनेयथा ॥ ५ ॥ आभासमात्रंहि जगद्घटावटपटभ्रमैः ॥ आवर्त्ततेनसद्रूपात्पृथक्कुड्यादयःस्थिताः ॥ ६ ॥ मनसेदंशरीरंहिवासनार्थंप्र कल्पितम् ॥ क्रमिकोशप्रकारेणस्वात्मकोशइवस्वयम् ॥७॥ नतदस्तिचयन्नामचेतःसंकल्पमंबरम् ॥ नकरोतिनचाप्नोतिदुर्गमप्यतिदुष्करम् ॥ ८ ॥

अर्थ—यह शरीर आदि तीनोंलोक मनसेही कल्पितहै और दर्शनमें नेत्रके समान यह केवल स्मरणका निमित्त है न कि अपने कालमें इसकी अर्थरूपता सिद्धहै ॥ ५ घट, पट तथा कुड्यादि भ्रमोंसे आभासमात्रही यह ज[illegible] वर्णके तुल्सवसे पृथक् घट पट कुड्य आदि कुछ नहीं है ॥ ६ ॥ मनने अपने निवासार्थ शरीरको कल्पना ऐसे की है युक्त शरीरहै'र क्रमि अपने लिये आपही कोश ॥ ७ ॥ ऐसा कोई दुष्कर वा दुर्गम कुछभी नहीं है कि अर्थ शून्यको सन्निवेश (विश न रचै वा उसको प्राप्त न करै ॥ ८ ॥

सर्वशक्तिधरेदेवेफानामननुशक्तयः ॥ नसंभवंत्यश्रियंतेयाभिरंतर्मनोगुहाः ॥ ९ ॥ सत्तासत्तेपदार्थानांसर्वेषांसर्वदैवहि ॥ महाबाहोसंभवतःसर्वशक्तौविभौसति ॥ १० ॥ पश्यभावनयाप्राप्तंमनसैवात्मजंवपुः ॥ तस्मात्तत्कलनांरामसर्वशक्तियुतांविदुः ॥ ११ ॥ स्वसंकल्पकृताःसर्वेदेवासुरनरादयः ॥ स्वसंकल्पोपशमनेशाम्यंत्यस्नेहदीपवत् ॥ १२ ॥

अर्थ—ऐसे शक्तियोंका सम्भव जगदीश्वरमें नहीं है जो मनरूपी गुहाका आश्रय न करें ॥ ९ ॥ देखो ! अपनी ही शरीरको ! भावनासेही मनसे इसको प्राप्त कियाहै इसलिये पंडितजन मनकी कल्पनाको सर्वशक्ति संयुक्त कहते हैं ॥ १० ॥ देव, असुर तथा मनुष्यादि मनके संकल्पमात्रसे रचे गये हैं, और मनके संकल्पके शान्त होनेपर तैलरहित दीपकके समान आपही शान्त होजातेहैं ॥ १२ ॥

आकाशसदृशंसर्वंकलानामात्रजृंभितम् ॥ जगत्पश्यमहाबुद्धेसुदीर्घस्वप्नमुत्थितम् ॥ १३ ॥ नजायतेनम्रियतेइहकिंचित्कदाचन ॥ परमार्थेनसुमतेमिथ्यासर्वंतुविद्यते ॥ १४ ॥ नवृद्धिमेतिनोह्रासंयन्नकिंचित्कदाचन ॥ किंवातनुभवेत्तत्रकस्यकानामखंडना ॥ १५ ॥ भूमभूतंस्वकायोत्थमपश्यन्निपुणंदृशा ॥ राघवामहतास्वांतःकिमज्ञइवमुह्यसि ॥ १६ ॥

अर्थ—हे महाबुद्धे रामजी ! दीर्घ स्वप्नके समान प्रादुर्भूत इस संपूर्ण जगत्को देखो ! तथा आकाशके सदृश कल्पना मात्र तथा मनका विलास मात्र इसे जानो ॥ १३ ॥ हे सुमते रामजी ! परमार्थसे इस जगत्में न कुछ उत्पन्न हो ओर न मरे, किंतु यह सब मिथ्याही है ॥ १४ ॥ जो पदार्थ न कभी वृद्धिको प्राप्त हो न ह्रास (न्यूनता) को वह भला कैसे सूक्ष्म होसकताहै, ओर उसका खण्डनभी कैसे होसकताहै ॥ १५ ॥ हे राघव ! शरीरसे पृथक् अपरिच्छिन्न महान् आत्माको न देखते हुये, अपरिच्छिन्न आत्माके दर्शनसे अज्ञानीके तुल्य अपने अन्तःकरणमें क्यों मोहित होते हो ॥ १६ ॥

मृगतृष्णायथातापान्मनसोनिश्चयात्तथा ॥ असंतइवदृश्यंतेसर्वेब्रह्मादयोप्यमी ॥ १७ ॥ द्विचंद्रविभ्रमप्रख्यामनोरथवदुत्थिताः ॥ मिथ्याज्ञानघनाःसर्वेजगत्याकारराशयः ॥ १८ ॥ यथानौयायिनोमिथ्यास्थाणुस्पंदमतिस्तथा ॥ असत्यैवोत्थितानित्यमाकाराणांपरंपरा ॥ १९ ॥ इंद्रजालमिदंविद्धिमायारचितपंजरम् ॥ मनोमननिर्माणंनसन्नासदिवस्थितम् ॥ २० ॥

अर्थ—जैसे मरुस्थलके आतप (घाम) से मनके निश्चयके कारण मृगतृष्णाकी नदियां देखपडती हैं ऐसेही ये सब ब्रह्मादिकहैं ॥ १७ ॥ दो चन्द्रके भ्रमके समान, मनोरथसे आविर्भूतके सदृश, मिथ्या अज्ञान घनरूप सम्पूर्ण आकारसमूह इस जगत्में दृष्टिगत होरहा हैं ॥ १८ ॥ जैसे नौकाके यात्रीको मिथ्याही ठूंठ वृक्षादिकी गति प्रतीत होती है ऐसेही पदार्थोंके आकारकी पंक्ति मिथ्याही आविर्भूतहै ॥ १९ ॥ मायासे रचित शरीरवाले इन्द्रजालमय इस सम्पूर्ण जगत्को तुम जानो, यह सब मनकी रचनामात्र सत् असत्से विलक्षण अनिर्वचनीयरूपसे स्थितहै ॥ २० ॥

ब्रह्मैवेदंजगत्सर्वमन्यतायास्ततःकुतः ॥ प्रसंगःकीदृशःकोसौकवासापरितिष्ठति ॥ २१ ॥ अयंगिरिरयंस्थाणुरित्याडंबरविभ्रमः ॥ मनसोभावनादार्ढ्यादसन्सन्निवलक्ष्यते ॥ २२ ॥ प्रपंचपतनारंभमत्तस्यइदंजगत् ॥ सकामतृष्णामननंत्यक्त्वान्यद्रामभावय ॥२३॥ यथास्वप्नोमहारंभोभ्रांतिरेवनवस्तुतः॥ दीर्घस्वप्नंतथैवेदंविद्धिचित्तोपपादितम् ॥ २४ ॥

अर्थ—यह सब ब्रह्ममात्रही है इसमें भिन्नताका प्रसंग कैसे और कहां ? और भिन्नता (भेद) कौन और कहां रहताहै ? ॥ २१ ॥ यह पर्वत, यह स्थाणु (ठूंठ) इत्यादि आडंबरका विभ्रम असत्रूपही मनकी भावनाकी दृढतासे सत्के समान लक्षित होताहै ॥ २२ ॥ हे रामजी ! विचारहीन पुरुषको कामनासहित तृष्णाका मननरूप यह जगत्प्रपंच स्वर्गनरक तिर्यक् आदि जन्मका आरंभक होताहै इसलिये तुम निष्प्रपंच आत्माकी भावना करो॥२३॥ जैसे स्वप्नका महान् आरंभ भ्रांतिमात्रहै न कि यथार्थ, ऐसेही चित्तसे रचित इसजगत्को दीर्घ स्वप्नही जानो ॥२४॥

दृश्यमानमहाभोगंगृह्यमाणमवस्तुकम् ॥ कोशमाशाभुजंगानांसंसाराडंबरंत्यज ॥ २५ ॥ असदेतदितिज्ञात्वामात्रभावंनिवेशय ॥ अनुधावतिनप्राज्ञोविज्ञायमृगतृष्णिकाम् ॥ २६ ॥ स्वसंकल्पात्स्वरूपाहंप्रांमनोरथमयींश्रियम् ॥ योनुगच्छतिमूढात्माद्दुःखस्यैवसभाजनम् ॥ २७ ॥ वस्तुन्यसतिलोकोयंयातुकाममवस्तुनि ॥ यस्तुवस्तुपरित्यज्ययात्यवस्तुसनश्यति ॥ २८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! देखनेमें विशालरूप महाभोगका स्थान, ग्रहण करनेमें, आशारूपी सर्पोंका कोश इस संसारको तुम त्यागो ॥ २५ ॥ हे रामजी ! असत् ऐसा जानकर इस संसारमें तुम अपना राग (प्रेम) न करो, क्योंकि

बुद्धिमान् पुरुष मृगतृष्णाको जानके उसके पीछे नहीं दौडता ॥२६॥ अपने संकल्पसे स्वरूपमात्रसे पूर्ण, और मनोरथ मायालक्ष्मीके पीछे जो मूढात्मा दौडताहै वह केवल दुःखकाही भागी है ॥ २७ ॥ वस्तु (आत्मरूप) के न रहनेपर भलेही संसार अवस्तु (असत् संसार) की ओर जावे, परन्तु जो वस्तुको त्यागके जाताहै वह परम पुरुषार्थसे नष्ट होताहै ॥ २८ ॥

मनोव्यामोहएवेदंरज्ज्वामहिभयंयथा ॥ भावनामात्रवैचित्र्याच्चिरमावर्त्ततेजगत् ॥२९॥ असदभ्युदितैर्भावैर्जलांतश्चंद्रवच्चलैः ॥ वंच्यतेबालएवेहनतत्त्वज्ञोभवादृशः ॥ ३० ॥ यइमंगुणसंघातंभावयन्सुखमीहते ॥ प्रमार्ष्टिसजडोजाड्यंवह्निभावनयास्वया ॥ ३१ ॥ असदेवेदमाभोगिदृश्यतेजलपंजरम् ॥ मनोमननर्निर्माणंहृदयेनगरंयथा ॥ ३२ ॥

अर्थ—रज्जु (रस्सी) में सर्पके भयके समान यह जगत् मनका व्यामोह मात्रहै, और भावनाकी विचित्रता मात्रसे यह जगत् चिरकाल तक रहताहै ॥ २९ ॥ जलमें चंचल अनेक चंद्रमाके तुल्य असत् पदार्थोंसे बालक (अज्ञानी) ही ठगा जाताहै नकि तुह्मारे सदृश तत्वज्ञानी पुरुष ॥३०॥ जो पुरुष शब्दादि संघान देहादिको अहं (मैं) भावना करताहुआ सुख चाहताहै वह जड प्राणी मानो मनोरथसे कल्पित अग्निसे अपनी शीत दूर करताहै ॥ ३१ ॥ यह विशाल जड भूतोंका संघात देहादि असत् रूपही ऐसे देख पडताहै जैसे मनके मननशक्तिकी रचनासे हृदयमें नगर ॥ ३२ ॥

इदंचित्तेच्छयोदेतिलीयतेतदनिच्छया ॥ मिथ्यैवंदृश्यतेस्फीतंगंधर्वनगरंयथा ॥ ३३ ॥ रामनष्टेजगत्यस्मिन्नकिंचिदपिनश्यति ॥ युक्तेपिचजगत्यस्मिन्नकिंचिदपियुज्यते ॥ ३४ ॥ मनःप्रकल्पितेभग्नेहृदिविस्तीर्णपत्तने ॥ वृद्धिंचोपगतेब्रूहिकिंवृद्धंकस्यकिंक्षतम् ॥३५॥ क्रीडार्थंनयथोदेतिबालानांहृदिवर्त्तनम् ॥ मनसातद्वदेवेदमुदेत्यविरतंजगत् ॥ ३६ ॥

अर्थ—यह जगत् चित्तकी इच्छाहीसे उदय होताहै और उसकी इच्छा न होनेसे लीन (नष्ट) होजाताहै, और गंधर्व नगर वा मनोरथ रचित नगरके समान मिथ्याही विशाल स्वच्छ रूप देख पडताहै ॥ ३३ ॥ हे रामजी ! इस जगत्के नष्ट होनेपर कुछ नहीं नष्ट होता और इसके बढनेपर कुछ बढता नहीं ॥ ३४ ॥ मनसे कल्पित हृदयमें विशाल नगरके नष्ट होनेपर तथा उसके बुद्धिको प्राप्त होनेपर कहो क्या बढा और किसका क्या नष्ट हुआ ॥ ३५ ॥ जैसे क्रीडाके अर्थ बालकोंकी प्रतिमा (मृत्तिका रचित प्रतिमा वा खेलौना) वा पशु आदिसे व्यवहार होताहै ऐसेही मनसे निरंतर यह जगत् उत्पन्न होताहै ॥ ३६ ॥

नकिंचित्कस्यचिन्नष्टमिंद्रजालजलेयथा ॥ भ्रष्टेनष्टेतथैवास्मिन्संसारेवितथोत्थिते ॥ ३७ ॥ यदसत्तदसत्स्याच्चेन्नकिंकस्यकिलक्षतम् ॥ ततोहर्षविषादानांसंसारेनामनास्पदम् ॥ ३८ ॥ असदेवयदत्यंतंतस्मात्किंनामनश्यति ॥ नाशाभावेहिदुःखस्यकःप्रसंगोमहामते ॥ ३९ ॥ सदेववायदत्यंतंतस्यकिंनामनश्यति ॥ ब्रह्मैवेदंजगत्सर्वंसुखदुःखेकिमुत्थिते ॥ ४० ॥

अर्थ—जैसे इन्द्रजालके जलके नष्ट होनेपर किसीका कुछभी नष्ट नहीं होता ऐसेही मिथ्या आविर्भूत इस संसारके नष्ट भ्रष्ट होनेपर किसीका कुछ नहीं होता ॥ ३७ ॥ जो असत् है वह यदि असत् होजाय तो किसका क्या बिगडा ! इसलिये इस संसारमें हर्ष शोकका क्या अवसरहै ॥ ३८ ॥ जो सर्वथा असत् है उससे क्या नष्ट होताहै, और हे महामते ! नाशके अभावमें दुःखका क्या प्रसंग ? ॥ ३९ ॥ अथवा जो सर्वथा सत् उसकाभी क्या नष्ट हो सकताहै ? जब ब्रह्मही यह जगत्है तो सुखदुःख किस निमित्तसे उत्पन्न हुये ॥ ४० ॥

असद्वापियदत्यंतंवृद्धिःस्यात्तस्यकीदृशी ॥ वृद्धेरभावेहर्षस्यकःप्रसंगोमहामते ॥ ४१ ॥ सर्वत्रासत्यभूतेस्मिन्प्रपंचैकांतकारिणि ॥ संसारेकिमुपादेयंप्राज्ञोभिवांछतु ॥ ४२ ॥ सर्वत्रसत्यभूतेस्मिन्ब्रह्मतत्त्वमयेपिच ॥ किंस्यात्त्रिभुवनेहेयंप्राज्ञाःपरिहरंतुयत् ॥ ४३ ॥ असत्सद्वाजगद्यस्यतेनासौसुखदुःखयोः ॥ अगम्यएवमूर्खस्तुतद्विनाशेनदुःखितः ॥ ४४ ॥

अर्थ—अथवा जो सर्वथा असत्है उसकी वृद्धिभी कैसी होगी ! और वृद्धिही नहीं तब हे महामते रामजी ! हर्षका क्या प्रसंगहै ॥ ४१ ॥ सर्वथा असत्य और निरंतर जन्म मरणादि प्रपंचोंको करनेवाले इस संसारमें कौन वस्तु ग्राह्यहै जिसकी इच्छा बुद्धिमान् पुरुष करै ॥ ४२ ॥ और सर्वथा सत्यभूत और ब्रह्मतत्वमय इस त्रिभुवनमें कौन वस्तु त्याज्य है जिसको बुद्धिमान् लोग त्यागें ॥ ४३ ॥ जिसके मतमें अपने स्वरूपसे असत् और ब्रह्मरूपसे

सत् यह जगत्है वह पुरुष सुखदुःखका पात्र नहीं है और मूर्ख जो जगत्के स्वरूपसे इसमें सत्य विश्वास करताहै वह इसके नाशसे दुःखी होताहै ॥ ४४ ॥

आदावंतेचयन्नास्तिवर्त्तमानेपितत्तथा ॥ योभिवांछत्यसद्रामतस्यासत्तैवदृश्यते ॥ ४५ ॥ आदावंतेच यत्सत्यंवर्त्तमानेसदेवतत् ॥ यस्यसर्वंसदेवस्यात्तस्यसत्तैवदृश्यते ॥ ४६ ॥ असत्यभूतंतोयांतश्चंद्र व्योमतलादिकम् ॥ बालाएवाभिवांछंतिमनोमोहायनोत्तमाः ॥ ४७ ॥ बालोहिविततार्कारैर्वस्तुरिक्तैः प्रयोजनैः ॥ संतोषमेत्यनंतायदुःखायनसुखायतु ॥ ४८ ॥

अर्थ—जो वस्तु आदि अंतमें नहीं है वह वर्तमानमेंभी वैसेही है, हे रामजी ! जो असत्की इच्छा करताहै उसको असत्ताही सर्वत्र देख पडती है ॥ ४५ ॥ जो वस्तु आदि और अंतमें सत्यहै वह वर्तमानमेंभी सद्रूपही है, जिसके मतमें संपूर्ण जगत् सद्ब्रह्ममयहै उसको सर्वत्र ब्रह्मकी सत्ताही देख पडतीहै ॥ ४६ ॥ जलके भीतर असत्य चंद्रमंडल तथा आकाश तलादिककी आकांक्षावालकही करतेहैं न कि मनके मोहकेलिये महात्माजन ॥ ४७ ॥ अर्थ शून्य और सुखाभासमात्र विशाल वस्तुओंसे बालक (मूर्ख) ही अनंत दुःखकेलिये संतोषको प्राप्त होताहै न कि सुखकेलिये ॥ ४८ ॥

तस्मान्मात्वंभवोबालोरामराजीवलोचन ॥ अविनाशमिहालोक्यनित्यमाश्रयसुस्थिरम् ॥ ४९ ॥ असदिदमखिलंमयासमेतंत्वितिविगणय्यविषादितास्तुमाते ॥ सदिदहिसकलंमयासमेतंत्वितिचविलोक्यविषादितामास्तुमाते ॥ ५० ॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ इत्युक्तवत्यथमुनौदिवसोजगामसायंतनाय विधयेस्तमिनोजगाम ॥ स्नातुंसभाकृतनमस्करणाजगामश्यामाक्षयेरविकरैश्चसहाजगाम ॥ ५१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे यथाभूतार्थयोगोपदेशो नाम पंचचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४५ ॥ नवमोदिवसः ९

अर्थ—इस कारण हे कमलनेत्र रामजी ! तुम बालक (अज्ञानी) न हो किंतु अविनाशी आत्माका दर्शन करके नित्य उसी अचल पदका आश्रय करो ॥ ४९ ॥ मायासे मूढ जनोंसे आत्मरूपसे कल्पित अहंकार समेत इस संपूर्ण जगत्को असद्रूप जानकरके इसमें राग बुद्धि तुमको न हो और अज्ञान रहित अपने स्वरूप सहित इस संपूर्ण जगत्को सत्य ब्रह्मरूप जानकरभी इसमें तुमको राग न हो॥५०॥ श्रीवाल्मीकजी बोले–वसिष्ठ मुनिके इतना कहनेपर सूर्य अस्ताचलको प्राप्त हुये और संपूर्ण सभा सन्ध्या वंदन करनेकेलिये अपने २ स्थानपर चलीगई और रात्रिके नाश होनेपर सूर्यकी किरणोंके साथ पुनः आकारके प्राप्त हुई ॥ ५१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे यथाभूतार्थयोगोपदेशो नाम पंचचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४५ ॥ नवमोदिवसः ॥ ९ ॥

षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥

संसारमें विहार करते हुयेभी जिन गुणोंसे ज्ञानी पुरुष संसारमें नहीं डूबता और जो गुण जीवन् मुक्तोंमें विद्यमानहै उसका वर्णन इस ४६ के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ रम्येधनेषुदारादौशोकस्यावसरोहिकः ॥ इंद्रजालेक्षणादृष्टेनष्टेकापरिदेवना ॥१॥ गंधर्वनगरस्यार्थेदूषितेभूषितेतथा ॥ अविद्यांशेसुतादौवाकःक्रमःसुखदुःखयोः ॥ २ ॥ रम्येधनेथदारादौहर्षस्यावसरोहिकः ॥ वृद्धायांमृगतृष्णायांकिमानंदोजलार्थिनाम् ॥ ३ ॥ धनदारेपुवृद्धेपुदुःखंयुक्तंनतुष्टयः ॥ वृद्धायांमोहमायायांकःसमाश्वासवानिह ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! रमणीय धन स्त्री पुत्रादिकोंके नाश होनेपर शोकका क्या अवसरहै क्योंकि एक क्षणकेलिये दृष्ट इन्द्रजालके नष्ट होनेपर विलापका क्या अवसरहै ॥ १ ॥ गंधर्व नगरके पदार्थके दूषित व भूषित होनेपर और अविद्याके अंश स्त्री पुत्रादिकोंके दूषित व भूषित होनेपर सुखदुःखका क्या प्रसंगहै ॥२॥ धन तथा स्त्री पुत्रादिकोंके रमणीय होनेपर हर्षका कौन अवसरहै क्योंकि मृगतृष्णाकी नदीके बढनेपर जलार्थी पुरुषोंको कौनसा अधिक सुख होताहै ॥ ३ ॥ स्त्री पुत्रादिके बढनेपर दुःख वा संतोष दोनोंयुक्त नहींहैं क्योंकि मोह मायाके बढनेपर कौन पुरुष सुखी होसकता ॥ ४ ॥

यैरेवजायतेरागोमूर्खस्याधिकतागतैः ॥ तैरेवभोगैःप्राज्ञस्यविरागउपजायते ॥ ५ ॥ नष्टेधनेथदारादौहर्ष स्यावसरोहिकः ॥ पारावलोकिनस्त्वेतैर्विरागंयांतिसाधवः ॥ ६ ॥ अतोराघवतत्त्वज्ञोव्यवहारेषुसंस्त तेः ॥ नष्टंनष्टमुपेक्षस्वप्राप्तंप्राप्तमुपाहर ॥ ७ ॥ अनागतानांभोगानामवांछनमकृत्रिमम् ॥ आगतानांच संभोगइतिपंडितलक्षणम् ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जिन भोगोंके अधिक होनेपर मूर्खजनको राग उत्पन्न होताहै उन्ही भोगोंसे ज्ञानीपुरुषको वैराग्य उत्पन्न होताहै ॥ ५ ॥ धन अथवा स्त्री आदिके नष्ट होनेपर हर्षका कौनसा अवसरहै क्योंकि नश्वरता तथा नरक हेतुतादि परिणाम देखनेवाले साधु महात्मा इन स्त्रीपुत्रादिकोंसे विरक्त होजातेहैं ॥ ६ ॥ इसलिये हे रामजी ! संसारके व्यवहारोंमें तत्वज्ञ होकर नष्ट पदार्थोंकी उपेक्षा करो और प्राप्त २ का सेवन करो ॥ ७ ॥ अप्राप्त भोगोंकी इच्छाका स्वाभाविक अभाव और प्राप्त भोगोंका संभोग करना यह पंडितका लक्षणहै ॥ ८ ॥

संसारसंभ्रमेह्यस्मिंश्छन्नात्मन्याततायिनि ॥ तथाविहरसंबुद्धोयथानायासिमूढताम् ॥ ९ ॥ संसारा डंबरस्यास्यप्रपंचरहितेक्रमे ॥ सम्यग्ज्ञानानुपश्यंतियेहतास्तेकुबुद्धयः ॥ १० ॥ ययाकयाचिद्युक्त्यै वदृश्याद्यस्यगतारतिः ॥ परिमज्जतितस्यास्थानक्वचिद्विमलामतिः ॥ ११ ॥ यस्यासदिदमित्यास्था निवृत्तासर्ववस्तुषु ॥ क्रोडीकरोतिसर्वज्ञंनाविद्यातमवास्तवी ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! संसारमें भ्रम करानेवाले प्रच्छन्न होकर मारनेके लिये तत्पर आततायी स्वरूप इस कामके विषयमें ज्ञानके विषयमें सावधान होकर ऐसे व्यवहार करो जिसप्रकार मूढताको न प्राप्तहो ॥ ९ ॥ प्रपंचरहित ब्रह्मपदमें उत्तम ज्ञानवान् पुरुषभी जो इस संसारके आडंबरकी वंचनाको आलस्यसे नहीं देखते वे कुबुद्धि अपने प्रमादसेही मारेगये ॥ १० ॥ जिस पुरुषकी जिस किसी युक्तिसे इस दृश्य संसारसे प्रीति निवृत्त होगई उसकी परमार्थमें प्रविष्ट विमलबुद्धि मोहरूपी समुद्रमें नहीं बूडती ॥ ११ ॥ जिस पुरुषकी बुद्धि सम्पूर्ण जगत्को असत्य जानकर संपूर्ण वस्तुओंसे निवृत्त होगई है उस सर्वज्ञ पुरुषको मिथ्या अविद्या अपने वशमें नहीं करती ॥ १२ ॥

अहंजगच्चैकमिदंसर्वमेवेतियस्यधीः ॥ आस्थानास्थेपरित्यज्यसंस्थितासनमज्जति ॥१३॥ शुद्धंसदस तोर्मध्यंपदंबुद्ध्यावलंब्यच ॥ सबाह्याभ्यंतरंदृश्यंमागृहाणविमुंचमा ॥ १४ ॥ अत्यंतविरतःस्वस्थःस र्ववासविवर्जितः ॥ व्योमवत्तिष्ठनीरागोरामकार्यपरोपिसन् ॥ १५ ॥ यस्यनेच्छानवानिच्छाज्ञस्यकर्म णितिष्ठतः ॥ नतस्यलिप्यतेप्रज्ञापद्मपत्रमिवांबुभिः ॥ १६ ॥

अर्थ—जिस पुरुषकी बुद्धि ऐसी है कि यह संपूर्ण जगत् और मैं एक ब्रह्मरूपही है उसकी बुद्धि आस्था अनास्थाको परित्याग करके स्थित रहती है और वह प्राज्ञ समुद्रमें नहीं डूबता ॥ १३ ॥ व्यक्त और अव्यक्तमें व्यक्तमें अनुगत शुद्ध ब्रह्मपदको जानकर और उसी प्रत्यगात्मरूपको अवलंबन करके बाह्य और आभ्यन्तर सहित इस जगत्को न तो ग्रहण करो न त्यागो ॥ १४ ॥ सर्वथा विरक्त, संतोषी, स्थानके अभिमानसे रहित, आकाशके सदृश रागरहित, इस संसारमें कार्य करते हुयेभी तुम स्थित रहो ॥ १५ ॥ जिसको इच्छा वा इच्छाका अभाव नहीं है ऐसे तत्वज्ञानीके कर्ममें स्थित पुरुषकी बुद्धि इस संसारमें ऐसे नहीं लिप्त होती जैसे जलसे कमलका पत्र ॥ १६ ॥

दर्शनस्पर्शनादीनिमाकरोतुकरोतुच ॥ तवेंद्रियमनोगौणंत्वमनिच्छोभवात्मवान् ॥ १७ ॥ ममेदमित्य सद्भूतमिंद्रियार्थेभवन्मनः ॥ मानिमज्जत्वमग्नःसन्माकरोतुकरोतुवा ॥१८॥ यदातेनेंद्रियार्थश्रीःस्वदते हृदिराघव ॥ तदाविज्ञातविज्ञानःसमुत्तीर्णभवार्णवः ॥ १९ ॥ आस्वादितेंद्रियार्थस्यसतनोरतनोरपि ॥ अनिच्छतोपिसंपन्नामुक्तिरर्थवशात्तव ॥ २० ॥

अर्थ—हे रामजी ! संसारमें आशक्तिरहित इंद्रियसहित तुह्मारा मन दर्शन स्पर्शनादि व्यापार करै वा न करै परन्तु तुम आत्मनिष्ठ और भीतरसे इच्छारहित होजाओ ॥ १७ ॥ यह मेराहै इसे असद् जानकरके इंद्रियके अर्थ शब्द स्पर्शादिमें अभिमुख होता हुआ तुह्मारा मन निमग्न न हो और मग्नतारहित इंद्रियोंके व्यापारोंको करै वा न करै ॥ १८ ॥ हे रामचन्द्रजी ! जब इंद्रियके अर्थ शब्दस्पर्शादिकी शोभा तुह्मारे हृदयमें नहीं रूचेगी तब तुम ज्ञान तथा विज्ञान संपन्न होकर संसार समुद्रके पार होजावोगे ॥ १९ ॥ जब इस लोकके और परलोकके इन्द्रियोंके विषय सर्वथा तुह्मारी अरुचिके विषय होजावेंगे तब तुम संसारका व्यवहार करते रहो वा समाधिनिष्टहो परंतु इच्छा न करनेपरभी मुक्ति तुमको विना प्रयासही प्राप्त होगी ॥ २० ॥

उच्चैःपदायपरयाप्रज्ञयावासनागणात् ॥ पुष्पाद्गंधमिवोदारंचेतोरामपृथक्कुरु ॥ २१ ॥ संसारांबुनिधाव स्मिन्वासनांबुपरिप्लुते ॥ येप्रज्ञानावमारूढास्तेतीर्णाब्रुडिताःपरे ॥ २२ ॥ क्षुरधाराप्रमितयाधियापरम

धीरया ॥ प्रविचार्यात्मनस्तत्त्वंततःस्वपदमाविश ॥ २३ ॥ यथातत्त्वविदःप्राज्ञाज्ञानबृंहितचेतसः ॥ विहरंतितथारामविहर्तव्यंनमूढवत् ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! उच्चपदपर प्राप्त होनेकेलिये परम उत्कृष्ट बुद्धिसे अपने ज्ञानवैराग्यसे उत्कृष्ट चित्तको वासनाके समूहसे ऐसे पृथक् करो जैसे पुष्पसे गंधको ॥ २१ ॥ वासनारूपी जलसे पूर्ण इस संसाररूपी समुद्रमें वेही पार उतरे हैं जो बुद्धिरूप नौकापर आरूढ हुये हैं और शेष सम्पूर्ण बूडगये ॥ २२ ॥ हे रामजी ! विवेकवैराग्यादिसे क्षुरकीधाराके समान तीक्ष्ण परमधीर बुद्धिसे अपने आत्मतत्त्वको विचारकर अनंतर उस अपने परमपदमें प्रवेश करो ॥ २३ ॥ हे रामजी ! जैसे ज्ञानसे वर्द्धित चित्तवाले, बुद्धिमान् तथा तत्ववेत्ता महात्माजन इस संसारमें विहरते हैं ऐसेही विहरना चाहिये, न कि मूढोंके तुल्य ॥ २४ ॥

जीवन्मुक्तामहात्मानोनित्यतृप्तामहाधियः ॥ आचारैरनुगंतव्यानभोगकृपणाःशठाः ॥ २५ ॥ नत्यजंतिनवांछंतिव्यवहारंजगद्गतम् ॥ सर्वमेवानुवर्त्तंतेपारावारविदोजनः ॥ २६ ॥ प्रभावस्याभिमानस्यगुगुणानांयशसःश्रियः ॥ नकंचित्कृपणालोकेमहांतस्तत्त्वदर्शिनः ॥२७॥ सुशून्येपिनखिद्यंतेदेवोद्यानेनसंगिनः ॥ निर्यांतिचनमुंचंतिमहांतोभास्कराइव ॥ २८ ॥

अर्थ—जो नित्य तृप्त महाबुद्धिमान् जीवन्मुक्त महात्मागणहैं उन्हीके आचरणोंका अनुगामी होना चाहिये न कि अपने तथा अन्यके वंचक शठोंका ॥ २५ ॥ ब्रह्म तथा जगत्के तत्वोंको जाननेवाले महात्माजन जगत्के व्यवहारोंको न त्यागते हैं और न उसकी इच्छा करते हैं, किंतु यथा प्राप्त सबका अनुवर्तन करते हैं ॥ २६ ॥ तत्वदर्शी महात्माजन विद्या तपस्याकी उत्कर्षतारूप प्रभाव, अभिमान, प्रवीणता, कुलशीलादि गुण, कीर्ति तथा संपत्तिके कृपण कभी नहीं देखेगये, क्योंकि इनमें पुरुषार्थता दृष्टि नहीं रखते ॥ २७ ॥ पूर्वोक्त महात्माजन सर्व नाशसेभी खिन्न नहीं होते और इन्द्रके उद्यान नंदनवनमेंभी आसक्त नहीं होते और सूर्यके तुल्य अपनी शास्त्रसिद्ध मर्यादाको कभी नहीं त्यागते ॥ २८ ॥

विगतेच्छायथाप्राप्तव्यवहारानुवर्त्तिनः ॥ विचरंतिससुन्नद्धाःस्वस्थादेहरथेस्थिताः ॥ २९ ॥ त्वमपिप्राप्तवान्रामविवेकमिममाततम् ॥ प्रज्ञाबलेनचानेनज्ञानेस्वस्थोसिसुंदर ॥ ३० ॥ स्वष्टांदृष्टिमवष्टभ्यनिर्मानोगतमत्सरः ॥ विहरास्मिन्भुवःपीठेपरांसिद्धिमवाप्स्यसि ॥ ३१ ॥ स्वस्थःसर्वेहितत्यागीदूरालोकनवांछनः ॥ परांशीतलतामंतरादायविहरानघ ॥ ३२ ॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ इत्थंगिराविमलयाविमलाशयस्यरामोमुनेःसपदिमृष्टइवावभासे ॥ ज्ञानामृतेनमधुरेणविराजितांतःपूर्णःशशांकइवशीतलतांजगाम ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे जीवन्मुक्तस्थितगुणवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशःसर्गः ॥ ४६ ॥

अर्थ—इच्छाशून्य, यथा प्राप्त व्यवहारके अनुसार वर्तनेवाले, विज्ञानरूप सारथीसे संयुक्त, स्वस्थ होके देहरूपी रथपर स्थित इस संसारमें विचरतेहैं ॥ २९ ॥ हे रामजी ! तुमकोभी यह विशाल विज्ञान प्राप्त हुआहै, हे सुंदर रामजी ! इस बुद्धिबलसे तुम ज्ञानमें स्वस्थ हो ॥३०॥ प्रत्यक्ष आत्मदृष्टिका अवलंबन करके मान तथा मात्सर्य शून्य होके इस पृथिवीतलपर विहार करो तो परम सिद्धिको प्राप्त होओगे ॥ ३१ ॥ हे पापरहित रामजी ! स्वस्थ सब चेष्टाओंके त्यागी, विषय कौतुकोंके दर्शनकी इच्छासे रहित होके, और अंतःकरणमें परम शांतिरूप शीतलताको ग्रहण करके इस संसारमें विहार करो ॥ ३२ ॥ श्रीवाल्मीकिजी बोले—इसप्रकार निर्मल अंतःकरणवाले मुनि वसिष्ठकी विमलवाणीसे शोधितके समान रामचन्द्रजी शीघ्र भासित होगये, तथा अति मधुर ज्ञानामृतसे दीपित अंतःकरण पूर्णचन्द्रमाके सदृश अति शीतलताको प्राप्त हुये ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे जीवन्मुक्तस्थितिगुणवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥४७॥

अतीत, भावी, तथा वर्तमान ब्रह्मा तथा ब्रह्माण्डोंकी अनेक कोटि, तथा नियम, और अनियत क्रमवाले देवतादि इस ४७के सर्गमें वर्णन कियेगये हैं ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञसर्ववेदांगपारग ॥ आश्वस्तइवतिष्ठामिशुद्धाभिर्भवदुक्तिभिः॥१॥ उदाराणिविविक्तानिपेशलान्युदितानिच ॥ श्रोतुंतृप्तिंनगच्छामिवचांसिवदतस्तव ॥ २ ॥ जात्याराजससात्विक्याःकथनावसरांतरे ॥ उत्पत्तिर्भवताप्रोक्ताशास्त्रैःकमलजन्मनः ॥३॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ बहूनिब्रह्मलक्षाणिशंकरेंद्रशतानिच ॥ नारायणसहस्राणिसमतीतानिराघव ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-हे भगवन् ! हे सर्व धर्मज्ञ ! हे वेदवेदांग पारग ! आपके विमल वचनोंसे मैं इस समय सर्वथा स्वस्थके समान स्थितहुं ॥ १ ॥ उत्तम अर्थयुक्त वर्णपद और वाक्योंके प्रकरण भेदोंसे व्यक्त विचित्र कथाओंकी युक्तियोंके संदर्भसे निपुण, तथा आत्मतत्त्व और हृदयकमलके प्रकाशक होनेसे सूर्यादिके समान निर्भूत आपके वचनोंको सुननेको मैं तृप्त नहीं होता ॥ २ ॥ हे भगवन् ! राजस तथा सात्विक जीवजातिके प्रसंगसे ब्रह्माकी उत्पत्ति नानाप्रकारके सृष्टिप्रतिपादक वेदपुराणादि प्रमाणोंसे कहाथा उसको स्पष्ट रीतिसे वर्णन कीजिये॥३॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे राघवजी ! अनेक लक्ष ब्रह्मा, सैकडों शंकर तथा इन्द्र, और सहस्रों नारायण वीतगये ॥४॥

अन्येषुचविचित्रेषुब्रह्मांडेषुचभूरिशः ॥ नानाचारविहाराणिविहरंतिसहस्रशः ॥ ५ ॥ तुल्यकालमनंतेषुकालांतरभवेषुच ॥ जगत्सुप्रोद्भविष्यंतिबह्वन्यन्यानिभूरिशः ॥ ६ ॥ तेषामब्जोद्भवादीनांब्रह्मांडेषुदिवौकसाम् ॥ उत्पत्तयोमहाबाहोविचित्राभ्युत्थिताइव ॥ ७ ॥ कदाचित्सृष्टयःशार्व्यःकदाचित्पद्मजोद्भवाः ॥ कदाचिदपिवैष्णव्यःकदाचिन्मुनिनिर्मिताः ॥ ८ ॥

अर्थ—और अन्य नानाप्रकारके ब्रह्माण्डोंमें तथा इसमें नानाप्रकार आचार विहारवाले देव दैत्यादि शरीर विहार करतेहैं ॥ ५ ॥ एकसमयमें तथा अन्यसमयमें होनेवाले अनेक ब्रह्माण्डोंमें अनेक वार अनेक देवतादि उत्पन्न होंगे ॥६॥ हे महावाहो ! उन ब्रह्मादि कृत ब्रह्माण्डोंमें देवतादिकी उत्पत्ति मानो विचित्र इन्द्रजालसे आविर्भूत हुई है ॥७॥ कदाचित् सृष्टि महादेवजीसे होती हैं कभी ब्रह्मासे, कभी विष्णुसे और कभी मुनिरचित होती हैं ॥८॥

कदाचित्पद्मजोब्रह्माकदाचित्सलिलोद्भवः ॥ अंडोद्भवःकदाचित्तुकदाचिज्जायतेंबरात् ॥ ९ ॥ कस्मिंश्चिदंडेत्र्यक्षोर्कःकस्मिंश्चिदपिवासवः ॥ कस्मिंश्चित्पुंडरीकाक्षःकस्मिंश्चित्र्यक्षएवहि ॥ १० ॥ कस्यांचिद्भूरभूत्सृष्टौनीरंध्रतरुसंकटा ॥ कस्यांचिन्नरनीरंध्राकस्यांचिद्भूधरावृता ॥ ११ ॥ भूरभून्मृन्मयीकाचित्काचिदासीद्दृषन्मयी ॥ आसीद्धेममयीकाचित्काचित्ताम्रमयीतथा ॥ १२ ॥

अर्थ—और ब्रह्मा कभी कमलसे, कभी जलसे, कभी अण्डसे और कभी आकाशसे उत्पन्न होते हैं॥ ९ ॥ किसी ब्रह्मांडमें महादेव, किसीमें सूर्य, किसीमें इन्द्र, किसीमें विष्णु और किसीमें महादेवही महादेवताओंके अधिकारमें हैं ॥ १० ॥ कभी किसी सृष्टिमें प्रथम वृक्षोंसे व्याप्त यह पृथिवीथी, कभी मनुष्योंसे; कभी तो पर्वतोंसे व्याप्त थी ॥११॥ कोई पृथिवी मृत्तिकामयी थी कभी कोई पाषाणमयी, कोई सुवर्णमयी, और कोई ताम्रमयीथी॥१२॥

इहैवकानिचित्राणिजगंत्यन्यान्यथान्यथा ॥ अन्यान्येकैकलोकानिनिर्महांस्यपिकानिचित् ॥ १३ ॥ अनंतानिजगंत्यस्मिन्ब्रह्मतत्त्वमहांबरे ॥ अंभोधिवीचिजलवन्निमज्जंत्युद्भवंतिच ॥ १४ ॥ यथातरंगाजलवैमृगतृष्णामरौयथा ॥ कुसुमानियथाचूतेतथाविश्वश्रियःपरे ॥ १५ ॥ भानोर्गणयितुंशक्यारश्मिषुत्रसरेणवः ॥ आलोलवपुषोब्रह्मतत्त्वेनजगतांगणाः ॥ १६ ॥

अर्थ—इसी ब्रह्मांडमें कितने आश्चर्यमय जगतहैं, और अन्य २ ब्रह्मांडभी वहुत आश्चर्यमय हैं, और किसीमें एक सूर्यका प्रकाशहै और कितनेमें इस ब्रह्मरूपी महाआकाशमें अनंत ब्रह्माण्ड ऐसे उत्पन्न और लीन होतेहैं जैसे समुद्रमें तरंगके जल ॥ १३ ॥ १४ ॥ जैसे समुद्रमें तरंग, मरुस्थलमें मृगतृष्णाकी नदियां, तथा आम्रके वृक्षमें पुष्पहैं इसी प्रकार परमात्मामें संसारकी शोभा है ॥ १५ ॥ सूर्यकी किरणोंमें जो त्रसरेणु उडतेहैं उनकी गणना होसकती हैं परन्तु ब्रह्मतत्त्वमें जो चंचल जगत्के समूह हैं उनकी गणना नहीं होसकती ॥ १६ ॥

यथामशकजालानिवर्षादिष्वाकुलानितु ॥ उत्पत्योत्पत्यनश्यंतितथेमालोकसृष्टयः ॥ १७ ॥ नचविज्ञायतेकस्मात्कालात्प्रभृतिचागताः ॥ नित्यागमापायपराएताःसर्गपरंपराः ॥ १८ ॥ अनादिमत्योविरलं सर्वथास्फुरंतितरंगवत् ॥ पूर्वात्पूर्वंकिलाभूवंस्ततःपूर्वतरंयथा ॥ १९ ॥ भूत्वाभूत्वाप्रलीयंतेससुरासुरमानवाः ॥ सरित्तरंगभंग्यैवसमस्ताभूतजातयः ॥ २० ॥

उच्चैःपदं करनेपरभी स्मिन्वासदैं —जिसप्रकार वर्षादि ऋतुओंमें मशकादिके समूह उत्पन्न हो होकर नष्ट होजातेहैं यही दशा इन सृष्टि- विदित होता कि निरंतर आविर्भाव और तिरोभावमें तत्पर यह सृष्टियोंमेंकी पंक्ति किस कालसे

होती चली आती हैं अर्थात् प्रवाह रूपसे अनादि हैं ॥ १८ ॥ आदि अंतरहित यह सृष्टि निरंतर तरंगके समान स्फुरित होती है जो पूर्व सृष्टि है उससे भी पहले सृष्टिथी और उनसे भी पहले थी ॥ १९ ॥ सुर असुर तथा मनुष्य सहित संपूर्ण प्राणियोंकी जाति उत्पन्न हो होकर ऐसे नष्ट होजाती हैं जैसें नदीमें तरंग ॥ २० ॥

यथेदमंडंवैरिंचंतथाब्रह्मांडपंक्तयः ॥ याःसहस्राःपरिक्षीणानाडिकावत्सरेष्विव ॥ २१ ॥ अन्याःसंप्र तिविद्यंतेवर्त्तमानशरीरकाः ॥ प्रांतेब्रह्मपुरस्यास्यविततेब्रह्मणःपदे ॥ २२ ॥ ब्रह्मण्यन्याभविष्यंतिब्रा ह्म्योब्रह्मपुरश्रियः ॥ पुनस्ताश्चविनंक्ष्यंतिभूत्वाभूत्वायथागिरः ॥ २३ ॥ ब्रह्मण्यन्याभविष्यंत्यःस्थि ताःसर्गपरंपराः ॥ घटाइवमृदोराशावंकुरेपल्लवाइव ॥ २४ ॥

अर्थ—जैसे यह ब्रह्माका हमारा ब्रह्माण्डहै ऐसे सहस्रों ब्रह्मांडकी पंक्ति ऐसे नष्ट होगई हैं जैसे संवत्सरोंमें घटिका ॥ २१ ॥ अन्यभी ब्रह्मांडकी पंक्ति जो कि इससमयमें वर्तमानहैं वे सब इसी ब्रह्मपुर नामक अतिव्याप्त हृदय पुंडरीकमें स्थित जो ब्रह्मपदहै उसीमें स्थितहैं ॥२२॥ और ब्रह्ममें अन्यभी ब्रह्मासे रचित ब्रह्मांडकी पंक्ति जो कि ब्रह्मपुरकी शोभारूपहैं उत्पन्न होंगी और पुनः वे हो होकर ऐसे नष्ट होंगी जैसे आकाशमें शब्द॥२३॥और जैसे मृत्तिकाकी राशिमें घट स्थितहैं और अंकुरमें पल्लव स्थितहैं ऐसेही ब्रह्ममें होनेवाली अन्य सृष्टियोंकी परंपरा स्थितहैं॥२४॥

यावद्ब्रह्मचिदाकाशेतथात्रिभुवनश्रियः ॥ स्फाराकारविकाराढ्याःप्रेक्ष्यमाणानकिंचन ॥ २५ ॥ उन्मज्जं त्योनिमज्जंत्योनसत्यानाप्यसच्छ्रियः ॥ जडारंभावितन्वंत्यस्ताएवखलताइव ॥ २६ ॥ तरंगसमधर्मि ण्योदृष्टनष्टशरीरकाः ॥ सर्वासांसृष्टिराशीनांचित्राकारविचेष्टिताः ॥ २७ ॥ चित्राकारविकाराश्चचित्र रूपाहिसृष्टयः ॥ व्यतिरिक्तानसर्वेपांसमस्ताःसृष्टिदृष्टयः ॥२८॥ तत्त्वज्ञविपर्येरामसलिलादिवदृष्टयः॥ आयांतिसृष्टयोदेवाज्जलदादिवदृष्टयः ॥ २९ ॥

अर्थ—महत्त् आकारोंसे पूर्ण ये त्रिभुवनकी शोभा चिदाकाशमें तभीतक देख पडती है जबतक कि तत्त्वज्ञानसे इनका बाध नहीं होता ॥ २५ ॥ यह ब्रह्मांड अनिर्वचनीय मूर्खोंसे अध्यस्त विशालरूप ब्रह्मांडकी शोभा आविर्भाव तिरोभावको प्राप्त होती हुई ऐसी है जैसे आकाशकी लता ॥ २६ ॥ तरंगके समान क्षणभंगुर शरीरवाली संपूर्ण सृष्टियोंकी ये राशि चित्रविचित्र आकार तथा चित्रविचित्र प्राणियोंकी चेष्टाओंसे युक्तहैं ॥२७॥ सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंकी चित्रविचित्र आकार विकार तथा चित्रविचित्र रूपवाली संपूर्ण सृष्टिकी दृष्टि ज्ञानी पुरुषके लिये परमात्मासे ऐसे नहीं भिन्नहैं जैसे जलसे वृष्टि और मूर्खकी दृष्टिमें परमात्मासे ऐसे आती हैं जैसे मेघसे वृष्टि ॥ २९ ॥

व्यतिरिक्तानसर्वेपांसमस्ताःसृष्टिदृष्टयः ॥ व्यतिरिक्ताद्रवांभोधिस्वाष्ठीलाःशाल्मलेरिव ॥ ३० ॥ इहस्थू लेषुपुष्टासुनिकृष्टासुचराघव ॥ परमान्नभसोजातास्तन्मात्रमलमालिका ॥ ३१ ॥ कदाचित्प्रथमंव्यो मप्रतिष्ठामधिगच्छति ॥ ततःप्रजायतेब्रह्माव्योमजोसौप्रजापतिः ॥ ३२ ॥

अर्थ—और यथार्थमें तो ज्ञानी तथा अज्ञानी दोनोंके लिये सृष्टिकी दृष्टि ब्रह्मसे पृथक् नहीं है जैसे शाल्मली वृक्षकी नाडी और पत्र आदि उस वृक्षसे ॥ ३० ॥ हे रामजी ! इस ब्रह्माण्डमें स्थूल भूतोंसे रचित देहादिकोंमें तथा सूक्ष्म भूतोंसे रचित इन्द्रियादिकोंके विषयमें संपूर्ण जगत्के पदार्थ जो कि अव्याकृत आकाशसे उत्पन्न हुयेहैं वे सब भूत सूक्ष्म सूत्रमें ग्रथितमालाके समानहैं ॥ ३१॥ कदाचित् सबसे प्रथम आकाश स्थूलभावसे स्थितिको प्राप्त होताहै उससे ब्रह्मा उत्पन्न होताहै इसलिये यह प्रजापति आकाशज कहलाताहै ॥ ३२ ॥

कदाचित्प्रथमंवायुःप्रतिष्ठामधिगच्छति ॥ ततःप्रजायतेब्रह्मावायुजोसौप्रजापतिः ॥ ३३ ॥ कदाचि त्प्रथमंतेजःप्रतिष्ठामधिगच्छति ॥ ततःप्रजायतेकर्त्तातैजसोसौप्रजापतिः ॥ ३४ ॥ कदाचित्प्रथमंवारि प्रतिष्ठामधिगच्छति ॥ ततःप्रजायतेब्रह्मावारिजोसौप्रजापतिः ॥ ३५ ॥ कदाचित्प्रथमंपृथ्वीस्फारता मधिगच्छति ॥ ततःप्रजायतेब्रह्मापार्थिवोसौप्रजापतिः ॥ ३६ ॥

अर्थ—कदाचित् वायु स्थूल भावसे स्थितिको प्राप्त होताहै और उससे ब्रह्मा उत्पन्न होताहै इसलिये यह ब्रह्मा वायुज (वायुसे उत्पन्न) कहलाताहै ॥ ३३ ॥ कदाचित् सबसे प्रथम तेज स्थिति भावको प्राप्त होताहै और उससे जगत्कर्ता ब्रह्मा उत्पन्न होताहै इसलिये उसका नाम तैजसहै॥३४॥ कदाचित् सबसे प्रथम जल स्थूलभावसे स्थितिको प्राप्त होताहै और उससे ब्रह्मा उत्पन्न होताहै. इसलिये इस प्रजापतिका नाम वारिजहै ॥ ३५ ॥ कदाचित् यह विशाल पृथ्वी स्थूलभावसे स्थितिको प्राप्त होतीहै उससे ब्रह्मा उत्पन्न होताहै इसलिये उस प्रजापतिका नाम पार्थिवहै॥३६॥

इदंचत्वारिसंपीड्यपंचमंवर्द्धतेयदा ॥ तदातज्जातंएवैपकुरुतेजागतींक्रियाम् ॥ ३७ ॥ कदाचिदंशुवा योवासुस्फारेवापितेजसि ॥ स्वयंसंपद्यतेकस्मात्पुमान्प्रकृतिभावितः ॥ ३८ ॥ तस्याथशब्दोवदना

त्कदाचिज्जायतेपदात् ॥ कदाचिदंशात्पृष्ठाद्वाकदाचिल्लोचनात्करात् ॥ ३९ ॥ कदाचित्पुरुषस्यास्य नाभौपद्मंप्रजायते ॥ तस्मिन्संवर्द्धतेब्रह्मापद्मजोसौप्रकीर्त्तितः ॥ ४० ॥

अर्थ—इन पांचों भूतोंके दो दो भाग करना और प्रत्येकके एक एक भागके चार चार भाग करना हरएकका जो आधा बडाभागहै उसमें चारों भूतोंके चतुर्थांश चतुर्थांश मिलाकर जो पांचवां बडाभाग और सबसे अधिक होजाताहै उस समय उससे उत्पन्न हुआ ब्रह्मा कहा जाताहै वा उत्तर कालकी जगत्की क्रियाको करताहै ॥ ३७ ॥ कदाचित् अधिक भागयुक्त जल वायु वा तेजमें उस भूतकी उपाधि सहित अपने पूर्वकालकी उपासनासे जो पुरुष उत्पन्न होताहै वह आप्य तैजस इत्यादि आकारसे अकस्मात् सिद्ध होताहै ॥ ३८ ॥ उस समय कभी उसके मुखसे कदाचित् पदसे कदाचित् अग्र भागसे कदाचित् पृष्ठभागसे कदाचित् नेत्र वा हस्तसे शब्द तथा नामरूप उत्पन्न होतेहैं ॥ ३९ ॥ कदाचित् इस नारायणनाम पुरुषकी नाभिमें कमल उत्पन्न होताहै और उसमें ब्रह्मा उत्पन्न होकर बैठतेहैं इसलिये उसका नाम पद्मज कहा गयाहै ॥ ४० ॥

मायेयंस्वप्नवद्भ्रांतिर्मिथ्यारचितचक्रिका ॥ मनोराज्यमिवालोलसलिलावर्त्तसुंदरी ॥ ४१ ॥ किमिवास्यांवदन्नासौकथंसंभवतीहते ॥ क्वचिद्बालमनोराज्यमिदंपर्यनुयुज्यते ॥ ४२ ॥ कदाचिदंबरेशुद्धेमनस्तत्त्वानुरंजनात् ॥ सौवर्णंब्रह्मगर्भंचस्वयमंडंप्रवर्त्तते ॥ ४३ ॥ कदाचिदेवेपुरुषोवीर्यंसृजतिवारिणि ॥ तस्मात्प्रजायतेपद्मंब्रह्मांडमथवामहत् ॥ ४४ ॥

अर्थ—विद्यमान उसी पुरुषसे उसी पुरुषकी उत्पत्ति कैसे हुई यह शंका न करना क्योंकि यह स्वप्नकी भ्रांतिके समान मिथ्या चक्रके रचनेवाली चंचलजलमें आवर्तके समान सुंदरी मनोराज्यके समान मायाहै ॥ ४१ ॥ यदि इस मायामें आश्चर्य जनक उत्पत्ति नहीं होसकती तो असंग अद्वितीय परमात्मामें द्वितीय जगत्की उत्पत्ति कैसे होसकती है, इसलिये पुरुषकी नाभिकमलसे पुरुषका उत्पन्न होना इसमें आशंका करना बालकके मनोराज्यके सदृशहै ॥ ४२ ॥ कदाचित् शुद्ध आकाशमें मनकी शक्तिसे सुवर्णका अण्ड निर्मित होताहै और उससे ब्रह्माकी उत्पत्ति होतीहै ॥ ४३ ॥ कभी परमपुरुष जलमें वीर्य डालताहै और उससे पृथ्वीकमल वा महान् ब्रह्माण्ड उत्पन्न होताहै ॥ ४४ ॥

तस्मात्प्रजायतेब्रह्माकदाचिद्भास्करोप्यसौ ॥ कदाचिद्वरुणोब्रह्माकदाचिद्वायुरंडजः ॥ ४५ ॥ एवमंतर्विहीनासुविचित्रास्विहसृष्टिषु ॥ विचित्रोत्पत्तयोरामब्रह्मणोविविधागताः ॥ ४६ ॥ निदर्शनार्थंसृष्टेस्तुमयैकस्यप्रजापतेः ॥ भवतेकथितोत्पत्तिर्नतत्रनियमःक्वचित् ॥ ४७ ॥ मनोविजृंभणमिदंसंसारइतिसंमतम् ॥ संबोधनायभवतःसृष्टिक्रमउदाहृतः ॥ ४८ ॥

अर्थ—उससे ब्रह्मा उत्पन्न होताहै इसलिये उसका नाम पद्मजहै और कदाचित् पूर्वकल्पमें सूर्य और इस कल्पमें ब्रह्मा होताहै और कदाचित् पूर्वकल्पमें वरूण और वायुके अधिकारमें स्थित इस कल्पमें ब्रह्मा होतेहैं, हे रामजी ! इसप्रकार ब्रह्ममें अविद्यमान यह नानाप्रकारकी विचित्र ब्रह्माकी उत्पत्ति कही और उसमें कोई कहीं नियम नहीं हैं एक ब्रह्माकी उत्पत्तिसे तुम अन्य ब्रह्माकी उत्पत्ति जानलेना ॥ ४७ ॥ यह संसार केवल मनका विलासमात्रहै, ऐसा सिद्धांतहै उसी बातको भलीभांति तुमको बोध करानेके अर्थ यह सृष्टिका क्रम तुमसे कहाहै ॥ ४८ ॥

सात्विकीप्रभृतयोयाश्चजातयश्चेत्थमागताः ॥ इतितेकथनायैषसृष्टिक्रमउदाहृतः ॥ ४९ ॥ पुनःसृष्टिः पुनर्नाशःपुनर्दुःखंपुनःसुखम् ॥ पुनरज्ञःपुनस्तज्ज्ञोबंधमोक्षदृशःपुनः ॥ ५० ॥ पुनःसृष्टिकरावीतवीतस्नेहदृशःपुनः ॥ दीपाइवकृतालोकाःप्रशाम्यंत्युद्भवंतिच ॥ ५१ ॥ देहोत्पत्तौविनाशेचदीपानांब्रह्मणामपि ॥ कालेनाधिकतांत्यक्त्वानाशेभेदोनकश्चन ॥ ५२ ॥

अर्थ—और सात्विकी आदि जो जीवकी जाति है वेभी इसीप्रकार मनकी कल्पनामात्रसे आगई हैं और इसीके समझानेके अर्थ सृष्टिका क्रम तुमसे वर्णन किया ॥ ४९ ॥ जबतक समूल इस मनका नाश नहीं होता तब तक पुनः सृष्टि पुनः उसका नाश पुनः २ सुख तथा दुःख और पुनः २ अज्ञ मूर्ख तथा बंधमोक्ष दृष्टि हुआ करती है ॥ ५० ॥ और पुनः २ सृष्टिकर्ता तथा अतीत वर्तमान तथा आगामी प्रियवस्तुओंमें स्नेहकी दृष्टियां ऐसे शांत तथा उत्पन्न होती हैं जैसे दीपसे प्रकाश ॥ ५१ ॥ दीपोंकी चंपककलिकाकार और ब्रह्माका विशाल चतुर्मुखादि आकारकी देहोंकी उत्पत्ति तथा नाशके विषयमें कालकी अधिकताको छोडके अन्य कुछभी भेद नहीं हैं अर्थात् दीपोंकी शरीरोंका शीघ्र नाश होताहै और ब्रह्माकी शरीरोंका द्विपरार्द्धके अन्तमें केवल यही भेदहै ॥ ५२ ॥

पुनःकृतंपुनस्त्रेतापुनःसद्वापरःकलिः ॥ पुनरावर्त्ततेसर्वंचक्रावर्त्ततयाजगत् ॥ ५३ ॥ पुनर्मन्वंतरारंभाः पुनःकल्पपरंपराः ॥ पुनःपुनःकार्यदशाःप्रातःप्रातरहोयथा ॥ ५४ ॥ लोकालोककलांकालकलनाक

लितांतरम् ॥ पुनःपुनरिदंसर्वंनकिंचनपुनःपुनः ॥ ५५ ॥ अनाहतेप्रतप्तेयःपिंडेनलकणाइव ॥ इमे भावाःस्थितानित्यंचिदाकाशेस्मभावतः ॥ ५६ ॥

अर्थ—सत्युग त्रेता द्वापर और कलियुग ये पुनः २ होते हैं और चक्र आवर्तके समान यह जगत् आता जाता रहताहै ॥ ५३ ॥ मन्वन्तरोंका आरंभ तथा कल्पोंकी परंपरा ये पुनः २ होते हैं और कार्यकी दशा पुनः २ ऐसे होतीहैं जैसे दिन और प्रातःकाल ॥ ५४ ॥ रात्रिदिन तथा कला (३० काष्टात्मक मुहूर्तका द्वादशभाग क्षणका तीसवां भागात्मक) आदिसे घटित प्राणियोंकी आयुरूप कालकी कल्पनासे परिच्छिन्न सब पदार्थसहित यह संपूर्ण जगत् पुनः २ आता जाता रहताहै ॥ ५५ ॥ जैसे लोहशीलादिके आघातसे वर्जित तप्तलोहके पिंडमें अग्निके कण रहतेहैं ऐसेही चिदाकाशमें संपूर्ण पदार्थ अपने स्वभावहीसे स्थितहै ॥ ५६ ॥

कदाचिदनभिव्यक्तंकदाचिद्व्यक्तिमागतम् ॥ इदमस्तिपरेतत्त्वेसर्वंवृक्षइवार्त्तवम् ॥ ५७ ॥ चित्स्पंदएवसर्वात्मासर्वदैवेदृशाकृतिः ॥ यदस्माज्जायतेसर्गोद्वींदुत्वमिवलोचनात् ॥ ५८ ॥ चितःसर्वाःसमायांतिसंतताःसृष्टिदृष्टयः ॥ तत्स्थाएवाप्यतत्स्थाभाश्चंद्रादिवमरीचयः ॥ ५९ ॥ नकदाचनसंसारःकिंलायंरामसत्सदा ॥ सर्वशक्तावसंसारशक्तिताविद्यतेयतः ॥ ६० ॥

अर्थ—कदाचित् अप्रकट कदाचित् प्रकटरूपमें प्राप्त यह संपूर्ण जगत् परमात्मामें ऐसे रहताहै जैसे ऋतुके पुष्पफलादि वृक्षमें ॥ ५७ ॥ सर्वात्मक जो चित्का विवर्त है उसका चित्रूपही आकारहै और उससे जो जगत्की सृष्टि उत्पन्न होती है यह नेत्रके दोपसे दो चन्द्रके समानहै ॥ ५८ ॥ चित्सेही संपूर्ण सृष्टिकी दृष्टि निरंतर आविर्भूत होती हैं और उसमें स्थितभी उससे पृथक् ऐसे भान होती हैं जैसे चन्द्रमासे उसकी किरण ॥ ५९ ॥ हे रामजी ! यह संसार कदाचित् सत्य नहीं है क्योंकि सर्वशक्तिमान् परमात्मामें सदा असंग अद्वितीय स्वभावताहै ॥ ६० ॥

नचैवेदंकदाचित्तुसाधोजगदनीदृशम् ॥ सर्वशक्तौहिसंसारशक्तिताविद्यतेयतः ॥ ६१ ॥ महाकल्पावधिःकालेनसंसारितयेद्वया ॥ नभविष्यतिसंसारइदानीमितियुज्यते ॥ ६२ ॥ ज्ञदृष्ट्यासर्वमेवेदंब्रह्मैवेतिमहामते ॥ नास्तिसंसारइत्येतदुपपद्यतएवच ॥ ६३ ॥ अज्ञदृष्ट्यात्वविच्छिन्नसंसारत्वादनारतम् ॥ नित्यासंसारमायेयंमिथ्यापिह्युपपद्यते ॥ ६४ ॥

अर्थ—तथा हे साधो रामजी ! इसप्रकार स्वभावसे भिन्न यह जगत् कदाचित् नहींहै क्योंकि सर्वशक्तिमान् परमात्मामें जगत्के बीजकी मर्यादारूप शक्तिहै ॥ ६१ ॥ अधिष्ठान चेतनसे प्रदीप्त संसारी तथा कालसे उपलक्षित यह संसार वैज्ञानिक मोक्षनाम प्रलयतक होगा, आगे नहीं होगा यह व्यवहार इस समय युक्तहै ॥ ६२ ॥ ज्ञानिके दृष्टिमें यह सब जगत् ब्रह्महीहै इसलिये हे महामते यह संसार नहीं है यहभी युक्तहै ॥ ६३ ॥ और अज्ञानीको दृष्टिमेंतो प्रवाहरूपसे निरंतर यह संसार होताहै इस हेतुसे मिथ्या होनेपरभी संसारकी माया नित्यहै ॥ ६४ ॥

पुनःपुनःस्वभावित्वान्नकदाचिदनीदृशम् ॥ जगदित्येतदित्युक्तंनमृषारघुनंदन ॥ ६५ ॥ अनारतपतद्रूपादिशोदृष्टाविनश्वराः ॥ विनाशीदंजगत्सर्वमितिकिंनोपपद्यते ॥ ६६ ॥ सर्वत्रोदितचंद्रार्कादिशोदृष्टाःस्थिराचलाः ॥ अविनाशिजगत्सर्वमित्यप्यवितथोपमम् ॥ ६७ ॥ नतदस्तिनयत्तस्मिन्नेकस्मिन्विततात्मनि ॥ संकल्पकलनाजालमनाख्येनोपपद्यते ॥ ६८ ॥

अर्थ—पुनः २ होनेके कारण यह जगत् इसप्रकारके स्वभावसे भिन्न नहींहै हे रामजी ! इस मीमांसकके सिद्धांतसे यह जगत् सत्यहै (प्रवाहरूपसे) यह कथनभी मिथ्या नहींहै ॥ ६५ ॥ निरंतर पतनशील (क्षणविध्वंसी) नश्वररूप संपूर्ण विद्युत् आदि पदार्थ दृष्टहैं इसलिये यह जगत् विनाशी है और इसीरीतिसे अज्ञ दृष्टियोंकी विचित्रतासे अपनी २ प्रक्रियाके निर्वाहार्थ बौद्ध आदि कल्पित क्षणिक परमाणु आदि व्यवहारभी क्या उनकी दृष्टिसे युक्त नहींहै ॥ ६६ ॥ सर्वत्र उदयको प्राप्त चंद्र सूर्यके स्वच्छ प्रकाश करके युक्त दिशाओंमें भूमि पर्वत आदि स्थिरके देखनेसे सदा अपनी सत्तासे यह जगत् सत्य है इत्यादि सांख्य आदिकी कल्पनाभी युक्त होसकतीहै ॥ ६८ ॥

पुनःपुनरिदंसर्वंपुनर्मरणजन्मनी ॥ पुनःसुखंपुनर्दुःखंपुनःकरणकर्मणी ॥ ६९ ॥ पुनराशाःपुनर्व्योमपुनरंभोधयोद्रयः ॥ अभ्युदेतिपुनःसृष्टिःखवदर्कप्रभायथा ॥ ७० ॥ पुनर्दैत्याःपुनर्देवाःपुनर्लोकांतरक्रमाः ॥ पुनःस्वर्गापवर्गेहाःपुनरिंद्रःपुनःशशी ॥ ७१ ॥ पुनर्नारायणोदेवःपुनर्दैत्यसुतादयः ॥ पुनराशाचलश्चारुचंद्रार्कवरुणानिलाः ॥ ७२ ॥

अर्थ—इसरीतिसे यह सब जगत् पुनः २ हुआ करताहै, जन्म, मरण, सुखदुःख और करण कर्मादि कारकभी पुनः २ हुआ करतेहैं ॥ ६९ ॥ जैसे आकाशसे सूर्यकी प्रभा पुनः उदय होतीहै ऐसेही संपूर्ण आशा, आकाश स-

मुद्र, पर्वत, सम्पूर्ण सृष्टि पुनः उदय होती हैं ॥ ७० ॥ देवता, दैत्य, तथा लोकांतरकी रचना पुनः २ होतीहै, स्वर्ग मोक्षकी चेष्टायें तथा इन्द्र चंद्रमा आदिभी पुनः २ होतेहैं ॥ ७१ ॥ नारायण भगवान् पुनः २ होतेहैं, दनुके पुत्र दानव आदिभी पुनःहोतेहैं, और दिशाओंमें चंचल तथा रमणीय सूर्य, चंद्र, वरुण और वायु आदि होतेहैं ॥ ७२ ॥

सुमेरुकर्णिकाकांतासह्यकेसरशालिनी ॥ पूर्णास्फीतोदरोदेतिरोदसीनलिनीपुनः ॥ ७३ ॥ व्योमकाननमाक्रम्यवलगत्यंशुनखात्करैः ॥ तमःकरिघटाभेत्तुंपुनर्भास्करकेसरी ॥ ७४ ॥ पुनरिंदुश्चलत्स्वच्छमंजरीसुंदरैःकरैः ॥ करोत्यमृतमाह्लादिदिग्वधूमुखमंडनम् ॥ ७५ ॥ पुनःस्वर्गतरोःपुण्यक्षयवातसमीरिताः ॥ पतंतीहविनुन्नांगाःपुण्यकृत्पुष्पराशयः ॥ ७६ ॥

अर्थ—सह्यनाम पर्वतरूपी केसरसे शोभायमान सुमेरूरूपी सुंदरकली संयुक्त, और प्राणियोंके पुण्यरूप सुगंध और भोगरूपी मकरन्दों सहित, तथा विशालकुक्षि सहित आकाश पृथिवीरूपी कमलिनी पुनः २ उदय होतीहै ॥ ७३ ॥ आकाशरूपी जंगलमें आक्रमण करके किरणरूपी नखके समूहोंसे अंधकाररूपी हांथियोंके समूहको भेदन करनेकेलिये सूर्यरूपी सिंह पुनः २ उदय होताहै ॥ ७४ ॥ चंचल और स्वच्छ लताके समान सुंदर किरणरूपी हांथोंसे चंद्रमा दिशारूपी स्त्रीके मुखका आभूषण और सर्व प्राणियोंको सुख कारक अमृतको पुनः २ बढाताहै ॥ ७५ ॥ स्वर्गरूपी वृक्षसे पुण्यके नाशरूपी वायुसे प्रेरित स्वर्ग निवासीरूपी पुष्पकी राशि छिन्न भिन्न अङ्ग होकर इस संसारमें पुनः २ गिरतेहैं ॥ ७६ ॥

पुनःकार्यक्रियापक्षैःसंसारारंभनामकम् ॥ किंचित्पटपटंकृत्वायातिकालकपिंजलः ॥ ७७ ॥ पुनरिंद्रालिकेयातेसज्जमास्थायकेवलम् ॥ आयात्यपरदेवेंद्रपट्पदःस्वर्गपंकजम् ॥ ७८ ॥ पुनःकालंकृतापूतंकलुपीकुरुतेकलिः ॥ सचक्रिणमिवांभोधिंप्रवृद्धोवकरानिलः ॥ ७९ ॥ पुनःकालकुलालेनकृतभूतशरावकम् ॥ चक्रमावर्त्यतेवेगादजस्रंकल्पनामकम् ॥ ८० ॥

अर्थ—कार्य तथा क्रियारूपी पक्षोंसे संयुक्त सृष्टिकालरूपी कपिंजलपक्षी संसारके आरंभ नामक किंचित् पटपट शब्द करके पुनः २ आता जाताहै ॥ ७७ ॥ पूर्वकालके इन्द्ररूपी क्षुद्र भ्रमरके अपने अधिकारसे चले जानेपर नवीन मन्वन्तर तथा अधिकारी देवतागणोंसे सुसज्जित ऐरावतादिके ऊपर चढके दूसरा इन्द्ररूपी भ्रमर स्वर्गरूपी कमलपर पुनः आकर बैठताहै ॥ ७८ ॥ सत्युगसे सर्वथा पवित्र कालको कलियुग आकरके पुनः ऐसे अपवित्र करताहै जैसे शयन करते हुये विष्णुभगवान् सहित समुद्रको बढाहुआ प्रलयका वायु ॥ ७९ ॥ जिस कालरूपी कुलाल (कुह्मार) से रचित प्राणीरूप सरावसहित ऐसा कल्प नाम चक्र निरंतर अतिवेगसे पुनः २ भ्रमण करने लगताहै ८०

पुनर्नीरसतामेतिजगदस्तशुभस्थिति ॥ अभ्यासीभूतसंकल्पंतंशुष्कमिवकाननम् ॥ ८१ ॥ पुनरर्कगणेष्वग्निदग्धानंतकलेवरम् ॥ सर्वभूतास्थिसंपूर्णजगदेतिश्मशानताम् ॥ ८२ ॥ पुनःकुलाचलाकारपुष्करावर्त्तवर्पणैः ॥ नृत्यद्रुद्रवृहत्फेनांयात्येकार्णवतांजगत् ॥ ८३ ॥ पुनःसंशांतवाय्वंबुरिक्तंसकलवस्तुभिः ॥ तदपूर्वमिवाकाशंजगदायातिशून्यताम् ॥ ८४ ॥

अर्थ—इस जगत्में जिसका जिस विषयमें पूर्वकालका अभ्यासहै उसके अनुकूल संकल्प तथा शुभस्थितिसे शून्य यह जगत् शुष्कवनके समान धर्मरूपी रससे पुनः हीनताको प्राप्त होताहै ॥ ८१ ॥ पुनः सूर्यके समूहोंमें अग्नि प्राणियोंके अनंत शरीरोंके भस्मकारी तथा संपूर्ण प्राणियोंकी अस्थियों (हड्डियों) से पूर्ण यह जगत् श्मशानताको प्राप्त होताहै ॥ ८२ ॥ मय आदि कुलाचल पर्वतोंके आकारके समान पुष्कर आवर्तक नामक वृष्टियोंकी धाराओंसे नृत्य करते हुये संहारकारक रूद्ररूपी महान् फेनसहित एक समुद्रताको यह जगत् पुनः प्राप्त होजाताहै ॥ ८३ ॥ शांत वायु और जलसमेत तथा संपूर्ण वस्तुओंसे शून्य यह जगत् अपूर्व आकाशके समान पुनः शून्यताको प्राप्त होताहै॥८४॥

पुनःकतिपयाभुक्त्वासमाःसमरसाशयः ॥ जीवितंजोर्णयातन्वापुनःस्वात्मनिलीयते ॥ ८५ ॥ पुनरन्येनकालेनतथैवजगतांगणान् ॥ मनस्तनोतिवैशून्येगंधर्वनगरंयथा ॥ ८६ ॥ पुनःसर्गसमारंभःप्रलयेसर्वसंभवः ॥ सर्वंपुनरिदंरामचक्रवत्परिवर्त्तते ॥ ८७ ॥ किमेतस्मिन्महामायाडंबरेदीर्घशंवरे ॥ रामसत्यमसत्यंवानिर्णेयंयदिहोच्यते ॥ ८८ ॥ दाशूराख्यायिकेवेयंरामसंसारचक्रिका ॥ कल्पनारचिताकारावस्तुशून्यानवस्तुतः ॥ ८९ ॥ अविरलमिदमाततंविकल्पैरसदुदितैरपितैर्हिचंद्रकल्पैः ॥ विरचितमसतानुपन्नसत्यंजगदिहतेनविमूढताकिमुत्था ॥ ९० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे जगद्वासनिर्णययोगोपदेशोनाम सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥

अर्थ—समानरूप अन्तःकरणयुक्त यह कुछ काल वर्षपर्यन्त अपने जीवनका भोग करके अपने जीर्णशरीरसे पुनः अपने स्वरूपमें लीन होजाताहै ॥ ८५ ॥ यह मन पुनः दूसरे कालसे उसी प्रकार जगत्के समूहोंके ऐसे विस्तार करताहै जैसे शून्यस्थानमें गन्धर्वनगरको ॥ ८६ ॥ हे रामजी ! प्रलय होनेके अनंतर पुनः सृष्टिका समारंभ होताहै और पुनः सब पदार्थोंका संभव होने लगताहै और पुनः यह संपूर्ण जगत् चक्रके समान भ्रमण करने लगताहै ॥ ८७॥ हे रामजी ! दीर्घ भ्रमरूपी इस महामायाके आडंबरमें कौनसी सत्य वा असत्य वस्तुहै जो निर्णय करनेके योग्य कही जाय अर्थात् कुछ नहीं ॥ ८८ ॥ हे राम ! कल्पनासे रचित आकारमय और वस्तुसे शून्य इस संसाररूपी चक्रिका (चर्क) दासुरकी आख्यायिकाके तुल्यहै यथार्थमें यह कुछ नहीं है ॥ ८९ ॥ अज्ञानसे आविर्भूत नेत्र दोषसे दो चन्द्रमाके सदृश विकल्पोंसे यह जगत् निरंतर व्याप्तहै और अविद्यमान कर्तासे रचा हुआ यह अधिष्ठान ब्रह्मसे भिन्न नहीं है इसलिये अपने स्वरूपसे यह सत्य नहीं है इसके सत्यकी यह मूर्खता किस निमित्तसे तुमको हुई ॥ ९० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे जगद्भासनिर्णययोगोपदेशोनाम सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥

भोगादिके लोभकी निंदा दासुरकी उत्पत्ति और प्रसन्न अग्निसे उसको वरकी प्राप्ति पर्यन्त वर्णन इस ४८ के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ क्रियाविशेषबहुलाभोगैश्वर्यहताशयः ॥ नापेक्षंतेयदासत्यंनपश्यंतिशठास्तदा ॥ १ ॥ येतुपारंगताबुद्धेरिंद्रियैर्नवशीकृताः ॥ तएनांजागतींमायांपश्यंतिकरबिल्ववत् ॥ २ ॥ तुच्छां तांजागतींमायांदृष्ट्वाजीवोविचारवान् ॥ अहंकारमयींमायांत्यजत्यहिरिवत्वचम् ॥ ३ ॥ असक्ततांततो भ्येत्यपुनारामनजायते ॥ क्षेत्रेष्वपिचिरंतिष्ठन्बीजंदग्धमिवाग्निना ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–क्रियाकी विशेषतासे व्याप्त और भोग तथा ऐश्वर्यसे नष्ट बुद्धि प्राणी जब सत्य परमात्माकी ओर चित्तको नहीं लगाते तो वे शठ अपने तथा अन्यके आत्माके वंचकहैं ॥ १ ॥ जो बुद्धिके पार होगये हैं और इन्द्रियोंके वशमें नहीं हैं वे इस जगत्की मायाको तथा सत्यको हस्तमें स्थित बिल्वके समान देखतेहैं ॥ २ ॥ विचारवान जीव जो हैं वे तुच्छ और अहंकारमयी जगत्की मायाको देखकर उसको ऐसे त्याग देतेहैं जैसे सर्प अपनी त्वचाको ॥ ३ ॥ उसके अनंतर जब वह प्राणी जगत्में आसक्त नहीं होता तो वह संसार क्षेत्रोंमें विचरते हुयेभी अग्निसे दग्ध बीजके समान पुनः नहीं उत्पन्न होताहै ॥ ४ ॥

आधिव्याधिपरीतायप्रातर्वाद्यविनाशिने ॥ प्रयतंतेशरीरायहितमज्ञास्तुनात्मने ॥ ५ ॥ त्वमप्यज्ञवदज्ञ स्यशरीरस्यसमीहितम् ॥ मासंपादयदुःखायभवात्मैकपरायणः ॥ ६ ॥ श्रीरामउवाच ॥ ॥ दाशूरा ख्यायिकेवेयंसुखसंसारचक्रिका ॥ कल्पनारचिताकारावस्तुशून्येतिकिंप्रभो ॥७॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ जगन्मायास्वरूपस्यवर्णनाव्यपदेशतः ॥ दाशूराख्यायिकांरामवर्ण्यमानांमयाशृणु ॥ ८ ॥

अर्थ—शारीरिक तथा मानसी पीडासे पूर्ण आज वा कल नाश होनेवाली शरीरके हितके लिये अज्ञानी पुरूष यत्न करतेहैं न कि आत्माके लिये ॥ ५ ॥ इसलिये हे रामजी ! अज्ञके समान अज्ञानी प्राणीके शरीरके अभीष्ट जो पदार्थ है उसकोही दुःखके लिये मत उपार्जन करो किंतु केवल आत्मपरायणहो ॥ ६ ॥ श्रीरामजी बोले–हे प्रभो ! विषयसुखके अर्थ कल्पित आकारवाली वस्तु शून्य यह संसार चक्रिका दासुरकी आख्यायिकाके सदृशहै यह आपने जो कहाथा वह कैसी है सो वर्णनकीजिये ॥७॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! जगत्की मायाके स्वरूपके वर्णनके व्याजसे इस दासुरकी आख्यायिकाको जो मैं वर्णन करताहुं तुम सुनो ८ ॥

अस्त्यस्मिन्वसुधापीठेविचित्रकुसुमद्रुमः ॥ मागधोनामविख्यातःश्रीमान्जनपदोमहान् ॥ ९ ॥ कदं बवनविस्तारलीलावलितजंगलः ॥ विचित्रविहगव्यूहसर्वाश्चर्यमनोहरः ॥ १० ॥ सस्यसंकटसीमां तःपुरोपवनमंडितः ॥ कमलोत्पलकह्लारपूर्णसर्वसरित्तटः ॥ ११ ॥ उद्यानदोलाविलसल्ललनागेयघुं घुमः ॥ निशोपभुक्तकुसुमनीरंध्रविशिखावनिः ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामचन्द्रजी ! इस पृथिवी तलपर विचित्र पुष्प और वृक्षसहित धनवान् मागध नामसे प्रसिद्ध महान् जनपदहै ॥ ९ ॥ पुनः कदंबके बनके विस्तारसे क्रीडाके लिये वेष्टित जङ्गलयुक्त विचित्र पक्षियोंके समूहसे

संपूर्ण आश्चर्योंसे मनोहर वह जनपदहै ॥ १० ॥ उत्तम धान्यसे उसके सीमाकी भूमि सघनथी, और उसके अन्तःपुर उपवनोंसे शोभित थे तथा श्वेत नील और रक्त कमलोंसे संपूर्ण नदीके तटोंको परिपूर्ण करनेवाला वहथा ॥ ११ ॥ वाटिकाओंमें झूलापर विलास करती हुई स्त्रियोंके गानसे शब्दायमान और रात्रिमें उपभुक्त कामदेवके बाणके समान पुष्पोंसे उसकी पृथ्वी पूर्णथी ऐसा वह मगधदेशथा ॥ १२ ॥

तत्रैकस्मिन्गिरितटेकर्णिकारसमाकुले ॥ कदलीखंडनीरंध्रनीपगुल्मविराजिते ॥ १३ ॥ पुष्पौघस्फूर्जदनिलेकेसरारुणधूलिनि ॥ कारंडवकृतारावेरसत्स्वरससारसे ॥ १४ ॥ तस्मिन्नगवरेपुण्येविचित्रखगद्रुमे ॥ कश्चित्परमधर्मात्मामुनिरासीन्महातपाः ॥ १५ ॥ दाशूरनामामहतातपोयोगेनसंयुतः ॥ कदंबपृष्ठवास्तव्योवीतरागोमहामतिः ॥ १६ ॥

अर्थ—उस जनपदमें कर्णिकार वृक्षोंसे पूर्ण कदलीके वृक्ष सघन कदंब तथा अन्य गुल्मादिसे शोभित ॥ १३ ॥ पुष्पोंमें प्रवाहद्वारा शब्द करते हुये वायु सहित, तथा पुष्पकी केसरोंसे रक्त धूलसहित कारंड और अन्य पक्षियोंके शब्दसे युक्त, अनुराग सहित सारस पक्षियोंके शब्द सहित एक पर्वत था ॥ १४ ॥ चित्रविचित्रपक्षी तथा वृक्षोंसे सहित, और अति पवित्र उस पर्वतपर कोई पूर्ण धर्मात्मा महातपस्वी ऋपि रहाथा ॥ १५ ॥ महा तपसे संयुक्त, कदंबके ऊपर रहनेवाला, बीतराग महामुनि वह दाशूर नामक था ॥ १६ ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ ॥ असौतपस्वीभगवन्विपिनेकेनहेतुना ॥ कथंचाप्यवसत्पृष्ठेकदंबस्यमहातरोः ॥ १७ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ शरलोमेतिविख्यातःपितातस्यबभूवह ॥ रामापरइवब्रह्मातस्मिन्नेवावसद्गिरौ ॥ १८ ॥ तस्यासावेकपुत्रोभूत्कचेदेवगुरोरिव ॥ तेनसार्द्धंसपुत्रेणनीतवाञ्जीवितंवने ॥१९॥ अथासौशरलोमात्रभुक्त्वायुगगणंययौ ॥ त्यक्तदेहःसुरागारंमुक्तनीडःखगोयथा ॥ २० ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—हे प्रभो ! यह तपस्वी महा कदंबवृक्षके ऊपर किस कारणसे रहाथा ॥ १७ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! शरलोमा नामसे प्रसिद्ध तपस्वी उसका पिता था वह दूसरे ब्रह्माके समान उस पर्वतपर रहताथा ॥ १८ ॥ उस शरलोमाके एकही यह दाशूर नाम पुत्र बृहस्पतिके पुत्र कचके सदृश था, उस पुत्रके साथ उस बनमे उसने अपना जीवन बिताया ॥ १९ ॥ यह शरलोमा वर्षके समूहोंको भोगकर शरीरको त्यागकर स्वर्गमें ऐसे गया जैसे अपने घोसले (खुंथे) से छोडा हुआ पक्षी आकाशमें ॥ २० ॥

एकएववनेतस्मिन्दाशूरःप्ररुरोदह ॥ दशापनीतपितृकःकुररोयथा ॥ २१ ॥ मातापितृवियोगेन शोकसंतापिताशयः ॥ म्लानिमभ्याययौनूनंहेमंतइवपंकजम् ॥ २२ ॥ बालोसावतिदीनात्मावनदेवतयावने ॥ इत्थमाश्वासितोरामतदाऽदृश्यशरीरया ॥ २३ ॥ ऋषिपुत्रमहाप्राज्ञकिमज्ञइवरोदिषि ॥ संसारस्यनकस्मात्त्वंस्वरूपंवेत्सिचंचलम् ॥ २४ ॥

अर्थ—अन्तिमदशामें ग्रहादिसे उसका पिता जब स्वर्गमें गया तब वह दाशूर एकाकी उस बनमें कुरर पक्षीके सदृश करुणासे रोदन करने लगा ॥ २१ ॥ माता (पिताके मरनेके पश्चात् सती माता) पिताके वियोगसे शोकसे संतापित अन्तःकरणवाला वह निश्चय करके ऐसी म्लानिको प्राप्त हुआ जैसे हेमंतऋतुमें कमल ॥ २२ ॥ हे रामजी ! यह दीनचित्त बालकहै इस कारणसे अदृश्य शरीरवाली उस बनकी देवताने इसप्रकार धैर्य्य दिया ॥ २३ ॥ हे महाप्राज्ञ ऋषिपुत्र ! तुम अज्ञानीके सदृश क्यों रोते हो, इस संसारके चंचलस्वरूपको तुम क्यों नहीं जानते ॥ २४ ॥

सर्वदैवेदृशीसाधोसंसारेसंसृतिश्चला ॥ जायतेजीव्यतेपश्चादवश्यंचविनश्यति ॥ २५ ॥ यद्यत्किंचिद्दृश्यदृशिब्रह्मादिकमिदंमुने ॥ गंतव्यस्तेनसर्वेणविनाशोनात्रसंशयः ॥ २६ ॥ तदर्थमाकृथाव्यर्थंविषादंमरणेपितुः ॥ अवश्यभाव्यस्तमयोजातस्याहर्पतेरिव ॥ २७ ॥ अशरीरामितिश्रुत्वागिरमारक्तलोचनः ॥ धैर्यमासादयामासशिखंडीस्तनितादिव ॥ २८ ॥

अर्थ—हे साधो ! सदा इस संसारमें यह जीवादि सृष्टि चंचलही उत्पन्न होती है, जीती है और पश्चात् पुनः अवश्य नष्ट होती है ॥ २५ ॥ हे मुने ! इस व्यवहारदृष्टिमें जो जो प्रसिद्ध ब्रह्मादिकहैं वेभी सब नाशको अवश्य प्राप्त होंगे इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ २६ ॥ इसलिये अपने पिताके मरणके विपयमें तुम वृथा शोक न करो, क्योंकि सूर्यके समान जो उदयको प्राप्त हुआ है उसका अस्त अवश्य होगा ॥ २७ ॥ रक्तनेत्रवाला वह दाशूर इस शरीररहित वाणीको सुनके धैर्यको ऐसे प्राप्त हुआ जैसे मेघके शब्दसे मोर ॥ २८ ॥

उत्थायावश्यकंकृत्वापाश्चात्यंपितुरादरात् ॥ चकारतपसेबुद्धिंदृढामुत्तमसिद्धये ॥ २९ ॥ ब्राह्मेणकर्मणातस्यविपिनेचरतस्तपः ॥ अनंतसंकल्पमयंश्रोत्रियत्वंबभूवह ॥ ३० ॥ अज्ञातज्ञेयबुद्धेस्तुश्रोत्रिय

स्यतयातथा ॥ नविशश्रामचेतोस्यपवित्रेपिधरातले ॥ ३१ ॥ केवलंसर्वमेवेदमापिशुद्धंधरातलम् ॥ अशुद्धमिवपश्यन्सनरेमेक्वचिदेवहि ॥ ३२ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् उठके और पिताके मरणके अनंतर आवश्यक कृत्य दाहादिको करके तप करनेके लिये बुद्धिकी ॥ २९ ॥ ब्राह्मणके कर्मसे उस ब्राह्मणको तप करते हुये शुद्धि अविशुद्धि आदि अनंत संकल्पमय श्रोत्रियत्व अर्थात् वेदोंका अध्ययन तथा उसके अर्थमें परायणता प्राप्त हुई ॥३०॥ अवश्य ज्ञेय ब्रह्मके जाननेवाले दाशूर नाम श्रोत्रियका चित्त उन २ शुद्धि अविशुद्धि आदि कल्पनासे पवित्र पृथिवी तलपरभी विश्रामको नहीं प्राप्त हुआ ॥३१॥ यह धरातल संपूर्ण शुद्धही है तथापि उस सबको उसने अशुद्धही देखता हुआ कहींभी रमण नकिया ॥३२॥

अथसंकल्पयामासस्वसंकल्पनयैवसः ॥ वृक्षाग्रमेवसंशुद्धंस्थितिस्तत्रोचितामम ॥ ३३ ॥ तदिदानींतपस्तप्स्येतपसायेनशाखिषु ॥ खगवत्स्थितिमाप्नोमिशाखासुचदलेषुच ॥ ३४ ॥ इतिसंचिंत्यसंज्वाल्यहुताशमतिभास्वरम् ॥ जुहावतस्मिन्प्रोत्कृत्त्यमांसंस्वस्कंधभित्तितः ॥ ३५ ॥ अथगीर्वाणवृंदस्यसमग्रागलभित्तयः ॥ मन्मुखत्वेनमायांतुविप्रमांसेनभस्मताम् ॥ ३६ ॥ इतिसंचिंत्यभगवान्सप्रार्चिस्तस्यदेवता ॥ पुरोबभूवदीप्तांशुर्दीप्तांशुर्वाक्पतेरिव ॥ ३७ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् उसने अपनीही कल्पनासे यह संकल्प किया कि वृक्षका अग्रभागही शुद्धहै इसलिये वहांही मेरी स्थिति योग्यहै ॥ ३३ ॥ इसकारण मैं अब तप करूं जिससेकि वृक्षोंपर उनकी शाखायें (डालियों) तथा पत्तोंपरभी पक्षीके सदृश स्थिति पाऊं ॥ ३४ ॥ इसके पश्चात् तप करनेसे शीघ्र सिद्ध न देखनेसे अग्निको प्रज्वालित करके अपने कन्धेरूप भित्तिसे मांस काटके होम करनेका आरंभ किया ॥ ३५ ॥ इसके पश्चात् संपूर्ण देवताओंका कंठप्रदेश मेरे शरीररूपी मुखद्वारा (" अग्नि मुखावै देवाः " इतिश्रुतेः) ब्राह्मणका मांस भोजन भस्मताको न प्राप्त हो, ऐसा विचार करके अग्निभगवान् उस अग्निकी अधिष्ठातृ देव सूर्यके समान शरीर धारण करके उस दाशूर ब्राह्मणके संमुख ऐसे उपस्थित हुआ जैसे बृहस्पतिके संमुख साक्षात् सूर्य ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

उवाचवचनंधीरंकुमाराभिमतंवरम् ॥ गृहाणस्थापितंसाधोकोशाकाशान्मणिंयथा ॥ ३८ ॥ इत्युक्तवंतमनलमर्घपुष्पेणशोभिना ॥ संपूज्यस्तुतिवादेनप्राहविप्रकुमारकः ॥ ३९ ॥ भगवन्भूतपूर्णायाभुवःपावनमंडलम् ॥ नाप्नोमितेनवृक्षाणामुपरिस्थितिरस्तुमे ॥ ४० ॥

अर्थ—और उस ब्राह्मणसे धीर वचन बोला कि—हे साधो ब्राह्मण कुमार अपने ! अभिमत (इष्ट) वरदान आकाश कोशमें स्थापित मणिके समान ग्रहण करो ॥ ३८ ॥ अ ॥ ऐसे कहनेवाले अग्निको अर्घ पुष्प आदिसे शोभायमान स्तुतिवाद (स्तोत्र) से पूजा करके ब्राह्मणका बालक बोला ॥ ३९ ॥ कि हे भगवन् ! प्राणियोंसे पूर्ण इस पृथिवीका मण्डल शुद्ध नहीं पाता इसलिये मेरी स्थिति वृक्षोंपर हो ॥ ४० ॥

इत्युक्तेमुनिपुत्रेणसर्वदेवमुखंशिखी ॥ एवमस्तुतवेत्युक्त्वाजगामांतर्द्धिमीश्वरः ॥ ४१ ॥ तस्मिन्नंतर्हितेदेवेक्षणात्सांध्यइवांबुजे ॥ पूर्णकामःकुमारोसौपूर्णेंदुरिवचाबभौ ॥ ४२ ॥ अधिगताभिमताननमंडलद्युतिभरेणजहाससवृष्टिमान् ॥ शशिनमाप्तकलाफुलमंबुजंविकसितंचासितस्मितशोभिना ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे दाशूरोपाख्याने दाशूरवरप्रदानवर्णनं नामाष्टचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४८ ॥

अर्थ—ऐसा शरलोमा मुनिके पुत्र दाशूरके कहनेपर सब देवोंके मुखरुप अग्निने कहा कि तुमारे लिये ऐसाही हो, ऐसा कहके अग्नि भगवान् लोप होगये ॥ ४१ ॥ संध्याकालके कमलके समान उस अग्निके क्षणभरमेंही लोप होनेपर, पूर्ण काम वह ब्राह्मणकुमार पूर्ण चन्द्रके सदृश शोभित (प्रदीप्त) हुआ ॥ ४२ ॥ इष्टमनोरथकी प्राप्तिसे अति मुसकिराणके शोभित मुखसे द्दीप्ति समूहसे अति प्रसन्न वह दाशूर ब्राह्मण किरणोंसे पूर्ण चंद्र तथा विकसित कमलकोभी हंसने लगा ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे दाशूरोपाख्याने दाशूरवर्णनं नामाष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥

एकोनपंचाशः सर्गः ॥ ४९ ॥

इस ४९ के सर्गमें उत्प्रेक्षा आदि अलंकारोंसे, शाखा, पल्लव, फल, पुष्पसमूह तथा पक्षियोंसे मनोहर कदंब वृक्षका वर्णन कियागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथकाननमध्यस्थंचुंबितांबुदमंडलम् ॥ मध्याह्नखिन्नसूर्याश्वसेवितस्कंधमंडलम् ॥ १ ॥ वितानमिवदिक्कुक्षिदीर्घविटपबाहुभिः ॥ आलोकयंतंककुभोविकासिकुसुमेक्षणैः ॥ २ ॥ वातावधूलितानल्पभ्रमद्भ्रमरकुंतलम् ॥ प्रमार्जयंतमाशानांमुखंपल्लवपाणिभिः ॥ ३ ॥ कच्छैरुरुगुच्छाच्छमंजरीपुंजकंजरैः ॥ आस्यैरिवसतांबूलैर्हसंतंवनमालिकाः ॥ ४ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् मध्यवनमें स्थित, मेघमंडलको चुम्बन करनेवाला, तथा मध्यान्हमें विथकित सूर्यके अश्वोंसे स्कंधमण्डलसे सेवित वह कदंब वृक्ष था ॥ १ ॥ बडी २ शाखारूप भुजाओंसे दीर्घ चांदनीके समान करते हुये तथा विकसित पुष्परूपी नेत्रोंसे दिशाओंको इस अभिप्रायसे मानो देखताथा कि कोई स्थल मेरी शाखारूप चांदनीसे अनावृत तो नहीं है ॥ २ ॥ वायुसे धूलिरहित अधिक भ्रमररूपी केशसहित और पल्लवरूपी हस्तोंसे आशारूपी स्त्रियोंके मुखको मार्जन (पोंछते) करते हुये स्थित था ॥ ३ ॥ हिमजलको छेदन करनेवाले पल्लव प्रदेशोंसे, तथा स्वच्छ और अधिक केसरसहित दंतोंकी पंक्तिकेसमान स्थित लता पुंजोंसे ताम्बूलसहित मुखोंसे मानो हंसरहाथा॥४॥

लताविलसितोल्लासैःपुष्पकेसरधूलिभिः ॥ आबद्धमंडलाभोगंपूर्णेंदुमिवदीप्तिभिः ॥ ५ ॥ संकटंविटपावल्याकुंजकूजच्चकोरया ॥ छन्नयासिद्धवीथ्येवजगद्दच्चतयाश्रितम् ॥ ६ ॥ स्कंधपीठोपविष्टानांलंबमानैःकलापिनाम् ॥ कलापैःशोभितंव्योमसेंद्रचापैरिवांबुदैः ॥ ७ ॥ मग्नोन्मग्नैःप्रतिस्कंधमाश्रितैश्चमैरैस्सितैः ॥ पूर्णमुहुर्दृष्टनष्टैःसंवत्सरमिवेंदुभिः ॥ ८ ॥

अर्थ—लताकी अधिक शोभासे, और शोभायमान पुष्पके केसरोंमें प्रविष्ट धूलियोंसे ऐसा मण्डलाकार वेश रचेथे जैसे अपनी दीप्तियोंसे पूर्णचन्द्रमा ॥ ५ ॥ जहां लताओंसे ढके हुये प्रदेशोंमें चकोर गुंजरहेथे ऐसी शाखाओंकी पंक्तियोंसे घनीभूत होनेसे ग्रह नक्षत्रतारा विमानादिसे आच्छन्न सिद्धमार्गसे ऊर्ध्वभावसे आश्रित ब्रह्मांडके समान स्थितथा ॥ ६ ॥ तथा शाखादेशमें स्थित मयूरोंके दीर्घ पंखोंसे ऐसा शोभित था जैसे इन्द्रके धनुषसहित मेघोंसे आकाश ॥ ७ ॥ कोई बाह्यदेशमें स्थित कोई अन्तरदेशमें स्थित क्षण २ में दृष्ट और अदृष्ट शाखा भागमें स्थित श्वेतचमर नामक मृगोंसे ऐसा पूर्ण था जैसे चन्द्रमाओंसे वर्ष ॥ ८ ॥

कपिंजलकुलालापैःकलकोकिलकूजितैः ॥ जीवंजीवविरावैश्चप्रयागंतमिवोच्छ्रितैः ॥ ९ ॥ कादंबककदंबैश्चकुलायकृतकेलिभिः ॥ स्वर्गकोटरविश्रांतैःसिद्धैर्जगदिवावृतम् ॥ १० ॥ प्रवालचलहस्ताभिरलिनेत्राभिराश्रितम् ॥ अप्सरोभिरिवस्वर्गंमंजरीभिरितस्ततः ॥ ११ ॥ सेंद्रचापविलासेनकुसुदोत्करेणुना ॥ मंजरीपिंजराद्ग्यामंविद्युत्वंतमिवांबुदम् ॥ १२ ॥

अर्थ—कपिंजल नाम पक्षियोंके समूहके आलापसे मधुर मानो कोकिलाओंके कूजित और चकोरोंके उच्च शब्दोंसे गान करते हुये स्थित था ॥ ९ ॥ अपने खुथोंमें क्रीडा करनेवाले कलहंस तथा कदंब नाम पक्षियोंसे इसप्रकार आच्छादित था जैसे स्वर्गरूपी कोटरमें विश्राम करनेवाले सिद्धोंसे ब्रह्माण्ड ॥ १० ॥ कोमल चंचल पत्ररूप हस्तधारिणी और भ्रमररूपी नेत्रसहित लतारूपी बनिताओंसे इसप्रकार सेवित था जैसे अप्सराओंसे स्वर्ग ॥ ११ ॥ इन्द्रके चापके सदृश शोभायमान कुमुद नीलकमल तथा रक्तकमलके रेणुओं (परागों) से उपलक्षित और लताके पत्रोंसे विद्युतसहित मेघके सदृश श्यामवर्ण वह वृक्ष था ॥ १२ ॥

सहस्रभुजशाखाढ्यंपूरिताकाशकोटरम् ॥ विश्वरूपमिवोन्नृत्तंश्चंद्रार्ककृतकुंडलम् ॥ १३ ॥ तलेनिषण्णनागेंद्रंव्योम्नितारागणाकुलम् ॥ लतापुष्पमयंमध्येखमंडलमिवापरम् ॥ १४ ॥ पितामहमिवाशेषशैलकाननशालिनम् ॥ फलपल्लवपुष्पाणांकोशमेकमिवावनौ ॥ १५ ॥ दधानंकलिकाजालंस्थगितंपुष्पधूलिभिः ॥ कच्छेष्वर्ककरच्छन्नताराजालमिवांबरम् ॥ १६ ॥

अर्थ—सहस्रों भुजारूपी शाखाओंसे पूर्ण आकाशरूपी कोटरको व्याप्त करनेवाला, तथा चंद्रमा और सूर्यरूपी कुण्डलको धारणकिये नृत्य करते हुये विष्णुके समान अपनेको दर्शानेवाला भान होताथा ॥ १३ ॥ उसके तलभागमें सर्प वा हस्ति स्थित था ऊर्ध्वभागमें आकाशमें तारागणोंसे व्याप्तलता और पुष्पमय मध्यमें ब्रह्माण्डके उदर आकाशके समान स्थितथा ॥ १४ ॥ सम्पूर्ण पर्वतके बनसे शोभायमान होनेसे सब वृक्षोंके पितामहके सदृश पृथिवीपर फल और पुष्पोंके प्रधान कोषके तुल्य वह ज्ञात होताथा ॥ १५ ॥ पत्रोंके देशोंमें पुष्पकी धूलियोंसे आच्छादित कलीके समूहको धारण करनेवाले और पत्रके छिद्रोंके देशोंमें सूर्यकी किरणोंसे आच्छादित होनेसे ऐसे शोभितथा जैसे तारागणसे आकाश ॥ १६ ॥

विलोलविहगैःस्कंधैःकुलायकुलसंकुलैः ॥ वलितंभूतलंलोकेपूर्णंजनपदैरिव ॥ १७ ॥ मंजरीसुपताकाढ्यंलतामंडलमंडिताम् ॥ पुष्पमंकोलधवलंपुष्पप्रकरपूरितम् ॥ १८ ॥ कूजच्चकोरभ्रमरशुककोकिलसारिकम् ॥ घनस्तबकसंछन्नकुहरोग्रगवाक्षकम् ॥ १९ ॥ संचरत्पक्षिबहुलंजनमंथरकोटरम् ॥ सर्वासां वनदेवीनामंतःपुरमिवोत्तमम् ॥ २० ॥

अर्थ—घोंसलोंके समूहोंसे पूर्ण चंचलपक्षियों करके युक्त शाखाओंसे ऐसे आच्छादितथा जैसे पूर्ण देशोंसे संसारमें पृथिवी मण्डल ॥ १७ ॥ लतारूपी उत्तम पताकाओंसे पूर्ण तथा उत्तम लतारूपी मण्डलोंसे शोभित पुष्परूपी गृहके लेपन चूर्णोंसे पूर्ण और पुष्पके समूहोंसे पूर्ण कूजते हुये चकोर, भ्रमर, शुक, कोकिला, और सारिका, पक्षी संयुक्त, घन पुष्पोंके गुच्छोंसे कोटररूपी दीर्घ गवाक्षों (झरोखों) से पूर्णथा ॥ १९ ॥ उडते हुये पक्षियोंसे पूर्ण छायाको सेवन करनेवाले प्राणियों करके अधोभागमें आश्रित अतएव सम्पूर्ण वनदेवियोंके उत्तम अन्तःपुरके समान भान होताथा ॥ २० ॥

कूजद्भृंगतरंगौघैःपुष्पकेसरराजिभिः ॥ राजमानंपतंतीभिःसरिद्भिरिवपर्वतम् ॥ २१ ॥ भ्रमद्भिःपुष्पपत्रौघैर्मंदवातविलासिभिः ॥ वर्द्धमानैर्वृतस्कंधंशुभ्राभ्रैरिवभूधरम् ॥ २२ ॥ मातंगकटघृष्टेनजानुस्तब्धेनपीठिना ॥ आभोगिनाबद्धपदंतरुणेवमहाचलम् ॥ २३ ॥ विचित्रवर्णपक्षाणांस्कंधकोटरचारिणाम् ॥ वृतंखगानांवृंदेनभूतानामिवशांर्गिणम् ॥ २४ ॥

अर्थ—जहां भृंगोंके समूह कूज रहेथे ऐसे पुष्पके केसरकी श्रेणियोंसे ऐसे शोभायमान था जैसे गिरती हुई नदियोंसे पर्वत ॥ २१ ॥ मन्दवायुसे शोभायमान और नित्य वर्द्धनशील भ्रमण करते हुये पत्र और पुष्पोंके समूहोंसे उसका शाखा प्रदेश ऐसे आच्छादित था जैसे स्वच्छ मेघोंसे पर्वत ॥ २२ ॥ हाथियोंके गण्डस्थलसे घिसे हुये जंघाके समान दृढ पीठके समान विस्तृत और विशाल मूलदेशसे ऐसे बद्धस्थानथा जैसे आसन्नभूमिमें जमेहुये वृक्ष समूहोंसे महापर्वत ॥ २३ ॥ विचित्र वर्ण और पक्षों करके संयुक्त और शाखा तथा कोटर प्रदेशोंमें चरनेवाले पक्षियोंसे ऐसे आच्छादित था जैसे पार्षदोंके समूहोंसे श्रीकृष्णभगवान् ॥ २४ ॥

स्तबकांगुलिजालेनलोलेनाभिनयक्रियाम् ॥ दिशंतमिववल्लीनांप्रनृत्तानांवनानिलैः ॥ २५ ॥ कश्चिदेव निवासोमेनार्थिनामितितुष्टितः ॥ नृत्यंतमिवबाह्वाढ्यलतावलयवल्गनैः ॥ २६ ॥ लताकांतैककांतत्वाच्छृंगाररसनिर्भरम् ॥ काकल्येवप्रगायंतंमत्तलिनिजनिःस्वनैः ॥ २७ ॥ आदरोन्मुक्तकुसुमंसिद्धानां व्योमचारिणाम् ॥ स्वागतानीवकुर्वाणंकोकिलालिकुलारवैः ॥ २८ ॥

अर्थ—चंचलपुष्पके गुच्छारूपी अंगुलिओंके समूहसे वनके पवनद्वारा नाचती हुई लतारूपी अङ्गनाओंको मानो भाव व्यंजक चेष्टाओंको उपदेश कर रहाथा ॥२५॥ कोई सा मेरा भाग (जैसे मूलप्रदेश) अर्थियोंका निवासस्थान न हुआ और संपूर्ण अङ्ग मेरा प्राणियोंके निवाससे सफल हुआ इस हेतुसे प्रसन्न होके शाखारूप भुजाओंसे पूर्ण लतारूपी वेष्टनसे नृत्य करते हुयेके समान ज्ञात होताथा ॥ २६ ॥ अनेक लताओंका एक प्रिय होनेसे शृंगार रससे पूर्ण मत्त भ्रमरके शब्दोंसे मधुरध्वनिसे गाते हुयेके समान जानपडताथा आकाशविहारी सिद्धोंके लिये आदरसे पुष्पोंको छोडनेवाला इसीसे कोकिल और भ्रमरके समूहके शब्दोंसे उनके स्वागत करते हुयेके सदृश ज्ञात होताथा॥२७॥२८॥

पारिलतापुष्पफलोल्लासंभ्रांतपंचमहीरुहाम् ॥ विहसंतमिवाच्छाभिःपुष्पकुड्मलदीप्तिभिः ॥ २९ ॥ जातमिवाजेतुमूर्ध्वगैःखगमंडलैः ॥ व्योमांतराभिधावंतमलमुद्धतकंधरम् ॥ ३० ॥ मध्यभागस्फुरद्भृंगैःस्तबकैर्घनपंक्तिभिः ॥ सहस्राक्षत्वमतुलैर्जेतुमिंद्रमिवोद्यतम् ॥ ३१ ॥ क्वचित्कुसुमगुच्छाच्छफणामणिगणावृतम् ॥ पातालादुत्थितंशेषमिवव्योमादिदृक्षया ॥ ३२ ॥ रसजोद्धूलिताकारंद्वितीयमिवशंकरम् ॥ छाययाफलशालिन्यासमस्तजनशंकरम् ॥ ३३ ॥ निबिडदलनिवहभिन्नकोशैःकुसुमलतानवमंडपैरुपेतम् ॥ पुरमिवगगनेकदंबवृक्षंखगकुलनागरसंकुलंददर्श ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे दाशूरोपाख्याने दाशूरकदंबवर्णनं नामैकोनपंचाशः सर्गः ॥ ४९ ॥

अर्थ—लतापुष्प और फलोंके उल्लाससे युक्त होनेसे स्वच्छ पुष्पोंकी कलीरूपी दांतोंसे समयस्थ वट, उदुंबर, पीपल, आम्र और पलास नामक पांच वृक्षोंको हंसते हुयेके सदृश स्थितथा ॥२९॥ तथा गलेको उठाकर ऊर्ध्वगमनशील पक्षियोंके मंडलोंसे पारिजात नाम वृक्षके जीतनेकेलिये स्वर्गमें दौडते हुये के सदृश जानपडताथा ॥ ३० ॥ उसके मध्यभागमें भ्रमर स्फुरित होरहेथे और सघन पंक्तिवाले पुष्पके गुच्छोंसे असंख्य नेत्रताको प्राप्त होकर मानो

इन्द्रके जीतनेकेलिये उद्यतथा ॥ ३१ ॥ कुसुमके गुच्छारूप स्वच्छ मणिगणोंसे आच्छादित आकाशके देखनेकेलिये पातालदेशमें निकलकर शेषनागके सदृश स्थित, पुष्पसे धूलि संयुक्त आकार होनेके कारण दूसरे शंकरके सदृश मानो स्थितथा, और फलसे शोभायमान छायासे समस्त प्राणियोंके आश्रयभूत शंकर अर्थात् महादेवके सदृश, घनीभूत दलोंमें विकसित कलियोंसे और नूतन लताके मण्डपोंसे संयुक्त पक्षियोंके समूहरूपी नगरनिवासियोंसे व्याप्त और आकाशमें रचित नगरके समान उस कदंबके वृक्षको उस दाशूर ब्राह्मणने देखा ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे दाशूरोपाख्याने दाशूर कदंब वर्णनं नामैकोन पंचाशःसर्गः ॥ ४९ ॥

पंचाशत्तमःसर्गः ॥ ५० ॥

उस कदंबके अग्रभागमें स्थित दाशूरने जो दिशारूप वनिताओंको देखाहै उनको गुणोंके विस्तारोंसे इस ५० के सर्गमें वर्णन कियाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ तमथासौतथाबुद्धिःफलपल्लवशालिनम् ॥ आनंदमंथरमनाःपुष्परूपाचलोपमम् ॥ १ ॥ कदंबरोदसीस्तंभमारुरोहवनस्थितम् ॥ एकार्णवगतंशौरिर्वटवृक्षमिवोन्नतम् ॥ २ ॥ तत्रासौव्योमलग्नायाःशाखायाःप्रांतपल्लवे ॥ विवेशविगताशंकमेकाग्रंतपआस्थितः ॥ ३ ॥ अथोपविश्यमृद्वनिनवपल्लवविष्टरे ॥ क्षणमालोकितास्तेनदिशःकौतुकचंचलम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! फल तथा पुष्पोंसे शोभायमान श्वेत पुष्पोंसे रूपाचल पर्वतके सदृश, और आकाश तथा पृथिवीके स्तंभके तुल्य बनमें स्थित उस कदंबके वृक्षपर उसप्रकार भूमिकी अपवित्रता बुद्धिसे युक्त, तथा वरप्राप्तिसे आनंदयुक्त मन यह ब्राह्मण ऐसे आरूढ हुआ जैसे प्रलयके महासमुद्रमें बटके वृक्षपर विष्णुभगवान् ॥ १ ॥ २ ॥ उस कदंबके वृक्षमें आकाशमें संलग्न (बहुत ऊंची) एक शाखाके समीपके पत्रमें इस ब्राह्मणने प्रवेश किया, और अपवित्रताकी शंकारहित एकाग्रहोके तप करनेमें स्थित हुआ ॥३ ॥ इसके पश्चात् कोमल तथा नूतन पल्लवरूप आसनपर बैठके कौतुकसे चंचल दृष्टिपातपूर्वक एक क्षणभर दिशाओंको उसने देखा ॥ ४ ॥

सरिदेकावलीरम्याःशैलेंद्रस्तनकुड्मलाः ॥ निर्मलाकाशकबरालोलनीलांबुदालकाः ॥ ५ ॥ नीलपल्लववसनाःपुष्पपूरावतंसिकाः ॥ गृहीतसागरापूर्णकलशाःपुरुभूषणाः ॥ ६ ॥ धृतप्रफुल्लपद्मिन्यःसुगंधिमुखमारुताः ॥ नीलघुंघुमकाकल्योनिर्झररावनूपुराः ॥७॥ द्युमूर्द्धानोमहीपादावनालीरोमराजयः॥ जंगलोरुनितंबिन्यश्चंद्रार्ककृतकुंडलाः ॥ ८ ॥

अर्थ—नदीरूप मुक्ताहारोंसे रमणीय, पर्वतेन्द्ररूप स्तनकलिका धारिणी, निर्मल आकाशरूप केशपास संयुक्त तथा नील मेघरूप अलकधारिणी दिशारूप वनिताको उस ब्राह्मणने देखा ॥ ५ ॥ और नीलपल्लवरूपी वस्त्रसहित, पुष्पोंके समूहरूप शिरोभूषणसे शोभित, समुद्ररूपी पूर्ण कलश ग्रहण किये हुये, और अधिक आभूषणोंसे शोभायमान वे दिशा थीं ॥ ६ ॥ तथा विकसित कमलधारिणी, सुगंधयुक्त मुख वायुसहित, नीलवर्णके पक्षी आदिसे मधुरध्वनि करनेवाली, तथा झरनोंके शब्दरूपी नूपुर धारण करनेवाली थी ॥ ७ ॥ स्वर्गरूपी मस्तक संयुक्त, पृथिवीरूपी चरण सहित, बनकी पंक्तिरूप रोमपंक्तियोंसे शोभित, जंगलरूपी महा नितंबधारिणी, तथा चन्द्रसूर्यरूपी कुण्डलवाली सब दिशा थीं ॥ ८ ॥

शालिसंसारकेदाराश्वंदनस्थालिकान्विताः ॥ शिखरोरसिजालग्नहिमशुभ्रांबुदांशुकाः ॥ ९ ॥ महार्णवपयःपूरनवमंडनदर्पणाः ॥ ऋक्षौघघर्मपुलकाभुवनांतःपुरांतराः ॥ १० ॥ आर्त्तवस्तनधारिण्योलग्नसूर्यांशुकुंकुमाः ॥ विचित्रकुसुमोपेताश्चंद्रांशुसितचंदनाः ॥ ११ ॥ गगनगतलतादलोपविष्टःप्रसृतवनावनिवारिवाहवेषाः ॥ त्रिभुवनवनितादद‌र्शहृष्टःकुसुमनिरंतरमंडितादशाशाः ॥ १२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे दाशूरोपाख्याने दाशूरदिग्वलोकनं नाम पंचाशत्तमःसर्गः ॥ ५० ॥

अर्थ—शालि (धान) के कंपोंसे चंचल केदार (क्यारी) सहित, और शिखररूपी स्तनोंमें संलग्न श्वेत मेघ अंशुक (वस्त्र) से शोभित थीं ॥ ९ ॥ यह समुद्रके जलके प्रवाहही उनके नूतन आभूषणोंके दर्शनार्थ दर्पण थे तथा तारागणरूपी घर्मबिन्दुके पुलक सहित, और त्रिभुवनरूप अन्तःपुर धारिणी सब दिशा थीं ॥ १० ॥ और

उन २ ऋतुओंमें उत्पन्न पुष्पपत्रादिरूप कंचुकी (कांचुली) धारण किये हुये, चित्रविचित्र पुष्पसहित, और चन्द्रमाके किरणरूप श्वेत चन्दनधारिणी ॥ ११ ॥ तथा विशाल वन, पृथिवी और मेघरूपी कृत्रिम आकार धारण किये, और त्रिलोकीकी वनिता (भोग्य होनेसे स्त्रीरूप) रूप दशोंदिशाओंको आकाशमें प्राप्त शाखाके ऊपर स्थित, और अति प्रसन्न उस ब्राह्मणने देखा ॥ १२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे दाशूरादिग्वलोकनं नाम पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५० ॥

एकपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५१ ॥

इस ५१ के सर्गमें दाशूरके मनोमय यज्ञोंसे आत्मका बोध, वनदेवीमें पुत्रकी उत्पत्ति, तथा उस पुत्रको ज्ञानका संप्रदान इत्यादि विषयका वर्णन कियागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ ततःप्रभृतितत्रासौप्रसिद्धस्तापसाश्रमे ॥ कदंबदाशूरइतिशूरस्तपसिदारुणे ॥ १ ॥ तस्मिँल्लतादलेस्थित्वाविलोक्यककुभःक्षणात् ॥ दृढपद्मासनंबद्धादिग्भ्यःप्रत्याहृतात्मना ॥ २ ॥ अज्ञातपरमार्थेनक्रियामात्रेचतिष्ठता ॥ फलकार्पण्ययुक्तेनमनसासोकरोन्मखम् ॥ ३ ॥ नभोगतलतापत्रसंस्थितेनांतरात्मना ॥ सर्वाःस्वमनसातेनकृतायज्ञक्रियाःक्रमात् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—उसी समयसे लेके यह ब्राह्मण उस तापस आश्रममें दारुण तपमें तत्पर कदम्बनिवासी दाशूरकरके प्रसिद्ध हुआ ॥ १ ॥ उस कदम्बलताके दलपर बैठके एक क्षण दिशाओंको देखके दिशाओंसे चित्तको निवृत्त (हटा) करके पद्मासन बांधकर ॥ २ ॥ परमार्थ ज्ञानसे रहित केवल कर्मकाण्डमें तत्पर स्वर्गादि प्राप्तिरूप कृपण फलसंयुक्त उस ब्राह्मणने मनसे यज्ञ किया ॥ ३ ॥ आकाशमें प्राप्त लताके पत्रपर स्थित उसने अपने अन्तर्गत मनसेही अग्निका आधान (अग्निहोत्र) से आदि लेके अश्वमेधपर्यन्त सम्पूर्ण क्रियाओंको क्रमसे किया॥४॥

तत्रासौदशवर्षाणिमनसैवायजत्सुरान् ॥ गवाश्वनरमेधाद्यैर्यज्ञैर्विपुलदक्षिणैः ॥५॥ कालेनामलतांयातेविततेतस्यचेतसि ॥ बलादवततारांतर्ज्ञानमात्मप्रसादजम् ॥ ६ ॥ ततोविशीर्णावरणोविगलद्वासनामलः ॥ सददर्शैकदातस्यांलतायामग्रतःस्थिताम् ॥७॥ वनदेवींविशालाक्षीमालोककुसुमांबराम् ॥ कामिनींकांतवदनांमदघूर्णितलोचनाम् ॥ ८ ॥

अर्थ—उस वृक्षपर अधिक दक्षिणासंयुक्त गौ, अश्व नरमेधादियज्ञोंसे देवताओंका यज्ञ दश (१०) वर्षपर्यन्त मनसेही किया ॥ ५ ॥ कालपाके रागद्वेषादि रहित जब इसका विशाल चित्त होगया, तब प्रतिबंधकके क्षय होनेपर पूर्वजन्मके श्रवणआदि संस्कारोंके बलसे आत्माकी प्रसन्नतासे ज्ञान उत्पन्न हुआ ॥ ६ ॥ अनन्तर ज्ञानसे अज्ञानरूपी आवरण उसका छिन्न भिन्न होगया और वासनारूपी मलभी उसका गलित होगया अनन्तर उस ब्राह्मण मुनिने एक समय लताके अग्रभागमें स्थित ॥ ७ ॥ तथा विशाल नेत्रवाली, प्रकाशयुक्त पुष्पमय वस्त्रधारण किये कामनी (कामनासहित) और मदसे घूर्णित नेत्रवाली एक वनदेवीको देखा ॥ ८ ॥

नीलोत्पलामोदवतीमतीवसुमनोहराम् ॥ तामुवाचानवद्यांगींसमुनिर्विनताननाम् ॥ ९ ॥ कोकिलाकुसुमापूरनतांवनलतामिव ॥ कात्वमुत्पलपत्राक्षिकांतिविक्षोभितस्मरा ॥ १० ॥ वयस्यामिवपुष्पाढ्यांलतांकिमिवतिष्ठसि ॥ इत्युक्तेमृगशावाक्षीगौरपीनपयोधरा ॥ ११ ॥ मुनिमाहमनोहारिमुग्धाक्षरमिदंवचः ॥ यानियानिदुरापानिवांछितानिमहीतले ॥ १२ ॥

अर्थ—अनंतर नीलकमलके सुगंधयुक्त अतिमनोहर अनिंद्यशरीर, भक्तिप्रणाम तथा लज्जादिसे नम्रमुखी ॥ ९ ॥ कोकिल तथा पुष्पके भारसे नत वनलताके समान उस वनदेवीसे वह ब्राह्मणमुनि बोला कि—हे कमलपत्रनयने ! अपनी शोभासे कामदेवकोभी विक्षोभित करनेवाली तुम कौन हो ? ॥ १० ॥ निजसखीके तुल्य इस लतापर क्यों बैठीहो ? ऐसा ब्राह्मणके कहनेपर मृगके शावकके समान नेत्रधारिणी गौरवर्ण संयुक्त स्थूल स्तन धारिणी ॥ ११ ॥ वह वनदेवी उस मुनिसे मनोहर तथा मुग्धाक्षर सहित यह वचन बोली कि इस पृथिवीतलपर जो २ दुष्प्राप्य (दुःखसे प्राप्त होने योग्य) मनोरथ अर्थात् वांछित पदार्थ है ॥ १२ ॥

प्राप्यंतेतानितान्याशुमहतामेवयांचया ॥ अहमस्मिँल्लताकीर्णेत्वत्कदंबाभ्यलंकृते ॥ १३ ॥ लताली

लालयाब्रह्मन्विपिनेवनदेवता ॥ यश्चैत्रसितपक्षस्यत्रयोदश्यांस्मरोत्सवे ॥ १४ ॥ बभूववनदेवीनांसमाजोनंदनेवने ॥ तत्राहमगमंनाथत्रैलोक्यललनासदः ॥ १५ ॥ तत्रदृष्टामयासर्वावयस्यामदनोत्सवे ॥ अपुत्रयापुत्रयुतास्तेनाहंदुःखिताभृशम् ॥ १६ ॥

अर्थ—वे वे सब महात्माओंकी यांचाहीसे शीघ्र प्राप्त होतेहैं मैं आपके कदंबसे शोभित लतासे व्याप्त इस ॥ १३ ॥ बनमें बनकी देवता होकर लताकी कुंजमें रहतीहूं जो चैत्रमासके शुक्लपक्षकी त्रयोदशीके कामके उत्सवमें ॥ १४ ॥ नन्दनवनमें बनदेवियोंका समाज हुआथा हे स्वामिन् ! उस त्रिलोकके ललनाओंकी समाजमें मैं गईथी ॥ १५ ॥ उस कामदेवके उत्सवमें पुत्रसहित अपनी सब सखियोंको देखा तथा अपनेको पुत्ररहित मैंने देखा इसलिये मैं अत्यन्त दुःखीहूं ॥ १६ ॥

त्वयिसर्वार्थसार्थस्यवृहत्कल्पतरौस्थिते ॥ अनाथेवकथंनाथकिलशोचाम्यपुत्रिका ॥ १७ ॥ देहिमेभगवन्पुत्रनोचेद्देहमिहाग्नये ॥ प्रकरोम्याहुतिंपुत्रदुःखदाहोपशांतये ॥ १८ ॥ तामित्युक्तवतींतन्वींविहस्यमुनिपुंगवः ॥ प्राहहस्तगतंपुष्पंतस्यैदत्त्वादयान्वितः ॥ १९ ॥ गच्छतन्वंगिमासेनपूजार्हमलिलोचनम् ॥ प्रसोष्यसेसुतंकांतंप्रसूनमिवसल्लता ॥ २० ॥

अर्थ—संपूर्ण पुरूषार्थोंके समूहके महान् कल्पवृक्षरूप आपके विद्यमान रहते हे स्वामिन् ! अनाथके समान पुत्ररहित होकर मैं कैसे शोच करूं ॥ १७ ॥ हे भगवन् ! मुझे पुत्र दीजिये यदि आप पुत्र न देवेंगे तो पुत्रके न होनेके दुःखरूपी दाहको शांत करनेके लिये मैं अपने शरीरको अग्निमें हवन करदूंगी ॥ १८ ॥ उस तन्वङ्गीके इतना कहनेपर मुनियोंमें श्रेष्ठदाशूरमुनि दयायुक्त होकर (न कि धैर्यसे च्युत) अपने हस्तमें स्थित पुष्पको उसको देकर और हंसकर उससे बोले ॥ १९ ॥ हे सूक्ष्मांगी ! तुम जाओ मासभरमें कमलके सदृश नेत्रयुक्त जगत्पूज्य सुन्दर पुत्रको ऐसे उत्पन्न करोगी जैसे सत् लता पुष्पको ॥ २० ॥

किंत्वसौमरणावेशयायिन्यानस्त्वयासुतः ॥ याचितःकृच्छ्रंसंप्राप्यज्ञाताततेनभविष्यति ॥ २१ ॥ इत्युक्त्वासमुनिस्तन्वींप्रसन्नमुखमंडलाम् ॥ परिचर्यांकरोमीतिप्रार्थनोत्कांव्यसर्जयत् ॥ २२ ॥ साजगामात्मसदनंसोतिष्ठत्स्वात्मनासह ॥ अवहत्क्रमशःकालऋतुसंवत्सरांकितः ॥२३॥ अथदीर्घेणकालेनसैवोत्पलविलोचना ॥ द्वादशाब्दसुपादायसुतंमुनिमुपाययौ ॥ २४ ॥

अर्थ—किंतु मरणके संकटमें आत्मघात करनेके संकल्पमें प्राप्त होकर यह पुत्र तुमने मुझसे मागाहै इसलिये यह आत्मज्ञानी होगा ॥ २१ ॥ ऐसा कह करके प्रसन्न मुखवाली उस तन्वंगी (जो कि इस प्रार्थनामें उत्कंठित थी) को बिदा किया ॥ २२ ॥ वह अपने स्थानमें आई और एकाकिनी उठी और ऋतु संवत्सर आदि कालोंको बिताया ॥ २३ ॥ इसके अनन्तर दीर्घ कालसे वह कमलनेत्रा १२ वर्षका अपना पुत्र लेकर मुनिके निकट आई ॥ २४ ॥

साप्रणम्योपविश्याग्रेमुनिमिंदुसमाननम् ॥ उवाचकलयावाचाचूतद्रुममिवालिनी ॥ २५ ॥ अयंसभगवन्भव्यःकुमारःपुत्रआवयोः ॥ कृतोमयासमग्राणांकलानांकिलकोविदः ॥ २६ ॥ प्रभाकेवलमेतेनज्ञानंनाधिगतंशुभम् ॥ येनसंसारचक्रेस्मिन्नपुनःपरिपीड्यते ॥ २७ ॥ ज्ञानंत्वमेवास्यविभोकृपयोपदिशाधुना ॥ कोहिनामकुलेजातंपुत्रंमौर्ख्येणयोजयेत् ॥ २८ ॥

अर्थ—वह चंद्रमाके सदृश मुखवाले मुनिको प्रणाम करके और उनके संमुख बैठकर मधुर वाणीसे ऐसे बोली जैसे भ्रमरी आम्रके वृक्षसे ॥२५॥ हे भगवन् ! यह वही हम दोनोंका पुत्रहै मैंने इसको वेदादि सर्व विद्याओंका वेत्ता बनायाहै ॥ २६ ॥ हे प्रभो ! केवल इसने शुभ आत्मज्ञान नहीं प्राप्त किया जिससे कि पुनः इस संसार चक्रमें प्राणी नहीं पीडित होता ॥२७॥ हे विभो ! अब आपही कृपाकरके इसको ज्ञानका उपदेश करो क्योंकि ऐसा कौनहै जो अपने कुलमें उत्पन्न पुत्रके आत्माके अज्ञानतारूपी मूर्खतामें नियुक्त करै ॥ २८ ॥

एवंवदंतींसमुनिःसच्छिछ्यमबलेसुतम् ॥ इहैवस्थापयैनंत्वमित्युक्त्वातांव्यसर्जयत् ॥ २९ ॥ तस्यांगतायांसापितुरंतेवासितयातया ॥ अतिष्ठत्संयतोधीमानर्कस्येवारुणःपुरः ॥ ३० ॥ कदर्थःप्राप्यविज्ञानंततश्चित्राभिरुक्तिभिः ॥ चिरकालमसौतत्रमुनिःपुत्रमबोधयत् ॥ ३१ ॥ आख्यायिकाख्यानशतैर्दृष्टांतैर्दृष्टिकल्पितैः ॥ तथेतिहासवृत्तांतैर्वेदवेदांतनिश्चयैः ॥ ३२ ॥ अनुद्वेगितयानित्यंविस्तरेणकथक्रमैः ॥ अनुभूतिसुपारूढैरूढिमेतियथामयि ॥ ३३ ॥ अनुभववशतोरसातिरिक्तैरलमुचितार्थवचोगणैर्महात्मा ॥ जलदइवशिखंडिनंपुरःस्थंतनयमबोधयदंबरेमहर्षिः ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे दाशूरपाख्याने दाशूरसुतानुबोधनं नामैकपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५१ ॥

अर्थ—ऐसा कहनेके पश्चात् मुनि बोले कि हे अबले ! इस उत्तम शिष्य पुत्रको यहांही रखदो ऐसा कहकरके उसको वहांसे विदाकिया ॥ २९ ॥ उस माताके चलेजानेपर वह बुद्धिमान्पुत्र गुरुकी शुश्रूषामें तत्पर अपने पिताके निकट ऐसे रहनेलगा जैसे सूर्य्यके संमुख गरूडके बडेभाई अरूण ॥ ३० ॥ उसके अनंतर बडे क्लेशसे ज्ञानको प्राप्त करनेवाले उसके पिताने चित्र विचित्र युक्तियोंसे पुत्रको चिरकालतक बोधन किया ॥ ३१ ॥ सैकडों आख्यायिका और आख्यानोंसे सम्यग्दर्शनके अर्थ कल्पित दृष्टांतोंसे महाभारतादिमें प्रसिद्ध इतिहासोंसे और वेदवेदांतके सिद्धांतोंसे ॥ ३२ ॥ उद्वेग न करनेकेलिये नित्य अनुभवमें प्राप्त यह मेरापुत्र प्रत्यगात्मामें दृढताको प्राप्तहो, ऐसे कथाके क्रमोंसे विस्तारपूर्वक उस पुत्रको बोधन किया ॥ ३३ ॥ आत्मज्ञानरूप चमत्कारसे सब रसोंसे अधिक स्वादिष्ट उचित अर्थयुक्त वचनके समूहोंसे उस महात्मा महर्षिने संमुख स्थित पुत्रको ऐसे बोधन किया जैसे संमुख स्थित मयूरको मेघ ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे दाशूरपाख्याने दाशूरसुतानुबोधनं नामैकपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५१ ॥

द्विपंचशत्तमः सर्गः ॥ ५२ ॥

संकल्पसे रचेहुये विश्वको मिथ्या कहनेकी इच्छासे खोत्थ अर्थात् अव्याकृत आकाशसे उत्पन्न राजाके चरितका वर्णन इस ५२ के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ कदाचिदथमार्गेणतेनकैलासवासिनीम् ॥ अहंस्नातुमदृश्यात्माव्योमवीथीगतोगमम् ॥ १ ॥ निर्गत्यनभसःसप्तमुनिमंडलकोटरात् ॥ रात्रौप्राप्तोस्मिसुमतेदाशूरतरुमुन्नतम् ॥ २ ॥ यावच्छृणोमिविटपकुहरात्काननेवचः ॥ कुड्मलांभोजलग्नस्यपट्पदस्येवनिःस्वनम् ॥ ३ ॥ शृणुपुत्रमहाबुद्धेवस्तुतोस्यसमामिमाम् ॥ वर्णयामिमहाश्चर्यामेकामाख्यायिकांतव ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–वह ब्राह्मण अपने पुत्रसे बोला कि–हे पुत्र ! कदाचित् इसी दाशूरमार्गसे आकाशमार्ग होकर अदृश्य होकर कैलाशवासिनी मन्दाकिनी गंगाजीमें स्नान करनेको मैं गयाथा ॥ १ ॥ सप्तर्षियोंका मण्डल जिसके एक देशमें है ऐसे स्वर्गलोकके आकाशसे मैं निकलकर हे सुमते पुत्र ! रात्रिके समयमें इसी अपने ऊंचे वृक्षमें प्राप्त हुआ ॥ २ ॥ इतनेहीमें इसी वृक्षके गर्भसे वनमें एक ऐसे शब्दको सुनताहूं जैसे कमलकी कलिकामें निमग्न भ्रमरिका ॥ ३ ॥ हे महाबुद्धे पुत्र ! एक महा आश्चर्यजनक आख्यायिका जो कि यथार्थमें इस संसारके तुल्यहै मैं तुमसे वर्णन करताहूं उसको तुम सुनो ॥ ४ ॥

अस्तिराजामहावीर्योविख्यातोभुवनत्रये ॥ नाम्नाखोत्थइतिश्रीमाञ्जगदाक्रमणक्षमः ॥ ५ ॥ अस्यानुशासनंसर्वेभुवनेष्वपिनायकाः ॥ शिरोभिर्धारयंत्युच्चैश्चूडामणिमिवार्थिनः ॥ ६ ॥ यःसाहसैकरसिकोनानाश्चर्यविहारवान् ॥ केनचित्त्रिषुलोकेषुनमहात्मावशीकृतः ॥ ७ ॥ यस्यारंभसहस्राणिसुखदुःखप्रदान्यलम् ॥ संख्यातुंकेनशक्यंतेकल्लोलाजलधेरिव ॥ ८ ॥

अर्थ—एक महापराक्रमी राजा तीनोंलोकमें प्रसिद्ध, श्रीमान्, जगत्के आक्रमण करनेमें समर्थ खोत्थ (अव्याकृत आकाशज) नामसे प्रसिद्धहै ॥ ५ ॥ इस राजाकी आज्ञाको संपूर्ण भुवनोंमें नायक जो ब्रह्मा इन्द्रादिकहैं वेभी अपने ऊंचे शिरोंपर ऐसे धारण करतेहैं जैसे धनीलोग चूडामणिको ॥ ६ ॥ वह राजा साहसमें अति रसिक, नानाप्रकारके आश्चर्यजनक बातोंमें विहार करनेवालाहै, वह महात्मा तीनोंलोकमें किसीसे वशीभूत नहीं किया गया ॥ ७ ॥ उसके सहस्रों आरंभ सुखदुःख देनेवाले हैं, उनकी गणना समुद्रके तरंगके समान कोई नहीं करसकता ॥ ८ ॥

यस्यधीर्यंसुवीर्यस्यनशस्त्रैर्नचपावकैः ॥ केनचिद्भुवनेक्रांतमाकाशमिवमुष्टिना ॥ ९ ॥ यदीयांविततारंभांलीलांनिर्माणभासुराम् ॥ नमनागनुवर्ततेशक्रोपेंद्रहराअपि ॥ १० ॥ त्रयस्तस्यमहाबाहोदेहाविहरणक्षमाः ॥ जगदाक्रम्यतिष्ठंतिह्युत्तमाधममध्यमाः ॥ ११ ॥ व्योमन्येवाततिविततेजातोसौत्रिशरीरकः ॥ तत्रैवचस्थितिंयातःशब्दपातश्चपक्षिवत् ॥ १२ ॥

अर्थ—उस उत्तम पराक्रमीके पराक्रमको न शस्त्रोंसे न अग्निसे किसी पुरुषने त्रिभुवनमें ऐसे नहीं पराजित किया जैसे आकाशको मुष्टिसे (मूठीसे) ॥ ९ ॥ उसकी विशाल आरंभ करनेवाली स्वप्न मनोरथादिककी रचनासे प्रकाशशील लीलाको इन्द्र विष्णु और महादेवभी किंचित् अनुवर्तन नहीं करसकते ॥ १० ॥ हे महाबाहो ! संपूर्ण व्य-

वहारके क्रीडा करनेमें समर्थ उत्तम मध्यम अधम तीन शरीर उसकी जगत्को आक्रमण करके स्थितहैं ॥ ११ ॥ अत्यन्त विशाल अव्याकृत आकाशमें तीन शरीरधारी यह उत्पन्न हुआहै, और वहांही पक्षीके समान स्थितिकोभी प्राप्त हुआहै, और यह तुच्छ विषयोंमें आसक्त विधिनिषेध शब्दोंका अनुगामी होकर सदा भ्रमण करताहै ॥ १२ ॥

तत्रैवापारगगनेनगरंतेननिर्मितम् ॥ चतुर्दशमहारथ्यंविभागत्रयभूषितम् ॥ १३ ॥ वनोपवनमालाढ्यं क्रीडाशिखरिसुंदरम् ॥ मुक्तालताविगलितवापीसप्तकभूषितम् ॥ १४ ॥ शीतलोष्णात्मकाक्षीणदीपद्वयविराजितम् ॥ ऊर्ध्वाधोगतिरूपेणवणिङ्मार्गैणसंकुलम् ॥ १५ ॥ तस्मिन्नेवातिविपुलेपत्तनेतेनभूभृता ॥ संसारिणोविरचितामुग्धापवरकागणाः ॥ १६ ॥

अर्थ—उसी अपार अव्याकृत आकाशमें ब्रह्माण्ड नामक नगर उसने रचा, जो कि चतुर्दश भुवन तथा चतुर्दश विद्यारूप महामार्गयुक्तहै, और त्रिलोक तथा वेदत्रयीसे शोभितहै ॥ १३ ॥ नंदन आदि वन उपवनोंसे पूर्ण, मेरूआदि क्रीडा शिखरियों (पर्वतों) से रमणीय, तथा मुक्तारूपी लताओंसे वेष्टित सात (७) समुद्ररूपी वापीसे शोभितहै ॥ १४ ॥ शीतल तथा उष्ण चन्द्रसूर्यरूपी दीर्घ तथा अक्षय दो दीपोंसे विराजित और शास्त्रीय कर्मोंसे ऊर्ध्वगति तथा अशास्त्रीयकर्मोंसे अधोगतिरूप वणिक् (व्यापारी) के मार्गसे शोभितहै ॥ १५ ॥ उसी अति विशाल नगरमें उस राजाने जंगम अतिमूढ आत्माकाशके परिच्छेदक देव मनुष्यादि गणोंको रचा ॥ १६ ॥

ऊर्ध्वंकेचिदधःकेचित्केचिन्मध्येनियोजिताः ॥ केचिच्चिरेणनश्यंतःकेचिच्छीघ्रविनाशिनः ॥ १७ ॥ असितच्छादनच्छन्नानवद्वारविभूषिताः ॥ अनारतवहद्वाताबहुवातायनान्विताः ॥ १८ ॥ दीपपंचकसालोकास्त्रिस्थूणाःशुक्लदारवः ॥ मसृणालेपमृदवःप्रतोलीभुजसंकुलाः ॥ १९ ॥ माययारचितास्तेन राज्ञातेषुमहात्मना ॥ रक्षितारोमहायक्षानित्यमालोकभीरवः ॥ २० ॥

अर्थ—कोई ऊपर कोई नीचे तथा कोई प्राणी मध्यभागमें नियुक्त कियेगये, और, कोई उनमें चिरकालमें तथा कोई शीघ्रकालमें विनाशी रचे गये ॥ १७ ॥ कोई कृष्ण केशरूपी तृणसे आच्छादित, नव इन्द्रियरूपी द्वारसे विभूषित थे तथा निरन्तर बहते हुये पवनरूप वातायन (झरोखों) से युक्त थे ॥ १८ ॥ पंचज्ञानेंद्रियरूपी दीपोंसे प्रकाशयुक्त, दोजंघे तथा पृष्ठकी अस्थि (हड्डी) रूपी खंभे सहित, चिक्कण चर्मरूपी मृत्तिकाके लेपसे मृदु (कोमल) और भुजारूपी मार्गोंसे पूर्ण वे सब थे ॥ १९ ॥ और उस महात्माराजाने उन आत्माकाशके आच्छादकों (रक्षकों) को जो आत्मज्ञानरूपी प्रकाशसे नित्य भयभीत थे अहंकाररूपी यक्षोंको मायासे रचा ॥ २० ॥

अथापवरकौघेषुचलत्सुसमहीपतिः ॥ करोतिविविधांक्रीडांनीडेष्विवविहंगमः ॥ २१ ॥ त्रिशरीरशतेष्वंतस्तैर्यक्षैःसहपुत्रक ॥ लीलावशमुषित्वाशुपुनर्निर्गम्यगच्छति ॥ २२ ॥ तस्येच्छाजायतेवत्सकदाचिच्चलचेतसः ॥ पुरंभविष्यन्निर्माणंकिंचिद्यामीतिनिश्चला ॥ २३ ॥ भूताविष्टइवावेगात्ततउत्थायधावति ॥ पुरंतदप्यथाप्नोतिगंधर्वैरिवनिर्मितम् ॥ २४ ॥

अर्थ—इसके अनंतर आत्माके आच्छादकोंके व्यवहारमें प्रवृत्त होनेपर वह संकल्पसे उत्पन्न जीवरूपी राजा विविधप्रकारके क्रीडा ऐसे करताहै जैसे अपने घोसलेमें पक्षी ॥ २१ ॥ हे पुत्र ! तीन प्रकार (स्थूल सूक्ष्म कारण) की सैकडों शरीरोंमें यक्षों (अहंकारों) के साथ लीलाओंसे अवश्यकतापूर्वक निवास करके यह जीवरूपी पक्षी पुनः निकल करके चलाजाताहै ॥ २२ ॥ उस चंचल चित्तको कदाचित् भोगकालपर्यन्त स्थिर यह इच्छा होती है कि भविष्यत् अर्थात् अविद्यमान स्वप्नादि नगरमें मैं जाऊं ॥ २३ ॥ भूतसे आविष्टके समान निद्रादिके आवेशसे उठकर अर्थात् जाग्रत् सुषुप्तिके अभिमानको त्यागकर दौडताहै और उस (स्वप्न) नगरको जो गंधर्वोंसे रचित नगरके समानहै प्राप्त होताहै ॥ २४ ॥

तस्येच्छाजायतेपुत्रकदाचिच्चलचेतसः ॥ विनाशंसंप्रयामीतितेनाशुसविनश्यति ॥ २५ ॥ पुनरुत्पद्यतेपूर्णस्वात्मनोर्मिरिवांभसः ॥ व्यवहारंतनोत्युच्चैःपुनरारंभमंथरम् ॥ २६ ॥ स्वयैवव्यवहत्याथकदाचित्परिभूयते ॥ किंकरोम्यहमज्ञोस्मिदुःखितोस्मीतिशोचति ॥ २७ ॥ मुदमेत्यकदाचिच्चस्वयमायातिदीनताम् ॥ प्रावृड्वर्षकल्लोलासपूरादिवनदीरयः ॥ २८ ॥ जयातिगच्छतिवल्गतिजृंभतेस्फुरतिभातिनभातिचभासुरः ॥ सुतमहामहिमासमहीपतिःपतिरपामिववातरयाकुलः ॥ २९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे दाशूरपाख्याने खोत्थविभववर्णनं नाम द्विपंचाशत्तमःसर्गः ॥ ५२ ॥

अर्थ—हे पुत्र ! पुनः उस चंचल चित्तवालेको इच्छा होती है कि पुनः मैं विनाश अर्थात् संकल्पोंकी लयावस्था सुषुप्तिको प्राप्त होऊं और उसीसे वह शीघ्र नाशको अर्थात् कारण अविद्यामें जिसमें कर्मोंके बीज संस्कार शेषमात्र रहतेहैं विनोंलेके समान लीन होजाताहै (गाढी निद्रा सुषुप्तिको प्राप्त होताहै) ॥ २५ ॥ और पुनः समुद्रसे तरंगके समान शीघ्रही अपने स्वभावसे उत्पन्न होताहै अर्थात् सुषुप्तिसे जाग्रत् या स्वप्नदशाको प्राप्त होताहै और पुनः आरंभ तथा उसके फलसंयुक्त बडे २ व्यवहारोंका विस्तार करताहै ॥ २६ ॥ और कदाचित् अपनेहीसे पराजित होताहै और मैं अज्ञ हूं, किंकर हूं दुःखी हूं इत्यादि प्रकारसे शोचताहै ॥ २७ ॥ और कभी पूर्वकालके अनुभूत सुखको उद्दीपन वा स्मरण करके स्वयं दीनताको ऐसे प्राप्त होताहै जैसे वर्षाकालके कलाके उल्लासके प्रवाहसे नदीका वेग ॥२८॥ हे पुत्र ! वह महात्माराजा वायुके वेगसे संक्षुब्ध समुद्रके समान पराजय करनेका सामर्थ्य रहते जाग्रत् तथा स्वप्नावस्थामें शत्रुओंके ऊपर आक्रमण करनेको जाताह, जितताहै सम्पत्तिको पाकर प्रसन्न होताहै अच्छीतरह चलताहै, और शोभित होताहै और अन्तर्गत आत्मज्योतिसे प्रकाशशील रहतेभी व्यवहारदृष्टिसे कुछ नहीं शोभित होता ॥२९॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे दाशूरोपाख्याने खोत्थविभववर्णनं नाम द्विपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५२ ॥

त्रिपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५३ ॥

खोत्थ (आकाशज) आख्यानका तात्पर्य और पूर्वोक्त अर्थमें दृष्टान्तभूत संकल्परचित विश्वका वर्णन इस ५३ के सर्गमें विस्तारसे किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथापृच्छत्सुतस्तत्रजंबूद्वीपेमहानिशि ॥ कदंबाग्रावचूडस्थंपितरंपावनाशयम् ॥१॥ ॥ पुत्रउवाच ॥ कोसौखोत्थइतिख्यातोभूपस्तातोत्तमाकृतिः ॥ कथितंचकिमेतन्मेत्वयेतिब्रूहित त्त्वतः ॥ २ ॥ क्वभविष्यतिनिर्माणंवर्त्तमानेक्वगम्यता ॥ उभयार्थविरुद्धत्वान्मन्मोहायवचस्तव ॥ ३ ॥ ॥ दाशूरउवाच ॥ शृणुपुत्रयथाभूतमेतत्तेकथयाम्यहम् ॥ येनसंसारचक्रस्यतत्त्वमस्यावबुध्यसे ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-इसके अनन्तर उस जंबूद्वीपकी महारात्रिमें कदंबके अग्रभागमें शिरोभूषणके समान स्थित और पवित्र अन्तःकरणवाले अपने पितासे पुत्रने पूंछा ॥ १ ॥ कि हे तात ! यह खोत्थ (आकाशज) नामसे प्रसिद्ध उत्तम आकारवान् राजा कौनहै और यह परोक्षरूपसे आपने मुझसे क्या कहा वह यथार्थरूपसे कहो ॥ २ ॥ कहां तो भविष्यत्में नगरकी रचना और कहां वर्तमानमें उसकी प्राप्ति ? क्योंकि भविष्यद् और वर्तमानका एककालमें विरोध होनेसे यह आपका वचन मेरे व्यामोहके लिये है ॥ ३ ॥ दाशूर बोला—हे पुत्र ! तुम सुनो इसको मैं यथार्थरूपसे कहताहूं जिससे कि इस संसारचक्रकातत्व तुम जानजाओगे ॥ ४ ॥

असदभ्युत्थितारंभमवस्तुमयमाततम् ॥ संसारसंस्थानमिदमेवमाकथितंमया ॥५॥ परमान्नभसोजा तःसंकल्पःखोत्थउच्यते ॥ जायतेस्वयमेवासौस्वयमेवविलीयते ॥ ६ ॥ तत्स्वरूपमिदंसर्वंजगदाभो गिविद्यते ॥ जायतेतत्रजातेतुतस्मिन्नष्टेविनश्यति ॥ ७ ॥ ब्रह्मविष्णिंद्ररुद्राद्यास्तस्यैवावयवान्विदुः ॥ विटपानिवतृक्षस्यशृंगाणीवमहीभृतः ॥ ८ ॥

अर्थ—इस संसारकी रचना असत्य अज्ञानसे प्रगट और परमार्थ सत्ता शून्य मायामयहै, इसीके बोध करानेके लिये मैंने तुमसे परोक्षरीतिसे वर्णन कियाहै ॥ ५ ॥ अव्याकृत आकाशसे उत्पन्न जो संकल्पमय मनहै उसीको खोत्थ (आकाशज) कहते हैं, यह अपनेही संकल्पजनित वासनासे उत्पन्न होताहै और वासनाकी निवृत्तिकी दृढतासे आपही नष्ट होजाताहै ॥ ६ ॥ उसी संकल्पमय मनकास्वरूप (परिणाम) यह संपूर्ण विशाल जगत्है उसीके उत्पन्न होनेपर यह उत्पन्न और नष्ट होनेपर नष्ट होताहै ॥ ७ ॥ और ब्रह्मा विष्णु इंद्र और रूद्रादि ये सब उसी संकल्पमय मनके इसप्रकार अवयव हैं जैसे वृक्षकी शाखायें वा पर्वतके शिखर ॥ ८ ॥

शून्येव्योमनितेनेदंनिर्मितंत्रिजगत्पुरम् ॥ प्रतिभासानुसंधानमात्रेणैत्यविरिंचिनाम् ॥ ९ ॥ यत्रेमेवित तालोकालोककोशाश्चतुर्दश ॥ वनोपवनमाताश्चयत्रोद्यानपरंपराः ॥१०॥ क्रीडाशिखरिणोयत्रसह्यमंद रमेरवः ॥ शीतोष्णदीप्तीचंद्रार्कौदीपौयत्रानलाकृती ॥ ११ ॥ सूर्यांशुकचदालोलतरंगोत्तुंगमौक्तिकाः॥ वहंतिसरितोयत्रसन्मुक्तावलयश्चलाः ॥ १२ ॥

अर्थ—तीनोंकालमें जगत्की सत्ता शून्य ब्रह्ममें अधिष्ठान चेतनके अनुग्रहमात्रसे ब्रह्मापदवीको प्राप्त होकर

तीनोंलोकरूपी नगरको संकल्पमय मनहीने रचाहै ॥ ९ ॥ जिस नगरमें सूर्यादिकके प्रकाशसे प्रकाशित यह चौदह भुवनरूपी विशाल कोषहैं और वन उपवनकी मालायें जहांपर वाटिकाओंकी पंक्तिहैं ॥ १० ॥ जहांपर सह्य, मन्दर मेरूआदि कुलाचल क्रीडाके शिखरहैं और जहांपर शीत उष्ण प्रकाशवाले और अग्निके समान आकारवान् चन्द्र सूर्यरूपी दो दीपकहैं ॥ ११ ॥ तथा जहांपर सूर्यके किरणोंसे शोभायमान चंचल और ऊंचे तरंगरूपी मोतियोंके समूहसे पूर्ण नदियां वह रही है ॥ १२ ॥

इक्षुक्षीरादिसलिलामणिरत्नबिसांकुराः ॥ औवानलांबुजायत्रवाप्यःसप्तमहार्णवाः ॥ १३ ॥ अधऊर्ध्वं तथोर्ध्वेखेपुण्यापुण्यधनश्रियः ॥ नरामरकिराटानांयत्रांतःक्रयविक्रयौ ॥ १४ ॥ तस्मिन्नेवजगत्यस्मिन्पुरेसंकल्पभूभृता ॥ क्रीडार्थमात्मनश्चित्रादेहापवरकाःकृताः ॥ १५ ॥ केचिद्गीर्वाणनामानऊर्ध्वएव नियोजिताः ॥ नरनागादयःकेचिदधएवनियोजिताः ॥ १६ ॥

अर्थ—जिसमें इक्षु औ क्षीर आदिके रसरूपी जलहैं मणि और रत्नरूपी जहांपर कमलके दंडके अंकुरहैं वडवानलरूपी जहां कमलहै ऐसी सातों समुद्ररुपी वापी शोभित हो रही हैं ॥ १३ ॥ जहांपर नीचे पृथ्वीपर और ऊर्ध्व आकाशमें पुण्य और पापरूपी धनकी शोभायुक्त देवता मनुष्य और किरातादि क्रय और विक्रय कर रहेहैं ॥ १४ ॥ उसी इसजगत्‌रूपी नगरमें संकल्पमय मनरूपी राजाने अपने क्रीडाके लिये चित्रविचित्र अहंकाररूपी देहके रक्षक रचेहैं ॥ १५ ॥ उनमेंसे किसीका नाम देवताहै जोकि ऊर्ध्व देशमें स्थापित कियेगयेहैं, और कोई मनुष्य नागादिक अधोदेशमेंही स्थापित किये गयेहैं ॥ १६ ॥

वातयंत्रप्रवाहेणचलंतोमांसमृन्मयाः ॥ सितास्थिदारवश्चित्रास्त्वग्लेपमसृणामलाः ॥ १७ ॥ केचिच्चिरेणनश्यंतिकेचिच्छीघ्रविनाशिनः ॥ केचित्केशोलपोल्लासरचिताच्छादनश्रियः ॥ १८ ॥ कर्णाक्षिनासाप्रमुखैर्द्वारैर्नवभिरन्विताः ॥ अनारतवहत्प्राणपवनेनोष्णशीतलाः ॥ १९ ॥ कर्णनासास्यताल्वादिवातायनगणान्विताः ॥ भुजाद्यंगप्रतोलीकाःपंचेंद्रियकुदीपकाः ॥ २० ॥

अर्थ—प्राणोंके प्रवाहसे मांसरूपी मृत्तिकाके विकार श्वेत हड्डीरूपी काष्ठयुक्त, और चित्रविचित्र तैल तथा उबटनोंसे अति चिक्कण, और अति निर्मल यह संसारी प्राणी हैं ॥ १७ ॥ कोई तो इनमें चिरकालसे नष्ट होते हैं, कोई शीघ्र, और किसीसे केशरूपी तृणोंके उल्लाससे आच्छादनकी शोभा रचीगई है ॥ १८ ॥ कर्ण नेत्र और नासिकारूपी नौ दरवाजोंसे संयुक्त और निरंतर चलते हुये प्राण और अपानसे उष्ण तथा शीतल ये सब प्राणी ॥ १९ ॥ तथा कर्ण नेत्र मुख और ताल्वादि झरोखोंके समूह सहित और भुजाआदि अंगरूपी मार्गयुक्त, तथा पांचों इंद्रियरूपी निन्दनीय दीपकसे प्रकाशित ॥ २० ॥

माययारचितास्तेषुसंकल्पेनमहामते ॥ अहंकारमहायक्षाःपरमालोकभीरवः ॥ २१ ॥ देहापवरकेष्वंतर्महाहंकारयक्षकैः ॥ सहसंक्रीडतेत्यर्थंससदैवासद्वत्थितैः ॥ २२ ॥ यथाकुसूलेमार्जारोभस्त्रायांभुजगोयथा ॥ मुक्ताफलंयथावेणावहंकारस्तथातनौ ॥ २३ ॥ क्षणमभ्युदयंयांतिक्षणंशाम्यंतिदीपवत् ॥ देहगेहेषुसंकल्पतरंगाःसागरेष्विव ॥ २४ ॥

अर्थ—तथा मायासे रचित ये सब प्राणीरूप महा नगरी हैं, हे महामते ! उन प्राणियोंमें इस संकलपमय मनने अहंकाररूपी महायक्ष रचेहैं, जोकि आत्मज्ञानरूपी प्रकाशसे अत्यंत भयभीत हैं ॥ २१ ॥ देहके रक्षा करनेवालोंमें अज्ञानसे आविर्भूत महा अहंकाररूपी यक्षोंके साथ वह राजा सदा क्रीडा करताहै ॥ २२ ॥ जैसे तुषकी अग्निमें मार्जार, भस्त्रामें सर्प, और बांसमें मुक्ताका फल है, ऐसाही इस शरीरमें अहंकार है ॥ २३ ॥ क्षणमेंही तो यह अभ्युदयको प्राप्त होताहै और क्षणमेंही ऐसे नाशको प्राप्त होताहै जैसे दीपक, शरीररूपी गृहोंमें संकलपमय तरंग ऐसे उठते हैं जैसे समुद्रोंमें ॥ २४ ॥

भविष्यन्नवनिर्माणंसव्य प्रोतितदापुरम् ॥ यदासंकल्पितंवस्तुक्षणादेवप्रपश्यति ॥ २५ ॥ असंकल्पनमात्रेणस्वेनैवाशुविनश्यति ॥ श्रेयसेपरमायस्यनाशत्वेनतुसंभवः ॥ २६ ॥ स्वयंसंकल्पनामात्रंजायतेबालयक्षवत् ॥ अनंतायात्मदुःखायनानंदायकदाचन ॥ २७ ॥ इदंस्फारंजरद्दुःखंप्रतनोत्यात्मसत्तया ॥ असत्तयानाशयतिघनमांध्यंयथातमः ॥ २८ ॥

अर्थ—और यह संकलपमय मन भविष्यत् नूतन रचनावाले नगरमें (स्वप्नमें) उसी समय प्राप्त होताहै जब यह निज संकल्पित वस्तुको क्षणभरमें देखताहै ॥ २५ ॥ और संकल्पके अभाव मात्रसे जाग्रत् और स्वप्नावस्थामें

अत्यंत परिश्रम करके अर्थात् भ्रमण प्रयुक्त मायामें प्राप्त होकर अथवा नानाप्रकारकी योनियों भ्रमण करके सुषुप्ति वा समाधिमें आकर नाशको प्राप्त होताहै ॥ २६ ॥ जैसे बालकके संकल्पसे शीघ्र पिशाचादि उत्पन्न होतेहैं ऐसेही यह अपनी कल्पनामात्रसे अनंत दुःखके लिये उत्पन्न होताहै न कि कदाचित् आनंदके अर्थ ॥ २७ ॥ यह संकल्पमय मन-रूपी राजा अपनीही सत्तासे इस विशाल जगत् रूपी दुःखको विस्तारित करताहै और अपनी सत्ताकी अभावसे ऐसे नाश करताहै जैसे घनीभूत अंधकारको सूर्य ॥ २८ ॥

स्वैर्वद्धःस्वदायिन्याचेष्टयापरिरोदिति ॥ काष्ठावष्टब्धवृषणःकीलोत्पाटीकपिर्यथा ॥ २९ ॥ संकल्पितानंदलवस्तिष्ठत्युद्धरकंधरम् ॥ अकस्मात्प्रच्युतमधुबिंदुभुक्खरोयथा ॥३०॥ क्षणंविरतिमायातिरतिमेतिक्षणंस्वयम् ॥ क्षणंविकारमायातिसंकल्पेनैवबालवत् ॥ ३१ ॥ एनंसकलभावेभ्यःकृत्वानिर्मूलमादरात् ॥ मतिरंतःपदंयातियथापुत्रतथाकुरु ॥ ३२ ॥

अर्थ—जैसे दो काष्ठोंके भीतर जिसके वृषण (अण्डकोश) लटकरहे हैं उन काष्ठोंके मध्यमें स्थापित कीलके उखाडनेवाला बांदर दुःख पाताहै ऐसेही अपनी दुःखदायी चेष्टासे यह रोताहै ॥ २९ ॥ जैसे किसी पातसे चुयेहुये मधुके बिंदुको चाटनेसे गर्दभ आनंदित होताहै ऐसे अपने संकल्पित विषयके आनंदलेशके भोगनेसे यह अपनी कन्धा उठाकर आनंद होकर स्थित रहताहै ॥ ३० ॥ क्षणमेंही तो यह वैराग्यको प्राप्त होताहै और क्षणहीमें आसक्तिको, और बालकके संकल्पके समान क्षणहीमें पुनः विकार भावको प्राप्त होताहै ॥ ३१ ॥ हे पुत्र! इस संकल्पमय मनको सम्पूर्ण बाह्यवस्तुओंसे हटाकर और समाधिके अभ्याससे आत्मज्ञानद्वारा आदरसे इसको निर्मूल करके तुम्हारा अंतःकरण ब्रह्मपदका अवलंबन करके जैसे विश्रामको प्राप्त हो वैसाही प्रयत्न करो ॥ ३२ ॥

त्रयस्तस्यामतेदेहाअधमोत्तममध्यमाः ॥ तमःसत्वरजःसंज्ञाःकारणंजगतःस्थितेः ॥ ३३ ॥ तमोरूपोहिसंकल्पोनित्यंप्राकृतचेष्टया ॥ परांकृपणतामेत्यप्रयातिकृमिकीटताम् ॥ ३४ ॥ सत्वरूपोहिसंकल्पोधर्मज्ञानपरायणः ॥ अदूरकेवलीभावंस्वाराज्यमधितिष्ठति ॥ ३५ ॥ रजोरूपोहिसंकल्पोलोकसंव्यवहारवान् ॥ परितिष्ठतिसंसारेपुत्रदारानुरंजितः ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे पुत्र! इस संकल्पमय मनके उत्तम मध्यम और अधम सत्वगुण रजोगुण और तमोगुण संज्ञासहित तथा जगत्की स्थितिके कारणभूत तीन शरीर हैं ॥ ३३ ॥ प्राकृत अर्थात् स्वाभाविक चेष्टासे नित्यही तमोरूप संकल्प होताहै जिससे कि यह प्राणी परम कृपणता (जो नरकोंमें प्रसिद्धहै) में प्राप्त होकर कृमि कीट और स्थावरादि योनियोंको प्राप्त होताहै ॥ ३४ ॥ और सत्वरूपी संकल्पसे यह प्राणी धर्म और ज्ञानमें परायण होताहै और उससे समीपमें केवलीभाव (मोक्ष) पददायक ब्रह्मादि देवपदवीको प्राप्त होताहै ॥ ३५ ॥ और रजोगुणरूपी संकल्प मनुष्यजन्मके योग्य व्यवहारी होताहै उससे पुत्ररत्नादिक करके अनुमोदित इस संसारमें यह प्राणी स्थित रहताहै ॥३६

त्रिविधंतुपरित्यज्यरूपमेतन्महामते ॥ संकल्पःपरमायातिपदमात्मपरिक्षये ॥ ३७ ॥ सर्वादृष्टीःपरित्यज्यनियम्यमनसामनः ॥ सवाह्याभ्यंतरार्थस्यसंकल्पस्यक्षयंकुरु ॥ ३८ ॥ यदिवर्षसहस्राणितपश्चरसिदारुणम् ॥ यदिवाविलयात्मानंशिलायांचूर्णयस्यलम् ॥ ३९ ॥ यदिवाग्निंप्रविशसिवडवाग्निमथापिवा ॥ यदिवापतसिश्वभ्रेखड्गधाराजवेतथा ॥ ४० ॥

अर्थ—हे महामते! सत्व रज तमोरूप इन तीनों गुणोंको त्यागकर अपने स्वरूपके नाश होनेपर यह संकल्पमय मन मोक्षपदवीको प्राप्त होताहै ॥ ३७ ॥ सम्पूर्ण बाह्यदृष्टियोंको त्यागकर और मनको अपने मनहीसे रोककर और बाह्य तथा आभ्यंतर पदार्थविषयक संकल्पोंका तुम नाश करो ॥ ३८ ॥ यदि तुम सहस्रों वर्ष भयंकर तप करो अथवा इस नश्वर अपनी देहको पाषाणकी शिलापर चूर २ कर डालो ॥ ३९ ॥ अथवा यदि सामान्य अग्नि वा वडवा अग्निमें प्रवेश करो अथवा बडेभारी गर्तमें वा खड्गकी धारापर गिरो ॥ ४० ॥

हरोयद्युपदेष्टातेहरिःकमलजोपिवा ॥ अत्यंतकरुणाक्रांतोलोकनाथोथवायतिः ॥ ४१ ॥ पातालस्थस्यभूस्थस्यस्वर्गस्थस्यापितत्तव ॥ नान्यःकश्चिदुपायोस्तिसंकल्पोपशमादृते ॥ ४२ ॥ अनाबाधेविहारेच्चसुखेपरमपावने ॥ संकल्पोपशमेयत्नंपौरुषेणपरंकुरु ॥ ४३ ॥ संकल्पतंतावखिलाभावाःप्रोताःकिलानघ ॥ छिन्नेतंतौनजानेतेक्वयांतिविशरारवः ॥ ४४ ॥

अर्थ—महादेव विष्णु अथवा ब्रह्मा तुह्मारे उपदेश करनेवालेहों अथवा अत्यन्त करूणासे पूर्ण दुर्वासा दत्तात्रेय वा बुद्ध तुह्मारे उपदेश करनेवालेहो ॥ ४१ ॥ और तुम स्वयं पाताल पृथिवी वा स्वर्गपर स्थित रहो परन्तु संकल्पके ना-

शके सिवाय तुमारे मोक्षकेलिये कोईभी उपाय नहीं है ॥ ४२ ॥ सर्वथा बाधा और विकार रहित परम पवित्र सुखमय संकल्पके नाशकेलिये श्रवण मनन निदिध्यासरूप परम पुरुषार्थ करो ॥ ४३ ॥ हे पापरहित पुत्र ! संकल्परूप सूत्रहीमें संपूर्ण पदार्थ गुथेहैं उस संकल्परूप सूत्रके छिन्न होनेपर वे क्षणभंगुर पदार्थ न जाने कहां चले जातेहैं ॥ ४४ ॥

असत्सत्सदसत्सर्वंसंकल्पादेवनान्यतः ॥ संकल्पंसदसच्चैवमिहसत्यंकिमुच्यताम् ॥ ४५ ॥ संकल्प्यतेयथायद्यत्तत्तथाभवतिक्षणात् ॥ माकिंचिदपितत्त्वज्ञसंकल्पयकदाचन ॥ ४६ ॥ निःसंकल्पोयथाप्राप्तव्यवहारपरोभव ॥ चिदचेत्योन्मुखत्त्वंहियातिसंकल्पसंक्षये ॥ ४७ ॥ उत्थायसत्त्वरूपेणयोन्त्सत्यमयात्मकम् ॥ नतज्जगद्दुःखमिदंव्यर्थंसदृशमात्मनः ॥ ४८ ॥ तेनदुःखायमहतेकिंमृतेनतवानघ यद्दुःखायतत्प्राज्ञाःसंश्रयंतीहनेतरम् ॥ ४९ ॥ अधिगतपरमार्थतामुपेत्यप्रसभमपास्यविकल्पजालमुच्चैः ॥ अधिगमयपदंतदद्वितीयंविततसुखायसुषुप्तचित्तवृत्तिः ॥ ५० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे दाशूरपाख्याने संसारनगरविकल्पयोगविचारो नाम त्रिपंचाशत्तमःसर्गः ॥ ५३ ॥

अर्थ—सत् असत्मय संपूर्ण विकल्प संकल्पहीसे उत्पन्न होतेहैं अन्यसे नहीं और संकल्प सद्वा असत्है ऐसा विकल्प जब नहीं करसकते तो इन विकल्पोंसे ब्रह्मका स्पर्श कैसे होसकताहै क्योंकि जब कार्योंका अपने संगी कारणोंमेंभी कुण्ठीभावहै तब असंग परब्रह्मतक वह कैसे पहुंच सकतेहैं ॥ ४५ ॥ यह संकल्पमय मन जैसा २ संकल्प करताहै वैसाही वैसा क्षणभरमें होजाताहै इसलिये हे तत्वज्ञ पुत्र ! तुम कदाचिद्भी कुछ संकल्प न करो ॥४६॥ संकल्प रहित जैसा व्यवहार प्राप्तहो उसीमें तुम तत्पर रहो और संकल्पके नाश होनेपर यह चिदात्मा विषयसे पराङ्मुख होताहै ॥ ४७ ॥ केवल सत्यस्वभावरूप ब्रह्ममयआत्मा असत्य मायाके वशीभूत होकर देवता मनुष्य और तिर्यगादि चौराशी लक्ष योनि द्वारा उन २ भिन्न २ प्राणी रूपसे जन्म लेकर व्यर्थही इस जगद्रुपी दुःखका अनुभव करताहै परन्तु यह इस शुद्धात्माके योग्य नहींहै ॥ ४८ ॥ इसलिये हे पापरहित पुत्र ! नानाप्रकारकी योनियोंमें जन्मके कारण केवल दुःखहीकेलिये पुनः २ मरणोंसे तुमको क्या फलहै क्योंकि बुद्धिमान् लोग दुःखरहित आत्माका आश्रय करतेहैं अन्यका नहीं ॥ ४९ ॥ इसलिये तुम तत्वज्ञानताको प्राप्त होकर और सर्वथा विकल्प जालको बलसे दूरकरके जो अद्वितीय मोक्षपदहै उसको समाधिनिष्ठ होकर निरतिशय आनंदकेलिये अपने प्रयत्नसे सिद्धकरो ॥ ५० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे दाशूरपाख्याने संसारनगरविकल्पयोगविचारो नाम त्रिपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५३ ॥

चतुःपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५४ ॥

जैसे संकल्पकी उत्पत्तिरूप, और जिस उपायसे उसका नाश होताहै इन सबका वर्णन इस ५४ के सर्गमें करतेहैं॥

॥ पुत्रउवाच ॥ ॥ कीदृशस्तातसंकल्पःकथमुत्पद्यतेप्रभो ॥ कथंचवृद्धिमाप्नोतिकथंचैषविनश्यति ॥ १ ॥ दाशूरउवाच ॥ ॥ अनन्तस्यात्मतत्त्वस्यसत्तासामान्यरूपिणः॥चितश्चेत्योन्मुखत्वंयतत्सकल्पांकुरंविदुः ॥ २ ॥ लेशतःप्राप्तसत्ताकःसएवघनतांशनैः ॥ यातिचित्तखमापूर्यदृढजाड्यायमेघवत् ॥ ३ ॥ भावयंतीचितिश्चेत्यंव्यतिरिक्तमिवात्मनः ॥ संकल्पतामुपायातिबीजमंकुरतामिव ॥ ४ ॥

अर्थ—पुत्र बोला—हे तात ! संकल्प कैसा होताहै और हे प्रभो ! कैसे वह उत्पन्न होताहै, कैसे उसकी वृद्धि होतीहै और कैसे यह नष्ट होताहै ॥ १ ॥ दाशूर बोला—हे पुत्र ! अनंत सत्ता सामान्य स्वरूप आत्मतत्वरूप चित्का विषयकी ओर उन्मुख होनेको संकल्पका अंकुर कहतेहैं ॥ २ ॥ वह लेशमात्रभी सत्ताको पाकर चित्ताकाशको चारो ओरसे व्याप्त करके अधिष्ठान चित्के चित् स्वभावताके तिरोधानता पूर्वक दृढ जडताकेलिये अर्थात् जड प्रपंचके आकारकी संपत्तिकेलिये धीरे २ मेघके समान घनीभावको प्राप्त होताहै ॥ ३ ॥ यह चिति शक्ति अपनेसे पृथक् विषयरूपकी भावना करती हुई संकल्पताको इसप्रकार प्राप्त होतीहै जैसे बीज अंकुरताको ॥ ४ ॥

संकल्पेनहिसंकल्पःस्वयमेवप्रजायते ॥ वर्द्धतेस्वयमेवाशुदुःखायनसुखायतु ॥ ५ ॥ संकल्पमात्रंहिजगज्जलमात्रंयथार्णवः ॥ ऋतेसंकल्पमन्यातेनास्तिसंसारदुःखिता ॥ ६ ॥ काकतालीययोगेनसंजातोस्तिमुधैवहि ॥ मृगतृष्णाद्विचंद्रत्वमिवासत्यंचवर्द्धते ॥ ७ ॥ निगीर्णमातुलिंगस्यकनकप्रत्ययोयथा ॥ स्वयमभ्येत्यसत्यांतःसंकल्पस्तेतथाह्यदि ॥ ८ ॥

अर्थ—एक संकल्पसे अन्य संकल्प आपही उत्पन्न होताहै और आपही दुःखके लिये न कि सुखके अर्थ शीघ्र ही बढताहै ॥ ५ ॥ जैसे जलमात्रही समुद्रहै ऐसेही संकल्पमात्रही यह जगत् है तुमारे संकल्पके सिवाय संसारमें दुःख अन्य कोईभी नहीं है ॥ ६ ॥ काकतालीय न्यायसे यह संकल्पमय मन मिथ्याही विवर्तवादका आश्रय लेकर उत्पन्न हुआहै और मृगतृष्णा तथा दोचंद्रकी भ्रांतिके समान यह असत्यही वृद्धिको प्राप्त होताहै ॥ ७ ॥ जिस पुरुषने इन्द्रारूनका फल भक्षण करलियाहै उसके अंतःकरणमें श्वेत पदार्थमें पीत पदार्थकी भ्रांति जैसे स्वयं आकर सर्...तुल्य भासती है ऐसेही तुमारे हृदयमें यह संकल्पहै ॥ ८ ॥

असत्यमेवजातस्त्वमसत्यमपिवर्तसे ॥ अस्मिन्ज्ञातेचविज्ञानेह्यसत्यंसंविलीयते ॥ ९ ॥ असौसोहमिमेभावाःसुखदुःखमयाामम ॥ व्यर्थमेवेतिनानास्थायेनांतःपरितप्यसे ॥ १० ॥ असन्नेवास्यजातोसि कुतोजन्मविलासतः ॥ व्यर्थमेवावमूढोसिसंकल्पवशतःस्वतः ॥ ११ ॥ मासंकल्पयसंकल्पंभावंभावयमास्थितौ ॥ एतावतैवभावेनभव्योभवतिभूतये ॥ १२ ॥

अर्थ—असत्यही तुम उत्पन्न हुये हो और असत्यही विद्यमानहो, हमारे इस उपदेशमय शास्त्रके जाननेपर असत्यका लय होजायगा ॥ ९ ॥ यह जो वेदांतोंमें प्रसिद्ध पूर्णात्माहै उससे पृथक् अहं और मम इत्यादि सुखदुःखमय जन्मादि पदार्थ मिथ्याही हैं यह अविश्वास जिस अज्ञानके हेतुसे तुमको है इसीसे तुम अन्तःकरणमें दुःखी होते हो ॥ १० ॥ इस जन्मादिके संबंधी तुम कदाचित्भी न होकर भ्रांतिसे जन्मादिके संबंधी बनेहो क्योंकि यथार्थमें विलासमात्रसे आत्माका जन्म कहां ! व्यर्थही तुम अपने संकल्पके वशमें होकर स्वयं मूढके समान होरहे हो ॥ ११ ॥ पूर्वकालमें अनुभूत सुखदुःखादि पदार्थको तुम वर्तमान स्थितिमें स्मरण न करो, किंतु केवल आत्मा मात्रकी भावना करो, इसी भावनाके करनेसे आत्मसिद्धिरूप विभूतिकेलिये यह जीव भव्य होजाताहै ॥ १२ ॥

संकल्पनाशयत्नेननभयान्यनुगच्छति ॥ भावनाभावमात्रेणसंकल्पःक्षीयतेस्वयम् ॥ ॥ १३ ॥ सुमनःपल्लवामर्देकिंचिद्यतिकरोभवेत् ॥ सुसाध्योभावमात्रेणनतुसंकल्पनाशने ॥ १४ ॥ पुष्पाक्रांतौकरस्पंदयत्नःपुत्रोपयुज्यते ॥ तदप्युपकरोत्यस्मिन्नसंकल्पपरिक्षये ॥ १५ ॥ संकल्पोयेनहंतव्यस्तेनभावविपर्ययात् ॥ अप्यर्द्धेननिमेषेणलीलयैवनिहन्यते ॥ १६ ॥

अर्थ—संकल्पके नाशकेलिये यत्न करनेसे प्राणी जन्ममरणादि भयको नहीं प्राप्त होता और भावनाके अभावमात्रसे यह संकल्प स्वयं क्षीण होजाताहै ॥ १३ ॥ पुष्पोंके दलोंके मर्दन करनेमें तो कुछ सुखसाध्य परिश्रम होताहै परन्तु अभावनामात्रसे साध्य संकल्पके नाशमें तो वहभी नहीं होता ॥ १४ ॥ पुष्पके दलोंके आक्रमण करनेमें किंचित् हस्तकी चेष्टामात्र यत्नका उपयोग होताहै, परन्तु हे पुत्र ! संकल्पके नाश करनेमें तो वहभी परिश्रम नहीं होता ॥ १५ ॥ जिस पुरुषको संकल्पका नाश करनाहै उसको केवल भावनाके विस्मरणमात्रसे आधेही पलकमें लीलामात्रसे उस संकल्पका नाश होताहै ॥ १६ ॥

भावमात्रोपसंपन्नेस्वात्मनिस्थितिमागते ॥ साध्यतेयदसाध्यंतत्कस्यस्यात्किमिवांगते ॥ १७ ॥ संकल्पेनैवसंकल्पंमनसास्वमनोमुने ॥ छित्वास्वात्मनितिष्ठत्वंकिमेतावतिदुष्करम् ॥ १८ ॥ उपशांतेहिसंकल्पेउपशांतमिदंभवेत् ॥ संसारदुःखमखिलंमूलादपिमहामते ॥ १९ ॥ संकल्पोहिमनोजीवश्चित्तंबुद्धिःसवासना ॥ नाम्नैवान्यत्वमेतेषांनार्थेनार्थविदांवर ॥ २० ॥

अर्थ—निरन्तर आत्माकी पूर्णानंदस्वरूपताके चिंतनमात्र प्राप्त होनेपर, और आत्मामें आत्माकी स्थिति प्राप्त होनेपर जो असाध्य वस्तुहै वहभी सिद्ध होजाती है. हे प्रिय पुत्र ! आत्माका अन्यसे अपहरण होनेसे वह आत्मा किसका होसकताहै, और आत्मा नष्ट होता हुआ किस रूपसे होगा अर्थात् आत्माका अपहरण और नाशका साक्षी कोई नहीं होसकता इसलिये न आत्मा किसीसे हरा जासकताहै और न उसका नाश होताहै ॥१७॥ हे मुने ! अपने मनहीसे असंकल्परूपके संकल्पसे मनसेही मनको छेदन करके तुम अपने आत्मामें स्थितहो और इतना ...य करनेमें अर्थात् संकल्प न करनेमें तुमको क्या दुष्करताहै ॥ १८ ॥ संकल्पके शान्त होनेहीसे यह संपूर्ण जगत् शांत होजाताहै, हे महामते ! संकल्पके अभावसे इस संपूर्ण संसारका दुःख मूलहीसे नष्ट होजाताहै ॥ १९ ॥ हे अर्थवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ! यह संकल्पही मन, जीव, चित्त और वासनासहित बुद्धिरूपहै इन सबका भेद नाममात्रसे है न कि अर्थसे ॥ २० ॥

संकल्पनादृतेनेहकिंचिदेवास्तिकुत्रचित् ॥ तमेवहृदयाच्छिंधिकिमेतत्परिशोचसि ॥ २१ ॥ यथैवेदं नभःशून्यंजगच्छून्यंतथैवहि ॥ असन्मयविकल्पोत्थेउभेएतेततेयतः ॥ २२ ॥ असिद्धंसर्वमेवैतदसिद्धेनैवसाधितम् ॥ संकल्पेनजगद्यस्माद्भावनाक्वावतिष्ठताम् ॥ २३ ॥ भावनाक्षयतःसिद्धिस्ततःप्राप्यं नशिष्यते ॥ तस्मादसदिदंसर्वंविज्ञेयंहेलयेद्धया ॥ २४ ॥

अर्थ—संकल्पसे पृथक् इस संसारमें कहीं कुछभी नहीं है, उसीको तुम अपने हृदयसे छिन्न करो यह शोच क्यों करते हो ॥ २१ ॥ जैसे यह आकाश शून्यहै ऐसेही यह जगत् शून्यहै, अर्थात् मरूभूमिके मृगतृष्णाके नाश होनेपरभी मरूभूमि शून्यात्मक नहीं होती जैसे यह दृष्टांतहै ऐसेही जगत् जीवादिका बाध होनेपरभी दृग्रूप आत्मा शून्यरूप नहीं होता, क्योंकि मृगतृष्णा (मरीचिका) और जगत् ये दोनों असत्यमय विकल्पसे आविर्भूत और आरोपसे विस्तृतहैं ॥२२॥ स्वयं असिद्ध (मिथ्याभूत) संकल्पने असिद्ध इस संपूर्ण जगत्को सिद्ध कियाहै, इसलिये बाधितपदार्थको पुनः सिद्ध करनेको भावना कहां स्थित रहसकती है ॥ २३ ॥ जगत्में सत्य आस्था (विश्वास) के असत्य होनेपर वासना किसमें रहसकती है भावनाके क्षय होनेसे सिद्धि प्राप्त होती है इसलिये अभ्याससे दृढीकृत दृश्यके अनादरसे यह सम्पूर्ण जगत् असत्यहै ऐसा जानना चाहिये ॥ २४ ॥

तनुभावनयातेनसुखदुःखैर्नलिप्यते ॥ अवस्त्वितिचनिर्णीयस्नेहास्थानप्रवर्त्तते ॥ २५ ॥ आस्थाक्षयेन जायेतेहर्षामर्षौभवाभवौ ॥ तस्मादसदिदंसर्वंसुखदुःखादिविभ्रमैः ॥ २६ ॥ मनोजीवःस्फुरत्युच्चैर्मानसंनगरंजगत् ॥ भविष्यद्वर्त्तमानंचभूतंचपरिवर्त्तयन् ॥ २७ ॥ वासनावलितंलोकेस्फुरच्छक्तिमनःस्थितम् ॥ करोतिस्वाशयेनेमांव्यवस्थांमलिनश्चलः ॥ २८ ॥

अर्थ—दृश्यके अनादरसे देहादिमें आत्माकी भावना न करनेसे पूर्वोक्त सुखदुःखोंमें प्राणी लिप्त नहीं होता और शरीर, संबंधी, तथा मित्रादि मिथ्याहैं ऐसा निश्चय करनेसे उनमें स्नेहकी आस्था नहीं प्रवृत्त होती ॥ २५ ॥ आस्थाके क्षय होनेसे हर्ष, आमर्ष, जन्म मरणादि नहीं होते इस कारण सुखदुःखादि विभ्रमोंसे यह सब असत्है ऐसा निश्चय करना चाहिये ॥ २६ ॥ मनही चित्का प्रतिबिंब जीवरूप होके जगद्रूपी भूत भविष्यत् तथा वर्तमान मानस नगरको परिवर्तन करता हुआ रचता हुआ तथा विनाश करता हुआ स्फुरित होताहै ॥ २७ ॥ क्योंकि इस जीवका यह मनही विषयके संबंधसे वासनाओंसे आच्छादित, और अधिष्ठान चित्के संबंधसे स्फुरण शक्ति सहित स्थितहै इसलिये मलिन तथा चंचल होके कामसे प्रेरित यह जगत्की रचना आदि व्यवस्था करताहै ॥ २८ ॥

आत्मनःसदृशींलीलांजीवोहृद्वनमर्कटः ॥ दीर्घमाकारमादायनिमेषाद्यातिह्रस्वताम् ॥ २९ ॥ ग्रहीतुंच नशक्यंतेसंकल्पजलवीचयः ॥ मनाग्दृष्टाविवर्द्धंतेहसंतिसपरिच्छदाः ॥ ३० ॥ तृणमात्रेणदीप्यंतेसंकल्पावह्निशेषवत् ॥ जगत्यप्रकटाकाराःप्रदीप्ताःक्षणभंगुराः ॥ ३१ ॥ भ्रमदाजडसंस्थानाःसंकल्पास्तडिदग्नयः ॥ यदेवासन्मयंपुत्रतदेवाशुचिकित्सितुम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—हृदयरूपी वनका मर्कट यह जीव अपने (कर्म) के सदृश लीला करताहै दीर्घ आकार ग्रहण करके शीघ्रही ह्रस्वताको प्राप्त होताहै ॥ २९ ॥ संकल्परूप जलकी तरंगें यद्यपि ग्रहण करनेके योग्य नहीं हैं तथापि किंचित्भी विषय दर्शनसे उद्बोधित वृद्धिको प्राप्त होती हैं और विषयके विस्मरण मात्रसे परिवार सहित नष्ट होजाती हैं ॥ ३० ॥ तृणके सदृश थोडे विषयसेभी अग्निके कणके समान संकल्प प्रदीप्त होजातेहैं इस जगत्में अप्रकट आकारवाली प्रदीप्त क्षणभंगुर ॥ ३१ ॥ क्षणस्थायी जडमें स्थित शील संकल्परूप विद्युत्की अग्नि हैं हे पुत्र ! इस संसारमें जो असत्यहै वह शीघ्र दमन करनेके योग्यहै ॥ ३२ ॥

शक्यतेनात्रसंदेहोनासत्सद्भवतिक्वचित् ॥ संस्थितोयदिसंकल्पोदुश्चिकित्स्यःस्वतोभवेत् ॥ ३३ ॥ किंत्वसद्भूतएवैषसुचिकित्स्यस्तदाभवेत् ॥ अकृत्रिमंचेत्संसारमलमंगारकार्ण्यवत् ॥ ३४ ॥ तदेतत्क्षालनेसाधोकःप्रवर्त्ततदुर्मतिः ॥ किंत्वेतत्तंडुलेष्वेवतुषकंचुकवत्स्थितम् ॥ ३५ ॥ यतस्ततःप्रयत्नेनपौरुषेणविनश्यति ॥ अकृत्रिममपिप्राप्तंभृशंपुत्रतथापुनः ॥ ३६ ॥

अर्थ—इसमें कोई संदेह नहीं है, असत् सत् कदाचित् नहीं होसकता; यदि संकल्प सत्यरूपसे स्थित होवे तो वह दमन करनेमें स्वयं दुस्साध्य होता ॥ ३३ ॥ परन्तु यह संकल्प असत्है इसलिये इसका दमन सुसाध्यहै यदि यह संसाररूपी मल सत्य होता तो अंगारकी कालिमाके सदृश होता ॥ ३४ ॥ तो इस दशामें इसके प्रक्षालन करनेमें हे साधो ! कौनसा दुर्बुद्धि प्रवृत्त होता, परन्तु यह तो चावलकी भूसीके समान स्थितहै, इसलिये उससे

पृथक् करनेके योग्यहै ॥ ३५ ॥ हे पुत्र! यह अनिर्वचनीय अनादि कालसे सिद्धहै, इसलिये ज्ञानरूप परमार्थसे सर्वथा नष्ट होताहै ॥ ३६ ॥

सुखोच्छेद्यतयाज्ञस्यसंसारमलताततम् ॥ तंडुलस्ययथाचर्मयथाताम्रस्यकालिमा ॥ ३७ ॥ नश्यति क्रिययापुत्रपुरुषस्यतथामलम् ॥ नश्यत्येवनसंदेहस्तस्माद्युद्यमवान्भव ॥ ३८ ॥ असत्कल्पैर्विकल्पै र्यत्संसारोनजितोमुधा ॥ स्तोकेनाशुलयंयातिकासद्वस्तुचिरंस्थितम् ॥ ॥ ३९ ॥ असत्यामेतिसंसारः स्वव्यवस्थांविचारतः ॥ दीपालोकादिवांधस्यद्वींद्वत्वंस्वीक्षितादिव ॥ ४० ॥ नासौतवनचास्यत्वंभ्रां तिंपुत्रपरित्यज ॥ असत्येसत्यवद्दृष्टेभावनामास्महीदृशः ॥ ४१ ॥ ममगुरुविभवोज्ज्वलाविलासाइ तितवमास्तुवृथैवविभ्रमोंतः ॥ त्वमपिचविततात्र्श्वतेविलासाखिलसतिसर्वमिदंतदात्मतत्त्वम् ॥ ४२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे दाशूरोपाख्याने संकल्पचिकित्सा नाम चतुष्पंचाशत्तमःसर्गः ॥ ५४ ॥

अर्थ—ज्ञानी पुरुषके लिये अति विस्तीर्ण संसारका मल सुखसे उच्छेदन करनेके योग्यहै, क्योंकि जैसे चावलकी भूसी और ताम्रके पात्र आदिकी कालिमा ॥ ३७ ॥ क्रियासे नष्ट होती है, ऐसेही हे पुत्र! यह संसाररूपी मलभी ज्ञानकी भूमिकाके अभ्यासरूपी पुरुषके प्रयत्नसे नष्ट होताहै इसमें कुछ संदेह नहीं है इसलिये तुमभी उद्यमवान् हो ॥ ३८ ॥ असत्यके सदृश विकल्पोंसे इस संसारको जो तुमने इतने कालतक नहीं जीता यह उपायके अपरिज्ञानसे प्रमाद हुआ, यह तो असंकल्परूप प्रयत्नसे शीघ्रही लयको प्राप्त होताहै, क्योंकि असद्वस्तु चिरकाल तक कहीं स्थित रहाहै! ॥ ३९ ॥ इस संसारकी व्यवस्थाके विचारसेही यह असत्यताको ऐसे प्राप्त होताहै जैसे दीपकसे अंधकारमें स्थित पुरुषकी अंधता वा अच्छीतरह देखनेसे दोचन्द्रमाका भ्रम ॥ ४० ॥ हे पुत्र! न यह संसार तुमाराहै और न तुम इसके हो, इसकी भ्रांति तुम त्यागो, क्योंकि असत्यको सत्यके समान देखनेपर इस असत्यशील संसारकी चिंता तुमको युक्त नहीं है ॥ ४१ ॥ हे पुत्र! मैं संसारी हूं और मेरे बडे २ विभवसे दीप्यमान यह भोगके विलास नित्यहैं ऐसा भ्रम तुमारे अन्तःकरणमें नहो क्योंकि तुम और तुमारे ये भोगके विलास भान होरहेहैं इन सब रूपसे वह आत्मतत्वही विलास कर रहाहै ॥ ४२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे दाशूरपाख्याने संकल्पचिकित्सानाम चतुष्पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५४ ॥

पंचपंचाशः सर्गः ॥ ५५ ॥

दाशूरमुनिसे पूजित वसिष्ठऋषिकी परस्पर कथा और कदंबकी शोभाका दर्शन तथा प्रातःकालमें गमन इत्यादि विषयोंका वर्णन इस ५५ के सर्गमें कियागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ इत्याकर्ण्यतदातत्ररात्रावालपनंद्वयोः ॥ अहंरघुकुलाकाशशशांकरघुनंदन ॥ १ ॥ पतितःखात्कदंबाग्रेपत्रपुष्पफलाकुले ॥ तूर्णीनिहृष्टमुक्तात्माशृंगाग्रइवतोयदः ॥ २ ॥ अपश्यं तत्रदाशूरंशूरमिंद्रियनिग्रहे ॥ परेणतपसायुक्तंतेजसेवहुताशनम् ॥ ३ ॥ तेजोभिर्देहनिष्क्रांतैःकांचनी कृतभूतलम् ॥ तापयंतंप्रदेशंतंभुवनंभास्करोयथा ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रघुकुलके आकाशरूपी चन्द्र रामजी! इसप्रकार रात्रिमें उन दोनोंका वार्तालाप सुनकर ॥ १ ॥ पत्र पुष्प और फलसे पूर्ण उस कदंबके अग्रभागमें आकाशसे आकर मैं ऐसे गिरा जैसे शब्दरहित वृष्टिरूपसे अपनेको अधोदेशमें उतारनेवाला मेघ शिखरके अग्रभागपर ॥ २ ॥ वहांपर इन्द्रियोंके जीतनेमें शूरवीर बडीभारी तपस्यासे युक्त तेजसे अग्निके समान ॥ ३ ॥ शरीरसे निकले हुये तेजोंसे भूतलको सुवर्णके समान करनेवाले और उस प्रदेशको सूर्यके समान तपाते हुये दाशूरमुनिको मैंने देखा ॥ ४ ॥

मामथालोक्यसंप्राप्तंदाशूरोर्घसपर्यया ॥ वितीर्णविष्टरंपत्रपूजयापर्यपूजयत् ॥ ५ ॥ ततःपूर्वकथास्ते नसहदाशूरभास्वता ॥ कृतास्तनयसंबोधाःसंसारोत्तरणक्षमाः ॥ ६ ॥ दृष्टवांस्तमहंवृक्षंकोरकोत्तर कोटरम् ॥ दाशूरस्येच्छयासर्वैरयतद्विर्मृगव्रजैः ॥ ७ ॥ सेव्यमानंवनभिवलतामंडलमंडितम् ॥ स्मिते नविस्फुटमिवश्वसनस्फुरितच्छदम् ॥ ८ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर प्राप्त हुये मुझे दाशूर ब्राह्मणने देखकर आसन अर्घपाद्यादि देकर मेरी बडीभारी पूजा की ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर तेजस्वी उस दाशूर ब्राह्मणके साथ उसके पुत्रको संबोधन करके संसारके पार उतारनेमें समर्थ पूर्वकालकी कथाओंको मैंनेभी की ॥ ६ ॥ और जिसके आभ्यंतर प्रदेश कलियोंसे पूरित होरहेथे ऐसे उस कदम्बके वृक्षकोभी मैंने देखा और दाशूरमुनिकी इच्छासे व्याकुलता शून्य सम्पूर्ण मृगोंके समूहोंसे ॥ ७ ॥ ऐसे सेवित था जैसे लतामण्डपोंसे बनवायुसे स्फुरित पल्लव होनेके कारण स्मित (किंचित् हांस) से विकासित था॥८॥

लताकोटिगतैर्भ्रांतैश्चामरैरिंदुसुंदरैः ॥ शुभ्राभ्रखंडनिकरैःशरन्नभइवावृतम् ॥ ९ ॥ प्रालेयकणपद्धत्या मुक्तावल्याभ्यलंकृतम् ॥ सर्वावयवमेवाच्छपुष्पपूरैःप्रपूरितम् ॥ १० ॥ स्वरेणुचंदनालेपैःसमालब्धमखंडितम् ॥ स्वच्छदाभोगविपुलरक्तांबरपरिच्छदम् ॥११॥ विवाहायेववेषेण पुष्पभारातिभारिणा ॥ लतांगनानुषक्तेननागरेणकृतोपमम् ॥ १२ ॥

अर्थ—शाखाके अग्रभागमें प्राप्त भ्रमण करते हुये चन्द्रमाके समान अति सुन्दर चमरके पुच्छोंसे ऐसे आच्छादित था जैसे शरद्कालमें श्वेत मेघके समूहोंसे आकाश ॥ ९ ॥ हिमके करणोंकी पंक्तिसे ऐसे शोभित था जैसे मुक्ताओंकी पंक्तियोंसे, और सम्पूर्ण देशमें स्वच्छ पुष्पोंके समूहोंसे पूर्ण वह कदम्बवृक्ष था ॥ १० ॥ अपने रेणुरूपी चन्दनके आलेपसे सर्वत्र लिप्त तथा अपने पल्लवके विस्तारोंसे विशाल रक्तवर्णके वस्त्रसे शोभित था ॥ ११ ॥ इसी कारणसे पुष्पके भारसे आक्रान्त नगरनिवासियोंसे कल्पित मानो विवाहार्थ वेषधारी लतारूपी अंगनासे सेवित होरहा था ॥ १२ ॥

मुनिबद्धोटजाकारलतामंडपमंडितम् ॥ मंजरीभिःपताकाभिर्युक्तंपुरमहोत्सवे ॥ १३ ॥ मृगकंडूयनध्वस्तपुष्पधूलिविधूसरम् ॥ प्रोत्सारितोपांतवनंवृषमल्लमिवोत्थितम् ॥ १४ ॥ बर्हिभिःकुसुमोद्धांतपरागपरिपाटलैः ॥ निक्षेपक्षिप्तसंध्याभ्रबालवालमिवाचलैः ॥ १५ ॥ प्रवालारुणहस्तेनकुसुमस्मितशोभिना ॥ मधुनाघूर्णमानेनप्रांतेनपुलकत्विषा ॥ १६ ॥

अर्थ—मुनियोंसे निर्मित उटज (झोपडे) के आकर लतामंडपसे शोभित और महोत्सवमें नगरके समान बडी २ लतारूपी प्रताकाओंसेयुक्त था ॥ १३ ॥ मृगोंके घर्षणसे ध्वस्त पुष्पोंकी धूलिसे धूसर और समीपके बनको हटानेवाले श्रेष्ठ वृष (बयल) के समान स्थित था ॥ १४ ॥ और पुष्पोंसे निकले हुये परागों (धूलियों) से श्वेत रक्तवर्ण जहां मयूरोंने अपने केश इसप्रकार स्थापित किये थे जैसे पर्वत अपने न्यास (थाती) भूत सन्ध्याकालके मेघरूपी बालोंको, ऐसे वृक्षको मैंने देखा ॥ १५ ॥ नूतन पल्लवरूपी रक्तयुक्त, पुष्परूपी किंचित् हास्यसे शोभायमान मदसे घूरते हुयेकेतुल्य और केसरोंकी पूर्णतासे पुलकित शोभायुक्त ॥ १६ ॥

नीरंध्रपुष्पपूर्णेनघूर्णितेनवनानिलैः ॥ निद्रालुकुड्मलदृशास्तबकस्तनधारिणा ॥ १७ ॥ पुष्पजालरजःपुंजकुंकुमारुणवाससा ॥ लतावितानिलयवातायननिषंगिणा ॥ १८ ॥ नीलपुष्पलतादोलालीलालास्यविलासिना ॥ आपादमस्तकप्रांतंसर्वतोनिर्मितालयम् ॥ १९ ॥ वृंदेनवनदेवीनांकोकिलालापशालिना ॥ संदिग्धमंजरीजालमलिनेत्रेणभासिना ॥ २० ॥

अर्थ—निरन्तर पुष्पोंसे पूर्ण, बनके वायुसे घूर्णित, निद्रावान् कलीरूप दृष्टिसहित, लतायुक्त गुच्छारूप स्तनोंको धारण किये हुये, तथा पल्लवरूपी हाथोंसे स्पर्श करते हुये वृक्षको मैंने देखा ॥ १७ ॥ पुष्पोंके समूहोंसे उत्पन्न पराग (धूलि) पुंजरूपी कुंकुमयुक्त रक्तवस्त्रधारी, लताओंसे रचित वितान (मण्डप) रूप गृहोंके झरोखोंमें अनुरक्त उस वृक्षको देखा ॥ १८ ॥ नील चिक्कण तथा हरितपत्रवाली पुष्पयुक्त लताओंके झूलोंमें कौतुकसे आंदोलन (झुलाने) विषयमें विलासी पुरुषरूप, तथा कोकिलोंके आलापसे शोभित देवियोंके वृंदसे सेवित, तथा अपने देहसे पादसे लेके मस्तकपर्य्यन्त सम्पूर्ण अंगको सब पक्षी आदिका आश्रयभूत उस वृक्षको मैंने देखा ॥ १९ ॥ और भ्रमरोंके सदृश कृष्णवर्ण नेत्रवाली बनदेवियोंके समूहसे संदिग्ध लताके सदृश, अर्थात् बनदेवियोंके नेत्र तथा भ्रमर संयुक्त लताजालके भ्रमदायक ॥ २० ॥

अवश्यायोपशमितरतिखेदैर्मदालसैः ॥ पुष्पधूलिसमालब्धैराश्लिष्टैर्निबिडंमिथः ॥ २१ ॥ पुष्पांतरांतःपुरगैःकिमपिप्रणयोचितम् ॥ ध्वनद्भिरभितःस्वच्छमत्तालियुगलैर्वृतम् ॥ २२ ॥ काननोपांतनगरीघुघुमाकर्णनेच्छया ॥ क्षणमुत्कर्णमाशांतचारुवर्णटांकृतैः ॥ २३ ॥ क्षणंदलाग्रविश्रांतमुग्धमुग्धशिरस्तया ॥ पश्यद्भिरिंदुंशुकवज्जालामर्णवमेखलाम् ॥ २४ ॥

अर्थ—तथा हिमके कणोंसे रतिके खेदको शान्तिकारक, तथा मदसे आलसी, पुष्पोंकी धूलियोंसे लिप्त, तथा

परस्पर सघनतासे आलिंगित उस वृक्षको देखा ॥ २१ ॥ पुष्पोंके गर्भरूपी अन्तःपुरगामी, प्रेमके अनुकूल कुछ शंका करते हुये स्वच्छ तथा मदोन्मत्त भ्रमरोंके जोडोंसे आवृत्त कदंबवृक्षको देखा ॥ २२ ॥ और दिशाओंके प्रदेशोंमें निवेदक पुरुषके स्थानीभूत नीलवर्ण मक्षिकाओंके मधुर शब्दोंसे वनके समीप देशरूपी अपनी नगरीके मृगपक्षी आदिके शब्दके सुननेकी इच्छासे क्षणभर मानो कर्णोंके ऊंचे करके स्थित उस वृक्षको देखा ॥ २३ ॥ और पत्रोंके अग्रभागमें विश्रान्त अति दर्शनीय शिरोंसे चन्द्रमाके किरणरूपी वस्त्रोंसे आच्छादित तथा सातसमुद्ररूप मेखलायुक्त भूमिको रात्रिके बीतनेकी प्रतीक्षासे देखते हुये उस कदंबको मैंने देखा ॥ २४ ॥

वनस्थलीनांतनयैर्विनयैर्मूर्तिमिवास्थितैः ॥ शुभैःपत्रपुटेष्वंतर्मृगैःसारतलांतरम् ॥ २५ ॥ नीडष्वसत्सु विश्वस्तसुप्तमात्रकपक्षिणम् ॥ पाकच्युतफलोपांतभूतकंचुकमंडली ॥ २६ ॥ संदिग्धमूकभ्रमरंगुच्छै पूजाक्षसूत्रकैः ॥ श्यामलीकृतपर्यंतनीडैःपल्लवमंडितैः ॥ २७ ॥ सुगंधिताशेषवनंपुष्पमेघीकृतांबरम् ॥ धूलीकदंबशबलफलौघवलितंतले ॥ २८ ॥

अर्थ—वनदेवियोंके पुत्रके सदृश, तथा मुनिके प्रभावसे मूर्तिमान् विनयके सदृश स्थित वृक्षको देखा, और पत्तोंके अन्तमें लीन उत्तम मृगोंसे जिसके भूतलका अधोभाग वा शाखादि अवयव शोभितथा ॥ २५ ॥ और जहां मुनिके प्रभावसे अपने खुंथोंमें श्वास लेते हुये पक्षीगण शयन कररहेथे और पककर गिरेहुये भ्रमर संयुक्त फलोंके समीपमें स्थित मृगआदि प्राणियोंसे छिलके सदृश चारोंओर व्याप्त उस वृक्षको देखा ॥ २६ ॥ जहांपर भक्षण तथा मर्दनादिकी शंकासे सन्देहयुक्त और भयसे भ्रमर मूकथे तथा पूजाकालके जपमें अक्षसूत्रके समान लम्बमान लताओंके गुच्छोंसे संपूर्ण वनको सुगंधित करनेहारे तथा पत्रोंसे शोभित नीडों (खुंथों) से श्यामवर्ण भूमियुक्त उस वृक्षको मैंने देखा ॥ २७ ॥ और पुष्पोंके समूहसे आकाशको मेघमय करनेवाले और मूलदेशमें धूलिके समूहोंसे नानावर्णके फलोंके समूहोंसे व्याप्त उस कदम्ब वृक्षको मैंने देखा ॥ २८ ॥

बहुनात्रकिमुक्तेननकिंचिदपिविद्यते ॥ पत्रंयत्रतरौयत्रनोप्यतेवानयुज्यते ॥ २९ ॥ पत्रेपत्रेमृगाःसुप्ता विश्रांताश्चपदेपदे ॥ कच्छेकच्छेखगालीनास्तस्यभूरुहभूपतेः ॥ ३० ॥ एवंगुणविशिष्टंतंसमालोकय तोमम ॥ महोत्सवेलसदृशीसाबभूवतमस्विनी ॥ ३१ ॥ ततःकथाभीरम्याभिःसतस्यतनयोमया ॥ विज्ञानालोकरम्याभिर्नीतोबोधंपरंपुनः ॥ ३२ ॥

अर्थ—अधिक कहनेसे क्या प्रयोजन उस वृक्षमें ऐसा पत्रभी नहीं था जहां प्राणीलोग निवास न करें वा उपभोग (कार्य) में न लावें ॥ २९ ॥ उस वृक्षके अधोभागमें गिरेहुये पत्ते २ में मृग शयन करतेथे, पद २ में विश्राम करतेथे, और उस वृक्षराजके पत्रोंके प्रत्येक अधोदेशमें सर्वत्र लीन थे ॥ ३० ॥ इसप्रकारके गुणसहित उस वृक्षको दिव्यदृष्टिसे देखते हुये मेरी वह रात्रि महोत्सवके सदृश हुई ॥ ३१ ॥ इसके पश्चात् विज्ञानके प्रकाशसे अतिरमणीय मनोहर कथाओंसे उस दाशूरके पुत्रको पुनः मैंने परमबोधको प्राप्त किया ॥ ३२ ॥

आवयोस्तत्रचित्राभिःकथाभिरितरेतरम् ॥ शर्वरीसाव्यतीतायमुहूर्तइवकांतयोः ॥ ३३ ॥ प्रातःप्रत नुतांयातेपुष्पर्द्धिघनजालके ॥ स्वर्गांगनांगभोगाभेतारकानिकरेशनैः ॥ ३४ ॥ आकदंबनभोभागमुप यातंसुतान्वितम् ॥ अहंविसृज्यदाशूरंततोमरनदींगतः ॥ ३५ ॥ तत्राभिमतमासाद्यस्थानमेत्यनभ स्तलम् ॥ प्रविश्यसंमुनीनांचमध्यंस्वस्थइवस्थितः ॥ ३६ ॥

अर्थ—हम दोनोंके परस्पर विचित्र कथाओंसे वह रात्रि समागममेंयुक्त स्त्री पुरुषके मुहूर्तके समान बीतगई ॥ ३३ ॥ इसके अनन्तर प्रातःकालमें अप्सराओंके अङ्गोंके भोगके सदृश शोभायुक्त, और पुष्पोंकी वृद्धिके समूहके समान तारागणके धीरे २ सूक्ष्म होनेपर ॥ ३४ ॥ कदंबके आकाशभागपर्यन्त पुत्रसहित आये हुये (पहुंचानेको आये हुये) दाशूरको गृहके प्रतिलौटाके मैं आकाशकी देवगंगाजीको ओर चलागया ॥ ३५ ॥ वहांपर इष्टस्थानको पाकर आकाशतलमें प्राप्त होके और आकाशमें प्रवेश करके मुनियोंके मध्यमें स्वस्थ होके स्थित हुआ ॥ ३६ ॥

दाशूराख्यायिकैषातेकथितारघुनंदन ॥ जगतःप्रतिबिंबाभासत्याकाराप्यसन्मयी ॥ ३७ ॥ दाशूरा ख्यायिकेयमित्येतत्कथितंमया ॥ तुभ्यंराघवबोधायजगद्रूपनिरूपणे ॥ ३८ ॥ तस्मादवास्तवींत्य क्त्वावास्तवीमपिरंजनाम् ॥ दाशूरसिद्धांतदृशासदोदारोभवात्मवान् ॥ ३९ ॥ तस्माद्विकल्पंमलमा त्मनस्त्वंनिर्द्धूयपश्यामलमात्मतत्त्वम् ॥ आसादयिष्यस्यचिरात्पदंतद्धविष्यसीज्योभुवनेषुयेन ॥४०॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे दाशूरोपाख्याने वसिष्ठदाशूरमेलनं नाम पंचपंचाशः सर्गः ॥ ५५ ॥

दाशूरोपाख्यानंसमाप्तम् ॥

अर्थ—हे रघुनन्दन ! यह दाशूरकी आख्यायिका जो जगत्के प्रतिबिंबके समान असत्यमयी होनेपरभी सत्याकार भान होती है मैंने तुमसे वर्णन किया ॥ ३७ ॥ हे राघव ! यह जगत्के स्वरूपके निरूपणके प्रसंगमें दाशूरकी आख्यायिकाके सदृश तुमारे बोधके लिये मैंने कथन किया ॥ ३८ ॥ इसलिये वास्तविक (यथार्थ) वा अवास्तविक रंजना अहं मम इत्यादि अध्यासको त्यागकर दाशूरसे कथित सिद्धांत दृष्टिसे सदा उदार तथा आत्मनिष्ठ होओ ॥ ३९ ॥ हे रामजी ! विकल्पमय मनके हेतु अज्ञानरूपी मलको धोकर निर्मल आत्मतत्त्व देखो तब शीघ्रही मोक्षपदवीको प्राप्त होओगे जिससे कि चतुर्दशभुवनोंमें तुम पूज्य होजाओगे ॥ ४० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे दाशूरोपाख्याने वसिष्ठदाशूरमेलनं नाम पंचपंचाशः सर्गः ॥ ५५ ॥
दाशूरोपाख्यानं संपूर्णम् ॥

षट्पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५६ ॥

जड दृश्यकी सत्ता तथा असत्ता, और चित्की कर्तृता तथा अकर्तृताका विचार करके दृश्यमें जो अहं मम इत्यादि अभेदाध्यासहै उसका सर्वथा निवारण इस ५६ के सर्गमें करते हैं ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ नास्तीदमितिनिर्णीयसर्वतस्त्यजरंजनाम् ॥ यन्नास्तितत्प्रतिकिलकेवास्थे हविचारिणाम् ॥ १ ॥ दृश्यमानमथेदंचेदस्तिसत्तामुपागतम् ॥ तिष्ठस्वात्मनिबध्नासित्वंकिमत्रकिलात्मताम् ॥ २ ॥ अथचेदस्तिनास्तीदमितिनिश्चयवानसि ॥ तथापिभावनासंगःकथंयुक्तश्चलाचले ॥ ३ ॥ नेदमस्तिजगद्रामतवनास्तिमहामते ॥ केवलंस्वच्छमेवेत्थमाततमितमीदृशम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—यह जड जगत् नहीं है ऐसा निर्णय करके, अहं मम इत्यादि अभेद अध्यासरूप विश्वासको त्यागो, क्योंकि जो नहीं है उसमें विवेकियोंकी आस्था क्या ॥ १ ॥ यदि यह देहादि दृश्य जगत् आत्मासे पृथक् निरपेक्ष पृथक् सत्ताको प्राप्त हुआहै तो तुमभी उससे निरपेक्ष होकरके असंग और उदासीन चिद्रूप अपने आत्मामें स्थितरहो, क्योंकि आत्मासे निरपेक्ष देहादिमें अध्याससे तुम आत्मताको क्यों बांधतेहो ॥ २ ॥ और यदि यह जगत् सदसत्है ऐसा निश्चय तुमकोहै तो भी सदसत्स्वरूपसे अनियत स्वभाववाले देहादि जगत्में तुमारी भावनायुक्त नहीं है ॥ ३ ॥ और हे महामते रामजी ! यदि यह जगत् नहीं है ऐसा तुमारा सिद्धांतहै तब तो तुमारा बंध इसमें हैही नहीं, केवल निर्मल आत्मतत्त्व व्यापक सर्वथा विस्तीर्ण और सर्व प्रमाण सिद्धहै ॥ ४ ॥

नेदंकर्तृकृतंकिंचिन्नवाकर्तृकृतक्रमम् ॥ स्वयमाभासतेचेदंकर्त्रकर्तृपदंगतम् ॥ ५ ॥ अकर्तृकंजगज्जालंभवत्वथसकर्तृकम् ॥ मात्वमेतेनशबलंभावयन्नास्वचेतसि ॥ ६ ॥ सर्वेंद्रियविहीनात्माकर्तेवसजडोपमः ॥ अकर्तृचतदामन्येकाकतालीयवज्जगत् ॥ ७ ॥ काकतालीययोगेनजातंयत्किंचिदेवतत् ॥ तस्मिन्मानुसंधानंबालोबध्नातिनेतरः ॥ ८ ॥

अर्थ—यह जगत् कर्ताका किया हुआ नहीं है और न इसमें कर्त्ताका किया हुआ कोई क्रमहै यह कर्त्ता अकर्त्ता पदको प्राप्त स्वयं भासमान होरहाहै ॥ ५ ॥ यह जगत्का जाल कर्तासहितहो, वा अकर्तासहित हो, परन्तु तुम परस्परके अभेदाध्याससे देहादिमें आत्मभावको देखते हुये बुद्धिरूप उपाधिसे परिछिन्न देहादिमें न स्थितहो ॥ ६ ॥ यदि संपूर्ण इन्द्रियों करके शून्य जडके समान अपनी सत्तामात्रसे जगत्के कर्ताके समान भान होताहै तोभी यह जगत् काकतालीय न्यायसे कर्तारहितही है ऐसा मैं मानताहूं ॥ ७ ॥ क्योंकि काकतालीय न्यायसे जो उत्पन्न हुआहै वह मानो नहीं उत्पन्न हुआहै, क्योंकि अनिर्वचनीय है और अनिर्वचनीय पदार्थमें पुनः २ अनुसंधान बालकही करताहै न कि विवेकी ॥ ८ ॥

नकदाचिदिदंशांतंजगद्रामनचक्षयि ॥ अजस्रंदृश्यमानत्वाद्भावित्वाच्चपुनःपुनः ॥ ९ ॥ नकदाचिदिदंचास्तिजगद्रामनचक्षयि ॥ अजस्रंक्षीयमाणत्वान्नास्तित्वाच्चानुमानतः ॥ १० ॥ सर्वेंद्रियपदातीतोयदाकर्तेहविज्वरः ॥ कुर्वाणःसर्वदाखेदंनकदाचनगच्छति ॥ ११ ॥ तेनेयंनियतिःप्रौढाभावाभावदृशामयी ॥ ईदृश्येवस्थिरादीर्घामिथ्योत्थापिचदृश्यते ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! यह जगत् न तो सर्वथा अत्यंताभावरूपहै और न प्रध्वंसाभाव प्रयुक्त शून्य स्वभाववान्है, क्योंकि यह प्रवाहरूपसे दृश्यमान और पुनः २ उत्पत्ति सहितहै ॥९॥ और हे रामजी ! न यह जगत् नित्य सत्ता

स्वभाववान्है और न क्षणिक सत्ता स्वभाववान्है, क्योंकि यह नित्य परिणामके भेदसे क्षीयमाणहै और अनुमान्से असत् स्वभाववालाभी है ॥ १० ॥ यदि संपूर्ण इन्द्रियोंसे अतीत त्रिविध ताप रहित इसका कर्ताहै तो भी सर्वदा जगत्के कार्यको करतेहुयेभी खेदको नहीं प्राप्तहोता, क्योंकि आत्माकी संनिधि मात्रसे जगद्रूप कार्य्य होताहै ॥ ११ ॥ इस कारणसे यह प्रौढ जगत्की मर्यादा सदसत् अर्थात् अनिर्वचनीय दशामयी है सर्वदा ऐसेही स्थित और दीर्घाकारवाली और मिथ्या आविर्भूत देखपडती है ॥ १२ ॥

अंतस्यकालस्यकश्चिदंशःशरच्छतम् ॥ तावन्मात्रमहाश्चर्यःकिमर्थंसोनुधावति ॥ १३ ॥ स्थिराश्चेज्जगतांभावास्तत्त्वादास्थानशोभते ॥ कथमन्योन्यसंश्लेषोजडचेतनयोःकिल ॥ १४ ॥ अस्थिताश्चेजगद्भावास्तदाप्यास्थानशोभते ॥ पयःफेनास्थिरस्यांतेदुःखमेपाददातिते ॥ १५ ॥ आस्थाबंधोमहाबाहोजगद्भावस्त्वमात्मनः ॥ नस्थिरास्थिरयोःफेनशैलयोरिवराजते ॥ १६ ॥

अर्थ—मनुष्य देहका जीवन पर्यंत सौ वर्षकाल अपरंपार कालका किंचित् अंशमात्रहै उतना कालमात्रभी मनुष्य देहमें आत्मताके अभिमानमें महान् आश्चर्य्यहै कि संपूर्ण इन्द्रियोंके पदसे अतीत आत्मा क्यों इस ओर दौडताहै ॥ १३ ॥ यदि कर्ता रहित इस जगत्के संपूर्ण देहादि पदार्थ सत्यहैं तो स्थिर होनेसेभी इसमें आस्था शोभा नहीं देती, क्योंकि असंग चेतन और जड पदार्थका परस्पर संयोग कैसे हो सकताहै ॥ १४ ॥ और यदि इस जगत्के पदार्थ चंचलहैं तोभी इसमें आस्था शोभा नहीं देती, क्योंकि जलके फेनके समान चंचल इस देहादि जगत्के नाश होनेपर यह आस्था तुमको दुःखही देवेगी ॥ १५ ॥ हे महावाहो रामजी ! देहादि जगत् जोकि जन्म नाशादि संयुक्तहै उसमें आत्माकी भावना करना अर्थात् आत्माको जगत् स्वभाव मानना यह आस्था बंध स्थिर और चंचल स्वभाववाले आत्मा और जगत्का ऐसे नहीं शोभित होता जैसे फेन और पर्वतका ॥ १६ ॥

सर्वकर्त्ताप्यकर्त्तैवकरोत्यात्मानकिंचन ॥ तिष्ठत्येवमुदासीनआलोकंप्रतिदीपवत् ॥ १७ ॥ कुर्वन्नकिंचित्कुरुतेदिवाकार्यमिवांशुमान् ॥ गच्छन्नगच्छतिस्वस्थोस्वास्पदस्थोरविर्यथा ॥ १८ ॥ यतःकुतश्चिदेवेदंसंपन्नमिवलक्ष्यते ॥ अरुणातीरवद्वारिपूरावर्त्तवदाततम् ॥ १९ ॥ इतिचेद्भवतारामनैपुण्येनावधारितम् ॥ प्रमाणपरिशुद्धेनचेतसाचविचारितम् ॥ २० ॥

अर्थ—सबका कर्ता होते हुयेभी अकर्ताके समानहै, क्योंकि वह कुछ नहीं करताहै क्योंकि आत्मा उदासीन ऐसे स्थित रहताहै जैसे प्रकाशके प्रति दीप ॥१७॥ जैसे सूर्य्य सब प्राणियोंके दिनके कार्य करते हुयेभी कुछ नहीं करता ऐसेही आत्माभीहै, और अपनी प्रतिष्ठामें स्थित स्वस्थ सूर्यके समान चलते हुयेभी आत्मा नहीं चलता ॥ १८॥ यह जगत् अनिर्वचनीय रूपसे अपने स्वभावहीसे ऐसे लक्षित होताहै जैसे अरुणा नदीका तीर स्वभावसेही शिला आदिसे विषमहै, और जलका प्रवाहभी अधोगमनशीलहै, और इन दोनोंके सन्निधानसे उत्पन्न आवर्त (भंवरेह) आकस्मिक सिद्धहै अर्थात् जड और चेतनके संयोग मात्रसे यह जगत् अकस्मादुत्पन्नहै इसमें कर्ताका भार किसीके ऊपर नहीं है ॥ १९ ॥ हे रामजी ! यदि इस बातको अर्थात् यह जगत् आत्माके सन्निधानमात्रसे उत्पन्न होताहै इसको तुमने कुशलतासे निश्चय करलियाहै और प्रमाणसे परे शुद्ध चित्तसे विचारभी लियाहै ॥ २० ॥

तथापिभावनांसाधोपदार्थंप्रतिनार्हसि ॥ आलातचक्रेस्वप्नेचभ्रमेवाकेवभावना ॥ २१ ॥ अकस्मादागतोजंतुःसौहार्दस्यनभाजनम् ॥ भ्रमोद्भूतंजगज्जालमास्थायास्तन्नभाजनम् ॥ २२ ॥ औष्ण्येंदौशीतलेभानौमृगतृष्णाजलेतथा ॥ यथानभावस्यास्थामेवंभावयमास्थितौ ॥ २३ ॥ संकल्पपुरुषस्वप्नजनद्वींदुत्वविभ्रमम् ॥ यथापश्यसिपश्यत्वंभावजातमिदंतथा ॥ २४ ॥

अर्थ—तोभी हे साधो रामजी ! देहादि पदार्थोंके प्रति आत्मभावना तुमको करनी योग्य नहीं है क्योंकि आलातके चक्र (लकडीमें आग लगाकर जिसको मनुष्य अपने चारो ओरसे घुमाता है) स्वप्न और भ्रम इनमें भावना कैसी ॥ २१ ॥ जैसे जो प्राणी अकस्मात् एक दिनके लिये आगयाहै वह मित्रताका पात्र नहीं होसकता; इसी प्रकार भ्रमसे उत्पन्न यह जगत् समूहभी आस्थाका पात्र नहीं होसकता ॥ २२ ॥ जैसे चन्द्रमामें उष्णताकी सूर्यमें शीतलताकी और मृगतृष्णामें जलकी भावना नहीं करते हो ऐसेही इस जगत्की स्थितिमेंभी भावना न करो ॥ २३ ॥ संकल्प और स्वप्नका पुरुष और दो चन्द्रमाके भ्रमको जैसे तुम देखते हो ऐसेही इस जगत्के समूह पदार्थको देखो ॥ २४ ॥

योसिसोसिजगत्यस्मिँल्लीलयाविहरानघ ॥ २५ ॥ अकअंतरास्थांपरित्यज्यभावश्रीभावनामयीम् ॥

र्तृत्वपदंपीत्वापीत्वेच्छामपिकुर्वतः ॥ सर्वभावांतरस्थस्यसर्वातीतस्यचात्मनः ॥ २६ ॥ इयंसन्निधि मात्रेणनियतिःपरिजृंभते ॥ दीपसन्निधिमात्रेणनिरिच्छैवप्रकाशते ॥ २७ ॥ अभ्रसन्निधिमात्रेणकुटजा नियथास्वयम् ॥ आत्मसन्निधिमात्रेणत्रिजगंतितथास्वयम् ॥ २८ ॥

अर्थ—स्त्री आदिकी सुन्दरताकी चिंतासे पूर्ण जो संसारकी शोभाहै उसमें आस्थाको छोडकर जो कुछ तुमारारूपहो उस रूपसे इस जगत्में हे पाप रहित रामजी ! लीलासे विहार करो ॥ २५ ॥ सब पदार्थोंके आभ्यंतरमें स्थित तथा सबसे अतीत आत्माकी कर्तृता अकर्तृता तथा उसकी इच्छाकोभी निगरणकरके शेष जो कुछ तुमारा रूपहै उससे लीलापूर्वक जगत्में बिहार करो, और उदासीन रूपसे इच्छा रहित व्यवहार करते हुये तुमारे सन्निधि मात्रसे नियति जगत्के व्यवहार रूपसे प्रख्यात होतीहै ॥ २६ ॥ यह जगत्की नियति आत्माकी सन्निधिमात्रसे अपने स्वरूपको ऐसे विकसित करती है जैसे दीपककी सन्निधिमात्रसे प्रभा इच्छाके विनाही प्रकाश करती है ॥ २७ ॥ मेघकी सन्निधि (समीपता) मात्रसे जैसे कुटजके पुष्प स्वयं विकसित होतेहैं ऐसेही आत्माकी सन्निधि-मात्रसे तीनों लोक स्वयं उत्पन्न होतेहैं ॥ २८ ॥

सर्वेच्छारहितेभानौयथाव्योमनितिष्ठति ॥ जायतेव्यवहारश्चसतिदेवेतथाक्रिया ॥ २९ ॥ निरिच्छेसं स्थितेरत्नेयथालोकःप्रवर्तते ॥ सत्तामात्रेणदेवेतुतथैवायंजगद्गणः ॥ ३० ॥ अतःस्वात्मनिकर्तृत्वमक र्तृत्वंचसंस्थितम् ॥ निरिच्छत्वादकर्त्तासौकर्त्तासन्निधिमात्रतः ॥ ३१ ॥ सर्वेंद्रियाद्यतीतत्वात्कर्त्ता भोक्तानसन्मयः ॥ इंद्रियांतर्गतत्वात्तुकर्त्ताभोक्तासएवहि ॥ ३२ ॥

अर्थ—जैसे संपूर्ण इच्छासे शून्य सूर्यके आकाशमें स्थित रहने मात्रसे जगत्का व्यवहार होताहै ऐसेही परमात्माकी सत्तामात्रसे जगत्की क्रिया होती है ॥ २९ ॥ इच्छारहित रत्न (मणिआदि) के स्थित रहनेसे जैसे जगत्में प्रकाश प्रवृत्त होताहै ऐसेही परमात्माकी सत्तामात्रसे जगत्के समूह उत्पन्न होतेहैं इस हेतुसे आत्मामें कर्तृत्व अकर्तृत्व दोनों स्थितहैं, इच्छारहित होनेसे यह अकर्ताहै, और सन्निधिमात्रसे कर्ताभी है ॥ ३१ ॥ संपूर्ण इन्द्रियोंका विषय न होनेसे सत्य परमात्मा कर्ता भोक्ता नहीं है और सत्तामात्रसे इन्द्रियोंके अंतर्गत होनेसे कर्ता भोक्ताभी वही है ॥३२॥

द्वेएवात्मनिविद्येतेकर्तृताकर्तृतानघ ॥ ययैवपश्यसिश्रेयस्तामाश्रित्यस्थिरोभव ॥ ३३ ॥ सर्वस्थोहम कर्त्तेतिदृढभावनयानया ॥ प्रवाहपतितंकार्यंकुर्वन्नपिनलिप्यते ॥ ३४ ॥ यातिनीरसतांजंतुरप्रवृत्तेश्चचे तसः ॥ यस्याहंकिंचिदेवेहनकरोमीतिनिश्चयः ॥ ३५ ॥ भोगौघकामवांस्तत्रकःकरोतुजहातुवा ॥ तस्मान्नित्यमकर्त्ताहमितिभावनयेद्धया ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे पापरहित रामजी ! इसप्रकारसे आत्मामें कर्तृता अकर्तृता दोनों हैं इनमेंसे जैसे तुम अपना कल्याण देखते हो उसीका आश्रय लेके स्थिर रहो ॥ ३३ ॥ चेतनमात्रसे सबमें स्थित मैं अकर्ता हुं इस दृढभावनासे प्रवाह पतित (यथा प्राप्त) व्यवहार करते हुयेभी प्राणि कर्मोंसे लिप्त नहीं होता ॥ ३४ ॥ जिसको यह निश्चय है कि शुद्धरूपसे मैं कुछ नहीं करता, वह चित्तकी अप्रवृत्तिसे वैराग्यको प्राप्त होताहै ॥ ३५ ॥ भोगोंके समूहकी इच्छावान् कौन प्राणी तो करे और कौन त्यागे इसकारणसे मैं नित्य अकरताहुं इस दृढभावनासे ॥ ३६ ॥

परमामृतनाम्नीसासमतैवावशिष्यते ॥ अथसर्वंकरोमीतिमहाकर्त्तृतयातया ॥ ३७ ॥ यदीच्छसिस्थि तिंरामतत्तामप्युत्तमांविदुः ॥ अहोयन्नकरोमीसंसमग्रंजागतंभ्रमम् ॥ ३८ ॥ रागद्वेषक्रमस्तत्रकुतोन्य स्यात्यसंभवात् ॥ यदन्येनशरीरंतुदग्धमन्येनलालितम् ॥ ३९ ॥ सोस्मदारंभएवातःकःखेदोल्लासयोः क्रमः ॥ मत्सुखासुखविस्तारेजगज्जालक्षयोदये ॥ ४० ॥

अर्थ—परमोत्तम अमृतनामवाली समताही शेष रहजाती है, अथवा मैं सब कुछ करताहुं यह कर्तृता पक्षहै, तो उस महा कर्तृतासे ॥ ३७ ॥ हे रामजी ! यदि अपनी स्थिति चाहते हो तो वहभी उत्तम कही गईहै, क्योंकि जो यह शुद्धरूप मैं सम्पूर्ण जगत्के भ्रमको नहीं करता तो ॥ ३८ ॥ तो राग द्वेपका प्रसंग मुझमें कहां ? क्योंकि मेरेसे अन्यका तो असंभवहै, और कर्तृतापक्षमेंभी जो शरीर अन्यसे भस्म कियागया और अन्यसे ललित (प्यार) कियागया ॥ ३९ ॥ वह (पूर्वजन्म तथा इस जन्मका शरीर) हमाराही कियाहुआहै तो इसमें दुःख तथा हर्षका क्या अवसरहै, क्योंकि हमारे सुखदुःखके विस्तारमय इस जगत्जालके क्षय तथा उदयमें ॥ ४० ॥

अहंकर्त्तेतिमत्वांतःकःखेदोल्लासयोःक्रमः ॥ खेदोल्लासविलासेषुस्वात्मकर्त्तृतयैतया ॥ ४१ ॥ स्वयमे वलयंयातेसमतैवावशिष्यते ॥ समतासर्वभूतेषुयासौसत्यापरास्थितिः ॥ ४२ ॥ तस्यामवस्थितंचित्तं

नभूयोजन्मभाङ्मनाक् ॥ अथवासर्वकर्तृत्वमकर्तृत्वंचराघव ॥४३॥ सर्वंत्यक्त्वामनःपीत्वायोसिसो सिस्थिरोभव ॥ अयंसोहमयंनाहंकरोमीदमिदंतुन ॥ ४४ ॥

अर्थ—मैंही कर्ताहुं ऐसा मानकर स्थितपुरुषको दुःख तथा हर्षका क्या प्रसंगहै, और आत्माकी समष्टिरूप कर्तृतासे सुखदुःखके विलासोंके ॥४१॥ स्वयं लय होने पर केवल समताही शेपरहजाती है और जो सब भूतोंमें समताहै वह सर्वोत्तम सत्य स्थिति है ॥ ४२ ॥ उस समतामें स्थितपुरुष पुनः कदापि जन्मका भागी नहीं होता, अथवा हे राघव ! सर्वकर्तृता वा अकर्तृता जो है ॥ ४३ ॥ उन सबको त्यागकर और मनकोभी निगलकर जिस (शुद्ध) रूपसे तुम हो उसीसे स्थिर रहो, और इस देहमें प्रसिद्ध यह मैं तथा सब देहात्मक सृष्टिरूपमें यह देहइन्द्रियां मैं नहीं हूं इसलिये मैं कुछ नहीं कर्ता इससे आत्माके परिच्छेद तथा कर्तृता आदिके निषेधसे शोधित त्वं पदार्थमात्रमें स्थिति होनेसे तत्पदार्थके शोधनरूप वाक्यार्थके अलाभसे अपूर्णता होनेसे ॥ ४४ ॥

इतिभावानुसंधानमयीदृष्टिर्नतुष्टये ॥ साकालसूत्रपदवीसामहावीचिवागुरा ॥ ४५ ॥ सासिपत्रवनश्रेणीयादेहोहमितिस्थितिः ॥ सात्याज्यासर्वयत्नेनसर्वनाशेप्युपस्थिते ॥ ४६ ॥ स्प्रष्टव्यासानभव्येनसश्वमांसेवपुल्कसी ॥ तयासुदूरोज्झितयादृष्टौपटललेखया ॥ ४७ ॥ उदेतिपरमादृष्टिर्ज्योत्स्नेवविगताम्बुदा ॥ ययाभ्युदितयारामतीर्यतेभवसागरः ॥ ४८ ॥ कर्तानास्मिनचाहमस्मिसइतिज्ञात्वैवमंतःस्फुटं कर्ताचास्मिसमग्रमस्मितदितिज्ञात्वाथवानिश्चयम् ॥ कोप्येवास्मिनकिंचिदेवमितिवानिर्णीयसर्वोत्तमेतिष्ठत्वंस्वपदेस्थितःपदविदोयत्रोत्तमाःसाधवः ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे कर्तृत्वविचारयोगोपदेशकरणं नाम षट्पंचाशःसर्गः ॥ ५६ ॥

अर्थ—पूर्वोक्त पदार्थोंके स्मरणमयी दृष्टि सन्तोषकेलिये नहीं है, और यह कथन देहात्मबुद्धिके अभावकेलिये और वही महाकाल (नरक विशेष) की पदवी, वही अवीचिकी जाल ॥ ४५ ॥ और असि (तलवार) के पत्रहैं जिनमें ऐसे वनोंकी पंक्ति है जो कि देहमें अहंभाव (आत्मत्वका अभिमान) की स्थिति है, यह स्थिति अपना सर्व नाश उपस्थित होनेपरभी सर्वथा त्यागना चाहिये ॥ ४६ ॥ देहमें अहंभावकी स्थितिको कुत्तेके मांससहित चाण्डालीके समान भव्यपुरुषको कभी स्पर्शभी न करना चाहिये, क्योंकि अपने अधिष्ठान चेतन विशुद्ध आत्मदृष्टिमें परदेके समान देहात्मादृष्टिके दूरहीसे त्यागनेपर ॥ ४७ ॥ सर्वोत्तम आत्मदृष्टि, मेघरहित चन्द्रचन्द्रिकाके समान उदय होती है हे रामजी ! जिस दृष्टिके उदय होनेपर यह प्राणी संसारसागरसे पार होजाताहै ॥ ४८ ॥ हे रामजी ! कर्ता तथा कर्तताका प्रयोजक प्रसिद्ध देहादि मैं नहीं हुं ऐसा स्पष्टरीतिसे जानकर अथवा सबका कर्ता तथा समष्टिरूप संपूर्ण ब्रह्माण्डभी मैंही हूं वा यह प्रसिद्ध जड दृश्यरूप मैं कुछभी नहीं हूं किंतु लोकमें प्रसिद्ध परिछिन्न परिमाण सुखदुःखसे विलक्षण पूर्णानन्द चिद्स्वरूप मैंहूं ऐसा निर्णय करके जहांपर विवेकी उत्तमसाधु ब्रह्मवेत्ता प्राप्तहैं उसी ब्रह्मपदमें तुम स्थित होओ ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे कर्तृत्वविचारयोगो नाम षट्पंचाशः सर्गः ॥ ५६ ॥

सप्तपंचाशः सर्गः ॥ ५७ ॥

रामके प्रश्नोंका अनवसर और वासनाके वर्जनका प्रसंग और एक उपायसे सिद्ध उनकी प्रसंशा इत्यादि विषय इस ५७ के सर्गमें विस्तारसे वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ ॥ सत्यमेतत्त्वयाब्रह्मन्यदुक्तंसूक्तिसुंदरम् ॥ अकर्तैवहिकर्त्तात्माभोक्ताभोक्तैवभूतकृत् ॥ १ ॥ सर्वेश्वरःसर्वगश्चचिन्मात्रममलंपदम् ॥ स्थानंभुविवपुर्देवःसर्वभूतांतरस्थितः ॥ २ ॥ हृदयंगमतांप्राप्तमिदानींब्रह्ममेविभो ॥ त्वदुक्तिभिर्यथाभोदधाराभिर्भूभृदव्यथः ॥ ३ ॥ औदासीन्यादभिच्छत्वान्नभुंक्तेनकरोतिच ॥ समग्रालोककारित्वाद्भुंक्तेदेवःकरोतिच ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—हे ब्रह्मन् ! आपने यह उत्तम उक्तियोंसे रमणीय जो कुछ कहाहै वह सत्यहै सब प्राणियोंका कर्ता वह परमात्मा कर्ता होते हुयेभी अकर्ता और भोक्ता रहतेभी अभोक्ताहै ॥ १ ॥ सबका ईश्वर, सर्वव्यापी, चिन्मात्र वह निर्मल पदहै, जैसे चार प्रकारके प्राणी पृथिवीपर रहते हैं ऐसेही सब प्राणियोंके अन्तरमें स्थित

वही देव सबका स्थानहै ॥ २ ॥ हे प्रभो ! इससमय ब्रह्म मेरे हृदयमें प्राप्त हुआहै, अर्थात् भासताहै इससमय जैसे वर्षाकी धारासे ग्रीष्मऋतुसे संतप्त पर्वत व्यथारहित होजाताहै, ऐसेही आपकी उक्तियोंसे मैंभी व्यथारहित होगयाहूं ॥ ३ ॥ वह देव परमात्मा उदासीन और इच्छारहित होनेसे न कुछ भोक्ताहै न कर्ता है और सत्तामात्रसे सब लोगोंका रचयिता होनेसे कर्ताभी है भोक्ताभी है ॥ ४ ॥

किंत्वयंभगवन्स्फारःसंशयोमेहृदिस्थितः ॥ तंत्वंछिंधिगिराब्रह्मन्दीधित्यैर्दुर्यथातमः ॥ ५ ॥ इदंसत्त दिदंवासदयंसोहमिदंनतु ॥ अयमेकोऽद्वितीयोयमित्यादिकलनामयम् ॥ ६ ॥ एकस्मिन्नविद्यतेध्वे नीहारइवभास्करे ॥ इदंप्रथममेवाच्छेकथसात्मनिसंस्थितम् ॥ ७ ॥ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ सिद्धांतकालएवास्यसंप्रश्नस्योत्तरंस्थिरम् ॥ कथयिष्यामितेरामयेनज्ञास्यसितत्त्वतः ॥ ८ ॥

अर्थ—परंतु हे भगवन् ! यह महान् संशय जो मेरे हृदयमें स्थितहै उसको अपनी वाणीसे आप ऐसा छेदन कीजिये जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे अंधकारको ॥ ५ ॥ यह जगत् सत्है अथवा असत्है इस आपके कथनानुसार वह प्रसिद्ध समष्टिरूप जगत् मैं हुं और व्यष्टि देहमात्र नहीं हुं अथवा यह संपूर्ण प्रपंच समष्टि दृष्टिसे एकहै और व्यष्टिदृष्टिसे अनेकहै इत्यादि अनियत अनेक कल्पनामय यह जगत् ॥ ६ ॥ एक अद्वितीय नियतस्वभाववाले और स्वयं प्रकाशरूप होनेसे सर्वथा मोहांधकाररहित निर्मल परमात्मामें सूर्यमें अंधकारके समान कैसे रहसकताहै, यदि आप यह कहैं कि प्रथम माया शबलित ब्रह्मके उदरमें यह जगत् स्थित रहा और अब प्रकट रीतिसे है तो प्रथमभी उस अद्वितीय परमात्मामें यह कैसे स्थितथा, यह कृपा करके कहिये ॥७॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! इस प्रश्नका उत्तर सिद्धांतकालमें अर्थात् निर्वाण प्रकरणके उत्तरार्द्धमें निश्चयरूपसे मैं तुमसे कहूंगा, जिससे कि तुम यथार्थ रीतिसे जान जाओगे ॥ ८ ॥

मोक्षोपायस्यसिद्धांतमसंप्राप्यनराघव ॥ श्रोतुंप्रश्नोत्तराण्येतान्यलंयोग्योभविष्यसि ॥ ९ ॥ कांतागीतगिरांरामतरुणोभाजनंयथा ॥ प्रश्नानामुत्तमोक्तीनांपुण्यकृज्ज्ञाजनंतथा ॥ १० ॥ वृथाभवतिबालेषुयथारागमयीकथा ॥ निरर्थकाल्पबोधेषुतथोदारोदयाकथा ॥ ११ ॥ कस्मिंश्चिद्देवसमयेकिंचित्पुंसोविराजते ॥ फलमाभातिवृक्षस्यशरद्येवनमाधवे ॥ १२ ॥

अर्थ—मोक्षके उपदेशके सिद्धांत (अखंडाकार आत्मबोध) को न प्राप्त होकर हे रामजी ! इन प्रश्नोंके उत्तर पूर्णरीतिसे सुननेके योग्य न होगे ॥ ९ ॥ जैसे तरुण पुरुष युवती स्त्रियोंके गीत और वाणीका पात्र होताहै ऐसेही सिद्धांतकालके ऐसे प्रश्नोंका और उनके उत्तरोंका पात्र आत्मज्ञानी पुरुष होताहै ॥ १० ॥ जैसे बालकोंमें विषय रागमयी कथा व्यर्थ होतीहै, ऐसेही अल्पबोधवाले पुरुषोंमें मोक्ष देनेवाली कथाभी निरर्थकहै ॥ ११ ॥ किसी समयमें किसी पुरुषकी कोई बात शोभित होती है, जैसे नारंगी और नींबू आदिके फल वृक्षमें शरदऋतुमेंही शोभित होतेहैं न कि वसंतऋतुमें ॥ १२ ॥

उपदेशगिरोवृद्धेरंजनानिर्मलेपटे ॥ लगंत्युदारविज्ञानकथाचाधिगतात्मनि ॥ १३ ॥ प्रश्नस्यास्योत्तरं पूर्वंलेशतःकथितंमया ॥ नविस्तरेणतेनैतन्नज्ञातंभवतास्फुटम् ॥ १४ ॥ यदित्वमात्मानात्मानमधिगच्छसितंस्वयम् ॥ एतत्प्रश्नोत्तरंसाधुजानास्यत्रनसंशयः ॥ १५ ॥ मयासिद्धांतकालेतुप्राप्तबोधेत्वयिस्थिते ॥ वक्तव्योविस्तरेणैवसाधोप्रश्नोत्तरक्रमः ॥ १६ ॥

अर्थ—वैराग्यके उपदेश विवेकी पुरुषमें और निर्मल वस्त्रमें रंग जैसे लगताहै ऐसेही आत्मज्ञानी पुरुषमें आत्मज्ञानकी कथा लगती है ॥ १३ ॥ इस तुमारे प्रश्नका किंचित् उत्तर मैंने भार्गवोपाख्यानमें कहाहै, अनधिकारी होनेके कारण विस्तारसे नहीं कहा इसीसे तुमने स्पष्टरीतिसे नहीं जाना ॥ १४ ॥ हे रामचन्द्रजी ! यदि तुम अपने आत्माको आपही जानजाओगे अर्थात् अखण्ड आत्माका बोध होजावेगा तो मेरे कथनके विनाही इस प्रश्नका उत्तर पूर्णरीतिसे जानजाओगे इसमें सन्देह नहीं है ॥१५॥ हे साधो ! सिद्धांतकालमें जब तुमको बोध प्राप्त होगा तब इस प्रश्नके उत्तरका प्रसंग विस्तारसे कहूंगा ॥ १६ ॥

किंज्ञानात्यात्मानमात्मैवकृतआत्मात्मनैवहि ॥ आत्मैवसंप्रसन्नःसन्नात्मानंप्रतिपद्यते ॥ १७ ॥ तदेतस्के अवसरहै,मकर्त्रेकर्तृविचारणम् ॥ अज्ञातत्वाद्युतामेतामक्षीणवासनोभवेत् ॥ १८ ॥ बद्धोहिवासनाबद्धो अहंकर्त्ता,मोक्षःस्याद्वासनाक्षयः ॥ वासनास्त्वंपरित्यज्यमोक्षार्थित्वमपित्यज ॥ १९ ॥ तामसीर्वासनाःपूर्वंत्य वलयंयातेरुवासिताः ॥ मैत्र्यादिभावनानाम्नींगृहाणामलवासनाम् ॥ २० ॥

अर्थ—जैसे अप्रसन्नता दशामें आत्मासे किये हुये कार्यको आत्माही जानताहै ऐसेही आत्मबोधसे प्रसन्न आत्मा अपने वास्तविक पूर्ण आत्माको जानजाताहै ॥ १७ ॥ हे रामजी ! यह कर्तृता और अकर्तृताका विचार अखण्ड ब्रह्मके बोध करानेके लियेही मैंने तुमसे कहाहै परन्तु तुमने अखण्ड आत्मताको नहीं जाना इससे भान होताहै कि तुमारी वासना अभी क्षीण नहीं हुई ॥ १८ ॥ क्योंकि जो वासनासे बद्धहै वही बद्धहै, और वासनाका क्षयहै वही मोक्षहै इसलिये तुम वासनाओंको त्यागकर मोक्षार्थताकोभी त्यागो ॥ १९ ॥ प्रथम विषयसे पूर्ण तामसी और राजसी वासनाओंको त्यागकर मैत्री करूणादि नामवाली निर्मल वासनाको ग्रहणकरो ॥ २० ॥

तामप्यंतःपरित्यज्यताभिर्व्यवहरन्नपि ॥ अंतःशांतसमस्तेहोभवचिन्मात्रवासनः ॥ २१ ॥ तामप्यथ परित्यज्यमनोबुद्धिसमन्विताम् ॥ शेषेस्थिरसमाधानोयेनत्यजसितत्त्यज ॥ २२ ॥ चिन्मयःकलना कालप्रकाशतिमिरादिकम् ॥ वासनांवासितारंचप्राणस्पंदनपूर्वकम् ॥ २३ ॥ समूलमपिसंत्यक्त्वा व्योमसौम्यप्रशांतधीः ॥ यस्त्वंभवसिसद्बुद्धेसभवानस्तुसत्कृतः ॥ २४ ॥

अर्थ—उन मैत्री आदिकोंसे व्यवहार करते हुये उस निर्मल वासनाको त्यागकर और अंतःकरणमें समस्त इच्छाओंसे रहित होकर सम्यग् ज्ञानसमाधिके अभ्याससे चिन्मात्र वासनासहित होओ ॥ २१ ॥ इसके पश्चात् मनबुद्धिसहित उस वासनाकोभी त्यागकर शेष आत्मस्वरूपमें स्थिर समाधान होकर जिससे द्वैतकी कल्पनाका मूलस्तम्भभूत अहंकारसे पूर्वोक्त सब कुछ त्यागते हो उसकोभी त्यागो ॥ २२ ॥ प्राणकी गतिपूर्वक कल्पनाकालसे प्रकाशित अज्ञानांधकारादिक वासना और विषय और उनके द्वारभूत इन्द्रियादिककोभी ॥ २३ ॥ मूलसे उखाडकर आकाशके समान निर्मल बुद्धिसहित केवल चिन्मय सत्त्वसे पूजित जो कुछ तुमारा रूपहै उसी रूपसे हे सुमते ! तुम स्थित रहो ॥ २४ ॥

हृदयात्संपरित्यज्यसर्वमेवमहामतिः ॥ यस्तिष्ठतिगतव्यग्रःसमुक्तःपरमेश्वरः ॥ २५ ॥ समाधिमथकर्माणिमाकरोतुकरोतुवा ॥ हृदयेनास्तसर्वास्थोमुक्तएवोत्तमाशयः ॥ २६ ॥ नैष्कर्म्येणनतस्यार्थोनतस्यार्थोस्तिकर्मभिः ॥ नसमाधानजप्याभ्यांयस्यनिर्वासनंमनः ॥ २७ ॥ विचारितमलंशास्त्रंचिरमुद्ग्राहितंमिथः ॥ संत्यक्तवासनान्मौनादृतेनास्त्युत्तमंपदम् ॥ २८ ॥

अर्थ—जो महामति ! हृदयसे सब वासनादिकको त्यागकर चिंतारहित स्थित रहताहै वही मुक्त और परमेश्वरहै ॥ २५ ॥ जिसने हृदयसे सम्पूर्ण आस्थाओंको त्याग दियाहै वह शुद्धान्तःकरणवाला पुरुष समाधि करै वा सांसारिक व्यवहार करे परन्तु मुक्तही है ॥ २६ ॥ हे रामजी ! जिसका मन वासनारहित है उसको निष्कर्मतासे वा कर्मोंसे अथवा समाधि वा जपसे कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ २७ ॥ चिरकालतक पूर्ण रीतिसे शास्त्रोंको विचारलिया और परस्पर दूसरेको उस पुरुषने ग्रहण कराया तोभी वासनाके त्यागके विना मोक्षपदकी प्राप्ति नहीं है ॥ २८ ॥

दृष्टंद्रष्टव्यमखिलंभ्रांत्वाभ्रांत्वादिशोदश ॥ जनाःकतिपयाएवयथावस्त्ववलोकिनः ॥ २९ ॥ यद्यदालोक्यतेकिंचित्कश्चिद्यत्तत्रविद्यते ॥ ईप्सितानीप्सितादन्यन्नतत्रयततेजनः ॥ ३० ॥ येकेचनसमारंभायेजनस्यक्रियाक्रमः ॥ तेसर्वेदेहमात्रार्थमात्मार्थंनतुकिंचन ॥ ३१ ॥ पातालेब्रह्मलोकेचस्वर्गेच वसुधातले ॥ व्योम्निकतिपयाएवद्रष्टव्येद्रष्टद्रष्टयः ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! मैंने भ्रमण करके देखनेके योग्य सम्पूर्ण वस्तु देखलिया, परन्तु यथार्थ वस्तुके जाननेवाले गिने हुये थोडेही पुरुष हैं ॥ २९ ॥ जो कुछ इस संसारमें देखपडताहै वह इष्ट तथा अनिष्टसे भिन्न नहीं है, और इन्हीकेलिये सब जीव प्रयत्न करते हैं, इनसे भिन्न जो आत्मतत्वहै उसकेलिये कोईभी जन प्रयत्न नहीं करता ॥ ३० ॥ जो कुछ लौकिकगृह आदि कार्योंका आरंभहै और जो वैदिक क्रियाक्रम हैं वे सब अनात्मभूत देहकेही-लिये हैं न कि आत्माके अर्थ ॥ ३१ ॥ पाताल, ब्रह्मलोक, स्वर्ग, पृथिवी और आकाशमेंभी चित् एकरस ब्रह्मके देखनेवाले कोई विरलेही जन हैं ॥ ३२ ॥

इदंहेयमुपादेयमिदमित्यसद्गस्थितौ ॥ निश्चयौगलितौयस्यज्ञस्यासावतिदुर्लभः ॥ ३३ ॥ करोतुभुवनेराज्यंविशत्वंभोदमंबुवा ॥ नात्मलाभादृतेजंतुर्विश्रांतिमधिगच्छति ॥ ३४ ॥ येमहामतयःसंतःशूराश्चेंद्रियशत्रुषु ॥ जन्मज्वरविनाशायतउपास्यामहाधियः ॥ ३५ ॥ सर्वत्रपंचभूतानिषष्ठंकिंचिन्नविद्यते ॥ पातालेभूतलेस्वर्गेरतिमेतुकधीरधीः ॥ ३६ ॥

अर्थ—यह त्याज्य है और यह ग्राह्यहै ये दोनों अपने आत्माके अज्ञानसे प्रादुर्भूत निश्चय जिस ज्ञानी पुरुषके गलित (नष्ट) होगये हैं वह महात्मा दुर्लभ है ॥ ३३ ॥ चक्रवर्ती राजा होके भूमंडलमें राज्य करै, इन्द्रपदको ला-

भसे वृष्टिके अधिकारमें मेघमंडलमें प्रवेश करे, वरूणपदके लाभसे जलपर चले, और योगकी सिद्धिसे सर्वत्र प्रवेश करे, परन्तु आत्मलाभके बिना यह जीव विश्रांतिको नहीं प्राप्त होता ॥ ३४ ॥ इस हेतुसे जो संत महामुनि इन्द्रिय-रूपी शत्रुओंके जीतनेसे शूर महाबुद्धिमान्हैं वेही जन्ममरण आदि ज्वरके विनाशकेलिये उपासनीयहैं ॥ ३५ ॥ पाताल, भूतल और स्वर्गमें सर्वत्र पंचभूत वा उनके कार्यभौतिक पदार्थही है षष्ठ (छठीं) वस्तु कोई नहीं है तो धीर बुद्धिमान् विवेकी पुरुष प्रीति किसमें करे ॥ ३६ ॥

युक्त्याविचरतौज्ञस्यसंसारोगोष्पदाकृतिः ॥ दूरसंत्यक्तयुक्तेस्तुमहामत्तार्णवोपमः ॥ ३७ ॥ कदंबगोलकैस्तुल्यंब्रह्मांडंस्फारचेतसः ॥ किंप्रयच्छतिकिंभुंक्तेप्राप्तेस्मिन्सकलेपिसः ॥ ३८ ॥ एतदर्थमबुद्धनांयन्महासमरक्रियाः ॥ तन्मन्येरामधिक्कार्यंद्वंद्वलक्षक्षयावहम् ॥ ३९ ॥ कल्पमात्रेणकालेनसुमहापेलवोदरे ॥ तस्मिन्नपिहियोनाशःसर्वोधिरमहाधियाम् ॥ ४० ॥

अर्थ—वेदोंमें कथित युक्तिसे ब्रह्मदर्शनद्वारा विचरते हुये आत्मज्ञानी पुरुषकेलिये यह संसार गौके खुरके समानहै, और उस युक्तिको दूसरेही त्याग करनेवालेको तो महाप्रलयके समुद्रके समानहै ॥ ३७ ॥ अपरिच्छिन्न आत्मानंदका अनुभव करनेसे विशाल चित्तवाले आत्मज्ञानी पुरुषको कदंबफलके गोलोंके समान यह सम्पूर्ण ब्रह्मांड क्या देसकताहै, और क्या वह उसमें भोगताहै चाहै वह ब्रह्माण्ड उसको सम्पूर्ण प्राप्तभी होजाय ॥ ३८ ॥ हे रामजी ! जिस जगत्में राज्यादि सुख लाभके अर्थ मूढोंकी महासमरकी क्रिया होती हैं वह लाखों योधोंका क्षयकारक युद्ध दयालु तत्वज्ञानीको धिक्कार करने योग्यहै ऐसा मैं मानताहुं ॥ ३९ ॥ दो पदार्थकी अवधिभूत महाकल्पांतकालसेभी नष्ट होनेसे अति कोमल उस ब्रह्मपदवीमेंभी जो सब प्राणियोंको प्रलयका निमित्त होनेसे मानसी व्यथाके निमित्तसे नाशहै वह पद मूढोंकोही प्रसंशनीयहै, इस हेतु ब्रह्मपदवीमेंभी ज्ञानीकी रति नहीं होसकती ॥ ४० ॥

आत्मनोज्ञस्यसर्गादेर्यन्मनागपिनोद्गतम् ॥ तस्मिञ्जगत्त्रयेप्राप्तेकिंचिदात्मावलीभवेत् ॥ ४१ ॥ इतः शैलशतैर्व्याप्तातथेतोजलराशिभिः ॥ कियानस्यभुवोदेहोयेनोदारंप्रपूरयेत् ॥ ४२ ॥ नतदस्तिजगत्यस्मिन्सपातालसुरालये ॥ यन्नामात्मवतोज्ञस्यकिंचित्कार्यतरंभवेत् ॥ ४३ ॥ एकतामनुयातस्यव्योमवद्विततस्यच ॥ स्वस्थस्यात्मवतोज्ञस्यास्थिरस्यात्मन्यचेतसः ॥ ४४ ॥

अर्थ—तत्ववेत्ताकी दृष्टिसे जब सृष्टि आदिके उपायसे कुछभी नहीं उत्पन्न हुआ तो उस सम्पूर्ण तीनों जगत्के मिलजानेपरभी क्या आत्मा कुछभी बलवान् होसकताहै ॥ ४१ ॥ एक ओर तो सैकडों पर्वतोंसे यह पृथिवी व्याप्तहै, और दूसरी ओर जलकी राशियोंसे तो इस भूमिका कितना देह (राज्यादिके योग्य) शेषहै जो कि सर्व त्यागसे महान् अंतःकरणवाले पुरुषको पूर्ण करसकै ॥ ४२ ॥ पाताल स्वर्गसहित इस सम्पूर्ण जगत्में ऐसा कुछभी नहीं है जो आत्मज्ञानीकेलिये अवश्य कर्तव्य हो ॥ ४३ ॥ एकताको प्राप्त, आकाशकेतुल्य विशाल, मनशून्य और स्वस्थतासे स्थित आत्मज्ञानीपुरुषकी दृष्टिमें ॥ ४४ ॥

शरीरजालनीहारधूसराशून्यकोटरा ॥ शांतसंसारसुभगात्रिलोकीविपुलातटी ॥ ४५ ॥ स्फारब्रह्मामलांभोधिफेनाःसर्वेकुलाचलाः ॥ चिदादित्यमहाभासमृगतृष्णाजलश्रियः ॥ ४६ ॥ आत्मतत्त्वमहांभोधिवीचयःसर्गराजयः ॥ अनुत्तमपदांभोदवृष्टयःशास्त्रदृष्टयः ॥ ४७ ॥ चंद्राग्नितपनालोकाघटकाष्ठादिसन्निभाः ॥ प्रकाशनीयाश्चिद्रूपत्विषोमलकणास्तथा ॥ ४८ ॥

अर्थ—शरीरोंके समूहसे नीहार (कुहरे) के समान धूसर संसारकी शांततासे रमणीय यह त्रिलोकी रूप विशाल मृगतृष्णानदीकी तटी आकाशके उदरके समान शून्यरूपही है अर्थात् ज्ञानी इसको तुच्छ मानकरके दृष्टिपातभी नहीं करता ॥ ४५ ॥ हे रामजी ! निर्मल ब्रह्मरूप समुद्रके मेरूमंदर आदि कुलपर्वत फेनहैं, और चित्रूपी महाप्रकाशशील सूर्यके तेजसे नदी समुद्र आदि सब मृगतृष्णाहैं ॥ ४६ ॥ सृष्टियोंकी पंक्ति आत्मतत्वरूप महासमुद्रके तरंगहैं, और वेद तथा धर्मशास्त्रादिसे धर्म तथा ब्रह्मतत्वादिके विचारके प्रकाशक शास्त्रदृष्टि सबसे उत्तम ब्रह्मपदरूप मेघकी वृष्टि हैं ॥ ४७ ॥ जैसे अति मलिन पृथिवीसे उत्पन्न पार्थिव आदि धातु आत्मासे प्रकाशितहैं ऐसेही चन्द्रमा, अग्नि और सूर्यादिके प्रकाश घट काष्ठादिके प्रकाशसेही प्रकाशनीयहैं ॥ ४८ ॥

विहरंतिस्वमात्मानःसंसारवनचारिणः ॥ कामभोगोपलग्रासमृगानरसुरासुराः ॥ ४९ ॥ अस्थिखंडार्गलामूर्द्धपिधानाःस्नायुशृंखलाः ॥ जगद्देहाजरज्जीवरक्तमांससमुद्गकाः ॥ ५० ॥ वनमालामृगामुग्धाःपुरसंचारितास्थितौ ॥ बालबुद्धिविनोदाययोजिताश्चर्मपुत्रिकाः ॥ ५१ ॥ नैवंविधोदारमनामनागपि महामतिः ॥ नज्ञश्चलतिभोगौघैर्मंदवातैरिवाचलः ॥ ५२ ॥

अर्थ—जिनका अपने देहको परिच्छिन्न अनुभव अथवा हिंसा करनेका स्वभाव है ऐसे संसाररूपी वनके चारी देव मनुष्य दैत्यादि काम भोगरूप तृणोंकी पंक्तियोंके ग्रासमें मृगोंके समान हैं ॥ ४९ ॥ जिनमें अस्थियों (हड्डियों) के खंडरूप अर्गला (आधारकाष्ठ) है शिररूपी ढकने हैं; और नाडीरूप लोहके बंधन हैं ऐसेही जगत्में देव मनुष्योंके देह अनादि संसाररूप जंगलमें जीर्ण जीवोंके बंधनार्थ संपुट (पेटरी) हैं ॥ ५० ॥ संसाररूप वनकी मालाके मृग देहके विवेक शून्य, सब देहरूप जीव सहित चर्मकी पुत्तलिकाओंको ब्रह्माजीने उन २ भोगोंकी भूमिरूप नगरकी संचारकी स्थितिमें बालकोंकी बुद्धिके विनोदार्थ (भोगरूपी पल्लवोंके ग्रासोंसे) नियुक्त किया है ॥५१॥ सर्वत्र भी पूर्वोक्त महा विवेकी पुरुष संसारके भोगोंके समूहोंसे ऐसे नहीं चलायमान होता जैसे मंद पवनोंसे पर्वत ॥५२

तस्मिन्किलपदेरामज्ञस्तिष्ठतिमहोत्तमे ॥ यस्मिंश्चंद्रार्कदेशोपिनपातालमिवस्थितः ॥ ५३ ॥ यस्या लोकाल्लोकपालाःसमालोकाःसुवेदिनः ॥ शरीरंपांत्ययमिवपश्यन्मूढाःक्षपार्णवे ॥ ५४ ॥ नकेचनजगद्भावास्तत्त्वज्ञंरंजयंत्यमी ॥ अप्यभ्यासगताःस्फारहृदयंखमिवांबुदाः ॥ ५५ ॥ नकेचनजगद्भावास्तत्त्वज्ञंरंजयंत्यमी ॥ मर्कटाइवनृत्यंतोगौरीलास्यार्थिनंहरम् ॥ ५६ ॥ नकेचनजगद्भावास्तत्त्वज्ञंरंजयंत्यमी ॥ प्राक्तनप्रतिबिंबश्रीरत्नेकुंभगतंयथा ॥ ५७ ॥ वज्रार्पितोपममसन्मयमंबुभंगतुंगंतरंगकृतबिंबमिवावलोक्य ॥ लोलांतदीहितसुखेषुरतिंनयातितज्ज्ञःकुशैवललवेष्विवराजहंसः ॥ ५८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे पूर्णाशयस्वरूपवर्णनं नाम सप्तपंचाशःसर्गः ॥ ५७ ॥

अर्थ—हे रामजी! उस महा उत्तम पदमें ज्ञानीपुरूप स्थित रहताहै जिसमें चन्द्रसूर्यका प्रदर्शनभी पातालके छिद्रके समान अल्प भावसे स्थितहै ॥ ५३ ॥ तत्वज्ञानीके चित् प्रकाशसे ब्रह्मा आदि लोकपालभी सब जगत्के साधारण प्रकाशक होके नेत्र आदि इन्द्रियोंसे बाह्य देशमें बुद्धिसे अंतःकरणमें उत्तम व्यवहारके उचित, बोधसे शोभित होके अज्ञानरूप समुद्रमें मग्न, और शरीर रहित आत्माको देखते हुयेभी मूढ होके अज्ञजनके सदृश शरीरकोही आत्मभावसे पालन करतेहैं ॥ ५४ ॥ वैराग्यकी दृढतासे भोगोंकी वासनाओंके नाशसे विशाल हृदय शुद्धांतःकरणवाले ज्ञानीपुरूपको लोकपालोंके योग्य वारंवार अभ्यस्तभी जगत्के कोई पदार्थभी अपनेमें अनुरक्त (रंगसंहित) ऐसे नहीं करसकते जैसे मेघ आकाशको ॥ ५५ ॥ जगत्के नृत्य गीतादि कोईभी पदार्थ तत्वज्ञानीको ऐसे नहीं अनुरक्त करसकते, जैसे गौरीजीके क्रीडाके अर्थी महादेवजीको नाचते हुये मर्कट ॥५६॥ तत्वज्ञानी पुरूपको जगत्के कोईभी पदार्थ ऐसे नहीं अनुरागी करसकते जैसे घटसे बाह्य देशमें रत्नकी स्थितिदशामें रत्नके अंतर्गत स्तम्भ (खंभे) तथा गृहादिके प्रतिबिंबकी पूर्वकालकी शोभा घटके अंतर्गत रत्नको ॥ ५७ ॥ हे रामजी! ब्रह्मलोक पर्यन्त इस संपूर्ण जगत्के ऐश्वर्य अज्ञानियोंकी दृष्टियोंमें अति दुर्भेद्य होनेसे वज्रके तुल्य हैं, और ज्ञानियोंकी दृष्टिमें जलके विलासोंमें ऊंचे तरंगके अग्रभागमें चंद्रमा आदिके प्रतिबिंबके समान अनिर्वचनीय स्थितहै उसको विवेकी पुरूप तत्वदृष्टिसे असत् तथा तुच्छ देखके अज्ञानीके समान इष्ट सुखोंमें चंचल रति (प्रीति) ऐसे नहीं बाधता जैसे मद्गु (जलके पक्षी विशेप) के भोग्य दुष्ट (खराब) शैवालोंमें राजहंस ॥ ५८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषानुवादे पूर्णाशयस्वरूपवर्णनं नाम सप्तपंचाशः सर्गः ॥ ५७ ॥

अष्टपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५८ ॥

पूर्णपदमें आरूढ होनेके लिये सर्वात्मतासे स्थितिको जतानेवाली कचकी गाथा रामजीके अर्थ वसिष्ठजीने इस ५८ के सर्गमें वर्णन कीहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ अत्रैववस्तुन्युदिताःशृणुराघवपूर्वजाः ॥ कचेनगाथयागीताबार्हस्पत्येनपावनाः ॥ १ ॥ कस्मिंश्चिन्मेरुगहनेतिष्ठन्सुरगुरोःसुतः ॥ कदाचिदभ्यासवशाद्विश्रांतिंप्रापचात्मनि ॥ २ ॥ सम्यग्ज्ञानामृतापूर्णमतिर्नारमतास्यसा ॥ पंचभूतमयेमान्येदृश्योस्मिन्पेलवात्मनि ॥ ३ ॥ सतेननिर्विण्णइवसदात्मत्वाद्दतेपदम् ॥ अपश्यन्ससमुवाचेदमेकोगद्गदयागिरा ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी! इसी पूर्वोक्त विपयमें कथित पूर्वकाल संबंधी वृत्तांतरूप, अति पवित्र गाथा जिसको बृहस्पतिके पुत्रनें कहा है तुम सुनो ॥ १ ॥ मेरूके किसी वनमें रहनेवाला वह बृहस्पतिका पुत्र कदा-

चित् सुनी हुई ब्रह्मविद्याके मनन और निदिध्यासनकी परिपाकतासे आत्मामें विश्रामपाके ॥ २ ॥ इस बृहस्पतिके पुत्रकी सम्यग् ज्ञानरूपी अमृतसे पूर्ण वह उत्तम बुद्धि पंचभूतमय अति कोमलरूप इस दृश्यमें रमणताको न प्राप्त हुई ॥ ३ ॥ इस कारणसे उदासीनके समान उसने आत्मासे अतिरिक्त कोई वस्तु रमणके योग्य न देखते हुये गद्गद वाणीसे यह वक्ष्यमाण गाथा गानकी ॥ ४ ॥

किंकरोमिक्कगच्छामिकिंगृह्णामित्यजामिकिम् ॥ आत्मनापूरितंविश्वंमहाकल्पांबुनायथा ॥ ५ ॥ दुःख मात्मासुखंचैवखमाशासुमहत्तया ॥ सर्वमात्ममयंज्ञातंनष्टकष्टोहमात्मना ॥ ६ ॥ सबाह्याभ्यंतरेदेहेह्य धश्चोर्ध्वंचदिक्षुच ॥ इतआत्माततश्चात्मानास्त्यनात्मयंक्कचित् ॥ ७ ॥ सर्वत्रैवस्थितोह्यात्मासर्वमा त्ममयंस्थितम् ॥ सर्वमेवेदमात्मैवमात्मन्येवभवाम्यहम् ॥ ८ ॥

अर्थ—मैं क्या करूं! कहां जाऊं! क्या ग्रहण करूं! क्योंकि संपूर्ण विश्व आत्मासे ऐसे पूरित है जैसे महाप्रलयमें जलसे ॥ ५ ॥ दुःख और उसका उपभोक्ता जीव और उसको इष्ट सुख यह सब जगत्का तत्त्व देखनेपर केवल शून्य मात्रही भान होताहै, क्योंकि संपूर्ण दिशाओंसे और मनोरथोंसेभी यह सब जगत् आत्ममय जाना जाताहै इसलिये आत्मासे मैं सर्व दुःख रहित हुं, अर्थात् आत्मासे भिन्न मुझे किसी वस्तुसे प्रयोजन नहीं है ॥ ६ ॥ देहके बाह्य तथा आभ्यंतर नीचे ऊपर तथा दिशाओंमें इधर तथा उधर सर्वत्र आत्माही व्याप्तहै, ऐसा कोई स्थान नहीं है जो आत्ममय नहो ॥ ७ ॥ सर्वत्र अधिष्ठानभावसे आत्मा स्थित है और विवर्त रूपसे यह सब जगत् आत्मरूप है और तत्वदृष्टिसे यह सब आत्माही है, इसप्रकार मैं सर्वदा परमार्थ आत्मामेंही हुं ॥ ८ ॥

यन्नामनामतत्किंचित्सर्वमेवाहमांतरः ॥ आपूरितापारनभाःसर्वत्रसन्मयःस्थितः ॥ ९ ॥ पूर्णस्तिष्ठा मिमोदात्मासुखमेकार्णवोपमः ॥ इत्येवंभावयंस्तत्रकनकाचलकुंजके ॥ १० ॥ उच्चारयन्नोंकारंचघंटा स्वनमिवक्रमात् ॥ ॐकारस्यकलामात्रंपाश्चात्यंवालकोमलम् ॥ नांतरस्थोनबाह्यस्थोभावयन्परमे हृदि ॥ ११ ॥ व्यपगतकलनाकलंकशुद्धोहृदयनिरंतरलीनवातवृत्तिः ॥ गतघनशरदाशयोपमानःस्थि तइतिरासकचःसगायमानः ॥ १२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे कचगाथा नामाष्टपंचाशः सर्गः ॥ ५८ ॥

अर्थ—जो कुछ चेतन नामसे प्रसिद्धहै और जो कुछ अचेतन करके प्रसिद्धहै उस सबके अंतर्गतमें आत्मस्वरूपहुं, संपूर्ण आकाशमंडलकोभी पूर्ण करके सर्वत्र सन्मय आत्मा स्थितहै ॥ ९ ॥ पूर्ण और आनंद स्वरूप तथा सुखरूप एक समुद्रके समान मैं स्थितहुं, इसप्रकार भावना करता हुआ उस मेरू पर्वतके कुंजमें ॥ १० ॥ और घंटाके शब्दके समान ओंकार शब्दको उच्चारण करते हुये और ओंकारकी कलामात्रको सबका विलयस्थान बालके कोमलके समान तुरीय अर्द्धमात्राहै उसमें विलय करता हुआ न तो आभ्यंतर कारणमें स्थित और न बाह्य कार्यमें स्थित केवल परमात्म स्वरूपमें भावना करता हुआ ॥ ११ ॥ संपूर्ण कल्पनाके कलंकसे शुद्ध, और हृदयमें निरंतर प्राणकी गतिसे रहित, मेघसे शून्य शरदृतुके समान निर्मल अंतःकरणवाला पूर्वोक्त गाथाको गान करते हुये वह कच स्थितथा ॥ १२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे कचगाथा नामाष्टपंचाशः सर्गः ॥ ५८ ॥

एकोन षष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

विषयोंकी असारता, ब्रह्माके संकल्पसे संसारकी कल्पना और ब्रह्माके वैराग्यसे विश्रांति तथा शास्त्रकी रचना इन विषयोंका वर्णन इस ५९ के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ अन्नपानांगनासंगादृतेनास्तीहकिंचन ॥ शुभमस्त्वतिसंवादिमहान्कि [illegible] ॥ १ ॥ तिर्यंचःपशवोमूढायेनतुष्यंत्यसाधवः ॥ भोगैःकृपणसर्वस्वैरादिमध्यांतपेलवैः ॥ २ ॥ वि [illegible] संयांतियेलोकेतैरलंनरगर्दभैः ॥ इतःकेशाइतोरक्तमितीयंप्रमदातनुः ॥ ३ ॥ एतयातोष [illegible] ॥ मृन्महीदारुतरवोदेहामांसमयाअपि ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! इस संसारमें अन्नपान और स्त्री आदिरूप विषयोंके साथ जिव्हा उपस्थ आदि इन्द्रियोंके सङ्गके सिवाय शुभ पुरूपार्थ कुछभी नहीं है, इसबातको श्रुति स्मृति और आप्तोंके उपदेश और अनुभवसे निश्चयकरके विवेकी महात्मा पुरूप इन भोगोंमेंसे किसकी वांछा करे ॥ १ ॥ जैसे तिर्यग्योनिके जीव, पशु मूढ और असाधु संतुष्ट होतेहैं ऐसे सर्वथा कृपण और आदि अंत मध्यमें विनाशी भोगोंसे ॥ २ ॥ जो विश्वासको प्राप्त होतेहैं वे मनुष्योंमें गर्दभके समान व्यर्थ हैं एक ओर केश और अन्य ओर रक्त तथा मांस, यही स्त्रीका सुंदर[illegible]रहे ॥ ३ ॥ इस स्त्रीके सुंदर शरीरसे कुत्तेही संतोपको प्राप्त होतेहैं न कि मनुष्य, पृथिवी मृत्तिकामयी, वृक्षकाष्ठम[illegible] और प्राणियोंके शरीरभी मांसमयहैं ॥ ४ ॥

अधोभूरंबरंपृष्ठेकिमपूर्वंसुखायतु ॥ मात्रास्पर्शानुसारिण्योविवेकपदभंगुराः ॥ ५ ॥ मोहायैवापरामृष्टाःसकलालोकसंविदः ॥ सर्वस्याएवपर्यंतेसुखाशायाश्चसंस्थितम् ॥ ६ ॥ मालिन्यंदुःखमप्येवंज्वालायाइवकज्जलम् ॥ आगमापायिनोऽनित्यामनःपष्ठेंद्रियक्रियाः ॥ ७ ॥ लतानागेंद्रमृदिताघारथंतिनसंपदः ॥ पुत्रिकारक्तमांसस्यकांतेयमितिसादरम् ॥ ८ ॥

अर्थ—अधोदेशमें पृथिवी और ऊर्ध्वभागमें आकाशहै इस संसारमें सारभूत वस्तु क्याहै जो सुखकेलियेहो, इन्द्रियां जो हैं वे अपने विपयोंके अनुकूल और विवेक पदमें बाधकहैं ॥ ५ ॥ संपूर्ण जनोंके व्यवहार बिना विचारसे रमणीयमान होतेहैं यथार्थमें मोहकेहीलियेहैं संपूर्ण सुखकी आशाके अंतमें वर्तमान सुखके समान दुःखभी स्थितहै॥६॥ इसीप्रकार पाप विपयादिकी कलुपता और वियोग विपादादि जनितदुःखभी अग्निकी ज्वालाके कज्जलके समान सुखके अंतमें स्थितहै छटे मनसहित पांचों इंद्रियोंकी क्रिया अनित्य और उत्पत्ति विनाशशालीहैं ॥ ७ ॥ संपूर्ण विषयकी संपत्ति जो भोगमें आती हैं वेभी मत्त हांथीसे मर्दित लताके समान क्षीणभी सदा होती जाती हैं रक्त और मांसकी पुतलीको अतिसुंदर यह कांताहै, ऐसा मानकर आदर पूर्वक ॥ ८ ॥

स्वदेहनाम्नास्थिचयेश्लिष्यतेमोहकक्रमः ॥ सर्वसत्यमिदंरामस्थिरमज्ञस्यतुष्टये ॥ ९ ॥ ज्ञस्यास्थैर्यमसत्यंचजगद्रामनतुष्टये ॥ अभुक्तेपिविपयैपाविपमूर्छांप्रयच्छति ॥ १० ॥ तांपरित्यज्यभोगास्थांस्वात्मैकत्वगतिंभज ॥ अनात्ममयभावेनचित्तंस्थितिमुपागतम् ॥ ११ ॥ यदातदैतदाजातंजगज्जालमसन्मयम् ॥ वासनावशतोब्रह्ममनसाकल्पितंवपुः ॥ १२ ॥

अर्थ—पुरूप अपने देहके नामसे अस्थि और मांसके समूहमें आलिंगन करताहै यह केवल कामका प्रसंगहै हे रामजी ! यह सब अज्ञानीके लिये सत्य तथा संतोपके लिये है ॥ ९ ॥ और ज्ञानीपुरूपके लिये यह अस्थिर असत् और असन्तोपके लिये हैं और यह भोगकी तृष्णा विना भोगेभी विषके समान मूर्च्छाको प्राप्त करती है ॥ १० ॥ हे रामजी ! इस भोगकी आस्थाको त्यागकर तुम केवल आत्माके शरणमें प्राप्तहो और भोगकी बासनासे अनात्म देहादिमय भावनासे जब यह चित्त स्थितिको प्राप्त हुआ ॥ ११ ॥ उसी समय यह असन्मय जगज्जाल उत्पन्न हुआ और ब्रह्माके मनके संकल्पसे अस्मदादिकी वासना और कर्मादिके वशसे उसीके अनुसार यह जगत्का शरीर ऐसे कल्पित किया गयाहै ॥ १२ ॥

तेजसाश्रितकुड्येनहेमाभत्वमिवात्मनः ॥ ॥ श्रीरामउवाच ॥ वैरिंचपदमासाद्यमनोब्रह्मन्महामते ॥ १३ ॥ इदंजगत्सुघनतांकथमानयतिक्रमात् ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ गर्भतल्पात्समुत्थायपद्मजःप्रथमःशिशुः ॥ १४ ॥ ब्रह्मेतिशब्दमकरोद्ब्रह्मातेनसउच्यते ॥ संकल्पजालरूपस्यमनसाकल्पिताकृतेः ॥ अकरोत्तस्यसंकल्पलक्ष्मीःपदमथोत्तरे ॥ १५ ॥ ततःसंकल्पयामासपूर्वंतेजोमहाप्रभम् ॥ शरदंतेलताचक्रचक्रीकृतदिगंतरम् ॥ १६ ॥

अर्थ—जैसे सुवर्ण, रजत और इन्द्रनीलमणि आदि भित्तिके आश्रित सूर्य आदिका तेज अपनेही अनुसार स्वरूप कल्पित करताहै, श्रीरामजी बोले—हे ब्रह्मन् हे महामते यह मन ब्रह्माके पदको प्राप्त करके ॥ १३ ॥ इस जगत्को क्रमसे घनताको कैसे प्राप्त करताहै, श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! कमलके कोशरूप गर्भसे उठकर कमलसे प्रथम उत्पन्न ब्रह्मा कहाते हैं, और जागरण कल्पके अनंतर संकल्पात्मक मनरूपसे कल्पित आकारवाले ब्रह्माके संकल्पकी लक्ष्मीने भावी सर्ग विपयमें उद्योग किया ॥ १५ ॥ इसके पश्चात् महा प्रकाशयुक्त तेजको संकल्पसे रचा, वह तेज शरत्कालके अंतमें हिमके समान पांडुरचक्रोंसे दिशा अंतरालोंको चक्रके समान करनेवालाथा ॥ १६ ॥

पक्षप्रतिमनिस्यूतकर्मणातिगुणाक्षरम् ॥ पुंजपिंजरपर्यंतंहेमज्ञाननिभांबरम् ॥ १७ ॥ जालहेमलता जालजटालनिजमंदिरम् ॥ कचत्प्रसरदुद्यानाकारकुंडलमंडितम् ॥ १८ ॥ तंशरीरंमनस्तस्मिंस्ततस्ते जसिभास्वरे ॥ आत्माकारसमाकारंभास्वरंसमकल्पयत् ॥ १९ ॥ सततस्तेजसस्तस्मादभ्युदेतिदि वाकरः ॥ जालमंडलमध्यस्थोज्वलत्कनककुंडलः ॥ २० ॥

अर्थ—पक्षियोंके पक्षके सदृश दोनोंभागमें सूचिकर्मसे सूत्रके विस्तारसे मानो अनेक सूत्रमय क्षय धर्म वर्जित शून्य करनेहारा विस्तृत तेजोंके समूहसे दिगंतको पिंजराके सदृश करनेवाला, और सुवर्णके तुल्य प्रकाशशील आ-वरणरहित अपरिच्छिन्न तथा प्रकाशरूप होनेसे ब्रह्मज्ञानके प्रकाशको करनेवालाथा ॥ १७ ॥ कमलदलोंके प्रवेशके लिये प्रविष्ट किरणोंसे झरोखोंमें रचित सुवर्णके लताजालोंके समान भास्वर केशरोंसे ब्रह्माके मंदिरको जटायुक्त क-रनेवाला, और देदीप्यमान, फैलते हुये बनाकार कुण्डलोंसे (किरणके अवर्तोंसे) वह तेज शोभितथा ॥ १८ ॥ उस तेजो मण्डलीकी सृष्टिके अनन्तर चतुर्मुखाकारसे स्थित पूर्वोक्त मनने उस प्रकाशमय तेजमें तेजोमय भास्वर, पुराण आदिमें प्रसिद्ध अपने सदृश आकारवाले शरीरको संकल्पसे रचा ॥ १९ ॥ उस पिंडीभूत तेजसे, प्रभामय मं-डलके मध्यमें स्थित, जाज्वल्यमान कुण्डलके सदृश भगवान् सूर्य अद्यावधि उदयको प्राप्त होतेहैं ॥ २० ॥

ज्वलज्जटाभारधरोपांतविस्फारपावकः ॥ ज्वालाविशालावयवःपूरिताकाशमंडलः ॥ २१ ॥ अथब्रह्मा महाबुद्धिरन्यास्तास्तेजसःकलाः ॥ अपाल्ययदसद्ब्रह्मातरंगानिवसागरः ॥ २२ ॥ तेपिसंकल्पसंप्रा प्तसिद्धयःसमशक्तयः ॥ यथासंकल्पितंवस्तुक्षणाद्दृष्ट्वापुरःस्थतः ॥ २३ ॥ संकल्पयंतोयान्यांस्तेनानाभू तगणान्बहून् ॥ भूतेष्वन्यांस्तुतेष्वन्यांस्तेष्वन्यान्विविधानपि ॥ २४ ॥

अर्थ—जलती हुई ज्वालाकी पंक्तिधारी विशाल अग्नि सहित तथा महा अवयव सहित और आकाश मण्ड-लको पूर्ण करनेको समर्थ भगवान् सूर्य्य हैं ॥ २१ ॥ इसके पश्चात् समष्टि बुद्धिमय सर्वज्ञ और महा बुद्धिमान् चतुर्मुख ब्रह्मा सूर्यकी सृष्टिसे शेष (बाकी) तेजकी कलाओंका विभाग नव (९) भेद ऐसे प्रक्षेप किया जैसे समुद्र तरंगोंका ॥ २२ ॥ और वेभी तेजके खण्ड ब्रह्माके संकल्पके कारण प्राप्त समस्त सिद्धि, और ब्रह्माके समान शक्ति सहित प्रजापति होके अपने संकल्पके अनुसार वस्तुको क्षणमें संमुख देखके उसको प्राप्त किया ॥ २३ ॥ वे मरीचि आदि प्रजापतियोंनेभी जिन पुत्रपौत्र परंपरासे देवदानवादि जाति भेदोंसे तथा अनेक व्यक्तिभेदोंसे बहुत गणोंका संकल्प किया और उन २ को पायाभी और भूतोंमें अन्य मैथुनी सृष्टि हुई, उनसे पुनः और उनसे पुनः इसी प्रकार अनेक प्रकार सृष्टि परंपरा बढी ॥ २४ ॥

संस्मृत्यवेदांस्तदनुयज्ञक्रमगुणान्बहून् ॥ जगद्गृहादयंब्रह्मामर्यादांसमकल्पयत् ॥ २५ ॥ ब्राह्मंरूप मुपादायमनोनाममहद्वपुः ॥ तनोतीत्थमिमांदृष्टिंभूतसंततिसंकुलाम् ॥ २६ ॥ समुद्राचलवृक्षाढ्यांकृत लोकोत्तरक्रमाम् ॥ मेरुभूपीठदिक्कुंजजटालोदरमंडलाम् ॥ २७ ॥ सुखदुःखजराजन्ममरणस्वाधिबोधि ताम् ॥ रागद्वेषमयोद्विग्नांगुणत्रयमयात्मिकाम् ॥ २८ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् ब्रह्मा वेदोंका स्मरण करके इस जगद्रूप गृहसे बहुत यज्ञ क्रमके गुण और उनके म-र्यादाकीभी कल्पनाकी ॥ २५ ॥ इसी रीतिसे यह मन विशाल शरीरवाला ब्रह्माका रूपधारण करके प्राणियोंके स-न्तानसे व्याप्त इसी संकल्पमयी दृष्टिको विस्तार करताहै ॥ २६ ॥ यह सृष्टि समुद्र पर्वत तथा वृक्षादिसे पूर्ण, लो-कोंके उत्तर क्रम क्रियायुक्त मेरू, भूमण्डल, तथा दिशाओंके कुंजोंसे जटासहित उदर मण्डलधारिणी रची है॥२७॥ तथा शारीरिक सुखदुःख वृद्धावस्था तथा जन्ममरणोंसे, और मानसी चिंताओंसे यह संसार त्याज्यहै, इसप्रकार बोधित करानेवाली रागद्वेषमय होनेसे उद्विग्नताका कारण और सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुणमयी यह रचीगई है २८

मनोहस्तैर्विरिंचोत्थैर्यद्यथाकल्पितंपुरा ॥ तत्तथैवाखिलंदृष्टंदृश्यतेद्यापिमायया ॥ २९ ॥ इत्थंसर्वेषु भूतेषुकेषुचित्त्वथवापुनः ॥ संकल्पयतिसंसारंपश्यतिचित्स्थितम् ॥ ३० ॥ मोहएवंमयोमिथ्या जागतःस्थिरतांगतः ॥ संकल्पनेनमनसाकल्पितोचिरतःस्वयम् ॥ ३१ ॥ संकल्पवशतःसर्वाःप्रसवं तिजगत्क्रियाः ॥ संकल्पवशतोदेवानियांतिनियतिस्थिताः ॥ ३२ ॥

अर्थ—ब्रह्मासे आविर्भूत मनरूप हस्तोंसे पूर्वकल्पमें जिस वस्तुको जैसे देखनेको तथा प्राप्त होनेको कल्पित कियाहै वह अबभी मायासे वैसाही देखपडती है और प्राप्त होती है ॥ २९ ॥ इसप्रकार समष्टिपक्षमें संपूर्ण भूतोंमें और व्यष्टि पक्षमें किन्ही जीवोंमें स्थितमन संसारका संकल्पकरताहै और उसको वैसाही देखताहै ॥ ३० ॥ इसप्रकार इस-

मिथ्या मोहमय जगत्को संकल्पात्मक मनने शीघ्र स्वयं रचाहै, और स्थिरताको प्राप्त हुआहै ॥ ३१ ॥ संकल्पकेही वशसे संपूर्ण जगत्की क्रिया उत्पन्न होती हैं और संकल्पकेही वशसे नियतिमें स्थित देवता लोगभी उत्पन्न होतेहैं ॥३२

कोपिताया:प्रजानाथैर्जगत्स्रष्टे:कुलोद्भवः ॥ ब्रह्मासंचिंतयत्येपपद्मासनगतःप्रभुः ॥ ३३ ॥ मनःस्पंदनमात्रेणचित्रंचित्तंयदुत्थितम् ॥ सृष्टिर्वाभोगिनीस्फाराव्यवहारविकारिणी ॥ ३४ ॥ रुद्रोपेंद्रमहेंद्राद्याशैलसागरसंकुला ॥ पातालरोदोदिक्स्वर्गमार्गसंकटकोटरा ॥ ३५ ॥ संकल्पजालमत्यंतंमयेदमभितस्ततम् ॥ अधुनाविरतोस्म्यस्माद्विकल्पोल्लासनक्रमात् ॥ ३६ ॥

अर्थ—अपने २ उत्कर्षकेलिये मनुष्य आदि प्रजाओंमें धर्माधर्मकी वृद्धिके अर्थ प्रयत्न करते हुये इन्द्र विरोचन आदि प्रजानाथोंसे, तथा सात्विक, राजस, और तामस वृत्तियोंमें प्रवृत्तिके कारण जन्म बंध वृद्धावस्था और रोगादि सहस्रों क्लेशोंसे पीडित इस जगत्की सृष्टिसे विरक्त, सब प्रजाओंके कुलके उत्पत्तिस्थान, और पद्मासनपर स्थित यह प्रभु ब्रह्मा वक्ष्यमाण ऐसी चिंता करतेहैं ॥ ३३ ॥ कि मनके स्पंदमात्रसे व्यष्टिजीवकी उपाधिभूत विचित्र चित्त तथा उसके उपभोगार्थ वडे व्यवहारोंसे विशालरूपी इस पृथिवीको मैंने संकल्पजालसेही चारों ओरसे विस्तारित किया ॥ ३४ ॥ और रूद्र, वामन, (विष्णु) इंद्र महेंद्रादि सहित, पर्वत तथा समुद्रादिसे व्याप्त, पाताल, आकाश-दिशा और स्वर्गमार्गोंसे पूर्ण कोटरवाली यह भूमि आदि जो कुछहै मैंने अपना महान् संकल्प जालही चारों ओरसे विस्तारित कियाहै, परंतु अब इस संकल्पविकल्पादि क्रमसे मैं विरक्तताको प्राप्त हुआ हुं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

इतिनिश्चित्यविरत:कल्पनानर्थसंकटात् ॥ अनादिमत्परंब्रह्मस्मरत्यात्मानमात्मना ॥ ३७ ॥ तमासाद्यतदाभासेपदेगलितमानसे ॥ सुखंतिष्ठतिशांतात्मातल्पेध:श्रमवानिव ॥ ३८ ॥ निर्ममोनिरहंकारः परांशांतिमुपागतः ॥ अविक्षुब्धइवांभोधिरात्मनात्मनितिष्ठति ॥ ३९ ॥ ध्यानात्कदाचिद्भगवान्स्वयंविरमतिप्रभुः ॥ बंधनात्सलिलस्पंदात्सौम्यत्वादिववारिधिः ॥ ४० ॥

अर्थ—ऐसा निश्चय करके ब्रह्माजी कल्पनाके अनर्थ रूप संकटसे शांतिको प्राप्त हुये, और आदि अंत तथा मध्य शून्य परब्रह्मरूप अपने आत्माको आत्मासे स्मरण करने लगे ॥ ३७ ॥ स्मरण मात्रसे उस परमात्माको प्राप्त होके सर्वत्र प्रकाशमय, और मनशून्य सप्तमभूमिकारूप पदमें शांत चित्तहोके ऐसे सुखसे स्थितहैं जैसे श्रमवान् (थका हुआ) पुरूप एकान्तकी शय्यापर ॥ ३८ ॥ ममता और अहंकार रहित परम शांतिको प्राप्त अपने आत्मासे अपने आत्मामें ऐसे स्थित रहतेहैं जैसे क्षोभ रहित समुद्र ॥ ३९ ॥ कदाचित् वह भगवान् ब्रह्मा एकाकार वृत्तिकी धारणारूप ध्यानसे इस प्रकार विरामको प्राप्त होते हैं जैसे जलकी गतिसे शांत समुद्र ॥ ४० ॥

विचारयतिसंसारंसुखदुःखसमन्वितम् ॥ आशापाशशतैर्बद्धंरागद्वेषभयातुरम् ॥ ४१ ॥ ततःसकरुणाक्रांतमनाभूतविभूतये ॥ करोतीहमहार्थानिशास्त्राणिविविधानिच ॥ ४२ ॥ अध्यात्मज्ञानगर्भाणिवेदवेदांगसंग्रहम् ॥ पुराणादीनिचान्यानिमुक्तयेसर्वदेहिनाम् ॥ ४३ ॥ पुनस्तत्पदमालंब्यपरमापद्विनिर्गतः ॥ स्वस्थस्तिष्ठतिशांतात्मानिर्मंदरइवार्णवः ॥ ४४ ॥

अर्थ—कदाचित् सुख और दुःखसे संयुक्त सैकडों आशाके पाससे बद्धराग और द्वेपके भयसे व्याप्त इस संसारका विचार करतेहैं ॥ ४१ ॥ इसके पश्चात् करूणासे आक्रांत होकर प्राणियोंके ऐश्वर्यकेलिये वडे २ अर्थसहित नानाप्रकाके शास्त्रोंको रचतेहैं ॥ ४२ ॥ वे शास्त्र अध्यात्मज्ञान पूर्ण वेद और वेदांगोंका संग्रहरूप पुराणादिक तथा अन्यभी सब प्राणियोंके मुक्तिके अर्थ रचतेहैं ॥ ४३ ॥ पुनः सृष्टिके विक्षोभरूप आपत्तिसे निकलकर पूर्वोक्त सप्तम भूमिकारूपी परमपदका अवलंबन करके प्रसन्न चित्त मंदराचल पर्वतसे रहित समुद्रके सदृश स्वस्थचित्त रहतेहैं ॥४४

कदाचिअवलोक्यजगच्चेष्टांमर्यादांविनियोज्यच ॥ ब्रह्माकमलपीठस्थःपुनःस्वात्मनितिष्ठति ॥ ४५ ॥ कदाचिन्नार्जवंनास्यसंत्यात्केवलंसर्वसंकल्पपरिहीनया ॥ यदृच्छयानुग्रहार्थंलोकक्रमवदास्थितः ॥ ४६ ॥ नार्जवंनास्यसंत्यागोवपुषोनचसंग्रहः ॥ नानानचेतनंनेहनस्थितिर्नास्थितिःस्थिता ॥ ४७ ॥ सर्वभावसमारंभःसमःसर्वासुवृत्तिषु ॥ परिपूर्णार्णवाकारोमुक्तशेषोवतिष्ठते ॥ ४८ ॥

अर्थ—कमलके आसनपर स्थित भगवान् ब्रह्मा पुनः जगत्की चेष्टाका देखकर और उनकी मर्यादाको नियत करके अपने आत्मामें स्थित रहतेहैं ॥ ४५ ॥ कदाचित् सम्पूर्ण संकलपसे वर्जित यदृच्छासे केवल अनुग्रहार्थ लोकके सदृश क्रम करते हुये स्थित रहतेहैं ॥ ४६ ॥ न इनको समाधिकालकी कोमलता, न सृष्टि और संहारकालमें उसका त्याग, देहादिकका संग्रह, सृष्टिरूपसे अनेकता और समाधिसे व्युत्थानकालमें कमलपर स्थिति और अन्यत्र

स्थितिका अभाव यह कुछभी नहीं होते ॥ ४७ ॥ यह ब्रह्माजी सब पदार्थोंमें समान आरंभ करनेवाले सब वृत्तियोंमें पूर्णरूप परिपूर्ण समुद्रके समान आकारवाले मुक्त पुरुषके समान स्थित रहतेहैं ॥ ४८ ॥

कदाचित्केवलंसर्वसंकल्पपरिहीनया ॥ यदृच्छयानुग्रहार्थंलोकानांप्रतिबुध्यते ॥ ४९ ॥ एषाब्राह्मी स्थितिःपुण्यामयोक्तामहामते ॥ यातांविधिसुरानीकौतामेतांसात्विकीमपि ॥ ५० ॥ चित्सर्गोपरमा काशेब्रह्मणोयन्मनःफलम् ॥ उदेतिप्रथमःसैवब्रह्मत्वंसमवाश्नुते ॥ ५१ ॥ सर्गेस्थितिंगतेत्वन्यायोदेतिकल्पनापरा ॥ साव्योमानिलमाश्रित्यप्रविश्यौषधिपल्लवान् ॥ ५२ ॥

अर्थ—कदाचित् सम्पूर्ण संकलपसे रहित यदृच्छासे केवल लोकोंके ऊपर अनुग्रहार्थ जाग्रवदशाको प्राप्त होते हैं ॥ ४९ ॥ हे रामजी ! जो मैंने आपसे कहा यही पवित्र ब्राह्मी स्थिति है, इसको प्रथम प्रजापतियोंका दल जो स्वयं ज्ञान ऐश्वर्यादिसे संपन्न रहताहै वह तथा देवतादि दल और मनुष्य आदिका दलभी उपासनादि द्वारा इस सात्विकी स्थितिको प्राप्त होतेहैं ॥ ५० ॥ क्योंकि ब्रह्माका प्रथम दल. संपूर्ण सृष्टिका उपरमस्थान चिद्रूप ब्रह्माकाशमें ब्रह्माके मनरूपसे कल्पितफलके समानहै वही उदयको प्राप्त होताहै वह प्रजापतियोंका दल स्वयं सिद्धज्ञान और ऐश्वर्यसे संपन्न प्रथम ब्रह्मको अच्छीतरहसे जानकर उसको प्राप्त होतेहै ॥ ५१ ॥ और प्रजापति औषधि आदिकी सृष्टिके स्थित होनेपर दूसरा जो देव यक्षादिका दलहै जो प्रथमकी अपेक्षा अल्पगुण विशिष्टहै वह चन्द्रकलारूपसे आकाश और वायुका आश्रय करके औषधि और पल्लवोंमें प्रविष्ट होकर सोम घृत तथा दुग्धभावसे अग्निमें हवन होनेसे सूर्यमण्डलमें अमृताकारमें परिणत होकर प्रजापतियोंसे मुक्त होकर वीर्यदशामें प्रसिद्धिद्वारा ॥ ५२ ॥

काचित्सुरत्वमायातिकाचिदायातियक्षताम् ॥ उदेतिप्रथमंसैषाब्रह्मत्वंसमवाश्नुते ॥ ५३ ॥ यायत्सत्वंसमन्वेतिसातदेवाशुजायते ॥ जातासंसर्गवशतस्तस्मिन्नेवचजन्मनि ॥ बध्यतेमुच्यतेवासौस्वयमन्वारभेदतः ॥ ५४ ॥ इत्थंगतास्थितिरियंकिलरामभद्रसृष्टिःस्फुटप्रकटसंकटकर्मलब्धा ॥ आविर्भवेद्विविधवेगविहारभारसंरंभगर्भविधृताकलनापदेसा ॥ ५५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे कमलजव्यवहारवर्णनं नामैकोनषष्टितमःसर्गः ॥ ५९ ॥

अर्थ—कोई तो देवभावको प्राप्त होताहै, और कोई यक्ष भावको, सो यह ब्रह्माका द्वितीय दल सात्विक होनेसे मनुष्यादिकी अपेक्षा प्रथम ज्ञानादि ऐश्वर्यकी संपत्तिसे उदित होताहै. इसलिये ब्रह्मकोही पृथक् प्राप्त होताहै ॥ ५३ ॥ देवताओंमें वा मनुष्योंमें उत्पन्न जो व्यक्तिहै जैसे ज्ञान वैराग्य करके सम्पन्नहो वह उस संगतिसे शीघ्र वैसेही गुणसहित होजाती है, भोगलंपटके संगके वशसे स्वयं उसीप्रकार होकर बंधनको प्राप्त होती है और उसके विरुद्ध ज्ञान वैराग्य होनेसे मुक्त होती है, इसलिये मनुष्यादि तृतीय दलको उचितहै कि अपने पुरुषार्थसे साधु समागम सत् शास्त्रका श्रवण और इंद्रिय और मनके जीतनेके उपायोंको जबतक फलकी प्राप्ति न हो तबतक अभ्यास करताजाय॥५४॥ हे रामचन्द्रजी ! इसप्रकार उपासना यज्ञादि कर्म और निषिद्धकर्मोंसे प्राप्त स्वरूप तथा प्रारब्धोंके वेगसे और क्रीडाओंके कौतुकोंसे और क्रोध लोभ व्यवहारोंसे वन्धीहुई यह सृष्टि सृष्टिकी ओर उन्मुख ब्रह्ममें सत्ताको प्राप्त हुई है; सो कदाचित् निमित्त वशसे प्रगट होती है ॥ ५५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे कमलजव्यवहारवर्णन नामैकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥

ब्रह्मासे आविर्भूत सात्विक जीवोंका और प्रधानतासे ज्ञानके अधिकारियोंका शरीरके ग्रहणका क्रम इस ६० के सर्गमें वर्णन किया जाताहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ अस्मिन्भगवतिब्रह्मंश्वपलंपदमाश्रिते ॥ पितामहेमहाबाहोकृतसर्गव्यवस्थितौ ॥ १ ॥ जगज्जीर्णारघट्टेस्मिन्वहतिस्वव्यवस्थया ॥ विप्रेतभूतघटयारज्ज्वाजीविततृष्णया ॥ २ ॥ ब्रह्मोत्थेषुचभूतेषुविशत्सुभवपंजरम् ॥ आवर्तेष्वीश्वरव्योमबालमध्यविवर्तिषु ॥ ३ ॥ मनःस्वन्येषुवांतांतलोलाहतकणेष्विव ॥ अनारतंविनिर्यांतिविशंत्यन्येतथाभितः ॥ ४ ॥ रामब्रह्मणिजीवौघास्तरंगाइववारिधौ ॥ अनाद्यंतपदोपन्नाःकलनापदमागताः ॥ ५ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे महाबाहो रामजी ! जब सृष्टिकी व्यवस्था करनेवाले भगवान् ब्रह्माजी समाधिसे उठतेहैं ॥ १ ॥ और जब प्रेत प्राणिरूप घटोंकी मालारूप रज्जुसे पुनः २ जन्ममरणरूप जल ग्रहण करके विषयकी तृष्णासे आरोह और अवरोहसे अपनी व्यवस्थाके अनुसारसे वह प्राचीन जगद्रूपी अरघटी यंत्र चलातेहैं ॥ २ ॥ तथा जब ब्रह्मसे उत्पन्न प्राणी संसाररूपी पंजरमें प्रवेश करतेहैं और माया सवलित ब्रह्मसे प्रथमोत्पन्न आकाशके मध्यमें वायुके यत्किंचित् सम्पर्कसे ताडित कणके तुल्य अन्य सब प्राणी भ्रमणशील होतेहैं ॥ ३ ॥ हे रामचन्द्रजी ! तत्त्वात्म समुद्रमें तरंगके समूहोंके समान ये जीवोंके समूह जो कि अनादि कालसे उत्पन्न हुये हैं और कल्पनापदको प्राप्त हुए हैं, निरन्तर इनमेंसे कोई उपाधिके नाशसे नष्ट होजातेहैं और कोई उपाधिके लयसे सुषुप्तिके समान विश्रांतिके लिये प्रवेश करतेहैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

भूताकाशंविशंत्येतेधूमश्रीरिवचांबुदम् ॥ एकतांयांतिजीवौघाब्रह्मण्याकाशमारुतैः ॥ ६ ॥ दिनंतन्मात्रवातेनतत्प्राणात्मतयायथा ॥ आक्रम्यंतेप्रचंडेनदैत्यौघेनामराइव ॥ ७ ॥ भूतप्राणानिलंतेनगंधवाहेनतेनच ॥ निविशंतिशरीरेषुजीवागच्छंतिवीर्यताम् ॥ ८ ॥

अर्थ—ये तृतीयदलके मनुष्य आदि जीव समूह भूताकाशमें ऐसे प्रवेश करतेहैं जैसे मेघमें धूमकी शोभा और ब्रह्ममें अध्यस्त आकाश तथा पवनके साथ जल तथा दुग्धके समान ब्रह्ममें एकताको प्राप्त होतेहैं ॥ ६ ॥ उसके पश्चात् तेज जल तथा पृथिवीकी उत्पत्ति होनेसे प्रकाशको पाकर शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धरूप तन्मात्रसहित पूर्वोक्तवायुसे और उसके उपभोगमें हेतुभूत मुख्य और अमुख्य दोनोंप्रकारकी प्राणरूपतासेभी सब जीव ऐसे वश किये जातेहैं जैसे दैत्योंके समूहसे देवता ॥ ७ ॥ इसीप्रकार लिंगदेहको पाकर उस प्राणके आत्मभाव, वायु तथा भूत तन्मात्र वायुकेभी साथ अन्न जलादि द्वारा अंडजादि चारों प्रकारके प्राणियोंके समूहोंके अन्नग्रास वा अपान वृत्तिभेदको प्राप्त होकर सब जीव कर्मोंके अनुसार शरीरोंमें प्रवेश करतेहैं और वीर्यदशाको प्राप्त होतेहैं ॥ ८ ॥

ततोजगतिजायंतेभवंतिप्राणिनोऽस्फुटाः ॥ अन्याधूमादिमाजातारामजीवपरंपरा ॥ ९ ॥ तन्मात्रवतितावद्भिरशून्यैंबरकोटरे ॥ उदेतियावद्भगवानिंदुरुद्दाममंडलः ॥ १० ॥ क्षीरांबुधिनिधौलोलैःपांडुवद्रश्मिभिर्जगत् ॥ ततस्तेष्वतिरम्येषुचंद्ररश्मिषुसंपतत् ॥११॥ करोतिविहगीलीलावनेप्रेष्यांतरेष्विव ॥ तेभ्योपिस्वरसेनैवयांतिपीवरतामपि ॥ १२ ॥

अर्थ—उसके अनंतर कोई अप्रकट ज्ञानैश्वर्यवाले प्राणी होके इस जगतमें उत्पन्न होतेहैं; और दूसरा दुर्लभी औषधि वनस्पति आदिमें प्रवेश करके दुग्धघृतादिरूपसे अग्निमें होम होके धूमादि मार्गसे चन्द्रमण्डलमें जीवोंकी परंपरा रूपसे प्रविष्टहै ॥ ९ ॥ पूर्वोक्त लिंगदेहमें प्रदीप्त मंडलवाले पूर्ण भगवान् चन्द्रमा जितने किरणोंसे जगत्का प्रकाश करते हुये उदय करतेहैं उतनेही चंचल और पांडुवर्ण किरणोंसे पूर्ण अतएव क्षीरसमुद्रके प्रतिनिधि (स्थानापन्न एवजी) आकाशके मध्यमें वह जाति स्थित रहती है ॥ १० ॥ उसके पश्चात् अति रमणीय नन्दन आदि बनमें चन्द्रमाके किरणोंके गिरनेपर ॥ ११ ॥ किरणोंके अनुसार उसी बनमें दासी वा चंचल पक्षिणीके समान प्रवेश करती है, अनंतर फलरूप होकर चन्द्रमा और सूर्यकी किरणोंके निमित्तसे अपने रससे क्रमसे वृद्धि और मधुरताको प्राप्त होती हैं ॥ १२ ॥

फलेषुतेषुबध्नातिपदमिद्धकरात्क्षता ॥ जीवालीक्षीरपूर्णेषुमातुःस्तनभरेष्विव ॥ १३ ॥ ताःफलावलयःपक्वाभविष्यंतिमरीचिभिः ॥ तेष्वेववीर्यमागत्यातिष्ठंत्यप्राप्तबोधिताः ॥ १४ ॥ प्रसुप्तवासनाजालजीवतागर्भपंजरम् ॥ अधितिष्ठतिबीजश्रीःसुप्तपत्रायथावटम् ॥ १५ ॥ यथाकाष्ठेस्थितश्चाग्निर्यथामृदिघटाःस्थिताः ॥ अनेकक्रमयोगेनपरागत्यमहेश्वरात् ॥ १६ ॥

अर्थ—इसप्रकार पूर्वोक्त जीवोंकी पंक्ति चन्द्रमाके किरणसे विभक्त होकर रससे पूर्ण उन फलोंमें ऐसी स्थितिको बांधती है जैसे माताके स्तनमें बालक ॥ १३ ॥ वे फलके अवयव सूर्यकी किरणोंसे परिपक्व होकर और कश्यपादि ऋषियोंसे मुक्त होनेपर मूर्छितके सदृश वीर्यदशाको प्राप्त होतेहैं ॥ १४ ॥ शांत वासनाजालसहित यह जीवता गर्भरूपी पंजरमें इसप्रकार निवास करती है जैसे अप्रगट पत्र अंकुरादि सहित वटके बीजकी शोभा ॥ १५ ॥ जिसप्रकार काष्ठमें अग्नि और मृत्तिकामें घट स्थितहै इसी प्रकार परमात्मासे प्रलयमें आकर वा उपाधिके नाश होनेपर आकाशादिमें वा चन्द्रादि किरणोंमें जीव स्थितहै ॥ १६ ॥

अदृष्टान्यशरीरश्रीःक्रमतेयोनचोदति ॥ सहिसत्त्येवजातिःस्याद्वदारुव्यवहारवान् ॥ १७ ॥ तेनैवमोक्षभागीचेज्जन्मनासतुसात्विकः ॥ अथैतांयोनिमासाद्यकृत्यांजन्मपरंपराम् ॥ १८॥ रक्षार्थंप्राप्तजन्माचेत्तमोराजससात्विकः ॥ पाश्चात्यजन्मनापुंसोरामवक्ष्यामिचाधुना ॥ १९ ॥ प्राधान्येनयथायातःसंसारमितिसात्विकः ॥ सकदाचिन्नकश्चिचसंभवत्यनघाकृते ॥ २० ॥

अर्थ—जिस जीवने अन्य स्त्रीपुत्रादि शरीरकी शोभाको नहीं देखा अर्थात् सबसे विरक्त होकर मरणतक अपने कालको बितायाहै और जो पुरुष रागादिकोंसे ऐहिक तथा पारलौकिक भोग साधनोंमें नहीं प्रवृत्त होता उस पुरुषकी सात्विकी जाति है, और वह जीवन्मुक्तोंके उचित व्यवहारवान्है ॥ १७ ॥ उसी जन्मसे जिसमें शरीर जो मोक्षका भागी हो उसको सात्विक कहतेहैं, और जो योनिको प्राप्त होकर छेदन करनेके योग्य जन्मकी परंपराको विषय लंपटतासे नहीं छेदन करता ॥ १८ ॥ किंतु उसीके रक्षाहीकेलिये शरीर प्राप्त कियाहै उसको तमोगुणयुक्त होनेसे राजस सात्विक कहतेहैं और जिसपुरुषकी अर्थात् प्रथम दलकी इसी अंतिम जन्मसे मोक्ष होती है उसके विषयमें हे राम ! अब मैं कहूंगा ॥ १९ ॥ जो जीव प्रधानतासे स्वयं ज्ञान ऐश्वर्ययुक्त प्रजापतिके अधिकारसे संसारमें प्राप्त हुआ है वह केवल सात्विकहै हे पापरहित रामजी ! वह कदाचित्भी संसारमें नहीं उत्पन्न होता ॥ २० ॥

संभवंतीहपुरुषारामराजससात्विका ॥ प्रविचार्यसमायातामंतव्यंचेहतद्धिया ॥ २१ ॥ प्राधान्येनसमायातायेयदापरमात्मनः ॥ दुर्लभाःपुरुषारामतेमहागुणशालिनः ॥ २२ ॥ येचान्येविविधामूढामूकास्तामसजातयः ॥ तेषांस्थावरतुल्यानांकिंचरामविचार्यते ॥ २३ ॥ कतिपयानगताभवभावनांनरसुराःप्रकृतक्रमजन्मनि ॥ अहमिवप्रविचारणयोग्यतामनुगतोननुराजससात्विकः ॥ २४ ॥ स्थितस्यतेमहापदाविचार्यैवमायता ॥ विचारयत्वमंजसातदद्यचेहनद्वयम् ॥ २५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे विचारपुरुषनिर्णयप्रसंगोपदेशजीवावतारो नामषष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥

अर्थ—हे रामचंद्रजी ! राजस और सात्विक पुरुष पुनः संसारमें उत्पन्न होतेहैं और केवल सात्विक पुरुष पूर्व जन्ममेंही आत्मतत्वको विचारकरके इस संसारमें जन्म धारण किया इस कारणसे इस जन्ममेंभी उसी बुद्धिसे आत्मतत्वका मनन वे करतेहैं ॥ २१ ॥ हे रामचन्द्रजी ! जो परमात्मासे अन्तिम जन्मकेलियेही प्रधानतासे प्रजापत्यादिके अधिकारमें आकार प्राप्त हुयेहैं वे महागुणशाली पुरुष इस संसारमें दुर्लभहैं ॥ २२ ॥ और जो तीनोंदलसे भिन्न राक्षस् पिशाच तिर्यगादि विविध प्रकारके मूढ और मूक तामस आदि जाति हैं वे स्थावरके तुल्यहैं, इसलिये उनके विषयमें आत्मज्ञानके विचारकी क्या अवश्यकताहै ॥ २३ ॥ हे रामचंद्रजी ! क्रमसे उत्तम जन्मपाकरभी देवता और मनुष्योंमें ऐसे जन विरलेही हैं जिनको संसारके भोगकी रुचि न हुईहो, मैंभी केवल आत्मतत्वकी विचारणाको प्राप्त हुआहुं इसलिये किंचित् रजोगुण युक्त सात्विकहुं ॥ २४ ॥ हे रामचंद्रजी ! महान् परमात्मा पदके अविचारसेही तुम स्थितहो इसलिये इसप्रकारकी संसारकी विस्तीर्ण भ्रांति तुमको हुई है उस पदको तुम अभी विचार करो तो केवल परमपद स्वरूपही तुमहो ॥ २५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे विचार पुरुष निर्णय प्रसंगोपदेश जीवावतारो नाम षष्टितमःसर्गः ॥ ६० ॥

एकषष्टितमःसर्गः ॥ ६१ ॥

राजस और सात्विक मुक्तिके योग्य जो जनहैं उनकी प्रसंशा तथा उनके विवेक और वैराग्यका क्रम इस ६१ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ येहिराजससात्विक्याजाताभुविमहागुणाः ॥ तेनित्यमेवसुदिताःप्रकाशाःखइवेंदवः ॥ १ ॥ नखेदमभिगच्छंतिव्योमभागोमलंयथा ॥ नापदाम्लानिमायांतिनिशिहेमांबुजंयथा ॥ २ ॥ नेहंतेप्रकृतादन्यत्तेनान्यत्स्थावरोयथा ॥ रमंतेस्वसदाचारैःस्वार्थेभ्यःपादपायथा ॥ ३ ॥ नित्यमापूर्यतांयातिसुधयामिंदुसुंदरी ॥ रामराजससत्वस्यमोक्षमायात्यसौयथा ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामचन्द्रजी ! जो महागुण सहित राजस और सात्विकी जातिसे इस पृथिवीपर उत्पन्न हुयेहैं वे नित्यही प्रसन्न और आकाशमें चंद्रमाके समान ज्ञान प्रकाशसे युक्तहैं ॥ १ ॥ वे खेदको कभी ऐसे

नहीं प्राप्त होते जैसे आकाशका भाग मलीनताको और जैसे रात्रिमें सुवर्णका कमल म्लानिको नहीं प्राप्त होता ऐसेही वे आपत्तिसे कभी म्लान नहीं होते ॥ २ ॥ और वे स्थावरके समान यथा प्राप्त वस्तुसे अन्य किसी पदार्थकी इच्छा नहीं करते और वृक्षोंके समान अपने स्वार्थोंसे सदा सदाचारमें रमण करतेहैं ॥ ३ ॥ हे रामजी ! रजोगुण तथा सत्वगुण युक्त पुरुपकी बुद्धि शांतिमय अमृतकी बुद्धि होनेपर पूर्णताको प्राप्त होती है, इसीसे शुक्लपक्षमें चंद्रमाके समान प्रकाश करती है जिससे कि प्राणीमोक्षको प्राप्त होजाताहै ॥ ४ ॥

[illegible]यपिनमुंचंतिशशिवच्छीततामिव ॥ प्रकृत्यैवविराजंतेमैत्र्यादिगुणकांतया ॥ ५ ॥ नवस्तबकभा[illegible]न्यालतयेववनद्रुमाः ॥ समाःसमरसाःसौम्याःसततंसाधुसाधवः ॥ ६ ॥ अब्धिवत्कृतमर्यादाभवंतिभवतासमाः ॥ अतस्तेपांमहाबाहोपदमापद्वासनम् ॥ ७ ॥ सततंतत्तुगंतव्यंगंतव्यंनापदर्णवे ॥ तथातथेहजगतिविहर्त्तव्यमखेदिना ॥ ८ ॥

अर्थ—और यह प्राणी विपत्तिमेंभी अपनी स्थित सौम्यताको ऐसे नहीं त्यागता जैसे चन्द्रमा शीतताको, और रजोगुण तथा सत्वगुण युक्त पुरुष अपने स्वभावहीसे मैत्री आदि गुणरूप प्रियासे ऐसे शोभित होते हैं ॥ ५ ॥ जैसे स्तनके तुल्य नूतन पुष्पोंके गुच्छोंसे प्रेम युक्त लतासे आलिंगित बनके वृक्ष, और निरन्तर समभाव तथा समरस तथा साधुओंसेभी साधु (उत्तम) होतेहैं ॥ ६ ॥ और समुद्रके सदृश मर्यादाको धारण कर्ता आपके समान वे होतेहैं इस कारण हे महाबाहो जो पद आपत्तिका स्थान (विपय) नहीं है ॥ ७ ॥ उसी पदमें, न कि आपत्तिके समुद्रमें उनको इस प्रकार गमन करना चाहिये जिसमें वे खेद रहित इस संसारमें विहार करें ॥ ८ ॥

आत्मोदयाश्चवर्द्धंतेयथाराजससात्विकाः ॥ अचिंत्यगत्यासच्छास्त्रंविचार्यंचपुनःपुनः ॥ ९ ॥ अनित्यतास्वमनसाविविधैवानुभावतः ॥ आद्यावंतेचयांनित्यंक्रियांत्रैलोक्यवर्त्तिनीम् ॥ १० ॥ पदार्थानापदेवानुभावयेन्नेतरत्सुधीः ॥ असम्यग्दर्शनंत्यक्त्वाव्यर्थमज्ञानसंततिम् ॥ ११ ॥ स्मर्त्तव्यंसम्यगेवेदंज्ञानमर्थमनंतकम् ॥ कोहंकथमिदंजातंसंसाराडंबरंविभो ॥ १२ ॥

अर्थ—और रजोगुणके क्षयसे युक्त आत्मानंदके लाभसहित पुरुष ऐसे वृद्धिको प्राप्त होतेहैं कि मूढोंके चिन्ता योग्य विषय गतिके त्यागसे उनको पुनः सत् शास्त्रही विचारके योग्य होताहै ॥ ९ ॥ और इसप्रकारके भावसे नानाप्रकारके निमित्तोंसे कथन करनेके योग्य संसारकी अनित्यताभी उनके विचारके योग्य होजाती है, इसी [illegible] (अनित्यतासे) इस लोकमें उपकारक लौकिक क्रियाको तथा मरणोत्तर परलोक उपकारक त्रिलोकीमें रहनेवाली यज्ञक्रियाको ॥ १० ॥ तथा उनके फलरूप स्त्री, पुत्र, पशु, धन, स्वर्ग विमान तथा अप्सरा आदि पदार्थोंकोभी विवेकसे शुद्धबुद्धि प्राणी आपत्तिरूप विचार करै, न कि यह संपत्तिरूपसे और बुद्धिमान् पुरुपको व्यर्थ अज्ञानकी सन्ततिरूप मिथ्या ज्ञानको त्यागे ॥ ११ ॥ और अनंत अर्थ प्राप्त करनेको इस वक्ष्यमाण ज्ञानको सदा स्मरण करना चाहिये हे प्रभो मैं कौन हुं और यह संसाररूपी आडंबर कैसे हुआ ॥ १२ ॥

प्रविचार्यप्रयत्नेनप्राज्ञेनसहसाधुभिः ॥ नचकर्मसुमंक्तव्यंनानर्थेनसहावसेत् ॥ १३ ॥ द्रष्टव्यःसर्वविच्छेदःसंसारानुगतःसदा ॥ साधुरेवानुगंतव्योमयूरेणांबुदोयथा ॥ १४ ॥ अहंकारस्यदेहस्यसंसारस्याप्लवस्यच ॥ स्वविचारमलंकृत्यसत्यमेवावलोकयेत् ॥ १५ ॥ शरीरमस्थिरमपिसंत्यक्त्वाघनशोभनम् ॥ वीतमुक्तावलीतंतुंचिन्मात्रमवलोकयेत् ॥ १६ ॥

अर्थ—इसप्रकार अपने सपाठियोंके साथ सेवादिक अतिप्रयत्नसे प्रसन्न गुरूसे विनयपूर्वक प्रश्न करके विचार करना चाहिये, और संसारी कामोंमें निमग्न न होना चाहिये और न अनर्थमें निवास करना चाहिये ॥ १३ ॥ और जो कुछ स्त्रीपुत्र आदि प्रिय वस्तु इस संसारमें है उस सबका नाश अवश्य होगा ऐसा सदा देखना चाहिये ॥ १४ ॥ आभ्यन्तर अहंकार बाह्य शरीर तथा स्त्रीपुत्रादि ये सब नौका रहित समुद्रके समान हैं इसलिये अपने पूर्ण विचारसे सत्यकोही देखना चाहिये ॥ १५ ॥ अहंकार सहित शरीरको त्यागके अति शुभ तथा मुक्ता (मोती) की पंक्तियोंमें व्याप्त सूत्रके सदृश संपूर्ण देहादिके अन्तर्गत साक्षि चिन्मात्रको देखना चाहिये ॥ १६ ॥

तस्मिन्पदेनित्यततेसर्वगेसर्वभाविते ॥ शिवेसर्वमिदंप्रोतंसूत्रेमणिगणायथा ॥ १७ ॥ येवचिद्भुवनाभोगेभूपणेव्योम्निभास्करे ॥ धराविवरकोशस्थेस्वेवचित्कीटकोदरे ॥ १८ ॥ कुंभव्योम्नांनभेदोस्तियथैहपरमार्थतः ॥ चितौशरीरसंस्थानांनभेदोस्तितथानघ ॥ १९ ॥ सर्वेपामेवभूतानांतिककद्वादिभेदिनाम् ॥ एकत्वादनुभूतेर्हिकुतश्चिन्मात्रभिन्नता ॥ २० ॥

अर्थ—नित्य विस्तृत सर्वव्यापी और सर्वपूजित उस कल्याणस्वरूपपदमें यह सम्पूर्ण जगत्जाल ऐसे गुंथाहै जैसे सूत्रमें मणियोंका ॥ १७ ॥ जो चित् विशाल संसारमें, भूषणमें, आकाशमें, सूर्यमें, और पृथिवीके कोटररूपी कोशमें है, वही चित् एक कीट (कीट पतंग) के उदरमेंभी है ॥ १८ ॥ जैसे घटाकाश और महदाकाशमें कुछ भेद नहीं है ऐसेही हे पापरहित रामजी ! शरीरमें सम्पूर्ण जीवचेतनोंका ब्रह्मचेतनमें यथार्थमें कुछभी भेद नहीं है ॥ १९॥ तिक्त कटु आदिके अनुभव करनेवाले प्राणियोंमेंसे एक पुरुषके आस्वादनीय तिक्त कटु आदि रसका भेद रहतेभी परन्तु अनुभवमात्रमें भेद नहीं है तो चिन्मात्रमें भेद कैसे होसकताहै ॥ २० ॥

एकस्मिन्नेवसततंस्थितेसन्मात्रवस्तुनि ॥ जातोयमयमुत्पन्नष्टइतितेपांतवेहधीः ॥ २१ ॥ नचतन्नास्तिव स्त्वस्तियद्भूत्वासंप्रलीयते ॥ आभासमात्रमेविदंनसन्नासच्चराघव ॥ २२ ॥ उद्भूतेनाप्रशांतेनचेतसास पदिस्थितम् ॥ नेहमोहांतआमोक्षान्नेदंयत्तद्वस्तुच ॥ २३ ॥ किंकिलासतिरामेहमोहजालेसमुज्झति॥ यत्किंचित्संगसंगत्याविमोहेकारणंहितत् ॥ २४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे जननमरणसंस्थितिर्नामैकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

अर्थ—केवल एक चिन्मात्र वस्तु स्थित रहनेपरभी यह उत्पन्न हुआ, यह नष्ट हुआ, यह तुमारी मूढजनोंमें प्रसिद्ध बुद्धि है न कि शास्त्रसिद्ध ॥ २१ ॥ हे रामजी ! ऐसा कोईभी पदार्थ नहीं है जो होके नष्ट होजाय यह सब जगत् आभासमात्रहै, नतो सत् न असत् है ॥ २२ ॥ क्योंकि जो मोक्षपर्य्यन्त अभिव्यक्त तथा शान्तचित्तसे स्पष्ट ग्रहण वर्तमानकालमें स्थितहै वह असत् नहीं है, और अज्ञानकी निवृत्ति होनेपर कैवल्य मुक्तिपर्य्यन्त पूर्वकालमें यह जगत् नहीं है इस हेतुसे सबभी नहीं है, इस कारणसे अनिर्वचनीय है ॥ २३ ॥ हे रामजी ! यदि मोहजाल सर्वथा असत् है तो ज्ञानसे किस वस्तुका निरास होगा, और सर्वथा सत् है तोभी ज्ञानसे क्या जायगा, इसलिये अनिर्वचनीय अध्यायसे रज्जु सर्पादिके सदृश यह दृश्यसमूहका अज्ञान कारणहै ॥ २४ ॥ हे रामजी ! इस जगत्के अत्यन्त असत् वा अत्यन्त सत् होनेपर अज्ञानका कारण कैसे होसकताहै इसलिये तुम जन्ममरण आदि संस्थितियोंमें आकाशके सदृश सदा निर्लिप्त शांतरूप स्थित रहो ॥ २५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये स्थितिप्रकरणे भाषाऽनुवादे जन्ममरणसंस्थितिर्नामैकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

श्रीरामजीमें सम्पूर्ण शास्त्रोक्त गुणोंकी स्थिति, तथा अन्य साधारण पुरुषको सत्संग और पुरुषार्थसे उत्तम स्थितिका वर्णन इस ६२ के सर्गमें कियागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ धीरोविचारवान्प्राज्ञःसाक्षादादावेवमहाधिया ॥ शास्त्रेणविदुषाशास्त्रंसुजनेनवि चारयेत् ॥ १ ॥ सुजनेनवितृष्णेनविदुषामहतासह ॥ प्रविचार्यमहायोगात्पदमासाद्यतेपरम् ॥ २ ॥ शास्त्रार्थसुजनासंगवैराग्याभ्याससत्कृतः ॥ पुरुषस्त्वमिवाभातिनिजविज्ञानभाजनम् ॥ ३ ॥ त्वमुदार निजाचारोधीरोगुणगणाकरः ॥ अधितिष्ठसिनिर्दुःसंवीतसर्गमनोमलः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! धीर और विचारवान् पुरुष अपनी महाबुद्धिसे तथा शास्त्रान्तरकी सहायतासे सज्जन और विद्वान् गुरुके निकट विधिपूर्वक जाके प्रथम स्वयं शास्त्रका विचार करे ॥ १ ॥ सज्जन, तृष्णारहित महाविद्वान्के साथ शास्त्रका विचार करके नाशपर्य्यन्त समाधिसे परमपद प्राप्त होताहै ॥ २ ॥ वेदान्तके उपयोगी अन्य शास्त्रके अर्थ सत्कर्म सदाचारादिसे तथा सज्जनोंके समागमसे और वैराग्यके अभ्याससे संस्कृत पुरुष आत्मज्ञानको पात्र होके तुमारे समान शोभित होहै ॥ ३ ॥ हे रामजी ! तुम उदार अपने आचारमें कुशल, धीर, गुणोंके सागर तथा सबकी रचना करनेवाले मनरूप मलसे शून्य दुःखकी रहिततासे इस संसारमें स्थितहो ॥ ४ ॥

नूनमुत्सर्जिताश्रेणशरद्व्योमास्र्गोभवान् ॥ भवभावनयामुक्तोयुक्तउत्तमसंविदा ॥ ५ ॥ चितामुक्त कलावत्यामुक्तकल्पनयास्थितम् ॥ २ ने वेभागंचमुक्तोवनसंशयः ॥ ६ ॥ तवोत्तमानुभावस्यत

इदानींनराभुवि ॥ चेष्टामनुसरिष्यंतिरागद्वेषविहीनया ॥७॥ बहिर्लोकोचिताचाराविहरिष्यंतियेजनाः॥ भवार्णवंतरिष्यंतिधीमंतःपोतकान्विताः ॥ ८ ॥

अर्थ—संसारकी भावनासे मुक्त तथा उत्तम ज्ञानसे संपन्न आप इससमय मेघसे शून्य शरत्कालमें आकाशके तुल्य निर्मलहो ॥ ५ ॥ क्योंकि बाह्य तथा आभ्यन्तरकी चिंताओंसे मुक्त और अंतरमें परमात्माके साथ जल दुग्धके समान एकीभाव होनेसे ब्रह्माकारमें परिणत होनेवाली मुक्तोंके अनुभव सिद्ध कल्पनासे स्थितहो, और विभाग वर्जित मन्द मुक्तही है, इसमें संदेह नहीं है ॥ ६ ॥ हे रामजी ! उत्तम अनुभाव युक्त आपकी चेष्टाका अनुकरण राग द्वेषशून्य [illegible] पूर्वोक्त मुक्त पुरुषभी इससमय इस संसारमें करेंगे ॥ ७ ॥ जो पुरुष बाह्यदेशमें लोकोचित (धर्म शास्त्रके अनुकूल) आचरण करते हुये इस संसार सागरमें विहरतेहैं वे ज्ञानरूप नौकासे युक्तहोके संसार सागरकेपार अवश्य जायंगे ॥ ८ ॥

तवतुल्यमतिर्यःस्यात्सुजनःसमदर्शनः ॥ योग्योसौज्ञानदृष्टीनांमयोक्तानांसुदृष्टिमान् ॥ ९ ॥ यावद्देहं धियातिष्ठरागद्वेषविहीनया ॥ बहिर्लोकोचिताचारस्त्वंतस्त्यक्ताखिलैषणः ॥ १० ॥ परांशांतिमुपागच्छयथान्येगुणशालिनः ॥ अविचार्यास्तएवेहगोमायुशिशुधर्मकाः ॥ ११ ॥ येस्वभावामहासत्यानृणांसात्विकजन्मनाम् ॥ तान्भजन्पुरुषोयातिपाश्चात्योदारजन्मताम् ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! तुमारे सदृश बुद्धिमान् समदर्शी जो पुरुषहैं वेही मेरे कहे हुये ज्ञानोपदेशोंके योग्यहैं ॥ ९॥ हे रामचंद्रजी ! जबतक यह शरीरहै तबतक रागद्वेषसे हीन बुद्धिसे बाहरसे धर्मशास्त्र तथा सद्वृत्तके अनुसार आचरण करते हुये, और अन्तःकरणसे तीनों एषणाओंको त्यागके संसारमें स्थित रहो ॥ १० ॥ हे रामजी ! तुम अन्य गुणी महात्माओंके समान परम शांतिको प्राप्तहो, और स्वार्थमें कुशल परवंचक यथेष्ट आचरण करनेवाले मूढ तुमारे विचार करनेके योग्य नहीं है ॥ ११ ॥ और सात्विक जन्मवाले पुरुषोंके शमदम आदि स्वाभाविक जो महासत्य स्वभावहैं उनको जो पुरुष उपार्जन करतेहैं वेभी क्रमसे ज्ञानको पाकर अन्तिम जन्म अर्थात् जीवन्मुक्तका शरीर प्राप्त करतेहैं १२

यानेवसेवतेजंतुरिहजातिगुणान्सदा ॥ अथान्यजातिजातोपिजातिंभजतितांक्षणात् ॥ १३ ॥ प्राक्तनानखिलान्भावान्यांतिकर्मवशंगताः ॥ पौरुषेणावजीयंतेधराधरमहाकुलाः ॥१४॥ धैर्येणाभ्युद्धरेद्बुद्धिंपंकान्मुग्धगवीमिव ॥ तामसींराजसींचैवजातिमन्यामपिश्रितः ॥ १५ ॥ स्वविवेकवशाद्यांतिसंतः सात्विकजातिताम् ॥ अतश्चित्तमणौस्वच्छेयद्राघवनियोज्यते ॥ १६ ॥

अर्थ—जो प्राणी इस संसारमें सदा जिन गुणोंका सेवन करताहै वह चाहे अन्य जातिमेंभी उत्पन्नहो परन्तु क्षणभरमें उसी जातिका होजाताहै ॥ १३ ॥ पूर्वकालके संपूर्ण भाव कर्मकी वशताको प्राप्त होतेहैं, इसलिये बडी २ सेनावाले राजाभी पुरुषार्थसे जीतलिये जातेहैं ॥ १४ ॥ धीरतासे विषयोंसे बुद्धिको ऐसे उद्धार करना चाहिये जैसे कीचडमें फसीहुई गौको, चाहे वह पुरुष तामसी वा राजसी अर्थात् राक्षस पिशाचादि वा अन्य सर्पादियोनिमें प्राप्त हो तोभी विषयसे निवृत्त होनेसे कल्याणका भागी होताहै ॥ १५ ॥ संतमहात्माजन अपने विवेकके वशसेही सात्विक जातिको प्राप्त होतेहैं, इसलिये हे रामचंद्रजी चित्तरूप स्फटिक मणिमें जो पदार्थ नियुक्त किया जाताहै ॥ १६ ॥

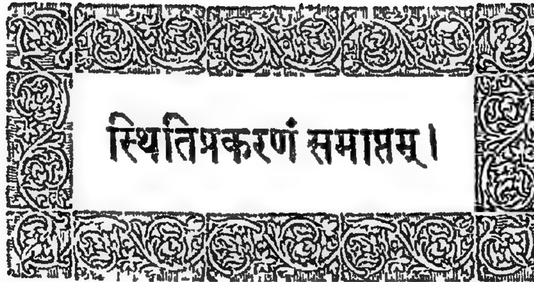
तन्मयोविभवत्येवंतस्माद्भवतिपौरुषम् ॥ पौरुषेणप्रयत्नेनमहार्हगुणशालिनः ॥ १७ ॥ मुमुक्षवोभवंतीहपाश्चात्यंशुभजातयः ॥ नतदस्तिपृथिव्यांवादिविदेवेषुवाक्वचित् ॥ १८ ॥ पौरुषेणप्रयत्नेनयन्नाप्रोतिगुणान्वितः ॥ ब्रह्मचर्येणधैर्येणवीर्यैवैराग्यरंहसा ॥ युक्त्यायुक्तेनहिविनानप्राप्तोपितदीहितम् ॥ १९ ॥ हितंमहासत्वतयात्मतत्त्वंविधायबुद्ध्याभववीतशोकः ॥ तवक्रमेणैवततोजनोयमुक्तोभविष्यत्यथवीतशोकः ॥ २० ॥ पाश्चात्यजन्मनिविवेकमहामहिम्नायुक्तेत्वयिप्रसृतसर्वगुणाभिरामे ॥ सत्वस्थकर्मणिपदंकुरुरामभद्रमैषाकरोतुभवसंगविमोहचिंता ॥ २१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते द्वात्रिंशत् साहस्र्यांसंहितायां मोक्षोपायेषु स्थितिप्रकरणे द्विषष्टितमःसर्गः ॥ ६२ ॥

अर्थ—वह तन्मय होजाताहै इसलिये पुरुष्यार्थही प्रधान है महात्मा पुरुष पौरुषरूप प्रयत्नसेही बहुमूल्य गुण युक्त ॥ १७ ॥ मुमुक्षु लोग अंतिम जन्मयुक्त शुभजातिमें उत्पन्न होतेहैं, इस पृथ्वीमें स्वर्गमें देवताओंमें वा अन्यत्रकहीं ऐसा कोई पदार्थ नहीं है ॥ १८ ॥ जो पौरुषरूप प्रयत्नसे गुण करके युक्त न प्राप्त हो ब्रह्मचर्य धैर्य्य,

पराक्रम, और वैराग्यकर वेग और युक्ति करके सहित हुयेके विना इष्ट जो मोक्ष पदार्थ है वह नहीं प्राप्त होता ॥ १९॥ हे रामचंद्रजी ! जो सब प्राणियोंके दुःखके शांतिका कारण निरतिशय आत्मतत्व जिसका उपदेश मैंने कियाहै उसको महा क्रमवती बुद्धिसे स्थिति करके तुम शोकरहित होजाओ, हे रामचंद्रजी ! तुमारे उपदेशके क्रमसे अन्यभी अधिकारी जन शोकरहित और मुक्त होजावेंगे ॥ २० ॥ हे प्रिय रामचंद्रजी ! विवेकरूपी महा महिमासे युक्त विस्तृत सर्व शांत्यादि गुणोंसे रमणीय जीवन्मुक्तोंका आश्रयभूत जो सप्तमभूमिका रूप पदहै उसमें तुम स्थिति करो, परंतु वैराग्य प्रकरणमें वर्णनकी हुई सब जनोंमें प्रसिद्ध संसारके संगकी मोहकी चिंता तुममें स्थान नकरें ॥ २१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकिये देवदूतोक्ते द्वात्रिंशत्साहस्र्यां संहितायां मोक्षोपायेषु, निखिलनगर ललामभूत दिल्ली नगरनिवासि रायबहादुरोपाधि धारि बी० ए० परीक्षोत्तीर्ण प्रयागस्थ महाविद्यालय (यूनिवर्सिटी) मुख्य सभ्यवेदांत विद्याऽनुरागि वैश्यवंशाऽवतंस, जजपदारूढ श्रीबैजनाथमहाशयाज्ञया निखिल पाठालय ललामभूत काशिकराजकीय पाठालय प्रधानाध्यापक पूज्यपाद श्री १०८ दामोदरशास्त्रि प्रधान शिष्य, प्रयागमण्डलांतर्गत हरिपुरनामक ग्रामनिवासि पूज्यपाद द्विवेदोपाख्य श्रीनचई प्रसादशर्म्मतनूजाचार्यपदवी समलंकृत ठाकुरप्रसादशर्म विरचित भाषाऽनुवादे स्थितिप्रकरणे द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥





श्रीगणेशाय नमः ।

श्रीवृन्दावनविहारिणे नमः ।

❁ योगवासिष्ठ भाषाटीका सहित ❁

अथ पंचममुपशमप्रकरणं प्रारभ्यते.

मंगलाचरणम् ।

नत्वा शिवं शक्तियुतं दयालुं । स्वानन्दरूपं भजतां स्फुरन्तम् ॥
श्रीयोगवासिष्ठमहाम्बुधेर्वै । भाषाऽनुवादः क्रियते हिताय ॥ १ ॥

गणेशं विघ्नहर्तारं जगदम्बां प्रणम्य च ।
जनानां स्वात्मबोधाय यत्नमेतं समारभे ॥ २ ॥

प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

श्रीपरमात्मनेनमः—मध्यान्हकालके शंखोंकी ध्वनिसे सभाका उत्थान और वसिष्ठभगवान्का आन्हिककृत्य और रात्रिमें विश्वामित्रके साथ निवास ये विषय इस प्रथम सर्गमें वर्णन किये गये हैं ॥

श्रीपरमात्मनेनमः ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथस्थितिप्रकरणादनंतरमिदंशृणु ॥ उपशमप्रकरणंज्ञातं निर्वाणकारियत् ॥ १ ॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ शरत्तारकिताकाशस्तिमितायांसुसंसदि ॥ कथयत्ये वमाह्लादिवसिष्ठेपावनंवचः ॥ २ ॥ श्रवणार्थित्वमौनस्थपार्थिवेसंसदंतरे ॥ निर्वातइवनिस्पंदकमले कमलाकरे ॥ ३ ॥ विलासिनीषुसंशांतमदमोहबलासुच ॥ शममन्तःप्रयांतीषुचिरप्रव्रजितास्विव ॥४॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामचन्द्रजी ! इस स्थितिप्रकरणके अनन्तर अब तुम उपशम प्रकरण सुनो जो कि जाना हुआ निर्वाणकारी है ॥ १ ॥ श्रीवाल्मीकिजी बोले–कि जब शरतकालमें तारागणसहित आकाशके समान सभा निश्चल होगई और वसिष्ठभगवान् आनन्ददायक तथा पवित्र बचन कह रहेथे ॥ २ ॥ तथा जब श्रवणके अर्थ सभाके अन्तर्गत सम्पूर्ण राजा ऐसे मौन होगयेथे जैसे वायुरहित कमलके वनमें निश्चल कमल ॥ ३ ॥ और स्त्रियोंके मदमोहका वल ऐसे शान्त होरहाथा जैसे चिरकालकी संन्यासनियोंके अन्तःकरण ॥ ४ ॥

करांभोरुहहंसेषुलीनेषुश्रवणादिव ॥ मुक्तघुर्घुरवादेषुवायसेषुतराविव ॥५॥ नासाग्रपरिविश्रांततर्जन्यंगुलिकोटिषु ॥ विचारयत्सुविज्ञानकलांतज्ज्ञेषुराजसु ॥ ६ ॥ रामेविकाशमायातेप्रभातइवपंकजे ॥ परित्यक्ततमःपीठेसूर्योदयइवांबरे ॥ ७ ॥ आकर्णयतिवासिष्ठीर्गिरोदशरथेरसात् ॥ कलापिनीवजीमूतनिर्ह्रादान्मुक्तवर्षणात् ॥ ८ ॥

अर्थ—और जब वसिष्ठके बचन श्रवण करनेसे हंसरूपी चमरसहित स्त्रियोंके हस्तकमल संकुचित होरहेथे और कंकन किंकिणियोंके शब्द पक्षियोंके शब्दके समान बन्द होरहेथे ॥ ५ ॥ और जब नासिकाके अग्रभागमें तर्जनी अंगुलीका अग्रभाग विश्राम कररहाथा ऐसे बिचारवान् राजाओंके विज्ञानकी कला विचारमें प्रवृत्त होरहीथी ॥ ६ ॥ तथा जब प्रातःकालके कमलके समान रामचन्द्रजी विकशित होरहेथे और जब आकाशमें सूर्य्योदयके समान अ-

ज्ञानान्धकार अपने स्थानसे निकल चलाथा ॥ ७ ॥ वृष्टि करनेवाले मेघके शब्दोंको मयूरके समान वसिष्ठभगवान्‌के बचनोंको राजा दशरथ प्रेमके साथ सुनतेथे ॥ ८ ॥

आहृत्यसर्वभोगेभ्योमनोमर्कटचंचलम् ॥ श्रवणंप्रतियत्नेनसारणेमंत्रिणिस्थिते ॥ ९ ॥ वसिष्ठोक्त्या परिज्ञातस्वात्मनींदुकलामले ॥ लक्ष्मणेविलसल्लक्ष्येशिक्षाबलविचक्षणे ॥ १० ॥ शत्रुघ्नेशत्रुदलनेचि त्तसापूर्णतांगते ॥ अलमानंदमायातेराकाचंद्रोपमेस्थिते ॥ ११ ॥ सुमित्रेमित्रतांयातेमानसेदुःखशीलि ते ॥ विकाशिहृदयेजातेतत्कालइवपंकजे ॥ १२ ॥ तत्रस्थेषुतथान्येषुतदामुनिषुराजसु ॥ सुधौतचित्त रत्नेषुप्रोल्लसत्स्विवचेतसा ॥ १३ ॥

अर्थ—और जब मनरूपी चंचल मरकटको सम्पूर्ण भोगोंसे हटाकर श्रवणके प्रति यत्नसे लगाके सारणमन्त्री स्थित होरहाथा ॥ ९ ॥ तथा जब वसिष्ठभगवान्‌के कथनसे आत्मारूपी निर्म्मल चन्द्रकी कलाके प्रकाशसे तथा शिक्षा बलसे विचक्षण लक्ष्मणके हृदयमें ब्रह्मरूप लक्ष्य स्फुरित होरहाथा ॥ १० ॥ और जब शत्रुओंको दलन करनेवाले शत्रुघ्नजी चित्तमें पूर्णताके प्राप्त होनेसे पूर्णआनन्दकी प्राप्तिद्वारा पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान स्थित होरहेथे ॥ ११ ॥ और जब दुःखशील मन सुमित्र मन्त्रीके मित्रके सदृश बश होरहाथा और उस समयमें कमलके समान सबके हृदय विकशित होगयेथे और उस कालमें शुद्धचित्तरूपी रत्नसहित उस सभामें स्थित मुनि और राजाजनक विकशित चित्त हो रहेथे ॥ १२ ॥ १३ ॥

उदभूत्पूरयन्नाशाःकल्पाभ्रवमांसलः ॥ अथमध्यान्हशंखानामब्धिघोषसमःस्वनः ॥ १४ ॥ महतातेनश ब्देनतिरोधानंमुनेर्गिरः ॥ ययुर्जलदनादेनकोकिलध्वनयोयथा ॥ १५ ॥ मुनिरंतरयांचक्रेस्वांवाचमथ संसदि ॥ जितसारोगुणःकेनमहतासमुदीर्यते ॥ १६ ॥

अर्थ—उस समय प्रलयकालके मेघके शब्दके सदृश पुष्ट समुद्रके घोषकेसमान मध्यान्हकालके शंखोंका शब्द सम्पूर्ण दिशाओंको पूर्ण करता हुआ प्रगट हुआ ॥ १४ ॥ उस महान् शब्दसे वसिष्ठभगवान्‌के बचन इसप्रकार अभिभूत (पराजित) होगये जैसे मेघके शब्दसे कोकिलकी ध्वनि ॥ १५ ॥ इसके अनन्तर वसिष्ठभगवान् सभाके मध्यमें अपनी वाणीका उपसंहार करलिया अर्थात् मौन होगये क्योंकि जिस गुणका सार जीतलिया जाताहै उसको कौन महात्मापुरुष उच्चारण करसकताहै ॥ १६ ॥

मुहूर्त्तमात्रंविश्रम्यश्रुत्वामध्यान्हनिःस्वनम् ॥ घनेकोलाहलेशांतेराममुनिरुवाचह ॥ १७ ॥ रामाद्यत नमेतावदान्हिकंकथितंमया ॥ प्रातरन्यत्तुवक्ष्यामोवक्तव्यमरिमर्दन ॥ १८ ॥ इदंनियतितःप्राप्तंकर्त्तव्यं तद्विजन्मनाम् ॥ मध्यान्हमुपपन्नंयत्कर्त्तव्यंनावसीदति ॥ १९ ॥ त्वमप्युत्तिष्ठसुभगसमस्ताचारस त्क्रियाम् ॥ आचराचारचतुरस्नानदानार्चनादिकाम् ॥ २० ॥

अर्थ—मध्यान्हकालके शब्द श्रवण करनेके पश्चात् मुनि वसिष्ठ एक मुहूर्त विश्राम करके और घनीभूत कोलाहलके शान्त होनेपर रामचन्द्रजीसे बोले ॥ १७ ॥ हे रामचन्द्रजी ! आजकी कथा इतनी मैंने कहा, और हे अरिमर्दन ! प्रातःकाल और कुछ कहूंगा ॥ १८ ॥ सो हे रामजी ! शास्त्रकी मर्य्यादासे प्राप्त मध्यान्हकालमें युक्त ब्राह्मणोंको कर्तव्यकर्म्म नष्ट न हो इसलिये मुझेभी कर्तव्यहै ॥ १९ ॥ हे प्रिय रामजी ! तुमभी उठो और स्नान दान पूजादि समस्त आचारोंकी सत्क्रियाको करो ॥ २० ॥

इत्युक्त्वामुनिरुत्तस्थौसमंदशरथःप्रभुः ॥ ससदास्सेंदुरादित्यउदयाद्रितटादिव ॥ २१ ॥ तयोरुत्तिष्ठ तोःसर्वासभोत्थातुमकंपत ॥ मंदवातपरामृष्टानलिनीवालिलोचना ॥ २२ ॥ उत्तस्थौसावतंसोत्थभृंग मंडलमंडिता ॥ करिसेनेवसंध्याद्रावालोलकरपुष्करा ॥ २३ ॥ परस्परांगसंघट्टचूर्णितांगदमंडली ॥ रत्नपूर्णारुणांभोदसंध्यासमयसूचनी ॥ २४ ॥

अर्थ—इतना कहके वसिष्ठमुनि उठे और उनके साथही सभासदोंके साथ राजा दशरथभी ऐसे उठे जैसे उदयाचलसे चन्द्रमासहित सूर्य्य ॥ २१ ॥ उन दोनोंके उठनेके समय सम्पूर्ण सभा उठनेको ऐसे कम्पित हुई जैसे मन्दर पवनसे स्पष्ट भ्रमररूप नेत्रसहित कमलिनी ॥ २२ ॥ मुकुटोंसे निकले हुये भ्रमरमण्डलसे शोभित वह सभा ऐसे उठ खडी हुई जैसे अस्ताचलमें सूर्य्योदयकालमें हाथियोंकी सेना ॥ २३ ॥ और उस सभामें परस्परके अंगोंके संघट्टनसे अंगद (विजायठ) की मण्डली चूर्ण होगईथी तथा रत्नोंसे पूर्ण होनेसे रक्तमेघोंसे सन्ध्यासमयकी सूचना करनेवाली भान होती थी ॥ २४ ॥

पतद्धंसविभ्रांतभृंगोपहितघुंघुमा ॥ मुकुटोद्दामविद्योतशक्रचापीकृतांबरा ॥ २५ ॥ कांतालताहस्तदलचारुचामरमंजरी ॥ वनलेखेवविक्षुब्धवरवारणमंडला ॥ २६ ॥ कचत्कटकभारक्तीकृतान्योन्यतांबरा ॥ वातव्याधूतपुष्पेवमंदारवनमालिका ॥ २७ ॥ कर्पूरकणनीहाररचितामलवारिदा ॥ शरद्दिक्समालेवप्रसृताशेषभूमिका ॥ २८ ॥

अर्थ—गिरतेहुये शिरोभूषणमें भ्रमण करनेवाले भ्रमरोंसे शब्दयुक्त और मुकुटोंके नानाप्रकारके मणियोंके प्रकाशसे आकाशको इन्द्रके धनुषके समान करनेवाली वह सभाथी ॥ २५ ॥ कान्तारूप लताओंके हस्तपल्लवोंमें उत्तम चमररूप मञ्जरीसहित तथा मत्त हस्तियोंको विक्षुब्ध करानेवाली बनकी लेखाके समान ॥ २६ ॥ भान होती थी और अन्योन्यके आकर्षणद्वारा दैदीप्यमान कटको (कडो) की किरणोंसे रक्तवर्ण वस्त्रधारिणी तथा पवनसे कम्पित पुष्पपूर्ण वनकी मालाके सदृश ॥ २७ ॥ तथा कपूरके कणरूपी निहारसे निर्मल मेघ रचनेवाली वा काशके पुष्पोंसे सम्पूर्ण भूमिको व्याप्त करनेवाली शरदृतुके दिशाओंकी मालाके समान वह सभा शोभित थी ॥ २८ ॥

लोलमौलिमणिप्रांतपाटलांबरकोटरा ॥ संध्येवाफुल्लनीलाब्जाकार्यसंहारकारिणी ॥ २९ ॥ रत्नांशुसलिलापूरसुखपद्मनिरंतरा ॥ पद्मिनीवालिवलितानूपुरारवसारसा ॥ ३० ॥ संततासास भोत्तस्थौभूभृच्छतसमाकुला ॥ भूतसंततिसंभ्रांतासृष्टिर्नवमिवोदिता ॥ ३१ ॥ प्रणम्याथनृपंभूपानिर्ययुर्नृपमंदिरात् ॥ शक्रचापीकृताराद्रैरंबुधेरिववीचयः ॥ ३२ ॥

अर्थ—चंचल मुकुटमणिके अग्रभागके किरणोंसे आकाशके कोटरोंको पीत वर्ण करनेवाली और विकसित कमलके सहित सन्ध्या कालके दिनके कृत्यको संहार करनेवाली वह सभा भान होतीथी ॥ २९ ॥ रत्नोंकी किरणरूप जलकी राशिमें मुखरूप निरन्तर कमल संयुक्त, और कर्पूरके शब्दसे शब्द करनेवाले सारसपक्षीसहित कमलोंसे आच्छादित कमलिनीके सदृश सैकडों राजोंसे व्याप्त, अतएव प्राणियोंके विस्तारसे संभ्रान्त नूतन सृष्टिके सदृश वह सभा शीघ्र उठ खडी हुई ॥ ३० ॥ इसके अनन्तर सम्पूर्ण राजा महाराजा दशरथको प्रणाम करके राज्यभवनसे इसप्रकार निकले जैसे रत्नोंसे इन्द्रके धनुषके समान समुद्रसे किरण ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

सुमंत्रोमंत्रिणश्चैववसिष्ठमथभूमिपम् ॥ प्रणम्यजग्मुःस्वानायरस्वविज्ञानकोविदाः ॥ ३३ ॥ वामदेवादयश्चान्येविश्वामित्रादयस्तथा ॥ वसिष्ठंपुरतःकृत्वातस्थुरावर्जनोन्मुखाः ॥ ३४ ॥ राजादशरथस्तत्रपूजयित्वामुनिव्रजम् ॥ तद्विसृष्टोजगामाथस्वकार्यार्थमरिंदमः ॥ ३५ ॥ वनंवनास्पदाजग्मुर्व्योमव्योमनिवासिनः ॥ नगरंनागराश्चैवप्रातरागमनायते ॥ ३६ ॥

अर्थ—सुमन्त्र तथा अन्य मन्त्रीगण जो ब्रह्मविज्ञानमें कुशलथे महर्षि वसिष्ठजीको तथा राजा दशरथजीको प्रणाम करके विदा हुये ॥ ३३ ॥ इसके अनन्तर वामदेवादिक तथा अन्य विश्वामित्रादि ऋषिवसिष्ठजीको अगाडी करके उनकी प्रतीक्षा करते हुये खडे रहे ॥ ३४ ॥ वहांपर राजा दशरथ सब मुनि समूहोंकी पूजा करके उनकी आज्ञा लेकर अपने कार्यके अर्थ गमन किया ॥ ३५ ॥ वनवासी अर्थात् वाणप्रस्थवनको आकाश निवासी आकाशको और नगरनिवासी जनोने नगरको पुनः प्रातःकाल आगमनके लिये गमन किया ॥ ३६ ॥

महीपतिवसिष्ठाभ्याप्रणयात्प्रार्थितःप्रभुः ॥ वसिष्ठसद्मनिनिशांविश्वामित्रोत्यवाहयत् ॥ ३७ ॥ वसिष्ठःसहविप्रेंद्रैःपार्थिवैर्मुनिभिस्तथा ॥ उपास्यमानोरामाद्यैःसर्वैर्दशरथात्मजैः ॥ ३८ ॥ जगामस्वाश्रमंश्रीमान्सर्वलोकनमस्कृतः ॥ अनुयातस्सुरौघेनब्रह्मलोकमिवाब्जजः ॥ ३९ ॥ तस्मात्प्रदेशाद्रामादीन्पुनर्दशरथात्मजान् ॥ सर्वान्विसर्जयामासपादोपांतेनतानसौ ॥४०॥ नभश्चरान्धरणिचरानघश्वरान्विसृज्यसंस्तुतगुणगोचरांश्चतान् ॥यथाक्रमंस्वगृहमुदारसत्ववांश्चकारतांद्विजजनवासरक्रियाम्४१

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे आह्निकवर्णनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

अर्थ—राजा दशरथ तथा वसिष्ठसे प्रार्थना किये हुये भगवान् विश्वामित्रजी प्रेमसे वसिष्ठजीके स्थानमें उस रात्रिको विताया ॥ ३७ ॥ उस समय उत्तम ब्राह्मणोंसे राजाओंसे तथा मुनियोंसे और रामादि दशरथके पुत्रोंसे उपासना किये हुये वसिष्ठजी ॥ ३८ ॥ अपने आश्रमको इसप्रकार गये जैसे और सब लोकोंसे नमस्कृत श्रीमान् ब्रह्माजी देवताके समूहोंसे आवृत्त ब्रह्मलोकको ॥ ३९ ॥ यह वसिष्ठमुनि रामादि सम्पूर्ण पुत्रोंको जो कि वसिष्ठजीके चरणोंपर

गिरे हुयेथे उसी स्थानसे बिदा किया ॥ ४० ॥ आकाशचारी पृथिवीनिवासी और पातालनिवासी जो कि सब वसिष्ठजीके गुणोंको गा रहेथे उन सबको यथाक्रम बिदा करके उदार और धैर्य्यवान् वसिष्ठजी अपने गृहमें प्रवेश करके ब्राह्मणोंके उचित पंचमहायज्ञादि क्रियाको किया ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उपशमप्रकरणे आन्हिक वर्णनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

इस द्वितीय सर्गमें आन्हिक क्रिया और रात्रिमें रामचन्द्रजीका श्रुत अर्थका चिन्तन और श्रुत अर्थमें बुद्धिकी स्थिरताके लिये प्रार्थनाका वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ ॥ तेसमेत्यगृहंगत्वाराजपुत्राःशशित्विषः ॥ चक्रुस्सर्वंशमेषेणस्वसद्मसु दिनक्रमम् ॥ १ ॥ वसिष्ठोराघवश्चैवराजानोमुनयोद्विजाः ॥ इतिचक्रुस्स्वकार्याणितथास्वगृहवीथिषु २ सस्नुःकमलकह्लारकुमुदोत्पलहारिषु ॥ जलाशयेषुचक्राह्वहंससारसराजिषु ॥ ३ ॥ गोभूतिलहिरण्यानिशयनान्यासनानिच ॥ दद्दुर्दानानिविप्रेभ्योभाजनान्यंशुकानिच ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवाल्मीकिजी बोले—चन्द्रमाके सदृश प्रकाशमान ये सब राजपुत्र अपने गृहमें जाकर और वहांपर दैनिक कर्म्मको सम्पूर्ण रीतिसे किया ॥ १ ॥ वसिष्ठजी रामचन्द्रजी राजा मुनि और ब्राह्मण ये सब वक्ष्यमाण रीतिसे गृहमें मार्गमें तथा अन्यत्र जो अपने उचित कार्य्यथे उनको किया ॥ २ ॥ श्वेतरक्त तथा नील कमलोंसे मनोहर चक्रवाक हंस और सारसकी पंक्तियों करके सहित तडागोंमें सबोंने स्नान किया ॥ ३ ॥ गौ पृथिवी तिल हिरण्य सज्जा आसन भोजन और वस्त्रादि ब्राह्मणोंको दान किया ॥ ४ ॥

हेमरत्नविचित्रेषुस्वेषुचामरसद्मसु ॥ आनर्चरच्युतेशानहुताशार्कादिकान्सुरान् ॥ ५ ॥ पुत्रपौत्रसुहृद्भृत्यबंधुमित्रगणैस्सह ॥ ततआस्वादयामासुर्भोजनान्युचितानिवै ॥ ६ ॥ एतस्मिन्समयेचास्मिन्नगरे दिवसोभवत् ॥ तनुरष्टांगशेषत्वादृष्टोनचमनोहरः ॥ ७ ॥ सायंतनदिनांतंतेतत्कालोचितचेष्टया ॥ अनयन्नंशुभिस्सार्द्धंयावदस्तंययौरविः ॥ ८ ॥

अर्थ—सुवर्णयुक्त रत्नोंसे चित्रविचित्र देवालयोंके सदृश अपने २ स्थानोंमें विष्णु महादेव अग्नि तथा सूर्यादि देवताओंकी पूजा की ॥५॥ इसके पश्चात् पुत्र, पौत्र, मित्र, दास बन्धु और सुहृद् गणोंके साथ उचित भोजन किया ॥ ६ ॥ इसीसमयमें नगरमें दिन केवल अष्टमांश शेष रहगया अतएव अधिक मनोहर प्रतीत होताथा ॥ ७ ॥ उन सभोंने सायंकालको (दिनका अन्त) उस समयके योग्य धर्मशास्त्र पुराणादिके श्रवणसे सूर्य्योंकी किरणोंके साथ बिताया इतनेमें सूर्य्यभगवान्, अस्ताचलको प्राप्त हुये ॥ ८ ॥

संध्यांववंदिरेसुष्टुजेपुश्चैवाघमर्षणम् ॥ पेठुःस्तोत्राणिपुण्यानिजगुर्गाथामनोहराः ॥ ९ ॥ ततश्चाभ्युदिताश्यामाकामिनीशोकहारिणी ॥ क्षीरोदादिवमाहेन्द्राचंद्रावश्यायदायिनी ॥ १० ॥ शनैरास्तीर्णपुष्पेषुकीर्णकर्पूरसुष्टिषु ॥ दीर्घेंदुबिंबरम्येषुतस्थुस्तल्पेषुराघवाः ॥ ११ ॥ अथरामाहतेन्येषांतत्रतद्व्यवहारिणी ॥ व्यतीयायशनैःश्यामामुहूर्त्तइवशोभना ॥ १२ ॥

अर्थ—इससमय सभोंने सन्ध्यावन्दन किया, और पूर्ण रीतिसे अघमर्षणका जप किया, स्तोत्रोंका पाठ किया और मनोहर गाथाओंका गान किया ॥ ९ ॥ उसके पश्चात् कान्त समागमसे कामिनियोंका शोक हरनेवाली रात्रि ऐसे प्रगट हुई जैसे क्षीरसमुद्रसे उत्पन्न पूर्व दिशामें तुषार सहित तथा आनन्द देनेवाली चन्द्र चन्द्रिका ॥ १० ॥ पुष्पोंसे आच्छादित तथा कर्पूरके कणसे पूर्ण और दीर्घ चन्द्रमाके बिम्बके सदृश रमणीय शय्याओंपर रघुवंशी धीरे २ स्थित हुये ॥ ११ ॥ इसके पश्चात् रामचन्द्रजीके सिवाय और सब किसीकी की उस समयके उचित विषय भोगादि व्यवहारसहित और शोभायमान रात्रि धीरे धीरे मुहूर्तके समान बीतगई ॥ १२ ॥

तस्थौरामस्तुतामेववासिष्ठींवचनावलीम् ॥ चिंतयन्मधुरोदारांकरिणींकलभोयथा ॥ १३ ॥ किमिदंनामसंसारभ्रमणंकिमिमेजनाः ॥ भूतानिचबिचित्राणिकिमायांतिप्रयांतिकिम् ॥ १४ ॥ मनसःकीदृशं

रूपंकथंचैतत्प्रशाम्यति ॥ माययंसाकिमुत्थास्यात्कथंचैवानिवर्त्तते ॥ १५ ॥ निवृत्तयानयाकःस्याद्गुणो दोषोथवाभवेत् ॥ कथमात्मनिचैवायंततेसंकोचआगतः ॥ १६ ॥

अर्थ—रामचन्द्रजी वसिष्ठभगवान्की कही हुई मधुर और उदार वचनकी पंक्तियोंको चिन्तन करते हुये ऐसे स्थित रहे जैसे हस्तीका बच्चा अपनी माताको ॥ १३ ॥ इस संसारका भ्रमण क्याहै और ये मनुष्य क्या हैं और ये चित्रविचित्र प्राणीके समूह कहां आते हैं और कहां जाते हैं ॥ १४ ॥ मनका कैसा रूपहै और यह कैसे शान्त होता है और यह माया किससे प्रगटहै और कैसे इसकी निवृत्ति होती है ॥ १५ ॥ और इसके निवृत्त होनेसे क्या गुणहै और क्या दोषहै और आकाशसेभी विस्तीर्ण आत्मामें यह संकोच कैसे प्राप्त हुआ ॥ १६ ॥

किमुक्तंस्याद्भगवतामुनिनामनसःक्षये ॥ किंचेंद्रियजयेप्रोक्तंकिमुक्तमथवात्मनि ॥ १७ ॥ जीवश्चित्तंम नोमायेत्येवमादिभिराततैः ॥ रूपैरात्मैवसंसारतनोतीममसन्मयम् ॥ १८ ॥ एभिरेवंमनोमात्रतंतुबद्धैः क्षयंगतैः ॥ दुःखोपशांतिरेतानिसुचिकित्स्यानिनःकथम् ॥ १९ ॥ भोगाभ्रमालावलयांधीवलाकामिमां कथम् ॥ पृथक्करोमिपयसोधारांहंसइवांभसः ॥ २० ॥

अर्थ—भगवान् वसिष्ठजीने मनके नाश करनेमें क्या कहाहै और इन्द्रियोंके जीतनेके विषयमें और आत्माके जाननेके विषयमें भी क्या कहाहै ॥ १७॥ जीव चित्त मन और माया इत्यादि विस्तृत रूपोंसे इस असन्मय संसारको आत्माही विस्तारित करताहै ॥१८ ॥ मनरूपी सूत्रमें बन्धे हुये जीव चित्त माया आदिके क्षय होनेपर दुःखकी शान्ति सिद्ध होती है इसलिये इनके सुगम रीतिसे नाश करनेका उपाय हम लोगोंकेलिये क्या है ॥ १९ ॥ विषयके भोगरूपी मेघोंकी मालासे पूर्ण इस बुद्धिरूप बकी (बकुली) को जैसे हंस जलकी धाराको पृथक् करताहै ऐसे आत्मासे कैसे पृथक् करूं ॥ २० ॥

भोगास्त्यक्तुंनशक्यंतेतत्यागेनविनावयम् ॥ प्रभवामोनविपदामहोसंकटमागतम् ॥२१॥ मनोमात्रमि दंप्राप्यंतच्चैवेदंप्रयोजनम् ॥ संपन्नंनोगिरिगुरुमौर्ख्यात्पक्षःशिशोरिव ॥ २२ ॥ परमांशांतिमागत्यगत संसारसंभ्रमा ॥ वालेवलब्धदयिताकंचित्प्राप्स्यतिनोमतिः ॥ २३ ॥ कदोपशांतसंरंभंविगताशेषकौतु कम् ॥ अपापमात्मविश्रांतंममस्यात्पावनंमनः ॥ २४ ॥

अर्थ—भोग त्यागनेके समर्थ नहीं हैं क्योंकि उनके त्यागनेसे जीवनका असम्भवहै और उनके त्यागके विना हम विपत्तिका प्रतीकार (नाश) नहीं करसकतेहैं यह कैसा संकट आके पडाहै ॥ २१ ॥ यह प्राप्त करनेके योग्य आत्मतत्व मनमात्रकोही विषयभान होताहै और वह मनभी बाह्य विषयजालके सिद्धिका हेतुहै अहो यह मूर्खतासे बालकके पक्षके समान पर्वतसेभी गुरुतर अर्थात् उद्धार करनेके असमर्थ हम लोकोंको प्राप्त हुआ ॥ २२ ॥ इसलिये संसारके भ्रमसे रहित परम शान्तिको प्राप्त होकर हम लोगोंकी बुद्धि अन्य पदार्थको ऐसे नहीं स्मरण करैगी जैसे अपने प्रियके प्राप्त होनेसे अन्यसे तरुण स्त्री ॥ २३ ॥ हे भगवन् वह कौनसा समय होगा जब क्रोधसे शून्य सम्पूर्ण काम कौतुकसे वर्जित, पापसे रहित, और पवित्र हमारा मन आत्मपदमें विश्रान्त होगा ॥ २४ ॥

कलाकलापसंपूर्णाच्छशांकादपिशीतले ॥ पदेसुरूढविश्रम्यभ्रमिष्यामिकदाजगत् ॥ २५ ॥ कलनापे लवंरूपमुत्सृज्यालीनमात्मनि ॥ कदेष्यतिमनःशांतिमंभसीवतरंगकः ॥ २६ ॥ तृष्णातरंगाकुलितमा शामकरमालिनम् ॥ कदासंसारजलधिंतीर्त्वास्यामहमज्वरः ॥ २७ ॥ कदोपशमशुद्धासुपदवीषुविच क्षणाः ॥ मुमुक्षूणांनिवत्स्यामोनिःशोकंसमदर्शनाः ॥ २८ ॥

अर्थ—सम्पूर्ण कलाओंके समूहोंसे पूर्ण चन्द्रमासेभी शीतल सप्तम भूमिका रूप जीवन्मुक्तिके सुखमें दृढतापूर्वक विश्राम करके इस जगत्में मैं कब भ्रमण करूंगा ॥ २५ ॥ अनेकप्रकारकी कल्पनाओंसे कोमल (विनश्वर) मेरा मन अपने तुच्छरूपको त्यागकर आत्मामें लीन होकर जलमें तरंगके समान शान्तिको कब प्राप्त होगा ॥ २६ ॥ तृष्णारूपी तरंगोंसे व्याप्त आशारूपी मकर (मगर) की माला संयुक्त इस संसाररूपी समुद्रको पार होकर सन्तापरहित मैं कब होऊंगा ॥ २७ ॥ वह कौनसा समय होगा कि शमदमादि गुणोंसे शुद्ध मुमुक्षु लोगोंके प्राप्त होनेके योग्य पदोंमें निपुण तथा समदर्शी होकर शोक राहित्यसे निवास करेंगे ॥ २८ ॥

संतापितसमस्तांगःसर्वधातुभयंकरः ॥ संसृतिज्वरआदीर्घःकदानाशमुपैष्यति ॥ २९ ॥ निर्वातदीप लेखेवकदाचित्तंगतव्यथम् ॥ शममेष्यतिहेबुद्धेसुप्रकाशघनांतरम् ॥ ३० ॥ कदेंद्रियाणिदुःखेभ्यःसंत रिष्यंतिहेलया ॥ दुरीहादग्धदेहानिगरुत्मंतइवार्णवान् ॥३१॥ अयंसोहंरुदन्मूढइतिव्यर्थोदितोभ्रमः॥ शारदीवासितोमेघःकदानाशमुपैष्यति ॥ ३२ ॥

अर्थ—स्त्रीपुत्रादि तथा हस्तपादादि समस्त अंगोंको सन्तापित करनेवाला सुवर्णादि धातु वा रुधिरमांसादि धातुओंकी क्षीणतासे भयंकर और अति महान् यह संसाररूपी ज्वर कब नाशको प्राप्त होगा ॥ २९ ॥ हे बुद्धे ! वायु शून्य देशमें दीपकी लेखाके समान शान्त, पीडारहित तथा प्रकाशमय मेरा यह चित्त कब शान्तिको प्राप्त होगा ॥ ३० ॥ जैसे गरुडजी समुद्रके पार होते हैं ऐसेही विषयकी अभिलाषासे शरीरको नष्ट करनेवाली यह दुष्ट इन्द्रियां संसारको अनादर करके दुःखसे कब पार होंगी॥ ३१ ॥ यह शरीरादि और वह धन स्त्रीपुत्रादिके वियोगसे रोते हुये मूढके समान मुझमें जो व्यर्थ भ्रम आकर प्राप्त हुआहै वह शरत्कालके श्वेत मेघके समान कब नाशको प्राप्त होगा ॥ ३२ ॥

मंदारवनलेखासुयामतिरस्वात्तृणायते ॥ याचेतत्पदमात्मीयंसंप्राप्स्यामःकदावयम् ॥ ३३ ॥ वीतराग जनप्रोक्तानिर्मलाज्ञानदृष्टयः ॥ कच्चित्पदंत्वयिमनःकरिष्यंतीतिमेवद ॥ ३४ ॥ हातातमातःपुत्रेतिगि रामास्वामहंपुनः ॥ भाजनंचित्तमाभूवंभोजनंदुःखभोगिनाम् ॥ ३५ ॥ हेबुद्धेभगिनिभ्रातुरर्थितांपूरया शुभे ॥ आवयोर्दुःखमोक्षायविचारयमुनेर्गिरः ॥ ३६ ॥

अर्थ—मंदारवनकी मालाओंमें जो सुखका अनुभव होताथा वह इससमय तृणके समान भान होताहै मैं इससमय केवल यही प्रार्थना करताहूं कि उस अपने आत्मतत्वको कब प्राप्त होऊंगा ॥ ३३ ॥ वीतराग वसिष्ठजीने जो निर्मल ज्ञानकी दृष्टि कही है वह हे मन ! कभी तुममेंभी अपना स्थान करेगी ॥ ३४ ॥ हा तात ! हा मातः ! हे पुत्र ! इत्यादि वाणियोंका विषय हे चित्त ! मैं पुनः कभी न चाहूं चाहे मेरा शरीर अजगरोंके भोजनका पात्रभी होजाय ॥ ३५ ॥ हे बुद्धे भगिनी ! (बहिन) तुम जीवरूपी अपने भाईको प्रार्थनाको शीघ्र पूर्ण करो जिसमें हम दोनोंका मोक्षहो इसलिये मुनि वसिष्ठकी वाणियोंको विचारो ॥ ३६ ॥

त्वांपादपतितःप्रीत्यायाचेसतिसुतेमते ॥ तेनभव्येभवोच्छेदभूतयेसुस्थिराभव ॥ ३७ ॥ वसिष्ठमुनि नाप्रोक्ताविरक्ताःप्रथमंगिरः ॥ ततोमुमुक्षोराचारउत्पत्तीनांक्रमस्ततः ॥ ३८ ॥ ततःस्थितिप्रकरणंस मंदृष्टांतसुंदरम् ॥ विज्ञानगर्भसुलभंयथावत्स्मरहेमते ॥ ३९ ॥ कृतमतिशतशोविचारितंयद्यदितदुपै तिनमानसस्यबुद्धिः ॥ भवतितदफलंशरद्घनाभंसततमतोमतिरेवकार्यसारः ॥ ४० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे उपदेशानुवर्णनं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

अर्थ—हे सति पुत्रिरूप मननशीलेमते ! तुमारे चरणमें गिरकर यह याचना करताहूं कि इस मेरी प्रार्थ भव्यपुरुषमें संसारके विच्छेदसे पूर्ण पदकी संपत्ति प्राप्त होनेके लिये तुम स्थिरहो ॥ ३७ ॥ वसिष्ठमुनिने प्र ग्यकी बाणी कही उसके पश्चात् मुमुक्षुओंके आचार और उसके अनन्तर उत्पत्तिका क्रम ॥ ३८ ॥ उसके अ दृष्टान्तोंसे रमणीय और विज्ञान पूर्ण होनेसे अधिकारियोंके लिये सुलभ स्थितिप्रकरणमें जो कहाहै उसको हे मते (बुद्धि) यथावत् स्मरण करो ॥ ३९ ॥ जो बात मनसे सैकडों वार कुशलतापूर्वक बिचारी जाय परन्तु उसको नि श्चयात्मक बुद्धि न ग्रहण करे तो वह शरत्कालके मेघके समान निष्फल होजाती है इसलिये श्रवणसे तत्वपदार्थके बिचारनेपरभी मननसे निश्चयात्मक बुद्धिही निरन्तर कर्तव्य अर्थके विषयमें सार पदार्थ है ॥ ४० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उपशमप्रकरणे उपदेशानु वर्णनं नाम द्वितीयः सर्गः॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

प्रातःकालका स्नान और रामादिकके साथ सभामें वसिष्ठजीकी यात्राका प्रस्ताव इस तृतीय सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ ॥ तस्यैवंप्राययातत्रततयोदारचिंतया ॥ साव्यतीयायरजनीपद्मस्येवार्क कांक्षिणः ॥ १ ॥ किंचित्तमःकडारासुकिंचिदप्यरुणासुच ॥ नभोविरलतारासुदिक्षुसंमार्जितास्विव२ प्रभाततूर्यघोषेणसममिंदुसमाननः ॥ उतस्थौराघवःश्रीमान्पद्मःपद्मकरादिव ॥ ३ ॥ प्रातःस्नानविधि त्वासंपाद्यभ्रातृभिःपुनः ॥ प्रहितात्पपरीवारोवसिष्ठसदनंययौ ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवाल्मीकिजी बोले—उस रामचन्द्रजीकी उदार बडी चिन्ता करते हुये वह रात्रि इसप्रकार बीती भिलाषी कमलकी ॥ १ ॥ उसके पश्चात् कुछ अन्धकारसे कपिलवर्ण और कुछ अरूण आकाशमें विरल देशाओंके शोधितके समान होनेपर ॥ २ ॥ प्रातःकालमें तुरूहीके घोषके शब्दके साथ चन्द्रमाके

सदृश मुखवाले श्रीरामचन्द्रजी ऐसे उठके खडे होगये जैसे कमलके वनमेंसे कमल ॥ ३ ॥ प्रातःकाल स्नान आदि विधिको करके कुछ दास वर्गोंको भेजकर भाइयोंके साथ श्रीरामचन्द्रजी वसिष्ठके स्थानपर गये ॥ ४ ॥

समाधिसंस्थमेकांतेमुनिमात्मपरायणम् ॥ दूरएवाननामासौरामोविनतकंधरः ॥ ५ ॥ तंप्रणम्यांगणे तस्थुस्तस्मिंस्तेविनयान्विताः ॥ यावत्तमस्तमालूनंव्यक्तंदिङ्मुखमंडलम् ॥ ६ ॥ राजानोराजपुत्राश्चा ऋषयोब्राह्मणास्ततः ॥ आययुस्सदनंमौनंब्रह्मलोकमिवामराः ॥ ७ ॥ तद्वसिष्ठस्यसदनंवभूवजनसं कुलम् ॥ हस्त्यश्वरथसंबाधंपार्थिवाचारशोभनम् ॥ ८ ॥

अर्थ—उसके पश्चात् एकान्तमें समाधिमें स्थित और आत्मामें परायण मुनि वसिष्ठजीको रामचन्द्रजी नम्र होकर दूरहीसे प्रणाम किया ॥ ५ ॥ उसके पश्चात् विनययुक्त वे सब रामादिक वसिष्ठजीको प्रणाम करके जबतक दिशाओंका अन्धकार अच्छीतरहसे नष्ट न हुआ तबतक उसी वसिष्ठजीके अङ्गनमें खडे रहे ॥ ६ ॥ उसके पश्चात् अन्य राजे तथा राजपुत्र ऋषि और ब्राह्मण मौन होकर वसिष्ठजीके स्थानपर ऐसे आये जैसे ब्रह्मलोकमें देवता ॥७॥ वह वसिष्ठजीका गृह अनेक मनुष्योंसे व्याप्त हांथी और घोडे और रथसे पूर्ण राजाओंके योग्य आचार करके सहित अतएव राजभवनके सदृश शोभित हुआ ॥ ८ ॥

क्षणाद्वसिष्ठोभगवान्विररामसमाधितः ॥ आचारेणोपचारेणजग्राहप्रणतंजनम् ॥ ९ ॥ तथानुयातो मुनिभिर्विश्वामित्रान्वितोमुनिः ॥ आरुरोहरथंश्रीमान्सहसाब्जमिवाब्जजः ॥ १० ॥ ययौगृहंदाशर थंसैन्येनमहतावृतः ॥ ब्रह्मेवशक्रनगरंसमस्तसुरमालितः ॥ ११ ॥ विवेशावनतांतत्ररम्यांदाशरथीं सभाम् ॥ हंसयूथानुवलितोराजहंसइवाब्जिनीम् ॥ १२ ॥

अर्थ—एक क्षणमें वसिष्ठभगवान् समाधिसे विरामको प्राप्त हुये और विनयादि आचार तथा मधुर भाषण आदि उपचारसे सब नम्रीभूत जनोंका सत्कार किया ॥ ९ ॥ उसके पश्चात् मुनियों करके संयुक्त तथा विश्वामित्रजीके साथ श्रीमान् वसिष्ठमुनि रथपर इसप्रकार बैठे जैसे कमलके ऊपर ब्रह्माजी ॥ १० ॥ अनन्तर बडी भारी सेनासे घिरे हुये वसिष्ठजी दशरथजीके गृहमें इसप्रकार गये जैसे संपूर्ण देवताओंसे घिरे हुये ब्रह्माजी इन्द्रके भवनमें ॥ ११ ॥ वहां जाकर नम्रीभूत और रमणीय वसिष्ठकी सभामें ऐसे प्रवेश किया जैसे हंसके झुंडसे घिरा हुआ राजहंस कमलिनीमें १२

त्रीणितत्रपदान्याशुतदादशरथोनृपः ॥ निर्जगाममहावीरःसिंहासनसमुत्थितः ॥ १३ ॥ विविशुस्त तःसर्वेनृपादशरथादयः ॥ वसिष्ठाद्याश्चमुनयोऋषयोब्राह्मणास्तथा ॥ १४ ॥ मंत्रिणश्चसुमंत्राद्याः [illegible]ज्याद्याश्चविपश्चितः ॥ राजपुत्राश्चरामाद्यामंत्रिपुत्राःशुभादयः ॥ १५ ॥ अमात्याद्याःप्रकृतयःसु होत्राद्याश्चनागराः ॥ मालवाद्यास्तथाभृत्याःपौराद्याश्चैवमालिनः ॥ १६ ॥

अर्थ—उससमय महापराक्रमी राजा दशरथ अपने सिंहासनसे उठकर तीन पैरतक शीघ्रतासे वसिष्ठजीको लेनेको गये ॥ १३ ॥ उस समय वहांपर दशरथ आदि सम्पूर्ण राजे वसिष्ठ आदि मुनि और विश्वामित्रादि ऋषि तथा ब्राह्मण ॥ १४ ॥ सुमन्त्र आदि मन्त्री सौमासे आदि लेकर बुद्धिमान् पुरुष रामादि राजपुत्र शुभ आदि मंत्रियोंके पुत्र ॥ १५ ॥ आमात्यसे आदि लेकर सम्पूर्ण प्रकृति सुहोत्र आदि नगरनिवासी मालव आदि भृत्य और मालीसे आदि लेकर अन्य नगरनिवासी उस सभामें प्रविष्ट हुये ॥ १६ ॥

अथतेषूपविष्टेषुस्वेषुस्वेष्वासनेषुच ॥ सर्वेष्वेवोपविष्टेषुवसिष्ठोन्मुखदृष्टिषु ॥ १७ ॥ सभाकलकले शांतेमौनसंस्थेषुवंदिषु ॥ वृत्तासुस्थितिवार्त्तासुसौम्येतस्मिन्सभांतरे ॥ १८ ॥ स्फुरत्पवनमालासुवि शत्स्वंभोजकोटरात् ॥ परागेषुविलोलेषुमुक्तादामसुचंचलम् ॥ १९ ॥ वृहत्कुसुमदोलाभ्यःप्रसृताभ्यः समंततः ॥ वातिमांसलमामोदमादायमधुरानिले ॥ २० ॥

अर्थ—उसके अनन्तर जब सब राजा मंत्री आदि बैठ गये और पश्चात् वसिष्ठकी दृष्टिकी चेष्टासे अन्य सबके बैठ गये ॥ १७ ॥ सभाका कोलाहल शान्तिको प्राप्त हुआ बन्दीगण मौन होके स्थित होगये और उस शान्त सभाके मध्यमें परस्पर रात्रिके सुख प्रश्नकी वार्ता प्रवृत्त होनेलगी ॥ १८ ॥ और कमलके भीतरसे निकलकर चलती हुई पवनकी माला सभामें प्रवेश करनेलगी इसी हेतुसे कमलोंके परागोंमें मुक्ताओंके हार चंचल होने लगे ॥ १९ ॥ बडे २ चारों ओर फैले हुये पुष्पोंके झूलोंके उत्तम सुगन्धको ग्रहण करके मन्द २ वायुके बहने लगा ॥ २० ॥

वातायनेषुमृद्वषुकुसुमाकीर्णभूमिषु ॥ पर्यंकेषूपविष्टासुपश्यंतीषुपुरंध्रिषु ॥ २१ ॥ जालागतार्ककरलो लविलोचनासुरत्नप्रभानिकरपिंगलकोमलासु ॥ संत्यक्तचापललवंचपलासुतासुमौनस्थितासुसितचा

मरधारिणीषु ॥२२॥ मुक्ताफलप्रतिफलप्रतिमार्करश्मिरागोदरास्वजिरभूमिषुपुष्पकौघम् ॥ नासादयत्य भिनवातपबिंबबुद्ध्याभ्रांतेभ्रमत्यलिकुलेनभसीवमेघे ॥२३॥ पुण्यैर्वसिष्ठवदनप्रसृतंश्रुतंयत्तत्संततिप्र सृतविस्मयमार्यलोके ॥ सत्संगमेमृदुपदाक्षरसुग्धवाक्यमन्योन्यमीप्सितमनल्पगुणाभिरामम् ॥ २४ ॥

अर्थ—कोमल झरोखोंमें पुष्पोंसे आच्छादित पृथिवीमें आसनोंपर बैठकर स्त्रिया देखनेमें तत्पर हुई ॥ २१ ॥ जालमार्गसे प्राप्त हुये सूर्यकी किरणोंसे चंचल नेत्रधारिणी तथा रत्नकी प्रभाके समूहसे पिंगलवर्ण, तथा कोमल और चपलताके लेशकोभी त्यागकर श्वेत चमर धारण करनेवाले स्त्रिया मौन होकर स्थित होगई ॥ २२ ॥ और जब वहां-पर मोतियोंके प्रतिबिम्बके सदृश सूर्यकी किरणों पूर्ण उदरसहित नानाप्रकारके रत्नोंसे जटित अंगनकी भूमियोंपर नूतन आतपके बिम्बकी बुद्धिसे भ्रमरके समूहोंको पुष्पोंकी प्राप्ति न हुई तब वे मेघके समान आकाशमें भ्रमण करनेलगे श्रेष्ठ पुरूषोंसे युक्त उस सज्जनोंकी समाजमें पूर्वजन्मके पुण्योंसे वसिष्ठजीके मुखसे निकले हुये वचनको हृद-यमें विस्तार होनेसे अधिक आश्चर्यके साथ परस्पर अभिलषित अधिक गुणकी प्रसंशा आर्य्यलोकोमें होने लगी॥२४॥

दिग्भ्यःपुराच्चगगनाच्चवनाच्चसिद्धविद्याधरार्यमुनिविप्रगणेवसिष्ठम् ॥ मौनप्रणाममभितःप्रविशत्यश ब्दंसोपांशुगौरववतासहजातवाक्ये ॥२५॥ उन्निद्रकोकनदकोमलकोशकृष्टमग्नालिजालमकरंदसुव र्णरागैः॥ आपिंगलेमरुतिवातिविलोलघंटाटांकारगीतविनिपीतनिशांतगीते ॥२६॥ अगुरुततगरधूमेचं दनामोदमिश्रेसरसकुसुमदामोद्दामगंधांकिताभ्रे॥ सरतिसतिवितानांभोरुहामोदलेशैश्चलकुसुमरजों केशब्दविज्ञातभृंगम् ॥ २७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे सभासंस्थानवर्णनं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

अर्थ—दिशाओंसे नगरोंसे स्वर्गसे आकर सिद्ध विद्याधर श्रेष्ठ मुनि तथा ब्राह्मण समूह मौन होकर वसिष्ठको प्रणाम करके बैठगये अनन्तर प्रतिष्ठित पुरुषके साथ मन्द स्वरसे वसिष्ठके विषयमें संभाषण प्रवृत्त होने लगा ॥२५॥ और भेष विकसित रक्त कमलोंके कोशोंसे आकृष्ट (खिंचे हुये) प्रथम निमग्न भ्रमरोंके पुष्परसोंके और उत्तम परागोंके रंगोंसे किंचित् पिंगल वर्ण (कुछ लाल कुछ पीत) और गृहोंके प्रान्त (ओरों) में चंचल घंटाओंके टंकारकी गीतोंसे मनोहर तथा गृहोंमें रात्रिके शब्दोंको जीतनेवाले वायु वहने लगे ॥ २६ ॥ और जब चन्दनके सुगंध-साहित पुष्पोंकी धुलियोंसे रचित, इसी हेतुसे सरसमालाओंके उत्कट सुगन्धोंसे मेघमण्डलकोभी सुगन्धित करने-वाला और तगरके नील धूमसे मिलित होनेसे, निजरंगके छिपनेसे शब्दसेही भ्रमरोंका ज्ञान कराते हुये वंदनवारोंमें गूंथे हुये कमलोंके सुगंधको कुछ अंशको ग्रहण करके मन्द २ पवन चलने लगे ॥ २७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे सभासंस्थान वर्णनं नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

राजा दशरथजीसे वसिष्ठके वाक्योंकी प्रशंसा, और वसिष्ठमुनिके वाक्योंसे रामजीके विचारित अर्थोंका अनु-वाद इस ४ सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ मेघगंभीरयावाचाविश्रब्धपदसुंदरम् ॥ इदंदशरथोवाक्यमुवाचमुनिनायकम् ॥ १ ॥ भगवन्ह्यस्तनेनत्वंवाक्यसंदर्भजन्मना ॥ कच्चिन्मुक्तोसिखेदेनतपःकार्श्यातिशायिना ॥ २ ॥ ह्यस्तनोक्तोयआनंदीविविक्तोवचसांगणः ॥ अमृतावर्षणेनेवतेनैवाश्वासितावयम् ॥ ३ ॥ चंद्रांशवइ वोत्सार्यतमांस्यमृतनिर्मलाः ॥ अंतःशीतलयंत्येतामहतामलागिरः ॥ ४ ॥

अर्थ—उससमय मेघके सदृश गंभीर वाणीसे विश्वास योग्य पदोंसे सुन्दर वक्ष्यमाण वाक्यको दशरथजी मुनियोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठजीसे बोले कि ॥ १ ॥ हे भगवन् तपकी कृशतासे अधिक क्लेशदायी पूर्वदिनकी कथाके श्रमसे तो आप मुक्त (रहित) हुये ॥ २ ॥ हे प्रभो ! पूर्वदिन सम्बन्धी श्रोत्रको आनन्ददायक आपके इस बचन समूहसे हम सब ऐसे तृप्त हुये हैं जैसे अमृतकी वृष्टिसे ॥ ३ ॥ हे भगवन् ! अमृतके समान निर्मल महात्माओंकी यह विमल वाणी चन्द्रमाके किरणके समान अज्ञानान्धकारको हटाकर अन्तःकरणको शीतल करती है ॥ ४ ॥

अपूर्वाह्लाददायिन्यउच्चैस्तरपदाश्रयाः ॥ अतिमोहापहारिण्यःसूक्तयोहिमहीयसाम् ॥ ५ ॥ आत्मरत्ना वलोकैकदीपिकासरसात्मिका ॥ यस्माद्युक्तिलतोदेतिसवंद्यःसुजनद्रुमः ॥ ६ ॥ दूरीहितंद्रुर्विहितंस र्वसज्जनसूक्तयः ॥ प्रमार्जयंतिशीतांशोस्तमःकांडमिवांघ्रयः ॥ ७ ॥ तृष्णालोभादयोस्माकंसंसारनिग डामुने ॥ तवोक्त्यातनुतांयाताःशरदीवासितांबुदाः ॥ ८ ॥

अर्थ—अपूर्व आनन्द देनेहारी उच्चतर ब्रह्मपदके आशयसे युक्त और महा मोहको हरनेवाली महात्माओंकी उत्तम युक्ति होती हैं ॥ ५ ॥ वह सज्जनरूपी कल्पवृक्ष वन्दना करनेके योग्यहै जिससे आत्मरूपी रत्नके देखनेके अर्थ मुख्य दीपिकारूप सरसज्योतिर्मय युक्तिरूपी लता उत्पन्न होती है ॥ ६ ॥ सज्जनोंकी उत्तम युक्ति मानसिक शारीरिक तथा समस्त इन्द्रियोंके दोषोंको ऐसे दूर करती है जैसे अन्धकारको चन्द्रमाकी किरण ॥७॥ हे मुने ! संसारकी वेडीरूप हमलोगोंकी तृष्णा लोभादिक आपकी उक्तिसे इसप्रकार सूक्ष्मताको प्राप्त हुये जैसे शरदृतुमें मेघ ॥८॥

संप्रवृत्तावयंद्रष्टुमात्मानमपकल्मषम् ॥ रसांजनानीतदृशोजात्यंधाइवकांचनम् ॥ ९ ॥ संसारवासना नाम्नीमिहिकाहृदयांबरे ॥ प्रवृत्तातनुतांगंतुंत्वदुक्तिशरदेवनः ॥ १० ॥ मुनेमंदारमंजर्यस्तरंगावामृतांभ सः ॥ नतथाह्लादयंत्यंतर्यथोदारधियांगिरः ॥ ११ ॥ यद्यद्राघवसंयातिमहाजनसपर्यया ॥ दिनंतदिह सालोकंशेषात्वंधादिनालयः ॥ १२ ॥

अर्थ—इससमय हमलोग पापरहित शुद्ध आत्माको देखनेके अर्थ ऐसे समर्थ हुये हैं जैसे सिद्धांजनसे प्राप्त दृष्टि जन्मान्ध पुरूप सुवर्णको ॥ ९ ॥ हे भगवन् ! आपकी उक्तिरूपी शरदृतुसे हमलोगोंकी संसारकी वासनारूप कुहरा हृदयरूपी आकाशमें सूक्ष्म होनेको प्रवृत्त हुई है ॥ १० ॥ हे मुने ! कल्पवृक्षकी लता वा अमृतमय समुद्रके तरंग अन्तःकरणको इसप्रकार आनन्द नहीं दे सकते जैसे उदार बुद्धि महात्माओंकी वाणी ॥ ११ ॥ हे रामचन्द्रजी ! (रामचन्द्रजीकी संबोधन करके कहते हैं) जो दिन ब्रह्मवेत्ताओंकी पूजामें बीतताहै वही प्रकाशयुक्तहै और शेष अन्धकारमयहैं ॥ १२ ॥

रामराजीवपत्राक्षप्रकृतार्थमिहाव्ययम् ॥ मुनिमाबोधयपुनःप्रसादेसमवस्थितम् ॥ १३ ॥ इत्युक्तोभूभृतातत्ररामाभिमुखमास्थितः ॥ उवाचेदमुदारात्मावसिष्ठोभगवान्मुनिः ॥ १४ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ राघवस्वकुलैकेंदोयन्मयोक्तंतेमहामते ॥ कच्चित्स्मरसिवाक्यार्थंपूर्वापरविचारितम् ॥ १५ ॥ उत्पत्तीनांविचित्राणांसत्वादिगुणभेदतः ॥ कच्चित्स्मरसिसर्वासांविभागमरिमर्दन ॥ १६ ॥

अर्थ—हे कमलनेत्र रामचन्द्रजी ! अविनाशी मुनि वसिष्ठजी जो इससमय प्रसन्नतामें स्थितहैं उनसे प्रस्तुत अर्थके विषयमें पुनः प्रश्न करो ॥ १३ ॥ दशरथराजासे ऐसे कहे हुये रामचन्द्रजीके सम्मुख बैठे हुये उदार आशय श्रीभगवान् वसिष्ठमुनि इस वचनको बोले ॥ १४ ॥ हे निजकुलचन्द्र महामते रामचन्द्रजी ! जो कुछ मैंने कहाहै उस वाक्यार्थको पूर्वापर तुमने क्या विचार किया ॥ १५ ॥ हे शत्रुमर्दक रामचन्द्रजी ! पूर्वोक्त सम्पूर्ण जीव जातियोंकी सत्वआदि गुणभेदसे विचित्र उत्पत्तियोंके विभाग क्या तुमको स्मरणहै ॥ १६ ॥

कच्चित्सर्वमसर्वंचसदसच्चसदोदिम् ॥ रूपंस्मरसिवेत्स्येवविविक्तंपरमात्मनः ॥ १७ ॥ यथेदमुदितं विश्वंविश्वेशादेवचेश्वरात् ॥ कच्चित्स्मरसितत्साधोसाधुवादैकभाजन ॥ १८ ॥ रूपंकचिदविद्यायाव लाद्गुरमाततम् ॥ अनंतमंतवच्चैवसम्यक्स्मरसिसन्मते ॥ १९ ॥ चित्तमेवनरोनान्यदितियत्प्रतिपा दितम् ॥ लक्षणादिविचारेणकच्चित्स्मरसिसाधुतत् ॥ २० ॥

अर्थ—हे रामचन्द्रजी ! माया शक्तिसे जगतके रूपसे स्थित और शुद्धरूपसे निष्प्रपंच स्थूल सूक्ष्म अथवा सत्य असत्य जगत् तथा ब्रह्मके रूपको जो मैंने कहा क्या वह तुमको स्मरणहै और बुद्धि आदि दृश्य जगत्से भिन्न परमात्माके रूपको क्या तुम जानतेहो ॥१७॥ हे साधो ! हे सज्जनोंकी प्रशंसा तथा उपदेशके पात्र रामचन्द्रजी ! जिस तरहसे संपूर्ण संसारके स्वामी सर्व शक्तिमान् परमात्मासे यह जगत् उत्पन्न हुआहै उसे क्या तुम स्मरण करतेहो ॥१८ कालके वशसे नाशमान प्रवाहरूपसे अनन्त और देशकालादि रूपसे अन्त इस मायाके रूपको क्या तुम स्मरण करते हो ॥ १९ ॥ हे रामजी ! चित्तही मनुष्यहै और कुछ नहीं यह जो मैंने तुमसे कथन कियाथा उसके लक्षण आदि विचारपूर्वक क्या तुम भलीभांति स्मरण करतेहो ॥ २० ॥

वाक्यार्थश्चाखिलःकच्चित्त्वयारामविचारितः ॥ ह्यस्तनस्यविचारस्यरात्रौहृदिनिवेशितः ॥ २१ ॥ भूयो भूयःपरामिष्टंहृदयेसुनियोजितम् ॥ प्रयोजनंफलत्युच्चैर्नहेलाहतसंस्थितेः ॥ २२ ॥ भाजनंत्वंविविक्ता

नांवचसांशुद्धिशालिनाम् ॥ विविक्तहृदयःकंठेमुक्तानांमिवराघव ॥ २३ ॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ कम लासनपुत्रेणमुनिनासमहौजसा ॥ एवंवितीर्णावसरोरामोवाक्यमुवाचह ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रामचन्द्रजी ! पूर्व दिनमें जो कुछ मैंने विचार कियाथा उसको तुमने अच्छीतरहसे विचारा और रात्रिमें मननसे हृदयमें स्थापित किया ॥ २१ ॥ क्योंकि बारंवार विचार किया हुआ और मननसे हृदयमें स्थापित प्रयोजन मोक्षरूप फलको देताहै और अनादरसे जिस पुरुषने उपदेशको हृदयमें नहीं स्थापित किया उसको वह फल नहीं मिलता ॥ २२ ॥ हे राघव ! पवित्र तथा शुद्ध वाणियोंके तुम इसप्रकार पात्रहो जैसे पवित्र वा विशाल कंठवाला मोतियोंके मालाका ॥ २३ ॥ श्रीवाल्मीकिजी बोले—ब्रह्माजीके पुत्र महातेजस्वी वसिष्ठजी इसप्रकार अवसर प्राप्त रामचन्द्रजी यह वाक्य बोले ॥ २४ ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञतवैवैतद्विजृंभितम् ॥ यदहंपरमोदारोबुद्धवान्वचनंतव ॥ २५ ॥ यदादिशसितत्सर्वंतथैवनतदन्यथा ॥ अपास्तनिद्रेणमयावाक्यार्थोहृदिचिंतितः ॥ २६ ॥ भवांधकार क्षतयेभवतोक्तिविवस्वता ॥ ह्यःप्रसादितमाह्लादिवाग्रश्मिपटलंप्रभो ॥ २७ ॥ तदतीतमदीनात्मन्सर्व मंतःकृतंमया ॥ रम्यंपुण्यंपवित्रंचरत्नवृंदमिवान्वितम् ॥ २८ ॥

अर्थ—हे सर्व धर्मज्ञ ! यह आपहीका प्रतापहै कि मैंने परमउदार होकर आपके वचनको समझा ॥ २५ ॥ हे भगवन् ! जैसा आप उपदेश देतेहो वैसाही मैंने किया उसके विरुद्ध नहीं किया क्योंकि निद्राको दूर करके मैंने आपके कहे हुये वाक्यार्थके हृदयमें चिन्तन किया ॥ २६ ॥ संसारके अन्धकारको नाश करनेके लिये हे प्रभो ! आपके बचनरूपी सूर्यने गतदिनमें आनन्ददायक वाणीरूपी किरणके समूहको विस्तारित किया ॥ २७ ॥ हे भगवन् ! हे उदारचित्त ! उस सब कहे हुये पदार्थोंको जो कि रमणीय पुण्य पवित्र और क्रम करके युक्तहै उसको रत्नके समूहके सदृश मैंने अन्तर्गत करलिया ॥ २८ ॥

हितानुबंधिहृद्यंचपुण्यमानंदसाधनम् ॥ शिरसाध्रियतेकैर्नोसिद्धैस्त्वदनुशासनम् ॥ २९ ॥ प्रतिक्षिप्तं तत्संसारमिहिकावरणंवयम् ॥ प्रसन्नास्त्वत्प्रसादेनवर्षांतइववासराः ॥ ३० ॥ आपातमधुरारंभंमध्ये सौभाग्यवर्द्धनम् ॥ अनुत्तमफलोदर्कंपुण्यंत्वदनुशासनम् ॥ ३१ ॥ विकासिसितमम्लानमाह्लादितशु भाशुभम् ॥ त्वद्वचःकुसुमंनित्यंश्रीमत्फलदमस्तुनः ॥ ३२ ॥ सकलशास्त्रविचारविशारदप्रसृतपुण्य जलैकमहाह्रद ॥ भजभृशंविततव्रतसंप्रतिप्रसृततांहतकिल्बिषसंततिम् ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशम प्रकरणेराघवप्रश्नो नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! संपूर्ण अरिष्टोंका निवारक मनोहर परमपुरुषार्थ साधक ब्रह्मानन्दका साधन अति पवित्र आपके उपदेशको कौनसे ऐसे योगसे सिद्ध वा सनकादि सिद्धभी शिरसे नहीं धारण करते ॥ २९ ॥ हे भगवन् ! संसाररूप तुषारको हम बस फेकते हुये आपकी कृपासे ऐसे प्रसन्न हुये हैं जैसे वर्षाके अन्तमें दिन ॥ ३० ॥ बिना बिचारेभी मधुर (कर्णको सुखद) मध्यमें अर्थात् मनन और निदिध्यासनकालमें सौभाग्य (शमादि सम्पत्ति सुखका) वर्द्धक और अन्तमें मोक्षरूप फलका दायक आपका उपदेशहै ॥ ३१ ॥ विकाशयुक्त, स्वच्छ, शुभ (देवादि) और अशुभ (सर्पादि) दोनोंको आनन्दित करनेवाला, शोभायुक्त आपका वचनरूप कल्पवृक्षका पुष्पहै ॥ ३२ ॥ हे देशकाल तथा शास्त्रोंको विचारोंमें निपुण तथा हे विस्तृत पुण्यरूप जलके महाह्रद ! हे पाप नाशक ! हे विस्तारित व्रत भगवन् वसिष्ठजी ! आप मेरी शुद्धिके लिये उसी प्रस्तुत उपदेशरूप प्रवाहको स्वीकार कीजिये ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे प्रश्नो नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

अविवेकसे बढी हुई मनोमात्र जगत्की स्थितिको उपशमनका उपाय इस ५ सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इदमुत्तमसिद्धांतसुंदरंसुंदराकृते ॥ उपशांतिप्रकरणंशृणुष्वावहितोहितम् ॥ १ ॥ दीर्घसंसारमायेयंरामराजसतामसैः ॥ धार्यतेजंतुभिर्नित्यंसुस्तंभैरिवमंडपः ॥ २ ॥ सत्वस्थजाति

भिर्दीरैस्त्वादृशैर्गुणबृंहितैः ॥ हेलयात्यज्यतेपक्कामायेयंत्वगिवोरगैः ॥ ३ ॥ येसत्त्वजातयःप्राज्ञास्त थाराजससात्विकाः ॥ विचारयंतितेसाधोजगत्पूर्वपरंपराम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे सुन्दर आकारवाले रामजी ! यह हितदायक उत्तम सिद्धान्तसहित उपशमप्रकरणको सावधान होके सुनो ॥ १ ॥ हे रामजी ! राजस, सात्विक तथा शुद्ध सात्विक जीव इस दीर्घ संसारकी मायाको नित्य ऐसे धारण करते हैं जैसे उत्तम खंभे मण्डपको ॥ २ ॥ सत्वगुणमें स्थित, धीर गुणमें बढे हुये आपके सदृश जीवोंने इस संसारकी मायाको अनादर करके ऐसे त्याग देते हैं जैसे पकी हुई केंचुलीको सर्प ॥ ३ ॥ हे साधो रामजी ! जो रजोगुण तथा सत्वगुण जातिवाले बुद्धिमान् प्राणी हैं वे जगत्के मूलकी परम्पराको विचारते हैं अर्थात् जगत्का आदि कारण क्याहै इसका विचार करके ब्रह्मको जानते हैं ॥ ४ ॥

शास्त्रसज्जनसत्कार्यसंगेनोपहतैनसाम् ॥ सारावलोकिनीबुद्धिर्जायतेदीपिकोपमा ॥ ५ ॥ स्वयमेववि चारेणविचार्यात्मानमात्मना ॥ यावन्नाधिगतंज्ञेयंनतावदधिगम्यते ॥ ६ ॥ प्रज्ञावतांनयवतांधीराणांकु लशालिनाम् ॥ जात्याराजससत्वानांमुख्यस्त्वंरघुनंदन ॥ ७ ॥ स्वयमालोकयप्राज्ञसंसारारंभदृष्टिषु ॥ किंसत्यंकिमसत्यंवाभवसत्यपरायणः ॥ ८ ॥

अर्थ—शास्त्र सज्जन, तथा सत्कार्य अर्थात् यज्ञ दान और तप आदिसे जिनका पाप नष्ट होगयाहै उनकी दीपिका (दीप) के सदृश बुद्धि सारपदार्थको देखनेवाली होजाती है ॥ ५ ॥ अपनेही विचारसे जबतक आत्मासे आत्माका विचार करके ज्ञेयवस्तुको नहीं जाना तबतक वह नहीं प्राप्त होता ॥ ६ ॥ हे रघुनन्दन ! बुद्धिमान् प्रामाणिक, धीर, कुलीन और राजस सात्विक जातिमें उत्पन्न पुरुषोंमें मुख्य आपही हैं ॥ ७ ॥ हे प्राज्ञ रामजी ! संसारके कार्यके आरंभकी दृष्टिओंमें आप स्वयं देखो कि क्या सत्यहै और क्या असत्यहै तब सत्यमें परायणहो ॥ ८ ॥

आदावंतेचयन्नास्तिकीदृशीतस्यसत्यता ॥ आदावंतेचयन्नित्यंतत्सत्यंनामनेतरत् ॥ ९ ॥ आद्यंतास न्मयेयस्यवस्तुन्यासज्जतेमनः ॥ तस्यमुग्धपशोर्जंतोर्विवेकःकेनजन्यते ॥ १० ॥ जायतेमनएवेहमनए ववविवर्द्धते ॥ सम्यग्दर्शनदृष्ट्यातुमनएवहिमुच्यते ॥ ११ ॥ श्रीरामउवाच ॥ ज्ञातमेतन्मयाब्रह्मन्यथा स्मिन्भुवनत्रये ॥ मनएवहिसंसारिजरामरणभाजनम् ॥ १२ ॥

अर्थ—जो पदार्थ आदि अन्तमें नहीं है उसकी सत्यता कैसी ? और जो आदि अन्तमें नित्यहै वही सत्यहै अन्य नहीं ॥ ९ ॥ आदि अन्तमें असन्मय पदार्थमें जिसका मन सत्य बुद्धिसे निमग्न होताहै उस मूर्ख प्राणीको विवेक किससे उत्पन्न होगा ॥ १० ॥ इस संसारमें मनहीं उत्पन्न होताहै और मनहीं बढताहै और सम्यग्दर्शनकी दृष्टिसे मनही मुक्त होताहै ॥ ११ ॥ श्रीरामजी बोले—हे ब्रह्मन् ! जिस प्रकारसे मनही संसारीहै और वृद्धाऽवस्था तथा मृत्युका पात्र यह जिस प्रकार तीनों लोकमें है उसको मैंने आपकी कृपासे जानलिया ॥ १२ ॥

यस्तस्योत्तरणोपायस्तन्मेब्रूहिसुनिश्चितम् ॥ हार्दंतमस्त्वयार्केणराघवाणांविनाश्यते ॥ १३ ॥ श्रीवसि ष्ठउवाच ॥ पूर्वंराघवशास्त्रेणवैराग्येणपरेणच ॥ तथासज्जनसंगेननीयतांपुण्यतांमनः ॥ १४ ॥ सौज न्योपहितंचेतोयदावैराग्यमागतम् ॥ तदानुगम्यागुरवोविज्ञानगुरवोपिये ॥ १५ ॥ ततस्तस्योपदिष्टेन कृत्वाध्यानार्चनादिकम् ॥ क्रमेणपदमाप्नोतितद्यत्परमपावनम् ॥ १६ ॥

अर्थ—अब जो कुछ निश्चित उपाय संसारसे तरनेकाहो उसे कहिये क्योंकि रघुवंशियोंके हृदयके अन्धकारको सूर्यरूप धारण करके आपही नाश करते हैं ॥ १३ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे राघव ! प्रथम शास्त्रसे उत्तम वैराग्य तथा सज्जनोंके समागमसे मनको ज्ञानोदयके योग्य शुद्ध करना चाहिये ॥ १४ ॥ सुजनतासे पूर्णचित्त जब वैराग्यको प्राप्त होताहै तब शास्त्रज्ञ तथा ब्रह्मनिष्ठ गुरूओंके समीप विधिपूर्वक जाना चाहिये ॥ १५ ॥ अनन्तर उस गुरूके कहे हुये मार्गसे ध्यान पूजादिक करके क्रमसे वह परमपवित्र आत्मपद प्राप्त होताहै ॥ १६ ॥

विचारेणावदातेनपश्यत्यात्मानमात्मना ॥ इंदुनाशीतलेनांतर्विश्वंखमिवतेजसा ॥ १७ ॥ तावद्भवमहां भोधौजनस्तृणवदुह्यते ॥ विचारतटविश्रांतिमेतियावन्नचेतसा ॥ १८ ॥ विचारेणपरिज्ञातवस्तुनोस्य जनस्यधीः ॥ सर्वानधःकरोत्याधीन्सौम्यांभइववालुकाः ॥ १९ ॥ इदंरुक्ममिदंभस्मपरिज्ञातमिति स्फुटम् ॥ नयथाहेमकारस्यह्मेमज्ञानात्मनस्तथा ॥ २० ॥

अर्थ—शुद्ध विचारसे अपने आत्मासे आत्माको जीव इसप्रकार देखताहै जैसे शीतल चन्द्रमाके तेजसे पूर्ण आकाशको ॥ १७ ॥ इस संसाररूपी सागरमें यह जीव तृणके समान तभीतक बहाया जाताहै जबतक बुद्धिरूप नौ-

कासे बिचाररूपी तटपर स्थिरताको नहीं प्राप्त होता ॥ १८ ॥ जिस प्राणीने बिचारसे आत्मतत्वको जानलियाहै उसकी बुद्धि सम्पूर्ण मानस दुःखोंको ऐसे दूर करदेती है जैसे स्वच्छ और नीचेकी ओर बहता हुआ जल वालुकाको ॥१९॥ जैसे यह सुवर्ण है यह भस्महै ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञान सुवर्ण जाननेवाले स्वर्णकार(सोनार)को होताहै ऐसाही ॥२०॥

अक्षयोयंमनागात्मास्वात्मन्यवगतेचिरम् ॥ भवतीतिनरस्येहमोहस्यावसरःकुतः ॥ २१ ॥ अपरिज्ञातसारेहिमनोंतर्येदिमुह्यते ॥ ज्ञातसारेत्वसंदिग्धमसतीकिलमूढता ॥ २२ ॥ हेजनाअपरिज्ञातआत्मा वोदुःखसिद्धये ॥ परिज्ञातस्त्वनंतायसुखायोपशमायच ॥ २३ ॥ मिश्रीभूतमिवानेनदेहेनोपहतात्मना॥ व्यक्तीकृत्यस्वमात्मानंस्वस्था भवतमाचिरम् ॥ २४ ॥

अर्थ—अज्ञदृष्टिसे यह परिच्छिन्न जीव चिरकालके बिचारसे विवेकसे अपने स्वरूपके जाननेपर यह अक्षय अर्थात् देशकालवस्तुसे अपरिच्छिन्नरूप होजाताहै तब भला इसमें अज्ञानका अवसर कहां ॥ २१ ॥ यदि सार पदार्थको न जाननेवाले पुरुषका मन मोहको प्राप्त हो तो हो परन्तु सार वस्तुको जाननेवाले पुरुषमें तो निस्सन्देह यह मूढता असम्भव है ॥ २२ ॥ हे मनुष्यजन न जाननेसे यह तुमारा आत्मा दुःखकी सिद्धिकेलिये है और जाननेपर यही आत्मा अनन्त सुख और शान्तिकेलिये है ॥ २३ ॥ इस नष्ट देहसे आत्मा जो मिश्रित होगयाहै उसको पंचकोशके विवेककी दृष्टिसे पृथक् करके तुम लोग स्वस्थताको प्राप्त होओ ॥ २४ ॥

देहेनास्यनसंबंधोमनागेवामलात्मनः ॥ हेम्नःपंकलवेनेवतद्गतस्यापिमानवाः ॥ २५ ॥ पृथगात्माप्टथग्देहीजलपद्मलवोपमौ ॥ ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येषनचकश्चिच्छृणोतिमे ॥ २६ ॥ जडधर्मिमनोयावद्गर्तकच्छपवत्स्थितम् ॥ भोगमार्गवदामूढंविस्मृतात्मविचारणम् ॥२७॥ तावत्संसारतिमिरंसेंदुनापिसवह्निना॥ अर्कद्वादशकेनापिमनागपिनभिद्यते ॥ २८ ॥

अर्थ—हे मनुष्यो ! जैसे कीचडमें फसे हुये सुवर्णका कीचडके लेशसेभी संबन्ध नहीं है ऐसेही इस आत्माका किंचित्भी देहके साथ सम्बन्ध नहीं है ॥ २५ ॥ ब्रह्म और जीव पद्मके आधार महाजल और पद्मपत्रके ऊपर पडे हुये जलबिन्दुके समान भिन्न २ हैं अर्थात् ये दोनों उपाधिसे पृथक् हैं इस बातको मैं भुजा उठाकर घोषणा करताहुं परन्तु कोई नहीं सुनता ॥ २६ ॥ यह जडधर्मि मन दुर्वासनारूपी गढेमें कच्छपके समान ली[illegible] और भोगके द्वार भूत इन्द्रियोंके विषयोंमें आत्माके बिचारको त्यागकर जबतक निमग्नहै ॥ २७ ॥ तबतक यह [illegible]रूपी अन्धकार चन्द्रमा और अग्निसहित द्वादश सूर्यसेभी किंचित्भी छिन्न नहीं होसकता ॥ २८ ॥

संप्रबुद्धेहिमनसिस्वांविवेचयतिस्थितिम् ॥ नैशमर्कोदयइवतमोहार्दंपलायते ॥ २९ ॥ नित्यमुच्[illegible]घाययोगशय्यागतंमनः ॥ बोधयेद्भवभेदायभवोह्यत्यंतदुःखदः ॥ ३० ॥ यथारजोभिर्गगनंयथाम्बुभिः ॥ नलिप्यतेहिसंश्लिष्टैर्देहैरात्मातथैवच ॥ ३१ ॥ कर्दमादियथाहेम्नाश्लिष्टमिमेतिपृथक्स्थितम्[illegible]नांतःपरिणतिंयातिजडोदेहस्तथात्मना ॥ ३२ ॥

अर्थ—और मनके प्रबुद्ध होनेपर और अपनी यथार्थ स्थिति (शरीरादिसे पृथक्) के देखनेपर हृदयका अन्धकार ऐसे भागता है जैसे सूर्योदय होनेसे रात्रिका अन्धकार ॥ २९ ॥ जब यह मन देहादिके साथ अभेदरूप शय्यापर शयन करे तब संसारके नाशकेलिये उत्तम ज्ञानवाले गुरुके निकट जाकर प्रश्न करे क्योंकि यह संसार अत्यन्त दुःखदायी है ॥ ३० ॥ जैसे धूलियोंसे आकाश जलसे कमल नहीं लिप्त होता ऐसेही मिले हुये देहोंसेभी आत्मा लिप्त नहीं होता ॥ ३१ ॥ जैसे कर्दम आदिकी मलिनता सुवर्णसे मिलीहुईभी पृथक् स्थितिको प्राप्त होती है न कि सुवर्णरूपसे ऐसेही जडदेहभी आत्मासे मिलनेपरभी आत्मरूपसे नहीं परिणत होता ॥ ३२ ॥

सुखदुःखानुभावित्वमात्मनीत्यवबुध्यते ॥ असत्यमेवगगनेबिंदुताम्लानतेयथा ॥ ३३ ॥ सुखदुःखेनदेहस्यसर्वातीतस्यनात्मनः ॥ एतेह्यज्ञानकस्यैवतस्मिन्नष्टेनकस्यचित् ॥ ३४ ॥ नकस्यचित्सुखंकिंचिद्दुःखंचनचकस्यचित् ॥ सर्वमात्ममयंशांतमनंतंपश्यराघव ॥ ३५ ॥ इमायाःपरिदृश्यंतेविततासृष्टि[illegible]यः ॥ पयसीवतरंगास्तेपिच्छंन्योसीवचात्मनि ॥ ३६ ॥

अविवेअर्थ—विषयके सुख तथा दुःखका अनुभव आत्मामें जो भान होताहै यह ऐसे असत्यहैं जैसे आकाशमें ॥ श्रीवसिष्ठौर मलिनताकी प्रतीति ॥ ३३ ॥ सुख दुःख न तो देहको हैं और न सर्वातीत आत्माको किन्तु यह दोनों दीर्घसंसारमाहैं और अज्ञानके नष्ट होनेपर किसीको नहीं है ॥ ३४ ॥ न किसीको सुखहै और न दुःख है राम- सब आत्माका विवर्त है अर्थात् तुम सबको अनन्त नित्य प्रशान्त आत्मरूप देखो ॥ ३५ ॥

हे रामचन्द्रजी ! आत्मामें जो यह विशालरूप सृष्टिकी दृष्टि देख पडती हैं वे ऐसी हैं जैसी जलमें तरंग वा अर्धनेत्र मूंदनेपर आकाशमें मोरके पंख ॥ ३६ ॥

यथामणिर्ददात्यात्मच्छायाःस्वयमकारणम् ॥ तेजोमयीस्तथैवायमात्मासृष्टीःप्रयच्छति ॥ ३७ ॥ आत्माजगच्चसुमतेनैकंनद्वैतमप्यसत् ॥ आभासमात्रमेवेदमित्थंसंप्रतिजृंभते ॥ ३८ ॥ समस्तंखल्विदं ब्रह्मसर्वमात्मैवमाततम् ॥ अहमन्यदिदंचान्यदितिभ्रांतिंत्यजानघ ॥ ३९ ॥ ततेब्रह्मघनेनित्येसंभवंतिनकल्पनाः ॥ विच्छित्तयःपयोराशौयथारामनसन्मयाः ॥ ४० ॥

अर्थ—जैसे मणि अपनी तेजोमयी कान्ति निष्कारण बिना क्रियाके फैलाती है ऐसेही आत्मा अपनी सत्तामात्रसे सृष्टियोंका प्रसार करताहै ॥ ३७ ॥ हे सुमते रामजी ! आत्मा और जगत् ये दोनों अद्वयरूप नहीं हैं और नानारूपभी नहीं है क्योंकि जगत् असत्यरूपहै यह सब इसीप्रकार अज्ञानकालमें भासताहै ॥ ३८ ॥ यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त ब्रह्मरूपही है. हे पापशून्य रामजी ! मैं अन्यहूं यह जगत् अन्यहै इस भ्रांतिको त्यागो ॥३९॥ देशकाल और वस्तुके परिच्छेदसे शून्य ब्रह्ममें यह कल्पना ऐसे नहीं सम्भवहै जैसे समुद्रमें तरंगोंके विच्छेद ॥ ४० ॥

एकस्मिन्नेवसर्वस्मिन्परमात्मनिवस्तुनि ॥ द्वितीयाकल्पनानास्तिवह्नौहिमकणोयथा ॥ ४१ ॥ भावयन्नात्मनात्मानंचिद्रूपेणैवचिन्मयम् ॥ ऋजूज्ज्वलमयेह्यात्मास्वयमात्मनिजृंभते ॥ ४२ ॥ नशोकोस्तिनमोहोस्तिनजन्मास्तिनजन्मवान् ॥ यदस्तीहतदेवास्तिविज्वरोभवराघव ॥ ४३ ॥ निर्द्वंद्वोनित्यसत्त्वस्थोनिर्योगक्षेमआत्मवान् ॥ अद्वितीयोविशोकात्माविज्वरोभवराघव ॥ ४४ ॥

अर्थ—एकही सर्वरूप परमात्म वस्तुमें द्वितीय कल्पनाकी सम्भावना ऐसे नहीं है जैसे अग्निमें हिमकणकी ॥ ४१ ॥ चित्‌रूप आत्मासे चित्‌रूप आत्माकी भावना करता हुआ माया रचित कुटिलतासे शून्य आत्म स्वरूपमें आत्मा स्वयं प्रकाशित होताहै ॥ ४२ ॥ हे रामजी ! न शोक न मोह न जन्म और न जन्मवान्‌है जो है वह है ऐसा जानकर तुम सन्ताप रहित हो ॥ ४३ ॥ हे राम ! शीत उष्ण आदि द्वन्द्वके विक्षेपसे रहित, नित्य सत्वमें स्थित होनेके कारण रजोगुण और रजोगुणके विक्षेपसे रहित, अप्राप्तकी प्राप्ति और प्राप्तके रक्षणकी निमग्नतासे शून्य, आत्मवान्, अद्वितीय, शोकरहित, तथा सन्तापरहित होओ ॥ ४४ ॥

समःस्वस्थःस्थिरमतिःशांतशोकमनामुनिः ॥ मौनीवरमणिस्वच्छैविज्वरोभवराघव ॥ ४५ ॥ विविक्तःशांतसंकल्पोधीरधीर्विजिताशयः ॥ यथाप्राप्तानुवर्तीचविज्वरोभवराघव ॥ ४६ ॥ वीतरागोनिरायासोविमलोवीतकल्मषः ॥ नादातानपरित्यागीविज्वरोभवराघव ॥ ४७ ॥ विश्रांतीतपदंप्राप्तःप्राप्तप्राप्तव्यपूरितः ॥ पूर्णार्णववदक्षुब्धोविज्वरोभवराघव ॥ ४८ ॥

अर्थ—हे राघव ! समस्वस्थ, स्थिर, स्थिर बुद्धि, शोकरहित, शान्त मन, मौन, और उत्तम मणिके सदृश स्वच्छ होके सन्तापरहित होओ ॥ ४५ ॥ अविद्या तथा उसके कार्य्यसे विनिर्मुक्त, शान्त संकल्प, धीर बुद्धि, स्वाधीन चित्त, और यथा प्राप्त वस्तुसे व्यवहारवान् होके हे राघव ! सन्ताप रहित होओ ॥ ४६ ॥ वीतराग चिन्ताशून्य, विमल, पापरहित, और न किसीके पदार्थको ग्रहणकर्ता वा त्यागी होके सन्तापरहित होओ ॥ ४७ ॥ विश्रांतीत पदको प्राप्त होके, और प्राप्तव्य वस्तुकी प्राप्तिसे पूर्ण, और पूर्ण समुद्रके सदृश विक्षोभरहित होके सन्तापरहित होओ ॥ ४८ ॥

विकल्पजालनिर्मुक्तोमायांजनविवर्जितः ॥ आत्मनात्मनितृप्तात्मविज्वरोभवराघव ॥ ४९ ॥ अनंतापारपर्यंतवपुरात्मविदांवर ॥ धराधरशिरोधीरोविज्वरोभवराघव ॥ ५० ॥ यथाप्राप्तानुभवनात्सर्वत्रानभिवांछनात् ॥ त्यागादानपरित्यागाद्विज्वरोभवराघव ॥५१॥ आत्मन्येवात्मनौदार्यंभजपूर्णइवार्णवः ॥ आत्मन्येवात्मनाह्लादंभजपूर्णेंदुबिंबवत् ॥ ५२ ॥ विश्वप्रपंचरचनेयमसत्यरूपानासत्यरूपमनुधावतिरामतज्ज्ञः ॥ तज्ज्ञोसिशांतकलनोसिनिरामयोसिनित्योदितोसिभवसुंदरशांतशोकः ॥ ५३ ॥ एकातपत्रमवनौगुरुणोपदिष्टंसम्यक्सुपालयचिरंसमयेहदृष्ट्या ॥ राज्यंसभस्तगुणरंजितराजलोकस्त्यागोनयुक्तइहकर्मसुनापिरागः ॥ ५४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे प्रशमोपदेशो नाम पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

अर्थ—विकल्पोंके जालसे विनिर्मुक्त, मायाके अंजनसे वर्जित, और आत्मासे आत्मामें तृप्त होके हे रामजी ! सन्तापरहित होओ ॥ ४९ ॥ हे आत्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ रामजी ! अनन्त अपार शरीरवाले (सर्वव्यापी चेतनरूपसे)

और मेरूके समान धीर (सहनशील) होके सन्तापरहित होओ ॥ ५० ॥ हे रामजी ! यथा प्राप्त वस्तुके अनुभवसे और सर्वत्र वांच्छा न करनेसे, तथा त्याग और ग्रहणके परित्यागसे तुम सन्तापरहित होजाओ ॥ ५१ ॥ हे रामजी ! समुद्रके सदृश अपने आत्मासे आत्मामें पूर्ण काम होओ, और पूर्ण चन्द्र बिम्बके सदृश सर्व सन्तापसे रहित शान्तिसुखके आश्रयको ग्रहण करो ॥ ५२ ॥ हे रामजी ! यह संसारके प्रपञ्चकी रचना असत्यरूपहै, और असत्यताको जाननेवाला पुरुष असत्यरूपके पीछे नहीं दौडता, हे रामजी ! तत्वज्ञहो, कल्पनारहितहो, आधिव्याधि वर्जितहो और नित्य आत्मज्ञानके उदयसहितहो, इसलिये शान्त शोक और सुन्दर होजाओ ॥ ५३ ॥ और अपने गुणोंसे समस्त राजाओंको तथा प्रजाओंको रञ्जित (प्रसन्न) करते हुये पितासे दिये हुये एकछत्र राज्यको समदृष्टिसे चिरकालतक अच्छी तरहसे पालन करो, क्योंकि पारब्ध कर्म्मोंसे अवश्य भोक्तव्य कर्म्मोंमें तथा उनके फलोंमें त्याग और राग दोनों योग्य नहीं है ॥ ५४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उपशमप्रकरणे प्रशमोपदेशो नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

इस ६ सर्गमें अन्तिम जन्मवाले मोक्ष भागियोंकी पूर्वकालकी कर्मकी गतियोंको कहके जीवन्मुक्तिको सिद्धिके लिये गुणोंकी प्राप्तिमें सामान्य क्रमका वर्णन करते हैं ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ इमंविश्वपरिस्पंदंकरोमीत्यस्तवासनम् ॥ प्रवर्त्ततेयःकार्येषुसमुक्तइतिमेमतिः ॥ १ ॥ पौरुषींतनुमाश्रित्यकेचिदेतत्क्रियारताः ॥ स्वर्गान्नरकमायांतिस्वर्गंचनरकात्पुनः ॥२॥ केचित्स्वकर्मणिरताविरताअपिकर्मणः ॥ नरकान्नरकंयांतिदुःखाद्दुःखंभयाद्भयम् ॥ ३ ॥ केचित्स्ववासनातंतुबद्धाःकर्मफलोदितः ॥ तिर्यक्त्वात्स्थावरतांयांतितिर्यक्त्वंततः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–श्रुति स्मृति तथा सदाचारसे प्राप्त इस संपूर्ण संसारके व्यवहारको अयस्कान्त मणिके समान आत्माको सन्निधिमात्रसे मैं करताहुं इसप्रकार वासनारहित जो संसारके व्यवहारोंमें प्रवृत्त होताहै वह मुक्तहै ऐसी मेरी मति (मेरा सिद्धान्त) है ॥ १ ॥ हे रामजी ! इस मनुष्य शरीरको पाकरभी जो कोई मूढ आसक्तिरहित कर्मोंके अनुष्ठानरूप क्रियामें तत्पर नहीं हैं वे निन्दित कर्म्मोंके शेष रहजानेसे स्वर्गसे नरकमें जाते हैं और उत्तम कर्म्मोंसे पुनः नरकसे स्वर्गमें जाते हैं ॥ २ ॥ हे रामजी ! कोई मनुष्य तो ऐसे हैं कि निषिद्ध कर्मोंमें अति तत्पर और शास्त्रविहित कर्मोंसे विरक्त रहते हैं वे एक नरकसे दूसरे नरक और एक दुःखसे अन्य दुःखोंमें ओर एक भयसे दूसरे भयमें प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥ और कोई अपने वासनाके सूत्रमें बंधे हुये नरकमें भोगे हुये दुष्कर्मोंके शेष फलोंसे तिर्यक्योनिमें उत्पन्न होके तिर्यक्योनिसे स्थावर होते हैं और स्थावरसे पुनः तिर्यकयोनिमें प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

केचिदात्मविदोधन्याविचारितमनोदृशः ॥ विच्छिन्नतृष्णानिगडायांतिनिष्केवलंपदम् ॥ ५ ॥ पुराकतिपयन्येवभुक्त्वाजन्मानिराघव ॥ अस्मिञ्जन्मनियोमुक्तस्तस्माद्राजससात्विकः ॥ ६ ॥ जातोसौवृद्धिमभ्येतिपार्वणश्चंद्रमाइव ॥ कुटजंप्रावृषीवैनंसौभाग्यमनुगच्छति ॥ ७ ॥ यस्येदंजन्मपाश्चात्यंतमाश्वेवमहामते ॥ विशंतिविद्याविमलामुक्तावेणुमिवोत्तमम् ॥ ८ ॥

अर्थ—और कोई आत्मज्ञानी शुद्ध सात्विक धन्य पुरुष अपने मनके साक्षीभूत आत्माको विचार करके तृष्णारूप बडी कटनेसे परम कैवल्य पदको प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥ और जो पुरुष उत्तरोत्तर अधिक श्रेष्ठ कुछ मनुष्य जन्मोंको भोग करके इसी जन्मसे मुक्त होजाते हैं इसलिये वे राजस सात्विक कहलाते हैं ॥ ६ ॥ और उत्पन्न होतेही पूर्णिमाके चन्द्रके समान वृद्धिको प्राप्त होताहै, और वर्षाकालमें कुटजवृक्षमें पुष्पकी शोभाके समान साधन चतुष्टय संपत्तिरूप सौभाग्य उसके पीछे २ चलताहै ॥ ७ ॥ हे महामते रामजी ! जिस मोक्षभागी पुरुषका यह अन्तिम जन्महै उसमें ब्रह्म विद्याके उपायभूत संपूर्ण निर्म्मल विद्या ऐसे प्रवेश करती हैं जैसे उत्तम वांसमें मुक्ता ॥ ८ ॥

आर्यताहृद्यतामैत्रीसौम्यताकरुणाज्ञता ॥ समाश्रयंतितंनित्यमंतःपुरमिवांगनाः ॥ ९ ॥ यःकुर्वन्सर्वकार्याणिपुष्टेनष्टेचतत्फले ॥ सघस्सन्सर्वकार्येषुनतुष्यतिनशोचति ॥ १० ॥ तमांसीवदिवायांतितत्रदंद्वानिसंक्षयम् ॥ शरदीवघनास्तत्रगुणागच्छंतिशुद्धताम् ॥११॥ पेशलाचारमधुरंसर्वेवांछंतितंजनाः ॥ वेणुंमधुरनिध्वानंवनेवनमृगाइव ॥ १२ ॥

अर्थ—श्रेष्ठता रमणीयता मैत्री सज्जनता करुणा और परोक्ष ज्ञान इत्यादि गुण उस पुरुषका नित्य ऐसे आश्रय करते हैं जैसे अन्तःपुरका अंगना (स्त्रियां) ॥ ९ ॥ जो पुरुष सब कार्योंको करता हुआ उनके फलके बढने वा नष्ट होनेपर समानरूप रहता हुआ न प्रसन्न होताहै और न शोच करताहै ॥ १० ॥ उस पुरुषमें सम्पूर्ण विषयके सुख तथा दुःख ऐसे क्षयको प्राप्त होते हैं जैसे दिनमें अन्धकार और सम्पूर्ण गुण उसमें ऐसे शुद्ध होजाते हैं जैसे शरत्कालमें मेघ ॥ ११ ॥ जो पुरुष शास्त्रोक्त कोमल आचारोंसे सुन्दरहै उसको सब प्राणी ऐसे चाहते हैं जैसे वायुसे पूर्ण मधुर शब्द करते हुये वांसको वनमें वनके मृग ॥ १२ ॥

नरंपाश्र्वात्यजन्मानमेवंप्रायागुणश्रियः ॥ जातमेवानुधावंतिबलाकाइववारिदम् ॥१३॥ ततोसौगुणसंपूर्णोगुरुमेवानुगच्छति ॥ सतमेवंविवेकेवैनियोजयतिपावने ॥ १४ ॥ विचारवैराग्यवताचेतसागुणशालिना ॥ देवंपश्यत्यथात्मानमेकरूपमनामयम् ॥ १५ ॥ ततोत्यर्थंविचारेणचारुणाशांतचेतसा ॥ प्रबोधनायप्रथमंमनोमननमांतरम् ॥ १६ ॥ येहिपाश्र्वात्यजन्मानस्तेहिसुप्तंमनोमृगम् ॥ प्रबोधयंतिप्रथमंगुणहीनंमहागुणाः ॥ १७ ॥ प्रथितगुणान्सुगुरून्निषेव्ययत्नादमलधियाप्रविचार्यचित्तरत्नम् ॥ गतिममलामुपयांतिमानवास्तेपरमवलोक्यचिरंप्रकाशमंतः ॥ १८ ॥

इत्यार्पे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशम प्रकरणे प्रथमोपदेशो नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! अन्तिम जन्मवाले पुरुषके पीछे पूर्वोक्त गुणकी श्री ऐसे दौडती है जैसे मेघके पीछे बककी पंक्ति ॥ १३ ॥ इस गुणोंकी सम्पत्तिके अनन्तर गुणोंसे पूर्ण यह पुरुष ब्रह्मवेत्ता गुरुके समीप जाताहै और वे गुरु पवित्र आत्म और अनात्मके विवेकमें उसे नियुक्त करते हैं ॥ १४ ॥ इसके पश्चात् विचार और वैराग्यसे सम्पन्न और पूर्वोक्त गुणोंसे शोभायमान चित्तसे वह पुरुष आनन्देकरस अपने आत्मस्वरूपको देखताहै ॥ १५ ॥ इसप्रकार उत्तम और शान्त चित्तयुक्त विचारसे प्रथम अपने अन्तःकरणको ज्ञानकी प्राप्तिके लिये मननमें वह पुरुषनियुक्त करताहै ॥ १६ हे रामजी ! जो पुरुष अन्तिम जन्मवाले हैं वे महागुणी महात्मा अपने सोये हुये मनरूपी मृगको प्रथम ऐसा बोधन करते हैं कि जिसमें वह निर्गुण ब्रह्मरूप होजाताहै ॥ १७ ॥ प्रसिद्ध जीवन्मुक्तोंके गुणसे शोभित उत्तम गुरुओंकी प्रयत्नसे सेवा करके उनकी दर्शाई हुई युक्तियोंसे निर्म्मल बुद्धिद्वारा चित्तके अन्तर्गत आत्मारूपी रत्नकी परीक्षा करके अन्तःकरणका प्रकाशक जो ब्रह्महै उसको चिरकालतक अनुभव करके वे महात्माजन निर्म्मल परमपुरुषार्थरूप गतिको अपने स्थानहीमें प्राप्त होते हैं ॥ १८ ॥

इत्यार्पे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे प्रथमोपदेशो नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

इस ७ के सर्गमें कुछ शुद्ध चित्तवाले पुरुषको अपनेही विचारसे आकाशके फलके पतनके सदृश ज्ञानकी प्राप्ति वर्णन की गई है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ एषतावत्क्रमःप्रोक्तःसामान्यःसर्वदेहिनाम् ॥ इममन्यंविशेषंत्वंशृणुराजीवलोचन ॥ १ ॥ अस्मिन्संसारसंरंभेजातानांदेहधारिणाम् ॥ अपवर्गकमौरामद्वाविमावुत्तमौक्रमौ २ एकस्तावद्गुरुप्रोक्तादनुष्ठानाच्छनैःशनैः ॥ जन्मनाजन्मभिर्वापिसिद्धिदःसमुदाहृतः ॥ ३ ॥ द्वितीयस्त्वात्मनैवाशुकिंचिद्व्युत्पन्नचेतसा ॥ भवतिज्ञानसंप्राप्तिराकाशफलपातवत् ॥ ४ ॥ नभःफलनिपाताभज्ञानसंप्रतिपत्तये ॥ तत्रेमंशृणुवृत्तांतंप्राक्तनंकथयामिते ॥ ५ ॥ शृणुसुभगकथांमहानुभावाव्यपगतपूर्वशुभाशुभार्गलौघाः ॥ खपतितफलवत्परंविवेकंचरमभवाविमलंसमश्नुवंति ॥ ६ ॥

इत्यार्पे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे आकाशफलप्राप्ति व ज्ञानसंप्राप्ति क्रमसूचनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! यह पूर्वोक्त क्रम सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये साधारण मैंने कहाहै तुम इस अन्य विशेषको सुनो ॥ १ ॥ इस संसारके कार्यमें उत्पन्न प्राणियोंके लिये आगे कहे हुये दो क्रम मोक्ष प्राप्त करनेमें

समर्थ हैं ॥ २ ॥ उनमेंसे प्रथम तो यहहै कि गुरूके कहे मार्गका धीरे २ अनुष्ठान करना एक जन्ममें अथवा कई जन्ममें सिद्धि देनेवाला कहागयाहै ॥ ३ ॥ और दूसरा तो वहहै कि जिससे कुछ व्युत्पन्न चित्तवाले पुरुषको अपने आप आत्माके विचारसे आकाशके फलके पतनके समान शीघ्र ज्ञानकी प्राप्ति होती है ॥ ४ ॥ हे रामजी ! आकाशके फलके पतनके समान ज्ञानकी प्राप्तिके लिये यह प्राचीन दूसरा वृत्तांत सुनो मैं तुमसे कहताहुं ॥ ५ ॥ हे सुभग रामचन्द्रजी! तुम उस कथाको सुनो जिससे कि पूर्वजन्मके शुभ अशुभ कर्मरूपी अर्गलाओंसे निर्मुक्त अन्तिम जन्मवाले महानुभाव पुरुष आकाशके फलके पतनके समान परमविवेकको प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु भाषाऽनुवादे उपशमप्रकरणे आकाश फलप्राप्ति व ज्ञान संप्राप्ति क्रमसूचनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

इस ८ के सर्गमें वसन्तकालमें बनमें कहीं बिहार करते हुये जनकराजाने सिद्धोंसे गान किये हुये शुभश्लोक सुना उनका वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ अस्त्यस्तमितसर्वापदुद्यत्संपदुदराधीः ॥ विदेहानांमहीपालोजनकोनाम वीर्यवान् ॥१॥ कल्पवृक्षोऽर्थिसार्थानांमित्राब्जानांदिवाकरः ॥ माधवोबंधुपुष्पाणांस्त्रीणांमकरकेतनः २ द्विजकैरवशीतांशुर्द्विषत्तिमिरभास्करः ॥ सौजन्यरत्नजलधिर्भुवंविष्णुरिवास्थितः ॥ ३ ॥ प्रफुल्लबाललतिकेमंजरीपुंजपिंजरे ॥ सकदाचिन्मधौमत्तकोकिलालापलासिनि ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! सम्पूर्ण आपत्तियोंसे रहित और सब प्रकारकी सम्पत्तियोंकी उदयताको प्राप्त उदार बुद्धि पराक्रमी विदेहोंका जनक नाम राजाहै (था) ॥ १ ॥ वह याचकोंके समूहका कल्पवृक्ष, मित्ररूप कमलोंका सूर्य्य, बन्धुरूप पुष्पोंका वसन्तऋतु स्त्रियोंको कामदेव रूपथा ॥ २ ॥ ब्राह्मणरूप कुमुदों (रात्रि कमलों) का चन्द्रमा, शत्रुरूप अन्धकारका सूर्य्य, और सुजनतारूप रत्नोंका समुद्र, और विष्णु (आप) के सदृश पालनके अर्थ अवतार लिये हुये महाराजथा ॥ ३ ॥ कदाचित् विकसित कोमल लताओंसे शोभित तथा लताके पुंजोंसे पिंजरके समान, और मत्त कोकिलके आलापसे नृत्य करते हुयेके समान स्थित वसन्तऋतुमें ॥ ४ ॥

ययौकुसुमिताभोगंसुविलासलतांगनम् ॥ लीलयोपवनंकांतंनंदनंवासवोयथा ॥ ५ ॥ तस्मिन्वरवने हृद्येकेसरोद्दाममारुते ॥ दूरस्थानुचरःसानुकुंजेषुविचचारह ॥ ६ ॥ अथशुश्रावकोरंमश्चित्तमालवन गुल्मके ॥ सिद्धानामप्रदृश्यानांस्वप्रसंगादुदाहृताः ॥७॥ विविक्तवासिनांनित्यंशैलकंदरचारिणाम् ॥ इमाःकमलपत्राक्षगीतागीतात्मभावनाः ॥ ८ ॥

अर्थ—पुष्पोंसे परिपूर्ण, उत्तम विलासवती लतारूप अङ्गनासहित, और अति रमणीय बनमें क्रीडाके लिये वह राजा ऐसे गया जैसे अपने नन्दनमें इन्द्र ॥ ५ ॥ रमणीय तथा केशरोंसे सुगन्धयुक्त पराग ले जानेमें समर्थ अर्थात् शीत मन्द तथा सुगन्ध वायुसे शोभित बनमें अपने अनुचरोंको दूर रखके पर्वतके कुंजोंमें बिचारने लगा ॥ ६ ॥ हे कमलनेत्ररामजी ! इसके अनन्तर किसी तमालबनके लता कुंजोंमें अदृश्य, एकान्त निवासी और सदा पर्वतकी कन्दराओंमें बिहार करनेवाले सिद्धोंसे अपने प्रसंगसे कही हुई, और श्रुति स्मृति प्रतिपादित आत्माका साक्षात्कार करानेवाली इन वक्ष्यमाण गाथाओंको सुना ॥ ८ ॥

॥ सिद्धाऊचुः ॥ द्रष्टृदृश्यसमायोगात्प्रत्ययानंदनिश्चयः ॥ यस्तंस्वमात्मतत्त्वोत्थंनिःस्पंदंसमुपास्महे ॥९॥ अन्येऊचुः ॥ द्रष्टृदर्शनदृश्यानित्यक्त्वावासनयासह ॥ दर्शनप्रथमाभासमात्मानंसमुपास्महे॥१० अन्येऊचुः ॥ द्वयोर्मध्यगतंनित्यमस्तिनास्तीतिपक्षयोः ॥ प्रकाशनंप्रकाश्यानामात्मानंसमुपास्महे ॥११॥ अन्येऊचुः ॥ यस्मिन्सर्वंयस्यसर्वंयतःसर्वंयस्माइदम् ॥ येनसर्वंयद्धिसर्वंतत्सत्यंसमुपास्महे १२

अर्थ—सिद्ध बोले—चक्षुष् आदि इन्द्रियोंके द्वारा विषयके प्रमाताका स्रक्चन्दन और वनिता आदि विषयोंके संयोगसे विषयाकार बुद्धि वृत्तिमें प्रसिद्ध जो आनन्दरूपका निश्चयहै उसी निरतिशय भूमानन्दसे आविर्भूत अपने आत्मस्वरूपको हम निर्विकल्प समाधिसे बाह्य तथा अन्तःकरणकी चेष्टाको रोकर निरन्तर उपासना (अनुभव) करते हैं ॥ ९ ॥ और सिद्ध बोले—द्रष्टा, दर्शन, और दृश्य, रूप त्रिपटी तथा वासना (सुषुप्तिकालिक अज्ञान) को त्यागकर चाक्षुष् वा मानस आदि वृत्तिके पूर्वही जो चक्षुष् आदि इंद्रिय जनित अथवा मानस ज्ञानके उत्पत्तिका साक्षी-

रूपसे भासमान जो आत्मरूपहै अर्थात् बीजसहित त्रिपुटीके त्यागसे तुरीय जो आत्महै उसीकी नित्य उपासना करते हैं ॥ १० ॥ दर्शन (चाक्षुष आदि ज्ञान) के प्रथम आभासमान साक्षीरूपकी सत्ताके विषयमें अस्ति (है) और नास्ति (नहीं है) ऐसा विवाद करते हैं उनकीभी अस्तिता तथा नास्तिता साक्षी विना नहीं बनसकती इसलिये अस्ति नास्ति इन दोनों पक्षोंमें साक्षीरूपसे मध्यगत जो प्रकाश्य पदार्थोंका प्रकाशकहै अथवा अस्तित्व जगत्की प्रकटाऽवस्था (कार्य्यरूपता) और नास्तिता तिरोभावाऽवस्था इन दोनों पक्षोंका एककालमें असम्भव होनेसे दोनों पक्षोंमें अनुगत सन्मात्ररूपसे जो सब प्रकाशके योग्य पदार्थका प्रकाशक आत्मतत्त्वहै उसकी नित्य उपासना (ध्यान) करते हैं॥ ११ ॥अन्य बोले–जिस परमात्मामें सब कुछहै अर्थात् सर्वाधार, जिसका सब कुछहै अर्थात् सबका स्वामी, जिससे सबकुछ, सबकी उत्पत्तिका अवधिभूत जिसके अर्थ यह सबकुछ, अर्थात् जगत् संघात पुरुषके अर्थ है, और जिससे सबकुछ अर्थात् जो सबका तथा कर्ता कारणहै और जो सबकुछ है अर्थात् मायासे जो सम्पूर्ण जगत्के व्यवहारका निर्वाहक और सर्वरूपहै उस सत्यरूप परमात्माकी उपासना करते हैं ॥ १२ ॥

॥ अन्येऊचुः ॥ अशिरस्कंहकारांतमशेषाकारसंस्थितम् ॥ अजस्रमुच्चरंतंस्वंतमात्मानमुपास्महे॥१३॥ ॥ अन्येऊचुः ॥ संत्यज्यहृद्गुहेशानंदेवमन्यंप्रयांतिये ॥ तेरत्नमभिवांछंतित्यक्तहस्तस्थकौस्तुभाः ॥ १४ ॥ अन्येऊचुः ॥ सर्वाशाःकिलसंत्यज्यफलमेतदवाप्यते ॥ येनाशाविषवल्लीनांमूलमालाविलूयते॥१५॥अन्येऊचुः ॥ बुद्ध्वाप्यत्यंतवैरस्यंयःपदार्थेषुदुर्मतिः॥बध्नातिभावनांभूयोनरोनासौसगर्दभः ॥ १६ ॥ अन्येऊचुः ॥ उत्थितानुत्थितानेतानिंद्रियाहीन्पुनःपुनः ॥ हन्याद्विवेकदंडेनवज्रेणेवहरिर्गिरीन् ॥ १७ ॥ अन्येऊचुः ॥ उपशमसुखमाहरेत्पवित्रंशमवशतःशममेतिसाधुचेतः ॥ प्रशमितमनसःस्वकेस्वरूपेभवतिसुखेस्थितिरुत्तमाचिराय ॥ १८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे सिद्धगीतानामाष्टमःसर्गः ॥ ८ ॥

अर्थ—अन्यजन बोले–अकार जिसके आदिमें और हकार जिसके अंतमें ऐसे अहंपदके वाच्य, और अशेष (सम्पूर्ण) वस्तुओंके प्रकाशक जो वेदशास्त्रादि शब्दजालके प्रकृतिभूत सम्पूर्ण अक्षरोंका अकारसे आदि लेके हकारान्त समुदायके अन्तर्गत होनेसे अशेषाकार (सर्वाकार) रूपसे संस्थित, अथवा हननके अयोग्य वा सर्वत्र व्याप्त अथवा जिसमें अकारका शेष नहीं है ऐसे निर्गुण ब्रह्ममें स्थित, और क्रियमाण व्यवहारोंमें निरन्तर अहंकारकी उपाधिके त्यागसे अहं पदार्थको कहनेवाले अपने आत्मस्वरूपकी नित्य भावना करते हैं ॥ १३ ॥ अन्यजन बोले–हृदयरूप गुहाका स्वामी " अंगुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदाजनानां हृदये सन्निविष्टः " अंगुष्ठमात्र सबका अन्तरात्म पुरुष सब जनोंके हृदयमें प्रविष्टहै (अर्थात् प्रथमसे सर्वत्रहै) जो देवहै उसको त्यागकर जो अन्य देवके निकट जाते हैं; वे मानों हस्तमें स्थित कौस्तुभमणिको त्यागकर अन्य रत्नकी इच्छा करते हैं ॥ १४ ॥ संपूर्ण आशाओंको त्यागकर हृदयमें स्थित ज्ञानरूप ब्रह्म प्राप्त होताहै और जिस निरतिशय आनन्दके लाभसे आशारूप विषकी लताओंकी मूलमाला अर्थात् वासनाजालसे जटिल हृदयकी ग्रन्थियोंका मूलही छिन्न होजाताहै ॥ १५ ॥ अन्य बोले–पदार्थोंमें अत्यन्त नीरसत्ताको जानकरभी जो दुर्बुद्धि पदार्थोंमें पुनः भावना बांधताहै वह मनुष्य नहीं है किन्तु गर्दभ है ॥१६॥ अन्य बोले–जब २ इन्द्रियरूप सर्प उमडे तब २ उनको विवेकरूप दण्डसे ऐसे नाश करै जैसे इन्द्रवज्रसे पर्वतोंको ॥ १७ ॥ अन्य बोले–बाह्य तथा आभ्यन्तर इन्द्रियोंके व्यापारके उपशमसे विक्षेपजनित दुःखके उपशमवत् आत्मसुखको सम्पादन करना चाहिये और उपशमसे इन्धनरहित अग्निके समान चित्त भलीभांति शान्त होजाताहै और जिसका चित्त शान्त होगयाहै उसकी सुखरूप परमार्थभूत अपने आत्मामें चिरकालकेलिये उत्तम स्थिति होती है१८

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषानुवादे सिद्धगीतान्तनामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

इस ९ के सर्गमें सिद्धोंकी गीता सुनके वैराग्यसे गृहपर आये हुये राजाके पदार्थोंके विचारसे मनका निर्णय वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इतिसिद्धगणोद्गीतागीताःश्रुत्वामहीपतिः ॥ विषादमाजगामाशुभीरूरणरवादिव ॥ १ ॥ जगामपरिवारस्वमाकर्षन्स्वगृहंप्रति ॥ स्वतीरवृक्षानुगतःसरिदोघइवार्णवम् ॥ २ ॥ प

रिवारमशेषेणविसृज्यस्वंस्वमालयम् ॥ एकएवारुरोहाग्र्यंगृहमर्कइवाचलम् ॥ ३ ॥ तत्रप्रमोड्डयनालोलखगपक्षांतचंचलाः ॥ आलोकयँल्लोकगतीर्विललापेदमाकुलः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-राजा जनक इसप्रकार सिद्धोंसे गान की हुई गीताको श्रवण करके शीघ्र विषादको ऐसे प्राप्त हुआ जैसे भीरूपुरुष रणके शब्दको सुनके ॥१॥ वह राजा अपने परिवारको खींचता हुआ अपने गृहके प्रति ऐसे गया जैसे अपने तीरके वृक्षोंके साथ नदीका वेग समुद्रके प्रति ॥ २ ॥ सम्पूर्ण परिवार (बन्धु सेवक आदि वर्ग) को उनके २ स्थानको विदा करके एकाकी अपने गृह (अटारी) पर ऐसे चढा जैसे उदयाचलपर सूर्य्य ॥ ३ ॥ वहांपर जाके उडनेके समय चंचल पक्षियोंके पक्ष (पंख) मूलके समान अति चंचल संसारकी विचित्र गतियोंको देखते हुये वक्ष्यमाण रीतिसे व्याकुल होके विलाप किया ॥ ४ ॥

हाकष्टमतिकष्टासुलोकलोलदशास्वयम् ॥ पाषाणेष्विवपाषाणाआलुठाभिबलादहम् ॥ ५ ॥ अपर्यंतस्यकालस्यकोप्यंशोजीव्यतेमया ॥ तस्मिन्भावंनिबध्नामिधिङ्मामधमचेतनम् ॥ ६ ॥ कियन्मात्रमिदंनामर ज्यमाजीवितंमम ॥ किमेतेनविनादुःखंतिष्ठामिहतधीर्यथा ॥ ७ ॥ आदावंतेप्यनंतोहंमध्येपेलवजीवितः ॥ बालश्चित्रेंदुनेवाहंकिंमुधाधृतिमास्थितः ॥ ८ ॥

अर्थ—हा ! अति खेदकी बात है कि जीवोंकी जन्ममृत्यु वृद्धाऽवस्था और भय आदिसे कष्टदायिनी चंचल दशाओंमें पाषाणोंपर पाषाणके समान बलात्कार मैं लुढकता फिरताहुं ॥ ५ ॥ इस अपार कालके किसी अंशमें मेरा जीवन है, यदि उस अल्पकालके जीवनमें मैं आशा बांधू तो मुझ अधम चेतनको धिक्कारहै ॥ ६ ॥ यह जीवनपर्य्यन्त मेरा राज्य क्या वस्तुहै इतनेहीसे सन्तुष्ट होके नष्ट बुद्धिके सदृश भावी दुःखके नाशकी चिन्ताके बिना मैं क्यों पडाहुं ॥ ७ ॥ हमारा स्वरूप अनादि और अनन्तहै मध्यमें केवल अल्प जीवन शरीरके सम्बन्धसे है तो चित्रमें लिखित चन्द्रमाको चन्द्रबुद्धिसे ग्रहण किये हुये बालकके समान अनात्मा देहादिको आत्माके समान ग्रहण किये हुये मैं क्यों धैर्य्यको प्राप्तहुं ॥ ८ ॥

अपंचरहितेनाहमिंद्रजालेनजालिना ॥ हाकष्टमतिमुह्याभिकेनस्मिपरिमोहितः ॥ ९ ॥ यद्वस्तुयच्चवारम्यंयद्वदारमकृत्रिमम् ॥ किंचित्तदिहनास्त्येवकिंतिष्ठेहमतिर्मम ॥१०॥ दूरस्थमप्यदूरस्थंयन्मेमनसिवर्त्तते ॥ इतिनिश्चित्यबाह्यार्थभावनांसंत्यजाम्यहम् ॥ ११ ॥ लोकाजवंजवीभावःसलिलावर्त्तभंगुरः ॥ दृष्टोद्यापिहिदुःखायकेयमास्थासुखंप्रति ॥ १२ ॥

अर्थ—हा ! खेद है किस प्रपंचरहित किस ऐन्द्रजालिकके इन्द्रजालसे मैं परं मोहितहूं, और अत्यन्त मोहको प्राप्त होरहाहूं ॥ ९ ॥ जो वस्तु सत्य सुखरूप अपरिच्छिन्न और अत्यन्त है वह इस संसारमें हैही नहीं जिसमें कि हमारी बुद्धिको विश्राम मिले ॥ १० ॥ मूढोंकी दृष्टिमें दूरस्थरूपसे प्रसिद्धभी जो सत्य वस्तुहै वह समीपमेंही स्थित है, क्योंकि वह मेरे मनमें स्थितहै ऐसा निश्चय करके बाह्य पदार्थकी भावनाको मैं त्यागताहूं ॥ ११ ॥ जीवोंके भोगके अर्थ धनके अर्जनादिमें प्रवृत्तिरूप वेग वारम्वार जलके आवर्तके समान क्षणभंगुर देखागयाहै, और इस समयमेंभी धनादि केवल दुःखकेलियेही हैं, इसलिये विषयसुखमें मेरा क्या विश्वास हो ॥ १२ ॥

प्रत्यब्दंप्रतिमासंचप्रत्यहंचप्रतिक्षणम् ॥ सुखानिदुःखपिंडानिदुःखानितुपुनःपुनः ॥१३॥ परामृष्टंविशिष्टंहिदृष्टंनष्टंनभावितम् ॥ अत्रस्थंनतदस्तीहसतांयत्रास्तुसंस्थितिः ॥ १४ ॥ अद्ययेमहतांमूर्ध्निंतेदिनैर्निपतंत्यधः ॥ हतचित्तमहत्तायांकैषाविश्वस्तताबत ॥ १५ ॥ अरज्जुरेवबद्धोहमपंकोस्मिकलंकितः ॥ पतितोस्म्युपरिस्थोपिहाममात्मन्हतास्थितिः ॥ १६ ॥

अर्थ—प्रति वर्ष, प्रति मास, प्रति दिन और प्रति क्षण जो सुख हैं वे सब दुःखके समूहही हैं, और दुःख तो दुःखही है ॥ १३ ॥ इस संसारमें जो कुछ वस्तु स्थित देखी गई है वह शीघ्रही नष्टभी होगई है और मेरे राज्यादिभी तुच्छताके हेतुसे चिन्तन नहीं किये गये क्योंकि सबसे उत्तम रूपसे प्रसिद्ध इन्द्र तथा ब्रह्माका पदभी विचार दृष्टिसे नश्वरही देखागयाहै इसलिये इस संसारमें ऐसी कोई वस्तु नही जिसमें विवेकियोंका चित्त सदाकेलिये विश्राम पावे ॥ १४ ॥ आज जो बडे बडोंके शिरपर स्थितहैं वे गिने हुये दिनोंमें नीचे गिरते हैं, इसलिये इस नष्ट चित्तके महत्वमें अर्थात् राज्यादि विभवकी उत्तमतामें क्या विश्वास होसकताहै ॥ १५ ॥ बिना रज्जुके मैं बंधाहूं, और विना पंक (कीचड) केभी कलंकितहूं, और सबके ऊपर स्थित होकरकेभी नीचे गिराहूं, हा ! आत्मामें मेरी स्थिति नष्ट होगई ॥ १६ ॥

कस्मादकस्मान्मोहोयमागतोधीमतोपिमे ॥ असितःपिहितालोकोभास्कराग्रमिवांबुदः ॥ १७ ॥ क इमेमेमहाभोगाःकइमेममबांधवाः ॥ बालोभूतमयेनेवसंकेतनाहमाकुलः ॥ १८ ॥ स्वयमेवनिबध्नामि जरामरणरागिणीम् ॥ किमीमामहमेतेषुधृतिमुद्वेगकारिणीम् ॥ १९ ॥ यातुतिष्ठतुवासम्यङ्ममेतांप्रति कोग्रहः ॥ बुद्बुदश्रीरिवैपाहिमिथ्यैवेत्थमुपस्थिता ॥ २० ॥

अर्थ—जैसे प्रकाशको आच्छादन करनेवाला, सूर्यके अग्रदेशमें प्राप्त मेघके सदृश यह मोह बुद्धिमान् होनेपर भी मुझे कहांसे प्राप्त हुआ ॥ १७ ॥ कौन ये मेरे महान् भोग ! और कौन ये मेरे बन्धुहैं, मैं बालकके समान भूतमय यह ममतारूप सम्बन्धकी कल्पनासे व्याकुल होरहाहूं ॥ १८ ॥ इन भोगादिकोंमें वृद्धाऽवस्था और मरणको प्राप्त करनेवाली और भयकारिणी आस्था (विश्वास) को मैं आप क्यों बांधताहूं ॥ १९ ॥ यह और बन्धु आदिकी संपत्ति जाय वा अच्छीतरहसे इसमें मेरा आग्रह क्या, क्योंकि जलमें बुद्बुदकी शोभाके समान यह सब संपत्ति मिथ्याही प्राप्त हुई है ॥ २० ॥

तेमहाविभवाभोगास्तेसंतःस्निग्धबांधवाः ॥ सर्वस्मृतिपथंप्राप्तंवर्तमानेपिकाधृतिः ॥ २१ ॥ क्वधननि महीपानांब्रह्मणःक्वजगंतिवा ॥ प्राक्तनानिप्रयातानिकेयंविश्वस्ततामम ॥ २२ ॥ गिलितानींद्रलक्षाणिबु द्बुदानीववारिणि ॥ मांजीवितनिबद्धास्थंविहसिष्यंतिसाधवः ॥२३॥ ब्रह्मणांकोटयोयाताःगताःसर्ग परंपराः ॥ प्रयाताःपांसुवद्भूपाःकाधृतिर्ममजीविते ॥ २४ ॥

अर्थ—वे महा चक्रवर्तियोंके भोग, और वे उत्तम गुणवाले प्रेमयुक्त बांधव, सब इससमय स्मरणमात्रहैं, तब वर्तमानमेंभी क्या विश्वास ॥ २१ ॥ बडे २ राजाओंके धन कहां गये, और पूर्वकालके ब्रह्माजीके रचित प्राचीन अनेक ब्रह्माण्ड कहां गये, अर्थात् सब नष्ट होगये, तो हमारा यह धनादिमें विश्वास कैसा ॥ २२ ॥ कालने लाखों इंद्रको ऐसे निगल लिया जैसे जल बुद्बुदोंको, इसलिये यदि मैं अपने जीवनमें विश्वास करूंगा तो विवेकी लोग हसेंगे ॥ २३ ॥ अनन्त कोटि ब्रह्मा बीतगए, और अनन्त सृष्टियोंको परम्परा गत होगई, और धूलिके समान अनेक राजा लोग उडगये, तो भला मेरे जीवनमें क्या विश्वास ॥ २४ ॥

संसाररात्रिदुःस्वप्नेचेत्येदेहमयेभ्रमे ॥ आस्थांचेदनुबध्नामितन्मेमांधुधिगस्थितिम् ॥२५॥ अयंसोहमि तिव्यर्थकल्पनाऽसत्स्वरूपिणी ॥ अहंकारपिशाचेनकिमज्ञवदहंस्थितः ॥ २६ ॥हतंहतमिदंकस्मादा युराततयानया ॥ पश्यन्नपिनपश्यामिसूक्ष्मयाकाललेखया ॥ २७ ॥ पादपीठेकृतेशानाःशार्ङ्गिक्रीडनकं दुकः ॥ कालापालिकाग्रस्ताःकिमास्थेमयिवल्गसि ॥ २८ ॥

अर्थ—संसाररूप रात्रिके दुष्ट स्वप्नरूप देहादिमय भ्रमरूप इस संसारमें यदि मैं विश्वास बांधताहूं तो इस मेरी अविवेकताको धिक्कारहै ॥ २५ ॥ यह पुत्रादि, वह धन आदि, और यह देहरूप आत्माकी कल्पना इत्यादि कल्पना व्यर्थ और असद्रूपहैं, मैं इस अहंकाररूपी पिशाचसे अज्ञानीके समान क्यों स्थितहूं ॥ २६ ॥ क्षण, निमेष, और मुहूर्तादिरूप कालकी सूक्ष्म लेखासे इस आयुको क्षणक्षणमें छिन्न देखता हुआभी मैं क्यों नहीं विचार करता ॥ २७ ॥ आसनके समान रचित ब्रह्माण्डोंमें प्रतिमाके सदृश ब्रह्मादिभी निर्मित किये गये हैं, और विष्णु आदिके शरीरभी क्रीडाके बन्दुकके समान वारम्वार युद्ध आदि व्यवहारोंमें आकाशमें जिस करके फेके गयेहैं और महारुद्रकोभी जिसने ग्रास करलियाहै ऐसे महा कल्परूपकालमें हे जीवनकी आशा ! मेरे सम्मुख तूं क्यों नाचती है ॥२८॥

अजस्रमुपयांत्येतेयांतिचाद्यापिवासराः ॥ अविनष्टैकसद्वस्तुर्दृष्टोनाद्यापिवासरः ॥ २९ ॥ सारसाः सरसीवैतेसर्वस्मिञ्जनचेतसि ॥ भोगाएवस्फुरंत्यंतर्नतुस्वपदहृष्टयः ॥ ३० ॥ कष्टात्कष्टतरंप्राप्तोदुः खाद्दुःखतरंगतः ॥ अद्यापिनविरक्तोस्मिहाधिङ्मामधमाशयम् ॥ ३१ ॥ येषुयेषुदृढाबद्धाभावनाभव्यव स्तुषु ॥ तानितानिविनष्टानिदृष्टानिकिंमिहोत्तमम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—निरंतर दिन आते हैं और चलेभी जाते हैं परंतु ऐसा दिन अभीतक एकभी नहीं देख पडा कि जिसमें निर्दोष आनंदरूप सद्वस्तु प्राप्तहो ॥ २९ ॥ जैसे तडागमें सारसपक्षी रहते हैं ऐसेही सम्पूर्ण प्राणियोंकी चित्तमें भोगकी आशाही स्फुरती हैं न कि आत्माके साक्षात्कार ॥ ३० ॥ कष्टसेभी अधिक कष्ट और दुःखसेभी अधिक दुःखको मैं प्राप्त हुआ, परन्तु इस समयतक मैं इस संसारसे विरक्त नहीं हुआ, हा ! मुझ अधम चित्तवालेको धिक्कारहै ॥ ३१ ॥ जिन २ रमणीय पदार्थोंमें मैंने दृढ प्रीतिकी वे वे सब नष्ट होगये तो भला कहो इस संसारमें चिरस्थायी उत्तम कौनसी वस्तु देखी गई ॥ ३२ ॥

यन्मध्येयच्चपर्यंतेयदापायेमनोरमम् ॥ सर्वमेवापवित्रंतद्विनाशामेध्यदूषितम् ॥ ३३ ॥ येषुयेषुपदार्थेषु धृतिंबध्नातिमानवः ॥ तेषुतेष्वेवतस्यायंदृष्टोनाशोदयोभृशम् ॥ ३४ ॥ श्वःश्वःपापीयसीमेषश्वःश्वःक्रूरतरामपि ॥ श्वःश्वःखेदकरीमेतिदशामिहजडोजनः ॥ ३५ ॥ अज्ञानैकहतोबाल्येयौवनेमदनाहतः ॥ शेषेकलत्रचिंतार्त्तःकिंकरोतिकदाजडः ॥ ३६ ॥

अर्थ—मध्यमें रमणीय यह अवस्था और अन्तमें रमणीय यागादि धर्म और विना विचारे रमणीय विषय ये सब अपने नाशरूप अपवित्रतासे दूःखितहैं, इसलिये अपवित्रही है ॥ ३३ ॥ यह मनुष्य जिन २ पदार्थोंमें विश्वास बांधताहै प्रायः उन २ पदार्थोंमें इसको दुःखका प्रादुर्भाव देख पडाहै ॥ ३४ ॥ इस संसारमें जड प्राणी उत्तरकालमेंभी लोभ आदिकी वृद्धिसे प्रत्येक प्रातःकालमें अधिक पापमयी और प्रतिदिन अधिक क्रूरतर तथा प्रतिदिन अधिक खेदकारिणी दशाको प्राप्त होताहै ॥ ३५ ॥ जड प्राणी बाल्यअवस्थामें अज्ञानसे हतहै, यौवनअवस्थामें कामदेवसे और शेष (वृद्धाऽवस्थामें) कुटुंबकी चिंतासे पीडित रहताहै, तो किस समय अपने उद्धारका साधन करै ॥ ३६ ॥

आगमापायिविरसंदशावैषम्यदूषितम् ॥ असारसारंसंसारंकिंतत्पश्यतिदुर्मतिः ॥ ३७ ॥ राजसूयाश्वमेधाद्यैरिष्ट्वायज्ञशतैरपि ॥ महाकल्पांतमप्यंशंस्वर्गंप्राप्नोतिनाधिकम् ॥ ३८ ॥ कोसौस्वर्गोस्तिभूमौवापातालेवाप्रदेशकः ॥ नयत्राभिभवंत्येताहुभ्रमर्यइवापदः ॥ ३९ ॥ निजचेतोबिलव्यालाःशरीरस्थलपल्लवाः ॥ आधयोव्याधयश्चैतेनिवार्यंतेकथंकिल ॥ ४० ॥

अर्थ—आदि अन्तमें असत्, भोगकालमेंभी विरस, और दरिद्रता रोग तथा वृद्धता आदिकी विषमतासे दूषित तथा असारकोही सार बुद्धिसे ग्रहण किये हुये इस संसारको दुर्बुद्धि पुरुष क्यों देखताहै ॥ ३७ ॥ राजसूय और अश्वमेधादि सैकडों यज्ञोंको करकेभी महाकल्पान्त ब्रह्माजीका भोग्यभी स्वर्ग महाकालका क्षणमात्रहै, वही प्राप्त होसकताहै न कि उससे अधिक ॥ ३८ ॥ वह स्वर्गप्रदेश पृथिवीपरहै वा पातालमें है जहांपर दुष्ट भ्रमरीरूप आपत्ति जाकर नहीं सताती! अर्थात् स्वर्गमें परस्पर वा असुरादिककी पीडासे दुःख होताहै ॥ ३९ ॥ अपने चित्तरूपी बिलके सर्प्प और जहां शरीररूपी स्थलके पते हैं वहां आधि और व्याधि किसप्रकार निवारित होसकते हैं ॥ ४० ॥

सतोसत्तास्थितामूर्ध्निमूर्ध्निरम्येष्वरम्यता ॥ सुखेषुमूर्ध्निदुःखानिकिमेकंसंश्रयाम्यहम् ॥ ४१ ॥ जायंते चम्रियंतेचप्राकृताःक्षुद्रजंतवः ॥ धरातैरेवनीरंध्रादुर्लभाःसाधुसाधवः ॥ ४२ ॥ नीलोत्पलालिनयनाः परमप्रेमभूषणाः ॥ हासायैवविलासिन्यःक्षणभंगितयास्थिताः ॥ ४३ ॥ येषांनिमेषणोन्मेषैर्जगतांप्रलयोदयौ ॥ तादृशाःपुरुषाःसंतिमादृशांगणनैवका ॥ ४४ ॥

अर्थ—वर्तमानकालके जगत्के शिरके ऊपर नाश अवश्य स्थितहै और रमणीय पदार्थोंके शिरपर अरम्यता और सुखोंके ऊपर दुःख स्थितहै, तो ऐसी प्रधान कौन वस्तुहै जिसका मैं आश्रयलूं ॥ ४१ ॥ स्वाभाविक मनुष्य क्षुद्र जीव उत्पन्न होते हैं और मरते हैं ऐसेही प्राणियोंसे यह पृथिवी पूर्ण है, परन्तु उत्तम महात्मालोग दुर्लभहैं ॥ ४२ ॥ नीलकमलके सदृश दीर्घ भ्रमरके सदृश कृष्णनेत्रके सहित और परम प्रेमरूपी भूषण धारिणी स्त्रियां क्षणभंगुर होनेसे केवल हास्यहीके योग्यहैं ॥ ४३ ॥ जिन पुरुषोंके नेत्रके खोलनेसे जगत्का उदय और मूंदनेसे प्रलयहै वेभी जब नहीं हैं तो हमारे सदृश प्राणियोंकी क्या गणना ॥ ४४ ॥

संतिरम्यतराद्रम्याःसुस्थिरादपिसुस्थिराः ॥ चिंतापर्यवसानेयंपदार्थश्रीःकिमीहसे ॥ ४५ ॥ संपदश्चविचित्रायास्ताश्चचित्तेनसंमताः ॥ तत्ताअपिमहारंभाहतमन्येमहापदः ॥ ४६ ॥ आपदोपिविचित्रायास्ताश्चेन्मनसिसंमताः ॥ तत्ताअपिमहारंभावन्येमनसिसंपदः ॥ ४७ ॥ मनोमात्रविवर्त्तेस्मिञ्जगत्यब्धींदुभंगुरे ॥ ममेदमित्यपूर्वेयंकुतस्त्याक्षरमालिका ॥ ४८ ॥

अर्थ—रमणीयसेभी रमणीय स्थिरसेभी अधिक स्थिरतर पदार्थ हैं, परन्तु इन सब पदार्थोंकी श्रीका परिणाम अर्जन रक्षण और वियोगादि रूपसे चिन्तादायकही है, इसलिये इनकी इच्छा क्यों करतेहो ॥ ४५ ॥ चित्र विचित्रकी जो संपत्तियां हैं उनको यदि चित्त अधिक करके मानताहै, तो वेभी अनेक दुःखोंसे रक्षित अवश्य नश्यमानहैं, इसलिये उन सम्पत्तियोंकोभी मैं महा आपत्तिरूप मानताहूं ॥ ४६ ॥ आपत्तियां दारिद्रबन्धु राज्यादिका नाश यदि साधु समागम ज्ञानादिसे विचित्र कल्याणकारीही मनको इष्टहै तो वेभी विवेक वैराग्यादिके साधन होनेसे सम्पत्तिरूपहैं ऐसा मैं मानताहूं ॥ ४७ ॥ समुद्रके चन्द्रमाके समान क्षणभंगुर मनके विवर्तमात्र इस जगत्में यह मैं, यह मेरा इत्यादि वाक्य अक्षरकी पंक्ति कहासे आई, अर्थात् निरर्थकहै ॥ ४८ ॥

काकतालीययोगेनसंपन्नायांजगत्स्थितौ ॥ धूर्तेनकल्पिताव्यर्थंहेयोपादेयभावना ॥ ४९ ॥ इयत्ताच्छिन्नतप्तासुसुखनाम्नीषुदृष्टिषु ॥ कास्वेतास्वनुरक्तोस्मिपतंगोग्निशिखास्विव ॥ ५० ॥ वरमेकांतदाहेषुलुठनंरौरवाग्निषु ॥ नत्वाल्पनविवर्त्तासुस्थितंसंसारवृत्तिषु ॥ ५१ ॥ संसारएवदुःखानांसीमांतइतिकथ्यते ॥ तन्मध्यपतितेदेहेसुखमासाद्यतेकथम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—काकतालीय योगसे प्राप्त इस जगत्की स्थितिमें भोगके लम्पट इस धूर्त मनने त्याज्य और ग्राह्य भावना व्यर्थही कल्पितकी है ॥ ४९ ॥ देशकाल और वस्तुकी इयत्तासे परिच्छिन्न और त्रिविधतापसे तप्त अग्निशिखाके तुल्य इन संसारकी दृष्टियोंमें पतंगके समान मैं क्यों अनुरक्तहूं ॥ ५० ॥ एकान्तके दाहमें भस्म होना उत्तमहै रौरव नरकमें लोटनाभी उत्तमहै परन्तु सुखदुखरूपी विवर्तयुक्त इस संसारकी दशामें रहना उत्तम नहीं है ॥ ५१ ॥ संसारही संपूर्ण दुःखोंकी सीमाहै, इसमें आकर भला सुख कैसे प्राप्त होसकताहै ॥ ५२ ॥

अकृत्रिममहादुःखेसंसारेयेव्यवस्थिताः ॥ तएतेऽन्यानिदुःखानिजानतेमधुराण्यलम् ॥ ५३ ॥ अहमप्यधमोत्कृष्टकाष्ठलोष्टसमस्थितिः ॥ अज्ञैरन्वोगतःसाम्यंपरमावृष्टवस्तुभिः ॥ ५४ ॥ सहस्रांकुरशाखात्मफलपल्लवशालिनः ॥ अस्यसंसारवृक्षस्यमनोमूलमहांकुरः ॥ ५५ ॥ संकल्पमेवतन्मन्येसंकल्पोपशमेनतत् ॥ शोषयामियथाशोषमेतिसंसारपादपः ॥ ५६ ॥

अर्थ—स्वाभाविक दुःखसे पूर्ण जो जगत्में स्थितहैं वेभी अन्य दुःखोंको सुखरूप जानते हैं अर्थात् जैसे तलवारकी चोटसे कोडेकी चोटको मनुष्य उत्तम समझताहै ऐसेही संसारके स्त्री पुत्रादि परिणाममें दुःखदायक कोही सुख समझताहै ॥ ५३ ॥ मैंभी इस अधम और उत्कृष्ट काष्ठ और पाषाणके समान स्थितिवाले अविवेकी अज्ञानियोंके तुल्य विना विचारेसे होगया ॥ ५४ ॥ सहस्रों संकल्परूप अंकुर जिसमें है देह और ब्रह्माण्ड जिसके शाखाहैं और विराट् जिसका अवयवी है सुख दुःख जिसमें फलहैं और राग लोभादि जिसमें पल्लवहैं ऐसे शोभायमान इस संसाररूपी वृक्षका मूल महाअंकुरयुक्त यह मनहै ॥ ५५ ॥ संकल्पही इस मनकाभी रहस्यहै इसलिये संकल्पकी शान्तिसेही मैं इसको सुखाताहुं देखें तो कैसे संसाररूपी वृक्ष उत्पन्न होताहै ॥ ५६ ॥

आकारमात्ररम्यासुमनोमर्कटवृत्तिषु ॥ परिज्ञातास्विहाधैवनरमेनाशनोष्वहम् ॥ ५७ ॥ आशापाशशतप्रोताःपातोत्पातोपतापदाः ॥ संसारवृत्तयोभुक्ताइदानींविश्रमाम्यहम् ॥ ५८ ॥ हाहतोस्मिविनष्टोस्मिमृतोस्मीतिपुनःपुनः ॥ शोचितंगतमेवाहमिदानींनानुरोदिमि ॥ ५९ ॥ प्रबुद्धोस्मिप्रहृष्टोस्मिदृष्टश्चोरोयमात्मतः ॥ मनोनामनिहन्म्येनंमनसास्मिचिरंहतः ॥ ६० ॥

अर्थ—आकार मात्रसे रमणीय मनरूपी मरकटसे चपल नाशरूपसे परिज्ञात इन संसारकी दशाओंमें मैं अब नहीं रमण करूंगा ॥ ५७ ॥ सैकडों आशारूपी कांटोंसे गूंथी हुई ऊंची नीची गति तथा दुःखको देनेवाली इन संसारकी वृत्तियोंको मैंने भोगलिया, अब मैं विश्राम करताहूं ॥ ५८ ॥ हा ! मैं मारागया, नष्ट हुआ, और मरा इत्यादि पुनः २ जो कुछ मैंनें सोचा वह तो वीतगया अब पुनः इस संसारके पदार्थोंके लिये रोदन नहीं करूंगा ॥ ५९ ॥ अब मैं प्रबुद्धहूं और प्रसन्नहूं पारमार्थिक धनरूप आत्माके चोरको मैंने देखलिया, वह चोर यह मनही है न केवल चोर किन्तु शत्रुभी है क्योंकि इससे चिरकालसे मैं मारागयाहूं इसलिये मैंभी अब इसको मारताहूं ॥ ६० ॥

एतावंतमिमंकालंमनोमुक्ताफलंमम ॥ अविद्धमासीदधुनाविद्धंतुगुणमर्हति ॥ ६१ ॥ मनस्तुषारकणिकाविवेकार्कातपेनमे ॥ चिरप्रवृत्तयेनूनमचिराल्लयमेष्यति ॥ ६२ ॥ विविधैःसाधुभिःसिद्धैरहंसाधुप्रबोधितः ॥ आत्मानमनुगच्छामिपरमानंदसाधनम् ॥ ६३ ॥ आत्मानंमणिमेकांतेलब्ध्वैवालोकयन्सुखम् ॥ तिष्ठाम्यस्तमितान्येहशरदीवाचलेंबुदः ॥ ६४ ॥ अयमहमिदमाततंममेतिस्फुरितमपास्यबलादसत्यमंतः ॥ रिपुमतिबलिनंमनोनिहत्यप्रशममुपैमिनमोस्तुतेविवेक ॥ ६५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे जनक चिंतकों नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

अर्थ—इतने कालतक यह मनरूपी मेरा मुक्ताफल वींधा (लक्ष्य भूत) नहींथा, अब तो वींधाहै अतएव गुणके (पक्षमें सूत्र) के योग्यहै ॥ ६१ ॥ मनरूपी तुषारकी कणिका मेरे विवेकरूप सूर्य्यके तापसे अनादि ब्रह्मतत्त्वमें प्रतिष्ठाके लिये चिरकालके अर्थ लयको प्राप्त होगा ॥ ६२ ॥ साधु तथा सिद्ध महात्माओंके अनेकप्रकारके उपदेशोंसे बोधित मैं परमानन्दके साधनीभूत परब्रह्मकी शरणमें जाताहूं ॥ ६३ ॥ आत्मरूपमणिको पाकर उसीको देखते (ध्यान करते) हुये अन्य चेष्टाओंको त्यागकर हिमालय आदि पर्वतपर मेघके समान एकान्तमें सुखपूर्वक स्थित रहूं ॥ ६४ ॥

यह शरीर मैं हुं, यह राज्यादि मेराहै इत्यादि असत्य स्फुरण जो स्फुरितेहैं उसको बलसे निकालके अति बली मनरूप शत्रुको मारकर विवेकके द्वारा सप्तभूमिका रूप शांतिमें स्थितहूं इसलिये हे विवेक तुमको नमस्कारहै ॥ ६९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उपशमप्रकरणे जनक वितर्को नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः ॥ १० ॥

मध्यान्हकालकी विधि करनेके लिये द्वारपालके प्रार्थना करनेपरभी मौन होके पुनः विचार करना इस १० के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ इतिचिंतयतस्तस्यपुरस्संप्रविवेशह ॥ प्रतीहारःपरोभानोस्स्यंदनग्रइवारुणः ॥ १ ॥ प्रतीहारउवाच ॥ देवदोःस्तंभविश्रांतसमस्तवसुधाभर ॥ संपादयोत्तिष्ठदिनव्यापारं नृपतोचितम् ॥ २ ॥ एताःकुसुमकर्पूरकुंकुमांबुघटाःस्त्रियः ॥ स्नानभूमौस्थिताःसज्जानद्योमूर्त्तियुता इव ॥ ३ ॥ एताःकमलकह्लारकाननभ्रांतषट्पदाः ॥ कृताःकमलिनीपाशरचितांशुकमंडपाः ॥ ४ ॥ एताःकमलिनीतीरभूवश्छत्रैःप्रपूरिताः ॥ सचामररथेभाश्वैःस्नानावसरसेविनाम् ॥ ५ ॥

अर्थ—इसप्रकार चिन्ता करते हुये राजा जनकजीके सन्मुख द्वारपालने आके इसप्रकार प्रवेश किया जैसे सूर्य्यके रथके सन्मुख अरुण सारथी ॥ १ ॥ अपनी भुजाओंपर समस्त पृथिवीके भारको विश्राम देनेहारे राजन् उठिये राजाओंके योग्य व्यवहारोंको सिद्ध कीजिये ॥ २ ॥ पुष्प, कर्पूर, और कुंकुमयुक्त जलके घट लिये स्त्रियां सुसज्जित (तैय्यार) होके ऐसे खडी हैं जैसे भूतिमती नदियां ॥ ३ ॥ श्वेतकमल तथा रक्तकमलोंके वनमें भ्रमर जहां भ्रमण कररहे हैं तथा पद्मसहित कमलकी रज्जुसे चारों ओरसे सुवर्ण जटित वस्त्र मण्डप जहां बने हैं, ऐसी पृथिवी कर्पूर [लाल और श्वेत] रंगकी सरसी (तलाई) के भूमिके सदृश और स्नानके समयमें सेवा करनेवाले मनुष्योंके चमर रथ हांथी घोडेसहित छत्रोंसे पूर्ण भूमि जहांपर विद्यमानहैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

समग्रसुमनःपूर्णैरन्नौषधिपरिप्लुतैः ॥ सज्जीकृताःपटलकैर्देवार्चनगृहास्तथा ॥ ६ ॥ स्नातःपवित्रहस्तश्चपारंजप्याघमर्षणः ॥ त्वामेवप्रेक्षतेदेवदक्षिणार्होद्विजव्रजः ॥ ७ ॥ लसच्चामरहस्ताभिःपाल्यतेपरमेश्वर ॥ सज्जीकृतास्तंकृताभिःशीताभोजनभूमयः ॥ ८ ॥

अर्थ—तथा सम्पूर्ण पुष्प और श्रेष्ठ भृत्योंसे, तथा परिपक्व अन्न औषध आदिसे तथा संस्कृत समीपके भागोंसे आपके देवार्चन [देव ब्राह्मण तथा अतिथि आदि पूजा] के गृह सुसज्जितहैं ॥ ६ ॥ स्नान किये पवित्र हस्त, अघमर्षण मंत्रको जपनेवाला दक्षिणाके योग्य यह ब्राह्मणोंका समूह आपको प्रतीक्षा कररहाहै ॥७॥ हे परमेश्वर ! (राजन्) शोभायमान चमरको धारण किये हुये स्त्रियोंसे लेपन, चन्दन, माला, आदिसे अति शीतलतापूर्वक सुसज्जित आपकी ये भोजनभूमि हैं ॥ ८ ॥

शीघ्रमुत्तिष्ठभद्रंतेनियतंकार्यमाचर ॥ नकालमतिवर्त्ततेमहांतःस्वेषुकर्मसु ॥ ९ ॥ प्रतीहारएतावित्थमुक्तवत्यथपार्थिवः ॥ तथैवाचिंतयामासचित्रांसंसारसंस्थितिम् ॥ १० ॥ कियन्मात्रमिदंनामराज्यंसुखमितिस्थितम् ॥ नप्रयोजनमेतेनममेहक्षणभंगिना ॥ ११ ॥ सर्वमेवपरित्यज्यमिथ्याशंबरडंबरम् ॥ एकांतएवतिष्ठामिसंशांतइववारिधिः ॥ १२ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! आपका कल्याण हो शीघ्र उठिये और नियत सन्ध्या वन्दन आदि कार्य कीजिये, क्योंकि महात्मा लोग अपने कर्म्मोंमें समयका उल्लंघन नहीं करते ॥ ९ ॥ द्वारपालकोंके स्वामीके ऐसा कहनेपर राजा जनक विचित्र जगत्की स्थितिका चिन्तन करते रहे ॥ १० ॥ यह राज्य तथा सुख क्या है, अर्थात् कुछ नहीं, इस क्षणभंगुर राज्यसुखसे मुझे कुछभी अब प्रयोजन नहीं है ॥ ११ ॥ मृगतृष्णाके जलके सदृश इस सम्पूर्ण संसारको त्यागकर शान्त समुद्रके तुल्य मैं एकान्तमें स्थित रहूंगा ॥ १२ ॥

अलमेभिरसत्प्रायैर्मम भोगविजृंभितैः ॥ त्यक्त्वासर्वाणिकर्माणिसुखंतिष्ठामिकेवलम् ॥ १३ ॥ चित्तचातुर्यमेतस्माद्भोगाभ्यासकुसंभ्रमात् ॥ त्यज जन्मजराजाड्यजालजंबालशांतये ॥ १४ ॥ दशासुस्वदुःखास्वेवसंभ्रमंचित्तपश्यसि ॥ ताभ्यएवाभिरचितंपरमंदुःखमेष्यसि ॥ १५ ॥ प्रवृत्तंसन्निवृत्तंसद्भूयोभूयश्चिरंचिरम् ॥ भोगभूमिषुसर्वासुचित्तंतृप्तिंनगच्छति ॥ १६ ॥

अर्थ—असत्‌के समान इन भोगोंकी चेष्टाओंसे मुझे क्या प्रयोजन, मैं सब कर्म्मोंको त्यागकर केवल सुख (ब्रह्म) रूपसे स्थित रहूंगा ॥ १३ ॥ हे चित्त जन्ममरण तथा वृद्धाऽवस्था और जडताके जालरूप शैवालकी शान्तिके लिये इस भोगके अभ्यासरूप कुसंगके भ्रमसे सुखके लेशकी आस्वादकी चतुरताको तूं छोडदे ॥ १४ ॥ हे चित्त इन संसारकी दशाओंमें जो सुखके भ्रमको तूं देख रहा है उन सब दशाओंसे रचाहुआ परम दुःखही तुमको प्राप्त होगा ॥ १५ ॥ भोगकी आशासे चिरकालसे प्रवृत्त होके, और भोगकी शक्तिके कुण्ठीभाव होनेसे वा शास्त्र वा लोक निन्दाके भयसे पुनः निवृत्त होके भी यह चित्त वृत्तिको नहीं प्राप्त होता ॥ १६ ॥

तःसृत्वापालमनयातुच्छयाभोगचिंतया ॥ भवत्यकृत्रिमाप्रीतिर्येनाभितस्ततंततः ॥ १७ ॥ इतिसंचिंत्यजनकस्तूष्णीमेवबभूवह ॥ शांतचापलचंतस्त्वालिपिकर्मार्पितोपमः ॥ १८ ॥ प्रतीहारोपिनोवाच गौरवेणभयेनच ॥ पुनर्वाक्यंमहीपानांचित्तवृत्तिषुशिक्षितः ॥१९॥ तूष्णीमथक्षणंस्थित्वाजनकोजनजीवितम् ॥ पुनःसंचिंतयामासमनसाशमशालिना ॥ २० ॥

अर्थ—इसलिये हे पापिष्ठ चित्त ! इस भोगकी तुच्छ आशासे अब कुछभी प्रयोजन नहीं है, किन्तु जिससे चारों ओरसे अकृत्रिम (स्वाभाविक) प्रीति होती है उस हेतु (ब्रह्मविचार) की ओर तूं झुक ॥ १७ ॥ हे रामजी ! ऐसा विचार करके चपल चित्तके शान्त होनेसे चित्र लिखितके समान जनकजी मौन होगये ॥ १८ ॥ राजाओंकी वृत्तियोंके वर्तनमें शिक्षित होनेसे वह द्वारपाल राजाके गौरव तथा भयसे पुनः कोई वचन नहीं बोला ॥ १९ ॥ इसके अनन्तर जनकजी मौन होके पुनः शान्तिसे शोभायमान मनसे मनुष्यके जीवनके निदानके विषयमें चिंतन किया॥२०॥

किमुपादेयमस्तीहयत्नात्संसाधयाम्यहम् ॥ कस्मिन्वस्तुनिवध्नामिधृतिंनाशविवर्जिते ॥ २१ ॥ किंमेक्रियापरतयाकिंमेनिष्क्रिययापिवा ॥ नतदस्तिविनाशेनवर्जितंयत्किलोदितम् ॥ २२ ॥ क्रियावान्क्रियोवास्तुकायोयमसदुत्थितः ॥ समस्थितस्यशुद्धस्यचितःकानाममेक्षतिः ॥ २३ ॥ नाभिवांछाम्यसंप्राप्तंसंप्राप्तंनत्यजाम्यहम् ॥ स्वस्थआत्मनितिष्ठामियन्ममास्तितदस्तुमे ॥ २४ ॥

अर्थ—ग्रहण करने योग्यवस्तु कौनसी है जिसको मैं यत्नसे सिद्ध करूं, और किस नाश रहित वस्तुमें मैं अपनी आस्था बांधूं ॥२१ ॥ क्रियामें तत्पर होनेसे वा निष्क्रिय होनेसे मुझे क्या करनाहै क्योंकि ऐसी अन्यवस्तु कोई नहीं है जो नाशसे रहितहै ॥ २२ ॥ असत्‌रूपसे आविर्भूत यह शरीर क्रियावान् हो वा अक्रियहो परन्तु देहकी चल तथा अचल अवस्थामें समानरूपसे स्थित मुझ शुद्ध चेतनकी क्या हानिहै ॥ २३ ॥ न तो अप्राप्त वस्तुकी इच्छा करता हूं और न प्राप्तको त्यागताहूं किन्तु स्वस्थरूपसे अपने आत्मामें स्थितहूं और आन्तरिक निरतिशय आनन्द वा प्रारब्धसे प्राप्त वस्तुहै वही मेराहै अन्य नहीं ॥ २४ ॥

नममेहकृतेनार्थोनाकृतेनेहकश्चन ॥ क्रिययाऽक्रिययावापियत्प्राप्तंतदसन्मयम् ॥ २५ ॥ अकुर्वतःकुर्वतोवायुक्तायुक्ताःक्रियामम ॥ नाभिवांछितमस्तीहयदुपादेयतांगतम् ॥ २६ ॥ तदुत्थायक्रमप्राप्तांकायोयंप्रकरोतुक्रियाम् ॥ करोत्वस्पंदितांगस्तुकिमयंसंशुष्यति ॥ २७ ॥ स्थितेमनसिनिष्कामेसमेविगतरंजने ॥ कायावयवजैःकार्यैःस्पंदास्पंदौफलेसमौ ॥ २८ ॥ कर्मजासुफलश्रीषुमनसाकर्तृभोक्तृते ॥ तस्मिन्प्रशांतिमायातेकृतमप्यकृतंनृणाम् ॥ २९ ॥ योनिश्चयोंतःपुरुषस्यरूढःक्रियास्वसौतन्मयतामुपैति ॥ अनामयंमेपदमाहतायांरधीरतामंतरलंत्यजामि ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशम प्रकरणे जनक निश्चयो नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

अर्थ—न करनेसे वा उपेक्षासे मेरा कोई प्रयोजन नहीं है क्रिया वा अक्रियासे जो कुछ प्राप्तहै वह मिथ्या मायामय दुःखरूपही है ॥ २५ ॥ शास्त्रविहित वा लौकिक क्रियाको न करते वा करते हुये मुझे कुछ वांछित नहीं है जो कि उपादेयता (ग्राह्यता) को प्राप्तहो ॥ २६ ॥ इसलिये क्रम प्राप्त उपस्थित क्रियाको यह शरीरकरै क्योंकि चेष्टारहित यह शरीर यदि शुष्क होजायगा तो उसकी क्या अवश्यकताहै ॥ २७ ॥ निष्काम आशक्तिरहित तथा समरूपसे स्थित होनेपर काय (शरीर) से उत्पन्न चेष्टा तथा चेष्टारहित प्रारब्धसे प्राप्त पुण्य पापके अनुदयरूप फल समानहै ॥ २८ ॥ कर्मसे उत्पन्नफालकी श्री (शोभा) में कर्तृता तथा भोक्तृता मनसे कल्पितहैं उसके शान्त होनेपर मनुष्योंसे कृत तथा भुक्तभी अकृत तथा अभुक्त होजाते हैं ॥ २९ ॥ कर्ता वा भोक्ताके विषयमें पुरुषके अन्तःकरणमें जैसा निश्चय रूढहै वह पुरुष संपूर्ण देहादि क्रियामें तन्मयताको प्राप्त होताहै और इस समय तो मेरी बुद्धि कर्तृता भोक्तृतारूप

रोगसे शून्य आत्मपदमें दृढ निश्चयको प्राप्त हुई है इसलिये इष्ट अनिष्टकी प्राप्ति वा विघातके निमित्तभूत अधीरताको मैं सर्वथा त्यागताहूं ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे जनक निश्चयो नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

दैनिक कृत्य समाप्त करनेवाले राजा जनकके रात्रिके अन्तमें अनेक प्रकारके उपदेशोंसे चित्तका प्रबोधन इस ११ के सर्गमें किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इतिसंचिंत्यजनकोयथाप्राप्तांक्रियामसौ ॥ असक्तःकर्त्तुमुत्तस्थौदिनंदिनपतिर्यथा ॥ १ ॥ इष्टानिष्टाःपरित्यज्यचेतसावासनाःस्वयम् ॥ यथाप्राप्तंचकारासौजाग्रत्येवसुषुप्तवत् ॥ २ ॥ संपाद्यतद्दहःकार्यमार्यावर्जनपूर्वकम् ॥ अनयच्छर्वरीमेकस्तयैवध्यानलीलया ॥ ३ ॥ मनःसमरसंकृत्वा संशांतविषयभ्रमम् ॥ शर्वर्यांक्षीयमाणायामित्थंचित्तमबोधयत् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—यह राजा जनक इसप्रकार चिन्तन करके असक्त होके यथा प्राप्त क्रियाको ऐसे किया जैसे दिनकी सिद्धिरूप क्रियाको सूर्य्य करते हैं ॥ १ ॥ इष्ट अनिष्ट वासनाको चित्तसे त्यागकर जाग्रद्दशामेंही सुषुप्तके समान यथा प्राप्त क्रियाको किया ॥ २ ॥ श्रेष्ठ पूज्य ब्राह्मण आदिकी पूजा पूर्वक उस दिनके कार्य्यको समाप्त करके एकाकी उस रात्रिको उसी ध्यानकी लीलासे बिताया ॥ ३ ॥ अनन्तर शान्त मनको समरस अर्थात् समाहित करके रात्रिके बीतनेपर चित्तको इसप्रकार बोधन किया ॥ ४ ॥

चित्तचंचलसंसारआत्मनोनसुखायते ॥ शममेहिशमाच्छांतंसुखंसारमवाप्यते ॥ ५ ॥ यथायथाविकल्पौघान्संकल्पयसिहेलया ॥ तथातथेतिस्फारत्वंसंसारस्तवचिंतया ॥ ६ ॥ शतशाखत्वमायातिसेकेनविटपीयथा ॥ अनंताधित्वमायासिशठभोगेच्छयातथा ॥ ७ ॥ चिंताजालविलासोत्थाजन्मसंसारसृष्टयः ॥ तस्मात्त्यक्त्वाविचित्रांत्वंचिंतामुपशमंव्रज ॥ ८ ॥

अर्थ—कि हे चित्त ! यह चंचल संसार आत्माको सुखदायक नहीं है इसलिये तुम शान्तिको प्राप्त होओ क्योंकि शान्तिसे विक्षेपरहित सारभूत आत्मसुख प्राप्त होताहै ॥ ५ ॥ जिस २ प्रकारसे तुम संकल्पके समूहोंकी कल्पना करते हो उस २ प्रकारसे तुमारी चिन्तासे यह संसार विशालताको प्राप्त होताहै ॥ ६ ॥ जैसे वृक्ष सींचनेपर अनन्त शाखायुक्त होताहै ऐसेही हे शठ ! तूंभी भोगकी इच्छासे अनेक प्रकारकी मानसी तथा शारीरिक व्यथाको प्राप्त होते हो ॥ ७ ॥ क्योंकि विषयके चिन्ताजालसे आविर्भूत जन्ममरण आदि संसारकी सृष्टि होती हैं इसलिये तुम विचित्र चिंताओंको छोडके उपशम (शान्ति) के शरणमें प्राप्त होओ ॥ ८ ॥

संसारसृष्टितरलामिमांतुलयसुंदर ॥ अस्यांचेत्सारमाप्नोषिनदेतामेवसंश्रय ॥ ९ ॥ आस्थांयस्मात्परित्यज्यदृश्यदर्शनलालसात् ॥ मेतद्गृहाणमामुंचस्वेच्छयाविहरेच्छया ॥ १० ॥ इदंदृश्यमसत्सद्वाप्युदेत्वस्तमुपैतुवा ॥ साधोविषमतांगच्छमैतदाथैर्गुणागुणैः ॥ ११ ॥ मनागपिनसंबंधस्तवदृश्येनवस्तुना ॥ अविद्यमानरूपेणसंबंधःकोयमीदृशः ॥ १२ ॥

अर्थ—हे सुन्दर विवेकिन् ! इस संसारकी चंचल सृष्टि तथा उपशम (शान्ति) के सुखको तुला (तराजू) पर तोलो (बुद्धिसे कौन सारहै ऐसी परीक्षा करो) यदि इसमेंही सार प्राप्त हो तो इसी (संसारकी सृष्टि) काही आश्रय करो ॥ ९ ॥ यह संसारकी सृष्टि असार है इस कारण इसमें आस्थाको त्यागकर यह दृश्य असार है इस दृश्यकी दर्शनकी लालसासे प्रियका ग्रहण न करो और दर्शनके योग्य नहीं है इस द्वेषके कारण इसे त्यागोभी मत, किन्तु दोनोंके साक्षीरूपसे आत्म काम होके अपनी इच्छासे विहार करो ॥ १० ॥ यह संसार दृश्य असत् वा सत् अर्थात् सुख दुःखके साधनरूपसे उदयको प्राप्त हो अथवा नाशको प्राप्त हो परन्तु हे साधो ! तुम इसके गुण अगुणसे हर्ष विषादरूप विषमताको न प्राप्त हो ॥ ११ ॥ हे मन ! इस दृश्य वस्तुके साथ तुमारा कुछभी सम्बन्ध नहीं है क्योंकि अविद्यमान पदार्थके साथ यह सम्बन्ध कैसा ॥ १२ ॥

असत्त्वमेतच्चसद्वयोरेवासतोःसतोः ॥ संबंधइतिचित्रेयमपूर्वैवाक्षरावली ॥ १३ ॥ असदेतत्तुसच्चेत्वंतथापिकिलसुंदर ॥ संगःसदसतोःकीदृग्वदत्वंमर्त्यजीवयोः ॥ १४ ॥ चित्तत्वमथदृश्यंचद्वेएवय

दिषन्मये ॥ सदास्थितेतत्प्रसरःकुतोहर्षविषादयोः ॥१५॥ तस्मान्महाधिंमुंचत्वंमूकमुल्लासमाहर ॥ संक्षुब्धांबुधिमाविष्टांत्यजाभव्यामिमांस्थितिम् ॥ १६ ॥ कंदुकालातवद्व्यर्थमात्मनैवपरिज्वलन् ॥ मा मोहमलमासाद्यमंदतांगच्छसन्मते ॥ १७ ॥ नतदिहास्तिसमुन्नतमुत्तमंत्रजसियेनपरांपरिपूर्णताम् ॥ तदवलंब्यबलादतिधीरतांजहिहिचंचलतांशठरेमनः ॥ १८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे चित्तानुशासनं नामैकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

अर्थ—हे मन! तुम असत्हो और दृश्यभी सत् नहीं है तो वन्ध्यापुत्र और आकाश पुष्पके तुल्य दोनों असत्का अथवा स्वरूप शून्य दोनों सत्का सम्बन्धहै यह उक्ति (कथन) अपूर्व आश्चर्यरूपही है॥ १३ ॥ हे विवेकिन्! मन यदि यह कहो कि यह दृश्य असत् और तुम आत्मरूपसे सत्हो तोभी कहो सदा मृतक और जीवितका सम्बन्ध कैसा॥ १४ ॥ हे चित्त! यदि यह मानते हो कि तुम और जगत् दृश्यभी सत्हो तोभी एकरूपसे दोनोंके सदा स्थित रहनेसे वियोगके अभावसे हर्ष विषादका क्या अवसरहै॥ १५ ॥ इसलिये महान् आधि (मानसी व्यथा) रूप इस संसारको त्यागो और समाधिके अभ्याससे सदा मूक (शान्त) रूप आत्मस्वरूपकी स्थितिमें उत्साह प्राप्त करो और कलुषित तथा अभव्य इस विक्षेप पूर्ण संसारसमुद्रको त्यागो ॥ १६ ॥ हे सन्मते! कन्दुक (गेन्द) के आकार आलातचक्र (अग्नि लगाके जो लकड़ी घुमाते हैं) समान स्वयं जलते हुये मोहको प्राप्त होके मन्दताको न प्राप्त हो ॥ १७ ॥ इस दृश्य समूहके मध्यमें ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जिससे तुम परिपूर्णताको प्राप्त हो, इसलिये हे शठ मन! अभ्यास और वैराग्यके बलसे धीरताका अवलम्बन करके चंचलताको छोड़ ॥ १८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उपशमप्रकरणे चित्ताऽनुशासनं नामैकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

इस १२ के सर्गमें राजा जनककी जीवन्मुक्तरूपसे स्थिति तथा विचार और बुद्धिका विचित्र माहात्म्य विस्तारसे वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ एवंविचार्यसंतत्रस्वराज्येजनकोनृपः ॥ चकाराखिलकार्याणिनमुमोहचधीरधीः ॥ १ ॥ नमनःप्रोल्लुलासास्यक्वचिदानंदवृत्तिषु ॥ केवलंसुषुप्तसंस्थंसदैवव्यवतिष्ठत ॥ २ ॥ ततः प्रभृत्यसौदृश्यंनाजहारनवात्यजत् ॥ केवलंविगताशंकंवर्त्तमानेव्यवस्थितः ॥ ३ ॥ अनारतविवेकेनतेनसद्यःसनातनम् ॥ पुनःकलंकंनैवाप्तमंबरेणेवराजसम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—इसप्रकार विचार करते हुये राजा जनक अपने राज्यमें यथा प्राप्त सम्पूर्ण कार्य्योंको किया और इनकी धीर बुद्धि अहन्ता और ममताके अभिमानसे पूर्वकालके समान मोहित न हुई॥ १ ॥ और कहींभी विषय जनित हर्षके स्थानोंमें इनका मन उत्साहवान् नहीं होताथा किन्तु सुषुप्तिके स्थितिके सदृश स्थित रहताथा॥२॥ उसी समयसे लेके राजा जनक अपनी बुद्धिसे दृश्यको प्रिय दृष्टिसे नहीं ग्रहण किया, और द्वेष बुद्धिसे त्यागभी नहीं किया, किन्तु निःशंकहो वर्तमान (उस काल) में प्राप्त दृश्यमेंही तृप्त बुद्धिसे रहतेथे॥ ३ ॥ जैसे रजधूलिकी मलिनताको नहीं प्राप्त होता ऐसेही निरंतर विवेकयुक्त राजा जनकको अनादि स्वभाव प्राप्त अहं और मम (मैं तथा मेरा) की अभिमानरूप मलिनता पुनः नहीं प्राप्त हुई ॥ ४ ॥

स्वविवेकानुसंधानादितितस्यमहीपतेः ॥ सम्यग्ज्ञानमनंताभमलंविमलतांययौ ॥ ५ ॥ अनावृष्टविकल्पांशुश्चिदात्माविगतामयः ॥ उदियायहृदाकाशेतस्यव्योम्नीवभास्करः ॥ ६ ॥ सददर्शाखिलान्भावांश्चिच्छक्तौसमवस्थितान् ॥ आत्मभूताननंतात्मासर्वभूतात्मकोविदः ॥ ७ ॥ प्रहृष्टोनबभूवासौक्विन्नचसुदुःखितः ॥ प्रकृतेर्व्यवहारस्वात्सदैवसममानसः ॥ ८ ॥

अर्थ—सदा अपने विवेकके अनुसन्धानसे उस राजाका अनन्त ब्रह्माकार सम्यग् ज्ञान विमलताको प्राप्त हुआ ॥ ५ ॥ मेघपटलों वा विक्षेपोंसे जिसकी किरण अभिभूत (पराजित) नहीं हुई, और देहके भेद प्रयुक्त रोगरहित चिदात्माके हृदयमें इसप्रकार प्रकाश किया जैसे आकाशमें सूर्य ॥६॥ अनन्त ब्रह्ममय तथा सर्व भूतात्मज्ञानमें प्रवीण

राजा जनकने सम्पूर्ण पदार्थोंको चित्त शक्तिहीमें अध्यस्त देखा मायासेही सब व्यवहार होनेसे असंग आत्माके साथ किसीका स्पर्श न होनेसे सर्वत्र समान चित्त राजा जनक न तो कभी अत्यन्त प्रसन्न और न अति दुःखी हुये ॥८॥

जीवन्मुक्तोबभूवासौततःप्रभृतिमानदः ॥ जनकोजरठज्ञानीज्ञातलोकपरावरः ॥ ९ ॥ राज्यंकुर्वन्विदेहानांजनकोजनजीवितम् ॥ नैवहर्षविषादाभ्यांसोवशःपरितप्यते ॥ १० ॥ नास्तमेतिनचोदेतिगुणदोषविचेष्टितैः ॥ ११ ॥ अर्थानर्थैःसराज्योत्थैर्नग्लायतिनहृष्यति ॥ कुर्वन्नपिकरोत्येष न ... पिकुत्र चित् ॥ सतिष्ठत्येवसततंसर्वदैवांतरेचितः ॥ १२ ॥

अर्थ—प्रतिष्ठाके योग्य वृद्ध ज्ञानी इस लोक तथा परलोकका ज्ञाता यह राजा जनक ... चित्तका ... हो गया ॥ ९ ॥ संपूर्ण प्राणियोंको जीवनके समान प्रिय राजा जनक राज्य करते हुये हर्ष तथा विष... तप्त नहीं हुये ॥ १० ॥ और मानसी गुण दोषोंसे स्वरूपसे तिरोहित वा पुनः आविर्भूत नहीं होता ... नपतिर्यथा बाह्य राज्यसे उत्पन्न अर्थों तथा अनर्थोंसे न वह हर्षित और शोकयुक्त होताथा और करते हुयेभी क... ॥ २ ॥ सं नके अभावसे कुछ नहीं करताथा और सदा चेतनकेही मध्यमें स्थित रहताथा ॥ १२ ॥ मरसंकृत्वा

सुषुप्तावस्थितस्यैवजनकस्यमहीपतेः भावनाःसर्वभावेभ्यःसर्वथैवास्तमागताः ॥ १३ ॥ नुसंधत्तेनातीतंचिंतयत्यसौ ॥ वर्तमाननिमेषंतुहसन्नेवानुवर्त्तते ॥ १४ ॥ स्वविचारवशा... प्त क्रियाको ऐसे सेक्षण ॥ प्राप्तंप्राप्यमशेषेणरामनेतरयेच्छया ॥ १५ ॥ तावत्तावत्स्वकेनैवचेतमा... जाग्रवदशामेही यावद्यावद्विचाराणांसीमांतःसमवाप्यते ॥ १६ ॥ ... कार्य्यको समाप्त

अर्थ—सुषुप्तिके समान स्थित राजा जनककी राग आदि वासना संपूर्ण पदार्थोंसे असत्यत... अर्थात् समाहित नाके अभावसे पूर्व उत्तरकालके अनुसन्धानके प्रभावसे भूत भविष्य दोनोंकी चिन्ता राजा जनक हसते हुए वर्तमानकालके अनुसार वर्त्ताव करतेथे ॥ १३ ॥ १४ ॥ हे कमलनेत्र रामजी! अ... यथायथाविक राजा जनकने कण्ठगत विस्मृत मणिके सदृश प्राप्त होनेके योग्य सम्पूर्ण आत्माको ज्ञान मात्रसे ... वमायातिसेके च्छासे ॥ १५ ॥ तबतक अपने चित्तसे आत्माका विचार करना चाहिये जबतक विचारोंकी सीमा... याजन्मसंसार ज्ञानरूप फल) न प्राप्तहो ॥ १६ ॥

नतद्गुरोर्नशास्त्रार्थान्नपुण्यात्प्राप्यतेपदम् ॥ यत्साधुसंगाभ्युदिताद्विचारविशदाद्धृदः ॥ ... तको प्राप्त हो और निजयाबुद्धयाप्रज्ञयेववयस्यया ॥ पदमासाद्यतेरामननामक्रिययान्यया ॥ १८ ॥ यस्यो... के समूहोंकी ... आपूर्वापरविचारिणी ॥ अज्ञादीपशिखाजातुजाड्यांध्यंतंनबाधते ॥ १९ ॥ दुरुत्तरायावि... वृक्ष सींचनेपर अ... संकुलः ॥ तार्यतेप्रज्ञयाताभ्योनावापद्भ्योमहामते ॥ २० ॥ ... रीरिक व्यथाको

अर्थ—न गुरुसे, न शास्त्रार्थसे और न पुण्यसे वह पद प्राप्त होसकताहै जो कि साधु सं... हैं इसलिये तुम प्राप्त और विचारसे विशद (विशाल) हृदयसे प्राप्त होताहै ॥ १७ ॥ हे रामजी! वह (ब्रह्म) विवेकसे शोधित अनुरागिणी सखीके समान ऊहापोहमें कुशल बुद्धिसे प्राप्त होताहै न कि अ... यस्मात्परि ॥ १८ ॥ अग्रभागवाली पूर्वतपर, विचारमें कुशल जिसकी बुद्धि रूप दीप शिखा प्रज्वलित होरही है... सत्सङ्गाप्यु अंधकार नहीं बाधा करता ॥ १९ ॥ हे महामते रामजी! दुःखरूप कल्लोलसे पूर्ण कठिनत... हृदयेनवस्तु विपत्तिरूप नदियां है वे बुद्धिरूप नौकासे पार की जाती हैं ॥ २० ॥

प्रज्ञाविरहितंमूढमापदल्पापिबाधते ॥ पेलवाचानिलकलासारहीनमिवोलपम् ॥ २१ ॥ प्र... ला (तराजू) योपिविशास्त्रोप्यरिमर्दन ॥ उत्तरत्येवसंसारसागराद्रामपेलवात् ॥ २२ ॥ ...) काहि मधिगच्छति ॥ दुष्प्रज्ञःकार्यमासाद्यप्रधानमपिनश्यति ॥ २३ ॥ ... इस ह... येत् ॥ सेकसंरक्षणारंभैःफलप्राप्तालतामिव ॥ २४ ॥ ... मत,

अर्थ—जैसे अल्पभी वायुकी कल कोमल तृणको बाधा करताहै ऐसेही बुद्धिहीन मूढ पुरुष ... वा सत् बाधा करती है ॥ २१ ॥ हे शत्रुमर्दन रामजी! बुद्धिमान् पुरुष शास्त्र शून्य सहायरहितभी हो परन्तु ... हर्ष वाध्य संसारसागरके पार उतरताही है ॥ २२ ॥ बुद्धिमान् असहायभी कार्य्यके अन्तको प्राप्त होताहै और ... योंकि (मूढ अज्ञानी) अधिक सेना आदि बलयुक्त होकेभी नाशको प्राप्त होताहै ॥ २३ ॥ जैसे फलकी प्राप्तिरूप ... का सिंचन तथा रक्षण आदि कार्य्योंसे लताकी वृद्धि करते हैं ऐसेही शास्त्र तथा सज्जनोंके संबन्धसे प्रथम बुद्धिको वढाना चाहिये ॥ २४ ॥

प्रज्ञाबालतृहन्मूलःकालेसत्कार्यपादपः ॥ फलंफलत्यतिस्वादुभासोबिंबमिवैंदवम् ॥ २५ ॥ यएवयत्नः क्रियतेबाह्यार्थोपार्जनेजनैः ॥ सएवयत्नःकर्त्तव्यःपूर्वंप्रज्ञाविवर्द्धने ॥ २६ ॥ सीमांतंसर्वदुःखानामापदां कोशमुत्तमम् ॥ बीजंसंसारवृक्षाणांप्रज्ञामांद्यंविनाशयेत् ॥ २७ ॥ स्वर्गाद्यद्यच्चपातालाद्राज्याद्यत्समवाप्यते ॥ तत्समासाद्यतेसर्वंप्रज्ञाकोशान्महात्मना ॥ २८ ॥

अर्थ—बुद्धिरूप महान्‌वलसहित पूर्वकालका सत्कर्म (भाग्य) रूप वृक्ष उत्तम स्वाद फल फलताहै ॥२५॥ जो यत्न मनुष्य बाह्य द्रव्य आदि पदार्थोंके उपार्जनमें करते हैं वही प्रथम बुद्धिके बढानेमें करना चाहिये ॥ २६ ॥ सम्पूर्ण दुःखोंकी पराऽवधि, विपत्तियोंका उत्तम कोश और संसाररूप वृक्षोंका बीजभूत जो बुद्धिका मान्द्य (मन्दता) है उसका यत्नसे नाश करना चाहिये ॥ २७ ॥ स्वर्गसे पातालसे और राज्यसे जो सुख प्राप्त होता वह सम्पूर्ण सुख महात्माजन प्राप्त करताहै ॥ २८ ॥

प्रज्ञयोत्तीर्यतेभीमात्तस्मात्संसारसागरात् ॥ नदानैर्नचवातीर्थैस्तपसानचराघव ॥ २९ ॥ यत्प्राप्ताःसंपदंदैवीमपिभूमिचरानराः ॥ प्रज्ञापुण्यलतायास्तत्फलंस्वादुसमुत्थितम् ॥ ३० ॥ प्रज्ञायानखरालूनमत्तवारणयूथपाः ॥ जंबुकैर्विजिताःसिंहाःसिंहैर्हरिणकाइव ॥ ३१ ॥ सामान्यैरपिभूपत्वंप्राप्तंप्रज्ञावशान्नरैः ॥ स्वर्गापवर्गयोग्यत्वंप्राज्ञस्यैवेहदृश्यते ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे राघव ! इस हेतुसे बुद्धि (आत्मज्ञान) से भयंकर संसारसागरसे पार जासकते हैं न कि दान तीर्थ तपसे ॥ २९ ॥ जो पृथिवीपर चलनेवालेभी मनुष्य दैवी सम्पत्ति (आकाशगमनरूप) पाते हैं वहभी बुद्धिरूप पवित्र लताका उत्तम सुस्वादु फल आविर्भूतहै ॥ ३० ॥ अपने नखों (पंजों) से मत्त हस्तियोंके यूथपोंको छेदन करनेवाले सिंहभी शृगालों (गीदडों) से बुद्धिही द्वारा ऐसे जीतलिये गये हैं जैसे सिंहोंसे हरिण॥३१॥बुद्धिहीके वशसे सामान्य मनुष्यभी राजत्व पदवीको प्राप्त हुये हैं और स्वर्ग तथा मोक्षकी योग्यताभी बुद्धिमान् मनुष्यकोही देख पडती है ॥ ३२ ॥

प्रज्ञयावादिनस्सर्वेस्वविकल्पविलासिनः ॥ जयंतिसुभटप्रख्यान्नरानप्यतिभीरवः ॥ ३३ ॥ चिंतामणिरियंप्रज्ञाहृत्कोशस्थाविवेकिनः ॥ फलंकल्पलतेवैषाचिंतितंसंप्रयच्छति ॥ ३४ ॥ भव्यस्तरतिसंसारंप्रज्ञयापोह्यतेधमः ॥ शिक्षितःपारमाप्नोतिनावानाप्नोत्यशिक्षितः ॥ ३५ ॥ धीःसम्यग्योजितापारमसम्यग्योजितापदम् ॥ नरंनयतिसंसारेभ्रमंतीनौरिवार्णवे ॥ ३६ ॥

अर्थ—निज रचित विकल्पोंमें विलास करनेवाले अतिभीरू (डरपोक) भी सम्पूर्ण वादीलोग बुद्धिहीके बलसे बडे २ वादमें शूरोंको जीतलेते हैं ॥ ३३ ॥ भव्य (मोक्षका भागी) प्राणी बुद्धिसे संसारके पार उतर जाताहै और अधम मूर्ख बहा जाताहै, जैसे नौका खेवनेमें शिक्षित धीवर नदीके पार जाताहै न कि अशिक्षित ॥३४॥ ३५॥ विवेक तथा वैराग्यादिसे संपन्न सन्मार्गमें योजित यह बुद्धि नौकाके सदृश संसाररूपी समुद्रके पार ले जाती है और असन्मार्गमें नियोजितकी हुई यह बुद्धि आपत्तिको प्राप्त करती है ॥ ३६ ॥

विवेकिनमसंमूढंप्राज्ञमाशागणोत्थिताः ॥ दोषानपरिबाधंतेसन्नद्धमिवसायकाः ॥ ३७ ॥ प्रज्ञयेहजगत्सर्वंसम्यगेवांगदृश्यते ॥ सम्यग्दर्शनमायांतिनापदोनचसंपदः ॥ ३८ ॥ पिधानंपरमार्कस्यजडात्मावितत्तोसितः ॥ अहंकारांबुदोमत्तःप्रज्ञावातेनबाध्यते ॥ ३९ ॥ पदमतुलमुपैतुमिच्छतोच्चैःप्रथममियंमतिरेवलालनीया ॥ फलमभिलपताकृषीवलेनप्रथमतरंननुकृष्यतेधरैव ॥ ४० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये
उपशमप्रकरणे प्रज्ञामहात्म्यं नाम द्वादशःसर्गः ॥ १२ ॥

अर्थ—बुद्धिमान् विवेकी पुरुषको तृष्णाके गण काम क्रोध लोभ तथा मोहादिसे उत्पन्न राग द्वेष चिन्ता और विषयादि दोष ऐसे नहीं बाधते हैं जैसे वर्म (कवच) संयुक्त पुरुषको बाण ॥३७॥ हे प्रिय राम ! बुद्धिहीसे गुण तथा दोषके विवेकद्वारा सम्पूर्ण यह जगत् देख पडताहै और सम्यक् दर्शनयुक्त पुरुषके निकट आपत्ति तथा विपत्ति दोनों नहीं आती अर्थात् उसका कुछ नहीं करसकती ॥ ३८ ॥ परमात्मारूप सूर्यका आच्छादक (ढाकनेवाला जड) वा जलरूप विस्तीर्ण, मलिन पक्षमें नील अहंकाररूप मत्त मेघ बुद्धि (ज्ञान) रूप वायुसे बाधित होताहै ॥ ३९ ॥ अतुल और उच्च ब्रह्मपदको प्राप्त करनेकी इच्छावाले पुरुषको प्रथम बालकके समान विवेककी शिक्षासे लालन (शिक्षण) से शुद्ध करना चाहिये क्योंकि धान्य आदिकी वृद्धिरूप फलको चाहनेवाला किसान सबसे प्रथम कर्षण (जोतना) से पृथिवीकोही शुद्ध करताहै ॥ ४० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे
उपशमप्रकरणे प्रज्ञामाहात्म्यं नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

इस १३ के सर्गमें उस जनकके विचारको दृष्टान्त करके चित्तकी शान्तिके उपाय वर्णन कियेगये हैं ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवंजनकवद्रामविचार्यात्मानमात्मना ॥ पदंविदितवेद्यानामविघ्नेनाधिगच्छसि ॥ १ ॥ येहिपाश्चात्यजन्मानःप्राज्ञाराजससात्त्विकाः ॥ प्राप्नुवंतिस्वयंप्राप्यंतेजनाजनकाइव ॥ २ ॥ तावत्तावद्विजित्यारीनिंद्रियाख्यान्पुनःपुनः ॥ यावदात्मात्मनैवायमात्मन्येवप्रसीदति ॥ ३ ॥ प्रसन्नेसर्वगेदेवेदेवेशेपरमात्मनि ॥ स्वयमालोकितेसर्वाःक्षीयंतेदुःखदृष्टयः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! इसप्रकार जनकके सदृश आत्मासे आत्माका विचार करके अर्थ भावना आदि प्रतिबन्धकरूप विघ्नके निराससे ज्ञानियोंके प्राप्तव्य ब्रह्मपदको प्राणी प्राप्त होताहै ॥ १ ॥ जो अन्तिम जन्मवाले राजस और सात्विक जातिवाले बुद्धिमान् पुरुष हैं वे जनकके सदृश प्राप्यवस्तुको स्वयं पाते हैं ॥ २ ॥ जबतक यह आत्माआत्मामें नहीं प्रसन्न होता तबतक पुनः २ इन्द्रियरूप शत्रुओंको जीतकर आत्माहीका अनुसंधान करना चाहिये ॥ ३ ॥ उस सर्वव्यापी सब इन्द्रियोंके स्वामी परमात्माके प्रसन्न तथा स्वयं दृष्ट होनेपर सम्पूर्ण दुःखकी दृष्टि क्षीण होजाती हैं ॥ ४ ॥

मुष्टयोमोहबीजानांवृष्टयोविविधापदाम् ॥ कुदृष्टयःक्षयंयांतिदृष्टेतस्मिन्परावरे ॥ ५ ॥ सदाजनकवद्रामसर्वारंभवदात्मना ॥ प्रज्ञयात्मानमालक्ष्यलक्ष्मीवानुत्तमोभव ॥६॥ नित्यमंतर्विचारस्यपश्यतश्चंचलंजगत् ॥ जनकस्येवकालेनस्वयमात्माप्रसीदति ॥ ७ ॥ नदैवंनचकर्माणिनधनानिनबांधवाः ॥ शरणंभवभीतानांस्वप्रयत्नादृतेनृणाम् ॥ ८ ॥

अर्थ—मनुष्यके आनंदसे लेके ब्रह्माका आनंदपर्यंत जिसकी अपेक्षा न्यूनहैं उस परावररूप परमात्माके दृष्ट होनेपर मोहके बीजभूत दुर्वासनाओंकी मुष्टि और अनेक प्रकारकी आपत्तियोंकी वृष्टि और अहं ममता आदि कुदृष्टि सब क्षयको प्राप्त होती हैं ॥ ५ ॥ हे रामजी ! विवेकयुक्त बुद्धिसे सब जगत्की उत्पत्ति आदिका अधिष्ठानभूत जो ब्रह्महै उसी रूपसे सबको देखकर अर्थात् सबको ब्रह्मरूपसे अनुभव करके परमपुरुषार्थरूप लक्ष्मी करकेयुक्त सबसे उत्तम बन जाओ ॥ ६ ॥ जिसके अन्तःकरणमें नित्य आत्माका विचारहै, और जगत्को चंचल (अनित्य) देखताहै उसका आत्मा कालपाके जनकके सदृश स्वयं प्रसन्न होताहै ॥ ७ ॥ संसारसे भयभीत मनुष्यके अर्थ आत्मज्ञानरूप अपने प्रयत्नके सिवाय न दैव, न कर्म, न धन, और न बन्धु, कोईभी शरण (रक्षक) नहीं है ॥ ८ ॥

येदैवनिष्ठाःकृत्यादौकुविकल्पपरायणाः ॥ तेषांमंदामतिस्तातनानुगम्याविनाशनी ॥ ९ ॥ विवेकंपरमाश्रित्यविलोक्यात्मानमात्मना ॥ धियाविरागोद्धुरयासंसारजलधिंतरेत् ॥ १० ॥ एषासाकथितारामनभःफलनिपातवत् ॥ सुखदाज्ञानसंप्राप्तिरज्ञानतरुशातनी ॥ ११ ॥ जनकस्येवसद्बुद्धेःस्वयमेवविलोकिनः ॥ विकासमेत्ययंदेहीदेवःप्रातरिवांबुजम् ॥ १२ ॥

अर्थ—जो पुरुष यत्न विवेक वैराग्य आदिके विषयमें दैवके आधीनहैं अर्थात् यदि प्रारब्धमें होगा तो विवेक वैराग्य तथा ज्ञानादि स्वयं प्राप्त होजांयगे और दैवके प्रतिकूल होनेपर सहस्रों प्रयत्नसेभी कार्य सिद्ध न होगा क्योंकि दैवके विरुद्ध होनेपर काम क्रोधादिसे अधःपतन अनेकोंका दृष्टहै इत्यादि कुविकल्पोंमें जो परायणहैं उनकी मतिमंदहै और हे प्रिय रामजी ! उनकी बुद्धिके अनुसार कभी नहीं चलना चाहिये ॥ ९ ॥ उत्तम विवेकका आश्रय लेके और आत्माको आत्मासे देखके और वैराग्यसे उत्तम बुद्धि द्वारा संसाररूप समुद्रको पार करै ॥ १० ॥ हे रामजी ! सुख देनेहारी, ज्ञानकी प्राप्ति और अज्ञानरूप वृक्षकी नाशिनी यह जनककी आख्यायिका आपसे उदाहरणरूपसे वर्णन किया ॥ ११ ॥ जो उत्तम बुद्धियुक्त पुरुष स्वयं अपने आत्माको देखताहै उसके हृदयमें परमात्मारूप देव ऐसे विकाशको प्राप्त होताहै जैसे प्रातःकालमें कमल ॥ १२ ॥

संसारमननंचित्रंविचारेणविलीयते ॥ गलद्दशीकृतस्पर्शमातपेनहिमंयथा ॥ १३ ॥ अयमेवाहमित्यस्यानिशायाउदितेक्षये ॥ स्वयंसर्वगतःस्फारःस्वालोकःसंप्रवर्त्तते ॥ १४ ॥ अयमेवाहमित्यस्मिन्संकोचेविलयंगते ॥ अनंतभुवनव्यापीविस्तारउपजायते ॥ १५ ॥ जनकेनपरित्यक्तायथाहंकारवासना ॥ तथात्वमपिसद्बुद्धेविचार्यांतःपरित्यज ॥ १६ ॥

अर्थ—विचारसेही संसारका विकल्प और चिन्तन नाशको ऐसे प्राप्त होजाताहै जैसे धर्मसे शीततारहित गलता हुआ हिम ॥ १३ ॥ यह शरीर मैं हूं, इस अज्ञानरूप रात्रिके क्षीण होनेपर महान् सर्वव्यापी निज आत्माका

प्रकाश स्वयं प्रवृत्त होताहै ॥ १४ ॥ यह शरीर मैं हुं इस संकोचके विलय होनेपर अनन्तर सर्व भुवनव्यापी आत्माका विस्तार उत्पन्न होताहै ॥ १५ ॥ हे सद्बुद्धेरामजी ! जैसे जनकजीने अहंकारकी वासनाका त्याग किया ऐसेही तुमभी उसका त्याग करो ॥ १६ ॥

अहंकारांबुदेक्षीणेचिद्व्योम्निविमलेतते ॥ नूनंसंप्रौढतामेतिस्वालोकोभास्करःपरः ॥ १७ ॥ एतावदेवा तितमोयदहंभावभावनम् ॥ तस्मिन्प्रशममानीतेप्रकाशउपजायते ॥ १८ ॥ नाहमस्तिनचान्योस्तिन चनास्तीतिभावितम् ॥ मनःप्रशांतिमायातंनोपादेयेषुमज्जति ॥ १९ ॥ उपादेयानुपतनंहेयैकांतविवर्ज नम् ॥ यदेतन्मनसोरामतद्बंधंविद्धिनेतरत् ॥ २० ॥

अर्थ—अहंकाररूप मेघके क्षीण होनेसे विस्तृत चिदाकाशरूप आकाशके विमल होनेपर अपने आत्माका प्रकाशरूप सूर्य्य निश्चय करके प्रौढता (शरद्के समान स्फुट प्रकाशता) को प्राप्त होताहै ॥ १७ ॥ यही अत्यन्त तम (अज्ञानान्धकार) का बलहै जो शरीर आदिमें अहंकारकी भावनाहै उसके शान्त होनेपर आत्माका प्रकाश स्वयं होताहै ॥ १८ ॥ अहंपद वाच्यभी कोई वस्तु नहीं है और इससे पृथक् साक्षीरूप नहीं है यहभी नहीं है और इसप्रकार उस मनके शान्ति प्राप्त होनेपर उपादेय विषयोंमें निमग्न नहीं होता ॥ १९ ॥ हे रामजी ! उपादेय पदार्थोंमें हेय पदार्थोंके त्यागपूर्वक जो मनका रागहै इसीको तुम बन्ध जानो अन्य नहीं ॥ २० ॥

माखेदंभजहेयेषुनोपादेयपरोभव ॥ हेयादेयदृशौत्यक्त्वाशेषस्थःस्वच्छतांव्रज ॥ २१ ॥ येषामिदमुपा देयमिदंहेयमितिस्थितिः ॥ विलीनातेनवांछंतिनत्यजंतीहकिंचन ॥ २२ ॥ हेयोपादेयकलनेक्षीणेयाव न्नचेतसः ॥ नतावत्समताभातिसाभ्रेव्योम्नीवचंद्रिका ॥२३॥ अवस्त्विदमिदंवस्तुयस्येतिछलितंमनः॥ तस्मिन्नोदेतिसमताशाखोटइवमंजरी ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! हेय पदार्थोंमें खेदको मत प्राप्तहो और उपादेय पदार्थोंमें परायणभी मत होओ, हेय और उपादेय दृष्टिको त्यागकर शेष साक्षीरूपमें स्थित होके स्वच्छताको प्राप्त होओ ॥ २१ ॥ यह उपादेयहै यह हेयहै ऐसी स्थिति जिसकी नष्ट होगई है वे न किसी पदार्थकी इच्छा करते हैं और न किसीसे द्वेष करते हैं ॥ २२ ॥ जबतक हेय और उपादेयकी कल्पना चित्तसे क्षीण नहीं हुई है तबतक ब्रह्मात्मतारूप समता ऐसे नहीं शोभती जैसे मेघसहित आकाशमें चन्द्रिका ॥ २३ ॥ यह वस्तु उत्तम नहीं है इसलिये त्याज्यहै और यह उत्तमहै इसलिये उपादेय (ग्राह्य) है इसप्रकार जिसका मन चंचल होगयाहै उसमें ब्रह्मात्मरूप समता ऐसे नहीं उदय होती जैसे आँटके वृक्षमें लता ॥ २४ ॥

युक्तायुक्तेषणायत्रलाभालाभविलासिनी ॥ समतास्वच्छतातत्रकुतोवैराग्यभासिनी ॥ २५ ॥ एकस्मि न्ब्रह्मतत्त्वेस्मिन्विद्यमानेनिरामये ॥ नानाऽनानातयानित्यंकिमयुक्तंक्वयुक्तता ॥ २६ ॥ ईप्सितानीप्सि तासंकेमर्कट्यौचित्तपादपे ॥ चंचलेस्फुरतोयस्मिन्कुतस्तस्येहसौम्यता ॥२७॥ निराशतानिर्भयतानि त्यतासमताज्ञता ॥ निरीहतानिष्क्रियतासौम्यतानिर्विकल्पता ॥ २८ ॥

अर्थ—यह पदार्थ अनुकूलहै इसलिये मुझेही यह इच्छा लाभके लिये, और यह पदार्थ प्रतिकूलहै इसलिये मुझेही यह इच्छा लाभके लिये, और यह पदार्थ प्रतिकूलहै इसलिये मुझे कदापि न हो यह इच्छा अलाभ द्वेषके लिये जिस पुरुषमें विलास कर रही है उसमें भला वैराग्यसे प्रदीप्त ब्रह्मात्मरूप समता और स्वच्छता कहा ॥ २५ ॥ निरामय एक ब्रह्मतत्त्व विद्यमान रहते भेद और अभेदकी कल्पनासे युक्तता तथा अयुक्तता कहां ॥ २६ ॥ मैं यह मानताहूं कि चित्तरूप वृक्षमें इष्टता तथा अनिष्टतारूप चंचल मर्कटी जब स्फुरित होरही हैं तो उसमें सौम्यता (निष्काम्यता कहां ॥२७॥ निराशता, निर्भयता, नित्यता, समता, ज्ञानिता, निरीहता, निष्क्रियता, तथा निर्विकल्पता ॥२८॥

धृतिर्मैत्रीमतिस्तुष्टिर्मृदुतामृदुभाषिता ॥ हेयोपादेयनिर्मुक्तेज्ञेतिष्ठंत्यपवासनम् ॥ २९ ॥ धावमानमधो भागेचित्तंप्रत्याहरेद्बलात् ॥ प्रत्याहारेणपतितमधोवारीवसेतुना ॥ ३० ॥ बाह्यानर्थानिमांस्त्यक्त्वाति ष्ठन्गच्छन्स्वपन्श्वसन् ॥ सर्वथासर्वदासर्वानांतरांश्चविचारय ॥ ३१ ॥ गृहीततृष्णशफरीवासना जालमाविलम् ॥ संसारवारिप्रसृतंचितातंतुभिराततम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—धैर्य्य, मैत्री, उत्तम बुद्धि, तुष्टि कोमलता, और कोमल भाषिता इत्यादि गुण हेय और उपादेय दृष्टिसे विनिर्मुक्त ज्ञानी पुरुषमें वासनारहित पुरुषमें स्थित रहते हैं ॥ २९ ॥ हे रामजी ! यह चित्त जब नीचेकी ओर गिरनेलगे तो उसको बाह्य इन्द्रियोंसे हटाके विषयोंसे बलसे लौटाके ऊपर ऐसा लेजाना चाहिये जैसे प्रवाहसे नीचे गिरते हुये जलके सेतु (पुल) से ॥ ३० ॥ इन सम्पूर्ण बाह्य पदार्थोंको त्यागकर स्थित रहते, चलते, फिरते,

सोते, और जागते हुयेभी सर्वथा और सर्वदा आन्तरीय (मन बुद्धि आत्मा आदि) पदार्थोंको विचारो ॥ ३१ ॥ तृष्णारूप शफरि (मछरि) योंको ग्रहण करनेवाले मोहरूप शैवालसे मलिन संसाररूप जलमें प्रसारित, और चिन्तारूप तन्तुओं (सूतों) से रचित ॥ ३२ ॥

अनयातीक्ष्णयातातच्छिधिबुद्धिशलाकया ॥ वात्ययेवांबुदंकालेवहंत्यावितते पदे ॥ ३३ ॥ अस्यसंसारवृक्षस्यमूलंदोपांकुरास्पदम् ॥ भव्यधीरेणधैर्येणप्रोद्धरोद्धुरयाधिया ॥ ३४ ॥ मनसैवमनश्छित्त्वाकुठारेणेवपादपम् ॥ पदंपावनमासाद्यसद्यएवस्थिरोभव ॥ ३५ ॥ मनसैवमनश्छित्त्वाविस्मृत्याचरमं मनः ॥ वर्त्तमानमपिच्छित्त्वाच्छिन्नसंसारतांव्रज ॥ ३६ ॥

अर्थ—तथा विस्तीर्ण जल वा ब्रह्मपदमें बहती हुई इस वासनाजालको इस बुद्धिरूप तीक्ष्ण कतरनीसे ऐसे छेदन करो जैसे महान् वायु कालपाके मेघको ॥ ३३ ॥ हे भव्य रामजी ! चिरकालके अभ्याससे दृढ किये हुये एकात्मके स्थैर्य्य चित्तके धैर्य्यसे सम्पन्न और अनादिकालसे अविद्यामें निमग्न आत्माके उद्धारमें समर्थ बुद्धिसे वासनारूप अंकुरके स्थानभूत इस संसारके मूलका तुम छेदन करो ॥ ३४ ॥ जैसे अग्रभागमें लोहसहित कुठाररूप काष्ठसे वृक्षरूप काष्ठ छेदा जाताहै ऐसे ब्रह्माकार वृत्तिसे प्रदीप्त चैतन्ययुक्त मनसेही मनका छेदन करके परम पवित्र पदको प्राप्त होके स्थिरहो ॥ ३५ ॥ मनसे अर्थात् वासनाके उच्छेदसे उत्तरकालमें प्रसक्त वृत्तिरूप मनको छेदन करके वासनाके अभावसे वर्तमान तथा भावी मनकाभी छेदन करके संसारकी उच्छिन्नताको प्राप्त होओ ॥ ३६ ॥

मोहोविस्मृत्यसंसारंनभूयःपरिरोहति ॥ चित्तंविस्मृत्यसंसारोनभूयःपरिरोहति ॥ ३७ ॥ तिष्ठन्गच्छन्स्वपञ्जाग्रन्निवसन्नुत्पतन्पतन् ॥ असदेवेदमित्यंतंनिश्चित्यास्थांपरित्यज ॥ ३८ ॥ समतामलमाश्रित्यसंप्राप्तंकार्यमाहरन् ॥ अचिंतयंस्तथाप्राप्तंविहरेहहिराघव ॥ ३९ ॥ यथाशर्वोपिलिंगानिनाबिभर्तिबिभर्तिच ॥ त्वमेवमिहकार्याणिकुरुमाकुरुचानघ ॥ ४० ॥

अर्थ—वासनाके क्षयरूप संसारके विस्मरण होनेसे अविद्यारूप मोह पुनः नहीं उत्पन्न होता, क्योंकि चिन्ताके संस्कारके नाशरूप विस्मरण होनेसे पुनः यह संसार नहीं प्रादुर्भूत होता ॥ ३७ ॥ इसलिये बैठते, चलते, सोते, जागते, निवास करते, ऊपर जाते, वा गिरते हुयेभी यह संसार अनित्यही है ऐसा अन्तःकरणमें निश्चय करके जगत्में सत्य विश्वासको त्यागो ॥ ३८ ॥ हे रामजी ! ब्रह्मात्मतारूप समताका पूर्ण रीतिसे आश्रय करके यथा प्राप्त कार्यको करते हुये और अप्राप्तकी चिन्ता न करते हुये इस संसारमें विहार करो ॥ ३९ ॥ जिसप्रकार महेश्वर पृथिवी आदि अष्टमूर्तिरूप चिन्होंका चिन्मात्र दृष्टिसे नहीं धारण करते और जगदाकारसे विवर्तमान मायाका अधिष्ठान होते हुये सन्निधामात्रसे पृथिवी आदि अष्टमूर्तिरूप चिन्होंको धारण करते है ऐसेही हे पापरहित रामजी ! तुमभी राज्यकार्योंको सत्यकी आस्थाको त्यागकर सन्निधिमात्रसे करो, और सिद्धात्मामें कर्तृताके निश्चयसे न करो ॥ ४० ॥

त्वमेववेत्तात्वमजस्त्वमात्मात्वंमहेश्वरः ॥ आत्मनोव्यतिरिक्तःसंस्त्वयेत्थमिदमाततम् ॥ ४१ ॥ येनात्मदृश्यसद्भावादभितोभावनोज्झिता ॥ सनसंगृह्यतेदोषैर्हर्षामर्षविषादजैः ॥ ४२ ॥ रागद्वेषविनिर्मुक्तःसमलोष्टाश्मकांचनः ॥ युक्तइत्युच्यतेयोगीत्यक्तसंसारवासनः ॥ ४३ ॥ सयत्करोतियद्भुंक्तेयद्दातिनिहंतियत् ॥ तत्रमुक्तधियस्तस्यसमतासुखदुःखयोः ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे रामचन्द्रजी ! चेतनरूपसे परमार्थमें सत् तुह्मीहो, जन्मादि विकार शून्यभी तुह्मीहो, सबका साक्षी तथा पूर्वोक्त महेश्वर तुह्मीहो, और अपने स्वभावसे प्रच्युत न होकर तुह्मीने अपने मोहसे इस जगत्का विस्तार कियाहै ॥ ४१ ॥ जिस तत्वज्ञानीने सर्वत्र आत्मरूप दृश्यके सद्भावसे और परमार्थ सन्मात्रकी भावनासे चारोंओरसे अन्य पदार्थकी भावनाको त्याग दियाहै वह हर्ष शोक तथा विषाद जनित दोषोंसे लिप्त नहीं होता ॥ ४२ ॥ राग द्वेषसे विनिर्मुक्त लोह पाषाण और सुवर्णमें समदृष्टि और संसारकी वासनाको त्यागनेवाला जो योगी है उसको युक्त कहते हैं ॥ ४३ ॥ वह योगी जो कुछ करताहै, खाताहै, देताहै, और मारताहै उन सबमें युक्त बुद्धि होनेके कारण उसको सुख दुःखमें समता रहती है ॥ ४४ ॥

प्राप्तंकर्त्तव्यमेवेतित्यक्तेष्टानिष्टभावनः ॥ प्रवर्त्ततेयःकार्येषुनसमज्जतिकुत्रचित् ॥ ४५ ॥ चित्सत्तामात्रमेवेदमितिनिश्चयवन्मनः ॥ त्यक्तभोगाभिमननंशममेतिमहामते ॥ ४६ ॥ मनःप्रकृत्यैवजडंचिरंत्वमनुधावति ॥ मांसगर्द्धनमार्जारोवनेमृगपतिंयथा ॥ ४७ ॥ सिंहवीर्यवशाल्लब्धंमांसंभुंक्तेनुगोहरः ॥ चिद्वीर्यवशतःप्राप्तंदृश्यमाश्रयतेमनः ॥ ४८ ॥

अर्थ—जिस पुरुषने इष्ट अनिष्ट भावनोको त्याग दियाहै और यह प्राप्त कार्य कर्तव्यहै इसप्रकार जो कार्य्योंमें प्रवृत्त होताहै वह किसीमें निमग्न नहीं होता ॥ ४५ ॥ हे महामते ! यह सम्पूर्ण जगत् चेतनकी सत्तामात्रहै ऐसा निश्चययुक्त और भोगकी चिन्ताके अभिमानको जिसने त्याग दियाहै वह मन शान्तिको प्राप्त होताहै ॥ ४६ ॥ यह मन स्वभावसेही जडहै इसलिये अपनी सिद्धि तथा दूसरेको साधनमें असमर्थ हानेसे अपनी तथा विषयकी सिद्धिके लिये अपने साक्षीभूत और प्रकाशक चिद्रूपकी और ऐसे दौडताहै जैसे मांसका लोभी मार्जार वनमें सिंहके पीछे ॥ ४७ ॥ जैसे सिंहके पराक्रमसे प्राप्त मांसको सिंहका अनुगामी मार्जार भोगताहै ऐसेही चेतनके अभावसे प्राप्त दृश्यका आश्रय मन करताहै ॥ ४८ ॥

मनएवमसत्कल्पचित्प्रसादेनजीवति ॥ भावयन्विश्वमेवैकंचितामेत्यचिदप्युत ॥ ४९ ॥ जडंयत्किल निर्हीनंचितादीपिकयौजसा ॥ तन्मनःशवसंकाशमचिद्वत्तिष्ठतेकथम् ॥ ५० ॥ चित्स्वभावपरामृष्टा स्पंदशक्तिरसन्मयी ॥ कल्पनाचित्तमित्युक्त्याकथ्यतेशास्त्रदृष्टिभिः ॥ ५१ ॥ यश्चितफणिफूत्कारःसै वेथंकलनोच्यते ॥ चिदेवाहमितिज्ञात्वासाचित्तामेवगच्छति ॥ ५२ ॥

अर्थ—इसप्रकार असत्के सदृश यह मन अद्वितीय आत्माको भूलकर केवल जगदाकारकी भावना करता हुआ चेतनके प्रभावसेही जीताहै और आत्माको स्मरण करके अपने मनरूपताको त्यागकर पुनः चेतनरूप होजाताहै ॥ ४९ ॥ जो मन जड और चेतनरूप दीपक तथा उसके पराक्रमसे हीनहै वह मृतकके सदृशहै क्योंकि जड कुछ चेष्टा नहीं करसकता ॥ ५० ॥ चेतनके स्वभावसे किंचित् स्पष्ट विषयकी ओर अभिमुख स्पन्द शक्तिरूप असन्मयी जो कल्पनाहै उसीको शास्त्रज्ञोंने चित्त ऐसा कहाहै ॥ ५१ ॥ और दृश्य दर्शन द्रष्टारूप जो चित्तरूप सर्पका फूत्कारहै उसीको कलना कहते हैं और वह कलना मैं चिद्रूपहूं ऐसा जानकर चिद्रूपताको प्राप्त होती है ॥ ५२ ॥

चेत्येनरहितायैषाचित्तद्ब्रह्मसनातनम् ॥ चेत्येनसहितायैषाचित्सेयंकलनोच्यते ॥ ५३ ॥ किंचिदामृष्टरूपंयद्ब्रह्मतच्चस्थिरंमनः ॥ कल्पनासत्संदेवतत्सदिवोपस्थिताहृदि ॥ ५४ ॥ चित्तमित्येवरूढेयंदैवकलनोदिता ॥ तदैवचित्स्वंविस्मृत्यसाजडेवव्यवस्थिता ॥ ५५ ॥ संपन्नाकलनानाम्नीसंकल्पानुविधायिनी ॥ अवच्छेदवतीवाग्राहेयोपादेयधर्मिणी ॥ ५६ ॥

अर्थ—विषयसे रहित जो चिद्है वही सनातन ब्रह्महै और विषयसहित वही चिद् कलना कही जाती ॥ ५३ ॥ वही ब्रह्म किंचिद्विषयसे स्पष्ट होनेसे कलनारूप होकर हृदयमें सत्के समान संकल्प विकल्परूप होकर स्थिर यह प्रसिद्ध मन होजाताहै ॥ ५४ ॥ नित्य अनुभवरूप आत्माके विस्मरणसे स्मृतिरूपताको जब प्राप्त होती है तब वह चित्त कही जाती है और उससमय अपनी चिद्रूपताको भूलकर जडके समान स्थित होतीहै ॥५५॥ वही मुख्य चित् अतीत विषयके आकारकी कल्पनासे और अनागत विषयाकार संकल्पको विधान करनेवाली कलना नामिका होकर हेय और उपादेय दो धर्मोंसे परिच्छिन्न होती है ॥ ५६ ॥

सैषाचिदेवजगतामागतेवस्वशक्तितः ॥ नसंप्रबोधितायावद्रूपंतावन्नबुध्यते ॥ ५७ ॥ अतःशास्त्रविचारेणवैराग्येणपरेणच ॥ निग्रहेणेंद्रियाणांचबोधयेत्कलनांस्वयम् ॥ ५८ ॥ कलनासर्वजंतूनांविज्ञानेनशमेनच ॥ प्रबुद्धाब्रह्मतामेतिभ्रमतीतरथाजगत् ॥५९॥ व्यामोहमदिरामत्तांलुठितांविषयावटे ॥ आत्मावेदनसंसुप्तांकलनामेवबोधयेत् ॥ ६० ॥

अर्थ—यही चित् अपनी माया शक्तिके वशसे मानों ब्रह्माण्डोंके आकारमें प्राप्त हुई है और जबतक गुरू और शास्त्रद्वारा अपने विचारोंसे बोधित नहीं की जाती तबतक वास्तविक पूर्णानन्द अद्वितीय अपने रूपको नहीं जानती ॥५७॥ इसलिये शास्त्रके विचारसे उत्तम वैराग्यसे तथा इन्द्रियोंके निग्रहसे जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिरूपसे अपने चिद्रूपको स्वयं पृथक् करना चाहिये ॥ ५८ ॥ शास्त्र जनित ज्ञानसे और शान्तिसे प्रबोधन की हुई सम्पूर्ण जीवनकी कलना ब्रह्मरूपताको प्राप्त होती है अन्यथा इस जगत्में भ्रमण किया करती है ॥ ५९ ॥ व्यामोहरूप मदिरासे मत्त विषयरूपी गढेमें लोटती हुई और आत्माके अज्ञानरूपी निद्रासे निद्रित इस कलनाहीको जगाना चाहिये ॥ ६० ॥

अप्रबुद्धायदाह्येपानकिंचिदवबुध्यते ॥ संकल्पकलनेवांतर्दृश्यमानाप्यसन्मयी ॥ ६१ ॥ तयापरमयादृष्ट्याकलनैषांतरस्थया ॥ मंजरीगंधशक्त्येवपदार्थेषुविराजते ॥ ६२ ॥ तनुःसंकल्पितयैषाकलनेतिजगत्त्रये ॥ साहिकिंचिद्विजानातिनित्यंज्ञानैकधर्मिणी ॥ ६३ ॥ चेतनेनजडारामकलनोपलरूपिणी ॥ पद्मिनीवातपेनासौपरेणैवप्रबोध्यते ॥ ६४ ॥

अर्थ—जिससमय यह कलना अप्रबुद्धहै उससमय अपने आत्मस्वरूपको कुछ नहीं जानती क्योंकि दृश्यमा

नभी यह जगत्की स्थिति संकल्पकी कल्पनाके सदृश असन्मयी है ॥ ६१ ॥ यह चित्तकी वृत्तिरूप कल्पना अन्तःकरणमें स्थित सर्वसाक्षीरूप परम चेतनकी दृष्टिसे व्याप्त होकर अपने विषयोंके प्रकाश करनेमें ऐसे समर्थ होती है जैसे गन्धकी शक्तिसे लता ॥ ६२ ॥ जो यह ज्ञानधर्मवाली नित्य बोधरूप साक्षी चित्है वह वृत्ति कलनारूप उपाधिके वशसे अल्पही है इस हेतुसे तीनों लोकमें उन २ प्राणियोंसे संकल्पित होनेसे अल्पही जानती है, अर्थात् उन २ प्राणियोंके अन्तःकरणके धर्म्मोंहीको जानती है, ॥ ६३ ॥ हे रामजी ! वृत्तिरूप कलना विवेकमें पाषाणके सदृश जडरूपहै इसलिये साक्षीचेतनसे ऐसे प्रबोधित की जाती है जैसे आतपसे पद्मिनी अर्थात् वृत्तिरूप ज्ञानको स्वतः प्रकाश कता नहीं है ॥ ६४ ॥

यथाशिलामयीकन्याचोदितापिननृत्यति ॥ तथेयंकलनादेहेनार्किंचिदवबुध्यते ॥ ६५ ॥ लिपिकर्मनृपैर्युद्धंककृतंघर्घरारवम् ॥ क्वचिन्नचंद्रकिरणैरोषध्यःप्रतिबोधिताः ॥ ६६ ॥ असृगालिप्तगात्रैश्चशवैःकपरिवल्गितम् ॥ क्वगीतंमधुरध्वानंवनपाषाणखंडकैः ॥ ६७ ॥ क्वपुंसाविहितैरर्कैःक्षपितंयामिनीतमःक संकल्पमयैश्छायाक्रियतेव्योमकाननैः ॥ ६८ ॥

अर्थ—जैसे पाषाणमयी कन्या प्रेरणा करनेसेभी नहीं नाचती ऐसेही साक्षीचेतनके बिना यह कल्पना देहमें कुछ नहीं जानती ॥ ६५ ॥ क्या चित्रमें लिखित राजाओंने घर्घर शब्दके साथ युद्ध कियाहै और चन्द्रकी किरणोंने कमल आदि ओषधियोंको कहीं विकासित किया ॥ ६६ ॥ रुधिरसे लिप्त शरीरवाले मृतक पुरुषोंने कहां गर्जना की और बनमें पाषाणके खण्डोंने मधुर गीत कहां गान किया ? ॥ ६७ ॥ पुरुषसे रचित पाषाणके सूर्य्योंने रात्रिके अन्धकारको कहां नाश कियाहै, और संकल्पमय आकाशके बनोंनें कहां छाया की ॥ ६८ ॥

क्वजडैरुपलाकारैर्मिथ्याभ्रमभरोत्थितैः ॥ मृगतृष्णामयैरेभिर्मनोभिःक्रियतेक्रिया ॥ ६९ ॥ यथातपेक्षते स्फारेमृगतृष्णातरंगिणी ॥ कलनातद्वदेवेयंस्फुरत्यात्मनिसत्यलम् ॥ ७० ॥ यदेतत्स्पंदितंनामतन्मनोधिगतंशठैः ॥ मरुतांविद्धितांशक्तिमंतःप्राणशरीरिणीम् ॥ ७१ ॥ येषांसंविदनाक्रांतासंकल्पलवनिश्चयैः ॥ अनाक्षिप्तरसाकाराप्रभैषापारमात्मिकी ॥ ७२ ॥

अर्थ—और पाषाणके समान जड, मिथ्या भ्रमके समूहसे आविर्भूत और मृगतृष्णामय इन मनोंने चेतनके सहकारके बिना कहां क्रिया की है ॥ ६९ ॥ जैसे पूर्ण और महान् आतपमेंही मृगतृष्णाकी नदी स्फुरती है ऐसेही आत्मसत्ताके होनेहीसे पूर्ण रीतिसे यह कलना (कल्पना) स्फुरती है ॥ ७० ॥ स्ववंचक अज्ञानियोंने आत्मार्में म... आदि रूपसे स्पन्दित शक्तिकी स्फुरणाहीको मन कहाहै और अन्नमय अन्तःप्राण शरीरवाली उस प्राणमय कोशात्मक शक्तिको तुम पवनरूपताही जानो ॥ ७१ ॥ जिनकी संवित् संकल्पके लेशके निश्चयोंसे आक्रान्त नहीं है और विषयाकारसे कल्पित नहीं है वही संवित् परमात्माकी प्रभाहै ॥ ७२ ॥

अयंसोहमिदंतन्मइतियाकलनाविला ॥ प्राणात्मतत्त्वयोस्तस्याःसंज्ञाजीवेतिकथ्यते ॥ ७३ ॥ धीश्चित्तंजीवइत्येताःसंकल्पस्यासतोमताः ॥ संज्ञाःसंकल्पितास्तज्ज्ञैर्नरामपरमार्थतः ॥ ७४ ॥ मनोनोनमतिर्नापिधीरेषानशरीरकम् ॥ अस्तीहपरमार्थेनस्वात्मैवेहास्तिसर्वदा ॥ ७५ ॥ आत्मैवेदंजगत्सर्वमात्माकालक्रमस्तथा ॥ सचाकाशादच्छतरोनास्तीवास्त्येवचामलः ॥ ७६ ॥

अर्थ—यह शरीर मैं हुं, यह धन पुत्रादि मेरा इत्यादि जो स्पन्दात्मक प्राणका तथा चिदात्मक आत्मतत्त्वके अविवेकसे एकताके अध्यासद्वारा जड संवलित चिद्रूप कल्पनाहै वही प्राण धारण करनेसे जीव संज्ञक कहलाती है ॥ ७३ ॥ हे रामजी ! असत् संकल्पकीही बुद्धि चित्त और जीव इत्यादि संज्ञा विज्ञानोंने कल्पितकी है न कि परमार्थमें ये कुछहैं ॥७४॥ क्योंकि परमार्थमें न मन न बुद्धि न मति और न यह शरीर कुछहै किन्तु सर्वदा आत्माही एक रसहै ॥ ७५ ॥ यह सम्पूर्ण जगत् आत्माही है और कालक्रम आत्माही है वह आत्मा आकाशसेभी अति सूक्ष्म और स्वच्छतरहै इसलिये नहींके समान उसका भान होताहै और यथार्थमें निर्मल शुद्ध चेतनरूपसे वहहै ॥ ७६ ॥

अच्छत्वादसदाभासःसंविद्रूपतयातुसत् ॥ आत्मासर्वपदातीतःस्वानुभूत्यानुभूयते ॥ ७७ ॥ मनस्तत्रपरिक्षीणंयत्रसंवित्परात्मनः ॥ अंधकारक्षयस्तत्रयत्रालोकःप्रवर्त्तते ॥ ७८ ॥ यत्रात्मसंविदोच्छायाःसंकल्पोत्थतयामताः ॥ तत्रात्मनोविस्मरणंस्मरणंचित्तजन्मनः ॥ ७९ ॥ परस्यपुंसःसंकल्पमयत्वंचित्तमुच्यते ॥ अचित्तत्वमसंकल्पान्मोक्षस्तेनाभिजायते ॥ ८० ॥

अर्थ—अति स्वच्छतर और चक्षुष् आदि इन्द्रियोंका अविपय होनेसे वह असत्के तुल्य भासताहै और अपने संवद् (चिद्रूप) से तो सत् वह आत्मा सर्व इन्द्रियोंका अविषय और केवल अनुभवमात्रसे अनुभूत होताहै ॥७७॥

जहां परमात्माका ज्ञानरूप चित्स्वरूपका दर्शनहै वहांपर अज्ञानका कार्य्य मनभी क्षीण होजाताहै क्योंकि जहांपर प्रकाश होताहै वहां अन्धकारका क्षय होताहै ॥ ७८ ॥ जिस दशामें अति स्वच्छ आत्मसंविद्‌के संकल्पके वशसे बाह्य बिषयाकाररूपसे आविर्भूत और प्रकाश्यता (प्रकाशके लायक) से अभिमत बाह्य पदार्थ उस दशामें आत्माका विस्मरण होताहै और चित्तसे जन्मनेवाले मिथ्या पदार्थका स्मरण होताहै ॥७९॥ परम पुरुष (परमात्मा) का संकल्पमयही यह मनहै और उसके संकल्पका अभावही चित्तका अभावहै और उसी चित्तके अभावसे मोक्ष होताहै अर्थात् संकल्पमय मन सर्व संकल्प क्षयरूप मोक्षरूप आत्माके दर्शनमें कैसे समर्थ होसकताहै ॥ ८० ॥

एषोंऽवश्चेतसोजन्मबीजंसंसारभूतये ॥ संकल्पोन्मुखतांयातःसंविदोवाकिलात्मनः ॥ ८१ ॥ निर्विकल्पाच्चितःसत्तासंकल्पांककलंकिता ॥ कलनेत्युच्यतेतेनपुंस्त्ववद्‌बुद्ध्यतेमनः ॥८२॥ प्राणशक्तौनिरुद्धायांमनोरामविलीयते ॥ द्रव्यच्छायानुतद्द्रव्यंप्राणरूपंहिमानसम् ॥८३॥ देशांतरानुभवनंप्राणोवेत्ति हृदिस्थितम् ॥ स्पंदवेदनतोयत्तन्मनइत्यभिधीयते ॥ ८४ ॥

अर्थ—संकल्पकी और उन्मुखताको प्राप्त होते हुये आत्मका जो संवित् (चित्) स्वरूपसे किंचित् अन्यथा भावहै यही संसारकी उत्पत्तिके लिये चित्तके जन्मका बीजहै ॥८१॥ निर्विकल्प चित्स्वभासे प्रच्युत और संकल्पके चिन्हसे कलंकित जो सत्ताहै उसीको कलना कहते हैं और जैसे स्त्री आदिके संकल्पके बशसे प्रजाकी उत्पत्तिके अर्थ पुंस्त्व बोधित होताहै ऐसेही कलनासे जगत्‌की उत्पत्तिके लिये मनभी उत्पन्न होताहै ॥८२॥ जैसे दर्पण आदिकी प्रतिच्छाया (प्रतिबिम्ब) उस दर्पणआदि द्रव्यके नष्ट होनेपर उसीके साथही लीन होजाताहै ऐसेही हे रामजी ! प्राण शक्तिके निरुद्ध होनेसे मनभी बिलय (नाश) को प्राप्त होताहै क्योंकि जैसे प्रतिबिम्ब दर्पणका कल्पितरूपहै ऐसेही मनकाभी रूप प्राणकाही है ॥ ८३ ॥ क्योंकि प्राणसहित जीवित पुरुष दूर देशस्थ पदार्थका मानसिक अनुभव अपने हृदयमें स्थितके समान करताहै वहांपर देशान्तरका सम्बन्ध स्पन्द (गति) शक्तिके बिना नहीं होसकता और अनुभव अंशकी सिद्धि चित्तके संबन्ध बिना नहीं होसकती इसलिये स्पन्द और वेदन दोनों शक्तिके योगसे प्राणही मन कहताहै ॥८४॥

वैराग्यात्कारणाभ्यासाद्युक्तितोव्यसनक्षयात् ॥ परमार्थावबोधाच्चरोध्यंतेप्राणवायवः ॥ ८५ ॥ दृषदो विद्यतेशक्तिःकदाचिच्चलनेधसाम् ॥ नपुनर्मनसामस्तिशक्तिःस्पंदावबोधने ॥८६॥ स्पंदःप्राणमरुच्छक्तिश्चलद्रूपैवसाजडा ॥ चिच्छक्तिःस्वात्मनःस्वच्छासर्वदासर्वगैवसा ॥ ८७ ॥ चिच्छक्तेःस्पंदशक्तेश्वसंबंधःकल्प्यतेमनः ॥ मिथ्यैवतत्समुत्पन्नंमिथ्याज्ञानंतदुच्यते ॥ ८८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! वैराग्यसे, प्राणायामके अभ्याससे, समाधिसे, और व्यसनोंके क्षयसे तथा परमार्थ (ब्रह्म) के ज्ञानसे प्राण वायुका निरोध होताहै ॥ ८५ ॥ कदाचित् पाषाणमें चलनरूप तथा ज्वलनरूप शक्तिका संभव होसकताहै परमनकी शक्ति (चेतनकी सहायत्ता बिना) स्पन्द (गति) तथा ज्ञान विषयमें नहीं है ॥ ८६ ॥ प्राण वायुकी शक्ति स्पन्दरूपहै और वह चलायमानभी जडरूपही है और आत्माकी चित्शक्ति (ज्ञानशक्ति) है और वही सर्वदा अतिस्वच्छ तथा सर्वव्यापिनी है ॥ ८७ ॥ चित्शक्ति तथा स्पन्द शक्तिका जो संबन्धहै उसको मन कहते हैं और वह मिथ्या उत्पन्न और मिथ्याज्ञान कहलाताहै ॥ ८८ ॥

एषाह्यविद्याकथितामायैषासानिगद्यते ॥ परमेतत्तदज्ञानंसंसारादिविषप्रदम् ॥ ८९ ॥ चिच्छक्तेःस्पंदशक्तेश्चसंगेसंकल्पकल्पनम् ॥ नकृतंचेत्परिक्षीणास्तदिमाभवभीतयः ॥ ९० ॥ वायुतःस्पंदशक्तिर्यासाचिताचेत्यतेयदा ॥ सचेत्याचित्तदैवांतःसंकल्पाद्यातिचित्तताम् ॥ ९१ ॥ चित्ततैषाचितोमिथ्या कल्पिताबालयक्षवत् ॥ अखंडमंडलाकारस्पंदरूपाचिदेवयत् ॥ ९२ ॥

अर्थ—यही कार्य्य अविद्या तथा माया (विक्षेपशक्ति) है और यह मन संसारादि विषका दाता परम अज्ञान है ॥ ८९ ॥ चित्शक्ति तथा स्पन्दशक्तिके संकल्पकी कल्पनामें निमित्त यही मनहै यदि कल्पनाका निमित्त यह न कियाजाय तो सम्पूर्ण संसारके भय मानो नष्ट होचुके ॥ ९० ॥ वायुकी जो स्पन्दशक्तिहै वह जब चित्से बोधित की जाती है तब विषयसहित वही चित् चित्तको देनेहारी अन्तःकरणके संकल्पसे चित्तताको प्राप्त होती है ॥ ९१ ॥ यह चित्तता मिथ्याही बालकके यक्षके समान मिथ्याही कल्पितहै क्योंकि परमार्थमें अखण्डमण्डलाकार स्पन्दरूपसे रहित परमार्थ चित्‌रूपही वह चित्तताहै ॥ ९२ ॥

सैषाचित्तातदन्येनकेनसंबाध्यतेकिल ॥ अखंडशक्तेरिंद्रस्यकेनस्यात्सहसंगरः ॥ ९३ ॥ अतःसंबंधिनोऽभावात्संबंधोत्रनविद्यते ॥ संबंधेनविनाकस्यसिद्धंतत्कीदृशंमनः ॥ ९४ ॥ चित्स्पंदयोरेकतायां

किंनाममनउच्यते ॥ कासेनाहयमातंगसंगसंघट्टनंविना ॥ ९५ ॥ तस्मान्नास्त्येवद्वधात्मचित्तंरामज गत्त्रये ॥ सैषासम्यक्परिज्ञानाच्चेतसोजायतेक्षतिः ॥ ९६ ॥

अर्थ—इस चित्स्वभावताका उससे भिन्न किंससे खण्डन होसकताहै ॥ ९३ ॥ इसलिये सम्बन्धीके अभावसे चिद् और अचित्का कुछभी सम्बन्ध नहीं है और सम्बन्धके अभावसे वह मन किसको सिद्ध हुआ अथवा कैसे होगा ॥ ९४ ॥ यदि चित्के अपलापसे चित् स्पन्दकी एकता मानो तो स्पन्दका साधक न होनेसे मन कोई पदार्थ नहीं होसकता और स्पन्दके अभावमें केवल चित्रूपके रहनेमें राजासे पृथक् गज, अश्व, पदाति तथा रथादिके संघट्टनके बिना सेनाका क्या स्वरूप होसकताहै ॥ ९५ ॥ हे रामजी ! इसलिये भेद वा अभेद दोनों पक्षमें तीनों लोकमें चित्त कोई पदार्थ नहीं है और यह चित्तका नाश तत्व (ब्रह्मतत्व) के सम्यक् ज्ञानसे होताहै ॥ ९६ ॥

मुधामैवमनर्थायमनःसंकल्पयानघ ॥ मनोमिथ्यासमुदितंनास्त्यत्रपरमार्थतः ॥ ९७ ॥ मात्वमंतःक चित्किंचित्संकल्पयमहामते ॥ मनःसंकल्पकंरामयस्मान्नास्तीहकुत्रचित् ॥ ९८ ॥ असम्यक्ज्ञानसंभूताकल्पनामृगतृष्णिका ॥ हृन्मरौतवसंशांतासम्यगालोकनान्मुने ॥ ९९ ॥ जडत्वान्निःस्वरूपत्वात्सर्वदेवमृतंमनः ॥ मृतेनमार्यतेलोकश्चित्रेयंमौर्ख्यचक्रिका ॥ १०० ॥

अर्थ—हे पापरहित रामजी ! इसलिये अनर्थकेलिये व्यर्थ मनका संकल्प मत करो क्योंकि यह मन मिथ्या उत्पन्नहै परमार्थमें इसमें कुछ नहीं है ॥ ९७ ॥ हे महामते रामजी ! तुम अपने अन्तःकरणमें कभी कुछभी संकल्प मत्त करो क्योंकि यथार्थमें संकल्पात्मक मन कहीं कुछ नहीं है ॥ ९८ ॥ हे मननशील रामजी ! यह मनकी कल्पनारूप मृगतृष्णा मिथ्या ज्ञानसे उत्पन्नहै और वह तुमारे हृदयमें स्थित साक्षीचेतनरूप मरुस्थलमें सम्यक् ज्ञान होनेसे शान्त होजायगा ॥ ९९ ॥ चैतन्य निवृत्तिरूप जडता तथा स्वरूपताके अभावसे यह मन सर्वदा मृतहै, और मृतमन संसारको मारताहै यह कैसा मूर्खताको चक्रहै ॥ १०० ॥

यस्यनात्मानदेहोस्तिनाधारोनापिचाकृतिः ॥ तेनेदंभक्ष्यतेसर्वंचित्रेयंमौर्ख्यवागुरा ॥ १०१ ॥ सर्वसामग्र्यहीनेनहन्यतेमनसापियः ॥ नीलोत्पलदलाघातैर्मन्येदलितमस्तकम् ॥ १०२ ॥ जडेनमूकेनांधेन निहतोमनसापियः ॥ मन्येसदह्यतेमूढःपूर्णचंद्रमरीचिभिः ॥ १०३ ॥ विद्यमानोपियःशूरोलोकस्तेनाभिभूयते ॥ अविद्यमानमेवेदंहन्यतेमुग्धतोदिता ॥ १०४ ॥

अर्थ—जिसका शरीर आधार वा कोई जाति नहीं है वह सम्पूर्ण संस्कारको भक्षण करताहै यह कैसा विचित्र मूर्खताका जालहै ॥ १०१ ॥ शस्त्र अस्त्र देह तथा हस्त पादादि युद्धकी सामग्रीसे हीनभी मनसे जो मारा जाताहै उसका मस्तक नीलकमलके आघातसेभी दलित होताहै ऐसा मैं मानताहूं ॥ १०२ ॥ जड मूक तथा अन्धे मनसेभी मारा जाताहै वह चन्द्रमाके किरणसेभी मारा जाताहै ऐसा मैं मानताहुं ॥ १०३ ॥ शत्रुको जयकी सामग्रीसे सम्पन्न तथा विद्यमानभी मूढ जन जो अविद्यमान मनसे पराजित होताहै और जो विवेकी लोगोंसे वैराग्य आदि तथा समाधि आदिके अभ्याससे तत्व साक्षात्कार आदि उपायसे अविद्यमानही यह मन मारा जाताहै यह सब मूर्खताही उदितहै, न कि यथार्थमें ॥ १०४ ॥

मिथ्यासंकल्पकलितंमिथ्यावस्थितिमागतम् ॥ अन्विष्टमपिनोदृष्टंकातस्यकिलशक्तता ॥ १०५ ॥ अहोनुखलुचित्रेयंमायामयविधायिनी ॥ चेतसाप्यतिलोलेनलोकोयमभिभूयते ॥ १०६ ॥ मौर्ख्येयदाऽऽपदान्विष्टःकाहिनापदजानतः ॥ पश्यमौर्ख्यादियंसृष्टिरज्ञानेनैवजन्यते ॥ १०७ ॥ हाकष्टमपिदुर्बुद्धेःसृष्टिर्मौर्ख्यवशंगता ॥ असतैवयदेतेनजीवेनाप्युपपाद्यते ॥ १०८ ॥

अर्थ—मिथ्या संकल्पसे रचित मिथ्याही स्थितिको प्राप्तहै और जो अन्वेषण करने (खोजने) सेभी दृष्ट नहीं होता भला उसकी अन्यके पराजयमें क्या शक्ति होसकती है ॥ १०५ ॥ अहो देखो यह कैसी विचित्र मायाहै जो महामायावीरूपसे प्रसिद्धमय नाम दैत्यकोभी रचती है, क्योंकि अति चंचल (विनाशी) इस चित्तसेभी संसार पराजित होरहाहै ॥ १०६ ॥ जब मूर्खता आई तब वह प्राणी सम्पूर्ण आपत्तियोंका आश्रय होचुका क्योंकि न जाननेवाले अज्ञानीको कौनसी आपत्ति नहीं है, देखो अज्ञानसेही यह सृष्टि उत्पन्न होती है ॥ १०७ ॥ हा कैसा कष्टहै कि मन देहादिकी दुर्बुद्धिके निमित्तसे मूर्खतासे पीडितभी इस सृष्टिको यह प्रसिद्ध जीव असत् मार्गके अनुवर्तनसे उत्तरोत्तर दुःखकेही लिये ग्रहण करताहै ॥ १०८ ॥

मन्येमौर्ख्यमयीसृष्टिरियमत्यंतपेलवा ॥ वास्तरंगप्रवाहेणकणशःपरिशीर्यते ॥ १०९ ॥ नीलांजनालवालेनयंत्रेणैवविचूर्ण्यते ॥ इंदोराभोगपूर्णस्यकरस्पर्शेनमुह्यति ॥ ११० ॥ रिपुभिर्नयनोन्मुक्तैर्दृष्टःसूत्रैर्नि

बध्यते ॥ संकल्पकृतयाशूरसेनयापरिभूयते ॥ १११ ॥ तस्मात्किलेयंमनसानस्थितेनैवकुत्रचित् ॥ कल्पितेनमुधान्येनरूपणेननिहन्यते ॥ ११२ ॥

अर्थ—अज्ञानमयी और अविचारसे उत्पन्न यह सृष्टि विचारसे बाधित होनेसे अति कोमलहै ऐसा मैं मानताहुं और जल जैसे निज कल्पित तरंगोंके प्रवाहसे मर्दित कण २ क्षीण होजाताहै यह भ्रान्ति जैसे है ऐसे यह सृष्टिभी भ्रान्तिरूपहै ॥ १०९ ॥ और वही जल जहां आवर्त्त (भँवरेह) रहताहै वहांपर नीलवर्ण मध्यमें छिद्र संयुक्त यंत्रसे चूर्णित होताहै और वह जल जहां कांपताहै वहां चन्द्रमाके किरणोंके स्पर्शसेभी उन्मादसे परवशताको जैसे प्राप्त होताहै यह भ्रम जैसे है ऐसेही सृष्टिकाभी भ्रमहै ॥ ११० ॥ शत्रुओंकी दृष्टि मात्रमें प्राप्त पुरुष नेत्र रचित सूत्रोंसे बांधा जाताहै और शंकासे रचित वीरोंकी सेनासे पराजित होताहै यह भ्रान्ति जैसेहै वैसेही यह सृष्टिभी भ्रमहै ॥ १११ ॥ हे रामजी ! इसलिये मिथ्या कल्पित और कहींभी स्थितिरहित इस मिथ्याभूत आक्रमण मनसे सम्पूर्ण संसार मारा जाताहै ॥ ११२ ॥

मूर्खलोकमयीसृष्टिर्मनएवासदुत्थितम् ॥ यःशक्तोनवशीकर्तुंनासौरामोपदिश्यते ॥ ११३ ॥ अभिजातास्वरूपेणप्रज्ञाक्षोदेषुनक्षमा ॥ नोपदेशगिरांयोग्यापरिपूर्णेवसंस्थिता ॥ ११४ ॥ बिभेत्येषापिवीणायास्तंत्रीगुणतनुध्वनेः ॥ बंधोरपिस्वनिद्रस्यबिभेतिवदनद्युतेः ॥ ११५ ॥ असतोपिजनाद्गीतादीतापलायते ॥ स्वेनैवमनसाप्यज्ञाकिलैषाविवशीकृता ॥ ११६ ॥ सुखलवविवशाद्विषेवतप्ताहृदयगतेननिजेनचेतसैव ॥ विधुरितधिषणानवेत्तिसत्यंतदपिकथंपरिमोहितोनुथैव ॥ ११७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे मनोविनिवारणं नाम त्रयोदशःसर्गः ॥ १३ ॥

अर्थ—मूर्ख लोकमयी यह सृष्टि तथा असतरूपसे उत्पन्न इस मनको जो वश करनेमें समर्थ नहीं है हे रामजी ! वह पुरुष अध्यात्म शास्त्रकी वाणीके उपदेशका अधिकारी नहीं है ॥ ११३ ॥ ऐसे पुरुषकी दुष्ट बुद्धि बाह्य पदार्थोंमेंही रूढ आन्तरिक रूपसे रहितभी परिपूर्णके समान स्थित सूक्ष्मपदार्थोंके विचार करनेमें असमर्थ है तथा अध्यात्मशास्त्रकी वाणीके उपदेशके अयोग्य है ॥ ११४ ॥ यह दुर्बुद्धि वीणाके तारकी सूक्ष्मध्वनिसे डराती है तथा निद्राविशिष्ट बंधुके मुखकी दीप्तिसे डरतीहै ॥ ११५ ॥ शत्रुके अभावमें तुमारा शत्रु आया ऐसा भ्रतारकके मुखसे उच्चस्वरसे गान सुनके भयभीत होके भागती है और अधिक कहांतक कहें अपनेही मनसे यह अज्ञानिनी वशीकृतहै ॥ ११६ ॥ विषमिलित मोदकके आस्वादके समान सुखके लेशसे विवश अर्थात् मरणके अभिमुख, प्रहार करनेवाले शत्रुके सदृश हृदयगत अपने चित्तसेही सन्तापित और विवेक बुद्धि शून्यहै इसीसे सत्यको सर्वथा नहीं जानती तथापि इससे पुरुष मिथ्याही मोहित है ॥ ११७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे मनोविनिवारणं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

नानाप्रकारकी योनियोंके दुःखसे दुःखित जो उपदेशके अयोग्य प्राणीयोंकी उपेक्षा करके जो उपदेशके योग्यहैं उनके उपदेशका उपाय इस १४ के सर्गमें वर्णन किया गया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ संसारसागरासारकल्लोलैरुह्यमानया ॥ मतेर्मानदमूकत्वंययाजनतयार्जितम् ॥१॥ आत्मलाभमयोदारकलाभिरिहसामया॥ विचारोक्तिभिरेताभिःशास्त्रेस्मिन्नोपदिश्यते ॥२॥ नपश्यत्येवयोत्यर्थंतस्यकःखलुदुर्मतिः ॥ विचित्रमंजरीचित्रंसंदर्शयतिकाननम् ॥ ३ ॥ कःकुष्ठघर्घरघ्राणंनानामोदविचारणे ॥ मूर्खमात्मोपदेशेनप्रमाणीकुरुतेऽमतिः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे मानके योग्य रामजी ! संसाररूपी समुद्रमें विषके अभिलापरूपी तरंगोंसे वहते हुये जिस जनके समूहने अपनी बुद्धिकी मूकता उपार्जितकी अर्थात् बुद्धिको कार्य्यमें नहीं लाया ॥ १ ॥ उसके लिये आत्मके लाभसे पूरित उदार कलाओंसेयुक्त विचारकी युक्तियोंसे इस अध्यात्मशास्त्रमें उपदेशके लिये अधिकारी मैं नहीं समझता ॥ २ ॥ जो दुर्बुद्धि नेत्र रहनेपरभी दूरतक नहीं देखता उसको कौनसा दुर्मति पुरुषहै जो नानाप्रकारकी चित्रविचित्र लताओंसे पूर्ण वनको दिखलाना चाहै ॥ ३ ॥ वह कौनसा दुर्मति पुरुषहै जो मूर्खको अपने उपदेशसे प्रमाणिक करताहै क्योंकि घ्राणशक्ति रहित पुरुषको नानाप्रकारके सुगंधके विचारमें कौन नियत करसकताहै ॥ ४ ॥

विपर्यस्तेंद्रियंमत्तंमदिराघूर्णितेक्षणम् ॥ धर्मनिर्णयसाक्षित्वेकःप्रमाणींकरोत्यधीः ॥ ५ ॥ कःशवंवा श्मशानस्थंसमवायकथाशतम् ॥ परिपृच्छतिसंदेहेकश्वमूर्खंप्रशास्तिच ॥ ६ ॥ येनाशयबिलस्थोपि मूकोंधोपिननिर्जितः ॥ मनोव्यालःसदुर्बुद्धिःकथंनामोपादिश्यते ॥ ७ ॥ जितमेवमनोविद्धिवस्तुतोयन्न विद्यते ॥ निकटात्साचिरास्तैवयाशिलानैवविद्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—कौनसा दुर्बुद्धि पुरुषहै जो विपरीत इन्द्रियसहित तथा मत्त और मदिरापानसे घूर्णित नेत्रयुक्त पुरुषको धर्म्मके निर्णयमें साक्षीरूपसे प्रमाणिक बनाताहै ॥ ५ ॥ कौन पुरुष मृतक वा स्मशानमें स्थित जन समूहमें होनेवाली सैकडों कथाओंको सन्देह होनेपर पूंछताहै और मूर्खको शिक्षा कौन दे सकताहै ॥ ६ ॥ हृदयरूपी बिलमें स्थित मूक और अन्ध मनरूपी सर्पको जिस दुर्बुद्धिने नहीं जीता उसको भला कैसे उपदेश दे सक्ते हैं ॥ ७ ॥ हे रामजी ! जो मन यथार्थमें नहीं है उसको तुम जीता हुआही जानो क्योंकि जो पाषाणकी शिलाहै ही नहीं है उसको अपने समीपसे तुम फेंकी हुईही समझो ॥ ८ ॥

मनोनविजितंरामयेनासदपिदुर्धिया ॥ तेनाग्रस्तविषेणैवाम्रियतेविषमूर्च्छया ॥ ९ ॥ ज्ञःपश्यतिसदैवा त्मास्पंदनेप्राणशक्तयः ॥ इंद्रियाणिस्वधर्मेषुमनोरामकिमुच्यते ॥ १० ॥ प्राणानांस्पंदनीशक्तिर्ज्ञानश क्तिःपरात्मनः ॥ इंद्रियाणांनिजाशक्तिरेकःकोत्रनिबध्यते ॥ ११ ॥ सर्वास्तदंशवस्तस्यसर्वशक्तेःकिला त्मनः ॥ पृथक्तावाच्यताचेयंकुतोनामतवोत्थिता ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जिस दुर्बुद्धिने असन्मनकोभी नहीं जीता वह विषसे ग्रस्त हुये विनाही विषकी मूर्छासे मानों मरचुका ॥ ९ ॥ ज्ञानी जन सदा अपने आत्माको देखताहै और स्पन्दनशक्तिमें प्राणोंको देखताहै और अपने २ धर्मोंमें नियुक्त इन्द्रियोंको तो कहो रामजी ! मन क्या पदार्थ रहा ॥ १० ॥ प्राणोंकी स्पन्दशक्ति, आत्माकी ज्ञान-शक्ति, और रूपरसादि विषयोंके साक्षात्कार करनेमें इन्द्रियोंकी शक्तिहै तो कहो एक यहांपर कौन निबद्ध होताहै ॥ ११ ॥ सबकी व्यवहारशक्ति सर्व शक्तिमान् और सबका रचयिता परमात्माकी किरणरूपही है तो कहो मन आदि शब्दकी वाच्यता पृथक् तुमको कहांसे आविर्भूत हुई ॥ १२ ॥

किंनामजीवइत्युक्तंयेनेहांधीकृतंजगत् ॥ चित्तंचैवासदेवत्वंविद्धिकातस्यशक्तता ॥ १३ ॥ मनोनिर्दग्ध दृष्टीनांदृष्ट्वाडुःखपरंपराम् ॥ मतिर्मेकरुणाक्रांतारामसुग्धेवतप्यते ॥ १४ ॥ कःकिलात्रकुतःखेदोयन्मू र्खःपरितप्यते ॥ दुःखायैवहिजायंतेखरभाःप्राकृतास्तथा ॥१५॥ विनाशायैवजायंतेजडादेहेष्वबुद्धयः ॥ अनारतोदयाःपामाबुद्बुदाजलधेरिव ॥ १६ ॥

अर्थ—आत्मासे पृथक् जीव कौनसा पदार्थ है जिसने इस सर्व जगत्को अन्धा करदिया क्या आत्मासे पृथक् जीव चेतनान्तरहै वा अचेतनहै यदि प्रथम पक्षहै "तो नान्योऽस्ति द्रष्टा" "नान्योऽस्ति विज्ञाता" अर्थात् ब्रह्मसे चेतन कोई नहीं है इस श्रुतिसे विरोध होगा और यदि अचेतनहै तो उसमें शक्ति क्या होसकती है, इसलिये आत्मासे पृथक् चित्त और जीव दोनोको असत्ही समझो ॥ १३ ॥ हे रामजी ! अपने रचित मनसे जिनकी परमार्थ दृष्टि दग्ध होगई है उनके दुःखकी परम्पराको देखकर करुणासे आक्रान्त व्यामोहसे संयुक्तके सदृश मेरी बुद्धि सन्तप्त होती है ॥ १४ ॥ इसमें क्या खेद करना चाहिये जो कि मूर्ख दुःख पाताहै, क्योंकि गर्दभ और मूर्ख प्राणी दुःखहीके लिये उत्पन्न होते हैं अर्थात् इनके दुःखके लिये शोक न करना चाहिये ॥ १५ ॥ निरन्तर पाप करनेवाले जड दुर्बुद्धि और देहमें आत्माभिमानी प्राणी समुद्रमें बुद्बुद्के समान विनाशके लिये उत्पन्न होते हैं ॥ १६ ॥

कियंतःपश्यपशवःप्रत्यहंप्रतिमंडलम् ॥ सूनावद्भिर्निहन्यंतेकैवात्रपरिदेवना ॥ १७ ॥ अर्बुदान्यनिलो हंतिक्ष्माजातेषुचान्वहम् ॥ दंशानांमशकानांचकैवात्रपरिदेवना ॥ १८ ॥ दिशंप्रतिगिरींद्रेषुपुलिंदा द्यावनेवने ॥ निघ्नंतिमृगलक्षाणिकैवात्रपरिदेवना ॥ १९ ॥ जलेजलचरव्यूहान्सूक्ष्मान्स्थूलोनिकृंतति ॥ ग्रासार्थंनिर्दयोमत्स्यःकैवात्रपरिदेवना ॥ २० ॥

अर्थ—प्रति दिशामें प्रतिदिन देखो कितने पशु हिंसास्थानमें नियत पुरुषोंसे बधे जाते हैं, उनके लिये क्या शोक करना चाहिये ॥ १७ ॥ पृथिवीमें उत्पन्न जीवोंके मध्यमें दंश तथा मच्छडोंके अर्बुदके अर्बुद अर्थात् असंख्यात वायु नाश करताहै इनके विषयमें क्या शोक करना चाहिये ॥ १८ ॥ बडे २ पर्वतोंमें प्रति दिशाओंमें वन २ के ते-वासी व्याधा आदि लक्षों मृगोंको मारते हैं इनके विषयमें क्या शोक करना चाहिये ॥ १९ ॥ जलमें निर्दय और स्थूल मच्छ अपने भोजनके लिये सूक्ष्म जल चारी जीवोंके समूहके समूहको खाजाताहै ॥ २० ॥

लिक्षामणुकणक्षामांक्षुधाखादतिमक्षिका ॥ तांकोशकारःक्षुधितोदंशस्तमपिचंचलम् ॥ २१ ॥ तंदंशं दर्दुरोभुंक्तेव्यालस्तमपिदर्दुरम् ॥ सर्पंसुग्रंखगोहंतिबभ्रुश्चैनंनिकृंतति ॥२२॥ बभ्रुर्हिनस्तिमार्जारोमार्जारं श्वानिकृंतति ॥ ऋक्षःकौलेयकंहंतिऋक्षंव्याघ्रोनिकृंतति ॥२३॥ सिंहोभिभवतिव्याघ्रंशरभःसिंहमत्ति च ॥ शरभोनाशमायातिमत्तमेघविलंघने ॥ २४ ॥

अर्थ—सुधासे ग्रस्त मक्षिका अणुके कणके समान जुवांको खाजाती हैं और उसको क्षुधित मकरी खाजाती है और उस मकरीको वनमक्षिका खाजाती हैं ॥ २१ ॥ उस वनमक्षिकाको मेंडक और मेडककोभी सर्प और उग्र सर्पोंकोभी गरुडादि पक्षी वा नकुल (नेवाला) खाजाताहै ॥ २२ ॥ नकुलको मार्जार मार्जारको कुत्ता कुत्तेको भालू भालूको व्याघ्र मारताहै ॥ २३ ॥ व्याघ्रको सिंह सिंहकोभी शार्दूल खाजाताहै और शार्दूलभी मत्त मेघके लंघन करनेमें गिरके मरजाते हैं ॥ २४ ॥

मेघावातैर्विधूयंतेवायवोगिरिभिर्जिताः ॥ गिरयोवज्रनिष्पिष्टाःशक्रस्यवशगःपविः ॥ २५ ॥ विष्णुना क्रियतेशक्रोविष्णुर्गच्छतिजंतुताम् ॥ सुखदुःखदशामेतांजरामरणपालिताम् ॥ २६ ॥ जंतवोपिमहाकायाअपिविद्याविधान्विताः ॥ लिक्षाभिरंगलग्नाभिरुपजीव्यंतएवहि ॥ २७ ॥ अजस्रमेवमालूनविशीर्णंभूतजंगलम् ॥ परस्परमलंमोहादद्यतेरक्ष्यतेपिच ॥ २८ ॥

अर्थ—मेघभी वायुसे हटादिये जाते हैं और वायुभी बडे २ पर्वतोंसे पराजित होताहै पर्वतभी वज्रसे चूर्ण होते हैं और वह वज्रभी इन्द्रके वशमें है ॥ २५ ॥ इन्द्रभी विष्णुसे बनाये जाते हैं, और विष्णुभी जरा और मरणसे पालित सुखदुःख दशा संयुक्त मत्स्य कूर्म्म तथा वाराहादि जन्तुरूपताको प्राप्त होते हैं ॥ २६ ॥ बडे २ शरीरवाले विद्या तथा शस्त्र अस्त्र करके युक्त जीवभी शरीरमें संलग्न लीख वा जुवाँ खट्मल आदिसे भक्षित होते हैं ॥२७॥ इसप्रकार प्राणियोंका समूह आधि भौतिक जीवोंसे छिन्न और आध्यात्मिक तथा आधिदैविक दुःखोंसे विशीर्ण अज्ञानके कारण परस्पर भक्षित और रक्षितभी होते हैं ॥ २८ ॥

अनारतंविनश्यंतिविविधाभूतजातयः ॥ अनारतंचजायंतेलिक्षायुकापिपीलिकाः ॥ २९ ॥ जलकोशेषु जायंतेमत्स्येभमकरादयः ॥ भूमावंतःप्रजायंतेकीटौघावृश्चिकादयः ॥ ३० ॥ अंतरिक्षेपिजायंतेआकाशविहगादयः ॥ वनवीथिषुजायंतेसिंहव्याघ्रमृगादयः ॥ ३१ ॥ प्राण्यंगेष्वपिजायंतेविचित्राःककुभंप्रति ॥ स्थावरेष्वपिजायंतेघुणाजघनकादयः ॥ ३२ ॥

अर्थ—नानाप्रकारकी लिक्षज और पिपीलिकादि प्राणियोंकी जाति निरन्तर उत्पत्ति तथा नाशको प्राप्त होती रहती हैं ॥ २९ ॥ जलाशयोंमें हस्तीके समान आकारवाले मत्स्य तथा मकर आदि उत्पन्न होते हैं, और पृथिवीके भीतरभी वृश्चिक आदि कीडोंके समूह उत्पन्न होते हैं ॥ ३० ॥ अन्तरिक्षमेंभी आकाशमें उडनेवाले पक्षी उत्पन्न होते हैं और बनोंके मार्गोंमेंभी सिंह व्याघ्र तथा मृगादि उत्पन्न होते हैं ॥ ३१ ॥ प्राणियोंके शरीरोंमेंभी चित्रविचित्र लीख जुआं आदि उत्पन्न होते हैं और स्थावरोंमेंभी घुण तथा काष्ठके कीडे भ्रमर आदि उत्पन्न होते हैं ॥ ३२ ॥

शिलांतरेषुजायंतेकीटभेकघुणादयः ॥ विष्ठायामपिजायंतेनानाकीटगणास्तथा ॥ ३३ ॥ एवमेतेष्वसंख्येषुजन्मस्वपचयेषुच ॥ अजस्रंकरुणावंतोनंदंतुप्ररुदंतुवा ॥ ३४ ॥ अनारतमृतावस्मिन्ननारतसमुद्भवे ॥ संसारसंभ्रमेयुक्तानतुष्टिर्नचदुःखिता ॥ ३५ ॥ पंक्तयस्त्वेवमेवेमावृक्षपर्णगणैस्समाः ॥ उत्पत्त्योत्पत्त्यलीयंतेभूतानांभूरिसंभवाः ॥ ३६ ॥

अर्थ—पाषाणोंके भीतरभी कीडे मण्डूक तथा घुण आदि उत्पन्न होते हैं और विष्ठामेंभी नानाप्रकारके कीडोंके समूह उत्पन्न होते हैं ॥३३॥ इसप्रकार इनके असंख्य जन्म तथा नाशोंसे निरन्तर कृपालु हर्षित वा शोकितहो परंतु राग द्वेषके अभावसे उपेक्षाही युक्तहै ॥३४॥ निरन्तर नाश वा निरन्तर उत्पत्तिमय इस संसारके भ्रममें संतोष वा दुःख दोनों युक्त नहीं हैं ॥ ३५ ॥ इसप्रकार वृक्ष और पत्रोंके समूहके समान अनेक प्रकारकी उत्पत्तिमय प्राणियोंकी ये पंक्तियां उत्पन्न हो २ कर पुनः २ नाशको प्राप्त होती हैं ॥ ३६ ॥

यःप्रवृत्तःकुबुद्धीनांदयावान्दुःखमार्जने ॥ स्वगतच्छत्रनिर्मृष्टसूर्यांशुखिद्यतेनभः ॥ ३७ ॥ नतिर्यक्स्वधर्माणउपदेश्यानराभुवि ॥ कथार्थकथनेनार्थःकःस्थाणुनिकटेवने ॥ ३८ ॥ किंकिलस्फारमनसांपशूनांचविशेषणम् ॥ कृष्यंतेपशवोरज्ज्वामनसामूढचेतसः ॥ ३९ ॥ स्वचित्तपंकमग्नानांस्वनाशारब्धकर्मणाम् ॥ मूर्खाणामापदंदृष्ट्वाप्ररुदंत्युपलाअपि ॥ ४० ॥

अर्थ—जो दयावान् पुरुष कुबुद्धियोंके दुःखोंको दूर करनेमें प्रवृत्त होताहै क्या वह अपने शिरके सम्पूर्ण आकाशको सूर्य्यके किरणोंसे आतपरहित करनेमें परिश्रम नहीं करता ॥ ३७ ॥ हे रामजी ! इस पृथिवीपर कीट पतंग वा पशुओंके समान धर्म्मवाले मनुष्य उपदेशके योग्य नहीं हैं, क्योंकि स्थाणु (ठूंठ) जिसके निकटहैं ऐसे बनमें कथाके अर्थ कहनेसे क्या प्रयोजनहै ॥ ३८ ॥ विषयोंमें विस्तारित चित्तवाले मनुष्योंमें तथा पशुओंमें क्या विशेषताहै क्योंकि रज्जु (रस्सी) से पशु खींचे जाते हैं और मनसे मूढ चित्तवाले मनुष्य ॥ ३९ ॥ अपने चित्तरूपी कीचडमें निमग्न तथा अपने नाशके लिये कर्मको आरम्भ करनेवाले मनुष्योंकी आपत्ति देखकर पाषाणभी रूदन करने लगते हैं ॥ ४० ॥

अनिर्जितात्मचित्तानांसमंताद्दुःखदादशाः ॥ तन्मार्जनंकृतप्रज्ञोनातःसंप्रतिपद्यते ॥४१॥ विनिर्जितात्म चित्तानांदुःखानिरघुनंदन ॥ सुविचार्याणितेनात्रज्ञातज्ञेयःप्रवर्त्तताम् ॥ ४२ ॥ मनोनास्तिमहाबाहोमा सुधोपप्रकल्पय ॥ अनेनकल्पितेनत्वंवेतालेनेवहन्यसे ॥ ४३ ॥ यावद्विस्मृतवानात्मतत्त्वंमूढोभवद्भवा न् ॥ तावत्त्वमनोव्यालोबभूवाभ्युदितस्ततः ॥ ४४ ॥

अर्थ—जिन पुरूषोंने अपने चित्तोंको नहीं जीता उनके लिये चारों ओरसे दुःखकी दशा पूर्ण हैं इसलिये सम्पूर्ण भूमिके सदृश उनके मार्जन (शोधन) में बुद्धिमान् नहीं प्रवृत्त होता ॥ ४१ ॥ हे रामजी ! जिन्होंने अपने चित्तको जीतलियाहै उनके दुःख सुखसे दूर करने योग्यहैं इसलिये ज्ञानी पुरुष उसके दूर करनेमें प्रवृत्तहो ॥४२॥ यथार्थमें हे महाबाहो ! व्यर्थ इस मिथ्या मनकी कल्पना मत करो क्योंकि इसकी कल्पना करनेसे वेतालसे बालकके समान तुम मारे जातेहो ॥ ४३ ॥ आत्मतत्वको विस्मृत होके जबतक तुम मूढ होरहेहो तभीतक यह मनरूप सर्प चारो ओरसे अभ्युदयको प्राप्तहै ॥ ४४ ॥

इदानींभवताज्ञातंयथाभूतमरिंदम ॥ संकल्पाद्वर्द्धतेचित्तंतदेवाशुपरित्यज ॥ ४५ ॥ दृश्यमाश्रयसीदंचे त्तत्सचित्तोसिबांधवान् ॥ दृश्यंसंत्यजसीदंचेत्तदचित्तोसिमोक्षवान् ॥ ४६ ॥ अयंगुणसमाहारोबंधा यैवसमाश्रितः ॥ संत्यक्तोभवमोक्षाययथेच्छसितथाकुरु ॥ ४७ ॥ नाहंनेदमितिध्यायंस्तिष्ठत्वमचला चलः ॥ अनंताकाशसंकाशहृदयोहृदयेश्वरः ॥ ४८ ॥

अर्थ—हे शत्रु नाशक रामजी ! इससमय तुम परमार्थभूत चित्त तथा (आत्मा) को जानलिया संकल्पसेही यह चित्त बढताहै इसलिये उसीको शीघ्र त्यागो ॥४५॥ यदि तुम सत्यबुद्धिसे चितका आश्रय करतेहो तो बन्धनवान् चित्तसहित तुमहो और यदि दृश्यको असत्य जानकर त्यागतेहो तो मोक्षवान् तथा चित्त रहितहो ॥ ४६ ॥ त्रिगुणरूप मायामय यह दृश्यके समूह बन्धनके लिये आश्रय किया जाताहै और यह पूर्ण रीतिसे त्यागा हुआ मोक्षकेही लिये है अब तुम जैसा चाहो वैसा करो ॥४७॥ हे रामजी ! अन्तरिक और बाह्य यह दृश्य दोनों मैं नहीं हूं ऐसा ध्यान करते हुये पर्वतके समान तुम स्थित रहो क्योंकि आत्माका हृदय अनन्त आकाशके सदृश (अति विशाल) है ॥४८॥

आत्मनोजगतश्चास्यत्वमंगकलनामलम् ॥ रामद्वित्वमयींत्यक्त्वाशेषस्थःसुस्थिरोभव ॥ ४९ ॥ आत्म नोजगतश्चांतर्द्रष्टृदृश्यदशांतरे ॥ दर्शनाख्येस्वमात्मानंसर्वदाभावयन्भव ॥ ५० ॥ स्वाद्यस्वादकसं त्यक्तंस्वाद्यस्वादकमध्यगम् ॥ स्वादनंकेवलंध्यायंन्नित्यमात्ममयोभव ॥ ५१ ॥ रामानुभवनीयस्यत थानुभवितुःस्वयम् ॥ अवलंब्यनिरालंबंमध्यंमध्येस्थिरोभव ॥ ५२ ॥

अर्थ—हे अंग (प्रियरामजी !) आत्मा तथा जगत्की द्वित्वमयी जो भ्रान्तिमय कल्पनाहै उसको सर्वथा त्यागकर शेष साक्षीचेतनमें स्थित रहो ॥ ४९ ॥ आत्मा तथा जगत् वा दृश और द्रष्टाके अन्तराल (मध्य) में दर्शन नाम अर्थात् द्रष्टा तथा दर्शनरूप त्रिपुटीमें अनुस्यूत साक्षीरूपमें अपने आत्माकी भावना करते हुये स्थित रहो ॥ ५० ॥ स्वाद्य (स्वादके योग्य) स्वादक (स्वादके लेनेवाले) के मध्यमें प्राप्त स्वादनरूप त्रिपुटीके साक्षीचेतनको केवल ध्यान करते हुये नित्य आत्ममय होजाओ ॥ ५१ ॥ हे रामजी ! अनुभवनीय (अनुभवके योग्य) तथा अनुभवकर्ता दोनोंके मध्यमें निरालम्ब त्रिपुटीसे भिन्न जो शुद्ध स्वरूपहै उसको हृदयमें अवलम्बन करके स्थिर होओ ॥ ५२ ॥

भवभावनयाहीनंभावाभावदशोज्झितम् ॥ भावयन्नेवमात्मानमात्मसंस्थःस्वयंभव ॥ ५३ ॥ आत्म सत्तांत्यजन्नेतांचेत्यंभावयसिस्वयम् ॥ यदारामतदायासिचित्ततामतिदुःखदाम् ॥ ५४ ॥ चित्ततांश्रृं खलामेतांस्वरूपज्ञानयुक्तितः ॥ बिलाच्चित्तान्महाबाहोस्वात्मसिंहंविमोचय ॥ ५५ परमात्मदशांत्य क्त्वाचेत्यंपरिपतन्नलम् ॥ यदागच्छसिसंकल्पंचेत्यंसंपश्यसेतदा ॥ ५६ ॥

अर्थ—स्वप्न जाग्रत् और सुषुप्ति दशासे रहित और सब दशाके साक्षीभूत आत्माकी भावना करते हुये स्वयं आत्मामें स्थित होओ ॥ ५३ ॥ हे रामजी ! इस रीतिसे शुद्ध चिन्मात्र स्वभाववाली आत्मसत्ताको प्रमादसे त्यागते हुये यदि विषयकी भावना करोगे तो दुःखदायिनी चित्तता दशाको प्राप्त होओगे ॥ ५४ ॥ हे महाबाहो रामजी ! इस चित्तरूप शृंखला (जंजीर) को आत्मस्वरूपके ज्ञानरूप युक्तिसे तोडकर चित्तरूप पिंजरेसे आत्मरूप सिंहको छोडाओ ॥ ५५ ॥ अपने शुद्ध आत्मदशाको त्यागकर विषयकी और पूर्ण रीतिसे गिरते हुये जब संकल्पको प्राप्त होओगे उससमय विषयको देखोगे अर्थात् विषयरूप होजाओगे ॥ ५६ ॥

आत्मनोव्यतिरिक्तंसच्चित्तमित्यंगसंविदा ॥ मनःसंपद्यतेदुःखिक्षीयतेत्यक्तयातया ॥ ५७ ॥ आत्मैवेदंजगत्सर्वमित्यंतःसंविदोदये ॥ क्वचेत्ताक्वचवाचित्तंक्वचेत्यंचेतनंचकिम् ॥ ५८ ॥ अहमात्मेतिजीवोस्मीत्येतावच्चित्तकंविदुः ॥ अनेनेत्थमनाद्यंतंदुःखंराघवतन्यते ॥५९॥ अहमात्मानजीवाख्याःसत्ताःसंतीतराःक्वचित् ॥ इत्येवचित्तोपशमःपरमंसुखमुच्यते ॥ ६० ॥

अर्थ—हे प्रिय रामजी ! पूर्वकालमें अनुभवसे उत्पन्न दृश्यके संस्कारके उद्बुद्ध होनेपर जब चित्तही कुछ स्थूलताको प्राप्त होताहै तब चित्त इस संवित्से आत्मासे भिन्न होके चित्तकी सिद्धि होती है और तभी पुनः २ मननसे दृढीभूत संकल्पमें समर्थ होके मननरूपमें प्राप्त होताहै और अपने पृथक् आत्मसत्ता संवित्से जब त्यक्त होजाताहै उससमय क्षीण होजाताहै ॥ ५७ ॥ वह सम्पूर्ण जगत् आत्माही है अन्तःकरणमें इस संवित्के उदय होनेपर कहां चितिता (चेतनेवाला चेतन उपहित) उपाधिरूप चित्त कहां वृत्ति व्याप्य चेत्य (विषय) कहां और चेतन (वृत्ति) भी कहां अर्थात् शुद्ध चिद्दशामें चेत्ता चित्त चेत्य और वृत्ति चेतन कुछ नहीं रहता ॥ ५८ ॥ हे रामजी ! इसप्रकार अनुभवमें प्राप्त देह इन्द्रिय आदिसे शोभित जीव मैं हुं इसी दशाको चित्त कहते हैं और इसी चित्तने अनादि अनन्त दुःखका विस्तार कियाहै ॥ ५९ ॥ मैं शुद्ध ब्रह्महुं और ब्रह्मसे भिन्न जीव नामक सत्ता परमार्थमें कहींभी सत्य नहीं है यही चित्तका उपशम और परमसुख कहलाताहै ॥ ६० ॥

आत्मैवेदंजगदितिजातेराघवनिश्चये ॥ असत्ताचेतसोजाताभवत्येवनसंशयः ॥ ६१ ॥ एवंसत्यावबोधेनस्यात्मैवेदमितिस्थितिः ॥ मनःसुगलितंविद्धिसूर्यभासातमोयथा ॥ ६२ ॥ मनःसर्पःशरीरस्थोयावत्तावन्महद्भयम् ॥ तस्मिन्नुत्सारितेयोगाद्भयस्यावसरःकुतः ॥ ६३ ॥ भ्रांतिमात्रोत्थितश्चित्तवेतालोतिबलोनघ ॥ सम्यग्ज्ञानेनमंत्रेणप्रसभंविनिपात्यताम् ॥ ६४ ॥ देहगेहाद्गतेचित्तयक्षेबलवतांवरे ॥ निराधिर्विगतोद्वेगस्तिष्ठनास्तिभयंतव ॥ ६५ ॥ नीरागएवनिरुपार्जनएवचास्मीत्येतावतैवगलितातवचित्तसत्ता ॥ निर्दुःखमुत्तमपदंपरमंगतोस्तितिष्ठोपशांतपरमैषणएवमंतः ॥ ६६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठं महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे स्वचित्तनिरूपणं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

अर्थ—हे राघव ! यह संपूर्ण जगत् आत्माही है ऐसा निश्चय होजानेसे चित्तकाभी जगत्में अन्तर्भाव होनेसे चित्तकी असत्ता सिद्ध हुई, इसमे कुछ सन्देह नहीं है ॥ ६१ ॥ इसप्रकार सत्य ज्ञान होनेसे अपना आत्माही सम्पूर्ण जगत्है ऐसी स्थिति जब होती है तब तुम मनको ऐसे नष्ट समझो जैसे सूर्यके प्रकाशसे अन्धकारका ॥६२॥ हे रामजी ! जबतक मनरूप सर्प शरीरमें स्थितहै तबतक महाभय उपस्थितहै और उस सर्पको समाधि वा ब्रह्म चेतनके साथ एकतासे उखाड देनेके पश्चात् भयका अवसर कहां ॥ ६३ ॥ हे अनघ रामजी ! चित्तमें आविर्भूत भ्रांतिरूप अति बली वेतालको उत्तम ज्ञानरूप मंत्रसे बलसे मारो ॥ ६४ ॥ सब बलवानोंमें श्रेष्ठ चित्तरूप यक्षके देहरूप गृहसे निकल जानेपर मानसीव्यथा तथा उद्वेगसे रहित होके स्थित रहो, क्योंकि चित्तके अभाव होनेसे तुमको कहींभी भय नहीं है ॥ ६५ ॥ आत्माके लाभसे सर्व कामनाओंके पूर्ण होनेसे रागरहित तथा बाह्य विषयोंके सुख साधनकी उपार्जनतासे शून्य मैं हुं इतनेही विचारसे तुमारी चित्तकी सत्ता गलित होचुकी, इसप्रकार दुःख शून्य उत्तम परमपदको तुम प्राप्त होके अन्तःकरणमें सब एषणा (इच्छा) से शून्य स्थित रहो ॥ ६६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषु भाषाऽनुवादे उपशमप्रकरणे स्वचित्त निरूपणं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

आत्मा मन दशाको प्राप्तहो करके संसारमे जिससे बांधा जाताहै अनर्थके बीजभूत उस तृष्णाका वर्णन इस १५ के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ एतामनुसरन्रामचित्तसत्तामपावनीम् ॥ संसारबीजकणिकांजीवबंधनवागुराम् ॥१॥ आत्मात्यक्तात्मरूपाभोमलिनामायतदृशम् ॥ चित्तंसमनुसंधत्तेधत्तेचकलनामलम् ॥२॥ वर्द्धमानमहामोहदायिनीभयकारिणी ॥ तृष्णाविषलतारूपामूर्च्छामेवप्रयच्छति ॥ ३ ॥ यदायदोदेति तदामहामोहप्रदायिनी ॥ तृष्णाकृष्णानिशेवेयमनंतात्मविकारिणी ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! अपवित्र संसारके बीजकी कणिका और जीवके बन्धनके लिये जालरूप इस चित्तकी सत्ताका अनुसरण करता हुआ आत्मा अपने ब्रह्म स्वभावको त्यागकर मलिन अर्थात् इन्द्रियके वृत्तियोंके अधीन ज्ञानकी ओर झुकता हुआ चित्तसे कल्पित देहादि संघात मैं हुं ऐसा निश्चय करताहै और चित्तसे प्राप्त राग द्वेष प्रयुक्त वासनारूपी मलकोभी धारण करताहै ॥ १ ॥ २ ॥ बढती हुई महामोहकी दात्री और भयकी कारिणी तृस्णारूपी यह विषकी लता वासनारूप मलधारी आत्माको मूर्छाही संप्रदान करती है ॥ ३ ॥ जब २ महा मोहको देनेवाली यह तृष्णारूपी कृष्णपक्षकी रात्रि उदय होती है तब २ अनन्त आत्मामें (पक्षमें आकाशमें) विकार उत्पन्न करती है ॥ ४ ॥

कल्पानलशिखादाहंसोढुंशक्ताहरादयः ॥ तृष्णानलशिखादाहंसोढुंशक्तानकेचन ॥ ५ ॥ तीक्ष्णाकृष्णासुदीर्घाचवहत्यंगंसदानिजम् ॥ शीतलैवासुखोदर्काघोरातृष्णाकृपाणिका ॥ ६ ॥ यान्येतानिदुरंतानि दुर्जराण्युन्नतानिच ॥ तृष्णावल्लयाःफलानीहतानिदुःखानिराघव ॥ ७ ॥ अदृश्यैवात्तिमांसास्थिरुधिरादिशरीरकात् ॥ मनोबिलविलीनैषात्तृष्णावनशुनीनृणाम् ॥ ८ ॥

अर्थ—प्रलयकालकी अग्निकी शिखाके दाहको महादेव आदि सहनेको समर्थ हैं, परन्तु तृष्णारूपी शिखाके दाहको सहनेके लिये कोईभी समर्थ नहीं है ॥ ५ ॥ हे रामजी ! तीक्ष्ण, कृष्णवर्ण, अति दीर्घ दुःखरूप फलको देनेवाली, शीतल, तथा भयंकर यह तृष्णारूपी कृपाण (तलवार) सदा अपनेही अंगको काटती है ॥ ६ ॥ हे रामचन्द्रजी ! जो यह दुर्निवारणीय छोटे बडे दुःखहैं वे सब तृष्णारूपी लताके फलहैं ॥ ॥ ७ ॥ अदृश्य होकर यह तृष्णारूपी व्याघ्री मनरूपी बिलमें छिपी हुई मांस रूधिर और हड्डीको भक्षण करती है ॥ ८ ॥

क्षणमुल्लासमायातिक्षणमायातिशून्यताम् ॥ जडाविदलयत्याशुतृष्णाप्रावृट्तरंगिणी ॥ ९ ॥ दृष्टदैन्योहतस्वांतोहतौजायातिनीचताम् ॥ मुह्यतेरौतिपततितृष्णयाभिहतोजनः ॥ १० ॥ नस्थिताकोटरेयस्य तृष्णाकृष्णभुजंगमी ॥ तस्यप्राणानिलाःस्वस्थाःपुंसोहृदयरंध्रगाः ॥ ११ ॥ नूनमस्तंगतोयत्रतृष्णाकृष्णनिशाक्रमः ॥ पुण्यानितत्रवर्द्धंतेशुक्लपक्षइवेंदवः ॥ १२ ॥

अर्थ—क्षणहीमें तो यह वृद्धिको प्राप्त होती है और क्षणहीमें क्षयको प्राप्त होती है और क्षणहीमें वर्षाकालकी नदीके समान पाषाण तथा कंटकयुक्त देशमें लेजाकर प्राणियोंको खण्डित करती है ॥ ९ ॥ इस तृष्णासे मारा हुआ मनुष्य दीन अन्तःकरणमें शून्य तथा पराक्रमरहित नीचताको प्राप्त होताहै, मोहित होताहै, रोताहै और गिरताहै॥१०॥ जिसके कोटरमें तृष्णारूपी सर्पिणी नहीं स्थितहै उस पुरुषके हृदयके छिद्रगामी प्राण वायु स्वस्थतासे चलते हैं॥११॥ निश्चय करके जहांपर तृष्णारूपी रात्रिका क्रम अस्त होगयाहै वहांपर पुण्य ऐसे बढते हैं जैसे शुक्लपक्षमें चन्द्रमा॥१२॥

योनतृष्णाघुणावल्लयाक्षतःपुरुषपादपः ॥ पुण्यसूनैःससदादशांयातिविकासिनीम् ॥ १३ ॥ अनंताकुलकल्लोलाविवर्त्तावर्त्तसंकुला ॥ प्रवहत्याशयारण्येतृष्णांधानांनदीनृणाम् ॥ १४ ॥ तृष्णयेमेजनाःसर्वे सूत्रयंत्रपतत्रिवत् ॥ भ्राम्यंतेप्रविशीर्यंतेसंह्रियंतेचभूरिशः ॥ १५ ॥ मूलान्यपिसुसूक्ष्माणिकाठिनाशयकर्कशा ॥ तृष्णापरशुधारेवलंगंतीविनिकृंतति ॥ १६ ॥

अर्थ—जो पुरुषरूपी वृक्ष तृष्णारूपी घुणकी लतासे नहीं कटागया वह धर्मरूपी पुष्पोंसे सदा विकासमयी दशाको प्राप्त होताहै ॥ १३ ॥ विवेकरूपी दृष्टिसे हीन पुरुषोंके हृदयरूपी बनमें अनन्त व्याकुलतारूप तरंगयुक्त और भ्रमरूपी आवर्तोंसे पूर्ण तृष्णारूपीनदी निश्चय करके वहती है ॥ १४ ॥ तृष्णासेही यह सम्पूर्ण प्राणी सूत्रके यंत्रमें पक्षीके समान घुमाये जाते हैं उसके अनन्तर रक्षण, व्यय, क्षय, चिंता तथा शोकरूपी पक्षोंके काटनेसे विशीर्ण होतेहैं

और अन्तमें अनेक वार मारेभी जाते हैं ॥ १५ ॥ निर्दय अन्तःकरणसे कर्कश यह तृष्णा परशुकी धाराके समान अतिसूक्ष्मभी (किंचित् अंकुरित) दया विवेकादि धर्मके मूलोंको काट देती है ॥ १६ ॥

निपतत्यवटेमूढस्तृष्णामनुसरज्जनः ॥ नीलामनुपतञ्छ्वभ्रतृणशाखांयथैणकः ॥ १७ ॥ नोन्मत्तापिजरा चक्षुस्तथाजरयतिक्षणात् ॥ यथाजरयतिक्षामातृष्णाहृदयरूपिका ॥ १८ ॥ तृष्णयाशयकौशिक्याहृद्य मंगलभूतया ॥ रूढयाभगवानेपविष्णुर्वामनतांगतः ॥ १९ ॥ कयाचिदेवदैविक्याहृदि ग्रथितयानया ॥ तृष्णयाभ्राम्यतेव्योम्निरज्ज्वेवार्कोन्वहंकिल ॥ २० ॥

अर्थ—तृष्णाके पीछे चलनेवाला मूढ मनुष्य नरकरूपी अन्धकूपमें ऐसे गिरताहै जैसे कूपके ऊपर जमी हुई हरित तृणकी शाखाके पीछे गिरनेवाला हारिण ॥ १७ ॥ अति प्रबलभी वृद्धाऽवस्था नेत्रको क्षणभरमें वैसी जीर्ण नहीं करती जैसी अति सूक्ष्मभी तृष्णारूपी हृदयकी पिशाचिका ॥ १८ ॥ इस तृष्णारूपी कौशिकी (उल्लूकी) अमंगलता रूपसे हृदयमें स्थित होनेसे यह अनन्त भगवान् विष्णुभी वामनताको प्राप्त हुये ॥ १९ ॥ ईश्वरसे प्रेरित हृदयमें गुंथी हुई किसी तृष्णाहीसे बंधे हुये सूर्य्य प्रतिदिन आकाशमें ऐसे घुमाये जाते है जैसे रज्जुसे ॥ २० ॥

सर्वदुःखमयाकारांजगतीजीवनच्छिदम् ॥ तृष्णांपरिहरेत्क्रूरामुरगीमिवदूरगः ॥ २१ ॥ तृष्णया वायवोयांतिशैलास्तिष्ठंतितृष्णया ॥ तृष्णयैवधराधात्रीत्रैलोक्यंतृष्णयाधृतम् ॥ २२ ॥ सर्वैवलोकयात्रे यंप्रोतातृष्णावरत्रया ॥ रज्जुबंधाद्विमुच्यंतेतृष्णाबंधान्नकेचन ॥ २३ ॥ तस्माद्राघवतृष्णांत्वंत्यजसंक ल्पवर्जनात् ॥ मनस्त्वकल्पनंनास्तिनिर्णीतमितियुक्तितः ॥ २४ ॥

अर्थ—सम्पूर्ण दुःखमय आकारवाली सम्पूर्ण पृथिवीपर स्थित प्राणियोंके जीवनको छेदन करनेवाली इस तृष्णारूपी अति क्रूरसर्पिणीको दूरसेही त्यागना चाहिये ॥ २१ ॥ तृष्णाहीसे वायु वहते हैं,पर्वत स्थितहै पृथिवी सबको धारण करती है कहांतक कहै त्रैलोक्यकोभी तृष्णाहीने धारण कररक्खाहै ॥ २२ ॥ तृष्णारूपी चर्म्मकी रस्सीमें यह सम्पूर्ण लोककी पात्रा गुंथी हुई है, रज्जुके बन्धनसे तो कोई २ छुटभी सकते हैं परन्तु तृष्णाके बन्धनसे कोईभी नहीं ॥ २३ ॥ इस कारणसे हे रामचन्द्रजी ! संकल्पके वर्जनसे तुम तृष्णाको त्यागो, संकल्पसे रहित मन कोईभी पदार्थ नहीं है, यह बात युक्तिसे निर्णय की गईहै ॥ २४ ॥

अयंत्वमहमित्येवप्रथमंतावदाशये ॥ माद्दुराशांमहाबाहोसंकल्पयतमोमयीम् ॥ २५ ॥ एतांदुःखप्रस विन्नीमनात्मन्यात्मभावनाम् ॥ नभावयसिचेद्रामतदातज्ज्ञेषुगण्यसे ॥ २६ ॥ एतामहंभावमयीमपु ण्यांछित्वानहंभावशलाकयैव ॥ स्वभावनांभव्यभवांतभूमौभवाभिभूताखिलभूतभीतिः ॥ २७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे
तृष्णावर्णनं नाम पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

अर्थ—हे महाबाहो रामजी ! यह देहादि तुमहो तथा मैं हुं इस तमोमयी दुराशाको अपने हृदयमें मत सं- कल्पो ॥ २५ ॥ दुःखको उत्पन्न करनेवाली यह जो अनात्मा देहादिमें आत्माकी भावनाहै इसका ध्यान यदि नहीं करतेहो तो हे रामजी ! तुम ज्ञानियोंमें गिने जावोगे ॥ २६ ॥ हे भव्यरामजी ! अहंकारके अभावरूप कतर्नीसे इस अहंकारमयी तृष्णाका छेदन करके और सब संसारकी विभूतियोंका पराजय करके संसारके बादरूप ब्रह्ममें वा स- प्तम् भूमिकामें स्थित रहो ॥ २७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे
भाषाऽनुवादे तृष्णावर्णनं नाम पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

ध्येय तथा ज्ञेयके विभागपूर्वक वासनाका त्याग और उससे विदेह तथा जीवन्मुक्तोंका लक्षण इस १६ के स- र्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ ॥ स्वभावगंभीरमेतद्भगवन्वचनंतव ॥ यदहंकारतृष्णांत्वंमागृहाणेतिवक्षि मांप्रभो ॥ १ ॥ यद्यहंकारसंत्यागंकरोमितदिदंप्रभो ॥ त्यजामिदेहनामानंसन्निवेशमशेषतः ॥ २ ॥ जानुस्तंभेनमहतांधार्यतेसुतरुर्यथा ॥ अहंकारेणदेहोयंतथैवकिलधार्यते ॥ ३ ॥ अहंकारक्षयेदेहःकि लावश्यंविनश्यति ॥ मूलेक्रकचसंलूनेसुमहानिवपादपः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-हे भगवन् ! आपका यह वचन स्वभावसेही गंभीर भान होताहै जो कि आप मुझे यह कहते हैं कि अहंकार तथा तृष्णाको मत ग्रहण करो ॥ १ ॥ हे प्रभो ! यदि मैं अहंकारको त्यागूं तो शरीरकी सम्पूर्ण स्थितिको त्यागना पडेगा क्योंकि प्राण तथा अहंकारकी एकताहै प्राणको बचाके अहंकारका नाश असम्भवहै ॥ २ ॥ जैसे जंघेके सदृश विशाल मूल बन्धसे उत्तम वृक्ष धारण किया जाताहै ऐसेही अहंकारसे यह देह निश्चय करके धारण किया जाताहै ॥ ३ ॥ अहंकारके क्षय होनेपर यह देह निश्चय ऐसे नष्ट होजाताहै जैसे आरासे मूलके छिन्न होनेपर महान् वृक्ष ॥ ४ ॥

तत्कथंसंत्यजाम्येनंजीवामिचकथंमुने ॥ एतमर्थविनिश्चित्यवदमेवदतांवर ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ सर्वत्रवासनात्यागोरामराजीवलोचन ॥ द्विविधःकथ्यतेतज्ज्ञैर्ज्ञेयोध्येयश्चमानद ॥६॥ अहमेषांपदार्थानामेतेचममजीवितम् ॥ नाहमेभिर्विनाकश्चिन्नमयैतेविनाकिल ॥ ७ ॥ इत्यंतर्निश्चयंकृत्वाविचार्यमनसा सह ॥ नाहंपदार्थस्यनमेपदार्थइतिभाविते ॥ ८ ॥

अर्थ—हे मुने ! इसलिये इस अहंकारको मैं कैसे त्यागूं और क्यों कर जीवनकोभी धारण करूं, हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ ! इस अर्थको निश्चय करके मुझसे कहो ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-हे मानद कमलनेत्र रामजी ! वासनाका त्याग सर्वत्र ज्ञेय और ध्येयके विभागसे दो प्रकारका कहा गयाहै ॥ ६ ॥ देह इन्द्रियादि तथा बाह्य अन्नपानादि उपभुक्त पदार्थोंका संघातरूप मैं हुं और ये देह तथा अन्नादि मेरे जीवनके निमित्तहैं इनके बिना मैं कुछ नहीं है और मेरे बिना येभी कुछ नहीं हैं ॥७॥ इस प्रकार अन्तःकरणमें प्रथम अहंकारका निश्चय करके मनके साथ पृथक्करणमें देहादि संघातको अत्यन्त असत्रूप विचार करके, द्वितीय चिद्रूप मुझ अहं पदार्थके ये पदार्थ नहीं हैं इस प्रकार बोधके परिपक्व होनेपर ॥ ८ ॥

अंतःशीतलयाबुध्याकुर्वत्यालीलयाक्रियाम् ॥ योनूनंवासनात्यागोध्येयोरामसकीर्तितः ॥ ९ ॥ सर्वंसमतयाबुद्ध्यायंकृत्वावासनाक्षयम् ॥ जहातिनिर्ममोदेहंज्ञेयोसौवासनाक्षयः ॥ १० ॥ अहंकारमयींत्यक्त्वावासनांलीलयैवयः ॥ तिष्ठतिध्येयसंत्यागीजीवन्मुक्तस्सउच्यते ॥ ११ ॥ निर्मूलकलनांत्यक्त्वा वासनांयःशमंगतः ॥ ज्ञेयत्यागमयंविद्धिमुक्तंतंरघुनंदन ॥ १२ ॥

अर्थ—क्रियाको करती हुई शीतल बुद्धिसे अन्तःकरणमें जो निश्चयरूपसे वासनाका त्यागहै उसको हे रामजी ! ध्येय (अधिष्ठानमात्रसे शेष) कहते हैं ॥ ९ ॥ सम्पूर्ण जगत्को समतासे अर्थात् ब्रह्मभावसे साक्षात्कारके भूमिकाके अभ्यासद्वारा जिस वासना क्षयको करके निर्मल और निरहंकार होके निर्विकल्प समाधिमें स्थित वा प्रारब्धके क्षयसे जो सर्वथा देहको त्यागताहै इसको 'ज्ञेय' वासना क्षय कहते हैं ॥ १० ॥ अहंकारमयी वासनाको त्यागकर लीलामात्रसे लोकके उचित व्यवहारमें जो स्थित रहताहै उसको ध्येय संत्यागी तथा जीवन्मुक्त कहते हैं ॥ ११ ॥ निर्मूल होगई है कलना जिसकी ऐसी वासनाको त्यागकर जो शान्तिको प्राप्त हुआहै उसको हे रघुनन्दन ! ज्ञेय त्यागमय अर्थात् ज्ञेय त्यागी जानो ॥ १२ ॥

ध्येयंतंवासनात्यागंकृत्वातिष्ठतिलीलया ॥ जीवन्मुक्तामहात्मानःसुजनाजनकादयः ॥ १३ ॥ ज्ञेयंतुवासनात्यागंकृत्वोपशममागताः ॥ विदेहमुक्तास्तिष्ठंतिब्रह्मण्येवपरावरे ॥ १४ ॥ द्वावेवराघवत्यागौसमौमुक्तपदेस्थितौ ॥ द्वावेतौब्रह्मतांयातौद्वावेवविगतज्वरौ ॥ १५ ॥ युक्तायुक्तमतीस्वासेकेवलंविमलेनघ ॥ एकःस्थितःस्फुरद्देहःशांतदेहःस्थितोपरः ॥ १६ ॥

अर्थ—ध्येय वासना त्यागको करकें लोकोचित व्यवहारसे जीवन्मुक्त महात्मोंमें सुजन जनक आदि स्थित हैं ॥ १३ ॥ और ज्ञेय वासना त्याग करके शान्तिको प्राप्त विदेह मुक्त महात्माजन सर्व श्रेष्ठ ब्रह्ममेंही स्थित रहते हैं ॥ १४ ॥ हे रामजी ! ये दोनों त्याग समान कहे गये हैं और पदमें स्थितहैं और दोनों संतापरहित ब्रह्मताको प्राप्त हुये हैं ॥ १५ ॥ हे पापरहित रामजी ! समाधिमें आरूढ तथा समाधिके व्युत्थान कालमें व्यवहारवान् सुखसे विश्राम करनेवाले ये दोनों (जीवन्मुक्त तथा विदेह मुक्त) अविद्या जनित मलसे शून्य ब्रह्ममेंही केवल स्थितहैं एक (जीवन्मुक्त) देह सहित और दूसरा (विदेह मुक्त) देहरहित स्थितहै ॥ १६ ॥

एकःसदेहोनिर्मुक्तस्तिष्ठत्यपगतज्वरः ॥ त्यक्तदेहोविमुक्तोन्योवर्ततेज्ञेयवासनाः ॥ १७ ॥ आपतत्सुयथाकालंसुखदुःखेष्वनारतम् ॥ नहृष्यतिग्लायतियःसमुक्तइतिहोच्यते ॥ १८ ॥ ईर्ष्यितानीप्सितेनस्तोयस्येष्टानिष्टवस्तुषु ॥ सुषुप्तवच्चरतियःसमुक्तइतिकथ्यते ॥ १९ ॥ हेयोपादेयकलनेममेत्यहमिहेतिच ॥ यस्यांतःसंपरिक्षीणेसजीवन्मुक्तउच्यते ॥ २० ॥

अर्थ—एक देहसहित सन्ताप शून्य स्थितहै और दूसरा देहको त्यागकर ज्ञेय वासनावाला (ज्ञेय बाधित वासनावान्) है ॥ १७ ॥ और निरन्तर कालपाके सुखदुःखोंके आनेपरभी जीव प्रसन्न होताहै और न ग्लानिको प्राप्त होताहै उसको जीवन्मुक्त कहते हैं ॥ १८ ॥ इष्ट और अनिष्ट वस्तुओंमें जिसको इच्छा और द्वेष नहीं है और सुषुप्तके तुल्य यथा प्राप्त व्यवहार करताहै उसको जीवन्मुक्त कहते हैं ॥ १९ ॥ इस देह वा उसके संबन्धी धनादिमें अहं और मम (मैं तथा मेरा) ये दोनों कलना जिसके अन्तःकरणमें क्षीण होगई हैं उसको जीवन्मुक्त कहते हैं॥२०॥

हर्षामर्षभयक्रोधकामकार्पण्यदृष्टिभिः ॥ नपरामृश्यतेयोंतःसजीवन्मुक्तउच्यते ॥ २१ ॥ सुषुप्तवत्प्रशमितभाववृत्तिनास्थितंसदाजाग्रतियेनचेतसा ॥ कलान्वितोविधुरिवयस्सदासुदानिषेव्यतेमुक्तइतीह संस्मृतः ॥ २२ ॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ इत्युक्तवत्यथमुनौदिवसोजगामसायंतनायविधयेस्तमिनोजगाम ॥ स्नातुंसभाकृतनमस्करणाजगामश्यामाक्षयेरविकरैश्चसहाजगाम ॥ २३ ॥ दिवसः ॥ ११ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे तृष्णाचिकित्सानामषोडशःसर्गः ॥ १६ ॥

अर्थ—हर्ष,आमर्ष,क्रोध,काम, और दीनताकी दृष्टियोंसे अन्तःकरणमें जो स्पृष्ट नहीं उसको जीवन्मुक्त कहते है ॥ २१ ॥ जो पुरुष सुषुप्तके समान जाग्रतमेंभी स्थितहै और कलायुक्त पूर्णचन्द्र जैसे चन्द्रिकासे सेवितहै ऐसेही स्वाभाविक हर्षसे जो सेवितहै उसको जीवन्मुक्त कहते हैं ॥ २२ ॥ श्रीवाल्मीकिजी बोले–वाल्मीकिजी कहते है कि श्रीमुनि वसिष्ठके इतना कहनेपर दिवसका अन्त प्राप्त हुआ सूर्य्य अस्ताचलको प्राप्त हुये और नमस्कार प्रणामपूर्वक स्नानसन्ध्या करनेको सम्पूर्ण सभाभी गई और रात्रिके बीतनेपर सूर्य्य किरणोंके साथ पुनः आके प्राप्त हुई ॥ २३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उपशमप्रकरणे तृष्णाचिकित्सा नाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥ दिवसः ११

सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

जिन निश्चयोंसे युक्त जीवन्मुक्त बन्धनमें नहीं आता तथा अज्ञानी बन्धनमें आताहै उनका विभाग पुनः इस १७ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ विदेहमुक्तायेरामतेगिरामिहगोचरे ॥ नैवतिष्ठंतितस्मात्त्वंजीवन्मुक्तिमिमांशृणु ॥ १ ॥ प्राकृतान्येवकर्माणियथावर्जितवांछया ॥ क्रियंतेतृष्णयेमानितांजीवन्मुक्ततांविदुः ॥ २ ॥ यास्थितिस्तृष्णयाजंतोर्बाह्यार्थेबद्धभावया ॥ तंबंधमाहुराचार्याःसंसारनिगडंदृढम् ॥ ३ ॥ नूनमुज्झितसंकल्पाद्धृदिबाह्येविहारिणी ॥ वासनायोदितासेहजीवन्मुक्तशरीरिणी ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! जो विदेहमुक्तहै वे प्राणीके विषयमें नहीं रहते हैं इसलिये तुम इस जीवन्मुक्तिको सुनो ॥ १ ॥ विषयके आस्वादनके उत्साहसे वर्जित जिस तृष्णासे वर्ण आश्रमके स्वभावसे प्राप्त ये जो कर्म किये जाते हैं इसको जीवन्मुक्तता कहते हैं ॥ २ ॥ संसारके भोगोंमें सत्य बुद्धि वा उत्साहसहित तृष्णासे बाह्यपदार्थोंमें जो जन्तुकी स्थिति है उसको संसाररूप दृढ निगडसहित बन्ध आचार्य्य कहते हैं ॥ ३ ॥ हृदयमें संकल्पसे रहित और बाह्य पदार्थोंमें विहारिणी जो उदयको प्राप्त तृष्णाहै वह इस संसारमें जीवन्मुक्तोंकी शरीरहै ॥ ४ ॥

बाह्यार्थव्यसनोच्छूनातृष्णाबद्धेतिराघव ॥ सर्वार्थव्यसनोन्मुक्तातृष्णामुक्तेतिकथ्यते ॥ ५ ॥ पूर्वंयस्यास्तुतृष्णायावर्त्तमानेपिशाश्वती ॥ निर्दुःखतानिष्कलतासामुक्तेतिबुधैःस्मृता ॥ ६ ॥ इदमस्तुममेत्यंतर्यैषाराघवभावना ॥ तांतृष्णांशृंखलांविद्धिकलनांचमहामते ॥ ७ ॥ तामेतांसर्वभावेषुसत्स्वसत्सुचसर्वदा ॥ संत्यज्यपरमोदारःपरमेतिमहामनाः ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! बाह्य पदार्थोंमें लम्पटतासे बढी हुई जो तृष्णाहै उसको बद्ध कहते हैं, और सम्पूर्ण बाह्य पदार्थोंमें वासनोंसे मुक्त जो तृष्णाहै उसको मुक्त कहते हैं ॥ ५ ॥ विषय प्राप्तिके पूर्वकालमें तथा विषयके नाशमें जो रागविरहादिसे जनित दुःखकी शून्यता निष्फलताहै वह जिस तृष्णाके वर्तमानकालमें नित्यहै उसको पण्डितलोग मुक्ति कहते है ॥ ६ ॥ हे महामते राघवजी ! यह पदार्थ मुझे प्राप्तहो यह जो बद्ध भावनाहै उसीको शृंखला और कलनाभी तुम जानो ॥ ७ ॥ सत् वा असत् सम्पूर्ण पदार्थोंमें इस तृष्णाको त्यागके परमउदार महात्मा जीवन्मुक्तके पदको प्राप्त होताहै ॥ ८ ॥

बंधाशामथमोक्षाशांसुखदुःखदशामपि ॥ त्यक्त्वासदसदाशांचतिष्ठाक्षुब्धमहाब्धिवत् ॥ ९ ॥ अजरामरमात्मानंबुद्धाबुद्धिमतांवर ॥ जरामरणशंकाभिर्मामनःकलुषंकृथाः ॥ १० ॥ पदार्थतत्त्वंनेदंतेनायंत्वमसिराघव ॥ किंचित्तदन्यदेवेदमन्यएवासिराघव ॥११॥ असदभ्युदितेविश्वेसतीवासतिसंस्थिते ॥ त्वयितत्तामतिगतेतृष्णायाःसंभवःकुतः ॥ १२ ॥

अर्थ—बन्धरूप देहादिकी आशाको मोक्षकी आशाको सुखदुःखकी दशाको और सत् और असत्की दशाकोभी त्यागके महासमुद्रके तुल्य क्षोभरहित स्थित रहो ॥ ९ ॥ हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठरामजी ! अजर और अमर आत्माको जानके जरा (वृद्धाऽवस्था) और मरणकी शंकाओंसे मनको कलंकित न करो ॥ १० ॥ हे रामजी ! यह दृश्य पदार्थ तत्वका रूप तुह्मारा नहीं है और तुमभी इनके नहीं हो इसलिये यह पदार्थ तत्वपरमार्थसे अन्य तुच्छरूपही है, और तुमभी इनसे अन्य शुद्धरूपहो ॥ ११ ॥ असत् अज्ञानसे आविर्भूत सत् वा असत्रूपसे संसारके स्थित होनेपर और उस सत्ताके परे तुमारे स्थित होनेपर तृष्णाका संभव कहां ? ॥ १२ ॥

अन्यच्चराममनसिपुरुषस्यविचारिणः ॥ जायतेनिश्चयःसाधोस्फाराकारश्चतुर्विधः ॥ १३ ॥ आपादमस्तकमहंमातापितृविनिर्मितः ॥ इत्येकोनिश्चयोरामबंधायासद्विलोकनात् ॥ १४ ॥ अतीतःसर्वभावेभ्योवालाग्रादप्यहंतनुः ॥ इतिद्वितीयोमोक्षायनिश्चयोजायतेसताम् ॥ १५ ॥ जगज्जालपदार्थात्मासर्वमेवाहमक्षयः ॥ तृतीयोनिश्चयश्चेत्थंमोक्षायैवरघूद्वह ॥ १६ ॥

अर्थ—हे साधो रामजी ! औरभी विचारशील मनुष्यके मनमें वक्ष्यमाण चार प्रकारके विशाल आकारवाले निश्चय होते हैं ॥ १३ ॥ हे रामजी ! माता पितासे रचित पादसे लेके मस्तक पर्य्यन्त यह देह मैं हूं यह जो अज्ञान दृष्टिसे एक प्रकारका निश्चयहै वह बन्धके लिये है ॥ १४ ॥ सम्पूर्ण देहेन्द्रियासे पृथक् वालके अग्रभागसेभी सूक्ष्म शुद्ध चेतन मैं हुं यह सज्जनोंका द्वितीय निश्चय मोक्षके लिये है ॥ १५ ॥ जगत्जालके पदार्थोंका जो आत्मा (स्वरूप) है वह सब कुछ अक्षय मैं हुं यह तृतीय निश्चयभी हे रघुश्रेष्ठ मोक्षकेही लिये है ॥ १६ ॥

अहंजगद्वासकलंशून्यंव्योमसमंसदा ॥ एवमेवचतुर्थोन्योनिश्चयोमोक्षसिद्धये ॥ १७ ॥ निश्चयेषुचतुर्ष्वेषुबंधायप्रथमःस्मृतः ॥ त्रयोमोक्षायकथिताःशुद्धभावनयोत्थिताः ॥ १८ ॥ एतेषांप्रथमःप्रोक्तस्तृष्णायाबंधयोग्यता ॥ शुद्धतृष्णास्त्रयःस्वच्छाजीवन्मुक्तविलासिनः ॥ १९ ॥ सर्वमात्माहमेवेतिनिश्चयोयोमहामते ॥ तमादायविषादायनभूयोयातिमेमतिः ॥ २० ॥

अर्थ—आध्यात्मिक और आधिदैविक तथा आधिदैहिक यह सम्पूर्ण जगत् आकाशके सदृश शून्य सब मैं हुं यह चतुर्थ निश्चयभी इसीप्रकार मोक्ष सिद्धिके लिये है ॥ १७ ॥ इन चारों निश्चयोंमें प्रथम निश्चय बन्धकेही अर्थ है और शेष तीनों भावना आविर्भूतहैं इसलिये मोक्षके लिये कहे हैं ॥ १८ ॥ इनमेंसे प्रथमकी मलिनता तृष्णा होनेसे बन्धकी स्थिरताहै और शेष तीनों शुद्ध तृष्णासहित होनेसे स्वच्छताके लिये जीवनमुक्तोंके विलासके योग्यहैं ॥ १९ ॥ हे महामते ! यह संपूर्ण ब्रह्माण्ड ब्रह्मरूप मैं ही हूं यह जो निश्चयहै इसीका अवलम्बन करके मेरी मति पुनः विषादके लिये नहीं होती ॥ २० ॥

तिर्यगूर्ध्वमधस्ताच्चव्यापकोमहिमात्मनः ॥ सर्वमात्मेतितेनांतर्निश्चयेननबध्यते ॥ २१ ॥ शून्यंतत्प्रकृतिर्मायाब्रह्मविज्ञानमित्यपि ॥ शिवःपुरुषईशानोनित्यआत्मैवकथ्यते ॥ २२ ॥ सदासर्वंसदेवेदंनेहद्वित्वान्यतेक्वचित् ॥ विद्यतेविद्ययाव्याप्तंजगन्नेतरयाधिया ॥ २३ ॥ आपातालमनंतात्मापूरितोंभोधिरंबुभिः ॥ आब्रह्मस्तंबपर्यंतंजगदापूर्णमात्मना ॥ २४ ॥

अर्थ—तिर्यक् (इधर उधर टेढे) ऊपर नीचे सब आत्माका महिमा व्यापकहै इस हेतुसे संपूर्ण आत्मा यहहै इस अन्तःकरणके निश्चयसे जीव बन्धनमें नहीं आता॥२१॥ सबका शेष और अधिष्ठानभूत आत्मा शून्य आदि वादियोंसे शून्य, प्रकृति, माया, ब्रह्म, विज्ञान, इत्यादि शब्दोंसे कहा जाताहै ॥ २२ ॥ और सदा सन्मात्ररूपही यह सम्पूर्ण जगत्है इसमें द्वैत वा अन्यता कहींभी नहीं है और परमार्थ सत्य विद्या दृष्टिसे यह सब जगत् व्याप्तहै न कि पूर्ववत् भ्रान्त बुद्धिसे ॥ २३ ॥ जैसे अनन्त परिणामवाला समुद्र पाताल पर्य्यन्त जलसे पूर्ण है ऐसेही ब्रह्मासे लेके स्तम्ब पर्य्यन्त यह जगत् आत्मासे पूर्ण है ॥ २४ ॥

अतःसत्यमृतंनित्यंनानृतंविद्यतेक्वचित् ॥ वार्येवसकलांभोधिर्नतरंगादयःक्वचित् ॥ २५ ॥ पृथक्कटककेयूरनूपुरादिनकांचनात् ॥ भिन्नास्तरुतृणाकारकोटयश्चैवनात्मनः ॥ २६ ॥ द्वैताद्वैतसमुद्भेदैर्जगन्नि

र्मणलीलया ॥ परमात्ममयीशक्तिरद्वैतैवविजृंभते ॥ २७ ॥ आत्मीयेपरकीयेचसर्वस्मिन्नेवसर्वदा ॥ न ष्टेवोपचितेकार्येसुखदुःखेगृहाणमा ॥ २८ ॥

अर्थ—इस हेतुसे प्रमाण बोधित एक ब्रह्मही सत्यहै उससे भिन्न अनृत जगद्रूप ऐसे कुछ नहीं है जैसे संपूर्ण समुद्र जलही है न कि तरंगादि ॥ २५ ॥ सुवर्णसे भिन्न कटकके पूर और नुपुरादि कुछ नहीं हैं पृथिवीके स्वरूपसे भिन्न वृक्ष और करोडों तृणके आकारभी कुछ नहीं है ॥ २६ ॥ अद्वैत परमात्ममयी शक्ति अर्थात् ब्रह्मसत्ताहीं जगत् रचनाकी लीलासे द्वैत और अद्वैतके नानाप्रकारके भेदोंसे विकसित होरही है ॥ २७ ॥ अपने तथा अन्यके पुत्र मित्रादि सम्पूर्ण जगत्के सर्वदा वृद्ध होने वा नष्ट होनेपर ज्ञानस्वरूप तुम सुख दुःखोंको मत ग्रहण करो ॥ २८ ॥

भावाद्वैतमुपाश्रित्यसत्ताद्वैतमयात्मकः ॥ कर्माद्वैतमनादृत्यद्वैताद्वैतमयोभव ॥ २९ ॥ भवभूमिषुभीमासुभावभावनवात्यया ॥ मापतोत्पातपूर्णासुदरीष्वंतःकरीयथा ॥ ३० ॥ द्वैतंनसंभवतिचित्तमयंमहात्मन्नात्मन्यथैक्यमपिनद्वितयोदितात्म ॥ अद्वैतमैक्यरहितंसततोदितंसत्सर्वंनकिंचिदपिचाहुरतःस्वरूपम् ॥ ३१ ॥ नैवाहमस्तिनचनामजगंतिसंतिसर्वंचविद्यतइदंननुनिर्विकारम् ॥ विज्ञानमात्रमवभासतएवशांतंनासन्नसज्जगदिदंचसदेतिविद्धि ॥ ३२ ॥ परममृतमनाद्यंभासनंसर्वभासामजरमजमचिंत्यंनिष्कलंनिर्विकारम् ॥ विगतकरणजालंजीवनंजीवशक्तेःसकलकलनहीनंकारणंकारणानाम् ॥३३ सततमुदितमीशंव्याततेचित्प्रकाशेस्थितमनुभववीजंस्वात्मभावोपदेश्यम् ॥ स्वदनमनुचितोंतर्ब्रह्मसर्वंसदेवत्वमहमपिजगच्चेत्यस्तुतेनिश्चयोंतः ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे तृष्णाविच्छेदोपदेशो नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अर्थ—सत्ता अद्वैतमय होकर व्यवहारकालमेंभी भावनासे अद्वैतका आश्रय करके वर्णाश्रमके धर्मकी व्यवस्थापनरूप कर्ममें सर्वथा अद्वैतका अनादर करके द्वैत अद्वैत दोनोंमें तुम तत्परहो ॥ २९ ॥ अशुभ निमित्तोंसे पूर्ण भयंकर संसारकी भूमियोंमें गर्तोंमें हस्तीके समान तुम मत गिरो हे महात्मन् रामजी ! यह द्वैत परमार्थरूपसे संभव नहीं होता क्योंकि यह चित्तसे कल्पितहै न कि यथार्थमें ॥ ३० ॥ इसमें एकता और द्वैतता दोनों नहीं हैं इसलिये महात्माओंने संख्यारहित अद्वैत निरन्तर सन्मात्र उदित स्वभाव सम्पूर्ण जगत्को ब्रह्मका स्वरूपही कहाहै ॥ ३१ ॥ यह देहादि संघातरूप हम और यह संपूर्ण जगत् कुछभी नहीं है किन्तु निर्विकार ब्रह्मही है केवल शान्त विज्ञानमात्रही भास रहाहै और यह जगत् न सत्है और न असत्है किन्तु सन्मात्र ब्रह्मही सबको तुम समझो ॥ ३२ ॥ सर्वोत्तम, प्रमाण सिद्ध, अनादि सब प्रकाशोंका प्रकाशक अजर, अजन्मा, अचिन्त्य, निष्फल, निर्विकार इन्द्रियजालोंसे रहित, प्राण शक्तिका निमित्त, सम्पूर्ण कल्पनाओंसे हीन, सब कारणोंका कारण ॥ ३३ ॥ नित्य उदय स्वरूप व्यापक चित् प्रकाशमें स्थित चक्षुरादि अनुभवोंका मूलभूत अपने स्वरूपहीसे उपदेश करनेके योग्य आन्तरिक आनन्दैकरस ब्रह्मही यह जगत् और हम सबहै ऐसा निश्चय तुमारे अन्तःकरणमेंहो ॥ ३४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उपशमप्रकरणे तृष्णाविच्छेदोपदेशोनाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

जिस रीतिसे स्थित विद्वान् इस संसारमें दुःख नहीं पाता वह स्थिति विस्तारसे इस १८ के सर्गमें रामचन्द्रके लिये वर्णित की गई है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ युक्ताशयानांमहतामहतानांकुदृष्टिभिः ॥ स्वभावोयंमहाबाहोलीलयाचरतामिह ॥ १ ॥ विहरन्नपिसंसारेजीवन्मुक्तमनामुनिः ॥ आदिमध्यांतविरसाविहसेज्जागतीर्गतीः ॥ २ ॥ सर्वप्रकृतकार्यस्थोमध्यस्थःसर्वदृष्टिषु ॥ ध्येयंतंवासनात्यागमवलंब्यव्यवस्थितः ॥ ३ ॥ सर्वत्रविगतोद्वेगःसर्वार्थपरिपोषकः ॥ विवेकोद्योतहृष्टात्माप्रबोधोपवनस्थितिः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे महाबाहोरामजी ! समाहित चित्त काम लोभादि कुदृष्टियोंसे अदूषित लीलासे इस संसारमें विचरनेवाले महात्माओंका यह स्वभाव सुनो ॥ १ ॥ जीवन्मुक्त मनसे इस संसारमें विचरनेवाला मुनि आदि मध्य और अन्तमें नीरस संसारकी गतियोंको हँसे ॥ २ ॥ सम्पूर्ण प्राप्त कार्य्योंमें स्थित और शत्रु मित्रादि द-

ष्टियोंमें समान ध्येयरूप वासनाके त्यागको अवलम्बन करके महात्मा इस संसारमें स्थित रहै ॥ ३ ॥ सर्वत्र उद्वेगसे रहित सबके कार्योंका साधक विवेकसे प्रकाशित अन्तःकरण ज्ञानरूपी उपवनमें स्थित ॥ ४ ॥

सर्वातीतपदालंबीपूर्णेंदुशिशिराशयः ॥ नोद्वेगीनचतुष्टात्मासंसारेनावसीदति ॥ ५ ॥ सर्वशत्रुषुमध्यस्थोदयादाक्षिण्यसंयुतः ॥ प्राप्तकर्मकरोऽग्र्याणांसंसारेनावसीदति ॥ ६ ॥ नाभिनंदतिनद्वेष्टिनशोचतिनकांक्षति ॥ मौनस्थःप्रकृतारंभीसंसारेनावसीदति ॥७॥ पृष्टःसन्प्रकृतंवक्तिनपृष्टःस्थाणुवत्स्थितः ॥ ईहितानीहितैर्मुक्तःसंसारेनावसीदति ॥ ८ ॥

अर्थ—सर्वातीत ब्रह्मपदका अवलम्बी पूर्ण चन्द्रमाके समान शीतल अन्तःकरणयुक्त न अति प्रसन्न और न अति सन्तुष्ट प्राणी इस संसारमें दुःख नहीं पाता ॥ ५ ॥ सर्व शत्रुओंके मध्यमें स्थित दया दाक्षिण्यादि गुणोंसे संयुक्त तथा गुरू आदिका समयके उचित सेवा तथा पालनादि कार्य्य करनेवाला प्राणी संसारमें दुःख नहीं पाता ॥६॥ जो मनुष्य अभिमत वस्तुके प्राप्त होनेसे न अति प्रसन्न होताहै, अनिष्टकी प्राप्तिसे न अति दुःखी होताहै, न शोचता है, न चाहताहै, और जो मितभाषी और प्राप्त कार्य्योंका करनेवालाहै, वह इस संसारमें दुःखी नहीं होता ॥ ७ ॥ पूंछनेपर जो उपयोगी बात बोलताहै, और बिना पूंछे ठूंठके समान स्थित और राग द्वेषसे विनिर्मुक्त जो प्राणी है वह इस संसारमें दुःखी नहीं होता ॥ ८ ॥

सर्वस्याभिमतंवक्ताचोदितःपेशलोक्तिमान् ॥ आशयज्ञश्चभूतानांसंसारेनावसीदति ॥ ९ ॥ युक्तायुक्तदृशाग्रस्तमाशोपहतचेष्टितम् ॥ जानातिलोकवृत्तांतंकरकोटरविल्ववत् ॥ १० ॥ परंपदमुपारूढोभंगुरांजागतींस्थितिम् ॥ अंतःशीतलयाबुद्ध्याहसन्निवनिरीक्षते ॥११॥ जितचित्तामहात्मानोयेहिदृष्टपरावराः ॥ स्वभावईदृशस्तेषांकथितस्तवराघव ॥ १२ ॥

अर्थ—सब किसीका प्रियवक्ता प्रेरणाकरनेपर कोमल भाषी और प्राणियोंके हृदयको जाननेवाला पुरुष इस संसारमें दुःखी नहीं होता ॥ ९ ॥ युक्त और अयुक्त इस विषम दृष्टियोंसे ग्रस्त और आशायुक्त चेष्टित जिनमें ऐसे लोकके वृत्तान्तको हस्तरूप गर्तमें स्थित विल्वके समान अपक्षपातसे देखताहै ॥ १० ॥ मुक्त पदमें आरूढ महात्मा जन जगत्की नाशशील गतिको अन्तःकरणमें शीतल बुद्धिसे हस्ते हुयेके समान देखताहै॥११॥हे रामजी ! चित्तके जीतनेवाले इस लोक और परलोकके ज्ञाता जो महात्मा जन हैं उनका ऐसा स्वभाव मैंने तुमसे कहा ॥ १२ ॥

वयंतुवक्तुंमूर्खाणामजितात्मीयचेतसाम् ॥ भोगकर्दममग्नानांनविद्मोऽभिमतंमतम् ॥ १३ ॥ तेषामभिमतानार्योभावाभावविभूषिताः ॥ ज्वालानरकवह्नीनांयास्ताःकनकरोचिषः ॥ १४ ॥ अनर्थगहनाश्चार्था व्यर्थानर्थकदर्थनाः ॥ दिशंतोदुःखसंरंभमभितःप्रहितापदः ॥ १५ ॥ फलसंधीनिकर्माणिनानाचारमयानिच ॥ सुखदुःखावपूर्णानितानिवक्तुंनशक्नुमः ॥ १६ ॥

अर्थ—परन्तु अपने चित्तकोभी न जीतनेवाले भोगरूपी कर्दममें सदा निमग्न जो मूर्ख हैं उनके अभीष्ट अनन्त मतको कहना हमलोग नहीं जानते ॥ १३ ॥ उन मूर्खोंके अपार जलके समान पापमय स्त्रियांही अभीष्ट रहती हैं जो कि सुवर्णकी दीप्तिके समान नरककी ज्वाला हैं ॥ १४ ॥ और मूर्खोंके अभिमत स्त्री और धन ये दोनों अनर्थ कलह और क्लेशादि देनेवाले है और चारों ओरसे आपत्तिके देनेवाले दुःखकोही देतेहैं ॥ १५ ॥ इन मूर्खोंके नानाप्रकार आचारमयी जो यागादि कर्म्म हैं वेभी फलके संबन्धसे युक्त और सुखदुःखसे पूर्ण हैं इसलिये उनको हम नहीं कह सकते ॥ १६ ॥

पूर्णांदृष्टिमवष्टभ्यध्येयत्यागविलासिनीम् ॥ जीवन्मुक्ततयास्वस्थोलोकेविहरराघव ॥ १७ ॥ अंतःसंत्यक्तसर्वाशोवीतरागोविवासनः ॥ बहिःसर्वसमाचारोलोकेविहरराघव ॥ १८ ॥ उदारःपेशलाचारःसर्वाचारानुवृत्तिमान् ॥ अंतःसर्वपरित्यागीलोकेविहरराघव ॥ १९ ॥ प्रविचार्यदशाःसर्वायदतुच्छंपरंपदम् ॥ तदेवभावेनालंब्यलोकेविहरराघव ॥ २० ॥

अर्थ—हे रामजी ! ध्येयरूप त्यागके विलास संयुक्त आत्मासे पूर्ण दृष्टिका अवलंबन करके जीवन्मुक्ततासे स्वस्थ होके लोकमें विहार करो ॥१७॥ हे राघव ! अन्तःकरणमें सब आशाओंको त्यागकर वीतराग, वासना रहित व्यवहार सब वर्णाश्रमके आचारोंको करते हुये संसारमें विहार करो ॥ १८ ॥ हे राघव ! उदार कोमल आचारवान्, सब अज्ञानियोंके आचारोंके कर्ता और अन्तःकरणमें सबके त्यागी होके इस लोकमें बिहार करो ॥ १९ ॥ हे राघव ! सब संसार तथा परमार्थकी दशाओंको भलीभांति विचारकरके और जो महान् (ब्रह्म) पदहै उसीको सत्यतासे अवलम्बन करके इस संसारमें विहार करो ॥ २० ॥

अंतर्नैराश्यमादायबहिराशोन्मुखेहितः ॥ बहिस्तप्तोंतराशीतोलोकेविहरराघव ॥ २१ ॥ बहिःकृत्रिम संरंभोहृदिसरंभवर्जितः ॥ कर्त्ताबहिरकर्त्तांतर्लोकेविहरराघव ॥ २२ ॥ ज्ञातवानसिसर्वेषांभावानांस म्यगंतरम् ॥ यथेच्छसितथादृष्ट्यालोकेविहरराघव ॥२३॥ कृत्रिमोल्लासहर्षस्थःकृत्रिमोद्वेगगर्हणः ॥ कृत्रिमारंभसंरंभोलोकेविहरराघव ॥ २४ ॥

अर्थ—हे राघव ! अन्तःकरणमें निराशताका अवलम्बन करके और बाहरसे आशावानोंके सदृश चेष्टासहित और धनादिके नाशसे बाहरसे अति सन्तप्त और अन्तःकरणमें शीतलतायुक्त इस संसारमें विहार करो ॥ २१ ॥ हे राघव ! बाहरसे क्रोधसहित और अन्तःकरणमें क्रोधसे वर्जित, बाहरसे सब कार्य्योंके कर्ता और अन्तःकरणसे अकर्ता होके इस लोकमें विहार करो ॥ २२ ॥ हे राघव ! तुम सब पदार्थोंके सार और असारताकी तारतम्यताको जानते हो, जैसा तुम चाहते हो उस दृष्टिसे संसारमें विहार करो ॥ २३ ॥ हे राघव ! कृत्रिम (बनावटी) उत्साह तथा हर्षमें स्थित, कृत्रिम उद्वेग निन्दायुक्त और कृत्रिम, आरम्भ और क्रोधसहित इस लोकमें विहार करो ॥ २४ ॥

त्यक्ताहंकृतिराश्वस्तमतिराकाशशोभनः ॥ अगृहीतकलंकांकोलोकेविहरराघव ॥ २५ ॥ आशापाशश तोन्मुक्तःसमःसर्वासुवृत्तिषु ॥ बहिःप्रकृतिकार्यस्थोलोकेविहरराघव ॥ २६ ॥ नबंधोस्तिनमोक्षोस्तिदे हिनःपरमार्थतः ॥ मिथ्येयमिंद्रजालश्रीःसंसारपरिवर्त्तिनी ॥ २७ ॥ भ्रांतिमात्रमिदंमोहाज्जगद्राघवदृ श्यते ॥ जनितप्रत्ययंस्फारंजलंतीव्रातपेयथा ॥ २८ ॥

अर्थ—हे राघव ! अहंकारको त्याग कर, स्वस्थ मति, आकाशमें शोभायमान, और कलंकके चिन्हसे वर्जित अर्थात् चन्द्रमासेभी विलक्षण होके लोकमें व्यवहार करो ॥ २५ ॥ सैकड़ों आशाके पाशोंसे मुक्त सब वृत्तियोंमें सम रूप, बाहर वर्णाश्रमके स्वभावके योग्य, वा प्रजाओंके हितकारक कार्य्योंमें स्थित होके संसारमें विहार करो ॥ २६ ॥ यथार्थमें तो जीवनको न बन्ध न मोक्ष है किन्तु मिथ्याही यह इन्द्रजालकी श्री संसारका चक्र चलारही है ॥ २७ ॥ हे राघव ! यह सब संसार अज्ञानसे भ्रान्तिमात्रही देखपड़ताहै और महान् सत्य प्रत्ययको ऐसे उत्पन्न किये हैं जैसे तीव्र घर्म्ममें मृगतृष्णाका जल ॥ २८ ॥

अबद्धस्यैकरूपस्यसर्वगस्यात्मनःकथम् ॥ बंधःस्यात्तदभावेतुमोक्षःकस्यविधीयते ॥ २९ ॥ अतत्त्व ज्ञानजातेयंसंसारभ्रांतिरातता ॥ तत्त्वज्ञानात्क्षयंयातिरज्ज्वामिवभुजंगधीः ॥ ३० ॥ ज्ञातवानसितत्त्वं त्वमेकयासूक्ष्मयाधिया ॥ जातोसिनिरहंकारोव्योमवत्तिष्ठनिर्मलः ॥ ३१ ॥ ज्ञोसित्वित्थंतदखिलाः सुहृद्बांधववासनाः ॥ संत्यजासत्स्वभावस्यकानामकिलभावना ॥ ३२ ॥

अर्थ—असंग एकरूप और सर्वआत्माको बंधन कैसे होसकताहै, और बंधनके अभावमें मोक्षका विधान किसकेलिये ॥ २९ ॥ तत्वज्ञानके अभाव (संसारकी सत्यत्व बुद्धि) से यह विशाल संसारकी भ्रान्ति उत्पन्न हुई है और आत्मतत्वज्ञानसे ऐसे क्षयको प्राप्त होती है जैसे रज्जूमेंसे सर्प ॥ ३० ॥ हे रामजी ! अब तुम अपनी एक सूक्ष्मबुद्धिसे अपने आत्मतत्त्वको जानगये हो और अहंकाररहित हो इसलिये आकाशकेसमान निर्मल स्थित रहो ॥ ३१ ॥ हे रामजी ! तुम तो साक्षीरूप हो इसी प्रकार सुहृद् बन्धु आदिकी वासनाओंको त्यागो क्योंकि असत् स्वभाववाले सुहृद् बन्धु आदिकी चिन्ता क्या अर्थात् व्यर्थ है ॥ ३२ ॥

अविचेत्थंतदन्यस्त्वंसत्स्ववानुमीयसे ॥ इदंप्रथमतःप्राप्तंपरमादपिकारणात् ॥ ३३ ॥ भोगबंधुजग द्भावैःकर्मभिश्चशुभाशुभैः ॥ आत्मनोनास्तिसंबंधःकिमेतानुशोचसि ॥ ३४ ॥ आत्मतत्त्वैकसारोह मितिजातधियोभयैः ॥ नतेरामास्तिसंबंधःकिंबिभेषिजगद्भ्रमात् ॥ ३५ ॥ अजातस्यसतोबंधोर्बंधुदुःख सुखभ्रमैः ॥ कस्तेराघवसंबंधोयदेतानुशोचसि ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! तुम तो उस असत् स्वभावसे सत् अन्यरूपहो और सत् स्वभावसेही असत् अविद्या तथा उसके कार्य्योंसे तुम बलवान् अनुमित होतो हो और इसी हेतुसे अविद्यारूप कारणसेभी प्रथम प्राप्त इस बन्धनकी वासनाको त्यागो ॥ ३३ ॥ भोग और भोगके साधक बन्धु तथा जगत्के पदार्थोंसे और पदार्थोंके प्रापक शुभाशुभ कर्म्मोंसे आत्माका कुछभी संबंध नहीं है इसलिये इन बन्धु आदिके अर्थ क्यों शोचतेहो ॥ ३४ ॥ हे रामजी ! आत्मतत्वही एक आनन्दरूप सारहै जिसमें ऐसा मैं हूं इसप्रकारकी बुद्धिसहित तुमको भयके निमित्तोंसे तुमारा संबन्ध नहीं है तुम जगत्के भ्रमोंसे क्यों भय करतेहो ॥ ३५ ॥ जो बन्धु (चित्रूपसे) कभी उत्पन्न नहीं हुआहै उस बंधुके दुःख तथा सुखसे तुमारा क्या संबन्धहै जो तुम इनके अर्थ शोचतेहो ॥ ३६ ॥

त्वंचेद्बभूविथपुरातथेदानींभविष्यसि ॥ अद्यचेहस्थितोसीतिज्ञातवानसिनिश्चयम् ॥ ३७ ॥ तदानंतरगानन्यान्प्राणादीन्निकटस्थितान् ॥ बंधूनतीतान्सुबहून्कस्मात्त्वंनानुशोचसि ॥ ३८ ॥ पूर्वमन्यस्तथेदानींबभूविथभविष्यसि ॥ यदिरामतथापित्वंसद्रूपंकिंविमुह्यसि ॥ ३९ ॥ पुराभूत्वाद्यभूत्वाचभूयश्चेन्नभविष्यसि ॥ तथापिक्षीणसंसारःकिमर्थमनुशोचसि ॥ ४० ॥

अर्थ—और आत्माके संगीभी मानों तो उसकी नित्यता यदि मानतेहो तो तुम प्रथम जन्मेंथे और भावी जन्मोंमेंभी होओगे और इससमयमेंभी वर्तमानहो ऐसे स्वभाववाले आत्माको तुम निश्चय करके जानतेहो ॥ ३७ ॥ तो वर्तमान निकटमें स्थित बन्धुके प्राणके समान जैसे शोचतेहो ऐसे अनन्त जन्मके बीते हुये बन्धुओंकोभी क्यों नहीं शोचते, प्रमाणके अभावसे सबका शोक नहीं करसकते इसलियेही शोक करना युक्त नहीं है ॥ ३८ ॥ यदि आत्माको क्षणिक मानतेहो तो तुम तथा तुमारा बन्धु पूर्वकाल अन्यथे और अब अन्यहो तथा आगेभी पूर्वरूपसे अन्यहो आगे तो तुम जिसके लिये शोक करतेहो और शोच करनेवाले तुम भिन्न होगये तो बन्धुताहीका अभाव होगया तो सत्वरूपको मानके तुम क्यों शोचतेहो ॥ ३९ ॥ और यदि नाशमान मानते हो तो प्रथम होके अब नहीं हुये और आगेभी न होगे तौभी आत्माके नाशसेही क्षीण संसार तुम हो तो क्यों शोचतेहो ॥ ४० ॥

तस्मान्नदुःखितायुक्ताप्राकृतेजागतेक्रमे ॥ तथैवमुदितायुक्तायुक्तंकार्यानुवर्त्तनम् ॥ ४१ ॥ मागच्छदुःखितांरामसुखितामपिमाव्रज ॥ समतामेहिसर्वत्रपरमात्माहिसर्वगः ॥ अनंतःसत्स्वरूपस्त्वंखमिवातिततांतरम् ॥ प्रकाशोनित्यशुद्धस्त्वंज्वालानामिवकोटरम् ॥ ४३ ॥ जागतानांपदार्थानामदृष्टात्मतनुस्तनुः ॥ हृत्स्थोसिहारमुक्तानामेकस्तंतुरिवाततः ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जब आत्माके संगी होनेपरभी शोचयुक्त नहीं है तो असंग आत्माके सिद्धान्त पक्षमें इस मायामय जगत्के क्रम दुःख करना ठीक नहीं इसीप्रकार सहज सन्तोष वृत्ति तथा प्राप्त कार्यका करना युक्तहै ॥ ४१ ॥ हे रामजी ! तुम सांसारिक पदार्थोंसे सुख तथा दुःखको न प्राप्त होओ किन्तु सर्वत्र समताको प्राप्त होओ क्योंकि परमात्मा सर्वव्यापी तथा समरूपहै ॥ ४२ ॥ तुम अनन्त सत् स्वरूप आकाशके सदृश व्यापकहो और जैसे सर्वत्र दीप्ति पूर्ण अग्निकी ज्वालाके कोटर (गढे) में अन्धकारका अवकाश नहीं है ऐसेही तुमारे शुद्धरूपमें दुःख आदिका अवकाश नहीं हैं ॥ ४३ ॥ जगत्के पदार्थोंमें तुमारा व्यापकरूप नहीं देख पडता और हृदयमें स्थित तुम मुक्ताके हारमें सूत्रके सदृश सबमें सूक्ष्मरूपसे अनुस्यूतहो ॥ ४४ ॥

संसारस्थितिरेवेयंयद्भूत्वाभूयतेपुनः ॥ अज्ञेनैवनतज्ज्ञेनज्ञोसिरामसुखीभव ॥ ४५ ॥ स्वरूपमिदमस्यास्तुसंसृतेःसतताधिमत् ॥ अज्ञानात्स्फारतामेतिज्ञातवानसिसन्मते ॥ ४६ ॥ रूपंकिमन्यद्भवतुभ्रममात्राद्दतेभ्रमे ॥ स्वप्नमात्राद्दतेस्वप्नेभवत्यन्योहिकःक्रमः ॥ ४७ ॥ सर्वशक्तेरियंशक्तिर्भ्रममात्रमयंतथा ॥ रामदृश्यतएवेदमाभानमतिभास्वरम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! यह संसारकी स्थिति ऐसीही है अज्ञानी जीवको उत्पन्न होकर पुनः २ उत्पन्न होना होताहै न कि ज्ञानीको, हे रघुनन्दन ! तुम तो ज्ञानीहो इसलिये सुखी होओ ॥ ४५ ॥ निरन्तर दुःखोंसे पूर्ण यह संसार अज्ञानसे विशालताको प्राप्त होताहै हे सन्मतेरामजी ! तुम तो ज्ञानवान्हो ॥ ४६ ॥ भ्रमको छोडके भ्रमका अन्य क्या स्वभाव होसक्ताहै क्योंकि स्वप्नमें स्वप्नके सिवाय अन्य क्या क्रम होसकताहै ॥ ४७ ॥ हे रामजी ! यह भ्रममात्र जगत् जो अतिभास्वर व्यक्तआकारके भासमान देखपडताहै यह सर्वशक्तिमान् परमात्माकी शक्तिहै ४८

सुबंधुःकस्यचित्कःस्यादिहनोकश्चिदप्यरिः ॥ सदासर्वेचसर्वस्यसर्वसर्वेश्वरेच्छया ॥ ४९ ॥ आलूनशीर्णमखिलमिदमन्योन्यसंश्रितम् ॥ अनारतंयातिजगत्तरंगौघइवांभसः ॥ ५० ॥ अधऊर्ध्वत्वमायातियात्यूर्ध्वत्वमधस्तथा ॥ संसारस्यचलस्यास्यचक्रनेमिरिवाभितः ॥ ५१ ॥ स्वर्गस्थानरकंयांतिनारकाश्चत्रिविष्टपम् ॥ योनेर्योन्यंतरंयांतिद्वीपाद्द्वीपांतरंजनाः ॥ ५२ ॥

अर्थ—इस जगत्में न कोई किसीका बन्धुहै और सदा न कोई किसीका शत्रुहै किन्तु सबके सब शत्रु मित्र तथा उदासीन समय पाके ईश्वरेच्छासे होते रहते हैं ॥ ४९ ॥ यह सब जगत् परस्परके निमित्तसे निरन्तर ऐसे छिन्नभिन्नताको प्राप्त होताहै जैसे जलके तरंग ॥ ५० ॥ इस चलायमान संसारका चक्र सदा नीचेसे ऊपर और ऊपरसे नीचे चक्रकी नेमिके समान होता रहताहै ॥ ५१ ॥ स्वर्गमें स्थित प्राणी नरकमें और नरकमें स्थित स्वर्गमें प्राप्त होते हैं, और एक योनिसे दूसरी योनिमें एक द्वीपसे दूसरे द्वीपमेंभी प्राप्त होते हैं ॥ ५२ ॥

धीराःकार्पण्यमायांतिकृपणायांतिधीरताम् ॥ परिस्फुरंतिभूतानिपातोत्पातशतभ्रमैः ॥ ५३ ॥ एकरूपस्थिरंचक्रंस्वच्छंसंतापवर्जितम् ॥ नेहसंप्राप्यतेकिंचिदग्नौहिमकणोयथा ॥ ५४ ॥ येयेनाममहाभागाबहवोबांधवास्तथा ॥ विनष्टाएवदृश्यंतेतेतेकतिपयैर्दिनैः ॥ ५५ ॥ परतात्मीयतान्यत्वत्वत्त्वमत्त्वादिभावना ॥ नेहसत्यामहाबाहोद्विचंद्रादिदृशोयथा ॥ ५६ ॥

अर्थ—धीर जो कभी किसीसे यांचा नहीं करते समय पाके कृपणताको प्राप्त होते हैं और कृपण धीरताको प्राप्त होते हैं, पात तथा उत्पात (नीचे गिरना और ऊपर चढना) आदि सैकडों भ्रमोंसे इस जगत्के प्राणी संचलित होरहे हैं ॥ ५३ ॥ यह सम्पूर्ण चक्र (संसारके पदार्थोंका मण्डल) कभी एकरूप स्वच्छ तथा सन्तापसे रहित कभी ऐसे नहीं प्राप्त होता जैसे अग्निमें हिमका कण ॥ ५४ ॥ जो २ महाभाग तथा अनेक बन्धुहैं वे कुछ दिनोंमेंही नष्ट देख पडते हैं ॥ ५५ ॥ हे महाबाहो रामजी ! परता (दूसरापन) आत्मीयता (अपनापन) अन्यता (भेदता) त्वत्ता मत्ता (तुमारापन तथा मेरापन) इत्यादि भावना इस संसारमें ऐसे सत्य नहीं हैं जैसे दो चन्द्रका दर्शन ॥ ५६ ॥

अयंबंधुःपरश्चायमयंचाहमयंभवान् ॥ इतिमिथ्यादृशोरामविगलंतुतवाधुना ॥ ५७ ॥ क्रीडार्थंव्यवहारस्थएताभिर्हतदृष्टिभिः ॥ आमूलमंतश्छिन्नाभिर्बहिर्विहरहेलया ॥ ५८ ॥ संसारसरणावस्यांतथाविहरसुव्रत ॥ नयथैवभ्रमभ्रांतोवासनाभारवानिव ॥ ५९ ॥ यथायथैपाकार्याणिवासनाक्षयकारिणी ॥ विचारणातवोदेतिसंशाम्यंतितथातथा ॥ ६० ॥

अर्थ—हे रामजी ! यह बन्धु है, यह शत्रु है, यह मैं हुं और यह आप हो; इत्यादि मिथ्या दृष्टि तुमारी इस समय नष्ट हो ॥ ५७ ॥ अज्ञान तथा वासनाके साथ अन्तःकरणमें छिन्न और ज्ञानसे बाधित इन बन्धु मित्र शत्रु आदिकी दृष्टियोंसे बाहरसे क्रीडार्थ व्यवहारमें स्थित लीलासे संसारमें विहार करो ॥ ५८ ॥ हे सुव्रत रामजी ! इस संसारकी पद्धतिमें ऐसे विहार करो जिसप्रकार वासनाके भारवान्के तुल्य भ्रमसे भ्रान्त न हो ॥ ५९ ॥ जैसे २ वासनाके क्षय करनेवाली विचारणा उदयको प्राप्त होती है वैसे २ संसारके व्यवहार शान्तताको प्राप्त होंगे ॥ ६० ॥

अयंबंधुरयंनेतिगणनालघुचेतसाम् ॥ उदारचरितानांतुविगतावरणैवधीः ॥ ६१ ॥ नतदस्तिनयत्राहं नतदस्तिनयन्मम ॥ इतिनिर्णीयधीराणांविगतावरणैवधीः ॥ ६२ ॥ नास्तमेतिनचोदेतियश्चिदाकाशवन्महान् ॥ सर्वंसंपश्यतिस्वस्थःस्वस्थोभूमितलंयथा ॥ ६३ ॥ सर्वाएवहितेभूतजातयोरामबंधवः ॥ अत्यंतासंयुताएतास्तवरामनकाश्चन ॥६४॥ विविधजन्मशताहितसंभ्रमेजगतिबंधुरबंधुरितीक्षणम् ॥ भ्रमदशैवविवल्गतिवस्तुतस्त्रिभुवनंचिरबंधुरबंध्वपि ॥ ६५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे जीवन्मुक्तवर्णनं नामाष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

अर्थ—यह हमारा बन्धुहै, यह नहीं है, इत्यादि गणना लघु चित्तवालोंकी है उदार चित्तवालोंको तो यह बंधु हैं, इत्यादि परिच्छेद आवरणकी बुद्धि नष्ट होगई है ॥ ६१ ॥ वह कोई पदार्थ नहीं है जहां हम नहीं वह कोईभी वस्तु नहीं जो मेरे न हो ऐसा निर्णय करके धीरोंकी आवरणकी बुद्धि नष्ट होगई है ॥ ६२ ॥ जो न अस्त होताहै न उदय होताहै चिदाकाशके सदृश महान् विक्षेपके उपशमसे स्वस्थ होके सबको ऐसा देखताहै जैसे आकाशमें स्थित भूमितलको ॥ ६३ ॥ हे रामजी ! इस संसारमें जितनी प्राणियोंकी जाति हैं वे सब तुमारे बन्धु हैं क्योंकि अनेक योनिमें जन्म धारणसे बन्धुतासे अत्यन्त असंबन्ध कोईभी प्राणियोंकी जाति नहीं है ॥ ६४ ॥ हे रामजी ! नानाप्रकारकी योनियोंसे विचित्र सैकडों जन्मोंसे जिसमें भ्रम प्राप्तहै ऐसे इस जगत्में यह बन्धुहै, यह अबन्धु इस दृष्टिरूपसे भ्रमकी दशाही गर्ज रही है और यथार्थमें तो तीनों भुवनके जीव समूह जीव भावदृष्टिसे सब अपने बन्धुहैं और ब्रह्मभाव दृष्टिसे तो स्वयं आपही सब है इसलिये अबन्धुभी हैं ॥ ६५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उपशमप्रकरणे जीवन्मुक्तवर्णनं नामाष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

एकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

इस १९ के सर्गमें उक्त (कथित) वार्ताकी सिद्धि पुण्यपावनका आख्यान जो कि पुण्यने पिताके शोकसे पीडित पावनको बोधित किया वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ अत्रैवोदाहरंतीममितिहासंपुरातनम् ॥ भ्रात्रोस्त्रिपथगातीरेसंवादंमुनिपुत्रयोः ॥ १ ॥ अयंबंधुरयंनेतिकथाप्रस्तावतःस्मृतम् ॥ इतिहासमिमंपुण्यमाश्चर्यंशृणुराघव ॥ २ ॥ अस्त्यस्यजंबूद्वीपस्यकस्मिंश्चिद्गिरिकुंजके ॥ वनव्यूहमहोत्तंसोमहेंद्रोनामपर्वतः ॥ ३ ॥ कल्पद्रुमवनच्छायाविश्रांतमुनिकिन्नरः ॥ शृंगैराततमाकाशंजितवान्यःसमुन्नतैः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! इसी विषयमें मन्दाकिनीके तटपर निवास करनेवाले मुनिके पुत्रोंके दो भाइयोंका संवादरूप पुरातन इतिहास कहागया है ॥ १ ॥ यह बन्धुहै यह बन्धु नहीं है यह बात कथाके प्रसंगसे पवित्र आश्चर्य्यरूप इतिहास कहागयाहै हे राघव ! उसको तुम सुनो ॥ २ ॥ इस जम्बूद्वीपके किसी पर्वतके कुंजमें वनके समूहोंसे अति महान् महेन्द्र नाम पर्वत है ॥ ३ ॥ कल्पवृक्षके समान वनकी छायामें विश्राम कररहे हैं मुनि और किन्नर लोग जिसमें ऐसा वह पर्वत अपने ऊंचे शृंगोंसे विशाल आकाशकोभी जीतलियाहै ॥ ४ ॥

ब्रह्मलोकांतरप्राप्तशृंगकंदरचारिभिः ॥ सामवेदप्रतिध्वानघुंघुमैर्गायतीवयः ॥ ५ ॥ यःपयोमेदुरैर्मेघैर्लसितैःशृंगकोटिषु ॥ लताकुसुमसंप्रोतैःकुंतलैरिवराजते ॥ ६ ॥ यस्तदोड्डयनोत्कानांशरभाणांविजृंभितैः ॥ विस्फूर्जतिगुहावक्त्रैःकल्पाभ्राणिहसन्निव ॥ ७ ॥ येननिर्झरनिर्ह्रादैःकंदरांतरचारिभिः ॥ समुद्रजलकल्लोलविलासोविजितोभितः ॥ ८ ॥

अर्थ—ब्रह्मलोकके अन्तरालतक प्राप्त शिखरोंकी कन्दरामें विचरनेवालोंसे घुंघुं शब्दयुक्त सामवेदकी प्रतिध्वनिसे मानों जो गान कर रहाहै ॥ ५ ॥ तथा जलसे श्यामवर्ण विद्युत् संयुक्त मेघोंसे और कोटिन शिखरोंपर लता और कुसुमोंसे ऐसे शोभित हो रहाहै जैसे केशोंसे ॥ ६ ॥ और तटोंके ऊपर उडनेवाले अष्टापद नाम मृगोंके शब्दोंसे गुहारूपी मुखोंसे हंसते हुये ऐसी गर्जना मानों कर रहाथा जैसे प्रलयकालके मेघ ॥ ७ ॥ कन्दराओंके मध्यमें उत्पन्न हुये झरनोंके शब्दोंसे जिसने समुद्रके तरंगोंके विलासको जिसने चारोंओरसे जीतलियाथा ॥ ८ ॥

तस्यैकदेशेविततेरत्नसानौमनोरमे ॥ मुनिभिःस्नानपानार्थंव्योमगंगावतारिता ॥ ९ ॥ तस्यास्त्रिपथगायास्तुतीरेविकसितद्रुमे ॥ रत्नाद्रितटविद्योतेकचत्कनकपिंजरे ॥ १० ॥ आसीदभ्युदितज्ञानस्तपोराशिरुदारधीः ॥ मुनिर्दीर्घतपानामतपोमूर्त्तमिवापरम् ॥११॥ मुनेर्बभूवतुस्तस्यपुत्रौद्वाविंदुसुंदरौ ॥ पुण्यपावननामानौद्वौकचाविववाक्पतेः ॥ १२ ॥

अर्थ—उस पर्वतके अति मनोरम और विशाल रत्नमय शिखरके एक देशमें मुनियोंने स्नान और पान करनेके लिये आकाशगंगा अर्थात् मन्दाकिनीको उताराथा ॥ ९ ॥ उस गंगाजीके जलसे विकसित कल्पवृक्ष संयुक्त मेरूके तटके समान प्रकाशशील शोभायमान सुवर्णके सदृश पिंजरयुक्त तटपर ॥ १० ॥ ब्रह्मज्ञान संयुक्त, तपकी राशि, उदार बुद्धि, शरीरधारी तपके समान, दीर्घतपा नाम मुनि रहताथा ॥११ ॥ उस मुनिके चन्द्रमाके समान अति सुन्दर पुण्य और पावननाम दो पुत्र ऐसे हुये जैसे बृहस्पति के दोकच ॥ १२ ॥

सताभ्यांसहपुत्राभ्यांभार्ययाचसहैकया ॥ उवाससरितस्तीरेतस्मिन्सफलपादपे ॥ १३ ॥ अथकालेतयोस्तस्यपुत्रयोर्ज्ञानवानभूत् ॥ पुण्योनामचयोज्येष्ठोगुणज्येष्ठश्चराघव ॥ १४ ॥ पावनोर्द्धप्रबुद्धोभूत्पूर्वसंध्यांबुजंयथा ॥ मौर्ख्यादधिगतोनाप्तःपदेदोलायितःस्थितः ॥ १५ ॥ ततोवहत्यकलितेकालेकलितकारणे ॥ संवत्सरशतेजीर्णदीर्घदेहलतायुषि ॥ १६ ॥

अर्थ—उन दोनों पुत्रोंके तथा एक स्त्रीके साथ वह ब्राह्मण फल संयुक्त वृक्षसहित गंगाजीके तटपर निवास करताथा ॥ १३ ॥ इसके अनन्तर हे राघव ! काल पाकर उन दोनों पुत्रोंमेंसे पुण्यनाम पुत्र जो ज्येष्ठ तथा आयुः और गुणमेंभी ज्येष्ठथा वह ब्रह्मज्ञानी हुआ ॥ १४ ॥ पावन पूर्वकालकी सन्ध्यामें कमलके समान अर्धज्ञानी हुआ वह मूर्खतासे तो निकल गयाथा परन्तु ब्रह्मपदको नहीं पाया इसलिये मध्यहीमें स्थितथा ॥ १५ ॥ इसके पश्चात् प्राणियोंकी आयुःके क्षय करनेमें अलक्षित कारणोंकेभी ग्रास करनेवाले दीर्घ शरीररूपी लता तथा आयुःको जीर्ण करनेवाले शत १०० वर्षरूप कालके बीतनेपर ॥ १६ ॥

अस्माद्भंगुरभूताढ्याद्वृत्तांतशतभीषणात् ॥ रतिमुत्सृज्य संसाराज्जराजर्जरजीवितः ॥ १७ ॥ कल्पनापक्षिणीनीडं देहं दीर्घतपा मुनिः ॥ जहौ गिरिगुहागेहे भारं वैवाधिकोयया ॥ १८ ॥ प्रशांतकलनारंभं चेत्यरिक्तचिदास्पदम् ॥ पदं जगाम नीरागं पुष्पगंध इवांबरम् ॥ १९ ॥ अथ भार्या मुनेर्देहं प्राणापानविवर्जितम् ॥ दृष्ट्वा विलुलितं भूमौ विनालमिव पंकजम् ॥ २० ॥

अर्थ—नाशमान् प्राणियोंसे पूर्ण जन्म वृद्धाऽवस्थामरण नरकादि पतनरूप सैकडों वृत्तान्तोंसे भयंकर इस संसारसे प्रीतिको त्यागकर वृद्धाऽवस्थासे जर्जरीभूत जीवन ॥ १७ ॥ वह दीर्घतपा नाम मुनि कल्पनारूप पक्षिणीके घोसलेके समान अपनी देहको ऐसे त्यागा जैसे पाल्की उठानेवाला अपने बोझेको ॥ १८ ॥ कल्पनाके आरम्भसे रहित विषये शून्य, चेतनरूप, राग द्वेष शून्य ब्रह्मपदको इसप्रकार प्राप्त हुआ जैसे पुष्पका गन्ध आकाशमें ॥ १९ ॥ इसके अनन्तर मुनिकी भार्य्या प्राण और अपान वायुसे वर्जित नालरहित कमलके समान अपने पतिके शरीरको पृथिवीपर देखकर ॥ २० ॥

चिरमभ्यस्तया योगयुक्त्या पतिवितीर्णया ॥ तत्याज तनुमम्लानां षट्पदी पद्मिनीमिव ॥ २१ ॥ भर्त्तारमेवानुययौ जनस्यादृष्टतां गता ॥ प्रभा गगनकोशस्थमस्तं यातमिवोडुपम् ॥ २२ ॥ मातापित्रोस्तु गतयोरौर्ध्वदेहिककर्मणि ॥ पुण्य एव स्थितोऽव्यग्रः पावनो दुःखमाययौ ॥ २३ ॥ शोकोपहतचित्तोसौ भ्रमन्कानवीथिषु ॥ ज्यायांसमनवेक्ष्यैव पावनो विललाप ह ॥ २४ ॥

अर्थ—पतिसे दी हुई चिरकालसे अभ्यस्त योगरूपी युक्तिसे अपने शरीरको ऐसे त्यागदिया जैसे मलिन पद्मिनीको भ्रमरी ॥ २१ ॥ ब्रह्म भावको प्राप्त पतिका अनुगमन उसने किया अर्थात् स्वयं ब्रह्मभावको प्राप्त हुई, और मनुष्योंको अदृष्टताको ऐसे प्राप्त हुई जैसे चन्द्रमाके अस्त होनेपर उसकी प्रभा आकाशके कोशमें ॥ २२ ॥ मृतक माता पिताके दाह आदि क्रिया करनेमें सावधान होके पुण्य नाम पुत्र उपस्थित हुआ और पावन दुःखको प्राप्त हुआ ॥२३॥ शोकसे नष्ट चित्त यह पावन वनके मार्गोंमें भ्रमण करता हुआ ज्येष्ठ पुण्यके धैर्यको न देखकर विलाप करनेलगा॥२४

अथौर्ध्वदेहिकं कृत्वा मातापित्रोरुदारधीः ॥ आययौ विपिने पुण्यः पावनं शोकलालसम् ॥ २५ ॥ पुण्य उवाच ॥ किं पुत्र घनतां शोकं नयस्यांध्यैककारणम् ॥ बाष्पधाराधरं घोरं प्रावृट्काल इवांबुजम् ॥ २६ ॥ पिता तव महाप्राज्ञ गतः सार्द्धं त्वदंबया ॥ स्वामेव परमात्मात्मपदवीं मोक्षनामिकाम् ॥ २७ ॥ तत्स्थानं सर्वजंतूनां तद्रूपं विजितात्मनाम् ॥ स्वभावमभिसंपन्नौ किं पितर्यनुशोचसि ॥ २८ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर दाहादि कियाको करके उदार बुद्धि पुण्य शोकमें निमग्न पावन नाम अपने भ्राताके निकट प्राप्त हुआ ॥ २५ ॥ पुण्य बोला–हे पुत्र ! अन्धताके कारण शोककी घनताको ऐसे क्यों प्राप्त करतेहो जैसे बाष्पकी धारा धारण करनेवाले वर्षाकालमें कमलको वा उसके सदृश नेत्रको ॥ २६ ॥ हे महाप्राज्ञ ! तुमारे पिता माताजीके साथ मोक्ष नामवाली अपनी परमात्म (ब्रह्म) पदवीको प्राप्त हुये ॥ २७ ॥ वही (ब्रह्म) सब जीवोंका स्थानहै वही ब्रह्मवेत्ताओंका रूपहै पिताजीके अपने स्वभावके प्राप्त होनेपर तुम शोच क्यों करतेहो ? अर्थात् शोच व्यर्थ है ॥ २८ ॥

ईदृशी तु त्वया बद्धा भावनेह विमोहजा ॥ संसारे यदशोच्यो पि त्वया तातोनुशोच्यते ॥ २९ ॥ न सैव भद्र तो माता नासावेव पिता तव ॥ न भवानेप तनयस्तयोर्निःसंख्यपुत्रयोः ॥ ३० ॥ मातापितृसहस्राणि समतीतानि ते सुत ॥ बहून्यंबुप्रवाहस्य निम्नानीव वने वने ॥ ३१ ॥ असंख्यपुत्रयोर्नैव भवानेव सुतस्तयोः ॥ सरित्तरंगवत्पुत्रगताः पुत्रगणा नृणाम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—यह मेरी माता, ये मेरे पिता यह भावना जो तुमने बांधी वह अज्ञानसे है क्योंकि इस संसारमें जो शोकके योग्य नहीं है ऐसे पिताकोभी शोचतेहो ॥ २९ ॥ यही तुमारी माता और यही तुमारे पिता नहीं हैं और असंख्य पुत्र जिनके होचुके हैं ऐसे इन माता पिताके तुही पुत्रभी नहीं हो ॥ ३० ॥ हे पुत्र ! तुमारे माता पिता सहस्रों ऐसे बीत गये हैं जैसे जलके प्रवाहके वन २ में अनेक गंभीर (गढे आदि) देश ॥ ३१ ॥ और पुत्रवाले उन माता पिताके तुमी एक पुत्र नहींहो. क्योंकि हे पुत्र ! अन्य मनुष्योंकेभी पुत्रोंके समूहके समूह व्यतीत होगये हैं ॥ ३२ ॥

अस्मत्पित्रोरतीतानि पुत्रलक्षाण्यनेकशः ॥ पत्रकोरकवृंतानि लताविटपयोरिव ॥ ३३ ॥ मित्रबांधववृंदानि जंतोर्जन्मनि जन्मनि ॥ ऋतावृतावतीतानि फलानीव महातरोः ॥ ३४ ॥ शोचनीया यदि स्नेहान्मातापितृसुताः सुत ॥ तदतीतानशोच्यं ते किमजस्रं सहस्रशः ॥ ३५ ॥ प्रपंचोयं महाभाग दृश्यते जागते भ्रमे ॥ परमार्थेन ते प्राज्ञ नास्ति मित्रं न बांधवाः ॥ ३६ ॥

अर्थ—लता तथा वृक्षमें पत्र तथा कलीके सदृश हमारे तुमारे मातापिताके लाखों पुत्र अनेकवार होचुके हैं ॥ ३३ ॥ जीवके मित्र और बांधव आदिके समूहके समूह जन्म २ में ऐसे होते हैं जैसे बडे वृक्षके ऋतु २ में फल ॥ ३४ ॥ हे पुत्र ! यदि प्रेमसे मातापिता तथा पुत्र शोकके योग्यहैं तो अनेकवार सहस्रों वीतेहुये मातापिताके लिये क्यों नहीं शोचते ? ॥ ३५ ॥ हे महाभाग ! जगत्की कल्पनाका निमित्त भ्रम (अज्ञान) होनेहीसे यह जगत् देख पडताहै यथार्थमें तुमारे न मित्रहैं और न बन्धु हैं ॥ ३६ ॥

ननाशइवहिभ्रातःपरमार्थेनविद्यते ॥ महत्यपिचिरातप्तेमराविवपयोलवाः ॥ ३७ ॥ एतायाःप्रेक्षसेलक्ष्मीश्छत्रचामरचंचलाः ॥ स्वप्नएवमहाबुद्धेदिनानित्रीणिपंचवा ॥ ३८ ॥ दृष्ट्यातुपारमार्थिक्यापुसत्यंविचारय ॥ नैवत्वंनवयंचैवभ्रांतिमंतःपरित्यज ॥ ३९ ॥ अयंगतोमृतश्चायमितिदुर्दृष्टयःपुरः। स्वसंकल्पोपपातोत्थादृश्यंतेनतुसत्यतः ॥ ४० ॥ अज्ञानविस्तीर्णमरौविलोलंशुभाशुभस्यंदमयैस्तरंगैः ॥ स्ववासनानाममरीचिवारिपरिस्फुरत्येतदनंतरूपम् ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे पावनबोधनं नामैकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

अर्थ—हे भ्रातः! जैसे चिरकालसे अति संतप्त मरूस्थलमें जलके लेशभी नहीं हैं ऐसेही परमार्थ दृष्टिसे आत्मामें (ब्रह्मके स्वभावमें) नाशभी कुछ नहीं है ॥ ३७ ॥ हे महाबुद्धे ! छत्र चमर आदि यह जो चंचल राज्य आदि लक्ष्मीको देखते हो यह सब तीन वा पांच दिन अर्थात् अल्पकालके लिये हैं ॥ ३८ ॥ हे पुत्र[1] ! परमार्थ दृष्टिसे तुम सत्यको विचारो न तुमहो और न हम हैं, यह तुमहम भ्रमको अपने अन्तःकरणसे त्यागो ॥ ३९ ॥ यह गया, यह मृतक हुआ इत्यादि कुदृष्टियां अपनेही संकल्पके भ्रमसे आविर्भूत सम्मुख देख पडती हैं यथार्थमें ये सत्य नहीं हैं ॥ ४० ॥ अज्ञानरूप संतापसे आच्छादित मरूस्थलरूप आत्मामें शुभाऽशुभ कर्मरूप स्पन्दमय तरंगोंसे चंचल अपनी वासनारूप मृगतृष्णाका जलही यह अनन्त संसाररूपसे परिस्फुरित हो रहाहै ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे पावनबोधनं नामैकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

विंशः सर्गः ॥ २० ॥

इस २० के सर्गमें पुण्य अपने भाईके शोक दूर करनेको पावनके तथा अपने नानायोनियोंमें जन्मोंका वर्णन कियाहै ॥

॥ पुण्यउवाच ॥ कःपिताकिंचवामित्रंकामाताकेचबांधवाः ॥ स्वबुद्ध्यैवावधूयंतेवात्ययाजनपांसवः ॥ १ ॥ बंधुमित्रसुतस्नेहद्वेषमोहदशामयः ॥ स्वसंज्ञामात्रकेणैवप्रपंचोवितन्यते ॥ २ ॥ बंधुत्वेभावितोबंधुःपरत्वेभावितःपरः ॥ विषामृतदशेवेहस्थितिर्भावनिबंधनी ॥ ३ ॥ एकत्वेविद्यमानस्यसर्वगस्यकिलात्मनः ॥ अयंबंधुःपरश्चायमित्यसौकलनाकुतः ॥ ४ ॥

अर्थ—पुण्य बोला—कौन पिता, कौन मित्र और कौन माता तथा बन्धु; ये सब अपनी भ्रान्तिहीसे उत्थापित (उत्पन्न) ऐसे किये जाते हैं जैसे महान् वायुसे मनुष्योंके लिये धूलि ॥ १ ॥ बंधु, मित्र, पुत्र, इनमें राग द्वेष तथा मोहमय दशारूप रागयुक्त इस प्रपंचको आत्मा अपनेही संकेतमात्रसे विस्तारित करताहै ॥ २ ॥ बन्धुतामें दृढ भावना करनेसे बन्धु तथा शत्रुतामें दृढ भावना करनेसे शत्रु प्राणी शत्रु होजाताहै विष और अमृतकी दशाके सदृश अर्थात् जैसे विषके कीडाको विषमेंही जीवनकी हेतुताकी भावनासे अमृत, और अन्यको उसके विरुद्ध भावनासे विष होजाताहै ऐसेही इस संसारमें स्थिति भावनाकेही आधीन है ॥ ३ ॥ सब देहोंमें एक (अभिन्न) रूपसे विद्यमान सर्वव्यापी आत्माके यह बन्धु यह मित्र, तथा यह कल्पना कहां ॥ ४ ॥

रक्तमांसास्थिसंघाताद्देहादेवास्थिपंजरात् ॥ कोहंस्यामितिचित्तेनस्वयंपुत्रविचारय ॥ ५ ॥ दृष्ट्यातुपारमार्थिक्यानकश्चित्त्वंनवास्म्यहम् ॥ मिथ्याज्ञानमिदंपुण्यःपावनश्चेतिवल्गति ॥ ६ ॥ कस्तेपिताकश्चसुहृत्कामाताकश्चवापरः ॥ खस्यानंतविलासस्यकिमस्वंकिंस्वमुच्यताम् ॥ ७ ॥ असिचेत्त्वंतदन्येषुयातेषुबहुजन्मसु ॥ येबंधवोयेविभवाःकितानपिनशोचसि ॥ ८ ॥

---

(१) " ज्येष्ठभ्राता समःपिता " (ज्येष्ठ भाई पिताके तुल्यहै इस हेतुसे कई स्थानमें भ्राताको पुत्र कहा है) ॥

अर्थ—रक्त, मांस; तथा अस्थि (हड्डी) के संघातरूप इस देहके पंजरसे अन्य चेतन स्वभाव अपने आत्माको चित्तसे विचारो कि हम कौनहैं ॥ ५ ॥ परमार्थ दृष्टिसे देखो पावन शब्द वाच्य तुम, और पुण्य शब्द वाच्य हम कुछ नहीं हैं, देहमें आत्मताका अभिमानरूप मिथ्याज्ञानसे प्रसिद्ध होरहाहै ॥ ६ ॥ शरीर दृष्टिसे नाश होनेसे कौन तुमारा पिता, कौन तुमारा मित्र, कौन माता, और कौन शत्रु है और देहादि उपाधिसे पृथक् शुद्धचेतन दृष्टिसे अनन्त विलास चिदात्माको कौन अपना और कौन पराया ॥ ७ ॥ यदि लिंग सूक्ष्म शरीर दृष्टिसे अहं तथा बंधु आदि व्यवहारसे कहो तो यदि तुम हमसे पृथक् लिंग शरीरात्मा तुम हो तो भूत जन्मोंके बन्धु तथा धन आदिको क्यों नहीं शोचते हो ॥ ८ ॥

बभूवुस्तेसुपुष्पासुस्थलीषुमृगयोनिषु ॥ बहवोबंधवोमार्गास्तान्कथंनानुशोचसि ॥ ९ ॥ बभूवुस्ते सपद्मासुतटीष्वंभोजिनीषुते ॥ हंसस्यबंधवोहंसास्तान्कथंनानुशोचसि ॥ १० ॥ बभूवुस्तेलमन्यत्र चित्रासुवनराजिषु ॥ बहवोबंधवोवृक्षास्तान्कथंनानुशोचसि ॥ ११ ॥ बभूवुस्तेमहोग्रेषुशिखरेषुमही भृताम् ॥ बहवोबांधवाःसिंहास्तान्कथंनानुशोचसि ॥ १२ ॥

अर्थ—पुष्पसहित बनकी स्थलियोंमें मृगयोनियोंमें बहुतसे मृगयोनिमें उत्पन्न तुमारे बन्धु हुये हैं, उनके क्यों नहीं शोचते ॥ ९ ॥ कमलसहित नदी आदिकी तटियोंमें तथा कमलके वनोंमें हंसरूप तुमारे अनेक वे २ प्रसिद्ध हंस बन्धु हुये थे उनको क्यों नहीं शोचते ॥ १० ॥ औरभी अन्य विचित्र बनकी पंक्तियोंमें बहुतसे वृक्ष तुमारे बंधु हुये हैं उनको क्यों नहीं शोचते हो ॥ ११ ॥ बडे २ पर्वतोंके महान् भयंकर और अति उच्च शिखरोंपर अनेक सिंह तुमारे बंधु हुये हैं उनको क्यों नहीं शोचते ॥ १२ ॥

बभूवुस्तेस्रवंतीषुसरःस्वंभोजिनीषुच ॥ बहवोबंधवोमत्स्यास्तान्कथंनानुशोचसि ॥ १३ ॥ बभूविथ दशार्णेषुकपिलोवनवानरः ॥ राजपुत्रस्तुपारेषुपुंड्रेषुवनवायसः ॥ १४ ॥ हैहयेषुचमातंगस्त्रिगर्त्तेषुच गर्द्दभः ॥ शाल्वेषुसरमापुत्रःपतत्रीसरलद्रुमे ॥ १५ ॥ विंध्याद्रौपिप्पलोभूत्वाघुणोभूत्वामहावटे ॥ मंदरेकुक्कुटोभूत्वाविप्रोजातोसिकंदरे ॥ १६ ॥

अर्थ—अनेक कमलसहित नदियोंमें बहुतसे मत्स्य तुमारे बंधु हुये हैं उनको क्यों नहीं शोचते ॥ १३ ॥ हे भ्रातः! तुम दशार्ण नाम देशमें कपिल वनके वानर तुषार देशके राजाके पुत्र पुण्ड्रदेशमें बनके काक हुये हो ॥ १४ ॥ हैहयदेशमें हस्ती, त्रिगर्तदेशमें गर्दभ, शाल्वदेशमें कुत्ते और सरलके वृक्षमें पक्षी तुम हुये हो ॥ १५ ॥ विन्ध्याचलमें पिप्पल, महावटके वृक्षमें घुण; मन्दराचलमें कुक्कुट (मुर्गा) होके इस पर्वतकी कन्दरामें ब्राह्मण उत्पन्न हुए हो॥१६॥

कोसलेषुद्विजोभूत्वाभूत्वावंगेषुतित्तिरिः ॥ अश्वोभूत्वातुषारेषुजातस्त्वंब्रह्मणोध्वरे ॥ १७ ॥ यःकीट स्तालकंदांतर्मशकोयउदुंबरे ॥ यःप्राग्बकोविंध्यवनेसत्वंपुत्रममानुजः ॥ १८ ॥ हिमवत्कंदरेभूर्जत्वग्ग्रंथिकोटरे ॥ पिपीलिकोयःषण्मासान्सोयंत्वमनुजोमम ॥ १९ ॥ स्थितःसीमांतकुग्रामगोमयेय श्चवृश्चिकः ॥ सार्द्धसंवत्सरंसाधोसोयंत्वमनुजोमम ॥ २० ॥

अर्थ—कोशलदेशमें ब्राह्मण, वंगदेशमें तित्तिर, और तुषारदेशमें अश्व होके ब्राह्मणके घरमें तुम उत्पन्न हुये ॥ १७ ॥ जो तुम प्रथम तालकी जडमें कीडे गूलरके वृक्षमें मच्छड हुयेहो, और विन्ध्याचलमें बक हुयेथे वही तुम अब हमारे छोटे भ्राता हुयेहो! ॥ १८ ॥ जो तुम हिमालयकी कन्दराके भोजपत्रके कोमल त्वचाकी ग्रन्थिके कोटरमें छ ६ मासतक चेंटी हुयेथे वही तुम अब मेरे लघु भ्राता हुयेहो ॥ १९ ॥ हे साधो! इसी अपने देशकी सीमाके अन्तमें कुग्रामके शुष्क गोवरमें डेढ वर्षतक जो तुम वृश्चिक हुयेथे वही तुम अब मेरे लघु भ्राता हुयेहो ॥ २० ॥

पुलिंदीस्तनपीठेषुनिलीनंयेनकानने ॥ षट्पदेनेवपद्मेषुसोयंत्वमनुजोमम॥२१॥ एतास्वन्यासुबह्वीषुजन योनिषुपुत्रक ॥ जातोसिजंबूद्वीपेस्मिन्पुराशतसहस्रशः ॥ २२ ॥ इत्थंतवात्मनश्चैवप्राक्तनंवासनाक्रमम् ॥ पश्यामिसूक्ष्मयाबुद्ध्यासम्यग्दर्शनशुद्धया ॥ २३ ॥ ममापिबह्व्योबहुधायोनयोमोहमंथराः ॥ समतीताःस्मराम्यद्यताज्ञानोदितयादृशा ॥ २४ ॥

अर्थ—जैसे कमलमें भ्रमर छिपताहै ऐसेही जिस तुमने चाण्डालकीके स्तन पीठमें छिपे (चाण्डालीके पुत्र हुये) थे वही तुम अब मेरे छोटे भ्राता हुयेहो ॥ २१ ॥ हे पुत्र! इन तथा अन्य प्राणियोंकी योनियोंमें इसी जम्बूद्वीपमें तुम पूर्वकालमें सहस्रों वार उत्पन्न हुयेथे ॥ २२ ॥ इसप्रकार तुमारे तथा अपने पूर्वकालके वासनाके क्रमको सूक्ष्म दर्शनसे शुद्ध सूक्ष्म बुद्धिसे मैं देखताहुं ॥ २३ ॥ मैं अपनीभी अज्ञान जड बीती हुई अनेक योनियोंको इससमय ज्ञानसे उदित दृष्टिसे स्मरण करताहूं ॥ २४ ॥

त्रिगर्तेषुशुको भूत्वा भेको भूत्वासरित्तटे ॥ वनेषुलावको भूत्वाजातोहमिहकानने ॥ २५ ॥ भुक्त्वापुलिं दतांविंध्येकृत्वावंगेषुवृक्षताम् ॥ उष्ट्रत्वमपिविंध्याद्रौजातोहमिहकानने ॥ २६ ॥ यश्चातकोहिमगिरौ योराजापौंड्रमंडले ॥ व्याघ्रोयःसह्यकुंजेषुसएवाहंतवाग्रजः ॥ २७ ॥ योगृध्रोदशवर्षाणियोग्राहोमास पंचकम् ॥ यःसमानांशतंसिंहःसएवेहतवाग्रजः ॥ २८ ॥

अर्थ—त्रिगर्त देशमें शुक नदीके तटपर मण्डूक बनोंमें छोटा पक्षी होके अब इस बनमें उत्पन्न हुआहुं ॥ २५ ॥ विन्ध्याचलमें चाण्डालयोनिको वंगदेशमें वृक्षयोनिको और विन्ध्याचलमें पुनः उष्ट्रयोनिको देखके इस बनमें उत्पन्न हुआहुं ॥ २६ ॥ जो हिमालय चातक पोण्ड्रमण्डलमें राजा सह्य पर्वतके कुंजोंमें व्याघ्र हुआथा वही अब तुमारा ज्येष्ठ भ्राता हुआहै ॥ २७ ॥ जो दश वर्ष पर्य्यन्त गृध्र पांच मासतक ग्राह और शत (१००) वर्षतक सिंहथा वही अब तुमारा बडा भ्राताहै ॥ २८ ॥

आंध्रग्रामचकोरेणतुषारनृपराजिना ॥ श्रीशैलाचार्यपुत्रेणदंभवत्कथ्यतेमया ॥ २९ ॥ सर्वैर्विविधसंसा रांविविधाचारचेष्टिताः ॥ विलासाजन्मनोभ्रांतेःस्मर्यंतेप्राक्तनामया ॥ ३० ॥ एवंस्थितेजगज्जाताबांध वाःशतशोगताः ॥ पितरोमातरश्चैवभ्रातरःसुहृदस्तथा ॥ ३१ ॥ कांस्तान्समनुशोचावोनशोचावश्च कानपि ॥ बंधूनिहातिशोचावईदृश्येवजगद्गतिः ॥ ३२ ॥

अर्थ—आंध्रदेशके चकोर, हिम संयुक्त देशमें मांडलिक राजाके सदृश शोभायमान श्रीशैलाचार्य्यके पुत्र यह मैं तुमसे दंभके समान कहताहुं ॥ २९ ॥ विविधप्रकारके संसारसहित, और नानाप्रकारके आचार तथा चेष्टा संयुक्त जन्मभेदकी भ्रान्तिके पूर्वकालके विलास इससमय मैं स्मरण करताहुं ॥ ३० ॥ ऐसा सिद्धान्त होनेसे इस जगत्में उत्पन्न सैकडों बन्धु, माता, पिता, भ्राता, तथा मित्रहोचुके ॥ ३१ ॥ उनमेंसे किन बन्धुओंमेंसे हम तुम किनको तो शोचें और किनको न शोचें क्योंकि इस जगत्की दशा ऐसीही है ॥ ३२ ॥

अनंताःपितरोयांतियांत्यनंताश्चमातरः ॥ इहसंसारिणांपुंसांवनपादपपर्णवत् ॥३३॥ किंप्रमाणमतः पुत्रदुःखस्यात्रसुखस्यच ॥ तस्मात्सर्वंपरित्यज्यतिष्ठावःस्वच्छतांगतौ ॥ ३४ ॥ प्रपंचभावनांत्यक्त्वा मनस्यहमितिस्थिताम् ॥ तांगतिंगच्छभद्रंतेयांयांतिगतिकोविदाः ॥ ३५ ॥ इहाजवंजवीभावंपतनो त्पातनात्मकम् ॥ नचशोचंतिसुधियश्चिरंवर्त्तंतिकेवलम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—इस लोकमें बनके वृक्षके पत्तेके समान संसारीपुरूषोंके अनन्त पिता और अनन्तमाता होती चली जाती हैं ॥ ३३ ॥ हे पुत्र ! इसलिये इस संसारमें दुःख वा सुखका क्या प्रमाण (ठिकाना) है इसकारण स्व वा दृश्यमात्रको त्यागकर स्वच्छताको प्राप्त होके स्थितहैं ॥३४॥ हे भ्रातः ! मनमें अहंरूपसे स्थित जो प्रपंचरूपहै ॥ नाहै उसे त्यागकर जिस गतिको आत्मज्ञानी लोग जाते हैं उस गतिको प्राप्त होओ, तुमारा कल्याणहो ॥ ३५ ॥ संसारमें नीचे गिरना, ऊपर चढनारूप निरन्तर चक्रभ्रमण होरहाहै इसको बुद्धिमान् लोग चिरकालतक नहीं शोचते किन्तु निरभिमानतासे यथाप्राप्त व्यवहार करते हैं ॥ ३६ ॥

भावाभावविनिर्मुक्तंजरामरणवर्जितम् ॥ संस्मरात्मानमव्यग्रोमाविमूढमनाभव ॥ ३७ ॥ नतेदुःखंनते जन्मनतेमातानतेपिता ॥ आत्मैवासिनसद्बुद्धेत्वमन्यःकश्चिदेवहि ॥ ३८ ॥ अस्यांसंसारयात्रायांना नाभिनयदायिनः ॥ अज्ञाएवनराःसाधुरसभावसमन्विताः ॥ ३९ ॥ मध्यस्थदृष्टयःस्वस्थायथाप्राप्ता र्थदर्शिनः ॥ तज्ज्ञास्तुप्रेक्षकाएवसाक्षिधर्मेव्यवस्थिताः ॥ ४० ॥

अर्थ—हे भ्रातः! भाव तथा अभावसे विनिर्मुक्त, तथा जरा (वृद्धाऽवस्था) से शून्य जो आत्माहै उसको सावधान होके स्मरण करो, और मूढमनवाले न होओ ॥३७॥ हे सद्बुद्धे ! तुमारे न माताहै न पिताहै, न तुमको दुःखहै न जन्महै तुम तो शुद्धआत्माहो अन्य (देहादि) कोई नहीं हो ॥ ३८ ॥ इस संसारकी यात्रामें, नानाप्रकारकी चेष्टा करनेवाले और पुरूषार्थमें सारबुद्धिसहित अज्ञानी मनुष्यहैं ॥ ३९ ॥ और तत्वज्ञानी तो मध्यस्थदृष्टि (उदासीन) स्वस्थ, यथाप्राप्त अर्थके द्रष्टा दर्शनके समान स्थित केवल साक्षी धर्ममात्रमें स्थितहैं ॥ ४० ॥

कर्त्तारोपिनकर्त्तारोयथादीपानिशागमे॥ आलोककर्मणामेवंतज्ज्ञालोकास्थिताविह॥४१॥प्रतिबिंबेनदृश्यं तेस्वात्मबिंबगतैरवि॥यथादर्पणरत्नाद्यास्तथाकार्येमहाधियः ॥४२॥ सर्वैषणामयकलंकविवर्जितेनस्व स्थात्मभावकलितेनहृदब्जमध्ये॥पुत्रात्मनात्मनिमहामुनिनामुनैवसंत्यज्यसंभ्रममलंपरितोषमेहि॥४३॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे पावनबोधो नाम विंशः सर्गः ॥ २० ॥

अर्थ—रात्रिके आगमन दीपक जैसे सन्निधिमात्रसे प्रकाश क्रियाके कर्ताके सदृश कर्ता, और अभिमानसे व्याप्त न होनेसे अकर्तारूप तत्वज्ञानी जब इस संसारमें स्थितहैं ॥ ४१ ॥ आत्माके अध्यस्त कार्य्यके कर्ता होते हुयेभी तत्वज्ञानी अपने स्वरूपसे ऐसे नहीं प्रविष्ट होते जैसे प्रतिबिम्बकी उपाधिभूत हस्त आदिमें प्राप्त दर्पण रत्न आदि अपने बिम्बभूत सब देह धर्म्मोंके साथभी उनको प्रतिबिंब करनेपर बिंबधर्म्मके समान स्वयं नहीं देख पडते ॥ ४२ ॥ हे पुत्र ! सम्पूर्ण एषाणामय कलंकसे वर्जित, महामुनि महामननशील, और हृदय कमलके मध्यमें स्थित स्व... आत्मभावसे निजसेही साक्षात्कार किये हुये इसी आत्मासे सम्पूर्ण संसारके भ्रमको त्यागके परिशिष्ट (बाकी रहे) इसी आत्मासे सन्तोषको प्राप्त होओ ॥ ४३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे पावनबोधोनाम विंशः सर्गः ॥ २० ॥

एकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

तृष्णाका क्षय जो है वही मोक्षहै और आशासेही चित्तकी अनेक वृत्तियां होती हैं और आशा रहित आत्मज्ञानसे पूर्ण प्राणीकी मुक्ति स्वतः सिद्धहै यह विषय २१ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवंप्रबोधितस्तेनतदापुण्येनपावनः ॥ प्रबोधमापप्रकाश्यंप्रभातइवभूतलम् ॥ १ ॥ उभावपिततःसिद्धौज्ञानविज्ञानपारगौ ॥ विचेरतुर्वनेतस्मिन्यावदिच्छमनिंदितौ ॥ २ ॥ ततः कदाचित्कालेननिर्वाणपदमागतौ ॥ तौविदेहौगतस्नेहौदीपाविवशमंगतौ ॥ ३ ॥ एवंप्राग्भुक्तदेहानामनंताजनबंधुता ॥ आःकैःकिंगृह्यतेताभ्यःकिंवासंत्यज्यतेनघ ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! उससमय इसप्रकार पुण्यसे बोधित पावन ज्ञान इसप्रकार पाया जैसे प्रातःकालमें भूतल प्रकाशको ॥ १ ॥ इसके पश्चात् दोनों सिद्ध ज्ञान विज्ञान पारंगत निन्दारहित सिद्ध होगये और उसी बनमें विचरने लगे ॥ २ ॥ इसके पश्चात् वे दोनों देहरहित कालपाके निर्वाणपदको ऐसे प्राप्त हुये जैसे स्नेहरहित दो दीप शान्तिको ॥ ३ ॥ इसप्रकार पूर्व मुक्त देहोंके अनन्त ये बन्धुओंके अनेक समूहहैं, अहो ! हे पापरहित रामजी ! उनमेंसे किसको ग्रहण करे और किसको त्यागे ॥ ४ ॥

...दासामनंतानांतृष्णानांरघुनंदन ॥ उपायस्त्यागएवैकोननामपरिपालनम् ॥ ५ ॥ चिंतनेनैधतेचिंधनेनेवपावकः ॥ नश्यत्यचिंतनेनैवविनेंधनमिवानलः ॥ ६ ॥ ध्येयत्यागरथारूढःकरुणोदारयादृशा ॥ लोकमालोकयन्दीनमातिष्ठोत्तिष्ठराघव ॥७॥ एषाब्राह्मीस्थितिःस्वच्छानिष्कामाविगतामया ॥ एनांप्राप्यमहाबाहोविमूढोपिनमुह्यति ॥ ८ ॥

अर्थ—इसलिये हे रघुनंदन ! सब शोकादिके मूलभूत, प्रत्येक विषयोंमें अनन्त तृष्णाओंको त्यागनाही शान्तिका उपायहै, न कि विषयके सम्प्रदानसे उनका बढाना ॥ ५ ॥ जैसे इन्धनसे अग्नि बढताहै ऐसेही चिन्तनसे चिन्ता बढतीहै, बिना चिन्तासे ऐसे नष्ट होती है जैसे बिना इन्धनसे अग्नि ॥ ६ ॥ हे रघुनन्दन ! ध्येयनाम वासनाके त्यागरूप रथपर आरूढ होके करूणासे उदार दृष्टिसे दीनजनोंको देखते हुये प्रकृत व्यवहारोंको करो ॥ ७ ॥ हे महाबाहो ! यह अति निर्म्मल, निष्काम उपाधिरहित ब्रह्म सम्बन्धी स्थिति है, इसको पाकर लोक व्यवहारमें चतुरतारहितभी प्राणी मोहको नहीं प्राप्त होता ॥ ८ ॥

एकंविवेकंसुहृदमेकांप्रौढसखींधियम् ॥ आदायविहरन्नेवंसंकटेषुनमुह्यति ॥ ९ ॥ विनिवारितसर्वार्थादपहस्तितबांधवात् ॥ नस्वधैर्यादृतेकश्चिदभ्युद्धरतिसंकटात् ॥ १० ॥ वैराग्येणाथशास्त्रेणमहत्त्वादिगुणैरपि ॥ यत्नेनापद्विघातार्थंस्वयमेवोन्नयेन्मनः ॥ ११ ॥ नतत्त्रिभुवनैश्वर्यान्नकोशाद्रत्नधारिणः ॥ फलमासाद्यतेचित्ताद्यन्महत्त्वोपबृंहितात् ॥ १२ ॥

अर्थ—एक विवेकरूप मित्र तथा परमार्थ बोधरूप प्रियसखी (स्त्री) को साथ लेके विहार करते हुये संकटमेंभी मोहित नहीं होता ॥ ९ ॥ धनोंके त्याग, बांधवोंके हस्तसे दूर करने तथा अपने धैर्य्यसे अन्य कोईभी मनुष्यको संकटसे उद्धार नहीं करता ॥ १० ॥ वैराग्यसे, शास्त्रसे और महत्वादि गुणोंसे यत्नसे आपत्तिके विघातके लिये अपनेको विषयरूप गर्तसे निकालो ॥ ११ ॥ हे रामजी ! तुच्छ विषयोंके त्यागसे वृद्धिको प्राप्त चित्तसे जो फल प्राप्त होताहै वह त्रिभुवनके ऐश्वर्य्यसे वा रत्नके कोशसे नहीं प्राप्त होताहै ॥ १२ ॥

तदेतस्मिञ्जगत्कुक्षौपातोत्पातनदोलनैः ॥ पतंतिरुषयेवैमनस्तेषांगतज्वरम् ॥ १३ ॥ पूर्णेमनसिसंपूर्णंजगत्सर्वंसुधाद्रवैः ॥ उपानद्गूढपादस्यनतुचर्मास्तृतैवभूः ॥ १४ ॥ वैराग्यात्पूर्णतामेतिमनोनाशावशानुगम् ॥ आशयारिक्ततामेतिशरदेवसरोमलम् ॥ १५ ॥ हृदयंशून्यतामेतिप्रकटीकृतकोटरम् ॥ अगस्तिपीतार्णववदाशाविवशचेतसाम् ॥ १६ ॥

अर्थ—इस कारणसे अधोगति ऊर्ध्वगति तथा मृत्युलोकमें जन्म परम्पराओंसे जो लोग इस संसारकी कुक्षि (कोख) में हैं उनका मन सदा संतापसहितहै ॥ १३ ॥ और ब्रह्मज्ञानसे पूर्ण मनके होनेपर सम्पूर्ण जगत् सुधारूपसे मानो पूर्ण है क्योंकि उपानत् (जूते) से आच्छादित पादवालेके अर्थ मानों सम्पूर्ण पृथिवी कोमल चर्म्मसेही आच्छादितहै ॥ १४ ॥ जो मन आशाके वशमें नहीं है वह वैराग्यसे पूर्णताको प्राप्त होताहै और आशासे समुद्रके उदरके समान ऐसे खाली होजाताहै जैसे शरदृऋतुसे भिन्न तडागका मल ॥ १५ ॥ आशासे विवश चित्तवालोंका हृदय अन्तर्गत लोभ दैन्यादि दोषोंको प्रगटतापूर्वक ऐसे शून्यताको प्राप्त होताहै जैसे आगस्तिऋषिके पीनेपर समुद्र ॥ १६ ॥

यस्यचित्ततरौस्फारेतृष्णाचपलमर्कटी ॥ नवल्गतिमहत्तस्यराजतेहृद्वनंततम् ॥ १७ ॥ पद्माक्षकोशंत्रिजगद्गोष्पदंयोजनव्रजम् ॥ निमेषार्द्धंमहाकल्पःस्पृहारहितचेतसाम् ॥ १८ ॥ शीततासानशीतांशोर्नहिमाचलकंदरे ॥ नरंभाचंदनावल्यांनिःस्पृहेषुमनस्सुया ॥ १९ ॥ नतथाभातिपूर्णेंदुर्नपूर्णःक्षीरसागरः ॥ नलक्ष्मीवदनंकांतंस्पृहाहीनंयथामनः ॥ २० ॥

अर्थ—जिसके शान्त वैराग्यादि फलसे चित्तरूप महावृक्षपर तृष्णा चंचल मर्कटी (वानरही) नहीं गर्जती उनका मन बुद्धि, चित्त तथा अहंकार यह चार प्रकारके वृक्षोंसे व्यापक हृदयरूप वन शोभित होताहै ॥ १७ ॥ इच्छारहित तथा ब्रह्मज्ञानसे पूर्णचित्तवालोंको तीनों लोक कमलके कोश (कमलबीज) के समानहैं जो जनोंका समूह गौओंके खुरके सदृशहै और महाकल्पभी निमेषका अर्धभागहै ॥ १८ ॥ चन्द्रमामें वह शीतलता नहीं है हिमालयकी कंदरामें तथा रम्भा (केला) वा चन्दनोंकी पंक्तियोंमेंभी वह शीतलता नहीं है जो निस्पृह पुरुषोंके मनमें है ॥१९॥ पूर्णचन्द्र, क्षीणसार, और लक्ष्मीके मुखमें वह शोभा नहीं है जैसीकी स्पृहा (पदार्थकी इच्छा) रहित मनमें है ॥ २० ॥

यथाब्दलेखाशशिनंसुधालेपंमषीयथा ॥ दूषयत्येवमेवांतर्नरमाशापिशाचिका ॥ २१ ॥ आशाख्याश्चित्तवृक्षस्यशाखाःस्थगितदिक्तटाः ॥ तासुच्छिन्नास्वरूपत्वंयातिचित्तमहाद्रुमः ॥ २२ ॥ छिन्नतृष्णामहाशाखेचित्तस्थाणौस्थितिंगते ॥ एकरूपतयाधैर्यंप्रयातिशतशाखताम् ॥ २३ ॥ अनस्तमितधैर्येगते नचित्तेक्षयंगते ॥ तत्पदंप्राप्यतेरामयत्रनाशोनविद्यते ॥ २४ ॥

अर्थ—जैसे चन्द्रलेखाको मेघमण्डल चूनाके लेपको वर्षा दूषित करती है इसीप्रकार मनुष्यके अन्तःकरणको आशारूप पिशाचिका ॥ २१ ॥ चित्तरूप वृक्षकी आशारूप शाखाये दिगन्तोंको आच्छादन करलियाहै और उन शाखाओंके छिन्न होनेपर चित्तरूप महावृक्ष ब्रह्म (पक्षमें स्थाणु) रूपताको प्राप्त होताहै ॥ २२ ॥ छिन्न तृष्णारूप महाशाखाओंसे शोभित चित्तरूप स्थाणुके स्थित होनेपर एकरूप (अल्प) तासे जो धैर्य है वह शत शाखता (वृद्धि) को प्राप्त होताहै ॥ २३ ॥ हे रामजी ! जिसका धैर्य्य अस्त नहीं है अर्थात् वैराग्य जितेन्द्रियत्व द्वन्द्वसहिष्णुतादि धैर्य्ययुक्त पुरुष उस पदको प्राप्त होताहै जिसका नाश नहीं है ॥ २४ ॥

एतासांचित्तवृत्तीनामाशानासुत्तमाशयः ॥ नददासिप्रहरोहंचेत्तद्भयंनास्तिराघव ॥२५॥ चित्तंवृत्तिविहीनंतेयदाय—हे भ्रातततताम् ॥ तदामोक्षमयीमंतःसत्तामाप्नोषितांतताम् ॥ २६ ॥ चित्तकौशिकपक्षिण्यातृष्णयाक्षु रण करो, ॐ अमंगलानिविस्तारमलमायांतिराघव ॥ २७ ॥ चिंतनवृत्तिरित्युक्तंवर्त्ततेचित्तमाशया ॥ चि तो शुद्धआत्मा शांत्यक्त्वानिश्चित्ततांव्रज ॥ २८ ॥ योययावर्त्ततेवृत्त्यासतयैवविनाक्षयी ॥ अतश्चित्त परमार्थमें सार क्षयंनय ॥ २९ ॥ प्रशमितसकलैषणोमहात्मन्भवभवबंधमपास्यमुक्तचित्तः ॥ मनसिनिगडे ःकदाशाःपरिगलिताशुचतासुकोनमुक्तः ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशम प्रकरणे तृष्णाविचिकित्सायोगोत्पत्तिर्नामैकाविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

अर्थ—हे रामजी ! उत्तम अन्तःकरणयुक्त होके यदि इन चित्तकी वृत्तियोंके उत्पन्न होनेके अर्थ स्थान नहीं दोगे तो जन्मादिका भय तुमको नहीं है ॥ २५ ॥ हे रामजी ! जब चित्तकी वृत्तिसे हीन तुमारा चित्त अचित्तता दशाको प्राप्त होगा तभी तुम उस पूर्ण मोक्षमयी सत्ताको प्राप्त होओगे ॥ २६ ॥ हे राघव ! जब क्षुब्धरूपसे तुमारे चित्तमें तृष्णारूप उल्लूकी स्थितहै तब तुमारे अमंगल पूर्णरीतिसे विस्तारको प्राप्त होंगे ॥ २७ ॥ चिन्तनकी वृत्ति (चित्त

वृत्ति) कहते हैं और वह चित्तवृत्ति आशासे प्रवृत्त होती हैं इसलिये आशारूप चित्तवृत्तिको त्यागकर निश्चितता दशाको प्राप्त होओ ॥ २८ ॥ जो जिस वृत्तिसे है उसका क्षय उसी वृत्तिके अभावसे होताहै इसकारण चित्तके शान्तिके लिये चित्तकी वृत्तिका क्षय करो ॥ २९ ॥ हे महात्मन् ! तुम पुत्र, चित्त तथा लोक सम्पूर्णकी अन्वेषणा (इच्छा) को शान्त करके और आशानाम संसारके बन्धनको छोडके मुक्तचित्त होके जीवन्मुक्त होजाओ, क्योंकि मनमें जो दुष्ट आशाहैं वेही आत्माके बन्धनके लिये बैलकी रस्सी हैं उन दुष्ट आशाओंके नष्ट होनेपर कौन प्राणी मुक्त नहीं होसकता ॥ ३० ॥



इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे तृष्णाविचिकित्सा योगोपदेशो नामैकविंशःसर्गः ॥ २१ ॥

द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

बलिके आख्यानका उपक्रम (आरम्भ) करके इस २२ के सर्गमें पातालका तथा बलिका राज्य और वैराग्यसे मेरूके शिखरपर विचारणा इत्यादि विषयोंका वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ अथवारघुवंशाख्यनभःपूर्णनिशाकर ॥ बलिवद्बुद्धिभेदेनज्ञानमासादयामलम् ॥ १ ॥ श्रीरामउवाच ॥ ॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञत्वत्प्रसदान्मयाहृदि ॥ प्राप्तंप्राप्तव्यमखिलविश्रांतंचामलेपदे ॥ २ ॥ शरदीवांबरादभ्रमदभ्रंममचेतसः ॥ विभोव्यपगतंसर्वंतृष्णाख्यंतन्महातमः ॥ ३ ॥ अमृतापूरितःस्वस्थःशीतलात्मामहाद्युतिः ॥ तिष्ठाम्यानंदवानंतःसायंपूर्णइवोडुराट् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे पूर्णचन्द्र सदृश रघुवंशमणे ! अकस्मात् बुद्धिके उदयसे पूर्ण रीतिसे तुम बलिके तुल्य ज्ञान प्राप्त करो ॥ १ ॥ श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! हे सर्व धर्मज्ञ ! आपकी कृपासे हृदयमें संपूर्ण प्राप्तव्य प्राप्त किया और निर्म्मल पदमें विश्रामभी पाया ॥ २ ॥ हे प्रभो ! जैसे शरत्कालमें आकाशसे शीघ्रही महामेघमण्डलभी नष्ट होजाताहै ऐसेही मेरे चित्तासे वह तृष्णारूप महातम नष्ट होगया ॥ ३ ॥ हे भगवन् ! ज्ञानरूप अमृतसे सर्वथा पूर्ण शीतल चित्त और महाप्रकाशयुक्त और अन्तःकरणमें आनन्दसहित सायंकालमें पूर्ण चन्द्रके सदृश मैं स्थितहूं ॥ ४ ॥

अशेषसंशयांभोदशरत्समयकिंत्वहम् ॥ तृप्तिमेषांनगच्छामिवचसांवदतस्तव ॥ ५ ॥ बलेर्विज्ञानसंप्राप्तिपुनर्मद्बोधवृद्धये ॥ विभोकथयखिद्यंतेसंतोनावनतंप्रति ॥ ६ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ शृणुराघवतेवक्ष्येवलेर्वृत्तांतमुत्तमम् ॥ श्रुतेनयेनतंतत्त्वबोधंप्राप्स्यसिशाश्वतम् ॥ ७ ॥ अस्त्यस्मिञ्जगतःकोशेकस्मिंश्चिद्दिङ्निकुंजके ॥ पातालमितिविख्यातोलोकोभूमेरधःस्थितः ॥ ८ ॥

अर्थ—परन्तु हे पूर्ण संशयरूप मेघमण्डलके लिये शरत्समय आपके कहते हुये इन वचनोंको सुनके मैं तृप्त नहीं होता ॥ ५ ॥ हे प्रभो ! पुनः मेरे ज्ञानकी वृद्धिके लिये राजाबलिके ज्ञानकी प्राप्तिका वृत्तान्त कहिये क्योंकि नम्रशिष्यके उपदेश देनेमें महात्मालोग खेदको प्राप्त नहीं होते हैं ॥ ६ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे राघव ! सुनो तुमारे लिये मैं राजा बलिका उत्तम वृत्तान्त कहूंगा जिसके सुननेसे तुम उस नित्य तत्वबोधको पावोगे ॥ ७ ॥ इस ब्रह्माण्डमें किसी दिशाके कुंजमें पृथिवीके नीचे पातालनामसे प्रसिद्ध लोकहै ॥ ८ ॥

क्षीरोदार्णवजाताभिर्दिग्धाभिरमृतांशुभिः ॥ क्वचिद्दानवकन्याभिर्भातिनिर्विवरांतरः ॥ ९ ॥ जिह्वागणोद्दामरवैर्विलोलरसनायुगैः ॥ क्वचिद्भोगिभिरापूर्णःसहस्रशतमस्तकैः ॥ १० ॥ देहाद्रिवलिताशेषविश्वोद्धरणघस्मरैः ॥ क्वचिद्दनुसुतैर्व्याप्तश्चलद्भिरिवमेरुभिः ॥ ११ ॥ कुंभकूटाग्रविश्रांतवसुधामंडलोदरैः ॥ क्वचिद्दिग्दंतिभिर्दंतद्रुमाद्रिभिरुपाश्रितः ॥ १२ ॥

अर्थ—क्षीरसागरमें उत्पन्न अमृतकी किरणोंसे वर्जित दानवोंकी कन्याओंसे पूर्ण कहीं कहीं वह शोभित होरहाहै ॥ ९ ॥ दोसे आदि लेके सहस्र (हजार) जिव्हा गणोंसे उद्धत शब्दकारी, चंचल जिव्हायुक्त सहस्रों मस्तकवाले, शेषादि सर्पोंसे कहीं पूर्ण ॥ १० ॥ देहरूप पर्वतोंसे सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त करनेवाले, तथा विश्वके उद्धारक धर्म वा यज्ञके हविषके बलसे भक्षक और चलायमान मेरूके सदृश दनुके पुत्रों (दानवों) से किसी स्थानमें व्याप्त वह देशहै ॥ ११ ॥ जहां गण्डस्थलरूप शिखरोंपर वसुधामण्डलका मध्य विश्राम करताहै और दन्तरूप वृक्षोंसे पूर्ण रीतिसे उपाश्रित अर्थात् पर्वतके समान आश्रयभूत ॥ १२ ॥

महाकटकटाशब्दत्रस्तभूतपरंपरैः ॥ क्वचिद्दुर्गंधभूताभैरधोनारकमंडलैः ॥ १३ ॥ आभूतलमभिप्रोत सप्तपातालमंडलैः ॥ क्वचिद्रत्नाकरैर्व्याप्तःपातालैर्विवरैरिव ॥ १४ ॥ सुरासुरशिरःसुप्तपादांभोरुहपांसुना ॥ क्वचिद्भगवतातेनकपिलेनपवित्रितः ॥ १५ ॥ आसुरीसंभृतानंतपूजनक्रीडनैषिणा ॥ क्वचिद्भगवतातेनहाटकेशेनपालितः ॥ १६ ॥

अर्थ—महा कटकटा शब्दोंसे भूतों (जीवों) की श्रेणियोंको त्रस्त (भयभीत) करनेवाले, और दुर्गन्धयुक्त कर्मोंके प्रतिभासयुक्त नारक (नरक निवासी) प्राणियोंसे अधोदेशमें कहीं व्याप्त वह देशहै ॥ १३ ॥ हमारे भूतल पर्य्यन्त लोहकी सलाकामें पूयके समान सप्त पातालमण्डल सहित रत्नोंके आकर मेरू आदि पर्वतोंसे कहीं व्याप्त, और कहीं विवरके समान पातालके अवयवोंसे व्याप्त वह देशहै ॥ १४ ॥ देवता तथा असुरोंके शिरोभागमें चरणको विश्राम करनेवाले भगवान् कपिल देवसे वह देश पवित्र किया गयाहै तथा असुरोंकी स्त्रिया वा सेनाओंसे एकत्रित किये हुये अनंतपूजन और क्रीडनके अभिलाषी सुवर्णसे रचित पूजित लिंग महादेवसे पालितहै ॥ १५ ॥ १६ ॥

तस्मिन्नसुरदोस्तंभधार्यमाणमहाभरे ॥ बभूवदानवोराजाविरोचनसुतोबलिः ॥ १७ ॥ साक्रंदेनसमंसर्वैःसुरविद्याधरोरगैः ॥ पादसंवाहनंयस्यसुरराजेनवांछितम् ॥ १८ ॥ कोशस्त्रैलोक्यरत्नानांपातासर्वशरीरिणाम् ॥ धर्त्ताभुवनधर्तॄणांयस्यपालयिताहरिः ॥ १९ ॥ ऐरावणस्यसंशोषंयन्नाम्नाकटभित्तयः ॥ केकयेवाहिहृन्नाड्योजग्मुरांजग्मुरार्त्तताम् ॥ २० ॥

अर्थ—असुरोंकी भुजारूपी स्तंभोंसे धारित महान् राज्यका भार सहित उस पातालमें विरोचनका पुत्र बलि नाम दानव राजा था ॥ १७ ॥ रोदनके साथ सब विद्याधर उरग तथा इन्द्रसेभी जिसका पादसंवाह (पैरदवाना) वांछित था ॥ १८ ॥ त्रैलोक्यरूपी रत्नोंके कोश सब प्राणियोंके रक्षक भुवनोंके धारण करनेवाले ब्रह्मादिकाभी धारण करता विष्णुभगवान् जिसके रक्षकहैं ऐसा वह बलिराजा था ॥ १९ ॥ जिसका नाम श्रवणमात्रसे ऐरावत नाम हांथीके गण्डस्थल ऐसे शोषणता तथा आर्तता (दीनता) को प्राप्त होते जैसे मयूरकी वाणी सुननेसे सर्पोंके हृदयकी नाडियां ॥ २० ॥

प्रतापोग्रोष्मभिर्यस्यकल्पकालइवाब्धयः ॥ ययुःशोषोन्मुखाःसप्तसप्ततांकुपिताकृतेः ॥ २१ ॥ यदश्वराध्वरधूमाभ्रराजयोवलिताब्धयः ॥ ब्रह्मांडकोटरस्यास्यसदाकवचतांययुः ॥ २२ ॥ यस्यदृष्टिहृढाघातत्नुत्राधारकुलाचलाः ॥ विनमंतिदिशःसर्वालताःफलनताइव ॥ २३ ॥ लीलाविजितनिःशेषभुवनाभोगभूषणः ॥ दशकोटीःसवर्षाणिदैत्योराज्यंचकारह ॥ २४ ॥

अर्थ—जिसके कुपित आकारके प्रतापकी उष्णताके स्पर्शोंसे सातों महासमुद्र शोषणताकी ओर अभिमुख होकर प्रलयकालके समान सात गर्तकी संख्या मात्रताको प्राप्त होतेथे ॥ २१ ॥ जिसके अश्वमेधादि यज्ञसे उत्पन्न मेघकी पंक्तियां समुद्रको आच्छादन करनेवालीं इस ब्रह्माण्डरूपी कोटरकें वृष्टि आदिके द्वारा रक्षाके हेतु होनेसे सदा कवचरूपताको प्राप्त होतीथीं ॥ २२ ॥ जिसके दृष्टिके कुपित निरीक्षणसे पृथिवीके आधार सप्त कुलाचलभी विदीर्ण होतेथे और सम्पूर्ण दिशा अर्थात (सब देशके प्राणी) जिसको देखकर ऐसे नम्रीभूत होतेथे जैसे फलके बोझसे झुकी हुई सम्पूर्ण लता ॥ २३ ॥ ऐसा प्रतापी लीलामात्रसे सम्पूर्ण लोकोंके भूषणभूत इन्द्रादिकोंकोभी जीतनेवाला उस दैत्य राजा बलिने दश करोड वर्ष राज्य किया ॥ २४ ॥

अथगच्छत्स्वनल्पेषुयुगेष्वावर्त्तवृत्तिषु ॥ सुरासुरमहौघेषुप्रोत्पतत्सुपतत्सुच ॥ २५ ॥ अजस्रमतिभुक्तेषुत्रैलोक्योदारवृत्तिषु ॥ भोगेष्वभजदुद्वेगंबलिर्दानवनायकः ॥ २६ ॥ मेरुशृंगशिखारत्नकृतवातायनस्थितः ॥ एकदाचिंतयामासस्वयंसंसारसंस्थितिम् ॥२७॥ कियंतमिदमक्षुण्णशक्तिनैवमयाधुना ॥ साम्राज्यमिहकर्त्तव्यंविहर्त्तव्यंजगत्त्रये ॥ २८ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर जलके आवर्तके समान आवर्तनशील अनेक युगोंके बीतनेपर और सुर असुरोंके महान् समूहोंके ऊपर चढने तथा नीचे गिरनेपर ॥ २५ ॥ निरन्तर त्रैलोक्यमें उत्तम भोगोंके भोगनेपर दानवोंके राजा बलिको वैराग्य उत्पन्न हुआ ॥ २६ ॥ मेरूपर्वतके शिखरकी चोटीपर रत्नसे निर्मित झरोखोंमें बैठे हुये उसने एक समय संसारकी स्थितिको स्वयं चिंतन किया ॥ २७ ॥ कि शत्रुओंसे अकुंठित शक्ति मुझे अब कितने कालतक संसारमें राज्य करना वा कबतक तीनों लोकमें विहार करना चाहिये ॥ २८ ॥

महतामपराग्रेणत्रैलोक्याद्भुतकारिणा ॥ किंवाभवतिभुक्तेनभूरिभोगातिहारिणा ॥ २९ ॥ आपातमात्रमधुरमावश्यकपरिक्षयम् ॥ भोगोपभोगमात्रंमेकिंनामेदंसुखावहम् ॥ ३० ॥ पुनर्दिनैककलनाशर्वरीसं

स्थितिःपुनः ॥ पुनस्तान्येवकर्माणिलज्जायैनचतुष्टये ॥ ३१ ॥ पुनरालिंग्यतेकांतापुनरेवचभुज्यते ॥ सेयंशिशुजनक्रीडालज्जायैमहतामिह ॥ ३२ ॥

अर्थ—तीनों लोकमें अद्भुत कर्मकारी मेरे इस महान्राज्यमें क्या होगा और अति मनोहर भोगोंके भोगनेसेभी क्या होगा ॥ २९ ॥ विना विचारेही अति रमणीय, निश्चयरूपसे विनाशी, यह संपूर्ण भोगमात्र मुझे क्या सुखदायी है ॥ ३० ॥ पुनः वही दिनकी रचना पुनः रात्रिकी स्थिति, गमनागमन, पुनः वही स्नान भोजन शयनादि कर्म महात्माओंके लज्जाहीके लिये है न कि सन्तोषको ॥ ३१ ॥ पुनः उन्ही कान्ताओंका आलिंगन करना, पुनः उन्ही भोगोंको भोगना यह बालकोंकी क्रीडा महात्माओंको इस संसारमें लज्जाहीके लिये है ॥ ३२ ॥

तमेवभुक्तविरसंव्यापारौघंपुनःपुनः ॥ दिवसेदिवसेकुर्वन्प्राज्ञःकस्मान्नलज्जते ॥ ३३ ॥ पुनर्दिनंपुनारात्रिःपुनःकार्यपरंपराः ॥ पुनःपुनरहंमन्येप्राज्ञस्येयंविडंबना ॥ ३४ ॥ ऊर्मितांपुनरासाद्यपुनरेतिनिरूर्मिताम् ॥ यथाजलंतथैवायंतांतामेतिक्रियांजनः ॥ ३५ ॥ उन्मत्तचेष्टिताकारापुनःपुनरियंक्रिया ॥ जनंहासयतेप्राज्ञंबाललीलोपमासुहृः ॥ ३६ ॥

अर्थ—भोगसे विरस उसी व्यापारके समूहको पुनः पुनः दिन दिन करते हुये बुद्धिमान् पुरुष क्यों नहीं लज्जित होता ॥ ३३ ॥ पुनः दिन, पुनः रात्रि, पुनः उन्ही कार्योंकी परम्परा बुद्धिमान् पुरुषके लिये पुनः करना इसको मैं बुद्धि विडम्बना मानताहुं ॥ ३४ ॥ जैसे जल तरंगरूपताको प्राप्त होकर पुनः तरंगके अभावको प्राप्त होताहै ऐसेही उन्ही २ क्रियाओंको यह जन पुनः प्राप्त होताहै न कि कोई नवीन वस्तु ॥ ३५ ॥ उन्मत्तकी चेष्टाके समान तथा बालककी लीलाके सदृश पुनः पुनः यह क्रिया बुद्धिमान् जनको वारम्वार हास्यके योग्य करती है ॥ ३६ ॥

कृतयाप्यनयानित्यंक्रिययाकृतकार्यया ॥ कोर्थःस्यात्तादृशोयेनपुनःकर्मनविद्यते ॥ ३७ ॥ कियंतमथवा कालमिदमाडंबरंमहत् ॥ इहास्माभिरनुष्ठेयंकिंतावत्समवाप्यते ॥ ३८ ॥ अनंतेयंशिशुक्रीडावस्तुशून्यैववस्तुतः ॥ आवृत्त्याक्रियतेव्यर्थमनर्थप्रसरार्थिभिः ॥ ३९ ॥ फलमेकंमहोदारंनेहपश्यामिकिंचन ॥ कार्यमस्तीतरत्प्राप्तेयस्मिन्नामनकिंचन ॥ ४० ॥

अर्थ—सफलरूपतासे इस क्रियाको नित्य करनेपरभी ऐसा कौनसा प्रयोजन होताहै जिससे पुनः कर्म्म नहो ॥ ३७ ॥ अथवा इस संसारमें इस महान् आडम्बर अर्थात् दृष्टअदृष्टरूप कर्म्म समूहको कितने कालतक हम लोगोंको अनुष्ठान करना चाहिये और इसके करनेसे कौनसा कर्म समाप्त होताहै ॥ ३८ ॥ यथार्थमें वस्तुशून्य अनन्त यह शिशुक्रीडा दुःख परम्पराके अर्थोंको जीव व्यर्थ वार २ करतेहैं ॥३९॥ जिसके प्राप्त होनेपर अन्य कुछभी कर्तव्य नहीं है ऐसा फल पुरुषार्थरूप मैं कुछ नहीं देखता ॥ ४० ॥

भोगादृतेकिमन्यत्स्यात्तद्भव्यमविनाशियत् ॥ एवंसंचिंतयाम्याशुदध्यौमत्वेत्यसौबलिः ॥ ४१ ॥ अथाभ्युवाचासुरराडाःसंस्मृतमितिक्षणात् ॥ स्वात्मन्येवमनस्यर्थंसभ्रूभंगंविमर्शयन् ॥ ४२ ॥ पुराकिलेहभगवान्पृष्टोभूत्सविरोचनः ॥ पितामयात्मतत्त्वज्ञोदृष्टलोकपरावरः ॥ ४३ ॥ यथासकलदुःखानां सुखानांचमहामते ॥ यत्रसर्वेभ्रमाःशांताःकोसौसीमांतउच्यते ॥ ४४ ॥

अर्थ—तुच्छ विषय सुखके सिवाय अन्य नित्य सुख क्या होसकताहै ऐसा मैं चिंतन करूं, ऐसा विचार करके इस राजा बलिने शीघ्र ध्यान किया ॥ ४१ ॥ इसके पश्चात् (ध्यानके पीछे) क्षणभरमें अपनेही मनमें वह असुरोंका राजा पूर्वकालके संस्कारके उद्बोधसे भौंह चढाके स्मरण कियेहुये अर्थको अपने मनमेंही विचारते हुये बोला कि आः मैंने स्मरण करलिया ॥ ४२ ॥ उसने अपने मनमें विचारा कि पूर्व समयमें इस लोक तथा परलोकके देखनेवाले तत्ववेत्ता भगवान् विरोचन अपने पितासे मैंने पूंछाथा ॥ ४३ ॥ कि–हे महामते पितः! सब दुःखोंके परिहार तथा विषयके सुखोंकी प्राप्तिके उपायरूप सम्पूर्ण व्यवहार जहां शान्त होजातेहैं वह संसारका अंत कौन कहा गयाहै ॥४४

कोपशांतोमनोमोहःक्षातीताःसकलैषणाः ॥ विरामरहितंकुत्रतातविश्रमणंचिरम् ॥ ४५ ॥ किंप्राप्तेहसमस्तेभ्यःप्राप्येस्मिंस्तृप्तिमान्पुमान् ॥ किंदृष्ट्वादर्शनंभूयोनतातोपकरोत्यलम् ॥ ४६ ॥ अत्यंतबहवोप्येतेभोगादिनसुखावहाः ॥ क्षोभयंतिमनोमोहेपातयंतसतामपि ॥ ४७ ॥ तत्तातविहतानंदसुंदरंकिंचिदेवमे ॥ तादृक्कथययत्रस्थश्चिरंविश्रांतिमेम्यहम् ॥ ४८ ॥ इत्याकर्ण्यपुरानिशाकरकरस्पर्दाछुगुच्छस्खलत्पुष्पापूरकृतावगुंठनपदस्थोक्तंतलेतेनमे ॥ पित्रास्वर्गहतस्यसागरतरोःसंरोपितस्याजिरेस्फाराकाररसायनासवसमंसंमोहशांत्यैवचः ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे विरोचनस्मरणं नाम द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

अर्थ—हे तात ! मनका मोह कहां शान्त होताहै धन आदिकी एषणा (अभिलाषा) कहां जाके नष्ट होती है पुनः श्रम न करनेके लिये सदा कालके अर्थ चित्तको विश्राम कहां होताहै ॥ ४५ ॥ कौनसी वस्तुको प्राप्त होकर यह प्राणी ब्रह्मलोक पर्य्यन्त विषयोंसे तृप्त होता, और किसका दर्शनकर पुनः अन्य दर्शन उपकारी नहीं होताहै ॥४६ बहुत अधिक और अनेकभी ये संसारी भोग सुखदायक नहीं किन्तु सज्जनोंकोभी मनका मोह होनेपर क्षोभितकर देते हैं ॥ ४७ ॥ हे पितः ! इसकारणसे स्वाभाविक आनन्ददायी और सुन्दर कुछ उसप्रकारका पदार्थ मुझसे कहो कि जहांपर स्थितहोके मैं चिरकालतक परम विश्रान्तिको प्राप्त होऊं ॥ ४८ ॥ पूर्वकालमें चन्द्रमाके किरणोंके साथ स्पर्धाकारक पुष्प तथा फलोंके गुच्छोंके समूहोंसे जिसका मूलस्थान वेष्टित किया गयाहै ऐसे स्वर्गसे बलसे आनीत और अपने अंगणमें लगाये हुये कल्पवृक्षके नीचे बैठे हुये मेरे पिता इस पूर्वोक्त मेरे प्रश्नको सुनकर उसी कल्पवृक्षके विशालाकार रसायनरूप पुष्परसोंके समान सुगन्धित तथा मधुर अर्थात् जरामरण निवारक वचन मेरे मोहके शान्तिके लिये जो कहाथा वह मुझे स्मरणहै ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उपशमप्रकरणे विरोचनवाक्यस्मरणं नाम: द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

॥ विरोचनउवाच ॥ ॥ अस्तिपुत्रातिविततोदेशाविपुलकोटरः ॥ त्रैलोक्यानांसहस्राणियत्रमांतिबहून्यपि ॥ १ ॥ यत्रनांभोधयोनापिसागरावानचाद्रयः ॥ नवनानिनतीर्थानिननद्योनसरांसिच ॥ २ ॥ नमहीनापिचाकाशंनवौर्नपवनादयः॥ नचंद्रार्कौनलोकेशानदेवानचदानवाः ॥ ३ ॥ नभूतयक्षरक्षांसि नगुल्मानवनश्रियः ॥ नकाष्ठतृणभूतानिस्थावराणिचराणिच ॥ ४ ॥

अर्थ—विरोचनजी बोले-हे पुत्र ! विशालकोटरसहित अति विस्तृत देश (मोक्ष वा शुद्धात्मा) है जिसमें अनेक त्रिलोकी सहस्रभी समा सकते है ॥ १ ॥ जहां न समुद्र, न सागर, न पर्वत, न बन, न तीर्थ, न नदी, और न तडागहै ॥२॥ जहां न पृथिवी, न आकाश, न अन्तरिक्ष, न पवन, न चन्द्र, न सूर्य्य, न लोकेश इन्द्रादि, और न देवदानव, ॥३॥ न भूत, न यक्ष, राक्षस, न लता न बनकी शोभा, न काष्ठ, तृण, भूत, और न स्थावर और न चर

नापोनज्वलनोनाशानोर्ध्वनाधोनविष्टपम् ॥ नलोकोनातपोनाहंनहरींद्रहरादयः ॥ ५ ॥ एकएवास्तिसुमहांस्तत्रराजामहाद्युतिः ॥ सर्वकृत्सर्वगःसर्वःसचतूष्णींव्यवस्थितः ॥ ६ ॥ तेनसंकल्पितोमंत्रीस वेसन्मंत्रणोन्मुखः ॥ अघटंघटयत्याशुघटंविघटयत्यलम् ॥ ७ ॥ भोक्तुंनकिंचिच्छक्नोतिनचजानाति किंचन ॥ राजार्थंकेवलंसर्वंकरोत्यज्ञोपिसन्सदा ॥ ८ ॥

अर्थ—न जल न अग्नि न आशा, न ऊपर न नीचा और न स्वर्ग न लोक, न आतप, न हम, न विष्णु, और न महादेवादि कुछहैं ॥ ५ ॥ वहांपर अतिमहान् महा प्रकाशसहित, सर्वकर्ता, सर्वगामी, और सर्वरूप एक (आत्माही) राजाहै ॥ ६ ॥ उस राजाके संकल्पसे कल्पित मन्त्री (मन) सब सन्मन्त्रण करनेको सदा उन्मुख रहताहै तथा वह अघटित (अयुक्त) (आत्माकी संसारिता) की घटना करताहै और घटित अर्थात् युक्त आत्माकी पूर्ण आनंदताको भलीभांति विघटित करदेताहै ॥ ७ ॥ वह मंत्री कुछ रच नहीं सकता और न कुछ जानताहै अज्ञ होकरभी सदा केवल राजाके लिये कर्म करताहै ॥ ८ ॥

सएवसर्वकार्यैककर्त्तातस्यमहीपतेः ॥ राजाकेवलमेकांतेस्वस्थएवावतिष्ठते ॥ ९ ॥ बलिरुवाच ॥ आधिव्याधिविनिर्मुक्तःकःसदेशोमहामते ॥ कथमासाद्यतेचापिकेनवाधिगतःप्रभो ॥ १० ॥ कःसताहग्विधोमंत्रीराजाचापिमहाबलः ॥ हेलालूनजगज्जालैर्योस्माभिरपिनोजितः ॥ ११ ॥ अपूर्वमेतदाख्यानंममामरभयप्रद ॥ कथयापनयास्माकंहृद्व्योम्नःसंशयांबुदम् ॥ १२ ॥

अर्थ—उस राजाका सब कार्यकर्ता वही मंत्री है राजा तो एकान्तमें केवल स्वस्थ होके स्थित रहताहै ॥९॥ बलिजी बोले-हे महामते प्रभो ! आधि व्याधिसे विनिर्मुक्त कौनसा देशहै और कैसे प्राप्त होताहै तथा किसको प्राप्त हुआहै ॥ १० ॥ कौन उस प्रकरका मंत्री, तथा महाबली राजाहै जो लीलासे जगत् समूहोंको जीतनेवाले हम लोगोंसेभी नहीं जीता गया ॥ ११ ॥ हे देवोंकोभी भयदाता अपूर्व इस आख्यानको मुझसे कहिये, और हमारे हृदयाकाशसे इस संशयरूप मेघको दूर कीजिये ॥ १२ ॥

॥ विरोचनउवाच ॥ सतत्रमंत्रीबलवान्देवासुरगणैःसुत ॥ समेतैर्लक्षगुणितैरपिनाक्रम्यतेमनाक् ॥ १३ ॥ नासौसहस्रनयनोनयमोनधनेश्वरः ॥ नामरोनासुरोवापियदिपुत्रकजीयते ॥ १४ ॥ तत्रासिमुसलप्रासवज्रचक्रगदादयः ॥ हेतयःकुंठतांयांतिदृषदीवोत्पलाहतिः ॥ १५ ॥ गम्योसौनास्त्रशस्त्राणां नभटोद्भवकर्णणाम् ॥ तेनदेवासुराःसर्वेसर्वदैववशीकृताः ॥ १६ ॥

अर्थ—विरोचनजी बोले–हे पुत्र ! वह महाबलवान् मंत्री (मन) है जितने देवासुर समूहहैं उनसे लक्ष गुण मिलकर उस मंत्रीके ऊपर किंचित्भी आक्रमण नहीं करसकते ॥ १३ ॥ हे पुत्र ! न यह इन्द्रहै न यमहै न कुबेर है और न कोई देवता वा असुरहै जिसको तुम जीत सको ॥ १४ ॥ वहां तरवार, मुसल, बर्छी, बज्र, चक्र और गदा आदि सम्पूर्ण अस्त्र शस्त्र ऐसे कुंठित होजाते हैं जैसे पाषाणके ऊपर कमलोंका प्रहार ॥ १५ ॥ यह मंत्री (मनरूप) शस्त्र वा अस्त्रका विषय नहीं है और न वीरोंके पराक्रमका विषयहै इसी कारण उसने देवता तथा असुरोंको वशीभूत कर लियाहै ॥ १६ ॥

अविष्णुनापितेनेहहिरण्याक्षादयोसुराः ॥ पातिताःकल्पवातेनमेरुकल्पद्रुमाइव ॥ १७ ॥ नारायणादयोदेवाअपिसर्वावबोधिनः ॥ तेनाक्रम्ययथाकाममवटेषुनिवेशिताः ॥ १८ ॥ तत्प्रसादेनसाटोपंपंचमात्रशरःस्मरः ॥ त्रैलोक्यमिदमाक्रम्यसम्राडिवविवल्गति ॥ १९ ॥ सुरासुरौघगृह्योपिगुणहीनोपिदुर्मतिः ॥ दुराकृतिरपिक्रोधस्तत्प्रसादेनजृंभते ॥ २० ॥

अर्थ—विष्णु न होकरभी उसने हिरण्याक्ष आदि असुरोंको ऐसे गिरायाहै जैसे प्रलयकालका पवन सुमेरुके कल्पवृक्षोंको ॥ १७ ॥ सबके ज्ञानके उपदेशक नारायण आदि देवोंकोभी उसने आक्रमण (पटककर) गर्भरूप गर्तेमें प्रविष्ट कर दिया ॥ १८ ॥ उसीके प्रतापसे गर्वके साथ कामदेव केवल पांच ५ बाणसे इस त्रिलोकीका आक्रमण करके सम्राट् (चक्रवर्ती राजा) के समान गर्जताहै ॥ १९ ॥ सुर तथा असुरोंके समूहोंको विवश करनेवाला, गुणहीन तथा दुर्मतिभी और दुष्टाकृतिभी क्रोध उसी मंत्रीके प्रतापसे विकसित होरहाहै ॥ २० ॥

देवासुरसहस्राणांसंगरोयःपुनःपुनः ॥ तदेतत्क्रीडनंतस्यमंत्रिणोमंत्रशालिनः ॥ २१ ॥ समंत्रीकेवलंपुत्रतेनैवप्रभुणायदि ॥ जीयतेतत्सुजेयोसावन्यथात्वचलोपमः ॥ २२ ॥ तस्यैवतत्प्रभोःकालेजेतुंतंमंत्रिणंनिजम् ॥ इच्छासंजायतेतेनजीयतेसावयत्नतः ॥२३॥ त्रैलोक्यबलिनांमल्लमुच्छ्वासितजगत्त्रयम् ॥ जेतुंचेदस्तितेशक्तिस्तत्पराक्रमवानसि ॥ २४ ॥

अर्थ—देवता तथा असुरोंका पुनः २ यह जो लक्षोंवार युद्ध होताहै यह उसी मन्त्रमें कुशल मंत्रीका क्रीडामात्रहै ॥ २१ ॥ हे पुत्र ! उस मन्त्रीको जीतना यदि वही प्रभु (आत्मा) जीतना चाहै तो वह सुखसे जीतने योग्यहै अन्यथा वह अचलके सदृशहै ॥ २२ ॥ उसी प्रभुके सुकृतके परिपाकसे विवेकके उदयसे कालपाके उस अपने मंत्रीको जीतनेकी इच्छा होती है और उससे वह बिना प्रयत्न जीता जाताहै ॥ २३ ॥ त्रैलोक्यके विजयियोंने वह मल्ल और तीनों लोकको ऊर्ध्व श्वासयुक्त (मृतकके समीप) करनेवाले इस मनरूप मन्त्रीको जीतनेकी शक्ति यदि तुममें है तो तुम पराक्रमी हो ॥ २४ ॥

तस्मिन्नभ्युदितेसूर्येत्रैलोक्यकमलाकराः ॥ इमेविकासमायांतिविलीयंतेस्तमागते ॥ २५ ॥ तमेकमेकयाबुद्ध्यान्यामोहपरिहीनया ॥ यदिजेतुंसमर्थोसिधीरस्तदसिसुव्रत ॥ २६ ॥ तस्मिञ्जितेजितालोकाभविष्यंत्यजिताअपि ॥ अजितेत्वजिताएतेचिरकालजिताअपि ॥ २७ ॥ तस्मादनंतसिद्ध्यर्थंशाश्वताय सुखायच ॥ तज्जयेयत्नमातिष्ठकष्टयापिहिचेष्टया ॥ २८ ॥ ससुरदनुजनागयक्षसंघंसनरमहोरगकिन्नरं समेतम् ॥ त्रिजगदपिवशीकृतंसमंतादतिबलिनाननुहेलयैवतेन ॥ २९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे विरोचनवचनं नाम त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

अर्थ—उस मंत्रीरूप सूर्य्यके उदय होनेपर त्रिलोकीरूप ये कमलके आकर (खानि) सदा उदयको प्राप्त होते हैं और उसके अस्त होनेपर नष्ट होजाते हैं ॥ २५ ॥ हे सुव्रत ! यदि अज्ञानसे शून्य और एकाग्रबुद्धि होके उस मंत्रीको जीतनेको समर्थ हो तो तुम धीर हो ॥ २६ ॥ उस मन्त्रीके जीतनेपर न जीते हुये लोकभी जीते हुये होजायगे और उसके न जीतनेपर चिरकालके जीते हुये लोक न जीते जायंगे ॥ २७ ॥ हे पुत्र ! इसलिये अनन्त सिद्धियोंके अर्थ तथा और निरन्तर नित्य सुखकेलिये उसके जीतनेके अर्थ अति प्रयत्नसे सर्व त्यागरूप चेष्टासेभी संनद्ध

तैय्यार होजाओ ॥ २८ ॥ अति वली मंत्रीने सुर, दनुज, नाग, तथा यक्षोंके समूह सहित, तथा नर महोरग और कि-न्नर सहित तीनों लोकोंको साथही वशीभूत करलियाहै ॥ २९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उपशमप्रकरणे विरोचनवचनोपदेशो नाम त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

इस२४के सर्गमें उस दुष्ट मंत्रीके जीतनेके उपाय तथा राज्यादि सहित, राजाके जीतनेका उपाय वर्णित किया गयाहै॥

॥ बलिरुवाच ॥ ॥ केनोपायेनबलवान्सताततपरिजियते ॥ कोसावतिमहावीर्यःसर्वप्रकथयाशुमे ॥१॥ ॥ विरोचनउवाच ॥ ॥ मंत्रिणस्तस्यतनयनित्याजेयस्थितेरपि ॥ शृणुवच्मिसुसाध्यत्वंयेनासौपरि जीयते ॥२॥ पुत्रयुक्त्यागृहीतोसौक्षणादायातिवश्यताम् ॥ युक्तिंविनादहत्येपक्षाशीविषइवोद्धतः ॥३॥ बालवल्लालयित्वैनंयुक्त्यानियमयंतिये ॥ राजानंतंसमालोक्यपदमासादयंतिते ॥ ४ ॥

अर्थ—बलि बोले-हे प्रभो ! किस उपायसे वह महाबली जीता जाताहै, और यह महापराक्रमी कौनहै यह सब कृपाकर शीघ्र कहिये ॥ १ ॥ विरोचनजी बोले-हे पुत्र ! यद्यपि उस मंत्रीकी स्थिति अजेय (जीतनेके अयोग्य) है तथापि सुनों मैं सुखसे जयका उपाय बताताहुं जिससे वह जीता जाताहै ॥ २ ॥ हे पुत्र ! राजयोगरूप युक्तिसे ग्रहण किया यह शीघ्रही क्षणमेंही वश्यताको प्राप्त होताहै और विना युक्तिसे यह उद्धत सर्पके तुल्य भस्म करदेताहै॥३॥ जो कोई अल्पविषय संप्रदानसे बालकके सदृश लाड (प्यार) करके पश्चात् विषयोंके दोष दर्शाके वंचना करके उसी राजयोगरूप युक्तिसे अपने वशमें लाते हैं अनन्तर उस राजाके स्वरूपको देखके उसीके पदको प्राप्त करते हैं ॥ ४ ॥

दृष्टेतस्मिन्महीपालेसमंत्रीवशमेतिच ॥ तस्मिंचमंत्रिण्याक्रांतेसराजादृश्यतेपुनः ॥ ५ ॥ यावन्नदृष्टो राजासौतावन्मंत्रीनजीयते ॥ मंत्रीचयावन्नजितस्तावद्राजानदृश्यते ॥ ६ ॥ राजन्यदृष्टेदुर्मंत्रीसदुःखा यफलत्यति ॥ मंत्रिण्यनिर्जितेराजासोत्यंतंयात्यदृश्यताम् ॥७॥ अभ्यासेनोभयंतस्मात्सममेवसमार भेत् ॥ राजसंदर्शनंतस्यमंत्रिणश्चपराजयम् ॥ ८ ॥

अर्थ—उस राजा (आत्मा) के देख पडनेपर वह मंत्री वशमें आजाताहै और उस मंत्रीके वशमें होनेपर राजा देख पडताहै अर्थात् एक होनेसे दोनों कार्य होजातेहैं ॥ ५ ॥ जबतक वह राजा नहीं देख पडता तबतक वह मंत्री नहीं जीता जाता और जबतक वह मंत्री न जीता जाय तबतक राजा नहीं देख पडता ॥ ६ ॥ क्योंकि राजाके न देख पडनेसे वह दुष्ट मंत्री रागद्वेषादि अनेक दुष्ट फलोंको फलता है, और मंत्रीको न जीतनेपर वह राजाभी अत्यन्त अदृश्यताको प्राप्त होताहै ॥ ७ ॥ इस हेतुसे अभ्याससे राजाके दर्शनके उपायको तथा मंत्रीके पराजयको दोनोंको साथही साथ बुद्धिमान् आरंभ करै ॥ ८ ॥

पौरुषेणप्रयत्नेनस्वभ्यासेनशनैःशनैः ॥ द्वयंसंपाद्ययत्नेनदेशमाप्रोषितंशुभम् ॥ ९ ॥ त्वमभ्यासेफली भूतेतंदेशमभिगच्छसि ॥ यदिदैतेंद्रतद्भूयोमनागपिनशोचसि ॥ १० ॥ संशांतसकलायासानित्यप्रबु दिताशयाः ॥ साधवस्तत्रतिष्ठंतिप्रशांताशेषसंशयाः ॥ ११ ॥ शृणुकःपुत्रदेशोसौसर्वंप्रकटयामिते ॥ देशनाम्नामयोक्तस्तेमोक्षःसकलदुःखहा ॥ १२ ॥

अर्थ—पौरुषरूप प्रयत्नसे अपने अभ्याससे धीरे २ राजाका दर्शन और मंत्रीका पराजय दोनोंका संपादन करके उस शुभ देश (आत्मा) को प्राप्त होओगे ॥ ९ ॥ हे दैत्येन्द्र ! अभ्यासके फलीभूत होनेपर तुम उस देशमें प्राप्त होओगे जहांपर पुनः किंचित्भी शोक न करोगे ॥ १० ॥ जिनके संपूर्ण सांसारिक परिश्रम सब शान्त होगये हैं और जिनका अन्तःकरण नित्य विकसितहै तथा जिनके संपूर्ण संशय शान्त होगये हैं ऐसे साधुमहात्मा वहां स्थितहैं ॥ ११ ॥ सो हे पुत्र ! सुनो ऐसा वह देश कौनसाहै सो मैं तुमसे प्रकट करताहुं, देश नामसे जो प्रसिद्धहै वह संपूर्ण दुःखोंका नाशक मोक्ष तुमसे कहाथा ॥ १२ ॥

राजातुतत्रभगवानात्मासर्वपदातिगः ॥ तेनमंत्रीकृतःप्राज्ञोमनोनाममहामते ॥ १३ ॥ मनोनिष्ठतयाविश्वमिदंपरिणतिंगतम् ॥ घटत्वेनेवमृत्पिंडोधूमोंबुदतयेवच ॥१४॥ तस्मिञ्जितेजितंसर्वंसर्वमासादितंभवेत् ॥ दुर्जयंतद्विजानीयाद्युक्त्यैवपरिजीयते ॥ १५ ॥ बलिरुवाच ॥ यायुक्तिर्भगवंस्तस्यचित्तस्याक्रमणेस्फुटम् ॥ तांमेकथयतत्तावद्यथाजेष्याम्निदारुणम् ॥ १६ ॥

अर्थ—और राजा तो मनुष्यादिके आनन्दसे लेके ब्रह्माके आनन्दसे परे अथवा सब इन्द्रियोंका अविषय आत्माहै, हे महामते ! उसने महाबुद्धिमान् मनको अपना मंत्री किया ॥ १३ ॥ मनमें वासनारूपसे सूक्ष्मभावसे स्थित यह जगत् आकारसे परिणत ऐसे हुआहै जैसे मृत्तिकाका पिण्ड घट और धूम मेघरूपमें परिणतहो ॥ १४ ॥ उसके जीतनेपर सब चेतव्य जित और प्राप्तव्य प्राप्त होजाताहै उसको दुर्जय समझना चाहिये केवल युक्तिसे वह जीता जाताहै ॥ १५ ॥ बलि बोले—हे भगवन् ! उस चित्तके जीतनेमें जो युक्तिहो वह प्रथम स्पष्ट रीतिसे कहिये जिससे कि उस भयंकर शत्रुको मैं जीतूं ॥ १६ ॥

विरोचनउवाच ॥ विषयान्प्रतिभोःपुत्रसर्वानेवहिसर्वथा ॥ अनास्थापरमाह्येपासाद्युक्तिर्मनसोजये ॥ १७ ॥ एषैवपरमायुक्तिरनयैवमहामदः ॥ स्वमनोमत्तमातंगोद्रागित्येवावदम्यते ॥ १८ ॥ एषाह्यत्यंतदुष्प्रापासुप्रापाचमहामते ॥ अनभ्यस्तातिदुष्प्रापास्वभ्यस्ताप्राप्यतेसुखम् ॥ १९ ॥ क्रमादभ्यस्यमानैषाविषयारतिरात्मज ॥ सर्वतःस्फुटतामेतिसेकसिक्तालतायथा ॥ २० ॥

अर्थ—विरोचनजी बोले—हे पुत्र ! सम्पूर्ण विषयोंमें सर्वथा इच्छाका अभावही मनके जीतनेका परम उपायहै ॥ १७ ॥ यही (विषयोंकी इच्छा न करना) परमयुक्तिहै और इसीसे महामदवाला मत्तमातंगरूप मन शीघ्रही दमन करके जीतलिया जाताहै ॥ १८ ॥ हे महामते पुत्र ! यह युक्ति दुःष्प्रापभी और सुप्राप (सुखसे प्राप) भी है अभ्यास न करनेपर दुःष्प्राप और अभ्यासके करनेसे सुप्राप ॥ १९ ॥ हे पुत्र ! क्रमसे अभ्यासकी हुई यह विषयकी विरक्ति चारोंओरसे प्रत्यक्ष रूपताको ऐसे प्राप्त होती है जैसे जलसे सिंची हुई लता ॥ २० ॥

नासाद्यतेह्यनभ्यस्ताकांक्षतापिशठात्मना ॥ पुत्रशालिरिवाव्युप्तातस्मादेनांसमाहर ॥ २१ ॥ तावद्भ्रमंतिदुःखेषुसंसारावटवासिनः ॥ विरतिंविषयेष्वेतेयावन्नायांतिदेहिनः ॥ २२ ॥ अभ्यासेनविनाकश्चिन्नाप्नोतिविषयारतिम् ॥ अप्यत्यंतबलोदेहीदेशांतरमिवागतिः ॥ २३ ॥ ध्येयत्यागमतोजस्रंध्यायतादेहधारिणा ॥ भोगेष्वरतिरभ्यासाद्वर्द्धनेयालतायथा ॥ २४ ॥

अर्थ—हे पुत्र ! अभ्यासके अभावमें भोगमें लोभी चित्तवालेको यह युक्ति इच्छा करनेपरभी नहीं ऐसे मिलती जैसे विना बोये खेतोंमें धान, इसकारण इसको अभ्याससे स्थिर करो ॥ २१ ॥ जबतक जीव सांसारिक विषयोंसे वैराग्यको नहीं प्राप्त होते तबतक संसाररूप गर्तमें निवास करते हुये दुःखोंमें भ्रमण किया करते हैं ॥ २२ ॥ [illegible] अभ्यासके विषयोंसे वैराग्य कोई ऐसे नहीं प्राप्त करसकता जैसे अति बलवान्भी देही गति शून्य (विना गये) देशान्तरमें नहीं प्राप्त होता ॥ २३ ॥ इसलिये देहधारीको उचितहै कि ध्येयरूप वासना त्यागकी नित्य इच्छा करता हुआ भोगोंमें विरक्तताको ऐसे बढावे जैसे सींचके लताको ॥ २४ ॥

पुरुषार्थादृतेपुत्रनेहसंप्राप्यतेशुभम् ॥ क्रियाफलंपरिप्राप्तुंहर्षामर्षविवर्जितम् ॥ २५ ॥ दैवमित्युच्यते लोकेनदैवंदेहवत्क्वचित् ॥ अवश्यंभवितव्याख्यास्वेह्यानियतिश्चया ॥ २६ ॥ उच्यतेदैवशब्देनसानरै रेवनेतरैः ॥ यद्यस्येहयदात्रयसंपन्नंसमतांगतम् ॥२७॥ हर्षामर्षविनाशायतद्दैवमितिकथ्यते ॥ दैवं नियतिरूपंचपौरुषेणोपजीयते ॥ २८ ॥

अर्थ—हे पुत्र ! अपने पौरूषके सिवाय हर्ष तथा आमर्षसे शून्य क्रियाफल प्राप्त करनेके लिये अनुकूल शुभसाधन नहीं प्राप्त होताहै ॥ २५ ॥ नियतिसे प्रेरित जो अपनी शुभअशुभकी क्रियाहै उसको तो मनुष्य दृष्टिवाले देव कहते हैं न कि अन्य (शास्त्रदृष्टि) और शास्त्रदृष्टिवाले तो हर्ष तथा आमर्षके निमित्त भूतकर्मोंका क्षय होनेपर जिससमय जिसके अर्थ हर्ष तथा आमर्षके विनाशार्थ जो प्राप्त कर्म है उसीको देव कहते हैं और यह (शास्त्रज्ञोंसे कथित) नियतिरूप देव पुरूषार्थसे ऐसे जीताहै ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥

सम्यग्ज्ञानविलासेनमृगतृष्णाभ्रमोयथा ॥ यथासंकल्प्येयद्यत्पौरुषेणतथैवतत् ॥ २९ ॥ फलवत्तागृहीतत्वेफलवत्तासुखप्रदम् ॥ कर्त्तानोमनएवेहयत्कल्पयतितत्तथा ॥ ३० ॥ नियतिंयादृशीमेतत्संकल्पयतिसातथा ॥ नियतानियतान्कांश्चिदर्थाननियतानपि ॥ ३१ ॥

अर्थ—जैसे मरूभूमिके यथार्थ ज्ञानसे मृगतृष्णाका भ्रम और सब मनसे जो कल्पित किया जाताहै वह पुरूषार्थसेभी वैसाही होताहै और सब मनसे कल्पित पदार्थोंमें बाधक न होनेसे प्रमाणोंसे जो फलवत्ता (सफलता) गृहीत होती है वही सुखप्रद होती है, और कर्ता जो जीवहै वह हमारे मतसे मनही है वह जैसी कपलना जिस बातकी करताहै वह उसीप्रकार होताहै ॥ २९ ॥ ३० ॥ यह मन जैसे नियतिकी कल्पना करताहै वह उसीप्रकार कदाचिद् नियत और कदाचित् अनियत पदार्थोंको करती है ॥ ३१ ॥

करोतिचित्तंतेनैतच्चित्तंनियतियोजकम् ॥ नियत्यांनियतिंकुर्वन्कदाचित्स्वार्थनामिकाम् ॥ ३२ ॥ स्फुरत्यस्मिञ्जगत्कोशेजीवोव्योम्नीवमारुतः ॥ नियत्याविहितंकुर्वन्कदाचिन्नियतिंतश्वरः ॥ ३३ ॥ संज्ञार्थरूढनियतिशब्दःस्फुरतिसानुवत् ॥ तस्माद्यावन्मनस्तावन्नदैवंनियतिर्नच ॥ ३४ ॥ मनस्यस्तंगतेसाधोयद्भवत्यस्तुतत्तथा ॥ जीवोहिपुरुषोजातःपौरुषेणसयद्यथा ॥ ३५ ॥ संकल्पयतिलोकेस्मिंस्तत्तथा तस्यनान्यथा ॥ पुरुषार्थादृतेपुत्रनकिंचिदिहविद्यते ॥ ३६ ॥

अर्थ—इसकारण यह चित्त अपने संकलिपत पदार्थके अनुसार नियतिकाभी उत्पन्न करनेहाराहै इसीकारण नित्य नियत एकस्वभाववाले परमात्मामें यह चित्तरूप जीव कदाचित् मोक्षके अधिकारी जन्ममें स्वार्थ नाम, अर्थात् साक्षी चेतनेके साक्षात्कार नियति (समाधि) को करता हुआ उस जगत्के कोश चिदाकाशमें वायुकेसमान असंग अपने चित्स्वभावमें स्फुरित होताहै कदाचित् समाधिके व्युत्थान कालमें शास्त्ररूप नियतिसे विहित अपने २ वर्ण आश्रमके उचित कर्म करता हुआ अज्ञानियोंके बोधके लिये ये याज्ञिक शिष्टाचारके प्रवर्तक इत्यादि रूपसे लोकमें प्रसिद्ध नियति शब्दसे ऐसे स्फुरित होताहै जैसे पर्वतका पाषाण स्वयं अचल होनेपरभी पवनके वेगसे वृक्षोंके चलायमान होनेसे चंचल, स्थिरोंमें स्थिरके सदृश स्फुरित होताहै, इस हेतुसे जबतक मन न जीताजाय तबतक न नियति और तदैव जीता जाताहै वा नष्ट होताहै ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ हे साधो इसकारण मन जो पदार्थ जैसाहै (मनकी चेतनरूपता) वह वैसाही रहै, और यह जीव जब कर्म तथा ज्ञानके अधिकारी शरीरको प्राप्त होके पुरुष (मनुष्य) का जन्म होके जैसा ॥ ३५ ॥ लोकमें संकल्प करताहै वह वैसाही होताहै इसलिये अपने आधीन संकल्पमें पौरूष वैराग्यादि द्वारा ब्रह्मभावकाही संकल्प करना चाहिये क्योंकि पुरूषार्थके सिवाय इस संसारमें कुछ नहीं है ॥ ३६ ॥

परंपौरुषमाश्रित्यभोगेष्वरतिमाहरेत् ॥ नभोगेष्वरतिर्यावज्जायतेभवनाशनी ॥ ३७ ॥ नपरानिर्वृतिस्तावत्प्राप्यतेजयदायिनी ॥ विषयेषुरतिर्यावत्स्थितासंमोहकारिणी ॥ ३८ ॥ तावद्भवदशादोलाविलोलांदोलनस्थितिः ॥ अभ्यासेनविनापुत्रनकदाचनदुःखदा॥३९॥भोगभोगिभरप्रोताकदाशाविनिवर्त्तते४०

अर्थ—परम पुरूषार्थका आश्रय करके भोगोंमें वैराग्य संपादन करना चाहिये, क्योंकि संसारकी नाशिनी जबतक भोगोंमें विरक्ति नहीं उत्पन्न हुई ॥ ३७ ॥ तबतक जयको देनेहारी परम शान्ति नहीं होती, और जबतक मोहका कारण विषयोंमें प्रीति बनी है ॥ ३८ ॥ तबतक चंचल और भोगरूप सर्पके भारोंसे ग्रथित अति दुःखद यह संसारकी दशा श्रवण मननादि तथा समाधिरूप अभ्यासके विना कदापि निवृत्त नहीं होती ॥३९॥४०॥

बलिरुवाच ॥ भोगेष्वरतिरेवांतःकथंसर्वासुरेश्वर ॥ स्थितिमायातिजीवस्थदीर्घजीवितदायिनी ॥४१॥ विरोचनउवाच ॥ ॥ आत्मावलोकनलताफलिनीफलतिस्फुटम् ॥ जीवस्यभोगेष्वरतिंशरदीवमहालता ॥ ४२ ॥ आत्मावलोकनेनैषाविषयारतिरुत्तमा ॥ हृदयेस्थितिमायातिश्रीरिवांभोजकोटरे ॥ ४३ ॥ तस्मात्प्रज्ञानिकाषेणविचारेणातिचारुणा ॥ देवमालोकयेद्भोगाद्रतिंचावहरेत्समम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—बलि बोले-हे सब असुरोंके स्वामी जीवकी भोगोंमें अप्रीति जो कि दीर्घ जीवनदात्री अर्थात् नित्य आत्मस्वरूपमें स्थितिरूपहै वह स्थिरताको कैसे प्राप्त होती है ॥ ४१ ॥ विरोचनजी बोले-हे पुत्र! आत्म दर्शनरूप लता मोक्ष फलको देती हुई जीवकी भोगोंमें अप्रीति ऐसे उत्पन्न करती है जैसे शरदृतु द्राक्षा आदिकी महालता फलको फलती है ॥ ४२ ॥ आत्माके दर्शनसे यह विषयोंमें अप्रीति ऐसे हृदयमें स्थित होती है जैसे कमलोंके वनमें लक्ष्मी ॥ ४३ ॥ इस हेतु बुद्धिरूप कसौटीसे युक्त उत्तम विचारसे आत्माका दर्शन करै और उसीके साथही भोगोंसे अपनी प्रीतिभी हटावै ॥ ४४ ॥

चित्तस्यभोगैर्द्वौभागौशास्त्रेणैकंप्रपूरयेत् ॥ गुरुशुश्रूषयाचैकमव्युत्पन्नस्यतुसत्क्रमे ॥४५॥ किंचिद्व्युत्पत्तियुक्तस्यभागंभोगैःप्रपूरयेत् ॥ गुरुशुश्रूषयाभागौभागंशास्त्रार्थचिंतया ॥ ४६ ॥ व्युत्पत्तिमनुयातस्यपूरयेच्चेतसोन्वहम् ॥ द्वौभागौशास्त्रवैराग्यैर्द्वौध्यानगुरुपूजया ॥ ४७ ॥ साधुतामागतोजीवोयोग्योज्ञानकथाक्रमे ॥ निर्मलाकृतिरादत्तेपटउत्तमरंजनाम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—चित्तको दिनके भागके सदृश दो भाग उनमेंसे एक भाग देह यात्रामात्र उपायरूप भोगोंसे और दूसरा शास्त्र श्रवणसे पूर्ण करै, अथवा अपरिशुद्ध चित्तका एक भाग गुरू शुश्रूषारूप सन्मार्गके आरंभमें ॥ ४५ ॥ किंचित् व्युत्पन्न चित्तके ४ भाग करै उनमेंसे एक भाग देहयात्रामात्र भोगोंसे, दो भाग गुरूकी शुश्रूषा आदि सन्मार्गके आरम्भमें और एक भाग शास्त्रके श्रवणमें ॥ ४६ ॥ और तत्वके निश्चयरूप व्युत्पत्तियुक्त चित्तके दो

भाग प्रतिदिन शास्त्र तथा वैराग्यादिके सम्पादनमें पूर्ण करै, और दो ध्यान तथा गुरुकी पूजामें क्रमसे पूर्ण करै ॥४७॥ साधुता (मलिनतादि दोषोंके अभावसे शुद्धरूपता) की प्राप्त जीव ज्ञानकी कथाके क्रमके योग्य ऐसे होता है जैसे शुद्ध वस्त्र उत्तम कुसुंभ आदि रंगको ग्रहण करताहै ॥ ४८ ॥

शनैःशनैर्लालनीयंयुक्तिभिःपावनोक्तिभिः ॥ शास्त्रार्थपरिणामेनपालयेच्चित्तबालकम् ॥ ४९ ॥ परेपरिणतंज्ञानेशिथिलीभूतदुर्ग्रहम् ॥ ज्योत्स्नाऽहीनस्फटिकवच्चेतःशीतंविराजते ॥ ५० ॥ प्रज्ञयापरयाऋज्व्याभोगानामीश्वरस्यच ॥ सममेवाथदेहस्यरूपमाश्ववलोकयेत् ॥ ५१ ॥ प्रज्ञाविचारवशतःसममेवसदासुत ॥ आत्मावलोकनंतृष्णासंत्यागंचसमाहरेत् ॥ ५२ ॥

अर्थ—किंचित् अशुद्ध चित्त दुःखोंके आगमादि दर्शनरूप युक्तियोंसे और श्रुतिस्मृति तथा गुरू आदिके पवित्र उक्तियोंसे चित्के साथ अमलक (अंवरा) और शर्कराके साथ एकरसतारूप परिणामसे चित्तरूप बालकको लालन करै ॥ ४९ ॥ परम ज्ञानमें परिणत, तथा बाह्य मलिन जडीभूत काठमें शिथिल और चन्द्रिकासे अभिन्न स्फटिकके तुल्य शीतल चित्त शोभित होताहै ॥ ५० ॥ विषमतारूप कुटिलतासे रहित ब्रह्माकार बुद्धिसे भोगोंके और उनके स्वामी जीव अर्थात् इन्द्रिय विषय और उनकी वृत्तियां तथा जीव और भोगके आयतन (स्थान) शरीर, इन सबको समान अर्थात् सच्चिदानन्द एक अधिष्ठान ब्रह्मरूप देखे ॥ ५१ ॥ हे पुत्र ! बुद्धि तथा विचारके कारण सदा आत्माका दर्शन और तृष्णाका त्याग एककालहीमें सम्पादन करै ॥ ५२ ॥

परदृष्टौवितृष्णत्वंतृष्णाभावेचदृक्परा ॥ एतेमिथःस्थितेदृष्टीतेजोदीपदशेयथा ॥ ५३ ॥ भोगपूगेगतास्वादेदृष्टेदेवेपरावरे ॥ परेब्रह्मणिविश्रांतिरनंतोदेतिशाश्वति ॥ ५४ ॥ विषयाकलितानंदमनंतोदेतिनिर्वृतिः ॥ नकदाचनजीवानामात्मविश्रवणादृते ॥ ५५ ॥ यज्ञदानतपस्तीर्थसेवाभिर्जायतेसुखम् ॥ नतपोभिर्नदानेननतीर्थैरपिजायते ॥ ५६ ॥

अर्थ—आत्माका दर्शन होनेसे तृष्णाका अभाव अर्थात् मूल अविद्याका नाश और तृष्णाके अभावमें आत्मदर्शनकी दृष्टि ये दोनों परस्पर एककालमेंही ऐसे स्थितहैं जैसे अग्निकी तेजोमयी दशा तथा दीपाकार दशा ॥ ५३ ॥ भोगोंके समूहमें स्वादरहित होने तथा सर्वोत्तम आत्मदेवके देख पडनेपर परब्रह्ममें सदाके लिये विश्रान्ति उदय होतीहै ॥ ५४ ॥ विषयोंमेंही सारभूत आनन्द जिस कर्ममें है उसको आस्वादन करनेवाले जीवोंको अनन्त शान्ति कदापि नहीं होती क्योंकि आत्मामें विश्रान्तिके सिवाय और शान्ति कहां ॥ ५५ ॥ यज्ञ दान तप तथा तीर्थ सेवन आदिसे विषयसम्बन्धी सुख होताहै, और न तप न दान तथा न तीर्थसेभी ॥ ५६ ॥

भोगेषुविरतिर्जंतोःस्वभावालोकनादृते ॥ कयाचिदपिनोयुक्त्याबुद्धिरात्मवलोकने ॥ ५७ ॥ स्वप्रयत्नादृतेपुंसःश्रेयसेसंप्रवर्त्तते ॥ भोगसंत्यागसंप्राप्तपरमार्थादृतेसुत ॥ ५८ ॥ नब्रह्मपदविश्रांतिसुखमासाद्यतेपरम् ॥ आब्रह्मस्तंबपर्यंतेजगत्यस्मिन्नकुत्रचित् ॥ ५९ ॥ तद्वदाश्वस्यतेभातेपरमेकारणेयथा ॥ पौरुषंयत्नमाश्रित्यदैवंकृत्वासुदूरतः ॥ ६० ॥

अर्थ—जीवकी भोगोंमें विरक्ति अपने आत्मस्वभाव (आत्मा) के दर्शन विना नहीं होती और इसीप्रकार किसी युक्तिसे आत्माके दर्शनमें बुद्धि ॥ ५७ ॥ भोगोंसे वैराग्य तथा समाधि आदिके अभ्यासरूप पुरूषके प्रयत्नके विना बुद्धि प्रवृत्त नहीं होती, और हे पुत्र ! भोगोंके त्यागसे प्राप्त परमार्थके विना कल्याणके अर्थ पुरूषकी बुद्धिभी कदाचित् नहीं प्रवृत्त होती ॥ ५८ ॥ और ब्रह्मासे लेके स्तंब पर्य्यन्तको इस जगत्में ब्रह्मपदमें विश्रान्तिरूप सुख कदापि कहीं नहीं प्राप्त होता ॥ ५९ ॥ और इसीप्रकार अपने आत्मरूपसे अभिव्यक्त परमकारण परमात्मामें मनको विश्रामभी नहीं मिलता इसलिये पुरुषार्थरूप यत्नका अवलम्बन करके दैव (प्रारब्ध) को दूर करके ॥ ६० ॥

भोगान्विगर्हयेत्प्राज्ञःश्रेयोद्वारदृढार्गलान् ॥ प्रौढायांभोगगर्हायांविचारउपजायते ॥ ६१ ॥ वृद्धायांप्रावृषिश्रीमान्शरत्कालइवामलः ॥ विचारोभोगगर्हातोविचाराद्भोगगर्हणम् ॥ ६२ ॥ अन्योन्यमेतेपूर्यंतेसमुद्रजलदाविव ॥ भोगगर्हाविचारश्चस्वात्मालोकश्चशाश्वतः ॥ ६३ ॥ अन्योन्यंसाधयंत्यर्थंसुस्निग्धाःसुहृदोयथा ॥ पूर्वंदैवमनादृत्यपौरुषेणप्रयत्नतः ॥ ६४ ॥

अर्थ—कल्याण (मोक्षमार्ग) के दृढ अर्गलके समान भोगोंकी निन्दा (घृणा) बुद्धिमान् पुरुष करै और निन्दाके दृढ होनेपर सद्असद्का विवेक ऐसे उत्पन्न होताहै ॥ ६१ ॥ जैसे वर्षाऋतुके प्रौढ होनेपर शाली आदि सस्य फलकी संपत्तियुक्त शरत्काल उत्पन्न होताहै, ऐसेही भोगकी घृणासे विचार और विचारसे भोगोंसे घृणा उत्पन्न होती है ॥ ६२ ॥ ये दोनों (विचार और भोगोंसे घृणा) परस्पर एक दूसरेको ऐसे पूर्ण करते हैं जैसे समुद्र और

मैंघ, और भोगोंसे घृणा, विचार (सद् असद् विवेक) और नित्य अपने आत्माका दर्शन ॥ ६३ ॥ ये तीनों एक दूसरेके अर्थको ऐसे सिद्ध करते हैं जैसे अति स्नेहयुक्त मित्र, प्रथम प्रारब्धका अनादर करके और पौरुषरूप यत्नसे ६४

दंतैर्दंतान्प्रसंपीड्यभोगेष्वरतिमाहरेत् ॥ देशाचाराविरुद्धेनबांधवैकमतेनच ॥६५॥ पौरुषेणक्रमेणादौ धनानिसमुपार्जयेत् ॥ धनैरभ्याहरेद्धन्यान्सुजनान्गुणशालिनः ॥ ६६ ॥ प्रवर्त्ततेसमासंगात्तेषांभोग विगर्हणा ॥ ततोविचारस्तदनुज्ञानंशास्त्रार्थसंग्रहः ॥ ६७ ॥ ततःक्रमेणपरमपदप्राप्तिःप्रजायते ॥ यदा दूरतेकालेविषयेभ्योविरम्यसे ॥ ६८ ॥

अर्थ—दांतोंसे दांतोंको पीडन करके अर्थात् अति परिश्रमसे भोगोंसे वैराग्य संपादन करै, और देश आचार अपने वर्णाश्रममें विहित तथा बन्धुजनके संमतसे ॥६५॥ पौरुषप्रयत्न प्रथम क्रमसे धन उत्पन्न करै और धनोंसे सज्जन गुणज्ञ और मोक्षोपदेशक महात्माओंकी आराधना करके अपने वशमें करै ॥ ६६ ॥ क्योंकि उन महात्माओंके संगसे भोगोंसे घृणा उत्पन्न होती है और भोगोंकी घृणासे विचार उत्पन्न होताहै और विचारसे शास्त्रार्थ अर्थात् सब श्रुतियोंका अद्वैत ब्रह्ममें तात्पर्य्य निर्णय होताहै ॥ ६७ ॥ उसके पश्चात् मनन निदिध्यासन क्रमसे परमपदकी प्राप्ति होती है, और यदि इससमय विषय त्यागनेमें असमर्थ हो तो यौवनकाल वा जिससमय विषयसे विरक्त होओगे ॥ ६८ ॥

तदाविचारवशतःपरमंपदमेष्यसि ॥ सम्यक्प्राप्स्यसिविश्रांतिमात्मन्यत्यंतपावने ॥६९॥ नपुनःकल्पनापंकेदुःखायनिपतिष्यसि ॥ स्थितापिनास्थातेशुद्धनमस्तेस्तुसदाशिव ॥७०॥ देशक्रमेणधनमल्पविगर्हणेनतेनांगसाधुजनमर्जयमानपूर्वं ॥ तत्संगमोत्थविषयाद्यवहेलनेनसम्यग्विचारविभवेनतवात्मलाभः ॥७१॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे चित्तविचिकित्सायोगोपदेशो नाम चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

अर्थ—उसीसमय विचारके वशसे तुमको परमपदकी प्राप्ति होगी और अति पवित्र आत्मपदमें विश्रांतिभी तभी पाओगे ॥ ६९ ॥ और पुनः कल्पनारूप पंकमें तुम नहीं गिरोगे, और इससमय भोगोंमें विरक्ति न रहनेपरभी वह आगे होनेवाली है इस हेतुसे हे शुद्ध सदाशिव ब्रह्मरूप तुमको नमस्कारहै ॥ ७० ॥ हे प्रिय पुत्र ! देश और आचारसे अविरुद्ध रीतिसे प्रथम धन उपार्जन करो और उस धनसे तुच्छ धनकी घृणासे अर्थात् भोगके अर्थ अधिक धनका व्यय न करके ब्रह्मवेत्ता साधुमहात्माओंको दण्डवत्सेवा अन्न आच्छादनादिके दानादि सन्मानसे उपार्जन करो अनन्तर उन महात्माओंके समागमसे आविर्भूत विषयमें रागद्वेषादिके अनादरद्वारा साधन चतुष्टयकी संपत्तिसे और अध्यात्मशास्त्रके विचारसे विस्मृत कण्ठ मणिके सदृश तुमको आत्मलाभ होगा ॥ ७१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे चित्तविचिकित्सायोगो नाम चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

पंचविंशः सर्गः ॥ २५ ॥

इस २५ के सर्गमें पुनः बलिके अन्तःकरणमें विवेकरूप चन्द्रमाका शुभोदय और सन्देहकी शान्तिके अर्थ शुक्राचार्य्यकी चिन्ताका वर्णन किया गयाहै ॥

॥ बलिरुवाच ॥ ॥ एतन्मेकथितंपूर्वंपित्राचारुविचारिणा ॥ इदानींसंस्मृतंदिष्ट्यासंप्रबोधमहंगतः ॥ १ ॥ अयेयंममसंजाताभोगान्प्रत्यरतिःस्फुटं ॥ दिष्ट्याशमसुखंस्वच्छंविशाम्यमृतशीतलम् ॥ २ ॥ पुनरापूरयन्नाशांपुनरप्याहरन्धनम् ॥ पुनरावर्जयन्कांतांखिन्नोस्मिविभवस्थितौ ॥ ३ ॥ अहोनुखलुरम्येयंशमभूःशीतलांतरा ॥ सर्वाएवशमंयांतिसुखदुःखदृशःशमे ॥ ४ ॥

अर्थ—बलि बोले-उत्तम विचारवान् मेरे पितानें यह आख्यान मुझे कहा था इससमय प्रारब्धसे मैने स्मरण किया और बोधको प्राप्त हुआ ॥ १ ॥ इससमय प्रत्यक्ष रूपसे भोगोंमें अरुचि उत्पन्न हुई है और प्रारब्धसे स्वच्छ अमृतके समान शीतल शान्तिरूप सुखमें प्रवेश करताहुं ॥ २ ॥ पुनः २ आशाको पूर्ण करता और धनको पुनः २ एकत्र करता, और पुनः २ प्रार्थनादिसे स्त्रियोंको अनुकूल करता हुआ, तथा सम्पत्तिके परिपालनके विषयमें मैं अति संतप्तहुं ॥ ३ ॥ अहो ! यह शीतल गर्भयुक्त शान्तिकी पृथिवी कैसी रमणीयहै, शान्ति होनेसे सब सुखदुःखकी दृष्टि नाशको प्राप्त होती है ॥ ४ ॥

शाम्यामिपरिनिर्वामिसुखमासेसमेस्थितः ॥ अयमंतःप्रहृष्यामिचंद्रबिंबइवार्पितः ॥ ५ ॥ उत्तांडवन्म नोरंद्रःप्रोषितोरुशरीरकम् ॥ अनारतपरिक्षोभंहाद्दुःखंविभवार्जनम् ॥ ६ ॥ अंगमंगेनसंपीड्यमांसंमांसेनचस्त्रियः ॥ पुराहमभवंप्रीतोयत्तन्मोहविजृंभितम् ॥ ७ ॥ दृष्टांतदृष्टयोदृष्टाभुक्तंभोक्तव्यमक्षतम् ॥ आक्रांतमखिलंभूतंजातंकिमिवशोभनम् ॥ ८ ॥

अर्थ—इससमय शमतामें स्थित अन्तःकरणमें सब तापोंसे निवृत्त होताहुं, चन्द्रबिंबमें अर्पितके समान शान्त होताहुं, अर्थात् निरतिशय आनन्दमें प्राप्त होताहुं, और इसीसे सुखमें स्थितहुं; और यह मैं अन्तःकरणमें अति हर्षित होताहुं ॥ ५ ॥ हा ! उद्दण्ड मनके वेगोंसे दग्ध वा देशभ्रमणसे भ्रान्त शरीरसहित अतएव निरन्तर क्षोभयुक्त धनका उपार्जन दुःखही है ॥ ६ ॥ पूर्वकाल स्त्रीके अंगसे अंगको और मांससे मांस पीडनकरके जो मैं प्रसन्न होताथा यह केवल अज्ञानका विलासहै ॥ ७ ॥ सब ऐश्वर्य्योंके दृष्टान्त महा ऐश्वर्य्यकी दृष्टि स्वयं देखा, दूसरोंसे अव्याहत राज्यादि भोगभोगा, और संपूर्ण प्राणी मात्रको अपने सामर्थ्यसे नमित किया तथापि इससे नित्य शोभन (सुख) क्या हुआ, अर्थात् अनादि संसार विभव कभी किसीको होताहै कभी नहीं और अपनेको पूर्वकालके समान सहस्रशः दुर्दशाकी सम्भावना है इसलिये इस संसारमें कुछभी शोभन नहीं है ॥ ८ ॥

पुनस्तान्येवतान्येवतत्रेहान्यत्रवापिच ॥ इतश्चेतश्चवस्तूनिनापूर्वनामकिंचन ॥ ९ ॥ सर्वमेवपरित्यज्यपरिहृत्यधियास्वयम् ॥ स्वस्थएवावतिष्ठेहंपूर्णात्पूर्णइवात्मनि ॥ १० ॥ पातालेभूतलेस्वर्गेस्त्रियोरत्नोपलादयः ॥ सारंतदपितुच्छेनकालेनाशुनिगीर्यते ॥ ११ ॥ एतावंतमहंकालंभृशंबालोभवंपुरा ॥ यःकुर्वन्द्वेषममरैस्तुच्छयाजगदिच्छया ॥ १२ ॥

अर्थ—इस लोक वा पर लोकमें इधर उधर पुनः वही वस्तु पुनः वही वस्तु अनुभवमें आती हैं इस कारण चर्वित चर्वणके तुल्य सब हैं इसमें अपूर्व कुछभी नहीं हैं ॥ ९ ॥ सबको त्याग करके और बुद्धिसे सबको छोडके बोधसे पूर्ण स्वरूपके प्राप्त होनेसे अपने आत्मामें पूर्णके समान मैं स्थित रहूं ॥ १० ॥ पातालमें स्वर्गमें और पृथिवीपर जो स्त्रियां तथा रत्न (हीरा पाषाणादि) भोग्य अज्ञानियोंने जो सार करके मानाहै वही सब अल्पकालसे निंगल लिये जाते हैं ॥ ११ ॥ इतने समयतक मैं अति बालक (मूर्ख) था जो कि तुच्छ जगत्के आधिपत्यकी इच्छासे देवताओंके साथ मैंने पूर्वकालमें विरोध किया था ॥ १२ ॥

मनोनिर्माणमात्रेणजगन्नाम्नामहाधिना ॥ त्यक्तेनानेनकोर्थःस्यात्कोनुरागोमहात्मनः ॥ १३ ॥ कष्टंचिरतरंकालमनर्थोर्थधियामया ॥ अज्ञानमदमत्तेनकालेनस्वेनसेवितः ॥ १४ ॥ तरत्तरलतृष्णेनकिमिवास्मिञ्जगत्त्रयम् ॥ मयानकृतमज्ञेनपश्चात्तापाभिवृद्धये ॥ १५ ॥ एतयातदलंमेस्तुतुच्छयापूर्वचिंतया ॥ पौरुषंयातिसाफल्यंवर्त्तमानचिकित्सया ॥ १६ ॥

अर्थ—मनकी रचनामात्र जो यह जगत् नाम महामानसी दुःखहै इसके न त्यागनेसे भला क्या अर्थ सिद्ध होसकताहै और इसमें महात्माका अनुराग क्या होसकताहै ? ॥ १३ ॥ अहो खेदहै कि अज्ञानरूप मदसे मत्त मैंने दीर्घकालतक अनर्थकोही अर्थ बुद्धिसे सेवन किया ॥ १४ ॥ चंचलतृष्णा तथा अज्ञानसहित मैंने इस तीनोंलोकमें अपने पश्चात्तापकी वृद्धिके अर्थ ऐसा कौनसा कर्म है जिसको न किया हो ॥ १५ ॥ अब इस पूर्वकालकी तुच्छ चिंतासें कुछ प्रयोजन नहीं है क्योंकि वर्तमानकालके अज्ञानके नाशार्थ उपाय करनेसे पौरूष (पुरुषका जन्म) सफल होताहै १६

अद्यापरिमिताकारकारणैकतयात्मनि ॥ सर्वतस्सुखमभ्येतिरसायनमिवार्णवे ॥ १७ ॥ कोयंतावदहं किंस्यादात्मेत्यात्मावलोकनम् ॥ पृच्छाम्यौशनसंनाथंनूनमज्ञानशांतये ॥ १८ ॥ संचिंतयामिपरमेश्वर माशुशुक्रमुद्यत्प्रसादमथतेनगिरोपदिष्टे ॥ तिष्ठाम्यनंतविभवेस्वयमात्मनात्मन्यक्षीणमर्थमुपदेशगिरः फलंति ॥ १९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे बलिचिंता सिद्धांतयोगोपदेशो नाम पंचविंशः सर्गः ॥ २५ ॥

अर्थ—अपरिमित आकारवान् कारणरूप परब्रह्मके साथ एकता (अभेद) स्थितिसे आत्मामें चारों ओरसे पूर्ण सुख ऐसे प्राप्त होताहै जैसे क्षीरसमुद्रमें मथनेसे अमृतरूप रसायन चारोंओरसे आविर्भूत होताहै और आज॥१७॥ मैं अज्ञानकी शान्तिके अर्थ अपने कुलगुरू अर्थात् कुलके ईश्वर भगवान् शुक्राचार्यसे आत्मदर्शनका उपाय पूंछूं कि यह दृश्य प्रपंच क्याहै और अहं प्रत्यय वेद्य जीवतत्व क्याहै ॥ १८ ॥ मैं इससमय परमेश्वर (योग सिद्धिसे सर्व

कामेश्वर) और अपने शिष्यादि आश्रित जनोंपर शीघ्र उदयभूत प्रसाद (प्रसन्नतायुक्त) शुक्राचार्यको चिंतन करताहुं अर्थात् दर्शनकी इच्छा करताहुं और उनके उपदिष्ट वाणीसे अनन्त विभवयुक्त परमात्मस्वरूपमें स्वयं स्थित रहुंगा, क्योंकि महात्माओंसे उपदेश की हुई वाणी अक्षय फल देती हैं ॥ १९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उपशमप्रकरणे बलिचिन्ता सिद्धान्त योगोपदेशो नाम पंचविंशः सर्गः ॥ २५ ॥

षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

स्मरणमात्रसे आये हुये शुक्राचार्य्यका राजा बलिके प्रति संक्षेपसे तत्वपदार्थका उपदेश और उन (शुक्राचार्य) का आकाशमें गमन इस विषयका वर्णन इस २६ के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ वसिष्ठउवाच ॥ ॥ इतिसंचिंत्यबलवान्बलिरामीलितेक्षणः ॥ दध्यौकमलपत्राक्षंशुक्रमाकाशमंदिरम् ॥१॥ सर्वस्थंचिंतयानंतुनित्यध्यानोथभार्गवः ॥ चेतःस्थंज्ञातवान्शिष्यंबलिंगुर्वर्थिनंपुरे ॥२॥ अथसर्वगतानंतचिदात्माभार्गवःप्रभुः ॥ आनिनायसदेहंस्वंरत्नवातायनंबलेः ॥ ३ ॥ गुरुदेहप्रभाजालपरिस्पष्टतनुर्बलिः ॥ बुबुधेप्रातरर्कांशुसंबोधितमिवांबुजम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—इसप्रकार चिन्तन करके बलवान् राजा बलि नेत्रको मून्दको ब्रह्माकाशमें विश्राम करनेवाले और कमलके सदृश नेत्रसहित शुक्राचार्य्यका ध्यान किया ॥ १ ॥ इसके पश्चात् नित्य ब्रह्मध्यानमें तत्पर शुक्राचार्य्यजी सर्वरूप ब्रह्ममें स्थित अपनेको चिंतन करते हुये अपने चित्तमें स्थित, और तत्वज्ञानकी इच्छासे अभिलाषी अपने शिष्यको जाना ॥ २ ॥ इसके पश्चात् सर्वव्यापी अनन्त चिदात्मरूप भगवान् शुक्राचार्यजी रत्नोंसे रचित राजा बलिके झरोखेमें अपने शरीरको प्राप्त किया अर्थात् स्वयं आके वहां प्राप्त हुये ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर गुरुके शरीरकी दीप्तिके समूहसे स्पष्ट शरीर राजा बलि ऐसे विकसित हुये जैसे प्रातःकालमें सूर्य्यके किरणसे कमल विकसितहो ४

तत्ररत्नार्घ्यदानेनमंदारकुसुमोत्करैः ॥ पादाभिवंदनैरेनंपूजयामासभार्गवम् ॥ ५ ॥ रत्नार्घ्यपरिपूर्णांगंकृतमंदारशेखरम् ॥ महार्हासनविश्रांतमथोवाचगुरुंबलिः ॥ ६ ॥ बलिरुवाच ॥ भगवंस्त्वत्प्रसादोत्थाप्रतिभेयंपुरस्तव ॥ नियोजयतिमांवक्तुंकार्यकर्तुमिवार्कभा ॥ ७ ॥ भोगान्प्रतिविरक्तोस्मिमहासंमोहदायिनः ॥ ततत्वंज्ञातुमिच्छामिमहासंमोहहारियत् ॥ ८ ॥

अर्थ—वहांपर रत्नोंके पात्रमें अर्घ्यके संप्रदानसे, कल्पवृक्षके पुष्पसमूहोंसे तथा चरणोंमें वन्दना आदिसे बलिने शुक्राचार्यकी पूजाकी ॥ ५ ॥ रत्नोंके अर्घ्यसे परिपूरित शरीर मन्दार (कल्पवृक्ष) के पुष्पोंसे रचित मालाके शिरमें भूषण संयुक्त, और बहु मूल्य आसनपर बैठे हुये गुरूसे राजा बलि बोले ॥ ६ ॥ बलि बोले—हे भगवन् ! आपकी कृपासे नूतन कल्पना करनेकी शक्ति विशिष्ट यह बुद्धि आपसे कुछ बोलनेको मुझे ऐसे नियुक्त करती है जैसे सूर्य्यकी प्रभा अपने सन्निधान मात्रसे ब्राह्मणादिको सन्ध्या वन्दन आदि करनेको ॥ ७ ॥ हे भगवन् ! महामोहदायी भोगोंसे मैं अब विरक्तहुं और महाअज्ञानका नाशक जो तत्वहै उसे मैं जानना चाहताहुं ॥ ८ ॥

कियन्मात्रमिदंभोगजालंकिंमयमेववा ॥ कोहंकस्त्वंकिमेतेवालोकाइतिवदाशुमे ॥ ९ ॥ श्रीशुक्रउवाच ॥ बहुनात्रकिमुक्तेनखंगंतुंयतवानहम् ॥ सर्वदानवराजेंद्रसारंसंक्षेपतःशृणु ॥ १० ॥ चिदिहास्तिहिचिन्मात्रमिदंचिन्मयमेवच ॥ चित्त्वंचिदहमेतेचलोकाश्चिदितिसंग्रहः ॥ ११ ॥ भव्योसिचेत्तदेतस्मात्सर्वमाप्नोषिनिश्चयात् ॥ नोचेत्तद्बह्वपिप्रोक्तंत्वयिभस्मनिहूयते ॥ १२ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! इस भोगजाल (विषय समूह) की उत्तमताकी अवधि कहांतकहै और यहहै क्या २ और मैं क्या हुं और तुम क्या हो इसका तत्व मुझे शीघ्र कहो ॥ ९ ॥ श्रीशुक्राचार्यजी बोले—हे दानवराज ! मैं इससमय आकाशमें जानेको संनद्धहुं इससमय अधिक कहनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है तुम संक्षेपसे अपने तीनों प्रश्नोंका सार सुनो ॥ १० ॥ यह जगत् चेतनहीं है, इसकी सिद्धि चित्के आधीन होनेसे सब दृश्य चिन्मात्रही है चित्मेंही विचित्र भेदका अध्यास करनेसे सब चिन्मयहै, तुम चित् हम चित् और ये सब लोकभी चित्रूपहै यह संक्षेपहै ॥ ११ ॥ हे राजन् ! यदि तुम श्रद्धावान् तथा विवेकी हो तो इसी निश्चयसे सब कुछ पाओगे और यदि यह वार्ता नहीं है तो अधिक कहनाभी तुममें ऐसाहै जैसे भस्ममें हवन ॥ १२ ॥

चिच्चैत्यकलनाबंधस्तन्मुक्तिर्मुक्तिरुच्यते ॥ चिदचेत्याखिलात्मेतिसर्वसिद्धांतसंग्रहः ॥ १३ ॥ एनं निश्चयमादायविलोकयसिहेलया ॥ स्वयमेवात्मनात्मानमनंतंपदमाप्स्यसि ॥ १४ ॥ खंव्रजाम्यहमेवमुनयःसप्तसंगताः ॥ केनापिसुरकार्येणवस्तव्यंतत्रवैमया ॥ १५ ॥ राजन्यावदयंदेहस्तावन्मुक्तधियामपि ॥ यथाप्राप्तक्रियात्यागोरोचतेनस्वभावतः ॥ १६ ॥ इतिकथितवताथमार्गवेणस्फुरज्जलराशिपथामहाजवेन ॥ प्लुतमलिशबलेनभोंतरालेतरलतरंगवदाकुलेग्रहैघैः ॥ १७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे बल्युपदेशयोगो नाम षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

अर्थ—चित्की विषयाकार कल्पनाही बन्धहै और इस कल्पनासे मुक्तिही मुक्ति है, चेत्य अर्थात् विषयाकारसे निर्मुक्त चित् पूर्ण आत्माहै यह सब सिद्धान्तोंका सारहै ॥ १३ ॥ इस निश्चयको ग्रहण करके यदि अखण्डाकार वृत्तिसे सब संसारको देखोगे, तो निश्चय स्वयं ब्रह्मपदको पावोगे ॥ १४ ॥ मैं इससमय आकाशको जाताहुं, सप्तर्षिभी यहां मेरे साथ आये हैं किसी देव कार्य्यसे मेरा वहां जाके रहना अत्यावश्यकहै ॥ १५ ॥ क्योंकि हे राजन्! जबतक यह शरीरहै तबतक जीवन्मुक्तोंकोभी यथा प्राप्त क्रियाका त्याग स्वभावसेही नहीं रुचता ॥ १६ ॥ इसप्रकार कहके भगवान शुक्राचार्य ग्रहोंसे व्याप्त अतएव पुष्पकी रजसे पूर्ण और भ्रमरके समान श्यामवर्ण आकाशके मध्यमें मेघके मार्गसे और उपर होके वेगसे उडे ॥ १७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे बल्युपदेशयोगो नाम षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

सप्तविंशः सर्गः ॥ २७ ॥

शुक्राचार्यके कहेहुये मार्गसे सब कुछ विचार करतेहुये राजाबलिकी चित् पूर्णानन्दकी विश्रान्तिसे चिरकालतक स्थिति इस २७ के सर्गमें वर्णन की गई है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ सुरासुरसभाज्येष्ठेतस्मिन्भृगुसुतेगते ॥ मनसाचिंतयामासबलिर्बुद्धिमतांवरः ॥ १ ॥ युक्तमुक्तंभगवताचिदेवेदंजगत्त्रयम् ॥ चिदहंचिदिमेलोकाश्चिदाशाश्चिदियंक्रिया ॥ २ ॥ स बाह्याभ्यंतरंसर्वंचिदेवपरमार्थतः ॥ अस्तिचिद्व्यतिरेकेणनेहकिंचनकुत्रचित् ॥ ३ ॥ आयमादित्यइत्यर्कोनचितायदिचेत्यते ॥ तदर्कतमसोर्भेदःकइहैवोपलभ्यते ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—सुर और असुरोंकी सभामें अति प्रसंशनीय उस शुक्राचार्य्यके जानेपर बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ राजाबलिने मनमें चिंतन किया ॥ १ ॥ कि भगवान् शुक्राचार्यने सब सत्य कहां है यह तीनोलोक चिन्मात्रही है, मैंभी चित्रूपहुं, ये सब लोकभी चित्रूपहैं, सब दिशा चिद्रूपहैं, यह क्रियाभी चिद्रूपही है ॥ २ ॥ यथार्थमें बाह्य तथा आभ्यन्तर यह सब दृश्यमात्र चिद्रूपही है चित्से पृथक् इस संपूर्ण ब्रह्माण्डमें कहीं कुछ नहीं है ॥ ३ ॥ यह सूर्य्य है यदि सूर्य्यको तम, घट तथा दीपादि भिन्नरूपसे चेतन न प्रकाशित करे तो सूर्य्य तथा अन्धकारका भेद क्या भानहो? ॥ ४ ॥

इयंभूरितिभूरेषाचितायदिनचेत्यते ॥ भूमेःकिंनामभूमित्वंतद्व्यभव्यतांगतम् ॥ ५ ॥ इमादिशोदिशइतिस्वेत्थंतेनचितायदि ॥ तत्किंनामदिशांदित्वंशैलानांचापिकाद्रिता ॥ ६ ॥ इदंजगज्जगदितिचिता यदिनचेत्यते ॥ तत्किंजगत्त्वंजगतोनभस्त्वंनभसोथकिम् ॥ ७ ॥ कायोयंपर्वताकारश्चित्तायदिनचेत्यते ॥ तत्किंनामशरीरत्वंशरीरस्यशरीरिणाम् ॥ ८ ॥

अर्थ—यह जो पृथिवी है इसको पृथिवीरूपसे यदि चेतन न जाने तो जलादि भिन्न पृथिवीत्वरूपसे यह प्रसिद्धताको कैसे प्राप्तहो ॥ ५ ॥ ये दिशा हैं इनको दिशारूपसे चेतन न प्रकाशित करे तो दिशाओंका दिशापन, और पर्वतोंमें पर्वतरूपसे यदि न जाने तो उनका पर्वत्व क्या है? ॥ ६ ॥ यह जो जगत्है इसको जगत् इस रीतिसे यदि चेतन न प्रकाशित करे तो जगत्का जगत्व क्या और आकाशका आकाशत्वभी क्या? ॥ ७ ॥ इस स्थूलाकार शरीरको चेतन न प्रकाशित करे तो शरीरियों (जीवों) के शरीरका शरीरत्व क्या? ॥ ८ ॥

चिदिंद्रियाणिचित्कायश्चिन्मनश्चित्तदेषणा ॥ चिदंतश्चिद्बहिश्चित्खंचिद्धाश्चिद्वस्थितिः ॥ ९ ॥ चितैवैनमहंसर्वस्पर्शं नैषणपूर्वकम् ॥ करोमिमात्रासंस्पर्शंशरीरेणनकिंचन ॥ १० ॥ किमनेनशरीरेण

काष्ठलोष्टसमेनमे ॥ अशेषजगदेकात्माचिदहंचेतनात्मकः ॥ ११ ॥ अहंचिदंबरेभानावहंचिद्भूतपंजरे ॥ सुरासुरेषुचिदहंस्थावरेषुचरेषुच ॥ १२ ॥

अर्थ—इन्द्रियांचित्, शरीरचित्, मनचित् इच्छाचित्, अन्तर और वाह्य सब चित्‌ही है शून्य आकाश (असत्) चित् उनसे विलक्षण सब चित् हैं और सब संसारकी स्थितिभी चिद्रूपही है ॥ ९ ॥ चित्‌रूपही मैं भोगकी इच्छा पूर्वक शब्द स्पर्श आदि विषयोंके भोगका कर्ताहुं और शरीरसे कुछभी नहीं करता ॥१०॥ काष्ठ लोष्ठके समान इस शरीरसे मेरा क्या प्रयोजनहै उपाधि शून्य संपूर्ण जगत्‌का आत्मरूप चेतनात्मक चित् मैंहुं ॥ ११ ॥ आकाशमें सूर्यादि तेज पदार्थमें और वायु जल तथा पृथिवीरूप भूत समूहमें जो चित् है वह मैंहुं वा मैं वही हुं और सुर असुर आदि तथा अन्य स्थावर तथा जंगममें यो चित् है वह मैं वा वही मैंहुं ॥ १२ ॥

चिदस्तीहद्वितीयाहिकल्पनैवनविद्यते ॥ द्वित्वस्यासंभवाल्लोकेकःशत्रुःकश्चवासुहृत् ॥ १३ ॥ बलिनाम्नःशरीरस्यच्छिन्नेशिरसिभासुरे ॥ चितःकिंतद्भवेच्छिन्नंसर्वलोकावपूरणात् ॥ १४ ॥ चितासंचेतितोद्वेषोद्वेषोभवतिनान्यथा ॥ तस्माद्द्वेषादयस्सर्वेभावाभावाश्चिदात्मकाः ॥ १५ ॥ नचितोन्यतिरेकेणप्रविचार्यापिकिंचन ॥ आसाद्यतेकिलस्फारादस्मात्त्रिभुवनोदरात् ॥ १६ ॥

अर्थ—इस ब्रह्माण्डमें केवल चिन्मात्रहै उससे पृथक् कुछ अन्य कल्पना नहीं है, और अन्यका असंभव होनेसे संसारमें शत्रु वा मित्र कौनहैं ॥ १३ ॥ बलि नाम इस शरीरके प्रकाशमान शिरके कटनेपरभी असंग और सब लोकमें व्याप्त मुझ चित्स्वरूपका क्या छिन्न होसकताहै ॥ १४ ॥ और चित्तसेही प्रकाशित द्वेष द्वेषरूप होताहै अन्यथा नहीं, इसलिये रागद्वेषादिभाव अभावादि पदार्थोंकी चित्‌के आधीन कल्पना होनेसे सब रागद्वेषादि भावाभाव चिद्रूपही है॥१५॥भलीभांति विचारनेपरभी इस विशाल त्रिलोकके गर्भसे चित्‌से पृथक् कुछभी नहीं प्राप्तहोता है॥१६

नद्वेषोस्तिनरागोस्तिनमनोनास्यवृत्तयः ॥ चिन्मात्रस्यातिशुद्धस्यविकल्पकलनाकुतः ॥ १७ ॥ चिदहंसर्वगोव्यापीनित्यानंदमयात्मकः ॥ विकल्पकलनातीतोद्वितीयांशविवर्जितः ॥ १८ ॥ चितश्चिदादितियन्नामनिर्नामायाननामतत् ॥ शब्दात्मिकैषाचिच्छक्तिःपरिस्फुरतिसर्वगा ॥ १९ ॥ दृश्यदर्शननिर्मुक्तकेवलामलरूपवान् ॥ नित्योदितोनिराभासोद्रष्टास्मिपरमेश्वरः ॥ २० ॥

अर्थ—शुद्ध चिन्मात्र मेरे स्वरूपको न राग है न द्वेषहै, न मनहै और न मनकी वृत्ति हैं तो विकल्पकी कल्पना इसमें कहांसे होसकती हैं ॥ १७ ॥ सर्वगामी, सर्वव्यापी, विकल्पकी कल्पनासे मतीत और द्वितीय अंशसे वर्जित नित्य आनन्दमय चिद्रूप मैं हुं ॥ १८ ॥ चित्‌का जो चित् यह नामहै वह नाम शून्य चित्‌का नाम नहीं है किंतु सर्वगामिनी तथा सम्पूर्ण नामरूप कल्पनाका अधिष्ठानभूत जो चित्‌शक्तिहै वही अपने नाम शब्दात्मकरूपसे स्फुरित होरही है ॥ १९ ॥ दृश्य तथा दर्शनसे निर्मुक्त केवल निर्मल रूप, नित्य उदित, और अन्य प्रकाशकरहित द्रष्टामात्र परमेश्वर मैं हुं ॥ २० ॥

कल्पनाविकलाकारःकालकांतकलामयः ॥ आभासमात्रमुदितोनित्याभासविवर्जितः ॥ २१ ॥ भारूपैकस्वरूपेस्मिन्स्वरूपेणजयाम्यहम् ॥ चैत्यरंजनरिक्तायविमुक्तायमहात्मने ॥ २२ ॥ प्रत्यक्चेतनरूपायस्वरूपायनमोस्तुते ॥ चितयेचेत्यमुक्ताययुक्त्यायुक्ताययोग्यया ॥२३॥ सर्वावभासदीपायमह्यमेवनमोस्तुते ॥ चेत्यनिर्मुक्तचिद्रूपंविश्वग्विश्वावपूरकम् ॥ २४ ॥

अर्थ—इसप्रकार प्रकाशमात्र मुझमें नित्य अपने आत्माके प्रकाशसे शून्य जल वा केशके अग्रभागमें प्रतिबिम्बित चन्द्रमाकी कलामय और अपनी कल्पनासे परिच्छिन्न आकारवाला जो जीवभाव उदितहै वह भ्रान्तिहै न कि यथार्थ ॥ २१ ॥ इसी कारण अन्तिम साक्षात्कार वृत्तिसे प्रदीप्त अपने शुद्ध रूपसे मैं जीवभावको पराजित करता हुं, अतएव विषयके रंजना (रंग) से रहित मुक्त स्वरूप तथा महात्मा ॥ २२ ॥ साक्षी चेतनरूप, अपने आत्मस्वरूपको नमस्कारहै विषयरहित चित्‌रूप, तथा मनन निदिध्यासन समाधिरूप योग्य युक्तिसे युक्त साक्षीचेतन मुझे मेरा नमस्कार है ॥ २३ ॥ सर्व प्रकाशक दीपरूप मुझे मेरा नमस्कारहै, विषयसे निर्मुक्त चित्‌रूप, चारो ओरसे ब्रह्माण्डमें पूर्ण ॥ २४ ॥

संशांतसर्वसंवेद्यंसच्चिन्मात्रमहंमहत् ॥ आकाशवदनंतोहमप्यणोरणुराततः ॥२५॥ नासादयंतिमामेताःसुखदुःखदशादृशः ॥ संवेदनमसंवेद्यमचेत्यंचेतनंततम् ॥ २६ ॥ नशक्तामांपरिच्छेत्तुंभावाभावाजगद्गताः ॥ अयचैतेजगद्भावाःपरिच्छिंदंतुमामिमम् ॥ २७ ॥ यथाभिमतमेवैतेमत्तोनव्यतिरेकिणः ॥ यदिस्वभावभूतेनवस्तुनावस्तुनीयते ॥ २८ ॥

अर्थ—शान्त सम्पूर्ण वेद्ययुक्त सच्चित्मात्र महत्वरूप मैं हुं आकाशसेभी अनन्त व्यापक तथा अणुसेभी अणु मैं हुं ॥ २५ ॥ ये जगत्के सुखदुःख दशाकी दृष्टि मुझे नहीं पा सकती हैं, क्योंकि वर्तमानकालके विषयमें संवेदन (ज्ञान) असंवेद्य रहताहै और भूत तथा भविष्यत् विषयमें व्यापक चेतन अचेत्य (विषय शून्य) रहताहै ॥ २६ ॥ जगत्‌भाव अभाव पदार्थ देशकाल तथा वस्तु इयत्तारूप मेरा परिच्छेद नहीं करसकते, कदाचित् यह कहो तत्वनिश्चयरूप परिच्छेद, प्रमाणादि जगत्के पदार्थ मेरा करतेही हैं ॥ २७ ॥ तो यह हमको इष्टही है क्योंकि मेरे स्वरूपमात्रके परिच्छेदसे वे मुझसे पृथक् नहीं हैं जैसे यदि वस्तुको स्वभावभूत वस्तु एक देशसे प्राप्तकी जाय ॥ २८ ॥

ह्रियतेदीयतेवापितत्किंकस्यकिलक्षतम् ॥ सर्वदासर्वमेवाहंसर्वकृत्सर्वसंगतः ॥ २९ ॥ चेत्यमस्म्यहमेवैतन्नकिंचिदपिचोदितम् ॥ किंसंकल्पविकल्पाभ्यांचितंचिदियमेकिका ॥ ३० ॥ संक्षोभयाम्यहंतावच्छाम्याम्यात्मनिपावने ॥ इतिसंचिंतयन्नेवबलिःपरमकोविदः ॥ ३१ ॥ ओंकारादर्द्धमात्रार्थंभावयन्मौनमास्थितः ॥ संशांतसर्वसंकल्पःप्रशांतकलनागणः ॥ ३२ ॥

अर्थ—हरण की जाय वा दी जाय तो किसकी क्या हानि हुई जैसे देवदत्तके वामहस्तका गत धन दक्षिणहस्तमें ले ले हर ले वा दे दे तो इसमें किसीकी कुछ हानि नहीं है और यथार्थमें तो तत्त्वबोधसे प्रथमभी सर्वदा सर्वत्र प्राप्त, सर्वकर्ता, और सर्वरूप हमही हैं ॥ २९ ॥ मैं एक चित् यह सम्पूर्ण विषयरूप हुं, यथार्थमें कुछभी उत्पन्न नहीं हुआ, क्योंकि मुझ चिद्रूपका संकल्प विकल्पोंसे क्या संचित हुआ, क्या बढा और क्या नष्ट हुआ ॥ ३० ॥ अज्ञानसे क्षोभको और बोधसे शांतिको मैंहीं प्राप्त होताहुं, ऐसा चिन्तन करते हुये परमकोविद राजा बलि ॥ ३१ ॥ शान्त सब संकल्प तथा कल्पनारहितहोके त्रिमात्रओंकारसे परे तुरीयआत्मरूप ब्रह्मकीभावना करतेहुये मौन धारण करके स्थितरहा ॥ ३२ ॥

निःशंकमपिदूरास्तचेत्यचिंतकचिंतनः ॥ ध्यातृध्येयध्यानहीनोनिर्मलःशांतवासनः ॥ ३३ ॥ बभूवावातदीपाभोबलिःप्राप्तमहापदः ॥ उपशांतमनास्तत्ररत्नवातायनेबलिः ॥ अवसद्बहुकालंससमुत्कीर्णइवोपले ॥ ३४ ॥ प्रशमितैषणयापरिपूर्णयामननदोपदशोज्झितयैतया ॥ बलिरराजतनिर्मलसत्तयाविघनमच्छतयेवशरन्नभः ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे
बलिविश्रांतिर्नाम सप्तविंशतितमः सर्गः ॥ २७ ॥

अर्थ—निःशङ्कतापूर्वक चेत्य चेतन और चिंतकसे सर्वथा वर्जित, तथा ध्यातृ, ध्येय और ध्यानसे (त्रिपुटीशून्य) निर्मल, और वासना शून्य ॥ ३३ ॥ तथा निर्वातमें स्थित दीपके समान वह होगये और महा (ब्रह्म) पदको प्राप्त हुये और शान्तचित्त उसी रत्नके झरोखेमें बलिराजाने बहुत कालतक ऐसे निवास किया जैसे पाषाणमें खुदीहुई मूर्ति ॥ ३४ ॥ तीनों (धन पुत्र तथा लोक) ऐषणा (इच्छा) रहित चारोओरसे पूर्ण विषयके मननके दीपकी दशासे व्यक्त इस निर्मल ब्रह्मभाव प्राप्तिरूपसत्तासे ऐसे शोभित हुये जैसे मेघरहित शरत्कालका आकाश ॥ ३५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे
बलिविश्रान्ति नाम सप्तविंशः सर्गः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशः सर्गः ॥ २८ ॥

चेष्टारहित बलिको देखके शोकग्रस्त दानवोंने शुक्रको स्मरण किया उन्होंने आके बलिकी समाधिकी स्थिति कहके उनके शोकको हरलिया यह विषय इस २८ के सर्गमें कहागयाहै ॥

॥ वसिष्ठउवाच ॥ ॥ अथतेदानवास्तत्रबलेरनुचरास्तदा ॥ तद्गेहंस्फाटिकंसौधमुच्चैरारुरुहुःक्षणात् ॥ १ ॥ डिंभाद्यामंत्रिणोधीराःसामंताःकुमुदादयः ॥ सुराद्याश्चैवराजानोवृत्ताद्याबलहारिणः ॥ २ ॥ हयग्रीवादयःसैन्याश्चाक्राजाद्याश्चबांधवाः ॥ लड्डुकाद्याश्चसुहृदोवल्गूकाद्याश्चलालकाः ॥ ३ ॥ कुबेरयमशक्राद्याउपायनकराःसुराः ॥ यक्षविद्याधरानागाःसेवावसरकांक्षिणः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी! राजा बलिको चेष्टारहित देखकर बलिके अनुचर दानवलोग उससमय उसके स्फटिक मणिसे रचित अति उच्च राजभवनमें क्षणमेंही चढगये ॥ १ ॥ डिंभ आदि धीर मंत्री, कुमुद आदि सामन्त, सुर आदि राजा वृत्त आदि सेनापति ॥ २ ॥ हयग्रीव आदि सैनिक, चाक्राज आदि बांधव, लड्डुक आदि

मित्र, वल्लक आदि प्रीतिकारी ॥ ३ ॥ कुबेर, यम तथा इन्द्र आदिदेव भेट देनेहारे, और सेवाके अभिलाषी यक्ष विद्याधर और नाग ॥ ४ ॥

रंभातिलोत्तमाद्याश्चचामरिण्योवरांगनाः ॥ सागराःसरितःशैलादिशश्चविदिशस्तथा ॥ ५ ॥ सेवार्थमाययुस्तस्यतंप्रदेशंतदाबलेः ॥ अन्येचबहवःसिद्धास्त्रैलोक्योदरवासिनः ॥ ६ ॥ ध्यानमौनसमाधिस्थंचित्रार्पितमिवाचलम् ॥ नमत्किरीटावलयोददृशुर्बलिमादृताः ॥ ७ ॥ तंदृष्ट्वाकृतकर्त्तव्यप्रणामास्तेमहासुराः ॥ विषादविस्मयानंदभयमंथरतांययुः ॥ ८ ॥

अर्थ—हस्तोंमें चामर लिये हुये रंभा तथा तिलोत्तमादि उत्तम देवांगना, समुद्र, नदियां पर्वत, दिशा तथा उपदिशा ॥ ५ ॥ औरभी बहुतसे त्रिलोकके भीतर रहनेवाले सिद्धनाम देव उस स्थानमें बलिकी सेवा करनेको आये ॥ ६ ॥ नमस्कार करनेमें नमित किरीटोंकी पंक्तिसहित देवादिने ध्यानमें मौन समाधिस्थ बलिको आदरसहित देखा ॥ ७ ॥ उस बलिको देखके अवश्य कर्तव्य प्रणाम करनेवाले महाअसुर तथा सुरोंमें मित्र विषादसे, उदासीन विस्मयसे तत्त्वज्ञानी आनन्दसे और अज्ञानी भय तथा विस्मय दोनोंसे शिथिल होगये ॥ ८ ॥

मंत्रिणःप्रविचार्यैवर्त्किप्राप्तमितिदानवाः ॥ भार्गवंचिंतयामासुर्गुरुंसर्वविदांवरम् ॥ ९ ॥ चिंतनानंतरं दैत्याभार्गवंभास्वरंवपुः ॥ ददृशुःकल्पितंप्राप्तंगंधर्वनगरंयथा ॥ १० ॥ पूज्यमानोसुरगणैर्निविष्टोगुरुविष्टरे ॥ ददर्शध्यानमौनस्थंभार्गवोदानवेश्वरम् ॥ ११ ॥ विश्रम्यसक्षणमिवप्रेमवानवलोक्यच ॥ बलिं विचारयन्दृष्ट्वापरिक्षीणभवभ्रमम् ॥ १२ ॥

अर्थ—मंत्रियोंने विचारा की अब क्या करना चाहिये, ऐसा विचार करके सब दानवलोग सब वेत्ताओंमें श्रेष्ठ अपने गुरू शुक्राचार्यको चिंतन किया ॥ ९ ॥ चिन्तनके अनंतरही प्रकाशमान शुक्राचार्यकी शरीरको ऐसे देखा जैसे कल्पित गन्धर्व नगर ॥ १० ॥ असुरोंके समूहोंसे पूज्यमान और महान् सिंहासनपर बैठे हुये शुक्रने ध्यानसे मौन दानवोंके राजाको देखा ॥ ११ ॥ एक क्षण विश्रामके सदृश करके बलिको संसारके भ्रमसे रहित प्रेमसे देखके विचारते हुये ॥ १२ ॥

देहरश्मिशतैर्दत्तदीप्तिभिःक्षीरसागरम् ॥ क्षिपन्निवसभामाहहसन्वाक्यमिदंगुरुः ॥ १३ ॥ अतिमात्रमिदंदैत्याःस्वविचारणयैवयत् ॥ संप्राप्तविमलावासःसिद्धोथभगवान्बलिः ॥ १४ ॥ अयंतदेवमेवेह तिष्ठन्दानवसत्तमाः ॥ स्वात्मनिस्थितिमाप्नोतुपदंपश्यत्वनामयम् ॥ १५ ॥ श्रांतोविश्राममायातःक्षीण चित्तभवभ्रमः ॥ शांतसंसारनीहारोवाचनीयोनदानवाः ॥ १६ ॥

अर्थ—अपने शरीरसेही हुई सैकडों किरणोंसे सभाको क्षीरमें फेंकते हुयेके समान गुरू शुक्राचार्य यह बचन बोले ॥ १३ ॥ हे दैत्यलोग ! अपनेही विचारसे विमल ब्रह्मपद जो सबका अधिष्ठानहै वह बलिको प्राप्तहै यह अति आश्चर्य है और यह भगवान् बलि अब सिद्ध होगया ॥ १४ ॥ हे दानवोंमें श्रेष्ठ ! इसलिये यह बली इसी प्रकार समाहित अपने आत्मामें चिरकालतक स्थिति पावे और अनामय (शान्त ब्रह्म) पद देखै ॥ १५ ॥ संसारके व्यवहारोंसे यह श्रांत (थकगया) है, और अब इसके चित्तसे संसारका भ्रम क्षीण होगया, तथा संसाररूप कुहिरा शान्त होगयाहै इसलिये विश्रामको प्राप्त हुआहै सो तुम लोग इस (राजा बलि) से न बोलना ॥ १६ ॥

स्वएवालोकएतेनसंप्राप्तोऽज्ञानसंकटे ॥ शांतेत्रसंभ्रमेसौरोदिनेनेवकरोत्करः ॥ १७ ॥ स्वयमेवहिकालेनप्रबोधमयमेष्यति ॥ बीजकोशात्स्वसंवित्यासुप्तमूर्त्तिरिवांकुरः ॥ १८ ॥ कुरुध्वंस्वामिकार्याणिसवेदानवनायकाः ॥ बलिर्वर्षसहस्रेणसमाधेर्बोधमेष्यति ॥ १९ ॥ इत्युक्तागुरुणातत्रहर्षामर्षविषादजाम् ॥ दैत्याश्चिंतांजहुःशुष्कांमंजरीमिवपादपाः ॥ २० ॥ वैरोचनिसभासंस्थांविधायप्राग्व्यवस्थया ॥ स्वव्यापारपरास्तस्थुःसर्वएवासुरास्ततः ॥ २१ ॥ नरामहीमहिपतयोरसातलंग्रहानभश्चिदशगणास्त्रिविष्टपम् ॥ दिशोदयोदिक्पतयश्चकंदरान्वनेचराःगगनचराश्चखंययुः ॥ २२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे बलिसमाधानवर्णनंनामाष्टाविंशः सर्गः ॥ २८ ॥

अर्थ—जैसे भूमिपर रात्रिके अन्धकारके तथा निद्रादि संभ्रमके शान्त होनेपर दिनकी सूर्यके किरणोंका समूह प्राप्त होजाताहै ऐसे बलीकोही अज्ञान संकट शान्त होनेपर राजा बलीको यह आत्मदर्शन स्वयं प्राप्त हुआहै ॥ १७ ॥ कालपाके समाधिसे प्रबोध (जाग्रद्दशा) यह स्वयं ऐसे प्राप्त होगा, जैसे बीजकोशसे मूर्छितावस्थाके त्यागसे सुप्तमूर्ति अंकुर ॥ १८ ॥ सो हे दानवोंके नायक तुम लोग स्वामीके राज्यकार्य्यको आलस्य त्यागके करो, और

सहस्र (हजार) वर्षके अन्तमें यह बलि समाधिसे उठेगा ॥ १९ ॥ गुरू शुक्राचार्यसे ऐसा कहे हुये दैत्यलोग हर्ष आमर्ष और विषादसे उत्पन्न चिंताको ऐसे त्यागा जैसे शुष्क (सूखी) हुई लताको वृक्ष ॥ २० ॥ इसके पश्चात् सब दैत्यलोग पूर्वकालके नियत किये हुये राज्यके व्यवहारके क्रमसे बलिराजाकी सभाकी व्यवस्थाका विधान करके सब कोई अपने २ व्यवहारमें स्थित रहे ॥ २१ ॥ इसके पश्चात् मनुष्य पृथिवीपर, शेष आदि सर्पोंके नायक रसातलको, ग्रहगण आकाशको, देवतागण स्वर्गको, कुलपर्वतोंके अधिष्ठात् देवता; तथा इन्द्रादि दिक्पाल अपनी २ दिशाओंको, ऋक्षवानरादि यूथपति बनेचर अपनी २ किष्किधादि कन्दराओंको; और गरूड सम्पाति जटायु आदि गगनेचरी आकाशको गये ॥ २२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे बलिसमाधानवर्णनं नामाष्टाविंशः सर्गः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशः सर्गः ॥ २९ ॥

जीवन्मुक्त राजा बलिकी राज्यकी और पातालमें अवरोध, तथा बलिके समान रामचन्द्रजीकीभी पूर्ण स्थिति यह विषय इस २९ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथवर्षसहस्रेणदिव्येनासुरपुंगवः ॥ देवदुंदुभिनिर्घोषैर्बुबुधेभगवान्बलिः ॥१॥ बलौप्रबुद्धेतद्बालंविरेजेनगरंतदा ॥ वैरिंचइवसूर्यौघउदितेकमलाकरः ॥ २ ॥ बलिःप्रबुद्धएवासौयाव न्नायांतिदानवाः ॥ तावत्संचिंतयामाससमाधिसदनेक्षणम् ॥ ३ ॥ अहोनुरम्यापदवीशीतलापारमार्थिकी ॥ अहमस्यांक्षणंस्थित्वापरांविश्रांतिमागतः ॥ ४ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् दिव्य सहस्रवर्षमें असुरोंमें श्रेष्ठभगवान् बलि देवताओंके दुंदुभीके शब्दके साथ समाधिसे जाग्रत हुये ॥ १ ॥ बलिके समाधिसे उठनेपर वह बलिका नगर उससमय ऐसे शोभित हुवा जैसे ब्रह्माके स्थानभूत आकाशमें सूर्यकी किरणोंके प्रवाहके उदय होनेपर कमलका वन ॥ २ ॥ समाधिसे उठतेही जबतक दानवलोग नहीं आए तबतक उसी पूर्वोक्त समाधिके स्थानपर बलिने यह शोचा ॥ ३ ॥ अहो ! यह परमार्थकी पदवी कैसी रमणीय और शीतलहै कि मैं इसमें क्षणभर स्थित होकर सर्वोत्तम विश्रान्तिको प्राप्त हुआ ॥ ४ ॥

तदेतामेवपदवीमवलंव्यकरोम्यहम् ॥ भवतीहोपभुक्ताभिःकिंमेबाह्यविभूतिभिः ॥ ५ ॥ ऐंदवेष्वपिबिंबेषुनतथानंदवीचयः ॥ तोषयंतियथांतर्मेसंसिद्धिभवभूतयः ॥ ६ ॥ इतिभूयोपिविश्रांत्यैकुर्वाणंगलितंमनः ॥ बलिमावारयामासुर्दैत्याश्चंद्रमिवांबुदाः ॥ ७ ॥ तानालोक्यपुनर्दध्यौतत्प्रणामाकुलेक्षणः ॥ तैःकुलाचलसंकाशैःपरिवीतवपुस्त्विदम् ॥ ८ ॥

अर्थ—इसलिये इसी समाधिरूप पदवीको अवलम्बन करके विश्राम करूं, क्योंकि बाह्य विभवोंके भोगनेसे मेरा क्या प्रयोजन होगा ॥ ५ ॥ चन्द्रमाके बिम्बोंमें वह आनन्दकी तरंगें नहीं हैं जैसे कि समाधिके परिपाकसे उत्पन्न विभूति मेरे अन्तःकरणमें आनन्द देती हैं ॥ ६ ॥ इसप्रकार फिरभी मन विश्रामकी ओर करते हुये बलिको दैत्य लोग ऐसे घेरलिया जैसे चन्द्रमाको मेघ ॥ ७ ॥ उनको देखकर और उन दैत्योंके प्रणामोंसे आकुल नेत्र तथा उन दैत्योंसे आवृत शरीर बलिने पुनः यह ध्यान किया ॥ ८ ॥

चितःक्षीणविकल्पस्यकिंमुपादेयमस्तिमे ॥ मनस्तदभिपातित्वाद्यातितद्रसतामलम् ॥ ९ ॥ मोक्षमिच्छाम्यहंकस्माद्बद्धःकेनास्मिवैपुरा ॥ अबद्धोमोक्षमिच्छामिकेयंबालविडंबना ॥ १० ॥ नवंधोस्तिनमोक्षोस्तिमौर्ख्यंमेक्षयमागतम् ॥ किंमेध्यानविलासेनकिंवाध्यानेनमेभवेत् ॥ ११ ॥ ध्यानाध्यानभ्रमौत्यक्त्वापुंस्त्वंस्वमवलोकयत् ॥ यदायातितदायातुनमेवृद्धिर्नवाक्षयः ॥ १२ ॥

अर्थ—विकल्प शून्य चितरूप मुझे क्या ग्रहण करनाहै तथापि अनादिकालसे मनके विषयकी ओर गिरनेसे उनके साथ शीघ्र एकरसताको जाताहै ॥ ९ ॥ मोक्षकी इच्छा मैं क्यों करूं क्या प्रथम मैं किसीसे बद्ध हुं, और बंधनरहित मोक्षकी इच्छा करूं यह कौनसी बालकों (मूर्खों) की चेष्टाहै ॥ १० ॥ न बन्धहै न मोक्षहै, मेरी मूर्खता नष्ट हुई है मुझे ध्यानके विलाससे क्या करनाहै और ध्यानके अभावसेभी मुझे क्या होगा ॥ ११ ॥ ध्यान तथा अध्यान दोनों भ्रमोंको त्यागकर अपना पुंस्त्व (आत्मस्वरूपता) देखते जो आवै सो आवै और जो जाय सो जाय परन्तु स्वरूपकी वृद्धि वा क्षय नहीं है ॥ १२ ॥

नध्यनंनापिवाध्यानंनभोगान्नाप्यभोगिताम् ॥ अभिवांच्छामितिष्ठामिसममेवगतज्वरः ॥ १३ ॥ नमे वांछापरेतत्त्वेनमेवांछाजगत्स्थितौ ॥ नमेध्यानदशाकार्यंनकार्यंविभवेनमे ॥ १४ ॥ नाहंमृतोनजीवामि मसन्नासन्नसन्मयः ॥ नेदंमेनैवचान्यन्मेनमोमह्यमहंबृहत् ॥ १५ ॥ इदमस्तुजगद्राज्यंतिष्ठाम्यन्नतुसं स्थितः ॥ नेहवास्तुजगद्राज्यंतिष्ठाम्यात्मनिशीतलः ॥ १६ ॥

अर्थ—न ध्यान, न ध्यानका अभाव, न भोगोंको, और न भोगके अभावको मैं चाहताहुं, किंतु संतापरहित समानरूपसे स्थित हुं ॥ १३ ॥ न तो मेरी इच्छा ब्रह्मतत्वकी प्राप्तिमें है और न जगत्की स्थितिमें न ध्यानकी दशासे मुझे कुछ कर्तव्य और न संसारके विभवसे ॥ १४ ॥ शरीरके साथ सम्बन्ध न होनेसे न मैं मृतक हुं और प्राणके संबन्धके अभावसे न जीवित हुं, न मैं मूर्ति हुं न मूर्तिमान्‌का विकार हुं, और न मैं देहभुवन आदि हुं और न अन्य देहभुवन आदि हुं किंतु मैं महान् शुद्ध चिदात्मा हुं इसलिये मुझे मेरा नमस्कारहै ॥ १५ ॥ यह जगत्का राज्य रहै वा न रहै परन्तु मैं अपने आत्मामें शीतल शान्तरूप स्थित हुं ॥ १६ ॥

किंमेध्यानदशाकार्यंकिंराज्यविभवश्रिया ॥ यदायातितदायातुनाहंकिंचनमेकाचित् ॥ १७ ॥ नकिंचिद पिकर्त्तव्यंयदिनाममयाधुना ॥ तत्कस्मान्नकरोमीदंकिंचित्प्रकृतकर्मवै ॥ १८ ॥ इतिनिर्णीयपूर्णात्माब लिर्ज्ञानवतांवरः ॥ दैत्यानालोकयामासपद्मानीवदिवाकरः ॥ १९ ॥ दृष्टिपातविभागेनसर्वेषांदनुज न्मनाम् ॥ शिरःप्रणामाञ्जग्राहपुष्पामोदानिवानिलाः ॥ २० ॥

अर्थ—मुझे ध्यानकी दृष्टिसे, अथवा राज्यविभवकी शोभासे कुछ कर्तव्य नहीं है जो आताहै वह आवै, न मैं कुछ हुं और न मेरा कहीं कोई है ॥ १७ ॥ यदि मुझे अब कर्तव्यकी आस्थासे कहीं कुछभी कर्तव्य नहीं है तो बिना आस्थाकी चेष्टासे साध्य यह प्रकृत राज्यादिका पालनरूप क्यों नहीं करता ॥ १८ ॥ ऐसा निर्णय करके ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ पूर्णात्मा राजा बलिने दैत्योंको ऐसे देखा, जैसे कमलोंको सूर्य ॥ १९ ॥ और सबकी ओर उचित दृष्टिपातके विभागसे उन सब दैत्योंके शिरसे प्रणामोंको अंजलियोंके ऐसे ग्रहण किया जैसे पुष्पके गंधोंके ॥ २० ॥

अथवैरोचनिस्तत्रध्येयत्यागमयात्मना ॥ मनसासकलान्येवराजकार्याणिसंव्यधात् ॥ २१ ॥ द्विजान्दे वान्गुरूंश्चैवपूजयामासपूजया ॥ संमानयामाससुहृद्बंधुसामंतसज्जनान् ॥२२॥ अथैनापूरयामासभृ त्यानर्थिगणांस्तथा ॥ ललनालालयामासविचित्रविभवार्पणैः ॥ २३ ॥ इत्यसौवद्र्धतेतस्मिन्राज्येसक लशासने ॥ यज्ञंप्रतिबभूवाथमतिरस्यकदाचन ॥ २४ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् राजा बलिने ध्येय वासनाके त्यागमय मनसे सम्पूर्ण राज्यके कार्योंको किया ॥ २१ ॥ देव ब्राह्मण तथा गुरूओंकी अर्घ्यपाद्यादिसे पूजा की, और मित्र, बन्धु, सामन्त तथा सज्जनोंका दान मानादिसे सत्कार किया ॥ २२ ॥ धनसे भृत्य तथा अर्थीगणोंको पूर्ण किया, और चित्रविचित्र विभवके सम्प्रदानोंसे अंगनाओंको प्यार किया ॥ २३ ॥ इसप्रकार सम्पूर्ण राज्य शासनमें वृद्धिको प्राप्त हुआ और कदाचित् यज्ञ करनेको इसकी बुद्धि हुई ॥ २४ ॥

तर्पिताशेषभुवनंदेवर्षिगणपूजितम् ॥ सहशुक्रादिभिर्मुख्यैःसचकारमहामखम् ॥ २५ ॥ बलिर्भोगभ रस्यार्थीनेतिनिर्णीयमाधवः ॥ बलेरीहितसिद्ध्यर्थंसिद्धिदस्तन्मखंययौ ॥ २६ ॥ भोगैककृपणायेदंजग ज्जंगलखंडकम् ॥ दातुंशोच्यायशक्रायवयोज्येष्ठायकार्यवित् ॥ २७ ॥ क्रममाणोबलेनात्रवंचयित्वाबलिं हरिः ॥ बबंधपातालतलेभूगेहइववानरम् ॥ २८ ॥

अर्थ—जिसमें सम्पूर्ण भुवन तृप्त किये गये थे देवता तथा ऋषिलोग जिसमें पूजित थे ऐसे महामखको (यज्ञको) शुक्र आदि मुख्य महाविद्वानोंके साथ किया ॥ २५ ॥ राजा बलि भोग समूहका अर्थी नहीं है इसप्रकार निर्णय करके विष्णुभवान् बलिके मनोरथ सिद्ध करनेके अर्थ उसके यज्ञमें गये ॥ २६ ॥ भोगमें आसक्त होनेसे कृपण अतएव शोचनीय अपने ज्येष्ठ भ्राता इन्द्रको इस जगत्‌रूप जंगल खंडको देनेके अर्थ कार्यमें चतुर विष्णुजी बलिके यज्ञमें गये ॥ २७ ॥ मायाके बलसे तीनों लोकको अपने पादसे नापते हुये धोखा देके बलिको पातालमें ऐसे बांधा जैसे पृथिवीगृहमें वानरको ॥ २८ ॥

अद्यासौसंस्थितोरामपुनरिंद्रत्वहेतुना ॥ जीवन्मुक्तवपुःस्वस्थोनित्यंध्यानविषण्णधीः ॥ २९ ॥ पाता लकुहरेतिष्ठञ्जीवन्मुक्तगतिर्बलिः ॥ आपदंसंपदंदृष्ट्वासमयैवसपश्यति ॥ ३० ॥ नास्तमेतिनचोदेतित त्प्रज्ञासुखदुःखयोः ॥ समास्थिरकराचित्रलेख्यासूर्यावलिर्यथा ॥ ३१ ॥ आविर्भावतिरोभावसहस्राणी हजीवताम् ॥ तन्मनश्चिरमालोक्यभोगेषुविरतिंगतम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! इससमय यह बलि जीवन्मुक्त शरीर, स्वस्थ, ध्यानमें तत्पर, संसारसे उदासीन बुद्धि होके स्थितहै ॥ २९ ॥ पातालरूप गर्तमें जीवन्मुक्तरूपसे स्थित बलि आपत्ति तथा सम्पत्तिको समानदृष्टिसे देखताहै ॥ ३० ॥ उस बलिकी बुद्धि सुख वा दुःखमें न उदय होती है और न अस्त होती है वह चित्रमें लिखित सूर्यमण्डलके किरणके सदृश स्थिररूपहै ॥ ३१ ॥ भोगलंपट जीवोंका, उनके विभवों तथा, जन्मोंका हजारो आविर्भाव तथा तिरोभाव देखके भोगोंसे वैराग्य प्राप्त हुआ ॥ ३२ ॥

दशकोटीश्र्ववर्षाणामनुशास्यजगत्त्रयम् ॥ अंतेविरक्ततांप्राप्तमुपशांतंबलेर्मनः ॥ ३३॥ ऊहापोहसहस्राणिभावाभावशतानिच ॥ बलिनापरिदृष्टानिकसमाश्वासमेत्यसौ ॥ ३४ ॥ भोगाभिलाषंसंत्यज्यबलिःसंपूर्णमानसः ॥ आत्मारामस्थितोनित्यंमध्येपातालकोटरे ॥ ३५ ॥ पुनरेतेनबलिनाजगदिंद्रतयाखिलम् ॥ अनुशास्यमिदंरामबहून्वर्षगणानिह ॥ ३६ ॥

अर्थ—दश कोटि (किरोड) वर्षतक तीनों लोकका शासन करके अन्तमें विरक्तताको प्राप्त होके राजा बलिका मन शान्त हुआ ॥ ३३ ॥ सहस्त्रों सुख दुःखोंके अनन्त आगम तथा अपाय (नाश) और सैकडो, अनन्त भाव और अभावको बलिने देखाहै कहांपर यह धैर्य्य धरे ॥ ३४ ॥ भोगोंकी अभिलाषाको त्यागकर पूर्णचित्त तथा नित्य आत्माराम बलि सात पातालोंके मध्य रसातलके कोटरमें स्थितहै ॥ ३५ ॥ और पुनः यह बलि इन्द्र होके इस सम्पूर्ण तीनों लोकका अनुशासन बहुत वर्षतक इस ब्रह्माण्डमें करेगा ॥ ३६ ॥

नतस्येंद्रपदप्राप्त्यातुष्टिःसमुपजायते ॥ नतस्यस्वपदभ्रंशादुद्वेगउपजायते ॥ ३७ ॥ समःसर्वेषुभावेषु सर्वदैवोदिताशयः ॥ संप्राप्तमाहरन्स्वस्थआकाशइवतिष्ठति ॥ ३८ ॥ बलेर्विज्ञानसंप्राप्तिरेषातेकथिता मया ॥ एतांदृष्टिमवष्टभ्यत्वमप्यभ्युदितोभव ॥ ३९ ॥ बलिवत्स्वविवेकेननित्योहमितिनिश्चयात् ॥ पद मासादयाद्वैतंपौरुषेणैवराघव ॥ ४० ॥

अर्थ—न तो उसको इन्द्रपदकी प्राप्तिसे प्रसन्नता होती है और न अपने पदसे पतनसे उसको उदासीनताहै ॥ ३७ ॥ सब भावोमें समानरूप सदा संतुष्ट चित्त, प्रारब्धसे प्राप्त किये हुये भोगोंको भोगता हुआ और स्वस्थ राजा बलि आकाशके सदृश स्थितहै ॥ ३८ ॥ हे रामजी ! यह बलिकी ज्ञानकी प्राप्ति तुमसे मैंने कही इस दृष्टिका अवलम्बन करके तुमभी जीवन्मुक्तिके अभ्युदयसहित होओ ॥ ३९ ॥ हे रामजी ! बलिके समान अपनेही विवेकसे मैं नित्य आत्मरूपहुं इस निश्चय तथा अपने पौरुषसे अद्वैतपद प्राप्त करो ॥ ४० ॥

द्वेचाष्टैचैववर्षाणांकोटीर्भुक्त्वाजगत्त्रयम् ॥ अंतेवैरस्यमापन्नोबलिरप्यसुरोत्तमः ॥ ४१ ॥ तस्माद वश्यवैरस्यंभोगभारमरिंदम ॥ संत्यज्यसत्यमानंदमवैरस्यंपदंव्रज ॥ ४२ ॥ इमाद्दृश्यदृशोरामनाना कारविकारदाः ॥ नेहकांततयाज्ञेयादूराच्छैलशिलाइव ॥ ४३ ॥ धावमानमिहामुत्रक्ष्टितंलोकवृत्तिषु ॥ संस्थापयनिबद्धैतच्चेतोहृदयकोटरे ॥ ४४ ॥

अर्थ—असुरोंमें उत्तम राजा बलिभी दश कोटि (करोड) वर्ष पर्य्यन्त तीनों लोकका भोग करके अन्तमें वैराग्यको प्राप्त हुआ ॥ ४१ ॥ हे शत्रुनाशक रामजी ! इसलिये परिणाममें अवश्य दुःखरूप इस भोग समूहको त्यागकर सत्य सच्चिदानन्द नित्य दुःख शून्य पदको प्राप्त होओ ॥ ४२ ॥ हे रामजी ! ये दृश्यकी दृष्टि अनेक प्रकारके विकारप्रदहैं दूरसे पर्वतकी शिलाके तुल्य इसमें कोईभी रमणीयता नहीं है ॥ ४३ ॥ इस लोक तथा परलोकमें दौडते हुये, तथा पामरोंकी चेष्टामें प्रवृत्त इस मनको अपने हृदयरूप कोटरमें स्थापित करो ॥ ४४ ॥

चिदादित्योभवानेवसर्वत्रजगतिस्थितः ॥ कःपरस्तेकआत्मीयःपरिस्खलसिकिंमुधा ॥ ४५ ॥ त्वंमनंतोमहाबाहोत्वमाद्यःपुरुषोत्तमः ॥ त्वंपदार्थशताकारैःपरिस्फूर्जसिचिद्वपुः ॥ ४६ ॥ त्वयिसर्वमिदं प्रोतंजगत्स्थावरजंगमम् ॥ बोधेनित्योदितेशुद्धेसूत्रेमणिगणायथा ॥ ४७ ॥ नजायसेनम्रियसेत्वमजः पुरुषोविराट् ॥ चिच्छुद्धाजन्ममरणभ्रांतयोमाभवंतुते ॥ ४८ ॥

अर्थ—सबके प्रकाशक चित्रूप सूर्य सर्वत्र संसारमें तुमही स्थित हो तो तुमारा कौन शत्रु और कौन मित्र है, व्यर्थ क्यों तुम पदसे च्युत होतेहो हे महाबाहो राम ! तुम अनन्तहो तुमही आद्य तथा पुरुषोत्तमहो और चिन्मात्र शरीर तुम सैकडों (असंख्य) प्रकारके पदार्थोंके आकार धारण करके गर्जतेहो ॥ ४६ ॥ नित्य बोधस्वरूप सूर्य्यके समान उदयको प्राप्त तुमारेमें यह सब स्थावर जंगम ऐसे गूंथाहै जैसे सूत्रमें मणिके समूह ॥ ४७ ॥ न तो तुम उत्पन्न होतेहो और न मरतेहो किंतु तुम अजन्मा विराट् पुरुष शुद्ध चित्रूपहो इसलिये जन्ममरणादि भ्रांति तुमको न हो ॥ ४८ ॥

समस्तजन्मरोगाणांप्रविचार्यबलाबलम् ॥ तृष्णामुत्सृज्य भोगानांभोक्तेव भवकेवलम् ॥ ४९ ॥ त्वयि स्थितेजगन्नाथेचिदादित्येसदोदिते ॥ इदमाभासतेसर्वसंसारस्वप्नमंडनम् ॥ ५० ॥ माविषादंकृथा व्यर्थंसुखदुःखैषणानते ॥ शुद्धचित्तोसिसर्वात्मासर्ववस्त्ववभासकः ॥ ५१ ॥ पूर्वमिष्टमनिष्टंत्वमनिष्टंवेष्टमित्यपि ॥ परिकल्प्यतदभ्यासात्ततोपिपरित्यज ॥ ५२ ॥

अर्थ—तृष्णाकी वृद्धिमें जन्म आदि रोगोंकी प्रबलता और तृष्णाकी न्यूनतामें जन्मादि रोगोंकी निर्बलता होती है इसप्रकार बल अबलकी परीक्षा करके भोगोंकी तृष्णाको त्यागकर केवल भोगोंके साक्षीमात्र रहो ॥ ४९ ॥ जगत्के स्वामी चिद्रूपी सूर्य्य तुमारे सदा उदित होनेहीपर यह सब संसारका मंडन भासताहै ॥ ५० ॥ व्यर्थ वि-षाद न करो तुमको सुखदुःखकी इच्छा नहीं है तुम शुद्ध चित्त (ज्ञानी) सर्वात्मा और सब वस्तुओंके प्रकाशकहो ॥ ५१ ॥ जो वस्तु (विषयादि) मनको प्रियहो उन सबको अन्तमें दुःखदायी, तथा तपके क्लेश और इन्द्रियोंके संयमादि मनके अप्रिय पदार्थोंकी अन्तमें सुखदायी कल्पना करके और सप्तमभूमिका पर्य्यन्त उनका अभ्यास करके अनन्तर उसकी कल्पनाकोभी त्यागो ॥ ५२ ॥

इष्टानिष्टदृशोस्त्यागेसमतोदेतिशाश्वती ॥ तयाहृदयवर्त्तिन्यापुनर्जंतुर्नजायते ॥ ५३ ॥ येषुयेषुप्रदेशेषु मनोमज्जतिबालवत् ॥ तेभ्यस्तेभ्यस्समाहृत्यतद्धितत्त्वेनियोजयेत् ॥ ५४ ॥ एवमभ्यागताभ्यासंमनोमत्तमतंगजम् ॥ निबद्धयसर्वभावेनपरंश्रेयोधिगम्यते ॥ ५५ ॥ माशरीरयथार्थज्ञैर्मिथ्यादृष्टिहताशयैः ॥ धूर्तैःसंकल्पविक्रीतैर्विमूढैःसमतांव्रज ॥ ५६ ॥

अर्थ—इष्ट और अनिष्ट दृष्टिके त्यागसे निरन्तरकी समत्ता उदित होती है और उस समताके हृदयमें स्थिर होनेसे यह जीव पुनः संसारमें नहीं जन्मता ॥ ५३ ॥ जिन २ पदार्थोंमें यह मन बालकके समान निमग्नहो वहां २ से हटाके अधिष्ठान चिन्मात्रमें उसको लगावै ॥ ५४ ॥ इसप्रकार अभ्याससे अपने समीप प्राप्त मनरूप मत्तहस्तीको सब प्रयत्न तथा सबको आत्मभावसे रोककर परम कल्याण मोक्षपदकी प्राप्ति होतीहै ॥ ५५ ॥ शरीरको सत्य माननेवाले मिथ्या दृष्टिसे दूषित चित्त तथा भोगोंके संकल्पसे विक्रीतके समान परवश मूढोंके तुल्य तुम न होजाओ ॥ ५६ ॥

अकिंचनात्स्वनिर्णीतौलंबमानात्परोक्तिषु ॥ नमौर्ख्यादधिकोलोकेकश्चिदस्तीहदुःखदः ॥ ५७ ॥ त्वमेतदविवेकाभ्रमुदितंहृदयांबरे ॥ विवेकपवनेनाशुदूरंनयमहामते ॥ ५८ ॥ आत्मनैवप्रयत्नेनयावदात्मावलोकने ॥ नकृतोनुग्रहस्तावन्नविचारोदयोभवेत् ॥ ५९ ॥ वेदवेदांतशास्त्रार्थतर्कदृष्टिभिरप्ययम् ॥ नात्माप्रकटतामेतियावन्नस्वमवेक्षितम् ॥ ६० ॥

अर्थ—आत्मतत्वके निर्णयके विषयमें विवेक वैराग्यादि उपायसे रहित, और मूर्खोंकी उक्तियोंमें गौके पुच्छके समान लम्बमान मूर्खताके समान इस संसारमें दुःखदायी कुछभी नहीं है ॥ ५७ ॥ हे महामते रामजी ! हृदयरूप आकाशमें उदित इस अविवेकरूप प्रचण्ड मेघको विवेकरूप पवनसे तुमही शीघ्र दूरकरो ॥ ५८ ॥ वेदान्त श्रवण वैराग्यादि पौरुषसे आत्मदर्शन (ज्ञान) में जबतक आत्माहीसे प्रयत्न न किया जाय तबतक आत्माका विचार उदय नहीं होता ॥ ५९ ॥ वेद वेदान्त तथा तर्क दृष्टिसे (बहिर्मुख दृष्टिसे) यह आत्मा प्रकटताको नहीं प्राप्त होता तब-तक अन्तर्मुख दृष्टिसे गुरु आदिके उपदेशद्वारा स्वयं न देखा जाय ॥ ६० ॥

त्वमात्मन्यात्मनारामप्रसादेसमवस्थितः ॥ प्राप्तोसिविततंबोधंमद्वचस्येवबुध्यसे ॥ ६१ ॥ विकल्पांशविहीनस्यतत्वैषाचिद्विवस्वतः ॥ गृहीताविततव्याप्तिर्मदुक्त्यापरमात्मनः ॥ ६२ ॥ विलीनसर्वसंकल्पःशांतसंदेहविभ्रमः ॥ क्षीणकौतुकनीहारोजातोसिविगतज्वरः ॥ ६३ ॥ यदुपगच्छसिपासिनिहंसिवापिबसिविस्मयसेचविवर्द्धसे ॥ तदपितेनतदास्तुयदामुनेविगतबोधकलंकविशंकितः ॥ ६४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे बलेर्विज्ञानप्राप्तिर्नामैकोनत्रिंशः सर्गः ॥ २९ ॥

अर्थ—हे रामजी ! तुमभी आत्मासे आत्मामें प्रसन्नतासे स्थित विशाल बोधको प्राप्त हुये हो वह मेरे उपदे-शके होनेहीसे ॥ ६१ ॥ विकल्पोंके अविषय चिन्मात्र परमात्माकी देशकाल तथा वस्तुकृत व्याप्ति (व्यापकता) तुमने मेरेही उपदेशसे ग्रहण कियाहै ॥ ६२ ॥ हे रामजी ! इससमय तुम सब संकल्पोंसे रहित, सन्देह विभ्रमसे बाह्य प्रपंचके चमत्कारक तथा आत्मतत्व जिज्ञासाके कौतुकसे रहित तथा संतापरहित होगयेहो ॥ ६३ ॥ हे रा-मजी ! जब तुमारे आत्माका आवरण तथा विक्षेपरूप कलंक नष्ट होजायगा उससमय तुमको जो अप्राप्त ज्ञान तथा

उसके साधन विचार गुरूशास्त्रादि उपदेशको मोक्षके अर्थ स्वीकार करतेहो विवेक वैराग्यादिकी यत्नसे जो रक्षा करतेहो, आलस्यप्रमाद आदि दोष समूहोंको जो हनन करतेहो, समाधि सुखरूप अमृतका जो पान करतेहो, उत्तरोत्तर भूमिकापर चढनेसे जो विस्मित होतेहो, और सप्तम भूमिकामें विश्राम पाके पूर्व २ अवस्थासे अधिक सुखसे जो वृद्धिको प्राप्त होतेहो यह सबभी न रहेगा ॥ ६४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उपशमप्रकरणे बलेर्विज्ञानप्राप्तिर्नामैकोनत्रिंशः सर्गः ॥ २९ ॥

त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३० ॥

इस ३० के सर्गमें हिरण्यकशिपुका पराक्रम, प्रल्हाद आदि पुत्रोंकी उत्पत्ति, नृसिंहसे हिरण्यकशिपुका वध, और शोकसे उसकी ऊर्ध्व देह क्रियाका करना वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथेमंपरमंरामविज्ञानाभिगमेक्रमम् ॥ शृणुदैत्येश्वरःसिद्धःप्रह्लादःस्वात्मनायथा ॥ आसीत्पातालकुहरेविद्रावितसुरासुरः ॥ हिरण्यकशिपुर्नामनारायणपराक्रमः ॥ २ ॥ आक्रांतभुवनाभोगःसजहारहरेर्जगत् ॥ षट्पदस्यबृहत्पत्रंराजहंसइवांबुजम् ॥ ३ ॥ चकारजगतांराज्यंसमाक्रांतसुरासुरः ॥ दंतीनिरस्तहंसौघोनलिन्यामलिनामिव ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! इसके पश्चात् यह विघ्नरहित और परमोत्तम ज्ञानकी प्राप्तिका उपाय तुम सुनो जिसप्रकार दैत्योंका स्वामी प्रल्हाद सिद्ध होगया वह कथा मैं कहताहूं ॥ १ ॥ सुर तथा असुरोंको भगानेवाला, नारायणके तुल्य पराक्रमवान् हिरण्यकशिपु नाम दैत्य पातालके गर्तमें रहताथा ॥ २ ॥ तीनों लोकको आक्रमण करने (जीतने) वाला वह इन्द्रसे त्रिभुवनके ऐश्वर्य्यको ऐसे छीनलिया जैसे भ्रमरके स्थानभूत कमलको प्रातःकालमें विकसित राजहंस ॥ ३ ॥ सुर तथा असुरोंको जीतकर उसने त्रिभुवनका राज्य ऐसे किया जैसे कमलिनीमें भ्रमरोंके राज्यको हंसोंके समूहकोभी परास्त करके हस्ती ॥ ४ ॥

अथासावसुराधीशःकुर्वंस्त्रिभुवनेशताम् ॥ कालेनसुषुवेपुत्रानंकुरानिवमाधवः ॥ ५ ॥ तेवर्द्धंताचिरेणैवतेजस्यूर्जितबालकाः ॥ दशार्कांशुशतानीवव्योमाक्रांतिविलासिनः ॥ ६ ॥ प्रह्लादनामाबलवान्प्रधानस्तेमाबभूवह ॥ तेषांमध्येमहार्हाणांमणीनामिवकौस्तुभः ॥ ७ ॥ तेनाराजतपुत्रेणहिरण्यकशिपुर्भृशम् ॥ सर्वसौंदर्ययुक्तेनवसंतेनेववत्सरः ॥ ८ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् वह असुरोंका स्वामी त्रिभुवनका राज्य करता हुआ समय पाके पुत्रोंको ऐसे उत्पन्न किया जैसे वसन्तकाल अंकुरोंको ॥ ५ ॥ तेजसे पराक्रमी और अवस्थासे बालक तथा आकाशकी व्याप्तिके विलास करनेवाले वे पुत्र ऐसे बढे जैसे सूर्य्य दश २ संख्यायुक्त किरण अनन्तरूपसे बढे ॥६॥ उनके मध्यमें मणियोंमें कौस्तुभके सदृश प्रल्हादनाम पुत्र प्रधान युवराज हुआ ॥ ७ ॥ संपूर्ण सुन्दरतायुक्त उस प्रल्हादसे हिरण्यकशिपु ऐसे अत्यन्त शोभित हुआ जैसे वसन्तकालसे वर्ष ॥ ८ ॥

अथपुत्रसहायोसौबलकोशसमन्वितः ॥ आजगाममदंदैत्यस्त्रिगंडगलितेभवत् ॥ ९ ॥ तत्तापाक्रांतितापेनत्रिजगंतिविकासिना ॥ कल्पांतसूर्यगणवन्नवयैवकरश्रिया ॥ १० ॥ अखिद्यंतास्यतेनाथसूर्येंद्रप्रमुखाःसुराः ॥ दुर्विलासविलोलस्यबालस्येवस्वबंधवः ॥ ११ ॥ प्रार्थयांचक्रिरेथाजंदैत्येंद्रेभपतेर्वधे ॥ नक्षमंतेमहांतोपिपौनःपुन्येनदुष्क्रियाम् ॥ १२ ॥

अर्थ—उस पुत्र सहायकयुक्त तथा सेना और कोशसहित यह दैत्य ऐसे मदको प्राप्त हुआ जैसे दोनों गंडस्थल और मस्तकके मदकी धारासे हस्ती ॥ ९ ॥ उस दैत्यके प्रकाशमान तापसे तीनों लोक ऐसे पीडित हुये जैसे नूतन किरण (पक्षमें कर) की शोभासे युक्त प्रलयकालके सूर्यके समूहसे ॥ १० ॥ सबको आक्रमण करनेवाले उसके तापसे सूर्य्य चन्द्र आदि देव ऐसे पीडित हुये जैसे दुष्ट विलाससे चंचल बालकसे उसके निजके बन्धु ॥ ११ ॥ उसके पश्चात् उन दैत्योंके इन्द्ररूप हस्तीके बधके लिये देवताओंने अजन्मा विष्णुभगवान्से प्रार्थना की, क्योंकि बार २ के अपराधको महात्मालोगभी नहीं सहन करसकते ॥ १२ ॥

ततःप्रलयपर्यस्तजगद्घर्घरजृंभितम् ॥ दिग्दंतिदशनप्रख्यनखवज्रादिजृंभितम् ॥ १३ ॥ स्थिरविद्युल्ताजालभासुरद्विजमंडलम् ॥ दशदिक्कोटरोद्भ्रांतज्वलज्ज्वलनकुंडलम् ॥ १४ ॥ समस्तकुलशैलेंद्रपिंड

पीठोद्भटोदरम् ॥ दोर्द्रुमाघूतनिर्द्भूतस्फुरद्ब्रह्मांडखर्परम् ॥ १५ ॥ वदनोदरनिष्क्रांतवातोत्सारितपर्वतम् ॥ त्रिजगद्दहनोयुक्तकोपकल्पाग्निगर्वितम् ॥ १६ ॥

अर्थ—इस प्रार्थनाके अनन्तर प्रलयमें विपर्य्ययको प्राप्त जगत्के समान घर्घर शब्द करते हुये अंगोंके परिवर्तनयुक्त तथा दिशाओंके हस्तियोंके दांतोंसे वज्रादिके समान शरीरके विकाशसे शोभित ॥ १३ ॥ स्थिर विद्युत् समूहके सदृश प्रकाशमान दंतमण्डल सहित, और दशों दिशाओंके कोटरोंमें जलते हुये अग्निरूप कुण्डलसहित ॥ १४ ॥ समस्त कुलपर्वतोंकी पिंडाकार रचनाके समान भयंकर उदरयुक्त, और भुजारूप वृक्षोंके परिवर्तनोंसे कम्पित इसीसे विदीर्यमाण ब्रह्मांड खर्पर (खप्पर) सहित ॥ १५ ॥ और मुखके द्वारसे निःसृत पवनसे पर्वतोंको उठाके फेकनेवाले तथा तीनोंलोकको जलानेमें उद्युक्त कोप रूप अग्निसे गर्वित ॥ १६ ॥

सटाविकटपीनांसस्पंदप्रेरितभास्करम् ॥ रोमकूपलसद्वह्निपुंजापिंजरपर्वतम् ॥ १७ ॥ कुलाचलमहाकुड्यघटनोद्भटदिक्तटम् ॥ सर्वावयवनिष्क्रांतपट्टिशप्रासतोमरम् ॥ १८ ॥ नारसिंहंवपुःकृत्वामाधवोहन्महासुरम् ॥ लसत्कटकटारावंतुरंगमिवद्विपः ॥ १९ ॥ पौरमासुरमुद्यांतैर्ददाहेक्षणवह्निभिः ॥ स सर्वभूतकल्पांतेजगज्जालमिवानलः ॥ २० ॥

अर्थ—सटा (गर्दनके केश) से भयंकर तथा स्थूल स्कन्धसे सूर्यकोभी प्रेरित करनेवाले और रोमके कूपों (रोम छिद्रों) में शोभायमान अग्निके पुंजोंसे पर्वतोंको पिंजराकार करनेवाले ॥ १७ ॥ और खने हुये कुलपर्वतोंकी महाभित्तिकी रचनाके समान उद्योगसहित सब दिशाओंके तटोंसे शोभित तथा सब शरीरके भागोंसे निकले हुये पट्टिश, प्रास (भाला) और तोमरसहित ॥ १८ ॥ नृसिंहकी शरीर रचके विष्णुभगवान्ने महाअसुर हिरण्यकाशिपुको शोभायमान कटकटा शब्दके साथ ऐसे मारा जैसे अश्वको हस्ती ॥ १९ ॥ और नेत्रकी प्रचण्ड अग्निसे उस असुरके नगरको नृसिंहभगवान्ने ऐसे भस्म किया जैसे सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रलयके अन्तमें जगत् समूहको अग्नि ॥२०॥

नृसिंहमारुतेतस्मिन्भृशंशोभामुपागते ॥ विस्फूर्जितघनास्फोटैरेकार्णवइवाकुले ॥ २१ ॥ दुद्रुवुर्दानवौघास्तेदिग्ज्वलन्मशकाइव ॥ उपाययुरदृश्यत्वंदीपाइवगतत्विषः ॥ २२ ॥ अथविद्रुतदैत्येंद्रंदग्धांतःपुरमंडलम् ॥ बभूवपातालतलंकल्पक्षुण्णजगत्समम् ॥ २३ ॥ अकालकल्पांतविधौहत्वादैत्यंशनैर्विभौ ॥ क्वापियातेसमाश्वस्तसुरसंरंभपूजिते ॥ २४ ॥

अर्थ—विद्युत्सहित संवर्तक आदि मेघोंकी गर्जनाओंसे प्रलयकालके समान व्याप्त नृसिंहरूप वायुके अति क्षोभित होनेपर ॥२१॥ दानवोंके समूह ऐसे भगे जैसे दिशाओंमें अग्नि लगनेसे मशक (मच्छर) और प्रकाशरहित पकके समान अदृश्य होगये ॥ २२ ॥ इसके अनन्तर दैत्योंके नायकरहितके तथा भस्मीभूत अन्तःपुरसहित पाताललोक इसप्रकार होगयाहै जैसे प्रलयसे चूर्ण किया हुआ जगत् ॥ २३ ॥ अकालमें कल्पान्तके विधानके तुल्य युद्धमें हिरण्यकशिपुको मारकर धैर्य्यको प्राप्त असुरोंसे आदरपूर्वक पूजित विष्णुभगवान्के कहीं वाणीसे अगोचर निजपदमें प्राप्त होनेपर ॥ २४ ॥

मृतशिष्टादनुसुताःप्रह्लादपरिपालिताः ॥ दग्धंतंदेशमाजग्मुःसरःशुष्कमिवांडजाः ॥ २५ ॥ तत्रकालोचितांकृत्वास्वनाशपरिदेवनाम् ॥ और्ध्वदेहिकसत्कारंचक्रुःप्रेतेषुबंधुषु ॥ २६ ॥ हतबंधुजनंप्लुष्टबंधुबांधवमंडलम् ॥ शनैराश्वासयामासुर्मृतशिष्टंस्वकंजनम् ॥ २७ ॥ चित्रार्पितोपमहुराकृतयोनिरीहादीनाशयाहिमहतांबुरुहोपमानाः ॥ शोकोपतप्तमनसोऽसुरनायकास्तेदग्धद्रुमाइवनिरस्तविकारमासन् ॥२८

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे प्रह्लादविश्रांतौहिरण्यकशिपुवधो नाम त्रिंशत्तमःसर्गः ॥ ३० ॥

अर्थ—प्रल्हादसे पालित मरनेसे बचे हुये दनुके पुत्र दानवलोग उस भस्मीभूत स्थानपर ऐसे प्राप्त हुये जैसे सूखे हुये तडागमें पक्षी ॥ २५ ॥ वहां आके अपने बन्धुओंके नाशसे कालके उचित विलाप करके मृतक बन्धुओंकी और्ध्वदेहिक क्रिया की ॥ २६ ॥ हत तथा भस्मीभूत बन्धुओंके मण्डलमें मरनेसे बचे हुये अपने जनोंको प्रल्हादने धीरे २ शान्त किया ॥ २७ ॥ अनन्तर चेष्टारहित, अतएव चित्र लिखितके सदृश दुःखित आकारसहित और शोक संतप्त चित्त प्रल्हाद आदि असुरनायक भस्मीभूत शाखा और पत्रसहित वृक्षके सदृश चेष्टारहित होगये ॥ २८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे प्रल्हाद विश्रान्तौ हिरण्यकशिपुवधो नाम त्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥

प्रल्हादकी विष्णुके पराक्रमकी चिन्ता अपने जनोंके कल्याणका चिन्तन और विष्णुकी भक्तिसे विष्णुभाव इस विषयका वर्णन इस ३१ के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथदुःखपरीतात्माहरिणाहतदानवे ॥ प्रहादश्चिंतयामासमौनीपातालकोटरे ॥ कोन्वस्माकमुपायःस्यात्यएवेहासुरांकुरः ॥ तीक्ष्णाग्रोजायतेतंतंभुंक्तेशाखामृगोहरिः ॥ २ ॥ नकदाच न तालेदैत्यादोर्दंडशालिनः ॥ स्थिराबभूवुरुद्भिन्नाःपद्माइवहिमाचले ॥ ३ ॥ उत्पत्त्योत्पत्त्यनश्यंति भासुराकारघर्घराः ॥ क्षीणप्रस्फुरितारंभास्तरंगाइववारिधेः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-इसके पश्चात् जहां दानवलोग मारेगये हैं ऐसे पातालके कोटरमें दुःखसे पूर्ण चित्त प्रल्हाद मौन होकर यह चिन्तन किया ॥१॥ अब हमारा सहायक कौन होसकताहै क्योंकि जो २ असुररूपी अंकुर संपत्तिरूप पत्रादिसे दृढ होताहै उस २ को विष्णुरूप कपि भक्षण करलेताहै ॥ २ ॥ अपने भुज विक्रमसे शोभित दैत्य पातालमें कदाचित्भी वीर्य्यसे प्रकाशित तथा स्थिर आकार ऐसे नहीं हुये जैसे हिमालयमें कमल ॥ ३ ॥ प्रकाशमान आकार तथा घर्घर शब्दसहित असुर उत्पन्न हो २ ऐसे नष्ट होते हैं जैसे आरंभमें चंचल और पश्चात् शीघ्रही क्षीणरूप समुद्रके तरंग ॥ ४ ॥

सबाह्याभ्यंतरंकष्टंसमग्रालोकहारिणः ॥ रिपवःप्रौढिमायाताअपूर्वतिमिरभ्रमाः ॥ ५ ॥ तमःप्रपूर्णहृदयाःसंकुचत्पत्रसंपदः ॥ सुहृदःखेदमायांतिनिशीथकमलाकराः ॥ ६ ॥ तातस्यमलिनैर्नूनंपादपीठोपमर्दकैः ॥ सुरैर्विषयआक्रांतोमृगैरिवमहावनम् ॥ ७ ॥ निरुद्यमागतश्रीकादीनाःप्रकटिताशयाः ॥ बांधवानविराजंतेपद्माःप्लुष्टदलाइव ॥ ८ ॥

अर्थ—बाह्य राज्यादि सम्पत्ति और आभ्यन्तर उत्साह, हर्ष प्रसन्नता, और सुखसे विश्राम आदि सम्पत्तिको हरनेवाले तथा अपूर्व अन्धकार भ्रमसहित हमारे शत्रु देवता इसप्रकार प्रौढताको प्राप्त हुये हैं यह कष्टकी बातहै ॥५॥ दुःखरूप अन्धकारसे पूर्णहृदय संकुचित सम्पत्तिरूप पत्रादिसहित मित्ररूप रात्रिके कमल खेदको प्राप्तहैं ॥ ६ ॥ द्वेषसे मलिन और पूज्य पिताके प्रणामके समयमें चरणपादुकाको मर्दन करनेवाले देवताओंने हमारे देशको ऐसे आक्रमण करलियाहै जैसे हरिण महावनको ॥ ७ ॥ उद्यमरहित, शोभासे शून्य, दीन और अपने हृदयके दुःखोंको प्रकट करनेवाले हमारे बान्धवगण ऐसे नहीं शोभित होते जैसे भस्मीभूत कमल ॥ ८ ॥

स्फुरंत्यसुरवीराणांगृहेष्वविरतानिलैः ॥ धूसराभस्मनीहाराधूपधूमभराइव ॥ ९ ॥ हृतद्वारकपाटासु दैत्यांतःपुरभित्तिषु ॥ प्रभामरकतस्येवजातानवयवांकुराः ॥ १० ॥ त्रिलोकीनाभिनलिनीमत्तेभादानवाअपि ॥ देववद्दैन्यमायाताःकिमसाध्यमहोविधेः ॥ ११ ॥ मनाक्चलतिपर्णेपिदृष्टारिभयभीतयः वध्वस्त्रस्यंतिविध्वस्तामृग्योग्रामगताइव ॥ १२ ॥

अर्थ—असुरवीरोंके गृहोंमें निरन्तर उत्पातरूप पवनसे विखरे हुये भस्मरूप कुहिरे ऐसे शोभित होरहे हैं जैसे पूर्वकालमें धूपके धूम समूह ॥ ९ ॥ द्वारके कपाटरूप प्राणसे रहित दैत्योंकी अन्तःपुरकी भित्तियोंमें पूर्वकालमें मरकत माणिके समान इससमय नूतन यवके अंकुर उत्पन्न हुये हैं ॥१०॥ त्रिलोकीरूप अंगनाके नाभिकी कमलिनीके मेरुको मर्दन करनेमेंभी समर्थ ये दानव ? इससमय पूर्वकालमें देवोंके सदृश दीनताको प्राप्त हुये हैं, अहो विधिकी गतिको क्या असाध्यहै ॥ ११ ॥ किंचित् पत्रकेभी चलनेपर पूर्वकालमें भयको देखनेवाली दैत्योंकी स्त्रियां ऐसे डरती हैं जैसे ग्राममें बिडारी हुई मृगी ॥ १२ ॥

आसुरीकर्णपूरार्थंफुल्लारत्नगुच्छकाः ॥ नरसिंहकराछूनाःस्थाणुतामागताद्रुमाः ॥ १३ ॥ दिव्यांबरलतापत्रारत्नस्तबकदंतुराः ॥ पुनरारोपितास्तत्रनंदनेकल्पपादपाः ॥ १४ ॥ पुरात्वमरबंदीनामसुरैः संस्तुतंमुखम् ॥ अद्यत्वसुरबंदीनांसुरैरालोकितंमुखम् ॥ १५ ॥ मन्येदानमहानद्यःसुरेभकटभित्तिषु ॥ प्रवृत्तास्ताभविष्यंतिशैलसानुष्विवापगाः ॥ १६ ॥

अर्थ—असुरोंकी स्त्रियोंके कर्ण भूषणके अर्थ रत्नमय गुच्छोंके धारण करनेवाले दिव्य वृक्ष इससमय नरसिंहके हस्तसे छिन्नभिन्न होनेसे स्थाणुताको प्राप्त हुये हैं ॥ १३ ॥ दिव्यवस्त्र लतापत्र तथा शाखासहित और रत्नमय गुच्छोंसे उन्नत दन्तसहित कल्पवृक्ष नन्दनबनमें पुनः लगाये गये ॥ १४ ॥ पूर्वकालमें देवताओंकी बन्दी की हुई स्त्रियोंका मुख असुरोंने प्रशंसाके साथ देखाहै और इससमय असुरोंकी बन्दी की हुई स्त्रियोंके मुख देवतालोग प्रसन्न-

तासे देखें ॥ १५ ॥ देवताओंके हस्तियोंके गण्डस्थलरूप भित्तियोंमें मदकी धारासे महानदियां ऐसे प्रवृत्त होंगी जैसे पर्वतोंके शिखरोंपर नदियां ऐसी तर्कना मैं करताहूं ॥ १६ ॥

अस्माकमिभगंडेषुदानदाहविभूतयः ॥ लसंतिमरुखंडेषुसंशुष्केष्विवधूलयः ॥ १७॥ विकासिसितमंदारमकरंदारुणानिलाः ॥ तेमेरुशिखरैस्तुल्यादैत्याइर्लभतांगताः ॥ १८ ॥ सुरगंधर्वसुंदर्योदानवांतःपुरोचिताः ॥ अद्यमेरौस्थितिंयातामंजर्यइवपादपे ॥१९॥ कष्टंतातपुरंध्रीणांशुष्कांबुरुहनीरसाः॥ विलासाःसुरनारीभिर्भर्त्स्यंतेलास्यलीलया ॥ २० ॥

अर्थ—और हम लोगोंके हस्तियोंके गण्डस्थलोंमें मदधाराके दाहजनित भस्म ऐसे शोभित होते हैं जैसे शुष्क मरूस्थलोंमें धूलि ॥ १७ ॥ विकसित तथा श्वेत मन्दरोंके परागसहित पुष्परसोंसे मिलित अंग स्पर्श करनेवाले वायुसे तृप्त तथा मेरूके शिखरोंके समान शरीर धारी दैत्य इससमय दुर्लभ होगये हैं ॥ १८ ॥ देवता तथा गन्धर्वोंकी सुन्दरी जो दानवोंके अन्तःपुरके योग्य हैं वे अब मेरूपर्वतपर ऐसे स्थितहैं जैसे उत्तम लता सामान्य वृक्षपर ॥ १९ ॥ यह कष्टकी बातहै की हमारे पिता आदिकी स्त्रियोंके शुष्क कमलके सदृश नीरस विलासोंकी देवांगना नृत्योंमें बिडम्बनाकी लीलासे निन्दा करैंगी ॥ २० ॥

पूर्वंयैरेवमत्तातश्चामरैरुपवीजितः ॥ सहस्रनयनःस्वर्गेकष्टंतैरेववीज्यते ॥ २१ ॥ इयमस्माकमप्यापदागतादैन्यदायिनी ॥ तस्यैकस्यप्रसादेनदुष्पौरुषगतेर्हरेः ॥ २२ ॥ तद्दोर्वनघनच्छायालब्धविश्रांतयः सुराः ॥ नकदाचनतप्यंतेहिमाद्रेरिवसानवः ॥ २३ ॥ शौरिशौर्याग्रशिखरसंश्रयेणाश्रितश्रियः ॥ अस्मान्समुपरुंधंतिशुनःशाखामृगाइव ॥ २४ ॥

अर्थ—प्रथम जो चमर मेरे पिताजीके ऊपर चलतेथे वेही अब स्वर्गमें इन्द्रके ऊपर चलते हैं ॥२१॥ दुःखसाध्य पौरुषकी गतिसे शोभित एक विष्णुकी कृपासे हम लोगोंपर यह दीनताको देनेहारी आपत्ति आई ॥ २२ ॥ उस विष्णुकी भुजारूप बनकी घनीभूत छायामें विश्राम करनेहारे देवगण कदाचित्भी ऐसे नहीं संतप्त होते जैसे हिमालयके शिखर ॥ २३ ॥ कृष्णभगवान्के पराक्रमरूप पर्वत वा वृक्षके शिखरके अग्रभागके आश्रयसे सम्पत्ति प्राप्त करनेवाले देवता दैत्यलोगोंको पातालके गर्तमें ऐसे अवरोध करते हैं जैसे वानर कुत्तोंको ॥ २४ ॥

तेनासुरपुरंध्रीणांनित्यंमंडनमंडने ॥ मुखपद्मेस्थितंबाष्पमब्जिनीनांहिमंयथा ॥ २५ ॥ शीर्णभिन्नकुड्डित्तिर्जगज्जरठमंडपः ॥ अयंनीलमणिस्तंभैस्तद्भुजैरेवधार्यते ॥ २६ ॥ सधत्तासुरसैन्यस्यमज्जतोविपदर्णवे ॥ क्षीरोदोदरमग्नस्यमंदरस्येवकच्छपः ॥ २७ ॥ एतेतातादयःसर्वेतेनैवासुरसत्तमाः ॥ पातिताः क्षुब्धकल्पांतवातेनेवकुलाचलाः ॥ २८ ॥

अर्थ—कृष्णके पराक्रमसे अलंकारोंकेभी अलंकारभूत असुरोंकी स्त्रियोंके मुखकमलोंपर नित्य अश्रु ऐसे स्थितहैं जैसे कमलिनियोंके मुखपर हिम ॥ २५ ॥ असुरोंके पराक्रमसे विदीर्ण इसीसे गिरती हुई भित्तिसहित यह जगत्रूप प्राचीन मण्डप नीलमणिके सदृश श्रीकृष्णभगवान्के भुजोंहीसे धारण किया गयाहै ॥ २६ ॥ विपत्तिरूप समुद्रमें डूबती हुई देवताओंकी सेनाको वह विष्णु ऐसे धारण करताहै जैसे क्षीरसागरमें निमग्न (डूबे हुये) मंदराचलको कच्छपावतार ॥ २७ ॥ ये हमारे पिता आदि असुरोंमें श्रेष्ठ उसी विष्णुसे ऐसे नष्ट किये गये हैं जैसे प्रलयकालके वायुसे कुलपर्वत ॥ २८ ॥

सएकएवसंहारकर्मक्षमभुजानलः ॥ सुरसार्थगुरुःश्रीमान्विषमोमधुसूदनः ॥ २९ ॥ दैत्यदोर्दंडपरशोस्तस्यवीर्येणवीर्यवान् ॥ दानवान्बाधतेशक्रोबालकानिवमर्कटः ॥ ३० ॥ दुर्जयःपुंडरीकाक्षःप्रतिमुक्तायुधोपिसन् ॥ नासौशस्त्रास्त्रविच्छेदैर्वज्रसारोविदीर्यते ॥ ३१ ॥ अभ्यस्ताबहवस्तेनमिथःप्रेरितपर्वताः ॥ भीमाःसमरसंरंभाःसममस्मत्पितामहैः ॥ ३२ ॥

अर्थ—संहारके करनेमें समर्थ भुजारूप अग्निसहित देव समूहमें श्रीमान् और आक्रमण करनेके अयोग्य वह एकही विष्णु सबमें समर्थ है ॥ २९ ॥ दैत्योंके भुजदण्डके कुठाररूप उस विष्णुके पराक्रमसे पराक्रमवान् इन्द्र दानवोंको ऐसे पीडा देताहै जैसे महामर्कटके बलसे बली सामान्य मर्कट बालकोंको ॥ ३० ॥ अस्त्रशस्त्रोंके त्यागनेसेभी विष्णुभगवान् दुःखसे जीतने योग्यहैं, यह विष्णु शस्त्रअस्त्रके खण्डनोंसे खण्डित नहीं होता क्योंकि वज्रसेभी वह दृढतरहै ॥ ३१ ॥ परस्पर जिनमें पर्वत फेके गये हैं ऐसे समरके अनेक कौशल विशेष हमारे पितामहोंके साथ युद्ध करके विष्णुभगवान्ने सीखाहै ॥ ३२ ॥

तासुतास्वतिघोरासुविततास्वतिराजिषु ॥ योनभीतइदानींसभयमेष्यतिकाकथा ॥ ३३ ॥ उपायमेकमेवेमंहरेराक्रमणेस्फुटम् ॥ मन्येतद्व्यतिरेकेणविद्यतेनप्रतिक्रिया ॥ ३४ ॥ सर्वात्मनासर्वधियासर्वसंरंभरंहसा ॥ सएवशरणंदेवोगतिरस्तीहनान्यथा ॥ ३५ ॥ नतस्मादधिकःकश्चिदस्तिलोकत्रयांतरे ॥ प्रलयस्थितिसर्गाणांहरिःकारणतांगतः ॥ ३६ ॥

अर्थ—उन २ विचित्र और भयंकर समरकी पंक्तियोंमें जो भयभीत नहीं हुआ वह अब भयभीत होगा इसकी क्या कथाहै ॥ ३३ ॥ इसको मैं अंगीकार करताहूं कि विष्णुको वश करनेमें यही एक स्पष्ट उपायहै उससे भिन्न विष्णुकृत पीड़ाके निवारणका कोईभी उपाय नहीं है ॥ ३४ ॥ कि इससंसारमें सर्व वस्तुके भावसे, सब प्रकारके बुद्धि भेदोंसे और सब क्रियाओंके उद्योगसे वही एक शरणार्थिओंका शरणहै अन्यथा कोई गति नहीं हैं ॥ ३५ ॥ उससे अधिक तीनों लोकमेंभी कोई नहीं है प्रलय, स्थिति, और उत्पत्ति इन तीनोंकी कारणताको वही विष्णु प्राप्तहै ३६

अस्मान्निमेषादारभ्यनारायणमजंसदा ॥ संप्रपन्नोस्मिसर्वत्रनारायणमयोह्यहम् ॥३७॥ नमोनारायणायेतिमंत्रःसर्वार्थसाधकः ॥ नापैतिममहृत्कोशादाकाशादिवमारुतः ॥३८॥ हरिराशाहरिर्व्योमहरिरुर्वीहरिर्जगत् ॥ अहंहरिरमेयात्माजातोविष्णुमयोह्यहम् ॥ ३९ ॥ अविष्णुःपूजयन्विष्णुंनपूजाफलभाग्भवेत् ॥ विष्णुर्भूत्वायजेद्विष्णुमयंविष्णुरहंस्थितः ॥ ४० ॥

अर्थ—इसी निमेषसे लेके अजन्मा नारायणके शरणमें मैं सदा प्राप्तहूं, क्योंकि सब देशकाल और वस्तुमें मैं नारायणहूं ॥ ३७ ॥ "नमो नारायणाय" यह सर्वार्थसाधक मंत्र मेरे हृदय कोशसे ऐसे कभी नहीं जाता जैसे आकाशसे वायु ॥ ३८ ॥ सब दिशा विष्णुहैं, आकाश विष्णुहैं, पृथिवी विष्णुहैं, संपूर्ण जगत् विष्णुहैं, मैंभी विष्णुहूं अमेय अर्थात् प्रमाणरहित विष्णुरूप मैं होगयाहूं ॥ ३९ ॥ विष्णुरूप न होकर विष्णुकी पूजा करता हुआ पूजाके फलका भागी नहीं होता विष्णु होके विष्णुकी पूजा करै इसलिये यह मैं विष्णुरूप स्थितहूं ॥ ४० ॥

हरिःप्रह्लादनामायोमत्तोनान्योहरिःपृथक् ॥ इतिनिश्चयवांनंतव्यापकोहंचसर्वतः ॥ ४१ ॥ अनंतमिदमाकाशमापूर्यविनतासुतः ॥ कनकांगोममांगानामयमासनतांगतः ॥ ४२ ॥ करशाखैकविश्रांतसर्वहेतिविहंगमाः ॥ नखांशुमंजरीकीर्णामहामरकतद्रुमाः ॥ ४३ ॥ इमेतेमृदुमंदारदामदिग्धांसमंडलाः सुंदराघृष्टकेयूराश्चत्वारोममबाहवः ॥ ४४ ॥

अर्थ—जो हरि (विष्णु) है वही प्रल्हाद नामसे प्रकट हुआहै क्योंकि विष्णुसे पृथक् कहीं कुछभी नहीं है ऐसा निश्चयसहित मैं सर्वत्र व्याप्तहूं ॥ ४१ ॥ अनन्त इस आकाशमें व्याप्त होके सुवर्णके समान वर्ण विनताका पुत्र गरुड स्थितहै, यह मेरे शरीरके भागोंके आसनताको प्राप्तहै ॥ ४२ ॥ जिनके हस्तोंकी शाखाओं (भागों) में चक्र गदा आदि अस्त्रशस्त्र तथा कौस्तुभ आदि आभूषणरूप पक्षी विश्राम कररहे हैं ऐसे नखोंकी दीप्तिरूप लताओंसे व्याप्त इसीसे महामरकतमणिके वृक्षरूप कोमल कल्पवृक्षके पुष्पोंकी मालासे मूलस्थानमें शोभित और समुद्रके मथनकालमें मन्दराचलसे जिनके केयूर घिसगये हैं ऐसे ये चारो मेरे बाहुहैं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

चलच्छशिकलापूरचारुचामरधारिणी ॥ इयंमेपार्श्वगालक्ष्मीःक्षीरोदकुहरोत्थिता ॥ ४५ ॥ हेलाविलुब्धभुवनात्रैलोक्यतरुमंजरी ॥ इयंमेपार्श्वगाकीर्तिरचलामलभासिनी ॥ ४६ ॥ अनारतजगज्जालनवनिर्माणकारिणी ॥ इयंमेपार्श्वगामायास्वैंद्रजालविलासिनी ॥ ४७ ॥ इयंसाहेलयाक्रांतत्रैलोक्यतरुखंडीका ॥ जयास्फुरतिमेपार्श्वेलताकल्पतरोरिव ॥ ४८ ॥

अर्थ—चलती चन्द्रमाकी कलाके प्रवाहके समान उत्तम स्वच्छ चामर धारण किये हुये क्षीर समुद्रसे उत्पन्न मेरे समीपमें प्राप्त यह लक्ष्मी है ॥ ४५ ॥ बिना प्रयत्नही सब भुवनोंको लुननेमें इच्छुक करनेवाली त्रैलोक्यरूप वृक्षकी लताके सदृश शोभायमान, अचल तथा निर्म्मल प्रकाश करनेवाली विष्णुकी कीर्ति मूर्ति धारण किये हुये मेरे समीप स्थितहै ॥ ४६ ॥ निरन्तर जगत्‌समूहोंकी नित्य नूतन रचना करनेहारी, और अपने इन्द्रजालसे बिलास करनेवाली यह, विष्णुकी माया मेरे समीपमें स्थितहै ॥ ४७ ॥ अपनी लीलासे त्रैलोक्यरूप वृक्षखण्डोंका आक्रमण करनेवाली, कल्पवृक्षकी लताके समान यह जया नाम लक्ष्मीकी सखी मेरे समीपमें स्थितहै ॥ ४८ ॥

इमौमेनित्यशीतोष्णौदेवौशीतांशुभास्करौ ॥ प्रकटीकृतसंसारौमुखमध्येविलोचने ॥ ४९ ॥ ममेयमुत्पलश्यामापीनांभोधरसुंदरी ॥ श्यामीकृतककुप्चक्रादेहदीप्तिर्विसर्पिणी ॥ ५० ॥ अयंममकरेशंखः

पांजन्यःस्फुरद्ध्वनिः ॥ मूर्त्तंखमिवशब्दात्माक्षीरोदइवसंस्थितः ॥ ५१ ॥ अयंमेकर्णिकाकोशनिलीनब्र ह्मषट्पदः ॥ पद्मःकरतलेश्रीमान्स्वनाडीकुहरोद्भवः ॥ ५२ ॥

अर्थ—ये नित्य शीत और उष्णरूप, संसारको प्रकाशित करनेवाले सूर्य्य और चन्द्रमारूप दोनों देवमुखके मध्यमें मेरे नेत्रहैं ॥ ४९ ॥ नीलकमलके समान श्यामवर्ण, स्थूल (महान् सजल) मेघके समान सुन्दर, दिशारूप चक्रको श्यामवर्ण करनेवाली, और चारोओर विसर्पण (गमन) शील यह मेरे शरीरकी कांति (दीप्ति) है ॥ ५० ॥ चंचलध्वनिसहित, आकाशके समान मूर्तिमान् शब्दरूप क्षीरसमुद्रके समान श्वेत यह मेरे हस्तमें स्थित पांचजन्य नाम शंखहै ॥ ५१ ॥ कर्णिका कोशमें लीन ब्रह्मरूप भ्रमरसहित शोभावान् और नाभीरूप गर्तसे उत्पन्न यह मेरे हस्तमें स्थित मेरा कमलहै ॥ ५२ ॥

इयंमेरत्नचित्रांगीसुमेरुशिखरोपमा ॥ हेमांगदागदागुर्वीदैत्यदानवमर्दिनी ॥ ५३ ॥ अयंमेभास्कराका रउद्यदंशुःसुदर्शनः ॥ ज्वालाजटिलपर्यंतपरिपाटलदिक्तटः ॥ ५४ ॥ अयंमेकेतुमद्वह्निसुंदरोज्वलितो सितः ॥ कुठारोदैत्यवृक्षाणानंदयन्नंदकःस्थितः ॥ ५५ ॥ इदंमेशरधाराणांपुष्करावर्त्तकोपमम् ॥ शार्ङ्गं धनुरहींद्राभमिंद्रकार्मुकसुंदरम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—रत्नोंसे विचित्र शरीर, सुमेरूके शिखरके तुल्य, सुवर्णसे ग्रथित, और दैत्य तथा दानवोंको मर्दन करनेवाली यह मेरी गदाहै ॥ ५३ ॥ सूर्य्यके सदृश आकारवान्, उदयशील किरणसहित, ज्वालासे सब ओरसे जटित और चारो दिशाओंके तटोंको रक्तवर्ण करनेवाला यह मेरा सुदर्शन चक्रहै ॥ ५४ ॥ धूमकी रेखासहित अग्निके समान सुन्दर ज्वालायुक्त, श्यामवर्ण, और दैत्यरूप वृक्षोंके अर्थ कुठार, तथा देवताओंको आनन्ददायक यह मेरा नन्दक नाम खड्गहै ॥ ५५ ॥ बाणोंकी धाराके लिये प्रलयकालके पुष्करावर्तक मेघके सदृश शेषके समान दीप्तिमान् और इन्द्रके धनुष्के समान सुन्दर यह मेरा शार्ङ्ग धनुषहै ॥ ५६ ॥

इमान्यहमनंतानिजगंतिजठरेचिरम् ॥ बिभर्मिजातनष्टानिवर्त्तमानान्यनेकशः ॥ ५७ ॥ इमौमहीमेचर णाविदंमेगगनंशिरः ॥ इदंवपुर्मेत्रिजगदिमेमेकुक्षयोदिशः ॥ ५८ ॥ साक्षादयमहंविष्णुर्नीलमेघोदरद्यु तिः ॥ सुपर्णपर्वतारूढःशंखचक्रगदाधरः ॥ ५९ ॥ एतेमत्तःपलायंतेसमग्रादुष्टचेतसः ॥ तार्णास्तर लसंचाराःपवनादिवराशयः ॥ ६० ॥

अर्थ—इससमयमें उत्पन्न चिरकालसे नष्ट, तथा चिरकालसे उत्पन्न वर्तमान और भविष्यत् ये असंख्य ब्रह्माण्डहैं उनको अनादिकालसे मैं अपने उदरमें धारण करताहुं ॥ ५७ ॥ यह पृथिवी मेरे दोनों चरणहै, यह आकाश मेरा शिरहै यह तीनोंलोक मेरा विराट् शरीरहै, और ये दिशायें मेरा शिरहैं ॥ ५८ ॥ नीलमेघके समान कान्तिसहित, सुवर्ण (गरूड) रूप पर्वतपर आरूढ, और शंख चक्र गदा आदिको धारण किये हुये यह मैं साक्षात् विष्णुहुं॥५९॥ये सब राक्षस आदि दुष्ट चित्तके जीव मेरेसे ऐसे भागतेहैं जैसे चंचल संचारवाली तृणकी राशि पवनसे६०

अयंनीलोत्पलश्यामःपीतवासागदाधरः ॥ लक्ष्मीवान्गरुडारूढःस्वयमेवाहमच्युतः ॥ ६१ ॥ कोमामे तिविरुद्धात्मात्रैलोक्यदहनक्षमम् ॥ स्वनाशायततःक्षुब्धंकालाग्निंशलभोयथा ॥ ६२ ॥ इमेमेतैजसींसृ ष्टिममाग्रस्थाःसुरासुराः ॥ नशक्नुवंतिसंरोद्धुंचक्षुर्मंदाःप्रभाइव ॥ ६३ ॥ इमंमामीश्वरंविष्णुंब्रह्मेंद्राग्निह रादयः ॥ स्तुवंत्यनंतयावाचाबहुवक्त्रसमुत्थया ॥ ६४ ॥ अयंविजृंभितैश्वर्योजातोहमजिताकृतिः ॥ स र्वद्वंद्वपदातीतोमहिम्नापरमेणहि ॥ ६५ ॥ त्रिभुवनभवनोदरैकमूर्त्तिप्रसभविभिन्नसमस्तदुष्टसत्त्वम् ॥ घनगिरितृणकाननांतरस्थंसकलभयापहरंवपुःप्रणौमि ॥ ६६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे प्रह्लादनिर्वाणे नारायणीकरणं नामैकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥

अर्थ—नीलकमलके समान श्यामवर्ण, पीतवस्त्रवाले, गदाधारी, लक्ष्मीवान्, और गरूडपर अरूढ यह मैं स्वयं अच्युत हुं ॥ ६१ ॥ त्रिलोकको भी भस्म करनेमें समर्थ द्वेषी कौन मेरे सन्मुख आसक्ताहै क्योंकि जो आताहै वह कालाग्निमें शलभके तुल्य अपने नाशकेही अर्थ आताहै ॥ ६२ ॥ मेरे सन्मुख स्थित ये सुर तथा असुर मेरी तेजोमयी सृष्टिको अर्थात् मेरे तेजकी ज्वालाके प्रसरको रोकनेको, शान्त करनेको वा सहनेको ऐसे समर्थ नहीं हैं जैसे मन्द नेत्रवाले प्रकाशको ॥ ६३ ॥ इस ईश्वर विष्णुरूप मुझे ब्रह्मा, इन्द्र तथा शिव आदि देव अनेक मुखसे उत्पन्न अनन्त वाणीसे मेरी स्तुति करते हैं ॥ ६४ ॥ अकुण्ठित ऐश्वर्यवान् तथा सब द्वन्द्वपदसे अतीत, और सर्वो-

त्तम महिमासे युक्त यह मैं विष्णुके आकारके सदृश प्रकट हुआहुं ॥ ६५ ॥ त्रिभुवनरूप गृहको उदरमें धारण करने-वाली मूर्तियुक्त तथा बलात्कार दुष्ट सत्वोंको नष्ट करनेवाले, मेघ, पर्वत, तृण, और वनोंके अन्तरमें अधिष्ठानरूपसे स्थित, तथा साक्षात्कारमात्रसे सम्पूर्ण भयहारी विष्णुरूप मुझे मेरा प्रणामहै ॥ ६६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे प्रल्हाद निर्वाणे नारायणीकरणं नामैकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥

इस ३२ के सर्गमें विष्णुकी मानसी पूजा और असुरोंके साथ प्रल्हादकी बाह्य पूजा, इसको सुनके आश्चर्यित देवताओंका विष्णुसे पूंछना यह विषय वर्णन किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ प्रह्लादइतिसंचिंत्यकृत्वानारायणींतनुम् ॥ पुनःसंचिंतयामासपूजार्थमसुरद्विषः ॥ १ ॥ वपुषोवैष्णवादस्मान्मामून्मूर्त्तिःपरावरा ॥ अयंप्राणप्रवाहेणबहिर्विष्णुःस्थितोपरः ॥ २ ॥ वैनतेयसमारूढःस्फुरच्छक्तिचतुष्टयः ॥ शंखचक्रगदापाणिःश्यामलांगश्चतुर्भुजः ॥ ३ ॥ चंद्रार्कनयनःश्रीमान्कांतनंदकनंदनः ॥ पद्मपाणिर्विशालाक्षःशार्ङ्गधन्वामहाद्युतिः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! प्रल्हाद ऐसा विचार करके अपने देहको नारायणमय शरीर करके पुनः विष्णुकी पूजा करनेकी चिन्ता की ॥ १ ॥ मुझसे कल्पित इस विष्णुको देहसे अन्य समष्टिरूप तथा अपर व्यष्टि देवतारूप नहीं किन्तु यही मुझरूप विष्णु हृदय देशसे प्राणके प्रवाहसे पुष्पाञ्जलिकी भावनाद्वारा बाह्यदेशमें आवाहित होकर पूजाकालतक बाह्य देशमें अन्यके समान स्थित कल्पित किये गये हैं ॥ २ ॥ गरूडपर आरूढ प्रकाशमान क्रिया, ज्ञान, इच्छा और अनुग्रह नाम चारो शक्तिसहित, हस्तोंमें शंख, चक्र, और गदाको धारण किये श्यामल शरीर , चतुर्भुज ॥ ३ ॥ चन्द्रसूर्य नेत्रधारी, श्रीमान्, और अति रमणीय अपने नन्दक नामके खड्गसे स्वजनोंको आनन्ददायक, हस्तमें कमल लिये, विशाल नेत्र, शार्ङ्ग धनुषधारी, और अति प्रकाशमान् ॥ ४ ॥

तदेनंपूजयाम्याशुपरिवारसमन्वितम् ॥ सपर्ययामनोमय्यासर्वसंभाररम्यया ॥ ५ ॥ ततएनंमहादेवंपूजयिष्याम्यहंपुनः ॥ पूजयाबाह्यसंभोगमहत्त्याबहुरत्नया ॥ ६ ॥ प्रह्लादइतिसंचिंत्यसंभारभरभारिणा ॥ मनसापूजयामासमाधवंकमलाधवम् ॥ ७ ॥ रत्नौघपात्रपटलैश्चंदनादिविलेपनैः ॥ धूपैर्दीपैर्विचित्रैश्चनानाविभवभूषणैः ॥ ८ ॥

अर्थ—इसीलिये सर्व संभार (सामग्री) से रमणीय मनोमयी पूजासे परिवार संयुक्त इनकी पूजा में करूं ॥ ५ ॥ बाह्य पदार्थ समूहोंसे विस्तृत रत्नमयी पूजासे इस महादेवकी मैं पुनः पूजा करूंगा ॥ ६ ॥ प्रल्हाद ऐसा विचार करके सम्पूर्ण सामग्रीके भारसे पूर्ण मनसे कमला (लक्ष्मी) के पति विष्णुकी पूजा की ॥ ७ ॥ रत्नोंसे जटित पात्रोंके अभिषेकोंसे, चन्दन आदिके लेपोंसे, नानाप्रकारके धूप तथा चित्रविचित्र विभव और अलंकारोंसे ॥ ८ ॥

मंदारमालावलनैर्हेमाब्जपटलोत्करैः ॥ कल्पवृक्षलतागुच्छैरत्नस्तबकमंडलैः ॥ ९ ॥ पल्लवैर्दिव्यवृक्षाणांनानाकुसुमदामभिः किंकिरातैर्बकैःकुंदैश्चंपकैरसितोत्पलैः ॥ १० ॥ कह्लारैःकुमुदैःकाशैःखर्जूरैश्चूतकिंशुकैः ॥ अशोकैर्मदनैर्बिल्वैःकर्णिकारैःकिरातकैः ॥ ११ ॥ कदंबैर्बकुलैर्निंबैःसिंदुवारैःसयूथकैः ॥ पारिभद्रैर्गुग्गुलीभिर्बिंद्गकैःपुष्पकोत्करैः ॥ १२ ॥

अर्थ—मन्दारकी मालाओंके वेष्टनोंसे, सुवर्णकमलके पटलके समूहोंसे, कल्पवृक्षोंके लता और गुच्छोंसे, और रत्नमय स्तवक मण्डलोंसे ॥ ९ ॥ दिव्यवृक्षोंके नानाप्रकारके पल्लव और पुष्पोंकी मालाओंसे, किंकिरात, बक, कुंद, चंपक और नील कमलोंसे पूजा की ॥ १० ॥ रक्तकमल, कुमुद, काश, खर्जूर, आम्र, तथा किंशुकोंसे, अशोक, मदन, बिल्व, कर्णिकार और किरातोंसे ॥ ११ ॥ कदम्ब, बकुल, निम्ब, सिंदवार, यूथक, पारिभद्र, गुग्गुली और अन्यप्रकारकेभी पुष्पोंके समूहोंसे पूजाकी ॥ १२ ॥

प्रियंगुपटलैःपाटपाटलैर्द्रांतुपाटलैः ॥ आम्रैराम्रातकैर्गव्यैर्हरीतकबिभीतकैः ॥१३॥शालतालतमालानांलतांकुसुमपल्लवैः ॥ कोमलैःकलिकाजालैःसहकारैःसकुंकुमैः ॥ १४ ॥ केतकैःशतपत्रैश्चतथैलामंजरीगणैः ॥ सर्वसौंदर्यसंमानैःस्वयमात्मार्पणैरपि ॥ १५ ॥ हरिंपरमयाभक्त्याजगद्विभवभव्यया ॥ मनसापूजयामासप्रह्लादोंतःपुरेपतिम् ॥ १६ ॥

अर्थ—प्रियंगु, पटल, पाट, पाटल, धातुपाटल आम्र, आम्रातक, गव्य हरीतक, और विमंतकोंसे ॥ १३ ॥ शाल, ताल और तमालोंके लता पुष्प और पल्लवोंसे, कोमल कलिकाओं (कलियों) के समूहोंसे और कुंकुमसहित आम्रोंसे पूजा की ॥ १४ ॥ केतक, कमल तथा इलायची आदिके लतासमूहोंसे सौन्दर्य्ययुक्त धूप दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, दर्पण, छत्र, चामर, आरती, पुष्पांजली, प्रदक्षिणा तथा नमस्कारादिसे तथा अन्यप्रकारकी सामग्रीसे और स्वयं आत्माके समर्पणसेभी विष्णुकी पूजा की ॥ १५ ॥ तथा जगत्में जो २ विभव होते हैं उनसे उत्तम भक्तिसे मानसी पूजा अपने स्वामी विष्णुभगवान्को प्रल्हादने अपने अन्तःपुरमें की ॥ १६ ॥

अथदेवगृहेतस्मिनबाह्यार्थैःपरिपुर्णया ॥ पूजयापूजयामासदानवेशोजनार्दनम्॥१७॥ बहिर्द्रव्यैरनेनैव क्रमेणपरमेश्वरम् ॥ पुनःपुनःपूजयित्वातुष्टिमान्दानवोभवत् ॥ १८ ॥ ततस्ततःप्रभृत्येवप्रह्लादःपरमेश्वरम् ॥ तथैवप्रत्यहंभक्त्यापूजयामासपूर्णया ॥ १९ ॥ अथतस्मिन्पुरेदैत्यास्ततःप्रभृतिवैष्णवाः ॥ सर्वएवाभवन्भव्याराजाह्याचारकारणम् ॥ २० ॥

अर्थ—इस मानसी पूजाके पश्चात् उसी अन्तःपुरमें स्थित देव गृहमें बाह्यपदार्थोंसे परिपूर्ण पूजाकी सामग्रीसे दानवोंके स्वामी प्रल्हादने जनार्दनकी पूजा की ॥ १७ ॥ जिस क्रमसे मानसी पूजा की इसी क्रमसे बाह्य द्रव्योंसेभी परमेश्वरकी पुनः पूजाकरके प्रल्हाददानव प्रसन्न हुआ ॥ १८ ॥ इसके पश्चात् उसी दिनसे प्रल्हाद उसी पूर्णभक्तिसे प्रतिदिन परमेश्वरकी पूजा की ॥ १९ ॥ इसके अनन्तर उस नगरमें उसी समयसे लेके सब दैत्य वैष्णव और मोक्षके भागी होगये, क्योंकि राजाही आचारका कारणहै ॥ २० ॥

जगामवार्त्तागगनंदेवलोकमथारिहन् ॥ विष्णोर्द्वेषंपरित्यज्यभक्तादैत्याःस्थिताइति ॥ २१ ॥ देवाविस्मयमाजग्मुःशक्राद्याःसमरुद्गणाः ॥ गृहीतावैष्णवीभक्तिर्दैत्यैःकिमितिराघव ॥ २२ ॥ क्षीरोदेभोगिभोगस्थंविबुधाविस्मयाकुलाः ॥ जग्मुरंबरमुत्सृज्यहरिमाहवशालिनम् ॥ २३ ॥ तत्रैनंदैत्यवृत्तांतंकथयामासुरस्यते ॥ पप्रच्छुश्चैनमासीनमपूर्वाश्चर्यविस्मयम् ॥ २४ ॥

अर्थ—हे शत्रुनाशकरामजी ! इसके पश्चात् यह वार्ता (दैत्योंका वैष्णव होना) दूतके मुखसे स्वर्गमें गई कि विष्णुका द्वेष त्यागके सब दैत्य वैष्णव होकर स्थितहैं ॥ २१ ॥ हे रामजी ! इस वार्ताको सुनके मरुद्गणसहित इन्द्रादिदेव विस्मयको प्राप्त हुये कि दैत्योंने विष्णुकी भक्ति क्यों ग्रहण की ॥ २२ ॥ विस्मयसे व्याकुल देवगण अपनी अमरावतीनगरीको छोडके क्षीरसमुद्रमें शेषनागके फणपर स्थित और युद्धमें शोभायमान विष्णुभगवान्के समीप गये ॥ २३ ॥ वहांपर विष्णुभगवानको सब दैत्योंका वृत्तान्त कहदिया और सुखसे विराजे हुये विष्णुसे अपूर्व आश्चर्य विस्मयपूर्वक यह पूंछा ॥ २४ ॥

॥ विबुधाऊचुः ॥ किमेतद्भगवन्दैत्याविरुद्धायेसदैवते ॥ तेहितन्मयतांयातामायेयमितिभाव्यते॥ २५ ॥ क्वकिलात्यंतदुर्वृत्तादानवादलिताद्रयः ॥ क्वपाश्चात्यमहाजन्मलभ्याभक्तिर्जनार्दने ॥ २६ ॥ प्राकृतोगुणवान्जातइत्येषाभगवन्कथा ॥ अकालपुष्पमालेवसुखायोद्वेजनायच ॥ २७ ॥ नोपपन्नंहियद्यत्रतत्रतन्नविराजते ॥ मध्येकाचकलापस्यमहामूल्योमणिर्यथा ॥ २८ ॥

अर्थ—विबुधगण बोले—हे भगवन् ! यह क्या वर्ता है कि जो दैत्यलोग सदा आपके विरुद्धथे वे आपमें तन्मय होगये हैं यह तो माया भान होती है ॥ २५ ॥ कहां ये आपके भक्त मुनियोंके निवासस्थान पर्वत आदिको दलनकर्ता दुराचारी दैत्य ! और कहां यह अन्तिम ब्राह्मणादि जन्मोंमें प्राप्त होने योग्य विष्णुभगवान्की भक्ति ! ॥ २६ ॥ हे भगवन् ! मूर्खपण्डित होगया यह कथा उत्पातदायिनी अकालके पुष्पकी मालाके समान सुख तथा दुःख दोनोंके अर्थ है॥२७॥जो पदार्थ जहां युक्त नहीं है वहां शोभा नहीं देता जैसे कांचोंके समूहके मध्यमें महामूल्यमणि॥२८

योयोयादृग्गुणोजंतुःस्तामेवतिसंस्थितिम् ॥ सदृशेष्वप्यजेषुश्वानमध्येरमतेक्वचित् ॥ २९ ॥ नतथा दुःखयंत्यंगेमज्जंत्योवज्रसूचयः ॥ वैसादृश्येनसंबद्धायथैतावस्तुदृष्टयः ॥ ३० ॥ यद्यत्रक्रमसंप्राप्तमुपयुज्यमानंदितम् ॥ तदेवराजतेतत्रजलेभोजनंतुस्थले ॥ ३१ ॥ क्वाधमःप्राकृतारंभोहीनकर्मरतिःसदा ॥ वराकोदानवोहीनजातिर्भक्तिःक्ववैष्णवी ॥ ३२ ॥ कमलिनीपरुषोषरभूगतासुन्नयतीहयथानदुराश्रया ॥ दितिसुतोपिहिमाधवभक्तिमानितिकथानतथेशसुखायनः ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे विबुधवाक्यं नामद्वात्रिंशःसर्गः ॥ ३२ ॥

अर्थ—जो २ जीव जैसे २ गणसे युक्तहै वह २ वैसेही संस्थितिं-अर्थात् तामस तामसी, राजस राजसी, और सात्विक सात्विकी प्रकृतिको प्राप्त होताहै, चाहै एकही वंशमें क्यों न हो, जैसे समान वर्णके बकरोंमेंभी कुत्ता

क्रीडा नहीं करता ॥ २९ ॥ अंगोंमें प्रवेश करती हुई वज्रकी सूची इतना दुःख नहीं देती जैसे अयोग्य रीतिसे संबद्ध ये वस्तुकी दृष्टि ॥ ३० ॥ जो पदार्थ जहां योग्यतासे प्राप्तहै वहां निन्दारहित वही शोभित होताहै, जैसे कमल जलमें शोभित होताहै न कि स्थलमें ॥ ३१ ॥ कहां तो प्राकृत (पामरों) के योग्य कार्य्योंका आरम्भ कर्ता, नीच कर्ममें सदा रत, और हीन जाति तुच्छ दानव और कहां विष्णुकी भक्ति ॥ ३२ ॥ हे भगवन् ! जैसे तप्त ऊपर भूमिपर प्राप्त कमलिनी दुष्ट आश्रयमें प्राप्त श्रोताओंके कर्णोंको सुख नहीं देती ऐसेही हे माधव ! दितिका पुत्र दैत्यभी भक्तिमान्है यह वार्ता हम लोगोंको सुख नहीं देती ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे विबुधवाक्यं नाम द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३३ ॥

इस ३३ के सर्गमें विष्णुकी भक्तिसे प्रल्हाददैत्यको विवेक आदि गुणका उदय और प्रसन्न विष्णुको देखके प्रल्हादकी स्तुति इस विषयका वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ गर्जतमतिसंरब्धंसुरलोकमथारिहा ॥ उवाचमाधवोवाक्यंशिखिवृंदमिवांबुदः ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ विबुधामाविषण्णाःस्थप्रह्लादोभक्तिमानिति ॥ पाश्चात्यंजन्मतस्येदंमोक्षार्होसावरिंदमः ॥ २ ॥ अतउत्तरमेतेनगर्भतादनुजन्मना ॥ नकर्तव्याप्रदग्धेनबीजेनेवांकुरक्रिया ॥ ३ ॥ गुणवान्निर्गुणोजातइत्यनर्थक्रमंविदुः ॥ निर्गुणोगुणवान्जातइत्याहुःसिद्धिदंक्रमम् ॥४॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! अनुचित दर्शनसे अति कुपित अतएव पूर्वोक्त रीतिसे गर्जके पूंछते हुये देवसमूहसे शत्रुनाशक विष्णुभगवान् ऐसे बोले जैसे मयूरके वृंदसे मेघ ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले—हे देवगण ! प्रल्हाद मेरा भक्तहै इस वास्ते तुम लोग उदासीन मत होओ, क्योंकि प्रल्हादका यह अन्तिम जन्महै वह शत्रु नाशक इसी शरीरसे मोक्षका अधिकारी है ॥ २ ॥ इस जन्मके पश्चात् यह माताके गर्भमें निवास ऐसे नहीं करेगा, जैसे दग्धबीज अंकुर धारणकी क्रियाको ॥३॥ गुणवान् होके निर्गुण होगया यह तो पौरूपका विघातरूप अनर्थका क्रम कहाताहै॥४॥

आत्मीयानिविचित्राणिभुवनान्यमरोत्तमाः ॥ प्रयातनासुखायैषाप्राह्लादीगुणितेहवः ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इत्युक्त्वाविबुधांस्तत्रक्षीरोदार्णववीचिषु ॥ अंतर्द्धानंययौदेवस्तटतापिच्छगुच्छवत् ॥६॥ सोपिसंपूजितहरिःसुरौघोव्रजदंबरम् ॥ पुनर्मंदरनिर्धूतात्कणजालमिवार्णवात् ॥ ७ ॥ प्रह्लादंप्रतिगीर्वाणस्ततःस्निग्धत्वमाययुः ॥ महांतोयत्रनोद्विग्नास्तत्रविश्वासवन्मनः ॥ ८ ॥

अर्थ—हे देवोंमें श्रेष्ठ ! तुम लोग अपने २ विचित्र भवनोंमें जाते प्रल्हादका यह गुणपना तुम लोगोंके दुःखके अर्थ नहीं है ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—श्रीभगवान्ने देवतावोंसे इसप्रकार कहके क्षीरसमुद्रके तरंगोंमें ऐसे अन्तर्ध्यान होगये जैसे तटमें उत्पन्न हुये तमालवृक्षके गुच्छे ऊंची नीची तरंगोंमें ॥ ६ ॥ वह देवोंका समूहभी आकाशमें ऐसे चलागया जैसे प्रथम आकाशसे समुद्रमें गिरा हुआ कणकासमूह मन्दराचलसे मथित समुद्रसे उठके पुनः आकाशमें लोप होजाय ॥ ७ ॥ उसीसमयसे देवतालोग प्रल्हादसे स्नेह करनेलगे क्योंकि महात्मालोग जिससे सन्तुष्ट होते हैं उससे छोटे लोगोंका मनभी विश्वासी होजाताहै ॥ ८ ॥

प्रत्यहंपूजयामासदेवदेवंजनार्दनम् ॥ मनसाकर्मणावाचाप्रह्लादोभक्तिमानिति ॥ ९ ॥ अथपूजापरस्यास्यसमवर्द्धतकालतः ॥ विवेकानंदवैराग्यविभवप्रमुखागुणाः ॥ १० नाभ्यनंददसौभोगपूगंशुष्कमिवद्रुमम् ॥ नचारमतकांतासुमृगोलोकमहीष्विव ॥ ११ ॥ नरेमेलोकचर्यासुशास्त्रार्थकथनादृते ॥ नजायतेरतिस्तस्यदृश्येस्थलइवाब्जिनी ॥ १२ ॥

अर्थ—भक्तिमान् प्रल्हाद तो उसीसमयसे देवोंके देव जनार्दनकी मन, वचन तथा वाणीसे प्रतिदिन पूजा करनेलगा ॥ ९ ॥ इसके पश्चात् पूजामें तत्पर प्रल्हादके कालपाके विवेक, यथा. प्राप्त वस्तुसे सन्तोष, वैराग्य और ऐश्वर्य्यादि गुण बढने लगा ॥ १० ॥ और प्रल्हादको तो भोगसमूह ऐसे नहीं रुचतेथे जैसे कि शुष्क वृक्ष, और मृग जैसे जन्तुसे पूर्ण भूमियोंपर नहीं रमण करता ऐसे यह स्त्रियोंमें नहीं रमण करताथा ॥ ११ ॥ और शास्त्रकी चर्चाके सिवाय यह लौकिक वार्ताओंमें नहीं रमण करताथा, और जलरहित स्थलमें कमलिनीकी प्रीति नहीं होती ऐसेही दृश्य पदार्थोंमें उसकी प्रीति नहीं होतीथी ॥ १२ ॥

नविश्राममचेतोस्यभोगरोगानुरंजने ॥ मुक्ताफलमसंश्लिष्टंमुक्ताफलइवामले ॥ १३ ॥ त्यक्तभोगादि कलनंविश्रांतिमनुपागतम् ॥ चेतःकेवलमस्यासीद्दोलायामिवयोजितम् ॥ १४ ॥ आह्लादितांस्थितिंवि ष्णुर्देवःक्षीरोदमंदिरात् ॥ विवेदसर्वगतयाधियापरमकांतया ॥ १५ ॥ अथपातालमार्गेणविष्णुराह्लादि ताग्रतः ॥ पूजादेवगृहंतस्यप्रह्लादस्यसमाययौ ॥ १६ ॥

अर्थ—रोगरूप भोगोंके अनुकूल आचरण करनेमें इसका चित्त ऐसे नहीं विश्रामको प्राप्त होताथा जैसे निर्मल मोतियोंकी मालामें विना गुंथा वा छिद्ररहित मुक्ताफल ॥ १३ ॥ किंतु भोगादि संकल्पोंको त्यागनेवाला, और अप्राप्त विश्राम इसका चित्त न भोगोंमें न शुद्ध ब्रह्ममें विश्रान्त हुआ अर्थात् दोनोंके मध्यमें स्थितके समानथा ॥ १४ ॥ विष्णुभगवान्ने प्रल्हादकी उस स्थितिको शुद्ध सत्वात्मिक तथा सर्वत्र व्याप्त ज्ञान शक्तिसे जानलिया ॥१५॥ इसके पश्चात् भक्तोंको परमानन्द दाता विष्णुभगवान् पातालके मार्गसे प्रल्हादके पूजागृहमें जाके संमुख स्थित हुये ॥१६॥

विज्ञायाभ्यागतंदेवंपूजयाद्विगुणेद्धया ॥ दैत्येंद्रःपुंडरीकाक्षमादरात्पर्यपूजयत् ॥ १७ ॥ पूजागृहगतंदे वंप्रत्यक्षावस्थितंहरिम् ॥ प्रह्लादःपरमप्रीतोगिरातुष्टावपुष्टया ॥ १८ ॥ प्रह्लादउवाच ॥ त्रिभुवनभ वनाभिराममकोशंसकलकलंकहरंपरंप्रकाशम् ॥ अशरणशरणंशरण्यमीशंहरिमजमच्युतमीश्वरंप्रपद्ये ॥ १९ ॥ कुवलयदलनीलसन्निकाशंशरदमलांबरकोटरोपमानम् ॥ भ्रमरतिमिरकज्जलांजनाभंसरसिज चक्रगदाधरंप्रपद्ये ॥ २० ॥

अर्थ—दैत्येन्द्र प्रल्हादने विष्णुभगवान्को आये हुये जानकर द्विगुणपदार्थोंके उपचारसे प्रदीप्त पूजासे अति आदरपूर्वक पुंडरीकाक्षकी पूजा की ॥ १७ ॥ पूजागृहमें प्राप्त और प्रत्यक्ष मूर्ति धारण करके स्थित विष्णुभगवान्की हर्षसे वृद्धिको प्राप्त वाणीसे प्रल्हादने स्तुति की ॥ १८ ॥ प्रल्हाद बोले–त्रिलोकरूप भवनके उत्तम रक्षास्थान, बाह्य तथा आभ्यन्तरके कलंकरूप अन्धकार हर्ता, सूर्य, अग्नि, चन्द्र, नेत्र तथा वाणी आदिके प्रकाशोंके प्रकाशक परम- प्रकाशरूप, शरणरहित जनोंके शरणस्थान, अविनाशी होनेसे सबके शरणके योग्य ईश, अजन्मा, तथा सर्व दुःख नाशक विष्णुकी शरणमें मैं हुं ॥ १९ ॥ नीलकमल वा नीलमणिके समान, शरत्कालके आकाशके कोटरके समान भ्रमर, अन्धकार, कज्जल तथा अंजनके समान शोभायुक्त, और कमल, शंख चक्र गदाधारी विष्णुरूप आ- पकी मैं शरणमें हुं ॥ २० ॥

विमलमलिकलापकोमलांगंसितदलपंकजकुड्मलाभशंखम् ॥ श्रुतिरणितविरंचिचंचरीकंस्वहृदयपद्म दलाश्रयंप्रपद्ये ॥ २१ ॥ सितनखगणतारकावकीर्णंस्मितधवलाननपीवरेंदुबिंबम् ॥ हृदयमणिमरीचि जालगंगंहरिशरदंबरमाततंप्रपद्ये ॥ २२ ॥ अविरलकृतसृष्टिसर्वलीनंसततमजातमवर्द्धनंविशालम् ॥ गु णशतजरठाभिजातदेहंतरुदलशायिनमर्भकंप्रपद्ये ॥ २३ ॥ नवविकासिपद्मरेणुगौरंस्फुटकमलावपुषा विभूषितांगम् ॥ दिनशमसनयारुणांगरागंकनकनिभांबरसुंदरंप्रपद्ये ॥ २४ ॥

अर्थ—निर्मलरूप अलि (भ्रमर) समूहके सदृश कोमलांग, श्वेतकमलकी कलिकाके समान श्वेतवर्ण शंख- धारी और श्रुतिही जिसके गूंजके शब्दहैं ऐसे ब्रह्मारूप भ्रमर जिसके हृदय कमलमें हैं, और भक्तोंका हृदयकमल जिसके रहनेका आश्रयहै ऐसे विष्णुरूपके शरणमें मैं प्राप्तहुं ॥ २१ ॥ श्वेतनखोंके गणरूप तारागणसे व्याप्त, मन्द- हाससे श्वेत मुखरूप पूर्ण चन्द्रसहित और हृदयकी कौस्तुभमणिके किरणके समूहरूप मन्दाकिनीसे क्षोभित विष्णुरूप विशाल शरत्के आकाशके मैं शरणमें हुं ॥ २२ ॥ घन सृष्टि जिसमें लीनहै, सदा उत्पत्तिरहित अतएव वृद्धि आदि विकार शून्य महान् सत्व आदिमायाके गुणोंसे प्रेरित प्राचीन उत्पन्न तथा सुन्दरदेहवान् और प्रलयकालमें वटके पत्रके ऊपर शयन करनेवाले बालक स्वरूप विष्णुके मैं शरणमें हुं ॥ २३ ॥ नूतन विकासित कमलके रेणुओंसे गौरवर्ण और लक्ष्मीके शरीरसे विभूषित नाम अंगसहित और सायंकालके समान अरूणरक्त चन्दनके समान अंगरागयुक्त तथा सुवर्णके समान सुन्दर विष्णुभगवानकी शरणमें मैं हुं ॥ २४ ॥

दितिसुतनलिनीतुषारपातंसुरनलिनीसततोदितार्कबिंबम् ॥ कमलजनलिनीजलावपूरंहृदिनलिनीनिलयं विभुंप्रपद्ये ॥ २५ ॥ त्रिभुवननलिनीसितारविंदंतिमिरसमानविमोहदीपमग्र्यम् ॥ स्फुटतरमजडंचिदा त्मतत्त्वंजगदखिलार्त्तिहरंहरिंप्रपद्ये ॥ २६ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इतिगुणबहुलाभिर्वाग्भिरभ्यर्चितो सौहरिरसुरविनाशःश्रीनिषण्णांसदेशः ॥ जलदइवमयूरंप्रीतिमान्प्रीयमाणंकुवलयदलनीलःप्रत्युवाचा सुरेंद्रम् ॥ २७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे नारायणगमनं नाम त्रयस्त्रिंशःसर्गः ॥ ३३ ॥

अर्थ—दितिके पुत्ररूप कमलिनियोंके लिये तुषारके पतन देवतारूप कमलिनीके अर्थ निरन्तर उदित सूर्य्यबिम्ब ब्रह्मारूप कमलिनीके अर्थ तडाग और हृदयकमलके आश्रयस्थान व्यापक विष्णुके मैं शरणमें हुं ॥ २५ ॥ त्रिभुवनरूप नलिनीके सूर्य अज्ञानान्धकारके लिये श्रेष्ठ दीप नित्य स्वप्रकाश जडभिन्न चिदात्मरूप और साक्षात्कारमात्रसे संपूर्ण लोकोंके दुःखके नाशक हरिके मैं शरणमें हुं ॥ २६ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—इसप्रकार गुणोंसे पूर्ण स्तुतियोंसे पूजित लक्ष्मीसे आलिंगित असुरोंके विनाशस्थान नीलकमलके समान श्याम और प्रीतिसहित विष्णुभगवान् अपने प्रीतिपात्र दैत्येन्द्र प्रल्हादसे ऐसे बोले जैसे मयूर मेघसे ॥ २७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उपशमप्रकरणे नारायणगमनं नाम त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ६३ ॥

चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥

इस ३४ के सर्गमें विष्णुके वरदानसे प्रल्हाद उत्तम विचारको पाके अनात्मवर्ग देहादिके निरास (त्याग) से अद्वितीय चिन्मात्र आत्मतत्वको देखा ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वरंगुणनिधेदैत्यकुलचूडामहामणे ॥ गृहाणाभिमतंभूयोजन्मदुःखोपशांतये॥१॥ ॥ प्रल्हादउवाच ॥ सर्वसंकल्पफलदसर्वलोकांतरस्थित ॥ यदुदारतमंवेत्सितदेवादिशमेविभो ॥२॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सर्वसंभ्रमसंशांत्यैपरमायफलायच ॥ ब्रह्मविश्रांतिपर्यंतोविचारोस्तुतवानघ ॥३॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इत्युक्त्वादितिपुत्रेंद्रंविष्णुरंतरधीयत ॥ कृतघर्घरनिर्ह्रादस्तरंगस्तोयधेरिव॥४॥

अर्थ—श्रीभगवान् बोले—हे गुणनिधे दैत्यकुलचुडामणे ! तुम जिसमें पुनः जन्मका दुःख न पावो ऐसा वरदान ग्रहण करो॥१॥प्रल्हादजी बोले—हे सम्पूर्ण संकल्पित फलोंके देनेवाले परमात्मन्! हे सब लोकोंके अन्तरमें स्थित जो सबसे उत्तम वरदान आप समझते हो वही हे प्रभो ! मुझे दीजीये ॥ २ ॥ श्रीभगवानजी बोले—हे पापरहित प्रल्हाद ! सम्पूर्ण भ्रमकी शांतिके लिये और परमानन्द मुक्तिरूप फलके प्राप्तिके अर्थ ब्रह्ममें विश्रान्तिपर्य्यन्त तुमारा विचार हो ॥ ३ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—दितिके पुत्र दानवोंके इन्द्र प्रल्हादके प्रति इतना कहकरके विष्णुभगवान् ऐसे अन्तर्धान होगये जैसे घर्घर शब्द करके तरंग समुद्रमें ॥ ४ ॥

विष्णावंतर्हितेदेवेपूजायांकुसुमांजलिम् ॥ पाश्चात्यंदानवस्त्यक्त्वामणिरत्नपरिष्कृतम् ॥ ५ ॥ पद्मासनस्थोतिमुदाह्युपविश्यवरासने ॥ स्तोत्रपाठविधावंतश्चिंतयामासचेतसा ॥ ६ ॥ विचारवानेवभवाऩ्भवत्विति भवारिणा ॥ देवेनोक्तेस्मितेनांतःकरोम्यात्मविचारणम् ॥ ७ ॥ किमहंनामतावत्स्यांयोस्मिन्भुवनडंबरे ॥ वच्मिगच्छामितिष्ठामिप्रयत्नेनाहरामिच ॥ ८ ॥

अर्थ—विष्णुभगवान्के अन्तर्धान होनेपर रत्नसे पूरित कुसुमकी अन्तिम अंजलि पूजामें छोडकर ॥ ५ ॥ उत्तम आसनपर पद्मासनसे आनन्दपूर्वक बैठकर स्तुतिपाठके विधानमें अपने अन्तःकरणमें यह चिन्तन किया ॥ ६ ॥ संसारके नाश करनेवाले विष्णुदेवने मुझे यह वरदान दियाहै कि तुम विचारवान्हो इसलिये मैं अपने अन्तःकरणमें विचार करूं ॥ ७ ॥ इस संसारके आडम्बरमें मैं भाषण करताहुं चलताहुं स्थितहुं और प्रयत्नसे विषयोंका भोग करता हुं इनमेंसे मैं कौन हुं ॥ ८ ॥

जगत्तावदिदंनाहंसवृक्षतृणपर्वतम् ॥ यद्बाह्यमलमत्यंतंतत्स्यांकथमहंकिल ॥ ९ ॥ असन्नभ्युदितोमूकःपवनैःस्फुरितःक्षणम् ॥ कालेनाल्पेनविलयीदेहोनाहमचेतनः ॥ १० ॥ जडयाकर्णशष्कुल्याकल्प्यमानःक्षणक्षयी ॥ शून्याकृतिःशून्यभवःशब्दोनाहमचेतनः ॥ ११ ॥ त्वचाक्षणविनाशिन्याप्राप्यमप्राप्यमप्यथ ॥ चित्प्रसादोपलब्धात्मस्पर्शोनाहमचेतनम् ॥ १२ ॥

अर्थ—यह वृक्ष तृण और पर्वतसहित जो जगत्है यह मैं नहीं हुं क्योंकि जो शरीरसे सर्वथा बाह्यहै यह मैं कैसे होसकताहुं ॥ ९ ॥ तीनोंकालमें असत् अल्पकालके लिये उदयको प्राप्त प्राणरूपी पवनोंसे क्षणभरके लिये स्थित अल्पकालमें नश्वर यह जड देह मैं नहीं हुं ॥ १० ॥ जडकर्ण संस्कुलीप्रदेशमें कल्पित क्षणमें नश्वर आकाररहित आकाशसे उत्पन्न जडशब्दभी नहीं हुं ॥ ११ ॥ क्षणमें नाश होनेवाली त्वगिन्द्रियसे कदाचित् चेतनके प्रमादसे प्राप्त और कदाचित् अप्राप्य यह अचेतन स्पर्शभी मैं नहीं हुं ॥ १२ ॥

लब्धात्माजिह्वयातुच्छोलोलयालोलसत्तया ॥ स्वल्पस्पंदोद्रव्यनिष्ठोरसोनाहमचेतनः ॥ १३ ॥ दृश्यदर्शनयोर्लीनंक्षयिक्षणविनाशिनोः ॥ केवलेद्रष्टरिक्षीणंरूपंनाहमचेतनम् ॥ १४ ॥ नासयाप्यंधजडयाक्ष

यिण्यापरिकल्पितः ॥ पेलवोऽनियताकारोगंधोनाहमचेतनः ॥ १५ ॥ निर्ममोऽमननःशांतोगतपंचेंद्रियभ्रमः ॥ शुद्धचेतनएवाहंकलाकलनवर्जितः ॥ १६ ॥

अर्थ—चंचल अर्थात् अनित्य जिव्हा इन्द्रियसे बद्ध स्वभाव जिव्हासे कण्ठपर्य्यन्त प्रदेशमें आस्वाददायक द्रव्यनिष्ठरसभी मैं नहीं हुं ॥ १३ ॥ अनित्य द्रव्य तथा नेत्र इन्द्रियके अधीन केवल द्रष्टामें नष्ट होनेवाला अचेतनरूपभी मैं नहीं हुं ॥ १४ ॥ प्रकाशरहित और क्षण विनाशी नासिका इन्द्रियसे परिकल्पित अति कोमल और अनियताकारवाला अर्थात् क्षणमें परिणामी अचेतन गन्धभी मैं नहीं हुं ॥ १५ ॥ किन्तु ममतारहित मन शून्य शान्त पंच इन्द्रियोंके भ्रमसे शून्य संकल्पकी कलासे वर्जित शुद्धचेतन आत्मामात्र मैं हुं ॥ १६ ॥

चेत्यवर्जितचिन्मात्रमाहमेषोऽवभासकः ॥ सबाह्याभ्यंतरव्यापीनिष्कलामलसन्मयः ॥ १७॥ अनेनचेतनेनेमेसर्वेघटपटादयः ॥ सूर्यांताअवभास्यंतेदीपेनोत्तमतेजसा ॥ १८ ॥ आइदानींस्मृतंसत्यमेतत्तदखिलंमया ॥ निर्विकल्पचिदाभासएषआत्मास्मिसर्वगः ॥ १९ ॥ अनेनैताःस्फुरंतीहविचित्रेंद्रियवृत्तयः ॥ तेजसांतःप्रकाशेनयथाग्निकणपंक्तयः ॥ २० ॥

अर्थ—विषयसे वर्जित सबका प्रकाशक बाह्य और आभ्यन्तर व्यापी निष्कल निर्मल सन्मात्र सन्मय केवल चिन्मात्र यह मैं हुं ॥ १७ ॥ इसी शुद्धचेतनमात्रसे सम्पूर्ण घटपटसे आदि लेकर सूर्य्य पर्यन्त पदार्थ ऐसे प्रकाशित होते हैं जैसे उत्तम प्रकाशवान् दीपसे ॥ १८ ॥ अहो इससमय मैंने यह स्मरण किया कि यह सम्पूर्ण जगत् निर्विकल्प चिदाभास आत्ममात्रही है और वह सर्वव्यापी आत्मस्वरूप मैं हुं ॥ १९ ॥ इसी मुझ चेतनस्वरूपसे संपूर्ण चित्रविचित्र इन्द्रियोंकी वृत्तियां ऐसे स्फुरित होती हैं जैसे अन्तःप्रकाशस्वरूप अग्निके कणोंकी पंक्ति ॥ २० ॥

अनेनैताःस्फुरंतीहविचित्रेंद्रियपंक्तयः ॥ सर्वगेननिदाघेनयथामरुमरीचिकाः ॥ २१ ॥ अनेनैतत्पदार्थानांवस्तुत्वंप्रतिपाद्यते ॥ शुक्लादिगुणवस्त्वंस्वंप्रदीपेनेववाससाम् ॥ २२ असावेवंहिभूतानांसर्वेषामेवजाग्रताम् ॥ सर्वानुभविता भूमिरात्मामुकुरवस्थितः ॥ २३ ॥ तस्यैकस्याविकल्पस्यचिद्दीपस्यप्रसादतः ॥ उष्णोर्कःशिशिरश्चंद्रोघनोद्रिर्विद्रुतंपयः ॥ २४ ॥

अर्थ—इसी सर्वत्रगामी चेतनस्वरूप आत्मासे चित्रविचित्र इन्द्रियोंकी वृत्तियां ऐसे स्फुरती हैं जैसे निदाघ (उष्ण) ऋतुसे मरूस्थलमें मृगतृष्णाकी नदियां ॥ २१ ॥ और इसी चेतनसे इन पदार्थोंका वस्तुत्व अर्थात् सत्ताभी ऐसे प्रतिपादित होती है जैसे वस्त्रोंके शुक्लादि गुणोंका प्रतिपादन प्रदीप आदि प्रकाशोंसे ॥ २२ ॥ यही चेतनआत्मा सम्पूर्ण सचेतन पदार्थ देह इन्द्रिय मन तथा बुद्धि आदि भावोंके अनुभवकी ऐसे भूमिहैं जैसे सब प्रतिबिम्बोंका आश्रय दर्पण ॥ २३ ॥ उसी एक निर्विकल्प चित्रूप प्रदीप प्रतापसे सूर्य्य उष्णहै, चन्द्रमा शीतलहै, पर्वत घनहै, और दुग्ध द्रवशीलहै ॥ २४ ॥

सातत्येनानुभूतानांसर्वेषांचजगत्स्थितौ ॥ एतत्कारणमाद्यंतत्कारणंनास्यविद्यते ॥ २५ ॥ सातत्येनानुभूतानांपदार्थानामनेनतत् ॥ पदार्थत्वमुदेत्युच्चैःप्रतापेनेवतप्तता ॥२६॥ अनाकारात्कारणाच्चसर्वकारणकारणात् ॥ एतस्मादिदमुत्पन्नंजगच्छैत्यंहिमादिव ॥ २७ ॥ ब्रह्मविष्ण्वींद्ररुद्राणांकारणानांजगत्स्थितौ ॥ एतत्कारणमाद्यंतत्कारणनास्यविद्यते ॥ २८ ॥

अर्थ—आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल इत्यादि निरन्तर श्रुति तथा प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे अनुभूत पदार्थोंकी जगत्में उत्पत्ति आदिकी व्यवस्थामें आदि कारण यही आत्माहै इसका कारण कोई नहीं है किन्तु सत्रूपसे सब कार्य्यमें व्यापकहै ॥ २५ ॥ और निरन्तर पूर्वोक्त क्रमसे अनुभूत आकाशादिमें वह प्रसिद्ध पदार्थता इसी आत्मासे ऐसे उदित होती है जैसे उष्णऋतुके सूर्य्यके तापसे भूमि आदिमें तप्तता ॥ २६ ॥ आकारशून्य, अविद्याद्वारा कारणभूत सब ब्रह्मादि देवोंकाभी कारण इसी प्रत्यक्रूप ब्रह्मसे यह सब जगत् ऐसे उत्पन्न हुआहै जैसे शीतता हिमसे ॥ २७ ॥ जगत्की स्थितिमें कारणभूत ब्रह्मा विष्णु इन्द्र तथा रूद्रादिकाभी आदि कारण यही है और इसका कारण कोई नहीं है ॥ २८ ॥

चिच्चेत्यद्रष्टृदृश्यादिनामभिर्वर्जितात्मने ॥ स्वयंसंरूढिभातायमह्यमस्मैनमोनमः ॥ २९ ॥ एतस्मिन्सर्वेभूतानिनिर्विकल्पचिदात्मनि ॥ गुणभूतानिभूतेशेतिष्ठंतिविविशंतिच ॥ ३० ॥ यत्किलानेनकलितंचेतनेनांतरात्मना ॥ तत्तद्भवतिसर्वत्रनेतरत्सदपिस्थितम् ॥ ३१ ॥ यच्चिताकलितंकिंचित्तदाप्नोतिनिजंपदम् ॥ यच्चिताकलितंनेहतत्सदप्यंतमागतम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—चित्त विषय, द्रष्टा, दर्शन और दृश्य तथा नामादिसे और स्वयं नित्य प्रकाशरूप इस मुझ आत्माको बार २ नमस्कारहै ॥ २९ ॥ इसी सब गुणोंके स्वामी निर्विकल्प चिदात्मामें गुणभूत प्रकृतिसे भिन्न वा अभिन्न सत्तावान् पदार्थ स्थित रहते हैं और इसीमें प्रवेशभी करते हैं ॥ ३० ॥ कारण सूक्ष्मरूपसे स्थित रहनेपरभी जिस २ पदार्थके लिये इस चित्तने यह संकल्प किया कि उत्तर क्षणमें हो वही वह सर्वत्र उत्तरकालमें होताहै अन्य नहीं॥३१॥ जिस किसीको चित्तने संकल्पित कियाहै वही अपने घट आदि व्यवहारपदको प्राप्त होताहै और जिसको नहीं संकल्पित किया वह सूक्ष्म वा स्थूलरूपसे होने परभी नाशको प्राप्त होताहै ॥ ३२ ॥

इमेघटपटाकाराःपदार्थशतपंक्तयः ॥ जागत्योविपुलादर्शेह्यस्मिन्व्योमनिबिंबिताः ॥ ३३ ॥ एतद्वृद्धंद्व्यतरेक्षयिक्षयिणिजायते ॥ पदार्थसदसच्चापिमतिबिंबार्कवत्स्थितम् ॥ ३४ ॥ अदृश्यंसर्वभूतानांप्राप्यंगलितचेतसाम् ॥ एतत्तदृश्यतेसद्भिःपरंव्योमातिनिर्मलम् ॥ ३५ ॥ इयमभ्युदयंयातिनानादृश्यद्रुमंजरी ॥ आचारचंचरीकाढ्याएतस्मात्कारणद्रुमात् ॥ ३६ ॥

अर्थ—ये घटपट आदि आकाररूपसे जगत्संबन्धी सैकडो पदार्थोंकि पंक्तियां इसी महान् दर्पणरूप चिदाकाशमें प्रतिबिम्बितहैं ॥ ३३ ॥ जैसे प्रतिबिम्बके सूर्यमें क्षय वृद्धि आदि पृथक् रूपसे भान होती है ऐसेही आत्मामें ही पदार्थोंकी वृद्धि क्षयादि भी अध्यस्तहैं ॥ ३४ ॥ संपूर्ण अज्ञ जीवोंको अदृश्य और चित्तरहित जीवोंको प्राप्य (दृश्य) है क्योंकि यह अति निर्मल परम चिदाकाश सज्जन ज्ञानियोंकोही दृश्यहै ॥ ३५ ॥ इसी सबके कारण भूत चेतनरूप वृक्षसे अनेक आचाररूप भ्रमरोंसे पूर्ण यह नानाप्रकारकी दृश्यरूप लता अभ्युदयको प्राप्त होती है॥३६॥

अस्मादियमुदेत्युच्चैःसंसाररचनाचला ॥ विचित्रतरुगुल्माढ्याशैलादिववनावली ॥ ३७ ॥ सर्वेषामविभिन्नोसौत्रैलोक्योदरवर्त्तिनाम् ॥ ब्रह्मादीनांतृणांतानांचिद्रात्मासंप्रकाशकः ॥ ३८ ॥ एकोसावहमाद्यंतरहितःसर्वगाकृतिः ॥ चराचराणांभूतानामंतःस्वानुभवःस्थितः ॥ ३९ ॥ अस्यतस्यममेमानिस्थावराणिचराणिच ॥ परिसंख्यादिहीनानिशरीराणिबहूनिच ॥ ४० ॥

अर्थ—इसी चेतन परमात्मासे यह विशाल अचल संसारकी रचना ऐसे उदय होती है जैसे पर्वतसे चित्रविचित्र लता आदिसे पूर्ण वनोंकी पंक्ति ॥ ३७ ॥ ब्रह्मासे आदि लेकर तृणपर्यन्त जो कुछ त्रैलोक्यके उदरमें विद्यमान पदार्थ हैं उन सबका अभिन्नरूपसे प्रकाशक यही चिदात्माहै ॥ ३८ ॥ आदि अन्तरहित सर्वत्रगामी आकारसहित और चराचरके प्राणियोंके अन्तरमें अनुभव स्वरूपसे स्थित यह एक परमात्मा मैंही हुं ॥ ३९ ॥ वेद और स्मृति प्रतिपाद्य उस परमात्मस्वरूप मेरे देशकाल और वस्तुकी इयत्तासे शून्य नानाप्रकारके स्थावर और जंगम शरीरहैं ॥४०॥

एकोसावनुभूत्यात्मास्वानुभूतिवशात्स्वयम् ॥ सर्वदृग्द्रष्टृदृश्यत्वात्सहस्रकरलोचनः ॥ ४१ ॥ एषोसावहमाकाशेसुर्यदेहेनचारुणा ॥ विहरामीतरेणापिवायुदेहेनवायुना ॥ ४२ ॥ ममैतद्दपुरानीलंशंखचक्रगदाधरम् ॥ सर्वसौभाग्यसीमांतंह्यस्मिञ्जगतिवल्गति ॥ ४३ ॥ अहमस्मिन्समुद्भूतःपद्मासनगतःसदा ॥ निर्विकल्पसमाधिस्थःपरांनिर्वृतिमागतः ॥ ४४ ॥

अर्थ—अनुभवस्वरूप एकही यह परमात्मा स्वयं सबका दृक् द्रष्टा और दृश्यरूप होनेसे असंख्य हस्त और नेत्रादि सहितहै ॥ ४१ ॥ यही आत्मस्वरूप मैं उत्तम सूर्यका रूप धारण करके आकाशमें विहार करताहुं और वायुके देहसे सर्वत्र भ्रमण करताहुं ॥ ४२ ॥ यह अत्यन्त श्यामवर्ण शंख चक्र गदा पद्म धारण किये तथा सब सुन्दरताकी सीमाका अन्त यह मेराही शरीरहै उसी जगतरूपमें सब कुछ व्यवहार हो रहाहै ॥ ४३ ॥ मैं प्रगट इस जगत्में आविर्भूत होकर सदा पद्मासनपर विराजमान निर्विकल्प समाधिमें स्थित अत्यन्त शान्तिको प्राप्तहुं ॥ ४४ ॥

अहंत्रिनेत्रयाऽऽकृत्यागौरीवक्त्राब्जषट्पदः ॥ सर्गांतेसंहरामीदंकूर्मोंगपटलंयथा ॥४५॥ अहमिंद्रेणरूपेणत्रिलोकीमखिलामिमाम् ॥ पालयामिक्रमप्राप्तांमठिकामिवतापसः ॥ ४६ ॥ स्त्रीपुमानहमेवैतत्कुमारोह्यहमित्यपि ॥ जीर्णोहंदेहंधारित्वाज्जातोहंविश्वतोमुखः ॥ ४७ ॥ अहंतृणलतागुल्मजालंरसतयास्थितः ॥ उत्थापयामिचिद्भूमेःकूपोंतरलतामिव ॥ ४८ ॥

अर्थ—मैं त्रिनेत्र शिवकी मूर्ति धारण करके पार्वतीके मुखकमलका भ्रमर होकर प्रलयमें इस सर्व जगत्का ऐसे संहार करताहुं जैसे कूर्म्म अपने अंग समूहका ॥ ४५ ॥ मैं इन्द्ररूप धारण करके मन्वन्तरसे प्राप्त इस सम्पूर्ण त्रिलोकीको ऐसे पालन करताहुं जैसे तापसी एक छोटी कुटीको ॥ ४६ ॥ स्त्री पुरुष तथा कुमाररूप मैंही हुं देह धा-

रण करनेसे वृद्ध स्वरूप मैंही होताहुं अनन्तमुख मैंहीं हुं ॥ ४७ ॥ तृण लता और गुल्म समूहको रसरूप होकर चिद्रूप भूमिसे मैंही ऐसे उत्थापित करताहुं जैसे प्राचीन कूप आभ्यंतरसे लताको ॥ ४८ ॥

स्वलीलार्थमिदंचारुजगदाडंबरंततम् ॥ मयाभिजातबालेनपंकक्रीडनकंयथा ॥ ४९ ॥ मयेदमाप्यतेसर्वंसत्तामांप्राप्यगच्छति ॥ मत्परित्यक्तमेतच्चसदप्येवनकिंचन ॥ ५० ॥ मयिस्फारेचिदादर्शेप्रतिबिंबं यदागतम् ॥ तदस्तिनेतरघस्मान्मत्तोन्यन्नेहाविद्यते ॥ ५१ ॥ कुसुमेष्वहमामोदःपुष्पपत्रेष्वहंछविः ॥ छविष्वहंरूपकलारूपेष्वनुभवोप्यहम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—इस उत्तम जगत्‌के आडम्बरको अपनी लीलाके लिये मैंने ऐसे विस्तारित कियाहै जैसे क्रीड़ामें कुशल बालक कीचडके खिलौनेको ॥ ४९ ॥ कारणरूपसे मैंहीं सर्वत्र व्याप्तहुं मेरे स्वरूपके साक्षात्कारसे स्थूल कार्यकी सत्ता लुप्त होजाती है मेरे तत्त्वदर्शनस्वरूपसे त्यक्त अर्थात् जीवन्मुक्तके व्यवहारमें वर्तमानभी यह जगत् कुछ नहीं है ॥ ५० ॥ मुझ विशाल चिद्रूपी दर्पणमें जो कुछ प्रतिबिंबितरूपसे प्राप्तहै वही है अन्य कुछ नहीं क्योंकि मुझसे भिन्न इस संसारमें कुछ नहीं है ॥ ५१ ॥ पुष्पोंमें सुगन्ध मैं हुं पुष्प और पत्रोंमें शोभा मैं हुं और छबियोंमें रूपकी कलाओंमें अनुभवरूपभी मैं हुं ॥ ५२ ॥

यत्किंचिदिदंदृश्यंजगत्स्थावरजंगमम् ॥ सर्वसंकल्परहितंतच्चित्तत्त्वमहंपरम् ॥ ५३ ॥ आद्यारसमयीशक्तिरसौघेविस्तृतोयया ॥ सायथादारुकुड्येषुतथाहंसर्ववस्तुषु ॥ ५४ ॥ परमांताम्रहंसर्वपदार्थांतरवर्त्तिताम् ॥ उपेत्यसंविद्देचित्र्यंप्रतनोमिस्वयेच्छया ॥ ५५ ॥ घृतंयथांतःपयसोरसशक्तिर्यथाजले ॥ चिच्छक्तिःसर्वभावेषुतथांतरहमास्थितः ॥ ५६ ॥

अर्थ—जो २ स्थावर जंगमात्मक यह जगत्‌है वह सम्पूर्ण संकल्पोंसे रहित चिदात्मरूपहै और चित् परमात्मा मैं हुं ॥ ५३ ॥ जैसे आदि रसमयी शक्ति रस तन्मात्ररूपसे समुद्र नदी तडागादि जल समूहरूपसे विस्तृत होताहै और वही जलरूप शक्ति जैसे वृक्ष शाखा पल्लव तथा तृण पत्र आदिरूपसे विस्तृत होती है ऐसेही सम्पूर्ण वस्तुओंमें उन २ कार्य्योंके उत्पत्तिके निमित्तरूपसे मैंभी स्थितहुं ॥ ५४ ॥ सर्वोत्तम सर्व पदार्थोंके अन्तवर्ती होकर मैं अपनी इच्छासे नानाप्रकारकी जीव संवित्का विस्तार करताहुं ॥ ५५ ॥ दुग्धके भीतर जैसे घृत और जलके भीतर जैसे रस शक्ति है ऐसेही संपूर्ण पदार्थोंके अन्तमैं चित् शक्तिरूपसे मैं स्थितहुं ॥ ५६ ॥

इदंजगत्त्रिकालस्थंचितिमध्येचसंस्थितम् ॥ चेत्योपचाररहितंवस्तुजातमिवावनौ ॥ ५७ ॥ भरिताशेषदिक्कुक्षिस्त्यक्तसंकोचविभ्रमः ॥ सर्वस्थःसर्वकर्त्ताचविराट्सम्राडहंस्थितः ॥ ५८ ॥ अपूर्वमनिबद्धेंद्रमशस्त्रदलितामरम् ॥ अप्रार्थितंमेसंप्राप्तंजगद्राज्यमिदंततम् ॥ ५९ ॥ अहोनुविततात्मास्मिनमाम्यात्मनात्मनि ॥ कल्पांतपवनाधूतएकार्णइवचार्णवे ॥ ६० ॥

अर्थ—विषयकी प्रसिद्धिसेरहित भूतभविष्यत् और वर्तमानकालमें स्थित यह जगत् चेतनके मध्यमें ऐसे स्थितहै जैसे वस्तुसमूह पृथिवीमें ॥ ५७ ॥ सम्पूर्ण दिशाओंके अन्तरालको पूर्ण करनेवाला संकोचके भ्रमको त्यागकर सबमें स्थित सबका कर्ता विराट् और सम्राट् अर्थात् व्यष्टि और समष्टिरूपसे मैंही स्थितहुं ॥ ५८ ॥ यह अपूर्व इन्द्रके निबद्धसेरहित बिना शस्त्रही देवताओंको दलन करनेवाला अप्रार्थित यह विशाल जगत्‌का राज्य मुझे प्राप्त हुआहै ॥ ५९ ॥ अहो कैसा विशालरूप मैंहुं मैं अपने आत्मस्वरूपमें ऐसे नहीं समाता जैसे प्रलयके पवनसे कम्पित समुद्रमें प्रलयकालका समुद्र ॥ ६० ॥

नात्मन्यंतमवाप्नोमिस्वस्थेंतःस्वदितेस्वयम् ॥ क्षीरवारिनिधौपंगुःसरीसृपइवस्फुरन् ॥ ६१ ॥ स्वल्पेयंमठिकाब्राह्मीजगन्नाम्नीसुसंकटा ॥ गजोबिल्वइवस्वांगेनमातिविपुलंवपुः ॥ ६२ ॥ विरिंचिभवनात्पारेतत्त्वांतेप्याहरत्पदम् ॥ प्रसरत्येवमेरूपमद्यापिननिवर्त्तते ॥ ६३ ॥ अयंनामाहमित्यंतःकुतोनिरवलंबना ॥ अपर्यंताकृतेरेषाकिलासीत्स्वल्पतामम ॥ ६४ ॥

अर्थ—निरतिशय आनन्दरूपसे स्वयं आस्वादित इस स्वस्थ आत्मरूपमें मैं ऐसे अन्त नहीं पाता जैसे क्षीरसमुद्रमें चलता हुआ कुण्ठित गति सर्प ॥ ६१ ॥ ब्रह्मासे रचित इस जगत् नाम अति छोटी मठीमें मेरा स्वरूप (चित्स्वरूप) ऐसे नहीं समाता जैसे बिल्वके शरीरमें हस्ती ॥ ६२ ॥ पृथिवीसे दशगुण जलसे दशगुण तेजसे दशगुण वायुसे दशगुण आकाशके आवरणसे आच्छादित ब्रह्मांडरूप ब्रह्माके भवनसे पार तथा सांख्यके अभिमत चौविश तत्वके अथवा वैष्णवआदिके इष्ट रुद्र छत्तीस तत्व वा शैव पाशुपत आदिके अभिमत तत्वोंके पारभी चलता

हुआ मेरा स्वरूप अबभी नहीं निवृत्त होता ॥ ६३ ॥ यह देहादिरूपसे अवलम्बरहित कल्पना कहांसे हुई अहो! अपार आकारवाले मेरे स्वरूपकी यह न्यूनता कहांसे हुई ॥ ६४ ॥

भवानयमयंचाहमितिमिथ्येवविभ्रमः ॥ कोदेहःकोप्यदेहोवाकोमृतःकश्चजीवति ॥ ६५ ॥ वराकाःपेलवधियोबभूवुर्मेपितामहाः ॥ येसाम्राज्यमिदंत्यक्त्वारेमिरेभवभूमिषु ॥ ६६ ॥ क्वेयंकिलमहादृष्टिर्भरिताब्रह्मबृंहिता ॥ क्वसरीसृपभीमाशाभीमाराज्यविभूतिभिः ॥ ६७ ॥ अनंतानंदसंभोगापरोपशमशालिनी ॥ शुद्धेयंचिन्मयीदृष्टिर्जयत्यखिलदृष्टिषु ॥ ६८ ॥

अर्थ—यह आप, यह मैं इत्यादि मिथ्याही भ्रमहै, देह क्या! अदेह क्या! देहके अभावसे मृतकभी कौन! और शरीर आदिके अभावसेही प्राणभी कौन धारण करताहै? ॥ ६५ ॥ हमारे पूर्वज निश्चय क्षुद्रबुद्धि हुये हैं जिन्होंने इस आत्मज्ञानरूप साम्राज्यको त्यागकर संसारके ऐश्वर्य्यकी भूमियोंमें रमण कियाहै ॥ ६६ ॥ कहांतो ब्रह्मज्ञानसे वर्द्धित यह पूर्ण दृष्टि! और कहां सर्पोंके समान भयंकर आशाओंसे भयदायक राज्यकी विभूतियां ॥ ६८ ॥ निरतिशय अनन्त आनन्दके सम्भोगसहित, और परम शान्तिसे शोभायमान यह शुद्ध चिन्मयीदृष्टि सम्पूर्ण दृष्टियोंसे अति उत्तमहै ॥ ६८ ॥

सर्वभावांतरस्थायचेत्यमुक्तचिदात्मने ॥ प्रत्यक्चेतनरूपायमह्यमेवनमोनमः ॥ ६९ ॥ जयाम्यहमजोजातोजीर्णसंसारसंसृतिः ॥ प्राप्तप्राप्योमहात्मायंजीवाभिचजयामिच ॥ ७० ॥ इदमुत्तमसाम्राज्यंबोधंसंत्यज्यशाश्वतम् ॥ नरमेहमरम्यासुराज्यदुःखविभूतिषु ॥ ७१ ॥ दारुवारिदृपन्मात्रेल्लुलितोयोधरातले ॥ धिग्वराकमनात्मज्ञंतंकुदानवकीटकम् ॥ ७२ ॥

अर्थ—सब पदार्थोंके अन्तरालमें स्थित, विषयोंसे निर्मुक्त तथा साक्षीरूप मुझ चिदात्माको मेरा बार २ नमस्कार है ॥ ६९ ॥ चिरकालसे भोजन कियेहुये अन्नके समान जीर्ण संसारकी संसृति (संसारमें गमनागमन) सहित मैं अब अजन्माहुं इस कारणसे सब ओरसे जयके फल पानेसे सब निअनर्थकी वृत्तिको प्राप्तहुं, और सब प्राप्त होने योग्य सुखोंके प्राप्त होसेसे मैं जीवनके फलकोभी प्राप्त हुं इसीसे सर्वोत्तम हुं ॥ ७० ॥ इस नित्य आत्मज्ञानरूप साम्राज्य सुखको छोडके अरमणीय तथा दुःखदायी राज्यकी विभूतियोंमें मैं नहीं रमण करूंगा ॥ ७१ ॥ जो वनदुर्ग काष्ठमें, जलदुर्गरूप जलमें, गिरिदुर्ग (किले) रूप पाषाणमय धरातलमेंही अपने स्वामित्वके अभिमानसे लुब्धहोके उन्हींमें रमण किया उस दुष्ट दानवरूप कीडेको धिक्कारहै ॥ ७२ ॥

अविद्यैकात्मभिर्द्रव्यैरविद्यामयमंगकम् ॥ अन्नेनसंतर्पयताकिंनामगुरुणाकृतम् ॥ ७३ ॥ वर्षाणिकतिचित्प्राप्यजगच्छ्रीमठिकामिमाम् ॥ किंनामप्रापदुचितंहिरण्यकशिपुःकिल ॥ ७४ ॥ अनास्वाद्येदमानंदंजगद्राज्यशतान्यपि ॥ समास्वादयतानेहाकिंचिदास्वादितंभवेत् ॥ ७५ ॥ नकिंचियेनसंप्राप्तंतेनेदंपरमामृतम् ॥ संप्राप्यांतःप्रपूर्णेनसर्वंप्राप्तमखंडितम् ॥ ७६ ॥

अर्थ—अविद्याके कार्य अविद्यामय अन्नपानादि द्रव्योंसे अविद्यामय अंगको तृप्त करते हुये अज्ञ पिताने क्या किया? अर्थात् कुछ पुरुषार्थ नहीं किया ॥ ७३ ॥ कुछ कालके या वर्षके लिये त्रैलोक्यकी लक्ष्मी युक्त इस जगत्रूप छोटी मठीको पाकर मेरे पिता हिरण्यकशिपुने कश्यप कुलके उचित कौन पुरुषार्थ किया ॥ ७४ ॥ इस ब्रह्मानन्दका आस्वादन लेकर सैकडों जगत् राज्यके आनन्दका स्वाद लेतेहुयेभी कुछभी नहीं आस्वाद लिया और इसके आस्वादित होनेसे सब आनन्दका आस्वाद होगया ॥७५॥ जिसने अन्य विषयानन्दको नहीं प्राप्त किया और इस परम अमृतरूप ब्रह्मानन्दको प्राप्त होकर अन्तःकरणमें पूर्ण होनेसे मानों सब कुछ अखण्डितरूपसे प्राप्त करलिया ॥७६

त्यक्त्वापदमिदंमूर्खोमितमेतिनपंडितः ॥ उष्ट्रोद्रिहित्यक्तसुतलःकंटकंयातिनेतरः ॥ ७७ ॥ परांदृष्टिमिमांत्यक्त्वादग्धराज्येरमेतकः ॥ कस्त्यक्त्वेक्षुरसंप्राज्ञःकटुनिंबपयःपिबेत् ॥ ७८ ॥ मूर्खाएवहितेसर्वेबभूवुर्मेपितामहाः ॥ इमांदृष्टिंपरित्यज्येरेमिरेराज्यसंकटे ॥ ७९ ॥ क्वफुल्लानंदनस्थल्यःक्वदग्धमरुभूमयः ॥ क्वेमाबोधदृशःशांताःक्वभोगेष्वात्मबुद्धयः ॥ ८० ॥

अर्थ—इस अपार पदको त्यागकर परिच्छिन्न पदको मूर्खही चाहताहै न कि पण्डित फलके भारसे नम्र द्राक्षा आदि लताको त्यागकर कंटककी ओर उष्ट्र (ऊंटही) जाताहै न कि अन्य पशु ॥ ७७ ॥ इस पूर्ण आत्मदृष्टिको त्यागकर भस्मीभूत राज्यसुखमें कौन रमण करसकताहै, वह कौन प्राणी है जो ईख (ऊख) केसरको त्यागकर कटु निम्बको पान करेगा ॥ ७८ ॥ हमारे वे सब पूर्वज मूर्खही हुये हैं जिन्होंने इस पूर्ण आत्मदृष्टिको त्यागकर

राज्यके संकटमें रमण किया है ॥ ७९ ॥ कहां तो विकसित नन्दनवनकी भूमि और कहां मरुस्थल ! ऐसेही कहां तो ये शान्त आत्मबोधकी दृष्टि और कहां रोगस्थान शरीर आदिमें आत्मदृष्टि ! ॥ ८० ॥

नकिंचिदपित्रैलोक्येयद्राज्यमपिवांछते ॥ सर्वमस्त्येवचित्तत्त्वेतत्कस्मान्नानुभूयते ॥ ८१ ॥ चितासर्व स्थयास्वस्थासमयानिर्विकारया ॥ सर्वेयासर्वदासर्वसर्वतःसाधुलभ्यते ॥ ८२ ॥ भासिनीतैजसीश क्तिरमृतप्राप्तिरैंदवी ॥ ब्राह्मीमहत्तामहतीशाक्रीत्रैलोक्यराजता ॥ ८३ ॥ परमापूर्णताशार्वीजयलक्ष्मी श्ववैष्णवी ॥ मानसीशीघ्रगतिताबलवत्ताचवायवी ॥ ८४ ॥

अर्थ—इस त्रिलोकीमें कुछ नहीं है क्योंकि राज्य पाकरभी मनुष्य इच्छा करताहै, और चित्तत्त्वमें सब कुछहै उसका अनुभव क्यों नहीं करते ॥ ८१ ॥ सबमें स्थित, स्वस्थ, निर्विकार, और सर्वदा सर्वरूप चित्से सब सुख तथा दुःखके साधन सर्वत्र भलीभांति मिलते हैं ॥ ८२ ॥ तेजकी प्रकाशिका शक्ति, चन्द्रमाकी अमृत प्राप्ति, हिरण्यगर्भकी मान्यता, सर्वोत्तम इन्द्रकी त्रैलोक्यकी राजता ॥ ८३ ॥ महादेवका ज्ञान तथा ऐश्वर्य शक्तिकी संपूर्णता, विष्णुकी विजय लक्ष्मी मनकी शीघ्रगतिता, वायुकी बलवत्ता ॥ ८४ ॥

आग्नेयीदाहकलनापायसीरससंसिद्धिः ॥ मौनीमहातपःसिद्धिर्विद्यावार्हस्पतीतथा ॥ ८५ ॥ वैमानि कीव्योमगतिःस्थिरताचापिपार्वती ॥ गंभीरताथसामुद्रीमैरवीचमहोन्नतिः ॥ ८६ ॥ शमश्रीःसौगती सौम्यामादिरीमदलोलता ॥ माधवीपुष्पमयतावार्षिकीघनशब्दिता ॥ ८७ ॥ याक्षीचमायामयतानाभ सीनिष्कलंकता ॥ शीततापीचतौषारीनैदाघीतापतप्तता ॥ ८८ ॥

अर्थ—अग्निकी दाहकी कल्पना, जलकी रसकी सिद्धि, मुनियोंकी तपकी महासिद्धि तथा बृहस्पतिकी विद्या ॥ ८५ ॥ विमानोंकी आकाशकी गति पर्वतोंकी स्थिरता, समुद्रकी गम्भीरता, और मेरुपर्वतकी महोन्नति ॥८६॥ सब उपद्रवोंसे शान्त सुगत (बुद्धज्ञानी) सम्बन्धी शमकी शोभा, मदिराकी चंचलता, वसन्तऋतुकी पुष्पमयता, और वर्षाऋतुकी मेघकी गर्जना ॥ ८७ ॥ यक्षोंकी मायामयता आकाशकी निष्कलंकता तुषारकी शीतता और उष्णऋतुके तापकी तप्तता ॥ ८८ ॥

एताश्चान्यास्तथाबह्वयोदेशकालक्रियात्मिकाः ॥ नानाकारविकारोत्थास्त्रिकालोदरसंस्थिताः ॥ ८९ ॥ विचित्राःशक्तयःस्वस्थसमयानिर्विकारया ॥ चिताक्रियंतेपरयाकलाकलनयुक्तया ॥ ९० ॥ विकल्पही नाचित्सर्वापदार्थशतदृष्टिषु ॥ सममेवाभिपततिप्रभाभाभाकरीयथा ॥ ९१ ॥ सर्वाशाकोशविश्रांतां पदार्थपटलींमहीम् ॥ कालत्रयेहाकलितांयथानुभवतिक्षणात् ॥ ९२ ॥

अर्थ—ये तथा अन्य अनेक देशकाल क्रियात्मक नानाप्रकारके आकारके विकारोंसे उत्पन्न तीनोंकालके उदरमें वर्तमान ॥ ८९ ॥ चित्रविचित्र सब शक्ति स्वस्थसमानरूप निर्विकार सर्वोत्तम और उन २ शक्तिके कार्य्योंके अनुसन्धानकी ओर अभिमुख चित्सेही की जाती हैं ॥ ९० ॥ विकल्पसे रहित चिद्शक्ति नानाप्रकारके सैकडों पदार्थोंकी ओर एककालहीमें ऐसे गिरती है जैसे कांचन आदि भित्तियोंमें सूर्यकी प्रभा ॥ ९१ ॥ सम्पूर्ण दिशाओंके कोशमें विश्रान्त करनेवाली तीनोंकालकी चेष्टासे संकलित अनन्त पदार्थकी पटलीको एककालमेंही ऐसे अनुभव करती है जैसे सूर्यकी प्रभा ॥ ९२ ॥

तथासमस्तसंसारबृहद्दृश्यदशाश्रियम् ॥ कालत्रयस्थाममलाचिच्चेततितदात्मिका ॥ ९३ ॥ तुल्यकाल परामृष्टात्रिकालकलनाशता ॥ अनंतभुवनाभोगापरिपूर्णैवशुद्धचित् ॥ ९४ ॥ परामृष्टत्रिकालायादृष्टा नंतदृशश्चितः ॥ समतापरपर्यायापूर्णैवावशिष्यते ॥ ९५ ॥ तुल्यकालावबुद्धेनस्वादुनाकटुनापिचि त् ॥ समेनसमतामेतिमधुनिंबानुभूतिवत् ॥ ९६ ॥

अर्थ—इसीप्रकार संपूर्ण संसारके महान्दृश्यकी शोभाको जो कि भूतभविष्यत् वर्तमान तीनों कालमें स्थित हैं उसको निर्मल चित् उन २ पदार्थोंका रूप होकर प्रकाशित करती है ॥ ९३ ॥ और अखण्ड शुद्धचित् अभिन्न-कालहीमें तीनों कालके पदार्थोंसे मिलित होकरके अनन्त कल्पनाओंको अनुभव करती हुईभी अपने स्वरूपसे परिपूर्णही रहती है ॥ ९४ ॥ तीनों कालसे मिलित अनन्त अनुभवको करनेवाली चिच्छक्तिकी समता पूर्णरूपसेही शेष रहती है ॥ ९५ ॥ इसीकारण दो प्रकारके मधुररस और दो प्रकारके कटुरस एक कालमें अनुभव करनेसेभी सुखके साथही समताको ऐसे प्राप्त होती है जैसे मधु और निम्बके अनुभवको ॥ ९६ ॥

त्यक्तसंकल्पकलयासूक्ष्मयाचिद्दृशस्थया ॥ सर्वभावानुगतयासत्ताद्वैतैकरूपया ॥ ९७ ॥ विचित्रा पिपदार्थश्रीरन्योन्यवलितांतरा ॥ तुल्यकालानुभवनासाम्येनैवानुभूयते ॥ ९८ ॥ भावेनाभावमाश्रि

त्यभावस्त्यजतिदुःखताम् ॥ प्रेक्ष्यभावमभावेनभावस्त्यजतिदुष्टताम् ॥ ९९ ॥ कालत्रयमपश्यंत्याहीनायाश्चेत्यबंधनैः ॥ चितश्चेत्यमुपेक्षिण्याः समतैवावशिष्यते ॥ १०० ॥

अर्थ—संकल्पकी कलाको त्यागनेवाली सूक्ष्म सब पदार्थोंमें अनुगत अद्वैत सत्तारूप चित्शक्तिसे ॥ ९७ ॥ परस्पर मिलितभी पदार्थोंकी शोभा एक कालमेंही अनुभूत होती है ॥ ९८ ॥ श्रुति स्मृति तथा आचार्यके उपदेशरूप भाव चित्तसे संपूर्ण दृश्यसमूहके अभावका आश्रय लेकर चित्रूप भाव शोक मोहादि दुःखरूपताको त्यागताहै और सब पदार्थोंके निषेधसे परमार्थमें सत् अद्वैत ब्रह्मरूप भावका अनुभव करके चित्त अपनी रागादि दुष्टताको त्यागताहै ॥ ९९ ॥ वर्त्तमान विषयको उपेक्षा करनेवाली भूत विषयके वासनाके बन्धनोंसे हीन और विषयके आधारभूत तीनों कालको न देखनेवाली चित्शक्तिकी समताही अवशेष रहजाती है ॥ १०० ॥

यातिवाचामगम्यत्वादसत्तामिवशाश्वतीम् ॥ नैरात्म्यसिद्धांतदशामुपयातेवतिष्ठति ॥ १०१ ॥ भवत्यात्मातथाब्रह्मनकिंचिच्चाखिलंचवा ॥ परमोपशमेऽलीनामोक्षनाम्नापरोच्यते ॥ १०२ ॥ संकल्पकलितात्वेषामंदाभासतयाजगत् ॥ नसम्यक्पश्यतीदंचिद्दृष्टिःपटलिनीयथा ॥ १०३ ॥ ईहानीहामयैरंतर्याचिदावलितामलैः ॥ साहिनोड्डयितुंशक्तापाशबद्धेवपक्षिणी ॥ १०४ ॥

अर्थ—वाणीका अविषय होनेसे नित्य चित्शक्ति अभावके समान प्राप्तहै इसी कारण आत्माके अभाव सिद्धान्तकी दशाको प्राप्त हुईके समान स्थितहै ॥ १०१ ॥ जो चित् स्थितहै वही शास्त्रीय व्यवहारमें साक्षीरूप होनेसे आत्मा और महान् होनेसे ब्रह्म होताहै और परमार्थदृष्टिसे वाणीकी प्रवृत्ति न होनेसे नहींके सदृशहै और सब शब्दोंकी प्रवृत्ति निमित्त होनेसे सब कुछहै और सब दृश्य पदार्थोंके शान्त होनेसे वही परम चित् मोक्ष नामसे कही जाती है ॥ १०२ ॥ संकल्पसे कलंकित मन्द प्रकाश होनेसे यही चित् संपूर्ण जगत्को ऐसे नहीं देखती जैसे परवा पडी हुई दृष्टि ॥ १०३ ॥ इष्ट और अनिष्टरूप मलोंसे कलंकित यह चित् संपूर्ण आकाशको ऐसे नहीं व्याप्त होसकती जैसे पाशसे बन्धी हुई पक्षिणी आकाशको ॥ १०४ ॥

संकल्पकलनेनैवयेकेचनजनाइमे ॥ पतितामोहजालेषुविनेत्राइवपक्षिणः ॥ १०५ ॥ संकल्पजालवलितैर्विषयावटपातिभिः ॥ पदवीगतबाधेयंनदृष्टामपितामहैः ॥ १०६ ॥ दिनैःकतिपयैरेवस्फुरिताधरणीतले ॥ वराकास्तेनतेनष्टामशकाःकुहरेष्विव ॥ १०७ ॥ यद्यज्ञास्यन्निमेतत्त्वंभोगदुःखार्थिनस्तदा ॥ भावाभावांधकूपेषुनापतिष्यन्हताशयाः ॥ १०८ ॥

अर्थ—संकल्पकी कल्पनासे जो मनुष्य वन्धे हुये हैं वे मोहकी जालमें ऐसे गिरे हैं जैसे व्याधसे पक्षीलोग ॥ १०५ ॥ संकल्पकी जालसे वेष्टित विषयरूपी गर्त (गढे) में गिरनेवाले हमारे पितामहोंने बाधारहित इस आत्मपदवीको नहीं देखी ॥ १०६ ॥ कुछ दिनकेही लिये हमारे दीन पूर्वज इस पृथिवीपर कुछ कालके लिये संपूरित होकर पुनः ऐसे नष्ट हुये जैसे धूममें मच्छर ॥ १०७ ॥ भोगके दुःखोंके अर्थी ये हमारे पूर्वज यदि इस आत्मतत्त्वके जानते तो दुर्बुद्धि होकर भाव अभावरूपी अंधकूपोंमें न गिरते ॥ १०८ ॥

इच्छाद्वेषसमुत्थेनद्वंद्वमोहेनजंतवः ॥ धराविवरमग्नानांकीटानांसमतांगताः ॥ १०९ ॥ ईहितानीहिताकाराःकलनामृगतृष्णिकाः ॥ सत्यावबोधमेघेनयस्यशांताःसजीवति ॥ ११० ॥ कुतःकिलास्याःशुद्धायाअविच्छिन्नामलाकृतेः ॥ चंद्रिकायारुचःकोष्णाःकलंकाःकलनाश्रिताः ॥ १११ ॥ आत्मनेतुनमोमह्यमविच्छिन्नचिदात्मने ॥ लोकालोकमणेदेवचिरेणाधिगतोस्यहो ॥ ११२ ॥

अर्थ—इच्छा और द्वेषसे उत्पन्न सुखदुःख शीतोष्ण आदिके मोहसे प्राणी पृथिवीके गर्तोंमें कीडोंकी तुल्यताको प्राप्त हुए ॥ १०९ ॥ इष्ट और अनिष्ट आकरवाली मृगतृष्णामय कल्पना जिसकी सत्य ज्ञानरूप मेघसे शान्त होगई हैं उसी प्राणीका जीवन इस संसारमें सफलहै ॥ ११० ॥ शुद्ध सदा निर्मल आकारवाली और चंद्र चान्द्रिकाके समान देदीप्यमान इस चित्के मन्दोष्ण कलंकोंकी कल्पना कहांसे होसकती है ॥ १११ ॥ निरन्तर मुझ चिदात्मारूप आत्माको मेरा नमस्कार है अहो लोकालोकके मणे आत्मदेव बहुत कालके पीछे तुमारा ज्ञान हुआहै ॥ ११२

परामृष्टोसिलब्धोसिप्रोदितोसिचिरायच ॥ उद्धृतोसिविकल्पेभ्योयोसिसोसिनमोस्तुते ॥ ११३ ॥ महांतुभ्यमनंतायमह्यंतुभ्यंशिवात्मने ॥ नमोदेवाधिदेवायपरायपरमात्मने ॥ ११४ ॥ गतघनपरिपूर्णमिंदुबिंबंगतकलनावरणंस्वमेवरूपम् ॥ स्ववपुषिमुदितेस्वयंस्वसंस्थंस्वयमुदितंस्ववशंस्वयंनमामि ॥ १५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे महादात्मोपदेशयोगो नाम चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥

अर्थ—बहुत कालके अनन्तर तुम विचारित, लब्ध, प्रकर्षसे उदयको प्राप्त तथा विकल्पोंसे उद्धृत हो जो तुम होसो हो तुम आत्मस्वरूपको मेरा नमस्कार है ॥ ११३ ॥ अभिन्न मुझ तुझ (जीवाभिन्न ब्रह्म) अनन्त कल्याण, तथा इन्द्रादि देव और सब इन्द्रियोंके अधिष्ठातृदेव परमात्माको मेरा नमस्कारहै ॥ ११४ ॥ मेघरहित पूर्णचन्द्रमाके बिम्बके सदृश, और अपने आनन्दैक रस आत्मशरीरमें अन्य आधार शून्य स्वयं परमार्थरूपसे स्थित अर्थात् निराधार स्वप्रकाश अपने आधीन और आत्मानन्द निजरूपको मैं स्वयं नमस्कार करता हूं ॥ ११५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे प्रल्हादात्मोपदेशो नाम चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥

पंचत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥

साक्षात्कार कियेहुये आत्माको अन्तःकरणमें निर्णय करके और उसको प्रणाम करके उसी आत्मबलसे जीते बन्धोंका अनुसंधान करके प्रल्हादका प्रसन्न होना इस विषयका वर्णन इस ३५ के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ प्रह्लादउवाच ॥ ओमित्येकोचिताकारोविकारपरिवर्जितः ॥ आत्मैवायमिदंसर्वंयत्किंचिज्जगतीगतम् ॥ १ ॥ मेदोस्थिमांसमज्जासृग्गतीतोप्येपचेतनः ॥ अंतरस्थोहिसूर्यादीन्प्रकाशयतिदीपकः ॥ २ ॥ उष्णीकरोतिदहनंरसयत्यमृतंरसम् ॥ इंद्रियानुभवान्भुंक्तेभोगानिवमहीपतिः ॥ ३ ॥ तिष्ठन्नपिहिनासीनोगच्छन्नपिनगच्छति ॥ शांतोपिव्यवहारस्थःकुर्वन्नपिनलिप्यते ॥ ४ ॥

अर्थ—सम्पूर्ण अध्यारोपवान् ब्रह्मका बोधक और सब अपवादसे परिशिष्ट जो ब्रह्महै इसका बोधक महान् आकारवान् एक ओंकार जिसका नामहै और वृद्धि तथा जन्मादि विकारोंसे शून्य यह अनुभूयमान् आत्माही यह जगत्गत् पदार्थ है न कि इसकेसिवाय अन्य ॥ १ ॥ मेदा, अस्थि, मांस, मज्जा, और रुधिर इनके अन्तर्गत तथा इनसे परेभी यह चेतन आत्माहै क्योंकि यह अन्तर्में स्थित होके दीपकके समान सूर्य्यादिककोभी प्रकाशित करताहै ॥ २ ॥ अग्निको अनुभवद्वारा उष्ण यही करताहै, अमृतको रसवान् यही अपनी सत्तासे करताहै, और इसी प्रकार अन्य इन्द्रियोंके स्पर्श आदि अनुभवोंको अपनी सत्ता सम्पादनसे ऐसे भोगताहै जैसे राजा भोगोंको ॥३॥ यह आत्मा सदा निष्क्रिय होनेपरभी मानो गतिमान स्थितहै अर्थात् धावन आदि व्यापारसे रहितहै क्योंकि पवनादिरूपसे यह सदा गतिहै इसीप्रकार कालरूपसे सदा चलता हुआभी कुलाल चक्रके सदृश तिलमात्रभी अन्यत्र नहीं जाता, शान्तभी सब व्यवहारोंमें स्थित, और करता हुआभी यह लिप्त नहीं होता ॥ ४ ॥

पूर्वमद्यतथेदानीमिहामुत्रोभयत्रच ॥ विहितोऽविहितोप्येषसमःसर्वासुवृत्तिषु ॥ ५ ॥ उद्भवत्यभयोभावंभुवनानिततस्ततः ॥ ब्रह्मादितृणपर्यंतंजगदावर्त्तयन्स्थितः ॥ ६ ॥ नित्यस्पंदमयोनित्यमपिदेवात्सदागतेः ॥ स्थाणोरप्यक्रियोनित्यमाकाशादप्यलेपकः ॥ ७॥ मनांसिक्षोभयत्येपपल्लवानीवमारुतः ॥ वाहयत्यक्षपंक्तिस्वामश्वालीमिवसारथिः ॥ ८ ॥

अर्थ—यह आत्मा जैसा पूर्वकालमें था वैसाही वर्तमानकालमें है जैसा इस लोकमें है वैसाही परलोकमें रहेगा, इस लोक तथा पर लोक और संधिभूत अपने प्रस्थानादि लोकोंमें शास्त्रोंसे अनिषिद्ध वा विहित कर्मफलोंका भोक्ता होकरभी सब भोगवृत्तियोंमें समान रहताहै, क्योंकि दृश्य भोगोंसे दृष्टिको विकार नहीं सिद्ध होसकता ॥५॥ यथार्थमें यह अभयभी उन २ कर्मोंके अनुकूल स्वयं आविर्भूत होताहै, और तृणसे लेके ब्रह्मापर्य्यन्त उत्पन्न भोक्ता तथा भोग्यभावको तथा उनके अधिकरण चतुर्दश भुवनरूप ब्रह्माण्डको अपने सन्निधान (सत्ता सन्निधान) मात्रसे चलता हुआ स्थितहै ॥ ६ ॥ यह नित्य अक्रिय होकेभी वायुदेवतासेभी अपनी नित्य आत्मसत्तासे अधिक गतिमान् है, स्थाणु (ठूंठ) सेभी अक्रिय, और आकाशसेभी नित्य लेप रहितहै ॥ ७ ॥ प्राणियोंके मनोंको यह ऐसे क्षोभित (कम्पित) करताहै जैसे पत्तोंको पवन,और अपनी इन्द्रियोंकी पंक्तिको ऐसे चलताहै जैसे अश्वोंकी पंक्तिको सारथी ८

अतिद्विविधवद्देहगेहेकर्मरतःसदा ॥ सम्राडिवात्मनिस्वस्थःसंस्थितोभोगभुग्विभुः ॥ ९ ॥ एषएवसदाऽन्विष्यःस्तुत्योध्यातव्यएवतु ॥ जरामरणसंमोहादनेनोत्तीर्यगम्यते ॥१०॥ सुलभश्चायमत्यंतंसुजेयश्चाप्तबंधुवत् ॥ शरीरपद्मकुहरेसर्वेषामेवषट्पदः ॥ ११ ॥ अनाकृष्टोप्यनाहूतःस्वदेहादेवलभ्यते ॥ मनागेवोपहूतोपिक्षणाद्भवतिसन्मुखः ॥ १२ ॥

अर्थ—अति दुर्दशाग्रस्त इस शरीररूप गृहमें सदा यह कर्ममेंही तत्पर रहताहै, और भोगोंका भोगनेवाला यह विष्णुपरमात्मा सम्राट् (चक्रवर्ती राजा) के समान अपने आत्मामें स्थितहै ॥ ९ ॥ इसी परमात्माको सदा अन्वेषण करना (खोजना) चाहिये और इसीकी स्तुति तथा इसीका ध्यानभी करना चाहिये, क्योंकि प्राणी इसीके अन्वेपणसे जरा (वृद्धावस्था) और मरणके पार जाताहै ॥ १० ॥ यह आत्मज्ञानमात्रसेही अति सुलभहै, स्मरणमात्रसेही श्रेष्ठ बन्धुके समान वश करनेके योग्य, और सब प्राणीमात्रके हृदयकमलका भ्रमरहै ॥ ११ ॥ उच्च स्वरसे धारणरीतीसे आव्हानके विनाही केवल प्रणवके उच्चरणमात्रसे स्मरण करनेसे यह आत्मा क्षणभरमेंही सन्मुख होताहै १२

अस्यसंसेव्यमानस्यसर्वसंपत्तिशालिनः ॥ धनानामीश्वरस्येवस्मयोगर्वोयथाभवेत् ॥ १३ ॥ आमोद इवपुष्पेषुतैलंतिलकणेष्विव ॥ रसजातिष्विवास्वादोदेवोदेहेषुसंस्थितः ॥ १४ ॥ अविचारवशादेपहृदयस्थोपिचेतनः ॥ नज्ञायतेचिरादृष्टोदृष्टबंधुरिवाग्रतः ॥ १५ ॥ विचारणापरिज्ञातएतस्मिन्परमेश्वरे ॥ अभ्युदेतिपरानंदोलब्धेप्रियजनेयथा ॥ १६ ॥

अर्थ—और सम्पूर्ण सम्पत्तियोंसे शोभायमान इस आत्माकी सेवा करनेपरभी जैसे धनीपुरुषको मान, गर्व वा अन्यका अनादर होताहै वैसा नहीं होता ॥ १३ ॥ जैसे पुष्पोंमें सुगन्ध, और तिलके कणोंमें तैल रहताहै तथा रस जातिवाले पदार्थोंमें स्वाद रहताहै ऐसेही यह आत्मदेव सम्पूर्ण देहोंमें स्थितहै ॥ १४ ॥ हृदयमें स्थितभी यह चेतन आत्मा अविचारके कारणसे ऐसे नहीं ज्ञात होता जैसे सम्मुखभी स्थित चिरकालका दृष्ट बन्धु ॥ १५ ॥ विचारसे इस परमेश्वरके ज्ञात होनेपर ऐसा परमानन्द उदय होताहै जैसे प्रियजनके देख पडनेपर ॥ १६ ॥

अस्मिन्दृष्टेपरेबंधावुद्दामानंददायिनि ॥ आयांतिदृष्टयस्तास्तायाभिर्भंगोविलीयते ॥ १७ ॥ त्रुटयंतेसर्वतःपाशाःक्षीयंतेसर्वशत्रवः ॥ नकृंतंतिमनांस्याशागृहाणीवद्रुराखवः ॥ १८ ॥ अस्मिन्दृष्टेजगदृष्टंश्रुतेस्मिन्सकलंश्रुतम् ॥ स्पृष्टेचास्मिञ्जगत्स्पृष्टंस्थितेस्मिन्संस्थितंजगत् ॥ १९ ॥ एपजागर्तिसुप्तानांप्रहरत्यविवेकिनाम् ॥ हरत्यापदमार्तानांवितरत्यमहात्मनाम् ॥ २० ॥

अर्थ—सर्वोत्तम आनन्ददायी इस परमबन्धु दृष्ट होनेपर वे वे आत्मदृष्टि उदित होती हैं जिनसे जन्ममरण आदि विच्छेद नष्ट होताहै ॥ १७ ॥ इसीके दृष्ट होनेसे सम्पूर्ण स्नेहरूपी पाश (फांसी) टूट जाती हैं, कामक्रोधादि सब शत्रु क्षीण होजाते हैं, और तृष्णा मनको ऐसे नहीं छेदन करती जैसे गृहोंके मूषक ॥ १८ ॥ इसी परमात्माके दृष्ट होनेसे सम्पूर्ण जगत् दृष्ट होजाताहै, इसीके श्रुत होनेसे सब श्रोतव्य श्रुत होताहै, इसीके स्पष्ट होनेसे सब ब्रह्माण्ड स्पष्ट होजाताहै, और इसीके हृदयमें स्थित होनेसे संपूर्ण जगत् स्थित होताहै अर्थात् इसीके सत्तासे सम्पूर्ण जगत्की सत्ता प्राप्त होती है ॥ १९ ॥ इन्द्रियादिके सुप्त होनेपर यही परमात्मा जागताहै, अविवेकियोंके ऊपर यही प्रहार करताहै, दुःखियोंकी आपत्तियोंको यही हरताहै, और परिच्छिन्न आत्मारूप ईश्वरके उपासकोंके वांछित फल यही देताहै ॥ २० ॥

विचरत्येपलोकेषुजीवएवजगत्स्थितौ ॥ विलसत्येवभोगेषुप्रस्फुरत्येववस्तुषु ॥ २१ ॥ आत्मनात्मानमेवातःशांतेनानुभवन्भवी ॥ स्थितःसर्वेषुदेहेषुतीक्ष्णत्वंमरिचेष्विव ॥ २२ ॥ चेतनाकलनारूपीसबाह्याभ्यंतराश्रितः ॥ जगत्पदार्थसंभारेसत्तासामान्यमास्थितः ॥ २३ ॥ एपशून्यत्वमाकाशेस्पंदएपसदागतौ ॥ प्रकाशश्चैवतेजस्तुपयस्स्वेपरसःपरः ॥ २४ ॥

अर्थ—जगत्की स्थितिमें यही आत्मा जीव होके विचरताहै, भोगोंमें विलास करताहै, और वस्त्र अलंकार तथा समाज उत्सव आदिमें यही शोभित होताहै ॥ २१ ॥ इसलिये यह आत्मा अपनेही शान्तरूपसे अपने आत्मरूपका अनुभव करते हुये सब देहोंमें ऐसे स्थितहै जैसे मरिचोंमें तीक्ष्णता ॥ २२ ॥ पूर्वोत्तर पदार्थोंके अनुसन्धानमें कलना वर्तमानकालके दर्शनमें कुरूप धारण करके बाह्य तथा आभ्यन्तर चेतन उपाधियोंमें यही आश्रितहै, और जगत्के पदार्थ समूहोंमें अधिष्ठान सत्ता सामान्य स्वभावसे यही आत्मा सबमें अनुगत होके स्थितहै ॥ २३ ॥ आकाशमें शून्यता, वायुमें निरन्तर गति, तेजोंमें प्रकाश तथा रसमय पदार्थोंमें उत्तम रस ॥ २४ ॥

काठिन्यमवनावेवमौष्ण्यमेवहुताशने ॥ शैत्यमेपनिशानाथेसत्ताचैपजगद्गणे ॥ २५ ॥ मपीपिंडेयथाकाष्र्ण्यंशैत्यंहिमकणेयथा ॥ यथापुष्पेषुसौगंध्यंदेहेदेहपतिस्तथा ॥ २६ ॥ यथासर्वगतासत्ताकालःसर्वगतोयथा ॥ प्रभुशक्तिर्महीयस्यसर्वदेशगतायथा ॥ २७ ॥ रूपालोकमनस्कारयुक्तसत्वंतथात्मनः ॥ नित्यःसोयंमहादेवोदेवानामेवबोधकः ॥ २८ ॥

अर्थ—पृथिवीमें कठिनता, अग्निमें उष्णता, चन्द्रमामें शीतता और ब्रह्मांड समूहोंमें सत्तारूप यही परमात्माहै ॥ २५ ॥ जैसे मषीके पिण्डमें कृष्णताहै और हिमके कणोंमें शीतता तथा जैसे पुष्पोंमें सौगन्ध्य है ऐसेही संपूर्ण देहोंमें देहोंका पति आत्मा प्रकाश कररहताहै ॥ २६ ॥ जिसप्रकार सत्ता तथा काल सर्वत्र हैं और जिसकी प्रभुशक्ति सर्व देशमें प्राप्त पृथिवी है ॥ २७ ॥ ऐसेही चक्षुषू आदि इन्द्रियोंके व्यापारोंके तथा मानसिक व्यापारोंसे युक्त जो प्रकाशहै वह सब आत्माहीका है अर्थात् वह प्रकाश मात्र स्वभावहै और यह नित्य महादेव इन्द्रियां तथा ब्रह्मादि देवोंकाभी प्रकाशक है ॥ २८ ॥

अहमेवास्मिमेनास्तिकलनापिकिलेतरा ॥ रेणुनेवाणुनाव्योम्निपद्मपत्रमिवांभसा ॥ २९ ॥ संभ्रमेणेव पाषाणेसंबंधोमयिनेतरैः ॥ सुखदुःखश्रियोदेहेमापतंतुपतंतुवा ॥ ३० ॥ तुंबकोपरिधाराश्वकानःक्षति रुपस्थिता ॥ दीपांगातिगतोरज्ज्वानालोकोबध्यतेयथा ॥३१॥ तथानायमहंबद्धःसर्वभावगणातिगः॥ संबंधःकोस्तुनःकामैर्भावाभावैरथेंद्रियैः ॥ ३२ ॥

अर्थ—मैं केवल शुद्धरूप हुं अन्य कल्पनासे मेरा किंचित्‌भी ऐसा संबन्ध नहीं है जैसे सूक्ष्मतम रेणुसे आकाशका वा जलका कमलसें ॥२९॥ जैसे भय वा कम्पन आदिका पाषाणमें संबन्ध नहीं है ऐसेही अन्य पदार्थोंसे मेरा कुछभी संबन्ध नहीं है सुखदुःखोंकी शोभा देहमें आवैं वा जांय मुझे इनसे कुछ नहीं कर्तव्य ॥ ३० ॥ तुम्बेके ऊपर जलकी धारा गिरै परन्तु तुम्बेके आकाशके तुल्य हमलोगोंकी क्या क्षति है क्योंकि दीपके अंगभूत तैलबत्ती और पात्रको अतिक्रमण करके जानेवाला दीपका प्रकाश जैसे रज्जुसे नहीं बांधा जाताहै ॥ ३१ ॥ ऐसेही यह आत्मरूप तथा सब पदार्थोंसे परे मैं आत्मा किसीसे बांधा नहीं जाता और भाव तथा अभावरूप कामोंसे वा इन्द्रियोंसे मुझ शुद्ध चेतनका क्या संबन्धहै ॥ ३२ ॥

केनसंबध्यतेव्योमकेनसंबाध्यतेमनः ॥ शरीरेशतधायातेखंडनाकाशरीरिणः ॥ ३३ ॥ कुंभेभग्नेक्षतेक्षी णेकुंभाकाशस्यकाक्षतिः ॥ पिशाचकइवादृश्योमनोनामोदितंमुधा ॥ ३४ ॥ जडेतस्मिन्क्षतेबोधात्का नःक्षतिरुपस्थिता ॥ सुखदुःखमयीयस्यवासनातन्मनोमम ॥ ३५ ॥ अभवत्पूर्वमद्यैकासंपन्नाऽतनुनि र्वृतिः ॥ अन्योभुक्तेन्यआदत्तेप्यन्यस्यानर्थसंकटः ॥ ३६ ॥

अर्थ—आकाशको कौन बांधसकताहै मनको कौन मारसकताहै शरीरके सौ टुकडे होनेपरभी शरीर रहित आत्माका क्या खण्डन हुआ ? ॥ ३३ ॥ घट (घडे) के कपालके फूटनेसे छिद्रोंसे छत होनेसे और मृत्तिकाके न्हास (न्यूनता) से क्षीण होनेपरभी घटाकाशकी क्या हानि ? अदृश्य पिशाचके समान यह मनही सर्वरूपसे वृथा उदयको प्राप्त है ॥ ३४ ॥ मनसे भिन्न आत्मज्ञानसे उस जडमनका नाश होनेपरभी हमारी क्या हानि जिसकी सुख तथा दुःखमयी वासनाहै मेरा मन ॥ ३५ ॥ पूर्वकालमें अज्ञ दशामें था और अब तो अपरिमित सुखकी विश्रान्ति प्राप्त हुई है अहो ! अन्य भोक्ताहै अन्य ग्रहण करताहै और अन्यको अनर्थका संकट होताहै ॥ ३६ ॥

अन्यःपश्यत्यहोमौर्ख्यंकस्येयंखलुचक्रिका ॥ भुंक्तेप्रकृतिरादत्तेमनोदेहस्यसंकटः ॥ ३७ ॥ दुष्टात्मामौ र्ख्यमस्तीहनकिंचित्केवलेक्षतिः ॥ नमेभोगस्थितौवांछानचभोगविवर्ज्जने ॥ ३८ ॥ यदायातितदायातु यत्प्रयातिप्रयातुतत् ॥ सुखेषुममनापेक्षानोपेक्षादुःखवृत्तिषु ॥ ३९ ॥ सुखदुःखान्यपायांतुयांतुवाप्यह मेषुकः ॥ वासनाविविधादेहेत्वस्तंचोदयमेववा ॥ ४० ॥

अर्थ—और अन्य देखताहै, यह भोक्ता आदिकी एकतारूप अध्यासकी मूर्खता किस इन्द्रजालिककी चक्रके सदृश परिवर्तन चातुरी है, चेतन प्रतिबिम्बित प्रकृति भोग करती है, मन ग्रहण करताहै और देहको संकट (दुःख) होताहै ॥ ३७ ॥ प्रकृति आदिके दोषोंसे आत्माके दूषित (मलिन) होनेसे यह मूर्खता होती है, और विचारसे शुद्धमें कुछभी मूर्खता नहीं है इसलिये शुद्धमें कुछ हानि नहीं है न तो भोगोंकी स्थिति तथा उनके वर्जनमें मेरी आकांक्षा नहीं है ॥ ३८ ॥ जो आताहै वह आवै और जो जाताहै वह जावै, न तो सुखोंमें मेरी आकांक्षाहै और न दुःखकी वृत्तियोंमें उपेक्षाहै ॥ ३९ ॥ सुख तथा दुःख आवैं या जावैं मैं इनमें कौन ? और इसीप्रकार देहोंमें उदय वा अस्तको ॥ ४० ॥

प्रयांतुनाहमेतासुनचैतामम़काश्चन ॥ एतावंतमहंकालमज्ञानरिपुणाहतः ॥ ४१ ॥ हृत्वाविवेकसर्वस्व मेकांतमवपोथितम् ॥ वैष्णवेनप्रसादेनस्वसमुत्थेनचारुणा ॥ ४२ ॥ इदानींसंपरिज्ञायमयैषपरिमोचि तः ॥ अहंकारपिशाचोयंशरीरतरुकोटरात् ॥ ४३ ॥ परावरबोधमंत्रेणमयेदानीमपाकृतः॥ निरहंकारय क्षोयंमच्छरीरमहाद्रुमः ॥ ४४ ॥

अर्थ—प्रासहों न तो मैं इनमें हुं और न ये कोई मुझमें हैं, इतने कालतक मैं अज्ञानरूप शत्रुसे मारागया ॥ ४१ ॥ और इसी अज्ञानरूप शत्रुने मेरा सर्वस्व अपहरण करके मुझे नष्ट करदिया, और विष्णुभगवान्‌के वरदानरूप अनुग्रहसे स्वयं प्रकटीभूत विचारसे ॥ ४२ ॥ इससमय इस शत्रुको मैं जानकर इसको त्यागा, और इस अहंकाररूप पिशाचको शरीररूप वृक्षके खोखलसे, परब्रह्मके ज्ञानरूप मन्त्रसे मैंने निकालदिया, और अहंकाररूप यक्ष जिससे निकल गयाहै, ऐसा यह मेरा शरीररूप महावृक्ष ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

पुण्यतामलमायातःप्रफुल्लइवराजते ॥ प्रशांतमोहदारिद्र्योदुराशादोषसंक्षये ॥ ४५ ॥ विवेकधनसंभास्थितोस्मिपरमेश्वरः ॥ ज्ञातंज्ञातव्यमखिलंदृष्टाद्रष्टव्यदृष्टयः ॥ ४६ ॥ तत्प्राप्तमधुनायेननाप्राप्तमवशिष्यते ॥ दिष्ट्यादूरोज्झितानर्थामपेतविषयोरगाम् ॥ ४७ ॥ संशांतमोहनीहारांशांताशांमृगतृष्णिकाम् ॥ रजोरहितसर्वाशांशीतलोपशमद्रुमाम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—अति पवित्रताको प्राप्त होके विकसितके समान शोभित होरहाहै दुष्ट आशाके दोषोंकी शान्तिके अर्थ प्रशान्त मोहरूप दारिद्र्य ॥ ४५ ॥ मैं विवेकरूप धनके समूहोंको पाकर परमेश्वररूप मैं स्थितहुं, जो कुछ जानने योग्यथा वह सम्पूर्ण मैंने जानलिया और जो कुछ देखनेकी दृष्टिथी उन सबको मैंने देखलिया ॥ ४६ ॥ और इससमय मुझे वह (आत्मज्ञान) पदार्थ प्राप्त हुआहै जिससे कोईभी प्राप्त होने योग्य पदार्थ अब शेष नहीं रह जाता और सौभाग्यसे दूर त्यागे हुये अनर्थ तथा विषयरूप सर्पोंसे शून्य ॥ ४७ ॥ मोहरूप नीहार (तुषार) से वर्जित, आशारूप मृगतृष्णासे रहित, सम्पूर्ण दिशाओंमें रजोगुण, वा धूलिसे वर्जित, तथा उपशमरूप शीतल वृक्ष संयुक्त ४८

प्राप्तोस्मिविततांभूमिमुन्नतांपारमार्थिकीम् ॥ स्तुत्याप्रणत्याविज्ञप्त्याशमेननियमेनच ॥ ४९ ॥ लब्धोयंभगवानात्माहृष्टश्चाधिगतःस्फुटम् ॥ अहंकारपदातीतश्चिरात्संस्मृतिमागतः ॥ ५० ॥ स्वभावाद्भगवानात्माविष्णोर्ब्रह्मसनातनम् ॥ इंद्रियोरगगर्तेषुमरणश्वभ्रभूमिषु ॥ ५१ ॥ तृष्णाकरंजकुंजेषुकामकोलाहलेषुच ॥ वासनावनजालेषुजन्मकूपांतरेषुच ॥ ५२ ॥

अर्थ—विशाल तथा अति उच्च इस परमार्थमयी भूमिपर मैं इससमय प्राप्त हुआहुं, विष्णुभगवान्‌की स्तुतिसे, प्रणामसे, प्रार्थनासे, नियमसे, और शमसे ॥ ४९ ॥ यह भगवान् आत्मा हमको लब्ध हुये और प्रत्यक्षरूपसे प्राप्त तथा दृष्ट हुये, और विष्णुभगवान्‌कीही कृपा (वरदान) से अहंकार पदसे परे यह आत्मा स्मृति पथमें प्राप्त हुआहै ॥ ५० ॥ विष्णुकीही कृपासे यह सनातन ब्रह्म भगवान् आत्मा अति चिरकालसे स्मरणको प्राप्त हुआहै और अब इन्द्रियरूप सर्पोंके बिलहैं मरणरूप जिनमें गर्तमय भूमि हैं ॥ ५१ ॥ तृष्णारूप कांटेसहित वृक्षोंके जिनमें कुंजहैं. कामनारूप पक्षियोंके जहां कोलाहल शब्द होरहे हैं तथा अनेक जन्म जन्मान्तररूप जिनमें कूपहैं ॥ ५२ ॥

दुःखदावाग्निदाहेषुदुःखदावाग्निहारिषु ॥ पातोत्पातदशालक्षैर्मज्जनोन्मज्जनभ्रमैः ॥ ५३ ॥ आविर्भावतिरोभावैराशापाशविचेष्टनैः ॥ अहंचिरमहंकारद्विपासमवमोषितः ॥ ५४ ॥ निशायामल्पवीर्यात्मापिशाचेनेवजंगले ॥ स्वयमेवत्वथेदानींक्रियाशक्त्यास्वयैवहि ॥ ५५ ॥ शौरिणाव्यपदेशेनविवेकश्रीर्विबोधिता ॥ प्रबुद्धेभवतीशानेतमहंकारराक्षसम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—तथा दुःखरूपी दावाग्निके दाह जिसमें होरहे हैं, और दुःखरूप दावाग्निसे जिनमें मनुष्योंके धन वा प्राणोंके हरनेवाले जहां चोरहैं ऐसे वासनाओंके जालोंमें अधःपतन तथा ऊर्ध्वपतनके तुल्य विपत्ति तथा सम्पत्तिके समूहोंसे, तथा डूबने और तिरनेके समान अधोगति तथा सद्गतियोंसे ॥ ५३ ॥ संसारमें जन्मादिके आविर्भाव और तिरोभावोंसे, और आशारूप फांसीकी चेष्टाओंसे अहंकाररूप शत्रुसे आत्माके अपहरणद्वारा मैं ऐसा पीडित किया गया ॥ ५४ ॥ जैसे अल्प पराक्रमी मनुष्य जंगलमें पिशाचसे, और अब विष्णुकी प्रसन्नतासे विवेककी श्री स्वयं प्रदीप्त हुई है ॥ ५५ ॥ और उस विवेककी श्रीसे अपने आत्माके प्रबुद्ध होनेपर अहंकाररूप राक्षसको ॥ ५६ ॥

नपश्यामिनभोदीपेज्वलितेतिमिरंयथा ॥ तस्याहंकारयक्षस्यमनोविवरवासिनः ॥ ५७ ॥ दीपस्येवप्रशांतस्यनवेद्मिगतिमीश्वरः ॥ दृष्टएवत्वयीशानेपलायनपरायणः ॥ ५८ ॥ संपन्नोमदहंकारश्चोरःसूर्योदयेयथा ॥ असदभ्युत्थितेतस्मिन्नहंकारेपिशाचवत् ॥ ॥ ५९ ॥ गतेतिष्ठाम्यहंस्वस्थोनिर्गोनिसइवद्रुमैः ॥ शाम्यामिपरिनिर्वामिजगत्यस्मिन्प्रबोधवान् ॥ ६० ॥

अर्थ—अब मैं ऐसे नहीं देखता जैसे दीपके प्रज्वलित होनेपर अन्धकारको, और मनरूप बिलके निवासी उस अहंकाररूप यक्षकी ॥ ५७ ॥ गति मैं इससमय शुद्ध आत्मस्वरूप होके इसप्रकार नहीं जानता जैसे शान्त दी-

पकी, और हे भगवन् ! आपके दृष्ट (अनुभूत) मात्र होनेसेही मेरा अहंकार भागनेमें ऐसे तत्पर होजाताहै ॥५८॥ जैसे सूर्य उदयके समयमें चोर, और पिशाचके तुल्य मिथ्या आविर्भूत इस अहंकारके ॥ ५९ ॥ चले जानेपर मैं ऐसा स्वस्थ स्थितहुं जैसे अजगर शून्य वृक्षसहित वाटिका, इस जगत्में ज्ञानवान् मैं शान्तहुं, तथा सुखी होताहुं ॥ ६० ॥

तस्करेणोज्झितोस्मीतिनिर्वृतोस्मिचिरोदयम् ॥ शैत्यमभ्यागतोस्म्यंतःशांताशामृगतृष्णिकः ॥६१॥ प्रावृडंबुभरस्नातःशांतदावइवाचलः ॥ प्रमार्जितेहमित्यस्मिन्पदेस्वार्थविचारतः ॥ ६२ ॥ कोमोहःकानिदुःखानिकाःकदाशाःकआधयः ॥ नरकस्वर्गमोक्षादिभ्रमाःसत्यामहकृतौ ॥ ६३ ॥ भित्ताविवप्रवर्त्तंते चित्रेहाननभस्तले ॥ अहंकारकलापीतेचित्तेज्ञानचमत्कृतिः ॥ नराजतेशुकेम्लानेयथाकुंकुमरंजना ॥६४॥

अर्थ—आत्माके अपहारी अहंकारसे इस समय मैं मुक्त हुं, और इसीसे चिरकालतक अभ्युदयपूर्वक शान्त हुं, और आशारूप मृगतृष्णाके शान्त होनेसे अन्तःकरणसे मैं ऐसे शीतल हुं ॥ ६१ ॥ जैसे वर्षाकालके जलसमूहसे स्नान किये दावाग्निके शान्त होनेसे पर्वत, आत्मपदके विचारसे अहंकारके धोडालननेसे ॥ ६२ ॥ कौन मोहहै क्या दुःखहै, कौनसी दुष्ट आशाहैं, और कौन मानसीव्यथाहैं क्योंकि नरक स्वर्ग और मोक्ष आदि भ्रम अहंकाररूप ॥ ६३ ॥ भित्तिके होनेहीपर प्रवृत्त होते हैं न कि आकाशमें अहंकार वित्तजनित उन्माद चित्तमें रहनेसे ज्ञानका चमत्कार ऐसे नहीं शोभित होता जैसे मलिन वस्त्रमें कुंकुमका रंग ॥ ६४ ॥

निरहंकारजलदेतृष्णानीहारविवर्जिते ॥ भातिचित्तशरद्व्योम्निस्वच्छताकांतिशालिनी ॥ ६५ ॥ निरहंकारपंकायसंप्रसन्नांतरायच ॥ महामानंदसरसेतुभ्यमात्मन्नमोनमः ॥ ६६ ॥ शांतेंद्रियोग्रग्राहायक्षीणचित्तौर्ववह्नये ॥ आनंदांबुधयेतुभ्यंमह्यमात्मन्नमोनमः ॥ ६७ ॥ गताहंकारमेघायशांताशादाववह्नये ॥ महामानंदशैलायविश्रांतायनमोनमः ॥ ६८ ॥

अर्थ—अहंकाररूप मेघसे विनिर्मुक्त तथा तृष्णारूप कुहिरासे वर्जित चित्तरूपी शरत्कालके आकाशमें, दीप्तिसे शोभायमान स्वच्छतारूप चन्द्रचन्द्रिका प्रकाश करती है ॥ ६५ ॥ अहंकारपंकसे शून्य तथा अति प्रसन्न, और आनन्दके समुद्र साक्षीरूप ब्रह्मरूप तुम आत्माको मेरा नमस्कारहै ॥ ६६ ॥ हे आत्मन् शान्तहै इन्द्रियरूप उग्र ग्राह जिसके, और क्षीण होगयाहै चित्तरूप वडवाग्नि जिसकी ऐसे आनन्दके समुद्र प्रत्यक् आत्मस्वरूपको नमस्कार है ॥ ६७ ॥ अहंकाररूप मेघसेरहित, और आशारूप दावानल जिसका शान्तहै ऐसे विशाल मुझ आत्मरूप पर्वतको मेरा नमस्कारहै ॥ ६८ ॥

प्रफुल्लानंदपद्मायशांतचिंतामयोर्मये ॥ महंसन्मानसायात्मंस्तुभ्यमंतर्नमोनमः ॥ ६९ ॥ संविदाभासयक्षायपद्मकोटरवासिने ॥ सर्वमानसहंसायस्वात्मनेंतर्नमोनमः ॥ ७० ॥ कलाकलितरूपायनिष्कलायामृतात्मने ॥ सदोदितायपूर्णात्मन्शशिनेतेनमोनमः ॥ ७१ ॥ सदोदितायशांतायमहाहृत्ध्वांतहारिणे ॥ सर्वगायाप्यदृश्यायचित्सूर्यायनमोनमः ॥ ७२ ॥

अर्थ—विकसित आनन्दरूप कमलसहित और चिन्ता वा रोगरूप तरंगसे वर्जित प्रत्यक् साक्षीरूप मुझ आत्मारूप स्वच्छ मानससरोवरको मेरा नमस्कारहै ॥ ६९ ॥ बुद्धि और बुद्धिकी वृत्तिमें प्रतिबिम्बित चेतनरूप यक्षयुक्त तथा हृदयकमलके कोटरके निवासी सबके मानसके हंसरूप आत्माको मेरा नमस्कारहै ॥ ७० ॥ हे पूर्ण आत्मन् पंचज्ञानेन्द्रिय और पंचकर्म इन्द्रिय, पंचप्राण और मन बुद्धिरूप षोडश कलाओंसे कल्पितरूपसहित निरवयव अमृतरूप और सदा उदयको प्राप्त चन्द्रमारूप तुमको नमस्कारहै ॥ ७१ ॥ सबकालमें उदयको प्राप्त, शान्तरूप हृदयके महाअज्ञानान्धकारके नाशक, और सर्वगामी होनेपरभी अदृश्यरूप चित्तरूप सूर्यको बार २ नमस्कारहै ॥ ७२ ॥

अस्नेहस्नेहदीपायवृत्तिनिष्क्रांतवर्तिने ॥ स्वभावाधारधीरायचिद्दीपायनमोनमः ॥ ७३ ॥ मदनानलसंतप्तेशीतेनमनसामनः ॥ भग्नमंतर्मयातप्तमयसेवबलादयः ॥ ७४ ॥ इंद्रियेणेंद्रियंछित्त्वाछित्त्वाचमनसामनः ॥ अहंकृतिमहंकृत्याछित्त्वाशेषोजयाम्यहम् ॥ ७५ ॥ भावेनाभावमाच्छिद्यहित्वातृष्णामतृष्णया ॥ निष्पिष्यप्रज्ञयाऽप्रज्ञांज्ञोज्ञःसत्योसितेनमः ॥ ७६ ॥

अर्थ—तैलरहित, परमप्रेमको प्रदीप्त करनेवाले, वृत्तिद्वारा निष्क्रमण बत्ती संयुक्त, सब पदार्थोंके स्वभावोंके आधार, और बुद्धिके प्रकाशक दीपरूप आत्मस्वरूप आपको नमस्कारहै ॥ ७३ ॥ और जैसे कृष्णवर्ण लोहेसे तप्त लोहाबलसे काटा जाताहै ऐसेही कामरूप अग्निसे सन्तप्त मनरूप लोहको शमआदि गुणयुक्त मनरूप ठंढे लोहसे मैं इससमय आपके अनुग्रहसे काट डाला ॥ ७४ ॥ हे भगवन् ! साक्षीचेतनकी ओर झुकी नेत्रआदि इन्द्रियसे बहिर्मुख इन्द्रियोंको छेदन करके इसीप्रकार मनसे मनका तथा अहंकारका छेदन करके शेष चिन्मात्र मैं सबसे उत्कृष्टहुं

॥ ७५ ॥ श्रद्धासे अश्रद्धाको छिन्न करके, सन्तोपसे तृष्णाको मारकर, और विचारसे सन्देहादिरूप अज्ञानको नष्ट करके ज्ञातृताके अभिमानसे शून्य केवल ज्ञप्तिमात्र आप सत्यरूप आत्माको मेरा नमस्कारहै ॥ ७६ ॥

मनसामनसिच्छिन्नेनिरहंकारतांगते ॥ भावेनगलितेभावेस्वच्छस्तिष्ठामिकेवलः ॥ ७७ ॥ निर्भावंनिरहंकारंनिर्मनस्कमनीहितम् ॥ केवलंस्पंदशुद्धात्मन्येतत्तिष्ठतिमेवपुः ॥७८॥ हेलानुकंपितानंतविश्वेशादतिशायिनी ॥ परमोपशमोपेताजातेयंममनिर्वृतिः ॥ ७९ ॥ प्रशांतमोहवेतालोगताहंकारराक्षसः ॥ कदाशारूपिकोन्मुक्तोजातोस्मिविगतज्वरः ॥ ८० ॥

अर्थ—मनसे मनके छिन्न होनेपर, अहंकारसे रहित होनेपर तथा ब्रह्माहंभावसे देहादिमें अहंभावके गलित होनेपर इससमय मैं केवल स्वच्छ चित्स्वरूप स्थितहुं ॥ ७७ ॥ भावनाके हेतुभूत बुद्धिसे शून्य, अहंकार तथा मनसे शून्य, और इच्छाके हेतु चित्तसे वर्जित मेरा शरीर इससमय केवल प्राण क्रियामात्रसे शुद्ध जीवन्मुक्त आत्मामें स्थितहै ॥७८॥ क्रीडामात्रसे भोग ऐश्वर्य्यादिके सम्प्रदानसे अपने अनन्त भक्तोंके ऊपर अनुग्रह करनेवाले विश्वके स्वामी ब्रह्मा विष्णु और महेशभी अधिक और परम शान्तिसेयुक्त निरतिशय आनन्दमें विश्रान्ति यह मुझे उत्पन्न हुईहै ॥७९ मोहरूप वेतालसेरहित, अहंकाररूप राक्षससेहीन और दुष्ट आशारूप पिशाचीसे मुक्त इससमय मैं संतापरहितहुं ॥८०

तृष्णारज्जुगुणंछित्त्वामच्छरीरकपंजरात् ॥ नजानेक्वगतोड्डीयदुरहंकृतिपक्षिणी ॥ ८१ ॥ उद्धूलितेघनाज्ञानाकुलायेकायपादपात् ॥ नजानेगतउड्डीयकाहंभावविहंगमः ॥ ८२ ॥ दुराशादीर्घदौरात्म्यधूम्रमीसराभोगभस्मना ॥ भयभोगिहितादिष्टयाभूयस्योवासनाःक्षताः ॥ ८३ ॥ एतावंतमहंकालंकोभूवंचिहशम् ॥ येनाहमेपमिथ्यैवदृढाहंकारतांगतः ॥ ८४ ॥

अर्थ—तृष्णारूप रस्सीको तोडकर मेरे शरीररूप पिंजरेसे दुष्ट अहंकाररूप पक्षिणी उडकर न जाने इससमय कहां चलीगई ॥ ८१ ॥ ज्ञानके अभ्याससे धूलिकरणसे उडाये घन अज्ञानरूप कुलाय (नीड) में शरीररूप वृक्षसे देहादिमें अहंभावरूप पक्षी न जानें उडके कहां चलागया ॥ ८२ ॥ दुष्ट आशाओंसे तथा दुष्ट देहादिमें आत्माभिमानसे मलिन भयरूप सर्पोंकी हितकारिणी अनन्त वासना इससमय सौभाग्यसे क्षयको प्राप्त हुई हैं ॥ ८३ ॥ अहो कैसे आश्चर्यका विपयहै कि इतने कालतक मैं क्या था कि जिसमें मैं मिथ्या दृढ अहंकारताको प्राप्त हुआहुं ॥ ८४ ॥

ब्रह्माहमस्मिजातोयमहमद्यमहामतिः ॥ अहंकारमहाभ्रेणयत्कृष्णेनालमुज्झितः ॥ ८५ ॥ दृष्टोयमात्माभगवांतस्थैवाधिगतोमया ॥ आलब्धश्चानुभूतोंगस्वानुभूतौनियोजितः ॥ ८६ ॥ गतास्पदंगतमननगतैपणंतिरस्कृतंनिपुणमहंकृतिभ्रमैः ॥ निरीहितंव्यपगतरागरंजनंविकौतुकंप्रशममिदंगतंमनः ॥८७॥ दुरुत्तराःसमविपमामहापदःसदुःसहाःप्रभवनदीर्घदोपदाः ॥ गताःक्षयंसमधिगतोमहेश्वरश्चिद्दहयोपगतमचित्त्वमंतरे ॥ ८८ ॥

इत्यार्पे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे ब्रह्मतात्मलाभचिंता नाम पंचत्रिंशःसर्गः ॥ ३५ ॥

अर्थ—इस समय मैं अनुभूयमान निरतिशय आनन्दरूप होगया हुं क्योंकि इस समय महान् अपरिच्छिन्न ब्रह्माकार मति अर्थात् ब्रह्मकी साक्षात्कार वृत्ति युक्त मैं अहंकार महाकृष्ण मेघसे सर्वथा विनिर्मुक्त हुं ॥८५॥ क्योंकि वाक्यप्रमाणसे दृष्ट मननसे अधिगत, समाधिमें मनसे चिरकालतक आलिंगनसे लब्ध, अपने देहके समान अनुभवमें इस आत्मा भगवान्को मैंने नियुक्त किया ॥ ८६ ॥ और इस समय विषय रहित इष्ट विषयोंके मननसे रहित एषणा (इच्छा) शून्य, कुशलतासे त्यक्त, अहंकारके भ्रमसे वर्जित, चेष्टारहित रागके रंगसे रहित, भोगकी इच्छासे वर्जित और इसीसे इन्धन रहित अग्निके समान शान्त यह मेरा मन होगयाहै ॥ ८७ ॥ उतरनेमें दुःसाध्य, कदाचित् चिरकालतक एकरूप, कदाचित् प्रति क्षणके दुःखसे विलक्षण, सुदुःसह, और नानाप्रकारके योनियोंकी परम्परा तथा दीर्घ दोप काम क्रोध लोभ मोहादिको देनेहारी महा आपत्तियां इस समय क्षयको प्राप्त होगई हैं और अद्वयाचित् महेश्वर अर्थात् पूर्णानन्द आत्मा प्राप्त हुआ, क्योंकि साक्षीचेतनमें जडता ज्ञानसे बाधितहै ॥ ८८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे ब्रह्मात्मलाभचिंता नाम पंचत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥

दुर्लभ आत्माको प्राप्तहोके बार २ प्रणाम करता हुआ, स्तुति करताहै और एकान्तमें कान्तके साथ कामिनीके समान आनन्दसे रमण करताहै इस विषयका वर्णन इस ३६ के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ प्रह्लादउवाच ॥ आत्मासर्वपदातीतश्चिरात्संस्मृतिमागतः ॥ दिष्ट्यालब्धोसिभगवन्नमस्तेस्तुमहात्मने ॥ १ ॥ अभिवंद्याथचालोक्यचिरमालिंग्यसेमया ॥ कोन्यःस्यात्त्वदृतेबंधुर्भगवन्भुवनत्रये ॥ २ ॥ हंसिपासिददासित्वंस्तौषियासिविवल्गसि ॥ अयंप्राप्तोसिदृष्टोसिकिंकरोषिकगच्छसि ॥ ३ ॥ स्वसत्तापूरिताशेषविश्वविश्वजनीनभोः ॥ सर्वत्रलक्ष्यसेनित्यमधुनाक्वपलायसे ॥ ४ ॥

अर्थ—प्रह्लादजी बोले-मनुष्यके आनन्दसे लेके ब्रह्माके आनन्दपर्य्यन्त जितने आनन्द हैं उन सबसे परे जो आत्माहै वह इस समय प्रारब्धसे चिरकालके पीछे स्मरणमे आयाहै, हे भगवन्! तुम सौभाग्यसे प्राप्त हुये हो तुम अपरिछिन्न आत्मको मेरा नमस्कारहै ॥ १ ॥ हे भगवन्! दर्शन तथा वन्दना करके समाधिमें समवृत्तिसे अनुभव किये जाते हो हे भगवन् आपके सिवाय तीनों लोकमें परमप्रिय बन्धु कौनहै ॥ २ ॥ जबतक तुम दृष्ट और प्राप्त नहीं हो, तबतक मृत्यु होके अभक्तोंको मारते हो, भक्तोंकी रक्षा करते हो, उपासना कर्मोंसे आराधित मनोरथोंको देते हो, स्तुति कर्ता आदिके रूपसे स्तुति करते हो, यातृके रूपसे जाते हो, और सबके रूपसे व्यवहारभी करते हो, और मैंने तो यह तुमको अपरोक्षरूपसे प्राप्त तथा दृष्टभी करलिया अब मेरे प्रति तुम क्या करसकते हो, और कहां जासकते हो ॥३ ॥ हे आपनी सत्तासे सम्पूर्ण लोकोंके पुरक! हे संसारके हित प्रभो तुम सर्वत्र मुझे भान होते हो, और अब तुम कहा भागते हो ॥ ४ ॥

आवयोरंतरंभूरिजन्मव्यवहितांतरम् ॥ अदूरमद्यसंपन्नंदिष्ट्यादृष्टोसिबांधव ॥ ५ ॥ नमस्तेकृतकृत्यायकर्त्रेभर्त्रेनमोस्तुते ॥ नमःसंसारवृंतायनित्यायविमलात्मने ॥ ६ ॥ नमश्चक्राब्जहस्तायनमश्चंद्रार्धधारिणे ॥ नमोविबुधनाथायनमस्तेपद्मजन्मने ॥ ७ ॥ वाच्यवाचकदृष्टयैवभेदोयमिहावयोः ॥ असत्याकल्पनैवेषावीचिवाय्यंभसोरिव ॥ ८ ॥

अर्थ—अनेक जन्मोंसे व्यवधान हमसे तुमसे अन्तर करनेवाला महत् अज्ञान था, और इस समय उस अज्ञानके नष्ट होनेसे अभेदरूप परम समीपताहै, हे बान्धव सौभाग्यसे तुम देखपडे हो ॥५॥ आत्मज्ञानसे कृत कृत्य तुमको नमस्कारहै, संसारके कर्ता भर्ता तुमको नमस्कारहै, और संसाररूप पत्तोंके गुच्छे नित्य तथा विमलरूप त्मरूप तुमको नमस्कारहै ॥ ६ ॥ चक्र कमलादिधारी विष्णु, अर्द्धचन्द्रधारी शिव, देवताओंके स्वामी इन्द्र तथा कमलयोनि ब्रह्मारूप तुम आत्माको नमस्कारहै ॥ ७ ॥ हमारा तुमारा यह भेद केवल व्यवहारदृष्टिसे है, और जैसे समुद्र तथा तरंगोंकी भेदकल्पना मिथ्याहै ऐसेही यहभी मिथ्याहै ॥ ८ ॥

त्वमेवानंतयानंतवस्तुवैचित्र्यरूपया ॥ भावाभावविलासिन्यानित्ययैवविजृंभसे ॥ ९ ॥ नमोद्रष्ट्रेनमःस्रष्ट्रेनमोनंतविकासिने ॥ नमःसर्वस्वभावायनमस्तेसर्वगात्मने ॥ १० ॥ प्रतिजन्माचिरंबद्धयोदीर्घदुःखवतामय ॥ त्वयामयोपदिष्टेनदग्धेनापहतौजसा ॥ ११ ॥ आलोकितालोकदृशोदृष्टादृष्टांतदृष्टयः ॥ न प्राप्तस्तत्त्वयानेनकिंचिदासादितंभवेत् ॥ १२ ॥

अर्थ—हे अनन्त भगवन्! प्रवाहरूपसे अनादि, विचित्र वस्तुरूप, भाव और अभावमें विलासिनी तथा नित्यरूप अनन्त कल्पनासे तुमही व्यवहार करते हो ॥ ९ ॥ रचित पदार्थोंके द्रष्टा, उनके स्रष्टा, रचित पदार्थोंके प्रकाशक, इसीसे सर्वस्वभावरूप, और अधिष्ठानरूपसे सर्वत्र प्राप्त आत्मस्वरूप आपको नमस्कारहै ॥ १० ॥ प्रतिजन्ममें दीर्घ दुःखमय मुझ जीवरूप दशाको प्राप्त, अपने कामादिसे दूषित, असत्मार्गमें प्रवृत्त, इसीसे लुप्त ईश्वरस्वभाव आपने ऊर्ध्व तथा अधोलोकके संचारके भ्रमोंको, तथा दृष्टान्तकी दृष्टियोंको देखा, इस कारणसे बाह्य पदार्थके दर्शनसे तुमने अपने स्वरूपको नहीं पाया क्योंकि तीनोंलोकके दर्शनसेभी अल्पभी पुरुषार्थकी सिद्धि नहीं होती ॥ ११ ॥ १२ ॥

सर्वंमृत्काष्ठपाषाणवारिमात्रमिदंजगत् ॥ नेहास्तित्वदृतेदेवयत्प्राप्तोनाभिवांछति ॥ १३ ॥ देवायमद्यलब्धोसिदृष्टोस्यधिगतोसिच ॥ संप्राप्तोसिगृहीतोसिनमस्तेस्तुनसुद्यसि ॥ १४ ॥ योक्ष्णोःकनीनिकारश्मिजालप्रोतवपुःस्थितः ॥ देवदर्शनरूपेणकथंसोत्रनदृश्यते ॥ १५ ॥ यस्त्वक्स्पर्शौस्पृशन्सर्वंगंधंतैलंतिलेयथा ॥ स्पर्शमंतःकरोत्येषसकथंनानुभूयते ॥ १६ ॥

अर्थ—यह सम्पूर्ण जगत् मृत्तिका, काष्ठ, पाषाण, और जलमात्रहै, हे देव ! इस ब्रह्माण्डमें आपके सिवाय ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जिसकी प्राप्तिसे पुरुषार्थकी इच्छा पूर्ण हो ॥ १३ ॥ हे देव ! इससमय यह तुम लब्ध, दृष्ट, अधिगत और संप्राप्त तथा गृहीत तो तुम मोहसे पार हो, इसलिये तुमको नमस्कारहै ॥ १४ ॥ हे देव ! जो आप दृष्टिरूपसे जो नेत्र इन्द्रियके द्वारा अन्तःकरणके घटआदि विषयदेशके गमनमें अन्तःकरण अव छिन्न चैतन्यरूपसे दोनों नेत्रोंकी कनीनिकाके किरणजालमें ग्रथित शरीर होके स्थित हो वह अब यहां क्या नहीं अनुभूत होते, अर्थात् सब कुछ होते हो ॥ १५ ॥ जो त्वग् इन्द्रियको तथा उष्णता आदि स्पर्शोंको अनुभव करता हुआ जैसे तिलके अन्तर्गत तैल अपनेमें तिल संयुक्त पुष्पके गन्धको ग्रहण करताहै ऐसेही शीत आदि स्पर्शको अपनेमें अन्तर्गत करताहै वह भला कैसे अनुभूत नहीं होता ॥ १६ ॥

यःशब्दश्रवणादंतःशब्दशक्तिपरामृशन् ॥ रोमांचजनयत्यंगेसदूरस्थःकथंभवेत् ॥ १७ ॥ जिह्वापल्लवलग्नानिस्वदितस्याग्रतोपिच ॥ स्वदंतेयस्यवस्तूनिस्वदतेसनकस्यच ॥ १८ ॥ पुष्पगंधानुपादायघ्राणहस्तेनदेहकम् ॥ यआलोकयतिप्रीत्याकस्यासौनकरेस्थितः ॥ १९ ॥ वेदवेदांतसिद्धांततर्कपौराणगीतिभिः ॥ योगीतःसकथंह्यात्माविज्ञातोयातिविस्मृतिम् ॥ २० ॥

अर्थ—जो शब्दके श्रवणमात्रसे शब्दकी शक्तिको अर्थात् गानकाव्यआदि गुणके चमत्कारको प्रकाश करता हुआ अंगमें उत्पन्न करताहै वह भला दूरस्थ कैसे होसकताहै ॥ १७ ॥ जिव्हारूप पल्लवमें लग्न सम्पूर्ण वर्णवस्तु जिस स्वारसिक प्रेमविषयको प्रथम ही आस्वादित (अनुभूत) होते हैं वह भला किसको नहीं अनुभूत होताहै ॥ १८ ॥ जो घ्राणरूप हस्तसे कण्ठमें धारण किये हुये माला अलंकारादि पुष्पोंके गन्धोंको ग्रहण करके माला अलंकारादिसे अलंकृत अपने देहको देखताहै वह भला किसको हस्तमें स्थितके समान प्रत्यक्ष नहीं है ॥ १९ ॥ वेदान्तोंके सिद्धान्तोंसे तर्कोंसे और पुराणोंके गीतोंसे जो गान किया गयाहै वह आत्मा विज्ञात होके भला कैसे विस्मृत होसकताहै ॥२०

सैवेहदेहभोगालीसुभगापीयमद्यमे ॥ अंतर्नस्वदतेस्वच्छेत्वयिदृष्टेपरावरे ॥ २१ ॥ त्वयाविमलदीपेन भानुःप्रकटतांगतः ॥ त्वयाशीततुषारेणचंद्रःशिशिरतांगतः ॥ २२ ॥ त्वयैतेगुरवःशैलास्त्वयैतेह्युच राधृताः ॥ त्वयैवेयंधराधीरात्वयैवांबरमंबरम् ॥ २३ ॥ दिष्ट्यामत्तामसिप्राप्तोदिष्ट्यात्वत्तामहंगतः ॥ अहंत्वंत्वमहंदेवदिष्ट्याभेदोस्तिनावयोः ॥ २४ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! सर्वोत्तम आपके दृष्ट होनेसे वही यह देह और भोगोंकी पंक्ति अति सुभग (प्रिय) होनेपर भी अब मुझे नहीं रूचती ॥ २१ ॥ हे भगवन् ! प्रदीपरूप आपकी सत्ताहीसे यह सूर्य्य प्रकटताको प्राप्त हुआहै, शीतल तुषाररूप आपके ही कारणसे यह चन्द्रमा शीतताको प्राप्त हुआहै ॥ २२ ॥ हे आत्मन् ! आपने ही इन पर्वतोंको गुरू करके धारण कियाहै, आकाशचारी पवन आदिको आपने ही धारण कियाहै, यह निश्चल पृथिवी तथा अवकाशदायी आकाश आपसे ही है ॥ २३ ॥ हे आत्मरूप ब्रह्मन् ! यह सौभाग्यहै कि तुम मेरे रूपको प्राप्त हुये और मैं तुमारे रूपको, हे देव ! मैं तुम और तुम मैं हुं, यह भी भाग्यसे ही है कि हम तुममें भेद नहीं है ॥ २४ ॥

अहंत्वमितिशब्दाभ्यांपर्यायाभ्यांमहात्मनः ॥ तववाममवाशाखासंयुक्ताभ्यांनमोनमः ॥ २५ ॥ नमोमह्यमनंतायनिरहंकाररूपिणे ॥ नमोमह्यमरूपायनमःसमसमात्मने ॥ २६ ॥ मय्यात्मनिसमेस्वच्छेसाक्षिभूतेनिराकृतौ ॥ दिक्कालाद्यनवच्छिन्नेस्वात्मन्येवेहतिष्ठसि ॥ २७ ॥ मनःप्रक्षोभमायातिस्फुरंतींद्रियवृत्तयः ॥ शक्तिरुल्लसतिस्फाराप्राणापानप्रवाहिनी ॥ २८ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! लक्ष्यरूप शुद्ध ब्रह्मके बोधसे तव अर्थात् कारणकी उपाधिसहित वाच्यार्थकी, और मम अर्थात् कार्योपाधिसहित वाच्यार्थकी शाखाके समान एक देशभूत तव ममको नमस्कारहै ॥ २५ ॥ मुझ अनन्त अहंकाररहित अखण्ड ब्रह्मरूपको नमस्कारहै, तथा रूप शून्य और सर्वत्रसम आत्मरूप मुझ साक्षी चेतनको मेरा नमस्कारहै ॥ २६ ॥ हे ब्रह्मन् ! सम, स्वच्छ, साक्षीरूप, आकार शून्य, देशकाल, तथा वस्तुके परिच्छेदसे शून्य, और निजरूप मुझ आत्मामें तुम प्रत्यक् (साक्षी) स्वभाव होके स्थितहो न कि पराक् (भिन्न वा बहिर्) भावसे ॥२७॥ इसी आत्माके प्रतापसे अथवा प्रेरणासे मन क्षोभको प्राप्त होताहै, इन्द्रियोंकी वृत्तियां स्फुरित होती हैं, और प्राण तथा अपानवायुके चलानेवाली शक्ति उल्लासको प्राप्त होती है ॥ २८ ॥

वहंतिदेहयंत्राणिकुट्टान्याशावरत्रया ॥ चर्ममांसास्थिदिग्धानिमनःसारथिमंतिच ॥ २९ ॥ अयंसंविद्पुरहंनकाचिन्नकृतास्पदः ॥ देहःपततुवोदेतुयथाभिमतयेच्छया ॥ ३० ॥ चिरादहमहंजातःस्वात्म

लाभश्चिरादयम् ॥ चिरादुपशमंयातिकल्पस्यांतेजगद्यथा ॥ ३१ ॥ चिरात्संसारगामित्वाद्दीर्घेसंसार वर्त्मनि ॥ विश्रांतोस्मिचिरंश्रांतःकल्पस्यांतइवानलः ॥ ३२ ॥

अर्थ—चर्म, मांस तथा हड्डियोंसे वृद्धिको प्राप्त मनरूप सारथीसहित देहरूप यंत्र आशारूप रस्सीसे खींचे हुये चलरहे हैं ॥ २९ ॥ यह मैं केवल शुद्ध चिन्मात्र शरीरहुं न कि कोई शक्ति जो देहके आश्रयमें रहै, अपनी इच्छासे देह गिरै वा उदयको प्राप्तहो ॥ ३० ॥ मैं अपने शुद्धरूपको चिरकालसे प्राप्त हुआ, यह आत्मलाभ चिरकालसे हुआ, और जैसे कल्पके अन्तमें जगत् नाशको प्राप्त होताहै ऐसे भ्रम चिरकालमें शान्त होते हैं ॥ ३१ ॥ इस दीर्घ संसारके मार्गमें चिरकालसे भ्रमणशील होनेसे चिरकालसे अति श्रान्त (थका हुआ) इससमय ऐसे विश्रांतिको प्राप्त हुआहुं जैसे कल्पके अन्तमें पवन ॥ ३२ ॥

सर्वातीतायसर्वायतुभ्यंमह्यंनमोनमः ॥ तेभ्योपिचनमस्तेस्तुयेमांत्वांप्रवदंतिच ॥ ३३ ॥ अखिलानंत संभोगानस्पृष्टादोषवृत्तिभिः ॥ जयत्यकृतसंरंभासाक्षितापरमात्मनः ॥ ३४ ॥ आत्मन्पुष्पइवामोदो भस्त्रापिंडइवानिलः ॥ तिलेतैलमिवास्मिंस्त्वंसर्वत्रवपुषिस्थितः ॥ ३५ ॥ हंसिपासिददासित्वमवस्फूर्जसिवल्गसि ॥ अनहंकृतिरूपोपिचित्रेयंतवमायिता ॥ ३६ ॥

अर्थ—सबसे परे, सर्वरूप, साक्षीरूप तुमको बार २ नमस्कारहै, और उन गुरू वा वेदान्तशास्त्रोंकोभी नमस्कारहै, जो तुमको (ब्रह्मको) मेराही रूप कहते हैं ॥ ३३ ॥ सम्पूर्ण अनन्त भोग जिसके प्रकाश्यहैं, और जो प्रकाश्य पदार्थोंकी दोषकी वृत्तियोंसे स्पृष्ट नहीं है, तथा अभिनिवेशन करनेवाली (उदासीन) परमात्माकी साक्षिता सर्वोपरि है ॥ ३४ ॥ हे आत्मन् ! जैसे पुष्पमें सौगंध्य, भाथीमें वायु, और तिलमें तेलहै ऐसेही सर्वत्र शरीरमें सारभूत तुम ही स्थितहो ॥ ३५ ॥ हे आत्मन् ! अहंकारसे शून्य भी तुम ही सब दुष्टोंको मारतेहो, भक्तोंको पालतेहो, तुमही गर्जतेहो, और तुमही जगत्के व्यवहारभी करतेहो ! अहो तुमारी माया विचित्रहै ॥ ३६ ॥

जयामीशज्वलद्दीप्तिःसर्वमुन्मीलयञ्जगत् ॥ जयाम्युपरतारंभोजगद्भूयोनिमीलयन् ॥ ३७ ॥ परमाणोस्तवैवांतरिदंसंसारमंडलम् ॥ वटत्वंवटधानायांबभूवास्तिभविष्यति ॥ ३८ ॥ हयद्विपरथाकारैर्यद्वत्खे दृश्यतेंबुदः ॥ तद्वदालोक्यसेदेवपदार्थशतविभ्रमैः ॥ ३९ ॥ भावानांभूरिभंगानामभवायभवायच ॥ भवभावविमुक्तात्माभावाभावबहिष्कृतः ॥ ४० ॥

अर्थ—सृष्टिकालमें सबके तुम चेतनरूपसे प्रदीप्त शरीरसे बाह्य तथा आभ्यन्तर पदार्थोंको प्रकाशनेसे जाज्वल्यमान मैं जीवभावसे सबमें प्रवेश करके नामरूपात्मक सब जगत्को निरूपण करता हुआ तुमारेही रूपसे सब जगत्को वश करते हुये पालन करताहुं, और प्रलयकालमें जगत्के आरम्भसे उपराम होके जगत्का पुनः संहार करता हुआ तुमारे (चेतन) रूपसे सबको जीतताहुं ॥ ३७ ॥ परमाणुरूप तुममेंही यह सब संसार मण्डलहै, क्योंकि वटमेंही वटत्व (वटपना) था, है, और होगा ॥ ३८ ॥ जैसे आकाशमें मेघ अश्व (घोडे) हस्ती और रथादि आकारसे देखपडताहै ऐसेही हे देव सैकडों पदार्थोंके भ्रमसे तुमही लक्षित होते हो ॥ ३९ ॥ अनेक प्रकारके आकारवाले पदार्थोंके बाधके अर्थ, निरतिशय आनन्दके आविर्भावके अर्थ, और असंग आत्माके दर्शनसे भाव अभावसे पृथक् उसी शुद्धआत्मभावसे सदा तुम विमुक्त आत्मा होओ ॥ ४० ॥

जहिमानंमहाकोपंकालुष्यंक्रूरतांतथा ॥ नमहांतोनिमज्जंतिप्राकृतेगुणसंकटे ॥ ४१ ॥ प्राक्तनींदीर्घदौरात्म्यदशांस्मृत्वापुनःपुनः ॥ कोहंकितद्भूवेतिहसन्मुक्ताच्छटासितम् ॥ ४२ ॥ तेमयाताःसमारंभाग तास्तेदग्धवासराः ॥ येषुचिंतानलज्वालाजालाकीर्णोभवानभूत् ॥ ४३ ॥ अद्यत्वंदेहनगरेराजास्फार मनोरथः ॥ नदुःखैर्गृह्यसेनापिसुखैर्व्योमकरैरिव ॥ ४४ ॥

अर्थ—इस विमुक्त भाव प्राप्त होनेके अर्थ मान, महाक्रोध, कलुषता, और क्रूरताको त्यागो, क्योंकि महात्मालोग साधारण गुणोंके संकटमें नहीं डूबते॥४१॥मैं कौनहुं और कौन था यह विचार करके मोतियोंकेसमान स्वच्छ हंसते हुये पूर्वकालकी दीर्घ शरीरादिमें आत्माभिमानरूप तथा कामक्रोधादि दुष्टताको त्यागो ॥४२॥ वे समारम्भ और वे दुष्ट (नष्ट) दिन बीतगये जिनमें तुम चिन्तारूप अग्निकी ज्वालाके जालसे व्याप्तथे ॥४३॥ इससमय तुम विशाल मनोरथसहित देहरूप नगरमें राजा हो तुम दुःख वा वैषयिक सुखोंसे ऐसे वशीभूत नहीं होसकते जैसे मुट्ठीसे आकाश ४४

अद्येंद्रियदुरश्वांश्चजित्वाजितमनोगजः ॥ भोगारिमभितोभंक्त्वासाम्राज्यमधितिष्ठसि ॥ ४५ ॥ अपारांबरपांथस्त्वमजस्रास्तमयोदयः ॥ अवभासकरोनित्यंबहिरंतश्चभास्करः ॥ ४६ ॥ सर्वदैवासिसंसुप्तःशक्त्यासंबोध्यसेविभो ॥ भोगालोकनलीलार्थंकामिन्याकामुकोयथा ॥ ४७ ॥ दृक्क्षुद्राभिरुपानीतंदूराद्रूपमधुत्वया ॥ पीयतेस्वीकृतंशक्त्यानेत्रवातायनस्थया ॥ ४८ ॥

अर्थ—अब तुम इन्द्रियरूप दुष्ट घोडोंको तथा मनरूप हस्तीको जीतकर और भोगरूप शत्रुओंको चारोंओ-रसे नष्ट करके सम्राज्यपर स्थितहो ॥ ४५ ॥ अपार आकाशके वटोही, वाह्य अविद्या दृष्टिमें निरन्तर अस्त और स्वरूपदृष्टिसे उदयमय तथा नित्य प्रकाशक तुम सूर्य्य हो ॥ ४६ ॥ अनादिकालसे संसुप्त और भोजकके अदृष्टशक्तिसे भोगोंके दर्शनकी लीलाके अर्थ उतनेही स्वरूपसे जागृत ऐसे होते हो जैसे कामिनीसे कामुक॥४७॥इन्द्रियोंकी वृत्तिरूप मधुमक्षिकाओंसे आनीत स्वीकृतरूपादि रूप मधुको नेत्र आदिरूप झरोखोंमें चित्शक्तिद्वारा पान करतेहो ॥ ४८ ॥

ब्रह्मांडकोटराध्वांतःप्राणापानपरैस्त्वया ॥ गतागतैर्ब्रह्मपुरेसंप्रेक्ष्यंतेप्रतिक्षणम् ॥ ४९ ॥ देहपुष्पेत्वंहिमोदोदेहेंदौत्वममृतामृतम् ॥ रसस्त्वंदेहविटपेशैत्यंदेहहिमेभवान् ॥ ५० ॥ त्वय्यस्तिविस्मयस्नेहः शरीरक्षीरसर्पिषि ॥ त्वमंतरस्यदेहस्यदारुण्यग्निरिवस्थितः ॥ ५१ ॥ त्वमेवानुत्तमास्वादःप्रकाश्यंतेजसामपि ॥ अवगंतात्वमर्थानांत्वंभासामवभासकः ॥ ५२ ॥

अर्थ—प्राण तथा अपानके निरोधमें तत्पर योगियोंसे ब्रह्मपुर (देह) में प्रतिक्षण अभ्यस्त, हृदयमें पिण्डीभूत प्राणोंके उठाके अन्य शरीरोंमें तथा लोकान्तरमें संचारके अनुकूल नानाप्रकारकी नाडियोंके मार्गोंमें गमनागमनरूप संचारोंसे दूसरे लोकमें वा अर्चिरादि मार्गसे सूर्य्यमण्डलमें जानेके अर्थ, ब्रह्माण्ड कोटरके वा ब्रह्मरन्ध्रके सुषुम्ना आदि नाडियोंके पर्व, स्वयं प्रकाश ज्योतिरूप तुमारे ही द्वारा प्रत्यक्षरूपसे देख पडते हैं ॥ ४९ ॥ हे आत्मन् ! देहरूप सुगन्ध तुम, देहरूप चन्द्रमें सत्य अमृत तुम, देहरूप वृक्षमें रस तुम, और देहरूप हिममें शीतता तुमहो ॥५०॥ सब प्राणियोंके शरीरमें निमित्तभूत जो स्नेहहै वह शरीररूप दुग्धके घृतमें घृतके समान सारता तुममें ही है ॥ ५१ ॥ सबसे उत्तम स्वादरूप तुम ही हो, सूर्य्य आदि तेजोंके प्रकाशके निमित्त पदार्थोंके ज्ञाता, और नेत्र आदि इन्द्रियोंकेभी प्रकाशक तुम ही हो ॥ ५२ ॥

स्पंदस्त्वंसर्ववायूनांत्वंमनोहस्तिनोमदः ॥ प्रज्ञानलशिखायास्त्वंप्राकाश्यंतैक्ष्ण्यमेवच ॥ ५३ ॥ त्वद्दृशादियमात्मीयावाचासंप्रविलीयते ॥ दीपवत्पुनरन्यत्रसमुदेतिकुतोपिसा ॥ ५४ ॥ त्वयिसंसारवर्तिन्यःपदार्थावलयस्तथा ॥ कटकांगदकेयूरयुक्तयःकनकेयथा ॥ ५५ ॥ भवानयमयंचाहंत्वंशब्दैरेवमादिभिः ॥ स्वयमेवात्मनात्मानंलीलार्थंस्तौषिवक्षिच ॥ ५६ ॥

अर्थ—सब प्राणोंमें स्पंद (गतिके प्रेरक) तुमहो, मनरूप हस्तीके मद अर्थात् भ्रमके निमित्त तुमहो और बुद्धिरूप अग्निकी शिखाके प्रकाश तथा उष्णताके निमित्त भी तुम ही हो ॥ ५३ ॥ तुमारे उपसंहारसे यह निजकी वाणी मरण मूर्छा और स्वप्नमें दीपकके तुल्य शान्त होजाती है तथा कालान्तर वा देहान्तरमें आपके ही प्रतापसे न जाने पुनः कहांसे उदयको प्राप्त होती है ॥ ५४ ॥ हे आत्मन् ! संसारमें रहनेवाली पदार्थोंकी पंक्तियां आपमें ऐसे रहती हैं जैसे सुवर्णमें कटक केयूर और अंगद आदिकी युक्ति ॥ ५५ ॥ हे भगवन् ! यह आप, यह हम, और यह तुम इत्यादि शब्दोंसे स्वयं अपनी लीलाके अर्थ स्तुति आदि व्यवहार करतेहो और अन्यरूपसे कहते भी हो ॥ ५६ ॥

मंदानिलविनुन्नोद्योगजाश्वनरदृष्टिभिः ॥ यथासंलक्ष्यतेव्योम्नितथात्वंभूतदृष्टिभिः ॥ ५७ ॥ यथाहयगजाकारैर्ज्वालालसतिवह्निषु ॥ तथैवाव्यतिरिक्तस्त्वंदृश्यसेभुविसृष्टिषु ॥ ५८ ॥ त्वंब्रह्मांडकमुक्तानामच्छिन्नस्तंतुराततः ॥ क्षेत्रंत्वंभूतसस्यानांचिद्रसायनसेवितम् ॥ ५९ ॥ असत्तदनभिव्यक्तंपदार्थानांप्रकाश्यते ॥ त्वयातत्त्वंयथापक्त्यामांसानांस्वादवेदनम् ॥ ६० ॥

अर्थ—जैसे मन्द पवन छिन्नभिन्न मेघ आकाशमें कदाचित् हांथी घोडे और मनुष्य आदिरूपसे देखपडताहै ऐसेही भूतोंकी दृष्टिसे तुम भान होते हो ॥ ५७ ॥ जैसे प्रत्येक काष्ठोंके जलनेपर अग्निकी ज्वालाओंमें कोई२ ज्वाला अश्व वा गजके आकारसे शोभित होती है ऐसेहो इस भूतमण्डलकी सृष्टियोंमें आप भी अभिन्न आकारोंके होनेपर भी भिन्न आकारोंसे देख पडतेहो ॥ ५८ ॥ ब्रह्माण्डरूप मुक्ताफलोंके अखण्डित विशाल सूत्र तुमहीहो और प्राणीरूप सस्योंके चित्‌रूप रसायनसे सेवित क्षेत्र तुम ही हो ॥ ५९ ॥ अप्रकट अतएव असत्के तुल्य अविद्या बीजके भीतर स्थित सृज्यमान पदार्थोंके प्रसिद्ध तत्व सृष्टिरूपसे तुम ही ऐसे प्रकाशित होतेहो जैसे पाकसे मांसोंका स्वाद ॥ ६० ॥

विद्यमानापिवस्तुश्रीर्नस्थितात्वयिनस्थिते ॥ वनितारूपलावण्यसत्तेवगतचक्षुषः ॥ ६१ ॥ सदपीदनसत्तायैवस्तुनावर्जितंत्वया ॥ तृसयेनस्वलावण्यंमुकुरात्प्रतिबिंबितम् ॥ ६२ ॥ लुठतित्वांविनादेहःकाष्ठलोष्टसमःक्षितौ ॥ सन्नप्यसन्नगाच्छायःश्यामास्वबरविंविना ॥ ६३ ॥ सुखदुःखक्रमःप्राप्यभवंतंपरिनश्यति ॥ प्राकाश्यमासाद्ययथातमस्तेजोथवाहिमम् ॥ ६४ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! आपके अभावमें विद्यमान भी पदार्थोंकी शोभा ऐसे स्थिर नहीं है जैसे नेत्रके न होनेपर स्त्रीके रूपकी सुन्दरताकी सत्ता ॥ ६१ ॥ हे भगवन् ! विद्यमान भी वस्तु आपसे अर्थ क्रिया की शक्तिसे अनुगृहीत न होनेसे कार्य्य करनेमें ऐसे असमर्थ होती है जैसे दर्पणमें प्रतिबिम्बित भी अपने मुखकी सुन्दरता स्त्रीके चुंबनादि तृप्तिके लिये नहीं होती ॥ ६२ ॥ हे भगवन् ! आपके बिना यह देह काष्ठ लोष्ठके समान पृथिवीपर लोटे, जैसे पर्वतकी उच्चता सूर्य्यके अन्धकारमयी रात्रियोंमें विद्यमान भी व्यर्थ ही है ॥ ६३ ॥ हे भगवन् ! आपको प्राप्त होनेसे विषयके सुख वा दुःखका क्रम ऐसे नष्ट होजाताहै जैसे प्रकाशके निमित्त तेजको प्राप्त होके अन्धकार वा हिम ॥ ६४ ॥

त्वदालोकनयैवैतेस्थितिंयांतिसुखादयः ॥ सूर्यालोकनयाप्रातवर्णाःशुक्लादयोयथा ॥ ६५ ॥ लब्धात्मे नोविनश्यंतिसंबंधक्षणएवते ॥ तेतमांसीवदीपस्यदृष्टाइवव्रजंत्यलम् ॥ ६६ ॥ तमस्तातमसोदीपास त्तायांस्फुटतांगता ॥ दीपसंबंधसमयेसाचोत्पद्याविनश्यति ॥ ६७ ॥ ततेवंसुखदुःखश्रीर्दृष्टैवत्वामनाम यम् ॥ जायतेजातमात्रैवंसर्वनाशेननश्यति ॥ ६८ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! आपके दर्शनमात्रसे ये सब सुखादि ऐसे स्थिरताको प्राप्त होते हैं जैसे सूर्य्यके दर्शनमात्रसे प्रातःकालमें शुक्लादि वर्ण ॥ ६५ ॥ क्योंकि आपके दर्शनमात्रसे उनका जन्म होताहै इसलिये अन्तिम साक्षात्कारसे प्रदीप्त आपके सम्बन्धके ही क्षणमें वे विषयके सुख तथा दुःख नष्ट होजाते हैं परन्तु जब आप उनको देखते हैं तब ऐसे वे जाते हैं जैसे दीपके देखनेसे तम (अन्धकार) ॥६६॥ दीपके अभावमें ही अन्धकारकी अन्धकारता प्रत्यक्ष रूपताको प्राप्त होती है और दीपका सम्बन्ध होतेही वह उत्पन्न होकर नष्ट होजाती है ॥ ६७ ॥ इसलिये सुखदुःखकी शोभा मंगलमूर्ति आपके दर्शन (सत्ता) मात्रसेही उत्पन्न होती है और आपके साक्षात्कारसे उत्पन्न होते ही बीजभूत सर्व अविद्याके साथ नष्ट होजाती है ॥ ६८ ॥

भंगुरत्वादिहस्थातुंकालंनाणुमपिक्षमा ॥ निमेषलक्षभागाख्यातन्वीकालकलायथा ॥ ६९ ॥ गांधर्वीन गरीतन्वीसुखदुःखादिभावना ॥ स्फुरतित्वत्प्रसादेनत्वयिदृष्टेविलीयते ॥ ७० ॥ त्वदालोकेक्षणोद्भूता त्वदालोकेक्षणक्षया ॥ मृतेवजाताजातेवमृताकेनोपलक्ष्यते ॥ ७१ ॥ क्षणमप्यस्थिरंवस्तुकथंकार्यकरं भवेत् ॥ तरंगैरुत्पलाकारैर्मालाकथमवेक्ष्यते ॥ ७२ ॥

अर्थ—क्योंकि सुख दुःखकी श्री विषयके अभावमें भंगुर होनेसे निरतिशय आनन्दरूप आत्मामें क्षणभरमें स्थित होनेके ऐसे समर्थ नहीं है जैसे अति सूक्ष्म निमेषकालके लक्षतम (लाखवां) भाग कालकी कला ॥ ६९ ॥ इसीप्रकार अति सूक्ष्म होनेसे अनुसन्धान करनेमें अशक्य गन्धर्वकी नगरीके तुल्य मिथ्याभूतभी सुखदुःखकी भावना आपके प्रसादसे अज्ञान प्राणीके लिये सत्यके समान प्रतीत होती हैं परन्तु आपके देख पडनेसे तत्कालमेंही नष्ट होजाती है ॥ ७० ॥ आपके दर्शन अज्ञात होनेके क्षणमें दुष्ट नेत्रसे उत्पन्न और तुमारे दर्शनके ज्ञानसे क्षयको प्राप्त इसप्रकारकी यह वैषयिक सुखदुःखादिकी शोभा मृतक होके स्वप्नमें पुनः उत्पन्न और स्वप्नमें जाग्रतमें मृतकके समान आपके सिवाय किसको भान होसकती है ॥ ७१ ॥ मिथ्याभूत वस्तु जो क्षणभरभी स्थिर नहीं हैं वह भला किसरीतीसे कार्यकारी होसकती है क्योंकि बुद्धि तरंगोंसे रचित माला भला कैसे देखपड सकती है ॥ ७२ ॥

यदावाजातनिर्नष्टंक्रियांवस्तुकरिष्यते ॥ तदारमेतलोकोयंमालांकृत्वातडिद्गणैः ॥ ७३ ॥ इमांसुखादि कालक्ष्मींविवेकिजनचेतसि ॥ स्थितःसन्नेवगृह्णासिनजहासिसमस्थितिम् ॥७४॥ अविवेकिषुयोसित्वं सहजात्मन्यदृच्छया ॥ तद्रूपकथनेनालंममानल्पपदास्पद ॥७५॥ निरीहेणनिरंशेननिरहंकृतिनात्वया ॥ सतावाप्यसतावापिकर्तृत्वमुररीकृतम् ॥ ७६ ॥

अर्थ—यदि उत्पन्न होतेही नश्वर पदार्थ अर्थक्रिया करै तो यह संसार विद्युत्की माला पहिनके रमण करै ॥ ७३ ॥ हे आत्मरूप ब्रह्मन् ! उक्त रीतिसे दुर्घट इस सुखदुःखकी लक्ष्मीको दुर्घटताके ज्ञाता विवेकियोंके हृदयमें स्थित होके तुम ग्रहण (अनुभव) करते हो परन्तु अपनीसमान स्थितिको नहीं त्यागते ॥ ७४ ॥ हे नानाप्रकारके नाम तथा रूपके आश्रय भगवन् ! अविवेकियोंके हृदयमें तो जो कुछ आपहैं उस रूपको अकस्मात् नानाप्रकारकी वासनाके आविर्भूत होनेसे मेरी वाणी कहनेमें समर्थ नहीं है ॥ ७५ ॥ चेष्टा, अवयव और अहंकाररहित, मूर्त स्थूलदेहोपाधिवाले तथा अमूर्त सूक्ष्म देहोपाधिवाले आपने अध्यासद्वारा कर्तृता स्वीकार की ॥ ७६ ॥

जयप्रोड्डामराकारजयशांतिपरायण ॥ जयसर्वागमातीतजयसर्वागमास्पद ॥ ७७ ॥ ॥ जयजातजयाजा तजयक्षतजयाक्षत ॥ जयभावजयाभावजयजेयजयाजय ॥ ७८ ॥ उल्लसाम्युपशाम्याभितिष्ठाम्यधिगतो

स्मिच ॥ जयीजयायजीवामिनमोमह्यंनमोऽस्तुते ॥ ७९ ॥ त्वयिस्थितेमयिविगतामयात्मनिस्वसंस्थितौ व्यपगतरागरंजने ॥ क्वबंधनंक्वचविपदःक्वसंपदोभवाभवौक्वशममुपैमिशाश्वतम् ॥ ८० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेपूपशमप्रकरणे आत्मस्तवनं नाम षट्त्रिंशःसर्गः ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे ब्रह्माण्डादि अति विस्तृत आकारवाले परमात्मन्! आपका जय हो, हे शान्तिपरायण! आपका जय हो, हे प्रत्यक्षादि सब प्रमाणोंसे परे! आपका जय हो, तथा हे सब प्रमाणोंके आश्रय! आपका जय हो ॥७७॥ हे [illegible]रूपसे जात (उत्पन्न) आपका जय हो, हे शुद्धरूपसे अजात (अनुत्पन्न) आपका जय हो, हे क्षत! आपका जय हो, हे स्वाभाविकरूपसे अक्षत! आपका जय हो, हे भावरूप! आपका जय हो, हे अभावरूप! आपका जय हो, हे अविद्यासंबन्धीरूप जेय (जीतने योग्य) आपका जय हो, हे अजेय! आपका जय हो ॥ ७८ ॥ उल्लास तथा शान्तिको प्राप्त मैं अपने स्वरूपसे स्थित हूं, और अविद्या सम्बन्धीरूपसे शून्य जयवाला होनेसे मैं विजयीहूं, तथा शेष प्रारब्ध कर्मको जीतनेके अर्थ जीताहूं, प्रत्यक् आत्मस्वरूप मुझे तथा ब्रह्मस्वरूप आपको नमस्कारहै ॥ ७९ ॥ सब प्रपंच तथा राग द्वेषसेरहित आपके रूपसे अभिन्नरूपसे मेरे स्थित होनेपर कहां बन्धन! कहां विपत्ति! कहां सम्पत्ति! और कहां जीवनमरण! अर्थात् मुझ शुद्धरूपमें इन सबका अभावहै इसलिये मैं निरन्तर शान्ति सुखको प्राप्त होताहूं ॥ ८० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे आत्मस्तवनं नाम षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥

इस ३७ वें सर्गमें प्रल्हादके समाधिस्थ होनेपर, नायक शून्य चोरोंसे पीडित, और दुर्दशाग्रस्त वह दानवोंका नगर होगया इस विषयका वर्णन किया गयाहै ॥

॥ वसिष्ठउवाच ॥ इतिसंचिंतयन्नेवप्रल्हादःपरवीरहा ॥ निर्विकल्पपरानंदसमाधिंसमुपाययौ ॥ १ ॥ निर्विकल्पसमाधिस्थश्चित्रार्पितइवाचलः ॥ शैलादिवसमुत्कीर्णोबभौस्वपदमास्थितः ॥ २ ॥ तथावुतिष्ठ [illegible]न्नस्यकालोबहुतरोययौ ॥ स्वगृहेभुवनस्थस्यमेरोरिवसुरद्विपः ॥ ३ ॥ बोधितोप्यसुराधीशैर्नबुध्यत महामतिः ॥ अकालेबहुसेकोपिबीजकोशादिवांकुरः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-इस पूर्वोक्त रीतिसे वर्णित आत्माका चिंतन करते हुये, शत्रुओंके वीरोंके हन्ता प्रल्हादजी परम आनन्दमय निर्विकल्प समाधिमें प्राप्त हुये ॥१॥ निर्विकल्प समाधिमें अपने स्वरूपके साम्राज्यमें स्थित प्रल्हादजी चित्रमें लिखित पर्वत वा पर्वतसे खुदी हुई प्रतिमाके सदृश शोभित हुये ॥ २ ॥ देव शत्रु, प्रल्हादको अपने गृहमें उसप्रकार समाधि करते हुये अधिककाल ऐसे बीतगया जैसे भुवनमें स्थित सुमेरू पर्वतको ॥३॥ असुरोंके अधीशोंसे बोधितहोनेपर भी यह महामति ऐसे नहीं जागृतहुआ जैसे अकालमें अधिक सींचनेपरभी बीजके कोशसे अंकुर॥४

एवंवर्षसहस्राणिपीनात्मातिष्ठदेकदृक् ॥ शांतरूपासुरपुरेमार्तंडइवचोपले ॥ ५ ॥ परानंददशैकांतपरिणामितयातया ॥ निरानंदंपराभासमिवाभासपदंगतः ॥ ६ ॥ एतावताथकालेनतद्रसातलमंडलम् ॥ बभूवाराजकंतीक्ष्णंमात्स्यन्यायकदर्थितम् ॥ ७ ॥ हिरण्यकशिपौक्षीणेसमाधौतत्सुतेस्थिते ॥ नबभूवापरःकश्चिद्राजादनुसुतालये ॥ ८ ॥

अर्थ—इसप्रकार शान्तरूप ब्रह्ममय एक पदार्थका ध्यान करते हुये अपने नगरमें प्रल्हादजी सहस्र वर्षपर्य्यंत ऐसे स्थित रहे जैसे पाषाणमें खुदे हुये सूर्य्य ॥ ५ ॥ हे रामजी! उस परमानन्दकी दशामें सर्वथा एकरस होनेसे, और देखनेवालोंकी दृष्टिमें असत्के तुल्य आनन्दसहित तथा परमात्माके प्रकाशसे वर्जित मरण दशामें प्राप्तके समान प्रल्हाद होगये ॥ ६ ॥ इतने समयमें वह रसातलका मण्डल राजासे शून्य मत्स्य न्याय (बलवान् मत्स्य निर्बलको मारते तथा निकाल भी देते हैं न्याय) से पीडित होगया ॥ ७ ॥ हिरण्यकशिपुके मरने तथा उसके पुत्र प्रल्हादके समाधिस्थ होनेपर उस दैत्योंके नगरमें अन्य कोई राजा नहीं हुआ ॥ ८ ॥

असुरेशार्थिनांतेषांदानवानांसमाधितः ॥ परेणापिप्रयत्नेनप्रह्लादोनव्यबुध्यत ॥ ९ ॥ नप्रापुर्विकसद्रूपंप तितममरारयः ॥ लसत्पत्रलताजालंनिशिपद्ममिवालयः ॥ १० ॥ संविद्वादोनतस्यांतरबोध्यतविचेत

सः ॥ भुवश्चेष्टाक्रमइवपौरुषोगतभास्वतः ॥ ११ ॥ अथोद्विग्नेषुदैत्येषुगतेष्वभिमतांदिशम् ॥ विचरत्सुयथाकाममराजनिपुरेपुरा ॥ १२ ॥

अर्थ—असुरोंके स्वामी चाहनेवाले उन दानवोंके महान् प्रयत्न करनेपर भी प्रल्हाद समाधिसे न उठा ॥ ९ ॥ उन देवताओंके शत्रुओंने जाग्रत्‌रूप उस अपने पतिको ऐसे न पाया जैसे रात्रिमें विकसित पत्र तथा लता समूहसहित कमलको भ्रमर ॥ १० ॥ गलित चित्त प्रल्हादके अन्तःकरणमें प्रबोधकी वार्ता ऐसे नहीं थी जैसे सूर्य्यास्तयुक्त पृथिवीपर सोते हुये पुरुषोंकी स्नान दान प्रस्थान और धावनादि चेष्टाकी रीति ॥ ११ ॥ इसके पश्चात् दैत्योंके व्याकुल होनेपर तथा घबडाके अपनी अभिमत दिशाओंमें चलजानेपर, और राजारहित उस नगरमें बलवान् ..क-रादि दैत्योंके अपनी इच्छापूर्वक विचरनेपर ॥ १२ ॥

चिरायपातालमभूदभूपालतयातया ॥ मात्स्यन्यायविपर्यस्तमस्तंगतगुणक्रमम् ॥ १३ ॥ बलिमुक्ताबलपुरंमर्यादाक्रमवर्जितम् ॥ सर्वार्त्ताशेषवनितंपरस्परहृतांबरम् ॥ १४ ॥ प्रलापाक्रंदपुरुषंविसंस्थानपुरांतरम् ॥ लुठद्दुद्यानगरंव्यर्थानर्थकदर्थितम् ॥ १५ ॥ चिंतापरासुरगणंनिरन्नफलबांधवम् ॥ अकांडोत्पातविवशंध्वस्ताशामुखमंडलम् ॥ १६ ॥ सुरार्भकपराभूतंभूतैराक्रांतमंत्यजैः ॥ भूतरिक्तमलक्ष्मीकमुच्छिन्नप्रायकोटरम् ॥ १७ ॥ अनियतवनितार्थमंत्रयुद्धंहृतवनदारविरावितंसमंतात् ॥ ॥ कालियुगसमयोद्धदोत्कटाभंतदसुरमंडलमाकुलंबभूव ॥ १८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे असुरमंडलव्याकुलीभवनं नाम सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥

अर्थ—अराजता होनेके कारण वह पाताललोक गुण क्रमसे रहित मात्स्यन्यायसे ग्रस्त होगया ॥ १३ ॥ जहां बलवानोंने निबलोंके नगर छीन लियेथे तथा मर्यादाकी रीतिसे वर्जित जहां सबसे अधिक स्त्रियां पीडित होरही थी तथा जहां परस्पर एक दूसरेके वस्त्र छीने जातेथे ॥ १४ ॥ जहां पुरुषलोग रोदन कररहे थे, स्थानादि तोड डाले गयेथे, वाटिका तथा नगरोंके निवासीजन इधर उधर लोट रहेथे इसप्रकार और व्यर्थ अनेक अनर्थोंसे वह नगर पीडितथा ॥ १५ ॥ जहां असुरोंके समूह चिन्तामें निमग्नथे, अन्न और फलसे रहित वा बांधवगणथे, तथा आकस्मिक उत्पातसे परबश और सम्पूर्ण दिशाओंके मुखमण्डल रेणुओंसे व्याप्तथे ॥ १६ ॥ देवताके बालकोंसेभी तिरस्कृत, और चाण्डालादि तामस जीवोंसेभी आक्रान्त, प्राणियोंसे तथा धनसे रहित, और उच्छिन्नके समानहैं कोटर.. वह नगर होगया ॥ १७ ॥ जहां स्त्री, धन, मंत्र, और युद्धादि लिये विरोधभी नियत नहींथा, धन और स्त्रीरहित पुरुष चारोंओरसे शब्द कररहेथे, और कलियुगके समयमें दूसरोंके धनादि हरनेमें उत्कठ तथा क्रूर भट वा तस्करोंके समान वह असुरोंका मण्डल होगया ॥ १८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे असुरमण्डलव्याकुलीभवनं नाम सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥

इस ३८ के सर्गमें जगत्‌की व्यवस्थाकी सिद्धिके लिये विष्णुकी चिन्ता और दैत्योंके कुलकी रक्षाके लिये प्रल्हादका जगाना इत्यादि विषयका वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथाखिलजगज्जालक्रमपालनदेवनः ॥ क्षीरोदनगरेशेषशय्यासनगतोहरिः ॥ १ ॥ प्रावृण्णिद्राव्युपरमेदेवार्थमरिसूदनः ॥ धियाविलोकयामासकदाचिज्जागतींगतिम् ॥ २ ॥ त्रिविष्टपंस्वमनसापार्थिवंचावलोक्यसः ॥ आचारमाजगमाशुपातालमरिपालितम् ॥ ३ ॥ तत्रस्थिररसमाधानेस्थिते प्रह्लाददानवे ॥ दृष्ट्वासंपदमिंद्रस्यपुरेप्रौढिमुपागताम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! इस वृत्तान्तके पश्चात् सब जगत्‌के समूहकी मर्य्यादाओंका पालनादि क्रीडाकारी तथा क्षीरसमुद्ररूप नगरमें शेषकी शय्यापर शयन करनेहारे विष्णुभगवान् ॥ १ ॥ जो कि शत्रु सूदनहैं उन्होंने वर्षाकालकी निद्राके निवृत्त होनेपर देवताओंके कार्य्यके अर्थ जगत्‌की उससमयकी दशाको कदाचित् बुद्धिसे देखा ॥ २ ॥ प्रथम स्वर्गके, अनन्तर पृथिवीके प्राणियोंके शुभ अशुभ आचरणको मनसे देखके पश्चात् शत्रुओंसे पालित पातालमें मनसे ही गये ॥ ३ ॥ वहांपर प्रल्हाददैत्यके समाधिमें स्थिर होनेपर, और इन्द्रके नगरमें सम्पत्तिकी वृद्धिको देखकर ॥ ४ ॥

स्यात्मतल्पतलस्थस्यक्षीरोदार्णवशायिनः ॥ शंखचक्रगदापाणेर्देहस्यांतरचारिणः ॥ ५ ॥ पद्मासनस्थस्यमनःशरीरेणातिभास्वता ॥ इदंसंचितयामासत्रैलोक्याब्जमहालिना ॥ ६ ॥ प्रह्लादेपदविश्रांतेपातालेगगनायके ॥ कष्टंसृष्टिरियंप्रायोनिर्दैत्यत्वमुपागता ॥ दैत्याभावेसुरश्रेणीनिर्जिगीषुपदंगता ॥ शममेष्यत्यदृष्टाब्दपटलेपुसरिद्यथा ॥ ८ ॥

अर्थ—क्षीरसागरशायी, शेषशय्यापर स्थित, और शंख चक्र गदाधारी, तथा सब देहके अन्तरमें चलनशील विष्णुभगवान्के मनसे कल्पित अति प्रकाशमान और त्रिलोकरूप कमलके भ्रमररूप शरीरसे यह वक्ष्यमाण कर्तव्य निश्चयसे चिन्तन कियागया कि ॥ ५ ॥ ६ ॥ समाधिरूप सम्राज्यपदमें प्रल्हादके विश्रान्त होनेपर और नायकशून्य पातालके होनेपर, अहो ! कष्टका अवसरहै कि प्रायः यह सृष्टि दैत्योंसेरहित दशाको प्राप्त होगई है ॥ ७ ॥ और दैत्योंके अभावमें देवमण्डली विजयकी इच्छाके राहित्यपदको प्राप्त होगी, और इससे ऐसे शान्तिको प्राप्त होगी जैसे वर्षाके अन्तमें मेघपटलके न देख पडनेपर शरदऋतु ॥ ८ ॥

मोक्षाख्यंनिर्गतद्वंद्वंततोयास्यतितत्पदम् ॥ क्षीणाभिमानविरसालतेवप्रविशुष्कताम् ॥ ९ ॥ देवौघेशांतिमायातेभुवियज्ञतपःक्रियाः ॥ अदेवत्वफलाःसर्वाःशममेष्यंत्यसंशयम् ॥ १० ॥ क्रियास्वथोपशांतासुभूर्लोकोस्तमुपेष्यति ॥ असंसारप्रसंगोथतस्यनाशेभविष्यति ॥ ११ ॥ आकल्पांतंत्रिभुवनंयदिदंकल्पितंमया ॥ नाशमेष्यत्यकालेनतापेहिमकणोयथा ॥ १२ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् अभिमानशून्य स्वर्गसुखसे विरक्त यह देवमण्डली द्वन्द्वरहित मोक्षपदको ऐसे प्राप्त होगी जैसे रसरहित लता शुष्कताको ॥ ९ ॥ देवोंके समूहके शान्त होनेपर पृथिवीपर देवताओंकी प्रसन्नतारूप फलसेरहित यज्ञ तप तथा दानादि क्रिया सब निश्चय शान्तिको प्राप्त होजायगे ॥ १० ॥ और क्रियाके शान्त होनेपर कर्मभूमि भूलोक अस्त होजायगा और कर्मभूमिके अस्त होनेपर कर्मके आधीन संसारकाही नाश प्राप्त होगा ॥ ११ ॥ तो कल्पपर्य्यन्त स्थायी होनेके अर्थ जो त्रिभुवनको मैंने रचाथा वह कुसमयमें ऐसे नाशको प्राप्त होगा जैसे आतपसे हिमका कण ॥ १२ ॥

किमेवमस्मिन्नाभोगेविलीयक्षयमागते ॥ कृतंमयेहभवतिस्वलीलाक्षयकारिणा ॥ १३ ॥ ततोहमपिशून्येस्मिन्नष्टचंद्रार्कतारके ॥ वपुःप्रशांतिमाधायस्थितिमेष्यामितत्पदे ॥ १४ ॥ अकांडएवमेवंहिजगत्युपशमंगते ॥ नेहश्रेयोनपश्यामिमन्येजीवंतुदानवाः ॥ १५ ॥ दैत्योद्योगेनविबुधास्ततोयज्ञतपःक्रियाः ॥ तेनसंसारसंस्थानंनसंसारक्रमोन्यथा ॥ १६ ॥

अर्थ—इस जगत्की रचनाके विलीन होके क्षयको प्राप्त होनेपर अपने लीलाके क्षय करनेवाले मैंने क्या उचित कर्म किया ॥ १३ ॥ इस लीलाके क्षयके पश्चात् चन्द्र सूर्य्य और तारागणसे शून्य इस जगत्में लीलाके अर्थ इस शरीरका उपसंहार सम्पादन करके पुनः संसारके उत्पत्ति न होनेके अर्थ उस अपने पूर्णपदमें विश्राम पाऊंगा ॥ १४ ॥ इसप्रकार कुसमयमें जगत्के शान्त होनेपर ज्ञानसे जो मोक्षरूप कल्याणहै उसे मैं नहीं देखता इसलिये मैं चाहताहुं कि जगत्में दानवलोग जीवें ॥ १५ ॥ और दैत्योंके उद्योगसे देवतालोगोंके उद्योगी होनेपर यज्ञ तप आदि क्रिया प्रवृत्त होंगी और इससे संसारकी रचना होगी जिससे संसारका क्रम अन्यथा नहीं होगा ॥ १६ ॥

तस्माद्रसातलंगत्वायथावत्स्थापयाम्यहम् ॥ स्वेक्रमेदानवाधीशमृतुःपुनरिवद्रुमम् ॥ १७ ॥ विनाप्रह्लादमथचेदितरंदानवेश्वरम् ॥ करोमितदसौमन्येदेवानासादयिष्यति ॥ १८ ॥ प्रह्लादस्यत्वयंदेहःपश्चिमःपावनोमहान् ॥ आकल्पमिहवस्तव्यंदेहेनानेनतेनच ॥ १९ ॥ एवंहिनियतिर्देवीनिश्चितापारमेश्वरी ॥ प्रह्लादेनकथाकल्पंस्थातव्यमिहदेहिना ॥ २० ॥

अर्थ—इसकारणसे मैं रसातलमें जाके पूर्ववत् सब निज मर्य्यादाके दानवोंके स्वामीको ऐसे स्थापन करूंगा जैसे वसन्तआदिऋतु वृक्षको ॥ १७ ॥ यदि प्रल्हादके सिवाय अन्य किसीको दानवोंका स्वामी स्थापित करूं तो मुझे सम्भवहै कि वह देवताओंके ऊपर आक्रमण करेगा ॥ १८ ॥ और प्रल्हादका यह अन्तिमदेह महापवित्रहै और इस देहसे उसे कल्पपर्य्यन्त रहना चाहिये ॥ १९ ॥ इसप्रकार परमेश्वरकी नियति देवीसे निश्चितहै कि शरीर धारण करके प्रल्हादको इस लोकमें कल्पपर्य्यन्त रहना चाहिये ॥ २० ॥

तस्मात्तमेवगत्वाशुदैत्येंद्रंबोधयाम्यहम् ॥ गर्जन्गिरिनदीसुप्तंमयूरमिववारिदः ॥ २१ ॥ जीवन्मुक्तसमाधिस्थःकरोत्वसुरनाथताम् ॥ मणिर्मुक्तमनस्कारःप्रतिबिंबक्रियामिव ॥ २२ ॥ नहिनश्यतिसर्गोयमेवंसन्नसुरासुरैः ॥ भविष्यतिचतद्द्वंद्वंतन्मेक्रीडाभविष्यति ॥ २३ ॥ सर्गक्षयोदयावेतौसुसमौममयद्यपि ॥ तथापीदंयथासंस्थंभवत्वन्येनकिंमम ॥ २४ ॥

अर्थ—इसलिये मैं जाके उसी दैत्येन्द्रको ऐसे बोधन करताहुं जैसे गर्जता हुआ मेघ पर्वत वा नदीपर सोये हुये मोरको ॥ २१ ॥ और प्रल्हाद जीवन्मुक्तोंकी जो असंसक्तिरूप समाधिहै उसमें स्थित होके असुरोंकी स्वामिताको ऐसे करै जैसे चित्तकी चेष्टासे शून्यमणि प्रतिबिंबकी क्रियाको ॥ २२ ॥ इसप्रकार सृष्टिका नाश नहीं होगा और देवता दैत्योंका जो युद्ध होगा वह मेरी क्रीडा होगी ॥ २३ ॥ यद्यपि सृज्यमान पदार्थोंके क्षय तथा उदय मेरी दृष्टिमें समानहैं तथापि यह जैसाथा वैसाही रहै अन्यसृष्टि क्रमसे मुझे क्या लाभ ॥ २४ ॥

भावाभावेषुयत्तुल्यंतन्नाशेतत्स्थितौचवा ॥ यःप्रयत्नस्त्वबुद्धित्वात्तद्योगगमनंभवेत् ॥ २५ ॥ तस्मात्त्वयामिपातालंबोधयाम्यसुरेश्वरम् ॥ स्थैर्थयामिनसंसारलीलांसंपादयाम्यहम् ॥ २६ ॥ असुरपुरवाप्यप्रोद्धताचारघोरंकमलमिवविवस्वान्दैत्यमुद्बोधयामः ॥ जगदिदमखिलंस्वस्थैर्यमभ्यानयामोघन विधिरिवशैलेचंचलंमेघजालम् ॥ २७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे परमेश्वरवितर्कोनामाष्टत्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥

अर्थ—क्योंकि भाव अभाव, उत्पत्ति अनुत्पत्ति, और नाश तथा स्थितिमें जो तुल्यहै वह बुद्धिमें अभिनिवेशन होनेके कारण योगनिद्राके गमनके सदृश ही है इसलिये योगनिद्रा स्वरूपको त्यागकर दैत्यनगरमें गमन अनुचित है, यह शंका निवृत्त हुई ॥२५॥ इसलिये पातालमें जाताहुं और असुरोंके स्वामी प्रल्हादको समाधिसे जगाताहुं और जाते हुये भी मैं स्थिरताको प्राप्त होताहुं क्योंकि अज्ञानियोंके तुल्य संसार लीलाको नहीं करता ॥ २६॥ अति प्रचण्ड चोरोंके आचारसे भयंकर दैत्यपुरमें प्राप्त होकर प्रल्हाद असुरको ऐसे उद्बोधन करूं जैसे कमलको सूर्य्य; और इस कार्य्यसे इस संपूर्ण जगत्को पूर्वके समान स्थिरताको ऐसे प्राप्त करूं जैसे वर्षाऋतु पर्वतपर चंचल मेघजालको॥२७॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे परमेश्वरवितर्को नामाष्टत्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥

विष्णुभगवान् दैत्यपुरमें जाके प्रल्हादको शंखनादसे जगाया और उनसे कहा कि कल्पपर्य्यन्त राज्यका करो इस विषयका वर्णन ३९ के सर्गमें किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ इतिसंचिंत्यसर्वात्माक्षीरोदादात्मकात्पुरात् ॥ चचालपरिवारेणसहसानुरिवाचलः ॥ १ ॥ क्षीरोतदलरंध्रेणतेनैवस्तंभितांभसा ॥ प्रह्लादनगरंप्रापशक्रलोकमिवापरम् ॥ २ ॥ हेममंदिरकोशस्थंददर्शात्रासुरंहरिः ॥ अथशैलगुहालीनंसमाधिस्थमिवाब्जजम् ॥ ३ ॥ तत्रतेतेजसादैत्या वैष्णवेनावधूलिताः ॥ दूरंययुर्दिनेशांशुवित्रस्ताइवकौशिकाः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! इसप्रकार सर्वात्मा भगवान् चिन्तन करके अपने नगर क्षीरसागरके अन्तर्गत श्वेतद्वीपसे (लक्ष्मी आदि) सहित ऐसे चले जैसे शिखरोंके साथ पर्वत ॥ १ ॥ क्षीरसमुद्रके तलमें स्तंभित अधोभागमें छिद्रद्वारा स्वर्गके समान रमणीय प्रल्हादके नगरमें प्राप्त हुये ॥ २ ॥ इसके पश्चात् जहांपर सुवर्णके मंदिरके कोशमें स्थित विष्णुभगवान्ने प्रल्हादको ऐसे देखा जैसे सुमेरूपर्वतकी गुहामें लीन समाधिमें स्थित ब्रह्माको ॥ ३ ॥ वहांपर विष्णुके तेजसे तिरस्कृत दैत्यलोग ऐसे दूर चलेगये जैसे सूर्य्यके किरणसे तिरस्कृत उलूक ॥ ४ ॥

द्वित्रैःसहासुरैर्मुख्यैःपरिवार्युतोहरिः ॥ प्रविवेशासुरगृहंताराभिवानिवखंशशी ॥ ५ ॥ वैनतेयासनस्थोसौलक्ष्मीविधुतचामरः ॥ स्वायुधादिपरीवारोदेवर्षिमुनिवंदितः ॥ ६ ॥ महात्मन्संप्रबुद्ध्यस्वेत्येवंविष्णुरुदाहरन् ॥ पांचजन्यंप्रदध्मौचध्वनयन्ककुभांगणम् ॥ ७ ॥ महतातेनशब्देनवैष्णवप्राणजन्मना ॥ तुल्यकालपरिक्षुब्धकल्पाब्धार्णवरंहसा ॥ ८ ॥

अर्थ—मुख्य २ दोन तीन असुर तथा लक्ष्मीसहित विष्णुभगवाने असुरके गृहमें ऐसे प्रवेश किया जैसे तारासहित चन्द्रमा आकाशमें ॥ ५ ॥ गरूडके आसनपर स्थित, लक्ष्मीजीसे चमर तथा व्यजनादिद्वारा सेवित तथा अपने अस्त्र आदि परिवारसहित, देवर्षि तथा मुनियोंसे वन्दित ॥ ६ ॥ विष्णुभगवान् हे महात्मन् प्रल्हाद ! जागो ऐसा कहते हुये, और दिशाओंके समूहको शब्दयुक्त करते हुये पांचजन्य नाम शंख बजाया ॥ ७ ॥ विष्णुके बलके प्रभावसे उत्पन्न, और एककालमें क्षुब्ध समुद्रोंके प्रलयकालके शब्दके समान उस महाशब्दसे ॥ ८ ॥

आसुरीजनताभूमौपपातागतसंभ्रमा ॥ मत्तलीलाभ्रनादेनराजहंसावलीयथा ॥ ९ ॥ जहर्षजनितानंदा वैष्णवीगतसंभ्रमा ॥ जनताजलदध्वानफुल्लेवकुटजावली ॥ १० ॥ बभूवसंप्रबुद्धात्मादानवेशःशनैःशनैः ॥ मेघावसरउत्फुल्लकदंबइवकानने ॥ ११ ॥ ब्रह्मरंध्रकृतोत्थानाप्राणशक्तिरथासुरम् ॥ शनैराक्रमयामासगंगासर्वमिवार्णवम् ॥ १२ ॥

अर्थ—भय तथा मूर्छा प्राप्त होनेसे असुरोंका समूह पृथिवीपर ऐसे गिरपडा जैसे मत्त हाथीकी लीलाके मेघनादसे राजहंसोंकी पंक्ति ॥ ९ ॥ और आनन्द उत्पन्न होनेसे संभ्रम (भय) रहित वैष्णवोंका समूह ऐसे हर्षित हुआ जैसे मेघके शब्दसे विकसित कुटजोंकि पंक्ति ॥ १० ॥ और धीरे २ दानवोंका स्वामी ऐसे प्रबुद्ध हुआ जैसे मेघके समयमें जंगलमें विकसित कदम्ब ॥ ११ ॥ ब्रह्मरन्ध्रसे उठी हुई प्राण शक्तिने असुरको धीरे २ ऐसे पूर्ण किया जैसे समुद्रको गंगाजी ॥ १२ ॥

क्षणादाक्रमयामासप्राणश्रीस्सर्वतोसुरम् ॥ उदयानंतरंसौरीप्रभेवभुवनांतरम् ॥ १३ ॥ प्राणेषुरंध्रनवके प्रवृत्तेष्वथतस्यचित् ॥ चेत्योन्मुखीबभूवांतःप्राणदर्पणबिंबिता ॥ १४ ॥ चेतनीयोन्मुखीचेत्यंचिन्मनस्तामुपाययौ ॥ द्वित्वंमुकुरसंक्रांतामुखश्रीरिवराघव ॥१५॥ किंचिदंकुरितेचित्तेनेत्रेविकसनोन्मुखे ॥ शनैर्बभूवतुस्तस्यप्रातर्नीलेयथोत्पले ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रामजी! प्राणकी श्री प्रल्हाददैत्यको चारों ओरसे ऐसे पूर्ण किया जैसे उदयके पश्चात् सूर्य्यकी प्रभा लोकके अन्तरालको ॥ १३ ॥ इसके अनन्तर इन्द्रियोंकी वृत्तियोंके नवो छिद्रोंमें प्रवृत्त होनेपर सूक्ष्म शरीररूप दर्पणमें प्रतिबिम्बित चित् विषयकी ओर उन्मुख हुई ॥ १४ ॥ हे रामजी! चेतनीय विषयोंकी ओर उन्मुख चित् और विषयाकार संस्कारके उद्बोधसे विषयके तुल्य होके चित् और जडरूप मनरूपताको ऐसे प्राप्त हुई जैसे दर्पणमें प्रतिबिम्बित मुखकी श्री (शोभा) द्वित्वरूपताको ॥ १५ ॥ चित्तके कुछ अंकुरित होनेपर विकासकी ओर उन्मुख दोनों नेत्र ऐसे शोभित हुये जैसे प्रातःकालमें नील कमल ॥ १६ ॥

प्राणापानपरामृष्टनाडीविवरसंविदः ॥ वातान्तस्थेवपद्मस्यस्पंदोस्यसमजायत ॥ १७ ॥ निमेषांतरमात्रेणमनःपीवरतांययौ ॥ तस्मिन्प्राणवशात्पूर्णेतरंगइववारिणि ॥ १८ ॥ अथासौविकसन्नेत्रमनःप्राणवपुर्बभौ ॥ अर्द्धोदितइवादित्येसरःस्फुरितपंकजम् ॥१९॥ अस्मिन्नवसरेयावद्बुध्यस्वेत्यवदद्विभुः ॥ प्रबुद्धस्तावदेपोभूद्बर्हीघनरवादिव ॥ २० ॥

अर्थ—अन्तःकरणमें प्रविष्ट प्राण और अपान वायुसे उद्बोधित नाडीके छिद्रोंमें ज्ञानके निमित्तसे प्रल्हादके शरीरमें किंचित् संचलन ऐसे हुआ जैसे मन्द २ वायुसे प्रेरित कमलमें ॥ १७ ॥ प्राणके वशसे उस प्रल्हादके शरीरके पूर्ण होनेपर मन ऐसे स्थूलताको प्राप्त हुआ जैसे पूर्ण समुद्रमें तरंग ॥ १८ ॥ इसके पीछे विकसित नेत्र, मन प्राण और शरीरसहित प्रल्हाद इसप्रकार शोभित हुआ जैसे अर्द्ध सूर्य्योदय होनेपर विकसित कमलयुक्त तडाग ॥ १९ ॥ इसी अवसरमें जबतक विष्णुपरमात्माने यह कहा कि प्रल्हाद उठो इतनेहीमें यह ऐसे जाग्रत हुआ जैसे मेघके शब्दसे मोर ॥ २० ॥

प्रफुल्लनयनंजातमननंपीवरस्मृतिम् ॥ उवाचैनंत्रिलोकेशःपुरानाभ्यब्जजंयथा ॥ २१ ॥ साधोस्मरमहालक्ष्मीमात्मीयांस्मरचाकृतिम् ॥ अकांडएवकिंदेहविरामःक्रियतेत्वया ॥ २२ ॥ हेयोपादेयसंकल्पविहीनस्यशरीरगैः ॥ भावाभावैस्तवार्थःकिमुत्तिष्ठोत्तिष्ठसंप्रति ॥ २३ ॥ स्थातव्यमिहदेहेनकल्पंयावदनेनते ॥ वयंहिनियतिंविद्मोयथाभूतामनिंदिताम् ॥ २४ ॥

अर्थ—अनन्तर विकसित नेत्र, और अहंभावसहित तथा पूर्वकालकी स्मृतिकी वृद्धियुक्त प्रल्हादसे तीनोंलोकके स्वामी भगवान् ऐसे बोले जैसे पूर्वकालमें अपने नाभिकमलसे उत्पन्न ब्रह्माजीसे ॥ २१ ॥ हे साधो! तुम अपनी राज्यादि लक्ष्मी तथा अपनी आकृतिको स्मरण करो और यह अकालमेंही देहसे विरक्त क्यों होते हो ॥ २२ ॥ हेय और उपादेयके संकल्पसे हीन, शरीरगामी भाव तथा अभावरूप पदार्थोंसे तुमारा क्या प्रयोजन? तुम तो इससमय उठो उठो ॥ २३ ॥ इसी शरीरसे तुमको इस लोकमें कल्पपर्यंत रहना होगा, और हम लोग तुमारी आयुरूप अनिन्दित नियतिको यथार्थ जानते हैं ॥ २४ ॥

जीवन्मुक्तेनभवताराज्यएवेहतिष्ठता ॥ क्षेपणीयागतोद्वेगमाकल्पांतमियंतनुः ॥ २५ ॥ तन्वांकल्पांतशीर्णायांस्वेमहिम्नित्वयानघ ॥ वस्तव्यंस्फुटितेकुंभेकुंभाकाशेनखेयथा ॥ २६ ॥ कल्पांतस्थायिनीशुद्धा

दृष्टलोकपरावरा ॥ इयंतवतनुर्जाताजीवन्मुक्तविलासिनी ॥ २७ ॥ नोदिताद्वादशादित्यानप्रलीनाःशिलोच्चयाः ॥ नजगज्ज्वलितंसाधोतत्तनुंत्यजसिकिंमुधा ॥ २८ ॥

अर्थ—इसी राज्यमें स्थित जीवन्मुक्तरूपसे तुमको घबराहटको त्यागकर कल्प पर्य्यन्त व्यवहारमें इसशरीरको चलाना पडेगा ॥ २५ ॥ हे पाप रहित रामजी ! कल्पके अन्तामें इस शरीरके जीर्ण (नष्ट) होनेपर निज आत्मभूत अपने निरतिशय महिमामें स्थित रहोगे जैसे घटके फूटनेपरभी आकाशमें घटाकाश ॥ २६ ॥ हे प्रल्हादजी कल्पके अन्ततक स्थायिनी, शुद्ध इसलोक तथा परलोकको देखनेवाली और जीवन्मुक्तोंके विलासवाली यह तुमारी शरीर अब हो गई ॥ २७ ॥ हे प्रल्हादजी अभी तो द्वादश आदित्य नहीं उदय हुये सुमेरू आदि पर्वत नष्ट नहीं हुये, और यह ब्रह्माण्ड भी नहीं जला. हे साधो इस शरीरको व्यर्थ क्यों त्यागते हो ॥ २८ ॥

वायुर्वहतिनोन्मत्तस्त्रिलोकीभस्मधूसरः ॥ लोलामरकपालांकस्तत्तनुंत्यजसिकिंमुधा ॥ २९ ॥ अशोकइवमंजर्यःपुष्करावर्त्तविद्युतः ॥ नस्फुरंतिजगत्कोशेतत्तनुंत्यजसिकिंमुधा ॥ ३० ॥ धरासाररणच्छैलाःप्रज्वलज्ज्वलनोज्ज्वलाः ॥ ककुभोनविशीर्य्यंतेतत्तनुंत्यजसिकिंमुधा ॥ ३१ ॥ नब्रह्मविष्णुरुद्राख्यत्रयीशेषमिदंस्थितम् ॥ जगज्जरठजीमूतंतत्तनुंत्यजसिकिंमुधा ॥ ३२ ॥

अर्थ—तीनों लोकके भस्मसे मलिन और चञ्चल देवताओंके शिरोंसे चिन्हित पवनभी अभी नहीं वहता इसलिये इस शरीरको अभी क्यों व्यर्थ त्यागते हो ॥ २९ ॥ अशोक वृक्षमें लताओंके सदृश पुष्करावर्त नाम मेघोंमें इस जगत्‌के कोशमें विद्युत् (बिजली) अभी नहीं चमकती इसलिये तुम अपने शरीरको व्यर्थ क्यों त्यागते हो ? ॥ ३० ॥ जलती हुई पृथिवीके कंपसे शब्द करनेवाले पर्वत सहित तथा प्रज्वलित अग्निकी ज्वालासे युक्त दिशाओंके अन्तमें अभी ब्रह्माण्डकी भिति विशीर्ण (नष्ट) नहीं हो रही हैं, इसलिये तुम अपनी देहको व्यर्थ क्यों त्यागते हो ? ॥ ३१ ॥ प्रवृद्ध प्रलयके मेघ मंडलसहित यह जगत् अभी ब्रह्मा विष्णु महेश मात्र शेष नहीं रह गयाहै इसलिये अपनी देहको क्यों त्यागते हो ॥ ३२ ॥

नचेद्द्राद्रिदलश्रेणिमात्रैकानुमितांतराः ॥ दिशोजर्जरतांयातास्तत्तनुंत्यजसिकिंमुधा ॥ ३३ ॥ स्फुटदद्रीद्रटंकाराःकराःसौराभ्रमंतिखे ॥ कल्पाभ्राणिनगर्जंतितत्तनुंत्यजसिकिंमुधा ॥ ३४ ॥ अहंभूतावकीर्णासुसालोकासुखगध्वजः ॥ विहरामिदशाशासुमादेहमवधीरय ॥ ३५ ॥ इमेवयमिमेशैलाभूतानीमान्ययंभवान् ॥ इदंजगदिदंव्योममादेहमवधीरय ॥ ३६ ॥

अर्थ—अभी इस लोकमें प्रलय आदि कुलपर्वतोंके पृथिवीके कमलदलोंके सदृश श्रृंगोंसे अनुमित भेदवी दिगन्तोंमें ब्रह्माण्डकी भीति जर्जरदशाको नहीं प्राप्त हुई है, तुम अपने शरीरको व्यर्थ क्यों त्यागते हो ? ॥ ३३ ॥ फुटते हुये मेरूके समान टंकार शब्दयुक्त प्रलयके सूर्यके किरण अभी आकाशमें नहीं भ्रमण करतीं, और प्रलयकालके मेघ अभी नहीं गर्जते तुम अपनी देहको व्यर्थ क्यों त्यागते हो ? ॥३४॥ अण्डज आदि चारप्रकारके प्राणियोंसे व्याप्त आलोकसहित दशोंदिशाओंमें मैं गरूडध्वज विष्णुविहार करताहुं तुम अपनी देहको न त्यागो ये हमलोग ये सब पर्वत, ये सब भूत, यह तुम, यह जगत् यह आकाश ये सब विद्यमानहैं अभी तुम अपनी देहको न त्यागो ॥ ३६ ॥

पीवराज्ञानयोगेनयस्यपर्याकुलंमनः ॥ दुःखानिविनिकृंततिमरणंतस्यराजते ॥ ३७ ॥ कृशोतिदुःखीमूढोहमेताश्चान्याश्चभावनाः ॥ मतियस्यावलुंपंतिमरणंतस्यराजते ॥ ३८ ॥ आशापाशनिबद्धोंतरितश्चेतश्चनीयते ॥ योविलोलमनोवृत्त्यामरणंतस्यराजते ॥ ३९ ॥ यस्यतृष्णाःप्रभंजंतिहृदयंहतभावनाः ॥ प्ररोहमिवगर्धेभ्योमरणंतस्यराजते ॥ ४० ॥

अर्थ—घनीभूत अज्ञानके योगसे जिसका मन व्याकुलहै और जिसको दुःख छेदन करते हैं उसका मरण शोभित होताहै ॥ ३७ ॥ मैं कृशहुं अति दुःखीहुं और मूढहूं ये तथा अन्यभी भावना जिसकी बुद्धि नष्ट करती हैं उसका मरण शोभा देताहै ॥ ३८ ॥ जो जन आशारूप पाशसे अन्तःकरणमें बद्धहै और चंचल मनकी वृत्ति जिसको इधर उधर भ्रमाती है उसका मरण शोभा देताहै ॥ ३९ ॥ विवेकको हरण करके तृष्णा जिसके हृदयको ऐसे मर्दित करती हैं जैसे महाफलसहित शाली आदि अंकुरका खेत पशु आदिके हृदयको ॥ ४० ॥

चित्तवृत्तिलतायस्यतालोत्तालमनोवने ॥ फलितासुखदुःखाभ्यांमरणंतस्यराजते ॥ ४१ ॥ रोमराजीलताजालंयस्येमंदेहदुर्द्रुमम् ॥ अनर्थोघोहरत्युच्चैर्मरणंतस्यराजते ॥ ४२ ॥ यस्यस्वदेहविपिनमाधिव्याधिदवाग्नयः ॥ दहंतिलोलांगलतंमरणंतस्यराजते ॥ ४३ ॥ कामकोपात्मकायस्यस्फूर्जंत्यजगरास्तनौ ॥ अंतःशुष्कद्रुमस्येवमरणंतस्यराजते ॥ ४४ ॥

अर्थ—ताल वृक्षके समान रागादिसे उच्चतासहित मनरूप वनमें जिसकी चित्तकी वृत्तिरूप लता सुख तथा दुःखसे फलित होती है उसका मरण शोभा देताहै ॥ ४१ ॥ जिसके रोमोंकी पंक्तिरूप लता जालसे वेष्टित इस देहरूप विषके वृक्षको कामादिरूप अनर्थ जनक पवन हरलेताहै उसका मरण शोभा देताहै ॥ ४२ ॥ चंचल अंगरूप लतासहित जिसके निजदेहरूप बनको आदि व्याधिरूप दावाग्नि जलाती है उसका मरण शोभा देताहै ॥ ४३ ॥ जिसके शरीरमें कामक्रोधादिरूप अजगर ऐसे गर्जते हैं जैसे शुष्क वृक्षके कोटरमें उसका मरण शोभा देताहै ॥ ४४ ॥

योऽयंदेहपरित्यागस्तल्लोकेमरणंस्मृतम् ॥ नसतानासतातेनकारणंवेद्यवेदनम् ॥ ४५ ॥ यस्यनोत्क्रामतिमतिःस्वात्मतत्त्वावलोकनात् ॥ यथार्थदर्शिनोज्ञस्यजीवितंतस्यशोभते ॥ ४६ ॥ यस्यनाहंकृतोभावोबुद्धिर्यस्यनलिप्यते ॥ यःसमःसर्वभावेषुजीवितंतस्यराजते ॥ ४७ ॥ यांतःशीतलयाबुद्ध्यारागद्वेषविमुक्तया ॥ साक्षिवत्पश्यतीदंहिजीवितंतस्यराजते ॥ ४८ ॥

अर्थ—इस स्थूलशरीरका जो परित्यागहै इसको लोकमें मरण कहते हैं वह त्याग निष्क्रिय सत् आत्मामें नहीं होसकता और असत् (अविद्यमान) अपना त्याग क्या करेगा, इससे वेद्य आत्मवस्तुका ज्ञानही शरीरके असत् होनेमें कारणहै ॥ ४५ ॥ जिस तत्वज्ञानी पुरुषकी मति अपने आत्मतत्वके दर्शनसे उद्विग्न नहीं होती उस पुरुषका जीवन शोभा देताहै ॥ ४६ ॥ जिसको देहादिमें अहंभाव नहीं है, जिसकी बुद्धि संसारी पदार्थोंमें लिप्त नहीं है और जो सब भावोंमें समहै उसका जीवन शोभा देताहै ॥ ४७ ॥ जो पुरुष रागद्वेषसे वर्जित अन्तःकरणमें शीतल बुद्धिसे साक्षीके समान इस जगत्को देखताहै उसका जीवन शोभा देताहै ॥ ४८ ॥

येनसम्यक्परिज्ञायहेयोपादेयमुज्झता ॥ चित्तस्यांतेर्पितंचित्तंजीवितंतस्यशोभते ॥ ४९ ॥ अवस्तुसदृशेवस्तुन्यसक्तंकलनामले ॥ येनलीनंकृतंचेतोजीवितंतस्यशोभते ॥ ५० ॥ सत्यांदृष्टिमवष्टभ्यलीलयेयंजगत्क्रिया ॥ क्रियतेऽवासनंयेनजीवितंतस्यराजते ॥ ५१ ॥ नांतस्तुष्यतिनोद्वेगमेतियोविहरन्नपि ॥ हेयोपादेयसंप्राप्तौजीवितंतस्यशोभते ॥ ५२ ॥

अर्थ—हेय तथा उपादेयको त्यागकर जिस पुरुषने संसारकी असारताको जानकर अपने चित्तको चित्तके अवसान साक्षीचेतनमें नियुक्त कियाहै उसका जीवन शोभा देताहै ॥ ४९ ॥ जिस पुरुषका चित्त शुक्तिके रजतके स[illegible]वस्तुके तुल्य भासमान बाह्य कल्पनात्मक पदार्थोंमें असक्तहै, और जिसने अपने चित्तको ब्रह्ममें लीन करदियाहै [illegible]का जीवनशोभा देताहै ॥ ५० ॥ जो पुरुष सत्यदृष्टिका अवलम्बन करके वासनारहित होके जगत्के व्यवहा[illegible]को करताहै उसका जीवन शोभा देताहै ॥ ५१ ॥ जो प्राणी इससंसारमें विहार करता हुआ भी हेय दुःख हेतुके प्राप्त होनेसे अन्तःकरणमें दुःखी नहीं होता और उपादेय सुखके साधनकी प्राप्तिसे सन्तुष्ट नहीं होता उसका जीवनशोभा देताहै ॥ ५२ ॥

शुद्धपक्षस्यशुद्धस्यहंसौघःसरसोयथा ॥ यस्माद्गुणौघोनिर्यातिजीवितंतस्यशोभते ॥ ५३ ॥ यस्मिन्श्रुतिपथंप्राप्तेदृष्टेस्मृतिमुपागते ॥ आनंदंयांतिभूतानिजीवितंतस्यशोभते ॥ ५४ ॥ यस्योदयेषुहृदयेनजनांबुजानिजीवालिमंतिसकलानिविलासवंति ॥ तस्यैवभातिपरिजीवितमक्षयेंदोरापूर्णतेवदनुजेश्वरनेतरस्य ॥ ५५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे नारायणवचनोपन्यासोनामैकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥

अर्थ—शुद्ध तत्वज्ञानी जिसके पक्ष (आत्मीय मित्रादि) में विवेकादि हैं और जो शुद्धहै तथा तडागसे हंसोंके समूहोंके तुल्य जिस पुरुषसे शांति क्षमा आदि गुण वा शैत्य सौरभादि गुणसमूह निकलते हैं उसका जीवन शोभा देताहै ॥ ५३ ॥ जिसके सुनने, देखने, प्राप्त होने वा स्मरण होनेपर प्राणी प्रसन्न होते हैं उसका जीवन शोभा देताहै ॥५४॥ और जिस जीवके सम्पात्ति आदिके अधिक होनेपर जीवरूप भ्रमरसे शोभित प्राणीरूप कमल विकसित होते हैं, हे दैत्योंके ईश्वर प्रल्हाद उसका जीवन ऐसे शोभा देताहै जैसे क्षयरोगसे विनिर्मुक्त चंद्रमाकी पूर्णता ॥ ५५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे नारायणवचनोपन्यासो नामैकोन चत्वारिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥

सदेहहो वा विदेहहो कूटस्थ हो वा क्रियामें तत्पर तत्वज्ञानी जिसप्रकार इससंसारमें व्यवहार करे वह क्रम इस ४० सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ स्थैर्यंदेहस्यदृष्टस्यजीवितंप्रोच्यतेजनैः ॥ देहांतरार्थंदेहस्यसंत्यागोमरणंस्मृतम् ॥ १ ॥ द्वाभ्यांचैवासिपक्षाभ्यामाभ्यांमुक्तोमहामते ॥ किंतेमरणमस्तीहकिंवाजीविमतस्तिते ॥ २ ॥ निदर्शनार्थमेतत्तुमयोक्तमरिमर्द्दन ॥ नत्वंजीवसिसर्वज्ञम्रियसेनकदाचन ॥ ३ ॥ देहसंस्थोऽप्यदेहत्वाददेहोसिविदेहदृक् ॥ व्योमसंस्थोऽप्यसक्तत्वादव्योमेवहिमारुतः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीभगवन्‌जी बोले—हे प्रल्हाद ! इस स्थूलदृष्टशरीरकी जो स्थिरताहै उसको संसारमें लोग जीवन कहते हैं और दूसरे देहको ग्रहण करनेके लिये जो इस देहका त्याग अर्थात् प्राणोंका उत्क्रमणहै उसको मरण कहते हैं ॥१॥ हे महामते ! इन दोनों पक्षोंसे अर्थात् देहकी स्थिरता तथा प्राणोंके उत्क्रमणसेभी तुम मुक्तहो इस संसारमें तुमारे लिये क्या जीवन और क्या मरणहै ॥२॥ हे शत्रुमर्दन ! यह जीवन मरण मैने ज्ञान अज्ञानके गुण वर्णनके लिये तुमसे कहाहै, हे सर्वज्ञ ! तुम न जीतेहो और न कदाचित् मरतेहो देहमें आत्मदृष्टि न होनेसे तथा देहसे भिन्न होनेसे तुम देहमें स्थित रहते भी देह ऐसे नहींहो जैसे आकाशमें स्थित भी वायु असक्त होनेके कारण आकाश नहीं है ॥४॥

स्पर्शसंबोधकारित्वाद्देहएवास्तिसुव्रत ॥ उत्सेधारोधकत्वेनखमुत्सेधस्यकारणम् ॥ ५ ॥ प्रबुद्धोज्ञातवस्तुत्वाद्देहःक्वशमिनामिह ॥ इदंत्वेकंपरिच्छिन्नंरूपमप्रबुद्धःस्थितम् ॥ ६ ॥ सर्वदासर्वमेवासिचित्प्रकाशःपरैकधीः ॥ कोदेहःकोप्यदेहस्तेयंगृह्णासिजहासिच ॥ ७ ॥ समुदेतुवसंतोवावातुवाप्रलयानिलः ॥ भावाभावविहीनस्यकिमभ्यागतमात्मनः ॥ ८ ॥

अर्थ—हे सुव्रत ! त्वगिन्द्रियद्वारा स्पर्श ज्ञानके निमित्त होनेसे तुम देहमें ऐसे स्थितहो जैसे वृक्षके उगनेमें अवरोधक न होनेसे आकाश कारणहै ॥ ५ ॥ तत्वके ज्ञान होनेसे तुम प्रबुद्ध (ज्ञानी) हो और ज्ञान होनेपर सब द्वैतके शान्त करनेवाले ज्ञानियोंका देह कहां प्रवृत्त होताहै, और यह परिच्छिन्न और असंभव भी देह अज्ञानियोंमें स्थितहै ॥ ६ ॥ हे महात्मन् ! तुम सर्वदा चित्प्रकाशज्ञानरूपहो इसप्रकार देह तुमारा कौन पदार्थ है जिसको तुम अहंबुद्धिसे ग्रहण करो और देह भिन्न क्याहै जिसको अनहंभावसे त्यागो ॥ ७ ॥ वसन्तऋतु प्रकटहो वा प्रलयका वायुवहै परन्तु भाव अभावसे रहित आत्माका उसमें क्या आया ! ॥ ८ ॥

प्रलुठत्स्वपिशैलेषुकल्पाग्निषुदहत्स्वपि ॥ वहत्सूत्पातवातेषुस्वात्मन्येवहितिष्ठति ॥ ९ ॥ सर्वभूतानितिष्ठंतुसर्वमेवप्रयातुवा ॥ नश्यंतुवाथवर्द्धंतामात्मन्येवाभितिष्ठति ॥ १० ॥ क्षीयतेनक्षयंप्रातेवर्धमानेनवर्धते ॥ नस्पंदतेस्पंदमानेदेहेस्मिन्परमेश्वरः ॥ ११ ॥ देहस्याहमहंदेहीतिक्षीणेचित्तविभ्रमे ॥ त्यजामिनत्यजामीतिकिंमुधाकलनोदिता ॥ १२ ॥

अर्थ—पर्वतोंके लुढकनेपर, कल्पाग्निके जलनेपर, और उत्पातकारी पवनोंके वहनेपरभी तत्वज्ञानी अपने आत्माहीमें स्थित रहताहै ॥ ९ ॥ सब भूत स्थित रहैं वा सब कुछ चलाजाय, सब नष्टहो वा सब कुछ बढैं परन्तु तत्वज्ञानी अपने आत्माहीमें स्थित रहताहै ॥ १० ॥ इस देहमें स्थित आत्मा परमेश्वर देहके क्षीण होनेसे न क्षीण होताहै और न उसके बढनेपर बढताहै मैं देहका हुं और देह मेराहै यत देह तथा उसके धर्मोंके साथ जो अभेदाध्यासहै इस चित्तके भ्रमके क्षीण होनेपर इसको मैं त्यागताहुं इसको नहीं त्यागता यह निष्फल कल्पना नहीं उदय होती ॥१२॥

इदंकृत्वाकरोमीदमिदंत्यक्त्वेदमित्यलम् ॥ इतितत्त्वविदांतातसंकल्पाःसंक्षयंगताः ॥ १३ ॥ प्रबुद्धाःसर्वकर्त्तारःकरिष्यंतीहकिंचन ॥ नतस्याकरणेनित्यमकर्तृत्वपदंगताः ॥ १४ ॥ अकर्तृत्वादभोक्तृत्वमर्थादेवसमागतम् ॥ संगृहीतंकिलानुप्तंकेनेहभुवनत्रये ॥ १५ ॥ शांतेकर्तृत्वभोक्तृत्वेशांतिरेवेहशिष्यते ॥ प्रौढिमभ्यागतासैवमुक्तिरित्युच्यतेबुधैः ॥ १६ ॥

अर्थ—हे प्रिय प्रल्हादजी ! इसको करके इसको करूंगा इसे त्यागके इसे पूर्णरीतिसे त्यागूंगा इत्यादि संकल्प तत्ववेत्ताओंके क्षयको प्राप्त होगये हैं तत्वज्ञानी सब कुछ करते हुये भी कुछ नहीं करते तथा न करैंगे, और उसके न करनेसे नित्य ही अकर्तृत्वपदको प्राप्त हुये हैं ॥१४॥ अकर्ता न होनेसे भोक्तृताका अभाव अर्थात् प्राप्त हुआ क्योंकि तीनोंलोकमें विनाबोये किसीने नहीं काटा ॥ १५ ॥ और कर्तृता तथा भोक्तृताके शान्त होनेसे केवल शान्तिही शेष रहजाती है और दृढताको प्राप्त उसी शान्तिको पण्डितजन मुक्ति कहतेहैं ॥ १६ ॥

प्रबुद्धाश्चिन्मयाःशुद्धाःसर्वमाक्रम्यसंस्थिताः ॥ किंत्यक्तंपरिगृह्णंतुकिंगृहीतंत्यजंतुवा ॥ १७ ॥ ग्राह्यग्राहकसंबंधप्रमितावयविक्रमैः ॥ हीनःप्रमेयावयवैःकिंगृह्णातुजहातुकिम् ॥ १८ ॥ ग्राह्यग्राहकसंबंधे क्षीणेशांतिरुदेत्यलम् ॥ स्थितिमभ्यागताशांतिर्मोक्षनाम्नाभिधीयते ॥ १९ ॥ तत्रस्थिताःसदाशांता स्त्वादृशाःपुरुषोत्तमाः ॥ सुषुप्तावयवस्पंदसाधर्मेणचरंतिहि ॥ २० ॥

अर्थ—चिन्मय तथा शुद्धरूप तत्वज्ञानी महात्मा अपने स्वरूपके आविर्भावसे सबको अति क्रमण करके स्थित हैं वे फिर कौनसे त्यक्त पदार्थको ग्रहण करें और कौनसे ग्रहण किये हुयेको त्यागें ॥ १७ ॥ ग्राह्य ग्राहकके सम्बन्धोंसे, और यज्ञोंकी दृष्टिसे क्रियाकारक सम्बन्ध घटित अवान्तर वाक्यार्थरूप अंगोंके क्रमोंसे, और महावाक्योंके प्रमेयके अवयवोंसे अर्थात् अंग तथा प्रधान क्रियासमूहरूप विकारोंसे हीन कूटस्थ आत्मा अंग वा प्रधानक्रियासे साध्य किस पारलौकिक स्वर्गादि फलको ग्रहण करे वा त्यागे ॥ १८ ॥ हे प्रल्हादजी! ग्राह्य ग्राहकके सम्बन्धके क्षीण होनेपर पूर्ण शान्ति उदय होती है और स्थिरताको प्राप्त यही शान्ति मोक्ष नामसे कही जाती है॥१९॥ और मोक्षमें स्थित तुमारेसमान पुरुषोत्तम सदा शान्त रहते हैं और सुषुप्तिमें स्थित पुरुषोंकी जिससे प्राण तथा उदरमें स्थित अन्नरसादिकी संचलन क्रिया जीवनके अदृष्टसे होती हैं ऐसेही वे जीवन्मुक्त पुरुष आचरण करते हैं ॥२०॥

परावबोधविश्रांतवासनोजगतिस्थितिम् ॥ अर्द्धसुप्तइवेहेमांत्वंपश्यात्मस्थयाधिया ॥ २१ ॥ नरमंतेहि रम्येषुस्वात्मन्येवगताशयाः ॥ नोद्विजंतन्यदुःखेषुस्वात्मन्येकरसायनाः ॥ २२ ॥ नित्यप्रबुद्धागृह्णंति कार्याणिमान्यसंगिनः ॥ मुकुराइवबिंबानियथाप्राप्तान्यवांछया ॥ २३ ॥ जाग्रतिस्वात्मनिस्वस्थाःसुप्ताःसंसारसंस्थितौ ॥ बालवत्प्रविवेपंतेसुषुप्तसदृशाशयाः ॥ २४ ॥ त्वमजितपदवीमुपागतोंतःकमलजवासरमेकमेवभुक्त्वा ॥ गुणगणकलितामिहैवलक्ष्मींव्रजपरमास्पदमच्युतंमहात्मन् ॥ २५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे प्रह्लादबोधनं नाम चत्वारिंशःसर्गः ॥ ४० ॥

अर्थ—हे प्रल्हादजी! परमात्माके ज्ञानसे वासनाओंको त्यागकर इस जगत्की स्थितिको अर्द्ध सुप्तके समान आत्मामें स्थित बुद्धिसे देखो ॥ २१ ॥ अपने आत्माहीमें जिनको परमसुखहै ऐसे तत्वज्ञानी जन आत्मासे भिन्न रमणीय (स्त्रीपुत्रादि) पदार्थोंमें रमण नहीं करते, और न आत्माको स्पर्श करनेसे दुःखोंमें वे व्याकुल होते हैं॥२२॥ और नित्य ज्ञानी महात्मा सुख दुःखके अभावसे सुखकी प्राप्ति तथा दुःखके परिहारार्थ इन सब यथा प्राप्त कार्योंको आसक्तिके अभावसे ऐसे ग्रहण करते हैं जैसे दर्पण प्रतिबिम्बोंको ॥ २३ ॥ वे स्वस्थ चित्त महात्मा आत्मज्ञानके विषयमें तो जागते हैं और संसारकी स्थितिमें सोते हैं, और सुषुप्तके तुल्य वे महात्माजन बालकके समान लोकमें व्यवहार करते हैं ॥ २४ ॥ हे महात्मन्! तुम अन्तःकरणमें विष्णुपदवीको प्राप्त हो और अनेक गुणगणोंसे चिन्हित राज्यलक्ष्मीको ब्रह्माका एक दिन अर्थात् कल्पपर्यन्त भोग करके अन्तमें पतनरहित विदेह कैवल्यनाम परमपदको प्राप्त होओगे ॥ २५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उपशमप्रकरणे प्रल्हाद बोधनं नाम चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

आज्ञा ग्रहण किये हुये दैत्य प्रल्हादसे अनुगसहित विष्णुभगवान्ने पूजा ग्रहण करके और दैत्यके राज्यमें इस प्रल्हादका अभिषेक करके वरदानोंसे उसे लोभित किया इस विषयका वर्णन ४१ के सर्गमें किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ जगद्रत्नसमुद्रेनत्रैलोक्याद्भुतदर्शिना ॥ इत्युक्तेपद्मनाभेनज्योत्स्नाशीतलयागिरा ॥ १ ॥ प्रह्लादनामादेहोसौविकासिनयनांबुजः ॥ सुदोवाचवचोधीरोगृहीतमननक्रमः ॥ २ ॥ प्रह्लादउवाच ॥ ॥ हिताहितविचारेणराजकार्यशतेनच ॥ अत्यहंश्रमितोदेवक्षणंविश्रामतांगतः ॥ ३ ॥ भगवंस्त्वत्प्रसादेनस्थितिःसम्यगथागता ॥ समाधावसमाधौचरूपेणाहंसमःसदा ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–प्रलयकालमें जगत्रूप रत्नोंके कोश और सृष्टिकालमें त्रैलोक्यरूपसे अद्भुत दर्शनशील कमलनाभ भगवान् विष्णुके प्रकाशमय शीतल (मधुर) वाणीसे इतना कहनेपर ॥ १ ॥ अभिमानका क्रम ग्रहण किये हुये विकसित नेत्रकमलसे शोभित धीर प्रल्हाद नामवाला यह शरीर प्रसन्नतासे यह वचन बोला ॥ २ ॥

प्रल्हादजी बोले—हे देव ! दैत्योंके हित और देवताओंके अहित विचारसे युक्त सैकडों राज्यके कार्योंसे मैं अति श्रान्त था इससमय क्षणभर विश्रामको प्राप्त हुआहूं ॥ ३ ॥ हे भगवन् ! आपकी कृपासे इससमय उत्तम स्थिति प्राप्त हुई है समाधिमें अथवा असमाधिमें रहुं परन्तु मैं अपने आत्मरूपसे सदा एक रसहुं ॥ ४ ॥

चिरमंतर्महादेवदृष्टोस्यमलयाधिया ॥ पुनर्बहिरयंदृष्ट्यादिष्ट्यादेवप्रदृश्यसे ॥ ५ ॥ अहमासमनंताया मस्यांदृष्टौमहेश्वर ॥ सर्वसंकल्पमुक्तायांव्योमव्योम्नीवनिर्मले ॥ ६ ॥ नशोकेननमोहेननचवैराग्यचिंतया ॥ नदेहत्यागकार्येणनसंसारभयेनच ॥ ७ ॥ एकस्मिन्विद्यमानेहिकुतःशोकःकुतःक्षतिः ॥ क्वदेहःक्वसंसारःक्वस्थितिःक्वभयाभये ॥ ८ ॥

अर्थ—हे महादेव चिरकालतक अखण्ड मानस साक्षात्कार वृत्तिसे आप दृष्टहो और अब भाग्यसे नेत्रसे बाहर देख पडतेहो ॥ ५ ॥ हे महेश्वर ! सब संकल्पोंसे विनिर्मुक्त मैं इस अनन्त आन्तरिक दृष्टिमें ऐसे था जैसे निर्मल आकाशमें आकाश ॥६॥ हे भगवान् ! न शोकसे, न मोहसे, न वैराग्यकी चिन्तासे, न देह त्यागके कार्यसे और न संसारके भयसे मैं समाधिमें आश्रितथा ॥७॥ क्योंकि एक अद्वितीय परमात्माके विद्यमान रहते कहां तो शोक! और कहां किसी प्रकारकी हानि, कहां देह, कहां यह संसार, कहां स्थिति, और कहां भय, तथा अभय ! ॥ ८ ॥

यथेच्छयैवामलयाकेवलंस्वयमुत्थया ॥ एवमेवाहमवसंविततेपावनेपदे ॥ ९ ॥ हाविरक्तोस्मिसंसारं त्यजामीतीयमीश्वर ॥ अप्रबुद्धदृशांचिंताहर्षशोकविकारदा ॥ १० ॥ देहाभावेनदुःखानिदेहेदुःखानिमे मतिः ॥ इतिचिंताविषव्यालीमूर्खमेवावलुंपति ॥ ११ ॥ इदंसुखमिदंदुःखमिदंनास्तीदमस्तिमे ॥ इति दोलायितंचेतोमूढमेवनपंडितम् ॥ १२ ॥

अर्थ—किंतु केवल स्वयं आविर्भूत अपने स्वाभाविक निर्मल विचारसे देह त्यागादि अभिप्रायके बिनाही परमपवित्र व्यापक पदमें मैं निवास करताथा ॥ ९ ॥ हे परमेश्वर ! हा मैं विरक्तहुं इस संसारको त्यागताहुं यह अज्ञानियोंकी चिन्ता हर्ष शोकादि विकारोंको देनेहारी है ॥१०॥ देहके अभावमें दुःख नहीं होतेहैं और देहके रहनेमें दुःख होतेहैं ऐसी मेरी बुद्धि कहती है इत्यादि चिन्तारूप विषमयी सर्पिणी मूर्खको छेदन करती है न कि पंडितको यह सुखहै यह दुःखहै यह मुझेहै यह नहीं है यह संशययुक्त चित्त मूढको छेदन करताहै न कि पण्डितको ॥१२॥

अहमन्योन्यएवायमित्यज्ञानांतुवासना ॥ दूरोदस्तात्मबुद्धीनांजयत्यसुमतामिह ॥ १३ ॥ इदंत्याज्यमिदंग्राह्यमितिमिथ्यामनोभ्रमः ॥ नोन्मत्ततांनयत्यंतर्ज्ञमज्ञमिवदुर्धियः ॥ १४ ॥ सर्वस्मिन्नात्मनिततेयितामरसेक्षण ॥ हेयोपादेयपक्षस्थाद्वितीयाकलनाकुतः ॥ १५ ॥ विज्ञानाभासमखिलंजगत्सदसत्स्थितम् ॥ किंहेयंकिमुपादेयमिहयस्त्यज्यतेनवा ॥ १६ ॥

अर्थ—मैं अन्यहुं, यह अन्यहै, इत्यादि वासना आत्मज्ञानको दूर फेकनेवाले प्राणियोंके हृदयमें सर्वोपरि है ॥ १३ ॥ यह त्याज्यहै यह ग्राह्यहै इत्यादि दुर्बुद्धिके मनका मिथ्या भ्रम ज्ञानीको अज्ञानीके तुल्य उन्मत्त नहीं करता ॥ १४ ॥ हे कमलनेत्र भगवन् ! सर्वरूप आप आत्मके व्याप्त होनेपर हेय और उपादेय पक्षमें स्थित द्वितीय कल्पना कहां है॥१५॥सत्आत्मा और असत् मायाके परस्पर अभेदाध्याससे आविर्भूत और शुक्तिमें रजतके तुल्य विज्ञानाभासके तुल्य यह सम्पूर्ण जगत्है इसमें क्या हेयहै और क्या उपादेयहै जिसको इससंसारमें प्राणी त्यागै वा न त्यागै॥१६

केवलंस्वस्वभावेनद्रष्टृदृश्येविचारयन् ॥ क्षणंविश्रांतवानंतःपरमात्मात्मनात्मनि ॥ १७ ॥ भावाभावविनिर्मुक्तोहेयोपादेयवर्जितः ॥ एवमासमहंपूर्वमधुनेत्थंव्यवस्थितः ॥ १८ ॥ समयात्मीयमापन्नंसर्वमात्मात्मतांगतः ॥ करोम्यहंमहादेवत्वदभ्यंयत्परिरोचते ॥ १९ ॥ त्वमयंपुंडरीकाक्षःपूज्यस्तावज्जगत्रये ॥ तन्मत्तःप्रकृतिप्राप्तांपूजामादातुमर्हसि ॥ २० ॥

अर्थ—इसलिये केवल अपने आत्मस्वभावसे द्रष्टा तथा दृश्यका विचार करते हुये परमात्मास्वरूप मैंने आत्मासे आत्मामें क्षणभर विश्राम (समाधि) किया ॥ १७ ॥ भाव अभावसे विनिर्मुक्त, हेय तथा उपादेयसे वर्जित ऐसाही मैं समाधिकालमेंथा, और इससमय आपके आज्ञा दिये हुये कार्य करनेमें व्यवस्थितहुं ॥ १८ ॥ अपने स्वभावको प्राप्त मैं आपसे आज्ञप्त सब कार्य आपको जैसा रूचेगा वैसाही करूंगा ॥ १९ ॥ आप पुण्डरीकाक्ष (कमलनेत्र) तीनोंलोकमें पूज्य हो, इसलिये जैसे आपसे आज्ञप्त नियति प्राप्त राज्य मैं अंगीकार करताहुं ऐसे हीं मुझसे दी हुई पूजाको आप ग्रहण करैं ॥ २० ॥

इत्युक्त्वादानवाधीशःपुरःक्षीरोदशायिनः ॥ शैलेंद्रइवपूर्णेंदुमर्घपात्रमुपाददे ॥२१॥ सायुधंसाप्सरोवृंदं ससुरंसखगाधिपम् ॥ पूजयामासगोविंदंसत्रैलोक्यमथाग्रगम् ॥ २२ ॥ सबाह्याभ्यंतरभ्रांतभुवनंभुव

नेश्वरम् ॥ पूजयित्वाथतिष्ठंतमुवाचकमलापतिः ॥ २३ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ उत्तिष्ठदानवाधीशसिंहासनमुपाश्रय ॥ यावदाश्वभिषेकंतेस्वयमेवददाम्यहम् ॥ २४ ॥

अर्थ—ऐसा कहके दानवोंके स्वामी प्रल्हादजीने क्षीरसागरशायी विष्णुभगवान्‌के सम्मुख अर्घपात्र ऐसे ग्रहण किया जैसे उदयाचल पूर्णचन्द्रमाको ॥ २१ ॥ अस्त्र अप्सरावृन्द, गरूडजी तथा तीनोंलोकके साथ सम्मुख स्थित गोविन्दभगवान्‌की प्रल्हादने पूजा की ॥ २२ ॥ रोमकुपादि बाह्य देशोंमें और उदर हृदयादिमें आभ्यन्तरदेशमें जिसके अनेक जगत् भ्रमण कररहे हैं ऐसे भुवनोंके स्वामी विष्णुकी पूजा करके अग्रभागमें स्थित प्रल्हादसे लक्ष्मीपति विष्णुभगवान् बोले॥२३॥हे दानवोंके अधीश ! उठो सिंहासनपर बैठो जबतक शीघ्र मैं तुमको स्वयं राज्याभिषेक देताहुं

पांचजन्यरवंश्रुत्वायइमेसमुपागताः ॥ सिद्धाःसाध्याःसुरौघास्तेकुर्वंतुतवमंगलम् ॥ २५ ॥ इत्युक्त्वा पुंडरीकाक्षोदानवंसिंहविष्टरे ॥ योजयामासयोग्यंतंमेरुशृंगइवांबुदम् ॥२६॥ अथैनंहरिराहृतैःक्षीरोदाद्यैर्महाब्धिभिः ॥ गंगादिभिःसरित्पूरैःसर्वतीर्थजलैस्तथा ॥२७॥ सर्वविप्रर्षिसंघैश्चसर्वसिद्धगणैःसह॥ पूर्नविद्याधरयुतोलोकपालसमन्वितः ॥ २८ ॥

अर्थ—पांच जन्य (शंख) के शब्दको सुनकर ये सब आये हुये सिद्ध साध्य और अन्य देवताके समूह तुमारे राज्यके मंगल कार्य्योंको करैं ॥ २५ ॥ पुण्डरीकाक्ष भगवान् इतना कहके योग्य प्रल्हाददैत्यको सिंहासनपर ऐसे नियुक्त किया जैसे मेरूके शिखरपर मेघको ॥ २६ ॥ इसके पश्चात् क्षीरसमुद्रादि महासमुद्रोंसे गंगा आदि नदिनदियोंसे तथा सब तीर्थोंसे आनीत जलोंसे ॥ २७ ॥ सब ब्राह्मण ऋषियोंके संघोंके तथा सिद्ध गणोंके साथ प्रल्हादका अभिषेक किया और विद्याधर तथा लोकपालों करके सहित ॥ २८ ॥

अभ्यषिंचदमेयात्मादैत्यराज्येमहासुरम् ॥ मरुद्गणैःस्तूयमानंपूर्वंस्वर्गेहरिंयथा ॥ २९ ॥ सुरासुरैःस्तूयमानंस्तूयमानःसुरासुरैः ॥ अभिषिक्तमुवाचेदंप्रह्रादंमधुसूदनः ॥ ३० ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ यावन्मेरुर्धरायावद्यावच्चंद्रार्कमंडले ॥ अखंडितगुणश्लाघीतावद्राजाभवानघ ॥ ३१ ॥ इष्टानिष्टफलंत्यक्त्वासमदर्शनयाधिया ॥ वीतरागभयक्रोधोराज्यंसमनुपालय ॥ ३२ ॥

अर्थ—अप्रमेय (प्रमाणके अयोग्य) आत्मा विष्णुभगवान् ! दैत्योंके राज्यमें महाअसुरको ऐसे अभिषेक किया जैसे स्वर्गमें देवताओंसे स्तूयमान इन्द्रको ॥ २९ ॥ सुर तथा असुरोंसे स्तुत विष्णुभगवान् सुर तथा असुरोंसे प्रल्हादसे यह बचन बोले ॥ ३० ॥ हे प्रल्हाद ! जबतक सुमेरूपर्वत और पृथिवी है, तथा जबतक सूर्य्य चन्द्रका मण्डलहै तबतक अखण्डित गुणोंसे प्रसंशित इस लोकके तुम राजा रहो ॥ ३१ ॥ इष्ट अनिष्ट फलोंको त्यागकर बुद्धिसे समदर्शी और राग द्वेष भय तथा क्रोधको त्यागकर राज्यका पालन करो ॥ ३२ ॥

राज्येस्मिन्भोगसंपूर्णेदृष्टानुत्तमभूमिना ॥ नगंतव्यस्त्वयोद्वेगःस्वर्गेमानवकेथवा ॥ ३३ ॥ देशकालक्रियाकार्यैर्यथाप्राप्तासुदृष्टिषु ॥ प्रकृतंकार्यमातिष्ठत्यक्त्वामानसमास्वभो ॥ ३४ ॥ अतिदेहतयेदंताममतापरिवर्जितम् ॥ भावाभावेसमंकार्यंकुर्वन्निहनबाध्यसे ॥ ३५ ॥ दृष्टसंसारपर्यांतस्तुलितातुलतत्पदः ॥ सर्वसर्वज्ञजानासिकिमन्यदुपदिश्यते ॥ ३६ ॥

अर्थ—और निरतिशय आनन्दरूप भूमिको देखनेवाले तुम इस राज्यमें उद्वेग (वैराग्य) को मत्त प्राप्तहो, और अपने पिता आदिके सदृश स्वर्ग वा पृथिवीपर घबराहट न उत्पन्न करो ॥ ३३ ॥ और देशकाल क्रियाके अनुसार प्रजा शत्रु आदिके ऊपर निग्रह अनुग्रह दृष्टियोंमें यथा प्राप्त बधबन्ध और दण्डादि कार्य करो, और हे प्रल्हाद! मनसंबन्धी रागद्वेषादि विषमताको त्यागकर स्थित रहो ॥ ३४ ॥ और देहसे भिन्न आत्मभावसे, और इदन्ता तथा ममतासे वर्जित कार्यको लाभालाभ समान करके करते हुयेभी तुम नहीं बांधे जाओगे ॥ ३५ ॥ संसारके सब पर्य्यायवोंको देखनेवाले और अतुल (ब्रह्म) पदको जाननेवाले तुम सर्वत्र सब कुछ जानतेहो अन्य तुमारे लिये क्या उपदेश किया जाय अर्थात् तुम स्वयं सब व्यवहारोंमें कुशलहो कुछ उपदेशकी आवश्यकता नहीं है ॥ ३६ ॥

वीतरागभयक्रोधेत्वयिराजनिराजति ॥ नेदानींदुःखदुर्ग्रंथिर्नासुरान्दलयिष्यति ॥ ३७ ॥ बाष्पश्रीर्नासुरीकर्णमंजरीप्लावयिष्यति ॥ वनराजिमिवोन्मत्तासरित्तारतरंगिणी ॥ ३८ ॥ अद्यप्रभृत्यसंप्राप्तदानवामरसंगरम् ॥ निर्मंदरांभोनिधिवज्जगत्स्वस्थमिवस्थितम् ॥ ३९ ॥ देवासुरकुटुंबिन्योभर्तृष्वंतःपुरेषुच ॥ स्वेष्वेवयांतुविश्वासमपरस्परमाहृताः ॥ ४० ॥ भवबहुलनिशानितांतनिद्रातिमिरमपास्यसदोदिताशयश्रीः ॥ दनुसुतवनिताविलासरम्यांचिरमजितामुपभुंक्ष्वराज्यलक्ष्मीम् ॥ ४१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे प्रह्रादाभिषेकोनामैकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

अर्थ—राग भय, तथा क्रोधसे रहित तुम राजाके दीप्यमान रहते अब देवताओंको दुःखोंकी ग्रन्थि मर्दित नहीं करैंगी ॥ ३७ ॥ अश्रुओंकी श्रेणी अब असुरांगनाओंकी कर्ण मंजरीको ऐसे नहीं वहावेगी जैसे वर्षासे वर्द्धित बडे तरंगवाली नदी बनोंकी पंक्तिको ॥ ३८ ॥ देवासुर संग्रामरहित जगत् आजसे लेके इसप्रकार स्वस्थ रहै जैसे मन्दराचलके निकलनेपर समुद्र ॥ ३९ ॥ और एक दूसरेके पतियोंसे बन्द न की हुई देव तथा दैत्योंकी स्त्री अब अपने २ पति तथा अन्तः पुरोमें विश्वासको प्राप्त हो ॥ ४० ॥ हे दनुपुत्र प्रल्हाद ! कृष्णपक्षकी रात्रिके घन अन्धकारके तुल्य अज्ञानान्धकारको दूर करके और अन्तःकरणमें स्वप्रकाश ब्रह्मज्ञानके स्फुरणसहित होकर असुरलोकसे तथा सेवनीय शान्तिआदि गुणोंसे रमणीय तथा शत्रुओंसे वा कामक्रोधादिसे अपराजित राज्यलक्ष्मीका भोग करो ॥४१

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देववदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे
प्रल्हादाभिषेको नामैकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४२ ॥

इस ४२ के सर्गमें विष्णुका क्षीरसागरमें गमन, आख्यानका उत्तम फल, और समाधि मुक्तोंके व्युत्थानमें हेतु, इन विषयोंका वर्णन कियागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इत्युक्त्वापुंडरीकाक्षःसनरामरकिंन्नरः ॥ द्वितीयइवसंसारश्चचालासुरमंदिरात् ॥ १ प्रह्लादादिविनिर्मुक्तेःपश्चात्पुष्पांजलिव्रजैः ॥ पूर्यमाणोविहंगेशपार्श्वात्यांगरुहोत्करैः ॥ २ ॥ क्रमात्क्षीरोदमासाद्यविसृज्यसुरवाहिनीम् ॥ भोगिभोगासनेतस्थौश्वेताब्जइवषट्पदः ॥ ३ ॥ भोगिभोगासनेविष्णुःशक्रःस्वर्गेसहामरैः ॥ पातालेदानवाधीशइतितस्थुर्गतज्वराः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-मनुष्य, देवता और किन्नरसहित विष्णुभगवान् इतना कहके असुर मन्दिरसे ऐसे चले जैसे द्वितीय समुद्र ॥ १ ॥ प्रल्हाद आदिसे छोडी हुई गरुडजी पीछेके रोमदेशोंमें राशीभूत पुष्पांजलिकेसमूहोंसे आच्छादित विष्णुभगवान् ॥ २ ॥ क्रमसे क्षीरसमुद्रमें पहुंचकर, और गंगाजीको त्यागकर शेषनागके फणरूप आसनपर ऐसे विराजे जैसे श्वेतकमलपर भ्रमर ॥ ३ ॥ शेषके फणपर विष्णु, देवोंके साथ स्वर्गमें इन्द्र, और पाताललमें दानवोंके अधीश प्रल्हाद ये तीनों सन्तापरहित स्थित हुये ॥ ४ ॥

एषातेकथितारामनिःशेषमलनाशिनी ॥ प्राह्लादीबोधसंप्राप्तिरैंदवद्रवशीतला ॥५॥ तांतुयेमानवालोकेबहुदुष्कृतिनोपिहि ॥ धियाविचारयिष्यंतितेप्राप्स्यंत्यचिरात्पदम् ॥६॥ सामान्येनविचारेणक्षयमायातिदुष्कृतम् ॥ योगवाक्यविचारेणकोनयातिपरंपदम् ॥ ७ ॥ अज्ञानमुच्यतेपापंतद्विचारेणनश्यति ॥ पापमूलच्छिदंतस्माद्विचारंनपरित्यजेत् ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! सम्पूर्ण पाप नाशकारिणी, और अमृतके समान शीतल यह प्रल्हादके ज्ञानके सम्प्राप्तिकी कथा मैंने तुमसे कही ॥ ५ ॥ इस कथाको अति पापी भी जो मनुष्य मनसे धारण करैंगे वे भी शीघ्र परमपदको प्राप्त होंगे ॥६॥ सामान्य धर्मके विचारसे पाप तथा उसका मूल अज्ञान नष्ट होताहै और योग अर्थात् ब्रह्मप्रापक वेदान्तके वाक्यके विचारसे कौन नहीं परमपदको प्राप्त होता ॥ ७ ॥ अज्ञानही पापहै वह विचारसे नष्ट होताहै इसलिये पापके मूल अज्ञानको उच्छिन्न करनेवाले विचारको कदापि न त्यागैं ॥ ८ ॥

इमांप्रह्लादसंसिद्धिंप्रविचारयतांनृणाम् ॥ सप्तजन्मकृतंपापंक्षयमायात्यसंशयम् ॥ ९ ॥ श्रीरामउवाच ॥ परेपदेपरिणतंपांचजन्यस्वनैर्मनः ॥ कथंप्रबुद्धंभगवन्प्रह्लादस्यमहात्मनः ॥ १० ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ द्विविधामुक्ततालोकेसंभवत्यनघाकृते ॥ सदेहैकाविदेहान्याविभागोयंतयोःशृणु ॥ ११ ॥ असंसक्तमतेर्यस्यत्यागादानेषुकर्मणाम् ॥ नैषणातत्स्थितिंविद्धित्वंजीवन्मुक्ततामिह ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! इस प्रल्हादकी सिद्धिको विचार करते हुये मनुष्योंके सात जन्मके किये हुये भी पाप क्षय करके नष्ट होजाते है ॥ ९ ॥ श्रीरामजी बोले-हे प्रभो महात्मा ! प्रल्हादका परमपदमें परिणत मन पाञ्चजन्यके शब्दसे कैसे प्रबुद्ध (जागृत) हुआ ॥ १० ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-हे अनघस्वरूप रामजी ! संसारकी मुक्ति दो प्रकारकी कही गई है एक तो सदेहमुक्ति और दूसरी विदेहमुक्ति उन दोनोंका विभाग यह तुम सुनो ॥ ११ ॥ जिस

असंसक्त बुद्धि प्राणीके त्याग और आदान कर्मोंके विषयमें एपणा (इच्छा) नहीं है उसकी स्थितिको तुम जीवन्मुक्ति (सदेहमुक्ति) जानो ॥ १२॥

सैवदेहक्षयेरामपुनर्जन्मवर्जिता ॥ विदेहमुक्ततामोक्तातस्थानायांतिदृश्यताम् ॥ १३ ॥ भ्रष्टबीजोप माभूयोजन्मांकुरविवर्जिताः ॥ हृदिजीवद्विमुक्तानांशुद्धाभवतिवासना ॥ १४ ॥ पावनीपरमोदाराशुद्ध सत्वानुपातिनी ॥ आत्मध्यानमयीनित्यंसुषुप्तस्येवतिष्ठति ॥ १५ ॥ अपिवर्षसहस्रांतेतयेवांतरवस्थ या-सतिदेहेप्रबुद्ध्यंतेजीवन्मुक्तारघूद्वह ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! वही देहके क्षय होनेपर पुनः जन्मसे वर्जित विदेहमुक्ति कही गई है उसमें प्राप्त जीव पुनः इस चर्म नेत्रके दृश्य नहीं होते ॥ १३ ॥ और भुने हुये बीजके समान जन्मरूप अंकुरसे वर्जितहैं, और जीवन्मुक्तोंके हृदयमें शुद्ध वासना आसंगरूप मलिननासे रहित होती है ॥ १४ ॥ और वह शुद्ध ब्रह्मात्मभावना अति पवित्र, परम उदार, और अध्यात्म ध्यानमयी वासना नित्य सुषुप्तके हृदयके सदृश स्थित रहती है ॥ १५ ॥ हे रघु श्रेष्ठ रामजी ! सहस्र (हजार) वर्षके अन्तमें देहके विद्यमान रहते अन्तःकरणमें स्थित उसी वासना (जिसके सहित समाधिस्थ हुये) के साथ जाग्रत होते हैं ॥ १६ ॥

प्रह्लादोंतस्थयाशुद्धसत्ववासनयास्वया ॥ बोधमापमहाबाहोशंखशब्दावबुद्धया ॥ १७ ॥ हरिरात्माहि भूतानांतस्ययत्प्रतिभासते ॥ तत्तथैवभवत्याशुसर्वमात्मैवकारणम् ॥ १८ ॥ प्रबोधमेतुप्रह्लादोयंदेवेतिं विचिंतितम् ॥ निमेषाद्वासुदेवेनतदैवैतद्रुपस्थितम् ॥ १९ ॥ आत्मन्यकारणेनैवभूतानांकारणेनच ॥ सृष्ट्यर्थंवपुरात्तंहिवासुदेवमयात्मना ॥ २० ॥

अर्थ—प्रल्हाद भी अन्तःकरणमें स्थित, शंखसे बुद्ध उसी अपनी शुद्ध सत्व वासनाके साथ जाग्रत हुआ॥१७॥ विष्णु सब भूतोंका आत्मा (कारण) है उसको जिससमय जैसा भासताहै वैसाही शीघ्र होजाताहै, क्योंकि सबका कारण आत्माही है ॥ १८ ॥ उस वासुदेव भगवान्‌ने जब ही यह चिन्तन किया कि प्रल्हाद जाग्रतहो उसीसमय निमेष मात्रमें वैसा ही उपस्थित होजाताहै ॥ १९ ॥ शुद्धरूपसे तो अकारण और अव्याकृतरूपसे सब भूतोंका कारण जगत्‌की सृष्टिके लिये वह आत्मा वासुदेवरूपसे शरीरको ग्रहण किया ॥ २० ॥

आत्मावलोकनेनाशुमाधवःपरिदृश्यते ॥ माधवाराधनेनाशुस्वयमात्मावलोक्यते ॥ २१ ॥ एतांदृष्टिम वष्टभ्यराघवात्मावलोकने ॥ विहराशुविचारात्मापदंप्राप्स्यसिशाश्वतम् ॥ २२ ॥ दुःखासारवतीराम संसारप्रावृडातता ॥ जाड्यंददातिपरमंविचारार्कमपश्यताम् ॥ २३ ॥ प्रसादादात्मनोविष्णोर्मायेयम तिभासुरा ॥ प्रबाधतेनधीरांस्तुयक्षीमंत्रवतोयथा ॥ २४ ॥ आत्मेच्छयैवघनतांसमुपागतांतरात्मेच्छ यैवतनुतामुपयातिकाले ॥ संसारजालरचनेयमनंतमायाज्वालेववातवलयाद्विपावकस्य ॥ २५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीयेदेवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे प्रह्लादव्यवस्था नाम द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! आत्माके दर्शनसे माधवभगवान् देखपडताहै और माधवके आराधनसे आत्माका दर्शन शीघ्र होताहै ॥ २१ ॥ हे राघव ! इस दृष्टिको अवलम्बन करके आत्माका दर्शन करनेके लिये तुम शीघ्र प्रयत्न करो और विचारात्मा नित्य पदको तुम प्राप्त होओगे ॥ २२ ॥ हे रामजी ! दुःखरूप धारासहित संसाररूप प्रावृट् (वर्षा) विशाल ऋतु विचाररूप सूर्यको न देखनेवालोंको परम जडता (जलता) देती है ॥ २३ ॥ विष्णुभगवान्‌की कृपासे यह प्रकाशशील माया धीर (ज्ञानी) पुरुषोंको ऐसे नहीं बाधा करती जैसे मन्त्र सिद्धोंको पिशाची ॥ २४ ॥ हे रामजी ! यह संसारकी रचनारूप अनन्त विष्णुकी माया उसी आत्माकी इच्छासे देहादि घनीभूत अनर्थ भावको प्राप्त होती है और वही निष्कामभक्तिसे आराधित उसी आत्माकी इच्छासे विवेक विचारादिके जन्मकालमें ऐसे न्यूननताको प्राप्त होती है जैसे वायुके बलसे अग्नि प्रबलताके प्राप्त होताहै और अन्तमे उसी वायुके वशसे न्यूनताको प्राप्त होताहै ॥ २५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे प्रल्हादव्यवस्था नाम द्विचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

ईश्वरके प्रसादके प्राप्त होनेपर भी ईश्वरके ऊपर बोझा नहीं देना चाहिये और पुरुषार्थसे इन्द्रियोंको जीतनेसे ज्ञान साध्यहै इस विषयका वर्णन ४३ के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञशुद्धैस्त्वद्वचनांशुभिः ॥ निर्वृताःस्मशशांकस्यकरैरोषधयोयथा ॥ १ कर्णाभिवांछयमानानिपवित्राणिमृदूनिच ॥ सुखयंतिगृहीतानिपुष्पाणीववचांसिते ॥ २ ॥ पौरुषेण प्रयत्नेनसर्वमासाद्यतेयदि ॥ प्रह्लादस्तत्कथंबुद्धोनमाधववरंविना ॥ ३ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यद्यद्दृष्टं वसंप्राप्तंप्रह्लादेनमहात्मना ॥ तत्तदाप्तादितंतेनपौरुषादेवनान्यतः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजीबोले-हे भगवन् ! हे सर्व धर्मज्ञ ! आपके शुद्ध बचनके किरणोंसे हम सब ऐसे सुखी हुयेहैं जैसे चन्द्रमाके किरणोंसे औषधि ॥ १ ॥ हे प्रभो ! कर्णोंको इष्ट अति पवित्र तथा कोमल आपके बचन हमको ऐसे सुखी करते हैं जैसे धारण किये हुये कमलादिके पुष्प ॥ २ ॥ हे भगवन् ! यदि पुरुषके प्रयत्नसे सब कुछ प्राप्त होताहै तो विष्णुके वरदानके बिनाही प्रल्हादको ज्ञान क्यों न हुआ ? ॥३॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे राघव ! प्रल्हाद महात्माने जो २ प्राप्त कियाहै वह २ अपने पुरुषार्थसेही कियाहै न कि अन्य किसीसे ॥ ४ ॥

आत्मानारायणश्चैवनभिन्नस्तिलतैलवत् ॥ तथैवशौक्ल्यपटवत्कुसुमामोदवत्तथा ॥ ५ ॥ योहिविष्णुः सएवात्मायोह्यात्मासौजनार्दनः ॥ विष्ण्वात्मशब्दौपर्यायौयथाविटपिपादपौ ॥ ६ ॥ प्रह्लादनामाप्रथ ममात्मैवस्वयमात्मना ॥ स्वयैवपरयाशक्त्याविष्णुभक्तौनियोजितः ॥ ७ ॥ प्रह्लादोह्यात्मनैवेनंवरमर्जि तवान्स्वयम् ॥ स्वयंविचारगंकृत्वास्वयंविदितवान्मनः ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! आत्मा और नारायण तिल और तैल, वा शुक्लता पट अथवा पुष्प और सुगंध जैसे भिन्न नहीं है ऐसे भिन्न नहीं हैं ॥५॥ जो विष्णुहै वही आत्माहै और जो आत्माहै वही जनार्दन (विष्णु) है क्योंकि विष्णु और आत्मा ऐसे पर्य्यायहै जैसे विटपी और पादप (वृक्षतरू) ॥ ६ ॥ प्रथम प्रल्हाद नाम आत्मा स्वयं अपनेही परम शक्तिसे अपने आत्माको विष्णुकी भक्तिमें लगाया था ॥ ७ ॥ प्रल्हाद अपने आत्मभूत विष्णुसे स्वयं वरदान उपार्जित किया, और निजात्मभूत विष्णुने स्वयं अपने मनको विचारगामी बनाकर अपने आत्माको आपही जाना ॥ ८ ॥

कदाचिदात्मनैवात्मास्वयंशक्त्याप्रबुध्यते ॥ कदाचिद्विष्णुदेहेनभक्तिलभ्येनबोध्यते ॥ ९ ॥ चिरमारा धितोप्येषपरमप्रीतिमानपि ॥ नविचारवतोज्ञानंदातुंशक्नोतिमाधवः ॥ १० ॥ मुख्यःपुरुषयत्नोत्थोवि चारःस्वात्मदर्शने ॥ गौणोवरादिकोहेतुर्मुख्यहेतुपरोभव ॥ ११ ॥ पूर्वमेवबलात्तस्मादाक्रम्येंद्रियपंच कम् ॥ अभ्यसन्सर्वयत्नेनचित्तंकुरुविचारवत् ॥ १२ ॥

अर्थ—कदाचित् अपने विचारके बलसे अपने आत्माहीसे आत्माको जानताहै और कदाचित् अपनी भक्ति आदि प्रयत्न प्राप्त विष्णुकी देहद्वारा वरदानादिसे आत्माको जानताहै ॥ ९ ॥ चिरकालतक आराधित और परम प्रीतिमान् भी माधवही परन्तु विचार शून्य प्राणीको ज्ञान देनेमें समर्थ नहीं है ॥ १० ॥ अपने प्रयत्नसे उत्पन्न विचार अपने आत्माके दर्शनमें मुख्य हेतुहै और वर आदि सब गौण (अप्रधान) हेतुहै, इसलिये हे रामजी ! तुम मुख्य हेतुमें तत्पर होओ ॥ ११ ॥ इसकारणसे प्रथम अपने प्रयत्नके बलसे अपने पंचज्ञानेन्द्रिय और पंचकर्मेन्द्रियोंको जीतकर प्रयत्नसे अभ्यास करते हुये अपने चित्तको विचारसे युक्त करो ॥ १२ ॥

यद्यदासाद्यतेकिंचित्केनचित्क्वचिदेवहि ॥ स्वशक्तिसंप्रवृत्त्यातल्लभ्यतेनान्यतःक्वचित् ॥ १३ ॥ पौरु षंयत्नमाश्रित्यमोल्लंघ्येंद्रियपर्वतम् ॥ संसारजलधिंतीर्त्वापारंगच्छपरंपदम् ॥ १४ ॥ विनापुरुषयत्नेनदृ श्यतेचेज्जनार्दनः ॥ मृगपक्षिगणंकस्मात्तदासौनोद्धरत्यजः ॥ १५ ॥ गुरुश्चेदुद्धरत्यज्ञमात्मीयात्पौरु षादृते ॥ उष्ट्रंदांतंबलीवर्दंतत्कस्मान्नोद्धरत्यसौ ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जो कुछ पदार्थ कोई पुरुष कहीं भी प्राप्त करताहै वह अपने प्रेरित शुभाचरणसे ही और अन्य किसीसे नहीं ॥ १३ ॥ पौरूप प्रयत्नका आश्रय लेके इन्द्रियरूप पर्वतका उल्लंघन करके संसाररूप समुद्रको तैर करके परम पदके पार पहुंच जाओ ॥ १४ ॥ हे रामजी ! यदि पुरुषके यत्नके विना विष्णु देख पडे तो यह अजन्मा विष्णु मृग तथा पक्षियोंके समूहको आत्मदर्शनके द्वारा क्यों नहीं उद्धार करता ॥ १५ ॥ यदि गुरू अपने पौरूषके विना अज्ञका उद्धार करताहै तो यह बलीवर्दका उद्धार क्यों नहीं करता ॥ १६ ॥

नहरेर्नगुरोर्नार्थात्किंचिदासाद्यतेमहत् ॥ आक्रांतमनसःस्वस्माद्यदासादितमात्मनः ॥ १७ ॥ अभ्या सवैराग्ययुतादाक्रांतेंद्रियपन्नगात् ॥ नात्मनःप्राप्यतेयत्तत्प्राप्यतेनजगत्रयात् ॥ १८ ॥ आराधयात्मना त्मानमात्मनात्मानमर्चय ॥ आत्मनात्मानमालोक्यसंतिष्ठस्वात्मनात्मनि ॥ १९ ॥ शास्त्रयत्नविचारे भ्योमूर्खाणांप्रपलायिनाम् ॥ कल्पितावैष्णवीभक्तिःप्रवृत्त्यर्थंशुभस्थितौ ॥ २० ॥

अर्थ—ज्ञानकी दृढतासे बाधित मनसहित अपने आत्मासे जो महत्पुरुषार्थ प्राप्त होताहै वह न गुरूसे न विष्णुसे और न धनसे मिलताहै ॥ १७ ॥ अभ्यास तथा वैराग्यसे युक्त और इन्द्रियसर्पोंको वशमें करनेवालेको जो पदार्थ नहीं प्राप्त होता वह तीनोंलोकसे नहीं प्राप्त होसकताहै ॥ १८ ॥ हे रामजी ! आत्मासे आत्माकी आराधना करो, आत्मासे आत्माकी पूजा करो, और आत्मासे आत्माको साक्षात्कार करके उसी निजआत्मामें भलीभांति स्थित रहो अर्थात् आत्मस्वभावसे कदापि च्युत न होओ ॥ १९ ॥ शास्त्र यत्न तथा विचारसे दूर भागनेवाले मूर्खोंके अर्थ विष्णुकी भक्ति नियत की गई है ॥ २० ॥

अभ्यासयत्नौप्रथमंमुख्योविधिरुदाहृतः ॥ तदभावेतुगौणःस्यात्पूज्यपूजामयक्रमः ॥ २१ ॥ अस्तिचे दिंद्रियाक्रांतिःकिंप्राप्यंपूजनैःफलम् ॥ नास्तिचेदिंद्रियाक्रांतिःकिंप्राप्यंपूजनैःफलम् ॥ २२ ॥ विचारोप शमाभ्यांहिनविनासाद्यतेहरिः ॥ विचारोपशमाभ्यांचमुक्तस्य ब्जकरेणकिम् ॥ २३ ॥ विचारोपशमो पेतंचित्तमाराधयात्मनः ॥ तस्मिन्सिद्धेभवान्सिद्धोनोचत्त्वंवनगर्दभः ॥ २४ ॥

अर्थ—प्रथम अभ्यास और यत्न ज्ञानकी प्राप्तिमें मुख्य विधि कही गई है और उसके अभावमें यह पूज्य पूजामय क्रम गौणहै ॥ २१ ॥ यदि इन्द्रियोंके ऊपर वश्यता नहीं है तो भी पूजनसे क्या फल मिलैगा अर्थात् इन्द्रियोंके वश होनेसे पूजनके विना भी सब फल मिलैगा और न वश होनेसे पूजन करनेपर भी कुछ फल न मिलैगा ॥ २२ ॥ विचार और शान्तिके विना पूर्णानन्द आत्मारूप विष्णुकी प्राप्ति नहीं होती और जो विचार तथा उपशमसे परमपुरुषार्थ प्राप्त होनेसे मुक्त होगयाहै उसको विष्णुके देहसे भी क्या प्रयोजन ॥ २३ ॥ हे रामजी ! विचार तथा शान्तिसे युक्त चित्तकी आराधना करो और आराधनासे चित्तको प्रसन्न करनेपर तुम भी सिद्ध ही हो अर्थात् परम पुरुषार्थरूप सिद्धि तुमको प्राप्त होचुकी और इसके न होनेसे अपनेको तुम वनका गर्दभ (गदहा) समझो ॥ २४ ॥

क्रियतेमाधवादीनांप्रणयप्रार्थनास्वयम् ॥ तथैवक्रियतेकस्मान्नस्वकस्यैवचेतसः ॥ २५ ॥ सर्वस्यैवज न्तस्यास्यविष्णुरभ्यंतरंस्थितः ॥ तंपरित्यज्ययेयांतिबहिर्विष्णुंनराधमाः ॥ २६ ॥ हृद्गुहावासिचित्तत्त्वं मुख्यंसानातनंवपुः ॥ शंखचक्रगदाहस्तोगौणआकारआत्मनः ॥ २७ ॥ योहिमुख्यंपरित्यज्यगौणंसम नुधावति ॥ त्यक्त्वारसायनंसिद्धंसाध्यंसंसाधयत्यसौ ॥ २८ ॥

अर्थ—जैसे मनुष्य विष्णु आदिकी आराधना करताहै वैसी ही अपने चित्तकी आराधना क्यों नहीं करता क्यों कि मनकी ही भक्ति मुख्य भगवत्की भक्तिहै ॥ २५ ॥ सबके हृदयमें विष्णु स्थितहै उस विष्णुको त्यागकर जो बाह्य विष्णुकी ओर दौडते हैं वे अधम नरहैं ॥ २६ ॥ हृदयरूप गुहाका निवासी सनातन चित्तत्त्व आत्माका मुख्य शरीरहै और हस्तमें शंख चक्र गदाधारी गौण शरीरहै ॥ २७ ॥ जो प्राणी आभ्यन्तर मुख्य शरीरको त्यागकर गौण शरीरकी ओर दौडताहै वह मानो सिद्ध अमृतका त्याग करके कृषि आदिसे साध्य ओदनको सिद्ध करताहै ॥ २८ ॥

यस्तुभोःस्थितिमेवास्यामात्मज्ञानचमत्कृतौ ॥ नासादयतिसंमत्तमनाःसरघुनंदन ॥ २९ ॥ अमात्मा त्मविवेकोंतरज्ञचित्तवशीकृतः ॥ शंखचक्रगदापाणिमर्चयेत्परमेश्वरम् ॥ ३० ॥ तत्पूजनेनकष्टेनतपसा तस्यराघव ॥ कालेनिर्मलतामेतिचित्तंवैराग्यकारिणा ॥ ३१ नित्याभ्यासविवेकाभ्यांचित्तमाशुप्रसीद ति ॥ आम्रएवदशामेतिसाहकारींशनैःशनैः ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जो मत्त चित्त आत्मतत्त्वकी चमत्कृतिमें स्थिति नहीं पाता ॥ २९ ॥ वह अन्तःकरणमें आत्मतत्वके विवेकसे शून्य, अवशीकृत चित्त अज्ञानी जीव शंख चक्र गदा पाणी परमेश्वरकी पूजा करे ॥ ३० ॥ हे राघव ! कष्ट साध्य विष्णुके पूजनसे और वैराग्यकारी तपसे कालपाके मनुष्यका चित्त निर्मलताको प्राप्त होताहै ॥ ३१ ॥ नित्य अभ्यास तथा विवेकसे चित्त शीघ्र ऐसे प्रसन्न होताहै जैसे आम्रका वृक्ष धीरे २ पुष्प फलादिसे सौगन्ध्यादि दशाको प्राप्त होताहै ॥ ३२ ॥

एतदप्यात्मनैवात्माफलमाप्नोतिभाषितम् ॥ हरिपूजाक्रमाख्येननिमित्तेनारिसूदन ॥ ३३ ॥ वरमाप्नोति योवापिविष्णोरमिततेजसः ॥ तेनस्वस्यैवतत्प्राप्तंफलमभ्यासशालिनः ॥ ३४ ॥ सर्वेषामुत्तमस्थानां

सर्वासांचिरसंपदाम् ॥ स्वमनोनिग्रहोभूमिर्भूमिःस्वस्यश्रियामिव ॥ ३५ ॥ अप्युर्वीखननोत्कस्यकर्ष तोपिशिलोच्चयम् ॥ स्वमनोनिग्रहादन्योनापायोस्ति हकश्चन ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे शत्रुनाशक रामजी ! शास्त्रमें विष्णुकी पूजासे जो कुछ भाषित फल प्राप्त होताहै यह भी आत्माके निज संकल्पसेही प्राप्त होताहै ॥ ३३ ॥ जो मनुष्य अतुल तेजस्वी विष्णुसे वरदान पाताहै उसकोभी अपने अभ्यासरूप वृक्षका फलही प्राप्त होताहै ॥ ३४ ॥ सब उत्तम पुरुषार्थ करनेवालोंका तथा चिरकालमें भोग्य मनु और ब्रह्मा आदिकी सम्पत्तिका अपने मनका निग्रह ऐसे भूमिहै जैसे धान्योंकी यह प्रत्यक्ष भूमि ॥ ३६ ॥ पृथिवीको खननेवाले सगरके पुत्रादि, तथा समुद्र मथनार्थ मन्दराचलको खींचनेवाले देव असुरादिको भी अपने मनके निग्रहके सिवाय अन्य कोई भी उपाय नहीं है ॥ ३६ ॥

तावज्जन्मसहस्राणिभ्रमंतिभुविमानवाः ॥ यावन्नोपशमंयातिमनोमत्तमहार्णवः ॥ ३७ ॥ ब्रह्मविष्णिव द्ररुद्राद्याश्चिरसंपूजिताअपि ॥ उपप्लवान्मनोव्याधेर्नत्रायंतेपिवत्सलाः ॥३८॥ आकारभासुरंत्यक्त्वा बाह्यमांतरमप्यजम् ॥ कुरुजन्मक्षयायाशुसंविन्मात्रैकचिंतनम् ॥ ३९ ॥ संवेद्यनिर्मुक्तनिरामयैकसंवि न्मयास्वादमनंतरूपम् ॥ सन्मात्रमास्वादयसर्वसारंपारंपरंप्राप्स्यसिजन्मनद्याः ॥ ४० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशम प्रकरणे प्रह्लादविश्रांतिर्नाम त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

अर्थ—जबतक मनरूप महासमुद्र शान्तिको नहीं प्राप्त होता तबतक इससंसारमें मनुष्य सहस्रों जन्मपर्य्यन्न भ्रमण किया करते हैं ॥ ३७ ॥ चिरकालतक पूजित भी दयालु ब्रह्मा विष्णु और रुद्र आदि मनरूप व्याधिके उपद्रवसे नहीं रक्षा करसकते ॥३८॥ बाह्य तथा अन्तरकी इन्द्रियोंके विषय भासमान पदार्थोंको त्यागकर जन्मादि क्रिया शून्य अखण्ड एकरस चिन्मात्रका चिन्तन जन्मके नाशार्थ करो ॥ ३९ ॥ हे रामजी ! बाह्य तथा आभ्यन्तर विषयोंसे विनिर्मुक्त निरामय, स्वयं निरतिशय आनन्दरूपसे आस्वादके योग्य सचिन्मात्र जो सबका सार अनन्तरूपहै उसीका आस्वादन आत्माकार वृत्तिसे निरन्तर करो ऐसा करनेसे तुम जन्म मरणरूप नदीके पार होजाओगे ॥ ४० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे प्रल्हादविश्रान्तिर्नाम त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

इस गाधिके आख्यानमें मनके निरासके लिये विस्तारसे दृश्यकी दुःखरूपताका वर्णन ४४ के सर्गमें किया गयाहै उसमें विष्णुके वरदानसे जलमें गाधिके मायाके देखनेमें उनका गृहमें मरना तथा स्मशानमें प्राप्त किये हुयेका दाह भी इसी ४४ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ रामापर्यवसानेयंमायासंसृतिनामिका ॥ आत्मचित्तजयेनैवक्षयमायातिनान्यथा ॥ १ ॥ जगन्मायाप्रपंचस्यवैचित्र्यप्रतिपत्तये ॥ इतिहासमिमंवक्ष्येशृणुष्वावहितोनघ ॥ २ ॥ अस्त्य स्मिन्वसुधापीठेकोसलोनाममंडलः ॥ कल्पवृक्षवनंमेरोरिवरत्नगणाकरः ॥ ३ ॥ तत्राभूद्ब्राह्मणःकश्चि द्गुणीगाधिरितिश्रुतः ॥ परमश्रोत्रियोधीमान्धर्ममूर्तिरिवस्थितः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजीबोले—हे रामजी ! यह अपार भ्रमका हेतु संसार नामिका माया अपने चित्तके जयसे ही क्षयको प्राप्त होती है न कि अन्य प्रकारसे ॥ १ ॥ हे पापरहित रामजी ! इस जगत्‌की मायाके प्रपंचके वैचित्र्यके ज्ञानके लिये इस इतिहासको मैं कहताहुं तुम सावधान होके श्रवण करो ॥ २ ॥ हे रामजी ! इस पृथिवीके सब रत्न समूहोंका आकर (खानि) कोशल नाम देश ऐसेहै जैसे मेरुके ऊपर कल्पवृक्षका वन ॥ ३ ॥ वहांपर गुणी परमश्रोत्रिय (वेदवेत्ता) बुद्धिमान् और धर्मके मूर्तिके समान स्थित गाधि नामसे प्रसिद्ध एक ब्राह्मण रहताथा ॥ ४ ॥

आबाल्यात्मविरक्तेनचेतसासव्यराजत ॥ निष्कलंकावदातेनभुवनंनभसायथा ॥ ५ ॥ किमप्यभिमतं कार्यंविनिधायस्वचेतसि ॥ बंधुवृंदाद्विनिष्कम्यतपस्तप्तुंवनंययौ ॥६ ॥ उत्फुल्लकमलंप्रापसरस्तत्रसवि भ्राट् ॥ चंद्रःप्रसन्नविमलंताराशसारमिवांबरम् ॥ ७ ॥ आशौरिदर्शनंतस्मिंस्तपोर्थंसरसिद्विजः ॥ आकं ठमंबुनिर्मग्नःप्रावृट्पद्मइवाविशत् ॥ ८ ॥

अर्थ—बाल्यअवस्था लेके अतिविरक्त, निष्कलंक और शुद्ध चित्तसे वह ऐसे शोभितथा जैसे आकाशसे संसार॥५॥कुछ अभीष्ट कार्य अपने चित्तमें करके वह ब्राह्मण अपने बन्धुसमूहसे निकलके वनमें तप करनेको गया ॥६॥

वहांपर वह ब्राह्मणोंका राजा विकासित कमलयुक्त तडागको ऐसे प्राप्त हुआ जैसे अश्विनी आदि सुन्दर तारासहित आकाशमें चन्द्रमा ॥ ७ ॥ विष्णुके दर्शनपर्य्यन्त उस तडागमें वह ब्राह्मण कण्ठतक जलमें प्रवेश करके ऐसे स्थित हुआ जैसे वर्षाकालमें कमल ॥ ८ ॥

ययौमासाष्टकंतस्यमग्नस्यसरसोंभसि॥वासपंकजसंकोचमनाग्भग्नमुखच्छवेः॥९॥अथैनंतपसातप्तमाजगामैकदाहरिः ॥ निदाघार्त्तंघनश्यामःप्रावृषीवधरातलम् ॥ १० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ विप्रोत्तिष्ठयोत्तिष्ठ्याद्गृहाणाभिमतंवरम् ॥ अभीप्सितफलोपेतोजातस्तेनियमद्रुमः ॥ ११ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ असंख्येयजगद्भूतहृत्पद्मकुहरालिने ॥ जगत्त्रयैकनलिनीसरसेविष्णवेनमः ॥ १२ ॥

अर्थ—अपने निवासस्थान उस तडागके कमलोंके सूर्य्यके वियोगसे संकुचित होनेसे किंचित् मलिन मुखकी छवियुक्त उस ब्राह्मणके जलमें निमग्न रहते आठ मास वीतगये ॥ ९ ॥ इसके पश्चात् तपसे तप्त उस ब्राह्मणके निकट एकसमय घनश्याम विष्णु ऐसे आप जैसे उष्णकालसे तप्त धरातलपर वर्षाकालमें श्यामवर्ण मेघ ॥ १० ॥ श्रीभगवानूजी बोले–हे ब्राह्मण ! जलमेंसे उठो और अपने अभीष्ट वरको ग्रहण करो तुमारा तपरूप वृक्ष अभीष्ट फलसे संयुक्त होगया ॥ ११ ॥ ब्राह्मण बोले–अनन्त ब्रह्माण्डके प्राणियोंके हृदयकमलके भ्रमररूप तथा त्रिलोकीरूप कमलिनीके तडागरूप विष्णुभगवानूको नमस्कारहै ॥ १२ ॥

मायामिमांत्वद्रचितांभगवन्पारमात्मिकीम् ॥ द्रष्टुमिच्छामिसंसारनाम्नीमांध्यैककारिणीम् ॥ १३ ॥ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इमांद्रक्ष्यसिमायांत्वंततस्त्यक्ष्यसिचेत्यजः ॥ उक्त्वायथावदृश्यत्वंगांधर्वमिवपत्तनम् ॥ १४ ॥ गतेविष्णौसमुत्तस्थौजलात्सब्राह्मणेश्वरः ॥ शीतलामलमूर्त्तित्वादिद्वःक्षीरोदकादिव ॥ १५ ॥ बभूवपरितुष्टात्मादर्शनेनजगत्पतेः ॥ दर्शनस्पर्शनैरिंदोरुत्फुल्लमिवकैरवम् ॥ १६ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! आपसे रचित परमात्मा सम्बन्धिनी जगत्को अन्धा करनेवाली संसारनामिका इस मायाको मैं देखना चाहताहुं ॥ ॥ १३ ॥ श्रीभगवानूजी बोले–हे ब्राह्मण ! इस मायाको देखोगे और उसके पश्चात् उसे त्यागोगे भी ऐसा कहके विष्णुभगवान् ऐसे अदृश्य होगये जैसे गन्धर्वनगर ॥ १४ ॥ विष्णुके जानेपर वह श्रेष्ठ वा ब्राह्मण जलसे निकलके शीतल तथा निर्मल मूर्ति होनेसे ऐसे शोभित हुआ जैसे क्षीरसमुद्रसे निकलके चन्द्रमा॥१५॥ जगत्के पति विष्णुके दर्शनसे ऐसे प्रसन्न चित्त हुआ जैसे चन्द्रदर्शनसे विकसित रात्रिका कमल ॥ १६ ॥

अथास्यकतिचित्तस्मिन्दिवसानिर्ययुर्वने ॥ हरिसंदर्शनानंदवतोब्राह्मणकर्मणा ॥ १७ ॥ एकदारब्धध्यानस्नानंसरस्युदितपंकजे ॥ चिंतयन्वैष्णवंवाक्यंमहर्षिरिवमानसे ॥ १८ ॥ अथस्नानविधावंतर्जलमेपचकारह ॥ सकलाघविघातार्थंपरिवर्त्तमिवात्मना ॥१९॥ अंतर्जलविधौतस्मिन्विस्मृतध्यानमंत्रधीः ॥ पर्यस्तसंवित्प्रसरःसोपश्यज्जलमध्यतः ॥ २० ॥

अर्थ—इसके पश्चात् विष्णुदर्शनसे आनन्दयुक्त इस ब्राह्मणके तपस्वाध्याय अतिथि पूजादि ब्राह्मकर्म करते हुये उस वनमें कुछ दिन वीतगये ॥१७॥ जैसे महाऋषि योगवलसे भूतभविष्यत् मनमें देखनेको चिन्तन करताहै ऐसे ही विष्णुके वाक्य विचारते हुये विप्रने विकसित कमलयुक्त तडागमें एकसमय स्नान करना प्रारम्भ किया॥१८॥इसके पश्चात् सकल पापनाशके अर्थ अघमर्षण करनेको जलके भीतर कुशसहित हस्त आवर्तके समान किया॥१९॥जलमें डूबके अघमर्षणके समयमें ध्यान मंत्रकी बुद्धि विस्मृत होनेसे तथा विपरीत ज्ञानयुक्त होकर जलके मध्यसे यह देखा॥२०

मृतमात्मानमात्मीयेसदनेशोच्यतांगतम् ॥ पतितंवातवेगेनकंदरांतरिवद्रुमम् ॥ २१ ॥ प्राणापानप्रवाहेणमुक्तमंतमुपागतम् ॥ संशांतावयवस्पंदंनिर्वातइवखंडकम् ॥ २२ ॥ पांडुराननमाम्लानंवृक्षपर्णमिवारसम् ॥ शवीभूतमिवाग्लानंछिन्ननालमिवांबुजम् ॥ २३ ॥ विपर्यस्तेक्षणंप्रातर्मग्नतारमिवांबरम् ॥ सावग्रहमिवग्रामंसर्वतःपांसुधूसरम् ॥ २४ ॥

अर्थ—अपने स्थानसे शोच्यताको प्राप्त अपनेको मृतक ऐसे देखा जैसे वायुके वेगसे कन्दरामें गिरे हुये वृक्षको ॥ २१ ॥ पुनः प्राण तथा अपानवायुके प्रवाहसे विनिर्मुक्त, और अंगोंके संचलन ऐसे शान्त होगया जैसे निर्वातस्थानमें गिरा हुआ कदली (केले) का खंड ॥ २२ ॥ पांडु मुख और ऐसे म्लान (कुंभिलान) जैसे नीरस वृक्षका पत्र, तथा मृतक दशाको ऐसे प्राप्त हुआ जैसे दण्ड छिन्न होनेसे कमल ॥ २३ ॥ तथा इसप्रकार विपरीत दर्शन होगये जैसे अस्त तारागणवाला आकाश, और चारोओरसे ऐसे धूलिसे धूसर होगया जैसे वर्षाके रूकनेपर ग्राम॥२४॥

बाष्पक्लिन्नमुखैर्दीनैःकरुणाक्रंदकारिभिः ॥ आवृतंबंधुभिःखिन्नैःकुररैरिवपादपम् ॥ २५ ॥ सेतुभंगगलद्वारिह्रियमाणमुखाब्जया ॥ नलिन्यासमधर्मिण्याभार्ययापादयोःश्रितम् ॥ २६ ॥ तारांक्रंदरणद्रेफप्रला

पालापलुब्धया ॥ मात्राशृहीतंचिबुकेनवव्यंजनलांछिते ॥२७॥ अन्यैःपार्श्वगतैर्दीनैःस्रवदश्रुमुखैर्जनैः ॥ श्रितंगलद्वश्यायैःशुष्कपर्णैरिवद्रुमम् ॥ २८ ॥

अर्थ—आंसुओंसे गीले मुखसहित, दीन, करूणासे विलाप करते हुये और खिन्न बन्धुओंसे ऐसे घिरा हुआ था जैसे कुरर नाम पक्षियोंसे वृक्ष ॥ २५ ॥ तथा पुलके टूटनेसे वहते जलसे प्रवाहित मुखरूप कमलयुक्त कमलिनीकेतुल्य अपनी धर्मपत्नीसे चरण देशमें आश्रितथा ॥२६॥ उच्च स्वरसे शब्द करते हुये भ्रमरकेसमान निरर्थक प्रलापमें आसक्त मातासे स्मश्रु (दाढी मोछा) से चिन्हित कपोलदेशमें गृहीत भान होताथा ॥ २७ ॥ अन्यभी समीपमें प्राप्त, दीन, और गिरती हुई अश्रुसहित मुखवाले मनुष्योंसे ऐसे आश्रितथा, जैसे तुषार गिरते हुये सूखे पत्तोंसे वृक्ष ॥२८॥

वियोगभीत्यासंयोगपरिहारपरैरिव ॥ दूरंविप्रसृतैतंगैरनात्मीयैरिवावृतम् ॥ २९ ॥ परस्परमलग्नाभ्या मोष्ठाभ्यांदशनैःसितैः ॥ सविरागमिवाम्लानैर्हसंतंस्वात्मजीवितम् ॥ ३० ॥ मौनध्यानमिवापन्नंपंका दिवविनिर्मितम् ॥ अप्रबोधायसंसुप्तंविश्राम्यंतमिवोच्चकैः ॥ ३१ ॥ बांधवाक्रंदसंरंभकोलाहलगता गिरः ॥ स्नेहभावविचारार्थंशृण्वंतमिवयत्नतः ॥ ३२ ॥

अर्थ—वियोगके भयसे संयोगके परिहारमें तत्परकेसमान, दूर फैले हुये अन्यके अंगोंके समान अपने अंगोंसे आवृत था ॥ २९ ॥ और परस्पर न मिले हुये दोनों ओठोंसे और किंचित् म्लानिको प्राप्त स्मितदांतोंसे अपने जीवनको हंसते हुये विरक्त पुरुषके समान ॥ ३० ॥ मौन होनेसे ध्यानमें प्राप्तकेतुल्य मृत्तिकासे रचितके समान, पुनः न जागनेके लिये सोयेके सदृश, और पूर्णरीतिसे विश्राम करते हुयेके तुल्य वह होगया ॥ ३१ ॥ और स्नेहकी न्यूनता वा अधिकताके विचारार्थ बांधवोंके करुणामय रोदनके वेगसे कोलाहलतामें प्राप्त वाणियोंको यत्नसे सुनते हुयेके समान अपने मृतक शरीरको उसने देखा ॥ ३२ ॥

अथतत्कालकल्लोलप्रलापाकुलचेष्टितैः ॥ सोरस्ताडनमूर्च्छोत्थनेत्रवारिवहप्लुतैः ॥ ३३ ॥ क्रमेणस्वज नैःक्षुब्धैस्ताराक्रंदादिघर्घरैः ॥ निष्कालितममंगल्यमपुनर्दर्शनायवै ॥ ३४ ॥ नीतंश्मशानंमांसांत्रवसा पंककलंकितम् ॥ शुष्काशुष्करसक्लिन्नंकंकालशतसंकुलम् ॥ ३५ ॥ गृध्राभ्रच्छान्नसूर्यांशुचिताज्वलन निस्तमः ॥ शिवाशिवमुखज्वालाजालपल्लवितावनि ॥ ३६ ॥

अर्थ—और इसके पश्चात् उससमय निरन्तर रोदनसे व्याकुल चेष्टासहित, और वक्षस्थलके ताडनसे जनित मूर्छासे उत्पन्न नेत्र जलके प्रवाहसे आप्लुत होगया ॥ ३३ ॥ उच्च स्वरसे विलाप करनेसे घर्घर कण्ठ अतएव भीत अपने बन्धुओंने क्रमसे गृहसे उस मृतदेहको निकालके पुनः दर्शन न होनेके अर्थ अमंगल ॥ ३४ ॥ स्मशानमें प्राप्त किया, और मांस, आंती, और चर्वीरूप पंकसे कलंकित, कहीं शुष्क कहीं अशुष्क तथा रक्तसे आर्द्र, और सैकडों मृतक शरीरसे व्याप्त ॥ ३५ ॥ गीधरूप मेघोंसे सूर्य्यके किरणोंके आच्छादित होनेसे चिताकी अग्निसे अन्धकार रहित और शृगालियोंके अमंगल मुखसे निःसृत ज्वालारूप पल्लवयुक्त स्थानसे शोभित ॥ ३६ ॥

वहद्रक्तसरित्स्नातमग्नकंकोग्रवायसम् ॥ रक्तार्द्रतंत्रीप्रसरजालाबद्धजरत्खगम् ॥ ३७ ॥ तत्रतेज्वलनेदी प्तेचक्रुस्तंभस्मसाच्छवम् ॥ बांधवाःसलिलापूरंसमुद्राइववाडवे ॥ ३८ ॥ चितिश्चटचटास्फोटैःशव माशुददाहसा ॥ शुष्केंधनबहृच्छूनज्वालाजालजटावली ॥ ३९ ॥ अभ्युल्लसत्कटकटारवमुक्तगंधव्या प्तांबुवाहपटलोस्थिचयंहुताशः ॥ दंतीसरंध्रमिववेणुवनंसमंतादुद्दांतमेदुररसंदलयांचकार ॥ ४० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे गाधिवृत्तांते गाधिविनाशो नाम चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

अर्थ—तथा वहते हुये रक्तोंकी नदीमें कोई स्नात और कोई मग्न भयंकर काकयुक्त तथा रक्तसे आर्द्रताओंके विस्ताररूप जालमें बद्ध वृद्ध पक्षीगणसहित स्मशानदेशमें मृतकशरीर प्राप्त किया गया ॥ ३७ ॥ वहां प्रदीप्त अग्निमें बान्धवलोग मृतशरीरको क्षणमें ऐसे भस्म किया जैसे वडवानलमें जलके प्रवाहको समुद्र ॥३८॥ उस चिताने चटचटा शब्दोंके साथ शीघ्रही मृतशरीरको ऐसे जलाया जैसे शुष्क इन्धनोंसे अधिक बढी हुई अग्निकी ज्वाला जटाओंकी पंक्तिकी ॥३९॥चारोओर शोभायमान कटकटा शब्दोंसे और मुक्त गन्धोंसे मेघोंके पटलके व्याप्त करनेवाले अग्निने सब ओरसे सत्र अति चिक्कण रसयुक्त अस्थिके समूहको ऐसे दलित किया जैसे छिद्रसहित बासके बनको हस्ती ॥ ४० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे गाधिवृत्तान्ते गाधिविनाशो नाम चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

पंचचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

इस ४५ के सर्गमें इस गाधिकी चाण्डालीके उदरमें स्थिति चाण्डालरीतिसे निवास, और वंधुओंके मरनेपर कीरपुरमें राज्यकी प्राप्ति इन विषयोंका वर्णन किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ अथापश्यदसौगाधिःस्वाधिपीवरयाधिया ॥ अंतर्ज्जलस्थएवांतरात्मनात्मनि निर्मले ॥१॥ भूतमंडलपर्यंतग्रामोपांतनिवासिनाम् ॥ श्वपचानांस्त्रियागर्भेस्थितमात्मानमाकुलम् ॥२॥ गर्भदुःसभराक्रांतंपीडितंपेलवांगकम् ॥ श्वपचीहृदयेसुप्तंस्वविष्टायामिवाकुलम् ॥ ३ ॥ शनैःपक्कतया कालेप्रसूतंमेचकच्छविम् ॥ श्वपच्याप्रावृषेवाब्दंश्याममावलितंमलैः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—इसके अनन्तर जलके भीतर निर्मल आत्मामें अपने अन्तरात्मासे मानस दुःखोंसे वृद्धिको प्राप्त बुद्धिसे इस गाधिने ॥ १ ॥ भूतमंडलदेशकी सीमाके ऊपर ग्रामके समीपके निवासी चाण्डालोंकी स्त्रीके गर्भमें स्थित अति व्याकुल अपनेको देखा ॥ २ ॥ पुनः गर्भनिवासके दुःखोंके भारसे आक्रान्त, इसीसे कोमल शरीर होनेसे पीडित, विष्टामें व्याकुलके समान चाण्डालीके हृदयमें सुप्त अपनेको देखा ॥ ३ ॥ ४ ॥

संपन्नंश्वपचागारेशिशुंश्वपचवल्लभम् ॥ इतश्चेतश्चगच्छंतमुत्पीडमिवयामुनम् ॥ ५ ॥ द्वादशाब्ददशां यातंसंस्थितंषोडशाब्दिकम् ॥ पीवरांसमुदारांगंपयोदमिवमेदुरम् ॥ ६ ॥ सारमेयपरीवारंविहरंतंवना द्वनम् ॥ निघ्नंतंमृगलक्षाणिपौलिंदींस्थितिमागतम् ॥ ७ ॥ तमाललतयेवाथश्रितंश्वपचकांतया ॥ स्त नस्तबकशालिन्यानवपल्लवहस्तया ॥ ८ ॥

अर्थ—चाण्डालोंको प्रिय उनके स्थानमें बाल्यावस्थाको प्राप्त, और यमुनाके शिरोभूषण नील कमलक सदृश इधर उधर संचलित वह गाधि ॥ ५ ॥ कालपाके बारह वर्षके हुये अनन्तर सोलह वर्षमें स्थित, स्थूल स्कन्धसहित ऐसे सुन्दर शरीर भासतेथे जैसा श्याममेघ ॥ ६ ॥ कुत्तोंके साथ एक वनसे दूसरे वनमें विहार करते हुये, लाखों मृगोंके मारते हुये पूर्ण चाण्डाली स्थितिको प्राप्त हुये ॥ ७ ॥ इसके पश्चात् स्तनरूप गुच्छोंसे शोभित नूतनपल्लव सदृश हस्तधारिणी तमालकी लताके तुल्य चाण्डालकी कन्यासे गाधिने विवाह किया ॥ ८ ॥

श्यामयामलिनाकारदशनामलमालया ॥ वनपल्लवयाभूरिविलासवलितांगया ॥ ९ ॥ विलसंतंवनांते [illegible]यासहनवोढया ॥ श्यामलंश्यामयाभृंगंभृंग्येवकुसुमर्द्धिषु ॥ १० ॥ वनपर्णलतापत्रेवसंतंव्यसनातुर [illegible] विंध्यकांतारमाकारमभ्यागतविवोद्भटम् ॥ ११ ॥ विश्रांतंवनकुंजेषुसुप्तंगिरिदरीषुच ॥ निलीनंप [illegible]पुंजेषुगुल्मकेषुकृतालयम् ॥ १२ ॥

अर्थ—पुनः श्यामवर्ण, दन्तधावनके अभावसे मलिन आकारवाली तथा स्वाभाविक शुक्लतासे निर्मल दन्त-माला धारण किये, और वनके पल्लवोंको लजानेवाली तथा अनेक क्रीडाओंसे वेष्टित शरीर ॥ ९ ॥ उस न वोढा चाण्डालीके साथ वनान्तमें ऐसे विलास किया जैसे पुष्पोंके समूहोंमें श्यामल भृंगीके साथ श्यामवर्णका भृंग ॥ १० ॥ और वनके पत्र तथा लतापत्रमें निवास करते हुये दुःखोंसे ऐसे व्याकुल हुये जैसे पुरुषका आकार धारण किये क्रूरताको प्राप्त साक्षात् विन्ध्याचलका जङ्गल ॥ ११ ॥ वनके कुंजोंमें विश्राम पर्वतके कन्दराओंमें शयन करते हुये, पत्रोंके कुंजोंमें लीन, और लता गुल्मोंसे रचितस्थान ॥ १२ ॥

किंकिरातावतंसाढ्यंयूथिकास्रग्विभूषिम् ॥ केतकोत्तंससुभगंसहकारस्रगाकुलम् ॥ १३ ॥ लुलितंपु ष्पशय्यासुभ्रांतमद्रितटीषुच ॥ तज्ज्ञंकाननकोशेषुबहुज्ञंमृगमारणे ॥ १४ ॥ प्रसूतमथशैलेषुपुत्रान्निज कुलांकुरान् ॥ अत्यंतविषमोदंतान्खदिरःकंटकानिव ॥ १५ ॥ कलत्रवंतंसंपन्नंस्थितंप्रक्षीणयौवनम् ॥ शनैर्ज्जर्जरतांयातंवृष्टिहीनमिवस्थलम् ॥ १६ ॥

अर्थ—किंकिरात (वृक्षविशेष) की लताके शिरोभूषणसे पूर्ण, यूथिका (जूही) की मालासे शोभित, केतक पुष्पके शिरोभूषणसे सुन्दर और आम्रकी मालासे व्याप्त गाधि ॥ १३ ॥ पुष्पोंको शय्यापर लोटते हुये, पर्वतकी तटियोंमें भ्रमणशील, वनोंके कोशोंके विषयमें असाधारण ज्ञानयुक्त, और मृगोंके मारनेमें पण्डित उससे ॥ १४ ॥ अति भयंकर कथनके अयोग्य चरित्रवाले अपने कुलके अंकुर पुत्रोंको उत्पन्न ऐसे किये जैसे खदिर वृक्ष कंटकोंको ॥ १५ ॥ कुटुंबिता दशाको प्राप्त क्षीण यौवन धीरे २ जर्जरता दशाको ऐसे प्राप्त हुये जैसे हीन स्थल ॥ १६ ॥

ततोभूतग्रहग्रामजन्मदेशमुपेत्यतम् ॥ संस्थितंमठिकांपर्णैःकृत्वादूरेमुनींद्रवत् ॥ १७ ॥ जराजरठतां यातंस्वदेहसमपुत्रकम् ॥ जीर्णप्रायरसश्वभ्रतमालतरुसन्निभम् ॥ १८ ॥ मौढंश्वपचगार्हस्थ्यंकुर्वाणंव

हुबांधवम् ॥ क्रूरनामार्थवचनंपरांवृद्धिमुपागतम् ॥ १९ ॥ अथापश्यदसौगाधिर्यावत्तस्यकलत्रिणः ॥ जरठःश्वपचेभ्यश्चस्वात्मनोभ्रमहारिणः ॥ २० ॥

अर्थ—इसके पश्चात् मण्डलदेशके ग्रामके निकट अपनी जन्मभूमिको प्राप्त होकर ताड आदिके पत्तोंसे छोटी कुटी बनाके श्रेष्ठमुनीके समान ग्रामसे दूरस्थित हुये ॥ १७ ॥ वृद्धाऽवस्थासे जीर्णताको प्राप्त, अपने शरीरके समान प्रमाणवाले पुत्रसहित, और जीर्णतुल्य रससहित तथा गढेमें उत्पन्न तमालके वृक्षके सदृश ॥ १८ ॥ अनेक बन्धुयुक्त चाण्डालके गार्हस्थ्यको अति दृढ करते हुये, क्रूर नाम अर्थ क्रिया तथा बचन संयुक्त, और अति वृद्धिको प्राप्त॥ १९ ॥ इस वृद्ध गाधि ब्राह्मणने अपनेको देखा, इसके पश्चात् भ्रमकी ही ओर झुके हुये उस कुटुंबी गाधिके ॥ २० ॥

तत्कलत्रमशेषेणनीतमावृत्यमृत्युना ॥ आसारसलिलेनाशुवनपर्णगणोयथा ॥ २१ ॥ प्रलपत्येकएवासावटव्यांदुःखकर्शितः ॥ वियूथइवसारंगोविगतास्थोश्रुलोचनः ॥२२॥ दिनानिकतिचित्तत्रनीत्वाशोकपरीतधीः ॥ जहौस्वदेशंसंशुष्कपद्मंसरइवांडजः ॥२३॥ विजहारबहून्देशाननास्थश्चिंतयान्वितः ॥ प्रेर्यमाणइवान्येनवातनुन्नइवांबुदः ॥ २४ ॥

अर्थ—सम्पूर्ण कुटुम्बको मृत्यु ऐसे उठा ले गया जैसे वृष्टिका जलप्रवाह वनमें गिरे हुये शूखे पत्तेके समूहको ॥ २१ ॥ अब यह एकाकी दुःखोंसे पीडित उस महाजंगलमें ऐसे रोता फिरताहै जैसे अपने यूथ (झुण्ड) से भ्रष्ट अश्रुनेत्र और शान्तिरहित पक्षी ॥ २२ ॥ शोकसे पूर्ण चित्त उस ब्राह्मणने कुछ दिन वहां बिताकर उस देशको ऐसे त्यागा जैसे शूखे हुये कमल संयुक्त तडागको पक्षी ॥ २३ ॥ आस्थारहित, चिन्तायुक्त और दूसरेसे प्रेरितके समान अनेक देशोंमें उसने ऐसे भ्रमण किया जैसे वायुसे प्रेरित मेघ ॥ २४ ॥

एकदाप्रापकीराणांमंडलेश्रीमतींपुरीम् ॥ खेचरोविहरन्शून्येसद्विमानमिवांबरे ॥ २५ ॥ नृत्यद्रत्नांशुकच्छन्नमार्गवृक्षलतांगनम् ॥ आगुल्फाकीर्णकुसुमंचंदनागुरुसुंदरम् ॥ २६ ॥ सामंतैर्ललनाभिश्चनागरैश्चनिरंतरम् ॥ स्वर्गमार्गोपमंराजमार्गमध्यमवापसः ॥ २७ ॥ मणिरत्नकृतागारंतत्रमंगलहस्तिनम् ॥ ददर्शामरशैलेंद्रमिवसंचारचंचलम् ॥ २८ ॥

अर्थ—एकसमय कीरोंके निवासस्थान देशमें उनकी श्रीमतीपुरीमें ऐसे प्राप्त हुआ जैसे शून्यआकाशमें चलता हुआ पक्षी उत्तम विमानको ॥ २५ ॥ नाचते हुये तथा रत्नोंसे और वस्त्रोंसे आच्छादित मार्गस्थ वृक्ष जिनकी ऐसी लता और अंगनासहितहै, तथा एडीतक पुष्पोंसे व्याप्त, और चन्दन तथा अगरूसे अति सुन्दर मार्गके मध्य वह चाण्डालरूप गाधि प्राप्त हुआ ॥ २६ ॥ करदाता छोटे राजाओंसे उत्तम ललनाओंसे, नगरनिवासियोंसे पूर्ण और स्वर्गके तुल्य उस राजमार्गमें वह प्राप्त हुआ ॥ २७ ॥ श्रेष्ठमणियोंके हौदेसहित, और चलनेमें चंचल मेरूके समान मंगलहस्तीको वहां देखा ॥ २८ ॥

मृतेराजनिराजार्थंविहरंतमितस्ततः ॥ रत्नज्ञमिवरत्नार्थीचिंतामणिदिदृक्षया ॥ २९ ॥ तमसौश्वपचोनागंकौतुकोद्धुर्यादृशा ॥ चिरमालोकयामासस्पंदयुक्ताचलोपमम् ॥ ३० ॥ आलोकयंतमादायतंकरेणसवारणः ॥ स्वकटेऽयोजयन्मेरुस्तटेर्कमिवसादरम् ॥ ३१ ॥ तस्मिन्कटगतेनेदुर्जयदुंदुभयोभितः ॥ कल्पांबुदइवाकाशमधिरूढेमहार्णवाः ॥ ३२ ॥

अर्थ—राजाके मरनेपर अन्य राजाकी इच्छासे इधर उधर ऐसे वह हस्ती फिरताथा जैसे चिन्तामणिके देखनेकी इच्छासे रत्नकी परीक्षामें कुशल रत्नार्थी पुरुष ॥ २९ ॥ किंचित् संचलनयुक्त पर्वतके समान उस हस्तीको उत्कण्ठित दृष्टिसे चिरकालतक देखा ॥ ३० ॥ देखते हुये उस चाण्डालको उस हस्तीने उठाके अपने गण्डस्थलपर आदरसहित ऐसे बैठाया जैसे सुमेरू अपने तटपर सूर्यको ॥ ३१ ॥ उसके गण्डस्थलपर चढनेके अनन्तर जयके नगारे ऐसे बजे जैसे प्रलयकालके मेघके आकाशपर चढनेपर महासमुद्र ॥ ३२ ॥

पूरिताशोबभौराजाजयतीतिजनस्वनः ॥ उदभूत्संप्रबुद्धानांविहगानामिवारवः ॥ ३३ ॥ उदभूद्वंदिवृंदानांघनकोलाहलस्ततः ॥ वेलाविलुलितांबूनामंबुधीनामिवध्वनिः ॥ ३४ ॥ तंतत्रावरयामासुर्मंडनार्थंवरांगनाः ॥ क्षीरोदगतविश्रांतालहर्यइवमंदरम् ॥ ३५ ॥ मानिन्यस्तंगुणप्रोतैर्नानारत्नैरपूरयन् ॥ नानाप्रभाप्रभातार्कावेलाइवतटाचलम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—संपूर्ण दिशाओंको पूर्ण करनेवाला राजाकी जयहो ऐसा मनुष्योंका शब्द इसप्रकार उठा जैसे प्रातःकालमें जागे हुये पक्षियोंका ॥ ३३ ॥ इसके पीछे बन्दियोंके समूहोंका ऐसा कोलाहल हुआ जैसे तटके संक्षुब्ध जलोंसे समुद्रोंकी ध्वनि ॥ ३४ ॥ वहांपर श्रेष्ठ अंगना उसको मण्डनकेलिये चारोओरसे ऐसे घेरलिया जैसे क्षीरसमुद्रमें

मन्दराचलसे क्षुभित तरंग मन्दराचलको ॥ ३५ ॥ मानिनी स्त्रियोंने सूत्रोंमें गूंथे हुये नानाप्रकारके रत्नोंसे ऐसे पूर्ण किया जैसे प्रातःकालमें सूर्य्यकी प्रभायुक्त नानाप्रकारकी मणीमयी समुद्रकी तटी अपने निकटमें स्थित पर्वतको ॥३६॥

तुषारशिशिरस्पर्शैस्तास्तंहारैरभूषयन् ॥ श्यामावननदीपूरैर्वर्षाःशृंगमिवोत्तमम् ॥ ३७ ॥ विचित्रवर्ण सौगंध्यैःपुष्पैरावलयन्स्त्रियः ॥ वनंमधुश्रियइवतंलोलकरपल्लवाः ॥ ३८ ॥ नानावर्णरसामोदैस्तास्त माशुविलेपनैः ॥ अलेपयन्प्रभाजालैर्नगोभ्रमिवधातुभिः ॥ ३९ ॥ रत्नकांचनकांतोसावादधेचित्तमात तम् ॥ संध्याभ्रतारेंदुनदीव्याप्तंमेरुरिवांबरम् ॥ ४० ॥

अर्थ—उन युवतियोंने तुषारके समान शीतल स्पर्शयुक्त हारोंसे ऐसे भूषित किया जैसे वर्षाऋतु नदीके प्रवाहोंसे उत्तम शिखरको ॥ ३७ ॥ चंचलकर पल्लव धारण किये हुई स्त्रियोंने चित्रविचित्र वर्ण और सौगन्धयुक्त पुष्पोंसे ऐसे वेष्टित किया जैसे वसन्तऋतुकी शोभा वनको ॥ ३८ ॥ उन स्त्रियोंने नानाप्रकारके रस और सौगन्ध्ययुक्त लेपनोंसे ऐसे उस गाधिको लिप्त किया (उवटन लगाया) जैसे पर्वत नानाप्रकारके धातुसम्बन्धी प्रभाके समूहोंसे मेघको ॥ ३९ ॥ रत्न तथा सुवर्णोंसे भूषित अति सुन्दर वह चाण्डाल राजा उन स्त्रियोंके चित्तको ऐसे ग्रहण किया जैसे सन्ध्याकालमें मेघ, तारागण, चन्द्रमा और नदियोंसे व्याप्त आकाशको सुमेरु ॥ ४० ॥

भूषितःसविलासाभिर्बालवल्लीभिरावृतः ॥ रत्नपुष्पांशुकाकीर्णःकल्पवृक्षइवाबभौ ॥ ४१ ॥ तादृशंत मुपाजग्मुःपरिवारसमन्विताः ॥ सर्वाःप्रकृतयःफुल्लंमार्गद्रुममिवाध्वगाः ॥ ४२ ॥ ताएनमासनेसिंहेत त्राभिषिपिचुःक्रमात् ॥ तस्मिन्नेवगजेशक्रमैरावतइवामराः ॥ ४३ ॥ एवंसश्वपचोराज्यंप्रापकीरपुरां तरे ॥ आरण्यंहरिणंपुष्टमप्राणमिववायसः ॥ ४४ ॥

अर्थ—विलासवती स्त्रियोंसे भूषित वह राजा ऐसे शोभित हुआ जैसे नूतन लताओंसे वेष्टित और रत्नरूप पुष्पोंसे तथा वस्त्रोंसे व्याप्त कल्पवृक्ष ॥ ४१ ॥ उसप्रकारसे भूषित उस राजाके निकट परिवारसहित सम्पूर्ण प्रजा ऐसे गई जैसे विकसित मार्गके वृक्षके निकट बटो ही ॥ ४२ ॥ वे सम्पूर्ण प्रजा इस राजाको सिंहके आसनपर बैठाकर और ब्राह्मण आदि वर्ण क्रमसे इसका राज्याभिषेक किया, और अभिषेकके पश्चात् उसी हांथी (जिसने इसको अपने ऊपर बैठायाथा) पर बैठाकर सब प्रजा पीछे २ ऐसे चली जैसे ऐरावत हस्तीपर आरूढ इन्द्रके पीछे २ सब देवता ॥४३॥ इसप्रकार इस चाण्डालने कीरोंके नगरमें राज्य ऐसे पाया जैसे प्राणरहित और पुष्ट जंगली हरिणको कौआ ४४

जज्वालकीरन कीरीकरतलांभोजप्रमृष्टचरणांबुजः ॥ सर्वांगेकुंकुमालेपैःसंध्यांबुधरशोभनः ॥ ४५ ॥ जज्वालकीरन गरेनागरीगणवानसौ ॥ सिंहीगणयुतःसिंहोयथाकुसुमितेवने ॥ ४६ ॥ हरिहतकरिकुंभोन्मुक्तमुक्ताक लापप्रविरचितशरीरःशांतचिंताविषादः ॥ अरमतसहसद्भिस्तत्रभोगैःसरस्यांरविकरमदतप्तोवारिपूरै रिवेभः ॥ ४७ ॥ परिविसृतनृपोजाःसर्वदिक्संस्थिताज्ञःकतिपयदिवसेहासिद्धदेशव्यवस्थः ॥ प्रकृति भिरलमूढाशेषराजन्यभारःसगवलइतिनाम्नातत्रराजाबभूव ॥ ४८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे गाधिवृत्तांतेश्वपचराज्यलाभो नाम पंचचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

अर्थ—कीरोंकी स्त्रियोंके करकमलोंसे मर्दित चरणकमल तथा सब अंगोंमें कुंकुमके लेपसे संध्याकालके मेघके समान शोभायमान वह राजा ॥ ४५ ॥ नगरनिवासिनी स्त्रियोंके गणसे ऐसे दीप्तिमान हुआ जैसे सिंहीके गणसे वेष्टित पुष्पितवनमें सिंह ॥ ४६ ॥ सिंहोंसे मारे हुये हस्तियोंसे निकली हुई मोतियोंके समूहसे भूषित शरीर और चिंता तथा विषादोंसे रहित उस राजाने उत्तम मन्त्री तथा पुरोहितोंके साथ अनेक भोगोंसे उस नगरमें ऐसे रमण किया जैसे सूर्य्यके किरण और मदसे तप्त हांथियोंका राजा सरोवरमें जलके प्रवाहोंसे ॥ ४७ ॥ चारोंओर विस्तृत राज शक्तिसहित तथा सब दिशाओंमें राजाज्ञाको विस्तृत करनेवाली थोडे ही दिनोंमें स्वेच्छा मात्रसे राज्यकी व्यवस्था सिद्ध करके वह चाण्डाल गवल इस नूतन नामसे प्रसिद्ध उस कीरोंके देशमें राजा हुआ ॥ ४८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ति मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे गाधिवृत्तान्ते स्वपचराज्यलाभो नाम पंचचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥

इस ४६ के सर्गमें एक चांडालसे उस राजाको चाण्डाल सुनके सब मनुष्योंके अग्निमें प्रवेश करनेपर गाधिने भी अग्निमें प्रवेश किया और जलकर जाग्रत हुआ यह विषय वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ विलासिनीभिर्वलितोमंत्रिमंडलपूजितः ॥ वंदितःसर्वसामंतैश्छत्रचामरलालितः ॥ १ ॥ सिद्धानुशासनःकांतोज्ञातराज्यगुणक्रमः ॥ वीतशोकभयायासप्रजःप्राप्तमहादशः ॥ २ ॥ विस्मृतात्मस्वभावोभूदनिशंस्तवमंगलैः ॥ आनंदपूर्णयावृत्त्याभृशंक्षीबइवासवैः ॥ ३ ॥ कीरेषुश्वपचोराज्यंवर्षाण्यष्टौचकारह ॥ आर्यवृत्तमशेषेणतावत्कालंबभारह ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे राम ! विलासिनियोंसे वेष्टित (घिरा हुआ) मंत्रियोंके मंडलसे पूजित, संपूर्ण छोटे २ कर देनेवाले राजाओंसे वन्दित, तथा छत्र चमरसे शोभित ॥ १ ॥ तथा आज्ञाओंको प्रजासे स्वीकार करानेवाला तथा अति सुन्दर राज्यके गुण क्रमका ज्ञाता, प्रजाओंके शोक भय आदिका हर्ता, और उच्च दशाको प्राप्त॥२॥ वह चाण्डाल नित्य मंगल तथा स्तुतिके कारणसे अपनी पूर्वदशाको ऐसे विस्मृत होगया जैसे अति मद्यपानसे पूर्णानन्दकी वृत्तिसे मदोन्मत्त जन अपने पूर्वस्वभावको ॥ ३ ॥ इस चाण्डालने ८ आठ वर्षपर्य्यन्त राज्य किया तबतक पूर्ण रीतिसे दया दाक्षिण्य शौच आदि सब आर्य्योंके आचरणको धारण किया ॥ ४ ॥

यदृच्छयैकदाथासावतिष्ठत्त्यक्तभूषणः ॥ अतमस्तारकेंद्वर्कतेजोंभोदमिवांबरम् ॥ ५ ॥ बहुमन्यतनोहारकेयूरवलयान्यसौ ॥ प्रभुतावृंहितंचेतोनाहार्यमभिनंदति ॥ ६ ॥ एकएवाजिरंबाह्यंतादृग्वेषःसनिर्ययौ ॥ मुख्यांगणान्नभोभागादस्तंगच्छन्निवांशुमान् ॥ ७ ॥ तत्रापश्यद्धनंश्यामंपीनंश्वपचपेटकम् ॥ गायन्मधुवसंतोत्थंकोकिलानामिवव्रजम् ॥ ८ ॥

अर्थ—एकसमय अकस्मात् भूषणोंको त्यागकर तम, तारा, सूर्य्य चन्द्रमाके तेज तथा मेघोंसे रहित आकाशके समान नीलवर्ण भान होनेलगा ॥ ५ ॥ हार, केयूर और कटकको यह अधिक नहीं समझताथा क्योंकि प्रभुतासे बढा हुआ चित्त कृत्रिम भूषणादिसे प्रसन्न नहीं होता ॥ ६ ॥ यह उसी नंगे वेषसे मुख्य जनोंसे आश्रित भीतरके अंगणसे नीच जनोंसे आश्रित बाहरके अंगणमें ऐसे गया जैसे सूर्य अस्त होतेसमय मुख्य आकाशके भागसे नीचेके आकाशमें ॥ ७ ॥ वहांपर वसन्तऋतुमें निकले हुये मधुर गान करते हुये कोकिलके समान स्थूल और श्यामवर्ण चाण्डालके समूहको देखा ॥ ८ ॥

धुनानंवल्लकीतंत्रींकरपल्लवलीलया ॥ मृदुरेफंरणद्रेफामालेश्रेणिमिवद्रुमम् ॥ ९ ॥ एकस्तस्मात्समुत्तस्थौजरावान्रक्तलोचनः ॥ काचशृंगंहिमापूर्णमिवश्वपचनायकः ॥ १० ॥ भोकटंजेतिसहसावदन्कीरमहीपतिम् ॥ इहराजाभवंतंवाकच्चिद्गेयक्रियाविदम् ॥ ११ ॥ रक्तकंठंमानयतिरागवानिवकोकिलम् ॥ आपूरयतिवाकच्चिद्गृहवस्त्रासनार्पणैः ॥ १२ ॥

अर्थ—वीणाके गुणको हस्तपल्लवकी लीलासे ऐसे बजाते हुयेथे जैसे वृक्षको कँपाती हुई मधुर स्वरसे शब्द करती हुई भ्रमरकी श्रेणी ॥ ९ ॥ उस समूहसे वृद्ध और रक्तनेत्र एक चाण्डालोंका नायक उठके खडा हुआ ॥१०॥ और हे कटंज (यह उसका चाण्डालदशाका नामथा) ऐसा कीरोंके राजाको सम्बोधन करता हुआ बोला कि क्या गानक्रियामें कुशल मधुरकण्ठ तुमको यहांका राजा ॥ ११ ॥ सन्मान करताहै और रागवान् मधुर स्वर कोकिलके सदृश तुमारे गृहको वस्त्र आसन और अन्न आदिके दानसे पूर्ण करताहै ॥ १२ ॥

मधूरसालविटपंफलपुष्पभरैरिव ॥ दर्शनेनतवाद्याहंपरांनिर्वृतिमागतः ॥ १३ ॥ पद्मंसूर्योदयेनेवचंद्रोदयइवौषधी ॥ आनंदानामशेषाणांलाभानांमहतामपि ॥ १४ ॥ विश्रामाणामनंतानांसीमांतोबंधुदर्शनम् ॥ श्वपचेप्रवदत्येवंराजायावत्तयातया ॥ चकारतत्कालजयाचेष्टयैवावधीरणम् ॥ १५ ॥ तावद्वातायनगताःकांताःप्रकृतयस्तथा ॥ श्वपचोयमितिज्ञात्वाम्लानतामलमाययुः ॥ १६ ॥

अर्थ—हे वन्धो ! फल पुष्पके भारोंसे लसित आम्रवृक्षको देखके वसन्त प्रसन्न होताहै ऐसे ही आपके दर्शनसे मैं सुखको प्राप्त हुआहुं ॥ १३ ॥ और जैसे सूर्य उदयसे कमल और चन्द्रोदयसे औषधि विकसित होती है ऐसे ही आपके दर्शनसे मैं प्रसन्नहुं, सम्पूर्ण आनन्दोंके बडे २ भी लाभोंके ॥ १४ ॥ और अनन्त विश्रामोंकी सीमाका अन्त बन्धुका दर्शनहै ऐसे उस चाण्डालके कहनेपर राजाने उसमयके उचित चेष्टासे उसका तिरस्कार किया ॥ १५ ॥ इतनेहीमें झरोखेमें बैठीहुई स्त्रियोंने तथा अन्य प्रजाने यह चाण्डालहै ऐसा जानकर परम मलिनताको ग्रहण किया॥१६॥

पद्मास्तुपारप्रावृष्ट्याग्रामाःसावग्रहाइव ॥ दाववंतइवाद्रींद्रानागरानविरेजिरे ॥ १७ ॥ नृपोवधीरयामा सतांतांश्वपचसंकथाम् ॥ वृक्षाग्रगतमार्जारफेत्कारंमृगराडिव ॥ १८ ॥ सत्वरंप्रविवेशांतःपुरमाम्लान मानवम् ॥ राजहंसइवावर्षेसीदत्सरसिजंसरः ॥ १९ ॥ सर्वावयवविश्रांतांम्लानतामयमाययौ ॥ जानु स्तंभांतरमहारंध्राग्निरिवद्रुमः ॥ २० ॥

अर्थ—और हिमकी वृष्टिसे जैसे कमल, वृष्टिके अभावमें ग्राम, तथा दावाग्निसे जैसे पर्वत नहीं शोभित होते ऐसेही नगरनिवासी शोभित नहीं हुये॥१७॥ राजाने उस २ चाण्डालकी कथाको ऐसे तिरस्कार किया जैसे वृक्षके ऊपर स्थित मार्जार (बिलार) के घुरोहटको सिंह ॥ १८ ॥ अति उदासीन मनुष्योंसे आवृत्त अन्तःपुरमें शीघ्र ऐसे प्रवेश किया जैसे वर्षाके अभावमें शुष्क कमलयुक्त तडागमें राजहंस ॥ १९ ॥ और सम्पूर्ण अंगोंमें व्याप्त म्लानताको यह ऐसे प्राप्त हुआ जैसे मूलभागमें महा छिद्रमें अग्निके होनेसे वृक्ष ॥ २० ॥

तत्रापश्यदसौसर्वंविषण्णवदनंजनम् ॥ जालंकुंकुमपुष्पाणांभुक्तमूलमिवाखुना ॥ २१ ॥ मंत्रिणोनाग रानार्यस्ततस्तेतंमहीपतिम् ॥ नस्पृशुरपितिष्ठंतंगृहएवशवंयथा ॥ २२ ॥ भृत्याश्वाकृतसत्कारंदूरएन मथात्यजन् ॥ दुःखयुक्तायनस्नेहाअपिबालाःशवंयथा ॥ २३ ॥ अनानंदमुखंश्यामंशरीरश्रीविवर्जितम्॥ दग्धंस्थलमिवैनंतेबह्वमन्यंतनाकुलाः ॥ २४ ॥

अर्थ—वहांपर संपूर्ण जनोंको उदासीन मुख ऐसे देखा जैसे मूषकसे भुक्त पुष्प लताका मूल ॥ २१ ॥ मंत्री; नगरनिवासी; और स्त्रियां गृहमें ही स्थित उस राजाको ऐसे नहीं स्पर्श करतीथी जैसे मृतक शरीरको ॥ २२ ॥ विना सत्कार किये हुये इस राजाको दुःखी भृत्यलोगोंने ऐसे त्यागदिया जैसे अति स्नेहयुक्त भी बालक मृतकशरीरको ॥ २३ ॥ आनन्दरहित मुखसहित, श्यामवर्ण और शरीरकी शोभासे वर्जित इस राजाका आदर व्याकुल भृत्यादिकोंने ऐसे नहीं किया जैसे स्मशान भूमिका ॥ २४ ॥

धूमायमानदेहस्यपरितापदशावती ॥ नाढौकतास्यजनतापार्श्वमग्निगिरेरिव ॥ २५ ॥ मंदोत्साहाःसमु द्भूताःसभ्यसंघातवर्जिताः ॥ नतदाज्ञाःपदंप्रापुर्भस्मनीवांबुविप्रुषः ॥ २६ ॥ क्रूरकर्मकराकारात्संगता शुभदायिनः ॥ तस्माद्विशेषेणजनाराक्षसादिवदुद्रुवुः ॥ २७ ॥ एकएवबभूवासौजनमध्यगतोपिसन् ॥ अर्थादिगुणनिर्मुक्तःपरदेशइवाध्वगः ॥ २८ ॥

अर्थ—धूमके सदृश शरीरधारी इस राजाके निकट जनसमूह ऐसे नहीं आया जैसे अग्नि पर्वतके शिला भाग-पर ॥ २५ ॥ उत्साहरहित उत्पन्न और कीरोंके समूहसे उपेक्षित उसकी आज्ञाके योग्य पुरुषको ऐसे नहीं पाया जैसे जलके विन्दु भस्ममें ॥ २६ ॥ उस राजाके निकटसे विशेष करके सब लोग ऐसे भागतेथे जैसे क्रूरकर्मकी खानि संगतिसे पापदायी राक्षससे ॥ २७ ॥ जनके समूहमें प्राप्तभी यह अब एकाकी (अकेला) ऐसे रहगया जैसे परदेशमें धनसे हीन वटो ही ॥ २८ ॥

भृशमालपतेप्यस्मैनालापंनागरादद्दुः ॥ मुक्ताजालयुतायापिकीचकायाध्वगाइव ॥ २९ ॥ अथसर्वेवयं दीर्घकालंश्वपचदूषिताः ॥ प्रायश्चित्तैर्नशुद्ध्यामःप्रविशामोहुताशनम् ॥ ३० ॥ इतिनिर्णीयनगरेनाग रामंत्रिणस्तथा ॥ अभितोज्वालयामासुश्चिताःशुष्कैंधनैधिताः ॥ ३१ ॥ ज्वलितास्वभितस्तासुतार कास्विवखेतदा ॥ बभूवनगरंसर्वमाक्रंदपरमानवम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—बार २ बात कहते हुयेभी इसको नगरनिवासी उत्तर ऐसे नहीं देतेथे जैसे मुक्ताके समूहयुक्त और वायुसे कूजते हुयेभी वांसको वटो ही ॥ २९ ॥ उसके पश्चात् सबने यह विचार किया कि हम सब दीर्घकालतक चाण्डालके संगसे दूषित हुये प्रायश्चित्तसे शुद्ध नहीं होंगे इसलिये अग्निमें प्रवेश करें ॥ ३० ॥ ऐसा निर्णय करके नगरनिवासी तथा मंत्रीगण नगरमें सूखे इन्धनसे वर्द्धित चारोओरसे बडी भारी चिता प्रज्वलित की ॥ ३१ ॥ आकाशमें तारागणोंके समान चारोओरसे उन चिताओंके जलनेपर उस नगरके निवासी सब रोदनमें तत्पर होगये ॥ ३२ ॥

करुणारावमुखरैःकलत्रैर्बाष्पवर्षिभिः ॥ अवष्टब्धंज्वलत्कुंडोपांतमंदरुदत्प्रजम् ॥ ३३ ॥ अग्निकुंडप्रवि ष्टानांमंत्रिणांभृत्यरोदनैः ॥ रुदत्क्रंदद्दृढतरमरण्यमिवमारुतैः ॥ ३४ ॥ चितादीपितविभ्रेद्रमांसमांस लगंधया ॥ जातनीहारमुत्पातवात्ययावकरोद्धतैः ॥ ३५ ॥ वातदीर्घवसागंधदूरानीतखगोर्जितैः ॥ चक्रैर्व्योमाभवच्छन्नभास्करंजलदैरिव ॥ ३६ ॥

अर्थ—करुणाके शब्दसे शब्दायमान और अश्रुओंकी वृष्टिकरनेवाले सब कुटुम्ब एक दूसरेके हस्तके सहारेसे वहां स्थित थे और जलते हुये कुण्डोंके समीपमें प्रजाजन आकर वहां रोदन कररहीथी ॥ ३३ ॥ और कुण्डोंमें

प्रविष्ट मंत्रियोंके तथा भृत्योंके रोदनसे दृढतापूर्वक ऐसे रोदन और विलाप करतेथे जैसे महा झंझा वायुसे जंगल ॥ ३४ ॥ और चितामें जलते हुये श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके मांससे वृद्धिको प्राप्त सुगन्ध सहित महा वायुसे उडी हुई धूलिसे उत्पन्न तुषारके समान स्थित, वह नगर भासताथा ॥ ३५ ॥ और पवनके द्वारा दूरदेशमें विस्तृत चर्वी आदिके गन्धोंसे दूर देश लाये हुये पक्षियोंके तथा पिशाचोंके बलवान् मण्डलोंसे मेघोंसे आच्छादित आकाशके समान वह नगर भासताथा ॥ ३६ ॥

वातोद्धूतचितावह्निप्रज्वलद्व्योममंडलम् ॥ उड्डीनाग्निकणव्राततारासारदिगंतरम् ॥ ३७ ॥ प्रमत्ततस्कर क्रंदद्धेलद्बालकुमारकम् ॥ संत्रस्तनागरापास्तजीविताख्यमसंस्थिति ॥ ३८ ॥ अलक्षितगृहंचौरलुंठि ताखिलसंचयम् ॥ त्यक्तपुत्रकलत्रंतन्मरणव्यग्रनागरम् ॥ ॥ ३९ ॥ तस्मिंस्तथावर्त्तमानेकष्टेविधिवि पर्यये ॥ अशेषजनताशेषकल्पांतसदृशस्थितौ ॥ ४० ॥

अर्थ—वायुसे कम्पित चिताकी अग्निसे प्रज्वलित आकाशमण्डलसे व्याप्त और उडी हुई अग्निके कणरूप तारागणोंसे दिशाओंका अंतराल पूर्ण होरहा था ॥ ३७ ॥ और वहां आभूषणादि हरणके समयमें प्रचण्ड तस्करोंसे बालक तथा किंचित् प्रौढ मनुष्यभी कम्पित होरहे थे, और जहां भयसे त्रस्त नगरनिवासिओंने अपने प्राण और नामकोभी त्यागदियाथा इसीसे मर्य्यादा शून्य होगयाथा ॥ ३८ ॥ गृह वहां नहीं देख पडतेथे, चोरोंने संपूर्ण संचित धन लूट लियाथा अपने कुटुम्ब स्त्रीपुत्रादिको भी लोगोंने जहां त्यागदियाथा और मरनेके अर्थ नगरनिवासी शीघ्रता कररहेथे ऐसा वह नगर होगया ॥ ३९ ॥ इस प्रकार विधिसे विपर्य्यय कष्ट जब उस नगरमें वर्तमानथा, और संपूर्णमनुष्योंके कल्पांतके सदृश दशामें स्थित होनेपर ॥ ४० ॥

राज्यसज्जनसंपर्कपवित्रीकृतधीरधीः ॥ गवलश्चिंतयामासशोकेनाकुलचेतनः ॥ ४१ ॥ मदर्थेहिक दर्थोयंदेशेस्मिन्स्थितिमागतः ॥ अकालकल्पांतमयःसर्वनायकनाशनः ॥ ४२ ॥ किंमेजीवितदुःखेन मरणंमेमहोत्सवः ॥ लोकनिंद्यस्यदुर्जंतोर्जीवितान्मरणंवरम् ॥ ४३ ॥ इतिनिश्चित्यगवलोज्वलितेज्व लनेपुनः ॥ पतंगवदनुद्वेगमकरोदाहुतिंवपुः ॥ ४४ ॥ तस्मिन्बलाद्दवलनाग्निहुताशराशौदेहेपतत्यवय वाकुलतांप्रयाते ॥ स्वांगावदाहदहनस्फुरणानुरोधादंतर्जलेझटितिबोधमवापगाधिः ॥ ४५ ॥ श्रीवा ल्मीकिरुवाच ॥ इत्युक्तवत्यथमुनौदिवसोजगामसायंतनायविधयेस्तमिनोजगाम ॥ स्नातुंसभाकृतन मस्करणाजगामश्यामाक्षयेरविकरैश्चसहाजगाम ॥ ४६ ॥ ॥ दिनम् ॥ १२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे गाधिवृत्तांतेराज्यभ्रंशो नाम षट्चत्वारिंशःसर्गः ॥ ४६ ॥

अर्थ—राज्य तथा सज्जनोंके संगसे पवित्र वृद्धिसहित इस शोकाकुल गवलचान्डालने यह चिन्तन कियाकी ॥ ४१ ॥ अकालमें कल्पान्तके सदृश, और सब नायकों (राज्यके श्रेष्ठ मनुष्यों) का नाशक यह अनर्थ इस देशमें मेरे लिये हुआहै ॥ ४२ ॥ इसलिये दुःखमय मेरे जीवनसे क्या फल? मेरा मरण महोत्सवके तुल्यहै क्योंकि लोकमें निन्दनीय दुष्ट जन्तुके जीवनसे मरण श्रेष्ठहै ॥४३॥ ऐसा चिन्तन करके उस गवलने अग्निके प्रज्वलित होनेपर बिना घबराहटके अपनी शरीरको अग्निमें आहुति करदिया ॥ ४४ ॥ वैराग्यके बलसे उस गवल नाम शरीरके अग्निके पुंजमें गिरनेपर अपने हस्तपादादि अंगोंके जलनेसे संचलनके अनुरोधसे सब अवयवोंमें व्याकुलताके प्राप्त होनेपर जलके भीतर अघमर्षण करते हुये गाधि जागृत दशाको प्राप्त हुआ ॥ ४५ ॥ श्रीवाल्मीकिजी बोले—हे भरद्वाज ! इतना मुनि वसिष्ठके कहनेपर दिवसका अन्त होगया और सायंकालके विधानके अर्थ सूर्य भगवान् अस्ताचलको गये और सभाभी (सभाके लोग) परस्पर नमस्कारके साथ सन्ध्या वन्दनादि कृत्यके लिये गईं और रात्रि बीतनेपर सूर्य्यके किरणोंके साथ पुनः आकर प्रात हुई ॥ ४६ ॥ दिवसः ॥ १२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे गाधिवृत्तान्ते राज्यभ्रंशो नाम षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥

गाधिने अपने अतिथिसे कीरके राजाका वृत्तान्त सुनके वहां जाके वैसा ही सुनके और बार २ पूंछकर अत्यन्त विस्मित हुये यह विषय इस ४७ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ मुहूर्त्तद्वितयेनाथगाधिराधिभवभ्रमात् ॥ प्रशशामाकुलीभावोवेलावर्त्तइवांबुधेः ॥ १ ॥ मनोनिर्माणसंमोहात्तस्मात्सविरराम ह ॥ कल्पांतसमयेब्रह्माजगद्विरचनादिव ॥ २ ॥ बोधमापुशनैःशांतःस्वमेवोन्निद्रधीरिव ॥ क्षीबतायांप्रशांतायांयथापरिणताशयः ॥ ३ ॥ अयंसोहमिदंकार्यमिदंनेतिददर्शह ॥ निशाव्यपगमेलोकोयथाक्षीणेतमःपटे ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–इसके पश्चात् चार घडीके अनन्तर गाधि मानसीव्यथारूप संसारके भ्रमसे ऐसे शान्तिको प्राप्त हुआ जैसे अति संक्षुब्ध समुद्रके तटका आवर्त ॥ १ ॥ उस मनकी रचनाके भ्रमसे वह गाधि ऐसे विरामको प्राप्त हुआ जैसे कल्पान्तके समयमें जगत्की रचनासे ब्रह्मा ॥ २ ॥ यह धीरे २ अपने पूर्वकालके गाधि नामक शरीरमें अहंभावरूप बोधको ऐसे प्राप्त हुआ जैसे मदिरा आदिके मदके क्षीण होनेपर स्वच्छ चित्त प्राणी ॥३॥ जो जलमें स्नान करनेको उतराथा वह गाधि ब्राह्मण मैंहुं और यह स्नानका अंगभूत मेरा कार्य्य है और पूर्व दृष्ट चांडालादिका राज्य मेरा कार्य्य नहीं है यह उसने ऐसे देखा जैसे लोग रात्रिके अन्धकाररूप पटलके क्षीण होनेपर घटादि कार्य्य देखतें हैं ॥ ४ ॥

स्मृतस्वरूपोथपदमुद्दध्रेसजलांतरात् ॥ शिशिरांतेप्रवृत्तास्यंसरोजमिवमाधवः ॥ ५ ॥ एतद्वारिककुब्व्योमवतींवसुमतीमिमाम् ॥ अन्यामिवपुनःपश्यन्विस्मयंपरमंययौ ॥ ६ ॥ कोहंकिमिवपश्यामिकिमकार्यमहंकिल ॥ एवंविचारयंश्चित्रंसभ्रूभंगमभूत्क्षणम् ॥७॥ भ्रांतस्तत्क्षणमात्रेणसंभ्रमंदृष्टवानहम् ॥ इतिविज्ञायसलिलाद्दस्थाद्दयार्कवत् ॥ ८ ॥

अर्थ—अपने स्वरूपको स्मरण करके जलके भीतरसे अपने चरणको ऐसे उठालिया जैसे शीतके अन्तमें किंचित् विकसित मुखवाले कमलको वसन्त ॥ ५ ॥ इसी रीतिसे जल दिशा, आकाशादि सहित इस पृथिवीको देखता हुआ वह परमविस्मयको प्राप्त हुआ ॥ ६ ॥ मैं कौनहूं और किसके समान देखताहूं तथा क्या किया ऐसा भौंह चढ़ा क्षणभर वह अन्तःकरणमें विचारता रहा ॥ ७ ॥ मैं इससमय भ्रांतहुं उसी भ्रांतिके कारण क्षणमात्रमें ही महाभ्रम देखा ऐसा निश्चय करके उस जलसे ऐसे निकला जैसे उदयाचलसे सूर्य्य ॥ ८ ॥

चिंतयामासचतटेकसामाताकसाप्रिया ॥ यदाहंमृतिमायातोमध्येमातृमहेलयोः ॥ ९ ॥ बालास्वमातापितरौनष्टौकिलममामतेः ॥ वातनीतस्यपत्रस्यवल्लीवृक्षमिवासिना ॥ १० ॥ अविवाहोस्मिजानामिनस्वरूपमपिस्त्रियः ॥ दुष्टायाःक्षोभकारिण्यामदिरायाइवद्विजः ॥ ११ ॥ अतिदूरतरीभूताःस्वदेशस्यस्वबांधवाः ॥ केनाममयेपांतेमध्येजीवंत्यजाम्यहम् ॥ १२ ॥

अर्थ—और जलके किनारे यह चिन्तन किया कि कहां वह मेरी माता और कहां प्रियापत्नी ! कि मैं अपनी माता और स्त्रीकी विद्यमानतामें मरणको प्राप्त हुआ ॥९॥ जब मैं निपट निर्बुद्धि बालकथा उसीसमय मेरे मातापिता ऐसे मृत्युसे नष्ट किये गयेथे जैसे वायुसे पत्ररहित वल्ली (लता) वृक्ष तरवारसे नष्ट कियाजाय ॥ १० ॥ मैं तो जन्मसे अविवाहितहुं और स्त्रीका रूपभी ऐसे नहीं जानता जैसे दुष्ट क्षोभकारिणी मदिराका स्वरूप ब्राह्मण॥११॥हमारे देशके बान्धव अति दूरहैं, वे हमारे देशके ज्ञाति बान्धव कौनहैं जिनके मध्यमें मैंने अपना जीवन त्याग किया ! ॥ १२ ॥

तस्मादेतत्समुद्भूतमहंकिनामदृष्टवान् ॥ विविधारंभसंरंभगंधर्वनगरंयथा ॥ १३ ॥ तदास्तामेतदेषाहिबंधुमध्येमृतस्थितिः ॥ मायामोहमनागस्मिन्नसत्यमुपलभ्यते ॥ १४ ॥ नित्यमेवमनंतासुभ्रांतिदृष्टिषुदेहिनाम् ॥ चेतोभ्रमतिशार्दूलोवनराजिष्विवोन्मदः ॥१५॥ अवधार्यैतितंचित्तेमोहंगाधिर्निनायसः॥ दिनानिकतिचित्तस्मिन्स्वकपवाश्रमेतदा ॥ १६ ॥

अर्थ—इसलिये अनेक प्रकारके जन्म मरण आदि अभिनिवेश गन्धर्वनगरके समान मैंने क्या देखा ?॥ १३ ॥ इसलिये यह बन्धुओंके मध्यमें मरणकी स्थिति जो मैंने देखा वह भ्रांति मात्रहै क्योंकि इस मायाके मोहमें सत्य किंचिन्मात्रभी नहीं देखता ॥ १४ ॥ और अनन्त भ्रान्तिकी दृष्टियोंसे सदा प्राणी ऐसे भ्रमण किया करताहै जैसे प्रचण्ड सिंह बनकी पंक्तियोंमें ॥ १५ ॥ इसप्रकार गाधिने अपने चित्तमें उस भ्रमको निश्चय करके उसी अपने आश्रममें कुछ दिन व्यतीत किया ॥ १६ ॥

एकदागाधिमगमत्कश्चित्तत्रप्रियोतिथिः ॥ ब्राह्मणमिवदुर्वासाःसविशश्रामसश्रमः ॥ १७ ॥ परमां तुष्टिमानीतःफलपुष्परसाशनैः ॥ सोतिथिर्गाधिनातेनवसंतेनेवपादपः ॥ १८ ॥ मिथोवंदितसंध्यौतौ कृतजाप्यावुभावपि ॥ क्रमाच्छयनमासाद्यतस्थतुर्मृदुपल्लवम् ॥ १९ ॥ ततःप्रावर्त्ततेशांतातयोस्तापस योःकथा ॥ स्वव्यापारोचितापुष्पश्रीरिवर्त्तुत्वमाशयोः ॥ २० ॥

अर्थ—इसके पश्चात् एक समय गाधिके निकट एक प्रिय अतिथि ऐसे आया जैसे ब्रह्माजीके निकट दुर्वासा-मुनि, और वह अतिथि उस रात्रिमें वहां विश्राम किया ॥ १७ ॥ गाधिने फल पुष्प और रसादिके भोजनसे उस अतिथिको परम तृप्तिको ऐसे प्राप्त किया जैसे पुष्पादिसे वसन्तऋतु वृक्षको ॥ १८ ॥ वे दोनों परस्पर सन्ध्या जपादि कृत्योंको समाप्त करके क्रमसे शयनस्थानपर प्राप्त होके कोमल पल्लवपर विराजे ॥ १९ ॥ उसके पश्चात् उन दोनोंकी अपने २ तप ध्यानादि व्यापारके अनुकूल शांतरस प्रधान कथा ऐसे प्रवृत्त हुई जैसे पूर्व और उत्तर दिशाके सूर्यके योगसे वसन्तऋतुमें पुष्पोंकी शोभा ॥ २० ॥

तंपप्रच्छातिथिंगाधिःप्रसंगपतितंवचः ॥ किंब्रह्मन्सुकृशांगस्त्वंकिमितिश्रमवानसि ॥ २१ ॥ अतिथि रुवाच ॥ ॥ ममातिकार्श्यश्रमयोर्भगवन्शृणुकारणम् ॥ कथयामितथाभूतंवयंनासत्यवादिनः॥२२॥ अस्त्यस्मिन्वसुधापीठेउत्तराशानिकुंजके ॥ कीरोनामातिविख्यातःश्रीमाञ्जनपदोमहान् ॥ २३ ॥ तत्रा हमवसंमासंपूज्यमानःपुरेजनैः ॥ नानात्मस्वादलोलात्माचित्तवेतालमोहितः ॥ २४ ॥

अर्थ—कथाके प्रसंगमें गाधिने उस अतिथिसे पूंछा कि हे ब्रह्मन् ! तुम अति कृश शरीरवाले तथा श्रान्त क्यों हो ? ॥ २१ ॥ अतिथिने कहा कि—हे भगवन् ! मेरी कृशता तथा श्रमका कारण तुम सुनों मैं सत्य २ कहताहुं क्योंकि हमलोग असत्यवादी नहीं होते ॥ २२ ॥ इस पृथिवीपर उत्तर दिशाओंके कुंजमें एक लक्ष्मीवान् कीर नामसे प्रसिद्ध महादेशहै ॥ २३ ॥ वहांपर चित्तरूप वेतालसे मोहित नानाप्रकारके भोज्य अपने आस्वाद योग्य पदार्थोंमें लोलुप, और नगरनिवासियोंसे पूज्यमान मैं एक मास पर्यंत निवास किया ॥ २४ ॥

एकदैकेनतत्रोक्तंकथाप्रस्तावतःक्वचित् ॥ इहाभूच्छ्वपचोराजावर्षाण्यष्टौद्विजेतिमे ॥ २५ ॥ ततोग्रामेषु तत्पृष्टैःप्रोक्तंसकलजंतुभिः ॥ राजाबभूवश्वपचोवर्षाण्यष्टाविहेतितैः ॥ २६ ॥ सोयमंतेपरिज्ञातःप्रावि ष्टोज्वलनंजवात् ॥ ततोद्विजशतानीहप्रविष्टानिहुताशनम् ॥ २७ ॥ इतितेषांमुखाच्छ्रुत्वातस्मान्निर्गत्य मंडलात् ॥ प्रयागेऽकरवंशुद्धिंप्रायश्चित्तमहंद्विज ॥ २८ ॥

अर्थ—एकसमय किसी कथाके प्रसंगमें कहीं एक मनुष्यने वहां यह कहा कि हे ब्राह्मण ! यहांपर आठ वर्ष पर्य्यन्त एक चाण्डालने राज्य किया ॥ २५ ॥ वह चाण्डाल आठवर्षके अन्तमें सबसे ज्ञात होनेपर वेगसे अग्निमें प्रविष्ट हुआ और उसके पश्चात् सैकडों द्विजो (ब्राह्मणादि) ने अग्निमें प्रवेश किया ॥ २६ ॥ २७ ॥ ऐसा उन लोगोंके मुखसे सुनकर उस देशसे निकलकर प्रयागमें हे द्विज ! मैंने अपनी शुद्धि की ॥ २८ ॥

कृत्वाचांद्रायणस्यांतेतृतीयस्याद्यपारणम् ॥ इहाहमागतस्तेनश्रांतोस्म्यतिकृशोस्मिच ॥ २९ ॥ श्रीव सिष्ठउवाच ॥ ॥ इतिश्रुतवतातेनगाधिनासततदाद्विजः ॥ भूयःपृष्टोप्येतदेवकथयामासनान्यथा॥३०॥ अथविस्मयवान्गाधिस्तांनीत्वातत्रशर्वरीम् ॥ जगद्गेहमहादीपेरवावुदयमागते ॥ ३१ ॥ कृतप्रातःस्नान विधावापृच्छ्यस्वातिथौगते ॥ इदंसंचिंतयामासविस्मयोद्धुरयाधिया ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे ब्राह्मण ! तीसरे चान्द्रायणके अन्तमें पारणकरके आज इस तुमारे आश्रममें मैं आया इसलिये मैं श्रान्त और अति कृशहुं ॥ २९ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! गाधि ब्राह्मणने यह सुनकर उस अतिथिसे पुनः पूंछा तो उसने वही सब बात कहा न कि अन्यथा ॥ ३० ॥ इसके पश्चात् विस्मययुक्त गाधिने उस रात्रिको वहां बिताकर जगत्रूप गृहके महादीपके समान सूर्यके उदय होनेपर ॥ ३१ ॥ प्रातःकालके स्नानसन्ध्या आदि करनेपर और अतिथिके आज्ञा लेकर चलजानेपर विस्मयसे उत्कंठित बुद्धिसे ऐसा चिन्तन किया ॥ ३२ ॥

यन्मयासंभ्रमेदृष्टंसत्यभूतंद्विजेनतत् ॥ उक्तंममेतिकिंनास्यान्मायाशंबरक्रमः ॥३३॥ यद्बंधुमध्येमरणं मयातदृष्टमात्मनः ॥ सामायैवनसंदेहःशेषंपश्यामितस्यतत् ॥ ३४ ॥ तदात्मश्वपचोदंतंद्रष्टुंतावदखि न्नधीः ॥ भूतमंडलपर्यंतग्रामंगच्छामिसत्वरम् ॥ ३५ ॥ इतिसंचिंतयन्गंतुंमंडलांतरमादरात् ॥ उत्त स्थौभास्करःपार्श्वमेरोर्द्रष्टुमिवोद्यतः ॥ ३६ ॥

अर्थ—कि जो कुछ मैंने भ्रममें देखा उसको ब्राह्मणने सत्य कहा सो क्या यह मायारूप दर्शन शम्बरासुरकी रचनाका क्रमहै ॥ ३३ ॥ जो मैंने बन्धुओंके मध्यमें अपना मरण देखा वह मायाहै इसमें सन्देह नहीं है अब मैं अ-

तिथिके चान्द्रायणके निमित्त अपने चाण्डालादि होनेके वृत्तान्तको देखूं ॥ ३४ ॥ इसलिये अपने चाण्डाल होनेके वृत्तान्तको देखनेको अखिन्नभूत मण्डलदेशके समीप ग्राममें शीघ्र जाऊं ॥ ३५ ॥ ऐसा चिन्तन करते हुये दूसरे मंडलमें जानेको आदरपूर्वक ऐसे खडा हुआ जैसे सूर्य्य मेरुके पृष्ठपर जानेको उद्यतहो ॥ ३६ ॥

मनोराज्यमपिप्राज्ञालभंतेव्यवसायिनः ॥ गाधिनास्वप्नसंदृष्टंगत्वालब्धमखंडितम् ॥ ३७ ॥ सर्वमध्यवसायेनदुष्प्रापमपिलभ्यते ॥ पश्यन्गाधिर्जगन्मायांप्रमेयीकर्तुमुद्यतः ॥ ३८ ॥ विनिर्गत्याभवन्मार्गेप्रावृडोघजवोनसः ॥ देशानुल्लंघयामासवहन्वाततुरंगवत् ॥ ३९ ॥ तत्रेदृशनिजाचारंभूतमंडलमागतः ॥ करभःकंटकार्थ्येकःकारंजमिवकाननम् ॥ ४० ॥

अर्थ—उद्योगी बुद्धिमान् पुरुष अपने मनोराज्यको भी देखनेको समर्थ होते हैं क्योंकि गाधिने स्वप्नदृष्ट वृत्तान्तको जागकर पूर्णरूपसे देखा ॥ ३७ ॥ अपने उद्योगसे दुष्प्राप भी सब कुछ प्राप्त करसकते हैं क्योंकि गाधि जगत्की मायाको देखते हुये चक्षुके विषय करनेको उद्यतहै ॥ ३८ ॥ वह गाधि अपने आश्रमसे निकलके मार्गमें वर्षाऋतुके प्रवाहके समान वेगवान् हुआ, और देशोंको वायुके वाहनपर आरूढके समान उल्लंघन किया ॥ ३९ ॥ और पूर्वदृष्ट आचारादियुक्त भूतमण्डलदेशमें प्रथम ऐसा आया, जैसे कंटकका अर्थी ऊंट कांटेके वनमें ॥ ४० ॥

तत्रसंवित्स्थितेनैवसन्निवेशेनवैपुनः ॥ अपश्यद्ग्रामकंकंचिद्गंधर्वहवपत्तनम् ॥ ४१ ॥ ददर्शतस्यपर्यंतेतमेवश्वपचालयम् ॥ अधस्ताद्भुवनस्यैवपातालेनरकव्रजम् ॥ ४२ ॥ चित्तचिंतितविस्तारंतन्निवेशमयंपरम् ॥ गंधर्ववदसावात्मश्वपचत्वंचदृष्टवान् ॥ ४३ ॥ तेनैवसन्निवेशेनप्राग्दृष्टंश्वपचास्पदम् ॥ तस्यकामपिवैराग्यपदवीमनयन्मनः ॥ ४४ ॥

अर्थ—वहांपर पूर्वकालमें स्मृतिमें आरूढ रचना आदिके अनुसार गन्धर्वनगरके समान कोई ग्राम देखा ॥ ४१ ॥ और उसी ग्रामके निकट उसी चाण्डालके गृहको ऐसे देखा जैसे इसी भुवनके नीचे पातालमें नरकके समूहको ॥ ४२ ॥ चित्तमें चिंतित जन्मादि विस्तारसहित पूर्वकालके दृष्ट गृहादिके रचनामय अपने चाण्डालत्वको गन्धर्वनगरके समान देखा ॥ ४३ ॥ उसी पूर्वदृष्ट रचनादिसे परिज्ञात वह चाण्डालका गृह देखके उसके मनमें एक अपूर्व वैराग्य उत्पन्न हुआ ॥ ४४ ॥

प्रावृडासारलुठितंभित्तिजातयवांकुरम् ॥ पर्यस्तच्छादनार्द्रांकंकिंचिदादृष्टतल्पकम् ॥ ४५ ॥ दारिद्र्यं गृहमिवदौर्भाग्यमिवकुड्यमत् ॥ भ्रष्टांगमिवदौरात्म्यंदेस्थित्यमिवखंडितम् ॥ ४६ ॥ गाधिदंतावदलितैर्गवाश्वमहिषास्थिभिः ॥ धवलैर्व्याप्तपर्यंतंसाक्ष्यंकर्तुमिवस्थितैः ॥ ४७ ॥ भुक्तंपीतंपुरातेनयेषुखर्परकेषुवै ॥ ॥ तैरस्पंदाभ्रसलिलैःपानपूर्णैरिवावृतम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—वर्षाकी धारामें पतित भित्तियोंपर जव आदिके अंकुरसहित, इधर उधर फटे हुये आधेतीहे ओढनेके वस्त्रोंसे चिन्हित, और चटाईके टुकडे जिसके परिज्ञात ॥ ४५ ॥ तथा प्रबल दारिद्र्यके और मूर्तिमान् गृहाकार दौर्भाग्यके समान, भ्रष्टांग चौरादि दुष्टताके तुल्य, और एक देशमें आच्छादित दुर्दशाके समान गृह देखा ॥ ४६ ॥ अपने ही दांतोंसे मर्दित, श्वेत गो, अश्व तथा महिषोंकी अस्थियोंसे समीप देशमें व्याप्त, और मानो वे अस्थि (हड्डी) आदि साक्षी देनेको स्थित गृह देखा ॥ ४७ ॥ और जिन खर्परों (खप्परों) में प्रथम खाया पियाथा उन वृष्टिके जलसे पूर्णपात्रोंसे वह ऐसे आवृत्त जैसे पानके पात्रोंसे ॥ ४८ ॥

ताभिरेवांत्रतंत्रीभिःसंशुष्काभिर्लतावृतैः ॥ तृष्णाभिरिवदीर्घाभिःपरितःपरिवेष्टितम् ॥ ४९ ॥ चिरमालोकयामाससतदात्मगृहंजवात् ॥ प्राक्तनंशुष्कशवतांयातंदेहमिवात्मवान् ॥ ५० ॥ अतिविस्मयमात स्थौग्रामकंसमुपाययौ ॥ उल्लंघ्यम्लेच्छनगरमार्यदेशमिवाध्वगः ॥ ५१ ॥ तत्राप्टच्छज्जनंसाधोकच्चित्स्मरतिभोभवान् ॥ प्राग्वृत्तमस्यग्रामस्यपर्यंतेश्वपचक्रमम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—और स्तंभ (खम्भे) आदिमें लपटी शूखी लताके समान उन्हीं पशु आदिके आँतोंकी ताँतोंसे सब ओर ऐसे वेष्टितथा जैसे बडी तृष्णाओंसे ॥ ४९ ॥ ऐसे अपने गृहको वेगसे ऐसे चिरकालतक देखा जैसे तत्वज्ञानी योगी शुष्क मृतकदशाको प्राप्त अपने पूर्व शरीरको ॥ ५० ॥ अति विस्मयमें स्थित उस अपने गृहका उल्लंघन करके उसके समीप तुष्ट ग्राममें ऐसे प्राप्त हुआ जैसे बटोही म्लेच्छदेशको लंघन करके आर्यदेशमें प्राप्तहो ॥ ५१ ॥ वहां जाके एक जनसे पूंछा कि हे साधो ! क्या इस ग्रामके समीप पूर्वकालके एक चाण्डालके वृत्तान्तको तुम स्मरण करतेहो (जानतेहो) ॥ ५२ ॥

सर्वएवहिधीमंतश्चिरवृत्तमपिस्फुटम् ॥ करस्थमिवपश्यंतिमयेतिसुजनाच्छ्रुतम् ॥ ५३ ॥ अत्रश्वपचमे कांतेवासिनंवृद्धमुत्तमम् ॥ स्मरस्येनंकिमुतभोदुःखानामिवदेहकम् ॥ ५४ ॥ यदिजानासिभोःसाधोतं न्मेकथयतत्त्वतः ॥ पांथसंशयविच्छेदेमहत्पुण्यफलंस्मृतम् ॥ ५५ ॥ भूयोभूयइतिग्राम्याःपृष्टागाधि द्विजन्मना ॥ अनल्पस्मयसंरंभमातैनेवचिकित्सकाः ॥ ५६ ॥

अर्थ—क्योंकि सभी बुद्धिमान् पूर्वकालके वृत्तान्तको हस्तमें स्थितके समान प्रत्यक्ष रीतिसे जानते हैं ऐसा मैंने सज्जनके मुखसे सुनाहै ॥ ५३ ॥ हे नगरनिवासीजन ! शरीरके समान दुःखोंका स्थान एकान्तका निवासी उत्तम वृद्ध एक चाण्डालथा उसको तुम लोग जानतेहो ? ॥५४॥ हे साधो ! यदि उसे जानतेहो तो मुझे यथार्थ रीतिसे कहो क्योंकि बटोहीके संशयका नाश करना यह बडा भारी पुण्यहै ॥ ५५ ॥ अधिक विस्मय और प्रश्नके उद्योगके साथ बार २ उस गाधिब्राह्मणने इसप्रकार ग्रामीणोंसे ऐसे पूंछा जैसे रोगी वैद्योंसे ॥ ५६ ॥

ग्राम्याऊचुः ॥ यथाकथयसिब्रह्मंस्तत्तथानतदन्यथा ॥ कटंजनामाश्वपचइहाभूद्दारुणाकृतिः ॥ ५७ ॥ पुत्रपौत्रसुहृद्भृत्यबंधुस्वजनपेटकम् ॥ यस्यातिविस्तीर्णसभूत्पत्रवृंदंतरोरिव ॥ ५८ ॥ यस्यवृद्धस्यतत्स वैकलत्रंमृत्युराच्छिनत् ॥ अद्रेःपुष्पफलोपेतंदावोवनमिवानलः ॥ ५९ ॥ यस्ततोदेशमुत्सृज्ययौकी रपुरांतरम् ॥ वर्षाण्यष्टावनुद्वेगंतत्रराजाबभूवसः ॥ ६० ॥

अर्थ—ग्रामीण बोले-हे ब्राह्मण ! जो बात तुम पूंछतेहो वह वैसीही है अन्यथा नहीं, भयंकर आकारधारी एक कटंज नाम चांडाल यहां रहताथा ॥ ५७ ॥ वृक्षके पत्र समूहके समान जिसके पुत्र, पौत्र, भृत्य, बन्धु तथा स्वजनोंका समूह अति विस्तृतथा ॥ ५८ ॥ उसके अति वृद्ध होनेपर उसके संपूर्ण कुटुम्बको मृत्युने ऐसे छेदन किया जैसे पुष्प फलसे पूर्णपर्वतके बनको दावाग्नि ॥ ५९ ॥ इसके पीछे वह इस देशको त्यागकर कीरोंके देशमें गया और वहांपर बिना किसी विघ्न वा घबराहटके आठ वर्षपर्य्यन्त राजा रहा ॥ ६० ॥

यस्तत्रार्थंपरिज्ञायजनैर्दूरेनिराकृतः ॥ यथाराशिरनर्थस्ययथाग्रामेविषद्रुमः ॥ ६१ ॥ ततोजनेग्निंप्रविश त्यात्मनायोहुताशनम् ॥ आर्यतामार्यसंसर्गादागतःप्रविवेशह ॥ ६२ ॥ किंत्वमेवप्रयत्नेनश्वपचंपृच्छ सिप्रभो ॥ किंतेबंधुरसौकाचिदभवस्त्वंस्वतोथवा ॥ ६३ ॥ एवंकथयतोग्राम्यान्गाधिःपृच्छन्पुनःपुनः ॥ सर्वेषुतत्रप्रांतेषुमासमेकमुवासस: ॥ ६४ ॥ यथातेनानुभूतंतच्छ्वापचत्वंतथैवतैः ॥ ग्रामीणैस्तत्स्थ थितंसर्वैरेवावखंडितम् ॥ ६५ ॥ अव्याहतंसकलभूतमुखादथैतदाकर्ण्यसम्यगवलोक्ययथानुभूतम् गाधिःशशांकमलवद्धृदयेधिरूढंगूढाकृतिःपरमविस्मयमाजगाम ॥ ६६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे
गाधिवृत्तांते प्रत्यक्षावलोकनं नाम सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥

अर्थ—लोगोंसे चाण्डाल परिज्ञात होनेसे वहांसे वह ऐसे तिरस्कारके साथ त्यागा गया जैसे ग्राममें अनर्थकी राशि वा विषका वृक्ष ॥ ६१ ॥ इसके अनन्तर प्रायश्चित्त करनेके लिये मनुष्योंके अग्निमें प्रवेश करनेपर आर्य्यजनोंके संगसे आर्यताको प्राप्त स्वयं अग्निमें प्रविष्ट हुआ ॥ ६२ ॥ सो हे ब्राह्मण ! इसप्रकार अति प्रयत्नसे तुम क्यों उस चाण्डालको पूंछतेहो ! क्या वह तुमारा बन्धुथा अथवा तुम स्वयं उसके बन्धु थे ॥ ६३ ॥ इसप्रकार ग्रामीणोंके कहनेपर पुनः पुनः पूंछता हुआ गाधि उस ग्रामके समीप उसके निवासके योग्य सब गृहोंमें एक मासपर्य्यन्त निवास किया ॥ ६४ ॥ जिसप्रकार उसने चाण्डालत्वका अनुभव कियाथा वैसाही पूर्णरीतिसे सब ग्रामीणोंने कह दिया ॥ ६५ ॥ सब प्राणियोंके मुखसे सत्य वाणीको सुनके स्वयं अबाधितरूपसे सब जानकर जैसा अनुभव किया था वैसाही पूर्णरीतिसे देखकर लज्जागुप्तरूप गाधि चन्द्रके कलंकके समान निज हृदयमें खचित (गडके) परम विस्मयको प्राप्त हुआ ॥ ६६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे
गाधिवृत्तान्ते प्रत्यक्षावलोकनं नाम सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥

गाधि कीरनगरमें जाके और सब वृत्तान्त यथार्थ देखकर तपसे विष्णुको प्रसन्न किया और विष्णु उससे बोले कि यह सब मायाहै यह विषय इस ४८ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ लुठितंश्वपचागारेपुनर्विस्मयमाययौ ॥ गाधेर्मनोहिनायातितृप्तिमाश्चर्यदर्शने ॥ १ ॥ तत्रावलोकयामासस्थानानिसदनानिच ॥ कल्पक्षोभविवृत्तानिजगंतीवांबुजोद्भवः ॥ २ ॥ उवाचस्वात्मनैवेदमरण्येलुठितालये ॥ शुष्कास्थिमालावलितेपिशाचकइवद्रुमे ॥ ३ ॥ इमास्तामृतमातंगदंतमालावृतौकृताः ॥ अद्यापिसंस्थिताःकल्पंप्रांतिमेरुशिखाइव ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! गाधिब्राह्मणका मन उस चाण्डालके स्थानमें चिरकालतक पुनः विस्मयको प्राप्त हुआ क्योंकि उसका मन आश्चर्यके दर्शनमें तृप्त न हुआ ॥ १ ॥ वहांपर बहुतसे स्थल और गृहोंके टूटे फूटे ऐसे देखा जैसे प्रलयकालमें नष्ट अनेक जगत्को ब्रह्माजी ॥ २ ॥ और जंगलमें एक गिरेस्थानमें अपने ही आत्मासे उसने यह वचन ऐसे कहा जैसे शूखी हड्डियोंकी मालासे आवेष्टित स्मशानके वृक्षपर पिशाच ॥ ३ ॥ कि ये वेही मृतक हाथियोंके दांतोंकी मालाहैं जिनको मैंने त्रिशूलके तुल्य खनके गाडाथा और वे अवतक ऐसे स्थितहैं जैसे प्रलयकालको लक्ष्य करके मेरूके शिखर ॥ ४ ॥

इहतद्वानरीमांसंपक्वंवंशांकुरैःसह ॥ भुक्तंपरासवोन्मत्तैसहश्वपचबंधुभिः ॥ ५ ॥ आलिंग्यश्वपचश्यामामिहकेसरिचर्मणि ॥ सुप्तमापीयमैरेयंतिक्तंगजमदेनच ॥ ६ ॥ कौलेयककुटुंबिन्यःपिण्याकपलवर्द्धिताः ॥ इहबद्धावरत्राभिर्मृतेभरदकाष्ठके ॥ ७ ॥ इहवारणमुक्तानांतदासीत्पिठरत्रयम् ॥ पिनद्धंमाहिषेणोग्रचर्मणांबुदशोभिना ॥ ८ ॥

अर्थ—यह वही स्थानहै जहां वानरियोंके मांसको वाँसके अंकुर (करिल) के व्यंजनके साथ मदिरासे उन्मत्त अपने चाण्डाल बन्धुओंको लेकर भोजन कियाथा ॥५॥ गजमदसे मिश्रित हस्तिप (पीलवान्) से मोल लेकर मद्यपान करके अपनी चाण्डाली युवतीका आलिंगन करके अश्वके चर्मपर यहां शयन कियाथा ॥६॥ मांसोंसे पालित कुत्तियोंको यहां मृतक हस्तीके दन्तरूप काष्ठमें चर्मकी रस्सियोंसे बांधाथा ॥७॥ और मेघके समान शोभायमान् महिषके भयंकर चर्मसे बन्धा हुआ, तीन ओखलियोंके बराबर गजमोतियोंसे पूर्ण हांथीदांतका पात्र इसी स्थानमें था ॥८॥

स्थलीष्वेतासुतास्वत्रसहश्वपचबालकैः ॥ चिरंविलुठितंचूतपत्रपुंजेपिकैरिव ॥ ९ ॥ अत्रतद्वालनिःश्वासरणद्वंशप्रवृत्तम् ॥ गीतंपीतंशुनीरक्तंसाधिताशवभूषितः ॥ १० ॥ अत्रसार्द्धंकुटुंबेनजन्यत्रेषुकुटुंबिना ॥ नृत्तंतत्कृतमुन्नादकल्लोलैर्जलधाविव ॥ ११ ॥ अत्रोडुनयलोलानांकाकभासपतत्रिणाम् ॥ धृतानामन्यदासार्थंग्रथितंवंशपंजरम् ॥ १२ ॥

अर्थ—इस ग्रामके समीप पूर्वदृष्ट इन्ही स्थानोंमें चाण्डालोंके बालकोंके साथ चिरकालतक धूलि क्रीडा ऐसे की थी जैसे आम पत्रोंके पुंजमें कोकिल ॥ ९ ॥ इसी स्थानमें चाण्डालके बालकोंके साथ बासुरीके तालके अनुसार गान किया, कुत्तियोंका रक्तपान किया और इस स्थानमें स्मशानके माला चन्दनादिसे सबका अलंकार किया ॥१०॥ यहां कुटुंबसहित नृत्य वाद्य इसप्रकार किया जैसे समुद्रमें तरंगोंके उच्च नाद ॥ ११ ॥ और यहां पकडे हुये काकोंके समान पक्षियोंको अन्य दिनके भोजनके लिये वंशके पंजरमें गूंथाथा ॥ १२ ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ एवंप्रायाःस्मरन्गाधिःप्राक्तनीःश्वपचक्रियाः ॥ विस्मयोत्कंपितशिराधातुश्चेष्टांपरामृशत् ॥ १३ ॥ चचालतस्माद्दीर्घेणदेशात्कालेनकार्यवित् ॥ भूतमंडलमुत्सृज्यप्रापदेशांतरंक्रमात् ॥ समुल्लंघ्यनदीशैलमंडलारण्यसंततिम् ॥ आससादतुपाराद्रिरत्नंकिलजनास्पदम् ॥ १५ ॥ तत्रप्रापमहीपालनगरंनगसन्निभम् ॥ जगद्भ्रमणखिन्नात्मास्वर्लोकमिवनारदः ॥ १६ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! इसीप्रकार गाधिने पूर्वकालकी चाण्डालकी क्रियाओंका स्मरण करते हुये विस्मयसे शिर हिलाके ब्रह्माकी चेष्टाका अनुमान किया ॥ १३ ॥ कार्यका ज्ञाता वह गाधि दीर्घकालके पश्चात् उस देशसे चला, और भूतमण्डलदेशका उल्लंघन करके दूसरे देशमें प्राप्त हुआ ॥ १४ ॥ और बहुतसी नदियां पर्वत, मण्डल (देश) तथा जंगलोंके समूहको पार करके हिमालयपर श्रेष्ठ रत्नके समान श्रेष्ट देश अर्थात् पूर्वकालमें दृष्ट कीरदेशमें प्राप्त हुआ ॥ १५ ॥ वहांपर पर्वतके समान उच्च और रत्नादिसे पूर्ण राजाके नगरमें ऐसे प्राप्त हुआ जैसे जगत्के भ्रमणसे खिन्ननारदजी स्वर्गलोकमें ॥ १६ ॥

अथात्मनानुभूतानिदृष्टान्यासेवितानिच ॥ स्थानानिनगरेपश्यन्प्रपच्छजनमादृतः ॥ १७ ॥ साधोस्म रसिकिंचित्त्वमिहश्वपचमीश्वरम् ॥ यदिजानासितत्त्वंमेवर्णयाशुयथाविधि ॥ १८ ॥ नागराऊचुः ॥ अभूदिहाष्टौवर्षाणिश्वपचोभूमिपोद्विज ॥ राजत्वमर्पितंयस्यनाममंगलहस्तिना ॥ १९ ॥ अंतेचसंपरि ज्ञातःसम्प्रविष्टोहुताशनम् ॥ अथद्वादशवर्षाणिसमतीतानितापस ॥ २० ॥

अर्थ—इसके पश्चात् उस नगरमें अपने अनुभूत गृह प्रासादादि; पूर्व दृष्ट दूसरोंके प्रासादादि, और अपने आसेवित, वाटिका शाला आदि स्थानोंको देखता हुआ आदरसे एक मनुष्यसे पूंछा ॥ १७ ॥ कि हे साधो ! क्या तुम इस वृत्तान्तको जानतेहो कि यहांका एक चाण्डालथा, यदि जानतेहो तो मेरेसे यथार्थ कहो ॥ १८ ॥ नगरनि- वासी बोले—हे ब्राह्मण! यहांपर आठ ८ वर्षतक चाण्डाल राजाथा जिसको कि मंगल नाम हस्तीने राजत्व पदवी दी थी१९और अन्तमें जब जानलिया गया तब अग्निमें प्रवेश किया, और हे तापस ! इस वार्ताकोभी१२वर्ष होगये॥२०

यंयंपृच्छत्यसौगाधिर्जनंजातकुतूहलः ॥ तस्यतस्यमुखादेवशृणोत्यास्वादयत्यपि ॥ २१ ॥ अथापश्य त्पुरेतस्मिन्नृपंसबलवाहनम् ॥ देवंचक्रधरंविष्णुमंदिरान्निर्गतंबहिः ॥ २२ ॥ सदृष्ट्वास्थगिताकाशं चलरेणुपयोधरैः ॥ प्राक्तनींराजतांस्मृत्वाससुवाचातिविस्मयः ॥ २३ ॥ इमास्ताःकीरकामिन्यःपद्मग र्भोपमत्वचः ॥ कनकद्रववर्णिन्योलोलनीलोत्पलेक्षणाः ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जिस २ मनुष्यसे कुतुहली गाधि पूंछताहै उस २ के मुखसे वही वृत्तान्त सुनताहै और अन्तःकरणमें स्मरण करनेसे चमत्कारका अनुभव भी करताहै ॥ २१ ॥ इसके पश्चात् उस नगरमें पूर्वदृष्ट सेना- तथा वाहन (घोडे हाथी आदि) सहित नृप वेषधारी चक्र धारण किये हुये श्रीविष्णुभगवान्को राजाके मंदिरसे बा- हर निकलते हुये देखा ॥ २२ ॥ चलायमान रेणुरूप मेघोंसे आकाश आच्छादन करनेवाली उसकी सेनाको देखकर और पूर्वकालके अपने राजत्वको स्मरण करके अति विस्मित होके अपने मनमें यह बोला ॥ २३ ॥ कमलके केसरके सदृश त्वच् (चर्म) वाली गौरांगी और चंचल नीलकमलके समान नेत्रवाली वे ही ये पूर्वकालकी ज्ञात कीर- राजाकी कामिनी हैं ॥ २४ ॥

चामरौघाइमेचंद्रकरसंपिंडपांडुराः ॥ स्थिरनिर्झरसंकाशाःकाशपुष्पचयाइव ॥ २५ ॥ कांताभिरवधू यंतेबालव्यजनराजयः ॥ इमास्तावनवल्लीभिर्दीप्यमानाइववर्द्धयः ॥ २६ ॥ इमास्तामत्तमातंगघटाघटि तदिक्तटाः ॥ संकल्पपादपामेरोरिवशृंगपरंपराः ॥ २७ ॥ एतेतेयमवारीशकुबेरप्रतिमौजसः ॥ सामं तावासवस्येवलोकपालामहीभृतः ॥ २८ ॥

अर्थ—चंद्रमाके किरणके पिंडके तुल्य गौरवर्ण, स्थिर दशामें प्राप्त झरनेके समान स्वच्छ, और काशके पुष्पके समूहके समान ये चामरोंके समूहहैं ॥ २५ ॥ ललनागणसे कंपित ये बालव्यजनकी पंक्ति ऐसे हैं जैसे बनकी लताओंसे दीप्यमान पुष्पोंकी लता ॥ २६ ॥ अपने दांतोंके अग्रभागसे दिशाओंके तटको फोडनेवाले मत्तमातंगोंके येही वे समूह ऐसे शोभायमान हैं जैसे संकल्पके अनुसार फल देनेवाले कल्पवृक्षसहित मेरूपर्वतके शिखरोंकी पंक्ति॥२७॥ जैसे इन्द्रके अतुलित तेजस्वी यम, वरूण, कुबेर आदि लोकपालहैं ऐसे ही ये कीर नरेशके सामन्तहैं॥२८

इमास्ताःसर्ववस्त्वोघाःसर्वाभिमतदास्तताः ॥ कल्पवृक्षलताकुंजसुंदर्योगृहपंक्तयः ॥ २९ ॥ इदंत त्कीरजनताराज्यंप्राग्भुक्तमद्यमे ॥ आत्मजन्मांतराचारइवप्रत्यक्षतांगतम् ॥ ३० ॥ सत्यंस्वप्नइवायंमे जाग्रद्भूतःपुनःस्थितः ॥ नजानेकिंकृतोत्थानामायेयंप्रविजृंभते ॥ ३१ ॥ अहोनुखलुदीर्घेणमनोमोहेन वल्गता ॥ वैवश्यमुपनीतोहंजालेनेवशकुंतकः ॥ ३२ ॥

अर्थ—सब धन धान्य आदि वस्तुओंके समूहसहित, अभिमत फलदायक, और कल्पवृक्षकी लताके कुंजके समान सुन्दरी ये ही वे पूर्वकालमें अनुभूत गृहोंकी पंक्तिहैं ॥ २९ ॥ यही वह कीरदेशकी प्रजाका राज्य जिसको मैंने पूर्वकालमें भोग किया और इससमय जन्मान्तरके चारित्रके समान प्रत्यक्षताको प्राप्त हुआहै ॥ ३० ॥ निश्चय यह मेरा स्वप्न पुनः जाग्रतके रूपसे स्थितहै, न जाने किस प्रयोजनके लिये आविर्भूत यह माया भासमान होरही है ॥३१॥ अहो ! यह कैसा आश्चर्य है इस अति दीर्घ मनके गर्जते हुये मोहसे ऐसे अस्वाधीनताको प्राप्तहुं जैसे जालसे पक्षी३२

हाधिक्कष्टमबुद्धंमेमनोवासनयाहतम् ॥ पश्यतिभ्रमजालानिविततानिशिशोरिव ॥ ३३ ॥ एषाहिमाया महतीतेनमेचक्रधारिणा ॥ दर्शितेत्यधुनासाधुमयास्मृतमखंडितम् ॥ ३४ ॥ तदिदानींतथायत्नंकरिष्ये गिरिकंदरे ॥ यथाकुसंभ्रमस्यास्यजानेजन्मतथास्थितिम् ॥ ३५ ॥ इतिसंचिंत्यनगराद्गाधिस्तस्माज्ज गामह ॥ कंदरंमाप्यशैलस्यतस्थौविश्रांतसिंहवत् ॥ ३६ ॥

अर्थ—हां ! धिक्कार और कष्टकी वार्ता है कि वासनासे नष्ट ज्ञानरहित बालकके समान मेरा मन विशाल भ्रमजालोंको देखताहै ॥ ३३ ॥ यह महामाया विष्णुने मुझे दर्शायाहै यह मुझे अब पूर्णरीतिसे स्मरण होगया॥३४॥ इसलिये अब मैं पर्वतकी कन्दरामें ऐसा यत्न (तप) करूंगा कि जिससे इस दुष्ट भ्रमके जन्म तथा स्थितिको अर्थात् इसके निमित्तको जान जाऊं ॥ ३५ ॥ ऐसा विचार करके गाधि उस नगरसे चला और पर्वतकी कन्दरामें जाकर विश्रान्त सिंहके समान स्थित हुआ ॥ ३६ ॥

तत्रसंवत्सरंसार्द्धंपयश्चुलुकभोजनम् ॥ तपश्चक्रेमहातेजास्तुष्टयेशार्ङ्गधन्वनः ॥ ३७ ॥ अथास्यपुंडरीकाक्षःपयोमूर्त्तिरुपाययौ ॥ प्रसादमुत्पलश्यामःशरदीवमहाह्रदः ॥ ३८ ॥ तमाजगामशैलेंद्रकंदरांद्विजमंदिरम् ॥ पयोधरवदच्छाच्छच्छविर्व्योमन्यथावसत् ॥ ३९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ गाधेकच्चित्त्वयादृष्टामायाममगरीयसी ॥ दृष्टंत्वयाजगज्जालचेष्टितंदैष्टिकात्मकम् ॥ ४० ॥

अर्थ—वहां केवल एक चिल्लू जलपान करके महा तेजस्वी गाधि विष्णुकी प्रसन्नताके अर्थ डेढ वर्षपर्यन्त तप किया ॥ ३७ ॥ इसके पश्चात् जलके समान प्रसन्नताको प्राप्त हुये जैसे शरत्कालमें महा ह्रद ॥ ३८ ॥ स्वच्छसेभी स्वच्छ कान्तियुक्त भगवान् उस ब्राह्मणके निवासस्थान उस कन्दरामें आये और मेघके तुल्य आकाशमें स्थित-हुये ॥ ३९ ॥ श्रीभगवान्‌जी बोले–हे गाधि ! क्या तुमने मेरी अति महती मायाको देखा तथा दैवाधीन जगत्‌जालकी चेष्टाभी देखी ॥ ४० ॥

चित्ताभिगतएतस्मिन्प्राप्तेसम्यगनिंदितः ॥ तपोगिरितटेकुर्वन्किमन्यदभिवांछसि ॥ ४१ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवंवदंतमालोक्यहरिंगाधिर्द्विजोत्तमः ॥ अर्चाकुसुमपूरेणपादयोःपर्यपूरयत् ॥ ४२ ॥ दत्वार्घ्यंकीर्णकुसुमःप्रणम्याशुप्रदक्षिणैः ॥ विष्णुमाहद्विजोवाक्यमंभोदमिवचातकः ॥ ४३ ॥ गाधिरुवाच ॥ देवयैषात्वयामायादर्शितातिततमोमयी ॥ महींप्रातरिवादित्यस्तांमेप्रकटतांनय ॥ ४४ ॥

अर्थ—चित्तसे वांछित इस जगत्‌की मायाके दर्शन होजानेपर और अब अनिन्दित (शुद्ध) होके इस पर्वतके तटपर तप करते हुये तुम अन्य क्या चाहतेहो ॥ ४१ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ गाधि ऐसा कहते हुये विष्णुभगवान्‌को देखकर नित्य पूज्यमान भगवत्‌के चरणके पूजार्थ पुष्पांजलिके प्रवाहके सन्मुख खडे हुये भगवान्‌के चरणकमलोंमें छोडदिया ॥ ४२ ॥ पुष्पोंको चरणोंमें छोडकर और अर्घ्य देकर शीघ्र पूजा करके वह ब्राह्मण विष्णुसे ऐसे बोला जैसे चातक मेघसे ॥ ४३ ॥ गाधि बोला–हे भगवन् ! अति तमोमयी माया यह जो आपने दर्शाया उसको ऐसे प्रकट करके दर्शाओ जैसे प्रातःकालमें सूर्य्य पृथिवीको ॥ ४४ ॥

भ्रमंयंपश्यतिमनोवासनामलमालितम् ॥ स्वप्नवत्सकथंदेवजाग्रत्यपिहिदृश्यते ॥४५॥ मुहूर्त्तमुपलब्धश्चजलांतःस्वप्नविभ्रमः ॥ कथंप्रत्यक्षतांप्राप्तोममामलपदास्पद ॥ ४६ ॥ दैर्घ्यादैर्घ्येस्यकालस्यशरीरस्यभवाभवाः ॥ कथमंतस्थितानस्युर्मदीयैःश्वपचभ्रमैः ॥ ४७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ गाधेस्वाधिविधूतस्यस्वरूपस्यैतदात्मकम् ॥ चेतसोऽदृष्टतत्त्वस्ययत्पश्यत्युरुविभ्रमम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! स्वप्नके तुल्य जिस भ्रमजालको वासनाके मलसे पूर्ण मन देखताहै वह जाग्रत्‌में भी कैसे देख पडताहै ॥ ४५ ॥ हे अविद्या मलसे शून्य पदके आश्रय भगवन् ! मुहूर्त मात्रके अर्थ जलके भीतर प्राप्त जो विभ्रम वह प्रत्यक्षताको कैसे प्राप्त हुआ ? ॥ ४६ ॥ हे भगवन् ! मेरे चाण्डालके भ्रमसे कृतकालकी दीर्घता तथा अल्पता, और चाण्डालकी शरीरकी उत्पत्ति और नाश ये मनमें ही क्यों न स्थित रहे और वे बाहर कैसे स्थितहैं ॥ ४७ ॥ श्रीभगवानजी बोले–हे गाधे ! यह जगत् महान् विभ्रम जो कुछ तुम देखतेहो, वह वासना रोगोंसे गृहीत, अदृष्ट तत्व तथा चित्त दशाको प्राप्त जो आत्मस्वरूपहै उसीका रूप भासताहै न बाहर न भीतर न दीर्घ और न अल्प कोई पदार्थ है ॥ ४८ ॥

बहिर्नकिंचिदप्यस्तिखाद्र्यब्ध्युर्वीदिगादिकम् ॥ एतत्स्वचित्तएवास्तिपत्रपुंजमिवांकुरे ॥ ४९ ॥ फलादिस्फारतामेतियथैवबहिरंकुरात् ॥ बहिःप्रकटतांयातितथापृथ्व्यादिचेतसः ॥ ५० ॥ सत्यंपृथ्व्यादिचित्तस्थंनबहिष्ठंकदाचन ॥ अंकुरस्थःपल्लवस्तुतस्माद्यस्मात्फलश्रियः ॥ ५१ ॥ रूपालोकमनस्कारसत्ताकालक्रियात्मकम् ॥ कुंभकारोघटमिवचेतोहंतिकरोतिच ॥ ५२ ॥

अर्थ—हे गाधे ! आकाश, पर्वत, समुद्र, पृथिवी और दिशा आदि पदार्थ बाहर कुछ नहीं है, ये सब अपने चित्तमेंही ऐसेहैं जैसे अंकुरमें पत्रोंके पुंज ॥ ४९ ॥ जैसे अंकुरसे बाहर फल आदि विशालताको प्राप्त होताहै ऐसेही

ये पृथिवी आदि चित्तसे बाहर प्रकटताको प्राप्त होतेहैं ॥ ५० ॥ यह पृथिवी आदि सब चित्तमेंही सत्य २ स्थितहै और बाहर कदाचित् नहीं है और अंकुर जो है वह पल्लवमें स्थितहै क्योंकि फलकी श्री अंकुरसेही है ॥५१॥ वर्तमानकालमें चक्षुष आदिसे रूपादिका आलोक, और भावी पदार्थोंका मनसे समर्थनरूप मनस्कार, और अतीतकालमें सत्ताका निरूपक ये तीन प्रकारके काल और इनके द्योतक सूर्यादिकी क्रिया इत्यादि रूपसे जगत्को यह चित्तही ऐसे नष्ट करताहै और उत्पन्न करताहै जैसे कुंभकार घटको ॥ ५२ ॥

आबालमेतत्पुरुषैःसर्वैरेवानुभूयते ॥ स्वप्नभ्रममदावेगरागरोगादिदृष्टिषु ॥ ५३ ॥ चित्तेवृत्तांतलक्षाणिसंस्थितान्यात्तवासने ॥ पादपेफलपुष्पाणिमूलाक्रांतावनाविव ॥ ५४ ॥ त्यक्त्वावनेर्विटपिनोभूयःप त्राणिनोयथा ॥ निर्वासनस्यजीवस्यपुनर्जन्मादिनोतथा ॥ ५५ ॥ यत्रानंतजगज्जालंसंस्थितंतेमतेजसा ॥ श्वपचत्वंप्रकटितंयदितत्किंस्मयोत्रकिम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—और स्वप्न भ्रम और मदके आवेग तथा रोगादि दृष्टियोंमें आबाल सब पुरुषोंकी यह वार्ता अनुभूतहै ॥ ५३ ॥ वासनासहित चित्तमें लाखो वृत्तान्त ऐसे स्थितहैं जैसे पृथिवीमें लगे हुये वृक्षमें फल पुष्प ॥ ५४ ॥ पृथिवीको त्यागे हुये वृक्षसे पत्रादि नहीं होते ऐसे वासनारहित जीवके जन्मादि नहीं होते ॥ ५५ ॥ जिस चित्तमें उसी ब्रह्मके तेजसे अनन्त जगत्का जालहै उसमें चाण्डालत्व प्रकट होगया इसमें विस्मय किस बातकाहै ॥ ५६ ॥

अवबुद्धाश्वपचताप्रतिभासवशात्त्वया ॥ यथैवानल्पसंरंभाविचित्राधिविकारदा ॥ ५७ ॥ तथैवातिथिरायातोभुक्तवान्सुप्तवान्द्विजः ॥ कथांकथितवांश्चेतिदृष्टवानसिसंभ्रमम् ॥ ५८ ॥ तथैवोत्थायगच्छामिप्राप्तोहंभूतमंडलम् ॥ इमेभूताइमेग्रामाःदृष्टवानसिसंभ्रमम् ॥ ५९ ॥ तथैवेदंकटंजस्यप्राक्तनंकुठितंगृहम् ॥ जनैरुक्तंकटंजस्यदृष्टवानसिसंभ्रमम् ॥ ६० ॥

अर्थ—जैसे अनेक आरम्भ तथा विकारकी देनेहारी संसारकी विचित्रता तुमको प्रतिभासके कारणसे भान हुई ऐसे ही प्रतिभासके बशसे चाण्डालत्वका तुमको भान हुआ ॥ ५७ ॥ ऐसे ही ब्राह्मण अतिथि तुमारे निकट आया भोजन किया, शयन किया, और चाण्डालकी कथा भी कहा यह संभ्रम तुमने देखा ॥ ५८ ॥ ऐसे ही मैं उठके जाताहुं भूतमण्डलदेशमें प्राप्त हुआ, ये वहांके प्राणी हैं ये ग्राम इस संभ्रमको भी देखा ॥ ५९ ॥ इसी प्रकार कटंज नाम चांडालके गृहमें तुमारा चित्त आसक्तथा और मनुष्योंने कहा कटंजकाहै इस संभ्रमको देखा ॥ ६० ॥

तथैवकीरनगरंप्राप्तोस्मिकथितंचमे ॥ कीरैःश्वपचराजत्वंदृष्टवानसिसंभ्रमम् ॥ ६१ ॥ एवंसर्वंत्वयादृष्टंमोहजालंद्विजोत्तम ॥ यत्सत्यमितिजानासियच्चासत्यमवैषिच ॥ ६२ ॥ वासनावलितंचेतःकिंनामांतर्नपश्यति ॥ साधितंदृश्यतेस्वप्नेवर्षसाध्यंप्रयोजनम् ॥६३॥ नातिथिर्नचभूतास्तेनकीरास्तेनतत्पुरम् ॥ सर्वमेतन्महाबुद्धेव्यामोहाद्दृष्टवानसि ॥ ६४ ॥

अर्थ—इसप्रकार कीरके नगरमें मैं पहुंचा और कीरदेशके निवासियोंने चाण्डालका राजा होना मुझसे कहा इस संभ्रमको भी प्रतिभासके ही बशसे तुमने देखा ॥ ६१ ॥ हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! इसप्रकार मोहजाल सब कुछ तुमने देखा, और जो सत्यहै उसको तथा जो असत्यहै उसको भी तुम जानते हो ॥ ६२ ॥ हे ब्राह्मण ! वासनासे ग्रस्त चित्त अपने भीतर क्या नहीं देखता, क्योंकि वर्षोंसे साध्यप्रयोजन क्षणमें सिद्ध स्वप्नमें देख पडताहै ॥ ६३ ॥ हे महाबुद्धे ! ब्राह्मण यथार्थमें न वह अतिथि, न वे प्राणी, न कीरदेशके निवासी और न वह उनका नगरहै किन्तु यह सब तुमने भ्रमसे ही देखाहै ॥ ६४ ॥

गच्छताभवताभूतदेशंपांथेनकंदरे ॥ कस्मिंश्चिद्विप्रविश्रांतंकुरंगेणेवकानने ॥ ६५ ॥ तत्रैवश्रममूढत्वादिदंतद्भूतमंडलम् ॥ इदंतच्छ्वपचागारमितिदृष्टंनसत्यतः ॥ ६६ ॥ तथैवकीरनगरंदृष्टवानसितत्तथा ॥ तदेवचान्यदावापिमायार्थंहिभवान्द्विज ॥ ६७ ॥ सर्वदैवसमग्रासुविहरन्नसिदृष्टवान् ॥ दिक्षुप्रोन्मत्तइवविभ्रमंमनसामुने ॥ ६८ ॥ तद्गत्तिष्ठनिजंकर्मकुर्वंस्तिष्ठोपशांतधीः ॥ नस्वकर्मविनाश्रेयःप्राप्नुवंतीहमानवाः ॥ ६९ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इतिनिगदितवान्सपद्मनाभोभुवनगतापसवृंदपूज्यमानः ॥ विबुधमुनिगणैःपविभ्रहस्तैर्वृतउदधिनिजमास्पदंजगाम ॥ ७० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे गाधिवृत्तांते मायामहत्वकथनंनामाष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥

अर्थ—इससमय भी तुम न तो भूतमंडलदेशमें गये और न कीरोंके नगरमें गये किंतु अतिथिके वाक्य सुनके भूतमंडलदेशमें जाते हुये वटो हो तुम मार्गमें कीसी पर्वतकी कन्दरामें विश्रान्त किया और श्रमसे मोहित परबश

चित्त होनेसे जंगलमें हरिणके समान स्वप्नके तुल्य यह चाण्डालादिका वृत्तान्त तथा भूतमंडल तुमने देखा न कि यथार्थमें ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ इसीप्रकार हे ब्राह्मण! उससमय तथा जलमें अघमर्षणके समयमें भी कीरनगरादि भी सब मायामय पदार्थ करते हुये दिशाओंमें उन्मत्तके समान मनसेही सब विभ्रम तुमने देखा ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ इसलिये हे ब्राह्मण! तुम उठो और अपने ब्रह्मचर्य्य आश्रमके योग्य अग्निहोत्र स्वाध्याय आदि कर्म करो क्योंकि इससंसारमें मनुष्य विना अपने आश्रमके योग्य कर्म किये कल्याणको नहीं पाता ॥६९॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-तीनोंलोकके तापस वृन्दोंसे पूज्यमान पद्मनाभ विष्णुभगवान् इसप्रकार कहके भगवान्के चरणस्पर्श तथा सेवादिसे पवित्रहस्त देव तथा मुनिगणोंसे वृत्त (युक्त) अपने स्थानभूत क्षीरसागरमें गये ॥ ७० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे गाधिवृत्तान्ते मायामहत्वकथनं नामाष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥

एकोनपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ४९ ॥

गाधि ब्राह्मण पुनः भूतमण्डलदेश तथा कीरदेशमें जाके और पुनः २ विष्णुभगवान्से पूंछ करके सब मायाहै यह निश्चय करके क्रमसे जीवन्मुक्त होगया यह विषय इस ४९ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ अथगाधिर्गतेविष्णौपुनर्भूतादिकंक्रमात् ॥ स्वयंमोहविचारार्थंबभ्रामाभ्रमिवांबरे ॥ १ ॥ उपलभ्यतथैवात्मवृत्तांतंजनतस्ततः ॥ हरिमाराधयामासपुनरद्रिगुहांगतः ॥ २ ॥ आजगामैनमल्पेनकालेनाथजनार्द्दनः ॥ सकृदाराधनेनैवमाधवोयातिबंधुताम् ॥ ३ ॥ उवाचगाधिंभगवान्मयूरमिववारिदः ॥ किंत्वंप्रार्थयसेभूयस्तपसेतिप्रसादवान् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्री वसिष्ठजी बोले-इसके पश्चात् विष्णुके अन्तर्ध्यान होनेपर गाधि ब्राह्मण अपने मोहके विचारके लिये अर्थात् विष्णुने जो कहाथा न अतिथि, न भूतमण्डलादि देशहै किन्तु तुमने भ्रमरूपही सब कुछ देखाहै इस भ्रमकी निवृत्तिके लिये कि कीरादि देशोंका बाधहै वा नहीं इसके परीक्षार्थ आत्माके साक्षात्कारके विनाही भूतमण्डलादि देशमें ऐसे भ्रमण किया जैसे मेघ आकाशमें ॥ १ ॥ वहांपर उसी प्रकार अपने चाण्डालादि वृत्तांतको मनुष्योंसे पाकर इन्द्रकी गुहामें जाके पुनः विष्णुभगवान्की आराधना करने लगा ॥ २ ॥ इसके पश्चात् अल्पकालमेंही जनार्दन भगवान् उसके निकट आये क्योंकि विष्णुभगवान् एक कालके आराधन करनेहीसे बन्धु होजातेहैं ॥ ३ ॥ मेघ जैसे मोरसे बोलताहै ऐसेही प्रसन्न होके भगवान् गाधिसे बोले कि पुनः तुम तपसे क्या चाहतेहो ? ॥ ४ ॥

गाधिउवाच ॥ ॥ भ्रांतोस्मिदेवषण्मासान्भूतकीरजनास्पदम् ॥ तत्रव्यभिचरत्यस्मद्वृत्तांतोनकथास्वपि ॥ ५ ॥ मायया भूतभूर्दृष्टात्वयेत्युक्तोस्मिकिंप्रभो ॥ मोहनाशायमहतांवचोनोमोहवृद्धये ॥ ६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ काकतालीययोगेनचेतसिश्वपचस्थितिः ॥ सर्वेषांभूतकीराणांतवेवप्रतिबिंबति ॥ ७ ॥ तेनांगतववृत्तांतंयथावत्कथयंतिते ॥ प्रतिभासोहिनायातिपुनरप्रतिभासताम् ॥ ८ ॥

अर्थ—गाधि बोला कि हे भगवन्! छ मासपर्य्यन्त मैं कीर तथा भूतमण्डलदेशमें भ्रमण किया परन्तु वहां मेरी वृत्तान्तकथा तथा प्रत्यभिज्ञा (जान पहिचान) आदिमें किंचित् व्यभिचार (अन्यथाभाव) को नहीं प्राप्त होती ॥ ५ ॥ हे प्रभो! आपने कहाथा कि भूतमंडलदेशकी भूमि तुमने मायासे देखीहै सो हे भगवन्! मायाके दृष्ट पदार्थ अवश्य देशकालान्तरमें व्यभिचारको प्राप्त होते हैं और यह तो ज्योंके त्यों हैं इससे मेरा मोह और बढगया और महात्माओंके वचन मोहके नाशार्थ हैं न कि मोहकी वृद्धिकेलिये ॥ ६ ॥ श्रीभगवान् बोले—हे ब्राह्मण! काकतालीय न्यायसे सब भूतमण्डल तथा कीरदेशके निवासियोंके चित्तमें कटंजकी चांडालरूपसे स्थिति तुमारेही सदृश भान हो रहीहै ॥ ७ ॥ हे प्रिय इसीसे वे लोग तुह्मारे वृत्तान्तको ज्योंकात्यों कहतेहैं और जो बात किसी समूह वा एकही जनको मिथ्या प्रतिभासित होती है उसका अप्रतिभास बाधके विना नहीं होता ॥ ८ ॥

केनचिच्छ्वपचेनांतेग्रामस्यरचितंगृहम् ॥ तत्त्वयादृष्टमाविष्टमिष्टकाखंडतांगतम् ॥ ९ ॥ कदाचित्प्रतिभैकैवबहूनामपिजायते ॥ काकोलतालस्थितिवद्विचित्राहिमनोगतिः ॥ १० ॥ तथाहिबहवःस्वप्नमेकंपश्यंतिमानवाः ॥ स्वापभ्रमदमैरेयमदमंथरचित्तवत् ॥११॥ एकस्यामेवलीलायांरमंतेबहुबालकाः ॥ एकस्यामेवनीलायांवनस्थल्यामिवैणकाः ॥ १२ ॥

अर्थ—ग्रामके समीपमें किसी चाण्डालने गृह बनाया था, भग्नदशाको प्राप्त उस गृहमें भ्रमसे तुमने यह देखा कि मैंनेही बनायाहै ॥ ९ ॥ और पके तालके फलोंपर वा ताल (ताड) वृक्षके मूल देशमें काकोल (द्रोणसंज्ञक) नामक काकोंकी पंक्ति स्थिति होती है ऐसेही कभी २ बहुत पुरुषोंकी एकही प्रकारकी प्रतिभा (भ्रमकी बुद्धि) होती है क्योंकि मनकी गति विचित्र होती है ॥ १० ॥ जैसे निद्रा, भ्रम, और मद्यके मदसे विक्षिप्त दिशाओंको भ्रमण करते हुयेके समान देखते हैं ऐसेही बहुत मनुष्य एकही स्वप्नभी देखते हैं ॥ ११ ॥ एकही लीलामें बहुतसे बालक ऐसे रमण (क्रीडा) करते हैं जैसे हरी घासोंसे एकही नीलवनकी स्थलीमें अनेक हरिणींके बच्चे चरते हैं॥१२॥

बहवस्तुल्यकालंच प्रतिभासेनकर्मणाम् ॥ जनायतंतेस्वफलपाकेतिबहुलाकृतौ ॥ १३ ॥ प्रतिबंधाभ्यनुज्ञानाकालोदातेतियाश्रुतिः ॥ विप्रसंकल्पमात्रोसौकालोह्यात्मनितिष्ठति ॥ १४ ॥ अमूर्तोभगवान्कालोब्रह्मैवतमजंविदुः ॥ नजहातिनचादत्तेकिंचित्कस्यकदेतिच ॥ १५ ॥ लौकिकोयस्त्वयंकालोवर्षकल्पयुगात्मकः ॥ संकल्प्यतेपदार्थौघैःपदार्थौघश्चतेनतु ॥ १६ ॥

अर्थ—अपने प्रारब्धके अनुकूल फलकी परिपाकतासे प्राप्त होने योग्यभी बध, बंध, पराजय और पलायनादि नानाप्रकारके कार्य्योंमें सैनिक (योधा) लोग एकही कालमें जय लाभ भोगादि तुल्य प्रयोजन कर्मोंकी भ्रान्ति प्रतिभास होनेसे उन जयादिके लाभसे युद्ध आदिसे यत्न करते हैं यह प्रसिद्धहै ॥ १३ ॥ और हे ब्राह्मण ! हेमन्त आदि काल व्रीहि धानादिके अंकुरोंका प्रतिबंधक और जब गोधूमादिका उत्पादकहै यह जो लौकिक कथनहै सो प्रतिबंधक और अभ्यनुज्ञादायककाल संकल्पमात्रही और जो अखण्डित परमात्मरूप कालहै वह तो अपने आत्मामें स्थित रहताहै वह न तो किसीका प्रतिबंधक और न किसीका उत्पादकहै ॥ १४ ॥ अमूर्त अखंडित भगवान् कालहै उसीको अजन्मा ब्रह्म पंडितजन कहते हैं ॥ १५ ॥ और वर्ष युग और कल्पादिरूप जो कालहै वह तो सूर्यकी क्रिया तथा चन्द्रपिंडादि पदार्थसमूहोंसे कल्पितहै और प्रतिबंधक तथा उत्पादकरूप कालसे सब पदार्थसमूह कल्पितहैं॥१६॥

समानप्रतिभासोत्थसंभ्रमंभ्रांतचेतसः ॥ तथातंदृष्टवंतस्ते भूतकीरजनोच्चयाः ॥ १७ ॥ स्वव्यापारपरो भूत्वाधियात्मानंविचारय ॥ साधोगतमनोमोहमिहैवास्वव्रजाम्यहम् ॥ १८ ॥ इत्युक्त्वाभगवान्विष्णुर्जगामांतर्द्धिमीश्वरः ॥ अतिष्ठत्कंदरेगाधिराधिपीवरयाधिया ॥ १९ ॥ ततःकतिपयेष्वद्रौमासेष्वतिगतेष्वसः ॥ पुनराराधयामासपुंडरीककरंद्विजः ॥ २० ॥

अर्थ—जैसे भ्रान्त चित्त प्राणी समान प्रतिभाससे आविर्भूत एकही संभ्रमको देखते हैं ऐसेही कीरदेशके वासी जनसमूहने चाण्डालका राजा होना देखाहै ॥ १७ ॥ हे साधो ! इसलिये अपने वर्णाश्रमके योग्य आचारमें परायण होके मनके मोहसे शून्य आत्माका विचार अपनी बुद्धिसे करो और यहां ही स्थित रहो मैं अब जाताहुं ॥ १८ ॥ ऐसा कहकर विष्णुभगवान् अन्तर्ध्यान होगये और गाधि मानसिक मोहरूप रोगसे और भी बढी बुद्धिसे उसी कन्दरामें स्थित रहा ॥ १९ ॥ इसके अनन्तर कुछ मास बीतनेपर उसी पर्वतपर कमलहस्तधारी भगवान्‌की पुनः आराधना करनेलगा ॥ २० ॥

ददर्शचैकदानाथमागतंप्रणनामतम् ॥ पूजयामासमनसावाचोक्तेनोवाचचेश्वरम् ॥ २१ ॥ गाधिरुवाच ॥ भगवन्संस्मरंश्चैतामात्मनःश्वपचस्थितिम् ॥ इमांसंसारमायांचपरिमुह्यामिचेतसा ॥ २२ ॥ तदुक्त्वा स्वयथावस्तुमहामोहनिवृत्तये ॥ एकस्मिन्नेवविमलेमांनियोजयकर्मणि ॥ २३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ब्रह्मन्जगदिदंमायामहाशंबरडंबरम् ॥ सर्वाआश्चर्यकलनाःसंभवंतीहविस्मृतेः ॥ २४ ॥

अर्थ—एक समय अपने स्वामीको आये हुए देखके उनको प्रणाम किया और मनवचन कर्मसे उनकी पूजा की और प्रश्नके अनुज्ञा वाक्यसे यह वचन बोला ॥ २१ ॥ गाधि बोला—हे भगवन् ! अपनी इस चाण्डालकी स्थितिको तथा जन्म मरण आदि अनेक अनर्थोंसे पूर्ण इससंसारकी मायाको स्मरण करके मैं चित्तसे मोहित होताहुं ॥ २२ ॥ इसकारणसे हे भगवन् ! महामोहकी निवृत्तिके लिये उपाय कहके शीघ्र न चले जाइये किंतु मोहकी निवृत्तिपर्यन्त यहां स्थित रहिये और मुझे एक विमल कर्ममें नियुक्त कीजिये ॥ २३ ॥ श्रीभगवान् बोले—हे ब्रह्मन् ! महाशम्बरासुरके आडम्बरके तुल्य यह जगत् मायामयहै और आत्मतत्त्वके विस्मरणसे संपूर्ण आश्चर्यमयी कल्पना उत्पन्न होती हैं ॥ २४ ॥

भूतकीरपुरेमोहाद्दृष्टवांस्तत्तथाभवान् ॥ इत्येतत्संभवत्येवदृश्यतेहिजनैर्भ्रमः ॥ २५ ॥ भूतास्त्वमिव कीराश्चदृष्टवंतस्तथाभ्रमम् ॥ मुधैवेत्यपिसत्याभंसमकालादिसंभवात् ॥ २६ ॥ इदंतुशृणुवक्ष्यामिय

थाभूतमनिंदितम् ॥ यथैतितनुतांचितामार्गशीर्षलतेवते ॥२७॥ योसौकटंजकोनामश्वपचोभूतमंडले ॥ तेनैवसन्निवेशेनसतथैवाभवत्पुरा ॥ २८ ॥

अर्थ—भूतमंडल तथा कीरदेशमें चाण्डालादि वृत्तान्त जो तुमने मोहसे देखा यह अज्ञानसे संभवहै क्योंकि स्वप्नादिमें असंभावितभी भ्रम मनुष्योंको देख पडताहै ॥ २५ ॥ भूतदेश तथा कीरदेशके लोग तुमारेही समान भ्रम देखाहै यद्यपि यह मिथ्याहै तथापि एक कालमें होनेसे सत्यके समान भान होताहै ॥ २६ ॥ यह यथार्थ तुमारे चाण्डालादि निन्दाका निवारक मैं तुमसे कहताहुं तुम सुनो, जिससे कि मार्गशीर्षकी लताके समान तुमारी चिन्ता नाशको प्राप्त होगी ॥ २७ ॥ जो यह कटंज नाम चाण्डालहै वह तुमसे दृष्ट शरीर ग्राम और गृहादि आकारसे युक्त भूतमंडल देशमें पूर्वकालमें उत्पन्न हुआथा ॥ २८ ॥

तथैवविकलत्रत्वंप्राप्यदेशांतरंगतः ॥ बभूवकीरनृपतिःप्रविवेशानलंततः ॥ २९ ॥ भवतःकेवलंचित्ते जलांतर्वर्तिनस्तदा ॥ प्रतिभातातथाभूताकटंजाचारसंस्थितिः ॥ ३० ॥ दृष्टानुभूतमप्यर्थंकदाचिद्धि स्मरत्यलम् ॥ कदाचिदप्यदृष्टंतुचेतःपश्यतिदृष्टवत् ॥३१॥ यथास्वप्नमनोराज्यधातुसंस्थितिविभ्रमः॥ जाग्रत्यपितथैवांगदृश्यंतेमनसास्वयम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—और उसी प्रकार वह कलत्र (कुटुंब) रहित होके दूसरे देशमें गया और कीरदेशका राजा हुआ अनन्तर चाण्डाल ज्ञात होनेसे अग्निमें प्रवेश किया ॥ २९ ॥ और उस जलके भीतर अवमर्षण जप रहेथे उससमय मेरे संकल्पके वशसे कटंज चाण्डालकी स्थिति तुमारे अन्तःकरणमें भान हुई कि वही मैं हुं ॥ ३० ॥ जैसे दृष्ट और अनुभूत भी अर्थ कदाचित् चित्त भूलजाताहै ऐसेही कदाचित् अदृष्ट भी देखताहै ॥ ३१ ॥ हे प्रियगाधे ! जैसे स्वप्न मनोराज्य और सन्निपात आदि भ्रमोंको यह मन देखताहै ऐसेही जगत्में भी यह मन स्वयं भ्रम देखताहै ॥ ३२ ॥

भविष्यद्भूतकालस्थंयथात्रैकाल्यदर्शिनः ॥ प्रतिभामेतिगाधेयत्कटंजाचरितंतथा ॥ ३३ ॥ अयंसोहमिदंतन्मइतिमज्जतिनात्मवान् ॥ अयंसोहमिदंतन्मइतिमज्जत्यनात्मवान् ॥ ३४ ॥ सर्वमेवाहमेवेतितत्त्वज्ञोनावसीदति ॥ नगृह्णातिपदार्थेषुविभागानर्थभावनाम् ॥ ३५ ॥ तेनासौभ्रमयोगेषुसुखदुःखविलासिषु ॥ ननिमज्जतिमग्नोपितुंबीपात्रमिवांभसि ॥ ३६ ॥

अर्थ—जैसे त्रिकालदर्शी योगीकी दृष्टिमें उसके उत्तरकालमें दृश्यमान पदार्थोंकी अपेक्षा भूतकाल होजाताहै (ऐसे) हे गाधे ! अतीत भी कटंजका चारित वर्तमानकालकी प्रतिमा (बुद्धि) में आताहै ॥३३॥ यह शरीर आदि मैं ही हुं और कुटुंबादि मेराहै इत्यादि भ्रमोंमें ज्ञानी निमग्न नहीं होताहै और इसी भ्रममें अज्ञानी निमग्न होताहै ॥ ३४ ॥ सब पदार्थोंमें अहंभावनासे भी तत्वज्ञानी निमग्न नहीं होता, क्योंकि परिच्छिन्न पदार्थोंमें विभागसे जो अनर्थकी भावनाहै उसको वह नहीं ग्रहण करता, और परिच्छिन्न पदार्थोंमें अहंभावना ही निमग्न होनेमें हेतु होती है ॥ ३५ ॥ इसी कारण यह तत्वज्ञानी भ्रमोंके योगोंमें और सुखदुःखके विलासोंमें निमग्न भी परन्तु तुम्बी पात्रके तुल्य निमग्न नहीं होता ॥ ३६ ॥

त्वंतावद्वासनाजालग्रस्तचित्तोविचेतनः ॥ किंचिच्छेषमहाव्याधिरिवनस्वस्थमागतः ॥ ३७ ॥ ज्ञानस्यापरिपूर्णत्वान्नशक्तोपिमनोभ्रमम् ॥ विनिवारयितुंमेघमसम्यग्यत्नवानिव ॥ ३८ ॥ यदेवतेमनोमात्रे सहसाप्रतिभासते ॥ तरुरुग्रजनेनेवतेनैवाक्रम्यसेक्षणात् ॥ ३९ ॥ चित्तंनाभिःकिलास्येहमायाचक्रस्यसर्वतः ॥ स्थीयतेचेत्तदाक्रम्यतत्रकिंचित्प्रबाधते ॥ ४० ॥

अर्थ—और तुमारी तो वासनाजालसे ग्रस्त, विचित्त, महाव्याधि (अज्ञानरूप) किंचित् शेष रहगई है इसीसे अपने आत्मस्वरूपमें प्राप्तहीके समान हो ॥ ३७ ॥ हे गाधे ! ज्ञान परिपूर्ण न होनेसे तुम मनके भ्रमको ऐसे नहीं निवारण करसकते जैसे गृहकी रचना तथा अन्यके गृहमें प्रवेश करनेमें उत्तम यत्नसे शून्यपुरुष मेघकी वृष्टिको ॥ ३८ ॥ जो कुछ तुमारे चित्तमें भान होताहै उसके अभिमानसे सहसा ऐसे वशीभूत होजाते हो जैसे उग्रजनसे वृक्ष ॥ ३९ ॥ चारोओरसे इस मायारूप चक्रका मध्य चित्तही है उस चित्तको जो कोई आत्मामें लय करके तिरस्कार करके स्थित रहताहै उसको वह मायाचक्र किंचित् भी बाधा नहीं करता ॥ ४० ॥

त्वमुत्तिष्ठगिरेःकुंजेदशवर्षाण्यखिन्नधीः ॥ तपःकुरुततोज्ञानमनंतंसमवाप्स्यसि ॥ ४१ ॥ इत्युक्त्वापुंडरीकाक्षस्तत्रैवांतरधीयत ॥ वाताभ्रवद्दीपकवद्यमुनोत्पीडवत्क्षणात् ॥ ४२ ॥ गाधिर्विवेकवशजंवैराग्यपदमागतः ॥ शरत्समयपर्यंतैवैरस्यमिवपादपः ॥ ४३ ॥ विचित्रंचेष्टितंधातुरसमंजसमागतम् ॥ भ्रमद्भ्रमभरोन्मुक्तमतिर्मंदमगर्हयत् ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे गाधे ! तुम उठो और इस पर्वतके कुंजमें मनका निरोधरूप तप दशवर्ष पर्य्यंत करो तब तुम अनन्त ज्ञान पाओगे ॥ ४१ ॥ इतना कहके विष्णुभगवान् उसी जगह ऐसे क्षणमेंही अन्तर्द्धान होगये जैसे वायुमें लीन मेघ निर्वाण दीप वा यमुनाजीका तरंग ॥ ४२ ॥ विवेकके वशसे गाधि वैराग्यको ऐसे प्राप्त हुआ जैसे शरदृतुके अन्तमें वृक्ष नीरसताको ॥ ४३ ॥ भ्रमण करते हुये भ्रम समूहसे विनिर्मुक्त बुद्धियुक्त गाधिने अपने पूर्वकालके अयोग्य चाण्डालादि भाव दर्शनरूप विचित्र दैवकी चेष्टाको मन्दता पूर्वक निन्दा की ॥ ४४ ॥

जगामकरुणार्द्रात्मानियमायोत्तमश्रिये ॥ विश्रांत्यैऋष्यमूकंतुपयोधरइवाचलम् ॥ ४५ ॥ निरस्ताशेषसंकल्पस्तपस्तत्रचकारह ॥ दशवर्षाणितेनासावात्मज्ञानमवापह ॥ ४६ ॥ अरमततदनुस्वांप्राप्यसत्तांमहात्माह्यपगतभयशोकोभोगभूमावनीषु ॥ सततमुदितजीवन्मुक्तरूपःप्रशांतःसकलइवशशांकोघूर्णितापूर्णचेताः ॥ ४७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे गाधिवृत्तांते गाधेर्ज्ञानप्राप्तिर्नामैकोनपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ४९ ॥

अर्थ—अनन्तर उत्तम ज्ञानरूप लक्ष्मीके अर्थ करुणासे आर्द्रचित्त गाधि चित्तके निरोधके अर्थ ऋष्यमूक (मतंगऋषिके आश्रमभूत) पर्वतपर ऐसे गया जैसे मेघ अपने विश्रामार्थ पर्वतपर ॥ ४५ ॥ संपूर्ण संकल्पोंको त्यागकर गाधिने दशवर्ष वहांपर तप किया और उससे आत्मज्ञान प्राप्त किया ॥ ४६ ॥ ब्रह्मज्ञान प्राप्तिके अनन्तर महात्मा गाधिने अपनी पारमार्थिकी सत्ताको पाकर संपूर्ण भोग भूमियोंमें भय और शोकसे रहित होके, निरन्तर जीवन्मुक्तरूप होके अपरिच्छिन्न ब्रह्मानन्दके मदसे घूर्णित तथा चारों ओरसे पूर्ण चित्त पूर्ण चन्द्रके समान अपरिच्छिन्न ब्रह्माकाशमें विहार किया ॥ ४७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे गाधिवृत्तान्ते गाधिज्ञानप्राप्तिर्नामैकोनपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ४९ ॥ गाध्युपाख्यानं सम्पूर्णम्

पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५० ॥

चित्तके जीतनेके उपाय और ज्ञानका उत्तम महात्म्य और स्थूलतादि दोष सब चित्तसेही होतेहैं यह विषय इस ५० के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवमेषातिविततादुर्ज्ञानारघुनंदन ॥ महामोहमयीमायाविषमापारमात्मिकी ॥ १ ॥ क्वमुहूर्त्तद्वयस्वप्नसंभ्रमाल्लोकदृष्टता ॥ क्वानेकवर्षसंभुक्तश्वपचावनिपभ्रमः ॥ २ ॥ क्वसंभ्रमोपलब्धत्वं क्वप्रत्यक्षनिदर्शनम् ॥ क्वासत्यत्वमसंदिग्धंक्वसत्यपरिणामिता ॥ ३ ॥ अतोवच्मिमहाबाहोमायेयंविषमान्वहम् ॥ असावधानमनसंसंयोजयतिसंकटे ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रघुनन्दन ! इस रीतिसे अति विशाल अचिन्त्य, भयंकर, केवल परमात्मा मात्रके आश्रित और महा मोहमयी यह मायाहै ॥ १ ॥ देखो ? कहां तो दो मुहूर्तका संभ्रमका देख पडना ! और कहां अनेक वर्षोंसे भुक्त चाण्डालके राजा होनेका भ्रम ॥ २ ॥ कहां भ्रममें प्राप्ति और कहां संदेह रहित सत्यमें परिणामता (बदलाव) ॥ ३ ॥ हे महाबाहो रामजी ! इसलिये मैं प्रतिदिन यह कहताहुं कि यह माया भयंकर है और असावधान मनवाले पुरुषको एक क्षणमें संकटमें डालती है ॥ ४ ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ एवमस्यकथंब्रह्मन्मायाचक्रस्यरोधनम् ॥ कुर्युःप्रवहतोवेगात्सर्वांगच्छेदकारिणः ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अस्यसंसाररूपस्यमायाचक्रस्यराघव ॥ चित्तंविद्धिमहानाभिमभितोभ्रमदायिनः ॥ ६ ॥ तस्मिन्द्रुतमवष्टब्धेधियापुरुषयत्नतः ॥ गृहीतनाभिवहनान्मायाचक्रंनिरुध्यते ॥ ७ ॥ अवष्टब्धमनोनाभिमोहचक्रंनगच्छति ॥ यथारज्ज्वांनिरुद्धायांकीलकंरज्जुवेष्टितं ॥ ८ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-हे ब्रह्मन् ! इसप्रकार सर्वांगच्छेदनकारी और वेगसे भ्रमण करते हुये इस मायाचक्रको अधिकारी जन कैसे रोके ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! चारोंओर भ्रमण करते हुये तथा भ्रमदात्री इस संसाररूप मायाचक्रकी महानाभि (महामध्य) चित्तकोही तुम जानो ॥ ६ ॥ पुरूषार्थके यत्नसे बुद्धिसे इस चित्तके शीघ्र रोकनेपर मध्यभागके ग्रहण होनेसे यह मायाचक्र भ्रमणसे रूक जाताहै ॥ ७ ॥ मनरूप नाभि मध्यभागके

रोकनेसे यह मोहचक्र ऐसे नहीं चलसकता जैसे तर्जनी अंगुलीसे रज्जु (रस्सी) के पकडनेसे बालकोंका रज्जुसे वेष्टित क्रीडा चक्र ॥ ८ ॥

चक्रयुद्धैकतज्ज्ञोसिकस्माज्ज्ञानासिनानघ ॥ चक्रंनाभावबष्टब्धंवशमायातिनान्यथा ॥ ९ ॥ चित्तंनाभिमवष्टभ्यतस्माद्यत्नेनराघव ॥ संसारचक्रंवहनादात्मनःपरिरोधय ॥ १० ॥ एतांयुक्तिंविनादुःखमनंतमितमात्मनः ॥ अस्यांदृष्टौक्षणादंतंगतमेवावलोकय ॥ ११ ॥ चित्ताक्रमणमात्रात्तुपरमादौषधादृते ॥ प्रयत्नेनापिसंसारमहारोगोनशाम्यति ॥ १२ ॥

अर्थ—हे पापरहित रामजी ! तुम चक्र युद्धमें कुशल होके क्यों नहीं इसके रोकनेका यत्न करते क्योंकि नाभिके रोकनेपर चक्र वशमें आताहै औरप्रकारसे नहीं ॥ ९ ॥ हे राघव ! इसलिये यत्नसे चित्तरूप नाभिको रोककर आत्माको जन्ममरणादिके प्रापक इस संसारचक्रको भ्रमण करनेसे रोको ॥ १० ॥ हे रामजी ! इस चित्तके निरोधरूप युक्तिके विना आत्माने अनन्त दुःख पाया और इस दृष्टि (चित्तनिरोध) रूपके प्राप्त होनेपर इस आत्माके दुःखको तुम अन्तमें प्राप्तही समझो, अर्थात् मेरे वचनमें संशय हो तो करके देखो ॥ ११ ॥ चित्तके विजयरूप परम औषधके सिवाय सहस्रो प्रयत्नोंसे भी यह संसाररूप महोरोग नष्ट नहीं होता ॥ १२ ॥

तस्माद्राघवसंत्यज्यतीर्थदानतपःक्रियाः ॥ श्रेयसेपरमायांतश्चित्तमेववशंकुरु ॥ १३ ॥ चित्तांतरेवसंसारःकुंभांतःकुंभखंयथा ॥ चित्तनाशेनसंसारःकुंभनाशेनकुंभखम् ॥ १४ ॥ चिरंसंसरणाकाशकोटरंचित्तकुंभखम् ॥ विनाश्यातुलिताकाशस्वरूपंरूपमाविश ॥ १५ ॥ वर्तमानमनायासंभजद्बाह्यधियाक्षणम् ॥ भूतंभविष्यदभजद्यातिचित्तमचित्तताम् ॥ १६ ॥

अर्थ—इसलिये हे राघव ! तपदान तथा तीर्थादि क्रियाओंको त्यागकर परम श्रेयमुक्तिके लिये अपने चित्तकोही तुम वशमें करो ॥ १३ ॥ जैसे घटाकाश घटके भीतरहै ऐसे ही चित्तके भीतर यह संसारहै, और जैसे घटके नाशसे घटाकाशका नाश होताहै ऐसे ही चित्तके नाशसे संसारका नाश होताहै ॥ १४ ॥ जैसे घटाकाशमें रूके हुये मसक आदि अपने दुःखके संसरण कोटरको देवेच्छासे नाश करके अतुलिताकाशमें सुखी होते हैं ऐसे तुम चित्तरूप घटको नाश करके अतुलित ब्रह्माकाशमें प्रवेश करो ॥ १५ ॥ यथाप्राप्त वर्तमान विषयको बाह्य बुद्धिसे सेवन करता हुआ और भूतभविष्यत् विषयोंका अनुसन्धान न करता हुआ चित्त अचित्तता दशाको प्राप्त होताहै ॥ १६ ॥

संकल्पांशानुसंधानवर्जनंचेत्प्रतिक्षणम् ॥ करोषितदचित्तत्वंप्राप्तएवासिपावनम् ॥ १७ ॥ यावत्संकल्पकलनातावच्चित्तविभूतयः ॥ यावज्जलदविस्तारस्तावत्खजलबिंदवः ॥ १८ ॥ सचित्तंचेतनंयावत्तावत्संकल्पकल्पनम् ॥ सचंद्रांशुजगद्यावत्तावत्प्रालेयलेशकाः ॥ १९ ॥ चेतनंचित्तरिक्तंचेद्भावितंतत्स्वसंसृतेः ॥ आमूलमेवदग्धानिविद्धिमूलानिसिद्धवत् ॥ २० ॥

अर्थ—भावी विषयके संकल्पका और उसके असंभूत पदार्थोंका वर्जन प्रतिक्षण तुम करतेहो तो परमपावन अचित्त दशामें आपनेको प्राप्तही समझो ॥ १७ ॥ जबतक संकल्पहै तभीतक चित्तकी विभूति ऐसे हैं जैसे जबतक मेघोंका विस्तारहै तभीतक आकाशसे वर्षाके विन्दु गिरते हैं ॥ १८ ॥ और जबतक चित्तसहित आत्माहै तभीतक संकल्पकी कल्पना ऐसे हैं जैसे चन्द्रमाके किरणसहित जबतक जगत्है तबतक तुषार (ओस आदि) के कणहैं ॥ १९ ॥ यदि चित्तरहित कूटस्थरूप आत्मा स्थित रहै तब संसारके मूलभूत काम कर्म वासना आदि मूल अज्ञानके साथ भस्म होजाते हैं यह महासिद्ध मंत्रके समान समझो ॥ २० ॥

चेतनंचित्तरिक्तंहिप्रत्यक्चेतनमुच्यते ॥ निर्मनस्कस्वभावंतन्नतत्रकलनामलः ॥ २१ ॥ सासत्यतासाशिवतासावस्थापारमात्मिकी ॥ सर्वज्ञतासासाद्दृष्टिर्नतुयत्रमनःक्षतम् ॥ २२ ॥ मनोयत्रतुतत्राशास्तद्दुःखसुखानिच ॥ सदासन्निधिमायांतिश्मशानइववायसाः ॥ २३ ॥ वस्तुतत्त्वावबोधेनसर्वभावव्यवस्थितेः ॥ संसृतिव्रततेर्बीजंसंकल्पेनोपजायते ॥ २४ ॥

अर्थ—चित्तसे शून्य आत्माको प्रत्यक् चेतन कहते हैं, और मनरहित स्वभावयुक्त जो आत्माहै उसमें कल्पनारूप मल नहीं रह सकता ॥ २१ ॥ जिस अवस्थामें यह नष्ट मन नहीं है वही आत्माकी परमार्थमें सत्यताहै, वही निरतिशय आनन्दरूपता, वही परमात्माकी आत्मस्वभावता, वही सर्वज्ञता, और वही सम्यक् दृष्टि है ॥ २२ ॥ और जहांपर मनहै वहांही अनेक प्रकारकी आशा और सुख दुःख ऐसे समीपताको प्राप्त होते हैं जैसे स्मशानभूमिमें काक ॥ २३ ॥ आत्मवस्तुके बोधसे सब पदार्थोंकी व्यवस्थापिका जो संसाररूप लताहै उसका बीज तत्त्वज्ञानियोंके मनमें नहीं उत्पन्न होता ॥ २४ ॥

शास्त्रसज्जनसंपर्कसंततताभ्यासयोगतः ॥ जागतानामवस्तुत्वंभावानामवगम्यते ॥ २५ ॥ अविवेकाद्व पाहृत्यचेतस्सोद्यमनिश्चयैः ॥ बलात्कारेणसंयोज्यंशास्त्रसत्पुरुषक्रमैः ॥ २६ ॥ मुख्यंकारणमात्मैवप रमात्मावलोकने ॥ अगाधेपतितंरत्नंरत्नेनैवावलोक्यते ॥ २७ ॥ स्वानुभूतानिदुःखानिस्वात्मैवत्यक्तुमि च्छति ॥ तेनात्मैवात्मविज्ञानेहेतुरेकःपरःस्मृतः ॥ २८ ॥

अर्थ—शास्त्र और सज्जनके सम्पर्कसे और मनके निरोधके अभ्यासके योगसे जगत्के पदार्थोंमें वस्तुत्वका अभाव निश्चित होताहै ॥ २५ ॥ दृढ उद्यमके निश्चयसहित शास्त्र और सत्पुरुषोंके क्रमसे इस चित्तको अविवेकसे हटाकर बलात्कारसे आत्मामें लगाना चाहिये ॥ २६ ॥ परमात्माके दर्शनमें आत्मा मुख्य कारण इसप्रकारहै जैसे अगाधमें पतित रत्न प्रकाशमान रत्नोंहीसे प्राप्त होताहै ॥ २७ ॥ अपने अनुभूत सुख दुःखोंके आत्माही त्यागना चाहताहै इसकारण आत्माही आत्मज्ञानका मुख्य हेतुहै ॥ २८ ॥

प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ॥ निरस्तमनननानंतसंविन्मात्रपरोभव ॥ २९ ॥ जायमानस्तथा जीवन्म्रियमाणःक्रियारतः ॥ स्वात्मन्यमलतांप्राप्तेसंविदंशेस्थिरोभव ॥ ३० ॥ ममेदंतदयंसोहमिति संत्यज्यवासनाः ॥ एकनिष्ठतयांतस्थसंविन्मात्रपरोभव ॥ ३१ ॥ वर्त्तमानभविष्यंत्योःस्थित्योरादेहमे कधीः ॥ स्वसंवित्त्यानुसंधानसमाधानपरोभव ॥ ३२ ॥

अर्थ—वार्तालाप करते हुये, देते हुये ग्रहण करते हुये, नेत्र खोलते वा मूंदते हुये भी, मनके मननसे रहित केवल चेतनमात्रमें परायणहो ॥ २९ ॥ उत्पन्न होते, जन्मते, और मरते तथा अन्य दुर्दशाओंमें ग्रस्त और क्रियामें तत्पर, आत्माके अविस्मरणसे स्वात्मामें निर्मलता प्राप्त होनेपर केवल संवित् (चेतन) अंशमें स्थिर रहो ॥ ३० ॥ यह समीपमें स्थित, वह दूरस्थ मेराहै तथा यह शरीर आदि मैं हुं इत्यादि वासनाओंको त्यागकर केवल एक निष्ठासे संवित् (चेतन) मात्रमें तत्परहो ॥ ३१ ॥ वर्तमान बाल्यअवस्थाकी और भविष्यत् यौवनअवस्था तथा राज्यादिकी स्थितियोंमें तथा जबतक देह रहै सर्वत्र अपने संवित्ति (चेतन) मात्रमें एक बुद्धि होके उसी चेतनके अनुसंधान तथा समाधिमें तत्पर रहो, अर्थात् सब अवस्था आदिका परिवर्तन होताहै परन्तु चेतन वही एक सबमें अनुस्यूतहै इसका ध्यान सदा करतेहो ॥ ३२ ॥

बाल्ययौवनवृद्धेषुदुःखेषुचसुखेषुच ॥ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तेषुस्वसंवित्तिपरोभव ॥ ३३ ॥ मलंसंवेद्यमुत्सृ ज्यमनोनिर्गलयन्परम् ॥ आशापाशमलंछित्त्वास्वसंवित्तिपरोभव ॥ ३४ ॥ शुभाशुभस्वसंकेतसंशांतो शाविषूचिकः ॥ नष्टेष्टानिष्टदृष्टिस्त्वंसंवित्सारपरोभव ॥ ३५ ॥ सकर्तृकर्मकरणान्स्वास्पर्शानंतरास्पृ शन् ॥ निर्विकल्पनिरालंबःस्वचिन्मात्रपरोभव ॥ ३६ ॥

अर्थ—बाल्ययौवन, और वृद्धावस्थाओंमें, दुःखोंमें तथा सुखोंमें, जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्तिमें केवल स्वस्वरूप चेतनमात्रमें निष्ठ होओ ॥ ३३ ॥ बाह्य विषयरूप मलको त्यागकर, मनको आत्मामें विलय करते हुये आशारूप पाशको पूर्णरीतिसे छेदन करके केवल निज ज्ञान स्वरूपमें स्थित रहो ॥ ३४ ॥ शुभाशुभ लक्षण अपने संकल्पसे कृतं संकेतोंमें जिसकी आशारूप महामारी शान्त होगई है ऐसे तथा इष्टा निष्ट विचारोंसे शून्य तुम केवल संवित्मात्रका अवलम्बन करो ॥ ३५ ॥ कर्ता (विज्ञानमय बुद्धि) और करणरूप इन्द्रियों करके सहित और अपनेको न स्पर्श करनेवाले संसारोंको अपने अन्तर्गत प्रतिबिम्बोंके सदृश स्पर्श करते अर्थात् साक्षीरूपसे सबके व्यापारोंको उनके विषयकोभी देखते हुये निर्विकल्प तथा निरालम्ब केवल निजस्वरूप चिन्मात्रमें निष्ठ रहो ॥ ३६ ॥

जाग्रत्येवहिसंसुप्तांभावयन्सुस्थिरांस्थितिम् ॥ सर्वमस्मीतिसंचिंत्यसत्तैकात्मवपुर्भव ॥ ३७ ॥ नाना नानादशामुक्तौयुक्तोमुक्ततयासमे ॥ समग्रकलनादीपःस्वचिन्मात्रपरोभव ॥ ३८ ॥ आत्मतापरतेत्य क्त्वानिर्विभागोजगत्स्थितौ ॥ वज्रस्तंभवदात्मानमवलंब्यस्थिरोभव ॥ ३९ ॥ स्थित्वांतर्मौनसान्पा शानाशारूपानुदारया ॥ धियाधैर्यैकधर्मिण्यानिर्द्धर्माधर्मतांव्रज ॥ ४० ॥

अर्थ—और जाग्रत् अवस्थाहीमें सुषुप्तिके अति स्थिर समान निर्विकल्प स्थितिकी भावना करते हुये सब संसारमें चेतनमात्र मैं हुं ऐसा विचार करके केवल चित् सत्तामात्र शरीर होजाओ ॥ ३७ ॥ नानादशा (जाग्रत् और स्वप्न) अनानादशा (सुषुप्ति) से वा सृष्टि तथा प्रलयमुक्त, मुक्तरूपसे सब ब्रह्ममेंयुक्त, और सम्पूर्ण दृश्यमात्रकी प्रथामें दीप वा सब बुद्धिकी वृत्तियोंके सदृश प्रकाशक तुम निज चिन्मात्र स्वरूपमें स्थिर रहो ॥ ३८ ॥ आत्मता तथा परताको त्यागकर जगत्की स्थितिमें विभागशून्य वज्रके स्तंभके तुल्य आत्माका अवलम्बन करके स्थिर रहो

॥ ३९ ॥ संकल्पमय आशारूप पाशोंके मध्य धैर्य्य धर्मवती बुद्धिसे (बाह्य बुद्धिसे) स्थित होके धर्माधर्मकी शून्यता दशाको तुम प्राप्त होओ ॥ ४० ॥

समास्वादयतस्तत्त्वंस्वसंवेदनधर्मिणः ॥ विषंहालाहलमपियास्यत्यमृततामथ ॥ ४१ ॥ तदोदेतिमहामोहःसंसृतिभ्रमकारणम् ॥ निर्मलायानिरंशायाःसंवित्तेश्चामतिर्यदा ॥ ४२ ॥ तदासंक्षीयतेमोहःसंसारभ्रमकारणम् ॥ निर्मलायांनिरंशायांस्वसंवित्तौस्थितिर्यदा ॥ ४३ ॥ स्वरूपमनुयातस्यतीर्णस्याशामहार्णवम् ॥ प्रसरिष्यतितेसंवित्सूर्यांशुरिवसर्वतः ॥ ४४ ॥

अर्थ—ज्ञानमात्र साक्षीरूप अपने आत्माके तत्वको आस्वादन करनेवालेको हालाहल विषभी अमृतताको प्राप्त होताहै ॥ ४१ ॥ जब निर्मल तथा निरवयव चेतनका विस्मरण होताहै अर्थात् अज्ञान होताहै उससमय संसारके भयका महामोह उदय होताहै ॥ ४२ ॥ जब निर्मल और निरवयव निज चेतनमात्रमें स्थिति होती है उससमय संसारके भ्रमका कारण महामोह क्षयको प्राप्त होजाताहै ॥ ४३ ॥ जिससमय तुम अपने स्वरूपमें प्राप्त और आशारूप समुद्रके पारंगत होओगे उससमय ज्ञानरूप सूर्यके किरण तुमारे चारों ओरसे प्रसृत होंगी ॥ ४४ ॥

स्वभावमालोकयतआनंदाद्वयसंस्थितेः ॥ रसायनमपिस्वादुरामप्रतिविषायते ॥ ४५ ॥ तैर्नोभजामहेपुंभिर्यैस्वभावमुपागताः ॥ शेषाःपुरुषनामानोगर्दभादीर्घबाहवः ॥ ४६ ॥ पर्वतात्पर्वतंयांतिपुरोद्रेरिवदंतिनः ॥ परांकोटिंप्रयातस्यस्वसंवित्त्युन्नतस्थितेः ॥ ४७ ॥ अदृष्टादृश्यसीम्नोंतःसूर्यादीन्यखिलान्यपि ॥ नतेजांस्युपकुर्वंतिस्वसंविद्दिव्यचक्षुषः ॥ ४८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! अपने स्वभावको देखते हुये, और अद्वैत ब्रह्मानन्दमें स्थित पुरुषको अति स्वादु अमृतभी विषके तुल्य प्रतीत होताहै ॥ ४५ ॥ हे रामजी ! जो पुरुष हमारे भाव अर्थात् प्रत्यग् आत्मभावको प्राप्त जीवन्मुक्त होगयेहैं उनके साथ हम लोग सदा मैत्री करतेहैं और शेष दीर्घ भुजावाले मनुष्य नामके गर्दभहैं ॥ ४६ ॥ अपने ज्ञानसे सबसे उच्च स्थिति सहित इसीसे उत्कर्षताकी पराकाष्ठाको प्राप्त तत्ववेत्ताके संमुख अन्य उपासक योगी ज्ञानार्थ जाते हुये ऐसे भासतेहैं जैसे मेरु आदि पर्वतके संमुख (आगे) अन्य पर्वतसे जाते हुये हस्ती ॥ ४७ ॥ भूतकालमें तत्ववेत्तासे अन्य किसी पुरुषसे अदृष्ट और वर्तमान तथा भविष्यत्मेंभी किसीसे देखनेके अशक्य अवधि सहित तथा अपने ज्ञानरूप दिव्य नेत्रयुक्त तत्ववेत्ताके अंतःकरणमेंही कल्पित सूर्य्यादि संपूर्ण तेज कुछभी उसका उपकार नहीं करते क्योंकि अपने ज्ञानसे उसकी सबसे उन्नत स्थितिहै ॥ ४८ ॥

अवस्तुतांव्रजंत्येतेमाध्याह्नइवदीपकाः ॥ अर्कादयोमहालोकाविद्ययाधिगतात्मनः ॥ ४९ ॥ तेजोंशुषुप्रभावेषुबलिष्वपिमहत्स्वपि ॥ सर्वेषून्नतियुक्तेषुतत्त्वज्ञःपरमोन्नतः ॥ ५० ॥ भांतीहभासायस्यार्कवह्नीन्दुमणितारकाः ॥ तथाजगतिराजंतेज्ञातज्ञेयानरोत्तमाः ॥ ५१ ॥ धराविवरकीटेभ्योगर्दभेभ्योपिमानवाः ॥ तिर्यग्भ्यश्चाप्यतत्त्वज्ञारामतुच्छतराःस्मृताः ॥ ५२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! ब्रह्मविद्यासे अपने आत्माको जिसने जान लियाहै उसके संमुख सूर्य्यादि महालोकभी ऐसे तुच्छताको प्राप्त होतेहैं जैसे मध्यान्हकालमें दीपक ॥ ४९ ॥ तेजोंके कार्य्य प्रकाशनोमें, योगकी वशिता आदि सिद्धियोंके प्रभावोंमें, बलवानोंमें, ऐश्वर्य तथा आयु आदिसे श्रेष्ठ जनोंमें, तथा अन्य विद्वत्ता और वक्तृता आदि उन्नतियुक्त पुरुषोंमें तत्वज्ञानी पुरुष सबमें परम उन्नति युक्तहै ॥५०॥ जिस आत्मारूप जगदीश्वरके प्रकाशसे सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा, मणि तथा तारागण प्रकाशित होतेहैं और उसी प्रकार ज्ञातज्ञेय (तत्वज्ञानी) उत्तम पुरुषकी कृपासे इस जगत्में प्रकाशमान होतेहैं ॥ ५१ ॥ हे रामजी ! भूमिके बिलोंके कीडोंसे, गर्दभोंसे, और पशु कीट पतंगादिसेभी आत्मज्ञानसे रहित मनुष्य अति मूढतरहैं, क्योंकि आत्मज्ञानके अभावमें अधमतम कीटादि योनि मिलतीहै ॥ ५२ ॥

तावत्संमोहवेतालोदेहीयावदनात्मवान् ॥ आत्मज्ञएवसंयुक्तश्चेतनेनेतितद्विदः ॥ ५३ ॥ अनात्मज्ञो हिदुःखेहःप्रस्फुरन्नपिभूतले ॥ शवएवभ्रमत्युच्चैरात्मज्ञस्तुसचेतनः ॥ ५४ ॥ दूरादात्मज्ञतायातिचित्ते पीवरतांगते ॥ आलोकलक्ष्मीरभितोमहामेघइवोत्थिते ॥ ५५ ॥ भोगाभोगतिरस्कारैःकार्श्यंनेयंशनैर्मनः ॥ रसापहारैस्तज्ज्ञेनकालेनाजीर्णपर्णवत् ॥ ५६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जबतक यह प्राणी आत्मज्ञ नहीं है तभीतक मोहरूप पिशाच गर्जताहै और आत्मज्ञानीही सचेतनहै अनात्मज्ञ अचेतनहै ऐसा तत्ववेत्ता जन कहते हैं ॥ ५३ ॥ दुःखोंके दाहके लिये जिसकी चेष्टाहै ऐसा अज्ञानी संसारमें चलता हुआ भी मानों मृतकही उच्चतासे भ्रमण करताहै, और आत्मज्ञ तो जीवितहै ॥ ५४ ॥ चित्तके स्थूल होनेपर आत्मज्ञता ऐसे दूर चली जाती है जैसे महामेघके उठनेपर चारोंओरसे प्रकाशकी शोभा ॥५५॥ भोगों

(विषयों) की सेवाकातिरस्कार करनेसे और अप्राप्त विषयोंके अभिलाषके त्यागसे अपने मनको ज्ञानीको ऐसे कृश करना चाहिये जैसे काल जीर्ण पत्तेको ॥ ५६ ॥

अन्यात्मन्यात्मभावेनदेहमात्रास्थयानया ॥ पुत्रादारकुटुंबैश्चचेतोगच्छतिपीनताम् ॥ ५७ ॥ अहंकारविकारेणममतामलहेलया ॥ इदंममेतिभावेनचेतोगच्छतिपीनताम् ॥ ५८ ॥ जरामरणदुःखेनव्यर्थमुन्नतिमीयुषा ॥ दोषाशीविषकोशेनचेतोगच्छतिपीनताम् ॥ ॥ ५९ ॥ आधिव्याधिविलासेनसमाश्वासेनसंसृते ॥ हेयादेयप्रयत्नेनचेतोगच्छतिपीनताम् ॥ ६० ॥

अर्थ—और अनात्मामें आत्मभावसे, देहमात्रमें आस्था करनेसे तथा पुत्र स्त्री और कुटुम्बोंसे चित्त स्थूलताको प्राप्त होताहै ॥५७॥ अहंकारके विकारसे, ममतारूप मनमें आसक्ति, यह शरीरके भोगका स्थान आत्माहै इस भावनासे चित्त स्थूलताको प्राप्त होताहै ॥ ५८ ॥ जरा मरणके दुःखोंसे, व्यर्थ उन्नतिकी प्राप्तिकी इच्छासे, तथा दोषरूपी सर्पोंके कोशसे यह चित्त स्थूलताको प्राप्त होताहै ॥५९॥ मानसिक तथा शारीरिक रोगोंके विलाससे, संसारमें रमणीयता तथा चिरस्थायिताके विश्वाससे, हेय तथा आदेयके प्रयत्नसे चित्त स्थूलताको प्राप्त होताहै ॥ ६० ॥

स्नेहेनधनलोभेनलाभेनमणियोषिताम् ॥ आपातरमणीयेनचेतोगच्छतिपीनताम् ॥ ६१ ॥ दुराशाक्षीरपानेनभोगानिलबलेनच ॥ आस्थादानेनचारेणचित्ताहिर्यातिपीनताम् ॥ ६२ ॥ आगमापायवपुषाविषवैषम्यशंसिना ॥ भोगाभोगेनभीमेनचेतोगच्छतिपीनताम् ॥ ६३ ॥ शरीरदुःश्वभ्रचिरप्ररूढंचिंताचयोच्चाकृतिमंजरीकम् ॥ जरामृतिव्याधिफलौघनम्रंकामोपभोगोघविकासिपुष्पम् ॥ ६४ ॥

अर्थ—स्नेहसे, धनके लोभसे, मणि तथा स्त्रियोंके लाभसे और आरंभमें विना विचारे रमणीय विषयोंसे चित्त स्थूलताको प्राप्त होताहै ॥ ६१ ॥ दुष्ट आशारूप दुग्धके पान करनेसे, भोगरूप विपयके बलसे संसारी पदार्थोंमें सत्यताके विश्वाससे, और नानाप्रकारके विपयोंके संचारसे चित्तरूप सर्प स्थूलताको प्राप्त होताहै ॥ ६२ ॥ उत्पत्ति और नाश स्वभावयुक्त, विपरूप विषमताका प्रतिपादक और भयंकर भोगोंके सेवनसे चित्त स्थूलताको प्राप्त होताहै ॥ ६३ ॥ हे रामचन्द्रजी ! शरीररूप दुष्ट गर्त (गढे) में चिरकालसे पूर्ण रीतिसे जमा हुआ, चिन्ताके समूहरूप महान् आकारवाली लताओंसे वेष्टित, वृद्धाऽवस्था, मरण तथा रोगरूप फलोंके समूहसे नम्र, और कामोंके उपभोगोंके समूहरूप विकसित पुष्पसहित ॥ ६४ ॥

विचारसारक्रकचेनचित्तविषद्रुमंत्वद्भुतमद्रिकल्पम् ॥ आशामहाशाखमशंकमेनंछिधिप्रसह्यात्रविकल्पपत्रम् ॥ ६५ ॥ मत्तेक्षणंचैकतटोपवेशंविश्रांतिसौख्येष्वसमर्थमुग्रम् ॥ आलोकनोत्कंसुजनक्रमाब्जखंडस्यचंडंसुखदुःखगंडम् ॥ ६६ ॥ चेतोगजंकायकुकाननस्थंसुतीक्ष्णयाधीकरजाग्रपंक्त्या ॥ विदारयादीर्घविकारदंतंक्रियाकरंराघवराजसिंह ॥६७॥ रतिंगतंनित्यमसत्प्रदेशेशरीरमांसग्रसनेनपुष्टम् ॥ दुष्टक्रियाकर्कशचंचुदंडमेकेक्षणंपुष्टतमोंशुकृष्णम् ॥ ६८ ॥

अर्थ—पर्वतके समान अति उच्च, आशारूप महाशाखा संयुक्त, और विकल्परूप पत्रोंसे युक्त इस चित्तरूप विषके वृक्षको अशंक होके तुम बलात्कारसे श्रेष्ठ विचार (आत्मविचार) रूप आरेसे काटो ॥ ६५ ॥ हे राजसिंह राघव ! विवेकके प्रमादसे मत्त आगम तथा अनुमानरूप नेत्रसहित, बहिर्मुखतारूप संसाररूप पर्वतके तटपर बैठे हुये, अन्तर्मुखतासे विश्रान्तिरूप सौख्यमें असमर्थ, द्वेष ग्रहादिसे भयंकर शम दम तितिक्षा आदि सज्जनोंके क्रमरूप कमलके वनके देखनेको बडे अभिलाषी, अति क्रोधी और सुखदुःखरूप गंडस्थलसे संयुक्त ॥ ६६ ॥ शरीररूप भयंकर बनमें स्थित, कामादिके विकाररूप दीर्घ दंतसहित और धैर्य्य आदिके विदारणरूप क्रियाको करनेवाले इस चित्तरूप मातंगको अति तीक्ष्ण बुद्धिरूप सिंहके नखाग्रसे विदीर्ण करो ॥ ६७ ॥ हे रामजी ! स्त्री तथा भोज्यपदार्थरूप श्मशानदेशमें रतिको प्राप्त, शरीररूप मांसके भक्षणसे पुष्ट, अन्यके मर्मोंके छेदनमें कर्कश चोंचसहित, स्वार्थरूप एक नेत्रधारी, वृद्धिको प्राप्त तमोगुणकी वृत्तिरूप अन्धकारसे कृष्ण ॥ ६८ ॥

दूरेसमुत्सारयभारभूतंदुश्चेष्टितंकर्कशमारटंतम् ॥ गंधोद्गतंकायकुलायकोशाद्दोषोपशांत्यैनिजचित्तकाकम् ॥ ६९ ॥ तृष्णापिशाच्यापरिचर्यमाणंविश्रांतमज्ञानमहावटेषु ॥ भ्रांतंचिरंदेहशतेष्वटव्यांस्वसंसृतौचेतनवर्जितेषु ॥ ७० ॥ विवेकवैराग्यगुरुप्रयत्नमंत्रैःस्वतंत्रैःस्वचिदात्मगेहात् ॥ नोत्सादयेच्चित्तपिशाचमेनंयावत्कुतस्तावदिहात्मसिद्धिः ॥ ७१ ॥ शुभाशुभास्वंहतमानवौघंचिंताविषंकायकुकंचुकं च॥ अजस्रमच्छश्वसनाशनंचसर्वस्यनानाभयनाशदंच ॥ ७२ ॥

अर्थ—आत्मरूप वृक्षका भाररूप, दुर्वासनारूप दौर्गन्ध्यसे प्रकट, दुष्ट चेष्टाकारी, और कर्कश (कर्णकटु) रटते हुये इस अपने चित्तरूप काकको दोषोंकी शान्तिके लिये शरीररूप खोंथेसे दूर भगादो ॥ ६९ ॥ तृष्णारूपी

पिशाचीसे सेवित, अज्ञानरूप वटके वृक्षमें विश्रान्त, सैकडों देहोंमें वा अनन्त कोटि देहरूप महावनमें चिरकालसे भ्रमणकारी अपने चित्तकी चंचलतामें तथा अचेतन जनोंमें प्रत्यक्ष सिद्ध ॥ ७० ॥ इस अपने चित्तरूप पिशाचको विवेक तथा वैराग्यादि महाप्रयत्नरूप मंत्र तंत्रोंसे अपने आत्माके गृहरूप हृदयसे जबतक न हटा दोगे तबतक आत्माका शुद्ध स्वभावरूप सिद्धि (मुक्ति) कहांसे होसकती है ॥ ७१ ॥ हे रामजी ! शुभ अशुभ कर्मरूप दो दंतसहित, मनुष्य समूहोंका हन्ता चिन्तारूप विषधारी, शरीररूप दुष्ट केंचुलीयुक्त निरन्तर श्रमरहित प्राण वायुका भक्षक, और नानाप्रकारके भय तथा मृत्युका दाता ॥ ७२ ॥

हृद्ब्जदुःशाल्मलिकोटरस्थममोघयाचित्खगमंत्रशक्त्या ॥ नीत्वाशमंरामामनोमहाहिंभयंभृशंप्रोज्झ्य भवाभयात्मा ॥ ७३ ॥ अमंगलाकारधरःशरीरशवावलीसंततसेवनेन ॥ दिगावलीसंभ्रमणश्रमार्त्तः श्मशानसेवीवपुपाक्षतेन ॥ ७४ ॥ भोगामिषोदिक्ष्वभिधावमानउत्कंधरोधीरविवृद्धगर्द्धः ॥ उड्डीयवेग च्छतिचित्तगृध्रोदेहद्रुमात्तत्रिपुणंजयस्ते ॥ ७५ ॥ भ्रांतंवनांतेषुदिगंतरेषुफलार्थिनंचंचलमाकुलांगम् ॥ जन्मावनेर्जन्ममहींप्रयातंसंसारबंधंजनतांहसंतम् ॥ ७६ ॥

अर्थ—तथा हृदयकमलरूप दुष्ट शाल्मलिवृक्षके कोटरमें स्थित, जो यह निज मनरूप महासर्प है इसको अमोघ चितरूप गरूडके (" सत्यं ज्ञान मनन्तं ब्रह्म " इत्यादि) मन्त्रकी शक्तिसे मूलसहित उच्छेद करके और सर्वथा भयको त्यागकर अभयात्मा होजाओ ॥ ७३ ॥ हे रामजी ! शरीररूप मृतकोंकी पंक्तिको सदा सेवन (भक्षण) करनेसे सदा अमंगलरूपधारी, दिशाओंकी सब पंक्तियोंमें भ्रमण करनेके श्रमसे पीडित, अपमान, धनव्यय, शोक तथा भयादिरूप काकादिके चोंचोंके प्रहारोंसे खंडित देहसे श्मशान सेवीके तुल्य ॥ ७४ ॥ भोग (विषयभोग) रूप मांसका भक्षक, सब दिशाओंमें ग्रीवा उठाके दौडनेवाला, तथा अधीर और अति तृष्णाधारी यह चित्तरूप गृध्र यदि तुमारे देहरूप वृक्षसे उडके चलाजाय तब तुमारा सर्वथा जयहै ॥ ७५ ॥ दिशाओंके अंतमें भ्रमण करनेवाला कवलका अर्थी, चंचल, व्याकुल शरीर, एक जन्मरूपसे दूसरी जन्मरूप भूमिको प्राप्त, तथा जनसमूह और उसके संसारके बंधनको अपनी चेष्टाओंसे हंसता हुआ ॥ ७६ ॥

द्रुमेक्षिनासाकुसुमेभुजादिशाखेविलोलांगुलिजालपत्रे ॥ समुल्लसंतंपरिमारयांतर्मनोमहामर्कटमंग सिद्ध्यै ॥ ७७ ॥ अभ्युत्थितंसत्फलसंक्षयायलसन्मुखासंगितडित्प्रकाशम् ॥ वर्षंतमासारमनर्थसार्थ उपक्रांदोलितंवासनवात्ययांतः ॥ ७८ ॥ संकल्पसंकल्पनवर्जनोग्रमंत्रप्रभावाद्धृदयांबरस्थम् ॥ सोत्साह मुत्सादयचित्तमेघंवृहत्फलंप्राप्यभवालमाद्यः ॥ ७९ ॥ ग्रंथीकृतंकर्मभिरात्मसृष्टेर्मंत्रैरभेद्यंज्वलनैरद ग्धम् ॥ पीडांपरामात्मनिकल्पयंतंसमस्तजात्यंतरदीर्घदाम ॥ ८० ॥

अर्थ—नेत्र नासिकारूप पुष्पसहित; भुजा आदि शाखायुक्त, तथा अंगुलियोंके समूहरूप पत्रसहित वृक्षमें शोभायमान मनरूप महामर्कटको चारो ओरसे निरोधकेद्वारा; हे प्रिय रामजी ! आत्मसिद्धिकेलिये मारो ॥ ७७ ॥ हे रामजी ! परमार्थ सुखरूप पक्वफलके नाशके लिये अकालमें उपस्थित, मुखके समान बाह्यमुख वृत्तिके अग्रभागमें आसक्त, विद्युत्के समान चिदाभासके प्रकाशयुक्त, अनर्थके समूहरूप धाराको वर्षते हुये, और वासनारूप वात्या (महावायुकेसमूह) से अन्तःकरणको कम्पित करनेवाले ॥ ७८ ॥ इस हृदयाकाशमें स्थित चित्तरूप मेघको उत्साहके साथ संकल्पोंकी कल्पनाओंके अभावरूप प्रचण्ड मंत्रके प्रभावसे हटाओ, और उससे जीवन्मुक्तिरूप महाफलको पाकर अपने पूर्व सिद्धस्वभाव अर्थात् नित्यमुक्त आत्मा पूर्णरीतिसे होजाओ ॥ ७९ ॥ हे रामजी ! आत्माकी सृष्टि (आत्मा जिसमें उपादान कारण था उस सृष्टि) से लेके आजतक सुकृत दुष्कृत कर्मोंसे निरन्तर ग्रन्थीकृत अर्थात् दृढ मन्त्रोंसे अभेद्य, अग्निसे अदाह्य, आत्मामेंभी बडी पीडाका कल्पक, और समस्त नानाप्रकारकी जाति वा जन्मोंके भेदोंके बन्धनके लिये दीर्घ रज्जु (रस्सी) के समान उपस्थित ॥ ८० ॥

संप्रोतनिःसंख्यशरीरमालंबलादसंकल्पनमात्रशस्त्रैः ॥ छित्वा स्वयंराघवचित्तपाशंयथासुखंत्वंविहरा स्तशंकः ॥ ८१ ॥ फूत्कारदग्धाखिलपांथलोकमत्यंतदुष्प्रापपरप्रबोधम् ॥ आशीविषंशोषितलोकखंडं व्यात्त्यामिपोद्धृतशरीरदंडम् ॥ ८२ ॥ आमंथरंदेहगुहासुगुप्तंसंकल्पघोराजगरंजवेन ॥ अकामनानामम हानलेनबलेनदग्ध्वाविभवोभवत्वम् ॥ ८३ ॥ चित्तेनचेतःशममाशुनीत्वाशुद्धेनघोराश्ममिवाश्मयुक्त्या ॥ स्थिरायसाधोत्यजचंचलत्वंविमर्कटोवृक्षइवाक्षतश्रीः ॥ ८४ ॥ अमलमितिचकृत्वाचेतसार्वातशंकमुप शमितमनोंतःसर्वमादेहमेव ॥ तृणलवलघुपश्यँल्लीलयाहेयदृष्ट्यापिबविहररमस्वप्राप्तसंसारपारः ॥ ८५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे राघवाशयविनियोगोनाम पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५० ॥

अर्थ—और जिस रज्जूमें असंख्यशरीर माला गूंथी हैं ऐसे अपने चित्त पाश (फांसी) की शंकारहित होके असंकल्परूप महाशस्त्रोंसे छेदन करके यथा सुख तुम इससंसारमें बिहार करो॥८१॥हे रामजी ! क्रोधादिरूप फुफकारसे दक्षिणोत्तर मार्गगामी सब जीवरूप वटोहियोंको भस्म करनेवाले, अति दुष्प्राप परब्रह्मरूप प्रबोधज्ञान शून्य विषयरूप विषधारी इसीसे सम्पूर्ण भुवनोंको सन्तापित करनेवाले, तथा तृष्णारूप मुखको फैलाकर विषयरूप मांसके अर्थ चार-प्रकारके शरीररूप दण्डके कंपित करनेहारे ॥ ८२ ॥ और मोक्षके उद्योगमें आलसी होनेसे मन्दगति तथा देहरूप गुहामें शयनशील इस संकल्परूप भयंकर अजगरको अकामना (वैराग्य) रूप महा अग्निके द्वारा वलसे भस्म करके पूर्णानन्दरूप ऐश्वर्ययुक्त तुम होजाओ ॥ ८३ ॥ हे साधो रामजी ! अस्त्रोंसे भयंकर अस्त्रके समान शुद्धचित्तसे मलिन चित्तको सर्वथा शांत करके चिरकालके लिये चंचलताको त्यागो और मर्कट शून्य वृक्षके तुल्य अखण्डित शोभायुक्त तुम हो ॥ ८४ ॥ हे रामजी ! इस उक्तप्रकारसे और पूर्वोक्त तत्वज्ञानसे प्रत्यग् आत्मामें मनको मलरहित करके स्थूल सूक्ष्म तथा कारण शरीरसहित सम्पूर्ण जगत्को तृणसे भी तुच्छतर अनादरकी दृष्टिसे देखते हुये संसारके पार प्राप्त तुम लीलासे लोक संग्रहके अर्थ सोमरसका पान करो वा ऋत्विजोंके साथ विहार करो वा शास्त्रके अविरूद्ध लोंकमें विहार करो ॥ ८५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उपशमप्रकरणे राघवाशयविनियोगो नाम पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५० ॥

एकपंचाशः सर्गः ॥ ५१ ॥

शान्त पदमें विश्राम चाहनेवाले पुंजान (जिस योगीको चिन्ता करनेसे अदृष्ट पदार्थका भान होताहै उस देशमें प्राप्त) योग दशामें प्राप्त उद्दालक मुनिके मनके दोषोंसे विक्षेपका वर्णन इस ५१ के सर्गमें किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ परिदीर्घासुतन्वीषुसुतीक्ष्णासुसितासुच ॥ क्षुरधारोपमानासुचित्तवृत्तिषुतिष्ठमा ॥ १ ॥ कालेनमहताक्षेत्रेजातेयंबुद्धिवल्लरी ॥ वृद्धिविवेकसेकेननयतांनयकोविद ॥ २ ॥ यावन्म्लायतिनोकायलतिकाकालभास्वता ॥ भूतलेऽपतितांतावदेनामुद्धृत्यधारय ॥ ३ ॥ महावाक्यार्थैकतत्त्वज्ञमद्वाक्यार्थैकभावनात् ॥ सुखमाप्नोषिसर्पोरिर्यथाभ्ररवभावनात् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! इसलोक तथा परलोक विषयोंके आसंगसे अति दीर्घ, वासनामय होनेसे सूक्ष्म, समाधिके सुखका शीघ्र छेदक होनेसे अति तीक्ष्ण, आत्माके प्रतिबिंब ग्रहण करनेसे सित (निर्मल) इसीसे क्षुराकी धाराके समान चित्तकी वृत्तियोंमें प्रमादसे विश्वासको मत प्राप्त होओ ॥ १ ॥ हे नीतिनिपुण रामजी ! उत्तम कुलमें उत्पन्न शरीररूप लतामें चित्तकी शुद्धि और श्रवण आदि दोहदके उपायोंसे परमात्माको परिचय करनेवाली यह तुह्मारी बुद्धिरूप लता होगई है इसको बाह्य दृश्योंसे निवृत्तिरूप विवेकसे सींचके बढाओ ॥ २ ॥ जबतक कालरूप सूर्य्यसे यह शरीररूप लता नहीं कुम्हिलाती, तभीतक भूतलमें गिरनेसे पूर्व गुरू शुश्रुषा तथा श्रवणादि द्वारा उद्धार करके इस बुद्धिरूप लताका पालन करो ॥३॥ हे मेरे वाक्यार्थके मुख्य तत्वके ज्ञातः रामजी ! मेरे वाक्यार्थमें दृढ भावना करनेसे तुम ऐसे सुख पाओगे जैसे मेघके शब्दकी भावनासे मोर ॥ ४ ॥

उद्दालकवदालूनंविशीर्णंभूतपंचकम् ॥ कृत्वाकृत्वाधियाधीरधीरयांतर्विचारय ॥ ५ ॥ श्रीरामउवाच ॥ केनक्रमेणभगवन्मुनिनोद्दालकेनतत् ॥ भूतपंचकमालूनंकृत्वांतःप्रविचारितम् ॥६॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ शृणुरामयथापूर्वंभूतवृंदविचारणात् ॥ उद्दालकेनसंप्राप्तापरमादृष्टिरक्षता ॥ ७ ॥ जगज्जीर्णगृहस्यास्य कोणेकस्मिंश्चिदातते ॥ भूमेरनिलदिग्नाग्निभूभृद्भांडसमाकुले ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! उद्दालक मुनि जैसे देह आदिके आरंभक तथा बाह्य अन्य प्रपंचोंके आरंभक पृथिवी आदि
दूरस्थ तत्वको पदार्थके शोधनमें तत्पर बुद्धिसे कारणमें कार्यलय (जैसे पृथिवीका जलमें जलका तेजमें तेजका
कम् ॥ ६ ॥ीतिसे) करके अधिष्ठान सन्मात्रके अन्वेषण (खोजने) में धीर पुरुषोंसे धीर बुद्धि अपने अन्तःक-
तौचेतनवर्जि ॥ श्री रामजी बोले—हे भगवन्! उद्दालक मुनिने किस क्रमसे भूत पंचका लय कारणमें करके अपने
शाचमेनंयावत् सो कहिये ॥ ६ ॥ श्री वसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! भूत समूहके विचारसे उद्दालक मुनिने जैसे
अजस्रमच्छश्वस दृष्टिको पाया वह वृत्तान्त तुम श्रवण करो ॥ ७ ॥ इस जगत्रूप प्राचीन गृहके किसी वि-
अर्थ—आत्मरू
रहते हुये इस अपने चित्त नीच पर्वतोंसे व्याप्त वायव्यकोणमें ॥ ८ ॥

गंधमादनशैलेंद्रनाम्निकाचित्किलस्थली ॥ विद्यतेकीर्णकुसुमाद्रुमकर्पूरकेसरा ॥ ९ ॥ विचित्रवर्णविह गानानावल्लीविलासिनी ॥ वनेचरव्याप्ततटीपुष्पकेसरभासिनी ॥ १० ॥ क्वचित्स्फीतमहारत्नाक्वचिल्लो लांबुजोत्पला ॥ क्वचिन्नीहारकबरीसरसीदर्पणाक्वचित् ॥११॥ तत्रकस्मिंश्चिद्रुदितेसानौसरलपादपे॥ आगुल्फाकीर्णकुसुमेस्निग्धच्छायमहाद्रुमे ॥ १२ ॥

अर्थ—गंधमादन नाम पर्वतपर पुष्पोंसे व्याप्त और पुष्पसहित वृक्षरूप कर्पूरके परागके सदृश केसरयुक्त कोई वनस्थली है ॥ ९ ॥ कहीं तो चित्रविचित्र पक्षियोंसे पूर्ण, कहीं नानाप्रकारकी लताओंसे विलासयुक्त, कहीं बनचर जन्तुओंसे व्याप्त तटी, और कहीं पुष्प केसरोंसे प्रकाशमान ॥ १० ॥ कहीं स्वच्छ महारत्नोंसे पूर्ण, कहीं चंचल कमलसहित, कहीं नीहार (कुहिरा) रूप केश वेशधारिणी, और कहीं स्वच्छ बड़े २ तडागरूप दर्पणसहित वह वनस्थली थी ॥ ११ ॥ उसमें सरलके वृक्षसहित एणीतक पुष्पोंसे व्याप्त, घनीभूत छायावाले वृक्षसहित अति ऊंचे किसी शिखर प्रदेशमें ॥ १२ ॥

उद्दालकोनाममुनिर्मौनीमानीमहामतिः ॥ अप्राप्तयौवनःपूर्वमुवासोद्दामतापसः ॥ १३ ॥ प्रथमंतुबभू वासावल्पप्रज्ञोविचारवान् ॥ अप्राप्तपदविश्रांतिरप्रबुद्धःशुभाशयः ॥ १४ ॥ ततःक्रमेणतपसाशास्त्रार्थ नियमैःक्रमैः ॥ विवेकआजगामैनंनववर्त्तुरिवभूतलम् ॥ १५॥ अथेमंचिंतयामाससंसारामयभीरुधीः ॥ एकांतएवनिवसन्कदाचित्कांतमानसः ॥ १६ ॥

अर्थ—तथा अपने प्रयत्नोंसे अवश्य पुरुषार्थको सिद्ध करूंगा ऐसे अभिमानसेयुक्त, उदार बुद्धि, यौवन अवस्थाको अप्राप्त और उत्तम तपस्या करनेवाले उद्दालक नाम मुनि पूर्वकालमें रहतेथे ॥ १३ ॥ प्रथम तो यह मुनि, अल्पबुद्धि, विचारवान् परमपदमें विश्रामको अप्राप्त अज्ञानी, और ज्ञान प्राप्त होने योग्य शुभ अन्तःकरणसहित थे ॥ १४ ॥ उसके अनन्तर क्रमसे तपसे, और शास्त्रार्थके नियमवाले क्रमोंसे विवेक इसमें ऐसे प्राप्त हुआ जैसे भूमंडलमें वसंत ॥ १५ ॥ इसके पश्चात् संसाररूप रोगसे भयभीत बुद्धि, और शुद्धचित्त उद्दालकने एकान्तमें निवास करते हुये इस वक्ष्यमाण कारणको कदाचित् चिन्तन किया ॥ १६ ॥

किंतत्प्राप्यंप्रधानंस्याद्यद्विश्रांतौनशोच्यते ॥ यत्प्राप्यजन्मनाभूयःसंबंधोनोपजायते ॥ १७ ॥ कदाहंत्य क्तमननेपदेपरमपावने ॥ चिरंविश्रांतिमेष्यामिमेरुशृंगइवांबुदः ॥ १८ ॥ कदाशममुपैष्यंतिममांतर्भोग संविदः ॥ आलोलकल्लोलरवाऊर्मयोंबुनिधाविव ॥ १९ ॥ इदंकृत्वेदमप्यन्यत्कर्त्तव्यमितिकल्पनाम् ॥ कदांतर्विहसिष्यामिपदविश्रांतयाधिया ॥ २० ॥

अर्थ—वह मुख्य प्राप्य वस्तु कौनसाहै जिसमें विश्राम पाकर मनुष्य पुनः नहीं शोच करता, और जिसको पानेसे पुनः जन्मका संबन्ध नहीं होता ॥ १७ ॥ कि वह कौनसा समय होगा कि मेरूके शिखरपर मेघके समान अति पवित्र तथा मनके व्यापारसे शून्य पदमें मैं चिरकालकेलिये विश्राम पाऊंगा ॥ १८ ॥ जैसे चंचल कल्लोल शब्दसहित तरंग समुद्रमें शान्त होती है ऐसेही भोगोंकी तृष्णा मेरे अन्तःकरणमें कब शान्त होंगी ॥ १९ ॥ इस कार्यको करके और अन्य कार्य यहभी कर्तव्यहै इस कल्पनाको मैं अन्तःकरणमें कब हसूंगा ॥ २० ॥

कदाविकल्पजालंमेनलगिष्यतिचेतसि ॥ स्थितमप्युज्झितासंगपयःपद्मदलेयथा ॥ २१ ॥ कदाबहुल कल्लोलांनावापरमयाधिया ॥ परितीर्णाभविष्यामिमत्तांतृष्णातरंगिणीम् ॥ २२ ॥ कदेमांजगतैर्भूतैः क्रियमाणामसन्मयीम् ॥ क्रियामपहसिष्यामिबाललीलामिवाकुलाम् ॥ २३ ॥ कदाविकल्पपर्यस्तंम नोदोलावदोलनम् ॥ शममेष्यतिमेशांतवातोन्मादइवभ्रमः ॥ २४ ॥

अर्थ—जैसे कमलके दलमें स्थितभी जल नहीं लगता ऐसे ही आभासमात्रसे स्थितभी विकल्पजाल मेरे चित्तमें कब नहीं संलग्न होगा ॥ २१ ॥ अति कल्लोलसहित और अविवेकसे बढी हुई मृगतृष्णारूप नदीको परम उत्तम बुद्धिरूप नौकासे कब पार करूंगा ॥ २२ ॥ जगत्‌के प्राणियोंसे क्रियमाण इस असत्य क्रियाको चंचल बालक लीलाके समान मैं कब हसूंगा ॥ २३ ॥ हे भगवन्! विकल्पोंसे विक्षिप्त और दोला (झूला) के समान चंचल (अविश्रान्त) मेरा मन ऐसे कब शान्तिको प्राप्त होगा जैसे शान्त उन्माद रोगसहित वातरोगीका भ्रम ॥ २४ ॥

कदोदितवपुर्भासाविहसञ्जागतीर्गतीः ॥ अंतःसंतोषमेष्यामिविराडात्मेवपूर्णधीः ॥ २५ ॥ अंतःस मसमाकारःसौम्यःसर्वार्थनिस्पृहः ॥ कदोपशममेष्यामिमंथमुक्तामृताब्धिवत् ॥ २६ ॥ कदेमामचलां दृश्यश्रियमाशाशतात्मिकाम् ॥ सर्वांसुषुप्तवत्पश्यन्भविष्याम्यंतराततः ॥ २७ ॥ सबाह्याभ्यंतरंसर्वं शांतकल्पनयाधिया ॥ पश्यंश्चिन्मात्रमखिलंभावयिष्याम्यहंकदा ॥ २८ ॥

अर्थ—आत्मस्वरूपके प्रकाशसे जगत्की गतिको हंसते हुये अन्तःकरणमें पूर्ण बुद्धि मैं ऐसे संतुष्ट कब होऊंगा जैसे ब्रह्माण्डरूप शरीरधारी विराट् भगवान् ॥ २५ ॥ अन्तःकरणमें सम परमात्माके साथ एकरस, शान्त, धर्मार्थ काम तथा अमृत और कौस्तुभादि सब पदार्थोंमें निष्प्रिह मैं कब ऐसे शान्त होऊंगा जैसे मन्दराचलसे रहित क्षीरसमुद्र ॥ २६ ॥ वह कौन समय होगा कि सैकडों आशासे पूर्ण इस अचल दृश्यकी सब शोभाको कब सुषुप्तके तुल्य अर्थात् सन्मात्ररूपसे देखता हुआ कब शान्त होऊंगा ॥ २७ ॥ संपूर्ण कल्पनाओंसे शान्त बुद्धिसे बाह्य तथा आभ्यन्तर सब जगत्को चिन्मात्ररूप देखता हुआ कब उसी चिन्मात्रकी भावनासे स्थिर होऊंगा ॥ २८ ॥

कदोपशांतचित्तात्मचित्तामुपगतःपराम् ॥ परमालोकमेष्यामिजात्यंधविगमादिव ॥ २९ ॥ कदाभ्यासोपलभ्येनचित्प्रकाशेनचारुणा ॥ दूरादालोकयिष्यामितन्वींकालकलामिमाम् ॥ ३० ॥ ईहितानीहितैर्मुक्तोहेयोपादेयवर्जितः ॥ कदांतस्तोषमेष्यामिस्वप्रकाशपदेस्थितः ॥ ३१ ॥ कदाशाकौशिकीकीर्णा जाड्यजीर्णहृदंबुजा ॥ क्षयमेष्यतिकृष्णेयंकदामेदोषयामिनी ॥ ३२ ॥

अर्थ—शान्त चित्त होके चित्के साथ एकरसताको प्राप्त मैं परम प्रकाशको ऐसे कब प्राप्त होऊंगा जैसे कोई प्राणी जन्मकी अन्धताके नाशसे ॥ २९ ॥ हे भगवन् ! वह कौनसा समय होगा कि अभ्याससे लभ्य उत्तम चित्प्रकाशसे इस तुच्छ आयुकी शेषरूप कालकी कलाको दूरसेही देखूंगा ॥ ३० ॥ इष्ट अनिष्ट तथा हेय और उपादेयसे वर्जित मैं स्वप्रकाश पदमें स्थित अन्तःकरणमें सन्तोषको कब प्राप्त होऊंगा ॥ ३१ ॥ दुष्ट आशारूप उल्लूकोंसे पूर्ण और जडतारूप हिमसे हृदय कमलको जलानेवाली अविद्यासे जनित अन्धकारमयी यह दोष पूर्ण कृष्णपक्षकी रात्रि कब शान्त होगी ॥ ३२ ॥

कदोपशांतमननोधरणीधरकंदरे ॥ समेष्यामिशिलासाम्यंनिर्विकल्पसमाधिना ॥ ३३ ॥ कदामेमान मातंगःस्वाभिमानमहामदः ॥ सत्त्वावबोधहरिणाहतोनाशमुपैष्यति ॥ ३४ ॥ निरंशध्यानविश्रांतेर्मूकस्यममसूर्द्धनि ॥ कदातार्णंकरिष्यंतिकुलायंवनघूर्णिकाः ॥ ३५ ॥ कदानिःशंकमुरसिध्यानधीरधियः खगाः ॥ ममविश्रांतिमेष्यंतिशैलस्थाणवचलस्थितेः ॥ ३६ ॥

अर्थ—मनके व्यापारसे शून्य पर्वतकी कन्दरामें निर्विकल्प समाधिसे शिलाकी समताको मैं कब प्राप्त होऊंगा ॥ ३३ ॥ निज अंशभूत अभिमानकी वृत्ति जिसके महान् मद प्रवाह हैं ऐसा मेरा अहंकाररूप मातंग परमार्थ सन्मात्रके ज्ञानरूप सिंहसे मारा हुआ कब नाशको प्राप्त होगा ॥ ३४ ॥ निर्विकल्प ध्यानमें विश्रान्त और मौनव्रतावलम्बी मेरे शिरमें बनके पक्षी तृणका खुंथा कब लगावैंगे ॥ ३५ ॥ ध्यानमें स्थिर बुद्धि तथा पर्वत वा स्थणुके समान अचल स्थितिवाले मेरे वक्षस्थलमें लंबमान जटासे रचित खुंथेमें पक्षी लोग कब विश्राम करैंगे ॥ ३६ ॥

तृष्णाकरंजजटिलांजन्मजर्जरगुल्मिकाम् ॥ संसारारण्यसरसींत्यक्त्वायास्याम्यहंकदा ॥ ३७ ॥ इति चिंतापरवशोवनउद्दालकोद्विजः ॥ पुनःपुनस्तूपविशन्ध्यानाभ्यासंचकारह ॥ ३८ ॥ विषयैर्नीयमानेतु चित्तेमर्कटचंचले ॥ नसलेभेसमाधानप्रतिष्ठांप्रीतिदायिनीम् ॥ ३९ ॥ कदाचिद्बाह्यसंस्पर्शपरित्यागादनंतरम् ॥ तस्यागच्छच्चित्तकपिःप्रोद्वेगंसत्त्वसंस्थितौ ॥ ४० ॥

अर्थ—तृष्णारूप कंटकित वृक्षसे जटायुक्त और कामादिके संचारसे अनेक जन्मरूप लता गुल्मसहित इस संसाररूप बनके महा तडागको त्यागकर कब मैं जाऊंगा ॥ ३७ ॥ इसप्रकार उस बनमें चिन्तामें परवश उद्दालक ब्राह्मण पुनः २ बैठ २ कर ध्यानका अभ्यास किया ॥ ३८ ॥ मर्कटके समान चंचल चित्तको विषय अपनी ओर खींचकर लेजाताथी इसकारण सन्तोषदायिनी प्रतिष्ठा समाधिमें उद्दालक ऋषिको न मिली ॥ ३९ ॥ कभी २ बाह्य विषयोंको त्यागकर सत्वगुण प्रधान समाधिमें स्थितिके प्रसक्त होनेपर रजोगुणसे क्षुब्ध उसका चित्तरूप मर्कट भय अरति तथा आलस्य आदि उद्वेगको प्राप्त होता था ॥ ४० ॥

कदाचिदांतरान्स्पर्शान्परित्यज्यमनःकपिः ॥ लोलत्वात्तस्यसंयातोविषयंविषदग्धवत् ॥ ४१ ॥ कदाचिद्रुदितार्काभंतेजोदृष्ट्वांतरेमनः ॥ विषयोन्मुखतांयातंतस्यतामरसेक्षण ॥ ४२ ॥ आंतरांध्यतमस्त्यागंकृत्वाविषयलंपटम् ॥ तस्योड्डीयमनोयातिकदाचित्त्रस्तपक्षिवत् ॥ ४३ ॥ बाह्यानाभ्यंतरान्स्पर्शांस्त्यक्त्वानिद्रांचतन्मनः ॥ तमस्तेजोंतिकेलेभेकदाचिच्छाश्वतींस्थितिम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—और कदाचित् समाधिके सुखोंको त्यागकर उसका मनरूप मर्कट (वानर) विषयकी ओर ऐसे चला जाता था जैसे विषसे मृत लोकान्तरमें ॥ ४१ ॥ हे कमलनेत्र रामजी ! कदाचित् हृदयाकाश ब्रह्मस्वरूपमें उदित सूर्यके समान ज्योति देखके उस उद्दालकका मन विषयकी ओर चला जाता था ॥ ४२ ॥ कदाचित् ब्रह्मस्वरूप दर्शा-

नेसे उसका मन अन्तःकरणके अज्ञानान्धकारको त्यागकर अर्थात् किंचित् शान्त करके उसी समय विषयके अनुसन्धानसे विषयलंपट होके त्रस्त पक्षीके समान उडके चला जाताहै ॥ ४३ ॥ कभी २ उसका मन विषयसुख तथा समाधि सुखकोभी त्यागकर अज्ञान तथा आत्मज्योतिकी संधिमें लीन होके चिरकालसे अभ्यस्त निद्राहीको प्राप्त होता था ॥ ४४ ॥

इतिपर्याकुलस्यांतःसखल्कध्यानवृत्तिषु ॥ दरीष्वन्वहमुग्रासुवातमग्नइवद्रुमः ॥ ४५ ॥ अतिष्ठद्ध्यानसंरूढमननःसंकटेयथा ॥ दोलायितवपुस्तुच्छतृष्णातीरतरंगकैः ॥ ४६ ॥ अथपर्याकुलमनाविजहारमुन्निर्गिरौ ॥ प्रत्यहंदिवसाधीशोमहामेराविवैककः ॥ ४७ ॥ समस्तभूतदुष्प्रापामेकदाप्रापकंदराम् ॥ संशांतसर्वसंचारांमुनिमोक्षदशामिव ॥ ४८ ॥

अर्थ—इसप्रकार भयंकर कन्दराओंमें प्रतिदिन ध्यानमें तत्पर वह उद्दालक ध्यानकी वृत्तियोंमें व्याकुल मनके मध्य २ में तृष्णारूप तरंगोंसे दोलायित शरीर डूबता उतराता ऐसे संकटमें स्थित था जैसे वायुसे डुबता हुआ तटकी तरंगोंसे वृक्ष ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ महामेरूपर इसके अनन्तर एकाकी सूर्य भ्रमण किया करतेहैं ऐसे व्याकुल चित्त वह उद्दालक मुनि उस पर्वतपर भ्रमण किया करता था ॥ ४७ ॥ एक समय भ्रमण करते २ उद्दालकने समस्त प्राणीयोंसे दुष्प्राय और सब जीवोंके संचारसे शून्य एककन्दराको ऐसे पाया जैसे कोई मुनि मोक्षकी दशाको ॥ ४८ ॥

अपर्याकुलितांवातैरप्राप्तमृगपक्षिणीम् ॥ अदृष्टांदेवगंधर्वैःपरमाकाशशोभनाम् ॥ ४९ ॥ पुष्पप्रकरसंछन्नांमृदुशाद्वलकोमलम् ॥ ज्योतिरसाश्मसंप्रोतैःकृतांमरकतैरिव ॥ ५० ॥ सुस्निग्धशीतलच्छायांप्रकटांरत्नदीपकैः ॥ सुगुप्तांवनदेवीनामंतःपुरकुटीमिव ॥ ५१ ॥ कुलंबनाहिमालोकांनात्युष्णांनातिशीतलाम् ॥ शारदस्योदितार्कस्यहेमगौरींप्रभामिव ॥ ५२ ॥ बालालोकपरिम्लानांकोमलाशब्दमारुताम् ॥ मंजरीजटिलोपेतांबालांमालावतीमिव ॥ ५३ ॥ उपशमपदवीमिवानुरूपांकमलजविश्रमणाययोग्यरूपाम् ॥ कुसुमनिकरकोमलाभिरामांसरसिजकोटरकोमलांसमंतात् ॥ ५४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ माहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे उद्दालकमनोरथो नामैकपंचाशः सर्गः ॥ ५१ ॥

अर्थ—और पुनः अधिक वायुके संचारसेरहित मृग तथा पक्षियोंसे कदापि अप्राप्त, देव गन्धर्वादिसेभी अदृष्ट ब्रह्मके समान शोभित ॥ ४९ ॥ पुष्पोंके समूहोंसे आच्छादित, नूतन और हरित घासोंसे कोमल, और चन्द्रकान्तमणियोंसे ग्रन्थित होनेसे मानो मरकत मणियोंसे रचित ॥ ५० ॥ द्वारदेशमें सघन और शीतल छायासहित रत्नोंके दीपोंसे प्रकट, और बनदेवियोंकी सुरक्षित अन्तःपुरकी कुटीके सदृश ॥ ५१ ॥ द्वारभूमिमें फैले हुये अति शीतल अर्थात् शीत निवारणमात्रमें समर्थ प्रकाशयुक्त, और शरदृतुमें उदित सुवर्णके तुल्य सूर्य्यकी गौरवर्ण प्रभाके समान ॥ ५२ ॥ उदयकालके सूर्य्यके तेजसे म्लान, मन्द और शब्दरहित वायुसेयुक्त, लतारूप जटासहित वृक्षोंसे समीप भागमें पूर्ण, और स्वयंवरकेलिये उद्युक्त माला लिये राजकन्याकेसमान स्थित ॥ ५३ ॥ कमलके कोटरकेसमान कोमल इसीसे ब्रह्माके विश्रामके योग्य, चारो ओरसे पुष्पके समूहोंसे कोमल और रमणीय और उपशमकी पदवीकेतुल्य सदा आश्रय करनेके योग्य उस कन्दराको प्राप्त हुआ ॥ ५४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उपशमप्रकरणे उद्दालक मनोरथो नामैकपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५१ ॥

द्विपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५२ ॥

उस गुहामें आसनपर स्थित, समाधिमें प्रवेश करनेकी इच्छा करनेवाले उद्दालकने अपने चित्तके समझानेके उपाय शोचे यह विषय इस ५२ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ सतांविवेशाधर्मात्मागंधमादनकंदराम् ॥ चित्रभ्रमणसंप्राप्तामलिःपद्मकुटीमिव ॥ १ ॥ सर्वव्यापारविरतावात्मपुर्यामिवाब्जजः ॥ २ ॥ चकारासनसमाधानोन्मुखतयाप्रविशन्सव्यराजत ॥ मृद्वमेघविधिवृंदमंभोदमिवतत्रसः ॥ ३ ॥ सततप्रस्तारयामासपृष्ठेचारुमम्लानैःपत्रैरंतस्त्वग्गुच्छकम् ॥ मृदुमेघविधिवृंदमंभोदमिवतत्रसः ॥ ३ ॥ सततप्रस्तारयामासपृष्ठेचारु मृगाजिनम् ॥ नीलरत्नतटेमेरुस्तारासारमिवांबरम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–धर्मात्मा उद्दालकमुनिने उस गंधमादनपर्वतकी कन्दरामें ऐसे प्रवेश किया जैसे बहुत प्रसारके भ्रमणसे (खोजनेसे) प्राप्त कमलकी कुटीमें भ्रमर ॥ १ ॥ समाधिकी ओर उन्मुखतासे प्रवेश करते हुये वह ऐसे शोभित हुआ जैसे सृष्टिके व्यापारसे विरक्त ब्रह्माजी सत्यलोकमें अपराजित नाम पुरीमें ॥२॥ नूतन पत्रोंसे कोमल; और निजशरीररूप गुच्छेसहित आसनको इसप्रकार बांधा जैसे इन्द्र मेघको वृन्दमय ॥३॥ उस आसनपर अपने कांखमें स्थित मृगचर्मको ऐसे फैलाया जैसे मेरू अपने रत्नमय तटपर तारारूप बहुमूल्य रत्नयुक्त आकाशको ॥ ४ ॥

सतत्रोपाविशद्वत्तीश्वेतसस्तनुतांमयन् ॥ अतःशुद्धवपुःशृंगेवृष्ट्यमूकइवांबुदः ॥ ५ ॥ बुद्धवत्सुदृढंब द्धपद्मासनउदङ्मुखः ॥ पार्ष्णिभ्यांवृषणौधृत्वाचकारब्राह्ममंजलिम् ॥ ६ ॥ वासनाभ्यःसमाहृत्यसर्तो मृगमुपप्लुतम् ॥ निर्विकल्पसमाध्यर्थंचकारेमांविचारणाम् ॥ ७ ॥ अयिमूर्खमनःकोर्थस्तवसंसारवृत्ति भिः ॥ धीमंतोननिषेवंतेपर्यंतेदुःखदांक्रियाम् ॥ ८ ॥

अर्थ—वहांपर जड विषयोंके त्यागसे अपने चित्तकी वृत्तियोंको सूक्ष्म करते हुये अन्तःकरणमें शुद्धशरीर, ऐसे स्थितहुआ जैसे वृष्टिकरके पर्वतपरमूक मेघ ॥ ५ ॥ उत्तरमें मुखकरके प्रबुद्ध कपिलादिके समान पद्मासन बांधके और एणियोंसे वृषणों (अण्डकोशों) को दबाकर ब्रह्मादि गुरूपरंपरासे प्राप्त प्रणामकी अंजलि रचा ॥६॥ विषयोंकी ओर दौडते हुये मनरूप मृगको वासनाओंसे निवृत्त करके निर्विकल्प समाधिके अर्थ यह विचार किया ॥ ७ ॥ कि हे मूर्खमन ! तुमको संसारकी वृत्तियोंसे क्या करनाहै क्योंकि बुद्धिमानजन अन्तमें दुःखदायी क्रियाको नहीं करते ॥ ८ ॥

अनुधावतियोभोगांस्त्यक्त्वाशमरसायनम् ॥ संत्यज्यमंदारवनंसयातिविषजंगलम् ॥ ९ ॥ यदियासि महीरंध्रंब्रह्मलोकमथापिवा ॥ तन्ननिर्वाणमायासिविनोपशमनामृतम् ॥ १० ॥ आशाशतावपूर्णत्वेत्वमे वंसर्वदुःखदम् ॥ त्यज्ययाहिपरंश्रेयःपरमेकांतसुंदरम् ॥ ११ ॥ इमाविचित्राःकलनाभावाभावमयात्मि काः ॥ दुःखायैवतवोग्रायनसुखायकदाचन ॥ १२ ॥

अर्थ—जो शान्तिरूप रसायन (अमृत) को त्यागकर विषयभोगोकी ओर दौडताहै वह कल्पवृक्षके बनको त्यागकर मानो विषके जंगलमें जाताहै ॥ ९ ॥ हे मन ! यदि तुम पातालमें जाओ वा ब्रह्मलोकमें जाओ परन्तु शांतिरूप अमृतके बिना निर्वाण अर्थात् नित्य निरतिशय आनन्दमें विश्राम नहीं होता ॥ १० ॥ हे मन ! तुम सैकडों आशाओंसे अपूर्ण होनेपर सबको दुःखदायी होओगे, इसलिये भोगोंकी आशाओंको त्यागकर दुःखरहित निरतिशय आनन्दरूप होनेसे एकान्त सुन्दर परमश्रेय मोक्षको प्राप्त होओ ॥ ११ ॥ इष्टकी सम्पत्ति और अनिष्टके निवारणसे पूर्ण ये चित्र विचित्र विषय तुमारे उग्र दुःखहीके लिये हैं न कि कदाचित् सुखके अर्थ ॥ १२ ॥

शब्दादिकाभिरेताभिःकिंमूर्खवतवृत्तिभिः ॥ भ्रमस्यविरतंव्यर्थंमेघेमंडूकिकायथा ॥ १३ ॥ मनोमंडूकि केव्यर्थमियंतंकालमंधया ॥ भ्रमंत्याभुवनंक्षिप्रंकिंसमासादितंत्वया ॥ १४ ॥ यस्मात्किंचिदवाप्नोषिय स्मिन्वहसिनिर्वृतिम् ॥ तस्मिञ्श्वेतःशमेमूर्खनानुबध्नासिकिंपदम् ॥ १५ ॥ आगत्यश्रोत्रतांमूर्खव्यर्थो त्थानोपबृंहिताम् ॥ धियाशब्दानुसारिण्यामृगवन्माक्षयंव्रज ॥ १६ ॥

अर्थ—हे मूर्खमन ! जैसे मेडकी मेघमें भ्रमण करती है ऐसेही नष्टवृत्ति इन शब्दादिकी वृत्तियोंमें तुम व्यथ निरन्तर क्यों भ्रमण करते हो ॥ १३ ॥ हे मनरूप ! मण्डूकिके (मेडकी) इतने कालतक व्यर्थ सब जगत्में भ्रमण करती हुई तूंने क्या पाया ? ॥ १४ ॥ हे मन ! जिससे तूं कुछ अर्थात् मन बाणीका अविषय विदेह कैवल्यरूप सुखको प्राप्त करताहै और जिसमें जीवन्मुक्तिके सुखको पाताहै हे मूर्ख चित्त ! उस सब वृत्तियोंके परमरूप समाधिके सुखके लिये उद्योग क्यों नहीं करता ॥ १५ ॥ हे मूर्खचित्त ! व्यर्थ बहिर्मुखतारूप उत्थानसे वृद्धिको प्राप्त श्रोत्रइन्द्रियके साथ अभेदरूपताको प्राप्त होके शब्दके अनुसारिणी बुद्धिसे लुब्धकके गीत वा घंटाके शब्दसे मृगके समान क्षयको न प्राप्तहो ॥ १६ ॥

त्वक्तामागत्यदुःखायस्पर्शोन्मुखतयाधिया ॥ मूर्खमाबद्धतामेहिगजीलुब्धगजेंद्रवत् ॥ १७ ॥ रसनाभा वमागत्यगर्द्धेनांधदुरंधसाम् ॥ मानाशमेहिबडिशपिंडीलंपटमत्स्यवत् ॥ १८ ॥ चाक्षुषींवृत्तिमाश्रित्य प्रभारूपचयोन्मुखी ॥ मागच्छदग्धतांमुग्धकांतिलुब्धपतंगवत् ॥ १९ ॥ घ्राणमार्गमुपाश्रित्यशरीरां भोजकोटरे ॥ गंधोन्मुखतयाबंधंमात्वंसंश्रयभृंगवत् ॥ २० ॥

अर्थ—हे मूर्ख चित्त ! बाह्यस्पर्शकी ओर उन्मुख बुद्धिसे त्वगइन्द्रियताको प्राप्त होकर अर्थात् त्वगिन्द्रियसे अभिन्न होकर हथिनीके लोभसे गजेंद्रके तुल्य लोभसे बंधनमें न प्राप्त हो ॥ १७ ॥ ऐसेही दुष्ट अन्नोंके लोभसे रसना दशाको प्राप्त होकर वंशीमें लगे हुये पिशानके पिंडमें लंपट मीनके समान नाशको न प्राप्त हो ॥ १८ ॥ इसी प्रकार

नानाप्रकारके रूपकी ओर दौड़ती हुई नेत्र वृत्तिको प्राप्त होकर रूपके लोभी पतंगके सदृश भस्म मत हो जाओ ॥ १९ ॥ हे मूर्ख चित्त ! गन्धकी ओर उन्मुख शरीररूप कमलके कोटरमें नासिका रूपताको प्राप्त होकर भृंगके समान बन्धनमें मत आओ ॥ २० ॥

कुरंगालिपतंगेभमीनास्त्वेकैकशोहताः ॥ सर्वैर्युक्तैरनर्थैस्तुव्याप्तस्याज्ञकुतःसुखम् ॥ २१ ॥ हेचित्तवासनाजालंबंधायभवतोहितम् ॥ स्वात्मनःसहजःफेनस्ततःकुक्रमिणायथा ॥ २२ ॥ शरदभ्रवदागत्यशुद्धिंत्यक्तभवामयाम् ॥ यदिशाम्यसिनिर्मूलंतदनंतोजयस्तव ॥ २३ ॥ क्षयोदयदशाधात्रींपर्यंतपरितापिनीम् ॥ जानन्नपिजगत्स्थितिंनत्यक्ष्यसिविनंक्ष्यसि ॥ २४ ॥

अर्थ—हे अज्ञ मन ! मृग, भ्रमर, पतंग, हांथी और मत्स्य ये सब एक एक इन्द्रियोंके अनर्थसे युक्त होनेपर मारे गये और जो मिले हुये पांचों इन्द्रियोंके अनर्थोंसे युक्तहै उसको सुख कहां ? ॥ २१ ॥ हे चित्त ! जैसे दुष्ट कृमि मकरी अपने स्वाभाविक फेनका लार अपने बंधनकेही लिये विस्तारित करतीहै ऐसेही तुमने यह वासनाका जाल अपने बंधनकेही अर्थ रचाहै ॥ २२ ॥ संसारके जन्ममरणादि रोगसे शून्य शुद्धिको कर्म उपासना आदिके द्वारा शरत् कालके मेघके समान प्राप्त होके यदि श्रवणादिके परिपाकसे ज्ञानोदयसे मूल अज्ञानके साथ शान्त हो तो तुह्मारा अनन्त जयहै ॥ २३ ॥ हे चित्त ! जन्म, मरण, बाल्य यौवनादि तथा दारिद्र्यादि दशाओंको धारण करनेवाले, और मरणके उत्तरभी नरक स्थावर आदि गतिरूप तापको देनेहारी इस जगत्की प्रवृत्तिको जानते हुये भी तुम नहीं त्यागते किंतु इसमें लीन होके नष्ट होते हो ॥ २४ ॥

करोम्यथकिमर्थंवातवैतदनुशासनम् ॥ विचारणवतःपुंसश्चित्तमस्तिहिनानघ ॥ ॥ २५ ॥ यावदज्ञानघनतातावत्प्रघनचित्तता ॥ यावत्प्रावृड्जलदतातावन्नीहारभूरिता ॥ २६ ॥ यावदज्ञानतनुतातावच्चित्तस्यतानवम् ॥ प्रावृट्परिक्षयोयावत्तावन्नीहारसंक्षयः ॥२७॥ यावत्तानवमायातंशुद्धंचित्तंविचारतः ॥ तावत्तत्क्षीणमेवाहंमन्येशारदमेघवत् ॥ २८ ॥

अर्थ—अथवा हित शून्य तुम हो इसलिये तुमको यह हितोपदेश व्यर्थ है क्योंकि विचारवान् पुरुपको चित्तका उच्छेदही करना चाहिये ॥ २५ ॥ जबतक अज्ञानकी अधिकता रहती है तभीतक चित्तकीभी अधिकता ऐसे रहती है जैसे जबतक वर्षाऋतुमें मेघकी अधिकताहै तबतक नीहारकी अधिकता ॥ २६ ॥ और जबतक अज्ञाकी न्यूनताहै तबतक चित्तकी न्यूनता रहती है क्योंकि वर्षाऋतुका जितना वर्षाका क्षय उतनाही नीहारका संक्षय ॥२७॥ जितना विचारद्वार वासनाके क्षयसे चित्त शुद्धताको प्राप्त होताहै उतनाही शरत्कालके मेघके समान उस चित्तको मैं क्षीणही मानताहूं ॥ २८ ॥

अनुशासनमेतद्यदसतोनश्यतोथवा ॥ क्रियतेतन्नभोवारिपवनाहननैःसमम् ॥ २९ ॥ तस्मात्संक्षीयमाणत्वात्त्यजामित्वामसन्मयम् ॥ मौर्ख्यंपरममेवाहुःपरित्याज्यानुशासनम् ॥ ३० ॥ निर्विकल्पोस्मिचिद्दीपोनिरहंकारवासनः ॥ त्वयाहंकारबीजेननसंबद्धोस्म्यसन्मय ॥ ३१ ॥ अयंसोहमितिव्यर्थंदुर्दृष्टिरवलंबिता ॥ त्वयामूढविनाशायशंकाविषविषूचिका ॥ ३२ ॥

अर्थ—अविवेकीका असत् चित्त और विवेकीका नष्ट होता हुआ चित्त इन दोनोंको उपदेश तथा आकाश जल और वायुके ताडन समानहै अर्थात् निरर्थकहै क्योंकि अविवेकीका तो सुधरेगा नहीं और विवेकीका नष्टही होजायगा ॥ २९ ॥ इसवास्ते संक्षीयमाण होनेसे असन्मय तुमको मैं त्यागताहुं क्योंकि त्यागके योग्य जो है उसको उपदेश देना परम मूर्खता कही गई है ॥ ३० ॥ मैं चिद्रूप दीपक विकल्प अहंकार और वासनारहितहुं, हे असत्यरूप चित्त अहंकारके बीजभूत तुमसे मेरा कुछ संबंध नहीं है ॥ ३१ ॥ यह शरीर आदि वह आत्मा मैं हुं इस दुष्टदृष्टिको तुमने विषप्रेरित मिथ्या विषूचिकाके समान मूढ जनोंके नाशार्थही अवलंबित कियाहै ॥ ३२ ॥

अनंतस्यात्मतत्वस्यतन्वीतिमनसिस्थितिः ॥ नसंभवतिबिल्वांतर्वासितादंतिनोर्यथा ॥ ३३ ॥ महाश्वभ्रीवगंभीराङ्गःसदावासनाश्रिता ॥ त्वयैपाबतचित्तेतिनैनामनुसराम्यहम् ॥ ३४ ॥ कःकिलायंमुधामोहोबालस्येवाविचारिणः ॥ अयंसोहमितिभ्रांतिस्त्वंहंतापरिकल्पिता ॥ ३५ ॥ पादांगुष्ठाच्छिरोयावत्कणशःप्रविचारितम् ॥ नलब्धोसावहंनामकःस्यादहमितिस्थितः ॥ ३६ ॥

अर्थ—अनन्त आत्मतत्वकी परिच्छिन्न स्थिति मनमें ऐसे नहीं सम्भव होती जैसे बिल्वके फलके भीतर हांथी तथा हथिनीकी ॥ ३३ ॥ हे चित्त ! कामक्रोधादिरूप पिशाचोंके स्थानभूत महा पुरानी गडहीके तुल्य, अति दुःखदायिनी इस वासनाको तुमने अपना आश्रय बनायाहै और मैं अब इसका अनुगामी नहीं बनता किन्तु तुम इसके

अनुगामीहो इसलिये तुमकोभी त्यागताहुं ॥३४॥ और यह देह, वह आत्मा मैंहुं, यह मिथ्या भ्रान्ति जो तुमने अहंतासे कल्पित कियाहै वह विचार शून्य बालककेसमान महामोहहै, इससे मेरा क्या सम्बन्धहै अर्थात् कुछ नहीं ॥ ३५ ॥ पादके अंगूठेसे लेके कण २ मैंने विचाराहै परन्तु इसमें ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जो अहंपदके योग्य स्थितहो ॥३६॥

भरिताशेषदिक्कुंजंयत्स्यामेकंजगत्त्रये ॥ संवेदनमसंवेद्यंसर्वत्रविगतात्मकम् ॥ ३७ ॥ दृश्यतेयस्यनेयत्ता ननामपरिकल्पना ॥ नैकतानान्यतैवेहनमहत्तानचाणुता ॥ ३८ ॥ वेदतत्त्वांस्वसंवेद्यमाततंदुःखकारणम् ॥ विवेकजेनबोधेनतदिदंहन्यसेमया ॥ ३९ ॥ इदंमांसमिदंरक्तमिमान्यस्थीनिदेहके ॥ इमेतेश्वासमरुतःकोसावहमितिस्थितः ॥ ४० ॥

अर्थ—सम्पूर्ण दिशाओंको पूर्ण करनेवाला, तीनोंलोकमें एक और क्रमसे ज्ञेय देशकाल तथा वस्तुकृत अवस्थाके परिच्छेदसे शून्य इसी रीतिसे सबप्रकारके स्वरूपसे शून्य जो केवल ज्ञानमात्रहै वह मैंहुं ॥ ३७ ॥ जिसका परिच्छिन्नरूप नामकी परिकल्पना, एकता, अन्यता, महत्ता, तथा अणुता नहीं है वह संवेदनरूप मैंहुं ॥ ३८ ॥ ज्ञानस्वरूप मैंहुं इसीसे साक्षीरूपसे संवेद्य और दुःखके कारण चित्त रूप तमको मैं देखता हुं और इसी कारण विवेकजनित बोधसे मैं तुमको मारताहुं ॥ ३९ ॥ यह मांस यह देह ये हड्डियां, और ये प्राणके वायुहैं इस देहमें अहंरूपसे कौन स्थितहै ॥ ४० ॥

स्पंदोहिवातशक्तीनामवबोधोमहाचितः ॥ जरामृतिश्चकायेस्मिन्कोसावहमितिस्थितः ॥ ४१ ॥ मांसमन्यदसृक्चान्यदस्थीन्यन्यानिचित्तहे ॥ बोधोन्यस्पंदनंचान्यत्कोसावहमितिस्थितः ॥ ४२ ॥ इदंघ्राणमियंजिह्वात्वगियंश्रवणेइमे ॥ इदंचक्षुरसौस्पर्शःकोसावहमितिस्थितः ॥ ४३ ॥ यथाभूततयानाहंमनोनत्वंनवासना ॥ आत्माशुद्धचिदाभासःकेवलोयंविजृंभते ॥ ४४ ॥

अर्थ—इस शरीरमें जो संचलन शक्तिहै वह तो प्राणोंकी है, ज्ञान महाचित्काहै, और वृद्धावस्था तथा मरणादि अवस्था इस शरीरमें है इसमें अहंरूपसे कौन स्थितहै ॥ ४१ ॥ मांस, रुधिर, हड्डियां, ज्ञान, और संचलनशील इन्द्रिया सब अहंपदसे भिन्नहैं तो अहंरूपसे कौन स्थितहै ॥ ४२ ॥ यह नासिका, यह जिव्हा, यह त्वक् ये दोनो कान यह नेत्र, और यह स्पर्श है इनमें अहंरूपसे कौन स्थितहै ॥ ४३ ॥ यथार्थ विचार करनेसे मन अहं नहीं है, और हे चित्त ! न तुम और न वासना अहं है किंतु चिन्मात्र प्रकाश यह आत्मा अहं (मैं) रूपसे प्रकटरूपसे होरहाहै ॥ ४४ ॥

अहमेवेहसर्वत्रनाहंकिंचिदपीहवा ॥ इत्येवसन्मयीदृष्टिर्नेतरोविद्यतेक्रमः ॥ ४५ ॥ चिरमज्ञानधूर्तेन पोथितोस्मित्वहंतया ॥ वृकेणदृप्तेनाटव्यांलब्धेनपशुपोतकः ॥ ४६ ॥ दिष्ट्येदानींपरिज्ञातोमयैवाज्ञानतस्करः ॥ पुनर्नसंश्रयाम्येनंस्वरूपार्थापहारिणम् ॥ ४७ ॥ निर्दुःखोदुःखयोग्यस्यनाहंतस्यनचैषमे ॥ कश्चिद्भवतिशैलस्यतत्स्थएवयथांबुदः ॥ ४८ ॥

अर्थ—आरोपदृष्टिसे सब कुछ मैं ही हुं, और अपवाद दृष्टिसे मैं कुछ नहीं हुं यही सत्यदृष्टिहै और देहमात्रमें परिच्छिन्न अहंभावरूप अन्य अहंका क्रम नहीं है ॥ ४५ ॥ इस अज्ञानरूप धूर्तसे चिरकालसे मैं ऐसे क्लेशित हुं जैसे बनमें मिले हुये प्रचण्ड वृक (भेडिये) से पशुका लघुबालक ॥ ४६ ॥ वह सौभाग्यहै कि इससमय इस अज्ञानरूप चोरको मैंने जानलिया, और अब परमार्थ आत्मारूप धनके चोरानेवाला इसका आश्रय मैं नहीं करूंगा ॥ ४७ ॥ दुःखरहित मैं उस दुःखके योग्यका कुछ नहीं हुं और न यह मेरा कुछ इसप्रकार नहीं है, जैसे पर्वतपर स्थित मेघ पर्वतका कुछ नहीं है ॥ ४८ ॥

भूत्वात्वहमिदंवच्मिवेद्मितिष्ठामियामिच ॥ आत्मावलोकनेनाहमनहंकारतांगतः ॥ ४९ ॥ नूनमेवाहमेवैतेमन्येज्ञाश्चक्षुरादयः ॥ यांतुतिष्ठंतुवादेहेममैतेतुनकिंचन ॥ ५० ॥ कष्टंकोयमहंनामकथंकेनोपकल्पितः ॥ जगद्बालकवेतालस्तालोत्तालातुलाकृतिः ॥ ५१ ॥ एतावंतंचिरंकालंव्यर्थमालुठितोऽवटे ॥ अहमत्रतृणोन्मुक्तेदूरद्रोहहरिणोयथा ॥ ५२ ॥

अर्थ—किन्तु नटकेसमान अहंकाररूप होके यह तुमको उपदेश आदिका वचन कहताहुं, और चक्षुष आदि इन्द्रियोंका वा शरीरका रूप धारण करके मैं जानताहुं, स्थित हुं, और आता जाता हुं, क्योंकि आत्माके दर्शनसे मैं अहंकारका विषय नहीं हुं ॥ ४९ ॥ और यह निश्चयहै नेत्रादि इन्द्रियां (इन्द्रियोंको ज्ञानदाता) मैं ही हुं, और यदि मेरेसे भिन्न ये कुछहैं तो अज्ञ (जड) होके देहमें स्थित रहैं वा जांय मेरे तो ये कोई नहीं है ॥ ५० ॥ यह

खेदकी बातहै यह अहं नाम कौनहै कैसे और किससे कल्पितहै, यह तो जगत्रूप बालकका वेताल तालसे ऊंचा तथा दीर्घ आकारवालाहै ॥ ५१ ॥ व्यर्थ इतने कालतक गर्त (गढे) रूप इसमें मैं ऐसे लोटता रहा जैसे तृणसे रहित दुष्टपर्वतपर हरिण ॥ ५२ ॥

स्वार्थमालोकनेचक्षुर्यदितन्मुखतांगतम् ॥ तदहंनामकोसौस्याद्योस्मिन्दुःखेनमोहितः ॥ ५३ ॥ स्पर्शनायनिजेतत्त्वेयदिजातात्वगुन्मुखी ॥ तत्कोयंस्यादहंनामकुपिशाचइवोदितः ॥ ५४ ॥ रसेष्वभिनिपणेस्मिन्स्वक्रमेरसनेंद्रिये ॥ अहंमृष्टभुगित्येषकुतस्त्यःकुत्सितोभ्रमः ॥ ५५ ॥ शब्दशक्तिगतेश्रोत्रेवराकेस्वार्थपीडिते ॥ तदहंकारदुःखस्यनिर्बीजस्यकआगमः ॥ ५६ ॥

अर्थ—यदि नेत्र अपने विषयरूपमात्र देखनेमें तत्परहै तो अहंरूप कौनहै जो दुःखसे इसमें मोहितहै ॥ ५३ ॥ यदि त्वगिन्द्रिय अपने विषय स्पर्शनमात्रमें उन्मुखहै तो दुष्ट पिशाचके तुल्य उदयको प्राप्त अहंरूपसे इसमें कौन स्थितहै ॥ ५४ ॥ और रसना (जिव्हा) इन्द्रिय जब केवल रसमात्र साक्षात्कार करनेमें स्थितहै तब मैं स्वादिष्ट पदार्थोंका भोगनेवालाहुं यह निन्दित भ्रम कहांसे आया ॥ ५५ ॥ श्रवणकी तृष्णासे पीडित दीनकर्ण इन्द्रियमें शब्द ग्रहणकी शक्ति रहनेपर मूलरहित अहंकार दुःखका प्रसंग क्या ॥ ५६ ॥

आत्मंभरित्वेननिजेघ्राणेस्वंगंधमागते ॥ अहंघ्रातेतियोमातातंचौरंनैववेद्म्यहम् ॥ ५७ ॥ मृगतृष्णाकमेणैषा भावनाव्यर्थभाविनी ॥ भावस्तस्यामसत्यायांयःसोयमितिसंभ्रमः ॥ ५८ ॥ वासनाहीनमप्येतच्चक्षुरादींद्रियैःस्वतः ॥ प्रवर्त्ततेबहिःस्वार्थेवासनानात्रकारणम् ॥ ५९ ॥ वासनारहितंकर्मक्रियतेननुचित्तहे ॥ केवलंनानुभूयंतेसुखदुःखदृशोग्रगाः ॥ ६० ॥

अर्थ—अपनेही उदर पोषणमात्रमें लोभी (केवल गंधमात्रका लोभी) नासिका इन्द्रियके अपने विषय गंधमात्रमें आनेपर मैं घ्राता (सूंघनेवाला) हुं इस अभिमान करनेवाले चोरको मैं नहीं जानता ॥ ५७ ॥ इसप्रकार इन्द्रियादिमें जो अहंताकी कल्पनाहै वह मृगतृष्णाकेतुल्य मिथ्याहै, और उस कल्पनाके मिथ्या होनेपर यह देह तथा वह इन्द्रियादि मैं हुं यह भावना भ्रान्तिमात्रहै इसलिये देहादिमें अहंभाव त्याज्यहै ॥ ५८ ॥ हे चित्त ! यह शरीर अपने जीवन हेतु स्वार्थमें वासनासे हीनभी चक्षुष् (नेत्र) आदि इन्द्रियोंके साथ प्रवृत्त होना ऐसे है जैसे दाम व्याल और कट आदिका, इसलिये इस शरीरके व्यापारमें वासना नहीं कारणहै ॥ ५९ ॥ हे चित्त ! वासनारहित जो कर्म कियाजाताहै उसमें तत्कालके भोगाभाससे मैं दुःखी हुं ऐसा अभिमान नहीं होता, और भावी सुखदुःखकी दृष्टिका तो अनुभवही नहीं होता, यह वासनाके त्यागमें गुणहै ॥ ६० ॥

तस्मान्मूर्खाणींद्रियाणित्यक्त्वांतर्वासनांनिजाम् ॥ कुरुध्वंकर्महेसर्वेनदुःखंसमवाप्स्यथ ॥ ६१ ॥ भवद्भिरेवदुःखायवासनावासितामुधा ॥ बालैःपंकक्रीडनकंविनाशेनेवखिन्नता ॥ ६२ ॥ वासनाद्याहशःसर्वाव्यतिरिक्तास्तुनात्मनः ॥ जलादिवतरंगाद्यास्तस्यैवान्यस्यनानघ ॥ ६३ ॥ तृष्णयैवविनष्टाःस्थव्यर्थमिंद्रियबालकाः ॥ कोशकारकृकमयस्तंतुनेवस्वयंभुवा ॥ ६४ ॥

अर्थ—इसलिये हे मूर्ख इन्द्रियो ! तुम अपनी वासनाको त्यागके कर्म करो तो हे सर्व इन्द्रिय तुम दुःख नहीं पावोगे ॥ ६१ ॥ जैसे बालक प्रथम मृत्तिकाके खिलौने बनाते हैं पश्चात् उनके विनाशसे आपही दुःखी होते हैं ऐसेही तुम लोगोंने विषयके उपार्जनमें तथा उनके नाशमें केवल दुःखकेहीलिये आत्मामें वासनाकी कल्पना की है ॥ ६२ ॥ हे पापरहित शुद्धचित्त ! ज्ञानीके अर्थ सब वासना आदिकी दृष्टि आत्मासे भिन्न नहीं है ॥ ६३ ॥ जैसे कोशकार कृमि (मकरी) अपनेहीसे उत्पन्न किये सूत्रसे नष्ट होताहै ऐसेही हे इन्द्रियरूप बालक ! तुम अपनेही रचित तृष्णासे व्यर्थ नष्ट हुये हो ॥ ६४ ॥

तृष्णयैवेहलुठथजरामरणसंकटे ॥ भ्रमदृष्टयेवशिखरिपथिकाःश्वभ्रभूमिषु ॥ ६५ ॥ वासनैवेहभवतां हेतुरेकत्रबंधने ॥ रज्जुःशून्याशयप्रोतामुक्तानामाततायथा ॥ ६६ ॥ कल्पनामात्रकलितासत्यैषाहिनवस्तुतः ॥ असंकल्पनमात्रेणदात्रेणेवविलूयते ॥ ६७ ॥ एषाहिभवतामेवविमोहायक्षयायच ॥ वातलेखेवदीपानांस्फुरतामर्पितेजसाम् ॥ ६८ ॥ हेचित्तसर्वेंद्रियकोशतस्मात्सर्वैरिंद्रियैरैक्यमुपेत्यनूनम् ॥ आलोक्यचात्मानमसत्स्वरूपंनिर्वाणमेवामलबोधमास्व ॥ ६९ ॥ विषयविषविषूचिकामनंतांनिपुणमहंस्थितिवासनामपास्य ॥ अभिमतपरिहारमंत्रयुक्त्या भवविभवोभगवान्भियामभूमिः ॥ ७० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ माहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे उद्दालकविचारो नाम द्विपंचाशः सर्गः ॥ ५२ ॥

अर्थ—हे इन्द्रियगण ! तुम लोग इस संसाररूप शिला और कंटकमयी भूमिपर नीचे पडे हुये ऐसे लोटरहे हो जैसे मार्गगामी (बटोही) पर्वतके शिखरपर चलते हुये पित्तके कारण भ्रमणशील दृष्टिसे नीचे गिरके लोटते हैं ॥ ६५ ॥ तुम लोगोंके बंधनमें वासना ऐसे कारण है जैसे मोतियोंके छिद्रित आशय (स्थान) में गुंथी हुई रज्जू (रस्सी) ॥ ६६ ॥ यह वासना भ्रांतिमात्रसे रचितहै न कि यथार्थमें इसलिये असंकल्पमात्र शस्त्रसे काटी जाती है ॥ ६७ ॥ यह वासना तुम लोगोंके अज्ञान तथा क्षयकेलिये इसप्रकारहै जैसे वायुकी लेखा दीपोंके तथा उल्का और विद्युत् आदिके नाशकेलिये है ॥ ६८ ॥ हे सम्पूर्ण इन्द्रियोंके आधारभूत चित्त ! तुम उक्त कारणोंसे सब इन्द्रियोंके साथ निश्चयरूपसे एकताको प्राप्त होके, और अपने स्वरूपको असत् निश्चय करके अपने स्वरूपके साक्षी निर्मल बोधमात्र होके स्थित रहो अर्थात् पुनः चित्त रूपताको न ग्रहण करो ॥ ६९ ॥ हे चित्त ! सम्पूर्ण शास्त्रोंके वेत्ताओंको अभिमत द्वैतके परिहाररूप मन्त्रकी युक्तिसे असंख्य दुःखदायिनी अहंकारकी वासनामयी जो 'विषयसम्बन्धी' विष (अज्ञान) प्रेरित विषूचिका (महामारी) है उसको कुशलतापूर्वक त्यागकर संसाररहित होके जन्ममरणके अविषय तुम पूर्णानंद आत्मस्वरूप होजाओ ॥ ७० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे उद्दालकविचारो नाम द्विपंचाशः सर्गः ॥ ५२ ॥

त्रिपंचाशः सर्गः ॥ ५३ ॥

वासना तथा अहंकारसे आत्माकी निर्लिप्तता, शरीर और मनके साथ वैर इत्यादि विषय इस ५३ के सर्गमें निरूपण किया गयाहै ॥

॥ उद्दालकउवाच ॥ अपारपर्यंतवपुःपरमाण्वणुरेवच ॥ चिदचेत्यातदाक्रांतौनशक्तावासनादयः ॥ १ ॥ मनःशेमुष्यहंकार प्रतिबिंबैर्जडेंद्रियैः ॥ वासनावितताशून्यावेतालत्रासनोद्यताः ॥ २ ॥ तत्कृतेभ्यो विचारेभ्योऽनुभूतेभ्योपिभूरिशः ॥ भूयोप्यनुभवत्यंतरहंहिचिदलेपिका ॥ ३ ॥ स्वदुर्भावोपरचितांदेहस्संसारसंस्थितिम् ॥ गृह्णात्वथत्यजतुवाप्यहंहिचिदलेपिका ॥ ४ ॥

अर्थ—उद्दालक बोले-परिछिन्न परिमाणयुक्त तथा स्थूल तिलके तैलादि पुष्प आदिसे वासित होते हैं, रेणुसे पृथिवी आदि कस्तूरी आदिसे वासित होते हैं परन्तु सब ओरसे अपार अर्थात् अवधिरहित शरीरवाली, तथा विषयशून्य चित्के किंचित्भी स्पर्श करनेमें वासना आदि समर्थ नहीं है ॥ १ ॥ और चित् प्रतिबिम्बित जड इन्द्रियोंसे बुद्धि तथा अहंकारमें वेतालके सदृश त्रासके अर्थ विस्तारित जो सूक्ष्म वासनाहैं उनको मन अनुभव करताहै ॥ २ ॥ और जाग्रत् अवस्थामें मनसे रचित अनेक विषयोंके विचारोंसे तथा अनुभव किये हुये विषयोंसेभी स्वप्नमें पुनः नाडियोंके छिद्रोंके अन्तर्गत वासनामय विषयोंको अनुभव करताहै और मैं चित्स्वरूप निर्लिप्त हुं ॥ ३ ॥ और यह जो स्थूल शरीरहै वह अपनी दुष्ट चेष्टाओंसे रचित इस संसारकी स्थितिको ग्रहण करै वा त्यागै परन्तु मैं चित् इसके बंधसे निर्लिप्त हुं ॥ ४ ॥

चितोनजन्ममरणेसर्वगायाश्चितःकिल ॥ किंनामम्रियतेजंतुर्मार्यतेकेनवापिकिम् ॥ ५ ॥ चितोनजीवितेनार्थःसर्वात्मासर्वजीवितम् ॥ किंप्राप्स्यतिकदात्मैषाप्रायतायदिजीवितम् ॥ ६ ॥ जीव्यतेम्रियतेचेति कुविकल्पकमालिनी ॥ कलनामनसामेवनात्मनोविमलात्मनः ॥ ७ ॥ योह्यहंभावतांप्राप्तोभावाभावैः सगृह्यते ॥ आत्मनोनास्त्यहंभावोभावाभावाःकुतोस्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—चित्के जन्ममरण नहीं हैं क्योंकि सर्वव्यापी निराकार चित्का कौनसा पदार्थ मरसकताहै और जीव किससे मारा जासकताहै और उसका क्या मारा जासकताहै ॥ ५ ॥ और चित्को जीवनसे भी कुछ प्रयोजनहीं है क्योंकि सर्वात्मा चित्ही सबका जीवनहै और जब सम्पूर्ण देशकाल वस्तुमें चित्स्वरूपही विस्तृतहै तो उसको जीवनसे किससमय क्या अभिलषित पदार्थ है ? ॥ ६ ॥ यह मरताहै यह जीताहै इत्यादि कुविकल्पनामयी कल्पना मनकी है न कि निर्मल आत्माकी ॥ ७ ॥ जो देहादिमें अहंभावनाको प्राप्तहै वही जन्ममरणसे गृहीत होताहै और आत्मामें देह आदिमें अहंभावना तो है ही नहीं इसलिये इसके जन्ममरण कहां ? ॥ ८ ॥

अहंभावोसुधामोहोमनश्चमृगतृष्णिका ॥ जडःपदार्थसंभारःकस्याहंकारभावना ॥ ९ ॥ रक्तमांसमयोदेहोमनोनष्टंविचारणात् ॥ जडाश्चित्तादयःसर्वेकुतोहंभावभावना ॥ १० ॥ आत्मंभरितयानित्यमिंद्रि

याणिस्थितान्यलम् ॥ पदार्थाश्चपदार्थत्वेकुतोहंभावभावना ॥ ११ ॥ गुणागुणार्थेवर्त्ततेप्रकृतौप्रकृतिः स्थिता ॥ सदेवसतिविश्रांतंकुतोहंभावभावना ॥ १२ ॥

अर्थ—यह जो देहमें अहंभावनाहै सो मिथ्या मोहरूपहै क्योंकि अहंकार और मन मिथ्या मृगतृष्णारूप होनेसे उनमें अहंभावना असत्है और पदार्थसमूह अत्यन्त जडहै वह अहंभावरूप अभिमानके योग्य नहीं है इसलिये देहमें अहंभावना किसको होसकती है ॥ ९ ॥ और यह देहरक्त मांसादिमयहै और मन विचारसे नष्ट होताहै तथा चित्त आदि सब जडहैं तो इनको अहंभावना कहांसे होसकती है ॥ १० ॥ और इन्द्रियां सब अपने २ रूपादि विषयोंके साक्षात्कार करनेहीमें पूर्णरूपसे स्थितहैं और सब पदार्थ अपने पदार्थत्वके प्रकट करनेमें स्थितहैं तो इनको अहंभावना कहांसे ॥ ११ ॥ सत्व, रजस् और तमोगुण अपने प्रकाश प्रवृत्ति तथा मोहरूप व्यापारमें स्थितहैं, और तीनों-गुणोंकी साम्यावस्थारूप स्वभावमें प्रकृति वा प्रधान नाम माया स्थितहै और सत्ब्रह्म अपने स्वात्मभाव स्वभावमें स्थितहै तो इसमें कहां अहंभावना ॥ १२ ॥

सर्वगंसर्वदेहस्थंसर्वकालमयंमहत् ॥ केवलंपरमात्मानंचिदात्मैवेहसंस्थितः ॥ १३ ॥ एवंकिमाकृतिः कोवाकिमादेशश्चकिंकृतः ॥ किंरूपःकिंमयःकोहंकिंगृह्णामित्यजामिकिम् ॥ १४ ॥ तेनाहंनामनेहास्ति भावाभावोपपत्तिमान् ॥ अनहंकाररूपस्यसंबंधःकेनमेकथम् ॥ १५ ॥ असत्यलमहंकारेसंबंधःकस्य केनकः ॥ संबंधाभावसंसिद्धौविलीनाद्वित्वकल्पना ॥ १६ ॥

अर्थ—और जो इस देहमें चिदाभास स्थितहै वह सर्वगामी, सर्वकालमय, महत् केवल परमानन्द चिदात्माहै इसलिये देहमें अहंभावना उसको भी नहीं होसकती ॥ १३ ॥ इसप्रकारकी स्थिति होनेपर इस देहमें अहंभावका अभिमानी किसप्रकारका है ? किस आकारका है ? यथार्थमें कौनहैं, उसका निरूपण किसप्रकार होसकताहै किस वर्णकाहै ? किसका विकारहै ? और उस भावसे मैं कोनहुं और क्या ग्रहण करताहुं और क्या त्यागताहुं ॥ १४ ॥ इसलिये भाव अथवा अभावसे उपपत्तियुक्त न होनेसे इस ब्रह्मांडमें अहंभावका अभिमानी यथार्थमें कोई नहीं है और अहंकारसे शून्य चिदात्मस्वरूप मुझसे क्या संबन्धहै ॥१५॥ और अहंकारके पूर्णरीतिसे असत् होनेपर किसका किसके साथ क्या सम्बन्धहै? और सम्बन्धके अभाव सिद्ध होनेसे द्वित्वआदिकी कल्पना विलीन (नष्ट)होचुकी॥१६॥

एवंब्रह्मात्मकमिदंयत्किंचिज्जगतिस्थितम् ॥ सदेवास्मितदेवास्मिपरिशोचामिकिंमुधा ॥ १७॥ एकस्मिन्विमलेपदेसर्वगतेस्थिते ॥ अहंकारकलंकस्यकथंनामोदयःकुतः ॥ १८ ॥ नास्त्येवहिपदार्थश्रीरात्मैवास्तीहसर्वगः ॥ पदार्थलक्ष्म्यांसत्यांचसंबंधोस्तिनकस्यचित् ॥ १९ ॥ इंद्रियैरिंद्रियैरंगैर्मनोमनसिव ल्गति ॥ चिदलिप्तवपुःकेनसंबंधःकस्यकिंकथम् ॥ २० ॥

अर्थ—इसप्रकार यह सब जगत् ब्रह्मात्मकहै और मैं वही सत्रूपहुं व्यर्थ शोच क्यों करूं क्योंकि इस समय मैं अद्वैत साम्राज्यमें स्थितहुं ॥ १७ ॥ एक, निर्मल, सर्वव्यापी, और शुद्ध आत्मपदके स्थित रहनेपर अहंकाररूप कलंकका उदय कैसे और कहांसे होसकताहै ? ॥१८॥ यथार्थमें तो पदार्थोंकी शोभा कुछ नहीं है किंतु सर्वव्यापी आत्मा मात्रहै और कथंचित् आभास मात्रसे पदार्थोंकी सत्ता रहनेपर आत्माके साथ उसका कोई संबन्ध नहीं है ॥ १९ ॥ अपने अवयव रूपसे कल्पित सब इन्द्रियोंके साथ यह मन मनमेंही स्वप्नके समान गर्जताहै न कि बाह्य पदार्थोंको वह साक्षात् करनेमें समर्थ होताहै और चित्का शरीर निर्लिप्तहै तो किसका संबंध कैसे और क्या होसकताहै ॥ २० ॥

उपलायःशलाकानांसंबंधोनयथामिथः ॥ तथैकत्रापिदृष्टानांदेहेंद्रियमनश्चिताम् ॥ २१ ॥ असदभ्युत्थितेव्यर्थमहंकारमहाभ्रमे ॥ ममेदमिदमस्येतिविपर्यस्तमिदंजगत् ॥ २२ ॥ अतत्त्वालोकजातेयमहंकारचमत्कृतिः ॥ तापेनहिमलेखेवतत्त्वालोकेविलीयते ॥ २३ ॥ आत्मनोव्यतिरेकेणनकिंचिदपिविद्यते ॥ सर्वंब्रह्मेतिमेतत्त्वमेतत्तद्भावयाम्यहम् ॥ २४ ॥

अर्थ—जैसे पाषाण, मणि और लोहकी शलाकाओंका संबंध परस्पर नहीं है ऐसेही एकत्र दृष्टभी इन्द्रिय मन और चेतनका संबन्ध नहीं है ॥ २१ ॥ इस अहंकाररूप महा भ्रमके अज्ञानसे व्यर्थ प्रादुर्भूत होनेपर यह धनादि मेरा है, यह इसकाहै, इत्यादि व्यवहारोंमें यह जगत् भ्रान्तहै ॥ २२ ॥ आत्मतत्त्वके न देखनेसे, यह अहंकारकी चमत्कृति उत्पन्नहै और आत्माके दर्शनसे ऐसे गलित होजाती है जैसे तापसे हिमकी लेखा॥२३॥आत्मासे भिन्न कुछभी नहीं है क्योंकि सब कुछ ब्रह्महीं है यह मुझ साक्षी चेतनको अनुभव सिद्धहै इसलिये उसीकी भावना मैं करताहुं॥२४॥

अहंकारभ्रमस्यास्यजातस्याकाशवर्णवत् ॥ अपुनःस्मरणंमन्येनूनंविस्मरणंवरम् ॥ २५ ॥ समूलंसंपरित्यज्यचिरायाहंकृतिभ्रमम् ॥ तिष्ठाम्यात्मनिशांतात्माशरत्खंशरदीवखे ॥ २६ ॥ ददात्यनर्थनिचयंवि

स्तारयतिदुष्कृतम् ॥ विस्तारयतिसंतापमहंभावोनुसंहितः ॥ २७ ॥ स्फुरत्यहंकारघनेहृद्व्योम्निसिसि लात्मनि ॥ विकसत्यभितःकायकर्दबेदोषमंजरी ॥ २८ ॥

अर्थ—आकाशके वर्णके समान उत्पन्न इस अहंकाररूप भ्रमका पुनः स्मरण न होनेके लिये विस्मरण होनेहीको मैं निश्चयरूपसे उत्तम समझताहुं ॥ २५ ॥ मूल अविद्यासहित इस अहंकाररूप भ्रमको चिरकालके लिये त्यागकर शान्तात्मा मैं अपने आत्मामें ऐसे स्थितहुं जैसे शरत्कालका आकाश अपने निर्मल स्वभावरूप आकाशमें ॥२६॥ देहादिमें बढा हुआ यह अहंभाव अनर्थ समूहको देताहै और पाप तथा संतापको बढाताहै ॥ २७ ॥ हृदयरूप आकाशमें अहंकाररूप मेघके स्फुरित होनेपर दुर्वासनारूप जलके भीतर शरीररूप कर्दवमें दोषरूप लता चारो ओरसे विकसित होती है ॥ २८ ॥

मरणंजीवितोपांतंजीवितंमरणांतगम् ॥ भावोभावाह्यवच्छिन्नःकष्टेयंदुःखवेदना ॥ २९ ॥ इदंलब्धमि दंप्राप्स्यामीत्यार्तिर्दाहकारिणी ॥ नशाम्यत्यर्करत्नानांग्रीष्मेग्निरिवदुर्द्धियाम् ॥ ३० ॥ नास्तीदमिदम स्तीतिचिंताधावत्यहंकृतिम् ॥ जडाशयाजडामभ्रमालाशैलवलीमिव ॥ ३१ ॥ अहंभावेपरिक्षीणेशुष्कः संसारपादपः ॥ भूयःप्रयच्छत्यरसोनपाषाणवदंकुरम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—मरण आदि अन्य लोकका दुःख पुनर्जन्मपर्य्यन्त होता रहताहै और जीवित अर्थात् इस लोकका दुःख मरणपर्य्यन्त होता रहताहै, तथा भोग्यपदार्थ नाशसे खंडित है, अहो ! यह दुःखवेदना कैसी कष्टदायिनी है ॥ २९ ॥ यह पाया यह और पाऊंगा इत्यादि अन्तःकरणको भस्मकरनेवाली मूर्खोंकी पीडा किसी समय ऐसे नहीं शान्त होती जैसे ग्रीष्मकालमें सूर्य्यकान्तमणियोंकी अग्नि ॥३०॥ यह है, यह नहीं है, इत्यादि मूर्खोंकी चिंता अहंकारकी ओर ऐसे दौडती है जैसे जलके आश्रय मेघोंकीमाला पर्वतोंकी पंक्तिकी ओर ॥ ३१ ॥ देहादिमें अहंभावके क्षीण होनेपर संसाररूप वृक्ष सूखकर नीरस होजाताहै इसीसे पाषाणके तुल्य रागद्वेषआदि अंकुर नहीं उत्पन्न करता ॥३२॥

स्वतृष्णाकृष्णभोगिन्योदेहद्रुमकृतालयाः ॥ क्वापियांतिविचारात्मन्यागतेविनतासुते ॥ ३३ ॥ असद भ्युत्थितेविश्वेतज्जातेभ्रमसन्मये ॥ असन्मयपरिस्पंदेत्वहंत्वंचेतिकःक्रमः ॥ ३४ ॥ इदंजगदुदेत्या दावकारणमकारणात् ॥ यदकारणसुद्भूतंतत्सदित्युच्यतेकथम् ॥ ३५ ॥ अपर्यंतपुराकालेमृदिकुंभइ वाकृतिः ॥ देहोभवदिदानींतुतथैवास्तिभविष्यति ॥ ३६ ॥

अर्थ—इस देहरूप वृक्षमें स्थान किये हुये अपनी तृष्णारूप काली सर्पिणी (नागिनि) आत्मज्ञानरूप गरुडके आनेपर न जाने कहां चली जाती है ॥ ३३ ॥ अज्ञानसे उत्पन्न तथा अज्ञानसेही सत्के समान भासमान, और असत्य व्यवहार युक्त इस संसारके सिद्ध होनेपर "त्वम्" और "अहम्" इत्यादि भेद व्यवहारकाभी क्या अवसरहै ॥ ३४ ॥ कारणताके अयोग्य अज्ञानसे निष्प्रयोजन यह संसार प्रथम उत्पन्न हुआ है और जो विनाकारण उत्पन्न है वह सत्य कैसे कहा जासकता है ॥ ३५ ॥ हे चित्त ! यह देह अपनी उत्पत्तिसे पूर्व अनादिकालमें मृत्तिकामें घटके समान चिद्रूपमें था और इस समयभी वैसाही है और रहैगा ॥ ३६ ॥

मध्येतरपयोमात्रंकंचित्कालंचलाचलम् ॥ आद्यंतसौम्यतेत्यक्त्वावारिवीचितयायथा ॥ ३७ ॥ अस्मि न्क्षणपरिस्पंदेदेहेविसरणोन्मुखे ॥ तरंगेचनिबद्धास्थायेहतास्तेकुबुद्धयः ॥३८॥ प्राक्पुरस्ताच्चसर्वाणि संतिवस्तूनिनाभितः ॥ मध्येस्फुटत्वमेतेषांकैवास्थाहतरूपिणी ॥ ३९ ॥ चित्तंपूर्वंपुरस्ताच्चचिद्देहंशां तमित्यपि ॥ सदसद्वाखसंलीनंमध्येस्मिन्कितवोदितम् ॥ ४० ॥

अर्थ—जैसे तरंगरूपसे अपनी उत्पत्तिसे पूर्व और उत्तरकालमें केवल जलमात्र है किंतु मध्यमें कुछ कालके लिये किंचित् चंचल तरंगरूपसे स्थितहै न कि वह जलसे पृथक् कोई वस्तुहै ऐसे देहादि तीनोंकालमें ब्रह्मरूपही है ॥ ३७ ॥ क्षणमात्रके अर्थ चेष्टासहित और नाशकी ओर उन्मुख इस शरीर तथा तरंगमें जो कुबुद्धि विश्वास करते हैं वे नष्टही हैं ॥ ३८ ॥ उत्पत्तिसे पूर्व तथा उत्तरकालमें सर्वत्र कोई पदार्थ नहीं हैं किन्तु मध्यमें अपने अधिकरण एकसत्ता वा हस्तमात्र देशमें विद्यमानरूपसे भान होते हैं तो इस हस्तरूपमें विश्वास क्या ? ॥ ३९ ॥ और लिंग (सूक्ष्म शरीर) भी अपनी उत्पत्तिके पूर्वकाल तथा देशमें निजसाक्षी चिन्मात्र स्वभाव था ऐसे ही उत्तरकाल तथा देशान्तरमेंभी शान्तरूपहै तो इसीसे आकाशमें गुप्तके सदृश सत् वा असत्‌रूपसे अनिर्वचनीय है तो चित्तबुद्धि आदिसहित यह सूक्ष्मशरीर वर्तमानकाल तथा निज अधिकरण देशमेंभी ब्रह्मसे भिन्न कहो क्या तुमारा उदित हुआ अर्थात् कुछ नहीं ॥ ४० ॥

यथास्वप्नविकारेषुयथासंभ्रमदृष्टिषु ॥ यथावामदलीलासुयथानौयानसंभ्रमे ॥ ४१ ॥ यथाधातुविकारेषुयथाचेंद्रियविक्लवे ॥ यथातिसंभ्रमानंदेदोषावेशदशासुच ॥ ४२ ॥ दृश्यतेक्षीयतेचैवरूपंसदसतोश्चलम् ॥ तथैवेयमिहत्वेषाकालेन्यूनातिरिक्तका ॥ ४३ ॥ साचत्वयाकृतानित्यंचित्तदुःखसुखोदये ॥ यथावियोगयामिन्योमतयोहंतिरागिणम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—जैसे स्वप्नके विकारोंमें, व्याघ्र आदि संभ्रमकी दृष्टियोंमें, मदकी लीलाओंमें, नौका आदि यानकी यात्राके संभ्रममें ॥ ४१ ॥ पित्त आदिके विकारोंमें, नेत्र आदि इन्द्रियोंके दूषित होनेपर दो चंद्र आदि भ्रममें, अति प्रियतमके लाभ जनित हर्षमें, और विधुर वा स्त्रीरहित कामीपुरुषोंकी कामादि ग्रस्त दशाओंमें भी भाव तथा अभावका चलरूप प्रतीति काल मात्र स्थायी कुछ कामिनी आदि रूपसे देख पडताहै और शीघ्रही बाध होनेसे नष्ट होजाता ऐसेही इस संसारकी भ्रान्तिहै परंतु इस संसारकी भ्रान्तिमें विशेषता इतनी है कि यह मोक्ष पर्य्यन्त अधिक कालतक रहती है और स्वप्न आदिकी भ्रांन्ति न्यूनकालतक रहती है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ यह कालकृत न्यूनता और अधिकता व्यवहारकी वस्तुओंमें सत्यताकी भ्रान्तिसे संयोग वियोगद्वारा नित्य सुखदुःखके उदयसे तुमारी की हुई तुमको ही अधिक ऐसे पीडित करती है जैसे स्त्री पुत्रादिके मरण न होनेपरभी दुष्ट प्रतारकके वचनसे उत्पन्नहै मरणकी बुद्धि जिनमें ऐसी कल्पित वियोगकी रात्रि रागी पुरूषको मारती हैं ॥ ४४ ॥

मयैवेहासदभ्यासान्मिथ्यासदिवलक्ष्यसे ॥ मृगतृष्णेवतेनैतत्त्वत्कृतंमत्कृतंभवेत् ॥ ४५ ॥ यदिदंकिंचिदाभोगितत्सर्वंदृश्यमंडलम् ॥ अवस्त्वितिविनिर्णीयमनोयात्यमनःपदम् ॥ ४६ ॥ आवस्त्विदमितिस्फारेरूढेमनसिनिश्चये ॥ हेमंतइवमंजर्यःक्षीयंतेभोगवासनाः ॥ ४७ ॥ चित्त्वाद्दृष्टात्मनानूनंसंत्यक्तमननोजसा ॥ मनसावीतरागेणस्वयंस्वस्थेनभूयते ॥ ४८ ॥

अर्थ—अथवा हे चित्त इसमें तुमारा अपराध नहीं है किंतु तुमारेमें मेरे अहंभावके अभ्याससे मृगतृष्णाके तुल्य तुम असद्भी मुझे सत्के समान देख पडतेहो इसीसे तुमारा किया कार्य्य मेरा किया होजाताहै ॥ ४५ ॥ इसी कारणसे यह जो कुछ विस्तारयुक्त दृश्य मंडलहै वह संपूर्ण अवस्तुहै अर्थात् मिथ्याहै ऐसा निर्णय करके मन जो है वह अमन पद (ब्रह्मरूपता) को प्राप्त होताहै अर्थात् तुमारे विवेकसे मेरे अपराधरूप तुमारी शांति होती है ॥ ४६ ॥ यह संसार मिथ्याहै ऐसा विशाल निश्चय मनमें दृढ होनेपर भोगोंकी वासना ऐसे क्षीण होजाती हैं जैसे शीतऋतुमें कमलकी लता ॥ ४७ ॥ चित्के प्रतिबिम्बको ग्रहण करनेसे चित्तरूप, आत्मदर्शी, संकल्प विकल्पमय व्यापारको त्यागनेवाला और बीतराग मन स्वयं स्वस्थ होजाताहै ॥ ४८ ॥

परमात्मानलेक्षिप्तंसंवृत्त्यावयवंस्वयम् ॥ दग्ध्वात्मानमलंचित्तंशुद्धतामेतिशाश्वतीम् ॥ ४९ ॥ देहमन्यतयादृष्ट्वात्यक्त्वाविषयवासनाम् ॥ विनाशमुररीकृत्यमनोजयतिवीरवत् ॥ ५० ॥ मनःशत्रुःशरीरस्यशरीरंमनसोरिपुः ॥ एकाभावेननश्येतेआधाराधेयकार्यवत् ॥ ५१ ॥ रागद्वेषवतोर्नित्यमन्योन्यातिविरुद्धयोः ॥ एतयोर्मूलकापेणविनाशःपरमंसुखम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—यह चित् अपने अंगभूत इन्द्रियादिको एकत्र करके तत्वज्ञानसे परमात्मारूप अग्निमें फेंके हुये अपने चित्तस्वरूपको भस्म करके अत्यन्त नित्य शुद्धताको प्राप्त होताहै ॥४९॥ यह चित्त देहको अपनेसे भिन्न देखके विषय वासनाको त्यागकर अपने विनाशको भी स्वीकार करके ब्रह्मलोकको ऐसे जीतताहै जैसे युद्धमें वीरपुरूष ॥ ५० ॥ मन जो है वह शरीरका तापकहै और शरीर मनका तापकहै और एककी वासनाके उच्छेदसे दोनों ऐसे नष्ट होजाते हैं जैसे आधार तथा आधेय घट और जलका कार्य्यभूत जो संयोगहै वह जल घटमेंसे किसीके नाशसे नष्ट होजाताहै ॥ ५१ ॥ उसप्रकार परस्पर उपजीवी होनेसे रागवान् और परस्पर तापक होनेसे द्वेषवान् शरीर और मनका मूल अविद्याके सहित नाश होनेसे ही जीवको परमसुख इसप्रकारहै जैसे व्याघ्रोंके नाशसे बनके हरिणोंको ॥ ५२ ॥

एतयोरकेसंस्थानेमृतिरित्येवयाकथा ॥ साव्योम्न्ययास्त्रियाभुक्ताधरेतिकथयासमा ॥ ५३ ॥ अकृत्रिमविरोधस्थौयत्रसंघटितावुभौ ॥ धाराइवपतंत्येवतत्रानर्थपरंपराः ॥ ५४ ॥ मिथोविरुद्धसंसर्गैरतिमेत्यधर्मोद्दियः ॥ त्यक्तव्यःसपतद्धारावग्निराशावलेपने ॥ ५५ ॥ संकल्पेनमनःपुष्टवाशरीरंबालयक्षवत् ॥ आयुरेवाशनान्यस्मैस्वदुःखानिप्रयच्छति ॥ ५६ ॥

अर्थ—इन दोनोंमें एकके रहनेपरभी मृत्युसे सब दुःखका नाश होगा यह जो कथाहै सो ऐसी है जैसी आकाशमें जाती हुई स्त्रीने पृथिवीको ग्रसलिया इसके समान (असंभव) है अर्थात् देहके नाश होनेपर मनसे पुनः देहकी

अनिवारणीय कल्पना होजायगी ॥ ५३ ॥ और स्वाभाविक विरोधवाले ये शरीर और मन जहां एकत्र स्थित होते हैं अनर्थकी परंपरा ऐसे गिरती हैं जैसे दो युद्ध करनेवालोंके मध्यमें स्थित पुरुषके ऊपर खड्ग बाण आदिकी धारा॥५४॥ परस्पर विरोधी देह और मन जिसमें उत्पन्न किये जाते हैं ऐसे विषयके सुखभोगमें जो अधम सत्य मानकर प्रीति करताहै उसको ऐसे वडवानलमें फेंकना चाहिये जहां निरन्तर अग्निसे प्रतप्त जलकी धारा गिररही है वहां भी वह विषयके सुखमें प्रीति करेगा ॥ ५५ ॥ जैसे बालक पिशाचकी कल्पना करताहै ऐसेही मन अपने संकल्पसे शरीरकी कल्पना करके, और आयुपर्य्यन्त उसको भोजनकी कल्पनासे पुष्ट करके अपने दुःखोंको भी इसको दे देताहै ॥ ५६ ॥

तैर्दुःखैस्तापितोदेहोमनोहंतुमथेच्छति ॥ पुत्रोपिहंतिपितरमाततायिपदंगतम् ॥ ५७ ॥ नास्तिशत्रुःप्रकृत्यैवनचमित्रंकदाचन ॥ सुखदंमित्रमित्युक्तंदुःखदाःशत्रवःस्मृताः ॥ ५८ ॥ देहोदुःखान्यनुभवन्स्वमनोहंतुमिच्छति ॥ देहंमनःस्वदुःखानांसंकेतंकुरुतेक्षणात् ॥ ५९ ॥ एवंमिथोदुःखदयोःश्लिष्टयोः कःसुखागमः ॥ एतयोर्देहमनसोर्जात्यैवातिविरुद्धयोः ॥ ६० ॥

अर्थ—उन मनके दिये हुये दुःखोंसे तापित यह शरीर दुष्ट व्यसनोंके सेवनद्वारा मनमें राग, द्वेष, शोक, मोह और पाप आदिको उत्पन्न करनेसे उस मनको पीडित करना चाहताहै यद्यपि मनसे उत्पन्न शरीर मनका पुत्रहै तथापि पीडा जनक आततायी पदको प्राप्त पिताको पुत्रभी मारता ही है ॥ ५७ ॥ क्योंकि स्वभावसे न कोई कभी किसीका शत्रुहै और न मित्रहै किंतु सुख देनेवालेको मित्र कहा है और दुःखके देनेवाले शत्रु कहे गये हैं ॥ ५८ ॥ यह देह दुःखोंको अनुभव करता हुआ अपने मनको मारना चाहताहै और मन भी अपने दुःखोंके भोगका स्थान क्षणभरमें अपने संकल्पसे करताहै ॥ ५९ ॥ इसप्रकार परस्पर दुःखदायी, मिले हुये और स्वभावसे ही विरुद्ध इन देह और मनके वर्तमान रहते सुखका आगम कहां ॥ ६० ॥

मनस्येवपरिक्षीणेनदेहोदुःखभाजनम् ॥ तत्क्षयोत्कतयानित्यंदेहोपिपरिधावति ॥ ६१ ॥ नष्टानष्टमनर्थायशरीरंपदमापदाम् ॥ अलब्धात्मविवेकेनमनसासुप्रजायते ॥ ६२ ॥ एतेमनःशरीरेहिमिथःपीवरतां गते ॥ जडरूपेहिवपुषापयोदसरसीयथा ॥ ६३ ॥ मिथोदुःखायसंपन्नेएकरूपेद्विधास्थिते ॥ व्यवहारपरेसार्द्धलोकेवार्यनलाविव ॥ ६४ ॥

अर्थ—मनके क्षीण होनेपर शरीर दुःखका पात्र नहीं रहता इसलिये यह अति अभिलाषासे उस मनके नाशके अर्थ ज्ञान तथा उसके साधनोंमें दौडताहै ॥ ६१ ॥ जबतक मनको आत्माका ज्ञान नहीं तबतक चाहे शरीरको वह नष्ट करे वा न नष्ट करे परन्तु वह शरीर आपत्तियोंका स्थान होकर अनर्थके ही लिये होताहै ॥ ६२ ॥ जडरूप ये मन और शरीर परस्परके अनुग्रहसे शरीरसे स्थूलताको ऐसे प्राप्त है जैसे मेघ और तडाग ॥ ६३ ॥ परस्पर विरुद्धतासे दो रूपसे स्थितभी ये शरीर और मन परस्पर अभेदके अध्याससे एकरूपसे स्थित होके दुःखोंके भोगनेके वा परिहारके लिये साथ मिलकर भोग अथवा मोक्षके व्यवहार साधनमें ऐसे तत्पर हैं जैसे पाक क्रियाके लिये अग्नि और जल ॥ ६४ ॥

चित्तेक्षयिणिसंक्षीणेदेहोद्यामूलितोभवेत् ॥ वर्द्धमानेतरुरिवशतशाखःप्रवर्त्तते ॥ ६५ ॥ क्षीयतेमनसिक्षीणेदेहःप्रक्षीणवासनः ॥ मनोनक्षीयतेक्षीणेदेहेतत्क्षपयेत्मनः ॥ ६६ ॥ संकल्पपादपंतृष्णालतंछित्त्वा मनोवनम् ॥ विततांभुवमासाद्यविहरामियथासुखम् ॥ ६७ ॥ प्रक्षीयमाणमेवेदंनमनोमनसिस्थितम् ॥ प्रशाम्यद्वासनाजालंप्रावृडंतइवांबुदः ॥ ६८ ॥

अर्थ—नाशमान चित्तके क्षीण होनेसे शरीर मूलसे उच्छिन्न होजाताहै और मनके बढनेपर सैकडो शाखासहित वृक्षके समान बढताहै ॥ ६५ ॥ मनके क्षीण होनेपर वासना रहित शरीरभी क्षीण होजाताहै और शरीरके क्षीण होनेसे मन नहीं क्षीण होता इसलिये आत्माके विवेकादिसे मनको क्षीण करना चाहिये ॥६६॥ इस हेतुसे संकल्परूप वृक्षसे पूर्ण और बनरूप लतासहित मनरूप बनका छेदन करके विशाल परमात्मारूप भूमिको प्राप्त होके सुखसे विहार करूं ॥ ६७ ॥ क्षीण होता हुआ यह मन अपने मनके स्वभावमें नहीं स्थित रहता किंतु वासनाओंके जालके शान्त होनेसे वर्षा वा हेमन्तमें मेघके समान नष्ट होजाताहै ॥ ६८ ॥

(सूक्ष्म शरीर) भोगयंदेहनामारिपुर्मम ॥ प्रक्षीयमाणेमनसिगलत्वेषोवतिष्ठतु ॥ ६९ ॥ यदर्थंकिलभोगश्री देशान्तरमेंभी शान्तस्म् ॥ तन्मेनापिनतस्याहंकोर्थःसुखलवेनमे ॥ ७० ॥ नाहंदेहइतित्वस्मिन्युक्तिमाकर्ण आदिसहित यह सूक्ष्मवपिसत्स्वेवशवःकस्मान्नवलगति ॥ ७१ ॥ तस्माद्देहादतीतोहंनित्योऽनस्तमितद्यु अर्थात् कुछ नहीं ॥ास्वतामाप्यवेद्मिव्योमनिभास्करम् ॥ ७२ ॥

अर्थ—त्वचा, रुधिर, मास, हड्डी, मेदा मज्जा और शुक्र (वीर्य) धातुओंकी रचना विशेष यह शरीर नाम मेरा शत्रुहै मनके नष्ट होनेपर वह स्थित रहै वा नष्टहो मेरा इससे कुछ सम्बन्ध नहीं है ॥ ६९ ॥ जिसके लिये भोगकी लक्ष्मी अपने शरीरको चाहती है वह न मेराहै न मैं उसका हुं इसलिये सुखके लेशसे भी मुझे कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ ७० ॥ मैं यह देह नहीं हुं इसमें युक्ति मुझसे सुनो क्योंकि सब हस्त पाद आदि अंगोंके रहनेपरभी मृतक शरीर क्यों नहीं दर्शन श्रवण आदि व्यवहार करता ॥ ७१ ॥ इस कारण देहसे पृथक्, नित्य, सदा प्रकाशशील मैं हुं, जो व्यापक होनेसे सूर्यमण्डलमें सूर्यके साथ संगति प्राप्त करके आकाशमें सूर्यको भी जानताहुं वह चिद्रूप मैंहुं ॥७२॥

नाज्ञोहंनचमेदुःखंनानर्थोनचदुःखिता ॥ शरीरमस्तुमावास्तुस्थितोस्मिविगतज्वरः ॥७३॥ यत्रात्मातत्र नमनोनेंद्रियाणिनवासनाः ॥ पामराःपरितिष्ठंतिनिकटेनमहीभृतः ॥ ७४ ॥ पदंतदनुयातोस्मिकेवलोस्मिजयाम्यहम् ॥ निर्वाणोस्मिनिरीहोस्मिनिरंशोस्मिनिरीप्सितः ॥ ७५ ॥ इदानीमस्म्यसंबद्धोमनोदेहेंद्रियादिभिः ॥ पृथक्कृतस्यतैलस्यतिलैर्विगलनैरिव ॥७६॥

अर्थ—मैं अज्ञ नहीं न मुझें दुःख न अनर्थ और न दुःखिताहै यह शरीर रहै वा न रहै मैं तो सन्तापरहित स्थितहुं ॥ ७३ ॥ जहां आत्माहै वहां न मन, न इन्द्रिय, और न वासना पहुंचसकती हैं क्योंकि राजाओंके निकट पामर नहीं रहसकते ॥ ७४ ॥ मैं उस परम (ब्रह्म) पदको प्राप्तहुं केवलहुं, सबके ऊपर विजयीहुं, शान्तहुं, निरवयवहुं, और चेष्टा तथा इच्छारहितहुं, ॥ ७५ ॥ इससमय मैं देह मन और इन्द्रियादिके सम्बन्धसे ऐसे रहितहुं जैसे पृथक् किया हुआ तेल तिल निकाले हुये तिलोंसे ॥ ७६ ॥

स्वस्मात्पदवरादस्माल्लीलयाचलितस्यमे ॥ पृथक्कृतमतेःकिंचपरिवारोह्ययंशुभः ॥ ७७ ॥ स्वच्छतोर्जितताऽसत्ताहृद्यताऽसत्यताज्ञता ॥ आनंदितोपशमितासदाचमृदुभाषिता ॥ ७८ ॥ पूर्णतोदारतासत्याकांतिमत्तैकतानता ॥ सर्वैकतानिर्भयताक्षीणद्वित्वविकल्पता ॥ ७९ ॥ नित्योदिताःसमाःस्वस्थाःसुंदर्यःसुभगोदयाः ॥ ममैकात्ममतेर्नित्यंकांताहृदयवल्लभाः ॥ ८० ॥ सर्वथासर्वदासर्वंसर्वस्मिन्संभवत्यतः ॥ सर्वंप्रतिममक्षीणेवांछावांछेसुखासुखे ॥ ८१ ॥ विगतमोहतयाविमनस्तयागतविकल्पनचित्ततयास्फुटम् ॥ उपरमाम्यहमात्मनिशीतलेघनलवःशरदीवनभस्तले ॥ ८२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे उद्दालकविचारविलासो नाम त्रिपंचाशः सर्गः ॥ ५३ ॥

अर्थ—अपने श्रेष्ठ आत्मपदसे शेष प्रारब्ध कर्मोंकी भोगकी लीलासे चलित और देह इन्द्रियादिसे पृथक् बुद्धिवाला जो मैं हुं उसका देह इन्द्रिय आदि उत्तम परिवार विलासकेलिये हैं ॥ ७७ ॥ और स्वच्छता, पूर्णकामता, आत्मसत्ता, रमणीयता, आत्मज्ञानता, आनन्दिता, उपशमिता, सदाचारता, मृदुभाषिता ॥ ७८ ॥ पूर्णता, निर्लोभता, अबाधितस्वभावता, कांतिमत्ता ब्रह्मके साथ नित्य एकतात्मता, सबके साथ एकात्मता, निर्भयता द्वित्व तथा विकल्पोंकी क्षीणता, ॥ ७९ ॥ ये सब नित्य उदयको प्राप्त, सम, स्वस्थ, और सौभाग्ययुक्त अतिसुन्दरी एकात्मबुद्धि जो मैं हुं तिसकी प्राणप्रिय वल्लभा (स्त्री) हैं ॥ ८० ॥ सबप्रकारसे सदा सब कुछ सबमें कल्पनासे सम्भव होसकताहै इसलिये, सबमें मेरा रागद्वेष तथा उसके फलभूत सुखदुःख क्षीणहैं ॥ ८१ ॥ मोह तथा मनकेरहित होनेसे तथा विकल्पयुक्त चित्त नष्ट होनेसे इससमय मैं प्रत्यक्ष रीतिसे दृश्यवर्गको त्यागकर आत्मामें ऐसे विश्राम करताहुं जैसे शरदृऋतुमें शीतल आकाशमें मेघका खण्ड ॥ ८२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे उद्दालकविचार विलासो नाम त्रिपंचाशः सर्गः ॥ ५३ ॥

चतुःपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५४ ॥

अग्नि और जल प्रलयादिसे अपने शरीरको विष्णुकी शरीरभावना करते हुये सब विकल्पोंको क्षपा (त्याग) और उद्दालकमुनि समाधिमें विश्राम किया यह विषय इस ५४ के सर्गमें निरूपण कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ इतिनिर्णीयततयाधियाधवलयामुनिः ॥ बद्धपद्मासनस्तस्थावर्धोन्मीलितलोचनः ॥ १ ॥ ओमित्येतत्परंब्रह्मनिर्णीयसमुनिस्तदा ॥ ॐकारोच्चारितोयेनतंनादंपरमंपदम् ॥ २ ॥

ॐकारमकरोत्तारस्वरमूर्ध्वगतध्वनिम् ॥ सम्यगाहतलांगूलंघंटाकुंडमिवारवम् ॥ ३ ॥ ओमुच्चारयतस्त स्यसंवित्तस्त्वेतदुन्मुखे ॥ यावदोंकारमूर्द्धस्थेवितते विमलात्मनि ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–शुद्ध तथा उदारबुद्धिसे उद्दालकमुनिने पूर्वोक्त रीतिसे निर्णय करके पद्मासन बांध और अर्द्धनेत्र मून्दकर स्थित हुआ ॥ १ ॥ ओम् यह जो है वह ब्रह्महै और जिसने ओंकारका उच्चारण किया उसने परमपदको पाया ऐसा निर्णय करके उस उद्दालकमुनिने ॥ २ ॥ उच्चस्वर और उर्द्धगतध्वनिसे ओंकारका उच्चारण इस प्रकार किया जैसे भलीभांति लम्बमान जिव्हाकार लोहासहित घंटेका शब्द ॥ ३ ॥ उस उद्दालकमुनिने तबतक ओंकारका उच्चारण किया जबतक इसके मूलाधारसे लेके ब्रह्मरंध्रपर्य्यन्त प्रसिद्ध सुषुम्नानाडीमें ओंकारके शिरपर स्थित अर्द्धमात्राके उपरममें अभिव्यक्त व्यापक और निर्मल आत्मब्रह्ममें ओंकार वृत्तिका उपहितचेतन और कूटस्थ जीवचेतन अभिमुख नहीं हुये ॥ ४ ॥

सार्द्धत्र्यंशात्ममात्रस्यप्रथमेंशेस्फुटारवे ॥ प्रणवस्यसमाक्षुब्धप्राणारणितदेहके ॥ ५ ॥ रेचकाख्योखि लंकायंप्राणनिष्क्रमणक्रमः ॥ रिक्तीचकारपीतांबुरगस्त्यइवसागरम् ॥ ६ ॥ अतिष्ठत्प्राणपवनश्चिद्रसा पूरितांबरे ॥ त्यक्तदेहःपरित्यक्तनीडःखगइवांबरे ॥ ७ ॥ हृदयाग्निर्ज्वलज्ज्वालोददाहनिखिलंवपुः ॥ उत्पातपवनोद्भूतोदावःशुष्कमिवद्रुमम् ॥ ८ ॥

अर्थ—अकार उकार और मकाररूप साढेतीन मात्रासहित प्रणवके प्रथम अंशउदात्त अकार भागके उच्च स्वरसे प्रकट उच्चारित होने तथा भलीभांति संक्षुब्ध बाह्यदेशमें निकलनेमें उद्युक्त प्राणोंसे मूल देशसे लेके ओष्ठ पर्य्यंत देहके शब्दसहित करनेपर ॥ ५ ॥ रेचक नामसे प्रसिद्ध प्राणोंके निष्क्रमण (निकलने) के क्रमने सब शरीरको ऐसे खाली किया जैसे अगस्त्यऋषिने समुद्र ॥ ६ ॥ उसके शरीरसे त्यागाहुआ रेचक नाम प्राणवायु चिद्रस अर्थात् ब्रह्मभावनासे अभिव्यक्त हृदयके अमृतसे पूर्ण बाह्य आकाशमें ऐसे स्थित हुआ जैसे अपने खुंथेको त्यागकर पक्षी ॥ ७ ॥ उससमय जलती ज्वालासहित हृदयस्थ अग्निने सब देहको ऐसे भस्म किया जैसे उत्पातके वायुसे उत्पन्न बनकी अग्नि सुखेहुये वृक्षको ॥ ८ ॥

यावदित्थमवस्थैषाप्रणवप्रथमक्रमे ॥ बभूवनहठादेवहठयोगोहिदुःखदः ॥ ९ ॥ अथेतरांशावसरेप्रणव स्यसमस्थितौ ॥ निष्कंपकुंभकोनामप्राणानामभवत्क्रमः ॥ १० ॥ नबहिर्नांतरेनाधोनोर्ध्वेनाशासुतत्र ते ॥ संक्षोभमगमन्प्राणाआपःसंस्तंभिताइव ॥ ११ ॥ दग्धदेहपुरोवह्निःशशामाशनिवत्क्षणात् ॥ अ दृश्यतसितंभस्मशारीरंहिमपांडुरम् ॥ १२ ॥

अर्थ—तबतक यह अवस्था प्राणके प्रथम क्रममें भावनासे हुई न कि हठसे क्योंकि हठयोग अति दुःखदायी है ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर प्रणवके अर्ध अर्थात् उकार भागके गंभीर उच्चारणके अवसरमें प्राणोंकी समान स्थितिमें निश्चल कुंभक नामसे प्रसिद्ध प्राणोंका क्रम हुआ ॥ १० ॥ उससमय नासिकाके छिद्रोंमें न बाहर, न अन्तरालमें, न नीचे और न ऊपर वे प्राण संक्षोभको ऐसे प्राप्त हुये जैसे रूके हुये जल ॥ ११ ॥ और देहरूप नगरको भस्म करनेवाली अग्नि क्षणमेंही ऐसे शांत होगई जैसे विद्युत् और हिमकेसमान गौर शरीरका भस्म देख पडा ॥ १२

यत्रकर्पूरशय्यायांसुप्तानीवसुखोचितम् ॥ शरीरास्थीनिलक्ष्यंतेनिष्पंदानिसितानिच ॥ १३ ॥ तद्भस्मप वनानीतंसास्थिवायुरयोजयत् ॥ स्वदेहेभृशमुत्सन्नेस्त्रिनेत्रव्रतवानिव ॥ १४ ॥ तच्चंडपवनोद्भूतमावृत्त्य गगनंक्षणात् ॥ शरदीवाभ्रमिहिकाक्वापिभस्मास्थिमव्ययौ ॥ १५ ॥ यावदित्थमवस्थैषाप्रणवस्यापरे क्रमे ॥ बभूवनहठादेवहठयोहिदुःखदः ॥ १६ ॥

अर्थ—जिस अवस्थामें सुखके उचित कर्पूरकी धूलिसे रचित शय्यापर सोते हुये चेष्टारहित तथा श्वेतवर्ण शरीरकी अस्थि (हड्डियां) भावनासे लक्षित होती हैं ॥ १३ ॥ महावायुसे उर्ध्वदेशमें लाये उस अस्थिसहित भस्मको ऊर्ध्ववाही प्रचंड पवन जो की महादेवके समान भस्म व्रतधारी है उसने तपस्वीके समान अति कृश अपने शरीरपर धारण किया ॥ १४ ॥ प्रचण्ड पवनसे आविर्भूत वह अस्थिसहित भस्म क्षणभरमें आकाशको व्याप्त करके न जाने कहां इसप्रकार चली गई जैसे शरदृऋतुमें मेघका कुहिरा ॥ १५ ॥ जबतक प्रणवके दूसरे क्रममें भावनासे हुई न कि हठसे क्योंकि हठयोग दुःखदायी होताहै ॥ १६ ॥

ततस्तृतीयावसरेप्रणवस्योपशांतिदे ॥ पूरणात्पूरकोनामप्राणानामभवत्क्रमः ॥ १७ ॥ अस्मिन्नवसरे प्राणाश्चेतनामृतमध्यगाः ॥ व्योम्निशीतलतामीयुर्हिमसंस्पर्शसुंदरीम् ॥ १८ ॥ क्रमाद्गगनमध्यस्थाश्चं

द्रमंडलतांययुः ॥ धूमागगनकोशस्थाःशीतलांबुदतामिव ॥ १९ ॥ कलाकलापसंपूर्णेतेतस्मिंश्चंद्रमं डले ॥ पुण्यराशाविवापूर्णेरसायनमहार्णवे ॥ २० ॥

अर्थ—इसके पश्चात् प्रणवके शांतिदायक तृतीय अवसरमें पूरण करनेसे प्राणोंका पूरक नाम क्रम हुआ ॥ १७ ॥ इस अवसरमें जीव चेतनाके अमृतमें स्थित प्राण हिमके स्पर्शके समान सुन्दर शीतलताको वाह्य आकाशमें प्राप्त हुये ॥ १८ ॥ और क्रमसे गगनके मध्यमें स्थित चंद्रमण्डलताको ऐसे प्राप्त हुये जैसे आकाशके कोशमें धूम शीतल भाव मेघको ॥ १९ ॥ अमृतमय कलाओंके समूहसे पूर्णपुण्यकी राशिके तुल्य और अमृतसे पूर्ण महा समुद्रके समान उस चन्द्रमंडलमें ॥ २० ॥

रसायनमयाधाराःसंपन्नाःप्राणवायवः ॥ मणियष्टिसमाकाराजालेष्विदोरिवांशवः ॥ २१ ॥ सापपातांबराद्धाराशेषेशरीरभस्मनि ॥ रसायनीहरशिरःपतितेवसुरापगा ॥ २२ ॥ उदभूदिंदुबिंबाभंचतुर्बाहुवपुस्तया ॥ प्रस्फुरन्मंदरादब्धेःपारिजातइवद्रुमः ॥ २३ ॥ उद्दालकशरीरंतन्नारायणतयोदितम् ॥ प्रफुल्लनेत्रवक्त्राब्जमाबभौदीप्तिसुंदरम् ॥ २४ ॥

अर्थ—वे प्राणवायु अमृतमय किरण ऐसे होगये जैसे जाल (छान छप्परके छिद्र) के भीतर चन्द्रमाके किरण स्फटिक मणिके दण्डाकार होजाती हैं ॥ २१ ॥ पवनसे उठानेसे शेष जो शरीरकी भस्महै उसपर वह अमृत वाहिनी धारा ऐसे गिरी जैसे महादेवके शिरपर गंगाजी ॥ २२ ॥ उससमय उस धारासे चन्द्रमाके बिम्बके समान शोभायमान चतुर्भुजाधारी (विष्णु) का शरीर ऐसे प्रकट हुआ जैसे जाज्वल्यमान मन्दराचलसहित समुद्रसे पारिजाताका वृक्ष ॥ २३ ॥ विष्णुभगवान्के रूपसे उदयको प्राप्त, विकसित नेत्र मुखरूप कमलसे शोभित और दीप्तिसे अति सुन्दर वह उद्दालकका शरीर शोभाको प्राप्त हुआ ॥ २४ ॥

रसायनमयाःप्राणास्तच्छरीरमपूरयन् ॥ सलिलौघइवसरोवृक्षंमधुरसाइव ॥ २५ ॥ अंतःकुंडलिनींप्राणाःपूरयामासुरादृताः ॥ चक्रानुवर्त्तप्रसृतांपयांसीवसरिद्वराम् ॥ २६ ॥ प्रकृतस्थंबभूवास्यतच्छरीरं द्विजन्मनः ॥ प्रावृट्शरीरविगमेधौतंतलमिवावनेः ॥ २७ ॥ अथपद्मासनगतःकृत्वादेहेस्थितिंदृढम् ॥ आलानइवमातंगंनिबद्धेंद्रियपंचकम् ॥ २८ ॥

अर्थ—अमृतमय वे प्राण उद्दालकके शरीरको ऐसे नष्ट किया जैसे जलके प्रवाह तडागको और वसन्तके रस वृक्षको ॥ २५ ॥ अन्तःकरणकी कुण्डलिनीको आदरयुक्त उन अमृतमय प्राणोंने ऐसे पूरित किया जैसे आवर्तों (भौंरहों) से बहती हुई गंगाजीको जलके प्रवाह ॥ २६ ॥ जैसे शरदृऋतुमें अन्तिम वृष्टिसे धोया हुआ और शीघ्र शुष्क तथा वर्षाकालके पंक शैवालादिसे दूषित अपने पूर्वाकारके नष्ट होजानेसे पृथिवीका तल प्रसन्न और निर्मल होकर व्यवहारियोंके प्रकृत यात्राका उपयोगी होताहै ऐसेही दहन तथा प्लवन (अमृतमय आदि दृशाभें प्राप्ति) आदि भावनासे शुद्ध इस उद्दालक ब्राह्मणका शरीर पाप रहित होनेसे प्रकृत समाधिरूप कार्यके योग्य हुआ ॥ २७ ॥ इसके पश्चात् पद्मासनपर विराजमान होकर देहमें दृढ स्थितिको करके और पांचों इन्द्रियोंको ऐसे बांधा जैसे श्रृंखला (जंजीर) में मत्त मातंग ॥ २८ ॥

निर्विकल्पसमाध्यर्थंव्यवसायमुपाददे ॥ स्वभावंस्वच्छतांनेतुंशरत्कालइवामलम् ॥ २९ ॥ प्रशांतवातहरिणमाशादिगणगामिनम् ॥ चितयाहृदयंनिन्येदूराद्दज्जवेधकीलकम् ॥ ३० ॥ धावमानमधोमत्तंचित्तंविमलमाकुलम् ॥ बलात्संरोधयामाससेतुर्जलमिवद्रुतम् ॥ ३१ ॥ निमिमीलहृशावर्द्धपरिपक्ष्मलपक्ष्मके ॥ निस्पंदतारामधुरेसंध्याकालइवांबुजे ॥ ३२ ॥

अर्थ—इसके अनंतर निर्विकल्प समाधिके अर्थ तथा शरदृऋतुके समान अपने स्वभावको (मनको) निर्मल तथा स्वच्छ करनेके अर्थ उद्दालक मुनिने उद्योग किया ॥ २९ ॥ और आशा तृष्णा लोभादिकी ओर गामी अपने स्वभावको प्रशान्त प्राणरूप हरिणसहित चित्तको स्वच्छ करनेका उद्योग किया उससमय पूर्वकालमें अनुभव किये पुत्र भार्या तथा गृह आदिकी चिन्ता ऐसे दूर लेगई जैसे अदृढतासे गाडे हुये अश्वबंधनके कीलकादिको उनके खींचनेवाली रस्सी ॥ ३० ॥ विषयकी ओर दौडते हुये मत्त और व्याकुल चित्तको निर्मल करके बलसे ऐसे रोका जैसे बहनेकी ओर उन्मुख जलको पुल ॥ ३१ ॥ दोनों ओरसे पलकयुक्त, और तारा (पुतली) के निश्चल होनेसे सन्ध्याकालके समान सुन्दर दोनों नेत्रोंको आधा मूंद लिया ॥ ३२ ॥

सौम्यतामनयन्मौनीप्राणापानजवंमुखे ॥ श्वसनंश्रेयसेदेशेप्रशस्तःसमग्रीयथा ॥ ३३ ॥ तिलेभ्यइवतैलानिपृथक्चक्रेप्रयत्नतः ॥ इंद्रियाणींद्रियार्थेभ्यःकूर्मोगानीवगोपयन् ॥ ३४ ॥ बाह्यस्पर्शानशेषेणजहौ

दूरेसधीरधीः ॥ सहसाकुंडकच्छन्नोमणिर्दूरत्विषोयथा ॥ ३५ ॥ विलीनानांतरांश्चक्रेस्पर्शानुज्झितद र्शनात् ॥ रसान्विटपकोशस्थान्मार्गशीर्षइवद्रुमः ॥ ३६ ॥

अर्थ—मौन व्रतधारी उद्दालकने प्राण अपानके वेगसे मुखपर ऐसी शान्तता प्राप्त की जैसे चक्रवर्तियोंका जन्मसमय जगत्के कल्याणके अर्थ शुभ जनानेके लिये उस देशके वायुको शीतल मन्द और सुगन्ध गुणयुक्त करताहै ॥ ३३ ॥ जैसे तिलसे तैल पृथक् किया जाताहै ऐसे ही अपने इन्द्रियोंको कछुयेके अंगके समान छिपाते हुये विषयोंसे यत्नसे पृथक् किया ॥ ३४ ॥ उस धीरबुद्धिने बाह्य विषयोंको सम्पूर्ण रीतिसे दूरहीसे ऐसे त्यागा जैसे छोटी कोठरीमें ढकाहुआ माणि दूरकी दीप्तियोंको त्यागताहै ॥ ३५ ॥ आत्मतत्वके दर्शनसे मनोवासनारूप विषयोंको ऐसे लीन किया जैसे मार्गशीर्षका वृक्ष वृक्षके कोशमें स्थित रसोंको ॥ ३६ ॥

रुरोधगुदसंकोचान्नवद्वारानिलानथ ॥ मुखसंस्थगितःकुंभोरंध्रकोशानिवेतरान् ॥ ३७ ॥ स्वात्मरत्नप्र काशाढ्यांस्पष्टांकुसुमलांछिताम् ॥ दधारकंधरांधीरोमेरुःशृंगशिखामिव ॥ ३८ ॥ बभारहृदयाकाशेम नःसंयममागतम् ॥ विंध्यखातइवोन्मत्तंगजंयुक्तिवशीकृतम् ॥ ३९ ॥ शरन्नभोवदासाद्यनिर्मलामति सौम्यताम् ॥ जहारपरिपूर्णाब्धेर्निर्वातस्याचलांश्रियम् ॥ ४० ॥

अर्थ—पादकी एडी गुदाके स्तम्भन नव (९) इन्द्रियद्वारोंके पवनोंको ऐसे रोधन किया जैसे मुखमें भली-भांतिसे बन्धा जलपूर्ण घटवायुके न प्रवेश करनेसे अन्य छिद्रोंके कोशोंको रोकताहै ॥ ३७ ॥ अपने आत्मारूप रत्नसे पूर्ण, रजोगुण तमोगुणके आवरणके अभावसे स्वच्छ और प्रसन्न मुखकमलसे चिन्हित ग्रीवाको ऐसे धारण किया जैसे सुमेरू अपने शिखाकी चोटीको ॥ ३८ ॥ धारणा, ध्यान और समाधिकी ओर अभिमुख और धारणा आदि युक्तिसे वशीकृत अपने मनको हृदयाकाशमें ऐसे धारण किया जैसे उन्मत्त गजको विन्ध्याचलकी खन्दक ॥ ३९ ॥ शरत्कालके आकाशकी निर्मलताके समान सौम्यताको पाकर वायुरहित परिपूर्ण समुद्रकी निश्चल शोभाको हरलिया ४०

क्षुधावातिविकल्पौघान्प्रतिभासमुपेयुषः ॥ पुरःपरिस्फुरद्रूपान्मशकानिवमारुतः ॥ ४१ ॥ आगच्छतो यथाकामंप्रतिभासान्पुनःपुनः ॥ अच्छिनन्मनसाशूरःखड्गेनेवरणेरिपून् ॥ ४२ ॥ विकल्पौघेपराहृने सोपश्यद्धृदयांबरे ॥ तमश्छन्नविवेकार्कलोलकज्जलमेचकम् ॥ ४३ ॥ तमप्युन्मार्जयामाससम्यक्स्वां तविवस्वता ॥ सम्यग्ज्ञानोदितेनाशुपवनेनेवकज्जलम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—ब्रह्माकार वृत्तियोंके मध्य २ में विच्छेद करनेवाले विपरीत भावनाके विकल्पके समूहोंको उसने उडाया जैसे सम्मुख उडनेवाले मच्छरोंको वायु ॥ ४१ ॥ पुनः २ आनेवाले बिकल्पोंके प्रतिभासोंको उसने इसप्रकार छेदन किया जैसे शूरवीर रणमें खड्गसे शत्रुओंको ॥ ४२ ॥ विकल्पोंके समूहके नष्ट होनेपर उसने हृदयाकाशमें चंचल कज्जलके समान कृष्णवर्ण, और तमोगुण प्रेरित अन्धकारसे आच्छादित विवेकरूपी सूर्य्यके देखा ४३ सत्वगुणकी वृद्धिसे उत्तम ज्ञानसे उदयको प्राप्त मनरूप सूर्यसे उस अन्धकारको भी ऐसे नष्ट किया जैसे प्रकाशसे ४४

तमस्युपरतेकांततेजःपुंजंददर्शसः ॥ शार्वरेतिमिरेशांतेप्रातःसंध्यामिवांबुजम् ॥ ४५ ॥ तत्स्थलावस्थ लाब्जानांवनंबालइवद्विपः ॥ अपिबच्चाप्यसृक्पूरंवेतालइववेगतः ॥ ४६ ॥ तेजस्युपरतेतस्यघूर्णगानंम नाग्मुनेः ॥ निशाब्जवदगान्निद्रांलोलंक्षीबवदेववा ॥ ४७ ॥ मेघमालामिवमरुद्व्यालोनीलाब्जिनीमिव ॥ यामिनीमिवतीक्ष्णांशुस्तामप्याशुत्ललावसः ॥ ४८ ॥

अर्थ—तमोगुणरूप अन्धकारके नष्ट होनेपर उसने रमणीय तेजके पुंजको ऐसे देखा जैसे रात्रिके अन्धकारके नष्ट होनेपर प्रातःकालकी सन्ध्याको कमल ॥ ४५ ॥ उस तेजके पुंजने स्थल कमलोंके बन (रजोगुणकी वृत्तियोंके समूह) को बाल हस्तीके समान छेदन करदिया, और वेतालके सदृश रुधिरके प्रवाह (रजोगुणकी धारा) को वेगसे पी भी लिया ॥ ४६ ॥ अनन्तर उस तेजके उपराम होनेपर निद्राके तरंगोंसे चंचल और भ्रमणशील मुनिका मन निद्राको ऐसे प्राप्त हुआ जैसे रात्रिका कमल वा मदिरासे मत्त पुरुष ॥ ४७ ॥ उस निद्राकोभी विवेकके प्रबोधसे शीघ्र ऐसे नष्ट किया जैसे मेघकी मालाको वायु, नीलकमलिनीको गज, और रात्रिको सूर्य्य ॥ ४८ ॥

निद्राव्यपगमेतस्यभावयामासतन्मनः ॥ व्योमश्यामलदृग्जंतुर्नभसीवशिखंडकान् ॥ ४९ ॥ पयोदइव तापिच्छंनीहारमिवमारुतः ॥ दीपस्तमइवाच्छात्मतदप्याशुममार्जसः ॥ ५० ॥ व्योमसंविद्विनष्टायां मूढंतस्याभवन्मनः ॥ निद्रायांतुविलीनायांमैरेयमदवानिव ॥ ५१ ॥ मोहमप्येषमनसस्तंममार्जमहाश यः ॥ यामिनीजनितंजाड्यंभुवनादिवभास्करः ॥ ५२ ॥

अर्थ—निद्राके नष्ट होनेपर उसका मन नानाप्रकारकी वासनाओंसे कल्पित रूपवाले आकाशको ऐसे भावनाकी जैसे सूर्य्यके आतपके संमुख श्याम आकाशको देखनेवाला जीव मोर आदिके पंखको ॥ ४९ ॥ मेघ जैसे मालतीके पुष्पको, वायु कुहिराको, दीप अंधकारको नष्ट करताहै ऐसेही उसने स्वच्छ स्वभाव आकाशको भी शुद्ध किया ॥ ५० ॥ उस आकाशके ज्ञानके नष्ट होनेपर उद्दालकका मन ऐसे मूढ होगया जैसे निद्राके नष्ट होनेपर मदिरासे मत्तका ॥ ५१ ॥ उस उदार चित्त उद्दालकने मनके मोहकोभी शुद्ध करके ऐसे दूर किया जैसे रात्रिके अन्धकारको ब्रह्माण्डसे सूर्य्य ॥ ५२ ॥

ततस्तेजस्तमोनिद्रामोहादिपरिवर्जितम् ॥ कामप्यवस्थामासाद्यविशश्राममनःक्षणम् ॥ ५३ ॥ विश्रम्याशूपपातांगसंविदंविश्वरूपिणीम् ॥ सेतुरुद्धसरोवारिप्रतीपंस्वमिवास्पदम् ॥ ५४ ॥ चिरानुसंधानवशात्स्वदनाच्चस्वसंविदः ॥ ततश्चिन्मयतामागाद्धेमनूपुरतामिव ॥ ५५ ॥ चित्तत्वमथसंत्यज्यचित्तंचित्तत्त्वतांगतम् ॥ अन्यदेवबभूवाशुपंकःकुंभस्थितोयथा ॥ ५६ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् तेज, तम, निद्रा, और मोह आदिसे शून्य इसका मन वाणीसे अगोचर अवस्था (निर्विकल्प समाधि) को प्राप्त होकर क्षणभर विश्राम किया ॥ ५३ ॥ हे प्रिय रामजी ! उस अवस्थामें एक क्षण विश्राम करके उसका मन बाह्य प्रपंचकी वृत्तिमें ऐसे गिरा जैसे तडागका जल नालीके द्वारा खेतकी क्यारीमें प्रवेश करायाहुआ खेतकी क्यारीको पूर्ण करके बंधसे रोका हुआ उलटे प्रवाहसे बहताहुआ पुनः अपने पूर्व स्थान तडागमें गिरताहै ॥ ५४ ॥ उसके अनन्तर चिरकालके अनुसंधानसे और समाधिमें आत्मानन्दके आस्वादसे चिद्रूपताको वह उद्दालक ऐसे प्राप्तहुआ जैसे सुवर्ण नूपुरताको ॥ ५५ ॥ इसके पश्चात् उद्दालकके चित्तने अपनी चित्तता दशाको त्यागकर चित्‌रूप जो तत्वहै उस दशाको प्राप्त होकर पूर्व अवस्थासे अन्यरूपको शीघ्रही ऐसे प्राप्तहुआ जैसे घटमें जलका कीचड जलके सूख जानेपर घटमें लिप्त होकर घटरूपताको ॥ ५६ ॥

चेत्यंसंत्यज्यचिच्छुद्धाचित्सामान्यमथाययौ ॥ त्यक्तवीच्यादिभेदोब्धिर्वाःसामान्यमिवैकधीः ॥ ५७ ॥ त्यक्तभूतौघमननंततोविश्वभरंमहत् ॥ चिदाकाशंततःशुद्धंसोभवद्बोधमागतः ॥ ५८ ॥ तत्रप्रापदथानंदंदृश्यदर्शनवर्जितम् ॥ अनंतसुखमास्वादंरसायनमिवार्णवम् ॥ ५९ ॥ शरीरात्समवेतोसौकामप्यत्र निमागतः ॥ सत्तासामान्यरूपात्माबभूवानंदसागरः ॥ ६० ॥

अर्थ—इसके पश्चात् वृत्तिगत चित् अपने प्रकाश्य विषयाकारको छोडके सब वृत्तियोंकी साधारणरूपसे साक्षिणी चित् रू[illegible] प्राप्त हुई क्योंकि उस चितकी उपाधि जो बुद्धिहै वह चित्‌के साथ एकरस ताको प्राप्त हुई है ॥ ५७ ॥ अनन्तर उद्दालक उस समाधिसे तत्व साक्षात्काररूप बोधको प्राप्त होकर सब जगत्‌को अधिष्ठान द्वैत प्रपंचसेरहित, शुद्ध और महत् चिदाकाशरूपताको प्राप्त हुआ ॥ ५८ ॥ उस अवस्थामें दृश्य दर्शनसे वर्जित, ब्रह्मादिकसे आस्वादित सब विषयसुख कणोंका आधारभूत समुद्रके समान स्थित उत्तम आनन्दको प्राप्त हुआ ॥ ५९ ॥ इसके पश्चात् शरीरसे भलीभांति शुद्ध होकर पृथक्‌रूपताको प्राप्त आनन्दका समुद्र वह उद्दालक परमात्माकी सत्ता सामान्यरूपताको प्राप्त हुआ ॥ ६० ॥

द्विजचेतनहंसोसावानंदसरसिस्थितः ॥ अतिष्ठच्छरदच्छेखेकलापूर्णइवोडुपः ॥ ६१ ॥ बभूवावातदीपाभोलिपिकर्मार्पितोपमः ॥ वीतवीच्यंबुधिप्रख्योवृष्टमूकांबुदस्थितिः ॥ ६२ ॥ अथैतस्मिन्महालोकेतिष्ठन्नुद्दालकश्चिरम् ॥ अपश्यद्व्योमगान्सिद्धानमरानपिभूरिशः ॥ ६३ ॥ आगतानिविचित्राणिसिद्धिजालानिचाभितः ॥ शक्रार्कपददातॄणिनीरंध्राण्यप्सरोगणैः ॥ ६४ ॥

अर्थ—उस ब्राह्मणका जीव चेतनरूप हंस आनंदरूप तडागमें स्थित इसप्रकार शोभित हुआ जैसे सरदृतुके स्वच्छ आकाशमें पूर्ण चन्द्रमा ॥ ६१ ॥ और उस समय उसकी स्थिति निर्वात दीप, भित्तिमें लिखित चित्र तरङ्गरहित समुद्र और अन्तिम वृष्टि करके पश्चात् मूक शरदृतुके मेघके तुल्य होगई ॥ ६२ ॥ इसके अनन्तर उस महाप्रकाशमें उद्दालक चिरकालतक आकाशचारी सिद्धोंको और अनेक देवताओंकोभी देखा ॥ ६३ ॥ अप्सराओंके गणोंसे व्याप्त इन्द्र तथा सूर्य्यपदको देनेहारे चित्रविचित्र सिद्धियोंके समूह आके प्राप्त हुये ॥ ६४ ॥

तानिनादरयांचक्रेसिद्धिवृंदानिसद्विजः ॥ गंभीरमतिरक्षुब्धोविलासानिवशीशवान् ॥ ६५ ॥ सिद्धिसार्थमनादृत्यतस्मिन्नानंदमंदिरे ॥ अतिष्ठदयपण्मासान्दिक्तटेर्कइवोत्तरे ॥ ६६ ॥ जीवन्मुक्तपदंतत्त्याव त्संप्राप्तवान्द्विजः ॥ तत्रसिद्धाःसुराःसाध्याःस्थिताब्रह्महरादयः ॥ ६७ ॥ आनंदेपरिणामित्वादनानंदपदंगतः ॥ नानंदेननिरानंदेततस्तत्संविदाबभौ ॥ ६८ ॥

अर्थ—उन सिद्धियोंके समूहको उस ब्राह्मणने ऐसे नहीं आदर किया जैसे गंभीरबुद्धि और उदारचित्त मनुष्य बालकोंकी क्रीडाको ॥ ६५ ॥ वह ब्राह्मण सिद्धियोंके समूहका निरादर उस समाधिरूप आनन्दके मन्दिरमें छ ६ मासपर्य्यन्त इसप्रकार स्थितरहा जैसे उत्तरायण दिशाके तटमें सूर्य्य ॥ ६६ ॥ वहां पर्य्यन्त उत्तरोत्तर सर्वोत्कृष्ट जीवन्मुक्त पदको उस ब्राह्मणने प्राप्त किया जहांपर कि सिद्ध, साध्य, और ब्रह्माआदि देवस्थित हैं ॥ ६७ ॥ विषयके आनन्दोंमें चित्तका परिणाम होनेसे नहीं है उत्तम आनन्दयुक्त आत्मानन्द पदमें वह प्राप्तहुआ इसलिये उसका आत्मा चैतन्य न तो विषयियोंके क्षुद्र आनन्दमें और न दुःखमें स्थितथा किन्तु स्वप्रकाश अपने पूर्णस्वरूपमें शोभितहुआ ६८

क्षणंवर्षसहस्रंवातत्रलब्ध्वास्थितिंमनः ॥ रतिमेतिनभोगौघेदृष्टस्वर्गइवावनौ ॥ ६९ ॥ तत्पदंसागतिः शांतातच्छ्रेयःशाश्वतंशिवम् ॥ तत्रविश्रांतिमाप्तस्यभूयोनोबाधतेभ्रमः ॥ ७० ॥ तत्पदंसाधवःप्राप्यं दृश्यदृष्टिमिमांपुनः ॥ नायांतिखदिरोद्यानंलब्ध्वैचैत्ररथाइव ॥ ७१ ॥ तांमहानंदपदवींचित्तादासाद्यदेहिनः ॥ दृश्यंनबहुमन्यंतेराजानोदीनतामिव ॥ ७२ ॥

अर्थ—क्षणभर अथवा सहस्रों वर्षपर्य्यन्त उस समाधिके आनन्दमें जिसने स्थिति पायाहै उसका मन भोगोंके समूहमें ऐसे नहीं प्रीति करता जैसे स्वर्गका विभव देखनेवाला पुरुष भूलोकके सुखमें नहीं प्रीति करता ॥ ६९ ॥ वही (निर्विकल्प समाधिमें ब्रह्मानन्दका सुख) परमपदहै; वही शान्तगतिहै, और वही नित्य कल्याणहै, क्योंकि वहांपर विश्राम पाये हुयेको पुनः भ्रम बाधा नहीं करता ॥ ७० ॥ साधुलोग उसपदको प्राप्त होकर पुनः २ इस दृश्यकी दृष्टिमें इसप्रकार नहीं आते जैसे नन्दनवनमें प्राप्त पुरुष खदिरके वनमें ॥७१॥ श्रवण मनन तथा समाधिसे शुद्ध चित्त उस महानन्दपदवीको प्राणी जन पाकर दृश्य जगत्को अधिक ऐसे नहीं मानते जैसे राजालोग दीनताको ॥७२॥

चेतस्तत्पदविश्रांतंबुद्धंदृश्यदशांप्रति ॥ कदर्थाद्बोधमायातिनायात्येवाथवानघ ॥ ७३ ॥ उद्दालकोत्र षण्मासान्दूरोत्सारितसिद्धिभूः ॥ उषित्वोन्मिषितोभोदकोशादर्कोमधाविव ७४ ॥ ददर्शसंप्रबुद्धात्मापुनःपरमतेजसः ॥ प्रणामलालसाःस्निग्धाश्चंद्रबिंबवपुर्द्धराः ॥ ७५ ॥ रमणीगौरमंदाररेणुभ्रमरचामराः ॥ स्फुरत्पताकापटलाढ्यविमानपरंपराः ॥ ७६ ॥

अर्थ—हे पापरहितरामजी ! आत्मज्ञान जिस चित्तको होगयाहै वह समाधिसे व्युत्थानदशामें दूसरोंसे बडे२ प्रयत्नोंसे आताहै वह भी षष्ठभूमिकामें स्थित न कि सप्तम भूमिकामें स्थित योगी ॥ ७३ ॥ उद्दालक सिद्धियोंकी भूमिको दूर फेककर छ मासपर्य्यन्त इसी दशामें निवास करके व्युत्थानको प्राप्त हुआ जैसे चैत्रके मासमें मेघके कोशसे सूर्य ॥ ७४ ॥ उस ज्ञानी उद्दालकने परमतेजस्वी, प्रणामकी लालसायुक्त स्नेह करनेवाले और चन्द्रमाके बिंबके समान शरीर देवताओंको ॥ ७५ ॥ गौरवर्ण मन्दारके पुष्पोंकी रेणुसे आच्छन्न भ्रमर और चामरसहित देवांगना गणोंको तथा पताकाओंके समूहसहित विमानोंको ॥ ७६ ॥

अस्मदादीन्मुनीन्दर्भपवित्रांककरांबुजान् ॥ विद्याधरीभिर्वलितान्विद्याधरपतीनपि ॥ ७७ ॥ तेतमूचुर्महात्मानमुद्दालकमुनिंतदा ॥ प्रसादेनप्रणामान्नोभगवन्नवलोकय ॥ ७८ ॥ आरुह्येदंविमानंत्वमेहित्रैविष्टपंपुरम् ॥ स्वर्गएवहिसीमांतोजगत्संभोगसंपदाम् ॥ ७९ ॥ आकल्पमुचितान्भुंक्ष्वभोगानभिमतान्विभो ॥ स्वर्गादिफलभोगार्थमेवाशेषतपःक्रियाः ॥ ८० ॥

अर्थ—और हमसे आदि लेके कुशाओंसे पवित्र कर कमलयुक्त मुनियोंको तथा विद्याधारियोंसे आवृत्त (घिरेहुये) विद्याधरोंकोभी उद्दालकने पुनः देखा ॥ ७७ ॥ उन देवता तथा मुनियोंने उस महात्मा उद्दालकमुनिसे कहा हे भगवन् ! प्रणामसे अनुग्रह करके हम लोगोंको देखिये ॥ ७८ ॥ इस विमानपर आरूढ होके तुम देवताओंके नगरमें आओ क्योंकि संसारके भोगोंकी तथा सम्पत्तियोंकी अवधि स्वर्गही है ॥ ७९ ॥ हे प्रभो ! कल्पपर्य्यंत अपने अभिलषित भोगोंको भोगो, क्योंकि स्वर्गके फलोंके भोगनेहीके अर्थ तप और यज्ञादिक क्रियाहैं ॥ ८० ॥

हारचामरधारिण्योविद्याधरवरांगनाः ॥ पश्येमास्त्वामुपासीनाःकरिण्यःकरिणंयथा ॥ ८१ ॥ कामोधर्मार्थयोःसारःकामसाराःसुयोषितः ॥ वसंतइवमंजर्यःस्वर्गएवभवंतिताः ॥ ८२ ॥ एवंकथयतःसर्वानतिथीनित्यसौमुनिः ॥ परिपूज्ययथान्यायमतिष्ठद्गतसंभ्रमम् ॥८३॥ नाभ्यनंदन्नतत्याजतांविभूतिंसधीरधीः ॥ भोसिद्धाव्रजतेत्युक्त्वास्वव्यापारपरोभवत् ॥ ८४ ॥

अर्थ—देखिये ! हार तथा चामर धारण किये हुये श्रेष्ठ विद्याधरोंकी अंगनाये तुमारी उपासना ऐसे करती हुई स्थित हैं जैसे हस्तिनी हस्तीकी ॥ ८१ ॥ हे ब्रह्मन् ! धर्म तथा अर्थका मुख्य फल कामही है और काममें मुख्य तत्त्व

उत्तम स्त्री ऐसे हैं जैसे वसन्तमें लता और वे उत्तम स्त्रियां स्वर्गमेंही होती हैं ॥ ८२ ॥ इसप्रकार कहते हुये उन सब देवताओंको यह मुनि अतिथि मानके यथा योग्य सबकी पूजा करके भ्रमसे शून्य स्थितरहा ॥ ८३ ॥ न तो उस विभूतिको उस धीर बुद्धि ऋषिने प्रसन्न किया और न त्यागा किन्तु हे सिद्धलोग! जाइये ऐसा कहके अपने समाधिरूप व्यापारमें तत्पर हुआ ॥ ८४ ॥

अथस्वधर्मनिरतंभोगेष्वरतिमागतम् ॥ तमुपास्ययगुःसिद्धादिनैःकतिपयैःस्वयम् ॥ ८५ ॥ जीवन्मुक्तःसचमुनिर्विजहारयथासुखम् ॥ यावदिच्छंवनांतेषुमुनीनामाश्रमेषुच ॥ ८६ ॥ मेरुमंदरकैलासहिमवद्विंध्यसानुषु ॥ द्वीपोपवनदिक्कुंजजंगलारण्यभूमिषु ॥ ८७ ॥ ततःप्रभृतिसंप्राप्तपदमुद्दालकोद्विजः ॥ गुहासुगिरिकुक्षीणामवसद्ध्यानलीलया ॥ ८८ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् अपने समाधिरूप व्यापारमें तत्पर और भोगोंसेभी विरक्त उस ऋषिकी चिरकालतक प्रतीक्षा, प्रणाम, तथा प्रशंसा आदिसे उपासना करके सिद्धजन स्वयं चलेगये ॥ ८५ ॥ जीवन्मुक्त उस मुनिने अपनी इच्छापूर्वक वनोंमें मुनियोंके आश्रमोंमें भ्रमण किया ॥८६॥ मेरु, मन्दर, कैलास, हिमालय और विन्ध्यनाम पर्वतोंके शिखरोंपर द्वीप, उपवन, दिशाओंके कुंज, जंगल और महावनकी भूमियोंमें ॥ ८७ ॥ और पर्वतोंकी गुहाओंमें उसीसमयसे लेके उस उद्दालकमुनिने जीवन्मुक्त पदको प्राप्त कर अनायास ध्यानकी लीलासे निवास किया ॥ ८८ ॥

कदाचिदक्षमासेनकदाचिद्वत्सरेणच ॥ कदाचिद्वत्सरौघेणध्यानासक्तोव्यबुध्यत ॥ ८९ ॥ उद्दालकस्तदारभ्यव्यवहारपरोपिसन् ॥ सुसमाहितएवासौचित्तस्वैकत्वमागतः ॥ ९० ॥ चित्तस्वैकघनाभ्यासान्महाचित्त्वमुपेत्यसः ॥ बभूवसर्वत्रसमस्तेजस्सौरमिवावनौ ॥ ९१ ॥ चित्सामान्यचिराभ्यासात्सत्तासामान्यमेत्यसः ॥ दृश्येऽस्मिश्चित्ररविवन्नास्तमायान्नचोदयम् ॥ ९२ ॥ शमपरपदलाभप्राप्तिसंशांतचेतागलितजननपाशःक्षीणसंदेहदोलः ॥ शरदिखमिवशांतंव्याततंचोर्जितंचस्फुटममलमंचेतस्तद्वपुःसंबभार ॥ ९३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे उद्दालकविश्रांतिर्नामचतुष्पंचाशःसर्गः ॥ ५४ ॥

अर्थ—कभी एकमासमें, कभी एकवर्षमें और कभी वर्षोंके समूहमें आरूढ वह उद्दालक मुनि समाधिसे जागता था ॥ ८९ ॥ उस समयसेलेके चेतनकेसाथ एकताको प्राप्त उद्दालक मुनि व्यवहारमें तत्परभी परन्तु समाधिस्थितथा न कि अज्ञानीके सदृश विक्षेपयुक्तथा ॥ ९० ॥ अन्तःकरण और अन्तःकरणकी वृत्तिके साक्षी चेतनको पृथक् करके समाधिमें बार २ दर्शन करनेके अभ्याससे अपरिच्छिन्न चिद्भावको प्राप्त होकर सब भूतोंमें रागद्वेषके अभावसे समरूप ऐसे होगया जैसे पृथिवीपर सूर्यका तेज अर्थात् सर्वत्र ब्रह्मरूपके देखनेसे षष्ठभूमिकामें उसने प्रवेश किया ॥९१॥ साक्षी चित् (सर्वत्र साधारण चित्) का समाधिमें चिरकालतक अभ्यास करनेसे स्वप्रकाश निरतिशय आनन्द चित्रूपताको प्राप्त होकर वह उद्दालक इस दृश्यमें चित्रके सूर्यके समान न उदय और न अस्तको प्राप्त हुआ ॥९२॥ सर्वत्र शान्तिमय निरतिशय आनन्दपदवीकी प्राप्तिसे भलीभांति शान्तचित्त, इसी कारणसे सब कर्म बीजोंके क्षय होनेसे जन्ममरणके पाशसे वर्जित, उस उद्दालकने शरत्कालके आकाशके समान शान्त और अपरिच्छिन्न सदा सत्ताकी स्फूर्तिकी उत्कर्षतासे बलयुक्त, प्रत्यक्षरूप, निर्मल, तथा पूर्वदशाके विस्मरणसे चित्तरहित ब्रह्मस्वभावको प्राप्त शरीर धारण किया न कि पूर्वके समान उद्दालकका शरीर ॥ ९३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उपशमप्रकरणे उद्दालकविश्रान्तिर्नाम चतुःपंचाशः सर्गः ॥ ५४ ॥

पंचपंचाशः सर्गः ॥ ५५ ॥

इस ५५ के सर्गमें सत्ता सामान्यके लक्षण, और युक्तिसे उद्दालकके देहके त्यागका क्रम, तथा त्यागेहुये शरीरकी खिंखिनी अर्थात् चामुंडा देवीने अपना भूषण बनाया यह विषय वर्णन किया गया है ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ आत्मज्ञानदिनेनकार्कमत्संशयतृणानल ॥ अज्ञानदाहशीतांशोसत्तासामान्यमीशकिम् ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यदासंक्षीयतेचित्तमभावात्यंतभावनात् ॥ चित्सामान्यस्वरूपस्यसत्तासामान्यतातदा ॥ २ ॥ नूनंचेत्यांशरहिताचिद्यदात्मनिलीयते ॥ असद्रूपवदत्यच्छासत्तासामान्यतातदा ॥ ३ ॥ यदासर्वमिदंकिंचित्सबाह्याभ्यंतरात्मकम् ॥ अपलप्यस्थितेचेतःसत्तासामान्यतातदा ॥ ४ ॥

अर्थ—रामजी बोले–हे आत्मज्ञानरूप दिनके सूर्य्य, हे मेरे संशयरूप तृणके अनल, हे अज्ञान प्रेरित तीनों तापोंके दाहकी शान्तिके अर्थ चन्द्ररूप, तथा हे ईश सर्व कार्य समर्थ भगवन् ! सत्ता सामान्य क्या वस्तु है ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! जिससमय चित्सामान्यरूप विषयोंके संस्कारोंका सर्वथा अभाव होनेसे यह चित्त सर्व था क्षीण होजाताहै उससमय सत्ता सामान्यता कही जाती है ॥ २ ॥ निश्चयकरके विषयकी वृत्ति और विषयसेरहित चित् जब अपने बिम्ब चैतन्यमें लीन होती है उस समय उस बिंबके असत् रूपसे अधिकरणसहित आकाशकेसमान जो स्वच्छ सत्ताहै, वही सत्ता सामान्यहै ॥ ३ ॥ जिस समय चित्की वृत्तिमें अभिव्यक्त अखंडचेतन बाह्य तथा आभ्यंतर संपूर्ण जगत्का अपलापकरके केवल अपने स्वरूपसे स्थितरहै उससमय सत्ता सामान्यताहै ॥४॥

यदासर्वाणिदृश्यानिसत्तासामान्यवेदनम् ॥ स्वरूपेणस्वरूपाभंसत्तासामान्यतातदा ॥ ५ ॥ कूर्मोगानीवदृश्यानिलीयंतेस्वात्सनात्मनि ॥ अभावितान्येवयदासत्तासामान्यतातदा ॥ ६ ॥ दृष्टिरेषाहिपरमासदेहादेहयोःसदा ॥ मुक्तयोःसंभवत्येवतुर्यातीतपदोपमा ॥ ७ ॥ व्युत्थितस्यभवत्येषासमाधिस्थस्यचानघ ॥ ज्ञस्यकेवलमज्ञस्यनभवत्येवबोधजा ॥ ८ ॥

अर्थ—जिससमय सब भूतोंका अपने पारमार्थिक रूपसे अपने स्वरूप चिन्मात्रका अनुभव होताहै उससमय सत्ता सामान्यताहै ॥ ५ ॥ जिससमय ये समस्तभूत पदार्थ सहज स्वभावसे (विना प्रयत्न) अपने आत्मामें अपने आत्मासे आत्मामेंही ऐसे लीन होजातेहैं जैसे कूर्मके शरीर उससमय चित्की सामान्य सत्ता जानो यह स्थिति षष्ट भूमिकाकी है॥६॥दृढ अभ्यास होनेसे यही सप्तम भूमिकाकी रूढ दृष्टि होती है क्योंकि तुरीयातीत पदके तुल्यहै इसीसे सदेह मुक्त तथा विदेहमुक्तकी यह स्थिति समानहै दोनोंके स्वरूप स्थितिमें कोई विशेषता नहीं है ॥ ७ ॥ हे पापरहित रामजी ! यह दृष्टि पंचम आदि भूमिकामेंभी समाधिस्त पुरूषकी होती है, और सप्तम भूमिकामें रूढ पुरूषकी यह दृष्टि समाधिके विरहदशामें होती है, और बोधसे यह दृष्टि केवल ज्ञानीको होती है न कि कदापि अज्ञानीको ॥ ८ ॥

अस्यांदृशिस्थिताःसर्वेजीवन्मुक्तामहाशयाः ॥ सिद्धारसाइवभुविव्योमवीथ्यामिवानिलाः ॥ ९ ॥ अस्मत्प्रभृतयःसर्वेनारदाद्याश्वराघव ॥ ब्रह्मविष्णवीश्वराद्याश्वदृष्टावस्यांव्यवस्थिताः ॥ १० ॥ एतामालंब्यपदवीसमस्तभयनाशिनीम् ॥ उद्दालकोसाववसद्यावदिच्छंजगद्गृहे ॥ ११ ॥ अथकालेनबहुनाबुद्धिस्तस्यबभूवह ॥ विदेहमुक्तस्तिष्ठामिदेहंत्यक्त्वेतिनिश्चला ॥ १२ ॥

अर्थ—सब जीवन्मुक्त महात्मा इस दृष्टिमें स्थित होके भूमिमें पारद (पारे) के समान और आकाशमें वायुके समान रहतेहैं ॥ ९ ॥ हे रामजी ! इस दृष्टिमें हमसे आदि लेके सब ऋषि मुनि तो पृथिवीपर, नारद आदि आकाशमें तथा ब्रह्मा विष्णु और महादेवजी उससेभी ऊपरके लोकोंमें स्थितहैं ॥ १० ॥ समस्त भयोंको नाश करनेवाली इस पदवीका अवलम्बन करके इस उद्दालक ब्राह्मणने अपने प्रारब्धके क्षय पर्य्यन्त जगत्रूप गृहमें निवास किया ॥११॥ इसके पश्चात् बहुत कालमें उसकी यह दृढ बुद्धि हुई कि मैं इस देहको त्यागकर विदेहमुक्त होकर स्थित रहूं ॥ १२

एवंचिंतितवानद्रेर्गुहायांपल्लवासने ॥ बद्धपद्मासनस्तस्थावर्द्धोन्मीलितलोचनः ॥ १३ ॥ संयम्यगुदसंरोधाद्द्वाराणिनवचेतसः ॥ मात्रास्पर्शान्विचिन्वानोभावितस्वांगचिद्घनः ॥ १४ ॥ संरुद्धप्राणपवनःसमसंस्थानकंधरः ॥ तालुमूलतलालग्नजिह्वामूलोलसन्मुखः ॥ १५ ॥ नबहिर्नांतरेनाधोनोर्ध्वेनार्थेनशून्यके ॥ संयोजितमनोदृष्टिर्दंतैर्दंतानसंस्पृशन् ॥ १६ ॥

अर्थ—इसप्रकार दृढनिश्चययुक्त उद्दालक उस पर्वतकी कन्दरामें पल्लवके आसनपर आधानेत्र मून्दकर पद्मासन वांधकर स्थित हुआ ॥ १३ ॥ पदकी एडीसे गुदामार्गको रोंककर नौ (९) इन्द्रियद्वारोंका संयम करके चित्तसे शब्द स्पर्श आदिको एकत्र करके हृदयमें निवेश करते हुये, और हृदयमें प्रवेशित वृत्तियोंको अपने स्वरूपभूत चित्तके साथ एकरस करके चित्घनरूप स्थित हुआ ॥ १४ ॥ प्राणरूप पवनको रोकनेवाला समान स्थित कण्ठसे शोभित तथा तालुके मूलदेशमें अर्थात् कण्ठदेशमें कपाटके तुल्य जिव्हाके स्थापित करनेसे प्रसन्न मुख ॥ १५ ॥ दांतोंको दांतोंसे न स्पर्श करते हुये उस उद्दालकने न बाहर, न भीतर, न नीचे, न ऊपर, न रूपादि विषयोंमें और न शून्यमें अपने मन तथा दृष्टिको लगाया किन्तु चिन्मात्रमें स्थित तथा ॥ १६ ॥

प्राणप्रवाहसंरोधसमःस्वच्छाननच्छविः ॥ अंगचित्संविदुत्तानरोमकंटकितांगभूः ॥ १७ ॥ अंगचित्संविदाभ्यासाच्चित्सामान्यमुपाददे ॥ तदभ्यासादवापांतरानंदस्पंदमुत्तमम् ॥ १८ ॥ तदास्वादनतोलीनचित्सामान्यदशाक्रमम् ॥ विश्वंभरमनंतात्मसत्तासामान्यमाययौ ॥ १९ ॥ तस्थौसमसमाभोगःपरांविश्रांतिमागतः ॥ अनानंदसमानंदसुग्धसुग्धमुखद्युतिः ॥ २० ॥

अर्थ—हे प्रियरामजी ! प्राणोंके प्रवाहके निरोधसे सब देह और मन आदिकी चंचलतासे शून्य होनेसे समरूप, प्रसन्न मुख, और चिद्रूप, ब्रह्मानन्दके अनुभवसे रोमोंके सीधेखडे होजानेसे कण्टकित शरीररूप पृथिवीसहित उस ब्राह्मणने ॥ १७ ॥ अन्तःकरणके एक देशभूत वृत्तियोंके विलयके अभ्याससे अपने चित् सामान्यरूपमें प्रवेश किया, और बिंबभूत चित्मात्रके अभ्याससे हृदयमें सर्वोत्तम ब्रह्मानन्दको पाया अर्थात् ब्रह्मानन्दका अनुभव किया ॥ १८ ॥ उस चित्सत्ता (ब्रह्मानन्द) का अनुभव करनेसे स्वरूपको विस्मृत होके अपनेमें अनुगत नित्य प्रकाशरूप चित्सामान्य रूपताको प्राप्त, विश्वंभर अपरिच्छिन्न आत्मसत्ताको प्राप्त हुआ ॥ १९ ॥ समसे अति सम अर्थात् विक्षेपकी विषमतासे सर्वथा शून्यस्वरूप वह उद्दालक सर्वोत्तम आनन्दकी प्राप्तिसे अति सुन्दर मुखकी दीप्ति सहित होकर परम विश्रांतिको प्राप्त हुआ ॥ २० ॥

संशांतानंदपुलकःपदंप्राप्यामलंगतः ॥ चिरकालपरिक्षीणमननादिभवभ्रमः ॥ २१ ॥ बभूवसमहासत्वोलिपिकर्मार्पितोपमः ॥ समःकलावपूर्णनशरदच्छांबरेंदुना ॥ २२ ॥ उपशशामशनैर्दिवसैरसौकतिपयैःस्वपदेविमलात्मनि ॥ तरुरसःशरदंतइवामलेरविकरौजसिजन्मदशातिगः ॥ २३ ॥ गतसकलविकल्पोनिर्विकारोभिरामःसकलमलविलासोपाधिनिर्मुक्तमूर्त्तिः ॥ विगलितसुखमाद्यंतत्सुखंप्रापयस्मिन्स्तृणमिवजलराशावूह्यतेशक्रलक्ष्मीः ॥ २४ ॥

अर्थ—जीतेही परमपदको पाकर रोमांचादिसे भी शून्य, प्रारब्धरूप मलके क्षयके निर्मल पदको प्राप्त, तथा चिरकालसे संकल्पादि संसारके भ्रमसेरहित होगया ॥ २१ ॥ वह महात्मा उद्दालक चित्र लिखितके समान, और कलाओंसे पूर्ण शरदकालके स्वच्छ आकाशमें स्थित चन्द्रमाके सदृश शोभित हुआ ॥ २२ ॥ हे रामजी ! शरदृतुके अन्त अर्थात् हेमन्तमें वृक्षोंका रस जैसे सूर्य्यके किरणोंमें शान्त होताहै ऐसेही थोडे ही दिनोंमें अपने विमलपदमें यह उद्दालक तप्तजलकी उष्णताके समान शान्त होगया ॥ २३ ॥ सम्पूर्ण विकल्पोंसे शून्य, निर्विकार, अतिसुन्दर, तथा सम्पूर्ण मलोंके विलासोंसे तथा उपाधियोंसे निर्मुक्त आकारधारी उद्दालकने वाणीसे अगोचर सबसे प्रथम और ब्रह्मापर्यन्तके सुखको भी तिरस्कारके उस सुखको पाया, जिस सुखमें इन्द्रकी लक्ष्मी भी समुद्रमें तृणकी राशीके समान बही जाती है ॥ २४ ॥

अपरिमितनभोंतर्व्यापिदिग्व्यापिपूर्णंभुवनभरणशीलंभूरिभव्योपसेव्यम् ॥ कथनगुणमतीतंसत्यमानंदमाद्यंपरमसुखमनंतंब्राह्मणोसौबभूव ॥ २५ ॥ गतवतिपदमाद्यंचेतसिस्वच्छभावंद्विजतनुरथमासैःसोपविष्टैवषड्भिः ॥ रविकरपरितप्तावातभांकाररम्यातनुतरुभुजतंत्रीशैलवीणाबभूव ॥ २६ ॥ अथबहुतरकालेनैतदद्रेर्भुवंतामुपययुरगकन्यासंयुतामातरःस्रात् ॥ अभिमतफलसिद्ध्यैसंयुताएवसर्वाअनलमिवशिखानांपंक्तयःपिंगकेश्यः ॥ २७ ॥ दिनकरकरशुष्कंविप्रकंकालकंतज्झटितिमुकुटकोटौखङ्गखट्वांगमध्ये ॥ सकलविबुधवंद्याखिंखिनीदेवदेवीनिशिनवतरवृत्ताकांतकांतिंचकार ॥ २८ ॥

अर्थ—ब्रह्माण्डोंके भेदोंसे अपरिमित और अनन्त आकाशकोंभी अपने उदरमें व्याप्त करनेवाला दिशाओंकोभी व्याप्त करनेवाला, (देशकृत परिच्छेदसे शून्य) सदा सब वस्तुओंमें पूर्ण, सब वस्तुओंके आधारभूत सब भुवनोंको पोषण करनेवाला अति भाग्यसे उत्तम जनोंसे सेवन करनेके योग्य, वचनकी प्रवृत्तिके धर्मोंसे परे, सत्यज्ञान तथा अनन्तस्वरूप, और सबको सुखरूपकारक अनादि (कालकृत परिच्छेदसेरहित) जो ब्रह्मसुखहै तद्रूप यह उद्दालक ब्राह्मण होगया ॥ २५ ॥ इसके पश्चात् उस ब्राह्मणके जीवके स्वच्छ स्वभाव, निर्मल तथा अनादिरूप ब्रह्मभावके प्राप्त होनेपर उसी स्थानपर स्थित, छ मासतक सूर्यके किरणोंसे संतप्त, और बहते हुये वायुके भांकार शब्दोंसे रमणीय उस ब्राह्मणकी शरीर वाल वृक्षरूप भुजाओंके बजानेके योग्य नाडीरूप तंत्रियोंसे उस पर्वतकी मानो वीणा होगई॥२६॥ इसके पश्चात् छ मासमें आकाशतलसे परस्पर मिलित पर्वतकी कन्याओंसहित गौर केशवाली ब्राह्मी आदि मातृगण किसी भक्तके मनोरथकी सिद्धिकेलिये उस पर्वतकी भूमिपर ऐसे प्राप्त हुई जैसे ज्वालाओंकी पंक्ति अग्निकेप्रति॥२७॥ उस मातृगणके मध्यमें रात्रिकेसमय नूतन २ भूषणोंसे अति नवीन क्रीडा साधनसहित, ब्रह्मा आदि सब देवताओंसे भी वन्दनीय खिंखिनी नाम देवीने उद्दालकके मृतशरीरको शीघ्रही खड्ग तथा पाटीके मध्यमें स्थित अपने मुकुटकी किरीटकी कोटि (अग्रभाग) का भूषण बनाया ॥ २८ ॥

इत्युद्दालकदेहकंसुविलसन्मायूरबर्हव्रजव्यालोलाव्दलवेनवैर्विवलितेमंदारमालागणैः ॥ शेतेखिंखिनि कामदाभगवतीलीलाललामेलताजालेभृंगइवांतपुष्पपटलेपश्चाद्दुपागच्छति ॥ २९ ॥ एषोद्दालकचित्त

वृत्तिकलनावल्लीविवेकस्फुरत्स्वानंदप्रविकासभासिकुसुमाहतत्काननेविस्तृता ॥ रूढायस्यकदाचिदेव विहरन्नप्येवसच्छाययानासावेतिवियोगमेतिसफलेनोच्चैस्तरांसंगमम् ॥ ३० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे उद्दालकनिर्वाणं नाम पंचपंचाशःसर्गः ॥ ५५ ॥

अर्थ—उत्तमरीतिसे शोभायमान, मोरके पंखोंके समूहरूप चंचल मेघ खंडसे शोभित तथा नूतन मंदारकी मालाओंके गणोंसे वेष्टित और अग्रभागमें पुष्प समूहयुक्त खिंखिनी नाम महा भगवतीके लीलार्थ शिरकी माला जो वेणीके मिषसे पृष्ठभागमें प्राप्तहोताहै उसमें उक्तरीतिसे रक्तमांसमय उद्दालकका देहभी ऐसे शयन कररहाहै जैसे लताके समूहमें भृंग ॥ २९ ॥ हे रामजी ! संपूर्ण दृश्यके विवेक होनेपर स्फुरित जो आत्मानंद वही उत्तम विकाशोंसे शोभायमान पुष्पसहित यह उद्दालककी आरंभसे लेके विदेह कैवल्य प्राप्ति पर्यन्त चरित्रकी कल्पनारूप कल्पवृक्षकी लता जिस पुरुषके हृदयरूप बनमें उत्पन्न होकर उत्तरोत्तर भूमिकाके अधिरोहणसे विस्तारको प्राप्त हुईहै वह पुरुष तीनों तापरूप सूर्यसे संतप्त व्यवहाररूप बनमें बिहार करताहुआभी सत्यशान्ति आदिगुणोंसे सुगन्धित तथा शीतल सहज संतोषरूप छायासे कदाचित्भी वियोगको नहीं प्राप्तहोता और सर्वोत्तम मोक्षके फलके साथ संयोगकोभी पाताहै

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे उद्दालकनिर्वाणं नाम पंचपंचाशःसर्गः ॥ ५५ ॥

षट्पंचाशत्तमःसर्गः ॥ ५६ ॥

जिसका मायारूप अन्धकार नष्टहै ऐसा वासनारहित ज्ञानी पुरुष व्यवहारमेंभी आसक्त समाधिस्थहै यह विषय इस ५६ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ क्रमेणानेनविहरन्विचार्यात्मानमात्मना ॥ विश्रांतिमेहिविततेपदेपद्मदलेक्षण ॥ १ ॥ शास्त्रार्थगुरुचेतोभिस्तावत्तावद्विचार्यते ॥ सर्वदृश्यक्षयाभ्यासाद्यावदासाद्यतेपदम् ॥ २ ॥ वैराग्याभ्यासशास्त्रार्थप्रज्ञागुरुमयक्रमैः ॥ पदमासाद्यतेपुण्यंप्रज्ञयैवैकयाथवा ॥ ३ ॥ संप्रबोधवतीतीक्ष्णाकलंकरहितामतिः ॥ सर्वसामग्र्यहीनापिपदंप्राप्नोतिशाश्वतम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे कमलनेत्र रामजी ! इसी पूर्व कथित रीतिसे विचरते हुये आत्मासे आत्माको विचारके व्यापक ब्रह्मपदमें विश्राम करो ॥ १ ॥ शास्त्रके श्रवणसे, आत्मतत्वकी परीक्षासे, गुरूके बचनमें विश्वाससे, और चित्तके शोधनसे जबतक सब दृश्यके बाधसे परमपदकी प्राप्ति न हो तबतक विचार अवश्य करना चाहिये ॥ २ ॥ वैराग्य, आत्मचिंतनके अभ्यास, वेदान्त शास्त्रका श्रवण, आत्मरूप अर्थकी परीक्षा, बुद्धि, गुरूके बचनमें विश्वास, और इन्द्रियोंके निग्रह आदि क्रमोंसे पवित्र (ब्रह्म) पद प्राप्त होताहै अथवा केवल एक बुद्धिसे ॥ ३ ॥ ज्ञानयुक्त, अति तीव्र, तथा अविद्यारूप कलंकसे रहित जो बुद्धि है वह चाहै सब वैराग्यादि सामग्रीसे शून्यभी हो परन्तु उससे नित्य ब्रह्मपदकी प्राप्ति होती है ॥ ४ ॥

श्रीरामउवाच ॥ ॥ भगवन्भूतभव्येशकश्चिज्जातसमाधिकः ॥ प्रबुद्धइवविश्रांतोव्यवहारपरोपिसन् ॥ ५ ॥ कश्चिदेकांतमाश्रित्यसमाधिनियतःस्थितः ॥ तयोस्तुकतरःश्रेयानितिमेभगवन्वद ॥ ६ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ इमंगुणसमाहारमनात्मत्वेनपश्यतः ॥ अंतःशीतलतायासौसमाधिरितिकथ्यते ॥ ७ ॥ दृश्यैर्मनसिसंबंधइतिनिश्चित्यशीतलः ॥ कश्चित्संव्यवहारस्थःकश्चिद्ध्यानेव्यवस्थितः ॥ ८ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—हे भूतभविष्यत् तथा वर्तमानके स्वामीन् ! क्या कोई ज्ञानीपुरुष ऐसाभी है कि जो व्यवहारमें तत्पर होकरभी समाधिस्थके सदृश विश्रान्त हो ॥ ५ ॥ और जो कोई पुरुष एकान्तमें जाके समाधिके नियममें स्थितहै और जो व्यवहारमेंभी स्थित समाधिस्थहै इन दोनोंमेंसे कौन श्रेष्ठहै ? यह मुझे कहिये ॥ ६ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! इस गुणके समूहरूप दृश्य प्रपंचको आत्मासे भिन्न देखते हुये पुरुषकी जो पूर्णकामताहै इसीको समाधि कहते हैं ॥ ७ ॥ मनके रहनेसे दृश्योंके साथ सम्बन्धहै और वह संबंध मुझ आत्माके साथ नहीं है ऐसा निश्चय करके जो पूर्णकाम व्यवहारमें आसक्तहै अथवा कोई समाधिस्थहै ॥ ८ ॥

द्वावेतौरामसुखितावंतश्चेत्परिशीतलौ ॥ अंतःशीतलतायास्यात्तदनंततपःफलम् ॥ ९ ॥ समाधिस्थानकस्थस्यचेतश्चेद्वृत्तिचंचलम् ॥ तत्तस्यतत्समाधानंसमसुन्मत्ततांडवैः ॥ १० ॥ उन्मत्ततांडवस्थस्य

चेतश्चेत्क्षीणवासनम् ॥ तदस्योन्मत्तवृत्तंतत्समंबुद्धसमाधिना ॥ ११ ॥ व्यवहारीप्रबुद्धोयःप्रबुद्धोयो वनेस्थितः ॥ द्वावेतौसुसमौनूनमसंदेहंपदंगतौ ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! ये दोनों प्राणी यदि अन्तःकरणमें पूर्णकामहैं तो सुखहैं क्योंकि आपूर्णकामताहै यही अनन्त तपका फलहै ॥ ९ ॥ यदि समाधिस्थ पुरुषकी अन्तःकरणकी वृत्ति चंचलहै तो उसकी समाधिभी उन्मत्त पुरुषके तांडवनृत्यके तुल्यहै ॥ १० ॥ और तांडवनृत्यमें स्थित उन्मत्त पुरुषका चित्त यदि वासनासे शून्यहै तो उसका उन्मत्तताका वृत्तान्तभी बुद्धकी समाधिकेतुल्यहै ॥ ११ ॥ व्यवहारमें तत्पर पुरुष जो ज्ञानी है और ज्ञानी पुरुष जो बनमें स्थितहै ये दोनों भलीभांति तुल्यहैं, और निश्चय करके सन्देहरहित पदको प्राप्तहैं ॥ १२ ॥

अकर्तृकुर्वदप्येतच्चेतःप्रतनुवासनम् ॥ दूरंगतमनाजंतुःकथासंश्रवणेयथा ॥ १३ ॥ अकुर्वदपिकर्तैवचेतःप्रघनवासनम् ॥ निस्पंदांगमपिस्वप्नेश्वभ्रपातस्थिताविव ॥ १४ ॥ चेतसोयदकर्तृत्वंतत्समाधानमुत्तमम् ॥ तंविद्धिकेवलीभावंसाशुभानिर्वृतिःपरा ॥ १५ ॥ चेतश्चलाचलत्वेनपरमंकारणंस्मृतम् ॥ ध्यानाध्यानदृशोस्तेनतदेवानंकुरंकुरु ॥ १६ ॥

अर्थ—करता हुआभी चित्त ऐसे अकर्ता है यदि उसकी वासना क्षीणहैं जैसे स्त्री आदिकी कथाके श्रवणमें अन्य स्थानगत चित्त मनुष्य उस कथाके राग द्वेपसे बंधनमें नहीं आता ॥ १३ ॥ घनीभूत वासनावाला चित्त न कर्ता हुआभी कर्ता ऐसे है जैसे अंगकी चेष्टासेरहित चित्त स्वप्नमें गर्तपात्त (गढेमें गिरे हुये) की स्थितिमें कर्तृता होती है ॥ १४ ॥ चित्तकी जो अकर्तृताहै वही उत्तम समाधि है, और उसीको तुम केवलीभाव जानो और वही परमसुखमें विश्रान्तिहै ॥१५ ॥ ध्यान तथा अध्यान (समाधि तथा उसके अभाव) की दृष्टिमें चित्तकी चंचलता तथा अचंचलताही मुख्य कारण कहागयाहै इसलिये उसी चित्तको अंकुरबीज वासनासे शून्य करो ॥ १६ ॥

अवासनंस्थिरंप्रोक्तंमनोध्यानंतदेवतु ॥ सएवकेवलीभावःशांततैवचसासदा ॥ १७ ॥ तनुवासनमत्युच्चैःपदायोद्यतमुच्यते ॥ अवासनंमनोकर्तृपदंतस्मादवाप्यते ॥ १८ ॥ घनवासनमेतत्तुचेतःकर्तृत्वभाजनम् ॥ सर्वदुःखप्रदंतस्माद्वासनांतनुतांनयेत् ॥ १९ ॥ प्रशांतजगदास्थोंतर्वीतशोकभयैषणः ॥ स्वस्थोभवतियेनात्मासससमाधिरितिस्मृतः ॥ २० ॥

अर्थ—वासनारहित मन स्थिर कहागयाहै और वही ध्यानहै वही केवलीभावहै और वही शान्तताहै ॥ १७ ॥ वासनारहित मन अति उच्च (ब्रह्म) पदकेलिये है, और वासनारहित मन कर्ता नहीं है और उसी मनसे ब्रह्मपद प्राप्त होताहै ॥ १८ ॥ घन वासनासहित चित्त कर्तृताका भाजनहै और वही सब दुःखोंका दाताहै, इसलिये वासनाको सूक्ष्म करना चाहिये ॥ १९ ॥ जगत् तथा देहादि दृश्यमें जिसका अहं ममताभिमान नष्ट होगयाहै, और अन्तःकरणमें शोक भय तथा इच्छासेरहित जो है और जिससे आत्मा शान्त होजाताहै उसको समाधि कहते हैं ॥ २० ॥

चेतसासंपरित्यज्यसर्वभावात्मभावनाम् ॥ यथातिष्ठसितिष्ठत्वंतथाशैलेगृहेथवा ॥ २१ ॥ गृहमेवगृहस्थानांसुसमाहितचेतसाम् ॥ शांताहंकृतिदोषाणांविजनावनभूमयः ॥ २२ ॥ अरण्यसदनेतुल्येसमाहितमनोदृशाम् ॥ भवतामिहभूतानांभूतानांमहतामिव ॥ २३ ॥ शांतचित्तमहाभ्रस्यजनज्वालोज्ज्वलान्यपि ॥ नगराण्यपिशून्यानिवनान्यवनिपात्मज ॥ २४ ॥

अर्थ—सब पदार्थोंमें अहं तथा ममताकी भावनाको त्यागकर जैसे तुम चाहो वैसे स्थित रहो चाहो पर्वतपर समाधि लगाओ अथवा गृहमें व्यवहार करो ॥ २१ ॥ जिन गृहस्थोंका चित्त समाहितहै और अहंकारादि दोष जिनका शान्तहैं उनका गृहही जनरहित बनकी भूमि हैं ॥ २२ ॥ जिनके मन तथा दृष्टि समाहितहैं और जो नित्य अपरोक्ष आत्मामें स्थितहैं इसप्रकार आपके सदृश महात्माजनोंको बन और गृह ऐसे तुल्यहैं जैसे आकाशादि भूतोंको ॥ २३ ॥ हे राजपुत्र रामजी ! जिसका चित्तरूप महाकाश शान्त (शरत्कालके आकाशवत् स्वच्छ) है उसके लिये मनुष्योंके समूहसे व्याप्त भी नगर शून्य वनहैं ॥ २४ ॥

वृत्तिमच्चित्तमत्तस्यविजनानिवनान्यपि ॥ नगराणिमहालोकपूर्णानिपरवीरहन् ॥ २५ ॥ व्युत्थितंचित्तसम्येतिभ्रमस्यांतःसुखुसताम् ॥ निर्वाणमेतिनिर्वाणंयथेच्छसितथाकुरु ॥ २६ ॥ सर्वभावपदातीतंसर्वभावात्मकंचवा ॥ यःपश्यतिसदात्मानंससमाहितउच्यते ॥ २७ ॥ ईहितानीहितेक्षीणेयस्यांतर्विततात्मते ॥ सर्वेभावाःसमायस्यससमाहितउच्यते ॥ २८ ॥

अर्थ—हे शत्रुघातक रामजी ! रागादिकी वृत्तिसे विक्षिप्त चित्तयुक्त मनुष्योंके लिये जन शून्य बनभी महालोकोंसे पूर्ण नगरहैं ॥ २५ ॥ रागआदिसे विक्षिप्त नानाप्रकारके विषय भ्रमके शान्त होनेपर भी पुनः वह सहस्रों बीज

वासनाकी सुषुप्तता दशाको प्राप्त और शान्तचित्त मोक्षको प्राप्त होताहै जब जैसी तुमारी इच्छाहो वैसा करो ॥ २६ ॥ जो समाधिमें सब पदार्थोंसे अतीत और व्यवहारमें सब पदार्थरूप आत्माको सदा देखताहै वही समाधिस्थहै ॥२७॥ तथा जिस विशाल आकारवालेके रागद्वेष क्षीण होगये हैं और जिसको पदार्थ समान (ब्रह्म) रूप देख पडते हैं वह समाधिस्थ कहाताहै ॥ २८ ॥

सदात्मनासदेवेदंजगत्पश्यतिनोमनः ॥ यथास्वप्नेतथैवास्मिन्जाग्रत्यपिजनेश्वर ॥ २९ ॥ यथाविपणिकालोकाबहिरंतोप्यसत्समाः ॥ असंबंधात्तथाज्ञस्यग्रामोपिविपिनोपमः ॥ ३० ॥ अंतर्मुखमनानित्यंसुप्तोबुद्धोव्रजन्नपि ॥ पुरंजनपदंग्राममरण्यमिवपश्यति ॥३१॥ सर्वमाकाशतामेतिनित्यमंतर्मुखस्थितेः ॥ सर्वथानुपयोग्यत्वाद्भूताकुलमिदंजगत् ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे मनुष्योंके ईश्वर! समाहित पुरुषका चित्त जैसे स्वप्नमें वैसे जाग्रत्में इस दृश्य जगत्को ब्रह्मरूपसे ही सदा देखताहै उसका मन इस जगत्को आत्मासे भिन्न नहीं देखता ॥ २९ ॥ जैसे पराय (बाजार) में लोग अपना २ व्यवहार करते हुये भी उदासीन पुरुषके उपकारी न होनेसे असत्के तुल्यहैं ऐसेही ज्ञानी पुरुषको सम्बन्ध न होनेसे ग्रामभी बनके तुल्यहै ॥ ३० ॥ नित्य अन्तर्मुखमनवाला पुरुष चाहै सोताहो वा जागताहो वा चलताहो परन्तु वह नगर, राज्य और ग्रामको भी बनके समान देखताहै ॥ ३१ ॥ अन्तर्मुख वृत्तियुक्त पुरुषको सर्वथा उपयोगी न होनेसे प्राणियोंसे तथा पृथिवी आदिसे पूर्ण भी यह जगत् नित्य शून्यरूपताहीको प्राप्त रहताहै ॥ ३२ ॥

अंतःशीतलतायांतुलब्धायांशीतलंजगत् ॥ विज्वराणामिवनृणांभवत्याजीवितस्थितेः ॥ ३३ ॥ अंतस्तृष्णोपतप्तानांदावदाहमयंजगत् ॥ भवत्यखिलजंतूनांयदंतस्तद्बहिःस्थितम् ॥ ३४ ॥ द्यौःक्षमावायुराकाशंपर्वताःसरितोदिशः ॥ अंतःकरणतत्त्वस्यभागाबहिरिवस्थिताः ॥ ३५ ॥ वटधानावटइवयदंतस्थंसदात्मनः ॥ तद्बहिर्भासतेभास्वद्विकासेपुष्पगंधवत् ॥ ३६ ॥

अर्थ—अन्तःकरणकी शीतलताके लब्ध होनेसे मनुष्योंके लिये जीवनपर्यन्त यह जगत् ऐसे शीतल भान होताहै जैसे नीरोगी पुरुषको ॥ ३३ ॥ और अन्तःकरणमें तृष्णारूप अग्निकी ज्वालासे संतप्त जीवोंको यह सम्पूर्ण जगत् बनकी अग्निके दाहमय होजाताहै क्योंकि अन्तःकरणमें जैसा संतप्त वा शीतल यह जगत् स्थितहै वैसाही बाह्य आकारसेभी स्थित है ॥ ३४ ॥ अन्तरिक्ष, पृथिवी, वायु, आकाश, पर्वत, नदियां और दिशायें अन्तःकरणके भाग बाह्य (बाहर) देशमें थितहैं ॥ ३५ ॥ जैसे वटवृक्षके भीतर वटके बीजहैं तो बाहर भासतेहैं ऐसेही सत् आत्माके भीतर जो जगत् स्थितहै वही विकाशित पुष्पके गंधके समान बाहर भासताहै ॥ ३६ ॥

नबहिष्ठंवनांतस्थंकचित्किंचनविद्यते ॥ यद्यथाकचितंचित्त्वात्तत्तथातत्त्वसुस्थितम् ॥ ३७ ॥ आत्मतत्त्वांतरंभातिबहिष्ठंनजगत्तया ॥ कर्पूरमिवगंधेनसंकोचेप्रविकासिच ॥ ३८ ॥ आत्मैवस्फुरतिस्फारंजगत्त्वेनाप्यहंतया ॥ बाह्यत्वेनांतरत्वेनसचनासन्नसन्विभुः॥३९॥ बहिष्ठेनांतरंबाह्यमंतःस्थेनांतरस्थितम् यथाविदितमात्मायंस्वचित्तमनुपश्यति ॥ ४० ॥

अर्थ—यथार्थमें न कहीं कुछ बाहरहै और न कहीं कुछ भीतरहै किंतु जो वस्तु पूर्वके वासनाके बलसे चित् जैसे भासित हुई वही उसी रूपसे प्रकटहै ॥ ३७ ॥ भीतर जो आत्मतत्त्वहै वही बाहर जगत्के आकारसे ऐसे भान होताहै जैसे डिब्बेके भीतर संकोचमें स्थित कर्पूर बाहर गन्धसे विकासित (अधिक देशमें विस्तृत) होताहै ॥ ३८ ॥ आत्माही विशालतासे बाह्य जगत्रूपसे तथा अंतर अहंतारूपसे स्फुरताहै और यथार्थमें वह न तो नेत्र आदिसे अदृश्य अहंकारादिरूपहै और न स्थूल बाह्यरूपहै किंतु दोनोंमें गुंथा हुआ वह विभु सन्मात्रहै ॥ ३९ ॥ इसीसी यह आत्मा अपना आन्तरिक चित्त पूर्व २ अनुभूत वासनाके अनुसार जानताहै वैसेही बहिर्मुख होके नेत्र आदिसे जगत्के आकारको देखताहै और अन्तःकरणमें स्थित होके जाग्रत्की वासनादिसे हृदयमें स्थित स्वप्न और मनोराज्यादिको देखताहै ॥ ४० ॥

सबाह्याभ्यंतरंशांतमात्मनोभेदितंजगत् ॥ अहंत्वादिस्थितेभेदेभूरिभंगभयंततत् ॥ ४१ ॥ द्यौःक्षमावायुराकाशंपर्वतास्सरितोदिशः ॥ कल्पादिरेवज्वलितंसर्वमाधिहतात्मनः ॥ ४२ ॥ यस्त्वात्मरतिरेवांतःकुर्वन्कर्मेंद्रियैःक्रियाः ॥ नवशोहर्षशोकाभ्यांससमाहितउच्यते ॥ ४३ ॥ यःसर्वगतमात्मानंपश्यन्ससुपशांतधीः ॥ नशोचतिध्यायतिवाससमाहितउच्यते ॥ ४४ ॥

अर्थ—बाह्य तथा आभ्यन्तर दोनों प्रकारके जगत्में अनुस्यूत (गूंथे हुये) सत्रूप आत्मासे भिन्न सत्रूपसे भासमान यह जगत् शान्त अर्थात् मृतकही है और आत्मासे पृथक्करणके अभावमें तो उन २ पदार्थोंकी सत्तासे बाह्य

आभ्यंतर भेद स्थित होनेपर उन २ पदार्थोंमें अहंता और ममताके अध्याससे उन २ पदार्थोंके भंगसे बहुत भंग (भेद) का भय होगा ॥ ४१ ॥ उन २ पदार्थोंकी चिंतासे नष्ट आत्मापुरुषको अन्तरिक्ष, पृथिवी, आकाश, पर्वत, नदियां, और दिशा आदि सब वस्तु तीनोंप्रकारके तापकी ज्वालासे प्रज्वलित होके प्रलयका आरंभही होजाताहै॥४२॥ ॥ ४२ ॥ और जो पुरुष अंतःकरणसे केवल आत्माहीमें प्रीति करताहै अर्थात् अहंता ममताको त्यागकर सर्वत्र सन्मात्र आत्माहीको देखताहै वह कर्म इन्द्रियोंसे क्रियाओंका कर्ता हुआभी हर्ष शोकके वशमें नहीं आता और समाधिस्थ कहा जाताहै ॥ ४३ ॥ जो सर्वव्यापी आत्माको सर्वत्र देखता हुआ शान्त बुद्धि पुरुष संसारके पदार्थोंको न शोचताहै और न उनका ध्यान करताहै वह समाधिस्थहै ॥ ४४ ॥

सपूर्वापरपर्यंतांयःपश्यन्जागतींगतिम् ॥ दृष्टिष्वेतासुहसतिससमाहितउच्यते ॥ ४५ ॥ समेपरेपिनाहंतानजगज्जन्मनोमयि ॥ वीचिवृंदेष्विवातप्तानाकाशेफलधातवः ॥ ४६ ॥ यस्यांतरस्थिताहंत्वंनविभागादिनोमनः ॥ नचेतनाचेतनत्वेसोस्तिनास्तीतरोजनः ॥ ४७ ॥ व्योमस्वच्छोबहिश्चेष्टांसम्यगाचरतीहयः ॥ हर्षामर्षविकारेषुकाष्ठलोष्ठसमःशमः ॥ ४८ ॥

अर्थ—जो पुरुष उत्पत्ति तथा नाशसहित जगत्की गतिको देखता हुआ मूढजनोंमें प्रसिद्ध अहंता तथा ममता आदि दृष्टियोंपर हंसताहै वह समाधिस्थ कहा जाताहै ॥ ४५ ॥ प्रत्यक् स्वरूप मुझ आत्मामें तथा असंग अद्वैत कूटस्थ और सर्वत्र समरूप परब्रह्ममें अहंता ममता तथा जगत्के जन्ममरण आदि विकार ऐसे नहीं सम्भव होसकते जैसे शरत्के घामसे दूरसे देख पडती हुई पुंजीभूत पिघले हुये रजतकी कांति तरंगोंके समूहोंमे सम्भव नहीं होसकती क्योंकि आकाशमें प्राप्य आदि क्रियाके फल धारण करनेकी शक्ति नहीं है ॥ ४६ ॥ जिस ज्ञानीका भिन्नरूपसे प्रत्यक् आत्मरूप स्थित नहीं है अहंताभी नहीं है, और दृश्य जगत्के विभाग आदि तथा मनभी नहीं हैं और अहंता ममताके अधीन चेतन अचेतन व्यवहारभी नहीं है किंतु सर्वरूप वही आत्माही स्थितहै न कि अन्य जन॥४७॥ जो ज्ञानीपुरुष आकाशके समान स्वच्छ, शास्त्र तथा शिष्टाचारके अविरूद्ध बाह्य चेष्टाको करताहै और हर्ष क्रोधादिके विकारोंमें काष्ठ पाषाणके तुल्यहै तथा शान्त स्वभावहै वही समदर्शी है ॥ ४८ ॥

आत्मवत्सर्वभूतानिपरद्रव्याणिलोष्टवत् ॥ स्वभावादेवनभयाद्यःपश्यतिसपश्यति ॥ ४९ ॥ अर्थोतनुस्तनुर्वापिनासद्रूपेणचेत्यते ॥ सद्रूपोनानुभूतोज्ञेनज्ञनैवनतत्तया ॥ ५० ॥ ईदृशाशयसंपन्नोमहासत्त्वपदंगतः ॥ तिष्ठतूदेतुवायातुमृतिमेतुनतत्स्थितिम् ॥ ५१ ॥ वसतूत्तमभोगाढ्येस्वगृहेवाजनाकुले ॥ सर्वभोगोज्झिताभोगेसुमहत्यथवावने ॥ ५२ ॥

अर्थ—जो सब जीवोंको अपने समान और दूसरेके द्रव्यको पाषणके तुल्य स्वभावहीसे देखताहै न कि भयसे वही देखताहै अर्थात् समदर्शी है ॥ ४९ ॥ और अज्ञानी पुरूष तो चाहै महान् पदार्थ (ब्रह्माका ऐश्वर्य्य) हो वा न्यून काकिणी (छदाम) अथवा सुवर्ण स्त्री आदि पदार्थ हों परंतु उनको असत्वरूपसे नहीं देखता और न असत्का अधिकरण सद्रूपका उसने अनुभव किया है इसलिये पदार्थोंको न वह मिथ्यात्वरूपसे देखताहै और न सत्वरूपसे देखताहै किंतु ज्ञानीही वैसा देखताहै ॥ ५० ॥ हे रामजी ऐसा अभिप्राय युक्त मनुष्य ब्रह्मपदको प्राप्त है वह चाहै निर्धनहो वा ऐश्वर्य्ययुक्तहो और पुत्र बांधव आदिके मरणको प्राप्त वा उस स्थितिको न प्राप्तहो परन्तु उसकी कोई हानि नहीं है ॥ ५१ ॥ और उत्तम भोगोंसे पूर्ण, मनुष्योंसे व्याप्त अपने गृहमें निवास करै, अथवा सब भोगोंसे रहित बडे वनमें रहै ॥ ५२ ॥

उद्दाममन्मथंपानतत्परोवापिनृत्यतु ॥ सर्वसंगपरित्यागीसममायातुवागिरौ ॥ ५३ ॥ चंदनागुरुकर्पूरैर्वपुर्वापरिलिंपतु ॥ ज्वालाजटिलविस्तारेनिपतत्वथवानले ॥ ५४ ॥ पापंकरोतुसुमहद्बहुलंपुण्यमेवच ॥ अद्यवामृतिमायातुकल्पांतनिचयेनवा ॥ ५५ ॥ नासौकिंचिन्नतत्किंचित्कृतंतेनमहात्मना ॥ नासौकलंकमाप्नोतिहेमपंकगतंयथा ॥ ५६ ॥

अर्थ—और प्रचंड कामदेवके वेगसे मद्यपानमें तत्परहो अथवा नृत्य करै, अथवा सर्वसंग परित्याग करके पर्वतपर तप करै ॥ ५३ ॥ और चन्दन अगरू तथा कर्पूरसे अपने शरीरको लिप्त करे, वा ज्वालासे जटिल विस्तार युक्त अग्निमें गिरै ॥ ५४ ॥ पाप करै अथवा बहुत पुण्य करै, आज मरै वा कल्पोंके समूहके अनन्तर ॥ ५५ ॥ इस बातके होनेपरभी यह समदर्शी मरण दुःखादि विकारोंका तथा देह मन आदिके अहंताका आश्रय नहीं है, और न इस महात्माने कुछ किया है और यह दोषरूप कलंकको इसप्रकार नहीं प्राप्त होता जैसे कीचडमें प्राप्त सुवर्ण ॥५६॥

संवित्पुरुषशब्दार्थैःसकलंकैःकलंक्यते ॥ अहंत्ववासनारूपैःशुक्तिकारजतोपमैः ॥ ५७ ॥ समस्तव स्तुप्रशमात्सम्यग्ज्ञानाद्यथास्थितेः ॥ स्वभावस्योपशांतांतःकलंकोसत्तयास्वतः ॥ ५८ ॥ अहंत्ववास नानर्थप्रसूतेःसंविदात्मनः ॥ पुरुषस्यविचित्राणिसुखदुःखानिजन्मनि ॥ ५९ ॥ रज्ज्वांसर्पभ्रमेशांतेऽहि र्नेतिनिर्वृतिर्यथा ॥ अहंत्वभावसंशांतौतथांतःसमतामता ॥ ६० ॥

अर्थ—शास्त्रविरूद्ध विषयोके सेवनसे दूषित वासनारूप, इन्द्रियसंबन्धी ज्ञानोंसे, उनके आश्रयभूत पुरूषके देहसे और भोग्य शब्द अर्थरूप विषयोंसे अहंकार प्रधान लिंगात्मा ऐसे कलंकित होताहै जैसे रजत (चांदी) के सदृश पदार्थोंमें शुक्ति (सीप) का ॥ ५७ ॥ जो पदार्थ जैसा है उसके यथार्थ ज्ञानसे सब वस्तुओंके शान्त होनेसे चित्तका कलंक सत्ताके अभावसे स्वयं शांत होजाताहै ॥ ५८ ॥ और अहंता ममताके अध्याससे वासनारूप अनर्थोंकी उत्पत्ति होनेसे पुरूषके जन्ममें चित्रविचित्र दुःख होते हैं ॥ ५९ ॥ रज्जुमें सर्पका भ्रम नष्ट होजानेसे यह सर्प नहीं यह शांति जैसे होती है ऐसेही अहन्ताके शान्त होनेसे अन्तःकरणमें समता प्राप्त होती है ॥ ६० ॥

यत्करोतियदश्नातियद्ददातिजुहोतिवा ॥ नतज्ज्ञस्यनतत्रज्ञोमाकरोतुकरोतुवा ॥ ६१ ॥ कर्मणास्तिनत स्यार्थोनार्थस्तस्यास्त्यकर्मणा ॥ यथास्वभावावगमात्सआत्मन्येवसंस्थितः ॥ ६२ ॥ इच्छास्ततःस मुद्यंतिनमंजर्यइवोपलात् ॥ याश्चोद्यंतिचताःसर्वाःसइवाब्धिववीचयः ॥ ६३ ॥ सकलमिदमसावसौ चसर्वंजगदखिलंनविभागितात्रकाचित् ॥ परमपुरुषपावनैकरूपःससदिति तत्सदकिंचिदेवनासौ ॥ ६४

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे ध्यानविचारो नाम षट्पंचाशः सर्गः ॥ ५६ ॥

अर्थ—जो कुछ करताहै, जो कुछ खाताहै जो देताहै और जो यज्ञ आदि हवन करताहै वह ज्ञानी पुरूषका नहीं है और न उसमें ज्ञानी है चाहै वह उन कर्मोको करै वा न करै ॥ ६१ ॥ न उसको कुछ कर्मसे प्रयोजन और न कर्मके अभावसे कुछ प्रयोजनहै किन्तु यथार्थ आत्माके ज्ञानसे वह आत्माहीमें स्थित है ॥ ६२ ॥ क्योंकि जैसे पाषाणसे लता नहीं उत्पन्न होती ऐसेही उस पुरूषके अन्तःकरणसे इच्छा नहीं उत्पन्न होती और जो उत्पन्न होती हैं जलमें तरंगके समान उसका रूपहै ॥ ६३ ॥ और यह सब ब्रह्माण्ड इसका रूपहै और यह अखण्ड ब्रह्माण्ड रूपहै क्योंकि इस जगत्में देश काल तथा वस्तुकृत विभाग किंचित्भी नहीं है इसीसे यह परमपुरूष अति पावन एकरूप और सब द्वैत बन्धनसे निर्मुक्त सन्मात्र है ॥ ६४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे ध्यानविचारो नाम षट्पंचाशः सर्गः ॥ ५६ ॥

सप्तपंचाशः सर्गः ॥ ५७ ॥

निजस्वभावसे अज्ञात चित् दृक्रूप होनेसे जिस दृश्यरूपताको वह चित् धारण करती है वह दृश्य चित्रूप है क्योंकि चित्से भिन्न कुछ नहीं है इस विषयका वर्णन ५७ के सर्गमें किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यदात्ममरिचस्यांतश्चित्त्वात्तीक्ष्णत्ववेदनम् ॥ तदहंतादिभेदादिदेशकालादिचेत्य तः ॥ १ ॥ यदात्मलवणस्यांतश्चित्त्वाल्लवणवेदनम् ॥ तदहंतादिभेदादिदेशकालादिमस्थितम् ॥ २ ॥ स्वतोयदंतरात्मेक्षोश्चित्त्वान्माधुर्यवेदनम् ॥ तदहंतादिभेदादिजगत्तत्त्वादिजृंभितम् ॥ ३ ॥ स्वतोय दात्मदृषदश्चित्त्वात्काठिन्यवेदनम् ॥ तदहंतादिभेदादिदेशकालादितांगतम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! जो आत्माहै उसीकी निज प्रकाशकी तीक्ष्णता मरिच (मिर्चा) है उस आत्माका चिद्धर्म होनेसे जो तीक्ष्णतारूपसे अनुभवहै वही उस स्थानके ब्रह्मस्वभावके अज्ञात होनेसे अहंतात्वंतारूप घटभित्ति आदिरूप और उनके आधार देशकालादिरूप जगत्है इसप्रकार चिद्ब्रह्मसे सबका अभेद सिद्धहै ॥ १ ॥ ऐसेही आत्मारूप लवणका जो चित्केद्वारा लवणरूपसे अनुभवहै वही अहंतादिरूप, घट कुड्य (भीति) आदि रूप, और उनके आधार देशकालादिमान् होके यह जगत् स्थितहै ॥ २ ॥ तथा स्वयं जो अंतरात्मारूप इक्षु (ईख वा ऊख) का मधुरता रूपसे अनुभवहै वही अहंतात्वंतारूप तथा पृथिवी आदि उन २ तत्त्वोंके आकाररूपसे

(१) सब इन श्लोकोंमें तथा आगेभी (वही) इस शब्दका यही अभिप्रायहै कि उस स्थानका अज्ञातब्रह्मही उन २ पदार्थरूपसे स्थितहै ॥

प्रकट यह जगत् स्थितहै ॥ ३ ॥ आत्मारूप पाषाणका जो कठिनतारूपसे अनुभवहै वही अहंतादि रूपसे घट भित्ति आदिरूप तथा उनके अधिकरण देश कालादि रूपताको प्राप्तहै ॥ ४ ॥

स्वतोयदात्मशैलस्यघनतयाजाड्यवेदनम् ॥ तदहंतादिभेदादिभुवनादीतिसंस्थितम् ॥ ५ ॥ स्वतोयदात्मतोयस्यचिद्द्रवत्वादिवर्त्तनम् ॥ तदावर्तायहंतादिभेदाद्याकारिताइव ॥ ६ ॥ स्वतोयदात्मवृक्षस्यशाखादिस्तस्यवेदनम् ॥ तदहंतादिभेदादिभुवनादीवसत्स्फुरत् ॥ ७ ॥ यदात्मगगनस्यांतश्चित्त्वाच्छून्यत्ववेदनम् ॥ तदहंतादिभेदादिभुवनादीतिभावनम् ॥ ८ ॥

अर्थ—और स्वयं जो आत्मारूप पर्वतका जो चिद्धर्मसे गुरुता (भारीपन) रूपसे अनुभवहै वही चित् अहंतादि रूपसे तथा घट कुड्य और भुवन आदिरूप यह जगत् स्थितहै ॥ ५ ॥ और स्वयं जो आत्मारूप जलका चित्के द्वारा द्रवतारूपसे अनुभवहै वही चित् आवर्तादि और अहंतादिके आकाररूपसे स्थितहै ॥ ६ ॥ स्वयं आत्मरूप वृक्षका शाखारूपसे जो अनुभवहै वही अहंतादिरूपसे तथा भुवनादिरूपसे वर्तमान होके भासताहै ॥ ७ ॥ आत्मारूप आकाशके भीतर जो चित्से शून्यताका अनुभवहै वही अहंतादि, रूप, घट कुड्य आदिरूप तथा उनके आधार भुवनादिरूपसे कल्पनाहै ॥ ८ ॥

यदात्मगगनस्यांतश्चित्त्वात्सौषिर्यवेदनम् ॥ तदहंतादिभेदादिशरीरादिचदीपितम् ॥ ९ ॥ स्वतोयदात्मकुड्यस्यनैरंतर्यनिरंतरम् ॥ तदहंतादिभेदेनचित्ताद्बहिरिवस्थितम् ॥ १० ॥ स्वतोयदात्मसत्तायाश्चित्त्वात्सत्त्वैकवेदनम् ॥ तदहंतादिभेदादिचेतनानीतिवत्स्थितम् ॥ ११ ॥ अंतरात्मप्रकाशस्यस्वतोयदवभासनम ॥ तदहंतादिचित्त्वादिजीवइत्येववेदसः ॥ १२ ॥

अर्थ—और जो आत्मारूप आकाशका अवकाश दातृत्वरूपसे अनुभवहै वही अहंतादिरूप, घटपटादिरूप तथा शरीरादिरूपसे प्रकाशितहै ॥ ९ ॥ और स्वयं आत्मरूप भित्तिका जो घनतारूपसे अनुभवहै वही अहंतादिरूप तथा भित्ति आदिरूपके भेदमें चित्तसे बाहर चित्से भिन्नके तुल्य दृश्यरूपसे स्थितहै ॥ १० ॥ स्वयं आत्मसत्ताका जो चित्के द्वारा सत्तारूपसे अनुभवहै वही अहंतादिरूप, तथा चिदाभासरूप स्थितहै ॥११॥ अन्तरात्माके प्रकाशका जो स्वयं अनुभवहै उसीको वृत्तियोंके भेदसे भिन्न २ चिदाभासोंमें अनुगत सामान्य जीवरूपसे वह जानताहै ॥ १२ ॥

अंतरस्तियदात्मेंदोश्चिद्रूपंचिद्रसायनम् ॥ स्वतआस्वादितंतेनतदहंतादिनोदितम् ॥ १३ ॥ परमात्मगुडस्यांतर्यच्चित्त्वाद्दयात्मकम् ॥ तदेवास्वाद्यतेतेनस्वतोहंतादिनांतरे ॥ १४ ॥ परमात्ममणेश्चित्त्वाद्यदंतःकचनंस्वयम् ॥ चेतनात्मपदेचांतरहमित्यादिवेत्त्यसौ ॥ १५ ॥ नचकिंचनवेत्त्यंतर्वेद्यस्यासंभवादिह ॥ नचास्वादयतिस्वादुस्वाद्यस्यासंभवादयम् ॥ १६ ॥

अर्थ—आत्मारूप चन्द्रके भीतर जो स्वयं अनुभूत चित्रूप अमृतहै वही अहंतादिरूपसे अविर्भूतहै ॥ १३ ॥ परमात्मारूप गुडके भीतर जो स्वादुमय चिद्रूपहै उसका आस्वाद अपने आत्मामें वही लेताहै ॥ १४ ॥ परमात्मारूप मणिके भीतर जो चित्रूपसे स्वयं प्रकाशहै वही अपने आत्मस्वरूपमें अन्तःकरणमें अहं इस रूपसे अनुभव करताहै ॥ १५ ॥ और यथार्थ यह आत्मा अपने स्वरूपमें कुछ नहीं जानता क्योंकि आत्मासे भिन्न ज्ञेय पदार्थका असंभवहै और न कुछ आस्वाद लेताहै क्योंकि चित्से भिन्नस्वादके योग्य पदार्थका होना असंभवहै ॥ १६ ॥

नचकिंचिच्चिनोत्यंतश्चेत्यस्यासंभवेसति ॥ विंदतेनचवाकिंचिद्वेद्यस्यासंभवादसौ ॥ १७ ॥ असदाभासएवात्माअनंतोभरिताकृतिः ॥ स्थितःसदैवैकघनोमहाशैलइवात्मनि ॥ १८ ॥ अनयातुवचोभंग्यामयातेरघुनंदन ॥ नाहंतादिजगत्तादिभेदोस्तीतिनिदर्शितम् ॥ १९ ॥ नचित्तमस्तिनोचेतानजगत्तादिविभ्रमः ॥ वृष्टमूकांबुदसितंशांतंशाम्यतिकेवलम् ॥ २० ॥

अर्थ—न दुसरे चेतनसे विकारको प्राप्त होता है क्योंकि विकार होने योग्य पदार्थका अभाव है और प्राप्य पदार्थके अभावसे इसको कुछ प्राप्त नहीं ॥ १७ ॥ असत् जगत्का आकार जिसमें भासताहै ऐसा अनंत पूर्णरूप सदाज्ञान एकरूप यह परमात्मा महापर्वतके तुल्य आत्मामें स्थितहै ॥ १८ ॥ हे रामजी ! इस पूर्वोक्त वचनकी रचनासे मैंने तुमको यह दर्शाया कि अहंता और जगत्में कुछ भेद नहीं है ॥१९॥ यथार्थमें न चित्त है और न चित्तवाला है और न जगत् आदिका भ्रम है किन्तु प्रथम वृष्टिकरके पीछे निःशब्द शरद्ऋतुके मेघके समान शुद्ध सन्मात्रसे बाधित यह जगत् शान्तहो रहाहै ॥ २० ॥

यथावर्त्तादितामेतिद्रवत्वाद्वारिवारिणि ॥ तथाहंतादितामेतिज्ञप्ताज्ञप्तौज्ञआत्मनि ॥ २१ ॥ यथाद्रवत्वंपयसियथास्पंदःसदागतौ ॥ अहंतादेशकालादितथाज्ञेज्ञप्तिमात्रके ॥ २२ ॥ ज्ञोज्ञतायांशिवंज्ञानंजाना

तिज्ञानवृंहया ॥ ज्ञायतेऽहंतदाज्ञेनजीवादीत्यभिजीवनैः ॥ २३ ॥ यथोदेतियथाज्ञस्यतृप्तिर्ज्ञानेनयादृशी ॥ अनन्येवान्यताबुद्धासतथाजृंभतेतया ॥ २४ ॥

अर्थ—जैसे द्रवस्वभाव होनेसे जलमें जल आवर्त आदि रूपताको प्राप्त होताहै ऐसे मायावी ईश्वर अपनी मायासे आवृत ज्ञप्तिमात्र निजआत्मामें जगत् जीवदशाको प्राप्त होताहै ॥ २१ ॥ जैसे जलमें द्रवताहै और वायुमें गति है ऐसेही ज्ञप्तिमात्र ईश्वर अहंता देशकाल आदि है ॥ २२ ॥ ईश्वर अपने ईश्वरभावमें आवरण तथा परिच्छेद शून्य ज्ञानकी वृद्धिसे नित्य निरतिशय आनन्दस्वरूप ज्ञानको सदा जानताहै और अहंकारसे स्थूल देहरूप जीव भावमें जो चेतनभूतभी जीवनके हेतु भूतप्राण इन्द्रियादिके विषयसंबंधके अध्याससे जीवादि रूपआत्मा केवल जाना जाताहै न कि यथार्थ ॥ २३ ॥ और जिस २ काम कर्मोंकी वासनासे, जैसे विषयज्ञानसे जिस २ दर्शन लाभादि भोगकी विचित्रतासे अज्ञानीकी जैसे प्रिय मोदप्रमोद आदि नानाप्रकारकी तृप्ति उदय होती है वह विचित्रता अभिन्न-स्वरूप परमात्मासे ज्ञात होती है और वह ईश्वर उन २ उनको कामनाआदि वासनासे उसी २ प्रकारसे अपने अंगोंको परिणत (विवर्तित) करताहै ॥ २४ ॥

जीवनंज्ञातताज्ञाताजीवनंजीवजीवनम् ॥ अत्यंतमस्तिनोभेदश्चिद्रूपत्वेज्ञजीवयोः ॥ २५ ॥ यथाज्ञजीवयोर्नास्तिभेदोनामतथैतयोः ॥ भेदोस्तिज्ञशिवयोर्विद्धिशांतमखंडितम् ॥ २६ ॥ सर्वप्रशांतमजमेकमनादिमध्यमाभास्वरंस्वदनमात्रमचेत्यचिह्नम् ॥ सर्वप्रशांतमितिशब्दमयीतुदृष्टिर्बोधार्थमेवहिमुधैवतदोमितीदम् ॥ २७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे भेदनिरासोनाम सप्तपंचाशःसर्गः ॥ ५७ ॥

अर्थ—और जिस समय सत्शास्त्रोंसे तथा गुरूके उपदेशादिसे यह ज्ञात होताहै कि भोग्य जगत्के अधिष्ठान सन्मात्ररूपकी स्फूर्ति होनाही जीवन है अर्थात् जगत्के अधिष्ठान परमात्माके ज्ञानको परमार्थ स्थिति समझी जाती है और सब प्राणियोंका जीवन जिसके आधीन है उस जीवका परमानन्दही जीवन मुख्य है यह जब ज्ञात होताहै उस समय भोग्यभोक्ताके अधिष्ठान दोनोंके चिद्रूप शेष होनेपर जीव ईश्वरका भेद सर्वथा नहीं है ॥ २५ ॥ जैसे जीव ईश्वरका भेद नहीं है ऐसेही ईश्वर ब्रह्म (तुरीय) तथा जीव तुरीयकाभी भेद नहीं है इसलिये शान्त, अखंड परिपूर्ण ब्रह्ममात्रही शेषहै ॥ २६ ॥ हे रामजी ! इसलिये संपूर्ण जगत् प्रशान्त, अजन्मा एक, अनादि, सर्वत्र भासमान निज अनुभवमात्र, अपने व्यावर्तित चिन्होंसे ब्रह्ममात्रही है और सब प्रशान्त इत्यादि दृष्टिज्ञानके लिये मिथ्यामात्रहैं क्योंकि वाक्य अखंडार्थ ओंकार पदका लक्ष्यार्थही सब कुछ है ॥ २७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे भेदनिरासो नाम सप्तपंचाशः सर्गः ॥ ५७ ॥

अष्ट पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५८ ॥

किरातोंके स्वामी सुरघुका वैराग्य तथा सर्व त्यागादि उपायसे मांडव्यऋषिका उपदेश इस ५८ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अत्रैवोदाहरंतीममितिहासंपुरातनम् ॥ किरातेशस्यसुरघोर्वृत्तांतंविस्मयास्पदम् ॥ १ ॥ उत्तरस्यादिशोभेदःकर्पूरपटलंभुवः ॥ संभूतंहसनंशार्वंशुक्लोवाचांद्रआतपः ॥२॥ हिमाद्रेःशृंगमस्तीहकैलासोनामपर्वतः ॥ शैलकुंजरनिर्मुक्तकलापस्येवनायकः ॥ ३ ॥ विष्णोःक्षीरोदकइवस्वर्गःसुरपतेरिव ॥ अब्जजस्येवनाभ्यब्जंगृहंयःशशिमौलिनः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! शब्दमयी दृष्टि केवल बोधके अर्थ है इस विषयमें किरातके स्वामी सुरघुका विस्मयकारक प्राचीन इतिहासका उदाहरण देतेहैं ॥ १ ॥ उत्तरदिशाका सारभूत, पृथिवीसे निःसृत कर्पूरकी राशिकेसमान, तथा महादेवजीके हास्य वा शुक्लपक्षके चन्द्रके प्रकाशके तुल्य ॥ २ ॥ पर्वतोंमें श्रेष्ठ हिमालयसे धारण किये हुये शिखरोंकी पंक्तिरूप मोतियोंके मालाके सुमेरूके सदृश कैलास नामसे प्रसिद्ध हिमालयका एक शिखर है ॥ ३ ॥ जैसे विष्णुका क्षीरसमुद्र, इन्द्रका स्वर्ग, और ब्रह्माका विष्णुकी नाभिका कमल गृहहै ऐसेही वह शिखर शंकरभगवान्का गृह है ॥ ४ ॥

रुद्राक्षवृक्षदोलाभिःसाप्सरोभिर्विभातियः ॥ लोलरत्नशलाकाभिर्लहरीभिरिवार्णवः ॥ ५ ॥ गणांगनानामविश्रंमत्तानांचरणैर्हताः ॥ अशोकाइवराजंतेयत्राशोकाविलासिनः ॥ ६ ॥ संचरन्शंकरोदिक्षुभृगुर्विद्रुमणिद्रवैः ॥ निवर्त्ततेप्रवर्ततेयत्राजस्रंचनिर्झराः ॥ ७ ॥ योलतावृक्षगुल्मौघवापीह्रदनदीनदैः ॥ मृगैर्मृगगणैर्भूतैर्ब्रह्मांडवदिवावृतः ॥ ८ ॥

अर्थ—अप्सराओंकरकेसहित रुद्राक्षोंके वृक्षोंमें लटकती हुई झूलाओंसे वह ऐसा शोभित था जैसे चंचल रत्नोंकी शलाकाओंसेयुक्त तरंगोंसे समुद्र ॥ ५ ॥ कामदेवके वेगसे मदोन्मत्त प्रथम गणोंकी अंगनाओंके चरणोंसे ताडित शोकरहित विलासी ऐसे शोभित होरहे हैं जैसे अशोकके वृक्ष ॥ ६ ॥ और उस शिखरपर जिन २ दिशाओंमें शंकरभगवान् भ्रमण करतेहैं वहां २ चन्द्रकान्तमणिके द्रवोंसे निरन्तर झरने झरते हैं और अन्य दिशाओंसे निवृत्त होतेहैं ॥ ७ ॥ और जो लता, वृक्ष, गुल्मोंके समूह, वापी, ह्रद, नदी, नद मृग तथा मृगोंके गणोंसे ऐसे आच्छादित था जैसे प्राणियोंके गणोंसे ब्रह्मांड ॥ ८ ॥

तस्यहेमजटानामकिराताःसंस्थिताःस्थले ॥ पिपीलिकावटतरोर्मूलकोशगताइव ॥ ९ ॥ कैलासपादारण्यानांरुद्राक्षैस्तरुगुल्मकैः ॥ वसंतिवृक्षवत्क्षुद्रास्तेवैनिकटजीविनः ॥ १० ॥ आसीत्तेषामुदारात्मा राजापरपुरंजयः ॥ जयलक्ष्म्याभुजइवयःप्रजायाश्चदक्षिणः ॥ ११ ॥ सुरघुर्नामबलवान्सुरघोरारिदर्पहा ॥ अर्कःपराक्रमइवमूर्त्तिमानिवमारुतः ॥ १२ ॥

अर्थ—उस हिमालयके मूलदेशमें हेम जटा (सुवर्णके तुल्य पीत जटाधारी) नाम किरात ऐसे निवास करतेथे जैसे वटवृक्षके मूलके खोंखलमें चेंटी ॥ ९ ॥ उस कैलासपर्वतके नीचे पर्वतोंके जंगलोंके रुद्राक्षोंसे तथा अन्य वृक्षोंके इन्धनफल मूलादिसे वे किरात अपनी जीविका करनेसे निकट जीवी थे ॥ १० ॥ उन किरातोंका उदारचित्त शत्रुओंके नगरोंका जेता, लक्ष्मीके भुजाके सदृश तथा प्रजाके पालन पोषणसे दक्षिण भुजाके समान ॥ ११ ॥ सुरघुनामसे प्रसिद्ध राजाथा और पुनः वह राजा बलवान् देवताओंके तुल्य भयंकर शत्रुओंके गर्वका हन्ता, पराक्रममें सूर्य्यके तुल्य, वेगमें मूर्तिमान् वायुके समानथा ॥ १२ ॥

जितोवैराज्यविभवैर्धनैर्गुह्यकनायकः ॥ शतक्रतुगुरुर्बोधैःकाव्यैरसुरदेशिकः ॥ १३ ॥ सचक्रेराजकार्याणिनिग्रहानुग्रहक्रमैः ॥ यथाप्राप्तान्यखिन्नांगोदिनानीवदिवाकरः ॥ १४ ॥ तज्जाभ्यांसुखदुःखाभ्यामथ तस्याभ्यभूयत ॥ स्वगतिर्वागुराबंधैःश्लिष्टांगस्येवपक्षिणः ॥ १५ ॥ किमार्त्तपीडयाम्येनंतिलान्यंत्रमिवौजसा ॥ सर्वेषामेवभूतानाममेवार्त्तिःप्रजायते ॥ १६ ॥

अर्थ—और वह राज्यके ऐश्वर्य्योंसे तथा धनोंसे कुबेरको जीतनेवाला तथा ज्ञानसे बृहस्पति और काव्य साहित्यकी रचनामें शुक्राचार्य्यको जीतनेवालाथा ॥ १३ ॥ दण्ड और अनुग्रहके क्रमोंसे यथाप्राप्त राज्यकार्य्योंको ऐसे करताथा जैसे अपनी क्रियाको सूर्यभगवान् ॥ १४ ॥ इसके पश्चात् निग्रह (दण्ड) अनुग्रहजनित सुखदुःखोंसे ऐसे उसकी गति पराजित हुई जैसे जालसे बन्धे हुये अंगवाले पक्षीकी ॥ १५ ॥ यंत्रमें तिलोंके सदृश दुःखीको मैं क्यों पराक्रमसे पीडित करताहुं क्योंकि सब प्राणियोंको दुःख मेरे ही समान होताहै ॥ १६ ॥

धनमस्मैप्रयच्छामिधनेनानंदवान्जनः ॥ भवत्यहमिवाशेषस्तदलंमेतिनिग्रहैः ॥ १७ ॥ अथवानिग्रहं प्राप्तंकरोम्येतेनैवविना ॥ वर्त्ततेनप्रजैवेयंविनावारिसरिद्यथा ॥ १८ ॥ हाकष्टमेषनिग्राह्योनित्यानुग्राह्यएषमे ॥ दिष्टयाद्यसुखवानस्मिकष्टमद्यास्मिदुःखवान् ॥ १९ ॥ इतिदोलायितंचेतोनविशश्रामभूपतेः ॥ एकत्रांबुमहावर्त्तेचिरतृष्णमिवभ्रमत् ॥ २० ॥

अर्थ—इस प्रजाजनको धन दूं, जिससे मेरे समान सब प्रजाजन पूर्ण रीतिसे आनन्दित हों और दण्डसे कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ १७ ॥ अथवा यथाप्राप्त दण्डभी दूं क्योंकि इसके बिना प्रजा अपनी २ मर्य्यादामें नहीं प्रवृत्त होसकती जैसे जलके बिना नदी ॥ १८ ॥ हा ! यह कष्टका विषयहै कि वध बन्धन आदिसे यह मेरा दण्डनीयहै और यह नित्य अनुग्राह्यहै, प्रारब्धसे आज सुखी हुं और आज दुःखी हुं ॥ १९ ॥ इसप्रकार संशयरूप दोला भ्रमण इस राजाका चित्त ऐसे नहीं विश्राम पाया जैसे तृषायुक्त निद्रित (सोते हुये) मनुष्यका दीर्घकालकी तृष्णासहित मन जलके महाआवर्तमें भ्रमण करताहै ॥ २० ॥

अथैकदागृहंतस्यमांडव्योमुनिराययौ ॥ भ्रांताशेषककुप्कुंजोवासवस्येवनारदः ॥ २१ ॥ तमसौपूजयामासपप्रच्छचमहामुनिम् ॥ संदेहद्रुमस्तंभपरशुंसर्वकोविदम् ॥ सुरघुरुवाच ॥ भवदागमनेनास्मि मुनेनिर्वृतिमागतः ॥ परमांवसुधापीठंसंप्राप्तइवमाधवे ॥ २३ ॥ अद्यतिष्ठाम्यहंनाथधन्यानांधुरिधर्मतः विकासिरविणेवाब्जंयत्त्वयास्म्यवलोकितः ॥ २४ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर एक समय समस्त दिशाओंके मण्डलमें भ्रमण करके माण्डव्यनामऋषि उस राजाके गृहमें ऐसे आये जैसे इन्द्रके गृहमें नारद ॥ २१ ॥ सन्देहरूप दुष्ट वृक्षरूप स्तम्भको परशु (कुठार) के तुल्य और सब शास्त्रोंमें प्रवीण उस ऋषिकी राजाने पूजाकी और पूंछा ॥ २२ ॥ सुरघुजी बोले-हे भगवन् ! आपके आगमनसे परमशान्तिको मैं ऐसे प्राप्त हुं जैसे पृथिवीपर वसन्तकाल वा विष्णुभगवान्के आगमनसे सब प्रजाजन ॥ २३ ॥ हे प्रभो ! सूर्य्यके किरणसे कमलके समान प्रफुल्लित मैं इससमय धन्य पुरुषोंमें धर्मसे मेरी गणना प्रथम है क्योंकि आपने मेरे ऊपर कृपादृष्टि की है ॥ २४ ॥

भगवन्सर्वधर्मज्ञचिरंविश्रांतवानसि ॥ तदमुंसंशयंछिधिममार्कस्तिमिरंयथा ॥ २५ ॥ महतांसंगमेनार्तिःकस्यनामननश्यति ॥ संदेहंतुपरामार्त्तिमाहुरार्त्तिविदोजनाः ॥ २६ ॥ मन्निग्रहानुग्रहजामद्भृत्यवपुषिस्थिताः ॥ कषंतिमामलंचितागजंहरिनखाइव ॥ २७ ॥ तद्यथासमतोदेतिसूर्यांशुरिवसर्वदा ॥ मतौममसुनेनान्यातथाकरुणयाकुरु ॥ २८ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! सर्व धर्मज्ञ यदि श्रमरहितहो तो मेरे इस सन्देहको इसप्रकार नाश करो जैसे सूर्य्य अन्धकारको ॥ २५ ॥ हे भगवन् ! महात्माओंके संगसे किसकी पीडा नष्ट नहीं होती और पीडा जाननेवालोंने सन्देहको सबसे वडी पीडा कही है ॥ २६ ॥ मेरे दंड तथा अनुग्रहसे उत्पन्न चिंता जो किये भृत्यों (शत्रु मित्रादि) के शरीरपर स्थितहैं वे (चिन्ता) मुझे ऐसे पीडित करती हैं जैसे सिंह हस्तीको ॥ २७ ॥ हे मुने ! इसलिये मेरी बुद्धिमें जिसप्रकार समदृष्टि सदा सूर्य्यके किरणके समान उदय हो न कि अन्य विषमदृष्टि ऐसी कृपा कीजिये ॥ २८ ॥

॥ मांडव्यउवाच ॥ स्वयत्नेनस्वसंस्थेनस्वेनोपायेनभूपते ॥ एषामनःपेलवताहिमवत्प्रविलीयते ॥२९॥ स्वविचारणयैवाशुशाम्यत्यंतर्मनोज्वरः ॥ शरदागममात्रेणमिहिकामहतीयथा ॥ ३० ॥ स्वेनैवमनसास्वानिस्वशरीरगतानिच ॥ विचारयेंद्रियाण्यंतःकीदृशान्यथकानिच ॥ ३१ ॥ कोहंकथमिदंकिंवाकथंमरणजन्मनी ॥ विचारयांतरेवंत्वंमहत्तामलमेष्यसि ॥ ३२ ॥

अर्थ—मांडव्य बोले-हे राजन् ! वैराग्य त्यागादि अपने यत्नसे और आत्मज्ञानपर्य्यन्त श्रवण मनन आदि उपायसे हर्ष विषाद आदि कंटकोंसे छेदने योग्य यह मनकी कोमलता आतपसे हिमके तुल्य नष्ट होजाती है ॥२९॥ हे राजन् ! मनके भीतरका संताप अपने विचारसेही शीघ्र, ऐसे शान्त होजाताहै जैसे शरत्के आगमन मात्रसे महान् मेघका पटल ॥ ३० ॥ हे राजन् ! अपनेही मनसे तुम अपने पुत्र स्त्री धनादिको, अपने अङ्गके अन्तर्गत इन्द्रियोंको तथा अन्य बुद्धिआदिको विचारो कि ये कैसे है और कौन हैं ॥ ३१ ॥ और अपने चित्तमें यहभी विचारो कि हम कौन हैं, कैसे यह संसार है और जन्ममरण कैसे होते हैं तब तुम पूर्ण महत्वको प्राप्त होओगे ॥ ३२ ॥

विचारणापरिज्ञातस्वभावस्यसतस्तव ॥ हर्षामर्षदशाश्चेतस्तोलयिष्यंतिनाचलम् ॥ ३३ ॥ मनःस्वरूपमुत्सृज्यशममेष्यतिविज्वरम् ॥ भूतपूर्ववपुर्भूत्वातरंगःपयसीवते ॥ ३४ ॥ तिष्ठदेवमनोरूपंपरित्यक्ष्यतितेनघ ॥ कलंकविकलंकालंमन्वंतरगताविव ॥ ३५ ॥ अनुकंप्याभविष्यंतिश्रीमंतःसर्वएवते ॥ दृष्टतत्त्वस्यतुष्टस्यजनाःपितुरिवावनौ ॥ ३६ ॥

अर्थ—जब विचारसे अपने सत्स्वभावको जानजाओगे तब हर्षशोकादिकी दशा पर्वतके तुल्य तुमारे चित्तको ऊंचानीचा नहीं करसकेगी ॥ ३३ ॥ उस समय तुमारा चित्त अपने पूर्वस्वरूपको त्यागकर और संतापरहित पूर्व सिद्ध ब्रह्मस्वरूप होके ऐसे शान्तिको प्राप्त होगा जैसे जलमें तरंग ॥ ३४ ॥ हे पाप शून्य राजन् ! जैसे पूर्व मनुके अन्तमें कलिकालको प्राप्त होके पापोंसे विकल यह संसार पुनः अन्य मनुके आनेपर अपने स्वरूपसे विद्यमान रहतेही कलंकसहित पूर्वरूपको त्यागताहै ऐसे ही तुमारा मनभी जीवन्मुक्तोंके व्यवहारके समर्थ स्थित रहतेही अपने पूर्व मलिन स्वरूपको त्याग देगा ॥ ३५ ॥ और जब तुम आत्मतत्त्वको देखलोगे तब सब महा ऐश्वर्य्य युक्त ब्रह्माआदिभी तुमारे कृपाके पात्र ऐसे होंगे जैसे पृथिवीपर संतुष्ट पालन कर्ता पिताके प्रजाजन ॥ ३६ ॥

विवेकदीपदृष्टात्मामेर्वब्धिनभसामपि ॥ अथोकरिष्यसिनृपमहत्तामुत्तमार्थदाम् ॥ ३७ ॥ महत्तामागतेचेतस्तवसंसारवृत्तिषु ॥ ननिमज्जतिहेसाधोगोष्पदेष्विवारणः ॥ ३८ ॥ कृपणंतुमनोराजन्पेलवेपिनिमज्जति ॥ कार्यगोष्पदतोयेपिजीर्णांगोमशकोयथा ॥ ३९ ॥ चेतोवासनयापंकेकीटवत्परिमज्जति ॥ दृश्यमात्रावलंबिन्यास्वयादीनतयातया ॥ ४० ॥

अर्थ—और हे राजन् ! विवेकजनित ज्ञानरूप दीपसे आत्माको जब देखोगे तब सुमेरु, समुद्र और आकाशादि महान् पदार्थोंकोभी उत्तम अर्थदायक महत्त्वको तुम सम्प्रदान करोगे, क्योंकि तुमारी आत्मसत्ताके अधीन

उनकी महत्ताहै ॥ ३७ ॥ और हे साधो राजन् ! आत्मज्ञानसे महत्वके प्राप्त होनेपर तुमारा चित्त संसारकी वृत्तियोंमें ऐसे नहीं डूबेगा जैसे गौके खुरमें हस्ती॥३८॥ हे राजन् ! कामादिकी कृपणतासे दूषित मन तुच्छकार्य्योंमें ऐसे डूबजाताहै जैसे गौके खुरमात्र जलमेंभी शिथिलशरीरवाला मशक (मच्छर) ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! यह चित्त वासनासे और दृश्यमात्रको अवलम्बन करनेवाली उस अपनी प्रसिद्ध दीनतासे कीटके समान दृश्यरूप कीचडमें डूबताहै ॥४०

तावत्तावन्महाबाहोस्वयंसंत्यज्यतेऽखिलम् ॥ यावद्यावत्पराऽलोकःपरमात्मैवशिष्यते ॥ ४१ ॥ तावत्प्रक्षाल्यतेधातुर्यावद्धेमैवशिष्यते ॥ तावदालोक्यतेसर्वंयावदात्मैवलभ्यते ॥ ४२ ॥ सर्वःसार्विकयाबुद्ध्यासर्वंसर्वत्रसर्वदा ॥ सर्वथासंपरित्यज्यस्वात्मनात्मोपलभ्यते ॥ ४३ ॥ यावत्सर्वंनसंत्यक्तंतावदात्मानलभ्यते ॥ सर्वावस्थापरित्यागेशेषआत्मेतिकथ्यते ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे महाबाहो राजन् ! जबतक स्वयं ज्योतिःस्वरूप आत्मामात्रका अनुभव शेष न रहजाय तबतक सब कुछ त्यागना चाहिये ॥ ४१ ॥ सुवर्णकी खानि तबतक शोधित होती है जबतक कि सुवर्णमात्रही शेष रहजाताहै, और तभीतक सब अध्यात्मशास्त्र विचारा जाताहै जबतक कि आत्माका लाभ नहीं होता ॥ ४२ ॥ सब वस्तुओंके रूपभूत बुद्धिसे सर्वदा सबदेशमें सर्वथा सब दृश्यको त्यागकर अपने आत्माहीसे पूर्ण आत्माका लाभ होताहै, न कि कभी किसी देशमें और कुछ विषयोंके त्यागमात्रसे आत्माका लाभ होताहै ॥ ४३ ॥ जबतक सब पदार्थ नहीं त्यागे गये तबतक आत्माकी प्राप्ति नहीं होती, क्योंकि संपूर्ण अवस्थाओंके परित्यागसे शेष जो रहजाताहै वही आत्मा कहागयाहै ॥ ४४ ॥

यावदन्यन्नसंत्यक्तंतावत्सामान्यमेवहि ॥ वस्तुनासाद्यतेसाधोस्वात्मलाभेतुकाकथा ॥ ४५ ॥ यत्रसर्वात्मनैवात्मलाभाययततिस्वयम् ॥ त्यक्तान्यकार्यंप्राप्नोतितन्नामनृपनेतरत् ॥ ४६ ॥ स्वात्मावलोकनार्थंतुतस्मात्सर्वंपरित्यजेत् ॥ ॥ सर्वंकिंचित्परित्यज्ययद्दृष्टंतत्परंपदम् ॥ ४७ ॥ सकलकारणकार्यपरंपरामयजगद्गतवस्तुविजृंभितम् ॥ अलमपास्यमनःस्ववपुस्ततःपरिविलाप्ययदेतितदेवतत् ॥ ४८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमाहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे सुरघुवृत्तांतेमांडव्योपदेशो नामाष्टपंचाशः सर्गः ॥ ५८ ॥

अर्थ—क्योंकि जबतक अन्य वस्तु नहीं त्यागी जाती तबतक साधरण वस्तु गोधन आदिभी नहीं प्राप्त होते. तो हे साधो ! बिना त्यागे आत्मलाभ होगा इसकी कथा अर्थात् बिना सर्व त्यागके आत्माका लाभ नहीं होसकता ॥ ४५ ॥ हे राजन् ! जिस विषयकेलिये अन्यकार्य्यको त्यागकर सबप्रयत्नसे आत्मा स्वयं प्रयत्न करता है तब उसी पदार्थको पाता है न कि अन्य पदार्थको ॥ ४६ ॥ इस कारण सब कुछ त्याग करना आत्माके लाभार्थ उचितहै. और सब कुछ त्यागकर जो त्यागनेको सर्वथा अशक्य देख पडे वही परमपद है ॥ ४७ ॥ संपूर्ण कार्यकारणकी परंपरामय इस जगत्में मणियोंमें गूंथे हुये सूत्रके तुल्य सन्मात्र आत्मामें अपनी कल्पनासे सद् भिन्नरूपसे कल्पित सब दृश्यरूपको पूर्ण रीतिसे यह मन त्यागकर अनन्त मूल अज्ञानके नाशसे अपनी मनोरूपताकोभी लय करके सच्चिद्रूप वस्तुको यह पाताहै और वही एक रस ब्रह्म है ॥ ४८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठ महारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उपशमप्रकरणे सुरघुवृत्तान्ते माण्डव्योपदेशो नामाष्टपंचाशः सर्गः ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

बाह्य तथा आभ्यन्तर दृश्यको एकान्तमें त्यागतेहुये राजाको अपने विचारसे आत्माका लाभ हुआ यह विषय इस ५९ के सर्गमें वर्णन किया गया है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ इत्युक्त्वाभगवानेनंसुरघुंरघुनंदन ॥ ययौस्वमेवरुचिरंमांडव्योमौनमंडलम् ॥ १ ॥ गतेवरमुनौराजागत्वैकांतमनिंदितम् ॥ धियासंचिंतयामासकोनामाहमितिस्वयम् ॥ २ ॥ नाहंमेरुर्नमेमेरुर्जगन्नाहंनमेजगत् ॥ नाहंशैलानमेशैलाधरानाहंनमेधरा ॥ ३ ॥ किरातमंडलंनेदंममनाहंस्वमंडलम् ॥ निजसंकेतमात्रेणकेवलंदेशएवमे ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रघुनन्दन इसप्रकार राजासे कहके भगवान् माण्डव्य कहके मुनियोंके निवासभूत अतिरुचिर अपने आश्रममें गये ॥ १ ॥ मुनिके जानेपर राजा उत्तम एकान्तस्थानमें जाके अपनी बुद्धिसे

स्वयं यह विचार किया कि मैं कौनहुं ॥ २ ॥ न मैं मेरुहुं न मेरु मेरा है न मैं जगत्हुं न जगत् मेरा है; न मैं पर्वतहुं न पर्वत मेरे हैं और न मैं पृथिवीहुं न पृथिवी मेरी है ॥ ३ ॥ न मैं किरातका मण्डलहुं और न मेरा यह मंण्डल है किंतु सबके संकेतमात्रसे राज्याभिषेक होनेसे केवल इस देशका मैं राजाहुं, और कल्पनामात्रसे यह मेरा देशहै ॥४॥

त्यक्तोमयैषसंकेतोनाहंदेशोनवैषमे ॥ इदानींनगरंशिष्टमेपएवात्रनिश्चयः ॥ ५ ॥ पताकावनपंक्त्याढ्या भृत्योपवनसंकुला ॥ गजाश्वसामंतयुतापुरीनाहंनमेपुरी ॥ ६ ॥ व्यर्थसंकेतसंबंधंसंकेतविगमेक्षतम् ॥ भोगवृंदंकलत्रंचनाहंनैतन्ममाखिलम् ॥ ७ ॥ एवंसभृत्यंसबलंसवाहनपुरांतरम् ॥ नाहंराज्यंनमे राज्यंसंकेतोह्ययमाकुलः ॥ ८ ॥

अर्थ—इस सब कीर्तिमात्रसे जो राजाका संकेतहै उसको त्यागकर न मैं देशहुं, न मेरा यह देशहै, अब यह नगर शेष रहा इसमेंभी संकेतको त्यागकर यही निश्चयहै ॥ ५ ॥ पताका तथा वाटिकाओंकी पंक्तिसे पूर्ण भृत्य तथा उपवनोंसे व्याप्त, गज, अश्व और सामन्तों (करदेनेवाले छोटे राजों) से संयुक्त यह नगरी मैं नहीं हुं और न मेरी यह नगरी है ॥ ६ ॥ संकेतके त्यागमें व्यर्थ जो संकेतका संबन्धहै वह नष्ट होगया इसलिये राज्य तथा नगरी मैं नहीं हुं, और न ये मेरे हैं, भोगसमूह तथा कुटुंबभी मैं नहीं और न ये सब मेरे हैं ॥ ७ ॥ इसीप्रकार, भृत्य, सेना वाहन और पुरसहित यह राज्य मैं और न यह राज्य मेराहै क्योंकि यह संबन्ध अन्धपरंपरासे कल्पित है ॥ ८ ॥

देहमात्रमहंमन्येहस्तपादादिसंयुतम् ॥ तदिदंतावदाश्वंतरलमालोकयाम्यहम् ॥ ९ ॥ तदत्रतावन्मांसास्थिनाहमेतदचेतनम् ॥ नचैतन्ममसंश्लेषमेत्यब्जस्ययथाजलम् ॥ १० ॥ मांसंजडंनतदहंनैवाहंरक्तमप्यलम् ॥ जडान्यस्थीनिनैवाहंनचैतानिममक्वचित् ॥ ११ ॥ कर्मेंद्रियाणिनैवाहंनचकर्मेंद्रियाणिमे ॥ जडंयत्किलदेहेस्मिंस्तदहंनैवचेतनः ॥ १२ ॥

अर्थ—इसलिये हस्तपाद आदिसहित यह देह मैं हुं ऐसा संभवहै, इसलिये शीघ्र आभ्यंतरभी मैं अब विचार करताहुं ॥ ९ ॥ इस देहमें अचेतन मांस हड्डी मैं नहीं हुं और कमलके जलके समान इस देहका तथा मेरा सबन्धभी नहीं प्राप्त होता ॥ १० ॥ जड मांस रक्त और हड्डियां मैं नहीं हुं और न कदापि वे मेरे हैं ॥ ११ ॥ कर्म इन्द्रिय (हस्त, पाद, वाग्, गुदा, उपस्थ) मैं नहीं और न कर्म इन्द्रिय मेरे हैं, क्योंकि इस देहमें जो जडहै वह चेतन मैं नहीं हो सकता ॥ १२ ॥

नाहंभोगानमेभोगानमेबुद्धींद्रियाणिच ॥ जडान्यसत्स्वरूपाणिनचबुद्धींद्रियाण्यहम् ॥ १३ ॥ मूलंसंसृतिदोषस्यमनोनाहंजडंहितत् ॥ अथबुद्धिरहंकारइतिदृष्टिर्मनोमयी ॥ १४ ॥ मनोबुद्धींद्रियाद्यंतोभूतकोशश्चलद्वपुः ॥ नाहमेवंशरीरादिशिष्टमालोकयाम्यहम् ॥ १५ ॥ शेषस्तुचेतनोजीवःसचेच्चेत्येनचेतति ॥ अन्येनबोध्यमानोसौनात्मतत्त्ववपुर्भवेत् ॥ १६ ॥

अर्थ—न मैं भोग हुं न भोग मेरे हैं और न बुद्धि इन्द्रियभी मेरे हैं और जड मिथ्यारूप बुद्धि इन्द्रियभी मैं नहीं हुं ॥ १३ ॥ संसारके दोषोंका मूल मनभी मैं नहीं हुं, क्योंकि वह मन जड है और बुद्धि अहंकार यह जो दृष्टि है वहभी मैं नहीं हुं क्योंकि यह दृष्टि मनोमय अंतःकरणका भेदरूपही है ॥ १४ ॥ शरीरसे आदि लेके सूक्ष्म तथा स्थूलभूत और मन बुद्धि तथा इन्द्रियादिभी नहीं हुं और शेषको देखकर विचारताहुं ॥ १५ ॥ शेष (मन बुद्धिसे परे) चेतन प्रमाताविषय प्रमेयके साथ चेतताहै. त्रिपुटीके साक्षीसे अनुभूयमान यह प्रमाता आत्मतत्त्वका यथार्थ शरीर नहीं होसकता ॥ १६ ॥

एवंत्यजामिसंवेद्यंचेत्यंनाहंहितत्किल ॥ शेषोविकल्परहितोविशुद्धचिदहंस्थितः ॥ १७ ॥ चित्रमेषोस्मिलब्धात्माजातःकालेनकार्यवान् ॥ एषसोहमनंतात्मानांतोस्यपरमात्मनः ॥ १८ ॥ ब्रह्मणींद्रयमेवायौसर्वभूतगणेतथा ॥ सएषभगवानात्मातंतुर्मुक्तास्विवस्थितः ॥ १९ ॥ चिच्छक्तिरमलासैषाचेत्यामयविवर्जिता ॥ भरिताशेषदिकुंजाभैरवाकारधारिणी ॥ २० ॥

अर्थ—इसी प्रकार साक्षीसे वेद्य (जानने योग्य) प्रमित तथा प्रमेयको मैं त्यागताहुं, क्योंकि वह मैं नहीं हुं, किंतु सर्व शेष विकल्परहित विशुद्ध साक्षी चेतन मैं हुं, यह निश्चयमें स्थितहै ॥ १७ ॥ अहो ! कैसे आश्चर्यका विषयहै कि चिरकाल (अनादिकाल) से आत्माको प्राप्तभी आज परमपुरुषार्थके लाभयुक्त हुआ हुं, यह मैं अनंतरूप आत्मा हुं इस परमात्माका अंत नहीं है ॥ १८ ॥ ब्रह्मामें, इन्द्रमें, यम वायुमें, तथा सब भूतगणोंमें यह भगवान् आत्मा ऐसे अनुगतरूपसे स्थितहै जैसे मोतियोंकी मालामें सूत्र ॥ १९ ॥ यह निर्मलविषयरूप रोगसे वर्जित, सब दिशाओंको पूर्ण करनेवाली, अज्ञानियोंको भयंकर आकार धारणकरनेवाली चित् शक्ति है ॥ २० ॥

सर्वभावगतासूक्ष्माभावाभावविवर्जिता ॥ आब्रह्मभुवनांतःस्थासर्वशक्तिसमुद्गिका ॥ २१ ॥ सर्वसौंदर्यसुभगासर्वप्राकाश्यदीपिका ॥ सर्वसंसारमुक्तानांतंतुरगततरूपिणी ॥ २२ ॥ सर्वाकारविकाराढ्या सर्वाकारविवर्जिता ॥ सर्वभूतौघतांयातासर्वदासर्वतांगता ॥ २३ ॥ चतुर्दशविधान्येपाभूतानिभुवनोदरे ॥ एतन्मयीयंकलनाजागतीवेदनात्मिका ॥ २४ ॥

अर्थ—सब पदार्थोंमें प्राप्त, सूक्ष्म, उत्पत्ति तथा नाशसे वर्जित, पातालसे लेके ब्रह्मलोकपर्यंन्त सब भुवनोंमें स्थित और सब शक्तियोंकी पिटारी यह चित्शक्ति है ॥ २१ ॥ निरतिशय आनन्दसे पूर्ण, सबप्रकाशके योग्य पदार्थोंकी दीपिका, और सब ब्रह्मांडरूप मोतियोंकी मालामें विशालसूत्रके समान यह चित्शक्ति है ॥ २२ ॥ सब आकार तथा विकारोंसे पूर्ण, और सबआकारोंसे वर्जित, सबभूतोंके समूहरूपताको प्राप्त यह चित्शक्ति सदा सर्वरूपताको प्राप्त हुई है ॥ २३ ॥ चौदहलोकोंके भेदसे चौदहप्रकारके प्राणियोंको यह अपने उदरमें धारण करती है, और यह जगत्की अनुभवरूप कल्पना इसीका रूप है ॥ २४ ॥

मिथ्यावभासमात्रंतुसुखदुःखदशागतिः ॥ नानाकारमयाभासःसर्वमात्मैवचित्परा ॥ २५ ॥ सोयमात्मामम्व्यापीसेयंयदवबोधनम् ॥ सेयमाकलितांगाभाकरोतिनृपविभ्रमम् ॥ २६ ॥ अस्याएवप्रसादेन मनोदेहरथेस्थितम् ॥ संसारजाललीलासुयातिवल्गतिनृत्यति ॥ २७ ॥ इदंमनःशरीरादिर्नकिंचिदपि वस्तुतः ॥ नष्टेनकिंचिदप्यस्मिन्परिनश्यतिपेलवे ॥ २८ ॥

अर्थ—यह सुखदुःखमयी दशाओंकी गति मिथ्याही भासती है, और नानाप्रकारके आकारोंसे आभासमान आत्मा जो है यह सबकुछ परा चित् है ॥ २५ ॥ यही चित् मेरा आत्मा सब जगतमें अनुगत है, यही मेरी बुद्धिका साक्षी है, और द्रष्टा दृश्यके भेदसे कल्पित शरीरधारिणी यही चित् मैं राजा हुं ऐसा भ्रम कराती है (प्रथम कराती थी) ॥ २६ ॥ इस चित्के प्रतापसे मन देहरूप रथमें स्थित होके संसारजालकी लीलाओंमें जाताहै, व्यवहार करता है, नाचता है ॥ २७ ॥ यथार्थमें यह मन शरीर आदि कुछ नहीं है, और इस तुच्छ शरीर आदिके नष्ट होनेसे आत्माका कुछ नहीं नष्ट होताहै ॥ २८ ॥

जगज्जालमयंनृत्तमिदंचित्तनटैस्ततम् ॥ एतयैवैकयाबुद्ध्यादृश्यतेदीपलेखया ॥ २९ ॥ कष्टंमुधैवमेचिंतानिग्रहानुग्रहस्थितौ ॥ बभूवदेहनिष्ठेहनकिंचिदपिदेहकम् ॥ ३० ॥ अहोत्वहंप्रबुद्धोऽस्मिगतंदुर्दर्शनं मम ॥ दृष्टंद्रष्टव्यमखिलंप्राप्तंप्राप्यमिदंमया ॥ ३१ ॥ सर्वंकिंचिदिदंदृश्यंदृश्यतेयज्जगद्गतम् ॥ चिन्निष्पंदांशमात्रांशान्नान्यत्किंचनशाश्वतम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—इस जगत्जालमय नाटक चित्तरूप नटोंने कियाहै और यह एक इसी दीपकी लेखाकेसमान साक्षीरूप बुद्धिसे देख पडताहै ॥ २९ ॥ अहो ! यह कष्टका विषयहै कि निग्रह और अनुग्रहकी स्थितिमें देहनिष्ठ मुझे व्यर्थ हुई है और देह कुछभी नहीं है ॥ ३० ॥ अहो ! अब तो मैं ज्ञानवान् हुं अब मेरा दुष्ट दर्शन (शरीर आदिमें आत्मदृष्टि) गया. सम्पूर्ण देखने योग्य पदार्थ मैंने देखलिया और सब प्राप्य पदार्थ पाया ॥ ३१ ॥ जो कुछ सब दृश्य पदार्थ जगत्गत देखपडताहै वह चित्का निष्पंद अर्थात् मायासे जीव और जगत्भाव उसका अंश जो पंच ज्ञानेन्द्रिय पंचकर्मेन्द्रिय पंचप्राण और मन बुद्धिरूप सप्तदश अवयववाला लिंगशरीरका भ्रम उसकी मात्रा बाह्य तथा अंतःकरणके भ्रम उस मात्राके अंश जाग्रत् तथा स्वप्नमय दृश्य उससे पृथक् नित्य कुछ नहीं है ॥ ३२ ॥

क्वतौक्वदृग्विधौवापिकिंनिष्ठौवाकिमात्मकौ ॥ नियहानुग्रहौलोकेहर्षामर्षकमौतथा ॥ ३३ ॥ किंसुखं किंनुवादुःखंसर्वंब्रह्मेदमाततम् ॥ अहमासंसुधामूढोदिष्ट्यामूढोऽस्म्यहंस्थितः ॥ ३४ ॥ किमस्मिन्नेव मालोकेशोच्यतेकिंविमुह्यते ॥ किंप्रेक्ष्यतेकिंक्रियतेस्थीयतेवाथगम्यते ॥ ३५ ॥ किंचिदेवमिदंनामाचिदाकाशंविराजते ॥ नमोनमस्तेनिस्तत्त्वदिष्ट्यादृष्टोऽसिसुंदर ॥ ३६ ॥ अहोनुसंप्रबुद्धोस्मिसम्यग्ज्ञातमलंमया ॥ नमोमह्यमनंतायसम्यग्ज्ञानोदयायच ॥ ३७ ॥ विगतरंजननिर्विषयस्थितिर्गतभवभ्रमरंजितवर्जिते ॥ स्थिरसुषुप्तकलाभिगतस्ततःसमसमंनिवसाम्यहमात्मनि ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमाहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे सुरघुविश्रांतिर्नामैकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

अर्थ—वे दोनों निग्रह और अनुग्रह कहां हैं, कैसे किसमें रहनेवाले और किस स्वरूपके हैं और उनसे उत्पन्न हर्ष और अमर्षभी क्या हैं अर्थात् शरीर आदिके मिथ्या होनेसे ये निराश्रय सिद्ध हुये ॥ ३३ ॥ सुख तथा दुःख

क्या पदार्थ हैं, यह सब व्यापक ब्रह्मही है, मैं व्यर्थ मूढ था, और अब सौभाग्यसे ज्ञानवान् स्थितहुं ॥ ३४ ॥ इस आनंदरूप पूर्णस्वभाव आत्माके अनुभव होनेपर किसका शोच किया जाय और किसकेलिये मोहित हो और किसको देखैं क्या करैं वा कहां जांय ॥ ३५ ॥ अलौकिक चमत्कार चिदाकाशही विराजमानहै, हे भौतिकतत्त्वरहित परमात्मन् ! तुमको नमस्कारहै, बडे सौभाग्यसे तुम देखपडे हो ॥ ३६ ॥ अहो ! मैं ज्ञानवान् हुं भलीभांतिसे मैंने जानलिया, इसलिये सम्यक् ज्ञानका प्रादुर्भाव जिसको उत्पन्न हुआहै ऐसे मुझ अनन्त आत्माको नमस्कारहै ॥ ३७ ॥ राग द्वेषके अभावसे जाग्रत् स्वप्न तथा सुषुप्तिके विषयकी स्थिति जिसकी नष्ट होगई है ऐसा तथा स्थिर सुषुप्तिकी कला अर्थात् ब्रह्ममें लयकी युक्तिसे उपाधिके नाशसे ब्रह्ममें एकभावको प्राप्त मैं संसारके भ्रम तथा रागद्वेषसे वर्जित साक्षीभूत आत्मस्वरूप ब्रह्ममें सर्वथा भेदरहित समतासे निवास करता हुं ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उपशमप्रकरणे सुरघुविश्रान्तिर्नामैकोनषष्ठितमः सर्गः ५९ ॥

षष्ठितमः सर्गः ॥ ६० ॥

देहपात पर्य्यन्त सुरघुका असंग आचार तथा उस जीवन्मुक्तके देहके शान्त होनेपर आकाशके समान स्थिति इस ६० के सर्गमें वर्णन की गई है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ इतिहेमजटाधीशोलेभेपदमनुत्तमम् ॥ विवेकाध्यवसायेनब्राह्मण्यमिवगाधिजः ॥ १ ॥ अनर्थाकारकार्यासुनासीच्चेष्टासुखेदवान् ॥ भूयोभूयःप्रयुक्तासुदिनमालास्विवेश्वरः ॥ २ ॥ ततःप्रभृतिसोऽतिष्ठत्सर्वदाविगतज्वरः ॥ समासमेस्वकेकार्येजलौघाग्रइवाचलः ॥ ३ ॥ हर्षामर्षविनिर्मुक्तःप्रत्यहंकार्यमाहरन् ॥ उदारगंभीरवपुर्जहारांबुनिधेःश्रियम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—इसप्रकार विवेकके निश्चयसे हेमजटानाम किरातोंके स्वामीने परमोत्तम (ब्रह्म) पद ऐसे प्राप्त किया जैसे विश्वामित्रने ब्राह्मणत्वको ॥ १ ॥ पुनः २ अनुष्ठान कीहुई दैवगतिसे अनर्थाकार दुःखदायिनी चेष्टाओंमें वह सुरघु खेदवान् ऐसे नहीं हुआ जैसे दिनमालाओंमें सूर्य्य ॥ २ ॥ उसी समयसे लेके निग्रह अनुग्रहरूप अपने राज्यके उचित कार्य्योंमें जलके प्रवाहके संमुख स्थित पर्वतके समान अचल, और सदा संतापरहित वह स्थित रहा ॥ ३ ॥ हर्ष तथा अमर्षसे वर्जित और प्रतिदिन अपने आय (आमदनी) व्यय (खर्च) आदि कार्य्योंको करतेहुये उस उदार तथा गंभीरशरीरवालेने समुद्रकी शोभाको जीतलिया ॥ ४ ॥

सुषुप्तपदधर्मिण्याचित्तवृत्त्याव्यराजत ॥ निष्कंपयाप्रकाशिन्यादीपःस्वशिखयेवसः ॥ ५ ॥ ननिर्घृणोदयावान्नोनद्वंद्वीनाथमत्सरी ॥ नसुधीर्नासुधीर्नार्थीनानर्थीसबभूवह ॥ ६ ॥ समदर्शनयानित्यंवृत्त्याचापलधीरया ॥ अंतःशीतलयारेजेपरिपूर्णार्णवेंदुवत् ॥ ७ ॥ सर्वंचित्तत्वकलनंजगदित्यवलोक्यसः ॥ प्रशांतसुखदुःखश्रीस्तस्यपूर्णामतिर्बभौ ॥ ८ ॥

अर्थ—सुषुप्तिके समान निश्चल तथा चेतनसे प्रकाशमयी अपनी चित्तकी वृत्तिसे वह ऐसे शोभित हुआ जैसे अपनी निष्कंप प्रकाशमयी शिखासे दीप ॥ ५ ॥ वह न निर्दयी, न दयावान्, न द्वंद्वी, न मत्सरी, न अतिबुद्धिमान्, न अर्थी और न अनर्थी अर्थात् सर्वत्र यथाप्राप्त कार्य्योंके करनेसे समदर्शी था ॥ ६ ॥ समदर्शिनी, चपलतारहित, धीर और अंतःकरणमें नित्य शीतल चित्तकी वृत्तिसे वह ऐसे शोभित हुआ जैसे पूर्ण समुद्र और चन्द्रमा ॥ ७ ॥ यह सब जगत् चित्तकी कल्पनामात्र है ऐसा विचार करके उसकी बुद्धि भौतिक सुख तथा दुःखसे शान्त होगई क्योंकि उसकी बुद्धि पूर्णथी ॥ ८ ॥

उल्लसन्विकसन्पूर्णस्तिष्ठन्गच्छन्विशन्स्वपन् ॥ अभूत्समसमाधिस्थःप्रबुद्धश्चिद्व्रयंगतः ॥ ९ ॥ सकुर्वन्विगतासंगंराज्यंराजीवलोचनः ॥ अतिष्ठदक्षताकारोभूरिवर्षशतान्यथ ॥ १० ॥ सन्निवेशमिमंदेहनामकंतदनुस्वयम् ॥ सजहौतेजसाक्रांतोरूपंहिमकणोयथा ॥ ११ ॥ विवेशपरमाद्यंतकारणंकारणेश्वरम् ॥ प्रज्ञयासरितांवारिपरिपूर्णमिवांबुधिम् ॥ १२ ॥ अधिगतविमलैकरूपतेजाविजनदशांसमुपेत्यशांतशोकः ॥ अलमभवदसौपरस्वरूपंघटखमिवांबरसंयुतंमहात्मा ॥ १३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे सुरघुवृत्तांते सुरघुनिर्वाणं नाम षष्ठितमः सर्गः ॥ ६० ॥

अर्थ—शरीरसे शोभायमान, चित्तसे विकसित, पूर्ण स्थित रहते, चलते, फिरते, सोते और चित्में लयको प्राप्त वही ज्ञानीपुरुष सदा समाधिस्थ था ॥ ९ ॥ कमलनेत्र वह राजा आसक्तिरहित राज्य करता हुआ अखंडित आकारसे सैकडोंवर्षपर्य्यन्त राज्य करतारहा ॥ १० ॥ इसके अनंतर पंचभूतोंकी रचनामय इस शरीरको ऐसे त्यागा जैसे सूर्य्यके किरणसे आक्रान्त अपने मूर्त आकारको हिमका कण ॥ ११ ॥ और साक्षीरूप बुद्धिसे सब ब्रह्माण्डोंकी उत्पत्ति तथा प्रलयके कारण और ब्रह्माआदिकेभी नियंता परब्रह्ममें ऐसे प्रवेश किया जैसे नदियोंका जल पूर्ण समुद्रमें ॥ १२ ॥ यह महात्मा सुरघु बुद्धिसे निज आत्मरूपसे विमल शोकरहित आनन्दपरिपूर्ण आत्माको पाया और उससे जन्मआदि क्रियासे शून्यदशाको पाकर पूर्णरीतिसे परब्रह्मस्वरूप ऐसे होगया जैसे घटके नष्ट होनेसे घटाकाश महदाकाशमें संयुक्त होके मिलजाताहै ॥ १३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषाऽनुवादे सुरघुनिर्वाणं नाम षष्ठितमः सर्गः ॥ ६० ॥

एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

सहजसमाधिके ज्ञानकेलिये सुरघुराजाका परिघराजाके साथ संवाद इस ६१ के सर्गमें वर्णन कियागया है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ एवमुत्पलपत्राक्ष राघवाघविपर्यये ॥ पदमासादयाद्वंद्वंविशोकोभवभूतये ॥ १ ॥ एतांदृष्टिमवष्टभ्यनमनःपरितप्यते ॥ घोरेतमसिनिर्मग्नंलब्धदीपंशिशुर्यथा ॥ २ ॥ विवेकावस्थयाचेतस्तथैवायातिनिर्वृतिम् ॥ पतच्छ्वभ्रेदृढतृणप्रचयालंबनादिव ॥ ३ ॥ अथैतांपावनींदृष्टिंभावयित्वाप्युदाहरन् ॥ नित्यमेकसमाधानोभवभूपितभूतलः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे कमलनेत्र रामजी ! हर्ष शोकादिके कारण पापके नाश होनेपर द्वंद्वरहित पदको प्राप्त करो और परम कल्याण मोक्षकेलिये शोकरहित हो ॥ १ ॥ इस सुरघुकी दृष्टिको अवलम्बन करनेसे घोर अज्ञानान्धकारमें मन ऐसे नहीं गिरता जैसे दीप प्राप्त होनेसे बालक ॥ २ ॥ विवेककी अवस्थासे चित्त ऐसी शान्तिको प्राप्त होताहै जैसे गढेमें गिरताहुआ तटके तृणके अवलंबनसे ॥ ३ ॥ हे रामजी ! इस सुरघुकी परमपवित्र दृष्टिको वार २ अभ्यास करके दूसरोंकोभी अपना उदाहरण शिखाते हुये संसारको भूपित करके नित्य एकब्रह्मकी समाधिमें तत्पर होओ ॥ ४ ॥

श्रीरामउवाच ॥ ॥ कथमेकसमाधानंकीदृशंवामुनीश्वर ॥ वाताहतमयूरांगरुहलोलंमनोभवेत् ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ शृणुतस्यैवसुरघोःप्रबुद्धस्यसतस्तदा ॥ पर्णादस्यचराजर्षेःसंवादमिममद्भुतम् ॥ ६ ॥ राघवैकसमाधानबोधितायोजितात्मनोः ॥ परस्परंसमालापमिमंप्रकथयामिते ॥ ७ ॥ बभूवपारसीकानांपार्थिवःपरवीरहा ॥ परिघोनामविख्यातःपरिघःस्यंदनेयथा ॥ ८ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–हे मुनीश्वर ! वायुसे ताडित मोरके पंखके समान चंचल मन कैसे एकब्रह्ममें समाधिनिष्ठ होसकता है ॥ ५ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! उसी ज्ञानी सुरघुका तथा राजा पर्णाद (अन्य नाम परिघ) का यह उत्तम तथा अद्भुत संवाद इस विषयमें सुनो ॥ ६ ॥ हे राघव ! एक समाधानमें चित्तको लगानेवाले और चित्त इंद्रिय आदिके जीतनेवाले दोनों राजाओंके परस्परके संवादको मैं तुमसे कहताहुं ॥ ७ ॥ रथके परीघ (धुरा) के तुल्य शत्रुघातक और प्रसिद्ध पारसीकेदेशोंका वह राजा परीघ नाम था ॥ ८ ॥

सबभूवपरंमित्रंसुरघोरघुनंदन ॥ नंदनोद्यानसंस्थस्यमदनस्येवमाधवः ॥ ९ ॥ कदाचित्परिघस्याभूदवर्षमंडलेमहत् ॥ कल्पांतइवसंसारेप्रजादुष्कृतदोषजम् ॥ १० ॥ विनेशुर्जनतास्तत्रबह्वयःक्षुत्क्षामजीविताः ॥ ज्वलितेविपिनेवह्नौयथाभूतपरंपराः ॥ ११ ॥ तद्दुःखंपरिघोदृष्ट्वाविषादमतुलंययौ ॥ तत्याजाखिलंराज्यंदग्धंग्राममिवाध्वगः ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! वह परिघ सुरघुका ऐसे परममित्र था जैसे नंदनवाटिकामें स्थित कामदेवका वसन्त ॥ ९ ॥ कदाचित् परिघके राज्यमंडलमें संसारमें प्रजाओंके पापसे प्रलयके समान बडी भारी अवृष्टि (वर्षाका अभाव) हुई ॥ १० ॥ उससे वहांपर अनेक जनसमूह क्षुधासे पीडित होकर ऐसे नष्ट होगये जैसे प्रलयको अग्निके प्रज्वलित होनेपर जीवोंकी पंक्ति ॥ ११ ॥ राजा परिघ उस दुःखको देखकर अतिशोकको प्राप्तहुआ और अपने सम्पूर्ण राज्यको शीघ्र ऐसे त्यागदिया जैसे जले ग्रामको वटोही ॥ १२ ॥

प्रजानाशप्रतीकारेष्वसमर्थोविरागवान् ॥ जगामविपिनेकर्त्तुंतपोऽजिनमुनींद्रवत् ॥ १३ ॥ पौराणामप रिज्ञातेकस्मिंश्चिद्दूरकानने ॥ ससुवासविरक्तात्मालोकांतरइवापरे ॥ १४ ॥ तपश्चरञ्छांतमतिर्दांतःकं दरमंदिरे ॥ स्वयंशीर्णानिशुष्काणितत्रपर्णान्यभक्षयत् ॥ १५ ॥ चिरंहुताशवच्छुष्कपर्णान्येवाथभक्ष यन् ॥ पर्णादइतिनामासौप्रापमध्येतपस्विनाम् ॥ १६ ॥

अर्थ—प्रजाओंके नाशके रोकनेमें असमर्थ होकर वैराग्ययुक्त राजा वल्कलधारी मुनीन्द्रोंके समान तप करनेको वनमें गया ॥ १३ ॥ नगरनिवासियोंसे अज्ञात किसी दूरके वनमें यह विरक्तचित्त राजा ऐसे निवास करताथा जैसे लोकान्तरमें ॥ १४ ॥ शांतमति, इन्द्रियोंको दमन करनेवाला कन्दरारूप गृहमें तप करताहुवा वह राजा आपही गिरे सूखे पत्तोंको खाताथा ॥ १५ ॥ चिरकालतक अग्निके समान शुष्क पत्तोंहीको भोजन करते हुये उसने तप किया इसलिये तपस्वियोंके मध्यमें पर्णाद नाम प्राप्त किया ॥ १६ ॥

ततःप्रभृतिपर्णादनामाराजर्षिसत्तमः ॥ जंबूद्वीपेबभूवासौविख्यातोमुनिसद्मसु ॥१७॥ ततोवर्षसहस्रेण तपसादारुणात्मना ॥ प्रापदभ्यासवशतोज्ञानमात्मप्रसादजम् ॥ १८ बभूवविगतद्वंद्वोनिराशःशांतमा नसः ॥ नीरागोनिरनुक्रोशोजीवन्मुक्तःप्रबुद्धधीः ॥ १९ ॥ विजहारयथाकामंत्रिलोकीमठिकामिमाम् ॥ सिद्धसाध्यैःसमंसाधोसहंसालिरिवाब्जिनीम् ॥ २० ॥

अर्थ—उसी समयसे लेके यह राजर्षियोंमें श्रेष्ठ जम्बूद्वीपमें मुनियोंके आश्रममें पर्णाद नाम प्रसिद्ध हुआ ॥ १७ ॥ उसके पश्चात् सहस्रवर्षमें दारुण तपसे समाधिके अभ्याससे चित्तशुद्धि तथा ईश्वरके अनुग्रहद्वारा इस राजर्षिने आत्मज्ञान प्राप्त किया ॥ १८ ॥ वह जीवन्मुक्त, ज्ञानयुक्त, बुद्धिसहित, शीतोष्णादि द्वंद्वरहित, आशाओंसे रहित, शान्तचित्त राग द्वेष शून्य, और क्रोधादिसे रहित होगया ॥ १९ ॥ हे साधो ! सिद्ध (मोक्षमार्गमें आरूढ) साध्य (मोक्षमार्गमें जानेकी इच्छा) करनेवालोंकी साथ इस त्रिलोकीरूप मठिकामें ऐसे भ्रमण किया जैसे हंससहित भ्रमर कमलिनीमें ॥ २० ॥

एकदातस्यसदनंहेमचूडमहीपतेः ॥ प्रापरत्नविनिर्माणंमेरोःशृंगमिवापरम् ॥ २१ ॥ तेतत्रप्राक्तनेमित्रे पूजामकुरुतांमिथः ॥ पूर्णौविज्ञातविज्ञेयौमौर्ख्यगर्भाद्विनिर्गतौ ॥ २२ ॥ अहोनुवतकल्याणैःफलितंम मपावनैः ॥ संप्राप्तवानहंयत्त्वामित्यन्योन्यमथोचतुः ॥ २३ ॥ आलिंगितशरीरौतावन्योन्यानंदिताकृ ती ॥ एकासनेविविशतुश्चंद्रार्काविवभूधरे ॥ २४ ॥

अर्थ—एकसमय किरातोंके स्वामी उस सुरघुराजाके रत्नोंसे रचित गृहमें पर्णाद ऐसे प्राप्त हुआ जैसे मेरुके दूसरे शिखरपर ॥ २१ ॥ पूर्णकाम ज्ञेय (ब्रह्म) को जाननेवाले तथा जीवन्मुक्त वे दोनों प्राचीन मित्र एक दूसरेकी पूजा करतेभये ॥२२॥ और दोनों परस्पर यह बोले कि अहो ! यह परम पवित्र सुकृतोंका फलहै कि मैंने तुमको पाया ॥ २३ ॥ परस्पर एक दूसरेको आलिंगनकर प्रसन्न आकारवाले दोनों एक आसनपर ऐसे विराजतेभये जैसे एकपर्वतपर चन्द्रमा और सूर्य्य ॥ २४ ॥

॥ परिघउवाच ॥ परमानंदमायातंचेतस्त्वद्दर्शनेनमे ॥ इंदुबिंबइवोन्मग्नंमनःशीतलतांगतम् ॥ २५ ॥ अ कृत्रिमसुखंप्रेमवियोगेशतशाखताम् ॥ प्रयातिपल्वलतटेऽच्छिन्नमूलइवद्रुमः ॥ २६ ॥ विश्रब्धांस्तान्क थालापांस्तालीलास्तच्चचेष्टितम् ॥ संस्मृत्यप्राक्तनंसाधोहृष्यामिचपुनःपुनः ॥ २७ ॥ ज्ञानमेतन्मयाप्रा प्तंत्वयाज्ञातंयथाऽनघ ॥ मांडव्यस्यप्रसादेनपरमात्मप्रसादजम् ॥ २८ ॥

अर्थ—परिघ बोले-हे मित्र ! आज तुमारे दर्शनसे मेरा चित्त परम आनन्दको प्राप्तहुआ, और चन्द्रबिंबमें निमग्नके समान मेरा मन शीतल होगया ॥ २५ ॥ स्वाभाविक प्रेम वियोगमें सैकडोंशाखायुक्त इसप्रकार होताहै जैसे शाखाके छिन्नताको प्राप्त तडागके तटका वृक्ष ॥ २६ ॥ हे साधो ! विश्वासके योग्य उन २ वार्तालापोंको, उन २ लीलाओंको तथा चेष्टाओंको स्मरण करके पुनः प्रसन्न होताहुं ॥ २७ ॥ हे मित्र ! जैसे महर्षि मांडव्यकी कृपासे तुमने आत्मज्ञान प्राप्त कियाहै ऐसेही मैंनेभी तपसे आराधित ईश्वरके अनुग्रहसे ज्ञान प्राप्त कियाहै ॥ २८ ॥

अद्यकच्चिदद्दुःखस्त्वंकच्चिद्विश्रांतवानसि ॥ परस्मैकारणेमेराविवभूमंडलाधिपः ॥ २९ ॥ कच्चित्परमक ल्याणआत्मारामतयातव ॥ प्रसादोजायतेचित्तेशरदीवसरोंभसि ॥ ३० ॥ कच्चित्करोषिसमयासुप्रस न्नगभीरया ॥ दृष्टयासुभगकार्याणिकार्याण्येवनराधिप ॥ ३१ ॥ निराधिव्याधयोधीराःकच्चित्संपन्नशा लयः ॥ जनतास्तवदेशेषुतिष्ठंतिविगतज्वरम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—क्या इससमय तुम दुःखशून्य और परम कारण ब्रह्ममें ऐसे विश्राम पाया जैसे मेरुपर भूमंडलका अधिप ? ॥ २९ ॥ हे परम कल्याण ! क्या आत्माराम होनेसे तुमारे चित्तमें ऐसी प्रसन्नता होती है जैसे शरदृतुमें तडागके जलमें ? ॥ ३० ॥ हे राजन् ! क्या तुम अति प्रसन्न, गम्भीर तथा समदृष्टिसे सब जनोंके हित अवश्य कर्तव्यकर्मोंको करते हो ? ॥ ३१ ॥ क्या शारीरिक तथा मानसीपीडासेरहित धनधान्य सम्पन्न और सन्तापरहित तुमारी प्रजा देशोंमें स्थितहैं ? ॥ ३२ ॥

कच्चिद्बद्दामफलिनीफलिनीवफलानता ॥ धरातवफलापुरैर्भृशंधारयतिप्रजाः ॥ ३३ ॥ कच्चित्तवदिगंतेषु चंद्रस्येवांशुपंजरम् ॥ तुषारनिकराकारंप्रसृतंपावनंयशः ॥३४॥ कच्चिद्गुणगणैरेतादिशोनिर्विवरीकृताः ॥ त्वयासरोंभसाबाह्याबिसानामिवभूमयः ॥ ३५ ॥ कच्चित्कलमकेदारकोणस्थानेषुहृष्यतीः ॥ प्रतिग्रामं कुमार्यस्तेगायंत्यानंदनंयशः ॥ ३६ ॥

अर्थ—क्या यह तुमारी पृथिवी उत्तम फल संयुक्त होके समय २ पर अभिलषित फलोंके समूहोंसे प्रजाओंका ऐसे पालन करती है जैसे फलसहित कल्पलता ? ॥ ३३ ॥ चंद्रमाके किरणोंके पुंजके तुल्य क्या दिशाओंके अन्तमें तुषारके समूहके समान तुह्मारा यश विस्तृत हुआहै ? ॥ ३४ ॥ जैसे तडागका जल अपने अंतर्गत कमलदंडकी भूमियोंको पूर्ण करताहै ऐसेही क्या तुमने अपने गुणगणोंसे दिशाओंको पूर्ण किया ? ॥ ३५ ॥ कलमकी क्यारियों (एगहनके चावलके खेतों) के कोनोंमें स्थित प्रसन्न कुमारीगण प्रत्येक ग्राम तुमारे आनन्ददायक यशको गान करती है ॥ ३६ ॥

कुशलंतवधान्येषुधनेषुविभवेषुच ॥ भृत्येषुचकलत्रेषुपुत्रेषुनगरेषुच ॥ ३७ ॥ आधिव्याधिविहीनेयंक चित्कायलतातव ॥ फलंफलतिपुण्याख्यंयदिहामुत्रचोदितम् ॥ ३८ ॥ आपातरमणीयेषुवत्तंतात्यंतवैरिषु ॥ कच्चिद्विषयसर्पेषुसविरागंमनस्तव ॥ ३९ ॥ अहोबतचिरंकालमावांविश्लेषमागतौ ॥ कालेनश्लेपितौभूयोवसंताद्रितटाविव ॥ ४० ॥

अर्थ—तुमारे धन, धान्य, ऐश्वर्य, भृत्य, कुटुंब, पुत्र तथा नगरोंमें कुशलता है ? ॥३७॥ क्या मानसिक तथा शारीरिक पीडारहित यह तुमारी शरीररूप लता इसलोक तथा परलोकमें फल देने पुण्यरूप फल (कारीरी तथा ज्योतिष्टोमादि) को फलती है ? ॥ ३८ ॥ अतिवैरी विना विचारे रमणीय विषयरूप सर्पोंमें तुमारा मन वैराग्ययुक्त तो रहताहै ? ॥ ३९ ॥ अहो ! हम दोनों बहुतकालतक वियुक्त रहे; अब पुनः काल पाके वसंत और पर्वतके तटके सदृश युक्त हुये हैं ॥ ४० ॥

नताजगतिविद्यंतेसुखदुःखदशाःसखे ॥ जीवद्भिर्यानदृश्यंतेसंयोगजवियोगजाः ॥ ४१ ॥ तथैतास्वति दीर्घासुदशास्वन्यत्वमागताः ॥ भूयोवयमपिश्लिष्टाश्चित्रोहिनियतेर्विधिः ॥ ४२ ॥ सुरघुरुवाच ॥ भगवन्नियतेरस्यागतिंसर्पगतेरिव ॥ दैविक्याःकोहिजानातिगंभीरांविस्मयप्रदाम् ॥ ४३ ॥ त्वमहंचव्यपोह्येतिद्वरेदूरदशासुच ॥ अद्यसंघटितौभूयःकिमसाध्यमहोविधेः ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे सखे ! इष्ट अनिष्टके संयोग तथा वियोगजनित ऐसी सुखदुःखोंकी कोई दशा नहीं है जो जीवधारी प्राणियोंको न देख पड़ें ॥ ४१ ॥ इसीप्रकार हमलोग इन दीर्घदशाओंमें इतने कालतक वियोगी थे अब पुनः एकत्र हुये हैं. अहो ! प्राणियोंके कर्मानुसार चलनेवाली ईश्वरकी इच्छाका विलासभी विचित्रहै ॥ ४२ ॥ सुरघु बोले—हे भगवन् ! सर्पकी गतिके तुल्य इस ईश्वरकी इच्छारूप नियतिकी विस्मयदायक गतिको कौन जानताहै ॥ ४३ ॥ देखो तुमको और मुझे दूरदेश तथा काल वियोगमें स्थापित करके इस समय मिलाया है ! अहो ! ईश्वरकी इच्छाको क्या असाध्य है ॥ ४४ ॥

वयंत्वद्यमहासत्वभृशंकुशलिनःस्थिताः ॥ त्वदागमनपुण्येनपरांपावनतांगताः ॥ ४५ ॥ पश्यत्वदागमक्षीणपापानांपुण्यपादपैः ॥ तथाफलितमस्माकंनयथावयमाकुलाः ॥४६॥ सर्वाःसंपत्तयोऽस्माकंराजर्षेसंस्थिताःपुरे ॥ भवदागमनेनाद्यप्रयाताःशतशाखताम् ॥ ४७ ॥ विकिरतिपरितोरसायनानामिव निकरंमधुरंमहानुभाव ॥ तववचनमवेक्षणंचपुण्यंपरमपदप्रतिमोहिसाधुसंगः ॥ ४८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमाहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे सुरघुपरिघसमागमो नामैकषष्ठितमःसर्गः ॥ ६१ ॥

अर्थ—हे महात्मन् ! हम लोगतो इस समय अतिआनंदमें स्थित हैं और आपके आगमनरूप पुण्यसे परम पवित्रताको प्राप्त हुये हैं ॥ ४५ ॥ हे सखे ! देखो आपके आगमनसे क्षीणपाप हम लोगोंके पुण्यरूप वृक्ष ऐसे फल

युक्त हुये हैं जिससे कि हम लोग व्याकुलतासे निर्मुक्त और कृतकृत्य होगये हैं ॥ ४६ ॥ हे राजर्षे ! हम लोगोंके नगरमें सब संपत्ति स्थितहैं और इस समय आपके आगमनसे सैकडों शाखायुक्त होगई हैं ॥ ४७ ॥ हे महानुभाव ! अतिपवित्र आपका वचन तथा दर्शन मानों चारोओरसे अमृतके समूहकी वृष्टि कररहाहै, क्योंकि महात्माओंका समागम परमपद (मोक्ष) के सदृश कहागया है ॥ ४८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषाऽनुवादे उपशमप्रकरणे सुरघुपरिघसमागमो नामैकषष्ठितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

द्विषष्ठितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

अज्ञानरूप आवरणके नष्ट होनेपर चित् स्फुरणकी स्थितिसे विद्वानोंकी सदा एक ब्रह्ममें समाधि होती है यह विषय इस ६२ के सर्गमें किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अथैवंप्राययातत्रविश्रंभकथयाचिरम् ॥ प्राक्तनस्नेहगर्भिण्यास्थित्वोवाचायुधाभिधः ॥१॥ परिघउवाच ॥ यद्यत्संसारजालेऽस्मिन्क्रियतेकर्मभूमिप ॥ तत्समाहितचित्तस्यसुखायान्यस्यनानघ ॥ २ ॥ कच्चित्संकल्परहितंपरंविश्रमणास्पदम् ॥ परमोपशमंश्रेयःसमाधिमनुतिष्ठसि॥३॥ सुरघुरुवाच ॥ एतन्मेब्रूहिभगवन्सर्वसंकल्पवर्जितम् ॥ परमोपशमंश्रेयःसमाधिर्हिकिमुच्यते ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—इसके अनंतर प्राचीन स्नेहसे पूर्ण इसप्रकार विश्वासकी कथासे चिरकालतक स्थित होकर परिघ बोला ॥ १ ॥ हे पापरहित राजन् ! इस संसारजालमें जो २ कर्म किये जाते हैं वे सब समाहितचित्तकेही सुखकेलिये हैं, न कि अन्यके ॥ २ ॥ क्या संकल्पसे वर्जित, परम विश्रामका स्थान, परम शांतिमय और संसारके सुखसे अतिश्रेष्ठ समाधि तुम करतेहो ॥ ३ ॥ सुरघु बोला—हे भगवन् ! सर्व संकल्पोंसे वर्जित परम शांति संसारके सुखसे अति श्रेष्ठ कल्याणदायक यह मुझसे कहिये परंतु समाधिका अनुष्ठान करना यह क्यों कहतेहो ॥४॥

योऽज्ञोमहात्मन्सततंतिष्ठन्व्यवहरंश्चवा ॥ असमाहितचित्तोऽसौकदाभवतिकःकिल ॥५॥ नित्यंप्रबुद्धचित्तास्तुकुर्वंतोऽपिजगत्क्रियाः ॥ आत्मैकतत्त्वसन्निष्ठाःसदैवसुसमाधयः ॥ ६ ॥ बद्धपद्मासनस्यापिकृतब्रह्मांजलेरपि ॥ अविश्रांतस्वभावस्यकःसमाधिःकथंचवा ॥ ७ ॥ तत्त्वावबोधोभगवन्सर्वाशातृणपावकः ॥ प्रोक्तःसमाधिशब्देननतुतूष्णीमवस्थितिः ॥ ८ ॥

अर्थ—हे महात्मन् ! जो ज्ञानी है वह चाहै स्थित रहै वा व्यवहार करताहो वह असमाहितचित्त कब और कौन होसकताहै ॥ ५ ॥ नित्य प्रबुद्ध (ज्ञानसहित) चित्तवाले जगत्की क्रियाओंको करते हुये भी सदा एक आत्मतत्वनिष्ठ और उत्तम समाधिधारी हैं ॥ ६ ॥ और पद्मासन बांधे हुयेभी हो और ब्रह्मांजलि कि हुये हो परंतु आत्मस्वभावमें जिसका चित्त विश्रांत नहीं है उसकी कौन समाधी और कैसे ॥ ७ ॥ हे भगवन् ! सम्पूर्ण आत्मरूप तृणकी अग्नि जो आत्मतत्वका ज्ञानहै वही समाधिशब्दसे कहा जाताहै ॥ ८ ॥

समाहितानित्यतृप्तायथाभूतार्थदर्शिनी ॥ साधोसमाधिशब्देनपराप्रज्ञोच्यतेबुधैः ॥ ९ ॥ अक्षुब्धानिरहंकाराद्वंद्वेष्वननुपातिनी ॥ प्रोक्तासमाधिशब्देनमेरोःस्थिरतराकृतिः ॥ १० ॥ निश्चिंताधिगताभीष्टाहेयोपादेयवर्जिता ॥ प्रोक्तासमाधिशब्देनपरिपूर्णामनोगतिः ॥ ११ ॥ यतःप्रभृतिबोधेनयुक्तमात्यंतिकंमनः ॥ तदारभ्यसमाधानमव्युच्छिन्नंमहात्मनः ॥ १२ ॥

अर्थ—हे साधो ! एकाग्र नित्यतृप्त तथा सत्यपदार्थको देखनेवाली जो अबाधित आत्मतत्वका दर्शनरूप पराप्रज्ञा (बुद्धि) है वही समाधिशब्दसे कहीगई है ॥ ९ ॥ क्षोभ तथा अहंकाररहित और द्वंद्वों (सुखदुःखरूप) की ओर न गिरनेवाली मेरुसेभी स्थिरतर जो आकृति (आकार) है वही समाधिशब्दसे कहीगई है ॥ १० ॥ निश्चिन्त, अभीष्टको प्राप्त, हेय उपादेयसे वर्जित और परिपूर्ण जो मनकी गति है वही समाधिशब्दसे कही गई है ॥११॥ जिससमयसे यह मन सदाकेलिये ज्ञानसेयुक्त होताहै उसीसमयसे लेके महात्माकी निरंतर समाधिहै ॥ १२ ॥

नहिप्रबुद्धमनसोभूत्वाविच्छिद्यतेपुनः ॥ समाधिर्दूरमाकृष्टोबिसतंतुःशिशोरिव ॥ १३ ॥ समग्रंदिनमालोकाद्विरमत्यक्षयोयथा ॥ आजीवितांतंनोप्रज्ञातथातत्त्वावलोकनात् ॥ १४ ॥ अजस्रमंबुवहनाद्योथानद्यानरुद्ध्यते ॥ तथाविज्ञानदृग्बोधात्क्षणमात्रंनरुद्ध्यते ॥ १५ ॥ नविस्मरत्यविरतंयथाकालःकलागतिम् ॥ नविस्मरत्यविरतंस्वात्मानंप्राज्ञधीस्तथा ॥ १६ ॥

अर्थ—जैसे क्रीडा करतेहुये बालकके हस्तमें दूर खींचाहुआ कमलका सूत टूट जाताहै इसप्रकार ज्ञानीकी समाधि होकर पुनः नहीं टूटती ॥ १३ ॥ जैसे सूर्य्य सब दिन प्रकाशसे विरामको नहीं प्राप्त होते ऐसेही जीवन कैवल्य (मुक्ति) पर्यंत ज्ञानीकी बुद्धि दृढसंस्कारसे आत्माके दर्शनसे विरामको नहीं प्राप्तहोती ॥ १४ ॥ जैसे जलके बहनेसे नदी क्षणभरभी नहीं रूकसकती ऐसेही आवरणके नाशसे विज्ञानकी दृष्टि बोध (आत्मज्ञान) से क्षणभरभी नहीं रूकसकती ॥ १५ ॥ जैसे काल अपनी कलाकी गतिको क्षणभरभी नहीं भूलता ऐसेही ज्ञानीकी बुद्धि परमप्रेमका आस्पद अपने आत्माको कदापि नहीं भूलती ॥ १६ ॥

नविस्मरतिसर्वत्रयथासततगोगतिम् ॥ नविस्मरतिनिश्चेयंचिन्मात्रंप्राज्ञधीस्तथा ॥ १७ ॥ गतिंकालकलायद्वच्चिन्वानासमवस्थिता ॥ चिच्चितिश्चेत्यरहिताचिन्वानागतयस्तथा ॥ १८ ॥ यथासत्ताविहीनात्मापदार्थोनोपलभ्यते ॥ तथात्मज्ञानहीनात्माकालेऽज्ञस्यनलभ्यते ॥ १९ ॥ नसंभवतिसंसारेगुणहीनोगुणीयथा ॥ नसंभवत्यात्मसंविद्वर्जितोह्यात्मवांस्तथा ॥ २० ॥

अर्थ—और जैसे निरन्तर चलनेवाला अपनी गतिको नहीं भूलता ऐसेही तत्त्वज्ञानीकी बुद्धि निश्चय करने योग्य चिन्मात्र आत्माको कदापि नहीं भूलती ॥ १७ ॥ हे मित्र जैसे कालकी कला (सूर्यकी मूर्ति) अपनी गतिको एकत्र करते (सदा चलते हुये) स्थितहै ऐसेही विषयरहित चैतन्यकी स्फूर्ति आत्माकार वृत्तियोंको एकत्र करती हुई सदा स्थितहै ॥ १८ ॥ जैसे विना सत्तासे कोई पदार्थ प्राप्त नहीं होता ऐसी आत्मज्ञानसे हीन ज्ञानीको कोई भी समय नहीं प्राप्त होता ॥ १९ ॥ जैसे संसारमें गुणी पुरुष गुणसे हीन होनेका कदाचित् संभव नहीं है ऐसेही आत्मज्ञानी आत्मज्ञानसे रहित होना कदाचित् संभव नहीं हो सकता ॥ २० ॥

सर्वदैवास्मिसंबुद्धःसर्वदैवास्मिनिर्मलः ॥ सर्वदैवास्मिशांतात्मासर्वदास्मिसमाहितः ॥ २१ ॥ भेदःकेनसमाधेर्मेजन्यतेकथमेववा ॥ आत्मनोऽव्यतिरेकेणनित्यमेवसदात्मता ॥ २२ ॥ तस्मात्कदाचिदपिमेनासमाधिमयंमनः ॥ नवासमाहितंनित्यमात्मतत्त्वैकसंभवात् ॥२३॥ सर्वगःसर्वदैवात्मासर्वमेवचसर्वथा॥असमाधिर्हिकोऽसौस्यात्समाधिरपिकःस्मृतः॥२४॥नित्यंसमाहितधियःसुसमामहांतस्तिष्ठंतिकार्यपरिणामविभागमुक्ताः॥तेनासमाहितसमाहितभेदभंग्यानित्योदितःक्वनुसउत्तमवाक्प्रपंचः॥२५॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे समाधिनिश्चयोनामद्विषष्टितमःसर्गः ॥ ६२ ॥

अर्थ—देखो मैं सदा ज्ञानवान्हूं, सदा निर्मलहूं, सदा शान्तात्माहूं, और सदा समाधिनिष्ठहूं ॥ २१ ॥ समाधिसे मेरा भेद किससे और कैसे होसकताहै क्योंकि आत्मासे अभिन्न सदा मेरी आत्मसत्ता सिद्धहै ॥ २२ ॥ इस कारण मेरा मन कदाचित्भी समाधिसे वर्जित नहीं है और मनके अभावमें कदाचित्भी वह समाधिनिष्ठ नहीं है क्योंकि नित्य एक आत्मतत्त्वकाही संभवहै ॥ २३ ॥ सबप्रकारसे और सदा आत्मा सर्वव्यापी और सर्वस्वरूपहै इसलिये असमाधि और समाधि क्या होसकती है ? ॥ २४ ॥ भेदके बाधसे नित्यही समाहितहै बुद्धि जिनकी ऐसे कार्यके परिणाम तथा विभागसे विनिर्मुक्त उत्तम महात्मालोग सदा स्थित रहतेहैं तो असमाहित तथा समाहित भेदकी वाक्यकी रचनासे प्रवृत्त जो तुमारा उत्तम वाक्यप्रपंच है वह कहां स्थितहै ? ॥ २५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे उपशमप्रकरणे समाधिनिश्चयोनाम द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥

इस ६३ के सर्गमें परिघसे परीक्षा करके सुरघुने सहजसमाधिकी स्थितिका वर्णन कियागयाहै ॥

परिघउवाच ॥ राजन्नूनंप्रबुद्धोऽसिप्राप्तवानसितत्पदम् ॥ संशीतलांतःकरणःपूर्णेंदुरिवराजसे ॥ १ ॥ आनंदमधुसंपूर्णलक्ष्म्याचपरयाश्रितः ॥ शीतलःस्निग्धमधुरोराजीवमिवराजसे ॥ २ ॥ निर्मलोविततःपूर्णोगंभीरःप्रकटाशयः ॥ वेलानिलविलासेनमुक्तोब्धिरिवराजसे ॥ ३ ॥ स्वच्छआनंदसंपूर्णोनष्टाहंकारवारिदः ॥ स्फुटोविस्तीर्णगंभीरःशरत्खमिवराजसे ॥ ४ ॥

अर्थ—परिघ बोला–हे राजन् ! तुम निश्चयकरके ज्ञानवान् हो और उस परम (ब्रह्म) पदको पहुंचगये हो, इसीसे अतिशीतल अंतःकरणयुक्त तुम पूर्णचन्द्रमाकेसमान प्रकाशमान हो ॥ १ ॥ और आनंदरूप मधुर-

रससे पूर्ण सर्वोत्तम लक्ष्मीसे सेवित, शीतल, स्निग्ध और मधुर कमलके समान शोभित हो ॥ २ ॥ निर्मल, विशाल, पूर्ण, गंभीर और स्पष्ट प्रकट अन्तःकरणसे क्षोभित तुम तटके वायुके विलाससे मोतीके समुद्रतुल्य शोभित हो रहे हो ॥ ३ ॥ स्वच्छ और आनन्दसे पूर्ण अहंकाररूप मेघसे रहित प्रत्यक्ष विस्तृत तथा गंभीर शरत्कालके आकाशके तुल्य शोभितहो ॥ ४ ॥

सर्वत्रलक्ष्यसेस्वस्थःसर्वत्रपरितुष्यसि ॥ सर्वत्रवीतरागोऽसिराजन्सर्वत्रराजसे ॥ ५ ॥ सारासारपरिच्छेदपारगस्त्वंमहाधिया ॥ जानासिसर्वमेवेदंयथास्थितमखंडितम् ॥ ६ ॥ भावाभावपरिच्छेदतत्त्वज्ञमुदिताशयम् ॥ गमागमदशालौल्यमुक्तंतववपुःस्थितम् ॥ ७ ॥ वस्तुनावस्तुनेवांतरमृतेनेवसागरः ॥ अपुनःप्रक्षयायैवपरेतृप्तोऽसिसुंदर ॥ ८ ॥

अर्थ—हे राजन् ! इष्ट अनिष्ट सब विषयोंमें स्वस्थ (समरूप) देख पडतेहो, सर्वत्र संतुष्ट हो, और सर्वत्र वीतराग हो इसीसे सर्वत्र शोभित हो ॥ ५ ॥ हे मित्र ! तुम अपनी महाबुद्धिसे सार असारके निर्णयके पारंगत हो और यहभी जानते हो कि यह संपूर्ण दृश्य जगत् अखण्डित ब्रह्मही ज्योंका त्यों स्थितहै ॥ ६ ॥ हे उत्पत्ति नाशके निर्णयके तत्वज्ञ ? प्रसन्न चित्त अवरोह तथा आरोह (चढने उतरने) से प्रेरित रागकी दशाकी चंचलतासे निर्मुक्त यह आपका शरीर शोभित होरहाहै ॥ ७ ॥ हे सुंदर ! जिससे उत्तम वस्तु संसारमें नहीं है ऐसे निज आत्मरूपवस्तुसे अपनी महिमामें तुम ऐसे तृप्त हो जैसे अमृतसे समुद्र ॥ ८ ॥

सुरघुरुवाच ॥ नतदस्तिमुनेवस्तुयत्रोपादेयतास्तिनः ॥ यावत्किंचिदिदंदृश्यंतावदेतन्नकिंचन ॥ ९ ॥ उपादेयस्यचाभावाद्धेयमप्यस्तिकिंकिल ॥ प्रतियोगिव्यवच्छेद्यंविनाहेयंकिमुच्यते ॥ १० ॥ तुच्छत्वात्सर्वभावानामतुच्छत्वाच्चकालतः ॥ चिरंममपरिक्षीणेतुच्छातुच्छेमनःस्थिती ॥ ११ ॥ देशकालवशादेवतुच्छस्यातुच्छतामिह ॥ अतुच्छस्यतुतुच्छत्वंवर्ज्येनिंदास्तुतीबुधैः ॥ १२ ॥

अर्थ—सुरघु बोला-हे मुने ! संसारमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो हम लोगोंको उपादेय (ग्राह्य) हो, क्योंकि जितना यह दृश्य प्रपंच है वह सब मिथ्याहै ॥ ९ ॥ और उपादेयके अभावसे हेय (त्याज्य) क्या है ? क्योंकि उपादानके विना हेयभी क्या होसकताहै ॥ १० ॥ केवल देशकालसे सब वस्तुओंके तुच्छ तथा अतुच्छ होनेसे मेरे मनकी तुच्छ और अतुच्छकी स्थिति चिरकालसे क्षीण होगई है ॥ ११ ॥ देशकालकेही वशसे तुच्छ पदार्थकी अतुच्छता और अतुच्छकी तुच्छता होती है इसीसे तुच्छ अतुच्छकी निन्दा स्तुति न करनीचाहिये ऐसा पंडित लोग मानतेहैं ॥ १२ ॥

रागान्निंदास्तुतीलोकेरागश्चपरिवांछितम् ॥ वांछतेचमहोदारंवस्तुशोभनबुद्धिना ॥ १३ ॥ त्रैलोक्येचस्त्रियःशैलाःसमुद्रवनराजयः ॥ भूतानिवस्तुशून्यानिसारोनास्त्यत्रवस्तुतः ॥ १४ ॥ मांसास्थिदारुमृद्रत्नमयेजगतिजर्जरे ॥ वांछनीयविहीनेऽस्मिन्शून्येकिमिववांछ्यते ॥ १५ ॥ वांछायांविनिवृत्तायांसंक्षयोद्वेषरागयोः ॥ दिनलक्ष्म्यांव्यपेतायामालोकातपयोरिव ॥ १६ ॥ अलमतिविततैर्वचःप्रपंचैरियमुचिते हसुखायदृष्टिरेका ॥ उपशमितरसंसमंमनोंतर्यदितत्तदनुत्तमाप्रतिष्ठा ॥ १७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे सुरघुपरिघनिश्चयो नाम त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥

अर्थ—लोकमें निन्दा स्तुति रागसे होती हैं और राग इच्छासे होताहै सो उत्तम बुद्धिमान् महोदार वस्तु (ब्रह्म) की ही इच्छा करताहै ॥ १३ ॥ त्रिलोकमें स्त्री, पर्वत, समुद्र और बनकी पंक्तियां तथा समस्त प्राणी और पृथिवी पंचभूत सब सत्यवस्तुसे शून्य है इसमें कुछ सार नहीं है ॥ १४ ॥ मांस, हड्डी, काष्ठ, मृत्तिका और रत्नमय, इच्छासे करनेकी योग्यतासे रहित इस प्राचीन शून्य जगत्में भला किस पदार्थकी इच्छा कीजाय ॥१५॥ पदार्थोंकी इच्छाके निवृत्त होनेपर रागद्वेषका क्षय ऐसे होजाताहै जैसे दिनकी लक्ष्मीके निवृत्त होजानेपर प्रकाश और आतपका ॥ १६ ॥ हे सखे ! अब अधिक वाग्जाल व्यर्थ है. यदि चारोओरके रागद्वेषसे निवृत्त शान्त और एक आत्मरस होके यह मन केवल अपने आत्माहीमें तृप्त है तो यही उत्तम प्रतिष्ठा (सबसे उत्तम विश्रांति) है. और यही एक दृष्टि सेवन करनेके योग्य है ॥ १७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषानुवादे सुरघुपरिघनिश्चयो नाम त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥

चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

जिन उपायोंसे मन दोषोंके बंधनमें नहीं आता और दुःखसे आत्माका उद्धार होताहै वे उपाय इस ६४ के सर्गमें वर्णन कियेगये हैं ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ सुरघुःपरिघश्चैवविचार्येतिजगद्भ्रमम् ॥ मिथःप्रपूजितौतुष्टौस्वव्यापारपरौगतौ ॥ १ ॥ तदेवराघवश्रुत्वापरमंबोधकारणम् ॥ अनेनैवविबोधेनभवलब्धास्पदःस्फुटम् ॥ २ ॥ परयाप्रज्ञयाधीरविचारगततीक्ष्णया ॥ गलत्यलमहंकारकालमेघेहृदंबरे ॥ ३ ॥ समस्तलोकानुमतेसफलेह्लादकारिणि ॥ निर्मलेविततेचेतःशरत्कालउपस्थिते ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–सुरघु और परिघ इसप्रकार जगत्के भ्रमका विचार करके परस्पर पूजित और सन्तुष्ट होके अपने २ व्यापारमें तत्पर हुये ॥ १ ॥ हे रामजी ! इतना सुनकर निश्चय करनेसे परमबोधका कारण होताहै और इसी सुरघु और परिघके ज्ञानसे परमपदका लाभ प्रत्यक्षरीतिसे प्राप्त करो ॥ २ ॥ धीर विद्वानोंके साथ विचार करनेसे तीव्र उत्तमबुद्धिसे अहंकाररूप लक्षणयुक्त कालरूप मेघके हृदयाकाशमें गलित होनेपर ॥ ३ ॥ सब लोकके अनुमत, फलसहित, आनंदकारी, और निर्मलचित्तरूप शरत्कालके आनेपर ॥ ४ ॥

ध्येयेशरण्येसुगमेसकलानंदसंपदि ॥ सुप्रसन्नेचिदाकाशेस्थीयतेपरमात्मनि ॥ ५ ॥ योनित्यमध्यात्ममयोनित्यमंतर्मुखःसुखी ॥ नित्यंचिदनुसंधानोमनःशोकैर्नबाध्यते ॥ ६ ॥ व्यवहारपरोप्युच्चैरागद्वेषमयोऽपिसन् ॥ नांतःकलंकमायातिपद्मोजलगतोयथा ॥७॥ सम्यग्विज्ञानवान्शुद्धोयोऽतःशांतमनामुनिः नबाध्यतेसमनसाकरिणेवमृगाधिपः ॥ ८ ॥

अर्थ—ध्यान करने योग्य, शरणदायक, आत्मरूप होनेसे सुगम, सब आनन्दोंके सम्पत्तिस्वरूप, तथा अतिप्रसन्न चिदाकाशरूप परमात्मामें जो स्थित होताहै ॥ ५ ॥ और जो नित्य आत्मविचारमें तत्पर रहताहै, नित्य अन्तर्मुख और सुखी है और नित्यही पुनः २ आदरसे चित्के आस्वादनमें तत्परहै उसका चित्त शोकसे पीडित नहीं होता ॥ ६ ॥ वह पुरुष सर्वथा व्यवहारमें तत्पर हो और रागद्वेषसे पूर्णभी हो परन्तु अन्तःकरणमें वह कलंकयुक्त ऐसे नहीं होता जैसे जलके मध्यमें प्राप्त कमल ॥ ७ ॥ जो मुनि उत्तमज्ञानी है, अंतःकरणमें शुद्ध है और शांतचित्त है वह मनसे ऐसे नहीं बाधित होता जैसे हाथीसे सिंह ॥ ८ ॥

भोगैकशरणंदीनंनचित्तंज्ञस्यविद्यते ॥ नंदनेदुर्द्रुमइवज्ञचित्तंहिमहावपुः ॥ ९ ॥ विरक्तोजन्ममरणेयथा दुःखीनमानवः ॥ परिज्ञाताखिलाविद्यंतथाचित्तंनदुःखितम् ॥ १० ॥ परिज्ञातमनोमोहोजगद्भावोद्भवात्मना ॥ स्पृश्यतेनैनसासाधोरजसेवनभस्तलम् ॥ ११ ॥ अविद्यासंपरिज्ञातमिदमेवमहौषधम् ॥ अविद्याविततव्याधेस्तिमिरस्येवदीपकम् ॥ १२ ॥

अर्थ—भोग लंपट और दीन ज्ञानीका चित्त ऐसे नहीं होता जैसे नंदनवनमें कंटकयुक्त वृक्ष, किंतु उसका चित्त विशाल होताहै अर्थात् विषयके क्षुद्रसुखमें उसकी इच्छा नहीं होती ॥ ९ ॥ जैसे विरक्त मनुष्य किसीके जन्ममरणमें दुःखी नहीं होता ऐसेही सब ओरसे विचार करके विषय इन्द्रिय शरीरादि तथा अन्य सब दृश्यकी अविद्या (मिथ्या भ्रांति) जिस चित्तने जानलियाहै वही दुःखी नहीं होता ॥ १० ॥ हे साधो ! जिस पुरुषने अपने मनके मोह (भ्रम) को जानलियाहै उसको जगत्में कर्तत्वके अभिमानसे उत्पन्न पाप ऐसे नहीं स्पर्श करता (छूता) जैसे धूलि आकाशको ॥ ११ ॥ अविद्यारूप विशाल रोगका यह जगत् अविद्यामात्रहै इसप्रकार विचारसे उत्पन्न उत्तम ज्ञान ऐसे महा औषधहै जैसे अन्धकारका दीपक ॥ १२ ॥

अविद्यासंपरिज्ञातायदैवहितदैवहि ॥ सापरिक्षीयतेभूयःस्वप्नेनेवहिभोगभूः ॥ १३ ॥ व्यवहारपरोप्ययंतरसक्तमतिरेकधीः ॥ स्पृश्यतेनैनसासाधुर्मत्स्येक्षणमिवांभसा ॥ १४ ॥ प्राप्तेचिद्भासुरालोकेप्रक्षीणाज्ञानयामिनी ॥ शेमुषीपरमानंदमागताज्ञस्यराजते ॥ १५ ॥ अज्ञाननिद्रोपशमेजनोज्ञानार्कबोधितः ॥ तत्प्रबोधमवाप्नोतिपुनर्येननमुह्यति ॥ १६ ॥

अर्थ—यह अविद्या अविद्यारूपसे जिससमय ज्ञात होजाती है उसीसमय वह ऐसे नष्ट होजाती है जैसे स्वप्नके भोगकी भूमि यह स्वप्नहै ऐसे ज्ञानसे ॥ १३ ॥ संसारमें असक्तमति और केवल ब्रह्ममें जिसकी बुद्धि मग्नहै वह आत्मा पापसे ऐसे नहीं स्पृष्ट (छुआ जाता) होताहै जैसे जलसे मत्स्य (मछली) का नेत्र ॥ १४ ॥ चेतनमय प्रदीप्त प्रकाशके प्राप्त होनेपर अज्ञानरूप रात्रि नष्ट होजाती है और परमानंदको प्राप्त तत्वज्ञानीकी बुद्धि प्रकाशित होती है

॥ १५ ॥ अज्ञानरूप निद्राके शांत होनेपर ज्ञानरूप सूर्यसे प्रबोधित प्राणी उस प्रबोधको प्राप्त होताहै जिससे कि पुनः मोहको नहीं प्राप्त होता ॥ १६ ॥

दिनानिजीव्यतेतानिसानंदास्तेक्रियाक्रमाः ॥ आत्मचंद्रोदितायेषुचिज्ज्योत्स्नाहृदयांबरे ॥ १७ ॥ नरो मोहसमुत्तीर्णःसततंस्वात्मचिंतया ॥ अंतःशीतलतामेतिस्वामृतेनेवचंद्रमाः ॥ १८ ॥ तानिमित्राणि शास्त्राणितानितानिदिनानिच ॥ विरागोल्लासवान्येभ्यआत्मचित्तोदयःस्फुटम् ॥ १९ ॥ चिरंशोच्यंतिते दीनाजन्मजंगलवीरुधः ॥ आत्मावलोकनेहेलायेषामविगतैनसाम् ॥ २० ॥

अर्थ—जिन दिनोंमें आत्मारूप चंद्रमासे उदयको प्राप्त चित् चन्द्रिका हृदयाकाशमें खिलरही है वेही दिन जीवनसहित हैं और वे क्रिया आनंदसहित हैं ॥ १७ ॥ मोहरूप सागरसे समुत्तीर्ण मनुष्य निरंतर आत्माकी चिंतासे अंतःकरणमें ऐसी शीतलताको प्राप्त होताहै जैसे अपने अमृतसे चंद्रमा ॥ १८ ॥ वेही मित्र मित्रहैं, वेही शास्त्र शास्त्रहैं और वही दिन दिनहैं जिनके कारणसे वैराग्यके उल्लाससे पूर्ण आत्माकार वृत्तिरूप चित्तका अभ्युदय स्पष्टरीतिसे होता है ॥ १९ ॥ वे दीन और जन्म जंगलके वृक्षके तुल्य दीर्घ कालतक शोचने योग्यहैं जिनसे पापियोंको आत्माके दर्शनमें अनादरहै ॥ २० ॥

आशापाशशतैर्बद्धंभोगोलपसुलालसम् ॥ जराजर्जरिताकारंशोकोच्छ्वासकदर्थितम् ॥ २१ ॥ व्यूढ दुःखमहाभारंजन्मजंगलजीवितम् ॥ कुकर्मकर्दमालिप्तंमोहपल्वलशायिनम् ॥ २२ ॥ रागदंशावलीदष्टं कृष्टंतृष्णावरत्रया ॥ मनोवणिङ्निकेतस्थंबंधुबंधननिश्चलम् ॥ २३ ॥ पुत्रदारजराजीर्णमग्नोन्मग्नंकुकर्द मे ॥ श्रांतंविगतविश्रामंभग्नसादीर्घवर्त्मनि ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! सैकडों आशारूप फांसीसे बद्ध, भोगरूप तृणके अति अभिलाषी, जरासे जर्जरित आकारधारी, शोकरूप उच्छ्वाससे निन्दनीय ॥ २१ ॥ दुःखरूप महाभारके वाहक, जन्मरूप वनमें जीवित, दुष्टकर्मरूप कीचडसे पूर्ण, मोहरूप अल्प जलाशयमें शयनशील ॥ २२ ॥ रागरूप मच्छरोंकी पंक्तिसे दष्ट (काटे हुये) तृष्णारूप चर्मकी रस्सीसे खींचे हुये, मनरूप वैश्यके संकेत वा गृहके निवासी, बंधुरूप बंधनसे चलनेमें असमर्थ ॥ २३ ॥ पुत्र स्त्रीरूप वृद्धावस्थासे जीर्ण, दुष्टकर्मरूप गोबरमें सदा निमग्न, थकित विश्रामरहित, दीर्घ मार्ग (लोक परलोक) मे मग्न (टूटे हुये) २४ ॥

गमागमपरिक्षीणंसंसारारण्यचारिणम् ॥ अलब्धशीतलच्छायंतीव्रतापोपतापितम् ॥ २५ ॥ आकार भासुरंदीनंबाह्यैराक्रांतमिंद्रियैः ॥ कर्मघंटारवाक्रांतंक्रांतंदुष्कृतताडनैः ॥ २६ ॥ आविर्भावतिरोभावच क्रावर्त्तधुरोद्वहम् ॥ अज्ञानविकटाटव्यांलुठितंसन्नगात्रकम् ॥ २७ ॥ निजानर्थसदामग्नंसीदमानमकिं चनम् ॥ सन्नांगंकर्मभारेणकरुणाक्रंदकारिणम् ॥ २८ ॥

अर्थ—आवागमनसे परिक्षीण, संसाररूप वनके चरनेवाले, शीतलछायासे वर्जित, अतितीव्र मनके संतापसे तप्त ॥ २५ ॥ बाहरके आकारमात्रसे शोभित, और अन्तःकरणसे दीन, नेत्र आदि बाह्यइन्द्रियोंसे पराजित, काम्यकर्मरूप घंटाके शब्दसे भ्रमणशील, पापोंके ताडनेसे पीडित ॥ २६ ॥ आविर्भाव तथा तिरोभावरूप शकट (गाडी) के धुराके भारवाहक और अरूप महाविकट वनमें शरीरोंके टूटनेसे लोटतेहुये ॥ २७ ॥ अपने अनर्थमें सदा मग्न, सदा दुःखी, दरिद्रि, जडीभूतशरीर, और, कर्मके भारसे करुणासे रोदन करते हुये ॥ २८ ॥

रामजीवबलीवर्दमिमंसंसारपल्वलात् ॥ परमंयत्नमास्थायचिरमुत्तारयेद्बलात् ॥ २९ ॥ तत्त्वावलोक नात्क्षीणेचित्तेनोजायतेपुनः ॥ जीवःकदाचनतदाभवेत्तीर्णभवार्णवः ॥ ३० ॥ महानुभावसंपर्कात्सं सारार्णवलंघने ॥ युक्तिःसंप्राप्यतेरामस्फुटानौरिवनाविकात् ॥ ३१ ॥ यस्मिन्देशमरौतज्ज्ञोनास्तिस ज्जनपादपः ॥ सफलःशीतलच्छायोनतत्रनिवसेद्बुधः ॥ ३२ ॥

अर्थ—इस जीवरूप बलीवर्द (बैल) को परम यत्नका अवलम्बन करके ज्ञानरूप बलसे संसाररूप कीचडसे चिरकालके लिये निकालना चाहिये ॥ २९ ॥ आत्मतत्वके दर्शनसे चित्तके क्षीण होजानेसे पुनः भ्रम नहीं उत्पन्न होता और वह जीव संसारसागरसे अवश्य पार हो जाताहै ॥ ३० ॥ महानुभाव ज्ञानीके संगसे संसाररूप सागरसे पार उतरनेकी युक्ति ऐसे प्राप्त होती है जैसे मल्लाहके निकट नौका ॥ ३१ ॥ जिस मरुस्थलसमान देशमें फल सहित शीतलछायायुक्त सज्जन ज्ञानीरूप वृक्ष नहीं है वहां बुद्धिमान्को निवास नहीं करना चाहिये ॥ ३२ ॥

स्निग्धशीतवचःपत्रेसच्छायेस्मितपुष्पके ॥ क्षणाद्विश्रम्यतेरामभृशंसुजनचंपके ॥ ३३ ॥ तदभावेम हामोहतापसंपत्तिदायिनि ॥ किंचिज्जातविवेकेनस्वयत्नंन्यंनेहधीमता ॥ ३४ ॥ आत्मैवह्यात्मनोबंधुरात्म

नात्मैवमुद्धरेत् ॥ नात्मानमवलेपेनजन्मपंकार्णवेक्षिपेत् ॥ ३५ ॥ किमिदंकथमायातंकिंमूलमितिकिंक्षयम् ॥ देहदुःखमितिप्राज्ञैःप्रेक्षणीयंप्रयत्नतः ॥ ३६ ॥

अर्थ—स्निग्ध तथा शीतलवचनरूप जिसके पत्र हैं, उत्तमस्वभावरूप छाया जिसकी है ऐसे स्मित (मुस्किरान) रूप पुष्पसहित सज्जन विद्वान्‌रूप चंपाके वृक्षके नीचे क्षणमेंही विश्राम मिलताहै ॥ ३३ ॥ आत्मलाभरूप विश्रामके अभावमें महामोह और संतापकी संपत्तिदायक इस संसारमें किंचित् विवेक जिस बुद्धिमान्‌को उत्पन्न हुआहै उसको शयन करना न चाहिये ॥ ३४ ॥ आत्माही आत्माका बंधुहै इससे आत्मासे आत्माका उद्धार करना चाहिये न कि देहके अभिमान तथा गर्वसे आत्माको जन्मरूप पंकके समुद्रमें फेंकना चाहिये ॥ ३५ ॥ यह देहसंबंधी दुःख क्याहै ? कैसे आया, और क्या इसका मूलहै, वा कैसे इसका क्षय होताहै, इसप्रकार बुद्धिमानोंको प्रयत्नसे विचारना चाहिये ॥ ३६ ॥

नधनानिनमित्राणिनशास्त्राणिनबांधवाः ॥ नराणामुपकुर्वंतिमग्नस्वात्मसमुद्धृतौ ॥ ३७ ॥ मनोमात्रेण सुहृदासदैवसहवासिना ॥ सहकिंचित्परामृश्यभवत्यात्मासमुद्धृतः ॥ ३८ ॥ वैराग्याभ्यासयत्नाभ्यां स्वपरामर्शजन्मना ॥ तत्त्वालोकनपोतेनतीर्यतेभवसागरः ॥ ३९ ॥ शोच्यमानंजनैर्नित्यंदह्यमानंदुराशया ॥ नात्मानमवमन्येतप्रोद्धरेदेनमादरात् ॥ ४० ॥

अर्थ—न धन, न मित्र न अन्यशास्त्र अज्ञानसागरमें मग्न आत्माके उद्धार करनेमें मनुष्योंके उपकारी होतेहैं ॥३७॥ सदा सहवासी शुद्ध मनमात्रसुहृदूसे कुछ परामर्श करके आत्माका उद्धार कियाजाताहै ॥३८॥ अभ्यास तथा वैराग्यरूप यत्नसे विचारसे उत्पन्न, तत्वज्ञानरूप महानौकासे संसाररूप सागर पार कियाजाताहै॥३९॥मनुष्योंसे नित्य शोच्यमान, दुष्टआशासे पीडित आत्माकी उपेक्षा न करनी चाहिये किंतु आदरसे इसका उद्धार करना चाहिये ॥४०॥

अहंकारमहालानंतृष्णारज्जुंमनोमदम् ॥ जन्मजंबालनिर्मग्नंजीवदंतिनमुद्धरेत् ॥ ४१ ॥ अयमेतावतैवात्मात्रातोभवतिराघव ॥ यदपास्यविमूढत्वमहंकारःप्रमार्ज्यते ॥ ४२ ॥ एतावतैवसन्मार्गेयातिप्रकटतामलम् ॥ यदपास्यमनोजालमहंभावोविलूयते ॥ ४३ ॥ एतावतैवदेवेशःपरमात्मावगम्यते ॥ काष्ठलोष्ठसमत्वेनदेहोयदवलोक्यते ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! अहंकारही जिसका बांधनेका स्तंभ है तृष्णाही जिसके बांधनेकी रज्जुहै मनही जिसके गंडस्थलसे झरनेवाला मद है और जो जन्मरूप कीचडमें निमग्न (फंसा) होरहाहै ऐसे जीवरूप हाथीका उद्धार करना चाहिये ॥ ४१ ॥ आत्माकी रक्षा होती है कि अपने आत्माके अज्ञानको दूर करके अहंकार दूर कियाजाय ॥ ४२ ॥ इतनेहीमें सन्मार्ग (ज्ञान) पर्य्यन्त विचारमें भलीभांति प्रकटताको प्राप्त होताहै कि मनसे बाह्य तथा अध्यात्मिक जगत्‌में आसक्तिजालको दूर करके अहंकारको नष्ट करै ॥ ४३ ॥ हे रामजी ! इतनेहीमें सब देवोंका स्वामी परमात्माका ज्ञान होताहै कि काष्ठ वा पाषाणके समान यह देह देखाजाय ॥ ४४ ॥

अहंकारांबुदेक्षीणेदृश्यतेचिद्दिवाकरः ॥ ततस्तत्परिणामेनतत्पदंसमवाप्यते ॥ ४५ ॥ यथाध्वांतसमुच्छेदेस्वयमालोकवेदनम् ॥ तथाहंकारविच्छेदेस्वयमात्मावलोकनम् ॥ ४६ ॥ अहंकारेपरिक्षीणेयावस्थासुखमोदजा ॥ सावस्थाभरिताकारासासेव्यासंप्रयत्नतः ॥ ४७ ॥ परिपूर्णार्णवप्रख्यानवागोचरमेतिनः ॥ नोपमानमुपादत्तेनानुधावतिरंजनम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—अहंकाररूप मेघके नष्ट होनेपर चित्‌रूप सूर्य देख पडताहै और आत्मदर्शनकी भूमिकाके परिपाकसे परमपद प्राप्त होताहै ॥ ४५ ॥ जिसप्रकार अंधकारका नाश होनेपर प्रकाशका ज्ञान स्वयं होताहै ऐसेही अहंकारका नाश होनेपर आत्माका दर्शन स्वयं सिद्ध होताहै ॥ ४६ ॥ अहंकारके क्षीण होनेपर निरतिशय आनंदमें विश्रान्तिसे उत्पन्न जो निर्विकल्पावस्था होती है वह अवस्था पूर्ण आकारवाली है, और यत्नसे उसीकी सेवा करनी चाहिये ॥४७॥ परिपूर्ण समुद्रके तुल्य वह हमलोगोंके मन आदिके विषयताको नहीं प्राप्त होती, न उसके कोई सदृश है और न वह दृश्यके रागसे रंजित होती है ॥ ४८ ॥

केवलंचित्प्रकाशांशकलिकास्थिरतांगता ॥ तुर्याचेत्प्राप्यतेदृष्टिस्तत्तयासोपमीयते ॥ ४९ ॥ अदूरगतसादृश्यात्सुषुप्तस्योपलक्ष्यते ॥ सावस्थाभरिताकारागगनश्रीरिवातता ॥ ५० ॥ मनोहंकारविलयेसर्वभावांतरस्थिता ॥ समुदेतिपरानंदायातनुःपारमेश्वरी ॥ ५१ ॥ सास्वयंयोगसंसिद्धासुषुप्तादूरभाविनी ॥ नगम्यावचसांरामहृद्येवेहानुभूयते ॥ ५२ ॥

अर्थ—केवल चित्प्रकाशोंकी कली स्थिरताको प्राप्त होती है, और यदि तुर्य्य (निर्विकल्प समाधि) दृष्टि होतो उसकी उपमा उसीके साथ होसकती है ॥ ४९ ॥ निर्विक्षेपके समीपताके कारण सदृश होनेसे सुषुप्तिको भान होती है, और वह पूर्णाकार अवस्था आकाशकी शोभाके समान व्यापक है ॥ ५० ॥ घटके नाशसे घटाकाश जैसे महदाकाशमें मिलताहै ऐसेही मन तथा अहंकाररूप उपाधिके नष्ट होनेपर सब पदार्थोंके अन्तरमें स्थित त्वं तथा तत्पदका लक्ष्यरूप परमेश्वरकी जो परानन्दात्मकता है वह उदय होती है ॥५१॥ वह स्वयं योगसे सिद्ध होती है और सुषुप्तके अदूर होनेवाली है, और हे रामजी ! वह अवस्था वाणियोंका विषय नहीं है किंतु हृदयमें ही अनुभूत होतीहै

अनुभूतिविनातत्त्वंखंडादेर्नानुभूयते ॥ अनुभूतिविनारूपंनात्मनश्चानुभूयते ॥ ५३ ॥ अखिलमिदम नंतमात्मतत्त्वंदृढपरिणामिनिचेतसिस्थितंऽतः॥ बहिरुपशमितेचराचरात्मास्वयमनुभूयतएवदेवदेवः ॥ ५४ ॥ तदनुविषयवासनाविनाशस्तदनुशुभः परमः स्फुटप्रकाशः ॥ तदनुचसमतावशात्स्वरूपेपरि णमनंमहतामचिंत्यरूपम् ॥ ५५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे उपदेशोनाम चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

अर्थ—अनुभवके विना साधारण खंड (खांडचीनी) आदिका तत्व जैसे नहीं ज्ञात होताहै ऐसेही अनुभव विना आत्माकाभी स्वरूप नहीं ज्ञात होता ॥ ५३ ॥ यह संपूर्ण जगत् केवल अनंत आत्मस्वरूपही है, और दृष्ट परिणामी इस चित्तके बाह्यविषयोंके शांत होनेपर वह चराचरोंका आत्मा ब्रह्मादिदेवोंकाभी देव स्वयं अनुभूत होताहै ॥ ५४ ॥ इस चतुर्थभूमिकाके पश्चात् पंचमभूमिकामें विषयकी वासनाका नाश होताहै, षष्ठभूमिकामें परम-पुरुषार्थरूप आत्माका प्रकाश होताहै, और इसके पश्चात् सप्तमभूमिकामें समाधि तथा असमाधिकी समताके कारण केवल आनन्दैकघनरूपसे आत्माका परिणाम होताहै जो ब्रह्मादिकेभी अचिन्त्यरूप है ॥ ५५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे उपदेशो नाम चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

पंचषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

सह्यनाम पर्वतपर अत्रिमुनिके आश्रमपर विलास तथा भासके जन्मकर्म और शोकके उदयका क्रम इस ६५ के सर्गमें वर्णन किया गया है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ मनसैवमनश्छित्त्वायद्यात्मानावलोक्यते ॥ ममेत्यहमितित्यक्त्वातत्तामरसलोचन ॥ १ ॥ नास्तमेतिजगद्दुःखंयथाचित्रगतोरविः ॥ आयात्यापदनंतत्वंमहार्णववदातता ॥ २ ॥ पुनः पुनरुपायातिजलकल्लोलकारणम् ॥ मेघनीलतमःश्यामासंसृतिप्रावृडाकुला ॥ ३ ॥ अत्रैवोदाहरंतीम मितिहासंपुरातनम् ॥ संवादंसुहृदोःसह्यसानौभासविलासयोः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे कमलनेत्र रामजी ! यह धनादि मेरा यह शरीर आदि मैं इस अभिमानको त्यागकर और मनसे मनका छेदन करके यदि आत्माका दर्शन न किया जाय तो ॥ १ ॥ जगत्का दुःख ऐसे नहीं अस्त होता जैसे चित्रका सूर्य्य, और महासमुद्रकेतुल्य अपरिमित आपत्ति प्राप्त होती है ॥ २ ॥ और जल (ज) के कल्लोलका कारण, मेघ तथा नील अन्धकारसे श्याम संसाररूप वर्षाऋतु पुनः आती है ॥ ३ ॥ इसी विषयमें सह्यनाम पर्वतके शिखरपर निवास करनेवाले भास तथा विलास नाम दो मित्रोंके संवादके पुरातन इतिहासका उदाहरण देतेहैं ४

अस्त्युत्सेधजिताकाशःपीठेनजितभूतलः ॥ तलेनजितपातालस्त्रिलोकविजयोगिरिः ॥ ५ ॥ असंख्य कुसुमापूरोऽसंख्यनिर्मलनिर्झरः ॥ गुह्यकारक्षितनिधिःसह्यनामाऽविषह्यभाः ॥ ६ ॥ मुक्तापटलसंपूर्णै र्भानुभासुरभित्तिभिः ॥ भासुरःकांचनतटैकैरिवसुरद्विपः ॥ ७ ॥ क्वचित्पुष्पभरासारोधातुसारातत: क्वचित् ॥ क्वचित्फुल्लसरःसारोरत्नशालिशिलःक्वचित् ॥ ८ ॥

अर्थ—उचाईमें आकाशकोभी जीतनेवाला तथा नीचेकी भूमिसे भूतल, और भूमिके मूलभागके प्रवेशसे पातालको जीतनेवाला त्रिलोकमें विजयी वह पर्वत है ॥ ५ ॥ पुनः असंख्यपुष्पोंके समूहोंसे पूर्ण, असंख्य निर्मल झरने-सहित, गुह्यकोंसे रक्षित और रत्नादिकी दीप्तिसे दृष्टिको प्रतिबन्ध करनेवाला वह सह्यनाम पर्वत है ॥ ६ ॥ मोतियोंके

समूहसे पूर्ण, चन्द्रकांतमणियोंकी भित्तियोंसे प्रकाशशील, सुवर्णमय नितंबोंसे ऐसे शोभितहै जैसे गंडस्थलसे हस्ती ॥ ७ ॥ कहीं पुष्पोंके समूहोंके प्रवाहमय, कहीं हरिताल और मनःशिला आदि धातुओंसे व्याप्त, कहीं विकसित पुष्प-संयुक्त सरोवरोंसे रमणीय, और कहीं रत्नोंकी शोभायमान शिलामय ॥ ८ ॥

इतोरटन्निर्झरवानितःक्वणितकीचकः ॥ इतोरटद्गुहावातइतःपट्पदघुंघुमः ॥ ९ ॥ सानौगीतोप्सरोवृंदैर्वनेमृगखगारवः ॥ अधित्यकायांमत्ताभ्रोगगनेषुखगारवः ॥ १० ॥ विद्याधराश्रितगुहोभृंगगीतांबुजाकरः ॥ किरातगीतपर्यंतःखगगीतवनद्रुमः ॥ ११ ॥ स्कंधेषुदेवैर्वलितःपादेषुवलितोनरैः ॥ पाताले वलितोनागैर्जगद्गृहमिवापरम् ॥ १२ ॥

अर्थ—कहीं झरनोंके कहीं बांसोंके शब्दोंसे पूर्ण कहीं कंदराओंमें वायुकी सन्सनाहटसे शोभित और कहां भ्रमरगूंजसे व्याप्त ॥ ९ ॥ और कहीं शिखरपर अप्सराओंके समूहके गानसे मनोहर और वनमें मृग तथा पक्षियोंके शब्दोंसे पूर्ण ऊपरकी भूमिमें मत्तके समान मेघोंकी गर्जनासे रमणीय, और आकाशदेशमें पक्षियोंके शब्दसे शोभित यह पर्वत था ॥ १० ॥ और उसकी कन्दरा विद्याधरोंसे आश्रित थी. कमलोंकी खानिमें भ्रमर गूंजरहे थे. उसके अधोभागमें किरातलोग गान करते थे और उसके बनके वृक्षोंमें पक्षीगण गान करतेथे ॥ ११ ॥ स्कंधदेशोंमें देवताओंसे वेष्टित, पाददेशमें मनुष्योंसे, और पातालदेशमे नागोंसे सेवित ऐसे भान होता था जैसे ब्रह्मांडका दूसरा गृह ॥ १२ ॥

कंदरेषुश्रितःसिद्धैर्निधानैरंतराश्रितः ॥ चंदनेषुश्रितोनागैःसिंहैःशृंगशिखासुच ॥ १३ ॥ पुष्पाभ्रसंवीतवपुःपुष्परेण्वभ्रपांसुलः ॥ पुष्पवात्याभ्रमद्भ्रांतःपुष्पपादपपांडुरः ॥ १४ ॥ धातुधूल्यभ्रकपिलोरत्नोपलतलस्थितैः ॥ मंदारगैरिवपुरस्त्रीगणैरलमाश्रितः ॥१५॥ अभ्रनीलांशुकच्छन्नामूकरत्नविभूषणाः ॥ शिलाःकनकसुंदर्योयत्रशृंगाभिसारिकाः ॥ १६ ॥

अर्थ—और कंदराके प्रदेशोंमें सिद्धोंसे सेवित, भीतरके स्थानोंमें अनेकप्रकारकी निधियोंसे आश्रित, चंदनोंमें सर्पोंसे और शिखरकी चोटियोंपर सिंहोंसे सेवित वह पर्वत था ॥ १३ ॥ पुनः गिरेहुये पुष्पोंसे आच्छादित शरीर सद्यः पतितपुष्पोंकी रेणुसे धूलिमय, उडतेहुये पुष्परूप महावायुसहित, मेघोंसे भ्रमणशील और पुष्पमय वृक्षोंसे गौरवर्ण ॥ १४ ॥ अनेकधातुओंकी धूलियोंसे मेघके सदृश गौरवर्ण और रत्नमयपाषाणोंके तलपर मंदार (कल्प) के वृक्षोंपर आरूढ पुरकी अंगनाओंसे पूर्णरीतिसे आश्रित वह पर्वत था ॥ १५ ॥ मेघरूप नीलवस्त्रोंसे आच्छादित, शब्दरहित रत्नोंके भूषणमय, कनकमय वर्ण सुन्दरी शिला वहां मानो शिखररूप पुरुषोंकी अभिसारिका (पुंश्चली) थी ॥ १६ ॥

तत्रोत्तरतटेसानौविनम्रफलपादपे ॥ रत्नपुष्करिणीजालवहन्निर्झरवारिणि ॥ १७ ॥ चूतद्रुमलतोन्मुक्तपुष्पस्तबकदंतुरे ॥ विफुल्लांकोलपुन्नागनीलनीरजदिक्तटे ॥ १८ ॥ लतावितानच्छन्नार्करत्नांशुभरभास्वरे ॥ स्रवज्जंबूरसस्यूतेस्वर्लोकाह्लादकारिणि ॥ १९ ॥ ब्रह्मलोकसमःस्वर्गरम्यःशिवपुरोपमः ॥ अत्रेरस्त्याश्रमःश्रीमान्सिद्धश्रमहरोमहान् ॥ २० ॥

अर्थ—उस पर्वतपर फलके भरसे नम्र वृक्ष और रत्नमय बावलियोंके समूहसे जलके झरने बह रहेथे ॥ १७ ॥ आम्रके वृक्षोंकी शाखाओंसे गिरे पुष्पोंसे ऊंचे और दिशाओंके तटोंपर विकसित अंकोल, पुंनाग और नीलकमल शोभित होरहे थे ॥ १८ ॥ वहां लताओंके विस्तारसे सूर्य ढकाया तथा रत्नोंकी किरणसमूहसे प्रकाशमान बहतेहुये जंबूरससे पूर्ण और स्वर्गलोकके समान आनन्ददायक उत्तरके शिखरपर ॥ १९ ॥ ब्रह्मलोकके सदृश, स्वर्गके सदृश सुंदर, शिवपुर (कैलास) के समान, धनधान्यसे पूर्ण, सिद्धोंके श्रमको हरनेवाला और विशाल अत्रिमुनिका आश्रम था ॥ २० ॥

महत्यत्राश्रमेतस्मिंस्तापसौद्वौबभूवतुः ॥ कोविदौतुनभोमार्गइवशुक्रबृहस्पती ॥ २१ ॥ तयोरथैकास्पदयोस्तत्राभूतांसुतावुभौ ॥ फुल्लांकुरौशुद्धतनूसरस्यंबुजयोरिव ॥ २२ ॥ विलासभासनामानौवृद्धिमाययतुःक्रमात् ॥ तौपित्रोःपल्लवेदीर्घलतापादपयोरिव ॥ २३ ॥ आस्तामन्योन्यसुस्निग्धौसुहृदौवल्लभौमिथः ॥ तिलतैलवदाश्लिष्टौतौपुष्पामोदवत्स्थितौ ॥ २४ ॥

अर्थ—उस महान आश्रममें विद्वान् आकाशमें शुक्र तथा बृहस्पतिके तुल्य इसी नामके दो तपस्वी रहतेथे ॥ २१ ॥ इसके पश्चात् एक आश्रममें रहनेवाले उन तपस्वियोंके दो पुत्र ऐसे हुये जैसे दो कमलोंके पुष्पोंके अंकुर (कली) ॥ २२ ॥ जैसे लता और वृक्षके पल्लव वृद्धिको प्राप्त होते हैं ऐसेही अपने २ पिताके स्थानमें विलास

तथा भास नाम दोनों पुत्र क्रमसे वृद्धिको प्राप्तहुये ॥ २३ ॥ वे दोनों तिल और तैल वा पुष्प और सुगंधके समान मिलके परस्पर एक दूसरेके प्रियमित्र थे ॥ २४ ॥

नाप्युक्तौपुत्रयुक्तौतुसुरक्ताविवदंपती ॥ एकंद्वित्वमिवापन्नंसममासीत्तयोर्मनः ॥ २५ ॥ तौतथान्योन्य मुदितौमनोहरतराकृती ॥ तस्थतुःस्वाश्रमेमौनेसरोजइवषट्पदौ ॥ २६ ॥ प्रापतुर्यौवनंबाल्यमुत्सृज्यन ववल्लभौ ॥ कालेनाल्पतरेणैवचंद्रसूर्याविवोदितौ ॥ २७ ॥ जग्मतुर्देहमुत्सृज्यततस्तौपितरौतयोः ॥ स्वर्गंजरार्त्तावुड्डीयनीडादिवविहंगमौ ॥२८॥ पंचत्वंगतयोःपित्रोर्दीनवक्त्रौबभूवतुः॥ तप्तांगौविगतोत्सा हौपद्माविवजलोद्धृतौ ॥ २९ ॥ तत्रौर्ध्वदेहिकंकृत्वाचक्रातेपरिदेवनम् ॥ लोकस्थितिरलंघ्याहिमहता मपिमानद ॥ ३० ॥ कृत्वौर्ध्वदेहिकमथोव्यथयाभिभूतौशोकोत्थयाकरुणयार्त्तगिराविलप्य ॥ चित्रा र्पिताविवनिरस्तसमस्तचेष्टौतौसंस्थितौसुखमशून्यहृदौविवृत्तौ ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे भासविलासवृत्तांतेसह्यगिरिवर्णनं नाम पंचषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

अर्थ—वे दोनों पुत्र सदा मिलित परस्पर ऐसे प्रेम करतेथे जैसे पुत्रके अर्थ स्त्रीपुरुष और एकही द्वैतभाव प्राप्तके समान उन दोनोंका मन समान था ॥ २५ ॥ वे दोनों परस्पर प्रसन्न मनोहर आकारधारी उस मुनिके आश्रममें ऐसे स्थित थे जैसे कमलमें दो भ्रमर ॥ २६ ॥ अल्पकालमेंही बाल्य अवस्थाको त्यागकर युवावस्थाको ऐसे प्राप्तहुये जैसे उदयको प्राप्त सूर्य और चंद्रमा ॥ २७ ॥ इसके पश्चात् वृद्धावस्थासे पीडित उन दोनोंके पिता देहको त्याग स्वर्गमें ऐसे गये जैसे अपने खुंथेसे उडके पक्षी ॥ २८ ॥ पिताके मरनेपर तप्त शरीरवाले, उत्साहरहित और दीनमुखवाले वे दोनों ऐसे होगये जैसे जलसे निकालेहुये कमल ॥ २९ ॥ हे मानके योग्य रामजी ! वहांपर अपने पिताके दाह आदि क्रिया करके दोनोंने विलाप किया, क्योंकि लोकरीतिको उल्लंघन महात्माओंकोभी न करनाचाहिये ॥ ३० ॥ हे रामजी ! और्ध्वदैहिक (मृतककर्म) करके व्यथासे ग्रस्त, शोकजनित करुणासे पूर्णवाणीसे विलाप करके समस्तचेष्टारहित, चित्रमें लिखितके समान जीवनसहित (मूर्छित) सुखसे स्थितहुये ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषानुवादे भासविलासवृत्तान्ते सह्यवर्णनं नाम पंचषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥

अज्ञानमति भासके बचनसे विस्तारपूर्वक दुःखसमुद्रमें डूबना इस ६६ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ अतिशोकपराभूतौतस्थतुर्दृढतापसौ ॥ तापसंशुष्कसर्वांगौतावरण्यद्रुमाविव ॥ १ ॥ विरक्तौविपिनेकालंक्षेपयामासतुर्द्विजौ ॥ यूथाविवसारंगावनास्थामागतौपराम् ॥ २ ॥ जग्मुर्दि नानिमासाश्ववर्षाण्यथतयोस्तदा ॥ क्रमाद्वावपिसंयातौजरांश्वभ्रद्रुमाविव ॥ ३ ॥ अप्राप्तविमलज्ञानौ चिराज्जर्जरतापसौ ॥ तावेकदासंघटिताविदमन्योन्यमूचतुः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-अतिशोकसे पराजित दृढ तपस्वी तपसे शुष्कसर्वाङ्ग वे दोनों ऐसे स्थित हुये जैसे जंगलके वृक्ष ॥ १ ॥ हे रामजी ! वे दोनों विरक्त ब्राह्मण पृथक् होकर धन गृहादि संपूर्णसे वैराग्यको प्राप्त वनमें ऐसे कालक्षेप किया जैसे अपने झुंडसे विछुरे हुये दो मृग ॥ २ ॥ इसके पश्चात् उन दोनोंके दिन, मास और बहुत वर्ष व्यतीत हो गये. अनन्तक्रमसे गर्तके वृक्षके समान दोनों वृद्धावस्थाको प्राप्त हुये ॥ ३ ॥ विमलज्ञानको अप्राप्त वृद्ध दोनों तपस्वी चिरकालमें एकसमय मिलके परस्पर यह बात बोले ॥ ४ ॥

विलासउवाच ॥ ॥ जीविताग्र्यद्रुमफलहृदावासामृतांबुधे ॥ जगत्यस्मिन्महाबंधोभासस्वागतम स्तुते ॥ ५ ॥ एतावत्योदिनावल्योमद्वियोगवतात्वया ॥ वदक्वक्षपिताःसाधोकच्चित्तेसफलंतपः ॥६॥ कच्चित्तेविज्वराबुद्धिःकच्चिज्ज्ञातस्त्वमात्मवान् ॥ कच्चित्फलितविद्यस्त्वंकच्चित्कुशलवानसि ॥ ७ ॥ श्रीवसिष्ठ उवाच ॥ इत्युक्तवंतंसंसारसमुद्विग्नमलंतथा ॥ प्राहाप्राप्तमहाज्ञानंसुहृत्सुहृदमादरात् ॥८॥

अर्थ—विलास बोला-हे श्रेष्ठ जीवनरूप वृक्षके फलरूप तथा हृदयके निवासी चन्द्र, और इस जगत्में महाबंधो आपका यह शुभागमन है ॥ ५ ॥ हे साधो ! मेरे वियोगसे इतनी दिनकी बहुत पंक्तियोंके तुमने कहां बिताया, यह कहिये. क्या तुमारी तपस्या सफल हुई ? ॥ ६ ॥ क्या तुमारी बुद्धि संतापरहित हुई, और तुम आत्मज्ञानी हुये ?

क्या तुमारी विद्या फलीभूत हुई ? और तुम कुशलमें तो हो ? ॥ ७ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—संसारसे उद्विग्न इसप्रकार कहते हुये और अप्राप्त आत्मज्ञान अपने मित्रसे मित्रने स्पष्टरीतिसे यह आदरसे कहा ॥ ८ ॥

भासउवाच ॥ ॥ साधोस्वागततायैवदिष्ट्याद्दष्टोऽसिमानद ॥ कुशलंतुकुतोऽस्माकंसंसारेतिष्ठतामिह ॥ ९ ॥ यावन्नाधिगतंज्ञेयंयावत्क्षीणानचित्तभूः ॥ यावत्तीर्णोनसंसारस्तावन्मेकुशलंकुतः ॥ १० ॥ आशायावदशेषेणनलूनाश्चित्तसंभवाः ॥ वीरुधोदात्रकेणेवतावन्नःकुशलंकुतः ॥ ११ ॥ यावन्नाधिगतंज्ञानंयावन्नसमतोदिता ॥ यावन्नाभ्युदितोबोधस्तावन्नःकुशलंकुतः ॥ १२ ॥

अर्थ—भास बोला–हे साधो ! हे माननीय आज यह आपका शुभागमन हुआ बडे सौभाग्यहैं कि आप दृष्टिपथमें प्राप्तहुये, और संसारमें रहतेहुये हम लोगोंको कुशल कहां ? ॥ ९ ॥ जबतक ज्ञेय (ब्रह्म) को नहीं जाना जबतक काम संकल्प आदि नष्ट नहीं हुये, और जबतक संसारसागरके पार नहीं हुये तबतक मेरा कुशल कहां ? ॥ १० ॥ जैसे कुठारसे वृक्ष काटे जाते हैं ऐसेही चित्तसे उत्पन्न जबतक संपूर्ण आशाओंको नहीं काटा तबतक कुशल कहां ? ॥ ११ ॥ जबतक ज्ञान नहीं प्राप्त किया, जबतक समता नहीं उदय हुई, और जबतक आत्मबोध नहीं उदय हुआ तबतक हम लोगोंका कुशल कहां ? ॥ १२ ॥

आत्मलाभंविनासाधोविनाज्ञानमहौषधम् ॥ उदेतिपुनरेवेयंदुःसंसृतिविषूचिका ॥ १३ ॥ शैशवांकुरिंतोज्जृंभान्नवयौवनपल्लवः ॥ जराकुसुमितोऽभ्येतिपुनःसंसारदुर्द्रुमः ॥ १४ ॥ कायजीर्णतरोरस्माद्बांधवाक्रंदषट्पदा ॥ जराकुसुमितोदेतिपुनर्मरणमंजरी ॥ १५ ॥ भुक्तकर्मर्तुविरसापुराणदिवसोंभिता ॥ नीयतेनीरसप्रायापुनःसंवत्सरावली ॥ १६ ॥

अर्थ—हे साधो ! आत्मलाभके बिना, और ज्ञानरूप महाऔषधकेबिना पुनः २ यह संसाररूप महामारी (हैजा)उदयको प्राप्त होती है ॥ १३ ॥ हे सखे ! बाल्यअवस्थारूप अंकुरको उल्लंघनकर नूतनयौवनरूप पल्लवसहित, और वृद्धावस्थारूप पुष्पसहित यह संसाररूप वृक्ष पुनः उत्पन्न होताहै ॥ १४ ॥ हे मित्र ! इस शरीररूप जीर्ण वृक्षसे बांधवोंके रुदनरूप भ्रमरसहित, और वृद्धावस्थारूप पुष्पसहित यह मरणरूप लता पुनः उत्पन्न होती है ॥ १५ ॥ मरणके उत्तर पशु आदि योनियोंकी प्राप्तिमें पापकर्मोंके भोगसे विरस, तथा स्वर्ग आदिकी प्राप्तिमें पूर्वसंचित पुराणकर्मोंके भोगमात्रसे पूर्ण की हुई नीरसके समान पुनः वर्षोंकी पंक्तियोंको व्यर्थ व्यतीत करतेहैं ॥ १६ ॥

महादरीषुदेहाद्रेस्तृष्णाकंटकितास्वपि ॥ फलव्यालासुचपुनःक्रियासुपरिलुठ्यते ॥ १७ ॥ दुःखैःसुखलवाकारैर्दीर्घादीर्घैःशुभाशुभैः ॥ अपर्याप्तागमापायाःप्रयांत्यायांतिरात्रयः ॥ १८ ॥ अयथार्थक्रियारंभैः कदाशावेशपल्लवैः ॥ क्षीयतेकर्मभिस्तुच्छैरायुराहतकर्मभिः ॥ १९ ॥ उन्मूलिताश्रयालानोमनोमत्तमतंगजः ॥ तृष्णाकरेणुकोन्निद्रोदूरंविपरिधावति ॥ २० ॥

अर्थ—विषयभोगके फलही जीनमें सर्प हैं, और सहस्रों तृष्णारूप कांटे जिनमें हैं ऐसी इस देहरूप पर्वतकी कन्दराओंके समान ऐहिक तथा पारलौकिक विषयभोगसाधक क्रियाओंमें पुनः लोटतेहैं ॥ १७ ॥ सुखके लेशके आकार जिनमें प्रतीत होतेहैं ऐसे न्यून वा अधिक दुःखोंसे तथा शुभ अशुभों (पुण्यपापों) से सर्वदा उत्पत्ति और नाश जिनमें लगाहै ऐसी रात्रि (काल) बीतती चली जाती हैं और आतीभी हैं ॥ १८ ॥ मिथ्या जिनके फल हैं और दुष्टआशा जिनके पत्ते हैं ऐसे कर्मोंसे मिथ्याकर्मकारी जीव अपनी आयु नष्ट करते हैं ॥ १९ ॥ परमात्माके स्वरूपमें बंधनके हेतु विवेकको तोडनेवाला और तृष्णारूप हथिनीमें आसक्त होनेसे निद्राशून्य यह मनरूप मत्त हांथी दूर २ दौडताहै ॥ २० ॥

जिह्वाचपलतालग्नःकायद्रुममहालये ॥ पतच्चिंतामणौवृद्धोगर्द्धगृध्रोविवर्द्धते ॥ २१ ॥ नीरसानिःसुखालघ्वीपतत्पेलवगात्रिका ॥ जीर्णपर्णसवर्णयंक्षीयतेदिवसावली ॥ २२ ॥ अवमानरजोध्वस्तमस्तंगतवपुःश्रियम् ॥ मुखंधूसरतामेतिहिमैःपद्ममिवाहतम् ॥ २३ ॥ शुष्यतःकायसरसःप्रगलद्यौवनांभसः ॥ राजहंसःक्षणादायुरनिवर्तिपलायते ॥ २४ ॥

अर्थ—व्यर्थही परमपुरुषार्थके उपायोंको गिरानेवाला इस शरीररूप वृक्षमें स्थित, हृदयरूप खुंथेमें विषयोंकी ओर जीभकी चंचलतामें तत्पर अभिलाषरूप गीध बढताहै ॥ २१ ॥ फलरहित कर्मोंसे नीरस, सुखशून्य, लघु और श्रम दुर्बलता तथा रोगादिसे क्षीण पत्तेसहित दिनोंकी पंक्ति (उसमें होनेवाली शरीररूप लता) क्षीण होती चली जाती है ॥ २२ ॥ पुत्रादिके अपमानरूप रजोगुणसे ध्वस्त, और अस्त आकारकी कांतियुक्त वह मुख ऐसे धूसर

(मलिन) होजाताहै जैसे हिमसे ताडित कमल ॥ २३ ॥ सूखे शरीररूप तडागसे जब यौवनरूप जल नष्ट होने लगताहै तब आयुरूप राजहंस पुनः न आनेकेलिये भागके चलदेताहै ॥ २४ ॥

कालानिलबलोद्धूताज्जर्जराज्जीवितद्रुमात् ॥ भोगपुष्पाणिदिवसपर्णानिनिपतंत्यधः ॥ २५ ॥ भोगभोगिश्रितेष्वंतर्दुःखदर्दुरधारिषु ॥ मनोमोहांधकूपेषुपूरेषुविनिमज्जति ॥ २६ ॥ नानानुरंजनास्पष्टात्तृष्णा तरलपेलवा ॥ चैत्यमग्रपताकेवदूरंसमधिरोहति ॥ २७ ॥ अस्यसंसारतंत्रस्यवृहत्कालबिलास्पदः ॥ जीविताशामयंतंतुमंतकाखुर्निकृंतति ॥ २८ ॥

अर्थ—कालरूप पवनसे कम्पित और जर्जर जीवनरूपवृक्षसे भोगरूप पुष्प और दिवसरूप पत्ते चलेजाते हैं ॥ २५ ॥ भोगरूप सर्पोंसे पूर्ण, और अन्तःकरणके दुःखरूप मंडूकोंके धारण करनेवाले, मोहरूप अन्धकूपोंके प्रवाहमें डूबताहै ॥ २६ ॥ नानाप्रकारके अनुरागसे पूर्ण चंचल और तुच्छ यह तृष्णारूप देवस्थानके अग्रभागमें बंधी पताकाकेसमान दूरही चढ़ती है ॥ २७ ॥ इस संसाररूप जोलाहेकी शलाकाके जीवनकी आशामय सूतको महान्कालरूप बिलमें स्थित मृत्युरूप मूषक काटताहै ॥ २८ ॥

यौवनोत्कटकल्लोलावहल्लोलासिफेनिला ॥ परावर्त्तमहावर्त्तायातिजीवितदुर्नदी ॥ २९ ॥ कलाकुल जगत्कार्यकल्लोलाकुलसंकुला ॥ क्रियासरिदपर्यंतावहत्याकुलकोटरा ॥ ३० ॥ अनंताबंधुजनतानद्योगंभीरकोटरे ॥ अजस्रंनिपतंत्येतावितते कालसागरे ॥ ३१ ॥ देहरत्नशलाकेयंनाशपंकार्णवोदरे ॥ नज्ञाय तेकमग्नेतितातजन्मनिजन्मनि ॥ ३२ ॥

अर्थ—यौवनकी उत्कटतारूप तरंगसहित और वहती हुई चंचल तलवारके सदृश कामक्रोधादिरूप फेनसंयुक्त तथा तृष्णालोभादिके भ्रमणरूप महाआवर्तवाली जीवनरूप दुष्टनदी चली जाती है ॥ २९ ॥ शिल्प, नृत्य, और नीतिशास्त्ररूप कुशलताके वृन्द और जगत्के व्यवहाररूप तरंगोंसे पूर्ण तथा व्याकुल कोटरवाली यह प्रवृत्तिरूप कार्य्यकी अपार नदी वह रही है ॥ ३० ॥ अनन्त बन्धुओंके जनसमूहरूप नदियां गंभीरकोटरवाले विशाल कालरूप सागरमें निरन्तर वहा करती है ॥ ३१ ॥ हे प्रिय ! परमपुरुषार्थका साधक होनेसे यह देहरूप रत्नकी शलाका नाशके पंकरूप समुद्रके उदरमें प्रतिजन्म न जाने कहां डूबजाती है ॥ ३२ ॥

चिंताचक्रेचिरंबद्धंकुक्रियाचारचंचुरम् ॥ चेतोभ्रमतिसासुद्वेगर्त्तावर्त्तेतृणंयथा ॥ ३३ ॥ उह्यमानमनंतेषुचेतःकार्यमहोर्मिषु ॥ क्षणमेतिनविश्रांतिंचिंतातांडविताशयम् ॥ ३४ ॥ इदंकृतंकरोमीदंकरिष्यामीदमित्यलम् ॥ कलनाजालवलितामूर्छितामतिपक्षिणी ॥ ३५ ॥ अयंसुहृदयंशत्रुरितिद्वंद्वमहाद्विपः ॥ विनिकृंततिमर्माणियथानीलोत्पलानिमे ॥ ३६ ॥

अर्थ—चिंतारूप समुद्रके चक्रमें चिरकालसे बद्ध और दुष्टक्रिया तथा आचारोंसे प्रसिद्ध यह चित्त ऐसे भ्रमण करताहै जैसे गर्तके चक्रमें तृण ॥ ३३ ॥ अनंतकार्य्यरूप महातरंगोंमें, चिंतारूप तांडवनृत्यसे पूर्ण वहता हुआ यह चित्त क्षणभरभी विश्राम नहीं पाता ॥ ३४ ॥ यह करलिया यह करताहुं और पूर्णरूपसे यह करूंगा इत्यादि चिंतारूप जालबद्ध बुद्धिरूप पक्षिणी मूर्छित (मोहित) होती है ॥ ३५ ॥ यह मित्र है, यह शत्रु है इत्यादि द्वन्द्वरूप महाहस्ती मेरे मर्मस्थानोंको ऐसे भेदन करताहै जैसे नीलकमलको ॥ ३६ ॥

चिंतानद्यामहावर्त्तेवीचिकानिचयेचिरम् ॥ क्षणादुच्छूनतामेतिमनोमीनःक्षणाद्गतिः ॥ ३७ ॥ अनात्मीयानिदुःखानिबहून्येवंविधान्ययम् ॥ आत्मबुद्धयाविचिन्वानोजनोगच्छतिदीनताम् ॥३८॥ बहुविधसुखदुःखमध्यपातीविततजरामरणप्रवातभग्नः ॥ जगदुदरगिरौलुठञ्जनोयंगतरसपर्णवदेतिजर्जरत्वम् ॥३९॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे भासविलासवृत्तांतेअनित्यताप्रतिपादनं नाम षट्षष्ठितमःसर्गः ॥ ६६ ॥

अर्थ—चिंतारूप नदीके तरंगसमूहमय महावर्तमें अतिचपल यह मनरूप मीन क्षणमेंही वृद्धिको प्राप्त होताहै ॥ ३७ ॥ इसप्रकार आत्मासे न संबंध रखनेवाले अनेकदुःखोंको देहादिमें आत्मबुद्धिसे एकत्र करता हुआ यह प्राणी दीनताको प्राप्त होताहै ॥ ३८ ॥ अनेक सुखदुःखके मध्यमें पतित, जरामरणरूप पवनभग्न, और जगत्के उदररूप पर्वतपर लोटताहुआ यह जन रसशून्य जर्जरपत्ररूपताको प्राप्त होताहै ॥ ३९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषानुवादे भासविलासवृत्तान्ते अनित्यताप्रतिपादनं नाम षट्षष्ठितमः सर्गः ॥ ६६ ॥

सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥

देह तथा आत्माका असंबंध समर्थन करनेके लिये अंतःकरणकी आसक्तिसे बंध और उसके त्यागसे मुक्ति होती है इस विषयका वर्णन इस ६७ के सर्गमें किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवंतौकुशलप्रश्नंकृतवंतौपरस्परम् ॥ कालेनासाद्यविमलंज्ञानंमोक्षंततोगतौ ॥ १ ॥ ततोवच्मिमहावाहोयथाज्ञानेतरागतिः ॥ नास्तिसंसारतरणेपाशबंधस्यचेतसः ॥ २ ॥ इदंभव्य सतेदुःखमनंतमपिपेलवम् ॥ कुखगस्यांतरांभोधिःसर्पारेगोष्पदायते ॥ ३ ॥ देहातीतामहात्मानश्चि न्मात्रेस्वात्मनिस्थिताः ॥ दूराद्देहंसमीक्षंतेप्रेक्षकोजनतामिव ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! इसप्रकार परस्पर उन दोनोंने कुशल प्रश्न किया और कालसे विमलज्ञान पाके मुक्तिको प्राप्त हुये ॥ १ ॥ इसलिये हे महावाहो ! पाश (फांसी) के समान बंधनके हेतु चित्तके लिये संसाररूप समुद्रके पार होनेके अर्थ ज्ञानको छोडके अन्य कोई गति नहीं है ॥ २ ॥ यह अनंतभी संसारका दुःख विवेकीके अर्थ ऐसे अतितुच्छ है जैसे समुद्र नीचपक्षीके लिये तरनेके अयोग्यभी है परन्तु गरुडके लिये तौ गौकें खुरके समानही है ॥ ३ ॥ देहसे अतीत और चिन्मात्रमें स्थित, महात्मालोग देहको दूरसे ऐसे देखते हैं जैसे दर्शक (तमासा देखनेवाला) जनसमूहको ॥ ४ ॥

देहेदुःखातिसंक्षुब्धेकानःक्षतिरुपस्थिता ॥ रथेविधुरितेभग्नेसारथेःकेवखंडना ॥ ५ ॥ मनसिक्षुब्धतां यातेचित्त्वस्यांगकिमागतम् ॥ तरंगजलसंतानेवैपरीत्यंकिमंबुधेः ॥ ६ ॥ केभवन्त्यपसांहंसाःपयसासु पलाश्चके ॥ काःशिलाःकिलदारूणांकेभोगाःपरमात्मनः ॥ ७ ॥ संबंधःकइवश्रीमन्शैलापरसमुद्र योः ॥ अंतरेगिरिसंवाधेकश्चचित्तत्त्ववंधयोः ॥ ८ ॥

अर्थ—देहके अतिसंक्षुब्ध होनेपरभी चिन्मात्ररूप हम लोगोंकी क्या क्षति हुई, जैसे रथके टूटनेपर सारथीकी क्या हानि हुई ॥ ५ ॥ हे प्रियरामजी ! मनके संक्षोभित होनेपर चेतनका क्या विगडा, क्योंकि तरंगरूपसे जलका विस्तार होनेपर समुद्रके पूर्णताकी क्या हानि हुई ॥ ६ ॥ जलके हंस और पाषाण कौन होते हैं, वा काष्ठके पाषाण कौनहैं अर्थात् कोई नहीं है ऐसेही परमात्माके भोग कौनहैं अर्थात् अचेतनको वा असंग चेतनको ममताप्राप्ति नहीं होसकती है ॥ ७ ॥ हे श्रीमन् रामजी ! मध्य २ में पर्वतोंसे व्याप्त होनेपरभी पर्वत और समुद्रका क्या संबंध, ऐसेही चेतन और बंधनहेतु संसारका क्या संबंध ? ॥ ८ ॥

अप्युत्संगोह्यमानानिपद्मानिसरिदंभसाम् ॥ कानिनामभवंतीहशरीराणितथात्मनः ॥ ९ ॥ संघट्टा त्काष्ठपयसोर्यथोत्तुंगाःकणादयः ॥ देहात्मनोःसमायोगात्तथैताश्चित्तवृत्तयः ॥ १० ॥ संबंधाद्दारुपय सांप्रतिबिंबानिदारुणः ॥ यथापयसिलक्ष्यंतेशरीराणितथात्मनि ॥ ११ ॥ यथादर्पणवीच्यादौप्रतिबिं बानिवस्तुतः ॥ नासत्यानिचसत्यानिशरीराणितथात्मनः ॥ १२ ॥

अर्थ—जैसे अंकमें धारण किये हुयेभी जलके कमल कोई नहीं है ऐसेही आत्माके शरीर कौन हैं ॥ ९ ॥ जैसे जल और काष्ठके संयोगसे काष्ठके कण ऊंचे होते हैं ऐसेही आत्मा तथा मनके परस्पर अभेदबुद्धिसे सुखदुःखादिरूप चित्तकी वृत्ति होती है ॥ १० ॥ जैसे जलके और काष्ठके संबंधसे जलमें काष्ठके प्रतिबिंब देख पडते हैं ऐसेही आत्मामें शरीर ॥ ११ ॥ जैसे दर्पण तरंगआदिमें वस्तुओंके प्रतिबिंब जो देख पडते हैं न सत्यहैं न असत्यहैं किन्तु अनिर्वचनीयहैं ऐसेही आत्मामें शरीरहैं ॥ १२ ॥

दारुवार्युपलास्फोटेदुःखितानयथाक्वचित् ॥ संयुक्तेपुवियुक्तेपुनतथापंचसुक्षतिः ॥ १३ ॥ दारुसंश्ले पितात्तोयात्कंपशब्दादयोयथा ॥ प्रजायंतेतथैवास्माद्देहाच्चित्परिबोधितात् ॥ १४ ॥ नशुद्धजडयोरेताः संविदश्चिच्छरीरयोः ॥ एताह्यज्ञानमात्रस्यतस्मिन्नष्टेचिदेवनः ॥ १५ ॥ यथानकस्यचिद्वारिदारुश्लेपेऽ नुभूतयः ॥ तथानकस्यचिद्देहदेहिसंगेऽनुभूतयः ॥ १६ ॥

अर्थ—जैसे काष्ठ, जल और पाषाण फोडा होनेपर कहीं दुःखी नहीं देखेगये हैं ऐसेही पृथिवी आदि पंचभूतोंके देह आदिरूपमें परिणत होनेपर कोडा वा चन्दन आदिके संयोग होनेपर वा पुत्रादिके वियोग होनेपर क्या क्षति हुई ॥ १३ ॥ जैसे काष्ठके संवन्धसे जलमेंसे कंप तथा शब्द आदि होते हैं ऐसेही चेतनके संवन्धमात्रसे चारोओरसे ज्ञानको प्राप्त इस देहसे शब्द तथा कंपादि क्रिया होती है ॥ १४ ॥ शुद्धआत्मा तथा जडशरीरको ये सुखदुःख आदि वृत्ति नहीं होती किंतु अज्ञानमात्रको होती हैं. उस अज्ञानके नष्ट होनेपर हम चिन्मात्रही रहगये

॥ १५ ॥ जैसे काष्ठ और जलके संयोगमें किसीको सुखदुःखका अनुभव नहीं है ऐसेही देह और उसके अभिमानीके संयोगमें किसीको सुखदुःखादिका अनुभव यथार्थमें नहीं है ॥ १६ ॥

अज्ञस्यायंयथादृष्टःसंसारःसत्यतांगतः ॥ नज्ञस्यायंयथाभूतःसंसारःसत्यतांगतः ॥ १७ ॥ अंतःसंग विहीनास्तुयथास्नेहादृषज्जले ॥ तथासक्तमनोवृत्तौबाह्यभोगानुभूतयः ॥ १८ ॥ अंतःसंगेनरहितोयद्व त्सलिलकाष्ठयोः ॥ ॥ संबंधस्तद्वदेवांतरसंगोदेहदेहिनोः ॥ १९ ॥ अंतःसंगेनरहितःसंबंधोजल काष्ठयोः ॥ सदेहदेहिनोश्चैवंप्रतिबिंबांभसोस्तथा ॥ २० ॥

अर्थ—जैसे अज्ञानीके अर्थ यह संसार दृष्टहै वैसे सत्यताको प्राप्तहै वैसे ज्ञानीको जैसा दृष्टहै उसरूपसे सत्यताको नहीं प्राप्तहै ॥ १७ ॥ जल और पाषाणके संयोगमें उनके संबन्ध आभ्यन्तरके संगसे हीन होतेहैं ऐसेही मनकी वृत्तिके आसक्त न होनेसे अंतःकरणके अभिमानसे शून्य बाह्य मनसे ज्ञानीको विषयके सुख तथा दुःखका अनुभव होताहै ॥१८॥ जैसे जल और काष्ठका संबन्ध आभ्यन्तरके संगसे रहित है ऐसेही देह तथा आत्माका है॥१९॥ और जैसे जल तथा काष्ठका अभेद संबन्ध नहीं है ऐसेही आत्मा तथा देहकाभी नहीं है ॥ २० ॥

स्थितासर्वत्रसंवित्तिःशुद्धासंवेद्यवर्जिता ॥ द्वित्वोपलांछितात्वन्याद्वःसंवित्तिर्नविद्यते ॥ २१ ॥ अदुः खमेतिदुःखित्वमंतःसंवेदनास्फुटम् ॥ स्फारोभवतिवेतालोवेतालत्वेनभावितः ॥ २२ ॥ असंबंधोपि संबंधोभवत्यंतर्विनिश्चयात् ॥ स्वप्नांगनासुरतवत्स्थाणुवेतालसंगवत् ॥ २३ ॥ असत्प्रायोहिसंबंधोय थासलिलकाष्ठयोः ॥ तथैवमिथ्यासंबंधःशरीरपरमात्मनोः ॥ २४ ॥

अर्थ—विषयसे वर्जित शुद्ध संवित् सर्वत्र स्थितहै और द्वित्वसे कलंकित अन्य जो संवित्‌है वह यथार्थमें नहीं है ॥ २१ ॥ दुःखरहित आत्मा अन्तःकरणमें दुःखकी भावना करनेसे दुःखी ऐसे होताहै जैसे वेतालरूपसे भावना करनेसे विशाल वेताल होजाताहै ॥ २२ ॥ संबन्ध न रहतेभी अन्तःकरणके निश्चयसे संबन्ध ऐसे होताहै जैसे स्वप्नकी अंगनाका सुरत वा स्थाणु और वेतालका संग ॥ २३ ॥ जैसे मिथ्याके तुल्यभी जल और काष्ठका संबन्ध होताहै ऐसेही शरीर और आत्माका संबन्ध मिथ्या है ॥ २४ ॥

अंतःसंगविनानांबुकाष्ठपातैःप्रगृह्यते ॥ आत्मांगसंगरहितोदेहदुःखैर्नदह्यते ॥ २५ ॥ देहभावनयैवा त्मादेहदुःखवशेस्थितः ॥ तत्त्यागेनततोमुक्तोभवतीतिविदुर्बुधाः ॥ २६ ॥ अंतःसंगविहीनत्वाद्दुःखं त्यंगनोयथा ॥ पत्रांबुमलदारूणिश्लिष्टान्यपिपरस्परम् ॥ २७ ॥ अंतःसंगेनरहितायांतिनिर्दुःखतांप्र राम् ॥ श्लिष्टान्यपितथैवात्मदेहेंद्रियमनांस्यलम् ॥ २८ ॥

अर्थ—जैसे आभ्यंतरके संबंधके विना काष्ठके गिरनेसे जल नहीं पीडित होता ऐसेही शरीरके अध्यासशून्य आत्माभी दुःखोंसे पीडित नहीं होता ॥ २५ ॥ देहकी भावनासेही देहके दुःखके वशमें आत्मा स्थित है और उसके त्यागसे आत्मा मुक्त है यह विद्वानोंका निश्चय है ॥ २६ ॥ हे प्रिय रामजी! परस्पर मिलितभी तडागमें गिरेहुये पत्र, जल, मल और काष्ठ अंतःकरणके सम्बधसे रहित होनेसे जैसे दुःखी नहीं होते ॥ २७ ॥ इसीप्रकार अंतःकरणके संगसे रहित होनेसे मिलितभी आत्मा, देह, इन्द्रिय और मन दुःखके अभावको प्राप्त होते हैं ॥ २८ ॥

अंतःसंगोहिसंसारेसर्वेषांरामदेहिनाम् ॥ जरामरणमोहानांतरूणांबीजकारणम् ॥ २९ ॥ अंतःसंस गवाञ्जंतुर्मग्नःसंसारसागरे ॥ अंतःसंसक्तिमुक्तस्तुतीर्णःसंसारसागरात् ॥ ३० ॥ अंतःसंसंगवच्चित्तं शतशाखमिवोच्यते ॥ अंतःसंसंगरहितंविलीनंचित्तमुच्यते ॥ ३१ ॥ भग्नस्फटिकवद्विद्धिमनःसक्तम पावनम् ॥ अभग्नस्फटिकाभासमसक्तंविद्धिमेमनः ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे रामजी! अन्तःकरणका संगही सब प्राणीयोंके इस संसारमें जरामरण और मोहका कारण ऐसे है जैसे वृक्षोंका कारण बीज ॥ २९ ॥ आभ्यन्तरसे संगकरनेवालाही जीव इस संसाररूप सागरमें मग्न है और आभ्यंतरके संगसे शून्य तो संसारसागरसे उत्तीर्ण ही है ॥ ३० ॥ आभ्यन्तरके संगसहित चित्त अनन्तशाखायुक्त कहाजाताहै और आभ्यन्तरके संगसे हीन चित्त नष्ट कहागयाहै ॥ ३१ ॥ हे रामजी! जो चित्त विषयमें आसक्त है उसको तुम फूटे हुये स्फटिकमणिके लिंगके समान अपवित्र जानो और जो मन वा चित्त विषयोंमें आसक्त नहीं है उसको तुम स्फटिकमणिके लिंगके तुल्य पवित्र समझो ॥ ३२ ॥

असक्तंनिर्मलंचित्तंमुक्तंसंसार्यपिस्फुटम् ॥ सक्तंतुदीर्घतपसाधुक्तमप्यतिबंधवत् ॥ ३३ ॥ अंतःसक्तम नोबद्धंमुक्तंसक्तिविवर्जितम् ॥ अंतःसंसक्तिरेवैकंकारणंबंधमोक्षयोः ॥ ३४ ॥ अंतःसंसक्तिमुक्तस्यकुर्व

तोऽपिनकर्तृता ॥ गुणदोषवतीतोयेदारुवाहननौर्यथा ॥ ३५ ॥ अंतःसंसक्तितोजंतोरकर्तुरपिकर्तृता ॥ सुखदुःखवतिस्वप्नेसंभ्रमोन्मुखतायथा ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जो चित्त विषयमें आसक्त नहीं है वह संसारीभी हो परन्तु उसको तुम निर्मल और मुक्तही समझो, और जो चित्त विषयमें आसक्त है उसको दीर्घतपस्यासे युक्त होनेपरभी अतिबंधनसे युक्तही समझो ॥ ३३ ॥ आभ्यन्तरकी आसक्तिसे युक्त मन बद्ध है और आभ्यन्तरकी आसक्तिसे वर्जित मुक्त है इसलिये आभ्यन्तरकी आसक्तिही बन्धमोक्षका कारण है ॥ ३४ ॥ आभ्यन्तरकी आसक्तिसे मुक्तको करतेहुयेकोभी कर्तृता ऐसे नहीं है जैसे काष्ठको लेजानेवाली नौका स्वयं जलमें वर्तमानभी काष्ठोंके छेदन भेदनदाहादि गुणदोषोंसे तथा जलके चलन परिवर्तन निर्मलतादि गुणदोषोंसे युक्त नहीं होती ॥ ३५ ॥ आभ्यन्तरके संगसे न करतेहुये जीवकीभी कर्तृता ऐसे होती है जैसे सुखदुःखवाले स्वप्नमें व्याघ्र आदिके भयमें भागने आदि व्यापारमें तत्परता ॥ ३६ ॥

चित्तेकर्त्तरिकर्तृत्वंदेहस्यापिहिविद्यते ॥ स्वप्नादाविवविक्षुब्धसुखदुःखदृशोपमम् ॥ ३७ ॥ अकर्त्तरिमनस्यंतरकर्तृत्वंस्फुटंभवेत् ॥ शून्यचित्तोहिपुरुषःकुर्वन्नपिनचेतति ॥ ३८ ॥ चेतसाकृतमाप्नोषिचेतसानकृतंत्वन ॥ नकचित्कारणंदेहोनचचित्तेनकर्तृता ॥ ३९ ॥ असंसक्तमकर्तृत्वंकुर्वदेवमनोविदुः ॥ न कर्मफलभोक्तृत्वमसक्तंप्रतिपद्यते ॥ ४० ॥

अर्थ—चित्तके कर्ता होनेसे चेष्टाशून्यभी देहको कर्तृता ऐसे है जैसे स्वप्न आदिके तुल्य विक्षुब्ध पुरुष (पुत्र वा भृत्य आदिके युद्ध आदि कर्म देखनेवाले) को सुखदुःख आदिकी दृष्टि होती है ॥ ३७ ॥ मनके कर्ता न होनेसे अकर्तृता स्पष्टरीतिसे होती है; क्योंकि चित्तसे शून्य पुरुष करताहुआभी कार्यका अभिमान नहीं करता ॥ ३८ ॥ हे रामजी ! जो कुछ तुमने चित्तसे किया वही पाओगे, और जो चित्तसे नहीं किया वह नहीं पाओगे, क्योंकि कर्तृतामें देह कारण नहीं है और चित्तको कर्तृता नहीं है यहभी नहीं है ॥ ३९ ॥ जो आसक्त मन नहीं है वह करता हुआभी अकर्ता है और जो आसक्त नहीं है वह कर्मोंके फलका भोक्ताभी नहीं है ॥ ४० ॥

ब्रह्महत्याश्वमेधाभ्यामसंसक्तोनलिप्यते ॥ दूरस्थकांतासंलीनमनाःकार्यैरिवाग्रगैः ॥ ४१ ॥ अंतःसंसक्तिनिर्मुक्तोजीवोमधुरवृत्तिमान् ॥ बहिःकुर्वन्नकुर्वन्वाकर्त्ताभोक्तानहिक्वचित् ॥ ४२ ॥ अंतःसंसक्तिमुक्तंयन्मनःस्यात्तदकर्तृकम् ॥ तद्धिमुक्तंप्रशांतंतत्तद्युक्तंतदलेपकम् ॥ ४३ ॥ तस्मात्सर्वपदार्थानांश्लिष्टानांनिश्चितंबहिः ॥ सर्वदुःखकरींक्रूरामंतःसक्तिंविवर्जयेत् ॥ ४४ ॥ विरहितमलमंतःसंगदोषेणचेतः शममुपगतमाद्यंव्योमवन्निर्मलाभम् ॥ सकलमलविमुक्तेनात्मनैकत्वमेतिस्थिरमणिनिभमंभोवारिणीवारिनीले ॥ ४५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे अंतःसंसंगविचारोनामसप्तषष्ठितमःसर्गः ॥ ६७ ॥

अर्थ—जो आसक्त नहीं है वह ब्रह्महत्या तथा अश्वमेधके पापपुण्यसे ऐसे नहीं लिप्तहोता जैसे दूरकी स्त्रीमें लग्न चित्त पुरुष संमुख स्थित शीतउष्णके अनुभव आदि कार्योंसे ॥ ४१ ॥ अन्तःकरणकी आसक्तिसे निर्मुक्त जीव निर्विक्षेपके सुखसे युक्त होताहै और वह बाहरके मनसे कर्ता हो वा न कर्ता हो परन्तु उसमें कर्तृता भोक्तृता कहीं नहीं है ॥४२॥ जो मन आभ्यन्तरके संगसे विनिर्मुक्त है वही अकर्ता है और वही मुक्त, शान्त, युक्त तथा निर्लिप्त है ॥४३॥ इस कारण सब पदार्थोंके अंतर्गत आत्मासे बाह्य परस्पर मिलित पंचकोश वा भोग्यवर्ग तथा बंधनभूत सब पदार्थोंके निराश करनेमें यही एक उपाय है कि सर्वदुःखकारिणी आभ्यन्तरकी आसक्तिको वर्जित करना चाहिये ॥ ४४ ॥ आभ्यन्तरके संगके दोषसे सदा रहित, संसारकी दशासे पूर्व शांतरूपको प्राप्त और आकाशके समान निर्मल यह चित्त सदा मुक्तरूप आत्माके साथ एकताको ऐसे प्राप्त होताहै जैसे स्फटिकमणिके सदृश श्वेतजल तलधारके समान नील यमुनाजलमें मिलके एकताको प्राप्त होताहै ॥ ४५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे उपशमप्रकरणे अन्तःसंगविचारो नाम सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥

अष्टषष्ठितमः सर्गः ॥ ६८ ॥

संसक्ति और असंसक्तिके लक्षण और उनके प्रतीकारके उपाय तथा वंध्यासंसक्ति (पदार्थोंमें आसक्ति) और वंध्यासंसक्तिका विभाग इस ६८ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीरामउवाच ॥ ॥ कीदृशोभगवन्संगःकथंबंधायवानृणाम् ॥ कश्चमोक्षायकथितःकथंवैषश्चिकित्स्यते ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ देहदेहिविभागैकपरित्यागेनभावनात् ॥ देहमात्रेहुविश्वासःसंगोबंधाईउच्यते ॥ २ ॥ अनंतस्यात्मतत्त्वस्यसपर्यंतत्वनिश्चये ॥ यत्सुखार्थित्वमंतःससंगोबंधाईउच्यते ॥ ३ ॥ सर्वमात्मेदमखिलंकिंवांछामित्यजामिकिम् ॥ इत्यसंगस्थितिंविद्धिजीवन्मुक्ततनुस्थितिम् ॥४॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! कैसा संग मनुष्योंके बंधनकेलिये होताहै और कैसा मोक्षकेलिये होताहै और कैसे इसका प्रतीकार होताहै ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! देह और देही अर्थात् क्षेत्र क्षेत्रज्ञके विभागके सर्वथा विना विचारे परस्परके धर्मोंकी विपरीतभावनासे जो देहमात्रमें विश्वास है वह संग (सक्ति) बंधके योग्य कहागयाहै ॥ २ ॥ अनन्त आत्मतत्वका देश काल और वस्तुके परिच्छेदसे निश्चय होनेसे अपने अपरिच्छिन्न सुखस्वभाव आत्माका विस्मरण करके जो विषयसुखकेलिये आभ्यन्तरका संग है वही बंधके लिये कहा गयाहै ॥ ३ ॥ यह सब आत्माही है किसकी इच्छा करूं और किसको त्यागूं इसप्रकार जो असंग स्थिति है उसको तुम जीवन्मुक्तके शरीरकी स्थिति जानों ॥ ४ ॥

नाहमस्मिनचान्योस्तिमाभवंतुभवंतुवा ॥ सुखान्यसक्तइत्यंतःकथ्यतेमुक्तिभाङ्नरः ॥ ५ ॥ नाभिनंदतिनैष्कर्म्यंनकर्मस्वनुषज्जते ॥ सुसमोयःफलत्यागीसोऽसंसक्तइतिस्मृतः ॥६॥ आत्मतत्त्वैकनिष्ठस्यहर्षामर्षवशंमनः ॥ यस्यनायात्यसक्तोऽसौजीवन्मुक्तःसकथ्यते ॥ ७ ॥ सर्वकर्मफलादीनांमनसैवनकर्मणा ॥ निपुणंयःपरित्यागीसोऽसंसक्तइतिस्मृतः ॥ ८ ॥

अर्थ—मैं परिच्छिन्न अहंकारका विषय नहीं हुं और मेरेसे भिन्न कोई नहीं है इसलिये मिथ्या शरीर आदिमें विषयके सुख हों वा न हों मैंतो देहादिसे असंगस्वभाव हुं इसप्रकारका जिसके अन्तःकरणमें दृढ निश्चय है वह मनुष्य मुक्तिका भागी है ॥ ५ ॥ जिसको न तो कर्मके त्यागकी आकांक्षा है और न फलकी इच्छासे कर्मोंमें प्रवेश करताहै फलकी सिद्धि वा असिद्धिमें जो समान और फलका त्यागी है वह असंसक्त कहाताहै ॥ ६ ॥ जिस आत्मतत्वमात्रमें निष्ठ पुरुषका मन हर्ष और शोकके वशमें नहीं आता वह असक्त जीवन्मुक्त कहाताहै ॥ ७ ॥ सब कर्मोंके फलका जो मनसेही कुशलतासे त्याग करताहै न कि कर्मसे उसको असंसक्त कहतेहैं ॥ ८ ॥

असंसंगेनसकलाश्चेष्टानानाविजृंभिताः ॥ चिकित्सिताभवंतीहश्रेयःसंपादयंतिच ॥ ९ ॥ संसक्तिवशतःसर्वेविततादुःखराशयः ॥ प्रयांतिशतशाखत्वंश्वभ्रकंटकवृक्षवत् ॥ १० ॥ रज्जुकृष्टघनघ्राणोयद्गत्यापथिगर्दभः ॥ भारंवहतिभीतात्मातत्संसक्तिविजृंभितम् ॥ ११ ॥ शीतवातातपक्लेशमेकदेशनिषण्णया ॥ तरुर्वहतियत्तन्वातत्संसक्तिविजृंभितम् ॥ १२ ॥

अर्थ—असंगसेही सम्पूर्ण नानाप्रकारकी दुष्ट चेष्टा नष्ट होती है और श्रवण मनन आदि सब चेष्टा निर्विघ्नतासे कल्याण सिद्ध करती हैं ॥ ९ ॥ संगसेही विस्तृत सब दुःखकी राशि अनन्तशाखाको ऐसे प्राप्त होती है जैसे गढेमें कांटेका वृक्ष ॥ १० ॥ रज्जुसे (रस्सीसे) खींची गई है घनीभूत घ्राणइन्द्रिय जिसकी ऐसा गर्दभ जो अपनी गतिसे भारको वहन करता (ढोता) है वह संसक्तिहीके फलका विस्तार है ॥ ११ ॥ एकदेशमें स्थित स्थितशरीरसे जो वृक्ष शीत वात और आतपके क्लेशको सहन करताहै वह संसक्ति (संग) हीके फलका विस्तार है ॥ १२ ॥

धराविवरनिर्मग्नोयत्कीटःपीडितांगकः ॥ क्षिणोतिविकलःकालंतत्संसक्तिविजृंभितम् ॥ १३ ॥ क्षुत्क्षामकुक्षिःक्षपयत्यायुर्व्याघातभीरुधीः ॥ पक्षीवृक्षशिखाशायीतत्संसक्तिविजृंभितम् ॥ १४ ॥ दूर्वांकुरतृणाहारःकिरातशरपीडया ॥ जहातियन्मृगोदेहंतत्संसक्तिविजृंभितम् ॥ १५ ॥ कृमिकीटत्वमायांतिजायमानाःपुनःपुनः ॥ यदिमाजनताजीर्णास्तत्संसक्तिविजृंभितम् ॥ १६ ॥

जैसे वृक्ष...
भ्यंतरके स —पृथिवीके छिद्रमें निमग्न, पीडित शरीर और विकल कीट जो कालको काटताहै वह संसक्तिहीके फलका
कहाजाताहै ३ ३॥ क्षुधासे कृश है कोख जिसकी ऐसा तथा बाण, पाषाण और गोली आदिके प्रहारसे भयभीत तथा
उसको तुम फूटे शयन करनेवाला पक्षी जो अपनी आयुको विताताहै वह संसक्तिहीके फलका विस्तार है ॥ १४ ॥
उसको तुम स्फटिव ग आहार करनेवाला मृग जो किरातके बाणकी पीडासे अपने देहको त्यागताहै वह संसक्ति (संग)
हैं ॥ १५ ॥ जो पुण्य पापके अधिकारी जनसमूह जर्जर होकर उत्पन्न हो २ कर कृमि तथा
असक्तंनिर्मलं
नोबद्धंमुक्तंसर प्त होते हैं यह संसक्तिके फलका विस्तार है ॥ १६ ॥

उत्पत्योत्पत्यलीयंतेतरंगिणितरंगवत् ॥ भूतानियदनंतानितत्संसक्तिविजृंभितम् ॥ १७ ॥ वीरुत्तृणदशांयातांम्रियंतेयत्पुनःपुनः ॥ नराविगतसंचारास्तत्संसक्तिविजृंभितम् ॥ १८ ॥ रसातलरसायोगात्तृणगुल्मलतादयः ॥ जनयंतियदाकारंतत्संसक्तिविजृंभितम् ॥ १९ ॥ स्वानर्थांतरसंकाशपदार्थशतसंकुला ॥ यत्संसारनदीमत्तातत्संसक्तिविजृंभितम् ॥ २० ॥

अर्थ—जलाशयमें तरंगके तुल्य उत्पन्न हो २ कर प्राणी जो लीन होजाते हैं यह संसक्तिहीके फलका विस्तार है ॥ १७ ॥ पृथिवीके तलके रसके उपयोगसे तृण गुल्म लता आदि जो अपने अद्भुत आकारको उत्पन्न करते हैं वह संसक्तिहीके फलका विस्तार है ॥ १८ ॥ अपनी अनंत परंपराओंके सदृश विच्छेद, भ्रांति, पतन और विक्षेपादि सहस्रों अनर्थके हेतुओंसे व्याप्त यह संसाररूप नदी बढी हुई है यह संसक्ति (अभ्यन्तर) केही संगका विलास है॥२०॥

संसक्तिर्द्विविधाप्रोक्तावंद्यावंध्याचराघव ॥ वंध्यासर्वत्रमूढानांवंद्यातत्त्वविदांनिजा ॥ २१ ॥ आत्मतत्त्वावबोधेनहीनादेहादिवस्तुजा ॥ भूयःसंसारसक्तिर्याद्दृढावंध्येतिकथ्यते ॥ २२ ॥ आत्मतत्त्वावबोधेनसत्यभूतविवेकजा ॥ वंद्याहिकथ्यतेसाक्तिर्भूयःसंसारवर्जिता ॥ २३ ॥ शंखचक्रगदाहस्तोदेवोविविधयेहया ॥ वंद्यसंसक्तिवशतःपरिपातिजगत्त्रयम् ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! यह संसक्ति (संग) दो प्रकारकी है एक वन्द्या (प्रशंसनीय) और दूसरी वंध्या (परमपुरुषार्थ फलसे रहित) इनमें वन्ध्या तो मूढोंकी सर्वत्र है और वंद्या आत्मज्ञानीयोंकी होती है ॥ २१ ॥ आत्मतत्वज्ञानसे शून्य देहादिसे उत्पन्न संसारमें जो दृढ आसक्ति है उसको वन्ध्या कहते हैं ॥ २२ ॥ और आत्मतत्वके बोधसे विवेकसे उत्पन्न जो सर्वथा संसारसे रहित होती है वह वंद्या कही जाती है ॥ २३ ॥ वन्द्या (प्रशंसनीया) संसक्तिहीके प्रतापसे शंख चक्र गदाधारी देव विविधप्रकारकी चेष्टासे तीनों लोकका पालन करतेहैं ॥ २४ ॥

अनारतनिरालंबंव्योमवर्त्मनिपांथताम् ॥ वंद्यसंसक्तिवशतःकरोतिरविरन्वहम् ॥ २५ ॥ महाकल्पसमाधानचिरकल्पितकल्पनम् ॥ वंद्यसंसक्तिवशतोब्राह्मंस्फुरतिवैवपुः ॥ २६ ॥ लीलयाललनालानलीनंभूतिविभूषितम् ॥ वंद्यसंसक्तिवशतःशरीरंशांकरंस्थितम् ॥ २७ ॥ विज्ञानगतयःसिद्धालोकपालास्तथेतरे ॥ वंद्यसंसक्तिवशतस्तिष्ठंतिजगतोंगणे ॥ २८ ॥

अर्थ—इसी वंद्या संसक्तिके प्रभावसे निरंतर निरालंब सूर्यभगवान् प्रतिदिन आकाशमार्गमें यात्रा करते हैं ॥ २५ ॥ वन्द्या संसक्तिहीके कारणसे महाकल्प (प्रकृतिके प्रलयके अन्त) में विदेहकैवल्यमें विश्रान्तिके हेतु चिरकाल द्विपरार्द्धके अन्ततक सृष्टिकी कल्पना करनेवाला यह ब्रह्माका शरीर स्फुरित होरहाहै ॥ २६ ॥ लीलासे गौरीरूप बन्धनमें आसक्त, विभूतिसे शोभित यह महादेवजीका शरीर वंद्या संसक्तिहीके प्रतापसे स्थितहै ॥२७॥ वंद्या संसक्तिकेही प्रतापसे ब्रह्ममें दृढ प्रतिष्ठावाले सिद्धलोक तथा अन्यलोक पातालादि ब्रह्माण्डके आंगनमें स्थितहैं ॥२८॥

धत्तेशारीरयंत्रौघमन्याभुवनसंततिः ॥ वंद्यसंसक्तिवशतोजरामृतिविवर्जितम् ॥ २९ ॥ मनःपततिभोगेषुगृध्रोमांसलवेष्विव ॥ वंध्यसंसक्तिवशतोव्यर्थयारम्यशंकया ॥ ३० ॥ संसक्तिवशतोवातिवायुर्भुवनकोटरे ॥ पंचभूतानितिष्ठंतिवहतीयंजगत्स्थितिः ॥३१॥ दिविदेवाभुविनराःपातालेभोगिनोऽसुराः ॥ ब्रह्मांडोडुंबरफलेस्फुरन्मशकवत्स्थिताः ॥ ३२ ॥

अर्थ—इसी वंद्या संसक्तिके प्रतापसे इस त्रिलोकसे भिन्न अन्यमहर्जन तपलोकादिकी श्रेणी वृद्धावस्था तथा मरणसे वर्जित शरीरोंके यन्त्रसमूहको धारण करती है ॥ २९ ॥ और वंध्यासंसक्तिके प्रभावसे व्यर्थ सुन्दरताकी आशंकासे मन भोगोंमें ऐसे गिरताहै जैसे गीध मांसके कणपर ॥ ३० ॥ हे रामजी ! इसी संसक्तिकेही प्रभावसे भुवनके कोटरमें वायु बहताहै, पांचोभूत स्थितहैं, और यह जगत्की स्थिति चलीजाती है ॥ ३१ ॥ स्वर्गमें देवता, पृथिवीपर मनुष्य, पातालमें सर्प तथा असुर ये सब इस ब्रह्मांडरूप गूलरके फलमें मशकके समान स्फुरित होते हुये जो स्थितहैं यह इसी संसक्तिहीका प्रताप है ॥ ३२ ॥

जायंतेचम्रियंतेचनिपतंत्युत्पतंतिच ॥ भूतानियदनंतानितरंगिणितरंगवत् ॥ ३३ ॥ उत्पत्योत्पत्यलीयंतेतत्संसक्तिविजृंभितम् ॥ भूतानिविरसंभूयोनिर्झरांबुकणाइव ॥ ३४ ॥ परस्परनिगीर्णांगाजनताजाड्यजर्जरा ॥ संभ्रांताभ्रमत्यंगशीर्णपर्णमिवांबरे ॥ ३५ ॥ नक्षत्रचक्रंगगनेद्रुमेमशकसंततिः ॥ स्फुरत्यावर्तवृत्त्यैवपातालेगजलौघवत् ॥ ३६ ॥

अर्थ—जलाशयमें तरंगके तुल्य अनंत प्राणी उत्पन्न होतेहैं और मरतेहैं, गिरतेहैं और ऊपर चढतेहैं यहभी इसीका विलास है ॥ ३३ ॥ झरनेके कणके तुल्य विरसतापूर्वक सब प्राणी उछल २ कर जो नष्ट होतेहैं यह इसी

संसक्तिका विलास है ॥ ३४ ॥ मात्स्यन्याय (मछलीके तुल्य) एक दूसरेके अंगको निगलनेवाली और जडतासे जर्जर यह जनता (जनसमूह) आकाशमें सूखे पत्तेकेसमान जो भ्रमण करती है यह इसी संसक्तिका प्रभाव है ॥३५॥ हे प्रिय रामजी ! वृक्षमें मच्छरोंकी पंक्तिके तुल्य तथा पातालमें जलके प्रवाहके समान आवर्त (भंवरेह) की वृत्तिसे जो आकाशमें नक्षत्रोंका चक्र भ्रमण करताहै यह इसीका विलासहै ॥ ३६ ॥

पातोत्पातदशाजीर्णकालबालककंदुकम् ॥ अद्यापिनजहातींदुर्जलमामलिनंवपुः ॥ ३७ ॥ नानापारयुगावर्त्तदुःखालोकनकर्कशम् ॥ नलुनातिमनःखंडंदुःखिगीर्वाणमंडलम् ॥ ३८ ॥ वासनामात्रवशतःपरेव्योमनिकेनचित् ॥ इदमारचितंचित्रंविचित्रंपश्यराघव ॥ ३९ ॥ मनःसंगैकरंगेणशून्येव्योम्निजगन्मयम् ॥ यदिदंरचितंचित्रंतत्सत्यंनकदाचन ॥ ४० ॥

अर्थ—उदय अस्त वा वृद्धि और क्षय आदि मयदशासे जीर्ण इसीसे कालरूप बालकके कंदुक (गेंद) रूप जडरूप कलंकसे दूषित अपने शरीरको अबभी नहीं त्यागता ॥ ३७ ॥ नानाप्रकारके युगोंके परिवर्तनके दुःखोंके दर्शनसे कठिन अपने मनरूप छेदनयोग्य व्रणको उस व्रणके दुःखसे दुःखी इन्द्र आदि देवमण्डल संसक्तिके वशसे छेदन नहीं करता ॥३८॥ हे रामजी ! वासनाहीसे चिदाकाशमें इस विचित्र चित्ररूप जगत्को किसीने रचाहै ॥३९॥ हे रामजी ! मनके संसर्ग (संसक्ति) मात्र रंगनेके द्रव्यसे किसीने शून्य आकाशमें जो जगत्मय चित्र खींचाहै यह सत्य कदापि नहीं है ॥ ४० ॥

संसक्तमनसामस्मिन्संसारेव्यवहारिणाम् ॥ अत्तितृष्णाशरीराणितृणान्यग्निशिखायथा ॥ ४१ ॥ परिसक्तमतेर्देहान्सिकताःपत्युरंभसाम् ॥ कःशक्तःपरिसंख्यातुंत्रसरेणुगणंयथा ॥ ४२ ॥ मुक्तालतायागंगायामेरोरापादमस्तकम् ॥ तरंगमुक्तागण्यंतेनदेहाःसक्तचेतसाम् ॥ ४३ ॥ संसक्तमनसामेतारम्यांतःपुरपंक्तयः ॥ रचितारौरवावीचिकालसूत्रादिनामिकाः ॥ ४४ ॥

अर्थ—जो जीव इस संसारमें आसक्तचित्तसे व्यवहार करतेहैं उनके शरीरोंको तृष्णा ऐसे भक्षण करती है जैसे तृणोंको अग्निकी शिखा ॥ ४१ ॥ जिस जीवकी बुद्धि विषयोंमें चारोओरसे आसक्तहै उसके अनन्तदेहोंकी गणना करनेमें ऐसे कोई समर्थ नहीं है जैसे समुद्रके जलके कणको वा त्रसरेणुके समूहको ॥ ४२ ॥ मेरुके मस्तकसे लेके पादपर्यंत लंबायमान गंगारूप लताकी तरंगरूप मोतियोंकी गणना कदाचित होसकती है परन्तु आसक्तचित्तवालोंके शरीरोंकी गणना नहीं होसकती ॥ ४३ ॥ जिनका मन संसारमें आसक्तहै उन्हींकेलिये अग्नि शस्त्रादि प्रदीप्त होनेसे रमणीय रौरव आवीची तथा कालसूत्रादि नामक यातना नाम अन्तःपुरकी पंक्तियां रचीगई हैं ॥ ४४ ॥

सक्तचित्तंजनंदुःखशुष्कमिंधनसंचयम् ॥ ज्वलतांनरकाग्नीनांविद्धितेनज्वलंतिते ॥ ४५ ॥ दुःखजालमिदंनामयत्किंचिज्जगतीगतम् ॥ संसक्तमनसामर्थेतत्सर्वंपरिकल्पितम् ॥ ४६ ॥ संसक्तचित्तमायांतिसर्वादुःखपरंपराः ॥ जलकल्लोलवलितामहानद्यइवांबुधिम् ॥ ४७ ॥ मनःसंसर्गरूपिण्याभारभूतशरीरया ॥ क्षयोदयदशार्थिन्यासर्वंततमविद्यया ॥ ४८ ॥

अर्थ—जलती हुई नरककी अग्नियोंका, आसक्तचित्तवाला और दुःखोंसे शुष्क इन्धनका समूह है, जिससे कि नरककी अग्नि जलती हैं ॥ ४५ ॥ इस जगत्में जो दुःखोंका जाल है वह सब आसक्तचित्तवालोंहीकेलिये कल्पित है ॥ ४६ ॥ आसक्तचित्तवाले जीवके निकट सब दुःखोंकी परम्परा ऐसे आती हैं जैसे जलके तरंगोंसे वेष्टित नदियां समुद्रके निकट ॥ ४७ ॥ मनके संगरूप, भारभूत शरीरको धारण किये हुई तथा जीवके अर्थ जन्ममरणकी प्रार्थना करनेवाली इस अविद्याने यह सब दुःखजाल फैलाया है ॥ ४८ ॥

असंसंगेनभोगानांसर्वारामविभूतयः ॥ परंविस्तारमायांतिप्रावृषीवमहापगाः ॥ ४९ ॥ अंतःसंसंगमंगानामंगारंविद्धिराघव ॥ अनंतःसंगमंगानांविद्धिरामरसायनम् ॥ ५० ॥ संसंगेनांतरस्थेनदह्यतेप्रकृतिःस्वयम् ॥ स्वकलोत्थेनैरकांक्षीपावकेनयथौषधिः ॥ ५१ ॥ सर्वत्रासक्तमाशांतमनंतमिवसंस्थितम् ॥ असत्कल्पंसदाभासंसुखायैवमनोभवेत् ॥ ५२ ॥ विद्याहशिप्रोदयमागतेनक्षयंत्वविद्याविषयेगतेन ॥ सर्वत्रसंसक्तिविवर्जितेनस्वचेतसातिष्ठतियःसमुक्तः ॥ ५३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे संविचारयोगोपदेशोनामाष्टषष्टितमःसर्गः ॥ ६८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! संगके अभावसे सब विभूति परमविस्तारको ऐसे प्राप्त होती हैं जैसे वर्षाकालसे महा नदियां ॥ ४९ ॥ हे राघव ! अंगोंके साथ आभ्यन्तरके संगको तुम अंगारही जानो और उनके संगके परित्यागको

अमृत जानो ॥ ५० ॥ आभ्यन्तरमें स्थित संगसे देहादि कार्य्योंकी प्रकृतिभूत जीव स्वयं ऐसे दग्ध होताहै जैसे अपने मिलानेवाले तृणोंसे आविर्भूत अग्निसे आलंबनार्थ एर (तृण विशेष) वृक्षको चाहनेवाली औषधि ॥ ५१ ॥ आसक्तिसे रहित मन सब ओरसे शांत अनन्तआकाशके समान स्थित है वह मन असत्के तुल्य सत्के समान आभासमान सदा सर्वत्र सुखके ही अर्थ है ॥ ५२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे उपशमप्रकरणे संगविचारयोगोपदेशो नामाष्टषष्ठितमः सर्गः ॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥

सब पदार्थोंकी आसक्तिके परित्यागसे मन चिन्मात्र स्थिर रहताहै और जिस क्रमसे चिन्मात्र शेष रहताहै यह क्रम इस ६९ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ सर्वदासर्वसंस्थेनसर्वेणसहतिष्ठता ॥ सर्वकर्मरतेनापिमनःकार्यंविजानता ॥१॥ नसक्तमिहचेष्टासुनचिंतासुनवस्तुषु ॥ नाकाशेनाप्यधोनाग्रेनदिक्षुनलतासुच ॥ २ ॥ नबहिर्विपुलाभोगेनचैवेंद्रियवृत्तिषु ॥ नाभ्यंतरेनचप्राणेनमूर्द्धनिनतालुनि ॥ ३ ॥ नभ्रूमध्येननासांतेनमुखेनचतारके ॥ नांधकारेनचाभासेनचास्मिन्हृदयांबरे ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी! सर्वदा सब व्यवहारोंमें स्थित और सब भृत्य आदिके साथ स्थित, तथा अनिषिद्ध लौकिक और शास्त्रीय कर्मोंमें तत्पर विवेकीपुरुषको अपना मन आगे कहेहुयेके अनुसार करना चाहिये ॥ १ ॥ साध्यविषयोंकी चेष्टाओंमें, अतीतकी चिंताओंमें, वर्तमान वस्तुओंमें, आकाशमें, अधोभागमें, मध्यमें, दिशाओंमें और लताओंमें मनको आसक्त न करना चाहिये ॥ २ ॥ बाह्य आधिभौतिक पदार्थोंमें, स्त्रीपुत्रादिमें इन्द्रियोंकी वृत्तिमें, आध्यात्मिक पदार्थोंमें, प्राणमें, मूर्द्धास्थानमें और तालुमें मनको आसक्त न करना चाहिये ॥ ३ ॥ भ्रूके मध्यमें, नासिकाके अग्रमें, मुखमें, नेत्रोंकी पुतलीमें, अन्धकारमें, प्रकाशमें और हृदयाकाशमें मनको आसक्त न करना चाहिये ॥ ४ ॥

नजाग्रतिनचस्वप्नेनसुषुप्तेननिर्मले ॥ नासितेनचवापीतरक्तादौशबलेनच ॥ ५ ॥ नचलेनस्थिरेनादौन मध्येनेतरत्रच ॥ नदूरेनांतिकेनाग्रेनपदार्थेनचात्मनि ॥ ६ ॥ नशब्दस्पर्शरूपेषुनमोहानंदवृत्तिषु ॥ नगमागमचेष्टासुनकालकलनासुच ॥ ७ ॥ केवलंचितिविश्रम्यकिंचिच्चेत्यावलंबिनि ॥ सर्वत्रनीरसमिव तिष्ठत्वात्मरसंमनः ॥ ८ ॥

अर्थ—जाग्रत्में, शयनमें, स्वप्नमें, सुषुप्तिमें, शुद्ध सत्वगुणमें, रजोगुणमें, तमोगुणमें और गुणोंके मेलमें, चित्तको आसक्त न करना चाहिये ॥ ५ ॥ चल (कार्यवर्ग) स्थिर (कारण अव्यक्त) सृष्टिके आदि मध्य और अन्तमें, दूर, समीप तथा अग्रभागमें नामरूप पदार्थोंके समूहमें और जीवमें मनको आसक्त न करना चाहिये ॥ ६ ॥ शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंधमें, मोह तथा आनंदकी वृत्तियोंमें, आकाशादिमें, गमन आगमनकी सिद्धियोंमें, तथा भूतभविष्यत् आदिके कालज्ञान और चिरजीवन आदि सिद्धिमें, मनको आसक्त न करना चाहिये ॥ ७ ॥ किन्तु बुद्धिके साक्षी चिन्मात्रमें विश्राम करके सब विषयोंके आनन्दसे निवृत्त केवल सच्चित् ब्रह्मानन्दमें तत्पर होके मनको स्थित रहना चाहिये ॥ ८ ॥

तत्रस्थोविगतासंगोजीवोऽजीवत्वमागतः ॥ व्यवहारमिमंसर्वमाकरोतुकरोतुवा ॥ ९ ॥ अकुर्वन्नपिकुर्वाणोजीवःस्वात्मरतिःक्रियाः ॥ क्रियाफलैर्नसंबंधमायातिखमिवांबुदैः ॥१०॥ अथवातमपित्यक्त्वाचेत्यांशंशांतचिद्घनः॥ जीवस्तिष्ठतुसंशांतोज्वलन्मणिरिवात्मनि॥११॥निर्वाणमात्मनिगतःसततोदितात्मा जीवोऽरुचिर्व्यवहरन्नपिरामभद्र ॥ नोसंगमेतिगतसंगतयाफलेनकर्मोद्भवेनसहतीवचदेहभारम् ॥१२॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे शांतिसमायातयोगोपदेशो नामैकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥

अर्थ—ब्रह्ममें स्थित, संगरहित ब्रह्मभावको प्राप्त जीव संसारी व्यवहारोंको करे या न करे ॥ ९ ॥ आत्मामें प्रेम करनेवाला यह जीव क्रियाओंको करताहुआ वा न करताहुआ क्रियाओंके फलसे ऐसे सम्बन्ध नहीं रखता

जैसे जलके बिन्दुओंसे आकाश ॥ १० ॥ अथवा बुद्धिकी साक्षिताकोभी त्यागके शांत चिद्घनमणिके समान दीप्यमान यह जीव अपने आत्मामें स्थित रहै ॥ ११ ॥ हे प्रिय रामजी ! व्यवहारके फलकी इच्छासे रहित, आत्मामें शांतिको प्राप्त और निरन्तर उदयको प्राप्त यह जीव संगके हेतुरूप अविद्याकर्मादिसे शून्य होनेसे कर्मसे उत्पन्न फलको नहीं प्राप्त होता किंतु प्रारब्धके क्षयपर्य्यन्त देहरूप भारको सहताहै ॥ १२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे उपशमप्रकरणे शांतिसमायातयोगोपदेशो नामैकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥

सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥

असंगके सुखमें विश्रान्त जीव व्यवहारसे उत्पन्न दोषोंसे जैसे नहीं पीडित होता वह बात युक्तिसे इस ७० के सर्गमें वर्णन की गई है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ असंसंगसुखाभ्याससंस्थितैर्विततात्मभिः ॥ व्यवहारिभिरप्यंतर्वीतशोकभयैःस्थितम् ॥ १ ॥ प्रक्षुब्धाक्षुब्धदेहस्याविसंवादेनसंविदः ॥ अंतःपूर्णस्यवदनेश्रीरिंदोरिवलक्ष्यते ॥ २ ॥ चेत्यहीनंचिदालंबंमनोयस्यगतज्वरम् ॥ तेनांबुकतकेनेवजनतासंप्रसीदति ॥ ३ ॥ नित्यमात्मदृशालीनोज्ञःस्वस्थश्चंचलोऽपिसन् ॥ क्षुब्धोदृश्यतएवासौप्रतिबिंबार्कवन्मुधा ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-निरंतर असंगके आस्वादके अभ्यासमें स्थित और विशालअंतःकरणवाले जीव व्यवहार करतेहुयेभी शोक और भयसे रहित स्थित रहतेहैं ॥ १ ॥ धन पुत्रादिके नाश तथा बन्धन अपमानादिसे क्षोभित देहसहित दृश्यमानभी पदार्थमें क्षोभरहित चित्तवृत्तिसंयुक्त, और परमार्थ सुखमें निर्विषादके कारण अन्तःकरणमें पूर्णपुरुषके मुखमें पूर्णचन्द्रमाकी शोभा लक्षित होती है ॥ २ ॥ जिस पुरुषका मन विषयकी आसक्तिसे रहित संतापशून्य है उससे सम्पूर्ण जनसमूह ऐसे प्रसन्न रहतेहैं जैसे कतक औषधिसे जल ॥३॥ ज्ञानीपुरुष नित्य आत्मदृष्टिमें लीन होनेसे चपल होनेपरभी वह स्वस्थही है. यह प्रतिबिंबके सूर्यके समान मिथ्याही क्षुब्धके तुल्य देख पडताहै ॥४॥

आत्मारामामहात्मानःप्रबुद्धाःपरमोदयाः ॥ बहिःपिच्छाग्रतरलाअंतर्मेरुरिवाचलाः ॥ ५ ॥ चित्तमात्मत्वमायातंसुखदुःखानुरंजनम् ॥ नोपैतिरंगसंयुक्तोमसृणःस्फटिकोयथा ॥ ६ ॥ संसारदृष्टिरुदितंज्ञातलोकपरावरम् ॥ नरंजयतिसच्चितंजललेखायथांबुजम् ॥ ७ ॥ आत्मध्यानमयोऽध्यानेप्रबोधंपरमात्मनः ॥ कलनामलनिर्मुक्तःस्वसक्तइतिकथ्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—आत्मामें रमणकरनेवाले ज्ञानी महात्मालोग बाहरसे तो मोरके पंखके समान चंचल प्रतीत होतेहैं, और आभ्यन्तरसे मेरुके सदृश अचल होतेहैं ॥ ५ ॥ आत्मदशाको प्राप्त चित्त सुखदुःखके रंगको ऐसे नहीं प्राप्त होता जैसे जपापुष्पके रंगसे युक्त चिक्कण स्फटिकमणि ॥ ६ ॥ निरतिशय आन्दके अभ्युदयको प्राप्त, लोकोंसे परे ईश्वर तथा जीवतत्वको जाननेवाले तथा सच्चिदानन्दपरमात्मामें चित्त लगाये जीवको संसारकी दृष्टि ऐसे नहीं रंजित करती जैसे जलकी लेखा कमलको ॥ ७ ॥ जब यह जीव परमात्माके ज्ञानको प्राप्त होकर सब कल्पनासे निर्मुक्त होताहै और ध्यानके अभावमेंभी आत्मध्यानमग्न (आत्माके सुखमें मग्न) होताहै उस समय यह जीव स्वसक्त कहाजाताहै ॥ ८ ॥

आत्मारामतयाजीवोयात्यसंसंगतामिह ॥ आत्मज्ञानेनसंसंगस्तनुतामेतिनान्यथा ॥ ९ ॥ जाग्रत्येवसुषुप्तस्थोजीवोभवतिराघव ॥ अस्यांदृशिगतोऽद्वंद्वोनित्यानस्तमयोदयः ॥ १० ॥ अत्रप्रौढिमुपायातःसूर्यतामेतिपावनीम् ॥ परिणामवशादिंदुरमावास्यार्कतामिव ॥ ११ ॥ चित्तेचित्तदशाहीनेयास्थितिःक्षीणचेतसाम् ॥ सोच्यतेशांतकलनाजाग्रत्येवसुषुप्तता ॥ १२ ॥

अर्थ—इस संसारमें यह जीव आत्माराम होनेसेही असंगताको प्राप्त होताहै आत्मज्ञानके उत्कर्षसे संग क्षीण होताहै न कि अन्यथा ॥ ९ ॥ हे रामजी ! जाग्रत्‌मेंही जब सुषुप्तमें वह जीव स्थित होजाताहै तब इस अवस्थामें प्राप्त नित्य निर्द्वन्द्व और उदयमय होताहै ॥ १० ॥ इस अवस्थामें दृढताको प्राप्त होकर परमपवित्र सूर्य्य (प्रकाश) रूपताको ऐसे प्राप्त होताहै जैसे क्रमसे कलाके क्षयके कारणसे जलमयमंडलमें सूर्यके प्रतिबिंबरूप चंद्रमा अमावस्याको अपने बिम्बभूत सूर्य्यरूपताको ॥ ११ ॥ चित्तकी दशासे हीन चित्तके होनेपर क्षीणचित्तवालोंकी शान्त कल्पनामय जो स्थिति होतीहै उसीको जाग्रत्‌मेंही सुषुप्तता कहतेहैं ॥ १२ ॥

तांस्तुषुप्तदशामेत्यजीवन्व्यवहरन्नरः ॥ सुखदुःखवरत्राभिर्नकदाचनकृष्यते ॥ १३ ॥ जाग्रत्येवसुषुप्त स्थोयःकरोतिजगत्क्रियाम् ॥ तंयंत्रपुत्रकमिवनायातिसुखदुःखदृक् ॥ १४ ॥ चित्तस्यबाधिकाशक्तिर्भावाभावोपतापदा ॥ आत्मतामागतेचित्तेतस्यकिंबाधतेकथम् ॥ १५ ॥ सुषुप्तबुद्धिःकर्माणिपूर्वमेवावहेलया ॥ कुर्वन्नबद्ध्यतेजीवोजीवन्मुक्ततयास्थितः ॥ १६ ॥

अर्थ—उस सुषुप्तदशाको प्राप्त जीवनका व्यवहार करताहुवा यह मनुष्य सुखदुःखरूप रज्जु (रस्सी) से कदापि नहीं आकृष्ट होता ॥ १३ ॥ जाग्रत्‌मेंही सुषुप्तदशाको प्राप्त जो जीव जगत्‌की क्रियाको करताहै उस नर्तक (नाचनेवाले) की प्रतिमाके तुल्य जीवको सुखदुःखकी दृष्टि नहीं प्राप्त होती ॥१४॥ चित्तको पीडा करनेवाली अहंकाररूप शक्ति इष्ट अनिष्ट विषयोंके आगम तथा नाशसे संताप देती है और जब चित्तही आत्मदशाको प्राप्त होगया तब उसका क्या और कैसे बाधित होसकताहै ॥१५॥ सुषुप्तिकी बुद्धियुक्त प्राणी पूर्व साधनदशासेही लेके कर्मोंको अभिनिवेश (अहंकार) के त्यागसे करताहुआभी बंधनमें नहीं आता और जीवन्मुक्तकी रीतिसे स्थित रहताहै ॥१६॥

सौषुप्तींवृत्तिमाश्रित्यकुरुमाकुरुवानघ ॥ कर्मप्रकृतिजंपाकवशादुपगतंस्थितम् ॥ १७ ॥ नादानंनपरित्यागःकर्मणोज्ञायरोचते ॥ तिष्ठंत्यवगतात्मानोयथाप्राप्तानुवर्त्तिनः ॥ १८ ॥ कुर्वन्नपिनकर्त्तासिसुषुप्तस्थैकरस्थयाधिया ॥ अकर्त्तापिचकर्त्तासियथेच्छसितथाकरु ॥ १९ ॥ यथानकिंचित्कलयन्मंचकेस्पंदते शिशुः ॥ तथाफलान्यकलयन्कुरुकर्माणिराघव ॥ २० ॥

अर्थ—हे रामजी ! सुषुप्तिवृत्तिका अवलंबन करके प्रारब्धके परिपाकसे वर्णाश्रमके उचित कर्मोंको करो वा न करो ॥ १७ ॥ ज्ञानीको न कर्मोंका ग्रहण न त्याग रूचताहै किन्तु आत्माको जानकर वे ज्ञानी प्रारब्धके अनुसार वर्तनेवाले स्थित रहतेहैं ॥ १८ ॥ हे रामजी ! केवल सुषुप्तिमें स्थितबुद्धिसे तुम करतेहुयेभी कर्ता नहीं हो. आसक्तचित्त होनेसे न करतेहुयेभी कर्ताहो. इसमें जैसी तुमारी इच्छा हो वैसा करो ॥ १९ ॥ हे रामजी ! जैसे कुछभी संकल्प न करतेहुये बालक मंचपर चेष्टा करताहै ऐसेही फलोंका संकल्प न करतेहुये तुमभी कर्मोंको करो ॥ २० ॥

अचेत्यचित्पदस्वस्थोजाग्रत्यपिसुषुप्तधीः ॥ यद्यत्करोतिलब्धात्मातस्मिंस्तस्यनकर्तृता ॥ २१ ॥ दशामासाद्यसौषुप्तींस्वचित्तेचविवासनः ॥ अंतःशीतलतामेतिज्ञोरसेनयथाशशी ॥ २२ ॥ सुषुप्तस्थोमहातेजाःपूर्णःपूर्णइवविंबवत् ॥ समःसर्वास्ववस्थासुभवत्यद्रिर्यथर्तुषु ॥ २३ ॥ सुषुप्तसंस्थोधीरात्माबहिरायातिलोलताम् ॥ क्रियासुनोभवत्कंपःप्रस्पंदितइवाचलः ॥ २४ ॥

अर्थ—विषयोंसे वर्जित चित् (ब्रह्म) पदमें स्थित इसीसे जाग्रत्‌मेंभी सुषुप्तकी बुद्धियुक्त आत्मज्ञानके प्राप्त जीव जो २ कर्म करताहै उन २ में उसकी कर्तृता नहीं है ॥ २१ ॥ इस सुषुप्तिकी दशाको पाकर और अपने चित्तमें वासनासे रहित होकर ज्ञानीपुरुष अन्तःकरणमें ऐसी शीतलताको प्राप्त होताहै जैसे अमृतसे चन्द्रमा ॥ २२ ॥ इस सुषुप्तिदशामें स्थित जीव महातेजस्वी पूर्णचन्द्रबिंबके समान पूर्ण अपनी संपत्ति विपत्तिकी अवस्थाओंमें ऐसे समान होताहै जैसे छः ऋतुओंमें विकाररहित पर्वत ॥ २३ ॥ सुषुप्तिमें स्थित धीरात्मा पुरुष लौकिक वैदिक क्रियाओंमें बाहरसे चंचलताको प्राप्त होताहै परन्तु आभ्यन्तरमें कंपरहित वह ऐसे रहताहै जैसे वायुसे बाह्यदेशमें कंपित वृक्षतृणादि सहित पर्वत ॥ २४ ॥

सुषुप्तावस्थितोभूत्वादेहंविगतकल्मषः ॥ पातयाश्वथवादीर्घकालंधारयशैलवत् ॥ २५ ॥ एषैवरामसौषुप्तीस्थितिरभ्यासयोगतः ॥ प्रौढासतीतुर्यमितिकथितातत्त्वकोविदैः ॥ २६ ॥ आनंदमयएवांतःप्रक्षीणसकलामयः ॥ अत्यंतास्तंगतमनाभवतिज्ञोमहोदयः ॥ २७ ॥ तत्रस्थोज्ञःप्रमुदितःपरमानंदघूर्णितः ॥ लीलामिवेमांरचनांसदासमनुपश्यति ॥ २८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! सुषुप्तअवस्थामें स्थित होनेसे पापरहित होकर अपने देहको चाहो तुम शीघ्र गिराओ वा पर्वतकेसमान दीर्घकालतक धारणकरो ॥२५॥ हे रामजी ! यह सुषुप्तकी दशा जब अभ्याससे दृढताको प्राप्त होती है तब इसीको तत्वज्ञानी महात्मा तुरीयावस्था कहते हैं ॥ २६ ॥ इस दशामें ज्ञानी आनन्दमय सब विघ्नोंसे वर्जित सर्वथा मनसे शून्य और महान् अभ्युदययुक्त होताहै ॥ २७ ॥ इस दशामें स्थित ज्ञानी अतिप्रसन्न, परमानन्दसे मदोन्मत्त इस जगत्‌की रचनाको सदा लीलाके समान देखताहै ॥ २८ ॥

वीतशोकभयायासोगतसंसारसंभ्रमः ॥ तुर्यावस्थामुपारूढोभूयःपततिनात्मवान् ॥ २९ ॥ प्राप्यस्वांपदवींपुण्यांयथेदंभ्रमितंजगत् ॥ शैलसंस्थइवाधःस्थंहसन्पश्यतिधीरधीः ॥ ३० ॥ अस्यांतुतुर्यावस्थायांस्थितिंप्राप्याविनाशिनीम् ॥ आनंदैकांतलीनत्वादनानंदपदंगतः ॥ ३१ ॥ अनानंदमहानंदकलातीत

स्ततोऽपिहि ॥ मुक्तइत्युच्यतेयोगीतुर्यातीतंपदंगतः ॥३२॥ परिगलितसमस्तजन्मपाशःसकलविलीन तमोमयाभिमानः ॥ परमरसमयींप्रयातिसत्तांजलगतसैंधवखंडवन्महात्मा ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे असंसंगविकल्पोपदेशो नाम सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥

अर्थ—शोक, भय, तथा संसारी प्रपंच और भ्रमसे रहित, तथा तुरीयावस्थामें दृढतासे प्राप्त ज्ञानी पुरुष पुनः संसारमें नहीं गिरता ॥ २९ ॥ इस पवित्र अपनी पदवीको प्राप्त होकर धीर बुद्धियुक्त पुरुष इस भ्रांतजगत्को हसताहुवा ऐसे देखताहै जैसे पर्वतपर स्थित प्राणी नीचेवालेको ॥ ३० ॥ इस अविनाशिनी तुरीयावस्थाको प्राप्त होकर सर्वथा आनंदमें मग्न होनेसे उस आनन्दको प्राप्त होताहै जिससे उत्तम कोई आनन्द नहीं है ॥ ३१ ॥ तीनों अवस्थाके आनन्द तथा तुरीयावस्थाके आनन्दकी कलासे परे प्राप्त होताहै और उससे मुक्त होनेसे योगी तुरीयातीत पदमें प्राप्त कहाजाताहै ॥ ३२ ॥ क्योंकि इस समय सब तमोगुणमय अभिमानगलित होगये हैं जिसके ऐसा तथा समस्तजन्मोंके निमित्त वासना कर्म आदि पाश (फासी) से रहित महात्मा जलमें प्राप्त लवणके खंडकेसमान परमानन्दरूप रसमयी सत्ता (स्थिति) को प्राप्त होताहै ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे उपशमप्रकरणे असंगविकल्पोपदेशो नाम सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥

एकसप्ततितमः सर्गः ॥७१॥

तुरीयातीतपद व्यवहारका विषय नहीं है इसलिये शरीर आदिका निरास करके इस ७१ के सर्गमें तुरीया अवस्था तथा मोहसे जन्मके क्रमका वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यावत्तुर्यपरामर्शस्तावत्केवलतापदम् ॥ जीवन्मुक्तस्यविषयोवचसांचरघूद्वह ॥१॥ अतऊर्ध्वमदेहानांमुक्तानांवचसांतथा ॥ विषयोनमहाबाहोपुरुषाणामिवांबरम् ॥ २ ॥ साहिविश्रांति पदवीदूरेभ्योऽपिदवीयसी ॥ गम्याविदेहमुक्तानांखलेखेवनभस्वताम् ॥३॥ सुषुप्तावस्थयाकंचित्कालं भुक्त्वाजगत्स्थितिम् ॥ तुर्यतामेतितदनुपरमानंदघूर्णितः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रघुश्रेष्ठ रामजी ! तीनों अवस्थारूप पादोंका विचार करके चिन्मात्र शेषकी स्थितिरूप तुरीयाअवस्थाका अनुभव जहांतक होताहै वहांहीतक केवलतापद जीवन्मुक्तोंका और वेदवाणियोंका विषय है ॥ १ ॥ हे महाबाहो ! इससे परे विदेहमुक्त तथा जीवन्मुक्तोंसे प्राप्यभी तुरीयातीत पद है, परन्तु वह विदेहमुक्त वा जीवन्मुक्त और वेदवचनोंका विषय ऐसे नहीं है जैसे पुरुषोंका आकाश ॥ २ ॥ दूरसेभी अतिदूर वही विश्रामकी पदवी है, और विदेहमुक्तोंके ऐसे गम्य है जैसे वायुका आकाश ॥ ३ ॥ ज्ञानी पुरुष सुषुप्तअवस्थामें कुछकालतक जगत्की स्थितिको भोग करके उसके अनन्तर परमानन्दसे घूर्णित (मत्त) तुरीयपदको प्राप्त होताहै ॥ ४ ॥

तुर्यातीतदशांतज्ज्ञायथायांत्यात्मकोविदाः ॥ तथाधिगच्छनिर्द्वंद्वंपदंरघुकुलोद्वह ॥ ५ ॥ सुषुप्तावस्थयारामभवसंव्यवहारवान् ॥ चित्रेंदोरिवतेनस्तः क्षयोद्वेगावरिंदम ॥ ६ ॥ शरीरसन्निवेशस्यक्षयेस्थैर्ये चसंविदः ॥ मागृहाणभ्रमोह्येषशरीरमितिजृंभते ॥ ७ ॥ देहनाशेनकोऽर्थस्तेकोऽर्थस्तेदेहसंस्थया ॥ भवत्वंप्रकृतारंभस्तिष्ठत्वेषयथास्थितम् ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रघुश्रेष्ठ रामजी ! तुरीयातीत पदको जाननेवाले आत्मज्ञानी पुरुष जिसप्रकार तुरीयातीत दशाको प्राप्त होते हैं ऐसेही तुमभी द्वंद्वरहित इसी पदको प्राप्त हो ॥ ५ ॥ हे शत्रुनाशक रामजी ! सुषुप्तअवस्थामें स्थित होके तुम जगत्के व्यवहार करो तो चित्रमें स्थित चन्द्रमाके समान क्षय और उद्वेग नहीं प्राप्त होंगे ॥ ६ ॥ शरीरकी रचनाके क्षय वा स्थिर होनेसे ज्ञानका क्षय और स्थिरता होती है इस भ्रमको न धारण करो क्योंकि क्षयआदि धर्मसहित यह शरीर विकसित होरहाहै ॥ ७ ॥ देहके नाशसे वा उसकी स्थितिसे तुमारा क्या प्रयोजन है, केवल आत्मबोधकी स्थिरताका प्रयत्न करो. यह देह किसीभी अवस्थामें रहो ॥ ८ ॥

ज्ञातवानसितत्सत्यंबुद्धवानसितत्पदम् ॥ प्राप्तवानसिरूपंस्वंविशोकोभवभूतये ॥ ९ ॥ इप्सितानीप्सितंत्यक्त्वाशीतलालोकशोभया ॥ अंधकारात्तथांभोदान्मुक्तंखमिवशोभते ॥ १० ॥ मनस्तवात्मसंपन्नंनाधःसमनुधावति ॥ योगमंत्रतपःसिद्धःपुरुषःखादिवावनिम् ॥ ११ ॥ इहशुद्धाचिदेवास्तिपारावारविवर्जिता ॥ अयंसोऽहमिदंतन्मइतितेमास्तुविभ्रमः ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जगत् तथा तीनो अवस्थाके अधिष्ठान सत्यरूप उस ब्रह्मपदको जानगये हो और अखण्ड-वाक्यार्थस्वरूप आत्माको तुम प्राप्त हो, इसलिये मुक्तिरूप ऐश्वर्यकेलिये होओ ॥ ९ ॥ हे रामजी ! इष्ट अनिष्टको त्यागकर शीतल आत्मप्रकाशसे ऐसे शोभित हो जैसे अन्धकार तथा मेघसे निर्मुक्त शरत्कालका आकाश ॥ १० ॥ हे रामजी ! आत्मामें सम्पन्न तुमारा मन नीचेको विषयोंमें ऐसे नहीं दौडता जैसे मंत्रके प्रभावसे आकाशगामिनी सिद्धिको प्राप्त योगी आकाशको त्यागकर पृथिवीपर नहीं दौडता ॥ ११ ॥ हे रामजी ! इस ब्रह्मांडमें देश, काल तथा वस्तुके परिच्छेदसे शून्य केवल शुद्धचेतनमात्र है इसलिये यह शरीर आदि मैं हुं वह धनादि मेरा है यह भ्रम तुमको न हो ॥ १२ ॥

आत्मेतिव्यवहारार्थमभिधाकल्पिताविभोः ॥ नामरूपादिभेदस्तुदूरमस्मादलंगतः ॥ १३ ॥ जलमेव यथांभोधिर्नतरंगादिकंपृथक् ॥ आत्मैवेदंतथासर्वनभूतोयादिकंपृथक् ॥ १४ ॥ यथासमस्ताज्जलधौज लादन्यन्नलभ्यते ॥ तथैवजगतःस्फारादात्मनोऽन्यन्नलभ्यते ॥१५॥ अयंसोऽहमितिप्राज्ञककरोषिव्यव स्थितिम् ॥ किंतत्त्वंकिंचवातेस्यात्किंतत्त्वंकिंचवानते ॥ १६ ॥

अर्थ—और व्यापक परमात्माका आत्मा यह नाम कल्पित कियागयाहै यथार्थमें वह सर्वथा नामरूपादिसे दूर प्राप्त है ॥ १३ ॥ जैसे समुद्र जलही है और तरंग आदि उससे भिन्न नहीं हैं ऐसेही यह सब आत्माही है भूमि जलादि उससे पृथक् नहीं है ॥ १४ ॥ जैसे समुद्रमें पूर्णजलसे अन्य कुछ नहीं प्राप्त होता ऐसेही जगत्के आकारसे विस्तृत परमात्मासे भिन्न इस जगत्में कुछ नहीं प्राप्त होता ॥ १५ ॥ हे प्राज्ञ रामजी ! यह धनादि वह देहादि मैं हुं इसकी व्यवस्था कहां करोगे. देहादिमेंसे जो तुम हो वह क्या है और उनमें जो तुमारा है उसका और जो नहीं है उसका क्या तत्व है ? ॥ १६ ॥

नद्वित्वमस्तिनोदेहाःसंबंधोनचतैःस्थितः ॥ संभाव्यतेकलंकोवाभानोरिवतमःपटैः ॥ १७ ॥ द्वित्वम भ्युपगम्यापिकथयामितवारिहन् ॥ देहादिभिःसद्भिरपिनसंबंधोविभोर्भवेत् ॥ १८ ॥ छायातपप्रसर योःप्रकाशतमसोर्यथा ॥ नसंभवतिसंबंधस्तथावैदेहदेहिनोः ॥ १९ ॥ यथाशीतोष्णयोर्नित्यंपरस्परवि रुद्धयोः ॥ नसंभवतिसंबंधोरामदेहात्मनोस्तथा ॥ २० ॥

अर्थ—हे रामजी ! न द्वैत है,न देह हैं,और उनके साथ कोई संबन्ध ऐसे नहीं सम्भावित है जैसे सूर्य्यमें अंधेरा ॥ १७ ॥ और हे शत्रुनाशक रामजी ! द्वैतकी सत्ताको मानकरभी मैं तुमसे कहता हुं कि विद्यमान देहादिके साथभी व्यापक शुद्धचिन्मात्र परमात्माका सम्बन्ध नहीं होसकता ॥ १८ ॥ जैसे छाया और आतप (घाम) तथा अन्धकार और प्रकाशका सम्बन्ध नहीं होसकता ऐसे देह आत्माका नहीं होसकता ॥१९॥ हे रामजी ! सदा परस्पर विरुद्धस्व-भाववाले शीत और उष्णके सम्बन्धका सम्भव नहीं है ऐसेही देह और आत्माका सम्बन्ध होना सम्भव नहीं है २०

अविनाभाविनोर्येस्तुसंबंधःकथमेतयोः ॥ जडचेतनयोर्देहदेहिनोरनुभूयते ॥ २१ ॥ चिन्मात्रस्यात्म नोदेहसंबंधइतियाकथा ॥ सैपाद्धरवबोधार्थादावाग्नौजलधिर्यथा ॥ २२ ॥ सत्यावलोकनेनैषामिथ्याद्द ष्टिर्विनश्यति ॥ अवलोकनयासाम्यमातपेजलधिर्यथा ॥ २३ ॥ चिदात्मानिर्मलोनित्यःस्वावभासोनि रामयः ॥ देहस्त्वनित्योमलवांस्तेनसंबंध्यतेकथम् ॥ २४ ॥

अर्थ—नित्य सम्बन्ध (रूपरूपवान् वा घटकात्वके तुल्य) जड चेतन देहका आत्माके साथ सम्बन्धका अनुभव होताहै॥२१॥इसप्रकार चिन्मात्र आत्माका देहके साथ तादात्म्य वा समवाय है यह जो कथा है अग्निमें समुद्रके तुल्य बुद्धिसे बाहर है, क्योंकि देहको चेतनका आश्रय माननेसे विषयका अभाव होनेसे उसका स्फुरण नहीं होसकता और विषय माननेसे आश्रयके अभावसे समवाय वा तादात्म्य (अभेदसम्बन्ध) नहीं होसकता ॥२२ ॥ सत्यपदार्थके दर्शनसे यह मिथ्यादृष्टि ऐसे नष्ट होती है जैसे मृगतृष्णाके भ्रममें आतपके देखनेसे समुद्र समताको प्राप्त होताहै वा बाधित होजाताहै ॥ २३ ॥ चित्स्वरूप आत्मा तो निर्मल, नित्यप्रकाश तथा विकाररहित है. और यह देह अनित्य, मलवान् तथा परप्रकाश्य है. इसलिये आत्माके साथ इसका सम्बन्ध कैसे होसकताहै ॥ २४ ॥

स्पंदमायातिवातेनभूतैर्वापीवरीकृतः ॥ देहस्तेननसंबंधोमनागेवसहात्मना ॥ २५ ॥ सिद्धेद्वित्वेऽपिदे हस्यनसंबंधस्यसंभवः ॥ द्वित्वासिद्धौतुसुमतेकलनैवेहशीकुतः ॥ २६ ॥ इत्येतदेवतत्सत्वेतत्रैवांतः स्थितिंकुरु ॥ नबंधोऽस्तिनमोक्षोऽस्तिकदाचित्कस्यचित्क्वचित् ॥ २७ ॥ सर्वमात्ममयंशांतमित्येवंम त्ययंस्फुटम् ॥ सबाह्याभ्यंतरंरामसर्वत्रद्दढतांनय ॥ २८ ॥

अर्थ—देहकी चेष्टा प्राणवायुसे होती है, और अन्न जलआदि पृथिवीआदि भूतोंसे यह देह वर्द्धित है. इसलिये आत्माके साथ इसका किंचित्भी सम्बन्ध नहीं है ॥ २५ ॥ द्वैतके सिद्ध होनेपरभी देहके साथ आत्माका सम्बन्ध नहीं है, और द्वैतकी असिद्धिमें तो ऐसी कल्पना कहांसे होसकती है ॥ २६ ॥ इसप्रकार द्वैतकी सिद्धि सत्य माननेपर वही पूर्वोक्तयुक्तिका उपन्यास करनाचाहिये अर्थात् चित्से अन्य द्वितीयकी सत्तामें द्वैत सिद्ध होताहै सो यदि वह द्वितीय चित् है तो इस चित्से उसका भेदक कोई नहीं है और यदि जड है तो छाया आतपकेसमान विरुद्ध होनेसे वह मिथ्या है इसलिये कदाचित् और कहीं न किसीका बंध है न मोक्ष है ॥ २७ ॥ हे रामजी ! यह जो बाह्य तथा आभ्यन्तर सम्पूर्ण जगत् है वह शांत आत्मामय है यही वृत्ति सर्वत्र तुम दृढ करो ॥ २८ ॥

सुखीदुःखीविमूढोऽस्मीत्येतादुर्दृष्टयःस्मृताः ॥ आसुचेद्वस्तुबुद्धिस्तेतच्चिरंदुःखमिच्छसि ॥ २९ ॥ यःक्रमःशैलतृणयोःकौशेयोपलयोस्तथा ॥ साम्यंप्रतिसएवोक्तःपरमात्मशरीरयोः ॥ ३० ॥ यथातेजस्तिमिरयोर्नसंबंधोनतुल्यता ॥ अत्यंतभिन्नयोरामतथैवात्मशरीरयोः ॥ ३१ ॥ यथाशीतोष्णयोरैक्यंकथास्वपिनदृश्यते ॥ जडप्रकाशयोःश्लेषोनतथात्मशरीरयोः ॥ ३२ ॥

अर्थ—मैं सुखी हुं मैं दुःखी हुं ये दुष्टदृष्टि कहीगई हैं. यदि इनमें तुमारी सत्यबुद्धि है तो तुम चिरकालकेलिये दुःख चाहतेहो ॥ २९ ॥ तुल्यता होनेमें जो रीति पर्वत तथा तृणकी अथवा रेशम और पाषाणकी है वही रीति आत्मा और शरीरकी समानतामें तुम जानो ॥ ३० ॥ हे रामजी ! जैसे तेज और अन्धकारका न सम्बन्ध और न समानता है ऐसेही अत्यन्त भिन्न आत्मा तथा शरीरकाभी सम्बन्ध तथा समानता नहीं है ॥ ३१ ॥ जैसे शीत तथा उष्णकी एकता और जडप्रकाशका सम्बन्ध कथामेंभी नहीं देखपडता यही दशा आत्मा तथा शरीरकी है ॥ ३२ ॥

देहश्चलतिवातेनतेनैवायातिगच्छति ॥ शब्दंकरोतिवातेनदेहनाडीविलासिना ॥ ३३ ॥ शब्दःकचटतप्रायःस्फुरत्यंतःसमीरणैः ॥ यथाप्रजायतेवंशाद्देहरंध्रात्तथैवहि ॥ ३४ कनीनिकापरिस्पंदश्चक्षुःस्पंदस्यमारुतात् ॥ इंद्रियस्फुरणात्सैवसंवित्केवलमात्मनः ॥ ३५ ॥ आकाशोपलकुड्यादौसर्वत्रात्मदशास्थिता ॥ प्रतिबिंबमिवादर्शेचित्तएवात्रदृश्यते ॥ ३६ ॥

अर्थ—यह देह प्राणवायुसे चलताहै और उसीसे आताजाताहै. और नाडियोंमें निवास करनेवाले प्राणवायुके द्वारा शब्दभी करताहै ॥ ३३ ॥ जैसे बाह्यके छिद्रमेंसे शब्द होताहै ऐसेही देहमें कंठरूप छिद्रमें प्राप्त जो प्राण पवन है वे जब कंठ तालुआदि स्थानोंमेंसे जिव्हाआदिके अभिघातसे निकाले जाते हैं तब कवर्ग, चवर्ग तथा टवर्गादि शब्द स्फुरित होताहै वह प्रत्यक्ष सिद्ध है ॥ ३४ ॥ विषयदेशमें जो नेत्रका संचलन होताहै उसमें वायुके द्वारा पुतलीका संचलन कारण है, और इन सब इन्द्रियोंके स्फुरणसे सिद्ध जो सबकी साक्षी संवित् (ज्ञान) है वह केवल आत्माका है न कि अन्यका ॥ ३५ ॥ आकाश, पाषाण तथा भित्तिआदि स्थानोंमें आत्माकी सत्ता स्थितहै पर वह चित्तमेंही ऐसे प्रकट होती है जैसे दर्पणमें प्रतिबिंब ॥ ३६ ॥

शरीरालयमुत्सृज्ययत्राचित्तविहंगमः ॥ स्ववासनावशाद्यातितत्रैवात्मानुभूयते ॥ ३७ ॥ यत्रपुष्पंतत्रगंधसंविदःसंस्थितायथा ॥ यत्रचित्तंहितत्रात्मसंविदःसंस्थितास्तथा ॥ ३८ ॥ सर्वत्रस्थितमाकाशमादर्शेप्रतिबिंबति ॥ यथातथात्मासर्वत्रस्थितश्चेतसिदृश्यते ॥ ३९ ॥ अपामवनतंस्थानमास्पदंभूतलेयथा ॥ अंतःकरणमेवात्मसंविदामास्पदंतथा ॥ ४० ॥

अर्थ—अपनी वासनाके वशसे शरीररूप स्थानको छोडके चित्तरूप पक्षी जहां जाताहै वहांही आत्माका अनुभव होताहै ॥ ३७ ॥ जैसे जहां पुष्प है वहां गंधसंवित् स्थितहै, ऐसेही जहां चित्त है वहां आत्मसंवित् स्थितहै ॥ ३८ ॥ जैसे आकाश सर्वत्र स्थित रहनेपरभी दर्पणमेंही प्रतिबिंबित होताहै ऐसेही आत्मा सर्वत्र स्थित रहनेपरभी चित्तमेंही अनुभूत होताहै ॥ ३९ ॥ जैसे पृथिवीपरभी नीचस्थान आकाशका निवास स्थानहै ऐसेही अंतःकरण आत्मसंविदोंका स्थानहै ॥ ४० ॥

सत्यासत्यंजगद्रूपमंतःकरणबिंबिता ॥ आत्मसंवित्तनोतीदमालोकमिवसूर्यभा ॥ ४१ ॥ अंतःकरणमेवातःकारणंभूतसंस्तौ ॥ आत्मासर्वातिगत्वात्तुकारणंसदकारणम् ॥ ४२ ॥ अविचारणमज्ञानंमौर्ख्यमाहुर्महाधियः ॥ संसारसंस्तौसारमंतःकरणकारणम् ॥ ४३ ॥ असम्यक्प्रेक्षणान्मोहाच्चेतस्सत्तांगृहीतवत् ॥ सम्मोहबीजकणिकांतमोर्कादिवदृश्यते ॥ ४४ ॥

अर्थ—व्यावहारिक तथा प्रातिभासिक जगत्को तथा अंतःकरणकी प्रतिबिंबताको यही आत्मसंवित् ऐसे विस्तार करती है जैसे सूर्य्यकी प्रभा प्रकाशको ॥ ४१ ॥ इसलिये समस्त अन्तःकरणरूप हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) सब

भूतोंकी सृष्टिमें कारण है, और सबसे परे होनेसे प्रतिबिंबद्वारा कारण होकेभी शुद्धरूपसे अकारण है ॥ ४२ ॥ अविचार, अज्ञान वा मूढताको संसारकी सृष्टिका सारभूत जो अन्तःकरण है उसका कारण कहतेहैं ॥ ४३ ॥ विपरीतसंस्कारके ग्रहणरूप मोहसे भ्रमोंके बीजोंकी कणिकासहित चित्ताकार परिणामको आत्माहीने धारण कियाहै, क्योंकि सूर्यसे भासित राहुरूप तम जैसे देख पडताहै ऐसे अत्यंत असंभावित आत्माकी जन्ममरण आदि परंपरा इस अज्ञानसे देख पडती है ॥ ४४ ॥

सत्याभूतात्मतत्त्वैकपरिज्ञानेनराघव ॥ असत्तामेत्यलंचेतोदीपेनेवतमःक्षणात् ॥ ४५ ॥ संसारकारणमितःस्वयंचेतोविचारयेत् ॥ जीवोंतःकरणंचित्तंमनश्चेत्यादिनामकम् ॥ ४६॥ श्रीरामउवाच ॥ एताः संज्ञाःप्रभोब्रह्मंश्चेतसोरूढिमागताः ॥ कथमित्येवकथयमयिमानदसिद्धये ॥४७॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ सर्वेभावाइमेनित्यमात्मतत्त्वैकरूपिणः ॥ चित्तात्तरंगकगणाजलैककलितायथा ॥ ४८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! इसप्रकार अनर्थका हेतु चित्त सत्य आत्मतत्त्वके ज्ञानसे क्षणमेंही ऐसे अभावको प्राप्त होताहै जैसे दीपसे अंधकार ॥ ४५ ॥ इसी चित्तके कारणसे संसारका कारण अज्ञान प्राप्तहुआहै ऐसा अधिकारी जनसमूहको विचारना चाहिये और जिसको विचारना चाहिये उसका जीव अंतःकरण, चित्त और मन इत्यादि नाम है ॥ ४६ ॥ श्रीरामजी बोले—हे प्रभो ! ये संज्ञा चित्तकी किसयोगसे रूढिको प्राप्त हुई हैं सो मुझे पूर्वोक्तविचारकी सिद्धिकेलिये कृपाकरके कहिये ॥ ४७ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! सब पदार्थ आत्मतत्त्वके साथ एकता अध्याससे एकरूप समष्टि चित्त ऐसे उत्पन्न हुयेहैं जैसे जलसे तरंग ॥ ४८ ॥

आत्मास्पंदैकरूपात्मास्थितस्तेषुक्वचित्क्वचित् ॥ तरंगेषुविलोलेषुपयोधेःसलिलंयथा ॥ ४९ ॥ क्वचिदस्पंदरूपात्मास्थितस्तेषुमहेश्वरः ॥ तरंगत्वमयातेषुजलभावोजलेष्विव ॥ ५० ॥ तत्रोपलादयोभावाअलोलाःस्वात्मनिस्थिताः ॥ सुराफेनवदुत्स्पंदालोलास्तुपुरुषादयः ॥ ५१ ॥ तत्रतेषुशरीरेषुसर्वशक्तिस्तदात्मनः ॥ कलिताज्ञानकलनातेनाज्ञानमसौस्थितः ॥ ५२ ॥

अर्थ—स्पंदरूप आत्मा उनमें प्रतिबिंबरूपसे कहीं २ ऐसे स्थितहै जैसे चंचलतरंगोंमें समुद्रका जल ॥ ४९ ॥ और कहीं स्पन्दरूपके अभावसहित ऐसे स्थितहै जैसे तरंगदशामें अप्राप्त जलोंमें जलरूप ॥ ५० ॥ उन पदार्थोंमें पाषाण आदि चंचलतासे शून्य होके अपने आत्मामें स्थितहैं और मद्यके फेनके समान उत्कटचेष्टायुक्त और चंचल पुरुषआदि हैं ॥ ५१ ॥ उन सब शरीरोंमें उन २ पदार्थरूप परमात्माकी कल्पित अज्ञानकी कलनासे प्रसिद्ध सर्वशक्ति है इसी हेतुसे कल्पित अज्ञानरूप वह परमात्मा स्वयं होके प्रलय और सुषुप्तिमें स्थितहै ॥ ५२ ॥

तदज्ञानमनंतात्मभूपितंजीवउच्यते ॥ ससंसारेमहामोहमायापंजरकुंजरः ॥ ५३ ॥ जीवनाज्जीवइत्युक्तोऽहंभावःस्यात्स्वहंतया ॥ बुद्धिर्निश्चायकत्वेनसंकल्पकलनान्मनः ॥ ५४ ॥ प्रकृतिःप्रकृतित्वेनदेहोदिग्धतयास्थितः ॥ जडःप्रकृतिभावेनचेतनःस्वात्मसत्तया ॥ ५५ ॥ जडाजडदृशोर्मध्यंयत्तत्त्वंपारमात्मिकम् ॥ तदेतदेवनानात्वंनानासंज्ञाभिराततम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—प्रतिबिंबदशाको प्राप्त इस आत्मासे भूपितके तुल्य स्फुरण होताहुआ वही अज्ञान जीव कहा जाताहै और वह जीव इस संसारमें महामोहमयी मायाके पिंजरेका कुंजर है ॥ ५३ ॥ और जीवन (प्राण) धारण करनेसे जीव कहा गयाहै. मैं हुं ऐसा प्रथम कहनेसे अहंकार, पदार्थोंका निश्चय करनेसे बुद्धि, तथा संकल्प विकल्प करनेसे मन कहागयाहै ॥ ५४ ॥ तथा देह मनआदिका कारण होनेसे प्रकृति, बढनेसे देहरूप होके स्थितहै, अज्ञानकी प्रधानतासे जड, और चित्की प्रधानतासे चेतन कहाताहै ॥ ५५ ॥ हे रामजी ! अज्ञान तथा उसके साक्षीके मध्यमें परमात्माके आभाससहित जो मनरूप तत्व है वही अनेकताको प्राप्त होकर जीव, बुद्धि, चित्त, अहंकार तथा मन आदि नानाप्रकारके नामोंसे व्याप्तहै ॥ ५६ ॥

एवंस्वरूपंजीवस्यबृहदारण्यकादिषु ॥ बहुधाबहुषुप्रोक्तंवेदांतेषुकिलानघ ॥ ५७ ॥ अत्रैस्त्वेतासुसंज्ञासुकुविकल्पकुतार्किकैः ॥ मोहायकेवलंमूढैर्व्यर्थमास्थाःप्रकल्पिताः ॥ ५८ ॥ एवमेपमहाबाहोजीवस्संसारकारणम् ॥ मूकेनातिवराकेणदेहकेनेहकिंकृतम् ॥५९॥ आधाराधेययोरेकनाशेनान्यस्यनष्टता॥ यथातथाशरीरादिनाशेनात्मनिनष्टता ॥ ६० ॥

अर्थ—हे रामजी ! इसप्रकार जीवका स्वरूप बृहदारण्यक तथा अन्य वेदांतके ग्रंथोंमें अनेकप्रकारसे कहा गयाहै, जैसे "प्राणन्नेव प्राणोनाम भवति वदन् वाग्भवति पश्यंश्चक्षुः" इत्यादि (वह आत्मा श्वासादिक्रियासे प्राण,

बोलनेसे वाक् और देखनेसे चक्षु होताहै) ॥ ५७ ॥ अज्ञानी दुर्बुद्धि और मूढ ऐसे तार्किकोंने लोकोंके मोहके निमित्त इन्ही नामोंसे व्यर्थ अभिनिवेश कियाहै॥५८॥हे महाबाहो ! इसप्रकार जीवही संसारका कारण है और मूक तथा दीन शरीरने क्या किया है ॥ ५९ ॥ जैसे आधार (घट) और आधेय (जल) मेंसे एकके नाशमें अन्यका नाश नहींहोता इसीप्रकार शरीर आदिके नाशसें आत्मामें नष्टता नहींआती ॥ ६० ॥

एकपर्णरसेक्षीणेरसोनैतियथाक्षयम् ॥ यातिपर्णरसश्चार्करश्मिजालांतरेयथा ॥ ६१ ॥ शरीरसंक्षयेदेहीनक्षयंयातिकस्यचित् ॥ निर्वासनश्चेत्तद्व्योम्नितिष्ठत्यात्मपदेतथा ॥ ६२ ॥ देहनाशेविनष्टोऽस्मीत्येवंयस्यामतेर्भ्रमः ॥ मातुःस्तनतटात्तस्यमन्येवेतालउत्थितः ॥ ६३ ॥ यस्यह्यात्यंतिकोनाशःस्यादसौ मुदितःस्मृतः ॥ चित्तनाशोहिनाशःस्यात्समोक्षइतिकथ्यते ॥ ६४ ॥

अर्थ—जैसे एक पत्तेमें रसके क्षीण होनेसे रस क्षीण नहींहोता किंतु वह पत्तेका रस सूर्य्यके किरणोंमें मिलजाताहै ॥ ६१ ॥ शरीरके नष्ट होनेपर किसीका आत्मा नष्ट नहींहोता. यदि वह वासनासहित होतो वासनामें रहताहै और वासनारहित होनेसे चिदाकाशमें स्थित रहता है ॥ ६२ ॥ जिस निर्बुद्धिको यह भ्रम है कि देहके नाश होनेसे मैं नष्ट हुआहुं उसकी माताके स्तनतटसेभी वेताल प्रकट हुआहै ऐसा मैं मानताहुं ॥ ६३ ॥ वज्रकी बेडीके समान जिस उपाधिका सर्वथा नाश होगयाहै वह जीव अपने ब्रह्मस्वभावका स्मरण करके निरतिशय आनंदके अभ्युदयको प्राप्त हुआहै क्योंकि उसप्रकार चित्तका नाश जीवकेलिये कहागयाहै ॥ ६४ ॥

मृतोनष्टइतिप्रोक्तोमन्येतच्चमृषाह्यसत् ॥ सदेशकालांतरितोभूत्वाभूत्वानुभूयते ॥ ६५ ॥ इहोह्यंतेजनैरेवंतरंगांतस्तृणैरिव ॥ मरणव्यपदेशासुदेशकालतिरोहितैः ॥ ६६ ॥ वासनावस्थितोजीवोयात्युत्सृज्यशरीरकम् ॥ कपिर्वनतरुंत्यक्त्वातर्वंतरमिवस्थितः ॥ ६७ ॥ पुनस्तदपिसंत्यज्यगच्छत्यन्यदपिक्षणात् ॥ अन्यस्मिन्विततेदेशेकालेऽन्यस्मिंश्चराघव ॥ ६८ ॥

अर्थ—और यह मरगया, नष्ट होगया, यह जो कथन है इसको मैं मिथ्या मानताहुं क्योंकि यह असत् है, वह जीव देशकालके अंतरमें होके पुनः शरीरांतरके ग्रहणमें अनुभूत होताहै ॥६५॥ इस संसारमें मरणनामयुक्त नदियोंमें तरंगोंके अंतर्गत तृणकेतुल्य देशकालमें तिरोहित जीवोंसे पूर्वोक्तकथनके अनुसार मरगया, नष्ट हुआ, उत्पन्नहुआ, बढा, सुखी और दुःखी है इत्यादि पदार्थोंकी कल्पना कीजाती है ॥ ६६ ॥ वासनामें स्थित जीव एकशरीरको त्यागके अन्यशरीरमें ऐसे जाताहै जैसे वानर वनके एकवृक्षको त्यागकर दूसरे वृक्षपर जाताहै ॥६७॥ हे रामजी ! इसीप्रकार क्षणभरमेंही उसकोभी त्यागकर अन्यमें जाताहै और पुनः अन्य विशालदेशकालमें उत्पन्नहोताहै ॥ ६८ ॥

इतश्चेतश्चनीयंतेजीवावासनयास्वया ॥ चिरंतदपिजीविन्याधूर्त्योधात्र्येवबालकाः ॥ ६९ ॥ वासनारज्जुवलिताजीर्णाःपर्वतकुक्षिषु ॥ जरयंत्यतिदुःखेनजीवितंजीवजीविकाः ॥ ७० ॥ जरठजरदुपोढदुःखभाराःपरिणतिजर्जरजीविताश्चसत्यः ॥ हृदयजनितवासनानुवृत्त्यानरकभरेजनताश्चिरंपतंति ॥ ७१ ॥ श्रीवाल्मीकिरुवाच ॥ इत्युक्तवत्यथमुनौदिवसोजगामसायंतनायविधयेऽस्तमिनोजगाम ॥ स्नातुंसभाकृतनमस्करणाजगामश्यामाक्षयेरविकरैश्चसहाजगाम ॥ ७२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे संसारोपदेशो नामैकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥

अर्थ—उन जीवोंकोभी चिरकालतक जिलाने अपनेही वासनासे जीव इधरउधर ऐसे प्राप्त कियेजातेहैं जैसे धूर्तके साथ समागम करनेवाली धायीसे बालक ॥ ६९ ॥ वासनारूप रज्जुसे बंधेहुये, और परस्परके उपयोगसे जीवनरूप हैं. जीविकासहित प्रथमसेही जीर्णजीव अतिदुःखसे अपने जीवनको जीर्ण करतेहैं ॥ ७० ॥ हृदयमें उत्पन्न वासनासे अनेक जनता (जनसमूह) जीर्णसेभी जीर्ण, दारिद्र्यवियोग आदि दुःखोंके भारोंको वहन करनेवाले, तथा नानाप्रकारकी-योनियोंकी दुर्दशाके परिणामोंसे अतिशिथिल जीवनधारी होके चिरकालकेलिये नरकके समूहमें गिरते हैं ॥ ७१ ॥ श्रीवाल्मीकिजी बोले—श्रीमुनि वसिष्ठके इतना कहनेपर दिवसका अन्त होगया और सूर्य्यभगवान्भी सायंतनविधि करनेकेलिये अस्ताचलको गये, और स्नानसंध्याविधि करनेके अर्थ सभाभी बिदाहुई, और रात्रि बीतनेपर सूर्य्यकी किरणके साथ पुनः आके प्राप्त हुई ॥ ७२ ॥ त्रयोदशो दिवसः दिन १३

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषानुवादे संसारोपदेशो नामैकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥

द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥

शरीरके भौतिक होनेसे शोक मोह आदिकी अयोग्यता दृश्यदर्शनका सम्बन्ध और आत्मा साक्षात् शुद्ध है इन विषयोंका वर्णन इस ७२ के सर्गमें कियागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ देहेजातेनजातोऽसिदेहेनष्टेननश्यसि ॥ त्वमात्मन्यकलंकात्मादेहस्तवनकश्चन ॥ १ ॥ यःकुंडबदरन्यायोयोघटाकाशसंस्थितिः ॥ तत्रैकस्मिन्क्षतेक्षीणेद्वेइतिव्यर्थकल्पना ॥ २ ॥ विनाशिनिविनष्टेऽस्मिन्देहेस्वांस्थितिमागते ॥ विनङ्क्ष्यामीतियःखेदीतंधिगस्त्वंधचेतसम् ॥ ३ ॥ यादृशोरश्मिरथयोःस्नेहोद्वेगविवर्जितः ॥ संबंधस्तादृशोदेहचित्तेंद्रियमुखेष्वितः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी! देहके उत्पन्न होनेसे न तुम उत्पन्न होतेहो और न उसके नष्ट होनेसे नष्ट होतेहो, तुम तो अपने आत्मामें अकलंकस्वरूप स्थित हो. देह तुमारा कुछ नहीं है ॥ १ ॥ कुंड (कूंडा) और बदर (बेर) का जो न्याय है और घट तथा आकाशकी जो स्थिति है इनमेंसे एक (कुंडा वा घट) के नाश होनेसे दोनो अर्थात् कूंडेके नाशसे कूंडाबेर और घटके नाशसे घट तथा आकाश दोनोंका नाश होगया यह-कल्पना व्यर्थ है ॥ २ ॥ विनाशी इस देहके नष्ट होके अपनी स्थितिमें प्राप्त होनेपर मैं नष्ट होताहुं इसप्रकार जो खेदवान् होताहै उस अन्धचित्तको धिक्कारहै ॥ ३ ॥ जैसे स्नेह तथा द्वेषसे वर्जित अश्व आदिका रज्जु और रथसे सम्बन्ध है ऐसेही देह इन्द्रिय तथा चित्तआदिके साथ चेतनका सम्बन्ध है ॥ ४ ॥

गतेतरेतरापेक्षःसरःपंकामलांभसाम् ॥ यथाराघवसंबंधस्तथादेहेंद्रियात्मनाम् ॥ ५ ॥ यादृशोध्वागताध्वानांनिरास्थापरिदेवनः ॥ संयोगोविप्रयोगश्चतादृशोदेहदेहिनोः ॥ ६ ॥ यथाकल्पितवेतालविकारभयभीतयः ॥ मिथ्यैवकल्पिताएतेतथास्नेहसुखादयः ॥ ७ ॥ भूतपंचकसंपिंडाद्रचिताजनताःपृथक् ॥ एकस्मादेवविटपाद्विचित्राइवपुत्रिकाः ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी! जैसे तडागमें कीचड और निर्मलजलका परस्पर अनुराग है ऐसेही देह इन्द्रिय और आत्माकाभी है ॥ ५ ॥ जैसे मार्गगामी (राही) तथा मार्गका ममताके अभिमान तथा वियोगके विलापसे वर्जित संयोग वियोग है ऐसेही देह तथा आत्माका है ॥ ६ ॥ जैसे कल्पित वेतालके भयंकर मुख दांतआदिके स्मरणसे बालकको पुनः भयआदि होतेहैं ऐसेही आत्माके स्नेह सुख आदि मिथ्याही कल्पितहै ॥७॥ मिलेहुये पंचभूतोंसे समस्त जनसमूह पृथक् २ ऐसे उत्पन्न हुयेहैं जैसे एकही वृक्षसे पृथक् २ प्रतिमा ॥ ८ ॥

काष्ठेतरत्काष्ठभारेकिंचिदन्यन्नदृश्यते ॥ भूतपिंडेतरद्देहेकिंचिदन्यन्नदृश्यते ॥९॥ भूतपंचकविक्षोभनाशोत्पादेषुहेजनाः ॥ हर्षामर्षविषादानांकिंभवंतोवशंगताः ॥ १० ॥ कोनामातिशयःपुंसांस्त्रीनाम्न्यपरनाग्निच ॥ पेलवेभूतसंघातेप्रोद्भूतजनपातवत् ॥ ११ ॥ सन्निवेशांशवैचित्र्यमज्ञानामेवतुष्टये ॥ तज्ज्ञानांतुयथाभूतभूतपंचकदर्शनम् ॥ १२ ॥

अर्थ—जैसे काष्ठके भारमें काष्ठके सिवाय और कुछ नहीं देखपडता ऐसेही इस देह पंचभूतके पिंड (मेल) के सिवाय और कुछ नहीं है ॥ ९ ॥ हे जन ! पांचोभूतके क्षोभ, नाश और उत्पत्तिमें हर्ष क्रोध तथा विषादके वशमें क्यों प्राप्त होतेहो ॥ १० ॥ व्यामोह तथा रागसे पतंग जैसे अग्निमें गिरतेहैं ऐसेही स्त्रीरूप अन्यनामयुक्त तुच्छभूतके संघातरूप विषयअग्निमें गिरनेवाले पुरुषोंको कौनसी विशेषता है जिससे कि वे इसमें गिरनेकी चेष्टा करतेहैं ॥ ११ ॥ सुकुमारता तथा शरीर[illegible]ता आदिकी रचनाकी विचित्रतारूप विशेषता तो अज्ञानियोंकेही प्रसन्नताके लिये है और ज्ञानियोंको पदार्थ पंचभूतका दर्शनमात्र है ॥ १२ ॥

मृत्पुंसांयामिथःशिलापुत्रकयोर्यथैकोपलपुत्रयोः ॥ श्लिष्टयोरपिनोरागस्तथाचित्तशरीरयोः ॥ १३ ॥ नान्योन्यस्नेहसंबंधदृशोन्योन्यमाशयःसंगमेभवेत् ॥ बुद्धींद्रियात्ममनसांसंगमेतादृशोऽस्तुते ॥ १४॥ इतश्चेतश्चजातानियथासंश्लेषभाजनंशैलपुत्रकाः ॥ देहेंद्रियात्मप्राणाश्चकस्यात्रपरिदेवना ॥ १५ ॥ तरंगास्तृणजालानितथाभूतानिदेहदृक् ॥ १६ ॥ यंत्यलम् ॥

अर्थ—जैसे एक पाषाणसे बनी दो प्रतिमाओंके मिलनेपरभी राग नहींहोता ऐसेही चित्त और शरीरकाभी है ॥ १३ ॥ मृत्तिकासे रचित पुरुषोंके समागम होनेपर जैसा ममतादिशून्य आशय होताहै वैसाही बुद्धि, इन्द्रिय, आत्मा और मनके समागममें तुमारा हो ॥१४॥ जैसे पर्वतसे घढीहुयी प्रतिमाओंका परस्पर प्रेम नहींहोता ऐसेही देह, इन्द्रिय, आत्मा तथा प्राणके अर्थ इस संसारमे किसका विलाप होसकताहै ॥ १५ ॥ जैसे भिन्न २ देशकालमे उत्पन्न तृणोंको तरंग एकत्र करती हैं ऐसेही पंचभूतोंको आत्मा ॥ १६ ॥

संयुज्यंतेवियुज्यंतेतृणान्यब्धिजलेयथा ॥ मुक्तांतःकलनंदेहेभूतान्यात्मनिवैतथा ॥ १७ ॥ आत्माचित्ततयादेहभूतान्याश्लेषयन्स्थितः ॥ तृणान्यावृत्तवृत्तांतकलनोतिसिक्कमब्धिवत् ॥ १८ ॥ प्रबोधाच्चैत्यतांत्यक्त्वाव्रजत्यात्मात्मतांस्वयम् ॥ स्वस्पंदवशतोवारित्यक्त्वाच्छत्वमिवाच्छताम् ॥ १९ ॥ ततोविश्लिष्टभूतौघोदेहंसंप्रतिपश्यति ॥ वायुस्कंधगतोजंतुर्वसुधामंडलंयथा ॥ २० ॥

अर्थ—जैसे समुद्रके जलमें तृण मिलते और पृथक् होतेरहतेहैं ऐसेही रागादि अभिमानके त्यागपूर्वक पुत्र पशुआदि प्राणी तथा पंचभूत आत्मामे ॥ १७ ॥ जैसे समुद्र आवर्ताकार कल्पनासे बढेहुये वेषको प्राप्त होकर तृणोंको एकत्र करतेहुये स्थितहै ऐसेही चित्तस्वरूपको प्राप्त होकर आत्मा पंचभूतोंको एकत्र करतेहुये स्थितहै ॥ १८ ॥ ज्ञानसे विषयरूपताको त्यागकर यह जीव अपने ब्रह्मरूपताको ऐसे प्राप्त होताहै जैसे संचलनसे मलिनताको प्राप्त जल अपनी मलिनताको त्यागकर स्वच्छरूपताको प्राप्त होताहै ॥ १९ ॥ और प्रबोधसमयमें पांचोंभूतोंके समूहको पृथक् करनेवाला अपने देहको ऐसे देखताहै जैसे वायुमंडलमें स्थित आकाशचारी देवआदि भूमंडलको ॥ २० ॥

पृथक्भूतगणंदृष्ट्वादेहातीतोभवत्यजः ॥ परंप्रकाशमायातिसूर्यकांतिरिवाहनि ॥ २१ ॥ जानात्यथात्मनात्मानंमानमेयामयोज्झितम् ॥ मुक्तक्षीबतयेवांतःस्वांसंविदमनुस्मरन् ॥ २२ ॥ आत्मैवस्पंदतेविश्वंवस्तुजातैरिवोदितम् ॥ तरंगकणकल्लोलैरनंतांब्वंबुधाविव ॥ २३ ॥ एवंप्रायमहाबोधावीतरागागतैनसः॥ जीवन्मुक्ताश्चरंतीहमहासत्वपदंगताः ॥ २४ ॥

अर्थ—भूतोंके समूहको पृथक् २ देखकर देहातीत वह जीव अजन्मा होजाताहै और परमप्रकाशको ऐसे प्राप्त होताहै जैसे दिनमें सूर्य्यकांतमणि ॥ २१ ॥ इसके अनंतर प्रमाण प्रमेय तथा विकारोंसे रहित अपने आत्माको ऐसे देखताहै जैसे मदिराके मदसे विनिर्मुक्त प्राणी स्मरण करताहुआ अपने पूर्वकालके ज्ञानको ॥ २२ ॥ इन सब वस्तुसमूहोंके रूपसे आविर्भूतके समान आत्माही यह सब चेष्टा ऐसे करताहै जैसे समुद्रमें तरंगके कणोंके कल्लोलसे अनन्तप्रकारका जल ॥ २३ ॥ इसप्रकार इस संसारमें महाबोधको वीतराग, पापरहित, और ब्रह्मपदको प्राप्त जीवन्मुक्त महात्मालोग विचरतेहैं ॥ २४ ॥

यथाचरंतिविविधैर्मणिरत्नैर्महोर्मयः ॥ निरस्तवासनाश्चित्तव्यवहारैस्तथोत्तमाः ॥ २५ ॥ नकूलकाष्ठैर्जलधिर्नरजोभिर्नभस्तलम् ॥ नम्लायतिनिजैर्लोकव्यवहारैरिहात्मवान् ॥ २६ ॥ गतैरभ्यागतैःस्वच्छैश्चपलैर्मलिनैर्जडैः ॥ नरागोनांबुधेर्द्वेषोभोगैश्चाधिगतात्मनः ॥ २७ ॥ यन्मनोमननंकिंचित्समग्रंजगतिस्थितम् ॥ तच्चैत्योन्मुखचित्तस्वविलासोल्लसनंविदुः ॥ २८ ॥

अर्थ—जैसे समुद्रमें अनेकप्रकारके रत्नोंसे वेष्टितभी महातरंग विचरतेहैं ऐसेही वासनारहित ज्ञानी महात्मा लोग रत्न आदिसे पूर्णभी चित्तसे पाषाणकी शिलाके सदृश उनसें व्यवहार करतेहैं ॥ २५ ॥ जैसे भूतलके काष्ठोंसे समुद्र और धूलियोंसे आकाश मलिन नहींहोता ऐसेही संसारके व्यवहारोंसे आत्मज्ञानी ॥ २६ ॥ उत्तमभोगोंसे राग और निकृष्टसे द्वेषको आत्मज्ञानी पुरुष ऐसे नहीं प्राप्त होता जैसे स्वच्छ वा मलिन चंचल तरंगादिके गमनागमनसे समुद्र ॥ २७ ॥ जो कुछ इस जगत्में स्थित है वह समस्तमनका मननमात्र और विषयकी ओर उन्मुख चेतनके विलासका उल्लास है ऐसा आत्मज्ञानी लोग जानतेहैं ॥ २८ ॥

यदहंयच्च भूतादिकालत्रितयभावियत् ॥ दृश्यदर्शनसंबंधविस्तारैस्तद्विजृंभते ॥२९॥ यद्दृश्यंतदसत्सद्वादृष्टिमेकामुपाश्रितम् ॥ अन्यत्त्वलेपकंतस्माद्धर्षशोकदृशौकुतः ॥ ३० ॥ असत्यमेवासत्यंहिसत्यंसत्यंसदेवहि ॥ सत्यासत्यमसद्विद्धितदर्थंकिंनुमुह्यसि ॥ ३१ ॥ असम्यग्दर्शनंत्यक्त्वासम्यक्पश्यसुलोचन ॥ नकश्चिन्मुह्यतिप्रौढःसम्यग्दर्शनवानिह ॥ ३२ ॥

अर्थ—जो कुछ " अहम् " मैं आदि सब तीनोंकालमें होनेवाला दृश्यदर्शनके संबंधके विस्तारोंसे भान होताहै वह सब मनही विकसित होरहाहै ॥ २९ ॥ दृश्य तथा दर्शनके मध्यदर्शन (दृक्) के आधीन सिद्धिवाला दृश्य सत् वा असत्‌रूपसे निर्णीत न होनेसे हर्षशोकके अयोग्य है और स्वयंसिद्ध दृक्‌रूप आत्मा तो असंग है इसलिये हर्षशोककी दृष्टि कहां ? ॥ ३० ॥ हे रामजी ! जो तुमारा हर्ष वा शोक असत्यकेलिये है वा सत्यकेलिये अथवा सत्यासत्यकेलिये इनमेंसे असत्य है वह तो असत्यही है उसके अर्थ हर्षशोक क्यों ? और सत्य जो है वह तो सत्य होनेसे नित्य प्राप्त है उसके लाभके अर्थ हर्ष और सदा प्राप्त होनेसे नाशप्रयुक्त शोकभी अयोग्य है और विरुद्ध दो धर्मोंका समावेश न होनेसे सत्यासत्यको तो मिथ्याही जानो उसकेलिये तुम क्यों मोहित होतेहो ? ॥ ३१ ॥ हे

उत्तमनेत्र रामजी! असम्यक् (मिथ्या) दर्शनको त्यागकर सम्यक् दर्शनको देखो और सम्यक्दर्शनमें दृढ प्राणी कहीं मोहको नहीं प्राप्त होता ॥ ३२ ॥

दृश्यदर्शनसंबंधविस्तारैस्ताद्विजृंभते ॥ दृश्यदर्शनसंबंधेयत्सुखंपारमात्मिकम् ॥ ३३ ॥ अनुभूतिमयंतस्मात्सारंब्रह्मेतिकथ्यते ॥ दृश्यदर्शनसंबंधेसुखसंविदनुत्तमा ॥ ३४ ॥ ददात्यज्ञायसंसारंज्ञायमोक्षंसदोदयम् ॥ दृश्यदर्शनसंबंधसुखमात्मवपुर्विदुः ॥ ३५ ॥ तद्दृश्यवलितंबंधस्तन्मुक्तंमुक्तिरुच्यते ॥ दृश्यदर्शनसंबंधसुखसंविदनामया ॥ ३६ ॥

अर्थ—और दृश्यदर्शनके सम्बन्धके विस्तारसे मनरूप आत्मा प्रकाशित होरहाहै और दर्शनके सम्बन्धमें जो परमात्मा सम्बन्धी अनुभवरूप सुख है वह वृत्ति तथा उपाधिकृत भेदके निराशसे जो सुख है वह अखण्डरूप ब्रह्मरूपही है ॥ ३३ ॥ इसलिये अनुभवरूपही सार ब्रह्म कहाताहै और दृश्यदर्शनके सम्बन्धमें जो सर्वोत्तम सुख संवित् है ॥ ३४ ॥ वह अज्ञानियोंकेलिये संसार देती है और ज्ञानियोंको सदा अभ्युदयको प्राप्त मोक्ष देती है, और दृश्यदर्शनके सम्बन्धमें जो अनुभवरूप सुख है वही आत्माका शरीर कहागयाहै वही सुख दृश्य (विषय) से वेष्टित होनेसे बंध और दृश्यसे मुक्त होनेसे मुक्ति कहाजाताहै और दृश्यदर्शनके सम्बन्धमें विकाराहित जो सुख संवित् है ३६

क्षयातिशयमुक्ताचेत्तन्मुक्तिःसोच्यतेबुधैः ॥ दृश्यदर्शनसंबंधेयानुभूतिःस्वगोचरा ॥ ३७ ॥ दृश्यदर्शननिर्मुक्तातामालंब्यभवाभवः ॥ सौषुप्तीदृष्टिरेषाहियात्येवंसंप्रकाशते ॥ ३८ ॥ एवंचयातितुर्यत्वमेवंमुक्तिरितिस्मृता ॥ दृश्यदर्शनमुक्तायांयुक्तायांपरयाधिया ॥ ३९ ॥ दृश्यदर्शनसंबंधसंविदस्थांतुराघव ॥ नात्मास्थूलोनचैवाणुर्नप्रत्यक्षोनचेतरः ॥ ४० ॥

अर्थ—वह क्षय तथा अतिशयसे निर्मुक्त होनेसे पंडितलोगोंसे मुक्ति कहीगई है और दृश्यदर्शनके सम्बन्धमें जो अनुभव है वही अखंड पूर्णानन्दका स्फुरणरूप ब्रह्म है ॥ ३७ ॥ हे रामजी! दृश्यदर्शनसे निर्मुक्त जो सुख संवित् है उसको अवलम्बन करके तुम संसारसे रहित हो और इसप्रकार अपने सुखस्वरूपके अवलम्बन करनेसे सुषुप्तिकी जो वृत्ति है वह नष्ट होजाती है और अपने स्वरूपकी दृष्टि प्रकाश करती है ॥ ३८ ॥ इसप्रकार तुरीया अवस्था प्राप्त होती है और इसीप्रकार मुक्ति कहीगई है, और दृश्यदर्शनसे निर्मुक्त और परमबुद्धिसे युक्त यह संवित् है ॥ ३९ ॥ उसमें दृश्यदर्शनके सम्बन्धकी संवित् तुरीयाअवस्थाको प्राप्त होती है. और हे रामजी! इस तुरीया अवस्थारूप मुक्तिमें आत्मा न स्थूल न अणु न प्रत्यक्ष न अप्रत्यक्ष रहताहै ॥ ४० ॥

नचेतनोनचजडोनचैवासन्नसन्मयः ॥ नाहंनान्योनचैवैकोनानेकोनाप्यनेकवान् ॥ ४१ ॥ नाभ्याशस्थोनदूरस्थोनैवास्तिनचनास्तिच ॥ नप्राप्योनातिचाप्राप्योनवासर्वोनसर्वगः ॥ ४२ ॥ नपदार्थोनापदार्थोनपंचात्मानपंचच ॥ यदिदंदृश्यतांप्राप्तंमनःषष्ठेंद्रियास्पदम् ॥ ४३ ॥ तदतीतंपदंयत्स्यात्तन्नकिंचिदिवेहतत् ॥ यथाभूतमिदंसम्यग्ज्ञस्यसंपश्यतेजगत् ॥ ४४ ॥

अर्थ—और न चैतन्यगुणका आश्रय है न जड है न अस्ति अर्थात् द्वितीय पदार्थ विकारसे युक्त है, न असत् है न अहं (मैं) रूप है न अन्यरूप है न एकत्वसंख्या और न अनेकत्वसंख्याका आश्रय है ॥ ४१ ॥ निजअनुभवरूप होनेसे न समीपस्थ न दूरस्थ है, सत्तारूप होनेसे न सत्ताका आश्रय है न अभावका, अपना बोधरूप होनेसे न प्राप्य है न सर्वथा अप्राप्य है, सबसे पृथक् होनेसे न सर्वरूप है न सर्वगामी है ॥ ४२ ॥ वाणीका अविषय होनेसे न पदार्थरूप है और तुरीयावस्थाका लक्ष्य होनेसे अपदार्थभी नहीं है. पंचभूतोंका आत्मा यहभी पंचभूतरूपभी नहीं है, किंतु यह जो कुछ दृश्यरूपताको प्राप्त है वह षष्ठ (छठें) इन्द्रियके योग्य मनही है ॥ ४३ ॥ और उस मनसे परे जो आत्मतत्व है वह कुछ नहीं है यह नहीं किन्तु यथास्थित (मिथ्या) इस जगत्को देखनेवालेको सब कुछ वही है४४॥

सर्वमात्ममयंविश्वंनास्त्यनात्ममयंक्वचित् ॥ काठिन्यद्रवणस्पंदखावकाशावलोकनैः ॥ ४५ ॥ आत्मैवसर्वसर्वेषुभूवार्यनिलखाग्निषु ॥ सत्तैवास्तिनवस्तूनांमायारामचिताविना ॥ व्यतिरिक्तंततोऽस्मीतिविद्धिप्रोन्मत्तजल्पितम् ॥ ४६ ॥ एकोजगंतिसकलानिसमस्तकालकल्पक्रमांतरगतानिगतागतानि ॥ आत्मैवनेतरकलाकलनास्तिकाचिदित्थंमतिर्भवतयातिगतोमहात्मन् ॥ ४७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे मोक्षस्वरूपोपदेशो नाम द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥

अर्थ—सब यह जगत् आत्मामय है और आत्मासे भिन्न कुछभी नहीं है. और काठिन्य, द्रव, संचलन, अवकाश तथा प्रकाशके दर्शनोंसे ॥ ४५ ॥ आत्माही सब पृथिवी, जल, वायु, आकाश तथा अग्निमें सबरूप धारण क

रके नटके समान स्थितहै. हे रामजी ! वस्तुओंकी सत्ताही नहीं है जो चित्के बिना हो और आत्मासे भिन्न मैं हुं इस कथनको उन्मत्तका प्रलय समझो ॥ ४६ ॥ हे महात्मन् रामजी ! संपूर्ण देश तथा कालमें और अनंतकल्पोंके क्रमोंमें, तथा मध्यमे प्रविष्ट जो अनेक ब्रह्मांड हैं और उन ब्रह्मांडोंमें अनेकप्रकारके जीवोंके गमनागमनरूप संचार हैं यह सब एक आत्माही है इसमें कोई अन्यकलाकी कल्पना नहीं हैं, तुम इसप्रकारकी बुद्धिसे युक्त होकर उस बुद्धिसेभी परे होके संसारसे अतीत (परे) होजाओ ॥ ४७ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषानुवादे मोक्षस्वरूपोपदेशो नाम द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥

दो अहंभावना ग्राह्य हैं और अन्य अहंभावना त्याज्य है और तीनों अहंभावनाके अभावमें मुक्तिकी अनिच्छा इस ७३ के सर्गमें वर्णन कीगई है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवंविचारयादृष्ट्याद्वैतत्यागेनराघव ॥ स्वभावःप्राप्यतेतज्ज्ञैस्तज्ज्ञैश्चिंतामणिर्यथा ॥ १ ॥ अथेमामपरांदृष्टिंशृणुरामानयायथा ॥ दृश्यस्यात्मानमचलंभविष्यसिचदिव्यदृक् ॥ २ ॥ अहंखमहमादित्योदिशोहमहमप्यधः ॥ अहंदैत्याअहंदेवालोकाश्चाहमहंमहः ॥ ३ ॥ अहंतमोऽहमभ्राणिभूःसमुद्रादिकंत्वहम् ॥ रजोवायुरथाग्निश्चजगत्सर्वमिदंत्वहम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! इसप्रकार द्वैतके त्यागसे विचारकी दृष्टिसे आत्मज्ञानी लोग स्वभाव अर्थात् अपने आत्माके स्वरूपमें स्थितरूप मुक्तिको ऐसे प्राप्त होतेहैं जैसे चिंतामणिके ज्ञाता देवताआदि चिंतामणिको ॥ १ ॥ हे रामजी ! इसके पश्चात् इस दृष्टिको तुम सुनो जिसप्रकार इस दृष्टिसे दृश्यके स्वरूपको तथा अचल अपने आत्माको जानोगे और दिव्यदृष्टिभी होजाओगे ॥ २ ॥ वह यह कि मैं (आत्मा) आकाश हुं, मैंही सूर्य्य और सब दिशा हुं, मैंही ऊपर और नीचे हुं, दैत्य मैं हुं, देवता मैं हुं, सब लोक मैं और चन्द्रमा आदिकी प्रभा मैं हुं, अंधकार मैं हुं, मेघमंडल मैं हुं, पृथिवी और समुद्रआदि मैं हुं, धुलि मैं हुं, अग्नि मैं हुं, और यह संपूर्ण जगत् मैं हुं॥४॥

जगत्त्रयेऽहंसर्वत्रयआत्मैवकिलास्थितः॥कोऽहंकिमन्यद्देहादिद्वित्वमेकस्यकीदृशम् ॥५॥ इतिनिश्चयवानंतभूतमात्मतयाजगत् ॥ पश्यहर्षविषादाभ्यांनावशःपरिभूयसे ॥६॥ तन्मयेऽस्मिन्किलजगत्यखिलेसंस्थितेऽनघ ॥ किमात्मीयंपरंकिंस्यात्कमलेक्षणकथ्यताम् ॥७॥ किंतज्ज्ञव्यतिरेकेणविद्यतेयदुपागतम् ॥ हर्षमेतुविषादंवाविषादेऽज्ञोजगन्मयः ॥ ८ ॥

अर्थ—तीनों लोकमें मैं आत्माही नियश्चरूपसे स्थित हुं, सबसे पृथक् परिच्छिन्न मैं क्या हुं अर्थात् कुछ नहीं. मुझसे अन्य देहादिभी क्याहै, और सर्वभूत एक जो मैं हुं उसका स्वगत (निज) भेदभी कैसाहै ॥ ५ ॥ हे रामजी ! ऐसा विचार करके नियश्चयुक्त होकर संपूर्ण जगत् आत्मारूपसे देखो तब तुम हर्षशोकसे अवश होके पराजित नहीं होओगे ॥ ६ ॥ हे कमलनेत्र तथा पापरहित रामजी ! इस संपूर्ण जगत्के आत्मामय स्थित होनेपर क्या अपना है और क्या अन्यका है सो कहो ॥ ७ ॥ जगत्में यदि कुछ प्राप्तहै वह आत्मज्ञानीसे पृथक् क्याहै कि जिसकेलिये वह हर्ष वा विषादको प्राप्तहो. और यदि विषादको प्राप्त हो तो वह अज्ञ जगन्मय है न कि चिन्मय ॥ ८ ॥

अहंकारदृशावेतेसात्त्विकेद्वेऽतिनिर्मले ॥ तत्त्वज्ञानात्प्रवर्तेतेमोक्षदेपारमार्थिके ॥९॥ परोऽणुस्सकलातीतरूपोऽहंचेत्यहंकृतिः ॥ प्रथमासर्वमेवाहमित्यन्योक्तारवूद्वह ॥ १० ॥ अहंकारदृगन्यात्तृतीयाविद्यतेऽनघ ॥ देहोऽहमितितांविद्धिदुःखायैवनशांतये ॥११॥ अथचैतत्त्रयमपित्यक्त्वासकलसिद्धये ॥ यच्छेषंतदुपालंब्यतिष्ठावष्टब्धतत्परः ॥ १२ ॥

अर्थ—ये वक्ष्यमाण दो अहंकारकी दृष्टि निर्मल और सात्विक हैं, औरतत्वज्ञानसे होती हैं, तथा मोक्षदायक और पारमार्थिक हैं ॥९॥ हे रघुकुलश्रेष्ठ ! आकाशसेभी सूक्ष्म सबसे परे चित्रूप आत्मा मैं हुं यह अहंकार प्रथम है और सब कुछ मैं हुं यह अहंकार द्वितीय है ॥ १० ॥ हे पापरहित रामजी ! तृतीय अहंकार यह है कि यह देह मैं हुं, उसको तो तुम दुःखकेही अर्थ समझो न कि शांतिकेलिये ॥ ११ ॥ इसके अनन्तर तुम तीनों अहंकारोंको त्यागकर जो शेष निरहंभावरूप पूर्ण चिन्मात्र है उसका अवलंबन करके उसीमें तत्पर होके स्थित रहो ॥ १२ ॥

सर्वातीतस्वरूपोऽपिसर्वसत्तातिगोऽपिच ॥ असत्तापूरितजगदस्त्येवात्माप्रकाशकः ॥ १३ ॥ स्वानुभू त्यैवपश्याशुसएवासिसदोदितः ॥ साशयंहृदयग्रंथिंत्यजतत्त्वविदांवर ॥ १४ ॥ नात्मास्त्यनुमयाराम नचाप्तवचनादिना ॥ सर्वदासर्वथासर्वंसप्रत्यक्षोऽनुभूतितः ॥१५॥ यदिदंस्पर्शनंस्पंदंकिंचिद्यत्संविदा यपि ॥ तत्सर्वमात्माभगवान्दृश्यदर्शनवर्जितः ॥ १६ ॥

अर्थ—सबसे अतीतस्वरूपभी, सबसत्तासे परेभी वह अपनी बाधरूप शक्तिसे जगत्को पूर्ण करनेवाला स्वप्रकाशरूप आत्मा है ॥ १३ ॥ हे तत्वज्ञानियोंमें श्रेष्ठ रामजी ! तुम शीघ्र अपने अनुभवसे देखो कि जो सदा उदयदेशै प्राप्त है वही आत्मा तुम हो, और देहादिकी वासनासहित हृदयको ग्रंथिको त्यागो ॥ १४ ॥ हे रामजी ! आत्मा अनुभव वा शब्दप्रमाणसे गम्य नहीं है किंतु सदासर्वथा सबरूप वह अनुभवसेही प्रत्यक्ष है ॥ १५ ॥ बाह्य तथा आभ्यन्तरकी वृत्तिकी चेष्टासे साक्षात् पदार्थोंका प्रत्यक्षरूप जो दर्शन है अनुमान, उपमान, तथा शब्दप्रमाण-जनित जो संविद् है वह सब दृश्य तथा अंतःकरणकी वृत्तिरूप उपाधिके त्यागसे भगवान् आत्माही है ॥ १६ ॥

नसन्नासन्नसौदेवोनाणुर्नापिमहानसौ ॥ नाप्येतयोर्दशोर्मध्यंसएवेदंचसर्वतः ॥ १७ ॥ सएवचैवंवद तिसचवक्तुंनयुज्यते ॥ नतदन्यदिदंतातपश्यात्मानमनामयम् ॥ १८ ॥ नात्मायमयमप्यात्मासंज्ञाभेद इतिस्वयम् ॥ तेनैवसर्वगतयाशक्त्यास्वात्मनिकल्पितः ॥ १९ ॥ संस्थितःसहिसर्वत्रत्रिषुकालेषुभा स्वरः ॥ सूक्ष्मत्वात्सुमहत्वाच्चकेवलंनविभाव्यते ॥ २० ॥

अर्थ—वहआत्मा सत्ताका आश्रय नहीं और असत् है, न वह देव अणु है, न यह महान् है, और न सत् असत्दृष्टिके मध्य सत्यासत्यरूप है, किन्तु यह सब कुछ वही है ॥ १७ ॥ वह आत्मा है, यह प्राणि कहाता तो है परंतु वह कथनके योग्य नहीं है. हे प्रिय रामजी ! उससे अन्य यह कुछ नहीं है, इससे सर्वत्र विकाररहित उस आत्मा-को देखो ॥ १८ ॥ यह आत्मा है, यह आत्मा नहीं है, इस नामरूपके विभागको उस आत्माने अपनी सर्वगामिनी अज्ञानशक्तिसे अपने आत्मामें कल्पित कियाहै ॥ १९ ॥ वह प्रकाशमान आत्मा तीनों कालमें सर्वत्र स्थितहै और अतिसूक्ष्म तथा महान् होनेसे स्थूलदेहादि पदार्थोंमें आसक्तबुद्धिवाले पुरुषोंसे विचारनेके योग्य नहीं है ॥ २० ॥

सत्स्वनंतपदार्थेषुजीवत्वेनाभिबिंबति ॥ आत्मापुर्यष्टकादर्शेस्वभावशतःस्वतः ॥ २१ ॥ पुर्यष्टकोद यादेवस्वयमात्मानुभूयते ॥ सर्वदासर्वसंस्थःखेधनास्पंदादिवानिलः ॥ २२ ॥ चिदात्मासर्वगोव्यापी नक्वचिन्नासंस्थितः ॥ यद्वत्सर्वपदार्थानांसत्तातद्वन्महेश्वरः ॥ २३ ॥ सतिपुर्यष्टकेतस्मिञ्जीवःस्फुर तिनोपले ॥ सतिवायाविवरजःसतिदीपइवेक्षणम् ॥ २४ ॥

अर्थ—सृष्टिके क्रमसे उत्पन्न अनेक भोग्य तथा भोगके स्थानोंके विद्यमान रहतेभी पुर्य्यष्टक (लिंगशरीर) रूप दर्पणमें अपने स्वभाववश जीवरूपसे प्रतिबिंबित होताहै ॥ २१ ॥ सर्वदा सबमें स्थितभी आत्मा लिंगशरीरमें उदय होनेसे अहम् इस रूपसे प्रकट ऐसे अनुभूत होताहै जैसे आकाशमें व्यजनआदिसे अभिघात करनेसे वायु ॥२२॥ चित्स्वरूप सर्वव्यापी आत्मा कहीं देहमात्रमेंही स्थितहै यह बात नहीं है किन्तु जैसे सब पदार्थोंकी सत्ता है वैसा वह महेश्वर आत्माभी स्थितहै ॥ २३ ॥ उस लिंगशरीरके विद्यमान रहते जीव ऐसे स्फुरित होताहै जैसे वायुके रहते धूलि उड़ती है और दीपक रहते प्रकाश होताहै ॥ २४ ॥

इयंपुर्यष्टकेस्वेच्छास्वात्मन्येवात्मनिस्थिते ॥ सतिस्फुरत्यभ्युदितेभानाविवजनैषणा ॥ २५ ॥ यदिसू र्येस्थितेव्योम्नितादृशोचितसंस्थितिः ॥ नश्यतिव्यवहारोऽयंभास्करेतत्किमागतम् ॥ २६ यद्यात्मनि स्थितेदेवेतत्सत्तालब्धसंस्थितिः ॥ देहोनाशमुपायातितत्किंनष्टमिहात्मनि ॥ २७ ॥ नजायतेनम्रियते नादत्तेनाभिवांछति ॥ नमुक्तोनचबद्धोऽयमात्मासर्वस्यसर्वदा ॥ २८ ॥

अर्थ—लिंगशरीरके रहते जो विचित्रभोगकी इच्छा है वह परमप्रेमास्पद निरतिशयानन्द आत्माके स्फुरित होनेपरही ऐसे होती है जैसे आकाशमें सूर्य्यके स्फुरित रहनेपर उस समयके उचित सबजनोंकी क्रियाके फलकी इच्छा, क्योंकि सबमें आत्माहीके प्रसन्नार्थ है ॥ २५ ॥ और यदि सूर्य्यके आकाशमें स्थित रहनेपर उस समयके फलके अनुकूल जिसकी स्थिति है ऐसा यह व्यवहार नष्ट होजाय तो इसमें सूर्य्यमें क्या विशेषता प्राप्त हुई ॥ २६ ॥ ऐसेही आत्मदेवके स्थित रहते उस आत्माकी सत्तासे प्राप्त स्थिति यह देह नाशको प्राप्त हो तो आत्माका क्या नष्ट हुआ ॥ २७ ॥ यह सब प्राणिमात्रका आत्मा न उत्पन्न होताहै न मरताहै, न ग्रहण करताहै, न कुछ चाहताहै, न बद्ध है और न मुक्त है ॥ २८ ॥

आत्माप्रबोधाभ्युदितानिरात्मन्यात्मतांगता ॥ सर्परज्जुभ्रमाकाराभ्रांतिर्दुःखायकेवलम् ॥ २९ ॥ अनादित्वान्नजातोऽयमजातत्वान्ननश्यति ॥ आत्मात्मव्यतिरिक्तंतुनाभिवांछत्यसंभवात् ॥३०॥ दिक्कालाद्यनवच्छेदान्नबद्धोऽयंकदाचन॥ बंधाभावेकमुक्तिःस्यादमोक्षस्तेनसंस्थितः ॥ ३१ ॥ एवंगुणविशिष्टोऽयमात्मासर्वस्यराघव ॥ अविचारवशान्मूढोलोकोऽयंपरिरोदिति ॥ ३२ ॥

अर्थ—और आत्मा अज्ञानसे उदित, अनात्मामें आत्मताको प्राप्त, रज्जुमें सर्पके भ्रमके आकारवाली यह देहादिमें आत्माकी भ्रांतिके बल दुःखहीके लिये है ॥ २९ ॥ अनादि होनेसे यह आत्मा कदापि उत्पन्न नहीं हुआ, और न उत्पन्न होनेसे नष्ट नहींहोता. और यह आत्मा अपनेसे पृथक् किसीको नहींचाहता. क्योंकि आत्मासे भिन्नका असंभव है ॥ ३० ॥ देशकालादिसे अपरिच्छिन्न होनेसे यह कदाचित् बद्ध नहींहोता, और बद्ध न होनेसे मुक्ति कहां और किसकी, इसलिये मोक्षका अभाव स्थितहै ॥ ३१ ॥ हे रामजी ! इसप्रकारका स्वभावसहित सबका आत्मा है, अविचारकेही बससे यह मूढ संसार होताहै ॥ ३२ ॥

सम्यगालोकिताशेषपूर्वापरजगत्क्रमः ॥ माशोकंगच्छसुमतेमौर्ख्योपगतलोकवत् ॥ ३३ ॥ द्वेएवकलनेत्यक्त्वामोक्षबंधात्मिकेयथा ॥ विदुषाव्यवहर्त्तव्यंयंत्रेणेवात्ममौनिना ॥ ३४ ॥ नमोक्षोनभसःपृष्ठेनपातालेनभूतले ॥ मोक्षोहिचेतोविमलंसम्यग्ज्ञानविबोधितम् ॥ ३५ ॥ सकलाशास्वसंसत्त्यायत्स्वयंचेतसःक्षयः ॥ समोक्षनाम्नाकथितस्तत्त्वज्ञैरात्मदर्शिभिः ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे सुमते रामजी ! भलीभांति पूर्वापर संपूर्ण जगत्का क्रम विचारकरके मूर्खताके अनुयायीजनोंके सदृश तुम शोकको न प्राप्त होओ ॥ ३३ ॥ बंधमोक्षरूप दोनो कल्पनाओंको त्यागकर विद्वान्को ऐसे मौन होके व्यवहार करनाचाहिये जैसे गोधूम (गेहुं) पीसनेमें जलयंत्र ॥ ३४ ॥ मोक्ष न तो आकाशमें है, न पातालमें, और न भूतलमें है, किंतु उत्तम आत्मज्ञानसे बोधित विमलचित्तही मोक्ष है ॥ ३५ ॥ सब प्रार्थनीय पदार्थोंमें जो आसक्तिके अभावसे चित्तका स्वयं क्षय होनाहै उसीको उसके ज्ञाता आत्मज्ञानियोंने मोक्ष कहाहै ॥ ३६ ॥

यावत्प्रबोधोविमलोनोदितस्तावदेवसः ॥ मौर्ख्याद्दीनतयारामभक्त्यामोक्षोऽभिवांछ्यते ॥ ३७ ॥ परंप्रबोधमासाद्यचित्तेचित्तत्वतांगते ॥ दशमोक्षानवांछ्यंतेकिमुतैकोहिमोक्षकः ॥ ३८ ॥ अयंमोक्षस्त्वयंबंधःपेलवांकलनामिति ॥ परित्यज्यमहात्यागीसत्वमेवभवाभव ॥ ३९ ॥ परिगलितविकल्पनांप्रयातःसगरसुतौघनिखातमेखलांकम् ॥ अवनिवलयमंतरस्तसंगश्चिरमनुपालयसर्वदोदितश्रीः ॥ ४० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे स्वात्मविचारो नाम त्रिसप्ततितमःसर्गः ॥ ३७ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जबतक विमल आत्मज्ञान नहीं उदयको प्राप्त हुआहै तभीतक वह पुरुष दीन होके भक्तिआदिसे मोक्षकी वांछा करताहै ॥ ३७ ॥ परमज्ञानको प्राप्त होकर चित्तके ब्रह्मदशामें प्राप्त होनेपर आत्मासे भिन्न दशमोक्षभी नहीं वांछित होते तो एक तुच्छ मोक्षकी क्या गणना ॥ ३८ ॥ हे संसाररहित रामजी ! यह बंध है, यह मोक्ष है, इस तुच्छ कल्पनाको त्यागकर महात्यागी मोक्षरूप तुमही होजाओ ॥ ३९ ॥ नष्ट होगई हैं कल्पना जिसकी ऐसी दशाको प्राप्त आभ्यन्तरसे संगरहित और सदा उदित शोभाको धारणकरनेवाले तुम चिरकालतक सगरके पुत्रोंसे खनीहुई समुद्ररूप मेखलासे चिन्हित इस पृथिवीरूप वलय (कंकण) को पालन करो ॥ ४० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे उपशमप्रकरणे स्वात्मविचारो नाम त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥

चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥

प्रमाद (अज्ञान) से यह संसारकी भ्रांति होती है और ज्ञानसे आत्मामें पूर्णता होती है, तथा जीवन्मुक्तिके गुणोंकी पंक्ति इस विषयका विस्तारसे इस ७४ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ लीलयापश्यतिवपुःकालेनात्मनिजायते ॥ रम्यस्यापश्यतोवक्रंह्रदिदौरूप्यधीरिव ॥ १ ॥ तद्वशादियमायातामहतीमेदुरोदरा ॥ मायामदमहाशक्तिःसुरास्वादलवादिव ॥ २ ॥ तयान्याविकारिण्यातदतद्भावभूतया ॥ इदंसंपन्नमखिलंतापादिवमरौपयः ॥ ३ ॥ मनोबुद्धिरहंकारोवासनाश्चेंद्रियाण्यपि ॥ एवंकलितनामांकःस्फुरत्यात्माब्धिरंबुभिः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-प्रलय तथा सुषुप्तिमें अज्ञानसे आच्छादित होनेसे परमप्रेमास्पद अपने स्वरूपको आत्माके न देखनेपर काम कर्म वासनाके परिपाकसे क्रमप्राप्त सृष्टि तथा जागरणकालमें चेतनकी लीलामात्रसे सूक्ष्म स्थूल तथा समष्टिव्यष्टिशरीर ऐसे उत्पन्न होताहै जैसे रम्य स्त्रीपुत्रआदिके मुख न देखनेसे विरहीपुरुषके हृदयमें म्लानि, कृशता, तथा कुरूपताआदिसे उदासीनता उत्पन्न होती है ॥ १ ॥ इन्ही सूक्ष्म स्थूल तथा समष्टिव्यष्टिशरीरमें अहंभावसे, अध्याससे यह महान् उदरवाली माया ऐसे प्राप्त हुई है जैसे मदिराके आस्वादसे मद्यामदकी शक्ति ॥२॥ पुण्यपापकी वासनादि अनर्थकी परम्परारूप विकारमयी और आत्माके अन्यथा भावसे उत्पन्न उस मायाहीसे यह सम्पूर्ण जगत् ऐसे उत्पन्न हुआहै जैसे अधिकतापसे मरुस्थलमें जल ॥ ३ ॥ मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, वासना और इन्द्रियां इत्यादि कल्पित नामरूप चिन्हसहित आत्मस्वरूप जलोंसे आत्मा ऐसे स्फुरित होताहै जैसे जलसे समुद्र॥४

चित्ताहंकारयोर्द्वित्वंवचस्यस्तिनवस्तुतः ॥ यच्चित्तंसह्यहंकारोयोऽहंकारोमनोहितत् ॥ ५ ॥ व्यतिरिक्तं हिमाच्छौक्ल्यमितिसंकल्प्यतेयथा ॥ मुधैवकल्प्यतेभेदश्चित्ताहंकारयोस्तथा ॥ ६ ॥ मनोहंकारयोरंतर्द्वयोरेकतरक्षये ॥ क्षीणेद्वेएवहियथापटशौक्ल्येपटक्षये ॥ ७ ॥ तुच्छांमोक्षधियंत्यक्त्वाबंधबुद्धिंतथैषणाम् ॥ स्ववैराग्यविवेकाभ्यांकेवलंक्षपयेन्मनः ॥ ८ ॥

अर्थ—पदार्थोंके मननसे मन, चेतनसे चित्त, निश्चयसे बुद्धि, और अभिमान करनेसे अहंकार, ये सब एकही अंतःकरणके नाम हैं, इसलिये चित्तअहंकारका जो द्वित्व (दो भेद) कथनमात्रके हैं न कि यथार्थ, क्योंकि जो चित्त है वही अहंकार, और जो अहंकार है वही मन है ॥ ५ ॥ जैसे हिम (बर्फ) से शुक्लता पृथक् है यह मिथ्याही लोग कल्पित करते हैं ऐसेही चित्तअहंकारका भेदभी मिथ्याही कल्पित है ॥ ६ ॥ मन और अहंकारके मध्यमें एकके क्षीण होनेपर दोनों ऐसे क्षीण होजातेहैं जैसे पटके नष्ट होनेपर पट और शुक्लता ॥ ७ ॥ तुच्छ मोक्षबुद्धिको त्यागके अनन्तर बंधबुद्धि और धनपुत्रादि एषणाकोभी त्यागकर अपने वैराग्य तथा विवेकसे केवल मनको नष्ट करे ॥ ८ ॥

मोक्षोमेस्त्वितिचित्तांतर्जाताचेद्दृत्थितंमनः ॥ मननोत्केमनस्युच्चैर्वपुर्दोषायकेवलम् ॥ ९ ॥ आत्मन्यतीतेसर्वस्मात्सर्वभूतेथवातते ॥ कोबंधःकश्चवामोक्षोनिर्मूलंमननंकुरु ॥ १० ॥ वायुःस्पंदनधर्मत्वाद्यदाचलतिदेहके ॥ तदास्फुरतिहस्तांगरसनापल्लवावली ॥ ११ ॥ पादपेपल्लवश्रेणींचालयत्यनिलो यथा ॥ तथैवांगावलींवायुर्देहेसंचालयत्यलम् ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! मुझे मोक्ष प्राप्त हो ऐसी इच्छा यदि चित्तमें उत्पन्न हुई तो समझना चाहिये कि मन प्रबलतासे आविर्भूत हुआहै, और मनके मननकी ओर उत्कंठित होनेपर वही (मन) शरीरका आकार धारण करके केवल दोषकेही अर्थ होताहै ॥ ९ ॥ सबसे परे अथवा सर्वभूतमें व्याप्त आत्माके स्थित होनेपर क्या बंध और क्या मोक्ष है, इसलिये तुम अपने मनको मननसे रहित करो ॥ १० ॥ प्राणवायु संचलनधर्म होनेसे जब इस तुच्छदेहमें चलताहै तब हस्त पाद अंग तथा जिव्हारूप पल्लवोंकी पंक्ति चलती है ॥ ११ ॥ जैसे वृक्षमें पल्लवोंकी पंक्तिको वायु संचालित करताहै ऐसेही देहमें अंगोंकी पंक्तिको प्राणवायु संचालित करताहै ॥ १२ ॥

चित्सर्वव्यापिनीसूक्ष्मानचलानैवचाल्यते ॥ नस्वतःस्पंदमायातिदेवाचलइवानिलैः ॥ १३ ॥ प्रतिबिंबितसर्वार्थाकेवलंस्वात्मनिस्थिता ॥ प्रकाशयतिबोधेनजगंतीमानिदीपवत् ॥ १४ ॥ तत्रकोऽयंमुधामोहोभवतामतिदुःखदः ॥ अयंसोऽहंममांगानिममेदंचेतिदुर्धियाम् ॥ १५ ॥ इतिकल्लोलहतयादृशानित्यमनित्यया ॥ ज्ञत्वकर्तृत्वभोक्तृत्वक्रियासमुपलभ्यते ॥ १६ ॥

अर्थ—और सर्वव्यापिनी चित् न चल है और न किसीसे चलायमान होती है, और स्वयं ऐसे नहीं चलीत होती जैसे पवनोंसे पर्वत ॥ १३ ॥ सब पदार्थोंमें प्रतिबिंबित अपने स्वरूपमें स्थित यह चित् ज्ञानद्वारा अनेक ब्रह्मांडोंको ऐसे प्रकाशित करती है जैसे दीप घट पट आदि पदार्थोंको ॥ १४ ॥ इसमें आप सब दुर्बुद्धियोंको यह देहादि मैं हुं, यह मेरे अंग तथा धन है इत्यादि अतिदुःखदायक मिथ्यामोह कहांसे हुआ ॥ १५ ॥ इसप्रकार आत्मासे अत्यंत विरुद्धधर्मयुक्त इस शरीरमें अविद्याके तरंगरूप रागादिसे नष्ट सदा अनित्यदृष्टिसे ज्ञानित्व, कर्तृत्व तथा भोक्तृत्व-आदि धर्ममयी क्रिया प्राप्त होती है ॥ ॥ १६ ॥

अज्ञत्वायमयमागंताभोक्ताकर्तेतिजायते ॥ मुधैवाज्ञाततयोत्थामृगतृष्णेववासना ॥ १७ ॥ अज्ञतैषामनोमत्तमृगंविपयतर्षुलम् ॥ असत्यैवहिसत्येवमृगतृष्णेवकर्षति ॥ १८ ॥ विज्ञातासत्यरूपांगनाशंयातिप

लायते ॥ विप्रमध्यात्परिज्ञातायथाचांडालकन्यका ॥ १९ ॥ अविद्यासंपरिज्ञातानचैनंपरिकर्षति ॥ मृगतृष्णापरिज्ञातातर्षुलंनावकर्षति ॥ २० ॥

अर्थ—उसीमें यह मैं आगंता, भोक्ता, तथा कर्ता हुं इत्यादि मिथ्यावासना ऐसे होती है जैसे अज्ञाततापसे उत्पन्न मृगतृष्णा ॥ १७ ॥ असत्यरूपसे न जानी हुई सत्यके समान यह अविद्यामत्त तथा विषयमें लुब्ध इस मनरूप मृगको ऐसे खींचती है जैसे मृगको मृगतृष्णा ॥ १८ ॥ हे प्रिय रामजी ! असत्यरूपसे जानीहुई यह अविद्या नाशको प्राप्त होकर ऐसे भागती है जैसे ब्राह्मणोंके मध्यसे जानीहुई चाण्डालकी कन्या ॥ १९ ॥ जानीहुई यह अविद्या मनरूप मृगको ऐसे नहीं खींचती जैसे जानी हुई मृगतृष्णा तृषासे पीडित मृगको ॥ २० ॥

परमार्थावबोधेनसमूलंरामवासना ॥ दीपेनेवांधकारश्रीर्गलत्यालोकएतिच ॥ २१ ॥ नास्त्यविद्येतिसंजातेनिश्चयेशास्त्रयुक्तितः ॥ गलत्यविद्यातापेनतुषारकणिकायथा ॥ २२ ॥ देहस्यास्यजडस्यार्थेकिंभोगैरितिनिश्चयः ॥ भिनत्त्याशामलंज्ञातापंजरंकेसरीयथा ॥ २३ ॥ आशापरिकरेरामनूनंपरिहृतेहृदा ॥ पुमानागतसौंदर्योह्लादमायातिचंद्रवत् ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! परमार्थ (आत्मा) के ज्ञानसे मूल (अविद्या) सहित यह वासना ऐसे नष्ट होती है जैसे दीपसे अंधकारकी शोभा और परमप्रकाश प्राप्त होताहै ॥ २१ ॥ शास्त्र तथा युक्तिसे यह निश्चय होनेसे कि अविद्या नहीं है तब यह अविद्या ऐसे गलित होजाती है जैसे तापसे हिमकी कणिका ॥ २२ ॥ इस जडदेहकेलिये भोगोंसे क्या प्रयोजन है ऐसा जिसका निश्चय है वह मनुष्य आशारूपमलको ऐसे भेदन करताहै जैसे पिंजरेको सिंह ॥ २३ ॥ आशाके परिवार देहाभिमान आदि हृदयसे नष्ट होनेपर सुन्दरता आदि गुण प्राप्त पुरुष दूसरोंको ऐसे प्रसन्न करताहै जैसे चन्द्रमा ॥ २४ ॥

परांशीतलतामेतिवृष्टिधौतइवाचलः ॥ निर्वृतिंपरमांधत्तेप्राप्तराज्यइवाधमः ॥ २५ ॥ शोभतेपरयालक्ष्म्याशरदीवनभस्तलम् ॥ आत्मन्येवनमात्युच्चैःकल्पस्यांतइवार्णवः ॥ २६ ॥ भवत्यपेतसंरंभोवृष्टिमूकइवांबुदः ॥ तिष्ठत्यात्मनिसंवेत्ताप्रशांतइववारिधिः ॥ २७ ॥ परंधैर्यमुपादत्तेस्थैर्यंमेरुरिवाचलः ॥ राजतेस्वच्छयालक्ष्म्याशांतेंधनइवानलः ॥ २८ ॥

अर्थ—परमशीतलताको ऐसे प्राप्त होताहै जैसे वृष्टिसे धौत (धुला) पर्वत, और ऐसी शांतिको धारण करताहै जैसे राज्यप्राप्तिसे दरिद्र ॥ २५ ॥ शरत्कालके आकाशके तुल्य परमलक्ष्मीसे शोभित होताहै और अतिमहान् अपने आत्मामें ऐसे नहीं समाता जैसे कल्पके अंतमें समुद्र ॥ २६ ॥ अभिनिवेश तथा क्षोभसे ऐसे रहित होताहै जैसे शरत्कालमें वृष्टिके अंतमें मेघ, और ज्ञानी पुरुष अपने आत्मामें समुद्रके समान शांत रहताहै ॥ २७ ॥ परम धीरता तथा मेरुके समान स्थिरताको प्राप्त होताहै और मोक्षकी लक्ष्मीसे ऐसे शोभित होताहै जैसे इन्धन शान्त होनेपर अग्नि ॥ २८ ॥

भवत्यात्मनिनिर्वाणःप्रशांतइवदीपकः ॥ तृप्तिमायातिपरमांनरःपीतामृतोयथा ॥२९॥ अंतर्दीपोघटइव मध्यज्वालइवानलः ॥ स्फुरद्दीप्तिर्मणिरिवप्रयात्यंतःप्रकाशताम् ॥ ३० ॥ सर्वात्मकंसर्वगतंसर्वेशंसर्वनायकम् ॥ सर्वाकारंनिराकारंस्वमात्मानंप्रपश्यति ॥ ३१ ॥ हसत्यलमतीतास्ताःपेलवादिवसावलीः ॥ यासुस्मरशरश्रेणीचपलंचित्तमास्थितम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—निर्वातस्थानके दीपके तुल्य शांतताको प्राप्त होताहै और अमृत पियेहुये मनुष्यकेसमान परमतृप्तिको प्राप्त होताहै ॥ २९ ॥ जैसे घटके मध्यमें दीप, ज्वालाके मध्यमें अग्नि, और दैदीप्यमानमणि प्रकाशित होताहै ऐसेही आत्मज्ञानी प्रकाशको प्राप्त होताहै ॥ ३० ॥ सर्वमय, सर्वगत, सबके स्वामी, सर्वनायक, सर्वाकार, और निराकार अपने आत्माको देखताहै ॥ ३१ ॥ उन बीतीहुई तुच्छ दिवसोंकी पंक्तिको हंसताहै, जिनमें कि कामदेवके बाणोंसे चित्त चंचल रहताथा ॥ ३२ ॥

संगरंगविनिष्क्रांतःशांतमानमनोज्वरः ॥ अध्यात्मरतिरासीनःपूर्णःपावनमानसः ॥ ३३ ॥ निर्मृष्टकामपंकांकश्छिन्नबंधनिजभ्रमः ॥ द्वंद्वदोषभयोन्मुक्तस्तीर्णसंसारसागरः ॥ ३४ ॥ प्राप्तानुत्तमविश्रांतिर्लब्धालभ्यपरास्पदः ॥ अनिवृत्तिपदंप्राप्तोमनसाकर्मणागिरा ॥ ३५ ॥ सर्वाभिवांछितारंभोनाकिंचिदपि वांछति ॥ सर्वानुमोदितानंदोनाकिंचिदनुमोदते ॥ ३६ ॥

अर्थ—संगरूप युद्धसे निःसृत, अभिमान तथा मनरूप सन्तापकी शांतिसे शोभित ज्ञानीपुरुष आत्मामें प्रीतियुक्त, पूर्ण तथा पवित्रचित्त होके स्थित रहताहै ॥ ३३ ॥ कामरूप कर्दमसे स्वच्छ, बंधनरूप भ्रमका छेदन

कर्ता, शीतोष्ण, सुखदुःखादि द्वंद्वके दोषोंसे मुक्त, संसारसागरको पार करनेवाला ॥ ३४ ॥ सर्वोत्तम विश्रांतिको प्राप्त, सबसे परे अलभ्यस्थानके लाभसे युक्त और पुनरागमनसे शून्य, साम्राज्यपदको प्राप्त, तथा मनसे, कर्मसे और वाणीसे सबजनोंसे अभिलषित जीवनसहित आत्मज्ञानी स्वयं कुछ नहीं चाहता, और उसके चरित्रके फलको सब अनुमोदन करतेहैं और आप वह कुछ नहीं अनुमोदन करताहै ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

नददातिनचादत्तेनस्तौतिनचनिंदति ॥ नास्तमेतिनचोदेतिनतुष्यतिनशोचति ॥ ३७ ॥ सर्वारंभपरित्यागीसर्वोपाधिविवर्जितः ॥ सर्वाशासंपरित्यागीजीवन्मुक्तइतिस्मृतः ॥ ३८ ॥ सर्वैषणाःपरित्यज्य चेतसाभवमौनवान् ॥ धारानिरवशेषेणयथात्यक्त्वापयोधरः ॥ ३९ ॥ नतथासुखयत्यंगसंलग्नावरवर्णिनी ॥ यथासुखयतिस्वांतमिंदुशीतानिराशता ॥ ४० ॥

अर्थ—न वह किसीको कुछ देताहै, न कुछ लेताहै, न किसीकी स्तुति करताहै न निंदा करताहै, न अपने स्वरूपसे अस्त होताहै न उदय होताहै, न प्रसन्न होताहै और न शोचताहै ॥ ३७ ॥ सब आरंभोंका परित्यागी, सब उपाधियोंसे वर्जित, और सब आशाओंका सर्वथा त्यागी, जो है वह जीवन्मुक्त कहागयाहै॥३८॥हे रामजी ! पुत्र आदि सब एषणाओंको त्यागकर चित्तसे तुम ऐसे मौन होजाओ जैसे सम्पूर्ण जलधाराको त्यागके मेघ॥३९॥हे प्रिय रामजी ! अंगमें संलग्न उत्तम स्त्री अंतःकरणको वैसा सुख नहीं देती है जैसा कि चन्द्रमाके समान शीतल निराशता ॥ ४० ॥

नतथेंदुःसुखयतिकंठलग्नोऽपिराघव ॥ नैराश्यंसुखयत्यंतर्यथासकलशीतलम् ॥ ४१ ॥ पुष्पपूर्णनवलतो नतथाराजतेमधुः ॥ यथोदारमतिर्मौनीनैराश्यसममानसः ॥ ४२ ॥ नहिमाद्रेर्नमुक्ताभ्योनरंभाभ्योनचंदनात् ॥ नचचंद्रमसःशैत्यंनैराश्याद्यदवाप्यते ॥ ४३ ॥ अपिराज्यादपिस्वर्गादपींदोरपिमाधवात् ॥ अपिकांतासमासंगान्नैराश्यंपरमंसुखम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—कण्ठमें संलग्न चन्द्रमा वैसा सुख नहीं देता जैसा सम्पूर्ण जगत्को शीतलकारी निराशता ॥ ४१ ॥ पुष्पोंसे पूर्ण तथा नवीनलतासंयुक्त वसंतऋतु ऐसा शोभित नहीं होता जैसाकी निराशतासे समान मनसहित तथा उदारमति ज्ञानवान् मौनी ॥ ४२ ॥ न हिमालयसे, न मोतियोंसे, न केलासे न चन्दनसे और न चन्द्रमासे वह शीतलता प्राप्त होती है जो कि नैराश्यसे ॥ ४३ ॥ राज्यसेभी, स्वर्गसेभी, चन्द्रमासेभी, विष्णुसे, और उत्तम स्त्रीके समागमसेभी नैराश्य परमसुख है ॥ ४४ ॥

तृणवन्नोपकुर्वंतियत्रत्रिभुवनश्रियः ॥ सापरानिर्वृतिःसाधोनैराश्यादुपलभ्यते ॥ ४५ ॥ आपत्करंजपरशुंपरायानिर्वृतेःपदम् ॥ पुष्पगुच्छंशमतरोरालंबस्वनिराशताम् ॥४६॥ गोष्पदंपृथिवीमेरुःस्थाणुराशाःसमुद्रिकाः ॥ तृणंत्रिभुवनंरामनैराश्यालंकृताकृतेः ॥ ४७ ॥ दानादानसमाहारविहारविभवादिकाः ॥ क्रियाजगतिहस्यंतेनिराशैःपुरुषोत्तमैः ॥ ४८ ॥

अर्थ—हे साधो रामजी ! जिसमें त्रिभुवनकी लक्ष्मी तृणके समानभी उपकार नहीं करसकती वह परमशांति नैराश्यसेही प्राप्त होती है ॥ ४५ ॥ आपत्तिरूप कंटकके वृक्षकेलिये परशु (फर्सा) परमशांतिका स्थान, और शम(शांति) रूप वृक्षका पुष्पका गुच्छा जो निराशता है उसका अवलंबन तुम करो ॥ ४६ ॥ हे रामजी ! नैराश्यरूप आभूषणसे जो पुरुष अलंकृत है उसके लिये पृथिवी गौका खुर है, और सुमेरुपर्वत वृक्षका ठूंठ है, त्रिभुवन तृण है ॥ ४७ ॥ शास्त्रीय तथा लौकिकदान धनादिका स्वीकार, कोशादिका संचय, धनके व्ययसे पुत्र स्त्रीआदिकी क्रीडा, और वस्त्र आभूषण तथा अन्नपानादिकी क्रियाओंकी निराशतायुक्त उत्तम पुरुष इस जगत्में हंसतेहैं ॥ ४८ ॥

पदंयस्यनबध्नातिकदाचित्कलनाहृदि ॥ तृणीकृतत्रिभुवनःकेनासावुपमीयते ॥ ४९ ॥ इदमेवास्त्विदंमास्तुममेतिहृदिरंजना ॥ नयस्यास्तितमात्मेशंतोलयंतिकथंजनाः ॥ ५० ॥ सर्वसंकटपर्यंतमसंकटमलंसुखम् ॥ सौभाग्यंपरमंबुद्धेर्नैराश्यमवलंब्यताम् ॥ ५१ ॥ नाशास्तेनत्वमाशानांविद्धिमिथ्याभ्रमंजगत् ॥ वहद्रथस्थदिक्चक्रपरावर्तवदुत्थितम् ॥ ५२ ॥

अर्थ—जिस पुरुषके हृदयमें आशा अपना पद नहीं जमाती उस त्रिभुवनकोभी तृण समझनेवाले पुरुषकी उपमा किसके साथ दीजासकती है ॥ ४९ ॥ यह मेरेलिये हो, और यह न हो, यह रागद्वेष जिसके हृदयमें नहीं है उस स्वाधीनचित्तकी तुलना भला मनुष्य कैसे करसकतेहैं ॥ ५० ॥ सब कंटकके पार, पूर्ण सुखरूप, और बुद्धिका परमसौभाग्यरूप जो निराशता है उसका अवलंबन तुम करो ॥ ५१ ॥ हे रामजी ! आशा तुमारी कुछ नहीं है और न तुम आशाओंके संबंधीभी हो, इसकारणसे वैराग्यादि साधनकी संपत्तिसे मुख्य अधिकारी होनेसे इस

जगत्को दौडतेहुये रथपर स्थित पुरुषके दोनों ओरके वृक्षलतादि जैसे चक्राकार भ्रमणशील भान होतेहैं वैसाही मिथ्या तुम जानो ॥ ५२ ॥

किंमुह्यसिमहाबाहोमूर्खवद्बोधितोपिसन् ॥ ममेदंतदयंसोऽहमित्युद्भ्रांतेनचेतसा ॥ ५३ ॥ आत्मैवेदंजगत्सर्वंनानातेहनविद्यते ॥ एकरूपंजगज्ज्ञात्वाधीरैर्नामनखिद्यते ॥ ५४ ॥ यथाभूतपदार्थौघदर्शनादेव राघव ॥ परमाश्वासनंबुद्धेर्नैराश्यमधिगच्छति ॥ ५५ ॥ भावाभावविसंवादमुक्तमाद्यंतयोःस्थितम् ॥ यद्रूपंतत्समालंब्यपदार्थानांस्थितिंकुरु ॥ ५६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! यह सम्बन्धी पदार्थ मेरा है और वह देह मैं हुं इसप्रकार भ्रांतचित्तसे बोधित होकरभी मूढजनोंके समान क्यों मोहित होतेहो ॥ ५३ ॥ यह सब जगत् आत्माही है इस संसारमें अनेकता नहीं है, इसीसे एक आत्मरूप जगत्को जानकर धीरलोग खेद नहीं करते ॥ ५४ ॥ हे रामजी ! इन सब पदार्थसमूहको यथार्थ आत्मारूपके दर्शन (ज्ञान) से बुद्धिको परमधैर्य्य होताहै और निराशता प्राप्त होती है ॥ ५५ ॥ भाव अभाव (उत्पत्ति तथा नाश) के विकल्पसे मुक्त, सबके आदिअंतमें स्थित जो सच्चिन्मात्ररूप है उसको अवलंबन करके पदार्थोंकी स्थिति करो, अर्थात् सबके आदिअंतमें वही रहजाताहै इसलिये सब कुछ वही है ॥ ५६ ॥

वैराग्यवीरमनसोमायेयमतिमोहिनी ॥ पलाय्ययातिसांसारीमृगीकेसरिणोयथा ॥ ५७ ॥ कांतामुद्दाममदनांलोकांवनलतामिव ॥ जर्जरोपरपांचालीसमांपश्यतिधीरधीः ॥ ५८ ॥ भोगानानंदयत्यंतःखेदयंतिनचापदः ॥ हृश्यश्रियोहरंत्यंगनतमद्रिमिवानिलाः ॥ ५९ ॥ रक्तबालांगनस्यापिज्ञस्योदारधियामुनेः ॥ कणशःपांसुतांयांतिमनसःस्मरसायकाः ॥ ६० ॥

अर्थ—वैराग्यसे वीर मनसहित पुरुषसे भागकर यह महामोहिनी संसारकी माया न जाने कहां ऐसे चली जाती है जैसे सिंहसे हरिणी ॥ ५७ ॥ धीरबुद्धि आत्मज्ञानी पुरुष कामसे मत्त और वनकी लताकेसमान चंचल स्त्रीको जर्जरीभूत पाषाणकी प्रतिमाकेसमान देखताहै ॥ ५८ ॥ उस आत्मज्ञानी पुरुषको विषयभोग आनन्द नहीं देते, आपत्तियां खेदित नहीं करतीं और संसारकी शोभा उसे अपने स्वरूपसे ऐसे नहीं डिगा सकती जैसे पर्वतको वायु ॥ ५९ ॥ जिसमें सुकुमार बालबनिता आसक्तहै ऐसेभी मननशील उदारबुद्धि ज्ञानीपुरुषके मनसे कामदेवके बाण कण २ होके धूलिदशाको प्राप्त होतेहैं ॥ ६० ॥

रागद्वेषैःस्वरूपज्ञोनावशःपरिकृष्यते ॥ स्पंदएवास्यनैताभ्यांकिमुताक्रमणंभवेत् ॥ ६१ ॥ समदृष्टलतालोलवनितोद्रिशिलाकृतिः ॥ रमतेनैपभोगेषुपांथोमरुमहीष्विव ॥ ६२ ॥ अयत्नोपनतंसर्वंलीलयासक्तमानसः ॥ भुंक्तेभोगभरंप्राज्ञस्त्वालोकमिवलोचनम् ॥ ६३ ॥ काकतालीयवत्प्राप्ताभोगालीललनादिका ॥ स्वादिताप्यंगधीरस्यनदुःखायनतुष्टये ॥ ६४ ॥

अर्थ—अपने स्वरूपको जाननेवाला पुरुष रागद्वेषसे अवश होके खींचा २ नहीं फिरता, और इन दोनों (रागद्वेष) से इसका किंचितभी संचलन नहीं होता तो इसके ऊपर आक्रमण कैसे होगा ॥ ६१ ॥ समानरूपसे लता तथा चंचल वनिताको देखनेवाला इसीसे पर्वतकी शिलाकेसमान आकारसहित ज्ञानीपुरुष भोगोंमें ऐसे नहीं रमण करता जैसे वटोही मरुस्थलकी भूमियोंमें ॥ ६२ ॥ आत्मज्ञानी पुरुष बिना यत्नसे प्राप्त भोगसमूहको आसक्तमन होके देहधारणकी चेष्टामात्रसे ऐसे भोगताहै जैसे प्रकाशको नेत्र ॥ ६३ ॥ हे प्रिय रामजी ! अकस्मात् प्राप्त ललना आदि भोगोंकि पंक्ति आस्वादित होनेपरभी धीरपुरुषको न दुःखकेलिये और न प्रसन्नताकेलिये है ॥ ६४ ॥

सम्यग्दृष्टपथंतज्ज्ञंसुखदुःखमतीमनाक् ॥ द्वेवीच्याविवशैलेंद्रंक्षोभंनेतुंनशक्नुतः ॥ ६५ ॥ हेलयालोकयन् भोगान्मृदुर्दांतोगतज्वरः ॥ स्वमेवपदमालंब्यसर्वभूतांतरस्थितम् ॥ ६६ ॥ ज्ञस्तिष्ठतिगतव्यग्रोव्यग्रेणापिसमन्वितः ॥ जगंतिजनयन्नेवब्रह्मेवात्मपरायणः ॥ ६७ ॥ आपतत्सुयथाकालंयथादेशंयथाक्रमम् ॥ सुखदुःखेषुनक्षोभमेतिभूभृदृतुष्विव ॥ ६८ ॥

अर्थ—उत्तमरीतिसे आत्मस्वरूपके दर्शनके मार्गको देखनेवाले तत्वज्ञानीको सुखदुःखकी बुद्धि किंचित्भी शोचित करनेको ऐसे नहीं समर्थ होती जैसे दो तरंग पर्वतराजको ॥ ६५ ॥ मिथ्याबुद्धिसे भोगोंको देखताहुआ, मृदु, जितेन्द्रिय, सन्तापरहित ज्ञानीपुरुष सबभूतोंमें स्थित अपने स्वरूपका अवलम्बन करके ॥ ६६ ॥ उन २ संयुक्त उचित क्रियाओंमें इन्द्रियादिसे युक्तभी स्वयं ऐसे अव्यग्र रहताहै जैसे लोकोंको रचतेहुये आत्मपरायण ब्रह्माजी ॥ ६७ ॥ देश, काल, तथा क्रमके अनुसार आपत्तियोंमें और सुखदुःखोंमें ज्ञानी ऐसे नहीं क्षोभको प्राप्त होता जैसे वसंत आदि ऋतुओंमें पर्वत ॥ ६८ ॥

मज्जतोऽपिबहुज्ञस्यरामकर्मेन्द्रियभ्रमैः ॥ असक्तमनसोनित्यंनकिंचिदपिमज्जति ॥ ६९ ॥ कलंक्यंतःकलंकेनप्रोच्यतेहेमनान्यथा ॥ भावासत्त्यासमासक्तउक्तोजंतुर्हिनान्यथा ॥ ७० ॥ शरीराद्व्यतिरिक्तंपश्यतःप्रविवेकिनः ॥ विकर्त्तितांगकस्यापिनकिंचित्प्रविकर्त्तितम् ॥ ७१ ॥ सकृत्प्रभातंविमलंयज्ज्ञातंज्ञातमेवतत् ॥ नहिबंधुःपरिज्ञातःपुनरज्ञाततांव्रजेत् ॥ ७२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! कर्म इन्द्रियोंके व्यापारोंसे विषयोंमें निमग्न होतेभी नित्य अनासक्त ज्ञानीपुरुषका चित्त कुछ निमग्न नहीं होता ॥ ६९ ॥ जैसे सुवर्ण भीतरसे कलंकित होनेसे कलंकी कहाजाताहै न कि बाहरके कीचड आदि लिप्तसे ऐसे अन्तःकरणकी आसक्तिसे जीव आसक्त कहाजाताहै न कि अन्यथा ॥ ७० ॥ शरीरसे भिन्न आत्माकी विवेकसे देखनेवालेका अंगोंके काटनेसेभी कुछ नहीं कटा ॥ ७१ ॥ एक समयमेंभी जो विमलज्ञान ज्ञातहुआ तो वह ज्ञातही रहताहै, क्योंकि ज्ञातबंधु पुनः अज्ञातताको नहीं प्राप्त होता ॥ ७२ ॥

सर्पभ्रांतौनिवृत्तायांनरज्ज्वांसर्पभावना ॥ पुनरेतियथाप्रावृण्णदीगिरितटाच्च्युता ॥ ७३ ॥ नह्येमतापशुद्धांगंस्वभावमलमागतम् ॥ कर्दमेमग्नमपिसत्समादत्तेमलंपुनः ॥ ७४ ॥ क्षीणेस्वहृदयग्रंथौनबंधोस्तिपुनर्गुणैः ॥ यत्नेनापिपुनर्वद्धंकेनवृंतेच्युतंफलम् ॥ ७५ ॥ अवच्छेदविचाराभ्यामभितःखंडशोगतम् ॥ पाषाणंचमणिंचैवसंधातुंकस्यशक्तता ॥ ७६ ॥

अर्थ—रज्जुसे सर्पकी भ्रांति निवृत्त होनेसे पुनः उसमें सर्पकी संभावना नहीं होती, जैसेकि वर्षाकालमें पर्वतसे गिरीहुई नदीके आगमनकी ॥ ७३ ॥ अग्निके तापसे शुद्ध, और अपने स्वभावको पूर्णरीतिसे प्राप्त सुवर्ण कीचडमें लिप्त होनेपरभी पुनः मलको नहीं धारणकरता ॥ ७४ ॥ हृदयकी अज्ञानरूप ग्रंथिके छूटनेपर पुनः गुणोंसे बंधन ऐसे नहीं होता जैसे वृक्षके वृंत (घोंपे) से गिरेहुये फलको उस वृंतमें कोई बडे यत्नसेभी पुनः नहीं लगासकता ॥ ७५ ॥ जैसे पाषाणके भीतर स्थित मणिके विचार और पाषाणके चारोओरसे छेदनेसे पुनः उस पाषाण और मणिको कोई नहीं मिलासकता ॥ ७६ ॥

विज्ञातायामविद्यायांकःपुनःपरिमज्जति ॥ परिज्ञायश्वपाकानांयात्रांकःप्रेक्षतेद्विजः ॥ ७७ ॥ शुद्धांभसियथाक्षीरधीर्विचारान्निवर्त्तते ॥ संसारवासनातद्वद्धीविचारान्निवर्त्तते ॥७८॥ मध्वंबुशंकयातावद्विप्रवर्यैःप्रपीयते ॥ यावन्मात्रपरिज्ञातंपरिज्ञातंप्रहीयते ॥ ७९ ॥ रूपलावण्ययुक्तापिचित्रकांतेवकामिनी ॥ द्रव्यमात्रसमारंभात्तत्त्वविद्भिर्विलोक्यते ॥ ८० ॥

अर्थ—हे रामजी ! ऐसेही इस अविद्याके न जाननेपर पुनः कोई इसमें नहीं डूबता, क्योंकि जानकर चांडालोंके समाजके उत्सवमें जानेकी प्रतीक्षा कौन ब्राह्मण करसकताहै ॥ ७७ ॥ जैसे शुद्धजलमें दुग्धकी बुद्धि विचारसे निवृत्त होजाती है ऐसेही विचारसे वासना निवृत्त होजाती है ॥ ७८ ॥ जलके भ्रमसे मद्य श्रेष्ठ ब्राह्मणलोक तभीतक पान करतेहैं जबतक उसको नहीं जानते, और जाननेपर उसे त्यागदेतेहैं ॥ ७९ ॥ पंचभूतमात्रसे रचित होनेसे रूप और सुन्दरता गुणयुक्तभी कामिनी चित्रलिखितके समान तत्वज्ञानीलोग देखतेहैं ॥ ८० ॥

यथामषीकुसुंभादिस्त्रियाश्चित्रेतथैवहि ॥ जीवत्याअपिकेशोष्ठंकस्तांपरिकिलग्रहः ॥ ८१ ॥ अनुभूतोगुडःस्वादुरपिदाहविकर्त्तनैः ॥ नशक्यतेन्यथाकर्तुंतत्स्वालोकस्तथात्मनः ॥ ८२ ॥ परव्यसनिनीनारीव्यग्रापिगृहकर्मणि ॥ तदेवास्वादयत्यंतःपरसंगरसायनम् ॥ ८३ ॥ एवंतत्त्वेपरेशुद्धेधीरोविश्रांतिमागतः ॥ नशक्यतेचालयितुंदेवैरपिसवासवैः ॥ ८४ ॥

अर्थ—जैसे चित्रलिखित स्त्रीके अंग मषी कुसुंभआदि पंचभूतमात्र हैं ऐसेही प्राण धारण करनेवाली स्त्रीके केश, स्तन तथा मुखआदिभी पंचभूतमात्र हैं, तो प्राणवालीमेंही अधिक ग्रहणका आग्रह क्यों? ॥ ८१ ॥ जैसे अनुभव कियाहुआ गुडका मधुररस अनुभव करनेवाले जिव्हाआदिके दाहादि सैकडों यत्नोंसेभी मधुर नहीं तिक्त है यह अन्यथाभाव कोई नहीं करसकता ऐसेही आत्मानंदके अनुभवकाभी अन्यथाभाव नहीं होसकता ॥ ८२ ॥ परपुरुषमें निरतस्त्री गृहकर्ममें व्यग्रभी परंतु उसी परपुरुषके संगके रसायनका आस्वाद लेती है ॥ ८३ ॥ इसीप्रकार शुद्धपरब्रह्ममें विश्रामको प्राप्त धीरपुरुष इन्द्रसहित देवोंसेभी चलायमान नहीं होसकता ॥ ८४ ॥

परव्यसनिनीनारीकेनभर्त्राबलीयसा ॥ विस्मारितास्वसंकल्पकांतसंगमहोत्सवम् ॥ ८५ ॥ जगत्समग्रसानंदचिदालोकावलंबनम् ॥ केनविस्मार्यतेबुद्धिस्तत्त्वज्ञस्यमहात्मनः ॥८६॥ समग्रसुखदुःखाढ्यंव्यवहारमखंडितम् ॥ कुर्वन्कुलजनायत्तोभर्तृश्वशुरखेदितः ॥ ८७ ॥ यथासंकल्पकांतेनभवत्यानंदमंथरः ॥ वधूलोकोव्यसनवान्दुःखद्वंद्वैर्नबाध्यते ॥ ८८ ॥

अर्थ—परपुरुषमें निरतस्त्रीको अपने संकल्पके कांतके समागमके महोत्सवसे कौन बलवान् पति वि[illegible] करके हटासकता है ॥ ८५ ॥ जगत्के सब आनन्द जिसमें नानापुष्पोंके रसमय मधुके तुल्य सम होजातेहैं उस [illegible]न्दका अवलंबन करनेवाली तत्वज्ञानीकी बुद्धिको कौन विस्मृत करा सकता है ॥ ८६ ॥ संपूर्ण दुःखोंसे पूर्ण संपूर्ण व्यवहारोंको करताहुआ कुलके जनोंके आधीन पति तथा श्वशुरआदिसे खेदितभी ॥ ८७॥ परपुरुषमें तत्पर वधू (स्त्रीजन) दुःखोंके समूहोंसेभी नहीं बाधित होती किन्तु जैसे अपने संकल्पके कांतके समागमसे आनन्दमें निमग्न होती है॥८८॥

तथाविगलिताविद्योऽव्यवहारपरोऽप्यलम् ॥ सम्यग्दृष्टिःसदाचारोमुदमेत्यंतरात्मना ॥ ८९ ॥ छिद्यतेन[illegible] निकृत्तांगोगलदश्रुर्नरोदिति ॥ दह्यतेनप्रदग्धोऽपिनष्टोऽपिनाविनश्यति ॥९०॥ व्यपगतसुखदुःखसन्ति[illegible]इसी तोविधिविधुरेष्वपिसंकटेष्वचित्तः ॥ विलसतुसदनेपुरोत्तमेवाविततगिरौविपिनेतपोवनेवा ॥ ९१ ॥ [illegible] यथा

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे वैराग्योपदेशो नाम चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥

अर्थ—ऐसेही अविद्याशून्य ज्ञानीपुरुष सदाचार तथा लोकव्यवहारमें पूर्णरीतिसे तत्परभी अन्तःकरणमें सदानंदसे आनन्दित होताहै ॥ ८९ ॥ अंगोंके छिन्नभिन्न होनेपरभी वह छिन्न आंशु वहतेहुयेभी नहीं रोता, जलाहुआभी नहीं जलता, देहसे नष्ट होनेपरभी नष्ट नहीं होता ॥ ९० ॥ चित्तशून्य आत्मज्ञानी पुरुष, प्रारब्धसे कर्मोंके भोगशून्य और संकटमेंभी सुखदुःखके समागमसे रहित चाहै उत्तमनगरमें रहै वा उत्तमवनमें रहै, वा बडे पर्वतपर, वनमें अथवा तपोवनमें रहै ॥ ९१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे उपशमप्रकरणे वैराग्योपदेशो नाम चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥

पंचसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥

महान् अधिकारोंमें हर्षशोकआदिमें असंग, देव, असुर तथा नरआदि बहुतसे जीवन्मुक्त इस ७५ के सर्गमें वर्णन कियेगये हैं ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ जनकःसंस्थितोराज्येऽव्यवहारपरोऽपिसन् ॥ विगतज्वरएवांतरनाकुलमतिःसदा ॥ १ ॥ पितामहोदिलीपस्तेसर्वारंभपरोऽप्यलम् ॥ वीतरागतयैवांतर्बुभुजेमेदिनींचिरम् ॥२ ॥ निरंजनतयाबुद्धोजनतांपालयंश्चिरम् ॥ जीवन्मुक्ताकृतिर्नित्यंमनूराज्यमपालयत् ॥ ३ ॥ विचित्रबलयुद्धेषुव्यवहारेषुभूरिषु ॥ मांधातासुचिरंतिष्ठन्प्राप्तवान्वैपरंपदम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! राजाजनक राज्यके व्यवहारमें तत्परभी संतापरहित और अनाकुलमति सदा स्थित रहे ॥ १ ॥ और तुमारे पितामह दिलीप सबकार्योंके आरंभकर्ता होकेभी अंतःकरणमें वीतराग होके चिरकालतक पृथिवीका पालनकिया ॥२॥ प्रबुद्ध मनुने रागादिरूप कलंकके दोषसे शून्य होकर चिरकालतक प्रजाका पालनकिया, और नित्य जीवन्मुक्तके आकारको धारणकरके स्वायंभूमनुने प्रजाओंका पालनकिया ॥ ३ ॥ मांधाताने चित्रविचित्र सेना जिनमें थी ऐसे युद्धोंमें, अन्य अनेकव्यवहारोंमें चिरकालतक स्थित रहते परमपद प्राप्तकिया ॥ ४ ॥

बलिःपातालपीठस्थःकुर्वन्सदिवसंस्थितिम् ॥ सदात्यागीसदाऽसक्तोजीवन्मुक्तइतिस्थितः ॥ ५ ॥ नमुचिर्दानवाधीशोदेवद्वंद्वपरःसदा ॥ नानाचारविचारेषुक्वचिन्नांतरतप्यत ॥ ६ ॥ वासवाजौतनुत्यागीवृत्रोविलतमानसः ॥ अंतःशांतमनामानीचकारसुरसंगरम् ॥७ ॥ कुर्वन्दानवकार्याणिपातालतलपालकः ॥ अनपायंनिराक्रोशंप्रह्लादोह्लादमागतः ॥ ८ ॥

अर्थ—पातालके पीठपर स्थित राजाबलि यथार्थकेसमान सबव्यवहारोंको करताहुआभी सदात्यागी, सदाविरक्त तथा जीवन्मुक्तही स्थितहै ॥५॥ दानवोंका स्वामी नमुचि सदा देवताओंकेसाथ युद्धमें तत्पर और नानाप्रकारके देव तथा असुरोंके आचारविचारमें तत्पर रहतेभी अंतःकरणसे खिन्न नहींहुआ ॥ ६ ॥ इन्द्रके युद्धमें शरीरत्यागी उदा[illegible] चित्त, तथा मानी वृत्रासुरने अंतःकरणसे शांत होके युद्ध किया ॥ ७ ॥ पातालके तलका स्वामी दानवोंके कार्य्य करताहुआभी प्रल्हाद अक्षय तथा वाणीके अविषय सुखको प्राप्त हुआ ॥ ८ ॥

॥ ४२ ॥ ...रैकपरोप्यंतःशंबरैकतयोदितः ॥ संसारशंबरंरामशंबरस्त्यक्तवानिदम् ॥ ९ ॥ असक्तबुद्धिर्हरिणा ...वेन्दानवसंगरम् ॥ परांसंविदमासाद्यकुशलस्त्यक्तवानिदम् ॥ १० ॥ सर्वामरमुखोवह्निःक्रियाजालप...रोह्यपि ॥ यज्ञलक्ष्मीश्चिरंभुंक्तेमुक्तएवेहतिष्ठति ॥ ११ ॥ पीयमानःसुरैःसर्वैःसोमःसमरसाशयः ॥ क्वचिदेतिनसंसंगमाक्रांतावंबरंयथा ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी! सदा मायामें तत्परभी शंबरासुरने परचिदाकाशमें एकतारूपसे आविर्भूत इस संसारकी मायाको त्यागदिया ॥ ९ ॥ असक्तबुद्धि होके दानवोंके अर्थ युद्ध करताहुआभी कुशल वह शंबरासुर इस संसारको त्यागताहुवा ॥ १० ॥ सब देवताओंका मुखरूप अग्नि क्रियाओंके जालमें तत्पर यज्ञोंकी लक्ष्मीको चिरकाल भोगताहै और मुक्तही इस संसारमें स्थित रहताहै ॥ ११ ॥ सब देवताओंसे पीयमान (पियाहुआ) ब्रह्मही पुनः उज्जीवन अमृत है जिसका ऐसा सोम किसीके साथ संगको ऐसे नहीं प्राप्त होता जैसे पादोंसे आक्रमण करनेमें आकाश ॥ १२ ॥

बृहस्पतिर्देवगुरुर्दारार्थंचंद्रयोध्यपि ॥ आचरन्दिविचित्रेहांमुक्तएवह्यवस्थितः ॥ १३ ॥ शुक्रोऽम्बरतलद्योतीबुधःसर्वार्थपालकः ॥ निर्विकारमतिःकालंनयत्यसुरदेशिकः ॥ १४ ॥ जगद्भूतगणांगानिचिरंसंचारयन्नपि ॥ सर्वदासर्वसंचारीमुक्तएवसमीरणः ॥ १५ ॥ लोकाजवंजवीभावप्रोद्वेगज्ञोप्यखिन्नधीः ॥ ब्रह्मासममनारामक्षिपयत्यायुराततम् ॥ १६ ॥

अर्थ—देवताओंके गुरु बृहस्पति स्त्रीकेलिये चन्द्रमासे युद्ध करनेवाले और स्वर्गमें देवताओंका पौरोहित्य आदि चेष्टा करते हुएभी मुक्तही स्थित हैं ॥ १३ ॥ आकाशतलको प्रकाशित करनेवाले ज्ञानी, नीतिशास्त्रके रचनेसे सब अभिमत पदार्थोंके पालक, और असुरोंके उपदेशक शुक्राचार्यजी निर्विकारबुद्धिसे अपना कालक्षेप करते हैं ॥ १४ ॥ नीचे तथा ऊपरके लोकोंको तथा सब प्राणियोंके अंगोंको संचालित करतेहुये और सर्वदा सब देशोंमें स्वयं संचारीभी वायु मुक्तही है ॥ १५ ॥ हे रामजी! सब लोकोंका ऊर्ध्व, अधो, तथा मध्यगतियोंके परिवर्तनसे जो उद्वेग है उसके ज्ञाताभी ब्रह्माजी समचित्तसे दोपरार्धपर्य्यन्त अपनी महान् आयु बितातेहैं ॥ १६ ॥

जरामरणयुद्धादिद्वंद्वसंगरलीलया ॥ चरतीहचिरंकालंमुक्तोऽपिभगवान्हरिः ॥ १७ ॥ मुक्तेनापित्रिनेत्रेण सौंदर्यतरुमंजरी ॥ देहार्धेधार्यतेगौरीकामुकेनेवकामिनी ॥ १८ ॥ मुक्तयापिगलेबद्धोगौर्यागौरस्त्रिलोचनः ॥ संशुद्धइवमुक्तानांहारःशशिकलामलः ॥ १९ ॥ गुहोगहनधीर्वीरस्तारकादिरणक्रियाम् ॥ मुक्तोऽपिकृतवान्सर्वज्ञानरत्नैकसागरः ॥ २० ॥

अर्थ—देखो विष्णुभगवान् मुक्त होकेभी वृद्धावस्था, मरण तथा युद्धआदि द्वन्द्वलीलासे काल बितातेहैं ॥ १७ ॥ और त्रिनेत्र महादेवजी मुक्त होकरभी सौन्दर्य्यरूप वृक्षकी लता पार्वतीजीको ऐसे धारण करतेहैं जैसे कोई कामी कामिनीको ॥ १८ ॥ इसीप्रकार मुक्तभी गौरी (पार्वती) ने त्रिनेत्रशंकरजीको अपने गलेमें ऐसा बांधाहै जैसे चन्द्रमाकी कलाकेसमान निर्मल और शुद्ध मोतियोंके हारको ॥ १९ ॥ ऐसेही अपारबुद्धि, वीर, और ज्ञानरत्नोंके समुद्र स्वामीकार्तिकजीने मुक्त होकेभी तारकासुरके साथ युद्ध आदि क्रिया की ॥ २० ॥

भृंगीशोरक्तमांसंस्वंस्वमात्रेप्रवितीर्णवान् ॥ मुक्तयैवधियारामधीरयाध्यानधौतया ॥ २१ ॥ सुनिर्मुक्तस्वभावोऽपिजगज्जंगलखंडकम् ॥ नारदोविजहारेमंशीतयाकार्यशीलया ॥ २२ ॥ जीवन्मुक्तमनामान्यो विश्वामित्रोऽप्ययंप्रभुः ॥ वेदोक्तांमखनिर्माणक्रियांसमधितिष्ठति ॥ २३ ॥ धारयत्यवनींशेषःकरोत्यर्कोदिनावलीम् ॥ यमोयमत्वंकुरुतेजीवन्मुक्ततयैवहि ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रामजी! भृंगीरिटि (शिवके गणविशेष) ने धीर, ध्यानसे शुद्ध तथा मुक्तबुद्धिसे माता पार्वतीको अपना रक्त और मांस दियाहै ॥ २१ ॥ मुक्तस्वभावही नारदमुनिजीने शांत तथा कलहकौतुकमें प्रवृत्त करनेवाली बुद्धिसे इस जगद्रूप जंगलके खण्डमें भ्रमण कियाहै ॥ २२ ॥ देखो सबके मान्य ये विश्वामित्रप्रभु मुक्तही हैं परन्तु वेदोक्त यज्ञक्रियाका अनुष्ठान करतेहैं ॥ २३ ॥ जीवन्मुक्तस्वरूपही शेषभगवान् पृथिवीका धारण करतेहैं, सूर्य दिनकी पंक्तियोंको रचतेहैं, और यमराज दुष्टोंको दंड देतेहैं ॥ २४ ॥

अन्येऽप्यस्मिंस्त्रिभुवनेयक्षासुरनराःसुराः ॥ शतशोमुक्ततांयाताःसंतस्तिष्ठंतिसंसृतौ ॥ २५ ॥ संस्थिता व्यवहारेषुविचित्राचारधारिषु ॥ अंतराशीतलाःकेचित्केचिन्मूढाःशिलासमाः ॥ २६ ॥ परमंबोधमासाद्यकेचित्काननमागताः ॥ यथाभृगुभरद्वाजविश्वामित्रशुकादयः ॥ २७ ॥ केचिद्राज्येपुतिष्ठंतिच्छत्रचामरपालिताः ॥ यथाजनकशर्यातिमांधातृसगरादयः ॥ २८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! अन्यभी यक्ष, असुर, मनुष्य तथा देवता सैकडों इस त्रिभुवनमें मुक्त होगये. और होते महात्मा इस संसारमेंभी स्थितहैं ॥ २५ ॥ चित्रविचित्र शोक मोह आदि दायक, स्त्री पुत्र धन और मृत्युभी संग्रहपूर्वक वध बंधन आदि आचारसहित व्यवहारोंमें कितनें स्थितहैं, और अंतःकरणसे शीतल जीवन्मुक्त हैं तथा कितने पाषाणकी शिलाके तुल्य मूढ हैं ॥ २६ ॥ कितने कननें तो परमज्ञानको प्राप्त करके वनका आश्रय लिया. जैसे भृगु, भरद्वाज, विश्वामित्र और शुक आदि॥२७॥ और कितने छत्र चमर आदिसे रक्षित राज्यकार्यमें स्थित हैं. जैसे जनक, शर्य्याति, मांधाता, और सगर आदि ॥ २८ ॥

केचिद्व्योमनितिष्ठंतिधिष्ण्यचक्रांतरस्थिताः ॥ यथाबृहस्पत्युशनश्चंद्रसूर्यमुनीश्वराः ॥ २९ ॥ केचित्सुरपदेयाताविमानावलिमास्थिताः ॥ यथाग्निवायुवरुणयमतुंबुरुनारदाः ॥ ३० ॥ केचित्पातालकुहरे जीवन्मुक्ताव्यवस्थिताः ॥ यथावलिसुहोत्रांधप्रह्रादाल्हादपूर्वकाः ॥ ३१ ॥ तिर्यग्योनिष्वपिसदाविद्यंते कृतबुद्धयः ॥ देवयोनिष्वपिप्राज्ञाविद्यंतेमूर्खबुद्धयः ॥ ३२ ॥

अर्थ—और कितने नक्षत्रोंके आधारभूत ज्योतिश्चक्र आकाशमें स्थितहैं. जैसे बृहस्पति, शुक्र, चन्द्र, सूर्य और मुनीश्वर (सप्तर्षि) ॥ २९ ॥ और कोई इन्द्रपुर (स्वर्ग) में जाके विमानोंकी पंक्तिमें स्थितहैं. जैसे अग्नि, वायु, वरुण, यम, तुंबरू, और नारद आदि ॥ ३० ॥ कोई तो पातालरूप गुफामें जीवन्मुक्त होके स्थितहैं. जैसे बलि, सुहोत्र, अंध, प्रल्हाद तथा ल्हाद आदि ॥ ३१ ॥ हे रामजी ! तिर्यग्योनिमेंभी सदा ज्ञानी रहतेहैं और देवयोनिमेंभी बुद्धिमान् होके मूर्खबुद्धि होतेहैं ॥ ३२ ॥

सर्वंसर्वेणसर्वत्रसर्वथासर्वदैवहि ॥ संभवत्येवसर्वात्मन्यात्मन्याततरूपिणि ॥ ३३ ॥ विधेर्विचित्रा नियतिरनंतारंभमंथरा ॥ सन्निवेशांशवैचित्र्यात्सर्वंसर्वत्रदृश्यते ॥ ३४ ॥ विधिर्देवंविधिर्धातासर्वेशः शिवईश्वरः ॥ इतिनामभिरात्मानःप्रत्यक्चेतनउच्यते ॥ ३५ ॥ अस्त्यवस्तुनिवस्त्वंतःकांचनंसिकतास्विव ॥ अस्तिवस्तुन्यवस्त्वंतर्मलंहेमकणेष्विव ॥ ३६ ॥

अर्थ—सब कुछ, सबसे सबप्रकार और सदा सर्वरूप और सर्वव्यापी आत्मामें संभव है ॥ ३३ ॥ अनन्तकार्य्योंके आरंभमें तत्पर परमात्माकी नियति विचित्र है, इसलिये रचनाविशेषकी विचित्रतासे सबकुछ सदासर्वत्र देख पडती. है जैसे घट चूर्णहोके कपासके खेतमें जानेसे घटका पट ॥ ३४ ॥ ब्रह्मा, दैव, विष्णु, धाता, सर्वेश्वर, शिव, और ईश्वर इत्यादि नामोंसे हम सबका आत्मा प्रत्यक् चेतनही कहाजाताहै ॥ ३५ ॥ हे रामजी और कहांतक कहें अवस्तुके अंतर्गत वस्तु है. जैसे सुवर्ण, सिकता (रेत) में, और वस्तुके अंतर्गत अवस्तुभी जैसे सुवर्णके कणोंमें मल ॥ ३६ ॥

अयुक्तेयुक्ततायुक्त्याप्रेक्ष्यमाणाप्रदृश्यते ॥ पापस्याहिभयाल्लोकोरामधर्मेप्रवर्त्तते ॥ ३७ ॥ असत्येसत्यतासाधोशाश्वतीपरिलक्ष्यते ॥ शून्येनध्यानयोगेनशाश्वतंपदमाप्यते ॥ ३८ ॥ यन्नास्तितदुदेत्याशुदेशकालविलासतः ॥ शशकाःशृंगवंतोहिदृश्यंतेशंबरस्थितौ ॥ ३९ ॥ येवज्रसाराःसुदृढादृश्यंतेतेक्षयंगताः ॥ कल्पस्यांतेयथेंद्वर्कधराब्धिविबुधादयः ॥ ४० ॥

अर्थ—अत्यंत अयुक्तमेंभी युक्तिसे युक्तता देखपडती है, अयुक्त पापके भयसे लोक धर्ममें प्रवृत्त होताहै ॥ ३७ ॥ हे साधो ! असत्यमेंभी नित्य सत्यता प्रतीत होती है, सर्वशून्य ध्यानसे सर्वशून्यमें ध्यानमात्रका साक्षी नित्यपद प्राप्त होताहै ॥ ३८ ॥ जो पदार्थ जहां नहीं है वहभी देशकालके विलाससे वहां उदय होता है. जैसे इन्द्रजालमें शशक (खरगोस) सींगवाले देख पडते हैं ॥ ३९ ॥ जो वज्रसारके समान अतिदृढ देख पडतेहैं वेभी क्षयको प्राप्त हुयेहैं. जैसे कल्पके अन्तमें चन्द्र, सूर्य, पृथिवी, समुद्र और देवता आदि ॥ ४० ॥

इतिपश्यन्महाबाहोभावाभावभवक्रमम् ॥ हर्षामर्षविषादेहाःसंत्यज्यसमतांव्रज ॥ ४१ ॥ असत्सदेव भातीहसदसच्चापिदृश्यते ॥ आस्थानास्थेपरित्यज्यतेनाशुसमतांव्रज ॥ ४२ ॥ मुक्तौराघवलोकेऽस्मिन्न प्राप्तिःसंभवत्यलम् ॥ अप्रवृत्तौविवेकस्यमग्नाहिजनकोटयः ॥ ४३ ॥ मुक्तौराघवलोकेऽस्मिन्प्राप्तिरस्ति सदैवहि ॥ प्रवृत्त्याहिविवेकस्यविमुक्ताभूतकोटयः ॥ ४४ ॥

अर्थ—हे महाबाहो ! ऐसा देखके उत्पत्तिप्रलयरूप संसारके क्रमको, तथा हर्ष, अमर्ष, विषाद तथा अन्य चेष्टाओंको त्यागके समताको प्राप्त होओ ॥ ४१ ॥ इस संसारमें असत् सत्केसमान भान होताहै, और सत् (ब्रह्म) असत्के तुल्य देख पडताहै. इसलिये तुम आस्था तथा अनास्थाको त्यागकर शीघ्र समताको प्राप्त हो,

॥ ४२ ॥ हे रामजी ! विवेकके न होनेपर मुक्तिकी अप्राप्तिकी पूर्णरीतिसे सम्भावनाहै और इसी अज्ञानदशामें करोडों मनुष्य डूबे हैं ॥ ४३ ॥ और हे रामजी ! निजसाक्षीरूप होनेसे मुक्तिकी प्राप्तिका सदा संभव है क्योंकि विवेककी प्रवृत्तिसे करोडों मनुष्य मुक्त होगयेहैं ॥ ४४ ॥

प्रविवेकाविवेकाभ्यांसुलभालभ्यतांगता ॥ मुक्तिर्मनःक्षयप्राप्त्याविवेकंतेनदीपय ॥ ४५ ॥ आत्मावलोकनेयत्नःकर्त्तव्योभूतिमिच्छता ॥ सर्वदुःखशिरश्छेदआत्मालोकेनजायते ॥ ४६ ॥ नीरागानिरुपासंगा जीवन्मुक्तामहाधियः ॥ संभवंतीहबहुशःसुहोत्रजनकाइव ॥ ४७ ॥ तस्मात्त्वमपिवैराग्यविवेकोदित धीरधीः ॥ जीवन्मुक्तोविहरभोसमलोष्टाश्मकांचनः ॥ ४८ ॥

अर्थ—मुक्ति विवेकसे सुलभ्यभी अविवेकसे अलभ्यताको प्राप्त है इसलिये तुम मनके नाशसे अपना विवेक बढाओ ॥ ४५ ॥ मुक्तिके अभिलाषी जनको आत्माके दर्शनके लिये विवेकरूप यत्न करनाचाहिये, क्योंकि आत्माके दर्शनसे सब दुःखोंका शिरच्छेद होजाताहै ॥ ४६ ॥ हे रामजी ! इससमयभी राग तथा संगरहित और महाबुद्धिमान अनेक जीवन्मुक्त महात्मा संभवते हैं जैसे सुहोत्र जनक आदि ॥ ४७ ॥ इसलिये तुमभी विवेक और वैराग्यसे उदयको प्राप्त बुद्धिको धारण करके, सुवर्ण तथा पाषाणमें समबुद्धिसहित हे रामजी ! इस संसारमें विहार करो ॥ ४८

द्विविधामुक्ततालोकेविद्यतेदेहधारिणाम् ॥ सदेहैकाविदेहान्याविभागोऽयंतयोःशृणु ॥ ४९ ॥ असंसंगात्पदार्थानांमनःशांतिर्विमुक्तता ॥ सत्यसत्यपिदेहेसासंभवत्यनघाकृते ॥ ५० ॥ स्नेहसंशयमेवांगविदुःकैवल्यमुत्तमम् ॥ तत्संभवतिदेहस्यभावेचाभावएवच ॥ ५१ ॥ योजीवतिगतस्नेहःसजीवन्मुक्तउच्यते ॥ सस्नेहजीवितोबद्धोमुक्तएवतृतीयकः ॥ ५२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! इस संसारमें प्राणियोंकी दो प्रकारकी मुक्तिहै एक तो सदेह दूसरी विदेह उनका यह भेद तुम सुनो ॥ ४९ ॥ हे पापरहित रामजी ! पदार्थोंके असंगसे मनकी शांतिरूप मुक्ति देहके रहते तथा न रहतेभी संभव है ॥ ५० ॥ हे प्रिय रामजी ! देहादिमें आत्माके भ्रमसे जो प्रीति है उसके नाशकोही उत्तम कैवल्य (मुक्ति) जानतेहैं, और वह देहके भाव तथा अभाव दोनोंमें संभव है ॥ ५१ ॥ जो प्राणी देहादिमें प्रेमरहित होके जीता है वह जीवन्मुक्त कहाताहै और जो देहादिमें प्रीतिसहित है वह बद्ध है, और जो राग द्वेष दोनोंसे रहित है वह मुक्तहै ५२

यत्नोयत्नेनकर्त्तव्योमोक्षार्थंयुक्तिपूर्वकम् ॥ यत्नयुक्तिविहीनस्यगोष्पदंदुस्तरंभवेत् ॥ ५३ ॥ नत्वनध्यवसायस्यदुःखायविपुलात्मने ॥ आत्मापरवशःकार्योमोहमाश्रित्यकेवलम् ॥ ५४ ॥ सुमहद्धैर्यमालंब्यमनसाव्यवसायिना ॥ विचारयात्मनात्मानमात्मनश्चिरसिद्धये ॥ वितताध्यवसायस्यजगद्भवतिगोष्पदम् ॥ ५५ ॥ यदुपगतःसुगतःपदंप्रधानंयदपगतोऽध्रुवतांनृपश्चकश्चित् ॥ यदुपगताःपदमुत्तमंमहांतःप्रयतनकल्पतरोर्महाफलंतत् ॥ ५६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे मुक्तामुक्तविचारो नाम पंचसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥

अर्थ—साधनचतुष्टयके मध्यमें यत्नसे पूर्व २ साधनकी सिद्धि होनेसे उत्तर २ के जीतनेके अर्थ मोक्षके लिये प्रमाणोंके तात्पर्य्य, और ब्रह्मतत्त्वके निश्चयरूप युक्तिसे पुनः २ यत्न करनाचाहिये, क्योंकि यत्न और युक्तिसे हीन प्राणीको गौका खुरभी दुस्तर होजाताहै ॥ ५३ ॥ आत्मज्ञानके पूर्व उद्योगका अनादर करके केवल मोहमात्रमें फंसके महान् दुःखकेलिये आत्माको परवश नहीं करना चाहिये ॥ ५४ ॥ हे रामजी ! महाधैर्यका आश्रय लेके फलकी प्राप्तिपर्य्यंत दृढ तथा उद्योगी मनसे आत्माहीसे आत्माका विचारकरो, और प्रतिबंधक होनेपर कई जन्मोंमें सिद्धिको मनमें रखके आत्माका विचार करो ॥ ५५ ॥ जिससे स्वयंप्रकाश आत्मपदको बुद्ध भगवान् प्राप्त हुआ, और उत्तम विवेकयुक्त आत्माके निश्चयमें किंचित् न्यूनता रहनेसे जिस पदसे च्युत गुणत्रयकी साम्यावस्था अध्रुव प्रधानपदको प्राप्त हुआ. और इसीप्रकार अवाच्यनामा अर्हत्नामसे प्रसिद्ध कोई क्षत्रिय चित्स्वरूपका निश्चय होनेपरभी परंतु हस्तिमशकादिके शरीरमें प्रवेश होनेसे घटना बढना आत्माका निश्चय करनेसे जिस अखंड आत्मपदसे च्युत होनेसे अध्रुवपदको प्राप्तहुआ. अर्थात् ये सब मिथ्यापदमें निमग्न हुये, और वेदोंके रहस्यके ज्ञाता महात्मालोग तो सत्यज्ञान अनंतस्वरूप आत्मपदको प्राप्तहुये. महात्मालोग वेदोक्तमार्गसे जिस पदको प्राप्त हुये वह प्रयत्नरूप कल्पवृक्षका महाफल है ॥ ५६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे उपशमप्रकरणे मुक्तामुक्तविचारो नाम पंचसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥

षट्सप्ततितमः सर्गः ॥ ७६ ॥

इस ७६ के सर्गमें संसारको समुद्ररूप और स्त्रियोंको तरंगरूप उसके पश्चात् उससे तरनेका उपाय, और तरनेपर सुखपूर्वक क्रीडा इन विषयोंका वर्णन किया गया है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ब्रह्मणस्समुपायांतिजगंतीमानिराघव ॥ स्थैर्यंयांत्यविवेकेनशाम्यंत्येवविवेकतः ॥ १ ॥ जगज्जालजलावर्त्तवृत्तयोब्रह्मवारिधौ ॥ संख्यातुंकेनशक्यंतेभासांचत्रसरेणवः ॥ २ ॥ असम्यक्प्रेक्षणंविद्धिकारणंजगतःस्थितौ ॥ संसारशांतयेकांतकारणंसम्यगीक्षणम् ॥ ३ ॥ अयंहिपरदुष्पारो घोरःसंसारसागरः ॥ विनायुक्तिप्रयत्नाभ्यामस्मादामनतीर्यते ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! अविद्याके प्रभावसे ये सब जगत् ब्रह्मसेही आते हैं, अविवेकसे स्थिर होते हैं और विवेकसे शांत होजाते हैं ॥ १ ॥ ब्रह्मरूप समुद्रमें जगत्के समूहरूप जलके तरंगोंकी गणना कौन कर-सकता है, क्योंकि जालके अन्तर्गत सूर्यके किरणसंबंधी त्रसरेणुओंको कौन गिन सकता है ॥ २ ॥ हे रामजी ! अ-सम्यक् दर्शनको तुम जगत्की स्थितिमें कारण जानो. और इसकी शांतिके लिये सम्यक् दर्शनको ॥ ३ ॥ हे रामजी ! यह अत्यत दुर्गमपार, तथा भयंकर संसाररूप समुद्र विना युक्ति और प्रयत्नके पार होनेके समर्थ नहीं है ॥ ४ ॥

यस्यायंसागरःपूर्णोमोहांबुभरपूरितः ॥ अगाधमरणावर्त्तकल्लोलाकुलकोटरः ॥ ५ ॥ भ्रमत्पुण्यडिंडीरोज्वलन्नरकवाडवः ॥ तृष्णाविलोललहरिर्मनोजलमतंगजः ॥ ६ ॥ आलीनजीवितसरिद्भोगरत्नसमुद्गकः ॥ क्षुब्धरोगोरगाकीर्णइंद्रियग्राहघर्घरः ॥ ७ ॥ पश्यास्मिन्प्रस्तारामवीचयश्चारुचंचलाः ॥ इमामुग्धांगनानाम्न्यःशिखराकर्षणक्षमाः ॥ ८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! यह संसाररूपसमुद्र, जो कि अथाह मरणरूप आवर्तोंसे और बडे २ तरंगोंसे पूर्ण है ॥५॥ भ्रमणशील पुण्यरूप फेनसे युक्त, जाज्वल्यमान नरकरूप वडवाग्निसहित, तृष्णारूप चंचल तरंगवान्, और मनरूप-जलके हस्ती (हांथीके सदृश या दो नाम जलजंतु) संयुक्त ॥ ६ ॥ जिसमें जीवनतरंग लीन होरहे हैं ऐसा तथा भोगरूप रत्नोंका संदूक, रोगरूप क्षुब्धसर्पोंसे व्याप्त, और इंद्रियरूप ग्राहोंसे जिसमे घर्घर ऐसा भयंकर ध्वनि हो-रहाहै ऐसा यह संसाररूप सागरहै ॥ ७ ॥ और हे रामजी ! देखो इसमें उत्तम तथा चंचल ये मुग्ध अंगनारूप तरंग फैली हैं जो कि पर्वतके शिखरके समान धीर पुरुषोंके खींचनेमेंभी समर्थ हैं ॥ ८ ॥

छदश्रीपद्मरागाढ्यानेत्रनीलोत्पलाकुलाः ॥ दंतपुष्पफलाकीर्णाःस्मितफेनोपशोभिताः ॥ ९ ॥ केशेंद्रनीलवलयाभ्रूविलासतरंगिताः ॥ नितंबपुलिनस्फीताःकंठकंबुविभूषिताः ॥ १० ॥ ललाटमणिपट्टाढ्या विलासग्राहसंकुलाः ॥ कटाक्षलोलगहनावर्णकांचनवालुकाः ॥ ११ ॥ एवंविलोललहरिभीमात्संसार सागरात् ॥ उत्तीर्यतेचेन्मग्नेनतत्परंपौरुषंभवेत् ॥ १२ ॥

अर्थ—पुनः ये अंगना (स्त्री) रूप लहर ओष्ठोंकी शोभारूप पद्मरागमणियोंसे पूर्ण, नेत्ररूप नीलकमलोंसे व्याप्त, दांतरूप पुष्प तथा फलोंसे पूर्ण और मुसकियान रूप फेनोंसे शोभित ॥ ९ ॥ केशरूप इन्द्रनीलमणिसे शो-भित, भौंहके विलासोंसे तरंगमालामय, नितंबरूप तटोंसे स्वच्छ, कंठरूप शंखोंसे भूषित ॥ १० ॥ ललाटरूप म-णियोंके पट्टोंसे युक्त, विलासरूप ग्राहोंसे पूर्ण, कटाक्षोंकी चंचलतासे गहन, और देहोंकी कांतिरूप सुवर्णवत् वालु-कामय ॥ ११ ॥ चंचल तरंगोंसे भयंकर यह संसाररूप सागर जिसके मोहरूप जलसे पूर्ण है वही इसमें निमग्न पुरुष इससे पार हो तो परम पुरुषार्थ है ॥ १२ ॥

सत्यांप्रज्ञामहानाविविवेकेसतिनाविके ॥ संसारसागरादस्माद्योनतीर्णोधिगस्तुतम् ॥ १३ ॥ अपारावारमाक्रम्यप्रमेयीकृत्यसर्वतः ॥ संसाराब्धिगाहतेयःसएवपुरुषःस्मृतः ॥ १४ ॥ विचार्यार्यःसहालोक्यधियासंसारसागरम् ॥ एतस्मिंस्तदनुक्रीडाशोभतेरामनान्यथा ॥ १५ ॥ इहभव्योभवान्साधोविचारपरयाधिया ॥ त्वयाधुनैवतेनायंसंसारःप्रविचार्यते ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रामजी ! बुद्धिरूप महानौका तथा विवेकरूप केवटके विद्यमान रहते इस संसाररूप सागरसे जो पार नहीं हुआ उसको धिक्कार है ॥ १३ ॥ हे रामजी ! अपारसंसाररूप सागरको जो ब्रह्मज्ञानसे बाधित करके और सब जगत्को ब्रह्ममय करके संसाररूप समुद्रमें प्रवेश करताहै वही परमपुरुषार्थी कहागयाहै ॥ १४ ॥ हे रामजी ! श्रेष्ठ आत्मज्ञानी विद्वानोंके साथ इस संसाररूप समुद्रको पार करके और बुद्धिसे इसको ब्रह्ममय जानकर अनंतर जो इसमें क्रीडा है वही शोभा देती है अन्यथा नहीं ॥ १५ ॥ हे साधो रामजी तुम धन्य हो कि अभी इसी अल्पअव-स्थामें विचारमें तत्परबुद्धिसे इस संसारका विचार करतेहो ॥ १६ ॥

भर्धानिवविचार्यादौसंसारमतिकांतया ॥ मत्यायोगाहतेलोकोनेहासौपरिमज्जति ॥ १७ ॥ पूर्वंधियाविचार्यैतेभोगाभोगिभयप्रदाः ॥ भोक्तव्याश्चरमंपश्चाद्गरुडेनेवपन्नगाः ॥ १८ ॥ विचार्यतत्त्वमालोक्यसेव्यंतेयाविभूतयः ॥ ताउदर्कोदयाजंतोःशेषादुःखायकेवलम् ॥ १९ ॥ बलंबुद्धिश्चतेजश्चदृष्टतत्त्वस्यवर्द्धते ॥ सवसंतस्यवृक्षस्यसौंदर्याद्यागुणाइव ॥ २० ॥ घनरसायनपूर्णसुशीतयाविमलयासमयाखततंश्रिया ॥ शिशिररश्मिरिवातिविराजसेविदितवेद्यसुखंरघुनंदन ॥ २१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे संसारसागरसाम्यप्रतिपादनं नाम पट्सप्ततितमःसर्गः ॥ ७६ ॥

अर्थ—तुमारेसमान आरम्भमेंही इस संसारको अतिउत्तम बुद्धिसे विचार करके अनन्तर जो कोई ब्रह्ममें प्रवेश करताहै वह पुनः नहीं डूबता ॥ १७ ॥ हे रामजी ! प्रथम विचार करके सर्पोंके समान भयंकर भोगोंकी उपेक्षा करके पश्चात् ऐसे भोगना चाहिये जैसे गरुडजी[1] सर्पोंको ॥ १८ ॥ और इस संसारमेंभी राजाके अनुग्रह आदि रहस्यको जानकर जो कोई विभूतियोंका सेवन किया जाताहै वेही विभूति प्राणियोंकेलिये भविष्यत्में उदयको प्राप्त होती हैं, और शेषके बल दुःखोंके अर्थ हैं ॥ १९ ॥ हे रामजी ! जिसने आत्मतत्त्वदर्शन किया उसी प्राणीके बल, बुद्धि तथा तेज ऐसे बढते हैं जैसे वसंतसहित वृक्षके सुन्दरताआदि गुण ॥ २० ॥ हे रघुनन्दन ! तुमने जानने योग्य आत्मवस्तुको सुखपूर्वक जानलिया है इसी हेतुसे आनन्दरूप अमृतसे पूर्ण अतिशीतल अर्थात् तीनोंतापनिवारक, विमल, और सदा निर्मलशोभासे ऐसे शोभित हो जैसे पूर्णचन्द्रमा ॥ २१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषानुवादे संसारसागरसाम्यप्रतिपादनं नाम पट्सप्ततितमः सर्गः ॥ ७६ ॥

सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥ ७७ ॥

जीवन्मुक्तोंके गुणोंकी माला वसिष्ठमुनिने इस ७७ के सर्गमें रची है उसको पंडितोंको अपने शिरसे कंठमें मंदारकी मालाके समान धारण करनाचाहिये ॥

श्रीरामउवाच ॥ समासेनमुनेभूयोदृष्टतत्त्वचमत्कृतेः ॥ कथयोदारवृत्तांतंकस्तेवचसितृप्यति ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ जीवन्मुक्तस्यबहुधाकथितंलक्षणंमया ॥ भूयोऽपित्वंमहाबाहोकथ्यमानमिदंशृणु ॥ २ ॥ सुषुप्तवदिदंनित्यंपश्यत्यपगतैषणः ॥ असद्रूपमिवासक्तंसर्वत्राखिलमात्मवान् ॥ ३ ॥ कैवल्यमिवसंप्राप्तःपरिसुप्तमनाइव ॥ घूर्णमानइवानंदीतिष्ठत्यधिगतात्मदृक् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—हे भगवन् ! जिसने आत्मतत्वके चमत्कारको देखाहै उसके उदारचरित्रको संक्षेपसे पुनः कहिये क्योंकि आपके वचनसे कौन तृप्त होताहै ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे महाबाहो ! जीवन्मुक्तके लक्षण बहुधा मैंने वर्णन किये हैं, पुनःभी मैं कहताहुं तुम सुनो ॥ २ ॥ संपूर्ण इच्छाओंसे रहित आत्मज्ञानी इस जगत्को व्यवहारदृष्टिसे सुषुप्तके तुल्य और परमार्थदृष्टिसे असवरूपसे सर्वत्र देखताहै ॥ ३ ॥ कैवल्यके समान प्राप्त, परिसुप्त मनके तुल्य और आनन्दसे मत्तके तुल्य आत्मद्रष्टा इस जगत्में स्थित रहताहै ॥ ४ ॥

नादत्तमप्युपादत्तेगृहीतमपिपाणिना ॥ अंतर्मुखतयोदात्तरूपयासमयाधिया ॥ ५ ॥ यंत्रपुत्रकसंचारइतीमंजनताक्रमम् ॥ अंतःसंलीनयादृष्ट्यापश्यन्हसतिशांतधीः ॥ ६ ॥ नापेक्षतेभविष्यंचवर्त्तमानेनतिष्ठति ॥ नसंस्मरत्यतीतंचसर्वमेवकरोतिच ॥ ७ ॥ सुप्तःप्रबुद्धोभवतिप्रबुद्धोपिचसुप्तवान् ॥ सर्वकर्मकरोत्यंतर्नकरोतिचकिंचन ॥ ८ ॥

अर्थ—नेत्रआदि इन्द्रियोंसे गृहीत पश्चात् हस्तआदिसे गृहीतभी धन, वस्त्र, अलंकार आदिको अंतर्मुख समरूप और उदारबुद्धिसे उसका ग्रहण नहीं करता ॥ ५ ॥ और अन्तर्मुखदृष्टिसे इस संपूर्ण जनसमूहके व्यवहारको काष्ठकी पुतलीके समान शांतबुद्धिसे देखताहुआ हंसताहै ॥६॥ आत्मज्ञानी भविष्यत् पदार्थकी आकांक्षा, और वर्त-

(१) प्रथम गरुडजीने अमृतके लानेसे सर्पोंकी उपेक्षा करदी थी अनन्तर माताकी शापमोचनके पश्चात् उनको खाया यह कथा पुराणोंमें हैं.

मानमें आस्था नहीं रखताहै ॥७॥ व्यवहारविषयमें सुप्तभी आत्माके विषयमें जागताही रहताहै और व्यवहारमें प्रबुद्धभी (कुशलभी) सुप्तकेही समान रहताहै बाहरके मनसे सब कर्मोंको करताहै और अंतरमनसे कुछ नहीं करता ८

अंतःसर्वपरित्यागीनित्यमंतरनेषणः ॥ कुर्वन्नपिबहिःकार्यसममेवावतिष्ठते ॥ ९ ॥ बहिःप्रकृतसर्वेहो यथाप्राप्तक्रियोन्मुखः ॥ स्वकर्मक्रमसंप्राप्तबंधुकार्यानुवृत्तिमान् ॥ १० ॥ समग्रसुखभोगात्मासर्वाशा स्विवसंस्थितः ॥ करोत्यखिलकर्माणित्यक्तकर्तृत्वविभ्रमः ॥ ११ ॥ उदासीनवदासीनःप्रकृतःक्रमकर्मसु ॥ नाभिवांछतिनद्वेष्टिनशोचतिनहृष्यति ॥ १२ ॥

अर्थ—और अंतःकरणसे सबका त्यागी तथा सब एषणारहित रहताहै और बाहरसे सब काय्योंका करता हुआभी, आभ्यंतरसे समानरूपही स्थित रहताहै ॥ ९ ॥ बाहरसे प्रचलित सब काय्योंकी चेष्टा करनेवाला, यथाप्राप्त क्रियाओंकी ओर तत्पर, और अपने वर्णाश्रमके उचित तथा पितृपितामहादिके क्रमसे प्राप्त राज्यादि तथा बन्धु मित्रआदिके काय्योंको करताहुआ ॥ १० ॥ सब गृहसुखभोगको आत्मारूपही समझके तथा सबविषयोंमें स्थितके समान आत्मज्ञानी कर्ताके अभिमानको त्यागकर सब काय्योंको करताहै ॥११॥ उदासीनके सदृश आसीन कर्म्मोंके इष्ट अनिष्ट फलोंमें समान, और न किसीकी इच्छा करताहै, न द्वेष करताहै, न शोचताहै, और न प्रसन्न होताहै.॥१२

अनुबंधपरेजंतावसंसक्तेनचेतसा ॥ भक्तेभक्तसमाचारःशठेशठइवस्थितः ॥ १३ ॥ बालोबालेषुवृद्धेषु वृद्धोधीरेषुधैर्यवान् ॥ युवायौवनवृत्तेषुदुःखितेष्वनुदुःखितः ॥ १४ ॥ प्रवृत्तवाक्पुण्यकथोदैन्याद्व्यपगताशयः ॥ धीरधीरुदितानंदःपेशलःपुण्यकीर्त्तनः ॥ १५ ॥ प्राज्ञःप्रसन्नमधुरःपूर्णःस्वप्रतिभोदये ॥ निरस्तखेददौर्गत्यःसर्वस्मिन्स्निग्धबांधवः ॥ १६ ॥

अर्थ—अनुकूल तथा प्रतिकूल आचरणमें तत्पर जीव अनासक्तचित्तसे व्यवहार करताहै. भक्तमें भक्तकेसमान और शठमें शठकेतुल्य व्यवहार करताहुआ आत्मज्ञानी स्थिर रहताहै ॥ १३ ॥ आत्मज्ञानी बालकोंमें बालक, वृद्धोंमें वृद्ध, धीरोंमें धैर्य्यवान् रहताहै, तथा यौवनके वृत्तान्तोंमें युवाके सदृश व्यवहार करताहै. और दुःखितोंमें दुःखी रहताहै ॥ १४ ॥ यद्यपि बालक आदिमें उनके समान आचरण करनेवालाभी है तथापि बोलतेसमय पवित्र-वाणीका वक्ता, दीनतासे अभिमानरहित, धीरबुद्धि, उदित आनंदको प्राप्त, कोमल, तथा लोकमें पवित्र कीर्ति॥१५॥ बुद्धिमान्, प्रसन्नमुख, पूर्ण अपनी बुद्धिके उदयसे खेद तथा दुर्दशारहित और सब प्राणीमात्रका स्नेही बंधु ॥ १६ ॥

उदारचरिताकारःसमःसौम्यसुखोदधिः ॥ सुस्निग्धःशीतलस्पर्शःपूर्णचंद्रइवोदितः ॥ १७ ॥ नतस्य सुकृतेनार्थोनभोगैर्नचकर्मभिः ॥ नदुष्कृतैर्नभोगानांसंत्यागेननबंधुभिः ॥ १८ ॥ नकार्यकारणारंभैर्ननिष्कृततयातथा ॥ नबंधेननमोक्षेणनपातालेननोदिवा ॥ १९ ॥ यथावस्तुयथादृष्टंजगदेकमयात्मकम् ॥ तदाबंधविमोक्षाणांनकचित्कृपणंमनः ॥ २० ॥

अर्थ—उदारचरित, सब अवस्थामें समानरूप, सौम्य तथा सुखके समुद्र, अतिस्नेही, अपने संगसे सबका संतापहारी और पूर्णचंद्रमाके समान उदयको प्राप्त आत्मज्ञानी रहताहै ॥ १७ ॥ न उसको सुकृतसे कुछ प्रयोजन, न भोगोंसे, न कर्म्मोंसे, न दुष्कृतोंसे और न अनिषिद्धभोगोंसे, तथा न बंधुओंसे कुछ प्रयोजन है ॥ १८ ॥ न फलनिमित्त कर्मोंके आरंभसे, न निष्कर्मतासे, न बंधसे, न मोक्षसे, न पातालसे और न स्वर्गसे कुछ उस जीवन्मुक्तको प्रयोजन है ॥ १९ ॥ जैसे अनुभवसे दृष्ट आत्मतत्व है वैसाही एक ब्रह्ममय यह संपूर्ण जगत् है. जब यह दशा है तब बंध वा मोक्षमें कदापि कहीं यह मन दीनतायुक्त नहीं होता ॥ २० ॥

सम्यग्ज्ञानाग्निनायस्यदग्धाःसंदेहजालिकाः ॥ निःशंकमलमुड्डीनस्तस्यचित्तविहंगमः ॥ २१ ॥ यस्य भ्रांतिविनिर्मुक्तंमनःसमरसंस्थितम् ॥ नास्तमेतिनचोदेतिव्योमवत्सर्वदृष्टिषु ॥ २२ ॥ मंजूषायांनिषण्णस्ययथाबालस्यचेष्टते ॥ अंगावल्यनुसंधानवर्जितंयस्यवैतथा ॥ २३ ॥ घूर्णन्क्षीबइवानंदीमंदीभूतपुनर्भवः ॥ अनुपादेयबुद्ध्यात्नस्मरत्यकृतंकृतम् ॥ २४ ॥

अर्थ—जिसके ज्ञानरूप अग्निसे संदेहरूप पिंजरा नष्ट होगयाहै उसका चित्तरूप पक्षी निःशंक पूर्णरीतिसे उड गया ॥ २१ ॥ जिस आत्मज्ञानीका मन भ्रमसे मुक्त ब्रह्मरूप होके न अस्त होताहै न उदय होताहै किंतु सब अवस्थामें आकाशके तुल्य स्थितहै ॥ २२ ॥ मनके अभावमेंभी उसके अंगोंकी पंक्ति अनुसंधानके विना ऐसे चेष्टा करती है जैसे झूलनेकी शय्यामें स्थित बालककी ॥ २३ ॥ मदिरासे मत्तके तुल्य ब्रह्मानन्दसे घूरताहै, और पुनर्जन्मका भय जिसका मंद है, वह अग्राह्यबुद्धिके कारणसे किये वा न किये हुयेको स्मरण नहीं करता ॥ २४ ॥

सर्वैसर्वप्रकारेणगृह्णातिचजहातिच ॥ अनुपादेयसर्वार्थोबालवच्चविचेष्टते ॥ २५ ॥ सतिष्ठन्नपिकार्येषु देशकालक्रियाक्रमैः ॥ नकार्यसुखदुःखाभ्यांमनागपिहिगृह्यते ॥ २६ ॥ बहिःप्रकृतसर्वार्थोऽप्यंतःपुनर नीहया ॥ नसत्तांयोजयत्यर्थेनफलान्यनुधावति ॥ २७ ॥ नोपेक्षतेदुःखदशांनसुखाशामपेक्षते ॥ कार्यो दयेनैतिमुदंकार्यनाशेनखिद्यते ॥ २८ ॥

अर्थ—सब कुछ सबप्रकारसे ग्रहणभी करता है, और त्यागताभी है, और उसको सब पदार्थ अग्राह्य हैं, तथा बालकके समान चेष्टा करताहै ॥ २५ ॥ देश, काल, तथा क्रियाके क्रमोंसे कार्य्योंमे स्थितभी परंतु कार्यजनित सुखतथा दुःखसे वह वशीभूत नहीं होता ॥ २६ ॥ बाहरके मनसे तथा प्राप्त सब कार्योंको करताहै, और आभ्यं- तरसे चेष्टारहित रहताहै. बाह्यपदार्थोंमें सत्यताबुद्धिसे विश्वास नहीं करता, और इसीसे फलोंकीओरभी नहीं दोडता ॥ २७ ॥ समीपमें प्राप्तभी दुःखकी दशाकी ओर नहीं देखता, न सुखकी इच्छा करता है. कार्यके उदयसे प्रसन्नताको नहीं प्राप्त होता, और न कार्यके नाशसे खिन्न होताहै ॥ २८ ॥

अपिशीतरुचावर्केसुतप्तेपींदुमंडले ॥ अप्यधःप्रसरत्यग्नौविस्मयोऽस्यनजायते ॥ २९ ॥ चिदात्मनइमाइ त्थंप्रस्फुरंतीहशक्तयः ॥ इत्यस्याश्चर्यजालेषुनाभ्युदेतिकुतूहलम् ॥ ३० ॥ नदयादैन्यमादत्तेनक्रौर्यमनु धावति ॥ नलज्जामनुसंधत्तेनालज्जत्वंचगच्छति ॥ ३१ ॥ नकदाचनदीनात्मानोद्धतात्माकदाचन ॥ नप्रमत्तोनखिन्नात्मानोद्विग्नोनचहर्षवान् ॥ ३२ ॥

अर्थ—सूर्य शीतल और चन्द्रमा उष्ण होजाय वा चन्द्रमा तप्त और सूर्यमंडल शीतल होजाय, अग्नि चाहै नीचेकी ओर चले परन्तु इस आत्मज्ञानीको विस्मय नहीं होता॥२९॥ये सब इसीप्रकार सच्चिदानन्दकी माया स्फुरित होती हैं इस विचारसे आश्चर्यके समूहमेंभी इसको विस्मय नहीं होता ॥ ३० ॥ न तो दयासे दीनताको ग्रहण करताहै और न क्रूरताकी ओर दौडताहै, न भिक्षासे अपमान आदिमें लज्जित होताहै, और कुकर्मआदिमें निर्लज्जताकोभी नहीं धारण करता ॥ ३१ ॥ न तो कभी दीन हो और न कभी गर्वी हो, न कभी प्रमत्त और न कभी खिन्न हो, न कभी भयशोकादियुक्त हो, और न कभी हर्षित होताहै ॥ ३२ ॥

नास्यचेतसिसुस्फारेशरदंबरनिर्मले ॥ कोपादयःप्रजायंतेनभसीवनवांकुराः ॥ ३३ ॥ अनारतपतज्जात भूतायांजगतःस्थितौ ॥ क्कथंकिलकासौस्यात्सुखिताऽसुखिताथवा ॥ ३४ ॥ फेनाजवंजवीभावेजले भूतक्रमेतथा ॥ क्ककिलेदंकुतःकोऽतःप्रसंगःसुखदुःखयोः ॥ ३५ ॥ भावाभावैरपर्यंतैरजस्रंजंतुसंभवैः ॥ नविशीर्यंतिनोयंतिदृष्टिसृष्टिक्षमानराः ॥ ३६ ॥

अर्थ—विशाल तथा शरत्कालके आकाशकेसमान इसके चित्तमें कोप आदि ऐसे नहीं होते जैसे आकाशमें नूतन अंकुर ॥ ३३ ॥ निरन्तर मरण तथा उत्पत्ति जिसमें होरही हैं ऐसी इस जगत्की स्थितिमें कहां ! कैसे और कौनसी सुखिता वा दुःखिता होसकती है ॥ ३४ ॥ तरंगोंकेद्वारा फेनोंके भ्रमण जिसमें होते हैं ऐसे जनके सदृश इस पंचभूत वा प्राणियोंकेक्रममें कहां ! किसप्रकार और कैसा सुख तथा दुःखका क्रम है ! ॥ ३५ ॥ प्राणियोंसे उत्पन्न निरन्तर अपार उत्पत्ति तथा नाशकेद्वारा जगत्के दृष्टिसृष्टिमें समर्थ जीवन्मुक्त न कभी जीर्ण होते हैं और न हर्ष शोकादिसे उदय अस्तको प्राप्त होतेहैं ॥ ३६ ॥

निमेषंप्रतियामिन्यांयथान्याःस्वप्नदृष्टयः ॥ क्षणोत्पत्तिविनाशिन्यस्तथैतालोकदृष्टयः ॥ ३७ ॥ अनार तसमुत्पत्तावनारतविनाशिनि ॥ कःक्रमोदग्धसंसारेकारण्यानंदयोरिह ॥ ३८ ॥ शुभाभावात्सुखाभा वेस्थितिंयातेविलक्षणाः ॥ कीदृश्यःकथमायाताःक्कवातादुःखसंविदः ॥ ३९ ॥ सुखसंवेदनांतोत्थास्व बीजंवितनोतिया ॥ शांतादुःखदशासेयंकथमंतर्हितेसुखे ॥ ४० ॥

अर्थ—जैसे रात्रिमें एक निमेषकेलिये स्वप्नकी दृष्टि हैं ऐसेही क्षणमें उत्पत्ति और नाशसे ये संसारकी दृष्टिभी हैं ॥ ३७ ॥ निरन्तर उत्पत्ति तथा विनाशमय इस संसारमें शोक और आनन्दका क्या क्या प्रसंगहै ॥ ३८ ॥ शुभ- कर्मके अभावसे सुखके अभाव स्थिर होनेपर शुभफलसे विलक्षण किसप्रकारके और कहांसे वे दुःखके अनुभव हो- सकते हैं ॥ ३९ ॥ क्योंकि शुभकर्मोंके फलरूप जो सुखके अनुभवके अंतमें उत्पन्न दुःखकी दशा अपने बीजरूप शोकमोहआदिका विस्तार करती है वह स्वयं सुखके शांत होजानेसे कैसे होसकती है ॥ ४० ॥

क्षीणाभ्यांसुखदुःखाभ्यांहेयोपादेययोःक्षये ॥ ईप्सितानीप्सितेक्कास्तोगलितेषशुभाशुभे ॥ ४१ ॥ रम्या रम्यदृशोर्नाशाद्यातेभोगाभिवांछने ॥ नैराश्येसंततंप्रौढेहिमवद्विगलेन्मनः ॥ ४२ ॥ आमूलान्मनसिक्षी

णेसंकल्पस्यकथाचका ॥ तिलेष्विवातिदग्धेषुतैलस्यकलनाकुतः ॥ ४३ ॥ भावेष्वभावघनभावनया महात्मानिर्मुक्तसंकलनमंबरवत्स्थितेषु ॥ चित्तंप्रतिस्वमुदितोविततैकरूपीज्ञस्तिष्ठतिस्वपितिजीवति नित्यतृप्तः ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे जीवन्मुक्तस्वरूपवर्णनं नाम सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥ ७७ ॥

अर्थ—क्षीण सुखदुःखसे हेय और उपादेय (ग्राह्य) के क्षय होनेपर शुभ अशुभके गलित होनेपर इष्ट अनिष्ट कहां ! ॥ ४१ ॥ रम्य तथा अरम्यदृष्टिके नाशसे भोगकी इच्छाके नष्ट होनेपर; और निरन्तर नैराश्यके प्रबल होनेपर हिमकेतुल्य मन गलजाताहै ॥ ४२ ॥ मनके मूलसे क्षीण होजानेपर संकल्पकी कथा कहां रही जैसे तिलके भस्म होनेपर तेलकी कल्पना कहांसे होसकती है ॥४३॥ हे रामजी ! अपने आत्मासे भिन्न कुछ नहीं है इस अभावकी दृढभावनासे संकल्प विकल्पकी रहिततापूर्वक आकाशके तुल्य सब दृश्यपदार्थोंके स्थित होनेपर परिच्छिन्नताके अभावसे आत्मज्ञानी महात्मा नित्यतृप्त तथा आत्मानन्दसे मुदित होके जाग्रत् स्वप्नमें यथाप्राप्त पदार्थोंके दर्शनमात्रसे चित्तके प्रति स्थित रहताहै, चित्तके लयमें शयन करताहै, और प्रारब्धके क्षयतक जीताहै ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषानुवादे जीवन्मुक्तस्वरूपवर्णनं नाम सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥ ७७ ॥

अष्टसप्ततितमः सर्गः ॥ ७८ ॥

चित्तके स्पंदसे जगत्की भ्रांति और चित्तके स्पन्द (संचलन) से जो दृष्टि होती हैं, उनका तथा चित्तका निरोध योग होताहै यह विषय इस ७८ के सर्गमें वर्णन कियागयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ यथालातपरिस्पंदादग्निचक्रंप्रदृश्यते ॥ असदेवसदाभासंचित्तस्पंदात्तथाजगत् ॥ १ ॥ यथाजलपरिस्पंदाद्व्यतिरिक्तइवांभसः ॥ दृश्यतेवर्तुलावर्त्तश्चित्तस्पंदात्तथाजगत् ॥ २ ॥ यथाव्योम्नीक्षणस्पंदात्पिच्छमौक्तिकमंडलम् ॥ दृश्यतेसदिवासत्यंचित्तस्पंदात्तथाजगत् ॥ ३॥ श्रीराम उवाच ॥ येनप्रस्पंदतेचित्तंयेननस्पंदतेतथा ॥ तद्ब्रह्मन्ब्रूहिमेयेनचिकित्सेयंतदेवहि ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—जैसे जलतेहुये काष्ठके घुमानेसे अग्निका चक्र देखपडताहै इसीप्रकार चित्तके स्पन्द (संचलन) से असत्रूपही यह जगत् आभासमान देखपडताहै ॥ १ ॥ जैसे जलके भ्रमणसे जलसे पृथक्केसमान वर्तुलाकार (गोल) आवर्त (भंवरेह) देखपडताहै ऐसेही चित्तके स्पन्दसे यह जगत् है ॥ २ ॥ जैसे आतपमें आकाश (सूर्य) की ओर दृष्टि करनेसे क्षणमेंही मोरके पंख वा मोतियोंकी माला देखपडती है ऐसेही चित्तके स्पन्दसे असत्यही यह जगत् सत्यकेसमान देखपडताहै ॥ ३ ॥ श्रीरामजी बोले—हे प्रभो ! जिस स्वभावसे चित्त संचलित होताहै और जिससे स्पन्दका अभाव होताहै वह उपाय कहिये, क्योंकि उस मनकोही दमन करना आवश्यहै ॥ ४ ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यथाशौक्ल्यहिमेरामतिलतैललवौयथा ॥ यथाकुसुमसौगंध्येतथौष्ण्यदहनौयथा ॥ ५ ॥ तथाराघवसंश्लिष्टौचित्तस्पंदौतयैवहि ॥ अभिन्नौकेवलंमिथ्याभेदःकल्पितएतयोः ॥ ६ ॥ चित्ताचित्तपरिस्पंदपक्षयोरेकसंक्षये ॥ स्वयंगुणगुणीस्थित्वानश्यतोद्वौनसंशयः ॥ ७ ॥ द्वौक्रमौचित्तनाशस्ययोगोज्ञानंचराघव ॥ योगस्तद्वृत्तिरोधोहिज्ञानंसम्यगवेक्षणम् ॥ ८ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! जैसे हिम और शुक्लता, तिल और तेलका कण, पुष्प और सौगन्ध्य, तथा उष्णता तथा अग्नि अभिन्नरूप हैं ॥ ५ ॥ ऐसेही चित्त और उसके स्पन्दमिलित अभिन्नरूप हैं, इनका भेद मिथ्याही कल्पितहै ॥ ६ ॥ चित्त और चित्तके परिस्पन्दमेंसे एकके क्षय होनेसे गुणगुणीरूपसे कल्पित कारणस्वरूपसे स्थित होके दोनों नष्ट होते हैं ॥ ७ ॥ हे रामजी ! चित्तस्पन्दरूप चित्तके नाशकेलिये शास्त्रमे दो क्रम कहे हैं, योग तो चित्तकी वृत्तियों (स्पन्दों) का निरोध है और ज्ञान पूर्णरीतिसे दर्शन है ॥ ८ ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ कदाकीदृक्क्रयायुक्त्याप्राणापाननिबंधया ॥ योगनाम्न्यामनःशांतिमेत्यनंतसुखप्रदाम् ॥९॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ देहेस्मिन्देहनाडीषुवातःस्फुरतियोऽभितः ॥ स्पंदेष्विवभुवोवारिसप्राणइतिकीर्तितः ॥१०॥ तस्यस्पंदवशादंतःक्रियावैचित्र्यमीयुषः ॥ अपानादीनिनामानिकल्पितानिकृतात्मभिः ॥ ११ ॥ आमोदस्ययथापुष्पंशौक्ल्यस्यतुहिनंयथा ॥ तथैषरसआधारश्चित्तस्याभिन्नतांगतः ॥ १२ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—हे भगवन्! कब और किस प्राणअपानके आधीन योगरूप युक्तिसे अनन्त सुखदायक मनकी शांतिको प्राणी प्राप्तहोताहै ॥ ९ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी! इस देहमें प्रतिशाखामें ७२ बहत्तरि २ नाडीयोंके समूह हैं सहस्रों नाडियोंमें पवन चारोंओरसे ऐसे स्फुरित होताहै जैसे भूमिके, संचलनमें जल, उसको प्राण कहतेहैं ॥ १० ॥ स्पंदके कारणसे विचित्र (अधोगमन आदि) क्रियाको प्राप्त उसी प्राणके पंडितोंने अपानआदि नाम कल्पित कियेहैं ॥ ११ ॥ जैसे सौगन्ध्यका पुष्प, शुक्लताका हिम, आधार है, ऐसेही यह चिद्रूप रस चित्तसे अभिन्नके समान इसका आधार है ॥ १२ ॥

अंतःप्राणपरिस्पंदात्संकल्पकलनोन्मुखी ॥ संवित्संजायतेयैषातांचित्तंविद्धिराघव ॥ १३ ॥ प्राणस्पंदाच्चितेःस्पंदस्तत्स्पंदादेवसंविदः ॥ चक्रावर्तविधायिन्योजलस्पंदादिवोर्मयः ॥ १४ ॥ चित्तंप्राणपरिस्पंदमाहुरागमभूषणाः ॥ तस्मिन्संरोधितेनूनमुपशांतंभवेन्मनः ॥ १५ ॥ मनस्पंदोपशांत्यायंसंसारः प्रविलीयते ॥ सूर्यालोकपरिस्पंदशांतौव्यवहृतिर्यथा ॥ १६ ॥

अर्थ—हे रामजी! भीतर प्राणकी गति होनेमें संकल्पकी कल्पनाकी ओर उन्मुख जो संवित् (चिदाभासकी वृत्ति) उत्पन्न होती है उसीको तुम चित्त कहतेहो ॥ १३ ॥ प्राणके स्पंदसे चिदाभाससे व्याप्त वृत्तियोंका स्पंद होताहै और उसके विषयाकार अनुभव ऐसे होताहै जैसे जलके स्पंदसे चक्राकार आवर्तको अनुसरण करनेवाली तरंग ॥१४॥ वेदके मर्मवेत्ता प्राणके स्पंदकोही चित्त कहते हैं, इसलिये प्राणका निरोध होनेसे चित्त शांत होताहै ॥ १५ ॥ और मनकी शांतिसे यह संसार ऐसे नष्ट होजाताहै जैसे सूर्य्यके प्रकाशके संचारके शांत होनेसे दिनका व्यवहार ॥ १६ ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ अनिशंचरतांदेहगेहेगगनगामिनाम् ॥ प्राणादीनांपरिस्पंदोवायूनांरोध्यतेकथम् ॥ १७ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ शास्त्रसज्जनसंपर्कवैराग्याभ्यासयोगतः ॥ अनास्थायांकृतास्थायांपूर्वसंसारवृत्तिषु ॥ १८ ॥ यथाभिवांछितध्यानाच्चिरमेकतयोदितात् ॥ एकतत्त्वघनाभ्यासात्प्राणस्पंदोनिरुद्धयते॥१९॥पूरकादिनिजायामादृढाभ्यासादखेदजात् ॥ एकांतध्यानसंयोगात्प्राणस्पंदोनिरुद्धयते॥२०॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—हे भगवन्! इस देहरूप गृहमें बहत्तर (७२) सहस्र नाडियोंमें नासिकाआदि छिद्ररूप आकाशमें निरंतर गामि प्राणआदि पवनके परिस्पंदका निरोध कैसे होसकताहै ॥ १७ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी! शास्त्र तथा सज्जनके संगसे तथा वैराग्य तथा अभ्यासके योगसे पूर्वकालमें अभ्यस्त संसारकी वृत्तियोंमें अविश्वासके दृढ होनेपर ॥ १८ ॥ एकाग्रतासे उदयको प्राप्त यथाभिमत ध्यानसे अनंतर एकतत्त्वके दृढ अभ्याससे प्राणके स्पन्दका निरोध (रूकावट) होताहै ॥ १९ ॥ दृढअभ्यास तथा विना खेदसे उत्पन्न पूरक आदि निजप्राणायामसे एकांतमें ध्यानके संयोगसे प्राणके स्पन्दका निरोध होताहै ॥ २० ॥

ओंकारोच्चारणप्रांतशब्दतत्त्वानुभावनात् ॥ सुषुप्तेसंविदोजातेप्राणस्पंदोनिरुद्धयते ॥ २१ ॥ रेचकेनूनमभ्यस्तेप्राणेस्फारेखमागते ॥ नस्पृशत्यंगरंध्राणिप्राणस्पंदोनिरुद्धयते ॥ २२ ॥ पूरकेनूनमभ्यस्तेपूर्वाद्रिरिघनस्थिते॥ प्राणेप्रशांतसंचारेप्राणस्पंदोनिरुद्धयते ॥ २३ ॥ कुंभकेकुंभवत्कालमनंतंपरितिष्ठति॥ अभ्यासात्स्तंभितेप्राणेप्राणस्पंदोनिरुद्धयते ॥ २४ ॥

अर्थ—उच्चस्वरसे ओंकारके उच्चारणमें चतुर्थमात्राके आलंबनके योगसे ब्राह्मसंवित्के सर्वथा उपराम होनेसे प्राणके स्पन्दका निरोध होताहै ॥ २१ ॥ और रेचकके दृढ अभ्यास होनेसे विशालप्राणके छिन्नमेघके तुल्य आकाशरूप होनेसे और उससे नासिकाके छिद्रआदिको स्पर्श न करनेसे प्राणके स्पन्दका निरोध होताहै ॥ २२ ॥ और पूरकके निश्चयरूपसे अभ्यास करनेपर आभ्यन्तरसे पूरण होनेसे पर्वतपर मेघके तुल्य पूर्तिपर्य्यन्त वृद्धिके निश्चल होनेपर तथा प्राणोंके संचारके शांत होनेपर प्राणोंके स्पन्दका निरोध होताहै ॥ २३ ॥ पूर्तिके अनन्तर पूर्णघटके समान कुंभकप्राणायामके अनन्तकालतक स्थित होनेपर, और अभ्याससे प्राणके स्तंभित होनेसे प्राणके स्पन्दका निरोध होताहै२४

तालुमूलगतांयत्नाज्जिह्वयाक्रम्यघंटिकाम् ॥ उर्ध्वरंध्रगतेप्राणेप्राणस्पंदोनिरुद्धयते ॥ २५ ॥ समस्तकलनोन्मुक्तेनकिंचिन्नामसूक्ष्मखे ॥ ध्यानात्संविदिलीनायांप्राणस्पंदोनिरुद्धयते ॥ २६ ॥ द्वादशांगुलपर्यंते नासाग्रेविमलांबरे ॥ संविद्दृशिप्रशाम्यंत्यांप्राणस्पंदोनिरुद्धयते ॥ २७ ॥ अभ्यासादूर्ध्वरंध्रेणताल्वूर्ध्वंद्वादशांतगे ॥ प्राणेगलितसंवृत्तेप्राणस्पंदोनिरुद्धयते ॥ २८ ॥

अर्थ—मुखके फैलानेसे तालुके मूलमें स्तनके समान लटकती हुई इन्द्रकी योनि घंटिकाकी जिव्हासे रोककर प्राणको ब्रह्मरंध्रमें प्रवेशित करके धारण करनेपर प्राणके स्पन्दका निरोध होताहै ॥ २५ ॥ समस्त कल्पनाओंके

विकारसे रहित इसीसे नामशून्य सूक्ष्म हार्दाकाशमें बाह्य तथा आभ्यन्तर संवेदनकी वृत्तिमात्रके निर्विकल्प समाधि-से लीन होनेपर प्राणके स्पन्दका निरोध होताहै ॥ २६ ॥ द्वादश (१२) अंगुलपर्य्यन्त नासिकासे अग्रभागमें विमल आकाशमें नेत्र तथा मनके निरोधसे प्राणके स्पन्दका निरोध होताहै ॥ २७ ॥ और अभ्याससे ऊर्ध्वरंध्र (छिद्र) तालुके ऊपर ब्रह्मरंध्रमें प्राणकी वृत्तिके गलित होनेपर प्राणके स्पन्दका निरोध होताहै ॥ २८ ॥

भ्रूमध्येतारकालोकशांतावंतमुपागते ॥ चेतनेकेतनेबुद्धेप्राणस्पंदोनिरुद्ध्यते ॥ २९ ॥ झटित्येवयदुद्भूतं ज्ञानंतस्मिन्दृढाश्रिते ॥ असंश्लिष्टविकल्पांशेप्राणस्पंदोनिरुद्ध्यते ॥ ३० ॥ चिरंकालंहृतेकांतव्योमसंवेदनान्मुने ॥ अवासनान्मनोध्यानात्प्राणस्पंदोनिरुद्ध्यते ॥ ३१ ॥ श्रीरामउवाच ॥ ब्रह्मन्जगतिभूतानां हृदयंतत्किमुच्यते ॥ इदंसर्वंमहादर्शेयस्मिंस्तत्प्रतिबिंबति ॥ ३२ ॥

अर्थ—और भ्रू (भौंह) के मध्यस्थानमें नेत्र इंद्रियके चिरकालतक निरोधसे शांत होनेपर और पूर्वोक्तरीति-से प्राणके कपालछिद्रमें प्रवेशसे चिन्मात्रस्वभाव परमात्माको आत्मारूपसे जाननेपर प्राणका निरोध होताहै ॥ २९ ॥ गुरु वा ईश्वरके अनुग्रहसे शीघ्र जो आत्मज्ञान होताहै उस ज्ञानके विल्कपांशसे रहित दृढ होनेपर प्राणके स्पन्दका निरोध होताहै ॥ ३० ॥ हे मननशील रामजी ! हृदयाकाशमें चिरकालतक चित्तके लगानेसे और वासनारहित होके आत्माका ध्यान करनेसे प्राणके स्पन्दका निरोध होताहै ॥ ३१ ॥ श्रीरामजी बोले-हे ब्रह्मन् ! इस संसारमें प्राणि-योंका हृदय क्या है जिस महादर्प्पणमें यह सब दृश्य स्फुरित होताहै ॥ ३२ ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ साधोजगतिभूतानांहृदयंद्विविधंस्मृतम् ॥ उपादेयंचहेयंचविभागोयंतयोःशृणु ॥ ३३ ॥ इयत्तयापरिछिन्नेदेहेयद्वक्षसोंतरम् ॥ हेयंतद्धृदयंविद्धितनावेकतटेस्थितम् ॥ ३४ ॥ संविन्मात्रंतुहृदयमुपादेयंस्थितंस्मृतम् ॥ तदंतरेचबाह्येचनचबाह्येनचांतरे ॥ ३५ ॥ तत्तुप्रधानंहृदयंतत्रेदंसमवस्थितम् ॥ तदादर्शःपदार्थानांतत्कोशःसर्वसंपदाम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे साधो ! इस जगत्में प्राणियोंका दो प्रकारका हृदय है एकतो ग्राह्यहै और दूसरा त्याज्यहै उनका यह भेद तुम सुनो ॥ ३३ ॥ इयत्ता (इतनाहै) से परिच्छिन्न देहमें, वक्षस्थलमें, शरीरके एकदेशमें जो मांसपिंड है उसको तुम त्याज्य जानो ॥ ३४ ॥ संवित् (ज्ञान) मात्र जो हृदय है वह उपादेय कहा-गयाहै, और वह सबके भीतर तथा बाहर है ॥ ३५ ॥ वही प्रधान हृदय है, उसी ज्ञानमें यह सब जगत् स्थित है. वही सब पदार्थोंका दर्पण तथा सब संपत्तियोंका कोश है ॥ ३६ ॥

सर्वेषामेवजंतूनांसंविद्धृदयमुच्यते ॥ नदेहावयवैकांशोजडजीर्णोपलोपमः ॥ ३७ ॥ तस्मात्संविन्मये शुद्धेहृदयेहृतवासनः ॥ बलान्नियोजितेचित्तेप्राणस्पंदोनिरुद्ध्यते ॥ ३८ ॥ एभिःक्रमैस्तथान्यैश्चनाना संकल्पकल्पितैः ॥ नानादेशिकवक्त्रस्थैःप्राणस्पंदोनिरुद्ध्यते ॥ ३९ ॥ अभ्यासेननिराबाधमेतास्ता योगयुक्तयः ॥ उपायतामुपायांतिभव्यस्यभवभेदने ॥ ४० ॥

अर्थ—हे रामजी ! सब जीवोंका हृदय संवित् कहागया है न कि देहका अवयव. जड प्राचीन पाषाणके समान मांसपिंड ॥ ३७ ॥ इसलिये संवित्‌रूप शुद्धहृदयमें वासनाके त्यागपूर्वक चित्तके बलसे नियुक्त करनेपर प्राणका स्पंद निरुद्ध होताहै ॥ ३८ ॥ इन तथा अन्य नानाप्रकारके आचार्य्योंके मुखमें स्थित नानाप्रकारके संक-ल्पोंसे कल्पित कर्मोंसे प्राणके स्पंदका निरोध होताहै ॥ ३९ ॥ मोक्षके अधिकारी पुरुषको संसारके भेदनमें ये सब कहीहुई योगकी युक्तियां अभ्याससे निःसंदेह उपायताको प्राप्त होतीहैं ॥ ४० ॥

आभ्यासाद्दृढतांयातोवैराग्यपरिलांछितः ॥ यथावासनमायामःप्राणानांसफलःस्मृतः ॥ ४१ ॥ भ्रूनासातालुसंस्थासुद्वादशांगुलिकोटिषु ॥ अभ्यासाच्छाम्यतिप्राणोदूरेगेगिरिनदीयथा ॥ ४२ ॥ भूयोभूयश्चिराभ्यासाज्जिह्वाप्रांतेनतालुनि ॥ घंटिकास्पृश्यतेप्राणोयेनोच्चैर्निर्वहत्यलम् ॥ ४३ ॥ विकल्पबहुलास्त्वेतेस्वाभ्यासेनसमाधयः ॥ परमोपशमायाशुसंप्रयांत्यविकल्पताम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—अभ्याससे दृढताको प्राप्त, वैराग्यसे चिन्हित, वासनाओंके निरोधकेलिये प्राणायाम सफल कहा गयाहै ॥ ४१ ॥ भ्रू, नासिका, तालु वा कंठदेशसे १२ अंगुलिपर्य्यन्त, कंठ, नाभि तथा कूर्म नाडी आदि देशोंमें चित्तके स्थिर करनेके अभ्याससे प्राण ऐसे शांत होताहै जैसे दूरदेशमें जानेसे झरनेकी नदी ॥ ४२ ॥ जिव्हाके अग्रभागसे पुनः २ जो घंटिका पीडित की जाती है जिससे प्राण अधिक नहीं चलता ॥ ४३ ॥ यद्यपि इन समाधि-योंके अनेक विकल्प हैं तथापि निष्कामपुरुषकेलिये अविकल्पताको प्राप्त होती हैं ॥ ४४ ॥

आत्मारामोवीतशोकोभवत्यंतःसुखःपुमान् ॥ अभ्यासादेवनान्यस्मात्तस्मादभ्यासवान्भव ॥ ४५ ॥ अभ्यासेनपरिस्पंदेप्राणानांक्षयमागते ॥ मनःप्रशममायातिनिर्वाणमवशिष्यते ॥ ४६ ॥ वासनावलितं जन्ममोक्षंनिर्वासनंमनः ॥ प्राणंचरामगृह्णातियथेच्छसितथाकुरु ॥ ४७ ॥ प्राणस्पंदोमनोरूपंतस्मात्संसृतिविभ्रमः ॥ तस्मिन्नेवशमंयातेदीयतेसंसृतिज्वरः ॥ ४८ ॥

अर्थ—हे रामजी ! अभ्यास (चित्तके निरोधरूप अभ्यास) सेही पुरुष आत्माराम शोकरहित, और अंतःकरणमें सुखी होताहै न कि अन्य किसी उपायसे, इस कारण तुमभी अभ्यासवान् होओ ॥ ४५ ॥ अभ्याससे प्राणोंके परिस्पन्दके क्षय होनेपर मन शांतिको प्राप्त होताहै और केवल निर्वाण (ब्रह्म वा मोक्षपद) शेप रहताहै ॥ ४६॥ हे रामजी ! वासनासे वेष्टित चित्त जन्म शरीर और प्राणको ग्रहण करता है और वासनारहित मोक्षको, अब तुम जैसी इच्छा हो वैसा करो ॥ ४७ ॥ हे रामजी ! प्राणोंका स्पंदही मनका रूप है और उसीसे यह संसारका भ्रम है. उस प्राणके स्पंदके शांत होनेपर यह संसारका ताप खंडित होजाताहै ॥ ४८ ॥

विकल्पांशक्षयाज्जंतोःपदंतदवशिष्यते ॥ यतोवाचोनिवर्त्ततेसमस्तकलनान्विताः ॥ ४९ ॥ यत्रसर्वंयतःसर्वंयत्सर्वंसर्वतश्चयत् ॥ यत्रनेदंयतोनेदंयन्नेदंनेदृशंजगत् ॥ ५० ॥ विनाशित्वाद्विकल्पत्वाद्गुणित्वान्निर्गुणात्मनः ॥ यस्यनोसदृशोदृष्टोदृष्टांतःकश्चिदेवहि ॥ ५१ ॥ स्वादनीसर्वशालीनांदीपिकासर्वतेजसाम् ॥ कलनासर्वकामानामंतश्चिच्चंद्रिकोदिता ॥ ५२ ॥

अर्थ—प्राणीके विकल्प अंशके क्षय होनेसे वह (ब्रह्म) पद शेप रहताहै जिससे समस्त कल्पनायुक्त वाणी निवृत्त होती हैं ॥ ४९ ॥ जहां वह सब है, जहांसे यह सब (दृश्य) है, जो सब है, और जो सबओरसे है, और अपने स्वरूपसे जहां यह नहीं है, जहांसे यह नहीं है, जो यह नहीं है, और जिस ब्रह्मके सदृश किसी अंशमें यह जगत् नहीं है ॥ ५० ॥ विनाशी होनेसे, विकल्पमय होनेसे, निर्गुण परमात्माके सदृश कोईभी दृष्टांत जगत्में नहीं देखागया ॥ ५१ ॥ अन्तःकरणमें उदित चित्रूप चन्द्रिका सब रूपरसादि गोचर बाह्यवृत्तिकी त्रिपुटीका आस्वाद लेनेवाली (साक्षीरूप) और सब तेजस्वीपदार्थोंकी दीपिका (प्रकाशिका) तथा कामआदि आभ्यन्तर वृत्तियोंकी त्रिपुटीकीभी प्रकाशिका है ॥ ५२ ॥

यस्मात्कल्पतरोर्बह्व्यःसंसारफलपंक्तयः ॥ अनारतंबहुरसाजायंतेचपतंतिच ॥ ५३ ॥ तत्पदंसर्वसीमांतमवलंब्यमहामतिः ॥ यःस्थितःस्थिरधीस्तज्ज्ञःसजीवन्मुक्तउच्यते ॥ ५४ ॥ विगतसर्वसमीहितकौतुकःसमुपशांतहिताहितकल्पनः ॥ सकलसंव्यवहारसमाशयोभवतिमुक्तमनाःपुरुषोत्तमः ॥५५॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे
योगवर्णनं नाम अष्टसप्ततितमःसर्गः ॥ ७८ ॥

अर्थ—जिस चेतनरूप कल्पवृक्षसे अनेकरससंयुक्त ये संसाररूप फलोंकि पंक्ति निरन्तर उत्पन्न होती हैं और गिरती हैं ॥ ५३ ॥ सब सीमाओंका अंत उस ब्रह्मपदका अवलम्बन करके जो महामति स्थितहै वही धीर बुद्धियुक्त है और वही उस ब्रह्मपदका ज्ञाता जीवन्मुक्त कहाजाताहै ॥ ५४ ॥ हे रामजी ! सब वांछित कामभोगादिकी अभिलाषा जिसकी गलित होगई हैं सब हित अहितकी कल्पना जिसकी शांत है और सब व्यवहारोंमें हर्ष शोक आदिसे जो शून्य हैं ऐसा प्राणी मनसे मुक्त पुरुषोत्तम है ॥ ५५ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे उपशमप्रकरणे
योगवर्णनं नामाष्टसप्ततितमः सर्गः ॥ ७८ ॥

एकोनाशीतितमः सर्गः ॥ ७९ ॥

चित्तके नाशकेलिये जो योग और ज्ञानका क्रम पूर्वप्रसंगमें कहागयाहै उनमेंसे प्रथम (योग) के ज्ञात होनेपर दूसरा (ज्ञानका क्रम) इस ७९ के सर्गमें निरूपण कियागयाहै ॥

श्रीरामउवाच ॥ योगयुक्तस्यचित्तस्यशमएवनिरूपितः ॥ सम्यग्ज्ञानमिदानींमेकथयानुग्रहात्प्रभो॥१॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अनाद्यंतावभासात्मापरमात्मेहविद्यते ॥ इत्येकोनिश्चयःस्फारःसम्यग्ज्ञानंविदुर्बुधाः ॥ २ ॥ इमाघटपटाकाराःपदार्थशतपंक्तयः ॥ आत्मैवनान्यदस्तीतिनिश्चयःसम्यगीक्षणम् ॥३॥ असम्यग्वेदनाज्जन्ममोक्षस्सम्यगवेक्षणात् ॥ असम्यग्वेदनाद्रज्जुःसर्पोनोसम्यगीक्षणात् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले-हे प्रभो ! योगसे युक्त पुरुषके चित्तके नाशका प्रथम उपाय आपने कहा, अब मेरे ऊपर अनुग्रह करके सम्यक्ज्ञान कहिये ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! अनादि अनंत परमात्माही एक असाधारण इस जगत्में है अन्य नहीं है इसी एक महान् निश्चयको पण्डितलोग सम्यक्ज्ञान कहते हैं ॥ २ ॥ घटपट आकारकी ये सैकडों पदार्थोंकी पंक्तियां स्फुरित होती हैं वह सब आत्माही है न कि अन्य यही निश्चय सम्यक्ज्ञान है. मिथ्याज्ञानसे जन्मादि और सम्यक्ज्ञानसे मोक्ष होताहै, क्योंकि मिथ्याज्ञानहीसे रज्जु सर्प होताहै न कि सत्यज्ञानसे ॥ ४ ॥

संकल्पांशविनिर्मुक्तासंवित्संवेद्यवर्जिता ॥ संवित्त्याभिसमाख्यातामुक्तावस्तीहनेतरत् ॥ ५ ॥ सेयंशु द्धरूपाविज्ञातापरमात्मेतिकथ्यते ॥ शुद्धात्वशुद्धरूपांतरविद्येत्युच्यतेबुधैः ॥ ६ ॥ संवित्तिरेवसंवेद्यं नानयोर्द्वित्वकल्पना ॥ चिनोत्यात्मानमात्मैवरामैवंनान्यदस्तिहि ॥ ७ ॥ यथाभूतात्मदर्शित्वमेतावद्भु वनत्रये ॥ यदात्मैवजगत्सर्वमितिनिश्चित्यपूर्णता ॥ ८ ॥

अर्थ—संकल्पके अंशसे विनिर्मुक्त और विषयसे वर्जित जो संवित् है वही अपने स्वप्रकाश स्वभावसे चारों-ओरसे मुक्तिकेलिये प्रख्यात है न कि अन्य ॥ ५ ॥ वही शुद्धरूपसे ज्ञात संवित् परमात्मा कही गई है, और वह शुद्ध-रूपभी होके अन्तमें अशुद्धरूपकी कल्पनासे पंडितोंसे अविद्या कहीजाती है ॥ ६ ॥ ज्ञानही ज्ञेय है इन दोनों (ज्ञान ज्ञेय) में द्वित्वकी कल्पना नहीं है. हे रामजी ! आत्माही आत्माका संचय करताहै और अन्य कुछभी नहीं है ॥ ७ ॥ इस तीनों भुवनोंमें सत्य आत्माकी दर्शिता और यह सब जगत् आत्माही है ऐसा निश्चय करके पूर्णकामता है ॥ ८ ॥

सर्वमात्मैवकौदिष्टौभावाभावौक्वचस्थितौ ॥ क्वबंधमोक्षकलनेकिमन्यद्रामशोच्यते ॥ ९ ॥ नचेत्यम न्यन्नोचित्तंब्रह्मैवेदंविजृंभते ॥ सर्वमेकंपरंव्योमकोमोक्षःकस्यबंधता ॥ १० ॥ ब्रह्मेदंबृंहिताकारंबृहद्बृह दवस्थितम् ॥ ज्ञानादस्तमितद्वित्वंभवात्मैवत्वमात्मना ॥ ११ ॥ सम्यगालोकितेरूपेकाष्ठपाषाणवास साम् ॥ मनागपिनभेदोस्तिकासिसंकल्पनोन्मुखः ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! जब संसार आत्माही है तब भावअभाव आत्मासे भिन्न क्या निरूपण किये गये हैं और वे कहां स्थित हैं और बंधमोक्षकी कल्पना कहां है, इसलिये आत्मासे अन्य क्या है जिसके लिये मूढलोग शोच क-रते हैं ॥ ९ ॥ आत्मासे अन्य न विषय है, न चित्त है, किन्तु ब्रह्मही यह दृश्यरूपसे शोभित है. सब जगत् एक चि-दाकाशही है, तब क्या मोक्ष है और किसको बंधन है ॥ १० ॥ महान्सेभी महान् ब्रह्मही यह बडे आकारसे इस दृश्यरूपसे व्यवस्थित है इस हेतुसे ज्ञानसे द्वित (द्वैत) का बाध करके तुम आत्मासे आत्मारूप होओ ॥ ११ ॥ काष्ठ, पाषाण और वस्त्रोंका तत्व अधिष्ठान सन्मात्रसे भलीभांति विचारनेपर किंचिन्मात्रभी भेद किसीका नहीं है तब किसमें तुम संकल्पकी ओर उन्मुख हो ॥ १२ ॥

आदावंतेचसंशांतंस्वरूपमविनाशियत् ॥ वस्तुनात्मामनश्चैवतन्मयोभवराघव ॥ १३ ॥ परंव्योमेदम खिलंजगत्स्थावरजंगमम् ॥ सुखदुःखक्रमःकुत्रविज्वरोभवराघव ॥ १४ ॥ द्वैताद्वैतसमुद्भूतैर्जरामरण विभ्रमैः ॥ स्फुरत्यात्मभिरात्मैवचित्रैरंब्विववीचिभिः ॥ १५ ॥ शुद्धमात्मानमालिंग्यनित्यमंतस्थया धिया ॥ यःस्थितस्तंकआत्मेहंभोगाबंधयितुंक्षमाः ॥ १६ ॥

अर्थ—आदिअन्तमें अविनाशी जो स्वरूप है वही वस्तुके नामसे प्रसिद्ध और वही आत्माका स्वरूप है, इस लिये हे रामजी ! तुम आत्ममय होजाओ ॥ १३ ॥ हे रामजी ! यह स्थावरजंगम सम्पूर्ण जगत् परब्रह्म चिदाकाशही है, सुख तथा दुःखका क्रम कहां है इसलिये तुम सन्तापरहित होजाओ ॥ १४ ॥ द्वैत तथा अद्वैतसे उत्पन्न जरामर-णके भ्रमसे संयुक्त चित्रविचित्र आत्मा (जीवों) से आत्माही ऐसे स्फुरित होताहै जैसे विचित्र तरंगोंसे जल ॥१५॥ अन्तरमें स्थितबुद्धिसे नित्य शुद्धआत्माका आलिंगन करके जो स्थित है उस आत्माभिलाषी तत्त्वज्ञानीको भोग बांध-नेमें समर्थ नहीं है ॥ १६ ॥

कुतस्फारविचारस्यमनोभोगादयोरयः ॥ मनागपिनभिंदंतिशैलंमंदानिलाइव ॥१७॥ अविचारिणमज्ञानं मूढमाशापरायणम् ॥ निगिरंतीहदुःखानिबकामत्स्यमिवाजलम् ॥१८॥जगदात्मैवसकलमविद्यानास्ति कुत्रचित् ॥ इतिदृष्टिमवष्टभ्यसम्यग्रूपःस्थिरोभव ॥ १९॥ नानात्वमस्तिकलनासुनवस्तुतोंतर्नानाविधा सुसरसीषुजलादिनान्यत् ॥ इत्येकनिश्चयमयःपुरुषोविमुक्तइत्युच्यतेसमवलोकितसम्यगर्थः ॥ २० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे सम्यग्ज्ञानलक्षणनिरूपणं नामैकोनाशीतितमः सर्गः ॥ ७९ ॥

अर्थ—जिसने महान् आत्माका विचार कियाहै उसको मन भोगआदि शत्रु ऐसे किंचित् भेदन नहीं करसकते जैसे पर्वतको मंद पवन ॥ १७ ॥ अविचारी, अज्ञानी, मूढ तथा आशामें परायण जीवको दुःख ऐसे निगलजाते हैं जैसे जलरहित मत्स्यको बक (बगुले) ॥ १८ ॥ हे रामजी ! यह सब जगत् आत्माही है, अविद्या कहीं नहीं है, इस दृष्टिका अवलंबन करके तुम आत्मरूपसे स्थिर होओ ॥ १९ ॥ जैसे नानाप्रकारके जलाशयोंमें तरंग फेन और बुद्बुद आदि जलसे अन्य कुछ नहीं हैं ऐसेही नानाप्रकारकी कल्पनाओंमें आत्माके सिवाय यथार्थमें कुछ नहीं है ऐसा विचार करके सम्यक् आत्मदर्शी और आत्मामें मुख्य निश्चययुक्त पुरुष मुक्त कहाजाताहै ॥ २० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषानुवादे सम्यग्ज्ञानलक्षणनिरूपणं नामैकोनाशीतितमः सर्गः ॥ ७९ ॥

अशीतितमः सर्गः ॥ ८० ॥

जिस विचारके दृढ होनेपर संमुख स्थित दिव्यभोगोंमेंभी इच्छा नहीं होती वह विचार इस८०के सर्गमें वर्णन करतेहैं॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इदमंतःकलयतो भोगान्प्रतिविवेकिनः ॥ पुरःस्थितानपि सदा स्पृहैवांग न जायते ॥ १ ॥ नयने रूपनिचक्षुरालोकनायैव जीवस्तु सुखदुःखयोः ॥ भारायैव बलीवर्दो भोक्ता द्रव्यस्य नायकः ॥ २ ॥ नयने रूपनिमग्नेक्षोभः कइव देहिनः ॥ गर्दभे पल्वले मग्ने कैव सेनापतेः क्षतिः ॥ ३ ॥ रूपकर्दममेतन्मा नयनास्वादयाधम ॥ नश्यत्येतन्निमेषेण भवंतमपि हिंसति ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! यह वक्ष्यमाण विचार करतेहुये विवेकी पुरुषकी संमुख स्थित भोगोंमेंभी सदा रुचि नहीं होती॥१॥कि नेत्र केवल रूप दर्शनके लिये हैं और सुखदुःखका भोक्ता जीव है जैसे बलीवर्द भार ढोनेके लिये है और द्रव्यका भोक्ता उसका स्वामी है ॥ २ ॥ नेत्र इन्द्रियके रूपमें मग्न होनेसे आत्माको क्या क्षोभ क्योंकि गर्दभके तलावमें डूबनेसे सेनापतिकी क्या हानि ! ॥ ३ ॥ हे नीच नेत्र स्त्री पुत्रआदिकी सुन्दरतारूप इस कीचडका आस्वाद तुम मत लो क्योंकि यह एक निमेषमें स्वयं नष्ट होगा और तुमकोभी नष्ट करेगा ॥ ४ ॥

येनैव संख्या क्रियते येनैवास्वादुगम्यते ॥ तदीयैः कर्मभिः क्षिप्रं प्राज्ञः क्रूरो निबध्यते ॥ ५ ॥ उत्पन्नध्वंसि चापातमात्रहृद्यमसन्मयम् ॥ रूपमाश्रयमाने त्र विनाशायाविनाशिने ॥ ६ ॥ साक्षिवत्त्वं स्थितं नेत्र रूपमात्मनि तिष्ठति ॥ आलोकं कालवशतस्त्वमेकं किं प्रतप्यसे ॥ ७ ॥ सलिलस्पंदवद्दृष्टिः पिच्छिकेवांबरोत्थिता ॥ सुजातिबंधास्फुरतितव चित्त किमागतम् ॥ ८ ॥

अर्थ—और तीव्रबुद्धि आत्मज्ञानी तो जिस अंतर्गत चिदात्मासे बाह्य तथा आभ्यंतर पदार्थोंकी प्राप्तिद्वारा प्रकाश कियाजाताहै और जिसकेद्वारा अनात्मभूत पंचकोशोंकी परम्परा आत्माके साथ अभिन्नरूपसे अनुगम की जाती है उनके उदासीनतासे यथाप्राप्त पदार्थोंके प्रकाशनरूप चरित्रोंसे अभ्याससे सम्बन्धित होताहै न कि मूढोंके तुल्य सौंदर्यरूप कीचडके आस्वादनरूप कर्मोंसे ॥ ५ ॥ हे नेत्र उत्पत्ति तथा नाशशील, और विना विचारे रमणीय, तथा असत्य इस रूपका आश्रय अवश्य होनेवाले मृत्युके मुखमें प्रवेश करनेके वास्ते न करो ॥ ६ ॥ और हे नेत्र ! सदा सब पदार्थोंके प्रकाशनमें विना किसीकी अपेक्षा समर्थ होकेभी रूपादिके विषयमें उदासीन साक्षीरूपसे स्थित है इसलिये तुमभी साक्षीके तुल्य सदा सत्स्वरूप आत्माको देखो क्यों एकाकीपरि तप्त होतेहो ! ॥ ७ ॥ हे चित्त ! यह रूपकी दृष्टि जो गौ, अश्व, स्त्री, पुरुषआदि उत्तम तथा तीन जातिके अनुबन्धसे युक्त होकर नेत्रको स्फुरित होरही है वह नदीआदिके जलकी गतिके समान अनियतरूप, और अश्रुसहित नेत्रसे आकाशकी ओर देखनेसे मोरके पंखके समान मिथ्याभूत है, परन्तु तुमको इसमें क्या प्राप्त हुआ ! ॥ ८ ॥

कल्पांभसीव शफरी चित्तेस्फुरणधर्मिणि ॥ स्वयंस्फुरत्यहंकारस्त्वमयं प्रोत्थितः कुतः ॥ ९ ॥ आलोकरूपयोर्नित्यं जडयोः स्फुरतोर्मिथः ॥ आधाराधेययोश्चित्त कथमाकुलता तव ॥ १० ॥ रूपालोकमनस्कारा परस्परमसंगिनः ॥ संपन्ना इव लक्ष्यंते वदनादर्शबिंबवत् ॥ ११ ॥ अज्ञानजंतुनाह्येते श्लिष्टा जातानिरंतरा ॥ अज्ञाने ज्ञाननिगलितेऽप्यच्छिद्यंत्यसन्मयाः ॥ १२ ॥

अर्थ—और हे अहंकार! प्रलयकालके जलमें मछलीके सदृश चित्तमें यह जगत् स्फुरित होताहै तो हो परन्तु तुम कहांसे आके आविर्भूत हो ॥ ९ ॥ हे चित्त ! स्त्री आदिके पिंडादिरूप मूर्त्य आदिके प्रकाशके आश्रयसे, और

सूर्यआदिका प्रकाश पिंडआदिके आश्रयसे इसप्रकार परस्पर दोनों जड आधार आधेय स्फुरित हों परन्तु सुन्दरता आदिकी भ्रांतिसे कामादिकी पीडासे बिना सम्बन्ध तुम व्याकुल होतेहो ॥१०॥ रूप, नेत्रआदिसे बाह्यपदार्थोंका दर्शन और मनके संकल्पमें परस्पर सम्बन्धरहित होकेभी मिलितके समान ऐसे देखपडते हैं जैसे मुख दर्पण और प्रतिबिंब ॥ ११ ॥ अज्ञानी जीवके लिये तो परस्पर मिलितहैं. जब ज्ञानसे अज्ञानका बाध होजाताहै तब पृथक् असम्बन्धमय स्थित रहते हैं अर्थात् अधिष्ठानरूपसे रहते हैं ॥ १२ ॥

मनःकल्पनयाह्येतेसुसंबद्धाःपरस्परम् ॥ रूपालोकमनस्कारादारुणीजतुनायथा ॥ १३ ॥ स्वमनोमतं नंतंतुर्मनोभ्यासेनयत्नतः ॥ विचाराच्छेदमायातिच्छिन्नैवाज्ञानभावना ॥ १४ ॥ अज्ञानसंक्षयात्क्षीणे मनसीमेपुनर्मिथः ॥ रूपालोलमनस्काराःसंघट्टंतेनकेचन ॥ १५ ॥ सर्वेषांचित्तमेवांतरिंद्रियाणांप्रबोधकम् ॥ तदेवतस्माद्बुच्छेद्यंपिशाचइवमंदिरात् ॥ १६ ॥

अर्थ—रूप प्रकाश और मनके संकल्प विकल्प ये सब मनकी कल्पनासे परस्पर ऐसे सम्बद्ध हैं जैसे लाहसे काष्ठ ॥ १३ ॥ अपने मनका संकल्प विकल्पही मकरीके जालके तुल्य अपने बन्धनका कारणहै और यत्नपूर्वक मनके अभ्याससे विचारद्वारा जब विच्छेदको प्राप्त हुआ तब मनकी भावना छिन्नही है ॥ १४ ॥ अज्ञानके क्षयसे मनके क्षीण होनेपर रूप प्रकाश तथा संकल्प किसीप्रकार नहीं मिलसकते ॥ १५ ॥ सब इन्द्रियोंका प्रेरक एक चित्तही है इसलिये मन्दिरसे पिशाचके तुल्य उसीका उच्छेद करना चाहिये ॥ १६ ॥

चित्तवल्गसिमिथ्यैवदृष्टोऽतोभवतोमया॥ आद्यंतयोःसुतुच्छंत्वंवर्त्तमानेविनश्यसि ॥ १७ ॥ सुधापंचभिराकारैःकिमंतःपारिवल्गसि ॥ यस्त्वांस्वमितिजानातितस्यैवपरिवल्गसि ॥ १८ ॥ त्वद्वल्गनंमेकुमनोनमनागपितुष्टये ॥ मायामनःस्पंदइवव्यर्थंवृत्तिषुदह्यसे ॥ १९ ॥ तिष्ठवागच्छवाचित्तनासिमेनच जीवसि ॥ प्रकृत्यासिमृतंनित्यंविचारात्सुमृतंस्मृतम् ॥ २० ॥

अर्थ—हे चित्त अब मिथ्याही गर्जना करतेहो अब तुमारा अंत हमने देखलिया, जब आदि अंतमें तुम सर्वथा अतितुच्छ हो तो वर्तमानमेंभी नष्टही हो ॥ १७ ॥ तुम पांचों इन्द्रियोंसे प्राप्त कियेहुये शब्द, रूप, रसआदि आकारोंसे व्यर्थ भीतरसे क्यों गर्जतेहो, क्योंकि जो तुमको नहीं जानता उसीके लिये तुम गर्जतेहो ॥ १८ ॥ हे मन यह तुमारा गर्जन किंचित्भी मेरे प्रसन्नताके लिये नहींहै, तुम विषयाकार वृत्तियोंमें व्यर्थ ऐसे क्यों भस्म होरहेहो जैसे इन्द्रजालकी मायासे प्रेरित मनकी नानाप्रकारकी विषयाकार चेष्टाओंमें॥१९॥ हे चित्त! रहो वा जाओ मेरेलिये न तुम हो और न जीत हो तुमतो अपने मिथ्यास्वभावहीसे मृतहो और विचारसे स्मृत तुम सर्वथा असत् हो ॥ २० ॥

निस्तत्त्वंत्वंजडंभ्रांतंशठंनित्यमृताकृते ॥ मूढएवत्वयाज्ञेनबाध्योनप्रविचारवान् ॥ २१ ॥ वयमज्ञातवंतस्त्वांमौर्ख्येणाशुमृतंभवत् ॥ मृतमस्माकमद्यासिदीपानांतिमिरंयथा ॥ २२ ॥ शठेनभवतादीर्घकालंदेहगृहंमम ॥ उपरुद्धमभूत्सर्वसाधुसंसर्गवर्जितम् ॥ २३ ॥ जडेप्रेतसमाकारेगतेत्वयिमनःशठे ॥ सर्वसज्जनसंसेव्यमिदंदेहगृहंमम ॥ २४ ॥

अर्थ—तत्वरहित, जड, भ्रांत और शठ हो, हे नित्य मृतक आकारवाले चित्त तुम अज्ञानसहित हो इसलिये मूढकोही बाधा पहुंचासकतेहो नकि विचारवान्को ॥ २१ ॥ अपनी मूर्खतासे हमलोगोंने शीघ्र तुमको मृतकरूप नहीं जाना और अब आत्माके दर्शनकालमें तो तुमको ऐसे मृत जानलिया जैसे दीपकोंसे अंधकार ॥ २२ ॥ तुमने ज्ञानसे पूर्व शमदमआदि साधुसमागमसे वर्जित हमारे देहरूप गृहको दीर्घकालतक रोक रक्खाथा ॥ २३ ॥ जड प्रेतके समान आकारसहित शठरूप तुमारे जानेसे हमारा देहरूप गृह सब शमआदि सज्जनोंसे सेवनीय होगया॥२४॥

पूर्वमेवासिनासीस्त्वंसंप्रत्येवशठंजगत् ॥ नभविष्यसिचेदानींवेतालकिंनलज्जसे ॥ २५ ॥ सहतृष्णापिशाचीभिःसहकोपादिगुह्यकैः ॥ निर्गच्छचित्तवेतालशरीरसदनान्मम ॥ २६ ॥ दिष्ट्याविवेकमात्रेणनिर्गतोदेहमंदिरात् ॥ प्रमत्तश्चित्तवेतालःकुवृकःकंदरादिव ॥ २७ ॥ अहोनुचित्रंसुमहज्जडेनक्षणभंगिना ॥ मनःशठेनसर्वोयंनीतोविवशतांजनः ॥ २८ ॥

अर्थ—हे जगत्रूपधारी शठ चित्तरूप वेताल! तुम प्रथमभी न थे और अबभी नहो, तथा आगेभी न होओगे तथापि लज्जित नहीं होते? ॥ २५ ॥ हे चित्तवेताल! यदि लज्जावान् है तो मेरे शरीररूप गृहसे तृष्णारूपी पिशाचियों तथा क्रोधादि गुह्यकोंके साथ चलेजाओ ॥ २६ ॥ यह सौभाग्य है कि विवेकरूप मंत्रसे चित्तरूप प्रमत्त वेताल मेरे देहरूप मन्दिरसे ऐसे चलागया जैसे कन्दरासे वृक (भेडिया) ॥ २७ ॥ अहो! यह कैसे आश्चर्यका विषय है कि अतिजड तथा क्षणभंगुर इस शठ मनने सब प्राणीमात्रको अपने वशमें करलियाहै ॥ २८ ॥

कस्तेपराक्रमःकिंतेबलंकस्तेसमाश्रयः ॥ यदिवल्गसिमामेकंजनानांबाधसेमृतम् ॥ २९ ॥ सर्वथैवा सिनमयादीनचित्तकमार्यसे ॥ मृतमित्यवबुद्धंत्वमद्यकेवलमज्ञहे ॥ ३० ॥ एतावंतमहंकालंत्वांज्ञात्वा जीवदास्थिति ॥ श्लिष्टःप्रभूतसंगासुचिरंसंसृतिरात्रिषु ॥ ३१ ॥ चित्तंमृतंहिनास्तीदमित्यद्याधिगतंम या ॥ तेनत्वदाशांसंत्यज्यतिष्ठाम्यात्मनिकेवलम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—रे दुष्ट प्राणीयोंके मध्यमें देहात्मदर्शनसे स्वमृतक जनकोही तूं बाधा करताहै तो क्या तेरा पराक्रम है, क्या बल है, और क्या आश्रय है ? यदि अद्वितीय आत्मस्वरूप मेरे ऊपर बाधा करनेमें समर्थ हो तब तेरा पराक्रम है, ॥ २९ ॥ हे दीन चित्त ! अब सर्वथा मैं तुझे नहीं मारता क्योंकि हे अज्ञ आत्माके दर्शनसे मुझे अब यह ज्ञात हुआ कि तुम प्रथमसेही मृत हो ॥ ३० ॥ हे दुष्ट ! इतने कालतक मैंने तुझे जीवितके समान जानकर संसाररूप रात्रियोंमें चिरकालतक तुमसे अभेदबुद्धिसे मिलारहा ॥ ३१ ॥ चित्त नहीं है कि तुम प्रथमसेही मृतक है यह बात अब मैंने जानली इसलिये तुमारी आशा छोडके मैं केवल आत्मामें स्थित हुं ॥ ३२ ॥

दिष्ट्याचित्तंमृतमितिज्ञातमद्यमयास्वयं ॥ नशठेनसमंनेयंसमग्रंजीवितंनिजम् ॥ ३३ ॥ उत्सार्यदेहस दनान्मनःशठमहंक्षणात् ॥ अहंस्वस्थःस्थितोऽस्म्यंतर्वेतालपरिवर्जितः ॥ ३४ ॥ चित्तवेताललब्धेनचि रंकालंमयात्मना ॥ कृताविकाराविविधाःस्वयंस्मृत्वाहसाम्यहम् ॥ ३५ ॥ चिरान्निपातितोदिष्ट्याविचा रासिपरार्दितः ॥ हृद्गेहाच्चित्तवेतालस्तालोत्तालसमुन्नतिः ॥ ३६ ॥

अर्थ—यह सौभाग्य है कि अब मैंने चित्तको मृत जानलिया. मुझ जीवन्मुक्तको शठचित्तके साथ अपना समग्र जीवन व्यर्थ नहीं बितानाचाहिये ॥ ३३ ॥ कामक्रोधादिके उत्सवरूप शठ मनको अपने देहरूप गृहसे निकालके अब मैं अन्तःकरणमें ऐसे स्वस्थ स्थितहुं जैसे वेतालसे वर्जित जीव ॥ ३४ ॥ चित्तरूप वेतालसे वंचित उससे अभिन्न होके प्रथम अनेक विकार (दुष्टकर्म) जो मैंने किये हैं उनको स्मरण करके अब मैं स्वयं हंसताहुं ॥ ३५ ॥ यह सौभाग्य है कि चिरकालमें विचाररूप खड्गसे मर्दित, तालके समान उच्चआकारवाले इस चित्तरूप वेतालको अपने हृदयरूप गृहसे गिराके मारडाला ॥ ३६ ॥

प्रशांतेचित्तवेतालेपवित्रांपदवींगते ॥ दिष्ट्याशरीरनगरेसुखंतिष्ठामिकेवलम् ॥ ३७ ॥ मृतंमनोमृताचिं तामृतोऽहंकारराक्षसः ॥ विचारमंत्रेणसमःस्वस्थस्तिष्ठामिकेवलम् ॥ ३८ ॥ किंमनोमेममाशाकाकोमे हंकारकोभवेत् ॥ दिष्ट्याव्यर्थकलत्रंमेनष्टमेतदशेषतः ॥३९॥ एकस्मैकृतकृत्यायनित्यायविमलात्मने॥ निर्विकल्पचिदाख्यायमह्यमेवनमोनमः ॥ ४० ॥

अर्थ—यह सौभाग्य है कि चित्तरूप वेताल जिसमें शांत होगया है ऐसे पवित्रताको प्राप्त अपने शरीररूप गृहमें मैं सुखसे स्थितहुं ॥ ३७ ॥ विचाररूप मन्त्रसे मन मरगया, चिंता मरगई, और अहंकाररूप दुष्टराक्षसभी मरगया, इसीसे मैं सबप्रकारकी विषयतारूप दीपसे शून्य स्वस्थ स्थितहुं ॥ ३८ ॥ मन मेरा क्या है ? आशा मेरी क्या है ? तुच्छ अहंकारभी क्या है ? सौभाग्यसे स्त्रीपुत्रआदि व्यर्थ भानहुये, और मन आशाआदि सब नष्टहोगये ॥ ३९ ॥ अद्वितीय, कृतार्थ, नित्य, निर्मल, और निर्विकल्प चित्स्वरूप मुझ प्रत्यक् चेतनको बार २ नमस्कार है ॥ ४० ॥

नशोकोस्तिनमोहोस्तिनचैवाहमहंस्वयम् ॥ नचनाहंनचान्योहंमह्यमेवनमोनमः ॥ ४१ ॥ नममाशान कर्माणिनसंसारोनकर्तृता ॥ नभोक्तृतानदेहोमेमह्यमेवनमोनमः ॥ ४२ ॥ नाहमात्मानवाकोन्योनाहम स्मिनचेतरः ॥ सर्वमेवाहमेतस्मैमह्यमेवनमोनमः ॥ ४३ ॥ अहमादिरहंधाताचिदहंभुवनान्यहम् ॥ ममनास्तिव्यवच्छेदोमह्यमेवनमोनमः ॥ ४४ ॥

अर्थ—मुझमें न शोक है, न मोह है, न मैं अभिमानप्रधान जडरूप हुं, किन्तु अहंकारका साक्षी चित्स्वरूप मैं हुं, इससे अन्य मैं नहीं हुं, इसलिये मुझ साक्षी चेतनको बार २ नमस्कार है ॥४१॥ न मुझे आशा हैं, न कर्म हैं, न संसार है, न कर्तृता है, न भोक्तृता है, और न देह है, इसलिये मुझे बार २ नमस्कार है ॥ ४२ ॥ आत्माशब्दका वाच्य मैं नहीं और अहंशब्दके प्रत्ययसे भिन्नभी मैं नहीं हुं, अथवा मुझसे अन्य कौन है इसलिये सब मैंही हुं, अतः मुझे वार २ नमस्कार है ॥ ४३ ॥ सब भुवनोंका आदिकारण मैंही हुं, धारणकरनेवाला मैं हुं, चित् और भुवन मैं हुं, तथा देश काल और वस्तुसे मेरा परिच्छेद नहीं है ॥ ४४ ॥

निर्विकारायनित्यायनिरंशायमहात्मने ॥ सर्वस्मैसर्वकालायमह्यमेवनमोनमः ॥ ४५ ॥ नीरूपायनिरा ख्यायप्रकाशायमहात्मने ॥ स्वयमात्मैकसंस्थायमह्यमेवनमोनमः ॥ ४६ ॥ समांसर्वगतांसूक्ष्मांजग देकप्रकाशिनीम् ॥ सत्तामुपगतोऽस्म्यंतर्मह्यमेवनमोनमः ॥ ४७ ॥ साद्रयब्ध्युर्वीनदीसेयंनाहमेवाहमे

ववा ॥ जगत्सर्वपदार्थाढ्यंमह्यमेवनमोनमः ॥ ४८ ॥ व्यपगतमननंसमाभिरामंप्रकटितविश्वमविश्वमप्यनंतम् ॥ स्वयमजमजरंगुणादतीतंवपुरहमच्युतमीश्वरंनमामि ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे दृश्यदर्शनसंबंधो नामाशीतितमः सर्गः ॥ ८० ॥

अर्थ—निर्विकार, नित्य, अंशरहित, सर्वरूप, तथा सर्वकालरूप मुझ आत्मरूपको बार २ नमस्कार है ॥४५॥ निरूप, आख्यारहित, प्रकाशरूप, महात्मा, और एक आत्मास्वरूप परमात्माको बार २ नमस्कार है ॥ ४६ ॥ सुमरूप, सर्वगत, सूक्ष्म और एकही जगत्को प्रकाश करनेवाली चित्सत्ताको मैं प्राप्त हुं इसलिये मुझ आत्माको बार २ नमस्कार है ॥ ४७ ॥ पर्वत, समुद्र, पृथिवी और नदीसहित यह जगत्की शोभा, और सब पदार्थोंसे पूर्ण यह जगत् मैं नहीं हुं अथवा सब मैंही हुं इसलिये मुझ आत्माको बार २ नमस्कार है ॥ ४८ ॥ मनके विकल्पोंसे रहित, समतासे रमणीय, विश्वको प्रकटकरनेवाले तथा विश्वरहित, अनन्त, स्वयं अजन्मा, अजर, अच्युत, और गुणोंसे परे चिद्रूप ईश्वरको मैं नमस्कार करताहुं ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे उपशमप्रकरणे दृश्यदर्शनसंबोधो नामाशीतितमः सर्गः ॥ ८० ॥

एकाशीतितमः सर्गः ॥ ८१ ॥

पूर्वसर्गमें यत्नसे चित्तरूप वेतालको देहरूप गृहसे निष्कासित किया है और इस ८१ के सर्गमें चित्तकी सत्ताका अभाव प्रतिपादन करते हैं ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवंविचार्यबुध्वांतःपुनरित्थंविचार्यते ॥ तत्त्वविद्भिर्महाबाहोज्ञेयआत्मामहात्मभिः ॥ १ ॥ आत्मैवेदंजगदितिसत्यंचित्तेनमार्जितम् ॥ उत्थितंस्यात्कुतश्चित्तमहोचित्तमवस्तुयत् ॥ २ ॥ अविद्यत्वादचित्तत्वान्मायात्वाच्चासदेवहि ॥ ध्रुवंनास्त्येववाचित्तंभ्रमादन्यत्खवृक्षवत् ॥ ३ ॥ सिद्धःस्थाणुपरिस्पंदोनौगतस्ययथाशिशोः ॥ अबुद्धस्यनबुद्धस्यतथाचित्तमसन्मयम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे महाबाहो ! इसप्रकार अन्तःकरणमें विचारसे निश्चय करके पुनः तत्ववेत्तालोग अवश्य ज्ञातव्य आत्माका वक्ष्यमाणप्रकारसे बिचार करते हैं ॥ १ ॥ यह सम्पूर्ण जगत् आत्माही है इसप्रकार जिस चित्तने जगतका निराकरण किया है वह चित्त जगत्के अन्तर्गत होनेसे स्वयं अवस्तु (मिथ्या) है उसका फिर उत्थान कैसा होगा. ॥२॥ अविद्या तथा मायाका कार्य होनेसे तथा अन्यचित्तसे शून्य होनेसे निश्चयकरके असत् और नहीं है. अथवा आकाशके वृक्षके भ्रमसेही यह जगत् आत्मासे भिन्न प्रतीत होताहै, यथार्थमें तो शुद्ध आत्माही है ॥ ३ ॥ जैसे नौकामें प्राप्त बालकके लिये भ्रांतिसे वृक्षका चलना सिद्ध है ऐसाही अज्ञानीको यह चित्त सिद्ध है, और ज्ञानीकेलिये तो यह असन्मय है ॥ ४ ॥

मौर्ख्यमोहभ्रमेशातेचित्तंनोपलभामहे ॥ चक्रारोहभ्रमस्यांतेपर्वतस्पंदनंयथा ॥ ५ ॥ एवंहिचित्तंनास्त्येवब्रह्मैवास्तितथात्मकम् ॥ पदार्थभावनाश्चित्तात्तेनासत्यामयोज्झिताः ॥ ६ ॥ जातोस्मिशांतसंदेहःस्थितोस्मिविगतज्वरः ॥ तथातिष्ठामितिष्ठामितथैवविगतैषणः ॥ ७ ॥ चित्ताभावेपरिक्षीणाबाल्यतृष्णादयोगुणाः ॥ आलोकोपरमेचित्रावर्णाख्याइवसंविदः ॥ ८ ॥

अर्थ—मूर्खतासे मोहके भ्रमके शांत होजानेपर चित्तकी सत्ता ऐसे नहीं पाते जैसे तेल वा इक्षु (ऊख वा ईख) पेरनेके यंत्रपर चढनेसे भ्रमके अंतमें पर्वतकी गति नहीं मिलती ॥ ५ ॥ इस रीतिसे चित्तही है किंतु ब्रह्मही चित्तरूपसे भान होताहै, और बाह्य तथा आभ्यन्तर पदार्थोंकी भावना असत्याचित्तसे आविर्भूत होनेसे असत्य हैं इसलिये मैंने त्यागदियाहै ॥ ६ ॥ मैं इस समय संदेहरहित तथा संतापशून्य स्थितहुं, और मैं एषणा (पुत्रादिकी अभिलाषा) शून्यतापूर्वक जैसे पारमार्थिक अपने स्वभावसे स्थितहुं ऐसेही अपने अनुभवसेभी स्थितहुं ॥ ७ ॥ चित्तके अभावसे बाल्यअवस्थाकी चपलता तथा तृष्णाआदि सब गुण ऐसे क्षीण होगये जैसे प्रकाशके अभावसे नेत्रका ज्ञान ॥ ८ ॥

मृतंचित्तंगतातृष्णाप्रक्षीणोमोहपंजरः ॥ निरहंकारताजाताजाग्रत्यस्मिन्प्रबुद्धवान् ॥ ९ ॥ एकमेवजगच्छांतंनानात्वंनसदित्यपि ॥ किमन्यद्विमृशाम्यंतःकथयैवालमेतया ॥ १० ॥ निराभासमनाद्यंतंपदंपावनमागतः ॥ सौम्यस्सर्वगतस्सूक्ष्मःस्थितआत्मास्मिशाश्वतः ॥ ११ यदस्तियन्नास्तीहचित्ताद्यात्माद्यवस्तुच ॥ तत्वादच्छतरंशांतमनंताग्राह्यमातम् ॥ १२ ॥

अर्थ—चित्त मृत हुआ, तृष्णा गई, मोहरूप पिंजरा टूटा, निरहंकारता आई, और अज्ञानरूप निद्राके नष्ट होनेसे अब मैं प्रबुद्ध हुं ॥९॥ यह जगत् शांत एक ब्रह्मही है, अनेकता तथा आत्मासे सत् यहभी कथन नहीं होता, और मैं अन्तःकरणमें क्या विचारूं, इस असत्वविषयक कथासेभी कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ १० ॥ अज्ञानसहित जीवदशासे रहित, अनादि, अनन्त, परमपवित्र पदको प्राप्त, सौम्य, सर्वगत, सूक्ष्म, और नित्य आत्मारूपसे मैं अब स्थितहुं. ॥ ११ ॥ व्यवहारदृष्टिसे जो चित्तादि तथा परमार्थदृष्टिसे आत्मा ब्रह्म चेतन जो अस्तिरूपसे प्रसिद्धहै और रज्जु सर्प इत्यादि जो भ्रमसिद्ध नास्तिरूपसे प्रसिद्ध वस्तु है वह सब आकाशसेभी निर्मल शांत आत्माही व्याप्त है ॥१२॥

चित्तंभवतुमावांतम्रियतांस्थितिमेतुवा ॥ कोविचारणयार्थोमेचिरंसाम्योदितात्मनः ॥ १३ ॥ विचाराकारकोमौर्ख्यादहमासंमितस्थितिः ॥ विचारेणामिताकारःकनामाहंविचारकः ॥ १४ ॥ मृतेऽपिमनसीयंमेविकल्पश्रीर्निरर्थिका ॥ मनोवेतालवृत्त्यर्थंकिमर्थमुपजायते ॥ १५ ॥ तामिमांप्रजहाम्यंतःसंकल्पकलनामिति ॥ निर्णीयोमितिशांतात्मांतिष्ठाम्यात्मनिमौनवत् ॥ १६ ॥

अर्थ—अंतमें चित्त हो वा न हो, मरे वा स्थित रहै, मुझे अब इसके विचारसे क्या प्रयोजन है, क्योंकि चिरकालसे आत्माकी समता उदितहै ॥१३॥ इतने कालतक मैं विचारको न कर्ताहुआ मूर्खतासे परिच्छिन्नरूपसे स्थित था परन्तु अब विचारसे अपरिच्छिन्न होनेसे अहंकार कहां गया यह नहीं कहाजाता॥१४॥मनके नष्ट होनेपर विचार करै वा नहीं करै यह विकल्पकी श्री व्यर्थ पुनः मनके जीनेकेलिये क्यों उत्पन्न होती है ॥ १५ ॥ अब मैं इस संकल्पकी कल्पनाको अंतःकरणसे त्यागताहुं और ओंकारका लक्ष्य तुरीय आत्मामें शांतहीके तुल्य स्थित हुं ॥ १६ ॥

अथन्गच्छन्स्वपंस्तिष्ठन्नितिराघवचेतसा ॥ सर्वत्रप्रज्ञयातज्ज्ञःप्रत्यहंप्रविचारयेत् ॥ १७ ॥ प्रविचार्यस्वसंस्थेनस्वस्थेनस्वेनचेतसा ॥ तिष्ठंतिविगतोद्वेगंसंतःप्रकृतकर्मसु ॥ १८ ॥ विगतमानमदामुदिताशयाःशरदुपोढशशांकसमत्विषः ॥ प्रकृतसंव्यवहारविहारिणस्त्विहसुखंविहरंतिमहाधियः ॥ १९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे चित्तासत्ताप्रतिपादनं नामैकाशीतितमः सर्गः ॥ ८१ ॥

अर्थ—हे रामजी ! चलते, फिरते, खातेपीते और सोतेहुये सर्वत्र अपने चित्तसे आत्मज्ञ पुरुष अपनी बुद्धिसे प्रतिदिन आत्माका विचार करै ॥ १७ ॥ संत महात्माजन अपने अंतरमें स्थित स्वस्थचित्तसे आत्माका विचार करके अपने २ वर्ण आश्रमके अनुकूल कर्मोंमें भयआदिसे रहित होके स्थित रहतेहैं ॥ १८ ॥ हे रामजी ! मान और मदसेरहित, प्रसन्नचित्त, शरत्कालके चन्द्रमाके तुल्य प्रसन्नमुखकी कांतिसहित, और अपने २ वर्ण आश्रमके अनुकूल व्यवहारोंमें विहार करनेवाले महाबुद्धिमान् विवेकीजन इस संसारमें स्थित रहतेहैं ॥ १९ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे उपशमप्रकरणे चित्तासत्ताप्रतिपादनं नामैकाशीतितमः सर्गः ॥ ८१ ॥

द्व्यशीतितमः सर्गः ॥ ८२ ॥

इस ८२ के सर्गमें वीतहव्यमुनिने आत्माकी एकाग्रताकेलिये व्यर्थ चेष्टाआदि निमित्तोंसे इन्द्रिय और मनको बोधन कियाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ विचारएवंविद्वपासंवर्त्तेनकृतःपुरा ॥ कथितोममविंध्याद्रौतेनैवविदितात्मना॥१॥ एतांदृष्टिमवष्टभ्यविचारपरयाधिया ॥ संसारसागरादस्मात्तारतम्येनसंतर ॥ २ ॥ अथेमामपरांरामशृणुदृष्टिंपदप्रदाम् ॥ मुनिनावीतहव्येनययास्थितमशंकितम् ॥३॥ वीतहव्योमहातेजाविबभ्रामवनेपुरा ॥ विंध्यशैलदरीर्दीर्घारविर्मेरुदरीरिव ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! ऐसाही विचार बृहस्पतिके भ्राता संवर्तने पूर्वकालमें कियाथा, और उसी आत्मज्ञने मुझे विंध्याचलपर कहाथा ॥ १ ॥ इसलिये हे रामजी ! विचारनिष्ठबुद्धिसे तुम इस दृष्टिका अवलम्बन करके उत्तरोत्तर चित्तकी विश्रांतिकी परिपाकताजनित भूमिकाओंके आरोहणके क्रमसे इस संसारसागरसे अवश्य उतरो ॥२॥ हे रामजी ! इसके पश्चात् इन्द्रिय मनको बोधदायक तथा ब्रह्मपदप्रद तुम इस दृष्टिको सुनो जिससे कि वीतहव्यमुनि निःशंक आत्मपदपर आरूढ हुये हैं ॥ ३ ॥ पूर्वकालमें महातेजस्वी वीतहव्यमुनि विन्ध्याचलकी बडी कंदराओंको समाधिकेलिये खोजते हुये बनमें ऐसे भ्रमण करतेथे जैसे सुमेरुके कंदराओंको खोजतेहुये सूर्य्य ॥ ४ ॥

अस्मात्क्रियाक्रमाद्घोरात्संसारभ्रमदायिनः ॥ आधिव्याधिमयाकारात्कालेनोद्वेगमाययौ ॥ ५ ॥ निर्विकल्पसमाध्यंशलभ्योदारपरेच्छया ॥ सजहारजगज्जीर्णास्वव्यापारपरंपराम् ॥ ६ ॥ विवेशरंभारचितं निजंपर्णोटजांतरम् ॥ कृतगौरंसुसौगंध्यमलिनीलमिवोत्पलम् ॥ ७ ॥ तत्रासनेसमेशुद्धेस्वास्तीर्णहरिणाजिने ॥ विशश्रामाचलेशांतेवीतवर्षइवांबुदः ॥ ८ ॥

अर्थ—शरीर तथा मनकी पीडासे पूर्ण संसारमें भयदायक इस सब भयंकर क्रियाक्रमसे वह काल पाके विरक्त होगया ॥ ५ ॥ निर्विकल्पसमाधिसे लभ्य परब्रह्मकी प्राप्तिकी इच्छासे जगत्से जर्जरीभूत अपने व्यापारोंकी पंक्तिको उसने बंद किया अर्थात् संन्यास लिया ॥ ६ ॥ केलेसे रचित, श्वेत पीत पुष्प तथा कपूरके परागोंसे गौर, सुगंधित, और नीलकमलके तुल्य शोभित अपनी पर्णशाला अर्थात् पत्ररचित कुटीमें उसने प्रवेशकिया ॥ ७ ॥ उस सम, शुद्ध तथा मृगचर्मसे आच्छन्न आश्रममें विश्राम किया, जैसे शांतपर्वतपर वृष्टिके अंतमें मेघ ॥ ८ ॥

बद्धपद्मासनस्तस्थौपाष्र्ण्योरधिकरांगुलिः ॥ शृंगवच्छांतचलनमतिष्ठत्स्पष्टकंधरम् ॥ ९ ॥ सजहारालमालोकाद्दिग्विकीर्णमनःशनैः ॥ विशन्मेरुदरींसायंभानुर्भासइवोत्करम् ॥ १० ॥ बाह्यानाभ्यंतरांश्चैवस्पर्शान्परिजहत्क्रमात् ॥ इदमाकलयामासमनसाविगतैनसा ॥ ११ ॥ अहोनुचंचलमिदंप्रत्याहृतमपिक्षणात् ॥ नमनःस्थैर्यमायातितरंगप्रौढपर्णवत् ॥ १२ ॥

अर्थ—पादोंके तलके ऊपर अंगुलियोंको रखके, पद्मासन बांध और ऊपर गला उठाके संचाररहित पर्वत शिखरके समान वह स्थित हुआ ॥ ९ ॥ इन्द्रियोंके प्रकाशसे सब दिशाओंमें फैलेहुये मनको धीरे २ निग्रहके उपायसे ऐसे रोका जैसे मेरुकी कन्दरामें सायंकालके समय प्रवेश करतेहुये सूर्य्य अपनी किरणके समूहको॥१०॥उसने क्रमसे बाह्य तथा आभ्यन्तर विषयोंको त्यागतेहुये अपने शुद्धमनसे यह विचार किया ॥११॥ अहो ! यह चित्त कैसा चंचल है कि रोकाहुआभी क्षणभरके वास्ते स्थिरताको ऐसे नहीं प्राप्त होता जैसे प्रबल तरंगमें बहता हुआ पत्र ॥ १२ ॥

चक्षुरादिभिरुद्दामैरूपैराहितसंभ्रमैः ॥ अजस्रमुत्पतत्येववीटेवतलताडिता ॥ १३ ॥ त्यजदेवानुगृह्णातिवृत्तीरिंद्रियवर्द्धिताः ॥ यस्मान्निवार्यतेतस्मिन्प्रोन्मत्तइवधावति ॥ १४ ॥ घटात्पटमुपायातिपटाच्छकटमुत्कटम् ॥ चित्तमर्थेषुचरतिपादपेष्विवमर्कटः ॥ १५ ॥ पंचद्वाराणिमनसश्चक्षुरादीन्यमून्यलम्॥ दग्धेंद्रियाभिधानानितावदालोकयाम्यहम् ॥ १६ ॥

अर्थ—भ्रमणसहित नानाविषयोंके निमित्त प्रबल इन्द्रियोंसे यह मन ऐसे नांचता है जैसे पादतलसे ताडित गेंद ॥ १३ ॥ इन्द्रियोंसे वर्द्धित पूर्वकालकी वृत्तियोंको त्यागतेही उन्हीके अनुकूल वृत्तियोंको ग्रहण करताहै, और जिससे रोको प्रमत्तके समान उसी ओर दौडते हैं ॥ १४ ॥ घटसे पट, पटसेभी शकट (गाडी) की ओर बडी चावसे जाताहै, यह चित्त पदार्थोंमें ऐसे दौडताहै जैसे वृक्षोंपर वानर ॥ १५ ॥ अतिनिंदित नेत्रआदि इन्द्रियनामवाले मनके निकलनेके जो पांच द्वार हैं उनको अब मैं देखता (विचारता) हुं ॥ १६ ॥

हेहेहतेंद्रियगणाःकिमेबोधायनेहवः ॥ वेलाविछलितांबूनामब्धीनामिवचंचलाः ॥ १७ ॥ माकुरुध्वमनर्थायचापलंचपलाशयाः ॥ स्मरतातीतवृत्तीन्दुःखजालानिभूरिशः ॥ १८ ॥ रूपाणिमनसोयूयं जडाएवकिलाधमाः ॥ जडेतृप्तिसक्तान्यर्थंमृगतृष्णेववल्गति ॥ १९ ॥ असारात्मस्वरूपाणामनालोकवतीसदा ॥ अंधानामुद्धतिर्येयंसाहृश्यैवजायते ॥ २० ॥

अर्थ—हे चंचल इन्द्रियगण ! इस देहके नष्ट होनेपर क्या निर्विकल्पसमाधिसे चिरकालतक हमारे आत्माके बोध (दर्शन) के लिये तुम लोगोंको अवसर नहीं है ॥ १७ ॥ हे चपल आशययुक्त इन्द्रियगण ! अनर्थकेलिये तुमलोग चपलता न करो किन्तु दुःखजालमय अपने बीतेहुये कर्मोंको स्मरण करो ॥ १८ ॥ तुम सब मनकेही द्वारभूत, कल्पित, अधम और जडरूप हो, और जड (जल) रूप तरंगमें जलका सिंचन व्यर्थही मृगतृष्णाकेतुल्य गर्जता है ॥ १९ ॥ मिथ्याभूत तुम लोगोंकी आत्मज्ञानसे रहित जो प्रमादसे कुमार्गमें प्रवृत्ति है वह अन्धोंके सदृश कूपमें गिरनेहीके लिये है ॥ २० ॥

चिदात्माभगवान्सर्वसाक्षित्वेनकरोम्यहम् ॥ हतेंद्रियगणायूयंकिंनिरर्थकमाकुलाः ॥ २१ ॥ मिथ्यैवमेविवल्गंतिनीरूपानयनादयः ॥ अलातचक्रप्रतिमाःसर्परज्जुभ्रमोपमाः ॥ २२ ॥ तेनात्मनाबहुज्ञेन निर्ज्ञाताश्चक्षुरादयः ॥ मनागपिनसंबंधोव्युपातालतलाद्रिवत् ॥ २३ ॥ भीतःपांथइवाहिभ्यःपुल्कसेभ्यइवद्विजः ॥ दूरेतिष्ठतिचिन्मात्रमिंद्रियेभ्यस्त्वनामयम् ॥ २४ ॥

अर्थ—भगवान् चिदात्मारूप मैं सब कुछ साक्षीरूपसे करताहुं, नष्ट इन्द्रियगण तुम व्यर्थ क्यों व्याकुल होते हो ॥ २१ ॥ सत्वरूपसे रहित, अलातचक्र (काष्ठमें अग्नि लगाके जो घुमानेवाले) चक्रके सदृश तथा रज्जुके सर्पके भ्रमके तुल्य ये नेत्रआदि मिथ्याही गर्ज रहे हैं ॥ २२ ॥ जिसने बहुज्ञ सब प्रकाशक साक्षीरूप नेत्रआदिको जाना है उन नेत्रआदिके साथ उस साक्षी आत्माका किंचित्भी सम्बन्ध ऐसे नहीं है जैसे स्वर्ग और पातालके पर्वतोंका ॥२३॥ सर्पोंसे बटोही और चांडालोंसे भीत ब्राह्मणके समान विकाररहित चिन्मात्र परमात्मा इन्द्रियोंसे दूरही रहताहै ॥२४॥

चित्सत्तामात्रकेणालंसंक्षोभोभवतांमिथः ॥ तिष्ठतिस्वैरमादित्येदिनकार्यवतामिव ॥ २५ ॥ चित्तचारैश्चार्वाकचतुर्दिक्कुक्षिभिक्षुक ॥ श्वेवव्यर्थमनर्थायमैवंविहरहेजगत् ॥ २६ ॥ अहंचिद्वदितिव्यर्थमसत्यातववासना ॥ अत्यंतभिन्नयोरैक्यंनास्तिचिन्मनसोःशठ ॥ २७ ॥ जीवाम्येवाहमित्येपातवाहंकारदुर्मतिः ॥ मिथ्यैवजाताद्दुःखायनसत्यासत्यवर्जिता ॥ २८ ॥

अर्थ—चित्सत्ताकी समीपतामात्रसे तुमलोगोंकी चेष्टा पूर्णरीतिसे ऐसे होती है जैसे स्वयं अपनी इच्छासे सूर्यके स्थित रहते श्राद्ध तथा कृपिआदि कर्म ॥ २५ ॥ इन्द्रियोंका प्रतारक होनेसे चित्तरूप चारण, देहाभिमानी होनेसे चार्वाक, दिशाओंमें भ्रमण करनेसे भिक्षकरूप तुं व्यर्थ कुत्तेके समान अनर्थके लिये इस जगत्में विहार न कर ॥ २६ ॥ मैं चेतन हुं यह तेरी वासना असत्य और व्यर्थ है, कि हे शठ अत्यंत भिन्न जड चेतनरूप मन तथा चित्की एकता नहीं है ॥ २७ ॥ मैं जीताहुं यहभी तुमारी अहंकाररूप दुर्मति सत्यसे वर्जित मिथ्याही दुःखके लियेही उत्पन्न हुई है क्योंकि सुषुप्तिमें अहंकारके नहिं होतेभी जीवनहै ॥ २८ ॥

अहंकारोदयेसोस्मीत्येतांसंरंधतांत्यज ॥ नकिंचिदपिमूर्खत्वंकिंव्यर्थंतरलायसे ॥ २९ ॥ संविच्चित्वमनाद्यंतंसंविदोन्यन्नविद्यते ॥ देहेस्मिंस्तन्महामूर्खकिंत्वंस्याश्चित्तनामकम् ॥ ३० ॥ विषपर्यवसानेयंरसायनवदुत्थिता ॥ भोक्तृताकर्तृताशंकाबतचित्तमुधैवहि ॥ ३१ ॥ मोपहासपदंगच्छमूर्खेंद्रियगणाश्रयम् ॥ नकर्तात्वंनभोक्तात्वंजडोस्यन्येनबोध्यसे ॥ ३२ ॥

अर्थ—अभिमान परिणामके उदयमें मैं हुं इस अपने गर्वको तुम त्यागो, क्योंकि हे मूर्ख तुं कुछ नहीं है व्यर्थ चंचलता क्यों करता है ॥ २९ ॥ संवित्की चेतनता अनादि अनंत है और संवित् (अनुभव) से भिन्न कुछ नहीं है, इसलिये हे महामूर्ख ! तुम इस चित्तमें देहनामक क्याहो ॥ ३० ॥ अंतमें विषरूप और भोगकालमें अमृतके समान आविर्भूत यह कर्तृता भोक्तृताकी तुमारी आशंका मिथ्याही है ॥ ३१ ॥ हे मूर्ख चित्त इन्द्रियगणका आश्रय लेके तुम हास्यपदको मत प्राप्त होओ, तुम न कर्ता हो न भोक्ता हो किंतु जड हो और साक्षीसे बोधित होतेहो॥३२॥

कस्त्वंभवसिभोगानांकेवाभोगाभवंतिते ॥ जडस्यात्मैवतेनास्तिबंधुमित्रादितत्कुतः ॥ ३३ ॥ यज्जडंतन्नास्त्येवसदेवासत्तयान्वितम् ॥ तत्वकर्तृत्वभोक्तृत्वमन्यत्वानामसंभवात् ॥ ३४॥ प्रत्यक्चेतनरूपश्चेत्त्वंतदात्मैवतेवपुः ॥ भावाभावमयीचित्तसत्तातेकेवदुःखदा ॥ ३५ ॥ यथाकर्तृत्वभोक्तृत्वेमिथ्यैवाधिगतेत्वया ॥ मयातेहिप्रमार्ज्यंतेशृणुयुक्त्याकथंशनैः ॥ ३६ ॥

अर्थ—भोगोंकी अनुभवशक्तिसे शून्य जडरूप तुम भोगोंके कौन होसकते हो और भोग तुमारे क्या होसकते हैं. जड होनेसे यथार्थमें जब तुमारा स्वरूपही नहीं तब बंधु मित्रआदि कहांसे होसकतेहैं॥३३॥जो जड है वह नहीं है, किंतु अन्यकी सत्तासे स्फटिककी ललाईके सदृश सत्के समान भासमान है, यथार्थमें वह असत्तासे युक्त है. क्योंकि आत्मासे पृथक् तत्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व तथा अन्यत्वका असंभव है॥३४॥और यदि तुम साक्षी चेतनरूपही हो तब तो निर्विकल्प आत्माही तुमारा स्वरूप है तब भावअभावमयी और दुःखप्रद तुमारी चित्तरूप सत्ता कैसे होसकती है ॥ ३५ ॥ जैसे मिथ्या तुमने कर्तृत्व भोक्तृत्व प्राप्त कियाहै उनको सुनो मैं कैसे युक्तिसे धीरे २ निवारण करताहुं॥३६॥

स्वयंतावद्भवानेपजडोनास्त्यत्रसंशयः ॥ जडस्यकीदृक्कर्तृत्वंनृत्यंतीहकथंशिलाः ॥ ३७ ॥ उपजीवचिरंतस्माच्छुद्धंतद्भागमैश्वरम् ॥ जीवसीच्छसिहंसित्वंवृथायासिविवल्गसि ॥३८॥ क्रियतेयत्तुयच्छक्त्यातत्तेनैवकृतंभवेत् ॥ लुनातिगात्रंपुंशक्त्यालावकःप्रोच्यतेपुमान् ॥ ३९ ॥ हन्यतेयस्तुयच्छक्त्यास तेनेवहतोभवेत् ॥ निहंतिखड्गःपुंशक्त्याहंतैवप्रोच्यतेपुमान् ॥ ४० ॥

अर्थ—देखो चेतनके प्रतिबिम्बसे शून्य स्वयं तुम जड हो इसमें कुछ सन्देह नहीं है, और जडकी कर्तृता भोक्तृता आदि कैसे, क्योंकि पाषाणकी प्रतिमा कैसे नांचसकती हैं ॥३७॥ इसलिये यदि तुम जीवन धारण करना चाहतेहो तो शुद्ध ईश्वरके चिदाभासका आश्रय लेके तुम अपना स्वरूप धारण करो, और व्यर्थ क्यों तुम मरते, आते, जाते तथा गर्जतेहो॥३८॥ जिसकी शक्तिसे जो कियाजाताहै वह उसीका किया कहाजाताहै. जैसे पुरुषकी शक्तिसे

दात्र (हंसिया वा सरोता) काटताहै और पुरुष काटनेवाला कहाजाताहै. ॥ ३९ ॥ जिसकी शक्तिसे जो मारा जाताहै उसीसे हत वह कहलाताहै. जैसे पुरुषकी शक्तिसे तरवार काटती है और पुरुष हंता कहाजाताहै ॥ ४० ॥

पीयतेयस्तुयच्छक्त्यापीतंतेनैवतद्भवेत् ॥ पात्रेणपीयतेपानंपातायस्तूच्यतेनरः ॥ ४१ ॥ प्रकृत्यैवासिसु जडःसमस्तज्ञेनबोध्यसे ॥ तेनात्मैवात्मनात्मानंचिनोतीदंहिनोभवत् ॥ ४२ ॥ अनारतंबोधयतित्वामा त्मापरमेश्वरः ॥ बोधनीयाबुधैर्मूढाःकिलावृत्तिशतैरपि ॥ ४३॥ आत्मसत्तैवबोधैकरूपिणीस्फुरतीहहि॥ तयैवचित्तशब्दार्थावंगीकृत्यत्वयास्थितम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—जिसकी शक्तिसे पियाजाताहै उसीसे पियाहुआ वह कहाजाताहै, जैसे पात्रकेद्वारा जलादि पियाजाताहै परन्तु पान करता मनुष्यही कहाजाताहै ॥ ४१ ॥ हे चित्त ! तुम अपने स्वभावहीसे जड हो, सर्वज्ञ परमात्मासे बोधित होतेहो, क्योंकि उस आत्माने स्वयं भोक्तृता भोग्यकरण और उपकरणआदि सब यह जगत् स्वप्नके समान संचय कियाहै ॥ ४२ ॥ आत्मा परमेश्वर निरन्तर तुमको बोधन करतारहताहै, क्योंकि पंडितलोगोंको उचित है कि मूढोंको सैकडोंप्रकारसे बोधन करै ॥ ४३ ॥ बोधरूप आत्माकी सत्ताहीसे तुमारी सत्ता स्फुरित होरही है, और उसीसे चित्तके शब्द तथा अर्थकी सत्ताको अंगीकार करके तुम स्थितहो ॥ ४४ ॥

एवंचित्तत्वमज्ञानादात्मशक्तेरुपागतम् ॥ ज्ञानेत्वयाविगलितंतीव्रेहिममिवातपे ॥ ४५ ॥ तस्मान्मृतंत्वं मूढंत्वंनासित्वंपरमार्थतः ॥ तदेवाहमितिव्यर्थमतोमास्त्वसुखायते ॥ ४६ ॥ असत्याचित्तकलनाइंद्र जाललताइव ॥ विज्ञानमात्रमेवेहब्राह्ममंगंविजृंभितम् ॥ ४७ ॥ नरामरजगद्रूपैर्ब्राह्मीशक्तिरुदेत्यलम् ॥ सामुद्रकणकल्लोलजालैर्वेलेववल्गति ॥ ४८ ॥

अर्थ—इसप्रकार अज्ञानसे आत्माकी शक्तिहीसे चित्त प्राप्त हुआहै और ज्ञानसे तुम ऐसे गलित होतेहो जैसे तीव्र आतपमें हिम ॥ ४५ ॥ हे चित्त ! तुम मृत हो, मूढ हो और परमार्थसें कुछ नहीं हो, इसलिये आत्मा मैं हुं यह आत्माके साथ अभेद पुनर्जन्मके दुःखके लिये न हो ॥ ४६ ॥ इन्द्रजालकी लताकेसमान चित्तकी कल्पना व्यर्थही है. विज्ञानमात्रही इस जगत्में ब्रह्मका स्वरूपही विकसित होरहाहै ॥ ४७ ॥ मनुष्य, देवता आदि जगत्के स्वरूपोंसे ब्रह्मकी चित्शक्तिसे संवलित माया पूर्णरूपसे ऐसे उदय होती है जैसे समुद्रके तरंगके समूहोंसे तट गर्जना करताहै॥४८॥

चिन्मयश्चेद्भवेर्मूढतत्तस्मात्परमात्पदात् ॥ नित्यमव्यतिरिक्तंत्वंकिमन्यत्परिशोचसि ॥ ४९ ॥ सर्वगं सर्वभावस्थंसर्वरूपंहितत्पदम् ॥ तत्प्राप्तौसर्वमेवाज्ञप्राप्तंभवतिसर्वदा ॥ ५० ॥ नत्वमस्तिनदेहोस्ति ब्रह्मास्तीहमहत्स्फुरत् ॥ अहंत्वमितिनिस्पंदेस्फुरत्यार्तिर्हिकस्यका ॥ ५१ ॥ आत्माचेत्त्वंतदात्मैवस- र्वगोस्तीहनेतरः ॥ आत्मनोन्यज्जडत्वंचेत्तत्त्वंनास्त्यस्तितद्वपुः ॥ ५२ ॥

अर्थ—हे मूढ चित्त ! यदि तुम चिन्मय हो तब उस परमपदसे नित्य अभिन्नरूप हो तो अन्य किसके अर्थ शोच करतेहो ॥ ४९ ॥ क्योंकि वह परमपद सर्वव्यापी, और सब अतीत (भूत) भविष्यत् और वर्तमान पदार्थोंमें स्थितहै, इसलिये हे अज्ञ ! उसकी प्राप्तिसे सदा सबकुछ प्राप्तही है ॥ ५० ॥ न तुम हो, न यह देह है किन्तु महत् ब्रह्मही यह जगत्रूपसे स्फुरित होरहाहै, अहं और त्वम् यह आभास चेष्टारहित आत्मामेंही स्फुरित होताहै तो किसको क्या पीडाहै ॥ ५१ ॥ यदि तुम चित्आत्मा हो तब तो सर्वव्यापी आत्माही सर्वत्र है न कि अन्य, क्योंकि आत्मासे अन्य जड कुछ नहीं है किंतु असत्रूप है ॥ ५२ ॥

आत्मैवसर्वंत्रिजगत्तदन्यत्तुनकिंचन ॥ तत्त्वंकिंचित्त्वमात्मान्यद्यदितत्त्वंनकिंचन ॥ ५३ ॥ अहंत्विद महंतन्मइतिव्यर्थंकिमीहसे ॥ असद्वपुःकिंस्फुरतिशशशृंगेणकोहतः ५४ ॥ तृतीयाकलनानास्तिचिज्ज डांशेतराशठ ॥ छायातपनयोर्मध्येतृतीयेवानुरंजना ॥ ५५ ॥ सत्यावलोकनाज्जातेचित्तजाड्यदृशोःक्षये॥ संपद्यतेयत्तुतज्जंस्वसंवेदनमात्रकम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—तीनों जगत् आत्माही है उससे भिन्न अन्य कुछ नहीं है, इसलिये यदि तुम आत्मासे भिन्न कुछ हो तब तुम परमार्थमें कुछ नहीं हो ॥ ५३ ॥ यह बाल शरीर, यह वृद्ध शरीर मैं हुं, और यह बालक संबंधी क्रीडा आदि और वृद्ध शरीर संबन्धी पुत्रपौत्रआदि मेरे हैं ऐसी चेष्टा व्यर्थ क्यों करते हो, क्योंकि आत्माको शरीर नहीं है तो असत्शरीर कैसे स्फुरित होसकताहै, क्योंकि शशकके शृंगसे कौन मारागयाहै ॥ ५४ ॥ हे शठ चित्त ! चेतन और जड अंशसे भिन्न तीसरी कोई कल्पना ऐसे नहीं है जैसे छाया और आतप (घाम) के मध्यमें पदार्थोंके अनुरक्त होनेकी तीसरी कोई वस्तु नहीं है ॥ ५५ ॥ सत्यपदार्थके ज्ञानसे चित्त और जडताकी दृष्टिके क्षय होनेसे अंतिम साक्षात्कारवृत्तिसे आविर्भूत स्वप्रकाश चिन्मात्र शेष अपना अनुभवरूप आत्मा जो रहजाताहै वही तुम हो ॥ ५६ ॥

रेणमूढनकर्तृत्वंनभोक्तृत्वंतवापिहि ॥ तदेवासिपरंब्रह्मत्यजमौर्ख्यंभवात्मवान् ॥ ५७ ॥ केवलंज्ञत्वविपयसुपदेशार्थसिद्धये ॥ त्वयाकरणभूतेनकरोत्यात्मेतिकथ्यते ॥ ५८ ॥ असत्स्वरूपंकरणंजडंनिरवलंबनम् ॥ निःस्पंदनंनस्पंदेतकर्तृसंबोधनंविना ॥ ५९ ॥ अकर्तुःकरणस्यास्यशक्तिःकाचिन्नविद्यते ॥ दात्रस्यलावकाभावेकर्तुंकिमिवशक्तता ॥ ६० ॥

अर्थ—इसलिये हे मूढ ! नतो तुमको कर्तृता है न भोक्तृता है किंतु तुम वही परब्रह्म हो अतः तुम मूर्खता त्यागो और आत्मज्ञानी बनो ॥ ५७ ॥ यदि यह कहो कि " मनसैवानुद्रष्टव्यं मनसैवेदमाप्तव्यमिति " (मनसेही आत्माको देखना चाहिये मनसेही यह प्राप्त होताहै) इत्यादि श्रुतियोंसे हमको आत्माकी प्राप्तिमें करण कहाहै तो अज्ञदशा शास्त्र आचार्य्यकृत उपदेशोंके प्रयोजनकी सिद्धिकेलिये करणरूपसे कल्पित तुमारेसे केवल यह श्रुति आत्माके साक्षात्कारको विषय करती है और यथार्थमें वह आत्मा है ॥५८॥ असत्स्वरूप, जड तथा अवलंबनरहित चित्त चेतनकृत अर्थप्रकाशके विना स्वयं स्पंदनशक्तिसे रहित कैसे चेष्टा करसकताहै ॥ ५९ ॥ क्योंकि कर्ताके विना करणकी शक्ति कुछ नहीं है, दात्र (सरौता) को काटनेवालेके विना काटनेकी क्या शक्ति है ? ॥ ६० ॥

खड्गप्रहारविच्छेदक्रियायांपुंसिशक्तता ॥ नखड्गेसुजडेचित्तसर्वांगेष्वपिशक्तता ॥ ६१ ॥ तस्मान्नासिसखेकर्तृमाव्यर्थंदुःखभाग्भव ॥ परार्थक्लेशितामूर्खप्राकृतेषुनशोभते ॥ ६२ ॥ ईश्वरोनेदृशःशोच्योयस्त्वयासदृशोभवेत् ॥ नचतस्यकृतेनार्थोनाकृतेनेहकश्चन ॥ ६३ ॥ गर्वात्तूपकरोम्येनमितिकेवलमल्पधीः ॥ क्लिश्यतेवसतांत्वर्थोनाकिंचिदुपयुज्यते ॥ ६४ ॥

अर्थ—हे चित्त ! खड्गके प्रहार तथा छेदनक्रिया करनेमें शक्ति पुरुषमेंही है न कि जड खड्गआदि मूलसे लेके समस्त सामग्रीमें शक्ति है ॥६१॥ हे सखे चित्त ! इसलिये तुम कर्ता नहीं हो, व्यर्थ दुःखके भागी न बनो. हे मूर्ख ! पामरके तुल्य प्रकृतिके कार्योंमें दूसरेके अर्थ क्लेश नहीं शोभितहोता ॥ ६२ ॥ जो तुमारे सदृश जड हो उसीका शोच तुमको करना चाहिये और ईश्वर तो ऐसा नहीं है क्योंकि उसको तो न इस जगत्में कृतपदार्थसे कुछ प्रयोजन है न अकृतसे ॥ ६३ ॥ और कार्यकारणके संघातके अभिमानसे इस आत्माका मैं उपकार करताहुं इस भ्रांतिसे तुम परिच्छिन्नबुद्धिको पीडित करतेहो, क्योंकि संघातमें रहनेवाले प्राण, बुद्धि, मन और दशों इन्द्रिय इन सबके अचेतन होनेसे भोगोंसे कुछ अर्थ नहीं है इसलिये किसीका कोईभी कुछ उपयोगी नहीं है ॥ ६४ ॥

कर्तुर्भोगेश्वरस्यैवमर्थंचेदनुवर्त्तसे ॥ तदस्यकाचिन्नेच्छेहतृप्तत्वात्सर्वदैवहि ॥ ६५ ॥ अकृत्रिमावभासेनसर्वगेनचिदात्मना ॥ एकेनैवेदमापूर्णंकल्पनैवास्तिनेतरा ॥ ६६ ॥ एकानेकावभासेनसमस्तेनतदात्मना ॥ आत्मन्येवांतरात्मांतःक्रियतेकिंकिमिष्यते ॥ ६७ ॥ त्वादृशस्यतुदृष्ट्यैवक्षुब्धताजायतेमुधा ॥ आलोक्यराजमहिषींयूनोमदमयींतथा ॥ ६८ ॥

अर्थ—यदि यह मानो कि भोगका स्वामी जो कर्ता ईश्वर है उसीके लिये तुमारी प्रवृत्ति है तो उसके सदा तृप्त होनेसे कोई इच्छा नहीं है ॥ ६५ ॥ स्वाभाविक प्रकाशयुक्त सर्वव्यापी एक चिदात्मासे यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है उससे अन्य कल्पना नहीं है ॥ ६६ ॥ एक और अनेकका प्रकाशक उस आत्माने अपने आत्माहीमें सब जगत्को रचा है तो उसमें सब कुछ प्राप्त होनेसे कौन पदार्थ अलभ्य है जिसकी इच्छा कीजाय ॥ ६७ ॥ जगत्के पदार्थ सत्र ईश्वरके होनेपरभी तुमारे समान मूर्खकोही उसकी दृष्टिसे क्षोभ ऐसे होताहै जैसे राजाकी स्त्रीको देखनेसे मूर्ख युवाको मदमयी विकारता उत्पन्न होती है ॥ ६८ ॥

आत्मनासहसंबद्धंचेतःकर्त्रसिसुंदर ॥ किंतुनास्यासिसंबंधिकुसुमस्ययथाफलम् ॥ ६९ ॥ द्वितीयेन समंयैपातत्तावद्धवनैकता ॥ सासंबंधगतिःप्रोक्ताप्राग्द्वित्वादधुनैकता ॥ ७० ॥ नानाप्रकाररचनानानारूपक्रियोन्मुखी ॥ सुखदुःखदशाहेतुर्भवान्नैकविधास्मृता ॥ ७१ ॥ संबंधःसमयोर्दृष्टस्तथार्द्धसमयोरपि ॥ नविलक्षणयोश्चान्यस्तस्मिन्सतिजगत्रये ॥ ७२ ॥

अर्थ—हे सुंदर चित्त ! यदि आत्माके साथ संबन्ध करताहो तो तुम आत्माके साथ संबन्धके योग्य ऐसे नहीं हो जैसे पुष्पके संबन्धके योग्य फल नहीं है, क्योंकि फलके समयमें पुष्पका अभावहै ॥ ६९ ॥ एकका दूसरेके साथ एककी क्रियासे वा दोनोंकी क्रियासे यह, जो एक अन्यमें अंतर्भाव वा दोनोंकी एकता है वह संबन्धकी गति (संबन्धका लक्षण) कही गई है, क्योंकि प्रथम द्वैत था और अब एकता होगई ॥ ७० ॥ और तुम तो उस एकतारूप सम्बन्धके हेतुभी नहीं हो क्योंकि तुमारी स्वयं एकप्रकारता नहीं है किन्तु कार्यसे नानाप्रकारकी रचना, और

नानाप्रकारकी शास्त्रके अनुकूल तथा प्रतिकूल क्रियाओंकी ओर झुकी हुई सुखदुःखकी दशा तुमारी कही गई है ॥७१ क्योंकि सम्बन्ध समान (दुग्धका दुग्धसे) रूप, वा अर्द्धसमान (जल दुग्ध) का देखा गया न कि सर्वथा विलक्षण अग्नि और जलका और सर्वथा विरुद्धका सम्बन्ध तीनों लोकमें हो तो दोनोंमेंसे एकका नाश अवश्य होताहै ॥७२॥

द्रव्यांतरगुणाद्रव्याण्याश्रयंतिबहून्यलम् ॥ संविदश्च्यवनंदुःखंसंविदोमाच्युतोभव ॥ ७३ ॥ एतावतैक ध्यानेननित्यध्यानोथवात्मदृक् ॥ अभावेदुःखदस्यांतर्दृशाद्दृश्यस्यवस्तुनः ॥ ७४ ॥ संकल्पोन्मुखतांवि द्विदुःखदांसंविदश्च्युतिम् ॥ जडेषूपलभूतेषुमनोदेहेंद्रियादिषु ॥ ७५ ॥ कीदृशीकर्तृताचित्तपुष्पंव्यो म्निकथंभवेत् ॥ निरस्तकलनापंकेमननध्वंसरूपिणि ॥ ७६ ॥

अर्थ—और रूपरसादि विरुद्धस्वभाव द्रव्यान्तरके बहुत गुण पूर्णरीतिसे द्रव्यकाही आश्रय करतेहैं न कि अन्य विरुद्धका, इसलिये तुमारा संवित्से पृथक् होके गिरना दुःखही है अतः संवित्से तुम च्युत न होओ ॥ ७३ ॥ अथवा अन्तर्दृष्टिरूप संवित्से तुमसे आदिलेके सब दृश्यवस्तुका अभाव होनेपर दुःखरहित आनन्दरूप आत्माका शेष रहजाताहै, यदि इतनेसे संतोष है तो नित्यध्यानसे समाधिनिष्ठ होके आत्मदर्शी बनो ॥ ७४ ॥ जड पाषाणके समान मन, देह और इंद्रियआदिमें संकल्पकी ओर उन्मुख संवित्की च्युति (गिरने) को तुम दुःखदायी जानो ॥ ७५ ॥ कल्पनारूप पंकसे रहित, तथा संकल्पविकल्पका ध्वंसरूप आत्मामें कर्तृता कैसी, क्योंकि आकाशमें पुष्प कैसे होसकता है ॥ ७६ ॥

नचैवात्मनिकर्तृत्वंसंभवत्यंबरांगवत् ॥ अयंकेवलमात्मैवनानानानातयात्मनि ॥ ७७ ॥ स्फुरत्यब्धिरि वांभोभिःफेनबुद्बुदवीचिभिः ॥ आभासमात्रेसर्वस्मिन्स्फुरत्यस्मिश्चिदात्मनि ॥ ७८ ॥ द्वितीयाना स्तिकलनातप्तांगारइवांबुधौ ॥ कलनारहितेदेवेदेहेमनसिवाजडे ॥ ७९ ॥ संवित्संवेद्यनिर्मुक्तासारंसुं दरनेतरत् ॥ इदमन्यदिदंनान्यच्छुभंवाशुभमेवच ॥ ८० ॥

अर्थ—आकाशके हस्तपादआदि अंग जैसे नहीं होसकते ऐसेही आत्मामें कर्तृताका संभव नहीं है यह केवल आत्माही अपने आत्मामें अनेकता और एकतारूपसे स्फुरित होताहै ॥ ७७ ॥ फेन, बुद्बुद् और तरंगरूप जलोंसे जैसे समुद्र अपनेमें स्फुरित होताहै ऐसे आभासमात्र चित् आत्मामें आत्माही जगत्रूपसे स्फुरित होताहै ॥ ७८ ॥ समुद्रमें जैसे तप्त अंगार नहीं है ऐसेही आत्मामें द्वितीयकल्पना नहीं है, ऐसेही कल्पनारहित आत्मदेव तथा जड मनके विद्यमान रहते हे सुंदर चित्त ! यह अन्य है यह अन्य नहीं है यह शुभ है इत्यादि असत् कल्पना कल्पकके अभावसे नहीं है किन्तु विषयसे वर्जित सारभूत वह सब संवित् है न कि अन्य कुछ ॥ ७९ ॥ ८० ॥

इत्यसत्कल्पनानास्तियथानभसिकाननम् ॥ संवेद्यरहितंसंविन्मात्रमेवेदमाततम् ॥८१॥ तत्रायमहम न्योयमित्यसत्कलनाकथम् ॥ अनादिमतिनीरूपेसर्वगेविततात्मनि ॥ आरोपयेत्कःकलनामृग्वेदंव्यो म्निकोलिखेत् ॥ ८२ ॥ नित्योदितेसकलवस्तुपदार्थसारेसंवित्स्थितेभरितनिर्भरभूरिदिक्कम् ॥ आत्मन्य सत्यमिवसाधुगतेमलत्वात्क्षीणौसुखासुखलवौममवैसमोहः ॥ ८३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे इंद्रियानुशासनयोगोपदेशो नाम द्व्यशीतितमः सर्गः ॥ ८२ ॥

अर्थ—पूर्वोक्त कल्पना आत्मामें ऐसे असत् है जैसे आकाशमें जंगल, इसलिये विषयसे वर्जित संवित्मात्रही इस सम्पूर्ण जगत्रूपसे व्याप्तहै ॥ ८१ ॥ उस केवल आत्मामें मैं अन्य हुं यह अन्य है यह असत्कल्पना कैसे हो सकती है. अनादि, रूपरहित सर्वगामी और व्यापक आत्मामें कल्पनारूप कलंकका आरोप कौन करसकताहै, क्योंकि आकाशमें ऋग्वेद कौन लिखसकताहै ॥ ८२ ॥ नित्यउदयको प्राप्त, सम्पूर्णवस्तुओंमें सारभूत दिशाओंकी पूर्णतापूर्वक संविन्मात्र स्थित आत्माके प्रत्यक्षरूपसे जाननेपर मेरे सुखदुःख असत्य मृगतृष्णाके जल और रज्जुके सर्पके समान क्षीण होगयेहैं, क्योंकि पूर्वकालकी सुखदुःखकी प्रतीतिरूप मोह भ्रांतिही है न कि यथार्थ ॥ ८३ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषानुवादे इन्द्रियानुशासनयोगो नाम द्व्यशीतितमः सर्गः ॥ ८२ ॥

त्र्यशीतितमः सर्गः ॥ ८३ ॥

इन्द्रियगणके रहते समस्तदोषोंकी प्राप्ति और उसके न रहनेसे समस्तसौख्यकी प्राप्ति होती है यह विषय इस ८३ के सर्गमें कहागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ भूयोमुनिवरोधीरोधियाधवलमेधया ॥ स्वमिंद्रियगणंगुप्तोबोधयामाससाध्विद म् ॥ १ ॥ तत्रेंद्रियगणस्यार्थंशृणुवक्ष्यामितेस्फुटम् ॥ श्रुत्वातद्भावनामेत्यपरांनिर्दुःखतांव्रज ॥ २ ॥ भवतामात्मसत्तैषादुःखायैवांतदायिनी ॥ असत्यामात्मनस्सत्तांतद्भवंतस्त्यजंत्विति ॥ ३ ॥ मदीयेनो पदेशेनसत्तैषाभवतांक्षयम् ॥ गतैवेतिस्फुटंमन्येयूयंह्यज्ञानसंभवाः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! पुनः उस धीर और मुनियोंमें श्रेष्ठ वीतहव्यने एकांतमें स्थित होकर अपने इन्द्रियगणको रोधन किया ॥ १ ॥ हे रामजी ! वह तुम अपने इन्द्रियगणके अर्थ सुनो, मैं स्पष्टरीतिसे कहताहुं, और सुनकर उसी भावनाको प्राप्त होकर दुःखरहिततताको प्राप्तहो ॥ २ ॥ हे इन्द्रिय ! आत्मासे भिन्न अविद्यासे जो तुमारी सत्ता है वह जीवनकालमें अनेक दुःखदायिनी है और उसके अनन्तर पुनः २ मृत्यु नरकआदि अंतदायिनी है इसलिये आपलोग अपनी असत्य आत्मसत्ताको त्यागदें ॥ ३ ॥ और मेरे पूर्वकृत आत्माके उपदेशसे तुमारी सत्ता स्पष्टरीतिसे क्षयको प्राप्तही है, क्योंकि तुमारी उत्पत्ति अज्ञानसे है और अज्ञानके नष्ट होनेसे तुमारी सत्ता न मिलेगी ॥ ४ ॥

स्वसत्तास्फुटतांयातिदुःखायतवचित्तक ॥ तप्तकांचनरुल्लासोदाहायैवस्वपार्श्वयोः ॥ ५ ॥ पश्यत्वयि सतिभ्रांतजलकल्लोलसंकुलाः ॥ विशंतिकालजलधिंसंसारसरितांगणाः ॥ ६ ॥ पतंत्यहमहमिकावि हितान्योन्यचिंतिताः ॥ कुतोपिदुःखावलयोधाराआसारगाइव ॥ ७ ॥ परिस्फुरत्यपर्यंताहृदयोन्मूलनो द्यता ॥ आक्रंदकारिणीक्रूराभावाभावविषूचिका ॥ ८ ॥

अर्थ—हे तुच्छ चित्त ! तुमारी सत्ता तुमारे दुःखकेलिये ऐसे प्राप्त होती है जैसे अग्निके साथ क्रीडा दोनों भागके दाहकेही लिये है ॥ ५ ॥ देखो तुमारे रहनेपर भ्रान्तजनरूप जलतरंगोंसे व्याप्त संसाररूप नदियोंके गण कालरूपसमुद्रमें निरन्तर प्रवेश कररहे हैं ॥ ६ ॥ देखो ! परस्परके अहंकारसे रचित, और परस्पर वध, पराजय तथा पीडा आदिकी जिनमें चिंता हैं ऐसी दुःखकी पंक्तियां ऐसे गिरती हैं जैसे वृष्टिकी धारा ॥ ७ ॥ अपार, हृदयके उखाडनेमें तत्पर, रोदन करानेवाली, और क्रूर सम्पत्ति तथा विपत्तिरूप महामारी चारो ओरसे स्फुरित होरही है॥८॥

कासश्वासरणद्भृंगाकलेवरजरद्द्रुमे ॥ विकसत्यमलोद्योताजरामरणमंजरी ॥ ९ ॥ कल्लोलव्यालवलिते शरीरश्वभ्रकोटरे ॥ घननीहारखेस्वांतश्चिंताचपलमर्कटी ॥ १० ॥ लोभनात्वाररटत्पक्षीतीक्ष्णयाद्वंद्वतुंड या ॥ कायजीर्णद्रुमादस्माद्गुणखंडंनिकृंतति ॥ ११ ॥ हृदयावकरंकीर्णमितश्वेतश्वकर्कशः ॥ अपवित्रो दुराचारःकुरुतेकामकुक्कुटः ॥ १२ ॥

अर्थ—इस शरीररूप प्राचीन वृक्षमें कासश्वास (खांसी) रूप भृंग जिसमें शब्द कररहे हैं ऐसी निर्मल प्रकाशयुक्त वृद्धावस्थारूप लता विकसित होरही है ॥ ९ ॥ मनोरथके तरंगरूप सर्पोंसे वेष्टित, और घनीभूत जडतासहित इन्द्रियोंके छिद्र जिसमें द्वार हैं ऐसे शरीरके अन्तर्गतके कोटर अर्थात् हृदयमें, जाल रचनेमें व्यग्र चिन्तारूप मकरी भ्रमण करती है ॥ १० ॥ लोभरूप अपने विलासोंसे शब्द करताहुआ चित्तरूप पक्षी सुखदुःखआदि द्वन्द्वरूप तीव्र चोंचसे शम दम धर्मादि पुण्य फलरूप गुणके समूहको इस शरीररूप प्राचीन वृक्षसे काटरहाहै ॥११॥ अपवित्र, दुराचारी, और कर्कश यह कामरूप मुरगा राग आदि वासनाओंसे व्याप्त हृदयको पुनः अपने पैरोंसे बिखराताहै॥१२

महत्यांमोहयामिन्यामुल्वणोज्ञानकौशिकः ॥ श्मशानइववेतालःपरिवल्गतिहृद्द्रुमे ॥ १३ ॥ एताश्चा न्याश्चबह्वयोपित्वय्यिंद्रियगणेसति ॥ पिशाच्यइवशर्वर्यांप्रवल्गंत्यशुभश्रियः ॥ १४ ॥ त्वयित्वसतिहे साधोसर्वाएवशुभश्रियः ॥ प्रभातइवपद्मिन्यःसालोकंविलसंत्यलम् ॥१५॥ प्रशांतमोहमिहिकंराजतेहृ दयांबरम् ॥ निर्मलालोकवलितंनीरजस्कतरांतरम् ॥ १६ ॥

अर्थ—महामोहरूप रात्रिमें अज्ञानरूप भयंकर उल्लूक हृदयरूप वृक्षपर ऐसे गर्जताहै जैसे स्मशानभूमिमें वेताल ॥ १३ ॥ हे इन्द्रियगण ! तुमारे विद्यमानरहते ये तथा अन्य पाप शोभा रात्रिमें पिशाचीके तुल्य गर्जती है ॥ १४ ॥ हे साधो चित्त ! तुमारे न रहनेपर संपूर्ण धर्मोंकी शोभा विवेकआदि प्रकाशसहित ऐसे पूर्णरीतिसे विकसित होती है जैसे प्रातःकालमें कमलिनी ॥ १५ ॥ और मोहरूप तुषारसे शून्य तथा निर्मलप्रकाशसे पूर्ण और रजोगुणरूप धूलिसे व्याप्त, हृदयरूप आकाश शोभित होताहै ॥ १६ ॥

अशंकितनभःकोशपतिताकुलपूरवत् ॥ नापतंतिविकल्पौघाश्विरंवैकल्यकारिणः ॥ १७ ॥ सर्वस्याह्लादनीशांतमैत्रीपरमपावनी ॥ अभ्युदेतिहृदोह्ययासुतरोरिवमंजरी ॥ १८ ॥ अंतश्छिद्रवतीजाड्ययुक्तायुक्तगुणास्वयम् ॥ चिंताशोषमुपायातिहिमदग्धेवपद्मिनी ॥ १९ ॥ आलोकःस्फुटतामंतरायात्यज्ञानसंक्षये ॥ प्रशाम्यत्यंबुदेव्योम्निशरदीवार्कमंडलम् ॥ २० ॥

अर्थ—अकस्मात् निःशंक आकाशके कोशमें वायुसे व्याप्त वृष्टिके धाराके समान विकल करनेवाले विकल्पोंके समूह नहीं गिरते ॥ १७ ॥ सबको आनन्ददायिनी, और परमपवित्र मित्रता हृदयमें ऐसे उदयको प्राप्त होती है जैसे उत्तमवृक्षसे रमणीयलता ॥ १८ ॥ भीतर छिद्रयुक्त, और जडतायुक्त मूर्खोंमें अपनी विद्या और कुशलताईका उपयोग करनेवाली चिंता सर्वथा ऐसे सूख जाती है जैसे हिमसे जली कमलिनी ॥ १९ ॥ अज्ञानके नष्ट होनेपर ज्ञानका प्रकाश अंतःकरणमें ऐसे प्रत्यक्ष होताहै जैसे शरत्कालमें मेघ शांत होनेपर आकाशमें सूर्यमण्डल ॥ २० ॥

प्रसन्नंस्फारगांभीर्यमक्षुब्धमपराहतम् ॥ हृदयंसमतामेतिशांतवातइवार्णवः ॥ २१ ॥ अमृतापूरपूर्णेन नित्यानंदमयेनच ॥ स्थीयतेपुरुषेणांतःशीतेनशशिनायथा ॥ २२ ॥ संविदःस्फुटतामंतरायांत्यज्ञानसंक्षये ॥ संविदंशैकविश्रांतंसमग्रंसचराचरम् ॥ २३ ॥ भाव्यतेभरिताकारंवपुरानंदमंथरम् ॥ नभवत्यसुसंगानामाशापाशविधायिनाम् ॥ २४ ॥

अर्थ—प्रसन्न, विशालगंभीरतासहित, क्षोभरहित और विषमताके हेतुओंसे अपराजित हृदय ऐसे शांत होजाताहै जैसे वायुके शांत होनेसे समुद्र ॥ २१ ॥ आत्मानन्दरूप अमृतसे पूर्ण नित्य आनन्दमय पुरुष ऐसे स्थित होताहै जैसे शीतल चंद्रमा ॥ २२ ॥ अज्ञानके नष्ट होनेसे अंतःकरणमें आत्माकार वृत्ति स्पष्ट होती है और संपूर्ण चराचर बाधित होकर केवल संवित् चेतनमात्र विश्रान्त रहताहै ॥ २३ ॥ और आनंदसे व्याप्त आत्माका पूर्णस्वरूप अनुभूत होता है, परंतु यह अनुभव आशाकी फांसीमें बंधेहुये केवल प्राणसहित देहके संगियोंको नहीं होता ॥ २४ ॥

दग्धानामिवपर्णानांरसानांपुनरागतिः ॥ पुंसांक्षपितसंसारजराजन्ममहाध्वनाम् ॥ २५ ॥ अपुनर्भ्रमणायात्मद्रुमेविश्रम्यतेचिरम् ॥ एवंप्रायास्तथान्याश्च भवंतिगुणसंपदः ॥ २६ ॥ असतित्वयिसर्वाशिन्सर्वाशाक्षयसंक्षये ॥ पक्षयोरेतयोश्चित्तसत्तासत्तास्वरूपयोः ॥ २७ ॥ येनैवपश्यसिश्रेयस्तमेवांगीकुरुक्षणम् ॥ स्वात्मभावस्तवसुखंमन्येमानवतांवर ॥ २८ ॥

अर्थ—जैसे ग्रीष्मऋतुमें दग्धपत्रसहित वृक्षोंमें वर्षाकालमें रसका आगमन पुनः होताहै ऐसेही ज्ञानरूप अग्निसे संसार वृद्धावस्था तथा जन्मआदि महामार्गके क्षयसे पुरुषोंके आरोग्य, तुष्टि पुष्टि और कांतिआदि गुणोंका आगमन पुनः होताहै ॥२५ ॥ और वह पुरुष पुनः भ्रमण न करनेके अर्थ आत्मारूप वृक्षपर चिरकालतक विश्राम करताहै. हे चित्त ! तुमारे क्षय होनेसे ऐसी तथा अन्यगुणोंकी संपत्ति होती है ॥ २६ ॥ हे सर्वभक्षक चित्त ! सब आशाओंके वर्धक तुमारे न रहनेपर सब संपत्ति प्राप्त होती हैं. और सर्वथा आत्मभावसे स्थिति अथवा सर्वथा आत्माके अभावका स्वीकार इन दोनों पक्षोंमेंसे ॥ २७ ॥ जिस पक्षमें कल्याणका मार्ग देखो उसीको क्षणभरकेलिये स्वीकार करो. और हे मानियोंमें श्रेष्ठ ! आत्माकी सत्ताही तुमारे लिये मैं सुख मानताहुं ॥ २८ ॥

तमेवभावयाभावंसुखत्यागोहिमूढता ॥ यदित्वस्तिभवेत्सत्यमंतर्भावितचेतनम् ॥ २९ ॥ जीवतस्तत्त्वात्यंतमभावंकइवेच्छति ॥ किंतुनास्त्यसिसत्येनवदामितवसुंदर ॥३० ॥ तेनमिथ्यैवजीवामीत्याशयामासुखीभव ॥ पूर्वमेवासिनास्त्येवयावद्भ्रांत्यात्वदस्तिता ॥ ३१ ॥ सैवेदानींविचारेणभृशंक्षयमुपागता ॥ एतावदेवतेरूपंसाधोयदविचारणम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—हे चित्त ! अन्यपदार्थोंकी सत्तासे शून्य उसी आत्माके भावकी भावना करो, क्योंकि सुखका त्याग मूढता है. और यदि अन्तमें चेतनसहित तुम प्रसिद्धरूप सत्य हो ॥ २९ ॥ तो उस रूपसे जीतेहुये तुमारा अभाव कौन चाहताहै. परंतु तुम उस स्वरूपसे असत् हो. हे सुन्दर ! यह मैं श्रुति (वेद) शास्त्र तथा अनुभव आदिसे विचार करके सत्य २ कहताहुं ॥ ३० ॥ इसलिये मैं जीताहुं इस मिथ्या आशासे सुखी न होओ, तुम कल्पितरूपही हो और यथार्थमें तुम नहीं हो क्योंकि तुमारी अस्तिता भ्रांतिसे सिद्ध है ॥ ३१ ॥ वही भ्रांति अब विचारसे सर्वथा क्षयको प्राप्त हुई. हे साधो ! तुमारा रूप इतना है कि आत्मस्वरूपका अविचार ॥ ३२ ॥

विचारेविहितेसम्यक्समरूपंसमंस्थितम् ॥ अविचारात्प्रजातंत्वमनालोकात्तमोयथा ॥ ३३ ॥ विचारेणोपशांतंत्वमालोकेनतमोयथा ॥ एतावंतंसखेकालंबभूवाल्पविवेकिता ॥ ३४ ॥ तवानेनाभिपीनत्वम

भूदुःखैककारणम् ॥ मोहसंकल्पमात्रेणबालवेतालवद्भवेत् ॥ ३५ ॥ द्वंद्वंचाद्यंतसंकल्पक्षीणंक्षयिभव स्थितम् ॥ इदानीमुदितंनित्यंस्वप्राग्रूपेक्षयंगते ॥ ३६ ॥ विवेकस्यप्रसादेनविवेकायनमोनमः ॥ बहु ध.पिप्रबुद्धस्त्वंचित्तकाप्यनुबोधितः ॥ ३७ ॥ चित्ततायांप्रनष्टायांस्थितस्त्वंपरमेश्वरः ॥ प्राक्स्वरूप विलासस्तेश्रेयसेस्थितिमागतः ॥ ३८ ॥ समस्तवासनोन्मुक्तःसंप्रत्यसिमहेश्वरः ॥ यस्याविवेकादु त्पत्तिःसविवेकाद्विनश्यति ॥ ३९ ॥ प्रकाशेनप्रयात्यंतमनालोकोभवत्तमः ॥ अनिच्छतोपितेसाधोवि चारेस्थितिमागते ॥ ४० ॥

अर्थ—विचार करनेपर तुमारा रूप विक्षेपादि विषमतासे शून्य सन्मात्र स्थित है. अविचारसे तुम ऐसे उत्पन्न हो जैसे प्रकाशके अभावसे अन्धकार ॥ ३३ ॥ विचारसे तुम ऐसे शांत होजाते हो जैसे प्रकाशसे अन्धकार. हे मित्र ! इतनेकालतक अल्प विवेक रहा ॥ ३४ ॥ इस अल्पविवेकसे दुःखका कारण तुमारी स्थूलता ऐसे हुई जैसे मोहके संकल्पमात्रसे बालकको वेताल उत्पन्न होताहै ॥ ३५ ॥ और उसी तुमारी स्थूलतासे स्रष्टाके आदिअन्त कल्पसे क्षीण अतएव क्षयी द्वंद्वभी हुआ, और जिस विवेकके प्रतापसे पूर्व अविद्याका रूप क्षय होनेपर इस ज्ञानोदयकालमें आत्मस्वरूप उदयको प्राप्त हुआहै उस विवेकको नमस्कार है. हे चित्त ! तुम स्वयं प्रबुद्ध हो और शास्त्रआदिसेभी बोधित हो ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ कि चित्तताके नष्ट होनेसे तुम परमेश्वर हो, पूर्वभी तुम परमेश्वर थे, और अबभी हो, तुमारा विलास अब स्थितिको प्राप्त हुआहै ॥ ३८ ॥ इसलिये सब वासनाओंसे मुक्त तुम महेश्वर हो, क्योंकि जिसकी अविवेकसे उत्पत्ति होती है वह विवेकसे नष्ट होताहै ॥३९॥ प्रकाशसे अन्धकार नष्ट होताहै. हे साधो ! तुमारी इच्छा न रहतेभी विचारके स्थिर होनेपर ॥ ४० ॥

सर्वतोयस्मुपायातोविनाशःसुखसिद्धये ॥ तस्मान्नास्त्यसिनिर्णीतमितिसिद्धांतयुक्तिभिः ॥ ४१ ॥ चित्तेंद्रियेश्वरस्वस्ति भवतेत्वंतमागतः ॥ नित्यंपूर्वमभूतायनास्तिरूपायसंप्रति ॥ ४२ ॥ भविष्यतेचनोद र्कस्वमनःस्वस्तितेस्त्विति ॥ परिनिर्वामिशांतोस्मिदिष्ट्यास्मिविगतज्वरः ॥ ४३ ॥ स्वात्मन्येवावति ष्ठेहंतुर्यरूपपदेस्थितः ॥ अतोनास्त्येवनास्त्येवसंसारेचित्तमस्थिति ॥ ४४ ॥

अर्थ—सुखकी सिद्धिकेलिये तुमारा विनाश चारोओरसे आके उपस्थित हुआ इसलिये शास्त्र और सिद्धान्तयुक्तियोंसे यह निर्णय हुआ कि तुम अपने कल्पितरूपसे नहीं हो ॥ ४१ ॥ हे चित्त ! इन्द्रियोंके ईश्वर तुम संसारके पार होगयेहो, पूर्वकालमेंभी न थे, और इस समयमेंभी नास्तिरूप हो, इसलिये तुमारा कल्याण हो ॥ ४२ ॥ हे स्वप्रिय चित्त ! भविष्यत्कालमेंभी तुम नहीं रहोगे, इसलिये तुमारा कल्याण हो, मैं इससमय सौभाग्यसे सन्तापरहित चारोओरसे तृप्त और शान्त हुं ॥ ४३ ॥ तुरीयपदमें स्थित मैं अपने आत्मामें स्थित हुं इसलिये स्थितिशून्य चित्त इस संसारमें नहींहै ॥ ४४ ॥

आत्मात्वस्त्येवचास्त्वेवयस्मादन्यत्रविद्यते ॥ अयमात्माहमेवासौनास्त्यन्यन्महतेकचित् ॥ ४५ ॥ स्फुरच्चिदेवबोधात्मासर्वत्राहंस्थितःसदा ॥ अयमात्मेतिकलनामन्येनोनिर्मलांतरे ॥ ४६ ॥ प्रतियोगि व्यवच्छेदकलनैकस्यवैकुतः ॥ अहंतेनायमात्मेतिकलनामनुदाहरन् ॥ मौनिस्वात्मनितिष्ठामितरंगइ ववारिणि ॥ ४७ ॥ संशांतवासनमनाश्रितचेतनांशमप्राणसंचरणमस्तमितांशदोषम् ॥ संवेद्यवर्जित मुपेत्यसुसंविदंशंशाम्यामिमौनमहमेवनिरीहमंतः ॥ ४८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे चित्तसत्ताविचारयोगोपदेशो नाम त्र्यशीतितमः सर्गः ॥ ८३ ॥

अर्थ—आत्मातो अवश्य है, क्यों यह शुद्धचित् आत्मा है और यह आत्मा मैं हुं मुझसे अन्य अन्यत्र कहीं कुछ नहीं है ॥ ४५ ॥ सदा सर्वत्र अनुभवरूप आत्मा स्फुरणशील मैं स्थितहुं. यह मैं मानताहुं कि शुद्धचिद्रूप आत्मामें यह आत्मा है यह कल्पनाभी नहीं होसकती तो अन्यकल्पनाकी क्या कथा ॥ ४६ ॥ क्योंकि एक अद्वितीय परमात्मामें उससे भिन्न कोई नहीं है यह कल्पना कहांसे होसकती है, इस हेतुसे यह आत्मा मैं हुं इस कल्पनाका उच्चारणभी न करतेहुये मौन आत्मामें ऐसे स्थितहुं जैसे तरंग जलमें ॥ ४७ ॥ वासनासे शून्य, चिदाभासकेभी आश्रयसे रहित, प्राणसंचारसे वर्जित, सबदोषोंसे वर्जित, और विषयसेरहित चिन्मात्र आत्मामें प्राप्त होकर, चेष्टा मनसे शून्य, और मौन होकर विश्रांतहुं ॥ ४८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषानुवादे चित्तसत्ताविचारयोगोपदेशो नाम त्र्यशीतितमः सर्गः ॥ ८३ ॥

चतुरशीतितमः सर्गः ॥ ८४ ॥

वीतहव्यमुनिकी समाधि, पृथिवीके भीतर स्थिति, और हृदयमें विद्याधर तथा इन्द्रता आदिके अनुभवका वर्णन इस ८४ के सर्गमें कियागयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ इतिनिर्णीयसमुनिर्वीतहव्योविवासनः ॥ आसीत्समाधावचलोविंध्यकंदरकोटरे ॥ १ ॥ अपरिस्पंदिताशेषसंविदानंदसुंदरः ॥ बभावस्तंगतमनाःस्तिमितांभोधिशोभनः ॥ २ ॥ अंतरेवशशामास्यक्रमेणप्राणसंततिः ॥ ज्वालाजालपरिस्पंदोदग्धेंधनइवानलः ॥ ३ ॥ अनंतर्निर्गतां यातेबाह्यार्थेचाप्यसंस्थिते ॥ शेषंतलब्धसंस्थानेतस्यास्फुरितपक्ष्मणी ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! वासनारहित वीतहव्यमुनि विंध्याचलकी कन्दरामें समाधिमें अचल होगया ॥ १ ॥ चेष्टारहित स्वप्रकाश पूर्णआत्मानन्दसे सुन्दर और मनरहित वह ऐसे शोभित हुआ जैसे निश्चल समुद्र ॥ २ ॥ क्रमसे प्राणोंका संचार इस मुनिके अंतःकरणमें ऐसे शांत होगया जैसे इंधन जलेहुये अग्निमें ज्वालाके जालकी गति ॥ ३ ॥ बाह्यपदार्थोंमें स्थित न होकर अर्द्धमिलित (आधे मूंदे) हुये इसके पलक होगये, और आधेसे शेष अन्तर्मुख होगये ॥ ४ ॥

घ्राणप्रांतगताल्पाल्पसमालोकेऽवेक्षणे ॥ अर्द्धकुड्मलितैःपद्मैःश्रियमाययतुःसमाम् ॥ ५ ॥ समकायशिरोग्रीवस्थानकःसमहामतिः ॥ आसीच्छैलादिवोत्कीर्णश्चित्रार्पितइवाथवा ॥ ६ ॥ तथापितिष्ठतस्तस्यसंवत्सरशतत्रयम् ॥ कोटरेविंध्यकच्छस्यययावर्द्धमुहूर्तवत् ॥ ७ ॥ एतावंतमसौकालंनाबुद्धयतकिलात्मवान् ॥ जीवन्मुक्ततयाध्यानीनचतत्याजतांतनुम् ॥ ८ ॥

अर्थ—और नासिकाके अग्रभागमें प्राप्त दोनों ओर समान प्रकाशवाले इसके नेत्र ऐसे शोभित हुये जैसे अर्द्धविकसित कमल ॥ ५ ॥ समशरीर ऊपर शिर तथा गला उठायेहुये वह महाबुद्धि मुनि ऐसा होगया जैसे पर्वतपर खुदाहुआ अथवा चित्रमें लिखित ॥ ६ ॥ विन्ध्याचलपर्वतपर झुरनेके समीपदेशमें उसप्रकार रहते उसको तीनसौ वर्ष ऐसे बीतगये जैसे आधा मुहूर्त ॥ ७ ॥ जीवन्मुक्त होनेसे वह ज्ञानी और ध्यानी मुनि इतने समयतक समाधिसे जाग्रत नहींहुआ और न उस शरीरको उसने त्यागा ॥ ८ ॥

तावत्कालंससुभगोनप्राबुद्धयतयोगवित् ॥ उदारैरंबुदारावैरासारभरघर्घरैः ॥ ९ ॥ पर्यंतमंडलाधीशमृगयानतबृंहितैः ॥ पक्षिवानरनिर्ह्रादैर्मातंगास्फोटनिःस्वनैः ॥ १० ॥ सिंहसंरंभरटितैर्निर्झरारावसीत्कृतैः ॥ विषमाशनिसंपातैर्जनकोलाहलैर्घनैः ॥ ११ ॥ प्रमत्तशरभास्फोटैर्भूकंपतटघट्टनैः ॥ वनदाहधमध्वानैर्जलौघाहतिवल्गनैः ॥ १२ ॥

अर्थ—वह सुंदर योगी उतने कालतक, बडे २ मेघोंके शब्दसे, तथा वृष्टिकी धाराकी घर्घराहटसेभी समाधिसे न जगा ॥ ९ ॥ और मंडलके अधीशोंके अहेरमें आयेहुये हांथीके शब्दोंसे, पक्षी तथा वानरोंकी चिल्लाहटसे, और हांथियोंकी गर्जनासेभी न जागा ॥ १० ॥ क्रोधसहित सिंहोंके गर्जनोंसे, झरनोंकी घर्घराहटोंसे, भयंकर वज्रपातोंसे और मनुष्योंके कोलाहलसेभी समाधिसे वह न जागा ॥ ११ ॥ प्रमत्त शरभ (गेंडे) पशुओंके शब्दोंसे, भूकंपसे टूटेहुये पर्वतके तटोंके संघट्टनसे, वनके दाहमें अग्निके शब्दोंसे, और जलके प्रवाहके शब्दोंसेभी वह समाधिसे न जागा ॥ १२ ॥

महोपलतटाघातैर्धरणीतलमृज्जलैः ॥ जलौघांदोलनायातैस्तापैरनलकर्कशैः ॥ १३ ॥ केवलंवहतिस्वैरं कालेगलितकारणम् ॥ परियांतीषुवर्षासुलहरीष्विववारिणि ॥ १४ ॥ स्वल्पेनैवहिकालेनतस्मिन्पर्वतकंदरे ॥ प्रावृडोघविनुन्नेनपंकेनोर्वीतलेकृतः ॥ १५ ॥ तत्रासाववसद्भूमौकोटरेसंकटोदरे ॥ पंकसंपीडितस्कंधःपर्वतेषुशिलायथा ॥ १६ ॥

अर्थ—बडे २ पर्वतोंके तटोंके आघातोंसे, पृथिवीसे फसिलते हुये कीचडयुक्त जलके शब्दोंसे, जलके प्रवाहके आंदोलनोंसे, तथा अग्निके समान कर्कश तापोंसेभी वह योगी समाधिसे न जागा ॥ १३ ॥ किंतु केवल स्वतंत्रतासे कारणरहित कालके वीततेहुये जलमें तरंगोंके समान अनेकवार वर्षाकालके बीतनेपर ॥ १४ ॥ थोडेही कालमें उस पर्वतकी कन्दरामें वर्षाकालसे उत्पन्न कीचडसे वह वीतहव्य मुनि पृथिवीके नीचे होगया ॥ १५ ॥ वहां संकटके स्थानमें उस भूमिके कोटरमें कीचडसे लिप्त स्कन्धहोनेपर ऐसे पीडासे रहित निवास करताथा जैसे पर्वतकी शिला ॥ १६

शतत्रयेसवर्षाणामथयातेस्वयंप्रभुः ॥ व्यबुध्यतात्मरूपात्माधराकोटरपीडितः ॥ १७ ॥ संविदेवास्य तंदेहंजग्राहोर्वीनिपीडितम् ॥ ततुःप्राणमयस्पंदःप्राणसंसरणंविना ॥ १८ ॥ उत्पत्तिप्रौढिमासाद्यकल नाहृदयांतरे ॥ स्वमनोरूपिणीतस्यहृद्येवानुबभूवसा ॥ १९ ॥ कैलासकाननेकांतेकदंबस्यतरोस्तले ॥ मुनित्वंशतमब्दानांजीवन्मुक्तात्मनिर्मलम् ॥ २० ॥

अर्थ—तीन (३००) सौ वर्षके अनंतर पृथिवीके कोटरमें पीडित वह आत्मारूप प्रभु स्वयं समाधिसे जागा ॥ १७ ॥ पृथिवीसे पीडित उसके शरीरको संवित् (ज्ञान) ही ने पालन किया न कि प्राणोंके संचारने क्योंकि वह सूक्ष्मथा ॥ १८ ॥ इस तीनसौ वर्षके अनंतर शेषप्रारब्धके भोगार्थ उसकी जीवसंवित् हृदयमें उत्पत्तिद्वारा प्रबल और अपने मनोरूप होकर वक्ष्यमाण बातोंको हृदयमेंही अनुभव किया ॥ १९ ॥ रमणीय कैलासपर्वतके बनमें कदंबके वृक्षके तले जीवन्मुक्त होनेसे निर्मल आत्मासहित मुनित्वका अनुभव सौ वर्षतक किया ॥ २० ॥

विद्याधरत्वंवर्षाणांशतमाधिविवर्जितम् ॥ युगपंचकमिंद्रत्वंप्रणतंसुरचारणैः ॥ २१ ॥ श्रीरामउवाच॥ शक्रत्वादिषुतेष्वस्यप्रतिभासेषुभोमुने ॥ नियमोऽनियमश्चैवदिक्कालनियतेःकथम् ॥ २२ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ सर्वात्मिकैषाचिच्छक्तिर्यत्रोदेतियथायथा ॥ तथातत्राशुभवतितथात्मैकस्वभावतः ॥२३॥ यथायत्रयदाबुद्धौनियमःसतदास्थितः ॥ देशकालादिनियमक्रमाणांतन्मयात्मता ॥ २४ ॥

अर्थ—और मानसीव्यथासे वर्जित देवता तथा चारणोंसे वंदित इन्द्रपदका अनुभव किया ॥ २१ ॥ श्रीरामजी बोले—हे मुने ! इस मुनिके इन्द्रआदि पदके अनुभवोंमें कैलासके वनमें यह देशका नियम, पांचयुग यह कालका नियम और अल्पकालमें हृदयदेशमें यह देशकालरूप नियतिका नियम तथा अनियम कैसे हुआ ? ॥ २२ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! सर्वरूप चेतनशक्ति जहां जिस २ प्रकारसे उदित होती है वहां अनुभव करनेवाले चेतनके स्वभावसे उसी २ प्रकारकी शीघ्र होजाती है ॥ २३ ॥ जिस समय वैसाही नियम वही स्थित होजाताहै, क्योंकि देशकालादि नियमके क्रम बुद्धिमय चिदात्मामें अध्यस्त हैं, तात्पर्य यह कि असर्वरूपसे ज्ञात चेतन अल्पदेशकालमें विशालदेशकालके होनेमें विरोधहै न कि सर्वरूपसे ज्ञात चेतनमें ॥ २४ ॥

तेननानाविधान्येपजगंतिपरिदृष्टवान् ॥ हृदिसंवेदनाकाशेवीतहव्योविवासनः ॥ २५ ॥ सम्यग्बोधवतामेषावासनैवनवासना ॥ ज्ञानाग्निदग्धादग्धस्यकैवबीजस्यबीजता ॥ २६ ॥ कल्पमेकंगणत्वंसचंद्रमौलेश्चकारह ॥ समस्तविद्यानिपुणंत्रिकालामलदर्शनम् ॥ २७ ॥ योयादृग्दृढसंस्कारःसतंपश्यतितादृशम् ॥ जीवन्मुक्ततयैवैतद्वीतहव्योनुभूतवान् ॥ २८ ॥

अर्थ—इसी हेतुसे वासनारहित वीतहव्य मुनिने अपने हृदयस्थित चिदाकाशमें नानाप्रकारके जगत्का अनुभव किया ॥ २५ ॥ हे रामजी ! उत्तमज्ञान (आत्मज्ञान) वालोंकी यह वासना वासना नहीं है क्योंकि ज्ञानरूप अग्निसे दग्ध और दर्शनमात्रसे अदग्ध भर्जित बीजकी बीजता (अंकुर उत्पन्न करनेकी शक्तिसहित बीजता) क्या, अर्थात् कुछ नहीं ॥ २६ ॥ इसके पश्चात् उस वीतहव्यने समस्तविद्यामें निपुण, त्रिकालमें निर्मलज्ञानसहित श्रीमहादेवजीकी गणपतिकी पदवीका अनुभव एक कल्पपर्य्यन्त किया ॥ २७ ॥ जो प्राणी जैसे दृढसंस्कारसहितहै वह उसको वैसाही देखताहै, क्योंकि भोग करानेवाले प्रारब्धकर्मके दृढसंस्कारके आविर्भूत होनेसे जीवन्मुक्तभी वीतहव्यमुनिने यह सब अनुभवकिया ॥ २८ ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ एवंस्थितेमुनिश्रेष्ठजीवन्मुक्तमतेरपि ॥ बंधमोक्षदृशःसंतिवीतहव्यात्मनोयथा॥२९॥ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यथास्थितमिदंविश्वंशांतमाकाशनिर्मलम् ॥ ब्रह्मैवजीवन्मुक्तानांबंधमोक्षदृशः कुतः ॥ ३० ॥ एतत्संविन्नभोभातियत्रयत्रयथायथा ॥ तत्रतत्रतथातावत्तावत्तद्धिदतंततम् ॥ ३१ ॥ ते नानुभूतानिबहून्यनुभूयंतएवच ॥ जगंतिसर्वात्मतयाब्रह्मरूपेणराघव ॥ ३२ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोलें—हे मुनिश्रेष्ठ ! जब ऐसा है तो जीवन्मुक्तकोभी बंधमोक्षकी दृष्टि होती हैं जैसे कि वीतहव्यकी ॥ २९ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! यथारूपसे स्थित यह संपूर्ण जगत् जीवन्मुक्तोंकी दृष्टिमें शांत और निर्मल आकाशके तुल्य ब्रह्म है तो उनको बंधमोक्षकी दृष्टि कैसे होसकती है ॥ ३० ॥ यह संवित् चिदाकाश जहां २ जैसे २ भासताहै वहां २ वैसाही वैसा उतना २ व्याप्त प्राप्त करताहै ॥ ३१ ॥ सर्वरूप होनेसे ब्रह्मरूप वीतहव्यने अनेक जगत्के अनुभव किये और अनेक कररहाहै ॥ ३२ ॥

धराकोटरनिर्मग्नवीतहव्यचिदात्मसु ॥ जगत्सुतेष्वसंख्येषुनीरूपेषुमहात्मसु ॥३३॥ यःशक्रोनवबुद्धात्मासोव्यदीनेषुपार्थिवः ॥ कर्तुंप्रवृत्तोमृगयांक्षणेस्मिन्नपिकानने ॥ ३४ ॥ योहंसोनवबुद्धात्मापाश्रैपैत

महेभवत् ॥ स्थितःसएवदाशेंद्रःकैलासवनकुंजके ॥ ३५ ॥ योराजानवबुद्धात्माभूमेःसौराष्ट्रमंडले ॥ सएषोद्यस्थितोग्राणांग्रामेबहुलपादपे ॥ ३६ ॥

अर्थ—वीतहव्यके हृदयस्थ चेतनके क्रमसे आदि लेके सर्व जीवस्थ चेतनरूप होनेसे सब जगत्‌के जीवोंका अनुभव उसीकाहै इसलिये पृथिवीके कोटरमें निमग्न वीतहव्यके चेतनसहित असंख्यरूपरहित अथवा प्रतिभाससे विशालरूप ब्रह्माण्डोंमें ॥ ३३ ॥ जो इन्द्र था वह इससमय दीन नाम देशोंमें अज्ञानी राजा है और क्षणभरकेलिये बनमें मृगया (शिकार) करनेको प्रवृत्त है ॥ ३४ ॥ जो पितामहके पद्मकल्पमें वीतहव्यके गणपती होनेके समयमें कैलासके बनमें उसका अज्ञानी क्रीडा हंसहुआथा वह अब दासेंद्र अर्थात् निषादोंका राजा होके स्थितहै ॥ ३५ ॥ इसीप्रकार जो पृथिवीके सौराष्ट्रदेशमें अज्ञानी राजा था वह अब अंधदेशके बहुत वृक्ष सहित ग्राममें स्थितहै ॥ ३६

श्रीरामउवाच ॥ ॥ मानसःकिलसर्गोसौवीतहव्यस्यतत्रये ॥ देहिनोभ्रांतिमात्रंचेत्तद्देहाकारिणःकथम् ॥ ३७ ॥ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ यदिभ्रांत्येष्टमात्रात्मवीतहव्यस्यतज्जगत् ॥ तदिदंनामतेरामकिंभूयःपरिभासते ॥ ३८ ॥ इदमप्यंगचिन्मात्रंमनोमात्रभ्रमोपमम् ॥ तदपिव्योमचिन्मात्रंमनोमात्रंभ्रमोपमम् ॥ ३९ ॥ वस्तुतस्तुनतद्रामजगन्नैवंनचेतरत् ॥ तवापिनजगत्सत्ताब्रह्मेदंभातिकेवलम् ४०

अर्थ—श्रीरामजी बोले—हे प्रभो ! वीतहव्यकी सृष्टि तो मानसीथी, उसमें देहधारी यदि भ्रान्तिमात्रथे तब इन्द्र और हंस देहाकारभी चेतनसहित कैसे हुये ? ॥ ३७ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! यदि वीतहव्यमुनिके मानस उस जगत्‌के भ्रान्तिमात्र होनेसे देहधारियोंके चेतनसहित होनेमें शंका करतेहो तब तुमारा यह प्रसिद्ध जगत् चेतनसहित कैसे भासताहै अर्थात् मनका कार्य्य होनेसे यहभी भ्रान्तिमात्रही है ॥ ३८ ॥ हे प्रिय रामजी ! यह तुमारा जगत्‌भी चिन्मात्र मनसे भ्रमके तुल्य है और वह वीतहव्यकाभी चिदाकाशमात्र मनसे रचित भ्रमके तुल्यही है ॥ ३९ ॥ हे रामजी ! और यथार्थमें तो न वह जगत् इसके सदृश है और न इससे विलक्षण है और तुमाराभी जगत् कुछ नहीं है किंतु यह केवल ब्रह्मही जगत्‌रूपसे भासताहै ॥ ४० ॥

भाविभूतंभविष्यच्चतथेदंचतथेतरत् ॥ जगत्सर्वमिदंदृश्यंसंविन्मात्रमनोमयम् ॥ ४१ ॥ एवंरूपमिदं यावन्नपरिज्ञातमीदृशम् ॥ वज्रसारदृढंतावज्ज्ञातंसतपरमांबरम् ॥ ४२ ॥ अज्ञानान्मनएवेदमित्थंसंप्रविजृंभते ॥ प्रत्युल्लासविलासाभ्यांजलमंबुनिधाविव ॥ ४३ ॥ यथास्थितेनैवचिदंबरेणस्वचित्तमेवैतिमनोभिधानम् ॥ स्फारंकृतंतेनजगच्चदृश्यमेवंततंनैवततंचकिंचित् ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे वीतहव्यमनोजगद्वर्णनं नाम चतुरशीतितमः सर्गः ॥ ८४ ॥

अर्थ—भावी भूत और भविष्य यह सम्पूर्ण दृश्यमात्र जगत् है वह संवित्मात्र (चिन्मात्र) शेष जो मनहै तन्मय है ॥ ४१ ॥ हे रामजी ! जबतक इसप्रकार यह जगत् ज्ञात नहीं है तबतक वह सत्‌रूप चिदाकाश वज्रके समान दृढ है ॥ ४२ ॥ अज्ञानियोंकेलिये मनोमात्रही यह जगत् उत्पत्ति तथा वृद्धिआदि परिणामोंसे ऐसे विकसित होरहाहै जैसे समुद्रमें तरंगआदि रूपसे जल ॥ ४३ ॥ विकाररहित चिदाकाश स्वभावसे स्थित ब्रह्मही अपनी मायासे किंचित् चेतित होतेहुये अपनेको चित्तरूपसे कल्पित करताहुआ चित्त होकर उसीकी मननशक्ति मनरूपताको प्राप्त होताहै और उस मनसे यह विशाल जगत् रचा जिससे कि इसप्रकार यह दृश्य व्याप्त है और यथार्थमें तो ब्रह्मसे भिन्न यह कुछ नहीं व्याप्तहै ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे उपशमप्रकरणे वीतहव्यजगद्वर्णनं नाम चतुरशीतितमः सर्गः ॥ ८४ ॥

पंचाशीतितमः सर्गः ॥ ८५ ॥

वीतहव्यमुनिका उस पिंगलमें प्रवेश करके अपने देहका उद्धार और जीवन्मुक्तकी स्थिति तथा अंतिम समाधिका वर्णन इस ८५ के सर्गमें कियागया है ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ अथकिंवीतहव्यःस्वंस्थितंतस्मिन्धरोदरे ॥ कथमुद्धृतवान्देहंससंपन्नश्चकिंकथम् ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ अनंतरमनंतात्मवीतहव्याभिधंमनः ॥ स्वमेवात्मचमत्कारमात्रंसमवबुद्धवान् ॥ २ ॥ शार्वस्यास्यगणस्याभूत्प्राग्ज्योतिःस्मरणेस्वयम् ॥ इच्छाकदाचित्सकलप्राग्जन्मालोकनोन्मुखी॥३॥अशेषान्सददर्शाथनष्टानष्टान्स्वदेहकान्॥अनष्टानांततोमध्यात्तत्कोटरसंस्थितम् ४

यदृच्छयैवप्रोद्धर्तुंदेहंतस्याभवन्मतिः ॥ अपश्यत्तत्तथातत्रपंकेकीटमिवस्थितम् ॥ ५ ॥ शरीरंवीतहव्याख्यंधराकोटरपीडितम् ॥ प्रावृडोघोपनीतंतत्पृष्ठस्थंपंकमंडलम् ॥ ६ ॥ तृणजालावकीर्णत्वग्देहपृष्ठमृदंतथा ॥ एतदृष्ट्वामहातेजाधराविवरयंत्रितम् ॥ ७ ॥ भूयोपिचिंतयामासधियापरमबोधया ॥ सर्वसंपीडितांगत्वात्कायोमेप्राणवायुभिः ॥ ८ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले–हे प्रभो ! वीतहव्यमुनिने पृथिवीके उदरमें स्थित उस अपने देहका उद्धार कैसे किया और वह कैसे रहे और क्या वर्ताव किया ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! इसके अनन्तर अनन्त आत्मस्वरूप वह वीतहव्यनामक जो मन है उसने आत्माका चमत्कारमात्र अपनेको जाना ॥ २ ॥ और जिससमय यह वीतहव्यका मन महादेवजीका गण था उससमय आत्माके ध्यानकालमें कदाचित् अपने पूर्वकालके सब शरीरोंके देखनेकी इच्छा स्वयं हुई ॥३॥ इसके पश्चात् उसने नष्ट तथा अनष्ट सब शरीरोंको देखा और अनष्टशरीरोंके मध्यमें पृथिवीके भीतर कीटकके समान स्थित उस शरीरको देखा ॥ ४ ॥ ५ ॥ पृथिवीके कोटरमें स्थित, वर्षाके प्रवाहसे दूर खींचाहुवा पृष्ठपर पंकसमूहसहित उस वीतहव्यनाम शरीरको देखा ॥ ६ ॥ तथा तृणके जालसे चर्मपूर्ण और पृष्ठदेशमें मृत्तिकासे व्याप्त यह शरीर, इसप्रकार पृथिवीके वेष्टित उस शरीर उस महातेजस्वी ऋषिने देखकर ॥ ७ ॥ पुनः परमज्ञानयुक्तबुद्धिसे चिंतन किया कि यह मेरा देह सर्व अंगमें पीडित होनेसे प्राणोंके संचारसे ॥ ८ ॥

मुक्तश्चलितुमाकर्तुंशक्नोतिनमनागपि ॥ तज्ज्ञात्वाप्रविशाम्याशुदेहमेवंविवस्वतः ॥ ९ ॥ तदीयःपिंगलोदेहमुद्धरिष्यतिमेततः ॥ अथवाकिंममैतेनशाम्याम्यहमविघ्नतः ॥ १० ॥ निर्वामिस्वंपदंयामिकोर्थोमेदेहलीलया ॥ इतिसंचिंत्यमनसावीतहव्योमहामते ॥ ११ ॥ तूष्णींस्थित्वाक्षणंभूयश्चिंतयामास भूतले ॥ उपादेयोहिदेहस्यनमेत्यागोनसंश्रयः ॥ १२ ॥

अर्थ—रहित है, किंचित् चलने वा कुछ करनेको समर्थ नहीं है इसलिये इसके उद्धारके उपायको जानकर मैं शीघ्र सूर्यके शरीरमें प्रवेश करूं ॥ ९ ॥ उसमें प्रवेश करनेसे सूर्यका पिंगलनाम गण मेरे देहका उद्धार करेगा, अथवा इस प्रपंचसे मुझे क्या प्रयोजन है मैं इस देहके साथ विदेहमुक्तिसे शांत होजाऊं ॥ १० ॥ अपने परमपदको प्राप्त होके में शांत होजाऊं मुझे देहकी लीलासे क्या प्रयोजन, हे महामते ! वीतहव्यमुनि मनसे ऐसा चिंतन करके ॥११॥ हे महामते ! वीतहव्यमुनिने मनसे ऐसा चिन्तन करके और क्षणभर भूतलपर मौन स्थित होकर पुनः विचार किया कि मुझे इस देहका त्याग, अथवा आश्रय, ग्राह्य नहीं है ॥ १२ ॥

यादृशोदेहसंत्यागस्तादृशोदेहसंश्रयः ॥ तद्यावदस्तिदेहोयंनयावदणुतांगतः ॥ १३ ॥ तावदेनमुपारुह्यकिंचित्प्रविहराम्यहम् ॥ पिंगलेनशरीरंस्वमुद्धर्तुंतापनंवपुः ॥ १४ ॥ प्रविशामिनभःसंस्थंमुकुरंप्रतिबिंबवत् ॥ इत्यसौमुनिरादित्यंविवेशानिलरूपधृक् ॥ १५ ॥ पुर्यष्टकवपुर्भूत्वाभस्त्राखमिवचानलः॥ भगवान्मुनिरप्येनंहृद्गतंमुनिनायकम् ॥ १६ ॥

अर्थ—जैसे देहका त्याग है वैसाही उसका आश्रय है, इस हेतुसे जबतक यह देह परमाणुरूपको न प्राप्त हो ॥१३॥ तबतक इसपर आरूढ होके विहार करूं, और पिंगलसे शरीरका उद्धार करनेके लिये सूर्यके शरीरमें ॥१४॥ जो कि आकाशमें स्थितहै उसमें ऐसे प्रवेश करूं जैसे दर्पणमें प्रतिबिंब, ऐसा विचार करके वायुके समान सूक्ष्मशरीरसे यह मुनि सूर्यमण्डलमें प्रविष्ट हुआ ॥ १५ ॥ भाथीके अन्तर्गत आकाशके समान सूक्ष्मशरीरसे सूर्यके शरीरमें प्रवेश किया और मननशील सूर्यभगवान्‌भी अपने हृदयमें प्राप्त मुनियोंमें श्रेष्ठ वीतहव्यको ॥ १६ ॥

दृष्ट्वासौचिंतयन्कार्यंपौर्वापर्यमुदारधीः ॥ विंध्यभूधरभूकोशमंतर्मुनिकलेवरम् ॥ १७ ॥ तृणोपलपरिच्छन्नंददर्शगतसंविदम् ॥ ऋषेश्चिकीर्षितंज्ञात्वाभानुर्गगनमध्यगः ॥ १८ ॥ धरातोमुनिमुद्धर्तुमादिदेशाग्रगंगणम् ॥ वीतहव्यमुनेःसंवित्साघुर्यष्टकरूपिणी ॥ १९ ॥ रविंवातमयीपूज्यंप्रणनामाशुचेतसा ॥ भानुनाप्यभ्यनुज्ञातोमानपूर्वकमग्रगम् ॥ २० ॥

अर्थ—देखकर और उदारबुद्धि सूर्य उनके कार्य्य तथा पूर्वापर शरीरोंकोभी देखकर चिंता करतेहुये, विंध्यपर्वतकी भूमिके भीतर मुनिके शरीरको ॥ १७ ॥ जो कि तृण तथा पाषाणआदिसे आच्छादित और चेष्टारहित था उसको देखा, और आकाशके मध्यमें वर्तमान सूर्यने ऋषिके कर्तव्यको जानकर ॥ १८ ॥ पृथिवीके भीतरसे मुनिके शरीरको निकालनेके अर्थ अग्रगामी पिंगलगणको आज्ञा दी, और वीतहव्यमुनिकी वातरूप सूक्ष्मशरीरकी संवित्ने पूज्य सूर्यभगवान्‌को शीघ्र प्रणाम किया, वह मुनि बहुतमानपूर्वक सूर्यसे आज्ञा दिये हुये अपने कार्यकेलिये प्रस्थित अग्रगामी ॥ १९ ॥ २० ॥

विवेशपिंगलाकारंविंध्यकंदरगामिनम् ॥ पिंगलोसौनभस्त्यक्त्वाकुंजकुंजरसुंदरम् ॥ २१ ॥ प्रापविंध्य वनंप्रावृण्मत्ताभ्रांबरभासुरम् ॥ उद्धारधराकोशान्नखनिष्कृष्टभूतलः ॥ २२ ॥ कलेवरंमुनेःपंकान्मृणालमिवसारसः ॥ मौनंपुर्यष्टकमथस्वंविवेशकलेवरम् ॥ २३ ॥ नभस्तलपरिभ्रांतोविहंगमइवालयम् ॥ प्रणेमतुर्मिथोमूर्त्तवीतहव्यनभश्चरौ ॥ २४ ॥

अर्थ—और विंध्याचलकी कन्दरामें जानेवाले पिंगलके शरीरमें प्रवेश करतेभये, और यह पिंगलभी आकाशको त्यागकर, लतागृह तथा हस्तीआदिसे रमणीय ॥ २१ ॥ और वर्षाकालके मेघोंसे प्रकाशमान विंध्याचलके वनमें प्राप्त हुआ और नखसे खोदके पृथिवीके भीतरसे मुनिके शरीरको ऐसे निकाला जैसे सारस कीचडमेंसे कमलको, और अनन्त मुनिका सूक्ष्मदेह अपने देहमें ऐसे प्रविष्ट हुआ ॥ २२ ॥ २३ ॥ जैसे आकाशमें भ्रमण करताहुआ पक्षी अपने खुंथेमें अनन्तर मुर्तिरूपधारी वीतहव्य और आकाशगामी पिंगलने परस्पर प्रणाम किया ॥ २४ ॥

बभूवतुःस्वकार्यैकतत्परौतेजसांनिधी ॥ जगामपिंगलोव्योममुनिश्चविमलंसरः ॥ २५ ॥ तारकाकारकुमुदंसूर्यांशुकवदाकृति ॥ वीतहव्योममज्जाशुसरस्युद्भिन्नपंकजे ॥ २६ ॥ पंकपल्वललीलांतेवनेकलभकोयथा ॥ तत्रस्नात्वाजपंकृत्वापूजयित्वादिवाकरम् ॥ मनोभूषितयातन्वापूर्ववत्पुनराबभौ ॥ २७ ॥ मैत्र्यातयासमतयापरयाचशांत्यासत्प्रज्ञयामुदितयाकृपयाश्रियाच ॥ युक्तोमुनिःसकलसंगविमुक्तचेताविंध्येसरित्तटगतोदिनमेवरेमे ॥ २८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे वीतहव्यसमाधियोगोपदेशो नाम पंचाशीतितमः सर्गः ॥ ८५ ॥

अर्थ—और वे दोनों तेजके समुद्र अपने २ कार्य्यमें तत्पर हुये, पिंगल तो आकाशमें गये और मुनि अपने शरीरसे स्नानार्थ निर्मल तडागमें गये ॥ २५ ॥ वह तडाग कुमुदरूप तारागणसे युक्त और सूर्य्यके प्रातःकालके किरणसे रक्त तथा पीतवस्त्र मानो धारण कियाथा, उस कमलसंयुक्त तडागमें मुनि वीतहव्यने स्नान किया ॥ २६ ॥ वनमें हांथीके बच्चेके समान उस पंकयुक्त तलावकी लीलाके अन्तमें स्नान करके जप तथा सूर्यकी पूजा करके, मनसे भूषित उस शरीरसे पूर्वकालके समान प्रकाशमान हुआ ॥ २७ ॥ समानजीवोंमें उस प्रसिद्ध जीवन्मुक्तोंकी मित्रता, परमशांति, उत्तमबुद्धि, श्रेष्ठोंमें प्रसन्नता, दीनोंमें करुणाआदि शोभासे युक्त और मनसे सवसंगोंसे निर्मुक्तमुनिने विंध्याचलकी नदीके तटपर दिनभर (एकही दिन) रमण किया ॥ २८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे उपशमप्रकरणे वीतहव्यसमाधियोगोपदेशो नाम पंचाशीतितमः सर्गः ॥ ८५ ॥

षडशीतितमः सर्गः ॥ ८६ ॥

पुनः छः रात्रितक समाधि, अनंतर जीन्मुक्तिकी स्थिति, मुक्तिमें रागआदिसे तिलांजलि, और इसकी समाधि इन विषयोंका वर्णन इस ८६ के सर्गमें किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ दिनांतेससमाधातुंपुनरेवमनोमुनिः ॥ विवेशकांचिद्दिततांविज्ञातांविंध्यकंदराम् ॥ १ ॥ तदेवात्मानुसंधानमत्यजन्समर्मिद्रियैः ॥ चेतसाकलयामासदृष्टलोकपरावरः ॥ २ ॥ पूर्वमेवेंद्रियगणोमयापरिहृतःस्फुटम् ॥ इदानींचिंतयानार्थःपुनर्वितततयामम ॥ ३ ॥ अस्तिनास्तीतिकलनांभंक्त्वामृद्वींलतामिव ॥ शेषंतुबद्धसंस्थानस्तिष्ठाम्यचलशृंगवत् ॥ ४ ॥

अर्थ—दिनके अंतमें उस मुनिने पुनः समाधि करनेकी इच्छा की और जानीहुई किसी विशाल विंध्याचलकी कंदरामें प्रवेश किया ॥ १ ॥ लोकमें सारअसारको जाननेवाले उस मुनिने आत्माके अनुसंधानको त्यागतेहुये इन्द्रियोंके साथ वही विचार (इन्द्रियआदिके अभाव) को पुनः किया ॥ २ ॥ कि इन्द्रियगणको तो प्रथमहीसे मैंने स्पष्टरीतिसे त्यागदिया अब उस महाचिंतासे मुझे कुछ प्रयोजन नहीं है ॥३॥ कोमललताके तुल्य " अस्तिनास्ति " इस कल्पनाको त्यागकर शेष उन दोनोंके साक्षी चिन्मात्रका अवलंबन करके शरीरसे सम तथा दृढ आसन बांधके पर्वतके शिखरके समान स्थितहुं ॥ ४ ॥

उदितोस्तंगतइवस्वस्तंगतइवोदितः ॥ समःसमरसाभासस्तिष्ठामिस्वच्छतांगतः ॥ ५ ॥ प्रबुद्धोपिसुषुप्तस्थःसुषुप्तस्थःप्रबुद्धवत् ॥ तुर्यमालंव्यकायांतस्तिष्ठामिस्तंभितस्थितिः ॥ ६ ॥ स्थितःस्थाणुरि

वैकांतेस्वांतांतेसर्वतःस्थिते ॥ सत्वसामान्यसाम्येहितिष्ठाम्यपगतामयः ॥ ७ ॥ इतिसंचिंत्यसध्याने पुनस्तस्थौदिनानिषट् ॥ ततःप्रबोधमापन्नःक्षणसुप्तइवाध्वगः ॥ ८ ॥

अर्थ—जीवितभी मूढकी दृष्टि मृतकके समान, ज्ञानीकी दृष्टिमें इसके विरुद्ध, और स्वच्छताको प्राप्त एक चिन्मात्ररूप में स्थितहुं ॥ ५ ॥ जाग्रत होनेपरभी द्वैतजालको न देखनेसे सुषुप्त, और सुषुप्तभी अपने आत्मरूपके देखनेमें जाग्रत् में तुरीयपदका अवलंबन करके शरीरके अंतपर्य्यन्त अचल होके स्थितहुं ॥ ६ ॥ मनसे परे सर्वत्र स्थित सामान्य सत्तारूप एक परमात्मामें विकाररहित मैं स्थाणुके समान स्थितहुं ॥७॥ ऐसा निश्चय करके छः दिन-पर्य्यंत पुनः वह मुनि ध्यानमें तत्पर रहा उसके अनंतर समाधिसे ऐसे जाग्रत् हुआ जैसे क्षणभरके शयनसे बटोही॥८

ततःसिद्धःसभगवान्वीतहव्योमहातपाः ॥ विजहारचिरंकालंजीवन्मुक्ततयातदा ॥ ९ ॥ वस्तुनाभिन नंदासौनिनिंदनकदाचन ॥ नजगामतथोद्वेगंनचहर्षमवापसः ॥ १० ॥ गच्छतस्तिष्ठतश्चैवतस्यैवम भवद्धृदि ॥ विनोदायविचित्तस्यकथास्वमनसासह ॥ ११ ॥ अन्ययेंद्रियवर्गेशमनःशमवतात्वया ॥ प श्यानंदसुखंकीदृग्विधमासादितंततम् ॥ १२ ॥

अर्थ—उसके पश्चात् महातपस्वी वीतहव्य सिद्ध होके जीवन्मुक्तरूपसे बहुतकालतक इस पृथिवीपर विच-रतारहा ॥९॥ गुण देखके न किसी वस्तुकी प्रशंसा की और न किसीकी कभी निंदा की और न भय शोक और न हर्षको कभी प्राप्त हुआ ॥ १० ॥ चलते फिरते उठते बैठते उसके हृदयमें विनोदके अर्थ चित्तकी मनके साथ यह कथा (वक्ष्यमाण विचारणा) होतीथी ॥११॥ कि हे विषयभोगके सामर्थ्यके व्यय (खर्च) से हीन इन्द्रियोंके ईश मन देखो ! शांति धारण करनेसे सब जगत्को आनंदित करनेवालेकैसे अनुपम सर्वत्र व्याप्त सुखको तुमने प्राप्त किया १२

एषैवाविरतंतस्मान्नीरागैवदशात्वया ॥ अवलंब्यापरित्याज्यंचापलंचलतांवर ॥ १३ ॥ भोभोइंद्रियचौ राहेहताशाहतनामकाः ॥ युष्माकंनायमात्मास्तिनभवंतस्तथात्मनः ॥ १४ ॥ व्रजतांवोविनाशांशमा शावोविफलीकृताः ॥ नसमर्थाःसमाक्रांतौभवंतोभंगुराश्रयाः ॥ १५ ॥ वयमात्मेतियैषावोबभूवकिल वासना ॥ तत्त्वविस्मृतिजाताहिदृष्टरज्जुभुजंगवत् ॥ १६ ॥

अर्थ—हे चंचलोंमें श्रेष्ठ मन ! तुमको भविष्यमेंभी इसी रागरहित दशाका अवलम्बन करके चपलताको त्यागनाचाहिये ॥ १३ ॥ हे इन्द्रियरूप चोर ! हे नष्ट आशा ! यह आत्मा तुमारा नहीं है और न तुम इसके हो ॥ १४ ॥ आत्मासे सम्बन्ध न होनेसे तुम शेष अपने नाशरूपको प्राप्त होओ, तुमारी आशा व्यर्थ है, नष्टआशय-युक्त तुम मेरे ऊपर आक्रमण करनेमें समर्थ नहीं हो ॥ १५ ॥ हम आत्मा हैं यह जो निश्चयरूपसे तुमारी वासना है वह आत्मतत्वके विस्मरणसे ऐसे हुई जैसे रज्जुमें सर्प ॥ १६ ॥

अनात्मन्यात्मतासैषासैषावस्तुन्यवस्तुता ॥ अविचारेणवैजाताविचारेणक्षयंगता ॥ १७ ॥ भवंतोन्ये वयंचान्येब्रह्मान्यत्कर्तृतापरा ॥ अन्योभोक्तान्यआदत्तेकोदोषःकस्यकीदृशः ॥ १८ ॥ वनेभ्योदारुसं जातंरज्जवोवेणुचर्मणः ॥ वासीचायःफलान्येवतक्षाग्रासार्थमुद्यतः ॥ १९ ॥ इत्थंयथेहसामग्र्यास्वश क्तिस्थपदार्थया ॥ संपन्नाकाकतालीयादृढावरगृहाकृतिः ॥ २० ॥

अर्थ—यही अनात्मामें आत्मता है और यही वस्तुमें अवस्तुता है, अविचारसे यह उत्पन्न हुई और विचारसे क्षयको प्राप्त हुई है ॥ १७ ॥ हे इन्द्रियगण ! तुम करणभूत अन्य हो हम अभिमान करनेवाले अन्य हैं, अद्वैत ब्रह्म अन्य है, प्राणसे प्रेरित क्रियाकी निमित्तता अन्य है, भोक्ता चिदाभास अन्य है, और ग्रहणकर्ता मन अन्य है तब किसको किसप्रकारका कौन दोष है ॥ १८ ॥ बनोंसे काष्ठ उत्पन्न हुआहै, बांसके छिलकेकी रज्जु (रस्सी) हैं, बसुला कुठारआदि लोहरचित हैं और बढई अपने भोजनकेलिये प्रवृत्त है न कि गृहकी सिद्धिकेलिये ॥ १९ ॥ इसप्रकार अपनी शक्तिमें स्थित भिन्न २ प्रयोजनकी क्रियाकारकी सामग्रीसे काकतालीयन्यायसे दृढआवरणसहित गृहकी आकृति जैसे सिद्ध हुई है ॥ २० ॥

संपन्नाःकाकतालीयात्स्वशक्तिनियतेंद्रियाः ॥ तथैवकलिकालोलंकेवकस्यात्रखंडना ॥ २१ ॥ विस्मृति र्विस्मृतादूरंस्मृतिःस्फुटमनुस्मृता ॥ सत्सज्जातमसच्चासंतत्क्षतंक्षीणंस्थितंस्थितम् ॥ २२ ॥ एवंविधेन भगवान्विचारेणमहातपाः ॥ सोतिष्ठन्मुनिशार्दूलोबहून्वर्षगणानिह ॥ २३ ॥ अपुनर्भवनायैवयत्रार्चि तांतमागता ॥ मूढताचसुदूरस्थातत्रासाववसत्सदा ॥ २४ ॥

अर्थ—उसीप्रकार इस शरीरमें कार्यकारणसंघातमें दर्शन, श्रवण, वचन और आदानफलरूप अपनी २ श-क्तियोंसे नियतहैं, ज्ञान तथा कर्म इन्द्रियसहित व्यवहारकार्यकी कलिका काकतालीयन्यायसेही उत्पन्न हुई है उसमें

किसकी क्या क्षति है ॥ २१ ॥ अविद्यातो दूर विस्मृत होगई, आत्मविद्या स्पष्टरूपसे स्मरणहुई, सत् सत् हुआ, असत् असत् हुआ, विघ्न क्षीण हुआ, और स्थित होनेयोग्य स्थितहै ॥ २२ ॥ हे रामजी ! मुनियोंमें श्रेष्ठ और महातपस्वी वीतहव्य इसप्रकारके विचारोंसे बहुत वर्षोंके गणोंतक इस संसारमें स्थितरहा ॥ २३ ॥ पुनः इस संसारमें न आनेकेलिये जहां चिन्ताका अन्त है और मूढता जहां अतिदूर है उस ब्रह्मपदमें सदा स्थितरहा ॥ २४ ॥

यथाभूतपदार्थौघदर्शनोत्थमनर्थकम् ॥ ध्यानाश्वासनमालंब्यसोवसत्सुखगःसदा ॥ २५ ॥ हेयादेयसमासंगत्यागादानदृशोःक्षये ॥ वीतहव्यमुनेरासीदिच्छानिच्छातिगंमनः ॥ २६ ॥ विदेहकेवलीभावेसीमांतेजन्मकर्मणाम् ॥ संसारसंगसंत्यागरसासवनवेच्छया ॥ २७ ॥ विवेशसतयैवांतेसह्याद्रेर्हेमकंदरम् ॥ अपुनःसंगमायाशुजगज्जालमवेक्ष्यसः ॥ २८ ॥

अर्थ—यथारूपसे स्थित पदार्थोंके समूहसे प्रवृत्त अनर्थके रोकनेके अर्थ ध्यानकाही अवलम्बन करके सदा आत्मसुख प्राप्तही वह निवास करताथा ॥ २५ ॥ त्याज्य तथा ग्राह्यपदार्थोंके प्राप्त होनेसेभी त्याग तथा आदानकी दृष्टिके क्षय होनेपर वीतहव्यमुनिका मन इच्छा और अनिच्छासे परे था ॥ २६ ॥ विदेहसे केवलीभावरूप, और जन्मकर्मकी सीमाका अंत, संसारके त्यागसे शेष ब्रह्मरूप मकरंदमें नूतन इच्छाके साथ ॥ २७ ॥ सह्यपर्वतकी कन्दरामें उसने प्रवेश किया, और इस जगत्जालको देखकर पुनः उनके संग न होनेके अर्थ ॥ २८ ॥

बद्धपद्मासनःस्थित्वातत्रोवाचात्मनात्मनि ॥ रागनीरागतांगच्छद्वेषनिर्द्वेषतांव्रज ॥ २९ ॥ भवद्भ्यांसुचिरंकालमिहप्रक्रीडितंमया ॥ भोगानमोस्तुयुष्मभ्यंजन्मकोटिशतान्यहम् ॥ ३० ॥ भवद्भिर्लालितोलीकेलालकैरिवबालकः ॥ इमामपिपरांपुण्यांनिर्वाणपदवीमहम् ॥ ३१ ॥ येनविस्मारितस्तस्मैसुखायास्तुनमोनमः ॥ त्वद्वृत्तप्तेनहेदुःखमयात्मान्विष्टआदरात् ॥ ३२ ॥

अर्थ—पद्मासनसे बैठकर वहां अपने आत्मासे आत्मामें वह मुनि बोला—कि हे राग ! अब तुम नीरागताको प्राप्त हो, और हे द्वेष तुम निर्द्वेषताको प्राप्त होओ ॥ २९ ॥ तुम दोनों (रागद्वेष) के साथ बहुतकालतक मैंने क्रीडा की. हे भोग ! तुमको नमस्कार है, करोडोंजन्मपर्य्यन्त ॥ ३० ॥ तुमलोगोंसे मैं ऐसे पालित हुआ जैसे प्यार करनेवाले मातापिताआदिसे बालक इस परमपवित्र निर्वाणपदवीकोभी ॥ ३१ ॥ जिसने विस्मृत करादिया उस विषयके सुखको नमस्कारहै. हे दुःख ! तुमसेही सन्तप्त होके मैंने आदरसे आत्माका अन्वेषण किया ॥ ३२ ॥

तस्मात्त्वदुपदिष्टोयंमार्गोममनमोस्तुते ॥ त्वत्प्रसादेनलब्धेयंशीतलापदवीमया ॥ ३३ ॥ दुःखनाम्नेदुःखतत्त्वसुखदात्मन्नमोस्तुते ॥ कल्यामस्तुतेमित्रसंसारासारजीवित ॥ ३४ ॥ देहस्थितिरियंयामोवयमात्मीयमास्पदम् ॥ प्रयोजनानांजंतूनामहोनुविषमागतिः ॥ ३५ ॥ देहेनापिवियुज्येहंभूत्वाजन्मशतान्यपि ॥ मित्रकायमयायस्त्वंत्यज्यसेचिरबांधवः ॥ ३६ ॥

अर्थ—इस आत्माके मार्गका उपदेश तुमनेही मुझे दियाहै इसलिये तुमकोभी नमस्कार है. तुमारीही कृपासे यह शीतल आत्मपदवी मुझे प्राप्त हुई है ॥ ३३ ॥ हे दुःखके तत्व सुखप्रद दुःखनामयुक्त आत्मन् तुमको नमस्कार है. हे मित्र ! हे संसारमें असारजीवनसहित शरीर आत्मज्ञान तुमारी कृपासे लब्ध होताहै इसलिये तुमारा कल्याण हो ॥ ३४ ॥ देह मैं अब अपने ब्रह्मपदको जाताहुं. यह हमारी तुमारी वियोगकी स्थिति अनादिनियतिका स्वभावही है, क्योंकि प्राणियोंके स्वार्थकी विषमगति है ॥ ३५ ॥ क्योंकि सैकडों जन्म साथ रहके अब मैं शरीरसेभी अलग होताहुं. हे मित्र ! देह चिरकालके बंधु तुम जो मुझसे त्यागेजातेहो यह स्वार्थकीही लीला है ॥ ३६ ॥

त्वयैवात्मन्युपानीतासात्मज्ञानवशात्क्षतिः ॥ अधिगम्यात्मविज्ञानमात्मनाशःकृतस्त्वया ॥ ३७॥ देहनान्येनभग्नोसित्वयैवैतदुपासितम् ॥ एकाकिन्यापिशुष्यंत्याप्रशांतेमयिदीनया ॥३८॥ त्वयादुःखंनकर्त्तव्यंमातस्तृष्णेव्रजाम्यहम् ॥ क्षंतव्याःकामभगवन्विपरीतापराधजाः ॥ ३९ ॥ दोषाउपशमैकांतंव्रजाम्यादिशमंगलम् ॥ चिराच्चिरायचेदानीमंबतृष्णेकिलावयोः ॥ ४० ॥

अर्थ—आत्मज्ञानके वशसे तुमनेही अपनी हानि प्राप्तकी. आत्मभाव प्राप्तकरके तुमने अपना नाश किया ॥३७॥ हे देह ! तुम अन्यसे नहीं नष्ट कियेगये यह अपना नाश तुमनेही किया. मेरे शांत होनेसे एकाकिनी सूखती हुई दीन ॥ ३८ ॥ हे मातः तृष्णे ! तुम दुःख न करना अब मैं जाता हुं. हे काम भगवन् ! तुमारी शांतिके अर्थ जो मैंने वैराग्यआदि सेवन किया उन अपराधोंसे दोषोंको क्षमा करना ॥ ३९ ॥ मैं शांतिमय परमधामको जाताहुं मेरेको मंगल आशीर्वाद दो. हे मातः तृष्णे ! इससमय चिरकालसेभी चिरकालके लिये हम दोनोंका ॥ ४० ॥

वियोगेयोगदोषेणप्रणामोयंसपश्चिमः ॥ नमःसुकृतदेवायभवतेस्तुत्वयापुरा ॥ ४१ ॥ नरकेभ्यःसमुत्तार्यस्वर्गेहमभियोजितः ॥ कुकार्यक्षेत्ररूढायनरकस्कंधवाहिने ॥ ४२ ॥ शासनापुष्पभारायनमोदुष्कृतशाखिने ॥ येनसार्द्धंचिरंवह्वयोभुक्ताःप्राकृतयोनयः ॥ ४३ ॥ अद्यप्रभृत्यदृश्यायतस्मैमोहात्मनेनमः॥ प्रध्वनद्वंशमधुरवचसेपत्रवाससे ॥ ४४ ॥

अर्थ—वियोग दोषके कारणसे होताहै, यह तुमको मेरा अंतिम प्रणामहै. हे सुकृत देव ! तुमको नमस्कारहै, तुमने पूर्वकालमें ॥ ४१ ॥ नरकोंसे मुझे निकालके स्वर्गमें नियुक्तकियाथा. दुष्टकार्य्यरूप क्षेत्रमें उत्पन्न नरकरूप महार्ष शाखाओंके वाहक ॥ ४२ ॥ नरककी यातनारूप पुष्पभारसहित पापरूपवृक्षको नमस्कार है, जिसके साथ रहके चिरकालतक अनेक नीचयोनियोंको मैंने भोगाथा उस पापको नमस्कारहै ॥४३॥ और आजसे लेके जो अदृश्य मोह है उसको नमस्कार है. शब्द करतेहुये वांस जिसके मधुर वचन हैं, और गिरेहुये पत्र जिसके वस्त्र हैं ऐसे ॥४४॥

नमोगुहातपस्विन्यैवयस्यायैसमाधिषु ॥ संसाराध्वनिखिन्नस्यत्वंममाश्वासकारणम् ॥ ४५ ॥ आसीर्वयस्यासुस्निग्धासर्वलोभापहारिणी ॥ सर्वसंकटखिन्नेनदोषेभ्योद्रवतामया ॥४६॥ त्वमेकाशोकनाशार्थमाश्रितापरमासखी ॥ संकटावटकुंजेषुहस्तालंबनदायिने ॥४७॥ वार्द्धकैकांतसुहृदेदंडकायायतेनमः॥ अस्थिपंजरमात्मीयंतथारक्तांत्रतंतुकम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—तथा समाधिमें स्त्रीकेसमान गुहारूप तपस्विनीको नमस्कारहै. हे गुहे ! संसाररूप महामार्गमें जो खिन्न मैं हुं उसके तुम विश्रामके कारण हो ॥४५॥ हे गुहे! पूर्णानन्दरूप आत्मामें विश्राम देनेसे सब लोभको हरनेवाली तुम मेरी अत्यंत स्नेह करनेवाली सखीथी, और सब संकटोंसे खिन्न, तथा समाधिके विघ्नोंसे द्रवीभूत मैंने ॥ ४६ ॥ शोकोंके नाशार्थ मुख्य परमसखीरूप तुमारा आश्रय लियाहै. और गढोंमें तथा वनके कुंजोंमें हस्तको आलंब देनेवाले ॥ ४७ ॥ और वृद्ध अवस्थामें परम सुहृद्रूप दंडको मेरा नमस्कारहै. हे देह ! अपने अस्थिपंजरको तथा रक्त और आंतीरूप सूत्र ॥ ४८ ॥

एतावन्मात्रसारैकंगृहीत्वागच्छदेहक ॥ पयःक्षोभप्रकारेभ्यःस्नानेभ्योपिनमोस्तुते ॥ ४९ ॥ नमोस्तुव्यवहारेभ्यःसंस्तिभ्योनमोस्तुते ॥ एतेभवंतःसहजाःप्राक्तनाःसुहृदोमया ॥५०॥ क्रमेणाद्योत्कृताःप्राणाःस्वस्तिवोस्तुव्रजाम्यहम् ॥ भवद्भिःसहचित्रासुमयावह्वीषुयोनिषु ॥ ५१ ॥ विश्रांतंगिरिकुंजेषुभ्रांतलोकांतरेषुच ॥ क्रीडितंपुरपीठांतरुषितंपर्वतेषुच ॥ ५२ ॥

अर्थ—यही मुख्य अपने अपने भागको ग्रहण करके अपनी प्रतिमाओंमें जाओ. तथा हे देह ! तुमारे मलदुर्गंधता और प्रस्वेद आदिसे जलके क्षोभरूप अपराधोंके भेद विशेष तुमको पवित्रकारक जो स्नान है उनकोभी नमस्कारहै ॥ ४९ ॥ और भोजन शयन और अभ्यंजन (तेलादि मर्दन) रूप व्यवहारोंको, तथा उनके अर्थ जो गमनादिरूप हैं उनकोभी नमस्कारहै. हे प्राण ! तुमलोग मेरे स्वाभाविक पूर्वकालके मित्र हो ॥ ५० ॥ इससमय मित्रोंके नमस्कारके क्रमसे तुमको सबसे उत्तम मैंने कियाहै अर्थात् तुमको सविनय नमस्कारहै, तुमारा कल्याणहो मैं जाता हुं, तुमारे साथ मैंने बहुत चित्रविचित्र योनियोंमें ॥ ५१ ॥ विश्राम किया, पर्वतके कुंजोंमें तथा लोकांतरोंमें विश्राम किया, सिद्धोंके क्षेत्रोंमें क्रीडा की, और पर्वतोंमें निवास किया ॥ ५२ ॥

नक्तंस्थितंकार्यविलासेषुप्रस्थितंविविधाध्वसु ॥ नतदस्तिजगत्कोशेभवद्भिःसहयन्मया ॥ ५३ ॥ नहृतंयातंनदत्तंनावलंवितम् ॥ इदानींस्वांदिशंयांतुभवंतोयाम्यहंप्रियाः ॥ ५४ ॥ सर्वेक्षयांतानिचयाःपतनांताःसमुच्छ्रयाः ॥ संयोगाविप्रयोगांताःसर्वेसंसारवर्त्मनि ॥ ५५ ॥ अयंचाक्षुषआलोकोविशत्वादित्यमंडलम् ॥ विशंतुवनपुष्पाणिघ्राणगंध्यानंदसंविदः ॥ ५६ ॥

अर्थ—कार्य्योंके विलासोंमें स्थितरहा, अनेकप्रकारके मार्गोंमें प्रस्थानकिया, कहांतक कहैं इस संसारके कोशमें ऐसा कुछभी नहीं है जिसको तुम लोगोंके साथ मैंने ॥ ५३ ॥ न किया हो, न हरण किया हो, न गया हो, मनसे न ग्रहण किया हो. हे प्रियप्राण ! अब तुमलोग अपनी प्रकृतिको जाओ और मैं ब्रह्ममें जाताहुं ॥ ५४ ॥ हे सब प्राण ! जो इस ब्रह्मांडमें संचय है उसके क्षय अवश्य है, जो ऊंचे हैं वे अवश्य गिरेंगे, और जो संयोग है उसका वियोगभी अवश्य है ॥ ५५ ॥ यह नेत्रका प्रकाश आदित्यमण्डल (तेज) में प्रवेशकरै, घ्राणइन्द्रिय पृथिवीमें प्रवेश करे ॥ ५६ ॥

प्राणानिलस्तथास्पंदंविशत्वद्यप्रभंजनम् ॥ विशंत्वाकाशकुहरंशब्दश्रवणशक्तयः ॥ ५७ ॥ इंदुमंडलमायातुरसनारसशक्तयः ॥ निर्मंदरइवांभोधिर्गतार्कइववासरः ॥ ५८ ॥ शरदीवघनःस्वैरंप्राप्तःकल्पांत

सर्गवत् ॥ ओंकारांतेस्वमननंप्रशाम्याम्यात्मनात्मनि ॥ दग्धेंधनइवार्चिष्मान्निःस्नेहइवदीपकः ॥५९॥व्य पगताखिलकार्यपरंपरःसकलदृश्यदशातिगतस्थितिः ॥ प्रणवशांत्यनुसंस्मृतिशांतधीर्विगतमोहमलोयमहंस्थितः ॥ ६० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे इंद्रियवर्गनिराकरणोपदेशो नाम षडशीतितमः सर्गः ॥ ८६ ॥

अर्थ—प्राणवायु तथा चेष्टा महावायुमें प्रवेश करें, और कर्णइन्द्रिय आकाशविवरमें प्रवेश करें ॥ ५७ ॥ जिव्हाइन्द्रियकी रसकी शक्ति जलमय चन्द्रमण्डलमें प्रवेश करें, अर्थात् पंच ज्ञान और पंच कर्मइन्द्रिय तथा पंच प्राण अपनी २ प्रकृतिमें लीन हों, और मैं (आत्मा) मन्दराचलसे रहित समुद्र तथा सूर्य्यशून्य दिनके समान ॥ ५८ शरत्कालमें अपने उपादान कारणमें लीन मेघके तुल्य और कल्पके अन्तमें सृष्टिके सदृश ओंकारके अर्द्धमात्राके लक्ष्यभूत ब्रह्मरूप आत्मामें ऐसे शान्त होताहुं जैसे इंधनरहित अग्नि वा तेलरहित दीपक ॥ ५९ ॥ और सम्पूर्ण कार्योंकी परम्परासे शून्य तथा सम्पूर्ण दृशसे परे स्थित और उच्चस्वरसे प्रणवसे उच्चारकी ब्रह्मरंध्रमें शांतिके अनुसरणसे ब्रह्माकारताकी प्राप्तिसे शांत तथा मोहशून्य यह मैं पूर्णरीतिसे आत्मामें स्थितहुं ॥ ६० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषानुवादे इन्द्रियवर्गनिराकरणोपदेशो नाम षडशीतितमः सर्गः ॥ ८६ ॥

सप्ताशीतितमः सर्गः ॥ ८७ ॥

प्रणवके अन्तका आलम्बन करके वीतहव्यमुनि जिस क्रमसे विदेहताको प्राप्त हुये वह क्रम इस ८७ के सर्गमें वर्णन कियागया है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एवंकलितवानंतःप्रशांतमननैषणः ॥ शनैरुच्चारयंस्तारंप्रणवंप्राप्तभूमिकः ॥ १ ॥ मात्रादिपादभेदेनप्रणवंसंस्मरन्यतिः ॥ अध्यारोपापवादेनस्वरूपंशुद्धमव्ययम् ॥२॥ सबाह्याभ्यंतरान्भागान्स्थूलान्सूक्ष्मतरानपि ॥ त्रैलोक्यसंभवांस्त्यक्त्वासंकल्पाकल्पकल्पितान् ॥ ३ ॥ तिष्ठन्नक्षुभिताकारोश्चिंतामणिरिवात्मनि ॥ संपूर्णइवशीतांशुर्विश्रांतइवमंदरः ॥ ४ ॥ कुंभकारगृहेचक्रंसंरोधितइवभ्रमात् ॥ अंभोधिरिवसंपूर्णस्तिमितस्फारनिर्मलः ॥ ५ ॥ शांततेजस्तमःपुंजंविगतार्केंदुतारकम् ॥ अधूमाभ्ररजःस्वच्छमनंतंशरदीवखम् ॥ ६ ॥ सहप्रणवपर्यंतदीर्घनिःस्वनतंतुना ॥ जहाविंद्रियतन्मात्रजालंगंधमिवानिलः ॥७॥ ततोजहौतमोमात्रंप्रतिभातमिवांबरे ॥ उत्तिष्ठत्प्रस्फुरद्रूपंप्राज्ञःकोपलवंयथा ॥८॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! इसप्रकार मनन तथा सब एषणासे रहित वह संन्यासी प्रणवके दीर्घस्वरसे धीरे २ उच्चारण करतेहुये षष्ठ वा सप्तमभूमिकामें प्राप्त होकर अपने हृदयमें ब्रह्मको प्राप्त हुआ ॥ १ ॥ और अकार, उकार, मकार तथा अर्द्धमात्रासे कल्पित स्थूल, सूक्ष्म, अव्याकृत और तुरीयरूप पादके भेदसे प्रणव (ओंकार) को स्मरण करताहुआ और विराट् हिरण्यगर्भ तथा अव्याकृत पादोंके तुरीयमें प्रथम जागरितस्थान बहिःप्रज्ञ है इस वेदोक्तरीतिके अध्यारोपसे और न अन्तःप्रज्ञ है न बहिःप्रज्ञ है इत्यादि अपवादसे त्रैलोक्यके उत्पत्तिके स्थान, तथा संकल्पसे कल्पपर्य्यंत कल्पित स्थूल तथा सूक्ष्मकारणका बाह्य और आभ्यन्तरसहित भागोंको त्यागकर, शुद्ध, अव्यय, तेज अन्धकार दोनोंसे रहित, सूर्यचन्द्र तथा तारागणसे वर्जित, और धूम मेघ तथा धूलिसे रहित, स्वच्छ (निर्मल) अनन्त शरत्कालके आकाशके तुल्य अपने आत्माको देखकर, स्वयं वह यति क्षोभरहित, चिंतामणिके समान, पूर्णचन्द्रके समान, विश्रांतमन्दरके तुल्य, ब्रह्माकारके गृहमें भ्रमणसे रोंके हुये चक्रके सदृश और शांत तथा निर्मल पूर्णसमुद्रके तुल्य होकर पूर्वोक्त तुरीय आत्मामें स्थित होताहुआ प्रणवपर्य्यंत दीर्घशब्दरूप सूत्रके साथ इन्द्रिय तन्मात्रजालको ऐसे त्यागा जैसे गन्धको वायु ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ उसके अनन्तर साक्षीसे स्फुरितरूप तमोमात्रको ऐसे त्यागा जैसे आकाशमें प्रकाश वा बुद्धिमान कोपके लेशको ॥ ८ ॥

प्रतिभातंततस्तेजोनिमेषार्धविचार्यसः ॥ जहौबभूवचतदानतमोनप्रकाशकम् ॥ ९ ॥ तामवस्थामथासाद्यमनसातन्मनस्तृणम् ॥ मनागपिप्रस्फुरितंनिमिषार्द्धादशातयत् ॥ १० ॥ ततोंगसंविदंस्वस्थांप्रतिभासमुपागताम् ॥ सद्योजातशिशुज्ञानसमानकलनामलम् ॥११॥ निमेषार्द्धार्द्धभागेनकालेनकलनांमभुः ॥ जहौचित्तश्चेत्यदशांस्पंदशक्तिमिवानिलः ॥ १२ ॥

अर्थ—उसके अनन्तर तेजका प्रकाश हुआ विचारके अर्द्धनिमेषमें उसेभी त्यागा, उससमय न तम न प्रकाशरूप हुआ ॥९॥ उसने तम और प्रकाशसे शून्य अवस्थाको प्राप्तहोके उसके कल्पनाके हेतु किंचित्भी स्फुरित मनरूपदणको आधे निमेषमें काटडाला ॥१०॥ हे प्रिय रामजी! उसके पश्चात् वातशून्य दीपके तुल्य स्फुटप्रकाशरूप प्राप्त संवित्का आलम्बन करके, तत्कालमें उत्पन्न बालकके ज्ञानके समान उस कल्पनाको॥११॥उस वीतहव्य प्रभुने निमेषके चतुर्थभागमेंही ऐसे त्यागदिया जैसे वायु अपनी स्पन्दशक्तिको, यही चित्की चैत्यदशाका त्याग कहाताहै॥१२॥

पश्यंतीपदमासाद्यसत्तामात्रात्मकंततः ॥ प्रसुप्तपदमालंब्यतस्थौगिरिरिवाचलः ॥ १३ ॥ ततःसुषुप्तसंस्थानंस्थित्वास्थित्वाविभुर्मनाक् ॥ सुषुप्तेस्थैर्यमासाद्यतुर्यरूपमुपाययौ ॥ १४ ॥ निरानंदोपिसानंदःसच्चासच्चापितत्रसः ॥ आसीन्नकिंचित्किंचित्तत्प्रकाशस्तिमिरंयथा ॥ १५ ॥ अचिन्मयंचिन्मयंच नेतिनेतियदुच्यते ॥ ततस्तत्संबभूवासौयद्गिरामप्यगोचरः ॥ १६ ॥

अर्थ—इस रीतिसे साक्षीमात्र शेष पश्यंतीपदको प्राप्तहोकर, अनंतर सत्तामात्रपदको प्राप्तहुआ, और अनन्तर सुषुप्तपदका अवलंबनकरके पर्वतके समान अचल स्थितहुआ ॥१३॥ इसके अनंतर वह समर्थ मुनि किंचित् २ काल सुषुप्तमें स्थित रहकर, अनंतर सुषुप्तपदमें स्थिरताको प्राप्त होके तुरीयपदमें प्राप्तहुआ ॥ १४ ॥ इस दशामें वह विषयानंदशून्यभी अपने स्वरूपके आनंदसे सहित, अपने अन्यसत्तासे शून्यभी सत्‌रूप, अन्यसे अकिंचित्रूपभी स्वरूपसे किंचित्रूप, और उसको रात्रिचर जीवोंके समान अंधकारभी आकाशही था ॥ १५ ॥ चैत्य (प्रकाश्यविषय) न होनेसे अचिन्मय, और स्वयं चिन्मय और जिसको नेति नेति कहते हैं, हे रामजी! इसीसे वह उस स्वरूपको प्राप्तहुआ जो वाणीकाभी विषय नहीं है ॥ १६ ॥

तदसौसुसमंस्फारंपदंपरमपावनम् ॥ सर्वभावांतरगतमभूत्सर्वविवर्जितम् ॥ १७ ॥ यच्छून्यवादिनांशून्यंब्रह्मब्रह्मविदांवरम् ॥ विज्ञानमात्रंविज्ञानविदांयदमलंपदम् ॥ १८ ॥ पुरुषःसांख्यदृष्टीनामीश्वरोयोगवादिनाम् ॥ शिवःशशिकलांकानांकालःकालैकवादिनाम् ॥ १९ ॥ आत्मात्मनस्तद्विदुषांनैरात्म्यंतादृशात्मनाम् ॥ मध्यंमाध्यमिकानांचसर्वंसुसमचेतसाम् ॥ २० ॥

अर्थ—सबप्रकारसे सम, विशाल, परमपावन, सब पदार्थोंके अंतर्गत और सबसे वर्जितभी जो पद है वही रूप वीतहव्य होगया ॥१७॥ जो शून्यवादियोंके मतमें शून्य, ब्रह्मवेत्ताओंके मतमें ब्रह्म, विज्ञानवादियोंके मतसे निर्मल विज्ञान ॥ १८ ॥ सांख्यवादियोंके मतसे पुरुष, योगवादियोंके मतसे ईश्वर, शैवोंके मतमें शिव ॥ १९ ॥ आत्मवेत्ताओंके मतसे आत्मा, सौत्रांतिक वैभाषिकके मतमें निरात्मता, माध्यमिकोंके मतमें चिदचिन्मध्यम शून्यमात्र, और जीवन्मुक्तोंके मतमें सर्वरूप ॥ २० ॥

यत्सर्वशास्त्रसिद्धांतोयत्सर्वहृदयानुगम् ॥ यत्सर्वंसर्वगंसार्वंयत्तत्तत्सदसौस्थितः ॥ २१ ॥ यदनुत्तमनिःस्पंदंदीप्यतेतेजसामपि ॥ स्वानुभूत्यैकमात्रंयद्यत्तत्तत्सदसौस्थितः ॥ २२ ॥ यदेकंचाप्यनेकंच सांजनंचनिरंजनम् ॥ यत्सर्वंचाप्यसर्वंचयत्तत्तत्सदसौस्थितः ॥ २३ ॥ अजमजरमनाद्यनेकमेकंपदममलंसकलंचनिष्कलंच ॥ स्थितइतिसतदानभःस्वरूपादपिविमलस्थितिरीश्वरःक्षणेन ॥ २४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे वीतहव्यनिर्वाणोपदेशो नाम सप्ताशीतितमः सर्गः ॥ ८७ ॥

अर्थ—जो छःशास्त्रोंका सिद्धांत, सबके हृदयमें अनुगत, जो सर्वरूप, सर्वगामी, और सबका तत्व सत्‌रूप है वही होके यह वीतहव्य स्थितहै ॥ २१ ॥ जो सर्वथा निष्क्रिय, सूर्य्यआदि तेजस्वीपदार्थोंकाभी प्रकाशक और निज अनुभवरूप जो सत्‌रूप है वही रूप होके वीतहव्य स्थितहै ॥ २२ ॥ जो स्वयं एक, और उपाधिभेदसे अनेक, मायासहित होनेसे सराग, शुद्धरूपसे नीराग, जो सर्वरूप, और सबसे भिन्न जो सत्‌रूप है उसी स्वरूपसे वीतहव्य स्थित है ॥ २३ ॥ वह वीतहव्य पूर्वोक्तरीतिसे मुक्तोंकी दृष्टिमें अजन्मा, अजर, अनादि, एक, अमल तथा निष्कल पद होके स्थितहै और बद्धोंकी दृष्टिसे क्षणमेंही ईश्वर होके कार्य्योंके भेदसे अनेक तथा सकल (कलासहित) होके स्थितहै ॥ २४ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषानुवादे वीतहव्यनिर्वाणोपदेशो नाम सप्ताशीतितमः सर्गः ॥ ८७ ॥

अष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥

वीतहव्यके मुक्त होनेपर उसके प्राणोंका हृदयमें लय, देहका सूखना, तथा कलाओंका कारणमें यह विषय इस ८८ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ प्राप्यसंसृतिसीमांतंदुःखाब्धेःपारमागतः ॥ वीतहव्यःशशामैवमपुनर्मननेमुनिः ॥ १ ॥ तस्मिंस्तथोपशांतेहिपरांनिर्वृतिमागते ॥ पयःकणइवांभोधौस्वेपदेपरिणामिनि ॥ २ ॥ तथैव तिष्ठन्निःस्पंदस्सकायोम्लानिमाययौ ॥ अंतर्विरसतांप्राप्यमार्गशीर्षांतपद्मवत् ॥ ३ ॥ तस्यदेहद्रुमांतःस्थंत्यक्त्याहृन्नीडमाययुः ॥ प्रोड्डीयविहगायंतोयंत्रान्मुक्ताइवासवः ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! पूर्वोक्तरीतिसे संसारकी सीमाके अन्तको प्राप्त होकर और दुःखरूप समुद्रके पारंगत वीतहव्यमुनि सर्वथा मनका नाश होनेपर ब्रह्ममें लीन होगया ॥ १ ॥ उसप्रकार उस मुनिके शांत होनेपर तथा परमवृत्तिके प्राप्त होनेपर समुद्रमें जलकणके समान अपरिणामी अपने आत्मपदमें ॥ २ ॥ उसीप्रकार स्थित होताहुआ हेमन्तमें कमलके तुल्य भीतरसे नीरसताको प्राप्त होकर चेष्टारहित वह शरीर म्लानिको प्राप्त हुआ ॥ ३ ॥ उस मुनिके प्राण देहरूपवृक्षके अन्तर्गत जो नाडीस्थान है उसको त्यागकर पक्षीके सदृश आचरण करतेहुये (प्राण वायु) हृदयरूप नीडसें उडके ऐसे आगये जैसे यन्त्रसे विनिर्मुक्त शिला ॥ ४ ॥

भूतेष्वेवप्रतिष्ठानिभूतानिसकलान्यलम् ॥ मांसास्थियंत्रदेहस्तुवनावनितलेवसत् ॥ ५ ॥ चिदर्णवप्रतिष्ठाचिद्धातवोधातुषुस्थिताः ॥ स्वेस्वरूपेस्थितंसर्वंमुनावुपशमंगते ॥ ६ ॥ एषातेकथितारामविचारशतशालिनी ॥ विश्रांतिर्वीतहव्यस्यप्रज्ञयैनांविवेचय ॥ ७ ॥ एवंप्रकारयाचार्व्यास्वविचारणयेद्धया ॥ तत्त्वमालोक्यतत्सारमातिष्ठोत्तिष्ठराघव ॥ ८ ॥

अर्थ—सब पंचभूत पंचभूतोंमें पूर्णरीतिसे जाके लीन होगये और मांसअस्थिमय यन्त्ररूप देहने तो वन तथा पृथिवीतलमें जाके निवास किया ॥ ५ ॥ और चेतन महाचेतनरूप समुद्रमें प्रतिष्ठित हुआ, त्वचा, रुधिर, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा, और शुक्र ये सप्तधातु सप्तधातुओंमें मिलगये, मुनिके शांत होनेपर अपने २ कारणमें सब स्थित हुआ ॥ ६ ॥ हे रामजी ! यह सैकडों विचारोंसे शोभायमान वीतहव्यकी विश्रांति तुमसे मैंने कहदी, अब तुम अपनी बुद्धिसे इसका विवेक करो ॥ ७ ॥ हे रामजी ! तुमभी उठो और अपने मनसे प्रदीप्त और रमणीय पूर्वोक्तरीतिसे आत्मतत्वको देखकर उसी सारवस्तुपर आरूढ रहो ॥ ८ ॥

यदेतदखिलंरामभवतेवर्णितंमया ॥ यदिदंवर्णयाम्यद्यवर्णयिष्यामियच्चवा ॥ ९ ॥ त्रिकालदर्शिनानित्यं चिरंचकिलजीवता ॥ विचारितंचदृष्टंचमयातदखिलंस्वयम् ॥ १० ॥ तदेताममलांदृष्टिमवलंब्यमहामते ॥ ज्ञानमासादयपरंज्ञानान्मुक्तिर्हिलभ्यते ॥ ११ ॥ ज्ञानान्निर्दुःखतामेतिज्ञानादज्ञानसंक्षयः ॥ ज्ञानादेवपरासिद्धिर्नान्यस्माद्रामवस्तुतः ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी ! यह जो मैंने वर्णन किया, करताहुं और आगे जो कुछ वर्णन करूंगा ॥ ९ ॥ उस सबको त्रिकालदर्शी तथा चिरजीवी मैंने स्वयं नित्य विचारा और नित्य देखाहै ॥ १० ॥ इसलिये हे महामते रामजी ! इस निर्मलदृष्टिका अवलम्बन करके तुम ज्ञान प्राप्त करो क्योंकि ज्ञानसेही मुक्ति मिलती है ॥ ११ ॥ हे रामजी ! यह जीव ज्ञानसेही दुःखके अभावको प्राप्त होताहै, ज्ञानसेही अज्ञानका नाश होताहै और ज्ञानसेही परमसिद्धि मिलती है, यथार्थमें इस ज्ञानसे उत्तम अन्य कुछ नहीं है ॥ १२ ॥

ज्ञानेनसकलामाशांविनिकृत्यसमंततः ॥ शातिताशेषचित्ताद्रिर्वीतहव्योमुनीश्वरः ॥ १३ ॥ वीतहव्यात्मिकासंवित्संकल्पजगतीतिसा ॥ अनुभूतवतीदृश्यमिदमेवचतज्जगत् ॥ १४ ॥ वीतहव्योमनोमात्रंमनोहंत्वमिवेंद्रियः ॥ मनोजगदिदंकृत्स्नमन्यतानन्यतेतुके ॥ १५ ॥ अधिगतपरमार्थःक्षीणरागादिदोषःसकलमलविकारोपाधिसंगाद्यपेतः ॥ चिरमनुसृतमंतःस्वंस्वभावंविवेकीपदममलमनंतंप्राप्तवान् शांतशोकः ॥ १६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे वीतहव्यविश्रांतिर्नामाष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥

अर्थ—देखो वीतहव्य मुनीश्वरने संपूर्ण आशाओंको ज्ञानसेही छेदन करके संपूर्ण चित्तरूप पर्वतको काटडाला ॥ १३ ॥ हे रामजी ! वह वीतहव्यकी संवित (ज्ञान) अपने हृदयमें स्थितब्रह्ममें यह जो हमलोगोंका जगत् है

इसीको अपना संकल्प तथा जगत्‌रूपसे अनुभव किया, इससे यह शंका परास्त हुई कि वीतहव्यने हृदयमें संकल्प रचित जगत्‌में इन्द्रत्व तथा गणपदवी आदिका अनुभव किया और उसी संकल्पके द्वारा जगत्‌के सूर्यके शरीरमें प्रवेशकरके पिंगलके द्वारा इस जगत्‌के अन्तर्गत पृथिवीके भीतरसे शरीरका उद्धार कैसे किया क्योंकि स्वप्नकी लाठीसे जाग्रत्‌का सांप नहीं मरता ॥ १४ ॥ हे रामजी! हमलोगोंका नेत्रआदि इन्द्रियोंका दृश्य तथा वीतहव्य यह सब हमलोगोंका मनोमात्र है, तुम तथा हम जो भासतेहैं हमारे मनसे भिन्न नहीं है, और यह सब जगत् मनोमात्रही है उसमें अन्य तथा अपना क्या ॥ १५ ॥ हे रामजी! परमअर्थको प्राप्त, रागादि दोषोंसे रहित, तथा समस्त अविद्या काम और कर्म आदि मलोंसे, उनके द्वारा इंद्रियोंके विकारोंसे, स्थूल सूक्ष्म तथा कारणशरीरोंसे और उनसे जनित प्रिय, स्त्रीपुत्रादिसंगोंसे शून्य, शांतशोक और विवेकी वीतहव्य मुनिने चिरकालतक श्रवण मनन आदिसे अपने हृदयमें साक्षात्कृत अपने स्वभावरूप निर्मल आत्मतत्वको प्राप्त किया ॥ १६ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे उपशमप्रकरणे वीतहव्यविश्रांतिर्नामाष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥

एकोननवतितमः सर्गः ॥ ८९ ॥

जिनके मोह शांत होगयेहैं उनको आकाशगमनआदि सिद्धियोंमें इच्छा नहीं होती और उनके शरीरको हिंसक जीव कुछ नहीं करसकते यह विषय इस ८९ के सर्गमें वर्णन किया गयाहै ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ वीतहव्यवदात्मानंनीत्वाविदितवेद्यताम् ॥ वीतरागभयोद्वेगस्तिष्ठराघवसर्वदा ॥१॥ त्रिंशद्वर्षसहस्राणिविजहारयथासुखम् ॥ वीतहव्योवीतशोकस्तथाविहरराघव ॥ २ ॥ अन्येचराजन्मुनयोज्ञातज्ञेयामहाधियः ॥ यथावसन्स्वराष्ट्रेत्वंतथैवास्वमहामते ॥ ३ ॥ सुखदुःखक्रमैरात्मानकदाचनगृह्यते ॥ सर्वगोपिमहाबाहोकिंमुधापरिशोचसि ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी! वीतहव्यके तुल्य अपने आत्माको विदितवेद्य (आत्मज्ञानी) संपादन करके, तथा राग द्वेष और भय क्रोधादिसे वर्जित होके इस संसारमें सदा स्थित रहो ॥ १ ॥ हे राघव! शोक रहित वीतहव्यने इस संसारमें सुख पूर्वक तीससहस्र (तीस हजार) वर्षतक जैसे विहार किया ऐसेही तुमभी करो॥२॥ हे महामते राजन्! अन्य महाबुद्धिमान् आत्मज्ञानी मुनिलोग जैसे अपने २ राज्यकार्यमें स्थित रहे हैं ऐसेही तुमभी रहो ॥ ३ ॥ हे महाबाहो! सुखदुःखोंके क्रमोंसे आत्मा कदापि वशीभूत नहीं होता, वह सर्वगामी आप होकेभी तुम व्यर्थ शोक क्यों करतेहो ॥ ४ ॥

बहवोविदितात्मानोविहरंतीहभूतले ॥ नकेचनवशंयांतिदुःखस्यांगभवानिव ॥ ५ ॥ स्वस्थोभवभवोदारःसमोभवसुखीभव ॥ सर्वगस्त्वंत्वमात्मैवतवनास्तिपुनर्भवः ॥ ६ ॥ हर्षामर्षविकाराणांजीवन्मुक्ताभवादृशाः ॥ नकेचनवशंयांतिमृगेंद्राःशिखिनामिव ॥ ७ ॥ श्रीरामउवाच ॥ ॥ अनेनैवप्रसंगेनसंशयोयंममोदितः ॥ शरत्कालइवांभोदंतमेत्वंतनुतांनय ॥ ८ ॥

अर्थ—हे प्रिय रामजी! अनेक आत्मज्ञानी पुरुष इस संसारमें विहरते हैं परंतु वे आपके समान कोईभी दुःखके वशीभूत नहीं होते ॥ १५ ॥ हे रामजी! स्वस्थ होओ, अंतःकरणसे सब त्यागी बनो, और सम तथा सुखी हो, क्योंकि तुम सर्वव्यापी आत्मा हो तुमारा पुनर्जन्म नहीं है ॥ ६ ॥ आपके समान जीवन्मुक्त कोईभी महात्मा लोग हर्ष क्रोधआदि विकारोंके वशमें ऐसे नहीं आते जैसे सिंह मोरोंके ॥ ७ ॥ श्रीरामजी बोले—हे भगवन्! इसी प्रसंगमें मुझे एक संशय उत्पन्न होगयाहै उसको आप ऐसे सूक्ष्म करो जैसे शरत्काल मेघको ॥ ८ ॥

जीवन्मुक्तशरीराणांकथमात्मविदांवर ॥ शक्तयोनेहदृश्यंतेआकाशगमनादिकाः ॥ ९ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ आकाशगमनादीनियान्येतानिरघूद्वह ॥ प्रमाणिताःपदार्थानांसहजाःखलुशक्तयः ॥ १० ॥ अनात्मविद्विचित्रंक्रियाजालंदृश्यतेगम्यतेपुनः ॥ रामवस्तुस्वभावोसौनतदात्मविदांमतम् ॥ ११ ॥ अनात्मविदमुक्तोपिनभोविहरणादिकम् ॥ द्रव्यकर्मक्रियाकालशक्त्याप्राप्नोतिराघव ॥ १२ ॥

अर्थ—हे आत्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! जीवन्मुक्तोंके शरीरोंकी आकाशमें गमनआदि शक्ति क्यों नहीं देखपडती, जैसे वीतहव्यके मानसी इन्द्रआदिके भोग ॥ ९ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रघुकुलदीपक रामजी! आकाशगमन आदि जो सिद्धि हैं वे अग्निके ऊर्ध्वज्वलनके समान पदार्थोंकी स्वाभाविक शक्ति हैं ॥ १० ॥ हे रामजी! यह जो

आकाशगमनआदि विचित्र क्रियाजाल दृष्ट और अनुभूत होताहै वह उन २ योनियोंके देहके स्वभाव हैं (जैसे मच्छर, पक्षीआदिका उडना) यह आत्मज्ञानियोंको इष्ट नहीं है ॥ ११ ॥ आत्मज्ञानसे शून्य और मुक्तिसे रहितभी जीव मणि औषधादि द्रव्यकी शक्ति, मंत्रशक्ति, योगाभ्यासआदि क्रियाशक्ति उनके परिपाकादि कालकी शक्तिसे आकाशगमनआदि सिद्धिको प्राप्त करताहै ॥ १२ ॥

नात्मज्ञस्यैषविषयआत्मज्ञोह्यात्मवान्स्वयम् ॥ आत्मनात्मनिसंतृप्तोनाविद्यामनुधावति ॥ १३ ॥ येकेचनजगद्भावास्तानविद्यामयान्विदुः ॥ कथंतेषुकिलात्मज्ञस्त्यक्ताविद्योनिमज्जति ॥१४॥ अविद्यामपिये युक्त्यासाधयंतिसुखात्मिकाम् ॥ तेह्यविद्यामयाएवनत्वात्मज्ञास्तथाक्रमाः ॥ १५ ॥ तत्त्वज्ञोवाप्यतत्त्वज्ञोयःकालद्रव्यकर्मभिः ॥ यथाक्रमंप्रयततेतस्योर्ध्वत्वादिसिद्ध्यति ॥ १६ ॥

अर्थ—आकाशगमनादि सिद्धि आत्मज्ञानीके अभिलाषा योग्य नहीं है क्योंकि आत्माका ज्ञाता तो स्वयं अपने आत्मामें तृप्त रहताहै वह अविद्याकी ओर नहीं दौडता ॥ १३ ॥ संसारके जितने पदार्थ हैं वे सब अविद्यामय हैं, अविद्याको त्यागेहुये आत्मज्ञ भला उनमें कैसे डूबसकताहै ॥१४॥ जो योगाभ्यासादिके परिश्रमसे विषयसुखके कारण आकाशगमनआदि अविद्याहीको सिद्ध करते हैं ॥ १५ ॥ आत्मज्ञ हो वा अज्ञानी हो परंतु द्रव्यकाल क्रियादिसे शास्त्रोक्त क्रमसे प्रयत्न करताहै उसको आकाशगमनादि सिद्धि होती हैं ॥ १६ ॥

आत्मवानिहसर्वस्मादतीतोविगतैषणः ॥ आत्मन्येवहिसंतुष्टोनकरोतिनचेहते ॥ १७ ॥ नतस्यार्थोनभोगत्यानसिद्ध्यानचभोगकैः ॥ नप्रभावेणनोमानैर्नाशामरणजीवितैः ॥ १८ ॥ नित्यतृप्तःप्रशांतात्मा वीतरागोविवासनः ॥ आकाशसदृशाकारस्तज्ज्ञआत्मनितिष्ठति ॥ १९ ॥ अशंकितोपयातेनदुःखेनच सुखेनच ॥ तृप्यत्यपगतासंगोजीवेनमरणेनच ॥ २० ॥

अर्थ—आत्मज्ञानी सबसे परे तथा धनादिइच्छासेरहित अपने आत्माहीमें नित्य संतुष्ट रहता है वह न कुछ चाहताहै न करताहै ॥ १७ ॥ उसको न आकाशगमनसे कुछ प्रयोजन है, न सिद्धिसे, न तुच्छभोगोंसे, न प्रभावसे, न मानसे, न आशासे, न जीवनसे और मरणसे कुछ प्रयोजन है ॥ १८ ॥ आत्मज्ञजीव तो नित्य तृप्त शांतचित्त, रागरहित, वासनाशून्य और आकाशके सदृश महान् आकारयुक्त आत्मामेंही स्थित रहताहै ॥ १९ ॥ अपने जीवनमरणसेभी आसक्तिरहित आत्मज्ञानी अकस्मात् प्राप्तदुःख वा सुखसे अपनी स्वाभाविक तृप्तिको नहीं त्यागता॥२०

समुद्रःसरितेवांतःक्रमसंप्राप्तवस्तुना ॥ समेनविषमेणापितिष्ठत्यात्मानमर्चयन् ॥ २१ ॥ नैवतस्यकृतेनार्थोनाकृतेनेहकश्चन ॥ नचास्यसर्वभूतेषुकश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥ २२ ॥ यस्त्ववाभावितात्मापिसिद्धिजालानिवांछति ॥ ससिद्धिसाधकैर्द्रव्यैस्तानिसाधयतिक्रमात् ॥ २३ ॥ सिद्ध्यतीत्थमिदंयुक्त्यैवेत्ययं नियतेःक्रमः ॥ त्र्यक्षादिभिःसुरवरैरन्यथाकर्तुंनशक्यते ॥ २४ ॥

अर्थ—आत्मज्ञ प्रतिकूल वा अनुकूल प्रारब्धसे प्राप्त भोग्यवस्तुसे ज्योंका त्यों अखंडाकार वृत्तिरूप पुष्पोंसे आत्माकी पूजा करताहुआ अपने आत्मामें ऐसे स्थित रहताहै जैसे नदियोंसे समुद्र ॥ २१ ॥ करने वा न करनेसे उसे कुछभी अर्थ नहीं है, और सबभूतोंमें किसी प्रयोजनसे उसका जीवन नहीं है ॥ २२ ॥ और जो आत्माके ज्ञानसे सदा शून्यभी है परंतु साधक द्रव्यादिसे सिद्धिसमूहको चाहताहै वह उसे अवश्य क्रमसे सिद्ध करलेताहै ॥ २३ ॥ मणि मंत्र आदि युक्तियोंसेही आकाशगमनआदि सिद्धि होती हैं, उन २ शास्त्रोंमें प्रसिद्ध नियतिका क्रम है इस नियतिको श्रेष्ठदेव महादेवआदिभी अन्यथा नहीं करसकते ॥ २४ ॥

स्वभावएषवस्तूनांस्वतःसिद्धिर्हिनान्यतः ॥ नियतिंनजहात्येवशशांकइवशीतताम् ॥ २५ ॥ सर्वज्ञोपि बहुज्ञोपिमाधवोपिहरोपिच ॥ अन्यथानियतिंकर्तुंनशक्तःकश्चिदेवहि ॥ २६ ॥ द्रव्यकालक्रियामंत्रप्रयोगाणांस्वभावजाः ॥ एतास्ताःशक्तयोरामयद्व्योमगमनादिकम् ॥ २७ ॥ यथाविषाणिनिघ्नंतिमदयंतिमधूनिच ॥ वमयंतिचशुक्तानिमदनानिफलानिच ॥ २८ ॥

अर्थ—और जो देव तथा पक्षीआदिको स्वयं आकाशगमनादि सिद्ध है वह तो वस्तुका स्वभाव है, वह अपनी नियतिको ऐसे नहीं त्यागता जैसे चन्द्रमा शीतलताको ॥ २५ ॥ सर्वज्ञ हो वा बहुज्ञ हो, विष्णु हो वा महादेवजी हो परंतु कोईभी नियतिको अन्यथा नहीं करसकता ॥ २६ ॥ हे रामजी ! यह जो आकाशगमन आदि है वह सब द्रव्य, काल, क्रिया, तथा मन्त्रके प्रयोगकी स्वाभाविक बहुतसी शक्ति है ॥ २७ ॥ जैसे विष प्राणियोंको मारते हैं, मधु (मद्य) मत्त करती है शहत और मदनके फल वमन कराते हैं ॥ २८ ॥

तथास्वभाववशतोद्रव्यकालक्रियाक्रमाः ॥ नियतंसाधयंत्याशुप्रयोगंयुक्तियोजिताः ॥ २९ ॥ एतस्मात्समतीतस्यत्यक्ताविद्यस्यराघव ॥ आत्मज्ञानस्यनास्त्यत्रकर्तृताकर्तृतानघ ॥ ३० ॥ द्रव्यदेशक्रियाकालयुक्तयःसाधुसंविदः ॥ परमात्मपदप्राप्तौनोपकुर्वंतिकाश्चन ॥ ३१ ॥ यस्येच्छाविद्यतेकाचित्ससिद्धिंसाधयत्यलम् ॥ आत्मज्ञस्यतुपूर्णस्यनेच्छासंभवतिक्वचित् ॥ ३२ ॥

अर्थ—वैसेही वस्तुके स्वभावसे द्रव्य, काल और क्रियाके क्रम योग आदिमें कुशलपुरुषोंसे नियत कियेहुये सिद्धियोंके समूहको सिद्ध करते हैं ॥२९ ॥ हे राघव ! द्रव्य, काल और क्रियाके क्रमरूप अविद्यासे परे और अविद्याको त्यागनेवाले आत्मज्ञानीको इस विषयमें न कर्तृता है न अकर्तृता है॥३०॥द्रव्य, देश काल तथा क्रियाआदिकी तत्वज्ञानसे परमात्मपदकी प्राप्तिमें कुछभी उपकार नहीं करते ॥ ३१ ॥ जिसको इच्छा है वह पूर्णरीतिसे सिद्धिको सम्पादन करताहै और सर्वथा पूर्ण आत्मज्ञानीको तो किसी बातकी इच्छाही नहीं है ॥ ३२ ॥

सर्वेच्छाजालसंशांतावात्मलाभोदयोहियः ॥ तद्विरुद्धाकथंकस्मादिच्छासंजायतेनघ ॥ ३३ ॥ यथोदेतिचयस्येच्छासतयायततेतथा ॥ यथाकालंतदाप्नोतिज्ञोवाप्यज्ञतरोपिवा ॥ ३४ ॥ वीतहव्येनयतितंनोज्ञानेच्छेनकिंचन ॥ ज्ञानेच्छेनाशुयतितंप्रोत्थितोसौयथावने ॥ ३५ ॥ एवंकालक्रियाकर्मद्रव्ययुक्तिस्वभावजाः ॥ यथेच्छमेवसिद्ध्यंतिसिद्धयःस्वाःक्रमार्जिताः ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे पापरहित रामजी ! सब इच्छा जालके समाप्त होनेसे जो आत्मलाभ होताहै उसके विरुद्ध भला इच्छा कैसे होसकती है ॥ ३३ ॥ चाहे ज्ञानी हो वा अज्ञानी हो जिसको जैसी इच्छा होती है वह वैसाही उद्योग करताहै और काल पाके उसको पाताहै ॥ ३४ ॥ ज्ञानके अभिलाषी वीतहव्यने अन्य किसीके अर्थ यत्न नहीं किया और ज्ञानकी इच्छासे तो यत्न किया इसीलिये योगाभ्यासार्थं वनमें प्रस्थान किया॥३५॥इसप्रकार देश, काल क्रिया, द्रव्य तथा कर्मादिकी युक्तियोंसें उत्पन्न, क्रमसे उपार्जित सिद्धि अपनी इच्छाके अनुसार सिद्ध होती हैं ॥ ३६ ॥

याःफलावलयोयेनसंप्राप्ताःसिद्धिनामिकाः ॥ तास्तेनाधिगतारामनिजात्प्रयतनद्रुमात् ॥ ३७ ॥ महतांनित्यतृप्तानांतज्ज्ञानांभावितात्मनाम् ॥ ईहितंसंप्रयातानांनोपकुर्वंतिसिद्धयः ॥ ३८ ॥ श्रीरामउवाच ॥ अयंमेसंशयोब्रह्मन्वीतहव्यस्यसातनुः ॥ क्रव्यादैर्नकथंभुक्ताकथंक्लिन्नानभूतले ॥ ३९ ॥ तदैवीतहव्योसौकथंवनगतःप्रभो ॥ विदेहमुक्ततांशीघ्रंयथावदितिमेवद ॥ ४० ॥

अर्थ—हे रामजी ! जो सिद्धिके नामसे प्रसिद्ध फलोंकी प्राप्ति हुई है वे अपने प्रयत्नरूप वृक्षके फलके रूपही देखपडती हैं ॥ ३७ ॥ और नित्यतृप्त आत्मज्ञानी परिनिष्ठितचित्तवाले तथा अपने अभिलषित आत्मसुखको प्राप्त जो महात्मा हैं उनकी सिद्धि कुछभी उपकार नहीं करती ॥ ३८ ॥ श्रीरामजी बोले—हे ब्रह्मन् ! वीतहव्यके उस शरीरको हिंसकजीवोंने क्यों नहीं खाया और वह पंक (कीचड) आदिसे क्यों नहीं सडगया ? ॥ ३९ ॥ और हे प्रभो ! जब यह वीतहव्य वनमें गया और जब शरीर पृथिवी पंकआदिसे ढकगया तभी वह विदेहमुक्तताको क्यों न प्राप्त हुआ यह मुझे कहिये ॥ ४० ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यासंविद्दलितासाधोवासनामलतंतुना ॥ सुखदुःखदशादाहभागिनीभवतीहसा ॥ ४१ ॥ निर्मुक्तवासनाशुद्धसंविन्मात्रमयीतुसा ॥ तनुस्तिष्ठतितच्छेदेशक्तानेहहिकेचन ॥ ४२ ॥ शृणुयुक्त्याकयायोगीतनुच्छेदादिविभ्रमः ॥ नाक्रम्यतेमहाबाहोबहुवर्षशतैरपि ॥ ४३ ॥ चेतःपदार्थेपततियस्मिन्यस्मिन्यदायदा ॥ तन्मयंतद्भवत्याशुतस्मिंस्तस्मिंस्तदातदा ॥ ४४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे साधो रामजी ! जो अज्ञानीकी संवित् (इच्छारूप वृत्ति) वासनारूप रागद्वेषरूप मलसे दूषित सूत्रसे दृढतासे वेष्टित रहती है वही सुखदुःखआदि दशा तथा दाहआदि क्रियाकी भागिनी होती है ॥ ४१ ॥ और ज्ञानसे अविद्या अंश बाधित होनेसे वासनारहित शुद्ध संवित्मात्रमय जो जीवन्मुक्तका वह शरीर था उसके छेदन करनेमें कोईभी समर्थ न थे ॥ ४२ ॥ हे रामजी ! महाबाहो ! सुनो जिस युक्तिसे योगी शरीरच्छेदनआदि विभ्रमोंसे बहुतवर्षतक आकुलित नहीं होता ॥ ४३ ॥ यह चित्त जब २ जिन २ पदार्थोंमें गिरताहै तब २ उस २ पदार्थमें शीघ्र उसीका रूप होजाताहै ॥ ४४ ॥

तथादृष्टेरिहिमनोविकारमुपगच्छति ॥ दृष्टमित्रंसुहृत्वंस्वयमित्यनुभूयते ॥ ४५ ॥ रागद्वेषविहीनेतुपथिकेपादपेगिरौ ॥ भवत्यरागद्वेषंचस्वयमित्यनुभूयते ॥ ४६ ॥ मृष्टेलौल्यमुपादत्तेदुर्भोज्येयातिनिस्पृहम् ॥ वैरस्यंयातिकटुनिस्वयमित्यनुभूयते ॥ ४७ ॥ समसंविद्विलासाढ्येयद्यदायातिदेहके ॥ हिंस्रचेतःपतत्याशुससतामेतितत्तदा ॥ ४८ ॥

अर्थ—जैसे यह मन जब अपने शत्रुको देखताहै तब विकारी होजाताहै और मित्रके देखनेसे आनन्दित होता है यह प्रतिदिन सब कोई प्रत्यक्ष अनुभव करताहै ॥ ४५ ॥ और रागद्वेषसें शून्य वटोही, वृक्ष वा पर्वतके देखनेसे रागद्वेषरहित रहताहै यहभी सब अनुभव करते हैं ॥ ४६ ॥ स्वादिष्टपदार्थमें यह मन चंचलताको धारण करताहै, नीरसमें इच्छारहित और कटुमें बेरस होजाताहै यहभी स्वयं अनुभूत है ॥ ४७ ॥ रागद्वेषकी विषमतासे शून्य संविद्के विलाससे पूर्ण योगीके शरीरपर जब हिंसक जीवका चित्त गिरताहै तब वह चित्त योगीकी समसंविद्के प्रतिबिंबसे समताको प्राप्त होजाताहै इसलिये उसकी कीहुई हिंसा नहीं होती ॥ ४८ ॥

समसंगविमुक्तत्वाच्छेदादौनप्रवर्त्तते ॥ पांथोव्यर्थपथिग्रामेयथाग्रामीणकर्मणि ॥ ४९ ॥ योगिदेहसमीपात्तुगत्वाप्राप्नोहिंस्रताम् ॥ यद्यद्भवतितत्राशुतथारूपंनसंशयः ॥ ५० ॥ इतिहिंस्रैर्मृगव्याघ्रसिंहकीटसरीसृपैः ॥ नच्छिन्नावीतहव्यस्यतनुर्भूतलशालिनी ॥ ५१ ॥ सर्वत्रविद्यतेसंवित्काष्ठलोष्ठोपलादिके ॥ सत्तासामान्यरूपेणसंस्थितामूकबालवत् ॥ ५२ ॥

अर्थ—वह सिंसक जीव समदर्शी योगीके संगसे राग द्वेषआदिसे विनिर्मुक्त होनेसे छेदादिमें नहीं प्रवृत्त होता जैसे यात्री मार्गके ग्राममें समीपके वृक्षके छेदनआदि कर्म्मोंमे नहीं प्रवृत्त होता ॥ ४९ ॥ और योगीके देहके समीपसे चले जाताहै तब हिंसकताको प्राप्त यह चित्त जहां २ जैसी भावना करताहै वहां २ वैसाही रूप शीघ्र होजाताहै ॥ ५० ॥ हे रामजी ! इन पूर्वोक्त दोनों कारणोंसे पृथिवीके भीतर शोभायमान उस वीतहव्यके शरीरको सिंह, व्याघ्र तथा सर्प वृश्चिक आदिने नहीं काटा ॥ ५१ ॥ और सामान्यसत्तासे मूक बालकके तुल्य काष्ठ मट्टी और पाषाणआदि सबमें संवित् चिद्शक्ति विद्यमानहै ॥ ५२ ॥

प्रोप्लूयमानातरलाकेवलंपरिदृश्यते ॥ तन्वीपुर्यष्टकेष्वेवमतिर्बिंबजलेष्विव ॥ ५३ ॥ तेनभूजलवाय्वग्निसंवित्यासमरूपया ॥ निर्विकारंतनुर्नीतावीतहव्यस्यराघव ॥ ५४ ॥ अन्यच्चशृणुमेरामस्पंदोनाशस्यकारणम् ॥ विकारःसचचित्तोत्थोवातजोवाजगत्स्थितौ ॥ ५५ ॥ प्राणानांप्राणनंस्पंदस्तच्छांतौते दृषत्समाः ॥ यतःस्थिताधारणयातेनानष्टास्यसातनुः ॥ ५६ ॥

अर्थ—परंतु चलतीहुई चंचल केवल प्राण, पंच ज्ञान और पंच कर्म इन्द्रिय और मनबुद्धियुक्त सूक्ष्म शरीरोंमेंही देखपडती है ॥ ५३ ॥ इसी हेतुसे समानरूपसे विद्यमान पृथिवी, जल, वायु और अग्निकी संवित्से निर्विकारदशामें प्राप्त (ब्रह्मभावको प्राप्त) वह शरीर विकारताको नहीं प्राप्त हुआ ॥५४॥ हे रामजी ! औरभी मुझसे सुनो, नाशका कारण स्पंद (शरीर वा अंतःकरणकी चेष्टा) ही है और वह स्पंदरूप विकार चित्त वा वायुसे उत्पन्न जगत्के व्यवहारमें प्रसिद्ध है ॥ ५५ ॥ प्राणोंकी गतिही स्पंद है उस गतिके शांत होनेसे वे प्राण पाषाणके तुल्य दृढ योगको धारण किये स्थित रहते हैं इसीसे वीतहव्यका वह शरीर नहीं नष्ट हुआ ॥ ५६ ॥

सबाह्याभ्यंतरंस्पंदश्चित्तजोवात्तजोथवा ॥ नयस्यविद्यतेतस्यदूरस्थौप्रकृतिक्षयौ ॥५७॥ सबाह्याभ्यंतरे शांतेस्पंदेतत्त्वविदांवर ॥ धातवःसंस्थितिंदेहेनत्यजंतिकदाचन ॥ ५८ ॥ संशांतेदेहप्रस्पंदेचित्तवातमयेतथा ॥ धातवोमेरवत्स्थैर्यंयांतिसंस्तंभितात्मकाः ॥ ५९ ॥ तथाचदृश्यतेलोकेस्पंदशांतौदृढास्थितिः ॥ दारूणामिवधीराणांशवांगानामचोपता ॥ ६० ॥

अर्थ—आभ्यन्तर प्राणोंका और बाह्य हस्त पाद आदिका चित्त वा पवनसे उत्पन्न स्पंद जिसके नहीं है उसके वृद्धि तथा क्षयआदि दूरहैं ॥ ५७ ॥ हे तत्ववेत्ताओंमें श्रेष्ठ रामजी ! बाह्य तथा आभ्यन्तर स्पंदके शांत होनेपर इस शरीरमें अपनी स्थितिको शुक्रआदि धातु कदापि नहीं छोडते ॥ ५८ ॥ चित्त वा वातमय स्पंदके शांत होनेपर योगसे स्तंभित धातु मेरुके तुल्य स्थिरताको प्राप्त होतेहैं ॥ ५९ ॥ जैसे कि स्पंदके शांत होनेपर काष्ठोंके तुल्य धीर योगियोंकी दृढ स्थिति तथा मृतकों अंगोंकी अकंपता लोकमें देख पडती है ॥ ६० ॥

इतिवर्षसहस्राणिदेहाजगतियोगिनाम् ॥ नक्लिद्यंतेनभिद्यंतेमग्नवज्जलदाइव ॥ ६१ ॥ तदैववीतहव्योसौशृणुकिंनोपशांतवान् ॥ देहमुल्लंघ्यतत्त्वज्ञोज्ञातज्ञेयवतांवरः ॥ ६२ ॥ येहिविज्ञातविज्ञेयावीतरागामहाधियः ॥ विच्छिन्नग्रंथयःसर्वेतेस्वतंत्रास्तनौस्थिताः ॥ ६३ ॥ दैवंवापिचकर्माणिप्राक्तनान्यैहिकानिच ॥ वासनावानतेषांतच्चेतोनियमयंत्यलम् ॥ ६४ ॥

अर्थ—इसी कारणसे सहस्रों वर्षपर्य्यन्त योगियोंके शरीर न तो मेघोंके तुल्य गीले होतेहैं और न पृथिवीके भीतर शिलाके समान विदीर्ण होते हैं ॥ ६१ ॥ अब यह सुनो कि उसी समय वीतहव्य जो कि ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ था

क्यों नहीं अपने देहको त्यागकर विदेहमुक्त हुआ इसका कारण सुनो ॥ ६२ ॥ जो कि आत्मज्ञानी वीतराग महाबुद्धिमान् और छिन्नग्रंथि महात्मालोग हैं वे अपने शरीरमें स्वतंत्र हैं ॥ ६३ ॥ दैव (प्रारब्धकर्मोंके फल देनेवाला ईश्वर) इस जन्म तथा पूर्वजन्मके कर्म, और वासना शेष प्रारब्ध भोगकरनेको प्रवृत्त योगियोंके चित्तको अन्यथा नहीं करसकते ॥ ६४ ॥

तेनतत्त्वविदांतातकाकतालीयवन्मनः ॥ यद्यद्भावयतिक्षिप्रंतत्तदाशुकरोत्यलम् ॥ ६५ ॥ काकतालीययोगेनवीतहव्यस्यसंविदा ॥ सांप्रतंजीवितंबुद्धंतदेवाशुस्थिरीकृतम् ॥ ६६ ॥ यदातुतस्यप्रतिभाविदेहोन्मुक्ततांगता ॥ तदाविदेहमुक्तोभूदसौस्वातंत्र्यसंस्थितिः ॥ ६७ ॥ विगतवासनमाशुविपाशतामुपगतंमनआत्मतयोदितम् ॥ यदभिवांछातितद्भवतिक्षणात्सकलशक्तिमयोहिमहेश्वरः ॥ ६८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे सद्विलासविचारयोगोपदेशनामैकोननवतितमः सर्गः ॥ ८९ ॥

अर्थ—इसलिये हे प्रिय रामजी ! अकस्मात् प्रारब्धसे प्राप्त जिन कार्य्योंकी भावना योगी करताहै वह वक्ष्यमाणमेंही होजाताहै ॥ ६५ ॥ काकतालीयन्यायसे वीतहव्यके शरीरने इससमय जीवनकी भावना की और शीघ्र वही स्थिर होगया ॥ ६६ ॥ और जब उसकी प्रतिभा विदेहमुक्तिकी ओर अभिमुख हुई उससमय वह विदेहमुक्त होगया क्योंकि वह अपने शरीरके त्यागादिमें स्वतन्त्र था ॥ ६७ ॥ वासनारहित शीघ्र बन्धनसे विनिर्मुक्त, अन्तःकरणके उपाधिवाला वीतहव्यका जीव आत्मारूपसे आविर्भूत होनेसे सकलशक्तिमय महेश्वररूप था इसीलिये जो कुछ चाहता था वही शीघ्र होताथा ॥ ६८ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषानुवादे सद्विलासविचारयोगोपदेशोनामैकोननवतितमः सर्गः ॥ ८९ ॥

नवतितमः सर्गः ॥ ९० ॥

मित्रताआदि गुणसे सम्पन्न तथा निष्कल, यह दो प्रकारके चित्तका नाश इस ९० के सर्गमें विस्तारपूर्वक वर्णन कियागया है ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यदाह्यस्तंगतप्रायंजातंचित्तंविचारतः ॥ तदाहिवीतहव्यस्यजातामैत्र्यादयोगुणाः ॥ श्रीरामउवाच ॥ विचाराभ्युदयाच्चित्तस्वरूपेंतर्हितेमुने ॥ मैत्र्यादयोगुणाजाताइत्युक्तंकित्वयाप्रभो ॥ २ ॥ ब्रह्मण्यस्तंगतेचित्तेकस्यमैत्र्यादयोगुणाः ॥ क्वापरिस्फुरंतीतिवदमेवदतांवर ॥ ३ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ द्विविधश्चित्तनाशोस्तिसरूपेऽरूपएवच ॥ जीवन्मुक्तःसरूपःस्यादरूपोदेहमुक्तिजः ॥४ ॥

अर्थ—श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! जब विचारसे चित्त प्रायः अस्त होगया उससमय वीतहव्यके मैत्री करुणाआदि गुण उत्पन्न हुये ॥ १ ॥ श्रीरामजी बोले–हे भगवन् ! विचारसे चित्तके स्वरूपमें लीन होनेपर मैत्रीआदि गुण उत्पन्न भये यह आप किस आशयसे कहाहै॥२॥चित्तके ब्रह्ममें लीन होनेपर मैत्रीआदि गुण किसको होते हैं क्या बाधित चित्तको अथवा अधिष्ठानको, और किसमें स्फुरित होते हैं, चिदाभासमें वा बिंबचेतनमें, क्योंकि बाधित मृगतृष्णाकी नदी वा मरुस्थलमें शीतता वा मधुरतादिगुणोंका सम्भव नहीं है यह मुझे कहिये क्योंकि आप वक्ताओंमें श्रेष्ठ हैं ॥ ३ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले–हे रामजी ! चित्तका नाश दोप्रकारका होताहै, एक जीवन्मुक्तका रूप दूसरा विदेहमुक्तिसे उत्पन्न अरूप है ॥ ४ ॥

चित्तसत्तेहदुःखायचित्तनाशःसुखायतु ॥ चित्तसत्तांक्षयंनीत्वाचित्तंनाशमुपानयेत् ॥ ५ ॥ तामसैर्वासनाजालैर्व्याप्तंयज्जन्मकारणम् ॥ विद्यमानंमनोविद्धितदुःखायैवकेवलम् ॥ ६ ॥ आक्तनंगुणसंभारंममेतिबहुमन्यते ॥ यत्तुचित्तमतस्त्वज्ञंदुःखितंजीवउच्यते ॥ ७ ॥ विद्यमानंमनोयावत्तावद्दुःखक्षयःकुतः॥ मनस्यस्तंगतेजंतोःसंसारोस्तमुपागतः ॥ ८ ॥

अर्थ—इस संसारमें चित्तकी सत्ता दुःखके लिये है और उसका नाश सुखके अर्थ है इसलिये चित्तकी सत्ताका क्षय करके चित्तका नाश सिद्ध करना चाहिये ॥ ५ ॥ तामस (मलिन) वासनाके जालोंसे व्याप्त और जन्मोंका कारण जो मन है उसीको तुम विद्यमान जानो, और केवल दुःखोंकेही लिये है ॥ ६ ॥ अनादिका अभेद अध्याससे

सिद्ध देह इंद्रियआदिके धर्मसमूहोंको जो यह मानताहै कि यह मेरा है तथा इसीसे दुःखी अज्ञानी जो चित्त है उसको जीव कहतेहैं ॥ ७ ॥ जबतक मन विद्यमान है तबतक दुःखका क्षय कहां, मनका क्षय होतेही जीवके लिये संसारका अन्त आगया ॥ ८ ॥

दुःखमूलमवष्टब्धमस्मिन्नेवविनिश्चलम् ॥ विद्यमानंमनोविद्धिदुःखवृक्षवनांकुरम् ॥ ९ ॥ ॥ श्रीराम उवाच ॥ ॥ नष्टंकस्यमनोब्रह्मन्नष्टंवाकीदृशंभवेत् ॥ कीदृशश्चास्यनाशःस्यात्सत्तानाशस्यकीदृशी ॥ १० ॥ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ चेतसःकथितासत्तामयारघुकुलोद्वह ॥ अस्यनाशमिदानींत्वंशृणुप्रश्न विदांवर ॥ ११ ॥ सुखदुःखदशाधीरंसाम्यान्नप्रोद्धरंतियम् ॥ निःश्वासाइवशैलेंद्रंचित्तंतस्यमृतंविदुः ॥ १२ ॥

अर्थ—इस अज्ञानी जीवमें वासनाके जालोंसे बंधेहुये विद्यमान मनको दुःखरूप वृक्षका मूल तथा दुःखरूप वनके वृक्षका अंकुर तुम जानो ॥ ९ ॥ श्रीरामजी बोले—हे ब्रह्मन्! नष्ट मन क्या है और अनष्ट क्या है और इसका नाश कैसाहै नाश (अभाव) को प्राप्त पुनः इसकी सत्ता कैसी ॥ १० ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे प्रश्नवेत्ताओंमें श्रेष्ठ रघुकुलोद्वह रामजी! चित्तकी सत्ता तो मैं तुमसे कह चुकाहुं अब तुम इसका नाश सुनो ॥ ११ ॥ जिस धीरपुरुषको समस्वरूप आत्मासे सुखदुःखकी दशा ऐसे न चलासकै जैसे श्वासके वायु मेरुको उसके चित्तको नष्ट कहतेहैं ॥ १२ ॥

अयंसोहमयंनाहमितिचिंतानरोत्तमम् ॥ खर्वीकरोतियंनांतर्नष्टंतस्यमनोविदुः ॥ १३ ॥ आपत्कार्पण्यमुत्साहोमदोमांद्यंमहोत्सवः ॥ यंनयंतिनवैरूप्यंतस्यनष्टंविदुर्मनः ॥ १४ ॥ एषसाधोमनोनाशोनष्टंचेह मनोभवेत् ॥ चित्तनाशदशाचैषाजीवन्मुक्तस्यविद्यते ॥ १५ ॥ मनस्तांमूढतांविद्धियदानश्यतिसानघ ॥ चित्तनाशाभिधानंहितदासत्त्वमुदेत्यलम् ॥ १६ ॥

अर्थ—यह साढेतीन हाथका शरीर मैं हुं इससे अन्य नहीं हुं यह चिंता जिस श्रेष्ठ पुरुषको परिछिन्न (छोटी) नहीं करती उसके चित्तको नष्ट कहते हैं ॥ १३ ॥ अपत्ति, दीनता, उत्साह, धनादिसे मद, महत्ता, और महान् उत्सव ये जिसके मुखपर विरूपता नहीं उत्पन्न करतेहैं उसके चित्तको नष्ट कहतेहैं ॥ १४ ॥ हे साधो! यह चित्तका नाश है और इसीप्रकारके मनको नष्ट चित्त (मन) कहतेहैं और जीवन्मुक्तकी यही स्थिति है ॥ १५ ॥ हे पापरहित रामजी! परमार्थको त्यागकर दृश्यको मनन करनेहीको तुम मूढता जानो और जिससमय वह मूढता नष्ट होती है उसीसमय चित्तका नाशरूप शुद्ध सत्त्वभाव उदयको पूर्णतासे प्राप्त होताहै ॥ १६ ॥

तस्यसत्त्वविलासस्यचित्तनाशस्यराघव ॥ जीवन्मुक्तस्वभावस्यकैश्चिच्चित्ताभिधाकृता ॥ १७ ॥ मैत्र्यादिभिर्गुणैर्युक्तंभवत्युत्तमवासनम् ॥ भूयोजन्मविनिर्मुक्तंजीवन्मुक्तमनोनघ ॥ १८ ॥ व्याप्तंवासनया यत्स्याद्भूयोजननमुक्तया ॥ जीवन्मुक्तमनःसत्तारामतत्सत्त्वमुच्यते ॥ १९ ॥ संप्रत्येवानुभूतत्वात्सत्त्वा स्यातत्त्वसंश्रुतः ॥ सरूपोसौमनोनाशोजीवन्मुक्तस्यविद्यते ॥ २० ॥

अर्थ—हे राघव! शुद्ध सत्त्वभाव तथा जीवन्मुक्तके स्वभावरूप उस चित्तके नाशको उस व्यवहाराभासको देखनेवालोंने चित्तके नामसे प्रसिद्ध कियाहै ॥ १७ ॥ हे पापरहित रामजी! मैत्रीआदि गुणसंपन्न, उत्तमवासनामय और पुनर्जन्मसे वर्जित जीवन्मुक्तका मन होताहै ॥ १८ ॥ ब्रह्माकार वासनासे, और पुनर्जन्मसे वर्जित जो जीवन्मुक्तके मनकी सत्ता है उसको शुद्धसत्त्वके नामसे व्यवहार करतेहैं ॥ १९ ॥ व्युत्थानकालमेंही अनुभूत होनेसे और सन्मात्रस्वभावकी प्राप्तिसे देहादिपरिच्छेदको स्पर्श न करनेवाला जो है इसको जीवन्मुक्तका स्वरूप मनोनाश कहतेहैं ॥ २० ॥

मैत्र्यादयोथमुदिताःशशांकइवदीप्तयः ॥ जीवन्मुक्तमनोनाशेसर्वदासर्वथास्थिताः ॥ २१ ॥ जीवन्मुक्त मनोनाशेसत्त्वनाम्निहिमालये ॥ वसंतइवमंजर्यःस्फुरंतिगुणसंपदः ॥ २२ ॥ अरूपस्तुमनोनाशोयोमयोक्तोरघूद्वह ॥ विदेहमुक्तएवासौविद्यतेनिष्कलात्मकः ॥ २३ ॥ समग्राग्र्यगुणाधारमपिसत्त्वंप्रलीयते ॥ विदेहमुक्तेविमलेपदेपरमपावने ॥ २४ ॥

अर्थ—जीवन्मुक्तके मनके नाश होनेपर सद् मैत्रीआदि गुण प्रफुल्लित होके ऐसे स्थित रहते हैं जैसे चन्द्रमामें दीप्ति ॥ २१ ॥ सत्वनाम युक्त हिम वा संतोषके स्थानभूत जीवन्मुक्तके मनके नाशमें सब गुणोंकी संपत्ति ऐसे स्फुरित होती है जैसे वसन्तकालमें लता ॥ २२ ॥ हे रामजी! जो मैंने अरूप मनोनाश कहाथा वह तो निष्कल विदेहमुक्तकोही होताहै ॥ २३ ॥ समग्र उत्तमगुणोंके आधारभूत जो प्रातिभासिक मन है वहभी परमपावन विदेहरूप जो विमलपद है उसमें लीन होजाताहै ॥ २४ ॥

विदेहमुक्तविषयेतस्मिन्सत्वक्षयात्मके ॥ चित्तनाशेविरूपाख्येनकिंचिदपिविद्यते ॥२५॥ नगुणानागुणास्तत्रनश्रीर्नाश्रीर्वलोलता ॥ नचोदयोनास्तमयोनहर्षामर्षसंविदः ॥ २६ ॥ नतेजोनतमःकिंचिन्नसंध्यादिनरात्रयः ॥ नदिशोनचवाकाशोनाधोनानर्थरूपता ॥ २७ ॥ नवासनानरचनानेहानीहेनरंजना ॥ नसत्तानापिवासत्तानचसाध्यंहितत्पदम् ॥ २८ ॥

अर्थ—केवल विदेहमुक्तके विषयभूत उस सत्वके क्षयरूप रूपरहित चित्तके नाशमें किंचित्भी दृश्य नहीं रहता ॥२५॥ उस अरूपचित्तके नाशमें न गुण, है न अगुण है, न लक्ष्मी है, न दरिद्रता है, न चंचलता है, न उदय है न अस्त और न हर्ष न शोककी संवित् है ॥ २६ ॥ न तेज, न अन्धकार, न सन्ध्या न दिन न रात्रि न दिशा न आकाश, न अधोभाग, और न अनर्थरूपता ॥ २७ ॥ न वासना न कोई रचना, न इच्छा न अनिच्छा, न राग न सत्ता तथा असत्ताका अभाव, और न दोनोंकि संधिरूप वह पद है ॥ २८ ॥

अतमस्तेजसाव्याप्तावितारेंद्वर्कवायुना ॥ तत्समंशरदच्छेननिःसंध्येनारजस्त्विषा ॥२९॥ येहिपारंगताबुद्धेःसंसाराचरणस्यच ॥ तेषांतदास्पंदफारंपवनानामिवांबरम् ॥३०॥ संशांतदुःखमजडात्मकमेवसुप्तमानंदमंथरमपेतरजस्तमोयत् ॥ आकाशकोशतनवोतनवोमहांतस्तास्मिन्यदेगलिताचित्तलवावसंति॥३१॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे चित्तोपदेशविचारयोगोपदेशो नाम नवतितमःसर्गः ॥ ९० ॥

अर्थ—तम तथा अन्धकारसे शून्य, तारागण, चन्द्र, सूर्य तथा वायुसे रहित और सूर्यकी प्रभासेभी वर्जित; और शरत्कालके समान स्वच्छआकाशके समान वह विमलपद है ॥ २९ ॥ जो महात्मालोग बुद्धि तथा इस संसाररूप आडम्बरके पार प्राप्त होगये हैं उन्हीका स्थान वह पद ऐसे है जैसे पवनका आकाश ॥ ३७ ॥ शांतदुःख, जडतारहित, उन्मेष आदि चेष्टा शून्य, धीर तथा रजोगुण अज्ञासे शून्य उस पदमें आकाशके विशालरूप, विदेहमुक्त और चित्तके लेशसेभी शून्य महात्मालोग पुनः इस संसारमें न आनेके अर्थ निवास करतेहैं ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे उपशमप्रकरणे चित्तोपदेशविचारयोगोपदेशो नाम नवतितमः सर्गः ॥ ९० ॥

एकनवतितमः सर्गः ॥ ९१ ॥

इस संसाररूपलताका बीज यह शरीर है, उसका बीज मन है और उसकाभी प्राणस्पंद तथा वासना है इस विषयका वर्णन इस ९१ के सर्गमें कियागया है ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ परमाकाशकोशादिरूढलोकांतरद्रुमम् ॥ तारकापुष्पशबलंदेवासुरविहंगमम् ॥ १ ॥ विद्युन्मंजरितोपांतनीलनीरदपल्लवम् ॥ सर्वर्तुरम्यचंद्रार्कगणरम्यकदंतुरम् ॥ २ ॥ सप्ताब्धिवापीवलितंसरिच्छतमनोहरम् ॥ चतुर्दशविधानंतभूतजातोपजीवितम् ॥ ३ ॥ जगत्काननमाक्रम्यस्थितायाःकृतजालकम् ॥ ब्रह्मन्संसृतिमृद्वीकालतायाविततात्कृतेः ॥ ४ ॥ जरामरणपर्वायाःसुखदुःखफलावलेः ॥ आरूढमूलमालायामोहसेकजलांजलेः ॥ ५ ॥ किंबीजमथबीजस्यतस्यकिंबीजमुच्यते ॥ अथतस्यापिकिंबीजंबीजंतस्यापिकिंभवेत् ॥ ६ ॥ सर्वमेतत्समासेनपुनर्बोधविवृद्धये ॥ सिद्धयेज्ञानसारस्यवदमेवदतांवर ॥ ७ ॥ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ ॥ अंतर्लीनघनारंभशुभाशुभमहांकुरम् ॥ संसृतिव्रततेर्बीजं शरीरंविद्धिराघव ॥ ८ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—निर्विशेष ब्रह्मको रोकनेसे पर्वतके तुल्य अव्याकृत ब्रह्ममें जहांपर अनेक ब्रह्मांडरूप वृक्ष लगे हैं ऐसे तथा तारागणरूप पुष्पोंसे विचित्र, और देव असुररूप पक्षीसंयुक्त ॥ १ ॥ विद्युत् (बिजुली) रूप लतासहित, दिशारूप शाखाओंके अग्रभागमें नीलआदि वर्णयुक्त मेघरूप पल्लवोंसे शोभित और सब ऋतुओंमें रमणीय तथा विकाशमय चंद्रसूर्य तारागणरूप पुष्पोंसे उन्नत (ऊंचे) हसतेहुयेके समान स्थित ॥ २ ॥ सातोसमुद्ररूप वापियोंसे वेष्टित, सैकडों नदियोंसे मनोहर और चौदह भुवनोंके निवासी अनंतभुवनोंके जीवनका हेतु ॥ ३ ॥ जो यह संसाररूप वन है उसको घेरकर जालकी रचनापूर्वक विशालआकार वृद्धअवस्था तथा मरणरूप ग्रंथिसहित सुखदुःखफलोंकी पंक्तिसे पूर्ण, दृढमूल और मोहरूप सिंचनकी अंजलीयुक्त इस जीवकी संसरण (गमनागमन) रूप दाखकी लताका बीज क्या है. हे ब्रह्मन् ! कृपाकरके कहिये. और उस बीजकाभी बीज क्या और उसकाभी बीज क्याहै ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ प्रभो ! यह सब संक्षेपसे पुनः बोधकी वृद्धि और ज्ञानके सारांशकी सिद्धिके लिये

कहिये ॥ ७ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे राघव ! अंतःकरणमें गुप्त चित्रविचित्र अनन्तकार्योंके आरंभक शुभ तथा अशुभकर्मरूपी महाअंकुरसहित इस शरीरकोही तुम संसाररूप लताके बीज जानो ॥ ८ ॥

शाखाप्रतानगहनाफलपल्लवशालिनी ॥ तेनेयंभवतिस्फीताशरदीववसुंधरा ॥ ९ ॥ भावाभावदशाकोशंदुःखरत्नसमुद्गकम् ॥ बीजमस्यशरीरस्यचित्तमाशावशानुगम् ॥ १० ॥ चित्तादिदमुदेत्युच्चैस्सदसद्यांगजालकम् ॥ तथाचैनत्स्वयंस्वप्नसंभ्रमेष्वनुभूयते ॥ ११ ॥ यथागंधर्वसंकल्पात्पुरमेवंहिचेतसः॥ सवातायनमाकारभासुरंजायतेवपुः ॥ १२ ॥

अर्थ—शाखाके विस्तारोंसे गहन, फल तथा पल्लवआदिसे शोभायमान यह संसृति (संसार) रूप लता इस शरीर (लिंगशरीर जिसमें अनंतकार्य्योंके आरंभक कर्म गुप्त रहते हैं) से वृद्धिको ऐसे प्राप्तहै जैसे सस्यकी संपत्तिसे शरत्कालमें पृथिवी ॥ ९ ॥ और हे रामजी! पदार्थोंकी वृद्धि तथा नाशरूप दशाका कोश, दुःखरूप रत्नोंकी पेटारी और आशाओंके वशमें होके उनके अनुगामी चित्तको तुम शरीरका बीज जानों ॥ १० ॥ चित्तसेही वर्तमान तथा भूत भविष्यत् शरीरोंके जाल उत्पन्न होते हैं और वह बात स्वप्न ओर संभ्रममें सबको अनुभूत है ॥ ११ ॥ जैसे संकल्पसे गंधर्वनगर प्रकाशमय तथा झरोखे आदि सहित उत्पन्न होताहै ऐसेही चित्तसे यह शरीरभी उत्पन्न होताहै १२

यदिदंकिंचिदाभोगिजागतंदृश्यतांगतम् ॥ रूपंतच्चेतसःस्फारंघटादित्वंमृदोयथा ॥ १३ ॥ द्वेबीजेचित्तवृक्षस्यवृत्तिव्रततिधारिणः ॥ एकंप्राणपरिस्पंदोद्वितीयंदृढभावना ॥ १४ ॥ यदाप्रस्पंदतेप्राणोनाडीसंस्पर्शनोद्यतः ॥ तदासंवेदनमयंचित्तमाशुप्रजायते ॥ १५ ॥ यदानस्पंदतेप्राणःशिरासरणिकोटरे ॥ असंवित्तिवशात्तेनचित्तमंतर्नजायते ॥ १६ ॥

अर्थ—और जो कुछ कृत्रिम आकारधारी यह जगत्का रूप दृश्यताको प्राप्तहुआहै वह विशालरूप चित्तका ऐसे है जैसे मृत्तिकाके घटआदि ॥ १३ ॥ और वृत्तिरूप लताधारी चित्तवृक्षके दो बीज हैं एक प्राणका स्पंद और दूसरा दृढवासना ॥ १४॥ जब नाडियोंके स्पर्श करनेमें उद्यत प्राणकी गति होती है उस समय शीघ्रही चिद्विकारमय यह चित्त शीघ्र उत्पन्न होताहै ॥ १५ ॥ और जब नाडियोंके मार्गके छिद्रमें प्राणका स्पंद नहींहोता उस समय बाह्य अनुभवके न होनेसे चित्त नहीं उत्पन्न होता ॥ १६ ॥

प्राणस्पंदनमेवेदंचित्तद्वारेणदृश्यते ॥ जगन्नामागतंव्योम्नीनीलत्वादिवदीदृशम् ॥ १७ ॥ प्राणस्पंदनसुप्राचतच्छांतिःशांतिरुच्यते ॥ प्राणसंस्पंदनात्संविद्यातिवीटेवचोदिता ॥१८॥ संवित्स्फुरतिदेहेषुप्राणस्पंदप्रबोधिता ॥ चक्रावसैरंगणेषुवीटेवकरताडिता ॥ १९ ॥ सतीसर्वगतासंवित्प्राणस्पंदेनबोध्यते ॥ सूक्ष्मात्सूक्ष्मतराकारागंधलेखेववायुना ॥ २० ॥

अर्थ—यह प्राणका स्पंदही चित्तके द्वारा जगत्के नामसे प्रसिद्ध ऐसे देखपडताहै जैसे आकाशमें नीलताआदि ॥ १७ ॥ और समष्टिप्राणके स्पंदनविषयमें उपरत जो चित्की निष्क्रियतारूप शांति है उसीको जगत्का प्रलय वा मोक्ष कहतेहैं, और प्राणके स्पंदसे चित्तसंवित् ऐसे होजाती है जैसे हस्तसे ताडित कन्दुक (गेंद) ॥१८॥ प्राणोंके स्पन्दोंसे बोधित संवित् देहोंमें ऐसे स्फुरित होती है जैसे हस्तों (हाथों) से प्रेरित गेंद अंगणो (आंगनों) में ॥१९॥ सर्वगत विद्यमानही संवित् प्राणके स्पंदसे ऐसे बोधित होती है जैसे सूक्ष्मसेभी सूक्ष्मगंधकी लेखा पवनसे॥२०

संवित्संरोधनेश्रेयःपरमंविद्धिराघव ॥ कारणाक्रमणंयत्रक्षोभस्तत्रनविद्यते ॥ २१ ॥ संवित्समुदितैवाशुयातिसंवेद्यमादरात् ॥ संवेदनादनंतानिततोदुःखानिचेतसः ॥ २२ ॥ संसुप्तांतरबोधायसंवित्संतिष्ठतेयदा ॥ लब्धंभवतिलब्धव्यंतदातदमलंपदम् ॥ २३ ॥ तस्मात्प्राणपरिस्पंदैर्वासनाचोदनैस्तथा ॥ नोचेत्संविदमुच्छूनांकरोपितदजोभवान् ॥ २४ ॥

अर्थ—हे रामजी ! संवित्के रोकनेसे परमकल्याण (मोक्ष) होताहै और उसके लिये प्राणके स्पंदका प्राणायामोंके अभ्याससे आक्रमणसे करना चाहिये जिसमें क्षोभ नहीं है ॥२१॥ यह संवित् उदयमात्र होतेही बाह्यविषयोंके प्रतिरागसे होजाती है और उन बाह्यपदार्थोंमें उपभोगके संवेदनसे चित्तको अनन्त दुःख होते हैं॥२२॥ और जब बाह्यविषयमें सुप्तके तुल्य तथा अन्तर आत्माके ज्ञानके लिये जाग्रत् होके यह संवित् उद्युक्त होती है उससमय प्राप्त होनेयोग्य वह विमलपद मानो प्राप्त होचुका ॥ २३ ॥ इस हेतुसे प्राणोंके परिस्पंदोंसे और वासनाओंके उत्तेजनसे यदि तुम संवित्को मूर्खोंके तुल्य नहीं बढाते हो तो तुम जन्मादिविक्रियाशून्य मुक्तही हो ॥ २४ ॥

संविद्धच्छूनताचित्तंविद्धितेनेदमाततम् ॥ अनर्थजालमालानविशीर्णजनजीवकम् ॥ २५ ॥ योगिनश्चित्तशांत्यर्थंकुर्वंतिप्राणरोधनम् ॥ प्राणायामैस्तथाध्यानैःप्रयोगैर्युक्तिकल्पितैः ॥ २६ ॥ चित्तोपशांतिफल

दंपरमंसाम्यकारणम् ॥ सुभगंसंविदःस्वास्थ्यंप्राणसंरोधनंविदुः ॥ २७ ॥ ज्ञानवद्भिःप्रकटितामनुभूतांचराघव ॥ चित्तस्योत्पत्तिमपरांवासनाजीवितांशृणु ॥ २८ ॥

अर्थ—संवित्का बढानाही चित्त जानों और जिससे अनेक प्राणियोंके जीव खंडित और विशीर्ण होगये हैं ऐसा यह अनर्थोंका जाल संसार व्याप्त है ॥ २५ ॥ योगीलोग प्राणायामोंसे, ध्यानोंसे, और योगशास्त्रोक्त तथा सद्गुरुओंके संप्रदायआदिसे सिद्ध युक्तियोंसे, कल्पितप्रयोगोंसे प्राणोंका निरोध चित्तकी शांतिके लिये करते हैं ॥ २६ ॥ चित्तकी शांतिरूप फलका दायक, समताका परमकारण, सौख्यदायक और संवित्की स्वस्थताका हेतु प्राणका निरोध कहागयाहै ॥ २७ ॥ हे रामजी ! ज्ञानीमहात्माओंसे उपदिष्ट, स्वयं अनुभूत और वासनाओंसे उज्जीवित अन्य प्रकारकी चित्तकी उत्पत्ति सुनो ॥ २८ ॥

दृढभावनयात्यक्तपूर्वापरविचारणम् ॥ यदादानंपदार्थस्यवासनासाप्रकीर्तिता ॥ २९ ॥ भावितस्तीव्रसंवेगादात्मनायत्तदेवसः ॥ भवत्याशुमहाबाहोविगतेतरसंस्मृतिः ॥ ३० ॥ तादृग्रूपोहिपुरुषोवासनाविवशीकृतः ॥ यत्पश्यतितदेतत्तत्सद्वस्त्विवतिविमुह्यति ॥ वासनावेगवैवश्यात्स्वरूपंप्रजहातितत् ॥ भ्रांतंपश्यतिदुर्दृष्टिःसर्वंमदवशादिव ॥ ३२ ॥

अर्थ—पूर्वकालकी दृढभावनासे पूर्वापर विचारको त्यागकर देहादिपदार्थोंका जो अहंमम इत्यादिरूपसे ग्रहण है उसीको वासना कहते हैं ॥ २९ ॥ हे महाबाहो ! तीव्रसंवेगसे आत्माकेद्वारा जैसी भावना आत्मा करताहै अन्यस्मृतियोंको त्यागकर उसी आकारका आत्मा शीघ्र होजाताहै ॥ ३० ॥ वासनाके वशीभूत पुरुष उसी प्रकारका रूप धारणकरके जो कुछ देखताहै वही सत् अर्थात् आत्मसत्तासे वासित सत्वस्तु है इस हेतुसे मोहित होजाताहै ॥ ३१ ॥ वासनाके वेगकी विवशतासे अपने स्वरूपको त्यागताहै और वासनासे उपस्थापित सब जगत्के रूपको ऐसे देखताहै जैसे मदके वशसे दुष्ट (दूषित) दृष्टि सब पदार्थोंको भ्रमणशील ॥ ३२ ॥

असम्यग्ज्ञानवानेवभवत्याधिपरिप्लुतः ॥ अंतस्थयावासनयाविषेणेववशीकृतः ॥ ३३ ॥ असम्यग्दर्शनंयस्मादनात्मन्यात्मभावनम् ॥ यदवस्तुनिवस्तुत्वंतच्चित्तंविद्धिराघव ॥ ३४ ॥ दृढाभ्यासपदार्थैकवासनादतिचंचलम् ॥ चित्तंसंजायतेजन्मजरामरणकारणम् ॥ ३५ ॥ यदानवास्यतेकिंचिद्धेयोपादेयरूपियत् ॥ स्थीयतेसकलंत्यक्त्वातदाचित्तंनजायते ॥ ३६ ॥

अर्थ—अपने अंतःकरणमें स्थित वासनासे मिथ्या ज्ञानयुक्त पुरुषही मानसीव्यथाओंसे पूर्ण ऐसे होताहै जैसे विषसे वशीभूत जन ॥ ३३ ॥ हे रामजी ! जिससे मिथ्याज्ञान, अनात्मामें आत्मबुद्धि, और अवस्तु (देहादि) में वस्तु (आत्म) ज्ञान होताहै उसीको चित्त जानो ॥ ३४ ॥ दृढअभ्यासके कारण देहादिपदार्थोंके साथ अभेदवासना होनेसे जरा, जन्म और मृत्युका कारण अतिचंचल चित्त उत्पन्न होताहै ॥ ३५ ॥ जब कि हेय और उपादेयरूपवाला कुछभी सत्ताको नहीं प्राप्तहोता किंतु सबको त्यागकर वासनारहित स्थितहोताहै उससमय चित्त नहीं उत्पन्न होता ॥ ३६ ॥

अवासनत्वात्सततंयदानमनुतेमनः ॥ अमनस्तातदोदेतिपरमोपशमप्रदा ॥ ३७ ॥ यदाकिंचिन्नसंवित्तौस्फुरत्यभ्रमिवांबरे ॥ तदाखइवाकाशेचित्तमंतर्नजायते ॥ ३८ ॥ यदानभाव्यतेभावःक्वचिज्जगति वस्तुनि ॥ तदाहृदंबरेशून्येकथंचित्तंप्रजायते ॥ ३९ ॥ एतावन्मात्रकंमन्येरूपंचित्तस्यराघव ॥ यद्भावनंवस्तुनोंतर्वस्तुत्वेनरसेनच ॥ ४० ॥

अर्थ—वासनाके अभावसे जब मन कुछभी मनन नहीं करता उससमय परमशांतिदायक अमनस्ता (मनकी अभावता) उदित होती है ॥ ३७ ॥ आकाशमें मेघके तुल्य जब संवित्में कुछभी नहीं स्फुरितहोती उससमय आकाशमें कमलके तुल्य चित्में चित्त नहीं उत्पन्न होता ॥ ३८ ॥ जब जगत्की वस्तुमें कहींभी भावपदार्थकी भावना नहीं होती उससमय शून्य हृदयाकाशमें चित्त कैसे उत्पन्न होगा ॥ ३९ ॥ हे रामजी ! मैं चित्तका रूप इतनाही मानताहुं कि रागसे वस्तुके अंतरमें वस्तुत्वरूपसे (जगत्में सत्यरूपसे) भावना करना ॥ ४० ॥

यदनकिंचित्कल्पनायोग्यंदृश्यंभावयतस्ततः ॥ आकाशकोशस्वच्छस्यकुतश्चित्तोदयोभवेत् ॥ ४१ ॥ यद्भावनमास्थाययदभावस्यभावनम् ॥ यद्यथावस्तुदर्शित्वंतदचित्तत्वमुच्यते ॥ ४२ ॥ सर्वमंतःपरित्यज्यशीतलाशयवर्तियत् ॥ वृत्तिस्थमपितच्चित्तमसद्रूपमुदाहृतम् ॥ ४३ ॥ वासनायारसाध्यानाद्रागोयस्यनविद्यते ॥ तस्यचित्तमचितत्वंगतंसत्त्वंतदुच्यते ॥ ४४ ॥

अर्थ—उसके पश्चात् कल्पनाकी युक्तियोंसे दृश्यपदार्थ समर्थनके योग्य नहीं है ऐसी भावना करते हुये तथा आकाशके कोशके समान स्वच्छ आत्माको चित्तका उदय कहांसे होसकताहै ॥ ४१ ॥ सब बाह्यपदार्थोंका विस्मरणरूप निरोधपदार्थका अवलम्बन करके सब दृश्यके शोधनरूप अभावके साधक जो आत्मवस्तुका दर्शन है उसको चित्तका अभाव कहते हैं ॥ ४२ ॥ भीतरसे सब कुछ त्यागकर शीतल आशयमें वर्त्ती वृत्तिमें स्थितभी चित्त दग्धपटाभासके तुल्य असत्स्वरूप कहाजाताहै ॥ ४३ ॥ वासनासे विषयरसके ध्यानसे जिसको राग नहीं है उसका चित्त अचित्त-अवस्थाको प्राप्त शुद्धसत्त्वभाव कहाजाताहै ॥ ४४ ॥

घनानवासनायस्यपुनर्जननकारिणी ॥ जीवन्मुक्तःससत्त्वस्थश्चक्रभ्रमवदास्थितः ॥ ४५ ॥ भृष्टबीजोपमायेषांपुनर्जननवर्जिता ॥ वासनारसनिर्हीनाजीवन्मुक्ताहितेस्थिताः ॥ ४६॥ सत्त्वरूपपरिप्राप्तचित्तास्तेज्ञानपारगाः ॥ अचित्ताइतिकथ्यंतेदेहांतेव्योमरूपिणः ॥ ४७ ॥ द्वेबीजेरामचित्तस्यप्राणस्पंदनवासने ॥ एकस्मिंश्चतयोःक्षीणेक्षिप्रंद्वअपिनश्यतः ॥ ४८ ॥

अर्थ—पुनः जन्ममरणको करनेवाली घनीभूत वासना जिसको नहीं है वह जीवन्मुक्त चक्रके भ्रमिकेतुल्य संसारके कार्य्योंको करताहुआभी सत्वमेंही स्थितहै ॥ ४५ ॥ भुनेहुये बीजके तुल्य, पुनर्जन्मसे वर्जित और रागसे हीन जिनकी वासना है वे इस संसारमें जीवन्मुक्तही स्थित हैं ॥ ४६ ॥ सत्वरूपमें प्राप्त चित्त और ज्ञानके पारंगत जो महात्मा हैं वे अचित्त कहेगये हैं और इस देहके अन्तमें वे चिदाकाशरूप होजातेहैं ॥ ४७ ॥ हे रामजी ! चित्तके दो बीज हैं एक प्राणोंका स्पंद और द्वितीय वासना इनमेंसे एकके क्षीण होनेपर दोनों नष्ट होजाते हैं ॥ ४८ ॥

मिथःकारणमेतेहिबीजेजन्मनिचेतसः ॥ जलांगीकरणेरामजलाशयघटाविव ॥ ४९ ॥ घनानवासनायस्यपुनर्जननकारिणी ॥ बीजांकुरवदेतेहिसंस्थितेतिलतैलवत् ॥ ५० ॥ अविनाभाविनीनित्यंकालाकांक्षिक्रमेतथा ॥ सर्वमुत्पादयत्येतच्चित्तकःसंविदात्मकः॥ ५१ ॥ यथाप्राणेंद्रियानंदमानंदपवनावुभौ ॥ चित्तस्योत्पादिकेसार्द्धंयदैतेवासनेतदा ॥ ५२ ॥

अर्थ—चित्तकी उत्पत्तिमें प्राणस्पन्द और वासना दोनों मिलकरके इसप्रकार कारण हैं जैसे घटाकाशके जल अंगीकार करनेमें घट और जलाशय दोनों कारण हैं ॥ ४९ ॥ पुनर्जन्मकारिणी घनीभूत वासना जिसको नहीं है उसको तिलोंमें तेलके सदृश परस्पर एक दूसरेके अन्तर्गत बीज अंकुरके न्यायसे कालसे क्रमके आकांक्षी परस्पर एक दूसरेके कारण तथा एकके होनेसे दोनों वर्तमान ये दोनों प्राणस्पन्द और वासना हैं ॥ ५० ॥ इसीप्रकार चित्त संवित, इन्द्रिय तथा सुखदुःख आदिको उत्पन्न करताहै ॥ ५१ ॥ यथाक्रमसे यह चित्त प्रथम प्राणको अनन्तर इन्द्रियोंको इनके पश्चात् आनन्द इस रीतिसे सबको उत्पन्न करताहै, और इसीप्रकार जब प्राण पवन आनन्द ये दोनों वासना होजाते हैं तब साथ दोनों मिलकर चित्तको उत्पन्न करते हैं ॥ ५२ ॥

आमोदपुष्पवत्तैलतिलवच्चव्यवस्थिते ॥ वासनावशतःप्राणस्पंदस्तेनचवासना ॥ ५३ ॥ जायतेचित्तबीजस्यतेनबीजांकुरक्रमः ॥ वासनोत्प्लवमानत्वात्संवित्प्रक्षोभकर्मणा ॥ ५४ ॥ प्राणस्पंदंबोधयतितेन चित्तंप्रजायते ॥ प्राणःस्पंदनधर्मित्वात्स्पंदतेस्पृष्टहृद्गुणः ॥ ५५ ॥ संविदंबोधयंस्तेनचित्तबालःप्रजायते ॥ एवंहिवासनाप्राणस्पंदौद्वौतस्यकारणम् ॥ ५६ ॥

अर्थ—जैसे पुष्प और उसका सौगन्ध्य तथा तिल और तेल ये एकत्र स्थित हैं ऐसेही वासनासे प्राणका स्पंद और प्राणस्पन्दसे वासना होती है ॥ ५३ ॥ इसलिये चित्तके बीजका क्रम बीजके और अंकुरके क्रमके तुल्य है. इनमेंसे वासना तो ऊर्ध्वगतिशील होनेसे संवित् प्रक्षोभरूपक्रियाद्वारा ॥ ५४ ॥ प्राणस्पन्दको बोधित करती है और उससे चित्त उत्पन्न होताहै और हृदयके गुण राग आदि स्पर्श (प्रेरणा) करनेवाला प्राण स्पन्दनधर्मी होनेसे संवित्को बोधन करताहै उससे चित्तरूप बालक उत्पन्न होताहै इसप्रकार वासना और प्राणस्पन्द दोनों चित्तके कारणहैं

तयोरेकक्षयेनाशोद्वयोश्चित्तस्यराघव ॥ सुखदुःखमनःस्पंदंशारीरकबृहत्फलम् ॥ ५७ ॥ कार्यपल्लविताकारंकृतिव्रततिवेष्टितम् ॥ तृष्णाकुष्णाहिवलितंरागरोगबकालयम् ॥ ५८ ॥ अज्ञानमूलंसुदृढंलीनेंद्रियविहंगमम् ॥ वासनाक्षयमानीताचित्तवृक्षंक्षणेनहि ॥ ५९ ॥ प्रपातयतिवातौघःकालपक्वफलंयथा ॥ पांडरीकृतसर्वांशंस्थगिताखिलदर्शनम् ॥ ६० ॥

अर्थ—हे रामजी ! उन दोनोंमेंसे एकके भी क्षय होनेसे चित्तका नाश अवश्य होताहै, और सुखदुःखसे व्याकुल मननरूप स्पन्दसहित और शरीररूप महान् फलसंयुक्त ॥ ५७ ॥ और कार्यरूप पल्लवसंयुक्त आकारको धारण-

कियेहुये, तृष्णारूप कालेसर्पोंसे वेष्टित, और राग तथा रोगरूप बकोंका स्थान ॥ ५८ ॥ अज्ञानरूप अतिदृढमूलसहित, और इन्द्रियरूप पक्षीका स्थान चित्तरूपवृक्षको क्षयको प्राप्त कीहुई वासना क्षणमेंही ॥ ५९ ॥ ऐसे गिराती है जैसे कालसे परिपक्वफलको पवनका प्रवाह, और सबदिशाओंको पांडुर (मलिन) करनेवाली, और सब प्राणियोंके नेत्रभूत चिद्रूपका आच्छादक ॥ ६० ॥

विलोलजलदाकारमज्ञानावकरोत्थितम् ॥ तृष्णातृणलवव्याप्तं स्तंभाकृतिशरीरकम् ॥ ६१ ॥ स्फुरत्तनुतनुक्षुब्धंसुखमुत्प्लवनंप्रति ॥ अंतःस्थितमहालोकमपश्यत्प्रविलीयते ॥ ६२ ॥ पवनस्पंदरोधाच्चरामचित्तरजःक्षणात् ॥ वासनाप्राणपवनस्पंदयोरनयोर्द्वयोः ॥६३॥ संवेद्यंबीजमित्युक्तंस्फुरतस्तौयतस्ततः ॥ हृदिसंवेद्यमाप्यैवप्राणस्पंदोथवासना ॥ ६४ ॥

अर्थ—चंचलमेघके सदृश आकारवाली अज्ञानरूप मार्जनी (झाडू) से आविर्भूत तृष्णारूप तृणके खंडोंसे व्याप्त, और स्तंभाकृति शरीररूप संस्थानसे क्षोभित ॥ ६१ ॥ और अल्पसेभी अल्प वृत्तिरूप वात्यासे क्षुभित, विनापरिश्रम सब दिशाओंमें उडनेमें प्रवीण, और अन्तःकरणमें स्थित ब्रह्मके अथवा सूर्यके महाप्रकाशको देखनेमें असमर्थ यह चित्तरूप आंधीसे उडीहुई धूलि, हे रामजी ! प्राणस्पन्दके निरोधसे क्षणभरमेंही लयको प्राप्त होजाती है, और प्राण पवनका स्पन्द तथा वासना इन दोनोंका ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ बीज, प्रिय अप्रिय शब्द स्पर्श तथा रूपादि विषयभी हैं, क्योंकि शब्दादिविषयको पाकर प्राणस्पन्द और वासना हृदयमें इधर उधर स्फुरित होते हैं ॥ ६४ ॥

उदेतितस्मात्संवेद्यंकथितंबीजमेतयोः ॥ संवेद्यसंपरित्यागात्प्राणस्पंदनवासने ॥ ६५॥ समूलंनश्यतः क्षिप्रंमूलच्छेदादिवद्रुमः ॥ संविदंविद्धिसंवेद्यंबीजंधीरतयाविना ॥ ६६ ॥ नसंभवतिसंवेद्यंतैलहीनस्तिलोयथा ॥ नबहिर्नांतरेकिंचित्संवेद्यंविद्यतेपृथक् ॥ ६७ ॥

अर्थ—और शब्दादिविषयकी प्राप्तिहीसे प्राणस्पंद और वासना उदयको प्राप्त होती हैं इसलिये इन दोनोंका बीज संवेद्य (शब्दादि) कहा गयाहै और संवेद्यके त्यागसे प्राणस्पंद तथा वासना दोनों ॥ ६५ ॥ मूलसहित ऐसे शीघ्र नष्ट होते हैं जैसे मूलसे काटनेसे वृक्ष, और संवित्‌ही अपनी स्वाभाविक धीरताको त्यागकर संवेद्य (विषय) रूप होके चित्तका बीज होती है ॥ ६६ ॥ संवित्‌के विना संवेद्यकी प्रसिद्धि ऐसे नहीं है जैसे तेलके विना तिल, और बाह्य तथा आभ्यन्तर विषय कुछभी संवित्‌से भिन्न नहीं है ॥ ६७ ॥

संवित्स्फुरंतीसंकल्पात्संवेद्यंपश्यतिस्वतः ॥ स्वप्नेयथात्ममरणंतथादेशांतरस्थितिः ॥ ६८ ॥ स्वचमत्कारयोगेनसंवेद्यंसंविदस्तथा ॥ स्ववेदनंस्वसंकल्पात्संविदोयत्प्रवर्तते ॥ ६९ ॥ जगज्जालमतोभातितदिदंरघुनंदन ॥ यथाबालस्यवेतालःससंकल्पोद्भवाद्भवेत् ॥ ७० ॥ पुरुषत्वंयथास्थाणोःसंवेद्यंसंविदस्तथा ॥ यथाचंद्रार्करश्मीनांदंडतारेणुतातथा ॥ ७१ ॥ यथानौस्थाचलस्पंदःसंवेद्यंसंविदस्तथा ॥ एतन्मिथ्याहिदुर्ज्ञानंसम्यग्ज्ञानाद्विलीयते ॥ ७२ ॥

अर्थ—यह संवित् स्फुरित होती हुई अपने संकल्पसेही जैसे स्वप्नमें अपना मरण और देशांतरकी स्थितिको अपने चमत्कारके योगसे देखती है ऐसेही जाग्रत्‌के विषयसे भिन्न नहीं है, और जिस दशामें अपने संकल्पसे अपनेको जानती है वहभी स्वप्नकेही समानहै क्योंकि अद्वैतब्रह्ममें अपना अनुभव विवेकादिकाभी संभव नहीं है ॥ ६८ ॥६९॥ हे रघुनंदन ! इसी संवित्‌से यह जगत्‌जाल ऐसे भान होताहै जैसे बालकको अपने संकल्पके भ्रमसे वेताल भान होताहै ॥ ७० ॥ जैसे स्थाणु (ठूंठ) पुरुषरूपसे भान होताहै ऐसेही संवित् विषयरूपसे भान होती है, और जैसे चंद्र और सूर्यकी किरण झरोखे वा गृहके छिद्रमेंसे आके दंडाकार वा भ्रमण करतेहुये त्रसरेणुके आकारसे भान होती है ॥ ७१ ॥ जैसे कि नौकापर स्थित पुरुषको अचल वृक्षआदिकी गति भान होती है ऐसेही संवित्‌का संवेद्य (विषय) रूपसे भान होताहै यह मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञानसे ऐसे नष्ट होताहै ॥ ७२ ॥

इत्यंतरज्ज्वामिवभुजंगत्वंद्वींदुत्वंस्ववीक्षितादिव ॥ शुद्धैवसंविन्त्रिजगत्संवेद्यंनान्यदस्त्यलम् ॥ ७३ ॥ संविदस्तत्प्रयत्नेननिश्चयोरूढःसम्यग्ज्ञानंविदुर्बुधाः ॥ पूर्वदृष्टमदृष्टंवायदस्याःप्रतिभासते ॥ ७४ ॥ संविदस्तत्प्रयत्नेन मार्जनीयंविजानता ॥ तदमार्जनमात्रंहिमहासंसारसंगतम् ॥ ७५ ॥ तत्प्रमार्जनमात्रंतुमोक्षइत्यनुभूयते ॥ संवेदनमनंतायदुःखायजननात्मने ॥ ७६ ॥

अर्थ—जैसे उत्तमदर्शनसे रज्जुका सर्प और दोचंद्रकी भ्रांति, और यह त्रिलोक शुद्ध संवित् मात्रहै अन्य कुछ नहीं है ॥ ७३ ॥ अंतःकरणमें इस दृढ निश्चयको सम्यग् ज्ञान पंडित लोग कहते हैं, पूर्वकालमें दृष्ट वा अदृष्ट जो कुछ इस संवित्‌को भान होता है ॥ ७४ ॥ उसको ज्ञानी पुरुषको चाहिये कि प्रयत्नसे मार्जन (मिथ्यारूपसे

निश्चय) करनाचाहिये और उसका मार्जन न करनाही आत्माके साथ महासंसारका संवन्धहै ॥ ७५ ॥ और इस दृश्यका चित्तसे मार्जन (मिथ्या निश्चय) मोक्ष है यह वार्ता अनुभूत है, और दृश्यका सत्यरूपसे दर्शन जन्ममरण-आदि अनंतदुःखके लिये है ॥ ७६ ॥

असंवित्तिरजाड्यस्थासुखायाजननात्मने ॥ अजडोगलितानंदस्त्यक्तसंवेदनोभव ॥ असंवेद्यप्रबुद्धात्मा यस्तुसत्वंरघूद्वह ॥ ७७ ॥ श्रीरामउवाच ॥ अजडश्चाप्यसंवित्तिःकीदृशोभवतिप्रभो ॥ असंवित्तौच जाड्यंतत्कथंवाविनिवर्तते ॥ ७८ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यःसर्वत्रानवस्थास्थोविश्रांतास्थोनकुत्रचित् ॥ जीवोनविंदतेकिंचिदसंविदजडोहिसः ॥ ७९ ॥ संविद्वस्तुदृशालंबःसयस्येहनविद्यते ॥ सोसंविदजडः प्रोक्तःकुर्वन्कार्यशतान्यपि ॥ ८० ॥

अर्थ—विषयोंका अदर्शन चिदेकरस तथा जडतारहित आत्मस्वभावमें परिणत होताहै इसलिये तुम विषय-दर्शनको त्यागकर पूर्णानंदरूप होजाओ, क्योंकि जो संवेद्य (विषय) रहितभी स्वयंप्रबुद्ध आत्मा है वह तुम हो ॥ ७७ ॥ श्रीरामजी बोले-हे प्रभो ! अजड और असंवेदन (ज्ञान तथा जडतारहित) कैसे होताहै ? क्योंकि जडताके त्यागमे संवेदन (ज्ञान) मात्र शेष और संवेदनके त्यागमें जडताका शेष रहताहै इसलिये संवेदनके अभावमें जडता कैसे निवृत्त होती है ? ॥ ७८ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले-हे रामजी ! बाह्यपदार्थोंको सत्यरूपसे जानना इसको संवित् कहतेहैं, और जीवन्मुक्तका जीव सर्वत्र वर्तमानविषयोंमें सत्यकी आस्था नहीं करता, और भूतभविष्यत्में कहींभी सत्यरूपसे आस्था (विश्वास) नहीं करता इसलिये सत्यरूपसे कुछ न जाननेसे उस अंशमें काष्ठपाषाणके समान संवेदनरहित है और स्वयंप्रकाशरूप होनेसे वह अजड (जडता शून्य) भी है ॥ ७९ ॥ पदार्थोंको सत्यबुद्धिसे जाननेको संवित् कहते हैं इस सद्वस्तुरूप संवित्का आलंब जिसको इस संसारमें नहीं है उसको असंवित् और अजड कहतेहैं चाहै वह अनन्तकार्य्योंको करताभी हो ॥ ८० ॥

संवेद्येनहृदाकाशोमनागपिनलिप्यते ॥ यस्यासावजडासंविज्जीवन्मुक्तश्चकथ्यते ॥ ८१ ॥ यदानभाव्यतेकिंचिन्निर्वासनतयात्मनि ॥ बालमूकादिविज्ञानमिवचस्थीयतेस्थिरम् ॥ ८२ ॥ तदाजाड्यविनिर्मुक्तमच्छवेदनमाततम् ॥ आश्रितंभवतिप्राज्ञोयस्माद्भूयोनलिप्यते ॥ ८३ ॥ समस्तवासनात्यागीनिर्विकल्पसमाधितः ॥ नीलत्वमिवखात्स्फारआनंदस्संप्रवर्तते ॥ ८४ ॥

अर्थ—और जिसकी बुद्धि विषयकेसाथ सद्रूपसे किंचित्भी लिप्त नहीं होती वह पुरुष अजड, असंवित् तथा जीवन्मुक्त कहाजाताहै ॥ ८१ ॥ वासनारहित होनेसे जब आत्मामें वर्तमानकालके किसी पदार्थोंकी भावना नहीं की जाती और बालक मूक आदिके तुल्य विज्ञान स्थित रहताहै ॥ ८२ ॥ उससमय जडतासे निर्मुक्त तथा व्याप्त स्वच्छज्ञान बुद्धिमान् पुरुषका अवलंब होताहै जिससे कि पुनः वह विषयमें लिप्त नहीं होता ॥ ८३ ॥ समस्तवासनाओंके त्यागीके लिये निर्विकल्पसमाधिसे विशाल आनन्द ऐसे प्रवृत्त होताहै जैसे आकाशसे नीलता ॥ ८४ ॥

योगिनस्तत्रतिष्ठंतिसंवेदनमसंविदः ॥ तन्मयत्वादनाद्यंतंतदप्यंतर्विलीयते ॥ ८५ ॥ गच्छंस्तिष्ठन्स्पृशञ्जिघ्रन्नपितेनसउच्यते ॥ अजडोगलितानंदस्त्यक्तसंवेदनःसुखी ॥ ८६ ॥ एतांदृष्टिमवष्टभ्यकष्टयायत्नचेष्टया ॥ तरदुःखांबुधेःपारमपारगुणसागर ॥ ८७ ॥ यथाबीजाद्बृहद्वृक्षोव्योमव्याप्नोतिकालतः ॥ तथैवेदंस्वसंकल्पात्संवेद्यमसदुत्थितम् ॥ ८८ ॥

अर्थ—संविद्रहित योगीजन उसी परमानंदस्वरूपमें स्थित रहते हैं और तन्मय होनेसे अनादि अनंत ब्रह्माकार संवेदन (ज्ञान) भी ब्रह्मप्रकाशकेही मध्यमें लीन होजाताहै है ॥ ८५ ॥ चलते बैठते स्पर्शकरते और देखतेभी वह संवेदनका त्यागी पुरुष सुखी और अजड तथा परमानन्दरूप कहलाताहै ॥ ८६ ॥ हे अपारगुणोंके सागर रामजी ! इस दृष्टिका अवलम्बन करके प्राणायाम आदि श्रमसे साध्य यत्नकी चेष्टासे दुःखरूप समुद्रके पारहो ॥ ८७ ॥ जैसे बीजसे महान्वृक्ष काल पाके आकाशको व्याप्तकरताहै ऐसेही आत्माके संकल्पसे अविर्भूत यह विषयप्रपंच मिथ्या है ॥ ८८ ॥

यदासंकल्प्यसंकल्प्यसंवित्त्वंविंदतेवपुः ॥ तदास्यजन्मजालस्यसैवगच्छतिबीजताम् ॥ ८९ ॥ जनयित्वात्मनात्मानंमोहयित्वापुनःपुनः ॥ स्वयंमोक्षंनयत्यंतःसंवित्त्वंविद्धिराघव ॥ ९० ॥ यदेवभावयत्येपातदेवभवतिक्षणात् ॥ नभवद्भूमिकामुक्तासमायातिचिराद्वपुः ॥ ९१ ॥ देवोनासौसुरोरक्षोयक्षःकिंकिन्नरोजनः ॥ आत्मैवाद्यविलासिन्याजगन्नाट्यंप्रनृत्यति ॥ ९२ ॥

अर्थ—पुनः २ संकल्प करके जब यह संवित् अपने संकल्पके स्वरूपको प्राप्त होती है तब वही अपने जन्मसमूहके बीजभावको प्राप्त होती है ॥८९॥ हे रामजी ! यह संवित् अपनेको आपही उत्पन्न करके और पुनः २ मोहन करके जब हृदयमें स्थित आत्मतत्वको देखती है तब आपही अपनेको मोक्षको प्राप्तकरती है ॥ ९० ॥ यह संवित् जैसी भावना करती है क्षणभरमें वैसाही होजाती है परंतु रागादिकी भूमिकाओंसे विना मुक्त हुये चिरकालसेभी अपने यथार्थ शुद्धचिद्रूपको नहीं प्राप्तहोती ॥ ९१ ॥ यह जो जगत्में देव असुर यक्ष किन्नरआदि देखते हो यह देव असुरआदि नहीं है किन्तु यह आत्माही है जो आदिसिद्ध विलासवती मायाके संग जगत्रूप नाट्यका नृत्य करताहै।

बध्वात्मानंरुदित्वाचकोशकारकृमिर्यथा ॥ चिरात्केवलतामेतिस्वयंसंवित्स्वभावतः ॥ ९३ ॥ जगज्जलधिजालानांसंविज्जलमलंगता ॥ एषैवापूर्वदिक्चक्रंस्फुरत्यद्र्यादितांगता ॥ ९४ ॥ द्यौःक्षमावायुराकाशंपर्वताःसरितोदिशः ॥ इत्यस्यावीचयःप्रोक्ताःसंवित्सलिलसंततेः ॥ ९५ ॥ संविन्मात्रंजगत्सर्वंद्वितीयानास्तिकल्पना ॥ इत्येवसम्यग्ज्ञानेनसंविद्गच्छतिनान्यताम् ॥ ९६ ॥

अर्थ—जैसे मकरी वा मायावी नट अपनेको बाधके और रोदन करके पुनः अपनेको मुक्त करताहुआ देखताहै ऐसेही यह संवित् स्वयं अपने स्वभावसे चिरकालसे केवलताको प्राप्त होती है ॥ ८३ ॥ जगत्रूप समुद्रके समूहोंकी पर्याप्तजलरूपताको संवित्ही प्राप्त है, और यही अपूर्व दिशाओंका मण्डल है, तथा यही पर्वतआदिरूपसेभी स्फुरित होरही है ॥ ९४ ॥ अन्तरिक्ष, पृथिवी, वायु, आकाश, पर्वत, नदी और दिशा ये सब संवित्रूप जलके समुद्रके तरंग कहेगये हैं ॥ ९५ ॥ यह सम्पूर्ण जगत् संविन्मात्रही है इसमें दूसरी कल्पना नहीं है इस सत्यज्ञानसे संवित् अद्वैतब्रह्मरूपताको प्राप्त होती है ॥ ९६ ॥

यदानविंदतेकिंचित्स्पंदतेनननवेपते ॥ स्वात्मन्येवस्थितिंयातिसंविन्नोलिप्यतेतदा ॥ ९७ ॥ अथास्याःसंविदोरामसन्मात्रंबीजमुच्यते ॥ संविन्मात्राद्गदेत्येषाप्राकाश्यमिवतेजसः ॥ ९८ ॥ द्वेरूपेतत्रसत्तायाएकंनानाकृतिस्थितम् ॥ द्वितीयमेकरूपंतुविभागोयंतयोःशृणु ॥ ९९ ॥ घटतापटताचैवत्वत्तामत्तेतिकथ्यते ॥ सत्तारूपविभागेनयत्तन्नानाकृतिस्थितम् ॥ १०० ॥

अर्थ—जब यह संवित् न चलायमान होती है न कम्पित होती है किन्तु अपने आत्मामें स्थिरताको प्राप्त होती है उससमय यह संवित् किसीमें लिप्त नहीं होती अर्थात् अपने स्वरूपके उत्तमज्ञानसे युक्त है ॥ ९७ ॥ हे रामजी ! इसके अनन्तर इस संवित्का सन्मात्र बीज मैं तुमसे कहताहुं कि संविन्मात्ररूप ब्रह्मसे यह सम्वित् (प्रतिबिंबसम्वित्) ऐसे उदित होती है जैसे सुर्यआदि तेजसे प्रभा ॥ ९८ ॥ हे रामजी ! इस सत्ताके दो रूप हैं उनमेंसे एक तो नानाप्रकारके आकारसे स्थित है और दूसरा तो एक सन्मात्ररूप है, अब उनका यह विभाग तुम सुनो ॥९९॥ घटता, पटता, त्वत्ता और मत्ताआदि रूपके विभागसे जो सत्ता कही जाती है वह तो नानाआकारसे स्थितहै

विभागंतुपरित्यज्यसत्तैकात्मतयाततम् ॥ सामान्येनैवसत्तायारूपमेकमुदाहृतम् ॥ १०१ ॥ विशेषंसंपरित्यज्यसन्मात्रंयदलेपकम् ॥ एकरूपंमहारूपंसत्तायास्तत्पदंविदुः ॥ २ ॥ रूपंनानाकृतित्वेनसत्तायानकदाचन ॥ असंवेद्यंसंभवतितस्मादेतदवस्तुकम् ॥ ३ ॥ एकरूपंतुयद्रूपंसत्तायाविमलात्मकम् ॥ नकदाचनतद्यातिनाशंनापिचविस्मृतिम् ॥ १०४ ॥

अर्थ—और घट, पट, तुम, हम इत्यादि विभागको त्यागकर सबके आत्मारूपसे जो सत्ता स्थितहै वह सव जगत्के अधिष्ठानरूप साधारणस्वभावसे सत्ताका एकरूप कहागयाहै ॥ १०१ ॥ घटपटआदि विशेषको त्यागकर सर्वत्र व्याप्त और निर्लिप्त जो सन्मात्र है उस सत्ताके एक महारूपको वस्तुतत्व (ब्रह्मपद) कहते हैं ॥ १०२ ॥ और सत्ताका जो घटपटआदि नाना आकार स्थितहै वह घटपट चूर्ण धूलिआदि अवस्थाओंमें अनुवृत्तरूपसे काष्ठादि संवेद्य नहीं है अर्थात् यह घट है यह पट है यह पिंड है यह चूर्ण है इत्यादि अवस्थाओंमें घटादिकी अनुवृत्ति नहीं होती और सन्मात्र (है) यह सर्वत्र लगाहै इसलिये घटपटआदि अवस्तु है और सन्मात्रही सद्वस्तुहै ॥ १०३ ॥ और सत्ताका एक जो विमल सन्मात्ररूप है वह न तो कदाचित् विस्मृत होता और न नाशको प्राप्त होताहै ॥ १०४ ॥

कालसत्ताकलासत्तावस्तुसत्तेयमित्यपि ॥ विभागकलनांत्यक्त्वासन्मात्रैकपरोभव ॥ ५ ॥ कालसत्तास्वसत्ताचप्रोन्मुक्तकलनासती ॥ यद्यप्युत्तमसद्रूपातथाप्येषानवास्तवी ॥ ६ ॥ विभागकलनायत्रविभिन्नपददायिनी ॥ नानाताकारणंदृष्टातत्कथंपावनंभवेत् ॥ ७ ॥ सत्तासामान्यमेवैकंभावयत्सकलंवपुः ॥ परिपूर्णपरानंदीतिष्ठाभारितादिग्भरः ॥ ८ ॥

अर्थ—भूत भविष्यत् पदार्थोंके व्यवहारोंमें "अस्ति" (है) इस व्यवहारके दर्शनसे वर्तमानकालही सब वस्तुओंका कारणहै यह कालकी सत्ता, अवयवोंके पुंजही अवयवीरूपसे स्फुरित होते हैं यह कला सत्ता और अवयवियोंमें अनुगत सत्ता जाति है यह वस्तुकी सत्ताहै इत्यादि सबकी विभागकल्पनाको त्यागकर तुम सन्मात्रमें परायण हो ॥ १०५ ॥ और कालकी सत्ताभी सब जगत्की सत्ताकेसमान अध्यस्तकल्पनाको त्यागकर उत्तम सत्ताही है तथापि विभक्तरूपसे बाधके योग्य होनेसे यह कालकी सत्ता वास्तविक नहीं है ॥ १०६ ॥ और भिन्न २ पदको देनेहारी विभागकी कल्पना जहां अनेकताका कारण दृष्ट है वह पद भला परमपावन कैसे होसकताहै ॥ १०७ ॥ हे रामजी! सत्ता सामान्यरूपसे संपूर्णशरीरको एकरूपसे भावना करतेहुये परिपूर्ण परमानंदयुक्त सब दिशाओंको तथा उनमें रहनेवाले सब पदार्थोंको पूर्णकरके तुम स्थित रहो ॥ १०८ ॥

सत्तासामान्यमात्रस्ययाकोटिःकोविदेश्वर ॥ सैवास्यबीजतांयातातततएवप्रवर्तते ॥ ९ ॥ सत्तासामान्यपर्यंतेयत्तत्कलनयोज्झितम् ॥ पदमाद्यमनाद्यंतंतस्यबीजंनविद्यते ॥ ११० ॥ सत्तालयंयातियत्रनिर्विकारंचतिष्ठति ॥ भूयोनावर्ततेदुःखेतत्रलब्धपदःपुमान् ॥ ११ ॥ तद्धेतुस्सर्वहेतूनांतस्यहेतुर्नविद्यते ॥ संसारःसर्वसाराणांतस्मात्सारंनविद्यते ॥ १२ ॥

अर्थ—हे ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ रामजी! सत्तासामान्यकी परम अवधिभूत जो सत्ता है वही इस जगत्के तथा प्रतिबिंबचेतनकी बीजताको प्राप्त है क्योंकि उसीसे यह सब प्रवृत्तहै ॥ १०९ ॥ सब सत्ताओंकि परम अवधिमें जो सब कल्पनाओंसे रहित अनादि अनंत पद है उसका बीज कोई नहीं है ॥ ११० ॥ और जहां सत्धर्मतारूप सत्ताभी धर्मधर्मीके विभागकी कल्पनासे लयको प्राप्त होती है और जो पद निर्विकार स्थित रहताहै उस पदमें जो स्थितिको पाताहै वह पुनः इस दुःखमय संसारमें नहीं आता और मोक्षरूप पुरुषार्थके साधनमें समर्थ होनेसे वही पुरुष है ॥ १११ ॥ वह पद सब कारणोंका कारण है और उसका कारण कोई नहीं है तथा वह सब सारवस्तुओंका सारहै उसका सार कोई नहीं है ॥ ११२ ॥

तस्मिंश्चिद्दर्पणेस्फारेसमस्तावस्तुदृष्टयः ॥ इमास्ताःप्रतिबिंबंतिसरसीवतटद्रुमाः ॥ १३ ॥ सर्वेभावा इमेतत्रस्वदंतेसाधुवारिधेः ॥ षड्रसाइवजिह्वायाःप्रकटत्वंप्रयांतिच ॥ १४ ॥ तस्मादच्छतरस्यापिचिदाकाशस्यवैपदम् ॥ सर्वेषांस्वादुजातीनामलमास्वादनंचतत् ॥१५॥ जायतेवर्ततेचैववर्द्धतेस्पृश्यतेथवा ॥ तिष्ठंतिचगलंतीहतत्रांगजगतांगणाः ॥ १६ ॥

अर्थ—उस चित्तरूप विशालदर्पणमें ये सब वस्तुओंकी दृष्टि ऐसे प्रतिबिंबित होती है जैसे तडागमें तटके वृक्ष ॥ ११३ ॥ उसी प्रत्यक्चेतनमें अध्यस्त होनेसे सब पदार्थ स्वादिष्ट होते हैं अर्थात् इन्द्रियोंकी प्रीति उत्पन्न करते हैं और उसी स्वादके समुद्रसे सब आनंद प्रकटताको ऐसे प्राप्त होते हैं जैसे षट्रस जिव्हाको ॥ ११४ ॥ स्वादरहितभी विषय जिसके संयोगसे स्वादुताको प्राप्त होते हैं इस कारण वह चिदाकाशका स्वरूप सब स्वादुजातीय आनन्द तथा प्रियोंके मध्यमें अतिस्वादुमय और प्रियतम है ॥ ११५ ॥ हे प्रिय रामजी! उसी आनंदमय परमात्मासे सब ब्रह्मांडोंके गण उत्पन्न होते हैं, उसीमें स्थित रहतेहैं, बढतेहैं, स्पर्श करते हैं, स्थितहैं, और अंतमें लीनभी उसीमें होते हैं ॥ ११६ ॥

तत्तद्गुरुगरिष्ठानांतत्तल्लघुलघीयसाम् ॥ तत्तत्स्थूलंस्थविष्ठानामणीयस्तदणीयसाम् ॥ ११७ ॥ दवीयसांदविष्ठंतदंतिकानांतदंतिकम् ॥ कनीयसांकनीयस्तत्तज्ज्येष्ठंज्यायसामपि ॥ १८ ॥ तेजसामपितत्तेजस्तमसामपितत्तमः ॥ वस्तूनामपितद्वस्तुदिशामप्यंगदिक्परा ॥ १९ ॥ तन्नकिंचिच्चकिंचिच्चतत्तदस्तीवनास्तिच ॥ तत्तद्दृश्यमदृश्यंचतत्तदस्मिनचास्मिच ॥ १२० ॥ रामसर्वप्रयत्नेनतस्मिन्परमपावने ॥ पदेस्थितिमुपायासियथाकुरुतथानघ ॥ २१ ॥ तदमलमजरंतदात्मतत्त्वंतदवगताबुपशांतिमेतिचेतः ॥ अवगतवितथैकतत्स्वरूपोभवभयमुक्तपदोसितच्चिराय ॥ १२२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे संसृतिबीजविचारयोगोपदेशोनामैकनवतितमःसर्गः ॥ ९१ ॥

अर्थ—वह प्रसिद्ध परमात्मा गुरुतर वस्तुओंमें सबसे गुरुतम, सब लघुतर वस्तुओंमें लघुतम, स्थूलतरोंमें स्थूलतम, और अणुतर वस्तुओंमें अणुतम (सबसे छोटा) है ॥ ११७ ॥ वही दूरतर पदार्थोंमें सबसे दूर, निकटतरोंमें सबसे निकट, कनिष्ठोंमें सबसे कनिष्ठ (लहुरा) और ज्येष्ठोंमें सबसे ज्येष्ठ ॥ ११८ ॥ वही सूर्य्यआदि

तेजोंकाभी तेज (प्रकाशक) अंधकारोंकाभी अंधकार, वस्तुओंकाभी वस्तु (आत्मा) और दिशाओंकाभी दिक् (अवकाशदाता) है ॥ ११९ ॥ लोकमें प्रसिद्धवस्तुओंमेंसे वह कुछ नहीं, अतिअल्प प्रसिद्ध वस्तुभी वही, भाव तथा अभावरूपभी वही है, दृश्य तथा अदृश्यरूप वही है, और प्रत्यक् तथा अहंकाररूपसेभी वही है ॥ १२० ॥ हे पापरहित रामजी! उस परमपावनपदमें जिसप्रकार तुम स्थितिको प्राप्त होओ सबप्रयत्नोंसे वही उपाय करो ॥ १२१ ॥ हे रामजी! वह आत्मपद अमल और अजर है उसीके साक्षात्कारअनुभवसे चित्त शांतिको प्राप्तहोताहै, इसलिये जिससमय तुम उस व्यापकस्वरूपको जानजाओगे उसीसमय पुनः चिरकाल (सदा) के लिये संसारमें न आनेके अर्थ तुम संसारके भयसे मुक्तरूपही हो ॥ १२२ ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये उपशमप्रकरणे भाषानुवादे संसृतिबीजविचारयोगोपदेशोनामैकनवतितमः सर्गः ॥ ९१ ॥

द्विनवतितमः सर्गः ॥ ९२ ॥

इस ९२ के सर्गमें पूर्वकथित स्थितियोंके भेदोंमें यत्नका गौरव और लाघव, और वासनाका क्षय, मनका नाश, तथा ज्ञानका साथ अभ्यास करना चाहिये यह विषयका वर्णन कियागयाहै ॥

॥ श्रीरामउवाच ॥ एतानितानिप्रोक्तानित्वयाबीजानिमानद ॥ कतमस्यप्रयोगेणशीघ्रंतत्प्राप्यतेपदम् ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ एतेषांदुःखबीजानांप्रोक्तंयद्यन्मयोत्तरम् ॥ तस्यतस्यप्रयोगेणशीघ्रमासाद्यतेपदम् ॥ २ ॥ सत्तासामान्यकोटिस्थेद्रागित्येवपदेयदि ॥ पौरुषेणप्रयत्नेनबलात्संत्यज्यवासनाम् ॥ ३ ॥ स्थितिंबध्नासितत्त्वज्ञक्षणमप्यक्षयात्मिकाम् ॥ क्षणेस्मिन्नेवतत्साधुपदमासादयस्यलम् ॥ ४ ॥

अर्थ—श्रीरामजी बोले—हे ब्रह्मन्! संसृतिरूपलताके आपने पूर्वोक्त बीज कहे हैं उनमेंसे किस उपायके प्रयोगसे (निवृत्तिसे) परमपद प्राप्त होताहै ॥ १ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी! इन दुःखोंके बीजोंका उत्तर जो २ मैंने कहाहै उस २ की निवृत्तिसे शीघ्र परमपद प्राप्त होताहै ॥ २ ॥ सत्तासामान्य अर्थात् शोधित तत्पदार्थकी पराकाष्ठामें स्थित शोधित त्वंपदार्थकी एकतासे अखण्डपदमें बलसे वासनाको त्यागकर पौरुषके यत्नसे ॥ ३ ॥ यदि निश्चलस्थितिको क्षणभरकेलियेभी प्राप्तकरते हो तो उसी क्षणमें पूर्णरीतिसे उस उत्तमपदको पाओगे ॥ ४ ॥

सत्तासामान्यरूपेवाकरोपिस्थितिमंगचेत् ॥ तत्किंचिदधिकेनेहयत्नेनाप्नोषितत्पदम् ॥ ५ ॥ संवित्तत्त्वेकृतध्यानोयदितिष्ठसिचानघ ॥ यत्नेनाधिकेनोच्चैरासादयसितत्पदम् ॥ ६ ॥ संवेद्येकेवलेध्यानंनसंभवतिराघव ॥ सर्वत्रसंभवादस्याःसंवित्तेरेवसर्वदा ॥ ७ ॥ यच्चिंतयसियद्यासियत्तिष्ठसिकरोपिच ॥ तत्रतत्रस्थितासंवित्संविदेवतदेवसा ॥ ८ ॥

अर्थ—हे प्रिय रामजी! शोधित जगत्के कारण सत्तासामान्यरूपमें यदि तुम स्थितिको करते हो तो किंचित् बोधरूप अधिक यत्नसे तुम आत्मपदको पाओगे ॥ ५ ॥ पापरहित रामजी! शोधित त्वंपदार्थरूप सम्वित्तत्वमें ध्याननिष्ठ होके यदि तुम स्थित हो तो अधिकयत्नसे उस उच्चपदको प्राप्त करोगे ॥६॥ हे रामजी! केवल संवेद्य (विषय) में तो ध्यानका सम्भव नहीं है क्योंकि विषयोंके पूर्व सदासर्वत्र इस सम्वित्की स्फूर्तिकाही सम्भव है और सम्वित्के छिपानेसे विषयका भान नहीं होसकता ॥ ७ ॥ हे रामजी! जो कुछ तुम चिंतन करते हो, जाते हो, स्थित हो, और करते हो वहां २ सम्वित् स्थित है इसलिये चिंतन और चिंतनीय आदि सब कुछ सम्वित्ही है ॥ ८ ॥

वासनासंपरित्यागेयदियत्नंकरोपिच ॥ तत्तेशिथिलतांयांतिसर्वाधिव्याधयःक्षणात् ॥ ९ ॥ पूर्वेभ्यस्तुप्रयत्नेभ्योविपमोयंहिसंस्मृतः ॥ दुःसाध्योवासनात्यागःसुमेरून्मूलनादपि ॥१०॥ यावद्विलीनंनमनोनतावद्वासनाक्षयः ॥ नक्षीणावासनायावच्चित्तंतावन्नशाम्यति ॥ ११ ॥ यावन्नतत्त्वविज्ञानंतावच्चित्तशमःकुतः ॥ यावन्नचित्तोपशमोनतावत्तत्त्ववेदनम् ॥ १२ ॥

अर्थ—हे रामजी! वासनाके परित्यागमें यदि तुम यत्न करोगे तब तो तुमारी आधिव्याधि सब क्षणमेंही दूर होजांयगे ॥ ९ ॥ पूर्व ध्यानआदि जितने प्रयत्न कहे हैं उन सबसे यह भयंकर कहागया है क्योंकि वासनाका त्याग सुमेरुके उखाडनेसेभी दुःसाध्य है ॥ १० ॥ जबतक मनका लय नहीं होता तबतक वासनाका क्षय नहीं होता और जबतक वासना क्षीण नहीं होती तबतक चित्त नहीं शांत होता ॥ ११ ॥ और जबतक आत्मतत्वका ज्ञान नहीं है तबतक चित्तकी शांति कहां और जबतक चित्तकी शांति नहीं है तबतक आत्मतत्वका ज्ञान कहां? ॥ १२ ॥

यावन्नवासनानाशस्तावत्तत्त्वागमः कुतः ॥ यावन्नतत्त्वसंप्राप्तिर्नतावद्वासनाक्षयः ॥ १३ ॥ तत्त्वज्ञानं मनोनाशोवासनाक्षयएवच ॥ मिथःकारणतांगत्वाडुःसाध्यानिस्थितान्यतः ॥ १४ ॥ तस्माद्राघवयत्ने नपौरुषेणविवेकिना ॥ भोगेच्छांदूरतस्त्यक्त्वात्रयमेतत्समाश्रयेत् ॥ १५ ॥ सर्वथातेसमंयावन्नस्वभ्य स्तामुहुर्मुहुः ॥ तावन्नपदसंप्राप्तिर्भवत्यपिसमाशतैः ॥ १६ ॥

अर्थ—जबतक वासनाका नाश नहीं होता तबतक आत्मतत्वका ज्ञान कहां, और जबतक आत्मतत्वकी प्राप्ति नहीं है तबतक वासनाका क्षय कहां ? ॥ १३ ॥ आत्मतत्वका ज्ञान, मनका नाश, और वासनाका क्षय ये तीनों परस्पर कारणताको प्राप्त हैं इसलिये दुःसाध्य स्थित है ॥ १४ ॥ हे रामजी ! इसकारणसे प्राणीको चाहिये कि विवेकयुक्त पौरुपसे प्रयत्न करके भोगकी इच्छाको दूर करके इन तीनों (मनोनाश आदि) का समाश्रय करे ॥ १५ ॥ ये तीनों साथही बार २ जबतक अभ्यास नहीं किये जाते तबतक अनन्तवर्षोंसेभी ब्रह्मपदकी प्राप्ति नहीं होती ॥ १६ ॥

वासनाक्षयविज्ञानमनोनाशामहामते ॥ समकालंचिराभ्यस्ताभवंतिफलदामुने ॥ १७ ॥ एकैकशोनिषे व्यंतेयद्येतेचिरमप्यलम् ॥ तन्नसिद्धिंप्रयच्छंतिमंत्राःसंकीलिताइव ॥ १८ ॥ चिरकालोपरचिताअप्ये तेसुधियापिच ॥ एकशःपरमभ्येतुंनशक्ताःसैनिकाइव ॥ १९ ॥ समसुद्योगमानीताःसंतएतेहिधीमता ॥ संसाराब्धिनिकृंततिजलान्यद्रितटानिव ॥ २० ॥

अर्थ—हे महामते मननशील रामजी ! वासनाका क्षय मनका नाश और आत्मतत्वका ज्ञान ये तीनो समानकालमें चिरकालतक अभ्यास कियेहुये फलदायक होते हैं ॥ १७ ॥ और एक २ चिरकालतक पूर्णरीतिसे सेवितभी परंतु सिद्धिको ऐसे नहीं देते जैसे कीलन कियेहुये मंत्र ॥ १८ ॥ बुद्धिमानपुरुषसे और चिरकालतक सेवादिसे वशमें करके कार्य्यमें एक २ करके नियुक्त ये परमात्माको प्राप्त होनेको ऐसे नहीं समर्थ होते जैसे एक २ योधा शत्रुके ऊपर आक्रमणको ॥ १९ ॥ और बुद्धिमान्पुरुषसे साथही वासनाके क्षय आदि संसाररूप समुद्रको ऐसे काटते हैं जैसे प्रवाहरूपसे मीलित जल पर्वतके तटोंको ॥ २० ॥

वासनाक्षयविज्ञानमनोनाशाःप्रयत्नतः ॥ समंसेव्यास्तवचिरंतेनताततनालिप्यसे ॥ २१ ॥ त्रिभिरेतैश्चि राभ्यस्तैर्हृदयग्रंथयोदृढाः ॥ निःशेषमेवत्रुट्यंतिबिसच्छेदाद्गुणाइव ॥ २२ ॥ जन्मांतरशताभ्यस्ताराम संसारसंस्थितिः ॥ साचिराभ्यासयोगेनविनानक्षीयतेक्कचित् ॥ २३ ॥ गच्छन्शृण्वन्स्पृशन्जिघ्रस्ति ष्ठन्जाग्रत्स्वपंस्तथा ॥ श्रेयसेपरमायास्यत्रयस्याभ्यासवान्भव ॥ २४ ॥

अर्थ—और हे प्रिय रामजी ! वासनाका क्षय, आत्मतत्वका ज्ञान और मनका नाश ये तीनो समकालहीमें चिरकालतक तुमारे सेव्य हो इससे तुम निर्लिप्त स्वभाव ब्रह्मपदमें स्थित होजाओगे ॥ २१ ॥ इन तीनोंके चिरकालतक अभ्यास करनेसे हृदयकी सब दृढग्रंथि ऐसे टूट जाती है जैसे मृणाल (कमल) दंडके छेदनसे उसके सूत ॥ २२ ॥ हे रामजी ! अनेक जन्मोंसे अभ्यास कीहुई यह संसारकी स्थिति है वह विना चिरकालके अभ्यास योगके क्षीण नहीं होती ॥ २३ ॥ हे रामजी ! चलते, फिरते, सुनते, स्पर्श करते, सूंघते, स्थितरहते, जागते और सोतेहुयेभी परम कल्याण मोक्षकेलिये तुम तीनोंका अभ्यास करो ॥ २४ ॥

वासनासंपरित्यागसमंप्राणनिरोधनम् ॥ विदुस्तत्त्वविदस्तस्मात्तदप्येवंसमाहरेत् ॥ २५ ॥ वासनासं परित्यागाच्चितंगच्छत्यचित्तताम् ॥ प्राणस्पंदनिरोधाच्चयथेच्छसितथाकुरु ॥ २६ ॥ प्राणायामचिराभ्या सैर्युक्त्याचगुरुदत्तया ॥ आसनाशनयोगेनप्राणस्पंदोनिरुद्ध्यते ॥ २७ ॥ यथाभूतार्थदर्शित्वाद्वासना नप्रवर्तते ॥ आदावंतेचवस्तूनामविसंवादियत्स्थितम् ॥ २८ ॥

अर्थ—वासनाके त्यागके साथही प्राणायामका अभ्यासभी करना तत्वज्ञानी लोग कहतेहैं इसलिये उसकाभी अभ्यास करनाचाहिये॥२५॥वासनाके त्याग तथा प्राणके निरोधसे चित्त अचित्तताको प्राप्त होताहै. अब तुमारी जैसी इच्छा हो वैसा करो ॥२६॥ प्राणायामके अभ्याससे योगाभ्यासमें कुशल गुरुकी दीहुई युक्तिसे, स्वस्तिकआदि आसनके जयसे,हित मित तथा पवित्र भोजनसे और यम नियम आदि योगसे प्राणोंकी गति निरुद्ध होती है॥२७॥सब वस्तुओंके आदि अन्त तथा मध्यमें विवादरहित सन्मात्र आत्मा स्थित है इस यथार्थदर्शनसे वासना नहीं प्रवृत्त होती २८

रूपंतदर्शनंज्ञानंक्षीयतेतेनवासना ॥ निःसंगव्यवहारित्वाद्भवभावनवर्जनात् ॥ २९ ॥ शरीरनाशदर्शि त्वाद्वासनानप्रवर्त्तते ॥ वासनाविभवेनष्टेनाचित्तंसंप्रवर्तते ॥ ३० ॥ संशांतेपवनस्पंदेयथापांसुर्नभस्त ले ॥ यःप्राणपवनस्पंदश्चित्तस्पंदःसएवहि ॥ ३१ ॥ तस्माज्जगतिजायंतेपांसवोवकरादिव ॥ प्राणस्पं दजयेयत्नःकर्तव्योधीमतोच्चकैः ॥ ३२ ॥

अर्थ—बहिर्मुखजनोंके संगके अभावसे, और सांसारिक मनोरथोंके वर्जनसे आत्मरूपका दर्शन तथा ज्ञान होताहै और उससे वासना क्षीण होती है ॥ २९ ॥ शरीरके नाशके देखनेसे वासना नहीं होती और वासनाके विभवके नष्ट होनेसे चित्त नहीं प्रवृत्त होता ॥ ३० ॥ प्राणस्पंदके शांत होनेसे चित्तका स्पंद ऐसे शांत होजाताहै जैसे वायुके शांत होनेसे आकाशमें धूलि, क्योंकि जो प्राणस्पंद हैं वेही चित्तके स्पंद हैं ॥ ३१ ॥ इसी प्राणकी गतिसे जगत्में अनेक अनर्थ ऐसे होते हैं जैसे धूलिकी राशिसे धूलि उडती है, प्राणके स्पंदके निरोधमें अति महान् प्रयत्न ॥३२

उपविश्योपविश्यैकचित्तकेनमुहुर्मुहुः ॥ अथवैनंक्रमंत्यक्त्वाचित्ताक्रमणमेवचेत् ॥ ३३ ॥ रोचतेतत्तदीर्घोपिकालेनबहुनापदम् ॥ नशक्यतेमनोजेतुंविनायुक्तिमनिंदिताम् ॥ ३४ ॥ अंकुशेनविनामत्तंयथादुष्टंमतंगजम् ॥ अध्यात्मविद्याधिगमःसाधुसंगमएवच ॥ ३५ ॥ वासनासंपरित्यागःप्राणस्पंदनिरोधनम् ॥ एतास्तायुक्तयःपुष्टाःसंतिचित्तजयेकिल ॥ ३६ ॥

अर्थ—एकान्तमें बैठ २ के बार करना चाहिये, अथवा यदि हठयोग करनेमें शक्ति वा रुचि नहीं है और चित्तकाही आक्रमण (जीतना) तुमको रुचताहै तो बहुतकालसे उस पदको पाओगे, क्योंकि अल्पकालमें अध्यात्मशास्त्रोक्त अनिंदित युक्तिके विना चित्त जीतनेके शक्य ऐसे नहीं है जैसे ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ अंकुशके विना दुष्ट मत्तगज और अध्यात्मविद्याकी प्राप्ति, साधुमहात्माओंका संग ॥ ३५ ॥ वासनाका त्याग, और प्राणके स्पंदका निरोध, ये प्रवलयुक्तियां निश्चयरूपसे चित्तके जीतनेके लिये हैं ॥ ३६ ॥

याभिस्तज्जीयतेक्षिप्रंधाराभिरिवभूरजः ॥ सतीषुयुक्तिष्वेतासुहठान्नियमयंतिये ॥ ३७ ॥ चेतस्तेदीपमुत्सृज्यविनिघ्नंतितमोंजनैः ॥ विमूढाःकर्तुमुद्युक्तायेहठाच्चेतसोजयम् ॥ ३८ ॥ तेनिबध्नंतिनागेंद्रमुन्मत्तंबिसतंतुभिः ॥ चित्तंचित्तस्यवाऽदूरंसंस्थितंस्वशरीरकम् ॥ ३९ ॥ साधयंतिसमुत्सृज्ययुक्तिंयेतान्हठान्विदुः ॥ भयाद्भयमुपायांतिक्लेशात्क्लेशंव्रजंतिते ॥ ४० ॥

अर्थ—जिन युक्तियोंसे वह चित्त शीघ्र ऐसे जीता जाताहै जैसे जलकी धाराओंसे पृथिवीकी धूलि, और इन पूर्वोक्तयुक्तियोंके विद्यमान रहते जो कोई सत्शास्त्रवेत्ता गुरुओंसे कयेहुए मार्गसे रहित कायका शोषण तथा मंत्रयंत्रादिरूप हठसे चित्तको वश करते हैं वे मानो दीपकको त्यागके अंजनसे अंधकारको नष्ट करते हैं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ वे मानो कमलके सूतोंसे हाथियोंको बांधते हैं, और चित्तको अथवा चित्तके समीपमें स्थित अपने तुच्छ शरीरको ३९ ॥ स्थिर करनेको जो मूढ युक्तिको त्यागकरके यत्न करते हैं उनको महात्मालोग शठ कहते हैं और वे एक ऐसे अन्यभयको तथा एक क्लेशसे दूसरे क्लेशको प्राप्त होते हैं ॥ ४० ॥

निर्धृतिंनाधिगच्छंतिद्वुर्भगाइवजंतवः ॥ भ्रमंतिगिरिकूटेषुफलपल्लवभोजनाः ॥ ४१ ॥ मुग्धमुग्धधियोभीतावराकाहरिणाइव ॥ मतिराछिन्नशीर्णांगीतदीयापेलवांगिका ॥ ४२ ॥ नक्वचिद्यातिविश्वासंमृगीग्रामगतायथा ॥ कल्लोलकलितंचेतस्तेषांजलइवाहितं ॥ ४३ ॥ प्रोह्यतेप्रपतद्दूरंतृणंगिरिनदीष्विव ॥ कालंयज्ञतपोदानतीर्थदेवार्चनभ्रमैः ॥ ४४ ॥

अर्थ—और वे अभागे जीवोंके समान उत्तम धीरताकी विश्रांतिको नहीं पाते किंतु पर्वतोंके शीखरोंके फल तथा पत्र भोजन करके भ्रमण किया करते हैं ॥ ४१ ॥ और वे अतिमूर्खतायुक्त बुद्धिरहित दीन हरिणके समान भयभीत रहते हैं और छिन्न तथा कोमल अंगवाली उनकी मति ॥ ४२ ॥ कहींभी विश्वासको ऐसे नहीं प्राप्त होती जैसे ग्राममें प्राप्त मृगी, और जलमें तरंगके समान भयस्थानमें चितारूप तरंगोंसे व्याप्त तथा विषयके ओर गिरनेवाला उनका चित्त ॥ ४३ ॥ रागआदिसे दूर ऐसे प्राप्त किया जाताहै जैसे नदियोंमें तृण. और यज्ञ, दान, तप, तीर्थ, तथा देवार्चनके भ्रमोंसे ॥ ४४ ॥

चिरमाधिशतोपेताःक्षपयंतिमृगाइव ॥ आत्मतत्त्वंविधिवशात्कदाचित्केचिदेवते ॥ ४५ ॥ दुःखदोषशताद्दग्धाविंदंतिनविदंतिवा ॥ आगमापायिनोऽनित्यानरकस्वर्गमानुषैः ॥ ४६ ॥ पातोत्पातकराकाराःक्षीयंतेकंदुकाइव ॥ इतोगच्छंतिनरकंततःस्वर्गमिहैवच ॥४७॥ आवृत्तिभिर्निवर्तंतेसरसीवतरंगकाः ॥ तस्माच्चैतांपरित्यज्यदुर्दृष्टिंरघुनंदन ॥ ४८ ॥ शुद्धांसंविदमाश्रित्यवीतरागःस्थिरोभव ॥ ज्ञानवानेवसुखवान्ज्ञानवानेवजीवति ॥ ज्ञानवानेवबलवांस्तस्माज्ज्ञानमयोभव॥४९॥संवेद्यवर्जितमनुत्तममाद्यमेकंसंवित्पदंविकलनंकलयन्महात्मन्॥हृद्येवतिष्ठकलनारहितःक्रियांतुकुर्वन्नकर्तृपदमेत्यशमोदितश्रीः ५०

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपायेषूपशमप्रकरणे संसृतिनिराकरणक्रमयोगोपदेशोनाम द्विनवतितमःसर्गः ॥ ९२॥

अर्थ—सैकडों मानसी चिंताओंसे व्याप्त चिरकालको ऐसे बिताते हैं जैसे वनमें मृग. और दैवेच्छासे आत्मतत्त्वको उनमेंसे कदाचित् कोई ॥ ४५ ॥ जो अनेक दुःख तथा रागआदि दोषोंसे चारोओरसे पीडितहैं वे आत्मतत्व नहीं जानते और कदाचित् अधिक प्रयत्नसे जानतेभी हैं, और वे सदा उत्पत्तिविनाशशील तथा अनित्य, तथा नरक-स्वर्ग मनुष्योंके भोगोंके भेदोंके निमित्तोंसे ॥ ४६ ॥ पतन और उत्पतनशील देहवाले होके कंदुक (गेंद) के समान पीडित होते हैं, कभी नरकमें जाते हैं कभी स्वर्गमें जाते हैं ॥ ४७ ॥ इसीप्रकार आवृत्तियोंसे वे ऐसे स्थित रहते हैं जैसे तडागमें तरंग, इसकारण हे रघुनन्दन इस दृष्टिको त्यागके ॥ ४८ ॥ शुद्धसंवित्का आश्रय लेके, वीतरागे होके तुम स्थिर हो. और हे रामजी ! संसारमें ज्ञानवान्ही सुखी है; ज्ञानवान्का जीवन सफल है, और ज्ञानवान्ही बली है इसलिये तुम ज्ञानी होजाओ ॥ ४९ ॥ हे महात्मन् रामजी ! विषयसे वर्जित, सर्वोत्तम आदि तथा कल्पनाशून्य निर्विकार सम्वित्पदकी भावना करतेहुये तथा कल्पनाशून्य होकर हार्दाकाश (ब्रह्म) मेंही स्थित रहो और व्युत्थानकालमें वर्ण आश्रमके अनुकूल क्रियाओंको करते हुयेभी शमतासे जीवन्मुक्तोंके गुणोंकी सम्पत्तिरूप शोभायुक्त होकर अकर्तृताके पदमें प्राप्त होकर स्थित रहो ॥ ५० ॥

इत्यार्षे वासिष्ठमहारामायणे वाल्मीकीये देवदूतोक्ते मोक्षोपाये भाषानुवादे उपशमप्रकरणे संसृतिनिराकरणयोगोपदेशो नाम द्विनवतितमः सर्गः ॥ ९२ ॥

त्रिनवतितमः सर्गः ॥ ९३ ॥

विचारकी प्रौढता तथा वैराग्यादि उत्तमगुणोंसे बोधकी स्थिति होनेपर विषयोंसे अकंपनीयताके कारणसे समान स्थिति इस ९३ के सर्गमें वर्णन कीगई है ॥

॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ मनागपिविचारेणचेतसःस्वस्यनिग्रहः ॥ मनागपिकृतोयेनतेनाप्तंजन्मनःफलम् ॥ १ ॥ विचारकणिकायैषाहृदिस्फुरतिपेलवा ॥ एषैवाभ्यासयोगेनप्रयातिशतशाखताम् ॥ २ ॥ किंचित्प्रौढविचारंतुनरंवैराग्यपूर्वकम् ॥ संश्रयंतिगुणाःशुद्धाःसरःपूर्णमिवांडजाः ॥ ३ ॥ सम्यग्विचारिणं यथाभूतावलोकिनम् ॥ आसादयंत्यपिस्फारानाविद्याविभवाभृशम् ॥ ४ ॥

—श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! अल्पविचारसेभी जिसने किंचित्भी अपने चित्तका निग्रह किया है अपने जन्मका फल प्राप्त किया ॥ १ ॥ हे रामजी ! विचाररूप कल्पवृक्षका कोमल अंकुरभी जो हृदयमें फुरित होताहै यही अभ्यासके योगसे अनंत शाखा रूपताको प्राप्त होताहै. ॥ २ ॥ जिसका विचार किंचित् प्रौढताको प्राप्तहै उस वैराग्ययुक्त मनुष्यको शमदमआदि शुद्ध गुण ऐसे आश्रय करते हैं जैसे पूर्ण तडागका पक्षी वा मत्स्य ॥ ३ ॥ उत्तमविचारयुक्त और यथार्थ आत्माको देखनेवाले बुद्धिमान् ज्ञानीको ब्रह्मापर्य्यंतके विशाल ऐश्वर्य्यभी प्रलोभित नहीं करसकते ॥ ४ ॥

किंकुर्वंतीहविषयामानस्योवृत्तयस्तथा ॥ आधयोव्याधयोवापिसम्यग्दर्शनसन्मतेः ॥ ५ ॥ क्वभ्रमत्पवनापूरास्तडित्पटलपाटलाः ॥ पुष्करावर्तजलदागृहीताबालमुष्टिभिः ॥ ६ ॥ क्वनभोमध्यसंस्थेंदुर्मुग्धैर्मणिसमुद्गकैः ॥ मुग्धयांगनयाबद्धोमुग्धेंदीवरशंकया ॥ ७ ॥ क्वकटमोच्चलद्भृंगमंडलोत्पलशेखराः ॥ मुग्धस्त्रीश्वासमधुरैर्मशकैर्मथितागजाः ॥ ८ ॥

अर्थ—आत्मदर्शनरूप सम्यग्दर्शनसे सद्बुद्धिवालेका विषय, मानसी वृत्ति तथा शारीरिक और मानसी पीडा क्या करसकती हैं ॥ ५ ॥ भ्रमणकर पवनके प्रवाहसहित विद्युत्के पटलसे पीतवर्ण प्रलयकालके पुष्करावर्त मेघ बालकोंकी मुष्टिसे कहां ग्रहण किये गये हैं ॥ ६ ॥ विकाशसे रमणीय रात्रिके कमलोंसे अपने नेत्रके पराभवकी आशंकासे मुग्धस्त्रीने रत्नकी पिटारीमें आकाशके मध्यमें स्थित चंद्रमाको कहां बांधाहै ॥ ७ ॥ गंडस्थलोंसे चलायमान भृंगोंके मंडलरूप नीलकमलरूपी शिरोभूषणसे शोभित मतंगजोंको स्त्रियोंके श्वासोंसेभी कोमल मच्छरोंने कहां हनन कियाहै ॥ ८ ॥

क्वविषोल्लेभमुक्ताफलोल्लासलसत्सन्नखपंजराः ॥ सिंहास्समरसंरब्धाहरिणैःप्रविमर्दिताः ॥ ९ ॥ क्वप्रासभूमिकोधीरोज्झसनिर्यासदग्धोन्नतवनद्रुमाः ॥ क्षुधिताजगराःक्षुब्धैर्निगीर्णाबालदर्दुरैः ॥ १० ॥ क्वप्राप्तभूमिकोधीरोज्ञतज्ज्ञोयोविवेकवान् ॥ आक्रांतःकिलविक्रांतोविषयेंद्रियदस्युभिः ॥ ११ ॥ विचारधियमप्रौढांहरंतिविषयारयः ॥ प्रचंडपवनामूर्द्धीकृतवृंतांलतामिव ॥ १२ ॥

अर्थ—अपनेसे विदीर्ण कियेहुये गजोंके मुक्ताओं (मोतियों) से नखपिंजरमें शोभायमान तथा ऐसे सिंहोंको हरिणोंने कब माराहै ॥ ९ ॥ विषकी अधिकतासे रसरूप विषके बिंदुओंसे बडे २ ऊंचे वनके वृ भस्म करनेवाले क्षुधित अजगरोंको बालमंडूकों (मेडकों) ने कब निगललियाहै ॥ १० ॥ चतुर्थ पंचमादि कामें प्राप्त; ब्रह्मज्ञाता उत्तरभूमिकाके जीतनेमें उद्युक्त ज्ञानीपुरुष विष तथा इन्द्रियरूप शत्रुओंसे कब जीता ॥ ११ ॥ निर्बलविचारकी बुद्धिको विषरूप शत्रु ऐसे हरण करते हैं जैसे छिन्नमूल कोमललताको प्रचंड पवन ॥ १

नविवेकलवंमोढंभंक्तुंशक्ताद्दुराशयाः ॥ कल्पक्षोभमहाधीरंशैलंमंदानिलाइव ॥ १३ ॥ अगृहीतमहीपीठंविचारकुसुमद्रुमम् ॥ चिंतावात्याविधुन्वंतिनास्थिरस्थितिमुस्थितम् ॥ १४ ॥ गच्छतस्तिष्ठतोवापिजाग्रतःस्वपतोपिवा ॥ नविचारमयंचेतोयस्यासौमृतउच्यते ॥ १५ ॥ किमिदंस्याज्जगत्किंस्यादेहमित्यनिशंशनैः ॥ विचारयाध्यात्मदृशास्वयंवासज्जनैःसह ॥ १६ ॥

अर्थ—विवेकके लेशको रागआदि वृत्ति नाश करनेमें ऐसे समर्थ नहीं हैं जैसे अवांतरकल्पके क्षोभमेंभी महाधीर मेरुआदि पर्वतको पवन ॥ १३ ॥ पृथिवीरूप महापीठ अर्थात् मूलबंधनको जिसने नहीं ग्रहण कियाहै ऐसे विचाररूप पुष्पके वृक्षको चितारूप आंधी कंपाती है न कि दृढतासे स्थित वृक्षको ॥ १४ ॥ चलते बैठते जागते और सोते जिसका चित्त विचारमय नहीं है वह नर मृतक कहाता है ॥ १५ ॥ हे रामजी ! यह जगत् क्याहै यह शरीर क्याहै ऐसा निरंतर अध्यात्मदृष्टिसे स्वयं वा सज्जनमहात्माओंके साथ विचार करो ॥ १६ ॥

अंधकारहरेणाशुविचारेणपरंपदम् ॥ दृश्यतेविमलंवस्तुप्रदीपेनेवभास्वता ॥ १७ ॥ ज्ञानेनसर्वदुःखानांविनाशउपजायते ॥ कृतालोकविलासेनतमसामिवभानुना ॥ १८ ॥ ज्ञानेप्रकटतांयातेज्ञेयंस्वयमुदेत्यलम् ॥ रवावभ्युदितेभूमावालोकइवनिर्मलः ॥ १९ ॥ येनशास्त्रविचारेणब्रह्मतत्त्वंप्रबुद्ध्यते ॥ तज्ज्ञानमुच्यतेज्ञेयादभिन्नमिवसंस्थितम् ॥ २० ॥

अर्थ—प्रमादरूप अन्धकारको नाश करनेवाले विचारसे विमल परमपद ऐसे देखपडताहै जैसे प्रकाशमान दीपकसे वस्तु ॥ १७ ॥ ज्ञानसे सब दुःखोंका नाश ऐसे होताहै जैसे प्रकाशसे विलासकारी सूर्यसे अन्धकारोंका ॥ १८ ॥ ज्ञानके प्रकट होनेपर ज्ञेयवस्तु पूर्णरीतिसे स्वयं उदयको ऐसे प्राप्त होती है जैसे सूर्यके उदय होनेपर पृथिवीपर निर्मल प्रकाश ॥ १९ ॥ जिस शास्त्रके विचारसे ब्रह्मतत्त्व जानाजाताहै और ज्ञेयब्रह्मसे अभिन्नरूपसे जो स्थित है उसको ज्ञान कहते हैं ॥ २० ॥

[illegible]ज्ञानमंगविद्बुधाः ॥ ज्ञेयंतस्यांतरेवास्तिमाधुर्यंपयसोयथा ॥ २१ ॥ सम्यग्ज्ञानस[illegible]लोकःपुमान्ज्ञेयमयःस्वयम् [illegible]त्यापीतमैरेयःसदामदमयोयथा ॥ २२ ॥ समंस्वरूपममलंज्ञेयंब्रह्मपरंविदुः ॥ ज्ञानाभिगममात्रेणतत्स्वयंसंप्रसीदति ॥ २३ ॥ ज्ञानवान्मुदितानंदोनकचित्परिमज्जति ॥ जीवन्मुक्तोगतासंगःसम्राडात्मैवतिष्ठति ॥ २४ ॥

अर्थ—हे प्रिय रामजी ! विचारसे आविर्भूत आत्मज्ञानको पंडितलोग ज्ञान कहते हैं और ज्ञेय उसके भीतर ऐसे है जैसे दुग्धमें मधुरता ॥ २१ ॥ सम्यग्ज्ञानसे समानप्रकाशयुक्त पुरुष सदा स्वयं ज्ञेयमय ऐसे रहताहै जैसे मदिरा पीनेवाला सदा मदमय ॥ २२ ॥ समान निर्मलरूप ब्रह्मको ज्ञेय कहते हैं और ज्ञानकी प्राप्तिमात्रसे स्वयं अविद्या तथा उसके कार्य्यके निराशसे प्रसन्न होताहै ॥ २३ ॥ ज्ञानवान् पुरुष आनन्दयुक्त कहीं निमग्न नहीं होता किन्तु वह जीवन्मुक्त, संगदोषरहित राजाधिराजके आत्माके समान पूर्णमनोरथमें स्थित रहताहै ॥ २४ ॥

ज्ञानवान्हृद्यशब्देषुवीणावंशरवादिषु ॥ कामिन्याःकांतगीतेषुसंभोगमलिनेषुच ॥ २५ ॥ वसंतमदमत्तानांषट्पदानांस्वनेषुच ॥ प्रावृट्प्रसरपुष्पेषुजलदस्तनितेषुच ॥ २६ ॥ उत्तांडवशिखंडेषुकेकाकलरवेषुच ॥ रणितांभोदखंडेषुसारसक्कणितेषुच ॥ २७ ॥ कर्तर्यादिकरांतेषुगंभीरमुरजेषुच ॥ ततावनद्धसुषिरचित्रवाद्यस्वनेषुच ॥ २८ ॥

अर्थ—और ज्ञानवान् पुरुष वीणावंशआदि मनोहरशब्दोंमें, संभोगसे मलिन कामिनियोंके प्रिय गीतोंमें २५ वसंतऋतुके मदसे मत्त भ्रमरोंके शब्दोंमें, वर्षाके पुष्पोंमें मेघोंके, शब्दोंमें ॥ २६ ॥ मयूरके नृत्य तथा मधुरशब्दोंमें, शब्दयुक्त मेघोंके खण्डोंमें, और सारसोंके मधुरशब्दोंमें ॥ २७ ॥ सूची शलाका सूत्र और कंटकरचित शब्दोंमें और चर्मसे मिढे हुये मुरज (मृदंग) तंत्री (वीणादि) सुषिर (छिद्र) युक्त वंशआदि चित्रविचित्र वाद्योंमें ॥ २८ ॥

ज्ञानवान्बालकदकेषुचित्रनिवभ्रांतिरूक्षेषुमधुरेषुच ॥ रणितेपुरतीरामपर्य्यन्विवनिशाकरः ॥ २९ ॥ ज्ञानवान्बालकद[illegible] केषुक्रचित्रवभ्रांतिस्वायत्तेष्वव[illegible] [illegible]भपल्लवपालिषु ॥ सुरगंधर्वकन्यांगलतानंदनकेलिषु ॥ ३० ॥

सक्तधीः ॥ रामस्पर्शरतिंधीरोहंसोमरुमहीष्विव ॥ ३१ ॥ ज्ञानवान्पिंडखर्जूरकदंबपनसादिषु ॥ मृद्वीकौर्वारुकाक्षोटबिंबजंबीरजातिषु ॥ ३२ ॥

अर्थ—किसीमें अपना चित्त नहीं लगता. हे रामजी ! रूक्ष वा मधुरशब्दोंमें प्रीति ऐसे नहीं बांधता जैसे कमलके पुष्पोंमें चन्द्रमा ॥ २९ ॥ और ज्ञानवान् पुरुष नूतन केलोंके स्तंभोंकी पल्लवोंकी पंक्ति जिनमें शोभित हैं, तथा देव गंधर्व कन्याओंके अंगोंकी लतासे शोभित नंदनवनकी क्रीडाओंमें किसीमेंभी अपनी प्रीति नहीं बांधता. हे रामजी ! अपने स्वाधीन विषयोंमेंभी वह प्रीति ऐसे नहीं करता जैसे मरुस्थलमें हंस ॥ ३० ॥ ३१ ॥ पिंडखजूर, कदंब कटहरआदि तथा द्राक्षा (अंगूर) खर्बूजा, अखरोट, बिंब, और नींबूआदि फलोंमें ॥ ३२ ॥

मदिरामधुमैरेयमाध्वीकासवभूमिषु ॥ दधिक्षीरघृतामिक्षानवनीतौदनादिषु ॥ ३३ ॥ षड्रसेषुविचित्रेषु लेह्यपेयविलासिषु ॥ फलेष्वन्येषुमूलेषुशाकेष्वप्यामिषेषुच ॥ ३४ ॥ केषुचिन्नानुबध्नातितृप्तमूर्त्तिरसक्तधीः ॥ आस्वादनरतिर्विप्रःस्वशरीरलवेष्विव ॥ ३५ ॥ ज्ञानवान्यमचंद्ररुद्रार्कानिलसद्मसु ॥ मेरुमंदरकैलाससह्यदर्दुरसानुषु ॥ ३६ ॥

अर्थ—मदिरा, मधु, मैरेय, माध्वीक और आसवआदि मद्यभेदोंमें, और दधि दुग्ध, घृत, आमिक्षा (तप्त दुग्धमें दधि डालनेसे पिंडीभूत द्रव्य) नवनीत और ओदनादि पदार्थोंमेंभी प्रीति नहीं करता ॥३३॥ भक्ष्य भोज्य लेह्य तथा प्रेमका जिनमें विलास है ऐसे विचित्र षट्रसोंमें तथा अन्य २ प्रकारके फल और मूलोंमें शाकोंमें तथा किसीप्रकारके मांसोंमेंभी वह असक्तबुद्धि और तृप्तमूर्ति प्रीतिको ऐसे नहीं करते जैसे अपने शरीरके खण्डोंमें आस्वादनकी प्रीतियुक्त ब्राह्मण ॥ ३५ ॥ ज्ञानवान् प्राणी यम, चन्द्र, रुद्र, सूर्य और वायुके स्थानोंमें तथा मेरु, मन्दर, कैलास, सह्य और दर्दुरआदि पर्वतोंके रेशमके समान कोमल शिखरोंपर ॥ ३६ ॥

कौशेयदलजालेषुचंद्रबिंबकलादिषु ॥ कल्पपादपकुंजेषुदेहशोभाविलासिषु ॥ ३७ ॥ रत्नकांचनकुड्येषुमुक्तामणिमयेषुच ॥ तिलोत्तमोर्वशीरंभामेनकांगलतासुच ॥ ३८ ॥ केषुचिद्दर्शनंश्रीमान्नाभिवांछत्यसक्तधीः ॥ परिपूर्णमनामानीमौनीशत्रुषुचाचलः ॥ ३९ ॥ ज्ञानवान्कुंदमंदारकह्लारकमलादिषु ॥ कुमुदोत्पलपुन्नागकेतक्यगुरुजातिषु ॥ ४० ॥

अर्थ—और चन्द्रबिंबकी कलाओंमें, तथा दिव्यशरीरकी संपत्ति होनेसे देहकी शोभासे विलासी कल्पवृक्षके कुंजोंमें ॥ ३७ ॥ तथा मुक्तामणिजटित रत्न तथा सुवर्णरचित स्थानोंमें, तथा तिलोत्तमा, उर्वशी, रंभा और मेनकाआदिके अंगरूप लताओंमेंभी शोभावान् और असक्तबुद्धि ज्ञानीपुरुष दर्शन नहीं चाहता, किन्तु परिपूर्णचित्त, मानी और शत्रुओंमें अचल स्थितरहताहै. और ज्ञानीपुरुष कुंद, मंदार, रक्तकमलादिमें, कुद, नालकमल, पुंनाग, केतकी आदि और पुष्पजातियोंमें ॥ ४० ॥

कदंबचूतजंब्वाम्रकिंशुकाशोकवृक्षेषु ॥ जपातिमुक्तसौवीरबिंबपाटलजातिषु ॥ ४१ ॥ चंदनागुरुकर्पूरलाक्षामृगमदेषुच ॥ काश्मीरजलवंगैलाकंकोलतगरादिषु ॥ ४२ ॥ केषुचिन्ननिबध्नातिसौगंध्यरतिमेकधीः ॥ समबुद्धिरविक्षोभोमद्यामोदेष्विवद्विजः ॥ ४३ ॥ अब्धौगुडगुडारावेप्रतिश्रुत्खस्वनेगिरौ ॥ निनादेचमृगेंद्राणांनक्षुभ्यतिमनागपि ॥ ४४ ॥

अर्थ—और कदंब, चूत, जामुन, आम, किंशुक, और अशोकआदि वृक्षोंमें, और जपा, अतिमुक्ता, सौवीर, बिंब, तथा पाटल, आदि लताकी जातियोंमें ॥ ४१ ॥ चन्दन, अगुरु, कर्पूर, लाह, कस्तूरी, केशर, लवंग, इलायची कंकोल और तगरआदि अंगरागोंमेंसे किसीमेंभी ॥ ४२ ॥ प्रिय अप्रियमें समबुद्धि तथा एकब्रह्ममें बुद्धिनिष्ठ सौगन्ध्यकी बुद्धि ऐसे नहीं बांधता जैसे मदिराके सौगन्ध्यमें ब्राह्मण ॥ ४३ ॥ गडगडाहट शब्दसहित समुद्रमें, प्रतिध्वनिरूप आकाशजनित शब्दोंमें, और सिंहोंके नादमेंभी ज्ञानी किंचित् भयभीत नहीं होता ॥ ४४ ॥

द्विपद्वैरीनिनादेनपटहारणितेनच ॥ कटुकोदंडघोषेणनबिभेतिमनागपि ॥ ४५ ॥ मत्तवारणबृंहासुवेतालकलनासुच ॥ पिशाचरक्षःक्ष्वेडासुमनागपिनकंपते ॥ ४६ ॥ अशनिस्वनघोषेणनगस्फोटरवेणच ॥ ऐरावणनिनादेनसम्यग्ध्यानीनकंपते ॥ ४७ ॥ वहत्क्रकचकापेणसितासिदलनेनच ॥ शराशनिनिपातेनकंपतेनस्वरूपतः ॥ ४८ ॥

अर्थ—शत्रुओंके नगारे आदिके नादसे डमरूके शब्दसे, कर्णकटु धनुषके शब्दसेभी ज्ञानी किंचिदभी नहीं डरता ॥४५॥ मत्तहाथियोंकी गर्जनामें, वेतालोंके कलहोंमें, पिशाच राक्षसआदिके सिंहनादोंमें ज्ञानी किंचिदभी नहीं कांपता ॥ ४६ ॥ वज्रके शब्दसे, पर्वतके स्फोटसे, और ऐरावतके नादसे सम्यग् ध्यानयुक्त पुरुष नहीं कांपता ॥ ४७ ॥

चलतेहुये आरेके घर्षणसे न चोखी तरवारके दलनसे, बाण तथा वज्रके निपातसे ज्ञानी अपने स्वरूपसे चलायमान नहीं होता ॥ ४८ ॥

नानंदमेत्युपवनेनखेदमुपगच्छति ॥ नखेदमेतिमरुषुनानंदमुपगच्छति ॥ ४९ ॥ पूतांगारसमाकल्पसैकतेष्वपिधन्वसु ॥ पुष्पप्रकरसंछन्नमृदुशाद्वलभूमिषु ॥ ५० ॥ क्षुरधारासुतीक्ष्णासुशय्यासुचनवोत्पलैः ॥ उन्नताचलदेशेषुकूपकोशतलेषुच ॥५१॥ शिलास्वर्कांशुरूक्षासुमृद्वीषुललनासुच ॥ संपत्स्वापत्सुचोग्रासुरमणेषूत्सवेषुच ॥ ५२ ॥

अर्थ—उपवन (वाटिका) में न आनंदको प्राप्त होताहै और न खेदको, ऐसेही मरुस्थलमें न वह खेदको प्राप्त होताहै और न आनंदको ॥ ४९ ॥ भस्मरहित अंगारके समान असह्य वालुकासहित मरुस्थलोंमें और पुष्पोंके समूहसे आच्छादित कोमल घासमय भूमियोंपर ॥ ५० ॥ तीक्ष्ण क्षुराकी धाराओंपर, नूतन कमलोंसे आच्छादित शय्याओंपर, उन्नतपर्वतोंमें, कूपोंके अधोभागोंमें ॥ ५१ ॥ सूर्यके किरणोंसे तप्त शिलाओंपर, कोमललताओंमें, संपत्तियोंमें, तथा उग्रविपत्तियोंमेंभी ॥ ५२ ॥

विहरन्नपिनोद्वेगीनानंदमुपगच्छति ॥ अंतर्मुक्तमनानित्यंकर्मकर्तेवतिष्ठति ॥ ५३ ॥ अयस्संकुचितांगासुनरकारण्यभूमिषु ॥ परस्परेरितानंतकुंततोमरवृष्टिषु ॥ ५४॥ नविभेतिनवादत्तेवैवश्यंनचदीनताम् ॥ समःस्वस्थमनामौनीधीरस्तिष्ठतिशैलवत् ॥ ५५ ॥ अपवित्रमपथ्यंचविषसिक्तंमलाद्यपि ॥ भुक्त्वाजरयतिक्षिप्रंक्लिन्नंनष्टंचमृष्टवत् ॥ ५६ ॥

अर्थ—विहारकरतेहुयेभी तत्त्वज्ञानी न भयको प्राप्त होताहै और न आनंदको, किंतु भारको वहनेवाला श्रांत होके भार उतारके विश्रामके सुखको अनुभव करतेहुये जैसे रहताहै वैसेही अंतर्मुख होके स्थित रहताहै ॥५३॥ और ज्ञानी लोहमययंत्रोंसे अंगोंको संकुचित करनेवाली नरककी अरण्यभूमियोंमें, जिनमें परस्पर बर्छी तथा तोमर (भाला) आदि अस्त्रोंकी वृष्टि होरही हैं वहांपर ॥ ५४ ॥ न भयभीत होताहै और न व्याकुलता वा दीनताको ग्रहण करताहै किंतु सम, स्वस्थचित्त, मौनी और धीर पर्वतके समान स्थित रहता है ॥ ५५ ॥ और अपवित्र, अपथ्य, विषसे मिले गोमयआदि, गीले और रसरहित आहारकाभी भोजन करके पचालेताहै ॥ ५६ ॥

[illegible] सलिलांधसाम् ॥ असक्तबुद्धिस्तत्त्वज्ञोभवत्यास्वादनेसमः ॥ ५७ ॥ मैरेय [illegible] आतविपाकेल्कक्ष। [illegible] ॥ शाद्[illegible]तृणकेशांतैर्नहृष्यतिनकुप्यति ॥ ५८ ॥ जीवितस्यापिहर्तारंदा [illegible] मदिराक्षीररक्तमेदोरसासवैः ॥ रूक्ष[illegible] [illegible]पश्यति ॥ ५९ ॥ स्थिरास्थिरशरीरेषुरम्यारम्येषुवतारंचैकरूपया ॥ दृशाप्रसादमाधुर्यशालिन्योपत्तदर्स[illegible] स्तुषु ॥ नहृष्यतिग्लायतिवासदासमतयेद्धया ॥ ६० ॥

अर्थ—और बिंबके फल, विषके तुल्य अति कसैले दूध तथा ऊखके रस [illegible] और ओदन (भात) के आस्वादनमें तत्त्वज्ञानी असक्तबुद्धि होनेसे समानचित्त होताहै ॥ ५७ ॥ मैरेय (मद्यविशेष [illegible] मदिरा, दुग्ध, रक्त, चर्बीके रस तथा अन्य मादकरसोंसे, रूखी हड्डी और तृणकेशादिसेभी ज्ञानीपुरुष न प्रसन्न होताहै और न कोप करताहै ॥ ५८ ॥ और जीवनके हर्ता तथा जीवनके दाताकोभी प्रसन्नता तथा मधुरतासे शोभायमान एकरूपदृष्टिसे देखताहै ॥ ५९ ॥ देवआदिके चिरस्थायी और मनुष्यआदिके अल्पकालस्थायी शरीरोंमें और उनके भोग्य रमणीय और अरमणीय विषयोंमें सदा प्रदीप्त समतासे न प्रसन्न होताहै और न शोक करताहै ॥ ६० ॥

मुक्तास्थत्वादनास्थेयरूपत्वाज्जगतःस्थितौ ॥ नूनंविदितवेद्यत्वान्नीरागत्वात्स्वचेतसः ॥६१॥ नकस्यचिन्नोकदाचिदक्षस्याविषयस्थितौ ॥ ददातिप्रसरंसाधुराधिमोज्झितयाधिया ॥ ६२ ॥ अतत्त्वज्ञमविश्रान्तमलब्धात्मानमस्थितिम् ॥ निगिरंतींद्रियाण्याशुहरिणाइवपल्लवम् ॥ ६३ ॥ उह्यमानंभवांभोधौवासनावीचिवेल्लितम् ॥ निगिरंतींद्रियग्राहामहाक्रंदपरायणम् ॥ ६४ ॥

अर्थ—चित्तके रागरहित होनेसे, और वेद्य (आत्मा) को जाननेसे जगत्की स्थितिमें आस्थाके अभावसे और विषयोंके मिथ्या होनेसे ॥ ६१ ॥ इन्द्रियोंकी विषयकी स्थितिमें कदाचित् किसीको चिंतारहित बुद्धिसे ज्ञानीरूप अवसर नहीं देता ॥ ६२ ॥ संसाररूप समुद्रमें वहतेहुये तथा वासनारूप तरंगोंसे वेष्टित और महारोदनमें परायण प्राणीको इन्द्रियरूप ग्राह निगलजातेहैं ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

विचारिणंभव्यपदंविश्रांतधियमात्मनि ॥ नहरंतिविकल्पौघाजलौघाइवपर्वतम् ॥ ६५ ॥ सर्वसंकल्पसीमांतेविश्रांतायेपरेपदे ॥ तेषांलब्धस्वरूपाणांमेरुरेवतृणायते ॥ ६६ ॥ जगज्जरत्तृणलवोविषंचामृत

मेवच ॥ क्षणःकल्पसहस्रंचसममाततचेतसाम् ॥ ६७ ॥ संविन्मात्रंजगदितिमत्वामुदितबुद्धयः ॥ संविन्मयत्वादंतस्थजगत्काविहरंत्यमी ॥ ६८ ॥

अर्थ—विचारयुक्त, भव्यपदमें स्थित और आत्मामें विश्रांत बुद्धिवाले जीवको विकल्पोंके समूह ऐसे नहीं हरते जैसे पर्वतको जलके प्रवाह ॥ ६५ ॥ हेरामजी! सब संकल्पोंके सीमाके अंतर्भूत परमपदमें जो विश्राम करते हैं उन आत्मस्वरूपको प्राप्त करनेवालोंको मेरुभी तृणके तुल्य है ॥ ६६ ॥ पूर्ण आत्माकार विस्तृतचित्तवालोंके अर्थ जगत् सडे तृणका टुकडा है, विषभी अमृत है, तथा क्षण और अनंत कल्पभी समान है ॥ ६७ ॥ यह संपूर्ण जगत् संविन्मात्र है इसकारण प्रसन्नचित्त, और सबजगत्को साक्षी आत्मामात्र देखनेसे सब जगत्के मध्यमें बसते ये ज्ञानी पुरुष विहार करतेहैं ॥ ६८ ॥

संविन्मात्रपरिस्पंदेजागतेवस्तुपंजरे ॥ किंहेयंकिमुपादेयमिहतत्त्वविदांमतम् ॥ ६९ ॥ संविदेवेदमखिलंभ्रांतिमन्यांत्यजानघ ॥ संविन्मयवपुःस्फारंकिंजहातिकिमीहते ॥ ७० ॥ यदेतज्जीयतेभूमेर्भविष्यत्पल्लवांकुरम् ॥ तत्संविदेवप्रथतेतथातत्त्वांकुरस्थितम् ॥ ७१ ॥ आदावंतेचयन्नास्तिवर्तमानेपितस्यच ॥ कंचित्काललवंदृष्टासत्तासौसंविदोभ्रमः ॥ ७२ ॥

अर्थ—जगत्संबन्धी वस्तुमात्र पंजरके संवित्के परिस्पंदमात्र होनेसे तत्त्ववेत्ताओंको कौन वस्तु हेय और कौन उपादेयरूपसे इष्ट है ॥ ६९ ॥ हे पापरहित रामजी! यह सब जगत् संविन्मात्र है इससे अन्यभ्रमको तुम त्यागो, और संविन्मात्र विशालशरीर किसको त्यागै और किसको ग्रहण करै ॥ ७० ॥ भूतविषयमें इच्छाके अभावसे अज्ञानीरूप हरिणके अभिलषणीय पल्लवके तुल्य वर्तमान विषयसमूह जो कुछ पृथिवीसे उत्पन्नहोताहै और जो कुछ भविष्यत् है वह सब जैसे संवित् प्रसिद्ध होती है वैसेही आकाशादि तथा शब्दस्पर्शआदि तत्वके अंकुरके समान स्थितहै ॥ ७१ ॥ जो वस्तुआदि अंतमें नहीं है वह वर्तमानमेंभी वैसेही है और उसकी वर्तमानसमयमें जो कुछ कालके लिये सत्ता दृष्ट है वह केवल संवित्का भ्रम है ॥ ७२ ॥

इतिमत्वाधियंत्यक्त्वाभावाभावानुपातिनीम् ॥ निस्संगसंविद्रूपोभवभावांतमागतः ॥ ७३ ॥ कायेनमनसाबुद्ध्याकेवलैरिंद्रियैरपि ॥ कर्मकुर्वन्नकुर्वन्वानिस्संगःसन्नलिप्यते ॥ ७४ ॥ मनसासंगरसंगमनसा कुर्वन्नपिनलिप्यते ॥ सुखदुःखैर्महाबाहोमनोरथदशास्विव ॥ ७५ ॥ गतसंगांमतिंकुर्वन्कुर्वन्नप्यंगयष्टिभिः ॥ नालिप्यतेसुखैर्दुःखैर्मनोरथदशास्विव ॥ ७६ ॥

अर्थ—ऐसा मननसे दृढ निश्चय करके भाव तथा अभावकी ओर गिरनेवाली बुद्धिको त्यागकर भावके अंतमें प्राप्त तुम निःसंग प्रकाशरूप संविन्मात्र होओ ॥ ७३ ॥ शरीरसे, मनसे, बुद्धिसे, आसंगके दोषोंसे शून्य, केवल इन्द्रियोंसे व्युत्थानकालमें कर्मोंको करतेहुये और समाधिकालमें न करतेहुये निःसंग होनेसे तुम उन कर्मोंमें लिप्त नहीं होगे ॥ ७४ ॥ हे महाबाहो! संगरहित मनसे कर्मोंको करतेहुयेभी सुखदुःखोंसे तुम ऐसे नहीं लिप्त होओगे जैसे मनोरथकी दशाओंमें ॥ ७५ ॥ हे रामजी! संगरहित बुद्धिको करतेहुये और अंगरूप यष्टियोंसे कर्मोंको करतेहुयेभी मनोरथकी दशाओंके तुल्य लिप्त नहीं होता ॥ ७६ ॥

गतसंगमनादृष्ट्यापश्यन्नपिनपश्यति ॥ एतदन्यस्थचित्तत्वाद्बालेनाप्यनुभूयते ॥ ७७ ॥ गतसंगमनाजंतुःपश्यन्नेवनपश्यति ॥ नशृणोत्यपिशृण्वंश्चनस्पृशत्यपिचस्पृशन् ॥ ७८ ॥ नाजिघ्रत्यपिसंजिघ्रन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ॥ पदार्थेचपतत्येवबलात्पततिनाप्ययम् ॥ ७९ ॥ देशांतरस्थचेतोभिरेतदात्मगृहस्थितैः ॥ अप्रौढमतिभिःसाधुमूर्खैरप्यनुभूयते ॥ ८० ॥

अर्थ—संगरहित मनवाला प्राणी दृष्टिसे देखता हुआभी नहीं देखता यह वार्ता अन्यवस्तुमें चित्तके स्थित होनेसे बालकभी अनुभव करताहै अर्थात् चित्तके अन्यमें स्थित होनेसे दृष्टिसे पदार्थको देखताहुआभी नहीं देखता ॥ ७७ ॥ असक्तमनवाला जीव देखताहुआभी नहीं देखता, सुनता हुआभी नहीं सुनता, और स्पर्श करता हुआभी स्पर्श नहीं करता ॥ ७८ ॥ सूंघताहुआभी नहीं सूंघता, नेत्रोंको खोलताहुआभी नहीं खोलता, इसप्रकार कर्म इन्द्रियगणके संस्कारके बलसे अपने २ विषयोंमें गिरनेपरभी यह आत्मा नहीं गिरता ॥ ७९ ॥ अन्यदेशमें जिनका मन और अपने गृहमें जो स्थित है ऐसे अप्रौढबुद्धिवाले मूर्खभी इस बातको भलीभांति समझते हैं कि मनके अन्यत्र रहते दृष्टिआदिसे देखते हुये नहीं देखते वा सुनते ॥ ८० ॥

संगःकारणमर्थानांसंगःसंसारकारणम् ॥ संगःकारणमाशानांसंगःकारणमापदाम् ॥ ८१ ॥ संगत्या गंविदुर्मोक्षंसंगत्यागादजन्मता ॥ संगंत्यजत्वंभावानांजीवन्मुक्तोभवानघ ॥ ८२ ॥ श्रीरामउवाच ॥ सर्वसंशयनीहारशरन्मारुतहेमुने ॥ संगःकिमुच्यतेब्रूहिसमासेनममप्रभो ॥ ८३ ॥ श्रीवसिष्ठउवाच ॥ भावाभावेपदार्थानांहर्षामर्षविकारदा ॥ मलिनावासनायैषासासंगइतिकथ्यते ॥ ८४ ॥

अर्थ— हे रामजी ! सब पदार्थोंका कारण संगही है, संगही संसारका कारण है, संगही आशाओंका कारण है, संगही [illegible]तियोंकाभी कारण है ॥ ८१ ॥ संगके त्यागको मोक्ष कहतेहैं और संगके त्यागसे जन्मकाभी अभाव होताहै इसकारण हे रामजी ! तुम पदार्थोंके संगको त्यागके जीवन्मुक्त होजाओ ॥ ८२ ॥ श्रीरामजी बोले—हे संपूर्ण संशयरूप नीहारके हरनेमें शरत्कालके पवन हे मुने ! संग क्या वस्तु है सो मुझे संक्षेपसे हे प्रभो ! कहिये ॥ ८३ ॥ श्रीवसिष्ठजी बोले—हे रामजी ! पदार्थोंके संयोग और वियोगमें हर्ष तथा शोकादि विकारोंको देनेवाली जो मलिन वासना है उसीको संग कहतेहैं ॥ ८४ ॥

जीवन्मुक्तशरीराणामपुनर्जन्मकारिणी ॥ मुक्ताहर्षविषादाभ्यांशुद्धाभवतिवासना ॥८५॥ तामसंगाभिधांविद्धियावद्देहंचभाविनी ॥ तयायत्क्रियतेकर्मनतद्बंधायवैपुनः ॥ ८६ ॥ अजीवन्मुक्तरूपाणांदीनानांमूढचेतसाम् ॥ युक्तामर्षविषादाभ्यांबंधनीवासनाभवेत् ॥ ८७ ॥ सैवोक्तासंगशब्देनपुनर्जननकारिणी ॥ तयायत्क्रियतेकर्मतद्बंधायैवकेवलम् ॥ ८८ ॥

अर्थ—और जीवन्मुक्तके शरीरोंकी पुनर्जन्मको न करनेवाली तथा हर्षशोकसे विनिर्मुक्त शुद्धवासना होती है ॥ ८५ ॥ प्रारब्धकर्मके क्षयपर्य्यन्त होनेवाली उस वासनाको तुम असंगनामवाली जानो और उससे जो कर्म किया [illegible] नहीं होता ॥ ८६ ॥ और जो जीवन्मुक्त नहीं है ऐसे दीन और मूढचित्तवालोंकी वासना हर्ष और शोकसे युक्त तथा बंधनके हेतु होतीहै ॥ ८७ ॥ वही पुनर्जन्मकारिणी वासना संगशब्दसे कही जाती है और उस वासनासे जो कुछ कर्म कियाजाताहै वह केवल बंधनके लिये होताहै ॥ ८८ ॥

[illegible]रित्यज्यसंगंस्वात्मविकारदम् ॥ यदितिष्ठसिनि[illegible]त्त्रापिनालिप्यसे ॥ ८९ ॥ हर्षामर्षवि[illegible]यदिगच्छसिनान्यताम् ॥ वीतरागभयक्रोधस्तदसंगोसि[illegible] ॥ ९० ॥ दुःखैर्नग्लानिमाया[illegible]यदिहृष्यसिनोसुखैः ॥ आशावैवश्यमुत्सृज्यतदसंगोसिराघव ॥ ९१ ॥ [illegible]व्यवहारेषुसुखदुःख दशासुच ॥ नविमुंचसिसत्साम्यंतदसंगोसिराघव ॥ ९२ ॥

अर्थ—इसप्रकारके आत्माको विकारप्रद वासनारूप संगको त्यागके यदि तुम स्वस्थ स्थित[illegible] होयेभी लिप्त नहीं हो ॥ ८९ ॥ हे राघव ! यदि तुम हर्ष आमर्ष तथा विषादसे विरूपताको नहीं प्राप्तहो [illegible]राग, भय तथा क्रोधसे रहित हो तो तुम असंगहो ॥ ९० ॥ हे राघव ! यदि तुम दुःखोंसे ग्लानिको नहीं प्राप्तहो औ[र सु]खोंसे प्रसन्न नहीं होतो आशाकी व्याकुलताको त्यागकर असंगहो ॥ ९१ ॥ हे रामजी ! लोकके व्यवहारोंमें [सु]खदुःखादिकी दशाओंमें यदि तुम ब्रह्मकेसाथ एकरूपताको नहीं त्यागतेहो तो तुम असंग हो ॥ ९२ ॥

संवेद्योयदिचैवात्मावेदितेलक्ष्यतेसमः ॥ यथाप्राप्तानुवर्तीचतदसंगोसिराघव ॥ ९३ ॥ असंगतामन[ा]यासाज्जीवन्मुक्तस्थितिंस्थिराम् ॥ अवलंब्यसमःस्वस्थोवीतरागोभवानघ ॥ ९४ ॥ जीवन्मुक्त[ः] तिर्मौनीनिगृहीतेंद्रियग्रहः ॥ अमानमदमात्सर्यमार्यस्तिष्ठतिविज्वरम् ॥९५॥ सदासमग्रेपिहिवस्तु[जा]लेसमाशयोप्यंत[ः]सत्त्वः ॥ व्यापारमात्रात्सहजात्क्रमस्थान्नकिंचिदप्यन्यदसौकरोति ॥ ९६ ॥

अर्थ—हे [illegible] तुमारा चित्त स्वभाव संवेद्य है और विदित होनेपर सम (ब्रह्म) रूप लक्षित है [illegible] संगहो ॥ ९३ ॥ अनायास (विना परिश्रम [illegible]) जो असंगता [illegible] पापरा [illegible]